अथ स्कन्दपुराणान्तर्गतप्रभासखण्डस्य

सूचीपत्रम् ॥

इति प्रभासखण्डस्य सूचीपत्रम् ॥

—:०:—

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डः सटीकः प्रारभ्यते॥

दो॰ । सिद्धि सदनगजवदन को प्रथमहिं शीश नवाय ॥ यहि प्राभासिक खण्डकर भाषा रचहुं बनाय १ बहुरि रमेश महेश अरु श्री शारदहिं मनाय ॥ हाथ जोरि विनती करहुं कीजै सदा सहाय २ जिमि सनकादिक ऋषिन सब प्रश्न निरूपण कीन । सोइ प्रथम अध्याय में कथित चरित्र नवीन ॥ नारायण व नरोत्तम नरजी को प्रणाम कर तथा सरस्वतीदेवी व व्यास जी को नमस्कार कर उसके उपरान्त जयरूप ग्रन्थ को कहै ॥ १ ॥ प्रकाशवान् तथा क्षेत्रोंमें उत्तम व निर्मल पृथ्वी में

नारायणंनमस्कृत्यनरञ्चैवनरोत्तमम् ॥ देवींसरस्वतींव्यासं ततोजयमुदीरयेत् ॥ १ ॥ क्षेत्रंक्षेत्रवरंयदस्ति विमलं प्राभासिकंभासुरं सोमेशस्सुरसंयुतःक्षितितले यैर्वीक्षितोहीक्षणैः ॥ तेतीर्त्वानितरान्तरंभवभयं भूत्याभिसम्भूषिताः स्वर्गयानवरैःप्रयान्ति सुकृतैर्यज्ञैर्यतोयाजितः ॥ २ ॥ प्रसरबिन्दुमादाय शुद्धामृतमयात्मने ॥ षट्त्रिंशत्तत्त्वदेहाय नमश्चिन्मात्रमूर्त्तये ॥ ३ ॥ सत्रान्तेसूतमनघं नैमिषेयामहर्षयः ॥ पुराणसंहिताम्पुण्यां पप्रच्छु

जो प्रभासक्षेत्र है वहांपर देवताओं से संयुत सोमेशजी को जिन्होंने नेत्रों से देखा है वे बहुतही अधिक संसारके भय को उतरकर लक्ष्मी से संयुत होतेहैं व उत्तम विमानों के द्वारा स्वर्ग को जाते हैं क्यों कि वे सदाशिव जी भलीभाति की हुई यज्ञों से पूजित हैं ॥ २ ॥ फैलतेहुये बिन्दु को लेकर शुद्ध अमृतमय आत्मा-वाले तथा छत्तीस तत्त्वों से संयुत शरीरवाले, चैतन्यमात्र मूर्तिधारी के लिये प्रणाम है ॥ ३ ॥ यज्ञान्त में नैमिषक्षेत्र के रहनेवाले महर्षिलोगों ने पापरहित लोम-

हर्षण सूतजी से पवित्रदायिनी पुराण की संहिता को पूछा ॥ ४ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे महाबुद्धिमान्, सूतजी ! तुमने इतिहास व पुराणों के लिये ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ व्यासजीकी भलीभांति उपासना किया है ॥ ५ ॥ और जिसलिये उन व्यासजीके वचन से तुम्हारे समस्तरोम प्रसन्न होगये उसीकारण आप रोमहर्षण हुये हो ॥ ६ ॥ और आपही स्वामी व्यासजीने मुनियों के मध्य में पहले आपही से पुराणवाली संहिता व कथा कहने के लिये कहा है ॥ ७ ॥ और ब्रह्मा की यज्ञ का विस्तार होनेपर अभिषेक के दिन संहिता कहने के लिये अपने अंशसे पुरुषोत्तम विष्णु तुम्हीं पैदाहुये हो ॥ ८ ॥ इस लिये हमलोग स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहेहुये

लोमहर्षणम् ॥ ४ ॥ ऋषयऊचुः ॥ त्वयासूतमहाबुद्धे भगवान्ब्रह्मवित्तमः ॥ इतिहासपुराणार्थे व्यासस्सम्यगुपासितः ॥ ५ ॥ तस्यतेसर्वरोमाणि वचसाहृषितानियत् ॥ द्वैपायनस्यतुभवांस्ततोभूद्रोमहर्षणः ॥ ६ ॥ भवन्तमेवप्रथमं व्याजहारस्वयम्प्रभुः ॥ मुनीनांसंहितांवक्तुं व्यासःपौराणिकींकथाम् ॥ ७ ॥ त्वंहिस्वायम्भुवेयज्ञे सुत्याहेवितते हरिः ॥ सम्भूतस्संहितांवक्तुं स्वांशेनपुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥ तस्माद्भवन्तंप्रच्छामः पुराणेस्कन्दकीर्तिते॥प्रभासक्षेत्रमाहात्म्यं ब्राह्मीयात्राश्रुतापुरा ॥ ९ ॥ अधुनावैष्णवींरौद्रीं यात्रांसर्वार्थसंयुताम् ॥ वक्तुमर्हसिचास्माकं पुराणार्थविशारद ॥ १० ॥ मुनीनांवचनंश्रुत्वा सूतःपौराणिकोत्तमः ॥ प्रणम्यशिरसाप्राह गुरुंसत्यवतीसुतम् ॥ ११ ॥ लोमहर्षणउवाच ॥ श्रीवत्सांकञ्जगद्योनिं मोहनंकामरूपिणम् ॥ अप्रमेयंगुरुंदेवं निर्भयंनिर्भयाश्रयम् ॥ १२ ॥ हंसंशुचिषदंव्योम व्यापकंसर्वगंशिवम् ॥ उदासीनंनिरायासं निष्प्रपञ्चंनिरञ्जनम् ॥ १३ ॥ भूम्यांबिन्दुस्वरूपन्तु ध्येयंध्यानविवर्जितम् ॥ अ

स्कन्दपुराण में आपसे प्रभासक्षेत्र का माहात्म्य पूंछतेहैं पुरातन समय ब्राह्मीयात्रा सुनीगई है ॥ ९ ॥ हे पुराण के अर्थ में प्रवीण ! इस समय समस्त अर्थोंसे संयुत वैष्णवी व शैवीयात्रा को हम लोगों से कहनेके योग्यहो ॥ १० ॥ मुनियों का वचन सुनकर पौराणिकों में उत्तम सूतजी सत्यवती के पुत्र व्यास गुरुको शिर से प्रणाम कर बोले ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि श्रीवत्सचिह्नवाले व संसारको पैदा करनेहारे, मोहनेहारे व इच्छा के अनुकूल रूपधारनेवाले, प्रमाण रहित, निडर व निर्भय के आश्रय, गुरु, विष्णुदेव को प्रणामकर ॥ १२ ॥ व हंसरूप तथा अन्तःकरण में टिकनेवाले, आकाशरूप, व्यापक,सर्वगामी सदाशिवजी जोकि शत्रु,

मित्रभावसे रहित,परिश्रमहीन,प्रपञ्च (माया) रहित व निरञ्जन ॥ १३ ॥ भूमिमें बिन्दुस्वरूप,ध्यान करनेयोग्य और ध्यानसे रहितहैं और जिनको वेद अस्ति,नास्ति कहते हैं वे बहुत दूर व समीप हैं ॥ १४ ॥ और वह पुरुषनामक संसारमय उत्तमतेज मनसे ग्रहण करनेयोग्यहै और हृदयके कमलमें भलीभाति स्थित इन्द्रियरहित तेजोरूप है ॥ १५ ॥ ऐसे परमात्मा को नमस्कार कर दो प्रकारकी व दो शरीरोंवाली कथाको कहूंगा ॥ १६ ॥ जो कि उत्तम भाषासे संयुत व वेदों में स्थित तथा शोभितहै और पांच सन्धियों से संयुत व छः अलङ्कारों से भूषित है ॥ १७ ॥ व सात साधनों से संयुत और आठोंरसों के गुणोंसे रँगीहुई है व नौ गुणोंसे व्याप्त और

स्तिनास्तीतियम्प्राहुस्सुदूरञ्चान्तिकेचतत् ॥ १४॥ मनोग्राह्यम्परंधाम पुरुषाख्यंजगन्मयम् ॥ हृत्पङ्कजसमासीनं तेजोरूपंनिरिन्द्रियम् ॥ १५ ॥ एवंविधंनमस्कृत्य परमात्मानमेवच ॥ कथांवदिष्येद्विविधां द्विशरीरान्तथैवच ॥ १६ ॥ दिव्यभाषासमोपेतां वेदाधिष्ठाञ्चशोभिताम् ॥ पञ्चसन्धिसमायुक्तां षडलङ्कारभूषिताम् ॥ १७॥ सप्तसाधनसंयुक्तां रसाष्टगुणरञ्जिताम् ॥ गुणैर्नवभिराकीर्णां दशदोषविवर्जिताम् ॥ १८ ॥ विभाषाभूषितांतद्वदेकायत्तांमनोहराम् ॥ पञ्चकारणसंयुक्तां चतुष्कारणसम्मताम्॥ १९ ॥ पुनश्चद्विविधांतद्वज्ज्ञानसन्दोहदायिनीम् ॥ व्यासेनकथिताम्पूर्वं शृणुध्वं पापनाशिनीम् ॥ २० ॥ यांश्रुत्वापापकर्मापि गच्छेद्विपरमाङ्गतिम् ॥ दुःखत्रयविनिर्मुक्तः सर्वान्तकविवर्जितः ॥२१॥ ननास्तिकेकथांब्रूयादिमाम्पुण्यांकदाचन ॥ २२ ॥ श्रद्दधानायशान्ताय कीर्तनीयाद्विजातये ॥ निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितोविधिः ॥ २३ ॥ तस्यैवार्थेधिकारोस्तिन्याय्योनान्यस्यकस्यचित् ॥ चतुष्पन्त्रावदातस्य विशु

दश दोषों से रहित है ॥ १८ ॥ और विभाषाओं से भूषित वैसेही एकही के अधीन व मनोहर है और पांच कारणों से संयुत व चार कारणोंसे सम्मतवाली है॥ १९ ॥ व फिर वैसेही दो प्रकारवाली और ज्ञानसमूह को देनेवाली है और पहले व्यासजी से कहीगई है उस पापनाशिनी कथाको सुनिये ॥ २० ॥ कि जिसको सुनकर पापकर्मी भी मनुष्य उत्तमगति को प्राप्तहोते है और तीनों दुःखोंसे छूटाहुआ व सबों के नाशक कालसे रहित होता है ॥ २१ ॥ और इस पुण्यदायिनी कथाको नास्तिक से किसी प्रकार न कहै ॥ २२ ॥ किन्तु यह कथा श्रद्धावान् व शान्त ब्राह्मणके लिये कहनेयोग्यहै और गर्भाधानसे लगाकर श्मशान पर्यन्त मन्त्रों के द्वारा

जिसकी विधि कहीगई है ॥ २३ ॥ उसीके लिये योग्य अधिकारहै अन्य किसीको अधिकार नहीं है चारों पक्षोंमें शुद्ध व उत्तम जीविकावाले पवित्र ब्राह्मण का वेदके तुल्य इस शास्त्रमें अधिकार है जैसे देवताओं के मध्यमें देवदेव महादेवजी श्रेष्ठहैं ॥ २४। २५ ॥ व नदियों के बीचमें जैसे गङ्गाजी व वर्णों के मध्यमें जैसे ब्राह्मण श्रेष्ठहैं व जैसे समस्त अक्षरों के मध्यमें ॐकार श्रेष्ठहै ॥ २६ ॥ और पूजनीयजनों के बीचमें जैसे माता व गुरुओं के मध्य में जैसे पिताहै वैसेही सब शास्त्रोंके मध्यमें स्वामिकार्त्तिकेयजी से कहाहुवा पुराण है ॥ २७ ॥ पुरातन समय कैलासपर्वत के शिखर पै ब्रह्मादिक देवताओं के समीप सदाशिवजीने श्रीपार्वतीजी के आगे स्कन्द-

द्वब्राह्मणस्यच ॥ २४ ॥ सद्वृत्तेरधिकारोस्ति शास्त्रेस्मिन्वेदसम्मिते ॥ यथासुराणांप्रवरो देवदेवोमहेश्वरः ॥ २५ ॥ नदीनाञ्चयथागङ्गा वर्णानांब्राह्मणोयथा ॥ अक्षराणान्तुसर्वेषामोङ्कारोवैयथातुवा ॥ २६ ॥ पूज्यानान्तुयथामाता गुरूणान्तुयथापिता॥ तथैवसर्वशास्त्राणाम्पुराणंस्कन्दकीर्तितम् ॥२७॥ पुराकैलासशिखरेब्रह्मादीनाञ्चसन्निधौ॥ स्कान्दम्पुराणंकथितम्पार्वत्यग्रेपिनाकिना ॥ २८ ॥ पार्वत्यापण्मुखस्याग्रे तेननन्दिगणायवै ॥ नन्दिनातुकुमाराय तेनव्यासायधीमते ॥ २९ ॥ व्यासेनतुसमाख्यातम्भवद्भ्योहंप्रकीर्त्तये ॥ यूयंसद्भावसंयुक्तामतस्सर्वेमहर्षयः ॥ ३० ॥ तेनमेभाषितुंश्रद्धा भवतांस्कन्दसंहिताम्॥ ३१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेबृहत्प्रभासखण्डेप्रश्ननिरूपणंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १॥

ऋषयऊचुः ॥ कथायालक्षणंब्रूहि गुणदोषान्सविस्तरात् ॥ आर्षेयपौरुषेयाणां काव्यचिह्नपरीक्षणम् ॥ १ ॥ कथं

पुराणको कहाहै ॥ २८ ॥ और पार्वतीने स्वामिकार्त्तिकेयजीके आगे कहा व उन्होंने नन्दीनामक गणसे कहा और नन्दीने महासेनजीसे कहा व उन्होंने बुद्धिमान् व्यासजीसे कहा ॥ २९ ॥ और व्याससे कहेहुये पुराणको मैं आप लोगोंसे कहताहूं जिसलिये कि आप सब महर्षिलोग उत्तमस्वभावसे संयुतहो ॥ ३० ॥ उसीलिये आपलोगों से स्कन्दसंहिताको कहनेके लिये मेरे श्रद्धाहै ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेबृहत्प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांप्रश्ननिरूपणंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

दो० । अष्टादशहु पुराण कर संख्यादिक परमान । यहि दूजे अध्याय में वरन्योंसूत सुजान ॥ ऋषिलोग बोले कि कथाके लक्षण को कहिये व विस्तार समेत गुणों

व दोषों को कहिये व ऋषियों के बनाये व पुरुषोंसे रचेहुये काव्यों के चिह्न की परीक्षा ॥ १ ॥ कैसे जाननेयोग्य होती है हे महाबुद्धे ! हमलोग उसको सुनना चाहते हैं सूतजी बोले कि इसके उपरान्त पुराणों का अनुक्रम व लक्षण संक्षेप से कहूंगा व मुक्तिके भेदोंको विस्तारपूर्वक कहूंगा पुरातन समय देवताओं के मध्य में ब्रह्माजी ने उग्रतप कियाहै ॥ २ । ३ ॥ तदनन्तर छः अङ्ग व पदक्रम समेत वेद प्रकटहुये हैं उसके उपरान्त समस्त शास्त्रमय व अचल समस्त पुराणहुये हैं ॥ ४ ॥ जोकि अविनाशी व पुण्यरूप तथा सैकड़ों करोड़ विस्तारवाला है ब्रह्माजी के मुख से ब्रह्मपुराण व शिवपुराण निकला ॥ ५ ॥ और शिवपुराण, भागवत, भविष्य, नारद,

ज्ञेयंमहाबुद्धे श्रोतुमिच्छामहेवयम् ॥ सूतउवाच ॥ अथसंक्षेपतोवक्ष्ये पुराणानामनुक्रमम् ॥ २ ॥ लक्षणंचैवसंख्या सं मुक्तिभेदांस्तथैवच ॥ पुरातपश्चचारोग्रममराणांपितामहः ॥ ३ ॥ आविर्भूतास्ततोवेदाः सषडङ्गपदक्रमाः ॥ ततःपु राणमखिलं सर्वशास्त्रमयंध्रुवम् ॥ ४ ॥ नित्यंशब्दमयंपुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ निर्गतंब्रह्मणोवक्त्राद्ब्राह्मंचैष्ण वमेवच ॥ ५ ॥ शैवंभागवतंचैव भविष्यंनारदीयकम् ॥ मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेवच ॥ ६ ॥ लिङ्गंपाद्मंचवा राहं स्कान्दंवामनमेवच ॥ कौर्म्यंमात्स्यंगारुडञ्च वायवीयमनन्तरम् ॥ ७ ॥ अष्टादशसमुद्दिष्टं सर्वपातकनाशनम् ॥ एकमेवपुराऽऽसीद्ब्रह्माण्डंशतकोटिधा ॥ ८ ॥ ततोष्टादशधाकृत्वावेदव्यासोयुगेयुगे ॥ प्रख्यापयतिलोकेस्मिन्साक्षा न्नारायणांशजः ॥ ९ ॥ अन्यान्युपपुराणानि मुनीनांकथितानितु ॥ तानिवःकथयिष्यामि संक्षेपादवधार्यताम् ॥ १० ॥ आद्यंसनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतःपरम् ॥ तृतीयंस्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेणतुभाषितम् ॥ ११ ॥ चतुर्थंशिवधर्माख्यं सा

मार्कण्डेय, अग्निपुराण व ब्रह्मवैवर्त ॥ ६ ॥ व लिङ्गपुराण, पद्मपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण व वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुडपुराण इसके अनन्तर वायुपुराण उत्पन्नहुआहै ॥ ७ ॥ यह अठारह पुराण समस्तपातकों के नाशक कहेगये हैं पुरातन समय एकही ब्रह्माण्ड सौ करोड़ प्रकार का हुआहै ॥ ८ ॥ तदनन्तर साक्षात् नारायण के अंशसे उपजेहुये वेदव्यासजी अठारह प्रकारका करके इस संसारमें युगयुग में प्रसिद्ध कराते हैं ॥ ९ ॥ और मुनियों के कहेहुये अन्य उपपुराण हैं उनको मैं आपलोगों से संक्षेप से कहूंगा सुनिये ॥ १० ॥ पहले उपपुराण सनत्कुमार से कहागया है इसके उपरान्त नृसिंह उपपुराण है और स्वामिकार्त्तिकेयजी

स कहाहुआ तीसरा स्कन्द उपपुराण है ॥ ११ ॥ और साक्षात् नन्दीशजी से कहा चौथा शिवधर्मनामक उपपुराण है दुर्वासा से कहाहुआ आश्चर्य उपपुराण है व इसके उपरान्त नारद से कहाहुआ उपपुराण है ॥ १२ ॥ और कपिलपुराण व मनुपुराण वैसेही शुक्रजी से कहाहुआ उपपुराणहै ब्रह्माण्ड तथा वरुण उपपुराण व अन्य कालिकानामक उपपुराणहै ॥ १३ ॥ और माहेश्वर व साम्ब उपपुराणहै और समस्त अर्थों के समूहवाला सूर्य उपपुराणहै व पराशर से कहाहुआ उत्तम उपपुराण व मारीच तथा भृगुनामक उपपुराणहै ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ये उपपुराण कहेगये हैं ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी! क्रमसे विस्तारपूर्वक पुराणोंकी संख्या कहिये ॥१५॥

त्थान्नन्दीशभाषितम् ॥ दुर्वाससोक्तमाश्चर्य्यं नारदोक्तमतःपरम् ॥ १२ ॥ कापिलंमानवंचैव तथैवोशनसेरितम् ॥ ब्रह्माण्डंवारुणंचान्यत्कालिकाह्वयमेवच ॥ १३ ॥ माहेश्वरंतथासाम्बं सौरंसर्वार्थसञ्चयम् ॥ पराशरोक्तंपरमं मारीचम्भार्गवाह्वयम् ॥ १४ ॥ एतान्युपपुराणानि कथितानिद्विजोत्तमाः ॥ ऋषयऊचुः ॥ पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूतविस्तरतःक्रमात् ॥ १५ ॥ दानधर्ममशेषञ्च यथावदनुपूर्वशः ॥ सूतउवाच ॥ इदमेवपुराणेऽस्मिन् पुराणपुरुषस्तदा ॥ १६ ॥ यदुक्तवान्सविश्वात्मा मनवेतन्निबोधमे ॥ पुराणंसर्वशास्त्राणां ब्रह्माण्डेप्रथमंस्मृतम् ॥ १७ ॥ अनन्तरञ्चवक्त्रेभ्यो वेदास्तस्यविनिर्गताः ॥ पुराणमेकमेवासीत्तस्मिन्कल्पान्तरेतदा ॥ १८ ॥ त्रिवर्गसाधनंपुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ विनिर्दग्धेपुरालोके कृष्णेनानन्तरूपिणा ॥ १९ ॥ साङ्गाश्चचतुरोवेदाः पुराणन्यायविस्तरः ॥ मीमांसांधर्मशास्त्रञ्च

और क्रमसे यथायोग्य समस्त दान धर्मको कहिये सूतजी बोले कि इस पुराण में जब मनुजी ने पुराणपुरुष विष्णुजी से इसी बातको पूंछा है तब ॥ १६ ॥ उन विश्वात्मा विष्णुजीने मनुजी से जो कहाहै उसको मुझ से सुनिये कि ब्रह्माण्ड में सब शास्त्रोंके मध्यमें पहले पुराण कहागयाहै ॥ १७ ॥ इसके उपरान्त उन ब्रह्माजीके मुखोंसे वेद निकलेहैं उससमय उस कल्पके अनन्तरमें एकही पुराणहुआहै ॥ १८ ॥ जोकि धर्म, अर्थ व कामको साधन करनेवाला,पुण्यदायक व सैकड़ोंकरोड़ विस्तारवाला था पुरातन समय जब अनन्तरूपी श्रीकृष्णजी ने लोकोंको भस्म करदिया ॥ १९ ॥ तब अङ्गों समेत चारोंवेद और पुराण व न्याय के विस्तार तथा मीमांसा व

धर्मशास्त्र को लेकर अपने आधीन कियाहै ॥ २० ॥ फिर कल्प के आदिमें जलसमुद्रमें विष्णुजी ने मछली के रूपसे दिव्यनेत्रोंवाले ब्रह्माजी से सब वर्णन किया है ॥ २१ ॥ और ब्रह्माने त्रिकालज्ञानके दर्शी मुनियोंसे कहाहै इसप्रकार सब शास्त्रों और पुराणोंकी प्रवृत्ति हुई है ॥ २२ ॥ तदनन्तर समय के क्रमसे ये व्यासरूपधारी विष्णुजी प्रत्येकयुगमें अठारहपुराणों का संक्षेप करते हैं ॥ २३ ॥ और चारलाख प्रमाणवाली उन पुराणों की अठारहसंख्या करके प्रत्येक द्वापरमें वेदव्यासजी इस भूलोक में कहते हैं ॥ २४ ॥ और आजभी देवलोक में सौ कोटि प्रमाणवाला पुराणहै उसका अर्थ चारलाख संक्षेप से संयुक्त कियागया है ॥ २५ ॥ इस समय वे

परिगृह्यात्मसात्कृतम् ॥ २० ॥ मत्स्यरूपेणचपुनः कल्पादावुदकार्णवे ॥ अशेषमेवकथितं ब्रह्मणेदिव्यचक्षुषे ॥ २१ ॥ ब्रह्माजगादचमुनींस्त्रिकालज्ञानदर्शिनः ॥ प्रवृत्तिस्सर्वशास्त्राणाम्पुराणस्याभ्यवर्तत ॥ २२ ॥ ततःकालक्रमेणासौ व्यासरूपधरोहरिः ॥ अष्टादशपुराणानि संक्षिप्यतियुगेयुगे ॥ २३ ॥ चतुर्लक्षप्रमाणानि द्वापरेद्वापरेतथा ॥ तदाष्टादशधाकृत्वा भूर्लोकेस्मिन्प्रभाषते ॥ २४ ॥ अद्यापिदेवलोकेतु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ तदर्थोत्रचतुर्लक्षः संक्षेपेणनियोजितः ॥ २५ ॥ पुराणानिदशाष्टौच साम्प्रतंतदिहोच्यते ॥ नामतस्तानिवक्ष्यामि संख्याश्चमुनिसत्तमाः ॥ २६ ॥ ब्रह्मणाभिहितंपूर्वं यावन्मात्रंमरीचये ॥ ब्राह्मयञ्चदशसाहस्रं पुराणम्परिकीर्तितम् ॥ २७ ॥ लिखित्वातच्चयोदद्याज्जलधेनुसमन्वितम् ॥ वैशाख्याम्पौर्णिमास्याञ्च ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ २८ ॥ एतदेवयदापद्ममभूद्धैरण्मयंजगत ॥ तत्कथांताश्रयंतद्वत्पाद्ममित्युच्यतेबुधैः ॥ २९ ॥ पाद्मंतत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीहपठ्यते ॥ तत्पुराणञ्चयोदद्यात सुव

अठारहपुराण कहेजाते हैं हे मुनिश्रेष्ठो ! उन पुराणों को नामोंसे कहताहूं व उनकी संख्याको कहताहूं ॥ २६ ॥ पुरातन समय ब्रह्मा ने जितना मरीचि से कहा है वह दशहज़ार संख्यक ब्रह्मपुराण कहागयाहै ॥ २७ ॥ उसको लिखकर जल व गऊ समेत वैशाखी पौर्णमासीमें जो पुरुष देताहै वह ब्रह्मलोक को जाताहै ॥ २८ ॥ और वैसेही जब यही संसार स्वर्णमय पद्म (कमल) हुआहै उसकी कथान्त का आश्रय पाद्म ऐसा विद्वानों से कहाजाताहै ॥ २९ ॥ वह पद्मपुराण पचपनहज़ार पढ़ा

जाता है सोने के कमलसमेत व तिलोंसे संयुत उस पुराण को जो पुरुष जेठमहीने में देताहै वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाताहै और वाराहकल्प का अधिकार कर उत्तम से उत्तम ॥ ३०।३१ ॥ जो विष्णुजी का चरित रचागया है संसार में विद्वान्लोग उसको विष्णुपुराण कहते हैं और वह पुराण तेईसहज़ार कहागया है ॥ ३२ ॥ घृत व गऊ से संयुत उस पुराण को जो पुरुष आषाढ़ महीने की पौर्णमासी में देता है पवित्र चित्तवाला वह पुरुष विष्णुजी के स्थान को जाताहै ॥ ३३ ॥ और श्वेतकल्प के प्रसंगसे जिसमें वायुने धर्मोंको कहाहै शिवजी के माहात्म्यसे संयुत वह वायुपुराण है ॥ ३४ ॥ यहां वह पुराण चौबीसहज़ार कहाजाताहै श्रावणमहीने

र्णकमलान्वितम् ॥ ३० ॥ ज्येष्ठेमासितिलैर्युक्तं सोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥ वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्यपरात्परम् ॥ ३१ ॥ चरितंरचितंविष्णोस्तल्लोकेवैष्णंविदुः ॥ त्रयोविंशतिसाहस्रंयं पुराणंतत्प्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥ तदाषाढेचयोदद्याद् घृतधेनुसमन्वितम् ॥ पौर्णमास्यांविशुद्धात्मा सपदंयातिवैष्णवम् ॥ ३३ ॥ श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान्वायुरथाब्रवीत् ॥ यत्रतद्वायवीयंस्याद्रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ॥ ३४ ॥ चतुर्विंशत्सहस्राणिपुराणन्तदिहोच्यते ॥ श्रावण्यांश्रावणेमासिगुड धेनुसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ योदद्याद्दधिसंयुक्तं ब्राह्मणायकुटुम्बिने ॥ शिवलोकेसपूतात्मा कल्पमेकंवसेन्नरः ॥ ३६ ॥ यत्राधिकृत्यगायत्रीं वर्ण्यतेधर्मविस्तरः ॥ वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥ ३७ ॥ लिखित्वातच्चयोदद्याद्धेमसिंह समन्वितम् ॥ पौर्णमास्यांप्रौष्ठपद्यां सयातिपरमम्पदम् ॥ ३८ ॥ अष्टादशसहस्राणि पुराणंतत्प्रकीर्तितम् ॥ यत्राहनार दोधर्मान् बृहत्कल्पाश्रयांस्त्विह ॥ ३९ ॥ पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयंतदुच्यते ॥ तदिषेपञ्चदश्यान्तु योदद्याद्धे

में पौर्णमासी तिथिमें गुड़ व धेनुसे संयुत तथा दहीसे संयुक्त इस पुराणको कुटुम्बीपुरुषके लिये जो देताहै पवित्रमनवाला वह मनुष्य एककल्पतक शिवलोक में बसता है ॥ ३५ । ३६ ॥ और जिसमें गायत्री का अधिकार करके धर्म का विस्तार वर्णन कियाजाता है वृत्रासुर के वधसे संयुत वह भागवत कहीजाती है ॥ ३७ ॥ उसको लिखकर सुवर्ण के सिंहासन समेत जो पुरुष भादों की पौर्णमासी में देता है वह परमपद को प्राप्तहोता है ॥ ३८ ॥ और वह पुराण अठारहहज़ार कहागया है व यहां बृहत्कल्प के आश्रय धर्मोंको जिसमें नारदजी ने कहाहै ॥ ३९ ॥ वह पच्चीसहज़ारनारदपुराण कहीजाती है कुँवारमें पौर्णमासी तिथिमें गऊसमेत उसको जो पुरुष देता

है ॥ ४० ॥ वह पुनरावृत्ति में दुर्लभ उत्तमसिद्धि को प्राप्तहोता है और जिसमें पक्षियोंका अधिकारकरके धर्म, अधर्म का विचारहै ॥ ४१ ॥ वह नौ हज़ार मार्कण्डेय-पुराण कहागया है उसको लिखकर जो पुरुष सोनेके हाथी समेत कार्त्तिकी पौर्णमासीमें देताहै वह पुण्डरीकयज्ञके फलका भागी होताहै और जिसमें ईशानकल्प के वृत्तान्त को अधिकारकर ॥ ४२ । ४३ ॥ अग्निजी ने वसिष्ठजी से कहाहै वह अग्निपुराण कहाजाता है उसको लिखकर सोनेके कमल समेत व तिल व गऊसंयुक्त जो पुरुष अगहनमहीने में विधिसे देताहै वह उत्तमफल को प्राप्तहोता है और समस्तयज्ञों के फलको देनेवाला वह पुराण सोलहहज़ार है ॥ ४४ । ४५ ॥ और

नुसंयुतम् ॥४०॥ उत्तमांसिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ यत्राधिकृत्यशकुनीन् धर्माधर्मविचारणम् ॥४१॥ पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयंतदुच्यते ॥ तद्विलिख्यचयोदद्यात्सौवर्णकरिसंयुतम् ॥ ४२ ॥ कार्तिक्याम्पुण्डरीकस्य यज्ञस्यफलभाग्भवेत् ॥ यत्रत्वीशानकल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्यच ॥ ४३ ॥ वसिष्ठायाग्निनाप्रोक्तमाग्नेयंतत्प्रचक्षते ॥ लिखित्वातच्चयोदद्याद्धेमपद्मसमन्वितम् ॥ ४४ ॥ मार्गशीर्षेविधानेन तिलधेनुयुतंतथा ॥ तच्चषोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम् ॥ ४५ ॥ यत्राधिकृत्यमाहात्म्यमादित्यस्यचतुर्मुखः ॥ अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेनजगत्पतिः ॥ ४६ ॥ मनवेकथयामास भूतग्रामस्यलक्षणम् ॥ चतुर्दशसहस्राणि तथापञ्चशतानिच ॥ ४७ ॥ भविष्यचरितप्रायम्भविष्यन्तदिहोच्यते ॥ तत्पौषेमासियोदद्यात्पौर्णमास्यांविमत्सरः ॥ ४८ ॥ गुडकुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलंलभेत् ॥ रथन्तरस्यकल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्यच ॥ ४९ ॥ संवर्णितंनारदायकृष्णमाहात्म्यसंयुतम् ॥ यत्रब्रह्मवराहस्यचरितंवर्ण्यते

जिसमें सूर्यनारायण के माहात्म्य का अधिकारकर संसारके स्वामी चतुराननजी ने अघोरकल्प के वृत्तान्त के प्रसङ्ग से ॥ ४६ ॥ प्राणियों के समूह के लक्षण को मनुजीसे कहाहै जोकि चौदहहज़ार व पांचसौ है ॥ ४७ ॥ प्रायः भविष्यचरित्रोंवाला वह भविष्यपुराण यहां कहाजाता है ईर्षारहित जो पुरुष पौषमास की पौर्णमासी तिथि में गुड़के घड़े से संयुत उस पुराणको देता है वह अग्निष्टोम के फलको प्राप्त होता है और रथन्तरकल्प के वृत्तान्त का अधिकारकर ॥ ४८ । ४९ ॥ नारदजी से

कृष्ण के माहात्म्य से संयुत चरित्र वर्णन कियागया है व जिसमें बार २ ब्रह्मवराह का चरित्र वर्णन कियाजाता है ॥ ५० ॥ वह अठारहहज़ार ब्रह्मवैवर्त कहाजाता है उत्तम पुण्यदायक ब्रह्मवैवर्त को माघमहीने की पौर्णमासी में जो पुरुष देता है वह ब्रह्मा के मंदिर में प्राप्तहोता है और जिसमें आग्नेयकल्प का अधिकारकर लिंग के मध्यमें स्थित सदाशिवजीने धर्म, अर्थ, काम व मोक्षके अर्थों को अग्निजी से कहाहै वह लिंग ऐसा पुराण कहागयाहै जो पुरुष तिल व गऊसे संयुत उस गेरहहज़ार पुराण को फाल्गुन की पौर्णमासी में देताहै वह शिवजीकी समताको प्राप्त होताहै ॥५१।५२।५३।५४ ॥ फिर महावाराहके माहात्म्यको अधिकारकर विष्णुजीने जो पृथ्वी

मुहुः ॥ ५० ॥ तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ॥ सुपुण्यंब्रह्मवैवर्तं योदद्यान्माघमासिच ॥ ५१ ॥ पौर्णिमास्यां सभवनं ब्रह्मणःप्रतिपद्यते ॥ यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राहदेवोमहेश्वरः ॥ ५२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षार्थानाग्नेयमधिकृत्य च ॥ कल्पंतल्लिङ्गमित्युक्तं पुराणंब्राह्मणस्यच ॥ ५३ ॥ तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यांयःप्रयच्छति ॥ तिलधेनुसमायुक्तं सयातिशिवसाम्यताम् ॥ ५४ ॥ महावराहस्यपुनर्माहात्म्यमधिकृत्यच ॥ विष्णुनाभिहितंक्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते ॥ ५५ ॥ मानवस्यप्रसङ्गेन संयुतंमुनिसत्तमाः ॥ चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते ॥ ५६ ॥ काञ्चनंगरुडंकृत्वा तिलधेनुसमन्वितम् ॥ पौर्णमास्यांतथादद्याद्ब्राह्मणायकुटुम्बिने ॥ ५७ ॥ वराहस्यप्रसादेन पदमाप्नोतिवैष्णवम् ॥ यत्रमाहेश्वरान्धर्मानधिकृत्यचषण्मुखम् ॥ ५८ ॥ कल्पेतत्पुरुषेवृत्ते चरितैरुपबृंहितम् ॥ स्कान्दंनामपुराणं तदेकाशीतिनिगद्यते ॥ ५९ ॥ सहस्राणिशतञ्चैकमितिमर्त्येषुपद्यते ॥ परिलिख्यचयोदद्याद्धेमशूलसमन्वितम् ॥ ६० ॥

से कहा है वह यहां वाराहपुराण कहाजाता है ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! मनुजी के प्रसंग से संयुत वह पुराण यहां चौबीसहज़ार कहाजाता है ॥ ५६ ॥ सोने का गरुड़ बनाकर तिल व गऊ से संयुत उस पुराण को जो पुरुष कुटुंबीब्राह्मण के लिये पौर्णमासीतिथि में देताहै ॥ ५७ ॥ वह वाराहजीकी प्रसन्नतासे विष्णु के स्थान को प्राप्त होता है और जिसमें महादेवजी के धर्मों को अधिकारकर स्वामिकार्त्तिकेयजी से ॥ ५८ ॥ तत्पुरुषकल्प के वर्तमान होनेपर वर्णन कियागया है चरित्रों से बढ़ताहुआ वह स्कन्दपुराण इक्यासीहज़ार एकसौ कहाजाताहै ऐसा मनुष्यलोकमें पढ़ाजाताहै उसको लिखकर सोने के त्रिशूलसंयुत जो पुरुष मकरराशि में सूर्यनारायणके प्राप्त

होनेपर देताहै वह शिवजी के स्थान को प्राप्तहोता है और वामनजी का अधिकारकर ब्रह्मा ने ॥ ५९।६०।६१ ॥ त्रिवर्ग याने धर्म, अर्थ व काम को कहाहै कूर्मकल्पानुगामी व कल्याणरूप वह वामनपुराण दशहज़ार कहाजाताहै ॥ ६२ ॥ जो वर्षके मध्य विपुवअयनमें सुवर्ण व वस्त्रसे संयुत तथा रेशमीवस्त्रमें लपेटा हुआ व धेनुसे संयुत उस पुराण को देता है वह विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ व कच्छपरूपी विष्णुजीने रसातल में धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के जिस माहात्म्य को इन्द्रके समीप इन्द्रद्युम्नराजा के प्रसंग से ऋषियों से कहा है लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिक वह पुराण सत्रहहज़ार है ॥ ६४।६५ ॥ सोने के कच्छप समेत कूर्मपुराण को जो

शैवंसपदमाप्नोति मकरोपगतेरवौ ॥ त्रिविक्रमस्यमाहात्म्यमधिकृत्यचतुर्मुखः ॥ ६१ ॥ त्रिवर्गमभ्यधात्तत्तु वामनंपरिकीर्तितम् ॥ पुराणंदशसाहस्रंकौर्म्यकल्पानुगंशिवम् ॥ ६२ ॥ यश्शरद्विषुवेदद्याद्धेमवस्त्रसमन्वितम् ॥ क्षौमाद्यतंयुतंधेन्वा सपदंयातिवैष्णवम् ॥ ६३ ॥ यत्रधर्मार्थकामानां मोक्षस्यचरसातले ॥ माहात्म्यंकथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः ॥ ६४ ॥ इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषीणांशक्रसन्निधौ ॥ सप्तदशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम् ॥ ६५ ॥ योदद्यादयनेकौर्म्यं हेमकूर्मसमन्वितम् ॥ गोसहस्रप्रदानस्य सफलम्प्राप्नुयान्नरः ॥ ६६ ॥ श्रुतीनांयत्रकल्पादौ प्रवृत्त्यर्थंजनार्दनः ॥ मत्स्यरूपीचमनवे नरसिंहोपवर्णनम् ॥ ६७ ॥ अधिकृत्याब्रवीत्सप्तकल्पवृत्तंमुनिर्वृतः ॥ तन्मात्स्यमितिजानीध्वं सहस्राणिचतुर्दश ॥ ६८ ॥ विषुवेहेममत्स्येन धेन्वाक्षौमयुगान्वितम् ॥ योदद्यात्पृथिवीतेन दत्ताभवतिचाखिला ॥ ६९ ॥ यदावागारुडेकल्पे विश्वाण्डाकारसम्भवम् ॥ अधिकृत्यब्रवीत्कृष्णो गारुडंतदिहोच्यते ॥७०॥ तद

अयन समय में देता है वह मनुष्य हज़ारगऊके दान के फलको प्राप्तहोताहै ॥ ६६ ॥ और कल्प के आदि में जिसमें मत्स्यरूपी विष्णुजी ने प्रसन्न होकर वेदों की प्रवृत्ति के लिये नृसिंहरूप के वर्णन का अधिकारकर सातकल्पों के वृत्तान्त को कहा है उस चौदहहज़ार पुराणको मत्स्यपुराण ऐसा जानिये ॥ ६७। ६८ ॥ विषुव याने दिनरात्रि बराबरवाले समय में धेनु व दो रेशमीवस्त्रों से संयुत तथा सोने की मछली समेत उस पुराणको जो पुरुष देता है उसने मानों समस्त पृथ्वी को देदिया ॥ ६९ ॥ और जब श्रीकृष्णजीने गरुडकल्पमें संसार को अण्डाकार उत्पत्ति का अधिकार करके कहा है वह यहां गरुडपुराण कहाजाता है ॥ ७० ॥ वह बार २

अठारहहज़ार कहाजाता है सोने के हंस से संयुत उस पुराण को जो पुरुष उत्तरायण में देता है ॥ ७१ ॥ वह मुख्यसिद्धि को प्राप्तहोता है व शिवलोक में भलीभाति स्थितिको प्राप्तहोताहै फिर ब्रह्माण्डके माहात्म्यका अधिकारकर जो ब्रह्माने कहाहै ॥ ७२ ॥ वह दोसौ अधिक बारहहज़ार ब्रह्माण्डपुराण है जिसमें होनेवाले कल्पोंका विस्तार सुनाजाता है ॥ ७३ ॥ ब्रह्मासे कहाहुआ वह ब्रह्माण्डपुराण है जो पुरुष व्यतीपातयोगमें दो ऊनीवस्त्रों से संयुत उस पुराण को देता है ॥ ७४ ॥ वह मनुष्य हज़ार राजसूययज्ञों के फलको पाताहै और सुवर्ण की धेनुसे संयुत दियाहुआ वह पुराण ब्रह्मलोकके फलको देता है ॥ ७५ ॥ हे ब्राह्मणो ! अद्भुतकर्मवाले व्यासजीने यह

ष्टादशसाहस्रं पठ्यतेचपुनःपुनः ॥ स्वर्णहंससमायुक्तं योदद्यादयनेपरे ॥ ७१ ॥ ससिद्धिंलभतेमुख्यां शिवलोकेसुसं स्थितिम् ॥ ब्रह्माब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत्पुनः ॥ ७२ ॥ तच्चद्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डंद्विशताधिकम् ॥ भवि ष्याणाञ्चकल्पाणां श्रूयतेयत्रविस्तरः ॥ ७३ ॥ तद्ब्रह्माण्डपुराणन्तु ब्रह्मणासमुदाहृतम् ॥ योदद्याच्चव्यतीपाते पूर्णा युयुगसंयुतम् ॥ ७४ ॥ राजसूयसहस्रस्य फलमाप्नोतिमानवः ॥ हेमधेन्वायुतंतच्च ब्रह्मलोकफलप्रदम् ॥ ७५ ॥ चतुर्लक्ष मिदंप्रोक्तं व्यासेनाद्भुतकर्मणा ॥ इहलोकेहितार्थाय संक्षिप्तंद्वापरेद्विजाः ॥ ७६ ॥ इदमद्यापिदेवेषु शतकोटिप्रविस्त रम् ॥ उपभेदान्प्रवक्ष्यामि लोकेयेसम्प्रतिष्ठिताः ॥ ७७ ॥ पाद्मेपुराणेयत्प्रोक्तं नारसिंहोपवर्णनम् ॥ तच्चाष्टादशसाह स्रं नारसिंहमिहोच्यते ॥ ७८ ॥ नन्दिनोयत्रमाहात्म्यं कार्त्तिकेयेनवर्ण्यते ॥ नन्दीपुराणंतल्लोके ख्यातमेतन्मुनीश्व राः ॥ ७९ ॥ यत्रसाम्बंपुरस्कृत्य भविष्येपिकथानकम् ॥ प्रोच्यतेतत्पुनर्लोके साम्बमेवमुनिव्रताः ॥ एवमादित्यसंज्ञन्तु

सब चारलाख कहाहै जोकि द्वापरमें इस लोकमें हितके लिये संक्षेप से वर्णनकिया गयाहै ॥ ७६ ॥ यही आज भी देवताओं में सौकरोड़ विस्तारवाला है और उपभेदों को कहताहूं जोकि संसार में प्रतिष्ठित हैं ॥ ७७ ॥ पद्मपुराण में जो नृसिंहजी का वर्णन है वह अठारहहज़ार यहां नारसिंह ऐसा भेद कहाजाता है ॥ ७८ ॥ व जिस में स्वामिकार्त्तिकेयजी से नन्दीका माहात्म्य वर्णन कियाजाता है हे मुनीश्वरो ! संसार में वह नन्दीपुराण प्रसिद्ध है ॥ ७९ ॥ हे मुनियों के व्रतवाले ऋषीश्वरो !

फिर जिस भविष्य में भी साम्बका अधिकार कर कथा कहीजाती है वही साम्बपुराण कहाजाता है ऐसेही वहींपर आदित्यसंज्ञक पुराण कहाजाता है ॥ ८० ॥ और अठारहपुराणों से पृथक जो पुराण देखपड़ता है हे द्विजोत्तमो ! वह इन्हीं से निकलाहुआ जानिये ॥ ८१ ॥ मुनीश्वरों ने पुराण के पांचलक्षण कहे हैं सर्ग याने पृथ्वी, जल आदि की उत्पत्ति व प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर ॥ ८२ ॥ और वंशवाले पुरुषों का चरित्र इन पांचलक्षणोंवाला पुराण है और ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य व शिवजी का माहात्म्य व संसार का ॥ ८३ ॥ संहार जिसमें देख पड़ताहै वह पाचलक्षणोंवालापुराण होता है और धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष कहा जाता है ॥ ८४ ॥ व सब पुराणों

तत्रैवपरिपठ्यते ॥ ८० ॥ अष्टादशेभ्यस्तुपृथक् पुराणंदृश्यतेतुयत ॥ विजानीध्वंद्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्योविनिस्सृतम् ॥ ८१ ॥ पञ्चाङ्गानिपुराणस्य आख्यातानिमुनीश्वरैः ॥ सर्गश्चप्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणिच ॥ ८२ ॥ वंश्यानुचरितञ्चैव पुराणंपञ्चलक्षणम् ॥ ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यंभुवनस्यच ॥ ८३ ॥ संहारश्चप्रदृश्येत पुराणंपञ्चलक्षणम् ॥ धर्मश्चार्थश्चकामश्च मोक्षश्चपरिकीर्त्यते ॥ ८४ ॥ सर्वेष्वपिपुराणेषु तद्विरुद्धेचयत्फलम् ॥ सात्त्विकेषुचमाहात्म्यं हरेरेवाधिकम्फलम् ॥ ८५ ॥ राजसेषुचमाहात्म्यमधिकंब्रह्मणोविदुः ॥ तद्वदग्नेश्चमाहात्म्यं तामसेषुशिवस्यच ॥ ८६ ॥ सङ्कीर्णेषुसरस्वत्याः पितॄणाञ्चनिगद्यते ॥ चतुर्भिर्भगवान्विष्णुर्द्वाभ्यांब्रह्मातथारविः ॥ ८७ ॥ अष्टादशपुराणेषु शेषेषु भगवान्भवः ॥ वेदवन्निश्चलंमन्ये पुराणंवैद्विजोत्तमाः ॥ ८८ ॥ वेदाःप्रतिष्ठितास्सर्वे पुराणेनात्रसंशयः ॥ बिभेत्यल्प

में भी व उनमें प्रसिद्ध देवता में जो फल है उसको सुनिये कि सात्त्विकपुराणों में विष्णुजीही का माहात्म्य व अधिक फल है ॥ ८५ ॥ और राजसीपुराणों में महर्षिलोगों ने ब्रह्मा के अधिक माहात्म्य को कहा है वैसेही तामसीपुराणों में अग्नि व शिवजी का उत्तम माहात्म्य वर्णित है ॥ ८६ ॥ और इन सबों से मिलेहुये पुराणों में सरस्वती व पितरों का माहात्म्य कहाजाता है और अठारहपुराणों के मध्य में चार से भगवान् विष्णुजी व दो से ब्रह्मा और सूर्यनारायण वर्णन कियेजाते हैं व शेष पुराणों में भगवान् शिवजी वर्णित हैं हे द्विजोत्तमो ! मैं वेद की नाईं पुराणको अचल मानताहूं ॥ ८७ । ८८ ॥ पुराण में समस्तवेद प्रतिष्ठित हैं इस

में सन्देह नहीं है थोड़ा शास्त्र जाननेवाले पुरुष से वेद डरता है कि यह मुझको चलावैगा ॥ ८९ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय इतिहास व पुराणों से यह निश्चय कियागया है कि जो वेदों में नहीं देखागया है वह स्मृतियों में देखागया है ॥ ९० ॥ और दोनों में जो देखागया है वही पुराण में गान कियाजाता है हे ब्राह्मणो ! अंग व उपनिषदों समेत चारों वेदों को जो जानता है ॥ ९१ ॥ और पुराण को नहीं जानता है वह चतुर नहीं होवै है सत्यवती के पुत्र व्यासजी अठारहपुराणों को बनाकर ॥ ९२ ॥ बढ़ेहुये वेदार्थों से भारतकथा को किया है द्वापर के अन्तमें महात्मा व्यासजी ने उस पुराण को एकलाख श्लोकों से कहा है ॥ ९३ ॥ जिसको

श्रुताद्वेदो मामयंश्चालयिष्यति ॥८९॥ इतिहासपुराणैस्तुनिश्चयोयंकृतःपुरा ॥ यन्नदृष्टंहिवेदेषु तद्दृष्टंस्मृतिषुद्विजाः ॥ ९० ॥ उभयोरपियद्दृष्टं तत्पुराणेप्रगीयते ॥ योवेदचतुरोवेदान् साङ्गोपनिषदोद्विजाः ॥ ९१ ॥ पुराणन्नैवजानाति नचसस्याद्विचक्षणः ॥ अष्टादशपुराणानि कृत्वासत्यवतीसुतः ॥ ९२ ॥ भारताख्यानमकरोद्वेदार्थैरुपबृंहितैः ॥ लक्षेणैकेनतत्प्रोक्तं द्वापरान्तेमहात्मना ॥ ९३ ॥ वाल्मीकिनाचयत्प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ॥ ब्रह्मणाविहितंयच्च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥ ९४ ॥ आहूयनारदायाह तेनवाल्मीकयेपुनः ॥ ९५ ॥ एवंसपादाःपञ्चैते लक्षाःपुण्याःप्रकीर्त्तिताः ॥ पुरातनस्यकल्पस्य पुराणेषुविदुर्बुधाः ॥ ९६ ॥ इतिहासपुराणानि भिद्यन्तेकालगौरवात् ॥ स्कान्दंतथाचब्रह्माण्डं पुराणंलिङ्गमेवच ॥ ९७ ॥ वाराहकल्पेविप्रेन्द्रास्तेषांभेदाःप्रकीर्तिताः ॥ अष्टादशप्रकारेण ब्रह्माण्डंभिन्नमेवच ॥ ९८ ॥ अष्टादशपुराणानि तेनयातेतुभूतले ॥ लिङ्गमेकादशविधं प्रभिन्नंद्वापरेशुभम् ॥ ९९ ॥ स्कान्दन्तुसप्तधाभिन्नं वेद

कि वाल्मीकिजी ने उत्तम श्रीरामचन्द्रोपाख्यान कहा है और सौकरोड़ विस्तारवाले जिसचरित्र को ब्रह्माजी ने किया है ॥ ९४ ॥ व उसको नारदजी को बुलाकर कहा व उन्हों ने फिर वाल्मीकिजी से कहा ॥ ९५ ॥ इसप्रकार सवापांचलाख श्लोक ये पुण्यदायक कहेगये हैं पुरातनकल्प के पुराणों में विद्वान् ऐसा कहते हैं ॥ ९६ ॥ और इतिहास व पुराण काल के गौरव से भेद को प्राप्तहोते हैं स्कन्द, ब्रह्माण्ड व लिंग पुराण ॥ ९७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वाराहकल्प में ये उनके भेद कहेगये हैं अठारहप्रकार से ब्रह्माण्ड भिन्न हुआ है ॥ ९८ ॥ उसी से पृथ्वी में अठारहपुराण हुये हैं द्वापर में उत्तम लिंगपुराण गेरहप्रकार का भिन्न हुआ है ॥ ९९ ॥ और

बुद्धिमान् वेदव्यासजीने स्कन्दपुराण के सातखण्ड किया है जो कि संख्या से इक्यासीहज़ार एकसौ है ॥ १०० ॥ उसका जो पहला खण्डहै वह स्कन्दमाहात्म्यसंयुत माहेश्वरखण्ड कहा गयाहै वैसेही दूसरा वैष्णवखण्ड है ॥ १ ॥ और तीसरा ब्रह्मासे कहा हुआ सृष्टि के संक्षेप का सूचक ब्रह्मखण्ड है और चौथा काशीखण्ड से संयुक्त पढ़ाजाताहै ॥ २ ॥ और पांचवां विभाग अवन्तीमाहात्म्य समेत रेवाखण्ड है वैसेही छठाखण्ड विश्वतापीमाहात्म्यसूचक याने नागरखण्ड है॥ ३ ॥ और हे ब्राह्मणो ! जो यह सातवां प्रभासखण्ड कहागया है यह समस्तखण्ड कुछ अधिकबारहहज़ार कहागया है ॥ ४ ॥ इस प्रभासखण्ड में सब क्षेत्रों के विस्तार कहेजाते

व्यासेनधीमता ॥ एकाशीतिसहस्राणिशतञ्चैकञ्चसंख्यया ॥ १०० ॥ तस्यचाद्योविभागस्तुस्कन्दमाहात्म्यसंयुतः ॥ माहेश्वरःसमाख्यातो द्वितीयोवैष्णवस्तथा ॥ १ ॥ तृतीयोब्रह्मणाप्रोक्तः सृष्टिसंक्षेपसूचकः ॥ काशीखण्डसमायुक्तश्च तुर्थःपरिपठ्यते ॥ २ ॥ रेवायाःपञ्चमोभागः सोज्जयिन्याःप्रकीर्तितम् ॥ षष्ठःकल्पस्तथाविश्वतापीमाहात्म्यसूचकः ॥ ३ ॥ सप्तमोयोविभागोयं स्मृतःप्राभासिकोद्विजाः ॥ सर्वोद्वादशसाहस्रो विभागःसाधिकस्स्मृतः ॥ ४ ॥ अस्मिन्प्राभासिकेसर्वे वर्ण्यन्तेक्षेत्रविस्तराः ॥ तीर्थानाञ्चैवमाहात्म्यं माहात्म्यंशङ्करस्यच ॥ ५ ॥ अन्येषाञ्चैवदेवानां माहात्म्यञ्चप्रकीर्तितम् ॥ इतिभेदःपुराणानां संक्षेपात्कथितोद्विजाः ॥ ६ ॥ इममष्टादशानांच पुराणानामनुक्रमम् ॥ यःपठेद्धव्यकव्येषु सयातिभवनंहरेः ॥ ७ ॥ इदंपवित्रंयशसोनिधानमिदंपितॄणामतिवल्लभञ्च ॥ इदञ्चदैवेष्वमृतायनित्यमिदंमहापातकहृच्चपुंसाम् ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदानफलनिरूपणन्नामद्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

हैं व तीर्थों का माहात्म्य तथा सदाशिवजी का माहात्म्य वर्णन कियाजाता है ॥ ५ ॥ व अन्य देवों का माहात्म्य कहागया है हे ब्राह्मणो ! पुराणोंका यह भेद संक्षेप से कहागया ॥ ६ ॥ अठारहों पुराणों के इस क्रम को जो मनुष्य दैव तथा पितरकार्यों में पढ़ता है वह विष्णुजी के मन्दिर को जाता है ॥ ७ ॥ यह पवित्र व यश का निधान है और यह पितरों को बहुत प्यारा है व नित्यही देवकार्यों में अमृतके लिये होताहै और यह पुरुषों के महापातकों को हरनेवालाहै ॥ १०८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवेत्रीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपुराणदानफलकथनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

दो• । कह्यो उमासन शिव यथा क्षेत्र प्रभास प्रभाव । सो तीजे अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ सूतजी बोले कि पेट में टिकेहुये अमृत से सब देवता मरजाते हैं और कंठ में स्थित विष से भी जो जीते हैं वे सदाशिवजी तुमलोगों की रक्षाकरैं ॥ १ ॥ ऋषिलोग बोले कि आपने सृष्टि व प्रतिसर्ग को कहा तथा वंश के पश्चात् वंश का चरित्र व पुराणों का अतिउत्तम चरित्र वर्णन किया ॥ २ ॥ और मन्वन्तर का प्रमाण व ब्रह्माण्ड का विस्तार कहा व यथायोग्य ज्योतिश्चक्र का स्वरूप वर्णन किया ॥ ३ ॥ इस समय हमलोग तुमसे तीर्थों का विस्तार सुनना चाहते हैं कि पृथ्वी में पापों के नाशनेवाले जो उत्तमतीर्थ हैं ॥ ४ ॥ हे सूतनन्दन !

सूतउवाच ॥ अमृतेनोदरस्थेन म्रियन्तेसर्वदेवताः ॥ कण्ठस्थितविषेनापि योजीवतिसपातुवः ॥ १ ॥ ऋषयऊचुः ॥ कथिताभवतासर्गाः प्रतिसर्गास्तथैवच ॥ वंशानुवंशचरितं पुराणानामनुत्तमम् ॥ २ ॥ मन्वन्तरप्रमाणञ्च ब्रह्माण्डस्यचविस्तरः ॥ ज्योतिश्चक्रस्वरूपञ्च यथावदनुवर्णितम् ॥ ३ ॥ श्रोतुमिच्छामहेत्वत्तः साम्प्रतंतीर्थविस्तरम् ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि पापघ्नानिशुभानिच ॥ ४ ॥ तानिसूतजकार्त्स्न्येन यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ सूतउवाच ॥ इदं पृष्टम्पुरादेव्या कैलासेपर्वतोत्तमे ॥ ५ ॥ नानाधातुविचित्राङ्गे नानारत्नसमन्विते ॥ नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते ॥ ६ ॥ यक्षविद्याधराकीर्णे अप्सरोगणसेविते ॥ तत्रब्रह्माचविष्णुश्च स्कन्दनन्दिगणेश्वराः ॥ ७ ॥ चन्द्रादित्यौग्रहैस्सार्द्धं नक्षत्रंध्रुवमण्डलम् ॥ वायुश्चवरुणस्तत्र कुबेरोधनदस्तथा ॥ ८ ॥ ईशानश्चाग्निरिन्द्रश्च यमोनिर्ऋतिरेवच ॥ सरितस्सागरास्सर्वे सर्वेतारागणास्तथा ॥ ९ ॥ ब्राह्मयाद्यामातरश्चैव ऋषयश्चतपोधनाः ॥ मूर्तिमन्तिचभूतानि

उनको सम्पूर्णता से यथायोग्य कहने के योग्य हो सूतजी बोले कि पुरातनसमय पर्वतोत्तम कैलास के ऊपर देवीजी ने इस को पूछा है ॥ ५ ॥ जो पर्वत कि अनेक प्रकार की धातुवों से विचित्र अंगोंवाला तथा अनेकप्रकार के रत्नों से संयुत था और अनेकभांतिके वृक्ष व लताओं से व्याप्त तथा अनेकप्रकार के पुष्पों से शोभित था ॥ ६ ॥ वह यक्ष, विद्याधरोंसे व्याप्त तथा अप्सराओंके गणोंसे सेवित था वहां ब्रह्मा, विष्णु, स्वामिकार्त्तिकेय, नन्दी व गणनायक ॥ ७ ॥ व ग्रहों समेत चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ध्रुवमण्डल व पवनथे और वहांपर वरुण तथा धनद कुबेरजीथे ॥८॥ व ईशान, अग्नि, इन्द्र, यम व निर्ऋतिजीथे और नदियां व सब समुद्र तथा समस्त तारागणथे ॥९॥

और ब्राह्मी इत्यादिक माताएं और तपस्यारूपी धनवाले ऋषिलोग और मूर्तिमान्, भूत, क्षेत्र व देवमन्दिर थे ॥ १० ॥ और दानव, देवता, दैत्य, पिशाच, भूत व राक्षस विद्यमान थे और वहांपर दशयोजन चौड़ा दिव्यसिंहासन था ॥ ११ ॥ जो कि करोड़सूर्योंके समान प्रकाशमान् व मणियों तथा मोतियों से शोभित था और पद्मराग व नीलमणिके कमलोंसे संयुत तथा सिद्ध व किन्नरोंसे शोभित था ॥ १२ ॥ और करोड़ों श्वेतपत्रों से दिशायें और आकाश आच्छादित था व लक्ष,दशहजार व हजाररुद्रकोटियों से घिराथा ॥ १३ ॥ व उसके मध्य में बाहरीद्वारों समेत सिंहद्वारों से संयुत सर्वतोभद्र (दुमहला तिमहलादिकोंवाला) मन्दिर था जोकि

क्षेत्राण्यायतनानिच ॥ १० ॥ दानवाश्चसुरादैत्याः पिशाचाभूतराक्षसाः ॥ तत्रसिंहासनंदिव्यं दशयोजनविस्तृतम् ॥ ११ ॥ सूर्य्यकोटिसमप्रख्यं मणिमौक्तिकमण्डितम् ॥ पद्मनीलोत्पलोपेतं सिद्धकिन्नरशोभितम् ॥ १२ ॥ श्वेतातपत्रकोटीभिः प्रच्छादितदिगम्बरम् ॥ लक्षायुतसहस्रैस्तु रुद्रकोटिभिरावृतम् ॥ १३ ॥ तन्मध्येसर्वतोभद्रं सिंहद्वारैस्सतोरणैः ॥ स्वच्छमौक्तिकसंकाशं प्राकारशिखरावृतम् ॥ १४ ॥ नन्दीश्वरमहाकालैर्द्वारपालैर्गणैर्वृतम् ॥ किङ्किणीजालमुखरैस्तत्पताकैरलङ्कृतम् ॥ १५ ॥ वितानैश्चित्रवद्भिश्च मुक्ताहारप्रलम्बितैः ॥ घण्टाचामरशोभाढ्यं दर्पणैश्चोपशोभितम् ॥ १६ ॥ कलशैर्द्वारिविन्यस्तै रत्नपल्लवसंयुतैः ॥ विचित्रंचित्रशास्त्रज्ञै रत्नचूर्णैस्समुज्ज्वलैः ॥ १७ ॥ स्वस्तिकैःपत्रवल्याद्यैर्लतालिङ्गोद्भवादिभिः ॥ शतसिंहासनैःकीर्णं वेदिकाभिश्चशोभितम् ॥ १८ ॥ आसीनैरुद्रवृन्दैश्च

निर्मलमोतियों के समान व छहरदिवाली तथा शिखरों से घिराथा ॥ १४ ॥ और नन्दीश्वर व महाकालादिक द्वारपालकगणों से घिरा था व घण्टियों के समूह से शब्दायमान उस के पताकों से भूषितथा ॥ १५ ॥ और जिनमें मोतियों के हार लटकाये हुये हैं ऐसे चित्रवान् चन्दोवों से संयुतथा और घंटा व चँवर की सोभासे संयुत तथा शीशों से शोभित था ॥ १६ ॥ और द्वार पै धरेहुये रत्नपल्लवों से संयुत कलशों करके युक्त था व चित्रशास्त्र के जाननेवालों से उज्ज्वल रत्नचूर्णों करके विचित्र रचित था ॥ १७ ॥ और लताओं के मध्यमें लिङ्गों से उपजेहुये पत्रवल्ली आदिक चारद्वारोंवाले मन्दिरों से संयुत था और सौ सिंहासनोंसे व्याप्त व वेदिकाओं

से शोभित था ॥ १८ ॥ और बैठेहुए रुद्रगणों से व रुद्रकन्याके समूहों से संयुत था और लाखों फूलों व पत्रादिकों तथा कमलों से भूषित था ॥ १९ ॥ व अप्सराओं से व्याप्त तथा कमलफूलों से विस्तार को प्राप्त था और धूपकी वर्तिकाओंसे धूपित व कुंकुमसंयुक्त जलसे शोभित था ॥ २० ॥ व मुखसे बजायेहुए वंश, वीणा, मृदङ्गों से व गोमुखोंसे और शङ्खों व नगारोंके शब्दों से तथा दुन्दुभीके शब्दों से परिपूर्ण था ॥ २१ ॥ और मेघशब्दके समान शब्दोंवाले गर्जतेहुए गणसमूहोंसे व गणोंके स्तोत्रोंके शब्दसे व सामवेदकी ध्वनिसे परिपूर्णथा ॥ २२ ॥ व उच्चस्वरके बड़भारी शब्दोंसे गानेयोग्य और हुङ्कारसे शोभितथा व बैलके गर्जन-

रुद्रकन्याकदम्बकैः ॥ लक्षपुष्पदलाद्यैश्च शतपत्रैश्चभूषितम् ॥ १९ ॥ अप्सरोभिस्समाकीर्णं पुष्पपुष्करविस्तृतम् ॥ धूपितंधूपवर्तीभिः कुङ्कुमोदकशोभितम् ॥ २० ॥ वंशवीणामृदङ्गैश्च गोमुखैर्मुखवादितैः ॥ शङ्खभेरीनिनादैश्च दुन्दुभीनिस्वनेनच ॥ २१ ॥ गर्जद्भिर्गणवृन्दैश्च मेघस्तनितनिस्वनैः ॥ गणानांस्तोत्रशब्देन सामवेदरवेणच ॥ २२ ॥ प्रोच्चकीर्यैर्महानादैर्गेयंहुङ्कारशोभितम् ॥ वृषनर्दितशब्देन गजवाजिरवेणच ॥ २३ ॥ काञ्चीनूपुरशब्देन समाकीर्णदिगन्तरम् ॥ सर्वसम्पत्करंश्रीमच्छङ्करस्यचमन्दिरम् ॥ २४ ॥ वंशवीणामृदङ्गैश्च नादितंयत्रतत्रह ॥ ऋग्वेदोमूर्तिमांस्तत्र इन्द्रनीलसमद्युतिः ॥ २५ ॥ दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गो दिव्याभरणभूषितः ॥ संस्थितःपूर्वतस्तस्य दीप्यमानस्स्वतेजसा ॥ २६ ॥ उत्तरेणयजुर्वेदश्शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥ दिव्यकुण्डलधारीच महाकायोमहाभुजः ॥ २७ ॥ स्थितः पश्चिमदिग्भागे सामवेदस्सनातनः ॥ रक्ताम्बरधरःश्रीमान् पद्मरागसमप्रभः ॥ २८ ॥ स्रग्दामधारीचित्रश्च गीतभूषण

शब्दसे और हाथीघोड़ों के शब्दसे पूर्णथा ॥ २३ ॥ और क्षुद्रघण्टिका व नूपुरके शब्दसे व्याप्त दिशाओंके मध्यवाला तथा समस्तसम्पत्तियों का कारक श्रीमान् शिव जीका मन्दिर था ॥ २४ ॥ जिसमें कि जहां तहां वंशी वीणा व मृदङ्गों के शब्द होरहे थे और इन्द्रनीलके समान शोभावान् तथा मूर्तिमान् ऋग्वेद वहां विद्यमान था ॥ २५ ॥ जोकि दिव्यसुगन्धों से चर्चित अङ्गोंवाला व दिव्य आभूषणों से भूषितथा अपने तेजसे प्रकाशित वह उस मन्दिर के पूर्व ओर स्थित था ॥ २६ ॥ और शुद्धस्फटिक (बिल्लौर) के समान यजुर्वेद उत्तरओर बैठा था जोकि उत्तमकुण्डलोंको धारे व बड़े शरीरवाला तथा बड़ीभारी भुजाओंवाला था ॥ २७ ॥ और लाल

वसनको धारण किये पद्मरागके समान शोभावान् सनातन सामवेद पश्चिमदिशाके भागमें स्थित था ॥ २८ ॥ वैसेही मालाओंको धारे तथा विचित्र व गीतों और भूषणों से भूषित व जामुन के समान श्याम अथर्वणवेद दक्षिणओर स्थित था ॥ २९ ॥ जो कि पीलेनेत्रोंवाला, अरुणग्रीवावाला व हरितबालोंवाला तथा बड़ीदेहवाला था और इतिहास व शिक्षा, कल्प, व्याकरणादिक वेदके छः अङ्ग व सबभी पुराण ॥ ३० ॥ और वेद, उपनिषद्, छन्द, मीमांसा, न्यायशास्त्र और रहस्यसमेत स्वाहाकार व वषट्कार ॥ ३१ ॥ इनसे संयुत वहांपर आपही ब्रह्माजी स्थित थे जोकि चँवर के डुलाने से व व्यजनों से सबओर वीजित थे ॥ ३२ ॥ इस प्रकार सौ करोड़गणों से

भूषितः ॥ अथर्वाजम्बुनिश्यामः स्थितोदक्षिणतस्तथा ॥ २९ ॥ पिङ्गाक्षोलोहितग्रीवो हरित्केशोमहातनुः ॥ इतिहासषडङ्गानि पुराणान्यखिलान्यपि ॥ ३० ॥ वेदोपनिषदश्छन्दो मीमांसान्यायशास्त्रकम् ॥ स्वाहाकारवषट्कारौ सरहस्यौतथैवच ॥ ३१ ॥ एतैस्समन्वितश्चैव तत्रब्रह्मास्वयंस्थितः ॥ चामरोत्क्षेपव्यजनैर्वीजितश्चसमन्ततः ॥ ३२ ॥ एवंकोटिशतैश्चैव वन्दितश्चमहेश्वरः ॥ शोभितश्चसदाश्रीमचन्द्रकोटिसमप्रभः ॥ ३३ ॥ ज्ञानामृतैस्तुतृप्तात्मा योगैश्वर्यप्रसाधकः ॥ योगीन्द्रमानसाम्भोजराजहंसोद्विजोत्तमाः ॥ ३४ ॥ अज्ञानतिमिरध्वंसी षड्विंशत्तत्त्वभूषणः ॥ सर्वसौख्यप्रदाताच तत्रास्तेचन्द्रशेखरः ॥ ३५ ॥ तस्योत्सङ्गेगतादेवी तप्तकाञ्चनसप्रभा ॥ पूजितायोगिभिर्नन्दैस्साधकैस्सुरकिन्नरैः ॥ ३६ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णा सर्वाभरणभूषिता ॥ योगसिद्धिप्रदानित्यं मोक्षस्योदयदायिनी ॥ ३७ ॥ सौभाग्य

महेश्वरजी वन्दित थे और श्रीमान् करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभावाले सदैव शोभित थे ॥ ३३ ॥ और ज्ञानामृतों से तृप्तआत्मावाले व योगैश्वर्य के साधन करनेवाले थे व हे द्विजोत्तमो ! योगीन्द्रों के मनरूपीकमल के राजहंस थे ॥ ३४ ॥ वहांपर अज्ञानरूपी अन्धकार के नाशक व छब्बीस तत्त्वों के भूषण तथा समस्तसुखों के देनेवाले चन्द्रभालजी वहांपर बैठेथे ॥ ३५ ॥ उनकी गोदीमें तपायेहुये सोनेके समान शोभावाली पार्वतीदेवीजी स्थित थीं जोकि आनन्दित योगी व साधक देवता तथा किन्नरों से पूजित थीं ॥ ३६ ॥ व समस्तलक्षणों से सम्पूर्ण और सब गहनों से भूषित थीं व नित्यही योगसिद्धिको देनेवाली और मोक्षके ऐश्वर्य को देने-

वाली है ॥ ३७ ॥ व सौभाग्यरूपी कदली का कन्द, मूल, वीर्य व पवित्रहास्यवाली पार्वतीजी विस्मय में प्राप्तहोकर शिवदेवजी के मुखको देखकर ॥ ३८ ॥ व अनन्त (शिवजी)की चेष्टाको जानकर आनन्दसे चञ्चललोचनोंवाली पार्वतीदेवीजी दोनों हाथोंको जोड़कर मीठेस्वरसे बोलीं ॥३९॥ पार्वतीदेवीजी बोलीं कि हे जगदीश्वरजी! अर्द्धाङ्ग में टिकी व तुम्हारे मुखके ध्यान को चाहनेवाली मैंने तृप्तिकी इच्छासे करोड़ोंहजार जन्मोंतक व सैकड़ोंकरोड़ जन्मोंतक तुमको शोधन किया परन्तु तौ भी हे जगदीश, महेश्वरजी! तुम्हारा अन्त नहीं मिला ॥ ४० । ४१ ॥ हे देवदेव! अनन्तरूपवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है व वेदमें गुप्त तथा वेदोंसे स्तुति कियेहुये

कदलीकन्दमूलवीर्यंचपार्वती ॥ देवस्यमुखमालोक्य विस्मिताचारुहासिनी ॥ ३८ ॥ अनन्तभावंसंज्ञायानन्दाच्चलितलोचना ॥ उवाचदेवीमधुरं कृताञ्जलिपुटासती ॥ ३९ ॥ देव्युवाच ॥ जन्मकोटिसहस्राणि जन्मकोटिशतानि च ॥ शोधितस्त्वंजगन्नाथ मयाप्रीणनचिन्तया ॥ ४० ॥ अर्द्धाङ्गसंस्थयाचापि त्वद्वक्त्रध्यानकाम्यया ॥ तथापितेजगन्नाथ नान्तोलब्धोमहेश्वर ॥ ४१ ॥ अनन्तरूपिणेतुभ्यं देवदेवनमोस्तुते ॥ नमोवेदरहस्याय नमोवेदस्तुतायच ॥ ४२ ॥ श्मशानरतनित्याय नमोगगनचारिणे ॥ ज्येष्ठसामरहस्याय शतरुद्रिप्रियायच ॥ ४३ ॥ नमोवृषकृताङ्काय यजुर्वेदचरायच ॥ ब्रह्माण्डकोटिसंलग्नमौलिने परमात्मने ॥ ४४ ॥ मणिचित्रितकण्ठाय नमस्सर्वत्रसिद्धये ॥ नमोदेवस्वरूपाय द्विजसिद्धिप्रियायच ॥ ४५ ॥ पुंस्त्रीविकाररूपाय नमश्चन्द्रार्द्धधारिणे ॥ नमोग्नयेसहोमाय आदित्यवरुणायच ॥ ४६ ॥ पृथिव्यैचान्तरिक्षाय वायवेदीक्षितायच ॥ सँय्योगायवियोगाय धात्रेकर्त्रेपहारिणे ॥४७॥ प्रदीप्तशूल

तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥४२॥ और नित्यही श्मशानमें प्रीतिवाले और आकाशचारी आपके लिये प्रणामहै व ज्येष्ठसामरहस्य तथा शतरुद्रिप्रियके लिये प्रणामहै ॥४३॥ वृषसे कियेहुये चिह्नवाले यजुर्वेदचारी के लिये नमस्कारहै व ब्रह्माण्ड की कोटि (ऊपरभाग) में लगेहुये मस्तकवाले परमात्मा के लिये प्रणाम है ॥ ४४ ॥ व मणियोंसे चित्रितकण्ठवाले तथा सब कहीं सिद्धिवाले के लिये प्रणाम है और देवस्वरूप व द्विजोंकी सिद्धिप्रियवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ४५ ॥ व पुरुष, स्त्री के विकाररूपवाले तथा अर्द्धचन्द्रमा के धारनेवाले के लिये प्रणाम है और अग्निरूप तथा पार्वतीजी समेत व आदित्य व वरुणरूप के लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ व पृथ्वी

आकाश, वायु व दीक्षितरूप शिवजी के लिये प्रणाम है व संयोग, वियोग के लिये नमस्कार है तथा धाता, कर्ता व हर्ता के लिये प्रणामहै ॥ ४७ ॥ और चमकतेहुये त्रिशूलहाथवाले और ब्रह्मदंडधारी के लिये प्रणाम है व पतिव्रताओं के पति व महात्माओं के स्वामी के लिये प्रणाम है ॥ ४८ ॥ व कालाग्निरुद्र के लिये प्रणाम है और सप्तलोकनिवासी के लिये प्रणाम है समस्तदेवताओं की तुम गतिहो और भूतों के पति आप के लिये प्रणाम है ॥ ४९ ॥ हे भगवन्, रुद्रजी! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे भगवन्, शिवजी ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे श्रेष्ठ से श्रेष्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे परे से परे ! आप के लिये प्रणाम है ॥ ५० ॥ हे ईशान, प्रभो ! जिह्वा की चंचलता के स्वभाव से तुम मुझ से दुःखित किये गये हो, ज्ञान से या अज्ञान से भी कियेहुये उस मेरेकर्म को क्षमा करना चाहिये ॥ ५१ ॥ ईश्वर

हस्ताय ब्रह्मदण्डधरायच ॥ नमस्सतीनाम्पतये महताम्पतयेनमः ॥ ४८ ॥ नमःकालाग्निरुद्राय सप्तलोकनिवासिने ॥ त्वङ्गतिस्सर्वदेवानां भूतानाम्पतयेनमः ॥ ४९ ॥ नमस्तेभगवन्रुद्र नमस्तेभगवञ्छिव ॥ नमस्तेपरतःश्रेष्ठ नमस्तेपरतःपर ॥ ५० ॥ जिह्वाचापल्यभावेन खेदितोसिमयाप्रभो ॥ तत्क्षन्तव्यंममेशान ज्ञानतोज्ञानतोपिवा ॥ ५१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ममोत्सङ्गस्थितादेवि किन्त्वमस्राविलेक्षणा ॥ अद्यापिकिमपूर्णन्ते तत्सर्वंकरवाण्यहम् ॥ ५२ ॥ वरंब्रवीहिभद्रन्ते स्तवेनानेनसुव्रते ॥ ददामितन्नसन्देहश्शोकंत्यजममप्रिये ॥ ५३ ॥ निष्कलेसकलेदेवि स्थूलेसूक्ष्मेचराचरे ॥ नतत्पश्यामिदेवेशि यत्त्वयारहितंभवेत ॥ ५४ ॥ अहन्तेहृदयंगौरि त्वञ्चमेहृदिसाम्प्रतम् ॥ अहंभ्राताचपुत्रश्च बन्धुर्भर्तातथैवच ॥ ५५ ॥ त्वन्तुमेभामिनीभार्य्या दुहिताबान्धवीस्नुषा ॥ अहंयज्ञपतिर्यज्वा त्वंचश्रद्धासदक्षिणा ॥ ५६ ॥

सदाशिवजी बोले कि हे देवि ! हमारी गोदी में बैठीहुई तुम क्यों आंसुवों से मलिनलोचनोंवाली हो आज भी तुम्हारे क्या न्यून है उस सब को मैं करूं ॥ ५२ ॥ हे मेरी प्यारी ! तुम्हारा कल्याण हो हे सुव्रते ! वरदान को मांगिये उसको मैं इस स्तोत्र के कारण निस्सन्देह दूंगा शोक को छोड़ दीजिये ॥ ५३ ॥ हे कला रहिते, कलासहिते, स्थूले, सूक्ष्मे, चराचरे, देवेशि, देवि ! मैं उस वस्तु को नहीं देखता हूं जो कि तुम से रहित होवै याने तुम सब वस्तु में व्याप्त हो ॥ ५४ ॥ हे गौरि ! मैं तुम्हारा मन हूं और इससमय तुम मेरे हृदय में हो व मैं भाई, पुत्र, बन्धु तथा पतिहूं ॥ ५५ ॥ और तुम मेरी सुन्दरी स्त्री, कन्या, बन्धु व पतोहू हो और

मैं यज्ञोंका स्वामी, व विधिसे यज्ञकरनेवालाहूं और तुम श्रद्धासमेत दक्षिणा हो ॥ ५६ ॥ मैं ॐकार व वषट्कारहूं और तुम साम, ऋग् व यजुर्वेद हो व मैं अग्नि तथा हवनकरनेवाला और यजमानहूं ॥ ५७ ॥ और मैं अध्वर्यु (यजुर्वेदी) व उद्गाता (सामवेदी) हूं और मैं ब्रह्मवित् तथा ब्रह्माहूं हे देवि ! तुम अरणि हो व स्त्री ऐसी कहीगई हो ॥ ५८ ॥ हे सुश्रोणि ! तुममें स्वाहा व स्वधा सब प्रतिष्ठित हैं मैं इष्ट महायज्ञहूं और तुम पूर्वयज्ञा कहीजाती हो ॥ ५९ ॥ हे वरारोहे ! मैं पुरुषहूं और तुम प्रकृति कहीजाती हो व मैं बड़ापराक्रमी विष्णुहूं और तुम लोकों को उत्पन्नकरनेवाली लक्ष्मी हो ॥ ६० ॥ हे परमेश्वरि ! मैं बड़ा तेजस्वी इन्द्रहूं और

ॐङ्कारोहंवषट्कारः सामत्वमृग्यजुस्तथा ॥ अहमग्निश्चहोताच यजमानस्तथैवच ॥ ५७ ॥ अध्वर्युरहमुद्गाता ब्रह्मा हंब्रह्मवित्तथा ॥ त्वञ्चदेव्यरणीचैव पत्नीतिपरिकीर्तिता ॥ ५८ ॥ स्वाहास्वधाचसुश्रोणि त्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ अहमिष्टोमहायज्ञः पूर्वयज्ञात्वमुच्यसे ॥ ५९ ॥ पुरुषोहंवरारोहे प्रकृतिस्त्वंनिगद्यसे ॥ अहंविष्णुर्महावीर्यस्त्वंलक्ष्मीर्लोकभाविनी ॥ ६० ॥ अहमिन्द्रोमहातेजाः शचीत्वंपरमेश्वरि ॥ प्रजापतीनांरूपेण सर्वत्राहंव्यवस्थितः ॥ ६१ ॥ तेषांयातासकाशात्त्वं रूपैस्तैस्तैरवस्थिता ॥ दिवसोहंमहादेवि रजनीत्वंनिगद्यसे ॥ ६२ ॥ निमिषोहंमुहूर्तश्च त्वंकलासिद्धिरेवच॥ अहन्तेजोधिकस्सौम्ये ज्योत्स्नात्वंचप्रकीर्त्यसे ॥ ६३ ॥ अहंबीजधरःश्रेष्ठस्त्वञ्चक्षेत्रंवरानने ॥ अहंवनस्पतिप्लक्षस्त्वं वनस्पतिरुच्यसे ॥ ६४ ॥ शेषरूपधरोनित्यं फणामणिविभूषितः ॥ त्वंरेवतीविशालाक्षि मदविभ्रमलोचना ॥ ६५ ॥ मोक्षोहंसर्वदुःखानां त्वन्तुदेवीपरागतिः ॥ अपाम्पतिरहंभद्रेत्वन्तुदेविसरिद्वरा ॥ ६६ ॥ वायुरग्निरहंभद्रे त्वन्तुदीप्तिःप्र

तुम इन्द्राणी हो और मैं प्रजापतियों के रूपसे सब कहीं टिकाहूं ॥ ६१ ॥ व उनके सकाशसे प्राप्तहुई तुम उन रूपोंसे टिकीहो हे महादेवि ! मैं दिवसहूं और तुम रात्रि कहीजाती हो ॥ ६२ ॥ मैं निमिष व मुहूर्त्तहूं और तुम कला व सिद्धिहो हे सौम्ये ! मैं तेजों में अधिकहूं और तुम उजियाली कहीजाती हो ॥ ६३ ॥ हे वरानने ! मैं श्रेष्ठबीजधारीहूं और तुम क्षेत्रहो और मैं वनस्पतियों में प्लक्ष (पकरिया) हूं व तुम वनस्पति कहीजाती हो ॥ ६४ ॥ और फणोंकी मणियों से विभूषित मे नित्यही शेषरूपधारी हूं और हे विशालनयनि ! तुम मदसे घूर्णितलोचनोंवाली रेवतीजी हो ॥ ६५ ॥ व मैं सब दुःखोंका छुड़ानेवालाहूं और तुम उत्तमगतिवाली देवीहो

हे कल्याणकारिणि, देवि ! मैं समुद्रहूं व तुम उत्तमनदी हो ॥ ६६ ॥ हे भद्रे ! मैं पवन व अग्निहूं और तुम प्रकाश कहीगई हो व मैं कर्ता प्रजापतिहूं और तुम प्रजाओं की उत्तम प्रकृति हो ॥ ६७ ॥ व पातालके नीचे बसनेवाले नागोंका मैं स्वामीहूं व तुम नागिनीहो और मैं हज़ार फणोंसे भूषित नागराजहूं ॥ ६८ ॥ और मैं उत्तम चन्द्रमाहूं व तुम रात्रिकारिणी हो हे देवि ! मैं कामनाओंको देनेवाला कामहूं व तुम रति और स्मृति हो ॥ ६९ ॥ हे भद्रे ! मैं दुर्वासाहूं और तुम शान्तिकरनेवाली क्षमाहो और मैं लोभ, मोह व अज्ञानहूं और तुम तामसी तृष्णाहो ॥ ७० ॥ और मैं ककुद्मान् वृषभहूं व तुम योगमाता तपस्विनी हो व हे कमललोचनि ! मैं समस्तकार्यों

कीर्तिता ॥ प्रजापतिरहंकर्ता त्वंप्रजाप्रकृतिःपरा ॥ ६७ ॥ नागानामधिपश्चाहं पातालतलवासिनाम् ॥ त्वन्नागिनागराजोहं सहस्रफणभूषितः ॥ ६८ ॥ निशाकरवरश्चाहं त्वंश्रेष्ठारजनीकरी ॥ कामोहंकामदादेवि त्वंरतिःस्मृतिरेवच ॥ ६९॥ दुर्वासाश्चाप्यहंभद्रे त्वंक्षमाशमचारिणी॥लोभोमोहस्तमश्चाहं त्वंतृष्णातामसीस्मृता ॥७०॥ ककुद्मान्वृषभश्चाहं योगमातातपस्विनी ॥ नयोहंसर्वकार्य्येषु नीतिस्त्वंकमलेक्षणे ॥ ७१ ॥ अहमन्नञ्चभोक्ताच ओषधीत्वंनिगद्यसे ॥ अहमग्निश्चधूमश्च त्वमूष्मजालमेवच ॥ ७२ ॥ अहंसंवर्त्तकोमेघस्त्वञ्चधाराह्यनेकशः ॥ अहंमुनीनांरूपेण त्वन्तु पत्नीप्रकीर्तिता ॥ ७३ ॥ अहंसंसारकर्तावै त्वन्तुसृष्टिर्वरानने ॥ अहंशुक्रास्थिरोमाणि त्वंमज्जामलमेवच ॥ ७४ ॥ पर्जन्योहंमहाभागे त्वंवृष्टिःपरमेश्वरि ॥ आकाशश्चाप्यहंभद्रे प्रथिवीत्वमिहोच्यसे ॥ ७५ ॥ अहमदृश्यमूर्त्तिश्च दृश्यमूर्त्तिस्त्वमुच्यसे ॥ वरदश्चास्म्यहंभद्रे मन्त्रस्त्वमितिचोच्यसे ॥ ७६ ॥ अहंद्रष्टाचश्रोताच त्वंदृश्यःश्रुतिरेवच ॥ अहंव

में नयहूं और तुम नीतिहो ॥ ७१ ॥ और मैं अन्न व भोगनेवालाहूं व तुम औषधी कहीजाती हो और मैं अग्नि व धूमहूं और तुम ऊष्मा (गरमी) का समूहहो ॥७२॥ मैं संवर्तक मेघहूं व तुम अनेकधाराहो और मैं मुनियोंके रूपसे हूं व तुम स्त्री कही गईहो ॥ ७३ ॥ हे सुन्दरमुखि ! मैं संसारका रचनेवालाहूं व तुम सृष्टिहो और मैं वीर्य, अस्थि व रोमहूं और तुम मज्जा व मलहो ॥ ७४ ॥ हे महाभाग्यवति ! मैं मेघ हूं और हे परमेश्वरि ! तुम वृष्टिहो हे कल्याणकारिणि ! मैं आकाशहूं व तुम यहां पृथ्वी कही जातीहो ॥ ७५ ॥ और मैं अदृश्यमूर्ति हूं व तुम दृश्यमूर्ति कहीजाती हो हे भद्रे ! मैं वरदायकहूं और तुम मन्त्र ऐसी कहीजाती हो ॥ ७६ ॥ और मैं द्रष्टा व श्रोताहूं

और तुम दृश्यहो व श्रुति (कर्ण) हो व हे प्यारी ! मैं वक्ताहूं और हे परमेश्वरि ! तुम वाच्याहो ॥ ७७ ॥ और मैं श्रोता व गानकरनेवाला हूं तथा तुम गीत व गाने योग्यहो और मैं घ्राणकरनेवाला व गन्धहूं तथा तुम नित्यही घ्राणहो ॥ ७८ ॥ और मैं स्पर्शकरनेवाला व कर्ताहूं और तुम स्पर्शकरनेयोग्य व सृष्टिहो मैं यह सब प्राणीहूं व तुम देवी हो इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७९ ॥ हे देवेशि ! मैं तुमको उत्पन्नकरनेवालाहूं व तुम समस्तसंसार को रचती हो हे देवेशि ! तुम से व मुझसे यह संसार विस्तारित है ॥ ८० ॥ जोकि एकभांति व बहुतप्रकार का तथा सैकड़ों व हज़ारों भांतिका है ऐश्वर्य से संयुत व प्राणियोंमें टिकेहुये ॥ ८१ ॥ हम व तुम हे विशाल-

क्ताचदयिते त्वंवाच्यापरमेश्वरि ॥ ७७ ॥ अहंश्रोताचगाताच त्वङ्गीतिर्गेयमेवच॥ अहंघ्राताचगन्धश्च त्वंनित्यंघ्राण मेवच ॥ ७८ ॥ अहंस्पर्शयिताकर्ता स्पृश्यस्त्वंसृष्टिरेवच ॥ अहंसर्वमिदंभूतं त्वन्देवीनात्रसंशयः ॥ ७९ ॥ स्रष्टाहंतवदेवेशि त्वंसृजस्यखिलंजगत् ॥ त्वयामयाचदेवेशि ओतप्रोतमिदंजगत् ॥ ८० ॥ एकधाबहुधाचैव तथाशतसहस्रधा ॥ ऐश्वर्य्येणतुसंयुक्तौ सर्वप्राणिष्व्यवस्थितौ ॥ ८१ ॥ अहंत्वंचविशालाक्षि सर्वतस्सम्प्रतिष्ठितौ ॥ क्रीडामिक्रीडयादेवि त्वयासार्द्धंवरानने ॥ ८२ ॥ त्वंधृतिर्धारणीलक्ष्मीस्त्वंनामप्रकृतिर्ध्रुवम् ॥ रतिःस्मृतिःकामचारा ममचाङ्गनिवासिनी ॥ ८३ ॥ देविकिंबहुनोक्तेन प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्किञ्चिन्मनसिस्थितम् ॥ ८४ ॥ तत्तेहंसम्प्रदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ देव्युवाच ॥ धन्याहंकृतपुण्याहंतपस्सुचरितम्मया ॥ ८५ ॥ यत्त्वाहंजगन्नाथ हर्षदृष्ट्यावलोकिता ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरन्दातुंममेच्छसि ॥ ८६ ॥ तन्मेकथयदेवेश साम्प्रतंतीर्थविस्तरम् ॥ पृथिव्यांयानि

लोचनि ! सबओर से प्रतिष्ठित हैं हे वरानने ! मैं तुम्हारे साथ क्रीड़ा से खेल करताहूं ॥ ८२ ॥ तुम धैर्य व धारणकरनेवाली तथा लक्ष्मी हो और तुम निश्चयकर प्रकृति हो और रति,स्मृति यथेच्छचारणी और मेरे अंगमें बसनेवाली हो ॥ ८३ ॥ हे देवि ! बहुत कहने से क्याहै तुम प्राणोंसे भी गुरुहो तुम्हारा कल्याणहोवे और जो कुछ मनमें स्थित हो उस वरदान को मांगिये ॥८४॥ यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि मैं उसको तुम्हें दूंगा पार्वतीजी बोलीं कि मैं धन्यहूं पुण्यको कियेहुये हूं और मैंने भलीभांति तप कियाहै ॥ ८५ ॥ जोकि हे जगदीशजी ! तुम्हारी हर्षदृष्टिसे देखीगई हे देव ! यदि प्रसन्नहो व मुझको वर देना चाहते हो ॥ ८६ ॥ तो हे देवेशजी !

इससमय मुझसे तीर्थों का विस्तार कहिये पृथ्वी में जो पापनाशक व कल्याणदायक तीर्थ हैं ॥ ८७ ॥ हे देवेश ! उनको सम्पूर्णता से यथायोग्य कहने के योग्यहो सदाशिवजी बोले कि देवि ! सुनिये मैं उत्तमतीर्थों का माहात्म्य कहताहूं ॥ ८८ ॥ जोकि मनुष्यों के समस्तपातकों का हरनेवाला व पुण्यदायक तथा देवर्षिनारदजी से सत्कार कियागया है हे सुरेश्वरि ! तीर्थों का दर्शन कल्याणमय है व स्नान कल्याणमय होता है ॥ ८९ ॥ व उत्तमऋषिलोग तीर्थों के श्रवण की प्रशंसा करते हैं पृथ्वी में नैमिषतीर्थ व आकाश में पुष्कर तीर्थ है ॥ ९० ॥ और केदार, प्रयाग, व्यासा, उर्मिला, कृष्णा, वेणा, महादेवी, चन्द्रभागा, सरस्वती ॥ ९१ ॥ व गंगासागर

तीर्थानि पापघ्नानिशिवानिच॥८७॥तानिदेवेशकात्स्न्र्येन यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ईश्वरउवाच॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ८८ ॥ सर्वपापहरंनॄणां पुण्यंदेवर्षिसत्कृतम् ॥ तीर्थानांदर्शनंश्रेयः स्नानंश्रेयस्सुरेश्वरि ॥ ८९ ॥ श्रवणंचप्रशंसन्ति सदैवऋषिसत्तमाः ॥ पृथिव्यांनैमिषंतीर्थमन्तरिक्षेचपुष्करम् ॥ ९० ॥ केदारश्चप्रयागश्च विपाशा चोर्मिलातथा ॥ कृष्णावेणामहादेवी चन्द्रभागासरस्वती ॥ ९१ ॥ गङ्गासागरसम्भेदं तथावाराणसीशुभा ॥ शतभद्रा महाभागा सिन्धुश्चैवमहानदी ॥९२॥ गोदावरीचकपिला शोणश्चैवमहानदः ॥ पयोधिःकौशिकीतद्वत्तथागोदावरीशुभा ॥ ९३ ॥ देवखातंगयाचैव तथाद्वारावतीशुभा ॥ प्रभासश्चमहातीर्थं सर्वपातकनाशनम् ॥ ९४ ॥ एवमादीनितीर्थानि यानिसन्तिमहीतले ॥ तानिदृष्ट्वातुदेवेशि पुनर्जन्मनविद्यते ॥ ९५ ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च तीर्थानांवायुरब्रवीत् ॥ सञ्जातानिपवित्राणि महापापहराणिच॥ ९६ ॥ गन्तव्यानिमहादेवि स्वधर्मस्यविवृद्धये ॥ अशक्यानिहियान्ये

का मिलाप व उत्तमकाशी तथा महाभागा शतभद्रा व सिन्धु और महानदी ॥ ९२ ॥ गोदावरी, कपिला व महानदशोण वैसेही पयोधि कौशिकी व उत्तम गोदावरी ॥ ९३ ॥ देवखात तीर्थ, गया व उत्तम द्वारकापुरी और समस्तपातकों को नाशनेवाला महातीर्थ प्रभास ॥ ९४ ॥ इत्यादिक जो तीर्थ पृथ्वी में हैं हे देवेशि ! उनको देखकर फिर जन्म नहीं होता है ॥ ९५ ॥ पवन ने साढ़ेतीन करोड़ तीर्थों को कहाहैजोकि पवित्र व बड़ेभारी पातकों के नाशक हुये हैं ॥ ९६ ॥ हे देवि ! अपने धर्म

की वृद्धि के लिये वे जाने योग्य हैं और हे सुरेश्वरि ! जो नहीं गये जासक्ते हैं ॥ ९७ ॥ वे सब सावधानमनवाले पुरुषों से मनसे जाने योग्य हैं पार्वतीदेवीजी बोलीं कि हे भगवन् ! समस्तप्राणी सब उपद्रवों से संयुत हैं ॥ ९८ ॥ और थोड़ी आयुर्बलवाले व सदैव वृद्ध तथा मोह के मन्दिर से उत्पन्न हैं यदि दारुणत्रेतायुग में ऐसा वृत्तान्त है तो क्या भयंकर कलियुग में वह वृत्तान्त न होगा ॥ ९९ ॥ इसलिये उनके कल्याण के लिये तुम उस तीर्थ को प्रवृत्त करिये कि देखेहुये जिस तीर्थ से सब तीर्थों का फल मिलता है ॥ १०० ॥ पार्वतीजी से इसप्रकार कहेहुये सदाशिव स्वामी हँसकर बड़ीप्रीति से मीठीवाणी से बोले ॥ १ ॥ तुममेरे बाहर चलने-

व गन्तुञ्चैवसुरेश्वरि ॥ ९७ ॥ मनसातानिसर्वाणि गन्तव्यानिसमाहितैः ॥ देव्युवाच ॥ भगवन्प्राणिनस्सर्वे सर्वोपद्रवसंयुताः ॥ ९८ ॥ अल्पायुषस्सदावृद्धा व्यामोहमन्दिरोद्भवाः ॥ त्रेतायांदारुणेचैव नतत्किन्दारुणेकलौ ॥ ९९ ॥ तस्मात्तेषांहितार्थाय तत्तीर्थंत्वंप्रवर्तय ॥ येनदृष्टेनसर्वेषां तीर्थानांलभ्यतेफलम् ॥ १०० ॥ एवमुक्तस्तुपार्वत्या प्रहस्यपरमेश्वरः ॥ उवाचपरयाप्रीत्या वाचामधुरयाप्रभुः ॥ १ ॥ त्वंमेबहिश्चराःप्राणास्सर्वस्यजगतोरणिः ॥ त्वयाविरहितोदेवि मुहूर्तमपि नोत्सहे ॥ २ ॥ शिवस्यचतथाशक्तेरन्तरंनास्तिपार्वति ॥ नतदस्तिमहादेवि यन्नजानामिशोभने ॥ ३ ॥ सर्वञ्चैवसुरेशानि यथावत्कथयाम्यहम् ॥ रहस्यानांरहस्यञ्च गोपनीयंप्रयत्नतः ॥ ४ ॥ नास्तिकायनदातव्यं नचपापरतायच ॥ दातव्यंभक्तियुक्ताय सुशिष्यायसुतायच ॥ ५ ॥ पूर्वमेवमयाख्यातं सारात्सारतरंप्रिये ॥ तीर्थोपनिषदःख्याता लिङ्गोपनिषदस्तथा ॥ ६ ॥ योगोपनिषदोदेवि पूर्वंवैकथितामया ॥ देव्युवाच ॥ क्लेशेनापिनसिद्ध्यन्ति काङ्क्षमानाःपरम्पदम् ॥७॥

वाले प्राणहो और समस्त संसार को पैदा करनेवाली हो हे देवि ! तुमसे रहित मैं मुहूर्त भरभी रहने के लिये नहीं उत्साह करताहूं ॥ २ ॥ हे पार्वतीजी ! शिवजी का व शक्तिका कुछ भेद नहीं है हे शोभने, महादेवि ! वह वस्तु नहीं है कि जिसको मैं नहीं जानताहूं ॥ ३ ॥ हे सुरेश्वरि ! मैं यथायोग्य सब कहताहूं जोकि छिपीहुई वस्तुवों में गुप्त व बड़े यत्नसे गुप्तकरने योग्य है ॥ ४ ॥ यह नास्तिक के लिये व पाप में परायण पुरुष के लिये न देना चाहिये और भक्ति से संयुत उत्तमशिष्य व पुत्र के लिये देना चाहिये ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! मैंने सारांश से अधिक सारांशवाली वस्तु को पहलेही कहा है और तीर्थोपनिषद् व लिंगोपनिषद् कहेगये हैं ॥ ६ ॥ व हे

देवि ! मैंने पहलेही योगोपनिषदों को कहा है देवीजी बोलीं कि परमपदको चाहतेहुये पुरुष क्लेशसे भी नहीं सिद्ध होते हैं ॥ ७ ॥ और नास्तिकों की जीविकावाले मनुष्यलोग योनिमें भ्रमण करतेहुये देखपड़तेहैं और तीर्थ व व्रतोंको सेवतेहैं परन्तु विश्वास नहीं होता है ॥८॥ हे शंकरजी समस्तसंसार मिथ्याज्ञानसे मोहितहै हेमहादेवजी ! संसारको मोहनेमें तुमको क्या फल कहागयाहै ॥ ९ ॥ और हे नाथ ! उसमें सारासे भी अधिकसारांशवाला जो कियागया है हे सुरेश, प्रभो ! उसको मुझसे कहिये यदि मैं तुम्हारे प्यारी हूं ॥ १० ॥ उन पार्वतीजी से ऐसे कहेहुये वे देवनायक भगवान् शिवजी हँसकर गंभीर अर्थवाले इस वचनको बोले ॥ ११ ॥ सदाशिवजी बोले कि इससमय

योनिंभ्रमन्तोदृश्यन्ते नरानास्तिकवृत्तयः ॥ तीर्थव्रतानिसेवन्ते प्रत्ययोनैवजायते ॥ ८ ॥ मोहितञ्चजगत्सर्वं मिथ्याज्ञानेनशङ्कर ॥ किन्तेफलंमहादेव जगतोमोहनेस्मृतम् ॥ ९ ॥ सारात्सारतरन्नाथ तत्रवैविहितंचयत् ॥ तन्मेकथयदेवेश प्रियाहंयदितेप्रभो ॥ १० ॥ इत्युक्तस्सतयादेव्याश्रीकण्ठस्सुरनायकः ॥ प्रहस्योवाचभगवान् गम्भीरार्थमिदंवचः ॥ ११ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुष्वावहिताभूत्वा पृष्टोहंयत्त्वयाधुना ॥ निखिलंतत्प्रवक्ष्यामि वस्तुतत्त्वंयथास्थितम् ॥ १२ ॥ पूर्वमुक्तानितीर्थानि यानितेसुरसुन्दरि ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीच ब्रह्माण्डेसचराचरे ॥ १३ ॥ तेषान्तुगोपितंतीर्थं प्रभासञ्चैवसुव्रते ॥ दृष्ट्वासंस्काररहिताः कलौपापेनमोहिताः ॥ १४ ॥ राजसास्तामसादेवि पापोपहतचेतसः ॥ परदारपरद्रव्यपरहिंसारतानराः ॥ १५ ॥ उद्वेगञ्चपरंयान्ति प्रकुप्यन्तियतस्ततः ॥ आत्मसम्भावितामूढा मिथ्याज्ञानेनमोहिताः ॥ १६ ॥ वर्णाश्रमविरुद्धन्तु तीर्थंकुर्वन्तियेधमाः ॥ तीर्थयात्रांप्रकुर्वन्ति भेदेनकपटेनच ॥ १७ ॥ तीर्थेमृतान

तुमने जो मुझसे पूंछा है उसको सावधान होतीहुई सुनिये जिसप्रकार तत्त्ववस्तु स्थित है उस सब चरित्रको कहूंगा ॥ १२ ॥ हे सुरसुन्दरि ! तुमसे जो पहले तीर्थ कहेगये हैं कि स्थावर जंगम समेत संसार में साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ हैं ॥ १३ ॥ हे सुव्रते ! उनके मध्य में प्रभासतीर्थ गुप्तहै उसको देखकर संस्काररहित मनुष्य कलियुग में पापसे मोहित ॥ १४ ॥ व हे देवि ! पापसे नष्टचित्तवाले राजसी व तामसी और पराई स्त्री पराई द्रव्य व पराये जीवकी हिंसामें तत्पर मनुष्य ॥ १५ ॥ बड़े उद्वेगको प्राप्त होते हैं व जहां तहां क्रोधित होते हैं और अपनाको सम्भावना करनेवाले व मिथ्याज्ञानसे मोहित तथा मूढ़ ॥ १६ ॥ जो नीचमनुष्य तीर्थमें वर्ण व

आश्रमके विरुद्धकर्मको करते हैं व कपट तथा भेदसे जो तीर्थ यात्राको करते हैं ॥१७॥ हे वरवर्णिनि ! तीर्थ में मरेहुये वे नहीं सिद्ध होते हैं इसलिये हे देवि ! मैंने अनेक
प्रकारके तीर्थ ॥ १८ ॥ व लिंगोंको बड़े यत्नसे गुप्त कियाहै हे सुश्रोणि, देवेशि ! कलियुगमें पापकारी मनुष्योंको वे सिद्धिदायक नहीं होते हैं ॥ १९ ॥ और जो मनुष्य
क्रोधको जीते व लोभको जीते तथा इन्द्रियों को जीतेहुये हैं और जो ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र पाखण्ड तथा ईर्षासे रहितहैं ॥ २० ॥ हे देवि ! उत्तमभावसे भावित
जो उत्तमव्रतवाले मनुष्य तीर्थ को सेवते हैं हे यशस्विनि ! उनके हितके लिये मैं कहताहूं ॥ २१ ॥ कि त्रिलोक में प्रसिद्ध प्रभास ऐसा जो विख्यातक्षेत्र है मेरी माय

लिङ्गानिचैवसुश्रोणि गोपितानिप्रय
सिद्ध्यन्ति तेनरावरवर्णिनि ॥ अतोर्थन्तुमयादेवि तीर्थानिविविधानिच ॥ १८ ॥
व्रतः ॥ नसिद्धिदानिदेवेशि कलौकल्मषकारिणाम् ॥ १९ ॥ येनरास्तुजितक्रोधा जितलोभाजितेन्द्रियाः ॥ ब्राह्मणाः
क्षत्रियावैश्याः शूद्राश्चादम्भमत्सराः ॥ २० ॥ सद्भावभावितादेवि तीर्थंसेवन्तिसुव्रताः ॥ तेषाञ्चैवहितार्थाय कथयामि
यशस्विनि ॥ २१ ॥ प्रभासमितिविख्यातं क्षेत्रंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तत्क्षेत्रन्नैवजानन्ति ममममायाविमोहिताः ॥ २२ ॥
यैरहंत्वेकचित्तैस्तु बहुजन्मभिरर्चितः ॥ तेविदन्तिपरंक्षेत्रं प्रभासंपापनाशनम् ॥ २३ ॥ सद्भावभावितादेवि ममव्रतनि
षेविणः ॥ तेषांप्राभासिकंक्षेत्रं विदितंनात्रसंशयः ॥ २४ ॥ यमैश्चनियमैर्युक्ता अहङ्कारविवर्जिताः ॥ तेषामर्थेवदिष्या
मि कर्णन्देहिवरानने ॥ २५ ॥ पृथिव्यांममसर्वेषां तीर्थानांसुरसुन्दरि ॥ एकमेवल्लभंतत्र प्रभासंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ २६ ॥
तस्मिंश्चैवतीर्थेतु तीर्थेभ्यस्सोमपूजिते ॥ तस्मिन्स्थानेमहादेवि एकान्तेनिषदोह्यहम् ॥ २७ ॥ तेनगुह्यंकृतंस्थानं तव

से मोहित मनुष्य उस क्षेत्रको नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ और सावधान चित्तवाले जिन मनुष्योंसे बहुत जन्मों में मैं पूजित हुआहूं वे पापविनाशक उत्तम प्रभास
जानते हैं ॥ २३ ॥ हे देवि ! जो मनुष्य उत्तमभाव से भावित और हमारे व्रतको सेवनेवाले हैं उनको प्रभासक्षेत्र विदित है इसमें सन्देह नहींहै ॥ २४ ॥ जो
यम व नियमों से सयुत तथा अहंकार से रहितहैं उनके लिये मैं कहताहू हेवरानने ! कानदीजिये याने ध्यानधरकर सुनिये ॥ २५ ॥ हे सुरसुन्दरि ! पृथ्वी में
तीर्थों के मध्यमें वहां एक उत्तम प्रभासक्षेत्र मुझको प्रिय है ॥ २६ ॥ हे महादेवि ! समस्ततीर्थों से सोमपूजित इस तीर्थमें मैं एकान्तमें स्थितहूं ॥ २७ ॥ हे दे

लिये गुप्त कियाहुआ स्थान तुमसे प्रकाशित कियागया वहांपर योगसे युक्त मेरा दिव्यलिंग हुआहै ॥ २८ ॥ जो कि दिव्यतेज से संयुत व अग्निमण्डलसे शोभित है जोकि चिह्नमात्र स्थित व शान्त और मनुष्योंसे क्लेशकरके देखने योग्यहै ॥ २९ ॥ और इच्छा, ज्ञान व क्रियानामक तीनशक्तिया होतीहैं जोकि संसारके कर्ताके लिये उस लिंगसे पैदा होती हैं ॥ ३० ॥ और यह चराचर संसार उस लिंगमें लीन होजाता है और फिर उसीमें उत्पन्नहुआ स्थावर जंगमसमेत संसार देख पड़ता है ॥ ३१ ॥ और वैसाही उत्पन्न वह गुप्तहै कोई उस उत्तमक्षेत्रको नहीं जानताहै पृथ्वीमें जन्मभरके अभ्यासमे मनुष्य उस लिंगको जानते हैं ॥ ३२ ॥ प्रभासक्षेत्रमें ये

विप्रकाशितम् ॥ तत्रमेयोगयुक्तस्य दिव्यंलिङ्गंबभूवह ॥ २८ ॥ दिव्यतेजस्समायुक्तं वह्निमण्डलमण्डितम् ॥ लक्ष्य मात्रंस्थितंशान्तं दुर्निरीक्ष्यन्तुमानवैः ॥ २९ ॥ इच्छाज्ञानक्रियाख्याश्च त्रिस्रश्शक्त्योभवन्तिह ॥ तस्माल्लिङ्गात्समु त्पन्नः जगतःकर्तृहेतवः ॥ ३० ॥ तस्मिँल्लिंगेलयंयाति जगदेतच्चराचरम् ॥ पुनस्तत्रैवसम्भूतं दृश्यतंसचराचरम् ॥ ३१ ॥ गुह्यंतथैवसम्भूतं नकश्चिद्वेदतत्परम् ॥ जन्माभ्यासेनतल्लिङ्गं ज्ञायतेभुविमानवैः ॥ ३२ ॥ क्षेत्रेप्राभासिकेप्रोक्तः क्षेत्रज्ञोयन्नसंशयः ॥ तत्रसोमेशनामाहमस्मिन्क्षेत्रेवरानने ॥ ३३ ॥ ममांशसम्भवायेच अस्मिन्क्षेत्रेममुद्भवाः ॥ ते षान्तुविदितंलिङ्गं पूर्वकल्पेतुभैरवे ॥ ३४ ॥ अन्यैरपिसुरैर्देवि इदंलिङ्गंसुदुर्लभम् ॥ अन्यन्निदर्शनंतत्र तत्प्रवक्ष्यामिपा र्वति ॥ ३५ ॥ कलौयुगेमहादेवि हेतुवादरतानराः ॥ वदिष्यन्तिमहापापाः सर्वेपाखण्डसंस्थिताः ॥ ३६ ॥ मिथ्याचैतत्क्र तंसर्वं मूर्खैश्चापिप्रकीर्त्तितम् ॥ क्वतीर्थंक्वप्रभासश्च कुतोवैसन्तिदेवताः ॥ ३७ ॥ सर्वंचापितथालीकं मूर्खैश्चापिप्रकी

सदाशिवजी क्षेत्रज्ञ कहेगये हैं इसमें सन्देह नहीं है वहांपर हे वरानने! इस क्षेत्रमें सोमेशनामक मैं हूं ॥ ३३ ॥ और मेरे अंशसे उपजेहुये जो इस क्षेत्र में उत्पन्नमनुष्य हैं उनको पहले के भैरवकल्प में लिंग प्रकट है ॥ ३४ ॥ हे देवि! अन्य देवताओं से भी यह लिंग दुर्लभहै और उस विषयमें जो अन्यउदाहरण है हे पार्वतीजी! मैं उसको कहताहूं ॥ ३५ ॥ हे महादेवि! कलियुगमें हेतुवादमें तत्पर तथा महापापी व पाखण्डमें स्थित सब मनुष्य ऐसा कहैंगे ॥ ३६ ॥ कि यह कियाहुआ सब मिथ्या

है व मूर्खों से कहाहुआहै कि कहां तीर्थहै और कहां प्रभास व कहां देवताहैं ॥ ३७ ॥ यह सब भी असत्य व मूर्खों से कहाहुआहै ऐसा मूर्ख कहैंगे व अन्य नर हँसैंगे ॥ ३८ ॥ कलियुग प्राप्त होनेपर पापसे नष्टबुद्धिवाले व नारकी नास्तिकलोग सिद्धिको नहीं प्राप्त होवैंगे ॥ ३९ ॥ जो शिवजीकी निन्दा में तत्पर मनुष्य तीर्थमें मरतेहैं वे पशुपक्षियों की योनिमें उत्पन्न होकर सब योनियों में देख पड़ते हैं ॥ ४० ॥ हे देवि ! इसीकारण कलियुग के माहात्म्य से सत्य तथा पवित्रता से रहित व बहुतही दुःखी देख पड़ते हैं ॥ ४१ ॥ क्षेत्रों के गुप्तकरने में यही कारण कहागया है तुमसे यह सब वृत्तान्त कहागया कि जिससे सिद्धि अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ४२ ॥ हे सुरेश्वरि !

र्त्तितम् ॥ एवंमूर्खावदिष्यन्ति प्रहसिष्यन्तिचापरे ॥ ३८ ॥ नारकानास्तिकालोकाःपापोपहतचेतसः ॥ सिद्धिंनैवप्रयास्यन्ति सम्प्राप्तेतुकलौयुगे ॥ ३९ ॥ तीर्थेचैवमृतायेच शिवनिन्दापरायणाः ॥ तिर्यग्योनिप्रसूताश्चदृश्यन्तेसर्वयोनिषु॥ ४० ॥ एतस्मात्कारणाद्देवि तीर्थेचैवसुदुःखिताः ॥ दृश्यन्तेयुगमाहात्म्यात्सत्यशौचविवर्जिताः ॥ ४१ ॥ इदंवैकारणंप्रोक्तंक्षेत्राणांचैवगोपने ॥ एतत्तेकथितंसर्वं सिद्धिर्येनसुदुर्ल्लभा ॥ ४२ ॥ युगेयुगेतुतीर्थानि कीर्त्तितानिसुरेश्वरि ॥ तेषांमेवल्लभंदेवि प्रभासंक्षेत्रमेवच ॥ ४३ ॥ इत्येतत्कथितंदेवि रहस्यंपापनाशनम् ॥ क्षेत्रबीजंमहादेवि किमन्यत्परिपृच्छसि ॥ ४४ ॥ वृत्तंमहापातकनाशनंवै श्रोष्यन्तियेक्षेत्रमहाप्रभावम् ॥ तेचापियास्यन्तिममप्रभावात्त्रिविष्टपंपुण्यजनाधिवासम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येदेवीप्रश्नवर्णनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥

युग युग में तीर्थ कहेगये हैं परन्तु हे देवि ! उनके मध्य में मुझको प्रभासक्षेत्र ही प्रिय है ॥ ४३ ॥ हे देवि ! यह पापनाशक गुप्त क्षेत्रबीज कहागया हे महादेवि ! अन्य क्या पूंछती हो ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य महापातकों के विनाशकक्षेत्र के महाप्रभाववाले चरित्र को सुनैंगे वे भी मेरे प्रभाव से पुण्यवान्जनों सेवसेहुये स्वर्ग को जावैंगे ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येदेवीप्रश्नवर्णनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥

दो० । पारवती सन कह्यो शिव क्षेत्रप्रभास प्रभाव । सोइ चौथे अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ सूतजी बोले कि हेमुनीश्वरो ! जब सदाशिवजी ने ऐसा प्रभाव कहा तब हाथोंको जोड़े हुई उन पार्वतीदेवी ने फिर पूंछा ॥ १ ॥ पार्वतीदेवीजी बोलीं कि हे देवदेव,प्रभो, जगदीशजी ! क्षेत्र व तीर्थों से उत्पन्न प्रभासक्षेत्र के माहात्म्य को मुझसे विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ कि वहापर अज्ञानीमनुष्यों के ऊपर वह क्षेत्र कैसे प्रसन्न होता है व जप, दान, हवन, यज्ञ व कीहुई तपस्या व कियाहुआ जो कर्महै ॥ ३ ॥ वह उस प्रभासमहाक्षेत्र में कैसे अक्षय होता है और अन्य हज़ारों जातियों से पहले इकट्ठा किया हुआ जो पापहै ॥ ४ ॥ वह कैसे नाशको प्राप्तहोता

सूतउवाच ॥ एवंमुनीन्द्राःकथितेप्रभावेशङ्करेणतु ॥ पुनःपप्रच्छसादेवी कृताञ्जलिपुटासती ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ देवदेव जगन्नाथ क्षेत्रतीर्थभवंप्रभो ॥ प्रभासक्षेत्रमाहात्म्यं विस्तरात्कथयस्वमे ॥ २ ॥ कथंतुष्यतिमर्त्यानां क्षेत्रंतत्रविचेतसाम् ॥ जप्तंदत्तंहुतंचेष्टं तपस्तप्तंकृतंचयत् ॥ ३ ॥ प्रभासेतुमहाक्षेत्रे कथंतत्राक्षयंभवेत् ॥ जात्यन्तरसहस्रेतु यत्पापंपूर्वसञ्चितम् ॥ ४ ॥ तत्कथंक्षयमाप्नोति तन्ममाचक्ष्वशङ्कर ॥ यदिप्रभासंसर्वेषां तीर्थानांप्रवरंस्मृतम् ॥ ५ ॥ किमन्यैर्बहुभिस्तत्र कर्तव्यंतीर्थविस्तरैः ॥ एकंयदिभवेत्तीर्थं मनोनिस्संशयंभवेत् ॥ ६ ॥ बहुत्वादपितीर्थानां मनोविचलतेनृणाम् ॥ तस्मात्सर्वंपरित्यज्य तीर्थजालंसविस्तरम् ॥ ७ ॥ प्रभासस्यैवमाहात्म्यं कथयस्वसुरेश्वर ॥ क्षेत्रंप्रभासंसीमांच क्षेत्रसारंचयत्प्रभो ॥ ८ ॥ वक्तुमर्हसितत्सर्वं परंकौतूहलंहिमे ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि क्षेत्राणांक्षेत्रमुत्तमम् ॥ ९ ॥ सर्वक्षेत्रेषुयत्क्षेत्रं प्रभासन्तुप्रियंमम ॥ प्रभासेतुपरासिद्धिःप्रभासेतुपरागतिः ॥ १० ॥ यत्रसन्निहितोनित्य

है हे शंकरजी ! उसको मुझसे कहिये यदि प्रभासक्षेत्र सब तीर्थों में उत्तम कहा गया है ॥ ५ ॥ तो वहा अन्य बहुततीर्थों के विस्तारों से क्या है याने कुछ नहीं यदि एकही तीर्थ होवै तो मन निरसन्देह हो जाता है ॥ ६ ॥ और बहुततीर्थों से भी मनुष्यों का मन विचलित होता है इसलिये विस्तारसमेत समस्ततीर्थों के समूह को छोड़कर ॥ ७ ॥ हे सुरेश्वर ! प्रभासक्षेत्रही के माहात्म्य को कहिये हे प्रभो ! प्रभासक्षेत्र व उसकी सीमा और जो क्षेत्र का सारांशहो ॥ ८ ॥ उस सबको कहने के योग्यहो क्योंकि मुझको बड़ा आश्चर्य है सदाशिवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं क्षेत्रों के मध्य में उत्तमक्षेत्रको कहताहूं ॥ ९ ॥ समस्तक्षेत्रों में जो उत्तमक्षेत्र है वह

मुझको प्यारा है प्रभास में उत्तमसिद्धि होती है व प्रभास में उत्तमगति होती है ॥ १० ॥ जहांपर कि हे भद्रे ! निरंजन मैं नित्यही टिका रहताहूं सीमा से संयुत उसके सब प्रमाणको कहताहूं ॥ ११ ॥ तीन भांतिका क्षेत्र कहागयाहै उसको मैं तुमसे क्रमसे कहताहूं प्रभास का क्षेत्र,पीठ व गर्भगृह कहाजाताहै ॥ १२ ॥ क्रमपूर्वक सौकरोड़गुना उसका फल कहागया है पहला जो क्षेत्रहै वह बारहयोजन का है ॥ १३ ॥ और पांचयोजनकी प्रमाणसे क्षेत्रपीठ कहागयाहै और दोकोश गर्भगृहहै वह कर्णिका मुझको प्यारी है ॥ १४ ॥ हे देवि ! क्रमपूर्वक क्षेत्र की सीमा (हद्द) को कहताहूं उसको सुनिये कि वह क्षेत्र लम्बाई व चौड़ाई से आदि, मध्य व अन्त में

महंभद्रेनिरञ्जनः ॥ तस्यप्रमाणंवक्ष्यामि सर्वसीमासमन्वितम् ॥ ११ ॥ क्षेत्रंतुत्रिविधंप्रोक्तं तत्तेवक्ष्याम्यनुक्रमात् ॥ क्षेत्रंपीठंगर्भगृहं प्रभासस्यप्रकीर्त्यते ॥ १२ ॥ यथाक्रमंफलंतस्य शतकोटीगुणंस्मृतम् ॥ क्षेत्रन्तुप्रथमंप्रोक्तं तच्चद्वादशयोजनम् ॥ १३ ॥ पञ्चयोजनमात्रेण क्षेत्रपीठंप्रकीर्त्तितम् ॥ गर्भगेहंचगव्यूतिः कर्णिकासाममप्रिया ॥ १४॥ क्षेत्रसीमांप्रवक्ष्यामि शृणुदेवियथाक्रमम् ॥ आयामव्यासतश्चैव आदिमध्यान्तसंस्थितम् ॥ १५ ॥ पूर्वेतमोनुदः स्वामी पश्चिमेमाधवस्स्मृतः ॥ दक्षिणेसागरस्तद्वद्भवान्यप्युत्तरेस्मृता ॥ १६ ॥ एवंसीमासमायुक्तं क्षेत्रंद्वादशयोजनम् ॥ एतत्प्राभासिकंक्षेत्रं सर्वपातकनाशनम् ॥ १७ ॥ तन्मध्येपीठिकाप्रोक्ता पञ्चयोजनविस्तृता ॥ न्यङ्कुमत्यपरेणैव वज्रिण्यापूर्वतस्तथा ॥ १८ ॥ माहेश्वर्य्यादक्षिणतः समुद्रोत्तरतस्तथा ॥ आयामव्यासतश्चैव पञ्चयोजनविस्तरम् ॥ १९ ॥ पीठमेतत्समाख्यातं मध्येगर्भगृहंशृणु ॥ दक्षिणोत्तरयोर्यावत्समुद्रात्कौरवेश्वरी ॥ २० ॥ पूर्वपश्चिमतोया

स्थित है ॥ १५ ॥ पूर्व में अन्धकारनाशक सूर्यनारायण स्वामी हैं व पश्चिम में माधवजी हैं और वैसेही दक्षिण में सागर है व उत्तर में भी भवानी कहीगई हैं ॥ १६ ॥ इसप्रकार सीमाओं से संयुत बारहयोजन का यह समस्तपातकों का नाशक प्रभासक्षेत्र है ॥ १७ ॥ उसके मध्य में पांचयोजन चौड़ी पीठिकाहै न्यंकुमती के पश्चिम व वज्रिणी के पूर्व ॥ १८ ॥ और माहेश्वरी के दक्षिण व समुद्र के उत्तर लम्बाई व चौड़ाई से पांचयोजन विस्तारवाला ॥ १९ ॥ यह पीठ कहागया है और

बीच में गर्भगृहको सुनिये कि समुद्र से दक्षिण व उत्तर जहांतक कौरवेश्वरी हैं ॥ २० ॥ और गोमुख से पूर्व व पश्चिम जहांतक अश्वमेध का स्थान है यह गर्भ-गृह कहागयाहै जोकि मुझको कैलाससे प्रिय है ॥ २१ ॥ हे देवेशि ! पृथ्वी के मध्य इसी अन्तरमें जो तीर्थ हैं व बावली,कूप,तड़ाग और देवमंदिर ॥ २२ ॥ सरोवर व नदियां तथा छोटे तड़ाग व जो कुण्ड हैं वे सब पवित्रहैं और समस्तपातकों के हरनेवाले हैं ॥ २३ ॥ इनमें से जहांकहीं भी स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजित होता है क्षेत्र का पवित्र पहिला माहेश्वरभाग कहागया है ॥ २४ ॥ दूसरा वैष्णवभागहै व तीसरा ब्रह्मभाग है ब्रह्मभाग में एक करोड़तीर्थ स्थित हैं ॥ २५ ॥ व हे वरवर्णिनि !

वद्गोमुखादाश्वमेधिकम् ॥ एतद्गर्भगृहंप्रोक्तं कैलासान्ममवल्लभम् ॥ २१ ॥ अत्रान्तरेतुदेवेशि यानितीर्थानिभूतले ॥ वापीकूपतडागानि देवतायतनानिच ॥ २२ ॥ सरांसिसरितश्चैव पल्वलानिहृदास्तथा ॥ तानिसर्वाणिमेध्यानि सर्वपाप हराणिच ॥ २३ ॥ यत्रकुत्रनरस्स्नात्वा स्वर्गलोकेमहीयते ॥ क्षेत्रस्यप्रथमोभागो मेध्योमाहेश्वरःस्मृतः ॥ २४ ॥ द्वितीयोवैष्णवोभागो ब्रह्मभागस्तृतीयकः ॥ तीर्थानांकोटिरेकातु ब्रह्मभागेऽव्यवस्थिता ॥ २५ ॥ वैष्णवेकोटिरेकातु तीर्थानांवरवर्णिनि ॥ सार्धकोटिस्तुसम्प्रोक्ता रुद्रभागेतुमध्यतः ॥ २६ ॥ एवंदेविसमाख्यातं क्षेत्रंतद्धित्रिदैवतम् ॥ गुह्याद्गुह्यतरंक्षेत्रं ममप्रियतरंशुभम् ॥ २७ ॥ तिस्रःकोट्योर्धकोटिश्च क्षेत्रेप्रोक्ताविभागतः ॥ यात्रातुत्रिविधाप्रोक्ता तांश्शृणुष्ववरानने ॥ २८ ॥ रौद्रीतुप्रथमीयात्रा वैष्णवीतुद्वितीयका ॥ ब्राह्मीतृतीयासम्प्रोक्ता सर्वपातकनाशिनी ॥ २९ ॥ ब्राह्मेविभागेसम्प्रोक्ता इच्छाशक्तिर्वरानने ॥ क्रियातुवैष्णवेभागे द्वितीयेचप्रकीर्तिता ॥ ३० ॥ रौद्रेभागेतृतीयेतु ज्ञानशक्तिर्वरा

वैष्णवभाग में एककरोड़ तीर्थ हैं और मध्यसे रुद्रभागमें डेढ़करोड़ तीर्थ हैं ॥ २६ ॥ हे देवि ! इसप्रकार तीन देवताओंवाला वह क्षेत्र कहागयाहै जोकि गुप्तसे भी अत्यन्त गुप्त उत्तमक्षेत्र मुझको बहुतही प्याराहै ॥ २७ ॥ हे वरानने ! क्षेत्रमें विभाग से साढ़ेतीनकरोड़ तीर्थ कहेगये हैं और तीनभांति की यात्रा कहीगई है उसको सुनिये ॥ २८ ॥ पहली रौद्रीयात्रा है व दूसरी वैष्णवी है और तीसरी ब्राह्मीयात्रा कहीगई है जोकि समस्तपातकोंको नाशनेवाली है ॥ २९ ॥ हे वरानने ! ब्रह्माके विभागमें

इच्छाशक्ति कहीगई है व दूसरे वैष्णवभागमें क्रियाशक्ति है ॥ ३० ॥ व हे वरानने ! तीसरे शैवविभाग में ज्ञानशक्ति है यदि पापी हो और यदि शठहो अथवा यदि शठता करनेवाला होवै ॥ ३१ ॥ तो जो मनुष्य मध्यभागमें बसताहै वह सब पापोंसे छूट जाता है हिमवान् व गन्धमादन पर्वत को छोड़कर॥ ३२ ॥ व कैलास, निषध तथा महाप्रकाशमान सुमेरुगिरि व मनोहर त्रिशिखर और मानस महाचल ॥ ३३ ॥ व सुन्दर देववन तथा नन्दनवन और मनोहर स्वर्गस्थान तथा तीर्थ व देव-मन्दिर ॥ ३४ ॥ उन सबोंको छोड़कर प्रभास में मेरी प्रीति है हे देवि ! मनको रोंककर सावधान होताहुआ जो मनुष्य वहा बसता है ॥ ३५ ॥ और तीनोंकालों में प्रिय

नने ॥ यदिपापोयदिशठो यदिनैष्कृतिकोनरः ॥ ३१ ॥ निर्मुक्तस्सर्वपापेभ्यो मध्यभागेवसेत्तुयः ॥ हिमवन्तंपरित्य ज्य पर्वतंगन्धमादनम् ॥ ३२ ॥ कैलासंनिषधञ्चैव मेरुपृष्ठंमहाद्युति ॥ रम्यंत्रिशिखरञ्चैव मानसञ्चमहागिरिम् ॥ ३३ ॥ देवोद्यानानिरम्याणि वनंनन्दनमेवच ॥ स्वर्गस्थानानिरम्याणि तीर्थान्यायतनानिच ॥ ३४ ॥ तानिसर्वाणिसन्त्य ज्य प्रभासेचरतिर्मम ॥ यस्तत्रवसतेदेवि संयतात्मासमाहितः ॥ ३५ ॥ त्रिकालमिष्टंभुञ्जानो वायुभक्षसमोभवेत् ॥ विघ्नैरालोच्यमानोपि यःप्रभासन्नमुञ्चति ॥ ३६ ॥ समुञ्चतिजरामृत्युं जन्मचक्रमशाश्वतम् ॥ जन्मान्तरशते र्वापि योगोवायदिलभ्यते ॥ ३७ ॥ मोक्षञ्चैवसहस्रेण जन्मनालभ्यतेनच ॥ प्रभासेचमहादेवि येस्थिताःकृतनिश्च याः ॥ ३८ ॥ एकेनजन्मनातेषां मोक्षश्चैवनसंशयः ॥ प्रभासेतुस्थितायेवै ब्राह्मणाःशंसितव्रताः ॥ ३९ ॥ मृत्युञ्जयेनसं युक्तं जपन्तिशतरुद्रियम् ॥ कालाग्निरुद्रसान्निध्ये दक्षिणान्दिशमाश्रिताः ॥ ४० ॥ ज्ञानंचोत्पद्यतेतत्र षण्मासाभ्यन्त

भोजन करताहुआ पवन भक्षणकरनेवाले (सर्प) के समान होवै व विघ्नोंसे देखा जाताहुआ भी जो नर प्रभासको नहीं छोड़ताहै ॥ ३६ ॥ वह वृद्धता व मृत्युको त्याग देता है और नाशवान् जन्मके चक्र (भ्रमण) को छोडदेता है यदि सैकड़ों जन्मान्तरों से योग मिलता है ॥ ३७ ॥ तो भी हज़ार जन्मोंसे मोक्ष नहीं मिलती है हे महादेवि ! निश्चय कियेहुये जो पुरुष प्रभासक्षेत्रमें स्थितहैं ॥ ३८ ॥ एकही जन्म से उनकी मोक्ष होती है इसमें सन्देह नहीं है प्रशंसितव्रतवाले जो ब्राह्मण प्रभासक्षेत्रमें स्थितहैं ॥ ३९ ॥ और कालाग्निरुद्र के समीप दक्षिणदिशामें बैठे हुये जो मृत्युंजयसे संयुत शतरुद्रिय को जपते हैं ॥ ४० ॥ तो छहमहीनेके बीचमें ज्ञान उत्पन्न होता

है और नाम के पर्यायवाचक जनों से शिव वेद कहाजाता है ॥ ४१ ॥ और उनका आत्मस्वरूप शतरुद्र कहागया है व प्रत्येककल्प में वेद पुनरावर्तक याने फिर जन्मवाले कहेगये हैं ॥ ४२ ॥ वैसेही हे देवि ! मन्त्रमुक्त हैं व शतरुद्रीय मुक्त है जो पुरुष मुझ ईश्वरको मंत्र से पूजते हैं ॥ ४३ ॥ प्रभासक्षेत्र में प्राप्तहोकर वे मुक्तहोजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है मंत्रहीन व मंत्रसमेत जो पुरुष वहां बसता है ॥ ४४ ॥ वह भी जिसगति को प्राप्तहोता है वह यज्ञों और दानोंसे नहीं मिलतीहै और इस क्षेत्र में आपही से उत्पन्न हुये साक्षात् महादेवजी टिके हैं ॥ ४५ ॥ और वैसेही प्रभासक्षेत्र में करोड़रुद्र टिके हैं जोकि ॐकारको ध्यान करतेहुए सोमेश

रेणतु ॥ शिवस्तुप्रोच्यतेवेदो नामपर्य्यायवाचकैः ॥ ४१ ॥ तस्यचात्मस्वरूपन्तु शतरुद्रंप्रकीर्त्तितम् ॥ कल्पेकल्पेच वेदास्तु पुनरावर्तकाःस्मृताः ॥ ४२ ॥ मन्त्राश्चैवतथादेवि मुक्तास्तुशतरुद्रियम् ॥ ईशञ्चैवतुमन्त्रेण मामेवहियजन्ति वै ॥ ४३ ॥ प्रभासंक्षेत्रमासाद्य तेमुक्तानात्रसंशयः ॥ अमन्त्रोमन्त्रकोवापि यस्तत्रवसतेनरः ॥ ४४ ॥ सोपियाङ्गति माप्नोति यज्ञैर्दानैर्नसाप्यते ॥ अस्मिन्क्षेत्रेस्वयम्भूश्च स्थितस्साक्षान्महेश्वरः ॥ ४५ ॥ रुद्राणांकोटयश्चैव प्रभासेसं व्यवस्थिताः ॥ ध्यायमानास्तथोङ्कारं स्थितास्सोमेशदक्षिणे ॥ ४६ ॥ ब्रह्माण्डोदरमध्येतु यानितीर्थानिसुव्रते ॥ सो मेश्वरङ्गमिष्यन्ति वैशाखस्यचतुर्दशीम् ॥ ४७ ॥ मनोबुद्धिरहङ्कारः कामक्रोधौतथापरौ ॥ एतेरक्षन्तिसततं सोमेशं पापनाशनम् ॥ ४८ ॥ नसागतिःकुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारेनपुष्करे ॥ यागतिर्विहितापुंसां प्रभासक्षेत्रवासिनाम् ॥ ४९ ॥ ति र्य्यग्योनिगतास्सर्वे प्रभासेयेकृतालयाः ॥ कालेननिधनंप्राप्तास्तेपियान्तिपराङ्गतिम् ॥ ५० ॥ यद्गुह्यन्देवदेवस्य त

जीके दक्षिण में स्थित हैं ॥ ४६ ॥ हे सुव्रते ! ब्रह्माण्डके उदरमध्य में जो तीर्थ हैं वे वैशाखकी चतुर्दशी में सोमेश्वरजी में प्राप्त होतेहैं ॥ ४७ ॥ मन, बुद्धि, अहंकार व अन्य काम और क्रोध ये सदैव पापनाशक सोमेशजीकी रक्षा करते हैं ॥ ४८ ॥ वह गति न कुरुक्षेत्रमें है न हरिद्वार और न पुष्कर में है जोकि प्रभासक्षेत्रवासियों की कहीगई है ॥ ४९ ॥ पशु, पक्षीकी योनिमें प्राप्त जिन सबोंने प्रभासक्षेत्रमें स्थान कियाहै कालसे मृत्युको पाकर वेभी उत्तमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥ देवदेव

शिवजी का जो गुप्तस्थानहै वह क्षेत्र सातयोजन है, वहांपर नारायणपूर्वक ब्रह्मादिक देवता ॥ ५१ ॥ व असंख्य योगीलोग सनातन भगवान् सदाशिवजीकी उपासना करते हैं जोकि मेरे भक्त व मुझमें परायणहैं ॥ ५२ ॥ मनको रोंकेहुए संन्यासियोंको आठमहीनेतक विहार होताहै और चार महीनेतक एक नियम में बसकर उस तीर्थका सेवनकरै ॥ ५३ ॥ जो नियमको नहीं सेवते हैं अज्ञान से घिरेहुए वे मूर्ख विष्ठा, मूत्र व वीर्यके मध्यमें बार २ होते हैं ॥ ५४ ॥ और काम, क्रोध, लोभ, पाखण्ड, गर्व, मत्सर, निद्रा, प्रमाद, आलस्य व पिशुनता याने चुगुली ये जो दशवस्तु हैं ॥ ५५ ॥ ये सदैव तीर्थनायक तीर्थेश सोमेशजीकी रक्षा करते हैं प्रभासक्षेत्र

त्क्षेत्रंसप्तयोजनम् ॥ तत्रब्रह्मादयोदेवा नारायणपुरोगमाः॥५१ ॥ योगिनश्चतथासङ्ख्या भगवन्तंसनातनम् ॥ उपासतेप्रभासेतु मद्भक्तामत्परायणाः ॥ ५२ ॥ अष्टौमासान्विहारस्याद्यतीनां संयतात्मनाम् ॥ एकञ्चचतुरोमासान् सेवेत्तु नियमंवसन् ॥ ५३ ॥ नियमंयेनसेवन्ते तेमूढास्तमसावृताः ॥ विण्मूत्ररेतसांमध्ये भवन्तिचपुनःपुनः ॥ ५४ ॥ कामःक्रोधस्तथालोभोदम्भस्तम्भोथमत्सरः ॥ निद्रातन्द्रातथालस्यं पैशून्यमितियेदश॥ ५५॥एतेरक्षन्तिसततंतीर्थेशंतीर्थनायकम् ॥ नप्रभासेमृतःकश्चिन्नरकंयातिकिल्बिषी ॥ ५६ ॥ यावज्जीवंनरोयस्तुवसतेकृतनिश्चयः ॥ अग्निहोत्रैश्चसंन्यासैराश्रमैश्चसुपालितैः ॥ ५७ ॥ त्रिदण्डैरेकदण्डैश्चशैवैःपाशुपतैरपि ॥ एतैरन्यैश्चयतिभिःप्राप्यतेयत्फलंशुभम् ॥ ५८ ॥ तत्सर्वंलभतेदेवि श्रीसोमेश्वरयात्रया ॥ एकोह्यर्चयतेशम्भुंतपस्यतितथापरः ॥ ५९ ॥ तयोर्मध्येतुसश्रेष्ठोयस्सोमेशंप्रपूजयेत् ॥ येतुयोगेचसांख्येच तथायेपञ्चरात्रिके ॥ ६० ॥ अन्यैश्चशास्त्रैर्विज्ञायप्रभासेसंव्यवस्थिताः ॥ लिङ्गे

में मराहुआ कोई पापी नरकको नहीं जाताहै ॥ ५६ ॥ निश्चय कियेहुए जो मनुष्य वहां बसताहै और अग्निहोत्र, संन्यास व भलीभांति पालेहुए अन्य आश्रमों से ॥ ५७ ॥ व त्रिदंडी, एक दण्डी, शैव व पाशुपतों से भी और तथा अन्य संन्यासियों से जो उत्तमपदार्थ पायाजाता है ॥ ५८ ॥ हे देवि ! वह सब श्री सोमेश्वरजी की यात्रासे मिलताहै एक मनुष्य सदाशिवजीको पूजताहै व दूसरा तप करताहै ॥ ५९ ॥ उनदोनों के मध्यमें वह श्रेष्ठ है जोकि सोमेशजी को पूजता है और जो सांख्य में

व योग में और जो पंचरात्रागम में ॥ ६० ॥ और जो अन्य शास्त्रों से जानकर प्रभासक्षेत्र में स्थित हैं वे उत्तमगतिको प्राप्तहोते हैं और शिवलिंग में यह चराचर सब संसार स्थित है ॥ ६१ ॥ इसलिये लिंग में सदैव शिवदेवजी पूजने योग्य हैं मेरीही वह उत्तममूर्त्ति श्री सोमेशजी में स्थित है ॥ ६२ ॥ उसीसे आत्माही से आत्मा के आराधन में तत्परहूं अनेकों हज़ारजन्मों से अपने कर्मों के द्वारा बढ़ाहुआ ॥ ६३ ॥ कौन पुरुष विना सोमेशजी के पूजन से उस मुक्तिको प्राप्तहोता है जो कुछ अशुभकर्म मनुष्य की बुद्धि से किया होता है ॥ ६४ ॥ वह सब श्रीसोमेश्वरजी के पूजन से नाश होजाता है पाप को छुड़ानेवाले पुरुषों से इस संसार में जो

चैवस्थितंसर्वंजगदेतच्चराचरम् ॥ ६१ ॥ तस्माल्लिङ्गेसदादेवः पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ ममैवसापरामूर्तिः श्रीसोमेशेऽव्यवस्थिता ॥ ६२ ॥ तेनचैवात्मनात्मानमाराधनपरोस्म्यहम् ॥ अनेकजन्मसाहस्रैर्जृम्भमाणस्स्वकर्मभिः ॥ ६३ ॥ कस्तांप्राप्नोतिवैमुक्तिं विनासोमेशपूजनात् ॥ यत्किञ्चिदशुभंकर्म कृतंमानुषबुद्धिना ॥ ६४ ॥ तत्सर्वंविलयंयाति श्रीसोमेश्वरपूजनात् ॥ तीर्थानियानिलोकेस्मिन्सेव्यन्तेपापमोक्षिभिः ॥ ६५ ॥ तानिसर्वाणिशुद्ध्यर्थं प्रभासेसंविशन्तिच ॥ योसौकालाग्निरुद्रश्च प्रोच्यतेवेदवादिभिः ॥ ६६ ॥ सोयंभैरवनाम्नातुप्रभासेसंव्यवस्थितः ॥ भैरवंरूपमासाद्य नाशयामिचदुष्कृतम् ॥ ६७ ॥ जगत्सर्वंपरित्रातुं स्थितोहंसचराचरम् ॥ तेनभैरवनामाहं प्रभासेसंव्यवस्थितः ॥ ६८ ॥ अग्निनायत्रतप्तन्तु दिव्याब्दानांचतुर्युगम् ॥ मेघवाहनकल्पेतु तत्रलिङ्गंबभूवह ॥ ६९ ॥ अग्निमीलेतिवेदोक्तं प्रभासेसुरसुन्दरि ॥ कालाग्निरुद्रनाम्ना च देवैस्सर्वैरुदाहृतम् ॥ ७० ॥ अग्नीशानेतिदेवेशि नामत्रितयमुच्यते ॥ कल्पेकल्पेतुनामानि शक्यन्तेकथितुंनहि ॥ ७१ ॥

तीर्थसेवन किये जाते हैं ॥ ६५ ॥ वे सब पवित्रता के लिये प्रभासक्षेत्र में प्रवेश करते हैं वेदवादियों से जो ये कालाग्निरुद्र कहेजाते हैं ॥ ६६ ॥ वही ये भैरव नाम से प्रभासक्षेत्र में टिके हैं भैरवरूपको प्राप्त होकर मैं पाप को नाश करता हूं ॥ ६७ ॥ स्थावर जंगमसमेत सब संसार की रक्षा करने के लिये मैं स्थितहूं उसी से भैरवनामक मैं प्रभासक्षेत्र में भलीभाति टिकाहूं ॥ ६८ ॥ जहापर देवताओं की चतुर्युगी वर्षोंतक अग्नि ने तपकिया है वहांपर मेघवाहनकल्प में लिंग हुआ है ॥ ६९ ॥ हे सुरसुन्दरि ! प्रभासक्षेत्र में अग्निमील ऐसा वेदोक्तनाम हुआ और कालाग्निरुद्र नाम से सब देवताओं ने कहा ॥ ७० ॥ और हे देवेशि ! अग्नी-

शान ऐसा नाम हुआ इसभांति तीन नाम कहे जाते हैं व हे वरानने ! कल्प कल्प में कल्पों व ब्रह्माओं की अनगिनती से नाम नहीं कहे जासक्तेहैं हे सुन्दरमुखि ! इसभांति देवताओं का अप्रकट चरित्र बहुतही गुप्त करने योग्य है ॥ ७१ । ७२ ॥ मैंने स्नेह व तुम्हारी भक्ति से इसको तुम से कहा है एक ओर सब संसार कर्म-काण्ड में व्यवस्थित है ॥ ७३ ॥ यज्ञ, दान, जप, होम, वेदपाठ, पितृतर्पण व किये हुये उपवासों तथा सैकड़ों कृच्छ्र चान्द्रायणों से ॥ ७४ ॥ व षड्‌ रात्र, त्रिरात्र व उत्तमतीर्थादि के जाने से व लोक में स्थित अनेकआकारवाले अन्य उत्तमकर्मों के द्वारा ॥ ७५ ॥ हे देवि ! मनुष्य उस परमपदको देखने के लिये कभी नहीं

असङ्ख्यत्वाच्चकल्पानाम्ब्रह्मणाञ्चवरानने ॥ एवंदेवरहस्यञ्च महागोप्यंवरानने ॥ ७२ ॥ स्नेहाच्चतवभक्त्याचम यातेपरिकीर्त्तितम् ॥ एकतश्चजगत्सर्वं कर्मकाण्डेव्यवस्थितम्॥७३॥ यज्ञदानजपोहोमैःस्वाध्यायैःपितृतर्पणैः॥ उप वासैःकृतैःकृच्छ्रैश्चान्द्रायणशतैस्तथा ॥ ७४ ॥ षड्रात्रैश्चत्रिरात्रैश्चतीर्थादिगमनैःपरैः॥ अन्यैश्चविविधाकारैर्लोकमार्ग स्थितैश्शुभैः ॥ ७५ ॥ नतत्परम्पदन्देवि शक्यंवीक्षयितुंक्वचित् ॥ यावन्नैवार्चयेद्देवि सोमेशंलिङ्गनायकम् ॥ ७६ ॥ लीलयाचापितैर्दृष्टं तत्पदंदुर्लभंपरम् ॥ पूजितोयैर्जगन्नाथस्सोमेशःकिलभैरवः ॥ ७७॥ तिर्य्यग्योनिङ्गतायेच पशुप क्षिपिपीलिकाः॥ अन्तर्जलस्थितायेतु कृमिकीटपतङ्गकाः॥७८॥ स्थावराजङ्गमाश्चान्ये मनुष्याःपशवःस्त्रियः॥ बाला वृद्धास्तथाषण्ढाः श्वानोगर्दभवायसाः ॥ ७९ ॥ चाण्डालाःपुष्कसाःशूद्रा म्लेच्छायेत्रवियोनिजाः ॥ मूर्खाश्चपण्डि ताश्चापि येचान्येकुत्सिताभुवि ॥ ८० ॥ तेसर्वेमुक्तिमायान्ति प्रभासेयेमृताश्शुभे ॥ दुर्लभन्तुममक्षेत्रं प्रभासन्देवि

समर्थ होता है जब तक कि हे देवि ! लिंगनायक सोमेशजी को नहीं पूजता है ॥ ७६ ॥ लीलासे उन्होंने उस उत्तमदुर्लभ परमपदको देखा है कि जिन्होंने जग-दीश सोमेश भैरवजी को पूजा है ॥ ७७ ॥ और तिर्यक्योनिमें प्राप्त जो पशु, पक्षी व पिपीलिका हैं व जल के भीतर स्थित जो कृमि, कीट व पतंग हैं ॥ ७८ ॥ व स्थावर, जंगम तथा अन्य जो मनुष्य, पशु व स्त्री हैं और बालक, वृद्ध, नपुंसक, कुत्ते, गर्दभ, कौवा ॥ ७९ ॥ चाण्डाल, पुष्कस, शूद्र और जो यहां म्लेच्छ हैं व अन्य योनियों में उत्पन्न, मूर्ख व पंडित और अन्य जो भूमि में निन्दित नर हैं ॥ ८० ॥ हे शुभे ! वे सब मुक्ति को प्राप्त होते हैं जो कि प्रभास में मरे हैं हे देवि !

पापीमनुष्यों को मेरा प्रभासक्षेत्र दुर्लभ है ॥ ८१ ॥ इससे संसार भर से वन्दित उस क्षेत्र में पापीपुरुष मृत्यु को नहीं प्राप्त होता है मैंने दक्षिणभाग में विश्वेश्वर जीको भलीभाति स्थापन कियाहै ॥८२॥ और उत्तर में दण्डपाणिजी इस क्षेत्रकी रक्षा करते हैं वैसेही अन्य सब गणनायक मेरी आज्ञाके वशमें वर्तमान होकर ॥८३॥ हे सुरेशि ! क्षेत्रकी रक्षा करते हैं उनके नामों को मुझ से सुनिये कि महारुद्र, चंडीश, घटाकर्ण व गोमुख ॥ ८४ ॥ विनायक, महानाद, काकवक्त्र, शुभेक्षण, एकाक्ष, दुंदुभि, चंड व तालजंघ ॥ ८५ ॥ भूमिदंड, दंड, शंकुकर्ण व वैधृति, तालदंड, महातेजा, चिपिटाक्ष व हयानन ॥८६॥ हस्तिवक्त्र, श्ववक्त्र व बिडालवदन व

पापिनाम् ॥ ८१ ॥ नतत्रलभतेमृत्युं पापात्मालोकवन्दिते ॥ मयादक्षिणभागेतु विश्वेशःसम्प्रतिष्ठितः ॥ ८२ ॥ उत्तरेदण्डपाणिस्तु क्षेत्रमेतच्चरक्षति ॥ तथान्येगणपास्सर्वे मदाज्ञावशवर्तिनः ॥ ८३ ॥ क्षेत्रंरक्षन्तिदेवेशि तेषांनामानि मेशृणु ॥ महारुद्रस्तुचण्डीशो घण्टाकर्णश्चगोमुखः ॥ ८४ ॥ विनायकोमहानादः काकवक्त्रश्शुभेक्षणः ॥ एकाक्षो दुन्दुभिश्चण्डः तालजङ्घस्तथैवच ॥ ८५ ॥ भूमिदण्डश्चदण्डश्च शङ्कुकर्णश्चवैधृतिः ॥ तालदण्डोमहातेजाश्चिपिटाक्षोहयाननः ॥ ८६ ॥ हस्तिवक्त्रश्श्ववक्त्रश्च बिडालवदनस्तथा ॥ सिंहव्याघ्रमुखाश्चान्ये वीरभद्रादयस्तथा ॥ ८७ ॥ विनायकंपुरस्कृत्य देवदेवंकपर्दिनम् ॥ एकादशतथाकोट्यो नियुतानित्रयोदश ॥ ८८ ॥ अर्बुदञ्चगणानांतु प्रभासंक्षेत्रमाश्रिताः ॥ द्वारिद्वारिप्रचण्डास्ते शूलमुद्गरपाणयः ॥ ८९ ॥ क्षेत्रंप्रभासंरक्षन्ति देवदेवस्यवैगृहम् ॥ नकश्चिद्दुष्टबुद्ध्यातु प्रविशेदितिसंस्थिताः ॥ ९० ॥ शतकोटिगणैश्चापि पूर्वद्वारेतुसंवृतम् ॥ अट्टहासोगणोनाम प्रभासंतत्ररक्ष

अन्य सिंहमुख, व्याघ्रमुख और वीरभद्रादिक ॥ ८७ ॥ गणेशजी को अगाड़ी कर देवदेव शिवजी की रक्षा करते हैं गेरहकरोड़, तेरहलाख ॥ ८८ ॥ व एकअरब गण प्रभासक्षेत्र में टिके हैं त्रिशूल और मुद्गरों को हाथमें लियेहुये वे प्रचंडगण द्वार २ पै ॥ ८६ ॥ प्रभासक्षेत्र की रक्षा करते हैं इसकारण वे भलीभांति स्थित हैं कि कोई दुष्टबुद्धि से देवदेव शिवजी के घर में न पैठे ॥ ६० ॥ वहांपर पूर्वद्वार में सौकरोड़ गणों से घिरा अट्टहास नामक गण प्रभासक्षेत्र की रक्षा करता

है ॥ ९१ ॥ व अठारहकरोड़ गणोंसे घिरा कालके समान नेत्रोंवाला, भयानक व प्रचंड घंटाकर्णनामक गण दक्षिणद्वार में स्थित है ॥ ९२ ॥ और विस्वरनामक गण पश्चिमद्वार में स्थित होकर टिका है और देवदेव शिवजी के उत्तर में दंडपाणिनामक गण स्थित है ॥ ९३ ॥ वैसेही प्रभासक्षेत्रमें शुद्धचित्तवाले जनों के योगक्षेम को प्राप्त करता हुआ भीषणास्य गण ईशान में टिका है व आग्नेय में छागवक्त्रक है ॥ ९४ ॥ चण्डनामक गण नैर्ऋत्य में और भैरवानन वायव्य में है व नन्दी, महाकाल, दंडपाणि व विनायक ॥ ९५ ॥ हे पार्वतीजी ! सौ करोड़ गणोंसे घिरे हुये ये बीचमें रक्षकहैं इस प्रकार बहुत से असंख्य गणनायक रक्षा करते हैं ॥ ९६ ॥

ति ॥ ९१ ॥ कालाक्षोभीषणश्चण्डो वृतोष्टादशकोटिभिः ॥ घण्टाकर्णोगणोनाम दक्षिणद्वारमाश्रितः ॥ ९२ ॥ पश्चि मद्वारमाश्रित्य स्थितवान्विस्वरोगणः ॥ दण्डपाणिःस्थितस्तत्र देवदेवस्यचोत्तरे ॥ ९३ ॥ योगक्षेमंवहन्नित्यं प्रभा सेभावितात्मनाम् ॥ भीषणास्यस्तथैशान्यामाग्नेय्यांछागवक्त्रकः ॥ ९४ ॥ नैर्ऋत्यांचण्डनामातु वायव्यांभैर वाननः ॥ नन्दीचैवमहाकालो दण्डपाणिर्विनायकः ॥ ९५ ॥ एतेङ्गरक्षकामध्ये शतकोटिगणैर्वृताः ॥ एवंरक्षन्तिबह वो ह्यसङ्ख्येयागणेश्वराः ॥ ९६ ॥ कलिकल्मषसम्भूतैर्येषांचोपहतंमनः ॥ नतेषांतद्भवेद्गम्यं स्थानमर्द्धेन्दुमौलिनः ॥ ९७ ॥ गन्धर्वैःकिन्नरैर्यक्षैरप्सरोभिस्तथोरगैः ॥ सिद्धैस्सम्पूज्यतेचैव सोमेशःपापनाशनः ॥ ९८ ॥ ममलोकेषुयेस न्ति सिद्धाःपातालवासिनः ॥ प्रदक्षिणान्तेकुर्वन्ति सोमेशंकालभैरवम् ॥ ९९ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि पुण्यान्याय तनानिच ॥ शाकुनिर्भारभूतिश्च आषाढिदण्डमेवच ॥ १०० ॥ पुष्करन्नैमिषञ्चैव अमरेशंतथापरम् ॥ भैरवंमध्यमंका

कलियुगके पातकों से उत्पन्न दोषों से जिनका मन दुष्ट है अर्धचन्द्रमस्तकवाले शिवजी का वह स्थान उनके जाने योग्य नहीं है ॥ ९७ ॥ गंधर्व, किन्नर, यक्ष, अप्सरा, नाग व सिद्धों से पापनाशक सोमेशजी पूजे जाते हैं ॥ ९८ ॥ मेरे लोकमें जो पातालवासी सिद्धहैं वे कालभैरव सोमेशजी की प्रदक्षिणा करतेहैं ॥ ९९ ॥ और पृथ्वी में जो पवित्रतीर्थ व मन्दिर हैं वे सब इनकी प्रदक्षिणा करते हैं शाकुनि, भारभूति व आषाढिदण्ड ॥ १०० ॥ पुष्कर, नैमिष व अन्य अमरेश, भैरव मध्यम

काल, केदार व कणवीरक ॥ १ ॥ अट्टहास, महेन्द्र, श्रीशैल व गया में सब तीर्थ सोमेश्वरदेव स्वामीकी प्रदक्षिणा करते हैं और वहां लिंगकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ और दशहज़ारअरब व तीनकरोड़ ऋषि वहांपर टिके हैं जहां कि प्राची सरस्वतीहैं ॥ ३ ॥ व जहांपर कि शिवजी की ब्रह्महत्या उसीक्षण जातीरही और हाथ से गिरा हुआ यह कपाल सुवर्णताको प्राप्तहुआ ॥ ४ ॥ ऐसा जानकर शंकित होतेहुये सदाशिवदेवजीने पहले वहांपर बड़ी तपस्या किया है तदनन्तर प्रसन्न होकर शिवजी ने लिंगको स्थापित किया ॥ ५ ॥ जो मनुष्य इसी तीर्थ में मलनाश होने के लिये स्नान करैंगे उनको भी दशगोदानों से उपजाहुआ पुण्य होगा ॥ ६ ॥ इस क्षेत्र

लंकेदारंकणवीरकम् ॥ १ ॥ अट्टहासंमहेन्द्रञ्च श्रीशैलञ्चगयातथा ॥ एतानिसर्वतीर्थानि देवंसोमेश्वरंप्रभुम् ॥ प्रदक्षिणंप्रकुर्वन्ति तत्रलिङ्गंस्तुवन्तिच ॥ २ ॥ दशार्बुदसहस्राणि कोटित्रितयमेवच ॥ ऋषयस्तत्रतिष्ठन्ति यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ३ ॥ ब्रह्महत्यागतायत्र शङ्करस्यचतत्क्षणात् ॥ एतत्सुवर्णतांप्राप कपालंपतितंकरात् ॥ ४ ॥ ज्ञात्वैवंशङ्कितःपूर्वं कृतंतत्रमहत्तपः ॥ तुष्टःश्रीशङ्करोदेवो लिङ्गंस्थापितवांस्ततः ॥ ५ ॥ येचात्रमलनाशाय निमज्जिष्यन्तिमानवाः ॥ दशगोदानजंपुण्यं तेषामपिभविष्यति ॥ ६ ॥ क्षेत्रेस्मिन्क्रीडमानावै जलंक्षेप्स्यन्तियेनराः ॥ तेषामपिश्राद्धफलं विधिवत्तुभविष्यति ॥ ७ ॥ तत्रलिङ्गानिपूज्यानि शूलभेदादिकानिच ॥ एवंवैकल्पलिङ्गानि अश्वमेधफलानिच ॥ ८ ॥ दर्शनादेवसर्वेषां स्पर्शाद्द्विगुणंफलम् ॥ एवंतुष्टोजगन्नाथः स्थितःप्राच्यान्तुवैध्रुवः ॥ ९ ॥ महापापसमाचारः पापिष्ठोप्यतिकिल्बिषी ॥ घुणाक्षरमिवप्राणान्प्राच्यांमुक्त्वाशिवंव्रजेत् ॥ १० ॥ दधिकम्बलदानन्तु तत्रदेयंद्विजोत्तमाः ॥ क

में खेलते हुये जो मनुष्य जलको फेंकैंगे उनको भी विधिपूर्वक श्राद्धका फल होगा ॥ ७ ॥ वहांपर शूलभेदादिक लिंग पूजने योग्य हैं इसप्रकार ये कल्पलिंग अश्वमेध यज्ञके फलको देनेवाले हैं ॥ ८ ॥ सबके दर्शनहीसे स्पर्शादिसे दूनाफल होता है इसप्रकार प्रसन्न होकर जगदीशजी प्राचीसरस्वतीमें अचल टिके हैं ॥ ९ ॥ बड़े पापआचरणोंवाला तथा पापी व बहुतही पातकी भी मनुष्य घुनाक्षरन्याय की नाईं इस प्राचीसरस्वती में प्राणों को त्यागकर शिवजी को प्राप्तहोताहै ॥ १० ॥

व हे ब्राह्मणो ! वहांपर दधि, कंबलदान देनाचाहियें सरांश से भी अधिकसारांशवाला यह पापनाशकतीर्थ कहा गया ॥ ११ ॥ और इससमय हिरण्याण्ड के वड़ेभारी ऐश्वर्य को कहताहूं वहांपर दुर्वासाजीने तपस्या किया है व सूर्यनारायणको थापन कियाहै ॥ १२ ॥ वहांपर एककरोड़ ऊर्ध्वरेता याने वीर्यको ऊपर चढ़ाने-वाले ऋषि टिके हैं चौबीस तत्त्वों का स्वामी बालरूपधारी ब्राह्मण ॥१३॥ जहांपर टिका है हेदेवेशि ! वहां कोटि कहीगई है अन्यत्र करोड़ब्राह्मणोंसे जिसफलको मनुष्य पाताहै ॥ १४ ॥ ब्राह्मयस्थानमें एक मनुष्यको भोजन करानेसे वहफल मिलताहै ऐसा जानकर हे महादेवि ! प्रसन्न होकर मैं वहांपर टिकाहूं ॥ १५ ॥ जो कि मैं करोडों

थितंपापशमनं सारात्सारतरंध्रुवम् ॥ ११ ॥ अधुनासम्प्रवक्ष्यामि हिरण्याण्डमहोदयम् ॥ दुर्वाससातपस्तप्तं तत्रसूर्यःप्रतिष्ठितः ॥ १२ ॥ कोटिरेकातुवैतत्र ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानामधिपोवालरूपधृक् ॥ १३ ॥ यत्र तिष्ठतिदेवेशि तत्रकोटिःप्रकीर्त्तिता ॥ अन्यत्रब्राह्मणानांतु कोट्यायत्रफलंलभेत् ॥ १४ ॥ ब्राह्मयस्थानेतथैकेन भोजिते नचतत्फलम् ॥ एवंज्ञात्वामहादेवि तत्रतिष्ठामिनिर्वृतः ॥ १५ ॥ कोटिभिर्देवऋषिभिर्देवैःसहसमावृतः ॥ तीर्थानितत्र तिष्ठन्ति अन्तर्भूतानिवैकलौ ॥ १६ ॥ तत्रक्षेत्रेमहारम्ये यत्रसोमेश्वरःस्थितः ॥ ममदेविगणौह्येतावुद्भ्रमःसम्भ्रमः परः ॥ १७ ॥ तौचात्रक्षेत्रसंस्थानां लोकानाम्भ्रमविभ्रमैः ॥ योजयन्तिसदाचित्तं वैकल्पैनैवसङ्कुलम् ॥ १८ ॥ विनायकोपसर्गाश्च दशदोषास्तथापरे ॥ एवंक्षेत्रन्तुरक्षन्ति पापिनांदुष्टचेतसाम् ॥ १९ ॥ दण्डपाणिञ्चयेभक्त्या पश्यन्तीह नरोत्तमाः ॥ नतेषांजायतेविघ्नं तत्रक्षेत्रनिवासिनाम् ॥ २० ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शूद्राश्चवर्णसङ्कराः ॥ अकामावास

देवर्षियों तथा देवताओं से संयुतहूं और कलियुग में वहांपर अन्तर्भूततीर्थ स्थित हैं ॥ १६ ॥ जहांपर सोमेश्वरदेवजी स्थित हैं उस अतिमनोहर क्षेत्रमें हे देवि ! मेरे वे दोगण हैं एक उद्भ्रम दूसरा संभ्रम है ॥ १७ ॥ और यहांपर उस क्षेत्र में टिकेहुये वे मनुष्यों के चित्त को भ्रम व उद्भ्रम से सदैव विकलता से संयुत करते हैं ॥ १८ ॥ विघ्न व उपद्रव और अन्य दशदोष इसप्रकार दुष्टचित्तवाले पापियों के सकाश से क्षेत्र की रक्षा करते हैं ॥ १९ ॥ जो उत्तम मनुष्य इस संसार में भक्ति से दण्डपाणिजी को देखते हैं उस क्षेत्र के निवासी उन पुरुषों को वहां विघ्न नहीं होता है ॥ २० ॥ हे शुभे ! निष्काम या सकाम जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र

प्रभासक्षेत्र में मरते हैं ॥ २१ ॥ वे सब मनुष्य वहांपर चन्द्रार्धमस्तकवाले तथा भाललोचनोंवाले व वृषध्वज होकर मेरे उत्तम शिवपद में प्राप्तहोते हैं ॥ २२ ॥ संयम में प्राप्त व सावधान होता हुआ जो पुरुष वहां बसता है त्रिकाल भी भोजन करता हुआ वह पवनभोजी के समान होता है ॥ २३ ॥ सुमेरुगिरि के गुण कहे जासक्ते हैं व द्वीपों के गुण वर्णन किये जासक्ते हैं और हे प्रिये ! सब समुद्रोंके गुण वर्णन किये जासक्ते हैं ॥ २४ ॥ परन्तु हे देवेशि ! आदिदेव महाप्रभु महेशजी के गुण सैकड़ों करोड़ वर्षों से भी नहीं कहे जासक्ते हैं ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनन्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

कामावा प्रभासेयेमृताःशुभे ॥ २१ ॥ चन्द्रार्द्धमौलिनःसर्वे ललाटाचावृषध्वजाः ॥ शिवेममपदेदिव्ये जायन्तेतत्रमानवाः ॥ २२ ॥ यस्तत्रवसतेविप्रःसंयतोथसमाहितः ॥ त्रिकालमपिभुञ्जानो वायुभक्षसमोभवेत ॥ २३ ॥ मेरोःशक्यागुणावक्तुं द्वीपानाञ्चगुणास्तथा ॥ समुद्राणाञ्चसर्वेषां शक्यावक्तुंगुणाःप्रिये ॥ २४ ॥ आदिदेवस्यदेवेशि महेशस्यमहाप्रभोः ॥ शक्यानैवगुणावक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येक्षेत्रवर्णनन्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ अत्यद्भुतंमहादेव माहात्म्यंकथितंमम ॥ अपूर्वंदेवदेवस्य कदाचिन्नश्रुतम्मया ॥ १ ॥ ब्रह्माण्डेयानिलिङ्गानि कीर्तितानित्वयामम ॥ तेषांप्रभावेनाधिक्यं सोमेशेतत्कथंवद ॥ २ ॥ किंप्रभावोमहादेव क्षेत्रस्यचसुरेश्वर ॥ तन्मेब्रूहिसुरेशान यथातथ्यंममाग्रतः ॥ ३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि रहस्यंपरमञ्चयत ॥ प्रभासक्षेत्रमाहा

कह्यो उमासन शिव यथा क्षेत्र प्रभास प्रभाव । सोइ पंचम अध्याय में कथा हर्ष उपजाव ॥ श्रीपार्वतीदेवीजी बोलीं कि हे महादेवजी ! देवदेव महादेवजी के अतिअद्भुत व अपूर्वमाहात्म्य को आपने मुझ से कहा कि जिसको मैंने कभी नहीं सुनाथा ॥ १ ॥ तुमने ब्रह्माण्ड में मुझसे जिन तीर्थों को कहा उनके मध्य में सोमेशजी में प्रभाव अधिक है यह कैसेहै उसको कहिये ॥ २ ॥ हे सुरेश्वर, महादेवजी ! क्षेत्रका क्या प्रभावहै हे सुरेशजी ! उसको मेरे आगे यथार्थ कहिये ॥ ३ ॥ ईश्वर

जी बोले कि हे वरानने ! इसके उपरान्त अतिउत्तम प्रभासक्षेत्र का जो माहात्म्यहै उसको व सुरेशजी के गुप्त माहात्म्यको कहताहूं ॥ ४ ॥ कि तीर्थों के मध्यमे जो उत्तमतीर्थ है व व्रतों के मध्यमें जो उत्तमव्रत है व जपों के मध्यमें जो उत्तम जप है और ध्यानों के मध्यमें जो उत्तम ध्यान है ॥ ५ ॥ व योगोंके मध्य में जो उत्तमयोग है व बहुतही उत्तम जो गुप्तहै उसको मैं तुमसे कहताहूं हे प्रिये ! सावधान मनवाली होकर सुनिये ॥ ६ ॥ कि शिवजी समेत जो सोमेश उत्तमस्थान है इसलिंग को मैं नहीं छोड़ता हूं इसको मैंने सत्य कहा है ॥ ७ ॥ हे देवि ! जो वह परम व अचल, चल तथा अविनाशी है उसको सोमेश जानिये भेदमनवाली

त्म्यं सोमेशस्यवरानने ॥ ४ ॥ तीर्थानांपरमन्तीर्थं व्रतानांव्रतमुत्तमम् ॥ जाप्यानांपरमंजाप्यं ध्यानानांध्यानमुत्तमम् ॥ ५ ॥ योगानांपरमोयोगो रहस्यंपरमंमहत् ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ ६ ॥ सोमेशंपरमंस्थानं पञ्चवक्त्रसमन्वितम् ॥ एतल्लिङ्गंनमुञ्चामि सत्यंसत्यंमयोदितम् ॥ ७ ॥ यच्चतत्परमन्देवि ध्रुवमध्रुवमव्ययम् ॥ सोमेशन्तंविजानीहि माविकल्पमनाभव ॥ ८ ॥ निर्भयन्निर्मलंनित्यं निरपेक्षमनाश्रयम् ॥ निरञ्जनन्निष्प्रपञ्चं निस्सङ्गंनिरुपद्रवम् ॥ ९ ॥ तल्लिङ्गमितिजानीहि प्रभासेसंव्यवस्थितम् ॥ अपवर्ग्यमनिर्ज्ञेयमनौपम्यमनामयम् ॥ १० ॥ यन्नित्यंकारणंदिव्यमलग्नंसर्वतोमुखम् ॥ शिवंसर्वात्मकंसूक्ष्ममनाद्यंपञ्चदैवतम् ॥ ११ ॥ आत्मादिकोपविषयं श्रुतिगोचरवर्जितम् ॥ निष्कलंविमलात्मानं प्रकटज्ञानदीपकम् ॥ १२ ॥ तल्लिङ्गमितिजानीहि प्रभासेसंव्यवस्थितम् ॥ युक्तोपदेशविज्ञानं कल्याणमितिविग्रहम् ॥ १३ ॥ आत्मोपलब्धिविज्ञेयं चित्तवृत्तिविवर्जितम् ॥ गमागमविनिर्मुक्तं

मतहोवो ॥ ८ ॥ निर्भय, निर्मल, नित्य, निरपेक्ष, अनाश्रय, निरञ्जन, प्रपञ्चरहित, सङ्गहीन व उपद्रवरहित जो है ॥ ९ ॥ प्रभासक्षेत्र में स्थित उस लिंगको जानिये और मोक्षके योग्य व न जाननेयोग्य तथा उपमारहित व नीरोग ॥ १० ॥ और जो नित्य, कारण, दिव्य, सङ्गहीन व सर्वतोमुख है व जो शिव, सर्वव्यापी, सूक्ष्म, आदिरहित तथा पांच देवताओंवाला है व आत्मादिकों के गोचर तथा कर्णगोचर से रहित, कलाहीन विमलचित्तवाला व जो प्रकटही ज्ञानका दीपकहै ॥ ११ । १२ ॥ उसी लिंगको इस प्रकार प्रभासक्षेत्रमें भलीभांति स्थित जानिये व योग्य उपदेश का विज्ञान व कल्याण ऐसा जो विग्रहहै ॥ १३ ॥ व आत्मप्राप्तिसे जाननेयोग्य तथा चित्त

की वृत्तियोंसे रहित व गमनागमन से हीन तथा बाहर व भीतर से रहित ॥ १४ ॥ व चित्तके अवलोकन का विषय व आकाश के बाहर अवलम्बित उस लिंगरूपी प्रणव (ॐकार) को प्रभासक्षेत्र में जानिये ॥ १५ ॥ और गतिरहित, महात्मा, निरानन्दावलोकित, संसारके अवलोकनमार्ग में स्थित व अनेक रससंज्ञित ॥ १६ ॥ व अपनी भावना से ग्रहण करनेयोग्य और भावसे परे, लक्षणहीन, वचन के प्रपञ्चादिक से रहित तथा निष्प्रपञ्चात्मक शिव ॥ १७ ॥ व ज्ञान, ज्ञेयके अवलोकनमें स्थित और कारणाभाससे रहित, अताड़ित, शब्द में प्राप्त और शब्दादिगुणों से घिरा ॥ १८ ॥ इस प्रकार प्रभासक्षेत्र में लिंगरूपी सोमेश्वरजी को जानिये जो कि

बहिरन्तर्विवर्जितम् ॥ १४ ॥ चित्तावलोकविषयं व्योमबाह्यवलम्बितम् ॥ प्रभासेतंविजानीहि प्रणवंलिङ्गरूपिणम् ॥ १५ ॥ अविस्पन्दंमहात्मानं निरानन्दावलोकितम् ॥ लोकावलोकमार्गस्थमनेकरससंज्ञितम् ॥ १६ ॥ स्वकीयभावनाग्राह्यं भावातीतमलक्षणम् ॥ वाक्प्रपञ्चादिरहितं निष्प्रपञ्चात्मकंशिवम् ॥ १७ ॥ ज्ञानज्ञेयावलोकस्थं हेत्वाभासविवर्जितम् ॥ अनाहतंशब्दगतं शब्दादिगुणसम्भवम् ॥ १८ ॥ एवंसोमेश्वरंविद्धि प्रभासेलिङ्गरूपिणम् ॥ शब्दब्रह्ममयं शान्तमशान्तन्तुनिरास्पदम् ॥ १९ ॥ सर्वातिदूरविषयं सर्वध्यानमयेस्थितम् ॥ अनादिमच्युतंदिव्यं प्रमाणातीतगोचरम् ॥ २० ॥ अधश्चोर्द्ध्वगतन्नित्यं जीवाख्यंदेहसंस्थितम् ॥ हृदादिद्वादशान्तःस्थं प्राणायामोदयास्तगम् ॥ २१ ॥ अग्राह्यमिन्द्रियात्मानं निष्कलङ्कात्मसूक्ष्मकम् ॥ स्वरादिव्यञ्जनातीतं वर्णादिपरिवर्जितम् ॥ २२ ॥ निश्शब्दंनिष्कलं सौम्यं देहातीतंपरात्परम् ॥ भूतावगाहरहितं भावाभावविवर्जितम् ॥ २३ ॥ भावज्ञेयंपरंसूक्ष्मं पञ्चपञ्चादिसम्भवम् ॥

शब्दब्रह्ममय, शान्त, अशान्त व स्थानरहित है ॥ १९ ॥ व जोकि सब से बहुत दूरदेशवाला और सबके ध्यानमय में स्थित आदिरहित, अच्युत, दिव्य व प्रमाण से परे गोचर ॥ २० ॥ व नीचे तथा ऊपर प्राप्त, अविनाशी व देहमें टिकाहुआ जीवनामक तथा हृदयआदिक बारहों अङ्गोंके भीतर स्थित और प्राणायामके उदय अस्त में प्राप्त ॥ २१ ॥ व नहीं ग्रहण करनेयोग्य व इन्द्रियात्मक और निष्कलङ्कात्मक सूक्ष्म व स्वरादिक तथा व्यञ्जनों से रहित और अक्षरादिकोंसे हीन ॥ २२ ॥ शब्दरहित, कलारहित, सौम्य, देहसे परे व परेसे भी परे तथा प्राणियोंके अवगाहन से रहित और भाव, अभावसे रहित ॥ २३ ॥ व भावभक्तिसे जाननेयोग्य, परमसूक्ष्म

व पचीस तत्त्वादिकों से उत्पन्न, नहीं प्रमाणके योग्य, अनन्तनामक व कामरूपी ॥ २४ ॥ तथा समस्तप्राणियों के उत्पत्तिस्थान व बीज और अंकुर को उपजाने-वाले, व्यापक, समस्तकामनाओं के वाचक, अविनाशी व परमपद ॥ २५ ॥ व स्थूल, सूक्ष्म के विभाग में स्थित व्यक्ताव्यक्त, सनातन, कल्प कल्पमें नाशरहित, जन्म व मृत्युसे हीन व महान् ॥ २६ ॥ तथा महाभूत, बड़े शरीरवाले, शिव, निर्वाणभैरव इस प्रकारके रूपवाले लिंगरूपी सदाशिवजी को प्रभासक्षेत्रमें जानिये ॥ २७ ॥ योग व क्रियासे मुक्त, मृत्युको जीतनेवाले, अनादिमान्, समस्तउपद्रवों से रहित, सर्वव्यापक व कल्याणरूप ॥ २८ ॥ व परेसे भी अप्रकट, नित्य, एक,

अप्रमेयमनन्ताख्यमत्त्वर्थंकामरूपिणम् ॥ २४ ॥ प्रभवंसर्वभूतानां बीजाङ्कुरसमुद्भवम् ॥ व्यापकंसर्वकामाख्यमक्ष रंपरमंपदम् ॥ २५ ॥ स्थूलसूक्ष्मविभागस्थं व्यक्ताव्यक्तंसनातनम् ॥ कल्पकल्पान्तरहितमनादिनिधनंमहत् ॥ २६ ॥ महाभूतंमहाकायं शिवंनिर्वाणभैरवम् ॥ एवंसदाशिवंविद्धि प्रभासेलिङ्गरूपिणम् ॥ २७ ॥ योगक्रियाविनिर्मुक्तं मृ त्युञ्जयमनादिमत ॥ सर्वोपसर्गरहितं सर्वतोव्यापकंशिवम् ॥ २८ ॥ अव्यक्तंपरतोनित्यं केवलंद्वैतवर्जितम् ॥ अन न्यतेजस्संक्रान्तं प्रभासक्षेत्रवासिनम् ॥ २९ ॥ भूरिसूर्य्यसमप्रख्यं सर्वतेजोधिकंहरम् ॥ शरण्यन्देवमीशानमो ङ्कारंशिवरूपिणम् ॥ ३० ॥ देवदेवंमहादेवं पञ्चवक्त्रंवृषध्वजम् ॥ निर्मलंमनसातीतं भावग्राह्यमनौपमम् ॥ ३१ ॥ स दाशान्तंविरूपाक्षं शूलहस्तंजटाधरम् ॥ हृत्पद्मकोशमध्यस्थं शून्यरूपंनिरञ्जनम् ॥ ३२ ॥ एवंसदाशिवंविद्धि प्र भासेलिङ्गरूपिणम् ॥ योसौपरात्परोदेवो हंसाख्यःपरिकीर्त्तितः ॥ ३३ ॥ नादाख्यस्सुव्रतेदेवि सोस्मिन्स्थानेस्थित

राग व द्वेषसे रहित अपनेही तेजसे घिरे, प्रभासक्षेत्रवासी ॥ २९ ॥ व बहुत सूर्योंके समान शोभावाले, समस्ततेजों से अधिक, हर, शरणागतपालक, ईशानदेव, ॐकार व शिवरूपी ॥ ३० ॥ देवदेव, महादेव, पांचमुखोंवाले, वृषध्वज, अमल, मनसे परे, भक्तिसे ग्रहण करनेयोग्य व अनूपम ॥ ३१ ॥ सदैव शान्तस्वरूप, विरू-पलोचन, त्रिशूल को हाथमें धारनेवाले, जयधारी व हृदयकी कमलकली के बीचमें स्थित, शून्यरूप, निरञ्जन ॥ ३२ ॥ इस प्रकार के लिंगरूपी सदाशिवजी को प्रभासक्षेत्र में जानिये जो यह परेसे परे हंसनामक देव कहाया है ॥ ३३ ॥ हे सुव्रते, देवि! नादनामक वह आपही इस स्थानमें टिकाहै हे देवि! इस प्रथमस्वरूप

को मैंने योगके बलसे जानाहै जोकि दिव्य आत्मारूप अपनाही से कहागया है वे सदाशिवजी दोपहर के पहले ऋग्वेदमें टिकते हैं व मध्याह्न में यजुर्वेद में स्थित होतेहैं ॥ ३४ । ३५ ॥ और दुपहरके बाद सामवेद में स्थित होतेहैं व रात्रि आनेपर अथर्वणवेदमें टिकते हैं ॥ ३६ ॥ अन्धकार से परे व सूर्यवर्णवाले इन महापुरुषको मैं जानताहूं और उन्हींको जानकर मृत्यु नहीं होती है मनुष्यों के लिये इससे अन्यमार्ग नहीं विद्यमानहै ॥ ३७ ॥ इस प्रकार बड़ेप्रभाववाला सोमेश्वजीका किया हुआ एक स्थान तुमसे वर्णन कियागया उसका चरित्र बहुत हज़ारवर्षोंमें भी किसीके मुखसे नहीं कहा जासक्ताहै ॥ ३८ ॥ यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र भी

स्स्वयम् ॥ एतदादिस्वरूपञ्च मयायोगबलेनतु ॥ ३४ ॥ विज्ञातंदेविगदितं दिव्यमात्मानमात्मना ॥ ऋग्वेदस्थश्च पूर्वाह्णे मध्याह्नेयजुषिस्थितः ॥ ३५ ॥ अपराह्णेतुसामस्थ अथर्वणिनिशागमे ॥ ३६ ॥ वेदाहमेतंपुरुषंमहान्तमादित्य वर्णंतमसःपरस्तात् ॥ तमेवविदित्वानभवेच्चमृत्युर्नान्यःपन्थाविद्यतेस्माज्जनानाम् ॥ ३७ ॥ इतीरितस्तेतुमहानुभाव स्सोमेशलिङ्गस्यकृतैकदेशः ॥ वृत्तश्चनाब्दैर्बहुभिस्सहस्रैर्वक्तुञ्चकेनापिमुखेनशक्यम् ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्य श्शूद्रोपीदंपठेद्यदि ॥ निर्मुक्तस्सर्वपापेभ्यस्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभास क्षेत्रमाहात्म्ये सोमेश्वरवर्णनन्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ एवंतत्रमहादेवी श्रुत्वामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ हर्षोत्कण्ठितयावाचा पुनःपप्रच्छशङ्करम् ॥ १ ॥ देवदेव जगन्नाथ भक्तानुग्रहकारक ॥ समस्तज्ञानसम्पन्न नमस्तेस्तुसुरेश्वर ॥ २ ॥ नमोस्तुतेत्रैपुरमर्दनाय महात्मनेतारक

इसको पढ़े तो समस्तपातकोंसे छूटकर सब कामनाओंको पाताहै ॥ ३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये सोमेश्वरवर्णनन्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ कल्प कल्पमें भये जो पारवती के नाम। सोइ छठें अध्यायमें कह्यो चरितसुखधाम ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार वहांपर महादेवी पार्वतीजीने उत्तमचरित को सुनकर फिर आनन्दसे उत्कंठित वचन करके शिवजीसे पूंछा ॥ १ ॥ कि हे देवदेव, जगदीश, भक्तों के ऊपर दयाकरनेवाले, समस्तज्ञानों से सम्पन्न, सुरेश्वर

जी ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २ ॥ त्रिपुरको मर्दनकरनेवाले आप के लियेप्रणाम है व तारकासुर को विनाशनेवाले महात्मा के लिये प्रणाम है हे देव ! सावधान मुनीन्द्रबालक की शान्तिकरनेवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३ ॥ व समस्तसंसार को सिरजनेवाले तथा सर्वज्ञ, सर्वव्यापी व सब के कर्त्ता आपके लिये प्रणामहै भवके लिये नमस्कार है व कामदेव को भी अतिक्रमणकरनेवाले याने कामदेवसे भी मनोहर तथा सर्वव्यापी आपके लिये नित्यही प्रणामहै ॥ ४ ॥ ईश्वर सदाशिवजी बोले कि हे देवि ! तुम क्या पूछतीहो मैंने अभी तुमसे समस्तवृत्तान्त को कहा है यदि कुछ सन्देह होतो हे सुन्दरि ! उसको फिर पूछिये ॥ ५ ॥ पार्वती

मर्दनाय ॥ नमोस्तुतेदेवशमंविधात्रे शिशोर्मुनीन्द्रस्यसमाहितस्य ॥ ३ ॥ नमोस्तुतेसर्वजगद्विधात्रे सर्वत्रसर्वात्मकस र्वकर्त्रे ॥ नमोभवायातिमनोभवाय नमोस्तुतेसर्वगतायनित्यम् ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ किन्देविपृच्छसेद्यापि सर्वन्ते कथितम्मया ॥ संदिग्धमस्तिकिञ्चिचेत्पुनस्त्वंपृच्छभामिनि ॥ ५ ॥ देव्युवाच ॥ सोमेश्वरेतियन्नाम कस्मिन्काले बभूवतत् ॥ किन्नामाग्नेर्भवंलिङ्गं नामकिंभवतोधुना ॥ ६ ॥ एवंयस्यप्रभावोवै प्रोक्तःपूर्वस्त्वयाविभो ॥ अन्येषान्तीर्थ देवानां माहात्म्यंवर्णितन्त्वया ॥ ७ ॥ नत्वीदृशन्तुकथितंसोमेशस्यतुयादृशम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ पूर्वमेवाहमेवासं स्पर्शलिङ्गस्वरूपवान् ॥ ८ ॥ नचमान्तत्त्वतोवेद जनःकश्चिदिहेश्वरि ॥ महाकल्पेतुसंप्राप्ते ब्रह्मणःप्रतिसञ्चरे ॥ ९ ॥ नामभावोभवेदन्यो देविलिङ्गेपुनःपुनः ॥ अतीतंब्रह्मणांषट्कं सप्तमोयंप्रजापतिः ॥ १० ॥वर्ततेयोधुनादेवि शतानन्द

देवी बोलीं कि सोमेश्वर ऐसा जो नाम है वह किस समय हुआ है और पहले किस नामवाला लिंग हुआहै व इस समय आपका क्या नामहै इसको कहिये ॥ ६ ॥ हे विभो ! तुमने पहले जिसका ऐसा प्रभावकहाहै और तुमने अन्य तीर्थों व देवताओंका माहात्म्य वर्णनकियाहै ॥ ७ ॥ वह ऐसा नहीं कहागया जैसा कि सोमेश्वरजीका वर्णन कियागया है महादेवजी बोले कि पहले मैं ही स्पर्श लिंगस्वरूपी हुआहूं ॥ ८ ॥ हे ईश्वरि ! इस संसारमें मुझको यथार्थ कोई मनुष्य नहीं जानता है ब्रह्मा के प्रतिसंचर (बदलने) में महाकल्प के प्राप्तहोनेपर ॥ ९ ॥ हे देवि ! बार२ लिंगमें अन्य नाम होवैहै छः ब्रह्मा व्यतीत होचुके हैं ये सातवें ब्रह्मा हैं ॥ १० ॥ जोकि

हे देवि ! इस समय शतानन्द ऐसे प्रसिद्ध वर्तमान हैं हे देवेशि ! ये ब्रह्मा जब आठ वर्षके थे ॥११॥ उस समयसे लगाकर सोमेश ऐसे शिवजी प्रसिद्ध हैं ॥१२॥ हे देवेशि ! प्रलयके पश्चात् बीतेहुये ब्रह्माओं में जो नाम हुये हैं हे पार्वतीजी ! उनको सुनिये ॥ १३ ॥ कि जब पहलेवाले पितामह ब्रह्माजी विरिञ्चिनामक हुयेहैं तब सोमेश जीका मृत्युंजय ऐसा नाम कहागयाहै ॥ १४ ॥ और पद्मभू ऐसे प्रसिद्ध जब दूसरे ब्रह्माहुये हैं तब हे अम्बिके ! मेरा कालाग्निरुद्र ऐसा नाम कहागया है ॥ १५ ॥ जब स्वयंभू ऐसे प्रसिद्ध तीसरे ब्रह्मा हुये हैं तब हे देवेशि ! अमृतेश ऐसा उत्तमनाम कहागयाहै ॥१६॥ जब परमेष्ठी ऐसे प्रसिद्ध चौथे ब्रह्मा हुयेहैं हे शुभे, देवेशि ! तब अनामय

इतिश्रुतः ॥ अस्मिन्ब्रह्मणिदेवेशि संजातोह्यष्टवार्षिकः ॥ ११ ॥ तदाकालात्समारभ्य सोमेशइतिविश्रुतः ॥ १२ ॥ अतीतेषुचदेवेशि ब्रह्मसुप्रलयादनु ॥ बभूवुर्यानिनामानि तानित्वंशृणुपार्वति ॥ १३ ॥ आद्योविरिञ्चिनामासीद्यदाब्रह्मापितामहः ॥ मृत्युञ्जयोतदानाम सोमेशस्यप्रकीर्तितम् ॥१४ ॥ द्वितीयोभूद्यदाब्रह्मा पद्मभूरितिविश्रुतः ॥ तदाकालाग्निरुद्रेति नामप्रोक्तंममाम्बिके ॥ १५ ॥ तृतीयोभूद्यदाब्रह्मा स्वयम्भूरितिविश्रुतः ॥ अमृतेशेतिदेवेशि तदानामस्मृतंशुभम् ॥ १६ ॥ चतुर्थोभूद्यदाब्रह्मा परमेष्ठीतिविश्रुतः ॥ अनामयेतिदेवेशि तदानामस्मृतंशुभे ॥ १७ ॥ पञ्चमोभूद्यदाब्रह्मा सुरज्येष्ठइतिस्मृतः ॥ कृत्तिवासेतिदेवस्य नामप्रोक्तंतदाम्बिके ॥ १८ ॥ षष्ठश्चाभूद्यदाब्रह्मा हेमगर्भइतिश्रुतः ॥ तदाभैरवनाथेति नामदेवस्यकीर्तितम् ॥ १९ ॥ अयंयोवर्ततेब्रह्मा शतानन्दइतिस्मृतः ॥ सोमनाथेतिदेवस्य वर्ततेनामसाम्प्रतम् ॥ २० ॥ अतःपरश्चतुर्वक्त्रो ब्रह्माचभवितायदा ॥ प्राणनाथेतिदेवस्य तदानामभविष्यति ॥ २१ ॥ अतीतायेविधातारो भविष्यन्तिचयेपुनः ॥ संवर्ताद्वर्ततेनाम यावदन्योष्टवार्षिकः ॥ २२ ॥ एवंनामानिदेवस्य संति

ऐसा नाम कहागया है ॥ १७ ॥ जब पांचवें ब्रह्मा सुरज्येष्ठ ऐसे प्रसिद्ध हुये हैं तब हे पार्वतीजी ! शिवदेव का कृत्तिवास ऐसा नाम कहागया है ॥ १८ ॥ जब हेमगर्भ ऐसे प्रसिद्ध छठे ब्रह्मा हुये हैं तब शिवदेवजी का भैरवनाथ ऐसा नाम कहागया है ॥ १९ ॥ ये शतानन्द ऐसे कहेहुये जो ब्रह्मा वर्तमान हैं इस समय इन शिवदेवजी का सोमनाथ ऐसा नाम है ॥ २० ॥ इसके उपरान्त जब चतुरानन ऐसे ब्रह्मा होवैंगे तब शिवदेवजी का प्राणनाथ ऐसा नाम होगा ॥ २१ ॥ जो ब्रह्मा बीते हैं और

जो फिर होवैंगे उनका नाम प्रलयसे वर्तमान होता है जबतक कि आठ वर्षवाले अन्य ब्रह्मा होवैंगे ॥ २२ ॥ इसप्रकार संक्षेपकर मैंने शिवजी के नाम कहे और समयके गौरव से विस्तार से नहीं कहेजासक्ते हैं ॥ २३ ॥ देवीजो बोलीं कि हे सुन्दरानन, देवदेव ! यह आश्चर्य है कि मनुष्यों के ऊपर दयाकरने के लिये मैं तुम्हारे साथ बार२ प्रकट हुई हूं ॥ २४ ॥ तब मेरा क्या नाम हुआहै हे देवदेव ! उसको कहिये महादेवजी बोले कि पहलेकल्प में जगन्माता व दूसरे कल्प में जगद्योनि, तीसरे में शाम्भवी नाम हुआ और चौथेकल्प में विश्वरूपिणी नामक हुई हो ॥ २५ ॥ और पाचवें कल्प में नन्दिनी नामक हुई व छठे में गणाम्बिका नामक हुई हो और

ण्यकथितानिमे ॥ विस्तरात्कथितुन्नैव शक्यन्तेकालगौरवात् ॥ २३ ॥ देव्युवाच ॥ आश्चर्य्यन्देवदेवेश त्वयासार्द्धवरानन ॥ अनुग्रहार्थंलोकानां प्रादुर्भूतापुनःपुनः ॥ २४ ॥ तदाकिंममनामासीद्देवदेववदस्वतत् ॥ महादेवउवाच ॥ आद्यकल्पेजगन्माता जगद्योनिर्द्वितीयके ॥ तृतीयेशाम्भवीनाम चतुर्थेविश्वरूपिणी ॥ २५॥ पञ्चमेनन्दिनीनाम्नी षष्ठेचैवगणाम्बिका ॥ विभूतिःसप्तमेकल्पे सुभ्रूश्चैवाष्टमेतथा ॥२६ ॥ आनन्दानवमेकल्पे दशमेवामलोचना ॥ एकादशेवरारोहा द्वादशेचसुमङ्गला ॥ २७ ॥कल्पेत्रयोदशेचैवमहामायाह्युदाहृता ॥ ततश्चतुर्दशेकल्पेनन्तानामप्रकीर्तिता॥ २८ ॥ भूतमातापञ्चदशे षोडशेचोत्तमास्मृता ॥ ततश्चाष्टादशेकल्पे पितृकल्पेतिविश्रुता ॥ २९ ॥ दक्षस्यदुहिता जाता सतीनाम्नामहाप्रभे ॥ ३० ॥ अपमानात्तुदक्षस्य तनुंस्वामत्यजंपुनः ॥ अमाकलातुचन्द्रस्य पुरासूर्य्येचसंस्थि

सातवें कल्प मे विभूति नामक व आठवें में सुभ्रू नामक हुईहो ॥ २६ ॥ और नवेंकल्प में आनंदा तथा दशवें कल्प में वामलोचना नामक हुई हो गेरहें में वरारोहाव बारहवें में सुमंगला नामक हुई हो ॥ २७ ॥ व तेरहवें कल्प में महामाया कहीगईहो तदनन्तर चौदहवें कल्प में अनंता नामक कहीगई हो ॥ २८ ॥ व पंन्द्रहवें कल्प में भूतमाता तथा सोलहवें में उत्तमा कहीगई हो उसके उपरान्त अठारहें कल्पमें पितृकल्पा ऐसी प्रसिद्ध हुई हो ॥ २९ ॥ और हे महाप्रभे ! सतीनाम से तुम दक्षजी की कन्या हुई हो ॥ ३० ॥ और दक्षजी के अपमानसे तुमने फिर अपने शरीर को त्यागदिया है पुरातन समय चन्द्रमाकी अमा नामक कला सूर्य में स्थित हुई

है ॥ ३१ ॥ तदनन्तर हे सुरसुन्दरि ! वाराहकल्प वर्तमान होनेपर फिर हिमाचलने आराधन कर तुमको इसीकारण कन्या किया ॥ ३२ ॥ उसके उपरान्त तुमने बहुत कठिन व अद्भुत तपस्याकर मुझको पतिपाकर फिर पार्वती ऐसी कहीजाती हो ॥३३॥ हे वरानने, सुरेश्वरि ! जबतक कल्पका अन्तहोगा तबतक उस कैलास स्थान में तुम्हारे साथ क्रीड़ा करूंगा ॥ ३४ ॥ इस चतुर्युगी को प्राप्तहोकर द्वापर में महिषासुर के मारनेके लिये विष्णुसमेत तुम कृष्णापिंगला नामक उत्पन्नहुईहो ॥ ३५ ॥ हे प्रिये ! तुम पृथ्वीतल में कात्यायनी व दुर्गा ऐसे अनेकप्रकार के नामों से नौकरोड़ के भेदोंसे उत्पन्न हुई हो ॥ ३६ ॥ हे सुन्दरि ! पहले जो तुम्हारे कल्पों के

ता ॥ ३१ ॥ ततःप्रवृत्तेवाराहे कल्पेत्वंसुरसुन्दरि ॥ पुनर्हिमवताराध्य दुहितृत्वमतःकृता ॥ ३२ ॥ ततस्त्वमद्भुतंतप्त्वा तपःपरमदुश्चरम् ॥ भर्तारंमाम्पुनःप्राप्य पार्वतीतिनिगद्यसे ॥३३॥ कैलासनिलयेचाहं त्वयासार्द्धंवरानने ॥ क्रीडामित्रदेवेशि यावत्कल्पावसानकम् ॥ ३४ ॥ इदंचतुर्युगंप्राप्य द्वापरेविष्णुनासह ॥ महिषस्यवधार्थाय उत्पन्नाकृष्णपिङ्गला ॥ ३५ ॥ कात्यायनीतिदुर्गेति विविधैर्नामभिःप्रिये ॥ नवकोटिप्रभेदेन जातासिवसुधातले ॥ ३६ ॥ यानितेकल्पनामानि पूर्वमुक्तानिसुन्दरि ॥ अतीतानिभविष्याणि वर्तमानानिसुन्दरि ॥ ३७ ॥ एवंज्ञेयानिसर्वाणि ब्रह्मकल्पावधिप्रिये ॥ देव्युवाच ॥ सोमनाथेतियन्नाम त्वयापूर्वमुदाहृतम् ॥ ३८ ॥ तत्कथंनिश्चलन्नाम मन्यतेत्रिपुरान्तक ॥ असङ्ख्यत्वाच्चचन्द्राणां जन्मनाञ्चप्रभेदतः ॥ ३९ ॥ मन्वन्तरेतुसञ्जाते युगानामेकसप्ततौ ॥ चन्द्रसूर्य्यादयोदेवास्संहियन्तेपुनःपुनः ॥ ४० ॥ सप्तर्षयःसुराश्शक्रो मनुस्तत्सूनवोनृपाः ॥ एककालन्तुसृज्यन्ते संहियन्तेचपूर्ववत् ॥ ४१ ॥

नाम कहेगये हैं वे हे सुन्दरि ! भूत, भविष्य व वर्तमान हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रिये ! इसप्रकार सब नाम ब्रह्मा के कल्पपर्यन्त तक जानने योग्य हैं पार्वती देवीजी बोलीं कि तुमने पहले जो सोमनाथ ऐसा नाम कहा ॥ ३८ ॥ हे त्रिपुरान्तक ! चन्द्रमाओंकी अनगिनतीसे व जन्मोंके भेद से वह नाम कैसे अचल है ॥ ३९ ॥ इकहत्तरि चतुर्युगी में मन्वन्तर बीतने पर बार २ चन्द्रमा व सूर्यादिक संहार होजाते हैं ॥ ४० ॥ सप्तर्षि, देवता, इन्द्र, मनु व उन मनुओं के पुत्र और राजा एक कालमें रचेजाते हैं

व पहले की नाईं संहार होजाते हैं ॥ ४१ ॥ हे देव ! मेरे इस सन्देह को यथा योग्य कहिये महादेवजी बोले कि हे देवि ! तुमने पातकों के विनाशक गुप्तचरित्र को बहुत अच्छा पूंछा ॥ ४२ ॥ जो किसीसे नहीं कहागया है उसको मैं सम्पूर्णतासे कहताहूं कि ये शतानन्द ऐसे प्रसिद्ध जो ब्रह्मा वर्तमान हैं ॥ ४३ ॥ उनके आठवें वर्ष में जो पहले मनु हुये हैं और हे देवि ! उस मन्वन्तर में पहले जो रोहिणीपति (चन्द्रमा) ॥ ४४ ॥ लक्ष्मी व कौस्तुभादिक मणियों समेत समुद्र के भीतर से उत्पन्न हुआ है उसने पुरातन समय चौदहयुगोंतक बड़ी तपस्या से कालभैरव ऐसे नाम से लिंग का आराधन किया है हे सुन्दरि ! उसका अद्भुत तप देखकर

एतन्मेसंशयन्देव यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ईश्वरउवाच ॥ साधुपृष्टंत्वयादेवि रहस्यंपापनाशनम् ॥ ४२ ॥ यन्नकस्यचिदाख्यातं तत्तेवक्ष्याम्यशेषतः ॥ अयंयोवर्ततेब्रह्मा शतानन्दइतिश्रुतः ॥ ४३ ॥ तस्यचैवाष्टमेवर्षे मनुर्यःप्रथमोऽभवत् ॥ तस्मिन्मन्वन्तरेदेवि यश्चादौरोहिणीपतिः ॥ ४४ ॥ समुद्रगर्भात्सञ्जातः सलक्ष्मीकौस्तुभादिभिः ॥ तेनचाराधितंलिङ्गंकालभैरवनामतः ॥ ४५ ॥ महतातपसापूर्वं युगानिचचतुर्दश ॥ तस्याद्भुतंतपोदृष्ट्वा तुष्टोहंतस्यसुन्दरि ॥ ४६ ॥ वरंवृणीष्वेतिमया सचप्रोक्तोनिशाकरः ॥ सहोवाचतदादेवि भक्त्यासन्तोष्यमांशुभे ॥ ४७ ॥ यदिप्रसन्नोदेवेश वरार्होयदिचाप्यहम् ॥ सोमनाथेतितेनाम भूयाद्ब्रह्मावधिप्रभो ॥ ४८ ॥ येकेचिद्भवितारोन्ये मन्वन्तेशीतरश्मयः ॥ तेषांभवतुदेवेश देवोयंकुलदैवतम् ॥ ४९ ॥ आराधयन्तुतेसर्वे क्षेत्रेस्मिन्संस्थिताविभो ॥ स्वकीयायुःप्रमाणेन ब्रह्मणःप्रलयादनु ॥ ५० ॥ सोमनाथेतितेनाम ब्रह्माण्डेसचराचरे ॥ ख्यातिम्प्रयातुदेवेश ततोलिङ्गनमोस्तुते ॥ ५१ ॥

मैं उसके ऊपर प्रसन्नहुआ ॥४५॥४६॥ और मैंने उस चन्द्रमासे यह कहा कि वरदान मांगिये हे शुभे, देवि ! उस समय उसने भक्ति से प्रसन्नकर मुझसे कहा ॥ ४७ ॥ कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्न हो और यदि मैं भी वरदानके योग्यहूं तो हे प्रभो ! सोमनाथ ऐसा तुम्हारा नाम ब्रह्मा की अवधितक होवै ॥ ४८ ॥ और मनुके अन्त में जो कोई चन्द्रमा होवैं हे देवेश ! उनके ये सोमनाथजी कुल देवता होवैं ॥ ४९ ॥ और हे विभो ! इस क्षेत्रमें टिककर वे सब इनका आराधन करैं अपनी आयुर्बल के प्रमाण से ब्रह्मा के प्रलय पश्चात् तक ॥ ५० ॥ सोमनाथ ऐसा तुम्हारा नाम स्थावर जंगमसमेत ब्रह्माण्डभर में प्रसिद्ध होवै इसी कारण हे लिंगरूप,

देवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ५१ ॥ ऐसाही होगा यह मैं कहकर फिर लिङ्ग में लीन होगया हे देवि ! मैंने तुम से इस समस्तकारण को कहा ॥ ५२ ॥ जिस लिये कि पहले तुमने निस्सन्देह संक्षेप से पूंछा है उसी कारण सोमेशजी के गुणों के विषय में उद्देशमात्र (संक्षेप) कहा गया ॥ ५३ ॥ क्योंकि समुद्र के रत्नोंकी नाईं उन सोमेशजी का विस्तार अचिन्तनीय है और उनका चरित्र अभक्तों को मोहनेवाला व भक्तों की बुद्धिको बढ़ानेवाला है ॥ ५४ ॥ जो मद से मोहित हैं वे मूढ़ शिवजी के स्वरूपको नहीं देखते हैं देवीजी बोलीं कि हे शंकरजी ! जिनके तेजस्वरूपवाले लिंग का ऐसा माहात्म्य है ॥ ५५ ॥ हे सुरेश्वर ! उस क्षेत्र में

एवमस्त्वित्यहंप्रोक्का पुनर्लिङ्गेलयङ्गतः ॥ एतत्तेकारणंदेवि मयाप्रोक्तमशेषतः ॥ ५२ ॥ निस्सन्दिग्धन्तुसंक्षेपात्पुराष्टष्टंयतस्त्वया ॥ उद्देशमात्रंकथितं सोमेशस्यगुणान्प्रति ॥ ५३ ॥ समुद्रस्यचरत्नानामचिन्त्यस्तस्यविस्तरः ॥ मोहनंचाप्यभक्तानां भक्तानांबुद्धिवर्द्धनम् ॥ ५४ ॥ मूढास्तेनैवपश्यन्ति स्वरूपंमदमोहिताः ॥ देव्युवाच ॥ ईदृशंयस्य माहात्म्यं तेजोलिङ्गस्यशङ्कर ॥ ५५ ॥ कुत्रतिष्ठतितल्लिङ्गं क्षेत्रेतस्मिन्सुरेश्वर ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रयत्नेन श्रुत्वाचैवावधारय ॥ ५६ ॥ प्रभासंपरमन्देवि क्षेत्रमेतन्ममप्रियम् ॥ देवानामपिसंस्थानं तच्चद्वादशयोजनम् ॥ ५७ ॥ पञ्चयोजनमात्रेण सपीठेनावतिष्ठति ॥ तन्मध्येमद्गृहन्देवि तच्चगव्यूतिमात्रकम् ॥ ५८ ॥ समुद्रस्योत्तरेदेवि देविकामुखसंज्ञितम् ॥ क्षेत्रपीठमितिप्रोक्तमतोगर्भगृहंशृणु ॥ वज्रिण्यापूर्वतश्चैव यावन्न्यङ्कुमतीनदी ॥ ५९ ॥ चतुष्टयञ्च विस्तारादायतंपञ्चयोजनम् ॥ एतन्ममगृहन्देवि नत्यजामिकदाचन ॥ ६० ॥ तस्यमध्यस्थितंलिङ्गं यच्चतत्तेप्रकी

वह लिंग कहां स्थित है महादेवजी बोले कि हे देवि ! यत्न से सुनिये और सुनकर निश्चय कीजिये ॥ ५६ ॥ कि हे देवि ! यह प्रभासक्षेत्र मुझको परम प्याराहै और देवताओं के स्थानवाला वह क्षेत्र बारहयोजनहै ॥ ५७ ॥ और पीठसमेत वह पांच योजन स्थित है उसके बीच में हे देवि ! जो मेरा घर है वह दो कोश है ॥ ५८ ॥ हे देवि ! समुद्र के उत्तर में देविकामुखसंज्ञक क्षेत्रपीठ ऐसा कहा गया है इसके उपरान्त गर्भगृहको सुनिये कि वज्रिणी नदी के पूर्व न्यंकुमती नदी तक ॥ ५९ ॥ चार योजन चौड़ा व पांच योजन लम्बा यह मेरा घर है हे देवि ! इसको मैं कभी नहीं छोड़ता हूं ॥ ६० ॥ उसके मध्य में जो लिंग स्थितहै वह तुमसे कहा

गया कि पश्चिमदिशा के आश्रित होकर समुद्र के समीप ॥ ६१ ॥ हे प्रिये ! कृतस्मरजी के आगे सौ धनुष पर आपही से उत्पन्न महाप्रभाववान् लिंग स्थितहै ॥ ६२ ॥ उसमें परमेश्वर सदाशिवदेवजी स्थित हैं हे देवि ! इसी बीच में सोमेशजी के समीप ॥ ६३ ॥ चौदह विभागों में दो सौ धनुष में सब ओरसे मण्डलाकार वह कर्णिका मुझको प्यारी है ॥ ६४ ॥ हे पार्वतीजी ! उसमें जो प्राणी हैं वे सब मृत्यु समय में कृमि, कीट व पतंगादिक जो नीच व मध्यम जीव हैं ॥ ६५ ॥ वे सब पातकों से शुद्ध होकर पार्वती के पति शिवजी के लोक को जाते हैं उत्तरायण व दक्षिणायन उनके लिये न विचारै ॥ ६६ ॥ क्योंकि उनका सब उत्तम समय है

र्त्तितम् ॥ वारुणीन्दिशमाश्रित्य सागरस्यचसन्निधौ ॥ ६१ ॥ कृतस्मरस्यापुरतो धन्वन्तरशतम्प्रिये ॥ लिङ्गंमहाप्रभावन्तु स्वयम्भूतंव्यवस्थितम् ॥ ६२ ॥ तत्रसन्निहितोदेवश्शङ्करःपरमेश्वरः ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवि सोमेशस्यसमीपतः ॥ ६३ ॥ चतुर्दशविभागेषु धनुषान्तुशतद्वयम् ॥ समन्तान्मण्डलाकारा कर्णिकासाममप्रिया ॥ ६४ ॥ तस्यांयेप्राणिनस्सर्वे मृत्युकालेचपार्वति ॥ कृमिकीटपतङ्गाद्या जीवाउत्तममध्यमाः ॥ ६५ ॥ निर्धौतकल्मषास्सर्वे यान्तिलोकमुमापतेः ॥ उत्तरंदक्षिणंवापि अयनन्नविचारयेत् ॥ ६६ ॥ सर्वन्तेषांशुभंकालं येमृताःक्षेत्रमध्यतः ॥ आदिनाथेनशर्वेण सर्वप्राणिहितायवै ॥ ६७ ॥ आप्यतत्त्वात्समानीय क्षेत्रमेतन्महाप्रभम् ॥ ६८ ॥ प्रकाशितंमहादेवि सिध्यन्तेचात्रमानवाः ॥ हन्यमानोपियोवद्धो नरोविघ्नशतैरपि ॥ ६९ ॥ कृतप्रतिज्ञोदेवेशि यावज्जीवंसुरेश्वरि ॥ सगच्छेत्परमंस्थानंयत्रगत्वानशोचति ॥ ७० ॥ तस्यक्षेत्रस्यमाहात्म्यात्स्थाणोश्चैवमहात्मनः ॥ कृत्वापापसहस्राणि पश्चात्सन्ता

जो कि क्षेत्रके बीच में मरे हैं समस्तप्राणियों के हितके लिये आदिनाथ शिवजी ने ॥ ६७ ॥ जल तत्त्वसे लेकर इस महाप्रभावान् क्षेत्रको ॥ ६८ ॥ प्रकाशित किया हे महादेवि ! यहांपर मनुष्य सिद्ध होते हैं सैकडों विघ्नों से भी नाश कियाजाता व बँधा हुआ जो पुरुष ॥ ६९ ॥ हे देवेशि, सुरेश्वरि ! प्रतिज्ञाकरके जीवनपर्यन्त यहां बसता है वह उत्तमस्थानको जाता है जहां जाकर शोच नहीं करता है ॥ ७० ॥ उस क्षेत्र के माहात्म्य से व महात्मा शिवजीके प्रभाव से हज़ारों पातकों को करके

मनुष्य परचात् सन्तापको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ और जो प्रभासक्षेत्रमें मरता है वह यमपुरी को नहीं जाता है हाहाभूत व अचेतन भयंकर कलियुग को जानकर ॥ ७२ ॥ वहां रक्षाके लिये हे देवेशि ! विघ्नराज गणेशजी को छोड़ाहै यदि ब्रह्मघाती व पातकीजन वहां मरते हैं ॥ ७३ ॥ और जो ब्राह्मणों के वैरी व शिवभक्तों के निन्दक, ब्रह्मघाती, कृतघ्न व जो शठ मनुष्य यहां मरते हैं ॥ ७४ ॥ और संसारका वैरी व गुरुवों का द्वेषी तथा तीर्थ व देवमन्दिरों का कण्टक और पाप में परायण सब मनुष्य व अन्य जो निन्दित मनुष्य ॥ ७५ ॥ इस क्षेत्र में बसते हैं हे वरारोहे ! उनकी गति को सुनिये कि हे कमललोचनि ! वे मनुष्य देवताओं के दशहजार

पमेतिवै ॥ ७१ ॥ प्रभासेतुविपद्येत नसोन्तकपुरींव्रजेत् ॥ ज्ञात्वाकलियुगंघोरं हाहाभूतमचेतसम् ॥ ७२ ॥ निर्मुक्तस्तत्र देवेशि रक्षार्थंविघ्ननायकः ॥ म्रियन्तेयदिब्रह्मघ्नास्तथापातकिनोजनाः ॥ ७३ ॥ येचब्राह्मणद्वेष्टारःशिवभक्तविनिन्दकाः ॥ ब्रह्मघ्नाश्चकृतघ्नाश्च तथानैष्कृतिकाश्चये ॥ ७४ ॥ लोकद्वेष्टागुरुद्वेष्टा तीर्थायतनकण्टकाः ॥ सर्वेपापरताश्चैव तथान्येतुविकुत्सिताः ॥ ७५ ॥ क्षेत्रेचास्मिन्वरारोहे तेषाञ्चैवगतिंश्रृणु ॥ दशवर्षसहस्राणि दिव्यानिकमलेक्षणे ॥ ७६ ॥ दासीपुत्राश्चजायन्ते तदन्तेब्रह्मराक्षसाः ॥ ततःपापक्षयेदेवि जायन्तेचवियोनिजाः ॥ ७७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पापं तत्रनकारयेत् ॥ अन्यत्रचार्जितंपापं क्षेत्रेचास्मिन्विनश्यति ॥ ७८ ॥ अस्मिन्पुनःकृतंपापं पैशाचंनरकावहम् ॥ भक्तानुकम्पीभगवांस्तिर्य्यग्योनिंगतानपि ॥ ७९ ॥ ददातिपरमंस्थानं नतुब्रह्मद्विषांप्रिये ॥ येचध्यानंसमासाद्य यतात्मानःसमाहिताः ॥ ८० ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं जपन्तश्शतरुद्रियम् ॥ प्रभासेतुस्थितादेवि सिद्धास्तेनात्रसंश

वर्षोतक ॥ ७६ ॥ दासी के पुत्र होते हैं उसके बाद ब्रह्मराक्षस होते हैं तदनन्तर हे देवि ! पापके नाश होनेपर पक्षियों की योनिमें उत्पन्न होते हैं ॥ ७७ ॥ इसलिये सब उपाय से वहांपर पाप न करै क्योंकि अन्यत्र किया हुआ पातक इस क्षेत्र में नष्ट होता है ॥ ७८ ॥ और इस क्षेत्रमें किया हुआ पाप पिशाचत्व व नरकको देता है भक्तों के ऊपर दयाकरनेवाले भगवान् शिवजी पशु, पक्षियों की योनि में प्राप्त जीवों को भी ॥ ७९ ॥ उत्तम स्थानको देते हैं और हे प्रिये ! ब्राह्मणों के वैरियोंको परमपदको नहीं देते हैं और सावधान होतेहुये चित्तको रोंककर जो मनुष्य ध्यानको प्राप्त होकर ॥ ८० ॥ इन्द्रियसमूह को रोंककर शतरुद्रिय को जपते हैं हे देवि !

प्रभास में टिकेहुये वे मनुष्य सिद्ध होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८१ ॥-यदि कोई मनुष्य उत्तम प्रभासक्षेत्रको जावै तो उस यत्नको करना चाहिये कि जिसप्रकार, फिर न लौटे ॥ ८२ ॥ हे वरारोहे ! यह गुप्त करने योग्य चरित्र जिस किसी को न देना चाहिये हे प्रिये ! यह शास्त्र सदैव प्राणों के समान रक्षाकरने योग्यहै ॥ ८३ ॥ जिसने प्रभासक्षेत्र के दीपक इस शास्त्र को जान लियाहै मनुष्यके शरीर में स्थित वह शिव जानने योग्य है ॥ ८४ ॥ हे देवि ! कलियुग में यह शास्त्र दुर्लभ है और जिन्होंने इसको जाना है वे निस्सन्देह कृतार्थ हैं हे पार्वतीजी ! उसके शरीर में टिकाहुआ मैं सदैव स्थित रहता हूं ॥ ८५ ॥ और जैसे कि मैं हूं वैसेही यह सबों

यः ॥ ८१ ॥ यदिकश्चिन्नरोगच्छेत्प्रभासंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ तमुपायंप्रकुर्वीत निर्गच्छेन्नपुनर्यथा ॥ ८२ ॥ एतद्गोप्यंवरारोहे नदेयंयस्यकस्यचित् ॥ गोपनीयमिदंशास्त्रं यथाप्राणास्सदाप्रिये ॥ ८३ ॥ येनेदंविदितंशास्त्रं प्रभासक्षेत्रदीपकम्॥ सशिवश्चैवविज्ञेयो मानुषींप्रकृतिंस्थितः ॥ ८४ ॥ कलौचदुर्लभन्देवि तेकृतार्थानसंशयः ॥ तस्यविग्रहसंस्थोहं सदा तिष्ठामिपार्वति॥ ८५ ॥ सर्वैश्चपूजितव्योसौ यथाहन्नात्रसंशयः॥ इदानींतवस्नेहेन विशेषंकथयामिवै ॥८६॥सत्यंसत्यंपुनस्सत्यं त्रिसत्यंसुरसुन्दरि ॥ यानिलिङ्गानिभूर्लोके सोमेशस्तेषुमेप्रियः ॥ ८७ ॥ अस्मिँल्लिंगेगुणायेच तेदेविविदितामम ॥ अहमेवविजानामि नान्योवेदकथञ्चन ॥ ८८ ॥ अन्येषुचैवलिङ्गेषु अहंपूज्यस्सुरासुरैः ॥ लिङ्गंचैतत्पुनर्देवि पूजयामोवयंस्वयम् ॥ ८९ ॥ यस्मिन्कालेनवैब्रह्मा नभूमिर्नदिवाकरः ॥ सर्वञ्चैवजगन्नाथ तस्मिन्कालेयशस्विनि ॥ ९० ॥ इदंवैपरमंलिङ्गं ब्रह्मणःप्रलयेमदा ॥ भाविनीवृत्तिमादाय इदंस्थानन्तुरक्षति ॥ ९१ ॥ दशकोटिस्तुलिङ्गानां ग

से पूजने योग्य होता है इस में सन्देह नहीं है इससमय तुम्हारे स्नेह से विशेष बात को कहता हूं ॥ ८६ ॥ हे सुन्दरि ! सत्य, सत्य, फिर सत्य यह त्रिवाचिक सत्य है कि भूलोक में जो लिंगहैं वे सोमेशजी मुझको प्यारे हैं ॥ ८७ ॥ हे देवि ! इस लिंग में जो गुण हैं उनकों मै जानता हूं मैं ही जानता हूं अन्य किसी प्रकार से नहीं जानता है ॥ ८८ ॥ और अन्य लिंगों में देवता व दैत्योंसे मैं पूजनीयहूं फिर हे देवि ! इस लिंगको मैं आपही पूजता हूं ॥८९॥ जिस समयमें न ब्रह्मा थे न भूमि न सूर्य और न सब संसार था हे यशस्विनि ! उस समय ॥ ९० ॥ ब्रह्माजी के प्रलय में सदैव यह उत्तम लिंग भाविनीवृत्ति में स्थित होकर इस स्थान की रक्षा

करता है ॥ ९१ ॥ हे वरानने ! हरिद्वार में जो दशकरोड़ लिंग हैं वे मध्याह्न में आकर इस लिंग में लीन होजाते हैं ॥ ९२ ॥ पृथ्वी में जो तीर्थ हैं व जो तीर्थ आ- आश में स्थित हैं वे सदैव इस लिंग के स्नान के लिये भलीभांति आते हैं ॥ ९३ ॥ वे मनुष्य धन्य हैं कि प्रभासक्षेत्र में टिकेहुये जो संसार के डरको छुड़ानेवाले सोमेश्वरजीको देखते हैं ॥ ९४ ॥ हे देवि ! शुद्धचित्तवाले जो मनुष्य सोमेश्वरदेवजीको स्मरणकरैंगे उनके समस्तपापोंका नाशहोगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९५॥ हे देवि ! यह कहाहुआ पवित्र क्षेत्र मुझको सदैव बहुतही प्याराहै व ऋषियों तथा सिद्धगणोंसे जानेयोग्यहै हे देवि ! समस्त भी जीवधारी इस क्षेत्रमें मरकर स्वर्गसे उत्तम

द्वारेवरानने ॥ आगत्यतानिमध्याह्ने लिङ्गेसंयान्तिसंलयम् ॥ ९२ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि गगनस्थानियानितु ॥ स्नानार्थमस्यलिङ्गस्य समागच्छन्तिसर्वदा ॥ ९३ ॥ धन्यास्तुखलुतेमर्त्याः प्रभासेसंव्यवस्थिताः ॥ सोमेश्वरंयेपश्य न्ति संसारभयमोचनम् ॥९४॥ देविसोमेश्वरन्देवं येस्मरिष्यन्तिभाविताः ॥ सर्वपापक्षयस्तेषां भविष्यतिनसंशयः ॥ ९५ ॥ एतत्स्मृतंप्रियतमंममदेविनित्यं क्षेत्रंपवित्रमृषिसिद्धगणाभिगम्यम् ॥ अस्मिन्मृतास्सकलजीवभृतोपिदेवि स्वर्गात्परंसमुपयान्तिनसंशयोस्ति ॥ ९६ ॥ यन्देवापिनजानन्ति ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ नसांख्येननयोगेन नैवपाशु पतेनच ॥ ९७ ॥ कैवल्यंनिष्कलंज्ञानमस्मिँल्लिङ्गेतुलभ्यते ॥ तावद्भ्रमन्तिसंसारे देवाद्यास्तुयशस्विनि॥९८ ॥ याव त्सोमेश्वरन्देवि नविन्दन्तित्रिलोचनम्॥ मोक्षंप्रभासमित्युक्तं क्षेत्रज्ञोहन्नसंशयः ॥ ९९ ॥ एतत्तवोक्तञ्चसुबोधनाय सो मेश्वरस्यैवमहाप्रभावम् ॥ येवैपठिष्यन्तिनरानितान्तं यास्यन्तितेतत्पदमिन्दुमौलेः ॥ १०० ॥ सोमेश्वरन्देविवरं

स्थानको जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु आदिक भी देवता जिन कोनहीं जानतेहैं और न सांख्य न योग न शैव मार्गसे जिसको जानते हैं ॥ ९७ ॥ इसलिंग में वह कैवल्यनिष्कलज्ञान मिलता है हे यशस्विनि ! संसार में तबतक देवादिक भ्रमण करते हैं ॥ ९८ ॥ जब तक कि हे देवि ! त्रिलोचन सोमेश्वरजी को नहीं प्राप्तहोते हैं प्रभास ऐसा क्षेत्र मोक्ष कहागया है और मैं क्षेत्रज्ञहूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९९ ॥ सोमेश्वरजी का यह बड़ाभारी प्रभाव तुमसे सुबोध (ज्ञान) के लिये कहागया जो मनुष्य इस को सदैव पढ़ैंगे वे चन्द्रभालजी के उस स्थान को प्राप्तहोवैंगे ॥ १०० ॥ हे देवि ! जो भक्तिवान् मनुष्य उत्तम सोमेश्वरजी को

शरण में प्राप्तहोते हैं वे फिर भयदायक व भयंकररूपवाले संसारचक्र में नहीं घूमते हैं ॥ १ ॥ और वे उत्तमतासे ससार के पार चलेजाते हैं श्री सोमनाथजी का किया हुआ एकदेश उद्देशमात्र कहागया जोकि एकमुखसे नहीं कहा जासक्ता है ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्र माहात्म्येसोमनाथवर्णनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । सोमेश्वर के दरश सों होतरोग सबनाश । सोइ सप्तम अध्याय में कीन्होंचरित प्रकाश ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि हे मनुष्योंके कल्याण करनेवाले शंकरजी !

नुष्या येभक्तिमन्तश्शरणंप्रपन्नाः ॥ तेघोररूपेचभयावहेच संसारचक्रेनपुनर्भ्रमन्ति ॥ १ ॥ संसारपारंपरमंगतास्ते उद्देशमात्रंकथितोमयाते ॥ श्रीसोमनाथस्यकृतैकदेशो नशक्यएकेनमुखेनवक्तुम् ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येसोमनाथवर्णनन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ पुनःकथयदेवेश माहात्म्यंलोकशङ्कर ॥ सोमेश्वरस्यदेवस्य सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ ब्रह्माविष्णवीशदैवत्यं तथात्रत्रितयंवद ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वा ममगोप्यंपुरातनम् ॥ २ ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि ऋषीणामूर्द्धरेतसाम् ॥ तस्मिँल्लिङ्गेप्रविष्टानि घृताहुतिरिवानले ॥ ३ ॥ सिद्धिर्वृद्धिस्तथातुष्टिः पुष्टिर्हृष्टिस्तुपञ्चमी ॥ कीर्तिःशान्तिस्तथालक्ष्मीस्तस्मिँल्लिङ्गेसमुत्थिताः ॥ ४ ॥ अन्यद्देविप्रवक्ष्यामि अत्रसिद्धिवृतास्तुये ॥ ममांशसम्भवाःप्राप्ता अस्मिँल्लिङ्गेलयङ्गताः ॥ ५ ॥ तेषाञ्चविक्रमान्सर्वान्प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ पराक्रमाग्रहामुण्डा गुडकाश्चसहेरुकाः ॥ ६ ॥

सोमेश्वरदेवजी के समस्तपातकों के विनाशक माहात्म्य को फिर कहिये ॥ १ ॥ और यहांपर ब्रह्मा, विष्णु व महेशदेववाले त्रितय चरित्र को कहिये महादेवजी बोले कि सावधान मनवाली होकर पहले के गुप्तचरित्र को मुझसे सुनिये ॥ २ ॥ कि साठहज़ार ऊर्ध्वरेता (वीर्य को ऊपर चढ़ानेवाले) ऋषि उस लिंग में पैठगये जैसे कि घी की आहुति अग्निमें प्रवेश करती है ॥ ३ ॥ सिद्धि, वृद्धि, तुष्टि, पुष्टि व पांचवीं हृष्टि, कीर्ति, शांति व लक्ष्मी उस लिंगमें उत्पन्नहुई ॥ ४ ॥ हे देवि ! अन्य चरित्र को कहताहूं कि यहांपर मेरे अंश से उपजे हुये जो सिद्धियों से घिरेहुये प्राप्त थे वे इस लिंग में लीन होगये ॥ ५ ॥ उनके सब पराक्रमों को क्रमसे कहताहूं कि

प्राक्रम, ग्रह, मुंड, गुडक, व सहेरुक ॥ ६ ॥ और हे वरवर्णिनि ! विमल व दंडिक ये सात कुशिक प्रभासक्षेत्र में पहले इस लिंग में सिद्ध कहेगये हैं ॥ ७ ॥ और शैव, पाल, यक्ष व वज्र, चन्द्र, चंड व दंड ये सात मैत्रेय कहेगये हैं ॥ ८ ॥ व सोमकन्य, शिव, प्रकाश तथा कंपिल, नकुल, कर्णिकार ये सात पौरुषेय कहेगये हैं ॥ ९ ॥ जोकि पापनाशक पुरुष पुरातनसमय प्रभासक्षेत्रमें सिद्धहुये हैं हे प्रिये ! पुरातन समय युग युगमें उस लिंगमें ये सिद्धहुये हैं ॥ १० ॥ व अन्य जो ब्राह्मण कलियुग में होवैंगे वे देवताओं से भी दुर्लभ सिद्धिको पावैंगे ॥ ११ ॥ यह समस्तचरित्र तुममे कहागया कि सब मनुष्यों को दुर्लभ व सिद्धिदायक उत्तम लिङ्ग

विमलादण्डकाश्चैव सप्तेतेकुशिकास्स्मृताः ॥ अस्मिँल्लिङ्गेपुरासिद्धाः प्रभासेवरवर्णिनि ॥ ७ ॥ शैवश्चैवतथापालः य चोवज्रस्तथैवच ॥ चन्द्रश्चचण्डश्चदण्डश्च मैत्रेयास्सप्तकीर्तिताः ॥ ८ ॥ सोमकन्यश्शिवश्चैव प्रकाशःकम्पिलस्तथा ॥ नकुलःकर्णिकारश्च पौरुषेयाःप्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥ सोमेश्वरेपुरासिद्धाः प्रभासेपापनाशनाः ॥ युगेयुगेपुरासिद्धास्तस्मिँ ल्लिङ्गेप्रियेमम ॥ १० ॥ एतेचान्येचयेविप्रा भविष्यन्तिकलौयुगे ॥ तत्रसिद्धिंगमिष्यन्ति दुर्लभांत्रिदशैरपि ॥ ११ ॥ ए तत्तेसर्वमाख्यातं लिङ्गंसिद्धिप्रदम्परम् ॥ दुर्लभंसर्वमर्त्यानां प्रभासेतुव्यवस्थितम् ॥ १२ ॥ नचकश्चिद्विजानाति अशुभैः कर्मभिर्वृतः ॥ ग्रहदोषाश्चयेकेचिद् भूतदोषास्तथापरे ॥ १३ ॥ डाकिनीप्रेतवेताला राक्षसाग्रहपूतनाः ॥ पिशाचाया तुधानाश्च मातरोजातहारिकाः ॥ १४ ॥ बालग्रहास्तथाचान्ये वृद्धाश्चैवतथाग्रहाः ॥ ज्वरभूतग्रहाश्चान्ये अतिसारभ गन्दराः ॥ १५ ॥ अश्मरीमूत्रकृच्छ्रश्च रोगाश्चान्येसहस्रशः ॥ दुर्नामिकातथाचान्ये कुष्ठरोगास्तथापरे ॥ १६ ॥ अन्येचैवतुयेकेचिद्व्याधयःपरिकीर्तिताः ॥ सोमेश्वरंसमासाद्य तस्यलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ १७ ॥ सर्वएवविनश्यन्ति वह्नौ

प्रभासक्षेत्रमें स्थित है ॥ १२ ॥ और अशुभकर्मों से घिराहुआ कोई मनुष्य इनको नहीं जानता है जो कोई ग्रह दोषहैं व अन्य जो कोई भूतदोष हैं ॥ १३ ॥ और डाकिनी, प्रेत, वेताल, राक्षस, ग्रह, पूतना, पिशाच, राक्षस, मातृका, जातहारिका ॥ १४ ॥ और अन्य बालग्रह व वृद्धग्रह और अन्य ज्वर, भूतग्रह, अतीसार व भगंदर ॥ १५ ॥ पथरीरोग, मूत्रकृच्छ्र और अन्य हजारोंरोग तथा दुर्नामिका (बवासीर) व अन्य कुष्ठरोग ॥ १६ ॥ और अन्य जो कोई मानसीव्यथायें कहीगई हैं वे

सोमेश्वर में प्राप्तहोकर उस लिंग के दर्शन से ॥ १७ ॥ सबही नष्ट होजाते हैं जैसेकि अग्नि में फेंकाहुआ इन्धन नाश होजाता है और जो अन्य उपद्रव हैं व सर्प, गोनस (सर्पभेद) बीछी ॥ १८ ॥ वहांपर श्रीसोमेश्वरजी के दर्शन से वे सब नष्टहोजाते हैं जो ये सोमेश्वर नामक पश्चिमभैरव कहेगये हैं ॥ १९ ॥ वे कालाग्नि व रुद्रनाथ ऐसे पर्यायवाले नामों से प्रसिद्ध हैं हे देवेशि ! भक्तों के ऊपर दयाकरनेवाला मैं उस लिंगमें स्थितहूं ॥ २० ॥ मैं मनुष्यों के समस्तपातकको भक्षण करलेता हूं इसमें सन्देह नहीं है और देहधारियों की देहमें भ्रमण करनेवाले जो कि ये शरीरमें टिकेहुये प्राण हैं ॥ २१ ॥ और यह ब्रह्माण्ड जिसके भीतरहै व एकभी जो अनेक

क्षिप्तमिवेन्धनम् ॥ उपसर्गाश्चयेचान्ये सर्पगोनसवृश्चिकाः ॥ १८ ॥ सर्वेतत्रविनश्यन्ति श्रीसोमेश्वरदर्शनात् ॥ योसौसोमेश्वरोनाम्ना पश्चिमोभैरवःस्मृतः ॥ १९ ॥ कालाग्निरुद्रनाथेति पर्यायैर्नामभिःश्रुतः ॥ तस्मिंस्तिष्ठामिदेवे शि भक्तानुग्रहकारकः ॥ २० ॥ सर्वंचदुष्कृतंनृणां भक्षयामिनसंशयः ॥ योसौप्राणःशरीरस्थो देहिनांदेहसञ्चरः ॥ २१ ॥ ब्रह्माण्डमेतद्यस्यान्तरेकोयश्चाप्यनेकधा ॥ तस्मिंस्तिष्ठामिदेवेशि भक्तानुग्रहकारकः ॥ २२ ॥ वेदास्सर्वेतुयं देवं प्रशंसन्तिमहर्षयः ॥ परस्यब्रह्मणोरूपं यस्यद्वारेणलभ्यते ॥ २३ ॥ सोयंदेविमहादेवः प्रभासेसंव्यवस्थितः ॥ यथागुप्तंगृहेरत्नं नकश्चिद्विदतेनरः २४ ॥ प्रभासेतुस्थितंतद्वद्रत्नभूतंगृहेमम ॥ तच्चलिङ्गंपुराकल्पे सप्तपातालभेदकम् ॥ २५ ॥ कथितंकोटिसूर्य्यस्य प्रलयानलसन्निभम् ॥ तेनकालाग्निरुद्रेति प्रोक्तःसोमेश्वरःपुरा ॥ २६ ॥ इतिदेविसमासेन

प्रकारका है हे देवेशि ! भक्तोंके ऊपर दयाकरनेवाला मैं उस लिंग में स्थितहूं ॥ २२ ॥ सब वेद व महर्षिलोग जिस देवताकी प्रशंसा करते हैं और जिसके द्वारपर ब्रह्मा का रूप मिलताहै ॥ २३ ॥ देवि ! वही ये महादेवजी प्रभासक्षेत्रमें टिकेहुये हैं जैसे घरमें छिपेहुये रत्नको कोई मनुष्य नहीं पाता है ॥ २४ ॥ वैसेही मेरे प्रभासक्षेत्ररूपी गृहमें रत्नरूपी स्थित लिंगको कोई नहीं पाता है पूर्वकल्प में वह लिंग सातपातालों का भेदन करनेवाला हुआ है ॥ २५ ॥ जोकि करोड़ सूर्यों के समान व प्रलयकाल

की अग्निके समानहै उसीकारण पुरातन समय सोमेश्वरजी कालाग्निरुद्र कहेगयेहैं ॥ २६ ॥ हे पार्वती, देवि! समस्तपातकों का विनाशक यह सोमेश्वरजी का माहात्म्य तुमसे संक्षेपसे कहागया ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येसोमेश्वरवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दो०। आये कृष्ण प्रभास किमि कारण पूछयो देवि। सो अष्टम अध्याय में कह्यो चरित सुखसेवि ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि प्रभासक्षेत्रमें शंकरजी से उत्पन्न कालाग्निरुद्रके बीचमें टिकेहुये जिस तेजको मैंने पुरातन समय देखा है उस तेजको नमस्कार करतीहूं ॥ १ ॥ देवसमूहों व प्राचीन ऋषियों तथा ग्रन्थों में कहेहुये

कथितंतवपार्वति ॥ सोमेश्वरस्यमाहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येसोमेश्वरवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ दिव्यन्तेजोनमस्यामि दृष्टंयन्मेपुरातनम् ॥ कालाग्निरुद्रमध्यस्थं प्रभासेशङ्करोद्भवम् ॥ १ ॥ योदेवसंघैर्ऋषिभिःपुराणैर्ग्रन्थोक्तयोगैरपिपूज्यमानः ॥ तंदेवदेवंशरणंव्रजामिसोमेश्वरंपापविनाशहेतुम् ॥ २ ॥ देवदेवजगन्नाथ भक्तानुग्रहकारक ॥ संशयोयदिमेकश्चित्तंभवाञ्छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ कस्संशयस्समुत्पन्नस्तवदेवियशस्विनि ॥ तन्मेकथयकल्याणि तत्सर्वंकथयाम्यहम् ॥ ४ ॥ देव्युवाच ॥ यदित्वंचमहादेवो मुण्डमालाकथंकृता ॥ अनादिनिधनोधाता सृष्टिसंहारकारकः ॥ ५ ॥ ततोविहस्यदेवेशः शङ्करोवाक्यमब्रवीत् ॥ अनेकमुण्डकोटीभिर्यामेमालाविराजते ॥ ६ ॥ नारायणसहस्राणां ब्रह्मणामयुतस्यच ॥ कृतांशिरःकरोटीभिरनादिनिधनोयतः ॥ ७ ॥

योगोंसे भी जो पूजेजाते हैं पापविनाशने में कारणभूत उन सोमेश्वरदेवजी की शरणमें मैं प्राप्तहोतीहूं ॥ २ ॥ हे देवदेव, भक्तोंके ऊपर दया करनेवाले, जगदीशजी! यदि मेरे कोई सन्देह होवै तो उसको आप काटने के योग्यहो ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे यशस्विनि, देवि! तुम्हारे कौन सन्देह उत्पन्न है हे कल्याणि! उसको मुझसे कहिये मैं उस सबको कहूंगा ॥ ४ ॥ पार्वती देवी बोलीं कि यदि तुम महादेवहोतो मुण्डों की माला किस लिये की गई आप तो जन्म व मृत्यु से रहितहो और सृष्टि तथा संहार करनेवाले विधाताहो ॥ ५ ॥ तदनन्तर हँसकर देवेश शंकरजी वचन बोले कि अनेक करोड़मुण्डों से जो मेरीमाला शोभित है ॥ ६ ॥ वह हजार

नारायण व दशहज़ार ब्रह्माओं के मस्तकों के कपालों से रचीगई है क्योंकि मैं जन्म व मृत्यु से रहितहूं ॥ ७॥ अन्य ब्रह्माहोते हैं व अन्य विष्णु भी होते हैं प्रत्येक कल्प में मुझसे रचेहुये काल, विष्णु व ब्रह्माहोते हैं ॥ ८ ॥और हे देवि ! प्रभासक्षेत्र में मुण्डों की माला से विभूषित मैं इसीप्रकार का कालाग्नि लिंग के मूल में स्थितहूं ॥ ९ ॥ जो कि मैं रुद्राक्ष की मालाको धारण किये तथा शान्त व आदि, मध्य और अन्त से रहितहूं और वरदायक तथा पद्मासन से बैठाहुआ व पाला,कुन्द तथा चन्द्रमा के समान श्वेतहूं ॥ १० ॥ मेरे बायें ओर विष्णुजी व दाहिने ओर ब्रह्माजी स्थित हैं और मेरे पेटमें चारोंवेद व हृदय में सनातन ब्रह्म है ॥ ११ ॥ व

अन्योविष्णुश्चभवति अन्योब्रह्माभवत्यपि ॥ कल्पेकल्पेमयासृष्टः कालोविष्णुप्रजापतिः ॥ ८ ॥ अहमेवंविधोदेवि क्षेत्रेप्राभासिकेस्थितः ॥ कालाग्निलिङ्गमूलेतु मुण्डमालाविभूषितः ॥ ९ ॥ अक्षसूत्रधरःशान्त आदिमध्यान्तवर्जितः॥ पद्मासनस्थोवरदो हिमकुन्देन्दुसन्निभः ॥ १० ॥ ममवामेस्थितोविष्णुर्दक्षिणेचपितामहः ॥ जठरेचतुरोवेदा हृदये ब्रह्मशाश्वतम् ॥ ११ ॥ अग्निस्सोमश्चसूर्य्यश्च लोचनेषुव्यवस्थिताः ॥ एवंविधोमहादेवि प्रभासेसंव्यवस्थितः ॥ १२ ॥ आप्यतत्त्वात्समानीते भूयस्तेसंशयंकचित् ॥ एवमुक्तातदादेवी हर्षगद्गदयागिरा ॥ १३ ॥ तुष्टावदेवदेवेशं भक्त्याचपरयायुता ॥ नमोदेवमहादेव सर्वभावनईश्वर ॥ १४ ॥ नमस्तेस्तुसुरेशाय परमेशायवैनमः ॥ अनादिसृष्टिकर्त्रेच नमःसर्वगतायच ॥ १५ ॥ सर्वस्थायनमस्तुभ्यं धाम्नांधाम्नेनमोस्तुते ॥ सृष्टिदायनमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं

मेरे नेत्रों में अग्नि, चन्द्रमा व सूर्यनारायणजी टिके हैं हे महादेवि ! जलतत्त्व से लायेहुये प्रभासक्षेत्र में इसप्रकार का मैं भलीभांति स्थितहूं फिरभी तुम्हारे कुछ सन्देहहै उस समय इसभांति कहीहुई बड़ीभक्तिसे संयुत पार्वती देवीजी ने हर्षसे गद्गदी वाणी करके देवदेवेश शिवजी की स्तुति किया कि हे महादेव, देव, सबको उत्पन्न करनेवाले, ईश्वर ! आपके लिये नमस्कार है ॥ १२।१३।१४॥ देवताओं के स्वामीरूप आपके लिये नमस्कार है परमेश्वर के लिये प्रणाम है व अनादि तथा सृष्टिकर्ता के लिये नमस्कार है व सर्वव्यापी के लिये नमस्कार है ॥ १५ ॥ सब में टिकेहुये आपके लिये प्रणाम है व तेजों के मध्यमें तेजस्वरूप आपके

लिये प्रणाम है सृष्टिदायक तुम्हारे लिये प्रणाम है व हे मोक्षदायक ! आपके लिये प्रणाम है ॥ १६ ॥ उस समय पार्वती देवीजी ने प्रज्वलित चन्द्रभालवाले सदा-शिवजी की स्तुतिकिया तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये भगवान् शिवजी बोले ॥ १७ ॥ कि हे महाबुद्धिमति ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा तुमने कहा मैं प्रसन्न हूं वरदान को मांगिये पार्वती देवीजी बोलीं कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्न हो और यदि मैं भी वरदान के योग्य हूं ॥ १८॥ तो प्रभासक्षेत्र के माहात्म्यको फिर कहिये और हे भूत-पते ! अग्रगण्य व दैत्यों के नाशक जो भगवान् विष्णुजी हैं ॥ १९ ॥ वे किसकारण द्वारकापुरी को छोड़कर प्रभासक्षेत्र में टिके हैं साठहज़ार व साठसौकरोड़

चमोक्षद ॥१६॥ एवंस्तुतस्तदादेव्या प्रचरच्चन्द्रशेखरः ॥ ततस्तुष्टश्चभगवानिदंवचनमब्रवीत् ॥१७॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञे तुष्टोहंव्रियतांवरः ॥ देव्युवाच ॥ यदितुष्टोसिदेवेश वरार्हायदिचाप्यहम् ॥ १८ ॥ प्रभासक्षेत्रमाहात्म्यं पुनर्विस्तरतोवद ॥ भूतेशभगवान्विष्णुर्दैत्यानामन्तकोग्रणीः ॥ १९ ॥ सकस्माद्द्वारकांहित्वा प्रभासक्षेत्रमाश्रितः ॥ षष्टिस्तीर्थमहस्राणि षष्टिकोटिशतानिच ॥ २० ॥ द्वारकामध्यसंस्थानि कथंसन्त्यक्तवान्हरिः ॥ अमरैरावृताम्पुण्यां पुण्यकृद्भिर्निषेविताम् ॥ २१ ॥ एवन्तांद्वारकांहित्वा प्रभासंकथमाश्रितः ॥ देवमानुषयोर्नेता योभवप्रभवोहरिः ॥ २२ ॥ किमर्थंद्वारकांहित्वा प्रभासेनिधनङ्गतः ॥ यश्चक्रंवर्तयत्येको मानुषाणांमनोमयम् ॥ २३ ॥ प्रभासेसकथंकालं चक्रेचक्रभृतांवरः ॥ गोपायनंयःकुरुते जगतस्सार्वलौकिकम् ॥ २४ ॥ सकथंभगवान्विष्णुः प्रभासंक्षेत्रमाश्रितः ॥ महाभूता

तीर्थ ॥ २० ॥ द्वारका के मध्यमें स्थितहैं उसको कैसे कृष्णचन्द्रजीने छोड़दिया देवताओं से घिरी व पुण्यवान् जनों से घिरी तथा पुण्यदायिनी ॥ २१ ॥ उस द्वारकापुरी को इसप्रकार छोड़कर कैसे प्रभासक्षेत्रमें स्थित हुये जो कि देवताओं व मनुष्यों के स्वामी व संसार को पैदा करनेवाले विष्णु हैं ॥ २२ ॥ वे किसलिये द्वारका को छोड़कर प्रभासक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्तहुये जो एकही विष्णुजी मनुष्यों के मनोमयचक्र को घुमाते हैं ॥ २३ ॥ उन चक्रधारियों में श्रेष्ठ विष्णुजी ने प्रभासक्षेत्र में कैसे मृत्यु किया है जोकि संसार के सब मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥ २४ ॥ वे भगवान् विष्णुजी कैसे प्रभासक्षेत्र में स्थितहुये व जिन भूतात्मा विष्णुजी ने महाभूतों

(पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,आकाश) को धारण किया और निर्माण कियाहै ॥२५॥ वे श्रीगर्भ विष्णुजी कैसे प्रभासगर्भ में मृत्यु को प्राप्त हुये और देवताओं की इच्छा से जिन्हों ने तीनपगों से लोकों को जीतकर ॥ २६ ॥ त्रिवर्ग (धर्म, कर्म, काम) में उत्तम आश्रयवाले संसार के मार्गको स्थापित किया है वे किसकारण द्वारकापुरी को छोड़कर प्रभासक्षेत्र में आश्रित हुये हैं ॥ २७ ॥ और अन्तसमयमें जलको पीकर और जलमय शरीर को करके जो देखे व न देखेहुये कर्म से संसारभरको एकार्णव कियाहै ॥ २८ ॥ हे पार्वतीपते, शंभो ! बड़े दुःखकी बात है कि वे कैसे प्रभासक्षेत्र में मृत्युको प्राप्तहुये व पुराणों में पुराणात्मा जो विष्णुजी वाराहशरीरमें स्थित

निभृतात्मा योदधारचकारच ॥ २५ ॥ श्रीगर्भस्सकथंगर्भे प्रभासेपञ्चतांगतः ॥ येनलोकान्क्रमैर्जित्वा त्रिभिश्चत्रिदशेप्सया ॥ २६ ॥ स्थापितोजगतोमार्गः त्रिवर्गप्रवराश्रयः ॥ कस्मात्सद्वारकांहित्वा प्रभासक्षेत्रमाश्रितः ॥ २७ ॥ योन्तकालेजलंपीत्वा कृत्वातोयमयंवपुः ॥ लोकमेकार्णवंचक्रे दृष्टादृष्टेनकर्मणा ॥ २८ ॥ हाकथंपञ्चतांप्राप्तंशम्भोहेपार्वतीपते ॥ यःपुराणेपुराणात्मा वाराहंवपुरास्थितः ॥ २९ ॥ उद्दधारमहींकृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ॥ सकथंत्यक्तवान्गात्रं प्रभासेपापनाशने ॥ ३० ॥ एवंसैंहंवपुःकृत्वा हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ सकथन्देवदेवेशः प्रभासंक्षेत्रमाश्रितः ॥ ३१ ॥ सहस्रचरणन्देवं सहस्राक्षंमहाप्रभम् ॥ सहस्रशिरसंवेदा यमाहुर्वैयुगेयुगे ॥ ३२ ॥ तत्याजसकथन्देवः प्रभासेस्वंकलेवरम् ॥ नाभ्यामेवसमुद्भूतं यस्यपैतामहंगृहम् ॥ ३३ ॥ एकार्णवगतेलोके तत्पङ्कजमपङ्कजम् ॥ येनोद्भूतंक्षणेनैव प्र

हुये ॥ २९ ॥ और जो पर्वत, वन व काननों समेत समस्तपृथ्वी को ऊपर लेआये उन्हीं ने पापनाशक प्रभासक्षेत्र में कैसे शरीर को त्याग किया है ॥ ३० ॥ ऐसे ही जिन्होंने नृसिंहशरीर को धारणकर हिरण्यकशिपु को मारा है वे देवदेवेश विष्णुजी कैसे प्रभासक्षेत्र में टिके हैं ॥ ३१ ॥ वेदलोग युग २ में जिन विष्णुदेव को सहस्रपाद व सहस्रलोचन, महाप्रभावान् और सहस्रमस्तकोंवाले कहते हैं ॥ ३२ ॥ उन विष्णुदेवजी ने प्रभासक्षेत्र में कैसे शरीरको त्याग कियाहै जिन विष्णुजी की नाभि में ब्रह्मा का घर उत्पन्न हुआ है ॥ ३३ ॥ और जब संसारभर एकार्णव होगया तब वह उत्पन्न हुआ कमल जिनसे क्षण भरमें बिन कमल होगया क्या वे

विष्णुजी प्रभासक्षेत्र में टिके हैं ॥ ३४ ॥ और समुद्र के उत्तर भाग में सनातनयोग में स्थित होकर जो क्षीरोद समुद्र में शयन करते हैं शत्रुवीरों के नाशक उन ॥ ३५ ॥ परमेश्वर ने प्रभासक्षेत्र में कैसे शरीर को त्याग किया है और जिन्होंने देवताओं को हव्यभोजी व पितरों को भी कव्यभोजी किया है ॥ ३६ ॥ वे देवदेवेश विष्णुजी कैसे प्रभासक्षेत्र में स्थितहुये और संसारके हितके लिये जो विष्णुजी युगों के अनुसार रूप करके ॥ ३७ ॥ उनको उधारते हैं वे विष्णुजी कैसे प्रभासक्षेत्र में स्थित हुये और तीनवर्ण, तीनलोक, तीनवेदों में उत्पन्न कर्म व तीन अग्नियां ॥ ३८ ॥ और त्रैलोक्य, तीनकर्म, तीनवेद व तीनगुण और पहलेही

भासस्थस्सकिंहरिः ॥ ३४ ॥ उत्तरांशेसमुद्रस्यक्षीरोदस्यामृतोदधौ ॥ यश्शेतेशाश्वतंयोगमास्थायपरवीरहा ॥ ३५॥ सकथंत्यक्तवान्देहं प्रभासेपरमेश्वरः ॥ हव्यादांश्चसुरांश्चक्रेकव्यादांश्चपितॄनपि ॥ ३६॥ सकथन्देवदेवेशः प्रभासंक्षेत्र माश्रितः ॥ युगानुरूपंयःकृत्वा रूपंलोकहितायवै ॥ ३७॥ तान्समुद्धरतेदेवस्सकथंक्षेत्रमाश्रितः ॥ त्रयोवर्णास्त्रयोलोका स्त्रैविद्यंपावकास्त्रयः ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यंत्रीणिकर्माणि त्रयोवेदास्त्रयोगुणाः ॥ सृष्टंयेनपुरैवेदं सकथंक्षेत्रमाश्रितः ॥ योग तिर्धर्मयुक्तानामगतिःपापकर्मणाम् ॥ ३९ ॥ चातुर्वर्ग्यस्यप्रभवः चातुर्वर्ग्यस्यरक्षिता ॥ चातुर्वेदस्ययोवेत्ता चातुराश्रम्य संयुतः ॥ ४० ॥ कस्मात्सद्वारकांहित्वा प्रभासेपञ्चताङ्गतः ॥ दिगन्तरंमनोभूमिरापोवायुर्विभावसुः ॥ ४१ ॥ चन्द्रस्सूर्य स्स्वयंज्योतिर्युगेशःक्षणदातमः ॥ यंपरंश्रयतेज्योतिर्यम्परंश्रयतेतपः ॥ ४२ ॥ यंपरम्परतःप्राहुः परंयःपरमात्म

जिन्होंने इस संसार को रचा है वे कैसे क्षेत्र में स्थित हुये हैं और धर्मसंयुत मनुष्यों की जो गतिहैं व पाप कर्मियों की जो अगति हैं ॥ ३९ ॥ वे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष कर्म के जो उत्पत्ति स्थान और इसी चतुर्वर्ग के जो रक्षक हैं और जो चारोंवेदोंके जाननेवाले व जो चारोंआश्रमों के कर्मों से संयुत हैं ॥ ४० ॥ वे कैसे द्वारकापुरीको छोड़कर प्रभासक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्तहुये हैं दिशाओं का अन्तर, मन, भूमि, जल, पवन, अग्नि ॥ ४१ ॥ वे चन्द्रमा, सूर्य, स्वयंज्योति, युगेश व रात्रि व अन्धकार जिस उत्तमज्योति के आश्रित है और उत्तम तप जिनके आश्रित होता है ॥ ४२ ॥ व वेद जिसको परे से भी परे कहते हैं और जो उत्कृष्ट लक्ष्मीवान् है

और सूर्यादिकों में जो ध्यान करने योग्य व जो दैत्यों के नाशक व व्यापकहैं ॥ ४३ वे देवकीनन्दन कैसे प्रभासक्षेत्रमें सिद्धि को प्राप्त हुये हैं व जो युगान्तोंके नाशक तथा जो लोकान्तकों के नाशकरनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ और संसार की मर्यादाओं की जो मर्यादहैं और मध्यकर्मों के जो मध्य हैं और जो वेदजाननेवालों के ज्ञाता व जन्म-वाले जीवों के जो स्वामी हैं ॥ ४५ ॥ और प्राणियों के मध्यमें मर्यादाभूत तथा अग्निमार्गीजनों के अग्निभूत व मनुष्योंके मध्यमें मनुभूत व तपस्वियों के मध्यमें तप-स्याभूत ॥ ४६ ॥ व नीतिभूतों के विनय और तेजवानोंके भी तेज तथा शरीरधारियों के शरीर व गतिवानोंकी भी जो गतिहै ॥ ४७ ॥ वे विष्णु जी कैसे द्वारकापुरी

तान् ॥ आदित्यादिषुयोध्येयो यश्चदैत्यान्तकोविभुः ॥ ४३ ॥ सकथन्देवकीसूनुः प्रभासेसिद्धिमेयिवान् ॥ युगान्तअन्तकोयस्तु यश्चलोकान्तकान्तकः ॥ ४४ ॥ सेतुर्योलोकसेतूनां मध्योवैमध्यकर्मणाम् ॥ वेत्तायोवेदविदुषां प्रभुर्यःप्रभवात्मनाम् ॥ ४५ ॥ सीमभूतस्तुभूतानामग्निभूतोग्निवर्त्मनाम् ॥ मनुष्याणांमनूभूतः तपोभूतस्तपस्विनाम् ॥ ४६ ॥ विनयोनयभूतानां तेजस्तेजस्विनामपि ॥ विग्रहोविग्रहाणाञ्च गतिर्गतिमतामपि ॥ ४७ ॥ सकथंद्वारकांहित्वा प्रभासंसमुपाश्रितः ॥ आकाशप्रभवोवायुर्वायुप्राणोहुताशनः ॥४८ ॥ देवाहुताशनप्राणाः प्राणाग्निर्मधुसूदनः ॥ सकथंह्यत्यजत्प्राणान्प्रभासक्षेत्रमाश्रितः ॥४९ ॥ इतिप्रोक्तस्तदादेव्या शङ्करोलोकशङ्करः ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यं पार्वतींद्विजसत्तमाः ॥ ५० ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि प्रभासक्षेत्रविस्तरम् ॥ ५१ ॥ रहस्यंसर्वपापघ्नं देवानामपिदुर्लभम् ॥ देविक्षेत्राण्यनेकानि पृथिव्यांमन्तिभामिनि ॥ ५२ ॥ तीर्थानिकोटिसंख्यानि प्रभावास्तेष्वसंख्यया ॥ असंख्ये

को छोडकर प्रभासक्षेत्रमें भलीभांति आश्रित हुये पवन से आकाश उत्पन्न होताहै व पवन का प्राण अग्निहै ॥ ४८ ॥ और अग्निप्राणवाले देवताहैं व अग्नि के प्राण विष्णुजी हैं उन विष्णुजीने प्रभासक्षेत्र में टिककर कैसे प्राणों को त्यागा है ॥ ४९ ॥ उससमय लोकों का कल्याण करनेवाले शंकरजी से पार्वतीदेवी ने ऐसा कहा तब हे द्विजोत्तमो ! हँसतेहुये शिवजी पार्वतीजी से बोले ॥ ५० ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं प्रभासक्षेत्र के विस्तार को कहता हूं ॥ ५१ ॥ जो गुप्तचरित्र कि समस्तपातकों का नाशक व देवताओं को भी दुर्लभहै हे भामिनि, देवि ! पृथ्वी में अनेकोंतीर्थ हैं ॥ ५२ ॥ जो करोड़ों संख्यकतीर्थ हैं उनमें असंख्य प्रभाव हैं और

असंख्य प्रभाववाला प्रभासक्षेत्र कहागया है ॥५३॥ ब्रह्मतत्त्व, विष्णुतत्त्व व रुद्रतत्त्व होताहै और हे पार्वतीजी ! अन्य तीर्थों में संयोग होनेपर तत्त्व होना दुर्लभ है ॥ ५४ ॥ हे देवदेवेशि ! प्रभासक्षेत्र में तीनतत्त्व कहेगये हैं और लोकों के पितामह ब्रह्माजी चौबीसतत्त्वों से संयुत हैं ॥ ५५ ॥ हे प्रिये ! वे बालरूपी ऐसे नाम से उस स्थान में स्थित हैं और पच्चीसतत्त्वों के स्वामी व देवताओं में अग्रगण्य विष्णुजी ॥ ५६ ॥ उस स्थान में स्थित हैं जो कि हे शुभे ! दैत्यों के साक्षात् नाशक हैं और हे देवि ! छत्तीसतत्त्वों से संयुत मैं तुम समेत ॥ ५७ ॥ हे महाभागे ! पापनाशक प्रभासक्षेत्र में बसताहूं हे शुभे ! इसप्रकार तत्त्वमय क्षेत्र

यप्रभावंहि प्रभासंपरिकीर्तितम् ॥ ५३ ॥ ब्रह्मतत्त्वंविष्णुतत्त्वं रुद्रतत्त्वंतथैवच ॥ तत्त्वभूयस्समायोगे दुर्लभोन्येषुपार्वति ॥ ५४ ॥ प्रभासेदेवदेवेशि तत्त्वानांत्रितयंस्मृतम् ॥ चतुर्विंशतितत्त्वैश्च ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ५५ ॥ बालरूपीचनाम्नाच तत्रस्थानेस्थितःप्रिये ॥ पञ्चविंशतितत्त्वानामधिपोदेवताग्रणीः ॥ ५६ ॥ तस्मिन्स्थानेस्थितस्साक्षाद्दैत्यानामन्तकश्शुभे ॥ अहन्देवित्वयासार्द्धं षट्त्रिंशत्तत्त्वसंयुतः ॥ ५७ ॥ निवसामिमहाभागे प्रभासेपापनाशने ॥ एवन्तत्त्वमयंक्षेत्रं सर्वतीर्थमयंशुभे ॥ प्रभासमेवजानीहि माकार्षीस्संशयंकंचित ॥ ५८ ॥ अपिकीटपतङ्गाये म्रियन्ते तत्रयेनराः ॥ तेपियान्तिपरंस्थानं नात्रकार्याविचारणा ॥ ५९ ॥ स्त्रियोम्लेच्छाश्चशूद्राश्च पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ प्रभासेतुमृतादेवि लोकंशैवंव्रजन्तिते ॥ ६० ॥ कामक्रोधेनसंयुक्तास्तृष्णाजालेनमोहिताः॥अधर्मेनिरतायेच येचतिष्ठन्ति पापिनः ॥ ब्रह्मघ्नाश्चैवयेचान्ये येचान्येगुरुतल्पगाः ॥ ६१॥ मातृहन्तानरोयस्तु पितृहन्तातथैवच ॥ तेसर्वेमुक्तिमाया

व समस्ततीर्थों में प्रधान प्रभासही क्षेत्रको जानिये कहीं सन्देह मत कीजियेगा ॥ ५८ ॥ वहांपर जो मनुष्य व जो कीटपतंग भी मरते हैं वे भी उत्तम स्थानको प्राप्त होते हैं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ५९ ॥ हे देवि ! स्त्री, शूद्र, म्लेच्छ, पशु, पक्षी व मृगा जो प्रभासक्षेत्र में मरते हैं वे शिवजी के लोक को जाते हैं ॥ ६० ॥ और काम, क्रोध से संयुत व तृष्णा के जाल से मोहित और जो अधर्म में तत्पर हैं व जो पापी स्थित हैं और जो अन्य ब्रह्मघाती हैं व जो अन्य गुरुकी शय्या पै बैठने-

वाले हैं ॥ ६१ ॥ और जो मनुष्य माताको मारनेवाला व जो पिताको मारनेवाला है वे सब मुक्तिको प्राप्तहोते हैं फिर शुभकर्मी मनुष्यों को क्या कहना है ॥ ६२ ॥ यह जानकर हे महादेवि ! दैत्यों के विनाशक उन कृष्णजी ने प्रभासक्षेत्र में प्राप्त होकर शरीर को त्याग किया है और जो बड़ी तृष्णा से बँधे हैं व लोभ के वश हैं ॥ ६३ ॥ तथा जो अज्ञानरूपी अन्धकार से घिरे हैं व माया के तत्त्व में स्थित हैं और जो काल की फँसरी में बँधे हैं वे उत्तमगतिको प्राप्तहोते हैं ॥ ६४ ॥ महादेवजी बोले कि हे भामिनि ! मैं तुमसे अन्य भी गुप्तचरित्र को कहताहूं हे वरानने ! जो किसी से नहीं कहागया है उसको मैं तुमसे कहताहूं ॥ ६५ ॥ कि पृथ्वीके भाग में ब्रह्माजी

न्ति किम्पुनश्शुभकर्मिणः ॥ ६२ ॥ इतिज्ञात्वामहादेवि दैत्यानामन्तकोहरिः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य त्यक्तवान्सकलेवरम् ॥ तृष्णयापरयाबद्धा लोभेनचवशीकृताः ॥ ६३ ॥ अज्ञानतिमिराक्रान्ता मायातत्त्वेचसंस्थिताः ॥ कालपाशेन येबद्धास्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ६४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अन्यच्चकथयिष्यामि रहस्यंतवभामिनि ॥ यन्नकस्यचिदाख्यातं तत्तेवच्मिवरानने ॥ ६५ ॥ पृथ्वीभागेस्थितोब्रह्मा अपाम्भागेजनार्द्दनः ॥ तेजोभागेस्थितोरुद्रो वायुभागेधनेश्वरः ॥ ६६ ॥ आकाशभागसंस्थाने स्थितस्साक्षात्सदाशिवः ॥ यस्यदेवस्ययोभागस्तस्मिंस्तीर्थानियानिवै ॥ ६७ ॥ तानि प्रियाणिदेवेशि तस्यतस्यनसंशयः ॥ एवंज्ञात्वामहादेवि सर्वदेवमयोहरिः ॥ ६८ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य त्यक्तवान्स्वकलेवरम् ॥ ६९ ॥ अमरेशंप्रभासञ्च नैमिषंपुष्करन्तथा ॥ आषाढिञ्चैवदण्डंच भारभूतिञ्चलाङ्गलिम् ॥ ७० ॥ आदिगुह्याष्टकंह्येतज्जलावरणसंस्थितम् ॥ हरिश्चन्द्रञ्चश्रीशैलं जालेशंप्रीतिकेश्वरम् ॥ ७१ ॥ महाकालंमध्यमञ्च केदारं

स्थित हैं व जलों के भाग में विष्णुजी स्थित हैं और अग्नि के भाग में शिवजी स्थित हैं व पवन के भाग में कुबेर हैं ॥६६॥ और आकाशभागके संस्थान में साक्षात् सदाशिवजी टिके हैं जिस देवता का जो भाग है उसमें जो तीर्थ हैं ॥ ६७ ॥ हे देवेशि ! वे उस देवताको निरसन्देह प्रिय हैं ऐसा जानर हे महादेवि ! समस्तदेवमय कृष्णजीने ॥ ६८ ॥ प्रभासक्षेत्र में प्राप्त होकर अपने शरीर को छोड़ा है ॥ ६९ ॥ अमरेश, प्रभास, नैमिष व पुष्कर, आषाढि, दंड, भारभूति और लांगलि ॥ ७० ॥ यह आदि

गुह्याष्टक तीर्थ जलके आवरण से स्थित है और हरिश्चन्द्र, श्रीशैल, जालेश, प्रीतिकेश्वर ॥ ७१ ॥ महाकाल, मध्यम, केदार व भैरव यह अति गुह्याष्टक अग्नि के तत्त्व में स्थित है ॥ ७२ ॥ और गया, काशी, कुरुक्षेत्र व कनखल (हरिद्वार) तीर्थ, विमल, अट्टहास, महेन्द्र व भीमसंज्ञक क्षेत्र ॥ ७३ ॥ यह अष्टक गुप्त से भी गुप्त है जोकि मैंने तुमसे कहा और वस्त्रापथ, रुद्रकोटि, जेष्ठेश्वर, महालय ॥ ७४ ॥ गोकर्ण, रुद्रकर्ण, कर्णाद्व व स्थापसंज्ञक हे वरानने ! आकाशतत्त्व में स्थित यह पवित्राष्टक है ॥ ७५ ॥ और छागल, बुडसुंड, माकोट, अचलेश्वर, कालंजरवन व शंकुकर्ण, स्थलेश्वर ॥ ७६ ॥ व शूलेश्वर यह अष्टक तीर्थ पृथ्वीतत्त्व में स्थित

भैरवन्तथा ॥ अतिगुह्याष्टकंह्येतत्तेजस्तत्त्वेप्रतिष्ठितम् ॥ ७२ ॥ गयाकाशीकुरुक्षेत्रं तीर्थंकनखलंतथा ॥ विमलंचाट्ट हासंच महेन्द्रंभीमसंज्ञकम् ॥ ७३ ॥ गुह्याद्गुह्यतरंह्येतत्प्रोक्तंयत्तेष्टकंमया ॥ वस्त्रापथंरुद्रकोटी ज्येष्ठेश्वरमहालयौ ॥ ७४ ॥ गोकर्णंरुद्रकर्णञ्च कर्णाद्वंस्थापसंज्ञकम् ॥ पवित्राष्टकमेतद्धि आकाशस्थंवरानने ॥ ७५ ॥ छागलंबुडसुण्डञ्च माकोट्टमचलेश्वरम् ॥ कालञ्जरंवनश्चैव शङ्कुकर्णंस्थलेश्वरम् ॥ ७६ ॥ शूलेश्वरञ्चविख्यातं पृथ्वीतत्त्वेतुसंस्थित म् ॥ एतानितत्त्वतीर्थानि सर्वाणिकथितानिते ॥ ७७ ॥ यायस्मिन्देवतातत्त्वे सातन्माहात्म्यसूचका ॥ औदकञ्चम हातत्त्वं विष्णोश्चातिप्रियंप्रिये ॥ ७८ ॥ जलशायीस्मृतस्तेन नारायणइतिश्रुतिः ॥ अपान्तत्त्वेतुतीर्थानि यानिप्रोक्ता नितेमया ॥ ७९ ॥ तानिप्रियाणिदेवेशि ध्रुवंनारायणस्यवै ॥ उदकतत्त्वेचयत्तत्त्वं तस्मिन्प्राभासिकंस्मृतम् ॥ ८० ॥ तत्रदेवोलयंयाति हरिर्जन्मनिजन्मनि ॥ सवासुदेवस्सूक्ष्मात्मा परात्परतरेस्थितः ॥ ८१ ॥ सशिवःपरमंव्योम अना

प्रसिद्ध है ये सब तत्त्वतीर्थ तुमसे कहेगये ॥ ७७ ॥ जिस तत्त्व में जो देवता स्थित है वह उसके माहात्म्य का सूचक है हे प्रिये ! जलवाला महातत्त्व विष्णुजी को बहुत प्रिय है ॥ ७८ ॥ इसीकारण नारायण जलशायी कहेगये हैं ऐसी वेदकी ऋचा है मैंने तुमसे जिन तीर्थों को जलों के तत्त्व में कहा है ॥ ७९ ॥ हे देवेशि ! वे तीर्थ नारायणजी को निश्चयकर प्यारे हैं और जलतत्त्वमें जो तत्त्व है उसमें प्रभासक्षेत्र कहागया है ॥ ८० ॥ उसी में विष्णुजी प्रत्येकजन्म में लीनहोजाते हैं व सूक्ष्मात्मा

विष्णुजी परे से भी परे स्थित हैं ॥ ८१ ॥ और जन्म व मृत्युसे रहित वे व्यापकशिवजी उत्तम आकाशतत्त्व में स्थित हैं उनसे परे समस्तशास्त्रों में नहीं है ॥ ८२ ॥
व विशेषकर सिद्धान्तशास्त्र व वेन्दान्तशास्त्रों, में उनसे परे अन्य नहीं है और हेयशस्विनि ! उन शास्त्रों में तुम मुझसे भिन्न नहींहो किन्तु मुझ समेत हो ॥ ८३ ॥
उस स्थान में चार लिंगोंसमेत साक्षात विष्णुजी प्रत्यक्षता से स्थित हैं परन्तु इसको कोई नहीं जानता है ॥ ८४ ॥ जो लिंग कि मुर्गे के अण्डेके प्रमाणभर व
कोई बहुत बड़े हैं जो कि सूर्य से व अग्नि तथा विभूतियोंसे घिरे हैं ॥ ८५ ॥ उनके दर्शनही से करोड़लिंगोंके पूजनवाला फलहोता है उसीकारण यहक्षेत्र सदैव ब्रह्मा-

दिनिधनोविभुः ॥ तस्मात्परतरंनास्ति सर्वशास्त्रागमेषुच ॥ ८२ ॥ सिद्धान्तागमवेदान्तदर्शनेषुविशेषतः ॥ तेषुचैव
नभिन्नात्वं मयासार्द्धंयशस्विनि ॥ ८३ ॥ तस्मिन्स्थानेहरिस्साक्षात् प्रत्यक्षेणतुसंस्थितः ॥ लिङ्गैश्चतुर्भिस्संयुक्तो ज्ञा
तंचैतन्नकेनचित ॥ ८४ ॥ कुक्कुटाण्डकमानानि महास्थूलानिकानिचित ॥ सूर्येणवेष्टितान्येव वह्निनाचविभूतिभिः॥
८५ ॥ तेषांदर्शनमात्रेण कोटिलिङ्गार्चनंफलम् ॥ तस्मादिदंमहाक्षेत्रं ब्रह्माद्यैस्सेव्यतेसदा ॥ ८६ ॥ श्रुतिमद्भिश्चविप्रे
न्द्रैस्संसिद्धैश्चतपस्विभिः ॥ प्रतिमासंतथाष्टम्यां प्रतिमासंचतुर्दशीम् ॥ ८७ ॥ शशिभानूपरागेच कार्त्तिक्यान्तुविशे
षतः ॥ प्रभासस्थानिलिङ्गानि पूजयामिवरानने ॥ ८८ ॥ सन्निहत्यकुरुक्षेत्रे सर्वतीर्थायुतैस्सह ॥ पुष्करन्नैमिषंचैव प्रया
गंसपृथूदकम् ॥ ८९ ॥ षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोटिशतानिच ॥ माघ्यांमाघ्यांसमेष्यन्ति सरस्वत्यब्धिसङ्गमे ॥
९० ॥ स्मरणात्तस्यतीर्थस्य नामसङ्कीर्तनादपि ॥ मृतिकालभवाद्वापि पापंत्यजतिसुप्रभे ॥ ९१ ॥ आनर्तसारंसौम्य

दिकों से सेवन कियाजाता है ॥ ८६ ॥ व वेदवित द्विजोत्तमों और भलीभांति सिद्धतपस्वियों से सेवन कियाजाता है प्रत्येकमहीने की अष्टमी तिथि में व प्रत्येक
महीने की चतुर्दशी को ॥ ८७ ॥ और चन्द्रमा व सूर्यों के ग्रहण में तथा विशेषकर कार्त्तिकी में हे वरानने ! प्रभासक्षेत्र में स्थित लिंगों को मैं पूजताहूं ॥ ८८ ॥ कुरु-
क्षेत्र में सन्निधानकर समस्त दशहज़ार तीर्थों समेत पुष्कर, नैमिष, प्रयाग, पृथूदक ॥ ८९ ॥ और साठकरोड़ सौ तीर्थ व साठहज़ार तीर्थ माघी माघीपौर्णमासी में सर-
स्वती और समुद्रके संगम में भलीभांति आते हैं ॥९०॥ हे सुप्रभे ! उस तीर्थके स्मरण से व नाम कीर्तन से भी और मृत्यु के समय में वहांहोने से भी मनुष्य पातक

को त्यागदेता है ॥ ९१ ॥ आनर्तदेशमें सारांश रूप व सौम्य तथा संसार का भूषणरूप दिव्यपंचनद पुण्यदायक व आदिगुह्य तथा बड़े ऐश्वर्यवाला है ॥ ९२ ॥ और सिद्धिरत्नाकर नामक तीर्थ व समुद्रावरण, धर्माधार, दलाधार और शिवजीका गर्भगृह ॥ ९३ ॥ और समस्तपातकों का नाशक सर्वदेवनिवास तीर्थ है हे प्रिये ! कल्प कल्पमें इस क्षेत्रके नाम अलग २ हैं ॥ ९४ ॥ व हे सुरसुन्दरि ! विस्तारादिकोंको गुप्त जानिये हे देवि ! पुरातन समय आदिवाले कल्पमें प्रमोदन ऐसा कहागया है ॥९५॥ उसके उपरान्त नन्दन नाम हुआ उस के भी उपरान्त शिवनाम हुआ और शिवके उपरान्त उग्र फिर उसके उपरान्त भद्रकनाम हुआ ॥ ९६ ॥ उसके उपरान्त समिंधम

ञ्च तथाभुवनभूषणम् ॥ दिव्यंपञ्चनदंपुण्यमादिगुह्यंमहोदयम् ॥ ९२ ॥ सिद्धरत्नाकरन्नाम समुद्रावरणन्तथा ॥ धर्माधारदलाधारं शिवगर्भगृहंतथा ॥ ९३ ॥ सर्वदेवनिवासञ्च सर्वपातकनाशनम् ॥ अस्यक्षेत्रस्यनामानि कल्पेकल्पे पृथक्प्रिये ॥ ९४ ॥ आयामादीनिजानीहि गुह्यानिसुरसुन्दरि ॥ आद्येकल्पेपुरादेवि प्रमोदनमितिस्मृतम् ॥ ९५ ॥ नन्दनंपरतस्तस्य तस्यापिपरतश्शिवम् ॥ शिवात्परतरंचोग्रं भद्रकंपरतःपुनः ॥ ९६ ॥ समिन्धमंपरंतस्मात् कामदंपरतश्शुभे ॥ सिद्धिदंचापिधर्मज्ञं विश्वरूपञ्चमुक्तिदम् ॥ ९७ ॥ तथाश्रीपद्मनाभञ्च श्रीवत्सन्तुमहाप्रभुम् ॥ तथाचपापसंहारं सर्वकामप्रदंतथा ॥ ९८ ॥ मोक्षमार्गंवरारोहे तथादेविसुदर्शनम् ॥ धर्मगर्भन्तुधर्माणां प्रभासंपापनाशनम् ॥ ९९ ॥ अतःपरन्तुभविता उत्पलावर्त्तिकेतिच ॥ क्षेत्रस्यमध्येयद्देवि ममगर्भगृहंस्मृतम् ॥ १०० ॥ तस्यनामानितेदेवि कथितान्यनुपूर्वशः ॥ श्रुत्वानामान्यशेषाणिक्षेत्रमाहात्म्यमेवच ॥ १ ॥ तेषान्तुवाञ्छितासिद्धिर्भविष्यतिनसंशयः ॥ एतत्कीर्त्तय

व हे शुभे ! उसके बाद कामदहुआ और सिद्धिदायक, धर्मज्ञ, विश्वरूप और मुक्तिदायक ॥ ९७ ॥ वैसेही श्रीपद्मनाभ, श्रीवत्स, महाप्रभु व पापसंहारक और सर्वकामप्रद ॥ ९८ ॥ व हे वरारोहे, देवि ! मोक्षमार्ग व सुदर्शन और धर्मों के मध्यमें धर्मगर्भ व पापनाशक प्रभास ॥ ९९ ॥ और इसके उपरान्त उत्पलावर्तिक ऐसानाम होगा हे देवि ! क्षेत्रके मध्य में जो मेरा गर्भगृह कहागया है ॥ १०० ॥ हे देवि ! उसके नाम तुम से क्रमपूर्वक कहे गये समस्तनामों को और क्षेत्र के माहात्म्य को सुनकर ॥ १ ॥

उन मनुष्यों का अभिलाष सिद्ध होता है इस में सन्देह नहीं है त्रिकाल में इसको कीर्तन करते हुये पुरुष को बड़ाऐश्वर्य प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और सन्ध्या समय के मध्य का पाप व दिन रातवाला पाप नष्ट होजाता है और जो पाखंडी व जो थोड़ीबुद्धिवाले भी होते हैं ॥ ३ ॥ और मूर्ख व जीवघाती जो ब्राह्मण हैं वे भी मरकर स्वर्ग को जाते हैं व इस क्षेत्र के बीच में बारहयोजन के मध्य में ॥ ४ ॥ हे देवेशि ! अन्य हज़ारों उपक्षेत्र हैं कोई कमलरूपी व कोई यवाकार हैं ॥ ५ ॥ और कोई त्रिकोण, षट्कोण व दंडाकार हैं और कोई चन्द्रार्धविम्ब के भेदवाले व कोई चौकोनों के भेदों से हैं ॥ ६ ॥ शिवजी के क्षेत्रके मध्य में ब्रह्मादिक देव-

अपियेदाम्भिकाश्चैव येचसन्त्यल्पवुद्धयः ॥ ३ ॥ सन्ध्याकालान्तरंपापमहोरात्रंविनश्यति ॥ मानस्य त्रिकालन्तुमहोदयम् ॥ २ ॥ मूढाजीवान्तकाविप्रास्तेपियान्तिमृतादिवम् ॥ अस्यक्षेत्रस्यमध्येतु रवियोजनमध्यतः ॥ ४ ॥ उपक्षेत्राणिदेवेशि सन्त्यन्यानिसहस्रशः ॥ कानिचित्पद्मरूपाणि यवाकाराणिकानिचित् ॥ ५ ॥ त्रिकोणषट्ककोणानि दण्डाकाराणिकानिचित् ॥ चन्द्रविम्बार्द्धभेदानि चतुरस्रप्रभेदतः ॥ ६ ॥ ब्रह्मादिदैवतानीशे क्षेत्रमध्येस्थितानितु ॥ कानिचिद्योजनार्द्धानि तदर्द्धार्द्धानिकानिचित् ॥ ७ ॥ निवर्त्तनप्रमाणेन दण्डमानानिकानिचित् ॥ गोचर्ममात्रमध्यानिकानिचिद्धनुषान्तरम् ॥ ८ ॥ यज्ञोपवीतमात्राणि प्रभासेसन्तिकोटिशः ॥ अङ्गुल्यष्टमभागोपि नसोस्तिकमलेक्षणे ॥ ९ ॥ न सन्तियस्मिंस्तीर्थानि दिव्यानिचनभस्तले ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तिष्ठन्तिप्रलयादनु ॥ १० ॥ केदारेचैवयल्लिङ्गं यच्चदेविमहालये ॥ मध्यमेश्वरसंज्ञञ्च तथापाशुपतेश्वरम् ॥ ११ ॥ शङ्कुकर्णेश्वरञ्चैव भद्रेश्वरमथापिच ॥ सोमेश्वरमथैकाम्र

ताओंवाले तीर्थ स्थित हैं कोई अर्धयोजन प्रमाणभर व कोई उसके आधे से आधे याने आधकोशभर प्रमाणवाले कोई तीर्थ हैं ॥ ७ ॥ और कोई बारहबांस के प्रमाण भर और कोई दण्डा के प्रमाण भर थे व कोई गोचर्ममात्र मध्यवाले और कोई धनुषभर मध्यभागवाले हैं ॥ ८ ॥ और प्रभासक्षेत्र में करोड़ों तीर्थ यज्ञोपवीत के प्रमाण भरहैं हे कमलेक्षणे ! वह अंगुली के आठवांभाग भी स्थान नहीं है ॥ ९ ॥ कि जिसमें दिव्यतीर्थ न होवैं और प्रलयके पश्चात् आकाशमें दिव्यतीर्थ प्रभासक्षेत्र में प्राप्त होकर स्थित रहते हैं ॥ १० ॥ हे देवि ! केदारक्षेत्र में जो लिंगहै व जो महालय में लिंग है व मध्यमेश्वरसंज्ञक और पाशुपतेश्वर ॥ ११ ॥

शंकुकर्णेश्वर और भद्रेश्वर,सोमेश्वर और एकाम्र,कालेश्वर व अजेश्वर ॥ १२ ॥ और भैरवेश्वर, ईशान तथा कायावरोहण व पुण्यप्रदायक चापटेश्वर तथा बादरिकाश्रम ॥ १३ ॥ व हे शुभे ! रुद्रकोटि, महाकोटि, श्रीपर्वत व देवदेवेश कपालीजी और फिर करवीर ॥ १४ ॥ व परमपुण्यदायक ॐकार, वशिष्ठाश्रम और हे देवि ! जहांपर एक करोड़ कामरूपी रुद्र हैं ॥ १५ ॥ व पृथ्वीतल में अन्य जो मेरे पुण्यदायक स्थान हैं वे प्रयागपूर्वक प्रभासक्षेत्र में बसते हैं ॥ १६ ॥ उत्तर में सूर्यकी कन्या यमुनाजी व दक्षिण में समुद्र स्थित है इस क्षेत्र का यह दक्षिण उत्तरका प्रमाण कहागया है ॥ १७ ॥ हे सुरसुन्दरि ! इसी मध्यको प्राप्त होकर पाताल से

कालेश्वरमजेश्वरम् ॥ भैरवेश्वरमीशानं तथाकायावरोहणम् ॥ चापटेश्वरपुण्यञ्च तथाबादरिकाश्रमम् ॥ १३ ॥ रुद्रकोटिमहाकोटीतथाश्रीपर्वतंशुभम् ॥ कपालीदेवदेवेशः करवीरन्तथापुनः ॥ १४ ॥ ॐकारंपरमंपुण्यं वशिष्ठाश्रममेवच ॥ यत्रकोटिःस्मृतादेवि रुद्राणांकामरूपिणाम् ॥ १५ ॥ यानिचान्यानिस्थानानि पुण्यानिममभूतले ॥ प्रयागंपुरतःकृत्वा प्रभासेनिवसन्तिच ॥ १६ ॥ उत्तरेरविपुत्रींतुदक्षिणेसागरस्थितः ॥ दक्षिणोत्तरमानोयं क्षेत्रस्यास्यप्रकीर्त्तितः ॥ १७ ॥ एतदन्तरमासाद्य तीर्थानिसुरसुन्दरि ॥ पातालादिकटाहान्तं तानितत्रवसन्तिवै ॥ १८ ॥ एवंज्ञात्वामहादेविसर्वदेवमयोहरिः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तत्याजस्वंकलेवरम् ॥ १९ ॥ दिव्यंममेदंचरितंहिरौद्रंश्रोष्यन्तियेपर्वणिसर्वदावा ॥ तेचापियास्यन्तिममप्रभावात्त्रिविष्टपंपुण्यजनाधिवासम् ॥ २० ॥ इतिकथितमशेषमेवचित्रं चरितमिदंतवदेविपुण्ययुक्तम् ॥ इतरमपितवापिवल्लभंयद्वदकथयामिमहोदयंमुनीनाम् ॥ १२१ ॥ इतिप्रभासक्षेत्रवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ८

लगाकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त जो तीर्थ हैं वे वहां बसते हैं ॥ १८ ॥ ऐसा जानकर हे महादेवि ! समस्तदेवमय श्रीकृष्णजी ने प्रभासक्षेत्रको प्राप्त होकर अपने शरीरको त्याग दिया है ॥ १९ ॥ मेरे इस दिव्य रौद्रचरित को जो मनुष्य पर्व में या सदैव सुनैंगे वे भी मेरे प्रभावसे पुण्यजनाधिवास स्वर्ग में जावैंगे ॥ २० ॥ हे देवि ! यह सबही पुण्यसंयुत अद्भुत चरित तुमसे कहा गया और अन्य भी जो तुमको प्याराहो उसको कहिये तो मुनियोंको बड़े ऐश्वर्य के देनेवाले उस चरितको कहूं ॥ १२१ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ॥

दो• । सूर्यनारि संज्ञा यथा गई विपिन तप हेत । सोइ नवम अध्याय में कथा सुहर्ष निकेत ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस समय इस प्रकार कही हुई विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाली और रोमांच से आच्छादित, सुन्दरी भौंहोंवाली पार्वती देवीजीने फिर पूछा ॥ १ ॥ पार्वतीदेवीजी बोलीं कि मैं धन्य हूं व पुण्यको कियेहूं और मैंने भलीभांतितपस्याको कियाहै जो कि महादेवजीसे मैंने इस क्षेत्रकी महिमाको सुना ॥ २ ॥ हे संसाररूपी समुद्र से उतारनेवाले, देवदेवेश, भगवन् सदाशिवजी ! मैंने पहले जो पूछा उस सब को आपने कहा ॥ ३ ॥ और फिर हे देवदेवेश, देवदेव, महेश्वरजी ! तुम्हारे वचनरूपी अमृत से रँगी हुई मैं प्रभास

सूतउवाच ॥ इतिप्रोक्तातदादेवी विस्मयोत्फुल्ललोचना ॥ रोमाञ्चकञ्चुकासुभ्रूः पुनःपप्रच्छभूसुराः ॥ १ ॥ देव्युवाच ॥ धन्याहंकृतपुण्याहंतपःसुचरितंमया ॥ यदस्यक्षेत्रमहिमा महादेवान्मयाश्रुतः ॥२॥ भगवन्देवदेवेश संसारार्णवतारक ॥ पृष्टन्तुयन्मयापूर्वं तत्सर्वंकथितंहर ॥ ३ ॥ पुनश्चदेवदेवेश त्वद्वाक्यामृतरञ्जिता ॥ नतृप्तिमधिगच्छामि देवदेवमहेश्वर ॥ ४ ॥ किञ्चित्प्रष्टुमनाभूत्वा प्रभासक्षेत्रविस्तरम् ॥ तन्मेकथयकामेश दयांकृत्वाजगत्प्रभो ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ पृथिव्यागर्भमध्यस्थं जम्बूद्वीपमितिस्मृतम् ॥ तच्चैवनवधाभिन्नं वर्षभेदेनसुन्दरि ॥ ६ ॥ तस्याद्यंभारतंवर्षं तच्चापिनवधास्मृतम् ॥ नवयोजनसाहस्रंदक्षिणोत्तरमानतः ॥ ७ ॥ अशीतिचसहस्राणि पूर्वपश्चायतंस्मृतम् ॥ उत्तरेहिमवानासीत् क्षारोदोदक्षिणेस्मृतः ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवि भारतंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ कृतंत्रेताद्वापरेच तिष्यंयुगचतु

क्षेत्र के विस्तार को कुछ पूछने के लिये मनवाली होकर तृप्ति को नहीं पाती हूं हे जगत्प्रभो, देवेशजी ! मेरे ऊपर दयाकर उस चरित्रको कहिये ॥ ४ । ५ ॥ महादेवजी बोले कि पृथ्वी के गर्भमध्य में स्थित जम्बूद्वीप ऐसा कहा हुआ द्वीप है हे सुंदरि ! खण्डों के भेद से वह नव प्रकारका भिन्न है ॥ ६ ॥ उसका पहला खण्ड भारतवर्ष है वह भी नव खण्डका कहागयाहै जो कि दक्षिण व उत्तर के प्रमाण से नव हज़ार योजन है ॥ ७ ॥ और असी हज़ार पूर्व पश्चिम को चौड़ा कहागया है उत्तर में हिमाचल पर्वत हुआ व दक्षिण में क्षारसमुद्र कहा गया है ॥ ८ ॥ हे देवि ! इसी बीच में उत्तम भारत क्षेत्र है और सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग ये

चारों युग ॥ ६ ॥ और युगों की अवस्था व चारों वर्ण के मनुष्य इसी भारतखण्ड में हैं और चार सौ, तीन सौ, दो सौ व एकसौ वर्षतक ॥ १० ॥ हे देवि ! क्रम-पूर्वक यहां सतयुगादिकों में मनुष्य जीते हैं मैंने चारपत्तोंवाले जो इस पृथ्वी के कमल को कहा है ॥ ११ ॥ इसके चारों दिशाओं में भारत इत्यादिक वर्ष पत्रहैं भारत, केतुमाल, कुरु व भद्राश्व ये चारों खण्ड हैं ॥ १२ ॥ मैंने जिस भारतनामक खण्ड को दक्षिण में कहा है कि जिसके दक्षिण, पश्चिम व पूर्व में समुद्र है ॥ १३ ॥ और इसके उत्तर में हिमाचल है जैसे कि धनुष की पनच होती है हे वरानने ! वही यह भारतखण्ड समस्त कर्मों का बीजहै ॥ १४ ॥ और यही अपने

ष्टयम् ॥ ९ ॥ अत्रैवैषायुगावस्था चातुर्वर्ण्यश्चवैजनः ॥ चत्वारित्रीणिचद्वेच तथैवैकंशरच्छतम् ॥ १० ॥ जीवन्त्यत्रन रादेवि कृतादिषुयथाक्रमात् ॥ यदेतत्पार्थिवंपद्मं चतुष्पत्रंमयोदितम् ॥ ११ ॥ वर्षाणिभारताद्यानि पत्राण्यस्यचतु र्दिशम् ॥ भारतंकेतुमालञ्चकुरुभद्राश्वमेवच ॥ १२ ॥ भारतन्नामयद्वर्षं दक्षिणेनमयोदितम् ॥ दक्षिणापरतोयस्य पूर्वे णचमहोदधिः ॥ १३ ॥ हिमवानुत्तरेचास्य कार्मुकस्ययथागुणः ॥ तदेतद्भारतंवर्षं सर्वबीजंवरानने ॥ १४ ॥ स्वकर्मभू मिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिःपुण्यपापयोः ॥ देवानामपिदेवेशि सदैवेहमनोरथः ॥ १५ ॥ अपिमानुष्यमाप्स्यामो भारतेप्रच्यु ताःक्षितौ ॥ भद्राश्वेश्वशिरोविष्णुर्भारतेकूर्मसंज्ञितः ॥ १६ ॥ वाराहकेतुमालेतु मत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥ तेपुनःक्षेत्रवि न्यासाद्विषयास्समवस्थिताः ॥ १७ ॥ चतुर्ष्वपिमहादेवि विग्रहोतिभयानकः ॥ भारतेयोमहादेवि कूर्मरूपेणसंस्थि तः ॥ १८ ॥ नक्षत्रग्रहविन्यासं तस्यतेकथयाम्यहम् ॥ प्राङ्मुखोभगवान्देवः कूर्मरूपोऽव्यवस्थितः ॥ १९ ॥ आक्रम्य

कर्मों की भूमिहै अन्यत्र पुण्य व पापकी प्राप्ति नहीं होती है हे देवेशि ! देवताओं को भी सदैव इस में अभिलाषा रहती है ॥ १५ ॥ कि पृथ्वी में गिरे हुये हमलोग भारतखण्ड में मनुष्यता को प्राप्त होवैं भद्राश्वखण्ड में हयग्रीव विष्णुजी हैं और भारतखण्ड में कूर्मसंज्ञक हैं ॥ १६ ॥ व केतुमालमें वाराह और उत्तर में मत्स्यरूपी विष्णुजी हैं और फिर क्षेत्रों के विभाग से वे देश स्थित हैं ॥ १७ ॥ हे महादेवि ! चारों खण्डों में भी बड़ा भयानक विष्णु का शरीर है हे महादेवि ! भारतखण्ड में जो कच्छपरूप से विष्णुजी स्थित हैं ॥ १८ ॥ उसके नक्षत्रों व ग्रहों के विन्यास को मैं तुमसे कहताहूं कि कूर्मरूपवाले भगवान् विष्णुदेवजी

पूर्वमुख होकर हे प्रिये ! नवखण्डोंवाले इस भारतखण्ड को आक्रमणकर टिके हैं नवखण्डों से स्थित भी उस कूर्म के नक्षत्रों को मुझसे सुनिये ॥ १९।२० ॥ कि कृत्तिका, रोहिणी व मृगशिरा ये तीन नक्षत्र कूर्मकी पीठपै प्राप्त हैं और आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य ये तीन नक्षत्र कूर्मरूपी विष्णुके मुखमें स्थितहैं ॥ २१ ॥ और हे प्रिये ! आश्लेषा, मघा व पूर्वाफाल्गुनी ये तीन नक्षत्र पूर्व दक्षिणके चरणमें स्थित हैं ॥ २२ ॥ और हे गिरिजे, सुरसुन्दरि ! उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा ये तीन नक्षत्र कूर्म की दाहिनी कोखि में कहेगये हैं ॥ २३ ॥ और स्वाती, विशाखा व अनुराधा ये तीन नक्षत्र कूर्मकी नासिका में कहेगये हैं व ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढ़ ये तीन नक्षत्र

भारतंवर्षं नवभेदमिदंप्रिये ॥ नवधासंस्थितस्यापि नक्षत्राणिनिबोधमे ॥ २० ॥ कृत्तिकारोहिणीसौम्यं त्रितयंकूर्मपृष्ठगम् ॥ रौद्रंपुनर्वसुःपुष्यं नक्षत्रत्रितयंमुखे ॥ २१ ॥ आश्लेषाख्यंतथापैत्र्यं फाल्गुनीप्रथमाप्रिये ॥ नक्षत्रत्रितयंपादमाश्रितंपूर्वदक्षिणम् ॥ २२ ॥ फाल्गुनीचोत्तराहस्तं चित्रानक्षत्रकंस्मृतम् ॥ कूर्मस्यदक्षिणेकुक्षौ गिरिजेसुरसुन्दरि ॥ २३ ॥ स्वातीविशाखामैत्रञ्च नासत्येत्रितयंस्मृतम् ॥ ऐन्द्रंमूलंतथाषाढा पुच्छेतुत्रितयंस्मृतम् ॥ २४ ॥ आषाढाश्रवणंचैव धनिष्ठाचात्रशब्दिता ॥ नक्षत्रत्रितयम्पादे वायव्येतुयशस्विनि ॥ २५ ॥ वारुणंचैवनक्षत्रं तथाप्रोष्ठपदाद्वयम् ॥ कूर्मस्यवामकुक्षौतु त्रितयंसंस्थितंप्रिये ॥ २६ ॥ रेवतीवाश्वदैवत्यं याम्यंचर्क्षमितित्रयम् ॥ ईशपादेसमाख्यातं शुभाशुभफलंशृणु ॥ २७ ॥ यस्यर्क्षस्यपतिर्योवै ग्रहस्तद्धानतोभयम् ॥ तद्देशस्यमहादेवि तथोत्कर्षेशुभागमः ॥ २८ ॥ एषकूर्मोमयाख्यातो भारतेभगवानिह ॥ नारायणोह्यचिन्त्यात्मा यत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥२९॥ मेषादयस्त्र

कूर्मकी पूंछ में कहेगये हैं ॥ २४ ॥ हे यशस्विनि ! उत्तराषाढ़, श्रवण और यहां कहीहुई धनिष्ठा ये तीन नक्षत्र कूर्म के बायें चरणमें स्थित हैं ॥ २५ ॥ और शतभिष नक्षत्र व पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद ये तीनों नक्षत्र हे प्रिये ! कूर्मकी बाईं कोखि में स्थित हैं ॥ २६ ॥ और रेवती, अश्विनी व भरणी ये तीनों नक्षत्र कूर्मभगवान् के चरण में कहेगये हैं और शुभाशुभ फलको सुनिये ॥ २७ ॥ हे महादेवि ! जिस नक्षत्र का जो स्वामी है उसके हीन से उस देशको भय होताहै और उत्कर्ष में शुभागम होता है ॥ २८ ॥ इस भारतवर्षमें इन अचिन्त्यात्मा नारायण कूर्मरूपी भगवान् को मैंने कहा कि जिनमें सब प्रतिष्ठित है ॥ २९ ॥ मेषादिक तीन राशियां

कूर्म के मध्य में हैं और मिथुनादिक दो मुख में हैं व कर्क, सिंह पूर्व तथा दक्षिण चरणमें स्थितहैं ॥३०॥ और सिंह कन्या व तुला ये तीन राशिया कोखिमें कहीगईहैं और तुला व वृश्चिक ये दोनों दक्षिण पश्चिम चरणमें हैं ॥३१॥ और धनुष समेत वृश्चिक राशि कूर्मके पुच्छ भागमें स्थितहै व वायव्य वामचरण में धन मकरादिक तीनराशि हैं ॥३२॥ और कुंभमीन इन कूर्म भगवान् की उत्तरकुक्षि में स्थितहैं व हे महादेवि ! मीन, मेष पूर्वोत्तर चरणमें स्थित हैं ॥ ३३ ॥ हे प्रिये ! कूर्मरूपी देशमें इन देशोंमें नक्षत्र हैं और नक्षत्रों में राशिया हैं व ग्रह राशियों में टिके हैं ॥ ३४ ॥ इसलिये ग्रहों व नक्षत्रों की पीड़ाओं में देशोंकी पीड़ा को बतलावै उसमें स्नानकरै तथा

योमध्ये मुखेद्वौमिथुनादिकौ ॥ प्राक्तथादक्षिणेपादे कर्कसिंहौव्यवस्थितौ ॥ ३० ॥ सिंहकन्येतुलाचैव कुक्षौराशित्रयंस्मृतम् ॥ तुलाथवृश्चिकश्चोभौ पादेदक्षिणपश्चिमे ॥ ३१ ॥ पुच्छेतुवृश्चिकश्चैवसधनुश्चव्यवस्थितः ॥ वायव्येवामपादेच धनुर्ग्राहादिकंत्रयम् ॥ ३२ ॥ कुम्भमीनौतथाचास्यउत्तरांकुक्षिमाश्रितौ ॥ मीनमेषौमहादेवि पादेपूर्वोत्तरेस्थितौ ॥ ३३ ॥ कूर्मदेशेतथर्क्षाणि देशेष्वेतेषुवैप्रिये ॥ राशयश्चतथर्क्षेषु ग्रहाराशिव्यवस्थिताः ॥ ३४ ॥ तस्माद्ग्रहर्क्षपीडासु देशपीडांविनिर्दिशेत् ॥ तत्रस्नानंप्रकुर्वीत दानहोमादिकन्तथा ॥ ३५ ॥ सएषवैष्णवःपादो देविमध्यग्रहोस्ययः ॥ नारायणाख्योचिन्त्यात्मा कारणंजगतःप्रभुः ॥ ३६ ॥ भौमशुक्रबुधेन्द्वर्कबुधशुक्रमहीसुताः ॥ गुरुमन्दासिताचार्या मेषादीनामधीश्वराः ॥ ३७ ॥ एवंविधोमहादेवि कूर्मरूपीजनार्दनः ॥ तस्यनैर्ऋतिपादेतु सौराष्ट्रइतिविश्रुतः ॥३८॥ सचैवनवधाभिन्नः पुरभेदेनसुन्दरि ॥ तस्ययोनवमोभागस्सागरस्यचसन्निधौ ॥ ३९ ॥ प्रभासइतिविख्यातो

दान व होमादिकको करै ॥ ३५ ॥ हे देवि ! वही यह वैष्णवचरण है जोकि इसका मध्यग्रहहै और वे अचिंत्यात्मा नारायण स्वामी संसार के कारण हैं ॥ ३६ ॥ मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य; बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनैश्चर, असित (शनैश्चर) व बृहस्पति ये मेषादिक राशियोंके स्वामी हैं ॥ ३७ ॥ हे महादेवि ! ऐसे कूर्मरूपी विष्णुजी हैं उनके नैर्ऋत्य चरण में सौराष्ट्र ऐसा प्रसिद्ध देशहै, हे सुन्दरि ! वह सौराष्ट्र देश पुरों के भेद से नव खण्ड करके भिन्न है और उसका जो नवां भाग

समुद्र के समीप है ॥ ३८।३९ ॥ हे देवि ! प्रभाम ऐसा प्रसिद्ध वह देश मुझको सदैवप्रिय है जिसका मण्डल बारह योजन चौड़ा है ॥ ४० ॥ और बीच में पांच योजन चौड़ी पीठिका कहीगई है उसके मध्यमें हे देवि ! समुद्र के समीप मेरा मन्दिर स्थित है ॥ ४१ ॥ और हे वरानने, महादेवि ! वहांपर उसके मध्यमें गोचर्ममात्र स्थान बहुतही गुप्त करने योग्य कैलास से भी प्यारा है ॥ ४२ ॥ जो कि हे देवदेवेशि ! अकथनीय है तुम्हारे स्नेह से प्रकाशित कियागया यह प्रभासक्षेत्र मेरी प्रभा से प्रकाशित है ॥ ४३ ॥ इसलिये हे वरानने ! इस कल्प में प्रभास ऐसा कहागया है और दूसरे इन्द्र समेत सब देवताओंने मेरे प्रभाव से यहापर प्रभा (शोभा)

ममदेविप्रियस्सदा ॥ योजनानांदशद्वेच विस्तीर्णःपरिमण्डलः ॥ ४० ॥ मध्येतुपीठिकाप्रोक्ता पञ्चयोजनविस्तृता ॥ तन्मध्येमद्गृहन्देवि तिष्ठत्युदधिसन्निधौ ॥ ४१ ॥ तस्यमध्येमहादेवि कैलासादपिवल्लभम् ॥ गोचर्ममात्रंतत्रापि महागोप्यंवरानने ॥ ४२ ॥ अकथ्यन्देवदेवेशि तवस्नेहात्प्रकाशितम् ॥ एतत्प्राभासिकक्षेत्रं प्रभयादीपितंमम ॥ ४३ ॥ तेनप्रभासमित्युक्तमिहकल्पेवरानने ॥ द्वितीयन्तुप्रभालब्धा सर्वैर्देवैस्सवासवैः ॥ ४४ ॥ ममप्रभावाद्देवेशि तेनप्राभासिकंस्मृतम् ॥ प्रभाववन्तोदेवेशि यत्रसन्तिमहासुराः ॥ ४५ ॥ अथवातेनलोकेषु प्रभासमितिकीर्तितम् ॥ प्रथमंभासतेदेवि सर्वेषांभुवितेजसाम् ॥ ४६ ॥ तीर्थानामादितीर्थञ्च प्रभासन्तेनकीर्तितम् ॥ प्रकृष्टंभानुरथवा भासितोविश्वकर्मणा ॥ ४७ ॥ यत्रसाक्षात्प्रभाजाता जातंप्राभासिकन्ततः ॥ अथवादक्षशप्तेन इन्दुनानिष्प्रभेणच ॥ ४८ ॥ तत्रदेविप्रभालब्धा तेनप्राभासिकंस्मृतम् ॥ प्रोद्धृत्यभारतीदेवी और्वाग्निंवडवानलम् ॥ ४९ ॥ अथवातेनदेवेशि प्रभा

को पाया है उसी कारण हे देवेशि ! प्रभासक्षेत्र कहागया है अथवा हे देवेशि ! जहांपर बड़े २ देवता प्रभाववान् हैं ॥ ४४।४५ ॥ उसीकारण प्रभास ऐसा कहागया है व हे देवि ! पृथ्वी में समस्त तेजों के मध्यमें श्रेष्ठता से भासित है ॥ ४६ ॥ और तीर्थों के मध्यमें आदितीर्थ है उसीकारण प्रभास ऐसा कहागया है अथवा जहांपर विश्वकर्मा ने सूर्यनारायण को बहुतही प्रकाशित किया है ॥ ४७ ॥ और जहांपर साक्षात् प्रभा उत्पन्न हुई है उसीसे प्रभासक्षेत्र कहागया है अथवा दक्षजी से शापित व प्रकाशरहित चन्द्रमा ने ॥ ४८ ॥ वहांपर प्रकाश पाया है उसीकारण प्राभासिक कहागया है अथवा भारती (सरस्वती) देवीने और्वाग्नि वडवानलको निकाल

कर भिन्न करदिया है ॥ ४९ ॥ उसीकारण हे देवेशि ! प्रभास ऐसा कहाजाता है व हे देवि ! जहांपर सदैव ब्राह्मणों से कहीहुई सरस्वती देवी अर्थात् शब्द अधिकता से सुनपड़ताहै उसीकारण हे देवेशि ! प्रभास ऐसा कहागयाहै अथवा हे प्रिये ! वहांपर सदैव सुन्दर लहरियों से समुद्र शोभित है ॥ ५० । ५१ ॥ उसीकारण तीनों लोकों में प्रभास ऐसा नाम प्रसिद्ध है व हे देवि ! जहांपर प्रत्यक्ष सूर्यनारायणजी सदैव स्थित हैं ॥ ५२ ॥ उसीकारण पृथ्वी में प्रभास ऐसा नाम प्रसिद्धि को प्राप्तहुआ और वहांपर प्रकृष्टता से भक्तिभाववाले जनों को मैं समस्त मनोरथ देताहूं ॥ ५३ ॥ उसीकारण प्रभास नामक ऐसा तीर्थ त्रिलोक में प्रसिद्ध है वैसेही हे सुर-

समितिकीर्त्यते ॥ प्रकृष्टाभारतीब्राह्मी विप्रोक्ताश्रूयतेध्वनिः ॥५०॥ सदायत्रमहादेविप्रभासन्तेनकीर्त्तितम् ॥ प्रोल्लसद्वीचिभिर्भाति सर्वदासागरंप्रियम् ॥५१॥ तेनप्रभासनामेतित्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ प्रत्यक्षंभास्करोयत्र सदातिष्ठतिभामिनि ॥५२॥ तेनप्रभासनामेति प्रसिद्धिमगमत्क्षितौ ॥ प्रकृष्टंभावितांसर्वं कामंतत्रददाम्यहम् ॥ ५३ ॥ तेनप्रभासनामेति तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ कल्पभेदेननामानि तथैवसुरसुन्दरि ॥५४॥ निरुक्तिभेदैर्बहुधाभिद्यन्तेकारणैःप्रिये ॥ प्रभास इतियन्नाम दातव्यन्निश्चलंस्मृतम् ॥५५॥ आप्यतत्त्वेस्थितंदेवि विष्णोराद्यकलेवरे ॥ इतितेकथितंदेवि संक्षेपात्क्षेत्रकारणम् ॥५६॥ पुनस्तेकथयाम्यद्य यत्पृच्छसिवरानने ॥तद्ब्रूहिशीघ्रंकल्याणि यत्तेमनसिवर्तते ॥५७॥ देव्युवाच ॥ अस्मिन्कल्पेयथाजातं क्षेत्रप्राभासिकंहर ॥ तन्मेविस्तरतोब्रूहि उत्पत्तेःकारणंयथा ॥ ५८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि यथावत्क्षेत्रकारणम् ॥ तच्छ्रुत्वामानवोभक्त्यामुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ५९ ॥ आदिक्षेत्रस्यमाहात्म्यं रहस्यं

सुन्दरि ! कल्पों के भेदसे नाम ॥ ५४ ॥ हे प्रिये ! निरुक्तिभेदरूपी कारणों से बहुतभेदोंको प्राप्तहोते हैं व हे प्रिये ! प्रभास ऐसा जो अचल नाम देने योग्य कहागया है ॥ ५५ ॥ हे देवि ! वह विष्णुजी के पहलेवाले शरीर जलतत्त्वमें स्थित है हे देवि ! संक्षेपसे यह क्षेत्र का कारण तुमसे कहागया ॥ ५६ ॥ और हे वरानने ! इससमय जो पूछो उसको फिर मैं तुमसे कहूं हे कल्याणि ! जो तुम्हारे मनमें वर्तमानहो उसको शीघ्रही कहिये ॥ ५७ ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि हे सदाशिवजी ! इस कल्पमें जिसप्रकार प्रभासक्षेत्र हुआ है उसको मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये कि जिसप्रकार उत्पत्ति का कारण होवै ॥ ५८ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये यथायोग्य

क्षेत्रके कारण को कहूंगा उसको भक्ति से सुनकर मनुष्य समस्त पातकों से छूटजाता है ॥ ५९ ॥ हे वरारोहे, भामिनि ! आदिक्षेत्र के पापनाशक गुप्त माहात्म्य को तुम्हारे स्नेहसे कहूंगा ॥ ६० ॥ हे वरानने, देवि ! इस कल्पमें भी पहलेही जो मनु हुये हैं उस स्वायंभुवमनु में पुरातन समय सृष्टि करते हुये ब्रह्माके ॥ ६१ ॥ दाहिने नेत्रसे पहले सूर्य ऐसे उत्पन्न हुये तदनन्तर कुछ समयके बाद उनके दो स्त्रियां हुईं ॥ ६२ ॥ उनमें द्यौः (आकाश) रानी जानने योग्य है और दूसरी स्त्री निक्षुधा पृथ्वी कहीगई है अगहन महीने की सप्तमी में द्यौः रानी सूर्य के साथ संयोगको प्राप्त होती है ॥ ६३ ॥ और माघमहीने की सप्तमी में सूर्यनारायणजी पृथ्वीके साथ

पापनाशनम् ॥ कथयिष्येवरारोहे तवस्नेहेनभामिनि ॥६०॥ अस्मिन्कल्पेपियोदेवि आदावेववरानने ॥स्वायम्भुवेमनौतत्र ब्रह्मणःसृजतःपुरा ॥ ६१ ॥ दक्षिणाल्लोचनाज्जातः पूर्वंसूर्यइतिप्रिये ॥ ततःकालान्तरेतस्य भार्येद्वेसंबभूवतुः ॥ ६२ ॥ तयोस्तुराज्ञीद्यौर्ज्ञेयानिक्षुधापृथिवीस्मृता ॥ सौम्यमासस्यसप्तम्यां द्यौःसूर्येणचयुज्यते ॥ ६३ ॥ माघमासेतुसप्तम्यां मह्यासहभवेद्धरिः ॥ भूश्चादित्यश्चभगवान् गच्छतःसङ्गमंतदा ॥ ६४ ॥ ऋतुस्नातामहीतत्र गर्भंगृह्णातिभास्करात् ॥ द्यौर्जलंसूयतेगर्भं वर्षास्विहचभूतले ॥ ६५ ॥तत्रत्रैलोक्यवृद्ध्यर्थं महीसस्यानिसूयते ॥ सस्योपयोगात्संहृष्टा हुतयोजुह्वतिद्विजाः ॥ ६६ ॥ स्वाहाकारस्वधाकारैर्यजन्तिपितृदेवताः ॥ निक्षुधान्कुरुतेयस्माद् गर्भौषधिसुधामृतैः ॥ ६७ ॥ मर्त्यान्पितॄंश्चदेवांश्च तेनभूर्निक्षुधास्मृता ॥ यथाराज्ञीचसंयाता यस्यचेयंसुतास्मृता ॥ ६८ ॥ अपत्या

संयोग को प्राप्त होते हैं उससमय पृथ्वी व सूर्यनारायण जब संयोग को प्राप्त होते हैं तब ॥ ६४ ॥ उससमय ऋतु में नहाईहुई पृथ्वी सूर्यनारायण से गर्भको ग्रहण करती है और वर्षाऋतु में आकाश जलरूप गर्भ को इस पृथ्वी में पैदा करता है ॥ ६५ ॥ और उससमयमें त्रिलोक की वृद्धिके लिये पृथ्वी अन्नों को उत्पन्न करती है व अन्नों के संयोग से प्रसन्न होतेहुये ब्राह्मणलोग आहुतियों को अग्नि में हवन करते हैं ॥ ६६ ॥ और वे स्वाहा व स्वधाकारों से पितरों तथा देवताओं को पूजते हैं जिसलिये गर्भ की ओषधी, जल व अमृत से मनुष्यों, पितरों और देवताओंको क्षुधारहित करती है उसीकारण पृथ्वी निक्षुधा कहीगईहै और जिसप्रकार यह रानी

हुई व जिसकी यह कन्या कहीगई है ॥ ६७ । ६८ ॥ और जो इसके पुत्र, कन्या हैं उन सबोंको कहूंगा कि ब्रह्माके पुत्र मरीचि हुये व मरीचि के पुत्र कश्यप कहे गये हैं ॥६९॥ उन कश्यपसे हिरण्यकशिपु और उसके पुत्र प्रह्लादजी हुये व प्रह्लादके पुत्र विरोचन नामक प्रसिद्ध हुयेहैं ॥७०॥ और विरोचनकी बहन जोकि संज्ञा की माताहै वही दितिके पुत्र हिरण्यकशिपु की पोती मानी गईहै ॥ ७१ ॥ और वही प्रह्लाद की कन्या विद्वानोंसे विश्वकर्मा की स्त्री कहीजाती है और अनुरूपा नामक मरीचि की उत्तम कन्या ॥७२॥ अंगिरा की स्त्री हुई वही बृहस्पतिकी माताहै और बृहस्पति की बहन ब्रह्मवादिनी ऐसी प्रसिद्ध हुई है ॥७३॥ और वह वसुवोंके मध्यमें आठवेंवसु

निचयान्यस्यास्तानिवक्ष्याम्यशेषतः ॥ मरीचिर्ब्रह्मणःपुत्रो मारीचःकश्यपःस्मृतः ॥ ६९ ॥ तस्माद्धिरण्यकशिपुः प्रह्लादस्तस्यचात्मजः ॥ प्रह्लादस्यसुतोनाम्ना विरोचनइतिश्रुतः ॥ ७० ॥ विरोचनस्यभगिनी संज्ञायाजननीतुसा ॥ हिरण्यकशिपोःपौत्री दितेःपुत्रस्यसामता ॥ ७१ ॥ साविश्वकर्मणःपत्नी प्राह्लादिःप्रोच्यतेबुधैः ॥ अथनाम्नानुरूपेति मरीचेर्दुहिताशुभा ॥ ७२ ॥ पत्नीह्यङ्गिरसःसातु जननीतुबृहस्पतेः ॥ बृहस्पतेस्तुभगिनी विश्रुताब्रह्मवादिनी ॥ ७३ ॥ प्रभासस्यतुसापत्नी वसूनामष्टमस्यतु ॥ प्रासूतविश्वकर्माणं सर्वशिल्पवतांवरम् ॥ ७४ ॥ सचैवनाम्नातुपुनस्त्वष्टात्रिदशवार्द्धकिः ॥ देवाचार्यस्यतस्यैवं दुहिताविश्वकर्मणः ॥ ७५ ॥ सुरेणुरितिविख्याता त्रिषुलोकेषुभामिनी ॥ प्रह्लादपुत्रीयाप्रोक्ता भार्यात्वष्टुस्तुसास्मृता ॥७६॥ तस्यांसंजनयामासपुत्र्यस्तालोकमातरः ॥ राज्ञीसंज्ञातुयात्वाष्ट्रीप्रभासेचविभाव्यते ॥७७॥ तस्यास्तुयासुताजाता निक्षुभासामहीयसी ॥सातुभार्याभगवतोमार्तण्डस्यमहात्मनः ॥७८॥

प्रभास जीकी स्त्री हुई उसने सबशिल्पवानों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा जी को पैदा कियाहै ॥ ७४ ॥ वेही फिर त्वष्टा नामक होकर देवताओं के बढ़ई हुये और उन देवाचार्य विश्वकर्माजीकी कन्या ॥ ७५ ॥ सुरेणु ऐसी सुन्दरी तीनों लोकों में प्रसिद्धहुई जो प्रह्लाद की कन्या कहीगई है वही त्वष्टा की भार्या हुई है ॥ ७६ ॥ उसमें उन त्वष्टाने उन लोकमाता कन्याओंको पैदा कियाहै और जो त्वष्टा की रानी संज्ञक प्रभासमें प्रकट कीगई है ॥ ७७ ॥ उसके जो कन्या उत्पन्न हुई वह बड़ी भारी निक्षुभा हुई

साध्वीपतिव्रतादेवि रूपयौवनशालिनी ॥ निक्षुधांनररूपेण भार्यांभजतिवैपुरा ॥ ७९ ॥ आदित्यस्यैहतद्गात्रेमह तास्वेनतेजसा ॥ गात्रेष्वप्रतिरूपेषु नातिप्रीतमनाभवत ॥ ८० ॥ संज्ञाचरविणादृष्टा निमीलयतिलोचने ॥ यतस्त तःसरोषाच्चः संज्ञांवचनमब्रवीत ॥ ८१ ॥ मयिदृष्टेसदायस्मात्कुरुषेनेत्रसंयमम् ॥ तस्माज्जनिष्यसेमूढे प्रजासं यमनंयमम् ॥ ८२ ॥ ततःसाचपलांदृष्टिं देवेचक्रेभयाकुला ॥ विलोलितदृशंदृष्ट्वा पुनराहचतांरविः ॥ ८३ ॥ यस्माद्वि लोलितादृष्टिर्मयिदृष्टेत्वयापुनः ॥ तस्माद्विलोलांतनयां नदींत्वंप्रसविष्यसि ॥ ८४ ॥ईश्वरउवाच॥ ततस्तस्यास्तुसञ्ज्ञ ज्ञे भर्तृशापेनतेनवै ॥ यमश्चयमुनाचेयं प्रख्यातासुमहानदी ॥ ८५ ॥ सापिसंज्ञारवेस्तेजो गोलाकारंमहाप्रभम् ॥ अ सहन्तीचसातेजश्चिन्तयामासवैतदा ॥ ८६ ॥ इतिसञ्चिन्त्यबहुधा प्रजापतिसुतातदा ॥ बहुमेनेमहाभागा पितृसंश्रय

है और वह भगवान् सूर्यनारायणजी की स्त्री हुई ॥ ७८ ॥ हे देवि ! जो कि उत्तम आचरणोंवाली पतिव्रता व रूप तथा यौवन से शोभितथी उस निक्षुधाको पुरातन समय सूर्यनारायण मनुष्य के रूपसे सेवते थे ॥ ७९ ॥ सूर्यनारायणका वह शरीर बड़े भारी अपने तेजसे संयुत था इसलिये वह स्त्री अपने असमान अंगों में अति-प्रसन्नमनवाली न हुई ॥ ८० ॥ और जिसलिये सूर्यनारायणसे देखीहुई संज्ञा नेत्रों को मूदलेती थी उसी कारण क्रोध समेत लोचनोंवाले सूर्यनारायण जी संज्ञा से वचन बोले ॥ ८१ ॥ कि हे मूर्खे ! जिसलिये मेरे देखनेपर तुम सदैव नेत्रों को मूंदलेतीहो इसकारण प्रजाओं को दण्ड देनेवाले यमराजको उत्पन्न करोगी ॥ ८२ ॥ तदनन्तर भयमे विकल उस संज्ञा स्त्रीने सूर्यदेव में चंचलदृष्टि किया तब चंचल दृष्टिवाली उस स्त्री को देखकर फिर सूर्यनारायणने उससे कहा ॥ ८३ ॥ कि जिस लिये तुमने मेरे देखनेपर फिर चंचल दृष्टि किया इस से तुम नदीरूपिणी चंचल कन्या को पैदा करोगी ॥ ८४ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर पति के उस शाप से उस संज्ञा के यमराज और यह प्रसिद्ध यमुना महानदी पैदा हुई ॥ ८५ ॥ और सूर्यनारायण के गोलाकार व महाप्रकाशवान् तेजको न सहती हुई उस संज्ञा ने भी उस समय चिन्तन किया ॥ ८६ ॥ व उस समय प्रजापति की कन्या महाभाग्यवती संज्ञाने इसप्रकार बहुत भांति से चिन्तन कर पिताके आश्रयही को बहुत

माना ॥ ८७ ॥ उसने यह विचारा कि मैं क्या करूं कहां जाऊं और कहा पर गई हुई मुझको आनन्द होगा और किस प्रकार मेरे स्वामी सूर्यनारायणजी क्रोध को न प्राप्त होंगे ॥ ८८ ॥ उस समय पिताके घरको जाने के लिये किये हुये बुद्धिवाली उस यशस्विनी संज्ञाने छायामय अपने शरीर को दूसरी देहकी नाई निर्मित कर ॥ ८९ ॥ और उस देवी को सामने देखकर अपनी छाया से वचन कहा संज्ञा बोली कि तुम्हारा कल्याण होवे और मैं अपने पिताके घरको जातीहूं ॥ ९० ॥ व हे शुभे ! मेरी आज्ञासे तुमको भी यहा विकाररहित टिकना चाहिये इन पुत्रों व उत्तम वर्णवाली इस कन्या से भलीभाति संभाषण करना और इस वृत्तान्त को तुम

मेवच ॥ ८७ ॥ किङ्करोमिकयास्यामि क्वगतायाश्चनिर्वृतिः ॥ भवेन्ममकथंभर्त्ता कोपमर्कश्चनैष्यति ॥ ८८ ॥ तदापितृगृहङ्गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी ॥ छायामयीमात्मतनुं प्रत्यङ्गमिवनिर्मिताम् ॥ ८९ ॥ सम्मुखंप्रेक्ष्यतांदेवीं स्वांछायांवाक्यमब्रवीत ॥ संज्ञोवाच ॥ अहंयास्यामिभद्रंते स्वकञ्चभवनंपितुः ॥ ९० ॥ निर्विकारंत्वयाप्यत्र स्थेयंमच्छासनाच्छुभे ॥ इमौचबालकौमह्यंकन्याचवरवर्णिनी ॥ संभाष्यानैवचाख्येयमिदंभगवतेत्वया ॥ ९१ ॥ पृष्टयापिनवाच्यंते त्वयैतद्गमनंमम ॥ तेनैवममसंज्ञेति वाच्यंनामप्रतिष्ठितम् ॥ ९२ ॥ छायोवाच ॥ आकेशग्रहणाद्देवि आशापान्नैवकर्हिचित ॥ आख्यास्यामिमतंतुभ्यं गम्यतांयत्रवाञ्छितम् ॥ ९३ ॥ इत्युक्तासातदादेवि जगामभवनंपितुः ॥ ददर्शतत्रत्वष्टारं तपसाधूनकल्मषम् ॥ ९४ ॥ बहुमानाच्चतेनापि पूजिताविश्वकर्मणा ॥ वर्षाणान्तुसहस्रंसा वसमानापितुर्गृहे ॥ ९५ ॥ तस्थौपितुर्गृहेसातु कञ्चित्कालमनिन्दिता ॥ ततस्तांप्राहचार्वङ्गीं पितानातिचिरोषिताम् ॥ ९६ ॥ स्तुत्वातुतनयांप्रेम्णा

भगवान् सूर्यनारायण से न कहना ॥ ९१ ॥ पूंछी हुई भी तुमको यह मेरा जाना न कहना चाहिये व उसीसे मेरा संज्ञा ऐसा नाम प्रतिष्ठित है ॥ ९२ ॥ छाया बोली कि हे देवि ! जबतक मेरे केशोंको न पकड़ैंगे व जबतक शाप न देवैंगे तबतक मैं किसीप्रकार तुम्हारे मतको नहीं कहूंगी तुम्हारी जहां इच्छा होवै वहां जावो ॥ ९३ ॥ हे देवि ! इस प्रकार कही हुई वह संज्ञा पिताके घर को चलीगई और वहांपर उसने तपस्या से नष्टपातकोंवाले त्वष्टाजीको देखा ॥ ९४ ॥ और उस विश्वकर्मा ने भी बहुत आदर से पूजन किया और वह हजारों वर्षोंतक पिताके घर में बसतीभई ॥ ९५ ॥ और कुछ समय वह अनिन्दित संज्ञा पिताके घरमें टिकती भई तदनन्तर

थोड़ेही दिनों तक बसी हुई उस उत्तम अंगोंवाली संज्ञासे पिताने कहा ॥ ९६ ॥ प्रेमसे बहुत आदरपूर्वक प्रशंसा करके कहा कि हे वत्से ! तुम को इसप्रकार देखते हुये मेरे बहुत भी दिन ॥ ९७ ॥ आधे मुहूर्त (कच्ची एक घड़ी) के बराबर व्यतीत होते हैं परन्तु धर्म लुप्त होताहै क्योंकि स्त्रियोंका भाइयोंमें बहुत दिनतक निवास अयशकारकहै ॥ ९८ ॥ और स्त्री का पतिके घरमें टिकना यही भाइयों का मनोरथ होता है सो त्रिलोकनायक सूर्यनारायण पति से संयुक्त तुम ॥ ९९ ॥ हे पुत्रि ! बहुत दिनों तक पिताके घरमें बसने के लिये नहीं योग्यहो तुमने मुझको देखलिया अब मुझसे पूजीहुई तुम पतिके घरको जावो ॥ १०० ॥ व हे शुचिस्मिते ! दर्शन

बहुमानपुरःसरम् ॥ त्वामेवंपश्यतोवत्से दिनानिसुबहून्यपि॥९७॥ मुहूर्तार्द्धसमान्यासन् किन्तुधर्मोविलुप्यते ॥ बान्धवेषुचिरंवासो नारीणांनयशस्करः ॥ ९८ ॥ मनोरथोबान्धवानां नार्याभर्तृगृहेस्थितिः ॥ सात्वंत्रैलोक्यनाथेन भर्त्रासूर्येणसंयुता ॥ ९९ ॥ पितृगेहेचिरंकालं वस्तुंनार्हसिपुत्रिके ॥ त्वंचभर्तृगृहंगच्छ दृष्टोहंपूजितासिमे ॥ १०० ॥ पुनरागमनंकार्यं दर्शनायशुचिस्मिते ॥ ईश्वरउवाच ॥ इत्युक्तासातदापित्रा गच्छगच्छेतिसापुनः ॥ १ ॥ सम्पूज्यमातापितरं वडवारूपधारिणी ॥ मेरोरुत्तरतस्तत्र वर्षंयद्धनुषाकृतिः ॥ २ ॥ उत्तराकुरवोलोके प्रख्यातायेयशस्विनी ॥ तत्रतेपेतपःसाध्वी निराहारस्वरूपिणी ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवि तस्याश्छायाविवस्वतः ॥ समीपस्थातदादेवि संज्ञायावाक्यतत्परा ॥ ४ ॥ तस्यांचभगवान्सूर्यो द्वितीयायांदिवस्पतिः ॥ संज्ञेयमितिमन्वानो रूपौदार्येणमोहितः ॥ ५ ॥ तस्यांच

के निमित्त फिर आगमन करना चाहिये महादेवजी बोले कि उस समय जावो २ इस प्रकार बार २ पितासे कही हुई वह संज्ञा ॥ १ ॥ माता, पिता को पूजकर अश्विनी के रूपको धरकर सुमेरु गिरि के उत्तर ओर वहां पर जो धनुषके आकारवाला खण्ड है ॥ २ ॥ और संसार में जो देश उत्तरकुरु प्रसिद्ध हैं वहां निराहार स्वरूपिणी व पतिव्रता तथा यशस्विनी संज्ञाने तपस्या किया ॥ ३ ॥ इसी अवसर में हे देवि ! उस समय संज्ञाके वचन में तत्पर उसकी छाया सूर्यनारायण के समीप स्थित हुई ॥ ४ ॥ भगवान् सूर्यनारायणजी यह मानते हुये कि यह संज्ञा है इसकारण उस दूसरी स्त्री में रूप व उदारता से मोहित होगये ॥ ५ ॥ और उन्होंने

उस स्त्री में दो पुत्रों और एक कन्या को पैदा किया जिस लिये कि पहले पैदाहुये मनुके तुल्य था उसीकारण वह सावर्णि हुआ॥ ६ ॥ जो कि हे द्विजोत्तमो ! पुत्रोंके मध्य में सूर्य से पहले पैदा हुआ था और जो अन्य दूसरा पुत्र हुआ वह शनैश्चरग्रह हुआ ॥ ७ ॥ और जो तपती नामक कन्या हुई उसको संवरण राजा ने स्वीकार किया और विन्ध्याचल के मूल से यह तापीनामक नदी निकली है ॥ ८ ॥ पश्चिम के समुद्र में जानेवाली यह नदी नितमही स्नान में पुण्यजलवाली है और अन्य महाप्रकाशवान् भद्रा कन्या पैदा हुई॥ ९ ॥ और संज्ञाकी छाया रानी ने जैसा स्नेह अपने पुत्रों में किया वैसा उस सती ने पहले पैदा हुये पुत्रों में नहीं

जनयामास द्वौपुत्रौकन्यकांतथा ॥ पूर्वजस्यमनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेनसोभवत् ॥ ६ ॥ यःसूर्यात्प्रथमंजातः पुत्रयोर्द्विजसत्तमाः ॥ द्वितीयोयोभवच्चान्यः सग्रहोभूच्छनैश्चरः ॥ ७ ॥ कन्याभूत्तपतीयातां वव्रेसंवरणोनृपः ॥ तापीनामनदी चेयं विन्ध्यमूलाद्विनिःसृता ॥ ८ ॥ नित्यंपुण्यजलास्नाने पश्चिमोदधिगामिनी ॥ अन्याचैवतथाभद्रा जातापुत्रीमहाप्रभा ॥ ९ ॥ संज्ञायाःपार्थिवीछाया आत्मजानांयथाकरोत् ॥ स्नेहंनपूर्वजातानां तथाकृतवतीसती ॥ १० ॥ लालनाद्युपभोगेषु विशेषमनुवासरम् ॥ यथास्वेष्वनुवर्त्तेतनतथान्येषुभामिनि ॥ ११ ॥ मनुस्तत्क्षान्तवाञ्ज्येष्ठो भक्ष्यालङ्कारलालने ॥ मेरौतिष्ठतिचाद्यापि तपःकुर्वन्वरानने ॥ १२ ॥ सर्वंचक्षान्तवान्मातुर्यमस्तस्यानुचक्षमे ॥ बहुशोयाच्यमानस्तु छाययातीवकोपितः ॥ १३ ॥ सवैकोपाच्चबाल्याच्चभाविनोर्थस्यवैबलात् ॥ ताडनायततःकोपाद्यदाहन्तुंसमुद्यतः ॥ १४ ॥ ततःपुनःक्षान्तमना नतुदेहेनिपातितः ॥ यदासन्तर्जयामास छायांसंज्ञासुतोयमः ॥ १५ ॥ तंशशाप

किया ॥ १० ॥ हे भामिनि ! जिस प्रकार वह प्रतिदिन अपने पुत्रों में लालनादिकभोगों में विशेषता से वर्तमान होती थी उस भांति अन्य पुत्रोंमें नहीं वर्तमान होती थी ॥ ११ ॥ भोजन, भूषण व प्यार में उस सब वस्तु को ज्येष्ठ मनुजी ने सहलिया हे वरानने ! जोकि तपस्या करते हुये आज भी सुमेरु गिरि पै स्थित हैं ॥ १२ ॥ उन सूर्यनारायण ने उस माताके उस सब कर्म को सहलिया परन्तु यमराज ने नहीं सहा और छाया से बहुतही याचना किये हुये व अत्यन्त क्रोधित ॥ १३ ॥ वे यमराजजी तदनन्तर कोप से व बालकपन तथा होनहार वस्तु के बल से क्रोधके कारण जब मारने के लिये तैयार हुये ॥ १४ ॥ और फिर वे क्षमामनवाले, हो-

गये चरण को देह में नहीं मारा जब संज्ञा के पुत्र यमराज ने छाया को डरवाया ॥ १५ ॥ तदनन्तर कुछ फरकते हुये ओठोंवाली व चलायमान हाथरूपी पल्लवों वाली व बहुतही क्रोधित उस छाया रानी ने उसको शाप दिया ॥ १६ ॥ कि पिताकी स्त्री मुझको जिस लिये तुम बिन मर्याद से चरण से डरवाते हो उसी कारण तुम्हारा यह चरण आजही भूमि में गिरपड़ै ॥ १७ ॥ उस शाप से बहुतही पीड़ितमनवाले धर्मात्मा यमराजजी ने मनुसमेत सब वृत्तान्त को पितासे बतलाया ॥१८॥ यमराज बोले कि हे पिताजी ! यहां पर इस बड़े भारी आश्चर्य को किसीने नहीं देखा है कि माता पुत्र में प्यार को छोड़कर शाप देती है ॥ १९ ॥ हे देवि ! हमसबों

ततश्छाया क्रुद्धासापार्थिवीभृशम्॥ किञ्चित्प्रस्फुरमाणोष्ठीविचलत्पाणिपल्लवा ॥ १६ ॥ पितुःपत्नीममर्यादं यन्मान्तर्जयसेपदा ॥ भुवितस्मादयम्पादस्तवाद्यैवपतिष्यति ॥ १७ ॥ यमस्तुतेनशापेन भृशंपीडितमानसः ॥ मनुनासह धर्मात्मा पित्रेसर्वंन्यवेदयत् ॥ १८ ॥ यमउवाच ॥ तातैतन्महदाश्चर्यं नदृष्टमिहकेनचित् ॥ मातावात्सल्यमुत्सृज्य शापंपुत्रेप्रयच्छति ॥ १९ ॥ स्नेहेनतुल्यमस्मासु मातादेविनवर्त्तते ॥ विसृज्यज्यायसोप्यस्मात् कनीयांसंबुभूषति॥ २० ॥ तस्यामयोद्यतःपादो नतुदेहेनिपातितः ॥ बाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ २१ ॥ शप्तोहन्तात कोपेन तयासुतइतिस्फुटम् ॥ अतोनमह्यंजननी साभवेत्तपतांवर ॥ २२ ॥ निर्गुणेष्वपिपुत्रेषु नमातानिर्गुणाभवेत्॥ पादस्तेपततात्पुत्र कथमेतत्तयोदितम् ॥ २३ ॥ तवप्रसादाच्चरणो नपतेद्भगवन्यथा ॥ मातृशापादयंमेद्य तथाचिन्तयगोपते ॥ २४ ॥ रविरुवाच ॥ असंशयम्महत्पुत्र भविष्यत्यत्रकारणम् ॥ येनतेप्राविशतक्रोधो धर्मस्यचमहात्म

में माता समान स्नेह से नहीं वर्तमान होती है कि बड़े भी हमलोगों को छोड़कर छोटे पुत्र को होने की इच्छा करती है ॥ २० ॥ मैंने बालकपन या मोह से उसको चरण उठाया था परन्तु देह में प्रहार नहीं किया आप उसको क्षमा करनके योग्यहो ॥ २१ ॥ हे पिताजी ! उसने मुझ पुत्र को शाप दिया इस कारण हे सूर्यनारायणजी ! यह प्रकटही है कि वह मेरी माता नहीं है ॥ २२ ॥ क्योंकि निर्गुणी भी पुत्रोंमें माता निर्गुणी नहीं होती है उसने यह कैसे कहा कि हे पुत्र ! तुम्हारा यह चरण गिरपड़ै ॥ २३ ॥ हे किरणपते, भगवन् ! तुम्हारी प्रसन्नता के कारण आज जिस प्रकार माताके शापसे यह मेरा चरण न गिरै वैसेही चिन्तन कीजिये ॥ २४ ॥

सूर्यनारायणजी बोले कि हे पुत्र ! इसमें निस्सन्देह बड़ाभारी कारण होगा कि जिससे तुम महात्मा धर्मके भी क्रोध प्रवेश होगया ॥ २५ ॥ सबही शापों का प्रतिघात (नाश) विद्यमान है परन्तु माता से शापित पुरुषों का कभी शाप नहीं निवृत्त होताहै ॥ २६ ॥ इस लिये तुम्हारी माताका यह वचन मिथ्या नहीं किया जासक्ता है परन्तु पुत्रके स्नेहसे कुछ दया करूंगा ॥ २७ ॥ कि कीड़े मांसको लेकर पृथ्वीतल में जावैंगे तो उसका वचन सत्य कियाहोगा और तुम भी पवित्र होगे ॥ २८ ॥ महादेवजी बोले कि सूर्यनारायणजी छायासे बोले कि समान भी पुत्रोंमें तुम एक ठिकाने अधिक स्नेह करती हो ॥ २९ ॥ तुम निश्चय कर इनकी मातासंज्ञा नहीं हो

नः ॥ २५ ॥ सर्वेषामेवशापानां प्रतिघातोपिविद्यते ॥ नतुमात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥ २६ ॥ नशक्य मेतन्मिथ्यातु कर्तुंमातुर्वचस्तव ॥ किञ्चित्तुसंविधस्यापि पुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥ २७ ॥ कृमयोमांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम् ॥ कृतंतस्यावचःसत्यं त्वंचपूतोभविष्यसि ॥ २८ ॥ ईश्वरउवाच ॥ आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थंतन येषुवै ॥ तुल्येष्वप्यधिकःस्नेह एकत्रक्रियतेत्वया ॥ २९ ॥ नूनंनचैषांजननी संज्ञाकापित्वमागता ॥ विकलेष्वप्यपत्ये षु नमाताशापदाभवेत ॥ ३० ॥ तंशप्तुमुद्यतन्दृष्ट्वा छायासंज्ञादिनाधिपम् ॥ भयेनकम्पितादेवी यथावृत्तंमहास ती ॥ ३१ ॥ साचाहतनयात्वष्टुरहंसंज्ञाविभावसो ॥ पत्नीतवत्वयानान्या बुद्धिःकार्यादिवाकर ॥ ३२ ॥ इत्थंविवस्वतः सातु बहुशःपृच्छतोयदा ॥ नवाचाभाषतेक्रुद्धः शापंदातुंसमुद्यतः ॥ ३३ ॥ शापोद्यतकरन्दृष्ट्वा छायावृत्तंविवस्वतः ॥ कथयामासतत्सर्वं संज्ञायाश्चविचेष्टितम् ॥ ३४ ॥ तच्छ्रुत्वाभगवान्सूर्यो जगामश्वशुरालयम् ॥ ततःसम्पूजयामास त

कोई अन्यही आई हो क्योंकि निर्गुणी भी पुत्रोंमें माता शापदायिनी नहीं होती है ॥ ३० ॥ संज्ञाकी छायाने शाप देने के लिये उद्यत उन सूर्यनारायण को देखकर डर से कांपती हुई उन महासती देवीने इस यथावत् वृत्तान्त को कहा ॥ ३१ ॥ कि हे सूर्यनारायणजी ! मैं त्वष्टाकी कन्या संज्ञा नामक तुम्हारी स्त्रीहूं हे दिनकरजी ! तुमको अन्य बुद्धि न करना चाहिये ॥ ३२ ॥ इस प्रकार बहुतही पूंछते हुये सूर्यनारायणजी से जब उस छायाने वाणी से कुछ न कहा तब क्रोधित होकर सूर्यनारायणजी शाप देनेके लिये तैयारहुये ॥ ३३ ॥ शाप देनेके लिये उठे हाथवाले सूर्यनारायण को देखकर छायाने संज्ञाके उस सब वृत्तान्त को सूर्यसे कहा ॥ ३४ ॥ उस

वचनको सुनकर भगवान् सूर्यनारायणजी श्वशुर के घरको गये तदनन्तर उस समय त्वष्टाने त्रिलोकपूजित सूर्यनारायणजी का पूजन किया ॥ ३५ ॥ और क्रोधसे जलाने की इच्छावाले उन सूर्यनारायण को प्रिय वचन से समझाया जोकि अपने घरमें आये व अपनी छविसे शोभित हैं ॥ ३६ ॥ वह संज्ञा कहांगई ऐसा पूछतेहुये सूर्यनारायणजी से त्वष्टाने कहा कि आप वचनको सुनिये कि वह घरको आई थी ॥ ३७ ॥ तेजसे अधिक यह तुम्हारा असह्यरूप प्रसिद्धहै ॥ ३८ ॥ उसी कारण इस को न सहतीहुई वह वनमें तप करती है आप उस उत्तम आचारवाली अपनी स्त्री को आज देखियेगा ॥ ३९ ॥ जोकि रूपके लिये बहुत तपस्याको करती हुई वनमें

दात्रैलोक्यपूजितम् ॥ ३५ ॥ निर्दग्धुकामंरोषेण सान्त्वयामाससामतः ॥ भास्वन्तंनिजयाकान्त्या निजगेहमुपागतम् ॥ ३६ ॥ क्वसागतेतिपृच्छन्तं कथयामासविश्वकृत ॥ आगतैवहिसावेश्म भवताश्रूयतांवचः ॥ ३७ ॥ विख्यातं तेजसाधिक्यमिदंरूपंसुदुस्सहम् ॥ ३८ ॥ असहन्तीततःसंज्ञा वनेचरतिवैतपः ॥ द्रक्ष्यसेतान्भवानद्यस्वभार्यांशुभचारिणीम् ॥ ३९ ॥ रूपार्थंवर्त्ततेरण्ये चरन्तीसुमहत्तपः ॥ मतंमेब्रह्मणोवाक्यं यदितेहृदिरोचते ॥ ४० ॥ रूपंनिवर्तयाम्यद्य तवकान्तंदिवस्पते ॥ ईश्वरउवाच ॥ यतोहिभास्वतोरूपं प्रागासीतपरिमण्डलम् ॥ ४१ ॥ ततस्तथेतितंप्राह त्वष्टारम्भगवान्हरिः ॥ विश्वकर्मात्वनुज्ञातः शाकद्वीपेविवस्वतः ॥ ४२ ॥ भ्रमिमारोप्यतत्तेजः शातनायोपचक्रमे ॥ भ्रमताशेषलोकानामधिपेनचभास्वता ॥ ४३ ॥ समुद्रादिवनोपेतामारुरोहमहीन्नभः ॥ भ्रमितंखलुदेवेशि सचन्द्रग्रहतारकम् ॥ ४४ ॥ अधोगतिमहाभागेबभूवचनभस्तलम् ॥ विक्षिप्तसलिलाःसर्वे बभूवुश्चतथाब्धयः ॥ ४५ ॥ व्यशी

वर्तमानहै ब्रह्माका वचनरूप मेरा सम्मत जो तुम्हारे चित्तमें रुचताहो ॥ ४० ॥ तो हे दिनपते ! तुम्हारे सुन्दर रूपको निवर्तन करूं महादेवजी बोले कि जिस लिये पहले सूर्यनारायणका रूप चारोंओर से मण्डलाकार था ॥ ४१ ॥ उसीकारण भगवान् सूर्यनारायणजीने उन त्वष्टासे यह कहा कि वैसाही कीजिये शाकद्वीपमें सूर्यनारायणजीसे आज्ञाको पायेहुये विश्वकर्माजीने ॥ ४२ ॥ चक्रपै धरकर तेज काटनेके लिये प्रारम्भ किया घूमतेहुये समस्त लोकों के स्वामी सूर्यनारायणजीसे ॥ ४३ ॥ समुद्रादिक व वनों से संयुत पृथ्वी के ऊपर आकाश आरूढ़ हुआ और चन्द्रमा, ग्रह व नक्षत्रों समेत आकाश घूमगया ॥ ४४ ॥ व हे महाभागे ! आकाश नीचेकी

गतिवाला होगया और सब समुद्रों के जल खलभलानेलगे ॥ ४५ ॥ और टूटेहुये शिखररूप बन्धनवाले पर्वत टूटगये और हे वरवर्णिनि, पार्वतीजी ! ध्रुव आधारवाले समस्त नक्षत्र ॥ ४६ ॥ घूमतीहुई किरणोंमें बँधकर हज़ारों नीचे होगये और भयङ्कर शब्द से गर्जतेहुये बड़े २ भारी मेघ टूटगये ॥ ४७ ॥ हे वरवर्णिनि ! उस समय सूर्यनारायण के भ्रमणसे घूमीहुई पृथ्वी, आकाश व भूतल समेत संसार बहुतही व्याकुल हुआ ॥ ४८ ॥ हे देवि ! जब त्रिलोक घूमनेलगा तब महर्षिलोग, ब्रह्मासमेत समस्त देवता सूर्यनारायणकी स्तुति करनेलगे ॥ ४९ ॥ कि आपही पैदाहुये तुम उस समय देवताओंके आदिदेव हो और सृष्टि, पालन व संहार समयमें तीनभांति के

यन्ततथाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥ ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानिवरवर्णिनि ॥ ४६ ॥ भ्राम्यद्रश्मिनिबद्धानि अधोजग्मुःसहस्रशः ॥ व्यशीर्यन्तमहामेघा घोररावविराविणः ॥ ४७ ॥ भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तं भूम्याकाशमहीतलम् ॥ जगदाकुलमत्यर्थं तदासीद्वरवर्णिनि ॥ ४८ ॥ त्रैलोक्येसकलेदेवि भ्रममाणेमहर्षयः ॥ देवाश्चब्रह्मणासार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥ ४९ ॥ आदिदेवोसिदेवानां जातमात्रःस्वयंतदा ॥ सर्गस्थित्यन्तकालेतु त्रिधाभेदेनतिष्ठसि ॥ ५० ॥ स्वस्तितेस्तुजगन्नाथ धर्मवर्ष्मदिवाकर ॥ इन्द्रस्त्वागम्यतंदेवं लिख्यमानमथास्तुवन् ॥ ५१ ॥ जयदेवजगत्स्वामिञ्जयदेवजगत्पते ॥ ऋषयश्चततःसप्त वसिष्ठात्रिपुरोगमाः ॥ ५२ ॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥ वेदोक्तिभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्चतुष्टुवुः ॥ ५३ ॥ नमस्तेस्तुसुरूपाय निर्मूर्तायामलात्मने ॥ वरिष्ठायवरेण्याय सर्वस्मैपरमात्मने ॥ ५४ ॥ नमोखिलजगद्व्यापी स्वरूपानन्तमूर्त्तये ॥ सर्वकारणभूताय निष्ठायज्ञानचेतसाम् ॥ ५५ ॥

भेदोंसे स्थितहो ॥ ५० ॥ हे धर्ममयशरीर, दिवाकर, जगदीशजी ! तुम्हारा कल्याणहोवै इसके उपरान्त इन्द्रजीने शापित तेजवाले उन सूर्यनारायणदेवजीके पास आकर स्तुति किया ॥ ५१ ॥ कि हे संसारस्वामिन्, देव ! आपकी जयहो हे जगत्पते, देव ! आपकी जयहो उसके उपरान्त वसिष्ठ व अत्रिपूर्वक सप्तर्षि लोगोंने ॥ ५२ ॥ स्वस्ति स्वस्ति ऐसा कहतेहुये अनेक भांतिके स्तोत्रोंसे स्तुति किया इसके उपरान्त श्रेष्ठवेदोक्तियोंसे बालखिल्य महर्षियोंने स्तुति किया ॥ ५३ ॥ कि सुरूपवान् तथा अमूर्तिमान् व निर्मलात्मा आपके लिये नमस्कार है और श्रेष्ठ, वरेण्य व समस्त तथा परमात्मा के लिये प्रणाम है ॥ ५४ ॥ व समस्त संसार में व्यापित स्वरूपवाले

अनन्तमूर्त्ति के लिये नमस्कारहै और सबके कारणभूत व ज्ञानवित्तवालोंके सिद्धिरूप,आपके लिये प्रणामहै॥ ५५ ॥ व सूर्यस्वरूप और प्रकाशसे अलक्ष्यरूपवाले आप के लिये प्रणाम है तथा प्रकाशकर आपके लिये व दिनकारक के लिये प्रणाम है ॥ ५६ ॥ व सबको उत्पन्न करनेवाले के लिये व सन्ध्या में चन्द्रिका (उजियाली) करनेवाले के लिये प्रणाम है हे भगवन् ! तुम यह समस्त संसारहो और भ्रमण करतेहुये तुमसे ॥ ५७ ॥ स्थावर जंगम समेत तथा संसार समेत समस्त ब्रह्माण्ड घूमता है और तुम्हारी किरणों से स्पर्श कीहुई यह सब वस्तु पवित्र होती है ॥ ५८ ॥ और तुम्हारी किरणों का स्पर्श जलादिकों की पवित्रता करता है तबतक होम व

नमःसूर्यस्वरूपाय प्रकाशालक्ष्यरूपिणे ॥ भास्करायनमस्तुभ्यं तथादिनकृतेनमः ॥ ५६ ॥ सर्वरोहेनमश्चैव साध्यज्योत्स्नाकृतेनमः ॥ त्वंसर्वमेतद्भगवञ्जगच्चभ्रमतात्वया ॥ ५७ ॥ भ्रमत्याविश्वमखिलं ब्रह्माण्डंसचराचरम् ॥ त्वदंशुभिरिदंसर्वं स्पृष्टंवैजायतेशुचि ॥ ५८ ॥ कुरुतेत्वत्करस्पर्शो जलादीनांपवित्रताम् ॥ होमदानादिकोधर्मो नोपकारायजायते ॥ ५९ ॥ तावद्यावन्नसंयोगिजगदेतत्त्वदंशुभिः ॥ ऋचस्तेसकलाह्येतास्तथायानियजूंषिच ॥ ६० ॥ सकलानिचसामानि निपतन्तित्वदङ्गतः ॥ ऋङ्मयस्त्वंजगन्नाथ त्वमेवचयजुर्मयः ॥ ६१ ॥ यतःसाममयश्चैवं ततोनाथत्रयीमयः ॥ त्वमेवब्रह्मणोरूपं परंचापरमेवच ॥ ६२ ॥ मूर्तामूर्ततथासूक्ष्मस्थूलरूपेणसंस्थितम् ॥ निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपःक्षणात्मकः ॥ ६३ ॥ प्रसीदस्वेच्छयारूपं स्वंतैजसमयंकुरु ॥ त्वंदेवजगतांहेतोर्दुःखंसहसिदुःसहम् ॥ ६४ ॥

दानादिक धर्म उपकार के लिये नहीं होताहै ॥ ५९ ॥ जबतक कि यह संसार तुम्हारी किरणों के संयोग को नहीं प्राप्त होताहै तुम्हारी ये सकल ऋचा व जो यजुर्वेद के मन्त्रहैं ॥ ६० ॥ और सब सामवेदवाले मन्त्र तुम्हारे अङ्गसे गिरतेहैं हे जगदीशजी ! तुम ऋङ्मयहो व तुम्हीं यजुर्मयहो ॥ ६१ ॥ और जिस लिये साममय हो उसीसे वेदत्रयीमयहो और तुम्हीं ब्रह्माका रूपहो व पर तथा अपर हो ॥ ६२ ॥ और मूर्त्तिमान् व अमूर्त्तिमान् तथा सूक्ष्म व स्थूलरूप से भलीभांति स्थितहो और निमेष व काष्ठादिमय तथा कालरूप व क्षणात्मक हो ॥ ६३ ॥ हे देव ! अपनी इच्छासे प्रसन्नहोवो और अपने रूपको तेजमय करो लोकोंके लिये तुम दुःसह (कठिन) दुःखको सहतेहो ॥६४॥

हे नाथ ! मोक्षवाले पुरुषों के तुम मोक्षहो व ध्यान करनेवालों के तुम उत्तम ध्यान करनेयोग्य हो और कर्मकाण्ड में प्रवृत्त समस्त प्राणियों की तुम गति हो ॥ ६५ ॥ हे सुदेवेश ! प्रजाओं के लिये कल्याण कीजिये हे जगत्पते ! शान्त हूजिये ॥ ६६ ॥ ब्रह्मा होकर एकही आप संसार को रचते हो और तुम्हीं पालन करनेके लिये वर्तमान होकर पालकहो और अन्त में यह समस्त संसार तुममें लीन होजाताहै हे तपन ! तुमसे अन्य सर्वदायक नहीं है ॥ ६७ ॥ ब्रह्मा, विष्णु व शिव-संज्ञक तुम्हीं हो और इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण व पवन तुम्हींहो व चन्द्रमा, अग्नि, आकाश, पृथ्वी इत्यादिक रूपवाले तुम्हींहो व तुम्हीं सब मनोरथोंको देनेवाले

त्वंनाथमोक्षिणांमोक्षो ध्येयस्त्वंध्यायतामपरः ॥ त्वंगतिःसर्वभूतानां कर्मकाण्डप्रवर्तिनाम् ॥ ६५ ॥ शंप्रजाभ्यःसुदेवेश शान्तोस्तुजगताम्पते ॥ ६६ ॥ त्वंधाताविसृजसिविश्वमेकएव त्वंपातास्थितिकरणायसंप्रवृत्तः ॥ त्वय्यन्तेलयमखिलंप्रयातिचैतत् त्वत्तोन्योनहितपनास्तिसर्वदाता ॥६७॥ त्वंब्रह्माहरिशिवसंज्ञितस्त्वमिन्द्रो वित्तेशःपितृपतिरप्पतिःसमीरः ॥ सोमोग्निर्गगनमहीधरादिरूपः किन्तुत्वंसकलमनोरथप्रदाता ॥ ६८ ॥ यज्ञैस्त्वांत्वनुदिनमात्मकर्मशक्ताः स्तुन्वन्तोविविधपदैर्द्विजायजन्ति ॥ ध्यायन्तोविनियतचेतसोभवन्तं यागस्थाःपरमपदंप्रयान्तिमर्त्याः ॥ ६९ ॥ तपसिसृजसिविश्वंपासिभस्मीकरोषि प्रकटयसिमयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ॥ सृजसिकमलजन्मापालयस्यच्युताख्यः क्षपयसिचयुगान्तेरुद्ररूपस्त्वमेकः ॥७०॥ लिखमानस्ततोभानुंविश्वकर्माप्रजापतिः ॥ उद्भूतपुलकःस्तोत्रमिदंचक्रेविवस्वतः ॥७१॥ विवस्वतेप्रणतजनानुकम्पिनेमहात्मनेसमजवसप्तसप्तये ॥ स्वतेजसाकमलकुलावबर्द्धिनेसदा तमःपटलपटाव

हो ॥ ६८ ॥ अपने कर्म में लगे व विविध पदों से स्तुति करते हुये ब्राह्मणलोग प्रतिदिन यज्ञों से तुम्हीं को पूजते हैं और चित्त को रोके हुये यज्ञों में स्थित मनुष्य आप ही को ध्याते हुये परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ६९ ॥ तपते हो व संसार को रचते, पालते और भस्म करते हो और किरणों से प्रकट करते हो और किरणों के गर्भ से आनन्द करते हो कमलजन्मा याने ब्रह्मा होकर रचते हो और विष्णुनामक तुम पालते हो और युगान्त में तुम्हीं एक रुद्ररूप होकर संहार करते हो ॥ ७० ॥ तदनन्तर सूर्यनारायण के तेज को काटते हुये प्रजापति विश्वकर्मा जीने रोमाञ्चित होकर सूर्यनारायण की यह स्तुति किया ॥ ७१ ॥ कि प्रणत जनों के ऊपर दया

करनेवाले, महात्मा, सूर्यनारायण के लिये और समान वेग संयुत सात घोड़ोंवालेके लिये प्रणाम है तथा अपने तेजसे कमल कुल को बढ़ानेवाले और सदैव, अन्धकार समूह के नाशनेवाले आपके लिये प्रणामहै ॥ ७२ ॥ और अत्यन्त पवित्र व सबों के नेत्ररूप तथा अनेक कामनाओंवाले विषयों को देनेवाले के लिये प्रणाम है हे भास्करजी ! निर्मल किरणों की मालावाले और समस्त प्राणियों के हितकारक आप के लिये प्रणाम है ॥ ७३ ॥ जन्मरहित, तीनों लोकों को पैदा करनेवाले, भूतात्मा, किरणपति व धर्मरूप आपके लिये प्रणामहै और दयावानोंमें उत्तम आपके लिये प्रणाम है व सात घोड़ों से संयुक्त रथवाले तुम सूर्य के लिये प्रणाम है ॥ ७४ ॥ विवस्वान् व देहधारियों के अन्तरात्मा व संसार में प्रतिष्ठित तथा संसार के हितैषी के लिये प्रणाम है और स्वयभू व संसार के निर्मल नेत्ररूप,

पाटिने ॥ ७२ ॥ पावनातिशयसर्वचक्षुषे नैककामविषयप्रदायिने॥ भासुरामलमयूखमालिने सर्वभूतहितकारिणेनमः॥ ७३ ॥ अजायलोकत्रयभावनाय भूतात्मनेगोपतयेवृषाय ॥ नमोस्तुतेकारुणिकोत्तमाय सूर्यायसप्ताश्वरथायतुभ्यम् ॥ ७४ ॥ विवस्वतेदेहभृदन्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठायजगद्धितैषिणे ॥ स्वयंभुवेनिर्मललोकचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥ ७५ ॥ क्षणमुदयाचलमीलितार्चिःसुरगुणगीतगरिष्ठकीर्त्तिः ॥ त्वमुतमयूखसहस्रवशाज्जगतिविकाशितपद्म कुलः ॥ ७६ ॥ तवतिमिरासवपानमदाद्भवतिविलोहितविग्रहईशः ॥ मिहिरविभासितपाहिसुरांस्त्रिभुवनभावन मात्रपरः ॥ ७७ ॥ रथमारुह्यसमावयवंविरचितकल्पितदिव्यहयम् ॥ सततमखिन्नमनाभगवंश्चरसिजगद्धितबद्धर सः ॥ ७८ ॥ अमृतमयेनरसेनसमंविबुधपितॄनपितर्पयसे ॥ अरिगणसूदनतेनतवप्रणतिमुपेत्यलिखामिवपुः ॥ ७९ ॥

देवोत्तम व अतुलित तेजवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ ७५ ॥ क्षणभर उदयाचलपै संकुचित किरणोंवाले व सुरसमूहों से गाये हुये गुरु यशवाले हो और तुम्हीं संसार में हजारों किरणों के वश से कमलकुलको प्रकाशित करनेवालेहो ॥ ७६ ॥ हे ईश ! अन्धकाररूपी मद्यपान के मद (नशा) से तुम्हारा शरीर अरुण होता है हे प्रकाशित, सूर्यनारायणजी ! देवताओं की रक्षा कीजिये क्योंकि आप त्रिलोकको प्रकट करनेहीं में परायण हो ॥ ७७ ॥ हे भगवन् ! विरचित व कल्पित दिव्य अश्वोंवाले और समान अंगोंवाले रथ पै चढ़कर सदैव प्रसन्नमनवाले और संसारके हितके लिये बँधे हुये रसवाले तुम विचरतेहो ॥ ७८ ॥ हे शत्रुगणविनाशक !

तुम अमृतमय रसमे देवताओं व पितरों को तुल्यही तृप्त करतेहो इसलिये प्रणाम करके तुम्हारे शरीरको लिखताहूं याने तेजको काटता हूं ॥ ७९ ॥ हे प्रणतजनप्रिय, उत्तमवर्णवाले, सूर्यनारायणजी ! तुम्हारे चरण की धूलि अत्यन्त पवित्रहै हे त्रिभुवनपावन, सूर्यनारायणजी ! प्रणाम किये हुये मेरी रक्षा कीजिये ॥ ८० ॥ इस प्रकार समस्त संसार के उत्पत्तिभूत व त्रिलोक को उत्पन्न करनेवाले व तेजों के हेतुभूत, अद्वितीय व समस्त संसार के दीपकभूत, सुरवर, देवदेव सूर्यनारायण को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ८१ ॥ और हाहा हूहू गंधर्व व नारद, तुम्बुरु गंधर्वशास्त्र में चतुर इन सबों ने सूर्यनारायण के समीप गाने का प्रारंभ किया ॥ ८२ ॥

मिहिरसुवर्णभयव्यथितं तवपदपांसुपवित्रतमम् ॥ नतजनवल्लभमांप्रणतं त्रिभुवनपावनपाहिरवे ॥८० ॥ इतिसकलजगत्प्रसूतिभूतं त्रिभुवनभावनधामहेतुमेकम् ॥ रविमखिलजगत्प्रदीपभूतं त्रिदशवरंप्रणतोस्मिदेवदेवम् ॥ ८१ ॥ हाहा हूहूश्चगन्धर्वौ नारदस्तुम्बुरुस्तथा॥उपगातुंसमारब्धा गान्धर्वकुशलारविम् ॥ ८२ ॥ षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ॥ मूर्च्छनाभिश्चतानैश्च सुप्रयोगेसुखप्रदम् ॥ ८३ ॥ सप्तस्वरप्रवृत्तश्च यतित्रितयभूषितम् ॥ चतुर्धातुसमायुक्तं षड्जातित्रिगुणाश्रयम् ॥ ८४ ॥ चतुर्गतिसमायुक्तं चतुर्वर्णसमुच्छ्रितम् ॥ चतुर्वर्णप्रतीकारं समलङ्कारभूषितम्॥ ८५ ॥ त्रिस्थानशुद्धंत्रिलयं सम्यक्कालव्यवस्थितम् ॥ चित्तेचित्तेचनृत्येच रसेषुलयसंयुतम् ॥ ८६ ॥ चतुर्विंशतिगुणैर्युक्तं जगुर्गीतंचगायकाः ॥ विश्वाचीचघृताचीच उर्वशीचतिलोत्तमा ॥ ८७ ॥ मेनकामञ्जुघोषाद्या रम्भाचाप्सरसांव

जो कि षड्ज, मध्यम, गांधार व तीनों ग्रामों में चतुर थे मूर्च्छनाओं व तानों से उत्तम प्रयोग में सुखदायक ॥ ८३ ॥ और सातों स्वरों से वर्तमान, तीन यतियों (विश्रामों) से विभूषित, चार धातुओंसे संयुक्त छह जातियोंवाले व तीनों गुणों के आश्रय ॥ ८४ ॥ और चार गानों से संयुक्त चार वर्णों से उन्नत तथा चारों वर्णों के प्रतीकार (युक्ति) वाले व भलीभांति अलंकारों से भूषित ॥ ८५ ॥ व तीनों स्थानों से शुद्ध, तीन लयवाले और भलीभांति समय से स्थित व प्रत्येक के चित्त में नृत्य में व रसोंमें लय से संयुक्त ॥ ८६ ॥ चौबीस गुणों से युक्त गान को गानेवालों ने गाया और विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा ॥ ८७ ॥ व मेनका, मंजु-

घोषादिक अप्सरायें व अप्सरओं में उत्तम रंभा ने चार भांति के व मधुर, अव्यक्त तथा ताल समेत तीन भांतिवाले व तीन लयों से संयुक्त ॥ ८८ ॥ व तीन यतियों वाले व चारभांतिके वाद्य व चार प्रकारके नृत्यको उससमय नाचा जब कि लोकोंके स्वामी सूर्यनारायणजी लिखने जानेलगे ॥८९॥ जो अप्सरायें कि भावाभावके विशाल भावों से अनेक भांति के नृत्यों को करती थीं सैकड़ों व हज़ारों देवताओंके नगाड़े व शंख ॥ ९० ॥ हे महादेवि ! बिन ताड़ित होकर बाजने लगे जो कि मेघों के समान शब्दोंवाले थे वे सब गन्धर्वों के गाते हुये व अप्सरासमूहों के नाचते हुये ॥ ९१ ॥ बाजने लगे और वे गंधर्व प्रसन्न हुये व रेणु तथा वेणु आदिक और झर्झर बाजे

रा ॥ चतुर्विधकलन्तालं त्रिःप्रकारंलयत्रयम् ॥ ८८ ॥ यतित्रयंतथातोद्यं नाट्यञ्चैवचतुर्विधम् ॥ ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमानेविभावसौ ॥ ८९ ॥ भावाभावविशालाभ्यां कुर्वन्त्योविविधान्बहून् ॥ देवदुन्दुभयःशङ्खाः शतशोथसहस्रशः ॥ ९० ॥ अनाहतामहादेवि नेदिरेघननिःस्वनाः ॥ गायद्भिश्चैवसर्वेते नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥ ९१ ॥ अवाद्यंस्तुतुषुस्तेच रेणुवेणवादिझर्झराः ॥ पणवाःपुष्कराश्चैव मृदङ्गपटहानकाः ॥ ९२ ॥ तूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वंकोलाहलीकृतम् ॥ ९३ ॥ ततःकलकलेतस्मिन्सर्वदेवसमागमे ॥ संवत्सरंभ्रमिस्थस्य विश्वकर्मारवेस्ततः ॥ ९४ ॥ तेजसःशातनंचक्रेस्तूयमानस्यदैवतैः ॥ देविचक्रेसमारोप्य भ्रामयामाससूत्रकृत ॥ ९५ ॥ मृत्पिण्डवत्कुलालस्य संस्पृशन्क्षुरधारया ॥ परंतस्यस्तवंकुर्वन् विश्वकर्मादिवस्पतेः ॥ ९६ ॥ तेजसःषोडशम्भागं मण्डलस्थमधारयत् ॥ शातितंतस्यतत्तेजो यावदादौवरानने ॥ ९७ ॥ यत्तस्यऋङ्मयंतेजस्तत्प्रभासेपतत्प्रिये ॥ यजुर्मयेनदेवेशि भावितार्द्योमहाप्रभा ॥९८॥

व पणव, पुष्कर, मृदङ्ग और ढोल, नगारे, ॥९२॥ बाजने लगे तुरही और बाजोंके शब्दोंसे सब संसारमें कोलाहल करदियागया ॥ ९३ ॥ तदनन्तर समस्त देवोंके संयोग वाले उस कोलाहलके होनेपर वर्षभर तक चक्र पै स्थित व देवताओंसे स्तुतिकिये जातेहुये सूर्यनारायणके तेजको विश्वकर्माने शातन किया याने काटडाला हे देवि ! चक्र पै आरोपण कर विश्वकर्मा जीने छुरे की धार से स्पर्श करतेहुये कुँभारके मिट्टीवाले पिंड के नाईं घुमाया परन्तु उन सूर्यनारायणकी स्तुति करतेहुये विश्वकर्मा जीने ॥ ९४ । ९५ । ९६ ॥ मण्डल में स्थित तेज के सोलहवें भाग को धारण कराया हे वरानने ! जब तक पहले उन सूर्य का वह जो तेज काटा गया ॥ ९७ ॥

हे प्रिये ! उन सूर्यनारायण का जो अथर्व तेज था वह प्रभासक्षेत्र में पतित हुआ व हे देवेशि ! यजुर्मय तेज से महाप्रकाशमान आकाश व्याप्त होगया ॥ ९८ ॥ व साममय तेज से स्वर्ग भी व्याप्तहोगया इसप्रकार भूर्भुवःस्वर्लोक में तेज स्थित हुआ तदनन्तर तेजों के पंद्रह भागों से ॥ ९९ ॥ उन विश्वकर्मा ने विष्णु के चक्र व सदाशिवजीके महाप्रकाशवान् तथा बड़े भारी शूलको निर्माण किया व कुबेरकी पालकीको रचा ॥ २०० ॥ और यमराजका दण्ड व सुरसेनाध्यक्ष (स्वामिकार्त्तिकेयजी) की शक्तिको बनाया व और देवताओं के जो अस्त्र कहेगये हैं ॥ १ ॥ व यक्षों तथा विद्याधरोंके जो अस्त्रहैं उनको उन विश्वकर्माने निर्माण किया उसी

स्वर्गसाममयेनापि भूर्भुवःस्वरितिस्थितम् ॥ ततस्तुतेजसोभागैर्दशभिःपञ्चभिस्तथा ॥ ९९ ॥ तेनवैनिर्मितंचक्रं विष्णोःशूलंहरस्यच ॥ महाप्रभंमहाकायं शिबिकाधनदस्यच ॥ २०० ॥ दण्डंप्रेतपतेःशक्तिः सुरसेनापतेस्तथा ॥ अन्येषांचसुराणाञ्च अस्त्राण्युक्तानियानिवै ॥ १ ॥ यक्षविद्याधराणाञ्च तानिचक्रेसविश्वकृत् ॥ ततःषोडशमंभागं बिभर्त्तिभगवान्हरिः ॥ २ ॥ तेजोरसविभागैश्च सुखस्थश्चरतिप्रिये ॥ इतिशातिततेजाःस श्वशुरेणातिशोभनम् ॥ ३ ॥ वपुर्दधारमार्तण्डः पुष्पचापमनोरमम् ॥ ततःस्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् ॥ ४ ॥ ददृशेतत्रसंज्ञान्तु वडवारूपधारिणीम् ॥ अस्पृश्यांसर्वभूतानां तपसानियमेनच ॥ ५ ॥ साचदृष्ट्वातमायान्तं परपुंसोविशङ्कया ॥ जगामसम्मुखंतस्य अश्वरूपधरस्यच ॥ ६ ॥ ततश्चनासिकायोगे तयोस्तत्रसमेतयोः ॥ नासत्यदस्रौतनयावश्ववक्त्रौविनिर्ग

से सोलहवें भागवाले तेजको भगवान् सूर्यनारायणजी धारण किये हैं ॥ २ ॥ हे प्रिये ! छह विभागों से सुखपूर्वक टिकाहुआ तेज चलता है इसप्रकार श्वशुर विश्वकर्मासे शातित तेजवाले उन सूर्यनारायणजीने अतिसुन्दर ॥ ३ ॥ व कामदेव के नाईं मनोहर शरीरको धारणकिया तदनन्तर स्वरूपको धारण कियेहुये सूर्यनारायणजी उत्तरकुरुदेशों को गये ॥ ४ ॥ और वहां उन्होंने अश्विनीरूपको धारण कियेहुई सञ्ज्ञाको देखा जोकि तपस्या व नियम से समस्त प्राणियोंके स्पर्श करने योग्य न थी ॥ ५ ॥ और आतेहुये उन सूर्यनारायणको देखकर सञ्ज्ञा पराये पुरुषकी शंकासे उन अश्वरूपधारी सूर्यनारायणके सामने गई ॥ ६ ॥ तदनन्तर वहांपर जब नासिका

के योगमें वे दोनों संयोगको प्राप्त हुये तब अश्वमुखवाले अश्विनीकुमार पुत्र निकले ॥ ७ ॥ और वीर्य्यके अन्त में तलवार व धनुषको धारे तथा कवचको पहनेहुये रेवन्तजी उत्पन्नहुये और पैदा होतेही वे रेवन्त पिताके आठवें घोड़ेको लेकरभगे ॥ ८ ॥ एकहीं बार उस घोड़ेपै चढ़ेहुये वे रेवन्तजी उस घोड़ेको नहीं छोड़तेथे तदनन्तर सूर्यनारायणजीने दण्डनायक व पिंगलको आज्ञा दिया ॥ ९ ॥ कि मेरे घोड़े को इससे बलके द्वारा मत लावो किन्तु छिद्रसे लावो उसके समीप टिके व अश्व की चिन्ताको चाहतेहुये ॥ १० ॥ वे दोनों उन महात्मा रेवन्तजीके छिद्रको आज भी नहीं पाते हैं आगे रेवन्त चलते हैं व पीछे दण्ड, पिंगल जाते हैं ॥ ११ ॥ बड़े वेग-

तौ ॥ ७ ॥ रेतसोन्तेचरेवन्तः खड्गीधन्वीतनुत्रभृत् ॥ पितुर्गृह्याष्टमंसोश्वं जातमात्रोपलायत ॥ ८ ॥ सतस्मिन्सकृदारूढस्तमश्वंनैवमुञ्चति ॥ ततोर्केणसमादिष्टौ दण्डनायकपिङ्गलौ ॥९॥ अश्वंपर्यानयध्वम्मे माबलाच्छिद्रतोस्यतु ॥ पाश्वस्थौतिष्ठतस्तस्य अश्वचिन्ताभिकाङ्क्षिणौ ॥ १० ॥ नच्छिद्रंचलभेतेतौ तस्याद्यापिमहात्मनः ॥ अग्रेगच्छतिरेवन्तः पृष्ठतोदण्डपिङ्गलौ ॥ ११ ॥ उत्तरेभ्यःकुरुभ्यस्तु निर्गतौवेगवत्तरौ ॥ दक्षिणंभारतंप्राप्तौ यत्रक्षेत्रंप्रभासिकम् ॥ १२ ॥ अत्यर्थवेगखिन्नौतु सचरेवन्तकोपिहि ॥ प्रच्छिन्नगात्रःसोप्यश्वो रेवन्तस्तत्रसंस्थितः ॥ १३ ॥ मुहूर्तेनसमाक्रान्तं लक्षयोजनमण्डलम्॥उत्तराद्दक्षिणंदेवि रेवन्तेनमहात्मना ॥ १४ ॥ खिन्नगात्रस्ततोदेवि प्रभासेसमवस्थितः ॥ दण्डपिङ्गलसंयुक्तोह्यश्वारूढःसतिष्ठति ॥ १५ ॥ सावित्र्यानैर्ऋतेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थितः ॥ राज्ञीपुत्रोयतोदेवि प्रभा

वान् वे दोनों उत्तरकुरुदेशों से निकले और जहां प्रभासक्षेत्रहै वहांपर दक्षिणओर भारतखण्ड में प्राप्तहुये ॥ १२ ॥ और बहुतही वेगसे वे दोनों और वह रेवन्तक भी दुःखितहुआ और कटेहुये अगोंवाला वह घोड़ाभी दुःखितहुआ व उसपै रेवन्तजी बैठे हैं ॥ १३ ॥ हे देवि ! महात्मा रेवन्तजी एक मुहूर्त (कच्ची दो घड़ी) में उत्तर से दक्षिणओर लाख योजन मण्डलको नाघगये ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे देवि ! दुःखित अंगोंवाले रेवन्तजी प्रभासक्षेत्र में भलीभांति स्थितहुये दण्ड व पिंगलसे संयुक्त वे रेवन्तजी घोड़ेपर स्थितहैं ॥ १५ ॥ वे रेवन्तजी सावित्रीके नैर्ऋत्यभाग में थोड़ी दूर पे टिके हैं हे देवि ! जिसलिये रानीका पुत्र राजा भट्टारक दण्ड व पिंगलसमेत

प्रभासक्षेत्रमें स्थितहै उसी कारण संसारमें राजा भट्टारक ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्तहुये ॥१६।१७॥ और गुह्यभट्टारकत्व में रेवन्त युक्त कियेगये तदनन्तर संसारतापन भगवान् सूर्यनारायणजी ने ऐसा कहा ॥ १८ ॥ कि हे वत्स ! तुम इस समस्त संसार के पूजनीय होगे व हे महादेवि ! यह कहा कि वनमें और शत्रु व चोरोंके भयोंमें ॥१९॥ जो मनुष्य तुमको स्मरण करेंगे वे बड़ीभारी विपत्ति से छूटजावेंगे और क्षेत्र,संपदा, सुख, राज्य, आरोग्य,यश व उन्नतिको ॥ २० ॥ बहुतही प्रसन्न होकर तुम मनुष्यों को दोगे और पूजित होगे व महात्मा पिताजीने अश्विनीकुमार को देववैद्य कहा ॥ २१ ॥ और ये यमराज धर्मदृष्टि हुये जोकि मित्र व शत्रुमें समान हैं तदनन्तर

सेसमवस्थितः॥ १६ ॥ दण्डपिङ्गलसंयुक्तो राजाभट्टारकस्ततः ॥ लोकेख्यातिंसमायाति राजाभट्टारकेतिच ॥ १७ ॥ गुह्यभट्टारकत्वेचरेवन्तोविनियोजितः ॥ एवमप्याहचततो भगवाँल्लोकतापनः ॥ १८ ॥ त्वमस्याशेषलोकस्य पूज्यो वत्सभविष्यसि ॥ अरण्येचमहादेवि वैरिदस्युभयेषुच ॥ १९ ॥ त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्या मोक्ष्यन्तेतेमहापदः ॥ क्षेत्रं ऋद्धिंसुखंराज्यमारोग्यंकीर्त्तिमुन्नतिम् ॥ २० ॥ नराणामतितुष्टस्त्वं पूजितःसम्भविष्यसि॥ अश्विनौदेवभिषजौ कृतौ पित्रामहात्मना ॥ २१ ॥ धर्मदृष्टिर्यमश्चासौ समोमित्रेतथाहिते ॥ ततोनियोगंतच्चैव चकारतिमिरापहः ॥ २२॥ यमुनां चनदींचक्रे कलिङ्गान्तरवाहिनीम् ॥ छायासंज्ञासुतश्चापिसावर्णिस्तुमहायशाः ॥ २३ ॥ भाव्यःसोनागतेकाले मनुःसावर्णिकोष्टमः ॥ मेरुपृष्ठेतपोघोरमद्यापिचरतिप्रभुः ॥ २४ ॥ भ्राताशनैश्चरस्तस्य ग्रहोभूत्वागमद्दिवम् ॥ एवंतेभ्योवरान्दत्त्वारेवन्तस्यापिभास्करः ॥ २५ ॥ पुनर्नामनिरुक्तंस रेवन्तस्याकरोत्प्रभुः ॥ एवंगच्छत्यसौयस्मात् संज्ञायाःशा

अन्धकारनाशक सूर्यनारायणजी ने उस आज्ञाको किया ॥ २२ ॥ और यमुना को कलिङ्गदेशान्तर में बहनेवाली नदी किया और छायासंज्ञा के पुत्र महाकीर्तिमान् जो सावर्णिजी थे ॥ २३ ॥ वे भविष्यसमयमें आठवें सावर्णि मनुहोंगे वेसावर्णिस्वामीजी सुमेरुपर्वत पै आजभी भयङ्कर तपस्या करतेहैं ॥ २४ ॥ और उनके भाई शनैश्चर ग्रह होकर आकाशको चलेगये इस प्रकार उनके लिये व रेवन्तको भी वरदान देकर उन स्वामी सूर्यनारायणजीने फिरभी रेवन्त का नाम निरुक्त किया जिस लिये

संज्ञाका यह शान्तिदायक पुत्र इस प्रकार जाताहै ॥ २५ । २६ ॥ उसीसे हे वरानने पार्वतीजी ! सूर्यनारायणजी ने घोड़ोंकी स्वामिता में किया और जो मनुष्य मार्ग में उनको पूजताहै वह सुखसे मार्गको चलताहै व हे वरवर्णिनि ! मनुष्यों के मध्यमें सदैव सुखसे प्रसन्नता करानेयोग्य होताहै ॥ २२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामर्कस्थलमाहात्म्येभट्टारकादित्यवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथायमेश्वरलिंग को थाप्यो है यमराज । सोइ दशम अध्याय में अहै चरित सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि जो संज्ञाथी वह रानी कहीगई है और जो

न्तिदःसुतः ॥ २६ ॥ अश्वानामाधिपत्येतु भानुनाचवरानने ॥ क्षेमेनुगच्छत्यध्वानं यस्तुपूजयतेपथि ॥ सुखप्रसाद्यो मर्त्यानां सदाचवरवर्णिनि ॥ २२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽर्कस्थलमाहात्म्येभट्टारकादित्यवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

महादेव उवाच ॥ यासंज्ञासास्मृताराज्ञीछायायासातुनिक्षुधा ॥ राजृदीप्तौस्मृतोधातू राजाराजतियःसदा ॥ १ ॥ अधिकंसर्वभूतेभ्यस्तस्माद्राजासउच्यते ॥ राजपत्नीतुसायस्मात्तस्माद्राज्ञीप्रकीर्तिता ॥ २ ॥ क्षुभसञ्चलनेधातुर्निश्चलत्वेननिक्षुभा ॥ भयंनक्षुद्भवायस्मात्स्मृतासातेननिक्षुधा ॥ ३ ॥ साम्प्रतंवर्त्ततेयोयं मनुर्लोकेमहामतिः ॥ तस्यान्वयेच ज्ञातस्तु शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ यमस्तुमात्रासंशप्तो हीनपादोधरातले ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य चचारविपुलंतपः ॥ ५ ॥

छायाथी वह निक्षुधा है राजृधातु दीप्ति अर्थमें कहीगई है जो सदैव प्रकाशित होता है वह राजाहै ॥ १ ॥ जिसलिये समस्त प्राणियों से अधिक शोभित होताहै उसी कारण वह राजा कहाजाताहै और जिसलिये वह राजाकी स्त्री थी उसी कारण रानी कहीगई ॥ २ ॥ और क्षुभधातु संचलन अर्थमें है उसीसे निश्चलतासे निक्षुभा कहीगई व जिसलिये क्षुधासे उपजीहुई भय उसके न थी उसीकारण वह निक्षुधा हुई ॥ ३ ॥ संसारमें इस समय जो ये बड़े बुद्धिमान् मनु वर्तमान हैं उन्हीं के वंश में शङ्ख, चक्र व गदाधारी विष्णुजी पैदाहुये हैं ॥ ४ ॥ और मातासे शापित चरणहीन यमराजजी ने पृथ्वीमें प्रभासक्षेत्र में प्राप्तहोकर बड़ी तपस्या किया ॥ ५ ॥

उन्होंने कुछ अधिक दश हज़ार वर्षतक लिंगका पूजन किया तदनन्तर प्रसन्नहोकर मैंने उसको सौ वरदानदिया ॥ ६ ॥ हे देवेशि ! वहांपर आजभी यमद्वितीया तिथि में यमेश्वर ऐसे प्रसिद्ध लिंगको देखकर मनुष्य यमपुरी को नहीं देखताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयमेश्वरोत्पत्तिर्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ● ॥

दो० । यथा प्रभासक्षेत्र में भो अर्कस्थल थान । सो गेरहें अध्याय में कीन्हो चरित बखान ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि हे महादेवजी ! जब प्रीतिपूर्वक श्वशुर

वर्षाणामयुतंसाग्रं लिङ्गंपूजितवान्प्रिये ॥ तुष्टश्चाहंततस्तस्य वराणाञ्चशतंददौ ॥ ६ ॥ अद्यापितत्रदेवेशि यमेश्वरमितिश्रुतम् ॥ यमद्वितीयायान्दृष्ट्वा यमलोकन्नपश्यति ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेयमेश्वरोत्पत्तिर्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ यदाभ्रमिस्थःसविता तच्छितःक्षुरधारया ॥ श्वशुरेणमहादेव जामाताप्रीतिपूर्वकम् ॥ १ ॥ तत्तेजःशातितम्भूरिप्रभासेयत्पपातवै ॥ तदभूत्किंतदादेव प्रभासात्कथयस्वमे ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यच्छ्रुत्वामानवोभक्त्या मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ३ ॥ देहावतारोदेवस्य प्रभासेकेवलस्यच ॥ पुराणाख्यानमावक्ष्ये तवदेवियशस्विनि ॥ ४ ॥ शाकद्वीपेमहादेवि भ्रमिस्थस्यतदारवेः ॥ वर्षाणान्तुशतंसाग्रं तत्प्रमाणेविभावसौ ॥ ५ ॥ यदाद्यभागजंतेजस्तत्प्रभासेपतत्प्रिये ॥ पतितंतत्रतत्तेजः स्थलाकारंव्यजायत ॥ ६ ॥ जाम्बूनदमयं

त्वष्टाने दामाद सूर्यनारायणजी को चक्रमें स्थितकर छुरेकी धारसे छेदन किया ॥ १ ॥ तब उनका काटाहुआ बहुतसा तेज जो प्रभासक्षेत्र में गिरा हे देव ! वह तेज प्रभासक्षेत्रसे क्या हुआ उसको मुझ से कहिये ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि!सुनिये मैं उत्तम सूर्यमाहात्म्यको तुमसे कहताहूं कि जिसको मनुष्य भक्तिसे सुनकर समस्त पातकों से छूटता है ॥ ३ ॥ केवल सूर्यदेवका देहावतार प्रभासक्षेत्र में हुआ हे यशस्विनि, देवि ! उस समय शाकद्वीप में चक्रपै स्थित सूर्यकी पुराणवाली कथा को तुमसे कहताहूं हे महादेवि ! कुछ अधिक सौवर्षतक जब सूर्यनारायणजीका तेज काटागया तब ॥ ४ । ५ ॥ हे प्रिये ! जो आदिभागवाला तेजथा वह प्रभासक्षेत्र में

गिरा और गिरहुआ वह तेज वहांपर स्थलाकार (चट्टान के समान) होगया ॥ ६ ॥ हे देवि ! पहले वह पृथ्वीमें सुवर्णमय होगया वही इस समय दिव्य माहात्म्य के योगसे पर्वत होगया ॥ ७ ॥ वहांपर दिनकर देवजी समस्त प्राणियोंके हितकेलिये सूर्यमय रूपकर पृथ्वी में उत्पन्नहुये सतयुग में हिरण्यगर्भ ऐसा नाम सूर्यका कहागया है और त्रेतामें सवितानाम हुआ व द्वापर में भास्कर कहागया है ॥ ८ । ९ ॥ और कलियुगमें अर्कस्थल नाम तीनों लोकोंमें कहागया है हे देवि ! अवतार लियाहुआ यह तेज आपही स्थित है ॥ १० ॥ हे देवि ! पुरातन समय जब दूसरे स्वारोचिष मनुहुये हैं उस समय वहांपर इन सूर्यनारायणदेवजी ने वहांपर अवतार लिया

देवि तत्पूर्वमभवतच्चितौ ॥ दिव्यमाहात्म्ययोगेन शैलभूतश्चसाम्प्रतम् ॥ ७ ॥ तत्रचार्कमयंरूपं कृत्वादेवोदिवाकरः ॥ उत्पन्नःसर्वभूतानां हितायधरणीतले ॥ ८ ॥ हिरण्यगर्भनामेति कृतेसूर्यस्यकीर्त्तितम् ॥ त्रेतायांसवितानाम द्वापरेभास्करःस्मृतः ॥ ९ ॥ कलौचार्कस्थलोनाम त्रिपुलोकेपुकीर्त्तितः ॥ अवतीर्णमिदंदेवि स्वयमेवप्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥ यदास्वारोचिषोदेवि द्वितीयोभून्मनुःपुरा ॥ तस्मिन्कालेऽवतीर्णोसौदेवस्तत्रदिवाकरः ॥ ११ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदोदेवो व्याधिदोषविनाशकृत् ॥ तस्यतेजोद्भवैर्व्याप्तमंशुभिःपञ्चयोजनम् ॥ १२ ॥ दक्षिणोत्तरतोदेवि पञ्चपूर्वापरेणतु ॥ उत्तरेणसमुद्रस्य यावन्माहेश्वरीनदी ॥ १३ ॥ न्यङ्कुमत्याश्चपरतोयावदेवकृतस्मरः ॥ एतद्व्याप्तंमहादेवि यत्रद्वादशयोजनम् ॥ १४ ॥ तस्यमध्यस्ययन्मध्यं तद्गृहंममसुन्दरि ॥ तेजोमण्डलमध्यस्थं ममस्थानंमहाप्रभे ॥ १५ ॥ चतुर्मण्डलमध्येतु यथादेविकनीनिका ॥ पूर्वपश्चिमतोदेवि गोमुखादाश्वमेधिकम् ॥ १६ ॥ दक्षिणोत्तरतोदेवि समुद्रात्कौरवेश्व

है ॥ ११ ॥ जो देव कि भुक्ति, मुक्ति के दायक व रोगों तथा दोषों के विनाशक हैं उनके तेजसे उपजीहुई किरणों से पांच योजन दक्षिण उत्तर व्याप्त हैं और हे देवि ! पांचयोजन पूर्व व पश्चिम व्याप्त है समुद्रके उत्तर ओर जहांतक माहेश्वरी नदी है ॥ १२ । १३ ॥ व न्यङ्कुमतीसे पश्चिम जहांतक कृतस्मरदेवजी हैं हे देवि ! जहांपर यह बारह योजन व्याप्त है ॥ १४ ॥ उसके मध्यका जो मध्यहै हेसुन्दरि ! वह मेरा घरहै हे महाप्रभे ! तेजमण्डल के मध्यमें प्राप्त मेरा स्थान है ॥ १५ ॥ हे देवि ! चारों मण्डलों के मध्यमें वह स्थान है जैसे कि नेत्र में कनीनिका होती है हे देवि ! पूर्व पश्चिमओर गोमुख से अश्वमेध स्थान तक

है ॥ १६ ॥ और हे देवि ! दक्षिण उत्तरओर समुद्र से कौरवेश्वरीनदीतक है हे वरानने ! क्षेत्रमें इसी के मध्यमें मैं क्षेत्रज्ञहूं ॥ १७ ॥ हे प्रिये ! जिसलिये सूर्यनारायण के तेजोंसे मेरा वह मन्दिर प्रकाशित है उसी कारण इस कल्पमें प्रभास ऐसा नाम प्रसिद्ध है ॥ १८ ॥ जो उत्तम मनुष्य वहांपर अर्करूपी सूर्यनारायणजी को देखता है वह समस्त पातकोंसे छूटकर सूर्यके लोकमें पूजित होताहै ॥ १९ ॥ और वह सब तीर्थोंमें नहाचुका व उसने महायज्ञोंसे पूजन किया व उसने समस्त दानोंको दिया और उसने गुरुवों को प्रसन्न किया ॥ २० ॥ जिसलिये अर्करूपी सूर्य उस भूमिमें उत्पन्न हुये हैं उस कारण भोजन में अर्क (मदार) सदैव त्यागनेयोग्य है इसमें

रीम् ॥ एतस्मिन्नन्तरेक्षेत्रे क्षेत्रज्ञोहंवरानने ॥ १७ ॥ यस्मादर्कस्यतेजोभिर्भासितंममतद्गृहम् ॥ तस्मात्प्रभासनामेति कल्पेस्मिन्प्रथितम्प्रिये ॥ १८ ॥ तत्रपश्यतियःसूर्यमर्करूपंनरोत्तमः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोकेमहीयते ॥ १९ ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषु तेनचेष्टंमहामखैः ॥ सर्वदानानिदत्तानि गुरवस्तेनतोषिताः ॥ २० ॥ अर्करूपीयतःसूर्यस्तत्रजातोमहीतले ॥ तस्मात्त्याज्यःसदाचार्को भोजनेनात्रसंशयः ॥ २१ ॥ योदृष्ट्वार्कस्थलंमर्त्यश्चार्कपत्रेषुभुञ्जति ॥ गोमांसभक्षणंतेन कृतम्भवतिभामिनि ॥ २२ ॥ भक्षितोभास्करस्तेन सकुष्ठीजायतेनरः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चार्कपत्राणिवर्जयेत् ॥ २३ ॥ यात्रायांप्रथमंदेवि दृष्टोयेनार्कभास्करः ॥ तन्दृष्ट्वामहिषींदद्याद्ब्राह्मणायविपश्चिते ॥ २४ ॥ ताम्रवर्णरक्तवस्त्रं ततस्तुष्यतिभास्करः ॥ तस्यचैवतुसान्निध्येवह्निकोणव्यवस्थितम् ॥ २५ ॥ नातिदूरेमहाभागे सिद्धेश्वरमितिस्मृतम् ॥ सर्वसिद्धिप्रदंदेवि लिङ्गंत्रैलोक्यपूजितम् ॥२६॥ जैगीषव्येश्वरंनाम पूर्वंकृतयुगेभवत् ॥ कलौसिद्धेश्वर

सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ जो मनुष्य अर्कस्थलको देखकर मदार के पत्तोंमें भोजन करता है हे सुन्दरि ! उसने गोमांस का भक्षण किया ॥ २२ ॥ व उसने भास्करजी को खालिया और वह मनुष्य कुष्ठी होताहै इस कारण सब उपाय से भोजन में मदारके पत्तोंको वर्जित करै ॥ २३ ॥ हे देवि ! यात्रा में पहले जिसने अर्कभास्कर को देखाहै उनको देखकर वह विद्वान् ब्राह्मणके लिये महिषी (भैंसी) को देवै ॥ २४ ॥ व ताम्ररंग तथा अरुणरंगवाले वसनको देवै तो सूर्यनारायणजी प्रसन्न होते हैं और उसी के समीप अग्निकोण में स्थित ॥ २५ ॥ हे महाभागे ! थोड़ेही दूर पै सिद्धेश्वर ऐसे कहेहुये महादेवजी टिकेहैं जो लिंग कि हे देवि ! समस्त सिद्धियों

का दायक व त्रिलोकपूजित है ॥ २६ ॥ पुरातन समय सतयुग में जैगीषव्येश्वर नाम हुआहै और हे प्रिये ! कलियुग में सिद्धेश्वर ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ हे देवि ! उस लिंगको देखकर मनुष्य समस्त सिद्धिको प्राप्त होता है और वहींपर हे देवदेवेशि ! थोड़ीदूर पै स्थित ॥ २८ ॥ सूर्यनारायण के दक्षिण व नैर्ऋत्यकी ओर पाताल का गढ़ाहै हे प्रिये ! वहांपर मन्देहानामक राक्षस व शालकटंकटा राक्षस ॥ २६ ॥ पुरातन समय सूर्यनारायणजी के तेजसे जलकर पाताल को चलेगये हैं हे प्रिये ! कलियुग में वह द्वारही है पाताल में गति नहींहै ॥ ३० ॥ वहांपर योगिनी और ब्राह्मीआदिक मातृकायें रक्षा करती हैं माघमहीने में कृष्णपक्ष की चौदसि में

मिति प्रसिद्धिमगमत्प्रिये॥२७॥तन्दृष्ट्वामनुजोदेवि सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ तत्रैवदेवदेवेशि नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ २८ ॥ सूर्यदक्षिणनैर्ऋत्ये पातालविवरम्प्रिये ॥ मन्देहाराक्षसास्तत्र तथाशालकटङ्कटाः ॥ २९ ॥ सूर्यस्यतेजसादग्धा पातालमगमत्पुरा ॥ कलौतद्द्वारमेवास्ति नपातालेगतिःप्रिये ॥ ३० ॥ योगिन्यस्तत्ररक्षन्ति ब्राह्म्याद्यामातरस्तथा ॥ माघेकृष्णचतुर्दश्यां रात्रौमातृगणान्यजेत् ॥ ३१ ॥ बलिपुष्पोपहारैश्च तेनसिद्धिर्भविष्यति ॥ ३२ ॥ इतिहिमजलघर्मगर्भहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ॥ तनुपरिलिखनंनिशम्यभानोर्व्रजतिदिवाकरलोकमायुषोन्ते ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपवित्रनामकरणमर्कस्थलवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं माहात्म्यंसूर्यदैवतम् ॥ तन्मेविस्तरतोब्रूहि देवदेवजगत्पते ॥ १ ॥ कथमर्कस्थलो

रात्रिको मनुष्य वलि, पुष्प व उपहारों से मातृगणों का पूजन करै तो उससे सिद्धि होगी ॥ ३१ । ३२ ॥ इस प्रकार जाड़ा, जल व उष्णता के गर्भका कारण तथा शिव, ब्रह्मा व विष्णुसे स्तुति कियेहुये सूर्यनारायण के शरीर का परिलेखन सुनकर मनुष्य आयुर्बल के अन्त में सूर्यनारायणके लोकको प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपवित्रनामकरणमर्कस्थलवर्णननामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ ॥

दो० । भये प्रभासक्षेत्र में सिद्धेश्वर शिवनाम । बारहवें अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि हे देवदेव, जगदीशजी ! आपने सूर्यनारायण

देवजी के जो इस माहात्म्यको वर्णन कियाहै उसको मुझसे विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ कि प्रभासक्षेत्रका भूषण अर्कस्थलमें उपजेहुये महादेवजी किसप्रकार भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंसे पूजनेयोग्यहैं ॥ २ ॥ और कौन मन्त्रहैं व कौन विधिहै और किन पर्वोंमें पूजनकरै व जैगीषव्येश्वर होकर सिद्धेश्वर कैसेहैं ॥ ३ ॥ हे देवेश! उस सब चरित्रको मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये कि वहांपर पातालका बिल किसकारण हुआहै व पुरातन समय वहां योगिनी किसलिये प्राप्तहुईहैं ॥४॥ वैसेही हे देव! पुरातन समय यह मातृगण कैसे प्राप्तहुआ है हे जगदीश, त्रिरूपलोचन, महादेव जी ! यदि मैं तुमको प्यारीहूं तो दयाकर इस समस्त चरित्रको सम्पूर्णतासे कहि-

द्भूतः प्रभासक्षेत्रभूषणः ॥ पूजनीयोमहादेवः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ २ ॥ केमन्त्राःकिंविधानन्तु केषुपर्वसुपूजयेत् ॥ जैगीषव्येश्वरोभूत्वा अस्तिसिद्धेश्वरःकथम् ॥ ३ ॥ तन्मेकथयदेवेश विस्तरात्सर्वमेवहि ॥ पातालविवरंतत्र योगिन्यस्तत्रकिम्पुरा ॥ ४ ॥ तथामातृगणन्देव कथमेतदभूत्पुरा ॥ एतत्सर्वमशेषेण दयांकृत्वाजगत्पते ॥ ५ ॥ समाचक्ष्वविरूपाक्ष यद्यहन्तेप्रियाहर ॥ ६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ साधुपृष्टन्त्वयादेवि कथयामिसमासतः ॥ सिद्धेश्वरोह्यभूद्येन जैगीषव्यइतिश्रुतः ॥ ७ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य सचक्रेदुश्चरंतपः ॥ अतिष्ठद्वायुभक्षश्च वर्षाणांशतशःकिल ॥ ८ ॥ अम्बुभक्षःसहस्रन्तु शाकाहारोयुतंतथा ॥ चान्द्रायणसहस्रन्तु कृतंसान्तपनंपुनः ॥ ९ ॥ शोषयित्वामिताहारो दिग्वासाःसमपद्यत ॥ पूर्वकल्पेस्वयम्भूतं महोदयमितिश्रुतम् ॥ १० ॥ तल्लिङ्गंदेवदेवस्य प्रतिष्ठाप्यार्चयन्नपि ॥ भस्मशायीभस्मदिग्धो नृत्यगीतैरतोषयत् ॥ ११ ॥ जप्येनवृषनादैश्च तपसाभावितःशुचिः ॥ तमेवंतोषयन्तन्तु भक्त्यापरमयायुतः ॥ १२ ॥

ये ॥ ५ । ६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा पूछा मैं संक्षेप से कहताहूं कि जिस प्रकार जैगीषव्य ऐसे प्रसिद्ध सिद्धेश्वर हुयेहैं ॥ ७ ॥ प्रभासक्षेत्र में आकर उन जैगीषव्य ने कठिन तप कियाहै कि सौ वर्षतक वह पवनभोजी होकर खड़ारहा ॥ ८ ॥ वह हज़ार वर्षतक जलभोजी और दश हज़ार वर्षतक शाकाहारी हुआ और उसने हज़ार चान्द्रायण व फिर सान्तपन किया ॥ ९ ॥ और फिर अल्पभोजी होकर अपने शरीर को सुखाकर दिग्वसन (नग्न) होगया पूर्व कल्पमें आपही से उत्पन्न हुआ जो महोदय ऐसा प्रसिद्ध लिंग था ॥ १० ॥ देवदेव शिवजी के उस लिंगको थापकर पूजन करतेहुये भस्मशायी व भस्मवेष्टित अंगों

वाले उसने नृत्य व गीतों से शिवजी को प्रसन्न किया ॥ ११ ॥ जोकि जपसे व धर्म के शब्दों से तथा तपस्या से शोधित व पवित्र था इस प्रकार प्रसन्न करातेहुये उस जैगीषव्यके समीप बड़ीभक्तिसे संयुत भगवान् सदाशिवजी आकर यह वचन बोले कि हे महामतिमान्, जैगीषव्यजी ! तुम दिव्यलोचन से देखो ॥ १२ । १३ ॥ मैं प्रसन्नहूं व वरदायकहूं तुम्हारे मनमें जो कुछ प्राप्तहो उसको कहिये ॥ १४ ॥ शिवदेवजी से इस प्रकार कहेहुये उसने त्रिलोचन सदाशिवजी को देख कर व मस्तक से चरणों को प्रणामकर यह वचन कहा ॥ १५ ॥ जैगीषव्य बोले कि हे देवदेवेश, भगवन्, प्रभो ! यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्नहो तो ज्ञानयोग को

भगवांस्तंसमभ्येत्य इदंवचनमब्रवीत् ॥ जैगीषव्यमहाबुद्धे पश्यत्वंदिव्यचक्षुषा ॥ १३ ॥ तुष्टोस्मिवरदश्चाहं ब्रूहिय त्तेमनोगतम् ॥ १४ ॥ सएवमुक्तोदेवेन देवंदृष्ट्वात्रिलोचनम् ॥ प्रणम्यशिरसापादाविदंवचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ जैगीष व्यउवाच ॥ भगवन्देवदेवेश ममतुष्टोयदिप्रभो ॥ ज्ञानयोगञ्चमेदेहि यत्संसारनिकृन्तनम् ॥ १६ ॥ भगवन्नान्यमि च्छामि योगात्परतरंहितम् ॥ त्वयिभक्तिश्चनित्यंमे दिव्यांस्कन्देगणेश्वरे ॥ १७ ॥ नचव्याधिभयंकुर्यान्नचतेजोप मानताम् ॥ अनुत्सेकंतथाक्षान्तिं दमंशममथापिच ॥ १८ ॥ एतान्वरान्महादेव तवेच्छामित्रिलोचन ॥ १९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अजरश्चामरश्चैव सर्वशोकविवर्जितः ॥ महायोगीमहावीर्यो योगैश्वर्यसमन्वितः ॥ २० ॥ प्रभावाच्चा स्यक्षेत्रस्य गुह्यस्यममशाश्वतम् ॥ योगाष्टगुणमैश्वर्यं प्राप्स्यसेपरमंमहत् ॥ २१ ॥ भविष्यसिमुनिश्रेष्ठ योगाचार्यश्च विश्रुतः ॥ यश्चेदंत्वत्कृतंलिङ्गं नियमेनार्चयिष्यति ॥ २२ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो योगंदिव्यमवाप्स्यति ॥ जैगीषव्यगुहा

दीजिये जोकि जन्ममरणरूप संसारको काटनेवाला है ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! योगसे परे हितको मैं नहीं चाहताहूं और तुममें, पार्वतीजी में व स्वामिकार्त्तिकेय तथा गणेशजीमें मेरी नित्यही भक्ति होवै ॥ १७ ॥ और व्याधिभयको न करै और न तेज अपमान करै व अनहङ्कार, क्षमा, दम और शम ॥ १८ ॥ हे त्रिलोचन, महादेवजी! मैं तुमसे इन वरदानों को चाहताहूं ॥ १९ ॥ महादेवजी बोले कि तुम अजर, अमर व समस्त शोकोंसे रहित तथा महायोगी व बड़े प्रभाववान् और योगके ऐश्वर्य से संयुत होगे ॥ २० ॥ और मेरे इस गुप्तक्षेत्र के प्रभावसे बड़े श्रेष्ठ व अविनाशी योगके आठगुणोंवाले ऐश्वर्यको पावोगे ॥ २१ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ ! योग के आचार्य

प्रसिद्धहोगे और तुमसे निर्माण कियेहुये इस लिंगको जो नियमसे पूजैगा ॥ २२ ॥ वह समस्त पातकोंसे छूटकर उत्तमयोगको पावैगा हे जैगीषव्य ! योगकेलिये ब्राह्मण इस गुहाको प्राप्तहोकर ॥ २३ ॥ वह योगचित्तवाला सात रात्रों के बाद संसारको तर जावैगा और महीनेभरके बाद पूर्वजाति व व्यतीत जन्मको जानैगा ॥२४॥ एक रातमें पवित्रगतिको पाताहै व दोरातों से पितरोंको तारताहै और तीनरातोंके व्यतीत होनेसे सब पितरोंको तारताहै ॥ २५ ॥ व फिर हे ब्रह्मर्षे ! योगियोंसे तुम निर्जित होगे और दर्शनको चाहतेहुये तुमको मेरा दर्शन होगा ॥ २६ ॥ शिवदेवजी इस प्रकार वरदानों को देकर वहींपर अन्तर्द्धान होगये हे देवि ! सत्ययुग में वर्तमान

श्चेमां प्राप्ययोगकृतेद्विजः ॥ २३ ॥ सप्तरात्राद्युक्तात्मा संसारंसन्तरिष्यति ॥ मासेनपूर्वांजातिञ्च जन्मातीतश्चवेत्स्यति ॥ २४ ॥ एकरात्रागतिंशुद्धां द्वाभ्यांतारयतेपितॄन् ॥ त्रिरात्रेणव्यतीतेन सर्वांस्तारयतेपितॄन् ॥ २५ ॥ पुनश्च तवविप्रर्षे अजेयत्वंचयोगिभिः ॥ इच्छतोदर्शनंचैव भविष्यतिचतेमम ॥ २६ ॥ इतिदेवोवरान्दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ एतत्कृतयुगेवृत्तं तवदेविप्रकाशितम् ॥ २७ ॥ अस्मिन्युगेमहादेवि द्वापरेचसमागते ॥ कलौयुगेप्रवेशेतु बालखिल्या महर्षयः ॥ २८ ॥ अस्मिन्प्रभासिकेक्षेत्रे सूर्यस्थलसमीपतः ॥ आराधयन्तोदेवेशं गुहामध्यनिवासिनम् ॥ २९ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषयश्चोर्ध्वरेतसः ॥ वर्षायुतंतपस्तप्त्वा सिद्धिंजग्मुर्मुदात्मिकाम् ॥ ३० ॥ ततःसिद्धेश्वरंलिङ्गं कलौख्यातंवरानने ॥ यदासोमेनसंयुक्ता कृष्णाशिवचतुर्दशी ॥ ३१ ॥ तदैवतस्यदेवस्य दर्शनंदेविदुर्लभम् ॥ ब्रह्माण्डंस

हुआ यह चरित्र तुमसे प्रकाशित कियागया ॥ २७ ॥ व हे देवि ! इसयुगमें व द्वापर प्राप्तहोनेपर जब कलियुग प्रवेश हुआ तब बालखिल्य महर्षिलोग ॥ २८ ॥ इस प्रभासक्षेत्र में अर्कस्थल के समीप गुहाके मध्यमें बसतेहुये देवेश शिवजी को आराधन करतेहुये ॥ २९ ॥ अट्ठासी हज़ार ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) महर्षिलोग दश हज़ार वर्षतक तपस्याकर हर्षात्मिका सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ३० ॥ हे वरानने ! उसी से कलियुगमें सिद्धेश्वरलिंग प्रसिद्धहै जब कृष्णपक्ष की चौदसि सोमवारसे संयुत

होवै ॥ ३१ ॥ तभी उन शिवदेवजी का दर्शन दुर्लभ है हे देवि ! समस्त ब्रह्माण्ड को देखकर जो पुण्य होती है ॥ ३२ ॥ हे देवि ! उस पुण्यको मनुष्य सिद्धलिंगके पूजन से प्राप्तहोता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरोत्पत्तिर्नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❀

दो• । भयो प्रभासक्षेत्र में पापविनाशक नाम । तेरहवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि ! उसके आग्नेयकोण में सिद्धलिंग के समीप तीन धनुषपर सूर्यनारायणके सारथी अरुणजी से थापाहुआ वहांपर सिद्धलिंग है जोकि कलियुगमें पापहारकनामक दर्शनसे पातकोंका विनाशकहै ॥ १।२ ॥

कलंदृष्ट्वा यत्पुण्यमुपजायते ॥ ३२ ॥ तत्पुण्यंलभतेदेवि सिद्धलिङ्गस्यपूजनात् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभास खण्डेसिद्धेश्वरोत्पत्तिमाहात्म्यंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्याग्नेयेतुदेवेशि अरुणेनप्रतिष्ठितम्॥ धनुषाञ्चत्रयंतस्य सिद्धलिङ्गसमीपतः ॥ १ ॥ सूर्यसारथि नातत्र सिद्धलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ कलौपापहरंनाम दर्शनात्पापनाशनम् ॥ २ ॥ चैत्रमासत्रयोदश्यां शुक्लायांवरवर्णि नि ॥ पूजयेद्विधिवद्भक्त्या पुण्डरीकफलंलभेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेपापनाशनोत्पत्तिर्नामत्रयोद शोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ पातालविवरस्यापि माहात्म्यंशृणुसाम्प्रतम् ॥ पूर्वसृष्टोमहादेवि ब्रह्मणाविश्वकर्तृणा ॥ १ ॥ त मोभावेसमुत्पन्ने जातास्तत्रैवराक्षसाः ॥ सूर्यस्यद्वेषिणःसर्वे असंख्यातामहाबलाः ॥ २ ॥ तेतुदृष्ट्वामहात्मानं समुद्यन्तं

हे वरवर्णिनि ! चैत महीनेकी शुक्लपक्षवाली तेरसि में विधिपूर्वक भक्तिसे जो मनुष्य उसको पूजै वह पुण्डरीक यज्ञके फलको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रेपापनाशनलिङ्गोत्पत्तिर्नामत्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सुनन्दनादिक मातृगण भे जेहि विधि उत्पन्न । चौदहवें अध्यायमें सोइ चरित संपन्न ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! इस समय पातालके बिलके भी माहात्म्यको सुनिये जो बिल कि पुरातन समय संसारको रचनेवाले ब्रह्मासे बनाया गयाहै ॥ १ ॥ जब अन्धकार उत्पन्न हुआ तब वहींपर बडे बलवान् व असंख्य

...हुये महात्मा सूर्यदेवको देखकर धूम्र इत्यादिक वे सब राक्षस साक्षात् सूर्यनारायणको हँसतेभये ॥ ३ ॥ और उस राक्षस सूर्यके शत्रु उत्पन्न हुये ॥ २ ॥ और वे उदय होतेहुये महात्मा सूर्यदेवको देखकर धूम्र इत्यादिक वे सब राक्षस साक्षात् सूर्यनारायणको हँसतेभये ॥ ३ ॥ और उस समय सूर्यनारायणको देखने से इन अनेकभांतिके वचनों को कहा कि हमलोगों के जो विनाशक हैं वेही ये पापकर्मकारी सूर्यनारायणजी उदय हुये ॥ ४ ॥ उस समय इसप्रकार वचनको सुनकर सूर्यदेवजी क्रोधसे फरकतेहुये ओठोंवालेहुये और राक्षसोंका वचन सुनकर निन्दा किये जातेहुये सूर्यजीने ॥ ५ ॥ उस क्रोधसे तिरस्कृत लोचनसे देखा व अन्धकाररूपी गजके नाशने के लिये सिंहरूपी तथा महाकिरणोंवाले, आकाशगामी उन सूर्यनारायणजीने क्रूर राक्षसों के नाशके लिये उनके

इत्यूचुर्विविधा ॥ अस्माकमन्तकोयोयं सोद्यतःपापकर्मकृत ॥ इत्यूचुर्विविधा दिवाकरम् ॥ तेधूम्रप्रमुखाःसर्वे जहसुःसूर्यमञ्जसा ॥ ३ ॥ अस्माकमन्तकोयोयं सोद्यतःपापकर्मकृत ॥ इत्यूचुर्विविधा वाचः सूर्यस्यप्रेक्षणात्तदा ॥ ४ ॥ इतिश्रुत्वातदादेवः क्रोधप्रस्फुरिताधरः ॥ राक्षमानांवचःश्रुत्वा भर्त्स्यमानोदिवाकरः ॥ ५ ॥ तेनक्रोधाभिभूतेन चक्षुषाचावलोकयत् ॥ सक्रूररक्षोनाशाय तिमिरद्विपकेशरी ॥ ६ ॥ महांशुमान्खगः सूर्यस्तद्विनाशमचिन्तयत् ॥ अजानंस्तत्क्षयच्छिद्रं राक्षसानांदिवस्पतिः ॥ ७ ॥ सधर्मविच्युतान्दृष्ट्वा पापोपहतचेतसः ॥ एवंसञ्चिन्त्यभगवान् दध्यौध्यानंप्रभाकरः ॥ ८ ॥ अजानंस्तेजसाग्रस्तं त्रैलोक्यंरजनीचरैः ॥ ततस्तेभानुना दृष्टाः क्रोधाध्मातेनचक्षुषा ॥ ९ ॥ निपेतुरम्बरभ्रष्टाःक्षीणपुण्याइवग्रहाः ॥ राक्षसैर्वेष्टितोधूम्रो निपतञ्छुशुभेम्बरात् ॥ १० ॥ अर्द्धपक्वंयथातालफलंकपिभिरावृतम् ॥ यदृच्छयानिपेतुस्ते यन्त्रमुक्ताइवोपलाः ॥ ११ ॥ ततोवायुवशा

धर्मसे भ्रष्ट व पापसे नष्ट ज्ञानवाले राक्षसों को देखकर व विनाशका चिन्तनकिया और राक्षसों के नाशके उस छिद्रको न जानतेहुये उन सूर्यनारायणजीने ॥ ६ । ७ ॥ धर्मसे भ्रष्ट व पापसे नष्ट ज्ञानवाले राक्षसों को देखकर व इसप्रकार चिन्तनकर भगवान् दिनकरजीने ध्यान किया ॥ ८ ॥ जो सूर्यनारायणजी कि राक्षसों के तेजसे ग्रसित त्रिलोकको नहीं जानते थे तदनन्तर उन सूर्यनारायणजी से क्रोधकरके धमित लोचन से देखेहुये वे राक्षस ॥ ९ ॥ क्षीणपुण्यवाले ग्रहोंकी नाईं आकाश से भ्रष्ट होकर गिरपड़े आकाश से गिरताहुआ धूम्र राक्षसों से घिरा व वैसा शोभित हुआ ॥ १० ॥ जैसे कि वानरों से घिराहुआ अधपका तालका फल होवै कल से छूटेहुये पत्थरोंकी नाईं वे राक्षस अचानकही गिरपड़े ॥ ११ ॥ तदनन्तर

हे वरवर्णिनि ! पवनके वशसे गिरेहुये वे राक्षस प्रभासक्षेत्र में प्राप्त होकर भूमिको फोड़कर रसातलको चलेगये ॥ १२ ॥ हे देवि ! जहांपर सब सिद्धियों को देनेवाले अर्कस्थल देवजी हैं उसीके समीप स्थित बड़ा भारी पातालका विवरहै ॥ १३ ॥ व हे भामिनि ! और सैकड़ों जो बिलहैं वे लुप्तहैं क्रमसरसे लगाकर जहांतक अर्कस्थल सूर्यजी हैं ॥ १४ ॥ इन दोनों देवताओं के मध्यको प्राप्तहोकर आठ सिद्धियां स्थित हैं हे देवि ! इसी मध्यमें सूर्यक्षेत्र कहागया है ॥ १५ ॥ हे देवि ! वह सूर्यनारायणके तेजका मध्यभाग कहागया है हे देवि ! वहापर सब स्थान सुवर्णमय हैं अपवित्र नहीं देखपड़ताहै ॥ १६ ॥ हे महादेवि ! वहांपर एकसौ एक बिल हैं और करोड़ों

द्भ्रष्टा भित्त्वाभूमिंरसातलम् ॥ जग्मुस्तेक्षेत्रमासाद्य प्रभासंवरवर्णिनि ॥ १२ ॥ यत्रचार्कस्थलोदेवि सर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ तत्सान्निध्यस्थितंदेवि पातालविवरम्महत् ॥ १३ ॥ अन्यानिकोटिशस्सन्ति तानिलुप्तानिभामिनि ॥ कृतस्मरात्समारभ्य यावदर्कस्थलोरविः ॥ १४ ॥ देवयोरन्तरंप्राप्य सिद्धयोष्टौव्यवस्थिताः ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवि सूर्यक्षेत्रमुदाहृतम् ॥ १५ ॥ सूर्यस्यतेजसोदेवि मध्यभागंहितत्स्मृतम् ॥ सर्वंहेममयंदेवि नापुण्यस्तत्रवीक्ष्यते ॥ १६ ॥ विवराणांशतंचैकं लिङ्गंवैतत्रकोटिशः ॥ तत्रसन्तिमहादेवि सिद्धेशस्तुप्ररक्षति ॥ १७ ॥ इदंक्षेत्रंमहादेवि प्रियंसूर्यस्यसर्वदा ॥ सूर्यपर्वणिसम्प्राप्ते कुरुक्षेत्राधिकम्प्रिये ॥ १८ ॥ ब्राह्मीचैवहिरण्याच सङ्गमश्चमहोदधेः ॥ एतत्त्रिसङ्गमंदेवि कोटितीर्थफलप्रदम् ॥ १९ ॥ दिव्यतेजाश्चतत्रैवमङ्कीशस्तत्रतिष्ठति ॥ नागस्थानंनगस्वानं तत्रैवंसमुदाहृतम् ॥ २० ॥ इति संक्षेपतःप्रोक्तमर्कस्थलमहोदयम् ॥ राक्षसानाञ्चसंपातादभूच्चविवरंयथा ॥ २१ ॥ अन्यानितत्रदेवेशि लुप्तानिविव

लिंग हैं व सिद्धेशजी रक्षा करते हैं ॥ १७ ॥ हे महादेवि ! यह क्षेत्र सूर्यनारायणजी को सदैव प्रिय है हे प्रिये ! जब सूर्यग्रहण प्राप्तहोवै तब यह क्षेत्र कुरुक्षेत्र से अधिक पुण्यदायक होता है ॥ १८ ॥ और ब्राह्मी व हिरण्या नदी तथा समुद्रका संगम है हे देवि ! यह त्रिसंगम कोटितीर्थों के फलको देनेवाला है ॥ १९ ॥ और वहींपर उत्तम तेजवाले अंकीशजी स्थित हैं और वहींपर इसप्रकार नागस्थान व नगस्वान कहागया है ॥ २० ॥ यह संक्षेपसे अर्कस्थलका बडा भारी ऐश्वर्य कहा गया और जिसप्रकार राक्षसों के गिरनेसे बिल हुआ वह कहागया ॥ २१ ॥ हे देवेशि,भामिनि ! वहापर अन्य विवर लुप्तहैं परन्तु एक विवर वहांपर आज भी प्रकट देख

पड़ता है ॥ २२ ॥ हे प्रिये ! श्रीमुखनामक द्वार मातृगणों से रक्षा कियाजाताहै जो मनुष्य वर्ष भरतक चौदसि तिथिमें नियमसे वहांपर मातृगण देवताओंको व सुनन्दादिकों को विधिसे पशु, पुष्प, उपहारों से व उत्तम धूप दीपों से पूजताहै ॥ २३ । २४ ॥ हे देवि ! ब्राह्मणों के भोजनसे उस मनुष्यकी सिद्धि होगी इसलिये यदि अपनी सिद्धिको चाहै तो सब उपायसे वहां अर्कस्थलके समीप समस्त मातृगणों को पूजै हे देवि ! ये मातृगण सुनन्दागणके नामसे ॥ २५ । २६ ॥ हे वरवर्णिनि ! इस प्रभासक्षेत्रमें प्रसिद्धिको प्राप्त होंगे पातालके ऊपर व मध्यसे यह विवरका चरित्र कहा गया ॥ २७ ॥ हे देवि ! इसको सुनकर उत्तम मनुष्य समस्त पातकों से छूटजाता

राणिवै ॥ एकन्तुप्रकटंतत्र दृश्यतेद्यापिभामिनि ॥ २२ ॥ श्रीमुखंनामतद्द्वारं रक्ष्यतेमातृभिःप्रिये ॥ वर्षमेकंचतुर्दश्यां नियमाद्यस्तुपूजयेत् ॥ २३ ॥ तत्रमातृगणान्देवान्सुनन्दाद्यान्विधानतः ॥ पशुपुष्पोपहारैश्च धूपदीपैस्तथोत्तमैः ॥ २४ ॥ विप्राणाम्भोजनैर्देवि तस्यसिद्धिर्भविष्यति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रार्कस्थलसन्निधौ ॥ २५ ॥ पूजयेन्मातरःसर्वा यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ॥ एतास्तुमातरोदेवि सुनन्दागणनामतः ॥ २६ ॥ ख्यातिंयान्तिप्रभासेतु तीर्थेस्मिन्वरवर्णिनि ॥ एतत्संक्षेपतःप्रोक्तं पातालोत्तरमध्यतः ॥ २७ ॥ श्रुत्वाविमुच्यतेदेवि सर्वपापैर्नरोत्तमः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽर्कस्थलमाहात्म्ये पातालविवरसुनन्दादिमातृगणोत्पत्तिर्नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ अथपूजाविधानन्ते कथयामियशस्विनि ॥ अर्कस्थलस्यदेवस्य यथापूज्योनरोत्तमैः ॥ १ ॥ सर्वेषामेवदेवानामादिरादित्यउच्यते ॥ आदिकर्त्तात्वसौयस्मादादित्यस्तेनचोच्यते ॥ २ ॥ नादित्येनविनारात्रिर्नदेवा

है ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसुनन्दादिमातृगणोत्पत्तिर्नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ● ॥

दो० । अर्कस्थल रविदेवके पूजनकर सुविधान । पन्द्रहवें अध्यायमें वर्णित हर्षनिधान ॥ महादेवजी बोले कि हे यशस्विनि ! इसके उपरान्त मैं अर्कस्थलदेवजी के पूजनकी विधिको तुमसे कहताहूं कि जिसप्रकार उत्तम मनुष्यों को उनका पूजन करना चाहिये ॥ १ ॥ सूर्यनारायणजी सबही देवताओं के आदिभूत कहेजाते हैं जिसलिये ये सूर्यनारायणजी आदिकर्ता हैं उसी कारण आदित्य कहेजाते हैं ॥ २ ॥ सूर्य के विना न रात्रि होती है और न दिन होताहै व सूर्यनारायणके विना तर्पण,

धर्म व अधर्म नहीं होताहै और न चराचर संसार स्थित होवैहै ॥ ३ ॥ सूर्यनारायणजी सब संसारको पालते हैं व दिनकरजी सदैव सृष्टिको रचते हैं व आदित्यजी समस्त संसारका संहार करते हैं इसीकारण त्रयीमयहैं ॥ ४ ॥ हे महादेवि ! वेदोक्त मन्त्रोंके विस्तारों से उन महात्मा सूर्यनारायणजीके आराधनकी विधिको कहताहूं ॥ ५ ॥ हे वरारोहे ! समस्त पापों को नाशनेवाली उस विधिको सुनिये हे महेश्वरि ! जिसप्रकार मूर्तिमें स्थित द्वादशात्मा सूर्यनारायणजी पूजेजाते हैं उसको सम्पूर्णता से मैं तुमसे कहूंगा पहले मुखकी शुद्धिकर व विशेषतासे स्नानकर ॥ ६ । ७ ॥ व वसनशुद्धि तथा मनकी शुद्धिको करके तदनन्तर सूर्यनारायणका स्पर्श करै पहले

नचतर्पणम् ॥ नधर्मोनैवचाधर्मो नसन्तिष्ठेच्चराचरम् ॥ ३ ॥ आदित्यःपालयेत्सर्वमादित्यःसृजतेसदा ॥ आदित्यःसंहरेत्सर्वं तस्मादेषत्रयीमयः ॥ ४ ॥ आराधनविधिंतस्य भास्करस्यमहात्मनः ॥ कथयामिमहादेवि वेदोक्तैर्मन्त्रविस्तरैः ॥ ५ ॥ तच्छृणुष्ववरारोहे सर्वपापप्रणाशनम् ॥ मूर्तिस्थःपूज्यतेयेन विधानेनमहेश्वरि ॥ ६ ॥ द्वादशात्माययासूर्यस्तत्तेवक्ष्याम्यशेषतः ॥ मुखशुद्धिंचकृत्वादौस्नानंकृत्वाविशेषतः ॥ ७ ॥ वस्त्रशुद्धिंमनःशुद्धिं कृत्वासूर्यंस्पृशेत्ततः ॥ दन्तकाष्ठविधानन्तु प्रथमंकथयामिते ॥ ८ ॥ मधूकेपुत्रलाभःस्यादर्कोनेत्रसुहृत्प्रिये ॥ वक्तृत्वंचबदर्याश्च बृहत्यादुर्जनान्यजेत ॥ ९ ॥ ऐश्वर्यञ्चभवेद्बिल्वे खदिरेचनसंशयः ॥ रोगक्षयःकदम्बेतु अर्थलाभोतिमुक्तके ॥ १० ॥ गुरुतांयातिसर्वत्रअटरूषकसम्भवैः ॥ जातिप्रधानताजात्या अश्वत्थोयच्छतेयशः ॥ ११ ॥ श्रियंप्राप्नोतिनिखिलां शिरीषस्यनिषेवणात ॥ नपाटितंसमश्नीयाद्दन्तकाष्ठंनसव्रणम् ॥ १२ ॥ नचार्धशुष्कंवावक्रं नचैवत्वग्विवर्जितम् ॥ वितस्तिमान

मैं तुमसे दतूनिकी विधिको कहताहूं ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! महुवाकी दतूनि में पुत्रलाभ होताहै व मदार नेत्रका मित्रहै और बेरिकी दतूनिसे वक्तृता होतीहै व भटकटैयासे मनुष्य दुर्जनों को जीतताहै ॥ ९ ॥ और बिल्व व खैरकी दतूनिमें निरसन्देह ऐश्वर्य होताहै और कदम्ब में रोगका नाश होताहै व अतिमुक्तक (कुन्दभेद) में द्रव्य लाभ होताहै ॥ १० ॥ और रूसे से उत्पन्न दतूनियों से मनुष्य सब कहीं गुरुताको प्राप्त होताहै और चमेली से जातिमें मुख्यता होतीहै और पीपल यशको देताहै ॥ ११ ॥ व शिरसाकी दतूनिके सेवन से मनुष्य समस्त लक्ष्मी को प्राप्त होताहै और फाड़ीहुई व व्रणोंसमेत दतूनिको न करै ॥ १२ ॥ और न आधी सूखी दतूनि करै

व न टेढ़ी दतूनिको करै और न बकला से रहित दतूनिको करै व बीताभर दतूनिको करै और इससे लम्बी व छोटी वर्जित करै ॥ १३ ॥ उत्तरमुख या पूर्वमुख सुख-पूर्वक बैठकर वचनको रोंकेहुये बुद्धिमान् मनुष्य जो प्रिय कामनाहो उसको हृदयमें कर व इस मन्त्रसे अभिमन्त्रितकर दतूनिकरै कि हे वनस्पते! मैं तुमको वरदायक जानता हूं कामना को दीजिये ॥ १४ । १५ ॥ हे दन्तकाष्ठ! तुम्हारे लिये नमस्कार है मुझे नित्य सिद्धि को दीजिये इस प्रकार तीन बार जपकर दन्तधावन को भक्षण करै ॥ १६ ॥ पश्चात् उस काष्ठ को धोकर पवित्र स्थान में फेंकदेवै हे देवेशि! दन्तकाष्ठ से जिह्वा को न निर्मल करै ॥ १७ ॥ यदि बहुत यशको चाहै तो

मश्नीयाद्दीर्घह्रस्वञ्चवर्जयेत् ॥ १३ ॥ उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवासुखासीनोथवाग्यतः ॥ कामंयथेष्टंहृदये कृत्वासमभिमन्त्र्यच ॥ १४ ॥ मन्त्रेणानेनमतिमानश्नीयाद्दन्तधावनम् ॥ वरंदत्त्वाभिजानामि कामंयच्छवनस्पते ॥ १५ ॥ सिद्धिंप्रयच्छमेनित्यं दन्तकाष्ठनमोस्तुते ॥ त्रीन्वारान्परिजप्यैवं भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ १६ ॥ पश्चात्प्रक्षाल्यतंकाष्ठं शुचौदेशेविनिक्षिपेत् ॥ दन्तकाष्ठेनदेवेशि नजिह्वांपरिमार्ज्जयेत् ॥ १७ ॥ पृथक्पृथक्सदाकार्यं यदीच्छेद्विपुलं यशः ॥ अङ्गुल्यादन्तकाष्ठञ्च प्रत्यक्षंलवणंचयत् ॥ १८ ॥ मृत्तिकाभक्षणञ्चैव तुल्यंगोमांसभक्षणैः ॥ मुखंपर्युषितंनित्यं भवत्यप्रयतंयतः ॥ १९ ॥ तस्माच्छुष्कमथार्द्रंच भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥ वर्जितेदिवसाद्येच गण्डूषांश्चैवषोडश ॥ २० ॥ तप्तपत्रैःसुगन्धैर्वा मुखशुद्धिंचकारयेत् ॥ मुखशुद्धिमकृत्वायोभास्करंप्रेक्षतेद्विजः ॥ २१ ॥ त्रीणिवर्षसहस्राणि सकुष्ठी जायतेनरः ॥ एवंवक्त्रादिसंशोध्य ततःस्नानंसमाचरेत् ॥ २२ ॥ शुचौमनोरमेस्थाने संगृह्यास्त्रेणमृत्तिकाः ॥ सविसर्गोंह

सदैव अलग अलग करना चाहिये और अंगुली से दतूनि करना व जो केवल लोन भक्षण करना है ॥ १८ ॥ और मिट्टीका भक्षण करना गोमासभक्षण के तुल्य होता है जिसलिये नित्य पर्युषित याने एक दिन रात बीत जाने पर मुख अशुद्ध होजाता है ॥ १९ ॥ इस कारण सूखी या भीगी दतूनि को भक्षण करै और वर्जित दिनादिकों में सोलह कुल्ला करै ॥ २० ॥ या सूखे पत्तों तथा सुगन्धों से मुख की शुद्धि करै मुखशुद्धि न करके जो ब्राह्मण सूर्यनारायणजी को देखता है ॥ २१ ॥ वह मनुष्य तीन हजार वर्ष तक कुष्ठी होता है, इसप्रकार मुखादिक को भलीभांति पवित्र कर स्नान करै ॥ २२ ॥ सुन्दर पवित्र स्थान में अस्त्र मंत्र से मृत्तिका ग्रहण

करना चाहिये विसर्ग समेत व आधे रेफ से संयुत हकार ॥ २३ ॥ याने ह्रः इस अस्त्र से मिट्टीको ग्रहण कर वहां स्नान करै तृण व पत्थर से रहित तीन भागोंवाला जल भलीभांति शुद्ध होता है ॥ २४ ॥ एक भाग को अस्त्र से स्पर्श कर व दूसरेको सूर्य से स्पर्श कर और तीसरे भाग को एक २ बार अभिमंत्रित कर ॥ २५ ॥ व जपकर अस्त्रमंत्र से दिशाओं में फेंक देवै तो जल निर्विघ्न होता है एक एक बार दूसरे व तीसरे भाग से सूर्यनारायण के तीर्थ को ॥ २६ ॥ गुंठित कर तदनन्तर मनुष्य सूर्यतीर्थ में स्नान करै तुरुही व शंखों के शब्द से सूर्यनारायण को ध्यानकर ॥ २७ ॥ व उपचार से नहाकर फिर यत्न से आचमन कर ॥ २८ ॥ तदन-

कारश्च रेफार्धेनसमन्वितः ॥ २३ ॥ अनेनास्त्रेणसंगृह्य स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ भागत्रयन्तुसंशुद्धं तृणपाषाणवर्जितम् ॥ २४ ॥ एकमस्त्रेणचालभ्य तथान्यंभास्करेणतु ॥ भागञ्चैवतृतीयन्तु अभिमन्त्र्यसकृत्सकृत् ॥ २५ ॥ जप्त्वास्त्रेणक्षिपेदिक्षु निर्विघ्नन्तुजलम्भवेत् ॥ सूर्यतीर्थंद्वितीयेन तृतीयेनसकृत्सकृत् ॥ २६ ॥ गुण्ठयित्वाततःस्नायाद्रवितीर्थेचमानवः ॥ तूर्यशङ्खनिनादेन ध्यात्वादेवंदिवाकरम् ॥ २७ ॥ स्नात्वाचैवोपचारेण पुनराचम्ययत्नतः ॥ २८ ॥ स्नानंकृत्वाततोदेवि मन्त्रराजेनसंयुतम् ॥ हरौद्वौबिन्दुवाताभ्यां तथान्योदीर्घयासह ॥ २९ ॥ मात्रयारेफसंयुक्तो हकारोबिन्दुनासह ॥ सकारःसविसर्गस्तु मन्त्रराजोयमुच्यते ॥ ३० ॥ ततस्तुतर्पयेन्मन्त्रान्सर्वास्तांस्तुकराग्रजैः ॥ ऋषीणामूर्ध्वतोदेवान्सर्वानेवमुनींस्तथा ॥ ३१ ॥ पितॄंश्चैवापसव्येन नदीजंचप्रतर्पयेत् ॥ यद्गीतंप्रचुरंलोके अक्षराणांमनीषिभिः ॥ ३२ ॥ एकोनविंशमावृत्य ह्यक्षरंतत्प्रकीर्तितम् ॥ एवंस्नात्वाविधानेन सन्ध्यांवन्देद्विधानतः ॥ ३३ ॥ ततोविद्वान्क्षिपे

न्तर हे देवि ! मंत्रराज से संयुत स्नानकर दो हर विन्दु (अनुस्वार) वात (अकार) से युक्त होवैं और अन्य एक हर दीर्घमात्रासंयुक्त होवै व हकार बिन्दु समेत रेफयुत होवै और सकार बिन्दु समेत होवै याने हं हं हां ह्रंमः यह मंत्रराज कहा जाता है ॥ २९ । ३० ॥ तदनन्तर हाथके अग्रभाग में उत्पन्न जलों से उन सब मंत्रों को तृप्त करै और ऋषियों के उपरान्त सव्य से देवताओं व मुनियोंका तर्पण करै ॥ ३१ ॥ और अपसव्य से पितरों व भीष्मजी को तर्पण करै संसार में अक्षरों के मध्य में विद्वानों से जो अधिक गान कियागयाहै ॥ ३२ ॥ उन्नीसर्वेके आवरणकर वह अक्षर कहागयाहै इस प्रकार विधि से नहाकर विधिपूर्वक सन्ध्यावन्दन करै ॥ ३३ ॥

तदनन्तर विद्वान् सूर्यनारायण जी के लिये जलांजलि को फेंकै और पूर्वमुख होकर अपनी इच्छा से त्र्यक्षर मंत्र को जपै ॥ ३४ ॥ हे प्रिये ! मंत्रराज ऐसा जो पहले मैंने तुम से कहा है उसका जप करै ॥ ३५ ॥ और पश्चात् तीर्थों में मन्त्रों को संहार कर हृदय में न्यास करै व मंत्रों के साथ चित्त को एकत्रकर अर्घ देवै ॥ ३६ ॥ और स्नानकर पवित्र हो मनुष्य एकचित्त होकर लाल चन्दन व सुगन्धों से भूतल में गोलमण्डल कर बैठे ॥ ३७ ॥ व कनैर के पुष्पों को लेकर ताम्र के पात्र में धर कर तिल, तण्डुल समेत व कुश, चन्दन तथा जलसहित ॥ ३८ ॥ और लाल चन्दन व धूप से संयुत अर्घ को तैयारकर उस पात्र को मस्तक पै धरकर घुटनुवों

तपश्चाद्भास्करायोदकाञ्जलिः ॥ जपेच्चत्र्यक्षरंमन्त्रं प्राङ्मुखश्चयदृच्छया ॥ ३४ ॥ मन्त्रराजेतियःपूर्वं तवाख्यातो मयाप्रिये ॥ ३५ ॥ पश्चात्तीर्थेषुमन्त्रांश्च संहृत्यहृदयंन्यसेत् ॥ मन्त्रैरात्मासहैकत्र कृत्वाचार्घंप्रदापयेत् ॥ ३६ ॥ रक्तचन्दनगन्धैस्तु शुचिःस्नातोमहीतले ॥ कृत्वामण्डलकंवृत्तमेकचित्तोऽव्यवस्थितः ॥ ३७ ॥ गृहीत्वाकरवीराणि ताम्रेसंस्थाप्यभाजने ॥ तिलतण्डुलसंयुक्तं कुशगन्धोदकेनतु ॥ ३८ ॥ रक्तचन्दनधूपेन युक्तमर्घोपसाधितम् ॥ कृत्वाशिरसितत्पात्रंजानुभ्यामवनिङ्गतः ॥ ३९ ॥ मूलमन्त्रेणसंयुक्तमर्घंदद्याच्चभानवे ॥ मुच्यतेसर्वपापैस्तु योह्येवंविनिवेदयेत् ॥ ४० ॥ यद्युगादिसहस्रैस्तु व्यतीपातशतेनच ॥ अयनानांसहस्रेण यत्फलंज्येष्ठपुष्करे ॥ ४१ ॥ तत्फलंसमवाप्नोति सूर्यायार्घनिवेदने ॥ दीक्षामन्त्रविहीनोऽपि भक्त्यासंवत्सरेणतु ॥ ४२ ॥ फलमर्घेणवैदेवि लभतेनात्रसंशयः ॥ यःपुनर्दीक्षितोविद्वान् विधिनार्घंनिवेदयेत् ॥ ४३ ॥ नासौसम्भवतेभूमौ प्रलयंयातिभास्करम् ॥ इहजन्मनिसौ

से पृथ्वी में प्राप्त होवै ॥ ३९ ॥ और मूलमंत्र से संयुत अर्घ को सूर्यनारायणजी के लिये देवै जो इसप्रकार अर्घ को निवेदन करता है वह समस्त पातकों से छूट जाता है ॥ ४० ॥ हजारों युगादितिथियों से व सैकड़ों व्यतीपातयोगसे और हजार अयनों से ज्येष्ठपुष्करमें जो फल होता है ॥ ४१ ॥ उसी फलको मनुष्य सूर्यनारायण के लिये अर्घ देनेपर प्राप्त होता है दीक्षा व मंत्र से हीन भी मनुष्य भक्तिपूर्वक वर्ष भर ॥ ४२ ॥ अर्घ देने से हे देवि ! फल को प्राप्त होता है इस में सन्देह नहीं है फिर जो मंत्रको ग्रहण किये हुये विद्वान् विधि से अर्घ को देता है ॥ ४३ ॥ यह मनुष्य पृथ्वी में जन्म नहीं लेता है किन्तु सूर्यनारायण में लीन होजाता है इस

जन्म में सौभाग्य, आयुर्बल, नीरोगता व संपदा ॥ ४४ ॥ शीघ्रही होती हैं और हे देवेशि ! स्त्री समेत वह सुख का पात्र होता है तुम से यह सूर्यनारायणवाली स्नानविधि संक्षेप से कही गई ॥ ४५ ॥ जो कि मनुष्यों के हित के लिये व समस्त पातकों की विनाशक है अथवा द्विजोत्तम वेदमार्ग से स्नान करै ॥ ४६ ॥ यदि विना दीक्षा के इसप्रकार मंत्र के विस्तार में असमर्थ होवै ॥ ४७ ॥ महादेवजी बोले कि हे यशस्विनि ! इस के उपरान्त ब्राह्मण के हित के लिये दिव्य वेदमार्ग से पूजन की विधि को तुमसे कहताहूं ॥ ४८ ॥ कि पुष्पादिकों का संचय किये हुये इस प्रकार सामग्री को इकट्ठाकर उससे सूर्यनारायणजी का आवाहन करै व कर्णिका

भाग्यमायुरारोग्यसम्पदः ॥ ४४ ॥ अचिराद्भवन्तिदेवेशिसभार्यःसुखभाजनम् ॥ एषस्नानविधिःप्रोक्तः सौरःसंक्षेपतस्तव ॥ ४५ ॥ हितायमानवेन्द्राणां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ अथवावेदमार्गेण कुर्यात्स्नानंद्विजोत्तमः ॥ ४६ ॥ यद्येवंमन्त्रविस्तारमशक्तोदीक्षयाविना ॥ ४७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथपूजाविधानंते कथयामियशस्विनि ॥ वेदमार्गेणदिव्येन ब्राह्मणायहितायवै ॥ ४८ ॥ एवंसंभृतसम्भारः पुष्पादिप्रगुणीकृतः ॥ तेनचावाहयेद्धातुं स्थापयेत्कर्णिकोपरि ॥ ४९ ॥ उपस्थानन्तुवैकृत्वा मन्त्रेणानेनसुव्रते ॥ उदुत्यंजातवेदसमितिमन्त्रप्रकीर्तितः ॥ ५० ॥ अग्निमीळेतिमन्त्रेण अनेनावाहभामिनि ॥ आकृष्णेनरजसामन्त्रेणापिसमर्चयेत् ॥ ५१ ॥ हंसःशुचिषदःशूरिर्मन्त्रेणानेनपूजयेत् ॥ आयत्येतार्षयोदेविह्रीमनेनप्रपूजयेत् ॥ अदृष्टंनस्यवोतपेतिसूक्ष्मांदेवींसमर्चयेत् ॥ ५२ ॥ तरणिर्विश्वदर्शेति अनेनसततंजपेत ॥ चित्रंदेवानामिति भक्त्याचैवसमर्चयेत् ॥ ५३ ॥ विभूतिमर्चयेन्नित्यं येनापावकचक्षसा ॥ विषयामपिरजोन्वेष

(गुजरी) के ऊपर स्थापन करै ॥ ४९ ॥ हे सुव्रते ! इस मंत्र से उपस्थानकर स्थापन करै उदुत्यं जातवेदसं यह उपस्थान का मंत्र कहा गया है ॥ ५० ॥ हे भामिनि ! अग्निं ईजे इस मंत्र से आवाहन करै आकृष्णेन रजसा इस मंत्रसे पूजन करै ॥ ५१ ॥ व हंसः शुचिषदः शूरिः इस मंत्रसे सूर्यनारायण का पूजन करै व हे देवि ! आयत्येतार्षयः ह्रीं इस मंत्र से पूजन करै और अदृष्टं नस्यवोतपे इस मंत्र से सूक्ष्मा देवीका पूजन करै ॥ ५२ ॥ व तरणिर्विश्वदर्शी इस मंत्र से सदैव जपकरै व चित्रं देवानाम् इस मंत्र से भक्तिपूर्वक पूजन करै ॥ ५३ ॥ और येनापावक चक्षसा इस मंत्र से नित्य विभूतिको पूजै व विषयामपि रजोन्वेष इस मंत्र से सदैव विमला

को पूजै ॥ ५४ ॥ व हे सुव्रते ! सप्तत्यारितीरथ इस मंत्र से नित्य अमोघा शक्ति को पूजै जो कि सब कर्मों में सिद्धिदायिनी है ॥ ५५ ॥ व हे देवि ! सप्तसिन्धवे इस मंत्र से संयुत होकर विद्युती को पूजै और नवीं सर्वतोमुखीदेवी को सदैव वेदहेतुहृदयंतमितिहेतवे इस मंत्र से पूजन करै व उत्पन्यघमिवाहात्व इस मंत्र से प्रथम अक्षर को पूजै ॥ ५६ । ५७ ॥ और हे देवि ! शुक्तेनहरिमाहुव इस मंत्रसे दूसरे अक्षरको पूजै व उमायन्युगादिव्यः इस मंत्रसे तीसरे अक्षर में पूजनकरै ॥ ५८ ॥ तत्सवितुर्वरेण्यं यह चौथा अक्षर कहागयाहै व महिवो महिता यह पांचवां कहागया है ॥ ५९ ॥ और हिरण्यगर्भः समवर्तता यह छठा बीज कहागया है व हे वरव-

अनेनविमलांसदा ॥ ५४ ॥ अमोघाम्पूजयेन्नित्यं मन्त्रेणानेनसुव्रते ॥ सप्तत्यारितीरथेति सिद्धिदासर्वकर्मसु ॥ ५५ ॥ विद्युतीमर्चयेद्देवि संयुक्तस्सप्तसिन्धवे ॥ नवमांपूजयेद्देवीं सततंसर्वतोमुखीम् ॥५६॥ मन्त्रेणानेनवेदहेतुहृद्यंत मितिहेतवे ॥ उत्पन्यघमिवाहात्वप्रथमञ्चाक्षरंयजेत् ॥ ५७ ॥ द्वितीयंपूजयेद्देवि शुक्तेनहरिमाहव ॥ उमायन्त्यु गादिव्यो ह्यनेनापितृतीयके ॥ ५८ ॥ तत्सवितुर्वरेण्येति चतुर्थम्परिकीर्त्तितम् ॥ महिवोमहिताचेति पञ्चमम्परिकीर्त्ति तम् ॥ ५९ ॥ हिरण्यगर्भःसमवर्त्तता षष्ठबीजम्परिकीर्त्तितम् ॥ सवितापश्चात्पुरस्तात्सत्यमम्बरवर्णिनि ॥६०॥ एवंबी जानिसंन्यस्य आदित्यंस्थापयेच्छुभे ॥ आदित्यंस्थापयित्वातु पश्चादङ्गानिविन्यसेत् ॥ ६१ ॥ आग्नेय्यांहृदयंन्य स्य ईशान्यान्तुशिरोन्यसेत् ॥ नैर्ऋत्यान्तुशिखांचेति कवचंवायुगोचरम् ॥ ६२ ॥ अस्त्रंदशासुविन्यस्य स्वबीजेनतु कर्णिकाम् ॥ अमोसिप्राणतानिवै अनेनहृदयंयजेत् ॥६३॥शिरस्तुपूजयेद्देवि आयुष्यंवर्चसेतिवै ॥ गायत्र्यातुशिखापू

र्णिनि ! सविता परचात्पुरस्तात् यह सातवां बीजहै ॥ ६० ॥ हे शुभे ! इसप्रकार बीजों को न्यास कर सूर्यनारायण को थापै और दिनकर को थाप कर पश्चात् अंगों को न्यास करै ॥ ६१ ॥ आग्नेय में हृदयको न्यासकर ईशान में शिर को न्यासकरै और नैर्ऋत्यमें शिखा व वायव्य में कवचको न्यासकरै ॥ ६२ ॥ व सब दिशाओं में अस्त्रको न्यासकर अपने बीज से कर्णिका को पूजै तथा अमोसिप्राणतानि इस मंत्र से हृदयको पूजै ॥ ६३ ॥ व आयुष्यं वर्चसा इस

मंत्र से शिरको पूजै व गायत्री से नैर्ऋत्य में स्थित शिखा पूजने योग्यहै ॥ ६४ ॥ व जीमूतस्येव भवति इस मंत्रसे प्रत्येक कवचको पूजै और धन्वनागाधन्वनेति इस मंत्र से अस्त्रको पूजै ॥ ६५ ॥ हे देवि ! अश्मना तेजसा इस मंत्रसे नेत्रको पूजै व बाहर से पूर्व ओर चन्द्रमा व दक्षिण ओर से बुधको पूजै ॥ ६६ ॥ पश्चिम में बृहस्पतिको न्यासकर उत्तरमें शुक्रको पूजै आग्नेय में मंगल को न्यासकर नैर्ऋत्य में शनैश्चरको पूजै ॥ ६७ ॥ वायव्यमें राहुको न्यासकरै व ईशान में केतु को पूजै हे देवि ! आप्यायस्व इस मंत्रसे सदैव चन्द्रमा का पूजनकरै ॥ ६८ ॥ हे महादेवि ! वहांपर उद्बुध्यस्व इस मंत्रसे सदैव बुधको पूजै व अग्निर्मूर्द्धा इस मंत्रसे

ज्या नैर्ऋत्यान्तुव्यवस्थिताम् ॥ ६४ ॥ जीमूतस्येवभवति प्रत्येकंकवचंयजेत् ॥ धन्वनागाधन्वनेति अनेनास्त्रंसमर्चयेत् ॥ ६५ ॥ नेत्रन्तुपूजयेद्देवि अश्मनातेजसेतिच ॥ बाह्यतःपूर्वतःसोमं दक्षिणेनबुधंतथा ॥ ६६ ॥ पश्चिमेचगुरुंन्यस्य उत्तरेणचभार्गवम् ॥ आग्नेय्यांमङ्गलंन्यस्य नैर्ऋत्यान्तुशनैश्चरम् ॥ ६७ ॥ वायव्यांचन्यसेद्राहुं केतुमीशानगोचरे ॥ आप्यायस्वेतिमन्त्रेण देविसोमंसदार्चयेत् ॥ ६८ ॥ उद्बुध्यस्वमहादेवि बुधंतत्रसदार्चयेत् ॥ अग्निर्मूर्द्धेतिमन्त्रेण सदामङ्गलमर्चयेत् ॥ ६९ ॥ शन्नोदेवीतिमन्त्रेण पूजयेद्भास्करात्मजम् ॥ कयानश्चित्रेतिचैवं देविराहुंसदार्चयेत् ॥ ७० ॥ केतुंकृण्वन्नकेतवे सततंपूजयेद्बुधः ॥ बाह्यतःपूर्वतश्शक्रं दक्षिणेनयमंतथा ॥ ७१ ॥ ईशान्यामीश्वरंविद्यादाग्नेय्यामाग्निरुच्यते ॥ नैर्ऋत्येतुविरूपाक्षं पवनंवायुगोचरे ॥ ७२ ॥ वसुधामेतिमन्त्रेण अनेनेन्द्रंसमर्चयेत् ॥ उदीरितामवैरिति सदावैवस्वतंयजेत् ॥ ७३ ॥ वरुणंवोदिशोतीहि वरुणन्देविप्रपूजयेत् ॥ इन्द्रासोमावशत इत्यनेनधनदंय

सदैव मंगल का पूजनकरै ॥ ६९ ॥ शन्नोदेवी इस मंत्रसे सूर्यपुत्र (शनैश्चर) को पूजै व हे देवि ! कयानश्चित्र इस मंत्रसे सदैव राहुको पूजै ॥ ७० ॥ और केतुं कृण्वन्नकेतवे इस मंत्र से विद्वान् सदैव केतुका पूजनकरै बाहर पूर्व ओर इन्द्रको व दक्षिण ओर यमराजको पूजै ॥ ७१ ॥ ईशान में सदाशिवजी को जानै व आग्नेय में अग्नि कहेजाते हैं व नैर्ऋत्य में विरूपाक्ष और वायव्य में पवन को पूजै ॥ ७२ ॥ वसुधामा ऐसे मंत्रसे इन्द्रको पूजै व उदीरिनामवैः इस मंत्र से सदैव यमराजको पूजै ॥ ७३ ॥ हे देवि ! वरुणंवोदिशोति इस मंत्र से वरुण का पूजनकरै व इन्द्रासोमावशत इस मंत्र से कुबेर को पूजै ॥ ७४ ॥ हे देवि ! अग्निमीडे पुरोहितं इस

मंत्र से अग्निको पूजै व रक्षोहणं वाजिन इस मंत्र से सदैव विरूपाक्ष को पूजै ॥ ७५ ॥ वायवायहि देवेन्द्र इस मंत्रसे सदैव वायु देव को पूजै हे देवि ! क्रमपूर्वक इन सबों को विद्वान् पूजै ॥ ७६ ॥ और हे देवि ! बाहर पूर्व से लगाकर सबओर इन्द्रादिकों को पूजै अरुणवर्ण, महातेजस्वी व श्वेत कमलके ऊपर स्थित ॥ ७७ ॥ व समस्त लक्षणों से संयुत तथा सब आभूषणों से भूषित, द्विभुज, एकमुख और सुन्दर कमल को हाथमें धारण किये ॥ ७८ ॥ व गोलाकार, तेज बिम्बस्वरूप, मध्यमें स्थित और लाल वसनको धारणकिये यह सूर्यनारायण जी का रूप सब लोकों में पूजितहै ॥ ७९ ॥ इस रूपको ध्यानकर मनुष्य नित्यही वेदी पै मण्डल में आश्रित

जेत् ॥ ७४ ॥ पावकंपूजयेद्देवि अग्निमीडेपुरोहितम् ॥ रक्षोहणंवाजिनेति विरूपाक्षंसदार्चयेत् ॥ ७५ ॥ वायवायहिदेवेन्द्रं वायव्यंवैसदार्चयेत् ॥ यथाक्रममिमान्देवि सर्वान्वैपूजयेद्बुधः ॥ ७६ ॥ बाह्यतःपूर्वतोदेवि इन्द्रादीनांसमन्ततः ॥ रक्तवर्णंमहातेजाः सितपद्मोपरिस्थितम् ॥ ७७ ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणभूषितम् ॥ द्विभुजंचैकवक्त्रञ्च सौम्यपङ्कजधृक्करम् ॥ ७८ ॥ वर्तुलन्तेजोबिम्बंच मध्यस्थंरक्तवाससम् ॥ आदित्यस्यत्विदंरूपं सर्वलोकेषुपूजितम् ॥ ७९ ॥ ध्यात्वासम्पूजयेन्नित्यं स्थण्डिलेमण्डलाश्रयम् ॥ ८० ॥ देव्युवाच ॥ मण्डलस्थस्सुरश्रेष्ठ विधिनायेनभास्करः ॥ पूज्यतेमानवैर्भक्त्या सविधिःकथितस्त्वया ॥ ८१ ॥ पूजयेद्विधिनायेन भास्करंपद्मसम्भवम् ॥ मूर्तिस्थंसर्वगन्देवं तन्मेकथयशङ्कर ॥ ८२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ साधुसाधुमहादेविसाधुपृष्टोस्मिसुव्रते ॥ शृणुष्वैकमनादेवि मूर्त्तिस्थंयेनपूजयेत् ॥ ८३ ॥ देवेन्विति चमन्त्रेण उत्तमाङ्गंसदार्चयेत् ॥ अग्निमीलेतिमन्त्रेण पूजयेद्दक्षिणङ्करम् ॥ ८४ ॥ अग्नयाहीतिम

सूर्यनारायणजी को पूजै ॥ ८० ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! मण्डलमें स्थित सूर्यनारायण जी जिस विधि से मनुष्यों से भक्तिसमेत पूजेजाते हैं उस विधिको तुमने कहा ॥ ८१ ॥ हे शङ्करजी ! जिस विधि से कमल से उपजेहुये व मूर्ति में स्थित सर्वव्यापी सूर्यदेवको मनुष्य पूजनकरै उसको मुझसे कहिये ॥ ८२ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा हे सुव्रते ! तुमने मुझसे बहुत अच्छा पूछाहै हे देवि ! सावधानमनवाली होकर सुनिये कि जिस प्रकार मूर्तिमें स्थित सूर्यनारायणजी को पूजै ॥ ८३ ॥ देवेनु इस मन्त्रसे सदैव मस्तकको पूजै व अग्निमीड इस मंत्र से दाहिने हाथ को पूजै ॥ ८४ ॥ अग्नयाहि इस

मंत्रसे सूर्यदेवजी के चरणों को पूजनकरै आजिघ्र इस मंत्रसे पुष्पकी माला से पूजै ॥ ८५ ॥ योगयोग इस मंत्रसे अरुणपुष्पांजलि को फेंकै व समुद्रं गच्छ यह जो मंत्र कहागयाहै इस से सूर्यनारायण को स्थापन करै ॥ ८६ ॥ हे भामिनि ! इमंमे गंगे यह जो मंत्र है इस से भी व समुद्रज्योति इस मंत्रसे शंख के जल से स्नानकरावै ॥ ८७ ॥ यज्ञयज्ञ इस मंत्र से विधिपूर्वक सूर्यनारायण के उबटन लगावै हे देवि ! आप्यायस्व इस मंत्रसे जलसे नहवावै ॥ ८८ ॥ व दधिक्रोव इस मंत्रसे विधिपूर्वक सूर्यनारायणजी को दधि से नहवावै व समुद्रज्योति इस मंत्र से ओषधियों से स्नान कहागया है ॥ ८९ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! द्विपदाभिः इस

न्त्रेण पादौदेवस्यपूजयेत ॥ आजिघ्रेतिमन्त्रेण पूजयेत्पुष्पमालया ॥८५॥ योगयोगेतिमन्त्रेण रक्तपुष्पाञ्जलिंक्षिपेत् ॥ समुद्रंगच्छयत्प्रोक्तमनेनस्थापयेद्रविम् ॥ ८६ ॥ इमंमेगङ्गेतियत्प्रोक्तमनेनापिचभामिनि ॥ समुद्रज्योतिमन्त्रेण स्नापयेच्छङ्खवारिणा ॥ ८७ ॥ यज्ञयज्ञेतिमन्त्रेण रूक्षयेद्विधिवद्रविम् ॥ स्नापयेत्पयसादेवि आप्यायस्वेतिमन्त्रतः ॥ ८८ ॥ दधिक्रोवेतिवैदध्ना स्नापयेद्विधिवद्रविम् ॥समुद्रज्योतिमन्त्रेण स्नानमोषधिभिस्स्मृतम् ॥८९॥ उद्वर्त्तयेत्ततोभानुं द्विपदाभिर्वरानने ॥ मानस्तोकेतिमन्त्रेण युगपत्स्नानमाचरेत् ॥ ९० ॥ विष्णोरराटमन्त्रेण दद्याद्वस्त्राणि भानवे ॥ मानस्तोकेतिमन्त्रेण अञ्जनन्तुप्रदापयेत् ॥९१॥ बृहद्रथेनमन्त्रेण दद्याद्वस्त्राणिभानवे ॥ येनश्रियंप्रकुर्वाणा पुष्पमालांप्रदापयेत् ॥ ९२ ॥ धूरसीतिचमन्त्रेण धूपंदद्यात्सगुग्गुलुम् ॥ समिद्धोऽञ्जनमन्त्रेणअञ्जनन्तुप्रदापयेत् ॥ युञ्जानेतिचमन्त्रेण भानुंरोचनयालभेत् ॥ ९३ ॥ आरातिकञ्चैवकुर्याद्दीर्घायित्वायवर्चसे ॥ सहस्रशीर्षापुरुषः

मंत्र से सूर्यनारायण के उबटन लगावै व मानस्तोके इस मंत्र से एक बार स्नान करावै ॥ ९० ॥ विष्णोरराट इस मंत्रसे सूर्यनारायणजी के लिये वसनों को देवै और मानस्तोके इस मंत्रसे अंजन देवै ॥ ९१ ॥ व बृहद्रथ इस मंत्र से सूर्यनारायण के लिये वसनदेवै और येनश्रियं प्रकुर्वाणा इस मंत्रसे पुष्पमालाको देवै ॥ ९२ ॥ धूरसि इस मंत्रसे गुग्गुलसमेत धूपको देवै और समिद्धोंजन इस मंत्रसे अंजनको देवै और युंजान इस मंत्रसे सूर्यनारायणको रोचनासे स्पर्शकरै याने रोचना लगावै ॥ ९३ ॥ व दीर्घायित्वाय वर्चसे इस मंत्र से आरतीकरै और सहस्रशीर्षा पुरुषः इस मंत्रसे सूर्यनारायणजी के मस्तकमें पूजै ॥ ९४ ॥ व शंभवाय इस मंत्र से सूर्यनारायणजी के

नेत्रोंको स्पर्शकरै और विश्वतश्चक्षुः इस मंत्रसे सूर्यनारायण के शरीर को स्पर्शकरै ॥ ९५ ॥ और श्रीश्चतेलक्ष्मीश्च इसमन्त्रसे सूर्यनारायणजीके सब अङ्गको पूजै महादेव जी बोले कि हे सुव्रते ! इस के अनन्तर आठशृंगोंवाले सुमेरुगिरिके ॥ ९६ ॥ पूजनविधान के मन्त्रों को मैं तुमसे संक्षेपसे कहताहूं हे महादेवि ! आठशृङ्गोंवाले सुमेरु को इस विधिसे पूजनकरै ॥ ९७ ॥ हे सुरसुन्दरि ! पुष्पवास ऐसे मन्त्र से उसको पूजै अग्निमीळे पुरोहितं इस मन्त्र से आग्नेयदिशावाले शृङ्ग को पूजै ॥ ९८ ॥ अथवा आग्नेयश्चगायत्री इसमन्त्र से उसका पूजन करै व यमायत्वा मखायत्वा इस मन्त्र से दक्षिणवाले शृङ्ग को पूजै ॥ ९९ ॥ अथवा उदीरितामवर इस मन्त्र से

सूर्यंशिरसिपूजयेत् ॥ ९४ ॥ शम्भवायेतिचमन्त्रेण रवेर्नेत्रोपरामृशेत् ॥ विश्वतश्चक्षुरित्येवं भानोर्देहंसमालभेत् ॥ ९५ ॥ श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चेति सर्वाङ्गंपूजयेद्रवेः ॥ ईश्वरउवाच ॥ अथमेरोर्महादेवि अष्टशृङ्गस्यसुव्रते ॥ ९६ ॥ पूजाविधानमन्त्रांस्ते कथयामिसमासतः ॥ अष्टशृङ्गंमहादेवि अनेनविधिनार्चयेत् ॥ ९७ ॥ पुष्पवासेतिमन्त्रेण पूजयेत्सुरसुन्दरि ॥ अग्निमीळेपुरोहितमाग्नेयंशृङ्गमर्चयेत् ॥ ९८ ॥ आग्नेयञ्चगायत्रीति अथवानेनपूजयेत् ॥ यमायत्वामखायत्वा दक्षिणंशृङ्गमर्चयेत् ॥ ९९ ॥ उदीरितामवरेति अथवानेनपूजयेत् ॥ अयंगौरितिमन्त्रेण नैर्ऋत्यंशृङ्गमर्चयेत् ॥ १०० ॥ येनेदंभूतमितिवै अथवातेनपूजयेत् ॥ नमोस्तुसर्पेभ्यइति मेरुपृष्ठंसमर्चयेत् ॥ १ ॥ हिरण्यगर्भस्समवर्त्तताग्रे पुनर्मध्येसदार्चयेत् ॥ सवित्रेतिचमन्त्रेण पूजयेत्पुष्पमालया ॥ २ ॥ त्रिकालंपूजयेदर्कमादराच्चतमोपहम् ॥ रुद्राणांहिपूर्वाह्णे चैवंपूजाविधीयते ॥ ३ ॥ मध्याह्नेपूजयेद्देवि तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ४ ॥ हंसश्शुचिषदितिच

पूजनकरै और अयंगौः इस मन्त्र से नैर्ऋत्यवाले शृङ्ग को पूजै ॥ १०० ॥ अथवा येनेदंभूतं यह जो मन्त्र है उससे पूजन करै और नमोस्तु सर्पेभ्यः इस मन्त्रसे सुमेरु गिरिकी पीठको पूजै ॥ १ ॥ व हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे इस मन्त्र से फिर मध्य में सदैव पूजै और सवित्र इस मन्त्रसे पुष्पमाला से पूजन करै ॥ २ ॥ और अन्धकार के नाशक सूर्यनारायण जीको आदर से त्रिकाल पूजन करै रुद्राणां इस मन्त्र से पूर्वाह्ण याने दुपहर के इस पार पूजा कीजाती है ॥ ३ ॥ व हे देवि ! तद्विष्णोः परमं

पदं इस मन्त्र से दुपहर में पूजन करै ॥ ४ ॥ इसी प्रकार हसः शुचिषत् इस मन्त्र से सदैव अपराह्ण (दुपहरके इस पार) सूर्यनारायण को पूजै हे वरवर्णिनि ! इस प्रकार ग्रहोंसमेत सूर्यनारायण को पूजै ॥ ५ ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि सूर्यदेव के पूजन में कौन पुष्प प्रियहैं हे देवेश ! जो पुष्प कहे हों उनको प्रसन्नता से कहिये ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं अति उत्तम पुष्पाध्याय को कहताहूं ॥ ७ ॥ हे देवि ! जिससे पूजित अर्कस्थल जी शीघ्रही प्रसन्न होते हैं चमेली के फूलों से पूजन समीपताकारक होता है ॥ ८ ॥ और बेला के फूलों से मनुष्य ऐश्वर्यवान् होता है व कमलों से पूजन करने से सौभाग्य व अक्षय धन होताहै ॥ ९ ॥ व हे

अपराह्णेसदार्चयेत् ॥ एवंभानुंग्रहैस्सार्द्धं पूजयेद्वरवर्णिनि ॥ ५ ॥ देव्युवाच ॥ कानिपुष्पाणिचेष्टानि सदाभास्करपूजने ॥ यानिचोक्तानिदेवेश कथयस्वप्रसादतः ॥ ६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि पुष्पाध्यायमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ येनचार्कस्थलोदेवि शीघ्रंतुष्यतिपूजितः ॥ मालतीकुसुमैःपूजा भवेत्सान्निध्यकारिका ॥ ८ ॥ मल्लिकायाश्चकुसुमैर्भगवाञ्जायतेनरः ॥ सौभाग्यंपुण्डरीकैस्तु भवत्यर्थश्चशाश्वतः ॥ ९ ॥ कदम्बपुष्पैर्देवेशि परमैश्वर्यमश्नुते ॥ भवत्यक्षयमन्नञ्च वकुलैरर्चनाद्रवेः ॥ १० ॥ मन्दारपुष्पकैःपूजा सर्वकुष्ठविनाशिनी ॥ बिल्वस्यपत्रकुसुमैर्महतींश्रियमश्नुते ॥ ११ ॥ अर्कपूजाभवत्येव सर्वकामफलप्रदा ॥ प्रदद्याद्रूपिणींकन्यां पूजितोवकुलैरविः ॥ १२ ॥ किंशुकैरर्चितोदेवि न पीडयतिभास्करः ॥ अगस्त्यकुसुमैस्तद्वदानुकूल्यंप्रयच्छति ॥ १३ ॥ करवीरैस्तुदेवेशि सूर्यस्यानुचरोभवेत् ॥ शतपत्रस्रजादेवि सूर्यसालोक्यतांव्रजेत् ॥ १४ ॥ अर्कपुष्पैर्महादेवि दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ ऋतुपुष्पसुगन्धेन समभ्यर्च्यदिवा

देवेशि ! कदम्ब के फूलों से मनुष्य उत्तम ऐश्वर्य को भोगता है और मौलसिरी के पुष्पों से सूर्यके पूजन से अक्षय अन्न होताहै ॥ १० ॥ व मदारके फूलो से पूजन समस्त कुष्ठों को नाशनेवाला है व बिल्व के पत्तों व पुष्पों से पूजन करने से मनुष्य बड़ी लक्ष्मी को भोगताहै ॥ ११ ॥ सूर्य का पूजन समस्त कामों के फल को देने वाला होताही है और मौलसिरी के पुष्पों से पूजित सूर्यनारायणजी रूपवती कन्या को देते हैं ॥ १२ ॥ हे देवि ! ढाक के पुष्पोंसे पूजित सूर्यनारायण जी पीड़ा नहीं करते हैं वैसेही अगस्त्यके फूलों से अनुकूलता (प्रसन्नता) को देते हैं ॥ १३ ॥ हे देवेशि ! कनैर के पुष्पोंसे सूर्यका सेवक होताहै हे देवि ! कमलों की माला से सूर्य-

नारायण की सलोकता को प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥ हे महादेवि ! मदारके पुष्पों से दरिद्रता नहीं होती है और ऋतुवाले पुष्पों की सुगन्ध से सूर्यनारायणको भली भांति पूजकर ॥ १५ ॥ वह मनुष्य चारों समुद्र मर्याद (सीमा) वाली इस पृथ्वी को भोगताहै और जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गेरूसे सूर्य के मन्दिर को लिपवाता है ॥ १६ ॥ वह बड़ी लक्ष्मी को प्राप्त होताहै व रोगोंसे भी छूटजाता है ॥ १७ ॥ और यदि मिट्टी से लिपावै तो जो अठारह कुष्ठहैं व मनुष्यों की जो अन्य व्याधियां हैं वे सब नाश को प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ हे वरानने ! सब लेपनों के मध्य में कुंकुम व लाल चन्दन उत्तम है और पुष्पों के मध्य में कनैर के फूल श्रेष्ठ हैं ॥ १९ ॥ इस

करम् ॥१५॥ चतुस्समुद्रमर्यादां सभुङ्क्तेपृथिवीमिमाम् ॥ यस्सूर्यायतनंभक्त्या गैरिकेणापिलेपयेत् ॥ १६ ॥ प्राप्नुयान्महतींलक्ष्मींरोगैश्चापिप्रमुच्यते ॥ १७ ॥ अष्टादशहिकुष्ठानि येचान्येव्याधयोनृणाम् ॥ प्रलयंयान्तितेसर्वे मृदायद्युपलेपयेत् ॥ १८ ॥ विलेपनानांसर्वेषां कुङ्कुमंरक्तचन्दनम् ॥ पुष्पाणांकरवीराणि प्रशस्तानिवरानने ॥ १९ ॥ नातःपरतरंकिञ्चिद्भास्वतस्तृप्तिकारकम् ॥ यादृशंकुङ्कुमंजातिःशतपत्रंतथागुरु ॥२०॥ किंतस्यनभवेल्लोके यस्त्रिभिश्चार्चयेद्रविम् ॥ उपलिप्यालयेयस्तु कुर्यान्मण्डलकंशुभम् ॥२१॥एकेनास्यभवेदर्थो द्वाभ्यामारोग्यमश्नुते ॥ त्रिभिस्तुसर्वविद्यावांश्चतुर्भिर्भाग्यवान्भवेत ॥ २२ ॥ पञ्चभिर्विपुलंधान्यंषड्भिरायुर्बलंयशः ॥ सप्तमण्डलकारीस्यान्मण्डलाधिपतिर्नरः ॥ २३ ॥ घृतदीपप्रदानेन चक्षुष्माञ्जायतेनरः ॥ कटुतैलस्यदीपेन स्वशत्रुंजयतेनरः ॥ २४ ॥ तिलदीपप्रदाने

से अधिक सूर्यनारायण को तृप्तिकारक कुछ वस्तु नहीं है जैसा कि कुंकुम, चमेली, कनैर व अगुरु है ॥ २० ॥ जो इन तीनों वस्तुओं से सूर्य को पूजता है उसके ससार में क्या नहीं होता याने सब कुछ होता है और जो मनुष्य लीपकर मन्दिर में उत्तम मण्डल करता है ॥ २१ ॥ इस मनुष्य के एक मण्डल से धन होताहै और दो से नीरोगता को प्राप्त होताहै और तीनसे सब विद्याओं को जानता है व चारसे भाग्यवान् होताहै ॥ २२ ॥ व पांच से बहुत अन्न होता है और छहसे आयुर्बल व यश होताहै और सात मण्डलों को करनेवाला पुरुष मण्डल का स्वामी होताहै ॥ २३ ॥ घी के दीपक को देने से मनुष्य नेत्रवान् होताहै और करुवेतेल के दीपक से

मनुष्य अपने शत्रु को जीतता है ॥ २४ ॥ और तिलके तैल के दीपकदान से सूर्यलोक में पूजा जाता है व महुवा के तैल के दीपादिकों से मनुष्य उत्तम सौभाग्य को पाताहै ॥ २५ ॥ पुष्पों के मध्य में चमेली श्रेष्ठ है व धूपों के मध्य में विजय उत्तम है व सुगन्धों में कुंकुम श्रेष्ठ है और लेपनों के मध्य में लालचन्दन उत्तम है ॥ २६ ॥ दीपदान में घी श्रेष्ठ है और नैवेद्य में लड्डू उत्तम हैं इन से देवेश सूर्यनारायणजी प्रसन्न होते हैं और समीपता को प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ इस भांति विधिपूर्वक पूजकर व तीन प्रदक्षिणा कर हे प्रिये ! वहां अर्कस्थल देव को मस्तक से प्रणामकर ॥ २८ ॥ तदनन्तर सुख से बैठा हुआ पुरुष सूर्यनारायण के सामने

न सूर्यलोकेमहीयते ॥ मधूकतैलदीपाद्यैस्सौभाग्यंपरमंलभेत् ॥ २५ ॥ पुष्पाणांप्रवराजातिर्धूपानांविजयःपरः ॥ गन्धानांकुङ्कुमंश्रेष्ठं लेपानांरक्तचन्दनम्॥२६॥ दीपदानेघृतंश्रेष्ठं नैवेद्येमोदकाःपरम् ॥एतैस्तुष्यतिदेवेशस्सान्निध्यंचाधिगच्छति ॥ २७ ॥ एवंसम्पूज्यविधिवत् कृत्वाचत्रिःप्रदक्षिणम् ॥ प्रणम्यशिरसादेवं तत्रचार्कस्थलंप्रिये ॥ २८ ॥ सुखासीनस्ततःपश्येद्रवेरभिमुखस्थितः ॥ एकंसिद्धार्थकंकृत्वा हस्तेपानीयसंयुतम् ॥ २९ ॥ कामंयथेष्टंहृदये ध्यात्वार्कस्थलसन्निधौ ॥ पिबेत्सतोयंदेवेशि अस्पृष्टंदशनैस्सकृत् ॥ ३० ॥ एवंकृत्वानरोदेवि कोटियात्राफलंलभेत् ॥ ब्रह्माविष्णुर्महादेवो ज्वलनोधनदस्तथा ॥ ३१ ॥ भानुमाश्रित्यसर्वेते मोदन्तेदिविसुव्रते ॥ तस्माद्भानोस्समन्देवं नाहंपश्यामिकञ्चन ॥ ३२ ॥ इतिस्तुत्वामहादेवि पुनर्भानोःप्रदक्षिणम् ॥ कुर्यान्मन्त्रेणदेवेशि सप्तकृत्वोवरानने ॥ ३३ ॥ तुमुष्टवामयंवीरः प्रथमापरिकीर्त्तिता ॥ प्रतिमण्डलवामेति द्वितीयापरिकीर्त्तिता ॥ ३४ ॥ इन्द्रशुद्धेनआजेति तृती

स्थित होकर देखै और हाथ में जल समेत एक सरसों कर ॥ २९ ॥ हे देवेशि ! जो प्रियहो उस अभिलाष को मनमें ध्यानकर अर्कस्थल के समीप दांतों से न छुयेहुये उस जल को वह मनुष्य एकही बार पीलेवै ॥ ३० ॥ हे देवि ! ऐसा करके मनुष्य कोटियात्रा के फल को प्राप्त होता है ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, अग्नि व कुबेर ॥ ३१ ॥ हे सुव्रते ! वे सब देवता सूर्यनारायण के आश्रित होकर स्वर्ग में आनन्द करते हैं इस लिये मैं सूर्य के समान अन्य किसी देवता को नहीं देखताहूं ॥ ३२ ॥ हे महादेवि ! इस प्रकार स्तुतिकर फिर हे वरानने, देवेशि ! मन्त्रसे सातबार प्रदक्षिणा करै ॥ ३३ ॥ तुमुष्टवामयंवीरः इस मन्त्र से पहली प्रदक्षिणा कही गई है व प्रति-

मण्डलवाम इस मन्त्रसे दूसरी प्रदक्षिणा कही गई है ॥ ३४ ॥ और इन्द्रशुद्धेन आज इस मन्त्र से तीसरी प्रदक्षिणा कही गई है व शुद्धोवृत्राणिवाम इस मन्त्र से चौथी प्रदक्षिणा कहीहै ॥ ३५ ॥ और हे शुभे ! अस्य वामस्य इस मन्त्रसे पांचवीं प्रदक्षिणा कही है व सामके गानेवाले विद्वानों ने गाने योग्य दश श्रेष्ठ गानों को गायाहै उनसे सातवीं प्रदक्षिणा करै हे सुन्दरि ! उन दश सामों को मैं आज तुमसे कहताहूं ॥ ३६ । ३७ ॥ कि हुंकार, ॐकार, उद्गीथ (सामवेदध्वनि) व प्रस्ताव ये चार और जहां पर पांचवां प्रहर है और वैसेही छठा आरण्यक है ॥ ३८ ॥ व सामों के मध्य में निधन सातवां है इस भांति सातप्रकार का कहा गयाहै और ॐकार

यापरिकीर्त्तिता ॥ शुद्धोवृत्राणिजघनचतुर्थीपरिकीर्त्तिता ॥ ३५ ॥ अस्यवामस्यतुशुभे पञ्चमीपरिकीर्त्तिता ॥ दशसामानिगेयानि प्रवराणिमनीषिभिः ॥ ३६ ॥ गीतानिसामगैर्नित्यं सप्तमीतैस्तुकारयेत् ॥ तानितेकथयाम्यद्य दश सामानिसुन्दरि ॥३७॥ हुङ्कारःप्रणवोद्गीथः प्रस्तावश्चचतुष्टयम् ॥ पञ्चमंप्रहरोयत्र षष्ठमारण्यकन्तथा ॥ ३८ ॥ निधनंसप्तमंसाम्नां साप्तविध्यमितिस्मृतम् ॥ पाञ्चविध्यमितिप्रोक्तं हुङ्कारःप्रणवेनतु ॥ ३९ ॥ अष्टमंचतथासाध्यं नवमंदैवकन्तथा ॥ ज्येष्ठन्तुदशमंसाम उच्यतेप्रियमुत्तमम् ॥ ४० ॥ एतेषान्देविसाम्नांवै जाप्यंकार्य्यंविधानतः ॥ ज्येष्ठसामात्परञ्चैव द्वितीयंगदतःशृणु ॥ ४१ ॥ नचश्राव्यंद्वितीयन्तु जप्तव्यंमुक्तिमिच्छता ॥ तज्जाप्यंपरमंप्रोक्तं स्वयंदेवेनभानुना ॥ ४२ ॥ जाप्यस्यविनियोगस्य लक्षणञ्चनिबोधमे ॥ ४३ ॥ स्तोभसारंस्वरेगीतमोङ्कारादिस्मृतंबुधैः ॥ ऊर्भानुस्तुतथाधर्भं धर्मसत्यंहृतंतथा ॥ ४४ ॥ धर्मविद्धर्मधर्मञ्च धर्मेषुनिधनङ्गताः ॥ यज्विभिर्यजनेशब्दैरुदितंसाम

समेत हुङ्कार पांचप्रकार का होताहै ॥ ३९ ॥ और आठवां साध्य व नवां दैवक है व प्रिय तथा उत्तम दशवां साम ज्येष्ठ कहा जाताहै ॥ ४० ॥ हे देवि ! इन सामों का जप विधि से करना चाहिये और ज्येष्ठ साम से परे दूसरे सामको कहते हुये मुझसे सुनिये ॥ ४१ ॥ और दूसरे को सुनाना न चाहिये किन्तु मुक्ति चाहनेवाले पुरुषको जपना चाहिये क्योंकि उस जपको आपही सूर्यदेव ने उत्तम कहाहै ॥ ४२ ॥ और जप के विनियोग का लक्षण मुझसे सुनिये ॥ ४३ ॥ स्वर में जो स्तोभसार गाया गया है वह विद्वानों से ॐकारादिक कहा है व ऊर्भानु, धर्म, भर्म, सत्य और हृत ॥ ४४ ॥ व धर्मवित, धर्मधर्म व धर्म में निधन (मृत्यु) को प्राप्त हैं और साम के

गानेवाले विधिपूर्वक यज्ञकर्त्ता द्विजोंने शब्दों से जो यज्ञमें कहा है ॥ ४५ ॥ उस जपको आपही सूर्यदेवने उत्तम कहा है इसको जपता हुआ पुरुष फिर नहीं लौटता (जन्म लेता) है ॥ ४६ ॥ और समस्त रोगों से छूटकर ब्रह्महत्या से छूटजाता है व आज्यदोह ऐसा मन्त्र सामका ज्येष्ठसाम यहां लक्षण है ॥ ४७ ॥ इसप्रकार देवेश सूर्यनारायण की स्तुति कर पांच ऋचाओं से पाच प्रदक्षिणा करै हे शुभे ! सावधान होकर उनको सुनिये ॥ ४८ ॥ उक्षाणं पृष्टि इस मंत्र से पहली प्रदक्षिणा कही गई है और चत्वारि वाक् ऐसा जो मंत्रहै उससे दूसरी कही गई है ॥ ४९ ॥ हे चार्वङ्गि ! इन्द्रमित्रं इस मंत्र से तीसरी प्रदक्षिणा कही गई है व कृष्ण नियामं

र्गीर्द्विजैः ॥ ४५ ॥ जाप्यंचैतत्परंप्रोक्तं स्वयन्देवेनभानुना ॥ एतद्वैजपमानस्तु पुनरावर्त्ततेनतु ॥ ४६ ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ आज्यदोहेतिवैसाम्नो ज्येष्ठोसामेतिलक्षणम् ॥ ४७ ॥ इतिस्तुत्वाचदेवेशं पञ्चकुर्यात्प्रदक्षिणाः ॥ ऋग्भिस्तुपञ्चभिश्चैव शृणुष्वैकमनाःशुभे ॥ ४८ ॥ उक्षाणंपृष्टिरितिवै प्रथमापरिकीर्त्तिता ॥ चत्वारिवागितिवैमन्त्रो द्वितीयापरिकीर्त्तिता ॥ ४९ ॥ इन्द्रमित्रंतृतीयातु चार्वङ्गिपरिकीर्त्तिता ॥ कृष्णंनियामंहितथा चतुर्थीपरिकीर्त्तिता ॥ ५० ॥ द्वादशप्रधयंइति पञ्चमीपरिकीर्त्तिता ॥ योरत्नवाहीत्यनया किरीटंयोजयेद्रवेः ॥ ५१ ॥ गतेहनमित्यनया अभ्यङ्गंभास्करेन्यसेत् ॥ अनेनविधिनादेवि पूजयेद्विधिवद्रविम् ॥ ५२ ॥ अनेनविधिनायस्तु पूजयेद्विधिवद्रविम् ॥ समाप्नोत्यधिकान्कामानिहलोकेपरत्रच ॥ ५३ ॥ पुत्रार्थीलभतेपुत्रं धनार्थीलभतेधनम् ॥ कन्यार्थीलभतेकन्यां विद्यार्थीवेदविद्भवेत् ॥ ५४ ॥ निष्कामंपूजयेद्यस्तु समोक्षंयातिवैध्रुवम् ॥ अस्यक्षेत्रस्यमाहात्म्यादर्कसूर्यप्रभावतः ॥ ५५ ॥

इस मंत्र से चौथी प्रदक्षिणा कही गई है ॥ ५० ॥ द्वादश प्रधय इस मंत्र से पांचवीं प्रदक्षिणा कही है और योरत्नवाहि इस मंत्र से सूर्यनारायणजी के किरीट को योजित करै ॥ ५१ ॥ व गतेहनं इस ऋचामे सूर्यनारायणके उबटन लगावै हे देवि ! इस विधि से विधिपूर्वक सूर्यनारायण जी को पूजै ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य विधिपूर्वक इस विधान से सूर्यनारायणजी को पूजता है वह इस लोक व परलोक में बहुत अभिलाषों को प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ पुत्र को चाहनेवाला पुरुष पुत्रको पाताहै और धनको चाहनेवाला धन को पाताहै व कन्याकी इच्छाकरनेवाला मनुष्य कन्या को पाताहै और विद्या चाहनेवाला वेदवित् होताहै ॥ ५४ ॥

और जो अकाम होकर पूजता है वह निश्चयकर इस क्षेत्र के माहात्म्य से व अर्कसूर्य के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥ अन्यत्र करोड़ ब्राह्मण भोजन कराने से जो फल होताहै ॥ ५६ ॥ वही फल अर्कस्थल में एक ब्राह्मणभोजन कराने से होताहै और स्नान, दान, जप व होम जो कुछ सूर्यग्रहण में वहां कियाजाताहै ॥ ५७ ॥ वह सब सूर्यकोटि के प्रभाव से कोटिगुना होता है और जो मनुष्य माघ महीने में सप्तमी तिथि रविवार में ॥ ५८ ॥ हे महादेवि ! कृष्णपक्ष में अर्कस्थलके समीप जो जागरण करताहै वह उत्तमगति को प्राप्त होताहै ॥ ५९ ॥ कुरुक्षेत्र में गोशत दानका जो फल होता है वहापर उस फल को अर्कस्थल

अन्यत्रब्राह्मणानाञ्च कोटीनांयत्फलंलभेत ॥ ५६ ॥ अर्कस्थलेतथैकेन भोजनेनतुतत्फलम् ॥ स्नानंदानंजपो होमस्सूर्यपर्वणियत्कृतम् ॥ ५७ ॥ तत्सर्वंकोटिगुणितं सूर्यकोटिप्रभावतः ॥ माघमासेनरोयस्तु सप्तम्यांरविवासरे ॥ ५८ ॥ कृष्णपक्षेमहादेवि जागरंयस्तुकारयेत् ॥ अर्कस्थलेसमीपेतु सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ५९ ॥ गोशतस्यप्रदानस्य कुरुक्षेत्रेतुयत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोति तत्रार्कस्थलदर्शनात् ॥ ६० ॥ अर्कस्थलःपूजनीयस्तत्रस्थाननिवासिभिः ॥ जपापुष्पैरर्कपुष्पैरर्चनीयोदिवाकरः ॥ ६१ ॥ आम्लातकस्यकुसुमं निर्माल्यमिवदृश्यते ॥ अप्रत्यग्रंबहिर्यस्मात्त स्मात्तंपरिवर्जयेत् ॥ ६२ ॥ नाम्बुजातंप्रदातव्यं नम्लानन्नचदूषितम् ॥ नचपर्युषितंमाल्यं दातव्यंभूतिमिच्छता॥६३॥ देवमर्चयतेयस्तु तत्क्षणात्पुष्पलोभतः ॥ पुष्पाणिचसुगन्धीनि भोजनानीतराणिच ॥ ६४ ॥ ब्रह्महत्यामवाप्नोति पू

के दर्शन से मनुष्य प्राप्तहोताहै ॥६०॥ उस स्थान के बसनेवाले जनों से अर्कस्थलजी पूजनीयहैं गुड़हर के पुष्पों से व मदार के पुष्पों से सूर्यनारायणजी को पूजना चाहिये ॥ ६१ ॥ और अँवराका पुष्प निर्माल्यकी नाईं देखपड़ताहै जिसलिये प्राचीन पुष्प पृथक् करना चाहिये उसी कारण उसको वर्जित करै ॥ ६२ ॥ और जल में पैदा हुआ व कुँभिलाया तथा दूषित पुष्प न देना चाहिये व ऐश्वर्य को चाहनेवाले पुरुषको पर्युषित (बासी) माला न देना चाहिये ॥ ६३ ॥ और उसीक्षण पुष्पों के लोभ से जो मनुष्य पर्युषित पुष्पों से सूर्यदेव को पूजताहै व सुगन्धिवाले पुष्प, भोजन व अन्य वस्तुवों को देताहै ॥ ६४ ॥ लोभ से मोहित वह मनुष्य ब्रह्महत्या को प्राप्तहोता

है और महारौरव को प्राप्त होकर सैकड़ों वरसतक पचता है ॥ ६५ ॥ हे देवदेवेशि ! मैं तुमसे धूपदानकी उत्तम व मुख्य विधिको कहूंगा कि जिस धूपसे जो फल होता है ॥ ६६ ॥ सदैव पूजन व धूप से सूर्यनारायणजी समीपता करते हैं और मनुष्य जिस जिस मनोरथ को चाहताहै उस समस्त कामना को सूर्यनारायणजी देते हैं ॥६७॥ अगुरुकी धूप से सूर्यनारायणजी चाहीहुई निधिको देते हैं और नीरोगता को चाहनेवाला व धन चाहनेवाला पुरुष नित्य गुग्गुलुको जलावै ॥ ६८ ॥ और लोबानके धूप से सदैव सूर्यनारायणजी प्रसन्न रहते हैं और आपही नीरोगता को देते हैं व उत्तमसुख होताहै ॥ ६९ ॥ और श्रीवास (देवदारु) की धूप से वाणिज्य सफल होतीहै व

जकोलोभमोहितः ॥ महारौरवमासाद्य पच्यतेशाश्वतीःसमाः ॥ ६५ ॥ हन्ततेकीर्त्तयिष्यामि धूपदानविधिपरम् ॥ प्रधानन्देवदेवेशि येनधूपेनयत्फलम् ॥ ६६ ॥ सदाह्यर्चनधूपेनसान्निध्यंकुरुतेरविः ॥ प्रदद्यात्सकलंकामं यद्यदिच्छति मानवः ॥ ६७ ॥ तथैवागुरुरूपेणनिधिंदद्यादभीप्सितम् ॥ आरोग्यार्थीधनार्थीच नित्यदागुग्गुलुंदहेत् ॥ ६८ ॥ पिण्डावधूपदानेन सदातुष्यतिभानुमान् ॥ आरोग्यञ्चस्वयंदद्यात्सौख्यञ्चपरमंभवेत् ॥ ६९ ॥ श्रीवासकस्यधूपेन वाणिज्यंसफलंभवेत् ॥ देवदारुसमुद्भूतोभवत्यत्रतथाक्षयम् ॥ ७० ॥ विधूपनंकुङ्कुमेन सर्वकामफलप्रदम् ॥ इहलोकेसुखीभूत्वा अक्षयंस्वर्गमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ चन्दनस्यविलेपेन श्रियमायुश्चविन्दति ॥ रक्तचन्दनधूपेन सर्वंदद्याद्दिवाकरः ॥ ७२ ॥ कस्तूरिकायाधूपेन रायश्चविपुलाल्लभेत् ॥ ७३ ॥ कर्पूरसंयुतैर्गन्धैःक्ष्माधिपाधिपतिर्भवेत् ॥ चन्दनस्यतुगन्धेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ७४ ॥ इत्येतत्कथितन्देवि सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ सविस्तारं

देवदारु से उपजी हुई धूप यहां अविनाशी होती है ॥ ७० ॥ और कुंकुमसे धूप समस्त कामनाओं के फल को देती है व इस लोकमें सुखी होकर अक्षयस्वर्गको प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ चन्दन के धूप से मनुष्य लक्ष्मी व आयुर्बलको प्राप्तहोताहै और अरुण चन्दनके धूपसे सूर्यनारायणजी सब कुछ देते हैं ॥ ७२ ॥ और कस्तूरीके धूपसे मनुष्य बहुत द्रव्योंको पाताहै ॥ ७३ ॥ व कर्पूरसंयुत सुगन्धोंके धूप से भूपतियों का स्वामी होता है और चन्दन की सुगन्ध से मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त होताहै ॥ ७४ ॥

हे देवि ! यह उत्तम सूर्य का माहात्म्य कहागया मैंने विस्तार समेत इस को कहा अन्य क्या पूंछती हो ॥ ७५ ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि यह समस्त तेजस्वियों में श्रेष्ठ भगवान् सूर्यनारायणजी ऐसे हैं तो हे देव ! उन सूर्यनारायणजी को सिंहिकासुत राहु कैसे ग्रसता है ॥ ७६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये भ्रम को नाशकरनेवाले व समस्त पातकोंके विनाशक ग्रहण के कारण को भी मैं कहताहूं ॥७७॥ हे भामिनि ! जबतक सूर्यनारायण अमृत को बहाते हैं तबतक विमान पै स्थित अमृतकी इच्छावाला राहु सूर्यबिम्बके नीचे स्थित रहता है ॥ ७८ ॥ हे देवि ! उसके प्रतिबिम्ब से सूर्यनारायणजी छिपजाते हैं वही ग्रहणहै कोई उनको ग्रसने

मयाख्यातं किमन्यत्परिपृच्छसि ॥ ७५ ॥ देव्युवाच ॥ यद्येवंभगवान्सूर्यस्सर्वतेजस्विनांवरः ॥ सकथंग्रस्यतेदेव सैंहिकेयेनराहुणा ॥ ७६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ कारणंग्रहणस्यापि भ्रान्तिविच्छेदकारकम् ॥ ७७ ॥ राहुरादित्यबिम्बस्य अधस्तिष्ठतिभामिनि ॥ अमृतार्थीविमानस्थो यावत्संस्रवतेमृतम् ॥ ७८ ॥ बिम्बेनान्तरितोदेवि आदित्योग्रहणंहितत् ॥ नकश्चिद्ग्रसितुंशक्तआदित्योदहतेध्रुवम् ॥ ७९ ॥ ब्रह्मादयस्सुरास्सर्वे तथान्ये देवदानवाः ॥ आदिकर्त्तास्वयंयस्मादादित्यस्तेनचोच्यते ॥ ८० ॥ प्रभासेसंस्थितोदेवस्सर्वपातकनाशनः ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदोदेवो व्याधिदुष्कृतनाशकृत् ॥ ८१ ॥ तत्रसिद्धापुरादेवि लोकपालामहर्षयः ॥ सिद्धाविद्याधरायक्षा गन्धर्वामुनयस्तथा ॥ ८२ ॥ धनदोपितथाभीष्मो ययातिर्गालवस्तथा ॥ साम्बश्चैवतदादेवि परांसिद्धिमितोगतः ॥ ८३ ॥ इदंरहस्यंदेवेशि सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ नदेयंदुष्टबुद्धीनां पापिनाञ्चविशेषतः ॥ ८४ ॥ ननास्तिकेऽश्रद्दधाने क्रूरेवानक

के लिये नहीं समर्थ है क्योंकि सूर्यनारायणजी निश्चयकर जलादेते हैं ॥ ७९ ॥ ब्रह्मादिक सब देवता व अन्य जो देवता दानवहैं उनके आपही सूर्यनारायणजी जिस लिये आदिकर्ताहैं उसीसे आदित्य कहेजाते हैं ॥ ८० ॥ भुक्ति मुक्ति के दायक व रोगों तथा पातकों के विनाशक तथा समस्तपापविनाशक सूर्यदेवजी प्रभास क्षेत्र में स्थितहैं ॥ ८१ ॥ हे देवि ! पुरातन समय वहांपर लोकपाल, महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गंधर्व व मुनिलोग सिद्ध हुये हैं ॥ ८२ ॥ व हे देवि ! कुबेरभी और भीष्म, ययाति, गालव व साम्ब उस समय यहां से उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुये हैं ॥ ८३ ॥ हे देवेशि ! यह उत्तम व गुप्त सूर्यका माहात्म्य दुष्टबुद्धिवाले पापियों को

विशेषकर देने योग्य नहीं है ॥ ८४ ॥ और नास्तिक व अश्रद्धावान् तथा क्रूर व ईर्षावान् और शठसे किसी प्रकार इस कथा को न कहै ॥ ८५ ॥ हे सुव्रते, महादेवि ! यह चरित्र पुत्र, शिष्य, धर्मात्मा व ज्ञान में वर्तमान तथा सूर्यनारायण के भक्त के लिये कहना चाहिये ॥ ८६ ॥ हे देवि ! श्राद्ध में जो पुरुष अर्कस्थलदेवजी के इस माहात्म्य को प्रशंसितव्रतोंवाले ब्राह्मणों को सुनाताहै ॥ ८७ ॥ हे देवि ! उसका वह अनन्त होजाताहै जो कि पुरुषों को दान दियाजाताहै जहां पर यह पुण्यदायक चरित्र कहाजाता है वहांपर सदैव संपदायें होती है ॥८८॥ और भय से विकल राक्षसलोग उस श्राद्धको नहीं ग्रसते हैं व जो पंक्तिके विदूषकहैं वे पंक्तिपावनताको प्राप्तहोते

थञ्चन ॥ इमांगाथामनुब्रूयात्तथानासूयतेशठे ॥ ८५ ॥ इमंपुत्रायशिष्याय धर्मिणेज्ञानवर्त्तिने ॥ कथनीयंमहादेवि सूर्यभक्तायसुव्रते ॥ ८६ ॥ अर्कस्थलस्यदेवस्य माहात्म्यमिदमुत्तमम् ॥ यःश्राद्धेश्रावयेद्देवि ब्राह्मणाञ्छंसितव्रता न् ॥ ८७ ॥ तस्यानन्तंभवेद्देवि यद्दानंपुरुषस्यवै ॥ यत्रेदंकीर्त्यतेपुण्यं सम्पदस्तत्रवैसदा ॥ ८८ ॥ यातुधानानग्रस न्ति तच्छ्राद्धंभयविह्वलाः ॥ पङ्क्तिपावनतांयान्तियेवैपङ्क्तिविदूषकाः ॥ ८९ ॥ सुतवान्धनवांश्चस्यात्सर्वकाममनोर मः ॥ प्रवासिभिर्बन्धुवर्गैः संयुज्येतसदानरः ॥ ९० ॥ नष्टैस्संयुज्यतेचार्थैरपरैश्चापिचिन्तितैः ॥ रक्ष्यतेयोगिनीभि श्च प्रियैश्चापिनियोज्यते ॥९१॥ उपस्पृश्यशुचिर्भूत्वाशृणुयाद्ब्राह्मणस्सदा ॥ सर्वान्कामांश्चलभते नात्रकार्याविचा रणा ॥ ९२ ॥ वैश्यस्समृद्धिमतुलां क्षत्रियःपृथिवीपतिः ॥ वणिजश्चापिवाणिज्यमखण्डंशतसंख्यया ॥ ९३ ॥ लभे युःकीर्तमानेस्य सूर्यस्यैववरानने ॥ शूद्राश्चैवाभिलषितान् कामान्प्राप्स्यन्तिभामिनि ॥ ९४ ॥ अपमृत्युभयङ्घोरं मृ

हैं ॥८९॥ और पुत्रवान्, धनवान् तथा समस्त कामनाओं से सुन्दर होताहै और विदेशी बन्धुवों से मनुष्य सदैव संयोगको प्राप्त होताहै ॥ ९० ॥ व नष्टद्रव्यों तथा अन्य चिन्तित वस्तुवों से मनुष्य संयुक्त होता है और योगिनियों से रक्षित होताहै व प्रियवस्तुवों से युक्त होताहै ॥ ९१ ॥ व जल को स्पर्शकर पवित्र होकर ब्राह्मण सदैव इस को सुनै तो समस्त मनोरथोंको प्राप्त होताहै इस में विचार करना न चाहिये ॥ ९२ ॥ व वैश्य अतुलित लक्ष्मी को प्राप्तहोता है व क्षत्रिय भूपति होताहै और हे वरानने ! इस सूर्यनारायण के माहात्म्य को कीर्तन करने पर वणिज भी अखण्डशतसंख्य वाणिज्य को पाते हैं और हे भामिनि ! शूद्र चाहे हुये मनोरथों को प्राप्त

होते हैं ॥ ९३ । ९४ ॥ और अपमृत्यु से भयङ्कर भय तथा मृत्यु से भी महाभय व राजद्वार में कियाहुआ जो भय है वह नष्ट होजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥९५॥ और सब कामनाओं से संयुत वह पुरुष सूर्यलोक में पूजित होता है हे देवि ! अर्कस्थल के प्रसंग से यह सूर्यदेवतावाला माहात्म्य तुमसे कहागया अन्य क्या सुनना चाहती हो ॥ ९६ । ९७ ॥ अविनाशी स्थान व पराक्रमों की गति तथा दिशाओं के अविनाशी दीपक ये सूर्यनारायण हैं और सिद्धि का खुला द्वार तथा त्रिलोक के साधारण लोचन व आकाशरूपी तड़ाग के सुवर्णवाले कमल और आकाशका प्रकाशित कुंडल व काल के भी प्रकट करने में नेत्रबिंबरूपी सूर्य का मण्डल हम

त्युतोतिमहाभयम् ॥ नश्यतेनात्रसन्देहो राजद्वारकृतश्चयत् ॥ ९५ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा सूर्यलोकेमहीयते ॥ इत्येत त्कथितन्देवि माहात्म्यंसूर्यदैवतम् ॥ ९६ ॥ अर्कस्थलप्रसङ्गेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ९७ ॥ स्थानंशाश्वतमोज साङ्गतिरयन्दीपोदिशामव्ययः सिद्धेर्द्वारमपावृतंत्रिजगतांसाधारणंलोचनम् ॥ हैमंपुष्करमन्तरिक्षसरसो दीप्तंदिवः कुण्डलं कालस्यापिविभावनाद्विवलयं बिम्बंरवेःपातुवः ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येऽर्कस्थल माहात्म्यन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ इतिप्रोक्तातदादेवी शङ्करेणयशस्विनी ॥ पुनःपप्रच्छविप्रेन्द्राः क्षेत्रमाहात्म्यविस्तरम् ॥ १ ॥ देव्यु वाच ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेसफलंतपः ॥ देवत्वमद्यमेजातं त्वत्प्रसादेनशङ्कर ॥ २ ॥ अद्याहंकृतकृत्यास्मि ज्ञा नदृष्टिःकृतात्वया ॥ अद्यमेभूषितौकर्णौ क्षेत्रमाहात्म्यभूषणैः ॥ ३ ॥ अद्यमेतेजसःपिण्डो जातोज्ञानंहृदिस्थितम् ॥

लोगों की रक्षा करै ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामर्कस्थलमाहात्म्यवर्णननामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ● ॥

दो॰ । कह्यो चन्द्र उत्पत्ति कर यथा सदाशिव हाल । सोलहवें अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! उस समय इसप्रकार शिवजी से कही हुई यशस्विनी पार्वती देवीने फिर क्षेत्रके माहात्म्यका विस्तार पूंछा ॥ १ ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि आज मेरा जन्म सफल हुआ और आज मेरा तप सफल होगया हे शंकरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से आज मेरे देवत्व होगया ॥ २ ॥ मैं आज कृतार्थ होगई व तुमने ज्ञानकी दृष्टि किया और क्षेत्रके माहात्म्यरूपी भूषणोंसे मेरे

कर्ण भूषित होगये ॥ ३ ॥ आज मेरे तेजका पिंड उत्पन्न हुआ और ज्ञान हृदयमें स्थितहुआ आज मेरेवंश व शील उत्पन्न हुआ व आज मेरे रूपका लक्षण सफल हुआ ॥ ४ ॥ हे मानियों में श्रेष्ठ शिवजी ! आज तीर्थभ्रमण से उपजीहुई भ्रान्ति (सन्देह) नष्ट होगई और प्रभासक्षेत्र में मेरा मन अचल होगया ॥ ५ ॥ हे सुरेश्वर ! पुरातन समय जो मैं कि अग्नि से वेष्टित व जल में स्थित थी उस मुझसे आराधन किये हुये आप आज प्रसन्न हुये ॥ ६ ॥ हे भक्तप्रिय ! वही मेरा जन्म सफल होगया, क्योंकि आज प्रभासक्षेत्र का माहात्म्य मुझसे प्रकट कियागया ॥ ७ ॥ हे देवेश, प्रभो ! फिर भी जो पूंछतीहूं उसको यथार्थ कहिये और आज भी तीर्थ के माहात्म्य

अद्यमेकुलशीलञ्च अद्यमेरूपलक्षणम् ॥ ४ ॥ अद्यमेभ्रान्तिरुच्छिन्ना तीर्थभ्रमणसम्भवा ॥ प्रभासेनिश्चलंजातं मनो मेमानिनांवर ॥ ५ ॥ आराधितोमयापूर्वं तुष्टोमेद्यसुरेश्वर ॥ वह्निनाचेष्टिताचाहमथवाजलसंस्थिता ॥ ६ ॥ तदेवसफलं जन्म जातम्मेभक्तवत्सल ॥ प्रभासक्षेत्रमाहात्म्यमद्यमेप्रकटीकृतम् ॥ ७ ॥ पुनःपृच्छामिदेवेश यथातथ्यंवदप्रभो ॥ अद्यापिसंशयोनाम तीर्थमाहात्म्यसम्भवः ॥ ८ ॥ अन्यत्कौतूहलन्देव कथयस्वमहेश्वर ॥ योयंवैवर्त्ततेदेव चन्द्रस्तेशिरसिस्थितः ॥ ९ ॥ कस्यायंकथमुत्पन्नः कस्मिन्कालेवदप्रभो ॥ ईश्वरउवाच ॥ अस्मिन्कालेमहादेवि वाराहइति विश्रुते ॥ १० ॥ परार्द्धेतुद्वितीयेस्मिन्न वर्त्तमानेतुवेधसः ॥ द्वितीयमासस्यादौतु प्रतिपद्याप्रकीर्त्तिता ॥ ११ ॥ वाराहेणोद्धृतातस्मिंस्तथाचादौधराप्रिये ॥ तेनवाराहकल्पेति नामजातंधरातले ॥ प्रथमस्यमनोश्चादौ देविस्वायंभुवस्यहि ॥ १२ ॥ क्षीरोदेमथ्यमानेतु देवतैर्दानवैरपि ॥ रत्नानिजज्ञिरेतत्र चतुर्दशमितानिवै ॥ १३ ॥ तेषांमध्येमहातेजाश्चन्द्र

से उपजीहुई सन्देह है ॥ ८ ॥ हे सुरेश्वरदेव ! अन्य कौतुक को कहिये हे देव ! तुम्हारे मस्तक में स्थित जो यह चन्द्रमा वर्तमान है ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! यह चन्द्रमा किसका पुत्रहै व कैसे पैदा हुआ और किस समय में हुआहै महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! वाराह ऐसे प्रसिद्ध इस समय में ॥ १० ॥ ब्रह्माके दूसरे परार्द्ध के वर्तमान होनेपर दूसरे महीने के आदिमें जो प्रतिपदा कही गई है ॥ ११ ॥ उस में पहले वाराहजी ने पृथ्वी को उधारा है उससे पृथ्वी में वाराहकल्प ऐसा नाम हुआ हे देवि ! पहलेवाले स्वायंभुव मनुके आदि में ॥ १२ ॥ जब देवता व दैत्यों ने भी क्षीरसागर को मथाहै तब वहां चौदह संख्यक रत्न पैदा हुये हैं ॥ १३ ॥ हे देवि !

उनके मध्य में अमृत से उपजाहुआ बड़ा तेजस्वी जो चन्द्रमा था हे प्रिये ! उसी इस चन्द्रमा को मैंने धारण किया जो कि आज भी मस्तक में विराजमानहै ॥ १४ ॥ हे देवि, महादेवि ! सदैव प्रभासक्षेत्र में टिके हुये मेरे विष पीने पर पुरातन समय मेरे मुकुट में चन्द्रमा भूषण किया गया है ॥ १५ ॥ जिस लिये मैं शशि (चन्द्रमा) से भूषित हूं उसी कारण शशिभूषण नामक हूं और उस स्थान में आज भी आपही से उपजाहुआ मैं लिंगमूर्तिधारी स्थित हूं ॥ १६ ॥ जो कि हे प्रिये ! सब सिद्धियों को देनेवाला और सदैव कल्पपर्यन्त स्थित होनेवालाहूं ॥ १७ ॥ हे देवि ! यह चरित्र कहा गया अन्य क्या पूंछती हो ॥ १८ ॥ इति श्रीस्क-

मामृतसम्भवः ॥ सोयंमयाधृतोदेवि अद्यापिशिरसिप्रिये ॥ १४ ॥ विषेपीतेमहादेवि प्रभासस्थस्यमेसदा ॥ भूषणंमुकुटेदेवि ममचन्द्रःकृतःपुरा ॥ १५ ॥ शशिनाभूषितोयस्मात्तेनाहंशशिभूषणः ॥ तत्रस्थानेस्थितोद्यापि स्वयम्भूर्लिङ्गमूर्त्तिमान् ॥ १६ ॥ सर्वसिद्धिप्रदाताच कल्पस्थायीसदाप्रिये ॥ १७ ॥ इत्येतत्कथितन्देवि किमन्यत्परिपृच्छसि ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ यद्येवंसकलश्चन्द्रः कथन्नविधृतस्त्वया ॥ अन्तर्भावःकलानान्तत् कारणंकथयप्रभो ॥ १ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अमाषोडशभेदेन देविप्रोक्तामहाकला ॥ २ ॥ संस्थितापरमामाया देहिनांदेहधारिणी ॥ अमादिपौर्णमास्यान्ता याएवशशिनःकलाः ॥ ३ ॥ तिथयस्ताःसमाख्याताः षोडशैवप्रकीर्तिताः ॥ अमासूक्ष्मापराशक्तिस्सात्वन्दे

न्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांषोडशोध्यायः ॥ १६ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । त्रुटि आदिक जिमि कहे हैं सुविधि कालपरमान । सत्रहवें अध्याय में सोई कीन बखान ॥ पार्वती देवी जी बोलीं कि यदि ऐसाहै तो तुमने समस्त चन्द्रमा को क्यों नहीं धारण किया क्योंकि उसमें सब कलाओंका अन्तर्भाव है हे प्रभो ! उस कारण को कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! अमात्मक महाकला सोलह भेदसे कहीगई है ॥ २ ॥ जो कि देहधारियों के शरीर को धारण करनेवाली बड़ीभारी माया स्थितहै अमावस से लगाकर पौर्णमासी पर्यन्त जो चन्द्रमा की

कलाहैं ॥ ३ ॥ वे तिथियां कहीगईहैं जो कि सोलहही कहीहैं हे देवि ! जो अमानामक सूक्ष्म परमशक्तिहै वह तुम्हीं कहीगई हो ॥ ४ ॥ कालके क्रमसे कहीहुई वे प्रलय व उत्पत्ति के योगसे स्थितहैं हे प्रिये ! पहलेवाले जो सोलह स्वरहैं वे सृष्टिके अन्तनक रहते हैं ॥ ५ ॥ और कालज्ञजनों से वे काल के अंग जानने योग्यहैं त्रुटि, लव, निमेष, कला, काष्ठा व मुहूर्त ॥ ६ ॥ रात्रि, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग, मन्वन्तर, कल्प व महाकल्प ये सोलह काल के भेद हैं ॥ ७ ॥ और विसर्जनीया कला जीव के आश्रित होकर वर्तमानहै दो विषुव समयों से संयुत वह सब संसारको रचती है ॥ ८ ॥ वैसेही हे प्रिये ! जो संचरणी नामक कलाहै वह संसार

विप्रकीर्तिता ॥ ४ ॥ प्रलयोत्पत्तियोगेन स्थिताःकालक्रमोदिताः ॥ षोडशैवस्वरायेतु आद्याःसृष्ट्यन्तिकाःप्रिये ॥ ५ ॥ कालस्यावयवास्तेच विज्ञेयाःकालवेदिभिः ॥ त्रुटिर्लवोनिमेषश्च कलाकाष्ठामुहूर्त्तकम् ॥ ६ ॥ रात्र्यहःपक्षमासश्च अयनंवत्सरंयुगम् ॥ मन्वन्तरंतथाकल्पं महाकल्पञ्चषोडश ॥ ७ ॥ कलाविसर्ज्जनीयातु जीवमाश्रित्यवर्त्तते ॥ सासृजत्यखिलंविश्वं विषुवत्कालसंयुता ॥ ८ ॥ तथासंचरणीयातु विश्वंसंहरतेप्रिये ॥ नेत्रपाताच्चतुर्भागस्त्रुटिकालोनिगद्यते ॥ ९ ॥ तस्माच्चद्विगुणंविद्धि निमेषंतन्महेश्वरि ॥ निमेषत्रिंशताकाष्ठा ताभिर्विंशतिभिःकला ॥ १० ॥ विंशत्कलोमुहूर्तःस्याद्दिनंपञ्चदशोन्मितैः ॥ दिनमानानिशाज्ञेया अहोरात्रंतयोर्भवेत ॥ ११ ॥ तैःपञ्चदशभिःपक्षो द्विपक्षोमासउच्यते ॥ मासैश्चैवायनंषड्भिर्वर्षस्यादयनद्वये ॥ १२ ॥ चत्वारिंशच्चलक्षाणि लक्षाणांत्रितयंपुनः ॥ १३ ॥ विंशतिश्चसहस्राणि ज्ञेयंसौरंचतुर्युगम् ॥ चतुर्युगैकसप्तत्या मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ १४ ॥ ऐन्द्रमेतद्भवेदायुस्समासात्तव

का संहार करती है और पलक भांजने से चौथाभाग समय त्रुटि कहाजाता है ॥ ९ ॥ हे महेश्वरि ! उससे जो दुगुना है उसको निमेष जानिये और तीस निमेष की काष्ठा व उन बीस काष्ठाओं की कला होती है ॥ १० ॥ और बीस कलाओंका मुहूर्त होताहै व पंद्रह संख्यक मुहूर्त्तों से दिन होताहै और दिनके प्रमाणभर रात होती है व उन दोनोंका एक दिन रात होताहै ॥ ११ ॥ उन पंद्रह दिन रातों से पक्ष होताहै और दोपक्षका मास कहाजाता है व छह महीनोंका एक अयन होताहै और दो अयनोंका एक वर्ष होता है ॥ १२ ॥ और चालीस लाख व फिर तीनलाख याने तैंतालीसलाख ॥ १३ ॥ व बीस हज़ार सौर चतुर्युग जानने योग्य है और इकहत्तरि

चतुर्युगीका एक मन्वन्तर कहागया है ॥ १४ ॥ यह इन्द्रका आयुर्बल संक्षेप से तुम से कहागया याने इकहत्तरि चतुर्युगी तक एक इन्द्रका आयुर्बल होताहै व चौदह इन्द्रों के लीन होजानेपर कल्प व ब्रह्माका दिन होवैहै ॥ १५॥ व उतनीही अर्थात् हज़ार चतुर्युगी की रात्रि होती हैहे प्रिये ! इस दिनमान से ब्रह्मा सौवर्षतक जीते हैं ॥ १६ ॥ व मेरे आधे निमेष में हज़ार चतुर्युग होते हैं उसमें विष्णु व असंख्य ब्रह्मा नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥ हे देवेशि ! ऐसेही क्रम से यह संसार उत्पन्नहै जो कि चन्द्रमा व सूर्य के विभाग से विचित्ररूप व अनन्तहै ॥ १८ ॥ दिनसमूहवाला काल अनादि, अज व अविनाशीहै और उसीसे संयुत नीचे मुख किये स्थित चन्द्रमा

कीर्त्तितम् ॥ चतुर्दशप्रलीनेन्द्रैः कल्पंब्राह्मंदिनंभवेत् ॥ १५ ॥ रात्रिश्चतावतीचैव चतुर्युगसहस्रिका ॥ अनेनदिन मानेन शताब्दंजीवतिप्रिये ॥ १६ ॥ ममैवनिमिषार्द्धेन चतुर्युगसहस्रकम् ॥ विनश्यतिततोविष्णुरसंख्याताःपिताम हाः ॥ १७ ॥ एवंक्रमेणदेवेशि समुत्पन्नमिदंजगत ॥ शशिसूर्यविभागेन चित्ररूपमनन्तकम् ॥ १८ ॥ कालन्दिवसस ङ्घातमनादिमजमव्ययम् ॥ तदन्वितश्शशिस्तस्यादधोमुखमवस्थितः ॥ १९ ॥ एवंत्वयोदयंज्ञेयं चन्द्रार्काभ्यामव स्थितम् ॥ सृष्टिक्रमोमयाप्रोक्तः संहारमधुनाशृणु ॥ २० ॥महाकल्पंहतंकल्पैः कल्पमन्वन्तरैर्हतम् ॥ मन्वन्तरंयुगह तं युगंवर्षहतंतथा ॥ २१ ॥ अयनाभ्यांहतंवर्षं मासैश्चैवायनंहतम् ॥ मासंपक्षहतंचापि पक्षंदिनहतंतथा ॥ २२ ॥ दि नंमुहूर्त्तैर्विहतं मुहूर्तंकलयाहतम् ॥ कलांकाष्ठाहतांकृत्वा काष्ठांनिमिषभाजिताम् ॥ २३ ॥ निमिषञ्चलवैर्हत्वा लवं त्रुटिविभाजितम् ॥ त्रुटिर्नीतापरंशान्तं निर्विकारमलक्षणम् ॥ २४ ॥ तस्यचेयंपरामाया कलाशिरसिधारिता ॥ सा

व सूर्य हैं ॥ १९ ॥ इसप्रकार संहार व उत्पत्ति चन्द्रमा तथा सूर्य से स्थित जाननेयोग्यहै मैंने सृष्टिका क्रम कहा इस समय संहार को सुनो ॥ २० ॥ कि महाकल्प को कल्पोंसे विभाजित करै व कल्प को मन्वन्तरों से हत करै व मन्वन्तर को युगों से विभाजित करै और युगोंको वर्षों से हत करै ॥ २१ ॥ और अयनों से वर्षको विभाजित करै व अयनोंको मासों से हत करै तथा महीने को पक्षसे हतकरै व पक्षको दिनों से विभाजित करै ॥ २२ ॥ दिनको मुहूर्त्तों से भाजितकरै व मुहूर्त्त को कलासे हतकरै और कलाको काष्ठासे हतकरै व काष्ठाको निमेषसे भाजितकरै ॥ २३ ॥ और निमेषको लवोंसे विभाजित कर लवको त्रुटि से विभाजित करै व परमशान्त,

विकाररहित तथा लक्षणरहित में त्रुटि प्राप्त कीजाती है ॥ २४ ॥ उस अविकारी की उत्कृष्ट मायारूपिणी यह कला मस्तक में धारण कीगई है हे प्रिये ! देवदेव विष्णुजी की वह शक्ति संसार की उपकारिणी है ॥ २५ ॥ हे पार्वति ! वह माया संसार को मोहितकर जन्म मरण कराती है हे देवि ! इसप्रकार उत्पत्ति व स्थितिके लक्षणोंवाला यह संसार ॥ २६ ॥ जहां उत्पन्न होताहै वहीं फिर सब लीन होजाता और मायामयी शक्ति शुद्धाशुद्धस्वरूपिणी है ॥ २७ ॥ और हे देवि ! वही चन्द्ररूपिणी स्थितहै जो कि तुमसे प्रकाशित कीगई पार्वती देवीजी बोलीं कि मैंने अनेक करोड़ संख्यक वर्षोंतक पंचाग्नि तप किया है ॥ २८ ॥ हे जगदीश, देव !

शक्तिर्देवदेवस्य विश्वोपकरणाप्रिये ॥ २५ ॥ मोहयित्वातुसंसारं संसारयतिपार्वति ॥ एवमेतज्जगद्देवि उत्पत्तिस्थिति लक्षणम् ॥ २६ ॥ यत्रैवोत्पद्यतेकृत्स्नं पुनस्तत्रैवलीयते ॥ मायामयीतथाशक्तिः शुद्धाशुद्धस्वरूपिणी ॥ २७ ॥ चन्द्ररूपास्थितासातु तवदेविप्रकाशिता ॥ देव्युवाच ॥ पञ्चाग्नितोयसन्तप्ता वर्षकोटीरनेकधा ॥ २८ ॥ तत्तपस्सफलंजात मद्यदेवजगत्पते ॥ सृष्टियोगोमयाज्ञातस्संसारस्यमहेश्वर ॥ २९ ॥ चन्द्रोत्पत्तिस्वरूपञ्च कलामानंतथैवच ॥ अधुना ममदेवेश सन्देहोहृदिसंस्थितः ॥ ३० ॥ कौतूहलंपरन्देव कथयस्वमहेश्वर ॥ अमृतादेवसम्भूतस्सर्वाह्लादकरश्शशी ॥ ३१ ॥ प्रियश्चतवदेवेशि वल्लभश्चन्द्रमाःसदा ॥ बहुशश्चदि इत्येष ह्लादनेधातुरिष्यते ॥ ३२ ॥ शुक्लत्वेचमृतत्वेच शीतत्वेचविभाव्यते ॥ सर्वौषधीनामधिपं पितृणांप्रीणनम्परम् ॥ ३३ ॥ त्वदाश्रयश्चत्वद्भक्तस्त्वत्सेवातत्परश्शशी ॥ त

वह तप आज सफल होगया हे महेश्वर ! मैं ने संसार के सृष्टियोग को जाना ॥ २९ ॥ व चन्द्रमा की उत्पत्तिका स्वरूप तथा कलाके प्रमाण को जाना हे देवेश ! इस समय मेरे हृदय में सन्देह स्थित है ॥ ३० ॥ हे देव ! उस परमकौतुक को कहिये कि सब को आनन्दकारक चन्द्रमा अमृतही से पैदा हुआ है ॥ ३१ ॥ हे देवेश ! प्रिय चन्द्रमा तुमको सदैव प्यारा है और बहुधा चदि यह धातु आह्लादन (आनन्द) अर्थ में इच्छा कीजाती है ॥ ३२ ॥ और श्वेतता, अमृतता और शीतता में चन्द्रमा प्रकट कियाजाता है व सब ओषधियोंका स्वामी तथा पितरोंको परमतृप्तिकारक है ॥ ३३ ॥ और चन्द्रमा तुम्हारे आश्रय तथा तुम्हारा भक्त व

तुम्हारी सेवा में तत्परहै तथापि यह चन्द्रमा कलंक समेतहै मेरे यह सन्देह होती है ॥ ३४ ॥ हे देव ! तुम संसार के रक्षकहो यदि मालाओं से विभूषित आपके मस्तक में स्थित चन्द्रमा को कष्टहै ॥ ३५ ॥ तो हे नाथ ! संसार में दुःखभागी जन नहीं शोचने योग्य हैं यह त्रिलोक में नहीं है और न यह होगा ॥ ३६ ॥ कि जिसको करने के लिये आप समर्थ नहीं हो तुम्हारे आश्रय होकर जो चन्द्रमा दुःखितहै हे महेश्वरजी ! इस लिये सब के शंका वर्त्तमानहै उसी कारण कहिये ॥ ३७ ॥ कि कुछ कारण उत्पन्न होगा जिससे चन्द्रमा के कलंक है हे देवेश ! तुमको प्यारा है और उसके कलंक भी स्थितहै ॥ ३८ ॥ हे देव ! यह बड़ा कौतुकहै तुम्हीं इसको

थापिसकलङ्कोयं कौतुकंजायतेमम ॥ ३४ ॥ देवब्रह्माण्डपातालं मालामण्डितशेखरे ॥ शीर्षेतवनिषण्णस्य कष्टंच न्द्रस्यचेद्यदि ॥ ३५ ॥ तर्हिनाथनशोच्यावै संसारेदुःखभाजिनः ॥ नचाप्यस्तित्रिलोकेषु नचैतत्सम्भविष्यति ॥ ३६ ॥ यन्नशक्तोभवान्कर्तुं दुःखितोयस्त्वदाश्रयः ॥ सर्वेषांवर्त्ततेशङ्का ततोवदमहेश्वरः ॥ ३७ ॥ उत्पन्नंकारणंकिञ्चिद्येन सोमस्यलाञ्छनम् ॥ प्रियश्चतवदेवेश लाञ्छनञ्चापितिष्ठति ॥ ३८ ॥ कौतूहलंपरन्देव त्वमेववक्तुमर्हसि ॥ एवमुक्त स्सपार्वत्या देवदेवोमहेश्वरः ॥ ३९ ॥ उवाचपरमप्रीतः प्रेम्णाशैलसुतांविभुः ॥ ४० ॥ ईश्वरउवाच ॥ किन्तेदेविमहा शङ्का उत्पन्नावरवर्णिनि ॥ ४१ ॥ नममोपरिकर्तव्या विरुद्धंग्राम्यवत्प्रिये ॥ पितुस्तवप्रभावेण लाञ्छनंशशिनोभव त ॥ ४२ ॥ भावित्वात्कर्मणोदेवि दक्षस्याज्ञाव्यतिक्रमात् ॥ समंवर्तस्वभार्याभिरित्युक्तश्शशलाञ्छनः ॥ ४३ ॥ तद्वाक्यम न्यथाचक्रे ततश्शप्तश्शशिप्रिये ॥ इदंपृष्टन्तुयद्देवि त्वयालाञ्छनकारणम् ॥ ४४ ॥ कल्पेकल्पेपृथग्भावः कारणैरस्ति

कहने के लिये योग्यहो इसप्रकार पार्वतीजी से कहे हुये वे व्यापक देवदेव महादेव जी बहुत प्रसन्न होकर शैलसुता पार्वती जी से बोले ॥ ३९। ४० ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि, देवि ! तुम्हारे क्यों बड़ीभारी शंका उत्पन्न हुई ॥ ४१ ॥ हे प्रिये ! मेरे ऊपर यह शंका न करना चाहिये क्योंकि ग्रामीण की नाईं विरुद्ध है तुम्हारे पिता के प्रभाव से चन्द्रमाके कलंक हुआहै ॥ ४२ ॥ हे देवि ! होनहार कार्य के कारण से व दक्षकी आज्ञाके उल्लंघनसे कलंक हुआहै दक्षजीने चन्द्रमासे यह कहा कि सब स्त्रियोंके साथ समान वर्त्तमान होवो ॥ ४३ ॥ चन्द्रमा ने उनके वचनको अन्यथा किया उसी कारण हे प्रिये ! दक्षजीने चन्द्रमा को शाप दियाहै हे देवि !

तुमने जो इस कलंक के कारण को पूछा ॥ ४४॥ हे भामिनि ! कल्प कल्पमें कारणों से उसका भाव पृथक् २ है हे प्रिये ! वह असंख्य कारण मुझसे नहीं कहा जासक्ता है ॥ ४५ ॥ क्योंकि हे देवेशि ! बार २ असंख्य चन्द्रमा पैदा होतेहैं व सब मन्वन्तर के मध्यमें नाशहोजाते हैं ॥ ४६ ॥ और असंख्य कल्प व असंख्य ब्रह्मा तथा विष्णु भी असंख्य होते हैं परन्तु महादेव एकही रहते हैं ॥ ४७ ॥ हे मम प्रिये, देवि ! करोड़ों करोड़ संख्यक ब्रह्मांड पैदा होतेहैं और लीलासे जलके बुल्लेके समान नाश होजाते हैं ॥ ४८ ॥ और उस समय उस उस सृष्टि में प्रधानता से सदाशिवजीकी सामीप्य को पाकर चतुरानन ब्रह्मा व विष्णु तथा महेश रचेगये हैं ॥ ४९ ॥ वैसेही

भामिनि ॥ असंख्यातञ्चतद्वक्तुं शक्यंनैवमयाप्रिये॥४५॥असंख्येयाश्चन्द्रमसः सम्भवन्तिपुनःपुनः॥ विनश्यन्तिचदेवेशि सर्वेमन्वन्तरान्तरे ॥ ४६ ॥ असंख्याताश्चकल्पाख्या असंख्याताःपितामहाः ॥ हरयश्चाप्यसंख्याता एकएवमहेश्वरः ॥ ४७ ॥ कोटिकोटिमितान्यत्र ब्रह्माण्डानिममप्रिये ॥ जलबुद्बुदवद्देवि सञ्जातानितुलीलया ॥ ४८ ॥ तत्र तत्रचतुर्वक्त्रा ब्रह्माणोहरयोभवाः ॥सृष्टाःप्रधानेनतदा लब्ध्वाशम्भोस्तुसन्निधिम् ॥ ४९ ॥ लयञ्चैवतथान्योन्यमनन्तंप्रकरोतिच ॥ सर्गसंहृतिसंस्थानां कर्त्तादेवोमहेश्वरः ॥ ५० ॥ सर्गेचरजसायुक्तः सत्त्वस्थःपरिपालने ॥ प्रतिसर्गेतमोयुक्तस्सोहन्देवित्रिधास्थितः ॥५१॥ तस्मान्माहेश्वरोब्रह्माब्रह्मणोधिपतिश्शिवः ॥ सदाशिवोभवेद्विष्णुर्ब्रह्मासर्वात्मकोह्यतः ॥ ५२ ॥ सएवभगवान्रुद्रो विष्णुर्विश्वजगत्प्रभुः ॥ अस्मिन्नण्डेत्विमेलोका अन्तर्विश्वमिदंजगत् ॥ ५३ ॥ चन्द्रसूर्यग्रहादेवि ब्रह्माण्डेस्मिन्मनस्विनि ॥ संख्यातुंनैवशक्यन्ते सम्भविष्यन्तियेगताः ॥ ५४ ॥ अस्मिन्वाराहक

आपस में असंख्य लय करते हैं और सृष्टि, संहार व पालन करनेवाले सदाशिव देवजी हैं ॥ ५० ॥ हे देवि ! सृष्टि करनेमें रजोगुणसे मिश्रित व पालन में सत्त्वगुण में स्थित तथा संहार में तमोगुण से संयुक्त सो मैं तीनप्रकार का स्थितहूं ॥ ५१ ॥ इस लिये ब्रह्मा शैव हैं और ब्रह्माके स्वामी शिवजी हैं व सदाशिव विष्णुहैं इसलिये ब्रह्मा सर्वात्मकहैं ॥ ५२ ॥ और वेही भगवान् शिवजी व विष्णु समस्त संसार के स्वामी हैं व इस ब्रह्माण्ड में ये लोक हैं और इसके मध्य में यह सब संसार है ॥ ५३ ॥ हे मनस्विनि, महादेवि ! चन्द्रमा व सूर्यादिक ग्रह इस ब्रह्माण्डमें जो व्यतीत होचुकेहैं और जो होवैंगे वे नहीं गिने जासक्ते हैं ॥ ५४ ॥ हे मनस्विनि, महादेवि !

इस वाराहकल्पके वर्त्तमान होनेपर पुरातन समय छह रोहिणीपति (चन्द्रमा) व्यतीत होचुके हैं ॥ ५५ ॥ हे महादेवि ! यह सातवां अमृतोत्पन्न (चन्द्रमा) वर्त्तमान है जो कि हे देवि ! इस समय दक्षजी के शापसे क्षीण देखपड़ता है ॥ ५६ ॥ और ब्रह्माका द्वितीय परार्द्ध वर्त्तमान होनेपर पितृकल्प ऐसे प्रसिद्ध उसके तीसवें कल्प में ॥ ५७ ॥ जब स्वायंभुव मन्वन्तर प्राप्त हुआ तब उसके आदि में तुम सती नामक हुई हो हे महादेवि ! उस समय में जो दक्ष नामक तुम्हारे पिता हुये हैं ॥ ५८ ॥ उन दक्षका जन्म ब्रह्मा के प्राण से कहा गयाहै व हे महादेवि ! इस समय में दक्ष प्रचेताके पुत्र हुये हैं ॥ ५९ ॥ हे देवि ! इस समय ब्रह्मा के दाहिने

ल्पेतु वर्त्तमानेमनस्विनि ॥ षडतीतामहादेवि रोहिणीपतयःपुरा ॥ ५५ ॥ सप्तमोयंमहादेवि वर्ततेमृतसम्भवः ॥ दक्षशापेनयोदेवि संक्षीणोदृश्यतेधुना ॥ ५६ ॥ अथद्वितीयेसम्प्राप्ते परार्द्धेचैववेधसः ॥ तस्यत्रिंशतमेकल्पे पितृकल्पेतिविश्रुते ॥ ५७ ॥ स्वायंभुवान्तरेप्राप्ते तस्यादौत्वंसतीकिल ॥ तस्मिन्कालेमहादेवि योभूद्दक्षःपितातव ॥ ५८ ॥ प्राणात्प्रजापतेर्जन्म तस्यदक्षस्यकीर्तितम् ॥ तस्मिन्कालेमहादेवि दक्षप्राचेतसोभवत् ॥ ५९ ॥ अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षो भविष्यत्यधुनाप्रिये ॥ युगेयुगेभवन्त्येते सर्वेदक्षादयोद्विजाः ॥ ६० ॥ पुनश्चैवनिरुध्यन्ते विद्वांस्तत्रनमुह्यति ॥ तस्यापमानात्त्वन्देवि देहंतत्याजवैपुरा ॥ ६१ ॥ तावद्वियुक्तोहन्देवित्वयामुक्तोभवम्पुरा ॥ यावद्वाराहकल्पस्तु चाक्षुषस्यान्तरंप्रिये ॥ ६२ ॥ एवमेवमनुश्चायं कल्पोवाराहसंज्ञकः ॥ कल्पेकल्पेमहादेवि भवेन्नामान्तरन्तव ॥ ६३ ॥ अस्मिन्कल्पेतु वाराहे हिमवत्तपसार्जिता ॥ सम्भूतापार्वतीदेवि चाक्षुषस्यान्तरङ्गते ॥ ६४ ॥ ब्रह्मणोदिनमेकन्तु षण्मासेनतथावधि ॥

अंगूठे से दक्ष होवेंगे युग युग में ये दक्षादिक द्विज होते हैं ॥ ६० ॥ और फिर नाश होतेहैं उस विषयमें विद्वान् मोहित नहीं होताहै हे देवि ! पुरातन समय तुमने उन दक्ष के अपमान से शरीर को छोड़ा है ॥ ६१ ॥ हे प्रिये, देवि ! पुरातन समय तुमसे छूटा हुआ मैं तबतक वियोगी रहा जब तक कि चाक्षुष मनुका अन्तर व वाराह कल्प हुआ ॥ ६२ ॥ इसप्रकार यह वाराह संज्ञक कल्प हुआहै हे महादेवि ! कल्प कल्प में तुम्हारा अन्य नाम होताहै ॥ ६३ ॥ और हे देवि ! इस वाराहकल्प में चाक्षुष मनुका अन्तर बीत जानेपर हिमवान् की तपस्या से संचित तुम पार्वती नामक उत्पन्न हुईहो ॥ ६४ ॥ हे भामिनि ! ब्रह्मा के छह मास व एकदिन अवधितक तुम दक्षजीके कोपसे

मुझसे वियुक्त (पृथक्) रही हो ॥ ६५ ॥ हे देवि ! तुम्हारे क्रोध से मैंने पुरातन समय ऋषियों को शाप दिया था वे भी तुम्हारे साथ वैवस्वत मन्वन्तर में उत्पन्नहुये हैं ॥ ६६ ॥ भृगु, अंगिरा, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि व वासिष्ठ वे आठ ब्रह्मा के पुत्रहैं ॥ ६७ ॥ पहले स्वायंभुव मन्वन्तर में दक्षके यज्ञ में वे शापित हुये हैं हे देवि ! चाक्षुष मन्वन्तर बीत जानेपर इस कल्प में फिर वे उत्पन्न हुये हैं ॥ ६८ ॥ वरुण के शरीर को धारते वा होम करते हुये महात्मा ब्रह्मा के यज्ञ में देखने की इच्छा से शुक्रजी आये हैं ॥ ६९ ॥ हे प्रिये ! पुरातन समय सूर्यबिम्ब के समान प्रकाशवाले ऋषिलोग उत्पन्न हुये हैं तुम्हारे स्वीकार करने के लिये वे तुम्हारे

त्वंवियुक्तामयासार्द्धं दक्षकोपेनभामिनि ॥ ६५ ॥ तवक्रोधेनशप्ताश्च ऋषयोवैमयापुरा ॥ तेपिदेवित्वयासार्द्धं जातावै वस्वतेन्तरे ॥ ६६ ॥ भृगुरङ्गिरामरीचिश्चपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ अत्रिश्चैववशिष्ठश्चह्यष्टौतेब्रह्मणस्सुताः ॥ ६७ ॥ दक्षस्ययज्ञेतेशप्ताः पूर्वंस्वायंभुवान्तरे ॥ जातादेविपुनस्तेवै कल्पेस्मिश्चाक्षुषेगते ॥ ६८ ॥ देवस्यमहतोयज्ञे वारुणींबिभ्रतस्तनुम् ॥ ब्रह्मणोजुह्वतश्शुक्रश्चागमद्दर्शनेच्छया ॥ ६९ ॥ ऋषयोजज्ञिरेपूर्वं सूर्यबिम्बसमप्रभाः ॥ पितुस्तवसमीपेतेवरणायतवप्रिये ॥ ७० ॥ प्रस्थापितामयापूर्वं तत्त्वंजानासिसुव्रते ॥ अथकिंबहुनोक्तेन वच्मितेप्रश्नमुत्तमम् ॥ ७१ ॥ द्वितीयेतुपरार्द्धेस्मिन् वर्त्तमानेचवेधसि ॥ श्वेतकल्पात्समारभ्ययावद्वाराहगोचरम् ॥७२॥ समातीताश्चयेचन्द्रास्ताञ्छृणुष्ववरानने ॥ चतुश्शताश्चदेवेशि षट्त्रिंशत्यधिकानितु ॥ ७३ ॥ गतानिशीतरश्मीनां सप्तविंशाधिकाःप्रिये ॥ वैवस्वतेन्तरेप्राप्ते यश्चायंवर्त्ततेधुना ॥ ७४ ॥ त्रेतायुगेतुदशमे दत्तात्रेयपुरस्सरः ॥ सञ्जातोरोहिणीनाथोऽधुनायोवर्त्ततेप्रिये ॥ ७५ ॥

पिताके समीप ॥ ७० ॥ पहले मुझ से पठाये गये थे हे सुव्रते ! उसको तुम जानती हो अथवा बहुत कहने से क्या है मैं तुम से उत्तम प्रश्न को कहताहूं ॥ ७१ ॥ कि ब्रह्मा के इस द्वितीय परार्द्ध के वर्त्तमान होनेपर श्वेतकल्प से लगाकर जबतक वाराहकल्प हुआ है ॥ ७२ ॥ तबतक हे वरानने ! जो चन्द्रमा बीते हैं उनको सुनिये कि हे प्रिये, देवेशि ! चारसौ छत्तीस ॥ ७३ ॥ व हे प्रिये ! सत्ताईस अधिक याने चारसौ तिरसठि चन्द्रमा व्यतीत हुये हैं और वैवस्वत मन्वन्तर प्राप्त होनेपर इस समय जो यह चन्द्रमा वर्त्तमान है ॥ ७४ ॥ वह चन्द्रमा हे प्रिये ! दशवें त्रेतायुगमें दत्तात्रेयपूर्वक उत्पन्न हुआ है जो कि इस समय वर्तमान है ॥ ७५ ॥

हे प्रिये ! उस चन्द्रमाकी उत्पत्ति के प्रसङ्ग से प्रारम्भके क्रमपूर्वक विष्णुजीके मानुष जन्मवाले देहावतारों को कहूंगा ॥७६॥ महादेवजी बोले कि त्रेतायुग में पौर्णमासी तिथि को पांचवें मान्धाता हुये हैं चक्रवर्तित्वमें उनके उतथ्य जी अग्रगामी थे ॥ ७७ ॥ तदनन्तर उन्नीसवें त्रेतामें सब क्षत्रियों को नाशनेवाले जमदग्नि के पुत्र छठें परशुरामजी विश्वामित्रपूर्वक हुये हैं ॥ ७८ ॥ और चौबीसवें त्रेतायुग में वशिष्ठ पुरोहित समेत दशरथ के पुत्र सातवें श्रीरामचन्द्र जी रावण के मारने के लियेहुये हैं ॥ ७९ ॥ तदनन्तर अट्ठाईसवें द्वापर में पराशर जैसे आठवें विष्णु जातूकर्ण्यपूर्वक वेदव्यास जी पैदा हुये हैं ॥ ८० ॥ और उसी अट्ठाईसवें द्वापर में नवें विष्णु

तस्योत्पत्तिप्रसङ्गेन विष्णोर्मानुषसम्भवान् ॥ देहावतारान्वक्ष्यामि प्रारम्भप्रक्रमात्प्रिये ॥ ७६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ पञ्चमःपञ्चदश्यांतु त्रेतायांसंबभूवह ॥ मान्धाताचक्रवर्त्तित्वे तस्योतथ्यपुरस्सरः ॥ ७७ ॥ एकोनविंशेत्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत् ॥ जामदग्न्यस्ततःषष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः ॥ ७८ ॥ चतुर्विंशेयुगेरामो वशिष्ठेनपुरोधसा ॥ सप्तमोरावणस्यार्थे जज्ञेदशरथात्मजः ॥ ७९ ॥ अष्टमोद्वापरेविष्णुरष्टाविंशेपराशरात् ॥ वेदव्यासस्ततोजज्ञे जातूकर्ण्यपुरस्सरः ॥८०॥ तत्रैवनवमोविष्णुरदितेःकश्यपात्मजः ॥ देवक्यांवसुदेवात्तु ब्रह्मगर्भपुरस्सरः ॥ ८१ ॥ अष्टाविंशतिमस्यास्य द्वापरस्यचसंक्षये ॥ नष्टेधर्म्मेतदाजज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुलेस्वयम् ॥ ८२ ॥ कर्त्तुंधर्मव्यवस्थानमसुराणांप्रणाशनम् ॥ पूर्वजन्मनिविष्णुश्च सुमतिर्नामवीर्यवान् ॥ ८३ ॥ कल्कीविष्णुयशानाम पाराशर्य्यःप्रतापवान् ॥ दशमेभाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः ॥ ८४ ॥ अनुकर्षंश्चवैसेनां हस्त्यश्वरथसंकुला ॥ प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्भृशंशतसहस्रशः ॥ ८५ ॥

जी अदिति से कश्यप के पुत्र (वामन) हुये हैं और ब्रह्मगर्भपूर्वक वसुदेव से देवकी में श्रीकृष्णजी हुये हैं ॥ ८१ ॥ इस अट्ठाईसवें द्वापर के नाश होनेपर जब धर्म नाश होगा तब यदुकुल में आपही विष्णुजी धर्म स्थापनके लिये व दैत्यों को नाशने के लिय पैदा हुये हैं और पूर्व जन्ममें विष्णु व पराक्रमी सुमति नामक ॥ ८२ । ८३ ॥ कल्की व विष्णुयशा नामक प्रतापवान् पराशर वंश में होंगे जो कि दशवें अवतार में याज्ञवल्क्यपूर्वक भविष्य समय में होवेंगे ॥ ८४ ॥ और वे कल्की जी हाथी, घोड़े व रथों से संयुत सेना को पीछे लेकर अस्त्र लिये हुये सैकड़ों ब्राह्मणों समेत सैकड़ों व हज़ारों उन समस्त राजाओं को उस समय मारैंगे और पाखण्डी

व म्लेच्छजातिवाले तथा हज़ारों चोरों ॥ ८५।८६॥ और जो अत्यन्त धर्मवान् नहीं हैं व जो कहीं ब्राह्मणों के शत्रु हैं उनको तथा शूद्रों को वढ़ेहुये चक्रवाले भगवान् कल्की जी नाश करैंगे॥८७॥ और समस्त प्राणियों के अदृश्य होकर वे पृथ्वी में घूमैंगे वे प्रभु देवांश से नहीं किन्तु मनुष्य के अंश से ॥ ८८॥ होनहार अर्थ से प्रेरित उन सबों को नाशकर अनुगामियों समेत वे कल्की जी गङ्गा यमुना के मध्य में नाश को प्राप्त होंगे ॥ ८९ ॥ तदनन्तर सेनासमेत व मन्त्रियों समेत कल्की के व्यतीत होजानेपर व राजाओं के नष्ट होजानेपर उस समय सत्त्वगुण के ग्रहण करनेवाले प्रजा होवैंगे ॥ ९० ॥ और रक्षाके निवृत्त होजानेपर युद्ध में

निःशेषांशूद्रराज्ञस्तांस्तदासतुहनिष्यति ॥ पाखण्डान्म्लेच्छजातींश्च दस्यूंश्चैवसहस्रशः ॥ ८६ ॥ नात्यर्थंधार्मिकायेच येचब्रह्मद्विषःकचित ॥ प्रवृद्धचक्रेभगवाञ्छूद्राणामन्तकोबली ॥ ८७ ॥ अदृश्यस्सर्वभूतानां पृथिवींविचरिष्यति ॥ मानवस्यतुसोंशेन नदेवस्यमुविप्रभुः ॥ ८८॥ क्षपयित्वातुतान्सर्वान् भावितार्थेननोदितान् ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठांप्राप्स्यतिसानुगः ॥ ८९ ॥ ततोऽव्यतीतेकल्कौतु सामात्येसहसैनिके ॥ नृपेष्वथविनष्टेषु तदासत्त्वग्रहाःप्रजाः ॥ ९० ॥ रक्षणेविनिवर्त्तेच हत्वाचान्योन्यमाहवे ॥ परस्परहतास्ताश्च निराक्रन्दाःसुदुःखिताः ॥९१॥ क्षीणेकलियुगेचास्मिन्दशवर्षसहस्रके ॥ ससन्ध्यांशेतुनिश्शेषे कृतंवैप्रातिपत्स्यति ॥ ९२ ॥ यदाचन्द्रश्चसूर्यश्च यदातिष्येबृहस्पतिः ॥ एकराशौसमेष्यन्ति प्रवत्स्यतितदाकृतम् ॥ ९३ ॥ अभिजिन्नामनक्षत्रं जयन्तीनामशर्वरी ॥ मुहूर्तोविजयोनाम यत्रजातोजनार्द्दनः ॥ ९४ ॥ देव्युवाच ॥ उक्तंयथावदखिलं भृगुशापविचिह्नितम् ॥ पूर्वावतारान्मेब्रू

आपसमें मारकर परस्परमें मारेहुये वे प्रजालोग दुःखित होकर रोदन करैंगे ॥ ९१ ॥ व इस कलियुगके क्षीण होजानेपर और सन्ध्यांश समेत दशहज़ार वर्ष शेष रहने पर सतयुग प्राप्त होगा ॥ ९२ ॥ जब कलियुग में चन्द्रमा, सूर्य व बृहस्पति एक राशि में प्राप्त होंगे तब सतयुग प्राप्त होगा ॥ ९३ ॥ जब कि अभिजित् नामक नक्षत्र व जयन्ती नामक रात्रि और विजयनामक मुहूर्त जिसमें कि विष्णु जी उत्पन्न हुये हैं ॥ ९४ ॥ पार्वती देवीजी बोलीं कि हे महेश्वरजी ! भृगुजी के शाप

का चरित्र सब यथायोग्य कहा गया और पहले न कहेहुये प्रथम अवतारों को मुझ से कहिये ॥ ९५ ॥ महादेवजी बोले कि जब बड़े बलवान् दानवों से पृथ्वी व्याप्त होगई तब से लगाकर भृगुजी के शाप के कारण से ॥ ९६ ॥ बारबार विष्णुजी धर्म को स्थापन करने के लिये उत्पन्न हुये हैं चाक्षुष मन्वन्तर में प्रथम नारायण धर्मजी उत्पन्न हुये हैं ॥ ९७ ॥ उन्होंने वैवस्वत मन्वन्तरमें मनुकी यज्ञको वर्तमान कराया तब उन विष्णुजी की उत्पत्ति हुई है जो कि पहले कही गई है ॥ ९८ ॥ और चौथी युगाख्या में जब देवताभी विपत्तिमें प्राप्त हुये तब पहले समुद्रसे मत्स्यरूपवाले विष्णुजी उत्पन्न हुये ॥ ९९ ॥ तदनन्तर पांचवें त्रेतामें हिरण्यकशिपु के

हि नोक्तपूर्वान्महेश्वर ॥ ९५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यदातुपृथिवीव्याप्ता दानवैर्बलवत्तरैः ॥ ततःप्रभृतिशापेन भृगोर्नैमित्तिकेनह ॥ ९६ ॥ जज्ञेपुनःपुनर्विष्णुः कर्तुंधर्मंव्यवस्थितिम् ॥ धर्मोनारायणश्चाद्यस्सम्भूतश्चाक्षुषेन्तरे ॥ ९७ ॥ यज्ञंप्रवर्त्तयामासमनोर्वैवस्वतेन्तरे ॥ प्रादुर्भावस्तदातस्य हरेरासीत्पुरोदितः ॥ ९८ ॥ चतुर्थ्यान्तुयुगाख्यायामापन्नेषुसुरेष्वपि ॥ सम्भूतस्तुसमुद्रात्तु प्रथमंमत्स्यरूपवान् ॥ ९९ ॥ ततःपञ्चमत्रेतायां हिरण्यकशिपोर्वधे ॥ द्वितीयोनरसिंहोभूद्रुद्रस्तस्यपुरस्सरः ॥ १०० ॥ बलिस्सर्वेषुलोकेषु त्रेतायांसप्तमेयुगे ॥ दैत्यैस्त्रैलोक्यमाक्रान्तं तृतीयंवामनोभवत् ॥ १ ॥ संक्षिप्यात्मानमङ्गेषु बृहस्पतिपुरस्सरः ॥ त्रेतायुगेतुदशमे दत्तात्रेयोबभूवह ॥ २ ॥ नष्टेधर्मेचतुर्थांशे मार्कण्डेयपुरस्सरः ॥ एतेदिव्यावतारावै मानुषाःकथिताःपुरा ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासमाहात्म्ये कृष्णावतारोनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वध में दूसरे नृसिंहजी हुये हैं उनके अग्रगामी रुद्रजी हुये ॥ १०० ॥ व सातवें त्रेतायुगमें जब सब लोकों में बलि राजा हुआ और दैत्यों ने त्रिलोक को आक्रमण करलिया तब तीसरे वामन जी हुये हैं ॥ १ ॥ और अङ्गों में जीवात्मा को संक्षिप्त कर बृहस्पतिपूर्वक दत्तात्रेय जी दशवें त्रेतायुग में उत्पन्न हुये हैं ॥ २ ॥ चौथाई धर्म नष्ट होजानेपर मार्कण्डेयपूर्वक ये मानुष दिव्य अवतार पुरातन समय हुये हैं जो कि कहेगये ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणप्रभासखण्डदवीदयालुमिश्रविरचिताया भाषाटीकायांप्रभासमाहात्म्येभगवद्दत्तावतारवर्णनन्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। रावणादि राक्षसन की उत्पति कर सुहवाल। अठारहें अध्याय में वर्णित चरित रसाल॥ महादेवजी बोले कि इस समय दैत्यों के अवतारों का यह क्रम कहा जाता है कि राजा हिरण्यकशिपु अरब वर्षतक शोभित हुआ ॥ १ ॥ और वैसेही जो सौ सहस्र याने एक लाख वर्ष होते हैं उन बहत्तर लाख व अस्सीहज़ार वर्ष तक वह त्रिलोक का स्वामी हुआ है ॥ २ ॥ और अन्य दिन बीतनेपर उन कश्यप के आश्रम के सभीप जो होता के लिये सुवर्णमय आसन था उसको अधिक खींचकर वे अदिति भी बैठगई और वह गर्भ इसीपर हुआ उसी कारण हिरण्यकशिपु हुआ और उसने एक लाख वर्ष तक बहुत कठिन तप किया है ॥ ३ । ४ ॥ और पहले

ईश्वरउवाच॥ अथदैत्यावताराणां क्रमोहिकथ्यतेऽधुना॥ हिरण्यकशिपूराजा वर्षाणामर्बुदंबभौ॥ १॥ तथाशतसहस्राणि यानितानिद्विसप्ततिः॥ अशीतिश्चसहस्राणित्रैलोक्यस्येश्वरोभवत्॥ २॥ साप्यन्येहन्यतिक्रान्ते होतुस्तस्याश्रमेधिकम्॥ उपक्षिप्यासनंयत्तु होतुरर्थेहिरण्मयम्॥ ३॥ निषसादसगर्भोत्र हिरण्यकशिपुस्ततः॥ शतंवर्षसहस्राणि तपश्चक्रेसुदुश्चरम्॥ ४॥ दशवर्षसहस्राणि दित्यागर्भेस्थितःपुरा॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यः श्लोकोगीतःपुरातनः॥ ५॥ राजाहिरण्यकशिपुर्यांयामाशांनिरीक्षते॥ तस्यांतस्यांदिशिसुरानमश्चक्रुर्महर्षिभिः॥ ६॥ पर्यायितस्यराजाभूद्बलिर्वर्षार्बुदम्पुनः॥ षष्टिर्वर्षसहस्राणि त्रिंशतिर्नियुतानिच॥ ७॥ बलेराज्याधिकारस्तु यावत्कालंबभूवह॥ प्रह्लादोनिगृहीतोभूत्तावत्कालंतथासुरैः॥ ८॥ इन्द्रादयस्तेविख्याता असुराणांमहौजसः॥ दैत्यसंस्थमिदंसर्वमासीद्दशयुगंकिल॥ ९॥ असपत्नंततस्सर्वमासीद्दशयुगंकिल॥ असंपन्नंततस्सर्वमष्टादशयुगम्पुनः॥ १०॥ त्रैलो

दशहज़ार वर्षतक हिरण्यकशिपु दिति के गर्भ में स्थित रहा है उसी के विषय में यह प्राचीन श्लोक गायागयाहै ॥ ५ ॥ कि हिरण्यकशिपु राजा जिस जिस दिशा को देखता था उस उस दिशा में महर्षियों समेत देवता प्रणाम करते थे ॥ ६ ॥ फिर उसके क्रममें एक अरब व तीसलाख और साठहज़ार वर्षतक बलिराजा हुआ ॥ ७ ॥ जितने समय तक बलि का राज्याधिकार हुआ है उतने काल तक दैत्यों ने प्रह्लाद को ग्रहण किया है ॥ ८ ॥ और दैत्यों के मध्य में बड़े पराक्रमी वे इन्द्रादिक प्रसिद्ध थे प्रसिद्ध में दशयुगों तक इस समस्त संसार भरमें दैत्य स्थित रहे हैं ॥ ९ ॥ तदनन्तर दश युगों तक यह सब संसार शत्रुओं से रहित होगया तदनन्तर फिर

सब संसार अठारह युगों तक निश्शत्रु हुआ है ॥ १० ॥ पहले इस त्रिलोक को महेन्द्र ने पालन किया है और दशवें त्रेतायुग में बड़ा बलवान् कार्तवीर्य हुआ है ॥ ११ ॥ और वह पचासी हज़ारवर्ष तक राजा हुआ है और वह सात रत्नोंवाला व चक्रवर्ती महाराजा हुआ है ॥ १२ ॥ और सातों द्वीपों में तली (दस्तानों को पहने) तलवार, ढाल व धनुष को धारे तथा रथपै सवार सेवकों समेत वह राजा योग से चोरों को देखता था ॥ १३ ॥ कि जिसके स्मरण से मनुष्यों की द्रव्य नष्ट नहीं होती है और चारों युगों के बीतने पर गेरहवें मन्वन्तरमें उन प्रभुके आधे मन्वन्तरके शेषरहने पर जब द्वापर वर्तमान हुआ तब ॥ १४ ॥ नरिष्यन्त मानव के मद

कथमिदमप्यग्रे महेन्द्रेणतुपालितम् ॥ त्रेतायुगेतुदशमे कार्त्तवीर्योमहाबलः ॥ ११ ॥ पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां वैनराधिपः ॥ सप्तरत्नवान्सम्राट् चक्रवर्तीबभूवह ॥ १२॥ द्वीपेषुसप्तसुतलीखड्गीचर्मीशरासनी ॥ रथीराजासानुचरो योगाच्चोरात्सपश्यति ॥ १३ ॥ अनष्टद्रव्यतायस्य स्मरणाचभवेन्नृणाम् ॥ चतुर्युगेव्यतिक्रान्ते मनौह्येकादशेप्रभोः ॥ अर्धावशिष्टेतस्मिंस्तु द्वापरेसम्प्रवर्त्तितम् ॥ १४ ॥ मानवस्यनरिष्यन्तस्यासीत्पुत्रोमदःकिल ॥ नवमस्तस्य दायादस्तृणबिन्दुरितिस्मृतः ॥ १५ ॥ त्रेतायुगमुखेराजा तृतीयेसबभूवह ॥ तस्यकन्यात्विलविला रूपेणाप्रतिमाभवत ॥ १६ ॥ पुलस्त्यायसराजर्षिस्तांकन्यांप्रत्यपादयत ॥ ऋषिरैलविलोयस्या विश्रवाःसमपद्यत ॥ १७ ॥ तस्यपत्न्यश्चतस्रस्तु ऐलस्यकुलमण्डनाः ॥ बृहस्पतेश्शुभाःकन्या नाम्नावैदेववर्णिनि ॥ १८ ॥ पुष्पोत्कटीचवीकाच उभेमाल्यवतस्सुते ॥ कैकसीमालिनःकन्या तासान्देविशृणुप्रजाः ॥ १९ ॥ ज्येष्ठंवैश्रवणंतस्य सुषुवेदेववर्णिनी ॥ अष्टदंष्ट्रंहरि

नामक पुत्र हुआ है उनका नवां पुत्र तृणबिन्दु ऐसा कहा हुआ भया है ॥ १५ ॥ और त्रेतायुग के आदि में वह राजा हुआ है और उनकी इलविला नामक कन्या हुई जो कि अनूपरूपिणी थी ॥ १६ ॥ उस कन्या को उन राजर्षि ने पुलस्त्यजी के लिये दिया है जिस इलविला में विश्रवा नामक ऋषि हुये हैं ॥ १७ ॥ और उन विश्रवा के वंशमें भूषणरूपिणी चार स्त्रियां हुई हैं एक बृहस्पति की देववर्णिनी नामक उत्तम कन्या ॥ १८ ॥ और पुष्पोत्कटी व वीका दोनों माल्यवान् की कन्या तथा माली नामक दैत्यकी कैकसी नामक कन्यायें स्त्रियां थीं हे देवि! उनके पुत्रों को सुनिये ॥ १९ ॥ कि उनकी देववर्णिनी नामक स्त्री ने बड़े वैश्रवण नामक पुत्र को

पैदा किया जो कि आठ दाढ़ोंवाला व हरित दाढ़ीवाला और कील के समान कर्णोंवाला तथा अरुणवर्ण था ॥ २० ॥ और छोटे पैरोंवाला, छोटी भुजाओंवाला व पिङ्गलरङ्ग तथा पवित्र भूषणोंवाला था व तीन चरणोंवाला तथा बड़ी देहवान् व स्थूल मस्तक व बड़ी भारी दाढ़ोंवाला था ॥ २१ ॥ उस समय रूप से विरूप ऐसे उस पुत्रको देखकर पिताने आपही यह कहा कि यह कुवेर है ॥ २२ ॥ कु यह शब्द निन्दा अर्थ में है और वेर शरीर कहा जाता है कुशरीर होने के कारण कुवेर हुये और उसी नाम से वे चिह्नित हुये ॥ २३ ॥ उनकी ऋद्धिनामक स्त्री हुई उस का पुत्र नलकूबर हुआ और कैकसी नामक स्त्री ने राक्षसों के स्वामी रावण को

च्छ्मश्रुं शङ्कुकर्णविलोहितम् ॥ २० ॥ ह्रस्वपादंह्रस्वबाहुं पिङ्गलंशुचिभूषणम् ॥ त्रिपादन्तुमहाकायं स्थूलशीर्षमहाह नुम् ॥ २१ ॥ एवंविधंसुतंदृष्ट्वा विरूपंरूपतस्तथा ॥ तदादृष्ट्वाब्रवीत्तन्तु कुवेरोयमितिस्वयम् ॥ २२ ॥ कुत्सायांकिति शब्दोयं शरीरंवेरमुच्यते ॥ कुवेरःकुशरीरत्वान्नाम्नातेनचसोङ्कितः ॥ २३ ॥ तस्यभार्याभवदृद्धिः पुत्रस्तुनलकूबरः ॥ कैकस्यजनयत्पुत्रं रावणंराक्षसाधिपम् ॥ २४ ॥ शङ्कुवर्णदशग्रीवं पिङ्गलंरक्तमूर्द्धजम् ॥ चतुष्पादंविंशभुजं महाका यंमहाबलम् ॥ २५ ॥ महाञ्जननिभंचोग्रदंष्ट्रिणंरक्तलोचनम् ॥ राक्षसेनौजसायुक्तं रूपेणचबलेनच ॥ २६ ॥ निसर्गादा रुणाःक्रूरो रावणाद्रावणस्स्मृतः ॥ २७ ॥ हिरण्यकशिपुस्त्वासीत्सराजापूर्वजन्मनि ॥ चतुर्युगानिराजातु त्रयोदशसरा क्षसः ॥ २८ ॥ पञ्चकोट्योथवर्षाणां संख्यातास्संख्ययाप्रिये ॥ नियुतान्येकषष्टिञ्च संख्याविद्भिरुदाहृतम् ॥ २९ ॥

पैदा किया है ॥ २४ ॥ जो कि कील के समान कर्णोंवाला, दश मस्तकोंवाला तथा पिङ्गलवर्ण व अरुणकेशोंवाला, चार चरणोंवाला, बीस भुजाओंवाला व बड़े शरीर वाला और बलवान् था ॥ २५ ॥ और महाकज्जल के समान व उग्र दाढ़ोंवाला, अरुणनेत्रोंवाला तथा राक्षसी पराक्रम से संयुत व रूप और बल से संयुक्त था ॥ २६ ॥ जोकि स्वभावही से भयंकर व क्रूर था और संसार भरको रुलाने के कारण रावण कहागया है ॥ २७ ॥ वह पहले जन्म में हिरण्यकशिपु राजा हुआ है और वह राक्षस तेरह चतुर्युगी तक राजा हुआ है ॥ २८ ॥ हे प्रिये ! संख्या से पांच करोड़ व इकसठ लाख वर्ष संख्या के जाननेवालों ने कहा है ॥ २९ ॥

और पूर्वोक्त तथा साठिहज़ार वर्षोंतक वह रावण राजा हुआहै देवताओं और ऋषियोंका भयंकर जागरण कराकर॥ ३० ॥ चौबीसवें त्रेतायुग में तपस्या के क्षय होने के कारण गणों समेत रावण दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीको प्राप्त होकर नाश होगयाहै ॥ ३१॥ हे देवि ! शत्रुवोंका मर्दन करनेवाला जो यह रावण हुआ है वह प्रसिद्ध पराक्रमवाला दमघोष राजा का पुत्र ॥ ३२ ॥ श्रुतश्रवा स्त्री में शिशुपाल नामक चेदिदेश का राजा हुआहै रावण, कुंभकर्ण व शूर्पणखानामक कन्या को॥ ३३ ॥ और चौथे विभीषण इन पुत्रोंको केकसीने पैदा कियाहै और महोदर, प्रहस्त महापार्श्व और खर॥ ३४ ॥ व कुम्भीनसी कन्या वे पुष्पोत्कटाके पुत्र हुयेहैं और त्रिशिरा, दूषण व

षष्टिचैवसहस्राणि वर्षाणांसहिरावणः॥देवतानामृषीणाञ्चघोरंकृत्वाप्रजागरम् ॥ ३० ॥ त्रेतायुगेचतुर्विंशे रावणस्तपसःक्षयात्॥रामंदाशरथिंप्राप्य सगणःक्षयमेयिवान् ॥ ३१ ॥ योसौदेविदशग्रीवस्संबभूवारिमर्द्दनः॥ दमघोषस्यराजर्षेः पुत्रोविख्यातपूरुषः ॥ ३२ ॥ श्रुतश्रवायाञ्चैद्यस्तु शिशुपालोबभूवह ॥ रावणंकुम्भकर्णंच कन्यांशूर्पनखीन्तथा ॥ ३३ ॥ विभीषणञ्चतुर्थञ्च केकस्यजनयत्सुतान् ॥ महोदरःप्रहस्तश्च महापार्श्वःखरस्तथा ॥ ३४॥ पुष्पोत्कटायास्ते पुत्राः कन्याकुम्भीनसीतथा ॥ त्रिशिरादूषणश्चैव विद्युज्जिह्वश्चराक्षसः ॥ ३५ ॥ कन्यैकाश्यामिकानाम वीकायाःप्रसवाःस्मृताः॥इत्येतेक्रूरकर्माणःपौलस्त्याराक्षसाःस्मृताः॥ ३६॥ विभीषणोविशुद्धात्मादशमःपरिकीर्त्तितः॥पुलस्त्यस्य स्मृताःपुत्राः सर्वेव्यालाश्चदंष्ट्रिणः ॥ ३७ ॥ भूताःपिशाचाःसर्पाश्च शूकराहस्तिनस्तथा ॥ अनपत्यःपुराचैवस्मृतोवैवस्वतेन्तरे॥ ३८॥अत्रेःपत्न्योदशैवासन् सौन्दर्यश्चपतिव्रताः ॥ भद्राद्याश्चघृताच्यांवै जज्ञिरेप्सरसोदश ॥३९॥ भद्राशू

विद्युज्जिह्वराक्षस ॥ ३५ ॥ तथा श्यामिका नामक एक कन्या ये वीका से उत्पन्न हुये कहे गये हैं क्रूरकर्मवाले ये राक्षस पुलस्तिवंशवाले कहेगये हैं ॥ ३६ ॥ और दशवां विभीषण नामक पुत्र पवित्र चित्तवाला कहा गयाहै व पुलस्त्य के सब पुत्र सर्प व शूकर हुये हैं॥ ३७॥ भूत,पिशाच,सर्प, शूकर व हाथी ये सब उनके पुत्र हुये हैं और पुरातन समय वैवस्वत मन्वन्तरमें वे सन्तानहीन हुये हैं ॥३८॥ और अत्रिजी के दशही स्त्रियां हुई हैं जो कि सगी बहनैं व पतिव्रतायें थीं और घृताचीमें भद्रादिक दश

अप्सरा उत्पन्नहुई ॥ ३९ ॥ हे देवि ! भद्रा,शूद्रा,नलदा व जलदा,ऊर्णा,पूर्णा और हे देवेशि ! रंभा व गोपच्छला ॥४० ॥ व ताम्ररसा नामक अप्सरा और दशवीं रक्त-कीटका है हे महादेवि ! इन सबोंके पति प्रभाकर प्रसिद्धहैं ॥ ४१ ॥ जब राहु ने सूर्यको मारा है तब आकाशसे इन सूर्यनारायणके पृथ्वीमें गिरनेपर जब यह ससार अन्ध-कार से तिरस्कृत होगया तब जिन प्रभाकरने प्रभा (प्रकाश) को वर्तमान कियाहै ॥४२॥ तुम्हारा कल्याण हो ऐसा उन प्रभाकर के कहनेपर गिरतेहुये वे सूर्यनारायण स्वामी उन ब्रह्मर्षि के वचन से फिर नहीं गिरे हैं ॥ ४३ ॥ उसीकारण महर्षियों ने अत्रिप्रभुको प्रभाकर ऐसा कहा है उन्होंने भद्रा स्त्री में यशस्वी सोमपुत्र को पैदा

द्राचवैदेवि नलदाजलदातथा ॥ ऊर्णापूर्णाचदेवेशि रम्भागोपच्छलातथा ॥ ४० ॥ तथातामरसानाम दशमीरक्तकीटका ॥ एतासाञ्चमहादेविख्यातोभर्ताप्रभाकरः ॥ ४१ ॥ स्वर्भानुनाहतेसूर्ये पतितेस्मिन्दिवोमहीम् ॥ तमोभिभूतेलोकेस्मिन् प्रभायेनप्रवर्त्तिता ॥ ४२ ॥ स्वस्तितेस्त्वितितेनोक्तः पतन्निहदिवाकरः ॥ ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य नपपातपुनःप्रभुः ॥ ४३ ॥ ततःप्रभाकरेत्युक्तः प्रभुरत्रिर्महर्षिभिः ॥ भद्रायांजनयामास सोमंपुत्रंयशस्विनम् ॥४४॥ बुद्धिमानत्रिपुत्रस्तुसोमोदेवोवरस्तुसः ॥ शीतरश्मिस्समुत्पन्नःकृत्तिकासुनिशाकरः ॥ ४५ ॥ पितासोमस्यवैदेवि जज्ञेत्रिर्भगवानृषिः ॥ तत्रात्रिस्सर्वलोकेशः कृतस्तुनयनेस्थितः ॥ ४६ ॥ कर्मणामनसावाचा शुभान्येवसमाचरत् ॥ काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महाद्युतिः ॥ ४७ ॥ अनुत्तमंनामतपोयेनतप्तंमहत्पुरा ॥ त्रीणिवर्षसहस्राणि दिव्यानिसुरसुन्दरि ॥ ४८ ॥ तस्योर्ध्वरेतसस्तत्र स्थितस्यानिमिषस्यह ॥ सोमत्वंतनुरापेदे महाबुद्धेस्तुवैमुनेः ॥ ४९ ॥ ऊर्ध्वमाचक्रमेतस्य सोमत्वंभावि

किया ॥ ४४ ॥ और बुद्धिमान् सोमदेव जो अत्रि के पुत्र हुये हैं वे अन्य हैं और कृत्तिकाओं में निशाकर नामक चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है ॥ ४५ ॥ हे देवि ! सोमके पिता भगवान् अत्रि महर्षिजी उत्पन्न हुये हैं उससमय नयनों में स्थित अत्रि महर्षिजी समस्त लोकों के स्वामी कियेगये ॥ ४६ ॥ व उन्होंने कर्म, मन व वचन से शुभही कार्यों को किया व जिन महाप्रकाशवान् महर्षि ने काठ, कुड्य (भित्ति) व शिलाकी नाईं होकर ॥ ४७ ॥ पुरातनसमय हे सुरसुन्दरि ! देवताओं की तीनहज़ार वर्षों तक बड़ा उत्तम तप कियाहै ॥ ४८ ॥ वहांपर पलक न मारते हुये उन ऊर्ध्वरेता तथा महाबुद्धिमान् मुनिका शरीर सोमताको प्राप्त होगया ॥ ४९ ॥ और शुद्धचित्तवाले

... निरपड़ा ॥ ५३ ॥ गिरे हुये चन्द्रमाको देखकर लोकोंके पितामह ब्रह्माजीने ... कि ऐश्वर्यवान् व सबको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ५२ ॥ जब वे स्त्रियां उस गर्भ के धारने में न समर्थ हुईं तब वह चन्द्रमा उनसे ... परन्तु व उसको धारण करने के लिये न समर्थ हुईं ॥ ५१ ॥ वह अविनाशी गर्भ अचानकही दिशाओं ... तका होकर नेत्रोंसे बह चला ॥ ५० ॥ उससमय प्रसन्न होकर दशों दिशाओं

तात्मनः ॥ सोमःसुस्रावनेत्राभ्यां दशधाद्योतयन्दिशः ॥ ५० ॥ तद्गर्भंविधिनाहृष्टा दिशोदशदधुस्सदा ॥ समेत्यधार यामासुर्नचतास्तस्यशक्नुवन् ॥ ५१ ॥ सताभ्यस्सहसैवेहदिग्भ्योगर्भश्चशाश्वतः ॥ पपातभगवाँल्लोके शीतांशुस्सर्व भावितः ॥ ५२ ॥ यदानधारणेशक्तास्तस्यगर्भस्यताःस्त्रियः॥ततस्ताभ्यस्सशीतांशुर्निपपातवसुन्धराम् ॥ ५३ ॥ पति तंसोममालोक्य ब्रह्मालोकपितामहः ॥ रथमारोपयामास लोकानांहितकाम्यया ॥ ५४ ॥ सहदेविमयादेवो धर्मार्थस त्यसागरः ॥ युक्तोवाजिसहस्रेण सरथस्सुरसुन्दरि ॥ ५५ ॥ तस्मिन्निपतितेदेवाः पुत्रेत्रेर्वरवर्णिनि ॥ तुष्टुवुर्ब्रह्मणःपुत्रा मानसास्समयेश्रुताः ॥ ५६॥ तथैवाङ्गिरसस्सर्वे भृगोश्चैवात्मजास्तथा ॥ ऋग्भिश्चसामभिश्चैवतथैवाथर्वणैरपि ॥५७॥त स्यसंस्तूयमानस्य तेजस्सोमस्यभास्वतः ॥ आपाद्यमानाँल्लोकांस्त्रीन् भावयामाससर्वशः ॥ ५८ ॥ सतेनरथमुख्येन सागरान्तांवसुन्धराम् ॥ त्रिस्सप्तकृत्वोतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥ ५९ ॥ तस्ययच्चापितत्तेजः पृथिवीमन्वपद्य

सत्यसागर देव जी ने धर्म के लिये धारणकिया हे सुरसुन्दरि ! वह रथ हज़ार घोड़ों से संयुत था ॥ ५५ ॥ हे वरवर्णिनि ! जब अत्रि के पुत्र वे सोमजी गिरे हैं तब दे-वता व आचार में प्रसिद्ध ब्रह्मा के मानसी पुत्र सनकादिक लोग स्तुति करतेभये ॥ ५६ ॥ वैसेही सब अंगिरा के पुत्र व भृगु के पुत्रोंने ऋग्वेद, सामवेद व अथर्वणवेद के मंत्रों से स्तुति किया ॥ ५७ ॥ स्तुति किये जाते हुये उन प्रकाशवान् चन्द्रमाका तेज सिद्ध किये जातेहुये तीनों लोकों को सब ओर से प्रकट किया ॥ ५८ ॥ उन बड़े यशस्वी ब्रह्मा ने उस मुख्य रथके द्वारा समुद्र के अन्ततक पृथ्वी की इक्कीस प्रदक्षिणा किया ॥ ५९ ॥ और उन चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी में प्राप्त हुआ वे ओष-

धियां उत्पन्न हुईं व तेज से दिशाओं को प्रकाशित करती भईं ॥ ६० ॥ और उनसे संसार व चार प्रकार के प्रजा धारण किये जाते हैं फल पकजानेपर जिनका नाश होजाता है वे सत्रह ओषधिया शणसंज्ञक हैं ॥ ६१ ॥ धान, यव, गेहूं, सावां, तिल, मोठ, काकुनि, कोदौं, चनवां ॥ ६२ ॥ उड़द, मूंग, मसूर, लोबिया, कुरथी, अरहर, चना ये सत्रह शण कहेगये हैं ॥ ६३ ॥ ये ग्रामवाली ओषधियों की जातिया कहीगई हैं और यज्ञवाली ओषधियां जो कि ग्राम व वन में पैदा होती हैं वे चौदह हैं ॥ ६४ ॥ धान, यव, गेहूं, चनवा, तिल, काकुनि समेत छह व कुरथी समेत ये सातओषधी ॥ ६५ ॥ और सांवां, फसही, वनतिल, गरहेडुवा, उड़द व मकाई और जो बास

त ॥ ओषध्यस्तास्समुत्पन्नास्तेजसाज्वालयन्दिशः ॥ ६० ॥ ताभिश्चधार्य्यतेलोकः प्रजाश्चैवचतुर्विधाः ॥ ओषध्यः फलपाकान्ताः शणाःसप्तदशास्तुताः ॥६१॥ व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाश्रणवस्तिलाः॥ मकुष्ठकःप्रियङ्गुश्च कोद्रवश्चसचीणुकः ॥ ६२ ॥ माषमुद्गमसूराश्च निष्पावास्सकुलत्थकाः ॥ आढक्यश्चणकाश्चैव शणस्सप्तदशस्स्मृतः ॥ ६३ ॥ इत्येताओषधीनाञ्च ग्राम्याणांजातयस्स्मृताः ॥ ओषध्योयज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ ६४ ॥ व्रीहयश्चयवाश्चैव गोधूमाश्रणवस्तिलाः ॥ प्रियङ्गुषष्ठाइत्येते सप्तमास्सकुलत्थकाः ॥ ६५ ॥ श्यामकास्त्वथनीवाराजर्तिलास्सगवेधुकाः ॥ कुरुविन्दामर्कटकास्तथावेणुयवाश्चये ॥ ६६ ॥ ग्राम्यारण्यास्तथात्वेता ओषध्यस्तुचतुर्दश ॥ तृणगुल्मलतावीरुद्वल्लीगुच्छादिकोटिशः ॥ ६७ ॥ एतेषामधिपश्चैवधारयत्यखिलंजगत् ॥ योंशुभिर्भगवान्सोमो जगतोहितकाम्यया ॥ ६८ ॥ ततस्तस्मैददौराज्यं ब्रह्माब्रह्मविदांवरः ॥ बीजौषधीनांविप्राणां मन्त्राणाञ्चवरानने ॥ ६९ ॥ सोभिषिक्तोमहातेजा राजराज्येतदैकराट् ॥ त्रीँल्लोकान्भावयामास स्वभासाभासिनांवरः ॥ ७० ॥ तंसिनीचकुहूश्चैव द्युतिः

के धानहैं ॥ ६६ ॥ ये चौदह ग्राम व वनकी ओषधियाहैं तृण, गुल्म, लता, वीरुत् याने फैलनेवाली लतायें और करोड़ों गुच्छादिक ॥ ६७ ॥ इनके स्वामी जो भगवान् चन्द्रमा संसार के हितकी कामनासे किरणों से समस्त संसार को धारण करते हैं ॥ ६८ ॥ उसीकारण हे वरानने ! ब्रह्म जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा जी ने उन चन्द्रमा के लिये बीज, ओषधी, ब्राह्मण व मंत्रों की राज्य को दिया है ॥ ६९ ॥ उससमय प्रकाशवानोंमें श्रेष्ठ व बड़े तेजस्वी तथा राजाओं के राज्य पै अभिषेक किये हुये एक राजा

चन्द्रमा ने अपने प्रकाश से तीनों लोकों को उत्पन्न किया ॥७०॥ और सिनी, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्त्ति, धृति व लक्ष्मी इन नव देवियों ने उनकी सेवा किया है ॥ ७१ ॥ और प्रचेता के पुत्र दक्ष जी ने महाव्रतवाली सत्ताईस निज कन्याओं को चन्द्रमा को दिया है जिनको विद्वान् नक्षत्र ऐसा कहते हैं ॥ ७२ ॥ सोमवानों में श्रेष्ठ उस चन्द्रमा ने उस बड़ी भारी राज्य को पाकर हज़ारों व सैकड़ों दक्षिणावाली राजसूय यज्ञको किया है ॥ ७३ ॥ उस यज्ञ में हिरण्यगर्भजी उद्गाता (सामवेदी) व ब्रह्मा जी ब्रह्मता को प्राप्तहुये हैं और उसके सदस्य (सभासद्) भगवान् नारायण विष्णु स्वामी हुये हैं ॥ ७४ ॥ और सनत्कुमार इत्यादिक आदिवाले महर्षियों

पुष्टिःप्रभावसुः ॥ कीर्त्तिर्धृतिश्चलक्ष्मीश्च नवदेव्यस्सिषेविरे ॥ ७१ ॥ सप्तविंशतिरिन्दोश्च दाक्षायण्योमहाव्रताः ॥ ददौप्राचेतसोदक्षो नक्षत्राणीतियाविदुः ॥ ७२ ॥ सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमस्सोमवतांवरः ॥ सोमोपजहेराजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥ ७३ ॥ हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥ सदस्यस्तस्यभगवान् हरिर्नारायणःप्रभुः ॥७४॥ सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥ दक्षिणामददत्सोमस्त्रींल्लोकान्सवरानने ॥ ७५ ॥ तेभ्योब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्चवैशुभे ॥ प्राप्यावभृथमव्यग्रस्सर्वदेवर्षिपूजितः ॥ ७६ ॥ अतिराजातिराजेति राजेन्द्रोदशधादिशः ॥ ७७ ॥ तेनप्राप्यंसुदुष्प्राप्यमैश्वर्यमकृतात्मभिः ॥ सएवंवर्ततेचन्द्र आत्रेयइतिविश्रुतः ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेचन्द्रोत्पत्तिर्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

को उन्होंने वरण किया है हे वरानने ! उन चन्द्रमाने उन ब्रह्मर्षियों तथा सभासदों के लिये तीनों लोक दक्षिणा दिया है हे शुभे ! अवभृथ (यज्ञान्तस्नान) को पाकर विकलतारहित चन्द्रमा देवर्षियों से पूजित हुये ॥ ७५ । ७६ ॥ दिशाओं में दश प्रकार से राजेन्द्र चन्द्रमा अतिराजा अतिराजा ऐसे प्रकाशित हुये ॥ ७७ ॥ उसीकारण पापियों से न पाने योग्य व दुर्लभ उस ऐश्वर्य को पाकर वह चन्द्रमा आत्रेय ऐसा प्रसिद्ध होकर इस प्रकार वर्तमान है ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचन्द्रोत्पत्तिवर्णनंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। यथा दक्ष चन्द्रमा कहँ दीन क्रोध करि शाप। उनीसवें अध्यायमें सोइ चरित आलाप ॥ देवी जी बोलीं कि मैंने चन्द्रमाकी उत्पत्तिके सब कारणको सुना और जिस प्रकार उसके चिह्न हुआहै उसको इस समय कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पुरातन समय ब्रह्माके दक्ष नामक पुत्र हुआहै और पहले ब्रह्माने दक्ष जीको यह आज्ञा दिया कि प्रजाओंको रचो ॥२॥ तब प्रजापति दक्षजीने वीरिणी स्त्री में साठ कन्याओं को पैदा किया व उन्होंने दश धर्मराजके लिये व तेरह कश्यप जीके लिये दिया ॥ ३ ॥ व सत्ताईस चन्द्रमाके लिये और चार अरिष्टनेमिके लिये दिया और दो भृगुपुत्र तथा दो बुद्धिमान् कृशाश्वजीके लिये दिया ॥ ४ ॥ वैसेही दो अंगिरा

देव्युवाच ॥ श्रुतंसर्वमशेषेण चन्द्रस्योत्पत्तिकारणम् ॥ चिह्नंयथाभवत्तस्य साम्प्रतंतत्प्रकीर्तय ॥ १ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ब्रह्मणस्तुपुरादेवि दक्षोनामसुतोभवत ॥ प्रजाःसृजेतिउद्दिष्टः पूर्वंदक्षःस्वयंभुवा ॥ २ ॥ षष्टिंदक्षोसृजत्कन्या वीरिण्यांवैप्रजापतिः ॥ ददौसदशधर्माय कश्यपायत्रयोदश ॥ ३ ॥ सप्तविंशतिसोमाय चतस्रोरिष्टनेमिने ॥ द्वेचैवभृगुपुत्राय द्वेकृशाश्वायधीमते ॥ ४ ॥ द्वेचैवाङ्गिरसेतद्वत्तासांनामानिविस्तरात् ॥ शृणुत्वन्देवमातॄणां प्रजाविस्तरमादितः ॥ ५ ॥ मरुत्वतीवसुर्यामी लम्बभानुररुन्धती ॥ सङ्कल्पाचमुहूर्ताच साध्याविश्वाचभामिनि ॥ ६ ॥ धर्मपत्न्यस्समाख्याता दक्षःप्राचेतसोददौ ॥ अदितिर्दितिर्दनुस्तद्वदरिष्टासुरसातथा ॥ ७ ॥ सुरभिर्विनताचैव ताम्राक्रोधवशात्विला ॥ कद्रूस्त्विषावसुस्तद्वत्तासांपुत्रान्वदामिते ॥८॥ विश्वेदेवास्तुविश्वायास्साध्यासाध्यानजीजनत् ॥ मरुत्वत्यांमरुत्वन्तो वसोश्चवसवस्तथा ॥ ९ ॥ भानोस्तुभानवस्तद्वन्मुहूर्त्तायामुहूर्त्तकाः ॥ लम्बायांघोषनामानो नागवीथीतु

के लिये दिया उन देवमाताओंके नाम व प्रजाओंके विस्तारको तुम पहलेहीसे विस्तारपूर्वक सुनो ॥ ५ ॥ हे भामिनि ! मरुत्वती, वसु, यामी, लंबा, भानु, अरुंधती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या व विश्वा ॥ ६ ॥ ये धर्मराजकी स्त्रिया कही गई कि जिनको प्रचेताके पुत्र दक्षजीने दिया है वैसेही अदिति, दिति, दनु अरिष्टा, सुरसा ॥ ७ ॥ सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इला वैसेही कद्रू, त्विषा व वसुनामक है उनके पुत्रोंको मैं तुमसे कहताहूं ॥ ८ ॥ विश्वा के विश्वेदेवता हुये व साध्याने साध्य देवताओं को पैदाकिया और मरुत्वती स्त्रीमें मरुत्वान् व वसुके वसु देवता हुये ॥ ९ ॥ और भानुके भानु देवता व मुहूर्ता के मुहूर्त हुये और लंबा में घोष नामक हुये व नागवीथी

जामी से उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ और संकल्पा के संकल्प नामक पुत्र हुआ ये धर्मराजके दश पुत्र कहेगये और आप,ध्रुव,सोम,धर,अनल,अनिल ॥ ११ ॥ प्रत्यूष व प्रभास ये आठ वसु कहेगये हैं और आपके पुत्र देव, भ्रम, शान्त व ध्वनि हुये ॥ १२ ॥ और ध्रुवके पुत्र भगवान् कालजी हुये जोकि लोकोंके नाशक हैं और चन्द्रमा के भगवान् वर्च व ग्रहोंके मध्य में बोध करानेवाले बुधजी हुये ॥ १३ ॥ और अग्नि के हुत पुत्र हुआ व धरका द्रविणपुत्र कहा गया है और अनिल के मनोजव व अविज्ञातगति पुत्र हुआ ॥ १४ ॥ और प्रत्यूष के भगवान् देवल योगी पुत्र हुये व लोकमें ब्रह्मवादिनी जो बृहस्पति की बहन थी ॥ १५ ॥ वह वसुवों के मध्य में

जामिजा ॥ १० ॥ सङ्कल्पायास्तुसङ्कल्पो धर्मपुत्रादशस्मृताः ॥ आपोध्रुवश्चसोमश्च धरश्चैवानलोनिलः ॥ ११ ॥ प्रत्यूषश्चप्रभासश्चवसवोष्टौप्रकीर्त्तिताः ॥ आपस्यपुत्रोदेवश्चभ्रमश्शान्तोध्वनिस्तथा ॥ १२ ॥ ध्रुवस्यपुत्रोभगवान् कालोलोकप्रकालनः ॥ सोमस्यभगवान्वर्चो बुधश्चग्रहबोधनः ॥ १३ ॥ हुतोहव्यवहःपुत्रो धरस्यद्रविणस्स्मृतः ॥ मनोजवोनिलस्यासीदविज्ञातगतिस्तथा ॥ १४ ॥ देवलोभगवान्योगी प्रत्यूषस्याभवत्सुतः ॥ बृहस्पतिस्तुभगिनी भुवनेब्रह्मवादिनी ॥ १५ ॥ प्रभासस्यतुसाभार्या वसूनामष्टमस्यच ॥ विश्वकर्मासुतस्तस्यांशिल्पकर्ताप्रजापतिः ॥ १६ ॥ तुषितानान्तुसाध्यानां नामान्येतानिवच्मिते ॥ मनोनुमन्ताप्राणश्चनरःपानश्चवीर्यवान् ॥ १७ ॥ नेमिर्भयोनृपश्चैव हंसोनारायणस्तथा ॥ विभुश्चैवप्रभुश्चैव साध्याद्वादशकीर्त्तिताः ॥ १८ ॥ कश्यपस्यप्रवक्ष्यामि सन्ततिंवरवर्णिनि ॥ अंशोधाताभवस्त्वष्टा मित्रोथवरुणोर्यमा ॥ १९ ॥ विवस्वान्सवितापूषा त्वंशुमान्विष्णुरेवच ॥ एतेसहस्रकिरणा आदित्याद्वाद

आठवें प्रभास की स्त्री हुई उनके पुत्र शिल्पकर्म करनेवाले विश्वकर्मा प्रजापति हुये ॥ १६ ॥ और तुषित साध्य देवताओं के इन नामों को मैं तुम से कहता हूं कि मनोनुमंता, प्राण, नर, पान, वीर्यवान्, ॥ १७ ॥ नेमि, भय, नृप, हंस, नारायण, विभु और प्रभु बारह साध्य कहे गये हैं ॥ १८ ॥ हे वरवर्णिनि ! अब कश्यप की सन्तान को कहताहूं कि अंश, धाता, भव, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा ॥ १९ ॥ विवस्वान् सविता, पूषा, अंशुमान् व विष्णु ये हज़ारों किरणोंवाले बारह आदित्य

कहे गये हैं ॥ २० ॥ और अजैकपात, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रेवत, हर, बहुरूप व सुरेश्वर त्र्यम्बक ॥ २१ ॥ सावित्र, जयन्त, पिनाकी, अपराजित ये गेरह रुद्र गणनायक कहे गये हैं ॥ २२ ॥ और बल से गर्वित दिति ने कश्यपजी से दो पुत्रोंको पाया है अर्थात् जेठा हिरण्यकशिपु व छोटा भाई हिरण्याक्ष हुआ ॥ २३ ॥ प्राचीन दैत्यों से हिरण्यकशिपु का यह श्लोक गाया गया है कि हिरण्यकशिपु राजा जिस जिस दिशाको देखता था ॥ २४ ॥ उस उस दिशा में महर्षियों समेत देवताओंने प्रणाम किया है और हिरण्यकशिपु के चार बड़े बलवान् पुत्र हुये ॥ २५ ॥ उन में प्रह्लाद पहले पैदा हुआ उसके उपरान्त अनुह्लाद, ह्लाद व ह्रद ये पुत्र कहेगये

शस्मृताः ॥ २० ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोथरेवतः ॥ हरश्चबहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चसुरेश्वरः ॥ २१ ॥ सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकीह्यपराजितः ॥ एतेरुद्रास्समाख्याता एकादशगणेश्वराः ॥ २२ ॥ दितिःपुत्रद्वयंलेभे कश्यपाद्बलगर्विता ॥ हिरण्यकशिपुंज्येष्ठं हिरण्याक्षंतथानुजम् ॥ २३ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यैः श्लोकोगीतःपुरातनैः ॥ राजा हिरण्यकशिपुर्यां यामाशान्निरीक्ष्यते ॥ २४ ॥ तस्यान्तस्यांदिशिसुरान् नमश्चक्रुर्महर्षिभिः ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारस्सुमहाबलाः ॥ २५ ॥ प्रह्लादःपूर्वजस्तेषामनुह्लादस्ततःपरम् ॥ ह्लादश्चैवह्रदश्चैव पुत्राश्चैतेप्रकीर्त्तिताः ॥ २६ ॥ उभौसुन्दोपसुन्दौतौ ह्रदपुत्रौबभूवतुः ॥ ह्लादस्यपुत्रएकोपि मूकइत्यभिविश्रुतः ॥ २७ ॥ मारीचःसुन्दपुत्रस्तु ताडकायामजायत ॥ दण्डकेनिहतस्सोथ राघवेणबलीयसा ॥ २८ ॥ मूकोविनिहतश्चापि किरातेसव्यसाचिना ॥ संह्लादस्यतुदैत्यस्य निवातकवचाःकुले ॥ २९ ॥ तिस्रःकोट्यस्तुविख्याता निहताःसव्यसाचिना ॥ गवेष्ठीकालनेमिश्च जम्भोबल्वलएवच ॥ ३० ॥ शम्भुर्विरोचनश्चैव स्मृताःप्रह्लादसूनवः ॥ शुम्भश्चैवनिशुम्भश्च गवेष्ठितनयौस्मृतौ ॥ ३१ ॥ धे

हैं ॥ २६ ॥ और ह्रद के वे दोनों सुन्द व उपसुन्द पुत्र हुये और ह्लाद का एकभी पुत्र मूक ऐसा प्रसिद्ध हुआ है ॥ २७ ॥ और सुन्द का पुत्र मारीच ताड़का स्त्री में उत्पन्न हुआ है उसको बलवान् श्रीरघुनाथजी ने दंडकारण्य में मारा है ॥ २८ ॥ और किरात में अर्जुन जी ने मूक को मारा है व संह्लाद दैत्य के वंश में निवात कवचनामक दैत्य ॥ २९ ॥ तीन् करोड विख्यात हुयेहैं कि जिनको अर्जुनजीने माराहै और गवेष्ठी, कालनेमि, जंभ व बल्वल ॥ ३० ॥ शंभु और विरोचन ये प्रह्लाद के पुत्र

कहेगये हैं और शुंभ व निशुंभ गवेष्ठी के पुत्र कहे गये हैं ॥ ३१ ॥ और धेनुक व सोमलोमा शुंभ के पुत्र कहेगये हैं और विरोचन का पुत्र प्रतापवान् एक बलि हुआ है ॥ ३२ ॥ और हिरण्याक्ष के पांच पुत्र बड़े बलवान् हुये हैं अधक, शकुनि और कालनाभ ॥ ३३ ॥ व पराक्रमी महानाभ तथा भूतसतापन हुआ तारकामय समर में सैकड़ों हज़ार दैत्य मारे गये ॥ ३४ ॥ यह संक्षेप से कश्यपके वश की संतान कही गई कि जिससे देवता, दैत्य व मनुष्यों समेत सब संसार व्याप्त है ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त जो सत्ताईस कन्या चन्द्रमा के लिये दीगईहैं उनके मध्यमें हे महादेवि ! उस चन्द्रमा को रोहिणी प्यारी थी ॥ ३६ ॥ हे देवि ! उन सबों के बीचमें नक्षत्रों

नुकस्सोमलोमाचशुम्भपुत्रौप्रकीर्त्तितौ ॥ विरोचनस्यपुत्रस्तु बलिरेकःप्रतापवान् ॥ ३२ ॥ हिरण्याक्षसुताःपञ्च विक्रान्तास्सुमहाबलाः ॥ अन्धकःशकुनिश्चैवकालनाभस्तथैवच ॥ ३३ ॥ महानाभश्चविक्रान्तो भूतसन्तापनस्तथा ॥ शतंशतसहस्राणि निहतास्तारकामये ॥ ३४ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्ता कश्यपान्वयसन्ततिः ॥ ययाव्याप्तंजगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥३५॥ अथयाःकन्यकादत्ताःसप्तविंशतिमिन्दवे ॥ तासांमध्येमहादेवि प्रियातस्यतुरोहिणी ॥ ३६ ॥ अथ नक्षत्रनाथस्य तासांमध्येतिवल्लभा ॥ बभूवरोहिणीदेवि प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ ३७ ॥ सर्वास्तास्सम्परित्यज्य रोहिण्या सहितोरहः ॥ रेमेकामपरीतात्मा वनेषूपवनेषुच ॥ ३८ ॥ रमणीयेषुदेशेषु कन्दरेषुगुहासुच ॥ अथातोदुःखसम्पन्नाः पत्न्यश्शेषायशस्विनि ॥ ३९ ॥ प्रजग्मुश्शरणंदक्षं वचनंचेदमब्रुवन् ॥ सोमस्सर्वाअतिक्रम्य रोहिण्यासहमोदते ॥ ४० ॥ संवत्सरसहस्रन्तु क्रीडमानोयथासुखम् ॥ अवशिष्टास्तुषड्विंशन्मलिनाविगतश्रियः ॥ ४१ ॥ पाणिग्रहणमार

के स्वामी चन्द्रमा को रोहिणी प्राणों से भी अधिक प्यारी थी ॥ ३७ ॥ इससे कामदेव से व्याप्तचित्तवाले चन्द्रमा ने उन सबों को छोडकर एकान्त में तथा वनों व उपवनों में रोहिणी समेत रमण किया ॥ ३८ ॥ और मनोहर देशों में व कन्दराओं तथा गुहाओं में रमण किया इसके उपरान्त हे यशस्विनी ! शेष स्त्रिया दुःखसंयुत होकर ॥ ३९ ॥ दक्षजीकी शरण में गईं और यह वचन बोलीं कि चन्द्रमा हम सबों को छोड़कर रोहिणी समेत आनन्द करता है ॥ ४० ॥ और सुखपूर्वक हज़ार वर्ष से उसीसे क्रीड़ा कर रहा है व शेष छब्बीस हम सब उदासीन व शोभारहित हैं ॥ ४१ ॥ रोहिणी से पाणिग्रहण करके वह चन्द्रमा हज़ार वर्ष को एक रात्रि

जानता है ॥ ४२ ॥ हे तात ! चन्द्रमा ने दोषरहित हम सबों को छोड़दिया और हम सबों के दुःखप्रिय उस चन्द्रमा ने रोहिणी से रमण किया है ॥ ४३ ॥ और दोष से जलीहुई हमसबों के मरने में कल्याण होगा। दुःखमे विकल उन सबों के उस वचन को सुनकर प्रजापति ॥ ४४ ॥ दक्षजी जो कि ब्रह्मतेज से संयुत थे वे सन्तान के स्नेह के कारण दुःखित हुये और जहां नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा थे वहां गये और यह वचन बोले ॥ ४५ ॥ कि हे निशाकर ! मेरी कन्याओं में समान बर्ताव कीजिये नहीं तो तुम दोषभागी होगे इस में सन्देह नहीं है ॥ ४६ ॥ उन दक्षजी के उस वचन को सुनकर लज्जासे नीचे झुके खड़े हुये नक्षत्रनाथ चन्द्रमा

भ्य रोहिण्यासहचन्द्रमाः ॥ संवत्सरसहस्रन्तु जानात्येकांसशर्वरीम्॥४२॥ परित्यक्तावयन्तात शशिनादोषवर्जिताः॥ सरेमेसहरोहिण्या ह्यस्माकमसुखप्रियः ॥ ४३ ॥ अस्माकंदोषदग्धानां श्रेयश्चमरणेभवेत् ॥ तासांतद्वचनंश्रुत्वा दुःखार्तानांप्रजापतिः ॥ ४४ ॥ ब्राह्मयतेजस्समायुक्तोऽपत्यस्नेहेनदुःखितः ॥ जगामयत्रऋक्षेशो वचनंचेदमब्रवीत् ॥ ४५॥ समंवर्त्तस्वकन्यासु मामकासुनिशाकर ॥ अन्यथादोषभागीत्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ ४६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा लज्जयावनतःस्थितः ॥ बाढमित्येवऋक्षेन्द्रो दक्षस्यपुरतोब्रवीत् ॥ ४७ ॥ अद्यप्रभृतिविप्रर्षे समंवर्त्तयितास्म्यहम् ॥ पुत्रीभिस्तवसत्यंवै शपेहंशपथेनते ॥ ४८ ॥ एवंप्रतिज्ञासंयुक्ते निशानाथेतदाम्बिके ॥ सर्वारूपेणसंयुक्तास्तस्यकन्या निवेदिताः ॥ ४९ ॥ दक्षश्चभवनंगत्वा निर्वृत्तिपरमाङ्गतः॥ चन्द्रस्तुपूर्ववद्देवि रोहिण्यानिरतोभवेत् ॥ ५० ॥ सम्परित्यज्यतास्सर्वाः कामोपहतचेतसः ॥ अथभूयस्सुतास्सर्वा दक्षंवचनमब्रुवन् ॥ ५१ ॥ मलिनास्ताःकृशाङ्ग्यश्च दीना

ने बहुत अच्छा ऐसाही दक्षजी के आगे कहा ॥ ४७ ॥ कि हे विप्रर्षे ! आज से लगाकर मैं तुम्हारी कन्याओं से समान वर्तमान हूंगा मैं तुम्हारी सौगन्द से शपथ करता हूं ॥ ४८ ॥ हे अम्बिके ! उस समय इस भांति जब चन्द्रमा प्रतिज्ञा से संयुत हुआ तब रूप से संयुत उनकी सब कन्यायें निवेदित हुईं ॥ ४९ ॥ और दक्षजी घरको जाकर उत्तम आनन्द को प्राप्त हुये व हे देवि ! उन सबों को छोड़कर कामदेव से नष्टबुद्धिवाले चन्द्रमा पहले की नाईं रोहिणी से रमित हुये इसके

अनन्तर फिर सब कन्यायें दक्षजी से वचन बोलीं ॥ ५० । ५१ ॥ और वे सब मलिन तथा दुबली व उदासीन तथा चैतन्यतारहित थीं उसके उपरान्त वैसे रूप को देखकर तदनन्तर दक्षजी मोहको प्राप्त हुये ॥ ५२ ॥ फिर चैतन्यता को पाये हुये व क्रोध से ज्वलित रोमोंवाले उन दक्षजीने उन सबोंसे कहा कि हे कन्याओ ! इस प्रकार मलिनवसनवाली तुम सब क्यों हो ॥ ५३ ॥ और क्यों तुम सब प्रभाहीन हो इसको मुझ से इस समय कहिये दैत्य व देवता और अन्य जो सुरश्रेष्ठ हैं ॥ ५४ ॥ हे कन्याओ ! उनको आजही शाप से नष्ट करूंगा इसमें सन्देह नहीं है दक्षजी से इस प्रकार कही हुई उन सबोंने कहा ॥ ५५ ॥ कि हे प्रभो ! निशानाथ

स्सर्वाविचेतसः ॥ ततोदृष्ट्वातथारूपं ततोमोहमुपागतः ॥ ५२ ॥ लब्धसंज्ञःपुनस्सोपि क्रोधाध्मातततनूरुहः ॥ उवाचस र्वास्ताःपुत्र्यः किमित्थंमलिनाम्बराः ॥ ५३ ॥ किमिदंनिष्प्रभास्सर्वाः कथयध्वंममाधुना ॥ असुराश्चसुराश्चैव येचान्येसु रपुङ्गवाः ॥ ५४ ॥ अद्यशापहतान्पुत्र्यः करिष्यामिनसंशयः ॥ एवमुक्तास्तुदक्षेण सर्वास्तास्समुदीरयन् ॥ ५५ ॥ न चास्माकंनिशानाथो ऋतुमात्रमपिप्रभो ॥ प्रयच्छतिपुनस्तेन युष्मत्पार्श्वमुपागताः ॥ ५६ ॥ अनादृत्यतुत्वद्वाक्यं रो हिण्यानिरतोरहः ॥ रेमेकामपरीतात्मा अस्माकंशोकवर्द्धनः ॥ ५७ ॥ तासांतद्वचनंश्रुत्वा दक्षःक्रोधंसमागतः ॥ गत्वा चन्द्रंमहादेवि शशापप्रमुखेस्थितम् ॥ ५८ ॥ अनादृत्यहिमेवाक्यं यस्मात्त्वंरोहिणीङ्गतः ॥ सन्त्यज्यपुत्रीश्चास्माकं शेषादोषेणवर्जितः ॥ ५९ ॥ तस्माद्यक्ष्माशरीरन्ते ग्रसिष्यतिनसंशयः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु यक्ष्मापर्वतपुत्रिके ॥ ६० ॥

(चन्द्रमा) हम सबों को ऋतुमात्र भी नहीं देता है उस लिये तुम सबों के पास आई हैं ॥ ५६ ॥ क्योंकि तुम्हारे वचन को अनादर कर हम सबोंके शोकको बढ़ाने वाले व कामदेव से व्याप्तचित्तवाले चन्द्रमा ने एकान्त में रोहिणी से रमण किया है ॥ ५७ ॥ उनके उस वचन को सुनकर हे महादेवि ! क्रोध में प्राप्त दक्षजीने चन्द्रमाके समीप जाकर व सामने स्थित उसको शाप दिया ॥ ५८ ॥ कि जिसलिये दोष से रहित हमारी शेष कन्याओं को छोड़कर व मेरे वचन को अनादर कर तुम रोहिणी के समीप गये ॥ ५९ ॥ उसी कारण तुम्हारे शरीरको यक्ष्मरोग ग्रसैगा इस में संदेह नहीं है इसी अवसरमें हे पर्वतात्मजे ! दक्षजीसे आज्ञा दियाहुआ यक्ष्मा उस

चन्द्रमाके शरीरमें पैठगया और यक्ष्मासे ग्रसित शरीरवाला यह प्रतिदिन क्षयको प्राप्त होताहै ॥ ६०।६१ ॥ इसप्रकार हे देवि ! दक्षजी से शाप दिया हुआ रोहिणी संयुत चन्द्रमा प्रभाहीन व चेष्टारहित होकर पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ ६२ ॥ और थोड़ीदेर में चैतन्यताको पायेहुये चन्द्रमाने रोहिणीसे वचन कहा कि हे देवि ! तुम्हारे पितासे मैं शापित हुआ इससमय क्या करना चाहिये ॥ ६३ ॥ व हे प्रिये ! क्षय कुष्ठ से संयुत मैं इससमय क्या करूं ऐसा कहने पर आंसुवों से विकल लोचनोंवाली रोहिणी ने ॥ ६४ ॥ दक्षजी के शापसे ताड़ित चन्द्रमाको देखकर वचन कहा कि जिसने तुमको शाप दिया है उसी की शरण में जावो ॥ ६५ ॥ क्योंकि शापसे तिर-

दक्षेणतुसमादिष्टस्तस्यकायंसमाविशेत् ॥ यक्ष्मणाग्रस्तकायोसौ क्षयंयातिदिनेदिने ॥ ६१ ॥ एवंसोमस्तुदक्षेण दक्त शापोगतप्रभः ॥ पपातवसुधान्देवि निश्चेष्टोरोहिणीयुतः ॥ ६२॥ लब्धसंज्ञोमुहूर्त्तेन रोहिणींवाक्यमब्रवीत् ॥ देविकार्य्यं किमधुना तेपित्राशापितोस्म्यहम् ॥ ६३॥क्षयकुष्ठेनसंयुक्तः किङ्करोम्यधुनाप्रिये ॥ एवमुक्तेरोहिणीतु बाष्पव्याकुललो चना ॥ ६४ ॥ दक्षशापाहतंदृष्ट्वा सोमंवचनमब्रवीत् ॥ येनशापस्तुतेदत्तस्तमेवशरणंव्रज ॥ ६५ ॥ सतेशापाभिभूत स्य नूनंश्रेयोभिधास्यति ॥ प्राप्स्यसेतत्प्रसादात्त्वं प्रभांपूर्वोचितांशुभाम् ॥ ६६ ॥ रोहिण्यावचनंश्रुत्वा गतोदक्षसमीप तः ॥ चन्द्रःप्रोवाचविनयाद्बाष्पव्याकुललोचनाम् ॥ ६७॥ कुरुष्वानुग्रहंदक्ष प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ कोपंत्यजमहर्षेत्वं ममोपरिदयांकुरु ॥ ६८ ॥ त्वयाक्रोधपरीतेन दत्तश्शापोममाधुना ॥ अनुकम्पाञ्चमेकृत्वा कुरुशापस्यमोक्षणम् ॥ ६९ ॥ विदितन्तेमहाभाग शप्तोऽहंयेनकर्मणा ॥ ७० ॥ कुरुष्वानुग्रहंदक्ष ममदीनस्ययाचतः ॥ एवंविलपमानस्य

स्कृत तुमको वही कल्याण देवैगा और उसकी प्रसन्नता से तुम पहलेवाली उत्तम प्रभा को पावोगे ॥ ६६ ॥ रोहिणी के वचन को सुनकर दक्ष जी के समीप गयेहुये चन्द्रमा ने आंसुवों से विकल लोचनोंवाले होकर कहा ॥ ६७ ॥ कि हे दक्ष जी ! प्रसन्नचित्त से दया कीजिये व हे महर्षे ! तुम क्रोध को छोड़ दो व मेरे ऊपर दया करो ॥ ६८ ॥ क्रोध से संयुत तुमने इससमय मुझको शाप दिया इससे मेरे ऊपर दया करके शाप का मोक्ष कीजिये ॥ ६९ ॥ हे महाभाग ! मैं जिस कर्म से शापित हुआ

वह तुमको विदितहै ॥ ७० ॥ हे दक्षजी ! याचना करते हुये मुझ दीन के ऊपर तुम दया करो इसप्रकार विलाप करते हुये महात्मा चन्द्रमा के ऊपर ॥ ७१ ॥ दया में बुद्धि करके दक्ष जी यह वचन बोले कि हे चन्द्र ! इससमय देवता भी तुम्हारी रक्षा नहीं करसक्ते हैं ॥ ७२ ॥ हे सोम ! मैं जो जो कहताहू वह वैसाही है इस में सन्देह नहीं है कि आयुर्बल, कर्म, धन, विद्या व मृत्यु ॥ ७३ ॥ जो पहलेरचितहैं वेही होते हैं दैत्य व देवता और जो अन्य यक्ष व राक्षस हैं ॥ ७४ ॥ वे सब भी शिव जी को छोड़कर रक्षा करने के लिये समर्थ नहीं हैं यह मैंने शाप दिया है कि शंकर जी दया करैंगे ॥ ७५ ॥ और पशुपति सदाशिव जी के सिवा अन्य रक्षा करने

सोमस्यतुमहात्मनः ॥ ७१ ॥ अनुग्रहेमतिंकृत्वा इदंवचनमब्रवीत् ॥ दक्षउवाच ॥सोमत्रातुंत्वमधुना शक्योनदैवतैर पि ॥ ७२ ॥ यद्यद्ब्रवीम्यहंसोम तत्तथेतिनसंशयः ॥ आयुःकर्मचवित्तञ्च विद्यानिधनमेवच ॥ ७३ ॥ पूर्वसृष्टानियान्ये व सम्भवन्तिहितानिवै॥असुराश्चसुराश्चैव येचान्येयक्षराक्षसाः ॥ ७४ ॥ सर्वेपिशक्तानत्रातुं वर्जयित्वामहेश्वरम् ॥ एषशापोमयादत्तोनुग्रहीष्यतिशङ्करः ॥ ७५ ॥ नान्यस्त्रातुंभवेच्छक्तो विनापशुपतिम्भवम् ॥ सत्वंशीघ्रतरंगच्छ स माराधयशङ्करम् ॥ ७६ ॥ नशक्तोन्यतमश्चन्द्र कर्तुंत्वांनिर्मलंपुनः ॥ वर्जयित्वामहादेवं शितिकण्ठमुमापतिम् ॥७७॥ दक्षस्यवचनंश्रुत्वा कृताञ्जलिपुटस्थितः ॥ प्रत्युवाचतदासोमः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ७८ ॥ भगवन्यदितुष्टोसि म मभक्तस्यसुव्रत ॥ अनुग्रहेकृताबुद्धिस्तदाचक्ष्वकुतश्शिवः ॥ ७९ ॥ कस्मिन्स्थानेमयादेव द्रष्टव्योसोमहेश्वरः ॥ त स्यस्थानानिरम्याणि यानितानिवदस्वमे ॥ ८० ॥ दक्षउवाच ॥ शृणुसोमप्रयत्नेन श्रुत्वाचैवावधारय ॥ वारुणींदि

के लिये नहीं समर्थ होगा सो तुम बहुतही शीघ्र जावो व शंकरजी का आराधन करो ॥ ७६ ॥ क्यों कि हे चन्द्रमा ! नीलकंठ व पार्वती जी के पति सदाशिव जी के बिना अन्य कोई तुमको निर्मल करने के लिये फिर समर्थ नहीं है ॥ ७७ ॥ दक्षजी के वचन को सुनकर हाथों को जोड़हुये स्थित चन्द्रमा ने उससमय प्रसन्न चित्त से कहा कि ॥ ७८ ॥ हे सुव्रत, भगवन् ! मुझ भक्तके ऊपर यदि तुम प्रसन्न हो व यदि दया करने में बुद्धि कीगई है तो कहिये कि सदाशिव जी कहां हैं ॥ ७९ ॥ व हे देव ! इन महेश्वर जी को मैं किस स्थान में देखूंगा उनके जो सुन्दर स्थान हैं उनको मुझ से कहिये ॥ ८० ॥ दक्ष जी बोले कि हे सोम ! यत्न से सुनिये व सुन

कर निश्चय कीजिये कि पश्चिम दिशामें आश्रित होकर समुद्रके कच्छके समीप ॥ ८१ ॥ कृतस्मरजीके पश्चिम ओर तीनसौ धनुषपर आपहीसे उत्पन्न बड़े प्रभाव वाला लिंग स्थितहै ॥ ८२ ॥ जो कि सूर्यबिम्बके समान शोभित व सूर्यनारायण के मंडलसे भूषित है उसको स्पर्श लिंग जानिये और आप भक्तिसे उसको जानोगे ॥८३॥ वहापर परमेश्वर सदाशिव देवजी टिके हैं वहा तुम जावो और उग्र तप से सुरेश्वर महादेवजीका आराधन करो ॥ ८४ ॥ और देवदेवेश शिवजी को प्रसन्न कराकर शरीर को निर्मल कीजिये कि जिनके वरदान से शीघ्रही उत्तम रूप को पावोगे ॥८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसोमे

शमाश्रित्य सागरानूपसन्निधौ ॥ ८१ ॥ कृतस्मरस्यापरतो धन्वन्तरशतत्रये ॥ लिङ्गंमहाप्रभावञ्च स्वयम्भूतंव्यव स्थितम् ॥ ८२ ॥ सूर्यबिम्बसमप्रख्यं सूर्यमण्डलमण्डितम् ॥ स्पर्शलिङ्गंहितद्विद्धि तद्भक्त्याज्ञास्यतेभवान् ॥ ८३ ॥ यत्रसन्निहितोदेवः शङ्करःपरमेश्वरः ॥ गच्छत्वंतपसोग्रेण आराधयसुरेश्वरम् ॥ ८४ ॥ प्रसाद्यदेवदेवेशमात्मानंनि र्मलंकुरु ॥ यस्याशुवरदानेन प्राप्स्यसेरूपमुत्तमम् ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सोमेश्वरोत्पत्तिर्नामैको नविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ दक्षेणसमनुज्ञातश्शोचन्कर्मस्वकन्तदा ॥ दुःखशोकपरीतात्मा प्रभासंक्षेत्रमागतः ॥ १ ॥ सग त्वादक्षिणन्तीरं सागरस्यसमीपतः ॥ ददर्शपर्वतंतत्र कृतस्मरमितिश्रुतम् ॥ २ ॥ यक्षविद्याधराकीर्णं किन्नरैरुपशोभि तम् ॥ चन्दनागुरुकर्पूरैरशोकैस्तिलकैश्शुभैः ॥ ३ ॥ कह्लारैश्शतपत्रैश्च पुष्पितैःफलितैश्शुभैः ॥ आम्रजम्बूकपित्थै

श्वरोत्पत्तिर्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा। यथा सदाशिव देव सन चन्द्र लह्यो वरदान। सोइ बीस अध्याय महँ कीन्हो चरित बखान ॥ श्रीमहादेव जी बोले कि उससमय दक्ष जी से आज्ञा दिया हुआ दुःख व शोच से घिरा चन्द्रमा अपने कर्म को शोचता हुआ प्रभासक्षेत्र को आया ॥ १ ॥ व समुद्र के दक्षिण किनारेपर जाकर उसने वहां समीपही कृतस्मर ऐसे प्रसिद्ध पर्वत को देखा ॥ २ ॥ जो कि यक्षों व विद्याधरों से व्याप्त तथा किन्नरोंसे शोभित व चन्दन, अगुरु, कपूर, अशोक व उत्तम तिलक वृक्षों से शोभित था ॥३॥

और सन्ध्या में फूलनेवाले श्वेत कमलों व सामान्य कमलों से तथा फूले व फले हुये उत्तम आम, जामुन, कैथा व अनार और कटहर के वृक्षों से शोभित था ॥ ४ ॥ और नीम व जंभीरी निम्बू तथा नागकेसर व केलासमूह से शोभित सुपारी व नागवल्ली (पान) साखू, ताल व तमाल के वृक्षों से शोभित था ॥ ५ ॥ व बिजौरा, कपूर, मुनक्का, सौंफ, पाड़र, बिल्व, चन्दन गंधादिकों से तथा कदंब व अर्जुन वृक्षों से शोभित था ॥ ६ ॥ और धव शाक व करीरादिक नाना वृक्षों से शोभित तथा कामनाओं के अनुकूल फलोंवाले फूले व फले हुये उत्तम वृक्षों से शोभित था ॥ ७ ॥ व हंस तथा कारंडव पक्षियों से पूर्ण और चकई चकवाओं से

श्च दाडिमैःपनसैस्तथा ॥ ४ ॥ निम्बजम्बीरनागैश्च कदलीषण्डमण्डितैः ॥ क्रमुकैर्नागवल्ल्याद्यैश्शालैस्तालैस्तमालकैः ॥ ५ ॥ बीजपूरककर्पूरैर्द्राक्षामधुरपाटलैः ॥ बिल्वचन्दनगन्धाद्यैः कदम्बकुटजैस्तथा ॥ ६ ॥ धवशाककरीराद्यैर्नानावृक्षैश्चशोभितम् ॥ कामंकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैःफलितैश्शुभैः ॥ ७ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ कोकिलाभिश्शुकैश्चैव नानापक्षिनिनादितम् ॥ ८ ॥ जातिस्मराःपक्षिणश्चव्याचख्युर्मानुषीङ्गिरम् ॥ गन्धर्वकिन्नरगणैरप्सरोभिस्तथैवच ॥ ९ ॥ क्रीडद्भिर्विविधैर्दिव्यैः शोभितंपर्वतोत्तमम् ॥ देवगन्धर्वनृत्यैश्च वेणुवीणानिनादितम् ॥ १० ॥ वेदध्वनिनिनादेन यज्ञहोमाग्निहोत्रजैः ॥ धूमैस्समावृतंसर्वमाज्यगन्धिभिरुक्षितम् ॥ ११ ॥ शोभितंऋषिभिर्दिव्यैश्चातुर्विद्यैर्द्विजोत्तमैः ॥ अत्रिश्चैववसिष्ठश्च पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ १२ ॥ भृगुरत्रिर्मरीचिश्च भारद्वाजोथकश्यपः ॥ मनुर्यमोङ्गिराविष्णुश्शातातपपुरस्सराः ॥ १३ ॥ आपस्तम्बोथसंवर्त्तः काव्यःकात्यायनोमुनिः ॥ गौतमःश

शोभित था व कोकिला, सुवा और अनेक भांति के पक्षियोंसे शब्दितथा ॥ ८ ॥ व जातिके स्मरणवाले पक्षी मनुष्य के वचन को कहते थे और गधर्व व किन्नरों के गणों से तथा अप्सराओंसे ॥ ९ ॥ और खेलतेहुये अनेक भांतिके दिव्यगणोंसे वह उत्तम पर्वत शोभित था और देवताओं व गंधर्वों के नृत्योंसे तथा वेणु व वीणासे शब्दित था ॥ १० ॥ व वेदध्वनि के शब्द से शब्दित तथा यज्ञ होममें अग्निहोत्र से उपजे हुये धूमोंसे सब घिराथा व घृतकी सुगन्धियोंसे संयुतथा ॥ ११ ॥ और दिव्य ऋषियों व चारों वेदोंके जाननेवाले ब्राह्मणोंसे शोभितथा और अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुहल, क्रतु ॥ १२ ॥ भृगु, अत्रि, मरीचि, भारद्वाज, कश्यप, मनु, यम, अंगिरा और विष्णु व शातातप

आदिक ॥ १३ ॥ व आपस्तम्ब, संवर्त, शुक्राचार्य व कात्यायनि मुनि और गौतम, शंख, लिखित तथा बृहस्पति मुनि ॥ १४ ॥ व जमदग्नि जी के पुत्र परशुराम, याज्ञवल्क्य, ऋष्यशृंग, विभाडक, गार्ग्य, शौनक, दालभ्य, व्यास, उद्दालक, शुकदेव ॥ १५ ॥ नारद व पर्वत और उग्रतपस्वी दुर्वासा, शाकल्य, गालव, जाबालि, मुद्गल ॥ १६ ॥ विश्वामित्र, कौशिक, जह्नु,विश्वावसु, धौम्य, शतानन्द, वैशंपायन, जिष्णु ॥ १७ ॥ शाकटायन,वार्धिक्य, अग्निक, बादरायणि व महात्मा बालखिल्य और जो महर्षि लोग पृथ्वीमण्डल में स्थित थे ॥ १८ ॥ वे सब उस कृतस्मर पर्वत पै टिके थे और हे प्रिये ! ब्रह्मा के पुत्र धार्मिक व तेजस्वी ऋषिलोग ॥ १९ ॥

ङ्खलिखितौ तथावाचस्पतिर्मुनिः ॥ १४॥ जामदग्न्योयाज्ञवल्क्य ऋष्यशृङ्गोविभाण्डकः ॥ गार्ग्यश्शौनकदालभ्यौ व्यासउद्दालकश्शुकः ॥ १५ ॥ नारदःपर्वतश्चैव दुर्वासाउग्रतापसः ॥ शाकल्योगालवश्चैव जाबालिर्मुद्गलस्तथा ॥ १६ ॥ विश्वामित्रःकौशिकश्च जह्नुर्विश्वावसुस्तथा ॥ धौम्यश्चैवशतानन्दवैशम्पायनजिष्णवः ॥ १७ ॥ शाकटायनवार्धिक्यावग्निकोबादरायणिः ॥ वालखिल्यामहात्मानो येचभूमण्डलेस्थिताः ॥ १८ ॥ तेसर्वेतत्रतिष्ठन्ति पर्वते तुकृतस्मरे ॥ तेजस्विनोब्रह्मपुत्रा ऋषयोधार्मिकाःप्रिये ॥ १९ ॥ ज्वलन्तस्तपसासर्वे निर्धूमाइवपावकाः ॥ मासोपवासिनःकेचित्केचित्पक्षोपवासिनः ॥ २० ॥ त्रैरात्रिकास्सान्तपना निराहारास्तथापरे ॥ केचित्पुष्पफलाहाराः शीर्णपर्णाशिनस्तथा ॥ २१ ॥ केचिद्गोमयभक्षाश्च जलाहारास्तथापरे ॥ साग्निहोत्रास्सविद्वांसोमोक्षमार्गार्थचिन्तकाः ॥२२॥ इतिहासपुराणादिश्रुतिस्मृतिविशारदाः ॥ एतेचान्येचबहवो मार्कण्डेयपुरोगमाः ॥ २३ ॥ प्रभासंक्षेत्रमासाद्य संस्थि

सब तेज से विन धुवां की अग्नि की नाईं जलते थे कोई मासोपवासी व कोई पक्ष भर उपास करनेवाले थे ॥ २०॥ और कोई तीन रात्रियोंके बाद भोजन करनेवाले व कोई सान्तपन व्रतवाले और अन्य निराहारी थे कोई पुष्पों व फलोंके खानेवाले और कोई गिरेहुये पत्तोंको भोजन करनेवाले थे ॥ २१ ॥ व कोई गोमय खानेवाले तथा अन्य जलाहारी थे और अग्निहोत्र समेत कोई विद्वान् मोक्षमार्ग के अर्थ को चिन्तन करनेवाले थे ॥ २२ ॥ जो कि इतिहास व पुराणादिक तथा श्रुतियों व

स्मृतियों में चतुर थे ये और अन्य बहुत से मार्कण्डेय आदिक महर्षि ॥ २३ ॥ प्रभासक्षेत्र में प्राप्त होकर कृतस्मर पर्वत पै टिके हैं इस प्रकार वहां पर समस्त देवताओं से सेवित कृतस्मर पर्वत है ॥ २४ ॥ हे देवि ! इस मन्वन्तर में जो वडवाग्नि से जलाया गया है उस सुन्दर पर्वत व समुद्रको देखकर ॥ २५ ॥ तदनन्तर चन्द्रमाने सातबार करके प्रदक्षिणा किया और पर्वतकी प्रदक्षिणाकर चन्द्रमा वहां गया जहां कि समुद्र के समीप स्पर्श लिङ्ग के स्वरूपवाले महादेवजी थे उनको विभु (चन्द्रमा) ने प्रसन्न चित्तसे प्रसन्न कराया ॥ २६।२७ ॥ मरण सन्धान करके महेशजीकी शरणमें जाकर यह चिन्तन किया कि शाप नष्ट होने के लिये शिवजी से वरको

ताःकृतपर्वते ॥ एवंकृतस्मरस्तत्र सर्वदेवनिषेवितः ॥ २४ ॥ मन्वन्तरेस्मिन्योदेवि निर्दग्धोवडवाग्निना ॥ तन्दृष्ट्वापर्वतंरम्यं दृष्ट्वाचैवमहोदधिम् ॥ २५ ॥ प्रदक्षिणंततश्चक्रे सप्तकृत्वोनिशाकरः ॥ गिरेःप्रदक्षिणंकृत्वा गतोयत्रमहेश्वरः ॥ २६ ॥ समीपेतुसमुद्रेस्यस्पर्शलिङ्गस्वरूपवान् ॥ प्रसादयामासविभुः प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ २७ ॥ मरणंचविसन्धाय शरणंगत्यचेश्वरम् ॥ वरंशापाभिघातार्थं मृत्युंवाशङ्करात्पुनः ॥ २८ ॥ इतिसोमोमतिंकृत्वा तपसाराधयंशिवम् ॥ यावद्वर्षसहस्रन्तु फलमूलाशनोभवत ॥ २९ ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतु चतुर्थेवरवर्णिनि ॥ तुतोषभगवान्रुद्रो वाक्यंचेदमुवाचह ॥ ३० ॥ परितुष्टोस्मितेचन्द्र वरंवरयसुव्रत ॥ किन्तेकामंकरोम्यद्य ब्रूहियत्स्यात्सुदुर्लभम् ॥ ३१ ॥ एवंप्रत्यक्षमापन्नं दृष्ट्वादेवंवृषध्वजम् ॥ प्रणम्यतंयथाभक्त्यास्तुतिंचक्रेनिशाकरः ॥ चन्द्रउवाच ॥ ३२ ॥ ॐनमोदेवदेवाय शिवायपरमात्मने ॥ अप्रमेयस्वरूपाय व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणे ॥ ३३ ॥ त्वङ्गतिस्सर्वभूतानां त्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥

पाऊंगा या फिर मृत्युको पाऊंगा ॥ २८ ॥ ऐसी बुद्धि करके शिवजी का आराधन करता हुआ चन्द्रमा हज़ार वर्षतक फलों व मूलोंको भोजन करता भया ॥ २९ ॥ हे वरवर्णिनि ! चौथा हज़ारवर्ष पूर्ण होनेपर भगवान् शिवजी प्रसन्न हुये व यह वचन बोले ॥ ३० ॥ कि हे सुव्रत, चन्द्रमा ! तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्नहूं वरदान को मांगिये मैं आज तुम्हारा क्या मनोरथ करूं जो दुर्लभहो उसको कहिये ॥ ३१ ॥ इसप्रकार प्रत्यक्ष में प्राप्त शिवदेवजी को देखकर चन्द्रमाने भक्तिपूर्वक उनको प्रणामकर स्तुति किया ॥ ३२ ॥ कि देवदेव परमात्मा शिवजी के लिये नमस्कार है व प्रकट तथा अप्रकटरूपवाले व अनन्तस्वरूपवाले के लिये प्रणाम है ॥ ३३ ॥ समस्त

त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कारस्त्वमोङ्कारःप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ चतुर्विंशत्यधिकंच भवनानांशतद्वयम् ॥ तस्योपरिपरंज्योतिर्जागर्त्तितवकेवलम् ॥ ३५ ॥ कल्पान्तआदिवाराहमुक्तंब्रह्माण्डसंस्थितौ ॥ आधारस्तम्भभूताय तेजोलिङ्गायतेनमः ॥ ३६ ॥ नमोवामायतेभीम नमस्तेकृत्तिवाससे ॥ नमोभैरवनाथाय नमस्सोमेश्वरायते ॥ ३७ ॥ इतिसंज्ञाभिरेताभिः स्तुत्याभिरमृतेश्वर ॥ भूतैर्भव्यैर्भविष्यैश्च स्तूयसेसुरसत्तमैः ॥ ३८ ॥ आद्योविरञ्चिनामाभूद्ब्रह्मालोकपितामहः ॥ मृत्युंजयेतियन्नाम तदाभूत्पार्वतीपतेः ॥ ३९ ॥ द्वितीयोभूद्यदाब्रह्मा पद्मभूरितिविश्रुतः ॥ ततःकालाग्निरुद्रेति तवनामप्रकीर्तितम् ॥ ४० ॥ तृतीयोभूद्यदाब्रह्मा स्वयंभूरितिविश्रुतः ॥ अमृतेशेतित्वन्नाम कीर्तितंकीर्तिवर्द्धनम् ॥ ४१ ॥ चतुर्थोभूद्यदाब्रह्मा परमेष्ठीतिविश्रुतः ॥ अनामयेतिदेवस्यतवनामस्मृतन्तदा ॥ ४२ ॥ पञ्चमोभूद्यदाब्रह्मा हेमगर्भइतिश्रुतः ॥ तदाभैरवनाथेति तवनामप्रकीर्तितम् ॥ ४३ ॥ अधुनावर्त्ततेयोसौ शतानन्दइतिश्रुतः ॥ आदिसोमेनयश्चा

प्राणियों की तुम्हीं गतिहो और तुम में सब प्रतिष्ठित है तुम यज्ञहो व तुम वषट्कार हो और तुम ॐकार व प्रजापति हो ॥ ३४ ॥ चौबीस अधिक जो दोसौ भवन हैं उसके ऊपर केवल तुम्हारी उत्तम ज्योति जागती है ॥ ३५ ॥ ब्रह्माण्ड की स्थिति में कल्पान्त में पहला वाराहकल्प कहा गया है आधार के स्तम्भभूत व तेजस्वी लिङ्गवाले आप के लिये प्रणामहै ॥ ३६ ॥ हे भीम ! वाम नामवाले आपके लिये प्रणाम है व व्याघ्रचर्मवसनवाले आप के लिये प्रणाम है भैरवनाथ के लिये प्रणाम है तथा सोमेश्वर आप के लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे अमृतेश्वर ! इन संज्ञाओं व इन स्तुतियों से भूत, भव्य व भविष्य सुरोत्तमों करके स्तुति किये जाते हो ॥ ३८ ॥ लोकों के पितामह प्रथम ब्रह्माजी विरञ्चिनामक हुये हैं उस समय पार्वती के पति शिवजी का जो कि मृत्युञ्जय ऐसा नाम हुआ है ॥ ३९ ॥ और जब पद्मभू ऐसे प्रसिद्ध दूसरे ब्रह्मा हुये तब कालाग्नि रुद्र ऐसा तुम्हारा नाम कहा गया है ॥ ४० ॥ व स्वयंभू ऐसे प्रसिद्ध जब तीसरे ब्रह्मा हुये तब अमृतेश ऐसा यशको बढ़ाने वाला तुम्हारा नाम कहा गया है ॥ ४१ ॥ और जब परमेष्ठी ऐसे प्रसिद्ध चौथे ब्रह्मा हुये तब आप का अनामय ऐसा नाम कहा गया है ॥ ४२ ॥ और जब हेमगर्भ ऐसे प्रसिद्ध पांचवें ब्रह्मा हुये हैं तब भैरवनाथ ऐसा तुम्हारा नाम कहा गयाहै ॥ ४३ ॥ इस समय जो ये शतानन्द ऐसे प्रसिद्धहैं जो ये कि बायें नेत्रसे उपजेहुये आदि सोम से

तुम्हारे ॥ ४४ ॥ लिङ्गकी प्रतिष्ठा के लिये आठ वर्षवाले बालरूपी लायेगयेथे तब उसी कारण तुम्हारा सोमनाथ ऐसा नाम कहा गयाहै ॥ ४५ ॥ तब से लगाकर दो लाख दोहज़ार एकसौ छह चन्द्रमा व्यतीत हुये हैं ॥ ४६ ॥ और हे महादेवजी ! सातवां मैं आत्रेय ऐसा प्रसिद्धहूं व प्रचेता के पुत्र दक्षजी से शापित मैं तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं ॥ ४७ ॥ हे देवदेवेश ! पापरोगवाले मुझ क्षयी की रक्षा कीजिये इस प्रकार स्तुति करतेहुये चन्द्रमा के ऊपर दयाकारक ॥ ४८ ॥ भगवान् शिवजी प्रसन्नहुये और यह वचन बोले महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, चन्द्रमा ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं वरदान मांगिये ॥ ४९ ॥ मैं आज तुम्हारा क्या मनोरथ करूं जो

सो वामनेत्रभवेनते ॥ ४४ ॥ प्रतिष्ठार्थन्तुलिङ्गस्य आनीतश्चाष्टवार्षिकः ॥ बालरूपीतदातेन सोमनाथेतिकीर्त्तितम् ॥ ४५ ॥ तदाप्रभृतिसोमानां लक्षाणांद्वितयङ्गतम् ॥ सहस्रद्वितयञ्चैव शतञ्चैवषडुत्तरम् ॥ ४६ ॥ सप्तमोहंमहादेव आत्रेयइतिविश्रुतः ॥ प्राचेतसेनदक्षेण शप्तस्त्वांशरणङ्गतः ॥ ४७ ॥ रक्षमान्देवदेवेश क्षयिणंपापरोगिणम् ॥ इतिसंस्तुवतस्तस्य चन्द्रस्यकरुणाकरः ॥ ४८ ॥ तुतोषभगवान्रुद्रो वाक्यंचेदमुवाचह ॥ ईश्वरउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेचन्द्र वरंवरयसुव्रत ॥ ४९ ॥ किन्तेकामंकरोम्यद्य ब्रूहियत्स्यात्सुदुर्लभम् ॥ ममनामानिगुह्यानि ममप्रियतराणिच ॥ ५० ॥ पठिष्यन्तिनरायेच दास्येतेषांमनोगतम् ॥ अतीतायेचन्द्रमसो भविष्यन्तिचयेधुना ॥ ५१ ॥ तेषांपूज्यमिदंलिङ्गं यावदन्योष्टवार्षिकः ॥ अतःपरंचतुर्वक्त्रो ब्रह्मान्योभवितायदा ॥ ५२ ॥ प्राणनाथेतिदेवस्य तदानामभविष्यति ॥ प्राणस्तुवासवःप्रोक्तस्तदाराधननामतत ॥ ५३ ॥ प्राणनाथेतिसम्प्रोक्तमधुनातद्भविष्यति ॥ तस्मादग्नीशनामेति कालरु

बहुतही दुर्लभ हो उसको कहिये मुझको बहुतही प्यारे मेरे गुप्त नामों को ॥ ५० ॥ जो मनुष्य सदैव पढ़ैंगे उनके मनमें प्राप्त मनोरथ को मैं दूंगा जो चन्द्रमा व्यतीत हुये हैं और जो इस समय होवैंगे ॥ ५१ ॥ यह लिङ्ग उनके तबतक पूजनीय होवेगा जब तक कि अन्य आठ वर्षवाले ब्रह्मा होवैंगे इसके उपरान्त जब चार मुखवाले अन्य ब्रह्मा होवैंगे ॥ ५२ ॥ तब प्राणनाथ ऐसा शिवदेवजीका नाम होगा प्राण इन्द्र कहेगये हैं वह उनके आराधनवाला नाम है ॥ ५३ ॥ इस समय प्राणनाथ ऐसा

कहा हुआ वह नाम होगा इस कारण अग्नीश ऐसा नाम व इसके उपरान्त कालरुद्र ऐसा नाम होगा ॥ ५४ ॥ उसके उपरान्त तुम्हारा तारक ऐसा भविष्य नाम कहा गया है तदनन्तर शिवदेवजी का मृत्युञ्जय ऐसा भविष्य नाम होगा ॥ ५५ ॥ उसके उपरान्त त्र्यम्बक,अमृतेश व भुवनेश ऐसा नाम होगा तदनन्तर भूतनाथ व घोर और ब्रह्मेश ऐसा नाम होगा ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर पृथिवीश व आदिनाथ ऐसा नाम होगा शिवदेवजी का जो नाम होनेवाला है वह तुमसे प्रकाशित किया गया ॥ ५७ ॥ इत्यादिक असंख्य नाम हैं और ये सोलह नाम होवैंगे व काल के अनन्त होनेसे ॥ ५८ ॥ ब्रह्मा के प्रलय पर्यन्त एक एक नाम वर्तमान होताहै ॥ ५९ ॥

द्रेत्यनन्तरम् ॥ ५४ ॥ तारकेतिततोनाम भविष्यन्तवकीर्त्तितम् ॥ मृत्युंजयेतिदेवस्य भविष्यंतदनन्तरम् ॥ ५५ ॥ त्र्यम्बकेत्यमृतेशेति भुवनेशेत्यनन्तरम् ॥ भूतनाथेतिघोरेति ब्रह्मेशेत्यथनामकम् ॥ ५६ ॥ भविष्यपृथिवीशेति आदिनाथेत्यनन्तरम् ॥ नामदेवस्ययद्भावि साम्प्रतन्तेप्रकाशितम् ॥ ५७ ॥ इत्येवमादिनामानि असंख्यातानिषोडश ॥ एतानिसम्भविष्यन्ति कालस्यानन्तभावितः ॥ ५८ ॥ एकैकंवर्त्ततेनाम ब्रह्मणःप्रलयावधि ॥ ५९ ॥ ततोन्यज्जायतेनाम यथानामानुरूपतः ॥ अथकिंबहुनोक्तेन रहस्यन्तेप्रकाशितम् ॥ ६० ॥ वत्सयत्कारणेनेह तपस्तप्तंत्वयाखिलम् ॥ तन्मेनिश्शेषतोब्रूहि दास्येतुष्टोस्मितेवरम् ॥ ६१ ॥ चन्द्रउवाच ॥ अहंशप्तोस्मिदक्षेण कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ यक्ष्मणाचक्षयन्नीतस्तस्मात्त्वंत्रातुमर्हसि ॥ ६२ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अधुनाभोःसमंपश्य सर्वास्तादक्षकन्यकाः ॥ ६३ ॥ क्षयस्तेभवितापक्षं पक्षंवृद्धिर्भविष्यति ॥ पूर्वोचितांप्रभांसोम प्राप्स्यसेमत्प्रसादतः ॥ ६४ ॥ प्राचेतसस्यदक्षस्य तप

तदनन्तर नामके अनुसार अन्य नाम होताहै अब बहुत कहने से क्या है तुमसे यह गुप्त चरित्र कहागया ॥ ६० ॥ हे वत्स ! जिस कारणसे तुमने यहां सब तप कियाहै उसको सम्पूर्णता से मुझसे कहिये मैं प्रसन्न हूं और तुमको वरदान दूगा ॥ ६१ ॥ चन्द्रमा बोले कि किसी कारण के मध्य में दक्षजीने मुझको शाप दिया है और मैं यक्ष्मारोगसे क्षयको प्राप्त किया गया उससे तुम रक्षा करने के योग्य हो ॥ ६२ ॥ महादेवजी बोले कि हे चन्द्रमा ! इस समय तुम दक्षजीकी उन सब कन्याओंको समान देखो ॥ ६३ ॥ पक्षभर तुम्हारा क्षय होगा और पक्षभर तुम्हारी वृद्धि होगी व हे चन्द्रमा ! मेरी प्रसन्नतासे तुम पहले के योग्य प्रभा को पावोगे ॥ ६४ ॥ और

प्रचेताके पुत्र दक्षजी का वचन तपस्यासे यक्ष्म अचल होगा क्योंकि उनका वचन देवताओं से भी अन्यथा नहीं किया जासक्ताहै ॥ ६५ ॥ और क्रोधित ब्राह्मण नाश करते हैं व अपने तेजसे भस्म करते हैं तथा देवोंको अदेव करतेहैं और इस संसारको नाश करसक्ते हैं ॥ ६६ ॥ क्योंकि ब्राह्मण व देवता एकही तेज दो विभाग कियागया है ब्राह्मण देवता प्रत्यक्ष हैं और स्वर्ग में देवता परोक्ष हैं ॥ ६७ ॥ देवताओंके विना ब्राह्मण नहीं हैं व ब्राह्मणों के विना देवता नहीं हैं एकत्र याने ब्राह्मणों में मंत्र स्थित हैं और एक ठौर पै याने देवताओं में हवि स्थित है ॥ ६८ ॥ संसारमें ब्राह्मण देवताहैं और स्वर्ग में ब्राह्मण देवताहैं व त्रिलोक में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं और ब्राह्मणही कारण

सायक्ष्मवचःस्थिरम् ॥ तस्यान्यथावचःकर्त्तुंशक्यंनान्यैस्सुरैरपि ॥ ६५ ॥ ब्राह्मणाःकुपिताहन्युर्भस्मीकुर्युस्स्वतेजसा ॥ देवान्कुर्युरदेवांश्च नाशयेयुरिदंजगत् ॥ ६६ ॥ ब्राह्मणाश्चैवदेवाश्च तेजएकंद्विधाकृतम् ॥ प्रत्यक्षंब्राह्मणादेवाः परोक्षंदिविदेवताः ॥ ६७ ॥ नविनाब्राह्मणादेवैर्देवानोब्राह्मणैर्विना ॥ एकत्रमन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्रतिष्ठति ॥ ६८ ॥ ब्राह्मणादेवताल्लोके ब्राह्मणादिविदेवताः ॥ त्रैलोक्येब्राह्मणाःश्रेष्ठाब्राह्मणाएवकारणम् ॥ ६९ ॥ मन्त्रैर्नियुक्ताःपितरोभवन्ति क्रियासुदैवीषुभवन्तिदेवाः ॥ द्विजोत्तमाहस्तनिषक्ततोयास्तेनैवदेहेनभवन्तिदेवाः ॥ ७० ॥ षट्कर्मतत्त्वाभिरतेषुनित्यं विप्रेषुवेदार्थकुतूहलेषु ॥ नतेषुभक्त्याप्रविशन्तिघोरं महाभयंप्रेतभवंकदाचित ॥ ७१ ॥ यद्ब्राह्मणास्तत्र समावदन्ति तद्दैवताकर्मभिराचरन्ति ॥ तुष्टेषुतुष्टास्सततंभवन्ति प्रत्यक्षदेवेषुपरोक्षदेवाः ॥ ७२ ॥ यथारुद्रायथादेवा मरुतोवामवोश्विनौ ॥ ब्रह्माथसोमसूर्यौच तथालोकेद्विजोत्तमाः ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणानर्चयेन्नित्यं ब्राह्मणांस्तर्पयेत्सदा ॥

हैं ॥६९॥ मंत्रोंसे नियुक्त द्विजोत्तम पितर होतेहैं और देवकार्योंमें देवता होते हैं व हाथमें धरे हुये जलवाले ब्राह्मण उसी शरीरसे देवता होतेहैं ॥ ७० ॥ छह कर्मोंके तत्त्वों में नित्यही परायण और वेदोंके अर्थों में कौतुकवाले उन ब्राह्मणोंमें भक्तिके कारण प्रेतसे उत्पन्न भयंकर महाभय कभी प्रवेश नहीं करती है ॥ ७१ ॥ वहां जो ब्राह्मण कहते हैं उसको देवता कर्मोंसे करते हैं और प्रत्यक्ष देवता याने ब्राह्मणोंके प्रसन्न होनेपर परोक्षवाले देवता सदैव प्रसन्न रहते हैं ॥ ७२ ॥ हे ब्राह्मणो! जैसे रुद्र हैं व जैसे पवन देवता और इन्द्र व अश्विनीकुमार हैं व जैसे ब्रह्मा, चन्द्रमा और सूर्यहैं वैसेही संसारमें देवता हैं ॥ ७३ ॥ नित्यही ब्राह्मणोंको पूजै व सदैव ब्राह्मणोंको

तृप्तकरै ससार में ब्राह्मण तारनेवाले हैं व ब्राह्मण स्वर्गको भोगते हैं ॥७४॥ भेदन न करने योग्य व न काटने योग्य तथा अनादि व अक्षय प्राचीन विधिको जो पालते हैं उन ब्राह्मणोंको पूजकर राजा स्वर्गमें देवराजकी नाईं अजेय होता है ॥ ७५ ॥ नाराच व बाणसे कवच काटी जासक्ती है परन्तु हजारों वज्रोंमे भी ब्राह्मणोंका आशीर्वाद नहीं काटा जासक्ता है ॥ ७६ ॥ हवन से पाप शान्त होता है और पापमे हवन शान्त होजाता है व मैं सुवर्ण के दानसे और सुवर्ण ब्राह्मणों के आशीर्वाद से शान्त होताहै ॥ ७७ ॥ यदि पुत्र पशु व बन्धुवों समेत जिसको पुरुष नरक को लेजाना चाहै तो उसको देवताओं में व गौवों तथा ब्राह्मणों में अधिकारी करै ॥ ७८ ॥ जो

ब्राह्मणास्तारकालोके ब्राह्मणास्स्वर्गमश्नुते ॥ ७४ ॥ अभेद्यमच्छेद्यमनादिमक्षयं विधिम्पुराणंप्रतिपालयन्ति ॥ महीपतिस्तानभिपूज्यवैद्विजान् भवेदजेयोदिविदेवराडिव ॥ ७५ ॥ शक्यंहिकवचम्भेत्तुं नाराचेनशरेणवा ॥ अपिवज्रमहस्रेण ब्राह्मणाशीःसुदुर्भिदा ॥ ७६ ॥ हुतेनशाम्यतेपापं हुतंपापेनशाम्यति ॥ अहंहिरण्यदानेन हिरण्यंब्राह्मणाशिषा ॥ ७७ ॥ यदीच्छेन्नरकंनेतुं सपुत्रपशुबान्धवम् ॥ देवेष्वधिकृतंकुर्याद्गोषुचब्राह्मणेषुवा ॥ ७८ ॥ ब्राह्मणान्द्वेष्टियो मोहाद्देवान्गाश्चमखानपि ॥ नैवतस्यपरोलोको नायंलोकोदुरात्मनः ॥ ७९ ॥ अनिन्द्याब्राह्मणागावः काञ्चनंसलिलंस्त्रियः ॥ पृथिवीचषडेतानि योनिन्दतिसपातकी ॥ ८० ॥ अग्रंधर्मस्यराजानो मूलंधर्मस्यब्राह्मणाः ॥ तस्मान्मूलमहिंसीत मूलेह्यग्रंप्रतिष्ठितम् ॥ ८१ ॥ फलंधर्मस्यराजानःपुष्पंधर्मस्यब्राह्मणाः ॥ तस्मात्पुष्पन्नहिंसीत पुष्पात्सञ्जायतेफलम् ॥ ८२ ॥ राजावृक्षोब्राह्मणस्तस्यमूलं पौराःपर्णमन्त्रिणस्तस्यशाखाम् ॥ तस्माद्राज्ञाब्राह्मणारक्षणी

अज्ञानसे ब्राह्मणों व देवताओं और गौवों तथा यज्ञोंसे भी वैर करताहै उस दुष्टको न यह लोक होताहै और न परलोक होताहै ॥ ७९ ॥ ब्राह्मण, गऊ, सुवर्ण, जल, स्त्री व पृथ्वी ये निन्दा करने योग्य नहीं हैं और जो इन छह की निन्दा करताहै वह पापी है ॥ ८० ॥ राजालोग धर्मका अग्रभाग हैं व ब्राह्मण धर्मकी जड़ हैं इसलिये मूलका नाश न करै क्योंकि मूलमें अग्रभाग स्थिर होताहै ॥ ८१ ॥ व राजा धर्मका फलहैं और ब्राह्मण धर्मका पुष्पहैं इसलिये पुष्पको न नाश करै क्योंकि पुष्पसे फल होता है ॥ ८२ ॥ राजा वृक्ष है और ब्राह्मण उसकी जड़ है व पुरवासी पत्ते हैं और मंत्री उसकी शाखा हैं इसलिये राजाको ब्राह्मणोंकी रक्षा करना चाहिये क्योंकि मूलके

रक्षित होनेपर वृक्षका नाश नहीं होता है ॥ ८३ ॥ अग्नि समीपवाली जलाती है और ब्राह्मण दूरहीसे जलाता है व अग्नि से जलाया हुआ जमताहै और ब्राह्मण से जलाया हुआ नहीं जमता है ॥ ८४ ॥ ब्राह्मणों के शापसे अग्नि सर्वभक्षी हुये व समुद्र न पीने योग्य और इन्द्र फलसे रहित हुये ॥ ८५ ॥ व हे चन्द्रमा ! तुम राजयक्ष्मी हुये और पृथ्वी में ऊषरहुये तथा उन चन्द्रमा व सूर्यका फिर उद्धार हुआ ॥ ८६ ॥ वनस्पतियों के गोंद व दानवों का पराजय तथा नागों का वशीकरण व क्षत्रियों को क्लेश देना ॥ ८७ ॥ व देवताओं की उत्पत्ति का विलोम और लोकों का उलटा होना इत्यादिक तेज महात्मा ब्राह्मणों के हैं ॥ ८८ ॥ इसलिये राजा महात्मा ब्राह्मणों

प्रोहत्यग्निनादग्धं ब्रह्मदग्धंनरो या मूलेगुप्तेनास्तिवृक्षस्यनाशः ॥ ८३ ॥ आसन्नोहिदहत्यग्निर्दूराद्दहतिब्राह्मणः ॥ प्ररोहत्यग्निनादग्धं ब्रह्मदग्धंनरो या ॥ ८४ ॥ ब्राह्मणानाञ्चशापेन सर्वभक्षीहुताशनः ॥ समुद्रश्चाप्यपेयस्तु विफलश्चपुरन्दरः ॥ ८५ ॥ त्वंचन्द्रराजयक्ष्मीच पृथिव्यामूषराणिच ॥ सूर्यचन्द्रमसोर्जातं पुनरुद्धरणंतयोः ॥ ८६ ॥ वनस्पतीनांनिर्यासो दानवानांपराजयः ॥ नागानाञ्चवशीकारश्क्षत्रस्योत्सादनंतथा ॥ ८७ ॥ देवोत्पत्तिविपर्यासो लोकानाञ्चविपर्ययः ॥ एवमादीनितेजांसि ब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ ८८ ॥ तस्माद्विप्रेषुनृपतिः प्रीणनंहिमहात्मसु ॥ परामप्यापदंप्राप्तो ब्राह्मणान्नचकोपयेत ॥ ८९ ॥ तेह्येनंकुपिताहन्युस्सद्यस्सबलवाहनम् ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतंमहत ॥ ९० ॥ एवंविद्वानविद्वांश्च ब्राह्मणोदैवतंमहत ॥ श्मशानेष्वपितेजस्वी पावकोनैवदुष्यति ॥ ९१ ॥ हूयमानश्चयज्ञेषु भूयएवाभिवर्द्धते ॥ एवंयद्यप्यनिष्टेषु वर्त्ततेसर्वकर्मसु ॥ ९२ ॥ सर्वथाब्राह्मणःपूज्यो दैवतंपरमंमहत ॥ क्षत्रस्यातिप्रवृद्धस्य ब्राह्मणान्प्रति

को तृप्तकरै और बड़ी विपत्ति में प्राप्त भी राजा ब्राह्मणों को न क्रोधित करावै ॥ ८९ ॥ क्योंकि क्रोधित होतेहुये वे ब्राह्मण उसी क्षण सेना व सवारियों समेत इस राजाको नाशते हैं जैसे प्रणीत (संस्कार कीहुई) व अप्रणीत अग्नि बड़ा भारी देवता है ॥ ९० ॥ वैसेही विद्वान् और मूर्ख ब्राह्मण बड़ा देवता है श्मशान में भी तेजस्वी अग्नि नहीं दूषित होती है ॥ ९१ ॥ और यज्ञों में हवन कीजातीहुई अग्नि फिर बढ़तीही है ऐसेही यद्यपि सब अशुभ कर्मों में वर्तमान होवै ॥ ९२ ॥ तथापि

बड़ा भारी उत्तम देवता ब्राह्मण सब भांति से पूजनीय होताहै ब्राह्मणों के ऊपर सब भांति से पीड़ा में प्रवृत्त क्षत्रिय का ॥ ९३ ॥ ब्राह्मणही नियन्ता (दण्डकारक) है क्योंकि क्षत्रिय ब्राह्मण से उत्पन्न है जलों से अग्नि व ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोह उत्पन्न है ॥ ९४ ॥ और उनका सब कहीं जानेवाला तेज अपनेही उत्पत्ति स्थानों में शान्त होजाताहै जिनके आश्रित होकर सदैव देवलोक स्थित होते हैं ॥ ९५ ॥ व जिनका वेदही वचन है उन ब्राह्मणों की जीनेकी इच्छावाला कौन हिंसा करै और मरता हुआ भी राजा ब्राह्मणसे कर न लेवै ॥ ९६ ॥ व राज्य में बसता हुआ ब्राह्मण क्षुधा से दुःखित न होवै क्योंकि जिस राजा के देशमें ब्राह्मण

सर्वशः ॥ ९३ ॥ ब्रह्मैवसन्नियन्तृस्यात्क्षत्रंहिब्रह्मसम्भवम् ॥ अद्भ्योग्निर्ब्रह्मतःक्षत्रमश्मनोलोहमुत्थितम् ॥ ९४ ॥ तेषांसर्वत्रगन्तेजः स्वासुयोनिषुशाम्यति ॥ यान्समाश्रित्यतिष्ठन्ति देवलोकाश्चसर्वदा ॥ ९५ ॥ ब्रह्मैववचनंयेषां को हिंस्यात्ताञ्जिजीविषुः ॥ म्रियमाणोप्याददीत नराजाब्राह्मणात्करम् ॥ ९६ ॥ नचक्षुधाचसंसीदेद्ब्राह्मणोविषयेवसन् ॥ यस्यराज्ञश्चविषये ब्राह्मणस्सीदतिक्षुधा ॥ ९७ ॥ तस्यैवक्षुधयाराष्ट्रमचिरादेवसीदति ॥ यद्राजाकुरुतेपापं प्रमादादेवविभ्रमात् ॥ ९८ ॥ वसन्तोब्राह्मणाराष्ट्रे श्रोत्रियाश्शमयन्तितत् ॥ पूर्वरात्रान्तरात्रंच द्विजैर्यस्यविधीयते ॥ ९९ ॥ सराजासहराष्ट्रेण वर्द्धतेब्रह्मतेजसा ॥ ब्राह्मणान्पूजयेन्नित्यं प्रातरुत्थायभूमिपः ॥ १०० ॥ ब्राह्मणानांप्रसादेन दीव्यन्तिदिविदेवताः ॥ अथकिंबहुनोक्तेन ब्राह्मणामामकीतनुः ॥ १ ॥ येकेचित्सागरान्तायां पृथिव्यांकीर्त्तिताद्विजाः ॥ तद्रूपन्देवदेवस्य शिवस्यपरमात्मनः ॥ २ ॥ येतान्द्विषन्तिवैमूढा ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् ॥ तेमांद्विषन्ति

क्षुधा से दुःखित होताहै ॥ ९७ ॥ उसी की राज्य शीघ्रही क्षुधा से क्लेशित होती है राजा जिस पाप को असावधानता व भ्रमसे करताहै ॥ ९८ ॥ उसको राज्यमें बसते हुये वेदपात्र ब्राह्मण शान्त करते हैं व ब्राह्मण जिस राजा का पूर्वरात्र व अन्तरात्र कर्म करते हैं ॥ ९९ ॥ वह राजा राज्य समेत ब्रह्मतेज मे बढ़ता है नित्य प्रातःकाल उठकर राजा ब्राह्मणों को पूजै ॥ १०० ॥ क्योंकि ब्राह्मणों की प्रसन्नता से देवता स्वर्ग में प्रसन्न रहते हैं अथवा बहुत कहने से क्या है ब्राह्मण मेरी देह हैं ॥ १ ॥ व समुद्र अन्तवाली पृथ्वी में जो कोई ब्राह्मण कहेगये हैं वे परमात्मा देवदेव शिवजी का रूप हैं ॥ २ ॥ प्रशंसित नियमोंवाले ब्राह्मणोंसे जो मूर्ख वैर करते हैं वे मुझ

से द्वेष करते हैं और उनको पूजते हुये वे मुझे पूजते हैं ॥ ३ ॥ इसलिये विज्ञानी पुरुषको ब्राह्मणों में वैर न करना चाहिये क्योंकि द्वेष से ब्राह्मणों के शाप से नष्ट मनुष्य नाश होजाते हैं ॥ ४ ॥ हे चन्द्रमा! यह इस भांति ब्राह्मणों के गुणों का समुद्र कहा गया ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर हे निशाकर ! मैं जो तुमसे कहताहूं उस कार्य को कीजिये मैंने तुमको शाप का अनुग्रह दिया ॥ ६ ॥ और उन ब्राह्मणों का वचन शाप के अनुग्रहको देनेवाले इन्द्र समेत सब देवताओं से भी अन्यथा नहीं किया जासक्ता है ॥ ७ ॥ इसलिये हे चन्द्रमा ! विशेषकर जानतेहुये तुमको शोच न करना चाहिये पक्षभर तुम्हारा क्षय होगा और पक्षभर वृद्धि होगी ॥ ८ ॥ व हे

येनूनं पूजमानायजन्तिमाम् ॥ ३ ॥ नचद्वेषस्ततःकार्यो ब्राह्मणेषुविजानता ॥ प्रद्वेषेणप्रणश्यन्ति ब्रह्मशापहतानराः ॥ ४ ॥ इत्येवंकथितश्चन्द्र ब्राह्मणानांगुणार्णवः ॥ ५ ॥ कुरुष्वानन्तरंकार्यं यद्ब्रवीम्यहमेवते ॥ शापस्यानुग्रहोदत्तो मयातवनिशाकर ॥ ६ ॥ नचान्यथावचःकर्त्तुं शक्यन्तेषांद्विजन्मनाम् ॥ शापानुग्रहदैस्सर्वैर्देवैरपिसवासवैः ॥ ७ ॥ तस्माच्चन्द्रत्वयाशोको नैवकार्योविजानता ॥ क्षयस्तेभवितापक्षं पक्षंवृद्धिर्भविष्यति ॥ ८ ॥ अन्यद्यद्वचनंचन्द्र यथाकार्यंतथाशृणु ॥ इदंयत्सागरोपान्ते तिष्ठतेलिङ्गमुत्तमम् ॥ ९ ॥ धरामध्यगतंतच्च देवानांदृष्टिगोचरम् ॥ कुक्कुटाण्डसमप्रख्यं सर्पमेखलमण्डितम् ॥ १० ॥ ममाद्यंपरमंतेजो नचान्योवेदकश्चन ॥ सागरस्यचमध्येतु धनुषाञ्शतत्रये ॥ ११ ॥ तिष्ठतेतत्रलिङ्गन्तु सुगुप्तंलक्षणान्वितम् ॥ आदिकल्पेमहर्षीणां शापेनपतितंमहत् ॥ १२ ॥ लिङ्गंसागरमध्ये तु तत्त्वंशीघ्रंसमानय ॥ स्पर्शाख्यंयच्चमेलिङ्गं तत्रस्थानेनिवेशय ॥ १३ ॥ निवेश्यतुप्रयत्नेन सहितोविश्वकर्मणा ॥

चन्द्रमा ! और जो वचन जिस प्रकार करना चाहिये उसको वैसेही सुनिये कि समुद्र के समीप जो यह उत्तम लिङ्ग स्थित है ॥ ९ ॥ पृथ्वी के मध्य में प्राप्त वह देवताओं के दृष्टिगोचर है जो कि कुक्कुट (मुर्गा) के अण्डा के प्रमाण भर व सर्पों की मेखला से शोभित है ॥ १० ॥ मेरे उस आदि उत्तम तेज को अन्य कोई नहीं जानता है और समुद्र के बीचमें तीनसौ धनुषपै ॥ ११ ॥ वहां अत्यन्त गुप्त व लक्षणों से संयुत वह लिङ्ग स्थित है जो कि बड़ा भारी लिङ्ग पहले कल्प में महर्षियों के शाप से गिरा है ॥ १२ ॥ उस लिङ्गको तुम शीघ्रही समुद्र के बीच में लाओ और स्पर्शनामक जो मेरा लिङ्ग है उस स्थान पै स्थापित कीजिये ॥ १३ ॥

और विश्वकर्मा समेत बड़े यत्न से स्थापित कर तदनन्तर मुनीश्वरों समेत ब्रह्माको बुलाकर ॥ १४ ॥ हे विभो ! वहां बड़े भारी यज्ञों से पूजनकर प्रतिष्ठा कराइये ऐसा कहकर वे भगवान् शिवजी वहीं पर अन्तर्द्धान होगये ॥ १५ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! निशानाथ (चन्द्रमा) ने फिर प्रभा को पाया तब से लगाकर वह क्षेत्र प्रभास ऐसा प्रसिद्ध है ॥ १६ ॥ वहां प्रभाहीन चन्द्रमा को प्रभा दीगई उस से वह क्षेत्र प्रभास ऐसा कहाजाता है और दक्षजी का शाप वृथा नहीं कियागया उससे चिह्न है ॥१७ ॥ शिवजीसे वरदानको पाकर चन्द्रमा लोकोंको प्रकाशित करताहै और वे देवेश शिवजी महात्मा चन्द्रमाके लिये प्रकट हुये हैं ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे

ततोब्रह्माणमाहूय समेतन्तुमुनीश्वरैः ॥ १४ ॥ प्रतिष्ठाङ्कारयविभो इष्ट्वातत्रमहामखैः ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १५ ॥ ततःप्रभाम्पुनर्लेभे रात्रिनाथोवरानने ॥ ततःप्रभृतितत्क्षेत्रं प्रभासमितिविश्रुतम् ॥ १६ ॥ निष्प्रभस्यप्रभादत्ता प्रभासन्तेनचोच्यते ॥ दक्षस्यतुवृथाशापो नक्रुतस्तेनलाञ्छनम् ॥ १७ ॥ सोमःप्रभासतेलोकान् वरं प्राप्यमहेश्वरात् ॥ व्यक्तीभूतस्सदेवेशस्सोमस्यैवमहात्मनः ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसोमवरप्रदानन्नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततश्शान्तमनाभूत्वा चन्द्रमाविस्मयान्वितः॥ शम्भुभक्त्यापरीतात्मा प्रभासक्षेत्रसंस्थितः ॥ १ ॥ पूर्वोक्तंयत्तुदेवेन सतथाकृतवान्विभुः ॥ गत्वामागरमध्येतुगृहीत्वालिङ्गमुत्तमम् ॥ २ ॥ विश्वकर्माणमाहूय सहितंप्रतिचारिकैः ॥ आदिदेशस्वयंसोमस्त्वष्टारन्देवशिल्पिनम् ॥ ३ ॥ चन्द्रउवाच ॥ विश्वकर्मन्निदंलिङ्गं ममदत्तन्तुशम्भु

प्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसोमवरप्रदानन्नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । ब्रह्मदेवको लाय जिमि थप्यो सोमशिव देव । इकीसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसेव ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर शान्तमनवाला होकर विस्मयसे संयुत व शिवजी की भक्तिसे व्याप्तचित्तवाला चन्द्रमा प्रभासक्षेत्र में भलीभांति स्थित हुआ ॥ १ ॥ व शिवदेवजी ने जो पहले कहाथा उसको उस विभु (चन्द्रमा) ने वैसाही किया कि समुद्र के मध्य में जाकर व उत्तम लिंगको लेकर ॥ २ ॥ और सेवकों समेत विश्वकर्माजीको बुलाकर आपही चन्द्रमाने देवताओंके शिल्पी विश्व-

कर्माजीको आज्ञा दिया ॥ ३ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे विश्वकर्मन्! शिवजीसे मुझको दियेहुये इस लिंगको तुम ग्रहणकरो और हे महाबाहो! युक्तिसे स्थानपै स्थापित करो ॥ ४ ॥ और हे विभो! तबतक रक्षा कीजिये जबतक कि मैं अपने मन्दिरको जाऊं क्योंकि यज्ञ के लिये यज्ञकी सामग्रियों को लाऊं ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि उस समय ऐसा कहकर वह चन्द्रमा चन्द्रलोकको गया व हे महादेवि! वहा महाप्रभावान् चन्द्रलोकको जाकर ॥ ६ ॥ जोकि करोड़ योजन चौड़ा व सदैव अमृतमय तथा उत्तम है हे महादेवि! वहा उत्तम बुद्धिवाले द्वारपाल को बुलाकर ॥ ७ ॥ जोकि बुद्धिसे बृहस्पति के समान हेमगर्भ नामक मंत्री था उससे कहा कि यज्ञोंके सब सामानको

ना ॥ गृहाणत्वंमहाबाहो युक्त्यास्थानेनिवेशय ॥ ४ ॥ रक्षस्वतावद्गन्तास्मि स्वकीयंभवनंविभो ॥ यज्ञार्थमानयिष्यामि यज्ञोपकरणानिच ॥ ५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इत्युक्त्वासतदाचन्द्रश्चन्द्रलोकंजगामह ॥ गत्वातत्रमहादेवि चन्द्रलोकंमहाप्रभम् ॥ ६ ॥ कोटियोजनविस्तीर्णं सदामृतमयंशुभम् ॥ तत्राहूयमहादेवि प्रतीहारंसुमेधसम् ॥ ७ ॥ मन्त्रिणंहेमगर्भाख्यं बृहस्पतिसमन्धिया ॥ यज्ञोपस्करसम्भारं सर्वमादायसत्वरः ॥ ८ ॥ प्रभासक्षेत्रंगच्छत्वं ममादेशपरायणः ॥ साग्निभिर्ब्राह्मणैस्सार्द्धं गच्छन्तुक्षेत्रमुत्तमम् ॥ ९ ॥ शीघ्रंसम्पाद्यतांसर्वं यथायज्ञःप्रवर्त्तते ॥ सर्वेषामेवविप्राणां चन्द्रलोकनिवासिनाम् ॥ १० ॥ पृथक्पृथग्विमानन्तु देयन्तेषांमहाधनम् ॥ गवाञ्चदशलक्षाणि सवत्सानांपयोमुचाम् ॥ ११ ॥ हेमभारैर्भूषितानां कामधेनूपमाजुषाम् ॥ अश्वानांश्यामकर्णानां सपादंलक्षमेवच ॥ १२ ॥ दन्तिनामयुतञ्चैव घण्टाभरणसंयुतम् ॥ सहस्राणिचचत्वारियुक्तानांसुपरिच्छदैः ॥ लक्षञ्चकरभाणांवैमणिमा

लेकर शीघ्रतासंयुत ॥ ८ ॥ तुम मेरी आज्ञा में परायण होकर प्रभासक्षेत्रको जावो और अग्नि समेत ब्राह्मणों सहित तुमलोग उत्तम क्षेत्रको जावो ॥ ९ ॥ और शीघ्र ही सब सिद्ध कीजिये कि जिसप्रकार यज्ञ वर्तमान होवे और चन्द्रमाके लोकमें बसनेवाले उन सबही ब्राह्मणों को पृथक् पृथक् बडे मोलवाले विमान दीजिये और बछड़ा समेत दूध देनेवाली दशलाख गौवों को दीजिये ॥ १०।११ ॥ जोकि कामधेनुकी उपमावाली और सुवर्ण के भारों से भूषित होवैं व सवालाख श्यामकर्ण घोड़ों को दीजिये ॥ १२ ॥ और घंटोंके आभूषणसे संयुत दशहज़ार हाथियों को दीजिये व उत्तम परिच्छदोंसे संयुत तथा मणियों व माणिक्योंसे युक्त एकलाख चार हज़ार

ऊंटोंको दीजिये ॥ १३ ॥ और चतुरंगिणी सेनासे संयुत एक करोड़ सेना दीजिये व अग्निशौच (अग्निसे निर्मल कियेजानेवाले) वस्त्रोंको ब्राह्मणों के लिये दीजिये ॥१४॥ और अनेक भांतिके भक्ष्य भोज्य व विविध पक्वान्नोंको दीजिये तथा लाख सेवक व लाख दासियों को दीजिये ॥ १५ ॥ वैसेही ऋत्विजों के लिये दिव्य भूषणों को दीजिये व दासवंशों की अवधि तक जो कुछ मैंने कहा है उसको मेरी आज्ञासे वहां लाइये ॥ १६ ॥ व अन्य जो कुछ ब्राह्मण कहैं उस सबको वहां लाइये और देवता, दानव, यक्ष, गंधर्व व राक्षसों को ॥१७॥ और सातोंद्वीपोंके राजाओंको व सातों पातालों के बसनेवाले अनेकों हज़ार राजाओं का बारबार बुलाव किया जावै ॥ १८ ॥

णिक्यसंयुतम् ॥ १३ ॥ सैन्यानांकोटिरेकाच चतुरङ्गबलान्विता ॥ अग्निशौचानिवस्त्राणि ब्राह्मणार्थेतथैवच ॥ १४ ॥
नानाभक्ष्याणिभोज्यानि पाकानिविविधानिच ॥ लक्षंकर्मकराणान्तु दासीनांलक्षमेवच ॥ १५ ॥ विभूषणानिदिव्या
नि ऋत्विगर्थेतथैवच ॥ दासवंशावधिप्रोक्तं यत्किञ्चिच्चममाज्ञया ॥ १६ ॥ अन्यच्चब्राह्मणाब्रूयुस्तत्सर्वंतत्रनीयताम् ॥
देवानांदानवानाञ्च यक्षगन्धर्वरक्षसाम् ॥ १७ ॥ सप्तद्वीपक्षितीशानां सप्तपातालवासिनाम् ॥ नानानृपसहस्राणां घो
षणाक्रियताम्मुहुः ॥ १८ ॥ सर्वेषांघोषणाकार्या प्रभासगमनंप्रति ॥ इत्युक्त्वामन्त्रिणंतत्र चन्द्रमात्वरयान्वितः ॥ १९ ॥
ब्रह्मलोकञ्चभगवान् यज्ञार्थंब्रह्मणोन्तिकम् ॥ सोपिचन्द्रमसोमन्त्री हेमगर्भोमहाप्रभः ॥ २० ॥ सोमाज्ञांशिरसाकृत्वा
यज्ञसम्भारसम्भृतः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य यज्ञार्थंयत्नवानभूत् ॥ २१ ॥ तथाचाहूययाञ्चक्रे भूर्भुवःस्वर्निवासिनाम् ॥
श्रुत्वातुघोषणंसर्वे शीघ्रंतत्रसमाययुः ॥ २२ ॥ रवियोजनपर्यन्तं क्षेत्रमालोक्यतत्रतत् ॥ २३ ॥ ब्राह्मणांश्चसमाहूय

प्रभासक्षेत्र में जानेके लिये सबोंका बुलाव किया जावे ऐसा मंत्रीसे कहकर वहां शीघ्रता से संयुत चन्द्रमा ॥ १९ ॥ भगवान् यज्ञके लिये ब्रह्माके समीप ब्रह्मलोक को गये और चन्द्रमा का मन्त्री वह महाप्रभावान् हेमगर्भ भी ॥ २० ॥ चन्द्रमा की आज्ञाको मस्तक पै धरकर यज्ञकी सामान को इकट्ठा करके प्रभासक्षेत्र में आकर यत्न करता भया ॥ २१ ॥ व उसने पृथ्वीलोक व भुवर्लोक और स्वर्गलोक के निवासियों का आह्वान किया व बुलाव को सुनकर सब वहां-पर शीघ्रही आये ॥ २२ ॥

वहां पर बारह योजन तक उस क्षेत्रको देखकर ॥ २३ ॥ ब्राह्मणों को बुलाकर चन्द्रमाके अधिकारी ने उनसे कहा कि हे ब्राह्मणो ! मैं चन्द्रमा की आज्ञासे सब यज्ञ के अङ्ग (यज्ञकी सामान) को लाया ॥ २४ ॥ इसके अनन्तर जो करने के योग्य होवै उसको आपलोग कीजिये ऐसा कहेहुये तपस्या से नष्टपातकोंवाले सब ब्राह्मणों ने ॥ २५ ॥ वहां देवताओं के शिल्पी विश्वकर्माजी को देखा उनको देखकर व समीपही लिङ्गको देखकर सब ब्राह्मणों ने कहा ॥ २६ ॥ कि हे विश्वकर्मन् ! यह कैसा है इसको हम से कहिये व करोड़ों शिल्पियों समेत तुम यहां किस कारण स्थितहो यह कहा ॥ २७ ॥ विश्वकर्मा बोले कि चन्द्रमा से आज्ञा दिया हुआ मैं

सोमाध्यक्षउवाचतान् ॥ यज्ञाङ्गंसर्वमानीतं मयासोमाज्ञयाद्विजाः ॥ २४ ॥ अनन्तरन्तुयत्कृत्यं भवद्भिस्तद्विधीयताम् ॥ इत्युक्ताब्राह्मणास्सर्वे तपोनिर्द्धूतकल्मषाः ॥ २५ ॥ तत्रैवंददृशुस्सर्वे त्वष्टारन्देवशिल्पिनम् ॥ तन्दृष्ट्वोचुर्द्विजास्सर्वे लिङ्गंदृष्ट्वासमीपतः ॥ २६ ॥ कथमेतदितिप्रोचुर्विश्वकर्मन्ब्रवीहिनः ॥ कस्मादत्रस्थितस्त्वंवै शिल्पिकोटिसमन्वितः ॥ २७ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ अहंसोमनियुक्तस्तु युक्तोस्मिलिङ्गरक्षणे ॥ तदाज्ञापालनेयत्नः क्रियतेतुमया द्विजाः ॥ २८ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवंश्रुत्वातदाविप्रा ज्ञात्वासर्वन्तुकारणम् ॥ त्वरितायज्ञकार्यार्थं ततश्चक्रुरुपक्रमम् ॥ २९ ॥ तत्रयोजनपर्यन्तं यज्ञयूपांश्चमण्डपान् ॥ देवानांयजनंशुभ्रं तेसर्वेसुसमाहिताः ॥ तदेवयजनंकृत्वा पत्नीशालाश्चचक्रिरे ॥ ३० ॥ हविर्धानसदश्चैव उत्तरावेदिरेवच ॥ ब्रह्मणस्सदनाग्नीध्रेत्येवंस्थानानिचक्रिरे ॥ ३१ ॥ तत्रयोजनपर्यन्तं यज्ञयूपांश्चमण्डपान् ॥ विश्वकर्माचकाराशुकुण्डानिविविधानिच ॥ ३२ ॥ सहस्रसंख्ययातत्र कुण्डानांम

लिङ्गकी रक्षा में तत्परहूं व हे द्विजो ! उनकी आज्ञा के पालन में मुझ से उपाय किया जाताहै ॥ २८ ॥ महादेवजी बोले कि ऐसा सुनकर व सब कारण को जानकर तदनन्तर उस समय ब्राह्मण शीघ्रतासंयुत होकर यज्ञके कार्य के लिये प्रारम्भ किया ॥ २९ ॥ वहां पर योजनभर तक यज्ञके स्तम्भों व मण्डपों को बनाया व उन सबोंने सावधान होकर देवताओं का उत्तम पूजन किया व उसी पूजन को करके पत्नीशाला को बनाया ॥ ३० ॥ और हविर्धानसद व उत्तरावेदि तथा ब्रह्मा का मन्दिर व आग्नीध्र इन स्थानों का निर्माण किया ॥ ३१ ॥ और वहां पर योजन भर तक यज्ञ के स्तम्भों को व मण्डपों और अनेक प्रकार के कुण्डों को विश्वकर्मा ने

शीघ्रही बनाया ॥३२॥ और मण्डपकी अवधि तक वहां हज़ार संख्यक कुण्डों को बनाया और वहां पर वे सब ब्राह्मण प्रतिष्ठा के यज्ञ में चतुर थे ॥३३॥ और अनेक आभूषणों व रत्नों से भलीभांति भूषित सब ब्राह्मणों ने बार बार शास्त्र को देखकर न्यायपूर्वक कर्म किया ॥ ३४ ॥ और वृक्ष व दिव्य ओषधियां तथा समिधा, पुष्प व कुशादिक तथा सब होमकी वस्तु व बहुत घी और नवीन दूध ॥ ३५ ॥ व और भी जो कुछ यज्ञका सामान कहा गयाहै तथा वर्द्धनी कलशादिक सब सुवर्णमय वस्तुको ॥ ३६ ॥ व सत्कार में प्राप्त सब ब्राह्मणों ने न्यायपूर्वक प्रतिष्ठा के यज्ञको किया और वहां पर प्रसन्न विप्रवृन्द भक्ष्य भोज्यादिकों से तृप्त किया गया ॥ ३७ ॥ और

ण्डपावधि ॥ तत्रतेब्राह्मणास्सर्वे प्रतिष्ठायज्ञकोविदाः ॥ ३३ ॥ नानाभरणरत्नैश्च ब्राह्मणास्समलंकृताः ॥ चक्रुस्सर्वेयथान्यायं शास्त्रंदृष्ट्वापुनःपुनः ॥ ३४ ॥ वृक्षास्तथौषधीर्दिव्यास्समित्पुष्पकुशादिकान् ॥ होमद्रव्यादिकंसर्वमाज्यंप्राज्यंनवंपयः ॥ ३५ ॥ तथान्यदपियत्किञ्चिद्यज्ञोपकरणंस्मृतम् ॥ वर्द्धनीकलशाद्यञ्च सर्वंहेममयंशुभम् ॥ ३६ ॥ चक्रुस्सर्वेयथान्यायं प्रतिष्ठामखमादृताः ॥ तत्रविप्रगणोहृष्टो भक्ष्यभोज्यादितर्पितः ॥ ३७ ॥ वेदध्वनितनिर्घोषोदिवंभूमिञ्चसंस्पृशन् ॥ शुशुभेमण्डपस्तत्र पताकाभिरलंकृतः ॥ ३८ ॥ दिव्यसिंहासनोपेतो मुक्तादामपरिष्कृतः ॥ दिव्यचन्दनमालाभिः कल्पपल्लवतोरणैः ॥ ३९ ॥ दिव्यगन्धसुगन्धाढ्यं स्वर्गस्थानमिवाभवत् ॥ चतुर्दशविधस्तत्र भूतग्रामस्समागतः ॥ ४० ॥ षष्ठश्चमानुषःप्रोक्तः पैशाचस्सप्तमःस्मृतः ॥ अष्टमोराक्षसःप्रोक्तो नवमोयक्षएवच ॥ ४१ ॥ गन्धर्वंशाक्रसौम्याश्च प्राजापत्यस्तथैवच ॥ स्थावरंसर्वजातिश्च पक्षिजातिस्तथैवच ॥ ४२ ॥ ब्राह्मचश्चेतिसमा

वेदध्वनि का शब्द आकाश तथा भूमि को भलीभांति स्पर्श करता हुआ व पताकाओं से भूषित मण्डप वहां शोभित हुआ ॥ ३८ ॥ व दिव्य सिंहासन से संयुत तथा मोतियों की झालर से गुँथाहुआ मण्डप दिव्य चन्दन व मालाओं से तथा कल्पवृक्ष के पत्तों की बन्दनवार से भूषित था ॥ ३९ ॥ जो कि दिव्य गन्धो की सुगन्ध मे संयुत स्वर्गस्थानकी नाईं हुआ वहां पर चौदहप्रकार का भूतगण प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ छठा मनुष्य कहा गया है व सातवां पिशाच कहा गयाहै और आठवां राक्षस व नवां यक्ष कहा गया है ॥ ४१ ॥ और गन्धर्व, इन्द्र व सौम्य और प्राजापत्य तथा स्थावर, सर्पोंकी जाति व पक्षियोंकी जाति ॥ ४२ ॥ और ब्राह्मय यह चौदह

प्रकार का भूतगण कहा गयाहै और विश्वेदेवा, साध्य, मरुत व वसु ॥ ४३ ॥ और लोकपाल तथा अन्य देवता व ग्रहोंसमेत नक्षत्र और जो ब्रह्माण्ड के देवता थे वे सब प्रसन्न होकर वहां पर आये और प्रभासक्षेत्र में जब यज्ञ का प्रारम्भ हुआ तब दही व खीर के कीचड़वाली नदियों में घी व दूध बहनेलगा ॥ ४४ । ४५ ॥ और उस यज्ञके बड़े भारी उछाह में पकेहुये फलोंकी अनेक प्रकारवाली पर्वतों के समान राशियां देखपड़ती थीं ॥ ४६ ॥ और वहीं पर गन्धर्व गाते थे व अप्सराओं के गण नाचते थे और अनेकों भाति के भक्ष्यों व भोज्यों से तथा इच्छा के अनुकूल यानादिकों से ॥ ४७ ॥ देवता व मुनिलोग तृप्त कियेगये व चार भांति का भूतगण तृप्तहुआ

ण्यातश्चतुर्दशविधोगणः ॥ विश्वेदेवास्तथासाध्या मरुतोवसवस्तथा ॥ ४३ ॥ लोकपालास्तथाचान्ये नक्षत्राणिग्रहैस्सह ॥ ब्रह्माण्डेदेवतायाश्च तास्सर्वास्तत्रचागताः ॥ ४४॥ हृष्टाःप्राभासिकेक्षेत्रे प्रारब्धेयज्ञकर्मणि ॥ घृतक्षीरवहानद्यो दधिपायसकर्दमाः ॥ ४५ ॥ पक्वानाञ्चफलानाञ्च राशयःपर्वतोपमाः ॥ दृश्यन्तेविविधाकारास्तस्मिन्यज्ञमहोत्सवे॥ ४६ ॥ जगुस्तत्रैवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ भक्ष्यभोज्यैश्चविविधैः कामयानादिभिस्तथा ॥ ४७ ॥ तृप्तादेवाश्च मुनयो भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ एवंसम्भारसहितं यज्ञाङ्गंसर्वमेवहि ॥ ४८ ॥ प्रगुणीकृत्यसचिवो मुक्त्वातत्रैवरक्षकान् ॥ सोमस्याह्वाननार्थाय ब्रह्मलोकंजगामह ॥ ४९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ सदृष्ट्वाब्रह्मणःपार्श्वे स्थितंसोमंमहाप्रभम् ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमौ सोमंब्रह्माणमेवच ॥५०॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा उवाचनतकन्धरः ॥ हेमगर्भउवाच ॥ भगवन्भवदादेशाद्यज्ञाङ्गंसर्वमेवहि ॥ ५१ ॥ तत्रप्राभासिकेक्षेत्रे मयाप्रगुणीकृतम् ॥ तत्रब्रह्मर्षयस्सर्वे सन्तिष्ठन्तिसमाकुलाः॥५२॥

इसप्रकार सामग्री समेत सबही यज्ञाङ्ग को ॥ ४८ ॥ इकट्ठाकर वहींपर रक्षकों को छोड़कर मन्त्री चन्द्रमा के बुलाने के लिये ब्रह्मलोकको गया ॥ ४९ ॥ महादेवजी बोले कि ब्रह्मा के समीप बैठेहुये महाप्रभावान् चन्द्रमा को देखकर उस मन्त्री ने दण्डा की नाईं भूमि में चन्द्रमा व ब्रह्मा को भी प्रणाम कर ॥ ५० ॥ हाथों को जोड़करके नीचे कन्धाको झुकाकर कहा हेमगर्भ बोला कि हे भगवन् ! आपकी आज्ञा से सबही यज्ञाङ्ग को ॥ ५१ ॥ मैंने तुम्हारे उस प्रभासक्षेत्र में इकट्ठा कियाहै और वहां

पर सबही ब्रह्मर्षि इकट्ठा होकर टिके हैं ॥ ५२ ॥ इसके उपरान्त जो कार्य होवै उसको आप करने के योग्यहो महादेवजी बोले कि उस समय समुद्र के पुत्र हेमगर्भ ने चन्द्रमासे ऐसा कहा ॥ ५३ ॥ व हँसकर चन्द्रमा ने लोकों के साक्षी ब्रह्मा से कहा कि हे सब देवताओं के स्वामी, भगवन् ! मेरे ऊपर दयाकी इच्छा से ॥ ५४ ॥ हे प्रभो ! प्रतिष्ठारूप यज्ञकी कामनावाले मेरी आतिथ्य (पहुनई) कीजिये हे प्रभो ! आज मेरा जन्म सफल होगया व तपस्या सफल होगई ॥ ५५ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज तुम्हारी प्रसन्नता से मेरा देवत्व होगा और मैंने उग्र तपस्यासे शिवजी के लिङ्ग को पाया है ॥ ५६ ॥ उसकी प्रतिष्ठा की विधि में तुम सब करने के योग्यहो

अनन्तरन्तुयत्कृत्यं तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ ईश्वरउवाच ॥ इत्युक्तस्तुतदाचन्द्रस्समुद्रस्यसुतेनवै ॥ ५३ ॥ प्रहस्योवाचब्रह्माणं चन्द्रमालोकसाक्षिणम् ॥ भगवन्सर्वदेवेशममानुग्रहकाम्यया ॥ ५४ ॥ प्रतिष्ठायज्ञकामस्य ममातिथ्यंकुरुप्रभो ॥ अद्यमेसफलंजन्म सफलंचतपःप्रभो ॥ ५५ ॥ देवत्वमद्यमेब्रह्मंस्त्वत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ मयाचतपसोग्रेण प्राप्तंलिङ्गमुमापतेः ॥ ५६ ॥ तत्प्रतिष्ठाविधौसर्वं तद्भवान्कर्त्तुमर्हति ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अवश्यंतवकर्त्तास्मि प्रतिष्ठां शङ्करात्मिकाम् ॥ ५७ ॥ त्वदाराधनलिङ्गस्य सोमेशस्यविशेषतः ॥ येकेचिद्भवितारश्च अतीतायेनिशाकराः ॥ ५८ ॥ तेषांसोमान्वयानाञ्च सर्वेषामाद्यदैवतम् ॥ योयंसोमेश्वरोदेवआदौभैरवनामभृत् ॥ ५९ ॥ मन्वन्तरान्तरेतीते प्रतिष्ठेहंपुनःपुनः ॥ यदाप्राभासिकेक्षेत्रे गतोहंचाष्टवार्षिकः ॥ ६० ॥ आहतःपूर्वचन्द्रेण भैरवस्यप्रतिष्ठिते ॥ तत्प्रभृत्येवमेनाम बालरूपीनिगद्यते ॥ ६१ ॥ अन्येषुसर्वतीर्थेषु बालरूपीवसाम्यहम् ॥ प्रभासेतुपुनश्चन्द्रबाल्यात्प्रभृतिसंवसे ॥ ६२ ॥

ब्रह्माजी बोले कि तुम्हारे शिवजी की प्रतिष्ठाको मैं अवश्य करूंगा ॥ ५७ ॥ व तुम्हारे आराधनवाले सोमेश लिङ्गकी प्रतिष्ठा विशेषकर करूंगा और जो कोई चन्द्रमा होनेवाले हैं व जो व्यतीत हुये हैं ॥ ५८ ॥ उन सब चन्द्रवंशियों के आदिदेवता जो ये सोमेश्वर देवजी पहले भैरव नाम धारी हुये हैं ॥ ५९ ॥ मन्वन्तर की अवधि बीतनेपर मैं उनकी बार २ प्रतिष्ठा करूंगा जब आठवर्षवाला मैं प्रभासक्षेत्र में गया था ॥ ६० ॥ तब भैरवजी की प्रतिष्ठा होनेपर पहलेवाले चन्द्रमाने मुझको बुलायाथा तभी से लगाकर मेरा बालरूपी नाम कहा जाताहै ॥ ६१ ॥ और अन्य सब तीर्थों में मैं बालरूपी बसताहूं व हे चन्द्रमा ! फिर प्रभासक्षेत्र में मैं शिशुतासे

बसताहूं ॥ ६२ ॥ ब्रह्माण्ड में जो तीर्थ हैं उनमें जो ब्राह्मण कहेगये हैं ॥ ६३ ॥ उनमें आदि निशानायक प्रभासक्षेत्रमें भलीभांति स्थितहैं हे निशानाथ ! प्रत्येक कल्प में मेरा अन्य नाम होताहै ॥ ६४ ॥ प्रथम कल्प में स्वयंभू व दूसरे में पद्मभू नाम कहा गया है व तीसरे में विश्वकर्ता ऐसा नाम और चौथे कल्पमें बालरूपी नाम कहा गया ॥ ६५ ॥ इसीप्रकार दो परार्द्ध तक प्रभासक्षेत्र में टिकेहुये मेरे नामोंका भ्रमण बार २ होगा ॥ ६६ ॥ पुरातन समय शिवजी के नेत्रसे उपजेहुये आदिसोमने प्रभासक्षेत्रमें तपस्या करके शिवजी को प्रत्यक्ष किया है ॥ ६७ ॥ उसके उपरान्त प्रसन्न होतेहुये त्रिशूलधारी शिवजी ने पहलेवाले चन्द्रमा को वरदान दियाहै कि हे

ब्रह्माण्डेयानितीर्थानि ब्राह्मणास्तेषुयेस्मृताः ॥ ६३ ॥ तेषामाद्योनिशानाथः प्रभासेसंव्यवस्थितः ॥ कल्पेकल्पेनिशानाथ ममनामान्तरम्भवेत् ॥ ६४ ॥ स्वयंभूःप्रथमेनाम द्वितीयेपद्मभूस्स्मृतः ॥ तृतीयेविश्वकर्त्तेति बालरूपीतुरीयके ॥ ६५ ॥ एवमेवपरावर्त्ती नाम्नाम्भावीपुनःपुनः ॥ परार्द्धद्वयपर्यन्तं प्रभासेसंस्थितस्यमे ॥ ६६ ॥ आदिसोमेनचपुरा शम्भुनेत्रोद्भवेनवै ॥ प्रभासेतुतपस्तप्त्वा प्रत्यक्षीकृतईश्वरः ॥ ६७ ॥ ततोददौवरन्तुष्टः पूर्वचन्द्रस्यशूलधृक् ॥ यस्मादाराधितोहन्ते सोमभक्त्यानिरन्तरम् ॥ ६८ ॥ तस्मात्सोमेशनामैवमस्मिल्लिँङ्गेभविष्यति ॥ यावद्ब्रह्माशतानन्दःप्रकृतौचनलीयते ॥ ६९ ॥ येकेचिद्भवितारोवै रात्रिनाथनिशाकराः ॥ तेमदाराधनंचात्र करिष्यन्तिपुनःपुनः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाभगवाञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ तस्मिन्कालेमयासोम आद्यंलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ७१ ॥ तदाप्रभृतिसोमानां लक्षाणांद्वितयंगतम् ॥ सहस्रद्वितयञ्चैव शतंचैकंषडुत्तरम् ॥ ७२ ॥ सप्तमस्त्वंमहाबाहो वर्त्तसेसोमसाम्प्रतम् ॥ एता

सोम ! जिसलिये तुमने भक्ति से मुझ को सदैव आराधन किया ॥ ६८ ॥ उसी कारण इस लिङ्ग में सोमेश नाम होगा और जब तक शतानन्द नामक ब्रह्मा प्रकृति में लीन न होवैंगे ॥ ६९ ॥ तब तक हे रात्रिनाथ ! जो कोई चन्द्रमा होवैंगे वे यहांपर बार २ मेरा आराधन करेंगे ॥ ७० ॥ ऐसा कहकर भगवान् शिवजी वहींपर अन्तर्द्धान होगये व उसीसमय हे चन्द्रमा ! मैंने पहलेवाले लिङ्ग की प्रतिष्ठा कियाहै ॥ ७१ ॥ तब से लगाकर दो लाख व दोहज़ार एकसौ छह चन्द्रमा व्यतीत हुये हैं ॥ ७२ ॥

व हे महाबाहो, सोम ! इस समय तुम सातवें वर्तमान हो इतनेही लिङ्ग प्रतिष्ठाको प्राप्त हुये हैं ॥ ७३ ॥ इससमय यही मैं तुम्हारे आराधन से उपजेहुये फलमें प्रतिष्ठित हूं हे सोम ! तुम्हारा कल्याण होवै वह तो मेराही कार्यहै ॥ ७४ ॥ महादेवजी बोले कि ऐसा कहकर वेदविद्या से संयुत व तीर्थों समेत तथा देवताओं से संयुत सर्वदेवमय भगवान् ब्रह्मा जी ॥ ७५ ॥ सनत्कुमार इत्यादिक योगीन्द्रों व ऋषियों समेत पुरोधा बृहस्पति जीको बुलाकर व आगे करके ॥ ७६ ॥ उस समय सर्वदेवमय जगदीश ब्रह्माजी ऋषियों समेत विमानपै सवार होकर चन्द्रमा समेत प्रभास महातीर्थ में आये जहां कि दारुवन कहा गया है हे प्रिये ! मैंने तीन देवताओंवाले इस

वन्त्येवलिङ्गानि प्रतिष्ठांप्रापितानिवै ॥ ७३ ॥ एषएवाधुनाहन्तु त्वदाराधनजंफलम् ॥ प्रतिष्ठितोस्मिभद्रन्ते सोमकृत्येममैवतत् ॥ ७४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवान्ब्रह्मा वेदविद्यासमन्वितः ॥ सर्वदेवमयोदेवैस्साहितस्तीर्थसंयुतः ॥ ७५ ॥ सनत्कुमारप्रमुखैर्योगीन्द्रैर्ऋषिभिस्सह ॥ बृहस्पतिंसमाहूय पुरस्कृत्यपुरोधसम् ॥ ७६ ॥ सर्वदेवमयोयानं समारुह्यर्षिभिस्सह ॥ आगतस्सोमराजेन तदाब्रह्माजगत्पतिः ॥ ७७ ॥ प्राभासिकेमहातीर्थे यत्रदारुवनंस्मृतम् ॥ त्रिदैवतमिदंक्षेत्रं मयातेकथितंप्रिये ॥ ७८ ॥ तत्रागत्यचतुर्वक्त्रो ब्राह्मेभागेतिनिर्मले ॥ मुनीनांकारयामास उन्नतस्थानवासनाम् ॥ ७९ ॥ आयातंवेधसन्दृष्ट्वा देवर्षिगुरुसंयुतम् ॥ तेसर्वेपूजयामासुःस्तुतिभिर्वेदसम्मितैः ॥ ८० ॥ अथोवाचद्विजान्सर्वान् ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ८१ ॥ चिरमाराध्यसोमेन सोमशापविनाशनम् ॥ तस्मिन्प्रसन्नेसोमेश लब्धंलिङ्गमनुत्तमम् ॥ ८२ ॥ प्रतिष्ठार्थन्तुदेवस्य आयाताद्विजसत्तमाः ॥ यथामयासदाकार्या प्रतिष्ठाशङ्करात्मिका ॥ ८३ ॥ भव

क्षेत्रको तुम से कहा ॥ ७७ । ७८ ॥ वहां अतिनिर्मल ब्राह्मभाग में आकर चतुराननजी ने उन्नत स्थानमें बसनेवाले मुनियों को बुलाया ॥ ७९ ॥ और देवता, ऋषि व गुरुओं से संयुत आयेहुये ब्रह्मा को देखकर उन सबों ने वेदोक्त स्तुतियों से पूजन किया ॥ ८० ॥ इसके उपरान्त लोकोंके पितामह ब्रह्माजी सब ब्राह्मणोंसे बोले ॥ ८१ ॥ कि चन्द्रमा के शापको नाशनेवाले शिवजी को बहुत दिनोंतक आराधकर उन सोमेशजी के प्रसन्न होनेपर चन्द्रमा ने अतिउत्तम लिङ्गको पाया है ॥ ८२ ॥

व हे द्विजोत्तमो! शिवदेवजी की प्रतिष्ठा के लिये तुमलोग आयेहो जिस प्रकार सदैव शिवजी की प्रतिष्ठा मुझको करना चाहिये ॥ ८३ ॥ वैसेही मेरे भाग में आश्रित आपलोगों को भी उसे करना चाहिये जिस लिये आपलोगों के क्रोधसे लिङ्ग पृथ्वीमें गिराहै ॥ ८४ ॥ उसी कारण तुमलोगों को उसकी प्रतिष्ठा करना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है उन सब मुनियों को लेकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी को ॥ ८५ ॥ चन्द्रमाजी लेआये उस समय सावित्री समेत जगदीश प्रभु ब्रह्माजी ने प्रभास महातीर्थ में ॥ ८६ ॥ सौकुण्ड और सौ मण्डपों को किया व उस एक एक मण्डप में सत्रह ऋत्विज् किया ॥ ८७ ॥ वहां पर देवताओं के पुरोहित बृहस्पति जी से

द्भिरपिभार्यासा ममभागसमाश्रयैः ॥ यतःकोपेनभवतां लिङ्गंप्रपतितम्भुवि ॥ ८४ ॥ प्रतिष्ठातस्यकर्त्तव्या युष्माभिर्नैव संशयः ॥ गृहीत्वातान्मुनीन्सर्वान् ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ८५ ॥ आनीतस्सोमराजेन तदाब्रह्माजगत्पतिः ॥ प्राभासिकेमहातीर्थे सावित्र्यासहितःप्रभुः ॥ ८६ ॥ कारयामासकुण्डानां मण्डपानांशतंशतम् ॥ एकैकेमण्डपेतत्र चक्रेसप्तदशर्त्विजः ॥ ८७ ॥ गुरुणाप्रेरितोब्रह्मा तत्रदेवपुरोधसा ॥ पार्श्वस्थितस्तदाब्रह्मा विधानैर्वेदभाषितैः ॥ ८८ ॥ दीक्षयामाससोमन्तु रोहिण्यासहितंविभुम् ॥ पत्नीञ्चरोहिणींकृत्वासर्वलक्षणसंयुताम् ॥ ८९ ॥ मृगचर्मधरान्देवीं क्षौमवस्त्रांचगुण्ठिताम् ॥ पत्नीशालांसमानीतां ऋषिभिर्वेदपारगैः ॥ ९० ॥ चन्द्रमाऋक्षसंयुक्त ऋषिगन्धर्वसंयुतः ॥ उदुम्बरेणदण्डेनसंवृतोमृगचर्मणा ॥ ९१ ॥ अतीवतेजसायुक्तः शुशुभेसदसिस्थितः ॥ ततोब्रह्मामहादेवि सर्वलोकपितामहः ॥ ९२ ॥ ऋत्विजांवरणंचक्रे वेदोक्तविधिनातदा ॥ गुरुर्होतावृतस्तत्र वसिष्ठोध्वर्युरेवच ॥ ९३ ॥ तत्रोद्गातामरीचिस्तु ब्रह्मत्वे

प्रेरणा कियेहुये ब्रह्माजी उस समय समीप में स्थित हुये और ब्रह्माजी ने वेदों में कहेहुये विधानों से ॥ ८८ ॥ रोहिणी समेत विभु चन्द्रमा जीको दीक्षा दिया और सब लक्षणों से संयुत रोहिणीजी को स्त्री करके ॥ ८९ ॥ जो देवी कि मृगचर्मको धारण किये व रेशमी वसनको पहने तथा वेदके पारगामी ऋषियों से पत्नीशाला में लाई गई थी ॥ ९० ॥ नक्षत्रों समेत व ऋषियों तथा गन्धर्वों से संयुत चन्द्रमा गूलर के दण्ड व मृगचर्म से संयुक्त थे ॥ ९१ ॥ व अत्यन्त तेज से संयुत व सभा में स्थित चन्द्रमा शोभित हुये तदनन्तर हे महादेवि! सब लोकों के पितामह ब्रह्मा जी ने ॥ ९२ ॥ उस समय वेदोक्त विधि से ऋत्विजों का वरण किया वहां पर

बृहस्पतिजी होताहुये और वशिष्ठजी अध्वर्यु हुये ॥ ९३ ॥ और वहां पर मरीचिजी उद्गाता (सामवेदी) हुये और ब्रह्मत्व में नारद कियेगये व उस यज्ञमें सनत्कुमार संयुक्त मुनिलोग सभासद् कियेगये ॥ ९४ ॥ और उस समय उस यज्ञमें ऋत्विज् वस्त्रों व आभरणों से संयुत तथा मुकुटों व मुद्रिकाओं से भूषित व गहनों से संयुक्त कियेगये ॥ ९५ ॥ और चारों द्वारों में उस कर्म के जाननेवाले चार २ ऋत्विज् थे इसप्रकार वे सोलह ऋत्विज् हुये उसमें प्रस्तोता कश्यप हुये व प्रतिहर्ता गालव हुये ॥ ९६ ॥ वैसेही गालव और पुलस्त्य, पुलह व क्रतु सुब्रह्मण्य हुये और पोता शुक्र कहे गये व कण्वजी नेता कहे गये हैं ॥ ९७ ॥ और मित्रावरुण, दुर्वासा व शंसि

नारदःकृतः ॥ सनत्कुमारसंयुक्तास्सदस्यास्तत्रवैकृताः ॥ ९४ ॥ वस्त्रैराभरणैर्युक्ता मुकुटैरङ्गुलीयकैः ॥ भूषिताभूषणोपेतास्तस्मिन्यज्ञेतदर्त्विजः ॥ ९५ ॥ तज्ज्ञाश्चतुर्षुचत्वारएवन्तेषोडशर्त्विजः ॥ प्रस्तोताकश्यपस्तत्र प्रतिहर्तातुगालवः ॥ ९६ ॥ सुब्रह्मण्यास्तथागार्ग्यःपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ पोताशुक्रस्समाख्यातो नेताकण्वउदाहृतः ॥ ९७ ॥ मैत्रावरुणदुर्वासा ब्राह्मणाःशंसिकौशिकाः ॥ अच्छावाकस्तुशाकल्योगावश्चक्रतुरेवच ॥ ९८ ॥ प्रस्थाताप्रतिपूर्वश्चशालङ्कायनएवच ॥ आग्नीध्रश्चमनुस्तत्र उन्नेताचाङ्गिराःकृतः ॥ ९९ ॥ एवमादीन्मण्डपेषु कृत्वातानृत्विजस्तदा ॥ अन्येषुमण्डपेष्वेवं प्रत्येकमृत्विजाकृताः ॥ १०० ॥ मण्डपानांशतेष्वेवं कृत्वाकुण्डान्यकल्पयत् ॥ एकैकोमण्डपस्तत्र विंशहस्तप्रमाणतः ॥ १ ॥ अस्त्रेणशोधयभूमिन्तु पञ्चगव्येनप्रोक्ष्यच ॥ वर्मणाचावमुच्यैवमालिख्यास्त्रेणपावेति ॥ २ ॥ उल्लिख्यप्रोक्षणंकृत्वा खातंकृत्वाविधानतः ॥ अष्टौकुण्डानिसङ्कल्प्य तथैकंमण्डपंप्रिये ॥ ३ ॥ लेपनं

कौशिक ये ब्राह्मण हुये व शाकल्य जी अच्छावाक हुये व क्रतुजी ग्राव हुये ॥ ९८ ॥ और प्रतिपूर्व व शालङ्कायन प्रस्थाता हुये और उस यज्ञ में मनु आग्नीध्र हुये व अङ्गिरा उन्नेता किये गये ॥ ९९ ॥ मण्डपों में इत्यादिक उन ऋत्विजों को करके उस समय अन्य मण्डपों में प्रत्येक मण्डप में ऋत्विज् किये गये ॥ १०० ॥ इस प्रकार सौ मण्डपों में कुण्डों को बनाकर कल्पित किया और उस यज्ञमें बीस हाथ के प्रमाण से एक एक मण्डप था ॥ १ ॥ भूमि को अस्त्रमन्त्र (अस्त्रायफट्) से शोधनकरके पञ्चगव्य से छिड़ककर ऐसेही वर्म (कवचायहुम्) मन्त्रसे मिट्टीको अलग छोड़कर हे पार्वतीजी ! अस्त्रायफट् इस मन्त्रसे लिखकर ॥ २ ॥ व विधि

से ऊपर को लकीर करके प्रोक्षणकर व गढ़ा करके आठ कुण्डों को व हे प्रिये ! एक मण्डप को बनाकर ॥ ३ ॥ मण्डपमें लेपकर व वज्रीकरण करके चौकोन, धनुषा-कार व गोल और कमल के समान आकारवाले ॥ ४ ॥ उन कुण्डों को पूर्व दिशा से लगाकर बड़े यत्नसे बनाकर चार कोनों से संयुत पूर्वकुण्ड को बनाकर ॥ ५ ॥ आग्नेय विदिशामें चमस (पात्रभेद) के आकार व दक्षिणमें धनुष के आकार कुण्ड को बनाकर नैर्ऋत्य में त्रिकोण व पश्चिम में गोल ॥ ६ ॥ व वायव्य में छह कोणवाले और उत्तर में चौकोन व ईशान में अष्टकोण व एक मध्यमें बनाकर ॥ ७ ॥ सोलह स्तम्भों से युक्त व बन्दनवारों समेत ध्वजाओं से संयुत व सुन्दर प्रत्येक

मण्डपेकृत्वा वज्रीकरणमेवच ॥ चतुरस्रंकार्मुकंच वर्त्तुलङ्कमलाकृति॥ ४॥ पूर्वांदिशंसमारभ्य कृत्वातानिप्रयत्नतः ॥ चतुष्कोणसमायुक्तं पूर्वंकुण्डंविरचयत्॥५॥ चमसाकृतिचाग्नेय्यां दक्षिणेधनुषाकृति ॥ नैर्ऋत्येतुत्रिकोणञ्च वर्त्तुलंपश्चिमेचवै ॥ ६ ॥ षट्कोणश्चैववायव्ये चतुरस्रंतथोत्तरे ॥ ईशान्यामष्टकोणन्तु मध्येचैकंविधानतः॥७॥ प्रत्येकमण्डपेशुभ्रे स्तम्भैःषोडशभिर्युते॥ ध्वजैस्सतोरणैर्युक्ते कृत्वाब्रह्माविधानतः ॥ ८ ॥ न्यग्रोधंपूर्वतोन्यस्य दक्षिणेचाप्युदुम्बरम् ॥ अश्वत्थंपश्चिमेचैव पालाशंचोत्तरेक्रमात् ॥ ९ ॥ बाहुदण्डप्रमाणेन ध्वजांतत्रनिवेश्यच ॥ ऐन्द्र्यादौपीतवर्णादिपताकाःपरिकल्पिताः॥ १० ॥ ततःपर्युक्ष्याग्निकुण्डमग्निस्थापनमाचरत् ॥स्वस्थानेब्राह्मणांश्चैव जाप्येचैवन्ययोजयत् ॥ ११ ॥ पुरुषंरुद्रसूक्तञ्च श्लोकाध्यायञ्चवैक्रियाम् ॥ ब्राह्मणंपैत्रमैन्द्रञ्च जपेरन्यजुषःपथे ॥ १२ ॥ देवव्रतंवामदेवं ज्येष्ठंसामरथन्तरम् ॥ भारुण्डानिचमामानिछन्दोगाःपश्चिमेजपन् ॥ १३ ॥ अथर्वाथर्वशिरसं स्तम्भस्तम्भमथर्वणम् ॥ नीलरुद्रमथर्वा

मण्डप में विधि से बनाकर ब्रह्माजी ने ॥ ८ ॥ क्रमसे पूर्वदिशा में बरगद के स्तम्भ को गाड़कर दक्षिण में गूलर व पश्चिम में पीपल और उत्तर में पलाश के स्तम्भको गाड़कर ॥ ९ ॥ उसमें भुजा के दण्डके प्रमाण से ध्वजा को गाड़कर पूर्वादिक दिशा में पीले आदि रङ्गवाले पताकाओं को कल्पित किया ॥ १० ॥ तदनन्तर अग्निके कुण्डको प्रोक्षण कर उन ब्रह्माजी ने अग्निस्थापन किया और अपने स्थान में ब्राह्मणों को जपमें नियुक्त किया ॥ ११ ॥ व पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त, श्लोकाध्याय, वैक्रिय, ब्राह्मण, पैतृक व ऐन्द्रसूक्त को ब्राह्मणों ने यजुःपथ में जप किया ॥ १२ ॥ और छन्दोग ब्राह्मणों ने देवव्रत, वामदेव, ज्येष्ठ, सामरथन्तर व भारुण्ड

सामों को पश्चिम दिशामें जप किया ॥ १३ ॥ व उत्तर दिशा में अथर्वा, अथर्वशिरस, रतम्भरतम्भ, अथर्वण, नीलरुद्र व अथर्वाण को अथर्ववेदमें जप किया ॥ १४ ॥ उसके आगे विभु ब्रह्माजी ने गर्भाधानादिक सब कर्म को किया उस के उपरान्त पूर्णाहुति हवनकर स्नानकर्म का प्रारम्भ किया ॥ १५ ॥ व पञ्चपल्लवों से संयुक्त तथा श्रेष्ठ मृत्तिका से संयुत व कषाय (क्वाथ) और पञ्चगव्य व पञ्चामृत व फलों से ॥ १६ ॥ और तीर्थजलों समेत मन्त्रों से स्नान का प्रारम्भ किया और शिवदेवजी के नेत्रों को उघाड़कर तिलक के कार्य को करके ॥ १७ ॥ पृथ्वी में जो तीर्थहैं व पाताल में विशेषता से जो तीर्थ हैं और स्वर्गलोक में जो तीर्थ हैं

णमथर्वेचोत्तरेजपन् ॥ १४ ॥ गर्भाधानादिकंसर्वं तदग्रेचाकरोद्विभुः ॥ पूर्णाहुतिंततोहुत्वा स्नानकर्मसमारभत् ॥ १५ ॥ पञ्चपल्लवसंयुक्तंमृत्तिकाग्र्यसमन्वितम् ॥ कषायैःपञ्चगव्यैश्च पञ्चामृतफलैस्तथा ॥ १६ ॥ तीर्थोदकैस्समेतन्तु मन्त्रैस्स्नानमथारभत् ॥ नेत्राण्युद्घास्यदेवस्य कृत्वाचतिलकक्रियाम् ॥ १७ ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि पातालेचविशेषतः ॥ स्वर्गलोकेचयान्येव तत्रतान्याययुस्तदा ॥ १८ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्मादेवानांपश्यतान्तदा ॥ भूमिंभित्त्वाविवेशाथ तत्रलिङ्गमपश्यत ॥ १९ ॥ स्पर्शाख्यन्तत्तुसञ्छाद्यमधुनादर्भमूलकैः ॥ ततोब्रह्माशिलांन्यस्य तस्यचोर्ध्वंमहाप्रभाम् ॥ २० ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठयामास कृत्वानिश्चलमात्मवान् ॥ स्थित्वाचपरमेतत्त्वे मन्त्रन्यासमथाकरोत् ॥ २१ ॥ एवंलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य तत्रब्रह्माजगद्गुरुः ॥ पूजयामासविधिना वेदोक्तैर्मन्त्रविस्तरैः ॥ २२ ॥ मन्त्रन्यासेकृतेतत्र ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ तत्रविप्रगणोहृष्टो जयशब्दादिमङ्गलैः ॥ २३ ॥ निर्धूमश्चाभवद्वह्निः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ देवदुन्दुभयोनेदुः

वे उससमय वहां पर आये ॥ १८ ॥ इसी अवसर में उससमय देवताओं के देखतेहुये ब्रह्माजी ने भूमि को भेदनकर प्रवेश किया इसके उपरान्त वहां पर लिङ्गको देखा ॥ १९ ॥ व स्पर्शनामक उस लिङ्ग को शहद व कुशके मूलों से आच्छादितकर उसके उपरान्त ब्रह्माजी ने उसके ऊपर महाप्रकाशवती शिला को धरकर ॥ २० ॥ बुद्धिमान् ब्रह्मा ने लिङ्ग को अचल करके स्थापित किया इसके उपरान्त उत्तम तत्त्वमें स्थित होकर मन्त्रका न्यास किया ॥ २१ ॥ इस प्रकार वहां पर संसार के गुरु ब्रह्माजी ने लिङ्गको स्थापित कर वेदोक्त मन्त्रके विस्तारों से विधिपूर्वक पूजन किया ॥ २२ ॥ वहां पर संसार को रचनेवाले ब्रह्माजी से मन्त्र का न्यास करनेपर

उस यज्ञमें जय शब्दादिक मङ्गलों से विप्रवृन्द प्रसन्न हुआ ॥ २३ ॥ और करोड़ों सूर्य के समान प्रभावान् अग्नि धूमरहित हुई और देवताओं के नगारा बाजतेभये व दिक्पाल प्रसन्न हुये ॥ २४ ॥ और उस यज्ञके बड़े भारी उछाह में उच्च प्रकारसे फूलोंकी वर्षा हुई श्रीसोमेश लिङ्गको थापकर उसके उपरान्त ब्रह्माजी ने ॥ २५ ॥ ब्राह्मणों के लिये बहुतसी यज्ञकी दक्षिणा को दिलाया वैसेही सनत्कुमार इत्यादिक सभासदों के लिये ॥ २६ ॥ सुवर्ण, रत्न व करोड़ों बहुतसी दक्षिणाओंको दिया और सब ब्रह्मर्षियों से अभिषेक कियेहुये बड़े तेजस्वी उन चन्द्रमा ने ॥ २७ ॥ अपने प्रकाश से तीनों लोकों को प्रकाशित किया जो कि प्रकाशवालों में श्रेष्ठ हैं उनको

प्रसन्नाश्चदिगीश्वराः ॥ २४ ॥ पुष्पवृष्टिःपपातोच्चैस्तस्मिन्यज्ञमहोत्सवे ॥ प्रतिष्ठाप्यततोलिङ्गं श्रीसोमेशंपितामहः ॥ २५ ॥ दापयामासविप्रेभ्यो भूरिशोयज्ञदक्षिणाः ॥ सनत्कुमारप्रमुखेभ्यस्सदस्येभ्यस्तथैवच ॥ २६ ॥ ददौहिरण्यंरत्नानि कोटिशोभूरिदक्षिणाः ॥ सोभिषिक्तोमहातेजास्सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिस्तथा ॥ २७ ॥ त्रीँल्लोकान्भाषयामास स्वभासाभासतांवरः ॥ तंसिनीचकुहूश्चैव द्युतिःपुष्टिःप्रभावसुः ॥ २८ ॥ कीर्त्तिर्धृतिश्चलक्ष्मीश्च नवदेव्यस्सिषेविरे ॥ प्राप्यावभृथमव्यग्रं कृत्वामाहेश्वरंमखम् ॥ २९ ॥ कृतार्थःपरिपूर्णश्च सम्बभूवनिशापतिः ॥ ततस्तस्मैददौराज्यं ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ३० ॥ बीजौषधीनांविप्राणां मन्त्रानाञ्चवरानने ॥ तस्मिन्यज्ञेसमाजग्मुर्येकेचित्पृथिवीश्वराः ॥ ३१ ॥ तेषांराज्यंधनंभोगान् ददौस्वर्गंतथाक्षयम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास स्वयमेवौषधीपतिः ॥ ३२ ॥ ददौसर्वंतदातेषां प्रभासक्षेत्रवासिनाम् ॥ हिरण्यादिकमव्यग्रं महादानानिषोडश ॥ ३३ ॥ योयदर्थयतेतत्र सामान्यःप्राकृतोजनः ॥ नि

सिनी, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु ॥ २८ ॥ कीर्ति, धृति व लक्ष्मी इन नव देवियों ने सेवन किया शिवजी के यज्ञको करके विकलतारहित यज्ञान्तस्नानको पाकर ॥ २९ ॥ चन्द्रमा कृतार्थ व परिपूर्ण होगया तदनन्तर हे वरानने! लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस चन्द्रमा के लिये बीज, ओषधी, ब्राह्मण व मन्त्रों का राज्य दिया व उस यज्ञमें जो कोई भूपाल आये थे ॥ ३० । ३१ ॥ उनको राज्य, धन, सुख व अविनाशी स्वर्ग दिया और ओषधियों के स्वामी आपही चन्द्रमा ने ब्राह्मणों को भोजन कराया ॥ ३२ ॥ व उन प्रभासक्षेत्र के निवासियों को आकुलतारहित याने सावधानिता से सुवर्णादिक सब दान व सोलह महादानों को दिया ॥ ३३ ॥ वहां जो

सामान्य व प्राकृत मनुष्य जिस वस्तुकी याचना करता था वह अपने कर्म के अनुसार उस उस वस्तुको प्राप्त होताथा ॥ ३४ ॥ इसप्रकार यज्ञ समाप्तहोनेपर इन्द्रसमेत सब देवता क्रमपूर्वक लिङ्गों को थापकर सब चलेगये ॥ ३५ ॥ व हे देवि ! व्यापक चन्द्रमाने ब्राह्मणों समेत पापनाशक प्रभासक्षेत्रमें लिङ्गका आराधन किया ॥ ३६ ॥ व हे देवेशि ! धूप, माला व अनुलेपनों से त्रिकाल पूजन किया और वह चन्द्रमा उनको नित्यही प्रणाम करके स्तुति करताथा ॥ १३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांसोमेश्वरप्रतिष्ठावर्णनन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

जकर्मानुसारेण सलभेत्तत्तदेवहि ॥ ३४ ॥ एवंसमापितेयज्ञेसर्वेदेवास्सवासवाः ॥ स्थापयित्वातुलिङ्गानि जग्मुस्सर्वेय थाक्रमम् ॥ ३५ ॥ चन्द्रमास्तुपुनर्देवि ब्राह्मणैस्सहितोविभुः ॥ लिङ्गमाराधयामास प्रभासेपापनाशने ॥ ३६ ॥ त्रिकालंपूजयामास धूपमाल्यानुलेपनैः ॥ तंप्रणम्यचदेवेशिस्तौतिनित्यंनिशापतिः ॥ १३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसोमेश्वरप्रतिष्ठावर्णनन्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ कस्मिन्कालेजगन्नाथ तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ कथमाराधनंचक्रे कृतार्थोरोहिणीपतिः ॥ १ ॥ ईश्वरउवाच ॥ त्रेतायुगेचदशमे मनोर्वैवस्वतस्यहि ॥ संजातोरोहिणीनाथो युक्तोदुर्वाससाप्रिये ॥ २ ॥ तस्मिन्कालेतदातत्र वर्षाणाञ्चसहस्रकम् ॥ ततःकृत्वातपश्चायं प्रत्यक्षीकृतशङ्करः ॥ ३ ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठयामास ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ पुनर्वर्षमहस्रन्तु पूजयामासशङ्करम् ॥ ४ ॥ ततस्सम्पूज्यविधिना निजकार्यार्थसिद्धये ॥ स्तुतिंचक्रेनिशानाथः प्रत्यक्षीकृ

दो॰। सोमवार व्रत के किये जो फल होत अनन्त। बाइसवें अध्याय में सोई कथा भनन्त ॥ देवी पार्वती जी बोलीं कि हे जगदीश जी ! वहां किस समय लिङ्ग स्थापित हुआ है और कृतार्थ चन्द्रमा ने किस प्रकार आराधन कियाहै ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! वैवस्वत मनु के दशवें त्रेतायुग में दुर्वासा संयुत चन्द्रमाजी उत्पन्न हुये हैं ॥ २ ॥ तब उस समय चन्द्रमा ने हज़ार वर्ष तक तपस्या करके वहां पर ये शिवजी को प्रत्यक्ष किया है ॥ ३ ॥ और उन चन्द्रमा ने संसार को रचनेवाले ब्रह्माजी से लिङ्ग को स्थापित कराया फिर हज़ार वर्ष तक शिवजी का पूजन किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर अपने कार्य के अर्थ की सिद्धि के लिये

विधिसे भलीभांति पूजकर निशानायक चन्द्रमाने प्रत्यक्ष कियेहुये शङ्करजी की स्तुति किया ॥ ५ ॥ चन्द्रमा बोले कि शिवजी के समान देवता नहीं है व समर में शिवजी के समान कोई नहीं है और संसार में कोई शिवजी के समान नहीं है व शिवजी के तुल्य गति नहीं है ॥ ६ ॥ सांख्यवाले जिन परमप्रधान पुरुष को सदैव पढ़ते हैं व योगी लोग जिनका चिन्तन करते हैं उन जानने योग्य आत्मावाले के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ व देवता, दैत्य और मनुष्यों की उत्पत्ति व नाशमें जिन को विद्वान् कारण कहते हैं उन सर्वात्माके लिये नमस्कार है ॥ ८ ॥ जो विकाररहित व आदि, अन्तसे रहित हैं व जो नित्य, शाश्वत व ध्रुव है और जो कला

तशङ्करम् ॥ ५ ॥ चन्द्रउवाच ॥ नास्तिशर्वसमोदेवो नास्तिशर्वसमोरणे ॥ नास्तिशर्वसमोलोके नास्तिशर्वसमागतिः ॥ ६ ॥ यंपठन्तिसदासांख्याश्चिन्तयन्तिचयोगिनः ॥ परंप्रधानंपुरुषं तस्मैज्ञेयात्मनेनमः ॥ ७ ॥ उत्पत्तौचविनाशेच कारणंयंविदुर्बुधाः ॥ देवासुरमनुष्याणां तस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ ८ ॥ यदव्ययमनाद्यन्तं यन्नित्यंशाश्वतंध्रुवम् ॥ निष्कलंपरमंब्रह्म तस्मैयोगात्मनेनमः ॥ ९ ॥ यत्पवित्रंपवित्राणामादिदेवोमहेश्वरः ॥ पुनातिदर्शनादेव तस्मैतीर्थात्मनेनमः ॥ १० ॥ यतःप्रवर्त्ततेसर्वं यस्मिन्सर्वंविलीयते ॥ पालयेद्योजगत्सर्वं तस्मैसर्वात्मनेनमः ॥ ११ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्यजन्तिचद्विजातयः ॥ सम्पूर्णदक्षिणैर्देवं तस्मैयज्ञात्मनेनमः ॥ १२ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवंसंस्तुवतोदेवि दिवारात्रौनिशापतेः ॥ अब्रवीद्भगवान्प्रीतः प्रहसन्निवशङ्करः ॥ १३ ॥ शङ्करउवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्स स्तोत्रेणानेनशीतगो ॥ वरंवरयभद्रन्ते भूयोयत्तेमनोगतम् ॥ १४ ॥ चन्द्रउवाच ॥ यदिदेयोवरोस्माकं यदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ सान्निध्यं

रहित परब्रह्म है उस योगात्मा के लिये प्रणाम है ॥ ९ ॥ पवित्रों के मध्य में जो पवित्र व आदिदेव महेश्वरजी हैं और जो दर्शनहीं से पवित्र करतेहैं उन तीर्थात्मा के लिये प्रणाम है ॥ १० ॥ जिनसे सब संसार उत्पन्न होताहै और जिन में सब लीन होजाताहै व जो सब संसारका पालन करते हैं उन सर्वात्माके लिये नमस्कार है ॥ ११ ॥ सम्पूर्ण दक्षिणावाले अग्निष्टोमादिक यज्ञों से जिस देवता को ब्राह्मणलोग पूजते हैं उस यज्ञात्माके लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! दिन रात इसप्रकार स्तुति करतेहुये चन्द्रमा से प्रसन्न होतेहुये भगवान् शिवजी हँसते हुये से बोले ॥ १३ ॥ शिवजी बोले कि हे शीतकिरण, वत्स ! इस स्तोत्र

से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं तुम्हारा कल्याण होवै व फिर जो तुम्हारे मन में प्राप्त होवै उस वरदान को मांगिये ॥ १४ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे प्रभो ! यदि हमको वर देने योग्य है व यदि तुम हमारे ऊपर प्रसन्न हो तो हे देवेश, विभो ! इस लिङ्ग में सदैव समीपता कीजिये ॥ १५ ॥ हे सुरेश्वर ! उस लिङ्ग में टिकेहुये तुम को जो मनुष्य उत्तम भक्तिसे देखैं उनको तुम्हारी प्रसन्नता से उत्तम सिद्धि प्राप्त होवै ॥१६॥ शिवजी बोले कि हे महाप्रभो, चन्द्र ! इस श्रेष्ठ लिङ्गमें इस समय विशेपतासे मेरी समीपता है व तुम्हारी भक्तिसे सदैव ॥ १७ ॥ इस क्षेत्रमें पार्वती समेत मुझ को आजसे लगाकर टिकना चाहिये जिस कारण मेरी प्रसन्नता से तुमने इस क्षेत्र में

कुरुदेवेश लिङ्गेस्मिन्सर्वदाविभो ॥ १५ ॥ येत्वांपश्यन्तितत्रस्थं भक्त्यापरमयायुताः ॥ तेषान्तुपरमासिद्धिस्त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ १६ ॥ शम्भुरुवाच ॥ अद्यचेतुममसान्निध्यमस्मिँल्लिँङ्गेमहाप्रभे ॥ विशेषतोधुनाचन्द्र तवभक्त्यानिरन्तरम् ॥ १७ ॥ स्थातव्यमद्यप्रभृति क्षेत्रेस्मिन्नुमयासह ॥ यस्मात्त्वयाप्रभालब्धा क्षेत्रेस्मिन्मत्प्रसादतः ॥ १८ ॥ तस्मात्प्रभासमित्येव नामचास्यभविष्यति ॥ यस्मात्प्रतिष्ठितंलिङ्गं त्वयासोमशुभम्मम ॥ १९ ॥ सोमनाथेतिमेनाम तस्मात्ख्यातिङ्गमिष्यति ॥ यन्ममाग्रतनन्नाम ख्यातंब्रह्मावसानिकम् ॥ २० ॥ सोमनाथेतिचपुनस्तदेवप्रचरिष्यति ॥ द्रक्ष्यन्तिहिनरायेमामत्रस्थंभक्तितत्पराः ॥ २१ ॥ शृणुतेषांफलंवत्स भविष्यतिनिशाकर ॥ नतेषांजायतेव्याधिर्नदारिद्र्यन्नदुर्गतिः ॥ २२ ॥ नचैवेष्टवियोगञ्च ममचन्द्रप्रभावतः ॥ यात्रांकुर्वन्तियेभक्त्या ममदर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २३ ॥

प्रभाको पाया है ॥ १८ ॥ इसलिये इस क्षेत्रका प्रभास ऐसाही नाम होगा हे सोम ! जिस कारण तुम ने मेरे उत्तम लिङ्ग को थापाहै ॥ १९ ॥ इसलिये सोमनाथ ऐसा मेरा नाम प्रसिद्धिको प्राप्त होवैगा और जो मेरा पहलेवाला ब्रह्मा.वसानिकनाम कहा गया है ॥ २० ॥ वही फिर सोमनाथ ऐसा प्रसिद्ध होगा व भक्ति में परायण जो मनुष्य यहां टिकेहुये मुझको देखैंगे ॥ २१ ॥ हे निशाकर, वत्स ! उन को जो फल होगा उसको सुनिये कि उनके रोग नहीं होता है और न दरिद्रता होती है न दुर्गति होती है ॥ २२ ॥ व हे चन्द्रमा ! मेरे प्रभाव से उनको प्रियका वियोग नहीं होताहै व मेरे दर्शनकी इच्छावाले जो मनुष्य भक्तिसे यात्रा करते हैं ॥ २३ ॥

उन को पग पग पै अश्वमेध यज्ञका फल कहा गया है हे निशाकर ! कियेहुये बहुत यज्ञों व उपासों से क्या होता है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य यहां मुझको प्रत्यक्ष देखते हैं व उस सब फलको पाते हैं भक्ति में तत्पर एक मनुष्य हज़ार वर्षतक मासोपवास करताहै और एक मनुज मुझको यहा देखता है उन दोनों को बराबर फल होताहै इस में कोई विचार नहीं है ॥ २५।२६ ॥ हे निशाकर ! जीवनपर्यन्त एक मनुष्य ब्रह्मचारी होवै और एक यहां पर मुझको एक बार देखै उन दोनों को बराबर फल कहा गया है ॥ २७ ॥ एक मनुष्य करीषों का साधन करता है अथवा पालामें प्रवेश करता है और एक मुझको यहां देखता है उन दोनों का फल

पदेपदेश्वमेधस्य तेषांफलमुदाहृतम् ॥ किंकृतैर्बहुभिर्यज्ञैरुपवासैर्निशाकर ॥ २४ ॥ साक्षात्पश्यन्तिमांयेत्रलभन्तेस र्वमेवतत् ॥ एकोमासोपवासन्तु कुरुतेभक्तितत्परः ॥ २५ ॥ ॥ यावद्वर्षसहस्रन्तु एकःपश्यतिमामिह ॥ द्वाभ्यामपिफलं तुल्यं नास्तिकाचिद्विचारणा ॥ २६ ॥ एकोभवेद्ब्रह्मचारी यावज्जीवंनिशाकर ॥ सकृत्पश्यतिमान्तत्र समन्ताभ्यांफलं स्मृतम् ॥ २७ ॥ करीषान्साधयेदेकोथवाप्रालेयमाविशेत् ॥ अन्यःपश्यतिमामत्र समन्ताभ्यांफलंस्मृतम् ॥ २८ ॥ ए कोदानानिसर्वाणि प्रयच्छतिद्विजातये ॥ एकःपश्यतिमामत्र समन्ताभ्यांफलंस्मृतम् ॥ २९ ॥ एकोव्रतानिसर्वाणि कुरुतेमृगलाञ्छन ॥ अन्यःपश्यतिमामत्र फलंताभ्यांसमंस्मृतम् ॥ ३० ॥ एकःपिण्डप्रदानञ्च पितृतीर्थेसमाचरे त् ॥ अन्यःपश्यतिमामत्र फलंताभ्यांसमंस्मृतम् ॥ ३१ ॥ गोसहस्रप्रदोह्येको ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ एकःपश्यतिमामत्र फलंताभ्यांसमंस्मृतम् ॥ ३२ ॥ पञ्चाग्निंसाधयेदेको ग्रीष्मकालेसुदारुणे ॥ एकःपश्यतिमामत्र फलंताभ्यांसमंस्मृ

बराबर कहा गयाहै ॥ २८ ॥ एक मनुष्य ब्राह्मण के लिये सब दानों को देता है व एक मुझ को यहा पर देखता है उन दोनों का फल बराबर कहा गया है ॥ २९ ॥ हे मृगलाञ्छन ! एक मनुष्य सब व्रतों को करता है व अन्य मुझको यहां पर देखताहै उन दोनों का फल बराबर कहा गया है ॥ ३० ॥ व एक मनुष्य पितरों के तीर्थ में पिण्डदान करै और अन्य पुरुष मुझको यहा देखै उन दोनों का फल बराबर कहागयाहै ॥ ३१ ॥ व एक मनुष्य वेदपारगामी ब्राह्मण के निमित्त गोसहस्र को देताहै और एक मुझको यहां देखता है उन दोनों का फल बराबर कहा गया है ॥ ३२ ॥ व एक मनुष्य भयङ्कर ग्रीष्मसमय में पञ्चाग्नि को साधन करताहै और

एक मुझको यहां देखता है उन दोनों का फल बराबर कहा गयाहै ॥ ३३ ॥ व हे चन्द्रमा ! सोमवार में चन्द्रमा का ग्रहण प्राप्त होनेपर भक्ति से जो मनुष्य मुझको देखताहै वह इन सबोंके फलको प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ सरस्वती समुद्र व सोमवार में सोमका ग्रहण और सोमनाथजी का दर्शन ये पांच सकारैं दुर्लभ हैं ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य छह महीने तक निरन्तर विधि से मुझको पूजताहै उसी समस्त पुण्य को मनुष्य विषुवकाल में पूजन से प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ और यही ग्रहण व उत्तरायण में जानना चाहिये व संक्रान्तिवाले दिनों के समयों में व षडशीत्याननसंज्ञक संक्रान्तियों में यही जानना चाहिये ॥ ३७ ॥ और चार महीने तक विधि से सदाशिव

तम् ॥ ३३ ॥ प्राप्तेसोमग्रहेचन्द्रसोमवारेचभक्तितः ॥ योमांपश्यतिसर्वेषामेतेषांलभतेफलम् ॥ ३४ ॥ सरस्वतीसमुद्रस्तु सोमेसोमग्रहस्तथा ॥ दर्शनंसोमनाथस्य सकाराःपञ्चदुर्लभाः ॥ ३५ ॥ नैरन्तर्येणषण्मासान् विधिनायःप्रपूजयेत् ॥ पुण्यंतदेवसकलं लभतेविषुवेर्चनात् ॥ ३६ ॥ एतदेवतुविज्ञेयं ग्रहणेचोत्तरायणे ॥ संक्रान्तिदिनकालेषु षडशीतिमुखेषुच ॥ ३७ ॥ मासैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं विधिनापूज्यशङ्करम् ॥ कार्त्तिक्यांलभ्यतेपुण्यं चैत्र्यांतद्द्विगुणंस्मृतम् ॥ ३८ ॥ पुण्यमेतच्चफाल्गुन्यामाषाढ्यामेवमेवतु ॥ एकोदद्याद्गवांलक्षं दोग्ध्रीणांवेदपारगे ॥ ३९ ॥ एकोमामर्चयेल्लिङ्गे तस्यपुण्यंततोधिकम् ॥ माघेमासेभोजयेद्वा यावज्जीवंद्विजोत्तमान् ॥ ४० ॥ पश्चाद्दीक्षेतसकृल्लिङ्गं सम्प्राप्नोतिनसंशयः ॥ सुवर्णकोटिंयद्दत्त्वा तत्फलंकुसुमेनतु ॥ ४१ ॥ अर्कपुष्पेयदेकस्मिञ्छिवायविनिवेदिते ॥ दशदत्त्वासुवर्णानां

जी को पूजकर जो पुण्य मिलता है वही पुण्य कार्त्तिकी में मिलता है और चैत्री में उससे दूना कहा गयाहै ॥ ३८ ॥ और यही पुण्य फाल्गुनीमें व ऐसाही आषाढ़ी में होताहै एक मनुष्य दूधवाली लाख गौवों को वेदपारगामी ब्राह्मण के लिये देताहै ॥ ३९ ॥ और एक लिङ्गमें मुझको पूजताहै तो उसका पुण्य उससे अधिक होता है व माघ महीने में जीवनपर्यन्त जो मनुष्य द्विजोत्तमों को भोजन कराता है ॥ ४० ॥ और जो एकवार लिङ्गको देखता है वह उसी फल को निस्सन्देह प्राप्त होता है व करोड़ अशर्फियों को देकर जो फल मिलताहै वही फल पुष्प से प्राप्त होता है ॥ ४१ ॥ शिवजी के लिये एक मदारका फूल चढ़ानेपर जो फल मिलता है उसी

फलको मनुष्य दश अशर्फियों को देकर प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥ व हज़ार अर्कपुष्पों से कनैर का पुष्प विशेष होताहै और हज़ार कनैर के फूलों से गुम्माका फूल विशेष है ॥ ४३ ॥ व हज़ार द्रोणपुष्पों से अपामार्ग (लटजीरा) विशेष है और हज़ार लटजीरा के पुष्पों से कुशका फूल विशेष है ॥ ४४ ॥ और हज़ार कुश के फूलों से शमी का पुष्प विशेषहै और शमी का फूल व भटकटैया का फूल बराबर कहाजाता है ॥ ४५ ॥ व चमेली, विजय (अर्जुन) व पाडर कनैर के समान जानने योग्य हैं और श्वेत मदार का फूल कमल के तुल्य होता है ॥ ४६ ॥ और नाग, चम्पक, पुन्नाग व धतूरका फूल कहा गयाहै और केतकी, अतिमुक्त (कुन्दभेद)

तत्फलंसमवाप्नुयात् ॥ ४२ ॥ अर्कपुष्पसहस्रैस्तु करवीरंविशिष्यते ॥ करवीरसहस्रेभ्यो द्रोणपुष्पंविशिष्यते ॥ ४३ ॥ द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यो ह्यपामार्गविशिष्यते ॥ अपामार्गसहस्रेभ्यःकुशपुष्पंविशिष्यते ॥ ४४ ॥ कुशपुष्पसहस्रेभ्यः शमीपुष्पंविशिष्यते ॥ शमीपुष्पंबृहत्याश्च कुसुमंतुल्यमुच्यते ॥ ४५ ॥ करवीरसमाज्ञेया जातीविजयपाटलाः ॥ श्वेतमन्दारकुसुमं शतपत्रसमंभवेत् ॥ ४६ ॥ नागचम्पकपुन्नागं धत्तूरंकुसुमंस्मृतम् ॥ केतकीचातिमुक्तञ्च कुन्दयूथीसुमानि च ॥ ४७ ॥ शिरीषसर्जजम्बूककुसुमानिविवर्जयेत् ॥ कनकानिकदम्बानि रात्रौदेयानिशङ्करे ॥ ४८ ॥ दिवाशेषाणि पुष्पाणि दिवारात्रौचमल्लिका ॥ प्रहरंतिष्ठतेमल्लीकरवीरमहर्निशम् ॥ ४९ ॥ कीटकेशापविद्धानि रात्रौपर्युषितानि च ॥ ५० ॥ स्वयंपतितपुष्पाणि त्यजेदुपहतानिच ॥ तुलसीशतपत्रञ्च गान्धारोदमनस्तथा ॥ ५१ ॥ सर्वासांपत्रजातीनां श्रेष्ठोदमनकःस्मृतः ॥ एतैःपुष्पविशेषैस्तु पूजेत्सोमेश्वरंसदा ॥ ५२ ॥ यात्रायाःफलमाप्नोति स्वर्गलोकेमहीय

कुन्द व जूही के फूल ॥ ४७ ॥ सिरसा, असैना, जामुन के फूलों को वर्जित करै व धतूर और कदम्ब के फूलों को रात्रि में शिवजी के ऊपर देना चाहिये ॥ ४८ ॥ व शेष फूलों को दिनमें चढ़ाना चाहिये और बेला दिनरात चढ़ाना चाहिये बेला पहर भर तक स्थित रहताहै और कनैर दिन रात रहता है ॥ ४९ ॥ और कीटों व केशों से संयुत व रात्रि में बसेहुये याने एक दिन पहले के तोड़ेहुये फूल ॥ ५० ॥ और आपही से गिरेहुये व दलमले हुये फूलोंको त्यागकरै और तुलसी,कमल, गान्धार व दमनक (देउना) को चढ़ावै ॥ ५१ ॥ और सब पत्रजातिवालों में दमनक श्रेष्ठ कहागया है इन पुष्पके भेदों से सदैव सोमेश्वरजी को पूजै ॥ ५२ ॥

तो मनुष्य यात्रा के फलको प्राप्त होताहै व स्वर्गलोकमें पूजा जाताहै इतनाही कहकर शिवजी वहीं पर अन्तर्द्धान होगये ॥ ५३ ॥ और यक्ष्मारोगसे छूटाहुआ चन्द्रमा अपने स्थान में प्राप्त हुआ और उसने विश्वकर्मा को बुलाकर मन्दिर बनवाया ॥ ५४ ॥ जो कि शुद्ध स्फटिक के समान और गऊ के दूधके समान उज्ज्वलथा उस सुवर्णकी छहरदिवाली व बन्दनवारवाले मेरुनामक मन्दिर को बनवाया ॥ ५५ ॥ और चारोंओर अन्य चौदह मन्दिर बनवाये गये उनके नामों को मैं कहताहूं मुझ से उन प्रत्येक को सुनिये ॥ ५६ ॥ कि केसर, सर्वतोभद्र, नन्दिन, नन्दशालक, नन्दीश, मन्दर, श्रीवृक्ष, अमृतोद्भव ॥ ५७ ॥ हिमवान्, हेमकूट, कैलास, पृथिवीजय,

ते ॥ एतावदुक्त्वावचनं तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५३ ॥ चन्द्रमायक्ष्मणामुक्तः स्वस्थाननिरतोभवत् ॥ आहूयविश्वकर्माणं प्रासादंपर्य्यकल्पयत् ॥ ५४ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं गोक्षीरधवलोज्ज्वलम् ॥ प्रासादम्मेरुनामानं हेमप्राकारतोरणम् ॥ ५५ ॥ चतुर्दशान्येपरितः प्रासादाःपरिकल्पिताः ॥ तेषांनामानिवक्ष्यामि प्रत्येकन्तानिमेशृणु ॥ ५६ ॥ केसरस्सर्वतोभद्रो नन्दिनोनन्दशालकः ॥ नन्दीशोमन्दरश्चैव श्रीवृक्षोप्यमृतोद्भवः ॥ ५७ ॥ हिमवान्हेमकूटश्च कैलासः पृथिवीजयः ॥ इन्द्रनीलोमहानीलो भूधरोरक्तकूटकः ॥ ५८ ॥ वैडूर्यःपद्मरागश्च वज्रकोमुकुटोज्ज्वलः ॥ ऐरावतोराजहंसो गरुडोवृषभस्तथा ॥ ५९ ॥ मेरुप्रासादराजाच देवानामालयोहिसः ॥ आदौपञ्चाण्डकोज्ञेयः केसरीनामतःस्थितः ॥ ६० ॥ चतुर्णांयावतीवृद्धिस्तावान्मेरुःप्रकीर्त्तितः ॥ एवंपृथक्कारयित्वा प्रासादांश्चचतुर्दश ॥ ६१ ॥ ब्रह्मादीनान्देवतानां समीपस्थानवासिनाम् ॥ दशचान्यान्भूधरादीन् वृषभान्तान्वरानने ॥ ६२ ॥ आदौकपर्दिनंकृत्वा प्रासादान्

इन्द्रनील, महानील, भूधर,रक्तकूट, ॥ ५८ ॥ वैडूर्य, पद्मराग, वज्रक,मुकुटोज्ज्वल, ऐरावत, राजहंस,गरुड व वृषभ ॥ ५९ ॥ व मेरुप्रासादराजा वह देवताओंका मन्दिर है और पहले केसरी नाम से स्थित मन्दिर पाच अण्डे की प्रमाण भर जानने योग्य है ॥ ६० ॥ व चार अण्डों की जितनी वृद्धि होती है उतना मेरु कहा गयाहै इस प्रकार चौदह मन्दिरों को पृथक् बनवाकर ॥ ६१ ॥ हे वरानने ! समीप स्थान में बसनेवाले ब्रह्मादिक देवताओं के भूधरादिक व वृषभान्त दश अन्य मन्दिरों को

बनवाया ॥ ६२ ॥ और पहले शिवजी को बनाकर मन्दिरादिकों को बनाया और जो मन्दिरों का राजा मेरुहै वह सोमेश्वर जीका कहागया है ॥ ६३ ॥ हे देवि ! वैवस्वत मनुके दशवें त्रेतायुगमें मण्डपों को बनवाकर व विधिपूर्वक प्रतिष्ठाकर ॥६४॥ सौ नदियों को बनाकर हज़ार बावली तथा कूपों को निर्माणकर दीनानाथ जनोंके आश्रयवाले हज़ार गृहोंको विधि से बनवाकर पृथक् २ ब्राह्मणों के लिये देदिया और श्रीसोमेश्वरजी के समीप नगरको बसाकर चन्द्रमाने ॥ ६५ । ६६ ॥ इसके उपरान्त उत्तम कर्मों के प्रचार के लिये ब्राह्मणों का पूजन किया व कहा कि ब्रह्माकी प्रसन्नतासे मैं सोम आपलोगों का राजाहूं ॥ ६७ ॥ तथापि विनयही से भक्तिपूर्वक आप

पर्यकल्पयत ॥ मेरुःप्रासादराजावै सतुसोमेश्वरस्यवै ॥ ६३ ॥ त्रेतायांदशमेदेवि युगेवैवस्वतस्यहि ॥ कारयित्वाम
ण्डपांश्च प्रतिष्ठाप्ययथाविधि ॥ ६४ ॥ नदीनान्तुशतंकृत्वा वापीकूपसहस्रकम् ॥ गृहाणान्तुसहस्राणि दीनानाथा
श्रयाणितु ॥ ६५ ॥ कारयित्वाविधानेन विप्रेभ्यःप्रददौपृथक् ॥ निवेश्यनगरंसोमः श्रीसोमेश्वरसन्निधौ ॥ ६६ ॥ सत्क
र्मणांप्रचारार्थमथाभ्यर्चयतद्विजान् ॥ सोमोस्मिभवतांराजाप्रसादात्परमेष्ठिनः ॥ ६७ ॥ तथापिविनयेनैव भक्त्याविज्ञा
पयामिवः ॥ धनंहिरण्यरत्नादिधान्यंव्रीहियवादिकम् ॥ ६८ ॥ गोमहिष्यादिपशवो वस्त्राणिविविधानिच ॥ कदली
नालिकेराश्च ताम्बूलाःपूगमालिनः ॥ ६९ ॥ मनोभिरामाभवतामारामाःपरितःस्थिताः ॥ जम्बूद्वीपस्थितास्सर्वे भव
तांवशवर्त्तिनः ॥ ७० ॥ आदेशंवःकरिष्यन्ति शिरस्यादायशोभनम् ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याश्शूद्रावैवर्णसङ्कराः ॥
७१ ॥ तीर्थयात्रांकरिष्यन्ति गुरून्मत्वासदैवहि ॥ द्वीपान्तरादागतैश्च कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥ ७२ ॥ अन्यैश्वविविधैर्द्रव्यै

लोगों से निवेदन करताहूं कि धन, सुवर्ण व रत्नादिक और धान व यवादिक धान्य ॥ ६८ ॥ गऊ व भैंसी आदिक पशु तथा अनेक भांति के वस्त्र, केला, नारियल और सुपारी के समूहवाले ताम्बूल ॥ ६९ ॥ और सुन्दर बगीचे आप लोगों के सब ओर स्थित हैं व जम्बूद्वीप में टिकेहुये आप लोगों के वशवर्ती सब मनुष्य ॥ ७० ॥ तुमलोगोंकी सुन्दरी आज्ञा को मस्तकपै धरकर करैंगे और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व वर्णसंकर लोग ॥ ७१ ॥ सदैव तुमलोगोंको गुरु मानकर तीर्थयात्रा करैंगे

व अन्य द्वीपों से आयेहुये कपूर, अगुरु व चन्दन ॥ ७२ ॥ तथा अन्य विविध वस्तुओं से आपलोगों के घर पूर्ण हैं और सैकडों संख्यक पुण्यों के व्यवहारका विचार है ॥ ७३ ॥ और लोभ को चाहनेवाले बनियां लोग अपने कर्मों को करते हैं जोकि आप लोगों में सेवक के भाव से वर्तमान होकर हितैषी हैं ॥ ७४ ॥ वैसेही जो अन्य पुरवासी हैं वे कभी दुःखित नहीं होते हैं और मेरे कल्याण के लिये आपलोग सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से ॥ ७५ ॥ विधिपूर्वक बहुत दक्षिणाओंवाले यज्ञकर्मों को कीजिये और दिन रात वेदादिक सब कर्मों को वर्तमान कीजिये ॥ ७६ ॥ व दीन, अन्ध और कृपणों का दुःख नाश किया जावै और योग्यता से अभ्यागत पुरुषोंकी

स्संपूर्णाभवतांग्रहाः ॥ पुण्यानांशतसंख्यानां व्यवहारावमर्शनम् ॥ ७३ ॥ स्वानिकर्माणितन्वन्ति वणिजोलाभ काङ्क्षिणः ॥ भवत्सुभृत्यभावेन वर्त्तमानाहितैषिणः ॥ ७४ ॥ तथान्येचापियेपौरा नावसीदन्तिकर्हिचित ॥ एवंसम्पूर्ण विभवैर्भवद्भिश्श्रेयसेमम ॥ ७५ ॥ क्रतुक्रियावितन्यन्तां विधिवद्भूरिदक्षिणाः ॥ ब्रह्मादीनिचसर्वाणि प्रवर्त्यन्तामहर्नि शम् ॥७६॥ दीनान्धकृपणानाञ्च क्रियतामार्त्तिनाशनम् ॥ अभ्यागतानामौचित्यादातिथ्यञ्चविधीयताम् ॥७७॥ तीर्थ यात्राप्रसङ्गेन समेतानांमहात्मनाम् ॥ ब्रह्मर्षीणामथाग्र्येषुदीयतामाशुसर्वदा ॥ ७८ ॥ मयात्रस्थापितंलिङ्गं सर्वकालं दृढव्रताः ॥ पवित्रैरुपचारैश्च पूजयन्तुद्विजोत्तमाः ॥ ७९ ॥ व्यवहारानवेक्षध्वं स्मृत्याचारविशारदाः ॥ व्यवस्थांम त्कृताञ्चैव येभवन्तोद्विजोत्तमाः ॥ ८० ॥ धारयन्तुमहात्मानो द्विजागामिवमेदिनीम् ॥ एवंप्रभुत्वमास्थाय येत्वस्मि ञ्छीलशालिनः ॥ ८१ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तान् धर्मानाचरतद्विजाः ॥ निशम्यसोमेशवचो विनीतमतयोद्विजाः ॥८२॥

पहुनई कीजिये ॥ ७७ ॥ व तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से आयेहुये महात्मा श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों के मध्य में उत्तम जनोंको सदैव शीघ्रही दान दिया जावै ॥७८॥ व हे दृढ़ नियमों वाले द्विजोत्तमो ! मुझ से यहां थापेहुये लिङ्गको सब समय में पवित्र उपचारों से पूजिये ॥ ७९ ॥ और स्मृतियों के आचार मे चतुर तुमलोग व्यवहारों को देखो व जो आप लोग द्विजोत्तम हैं वे मेरी कीहुई व्यवस्था को ॥ ८० ॥ धारण करैं व महात्मा ब्राह्मण लोग गऊकी नाईं पृथ्वी की रक्षाकरैं इस प्रकार स्वामिता में टिककर जो इस नगर में शीलसे शोभित हैं ॥ ८१ ॥ वे आपलोग ब्राह्मण श्रुतियों व स्मृतियों में कहेहुये धर्मोंको करैं विनीतबुद्धिवाले ब्राह्मण सोमेशजी के वचन को सुन

कर ॥ ८२ ॥ उनमें जो कि गोत्रों के मध्य में प्रथम द्विजहैं वे कौशिकजी वचन बोले कि हमलोगों को सर्वथा चन्द्रमा ने अच्छा उपदेश किया है ॥ ८३ ॥ हमलोग इस सब वचन को करैंगे किन्तु कुछ सुनिये कि शिवजी के निर्माल्य को सेवनेवाले व आज्ञासे शिवजी को पूजतेहुये ॥ ८४ ॥ हमलोगों को श्रुतियों व स्मृतियों में निन्दित पतितता होती है जिस लिये श्रुति व स्मृति दोनों शिवजी की आज्ञा महान् है ॥ ८५ ॥ उस कारण कण्ठगत प्राणों के होनेपर भी कौन मूढ़ पुरुष उस आज्ञाको उल्लंघन करैगा फिर अष्टमूर्ति शिवजी की मूर्तिमें व देवताओं के मुखरूपी अग्निमें यज्ञों को ॥८६॥ उत्तम स्वरूप से करतेहुये हमलोग समस्त संसार को तृप्त

उवाचकौशिकस्तेषु गोत्राणांप्रथमोद्विजः ॥ साधूपदिष्टमस्माकं द्विजराजेनसर्वथा ॥ ८३ ॥ सर्वमेतत्करिष्यामः किन्तुकिञ्चिन्निशामय ॥ नियोगतःपूजयन्तां शिवनिर्माल्यसेविनाम् ॥ ८४ ॥ पातित्यंजायतेस्माकं श्रुतिस्मृतिविगर्हितम् ॥ श्रुतिस्मृतीहिरुद्रस्य यस्मादाज्ञाद्वयंमहत् ॥ ८५ ॥ कस्तामुल्लङ्घयेन्मूढः प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ अष्टमूर्त्तेःपुनर्मूर्तावग्नौदेवमुखेमखान् ॥ ८६ ॥ कुर्वाणाःसत्स्वरूपेण प्रीणयामोखिलंजगत् ॥ जगद्भगवतोरूपं व्यक्तमेतत्पुरद्विषः ॥ ८७ ॥ मिथोविभिन्नमित्येतदभिन्नंपुनरीश्वरात् ॥ अग्नौप्राप्ताहुतिस्सम्यगादित्यमुपतिष्ठति ॥ ८८ ॥ आदित्याज्जायतेवृष्टिर्वृष्टेरन्नंततःप्रजाः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु सदाभ्यासप्रसङ्गिनाम् ॥ ८९ ॥ तथातादर्थ्यजुष्टानां प्रवृत्ताखिलकर्मणाम् ॥ अस्माकमवकाशोपि विरलोलिङ्गपूजने ॥ ९० ॥ रुद्रजाप्यैर्महायज्ञैर्यजानाश्चैवमीश्वरम् ॥ यथाक्षणंयथाकालं लिङ्गंचेदमुपास्महे ॥ ९१ ॥ यत्तुतेभिमतंसोमे श्रीसोमेश्वरपूजनम् ॥ तच्चसम्पादयिष्यामः सविशेषंमहाम

करते हैं और यह प्रकटहै कि संसार त्रिपुर के शत्रु भगवान् शिवजी का रूप है ॥ ८७ ॥ इस लिये परस्पर में भिन्न यह फिर ईश्वरसे अभिन्नहै और अग्निमें भलीभांति प्राप्त आहुति सूर्यनारायण के समीप जाती है ॥ ८८ ॥ और सूर्य से वृष्टिहोती है व वृष्टि से अन्न होताहै और उससे प्रजा होते हैं व श्रुतियों और स्मृतियों तथा पुराणों में सदैव अभ्यास के प्रसङ्गवाले ॥ ८९ ॥ व उसी के अर्थ में सेवित तथा समस्त कर्मों में वर्तमान हमलोगों को लिङ्ग के पूजन में अवसर विरल है याने कम समय है ॥ ९० ॥ और रुद्रजपों से व महायज्ञों से शिवजी को पूजतेहुये हमलोग यथाक्षण व यथासमय में इस लिङ्गकी उपासना करैंगे ॥ ९१ ॥ हे महामते, सोम ! जो श्री-

निश्चयकर कैसे मारते हैं व हे प्रभो ! फिर मारेहुये उन दैत्यों की क्या दशा होगी इसको कहिये ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि सात्त्विक, राजस व तामस तीन भांति के मनुष्य होते हैं उन में ये तमोगुणी व दुरासद हैं ॥ ३ ॥ और संसार के उजाड़ने में उद्यत तथा देवताओं के साथ ईर्षा करतेहुये दैत्य तामसी तपों से बार बार अज्ञान से भजते हैं ॥ ४ ॥ उनको जो वरदान देताहूं उसमें भक्ति कारणहै क्योंकि मैं भक्ति से भलीभांति ग्रहण करने योग्यहूं इस में विचार न करना चाहिये ॥ ५ ॥ हे देवि ! तपस्याके अनुसार वरोंको पाकर वे पापकारी दैत्य जो विष्णु से मारेजाते हैं उसको मुझ से जानिये ॥ ६ ॥ कि जो मैं व विष्णुजी भिन्न हैं इस में गुण का

भो ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ सात्त्विकाराजसाश्चैव तामसाश्चेतिचत्रिधा ॥ भवन्तिलोकास्तेष्वेते तमःप्रायादुरासदाः॥३॥ सुरैस्सहस्पर्धमानास्तपोभिरपितामसैः ॥ माम्भजन्तिमुहुर्मोहाज्जगदुत्सादनोद्यताः ॥ ४ ॥ वरन्ददामियत्तेषांभक्ति स्तत्रतुकारणम् ॥ अहंहिभक्त्यासुग्राह्यो नात्रकार्याविचारणा ॥ ५ ॥ तपोनुरूपानासाद्य वरांस्तेपापकारिणः ॥ विष्णुनायेचहन्यन्ते तच्चदेविनिबोधमे ॥ ६ ॥ अहंहरिश्चयद्भिन्नो गुणभागोत्रकारणम् ॥ परमार्थादभिन्नौच रहस्यंपरमंत्विदम् ॥ ७ ॥ आराध्याराधकादिश्च भेदस्सामान्यएवनौ ॥ तथाह्यहमिमांगङ्गां विष्णोःपादाग्रनिस्सृताम् ॥ ८ ॥ वहामिशिरसाभक्त्या त्वदीर्ष्याशङ्कितोपिसन् ॥ अपिविष्णुस्त्रिभुवनं परित्रातुंव्यवस्थितः ॥ ९ ॥ मामुपास्यचिरंलेभे चक्रंदुष्टनिबर्हणम् ॥ त्वञ्चतस्यमहामाया ह्यप्रमेयात्मनोहरेः ॥ १० ॥ आराधयामितद्भक्त्या त्रिजगज्जन्मकारणम् ॥ ११ ॥ शिरसादायचाज्ञांमे शक्तिरूपांतथाहरिः ॥ अजोपिजन्मान्यासाद्य लोकरक्षांकरोतिवै ॥ १२ ॥ हन्तुं

भाग कारण है और परमार्थ से अभिन्न हैं यह उत्तम रहस्य है ॥ ७ ॥ और हम दोनों का आराध्य व आराधकादिक भेद सामान्यही है तथापि विष्णुजी के चरण के अग्रभाग से निकली हुई इन गङ्गाजी को ॥ ८ ॥ तुम्हारी ईर्ष्या से शङ्कित भी मैं भक्तिपूर्वक मस्तक से धारण किये हूं और विष्णुजी त्रिलोककी भी रक्षा करने के लिये स्थित हैं ॥ ९ ॥ तथापि बहुत समय तक मेरी उपासना करके दुष्ट दैत्यों के नाश करनेवाले चक्र को उन्हों ने पाया है और उन अमितात्मा विष्णुजी की तुम महामायाहो ॥ १० ॥ इसलिये त्रिलोकके जन्मके कारण विष्णुजी को मैं भक्तिसे आराधन करता हूं ॥ ११ ॥ और शक्तिरूपिणी मेरी आज्ञा को मस्तक से धारण

कर जन्मरहित भी विष्णुजी जन्मों को प्राप्त होकर संसारकी रक्षा करते हैं ॥ १२ ॥ और हिरण्यकशिपु को मारने के लिये नृसिंहशरीरवाले, संसार को नाशने की इच्छावाले उन विष्णुजी को सरभरूपवाले मैंने शान्त कियाहै ॥ १३ ॥ और बाणासुरकी रक्षा करनेमें त्रिशूल का उद्यम करनेवाले मुझको मनुष्य के अवतारमें भी इनने लीलासे स्तम्भित करदिया ॥ १४ ॥ इस संसार में मेरे प्रभाव व महिमा को बढ़ातेहुये मेरे प्रभु विष्णुजी चित्तमें नित्यही मेरी सेवा करते हैं ॥ १५ ॥ व मैं भी आदि अन्तरहित इन परमात्माको ध्यानयोग व समाधि में सदैव स्मरण करताहूं ॥ १६ ॥ इसलिये हमदोनों का परमार्थिक भेदहै और भेद व न्यूनाधिक्यके विचारको

हिरण्यकशिपुं नरसिंहवपुश्चसः ॥ जगज्जिघांसुश्शमितो मयासरभरूपिणा ॥ १३ ॥ माञ्चबाणपरित्राणे त्रिशूलोद्यमकारिणम् ॥ मानुष्येप्यवतारेसौ स्तम्भयामासलीलया ॥ १४ ॥ प्रभावंमहिमानञ्च वर्द्धयन्मामकंहरिः ॥ वरिवस्यतिमान्नित्यमन्तरात्मनिमेविभुः ॥ १५ ॥ अप्यहंपरमात्मानमेनमाद्यन्तवर्जितम् ॥ ध्यानयोगेसमाधौच भावयामिनिरन्तरम् ॥ १६ ॥ तदेवमावयोर्भेदो विद्यतेपारमार्थिकः ॥ भेदञ्चतारतम्यञ्च मूढाएववितन्वते ॥ १७ ॥ वैष्णवंरूपमास्थाय दुर्वृत्ताञ्हन्मितानहम् ॥ गतिञ्चतेषामधुनामहेश्वरिनिशामय ॥ १८ ॥ मयिभक्त्यवसानेतु हरेस्सन्दर्शनेनतु ॥ क्रोधेनैवाभिभूतत्वान्नमुक्तिप्राप्नुवन्तिते ॥ १९ ॥ आवयोस्तुप्रभावेण तेपुनर्धौतकल्मषाः ॥ ब्रह्मर्षीणांकुलेजन्म सम्प्राप्तामुक्तिहेतवे ॥ २० ॥ ब्रह्मचारिव्रतादूर्ध्वं योगंपाशुपतंश्रिताः ॥ प्राचीनजन्मसंस्कारात्तेपुनर्मामुपासते ॥ २१ ॥ भक्तियोगेनचाज्ञाय व्रतंपाशुपतादिकम् ॥ श्मशानवासिनोनग्ना अपरेचैकवाससः ॥ २२ ॥ भिक्षाभुजोभूति

मूढही पुरुष करते हैं ॥ १७ ॥ और विष्णुजी के रूपको प्राप्तहोकर उन दुष्टोंको मैं मारताहूं हे महेश्वरि ! इस समय उनकी गतिको सुनिये कि ॥ १८ ॥ मुझमें भक्तिके अन्तमें विष्णुजी के दर्शनसे क्रोधसे तिरस्कृत होने के कारण वे मुक्तिको नहीं प्राप्त होतेहैं ॥ १९ ॥ फिर हम दोनों के प्रभाव से पापरहित वे मुक्तिके लिये ब्रह्मर्षियों के वंशमें जन्मको प्राप्त हुये हैं ॥ २० ॥ व ब्रह्मचारियों के नियम के उपरान्त शैवयोगमें स्थित हुये और पुराने जन्मके संस्कार से वे फिर मेरी उपासना करते हैं ॥ २१ ॥ और भक्तियोग से शैवादिक व्रतको जानकर श्मशानवासी व नग्नहुये और कितेक एकवसनधारी हुये ॥ २२ ॥ व भिक्षाको भोजन करनेवाले तथा विभूति धारने

वाले वे लिङ्गोंका पूजन करते हैं व सदैव केवल मुझमें बुद्धिको लगायेहुये वे मेरे ध्यान में दृढ़नियमसे संयुत होतेहैं ॥ २३ ॥ और जो मनुष्य लोकोंकी स्वामिनी तुमको भी नमस्कार करते हैं देहान्त के योगसे मुझमें चित्तको लगायेहुये उनको मैं सारूप्य व सालोक्यमयी मुक्तिको देताहूं और शैवयोग सायुज्य मुक्तिके लियेभी जाना गयाहै ॥ २४ । २५ ॥ और वे उत्तम मुनियों से स्मृति व आचार के कारण निन्दित नहीं हैं तीर्थयात्रा के प्रसङ्गसे यहां आयेहुये भक्तिसे रहित मनवाले उन ब्राह्मणों को मैं अपने स्थानको लेजाऊंगा जोकि पवित्र भिक्षान्न, कौपीन और कमण्डलु आदिकों से संस्कार को प्राप्तहैं ॥ २६ । २७ ॥ और भोजनार्थवाले तथा अनन्य

भृतोलिङ्गान्यभ्यर्चयन्तिते ॥ सदामय्येकधियो ममध्यानेदृढव्रताः ॥ २३ ॥ येत्वामपिनमस्यन्ति जगतामपिचेश्वरीम् ॥ देहावसानयोगेन मुक्तिंतेषांददाम्यहम् ॥ २४ ॥ सारूप्यसालोक्यमयीं मयिवेशितचेतसाम् ॥ सायुज्यमुक्तये चापि योगःपाशुपतोमतः ॥ २५ ॥ स्मृत्याचारेणमुनिभिः सद्भिस्तेनात्रगर्हिताः॥तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तानिहोपगतान्द्विजान् ॥ २६॥ स्वस्थानमुपनेष्यामो भक्त्यावर्जितमानसान् ॥ शुचिभिक्षान्नकौपीनकमण्डल्वादिसंस्कृतान् ॥२७ ॥ अनन्यकार्यास्सततमाहारार्थास्तपस्विनः ॥ भवत्प्रदत्तैर्विविधैरुपहारैरतन्द्रिताः ॥ २८ ॥ तत्त्वतस्तत्त्वसंख्याने सर्वधर्मैकतत्पराः ॥ श्रीसोमेश्वरमभ्यर्च्य तवश्रेयोभिवर्द्धकाः ॥ २९ ॥ मुक्तिमन्तेगमिष्यन्ति देहस्यान्तेसुदुर्लभाम् ॥ ततोन्येपिततोन्येच ततश्चान्येतपोधनाः ॥ ३० ॥ परीक्षितास्तुतेस्माभिर्भवितारोनसंशयः ॥ द्विजाऊचुः ॥ इत्याहभगवान्देव्या पृष्टस्सर्वंत्रिलोचनः ॥ ३१ ॥ तत्रैवनारदस्सर्वंसंवादंशिवयोरिदम् ॥ श्रुत्वातांकथयामास कथागोष्ठीषुपृच्छ

प्रयोजनवाले तपस्वी सदैव आपके दियेहुये अनेक भांति के उपहारों से निरालसी होकर ॥ २८ ॥ यथार्थ से तत्त्वोंकी गणना में सब धर्मोंमें केवल तत्पर हैं व तुम्हारे कल्याण को बढ़ानेवाले वे श्रीसोमेश्वरजी को पूजकर ॥ २९ ॥ अन्त में देहान्त होनेपर दुर्लभ मुक्तिको प्राप्त होवेंगे उसके उपरान्त अन्यभी व तदनन्तर और व उसके उपरान्त अन्य तपस्यारूपी धनवाले ॥ ३० ॥ वे मनुष्य हमसे परीक्षा को प्राप्त होवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ब्राह्मणलोग बोले कि देवी पार्वतीजी से पूंछेहुये भगवान् त्रिलोचनजी ने सब ऐसा कहा ॥ ३१ ॥ वहीं पर पार्वतीजी व शिव जी के इस समस्त संवादको सुनकर नारदजी ने सभामें पूंछते हुये लोगों से उस कथाको

कहा ॥३२॥ और इस समय हमलोगों ने तुमसे इस समस्त वृत्तान्तको कहा उनसे ऐसा कहेहुये चन्द्रमाजी प्रसन्न होकर अपने लोक को चलेगये ॥३३॥ और उनकी आज्ञासे पहले उस यथोक्त वृत्तान्त को वेभी करते हैं देवी पार्वतीजी बोलीं कि ऐसे प्रभाववाले पापनाशक सोमेशदेवजी ॥३४॥ किस उपाय से व्रत व तपस्या से प्रसन्न होते हैं महादेवजी बोले कि मनुष्यों के हित के लिये धर्मको प्रकटतासे कहताहूं ॥ ३५ ॥ कि जिससे पापनाशक सोमेशदेव जी प्रसन्न होते हैं नियम, उपास, नक्तव्रत व अनेक भांति के व्रत ॥ ३६ ॥ तथा तीर्थ व सब दानों को उसने सम्पूर्णता से पात्र में दिया और उसी ने पुष्कर में लोकपवित्रकारक तपको किया ॥ ३७ ॥ और

साम् ॥ ३२ ॥ तवचास्माभिरधुना सर्वमेतदुदीरितम् ॥ एवमुक्तस्तुतैःप्रीतः सोमःस्वभुवनंययौ ॥ ३३ ॥ तदाज्ञयाचत त्पूर्वं यथोक्तंतेपिकुर्वते ॥ देव्युवाच ॥ एवंप्रभावोदेवश्च सोमेशःपापनाशनः ॥ ३४ ॥ केनोपायेनतुष्येत व्रतेननियमे नवा ॥ ईश्वरउवाच ॥ कथयामिस्फुटन्धर्मं मानुषाणांहितायवै ॥ ३५ ॥ येनतुष्यन्तिदेवेशः सोमेशःपापनाशनः ॥ नियमोपवासनक्तानि व्रतानिविविधानिच ॥ ३६ ॥ तीर्थदानानिसर्वाणि पात्रेदत्तान्यशेषतः ॥ तपश्चतप्तंतेनैव पुष्करे लोकपावनम् ॥ ३७ ॥ केदारेपिजलंतैश्च गत्वापीतंसुनिश्चलम् ॥ तेनार्चितंवरारोहे ज्योतिर्लिङ्गंमहाप्रभम् ॥ ३८ ॥ सोमवारेव्रतंदिव्यं येनचीर्णन्तुसंश्रयात् ॥ किमन्यैर्बहुभिर्दानैर्दत्तैःपात्रेषुसुन्दरि ॥ ३९ ॥ पूजितंयेनभावेन सोमवा राद्दिनाष्टकम् ॥ तेनसर्वंकृतन्देवि चीर्णंतत्रमहाव्रतम् ॥ ४० ॥ इतिहासमिदंपूर्वं कथयामितवप्रिये ॥ यथावृत्तंमहादे वि सोमवारव्रतम्प्रति ॥ ४१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ कैलासस्यमहेशानि उत्तरेचव्यवस्थिता ॥ निषधोपरिविस्तीर्णा पुरी

उन्हों ने केदारक्षेत्र में भी जाकर अचल जल को पिया व हे वरारोहे ! उसने महाप्रभावान् ज्योतिर्लिङ्ग की पूजा किया ॥ ३८ ॥ कि जिसने सोमवार में भलीभांति आश्रयसे दिव्य व्रतको किया है हे सुन्दरि ! उससे पात्रों में दियेहुये अन्य बहुतसे दानों से क्या है ॥ ३९ ॥ हे देवि ! जिसने भक्ति से सोमवार से लगाकर आठ दिन तक पूजन किया उसने वहां सब महाव्रत को किया है ॥ ४० ॥ हे प्रिये ! इस पहलेवाले इतिहास को मैं तुमसे कहताहूं कि जिसप्रकार हे महादेवि ! सोमवार

के व्रत में चरित्र हुआ है ॥ ४१ ॥ महादेवजी बोले कि हे महेशानि ! कैलास के उत्तर में निषधपर्वत के ऊपर स्वयंप्रभानामक विस्तीर्णपुरी स्थित है ॥ ४२ ॥ जो कि अनेकों रत्नों से शोभा से संयुत व अनेकों गन्धर्वों से पूर्ण और सब अङ्गों से सम्पूर्ण इन्द्रकी अमरावतीपुरी की नाईथी ॥ ४३ ॥ उसमें घनवाहन नामक गन्धर्व रहताथा वह वहांपर देवताओं से भी दुर्लभ भोगों को भोगता था ॥ ४४ ॥ उसकी स्त्री नवीनयौवन से संयुक्त व मनोहर थी और सुन्दर वचनवाली व सुशीला तथा कठोर व ऊंचे स्तनोंवाली थी ॥ ४५ ॥ उस समेत वह गन्धर्वोंका राजा भलीभांति सुखोंको भोग करता था कुछ समय के बाद उसके आठपुत्रों के ऊपर कन्या पैदा

नामस्वयम्प्रभा ॥ ४२ ॥ नानारत्नैस्तुशोभाढ्या नानागन्धर्वसङ्कुला ॥ सर्वावयवसम्पूर्णा शक्रस्येवामरावती ॥४३॥ घनवाहननामातु गन्धर्वस्तत्रतिष्ठति ॥ भुङ्क्तेतत्रमहाभोगान् देवैरपिसुदुर्लभान् ॥ ४४ ॥ नवयौवनसंयुक्ता भार्य्या तस्यमनोहरा ॥ प्रौढवाक्यासुशीलाच पीनोन्नतपयोधरा ॥ ४५ ॥ तयासार्द्धन्तुसम्भोगान् भुङ्क्तेगन्धर्वनायकः ॥ उत्पन्नातस्यकालेन पुत्रीपुत्राष्टकोपरि ॥ ४६ ॥ सर्वावयवसम्पन्ना सर्वविज्ञानवेदिनी ॥ गन्धर्वसेनाविख्याता नाम्नासा परमेश्वरि ॥ ४७ ॥ कन्यानान्तुसहस्रेषु प्रवरारूपशालिनी ॥ कौतूहलेनसापित्रा प्रोक्ताक्रीडस्वपुत्रिके ॥ ४८ ॥ उद्यानेतत्रवैरम्ये नानाद्रुमलताकुले ॥ वृक्षैरनेकैस्सङ्कीर्णे फलपुष्पसमन्विते ॥ ४९ ॥ एवंसारमतेनित्यं कन्यापरिवृता सदा ॥ एवंदृष्ट्वाक्रीडमानां माताभर्तारमब्रवीत् ॥ ५० ॥ जीवितंनिष्फलंस्वामिन् ममतेसहबान्धवैः ॥ यस्येदृशीगृहेकन्या विद्यतेभर्तृवर्ज्जिता ॥ ५१ ॥ इत्युक्तस्सतुगन्धर्वो भार्यावचनमब्रवीत् ॥ अन्वेषयामिभर्त्तारं पुत्र्यर्थेतुमनोह

हुई ॥ ४६ ॥ जो कि सब अङ्गों से संयुक्त व सब ज्ञानों को जाननेवाली थी हे परमेश्वरि ! वह नाम से गन्धर्वसेना प्रसिद्ध थी ॥ ४७ ॥ हे पुत्रिके ! हजारों कन्याओं में श्रेष्ठ व रूपसे शोभित भी उस से पिता ने कौतुक से कहा कि खेलिये ॥ ४८ ॥ वहांपर अनेकों भांति के वृक्षों व लताओं से संयुत तथा अनेकों वृक्षों से मिश्रित व फलों तथा फूलों से संयुत मनोहर बगीचे में ॥ ४९ ॥ कन्याओं से घिरीहुई वह सदैव इसभांति नित्य क्रीडा करती थी इसप्रकार खेलतीहुई कन्या को देखकर माताने पति से कहा ॥ ५० ॥ कि हे स्वामिन् ! भाइयों समेत हमारा व तुम्हारा जीवन निष्फल है कि जिसके घर में ऐसी कन्या पतिसे रहित विद्यमान है ॥ ५१ ॥

ऐसा कहा हुआ वह गन्धर्व स्त्री से वचन बोला कि मैं कन्या के लिये सुन्दर पति को ढूंढ़ताहूं ॥ ५२ ॥ ऐसा कहकर उस घनवाहनने उस कन्या को बुलवाया व हे सुन्दरि ! पिता, मातासे बुलाईहुई शीघ्रता संयुत वह उत्तम कन्या आकर क्रम से सबों के चरणों में गिरपड़ी व बोली कि हे तात ! मुझको आज्ञा दीजिये इस समय मुझको तुम्हारा क्या काम करना चाहिये ॥५३।५४॥ तदनन्तर प्रसन्न घनवाहनने वचनको कहा कि हे पुत्रि ! इस समय तुमको जो कोई पति रुचताहो ॥५५॥ गन्धर्वोंके मध्यमें उस शिखामणि पति के समीप जावो ऐसा कहीहुई वह क्रोधसे अरुणलोचनोंवाली कन्या पितासे वचन बोली ॥ ५६ ॥ कि मेरे रूप के करोड़िवें अंशमें क्या

रम् ॥ ५२ ॥ इत्युक्त्वाचाह्वयामास पुत्रींतांघनवाहनः ॥ आहूतापितृमातृभ्यां त्वरितागत्यसुन्दरि ॥ ५३ ॥ अनुक्रमेणसर्वेषां पतितापादयोश्शुभा ॥ आदेशंदेहिमेतात किंतेकार्यंमयाधुना ॥ ५४ ॥ उक्तंचघनवाहेन हर्षितेनवचस्ततः ॥ हेपुत्रितवयःकश्चिद्वरस्सम्प्रतिरोचते ॥ ५५ ॥ दिव्यन्तंयाहिभर्त्तारं गन्धर्वाणांशिखामणिम् ॥ इत्युक्ताक्रोधताम्राक्षी पितरंवाक्यमब्रवीत् ॥ ५६ ॥ ममरूपस्यकोट्यंशे किङ्कोप्यस्तिजगत्त्रये ॥ तच्छ्रुत्वाद्भुतंवाक्यं पितामाताचमोहितौ ॥ ५७ ॥ सर्वेविषादमापन्ना बान्धवाश्चापरेजनाः ॥ अशोभनमिदंवाक्यं कन्ययायत्प्रभाषितम् ॥ ५८ ॥ इत्यूचुश्चततस्सर्वे जननीपितृबान्धवाः ॥ सातत्रैवमहोद्याने रमतेसखिसंयुता ॥ ५९ ॥ हिण्डोलकेसमारूढा वसन्तेमासिभामिनि ॥ तावद्विमानदिव्यस्थः शिखण्डीगणनायकः ॥ ६० ॥ गच्छन्खेददृशेकन्यां रूपौदार्यसमाकुलाम् ॥ गीतवाद्येनन्नृत्येन रमन्तीदुन्दुभिस्वनैः ॥ ६१ ॥ समध्याह्निकसन्ध्यायामवतीर्यविमानतः ॥ क्रीडमानोप्सरोभिस्तु

कोई त्रिलोक में है उस अद्भुत वचन को सुनकर पिता व माता मोहित हुये ॥ ५७ ॥ और बान्धव व अन्य समस्तलोग दुःख को प्राप्तहुये व बोले कि कन्याने जो कहा है यह वचन अच्छा नहीं है ॥ ५८ ॥ ऐसा सब बन्धुलोग व माता, पिता ने कहा और सखियों से संयुत वह उसी बड़े बगीचे में खेलती रही ॥ ५९ ॥ व हे भामिनि ! वसन्तऋतु के महीने में हिंडोले पै चढ़ी तब तक दिव्य विमानपै चढ़ेहुये गणनायक शिखण्डी ने ॥ ६० ॥ आकाश में जातेहुये रूप व उदारतासे संयुत कन्या को देखा जो कि गीत, बाजन, नृत्य व नगारों के शब्दोंसे क्रीड़ा करती थी ॥ ६१ ॥ मध्याह्न की सन्ध्या में विमान से उतर कर अप्सराओं से क्रीड़ा करता हुआ

वह उस बगीचे में स्थितहुआ ॥ ६२ ॥ उस समय उसने उस गन्धर्व की कन्या के वचन को सुना कि संसार में कोई भी मेरे रूपके समान नहीं देख पड़ताहै ॥ ६३ ॥ देवता व दानव भी मेरे रूपके करोड़िवें अंशमें नहीं हैं इस वचन को सुनकर तदनन्तर वह गण क्रोधसे संयुत हुआ ॥ ६४ ॥ और उस गणनायकने सुन्दर अङ्गों-वाली व अहङ्कार समेत उस कन्या को शाप दिया गन्धर्व बोला कि हे विशाललोचनि ! जिस लिये मुझको देखकर तुम रूप व सौभाग्य से गर्वित हो ॥ ६५ ॥ और अहङ्कारमें प्राप्त तुम गन्धर्वों व देवगणों का तिरस्कार करतीहो इसलिये तुम्हारे गर्वसंयुत अङ्गमें कुष्ठ होवेगा ॥ ६६ ॥ शाप को सुनकर तदनन्तर भयसे डरीहुई

तत्रोद्यानेस्थितस्तुवै ॥ ६२ ॥ शुश्राववाक्यंतस्याश्च गन्धर्वदुहितुस्तदा ॥ नकोपिसदृशोलोके ममरूपेणदृश्यते॥६३॥ देवोवादानवोवापि कोट्यंशेममरूपतः ॥ इतिवाक्यंततःश्रुत्वा गणःक्रोधसमन्वितः ॥ ६४ ॥ शशापतांसुचार्वङ्गीं सा हङ्कारांगणेश्वरः ॥ गन्धर्व उवाच ॥ मांदृष्ट्वायद्विशालाक्षि रूपसौभाग्यगर्विता॥६५॥समाक्षिपसिगन्धर्वान् देवाद्यांश्चै वगर्विता ॥ तस्मात्तेगर्वसंयुक्ते कुष्ठमङ्गेभविष्यति ॥ ६६ ॥ श्रुत्वाशापन्ततःकन्या भयभीतातपस्विनी ॥ साष्टाङ्गंप्रणिप त्याथ अनुग्रहमयाचत ॥ ६७ ॥ भगवन्ममदीनायाः शापस्यानुग्रहंप्रभो ॥ प्रयच्छत्वंमहाभाग मैवंकर्त्तुंपुनःक्वचित् ॥ ६८ ॥ इत्युक्तस्तत्रकारुण्याच्छिखण्डीगणनायकः ॥ अनुग्रहंददौतस्या गन्धर्वदुहितुस्तदा ॥ ६९ ॥ शिखण्डि उवाच ॥ जातिरूपेणसंयुक्ता विद्याहङ्कारसम्पदा ॥ योयेनगर्वितःप्राणी सतंप्राप्यविनश्यति ॥ ७० ॥ तस्माद्गर्वोनवैका र्यो गर्वस्यैतत्फलंस्मृतम् ॥ शृणुष्वानुग्रहंबाले श्रुत्वाचैवावधारय ॥ ७१ ॥ हिमवद्वनमध्यस्थो गोशृङ्गोमुनिपुङ्गवः ॥

उस तपस्विनी कन्या ने साष्टाङ्गप्रणाम करके शाप के अनुग्रह (उद्धार) की याचना किया ॥ ६७ ॥ कि हे भगवन्, प्रभो, महाभाग ! मुझ दुःखिता के शाप का अनुग्रह दीजिये फिर कभी ऐसा करने के लिये उत्साह न करूंगी ॥ ६८ ॥ वहां ऐसा कहेहुये गणनायक शिखण्डी ने उस समय दया से उस गन्धर्व की कन्या के शाप का अनुग्रह दिया ॥ ६९ ॥ शिखण्डी बोला कि जाति व रूप से संयुक्त विद्या अहङ्कार की सम्पदा है जो प्राणी जिससे गर्वित है वह उसको प्राप्त होकर नष्ट होजाता है ॥ ७० ॥ इस लिये गर्व न करना चाहिये क्योंकि गर्व का यह फल कहागया है हे बाले ! शाप के अनुग्रह को सुनिये व सुनकर निश्चय कीजिये ॥ ७१ ॥

कि हिमवान् वनके मध्यमें गोशृङ्ग नामक मुनिनायक स्थित हैं वे तुम्हारा उपकार करेंगे हे प्रिये! ऐसा कहकर वह चला गया ॥ ७२ ॥ तब तक उसीक्षण संसार के मध्य में सन्ध्या प्राप्तहुई तदनन्तर गन्धर्व की कन्या ने उत्साह से रहित होकर नीचे मुख झुकालिया ॥ ७३ ॥ और सुन्दर वनको छोडकर वह पिता के समीप आई और उसने कुष्ठ से उपजेहुये उस सब कारण को कहा ॥ ७४ ॥ उसको सुनकर शोभाहीन वे दोनों माता व पिता शोचसे सन्तप्त हुये और कन्यासमेत शीघ्रता संयुत होकर हिमाचलपै प्राप्तहुये ॥ ७५ ॥ व उन्हों ने वहां गोशृङ्गऋषिके आश्रम को देखा और उसके बीच में स्थित मुनिश्रेष्ठ गोशृङ्गजी को देखकर ॥ ७६ ॥ दण्डा

करिष्यत्युपकारंस एवमुक्त्वागतःप्रिये ॥ ७२ ॥ तावत्सन्ध्यासमायाता तत्क्षणाद्भुवनान्तरे ॥ ततोगन्धर्वतनया भग्नोत्साहानतानना ॥७३॥ परित्यज्यवनंरम्यमागतापितुरन्तिके ॥ कथयामासतत्सर्वं कारणंकुष्ठसम्भवम् ॥ ७४ ॥ तच्छ्रुत्वाशोकसन्तप्तौ पितरौविगतप्रभौ ॥ हिमवन्तंगिरिम्प्राप्तौ त्वरितौसुतयासह ॥ ७५ ॥ गोशृङ्गस्यऋषेस्तत्र ददृशाते तथाश्रमम् ॥ तत्रमध्यस्थितंदृष्ट्वा गोशृङ्गमृषिपुङ्गवम् ॥ ७६ ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमौ स्तुत्वास्तोत्रैरनेकधा ॥ उपविष्टौपुरस्तस्य प्रणिपत्यपुनःपुनः ॥ ७७ ॥ प्रोवाचवचनंतत्र पूर्ववृत्तंयथाभवत् ॥ कथितेचैववृत्तान्ते पुनःपप्रच्छकारणम् ॥ ७८ ॥ पृष्टेतुकारणेतत्र गन्धर्वःप्रोक्तवांस्तदा ॥ गन्धर्व उवाच ॥ दुहितुर्मेशरीरन्तु व्याधिकुष्ठेनपीडितम् ॥७९॥ येनोपशमनंयाति तत्त्वंकर्त्तुमिहार्हसि ॥ प्रसादंकुरुविप्रर्षे ममदीनस्यसाम्प्रतम् ॥ ८० ॥ यथाचोपशमंयाति ममपुत्र्यास्तुकारणम्॥ गोशृङ्ग उवाच॥ भारतेतुमहातेजास्तिष्ठत्युदधिसन्निधौ ॥ ८१ ॥ देवस्सोमेश्वरोनाम सर्वदेवनमस्कृ

की नाई भूमि में प्रणामकर व अनेकप्रकार के स्तोत्रों से स्तुतिकर व बार बार प्रणामकर उनके आगे बैठगये ॥ ७७ ॥ और वहां पर जिसप्रकार पहले वृत्तान्त हुआथा उसी भांति उसने कहा व वृत्तान्त कहनेपर फिर कारणको पूंछा ॥ ७८ ॥ व कारण पूंछनेपर उस समय गन्धर्व ने कहा गन्धर्व बोला कि मेरी कन्या का शरीर कुष्ठरोग से पीड़ितहै ॥ ७९ ॥ हे ब्रह्मर्षे ! जिस से वह नाश को प्राप्त होवै उसको तुम यहां करने के योग्यहो इस समय मुझ दीनके ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥ ८० ॥ कि जिस प्रकार मेरी कन्याका वह शाप का कारण नाश होजावै गोशृङ्गजी बोले कि भरतखण्ड में समुद्रके समीप बड़े तेजवान् ॥ ८१ ॥ व सब देवताओं से प्रणाम किये

हुये सोमेश्वर नामक शिवदेवजी हैं वे मनुष्यों से एकबार भोजन से उत्सव करके भलीभांति पूजने योग्य हैं ॥ ८२ ॥ तुम सब रोगों के नाश होने के लिये व समस्त प्रयोजनों की सिद्धिके लिये सोमवार के व्रतही से शिवजी का आराधन करो ॥ ८३ ॥ ऐसा करनेपर तुम्हारी कन्या का रोग नाश होवैगा ॥ ८४ ॥ महादेवजी बोले कि शुद्धचित्तवाले महर्षि के ऐसे उस वचन को सुनकर उस गन्धर्व ने सोमेशजी का आराधन करने के लिये वहां जाने के लिये मन किया ॥ १८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येसोमेश्वरव्रतवर्णनन्नामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तः ॥ त्वणंकृत्वातुसम्पूज्य एकाहारेणमानवैः ॥ ८२ ॥ सर्वव्याधिविनाशाय सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ सोमवारव्रतेनैव समाराधयशङ्करम् ॥ ८३ ॥ एवंकृतेव्याधिनाशस्तवपुत्र्याभविष्यति ॥ ८४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वा महर्षेर्भावितात्मनः ॥ तत्रगन्तुंमनश्चक्रे सोमेशाराधनम्प्रति ॥ १८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये श्रीसोमेश्वरव्रतवर्णनन्नामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ सगन्धर्वस्तदादेवि आरिराधयिषुर्भवम् ॥ सोमेश्वरव्रतन्नाम पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥ १ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ कथंसोमव्रतंकार्यं विधानंतस्यकीदृशम् ॥ कस्मिन्कालेहितत्कार्यं सर्वंविस्तरतोवद ॥ २ ॥ गोशृङ्ग उवाच ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञ सर्वसत्त्वोपकारक ॥ ३ ॥ यन्नकस्यचिदाख्यातं तद्व्रतंकथयामिते ॥ सर्वरोगहरन्दिव्यं सर्वसिद्धि

दो॰ । सोमवार व्रतकर यथा अहै अमित परभाव । तेइसवें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! शिवजी का आराधन करनेकी इच्छावाले उस गन्धर्व ने उस समय मुनिश्रेष्ठ गोशृङ्गजी से सोमेश्वरनामक व्रत को पूछा ॥ १ ॥ गन्धर्व बोला कि किसप्रकार सोमवार का व्रत करना चाहिये और उसकी कैसी विधि है व किस समय उस को करना चाहिये इस सब को विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ गोशृङ्गजी बोले कि हे महाप्राज्ञ, समस्त प्राणियों के उपकारक ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा ॥ ३ ॥ जो किसी से नहीं कहा गया है उस व्रत को मैं तुम से कहताहूं जो कि समस्तरोगों को हरनेवाला व दिव्य तथा सब सिद्धियों को

देनेवाला है ॥ ४ ॥ व सब समय में करने योग्य व ग्रहण करने योग्य व वर्णों का उत्तम कारण है उस देखे व न देखेहुये फलों के उदयवाले व्रतको सदैव स्त्री व पुरुषों को करना चाहिये ॥ ५ ॥ क्योंकि इस बड़े भारी व्रतको ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओंने किया है फिर हे देवेशि ! दक्षजी के शाप से नष्ट व शिवजीके ध्यान में परायण शापित सोमराज ने उस व्रतको किया तदनन्तर सोमराजकी भक्तिसे महादेवजी प्रसन्नहुये ॥ ६ । ७ ॥ और उस गन्धर्व ने कहा कि यदि प्रसन्न हो तो सदैव स्थित रहिये जब तक चन्द्रमा व सूर्य रहैं और जब तक पर्वत स्थित रहैं ॥ ८ ॥ तबतक मुझसे पार्वती समेत थापाहुआ लिङ्ग स्थितरहै उससमय उस चन्द्रमा

प्रदायकम् ॥ ४ ॥ सर्वकालिकमादेयं वर्णानांशुभकारणम् ॥ नारीनरैस्सदाकार्यं दृष्टादृष्टफलोदयम् ॥ ५ ॥ ब्रह्मविष्णवादिभिर्देवैः कृतमेतन्महाव्रतम् ॥ पुनस्ततसोमराजेन दक्षशापहतेनच ॥ ६ ॥ अभिशप्तेनदेवेशि शम्भुध्यानपरेणतु ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्सोमराजस्यभक्तितः ॥ ७ ॥ तेनोक्तंयदितुष्टोसि प्रतिष्ठेथानिरन्तरम् ॥ यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्च यावत्तिष्ठन्तिभूधराः ॥ ८ ॥ तावन्मेस्थापितंलिङ्गमुमयासहतिष्ठतु ॥ स्थापितन्तुतदातेन प्रार्थयित्वामहेश्वरम् ॥ ९ ॥ आत्मानमभिकंकृत्वा ततोरोगैरमुच्यत ॥ ततश्शुद्धशरीरोसौ गगनस्थोविराजते ॥ १० ॥ तदाप्रभृतियेकेचित कुर्वन्तिभुविमानवाः ॥ तेपितत्पदमायान्ति विमलाङ्गाश्चसोमवत् ॥ ११ ॥ अथकिंबहुनोक्तेन विधानंतस्यकीर्त्तये ॥ यस्मिन्कस्मिंश्चमासेवा शुक्लेसोमस्यवासरे ॥ १२ ॥ दन्तकाष्ठंपुराब्राह्मये कृत्वास्नानंसमाचरेत ॥ स्वधर्मविहितंकर्म कृत्वास्थानेमनोरमे ॥ १३ ॥ सुसमेभूतलेशुद्धे न्यस्यकुम्भंसुशोभनम् ॥ चूतपल्लवविन्यस्तं चन्दनेनसुचित्रि

ने शिवजी की प्रार्थना करके लिङ्गको थापाहै ॥ ९ ॥ व अपनाको कामुक करके वह चन्द्रमा रोगों से छूटा है तदनन्तर शुद्धशरीरवाला यह चन्द्रमा आकाश में टिककर शोभित है ॥ १० ॥ तब से लगाकर पृथ्वीमें जो कोई मनुष्य उसव्रत को करते हैं वेभी उस स्थान को प्राप्त होते हैं और चन्द्रमाकी नाई निर्मलअङ्गवाले होते हैं ॥ ११ ॥ अब बहुत कहने से क्याहै उस व्रतके विधान को मैं कहताहूं कि जिस किसी महीने में शुक्लपक्ष में सोमवारको ॥ १२ ॥ पहले ब्राह्ममुहूर्त में दतून करके स्नान करै और अपने धर्म में कहेहुये कर्मको करके सुन्दर स्थानमें ॥ १३ ॥ समान व पवित्र पृथ्वी में चन्दन से भलीभांति चित्रित व जिस में आम के पत्ते धरे

होवै उस उत्तम घटको स्थापित कर ॥ १४ ॥ पार्वतीजी से अर्द्धशरीर संयुत व जटाओं के मुकुट से शोभित और श्वेतवस्त्र को पहने व सब आभूषणों से भूषित आधार समेत शिवजी को पहले पात्रमें धरकर ॥ १५ ॥ आठ भांति के ऐश्वर्यवाले शक्तिसमेत सोमनाथदेवजी को पार्वती समेत वहांपर श्वेतवसनों से पूजै ॥ १६ ॥ व अनेकभांति के भक्ष्य भोजनों से पूजन करै और बिजौरा निम्बूफल समर्पण करै व वहींपर इसी मन्त्रसे सब करै ॥ १७ ॥ कि हे श्वेतबैलपै चढ़ेहुये व श्वेत आभूषणों से भूषित, देवजी ! पांचमुखवाले व दश भुजाओं तथा तीन नेत्रोंवाले आप के लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ हे पार्वतीजी के अर्धशरीर से संयुत ! सर्वमूर्तिवाले

तम् ॥ १४ ॥ उमादेहार्द्धसंयुक्तं जटामुकुटमण्डितम् ॥ श्वेतवस्त्रपरीधानं सर्वाभरणभूषितम् ॥ आदौपात्रेतुसंन्यस्यआधारसहितंशिवम् ॥ १५ ॥ अष्टाविधैश्वरन्देवं सोमनाथंसशक्तिकम् ॥ उमयासहितंतत्र श्वेतवस्त्रैश्चपूजयेत् ॥ १६ ॥ विविधैर्भक्ष्यभोज्यैश्च फलैर्वैबीजपूरकम् ॥ अनेनैवतुमन्त्रेण सर्वंतत्रैवकारयेत् ॥ १७ ॥ ॐनमःपञ्चवक्त्राय दशबाहुत्रिनेत्रिणे ॥ देवश्वेतवृषारूढ श्वेताभरणभूषित ॥ १८ ॥ उमादेहार्द्धसंयुक्त नमस्तेसर्वमूर्तये ॥ अनेनैवतुमन्त्रेण पूजाहोमन्तु कारयेत् ॥ १९ ॥ कृत्वैवंवन्दनंरात्रौ प्राश्यचैवंस्वपेन्नरः ॥ दर्भशय्यांसमारूढो ध्यायन्सोमेश्वरंहरम् ॥ २० ॥ एवंकृतेष्टादशानां कुष्ठानांनाशनंभवेत् ॥ द्वितीयेसोमवारेतु करंजदन्तधावनम् ॥ २१ ॥ देवंसम्पूजयेत्सूक्ष्मं ज्येष्ठाशक्तिसमन्वितम् ॥ शतपत्रैःपूजयित्वा मधुप्राश्ययथाविधि ॥ २२ ॥ नारङ्गंतत्रदत्त्वातु शेषंपूर्ववदाचरेत् ॥ एवंकृतेद्वितीयेतु गोलक्षफलमाप्नुयात् ॥ २३ ॥ सोमवारेतृतीयेतु अपामार्गसमुद्भवम् ॥ दन्तकाष्ठादिकंकृत्वा एकनेत्रंप्रपूजयेत् ॥ २४ ॥

तुम्हारे लिये नमस्कार है इसी मन्त्र से पूजन व हवन करै ॥ १९ ॥ व ऐसेही स्तुति करके रात्रि में भोजन करके मनुष्य कुशों की शय्या पै स्थित होकर सोमेश्वर शिवजी को ध्यान करता हुआ शयन करै ॥ २० ॥ ऐसा करनेपर अठारह कुष्ठोंका नाशहोता है और दूसरे सोमवार को कंजाकी दतून करै ॥ २१ ॥ व ज्येष्ठाशक्ति से संयुत सूक्ष्म देवजी का पूजन करै व कमलों से पूजकर विधिपूर्वक शहद को भोजन कर ॥ २२ ॥ वहां नारङ्गी देकर शेष पहलेकी नाईं करै ऐसा दूसरा सोमवारव्रत करने पर लाख गऊ के फलको मनुष्य पाता है ॥ २३ ॥ और तीसरे सोमवार को लटजीरासे उपजीहुई दतून करके एकनेत्रजी को पूजै ॥ २४ ॥

व अनार के फलको देवै व चमेलीके फूलोंसे पूजन करै और रात्रिमें अगुरु भोजन करके सिद्धियुक्त शिवजीको पूजै ॥ २५ ॥ और चौथे सोमवारमें गूलरकी दतून कही गई है व उसमें पार्वतीसमेत गौरीशजीको पूजै ॥ २६ ॥ और नारियल फलको देवै व देउनासे पूजन करै और रात्रि में शर्कराको भोजन करै व जागरण करै ॥ २७ ॥ और पांचवें सोमवारमें गणेशजीको पूजै व विभूतिसमेत शिवदेवजीको कुन्दके फूलों से पूजै ॥ २८ ॥ और पीपल की दतून कही गईहै वैसेही मुनक्कासे अर्घको देवै व रात्रिमें मोती भोजन करै तो मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फलको पाताहै ॥ २९ ॥ और छठे सोमवार में भद्रासमेत स्वरूपनामक शिवजी को पूजै और चमेली की दतून

फलंचदाडिमंदद्याज्जातीपुष्पैश्चपूजयेत् ॥ रजन्यांचागुरुंप्राश्य सिद्धियुक्तन्तुपूजयेत् ॥ २५ ॥ चतुर्थेसोमवारेतु काष्ठमौदुम्बरंस्मृतम् ॥ पूजयेत्तत्रगौरीशं सोमयासहितंतथा ॥ २६ ॥ नारिकेलफलंदद्याद्दमनेनप्रपूजयेत् ॥ शर्कराप्राशयेद्रात्रौ जागरञ्चैवकारयेत् ॥ २७ ॥ पञ्चमेसोमवारेच पूजयेच्चगणाधिपम् ॥ विभूत्यासहितन्देवं कुन्दपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥ २८ ॥ आश्वत्थंदन्तकाष्ठंच अर्घोद्राक्षयातथा ॥ मौक्तिकंप्राशयेद्रात्रौ अश्वमेधफलंलभेत् ॥ २९ ॥ षष्ठेतुसोमवारेतु स्वरूपन्नामपूजयेत् ॥ दन्तकाष्ठञ्चवैजात्या भद्रयासहितंशिवम् ॥ ३० ॥ उन्मत्तफलकैरर्घो मल्लिकाभिः प्रपूजयेत् ॥ कर्पूरंप्राशयेत्तत्र भक्त्यापरमयायुतः ॥ ३१ ॥ सप्तमेसोमवारेतु दन्तकाष्ठञ्चमल्लिका ॥ सर्वज्ञंपूजयेत्तत्र दीप्तयासहितंतथा ॥ ३२ ॥ जम्बीरञ्चफलंदद्याज्जातिपुष्पैश्चपूजयेत् ॥ लवङ्गंप्राशयेत्तत्र तस्यानन्तफलंभवेत् ॥ ३३ ॥ अष्टमेसोमवारेतु अमोघायुतमीश्वरम् ॥ कदलीफलकेनैव मरुवकेनप्रपूजयेत् ॥ ३४ ॥ रात्रौचप्राशयेद्दुग्धमग्निष्टो

करना चाहिये ॥ ३० ॥ और धतूर के फलों से अर्घ देवै व बेला के फूलों से पूजन करै और बड़ी भक्ति से संयुत मनुष्य उसमें कपूर को भोजन करै ॥ ३१ ॥ और सातवें सोमवार में बेलाकी दतून करना चाहिये व उसमें दीप्तासमेत सर्वज्ञ शिवजी को पूजै ॥ ३२ ॥ और जँभीरी निम्बूफलको देवै और चमेली के फूलों से पूजन करै व उसमें जो लवङ्ग भोजन करै उसको अनन्त फल होताहै ॥ ३३ ॥ और आठवें सोमवार में अमोघाशक्ति से संयुत शिवजी को केला के फल से व देउना से

पूजन करै ॥ ३४ ॥ व रात्रिमें जो दुग्ध भोजन करताहै वह अग्निष्टोम यज्ञके फलको प्राप्त होता है और भलीभांति गङ्गाजी का स्नान करनेपर जो करोड़ों भांति का फल कहा गया है ॥ ३५ ॥ और सूर्यग्रहण होनेपर कुरुक्षेत्रमें दशहज़ार अशर्फियों को वेदके जाननेवाले ब्राह्मण के लिये देकर मनुष्य जिस फलको पाता है ॥ ३६ ॥ उससे कोटिगुणा फल सोमवारव्रत करनेपर मिलता है और गुग्गुलों से करोड़ों वार धूप करके जो फल मिलता है ॥ ३७ ॥ वह फल उसको सोमवारका व्रत करनेपर होताहै और समस्त ऐश्वर्यों से संयुत व शिवजीके तुल्य बलवान् होताहै ॥ ३८ ॥ और जब तक ब्रह्मा के प्रलयकी अवधि है तब तक वह शिवलोक में बसता

मफलंलभेत् ॥ गङ्गास्नानेकृतेसम्यक् कोटिधायत्फलंस्मृतम् ॥ ३५ ॥ दशहेमसहस्राणां कुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ ब्राह्मणेवेदविदुषे यद्दत्त्वाफलमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ तत्फलंकोटिगुणितं सोमवारव्रतेकृते ॥ गुग्गुलैर्धूपनंकृत्वा कोटिशोयत्फलंलभेत् ॥ ३७ ॥ तत्पुण्यन्तुभवेत्तस्य सोमवारव्रतेकृते ॥ सर्वैश्वर्यसमायुक्तः शिवतुल्यपराक्रमः ॥ ३८ ॥ रुद्रलोकेवसेत्तावद्ब्रह्मणःप्रलयावधि ॥ सम्प्राप्तेनवमेवारे कुर्यादुद्यापनंशुभम् ॥ ३९ ॥ यथाभवतिगन्धर्वस्तथावक्ष्यामितेधुना ॥ मण्डलंमण्डपंकुण्डं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ४० ॥ तोरणानिचचत्वारि कुण्डंकृत्वाविधानतः ॥ मध्येवेदीप्रकर्तव्या चतुरस्राशुशोभना ॥ ४१ ॥ निष्पाद्यमण्डलंतत्र मध्येपद्मंप्रकल्पयेत् ॥ कलशानष्टदिग्भागे सहिरण्यान्पृथक्पृथक् ॥ ४२ ॥ स्थापयित्वातुशक्तयस्तावामाद्याःपूर्वतःक्रमात् ॥ कर्णिकायान्तुतत्रस्थं श्रीसोमेशंमहाप्रभम् ॥ ४३ ॥ प्रतिमारूपसम्पन्नं हेमजंशक्तिसंयुतम् ॥ रुक्मशय्यासमारूढं मनोमत्यासमन्वितम् ॥ ४४ ॥ हेमपात्रादिकेपात्रे मधु

है नवम सोमवार प्राप्त होनेपर उत्तम उद्यापन करै ॥ ३९ ॥ जिसप्रकार वह मनुष्य गन्धर्व होताहै वैसेही मैं इससमय तुमसे कहताहूं कि पताका व ध्वजाओं से शोभित गोलमण्डप व कुण्ड को बनावै ॥ ४० ॥ और चार बाहरीद्वारों को व विधि से कुण्ड को बनाकर बीचमें चौकोन व अतिउत्तम वेदी बनाना चाहिये ॥ ४१ ॥ उसमें मण्डल बनाकर बीचमें कमल बनावै और दिशाओं के भागमें सुवर्ण समेत आठ कलशों को भिन्न भिन्न ॥ ४२ ॥ स्थापितकर उन वामादिक शक्तियों को पूर्वदिशा से लेगाकर क्रमपूर्वक पूजन करै और उस कर्णिका में स्थित महाप्रभावान् श्रीसोमेशजी को पूजै ॥ ४३ ॥ प्रतिमाके रूपसे सम्पन्न व सुवर्ण से उपजेहुये तथा शक्तिसे

संयुत और सुवर्ण शय्या पै आरूढ़ व मनोमती शक्ति से संयुक्त ॥ ४४ ॥ व शहदसे पूर्ण सुवर्णादि के पात्र में सुवर्ण की शय्यामें आच्छादित व उसमें स्थित शिवजी को क्रमसे पूजन करै ॥ ४५ ॥ अनन्त से लगाकर शिखण्डी अन्ततक नामों से क्रमपूर्वक पूजन करै व अनेकभांति के सुगन्ध, माला, धूप व नैवेद्यों से पूजन करके ॥ ४६ ॥ वसन, अलङ्कार, ताम्बूल, छत्र, चँवर, दर्पण, दीप, घण्टा, चँदोवा व रुईवाले वस्त्रसमेत शय्या सोमेश्वरजी को उद्देशकर पौराणिक गुरुके लिये देना चाहिये ॥ ४७ ॥ और आचार्य को भूषितकर वहींपर होम करावै व बलि कर्मादिक पूजन करै व रात्रिमें वहींपर जागरण करै ॥ ४८ ॥ तदनन्तर सोमेश्वरजी को हृदय

नापरिपूरिते ॥ रुक्मशय्यासमाछन्ने तत्रस्थंपूजयेत्क्रमात् ॥ ४५ ॥ अनन्तादिशिखण्ड्यन्तैर्नामभिःक्रमशोर्चयेत् ॥ गन्धस्रक्धूपनैवेद्यैः पूजांकृत्वापृथग्विधैः ॥ ४६ ॥ वस्त्रालङ्कारताम्बूलच्छत्रंचमरदर्पणम् ॥ दीपंघण्टांवितानञ्च पर्यङ्कंच सतूलकम् ॥ सोमेश्वरंसमादिश्य देयंपौराणिकेगुरौ ॥ ४७ ॥ भूषयित्वातथाचार्यं होमंतत्रैवकारयेत ॥ बलिकर्माद्यर्चनंच रात्रौतत्रैवजागृयात् ॥ ४८ ॥ पञ्चगव्यंततःपीत्वा ध्यायन्सोमेश्वरंहृदि ॥ प्रभातेतुततस्स्नात्वा ध्यायेत्सोमंविधानतः ॥ ४९ ॥ ततोभक्त्याचगन्धर्व चीरखण्डादिनिर्मितैः ॥ भक्ष्यभोज्यैरनेकैश्च भोजयेद्ब्राह्मणान्नव ॥ ५० ॥ अष्टौ माहेश्वरास्तेवै नवमोहंसदाशिवः ॥ वस्त्रयुग्मंततोदद्याद् दत्त्वागाञ्चविसर्ज्जयेत ॥ ५१ ॥ एवंचीर्णव्रतस्सम्यक् लभतेपुण्यमक्षयम् ॥ धनधान्यसमृद्धात्मा पुत्रदारसमन्वितः ॥ ५२ ॥ नकुलेजायतेतस्य दरिद्रोदुःखितोपिवा ॥ अपुत्रो लभतेपुत्रान् बन्ध्यापुत्रवतीभवेत् ॥ ५३ ॥ काकबन्ध्यातुयानारी मृतवत्साचदुर्भगा ॥ कन्याप्रसूतयाकार्यं रोगिभि

में ध्यान करता हुआ पुरुष पञ्चगव्य को पीकर उसके उपरान्त प्रातःकाल में स्नानकर विधिसे सोमजी को ध्यान करै ॥ ४९ ॥ तदनन्तर हे गन्धर्व ! दूध व शक्कर इत्यादि से बनेहुये अनेकों भक्ष्यों व भोजनों से भक्ति से नौ ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ५० ॥ वे आठ शैव हैं और नवां मैं सदाशिवहूं उसके बाद दो वस्त्रों को देवै और गऊ को देकर बिदाकरै ॥ ५१ ॥ इसप्रकार भलीभांति कियेहुये व्रतवाला पुरुष अविनाशी पुण्य को पाता है और धन व धान्य से समृद्ध होकर वह पुत्रों व स्त्रियों से संयुक्त होता है ॥ ५२ ॥ और उसके वंश में निर्धनी व दुःखित भी नहीं होता है व पुत्र रहित मनुष्य पुत्र को पाता है व बन्ध्या पुत्रवती होती है ॥ ५३ ॥

और जो स्त्री काकवन्ध्या व मृतवत्सा (जिसके पुत्र न जियें) व दुर्भगा और कन्या पैदा करनेवाली होवै उसको व रोगियों को विशेषकर करना चाहिये ॥ ५४ ॥ ऐसी विधि से करनेपर जब देहान्त होताहै तब शिवको प्राप्त होताहै और करोड़ों हज़ार कल्पों तक व करोड़ों सौ कल्पों तक ॥ ५५ ॥ यह पुरुष बहुत से भोगों को भोग करता है जब तक कि प्रलय होताहै तुमसे यह सब सोमवार का व्रत क्रम से कहा गया ॥ ५६ ॥ हे महाभाग ! शीघ्रही वहां जाइये जहां कि सोमेश्वरजी स्थितहैं महादेवजी बोले कि हे वरानने ! ऐसा कहा हुआ वह गन्धर्व कन्या समेत ॥ ५७ ॥ सब उपहारों से युक्त होकर प्रभासक्षेत्र में प्राप्त हुआ तदनन्तर सोमेश्वरजी

स्तुविशेषतः ॥ ५४ ॥ एवंकृतेविधानेतु देहपातेशिवंव्रजेत् ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानिच ॥ ५५ ॥ भुङ्क्तेसौविपुलान्भोगान् यावदाभूतसंप्लवम् ॥ इतितेकथितंसर्वं सोमवारव्रतंक्रमात् ॥ ५६ ॥ गच्छशीघ्रंमहाभाग यत्र सोमेश्वरस्स्थितः ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्सचगन्धर्वः पुत्र्यासहवरानने ॥ ५७ ॥ सर्वोपहारसंयुक्तः प्रभासक्षेत्रमाश्रितः ॥ ततस्सोमेश्वरन्दृष्ट्वा आनन्दाश्रुपरिप्लुतः ॥ ५८ ॥ यात्राक्रमेणसम्पूज्य चक्रेसोमव्रतंक्रमात् ॥ पुत्र्यासहमहाभागस्तस्यतुष्टोमहेश्वरः ॥ ५९ ॥ सर्वरोगविनाशञ्च सर्वकामसमृद्धिदम् ॥ ददौगन्धर्वराज्यञ्च भक्तिंचैवात्मनस्तथा ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येरुद्रप्रोक्तसंहितायां श्रीसोमेश्वरव्रतमाहात्म्यन्नामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

को देखकर आनन्द के आंसुवों से मग्न होगया ॥ ५८ ॥ और यात्रा के क्रमसे सोमेश्वरजी को भलीभांति पूजकर कन्यासमेत उस महाभाग ने क्रमसे सोमवार का व्रत किया व उसके ऊपर महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ ५९ ॥ व उन्होंने सब रोगों के विनाशक तथा सब कामनाओं की समृद्धिको देनेवाले गन्धर्वों के राज्य को व अपनी भक्ति को दिया ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येरुद्रप्रोक्तसंहितायांश्रीसोमेश्वरव्रतमाहात्म्यन्नामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। गन्धर्वेश्वर लिङ्गको घनवाहन गन्धर्व। थाप्यो चौबीसवेंमहँ सोइ चरितहै सर्व ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त वहींपर वरदानको पायेहुये उस घनवाहन गन्धर्व ने कृतार्थ होकर वहांपर सोमेशजी से उत्तर भागमें दण्डपाणिजी के समीप गन्धर्वों को फल देनेवाले गन्धर्वेश्वर नामक लिङ्ग को थापन किया ॥ १ । २ ॥ जो कि वरदाके पश्चिमभाग में पांच धनुषपै स्थितहै उसको पञ्चमी तिथि में पूजकर मनुष्य दुःखी नहीं होताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगन्धर्वेश्वरमाहात्म्यवर्णनन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ईश्वरउवाच ॥ अथलब्धवरस्तत्र कृतार्थोभवभक्तितः ॥ स्थापयामासलिङ्गंस गन्धर्वोघनवाहनः ॥ १ ॥ सोमेशादुत्तरेभागे दण्डपाणिसमीपतः ॥ गन्धर्वेश्वरनामानं गन्धर्वफलदायकम् ॥ २ ॥ वरदावारुणेभागे धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ पञ्चम्यांपूजयित्वाच नदुःखीजायतेनरः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कान्देगन्धर्वेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

शिव उवाच ॥ अथतत्रैवदेवेशि लिङ्गंगन्धर्वसेनया ॥ स्थापितंघनवाहस्य पुत्र्यागौरीसमीपतः ॥ १ ॥ धनुषांत्रितयेतत्र स्थितंपूर्वविभागतः ॥ विमलेश्वरनामानं सर्वरोगविनाशनम् ॥ २ ॥ पूजयित्वातृतीयायां दौर्भाग्यैर्मुच्यतेङ्गना ॥ सर्वकामानवाप्नोति पुत्रंचैवप्रतिष्ठिता ॥ ३ ॥ इतिवृत्तंमहादेवि त्रेतासन्ध्यांशकेगते ॥ गन्धर्वस्यैवमाख्यानं श्रुतंपातकनाशम् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कान्देमाहेश्वरमाहात्म्येविमलेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥

दो॰। गन्धर्वसेना थप्यो जिमि विमलेश्वर शिवकाहिं । अति उत्तम सोई चरित है पचीसवें माहिं ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त हे देवेशि ! वहीं पर घनवाहनकी कन्या गन्धर्वसेना ने पार्वतीजी के समीप लिङ्गको थापाहै ॥ १ ॥ जो कि वहीं पर पूर्वविभाग में तीन धनुषपै स्थित है उस विमलेश्वर नामक सब रोगों के विनाशक लिङ्गको ॥ २ ॥ तृतीया तिथि में पूजकर स्त्री दुर्भाग्यों से छूटजाती है और वह प्रतिष्ठित स्त्री सब कामनाओं को व पुत्रको प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! त्रेताका सन्ध्यांश प्राप्त होनेपर यह चरित्र हुआहै और सुना हुआ यह गन्धर्व का आख्यान पातकों का विनाशक है ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविमलेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सोमनाथ महिमा कह्यो अति विस्तार समेत । छब्बिसवें अध्यायमें कथा सो हर्ष निकेत ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देव ! मैंने इस आश्चर्यमय समस्त चरित्र को तुमसे सुना और इस समय सोमनाथ महादेवजी की उपजीहुई महिमा को तुम विस्तारसे यथायोग्य कहने के योग्य हो कि किस विधि से ये दर्शन करने योग्य हैं और किसप्रकार मनुष्यों को यात्रा करना चाहिये ॥ १ । २ ॥ व हे महादेवजी ! किस समय में यात्रा करना चाहिये और कैसे नियमहैं ॥ ३ ॥ महादेव जी बोले कि हे भामिनि ! हेमन्त में शिशिरमें व वसन्त में या जब धन होवै व चित्त होवै या पर्व होवै ॥ ४ ॥ तभी यात्रा करै क्योंकि उसमें भाव (भक्ति) कारण

देव्युवाच ॥ इत्याश्चर्यमयन्देव त्वत्तस्सर्वंमयाश्रुतम् ॥ महिमानंमहेशस्य विस्तरेणसमुद्भवम् ॥ १ ॥ साम्प्रतंसोमनाथस्य यथावद्वक्तुमर्हसि॥ विधिनाकेनदृश्योसौ यात्राकार्याकथन्नृभिः ॥ २ ॥ कस्मिन्कालेमहादेव नियमाश्चैवकीदृशाः ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ हेमन्तेशिशिरेचैव वसन्तेचाथभामिनि ॥ यदावाजायतेवित्तं चित्तंवापर्ववाभवेत् ॥ ४ ॥ तदैवयात्राकर्तव्या भावस्तत्रैवकारणम् ॥ ५ ॥ कृत्वातुनियमंकञ्चित् स्वगृहेवरवर्णिनि ॥ प्रणम्यमनसारुद्रं कृत्वा श्राद्धंयथाविधि ॥ ६ ॥ स्थानंप्रदक्षिणीकृत्य वाग्यतस्सुसमाहितः ॥ नियतोनियताहारो गच्छेचैवततःपथि ॥ ७ ॥ कामक्रोधौपरित्यज्य लोभमोहौतथैवच ॥ ईर्ष्यामत्सरलौल्यञ्च यात्राकार्याततोनृभिः ॥ ८ ॥ तीर्थानुगमनेपुण्यं यज्ञेभ्योपिविशिष्यते ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वाविपुलदक्षिणैः ॥ ९ ॥ नतत्फलमवाप्नोति तीर्थानुगमनेनयत् ॥ कलेर्युगंमहाघोरं प्राप्यपापसमन्वितम् ॥ १० ॥ नान्येनास्मिन्नुपायेन धर्मस्स्वर्गश्चलभ्यते ॥ विनायात्रांमहादेवि

है ॥ ५ ॥ हे वर वर्णिनि ! अपने घर में किसी नियम को ग्रहणकर मनसे शिवजी को प्रणामकर व विधिपूर्वक श्राद्ध करके ॥ ६ ॥ स्थानकी प्रदक्षिणा कर तदनन्तर मौन होकर सावधान व नियत तथा नियमपूर्वक आहारवाला पुरुष मार्गमें चलै ॥ ७ ॥ काम व क्रोध को छोड़कर और लोभ व मोह को त्यागकर ईर्षा व मत्सर व चञ्चलता को छोड़कर उसके उपरान्त मनुष्योंको यात्रा करना चाहिये ॥ ८ ॥ तीर्थों के जाने में यज्ञों से भी विशेष पुण्यहै क्योंकि बहुत दक्षिणाओंवाले अग्निष्टोमादिक यज्ञों से पूजन कर ॥ ९ ॥ मनुष्य उस फलको नहीं पाताहै जो कि तीर्थों के गमन से मिलताहै पातकों से संयुत व महाभयङ्कर कलियुग को प्राप्त होकर ॥ १० ॥ हे

सोमेशस्यनसंशयः ॥ ११ ॥ येकुर्वन्तिनरायात्रां शुचिश्रद्धासमन्विताः ॥ कलेर्युगेकृतार्थास्ते जनास्त्यक्तनिरर्थकाः ॥ १२ ॥ यथामहोदधेस्तुल्यो नचान्योस्तिजलाशयः ॥ तथाप्रभासिकक्षेत्रात्समन्तीर्थंनविद्यते ॥ १३ ॥ अनुपोष्यत्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्यच ॥ अदत्त्वाकाञ्चनंगांश्च दरिद्रोनामजायते ॥ १४ ॥ यानिगम्यानितीर्थाणि दुर्गाणिविषमाणिच ॥ मनसातानिगम्यानि सर्वतीर्थगतेधुना ॥ १५ ॥ यस्यहस्तौचपादौच मनश्चैवसुसंयतम् ॥ विद्यातपश्चकीर्त्तिश्च सतीर्थफलमश्नुते ॥ १६ ॥ नियतोनियताहारःस्नानजप्यपरायणः ॥ व्रतोपवासनिरतस्सतीर्थफलमश्नुते ॥ १७ ॥ अक्रोधनश्चदेवेशि सत्यशीलोदृढव्रतः ॥ आत्मौपमश्चभूतेषु सतीर्थफलमश्नुते ॥ १८ ॥ कुरुक्षेत्रादितीर्थानि अभिगम्यानियानितु ॥ तान्येवब्राह्मणोयायान् नदोषोत्रचतेषुवै ॥ १९ ॥ येवानयौवनोपेतास्तीर्थानांस्मरणेरताः ॥ तीर्थेदानाच्चयोगाच्च तेषामप्यधिकंफलम् ॥ २० ॥ येदरिद्राधनैर्हीनास्तीर्थानुगमनेरताः ॥ तेषांयज्ञफलावाप्तिर्विनानियमस

महादेवि ! विना सोमेशजी की यात्रा अन्य यत्न से इसमें धर्म व स्वर्ग नहीं मिलताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ११ ॥ पवित्र श्रद्धा से संयुत जो मनुष्य इस यात्रा को करते हैं निरर्थ को छोड़ेहुये वे पुरुष कलियुगमें धन्य हैं ॥ १२ ॥ जैसे समुद्र के समान अन्य जलाशय नहीं है वैसेही प्रभासक्षेत्रके समान अन्यतीर्थ नहीं विद्यमान है ॥ १३ ॥ त्रिरात्रि को न उपासकर व तीर्थोंको न जाकर और सुवर्ण व गऊको न देकर पुरुष निर्धनी होताहै ॥ १४ ॥ जो जानेयोग्य तीर्थ कठिन व विषम हैं वे सब तीर्थों के जानेकी इच्छावाले पुरुष से मन करके जानेयोग्य हैं ॥ १५ ॥ जिस के हाथ, पांव व मन भलीभांति बँधाहै और जिसके विद्या, तपस्या व यश है वह तीर्थों के फलको भोगताहै ॥ १६ ॥ और जो नियत व नियमसंयुत आहारवाला तथास्नान व जपमें परायण है व जो व्रत, उपास में लगाहुआ है वह तीर्थों के फल को भोगताहै ॥ १७ ॥ हे देवेशि ! जो क्रोधरहित व सत्य,शील तथा पुष्टनियमवान् होताहै और जो सब प्राणियों में अपने समान देखता है वह तीर्थों के फलको भोगता है ॥ १८ ॥ और जो कुरुक्षेत्रादिक तीर्थ जाने योग्य हैं उनको ब्राह्मण जावै तो उनमें यहां दोष नहीं होता है ॥ १९ ॥ अथवा जे युवावस्था से संयुक्त नहीं हैं और तीर्थों के स्मरण में लगेहुये हैं उनको तीर्थ में दानसे व योगसे भी अधिक फल होताहै ॥ २० ॥ और जे धनसे हीन दरिद्री पुरुष तीर्थों के गमनमें लगेहुये हैं उनको नियम-

गणों के विना यज्ञों के फलकी प्राप्ति होती है ॥ २१ ॥ और सब आश्रमों में बसनेवाले सबही जनों को तीर्थ फलदायक जानने योग्य है इस में विचार न करना चाहिये ॥ २२ ॥ व अन्य कार्य के नियोग से जो तीर्थ में स्नान करै उसको मुनियों से आधी स्नान का फल कहा गया है ॥ २३ ॥ और इस संसार में चरणों से तीर्थयात्रा उत्तम तप कहाजाताहै और उसी को वाहनके द्वारा करके मनुष्य स्नानमात्र के फलको पाताहै ॥ २४ ॥ वैसेही हे ईश्वरि ! जो अन्य मनुष्य शक्तिसे अपनी द्रव्य व चरणों से याने पैदल तीर्थयात्रा को करते हैं उनको चौगुना पुण्य होता है ॥ २५ ॥ व हे महादेवि ! भिक्षा से भोजन करनेवाले जितेन्द्रियलोग तीर्थयात्रा

न्वयैः ॥ २१ ॥ सर्वेषामेववर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम् ॥ तीर्थन्तुफलदंज्ञेयं नात्रकार्याविचारणा ॥ २२ ॥ कार्यान्तर नियोगत्वात्स्नानं तीर्थेसमाचरेत् ॥ अर्द्धस्नानफलंतस्य मुनिभिःपरिकीर्त्तितम् ॥ २३ ॥ तीर्थानुगमनंपद्भ्यां तपः परमिहोच्यते ॥ तदेवकृत्वायानेन स्नानमात्रंफलंलभेत् ॥ २४ ॥ येचान्येकुर्वतेशक्त्या तीर्थयात्रान्तथेश्वरि ॥ स्वकीयद्रव्यपादाभ्यां तेषांपुण्यंचतुर्गुणम् ॥ २५ ॥ तीर्थानुगमनंकृत्वा भिक्षाहाराजितेन्द्रियाः ॥ प्राप्नुवन्तिमहादेवि तीर्थेदशगुणंफलम् ॥ २६ ॥ छत्रोपानाद्विहीनस्तु भिक्षाशीविजितेन्द्रियः ॥ महापातकजैर्घोरैर्विप्रःपापैःप्रमुच्यते ॥ २७ ॥ नभैक्ष्यंपरपाकन्तु नकांक्षेनप्रतिग्रहम् ॥ सोमपानसमंभैक्ष्यंतस्माद्भैक्ष्यंसमाचरेत् ॥ २८ ॥ लोकेस्मिन्विविधं तीर्थं स्वच्छन्दान्निर्मितन्तथा ॥ स्वयंभूतंप्रभासाद्यं निर्मितन्दैवतैःकृतम् ॥ २९ ॥ स्वयम्भूतेमहातीर्थे प्रभासेचमहत्तरे ॥ तस्मिंस्तीर्थेप्रतिगृह्य कृतस्सर्वप्रतिग्रहः ॥ ३० ॥ प्रतिग्रहान्निवृत्तस्य यात्रादशगुणंफलम् ॥ तेनदत्तानिदानानि यज्ञैर्दे

करके तीर्थ में दशगुने फलको पाते हैं ॥ २६ ॥ और छतुरी व पनहियों के विना जितेन्द्रिय ब्राह्मण भिक्षासे भोजन करताहुआ तीर्थयात्रा करके महापातकों से उपजे हुये भयङ्कर पापों से छूटजाता है ॥ २७ ॥ और पराई पकाई हुई भिक्षा व दानको न चाहै और भिक्षा सोमपान के समान है इसलिये भिक्षा को मांगै ॥ २८ ॥ इस संसार में अपनी इच्छा से रचेहुये अनेकभांति के तीर्थ हैं परन्तु आपही से उपजे हुये प्रभासादिक तीर्थ देवताओं से रचेगये हैं ॥ २९ ॥ आपही से उपजेहुये व महातीर्थ तथा बड़े भारी उस प्रभास तीर्थ में दानको लेकर सब प्रतिग्रह किया गया याने जिसने प्रभास में दान लिया उसने सब दानों को ग्रहण करलिया ॥ ३० ॥

और दानसे निवृत्त पुरुष को यात्रासे दशगुना फल होताहै उसने सब दानों को दिया व यज्ञों से देवताओं को तृप्त कियाहै ॥ ३१ ॥ कि जिसने क्षेत्रमें आकर उत्तम निवृत्ति किया याने दान को नहीं लिया और जो ब्राह्मण लोभ से क्षेत्र में दान की रुचिवाला होता है ॥ ३२ ॥ उस दुष्ट को न परलोक होताहै न यह लोक होताहै अथवा यदि अतिदुर्बल भी ब्राह्मण प्रतिग्रह लेवै ॥ ३३ ॥ तो इकट्ठा किये हुये धन से दशांश देदेवै इसप्रकार वह वहां पर पूजित होताहै और ब्राह्मण के वेष में स्थित होकर शूद्र दान को लेकर ॥ ३४ ॥ तिनुका के काष्ठ के समान उसी क्षण भस्म होजाता है वैसेही हे महादेवि ! यह पुरुष दान लेने के कारण नरक में गिरताहै

वास्सुतर्पिताः ॥ ३१ ॥ येनक्षेत्रंसमासाद्य निर्वृत्तिःपरमाकृता ॥ यस्तुलौल्याद्द्विजःक्षेत्रे प्रतिग्रहरुचिस्तथा ॥ ३२ ॥ नैवतस्यपरोलोको नायंलोकोदुरात्मनः ॥ अथचेत्प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणोप्यतिदुर्बलः ॥ ३३ ॥ दशांशमर्ज्जिताद्द्यादेवं तत्रमहीयते ॥ विप्रवेषंसमास्थाय शूद्रोकृत्वाप्रतिग्रहम् ॥ ३४ ॥ तृणकाष्ठसमंचापि भस्मीभवतितत्क्षणात् ॥ तथैवच महादेवि प्रतिग्राहात्पतत्यधः ॥ कुम्भीपाकादिकेष्वेवं महानरककोटिषु ॥ ३५ ॥ यावदिन्द्रसहस्राणि चतुर्दशवरानने ॥ तस्मान्नैवप्रतिग्राह्यं किमन्यैर्ब्राह्मणैरपि ॥ ३६ ॥ द्विप्रकारस्यतीर्थस्य कृतस्याकृतकस्यच ॥ स्वकीयभावसंयुक्तस्सम्पूर्णफलमश्नुते ॥ ३७ ॥ लभतेषोडशांशंस यःपरान्नेनगच्छति ॥ अशक्तस्यतथान्धस्य पङ्गोर्यायावरस्यच ॥ ३८ ॥ विहितंकारणंयेन ह्यच्छिद्रंब्राह्मणैःकृतम् ॥ स्नानखादनपानानि विप्रेभ्यस्तीर्थसेवकः ॥ ३९ ॥ ददन्सकलमाप्नोति फलंतीर्थसमुद्भवम् ॥ नचषष्ठांशदानेन लब्धार्थंयदियच्छति ॥ ४० ॥ पञ्चमांशमथोवापि दद्यात्तत्रद्विजातिषु॥

और ऐसेही कुम्भीपाकादिक करोड़ों महानरकों में ॥ ३५ ॥ तब तक रहता है जब तक कि हे महादेवि ! चौदहहज़ार इन्द्र रहते हैं इस लिये ब्राह्मणों को भी कुछ प्रतिग्रह न लेना चाहिये फिर अन्य लोगों को क्या कहना है ॥ ३६ ॥ क्योंकि अपने भावसे संयुक्त पुरुष कृत्रिम व अकृत्रिम दो प्रकार के तीर्थ के समस्त फल को प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ और जो पराये अन्न से जाता है वह पुण्य के सोलहवें अंश को पाताहै और असमर्थ, अन्ध, पंगु व शिलोंछवृत्तिवाले को ॥ ३८ ॥ जिसलिये प्रतिग्रह ब्राह्मणों से छिद्र (दोष) रहित किया गयाहै वह कारण कहाहै और ब्राह्मणों के लिये स्नान, भोजन व पीनेवाली वस्तुओं को देता हुआ तीर्थसेवी पुरुष

तीर्थ से उपजे हुये समस्तफल को पाता है यदि पायेहुये धनको छठेभाग के दान से न देवै ॥ ३९ । ४० ॥ तो वहां ब्राह्मणों के लिये पञ्चमांश को देवै और देवताओं व गुरुवों को तथा माता, पिता को इच्छा से ॥ ४१ ॥ पुण्य देनेवाला पुरुष उसी अठगुने फलको पाताहै और स्नान, दान, तपस्या, होम, निज वेदपाठ ॥ ४२ ॥ व पुण्य सब कहीं देनाचाहिये क्योंकि पाप कहीं नहीं दियाजाता है और तीर्थ में पिता, माता, भाई मित्र व गुरु ॥ ४३ ॥ जिसको उद्देश कर नहावै तो वह बारहवें भाग को प्राप्त होता है और वेदबलके आश्रित होकर प्रतिग्रह की इच्छावाला न होवै ॥ ४४ ॥ क्योंकि अज्ञान व असावधानता से भी अन्यकर्म नहीं जलाता है

देवतानांगुरूणाञ्च मातापित्रोश्चकामतः ॥ ४१ ॥ पुण्यदःसमवाप्नोति तदेवाष्टगुणंफलम् ॥ स्नानंदानंतपोहोम स्वा ध्यायोदेवतार्चनम् ॥ ४२ ॥ पुण्यन्देयन्तुसर्वत्र नापुण्यंदीयतेक्वचित् ॥ पितरंमातरन्तीर्थे भ्रातरंसुहृदंगुरुम्॥४३॥ यमुद्दिश्यनिमज्जेत द्वादशांशंलभेतसः ॥ नवेदबलमाश्रित्य प्रतिग्रहरुचिर्भवेत् ॥ ४४ ॥ अज्ञानाद्वाप्रमादाद्वा दहते कर्मनेतरत् ॥ चितिकाष्ठन्तुवैस्पृष्ट्वा यज्ञयूपंतथैवच ॥ ४५ ॥ वेदविक्रयिणंस्पृष्ट्वा स्नानमेवविधीयते ॥ आदेशं पठतेयस्तु आदेशन्तुददातियः ॥ ४६ ॥ द्वाविमौपापकर्माणौ पातालतलवासिनौ ॥ आदेशंपठतेयस्तु सजिघृक्षुःप्र तिग्रहम् ॥ ४७ ॥ तीर्थेचैवविशेषेण ब्रह्मघ्नस्सैवनेतनरः ॥ स्थितोवैनृपतेर्द्वारि नकुर्याद्वेदविक्रयम् ॥ ४८ ॥ हत्वागांवै वरंमांसं भक्षयतिद्विजाधमः ॥ वरंजीवेत्सवैमत्स्यैर्नकुर्याद्वेदविक्रयम् ॥ ४९ ॥ तीर्थेचैवविशेषेण महातीर्थेतथैवच ॥ दीयमानन्नगृह्णानि विप्रोयस्तीर्थसेवकः ॥ ५० ॥ तीर्थंकरोतितीर्थश्च सपुनातिचपूर्वजान् ॥ यदन्यत्रकृतंपापं तीर्थेत

याने यह भस्म करदेता है व चिता के काठ को छूकर व यज्ञस्तम्भ को स्पर्श कर ॥ ४५ ॥ व वेदबेचनेवाले पुरुष को स्पर्श करके स्नानही किया जाता है जो आदेश को पढ़ताहै व जो आदेश (आज्ञा) को देताहै ॥ ४६ ॥ ये दोनों पापकर्मी पातालतल में बसते हैं और जो आदेश को पढ़ता है और वही प्रतिग्रह की इच्छावाला है ॥ ४७ ॥ तीर्थ में विशेषकर वही ब्रह्मघाती है अन्य नहीं है राजा के द्वारपै स्थित भी पुरुष वेदका विक्रय न करै ॥ ४८ ॥ नीच ब्राह्मण गऊ को मारकर मांस को भक्षण करै तो श्रेष्ठ है और वह पुरुष मछलियों से जियै तो भी श्रेष्ठ है परन्तु वेदविक्रय न करै ॥ ४९ ॥ और तीर्थ व महातीर्थ में विशेषकर जो तीर्थसेवी

ब्राह्मण दियेहुये दान को नहीं लेताहै ॥ ५० ॥ और तीर्थ करता है तो वह तीर्थ और पूर्वज पितरों को पवित्र करता है जो पाप अन्यत्र किया गया है वह तीर्थ में न्यूनता को प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥ और तीर्थ में कियाहुआ पाप अन्यत्र कहीं नहीं नाश होताहै व अत्यन्त क्लेशित भी जो तीर्थसेवी ब्राह्मण दानको नहीं लेता है ॥ ५२ ॥ और सत्यवादी व समाधि में स्थितहै उसको तीर्थ उपकारी होता है सतयुगमें पुष्कर, त्रेतामें नैमिष ॥ ५३ ॥ व द्वापर में कुरुक्षेत्र और कलियुग में प्रभासक्षेत्र कहा गया है जो पुरुष हज़ारयुगों तक एक पैरसे खड़ा रहताहै ॥ ५४ ॥ व एक पुरुष प्रभासक्षेत्र की यात्रा करताहै उन दोनों को समान फल होताहै अन्यथा नहीं

द्यातिलाघवम् ॥ ५१ ॥ नतीर्थकृतमन्यत्र क्वचिदेवंव्यपोह्यते ॥ योतिक्लिष्टोपिनादद्याद्ब्राह्मणस्तीर्थसेवकः ॥ ५२ ॥ सत्यवादीसमाधिस्थो तीर्थंतस्योपकारकम् ॥ कृतेयुगेपुष्कराणि त्रेतायांनैमिषन्तथा ॥ ५३ ॥ द्वापरेतुकुरुक्षेत्रं क्षेत्रंप्राभासिकंकलौ ॥ तिष्ठेद्युगसहस्रन्तु पादेनैकेनयःपुमान् ॥ ५४ ॥ प्रभासयात्रामेकश्च समम्भवतिनान्यथा ॥ पद्भ्यांप्रभासमागत्य मध्यभागेवरानने ॥ ५५ ॥ यानानितुपरित्यज्य भाव्यंपादचरैर्नरैः ॥ लुठित्वालोठयेत्तत्र लुठितायत्रदेवताः ॥ ५६ ॥ ततोनृत्यन्हसन्गायन् भूत्वाकार्पटिकाकृतिः ॥ गच्छन्सोमेश्वरन्देवं दृष्ट्वाचादौकपर्द्दिनम् ॥ ५७ ॥ ईदृशंपुरुषंदृष्ट्वा स्थितंसोमेश्वरोन्मुखम् ॥ नित्यन्तुष्यन्तिपितरो गर्ज्जन्तिचपितामहाः ॥ ५८ ॥ अस्माकंवंशजोदेवि प्रस्थितस्तारणायनः ॥ गत्वासोमेश्वरंदेवि कुर्यादृपनमादितः ॥ ५९ ॥ तीर्थोपवासःकर्तव्यो यथावद्वैनिबोधमे ॥

है हे वरानने ! प्रभासक्षेत्र को पैदल आकर मध्यभाग में ॥ ५५ ॥ सवारियों को छोड़कर मनुष्यों को चरणचारी होना चाहिये और वहां लोटकर जावै जहां कि देवता लोग लोटे हैं ॥ ५६ ॥ तदनन्तर कार्पटिक (गुदड़ीवाले भिक्षुक) की नाईं होकर नाचता, हँसता व गाताहुआ पुरुष सोमेश्वरजी के यहां जावै और पहले जटाधारी शिवदेवजी को देखकर ॥ ५७ ॥ सोमेश्वरजी के साम्हने स्थित ऐसे पुरुषको देखकर पितर नित्यही प्रसन्न होते हैं व पितामह गर्जते हैं ॥ ५८ ॥ व हे देवि ! यह कहते हैं कि हमारे वंश में उत्पन्न पुरुष हमलोगों के तारने के लिये चला है हे देवि ! सोमेश्वरदेवजी के समीप जाकर पहले क्षौर करावै ॥ ५९ ॥ और

तीर्थोपवास करना चाहिये उसको मुझसे यथार्थ सुनिये कि गङ्गाजीके समान तीर्थ नहीं है व कृष्णाजी के समान गति नहीं है ॥ ६० ॥ और गायत्री के समान जप नहीं है व व्याहृतियों के तुल्य होम नहीं है वैसेही जल के मध्य में अघमर्षण कर्म के समान पापनाशक कर्म नहीं है ॥ ६१ ॥ और हे देवेशि! तीर्थमें उपवाससे अधिक पापियों का पापनाशक व सज्जनों को चाहेहुये मनोरथ को करनेवाला कुछ नहीं है ॥ ६२ ॥ और देवस्थानमें विशेषकर उपास कहागया है इस संसार में भोजन न करना यही ब्राह्मणका उत्तम तप कहा जाताहै ॥ ६३ ॥ और छठें समय में भोजन करनेवाला जो शूद्र है उसका वही तप विद्वानों से कहा जाता है और

नास्तिगङ्गासमंतीर्थं नास्तिकृष्णसमागतिः ॥ ६० ॥ गायत्रीसदृशंजाप्यं होमंव्याहृतिभिस्समम् ॥ अन्तर्जलेतथानास्ति पापघ्नमघमर्षणात् ॥ ६१ ॥ तीर्थोपवासाद्देवेशिअधिकंनास्तिकिञ्चन ॥ पापिनांपापशमनं सतामीप्सितकारकम् ॥ ६२ ॥ उपवासोविनिर्दिष्टो विशेषाद्देवताश्रये ॥ ब्राह्मणस्यत्वनशनं तपःपरमिहोच्यते ॥ ६३ ॥ षष्ठकालाशनःशूद्रस्तपःप्रोक्तंपरंबुधैः ॥ वर्णसङ्करजातीनां दिनमेकंप्रकीर्त्तितम् ॥ ६४ ॥ षष्ठकालात्परंशूद्रस्तपःकुर्याद्यदाकचित् ॥ राष्ट्रहानिस्तदाज्ञेया राज्ञश्चोपद्रवोमहान् ॥ ६५ ॥ शूद्रश्चषष्ठकालाशी यथाशक्त्यातपश्चरन्॥ नदर्भानुद्धरेच्छूद्रो न पिबेत्कापिलंपयः ॥ ६६ ॥ मध्यपत्रेनभुञ्जीयाद् ब्राह्मवृक्षस्यभामिनि ॥ नोच्चरेत्प्रणवंमन्त्रं पुरोडासन्नभक्षयेत् ॥ ६७ ॥ नशिखान्नोपवीतञ्च नोच्चरेत्संस्कृतांगिरम् ॥ नपठेद्वेदवचनं त्रिरात्रन्नहिसेवयेत् ॥ ६८ ॥ नमस्कारेणशूद्रस्य क्रियाशुद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ निषिद्धाचरणंकुर्य्यात्पितृभिस्सहमज्जति ॥ ६९ ॥ येनैकादशसंख्यानि यन्त्रिता

संकरवर्णवाली जातियों को एक दिन उपास कहा गया है ॥ ६४ ॥ और जब कहीं छठें काल से परे शूद्र तप करता है तब राजा के राज्य की हानि व बड़ा भारी उत्पात जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ और यथाशक्ति तपको करता हुआ शूद्र छठें समय में भोजन करै व शूद्र कुशों को न उखाड़ै और न शूद्र कपिला गऊके दूध को न पियै ॥ ६६ ॥ व हे भामिनि! पीपल वृक्षके मध्यपत्रमें भोजन न करै और ॐकारमन्त्र को न कहै व पुरोडास (यज्ञकी खीर) को न खावै ॥ ६७ ॥ और शिखा व यज्ञोपवीत को न धारण करै और संस्कृतवाणीको न बोलै व वेदवचन को न पढ़ै और त्रिरात्र व्रतको न सेवै ॥ ६८ ॥ और शूद्र का नमस्कार करने से निश्चयकर

कर्मों की अपवित्रता होतीहै और जो निषिद्ध आचरण को करताहै वह पितरोंसमेत नरक में डूबता है ॥ ६६ ॥ जिसने गेरह संख्यक इन्द्रियों को रोंकलिया है वह तीर्थ के फलको भोगताहै और अन्यनर क्लेशभागी होताहै ॥ ७० ॥ और जो मनुष्य तीर्थ में पितरों का श्राद्ध व उसमें स्नान करता है और प्राणियों के लिये हितकारी होताहै वह तीर्थ से उपजेहुये फलको भोगताहै ॥ ७१ ॥ और पाखण्डी व सदैव लोभी और जो पराई स्त्री में तत्पर रहता है व तीर्थयात्रा को करता है वह मनुष्य पापी होवै है ॥ ७२ ॥ ऐसा जानकर हे महादेवि ! विधिपूर्वक यात्राकरै पहले श्रद्धासंयुत व दृढव्रत पुरुष तीर्थोपवास करके ॥ ७३ ॥ यदि अपना हित चाहै तो भोजन

नीन्द्रियाणिवै ॥ सतीर्थफलमाप्नोति नरोन्यक्लेशभाग्भवेत् ॥ ७० ॥ यश्चतीर्थेपितृश्राद्धं स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ हितकारीचभूतेभ्यस्सोश्नुतेतीर्थजंफलम् ॥ ७१ ॥ धर्मध्वजीसदालुब्धः परदाररतोहियः ॥ करोतितीर्थगमनं सनरःपातकीभवेत् ॥ ७२ ॥ एवंज्ञात्वामहादेवि यात्रांकुर्याद्यथाविधि ॥ तीर्थोपवासंकृत्वादौ श्रद्धायुक्तोदृढव्रतः ॥ ७३ ॥ भोजनंचप्रकुर्वीत यदीच्छेद्धितमात्मनः ॥ परान्नंनैवभुञ्जीत तद्दिनेब्राह्मणःक्वचित् ॥ ७४ ॥ हस्त्यश्वरथदानानि भूमिगोकाञ्चनादिकम् ॥ सर्वंतत्प्रतिगृह्णीयाद्भोजनंनसमाचरेत् ॥ ७५ ॥ अस्माच्छतगुणंपुण्यं भोजनंददतोपिवा ॥ तीर्थोपवासंकुर्वीत तस्मात्तत्रवरानने ॥ ७६ ॥ व्रतीचतीर्थयाजीचविधवाचविशेषतः ॥ परान्नभोजनेदेवि यस्यान्नंतस्यतत्फलम् ॥ ७७ ॥ विधवाचैवयानारी तस्यायात्राविधिंब्रुवे ॥ कुङ्कुमंचन्दनञ्चैव ताम्बूलंचस्रजस्तथा ॥ ७८ ॥ रक्तवस्त्राणिसर्वाणि शय्याद्यास्तरणानिच ॥ अशिष्टैस्सहसम्भाषाद्द्विजानांस्पर्शनन्तथा ॥ ७९ ॥ पुंसांप्रदर्शनञ्चैव हासंचैवविवर्ज

करै और उस दिन ब्राह्मण कभी पराये अन्नको न खावै ॥ ७४ ॥ हाथी, घोड़ा, रथदान व पृथ्वी, गऊ और उस सुवर्णादिक सब वस्तु को लेलेवै परन्तु भोजन न करै ॥ ७५ ॥ क्योंकि भोजन को देतेहुये पुरुषको इससे सौगुना पुण्य होता है हे वरानने ! इस लिये व्रती व तीर्थयात्रा करनेवाला और विधवा विशेषकर वहां तीर्थोपवास करै हे देवि ! पराये अन्न के भोजनमें जिसका अन्न होताहै उसको वह फल होताहै ॥ ७६ । ७७ ॥ और जो विधवा स्त्री है उसके यात्राकी विधि को मैं कहताहूं कि कुंकुम, चन्दन, ताम्बूल व माला ॥ ७८ ॥ व सब अरुण वस्त्रों को तैथा शय्यादिक बिछौना व दुष्टों के साथ सम्भाषण और ब्राह्मणों का स्पर्श करना ॥ ७९ ॥

और पुरुषों को देखना व हास्य वर्जित करै और कीर्तन करना, पनही, नृत्य व गीतको वर्जित करै ॥ ८० ॥ और केशों का धारण करना, मज्जन, विलेपन, दुष्ट स्त्रियों का मेल व पाण्डित्य को त्याग करै ॥ ८१ ॥ और संन्यासी, ब्रह्मचारी और विशेषकर विधवा नित्य स्नान करै श्वेत वस्त्रों को धारण करै ॥ ८२ ॥ तीर्थ में ताम्बूल, मदिरा व मांस को विद्वानों ने मदिरा पीने के समान कहा है इसलिये हे देवि ! इनको त्यागने से पुरुष भलीभांति यात्राके फलको पाता है ॥ ८३ ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि प्रभासक्षेत्र में मनुष्य किन तपों को करते हैं व किन तीर्थों में किस प्रकार कौन दान दियेजाते हैं ॥ ८४ ॥ महादेवजी बोले कि सतयुगमें तपस्या

येत् ॥ सशब्दोपानहौचैव नृत्यङ्गीतंचवर्जयेत् ॥ ८० ॥ धारणंचैवकेशानां मज्जनञ्चविलेपनम् ॥ असतीजनसंसर्गं पाण्डित्यञ्चपरित्यजेत् ॥ ८१ ॥ नित्यस्नानञ्चकुर्वीतश्वेतवस्त्राणिधारयेत् ॥ यतीचब्रह्मचारीच विधवाचविशेषतः ॥ ८२ ॥ ताम्बूलंमधुमांसञ्च सुरापानसमंविदुः ॥ एतेषांवर्जनाद्देवि सम्यग्यात्राफलंलभेत् ॥ ८३ ॥ देव्युवाच ॥ तपांसिकानितप्यन्ते क्षेत्रेप्राभासिकेनरैः ॥ कानिदानानिदीयन्ते केषुतीर्थेषुवाकथम् ॥ ८४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तपःपरंकृतयुगे त्रेतायांध्यानमिष्यते ॥ द्वापरेयजनंधन्यं दानमेकंकलौयुगे ॥ ८५ ॥ ततस्तपन्तिमुनयः कृच्छ्रंचान्द्रायणादिकम् ॥ गत्वाप्राभासिकंलोकाश्चान्येकृतयुगेकलौ ॥ ८६ ॥ दानानिचैवदीयन्ते ब्राह्मणेभ्योयथाविधि ॥ प्रभासंक्षेत्रमासाद्य तपसांप्राप्यतेफलम् ॥ ८७ ॥ तुलापुरुषब्रह्माण्डपृथिवीकल्पपादपाः ॥ हिरण्यंकामधेनुश्च गजवाजिरथंतथा ॥ ८८ ॥ रत्नधेनुहिरण्यांश्च सप्तसागरएवच ॥ महाभूतघटोविश्वचक्रःकल्पलताभिधः ॥ ८९ ॥ प्रभासेनृप

उत्तम है और त्रेतामें ध्यान चाहा जाताहै और द्वापरयुग में यज्ञ करना प्रशंसनीयहै व कलियुग में एक दानही कहा गयाहै ॥ ८५ ॥ उसीकारण मुनिलोग सतयुग में प्रभासक्षेत्र को जाकर कृच्छ्रचान्द्रायणादिक तपको करते हैं और अन्यपुरुष कलियुग में तप करते हैं ॥ ८६ ॥ और प्रभासक्षेत्र को आकर ब्राह्मणों के लिये विधिपूर्वक दान दियेजाते हैं व तपों का फल मिलता है ॥ ८७ ॥ तुलापुरुष, ब्रह्माण्ड, पृथ्वी, कल्पवृक्ष, सुवर्ण, कामधेनु, हाथी, घोड़ा व रथ ॥ ८८ ॥ रत्न, गऊ, सुवर्ण व

सातों समुद्र, महाभूतघट, विश्वचक्र व कल्पलतानामक ॥ ८९ ॥ प्रभासक्षेत्रमें राजा इन सोलह महादानोंको देवै और धान्य, रत्न, गुड़, सुवर्ण, तिल, कपास, शक्कर ॥ ९० ॥ घी, नमक व चांदी ये दश पर्वत कहेगये हैं और गुड़, घी, दही, शहद, जल, कपास, तिल व कम्मर की गऊ ॥ ९१ ॥ और रत्न व नमक की गऊ ये दश गऊ मानी गई हैं तीर्थ में अलग अलग इन दानों के मध्य में एक दान को देना चाहिये ॥ ९२ ॥ व हे महादेवि ! सरस्वती व समुद्र के सङ्गम में दान देना चाहिये व विद्वान्के लिये गृह, निवास व अन्य सामान सर्वस देना चाहिये ॥ ९३ ॥ थोड़ा व बहुत भी जो प्रिय हो उसको ब्राह्मणों के लिये देना चाहिये जिस तीर्थ में शिव

तिर्दद्यान्महादानानिषोडश ॥ धान्यरत्नगुडस्वर्णं तिलकार्पासशर्कराः ॥ ९० ॥ सर्पिर्लवणरूप्याख्या दशैतेपर्व तास्स्मृताः ॥ गुडाज्यदधिमध्वम्बुकार्पासतिलकम्बलाः ॥ ९१ ॥ रत्नीलावण्यकीचैव दशैताधेनवोमताः ॥ एषामेकत मन्दानं तीर्थेदेयंपृथक्पृथक् ॥ ९२ ॥ प्रदेयंचमहादेवि सरस्वत्यब्धिसङ्गमे ॥ सर्वस्वञ्चापिविदुषे गृहंवासपरिच्छदम् ॥ ९३ ॥ बह्वल्पमपिविप्रेभ्यो दातव्यंप्रियमेवयत् ॥ यत्रतीर्थेभवेल्लिङ्गं तीर्थंचविमलोदकम् ॥ ९४ ॥ तत्राग्निकार्यंकृत्वा दौ विशिष्टंदानमिष्यते ॥ तर्पणंपितृदेवानां श्राद्धदानंसदक्षिणम् ॥ ९५ ॥ तीर्थेतीर्थेचगोदानं नियतोयंकृतोविधिः ॥ विशिष्टख्यातलिङ्गेषु वृषदानंविधीयते ॥ ९६ ॥ स्नानंविलेपनंपूजां देवतानांसमाचरेत् ॥ जगतींचार्चयेद्भक्त्या त थाचैवोपलेपयेत् ॥ ९७ ॥ प्रासादंधवलंसौधं कारयेज्जीर्णमुद्धरेत् ॥ पुष्पवाटींस्नानकूपं निर्मलंकारयेद्वनम् ॥ ९८ ॥ ब्राह्मणानांभूरिदानं देवपूजाञ्चकारयेत् ॥ सर्वत्रदेवयात्रायां विधिरेषप्रवर्त्तते ॥ ९९ ॥ तीर्थमभ्युद्धरेज्जीर्णमार्ज

लिङ्ग व निर्मल जलवाला तीर्थ होवै ॥ ९४ ॥ वहां पहले अग्निहोत्र का कार्य करके विशेष दान कहा जाता है पितरों व देवताओं का तर्पण और दक्षिणा समेत श्राद्ध दान ॥ ९५ ॥ और प्रत्येक तीर्थ में गोदान यह विधि नियत कीगई है और विशेष व प्रसिद्ध लिङ्गों में बैल का दान किया जाताहै ॥ ९६ ॥ और स्नान, विलेपन व देवताओं का पूजन करै व भक्ति से पृथ्वी को पूजै और उपलेपन करै ॥ ९७ ॥ और श्वेत राजमन्दिर को बनवावै और जीर्णोद्धार करै व पुष्पवाटिका, निर्मल स्नान कूप और वनको बनवावै ॥ ९८ ॥ और ब्राह्मणों को महादान व देव पूजनकरै सब कहीं देवयात्रा में यह विधि प्रवृत्त होती है ॥ ९९ ॥ पुराने तीर्थ का उद्धार करै याने

बनवावै और शुद्ध करावै व फलको कहै और प्रसिद्ध तीर्थ में महादान व मध्यम में मध्यम दान करै ॥ १०० ॥ सब तीर्थों में गोदान करै और सुवर्ण का निष्क्रय करै याने यदि गऊ न होवै तो सुवर्ण देवै सब दानों के मध्यमें दान की निष्कृति (मूल्य) सुवर्णदान है ॥ १ ॥ भक्तिसे ऐसा करके मनुष्य जन्मके फलको पाताहै और तीर्थों में दानको कहताहूं कि जिन में जो दान जिस तिथि में दिया जाताहै ॥ २ ॥ प्रभासक्षेत्र में परेवा तिथि में उत्तम सुवर्ण देना चाहिये व दुइज में वस्त्र और तीज में पृथ्वी को देवै ॥ ३ ॥ व चौथि में अन्न और पञ्चमी में कपिला गऊ को देवै और छठि में घोड़ा व सप्तमी में वहां भैंस को देवै ॥ ४ ॥ और अष्टमी तिथि में

येत्कथयेत्फलम् ॥ प्रसिद्धकेमहादानं मध्यमेचैवमध्यमम् ॥ १०० ॥ गोदानंसर्वतीर्थेषु सुवर्णस्यचनिष्क्रयः ॥ हिरण्यदानंदानानां सर्वेषांदाननिष्कृतिः ॥ १ ॥ एवंकृत्वानरोभक्त्या लभतेजन्मनःफलम् ॥ तीर्थेषुदानंवक्ष्यामि येषुयद्दीयतेतिथौ ॥ २ ॥ प्रभासेप्रतिपदिचदातव्यंकाञ्चनंशुभम् ॥ द्वितीयायांतथावस्त्रं तृतीयायाञ्चमेदिनीम् ॥ ३ ॥ चतुर्थ्यांदापयेद्धान्यं पञ्चम्यांकपिलान्तथा ॥ षष्ठ्यामश्वंचसप्तम्यां महिषींतत्रदापयेत् ॥ ४ ॥ अष्टम्यांवृषभंदद्यान्नीलंलक्षणसंयुतम् ॥ नवम्यांचगृहंदद्याच्छङ्खंचक्रंगदान्तथा ॥ ५ ॥ दशम्यांसर्वगन्धांश्च एकादश्याञ्चमौक्तिकम् ॥ द्वादश्यांसुव्रतेदेयं प्रवालंविधिवत्तथा ॥ ६ ॥ स्त्रियोदेयास्त्रयोदश्यां भूतायांयानदोभवेत् ॥ अमावास्यामनुप्राप्य सर्वदानानिदापयेत् ॥ ७ ॥ एवंदानंचदत्त्वातु दशकृत्वाफलंलभेत् ॥ ८ ॥ देव्युवाच ॥ भक्तिदानविहीनाये प्रभासंक्षेत्रमागताः ॥ स्नानमन्त्रविहीनाश्च वदतेषान्तुकिंफलम् ॥ ९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ सधनानिर्धनावापि समन्त्रामन्त्रवर्जिताः॥

लक्षणों से संयुत नील बैलको देवै व नवमीमें गृह, शङ्ख, चक्र व गदा को देवै ॥ ५ ॥ दशमी में सब सुगन्धों को देवै और एकादशी में मोती को देवै व हे सुव्रते ! द्वादशी तिथि में विधिपूर्वक मूंगा देना चाहिये ॥ ६ ॥ और तेरसि में स्त्रियां देना चाहिये और चौदसि तिथि में यानद होवै याने सवारी को देवै और अमावास्या को पाकर सब दानों को देवै ॥ ७ ॥ इस प्रकार दान को देकर दशबार करके फलको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि जो भक्ति व दान से विहीन तथा स्नान व मन्त्रसे रहित पुरुष प्रभासक्षेत्र को आये हैं उनको क्या फल होताहै इसको कहिये ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि धनवान् व निर्धनी या मन्त्र समेत व मन्त्रों से

रहित जो पुरुष प्रभासक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्तहुये हैं वे सब शिवजी के स्थानको जातेहैं ॥ १० ॥ व हे प्रिये ! जो मन्त्रहीन और धनहीन वहां मरे हैं उनको शिवजी एक बड़ाभारी विमान देते हैं ॥ ११ ॥ और वे स्नान व दान के अनुसार परमपद को प्राप्त होते हैं कोई स्नान के प्रभावसे व कोई मनुष्य दानसे ॥ १२ ॥ और कोई लिङ्ग के प्रभावसे, कोई लिङ्गके पूजन से, कोई ध्यानके प्रभावसे व कोई योगके प्रभावसे ॥ १३ ॥ व हे शुभे ! कोई मन्त्र के जपसे, कोई तप से, कोई तीर्थ संन्याससे व कोई भक्ति के अनुसार ॥ १४ ॥ ये व अन्य बहुत से उत्तम, अधम व मध्यम पुरुष सब सूर्यके समान विमानों के द्वारा शिवपुर को जाते हैं ॥ १५ ॥ और त्रिशूल से चिह्नित हाथ

प्रभासेनिधनंप्राप्तास्सर्वेयान्तिशिवालयम् ॥ १० ॥ येमन्त्रहीनाःपुरुषा धनहीनाश्चयेमृताः ॥ तेषामेकंविमानन्तु ददातिसुमहत्प्रिये ॥ ११ ॥ स्नानदानानुरूपेण प्राप्नुवन्तिपरंपदम् ॥ केचित्स्नानप्रभावेण केचिद्दानेनमानवाः ॥ १२ ॥ केचिल्लिङ्गप्रभावेण केचिल्लिङ्गार्चनेनच ॥ केचिद्ध्यानप्रभावेण केचिद्योगप्रभावतः ॥ १३ ॥ केचिन्मन्त्रस्यजाप्येन केचित्तपसाशुभे ॥ तीर्थसंन्यासनैःकेचित् केचिद्भक्त्यानुसारतः ॥ १४ ॥ एतेचान्येचबहवो ह्युत्तमाधममध्यमाः ॥ सर्वेशिवपुरंयान्ति विमानैस्सूर्यसन्निभैः ॥ १५ ॥ त्रिशूलाङ्कितहस्ताश्च सर्वेवृषभवाहनाः ॥ दिव्यरोगगणाकीर्णाः क्रीडन्तेमत्प्रभावतः ॥ १६ ॥ एवंभक्त्यानुसारेण ददामिफलमव्ययम् ॥ अलेपकंप्रभासन्तु धर्माधर्मैर्नलिप्यते ॥ १७ ॥ धर्मंचरेन्नरोनित्यं शिवंयातिनसंशयः ॥ जन्मप्रभृतियोदेवि नरोनेत्रविवर्जितः ॥ १८ ॥ अस्मिन्क्षेत्रेमृतस्सोपिरुद्रलोकेमहीयते ॥ जन्मप्रभृतियोदेवि श्रवणाभ्यांविवर्जितः ॥ १९ ॥ प्रभासेनिधनंप्राप्तः सभवेन्मत्परिग्रहः ॥ अथातः

वाले व बैलकी सवारीवाले तथा दिव्य अप्सराओं से घिरेहुये वे सब मेरे प्रभाव से क्रीड़ा करते हैं ॥ १६ ॥ इस प्रकार भक्तिके अनुसार मैं अविनाशी फलको देताहूं और अलेप प्रभासक्षेत्र धर्म व अधर्मों से नहीं लिप्त होता है ॥ १७ ॥ मनुष्य सदैव धर्मको करै तो शिवजी को प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं है हे देवि ! जो मनुष्य जन्मसे लगाकर नेत्ररहित होताहै ॥ १८ ॥ इस क्षेत्रमें मराहुआ वह भी शिवलोकमें पूजा जाताहै व हे देवि ! जो मनुष्य जन्मसे लगाकर कानोंसे रहित होताहै ॥ १९ ॥

प्रभास में मराहुआ वह मेरा कुटुम्बी होता है अब इसके उपरान्त में तीर्थों के स्पर्श में विधि को कहताहूं ॥ २० ॥ कि जिसप्रकार मन्त्र से अभिमन्त्रित तीर्थ समीप में प्राप्त होताहै पहले पवित्र होकर मनुष्य ॐकार से तीर्थ के जल को स्पर्श करै ॥ २१ ॥ तदनन्तर तबतक मन्त्र के नियोगसे अवगाहन करके स्नान करै जब तक इस मन्त्रको पढ़ै कि नीलकण्ठ व दण्डी देवदेवजी के लिये नमस्कार है ॥ २२ ॥ व सुन्दर हाथोंवाले रुद्र व चक्रधारी तथा ब्रह्माजी के लिये प्रणाम है सरस्वती, सावित्री व देवताओंकी माता विभावरी ॥ २३ ॥ इस पापनाशक तीर्थमें समीपतामें होवैं सब मन्त्र तीर्थों का यह मन्त्र कहागयाहै ॥ २४ ॥ यह उच्चारणकर व नम-

सम्प्रवक्ष्यामि तीर्थानांस्पर्शनेविधिम् ॥ २० ॥ मन्त्रेणामन्त्रितन्तीर्थं भवेत्सन्निहितंयथा ॥ प्रथमंचालभेत्तीर्थं प्रणवेनजलंशुचिः ॥ २१ ॥ अवगाह्यततःस्नायाद्यावन्मन्त्रनियोगतः ॥ ॐनमोदेवदेवाय शितिकण्ठायदण्डिने ॥ २२ ॥ रुद्रायवामहस्ताय चक्रिणेवेधसेनमः ॥ सरस्वतीचसावित्री देवमाताविभावरी ॥ २३ ॥ सन्निधानंभवन्त्वत्र तीर्थेपापप्रणाशने ॥ सर्वेषांमन्त्रतीर्थानां मन्त्रएषउदाहृतः ॥ २४ ॥ इत्युच्चार्यनमस्कृत्वा स्नानंकुर्याद्यथाविधि ॥ उपवासंतथाकुर्यात्तस्मिन्नहनिसुव्रते ॥ २५ ॥ सातिथिर्वर्षमेकन्तु उपोष्याभक्तितत्परैः ॥ देव्युवाच ॥ कस्मिंस्तीर्थेनरैः पूर्वं प्रभासक्षेत्रमागतैः ॥ २६ ॥ स्नानंकार्यंमहादेव तन्मेविस्तरतोवद ॥ २७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अहन्तेसंप्रवक्ष्यामि आद्यंतीर्थंमहाप्रभम् ॥ पूर्वंयत्रनरैःस्नानं क्रियतेतच्छृणुष्वमे ॥ १२८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे यात्राविधानन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कार करके विधिपूर्वक स्नान करै व हे सुव्रते ! उस दिनमें उपास करै ॥ २५ ॥ और भक्तिमें तत्पर पुरुषोंको एक वर्ष तक उस तिथि का उपास करना चाहिये देवी पार्वतीजी बोलीं कि प्रभासक्षेत्र में आयेहुये पुरुषों को पहले किस तीर्थ में ॥ २६ ॥ स्नान करना चाहिये हे महादेवजी ! उसको मुझ से विस्तारपूर्वक कहिये ॥ २७ ॥ महादेवजी बोले कि मैं महाप्रभावान् आदितीर्थ को तुमसे कहूंगा कि जिसमें मनुष्य पहले स्नान करते हैं उसको मुझसे सुनिये ॥ १२८ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयात्राविधानन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ ॥

दो० । जेहिं उपायसनकरै नर क्षारसमुद्रस्नान। सत्ताइस-अध्यायमें वर्णित सो आख्यान ॥ महादेवजी बोले कि हे वरानने! तदनन्तर समुद्रके उत्तम किनारेपै अग्नितीर्थ कोजावै जहां कि सरस्वतीनदीने इस बड़वानलको छोड़ाहै ॥ १॥ सोमनाथजीके दक्षिणमें नामसे पद्मकनामक तीर्थ सर्वपापहारी त्रिलोकमें प्रसिद्धहै ॥ २ ॥ पहले सोमेश्वर जीके समीप क्षौर कराकर मनसे शिवजी को ध्यान करताहुआ पुरुष उसमें केशोंको फेंकदेवै ॥ ३ ॥ उसमें केशोंको फेंककर फिर स्नानकरै और जीविकासे दुर्बल मनुष्य जो कुछ पापको करता है ॥ ४ ॥ हे पर्वतकन्यके ! वह सब पाप केशोंमें टिकता है इसलिये सब यत्नसे केशोंको उसमें फेंकदेवै ॥ ५ ॥ हे वरानने ! सोमनाथजी के

ईश्वरउवाच ॥ अग्नितीर्थंततोगच्छेत्सागरस्यतटेशुभे ॥ यत्रासौवाडवोमुक्तस्सरस्वत्यावरानने ॥ १ ॥ दक्षिणे सोमनाथस्य सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तीर्थंत्रैलोक्यविख्यातं पद्मकंनामनामतः ॥ २ ॥ आदौकृत्वातुवपनं सोमेश्वरसमीपतः ॥ शङ्करंमनसाध्यायन्केशांस्तत्रविनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥ केशांस्तत्रप्रक्षिप्त्वाच भूयस्स्नानंसमाचरेत् ॥ यत्किञ्चित्कुरुतेपापं मनुष्योवृत्तिकर्शितः ॥ ४ ॥ तदेनःपर्वतसुतेसर्वंकेशेषुतिष्ठति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन केशांस्तत्रविनिक्षिपेत् ॥ ५ ॥ तदेवसोमनाथाग्रे कृत्वाचद्विगुणंस्मृतम् ॥ क्षुरकर्मचशस्तंस्याद्योषितांचवरानने ॥ ६ ॥ सभर्तृकानांतत्रैव विधिंतासांशृणुष्वमे ॥ सर्वान्केशान्समुद्धृत्यच्छेदयेदङ्गुलद्वयम् ॥ ७ ॥ ततोदेवान्विधानेन तर्पयेत्पतिदेवता ॥ मुण्डनंचोपवासंच सर्वतीर्थेष्वयंविधिः ॥ ८ ॥ गङ्गायांभास्करेक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृते ॥ आधानेसोमपानेच वपनंसप्तसुस्मृतम् ॥ ९ ॥ अश्वमेधसहस्राणां सहस्रंयस्समाचरेत् ॥ नासौतत्फलमाप्नोति वपनाद्यच्चलभ्यते ॥ १० ॥ विना

आगे करके वही दुगुना कहागयाहै और सुभगा स्त्रियोंको भी क्षौरकर्म वहीं शुभहै उनकी विधिको मुझसे सुनिये कि सब केशोंको पकड़कर दो अंगुल कटावै ॥ ६ । ७ ॥ तदनन्तर पतिव्रता स्त्री विधिसे देवताओं को तर्पण करै मुण्डन और उपास यह विधि सब तीर्थों में है ॥ ८ ॥ गङ्गा व भास्करक्षेत्रमें और माता, पिता व गुरुके मरनेपर और गर्भाधान व सोमपान इन सात कर्मोंमें क्षौरकर्म कहागया है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य दशलाख अश्वमेधों को करता है वह उस फलको नहीं पाताहै जोकि

इन कर्मोंमें क्षौरसे मिलता है॥ १० ॥ हे देवि ! उसमें जो मनुष्य बिन मन्त्र स्नान करता है वह एक पर्व दिनको छोड़कर कहीं कल्याण को नहीं पाताहै ॥ ११ ॥ हे देवेशि ! मन्त्रके विना व पर्वके विना और क्षौरकर्म के विना कुशाके अग्रभाग से भी समुद्रको स्पर्श न करना चाहिये ॥ १२ ॥ विधिसे इस प्रकार समुद्रमें नहाकर व अर्घ देकर और चन्दन पुष्प व वसन तथा पवित्र अनुलेपनों से भलीभांति पूजकर ॥ १३ ॥ युक्तिके अनुसार सुवर्णमय कङ्कण को उसमें डालदेवै विधिसे ऐसा करके क्षारसमुद्रको इस मन्त्रसे स्पर्शकरै तदनन्तर हे देवेशि ! समीपता को प्राप्त होवै है कि विष्णु से रक्षित व विष्णुरूप आप के लिये प्रणाम है हे देवेश ! क्षारजल-

मन्त्रेणयस्स्नानं तत्रदेविसमाचरेत् ॥ सनाप्नोतिकचिच्छ्रेयो मुक्त्वैकंपर्ववासरम् ॥ ११ ॥ विनामन्त्रंविनापर्वक्षुरकर्मविनानरैः ॥ कुशाग्रेणापिदेवेशि नस्प्रष्टव्योमहोदधिः ॥ १२ ॥ एवंस्नात्वाविधानेन दत्त्वार्घञ्चमहोदधौ ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पैश्च वस्त्रैःपुण्यानुलेपनैः ॥ १३ ॥ हिरण्मयंयथाशक्त्या निक्षिपेत्तत्रकङ्कणम् ॥ एवंकृत्वाविधानेन स्पर्शयेल्लवणोदधिम् ॥ १४ ॥ मन्त्रेणानेनदेवेशि ततस्सान्निध्यतांव्रजेत् ॥ ॐनमोविष्णुगुप्ताय विष्णुरूपायतेनमः ॥ सान्निध्येभवदेवेश सागरेलवणाम्भसि ॥ १५ ॥ अग्निश्चतेयोनिरिडाचदेहो रेतोधाविष्णोरमृतस्यनाभिः ॥ एतद्ब्रुवन्पार्वतिसत्यवाक्यं ततोवगाहेतपतिन्नदीनाम् ॥ १६ ॥ ॐनमोरत्नगर्भाय मन्त्रेणानेनभामिनि ॥ कङ्कणंप्रक्षिपेत्तत्र ततःस्नायाद्यदृच्छया ॥ १७ ॥ ततश्चतर्पयेद्देवान्मनुष्यांश्चपितामहान् ॥ तिलमिश्रेणतोयेन सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ १८ ॥ आजन्मकृतसाहस्रं यत्पापंकुरुतेनरः ॥ सकृत्स्नात्वाव्यपोहेत सागरेलवणाम्भसि ॥ १९ ॥ वृषस्त

वाले समुद्रमें समीपता में प्राप्त होवो ॥ १४ । १५ ॥ अग्नि तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है व इडा (यज्ञ) तुम्हारा शरीर है और विष्णुजी के जीवको धारनेवाले हो व अमृत (मोक्ष) के साधन हो हे पार्वति ! इस सत्य वचन को कहताहुआ पुरुष तदनन्तर नदियों के पति समुद्रमें स्नान करै ॥ १६ ॥ हे भामिनि ! ॐनमो रत्नगर्भाय इस मन्त्रसे उसमें कङ्कणको फेंकै तदनन्तर स्वच्छन्दता से स्नान करै ॥ १७ ॥ तदनन्तर भलीभांति श्रद्धासे संयुत मनुष्य तिलसे मिलेहुये जलसे देवता, मनुष्य व पितरोंको तर्पण करै ॥ १८ ॥ हज़ारों जन्मोंमें मनुष्य जिस पातकको करताहै उसको एकबार क्षारजलवाले समुद्रमें नहाकर नाश करताहै ॥ १९ ॥ व क्षौरकर्म प्रवृत्त

होनेपर वहां बैल देना चाहिये और अपनी प्रतिमा का दान व पीले वसन का दान करना चाहिये ॥ २० ॥ इस विधिसे उसमें भलीभांति स्नान करै और बड़वा-नल के तेजको स्पर्शकरै अन्यथा मनुष्य दोषभागी होताहै ॥ २१ ॥ क्योंकि पहले ब्राह्मणों ने उस समुद्र को इस वर व शाप को दिया है ॥ २२ ॥ देवी पार्वती जी बोलीं कि हे महादेवजी ! जहां तहां जलमें नहाकर मनुष्य पवित्र होता है और समुद्र में किस लिये दोष मिलता है यह बड़ा कौतुक है ॥ २३ ॥ कि जहां गङ्गादिक सब नदियां विश्रामको प्राप्त हुई हैं और जहां आपही विष्णुजी सोते हैं व जहां लक्ष्मीजी आपही स्थित हैं ॥ २४ ॥ उसको किस लिये ब्राह्मणों ने पहले वरदान व

त्रप्रदातव्यः प्रवृत्तेक्षुरकर्मणि ॥ आत्मप्रकृतिदानञ्च पीतवस्त्रंतथैवच ॥ २० ॥ अनेनविधिनातत्र सम्यक्स्नानंसमा
चरेत् ॥ स्पर्शयेद्वाडवन्तेजश्चान्यथादोषभाग्भवेत् ॥ २१ ॥ वरश्शापश्चतस्यायं पुरादत्तोयतोद्विजैः ॥ २२ ॥ देव्युवा
च ॥ यत्रतत्रमहादेव जलेस्नात्वाविशुद्ध्यति ॥ किमर्थंसागरेदोषः प्राप्यतेकौतुकंमहत् ॥ २३ ॥ यत्रगङ्गादयस्सर्वा न
द्योविश्रान्तिमागताः ॥ यत्रविष्णुःस्वयंशेते यत्रलक्ष्मीस्स्वयंस्थिता ॥ २४ ॥ किमर्थंवरशापौतु तस्यदत्तौद्विजैःपुरा ॥
सर्वविस्तरतोब्रूहि महान्मेसंशयोत्रमे ॥ २५ ॥श्रीरुद्रउवाच ॥ दीर्घसत्रंपुरादेवि प्रारब्धंसुरसत्तमैः ॥ प्रभासन्तीर्थमा
साद्य सम्यक्श्रद्धासमन्वितैः ॥ २६ ॥ तत्रसत्रावसानेतु दत्त्वादानमनेकधा ॥ सर्वस्वंब्राह्मणेन्द्राणां प्रभासक्षेत्रवासि
नाम् ॥ २७ ॥ तावदन्येद्विजास्तत्र दक्षिणार्थंसमागताः ॥ देशीयास्तत्रवास्तव्याः शतशोथसहस्रशः ॥ २८ ॥ प्रार्थ
नाभङ्गभीताश्च ततोदेवास्सवासवाः ॥ प्रणष्टाब्राह्मणान्दृष्ट्वाब्राह्मणाश्चानुवव्रजुः ॥ २९ ॥ खेचरत्वंपुरादेवि आसीदग्र

शाप को दिया है इस सबको विस्तारसे कहिये क्योंकि इस विषय में मुझको बड़ीसन्देह है ॥ २५ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे देवि ! पुरातन समय भलीभांति श्रद्धा संयुत सुरोत्तमों ने प्रभासतीर्थ में आकर बड़ेभारी यज्ञका प्रारम्भ किया है ॥ २६ ॥ और यज्ञ के अन्त में वहां प्रभासक्षेत्रवासी द्विजेन्द्रों को अनेक भांतिका सर्वस्व दान देकर स्थितहुये ॥ २७ ॥ तब तक वहां बसनेवाले सैकड़ों व हज़ारों देशीय अन्य ब्राह्मण दक्षिणा के लिये वहां भलीभांति आये ॥ २८ ॥ तदनन्तर याचना के भङ्ग

से डरेहुये इन्द्र समेत देवता ब्राह्मणों को देखकर भगे और ब्राह्मण पीछे चले ॥ २६ ॥ हे देवि ! पहले अग्रभोजी ब्राह्मणों को बहुत आकाशगामिता थी उससे वे सब निश्चय कर जहां तहां देवस्थानों को जाते थे ॥ ३० ॥ इस भांति उनका सब कहीं गमन का भाव देखकर देवतालोग डरकर समुद्र में पैठगये तदनन्तर फिर वचन बोले ॥ ३१ ॥ कि हमलोग तुम्हारी शरण में प्राप्त हैं क्योंकि ब्राह्मणों से भय है व हे समुद्र ! दानके लिये धन नहीं है इस लिये रक्षा कीजिये ॥ ३२ ॥ हे वरवर्णिनि ! एक ओर समाप्तहुये सब यज्ञ हैं और एक ओर भयभीत प्राणी के प्राणों की रक्षा करना है ॥ ३३ ॥ व देवताओं की रक्षा करना विशेषकर बहुत पुण्यदायक

भुजांमहत ॥ तेनयान्तिध्रुवंसर्वे यत्रतत्रसुरालयान् ॥ ३० ॥ एवंसर्वत्रगामित्वं तेषांवीक्ष्यदिवौकसः ॥ प्रविष्टाःसागरम्भीता ऊचुर्वाक्यंततःपुनः ॥ ३१ ॥ शरणन्तेवयंप्राप्ता ब्राह्मणेभ्योभयंयतः ॥ नास्तिवित्तंचदानार्थं तस्माद्रक्षमहोदधे ॥ ३२ ॥ एकतःक्रतवस्सर्वे समाप्तावरवर्णिनि ॥ एकतोभयभीतस्य प्राणिनःप्राणरक्षणम् ॥ ३३ ॥ विशेषतश्चदेवानां रक्षणंबहुपुण्यदम् ॥ समुद्रउवाच ॥ ब्राह्मणेभ्योभयन्नैव कथंकार्यंसुरोत्तमाः ॥ ३४ ॥ अहंवोमोक्षयिष्यामि प्रविशध्वंममोदरे ॥ ततस्तेविबुधास्सर्वे तस्यवाक्येनहर्षिताः ॥ ३५ ॥ प्रविष्टागह्वरांकुक्षिं तस्यैवभयवर्ज्जिताः ॥ समुद्रोपिमहत्कृत्वा निजरूपञ्चभूरिशः ॥ ३६ ॥ जलजाञ्जीवसङ्घातान् धृत्वातीरसमीपतः ॥ ततश्चक्रेह्युपायंस ब्राह्मणानांनिपातने ॥ ३७ ॥ मत्स्यानामामिषंयच्च सहान्नेनचगोपितम् ॥ ततोवाचद्विजान्सर्वान् प्रणिपत्यकृताञ्जलिः ॥ ३८ ॥ प्रसादंक्रियतांविप्रा मुहूर्तंममसाम्प्रतम् ॥ आतिथ्यग्रहणादेव दीनस्यप्रणतस्यच ॥ ३९ ॥ युष्मदर्थंमयासम्यगेतत्पा

है समुद्र बोला कि हे सुरोत्तमो ! ब्राह्मणों से किसी प्रकार भय न करना चाहिये ॥ ३४ ॥ मैं तुमलोगों को छुड़ाऊंगा मेरे पेटमें पैठिये तदनन्तर वे सब ब्राह्मण उसके वचन से प्रसन्नहुये ॥ ३५ ॥ और भय से रहित व उसी की गम्भीर कुक्षि में पैठगये और समुद्र में भी अपने बड़भारी रूपको करके ॥ ३६ ॥ और जलमें उपजेहुये जीवगणों को किनारे के समीपही धरकर तदनन्तर उस समुद्र ने ब्राह्मणों के गिराने में यत्न किया ॥ ३७ ॥ कि जो मछलियों का मांसथा उसको अन्न के साथ गुप्त किया तदनन्तर प्रणाम कर हाथों को जोड़ेहुये वह सब ब्राह्मणों से बोला ॥ ३८ ॥ कि हे ब्राह्मणो ! इस समय पहुनाई के ग्रहण से मुहूर्तभर दीन व प्रणाम करतेहुये

मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये ॥ ३९ ॥ तुमलोगों के लिये मैंने भलीभांति इस भोजन को बनाया है इससे भोजन कीजिये फिर देवताओं के पीछे गमन कीजिये ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर लक्ष्मी से संयुत समुद्रको प्रणामकर वे ब्राह्मण बहुत अच्छा ऐसा उससे कहकर सोने के पात्र में भोजन करतेभये ॥ ४१ ॥ और भूंख से विकल ब्राह्मणों ने छिपेहुये उस मांस को नहीं जाना तदनन्तर प्रशंसित नियमोंवाले वे सब ब्राह्मण प्रसन्न हुये ॥ ४२ ॥ और भोजन के अन्तमें क्षत्रिय धर्मवाले ब्राह्मणों के बलका नाश होगया विषवाले सर्पोंका मरण पर्यन्त क्रोधही ज्ञान होताहै ॥ ४३ ॥ उस समुद्रने देवताओं की प्रेरणा किया व उनसे यह कहा कि जाइये तदनन्तर

कंसमाहृतम् ॥ क्रियताम्भोजनंभूयो गन्तव्यमनुनाकिनाम् ॥ ४० ॥ अथतेब्राह्मणानत्वा समुद्रञ्चश्रियान्वितम् ॥ वाढमित्येवतम्प्रोक्त्वा बुभुजुस्स्वर्णभाजने ॥ ४१ ॥ नव्यजानन्ततन्मांसं गुप्तंस्वादुक्षुधार्दिताः ॥ ततस्तुष्टाश्चतेसर्वे ब्राह्मणाःशंसितव्रताः ॥ ४२ ॥ भोजनान्तेब्राह्मणानां प्राणान्तःक्षत्रधर्मिणा ॥ आशीविषाणांसर्पाणां कोपोज्ञानं मृतावधि ॥४३॥ प्रेरयामासदेवान्सगम्यतामित्युवाचतान् ॥ ततोदेवास्सगन्धर्वा गच्छन्तःशीघ्रगामिनः॥४४॥ गच्छन्स्त स्तांस्ततोदृष्ट्वा ब्राह्मणास्तत्रवञ्चिताः ॥ दक्षिणार्थंसमुत्पेतुः सुरानुद्दिश्यपृष्ठतः ॥ ४५ ॥ ततःप्रपतिताभूमौ द्विजा स्तेसहसापुनः ॥ पतितास्तेसमालोक्य विस्मयंपरमङ्गताः ॥ ४६ ॥ ऊचुस्सर्वेतदान्योन्यं किमेतत्कारणंमहत् ॥ त पःक्षयोवासंजातः किंवाउत्सेकितम्मनः ॥ ४७ ॥ त्रैलोक्येगर्हिताजाताः किंकर्तव्यमिहाधुना ॥ चिन्तयामासमेधा वी ध्यात्वादेवंमहेश्वरम् ॥ ४८ ॥ तेषांमध्येद्विजःकश्चित्प्रोवाचद्विजसत्तमान् ॥ ज्ञात्वातुचेष्टितंतस्य द्विजरूपस्यवारि

गन्धर्वों समेत शीघ्रगामी सब देवता जानेलगे ॥ ४४ ॥ तदनन्तर जातेहुये उनको देखकर ब्राह्मणलोग वहीं वंचित रहे और देवताओं को उद्देशकर दक्षिणा के लिये पीछे से भलीभांति ऊपर को चले ॥ ४५ ॥ तदनन्तर फिर वे ब्राह्मण अचानकही पृथ्वी में गिरपड़े व गिरेहुये वे देखकर बड़े विस्मय में प्राप्तहुये ॥ ४६ ॥ व उससमय उन्होंने आपस में कहा कि यह क्या बड़ा भारी कारण है या तपस्या का नाश होगया या मन गर्वित होगया ॥ ४७ ॥ हमलोग त्रिलोकमें निन्दित हुये इस समय इसमें क्या करना चाहिये उनके मध्य में कोई बुद्धिमान् ब्राह्मणथा उसने महेश्वरदेवजी को ध्यानकर चिन्तन किया व उस द्विजरूपी समुद्रके कर्म को जानकर

द्विजोत्तमों से कहा ॥ ४८ । ४९ ॥ कि हम सब छलेगये हैं इस लिये पृथ्वीमें बालरूपी ब्रह्मा के वायव्य दिशाके भागमें गिरपड़े ॥ ५० ॥ साम्बादित्य नामक सुरोत्तम जो साम्बजी से थापेगये हैं उस सूर्यदेवजी के तीन स्थान इस द्वीपमें हैं ॥ ५१ ॥ पहला इन्द्रवन नामक व दूसरा पुण्डार कहा जाताहै और प्रभासक्षेत्र में यह तीसरे साम्बादित्य जी हैं ॥ ५२ ॥ उसी क्षेत्रमें हे महादेवि ! वहां उन दोनों के उत्तरमें स्थित दूसरा सूर्यनारायणजी का नित्यही अविनाशी स्थान है ॥ ५३ ॥ मनुष्य के ऊपर दयाके लिये साम्बजी की प्रीति से वह स्थान है उसी कारण बारह भाग से सूर्यों को मैत्रदृष्टिसे ॥ ५४ ॥ देखताहुआ सब संसार कल्याणके लिये सदैव वर्तमान

धेः ॥ ४९ ॥ वञ्चितास्तुवयंसर्वे तस्मात्तुपतिताभुवि ॥ तथावायव्यदिग्भागे ब्रह्मणोबालरूपिणः ॥ ५० ॥ साम्बादित्यस्सुरश्रेष्ठो यस्साम्बेनप्रतिष्ठितः ॥ स्थानानित्रीणिदेवस्य द्वीपेस्मिन्भास्करस्यतु ॥ ५१ ॥ पूर्वमिन्द्रवनन्नाम तथापुण्डारउच्यते ॥ अथप्रभासक्षेत्रेचसाम्बादित्यस्तृतीयकः ॥ ५२ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेमहादेवि तयोरुत्तरतःस्थितम् ॥ द्वितीयंशाश्वतंस्थानं तत्रसूर्यस्यनित्यशः ॥ ५३ ॥ प्रीत्यासाम्बस्यतत्स्थानं जनस्यानुग्रहायच ॥ ततोद्वादशभागेन मित्रान्मैत्रेणचक्षुषा ॥ ५४ ॥ अवलोकञ्जगत्सर्वं श्रेयोर्थंवर्त्ततेसदा ॥ प्रसक्तांविधिवत्पूजां गृह्णातिभगवान्स्वयम् ॥ ५५ ॥ देव्युवाच ॥ कोयंसाम्बस्सुतः कस्ययस्यनाम्नारविःपुरा ॥ यस्यचायंसहस्रांशुर्वरदःपुण्यकर्मणः ॥ ५६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविमहाश्चर्यं यथापृष्टंत्वयापुरा ॥ निष्कृतिंतांपरिज्ञाय समुद्रस्यरुषान्विताः ॥ ५७ ॥ ददुश्शापंमहादेवि रौद्रंरौद्रवपुर्द्धराः ॥ यस्मादभक्ष्यंमांसंहि ब्राह्मणानांपरंस्मृतम् ॥ ५८ ॥ त्वयोपगुप्तमस्माकं मांसमन्नेनसंयुतम् ॥ एकतस्सर्व

होताहै और विधिपूर्वक कीहुई पूजाको आपही भगवान् सूर्यनारायण जी ग्रहण करते हैं ॥ ५५ ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि यह साम्ब कौनहै व किसका पुत्रहै कि जिसके नाम से पहले सूर्यनारायणजी स्थापित हुये हैं और जिस पुण्यकर्मी को ये सूर्यनारायणजी वरदायक हुये हैं ॥ ५६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! बड़ेभारी आश्चर्य को सुनिये कि जिस प्रकार तुमने पहले पूंछा है समुद्रके उस कार्य को जानकर क्रोधसंयुत ॥ ५७ ॥ व भयङ्कर शरीर धारनेवाले ब्राह्मणों ने हे महादेवि ! भयानक शापको दिया कि जिससे ब्राह्मणोंको मांस बहुतही अभक्ष्य कहा गयाहै ॥ ५८ ॥ और तुमने अन्न से संयुत छिपेहुये मांस को हमलोगों को दिया है एक ओर

सब मांस हैं व एक ओर मछली का मांस होता है ॥ ५९ ॥ व एकओर सब पातक हैं व एक ओर पराई स्त्रियां हैं यद्यपि सबके दूषण को हमलोग ऐसा जानते हैं ॥ ६० ॥ तथापि बिन परीक्षा कियेहुये कार्य को करनेवाले हमलोग सब वंचित हुये हे पापबुद्धिवाले, क्रूर ! जिस लिये तुमने हमलोगों को मांसभक्षण से छल लिया इसलिये तुम बिन पीने योग्य होवोगे और पृथ्वी में द्विजेन्द्रों तथा अन्य ब्राह्मणों के स्पर्श करने योग्य न होवोगे ॥ ६१ । ६२ ॥ और जो कुबुद्धि लोग तुम्हारे जल से स्नान करेंगे वे भयङ्कर नरकको जावेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥ कृतघ्न जनोंको जो लोक होते हैं और पापकर्मियों को जो लोक होते हैं वे लोक

मांसानि मत्स्यमांसानिचैकतः ॥ ५९ ॥ एकतस्सर्वपापानिपरदारास्तथैकतः ॥ एवंवयंविजानन्तो यदिसर्वस्यदूषणम् ॥ ६० ॥ तथापिवञ्चितास्सर्वे अपरीक्षितकारिणः ॥ यस्मात्पापमतेक्रूरत्वयाचवञ्चितावयम् ॥ ६१ ॥ मांसस्यभक्षणात्तस्मादपेयस्त्वंभविष्यसि ॥ अस्पर्शत्वंद्विजेन्द्राणामन्येषांचनृणाम्भुवि ॥ ६२ ॥ तवोदकेनयेमर्त्याः करिष्यन्तिकुबुद्धयः ॥ स्नानंतेनरकंघोरं प्रयास्यन्तिनसंशयः ॥ ६३ ॥ कृतघ्नानांचयेलोका येलोकाःपापकर्मिणाम् ॥ तेतवोदकसंस्पर्शे लप्स्यन्तेमानवैर्भुवि ॥ ६४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवंशप्तःसमुद्रस्तैर्ब्राह्मणैर्वरवर्णिनि ॥ ततोवर्षसहस्रन्तु अस्पृश्यस्सबभूवह ॥ ६५ ॥ ततस्तुव्याकुलोभूत्वा सर्वांस्तानिदमब्रवीत् ॥ देवकार्यंमयाविप्राः पुराकृतमबुद्धिना ॥ ६६ ॥ बुभूषतापरन्धर्मं शरणागतसम्भवम् ॥ कामात्क्रोधाद्भयाल्लोभाद्यस्त्यजेच्छरणागतान् ॥ ६७ ॥ सशुद्धोपिहिविज्ञेयो महापातककारकः ॥ युष्मद्भीत्यासमायाताः स्वर्गिणश्शरणंमम ॥ ६८ ॥ तेमयारक्षितास्सम्यग्यथाशक्त्याह्युपाय

पृथ्वी में तुम्हारे जलके स्पर्श से मनुष्यों को मिलेंगे ॥ ६४ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि ! उन ब्राह्मणों ने इसप्रकार समुद्र को शाप दिया उसके उपरान्त वह समुद्र हजार वर्ष तक स्पर्श के योग्य नहीं हुआ ॥ ६५ ॥ तदनन्तर व्याकुल होकर समुद्रने उन सबोंसे यह कहा कि हे ब्राह्मणो ! पहले शरणागत से उपजेहुये उत्तम धर्म को होनेकी इच्छावाले मैं निर्बुद्धि ने देवताओं के कार्य को कियाहै क्योंकि काम, क्रोध, भय व लोभ से जो शरणागतों को त्यागता है ॥ ६६ । ६७ ॥ वह शुद्ध भी महापातकों का करनेवाला जाननेयोग्य है तुमलोगों के भयसे स्वर्गी (देवता) मेरे शरण में आये थे ॥ ६८ ॥ मैंने उपाय से यथाशक्ति उनकी रक्षा किया जिस

लिये मैं क्रोधसे शापित हुआहूं इस कारण मैं अपना को सुखालूंगा ॥ ६९ ॥ आप लोगोंसे बिन मनुष्योंके स्पर्श किया हुआ मैं स्थित होनेके लिये नहीं उत्साह करताहूं हे देवि ! ऐसा कहकर तदनन्तर नदियों के पति समुद्र ने ॥ ७० ॥ बड़े दुःखसे स्थित होकर अपना को सुखा लिया तदनन्तर बड़े भयसे संयुत सब देवगण स्थलके आकारवाले महासमुद्र को धीरे धीरे देखते रहे व लोकों के स्वामी देवदेव पितामहजी से जाकर कहा ॥ ७१ । ७२ ॥ कि हमलोगों के लिये द्विजोत्तम ब्राह्मणों से समुद्र शापित हुआ है और बड़े दुःख से संयुत वह अपना को सुखाता है ॥ ७३ ॥ समुद्र से जल को लेकर मेघ बरसते हैं उससे अन्न होताहै और अन्नसे यज्ञ होते

तः ॥ शोषयिष्येहमात्मानं यस्माच्छप्तःप्रकोपतः ॥ ६९ ॥ भवद्भिर्नोत्सहेस्थातुं जनस्पर्शविनाकृतः ॥ एवमुक्त्वाततो देवि समुद्रस्सरिताम्पतिः ॥ ७० ॥ आत्मानंशोषयामास दुःखेनमहतास्थितः ॥ ततोदेवगणास्सर्वे स्थलाकारंमहार्णवम् ॥ ७१ ॥ शनैश्शनैःप्रपश्यन्तो भयेनमहतान्विताः ॥ ऊचुर्गत्वातुलोकेशं देवदेवंपितामहम् ॥ ७२ ॥ अस्मत्कृते द्विजैश्शप्तः सागरोब्राह्मणोत्तमैः ॥ संशोषयतिचात्मानं दुःखेनमहतान्वितः ॥ ७३ ॥ समुद्राज्जलमादाय प्रवर्षन्तिबलाहकाः ॥ ततस्सञ्जायतेसस्यं सस्याद्यज्ञाभवन्तिच ॥ ७४ ॥ यज्ञैसंजायतेतृप्तिस्सर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ एवंतस्यविनाशेन नाशोस्माकंभविष्यति ॥ ७५ ॥ तंरक्षभगवन्ब्रह्मन्यथाशोषन्नगच्छति ॥ यथातुष्यन्तिविप्रास्ते तथानीतिर्विधीयताम् ॥ ७६ ॥ देवानांवचनाद्ब्रह्मा गत्वासागरसन्निधौ ॥ समुद्रार्थेययाचेतान् ब्राह्मणान्क्षेत्रवासिनः ॥ ७७ ॥ प्रसादःक्रियतामस्य सागरस्यद्विजोत्तमाः ॥ यथापवित्रतांयाति मद्वाक्यात्क्रियतान्तथा ॥ ७८ ॥ प्रदास्यतिसहस्राणि र

हैं ॥ ७४ ॥ व यज्ञों से सब देवताओं की तृप्ति होती है इसप्रकार उस समुद्र के नाश से हमलोगों का विनाश होगा ॥ ७५ ॥ हे भगवन्, ब्रह्मन् ! उसकी रक्षा कीजिये कि जिस प्रकार वह शोष को न प्राप्त होवै और जिस भांति वे ब्राह्मण प्रसन्न होवैं वैसीही नीति कीजावै ॥ ७६ ॥ देवताओं के वचन से ब्रह्मा ने समुद्र के समीप जाकर समुद्रके लिये उन तीर्थवासी ब्राह्मणों से याचना किया ॥ ७७ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! इस समुद्र के ऊपर प्रसन्नता कीजावै जिस प्रकार यह पवित्रता को प्राप्त

होवै मेरे वचन से वैसाही किया जावै ॥ ७८ ॥ यह अनेक भांति के हज़ारों रत्नोंको देवैगा और इसी कारण तुमलोग पृथ्वी में मेरे वचन से नाम से अत्यन्तही भूमि-देव होवोगे यह मैंने सत्य कहा है ब्राह्मण बोले कि हे जगत्पते ! तुम्हारे वचनको अन्यथा नहीं करना चाहताहूं ॥ ७९ । ८० ॥ और अमत्यात्मा के वचन का प्रमाण नहीं होताहै और आप यहां प्राप्त हुयेहो हे सुरश्रेष्ठ ! वचन हित होवै या अहित होवै ॥ ८१ ॥ जिस प्रकार लोकों का व सब देवताओं का कल्याण होवै हे जगदीश जी ! वैसाही हमलोगों के हितका कारण कीजिये ॥ ८२ ॥ इसके उपरान्त लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने नदीनाथ (समुद्र) से कहा कि अपनाको मत सुखाइये

त्नानिविविधानिच ॥ यूयंभविष्यथात्यन्तं भूमिदेवाइतिक्षितौ ॥ ७९ ॥ नाम्नामद्वचनान्नूनं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ नान्यथाकर्तुमिच्छामि तववाक्यंजगत्पते ॥ ८० ॥ नचमिथ्यात्मनोवाक्यं प्रमाणंचात्रवैभवान् ॥ प्राप्तोवाक्यंसुरश्रेष्ठ हितंवायदिवाहितम् ॥ ८१ ॥ यथास्याज्जगतांश्रेयस्सर्वेषाञ्चदिवौकसाम् ॥ तथाकुरुजगन्नाथ अस्माकंहितकारणम् ॥ ८२ ॥ अथोवाचनदीनाथं ब्रह्मालोकपितामहः ॥ माशोषयतचात्मानं हितंवाक्यंशृणुष्वमे ॥ ८३ ॥ नान्यथाशक्यतेकर्तुं द्विजानांवचनंहितत् ॥ यस्मादेवंतवस्पर्शस्त्रिधामेध्योभविष्यति ॥ ८४ ॥ पर्वकालेचसम्प्राप्ते नदीनाञ्चसमागमे ॥ सेतुबन्धेतथासिन्धौ तीर्थेष्वन्येषुसंयुतः ॥ ८५ ॥ इत्येवमादिसर्वेषु मेध्येन्यत्रतुपर्वणि ॥ यत्फलंसर्वतीर्थेषु सर्वदानस्ययत्फलम् ॥ ८६ ॥ तत्फलंतवतोयस्य स्पर्शादेवभविष्यति ॥ गयाश्राद्धेषुयत्पुण्यं गोगृहेमरणेनच ॥ तत्फलंतवतोयस्य स्पर्शादेवभविष्यति ॥ ८७ ॥ अपेयस्त्वंतथाभाविस्वादुमात्रेणकेवलम् ॥ गण्डूषमपि

मेरे हित वचन को सुनिये ॥ ८३ ॥ कि जिसलिये देवताओं का वह वचन अन्यथा नहीं किया जासक्ता है इसलिये तुम्हारा स्पर्श तीन प्रकार से पवित्र होगा ॥ ८४ ॥ कि पर्वकाल प्राप्त होनेपर व नदियों के सङ्गम में और समुद्र में सेतुबन्ध स्थान में व अन्य तीर्थों में संयुत ॥ ८५ ॥ इत्यादिक सब स्थानों में तुम पवित्र होगे और अन्यत्र पर्व में पवित्र होवोगे सब तीर्थों में जो फल होता है व सब दानोंका जो फल है ॥ ८६ ॥ वह फल तुम्हारे जल के स्पर्शही से होगा और गयाश्राद्धो में व गऊके गृह में मरने से जो पुण्य मिलता है वह फल तुम्हारे जल के स्पर्श से होगा ॥ ८७ ॥ और केवल स्वादुमात्र से तुम अपेय होवोगे व जलका कुल्ला भरभी

पिया हुआ मनुष्यों के अमङ्गलका नाशक व सब सुखों को बढ़ानेवाला होगा और जो मनुष्य पूर्वोक्त विधि से तुम्हारे जलसे पितरों का तर्पण करैगा उसके पुण्यके फल को सुनिये कि संसार में जबतक तुम स्थित रहोगे व जब तक चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्र रहैंगे ॥ ८८।८९।९० ॥ तबतक पूर्वज पितरलोग क्षीरसागर के अमृत से तृप्त होकर स्थित रहैंगे व शुद्धचित्तवाला जो पुरुष सदैव प्रतिमास में नहावैगा ॥ ९१ ॥ उसको प्रतिदिन पौण्डरीक यज्ञका फल होवैगा यात्रा में अथवा अन्यत्र पर्वसमय में या चन्द्रमा के ग्रहणमें ॥ ९२ ॥ जो पुरुष खारी जलवाले इस समुद्रमें भलीभांति नहावैगा वह मनुष्य हज़ार अश्वमेध यज्ञों के फलको पावैगा ॥ ९३ ॥ और श्री-

पीतञ्च तोयस्याशुभनाशनम् ॥ ८८ ॥ भविष्यतिनृणांलोके सर्वसौख्यविवर्द्धनम् ॥ पितॄणांतवतोयेन यःकरिष्यति तर्पणम् ॥ ८९ ॥ पूर्वोक्तेनविधानेन तस्यपुण्यफलंशृणु ॥ यावत्त्वन्तिष्ठसेलोके यावच्चन्द्रार्कतारकाः ॥ ९० ॥ क्षीरोदकामृतैस्तृप्तास्तावत्स्थास्यन्तिपूर्वजाः ॥ मासेमासेचयस्स्नायान्नैरन्तर्येणभावितः ॥ ९१ ॥ पौण्डरीकफलंतस्य दिवसेदिवसेभवेत् ॥ यात्रायामथवान्यत्र पर्वकालेशशिग्रहे ॥ ९२ ॥ अत्रस्नास्यतियस्सम्यक् सागरेलवणाम्भसि ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्स्यतिमानवः ॥ ९३ ॥ श्रीसोमेशसमुद्रस्याप्यन्तरंयेमृतानराः ॥ पापिनोपिगमिष्यन्ति स्वर्गंनिर्धूतकल्मषाः ॥ ९४ ॥ एवंभविष्यतिसदा तवमद्वचनाद्विभो ॥ प्रयच्छस्वद्विजेन्द्राणां रत्नानिविविधानिच ॥ ९५ ॥ तेन तेतुवरम्भूयः प्रदास्यन्तितवेप्सितम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ पितामहवचःश्रुत्वा बाढमित्येवसागरः ॥ ९६ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्सरत्नानि ददौश्रद्धासमन्वितः ॥ ब्राह्मणाब्रह्मणोवाक्यं निश्शेषंसमनुष्ठितम् ॥ ९७ ॥ क्षुरकर्मतथाकृत्वा स्नानंस

सोमेश व समुद्र के मध्यमें जो मनुष्य मरैंगे पापी भी वे मनुष्य पापरहित होकर स्वर्गको जावैंगे ॥ ९४ ॥ हे विभो ! मेरे वचन से तुम्हारा सदैव ऐसाही होगा और द्विजेन्द्रों को अनेक भांति के रत्नों को दीजिये ॥ ९५ ॥ उससे वे फिर तुम को प्रियवर को देवैंगे महादेवजी बोले कि ब्रह्माजी के वचन को सुनकर बहुत अच्छा ऐसा कहकर उस समुद्र ने श्रद्धासंयुत होकर ब्राह्मणों के लिये रत्नों को दिया और ब्राह्मणों ने ब्रह्मा के सब वचन को किया ॥ ९६ । ९७ ॥ और क्षौरकर्म करके सबों ने

स्नान किया इसप्रकार लवणसमुद्र तीर्थताको प्राप्त हुआहै ॥ ९८ ॥ हे महादेवि ! उसके मध्यमें पांच करोड़ लिङ्ग हैं हे देवि ! वे इस मन्वन्तर में समुद्रों से अदृश्य कियेगये हैं ॥ ९९ ॥ वहीं पर अग्निकुण्ड है व अन्यपद्मतड़ाग है हे प्रिये ! इस मन्वन्तर बिषे सब मध्य में घिरा है ॥ १०० ॥ हे देवि ! दक्षिणओर चक्र व मैनाक के मध्यमें सौ धनुष चौड़े स्थान में सुवर्णमय कुण्ड है ॥ १ ॥ और वहां पर कुण्ड के मध्य में जहां वाडवाग्नि मुख्य है श्रीसोमेशजी के दक्षिणओर सौधनुष के अन्तर तक ॥ २ ॥ व उत्तर मानसपर्वत के पूर्वओर कृतस्मरदेव पर्यन्त हे वरारोहे ! यह गुप्त स्थान जिस किसी को न देना चाहिये ॥ ३ ॥ इस चरित्र को सुनकर ब्रह्मघाती

वैतुचक्रिरे ॥ एवंपवित्रतांप्राप्तस्तीर्थत्वंलवणोदधिः ॥ ९८ ॥ तस्यमध्येमहादेवि लिङ्गानांपञ्चकोटयः ॥ अस्मिन्मन्वन्तरेदेवि अदृश्यास्सागरैःकृताः ॥ ९९ ॥ अग्निकुण्डंचतत्रैव तथान्यत्पद्मकंसरः ॥ मध्येतुप्रावृतंसर्वमस्मिन्मन्वन्तरेप्रिये ॥ १०० ॥ चक्रमैनाकयोर्मध्ये देविदक्षिणतस्तथा ॥ शतकुम्भमयंकुण्डं धनुषांशतविस्तृते ॥ १ ॥ तत्रकुण्डस्यमध्येच वाडवंयत्रवैमुखम् ॥ श्रीसोमेशाद्दक्षिणतो धन्वन्तरशतावधि ॥ २ ॥ उत्तरान्मानसात्पूर्वं यावद्देवंकृतस्मरम् ॥ एतद्गोप्यंवरारोहे नदेयंयस्यकस्यचित् ॥ ३ ॥ ब्रह्मघ्नोपिविशुध्येत श्रुत्वैतन्नात्रसंशयः ॥ एवंशापोवरोदत्तस्सागरस्ययथाद्विजैः ॥ पूर्वंरुष्टैस्ततस्तुष्टैस्तत्सर्वंकथितंमया ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसमुद्रस्यापेयकरणंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ स्नात्वातत्राग्नितीर्थेतु कदम्बंपूर्वमर्चयेत् ॥ ॥ निर्विघ्नाजायतेयेन यात्रानॄणांसुरेश्वर ॥ १ ॥ तन्मे

भी पुरुष पवित्र होजाता है इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार पहले क्रोधित व फिर प्रसन्न ब्राह्मणों ने जिस भांति समुद्र को शाप व वरदान दिया है उस सब चरित्र को मैंने तुम से कहा ॥ १०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांसमुद्रस्यापेयकरणंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ✱ ॥

दो० ॥ अग्नितीर्थ में न्हायकरि जेहि विधि पूजै देव । अट्ठाइस अध्यायमें कथित चरित सुखसेव ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे सुरेश्वरि ! उस अग्नितीर्थ में नहा

कर किस देवता को पहले पूजै कि जिससे मनुष्यों की यात्रा निर्विघ्न होजाती है॥ १ ॥ उस यात्राकी विधि को आप यथायोग्य कहने के योग्यहो महादेवजी बोले कि इसप्रकार विधि से नहाकर व समुद्र में अर्घ देकर ॥ २ ॥ और चन्दन, पुष्प, वस्त्र व पवित्र अनुलेपनों से भलीभांति पूजकर उसमें यथाशक्ति सुवर्णमय कङ्कण को डालै ॥ ३ ॥ तदनन्तर पितरों को तर्पणकर कपर्दीदेव के समीप जावै और भक्ति से पुष्प, धूप, चन्दन व वस्त्रों से भलीभांति पूजकर ॥ ४ ॥ गणानांत्वा इस मन्त्रसे उसके लिये अर्घको देवै व हे देवेशि ! शूद्रों को अष्टाक्षरमन्त्र कहागयाहै ॥ ५ ॥ तदनन्तर पापहारक व श्रेष्ठ सोमेश्वरदेवजी के यहां जावै और विधि से नहवाकर

यात्राविधानन्तु यथावद्वक्तुमर्हति ॥ईश्वरउवाच॥ एवंस्नात्वाविधानेन दत्त्वार्घञ्चमहोदधौ॥२॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पैश्च वस्त्रैःपुण्यानुलेपनैः॥ हिरण्मयंयथाशक्त्या प्रक्षिपेत्तत्रकङ्कणम् ॥ ३ ॥ ततःपितॄंस्तर्पयित्वा गच्छेद्देवंकपर्दिनम् ॥ पुष्पै धूपैस्तथागन्धैर्वस्त्रैस्सम्पूज्यभक्तितः ॥ ४ ॥ गणानान्त्वेतिमन्त्रेण अर्घंतस्मैनिवेदयेत् ॥ शूद्राणामथदेवेशि मन्त्र श्चाष्टाक्षरःस्मृतः ॥ ५ ॥ ततःसोमेश्वरंगच्छेद्देवंपापहरम्परम् ॥ स्नापयित्वाविधानेन जपेच्चशतरुद्रियम् ॥ ६ ॥ तथा रुद्रस्यपञ्चाङ्गांस्तथान्यारुद्रसंहिताः ॥ स्नापयेत्पयसाचैव दध्नाघृतयुतेनच ॥ ७ ॥ मधुनेक्षुरसेनैव कुङ्कुमेनविलेपये त् ॥ कर्पूरोशीरमिश्रेण मृगनाभियुतेनच ॥८॥ चन्दनेनसुगन्धेन पुष्पैःसम्पूजयेत्ततः ॥ धूपैर्बहुविधैर्देवं धूपयित्वायथा विधि ॥ ९ ॥ वस्त्रैस्संवेष्टयेत्पश्चाद्दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥ आरातिंकंततःकृत्वा स्तुतिंकुर्याद्यथेच्छया॥ १० ॥ अष्टाङ्गप्रणि पत्यैवं गीतवाद्यादिकन्ततः ॥ धर्मश्रवणसंयुक्तं कुर्यात्प्रादक्षिणंविभो ॥ ११ ॥ ततोदद्याद्द्विजातिभ्यस्तपस्विभ्यश्चश

शतरुद्री को जपै ॥ ६ ॥ और वैसेही शिवजी के पञ्चाङ्गों को व अन्य रुद्रसंहिताओं को जपै और दूध व घृत संयुत दही से नहवावै ॥ ७ ॥ और शहद व ऊंख के रससे नहवावै व कपूर तथा खस मिलेहुये और कस्तूरीसंयुत कुंकुमसे लेपन करै ॥ ८ ॥ तदनन्तर सुगन्धित चन्दन व पुष्पों से पूजनकरै और अनेक प्रकारके धूपोंसे विधिपूर्वक शिवदेवजी को धुपाकर ॥ ९ ॥ वसनों से वेष्टित करै पश्चात उत्तम नैवेद्यको देवै तदनन्तर आरती करके नित्य इच्छा के अनुकूल स्तुति करै ॥ १० ॥ उस के उपरान्त अष्टाङ्ग प्रणामकर गीतवाद्यादिक करै व धर्म श्रवण संयुक्त व्यापक शिवजी की प्रदक्षिणा करै ॥ ११ ॥ तदनन्तर शक्तिसे ब्राह्मणों के लिये व तपस्वियों

के लिये तथा और दीन, अन्ध, कृपण व गुदड़ीवाले भिक्षुकों के लिये दान देवै ॥ १२ ॥ और चौरकर्म वर्तमान होनेपर बैल देना चाहिये तदनन्तर हे भामिनि ! उस दिन उपास करै ॥ १३ ॥ जिस दिन मनुष्य सोमेश्वर देवजी को देखै वह तिथि भक्ति में तत्पर मनुष्यों को एक वर्ष तक उपास करनेयोग्यहै ॥ १४ ॥ ऐसा भक्ति से करके मनुष्य जन्म के फलको पाताहै व हे भामिनि ! पिताके वर्गको व माताके वर्गको उधारता है ॥ १५ ॥ शिशुतावस्थामें जो पाप करताहै और वृद्धता व युवावस्था में मनुष्य जिस पापको करता है सोमेश्वरजी को देखकर मनुष्य उस सब पापको नाश करताहै ॥ १६ ॥ और सोमेश्वर विभुजी के देखने पर सात जन्मोंतक मनुष्य

क्तितः ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च दानंकार्पटिकेषुच ॥ १२ ॥ वृषभश्चप्रदातव्यः प्रवृत्तेक्षुरकर्मणि ॥ उपवासंततःकुर्या त्तस्मिन्नहनिभामिनि ॥ १३ ॥ यस्मिन्नहनिपश्येत देवंसोमेश्वरन्नरः ॥ सातिथिर्वर्षमेकञ्च उपोष्याभक्तितत्परैः ॥ १४ ॥ एवंकृत्वानरोभक्त्या लभतेजन्मनःफलम् ॥ उद्धरेत्पितृवर्गञ्च मातृवर्गञ्चभामिनि ॥ १५ ॥ बाल्येवयसियत्पापं वार्धकेयौवनेपिवा ॥ क्षालयेच्चैवतत्सर्वं दृष्ट्वासोमेश्वरन्नरः ॥ १६ ॥ नदुःखितोनदारिद्रो दुर्भगोवानजायते ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव दृष्टेसोमेश्वरेविभौ ॥ १७ ॥ धनधान्यसमायुक्तः कीर्त्तिस्सञ्जायतेकुले ॥ भक्तिर्भवतिभूयोपि सोमनाथंप्रतिप्रिये ॥ १८ ॥ क्षीरेणस्नापयेत्पूर्वं ततोजलसमुद्भवम् ॥ प्रथमंप्रथमेयामे महास्नानमतःपरम् ॥ १९ ॥ मध्याह्नेदेवदेवस्य येप्रपश्यन्तिमानवाः ॥ सान्ध्यमारात्तिकंभूयो नतेजायन्तिमानवाः ॥ २० ॥ गत्वाकलियुगंरुद्रं बहुपापंवरानने ॥ नान्येनतरतेदुर्गां कर्मणादुर्गतिन्नरः ॥ २१ ॥ इति श्रीसोमेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

न दुःखित होताहै न दरिद्री होताहै और न दुर्भग होताहै ॥ १७ ॥ और धन धान्यसे संयुत होताहै व वंशमें उसका यश होताहै व हे प्रिये ! फिरभी सोमनाथजी के ऊपर भक्ति होती है ॥ १८ ॥ पहले दूधसे स्नान करावै उसके उपरान्त जलसे उपजाहुआ स्नान करावै पहले पहरमें पहला स्नान करावै इसके उपरान्त महास्नान करावै ॥ १९ ॥ मध्याह्नसमयमें व सन्ध्यामें जो मनुष्य देवदेव शिवजीकी आरती को देखतेहैं वे पुरुष फिर उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ २० ॥ हे वरानने ! बहुत पापवाले भयङ्कर कलियुगको प्राप्त होकर अन्यकर्म से कठिन दुर्गतिको मनुष्य नहीं नाँघताहै ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेस्कन्दप्रोक्तसंहितायांसोमेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

दो॰। जिमि दधीचि के आश्रमहिं इन्द्रअस्त्र धरिदीन। उन्तिसवें अध्याय में सोई चरित नवीन॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे शङ्करजी ! जो तुमने मुझसे पांच सकारोंको कहाहै वे किस किससे युक्तहैं यह मुझको बड़ी भारी सन्देहहै॥ १॥ और यहां पर किसप्रकार व कहां से सरस्वती नदी आई है, व किस प्रकार वह वडवानल पैदा हुआ है व किस समय में कैसे हुआ है ॥ २ ॥ उस सब चरित्र को तुम यथायोग्य विस्तारसे कहने के योग्यहो महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये जिसप्रकार उस क्षेत्रमें सरस्वती नदी उत्पन्न हुई है ॥ ३ ॥ और जहां पर सब पापों को नाशनेवाली सरस्वती उत्पन्न हुई है हरिणी, ब्राह्मिणी, न्यङ्कु, कपिला व सरस्वती ॥ ४ ॥ हे

देव्युवाच ॥ सकारपञ्चकंप्रोक्तं यत्त्वयाममशङ्कर ॥ केनकेनसमायुक्तमेतन्मेसंशयंमहत् ॥ १ ॥ कथंवात्रसमायाता कुतश्चापिसरस्वती ॥ कथंसवाडवोजातः कस्मिन्कालेकथंह्यभूत् ॥ २ ॥ तत्सर्वंविस्तरेणैव यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेवियथाजाता तस्मिन्क्षेत्रेसरस्वती ॥ ३ ॥ यत्रचैवसमुद्भूता सर्वपापप्रणाशिनी ॥ हरिणीब्राह्मिणीन्यङ्कुः कपिलाचसरस्वती ॥ ४ ॥ प्रभासेतुमहादेवि पञ्चस्रोतासरस्वती ॥ ऋषिभिःपञ्चभिश्चात्र समाहूतायथापुरा ॥ ५ ॥ वाडवेनाग्निनायुक्ता यथायाताशृणुष्वतत् ॥ पुरादेवासुरेयुद्धे निवृत्तेसोमकारणात् ॥ ६ ॥ पितामहस्यवचनात्तारांचन्द्रस्समर्पयत् ॥ ततोयातास्सुराःस्वर्गं पश्यन्तोधोमुखामहीम् ॥ ७ ॥ ददृशुस्तेततोदेवा भूम्यांस्वर्गमिवापरम् ॥ आश्रमंमुनिमुख्यस्य दधीचेर्लोकविश्रुतम् ॥ ८ ॥ सर्वत्रकुसुमोपेतं पादपैरुपशोभितम् ॥ केतकीकुटजोद्भूतबकुलामोदमोदितम् ॥ ९ ॥ एवंविधंसमासाद्य तदाश्रमपदंगुरुम् ॥ कौतुकाद्द्रष्टुमारब्धास्सर्वेदेवामनोरमम् ॥ १० ॥

महादेवि ! प्रभासक्षेत्र में पाच सोतोंवाली सरस्वती है व जिसप्रकार पहले पांच ऋषियों से यहां बुलाई गई है ॥ ५ ॥ व जिसप्रकार वाडवाग्नि से युक्त हुई है उसको सुनिये कि पुरातन समय चन्द्रमाके कारण देवासुरसंग्राम निवृत्त होनेपर ॥ ६ ॥ ब्रह्मा के वचन से चन्द्रमा ने तारा को समर्पण करदिया तदनन्तर नीचे मुख किये सब देवता पृथ्वी को देखतेहुये स्वर्ग को चलेगये ॥ ७ ॥ उसके उपरान्त उन्हों ने पृथ्वी में दूसरे स्वर्गकी नाई मुनियों में मुख्य दधीचिजी के संसारमें प्रसिद्ध आश्रम को देखा ॥ ८ ॥ जो कि सब कहीं पुष्पों से सयुत व वृक्षों से शोभित था व केतकी और कुरैया से उत्पन्न व मौलसिरी की सुगन्धसे सुगन्धित था ॥ ९ ॥ इस प्रकार

के उस मनोहर व बड़ेभारी आश्रम स्थान को प्राप्त होकर सब देवता कौतुक से देखने लगे ॥ १० ॥ व उस तीर्थाश्रम में विमानों को छोड़कर वे देवता मिलकर सामान्य पुरुषों की नाईं उन ऋषि को देखने के लिये प्रवृत्त हुये ॥ ११ ॥ सब देवताओं ने दूसरे ब्रह्मा की नाईं उन दधीचिको देखा तदनन्तर वे सब देवता पाद्य व अर्घादिकों से पूजित हुये ॥ १२ ॥ और इन्द्र समेत सब देवता यथोक्त आसन पै बैठे व उनके मध्य में इन्द्रजी ने उठकर व आगे अस्त्रों को छोड़कर दधीचि मुनि से यह कहा कि इनको आप ग्रहण कीजिये उस वचन को सुनकर दधीचि मुनि ने इन्द्रजी से कहा ॥ १३ । १४ ॥ कि मेरे समीप अस्त्रोंको छोड़कर तुमलोग स्वर्ग

तेचतीर्थाश्रमेतस्मिन् यानान्युत्सृज्यसंयुताः ॥ प्रवृत्तास्तमृषिंद्रष्टुं प्राकृताःपुरुषायथा ॥ ११ ॥ दृष्टवन्तस्सुरास्सर्वेपितामहमिवापरम् ॥ ततस्तेऋषिणासर्वेपाद्यार्घादिभिरर्चिताः ॥ १२ ॥ यथोक्तमासनंभेजुस्सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ तेषांमध्येसमुत्थायशक्रःप्रोवाचतम्मुनिम् ॥ १३ ॥ आयुधानिविमुच्याग्रे भवान्गृह्णातिविमानिति ॥ तन्निशम्यमुनिःप्राह दधीचिःपाकशासनम् ॥ १४ ॥ मुक्त्वास्त्राणिममाभ्याशे यूयंयातत्रिविष्टपम् ॥ तंशक्रःप्राहचैतानि कार्यकालेह्युपस्थिते ॥ १५ ॥ देयानितेपुनस्तैश्च शत्रुभिर्यदिनोरणः ॥ १६ ॥ पुनःपुनस्ततःशक्र उवाचमुनिसत्तमम् ॥ अस्माकमेवदेयानि नचान्यस्यत्वयामुने ॥ १७ ॥ बाढमित्युदितेशक्रमुक्तवान्मुनिसत्तमः ॥ दास्यामितेसमस्तानि युद्धकालेविशेषतः ॥ १८ ॥ नास्यमिथ्याभवेद्वाक्यमितिमत्वाशचीपतिः ॥ मुक्त्वास्त्राणितदभ्याशे पुनस्स्वर्गंगतस्त

को जावो उन दधीचि मुनि से इन्द्र ने कहा कि कार्य का समय प्राप्त होनेपर इन अस्त्रों को ॥ १५ ॥ फिर तुम्हें देना चाहिये यदि उन शत्रुओं से हमारा युद्ध होवै ॥ १६ ॥ तदनन्तर बार बार मुनिश्रेष्ठ दधीचिजी से इन्द्रने कहा कि हे मुने ! हम लोगों को अस्त्र देना अन्य को न देना ॥ १७ ॥ बहुत अच्छा ऐसा कहने पर मुनिश्रेष्ठ दधीचिजी ने इन्द्र से कहा कि तुमको युद्धके समय में विशेषकर सब अस्त्रों को दूंगा ॥ १८ ॥ इनका वचन मिथ्या नहीं होगा यह मानकर इन्द्रजी उस समय उन

के समीप अस्त्रों को छोड़कर फिर स्वर्ग को चलेगये ॥ १६ ॥ पृथ्वी में शुद्ध चित्तवाला व यत्नवान् जो राजा पवित्र होकर अस्त्रों के अर्पणरूप चरित्र को सुनता है वह युद्धमें उत्तम विजयको पाताहै व धर्म, अर्थ व यशके नामको पाताहै ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे वडवानलोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दो० । वड़वानल पैदा कियो पिप्पलाद मुनिनाथ । कह्यो तीसवें में सोई अतिहिसुहावन गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! तदनन्तर उन देवताओंके चले जाने पर वहीं टिकेहुये इन द्विज दधीचिमुनिने उस आश्रमसे उत्तरओर दिव्य उत्तरदिशामें सौवर्षतक स्थित होकर तप किया और बहुत ऐश्वर्यवाली सुभद्रा जो उन दधीचि

दा ॥ १६ ॥ अस्त्रार्पणंयःप्रयतःप्रयत्नवाञ्छृणोतिराजाभुविभावितात्मा ॥ सोभ्येतियुद्धेविजयंपरंहि लभेच्चधर्मार्थयशोभिधानम् ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे वडवानलोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तनस्तेषुप्रयातेषु देवदेवेष्वसौमुनिः ॥ शतवर्षाणितत्रस्थस्तपस्तेपेस्थितोद्विजः ॥ १ ॥ आश्रमादुत्तरात्तस्माद्दिव्यांदिशमथोत्तराम् ॥ सुभद्रापिमहाभागा तस्ययापरिचारिका ॥ २ ॥ अस्त्राण्यादानसामर्थ्याद्दृषिंप्रोवाचभामिनि॥ नाहंनेतुंसमर्थास्मि शस्त्राण्यालभ्यपाणिना ॥ ३ ॥ जलेनसहतद्वीर्यं पीतवानृषिसत्तमः ॥ आत्मसंस्थानिसर्वाणि दिव्यान्यस्त्राण्यसौमुनिः ॥ ४ ॥ कारयित्वोत्तरामाशां जगामतपसान्निधिः ॥ गङ्गाधरंशुक्लतनुं सर्पैराकीर्णविग्रहम् ॥ ५ ॥ शिववत्सुखदंपुंसामपश्यत्सहिमाचलम् ॥ तत्राश्रमंददर्शासावश्वत्थैःपरिपालितम् ॥ ६ ॥ चन्द्रभागोपकण्ठस्थं समित्कुशसमन्वितम् ॥ सतस्मिन्मुनिशार्दूलो ह्यवसन्मुनिभिस्सह ॥ ७ ॥ सुभद्रयाचसंयुक्तश्च

मुनिकी दासी थी ॥ १ । २ ॥ हे भामिनि ! वह अस्त्रों के ग्रहण करनेकी असामर्थ्यसे ऋषिसे बोली कि मैं हाथ से शस्त्रों को छूकर लेजाने के लिये समर्थ नहीं हूं ॥ ३ ॥ ऋषिश्रेष्ठ दधीचिजी ने जल समेत उन अस्त्रों के प्रभाव को पीलिया और तपोनिधि ये दधीचि मुनि सब अस्त्रों को अपना में स्थित कराकर उत्तरदिशा को चले गये और गङ्गाजी को धारण किये व श्वेत शरीरवाले तथा सर्पों से व्याप्त देहवाले ॥ ४ । ५ ॥ व पुरुषों को शिवजी के समान सुखदायक हिमाचल को उन्होंने देखा व इन दधीचि मुनि ने पीपलों से परिपालित आश्रम को वहां देखा ॥ ६ ॥ जो कि चन्द्रभागा नदी के किनारे समीप स्थित था व समिधाओं और कुशों से युक्त था

उस आश्रम में मुनियों समेत इन मुनिश्रेष्ठ दधीचि मुनि ने निवास किया ॥ ७ ॥ और सुभद्रा स्त्री से संयुत थे जैसे कि चन्द्रमा उजियाली से संयुत होवै एक समय निवास करतेहुये उन मुनिकी सुभद्रा दासी ॥८॥ स्नान करनेके लिये चली जो कि चौथे दिन में रजस्वला थी तदनन्तर जातीहुई इसने कौपीनरूप आच्छादन को देखा ॥ ९ ॥ व त्यागे हुये उस वसन को जानकर उसने दैवयोगसे ग्रहण किया फिर वीर्यसे संयुत कौपीन को पहनकर ॥ १० ॥ एकान्तमें सुखपूर्वक जलके समीप नहाने का प्रारम्भकर व हे देवि ! इच्छा के अनुकूल नहाकर व अचानकही अपने पेट में स्थित व उपजेहुये गर्भ को देखकर प्रसन्नहुई और गर्भके भारसे आलस्य

न्द्रश्चन्द्रिकयायथा ॥ एकदावसतस्तस्य सुभद्रापरिचारिका ॥ ८ ॥ स्नानार्थंयातुमारब्धा चतुर्थेह्निरजस्वला ॥ व्रजन्त्याचानयादृष्टं कौपीनाच्छादनंततः ॥९॥ परित्यक्तंविदित्वैवदैवयोगादूगृहाणसा ॥ परिधायपुनस्सातु कौपीनंरेतसायुतम् ॥ १० ॥ एकान्तेस्नातुमारभ्य जलाभ्याशेयथासुखम् ॥ स्नात्वादेवियथाकाममकस्माद्वीक्ष्यहर्षिता ॥ ११ ॥ सोदरस्थंसमुत्पन्नं गर्भंगर्भभरालसा ॥ शोचयित्वात्मनात्मानं सगर्भाहमिहागता ॥ १२ ॥ तत्केनमन्दभागिन्याममैवं दूषणंकृतम् ॥ लज्जाभिभूतासातत्र प्रविश्याश्वत्थवाटिकाम् ॥ १३ ॥ तत्रतंसुषुवेगर्भमविज्ञायकुतोप्ययम् ॥ पुनरेवहिसास्नात्वा अविज्ञायात्मदुष्कृतम् ॥ १४ ॥ शापंदातुंसमारब्धं गर्भकर्तुस्सुदुस्सहम् ॥ ज्ञानाद्वायदिवाज्ञानाद्येनेदंदूषणंकृतम् ॥ १५ ॥ सोद्यैवपञ्चतांयातु यद्यहन्तुपतिव्रता ॥ यद्यहंमनसावाचा कामयेनापरम्पतिम् ॥ १६ ॥ सतेनममवाक्येन यातुजारःस्वयंक्षयम् ॥ एवंशप्त्वातुतन्देविनज्ञातंगर्भकारणम् ॥ १७ ॥ पुनर्यातुंसमारब्धा दधीचेस्तु

संयुत वह चित्तसे अपना को शोचकर कि गर्भ समेत मैं यहां प्राप्तहुई ॥ ११।१२॥ तो किसने मुझ मन्दभागिनी का ऐसा दूषण किया लज्जा से तिरस्कृत वह वहींपर पीपलकी वाटिका में पैठकर ॥ १३ ॥ उस गर्भ को न जानकर कि यह किससे हुआहै वहींपर उत्पन्न किया व अपने दुष्कृत को न जानकर उसने फिर नहाकर ॥ १४ ॥ गर्भकर्ता को दुस्सह शाप देनेके लिये प्रारम्भ किया कि ज्ञानसे या अज्ञान से जिसने यह दूषण किया है ॥ १५ ॥ वह आजही मृत्यु को प्राप्त होवै यदि मैं पतिव्रताहूं व यदि मैं मन, वचनसे दूसरे पति को नहीं चाहतीहूं ॥ १६ ॥ तो उस मेरे वचन से वह जार आपही नाश को प्राप्त होवै हे देवि ! इस प्रकार शाप को

देकर उस गर्भ के कारण को नहीं जाना ॥ १७ ॥ फिर उन दधीचिजी के स्थान को जानेलगी और वहां पर सूर्यनारायणके समान गर्भ को त्यागकर उस समय ॥ १८ ॥ सुन्दर तपोवन में प्राप्तहुई जहां कि ये मुनिश्रेष्ठ थे इसी अवसर में सब देवता व महाबलवान् लोकपाल ॥ १९ ॥ अस्त्रों के कारण मुनिजीके आश्रम में प्राप्त हुये और उन मुनि से इन्द्रजी बोले कि हे सुव्रत ! तुम्हारे यहां न्यास (धरोहर) के लिये ॥ २० ॥ हमने अस्त्रों को दिया था उनको हमलोगों को शीघ्रही दीजिये ऋषि ने कहा कि पहले जहां पर मेरे आश्रम में जिन अस्त्रों को स्थापित किया था ॥ २१ ॥ हे इन्द्रजी ! वे वहींपर स्थित हैं लाये नहीं गये हैं हे शत्रुसूदन ! समर में

निकेतनम् ॥ तत्रचार्कप्रतीकाशं गर्भमुत्सृज्यसातदा ॥ १८ ॥ प्राप्तातपोवनंरम्यं यत्रासौमुनिपुङ्गवः ॥ अत्रान्तरेसर्वदेवाल्लोकपालामहाबलाः ॥ १९ ॥ अस्त्राणांकारणार्थाय मुनेराश्रममाश्रिताः ॥ उवाचतंमुनिंशक्रो न्यासायतवसुव्रत॥ २० ॥ दत्तान्यस्माभिरस्त्राणि तानिक्षिप्रंप्रयच्छनः ॥ ऋषिराहपुरायत्रस्थापितानिममाश्रमे ॥ २१ ॥ तत्रैवतानितिष्ठन्ति नचानीतानिवासव ॥ यत्तुतेषांबलंवीर्यं संग्रामेशत्रुसूदन ॥ २२ ॥ तन्मयापीतमखिलं सहतोयेनवासव ॥ एवंस्थितेयथास्त्राणि मयादेयानितेऽनघ ॥ २३ ॥ तथातानिप्रयच्छामि तदाकाराणिसुव्रत ॥ एवमुक्तस्सहस्राक्षस्तमाहमुनिसत्तम ॥ २४ ॥ तथैवतद्बलंरौद्रं सत्त्वंतेषुव्यवस्थितम् ॥ यस्मात्तेषुविनिक्षिप्य सहस्रांशुस्वतेजसा ॥ २५ ॥ अस्माकंदत्तवान्रुद्रो रक्षार्थंजगतांशिवः ॥ तद्वयंतानिसर्वाणि गृहीत्वासंव्यवस्थिताः ॥ २६ ॥ लोकस्यरक्षणार्थाय संज्ञेयंतेनलोकपाः ॥ अमीषामपिशस्त्राणामुत्तमंवज्रमिष्यते ॥ २७ ॥ तद्धारणाद्यतोस्माकं देवराजत्वमिष्यते ॥ वज्रा

जो उनका बल, वीर्यथा ॥ २२ ॥ हे इन्द्रजी ! जलके साथ उस सबको मैंने पीलिया हे अनघ ! ऐसा स्थित होनेपर मुझको जिसप्रकार अस्त्रोंको देना चाहिये ॥२३॥ हे सुव्रत ! उस आकारवाले उन अस्त्रों को मैं दूंगा ऐसा कहेहुये इन्द्रजी ने उन मुनिश्रेष्ठ दधीचिजी से कहा ॥ २४ ॥ कि उन अस्त्रों में वैसाही रौद्रबल व प्रभाव स्थितहै जिस लिये अपने तेज से सूर्यनारायण जीको उनमें निक्षेप करके ॥ २५ ॥ लोकों की रक्षाके लिये कल्याणकारक शिवजी ने हमलोगों को दिया है उसीकारण उन सबों को लेकर हमलोग भलीभांति स्थित हुये हैं ॥ २६ ॥ लोक की रक्षा के लिये यह संज्ञाहै उससे ये लोकपालक हैं और इन शस्त्रों के मध्यमें भी वज्र उत्तम

चाहा जाता है ॥ २७ ॥ क्योंकि उसके धारण से हमारी सुरराजता कहीजाती है और वज्र सेभी जो उत्तम चक्र है वह विष्णुजी के ग्रहण में है ॥ २८ ॥ उस से दैत्यों व दानवों के गणों के मध्य में न जीतने योग्य जनों से जीत होती है इस लिये हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसप्रकार वे अस्त्र हमको मिलैं ॥ २९ ॥ हे कार्यविदांवर ! विचारकर वैसाही कार्य करिये ऐसा कहनेपर दधीचिमुनि नें आगे खड़ेहुये उन इन्द्रजी से कहा ॥ ३० ॥ कि उनकी प्राप्ति के लिये मैं तुम से अन्य यत्नको कहताहूं कि जो ये मेरे अस्थि व तुम्हारे सब अस्त्र हैं ॥३१॥ उसीप्रकारवाले सब शस्त्रों को निर्माण कराइये उनसे उपजे हुये जो ये अस्त्र हैं उनकेभी अधिक बल होगा ॥३२॥

दप्युत्तमंचक्रं यत्तद्विष्णुपरिग्रहे ॥ २८ ॥ दैत्यदानवसङ्घानांतेनाजेयजयोभवेत् ॥ तस्मात्तानियथास्माभिः प्राप्यन्तेमुनिसत्तम ॥ २९ ॥ तथाकुरुष्वसञ्चिन्त्य कार्यंकार्यविदांवर ॥ एवमुक्तेमुनिःप्राह तंशक्रंपुरतःस्थितम् ॥ ३० ॥ तत्प्राप्त्यर्थमुपायन्ते कथयामितवापरम् ॥ यान्येतानिममास्थीनितथातेस्त्राणिसर्वशः ॥३१॥ निर्मापयध्वंशस्त्राणि तदाकाराणिसर्वशः ॥ एतानितत्समुत्थानि तेषामप्यधिकंबलम् ॥ ३२ ॥ साधयिष्यन्तिभवतां संग्रामेयन्ममेरितम् ॥ तमुवाचततश्शक्रोदधीचिन्तपसोनिधिम् ॥ ३३ ॥ प्राणापहारंकर्तुन्ते नाहंशक्नोमिगर्हितम् ॥ नवामृतस्यतेस्थीनि ग्रहीतुं शक्तिरस्तिनः ॥ ३४ ॥ तस्मात्सर्वंसमालोच्य यत्कर्तव्यंब्रवीहिनः ॥ एवमुक्तेमुनिःप्राह एतदेवकलेवरम् ॥ ३५ ॥ त्यजामिस्वयमेवाहं देवकार्यार्थिनःफलम् ॥ अध्रुवंसर्वदुःखानामाश्रयंसुजुगुप्सितम् ॥ ३६ ॥ यदाह्येतत्तदायुक्तः परित्यागोस्यसाम्प्रतम् ॥ अस्यत्यागेनमेदुःखं संसारत्वंनजायते ॥ ३७ ॥ यस्माज्जन्मान्तरेजाते मातापिहिभवेत्पुनः ॥ भा

वे आप लोगों के युद्धमें जो मेरा कहा है उसको साधन करैंगे तदनन्तर इन्द्र जी तपस्या के निधान उन दधीचि मुनि से बोले ॥ ३३ ॥ कि तुम्हारे प्राणों के हरणरूप निन्दित कर्म को करने के लिये मैं नहीं समर्थ हूं और मरे हुये तुम्हारे अस्थियों को ग्रहण करने के लिये हमारी शक्ति नहीं है ॥ ३४ ॥ इसलिये सबको विचारकर जो करने योग्य हो उसको हमलोगों से कहिये ऐसा कहने पर मुनिने कहा कि इसी शरीर को ॥ ३५ ॥ मैं आपही छोड़ता हूं जो कि देवकार्य को चाहने वाले का फल है व नाशवान् तथा सब दुःखों का स्थान और निन्दित है ॥ ३६ ॥ जब कि ऐसाहै तब इस समय इसका छोड़ना योग्यहै और इसके छोड़नेमें न मुझ

को दुःख है न संसारत्व याने जन्म, मरण न होगा ॥ ३७ ॥ जिस लिये अन्य जन्म होने पर फिर माता भी होगी और स्त्री, बहन व कन्या अपने कर्मके फल के योग से होती है उसीसे संसार में कार्य में प्रीति निन्दित है ॥ ३८ ॥ व जिसलिये यह शरीर मुझको निश्चय कर छोड़ैगा उसीकारण विद्वान् को आपही इसका त्याग करना चाहिये ॥ ३९ ॥ इसप्रकार इन्द्रके आगे कहकर उससमय महामुनि दधीचि जीने शीघ्रता समेत प्राणों का संहार किया ॥ ४० ॥ प्राणों से रहित उस शरीर को जानकर देवताओं ने विचार किया कि इसको किसप्रकार मांस व रक्त से अलग करना चाहिये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उस कार्य की सिद्धि के लिये सुरेश (इन्द्र) जी ने यह

यास्वसाचदुहिता स्वकर्मफलयोजनात् ॥ जातातेनैवसंसारेरतिकार्येजुगुप्सिता ॥ ३८ ॥ यस्माचस्वयमेवैतद्वपुस्त्यजतिमान्ध्रुवम् ॥ तस्मादस्यपरित्यागःस्वयंकार्योविपश्चिता ॥ ३९ ॥ एवंपुरन्दरस्याग्रे संकीर्त्यसुमहामुनिः ॥ दधीचिः प्राणसंहारं कृतवान्सत्वरंतदा ॥ ४० ॥ गतासुत्वंविदित्वैव विबुधास्तत्कलेवरम् ॥ मांसशोणितनिर्मुक्तं कथंकार्यमचिन्तयन् ॥ ४१ ॥ ततस्तदर्थसिद्ध्यर्थमुवाचेदंसुरेश्वरः ॥ गौरीणांकर्कशाजिह्वा ताएनमुल्लिहन्त्विति ॥ ४२ ॥ ततस्तैर्विबुधैर्नन्दा यागोलोकेषुसंस्थिता ॥ ध्यातातदोपयातासासखीभिःपरिवारिता ॥ ४३ ॥ नन्दासुभद्रासुरभिः सुशीला सुमनास्तथा ॥ इतिगोमातरःपञ्च गोलोकात्समुपागताः ॥ ४४ ॥ ऊचुस्ताविबुधान्सर्वा अस्माभिर्यत्प्रयोजनम् ॥ कर्त्तव्यंतत्करिष्यामः कथ्यतांसुविचारितम् ॥ ४५ ॥ देवाऊचुः ॥ यदेतदृषिणात्यक्तं स्वयमेवकलेवरम् ॥ एतन्मांसादिनिर्मुक्तं क्रियतामस्थिशेषकम् ॥ ४६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ श्रुत्वासुरमयोदेवि देवकार्यमनुष्ठितम् ॥ पितामहस्यतत्सर्वं स

कहा कि गौवों की जिह्वा कठोर होती है वे इनको चाटैं ॥ ४२ ॥ तदनन्तर गोलोकों में जो नंदा नामक गऊ स्थित थी देवताओं से ध्यान कीहुई वह उस समय सखियों से संयुत होकर आई ॥ ४३ ॥ नंदा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला व सुमना ये पांच गोमाता गोलोक से भलीभांति आईं ॥ ४४ ॥ और उन सबों ने देवताओं से कहा कि हमसबों से जो कार्य करने योग्य हो उसको करैंगी भलीभांति विचारे हुये उस कार्य को कहिये ॥ ४५ ॥ देवता बोले कि ऋषिने जो आपही इस शरीर को छोड़ाहै मांसादि से छुटे

हुये इसको अस्थिशेष कीजिये ॥ ४६ ॥ महादेव जी बोले कि हे देवि ! अनुष्ठित देवकार्य को सुनकर सुरभियों ने उस सब को पितामह जी से यथायोग्य कहा ॥ ४७ ॥ उस वचन को सुनकर ब्रह्मा जी ने सब देवताओंको बुलाकर कहा कि इन सबों के अंगों में स्पर्श कीजिये कि जिससे सुरभी कल्याण को प्राप्त होवैं ॥ ४८ ॥ उन देवताओं से स्पर्श कीहुई सुरभी पवित्र होकर स्थित हुईं परन्तु उनका केवल मुख नहीं स्पर्श कियागया वही अपवित्र कहा गया है और उनका एक अंग अपवित्र व निन्दित कहागया है ॥ ४९ ॥ और सबों का शेष शरीर देवताओं से उत्तम कियागया है सरस्वती जीने उन से कहा कि तुम सब ब्रह्मघातिनी हो ॥ ५० ॥

माचख्युर्यथातथम् ॥ ४७ ॥ तच्छ्रुत्वाविबुधान्सर्वान् समाहूयपितामहः ॥ सर्वांगात्रेषुस्पृशतसुरभ्यःशुभमाप्नुयुः ॥ ४८ ॥ तास्तुतैर्विबुधैःस्पृष्टाःशुचयस्समुपस्थिताः ॥ मुखमेकंपरंतासां नस्पृष्टमशुचिस्मृतम् ॥ अपवित्रम्भवेत्तासामेकमङ्गंजुगुप्सितम् ॥ ४९ ॥ शेषंशरीरंसर्वासां विशिष्टन्तुसुरैःकृतम् ॥ सरस्वत्यातुताःप्रोक्ता भवत्योब्रह्महन्तृकाः ॥ ५० ॥ अन्यथाकारणात्कस्मादस्पृष्टममरैर्मुखम् ॥ ततस्ताभिरसावुक्ता देवीतत्रसरस्वती ॥ ५१ ॥ नैतत्तेवचनंयुक्तं वक्तुमेवंविधंकटु ॥ अस्माकमेवंहृदयमनेनवचसात्वया ॥ ५२ ॥ निर्दग्धंयेनतस्मात्त्वं माचिराद्दाहमाप्स्यसि ॥ शापंदत्त्वा ततस्तस्याः सरस्वत्याश्चतास्तदा ॥ ५३ ॥ गोलोकंगतवन्त्यस्तुसुरभ्यःसुरपूजिताः ॥ आहूयविश्वकर्माणं तत्क्षणंसुरसत्तमाः ॥ ५४ ॥ अस्माकंकुरुशस्त्राणि तमाहुर्युद्धकारणात् ॥ एतद्वचनमाकर्ण्य तानिपूतैर्नवैर्दृढैः ॥ ५५ ॥ अस्त्राणि कारयामास दधीचेरस्थिसञ्चयैः ॥ प्रणामाकारयुक्तानि देवानांतानिसंयुगे ॥ ५६ ॥ अजेयानियथासन्ति तथाचासौ

क्योंकि अन्यथा किस कारण से देवताओं से मुख अस्पृष्ट कियागया तदनन्तर उन गौवों ने वहां इन सरस्वती जी से कहा ॥ ५१ ॥ कि तुम को यह ऐसा कटुवचन कहने के लिये नहीं योग्य है जिसलिये इस वचन से तुमने हमारे हृदय को जलादिया उसी कारण तुम शीघ्रही दाह को प्राप्त होवोगी उस समय उन सरस्वतीको शाप देकर तदनन्तर वे ॥ ५२ । ५३ ॥ देवताओं से पूजित सुरभी गोलोक को चलीगईं और उसी क्षण सुरोत्तमों ने विश्वकर्मा को बुलाकर ॥ ५४ ॥ उनसे कहा कि हमारे युद्धके लिये शस्त्रों को बनाइये इस वचन को सुनकर दधीचि जीके पवित्र नवीन व दृढ़ अस्थिसमूहों से उन अस्त्रों को बनवाया देवताओं के

युद्ध में प्रणाम के आकार से संयुत वे ॥ ५५ । ५६ ॥ अस्त्र जिसभांति न जीतने योग्य हैं वैसेही इन्होंने निर्माण किया इन्द्र का वज्र व अग्नि की शक्ति और यम-राज का दण्ड ॥ ५७ ॥ व निर्ऋति की तलवार व वरुण के पाश को भलीभांति बनाया और कुबेर की ध्वजा व गरुई गदाको निर्माण किया ॥ ५८ ॥ और वैसेही विश्वकर्मा ने महादेवजीके त्रिशूल को बनाया उससमय देवताओंके इन शस्त्रों को व अस्त्रो के बल को लेकर ॥ ५९ ॥ तदनन्तर उससमय दैत्यों व देवताओंको जीतने के लिये गये इसी अवसर में सुभद्रा भी दधीचि के मृतक कर्म को करके ॥ ६० ॥ उन मुनियों समेत वह पुत्र को ढूंढ़ने के लिये आई और उस अश्वत्थवाटिका

विनिर्ममे ॥ वज्रमिन्द्रस्यशक्तिञ्च वह्नेर्दण्डंयमस्यच ॥५७॥ खड्गन्तुनिर्ऋतेःपाशं सम्यक्चक्रेप्रचेतसः ॥ सम्यग्ध्वजं कुबेरस्य गदांगुर्वींविनिर्ममे ॥ ५८ ॥ विश्वकर्मातथाशूलमीशानस्यचनिर्ममे ॥ गृहीत्वैतानिवैदेवाः शस्त्राण्यस्त्रबलं तदा ॥ ५९ ॥ विजेतुंचततोदैत्यान् दानवांश्चगतस्तदा ॥ अत्रान्तरेसुभद्रापि दधीचेरौर्ध्वदैहिकम् ॥ ६० ॥ कृत्वातैर्मुनिभिस्सार्द्धमन्वेष्टुंसागतासुतम् ॥ अश्वत्थवाटिकायाञ्च सुतंतत्रमनोहरम् ॥ ६१ ॥ दृष्ट्वारुरोदजीवन्तं मुक्त्वाबाष्पमथाचिरम् ॥ अम्बेत्याभाषितेनोक्ता मारोदीस्त्वंयशस्विनि ॥ ६२ ॥ सर्वम्पुराकृतस्यैतत्फलंतवममापिहि ॥ यद्यथायत्रयेनेह कर्मजन्मान्तरार्ज्जितम् ॥ ६३ ॥ तदवश्यंहिभोक्तव्यं त्यजशोकमतोखिलम् ॥ परित्यागेनमेलज्जा कार्यापिसुरसुन्दरि ॥ ६४ ॥ फलम्पुराकृतस्यैतद्भोक्तव्यंतन्ममैवहि ॥ मातर्ममोपरिकुरु पुत्रस्नेहंयशस्विनि ॥ ६५ ॥ बालस्यहिपरित्यागान्मातादोषेणलिप्यते ॥ बालेनाभिहितासातु ध्यात्वादेवंजनार्द्दनम् ॥ ६६ ॥ कृत्वाञ्जलि

में सुन्दर पुत्र को ॥ ६१ ॥ जीतेहुये देखकर उसने बहुत देरतक आंसुओं को छोड़कर रोदन किया और हे अम्ब ! ऐसा कहनेवाले पुत्रने कहा कि हे यशस्विनि ! तुम मत रोवो ॥ ६२ ॥ क्योंकि पुरातन समय तुम्हारे व मेरे भी किये हुये कर्म का यह फल है जहांपर जिसने यहां अन्य जन्म में जैसे जिस कर्म को कियाहै ॥ ६३ ॥ वह अवश्यही भोगना होगा इसलिये सब शोक को छोड़ दीजिये हे सुरसुन्दरि ! मेरे त्यागने में तुमको लज्जा न करना चाहिये ॥ ६४ ॥ पुरातन समय किये हुये कर्म का यह फल है वह मुझही को भोगना चाहिये हे यशस्विनि, मातः ! मेरे ऊपर पुत्र का स्नेह कीजिये ॥ ६५ ॥ क्योंकि बालक को छोड़ने से माता दोष

से लिप्त होती है बालक से कही हुई वह विष्णुदेव जी को ध्यानकर ॥ ६६ ॥ हाथों को जोड़कर यह बोली कि मुझसे भलीभांति निश्चय कियेहुये वचन को कहिये मैं यह नहीं जानती हूं कि यह किस के बीज से पैदा हुआ है ॥ ६७ ॥ इसलिये हे देवेश ! मुझसे इस निश्चित वचन को कहिये विष्णु जीने उसकी माता सुभद्रा से कहा ॥ ६८ ॥ कि तुम्हारे स्वामी दधीचि जी का यह क्षेत्रज पुत्र है कृष्ण जी में लगे हुये मनवाली उन सुभद्रा ने इसप्रकार उसकी उत्पत्ति को जानकर ॥ ६९ ॥ बालक को गोदी में लेकर दीन वचन से रोदन किया व कहा कि हे बालक ! मुझ से इस शोच के कारण को कहिये ॥ ७० ॥ इसके उपरान्त कहा कि दूध से रहित

रुवाचेदं कथ्यतांमेसुनिश्चितम् ॥ नविजानाम्यहन्तथ्यं कस्यायंवीजसम्भवः ॥ ६७ ॥ तस्मात्कथयदेवेश ममैतन्निश्चितंवचः ॥ आहतन्मातरंकृष्णः सुभद्रांवैजनार्दनः ॥ ६८ ॥ दधीचेस्तनयश्चार्यो भर्तुस्तेक्षेत्रसम्भवः ॥ तस्योत्पत्तिंविदित्वैवं सुभद्राकृष्णमानसा ॥ ६९ ॥ बालमङ्कंसमारोप्य सारोदीद्दीनयागिरा ॥ आहबालकमेतन्मे शोकस्यवदकारणम् ॥ ७० ॥ अथोक्तंस्तन्यरहितं कथंतेजीवितंधृतम् ॥ यस्माच्चतुर्विधासृष्टिर्जीवानांब्रह्मणाकृता ॥ ७१ ॥ जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजाश्चतथास्मृताः ॥ नरस्त्रीनपुंसकाद्याजातिभेदाज्जरायुजाः ॥ ७२ ॥ चेतुष्पदाश्चबहवो ग्राम्याश्चारण्यजास्तथा ॥ अण्डजाःपक्षिणःसर्वे मीनाःकूर्मसरीसृपाः ॥ ७३ ॥ स्वेदजामत्कुणायूका दंशाश्चमशकास्तथा ॥ उद्भिज्जाःस्थावराःप्रोक्तास्तृणगुल्मलतादयः ॥ ७४ ॥ अन्येप्येवंयथायोगमन्तर्भूताःसहस्रशः ॥ अण्डजाःपक्षपातेन जीवन्तिशिशवोभुवि ॥ ७५ ॥ ऊष्मणास्वेदजाःसर्वे उद्भिज्जाःसलिलेनहि ॥ समुदायेनभूतानां पञ्चानामुद्भि

तुम्हारा जीव कैसे धारण किया गया कि जिस लिये ब्रह्मा ने प्राणियों की चार प्रकार की सृष्टि कियाहै ॥ ७१ ॥ याने जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज व स्वेदज कहे गये हैं और जाति के भेदसे जरायुज पुरुष, स्त्री व नपुंसकादिक हैं ॥ ७२ ॥ और गांववाले व वनमें पैदा होनेवाले बहुतसे चतुष्पदहैं और सब पक्षी, मछली, कछुआ व सर्पादिक अंडा से उत्पन्न होते हैं ॥ ७३ ॥ और मत्कुण (खटमल) व जुवां, डांस और मशा ये स्वेदज हैं और तृण, गुल्म व लतादिक स्थावर उद्भिज्ज हैं ॥ ७४ ॥ व अन्य भी हज़ारों प्राणी योग के अनुकूल इन्हीं के मध्य मे हैं पृथ्वी में अण्डा से उपजे हुये जीव पंखो के गिरने से जीते हैं ॥ ७५ ॥ और सब स्वेदज गरमी से जीते

हैं व उद्भिज्ज जल से जीते हैं और पृथ्वी में उद्भिज्ज (वृक्षादिक) पंचभूत याने पृथ्वी, जल,अग्नि, वायु व आकाश इनके समूह से जीते हैं ॥ ७६ ॥ और जरायुज याने गर्भ से उत्पन्न होनेवाले प्राणी दूधके विना जीने के लिये नहीं समर्थ होते हैं हे पुत्र ! उस पुत्र के विना तुमने कैसे प्राणों को धारण किया है ॥ ७७ ॥ उससमय शोच के कारण आंसुओं से मलिन लोचनोंवाली उस माता से पुत्र ने कहा कि मैंने पीपल फलके रस से प्राणों को धारण किया है ॥ ७८ ॥ उसीकारण इस संसार में उस माता ने उन महात्मा के पिप्पलाद ऐसे गौण नाम को प्रसिद्धि में प्राप्त किया ॥ ७६ ॥ और वहां टिकेहुये वेद के पारगामी मुनियों ने क्रमपूर्वक उन पिप्पलाद

जाभुवि ॥ ७६ ॥ जरायुजांश्चस्तन्येन विनानोजीवितुंक्षमाः ॥ विनातेनकथंपुत्र त्वयाप्राणावधारिताः ॥ ७७ ॥ तांस्तदा जननींप्राह शोकबाष्पाविलेक्षणाम् ॥ अश्वत्थफलनिर्यासपानात्प्राणामयाधृताः ॥ ७८ ॥ गौणंतदातयातस्य पिप्पला देतिकल्पितम् ॥ नामतेनजगत्यस्मिन् निन्येख्यातिंमहात्मनः ॥ ७९ ॥ तत्रस्थैर्मुनिभिस्तस्य कृताःसर्वेयथाक्रमम् ॥ संस्काराःपिप्पलादस्य वेदोक्तावेदपारगैः ॥ ८० ॥ षडङ्गापाङ्गसंयुक्ता वेदास्तेनसमुद्धृताः ॥ तदाश्रमनिवासिभ्यो मुनिभ्यश्चसमाकुलः ॥ ८१ ॥ पुनस्तत्रस्थितश्चासौ दृष्ट्वामुनिकुमारकान् ॥ स्वपित्रङ्कगतान्प्राह जननींतांशुचिस्मिताम् ॥ ८२ ॥ पितामेकुत्रभद्रन्ते सुभद्रेकथयस्फुटम् ॥ तदङ्कान्तस्थितोयेनबालक्रीडांकरोम्यहम् ॥ ८३ ॥ एवंसाजननीतेन यदा पृष्टातपस्विनी ॥ तदारोदितुमारभ्य नोत्तरंकिञ्चिदब्रवीत् ॥ ८४ ॥ रुदतींतांसमालोक्य क्रुद्धोसौमुनिदारकः ॥ किम

के सब संस्कारों को किया ॥ ८० ॥ और उस आश्रम में बसनेवाले, समाकुल मुनियों से उसने छह अंगों व उपांगों समेत वेदों को उद्धरण किया है व अपने पिता की गोदी में प्राप्त मुनिबालकों को देखकर फिर वहींपर टिके हुये इन आकुल पिप्पलाद ने उस पवित्र मुसक्यानवाली माता से कहा ॥ ८१ । ८२ ॥ कि हे सुभद्रे ! तुम्हारा कल्याण होवै यह प्रकट कहिये कि मेरा पिता कहां है जिससे कि उसकी गोदी के बीच में बैठा हुआ मैं बालखेलों को करूं ॥ ८३ ॥ इसप्रकार जब उसने उस तपस्विनी माता से पूंछा तब रोने का प्रारम्भ कर उसने कुछ उत्तर नहीं कहा ॥ ८४ ॥ रोतीहुई उस माता को देखकर इस क्रोधित मुनिपुत्र ने कहा कि क्या

यह कोई निन्दित पुरुषहै कि जिससे तुम उसको मुझ से नहीं कहती हो ॥ ८५ ॥ ऐसा कहनेपर पुत्र से ऐसा कहा कि तुम्हारे पिता को देवताओं ने मारडाला है तुम्हारा कल्याण होवै क्रोध को छोड़ दीजिये मुझ से दधीचि जी कहे गये हैं ॥ ८६ ॥ फिर कोपाग्नि से घिरे चित्तवाले पिप्पलादने उस माता से कहा कि इस विषय में उन देवताओं का उसने क्या अपकार किया था उसको कहिये ॥ ८७ ॥ सुभद्रा बोलीं कि शस्त्रों के लिये मूढ़ देवताओं ने इस मुनिश्रेष्ठ को मारडाला और हे सुव्रत ! वैसेही आकारवाले अन्यअस्त्रोंको बनाया ॥ ८८ ॥ इस वचनको सुनकर उस समय उग्रतपवाले वे पिप्पलाद जी बोले कि जिन देवताओं ने मेरे पिता को मारा

सोकुत्सितःकश्चिद्येननाख्यासितंमम ॥ ८५ ॥ इत्युक्तेसुतमाहैवं विबुधैस्तेपिताहतः ॥ कोपन्त्यजस्वभद्रन्ते दधीचिः कथितोमया ॥ ८६ ॥ कोपवह्निपरीतात्मा प्राहतांजननीम्पुनः ॥ किमप्यपकृतन्तेषामित्यत्रकथयस्वतत् ॥ ८७ ॥ सुभद्रोवाच ॥ शस्त्राणांकारणान्मूढैर्हतोसौमुनिसत्तमः ॥ प्रचक्रुरपिचान्यानि तदाकाराणिसुव्रत ॥ ८८ ॥ श्रुत्वैतद्वचनंसोपि मुनिरुग्रतपास्तदा ॥ पितामहोहतोदेवैस्तेषांकृत्यांमहाबलाम् ॥ ८९ ॥ उत्थाप्यपातयिष्यामि मूर्ध्निप्राणापहारिणाम् ॥ पितामहमहंमुक्त्वा नैवहत्याभवेद्यदि ॥ ९० ॥ अन्यान्प्रमाथयिष्यामि कृत्याशस्त्रेणसङ्गतान् ॥ मत्वैवन्तमृषिंक्रुद्धं सर्वेतेसुरसत्तमाः ॥ ९१ ॥ ब्रह्माणंशरणंप्राप्ता ज्ञात्वादेवंकृपान्वितम् ॥ तत्रैवंचरितंदृष्ट्वा प्राहदेवाञ्जनार्दनः ॥ ९२ ॥ भवतांरक्षणोपायश्चिन्तितोत्रमयाधुना ॥ तेनतांमोहयिष्यामि कृत्यांहन्तुमुपस्थिताम् ॥ ९३ ॥ अत्रान्तरेपिप्पलादः पितुर्वैरमनुस्मरन् ॥ हन्तुंसुरान्व्यवसितः प्रविवेशहिमाचलम् ॥ ९४ ॥ स्वर्गसोपानवत्पुंसां स्थलीभूतमि

है उन प्राणहारी देवताओं के मस्तक पै बड़ी बलवान् कृत्या को उठाकर गिराऊंगा और यदि हत्या न होगी तो ब्रह्मा को छोड़कर मैं ॥ ८९ । ९० ॥ प्राप्त हुये अन्य देवताओं को कृत्या नामक शस्त्र से मारूंगा इसप्रकार उन ऋषि को कोपित जानकर वे सब सुरश्रेष्ठ ॥ ९१ ॥ ब्रह्मादेवजी को दयासंयुत जानकर उनके शरण में प्राप्त हुये वहां ऐसे चरित्र को देखकर विष्णु जी देवताओं से बोले ॥ ९२ ॥ कि इस समय मैंने यहां आपलोगों की रक्षा के उपाय को विचार किया है उससे मारने के लिये प्राप्त उस कृत्या को मोह लूंगा ॥ ९३ ॥ इसीसमय में पिता के बैर को स्मरण करतेहुये पिप्पलाद जी ने देवताओं को मारने के लिये उद्यम कर हिमाचल में

प्रवश किया ॥ ९४ ॥ जो कि पुरुषों के लिये स्वर्ग की सीढ़ी की नाईं है व मानो आकाश स्थलीभूत होगया है ॥ ९५ ॥ और जो पर्वत स्थित होकर स्थित होने के लिये मानो प्रतिज्ञा करता है और गंधर्वों से गाया जाता हुआ व सिद्धों तथा चारणों से सेवित है ॥ ९६ ॥ जो मेरे पिता के मारनेवाले हैं उन सबों को उसीकारण मैं कृत्याशस्त्र से मारूंगा जैसे कि इन्द्र जी ने पर्वतों को मारा है ॥ ९७ ॥ उस शिव जी के सभामन्दिर में सदैव टिकाहुआ मैं यहां हृदय में कृत्या को भलीभांति चिन्तन करताहुआ साधन करूंगा ॥ ९८ ॥ मैं कृत्या को साधन करूंगा और वे देवता यममन्दिर को जावैंगे निर्द्वन्द्व व निडर और दिनरात निडर होकर यहीं

वाम्बरम् ॥ ९५ ॥ प्रतिज्ञांकुरुतेयस्तु स्थितःस्थातुमिवाचलः ॥ गन्धर्वैर्गीयमानश्चसिद्धचारणसेवितः ॥ ९६ ॥ हन्तारोयेमम पितुस्तान्हनिष्यामिकारणात ॥ कृत्याशस्त्रेणसकलान्मरुत्वानिवपर्वतान् ॥ ९७ ॥ तस्मिन्स्थितःसदैवाहं शिवा यतनसंसदि ॥ अत्रस्थःसाधयिष्यामि कृत्यांसञ्चिन्तयन्हृदि ॥ ९८ ॥ कृत्यांचसाधयिष्यामि यास्यतियमसाद नम् ॥ अद्वन्द्वोनिर्भयोभूत्वा निराहारोह्यहर्निशम् ॥ ९९ ॥ सव्येनपाणिनासव्यं निर्मथ्योरुंसआत्मनः ॥ तस्मादुत्पा टयिष्यामि महाकृत्यामिहास्थितः ॥ १०० ॥ संवत्सरेतस्यगतेऊरुगर्त्ताद्विनिःसृता ॥ वडवागुरुभारार्त्ता वाडवेनस मन्तदा ॥ १ ॥ ऊरोर्निर्गत्यसातस्मात्सुषुवेसुमहाबलम् ॥ वडवास्युदराद्गर्भं ज्वालामालासमाकुलम् ॥ २ ॥ विमुच्य तमृषेस्तस्य पुरोगर्भंसमुज्ज्वलम् ॥ पुनर्गताक्वापितदा नज्ञातामुनिनातदा ॥ ३ ॥ वडवानलोनरस्तस्य गर्भोवैनिःसृत स्तदा ॥ कल्पान्तइवभूतानां कालाग्निरिववर्चसाम् ॥ ४ ॥ विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशंतन्दृष्ट्वापुरतःस्थितम् ॥ सचापिविस्मि

स्थित मैं बायें हाथ से अपनी बाईं जांघ को मथकर उससे महाकृत्या को उत्पन्न करूंगा ॥ ९९ । १०० ॥ तब वर्षभर बीतने पर उनके जंघारूपी गढ़े से बढ़े भार से विकल वाडव (गर्भ) समेत अश्विनी (घोड़ी) निकली ॥ १ ॥ और उस जंघा से निकलकर उस अश्विनीने पेट से ज्वालासमूहों से व्याप्त बड़े बलवान् गर्भ को पैदा किया ॥ २ ॥ उन ऋषिके आगे उस उज्ज्वल गर्भको छोड़कर फिर उससमय मुनिसे न जानी हुई वह कहीं चली गई ॥ ३ ॥ व उससमय उसका वड़वानल गर्भ निकला जो कि प्राणियोंके कल्पान्त की नाईं व तेजसे कालाग्निके समान था ॥ ४ ॥ बिजली की राशिके समान आगे स्थित उसको देखकर यह क्या है ऐसा विचारते

हुये वे भी विस्मितहुये ॥ ५ ॥ तदनन्तर अपने आगे स्थित वड़वाग्नि ने पिप्पलादऋषि से कहा कि मैं तपस्याके बल से साधन कीगई हूं ॥ ६ ॥ इससमय जो तुमको प्रिय हो उस तुम्हारे कार्य को मुझे करनाचाहिये और उस सबको मैं करूंगा क्योंकि असाध्य भी कार्य साधन कियाजाता है ॥ ७ ॥ हे सुमुने ! वर्षभर अपनी जंघा को मथकर मैं जिसलिये उत्पन्न कियागया हूं उसीकारण ऋण से विहीन भी मैं तुम्हारे चाहे हुये कार्य को करूंगा ॥ ८ ॥ उनके उस वचन को सुनकर क्रोधसंयुत मुनि ने कहा कि उन सब देवताओं को मर्दन कीजिये व आपही भक्षण करिये ॥ ९ ॥ पहिले पिता के वध से क्रोध से एकाग्रचित्त किये व अत्यन्तही भयंकर व

तोत्यन्तं किमेतदितिचिन्तयन् ॥ ५ ॥ ततःस्वस्यपुरस्थेन वाडवेनतुवह्निना ॥ ऋषिःप्रोक्तःपिप्पलादः साधितोहंतपोब लात् ॥ ६ ॥ इदानींतेमयाकार्यं कर्त्तव्यंयत्तवप्रियम् ॥ करिष्यामिहितत्सर्वमसाध्यमपिसाध्यते ॥ ७ ॥ स्वोरुंनिर्मथ्य सुमुने येनसंवत्सरादहम् ॥ ततोऋणाद्विहीनोपि करिष्येतत्समीहितम् ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य मुनिःक्रोपसमन्वि तः ॥ प्रोवाचविबुधान्सर्वान् मर्दताद्भक्षयस्वयम् ॥ ९ ॥ पितुर्वधातक्रोधकृतावधानं मत्वापुरारौद्रमतीवघोरम् ॥ समेत्यसर्वेपुरुषंपुराणं समाश्रितास्तेभयनाशनेसुराः ॥ १० ॥ ततःसमाश्वास्यसुरान्वरिष्ठस्तपोवनंतत्रययौप्रहृष्टः ॥ दृ ष्ट्वाचतंवैरविपुञ्जकाशमुवाचविष्णुर्वचनंवरिष्ठम् ॥ ११ ॥ अहंसुरेशेनतवैवपार्श्वं विसर्ज्जितोजातभयैश्चदेवैः ॥ सत्यं शृणुत्वंवचनंहिपथ्यं यच्चासुराणांभवतीहिपथ्यम् ॥ १२ ॥ ज्ञानंबलन्तेविबुधैरचिन्त्यं विनाशनंह्यात्मवताह्यवश्यम् ॥ एवंस्थितेकुरुवाक्यंसुराणामेकैकमद्धिप्रतिवासरन्त्वम् ॥ १३ ॥ मुख्यानांकोटयस्त्रिंशत्सुराणांबलशालिनाम् ॥ क

विकराल मुनि को जानकर सब देवता मिलकर भय नाश होने के लिये पुराणपुरुष के समीप स्थित हुये ॥ १० ॥ तदनन्तर श्रेष्ठ विष्णुजीने देवताओं को भलीभांति आश्वासन कर प्रसन्न होकर वहां तपोवन को गये और सूर्यनारायण की राशि के समान उनको देखकर उत्तम वचन कहा ॥ ११ ॥ कि उत्पन्न भयवाले देवता व इन्द्र ने मुझको तुम्हारेही समीप पठाया है तुम पथ्य व सत्य वचन को सुनो जोकि देवताओं को भी यहां पथ्य होवै ॥ १२ ॥ तुम्हारा ज्ञान व बल देवताओं से अचिन्तनीय है और बुद्धिमान् को विनाश अवश्य विचारना चाहिये ऐसा स्थित होनेपर तुम मेरा वचन कीजिये कि तुम इससमय प्रतिदिन देवताओं के मध्यमें एक

एक को भक्षण करो ॥ १३ ॥ बल से शोभित मुख्य तीस करोड़ देवता हैं उनका भक्षण तुम एकही बार कैसे करोगे ॥ १४ ॥ इसलिये उनके मध्यमें एक एक तुमको भक्षण करना चाहिये इसप्रकार प्रतिज्ञा सफल होगी और मुनिका वचन झूंठ न होगा ॥ १५ ॥ और ऐसा करने पर तुम्हारा भी सब मनोरथ होगा व उस सबको मैं करूंगा इसप्रकार उन विष्णु ने कहा ॥ १६ ॥ ऐसा कहनेपर वड़वानल ने उन विष्णु जी से कहा कि तुम्हारा वचन झूठ नहीं है देवताओं से जाकर कहिये तो तुम्हारा कहा हुआ वह कार्य मुझको करना चाहिये ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन सब देवताओं को बुलाकर कहा कि एक एक देवता को वड़वानल भक्षण करैगा ॥ १८ ॥

थन्तुभक्षणन्तेषां युगपत्त्वंकरिष्यसि ॥ १४ ॥ अस्मादेकैकशस्तेषां कर्तव्यम्भक्षणंत्वया ॥ सफलंचप्रतिज्ञातं नानृतम्मुनिभाषितम् ॥ १५ ॥ एवंकृतयितेसर्वं भविष्यतिसमीहितम् ॥ तत्करिष्याम्यहंसर्वमाहैवंसजनार्द्दनः ॥ १६ ॥ आहैवमुक्तेतंविष्णुं नमिथ्यातेप्रभाषितम् ॥ ब्रूहिगत्वासुराणां तन्मयाकार्यंत्वयोदितम् ॥ १७ ॥ ततस्तान्विबुधान्सर्वानाहूयाहजनार्द्दनः ॥ एकैकशश्चविबुधं भक्षयिष्यतिवाडवः ॥ १८ ॥ ततःसुराःसुरेशानं तंविष्णुममितौजसम् ॥ प्रणम्याहुर्मुदायुक्तं भवनम्भवताकृतम् ॥ १९ ॥ भूयोथपुनरेवाल्पदोषस्योपशमक्रियाम् ॥ कर्त्तुंत्वमेवशक्तोपि नान्यस्त्राता दिवौकसाम् ॥ २० ॥ श्यामःपीताम्बरधरः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ युष्मद्भयंहरिष्यामि तान्सुरानाहमाधवः ॥ २१ ॥ श्रुत्वैतद्विबुधाःसर्वे हर्षेणोत्फुल्ललोचनाः ॥ ततस्तान्विबुधान्दृष्ट्वा प्रोवाचभगवान्हरिः ॥ २२ ॥ किमिदानींमयाकार्यं भवतांकथ्यतांहितत् ॥ २३ ॥ अत्रान्तरेविश्वतनुर्महात्मा विमोहयंस्तंज्वलनंस्वबुद्ध्या ॥ प्रोवाचपूर्वंवि

तदनन्तर अमित बलवाले उन देवेश अनन्त (विष्णु) जीको प्रणामकर देवताओंने आनन्दसे कहा कि आपने योग्य व उत्तम किया ॥ १९ ॥ फिर इसके बाद इस दोष के शान्तिकर्म को करने के लिये तुम्हीं समर्थ हो अन्य कोई देवताओं का रक्षक नहीं है ॥ २० ॥ पीताम्बरधारी व शंख, चक्र तथा गदाको धारनेवाले श्याम रूपवान् माधव जी ने उन देवताओं से कहा कि मैं तुमलोगों के भय को हरूंगा ॥ २१ ॥ इस वचन को सुनकर सब देवता हर्षसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले हुये तदनन्तर उन देवताओं को देखकर भगवान् हरि जी ने कहा ॥ २२ ॥ कि इससमय आपलोगों का क्या कार्य मुझको करना चाहिये ॥ २३ ॥ इसी अवसर में महाप्रभाव

वाले विश्वतनु महात्मा विष्णु जी ने उस अग्नि को अपनी बुद्धि से मोहते हुयें कहा कि जिसलिये पहले जल रचेगये हैं उसीकारण उनको भक्षण कीजिये ॥ २४ ॥ विष्णु जी के इस विचारने के इच्छित कर्मको जो मनुष्य सावधान होकर सुनता है वह अभिचार (मारणादिक प्रयोग) के भय से छूटकर मुक्ति के ज्ञानको पाता है ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुद्रप्रोक्तसंहितायांवाडववचनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

दो॰ । वड़वानलको सरस्वति फेंक्यो क्षारसमुद्र । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित सुभद्र ॥ देवी पार्वती जी बोलीं कि पिता के वध से उत्पन्न क्रोधवाले व सुर-

हितायदापस्ताभक्षयस्वेतिमहाप्रभावः ॥ २४ ॥ एतद्विवित्सितंविष्णोर्यश्शृणोतिसमाहितः ॥ सोभिचारभयान्मुक्तोमुक्ति ज्ञानमवाप्नुयात् ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेरुद्रप्रोक्तसंहितायांवाडववचनंनामत्रिंशोऽध्यायः ३० ॥

देव्युवाच ॥ पितुर्वधामर्षसुजातमन्युनायद्यत्कृतं कर्मपुरामहर्षिणा ॥ दधीचिपुत्रेणसुरप्रमाथिना सर्वंश्रुतंतद्धिम यासमाधिना ॥ १ ॥ पुनःपुनर्यद्विबुधैःसमन्तु यद्वृत्तमासीत्किमपिप्रधानम् ॥ कार्यंहितत्सर्वमनुक्रमेण विज्ञानमि च्छामिकुतूहलंनः ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ उक्तोयदासौविबुधैःसमस्तैरापः पुरात्वम्भुविभक्षयस्व ॥ यतोमराणाम्प्रथमं हिजाता आपोग्रजाःसर्वसुरेभ्यएताः ॥ ३ ॥ तेनैवमुक्तास्तुमहात्मनातदा प्रदर्शयध्वंममतायतःस्थिताः ॥ पीत्वाह्यपः सर्वमहम्पुरस्तात्कृत्यं करिष्येसुरभक्षणञ्च ॥ ४ ॥ तत्रापिनेतुंयदिमांसमर्थायत्रासतेवारिचयाःसमेताः ॥ अजोन्यथा नाहमलीकवादी प्रणप्रणीतेमुनिवाक्यकारी ॥ ५ ॥ आहोक्तेपुण्डरीकाक्षः संस्तुत्वावाडवंतदा ॥ त्वांप्रापयिष्येयत्रापः

नाशक दधीचिके पुत्र महर्षि पिप्पलादने पहले जिस जिस कर्म को किया है उस सबको मैंने एकाग्रचित्तसे सुना ॥ १ ॥ और देवताओंके साथ बार २ जो कुछ भी मुख्य चरित्र हुआ हो क्रम से उस सब कार्य को कौतुक से जानना चाहताहूं ॥ २ ॥ महादेव जी बोले कि जब सब देवताओंने इससे यह कहा कि तुम पहले पृथ्वी में जलों को भक्षण करिये जिसलिये जलदेवताओं के पहले पैदा हुये हैं उसीकारण सब देवताओं से अग्रज ये जल हैं ॥ ३ ॥ तब उस महात्मा वड़वानल ने देवताओं से ऐसा कहा कि जहांपर वे जल स्थित होवैं उनको दिखलाइये पहले जलों को पीकर मैं सबकार्य व देवताओं का भक्षण करूंगा ॥ ४ ॥ जहां संयुक्त होकर जल

समूह है वहां मुझको लेजाने के लिये यदि तुम समर्थहो तो मैं वैमाही करूंगा अन्यथा नहीं करूंगा, और मैं असत्यवादी नहींहूं व प्रतिज्ञा करनेपर मुनि का वचन करनेवालाहूं ॥ ५ ॥ ऐसा कहनेपर कमललोचन विष्णु जी ने उससमय वड़वानल की प्रशंसाकर कहा कि हे वाड़व ! जहां जल है वहां तुमको किस सवारी के द्वारा प्राप्त कराऊं ॥ ६ ॥ वाड़व बोला कि एक कुमारी के हाथ का मेल छोड़कर वहां मैं अश्वादिक सवारियों के द्वारा जाने के लिये उत्साह नहीं करताहूं यही मेरा मतहै ॥ ७ ॥ विष्णुजी बोले कि यह तुम्हारा वाहन सुलभहै मैं उस कन्याको लाऊंगा कि जो तुमको निश्चयकर जलोंके स्थानको लेजानेके लिये समर्थ होगी ॥ ८ ॥

केनयानेनवाडव ॥ ६ ॥ वाडवउवाच ॥ नाहंहयादिभिर्यानैर्गन्तुंतत्रसमुत्सहे ॥ कुमारीकरसंपर्कमेकंमुक्त्वामतंहि मे ॥ ७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ एतत्तेसुलभंयानन्तांकन्यामानयाम्यहम् ॥ यात्वांनेतुंसमर्थास्यादपांस्थानंसुनिश्चितम् ॥ ८ ॥ ततःसरस्वतीम्प्राह देवदेवोजनार्दनः ॥ त्वमेवव्रजकल्याणिप्रतीच्यांलवणोदधौ ॥ ९ ॥ एवंकृतेसुराःसर्वे भवन्तिभयव र्जिताः ॥ अन्यथावाडवेनैते दह्यन्तेस्वेनतेजसा ॥ १० ॥ यस्मात्त्वंरक्षविबुधांस्तस्मात्तुमुलाद्भयात् ॥ मातेवभव सुश्रोणि सुराणामभयप्रदा ॥ ११ ॥ एवमुक्ताहिसातेन विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ आहनाहंस्वतन्त्रास्मि पितामेवर्तते यतः ॥ १२ ॥ तस्याज्ञाकारिणीनित्यं कुमारीचधृतव्रता ॥ कालत्रयेप्यस्वतन्त्राः श्रूयन्तेयोषितःशुभाः ॥ १३ ॥ पित्रादे शंविनानाहं पदमेकमपिक्वचित् ॥ गच्छामितस्मात्कोप्यन्यउपायश्चिन्त्यतांहरे ॥ १४ ॥ तत्स्वरूपंविदित्वैवं समभ्ये

तदनन्तर देवदेव विष्णुजीने सरस्वती जीसे कहा कि हे कल्याणि ! तुम्हीं पश्चिम दिशा में क्षारसमुद्रमें जावो ॥ ९ ॥ ऐसा करने पर सब देवता भयरहित होवेंगे अन्यथा जिसलिये वाडव से अपने तेज के द्वारा ये जलायेजाते हैं उसी कारण देवताओं की तुम बड़े भयसे रक्षाकरो हे सुश्रोणि ! तुम माता की नाईं देवताओं को अभयदायिनी होवो ॥ १० ॥ ११ ॥ उन प्रभु विष्णुजी से ऐसा कहीहुई उन सरस्वती ने कहा कि मैं स्वाधीन नहीं हूं क्योंकि मेरा पिता वर्तमान है ॥ १२ ॥ व्रतको धारण किये मैं नित्य उनकी आज्ञा को करनेवाली कन्याहूं क्योंकि तीनों समयों में भी उत्तम स्त्रियां विवश सुनीजाती हैं ॥ १३ ॥ हे हरे ! पिताकी आज्ञा के

विना मैं कहीं एक पग भी नहीं जातीहूं इसलिये किसी अन्य यत्नको विचारिये ॥ १४ ॥ इसप्रकार उसके स्वरूपको जानकर ब्रह्माजीके समीप जाकर उनसे विष्णु जीने कहा कि इस देवकार्य को कीजिये ॥ १५ ॥ न देखेहुये दोषवाली इस तुम्हारी कन्याको छोड़कर अन्यथा महाबलवान् वडवानल लेजानेके योग्य नहीं हैं ॥ १६ ॥ विष्णु जी से कहे हुये उस वचन को सुनकर उससमय स्नेहपूर्वक मस्तक में सूंघकर कुमारी कन्या से ब्रह्मा जी बोले ॥ १७ ॥ कि हे देवि ! भयको प्राप्त इन सब देवताओंकी तुम रक्षा करो और इस वडवानलको लेकर तुम क्षारसमुद्रमें फेंक देवो ॥ १८ ॥ पिता के वचनको सुनकर वेदलक्षणोंवाली वे सरस्वतीजी बोलीं कि हे तात !

त्यपितामहम् ॥ तमब्रवीद्वासुदेवो देवकार्यमिदंकुरु ॥ १५ ॥ नान्यथाशक्यतेनेतुं वाडवोग्निर्महाबलः ॥ अदृष्टदोषांमु क्त्वेमां कुमारींतनयांतव ॥ १६ ॥ तच्छ्रुत्वाविष्णुनाप्रोक्तंकुमारींतनयांतदा ॥ शिरस्याघ्रायसस्नेहमुवाचप्रपितामहः ॥ १७ ॥ इमान्देविसुरान्सर्वान् रक्षत्वंभयमागतान् ॥ विनिक्षिपत्वंनीत्वैनं वाडवंलवणाम्भसि ॥ १८ ॥ पितुर्वाक्यं हिसाश्रुत्वा प्रोवाचश्रुतिलक्षणा ॥ सरस्वत्युवाच ॥ एषास्मिप्रस्थितातात तववाक्यादसंशयम् ॥ १९ ॥ रौद्रोयंवाडवो वह्निस्तनुंमेधक्षयिष्यति ॥ प्राप्तंकलियुगंरौद्रं साम्प्रतम्पृथिवीतले ॥ २० ॥ लोकाःपापसमाचाराः स्पर्शयिष्यन्तिमां प्रभो ॥ ततोदुःखतरंकिंस्याद्यत्पापैःसहसङ्गमः ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदिपापजनाकीर्णं नवाञ्छसिधरातलम् ॥ पातालतलसंस्थात्वं नयवह्निम्महोदधौ ॥ २२ ॥ यदासीःश्रमसंयुक्ता वह्निनादह्यसेभृशम् ॥ तदाविभिद्यवसुधां प्रत्यक्षाभवपुत्रिके ॥ २३ ॥ कृत्वावक्त्रंविशालाक्षि प्राचीभवसुमध्यमे ॥ ततोयास्यन्तितीर्थानि त्वांश्रान्तांचारुहासिनि ॥ २४ ॥ ता

तुम्हारे वचन से यह मैं निस्सन्देह जाती हूं ॥ १९ ॥ परन्तु यह भयंकर वड़वानल मेरे शरीरको जलावैगा इससमय पृथ्वी में भयानक कलियुग प्राप्त है ॥ २० ॥ हे प्रभो ! पाप आचरणवाले मनुष्य मुझको छुवैंगे उससे अधिक दुःख क्या होगा जोकि पापियों के साथ संगम है ॥ २१ ॥ ब्रह्मा बोले कि यदि पापी जनोंसे व्याप्त पृथ्वीको तुम नहीं चाहतीहो तो पातालतलमें भलीभांति स्थित होकर तुम अग्निको समुद्रमें लेजावो ॥ २२ ॥ हे कन्ये ! जब तुम परिश्रमसे संयुक्त होवो और अग्नि तुमको बहुतही जलावै तब पृथ्वी को फोड़कर तुम प्रत्यक्ष होजाना ॥ २३ ॥ हे विशाललोचनि, सुमध्यमे ! पश्चिमको मुखकरके तुम प्राची सरस्वती होवो तदनन्तर हे चारुहासिनि !

चकीहुई तुम्हारे समीप तीर्थ प्राप्त होवेंगे ॥ २४ ॥ और वे सब आकर हे वरानने ! तैंतीस करोड़ तीर्थ मेरी आज्ञासे तुम्हारी सहायता करेंगे ॥ २५ ॥ हे पुत्रि ! जाइये तुम को किसीप्रकार संताप न करना चाहिये ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले कि उससमय उन ब्रह्मा जी से ऐसा कहीहुई सरस्वती जी भय को छोड़कर प्रसन्नमनवाली होकर चलने के लिये उपस्थित हुई ॥ २७ ॥ व उनकी यात्रा के समयमें शंख व नगाड़ों के शब्दों से तथा मंगलों के उत्तम शब्दों से संसार पूर्ण होगया ॥ २८ ॥ और श्वेत वस्त्रों को धारण किये हुई श्वेत चन्दन से लिप्त सरस्वती देवी शरद् ऋतु के मेघों के समान तथा नक्षत्रों की नाईं हार से भूषित हुई ॥ २९ ॥ और सम्पूर्ण चन्द्रमा

निसर्वाणिचागत्य साहाय्यन्तेवरानने ॥ करिष्यन्तित्रयस्त्रिंशत्कोट्योवैममशासनात ॥ २५ ॥ गच्छपुत्रिनसन्तापस्त्वयाकार्यःकथंचन ॥ २६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवमुक्तातदातेन ब्रह्मणाथसरस्वती ॥ त्यक्त्वाभयंहृष्टमनाः प्रयातुंसमुपस्थिता ॥ २७ ॥ तस्याःप्रयाणसमये शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ मङ्गलानाञ्चनिर्घोषैर्जगदापूरितंशुभैः ॥ २८ ॥ सिताम्बरधरादेवी सितचन्दनगुण्ठिता ॥ शारदाम्बुदसंकाशाताराहारविभूषिता ॥ २९ ॥ सम्पूर्णचन्द्रवदना पद्मपत्रायतेक्षणा ॥ कीर्तिर्यथामहेन्द्रस्य पूरयन्तीदिशोदश ॥ ३० ॥ सातेजसाद्योतयन्तीसर्वमाभासयज्जगत ॥ अनुव्रजन्त्यैगङ्गायै तयोक्तंवरवर्णिनि ॥ ३१ ॥ द्रक्ष्यामित्वांपुनरहं कुत्रवैवसतौसखि ॥ एवमुक्तातयागङ्गा प्रोवाचस्निग्धयागिरा ॥ ३२ ॥ यदैवगत्वात्वंप्राच्यां दिशिप्राप्स्यसिमान्तदा ॥ विबुधैःसंवृतासर्वैस्तत्राहंतवसुव्रते ॥ ३३ ॥ दर्शनंसंप्रदास्यामि त्यजशोकंशुचिस्मिते ॥ तामापृच्छ्यततोगङ्गाम्पुनर्दर्शनमस्तुते ॥ ३४ ॥ गच्छत्वमालयम्भद्रे स्मर्तव्याहन्त्वयानघे ॥ यमुना

के समान मुखवाली व कमलपत्र के नाईं चौड़े नेत्रोंवाली, इन्द्र की कीर्ति की नाईं दशों दिशाओं को पूर्ण करती हुई ॥ ३० ॥ वे सरस्वतीजी तेज से प्रकाश करती हुई सब संसारको प्रकाशित किया हे वरवर्णिनि ! पीछे जातीहुई गंगाजी से उसने कहा ॥ ३१ ॥ कि हे सखि ! मैं तुमको फिर किस स्थानमें देखूगी उनसे ऐसा कही हुई गंगाजी प्रियवाणी से बोलीं ॥ ३२ ॥ कि जब तुम पश्चिम दिशा में जाकर मुझको प्राप्त होगी तब हे सुव्रते ! वहांपर सब देवताओं से घिरीहुई मैं तुम को ॥ ३३ ॥ दर्शन दूंगी हे शुचिस्मिते ! शोक को छोड़दीजिये तदनन्तर उन गंगा जी से उस सरस्वती ने पूंछा कि फिर तुम्हारा दर्शन होवे ॥ ३४ ॥ हे भद्रे !

घर को जाइये हे अनघे ! तुम से मैं सदैव स्मरण करने योग्य हूं वैसेही यमुना और सुन्दरी गायत्री जी ॥ ३५ ॥ व सावित्री समेत सब सखियोंको उस समय पठाया तदनन्तर उन गंगादेवी को बिदा करके नदी होकर सरस्वती जी ॥ ३६ ॥ हिमवान् पर्वत को प्राप्त होकर वहां पकरिया के वृक्षसे निकलीं व मछलियों तथा कच्छपों से संयुक्त वह सरस्वती नदी भूतल में उतरी ॥ ३७ ॥ जो कि ग्राह व दरिडम जीवों से पूर्ण तथा तिमि (मत्स्यभेद) व नाकसमूहों से संयुक्त थी और वह सरस्वती महादेवी सब दिशाओं में फेना की राशियों से मानो हँसरही थी ॥ ३८ ॥ पवित्र जल बहनेवाली व ब्राह्मणों से स्तुति कीजातीहुई वे सरस्वती देवीजी

पितथाचैवं गायत्रीसुमनोरमा ॥ ३५ ॥ सावित्रीसहिताःसर्वाःसख्यःसंप्रेषितास्तदा ॥ ततोविसृज्यतान्देवीं नदीभूत्वास रस्वती ॥ ३६ ॥ हिमवन्तंगिरिम्प्राप्य प्लक्षात्तत्रविनिर्गता ॥ अवतीर्णाधरापृष्ठे मत्स्यकच्छपसङ्कुला ॥ ३७ ॥ ग्राहद ण्डिमसंकीर्णा तिमिनक्रगणैर्युता ॥ हसन्तीचमहादेवी फेनौघैःसर्वतोदिशम् ॥ ३८ ॥ पुण्यतोयवहादेवी स्तूयमानाद्विजा तिभिः ॥ वाडवंवह्निमादाय ह्यवेगेननिःसृता ॥ ३९ ॥ भित्त्वावेगाद्धरापृष्ठं प्रविश्याथमहीतलम् ॥ यदायदापरिश्रान्ता दह्यन्तेवाडवाग्निना ॥ ४० ॥ तदातदामृत्युलोके यातिप्रत्यक्षतांनदी ॥ ततस्तुजायतेप्राची सन्तप्तावाडवेनतु ॥ ४१ ॥ ततोवैयानितीर्थानि कीर्तितानिपुरातव ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानिसान्निध्यंयान्तिभामिनि ॥ ४२ ॥ ततश्चाश्वासितातीर्थैः समाश्वस्तापुनर्नदी ॥ पातालतलमासाद्य जगाममकरालयम् ॥ ४३ ॥ खादिरामोदमासाद्य तत्रसावीक्ष्यसागरम् ॥ गन्तुम्प्रवृत्तातंवह्निमादायसुरसुन्दरि ॥ ४४ ॥ निरूढभारमात्मानं देवादेशाद्विचिन्त्यसा ॥ हृष्टासन्तुष्टमनसा प्रवृ

वड़वानल को लेकर अश्वके नाईं वेगसे निकलीं ॥ ३९ ॥ वेग से पृथ्वी को फोड़कर व भूमि में प्रवेश कर जब जब श्रमित होकर वड़वानल से जलाई जाती थीं ॥ ४० ॥ तब तब सरस्वती नदी मृत्युलोक में प्रत्यक्षता को प्राप्त होती थीं व तदनन्तर वाड़वाग्नि से प्राची सरस्वतीजी संतप्त होती थीं ॥ ४१ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! पहले जो तुम से तीर्थ कहेगये हैं स्वर्ग, आकाश व पृथ्वीवाले वे तीर्थ समीपता को प्राप्त होते थे ॥ ४२ ॥ तदनन्तर तीर्थों से समझाई हुई वह नदी फिर विश्रान्त होकर पातालतल को प्राप्त होकर समुद्र को गई ॥ ४३ ॥ व हे सुरसुन्दरि ! खादिरामोदवन को जाकर वहां समुद्र को देखकर वह सरस्वती नदी उस

अग्निको लेकर जाने के लिये प्रवृत्त हुई ॥ ४४ ॥ व संतुष्टमनवाली वे सरस्वती जी अपना को विष्णुदेव जीकी आज्ञा से भारसंयुत देख विचारकर प्रसन्न होकर दक्षिणमुखी प्रवृत्त हुई ॥ ४५ ॥ इसी अवसर में हे महादेवि ! वेदों के पारगामी चार ऋषिलोग प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ४६ ॥ और वेदपाठ में लगेहुये मनवाले वहां टिके हुये हिरण्य, वज्र, न्यंकु व कपिल ये चारों तप करते थे ॥ ४७ ॥ उन्होंने सरस्वती जी को अलग २ स्नानके लिये बुलाया और उसके सामने समुद्र अचानकही प्राप्त हुआ ॥ ४८ ॥ वैसेही उन सरस्वतीजी ने विचार किया कि किसप्रकार मुझको पुण्य होगी शाप से डरीहुई वह सरस्वती उससमय पांच सोतोंवाली हुई ॥ ४९ ॥

त्वादक्षिणामुखी ॥ ४५ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु ऋषयोवेदपारगाः ॥ चत्वारश्चमहादेवि प्रभासंक्षेत्रमागताः ॥ ४६ ॥ हिरण्यश्चाथवज्रश्च न्यङ्कुःकपिलएवच ॥ तपस्तप्यन्तितत्रस्थाःस्वाध्यायासक्तमानसाः ॥ ४७ ॥ पृथक्पृथक्समाहूता स्नानार्थंतैःसरस्वती ॥ सागरःसम्मुखस्तस्याः सहसासमुपस्थितः ॥ ४८ ॥ तथासाचिन्तयामास कथंमेसुकृतम्भवेत् ॥ शापभीताचसासाध्वी पञ्चस्रोतातदाभवत् ॥ ४९ ॥ एकैकंतोषयामास तानृषीन्वरवर्णिनि ॥ ततोस्याःपञ्चनामानि जाता निपृथिवीतले ॥ ५० ॥ हरिणीवज्रिणीन्यङ्कुः कपिलाचसरस्वती ॥ पानावगाहनान्नृणां पञ्चस्रोतासरस्वती ॥ ५१ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमः ॥ एषांसंयोगजंवाच्यंनराणांपञ्चमंहियत् ॥ ५२ ॥ एतत्पञ्चविधंनृणाम्पञ्चधावस्थितासती ॥ नाशयेत्पातकंघोरं सखिभिःसहितानदी ॥ ५३ ॥ ब्रह्महत्यांमहाघोराम्प्रतिलोमासरस्वती ॥ पानावगाहनान्नृणां नाशयत्यखिलांहिसा ॥ ५४ ॥ प्रमादान्मदिरापानंदोषेणोपहतात्मनाम् ॥ तद्व्यपोहायकपिलाद्विजानांविहितानदी ॥ ५५ ॥

व हे वरवर्णिनि ! उन ऋषियोंमें से एक एक को सरस्वती ने प्रसन्न किया उसी कारण पृथ्वी में इसके पाच नाम हुये ॥ ५० ॥ मनुष्यों के पान व स्नान से हरिणी, वज्रिणी, न्यंकु, कपिला व सरस्वती पांच सोतोंवाली सरस्वतीजी हुई ॥ ५१ ॥ ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरू की स्त्री से मैथुन करना और इनके संयोग से उपजाहुआ जो अन्य पातक है वह मनुष्यों को पांचवां कहना चाहिये ॥ ५२ ॥ पांच प्रकार से स्थित सखियों समेत सरस्वती नदी मनुष्यों के इस पांचप्रकार के भयंकर पापको नाश करती है ॥ ५३ ॥ वह प्रतिलोमा सरस्वती पान व स्नानसे मनुष्योंके महाभयङ्कर ब्रह्महत्या व सब पातकको नाश करती है ॥ ५४ ॥ दोषोंसे नष्टचित्त-

वाले ब्राह्मणों का जो प्रमादसे मदिरापानरूप पातकहै उसके नाशकेलिये कपिला नदी कहीगई है ॥ ५५ ॥ और उपास, जप, होम व स्नानसे वह सरस्वतीनदी आपही ब्राह्मणों के उस २ भावसे सात दिनोंमें पातकको नाश करती है ॥ ५६ ॥ वैसेही, यथोक्त विधि से न्यंकु नदीको प्राप्तहोकर पुरुष चोरी से उपजेहुये बड़ेभारी पाप से शुद्ध होताहै ॥ ५७ ॥ और उस जलके भोजन व पीनेसे वज्रिणीनदी गुरुकी शय्यापे जानेवाले पुरुषों के बहुतही भयंकर उस समस्त पापको नाश करती है ॥ ५८ ॥ वैसेही पवित्र जलसे संयुत हरिणी नदी सात दिनोंके स्नान करनेसे संयोग (मेल) से उपजे हुये पातकको हरती है ॥ ५९ ॥ ऐसेही हे सुरसुन्दरि ! पांच सोतोंवाली

उपवासाज्जपाद्धोमात्स्नानात्पानाद्द्विजन्मनाम् ॥ सप्ताहंनाशयेत्पापं तत्तद्भावेनसास्वयम् ॥ ५६ ॥ स्तेयजाच्चविशुद्ध्येत यथोक्तविधिनापुमान् ॥ न्यङ्कुंनदींसमासाद्य महतःपातकात्तथा ॥ ५७ ॥ तत्तोयाहारपानेन वज्रिणीगुरुतल्पगम् ॥ नाशयत्यखिलंपापं पुंसाम्भूरिभयङ्करम् ॥ ५८ ॥ संयोगजस्यपापस्य हारिणीहरिणीतथा ॥ नदीपुण्यजलोपेता सप्ताहमवगाहनात् ॥ ५९ ॥ एवमेतानिपापानि सर्वाणिसुरसुन्दरि ॥ नदीनाशयतेतथ्यं पञ्चस्रोतासरस्वती ॥ ६० ॥ ततोविशत्पुनश्चारु सादेवीपथिसङ्गतम् ॥ पर्वतंसागरस्यान्ते रोद्धुंमार्गमवस्थितम् ॥ ६१ ॥ मार्गंचैवसमारुध्य सोप्ययंगिरिसत्तमः ॥ व्रजन्त्यासुरकार्येण तस्याविघ्नकरःस्थितः ॥ ६२ ॥ उच्चैस्तरम्महाशैलमवलोक्यसरस्वती ॥ प्रपातेनातितीव्रेण गिरिणाविस्मितासती ॥ ६३ ॥ एवंसञ्चिन्तयेद्यावन्मनसातन्महाद्भुतम् ॥ तावन्मङ्गलशब्देन प्रतिबुध्यकृतस्मरम् ॥ ६४ ॥ गिरिशृङ्गद्वन्द्ववरं ददर्शपुरुषंवरम् ॥ तमाहदेवीगगनेमार्गमेनास्तिसुव्रते ॥ ६५ ॥

सरस्वती नदी इन सब पातकों को सत्यही नाश करती है ॥ ६० ॥ तदनन्तर समुद्र के अन्तमें वह सरस्वती देवी फिर मार्गको रोंकने के लिये प्राप्त व रास्तेमें मिलेहुये सुन्दर पर्वतमें पैठगई ॥ ६१ ॥ और वह भी यह पर्वतोत्तम मार्ग को भलीभांति रोंक कर देवकार्य के लिये जातीहुई उस सरस्वतीका विघ्नकारक स्थित हुआ ॥ ६२ ॥ अति उन्नत महापर्वत को देखकर सरस्वतीजी अति तीव्र प्रपात (गिरनेका स्थान)के कारण विस्मय में प्राप्त हुई ॥ ६३ ॥ इसप्रकार जबतक मनसे उस बड़े आश्चर्य को चिन्तन करे तबतक मंगलशब्द से कृतस्मर को जानकर ॥ ६४ ॥ पर्वत के श्रेष्ठ युग शिखर पै सरस्वतीजी ने उत्तम पुरुष को देखा उसने उन देवी से

आकाश मे कहाकि हे सुव्रते ! मेरे मार्ग नहीं है ॥ ६५ ॥ हे शुभे ! तुम अन्यत्र कहींजावो जहां कि तुम्हारी इच्छा होवै ऐसा कहनें पर पर्वत के ऊपर स्थित मनुष्य से उन सरस्वती देवीजी ने कहा ॥ ६६ ॥ कि हे गिरे ! देव (विष्णु) जीकी आज्ञासे मैं आई हूं तुमसे निषेध करने योग्य नहीं हूं ऐसा कहने पर पर्वतने उन सुन्दरी सरस्वती देवीजीसे कहा ॥ ६७ ॥ कि हे भद्रे ! तुमने क्या मुझ कृतस्मर पर्वतको नहीं जाना हे अनघे ! तुम्हारे दर्शन से दोष नहीं है क्योंकि तुम कुमारीहो ॥६८॥ इसलिये हे सुव्रते ! तुझ देवी का मैं विवाह करूंगा तुम मेरी स्त्री होवो सरस्वतीजी बोलीं कि जिसलिये मेरा पिता मुझको धारण किये है उसीकारण मैं स्वयं

अन्यत्रकापिगच्छत्वं यत्रतेभिमतंशुभे ॥ आहैवमुक्तेसादेवीनरंनगशिरःस्थितम् ॥ ६६ ॥ देवादेशात्समायाता ननिषे धागिरेत्वया ॥ एवमुक्तोगिरिःप्राह तान्देवींसुमनोरमाम् ॥ ६७ ॥ पर्वतोहंत्वयाभद्रे किन्वज्ञातःकृतस्मरः ॥ त्वद्दर्शनान्न दोषोस्ति कुमारीत्वंयतोनघे ॥ ६८ ॥ अतस्त्वांवरयेदेवींभार्यामेभवसुव्रते ॥ सरस्वत्युवाच ॥ पितामेध्रियतेयस्मा त्तेननाहंस्वयंवरा ॥ ६९ ॥ नत्वभार्याभविष्यामि मार्गंयच्छममाधुना ॥ एवमुक्तोगिरिःप्राह अनिच्छन्तीम्महावला त ॥ ७० ॥ उद्वाहयिष्येत्वाम्भद्रे कस्त्रातासितवाधुना ॥ सातम्मनोभवक्रान्तं मत्वादिव्येनचक्षुषा ॥ ७१ ॥ आहना स्तिममत्राता त्वामेवशरणंगता ॥ उद्वाह्यतेयद्यवश्यमहमेवंमहाबल ॥ ७२ ॥ द्वन्द्वानियत्रगायन्ति किन्नराणांमनोर मम् ॥ श्रूयतेचमुनिध्वानन्तन्त्रीवाद्यमथापरम् ॥ ७३ ॥ तत्रतालतमालाश्चपिप्पलाःपनसास्तथा ॥ सदैवफलपुष्पाढ्या

पतिको स्वीकार नहीं करूंगी ॥ ६९ ॥ इस समय मुझको मार्ग दीजिये मैं तुम्हारीस्त्री हूंगी ऐसा कहेहुये पर्वत ने न चाहती हुई सरस्वतीजी से कहा कि हे भद्रे ! मैं तुमको बड़ेबल से विवाह लूंगा इस समय तुम्हारा कौन रक्षक है उन सरस्वतीजीने दिव्यदृष्टिसे कामदेव से आक्रमित उस पर्वतको देखकर ॥ ७० । ७१ ॥ कहा कि मेरा रक्षक नहीं है मैं तुम्हारीही शरण में प्राप्तहूं हे महाबल ! यदि मैं तुमसे अवश्य व्याह करने योग्यहूं ॥ ७२ ॥ तो जहा पर किन्नरों के युग मनोहर गान करते हैं व जहां मुनियों का शब्द और अन्य सितार आदिक बाजा सुन पड़ता है ॥ ७३ ॥ वहांपर सुन्दर ताल, तमाल, पिप्पल, व कटहर सदैव पुष्पों व फलों से संयुत

देख पड़ते हैं ॥ ७४ ॥ और मत्त भ्रमरोंसे शब्दित कोरैया, कचनार, कदंब व पियाबांसाके वृक्षोंसे सब ओर पर्वत शोभितहै ॥ ७५ ॥ कहीं कोरैयाकी कलियोंसे शिवजी के अंगराग (विभूति) की नाईं शोभितहै और कहीं अमिलतासोंसे विष्णुजीके वसनके समान प्रभावान्है ॥ ७६ ॥ और कहींपर तमालपत्रोंसे आच्छादित यमराजके समान शोभावान् है और कहीं धातुवों से रंगेहुये अंगोंवाला पर्वत गणेश के शरीरकी नाईं है ॥ ७७ ॥ कहीं हरितालके शरीरवाला पर्वत चतुराननकी नाईं शोभित है और कहीं यह पर्वत छतौंड़के वृक्षों से विष्णुके शरीरकी नाईं शोभित है ॥७८॥ और काकुनि के वृक्षोंसे घिराहुआ कहीं कात्यायनी की शोभा के समान है व केशर

दृश्यन्तेचमनोरमाः॥७४॥ कुटजैःकोविदारैश्च कदम्बैःकुरुवैस्तथा॥ मत्तालिकुलसंजुष्टैर्भूधरोभातिसर्वतः॥७५॥ हराङ्गरागवद्भाति कचित्कुटजकुड्मलैः ॥ कचित्सुवर्णकारैश्च विष्णोर्वाससमप्रभः ॥ ७६ ॥ तमालदलसंछन्नः कचिद्वैवस्वतद्युतिः ॥ कचिद्धातुविलिप्ताङ्गो गणाध्यक्षवपुर्नगः ॥७७॥ चतुर्मुखइवाभाति हरितालवपुःकचित् ॥ कचित्सप्तच्छदैर्विष्णोर्वपुषाभात्ययङ्गिरिः ॥ ७८ ॥ कचित्कात्यायनीप्रख्यः आकुलस्तुप्रियङ्गुभिः ॥ कचित्केशरसंयुक्तैर्वनदावनिभोहिसः॥७९ ॥ वृतस्सपुलकैःस्निग्धैः स्त्रीणामिवपयोधरैः ॥ दुष्प्राप्यैरल्पपुण्यानां कचिदाभातिबिल्वकैः ॥ ८० ॥ सिंहव्याघ्रैर्मृगैर्नागैर्वाराहैर्वानरैस्तथा ॥ कचित्कचिदसौभाति परस्परमनुव्रतैः ॥ ८१ ॥ शृङ्गवांस्त्वमहंबाला कथंवैपर्वतोत्तम ॥ अतस्त्वंमांरुदन्तींच परिणेष्यसिदुर्मते ॥ ८२ ॥ गृहाणवाडवंहस्ते यावत्स्नानंकरोम्यहम् ॥ ८३ ॥ एवमुक्तेसजग्राह तन्नगेन्द्रोपवर्जितम् ॥ कृतस्मरस्तत्संस्पर्शात्क्षणाद्भस्मत्वमागतः ॥ ८४ ॥ ततःप्रभृतितेतस्य पाषाणामृदुताङ्गताः ॥

से संयुत वृक्षों से वह पर्वत कहीं वनकी दवाग्निकी नाईं है ॥ ७९ ॥ और कहींपर, रोमांच संयुत व चिकने और थोड़ी पुण्यवालों को दुर्लभ स्त्रियोंके स्तनों की नाईं बेलों से घिराहुआ वह शोभित है ॥ ८० ॥ और कहीं कहीं आपस में मेलवाले सिंहव्याघ्र, मृग, हाथी, वाराहों व वानरों से यह पर्वत शोभित है ॥ ८१ ॥ तुम पर्वत हो और मैं कन्याहूं इसलिये हे दुर्बुद्धे, पर्वतोत्तम ! रोतीहुई मुझको तुम कैसे ब्याहोगे ॥ ८२ ॥ जबतक मैं स्नान करूं तबतक वड़वानलको हाथमें ग्रहण कीजिये ॥ ८३ ॥ ऐसा कहनेपर नगेन्द्र कृतस्मरने दियेहुये उस वडवानल को ग्रहण कियाऔर उसके स्पर्शसे कृतस्मर उसी क्षण भस्मत्वको प्राप्त हुवा ॥ ८४ ॥ तबसे लगा-

कर उसके वे पत्थल कोमलताको प्राप्तहुये और वे शिल्पियों से सदैव गृह व देवकुल के लिये ग्रहण कियेजाते हैं ॥ ८५ ॥ कृतस्मर को जलाकर फिर वड़वानल को लेकर प्रसन्न रोमोंवाली सरस्वती देवीजी समुद्र के समीप में प्राप्तहोकर स्थितहुईं ॥ ८६ ॥ वहां स्थितहोकर वे महादेवी सरस्वतीजी उस वड़वानल से बोलीं और उस वड़वानल ने भी लहरियों से जातेहुये उस गर्जित समुद्रको देखकर ॥ ८७ ॥ उन सरस्वतीजी से कहा कि हे भद्रे ! यह क्या है कि क्षारसमुद्र मुझ से डरगया उस सरस्वती ने हँसकर वचन कहा कि हे अनल ! तुमसे कौन नहीं डराहै ॥ ८८ ॥ हे महाबल ! जिसलिये देवताओं से यह तुम्हारा भक्ष्य कहागया है

गृहदेवकुलार्थाय गृह्यन्तेशिल्पिभिस्सदा ॥ ८५ ॥ दग्ध्वाकृतस्मरन्देवी पुनरादायवाडवम् ॥ समुद्रस्यसमीपस्था स्थिताहृष्टतनूरुहा ॥८६॥ तत्रस्थासामहादेवी तमाहवडवानलम् ॥ गर्जितंसोपितंदृष्ट्वा प्रसर्पन्तञ्चवीचिभिः ॥८७॥ तामाहकिमिदंभद्रे भीतोमेलवणोदधिः ॥ प्रहस्योवाचसावाक्यं कोनभीतस्तवानल ॥ ८८ ॥ भक्ष्यस्तेविहितोयस्मात्तवदेवैर्महाबल ॥ सतस्यास्तद्वचःश्रुत्वा संप्रहृष्टस्तुपावकः ॥ ८९ ॥ दास्यामितेवरंभद्रे यथेष्टंप्रार्थयस्वनः ॥ तेनैवमुक्तासादेवी वाडवेनाग्निनातदा ॥ ९० ॥ सस्मारकारणात्मानं विष्णुंकमललोचना ॥ दृष्टोसावात्महृत्संस्थस्तयादेवोजनार्दनः ॥ ९१ ॥ स्मृतमात्रस्सरस्वत्या परंत्रिभुवनेश्वरः ॥ ततोदृष्ट्वागतंप्राह सात्मान्तःस्थितमच्युतम् ॥ ९२ ॥ वाडवोयच्छतिवरमहन्तंप्रार्थयामिकम् ॥ ततस्तेनहृदिस्थेन प्रोक्तादेवीसरस्वती ॥ ९३ ॥ प्रार्थनीयोवरोभद्रे सूचीवक्रत्वमा

उसी कारण डरा है उस सरस्वतीजी का वचन सुनकर प्रसन्न होतेहुये अग्निने कहा ॥ ८९ ॥ कि हे भद्रे ! तुमको मैं वरदान दूंगा जैसा प्रियहो वैसा वर हमसे मांगिये उस समय उस वड़वानलसे ऐसा कहीहुई उन सरस्वती देवीजी ने ॥ ९० ॥ कमललोचनोंवाले कारणात्मक विष्णुजी को स्मरण किया और उस सरस्वती ने अपने हृदयमें स्थित स्मरण कियेही त्रिभुवनेश्वर इन विष्णुदेवजी को देखा तदनन्तर अपने हृदयमें स्थित उन आयेहुये अच्युत विष्णुजी को देखकर कहा ॥ ९१ । ९२ ॥ कि वडवानल वरदानको देता है और मैं उससे किस वर को मांगूं तदनन्तर हृदयमें टिकेहुये उन विष्णुजी ने सरस्वती देवीजी से कहा ॥ ९३ ॥ कि हे भद्रे ! तुमसे

आदरपूर्वक सूजी के समान मुख होना वरदान मांगना चाहिये तदनन्तर देवीजीने कहा कि यदि तुम मुझको वरदायक हो ॥ ९४ ॥ तो हे महाबल ! सूजीके समान मुखको कियेहुये तुम जलोंको पियो ऐसा कहने पर उसने सूजीके छिद्रके समानमुख किया ॥ ९५ ॥ और जैसे घड़ीको पूर्ण करनेवाला पात्र होवे वैसेही जलको इसने पिया इसप्रकार देवताओंको भक्षण करने में उद्यत वह वड़वानल ॥ ९६ ॥ हे देवि ! विष्णुजी से उपायपूर्वक प्रीति करके छलागया जो मनुष्य पढ़े जातेहुये इस पुण्यदायक अध्यायको सुनता है ॥ ९७ ॥ वह विष्णुजीके लोकको प्राप्तहोकर उन्हीं के साथ आनन्द करताहै ॥ ९८ ॥ इत्येकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ❀ ॥

दरात् ॥ ततस्त्वभिहितंदेव्या यदिमेत्वंवरप्रदः ॥ ९४ ॥ कृतसूचीमुखोभूत्वा त्वंपिबापोमहाबलः ॥ एवमुक्तेमुखन्तेन सूचीवेधसमंकृतम् ॥ ९५ ॥ घटिकापूरणंयद्वत् पपौतद्वदसौजलम् ॥ एवंसवाडवोवह्निः सुराणांभक्षणोद्यतः ॥ ९६ ॥ विष्णुनावञ्चितोदेवि प्रीतिमाधाययत्नतः ॥ सर्गमेनंनरःपुण्यं वाच्यमानंशृणोतियः ॥ ९७ ॥ सविष्णुलोकमासाद्य तेनैवसहमोदते ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे वडवानलोत्पत्तिर्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❋ ॥

ईश्वर उवाच ॥ सरस्वतीवरंप्राप्य वरिष्ठंवडवानलात् ॥ पुनस्तुसागरेक्षेप्तुमुद्यतासामनस्विनी ॥ १ ॥ देवादेशात्प्रभासस्य पुरतस्संस्थितातदा ॥ समुद्रमाहूयततो वाडवार्पणकाङ्क्षिणी ॥ २ ॥ त्वमादिस्सर्वदेवानां त्वंप्राणाःप्राणिनां सदा ॥ देवादेशाद्गृहाणत्वमागत्यार्णववाडवम् ॥ ३ ॥ एवंसंचिन्तितोदेव्या यदासावम्भसाम्पतिः ॥ तदाजलात्समुत्तीर्य समायातोमहाद्युतिः ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वाविस्मितादेवी दिव्यंविष्णुमिवापरम् ॥ श्यामंकमलपत्राक्षंसागरंसुमनोरमम् ॥ ५ ॥

दो० । सरस्वती वड़वानलहिं फेंक्यो जलधि मँझार । सो बत्तिस अध्याय में वर्णित चरित सुखार ॥ महादेवजी बोले कि वड़वानल से श्रेष्ठ वरदानको पाकर वे मनस्विनी सरस्वतीजी फिर समुद्र में फेंकनेके लिये उद्यत हुईं ॥ १ ॥ तब विष्णुदेवजीकी आज्ञा से प्रभासक्षेत्र के आगे भलीभांति स्थित हुईं वड़वानलको देनेकी इच्छावाली सरस्वतीजीने समुद्रको बुलाकर तदनन्तर कहा ॥ २ ॥ कि सब देवताओंके तुम आदिभूतहो व प्राणियों के सदैव प्राणहो हे समुद्र ! विष्णुदेवजी की आज्ञासे आकर तुम वड़वानल को ग्रहण करो ॥ ३ ॥ जब इसप्रकार देवीजीसे यह समुद्र चिन्तवन कियागया तब जलसे ऊपर निकल कर महाद्युतिवान् समुद्र प्राप्त

हुआ ॥४॥ दूसरे विष्णुजी की नाईं उस दिव्य समुद्रको देखकर सरस्वती देवीजी विस्मयमें प्राप्तहुईं जोकि श्याम व कमल के समान नेत्रोंवाला तथा मनोहर था ॥५॥ और विचित्र मालाओं व भूषणों को धारे तथा विचित्रवसनों व अनुलेपनोंवालाथा और स्त्री रूपवाली स्वरूपवती नदियोंसे घिरा था ॥ ६ ॥ ऐसे समुद्रको देख हर श्वेत मुसक्यानवाली ब्रह्माकी कन्या सरस्वती देवीजी समुद्र से बोलीं ॥ ७ ॥ कि संसार में उपजे हुये सब प्राणियोंके तुम ज्येष्ठहो और जन्मवाले नरोंके तुम जीवन हो इसलिये देवताओं के प्रियकार्य को कीजिये व यहां समीप लायेहुये अग्निको ग्रहण कीजिये ॥ ८ ॥ इसी अवसर में उसने भी अपनी बुद्धि से सब कार्यको वि-

विचित्रमाल्याभरणं चित्रवस्त्रानुलेपनम् ॥ आपगाभिस्स्वरूपाभिः स्त्रीरूपाभिस्समावृतम् ॥ ६ ॥ एवंविधंसमालोक्य सादेवीब्रह्मणस्सुता ॥ सरस्वतीजलनिधिमुवाचेदंशुचिस्मिता ॥ ७ ॥ त्वमग्रजस्सर्वभवोद्भवानां त्वंजीवनंजन्मवतान्न राणाम् ॥ तस्मात्सुराणांकुरुचेष्टकार्यं वह्निंगृहाणत्वमिहोपनीतम् ॥ ८ ॥ अत्रान्तरेसोपिविमृश्यसर्वं कार्यंस्वबुद्ध्याकि मिहोपपन्नम् ॥ कृत्वानलस्यग्रहणंमयेदं कार्यंसुराणांविहितंभवेद्धि ॥ ९ ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य ग्रहणंरुचितन्तथा ॥ वडवाग्निनासमुद्रस्य सुरपीडाकृतायदा ॥ १० ॥ तदातेनपुरःस्थेनदेवीसाभिहिताभृशम् ॥ वाडवंसम्प्रयच्छैनं सुरशत्रुं सरस्वति ॥ ११ ॥ ततस्तयाप्रणम्याशु पितामहपुरस्सरान् ॥ वारुणांश्चारुचित्राङ्गान् सरस्वत्यादिविस्थितान् ॥ १२ ॥ पुनश्चकरसंस्थोसौ वाडवोऽभिहितस्तया ॥ त्वमापोभक्षयस्वेति घृताहुतिमिवानलः ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वासमुद्रस्य त

चार कर कि इसमें क्या योग्य है अग्नि का ग्रहण कर मुझ से देवतों का कार्यविहित होगा ॥ ९ ॥ इसप्रकार चिन्तन करते हुये उस वड़वानल का ग्रहण अच्छा लगा जब वड़वानल ने समुद्र के देवताओं को पीड़ा दिया ॥ १० ॥ तब आगे खड़ेहुये उस समुद्र ने उन सरस्वती देवीजी से बहुत ही कहा कि हे सरस्वति ! इस देवताओं के शत्रुरूपी वड़वानल को लीजिये ॥ ११ ॥ तदनन्तर उस सरस्वती ने सुन्दर व विचित्र अंगोंवाले तथा आकाश में स्थित ब्रह्मादिक वा-रुण देवताओं को शीघ्रही प्रणाम कर ॥ १२ ॥ फिर उसने हाथमें स्थित इस वड़वानल से यह कहा कि हे अनल ! घृतकी आहुति की नाईं तुम जलों को भक्षण

करो ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर उस समय सरस्वती देवीजी ने देवताओंकी आज्ञा से बड़े बलवान् वड़वानल को समुद्र को अर्पण किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे देवि ! उसके अर्पण करने पर सरस्वतीजी नदी होकर नारदेश्वर के मार्ग से समुद्र में पैठगई ॥ १५ ॥ दैत्यसूदनके समीप क्षारसमुद्र में अर्घको देकर दैत्यसूदन के पश्चिम में अर्घेश्वरजी को थापकर ॥ १६ ॥ उसके उपरान्त वह पांच सोतोंवाली महानदी समुद्र में पैठगई फिर स्वरूपही से वह पुण्यदायिनी नदी प्रभासक्षेत्र के मेल से व समुद्र के संगम से अत्यन्त पुण्यरूपिणी हुई और समुद्रने भी सरस्वतीसे वड़वानल को पाकर ॥ १७ । १८ ॥ विचार किया कि मैं इसको कहां फेंकूं जैसे

दादेव्यासमर्पितः ॥ वाडवोग्निस्सरस्वत्या सुरादेशान्महाबलः ॥ १४ ॥ ततस्समर्पितेतस्मिन्नदीभूत्वासरस्वती ॥ प्रविष्टासागरेदेवि नारदेश्वरमार्गतः ॥ १५ ॥ दैत्यसूदनसान्निध्ये दत्त्वार्घ्यंलवणाम्भसि ॥ अर्घेश्वरंप्रतिष्ठाप्य दैत्यसूदनपश्चिमे ॥ १६ ॥ ततोऽब्धिसम्प्रविष्टासा पञ्चस्रोतामहानदी ॥ स्वरूपेणैवसापुण्या पुनःपुण्यतमाभवत् ॥ १७॥ प्रभासक्षेत्रसम्पर्कात् समुद्रस्यचसङ्गमात् ॥ सागरोपिसमासाद्य सरस्वत्यातुवाडवम् ॥ १८ ॥ निर्धनेनधनंप्राप्याचिन्तयत्क्विपाम्यहम् ॥ सतेनकरसंस्थेन दीप्यमानेनसागरः ॥ १९ ॥ वह्निनाशिखरस्थेन भातिमेरुरिवापरः ॥ तन्तथाविधमालोक्य तत्रयेजलचारिणः ॥ २० ॥ यादोगणास्तेमुमुचुर्दाहभीतामहास्वनम् ॥ तच्छ्रुत्वाभैरवंशब्दमायातोदैत्यसूदनः ॥ २१ ॥ आहयादोगणान्सर्वान्माभैष्टसुमहाबलाः ॥ यस्मादनेनप्रथमा आपोभक्ष्यास्तुतत्रगाः ॥ २२ ॥ प्राणिभिस्तुनभोक्तव्यंभवद्भिस्तुममाज्ञया ॥ एवमुक्तास्तुकृष्णेन तूष्णींभूताजलेचराः ॥ २३ ॥ तूष्णींभूतेषुसर्वेषु या

कि निर्धनी धनको पाकर चिन्तवन करै हाथ में स्थित उस प्रकाशमान अग्नि से वह समुद्र ॥ १९ ॥ शिखर पै स्थित अग्निसे दूसरे सुमेरुकी नाईं शोभित हुआ वहांपर उस वैसे अग्निको देखकर जो जलचारी जन्तु थे ॥ २० ॥ जलने से डरेहुये उन जलजन्तुवोंने बड़ा शब्द किया उस भयंकर शब्दको सुनकर दैत्यनाशक विष्णुजी आये ॥ २१ ॥ और सब जलजन्तुवों से बोले कि हे महाबलो ! मतडरिये जिसलिये इससे उस समुद्र में प्राप्त पहलेवाले जलभक्षण करने योग्य हैं ॥ २२ ॥ इसलिये मेरी आज्ञा से तुम सब प्राणियों को न डरना चाहिये कृष्णजी से ऐसा कहेहुये जलचर चुप होरहे ॥ २३ ॥ सब जलजन्तुवों के चुप होजाने पर

जलजेश्वर यानी लक्ष्मी के पति विष्णुजीने समुद्र से कहा कि तुम जलोंके मध्य में वड़वानल को फेंक दो ॥ २४ ॥ उस समुद्र ने इस वड़वानल को गहरे जलमें
फेंक दिया और उस जलको मुख से पीताहुआ महाबलवान् वड़वानल वर्त्तमान है ॥ २५ ॥ उसके श्वास के पवन से ऊपर फेंका हुआ वह जल समुद्र के बाहर
बिन मर्यादवाली स्त्री की नाईं इधर उधर दौड़ता है ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर हे देवि ! कुछसमय बीतने पर जल धीरे २ सूखने लगा तदनन्तर नाश होते हुये उन
जलोंको देखकर समुद्रने ॥ २७ ॥ कमललोचन (विष्णु) जी से ऐसा कहा कि तुम जल को अविनाशी कीजिये क्योंकि हे जनार्दनजी ! यह वड़वानल जलको खा-

दस्सुजलजेश्वरः ॥ प्राहाच्युतःप्रक्षिपत्वमपांमध्येतुवाडवम् ॥ २४ ॥ आगाधेम्भसितेनासौ निक्षिप्तोवडवानलः ॥ वद
नेनपिबन्नास्ते तज्जलंसुमहाबलः ॥ २५ ॥ तस्योच्छ्वासानिलोद्भूतं तत्तोयंसागराद्बहिः ॥ निर्मर्यादेवयुवतिरितश्चेतश्चधा
वति ॥ २६ ॥ अथकालेगतेदेवि शुष्यच्चाम्बुशनैश्शनैः ॥ विदित्वाक्षीयमाणास्ता आपोजलनिधिस्ततः ॥ २७ ॥
आहैवंपुण्डरीकाक्षमापःकुरुत्वमक्षयाः ॥ भक्षयिष्यत्यपोवह्निर्वाडवोयंजनार्दन ॥ २८ ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्य स
मुद्रस्यविभीषणम् ॥ कृतंतदक्षयंतोयमात्मनोभयनाशनम् ॥ २९ ॥ ज्ञात्वासुरास्सर्वमिदंविचेष्टितं कृत्यानलस्यास्य
निबद्धवञ्चनम् ॥ प्रलोभनंतेचतदासुरद्विषः प्रपूजिरेकेशवमन्त्रमुत्तमम् ॥ ३० ॥ एवंसरस्वतीप्राप्ता प्रभासंक्षेत्रमुत्तम
म् ॥ ब्रह्मलोकान्महादेवि सर्वपापप्रणाशिनी ॥ ३१ ॥ सोमेशाद्दक्षिणाग्नेय्यां सागरस्यसमीपतः ॥ ३२ ॥ संस्थितातु
महादेवि वडवानलधारिणी ॥ स्नात्वाग्नितीर्थेपूर्वंतांपूजयेद्विधिनानरः ॥ ३३ ॥ दम्पतीभोजनंतत्र परिधानंसकंचुक

वैगा ॥ २८ ॥ उस समुद्र के इस भयानक वचन को सुनकर अपने भय को नाशनेवाले उस जलको अक्षय किया ॥ २९ ॥ सब देवताओं के शत्रुरूप इस कृत्यानल
के बंधेहुये वंचना (छल) वाले इस सब कर्मको जानकर उन देवताओंने इस विषयमें प्रलोभनरूपी विष्णुजी के उत्तम मन्त्र (सम्मति) का पूजन किया ॥ ३० ॥
इसप्रकार हे महादेवि ! उत्तम प्रभासक्षेत्रमें सब पातकों को नाशनेवाली सरस्वतीजी ब्रह्मलोक से प्राप्त हुई हैं ॥ ३१ ॥ समुद्र के समीप सोमेशजी से दक्षिण
व आग्नेयदिशा में ॥ ३२ ॥ हे महादेवि ! वड़वानल को धारनेवाली सरस्वतीजी भलीभांति स्थित हैं पहले अग्नितीर्थ में नहाकर मनुष्य विधिपूर्वक उन सर-

स्वतीजीको पूजै ॥ ३३ ॥ और वहां स्त्री पुरुष को भोजन कराकर व जामा समेत परिधान (पहनने के वस्त्रों) को देकर तदनन्तर जटाधारी महादेवजीको पूजै ॥ ३४ ॥ हे देवि ! दधीचि के पुत्र से उपजे हुये महात्मा वड़वानल का यह चरित्र पहले चाक्षुष मन्वन्तर में हुआ है ॥ ३५ ॥ व हे महादेवि ! फिर वैवस्वत मन्वन्तर प्राप्त होनेपर वड़वानल महाद्विज भार्गववंश में पैदा हुआ है ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त देवताओं की माता सरस्वतीजी से फेंकाहुआ महाप्रभावान् वड़वानल तब तक जलों के मध्य में स्थित रहैगा जब तक कि मन्वन्तर की अवधि है ॥ ३७ ॥ हे देवि ! सरस्वतीजी से उपजा हुआ यह चरित तुमसे कहागया सुना हुआ जो

म् ॥ दत्त्वाततोमहादेवं पूजयेच्चकपर्दिनम् ॥ ३४ ॥ इतिवृत्तंपुरादेवि चाक्षुषस्यान्तरेभवत् ॥ दधीचेःसुतजातस्य वाडव स्यमहात्मनः ॥ ३५ ॥ अस्मिन्पुनर्महादेवि प्राप्तेवैवस्वतेन्तरे ॥ और्वस्तुभार्गववंशे समुत्पन्नोमहाद्विजः ॥३६॥ संक्षिप्तो थसरस्वत्या देवमात्रामहाप्रभः ॥ तावस्थास्यत्यपांगर्भे यावन्मन्वन्तरावधिः ॥ ३७ ॥ इतिवेकथितन्देवि सरस्वत्यास मुद्भवम् ॥ श्रुतंपापहरंनृणां कीर्तिदंपुण्यवर्द्धनम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे रुद्रप्रोक्तसंहितायां सरस्व त्यावर्णनन्नामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ भगवन्भार्गववंशे यस्त्वौर्वःकथितस्त्वया ॥ वैवस्वतेन्तरेचास्मिन् तस्योत्पत्तिंवदप्रभो ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ब्राह्मणानिहतायेतु क्षत्रियैरत्नकारणात् ॥ क्षयंनीतास्तुतेसर्वे सपुत्रागर्भमादितः ॥ २ ॥ म्रियमाणेषुसर्वेषु ए

कि मनुष्यों के पातकों का विनाशक, यशदायक व पुण्य को बढ़ाने वाला है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुद्रप्रोक्तसंहितायांसरस्वत्यावर्णनंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो॰ सरस्वती अरु जलधिके संगम कर परभाव । तेंतिसयें अध्यायमें कह्योचरित्र सुहाव ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे भगवन् ! भृगुवंशमें तुमने जिस वड़वानल को कहा है हे प्रभो ! इस वैवस्वत मन्वन्तर में उसकी उत्पत्ति को कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि रत्नों के लिये जिन क्षत्रियों ने ब्राह्मणों को मारा है गर्भ से

कास्त्रीसमतिष्ठत ॥ तयातुरक्षितोगर्भं ऊर्वोर्देशेनिधायच ॥ ३ ॥ अन्यासांचैवनारीणां सर्वासामपिभामिनि ॥ गर्भानि पातितास्तैस्तु द्रव्यार्थंभार्गवस्तुच ॥ ४ ॥ कालान्तरेततोभित्त्वा ऊरुदेशंमहाप्रभुः ॥ निर्गतस्तम्भितशिरा ज्वलदा स्योतिभीषणः ॥ ५ ॥ तद्वैरंहृदिसन्धाय ददाहधरणीतलम् ॥ तमिन्द्रःप्लावयामास सुवृष्ट्यावरवर्णिनि ॥ ६ ॥ नश शाकयदानेतुं तदासौयत्नवान्स्थितः ॥ ततोदेवास्सगन्धर्वा ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ ७ ॥ अभवन्भयसंत्रस्तास्सर्वेप्राञ्जल यःस्थिताः ॥ देवा ऊचुः ॥ भगवन्भार्गवेवंशे जातःकोपिमहाद्युतिः ॥ ८ ॥ अग्निरूपेणतत्सर्वं ददाहवसुधातलम् ॥ कृतो यत्नःपुरास्माभिस्तद्विनाशायसत्तम ॥ ९ ॥ जलेनवृद्धिमायाति ततोनोभयमागतम् ॥ विनष्टेभूतलेदेव अग्निष्टोमादि काःक्रियाः ॥ १० ॥ उच्छिद्यन्तेततोस्माकं नाशोनूनंभविष्यति ॥ तस्माद्यत्नंकुरुविभो त्रैलोक्यहितकाम्यया ॥ ११ ॥ ततो ब्रह्मासुरैस्सार्द्धं भार्गवैश्चमहर्षिभिः ॥ आगत्यचाब्रवीदौर्वं किमर्थंदहसिक्षितिम् ॥ १२ ॥ विरामःक्रियतांसद्यो ममार्थंचद्वि

लगाकर वे सब पुत्रों समेत नाशको प्राप्तहुये ॥ २ ॥ सबके मरनेपर एक स्त्री स्थितरही उसने जंघस्थलमें गर्भ को धरकर रक्षाकिया ॥ ३ ॥ हे भामिनि ! अन्य सब स्त्रियों के भी गर्भ द्रव्य के लिये उन क्षत्रियों से गिराये गये तदनन्तर स्तंभितमस्तकवाले व ज्वलित आननवाले तथा अतिभयंकर महाप्रभु भार्गवजी अन्य समय में जंघस्थल को फाड़कर निकले ॥ ४ । ५ ॥ व उस वैरको हृदयमें धरकर उन्होंने पृथ्वी को जलाया और हे वरवर्णिनि ! इन्द्रजीने बड़ी वृष्टि से उसको डुबाया ॥ ६ और लेजाने के लिये जब न समर्थ हुये तब ये यत्नवान् होकर स्थितहुये तदनन्तर गन्धर्वों समेत देवता ब्रह्माकी शरणमें गये ॥ ७ ॥ और सब भयभीत हुये व हाथों को जोड़कर खड़ेहुये देवता बोले कि हे भगवन् ! भृगुवंश में कोई महाछविवान् पैदा हुआ है ॥ ८ ॥ उसने अग्नि के रूपसे सब पृथ्वीतल को जलादिया हे सत्तम ! पहले हम सबों ने उसके नाशके लिये यत्न कियाहै ॥ ९ ॥ परन्तु वह जल से वृद्धि को प्राप्त होताहै उसीकारण हमलोगों को भय प्राप्तहुआ हे देव ! पृथ्वी नष्ट होनेपर अग्निष्टोमादिक कर्म ॥ १० ॥ नाश होजाते हैं और उससे निश्चय कर हमलोगों का नाश होगा इसलिये हे विभो ! त्रिलोक के हितकी कामना से यत्न कीजिये ॥ ११ ॥ तदनन्तर देवताओं समेत व भार्गव महर्षियों सहित ब्रह्माजी आकर और्वजी से बोले कि किसलिये पृथ्वी को जलाते हो ॥ १२ ॥

हे द्विजोत्तम ! मेरे लिये शीघ्रही विराम (शान्त) कीजिये भार्गवजी बोले कि हेसत्तम ! तुम्हारे वचन से मैं निवृत्त होताहूं ॥ १३ ॥ हे विभो ! मैंने इस अग्निको पैदा किया है वह हे विभो ! तुम्हारी आज्ञा से जिसप्रकार समुद्र के मध्य में जावै वैसाही न्याय किया जावै ॥ १४ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी ने अपनी कन्या सरस्वती देवीजीको बुलाकर कहाकि हे पुत्रि ! तुम अग्निको लेकर समुद्रको जावो ॥ १५ ॥ हे महाप्रभे ! मेरा वचन अन्यथा न करना चाहिये शीघ्रही जाइये सरस्वती बोलीं कि हे देव ! तुम्हारे वचन से मैं अभी निरसंदेह जाती हूं ॥ १६ ॥ ऐसा कहनेपर बहुत अच्छा ऐसा ब्रह्मा ने उस उत्तम आचरणवाली सरस्वतीजीसे कहा तदनन्तर

जोत्तम ॥ भार्गव उवाच ॥ एषएवनिवृत्तोहं तववाक्येनसत्तम ॥ १३ ॥ एषवह्निर्मयोत्सृष्टः सविभोतवशासनात् ॥ यथाग च्छेत्समुद्रान्तं तथानीतिर्विधीयताम् ॥ १४ ॥ समाहूयततोदेवीं स्वसुतांपद्मसम्भवः ॥ उवाचपुत्रिगच्छत्वं गृहीत्वाग्निम होदधिम् ॥ १५ ॥ मद्वाक्यंनान्यथाकार्यं गच्छशीघ्रंमहाप्रभे ॥ सरस्वती उवाच ॥ एषास्मिप्रास्थितादेव तववाक्याद संशयम् ॥ १६ ॥ इत्युक्तेसाधुसाध्वीति ब्रह्मणासमुदाहृता ॥ ततोभिमन्त्रितंवह्निं क्षिप्त्वाकुम्भेहिरण्मये ॥ १७ ॥ प्रायच्छत सरस्वत्यै स्वयंब्रह्मापितामहः ॥ आशिषोविविधादत्त्वा प्रोवाचेदंपुनःपुनः ॥ १८ ॥ गच्छपुत्रिनसन्तापस्त्वयाकार्यःक थञ्चन ॥ अरिष्टंव्रजपंथानं मासन्तुपरिपन्थिनः ॥ १९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तायदातेन ब्रह्मणाथसरस्वती ॥ हि मवन्तंगिरिम्प्राप्य पिप्पलादाश्रमात्तदा ॥ २० ॥ उद्भूतासातदादेवी अधस्तात्प्लक्षमूलतः ॥ तत्कोटरकुटीकोटौ प्रवि ष्टानांद्विजन्मनाम् ॥ २१ ॥ श्रूयन्तेवेदनिर्घोषाः सारसाराक्तचेतसाम् ॥ विष्णुरास्तेतत्रदेवो देवानांप्रवरोगुरुः ॥ २२ ॥

अभिमंत्रित अग्नि को सुवर्णमय कुंभ में डालकर ॥ १७ ॥ आपही पितामह ब्रह्माजीने सरस्वतीजी के लिये दिया और अनेकभांति के आशीर्वादों को देकर बार २ यह कहा ॥ १८ ॥ कि हे कन्ये ! जाइये तुमको किसीप्रकार सन्ताप न करनाचाहिये उत्तमता से मार्ग को जावो व शत्रु न होवें ॥ १९ ॥ महादेवजी बोले कि जब उन ब्रह्माजी ने इसप्रकार सरस्वतीजी से कहा तब पिप्पलाश्रम से हिमाचलपै प्राप्त होकर ॥ २० ॥ उस समय पकरिया की जड़से नीचे वे सरस्वती देवीजी उत्पन्न हुईं और उसके खोड़र की कुटीरूपी कोटिमें पैठे हुये व सारांश तथा बिनसारांशमें प्रकट चित्तवाले ब्राह्मणों के वेदशब्द वहां सुन पड़ते हैं और देवताओं

के मध्य में श्रेष्ठ व गुरु विष्णुदेवजी वहां वर्तमान हैं ॥ २१ । २२ ॥ तदनन्तर उसस्थान से सरस्वती देवीजी पश्चिम दिशाके सामने गई और छिपकर पालाके मध्य में प्राप्त केदार क्षेत्रको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ और केदारके आगे स्थित पर्वत के शिखरकी भलीभांति स्तुतिकर तदनन्तर शिर पै स्थित अग्निसे जलती हुई सरस्वती जी ॥२४॥ गजगामिनी होकर पृथ्वीको फाड़कर उसके नीचे पैठगई तब अन्तर्द्धानमार्गसे वे पश्चिम मुखवाली होकर प्रवृत्त हुई ॥ २५ ॥ व पापभूमि को नांघकर पृथ्वीको फोड़कर जहां निकलीं वहां नाम से गंधर्व संज्ञक कूप हुआ ॥ २६ ॥ औरउस कूपसे वह महानदी फिर देखने योग्य हुई मति, स्मृति, प्रज्ञा, मेधा, बुद्धि,

तस्मात्स्थानात्ततोदेवी प्रतीच्याभिमुखंययौ ॥ अन्तर्द्धानेनसम्प्राप्ता केदारंहिममध्यगम् ॥ २३ ॥ संस्तूयचगिरेःशृङ्गं केदारस्यपुरःस्थितम् ॥ ततोग्निनाशिरस्थेन दह्यमानासरस्वती ॥ २४ ॥ भूमिंविदार्यतस्याधः प्रविष्टागजगामिनी ॥ तदान्तर्द्धानमार्गेण प्रवृत्तापश्चिमामुखी ॥ २५ ॥ पापभूमिमतिक्रम्य भूमिंभित्त्वातुनिर्गता ॥ तत्रकूपंसमभवन्नाम्नागन्धर्वसंज्ञितम् ॥ २६ ॥ तस्मात्कूपात्पुनर्दृश्या साबभूवमहानदी ॥ मतिःस्मृतिस्तथाप्रज्ञा मेधाबुद्धिर्गिराधरा ॥ २७ ॥ उपासिकास्सरस्वत्या षडेताःप्रस्थितास्तदा ॥ पुनःप्रवृत्तासातस्मादुद्भेदात्पश्चिमामुखी ॥ २८ ॥ भूतेश्वरंसमायाता सिद्धोयत्रमहामुनिः ॥ भूतीश्वरंसमीपस्थं ततःप्राप्तामनोरमम् ॥२९॥ तस्यदक्षिणदिक्संस्थं रुद्रकोट्युपलक्षितम् ॥ श्रीकण्ठदेशंविख्यातं गतासर्वौषधीयुतम् ॥ ३० ॥ तस्मात्पुण्यतमाद्देशाच्छ्रीकण्ठात्सामनस्विनी ॥ सम्प्राप्तावह्निना सार्द्धं कुरुक्षेत्रंसरस्वती॥३१॥पुनस्तस्मात्कुरुक्षेत्राद्विराटनगरस्यसा॥समुद्भूतासमीपस्था अन्तर्द्धानान्मनोरमा॥३२॥

गिरा व धरा ॥ २७ ॥ ये छः सरस्वतीजी की उपासना करनेवाली उस समय चलती भई फिर वे सरस्वतीजी उस उद्भेद स्थान से पश्चिम मुखी प्रवृत्त हुई ॥ २८ ॥ और भूतेश्वरजी के यहां आई जहां कि सिद्ध महामुनि हैं तदनन्तर समीपही स्थित मनोहर भूतेश्वर को प्राप्त हुई ॥ २९ ॥ और उसके दक्षिणदिशा में स्थित रुद्रकोटि से उपलक्षित व सब औषधियों से संयुक्त प्रसिद्ध श्रीकंठ देशको गई ॥ ३० ॥ और उस अत्यन्त पवित्र स्थान श्रीकंठजी से वे मनस्विनी सरस्वतीजी [illegible] समेत कुरुक्षेत्र को प्राप्तहुई ॥ ३१ ॥ फिर वे सुन्दरी सरस्वतीजी अन्तर्धान से उत्पन्न होकर उस कुरुक्षेत्र से विराट नगर के समीप में स्थित हुई ॥ ३२ ॥

और जहां गोपायन पर्वत है वहां पर वे फिर ऊपर निकलीं जहां कि श्रीकृष्णजीने उन पाण्डुपुत्रों को छिपाया है ॥ ३३ ॥ व अपने कर्मोंको करतेहुये जिनको कोई नहीं देखा है वहांपर वे महापातकों को नाशनेवाली सरस्वती देवी कुण्ड में स्थितहुई हैं ॥ ३४ ॥ फिर गोपायन से सरस्वती देवीजी उत्तम क्षेत्र में प्राप्त हुई और वहां खर्जूरीवन में प्राप्त वे सरस्वतीजी नन्दा नामवाली हुई हैं ॥ ३५ ॥ फिर सरस्वती देवीजी उस खर्जूरसंज्ञक वन से सुमेरुगिरि के पाद में आश्रित होकर मार्कण्डजी के आश्रम में आई ॥ ३६ ॥ जिस मेरुपादतीर्थ में मार्कण्डकतीर्थ आश्रित है उससे फिर सरस्वतीजी अर्बुदारण्य में आश्रितहुई ॥ ३७ ॥ और उत्तम मार्कण्डेयजी

गोपायनोगिरिर्यत्र तत्रसापुनरुद्गता ॥ गोपायिता केशवेन यत्रते पाण्डुनन्दनाः ॥ ३३ ॥ कुर्वन्तःस्वानि कर्माणि नकैश्चिदुपलक्षिताः ॥ तत्रकुण्डेस्थिता देवी महापातकनाशिनी ॥ ३४ ॥ पुनर्गोपायनाद्देवी क्षेत्रंप्राप्ताच शोभनम् ॥ खर्ज्जूरीवनमापन्ना नन्दानाम्नीतितत्रसा ॥ ३५ ॥ सरस्वतीपुनस्तस्माद्वनात्खर्जूरसंज्ञितात् ॥ मेरुपादं समाश्रित्य मार्कण्डाश्रममागता ॥ ३६ ॥ यत्रमार्कण्डकंतीर्थं मेरुपादेसमाश्रितम् ॥ सरस्वतीपुनस्तस्मादर्बुदारण्य माश्रिता ॥ ३७ ॥ गतावनवटंरम्यं मार्कण्डेयाश्रमाच्छुभात् ॥ तपस्तप्तंपुरायत्र वसिष्ठेनमहात्मना ॥ ३८ ॥ तस्माद्व टवनात्पुण्यादुदुम्बरवनङ्गता ॥ मेरुपादेचतत्रैव तण्डिर्यत्रातपत्तपः ॥ ३९ ॥ उदुम्बरवनात्तस्मात्पुनर्देवीसरस्व ती ॥ अन्तर्द्धानेनशिखरमन्यत्प्राप्तामहानदी ॥ ४० ॥ मेरुपादन्तुवसुमत्सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ भिन्नाञ्जनचयाकारंगो लाङ्गूलमितिस्मृतम् ॥ ४१ ॥ स्थानंमनोरमंतस्मादुद्गताचसुमध्यमा ॥ वंसस्तम्बात्सुविपुलात्प्रवृत्तादक्षिणामुखी ॥ ४२ ॥

के आश्रम से वनवट नामक सुन्दर स्थानको गई जहांपर पहले महात्मा वशिष्ठजीने तप किया है ॥ ३८ ॥ और उसपवित्र वटवन से सरस्वतीजी उदुम्बरवन को गई और वहीं मेरुपाद में प्राप्त हुई जहां कि तंडिने तपस्या किया है ॥ ३९ ॥ फिर उस उदुंबरवन से महानदी सरस्वती देवीजी अन्तर्द्धान से अन्य शिखर पै प्राप्त हुई ॥ ४० ॥ कटेहुये अंजन की राशि के समान गोलांगूल ऐसा कहा हुआ मेरुपाद रत्नवान् व देवताओं तथा सिद्धोंसे सेवित है ॥ ४१ ॥ और उत्तम कटि

वाली सरस्वतीजी उस स्थान से मनोहर स्थान में प्राप्त हुई व बड़ेभारी वेसरतव से दक्षिणमुखी प्रवृत्त हुई ॥ ४२ ॥ वहां नतोन्नत तटा उन सरस्वतीजी का नामस्थित हुआ व तब से लगाकर वे सरस्वती देवी प्राणियों के ऊपर दया से अन्तर्द्धान को छोड़कर उत्तम प्रकाशपूर्वक प्रकट स्थितहुई उसके सुन्दर किनारों पै करोड़ों तीर्थ हैं ॥ ४३ । ४४ ॥ और उन सब तीर्थों में सरस्वतीजी धर्म का कारण हैं व इस रुद्रावर्त्त मार्ग में पहला तीर्थ श्रेष्ठ कहागया है ॥ ४५ ॥ तबसे लगा-कर वह नाम से महाप्रभावान् कोटितीर्थ है और फिर वह अन्य धारेश्वर तीर्थ कहा गयाहै ॥ ४६ ॥ फिर धारेश्वरसे अन्य गंगोद्भिद ऐसा तीर्थ कहागयाहै व जहांपर

नतोन्नततटातत्र तत्समाख्याऽव्यवस्थिता ॥ ततःप्रभृतिसादेवी सुप्रभंप्रकटास्थिता ॥ ४३ ॥ अन्तर्द्धानंपरित्यज्य प्राणिनामनुकम्पया ॥ तस्यास्तटेषुरम्येषु सन्तितीर्थानिकोटिशः ॥ ४४ ॥ तेषुतीर्थेषुसर्वेषु धर्महेतुस्सरस्वती ॥ रुद्रावर्तेतुमार्गेस्मिन् प्रवरंप्रथमंस्मृतम् ॥ ४५ ॥ तदाप्रभृतिनाम्नातु कोटितीर्थमहाप्रभम् ॥ तत्तुतीर्थंपुनस्त्वन्यत्तीर्थंधारेश्वरंस्मृतम् ॥ ४६ ॥ धारेश्वरात्पुनश्चान्यद्गङ्गोद्भिदमितिस्मृतम् ॥ सारस्वतंतथागाङ्गं यत्रैकंसंस्थितंजलम् ॥ ४७ ॥ तस्मादन्यत्परंकुण्डं मातृतीर्थमहोदयम् ॥ तीर्थञ्चैवमहापुण्यं सर्वपापहरंपरम् ॥ ४८ ॥ मातृतीर्थात्पुनस्तस्मान्नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ तीर्थन्तुनरकन्नाम नरकौघभयापहम् ॥ ४९ ॥ ततस्तस्मात्तुनरकात्तीर्थमन्यत्पुनःस्थितम् ॥ सङ्गमेश्वरनाम्नातु प्रसिद्धंतन्महीतले ॥ ५० ॥ ततस्तस्मात्पुनश्चान्यत्तीर्थंकोटीश्वराह्वयम् ॥ ततस्तस्मान्महादेवि शङ्कुकुण्डेश्वरंस्मृतम् ॥ ५१ ॥ तीर्थंसरस्वतीतीरे तस्मिन्सिद्धेश्वरंस्मृतम् ॥ सिद्धेश्वरात्पुनस्तस्मात्प्रद्

सरस्वतीजी का और गंगाजीका जल एकमें स्थितहै ॥ ४७ ॥ उससे अन्य उत्तम कुंड मातृतीर्थ नामक बड़ा ऐश्वर्यवान् है वह महापुण्यवान् तीर्थ समस्त पातकों का नाशक व श्रेष्ठहै ॥ ४८ ॥ फिर मातृतीर्थ से थोड़ीही दूर पै स्थित नरक नामक तीर्थ नरकों के समूहोंको नाश करनेवालाहै ॥ ४९ ॥ तदनन्तर उस नरक तीर्थ से फिर अन्य जो तीर्थ स्थितहै वह पृथ्वीमें संगमेश्वर नामक प्रसिद्धहै ॥ ५० ॥ तदनन्तर उस तीर्थसे फिर अन्य कोटीश्वर नामक तीर्थहै उसके उपरान्त हे महादेवि ! शंकुकुण्डेश्वर नामक

तीर्थ कहागया है ॥ ५१ ॥ और उस सरस्वतीजीके किनारेपर सिद्धेश्वर तीर्थ कहागयाहै फिर उस सिद्धेश्वर तीर्थ से सरस्वतीजी पश्चिममुख होकर प्रवृत्त हुई ॥ ५२ ॥ और पश्चिम समुद्रको जानेके लिये उन सरस्वतीजी ने पूर्वमुख स्थितहोकर सखीको स्मरणकरके रोदनकिया कि हा गंगे ! तुम्हारे विना ॥ ५३ ॥ मन्दभागिनी मैं बन्धुओंसे रहित होकर अकेले कहांजाऊंगी तदनन्तर रोतीहुई व शोकसे दुबली उन सरस्वतीजीको जानकर श्रीगंगाजी ॥ ५४ ॥ करोड़ों तीर्थोंसमेत शीघ्रही स्वर्गसे भली भाति आई तदनन्तर दुःखको छोड़कर वहां प्राची सरस्वतीजी ॥ ५५॥ इसप्रकार सब देवगणोंसमेत वहां स्थितहुई वहांपर शुद्ध वटनामक पितामहजीका तीर्थ कहागया

त्तापश्चिमामुखी ॥ ५२ ॥ पश्चिमंसागरंगन्तुं सखींस्मृत्वारुरोदसा ॥ स्थित्वापूर्वमुखीदेवी हागङ्गेतिविनात्वया ॥ ५३ ॥ एकाकिनीमन्दभाग्या क्वगमिष्याम्यबान्धवा ॥ विज्ञायतांततोगङ्गा रुदन्तींशोककर्शिताम् ॥ ५४ ॥ शीघ्रंस्वर्गात्समायाता तीर्थानांकोटिभिस्सह ॥ ततोदुःखंपरित्यज्य तत्रप्राचीसरस्वती ॥ ५५ ॥ सर्वदेवगणैर्युक्ता एवंतत्रास्थिताभवत् ॥ तत्रशुद्धवटन्नाम तीर्थंपैतामहंस्मृतम् ॥ ५६ ॥ वटेश्वरस्यपुरतः पापक्षयकरंपरम् ॥ त्रिकालंयत्ररुद्रस्तु समागत्यव्यवस्थितः ॥ ५७ ॥ तन्महालयमित्युक्तं स्थानंतस्यमहात्मनः ॥ पिण्डतारकमित्यन्यत्प्राचीनंतीर्थमुत्तमम् ॥ ५८ ॥ कुम्भकुक्षिगिरिस्थंतत् पित्र्येकर्मणिसिद्धिदम् ॥ प्राचीनेश्वरदेवस्य पुरोभूतंप्रतिष्ठितम् ॥ ५९ ॥ प्राचीसरस्वतीयत्र तत्रकिंमृग्यतेपरम् ॥ निवृत्तेभारतेयुद्धे तत्रतीर्थेकिरीटिना ॥ ६० ॥ प्रायश्चित्तंपुराचीर्णं विष्णुनाप्रेरितात्मना ॥ तेनतस्माद्विनिर्मुक्तः पातकात्पूर्वसञ्चितात् ॥ ६१ ॥ नरतीर्थंततःख्यातं तत्रपापभयापहम् ॥ नरतीर्थादन्यतीर्थं बालखिल्ये

है ॥ ५६ ॥ वह उत्तम तीर्थ वटेश्वरजीके आगे पापोंका क्षय कारकहै जहां कि सदा शिवजी त्रिकाल आकर स्थितहोते हैं ॥ ५७ ॥ उन महात्माका वह महालय ऐसा स्थान कहागयाहै और अन्य पिंडतारक ऐसा उत्तम प्राचीन तीर्थ है ॥ ५८ ॥ कुंभ कुक्षिनामक पर्वत में स्थित वह पितरोंके कर्म में सिद्धिदायक है और प्राचीनेश्वर देवजी के आगे होकर स्थित है ॥ ५९ ॥ जहा प्राची सरस्वतीजी हैं वहां अन्य क्या ढूंढ़ाजाताहै महाभारत युद्ध निवृत्त होने पर वहां अर्जुनने तीर्थको किया है ॥६०॥ विष्णुजीसे प्रेरित चित्तवाले उन अर्जुनजीने पहले प्रायश्चित्त कियाहै उसीसे पहलेइकट्ठा किये हुये पातकसे वे अर्जुनजी छूटेहैं ॥ ६१ ॥ उसी कारण वहांपर पातकोंके

भयका नाशक नरतीर्थ प्रसिद्ध है और नरतीर्थ से अन्य बड़ाभारी वालखिल्येश्वरतीर्थ है ॥ ६२ ॥ और वहां उस महातीर्थसे अन्य बड़े ऐश्वर्यवाला गंगासमागम नामक तीर्थ उत्तम सिद्धिको देनेवालाहै ॥ ६३ ॥ फिर दीन मुखवाली व उदासीन मनवाली उन देवीको देखकर ब्रह्माने बड़े नेत्रोंवाली उसकी कपिला सखी को रचा है ॥ ६४ ॥ और विष्णुने भी हरिणी को व सुरराजने वज्रिणी को और सदाशिवजीने न्यंकु को सरस्वतीजी की क्रीड़ा के लिये दिया ॥ ६५ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होकर वे पापनाशिनी प्राचीना सरस्वती देवीजी विष्णुदेवजी की आज्ञा से उसस्थान से जाने का प्रारम्भ किया ॥ ६६ ॥ महादेवजी बोले कि दक्षिण दिशामें

श्वरंमहत् ॥ ६२ ॥ तत्रतस्मान्महातीर्थात्तीर्थमन्यन्महोदयम् ॥ गङ्गासमागमन्नाम तीर्थमस्तिसुसिद्धिदम् ॥ ६३ ॥ तामालोक्यपुनर्देवींदीनास्यांदीनमानसाम् ॥ ब्रह्मासृजत्सखींतस्याःकपिलांविपुलेक्षणाम् ॥ ६४ ॥ हरिणींहरिरप्याशुवज्रिणीमपिदेवराट् ॥ न्यङ्कुंविनोदनार्थंच सरस्वत्याददौहरः ॥ ६५ ॥ ततःप्रहृष्यसादेवी देवादेशात्सरस्वती ॥ तस्माद्गन्तुं समारब्धा प्राचीनापापनाशिनी ॥ ६६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ दक्षिणांदिशमास्थाय पुनःपश्चान्मुखीतदा ॥ सरस्वतीमहादेवी वडवानलधारिणी ॥ ६७ ॥ तदुत्तरतटेतीर्थमेकद्वारमितिस्मृतम् ॥ एकद्वारेणयत्सेनास्वर्गंप्राप्ताततोवनात् ॥ ६८ ॥ तस्मात्तीर्थान्पुनश्चान्यत्तीर्थंयत्रगुहेश्वरः ॥ गुहेनस्थापितःपूर्वं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ६९ ॥ गुहेश्वरान्नातिदूरे वटेश्वरमितिस्थितम् ॥ दिव्यंसरस्वतीतीरे व्यासेनाराधितम्पुरा ॥ ७० ॥ आमर्दकीनदीयत्र सरस्वत्यासहैकताम् ॥ सम्प्राप्तातन्महातीर्थं फलदंसर्वदेहिनाम् ॥ ७१ ॥ आमर्दकंसङ्गमंतन्नापुण्योवेदकश्चन ॥ सङ्गमेश्वरनामेति तत्र

स्थित होकर फिर उस समय वड़वानलधारिणी वे सरस्वती महादेवीजी पश्चिममुखी हुई ॥ ६७ ॥ उनके उत्तर किनारे पै एकद्वार ऐसा कहाहुआ तीर्थ है जिस लिये वन से एकद्वार करके सेना स्वर्ग को प्राप्त हुई है उसी कारण एक द्वारतीर्थ है ॥ ६८ ॥ फिर उस तीर्थ से अन्यतीर्थ है जहां कि गुहेश्वरजी हैं पुरातन समय जहांपर स्वामिकार्त्तिकेयजाने शिवदेवजी को थापा है ॥ ६९ ॥ गुहेश्वर से थोड़ेही दूर पै सरस्वतीजीके किनारे वटेश्वर ऐसे स्थित दिव्यलिंग को पुरातन समय व्यासजीने आराधन कियाहै ॥ ७० ॥ जहांपर आमर्दकी नदी सरस्वतीजीके साथ एकताको प्राप्त हुई है वह महातीर्थ सब देहधारियों को फलदायकहै ॥ ७१ ॥

उस आमर्दक संगम को बिन पुण्यवाला कोई पुरुष नहीं जानता है वहांपर संगमेश्वर नामक ऐसा लिंग स्थापित है ॥ ७२ ॥ जहांपर संगमेश्वर नामक शिवजी थापित हैं वहा से फिर पीलुपर्णिक नामक अन्य तीर्थ है ॥ ७३ ॥ सरस्वतीजी के किनारे प्राप्त वह बडाभारी तीर्थ ऋषि से सेवित है व सरस्वतीजी में उस से अन्य तीर्थ द्वारवती कहा गया है ॥ ७४ ॥ हे देवि ! वह तीर्थों में श्रेष्ठ है जहां कि विष्णुजी भलीभांति स्थित हैं तदनन्तर उसके समीप में स्थित गोवत्स-संज्ञक तीर्थ है ॥ ७५ ॥ जहांपर गऊके बछड़ाके स्वरूप से अवतार लेकर तेजों के निधान वे पार्वतीके पति शिवजी आपही उपजेहुये लिंगके रूपसे स्थितहैं ॥ ७६ ॥

लिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ७२ ॥ सङ्गमेश्वरनाम्नावै यत्रेशःसम्प्रतिष्ठितः ॥ पीलुपर्णिकसंज्ञन्तु तीर्थमन्यत्पुनस्ततः ॥ ७३ ॥ सरस्वतीतीरगतमृषिणासेवितम्महत् ॥ तस्मादन्यत्सरस्वत्यां तीर्थंद्वारवतीस्मृतम् ॥ ७४ ॥ तीर्थानांप्रवरन्देवि यत्रसन्निहितोहरिः ॥ ततस्तस्यसमीपस्थं तीर्थंगोवत्ससंज्ञितम् ॥ ७५ ॥ यत्रावतीर्यगोवत्सस्वरूपेणाम्बिकापतिः ॥ स्वयम्भूलिङ्गरूपेण संस्थितस्तेजसांनिधिः ॥ ७६ ॥ गोवत्सनैर्ऋतेभागे दृश्यतेलोहयष्टिका ॥ स्वयम्भूलिङ्गरूपेण रुद्रस्तत्रस्वयंस्थितः ॥ ७७ ॥ एकविंशतिवारस्य भक्त्यापिण्डस्ययत्फलम् ॥ गङ्गायांप्राप्यतेपुंसां श्राद्धेनैकेनतत्रतत्॥ ७८ ॥ तत्रतस्मिन्महातीर्थे बालःक्रीडनकैर्यथा ॥ सखीभिस्सहितातेन क्रीडयेत्सायदक्षया ॥ ७९ ॥ अनुलोमविलोमेन दक्षिणेनोत्तरेणच ॥ झिल्लंप्राप्यपुनर्देवी समुद्भूतामनोरमा ॥ ८० ॥ झिल्लंनामपरंयत्र सृष्टन्देवेनशम्भुना ॥ सहदेवैस्तुपार्वत्या शिवोयत्रप्रयोगकः ॥ ८१ ॥ एवंवर्षसहस्रन्तुशम्भुनातत्रझिल्लकम् ॥ झिल्लंतत्रह्रदन्नाम सरस्वत्यामहो

गोवत्स तीर्थ के नैर्ऋत दिशाके भाग में लोहका दण्ड देख पड़ता है वहा स्वयंभूलिंग के रूपसे आपही सदाशिवजी स्थित हैं ॥ ७७ ॥ भक्ति से इक्कीसवार पिंड का जो फल है वह गंगाजी में वहां एक श्राद्ध से पुरुषों को मिलताहै ॥ ७८ ॥ और जिस लिये अक्षया है उसी कारण वहां पर उस महातीर्थ में सखियों समेत वह उससे क्रीडा करती है जैसे कि बालक खेलों से खेलता है ॥ ७९ ॥ अनुलोम व विलोम याने सीधे व उलटे मार्ग से दक्षिण उत्तर करके झिल्ल स्थानको प्राप्तहोकर फिर सुन्दरी सरस्वती देवीजी उत्पन्न हुई हैं ॥ ८० ॥ जहां पर शिवदेवजी ने झिल्ल नामक उत्तम कुण्डको रचा है व जहां कि देवताओं समेत पार्वतीजी से

शिवजी प्रयोगक हुये हैं ॥ ८१ ॥ इसप्रकार हजार वर्षतक शिवजीने वहां झिल्लकको बनाया है वहांपर सरस्वतीजी का बड़े ऐश्वर्यवाला झिल्लनामक कुण्ड है ॥ ८२ ॥ वहांपर आनन्देश्वर ऐसे कहेहुये साक्षात् सदाशिवजी हैं और वहांपर शिवजी के मन्दिरसे वे पश्चिम ओर स्थित हैं ॥ ८३ ॥ और सुमेरुके दक्षिण पादमें नख तीर्थ कहागया है जो मनुष्य उसको भलीभांति देखते हैं वे भी पापरहित होते हैं॥ ८४ ॥ और निश्चयकर हजार अश्वमेध यज्ञोंके फलको पाते हैं उसके उपरान्त उन कूष्माण्ड मुनिका बड़ाभारी आश्रम है ॥ ८५ ॥ और त्रिलोक में प्रसिद्ध कूष्माण्डेश्वर नामक तीर्थ है और सब पापोंके भयको नाशनेवाली कोल्ला देवी ऐसी

दयम् ॥ ८२ ॥ साक्षात्तत्रमहादेव आनन्देश्वरशब्दितः ॥ पश्चिमेनस्थितंतत्र शम्भोरायतनस्यतु ॥ ८३ ॥ सुमेरोर्द्दक्षिणेपादे नखस्तुपरिकीर्त्तितः ॥ पश्यन्तियेनरास्सम्यक् तेपिपापविवर्ज्जिताः ॥ ८४ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य प्राप्नुवन्तिफलंध्रुवम् ॥ परतस्तस्यकूष्माण्डमुनेस्तस्याश्रमंमहत् ॥ ८५ ॥ कूष्माण्डेश्वरसंज्ञन्तु तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ कोल्लादेवीतिविख्याता सर्वपापभयापहा ॥ अन्तर्द्धानेनतांकोल्लां सम्प्राप्तासामहानदी ॥ ८६ ॥ ततोप्यन्तर्हिताभूत्वा पुनःप्राप्ताहिमाचलम् ॥ खादिरामोदनामानं सर्वत्रकुसुमोज्ज्वलम् ॥ ८७ ॥ तत्रारुह्यविलोक्याथ ददर्शसुमनोरमम् ॥ क्षारोदंपश्चिमाशास्थं घनवृन्दमिवोन्नतम् ॥ ८८ ॥ एवंविधंवनंतत्र साविलोक्यमहाप्रभा ॥ हर्षात्पञ्चाननाभूत्वा देवकार्यार्थमुद्यता ॥ ८९ ॥ हरिणीवज्रिणीन्यंकुः कपिलाचसरस्वती ॥ पञ्चश्रोतास्थितातत्र मुनिनोक्तासरस्वती ॥ ९० ॥ श्रमापनोदंकुर्वाणा मुनीनांयत्रसंस्थिता ॥ तत्तप्तोदकमित्युक्तं तीर्थानामुत्तमंनृणाम् ॥ सर्वेषांपातकानाञ्च शोधनंतद्द

प्रसिद्ध हैं वह महानदी सरस्वती अन्तर्द्धान से उस कोल्ला देवीको भलीभांति प्राप्तहुई है ॥ ८६ ॥ तदनन्तर अन्तर्द्धान होकर फिर हिमाचल पै सब कहीं पुष्पों से उज्ज्वल खादिरामोद नामक वन में प्राप्तहुई ॥ ८७ ॥ और उस पर्वत पै चढ़कर इसके अनन्तर पश्चिम दिशामें स्थित उन्नत मेघवृन्दकी नाई अतिमनोहर क्षारजलवाले समुद्रको देखा ॥ ८८ ॥ वहां पर ऐसे वनको देखकर वह महाप्रभावती सरस्वती हर्ष से पांचमुखोंवाली होकर देवकार्य के लिये उद्यतहुई ॥ ८९ ॥ व मुनिसे कहीहुई सरस्वती वहा हरिणी, वज्रिणी, न्यंकु, कपिला व सरस्वती पांच सोतोंवाली स्थित हुई ॥ ९० ॥ जहा पर मुनियों के श्रमको दूर करती हुई सरस्वती भ-

लीभांति स्थित हुई हे वरानने ! वह तप्तोदक ऐसा कहागयाहै और तीर्थोंके मध्यमें उत्तम वह मनुष्योंके सब पातकोंका पवित्र कारकहै ॥९१॥ खादिरा मोद वनमें प्राप्त होकर वहां टिकी हुई सुरसुन्दरी सरस्वतीजी देखकर उस अग्निको लेकर समुद्रको जाने के लिये प्रवृत्तहुई ॥ ९२ ॥ और कृतस्मर को जलाकर प्रसन्न लोमोंवाली सरस्वती देवी फिर वड़वानलको लेकर समुद्रके समीप में स्थित होकर प्राप्तहुई ॥ ९३ ॥ तदनन्तर वे देवी अगाध क्षारसमुद्रमें पैठगई और वड़वानलको लेकर उन्होंने जल के मध्य में छोड़दिया ॥ ९४ ॥ तदनन्तर उन सरस्वतीजी के उस कठिनकर्मको देखकर फिर प्रसन्न होतेहुये आपही अग्निजी यह वचन बोले ॥ ९५ ॥ कि हे

रानने ॥ ९१ ॥ खादिरामोदमासाद्य तत्रस्थावीक्ष्यसागरम् ॥ गन्तुंप्रवृत्तातंवह्निमादायसुरसुन्दरी ॥ ९२ ॥ दग्ध्वाकृतस्मरन्देवी पुनरादायवाडवम् ॥ समुद्रस्यसमीपस्था स्थिताहृष्टतनूरुहा ॥९३॥ ततःप्रविष्टासादेवी अगाधेलवणाम्भसि ॥ वाडवंवह्निमादाय जलमध्येऽव्यमर्जयत् ॥९४॥ ततस्तस्याःपुनःप्रीतः स्वयमेवहुताशनः ॥ तद्दृष्ट्वादुष्करंकर्म वचनंचेदमब्रवीत् ॥ ९५ ॥ परितुष्टोस्मितेभद्रे वरंवरयसुव्रते ॥ तत्तेदास्याम्यहम्प्रीतो यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥९६॥ ईश्वरउवाच ॥ प्रगृह्यवलयंहस्तादिदंवचनमब्रवीत् ॥ इदंमेवलयंवह्ने वक्रेधार्यंसदात्वया ॥ ९७ ॥ अनेनशक्यतेयावत्तावत्तोयंसमाहर ॥ तत्त्वयाशोषणीयोयं समुद्रस्सरिताम्पतिः ॥ ९८ ॥ वाढमित्येवचोक्त्वासौ प्रविष्टोनिधिमम्भसाम् ॥ ९९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवमेषामहादेवी प्रभासेतुसरस्वती ॥ गृहीत्वावाडवंप्राप्ता तुष्ट्यर्थञ्चमनीषिणाम् ॥ १०० ॥ साविश्रान्ताकुरुक्षेत्रे भद्रावर्तेचभामिनि ॥ पुष्करेश्रीस्थलेदेवी प्रभासेचमहानदी ॥ १ ॥ देवमातेतिसातत्र

सुव्रते, भद्रे ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं व प्रसन्न होकर मैं तुमको उस मनोरथ को दूंगा यद्यपि अतिदुर्लभ भी होगा ॥ ९६ ॥ महादेवजी बोले कि हाथसे कंकणको लेकर सरस्वतीने यह वचन कहा कि हे अग्ने ! यह कंकण तुमको मुखमें सदैव धारण करना चाहिये ॥ ९७ ॥ और इससे जितना होसकै उतने जलको हरिये इसलिये नदियों का पति यह समुद्र तुम्हारे सुखाने योग्य है ॥ ९८ ॥ बहुत अच्छा यही कहकर यह वड़वानल जलनिधि (समुद्र) में पैठ गया ॥ ९९ ॥ महादेवजी बोले कि इस प्रकार यह महादेवी सरस्वती विद्वानोंकी प्रसन्नताके लिये वडवानलको लेकर प्रभासक्षेत्रमें प्राप्तहुई ॥ १०० ॥ हे भामिनि ! वह महानदी देवी कुरुक्षेत्र,

मद्रावर्त, पुष्कर व श्रीस्थल और प्रभासमें विश्रान्त हुई है ॥ १ ॥ और उस क्षारसमुद्र में देवमाता ऐसी वह स्थित हुई है हे देवि! इस मन्वन्तर में पहले त्रेता युग में ॥ २ ॥ सरस्वती व वड़वानल का यह वृत्तान्त हुआहै और इस मन्वन्तर के बीतने पर अन्य वड़वानल होगा ॥ ३ ॥ वह शिवजीके क्रोध से ज्वालामुख नामक होगा और वैसेही सरस्वतीजीका ब्राह्मी ऐसा नाम प्रसिद्धिको प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ और इससमय संसार में सरस्वती ऐसा नाम वर्तमानहै और कमण्डलुभवा ऐसा जो उसका नामहै वह व्यतीत होगया ॥ ५ ॥ हे देवि! समुद्र का अन्य रत्नाकर ऐसा नाम हुआ फिर इस मन्वन्तर में सागर ऐसा कहा जाताहै ॥ ६ ॥ व हे देवि!

संस्थितालवणोदधौ॥अस्मिन्मन्वन्तरेदेवि आदौत्रेतायुगेपुरा ॥ २ ॥ इतिवृत्तंसरस्वत्या वाडवाग्नेस्तथाभवत् ॥ मन्वन्तरेऽव्यतीतेस्मिन् भवितान्यस्तुवाडवः ॥ ३ ॥ ज्वालामुखेतिनाम्नावै रुद्रक्रोधाद्भविष्यति ॥ सरस्वत्यास्तथानामख्यातिंब्राह्मीतियास्यति ॥ ४ ॥ सरस्वतीतिवैलोके वर्ततेनामसाम्प्रतम् ॥ अतीतन्नामयत्तस्याः कमण्डलुभवेतिच ॥ ५ ॥ रत्नाकरेतिसामुद्रमन्यन्नामान्तरम्पुनः ॥ अस्मिन्मन्वन्तरेदेवि सागरेतिप्रकीर्त्यते ॥ ६॥ क्षारोदेतिभविष्यंहि नाम देविप्रकीर्त्तितम् ॥ एवंजानातियःकश्चित्सतीर्थफलमश्नुते ॥ ७ ॥ स्वर्गनिश्रेणिसम्भूता प्रभासेतुसरस्वती ॥ नापुण्यवद्भिस्सम्प्राप्तुं पुम्भिश्शक्यामहानदी ॥ ८ ॥ प्राचीसरस्वतीदेवी सर्वत्रैवचदुर्लभा ॥ प्रभासेतुकुरुक्षेत्रे पुष्करेचविशेषतः ॥ ९ ॥ एवंप्रभावासादेवी वडवानलधारिणी ॥ अग्नितीर्थसमीपस्था स्थितादेवीसरस्वती ॥ १० ॥ तामादौपूजयेद्यस्तु सतीर्थफलमश्नुते ॥ सागरंयत्तुतत्तीर्थं पापघ्नंपुण्यवर्द्धनम् ॥ ११ ॥ दर्शनादेवतस्यैव महाक्रतुफलंभवेत् ॥ क

भविष्य क्षारोद ऐसा नाम कहागया है इसप्रकार जो कोई जानता है वह तीर्थ के फलको भोगताहै ॥ ७ ॥ प्रभासक्षेत्र में सरस्वती स्वर्ग की सीढ़ी की नाईं हैं और उस महानदी को प्राप्त होने के लिये बिन पुण्यवान् पुरुष नहीं समर्थ हैं ॥ ८ ॥ प्राची सरस्वती देवी सब कहीं दुर्लभ हैं और प्रभास, कुरुक्षेत्र व पुष्कर में विशेषकर दुर्लभ हैं ॥ ९ ॥ वड़वानलको धारनेवाली ऐसे प्रभाववाली वे सरस्वती देवीजीहैं जो सरस्वती देवी अग्नितीर्थ के समीपमें स्थित हैं ॥ १० ॥ पहले उन सरस्वतीजी को जो पूजता है वह तीर्थके फल को भोगताहै और जो सागर तीर्थ है वह पातकों का विनाशक व पुण्यको बढ़ानेवाला है ॥ ११ ॥ उसके दर्शनहीसे महायज्ञ का फल

होताहै उस उमुद्र ने किसी समय आकाशगंगा से कहा ॥ १२ ॥ कि लोकों को पवित्र करनेवाली तुम्हारे विना अन्य वड़वानल को लेजाने के लिये नहीं समर्थ है गंगाजी बोली कि हे प्रभो,भगवन्! वड़वानलको धारने के लिये मेरे शक्ति नहीं है ॥ १३ ॥ क्योंकि रौद्ररूपी बड़ीभारी अग्नि जलाती है तदनन्तर नदियों के पति उस समुद्रने यमुनाजीसे कहा ॥ १४ ॥ उससमय हे प्रिये! सुरोत्तमोंसे पूंछीहुई अन्य अनेकभांतिकी नदियां उसको लेजानेके लिये समर्थ न हुईं ॥ १५ ॥ अग्नितीर्थमें नहाकर जो मनुष्यशरीरको अग्निमें डालताहै सब पापोंसे शुद्ध चित्तवाला वह अग्निलोकमें पूजाजाताहै ॥ १६ ॥ इसप्रकार बड़े ऐश्वर्यवाला अग्नितीर्थ व समस्त पातकों

स्मिंश्चित्समयेप्राह स्वर्गङ्गांसमहोदधिः ॥ १२ ॥ नान्याशक्तासमानेतुं त्वांविनालोकपावनीम् ॥ गङ्गोवाच ॥ नास्तिमेभगवञ्छक्तिरौर्वंधारयितुंप्रभो ॥ १३ ॥ रौद्ररूपीमहानेव दहत्येवानलोभृशम् ॥ ततस्तुयमुनांप्राह सिन्धुस्सरिताम्पतिः ॥ १४ ॥ अन्याश्चविविधानद्यः पृथगेवतदाप्रिये ॥ अशक्ताश्चसमानेतुं पृष्टाश्चसुरसत्तमैः ॥ १५ ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा सोग्निलोकेमहीयते ॥ १६ ॥ एवंसंक्षेपतःप्रोक्तमग्नितीर्थमहोदयम् ॥ सरस्वत्याश्चमाहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १७ ॥ स्नात्वाग्नितीर्थेविधिवत् कङ्कणंप्रक्षिपेत्ततः ॥ सुवर्णस्यमहादेवि यथावित्तानुसारतः ॥१८॥ ततस्सरस्वतीपूज्या कपर्दिनमथार्चयेत ॥ ततःकेदारनामानं भीमेश्वरमतःपरम् ॥ १९ ॥ ततस्सोमेश्वरन्देवं पूजयेद्विधिवन्नरः ॥ नवग्रहेश्वरानिष्ट्वा रुद्रैकादशकन्तथा ॥ २० ॥ ततस्सम्पूजयेद्देवं ब्रह्माणंबालरूपिणम् ॥ एवंरौद्रीसमाख्याता यात्रापातकनाशिनी ॥ २१ ॥ माहात्म्यमखिलंतस्याः यःशृणोतिनरोत्तमः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति सतीर्थ

को नाश करनेवाला सरस्वतीजी का माहात्म्य संक्षेपसे कहागया ॥ १७ ॥ हे महादेवि! अग्नितीर्थमें नहाकर तदनन्तर विधिपूर्वक द्रव्यके अनुसार सुवर्णके कङ्कणको फेंकै ॥ १८ ॥ तदनन्तर सरस्वती पूजने योग्यहैं व इसके उपरान्त कपर्दीजीको पूजै तदनन्तर केदार नामक देव व इसके उपरान्त भीमेश्वरजीको पूजै ॥ १९ ॥ तदनन्तर मनुष्य विधिपूर्वक सोमेश्वर देवजीको पूजै व नवग्रहेश्वरों को पूजकर गेरह रुद्रोंको पूजै ॥ २० ॥ तदनन्तर बालरूपी ब्रह्मा देवको पूजै इसप्रकार पातकों को नाश करने-

वाली शैवयात्रा कहीगई है ॥ २१ ॥ उसके सब माहात्म्यको जो उत्तममनुष्य सुनताहै वह सब मनोरथोंको प्राप्त होताहै और तीर्थों के फलको भोगताहै ऐसाकरके तदनन्तर महादेवी सरस्वतीजीको जावै ॥ २२ ॥ सरस्वतीजी के समीप निवास के समान गुण कहाहैं और सरस्वती निवास के बराबर स्नेह कहा है सरस्वतीजी को पाकर स्वर्ग में गये हुये पुरुष फिर सरस्वती नदी को स्मरण करेंगे ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसरस्वत्यब्धिसमागमस्तथाग्नितीर्थमाहात्म्यनामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

फलमश्नुते ॥ एवंकृत्वाततोगच्छेन्महादेवींसरस्वतीम् ॥ २२ ॥ सरस्वतीवाससमाःकुतोगुणाः सरस्वतीवाससमाकुतोरतिः ॥ सरस्वतींप्राप्यदिवंगतानराः पुनस्स्मरिष्यन्तिनदींसरस्वतीम् ॥ २३ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसरस्वत्यब्धिसमागमस्तथाग्नितीर्थमाहात्म्यन्नामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं प्राचीसर्वत्रदुर्लभा ॥ विशेषेणकुरुक्षेत्रे प्रभासेपुष्करेतथा ॥ १ ॥ कथंप्रभासमासाद्य संस्थितापापनाशिनी ॥ माहात्म्यमखिलंतस्याःप्राच्याःपातकनाशनम् ॥ २ ॥ कथयस्वमहेशान यद्यहन्तेप्रिया विभो ॥ ईश्वर उवाच ॥ साधुप्रोक्तंत्वयाभद्रे प्राचीसर्वत्रदुर्लभा ॥ ३ ॥ कुरुक्षेत्रेपुष्करेतु तस्मात्प्राभासिकेऽधिका ॥ प्रभासेतुमहादेवी प्राणिनांपापनाशिनी ॥ ४ ॥ नापुण्योवेददेवेशि कर्मनिर्मूलनक्षमाम् ॥ येपिबन्तिनरापुण्यां प्राचींदेवीं

दो० ॥ पारवती सों शिव कह्यो सरस्वती माहात्म्य । चौंतिसवें अध्यायमें सोइ चरित हर्षात्म्य ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि आपने जो यह कहा कि प्राची सरस्वती सब कहीं दुर्लभ है और कुरुक्षेत्र, प्रभास व पुष्कर में विशेषकर दुर्लभ है ॥ १ ॥ प्रभासक्षेत्र को प्राप्त होकर वह पापनाशिनी प्राची सरस्वती कैसे स्थित हुई है उस प्राची सरस्वती के पापनाशक समस्त माहात्म्य को ॥ २ ॥ कहिये हे विभो, महेशजी ! यदि मैं तुमको प्यारी हूं महादेवजी बोले कि हे भद्रे ! तुमने बहुत अच्छा कहा प्राची सबकहीं दुर्लभहै ॥ ३ ॥ और उससे कुरुक्षेत्र, पुष्कर व प्रभासमें अधिक है और प्रभासक्षेत्र में प्राणियों के पातकों को नाशकरनेवाली महादेवी सरस्वतीजी हैं ॥ ४ ॥ हे देवेशि ! कर्मों को नाश करने में समर्थ प्राची सरस्वतीजी को बिन पुण्यवाला कोई मनुष्य नहीं जानता है जो मनुष्य पवित्र प्राची देवी

सरस्वतीजीको पीते हैं ॥ ५ ॥ हे वरानने ! वे मनुष्य नहीं जानने योग्यहैं यह सत्य है सत्यहै वे धन्यहैं और वे मुनिहैं तथा वे पुण्यवान् तपस्वी हैं॥ ६॥ जो कि सदैव प्रतिदिन सरस्वतीजी के जल को पीते हैं वे देवताहैं मनुष्य नहीं हैं जो कि भोजन कर या न भोजन करके और दिनमें या रात में चन्द्रभागा, गङ्गा व सरस्वती देवी जी इन तीन नदियोंका जल पीते हैं ॥ ७।८ ॥ वहां काल,अग्नि व यमराजजी नहीं हैं जहां कि प्राची सरस्वतीजी हैं जैसे कामनाओंको देनेवाली गौवैं सब समयोंमें फलको देतीहैं वैसेही प्राची सरस्वती है ॥ ९ ॥ जो मृग सदैव प्राची सरस्वतीजीका जल पीते हैं वेभी वैसेही स्वर्ग को जावैंगे जैसे कि यज्ञों से द्विजोत्तमलोग स्वर्ग को

सरस्वतीम् ॥ ५ ॥ नतेमनुष्याविज्ञेयाः सत्यंसत्यंवरानने ॥ तेधन्यास्तेचमुनयस्तेचपुण्यास्तपस्विनः ॥ ६ ॥ येचसार स्वतंतोयं पिबन्त्यहरहस्सदा ॥ देवास्तेनमनुष्यास्ते नदीतिस्रःपिबन्तिये ॥ ७ ॥ चन्द्रभागाञ्चगङ्गाञ्च तथादेवींसर स्वतीम् ॥ भुक्त्वावायदिवाभुक्त्वा दिवावायदिवानिशि ॥ ८ ॥ नकालाग्नीयमस्तत्र यत्रप्राचीसरस्वती ॥ यथाका मदुघागावःसर्वकालफलप्रदाः ॥ ९ ॥ प्राचीसरस्वतींयेतुपिबन्तिसततंमृगाः ॥ तेपिस्वर्गंगमिष्यन्तियज्ञैर्द्विजवरायथा॥ १० ॥ चिन्तामणिसमादेवी यत्रप्राचीसरस्वती ॥ तत्रस्वर्गापवर्गौच प्राचीन्देवींसरस्वतीम् ॥ ११ ॥ अष्टाशीतिसह स्राणि मुनीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ यत्रस्थितानिसंन्यासे तस्मात्किमधिकंस्मृतम् ॥ १२ ॥ यत्रमङ्कणकस्सिद्धो प्राचीनो नियमात्मना ॥ ब्रह्महत्यातथाचूर्णमियायचवरानने ॥ १३ ॥ वृषतीर्थेमहापुण्ये प्राचीकुलसमाश्रिते ॥ निवृत्तेभा रतेयुद्धेतस्मिंस्तीर्थेकिरीटिना ॥ १४ ॥ प्रायश्चित्तंपुराचीर्णं विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ तत्तीर्थंसर्वतीर्थानां पृथिव्यांप्रव

जाते हैं ॥ १० ॥ जहांपर चिंतामणिके समान प्राची सरस्वती देवी हैं वहां स्वर्ग व मोक्ष प्राची सरस्वती देवीमें हैं ॥ ११ ॥ अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता मुनि जहां संन्यास में स्थित हैं वहां से अधिक क्या कहागया है ॥ १२ ॥ जहा पर कि नियमवाले चित्त से प्राचीन मंकणक सिद्ध हुये हैं व हे वरानने ! प्राचीकुलके आश्रित महा-पवित्र वृषतीर्थ में ब्रह्महत्या नाश को प्राप्त हुई है महाभारत युद्ध निवृत्तहोनेपर उसतीर्थ में अर्जुनजीने ॥ १३ । १४ ॥ पहले प्रभविष्णु (समर्थ) विष्णुजी से प्रेरित

होकर प्रायश्चित्त किया है पृथ्वी में सब तीर्थों के मध्यमें वह तीर्थ श्रेष्ठ कहागयाहै ॥ १५ ॥ जोकि पातकों का विनाशक व पुण्यको पैदा करनेवाला तथा प्राणियों को पवित्र यशदायकहै सूतजी बोले कि ऐसा कहनेपर उन पार्वती देवीजीने लोकों के कल्याणकारक शिवजीसे कहा ॥ १६ ॥ कि शत्रुपुरोंको जीतनेवाले अर्जुनजी कैसे प्रायश्चित्त को प्राप्त हुये हैं व हे प्रभो ! कुटुम्ब के नाश से उपजाहुआ पातक कैसे नाश होगया ॥ १७ ॥ ऐसा कहनेपर फिर जगदीश शिवजी ने प्रायश्चित्त प्राप्ति के कारण को कहा कि जिसप्रकार वह स्थित हुआथा ॥ १८ ॥ महादेवजी बोले कि हे भद्रे ! पातकोंको नाशनेवाली कथा को सावधान होकर सुनिये जिसको

रंस्मृतम् ॥ १५ ॥ पापघ्नंपुण्यजननं प्राणिनांपुण्यकीर्त्तिदम् ॥ सूत उवाच ॥ आहैवमुक्तेसादेवी शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ १६ ॥ प्रायश्चित्तंकथंप्राप्तः पार्थःपरपुरञ्जयः ॥ ज्ञातिक्षयोद्भवंपापं कथंनाशमगात्प्रभो ॥ १७ ॥ एवमुक्तेपुनःप्राहविश्वेशोनीललोहितः ॥ प्रायश्चित्तस्यसम्प्राप्तेः कारणन्तुयथास्थितम् ॥ १८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुष्वावहिताभद्रे कथां पातकनाशिनीम् ॥ यांश्रुत्वामानवोभक्त्या पवित्रात्माप्रजायते ॥ १९ ॥ योसौदेविसमाख्यातः किरीटीश्वेतवाहनः ॥ सजित्वाकौरवान्सर्वान् संहत्यहयकुञ्जरान् ॥ २० ॥ पश्चात्सुयोधनंहत्वा भीमेनप्रययौगृहम् ॥ नारायणेनसहितो नरोसौप्रस्थितोरणात ॥ २१ ॥ दृष्टुंधर्मसुतंहृष्टः प्रणतःप्राञ्जलिःस्थितः ॥ सविज्ञायतदायातौ नरनारायणावुभौ ॥ २२ ॥ राजायुधिष्ठिरःप्राह द्वारस्थान्द्वारपालकान् ॥ भवद्भिस्तौसहायातौ निषेध्यौद्वारसंस्थितौ ॥ २३ ॥ नरनारायणौक्रूरौ पापपङ्कानुलेपिनौ ॥ एवमेतदितिप्रोक्तौ तौतदाद्वारमागतौ ॥ २४ ॥ भवन्तौनेच्छतिद्रष्टुं राजादुर्नयका

भक्ति से सुनकर मनुष्य पवित्रचित्त होताहै ॥ १९ ॥ हे देवि ! श्वेतवाहन जो ये किरीटी (अर्जुन) जी कहे गये हैं वे सब कौरवों को जीतकर व घोड़ों और हाथियों को मारकर ॥ २० ॥ पश्चात् दुर्योधन को मारकर भीमसेन समेत घर को गये व श्रीकृष्णजी समेत ये अर्जुनजी प्रसन्न होकर धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) को देखने के लिये युद्धसे चले और प्रणामकरके हाथों को जोड़कर खड़े व आयेहुये नर व नारायण दोनों को जानकर उस समय उन ॥ २१ । २२ ॥ राजा युधिष्ठिरजी ने द्वारपै टिकेहुये द्वारपालों से कहा कि द्वार पै स्थित वे क्रूर नरनारायण जो कि साथही आये हुये व पापरूपी कीचड़ को लेप किये हैं आप सबों

सेमना करने योग्य हैं उस समय द्वार पै आये हुये उनसे द्वारपालों ने यह ऐसाही कहा ॥ २३ । २४ ॥ कि राजा युधिष्ठिरजी दुर्नीति करनेवाले आपलोगों को नहीं देखना चाहते हैं फिर वहां पै स्थित नर (अर्जुन) जीने आपही द्वारपालक से पूंछा ॥ २५ ॥ कि वश में रहनेवाले हम दोनों को किसकारण भ्राता युधिष्ठिर जी नहीं चाहते हैं तदनन्तर आगे स्थित द्वारपालकने प्रणाम कर राजासे कहा ॥ २६ ॥ और नारायण समेत नरक से निडर अर्जुनजी से कहा कि जिसलिये दुर्योधन समेत उन भाइयों को तुमने मारा है ॥ २७ ॥ उसी से तुम पापभागी हो क्योंकि राजा पिता के तुल्य होते हैं ऐसा कहनेपर उन अर्जुनजीने श्रीकृष्णजी

रिणौ ॥ तत्रस्थःप्रष्टवान्भूयः प्रतीहारंनरस्स्वयम् ॥ २५ ॥ आवांकिंकारणंभ्राता नेष्यतेवशवर्त्तिनौ ॥ प्रोवाचप्रणतो राज्ञः ततोद्वाःस्थःपुरस्थितः ॥ २६ ॥ नारायणेनसहितं नरंनरकनिर्भयम् ॥ दुर्योधनेनसहिता बान्धवास्तेयतोहताः ॥ २७ ॥ पितृतुल्याश्चराजानस्तेनत्वंपापभाजकः ॥ एवमुक्तेतुतेनाथ सुखमालोकितंहरेः ॥ २८ ॥ तेनाप्युक्तमिदंतथ्यं यत्तेराज्ञाप्रभाषितम् ॥ एवमुक्तेनरःप्राह पुनरेवजनार्द्दनम् ॥ २९ ॥ कथयस्वकथंपापात् कृष्णशुद्ध्यामहेवयम् ॥ तीर्थस्नानेनमेशुद्धिर्यथास्यादघनाशनम् ॥ ३० ॥ कृष्ण उवाच ॥ मागयांगच्छकौन्तेय मागङ्गांमाचपुष्करम् ॥ तत्रगच्छकुरुश्रेष्ठ यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ३१ ॥ ब्रह्मघ्नाश्चसुरापाश्च येचान्येपापकारिणः ॥ तत्रस्नात्वाप्रमुच्यन्ते यत्रप्राचीसरस्वती ॥ ३२ ॥ नारायणेनप्रोक्तोसौ नरस्तद्वचनाद्गतः ॥ सहितस्तेनसम्प्राप्तः प्राचीनंतीर्थमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ त्रिरात्रोपो

के मुखको देखा ॥ २८ ॥ और उन्होंने भी कहा कि तुम्हारे राजा ने जो कहा है यह सत्य है ऐसा करने पर अर्जुनजीने फिर श्रीकृष्णजी से कहा ॥ २९ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! हमलोग पाप से कैसे शुद्ध होवेंगे तीर्थस्नान से मेरी शुद्धि व जिसप्रकार पापों का नाश होवै उसको कहिये ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे अर्जुन जी ! गया को मत जावो और गंगा व पुष्कर को मत जावो हे कुरुश्रेष्ठ ! वहां जाइये जहां कि प्राची सरस्वती है ॥ ३१ ॥ ब्रह्मघाती, मदिरापीनेवाले व जो अन्य पापकारी हैं वे वहां स्नान करके पापों से छूटजाते हैं जहां कि प्राची सरस्वतीजी हैं ॥ ३२ ॥ नारायण से कहेहुये शीघ्रही ये अर्जुनजी उनके वचन से गये व उन

समेत उत्तम प्राचीन तीर्थ में प्राप्त हुये ॥ ३३ ॥ और तीन रात्रोंतक उपासकिया व नियतचित्त से उन अर्जुनजीने त्रिकाल स्नानकिया उसीकारण पहले इकट्ठा कियेहुये पातक से मुक्त हुये हैं ॥ ३४ ॥ धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी उन नरोत्तम (अर्जुन) जी को शुद्ध शरीर जानकर देखने के लिये भाइयों समेत शीघ्रही प्राप्त हुये ॥ ३५ ॥ तदनन्तर प्रसन्न चित्तवाले धर्मपुत्र (युधिष्ठिर)जी ने प्रणाम किये हुये उन अर्जुनजी को आगे स्थित देखकर लिपटा लिया व कुशल पूछा ॥ ३६ ॥ और उससमय भीमादिक भ्राताओं व गुरुगणों से घिरेहुये युधिष्ठिरजीने कहा कि प्राचीन ऐसे कहेहुये इस तीर्थ को मैंने जानाहै ॥ ३७ ॥ कि

षितःस्नातं त्रिकालंनियतात्मना ॥ तेनतस्माद्विनिर्मुक्तः पातकात्पूर्वसञ्चितात् ॥ ३४ ॥ विज्ञायशुद्धदेहन्तु राजाधर्मसुतोद्रुतम् ॥ भ्रातृभिस्सहितःप्राप्तस्तंद्रष्टुंनरपुङ्गवम् ॥ ३५ ॥ ततस्तंप्रणतंदृष्ट्वा धर्मपुत्रःपुरःस्थितम् ॥ आलिलिङ्गप्रहृष्टात्मा पृष्टवांश्चाप्यनामयम् ॥ ३६ ॥ भीमादिभिर्भ्रातृभिश्च तदागुरुगणैर्वृतः ॥ एतद्वित्तंमयातीर्थं प्राचीनेतिचशब्दितम् ॥ ३७ ॥ स्नानक्रमेणमर्त्यानामन्येषामपिपावनम् ॥ त्रिरात्रोपोषितस्स्नातः तीर्थेस्मिन्ब्रह्महापियः ॥ ३८ ॥ विमुक्तःपातकात्तस्मान्मोदतेदिविरुद्रवत् ॥ प्राचीनेस्मिन्महातीर्थे वसामिसहितस्त्वया ॥ ३९ ॥ प्रभासेतुमहाक्षेत्रे विशेषात्तत्रभामिनि ॥ सरस्वत्युत्तरेतीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ॥ ४० ॥ प्राचीनेतुवरारोहे नैवेहागच्छतेपुनः ॥ आप्लुतोवाजिमेधस्य फलंप्राप्स्यतिपुष्कलम् ॥ ४१ ॥ नियमैश्चोपवासैश्च शोषयेद्देहमात्मनः ॥ जलाहारावायुभक्षाः

स्नान के क्रमसे अन्यमनुष्यों को भी यह पवित्रकारक है तीन रात्रोंतक उपास करके इस तीर्थ में नहायाहुआ जो ब्रह्मघाती भी होवै ॥ ३८ ॥ वह उस पाप से छूटकर स्वर्ग में शिवजीकी नाईं आनन्द करता है इस प्राचीन महातीर्थ में तुम समेत मैं बसताहूं ॥ ३९ ॥ हे भामिनि ! प्रभास महाक्षेत्र में व विशेषकर वहां सरस्वतीजी के उत्तर किनारेपै जो मनुष्य अपने शरीर को त्यागताहै ॥ ४० ॥ व हे वरारोहे ! जो प्राचीनक्षेत्र में शरीर को त्यागताहै वह फिर यहां नहीं आता है और इस तीर्थ में नहायाहुआ पुरुष अश्वमेध के बहुत फलको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ नियमों व उपवासों से वहां अपने शरीर को सुखावै जल आहारवाले व पवनभक्षी

तथा जो पत्तों को खानेवाले तपस्वी हैं ॥ ४२ ॥ और जो नित्यही चौतरों पै प्राप्त हैं व जो पृथक् अन्य नियमहैं उनसे इसप्रकार इस आश्रममें बसते हुये जिन लोगोंकी मृत्यु आगई ॥ ४३ ॥ वे मनुष्य नहींहैं वरन वे देवताहैं मैं तुमसे यह सत्य कहता हूं इसतीर्थ में जो मनुष्य श्रद्धासे मुख्य ब्राह्मणके लिये त्रुटिमात्र भी सुवर्णको देताहै वह सुमेरुतुल्य सुवर्ण के फलको प्राप्त होताहै और जो मनुष्य इस तीर्थमें श्राद्ध करैंगे ॥ ४४ । ४५ ॥ इक्कीस पुश्तियों से संयुत वे मनुष्य निश्चय कर स्वर्ग को जावैंगे और वह तीर्थ पितरों को प्रियहै क्योंकि एक पिंडसे तृप्त कियेहुये ॥ ४६ ॥ वे ब्रह्मलोकको जावैंगे जैसे कि गयाश्राद्ध करनेपर जाते हैं और कृष्ण-

पर्णाहाराश्चतापसाः ॥ ४२ ॥ येतुस्थण्डिलगानित्यं येचान्येनियमाःपृथक् ॥ एवमत्राश्रमेयेषां वसतांमृत्युरागतः ॥ ४३ ॥ नतेमनुष्यादेवास्ते सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ अस्मिंस्तीर्थेचयोदद्यात् त्रुटिमात्रंतुकाञ्चनम् ॥ ४४ ॥ श्रद्धयाविप्रमुख्याय मेरुतुल्यंफललभेत् ॥ अस्मिंस्तीर्थेचवैश्राद्धं येकरिष्यन्तिमानवाः ॥ ४५ ॥ एकविंशत्कुलोपेताः स्वर्गंयास्यन्तितेध्रुवम् ॥ पितृणांवल्लभंतीर्थं पिण्डेनैकेनतर्पिताः ॥ ४६ ॥ ब्रह्मलोकंगमिष्यन्ति गयाश्राद्धेकृतेयथा ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां स्नानंचविहितंसदा ॥ ४७ ॥ पिण्याकेनगुडेनापि पिण्डंतत्रददातियः ॥ पितृणामक्षयातृप्तिः पितृलोकंसगच्छति ॥ ४८ ॥ भूयश्चान्नंप्रयच्छन्ति मोक्षमार्गंव्रजन्तिते ॥ पुमान्योदधिदद्याच्च ब्राह्मणायमनोरमम् ॥ ४९ ॥ सगवांलोकमासाद्य भुंक्तेभोगान्सुशोभनान् ॥ ऊर्णप्रावरणंयोपि भक्त्यादद्याद्द्विजोत्तमे ॥ ५० ॥ सोपियातिपरांसिद्धिं मर्त्यैरन्यैस्सुदुर्लभाम् ॥ येचात्रमलनाशाय पुमांसोविविशुर्जले ॥ ५१ ॥ गोप्रदानंसमन्तेषां सुखेनफलमादिशेत् ॥

पक्ष में चौदसि तिथि में सदैव स्नान कही गईहै ॥ ४७ ॥ वहांपर जो मनुष्य पीना व गुड से पिण्डको देताहै उसके पितरोंकी अक्षय तृप्ति होती है और वह पितरों के लोक को जाता है ॥ ४८ ॥ वे फिर अन्न को देते हैं व मोक्षमार्ग को वे प्राप्त होतेहैं और जो पुरुष ब्राह्मण के लिये सुन्दर दही को देताहै ॥ ४९ ॥ वह गोलोक को प्राप्त होकर उत्तम सुखों को भोग करताहै व जो मनुष्य भक्तिसे ऊनके ओढ़ने को द्विजोत्तम के लिये देताहै ॥ ५० ॥ वह भी अन्य मनुष्यों से दुर्लभ उत्तम सिद्धि

को प्राप्त होता है और जो मनुष्य इस तीर्थ में मलनाशने के लिये जलमें पैठे हैं ॥ ५१ ॥ उनको गऊदान के समान फलको सुखपूर्वक कहै और जो कोई पुरुष उसमें भक्ति से स्नान करै ॥ ५२ ॥ सब पापों से छूट कर वह ब्रह्मलोक में पूजाजाता है और इस तीर्थ में तर्पण व पिंडदान से नरकों में टिकेहुये ॥ ५३ ॥ पितर उत्तम पुत्र से तारितहोकर स्वर्ग को जातेहैं प्राची सरस्वती को प्राप्त होकर जो हिमालय तीर्थ को जाताहै ॥ ५४ ॥ वह हाथ में स्थित वस्तु को छोडकर कूपरेणुको चाटता है जिस जिस मनोरथ को चिन्तवन कर मनुष्य उस तीर्थ में प्राणों को त्यागताहै ॥ ५५ ॥ उस उस फलको तीर्थ के माहात्म्य के योगसे प्राप्त होताहै हे देवि ! पु-

भावेनयोनरस्तत्र कश्चित्स्नानंसमाचरेत् ॥ ५२ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोब्रह्मलोकेमहीयते ॥ तर्पणात्पिण्डदानाच्च नरकेष्वपिसंस्थिताः ॥ ५३ ॥ स्वर्गंप्रयान्तिपितरस्सुपुत्रेणहितारिताः ॥ प्राचींसरस्वतींप्राप्य यातितीर्थंहिमालयम् ॥ ५४ ॥ सकरस्थंसमुत्सृज्य कूपरेणुंसमालिहेत् ॥ यंयंकाममभिध्याय तस्मिन्प्राणान्परित्यजेत् ॥ ५५ ॥ तत्तत्फलमवाप्नोति तीर्थमाहात्म्ययोगतः ॥ अन्यद्देविपुरागीतं गाङ्गेयेनयुधिष्ठिरे ॥ ५६ ॥ सत्यमेवहिगङ्गायां वयंजातायुधिष्ठिर ॥ याःकाश्चित्सरितोलोके तासांपुण्यासरस्वती ॥ ५७ ॥ सरस्वतीसर्वनदीषुपुण्या सरस्वतीलोकसुखावहासदा ॥ सरस्वतींप्राप्यसुदुःखितानराः सदानशोचन्तिपरत्रचेहच ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये प्राचीसरस्वतीमाहात्म्यन्नामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

रातन समय गङ्गा के पुत्र (भीष्म जी) ने युधिष्ठिर से अन्य गान कियाहै ॥ ५६ ॥ कि हे युधिष्ठिर ! हम सत्यही गङ्गाजी में उत्पन्न हुये हैं ससारमें जो कोई नदिया हैं उनमें सरस्वती पुण्यरूपिणीहै ॥ ५७ ॥ सब नदियों में सरस्वती पुण्यदायिनी है व सरस्वती सदैव लोकों को सुख देनेवालीहै और सरस्वती को प्राप्त होकर सदैव दुःखित मनुष्य इस लोक व पर लोक में नहीं सोचतेहैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांसरस्वतीमाहात्म्यनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कङ्कण गिरे समुद्र महँ गोप वधू भइ रानि । पैंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुख खानि ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देव ! क्षारसमुद्र में कङ्कण किस लिये फेंका जाताहै आपने उसके पुण्य को पहले नहीं कहा अब यथायोग्य कहने के योग्य हो ॥ १ ॥ हे भगवन् ! कौन मंत्र है और वह कौन विधिहै व किससमय बहुत फल होताहै और पुरातन समय कङ्कण के आश्रित वह कौन वृत्तान्त हुआहै ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि पुरातन समय बृहद्रथ ऐसा कहाहुआ राजाहुआहै उसकी प्यारी व पतिव्रता स्त्री इन्दुमती नामकहुई है ॥ ३ ॥ जैसी वह सुमध्यमा (उत्तम कटिवाली) स्त्री थी वैसे रूपवाली न देवी, न गन्धर्वी, न दैत्यपत्नी, न किन्नरी और

देव्युवाच ॥ किमर्थंकङ्कणन्देव क्षिप्यतेलवणाम्भसि ॥ तस्यपुण्यन्नपूर्वोक्तं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ केमन्त्राःकिं विधानंतत्कस्मिन्कालेमहत्फलम् ॥ किम्पुराभूच्चतद्वृत्तं भगवन्कङ्कणाश्रितम् ॥ २ ॥ हर उवाच ॥ आसीत्पुरामहीपालो बृहद्रथइतिस्मृतः ॥ तस्यभार्याभवत्साध्वी नाम्नाचेन्दुमतीप्रिया ॥ ३ ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनचकिन्नरी ॥ तादृग्रूपामहादेवी यादृशीसासुमध्यमा ॥ ४ ॥ शीलरूपगुणोपेता नित्यंसातुपतिव्रता ॥ सर्वैर्योषिद्गुणैर्युक्ता यथासाध्वीह्यरुन्धती ॥ ५ ॥ प्रधानास्त्रीसहस्रस्य सौभाग्यमदगर्विता ॥ नविनासतयारेमे मुहूर्त्तमपिपार्थिवः ॥ ६ ॥ एकदातस्यराजर्षेरन्तःपुरगतासती ॥ यावत्तिष्ठतिराजेन्द्र ऋषिस्तावदुपागतः ॥७॥ कण्वोनाममहातेजास्तपस्वीवेदपारगः ॥ तमागतमथोदृष्ट्वा सहसोत्थायपार्थिवः ॥ ८ ॥ पूजांकृत्वायथान्यायं दत्त्वाचार्घ्यमनुत्तमम् ॥ सुखासीनंततोमत्वा विश्रान्तंमुनिपुङ्गवम् ॥ ९ ॥ अपृच्छत्कुशलंराजा सर्वंचाप्यनुमोदयत् ॥ ततोधर्मकथांचक्रे सऋषिर्नृपसन्निधौ ॥१०॥

न महादेवी है ॥ ४ ॥ सदैव शील,रूप व गुणोंसे संयुक्त तथा स्त्रियों के सब गुणोंसे युक्त वह पतिव्रता स्त्री वैसीहीथी जैसी कि अरुन्धतीजी पतिव्रताहैं ॥ ५ ॥ हज़ार स्त्रियोंके मध्यमें वहप्रधानथी इसीकारण सौभाग्यके गर्वसे गर्वितथी क्योंकि वह राजा उसके विना मुहूर्तभर भी नहीं रमण करताथा ॥६ ॥ एकसमय उसराजर्षिकी पतिव्रता स्त्री रनिवासमें प्राप्तथी और जबतक राजेन्द्र बृहद्रथजी स्थितहुये तबतक वेदोंके पारगामी कण्वनामक बड़े तेजस्वी तपस्वी आगये इसके अनन्तर आयेहुये उनकण्वजी को देखकर राजाने यकायक उठकर ॥ ७ । ८ ॥ विधिपूर्वक पूजनकरके अतिउत्तम अर्घ्यको देकर तदनन्तर सुख से बैठेहुये मुनिश्रेष्ठ को सहँताये हुये जानकर ॥ ९ ॥

राजा वृहद्रथ ने कुशल पूंछा व सब अनुमोदन किया तदनन्तर राजा के समीप उन कण्वमहर्षि ने धर्मकी कथा को कहा ॥ १० ॥ उसके उपरान्त कथा के अन्तमें उन भूपति की वह स्त्री हाथों को जोड़कर अमृत वचन बोली ॥ ११ ॥ इन्दुमती बोलीं कि हे भगवन्, विभो ! तुम भूत व भविष्य सब जानते हो इसलिये कौतुक मे संयुत मैं तुमसे कुछ पूछती हूं उसको क्षमा करने के योग्य हो ॥ १२ ॥ अन्यदेह से उपजे हुये मेरे सब कर्म को कहिये कि ऐसा मेरा सौभाग्य है व देवसुत के समान याने देवताओं की नाईं मेरा पति है ॥ १३ ॥ सौभाग्य व पतिव्रत धर्म और शील त्रिलोकमें प्रसिद्ध है क्या यह व्रत का प्रभाव है अथवा उपासका प्रभाव

ततःकथावसानेसा भार्यातस्यमहीपतेः ॥ अब्रवीदमृतंवाक्यं कृताञ्जलिपुटासती ॥ ११ ॥ इन्दुमत्युवाच ॥ त्वंवे त्सिभगवन्सर्वमतीतानागतंविभो ॥ पृच्छेत्वांकौतुकाविष्टा तस्मात्त्वंक्षन्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ अन्यदेहोद्भवंकर्म मम सर्वंप्रकीर्त्तय ॥ ईदृशंममसौभाग्यं पतिर्देवसुतोपमः ॥ १३ ॥ सौभाग्यंपतिदैवत्यं शीलंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ किंप्रभा वोव्रतस्यैव उताहोपोषितस्यवा ॥ १४ ॥ दानस्यवामुनिश्रेष्ठ यन्मेसौभाग्यमुत्तमम् ॥ वशीराजामहाबाहुर्ममवा क्यानुगस्सदा ॥ १५ ॥ एतन्मेसर्वमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिमे ॥ कण्व उवाच ॥ शृणुराज्ञिप्रवक्ष्यामि अन्यदेहोद्भवन्तव ॥ १६ ॥ नरोषश्चत्वयाकार्यो लज्जावापिसुमध्यमे ॥ त्वमासीरन्यदेहेतु आभीरीपञ्चभर्तृका ॥ १७ ॥ सौराष्ट्रविषयेही ना देवंसोमेश्वरङ्गता ॥ ततस्स्नातुंप्रविष्टाच सागरेलवणाम्भसि ॥ १८ ॥ ततःकल्लोललहरी विकलत्वमुपागता ॥ तव हस्ताच्च्युतंतत्र हैमंकङ्कणमेवच ॥ १९ ॥ नष्टंसमुद्रसलिले पश्चात्तापस्तुतेस्थितः ॥ अपकालेनमहता पञ्चत्वंत्वमुपाग

है ॥ १४ ॥ या हे मुनिश्रेष्ठ ! यह दान का प्रभाव है कि जो मेरे उत्तम सौभाग्य है माहाभुज व कान्तिमान् राजा बृहद्रथ सदैव मेरे वचन के अनुगामी हैं ॥ १५ ॥ मुझसे इस सबको कहिये मेरे बड़ा कौतुकहै कण्वजी बोले कि हे रानी ! सुनिये अन्य शरीर से उपजेहुये कर्म को मैं तुमसे कहूंगा ॥ १६ ॥ हे सुमध्यमे ! तुम को क्रोध व लज्जा न करना चाहिये अन्य शरीर में तुम सौराष्ट्र देश में पांच पतिवाली अहीरिनि हुई हो और हीनजातिवाली तुम सोमेश्वर देवजीके यहां गई तद- नन्तर क्षारजलवाले समुद्र में नहाने के लिये पैठ गई ॥ १७ । १८ ॥ तदनन्तर बड़ी भारी लहरियों से विकलता को प्राप्त हुई और उसमें तुम्हारे हाथ से सोनेका

कङ्कण गिरपड़ा ॥ १९ ॥ और समुद्र के जलमें नष्ट होगया व तुम्हारे पश्चात्ताप स्थित हुआ इसके अनन्तर बहुत समय से तुम मृत्यु को प्राप्त हुई ॥ २० ॥ उसके उपरान्त हे सुन्दरि ! दशार्ण देशके स्वामीके तुम पैदाहुई और कङ्कणके प्रभावसे बृहद्रथसे, व्याहीगई ॥ २१ ॥ हे शुभे ! पुरातनसमय तुमने न व्रतकिया न तपस्या किया और न दान दिया तुम जो मुझसे पूछतीहो इस समस्त चरितको मैंने कहा ॥ २२ ॥ उसको सुनकर वह विशालनैनी लज्जा से नीचे मुख करके स्थित हुई व उससमय वैसे वचन को सुनकर वह देवी चुप होरही ॥ २३ ॥ हे वरानने ! इसप्रकार उस राजाकी स्त्री से कहकर वे मुनि पृथ्वीपति से पूंछकर घरको गये ॥ २४ ॥ कहते हुये

ता ॥ २० ॥ दशार्णाधिपतेर्गेहे ततोजातासिसुन्दरि ॥ बृहद्रथेनवोढासि कङ्कणस्यप्रभावतः ॥ २१ ॥ नव्रतन्नतपोदानं त्वयाचीर्णंपुराशुभे ॥ एतन्मेसर्वमाख्यातं यन्मात्वंपरिपृच्छसि ॥ २२ ॥ तच्छ्रुत्वासाविशालाक्षी लज्जयाधोमुखी तथा ॥ आसीत्तूष्णींतदादेवी श्रुत्वावाक्यञ्चतादृशम् ॥ २३ ॥ एवंनिवेद्यसमुनीराजपत्न्यावरानने ॥ जगामभवनंतस्या आमन्त्र्यवसुधाधिपम् ॥ २४ ॥ ज्ञात्वाफलंकङ्कणस्य मुनेस्तस्यप्रसादतः ॥ गत्वासोमेश्वरन्देवं स्नात्वाचलवणाम्भसि ॥ २५ ॥ प्राक्षिपत्कङ्कणंतत्र सौवर्णंचमहाप्रभे ॥ ततोदेवत्वमापन्ना प्रभावात्तस्यभामिनि ॥ २६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सर्व कामप्रदोदेवि सर्वपातकनाशनः ॥ एषप्रभावस्सुमहान् कङ्कणस्यप्रकीर्त्तितः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासख ण्डेरुद्रप्रोक्तसंहितायांकङ्कणमाहात्म्यन्नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं पश्येत्पूर्वंकपर्द्दिनम् ॥ भगवन्संशयंह्येनं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥ सम्भूतयस्तवदेवेश

उन मुनिसे कङ्कणके फलको जानकर सोमेश्वर देवजीके यहां जाकर व क्षारसमुद्रमें नहाकर ॥ २५ ॥ हे महाप्रभे ! उसमें सोनेके कङ्कणको डाल दिया तदनन्तर हे भामिनि ! उसके प्रभावसे वह देवत्वको प्राप्त हुई ॥ २६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! समस्त कामनाओंको देनेवाला व समस्त पातकों का नाशक यह कङ्कण का बडाभारी प्रभाव कहागया ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुद्रप्रोक्तसंहितायांकङ्कणमाहात्म्यंनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

दो० । कह्यो कपर्दि गणेश कर पूजा स्तोत्र विधान । छत्तिसवें अध्याय मे सोई कियो बखान ॥ देवी पार्वतीजी बोली कि आपने जो यह कहा कि पहिले कपर्दी

देवजीके दर्शनकरै हे भगवन् ! इस संदेह को तुम यथायोग्य कहने के योग्य हो ॥ १ ॥ हे देवेश, महाप्रभु, शम्भुजी ! वह तुम्हारा दास है और प्रभुके बाद सेवक पूजने योग्य है यह सनातन धर्म है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं कहूंगा कि जिसप्रकार वे अवश्यकर पूजनीय हैं कपर्दी विघ्नेश्वर प्रभुजी सब देवताओं के आदिभूत हैं ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! प्रभासक्षेत्रमें स्थित जो ये लिंगरूपी सदाशिवजी इन्द्रियों के विषयको उल्लंघन कर ग्रहण करने योग्यहैं ॥ ४ ॥ उनके वामभाग में जो वाराह ऐसे कहे गये हैं वे विष्णुजी स्थित हैं और उनके दक्षिणभाग में प्रजापति ब्रह्माजी स्थित हैं ॥ ५ ॥ और सावित्री समेत चन्द्रमा के कारण

किलशम्भोमहाप्रभो ॥ प्रभोरनन्तरंभृत्य एषधर्मस्सनातनः ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि यथापूज्यतमोहिसः ॥ कपर्दीसर्वदेवानामाद्योविघ्नेश्वरःप्रभुः ॥ ३ ॥ योमावतीन्द्रियग्राह्यः प्रभासक्षेत्रसंस्थितः ॥ सोमेश्वरोमहादेवि लिङ्गरूपीसदाशिवः ॥ ४ ॥ तस्यवामेस्थितोविष्णुर्वराहेतिचयःस्मृतः ॥ तस्यदक्षिणभागेतु स्थितोब्रह्माप्रजापतिः ॥ ५ ॥ कपर्दीतपआस्थाय सावित्र्यासोमकारणात् ॥ कृतेहेरम्बनामातु त्रेतायांविघ्नमर्दनः ॥ ६ ॥ लम्बोदरोद्वापरेतु कपर्दीतुकलौस्मृतः ॥ एवंयुगेयुगेतस्य अवतारःपृथक्पृथक् ॥ ७ ॥ यथाकार्यानुरूपेण जायतेचपुनःपुनः ॥ अष्टाविंशन्तिमेतत्र देविप्राप्तेकलौयुगे ॥ ८ ॥ कारणात्मायथोत्पन्नः कपर्दीतच्चमेशृणु ॥ पुराद्वापरसन्धौतु सम्प्राप्तेचकलौयुगे॥९॥ स्त्रियोम्लेच्छाश्चशूद्राश्च येचान्येपापकारिणः ॥ प्रयान्तिस्वर्गमेवाशु दृष्ट्वासोमेश्वरंप्रभुम् ॥ १० ॥ नयज्ञनतपोदानं नस्वाध्यायंव्रतन्नच ॥ कुर्वन्तोपिनरादेवि सर्वेयान्तिशिवालयम् ॥ ११ ॥ तंप्रभावंविदित्वैवं सोमेश्वर

कपर्दीजी तप करके सतयुग में हेरम्बनामक व त्रेता में विघ्नमर्दकनामक हुये ॥ ६ ॥ और द्वापर में लम्बोदर व कलियुग में कपर्दी कहेगये हैं इसप्रकार प्रत्येक युगमें उनका अलग २ अवतार होता है ॥ ७ ॥ और कार्य के अनुसार बार २ वे उत्पन्न होते हैं हे देवि ! अट्ठाईसवां कलियुग प्राप्त होनेपर उसमें ॥ ८ ॥ जिसप्रकार कारण शरीरवाले कपर्दी जी उत्पन्न हुये हैं उसको मुझ से सुनिये कि पुरातन समय द्वापर की सन्धि में कलियुग प्राप्त होनेपर ॥ ९ ॥ स्त्री, म्लेच्छ, शूद्र और जो अन्य पापकारी हैं वे सोमेश्वर प्रभुको देखकर शीघ्रही स्वर्गको जातेथे ॥ १० ॥ न यज्ञ न तपस्या न दान न वेदपाठ और न व्रतको करतेहुये भी मनुष्य हे देवि ! सब शिव

जीके स्थान को जाते थे ॥ ११ ॥ इस प्रकार सोमेश्वरजी से उपजेहुये उस प्रभावको जानकर नरोत्तमों से अग्निष्टोमादिक सब कर्म नष्ट होगये ॥ १२ ॥ उसी कारण बालक, वृद्ध व वेदपारगामी ऋषिलोग व शूद्र और स्त्रियां भी उन सोमेश्वरजी को देखकर उत्तमगति को प्राप्त होते थे ॥ १३ ॥ नष्टयज्ञों के उत्सववाले समय में पृथ्वी शून्य होने पर ऊर्ध्वबाहुवों से आक्रमण किया हुआ स्वर्ग पूर्ण होगया ॥ १४ ॥ तदनन्तर महेन्द्रादिक देवता दुःख से संयुक्त हुये और मनुष्योंसे तिरस्कृत वे शिवजी की शरण में गये ॥ १५ ॥ और इन्द्रादिक सब सुरोत्तमों ने हाथोंको जोड़कर कहा कि हे शंकरजी ! तुम्हारे प्रसाद से यह सब स्वर्ग मनुष्यों

समुद्भवम् ॥ अग्निष्टोमादिकास्सर्वाः क्रियानष्टानरोत्तमैः ॥ १२ ॥ ततोबालाश्चवृद्धाश्च ऋषयोवेदपारगाः ॥ शूद्राः स्त्रियोपितंदृष्ट्वा प्रयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ १३ ॥ नष्टयज्ञोत्सवेकाले शून्येचवसुधातले ॥ ऊर्द्ध्वबाहुभिराक्रान्तं परिपूर्णं त्रिविष्टपम् ॥ १४ ॥ ततोदेवामहेन्द्राद्यादुःखेनचसमन्विताः ॥ परिभूतामनुष्यैस्ते शङ्करंशरणङ्गताः ॥ १५ ॥ ऊचुःप्राञ्जलयस्सर्वे इन्द्राद्यास्सुरसत्तमाः ॥ व्याप्तोयंमानुषैस्सर्वः प्रसादात्तवशङ्कर ॥ १६ ॥ निष्कर्षोयंप्रभोस्माकंस्थानंकिञ्चित्समादिश ॥ अहंश्रेष्ठअहंश्रेष्ठ इत्येवन्तेपरस्परम् ॥ १७ ॥ जल्पन्तःसर्वतोदेव पर्यटन्तियथेच्छया ॥ धर्मराजस्सुधर्मात्मा तेषांकर्मशुभाशुभम् ॥ १८ ॥ स्वयंलिखितमालोक्य तूष्णीमास्तेसुविस्मितः ॥ येषामर्थेकृतंसज्जं कुम्भीपाकं सुदारुणम् ॥ १९ ॥ रौरवंशाल्मलिन्देवं दृष्ट्वातान्दिविसंस्थितान् ॥ वैलक्ष्यंपरमंगत्वा व्यापारंत्यक्तवानसौ ॥ २० ॥ शिव उवाच ॥ प्रतिज्ञातंमयासर्वं भक्त्यातुष्टेनवैसुराः ॥ सोमायममसान्निध्यमस्मिन्क्षेत्रेभविष्यति ॥ २१ ॥ नश

से व्याप्त होगया ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! हम सबोंका यह अपमानहै इस लिये किसी स्थानको बतलाइये हे देव ! मैं श्रेष्ठहूं मैं श्रेष्ठ हूं ऐसा परस्परकहते हुये वे इच्छाके अनुकूल सब ओर घूमते हैं और धर्मात्मा धर्मराज उनके शुभाशुभ कर्मको ॥ १७ । १८ ॥ आपही लिखेहुये देखकर विस्मित होकर चुप होरहते हैं क्योंकि जिनके लिये बड़ा भयङ्कर कुम्भीपाक नरक तैयार कियागया ॥ १९ ॥ और हे देव ! रौरव व शाल्मलि नरकको जिनके लिये बनाया है उनको स्वर्गमें स्थित देखकर बड़ी विलक्षणताको प्राप्तहोकर इन यमराज ने व्यापारको छोड़दिया ॥ २० ॥ शिवजी बोले कि हे देवताओ ! भक्तिसे प्रसन्न मैंने सोमजीके लिये सब प्रतिज्ञा कियाहै कि इस क्षेत्रमें मेरी

समीपता होगी॥ २१ ॥ जो अपनासे कहागयाहै वह अन्यथा नहीं कियाजासक्ता है इस कारणसे वे पुरुष स्वर्गको जावैंगे कि जो वहां मुझको देखैंगे ॥ २२ ॥ तदनन्तर भयसे ऊबेहुये श्रेष्ठ देवता घुटनुवोंसे पृथ्वीमें प्राप्तहोकर मस्तकपै अञ्जलीको धरकर इसस्तोत्रसे स्तुतिकिया ॥ २३ ॥ देवताबोले कि हे देवदेवेशि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व हे संसारधारिके ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे कमलपत्रलोचनि ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे काञ्चनाकृते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे संहार करनेवाली ! संसारको रचनेवाली तुम्हारे लिये प्रणाम है हे शङ्करप्रिये ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे कालरात्रि ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे पर्वतपुत्रिके ! तुम्हारे लिये नमस्कार

कथमन्यथाकर्तुमात्मनोयदुदीरितम् ॥ एवंयास्यन्तितेस्वर्गं येमांद्रक्ष्यन्तितत्रवै ॥ २२ ॥ भयोद्विग्नास्ततोदेवाः स्तोत्रेणानेनसत्तमाः ॥ जानुभ्यांधरणीङ्गत्वा शिरस्याधायचाञ्जलिम् ॥ २३ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेशि नमस्तेविश्वधातृके ॥ नमस्तेपद्मपत्राक्षि नमस्तेकाञ्चनाकृते ॥ २४ ॥ नमस्तेसंहर्त्रिकर्त्र्यै नमस्तेशङ्करप्रिये ॥ कालरात्रिनमस्तुभ्यं नमस्तेगिरिपुत्रिके ॥ २५ ॥ आर्येभद्रेविशालाक्षि नमस्तेलोकसुन्दरि ॥ त्वंरतिस्त्वंधृतिस्त्वंश्रीस्त्वंस्वाहात्वंस्वधासती ॥ २६ ॥ त्वंदुर्गात्वंमतिर्मेधा त्वंसर्वस्वंवसुन्धरा ॥ त्वयासर्वमिदंव्याप्तं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ २७ ॥ नदीषुपर्वताग्रेषु सागरेषुगुहासुच ॥ अरण्येषुचचैत्येषु मुनीनामाश्रमेषुच ॥ २८ ॥ त्रैलोक्येतन्नपश्यामो यत्रत्वंदेविनस्थिता ॥ एतच्छ्रुत्वाविशालाक्षि त्राहिनोमहतोभयात् ॥ २९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्तातुसादेवी देवैरिन्द्रपुरोगमैः ॥ कारुण्यान्निजदेहन्तु तदामर्द्दितवत्यपि ॥ ३० ॥ शिवउवाच ॥ मर्दयन्त्यास्तवतदा संजातंचमहत्फलम् ॥ तत्रजज्ञेगजेन्द्रा

है ॥ २५ ॥ हे आर्ये, भद्रे, विशालाक्षि, लोकसुन्दरि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै तुमरति हो, तुम धृतिहो, तुम लक्ष्मीहो तुम स्वाहाहो और तुम स्वधा व सतीहो ॥ २६ ॥ तुम दुर्गाहो तुम्हीं बुद्धिहो तुम्हीं मेधाहो तुम सर्वस्वहो और तुम पृथ्वीहो यह चराचर सब संसार तुमसे व्याप्त है ॥ २७ ॥ नदियोंमें पर्वताओं में, समुद्रोंमें व गुहाओं में वनोंमें मन्दिरों में व मुनियों के आश्रमों में ॥ २८ ॥ हे देवि ! त्रिलोक में उस वस्तुको हमलोग नहीं देखते हैं कि जहां तुम नहीं स्थितहो इसको सुनकर हे विशाललोचनि ! हमलोगों की बड़ेभय से रक्षा कीजिये ॥ २९ ॥ सूतजी बोले कि इन्द्रादिक देवताओं से ऐसा कहीहुई उन पार्वतीदेवीजी ने उस समय दयासे अपने

शरीर को मर्दन किया ॥ ३० ॥ शिवजी बोले कि उस समय तुम्हारे मर्दन करतेहुये बड़ा फलहुआ कि उसमें हाथीके समान मुखवाला व चारभुजाओंवाला सुन्दर पुत्र पैदाहुआ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर तीव्रफलवाली भगवतीजी ने सब देवताओं से इच्छापूर्वक कहा कि तुम लोगोंके हितकी कामनासे मैंने एकही पुत्रको रचाहै ॥ ३२ ॥ यह प्राणियों के सब विघ्नोंको करैगा जो कामसे नष्टबुद्धिवाले जो नष्ट होकर मोहमें प्रवेश करैंगे ॥ ३३ ॥ सोमनाथको न देखतेहुये वे पुरुष नरकको जावैंगे ऐसा वचन सुनकर वे सब देवता प्रसन्नमनवाले हुये ॥ ३४ ॥ और मनुष्योंके डरको छोड़कर देवता अपने स्थानको प्राप्तहुये इसके उपरान्त गजवदनजी ने नम्रता संयुतहो-

स्यश्चतुर्बाहुर्मनोहरः ॥ ३१ ॥ ततोब्रवीत्सुरान्सर्वान् कामंतीव्रफलात्मिका ॥ एकएवमयासृष्टो युष्माकंहितकाम्यया ॥ ३२ ॥ एषविघ्नानिसर्वाणि प्राणिनांसंविधास्यति ॥ येहतामोहमाविष्टा कामोपहतबुद्धयः ॥ ३३ ॥ सोमनाथमपश्यन्तो यास्यन्तिनरकन्नराः ॥ एवन्तुवचनंश्रुत्वा सर्वेतेहृष्टमानसाः ॥ ३४ ॥ स्वस्थानंभेजिरेदेवास्त्यक्त्वावैमानुषंभयम् ॥ अथेभवदनःप्राह तान्देवींविनयान्वितः ॥ ३५ ॥ किङ्करोमिविशालाक्षि आदेशोदीयतांमम ॥ भगवत्युवाच ॥ गच्छप्राभासिकंक्षेत्रं यत्रसन्निहितोहरः ॥ ३६ ॥ रक्षस्वमानुषाणाञ्च यथानायातिगोचरम् ॥ लिङ्गन्तुदेवदेवस्य स्थापितंशशिनास्वयम् ॥ ३७ ॥ शिव उवाच ॥ भवत्यादेशतोनित्यं नृणांविघ्नंकरोतियः ॥ प्रस्थितंपुरुषंदृष्ट्वा सोमनाथंप्रतिप्रभुम् ॥ ३८ ॥ चकारातिमहाविघ्नं कपर्दीलोकपूजितः ॥ पुत्रदारागृहक्षेत्रं धनधान्यसमुद्भवम् ॥ ३९ ॥ जनयेत्समहामोहं ततःपश्यन्तिनोहरम् ॥ अथवागलगण्डादि व्याधिञ्चैवसमुत्सृजेत ॥ ४० ॥ तैर्ग्रस्तःपुरुषोमोहा

कर उन देवीजीसे कहा ॥ ३५ ॥ कि हे विशाललोचनि ! मैं क्या करूं मुझको आज्ञादीजिये भगवतीजी बोलीं कि प्रभासक्षेत्रको जाइये जहां कि सदाशिवदेवजी टिके हैं ॥ ३६ ॥ चन्द्रमासे आपही थापेहुये देवदेव शिवजी के लिंगकी रक्षा कीजिये कि जिसप्रकार वह मनुष्यों के दृष्टिगोचर न होवै ॥ ३७ ॥ शिवजी बोले कि आपकी आज्ञासे सदैव जो मनुष्यों का विघ्न करते हैं सोमनाथ स्वामी के यहां जातेहुये पुरुष को देखकर ॥ ३८ ॥ लोकमें पूजित कपर्दीजी ने बड़ाभारी विघ्न किया पुत्र, स्त्री, गृह, क्षेत्र व धन, धान्यसे उपजेहुये ॥ ३९ ॥ महामोह को वे उत्पन्न करते हैं उसी कारण मनुष्य शिवजीको नहीं देखतेहैं अथवा कपर्दीजी गलगण्डादि भय को

उत्पन्न करते हैं ॥ ४० ॥ उसी कारण उनसे ग्रस्त पुरुष मोहसे शिवजीको नहीं देखता है इसलिये सोमेश्वरजीके प्राप्तिकी इच्छासे सब उपाय से ॥ ४१ ॥ वे कपर्दीजी नित्य पूजनेयोग्य हैं व अहर्निश स्मरण करनेयोग्य हैं हे देवेशि ! सब विघ्नोंको नाश करनेवाले इस स्तोत्रसे ॥ ४२ ॥ प्रभासक्षेत्र के रक्षक गणेशजी भलीभांति आराधन करनेयोग्य हैं मैं तुमसे उस स्तोत्रको कहताहूं जोकि विघ्नविनाशक है ॥ ४३ ॥ हे महादेवि ! सावधान होकर तुम कपर्दीजी के स्तोत्रको सुनो कि विघ्नराजके लिये नमस्कारहै और कपर्दीजी के लिये प्रणाम होवै ॥ ४४ ॥ महाउग्र दाढ़ोंवाले प्रभासक्षेत्र निवासी के लिये प्रणाम है यात्राके निर्विघ्न के लिये कपर्दीजीको

न्नपश्यतिततोहरम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सोमेश्वरपराप्सया ॥ ४१ ॥ सनित्यंपूजनीयस्तुस्मर्तव्यस्तुदिवानिशम् ॥ स्तोत्रेणानेनदेवेशि सर्वविघ्नान्तकेनवै ॥ ४२ ॥ समाराध्योगणाध्यक्षः प्रभासक्षेत्ररक्षकः ॥ तत्तेहंसंप्रवक्ष्यामि स्तोत्रंविघ्ननाशनम् ॥ ४३ ॥ कपर्दिनोमहादेवि सावधानावधारय ॥ ओंनमोविघ्नराजाय नमस्तेस्तुकपर्द्दिने ॥ ४४ ॥ नमोमहोग्रदंष्ट्राय प्रभासक्षेत्रवासिने ॥ कपर्दिनंनमस्कृत्य यात्रानिर्विघ्नहेतवे ॥ ४५ ॥ स्तोष्येहंविघ्नराजानं सिद्धिबुद्धिप्रियंशुभम् ॥ महागणपतिंशूरमजितंजयवर्द्धनम् ॥ ४६ ॥ एकदन्तंद्विदन्तंच चतुर्द्दन्तंचतुर्भुजम् ॥ त्र्यक्षंत्रिशूलहस्तंच रक्तनेत्रंवरप्रदम् ॥ ४७ ॥ अजेयंशङ्कुकर्णंच प्रचण्डंदण्डनायकम् ॥ आयस्कदण्डिनंचैव हुतवक्त्रंहुतप्रियम् ॥ ४८ ॥ अनर्चितोविघ्नकरस्सर्वकार्येषुयोनृणाम् ॥ तन्नमामिगणाध्यक्षं भीममुग्रमुमासुतम् ॥ ४९ ॥ मदवन्तंविरूपाक्षमिभवक्त्रसमप्रभम् ॥ ध्रुवञ्चनिश्चलंशान्तं तन्नमामिविनायकम् ॥ ॥ ५० ॥ त्वयापूर्वेणपूर्वेषां देवानांकार्यसिद्धये ॥ गजरूपंस

प्रणामकर ॥ ४५ ॥ मैं सिद्धि व बुद्धिप्रिय तथा मङ्गलरूप विघ्नराजकी स्तुति करता हूं व महागणपति, शूर, अजित, जयवर्द्धन ॥ ४६ ॥ एकदन्त, द्विदन्त, चतुर्दन्त व चतुर्भुज तथा त्रिलोचन व त्रिशूलको हाथमें लिये व अरुणनेत्रोंवाले और वरदायक ॥ ४७ ॥ न जीतनेयोग्य, कीलों के समान कर्णवाले, प्रचण्डदण्डनायक व लोह दण्डवाले व हुतानन तथा हुतप्रिय कपर्दीजी की मैं स्तुति करताहूं ॥ ४८ ॥ सब कार्योंमें बिन पूजेहुये जो मनुष्यों के विघ्नकारक हैं उन पार्वती के पुत्र भयङ्कर व उग्र गणेशजी की मैं स्तुति करताहूं ॥ ४९ ॥ और मदवाले, विरूपलोचन व हाथीके मुखकेसमान शोभावाले, ध्रुव, निश्चल व शान्त उन गजाननजीको मैं प्रणाम

करताहूं ॥ ५० ॥ पुरातन समय तुमने पहलेवाले देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये हाथीके रूपको प्राप्त होकर सब दानवों को त्रासित कराया है ॥ ५१ ॥ और तुमने ऋषियों व देवताओं की स्वामिताको प्रकाशितकिया इसप्रकार उग्रदेवताओं से स्तुतिकियेहुये वे शिवपुत्र पूजितहुये ॥५२॥ जो पुरुष कार्यके लिये नियत व नियतभोजी होकर चौथितिथि में लालकपड़ों को धारणकर एक समय व दो समयों में अरुणफूलों से व अरुणचन्दन व जलसे पूजन करताहै उसके राजा व राजाके पुत्र तथा राजाके मन्त्रीको ॥ ५३ । ५४ ॥ व बन्धुवों समेत राज्यको सब विघ्नोंके स्वामी गणेशजी वश करते हैं सब तीर्थोंमें जो फलहोता है व समस्तयज्ञों में जो फल होताहै ॥

मास्थाय त्रासितास्सर्वदानवाः ॥ ५१ ॥ ऋषीणान्देवतानांच नायकत्वंप्रकाशितम् ॥ इतिस्तुतःसुरैरुग्रैः पूजितस्सभवात्मजः ॥ ५२ ॥ कार्यार्थेरक्तकुसुमै रक्तचन्दनवारिभिः ॥ रक्ताम्बरधरोभूत्वा चतुर्थ्यामर्चयेत्तुयः ॥ ५३ ॥ एककालं द्विकालंवा नियतोनियताशनः ॥ राजानंराजपुत्रंवा राजमन्त्रिणमेवच ॥ ५४ ॥ राज्यंवासर्वविघ्नेशो वशीकुर्यात्सबान्धवम् ॥ यत्फलंसर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषुयत्फलम् ॥ ५५ ॥ तत्तत्फलमवाप्नोति स्तुत्वादेवंविनायकम् ॥ विषमन्नभवेत्तस्य नचगच्छेत्पराभवम् ॥ ५६ ॥ नचविघ्नंभवेत्तस्य ततोजातिस्मरोभवेत् ॥ ५७ ॥ यइदंपठतेस्तोत्रं षड्भिर्मासैर्फलंलभेत् ॥ संवत्सरेणसिद्धिंच लभतेनात्रसंशयः ॥ ५८ ॥ प्रसादाद्दर्शनंयाति तस्यसोमेश्वरःप्रभुः ॥ कपर्द्दाकारमुदरं यतोस्यसमुदाहृतम् ॥ ५९ ॥ ततोस्यनामजानीहि कपर्दीतिमहात्मनः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कपर्दीमाहात्म्यन्नामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

५५ ॥ उसी फलको गणेशदेवजी को स्मरणकरके वह पुरुष पाताहै और उसको कठिनकार्य नहीं होताहै और वह तिरस्कार को नहीं प्राप्त होताहै ॥ ५६ ॥ और उसको विघ्नका भय नहीं होताहै और उससे जातिका स्मरण करनेवाला होताहै ॥ ५७ ॥ जो पुरुष इस स्तोत्रको पढ़ता है वह छा महीनेमें फलको पाताहै और वर्षभरमें सिद्धिको प्राप्तहोता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५८ ॥ और सोमेश्वर प्रभु प्रसन्नतासे उसके दर्शन में प्राप्तहोते हैं जिस लिये कपर्द के समान इनका पेट कहा गयाहै ॥ ५९ ॥ उसी कारण इन महात्मा का कपर्द्दी ऐसा नाम जानिये ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकपर्दीमाहात्म्यंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दो• । केदारेश्वर पूजि जिमि भयो भूप शशिबिन्दु । सैंतिसवें अध्याय में सोई चरित सुबिन्दु ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! इसके उपरान्त विधिसे कपर्दी देवदेवजी को भलीभांति पूजकर तदनन्तर केदारनामक लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! उसीके आग्नेय दिशाके भागमें स्थित भीमेश्वरजी के समीप में प्राप्त आपही से उपजाहुआ कल्पलिंग मुझको प्यारा है ॥ २ ॥ हे देवि ! महाप्रभावान् वृद्धिलिंग मुझ से पूजित है वहांपर जो निराहारी पुरुष जागरण करता है ॥ ३ ॥ और जो विशेषकर चौदसि में जागरण करता है उसको सनातन लोकहोते हैं पहलेयुगमें उन शिवदेवजी का रुद्रेश्वर ऐसा नामहुआहै ॥ ४ ॥ और फिर इस कलियुग

ईश्वर उवाच॥ अतस्सम्पूज्यविधिना देवदेवंकपर्दिनम्॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंकेदारसंज्ञितम् ॥ १॥ तस्यैवाग्नेय भागस्थं भीमेश्वरसमीपगम् ॥ स्वयम्भुवंमहादेवि कल्पलिङ्गममप्रियम् ॥ २ ॥ मयासम्पूजितन्देवि वृद्धिलिङ्गंमहा प्रभम् ॥ निराहारस्तुयस्तत्र करोत्येवंप्रजागरम् ॥ ३ ॥ चतुर्दश्यांविशेषेण तस्यलोकास्सनातनाः ॥ रुद्रेश्वरेतिदेवस्य ह्यासीन्नामपुरायुगे ॥ ४ ॥ तिष्येस्मिंस्तुपुनःप्राप्तेम्लेच्छस्पर्शभयातुरः॥ अस्मिँल्लिङ्गेलयंयातःकेदारश्चाब्धिसन्निधौ ॥५॥ तेनकेदारनामेति तस्यख्यातंधरातले ॥ माघमासिजिताहारः स्नात्वातुलवणोदधौ॥ ६ ॥ पद्मकेतुमहाकुण्डे मध्येस्य लवणाम्भसः ॥ रुद्रेशाद्दक्षिणेभागे धनुषांदशकेस्थिते ॥ ७ ॥ स्नात्वाविधानतोदेवि रुद्रेशंचार्चयिष्यति ॥ सम्यक्के दारयात्रायाः फलंतस्यभविष्यति ॥ ८ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां पूजनान्नाशनंमहत् ॥ अथतस्यैवदेवस्य इतिहासंपुरात नम् ॥ ९ ॥ सर्वकामप्रदंनृणां कथ्यतेतेसुरप्रिये ॥ आसीद्राजापुरादेवि शशिबिन्दुरितिस्मृतः ॥ १० ॥ सार्वभौमोमही

के प्राप्तहोनेपर म्लेच्छों के स्पर्शके भयसे विकल केदारेश्वरजी समुद्र के समीप इस लिंगमें लयको प्राप्तहुये हैं ॥ ५ ॥ उससे उसका केदार ऐसा नाम पृथ्वी में प्रसिद्ध हुआहै माघ महीने में भोजन को जीतेहुये जो पुरुष क्षारसमुद्रमें नहाकर ॥ ६ ॥ व हेदेवि ! इस क्षारसमुद्रके मध्यमें रुद्रेशजी से दक्षिणभाग में दश धनुष पै स्थित पद्मकेतु नामक महाकुण्डमें नहाकर जो पुरुष विधिसे रुद्रराजीको पूजैगा उसको भलीभांति केदारयात्रा का फलहोगा ७।८ ॥ और उनके पूजन से ब्रह्महत्यादि पापोंका बड़ा विनाश होताहै अब उन्हीं शिवदेवजीका प्राचीन इतिहास ॥ ९ ॥ हे सुरप्रिये ! जोकि मनुष्योंको सब कामनाओं का दायकहै वह तुमसे कहाजाताहै हे देवि ! पुरातन

समय शशिबिन्दु ऐसा कहाहुआ राजाहुआ है ॥ १० ॥ जो भूपाल कि चक्रवर्ती व शत्रुगणोंका नाशक था वह भूपति कलियुग व द्वापरकी सन्धिमें हुआहै ॥ ११ ॥ उस की पतिव्रता स्त्री प्राणोंसे भी प्यारीथी न देवी, न गन्धर्विणी, न दैत्यपत्नी और न नागपत्नी ॥ १२ ॥ वैसी रूपवतीथी जैसे कि उत्तम कटिवाली तथा उत्तम नेत्रोंवाली स्त्रीथी और उस राजाके सुवर्णमय व शीघ्रगामी सुन्दर रथथा ॥ १३ ॥ उस महात्मा का आकाशगामी व वेगसंयुत जो रथथा हे देवेशि ! उसके द्वारा इच्छासे सब लोकोंमें घूमता हुआ वह राजा ॥ १४ ॥ हे वरानने ! एक समय फाल्गुन महीनेकी कृष्णपक्षवाली चौदसि तिथिमें उत्तम प्रभासक्षेत्र में प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त रात्रि

पालो विपक्षगणसूदनः ॥ कलिद्वापरयोःसन्धौ सम्भूतःपृथिवीपतिः ॥ ११ ॥ तस्यभार्याभवत्साध्वी प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनचपन्नगी ॥ १२ ॥ तादृग्रूपावरारोहा यथासाशुभलोचना ॥ तस्यहेममयंयानमाशुगंसुमनोरमम् ॥ १३ ॥ खेचरंवेगयुक्तंच तस्यराज्ञोमहात्मनः ॥ सतेनपर्यटँल्लोकान्सर्वान्देवेशिकामतः ॥ १४ ॥ एकदाफाल्गुनेमासि कृष्णपक्षेवरानने ॥ चतुर्दश्यान्तुसम्प्राप्ते प्रभासक्षेत्रमुत्तमम् ॥ १५ ॥ अथापश्यदृषीन्सर्वाञ्छ्रीसोमेशपुरस्थितान् ॥ रात्रौजागरणार्थाय जपहोमपरायणान् ॥ १६ ॥ सदृष्ट्वासोमनाथन्तु प्रणिपत्यविधानतः ॥ पूजयामाससर्वांस्तान् क्रमतोभक्तिसंयुतः ॥ १७ ॥ ततःकेदारमासाद्य सम्प्राप्यविधिवत्प्रिये ॥ पूजयित्वाविचित्राभिः पुष्पमालाभिरीश्वरम् ॥ १८ ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्वस्त्रैर्भूषणैश्चमनोहरैः ॥ ततोत्रकारयामास जागरंसुसमाहितः ॥ १९ ॥ ततस्तेमुनयस्सर्वे कुतूहलसमन्विताः ॥ च्यवनोयाज्ञवल्क्यश्च शाण्डिल्यःशाकटायनः ॥ २० ॥ रैभ्योथजै

में जागरण के लिये जप व होममें परायण तथा श्रीसोमेशजी के आगे बैठेहुये स्थित सब ऋषियों को उसने देखा ॥ १६ ॥ सोमनाथजी को देखकर व विधि से प्रणामकर भक्तिसंयुक्त उसने क्रमसे उन सबोंका पूजन किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर हे प्रिये ! केदारक्षेत्र को जाकर व भलीभांति प्राप्तहोकर विधिपूर्वक विचित्र पुष्पमालाओं से सदाशिवजीको पूजकर ॥ १८ ॥ व अनेक भांति के नैवेद्यों व सुन्दरवस्त्रों तथा भूषणों से पूजकर तदनन्तर यहां सावधान होकर उसने जागरण किया ॥ १९ ॥

तदनन्तर वे सब मुनि कौतुक से संयुतहुये च्यवन, याज्ञवल्क्य, शाण्डिल्य, शाकटायन ॥ २० ॥ रैभ्य, जैमिनि, क्रौंच व नारद, पर्वत, शित ये मार्कण्डेयजी को आगेकर वहां समीप गये ॥ २१ ॥ और उन्होंने विचित्र अर्थवाली कथाको कहा व बहुत से इतिहासोंको कहतेहुये वे वहांपर स्थित हुये और श्रेष्ठ राजासे पूछतेभये ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे नराधिप, प्रभो ! सोमेश्वर देवजीको छोड़कर किसलिये केदारजी के आगे जागरण व पूजन करते हो ॥ २३ ॥ राजा बोले कि हे सब ब्राह्मणो ! मेरे अन्यशरीरसे उपजेहुये चरित्रको सुनिये कि पहले ब्राह्मणों को पूजनेवाला मैं शूद्रजाति में उत्पन्न हुआथा ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणो ! उत्तम सौराष्ट्रदेश में मैं

मिनिःक्रौञ्चो नारदःपर्वतःशितः ॥ मार्कण्डंपुरतःकृत्वा जग्मुस्तत्रसमीपतः ॥ २१ ॥ चक्रुःकथांसुचित्रार्थामितिहासा निभूरिशः ॥ कीर्त्तयन्तःस्थितास्तत्र पप्रच्छुराजसत्तमम् ॥ २२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कस्मात्सोमेश्वरन्देवं परित्यज्य नराधिप ॥ केदारस्यपुरोकार्षीर्जागरंपूजनंप्रभो ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ शृण्वन्तुब्राह्मणास्सर्वे अन्यदेहोद्भवंमम ॥ पुराहंशूद्रजातीय आसंब्राह्मणपूजकः ॥ २४ ॥ सौराष्ट्रविषयेशुभ्रे धनधान्यसमाकुलः ॥ अथकालान्तरेतत्र ह्यनावृष्टि रभूद्द्विजाः ॥ २५ ॥ ततोहंक्षुधयाविष्टः प्रभासंक्षेत्रमाश्रितः ॥ अथापश्यंसरःशुभ्रं हरिणीमूलसंस्थितम् ॥ २६ ॥ तच्च रामसरोनाम पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ तत्क्षीरोदधिसङ्काशं दृष्ट्वास्नातःश्रमान्वितः ॥ २७ ॥ सन्तर्प्यचपितॄन्देवान् पीत्वास्वच्छमथोदकम् ॥ ततोहंभार्ययाप्रोक्तो गृहाणेमान्सरोरुहान् ॥ २८ ॥ एतत्समीपतोरम्यं दृश्यतेस्थानमुत्तमम् ॥ विक्रीणीमोवयंगत्वा येनस्याद्भोजनंविभो ॥ २९ ॥ अथावतीर्यसलिलं गृहीतानिमयाद्विजाः ॥ कमलानिसुभूरी

धन व धान्यसे संयुतथा इसकेअनन्तर वहां कुछ समयके बाद अवर्षणहुआ ॥ २५ ॥ तदनन्तर क्षुधासे संयुत मैं प्रभासक्षेत्रमें प्राप्तहुआ इसके उपरान्त मैंने हरिणी के मूलमें स्थित तड़ागको देखा ॥ २६ ॥ वह रामसर नामक तड़ाग कमलिनी समूहों से शोभित था क्षीरसागर के समान उस तड़ाग को देखकर परिश्रम से संयुत मैंने स्नान किया ॥ २७ ॥ और पितरों व देवताओं को भलीभांति तर्पणकर इसके उपरान्त उत्तम निर्मलजल को पीकर तदनन्तर स्त्रीने मुझसे कहा कि इन कमलोंको ग्रहण कीजिये ॥ २८ ॥ यह समीपही उत्तम व सुन्दर स्थान देख पड़ता है हे विभो ! यहा जाकर कमलों को बेंचें कि जिससे भोजन होवै ॥ २९ ॥ इसके उप-

रान्त जलको उतरकर मैंने बहुत से कमलों को ग्रहण किया और मैं नगर को चलताभाया ॥ ३० ॥ वहां जाकर हे मुनिश्रेष्ठो ! गांवके भीतरवाले मार्गोंमें व चौतरों तथा त्रिकों में कमलों को लेकर मैं घूमताभया ॥ ३१ ॥ और किसीने नहीं ग्रहण किया जब सूर्यनारायणजी अस्तको प्राप्तहुये तब किसी मन्दिरको प्राप्त होकर स्त्री समेत मैं सोगया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर स्त्री समेत मेरे विशेषता से क्षुधा उत्पन्नहुई और किसी देवमन्दिर में जागरण व होमको देखकर मैंने चिन्तवन किया ॥ ३३ ॥ कि कमलों को लेकर मैं इस देवालयमें जाऊं यदि कोई लेवैगा तो प्राणयात्रा होवैगी ॥ ३४ ॥ इसके उपरान्त हे मुनिश्रेष्ठो ! मैं उठकर यहां आया और उत्तमपुष्पों

णि प्रस्थितश्चपुरम्प्रति ॥ ३० ॥ तत्रगत्वाचरथ्यासु चत्वरेषुत्रिकेषुच ॥ प्रफुल्लकमलान्येव भ्रान्तोहंमुनिसत्तमाः ॥ ३१ ॥ नकश्चित्प्रतिगृह्णाति अस्तंप्राप्तोदिवाकरः ॥ प्रासादंकञ्चिदासाद्य सुप्तोहंसहभार्यया ॥ ३२ ॥ ततःक्षुधासमुत्पन्ना सभार्यस्यविशेषतः ॥ दृष्ट्वाजागरणंहोमं कस्मिंश्चिद्विबुधालये ॥ ३३ ॥ सरोरुहाणिचादाय व्रजाम्यत्रसुरालये॥ यदिकश्चित्प्रतिगृह्णाति प्राणयात्राततोभवेत् ॥ ३४ ॥ अथोत्थायसमायात अत्राहंमुनिपुङ्गवाः ॥ अपश्यंलिङ्गमेतत्तु पूजितंकुसुमैश्शुभैः ॥ ३५ ॥ रुद्रेश्वराभिधन्देवं वृद्धिलिङ्गंस्वयम्भुवम् ॥ वेश्यानङ्गवतीनाम शिवरात्रिपरायणा ॥ ३६ ॥ जागर्त्तिपुरतस्तस्य गीतनृत्योत्सवादिना ॥ ततःकश्चिन्मयापृष्टः किमेतद्रात्रिजागरम् ॥ ३७ ॥ कोयंस्त्रीदृश्यतेतथ्यं गीतनृत्योत्सवेरता ॥ सोब्रवीच्छिवधर्मोक्ता शिवरात्रिस्सुधर्मदा ॥ ३८ ॥ साचानङ्गवतीनाम्नी वेश्ययेयंधर्मसंयुता ॥ जागर्तिपरमंश्रेयः शिवरात्रिव्रतंशुभम् ॥ ३९ ॥ शिवरात्रिव्रतंह्येतद्यःकश्चित्कुरुतेनरः ॥ नसदुःखमवाप्नोति

से पूजित रुद्रेश्वर नामक देव आपहीसे उत्पन्न वृद्धिलिङ्ग ऐसे इस लिंगको मैंने देखा और शिवरात्रिमें परायण अनङ्गवती नामक वेश्या ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ गीत व नृत्य के उत्सवादिकसे उनके आगे जागतीथी तदनन्तर मैंने किसीसे पूंछा कि यह रात्रिजागरण किसलिये होताहै ॥ ३७ ॥ और बहुत गीत व नृत्यके उत्सव में परायण यह कौन स्त्री देख पड़ती है उसने कहा कि शिवधर्मोंमें कहीहुई शिवरात्रि उत्तम धर्मको देनेवाली है ॥ ३८ ॥ वह अनङ्गवती नामक वेश्याहै और धर्मसे संयुत यह वेश्या परम कल्याणदायक उत्तमव्रतमें जागरण करती है ॥ ३९ ॥ जो कोई मनुष्य इस शिवरात्रिव्रत को करता है वह दुःखको नहीं प्राप्तहोता है और न दरिद्र न ब-

नदारिद्रंनबन्धनम् ॥ ४० ॥ दुष्टंचारिष्टयोगंवा नरोगंवाभयंकचित् ॥ सुखसौभाग्यसंयुक्तो जायतेसकुलेनरः ॥ ४१ ॥ तेजस्वीचयशस्वीच सर्वकल्याणभाजनम् ॥ भवेदस्यप्रसादेन एवमाहुर्मनीषिणः ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ अथमेबुद्धिरुत्पन्ना तद्व्रतंप्रतिनिश्चला ॥ चिन्तितंमनसाह्येतन्मयाब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४३ ॥ अन्नाभावान्ममोत्पन्न उपवासोबलाद्यतः ॥ तदहंपद्मकेतीर्थे स्नात्वाचलवणाम्भसि ॥ ४४ ॥ एतैस्सरोरुहैर्देवं पूजयामिमहेश्वरम् ॥ ततोमयासभार्येण रुद्रेशस्सम्प्रपूजितः ॥ ४५ ॥ पद्मैश्चभक्तियुक्तेन सभार्येणविशेषतः ॥ जाग्रत्स्थितस्तुदेवाग्रे तांरात्रिंसहभार्यया ॥ ४६ ॥ ततःप्रभातसमये उदितेसूर्यमण्डले ॥ सावेश्यामामुवाचेदं कलधौतपलत्रयम् ॥ ४७ ॥ गृहाणमूल्यंपद्मानां गृहीतंहिमयानतत् ॥ सात्त्विकंभावमास्थाय सभार्येणद्विजोत्तमाः ॥ ४८ ॥ ततोभिक्षांसमाहृत्य प्राणयात्रामयाकृता ॥ कालेनमहताप्राप्तः कालधर्मंमुनीश्वराः ॥ ४९ ॥ इयंमेदयितासाध्वी प्राणेभ्योपिगरीयसी ॥ ममदेहंसमादाय प्र

स्थन को प्राप्तहोता है ॥ ४० ॥ और न दुष्ट न अरिष्ट का संयोग न रोग न कहीं भयको प्राप्तहोता है और वह मनुष्य वंशमें सुख व सौभाग्य से संयुत होताहै ॥ ४१ ॥ और इसके प्रसादसे तेजस्वी, यशस्वी व सब कल्याणोंका पात्रहोता है ऐसा विद्वान् कहते हैं ॥ ४२ ॥ राजा बोले कि इसके उपरान्त उस व्रतके लिये मेरे अचलबुद्धि उत्पन्नहुई व हे द्विजोत्तमो ! मैंने मनसे यह विचार किया ॥४३॥ कि जिस लिये अन्नके अभावसे मेरे बलसे उपास उत्पन्न हुआहै इसी कारण मैं क्षारसमुद्र में पद्मकतीर्थ में नहाकर ॥ ४४ ॥ इन कमलों से महेश्वरदेव का पूजन करूं तदनन्तर स्त्री समेत मैंने रुद्रेशजी को भलीभांति पूजा ॥ ४५ ॥ भक्तिसंयुत व स्त्री समेत मैंने विशेषता स कमलों करके पूजा और शिवदेवजी के आगे जागताहुआ मैं स्त्री समेत उस रात्रिभर स्थितरहा ॥ ४६ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल सूर्यमण्डल उदयहोनेपर उस वेश्याने मुझसे यह कहा कि तीनपल सुवर्ण ॥ ४७ ॥ कमलोंका मूल्य लीजिये हे द्विजोत्तमो ! सात्त्विकभाव में स्थित होकर स्त्रीसमेत मैंने उसको नहीं लिया ॥ ४८ ॥ तदनन्तर मैंने भिक्षाको लाकर प्राणयात्रा (भोजन) किया हे मुनीश्वरो ! बहुत समय के बाद मैं कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्तहुआ ॥ ४९ ॥ और प्राणोंसे भी

अधिक प्यारी यह मेरी प्यारी पतिव्रता स्त्री मेरे शरीर को लेकर अग्निमें पैठगई ॥ ५० ॥ उसके प्रभावसे मैं चक्रवर्ती राजाहुआ और स्त्री समेत मुझको जातिका स्मरणहै हे द्विजोत्तमो ! यह सत्यहै ॥ ५१ ॥ इस व्रतको मैंने कियाहै उसीका यह बड़ा भारीफलहै इस समय जैसी कुछ सामग्री है उससे भक्तिसंयुत मुझको ॥ ५२ ॥ जो कुछ फलहोवै उसको मैं नहीं जानताहूं हे मुनीश्वरो ! जिससे सोमेशजी को छोड़कर मैं यहां भक्तिमें तत्परहूं हे द्विजोत्तमो ! मैंने सत्यही उस कारणको कहा ॥ ५३ ॥ महादेवजी बोले कि ऐसा सुनकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले वे ब्राह्मण बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहतेहुये राजाकी प्रशंसा करतेभये ॥ ५४ ॥

विष्टाहव्यवाहनम् ॥ ५० ॥ तत्प्रभावादहंजातः सार्वभौमोमहीपतिः ॥ जातिस्मरस्सभार्यस्तु सत्यमेतद्द्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥ व्रतमेतत्समाचीर्णं तस्येदंसुमहत्फलम् ॥ अधुनाभक्तियुक्तस्य यथोपकरणान्मम ॥ ५२ ॥ भविष्यंयत्फलंकिञ्चिन्नोवेद्मिचमुनीश्वराः ॥ येनसोमेशमुत्सृज्य अत्राहंभक्तितत्परः ॥ कारणंतन्मयाख्यातं सत्यमेवद्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंश्रुत्वातुतेविप्रा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ साधुसाध्वितिजल्पन्तो राजानंसम्प्रशंसिरे॥५४॥ पूजयामासुरनिशं लिङ्गंतत्रस्वयम्भुवम् ॥ ततोसौपार्थिवश्रेष्ठो लिङ्गस्यास्यप्रसादतः ॥ ५५ ॥ सुसिद्धिंपरमांप्राप्तो दुर्लभांत्रिदशैरपि ॥ साचवेश्यानङ्गवती शिवरात्रिप्रभावतः ॥ ५६ ॥ तस्यलिङ्गस्यमाहात्म्याद्रम्भानामाप्सराभवत् ॥ ५७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तल्लिङ्गंपूजयेद्बुधः ॥ धर्मकामार्थमोक्षञ्च योवाञ्छत्यखिलन्नरः ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णनन्नामसप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥

और उन्होंने वहां आपही से उपजेहुये लिंगका सदैव पूजन किया तदनन्तर यह नृपोत्तम इस लिंग के प्रसाद से ॥ ५५ ॥ देवताओं से भी दुर्लभ अतिउत्तम सिद्धि को प्राप्तहुआ और वह अनङ्गवती वेश्या शिवरात्रि के प्रभाव से ॥ ५६ ॥ व उस लिंग के माहात्म्य से रम्भानामक अप्सराहुई ॥ ५७ ॥ इसलिये जो मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष सब चाहै वह विद्वान् सब उपाय से उस लिंगको पूजै ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकेदारेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । विश्वकेतु इमि लिंग को पूज्योहै जिमि भीम । अतिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुख सीम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उसके उपरान्त विश्वकेतु से थापे हुये लिंगके समीप जावै पुरातन समय जिस महाप्रभाववाले लिंगको भीमसेन नें आराधन किया है ॥ १ ॥ यात्रा के फलको चाहनेवाला पुरुष मर कर स्वर्ग के लिये केदारेश्वर के समीप थोड़ेही दूर पै स्थित उस लिंग को विधिपूर्वक क्रम से दूध के स्नानादिकों से पूजन करै देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देव ! श्वेतकेतु के जिस लिंग को तुमने मुझसे कहा ॥ २ । ३ ॥ हे देव ! उसका भीमेश्वर ऐसा नाम कैसे हुआहै व पहले कैसे निर्माण कियागयाहै और उसके देखने पर

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि श्वेतकेतुप्रतिष्ठितम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावन्तु भीमेनाराधितम्पुरा ॥ १ ॥ केदारेश्वरसान्निध्ये नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ पूजयेत्तद्विधानेनक्षीरस्नानादिभिःक्रमात् ॥ २ ॥ यात्राफलमभिप्रेप्सुः प्रेत्यस्वर्गफलायवै ॥ देव्युवाच ॥ श्वेतकेतोस्तुयद्देव लिङ्गंप्रोक्तंत्वयामम ॥ ३ ॥ तस्यजातंकथन्देव नामभीमेश्वरेतिच ॥ कथंस्विन्निर्मितंपूर्वं तस्मिन्दृष्टेतुकिंफलम् ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ आसीत्त्रेतायुगेपूर्वं राजास्वायंभुवेन्तरे ॥ श्वेतकेतुरितिख्यातो राजर्षिस्सुमहातपाः ॥ ५ ॥ सप्रभासंसमागत्य प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ तपस्तेपेसुविपुलं सागरस्यतटे शुभे ॥ ६ ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे वर्षास्वाकाशगस्तथा ॥ हेमन्तेजलमध्यस्थो नववर्षाणिपञ्चच ॥ ७ ॥ ततश्चतुर्द्दशेदेवि तपसानियमेनच ॥ युक्तःप्रोक्तोमयाराजा वरंवरयसुव्रत ॥ ८ ॥ श्वेतकेतुरथोवाच भक्तिन्देहिसुनिश्चलाम् ॥ स्थानेस्मिन्स्थीयतान्देव यदितुष्टोसिमेविभो ॥ ९ ॥ एवमेवतथोक्त्वाहं ततोन्तर्द्धानमागतः ॥ ततःकालान्तरेतीते

क्या फल होताहै ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि पुरातन समय स्वायंभुव मन्वन्तर में त्रेतायुग में श्वेतकेतु ऐसा प्रसिद्ध बड़ा तपस्वी राजर्षि राजा हुआ है ॥ ५ ॥ उसने प्रभासक्षेत्रमें भलीभांति आकर व महादेवजी को थापकर समुद्र के उत्तम किनारे पै बड़ा तप किया है ॥ ६ ॥ ग्रीष्म में पंचाग्नि साधन करनेवाला व वर्षा में आकाशग याने अनाच्छादित स्थान में रहनेवाला और हेमन्त में जलके बीच में स्थित उसने चौदह वर्ष तक तप किया ॥ ७ ॥ तदनन्तर हे देवि ! चौदहवें वर्ष में तपस्या व नियमसे संयुक्त उसराजासे मैंने कहा कि हे सुव्रत ! वरदानको मांगिये ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त श्वेतकेतुने कहा कि अचलभक्ति को दीजिये व हे विभो, देव !

यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहोतो इसस्थानमें स्थितहोवो ॥ ६ ॥ ऐसाही होगा यह कहकर उसके उपरान्तमैं अन्तर्द्धानमें प्राप्तहुआ तदनन्तर कुछ समय बीतने पर श्वेतकेतु राजा महाप्रभावान् ॥ १० ॥ इसलिंगकी भलीभांति आराधनकर बड़े ऐश्वर्यवाले स्थानको प्राप्त हुआ उसीकारण इससमस्त पातकों के नाशनेवाले महापुण्यवान् तीर्थ में इस लिंग का श्वेतकेत्वीश्वर ऐसा नाम हुआ तदनन्तर कलियुग प्राप्त होने पर मेरे अंश से उपजे हुये पवनपुत्र महाबाहु भीमसेनजी भाइयों से संयुत होकर जब तीर्थ यात्रा के प्रसंग से प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ११ । १२ । १३ ॥ तब रात्रि में जागरण करके उन्होंने समुद्र के समीप महापुण्यवान् तीर्थ को जाकर

श्वेतकेतुर्महाप्रभम् ॥ १० ॥ समाराध्यत्विदंलिङ्गंप्राप्तःस्थानंमहोदयम् ॥ ततोहिजातन्नामास्य श्वेतकेत्वीश्वरेतिच ॥ ११ ॥ अस्मिंस्तीर्थेमहापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ ततःकलियुगेप्राप्ते भ्रातृभिश्चसमन्वितः ॥ १२ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन यदाप्राभासमागतः॥ भीमसेनोमहाबाहुर्वायुपुत्रोममांशजः ॥ १३ ॥ तल्लिङ्गंपूजयामास कृत्वाजागरणंनिशि ॥ गत्वातीर्थंमहापुण्यं सागरस्यसमीपतः ॥ १४ ॥ तदाप्रभृतिभीमेशं पुनर्नामाभवच्छुभम्॥ दृष्टमात्रेणतेनैव सकृल्लिङ्गेन भामिनि ॥ १५ ॥ अन्यजन्मकृतान्येव पापानिसुबहून्यपि ॥ नाशमायान्तिसर्वाणि तथैवामुष्मिकानितु ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये भीमेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे सरस्वत्याप्रतिष्ठितम्॥ लिङ्गंमहाप्रभावन्तु सोमेशादग्निगोचरे ॥ १ ॥ भैरवे

उस लिंग का पूजन किया ॥ १४ ॥ तब से लगाकर फिर उत्तम भीमेशनाम हुआ हे भामिनि ! उस लिंग को एकबार देखने पर ॥ १५ ॥ अन्य जन्म में किये हुये बहुतसे पातक व इसजन्मवाले सब पाप नाश को प्राप्त होतेहैं ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभीमेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भैरवेश्वरलिंग जिमि थाप्यो सरस्वति देवि । उन्तालिस अध्याय में सोइ चरित सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि उसी भीमेशलिंग के पूर्वदिशाके भागमें व

सोमेशजी से आग्नेयदिशा में शरस्वतीजी से महाप्रभाववाला भैरवेश्वर रूपलिंग थापागया है जहांपर घटमें स्थित वड़वानल को सरस्वती देवीजी समुद्र के समीप लाईहैं ॥ १ । २ ॥ वहींपर सहँताने के लिये क्षणभर वड़वानल को छोड़कर देवीजी ने लिंगको थापाहै और विधिपूर्वक भलीभांति पूजकर वड़वानलको लेकर ॥ ३ ॥ देवताओं के हितकी कामना से समुद्र के बीचमें फेंक दिया तदनन्तर देवताओंने उन सरस्वती देवीजी को देखकर शङ्खों व नगारों के शब्दोंसे आकाश को पूर्णकर स्तुति किया व पुष्पवृष्टियोंसे आच्छादितकर उस समय देवताओंने उन सरस्वतीजीसे कहा कि देवमाता ऐसा तुम्हारा नामहै ॥ ४ । ५ ॥ देवताओं व दानवोंसे असाध्य

श्वररूपन्तु वाडवःकुम्भसंस्थितः ॥ यत्रदेव्यासमानीतः सागरस्यसमीपतः ॥ २ ॥ विश्रामार्थंक्षणंमुक्त्वा देव्यालि ङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ समभ्यर्च्यविधानेन गृहीत्वावाडवानलम् ॥ ३ ॥ समुद्रमध्येचिक्षेप देवानांहितकाम्यया ॥ ततोदृष्ट्वा तुतांदेवाःशङ्खदुन्दुभिनिस्स्वनैः ॥४॥ पूरयित्वाम्बरन्देवीमीडिरेपुष्पवृष्टिभिः ॥ देवमातेतितेनाम कृत्वोचुस्तांतदासुराः ॥ ५ ॥ कृत्वातुभैरवंकार्यमसाध्यन्देवदानवैः ॥ प्रतिष्ठितवतीचात्र यस्माल्लिङ्गंमहोदयम् ॥ ६ ॥ त्वंसर्वसरितांश्रेष्ठा सर्व पातकनाशिनी ॥ तस्माद्भैरवनामेति लिङ्गंख्यातिंगमिष्यति ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वातुतदादेवी भैरवेश्वरनैर्ऋते ॥ सागरस्य तटेतस्य तत्रमूर्त्तिमतीसती ॥ ८ ॥ पूजयेत्तांविधानेन तन्तथाभैरवेश्वरम् ॥ महानवम्यांयत्नेन कृत्वास्नानंविधानतः ॥ ९ ॥ सरस्वतींपूजयित्वा वाग्दोषान्मुच्यतेखिलात ॥ तत्तुलिङ्गंसमापूज्य संस्नाप्यपयसापृथक् ॥ १० ॥ अघोरेणैव

भयङ्कर कार्यको करके जिसलिये तुमने यहां बड़े ऐश्वर्यवाले लिंगको थापनकिया ॥ ६ ॥ इसीकारण समस्त पातकों को नाशनेवाली तुम सब नदियों में श्रेष्ठ होगी और भैरवनाम ऐसा लिंग प्रसिद्धि को प्राप्तहोगा ॥ ७ ॥ इसप्रकार उस समय इसप्रकार कहीहुई सरस्वतीजी उस समुद्रके किनारे पै भैरवेश्वरजी के नैर्ऋत्य में मूर्त्तिमती हुई ॥ ८ ॥ नहानवमी में विधिसे स्नानकरके मनुष्य यत्नसे उन भगवती सरस्वतीजी को व भैरवेश्वरजी को पूजैं ॥ ९ ॥ क्योंकि सरस्वतीजीको पूजकर स-

मस्तवाणी के दोषसे मनुष्य छूटजाता है उसलिंग को अघोरमन्त्र से विधिपूर्वक पृथक् दुग्धसे भलीभांति नहवाकर मनुष्य भलीभांति यात्राके फलको प्राप्त होताहै ॥ १० । ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येभैरवेश्वरमाहात्म्यनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❀ ॥

दो० । थाप्यो है चण्डी यथा लिंग नाम चण्डीश । चालिसवें अध्याय में सोई कथा बरीश ॥ महादेवजी बोले हे महादेवि ! उसके उपरान्त सोमेशजी के ईशान दिशाके भागमें सात धनुषों पै स्थित चण्डीशनामक उत्तम देवता के समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय दक्षिण और थोड़ीदूर पै प्राप्त दण्डपाणि भगवान्को चण्डी

विधिवत्सम्यग्यात्राफलंलभेत् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये भैरवेश्वरमाहात्म्यनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि चण्डीशन्देवमुत्तमम् ॥ सोमेशादीशदिग्भागे धनुषांसप्तकेस्थितम् ॥ १ ॥ दण्डपाणिस्तुभगवान् दक्षिणेनातिदूरगः ॥ चण्ड्याप्रतिष्ठितःपूर्वं चण्डेनाराधितस्ततः ॥ २ ॥ गणेनममदेवेशि तत्कृतं दुष्करन्तपः ॥ तेनचण्डेश्वरंलिङ्गं प्रख्यातंधरणीतले ॥ ३ ॥ स्नापयेत्पयसादध्ना मधुनाचघृतेनच ॥ ततइक्षुरसेनैव कुंकुमेनविलेपयेत् ॥ ४ ॥ कर्पूरोशीरमिश्रेण मृगनाभिरसेनच ॥ चन्दनेनसुगन्धेन पुष्पैस्सम्पूजयेत्ततः ॥ ५ ॥ दद्याद्धूपंपुरादेवि ततोदेवस्यचागुरुम् ॥ वस्त्रैस्सम्पूजयेत्पश्चादात्मवित्तानुसारतः ॥ ६ ॥ नैवेद्यंपरमान्नञ्च दीपमालासमन्वितम् ॥ ततोदद्याद्द्विजातिभ्यो यथाशक्त्यातुदक्षिणाम् ॥ ७ ॥ आकल्पंतृप्तिमायान्ति पितरस्तस्यभामिनि ॥ ८ ॥

जीने स्थापन कियाहै तदनन्तर हे देवेशि ! चण्डनामक मेरे गणने आराधना कियाहै और उसने कठिन तप कियाहै उसीकारण भूतलमें चण्डेश्वर लिंग प्रसिद्ध हुआहै ॥ २ । ३ ॥ उन चण्डेश्वरजीको मनुष्य दूध, दही व घृत और शहदसे नहवावैउसके उपरान्त ऊंखके रससे नहवावै और कुङ्कुमसे लेपकरै ॥ ४ ॥ व कपूर तथा खस मिलेहुये करतूरी से व सुगन्धित चन्दन से लेपन करै उसके उपरान्त पुष्पोंसे पूजै ॥ ५ ॥ हे देवि ! पहले शिवदेवजी को धूपदेवै तदनन्तर अगुरु देवै पश्चात् अपने धनके अनुसार वस्त्रोंसे भलीभांतिपूजै ॥ ६ ॥ और दीप व मालासे संयुतखीर पूरी नैवेद्य देवै उसके उपरान्त ब्राह्मणोंके लिये भक्तिके अनुसार दक्षिणादेवै ॥ ७ ॥

वहाँ चण्डीजी के दक्षिणओर जो पुरुष श्राद्ध करताहै हे भामिनि ! कल्पपर्यन्त उसके पितर तृप्तिको प्राप्तहोते हैं ॥ ८ ॥ और उत्तरायण प्राप्तहोनेपर जो पुरुष घृत-कम्बल करता है वह इस संसार में फिर भयङ्कर जन्मको नहीं प्राप्तहोता है ॥ ९ ॥ इसप्रकार भक्तिसे त्रिशूलधारी शिवजीकी यात्राको करके मनुष्य निर्माल्य नाघने से उपजेहुये व अज्ञान से भक्षणकरने से उत्पन्न व कर्मों से उपजेहुये अन्यपातकों से छूटजाता है ॥ १० । ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचण्डेश्वरप्रभाववर्णनंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

अयनेचोत्तरेप्राप्ते यःकुर्याद्घृतकम्बलम् ॥ नभूयोत्रससंसारे जन्मप्राप्नोतिदारुणम् ॥ ९ ॥ एवंकृत्वानरोभक्त्या यात्रान्देवस्यशूलिनः ॥ निर्माल्यादिकमोद्भूतैरज्ञानाद्भक्षणोद्भवैः ॥ १० ॥ पापैःप्रमुच्यतेजन्तुस्तथान्यैःकर्मसम्भवैः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये चण्डेश्वरप्रभाववर्णनन्नामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेद्वरारोहे लिङ्गंसूर्यप्रतिष्ठितम् ॥ सोमेशात्पश्चिमेभागे धनुषांसप्तकेस्थितम् ॥ १ ॥ आदित्येश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ त्रेतायुगेमहादेवि समुद्रेणमहात्मना ॥ २ ॥ रत्नैस्सम्पूजितंलिङ्गं वर्षाणामयुतंप्रिये ॥ तेनरत्नेश्वरन्नाम साम्प्रतंप्रथितंक्षितौ ॥ ३ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य पञ्चरत्नैःप्रपूजयेत् ॥ ततोनानोपचारेण पूजयेद्विधिवन्नरः ॥ ४ ॥ एवंकृतेमहादेवि मेरुदानफलंलभेत् ॥ सर्वेषांचैवदानानां यज्ञानांनात्रसंशयः ॥ ५ ॥ तीर्था

दो॰ । आदित्येश्वर लिंगकर भो रत्नेश्वर नाम । इकतालिसवें में सोई चरित कह्यो अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे वरारोहे ! उसके उपरान्त सोमेशजी के पश्चिम दिशाके भाग में सात धनुष पै स्थित सूर्यनारायण से थापेहुये समस्त पातकों के नाशक आदित्येश्वर के समीप जावै हे महादेवि ! त्रेतायुग में समुद्र महात्माने ॥ १ । २ ॥ हे प्रिये ! दश हज़ार वर्षतक आदित्येश्वर लिंगको रत्नोंसे पूजाहै उस कारण इस समय पृथ्वीमें रत्नेश्वरनाम प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥ पञ्चामृतसे भलीभांति नहवाकर तदनन्तर वह लिङ्ग पञ्चरत्नोंमे पूजाजाताहै उसके उपरान्त मनुष्य विधिसे अनेक भांतिकें उपचारोंसे पूजै ॥ ४ ॥ हे महादेवि ! ऐसा करनेपर मनुष्य मेरुदान

के फलको पाताहै और सब दानों व यज्ञोंके फलको पाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ५ ॥ और सब तीर्थोंके फलको व अन्य जो पुण्य पृथ्वीमें हैं उनको मनुष्य पाताहै और पितरवर्ग व मातृवर्ग को उद्धार करता है ॥ ६ ॥ और बाल्यावस्था में जो पाप होताहै व वृद्धावस्था तथा युववारथामें जो पाप होताहै उस सबको मनुष्य रलेश्वर जीको देखकर नाश करता है ॥ ७ ॥ उस तीर्थ में महर्षिलोग गऊदानकी प्रशंसा करते हैं क्योंकि गऊ देनेवाला पुरुष निश्चय कर दश पहलेवाले व दश पीछेवाले पितरों को तारता है ॥ ८ ॥ और जो मनुष्य विधिसे लिङ्गको भलीभांति पूजकर शतरुद्री को जपता है वह फिर नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ९ ॥ इसप्रकार आदित्येश्वर

नांचापिसर्वेषां यच्चान्यत्सुकृतम्भुवि ॥ उद्धरेत्पितृवर्गंच मातृवर्गञ्चमानवः ॥ ६ ॥ बाल्येवयसियत्पापं वार्द्धकेयौव नेपिवा ॥ च्चालयेच्चैवतत्सर्वं दृष्ट्वारत्नेश्वरन्नरः ॥ ७ ॥ धेनुदानंप्रशंसन्ति तस्मिन्स्थानेमहर्षयः ॥ धेनुदस्तारयेन्नूनं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ८ ॥ देवस्यदक्षिणेभागे योजपेच्छतरुद्रियम् ॥ सम्पूज्यविधिनालिङ्गं नसभूयःप्रजायते ॥९॥ एवंसंक्षेपतःप्रोक्तमादित्येशमहोदयम् ॥ श्रुत्वावधार्य यत्नेन मुच्यतेकर्मबन्धनैः ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभास खण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येआदित्येश्वरमहिमावर्णनन्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ आदित्येशंसमभ्यर्च्य पुनस्सोमेश्वरंव्रजेत् ॥ तंसम्पूज्यविधानेन पञ्चाङ्गेनविशेषतः ॥ १ ॥ स्तु त्वासोमस्तवेनैवं साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ प्रदक्षिणादिकंकुर्यात्संपश्येच्चपुनःपुनः ॥ २ ॥ सूर्याचन्द्रमसोर्लिङ्गं त्रिःकृत्वः

जीका बड़ा प्रभाव संक्षेप से कहागया इसको सुनकर व यत्नसे निश्चयकर मनुष्य कर्मके बन्धनों से छूटजाता है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येआदित्येश्वरमहिमावर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। जिमि सोमेश्वर लिंगको पूजै विविध प्रकार। बयालिसवें अध्यायमें सोई चरित अपार ॥ महादेवजीबोले कि आदित्येश्वरजीको पूजकर फिर सोमेश्वरजीकेसमीप जावै और उनको विधिसे पञ्चांगकरके विशेषतापूर्वक भलीभांति पूजकर ॥ १ ॥ व सोमस्तवसे स्तुतिकर साष्टांग प्रणामकरके प्रदक्षिणादिक कर्मकरै व बार२देखै॥ २॥

जो शुचि मनुष्य पवित्र होकर सूर्य व चन्द्रमाके लिङ्गोंको तीनवार पूजताहै उससे सब अग्नीषोमात्मक कर्म किया होताहै ॥ ३ ॥ तदनन्तर सोमेशजीके समीप उमादेवी
के समीप जावै उसके उपरान्त दैत्यसूदनके समीप दूसरे लिंगके समीप जावै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसो
मेश्वरमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अङ्गारेश्वर पूजिकरि भौम भयो ग्रह मध्य । तेंतालिसवेंमें सोई चरित कह्यो सुखसध्य ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तरसे सोमेशजीसे ईशान

प्रयतश्शुचिः ॥ अग्नीषोमात्मकङ्कर्म तेनसर्वङ्कृतम्भवेत् ॥ ३ ॥ उमान्देवींततोगच्छेत्सोमेश्वरसमीपतः ॥ द्वितीयन्तु ततोगच्छेद्दैत्यसूदनसन्निधौ ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसोमेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विचत्वारिंशोध्यायः ४२॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अङ्गारेश्वरमुत्तमम् ॥ स्थापितंभूमिपुत्रेण सोमेशादीशगोचरे ॥ १ ॥ त्रिपुरं दग्धुकामस्य पुराममवरानने ॥ क्रोधादश्रुविनिष्क्रान्तं तृतीयेनैवचक्षुषा ॥ २ ॥ तच्चभूमौन्निपतितं ततोभूमिसुतोभव त् ॥ सप्रभासंततोगत्वा बाल्यात्प्रभृतिशङ्करम् ॥ ३ ॥ तपसाराधयामास बहून्वर्षगणान्प्रिये ॥ तस्यतुष्टोमहादेवः सु प्रीतात्मावरन्ददौ ॥ ४ ॥ सोब्रवीद्यदिमेदेव तुष्टोसिवृषभध्वजः ॥ ग्रहत्वन्देहिसर्वेश नचान्यंवरमुत्सहे ॥ ५ ॥ सत थेतिप्रतिज्ञाय पुनस्तंवाक्यमब्रवीत् ॥ इहागत्यनरोयस्त्वांपूजयिष्यतिभक्तितः ॥ ६ ॥ नभविष्यतिवैपीडा तावकीत

दिशामें भूमिपुत्र (मङ्गल) जीसे थापेहुये उत्तम अङ्गारेश्वरजीके समीप जावै ॥ १ ॥ हे वरानने ! पुरातन समय त्रिपुरको जलानेकी इच्छावाले मेरे तीसरे नेत्रसे क्रोधके कारण आसू निकला ॥ २ ॥ और वह पृथ्वीमें गिरा और उससे भूमिसुत (मङ्गल) होगया तदनन्तर प्रभासक्षेत्र को जाकर बाल्यावस्थासे लगाकर उसने शङ्करजी को ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! बहुत दिनों तक तपस्या से आराधन किया तब उसके ऊपर प्रसन्न होकर प्रसन्नचित्तवाले महादेवजी ने वरदान दिया ॥ ४ ॥ उस मङ्गलने कहा कि हे सर्वेश, वृषभध्वज, देव ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो ग्रहत्वको दीजिये मैं अन्य वर का उत्साह नहीं करताहूं ॥ ५ ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर फिर

उन महादेवजी ने उससे वचनको कहा कि यहां आकर जो मनुष्य भक्तिसे तुमको पूजैगा ॥ ६ ॥ उसको कभी तुम्हारी पीडा नहीं होगी और लाल रंगवाले जो पवित्र पुष्प हैं उन बहुत से पुष्पों को ॥ ७ ॥ जो मनुष्य भक्ति से तुम्हारे आगे एक लक्ष हवन करावैगा तदनन्तर पंचोपचारविधि से तुमको पूजैगा ॥ ८ ॥ उसको जन्म भरतक तुम्हारी पीड़ा न होगी वैसेही मूगा के दान से चाहेहुये फल को पावैगा ॥ ९ ॥ ऐसा कहकर वे भगवान् शिवजी वहींपर अन्तर्द्धान होगये और मंगल भी ग्रहों के मध्य में स्थित होकर विमान से विराजते हैं ॥ १० ॥ इसप्रकार उत्तम मंगल का माहात्म्य कहागया सुनाहुआ यह पापों को हरता है व नीरोगताको

स्यकुत्रचित् ॥ पुष्पाणिरक्तवर्णानि मेध्यानितानिभूरिशः ॥ ७ ॥ होमयिष्यतियोभक्त्या लक्षमेकंत्वदग्रतः ॥ पञ्चोपचारविधिना त्वाञ्चसम्पूजयेत्ततः ॥ ८ ॥ तस्यजन्मावधिनैव तवपीडाभविष्यति ॥ तथाविद्रुमदानेन लभेत्तुफलमीप्सितम् ॥ ९ ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ भौमोपिग्रहमध्यस्थो विमानेनविराजते ॥ १० ॥ एवंसंक्षेपतःप्रोक्तं भौममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ श्रुतंहरतिपापानि तथारोग्यंप्रयच्छति ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासमाहात्म्यन्नामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥ * * ॥

शिवउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्यैवोत्तरतःस्थितम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावन्तु बुधेश्वरमितिस्मृतम् ॥ १ ॥ धनुर्भ्योद्वितयेनैव नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ सर्वपापहरोदेवो दर्शनादेवभामिनि ॥ २ ॥ बुधेनतत्रदेवेशि पुरातप्तंमहातपः ॥ स्थापितंविमलंलिङ्गं समाराध्यसदाशिवम् ॥ ३ ॥ वर्षायुतानिचत्वारि सम्पूज्यतुविधानतः ॥ अनन्यचेताइशान्ता

देताहै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामङ्गारेश्वरमाहात्म्यं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❀ ॥

दो० । बुधजी थाप्योहै यथा लिंग बुधेश्वर नाम । चवालिसें अध्यायमें सोई चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके उत्तर में स्थित महाप्रभाववाले बुधेश्वर ऐसे कहे हुये लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि समीपही दो धनुष पै स्थित हैं हे भामिनि ! वे शिवदेवजी दर्शनही से सब पापों के हरने वाले हैं ॥ २ ॥ हे देवेशि ! पुरातन समय वहांपर बुधजीने बड़ा तप किया है और सदाशिवजी को भलीभांति आराधन कर निर्मल लिंग को स्थापन किया है ॥ ३ ॥

सावधान चित्त होकर शान्तचित्तवाले बुध ने चालिस हज़ार वर्ष तक विधि से भलीभांति पूजकर शिवजी को प्रत्यक्ष किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर शिवदेवजीने प्रसन्न मन वाले होकर उस बुधको उस ग्रहत्व को दिया चन्द्रमा के पुत्र (बुध) जी से थापे हुये उन शिवजी को विधि से पूजकर ॥ ५ ॥ व बुध के दिन अष्टमी में विशेषतासे पूजकर मनुष्य राजसूय यज्ञ के फल को पाताहै और उन शिवजी के प्रसाद से उसके वंश में दुर्भाग्यता नहीं होती है ॥ ६ ॥ बुधदेवतावाले शिवजी का यह माहात्म्य संक्षेपसे कहागया पवित्र पुरुष इसको सुनकर व कहकर परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबुधे

त्मा प्रत्यक्षीकृतवान्भवम् ॥ ४ ॥ ततस्तुष्टमनादेवो ग्रहत्वंतस्यतद्ददौ ॥ तंसम्पूज्यविधानेन सोमपुत्रप्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥ सौम्याष्टम्यांविशेषेण राजसूयफलंलभेत् ॥ नदौर्भाग्यंकुलेतस्य भवेत्तस्यप्रसादतः ॥ ६ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंबुधदैवतम् ॥श्रुत्वाभिनन्द्यप्रयतःप्राप्नोतिपरमंपदम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे बुधेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुश्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवगुरुनिषेवितम् ॥ उमायाःपूर्वदिग्भागेसिद्धेशाग्नेयगोचरे ॥ १ ॥ संस्थितन्तुमहालिङ्गं देवाचार्यप्रतिष्ठितम् ॥ आराध्यपरयाभक्त्यालिङ्गंवर्षसहस्रकम् ॥ २ ॥ तोषयामासदेवेशं भवंसर्वमुमापतिम् ॥ प्राप्तवानखिलान्कामानप्राप्यानकृतात्मभिः ॥ ३ ॥ देवानांचैवपूज्यत्वं प्राप्यज्ञानंमहेश्वरात् ॥ ग्रहत्वंचत

श्वरमाहात्म्यंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । बृहस्पतीश्वर लिंगको सुरगुरु थापन कीन । पैंतालिसवें में सोई चरित अहै सुखदीन ॥ शिवजी बोले कि हे महादेवि ! उसके उपरान्त बृहस्पति से सेवित शिवदेवजी के यहां जावै पार्वतीजीके पूर्वदिशाके भागमें व सिद्धेशजी के आग्नेयदिशामें ॥ १ ॥ देवताओं के आचार्य (बृहस्पति) जीसे थापाहुआ महालिङ्ग स्थितहै उत्तमभक्ति से इस लिंगको हज़ारवर्ष आराधनकर ॥ २ ॥ बृहस्पतिजी ने पार्वती के पति देवेश शिवजीको प्रसन्न कियाहै व विना पुण्यवाले जनोंसे न पानेयोग्य समस्त

कामनाओंको पायाहै ॥ ३ ॥ व शिवजी से ज्ञानको पाकर देवताओं की पूज्यताको पाकर व ग्रहत्वको पाकर इस समय स्वर्गमें आनन्द करते हैं ॥ ४ ॥ उनको भक्तिसे देखकर मनुष्य दुर्गतिको नहीं प्राप्तहोताहै बृहस्पतिसे कियेहुये लिंगको जो उत्तम मनुष्य देखते हैं ॥ ५ ॥ उनको बृहस्पति से कीहुई पीड़ा नहीं होतीहै हे प्रिये ! वहां शुक्लपक्षकी चौदसि में अथवा बृहस्पति के दिन ॥ ६ ॥ विधिपूर्वक पंचोपचार से उस लिङ्गको भलीभांति पूजकर अथवा भक्तिभाव से पूजकर मनुष्य परमपद को पाताहै ॥ ७ ॥ और जो मनुष्य हज़ारपल पञ्चामृत के रससे स्नान कराता है, वह तीनोंऋणोंसे छूटजाताहै ॥ ८ ॥ हे देवि ! माताका ऋण व पिताका ऋण व गुरुसे

थाप्राप्यमोदतेदिविसाम्प्रतम् ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोभक्त्या नदुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ बृहस्पतिकृतंलिङ्गं येपश्यन्ति नरोत्तमाः ॥ ५ ॥ बृहस्पतिकृतापीडा नैवतेषांहिजायते ॥ तत्रशुक्लचतुर्दश्यां गुरुवारेथवाप्रिये ॥ ६ ॥ सम्पूज्यविधिव ल्लिङ्गं सम्यक्पञ्चोपचारतः ॥ अथवाभक्तिभावेन प्राप्नुयात्परमंपदम् ॥ ७ ॥ स्नानंपलसहस्रेण पञ्चामृतरसेनच ॥ करो तिभक्त्यायोमर्त्यो मुच्यतेसऋणत्रयात् ॥ ८ ॥ मातृकात्पैतृकाद्देवि तथागुरुसमुद्भवात् ॥ सर्वपापविशुद्धात्मा निर्द्व न्द्वोमुक्तिमाप्नुयात् ॥ ९ ॥ एवंसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंगुरुदैवतम् ॥ शृणुयाद्यस्तुभावेन तस्यप्रीतोगुरुर्भवेत् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये बृहस्पतीश्वरमाहात्म्यवर्णनन्नामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेद्वरारोहे लिङ्गंशुक्रप्रतिष्ठितम् ॥ सर्वपापहरन्देवं विभूतेश्वरपश्चिमे ॥ १ ॥ नातिदूरेस्थितं

उपजाहुआ ऋण इन तीनों ऋणोंसे छूटजाता है और सब पापोंसे शुद्धचित्तवाला वह सुख, दुःख से रहित होकर मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ इस प्रकार बृहस्पति देवतावाले शिवजी का माहात्म्य संक्षेप से कहागया इसको जो भक्तिसे सुनता है उसके ऊपर बृहस्पतिजी प्रसन्न होतेहैं ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवी दयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येबृहस्पतीश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमिशुक्रेश्वरालिङ्गको थाप्यो शुक्राचार्य । छियालिसे अध्यायमें सोई चरित सुखार्य ॥ महादेवजी बोले कि हे वरारोहे ! उसके उपरान्त शुक्रसे थापेहुये लिङ्ग

के समीप जावै जो देव कि विभूतेश्वर के पश्चिम सब पापोंको हरनेवालेहैं ॥ १ ॥ वहांपर शुक्रसे थापाहुआ वह लिङ्ग थोडेही दूरपै स्थितहै जहां कि शिवजी के प्रभाव से उनको संजीवनी विद्या मिली है ॥ २ ॥ उन्होंने भी हज़ारवर्ष तक बड़ी विकराल तपस्या कियाहै व जिन विद्वान् ने शिवजी को प्रसन्न कराकर ग्रहत्व को मागा है ॥ ३ ॥ देवताओं के कार्यकी सिद्धिके लिये शिवजीसे ग्रसित जिन्होंने उस उदरमें प्राप्तहोकर कठिन तप कियाहै ॥ ४ ॥ और कुछ अधिक दश हज़ार वर्षतक तपस्या करके जिन्होंने महादेवजी को प्रसन्न कियाहै उसके उपरान्त शिवजीने शीघ्रही वीर्यके मार्ग से निकाल दिया ॥ ५ ॥ उसीकारण महात्मा भार्गवजी का शुक्र ऐसा

तत्र स्वयंशुक्रेणनिर्मितम् ॥ यत्रसंजीवनीप्राप्ता विद्यारुद्रप्रभावतः ॥ २ ॥ सोऽप्यतप्यन्महाघोरं तपोवर्षसहस्रकम् ॥ सम्प्रसाद्यविरूपाक्षं योवव्रेग्रहतांसुधीः ॥ ३ ॥ ग्रस्तेनशम्भुनायेन देवकार्यार्थसिद्धये ॥ तत्रोदरगतेनैव तपस्तप्तंसु दुष्करम् ॥ ४ ॥ वर्षाणामयुतंसाग्रं तुष्टिन्नीतोमहेश्वरः ॥ निष्कामितस्ततश्शीघ्रं शुक्रमार्गेणशम्भुना ॥ ५ ॥ ततःशु क्रेतिनामाभूद्भार्गवस्यमहात्मनः ॥ तदाराधयतेनित्यं यःकृत्वानिश्चलम्मनः ॥ ६ ॥ मृत्युंजयंजपेल्लक्षंससमीहितमा प्नुयात् ॥ तन्दृष्ट्वात्वथवास्पृष्ट्वा जन्मादिमरणान्तिकात् ॥ ७ ॥ मुच्यतेपातकान्मर्त्यः प्रसादात्तस्यभामिनि ॥ मृत सञ्जीवनाद्यंयदैश्वर्यमणिमादिकम् ॥ ८ ॥ प्राप्नुयान्नात्रसन्देहो यस्यभक्तिस्सुनिश्चला ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य देवं शुक्रप्रतिष्ठितम् ॥ ९ ॥ सुगन्धपुष्पैस्सम्पूज्य शौक्रींपीडान्नचाप्नुयात् ॥ इतिसर्वंसमासेन माहात्म्यंशुक्रदैवतम् ॥ १० ॥

नाम हुआहै जो मनुष्य निश्चलमन करके नित्य उस लिङ्गको आराधन करता है ॥ ६ ॥ व लक्ष मृत्युञ्जय को जपता है वह अपने मनोरथ को प्राप्त होताहै उन शिव जीको देखकर व स्पर्शकर जन्मसे लगाकर मरण समीपतक ॥ ७ ॥ पातक से हे भामिनि ! उन शिवजी की प्रसन्नता से मनुष्य छूटजाता है और मृतसञ्जीवनादिक जो अणिमादिक ऐश्वर्य हैं ॥ ८० ॥ उसको वह मनुष्य प्राप्तहोता है कि जिसके निश्चलभक्ति होतीहै शुक्रजी से थापेहुये शिवदेवजी को पञ्चामृत से नहवाकर॥ ९ ॥ व सुगन्धित पुष्पोंसे भलीभांति पूजकर मनुष्य शुक्रकी पीड़ाको नहीं प्राप्त होता है हे सुश्रोणि ! संक्षेप से शुक्रेशजी का सब माहात्म्य तुमसे कहागया जोकि सब पापों

के भयका नाशक है ॥ १० । ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशुक्रेश्वरमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

दो० । जिमि शनि थाप्यो लिङ्गको शनिश्चरेश्वर नाम । सैंतालिसवेंमें सोई चरित अहै सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! उन शुक्रेश्वरजी से महाणतकों के विनाशक व महाप्रभावान् शनैश्चरेश्वरनामक लिङ्गके समीप जावै ॥ १ ॥ बुधेश्वरजीके पश्चिम व अजादेवी के आग्नेय दिशामें उससे पांच धनुष पै थोड़ेही दूरमें वह लिङ्ग स्थित है ॥ २ ॥ हे महादेवि ! देवताओं व दानवों से पूजाहुआ वह कल्पलिङ्गहै छाया के पुत्र शनैश्चर ने बड़ा कठिन तप कियाहै कि जिन्होंने आदि अन्तरहित

कथितंतवसुश्रोणि सर्वपापभयापहम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे शुक्रेश्वरमाहात्म्यन्नामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्माच्छुक्रेश्वराद्गच्छेद्देविलिङ्गंमहाप्रभम् ॥ शनैश्चरेश्वरन्नाम महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ बुधेश्वरात्पश्चिमतो ह्यजादेव्यग्निगोचरे ॥ तस्याधनुःपञ्चकेन नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ २ ॥ कल्पलिङ्गंमहादेवि पूजितन्देवदानवैः ॥ छायापुत्रेणसन्तप्तं तपःपरमदुश्चरम् ॥ ३ ॥ अनादिनिधनोदेवो येनलिङ्गेवतारितः ॥ प्राप्तवान्योग्रहेशत्वं भक्त्याशम्भोःप्रसादतः ॥ ४ ॥ यस्यदृष्ट्वाबिभेतिस्म देवासुरगणोमहान् ॥ नसकोप्यस्तिवैप्राणी ब्रह्माण्डेसचराचरे ॥ ५ ॥ देवोवादानवोवापि सौरिणापीडितोनयः ॥ शनिवारेणसम्पूज्य भक्त्यासौरीश्वरंशिवम् ॥ ६ ॥ शमीपत्रैर्महादेवि तिलमाषगुडौदनैः ॥ सन्तर्प्यतुविधानेन दद्यात्कृष्णंवृषंद्विजे ॥ ७ ॥ स्तुत्वास्तोत्रैश्चविविधैः पुराणादिस

शिवदेवजी को लिङ्गमें प्राप्त कियाहै व जिन्होंने शिवजी के प्रसादसे भक्तिकरके ग्रहेशत्वको पायाहै ॥ ३ । ४ ॥ जिनको देखकर बड़ाभारी देवदैत्यगण डरताहै चराचर समेत ब्रह्माण्ड में वह कोई भी प्राणी नहीं है ॥ ५ ॥ व देवता और दानवभी कोई ऐसा नहीं है कि जो शनैश्चर से पीड़ित न होवै शनैश्चर के दिन भक्तिसे सौरीश्वर शिवजी को शमीके पत्तोंसे भलीभांति पूजकर व हे महादेवि ! विधिसे तिल, उड़द व गुड़, भातसे भलीभांति तृप्तकर ब्राह्मणके लिये कालेबैलको देवै ॥ ६ । ७ ॥

और पुराणादिकों से उपजेहुये अनेक भांति के स्तोत्रों से स्तुतिकर अथवा हे देवेशि ! एकही स्तोत्रसे वे सौरीश्वरजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ८ ॥ सब पीड़ाओं की शान्तिके लिये बलवान् दशरथ राजासे कियेहुये स्तोत्रकरके सौरीश्वरदेव स्तुति करने योग्यहैं ॥ ९॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि दशरथ राजाने किस प्रकार शनैश्चर की स्तुति कियाहै और उनके ऊपर किस भांति शनैश्चरदेवजी प्रसन्नता को प्राप्त हुये ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि पुरातन समय रघुवंश में बलवान् दशरथ राजा प्रसिद्ध हुयेहैं सात द्वीपों के स्वामी वे चक्रवर्ती जाननेयोग्य हैं ॥ ११ ॥ कृत्तिका नक्षत्र के अन्तमें शनैश्चर को जानकर ज्योतिषी पण्डितोंने उनसे बतलाया कि इससमय

स्तुत्यःसौरीश्वरोदेव मुद्भवैः ॥ अथचैकेनदेवेशि स्तोत्रेणपरितोषितः ॥ ८ ॥ राज्ञादशरथेनैव कृतेनतुबलीयसा ॥ स्सर्वपीडोपशान्तये ॥ ९ ॥ देव्युवाच ॥ कथंदशरथोराजाचक्रेशनैश्चरींस्तुतिम् ॥ कथंसन्तुष्टिमगमत् तस्यदेवःश नैश्चरः ॥ १० ॥ ईश्वरउवाच ॥ रघुवंशेतुविख्यातो राजादशरथोवली ॥ सचक्रवर्त्तीविज्ञेयः सप्तद्वीपाधिपःपुरात ११ ॥ कृत्तिकान्तेशनिंज्ञात्वा दैवज्ञैर्ज्ञापितोहिसः ॥ रोहिणींभेदायत्वातु शनिर्यास्यतिसाम्प्रतम्॥ १२॥ उक्तंचशाकटं भेदं सुरासुरभयङ्करम्॥ द्वादशाब्दन्तुदुर्भिक्षंभविष्यतिसुदारुणम् ॥१३॥ एतच्छ्रुत्वातुतद्वाक्यं मन्त्रिभिस्सहितोनृपः ॥ आकुलन्तुजगद्दृष्ट्वा पौरंजानपदादिकम् ॥ १४ ॥ वदन्तिसततंलोका नियमेनसमागताः ॥ देशाश्चनगरग्रामा भया क्रान्तास्समन्ततः ॥ १५ ॥ मुनीन्वशिष्ठप्रमुखान् पप्रच्छचस्वयंनृपः ॥ समाधानंकिमत्रास्ते ब्रूतमांद्विजसत्तमाः ॥ १६ ॥ वशिष्ठउवाच ॥ प्राजापत्येचनक्षत्रे तस्मिन्भिन्नेकुतःप्रजाः ॥ अयंयोगोह्यसाध्यस्तु ब्रह्मशक्रादिभिस्सुरैः ॥

रोहिणी को भेदनकरके शनैश्चर जावैगा ॥ १२ ॥ और यह कहा कि शकट सम्बन्धीभेदन देवताओं व दैत्यों को भयकारक है और बारहवर्षतक बहुत भयङ्कर दुर्भिक्षहोगा ॥ १३ ॥ उनके इस वचनको सुनकर मन्त्रियों समेत राजाने संसारको विकल देखकर व देशादिक तथा नगरको व्याकुल देखकर ॥१४॥ कि मनुष्य कहते हैं सदैव नियम से संयुत देश, नगर व गांव सबओर से डरसे विकल हैं ॥ १५ ॥ राजा दशरथ ने आपही वशिष्ठादिक मुनियों से पूंछा कि हे द्विजोत्तमो ! इस विषयमें क्या समाधान है इसको मुझसे कहिये ॥ १६ ॥ वसिष्ठजी बोले कि उस रोहिणी नक्षत्र के भिन्न होनेपर प्रजा कहां से होवैंगे यह योग ब्रह्मा व इन्द्रादिक

[illegible] साहसको ॥ १७ ॥ लेकर तदनन्तर दिव्यअस्त्रों से संयुत उत्तमरथ पै चढ़कर वेगसे नक्षत्रमण्डल के समीप गये ॥ १८ ॥ सूर्यनारायण के ऊपर स्थित होनेपर सवादो योजन (नवकोस) व्याप्त होगया और सोनेका वह दिव्यरथ मणियों व रत्नोंसे भूषित तथा ॥ १९ ॥ और ध्वजा, चँवर, छत्र व घण्टियों से शोभित था और हंसों के समान रंगवाले घोड़ोंसे युक्त व महाकेतु से संयुत था ॥ २० ॥ और किरीट व मुकुट से उज्ज्वल वह रथ महारत्नों से प्रकाशमान था उस समय वे दशरथजी आकाशमें दूसरे सूर्यनारायण की नाईं प्रकाशित हुये ॥ २१ ॥ कृत्तिका के अन्त में शनैश्चर को जान

तदासंचिन्त्यमनसा साहसंपरमंमहत् ॥ १७॥ समादायततोदिव्यं दिव्यैरस्त्रैस्समन्वितम् ॥ रथमारुह्यवेगेन गतोनक्षत्रमण्डलम् ॥ १८ ॥ सपादयोजनंव्याप्तं सूर्यस्योपरिसंस्थिते ॥ रथन्तुकाञ्चनंदिव्यं मणिरत्नविभूषितम् ॥ १९ ॥ ध्वजैश्चचामरैश्छत्रैः किङ्किणीभिश्चशोभितम्॥ हंसवर्णहयैर्युक्तं महाकेतुसमन्वितम् ॥ २० ॥ दीप्यमानोमहारत्नैः किरीटमुकुटोज्ज्वलः ॥ बभ्राजसतदाकाशे द्वितीयइवभास्करः ॥ २१ ॥ चापमाकर्णमाकृष्य संहारास्त्रंनियोजितम् ॥ कृत्तिकान्तेशनिंज्ञात्वा प्रपश्यन्किलरोहिणीम् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वादशरथस्याग्रे तस्थौसूर्यात्मजस्तदा ॥ संहारास्त्रंशनिर्दृष्ट्वा सुरासुरविमर्दनम् ॥ २३ ॥ हसित्वातद्भयात्सौरिरिदंवचनमब्रवीत् ॥ शनिरुवाच ॥ पौरुषंतवराजेन्द्रपरंरिपुभयङ्करम् ॥ २४ ॥ देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ॥ मयाविलोकिताःसर्वे भस्मचाशुव्रजन्तिते ॥ २५ ॥ तुष्टोहंतवराजेन्द्रतपसापौरुषेणच ॥ वरंब्रूहिप्रदास्यामि मनसायदभीप्सितम् ॥ २६ ॥ दशरथउवाच ॥ रोहिणीम्भेदयित्वातु

कर प्रसिद्ध में रोहिणी को देखतेहुये उन राजा दशरथ ने कानोंतक धनुष को खींचकर संहारास्त्र को लगाया ॥ २२ ॥ इसको देखकर उस समय सूर्य के पुत्र शनैश्चरजी दशरथ के आगे खड़ेहोगये और शनैश्चरने देवताओं व दैत्योंको मर्दन करनेवाले संहारनामक अस्त्रको देखकर ॥ २३ ॥ हँसकर उनके भयसे शनैश्चरजी यह वचन बोले शनि बोले कि हे राजेन्द्र ! तुम्हारा पौरुष बहुतही शत्रुवोंको भयकारक है ॥ २४ ॥ देवता, दैत्य, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर, नाग इन सबोंको मैंने देखाहै कि वे शीघ्रही भस्म होजाते हैं ॥२५॥ हे राजेन्द्र ! मैं तुम्हारी तपस्या व पौरुषसे प्रसन्नहूं वरदानको कहिये जो मनसे चाहाहुआ होगा उसको मैं दूंगा ॥ २६ ॥

दशरथजी बोले कि हे शनैश्चर ! रोहिणी को भेदनकर तुमको न जाना चाहिये जबतक नदियां व समुद्र हैं और जवतक चन्द्रमा, सूर्य व पृथ्वी है ॥ २७ ॥ हे शनैश्चर ! तबतक मुझसे यह मांगागयाहै मैं तुमसे अन्य वरदानकी इच्छा नहीं करताहूं ऐसा कहनेपर शनैश्चरने कहा कि मैंने सदैववाले वरदानको दिया॥२८॥ इस प्रकार वरदान को पाकर उस समय राजा दशरथ कृतार्थ हुये और फिर प्रसन्नहोकर शनैश्चरजी बोले कि हे सुव्रत ! वरदान को मांगिये ॥ २९ ॥ तब प्रसन्नमनवाले राजा दशरथ ने शनैश्चर से अन्य वरदान को मांगा दशरथजी बोले कि हे सूर्यपुत्र ! तुमको शकटभेदन याने रोहिणीभेद न करना चाहिये ॥ ३० ॥ और कभी

नगन्तव्यंत्वयाशने ॥ सरितःसागरायावद्यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥ २७ ॥ याचितंचमयासौरे नान्यमिच्छामितेवरम् ॥ एवमुक्तेशनिश्चाह वरंदत्तंतुशाश्वतम् ॥ २८ ॥ प्राप्यैवन्तुवरंराजा कृतकृत्योभवत्तदा ॥ पुनरेवाब्रवीत्तुष्टो वरंवरयसुव्रत ॥ २९ ॥ प्रार्थयामासतुष्टात्मा वरमन्यंशनिंतदा ॥ दशरथउवाच ॥ नभेत्तव्यंहिशकटंत्वयाभास्करनन्दन ॥ ३० ॥ द्वादशाब्दन्तुदुर्भिक्षं नकर्त्तव्यंकदाचन ॥ ३१ ॥ शनिरुवाच ॥ द्वादशाब्दन्तुदुर्भिक्षं नकदाचिद्भविष्यति ॥ कीर्तिरेषात्वदीयाच त्रैलोक्येविचरिष्यति ॥ ३२ ॥ वरद्वयंचसंप्राप्यहृष्टरोमासपार्थिवः ॥ रथोपरिधनुस्त्यक्त्वा भूत्वाचैवकृताञ्जलिः ॥ ३३ ॥ राजादशरथःस्तोत्रं सौरेरित्थमथाकरोत ॥ नमोनीलमयूखाय नीलोत्पलनिभायच ॥ ३४ ॥ नमोनिर्मांसदेहाय दीर्घश्मश्रुजटायच ॥ नमोविशालनेत्राय शुष्कोदरभुजायच ॥ ३५ ॥ नमःपरुषगात्राय स्थूलरोमायवैनमः ॥

बारह वर्षतक दुर्भिक्ष न करना चाहिये ॥ ३१ ॥ शनैश्चर बोले कि बारह वर्षतक कभी दुर्भिक्ष न होगा और तुम्हारा यह यश त्रिलोकमें जावैगा ॥ ३२ ॥ जो वरदानोंको पाकर वे राजा दशरथ प्रसन्नरोमोंवाले हुये और रथके ऊपर धनुषको छोड़कर व हाथोंको जोड़कर ॥ ३३ ॥ राजा दशरथजी ने इस प्रकार शनैश्चरकी स्तुति किया कि नीलकिरणवाले के लिये प्रणामहै और नीलकमल के तुल्य रंगवालेके लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥ मांसरहित शरीरवालेके लिये प्रणाम है व लम्बी दाढ़ी मोछ व जटावालेके लिये नमस्कारहै और विशाललोचनोंवाले के लिये प्रणामहै व सूखे पेट व भुजाओंवाले के लिये नमस्कार है ॥ ३५ ॥ कठोर अङ्गोंवाले के लिये प्रणामहै

व मोटे रोमोंवाले के लिये नमस्कारहै व घोर तथा रौद्रके लिये प्रणामहै और भीषण व कराली के लिये नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ व सर्वभक्षी तुम्हारे लिये प्रणाम है और हे वलीमुख ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे सूर्यपुत्र ! तुम्हारे लिये नमस्कार है और हे भास्करे ! भयदायक तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥३७॥ हे नीचे दृष्टिवाले ! तुम्हारे लिये प्रणामहै हे श्यामशरीरवाले ! आपके लिये नमस्कारहै हे मन्दगमनवाले ! तुम्हारे लिये प्रणामहै व निस्त्रिंशके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै ॥ ३८ ॥ उग्ररूपवाले आप के लिये नमस्कार है हे प्रचण्ड तेजवाले आपके लिये प्रणाम है प्रणाम है तपस्या से जलीदेहवाले व नित्यही योगमें परायणके लिये प्रणाम है ॥ ३९ ॥ ज्ञाननेत्र

नमोघोरायरौद्राय भीषणायकरालिने ॥ ३६ ॥ नमस्तेसर्वभक्षाय वलीमुखनमोस्तुते ॥ सूर्यपुत्रनमस्तेस्तु भास्करेभयदायिने ॥ ३७ ॥ अधोदृष्टेनमस्तुभ्यं वपुःश्यामनमोस्तुते ॥ नमोमन्दगतेतुभ्यं निस्त्रिंशायनमोनमः ॥ ३८ ॥ नमस्तेउग्ररूपाय चण्डतेजोनमोनमः ॥ तपसादग्धदेहाय नित्यंयोगरतायच ॥ ३९ ॥ नमस्तेज्ञाननेत्राय कश्यपात्मजसूनवे ॥ तुष्टोददासिराज्यंवै रुष्टोहरसितत्क्षणात् ॥ ४० ॥ देवासुरमनुष्याश्च पशुपक्षिसरीसृपाः ॥ त्वयाविलोकिताःसर्वे दैन्यमाशुव्रजन्तिच ॥ ४१ ॥ ब्रह्माशक्रोयमश्चैव ऋषयःसप्ततारकाः ॥ राज्यभ्रष्टाश्चतेसर्वे तवदृष्ट्यावलोकिताः ॥ ४२ ॥ देशाश्चनगरग्रामा द्वीपाश्चैवद्रुमास्तथा ॥ रौद्रदृष्ट्यात्वयादृष्टाः क्षयंगच्छन्तितत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ प्रसादंकुरुमेसौरे वरार्होहन्तवाश्रिताः ॥ शनेक्षमस्वापराधं सर्वभूतहितायच ॥ ४४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवंस्तुतस्तदासौरी राज्ञा

वाले आपके लिये प्रणाम है व कश्यप के पुत्रके बालक के लिये नमस्कारहै प्रसन्न होकर तुम राज्यको देतेहो और क्रोधित होकर उसीक्षण हरलेते हो ॥ ४० ॥ देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, क्षुद्र सर्प तुमसे देखेहुये ये सब शीघ्रही दीनता को प्राप्त होतेहैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र, यमराज, सातऋषि व नक्षत्र तुम्हारी दृष्टिसे देखेहुये वे सब राज्यसे भ्रष्ट हुयेहैं ॥ ४२ ॥ और तुम्हारी रौद्रदृष्टिसे देखेहुये देश, नगर, ग्राम, द्वीप व वृक्ष उसीक्षण नाशको प्राप्तहोतेहैं ॥ ४३ ॥ हे सौरे ! मेरे ऊपर प्रसन्नता कीजिये वरदान के योग्य मैं तुम्हारे आश्रित हूं हे शनैश्चर ! सम्पूर्ण प्राणियों के हित के लिये मेरे अपराधको क्षमा कीजिये ॥ ४४ ॥ महादेवजी बोले कि उस समय राजा

दशरथ से इस प्रकार स्तुति किये हुये प्रसन्नरोमोंवाले ग्रहों के राजा शनैश्चर ने यह वचन कहा ॥ ४५ ॥ शनैश्चर बोले कि हे सुव्रत, राजेन्द्र ! इस स्तोत्र से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं हे रघुनन्दन ! अपनी इच्छा से वरदान को मांगिये मैं उसको दूंगा ॥ ४६ ॥ दशरथजी बोले कि हे पिंगाक्ष ! आजसे लगाकर देवता, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी व सर्पों के मध्यमें तुमको किसीको पीड़ा न करना चाहिये ॥ ४७ ॥ शनैश्चर बोले कि ग्रहों के मध्यमें मैं दुर्ग्रह जानने योग्यहूं और जो देवता, दैत्य, मनुष्य, सिद्ध, विद्याधर व नागहैं ॥ ४८ ॥ उनके मृत्युस्थान (आठवीं राशि) में प्राप्त और जन्म व बारहवीं राशि में प्राप्त मैं इस स्तोत्र के पाठसे कल्याण को देता

दशरथेनच ॥ ग्रहराजाशनिर्वाक्यं हृष्टरोमाब्रवीदिदम् ॥ ४५ ॥ शनैश्चरउवाच ॥ तुष्टोहंतवराजेन्द्रस्तवेनानेनसुव्रत ॥ वरंब्रूहिप्रदास्यामि स्वेच्छयारघुनन्दन ॥ ४६ ॥ दशरथउवाच ॥ अद्यप्रभृतिपिङ्गाक्ष पीडाकार्यानकस्यचित् ॥ देवासुरमनुष्याणां पशुपक्षिसरीसृपाम् ॥ ४७ ॥ शनिरुवाच ॥ ग्रहाणांदुर्ग्रहोज्ञेयो मद्भयेनोपपीडिताः ॥ देवासुरमनुष्याश्च सिद्धविद्याधरोरगाः ॥ ४८ ॥ मृत्युस्थानेस्थितोवापि जन्मप्रान्तगतस्तथा ॥ एककालंद्विकालंवा तेषांश्रेयोददाम्यहम् ॥ ४९ ॥ पूजयित्वाजपेत्स्तोत्रं भूत्वाचैवकृताञ्जलिः ॥ तस्यपीडांनचैवाहमिहजन्मनिकदाचन ॥ ५० ॥ जन्मस्थाने स्थितोवापि मृत्युस्थानेस्थितोपिच ॥ जन्मऋक्षेचलग्नेच दशास्वन्तर्दशासुच ॥ ५१ ॥ रक्षामिसततंतस्य पीडांचान्यग्रहस्यच ॥ अनेनैवप्रकारेण पीडामुक्तोभवेत्तुसः ॥ ५२ ॥ एतत्प्रोक्तंमयादत्तं वरंतेरघुनन्दन ॥ शिवउवाच ॥ वरद्वयं चसंप्राप्यराजादशरथःपुरा ॥ ५३ ॥ मेनेकृतार्थमात्मानं नमस्कृत्यशनैश्चरम् ॥ ५४ ॥ शनिमुक्ताभ्यनुज्ञातो रथमा

हूं और जो एक समय या दो कालों में मुझको पूजकर हाथों को जोड़कर स्तोत्र को जपता है उसको मैं इस जन्म में कभी पीड़ा नहीं देता हूं ॥ ४९ । ५० ॥ जन्मस्थान में स्थित व आठवें स्थान में स्थित भी और जन्म नक्षत्र व जन्मलग्न तथा दशा व अन्तर्दशाओं में ॥ ५१ ॥ मैं सदैव उसको अन्य ग्रहकी पीड़ासे भी रक्षा करता हूं, इसी प्रकार से वह पीड़ा से छूटजाताहै ॥ ५२ ॥ हे रघुनन्दन ! इस कहे हुये वरदान को मैंने तुमको दिया। शिवजी बोले कि पुरातन समय दो वरदानों को पाकर दशरथ राजाने ॥ ५३ ॥ शनैश्चरको प्रणाम कर अपना को कृतार्थ माना ॥ ५४ ॥ और शनैश्चर से कहकर व आज्ञा को लेकर रथपै चढ़करप्रभात:

वान् राजा दशरथजी देवताओंसे पूजितहोकर अपने स्थानको चलेगये ॥ ५५ ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य शनैश्चरके दिन इस चरित्रको पढ़ताहै उसको पृथ्वीमें कहीं सब ग्रहों से उपजी हुई पीड़ा नहीं होती है ॥ ५६ ॥ भक्ति से संयुक्त जो मनुष्य नित्य शनैश्चर देवको स्मरण करता है व उनको पूजकर स्तोत्रको पढ़ताहै उसके ऊपर सूर्यपुत्र (शनैश्चर) जी प्रसन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ हे देवि ! सब पापोंको नाशनेवाला व सब कामनाओं के फलको देनेवाला यह शनिदेवताका माहात्म्य तुम से कहा गया ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येशनैश्चरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

रुह्यवीर्यवान् ॥ स्वस्थानंगतवान्राजा पूज्यमानोदिवौकसैः ॥ ५५ ॥ यइदंप्रातरुत्थाय शनिवारेपठेन्नरः ॥ सर्वग्रहो द्भवापीडा नभवेत्तुविकुत्रचित् ॥ ५६ ॥ शनैश्चरंस्मरेद्देवं नित्यंभक्तिसमन्वितः ॥ पूजयित्वापठेत्स्तोत्रं तस्यतुष्यतिभा स्करिः ॥ ५७ ॥ इतितेकथितंदेवि माहात्म्यंशनिदैवतम् ॥ सर्वपापोपशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्क न्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येशनैश्चरमाहात्म्यवर्णनन्नामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंराहुप्रतिष्ठितम् ॥ शनैश्चरेश्वराद्देवि वायव्येसंप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ तत्र वर्षसहस्रन्तु वैप्रचित्तिस्तपोकरोत् ॥ स्वर्भानुःसुमहावीर्यश्चक्रयोधीमहासुरः ॥ २ ॥ समाराध्यमहादेवं दिव्येनतपसा प्रभुम् ॥ लिङ्गेवतारयामास जगदीशंमहेश्वरम् ॥ ३ ॥ यश्चैनंपूजयेद्भक्त्या नरःसम्यक्प्रपश्यति ॥ तस्यपापंक्षयं

दो०। राह्वीश अस लिंग जिमि थाप्यो है ग्रह राहु। अर्तालिस अध्यायमें कथा सो सहित उछाहु ॥ महादेवजीबोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर मनुष्य राहु से थापेहुये लिंग के समीप जावै जोकि शनैश्चरेश्वरजी से वायव्य दिशा में स्थापित है ॥ १ ॥ वहांपर विप्रचित्त के पुत्र (राहु) ने हज़ार वर्ष तक तप कियाहै व बड़े पराक्रमी तथा चक्र से युद्ध करनेवाले राहु महादैत्यने ॥ २ ॥ दिव्य तपस्या से महादेव स्वामी को भलीभांति आराध कर उन महेश्वर जगदीशको लिंग में अवतरण कराया याने प्राप्त किया ॥ ३ ॥ जो मनुष्य भक्ति से इन शिवजीको पूजताहै व भलीभांति देखताहै जन्म से लगाकर मृत्युपर्यन्त उपजाहुआ उसका पाप नष्ट

होजाताहै ॥ ४ ॥ उन शिवजीको देखनेपर मनुष्य पृथ्वीमें न अन्ध होताहै और न बधिर होताहै और न गूंगा होताहै न रोगी होताहै और न निर्द्धनी होताहै ॥ ५ ॥ और सदैव सुख व सौभाग्य से संयुत वह रूपवान् होताहै और सब कामनाओं से समृद्धात्मा होकर स्वर्ग में देवताओं की नाईं आनन्द करता है ॥ ६ ॥ हे देवि ! तुमसे यह राहु देवतावाला माहात्म्य कहागया इसको सुनकर नियमसे संयुत पुरुष पापरहितहोताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायाप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येराह्वीश्वरमाहात्म्यंनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

याति आजन्ममरणोद्भवम् ॥ ४ ॥ नान्धोनबधिरोमूको नरोगीनचनिर्धनः ॥ कदाचिज्जायतेमर्त्यस्तेनदृष्टेनभूतले ॥ ५ ॥ सुखसौभाग्यसम्पन्नः सदाभवतिरूपवान् ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा मोदतेदिविदेववत् ॥ ६ ॥ इतितेकथितंदेवि माहात्म्यंराहुदैवतम् ॥ श्रुत्वातुनियमाद्युक्तो नरोनिष्कल्मषोभवेत् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येराह्वीश्वरमाहात्म्यंनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि केतुलिङ्गंमहाप्रभम् ॥ राह्वीशानादुदग्भागे मङ्गलादथदक्षिणे ॥ १ ॥ धनुषान्तरमानेन नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि सर्वपातकनाशनम् ॥ २ ॥ केतुर्नामाग्रहोत्युग्रः शिवसद्भावभावितः ॥ वर्तुलोतीवविस्तीर्णो लोचनाभ्यांसुभीषणः ॥ ३ ॥ पलालधूमसङ्काशो ग्रहपीडापहारकः ॥ तत्राकरोत्तपश्चोग्रं दिव्याब्दानांशतंप्रिये ॥ ४ ॥ तस्यतुष्टोमहादेवो ग्रहत्वंप्रददौप्रिये ॥ एकादशशतानांच ग्रहाणामाधिपत्यताम् ॥ ५ ॥

दो० । केत्वीश्वर अस लिंग जिमि थाप्योहै ग्रह केतु । उञ्चासवें अध्याय में सोइचरित सुखहेतु ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर महाप्रभावान् केतुलिङ्गके समीप जावै राह्वीश्वर से उत्तरदिशा के भागमें व मङ्गल से दक्षिणमें ॥ १ ॥ थोड़ेही दूर पै धनुषभर के अन्तरके प्रमाण से समस्त पातकों का नाशक व महाप्रभाववान् लिङ्ग स्थित है ॥ २ ॥ शिवजीकी उत्तमभक्तिसे शुद्धचित्तवाला केतु नामक अति उग्र ग्रह गोलाकार व विस्तीर्ण और नेत्रोंसे अतिभयङ्कर है ॥ ३ ॥ और पयालके धुँवाके समान रंगवाला वह ग्रहोंकी पीड़ाको हरनेवाला है हे प्रिये ! उसके तुने वहांपर देवताओंके सौवर्षतक उग्र तपस्या कियाहै ॥ ४ ॥ हे प्रिये ! महादेव

जोने प्रसन्न होकर उसको ग्रहत्वदिया और गेरहसौ ग्रहोंकी स्वामिताको दियाहै ॥ ५ ॥ वहां टिकेहुये महाप्रभावान् केतुलिङ्गको पूजै और महाभयङ्कर केतुके उदयमें उसके देखनेपर विशेषकर पूजै ॥ ६ ॥ और ग्रहोंकी उग्र पीड़ाओंमें उस केत्वीशलिङ्गको विधिसे पूजै और पुष्प, चन्दन, धूप व अनेकभांतिके उत्तम नैवेद्यों से ॥ ७ ॥ विधिपूर्वक केतुके पातक को नाशनेवाले शिवदेवजी को प्रसन्नकरै यह केतुलिङ्गका प्रभाव संक्षेप से कहागया ॥ ८ ॥ जोकि ग्रहोंकी पीड़ाका विनाशक व महापातकों का नाशक है ये ग्रहोंके लिङ्ग तुमसे कहेगये ॥ ९ ॥ जो मनुष्य नित्य इन लिङ्गों को देखता है उसको पीड़ाका भय कहां से होताहै और उसके वंशमें दुर्भाग्यता

तत्रस्थंपूजयेद्भक्त्या केतुलिङ्गंमहाप्रभम् ॥ केतूदयेमहाघोरे तस्मिन्दृष्टेविशेषतः ॥ ६ ॥ ग्रहपीडासुचोग्रासु पूजयेत्तं विधानतः ॥ पुष्पगन्धैस्तथाधूपैर्नैवेद्यैर्विविधैश्शुभैः ॥ ७ ॥ तोषयेद्विधिवद्देवं केतुंकल्मषनाशनम् ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं केतुलिङ्गमहोदयम् ॥ ८ ॥ ग्रहपीडोपशमनं महापातकनाशनम् ॥ एतानिचैवलिङ्गानि ग्रहाणांकथितानिते ॥ ९ ॥ यःपश्यतिनरोनित्यं तस्यपीडाभयंकुतः ॥ नदौर्भाग्यंकुलेतस्य नरोगीनैवदुःखितः ॥ १० ॥ जायतेपुत्रवान्देवि तंरक्षन्तिमहाग्रहाः ॥ नवग्रहेश्वराणान्तु माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ ११ ॥ तथैवपञ्चलिङ्गानां श्रुत्वापापैःप्रमुच्यते ॥ कपर्दिनंसमारभ्य चण्डीनाथान्तिकान्तिच ॥ १२ ॥ पञ्चैवमुद्रालिङ्गानि नापुण्योवेदमानवः ॥ सूर्येश्वरंसमारभ्य केतुलिङ्गान्तिकानिवै ॥ १३ ॥ नवग्रहाणांलिङ्गानि नान्योजानातिकश्चन ॥ चतुर्दशविधात्वेवं प्रोक्तायतनसन्ततिः ॥ य

नहीं होती है न रोगी होताहै न दुःखी होता है ॥ १० ॥ व हे देवि ! वह पुरुष पुत्रवान् होताहै और महाग्रह उसकी रक्षा करते हैं पातकों के विनाशक नवग्रहेश्वरोंका माहात्म्य ॥ ११ ॥ व पांच लिङ्गोंके माहात्म्य को सुनकर मनुष्य पातकों से छूटजाता है कपर्दीजी से लगाकर चण्डीश्वर अन्तवाले ॥ १२ ॥ पांचही मुद्रा लिङ्गोंको बिन पुण्यवाला पुरुष नहीं जानताहै और सूर्येश्वर से लगाकर केतुलिङ्गके अन्तवाले ॥ १३ ॥ नवग्रहों के लिङ्गोंको अन्य कोई नहीं जानता है इस प्रकार

चौदह प्रकार की मन्दिरों की सन्तति कहीगई इसको जो मनुष्य भक्तिसे जानता है वह क्षेत्रके फलको भोगताहै ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येकेत्वीश्वरमाहात्म्यंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥

दो॰। सिधिदायक अरु विघ्नको नाशक लिङ्ग सिधेश। पचासवें अध्यायमें सोइ कह्यो गिरिजेश ॥ महादेवजी बोले कि हे यशस्विनि ! पांच अर्थ सिद्धिलिङ्गोंको कहताहूं कि जिनके दर्शन से हे देवि ! मनुष्यों की यात्रा सिद्ध होतीहै ॥ १ ॥ सोमेशजी से ईशानदिशाके भागमें जो वरारोहा ऐसी कहीगई है उसके पूर्वदिशा

श्चैतांवेदभावेन सक्षेत्रफलमश्नुते ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये केत्वीश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ पञ्चार्थसिद्धिलिङ्गानि कथयामियशस्विनि ॥ येषांदर्शनतोदेवि सिद्धायात्राभवेन्नृणाम् ॥ १ ॥ सोमेशादीशदिग्भागे वरारोहेतियास्मृता ॥ तस्याश्चपूर्वदिग्भागे देवस्सर्वेश्वरःपरः ॥ २ ॥ अभिगम्यनरोभक्त्या अणिमादिकमाप्नुयात् ॥ सिद्धैःप्रतिष्ठितंलिङ्गं पश्येद्भक्त्यातुमानवः ॥ ३ ॥ मुच्यतेपातकैस्सर्वैः सिद्धलोकंसगच्छति ॥ विघ्नानिनाशमायान्ति तत्रक्षेत्रेनिवासिनाम् ॥ ४ ॥ कामःक्रोधोभयंलोभो रागोमत्सरमेवच ॥ ईर्ष्यादम्भास्तथालस्यं निद्रामोहस्त्वहंकृतिः ॥ ५ ॥ एतानिविघ्नरूपाणि सिद्धेर्विघ्नकराणिवै ॥ तानिनाशंसमायान्ति तत्र सिद्धेश्वरार्चनात् ॥ एवंज्ञात्वातुयत्नेन तत्रयात्रांसमाचरेत् ॥ ६ ॥ इत्येवंकथितन्देवि सिद्धेश्वरमहोदयम् ॥ सर्वकाम

के भागमें उत्तम सर्वेश्वरदेवजी हैं ॥ २ ॥ उनके सम्मुख भक्ति से जाकर मनुष्य अणिमादिक सिद्धिको प्राप्त होता है सिद्धों से थापेहुये लिंगको जो मनुष्य भक्ति से देखता है ॥ ३ ॥ वह सब पातकों से छूटजाता है व सिद्धलोक को जाता है और उस क्षेत्रमें बसनेवाले लोगों के विघ्न नाश को प्राप्तहोते हैं ॥ ४ ॥ काम, क्रोध, भय, लोभ, स्नेह, अन्यके शुभमें वैर करना, ईर्ष्या, पाखण्ड, आलस्य, निद्रा, अज्ञान व अहङ्कार ॥ ५ ॥ विघ्नरूपी ये सिद्धिके विघ्नकारक हैं और वहां सिद्धेश्वरजी के पूजन से वे नाशको प्राप्तहोतेहैं ऐसा जानकर यत्नसे वहां यात्रा करें ॥ ६ ॥ हे देवि ! यही सिद्धेश्वर का महाप्रभाव कहागया है सुनाहुआ जो

कि सब कामनाओं को देनेवाला व पातकों को नाशनेवाला है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। जिमि कपिलेश्वरलिंग को थप्यो कपिलमुनिनाथ। इक्यावन अध्याय में वर्णित सोई गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर उन्हींके पूर्वदिशा के भागमें थोड़ेही दूर पै स्थित उत्तम कपिलेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ महाप्रभाववाला वह लिंग दर्शनसे पातकों का विनाशकहै जहांपर कपिलनामक राजर्षि

प्रदंनृणां श्रुतंपातकनाशनम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसिद्धेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कपिलेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ लिङ्गं महाप्रभावन्तु दर्शनात्पापनाशनम् ॥ कपिलोनामराजर्षिर्यत्रतप्त्वामहत्तपः ॥ २ ॥ संप्राप्यपरमांसिद्धिं प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ देवसान्निध्यतांनीतस्तस्मिँल्लिङ्गेसदाहरः ॥ ३ ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यां सर्वलोकहितार्थतः ॥ सप्तकृत्वो महादेवं सोमेशंकपिलेश्वरम् ॥ ४ ॥ सम्पश्येत्प्रयतोभूत्वा सगोदानफलंलभेत् ॥ तिलधेनुञ्चयोदद्यात्तस्मिंस्तीर्थेसमाहितः ॥ ५ ॥ तिलसंख्यायुगान्येव सस्वर्गेवसतिप्रिये ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कपिलेश्वरमाहात्म्यन्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ने बड़ातप करके ॥ २ ॥ उत्तम सिद्धिको पाकर व महादेवजी को थापकर शिवदेवजीकी समीपता में प्राप्त कियेगये उस लिंगमें महादेवजी सदैव ॥ ३ ॥ शुक्लपक्षमें चौदसि तिथि में सब लोगों के हितके लिये स्थित रहते हैं जो मनुष्य पवित्र होकर सोमेश कपिलेश्वर महादेवजी को सातबार देखता है वह गोदान के फल को पाताहै और सावधान होताहुआ जो मनुष्य उस तीर्थमें तिलकी गऊको देताहै ॥ ४ । ५ ॥ वह हे प्रिये! तिलोंकी गिनतीभर युगोंतक स्वर्ग में बसता है ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकपिलेश्वरमाहात्म्यंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ● ॥

दो० । गन्धर्वेश्वरलिंगको घनवाहन गन्धर्व । थाप्यो बावनवेंमहँ सोइ चरितहै सर्व ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! उसके उपरान्त इन दण्डपाणीश्वरजी के थोड़ेही दूरपै स्थित उत्तम गन्धर्वेश्वर के समीप जावै ॥ १ ॥ जहांपर गन्धर्वोंके राजा जो घनवाहन ऐसे प्रसिद्ध थे उनकी महाप्रभावती कन्या गन्धर्वसेना ऐसी विख्यातथी ॥ २ ॥ रूपसे गर्वित उसको शिखण्डी गणने शाप दिया तदनन्तर गोश्रृङ्ग ऋषिने उसको सोमेशजी के आराधन में सोमवार के व्रतही से अनुग्रह (शापोद्धार) दियाहै उस क्षेत्रमें भलीभांति आकर और कठिन तपस्या करके ॥३।४॥ वहां आपही गन्धर्वराज घनवाहनने लिङ्गको स्थापन किया है वैसेही उसकी कन्याने

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गन्धर्वेश्वरमुत्तमम् ॥ दण्डपाणीश्वरस्यास्य नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ यत्रगन्धर्वराजोवै घनवाहेतिविश्रुतः ॥ तस्यगन्धर्वसेनेति ख्यातापुत्रीमहाप्रभा ॥ २ ॥ शिखण्डिनागणेनैव साशप्ता रूपगर्विता ॥ ततोगोश्रृङ्गऋषिणा दत्तस्तस्याह्यनुग्रहः ॥ ३ ॥ सोमवारव्रतेनैव सोमेशाराधनम्प्रति ॥ तत्रक्षेत्रेसमागत्य तपःकृत्वासुदुस्तरम् ॥ ४ ॥ लिङ्गंप्रस्थापयामास तत्रगन्धर्वराट्स्वयम् ॥ तथैवपुत्र्यातस्यैव तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥ अथतत्रैवदेवेशि दण्डपाणेःसमीपतः ॥ घनवाहेश्वरन्नाम यल्लिङ्गंयत्नतोर्चयेत् ॥ ६ ॥ गन्धर्वलोकमाप्नोति दृष्ट्वातंप्रयतश्शुचिः ॥ इतितेकथितन्देवि गान्धर्वंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ७॥ तृतीयंसर्वपापानां नाशनंपुण्यवर्द्धनम् ॥ अग्नितीर्थेनरस्स्नात्वा पूज्यगन्धर्वपूजितम् ॥ ८ ॥ अयनेचोत्तरेप्राप्ते निर्वाणमधिगच्छति ॥ श्रुत्वाभिनन्द्यमाहात्म्यंमुच्यतेमहतोभयात ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगन्धर्वेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

वहां लिंगको थापा है ॥ ५ ॥ और हे देवेशि ! वहींपर दण्डपाणिजी के समीप घनवाहेश्वर नामक जो लिंगहै उसको यत्न से पूजै ॥ ६ ॥ और पवित्र मनुष्य शुचि होकर उन गन्धर्वेश्वरजी को देखकर गन्धर्वलोक को प्राप्तहोताहै हे देवि ! यह तीसरा गन्धर्ववाला लिङ्ग तुमसे कहागया जोकि सब पापोंको नाशनेवाला व पुण्यको बढ़ानेवाला है अग्नितीर्थमें नहाकर मनुष्य गन्धर्वों से पूजित लिंगको पूजकर ॥ ७ । ८ ॥ उत्तरायण प्राप्त होनेपर मोक्षको प्राप्त होताहै और माहात्म्यको सुनकर व प्रशंसाकरमनुष्य बड़ेभयसे छूटजाताहै ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगन्धर्वेश्वरमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

दो० । विमलेश्वर करहै यथा अतिउत्तम परभाव । तिरपनवेंमें सोइ सब चरित अहै चितचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके पूर्वओर स्थित लिङ्गके समीप जावै जोकि गौरीजीके पूर्व समीपही स्थित थोड़ेही दूर पै व्यवस्थितहै ॥ १ ॥ बृहस्पतिजी के नैर्ऋत्यदिशा के भागमें पातकों का विनाशक वह लिङ्ग स्थितहै स्त्री या पुरुषभी बड़ेभारी पातकोंको कर ॥ २ ॥ अथवा क्षयरोगसे तिरस्कृत शरीरवाला पुरुष उन शिवजी को भक्तिसे भलीभांति पूजकर सब दुःखोंका नाशक होकर निर्मलपद को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जहांपर क्षयरोग से संयुत गन्धर्वसेना विमल हुई है वहांपर वह लिंग विमलेश्वर नामक पृथ्वी में प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥ हे

शिवउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्यपूर्वेणसंस्थितम् ॥ गौर्याःपूर्वसमीपस्थं नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ गुरोर्नैर्ऋत्यदिग्भागे स्थितंपापप्रणाशनम् ॥ अपिकृत्वामहत्पापं नारीवापुरुषोपिवा ॥ २ ॥ क्षयाभिभूतदेहोवा तंसमभ्यर्च्यभक्तितः ॥ सर्वदुःखान्तकोभूत्वा निर्मलंपदमाप्नुयात् ॥ ३ ॥ गन्धर्वसेनायत्रैव विमलाभूत्क्षयान्विता ॥ विमलेश्वरनामानं तल्लिङ्गंप्रथितम्भुवि ॥ ४ ॥ इतितेकथितंसर्वंविमलेश्वरसूचकम् ॥ माहात्म्यंसर्वपापघ्नं तुरीयंयच्चसुन्दरि ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे विमलेश्वरमाहात्म्यन्नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ अथतेपञ्चमंवच्मि सिद्धलिङ्गंमहाप्रभम् ॥ ब्रह्मणोनैर्ऋतेभागे धनुषांषोडशेस्थितम् ॥ १ ॥ राहुलिङ्गस्यवायव्ये लिङ्गंधनदनिर्मितम् ॥ धनदत्वञ्चसम्प्राप्तं यत्रतप्त्वामहत्तपः ॥ २ ॥ संस्थाप्यविधिवत्पूज्यलिङ्गं

सुन्दरि ! विमलेश्वरका सूचक व समस्त पातकों का विनाशक यह सब माहात्म्य तुमसे कहागया जोकि चौथा है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविमलेश्वरमाहात्म्यंनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । धनदेश्वर अस लिङ्ग जिमि थाप्यो अहै कुबेर । चौवनवें अध्याय में सो चरित सुखटेर ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त में महाप्रभावान् पांचवें सिद्ध लिङ्गको तुमसे कहताहूं ब्रह्माके नैर्ऋत्यदिशाके भाग में सोलह धनुष पै स्थित ॥ १ ॥ व राहु लिङ्गके वायव्य में कुबेर से निर्माण कियाहुआ लिंग है जहां बहुत तपस्या

कर कुबेर ने धनदत्व को पायाहै ॥ २ ॥ वहांपर लिंगको भलीभांति थापकर व हज़ार वर्षतक विधिपूर्वक पूजकर कुबेर शिवजीकी प्रसन्नता से अलकापुरी के स्वामी हुयेहैं ॥ ३ ॥ और पहलेवाली जातिको स्मरणकर व अपनी दशाके फलको तथा शिवरात्रि के प्रभावको जानकर फिर प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ४ ॥ और उन कुबेरजी ने प्रभाव की अधिकता को जानकर शिवजी का स्थापन किया व जिन्हों ने तपस्या से शिवजी को प्रत्यक्षता में प्राप्त किया ॥ ५ ॥ व हे महादेवि ! बड़ीभक्ति से उस लिंगमें अवतार कराया मनुष्य उन शिवजीको भक्तिसे देखकर व विधिपूर्वक पूजकर ॥ ६ ॥ जो पंचोपचारपूर्वक उत्तमभक्ति से चन्दन पुष्प व अनुलेपनों से

वर्षसहस्रकम् ॥ अलकाधिपतिर्जातस्तत्रशम्भोःप्रसादतः ॥ ३ ॥ जातिंस्मृत्वापूर्वकीन्तु ज्ञात्वास्वीयदशाफलम् ॥ शिवरात्रेःप्रभावन्तु प्रभासंपुनरागतः ॥ ४ ॥ प्रभावातिशयंज्ञात्वा स्थापयामासशङ्करम् ॥ तत्रप्रत्यक्षतान्नीतस्तपसायेन शङ्करः ॥ ५ ॥ महद्भक्त्यामहादेवि तस्मिँल्लिङ्गेवतारितः ॥ तन्दृष्ट्वामानवोभक्त्या पूजयित्वायथाविधि ॥ ६ ॥ पञ्चोपचारसद्भक्त्या गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ तस्यान्वयेदरिद्रस्य कथापिनभविष्यति ॥ ७ ॥ येचैतत्पूजयिष्यन्ति लिङ्गं भक्तियुतानराः ॥ अजेयास्तेभविष्यन्ति शत्रूणांदर्पनाशनाः ॥ ८ ॥ इतितेकथितंसर्वं धनदेशमहोदयम् ॥ श्रुत्वानुमोघ यत्नेनदरिद्रोनैवजायते ॥ ९ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेधनदेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

ईश्वरउवाच ॥ पञ्चैवसिद्धलिङ्गानि कथितानितवप्रिये ॥ यश्चैनंवेदसङ्केतं चैत्रवासीसउच्यते ॥ १ ॥ अथशक्तित्र

पूजता है उसके वंशमें दरिद्र की कथा भी न होगी ॥ ७ ॥ जो भक्तिसंयुत मनुष्य इस लिंगको पूजैंगे व शत्रुवों के न जीतनेयोग्य व गर्व के विनाशक होवैंगे ॥ ८ ॥ यह सब कुबेरेश्वरजी का बड़ाभारी ऐश्वर्य तुमसे कहागया इसको यत्नसे सुनकर व अनुमोदनकर मनुष्य निर्धनी नहीं होताहै ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांधनदेश्वरमाहात्म्यंनामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

॥ ॥

दो० । इन्दुपलि छब्बीस जिमि वरारोह इमि देवि । थाप्यो पचपन में सोई चरित अहै सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! पांचही सिद्धलिंग तुमसे कहे

गये जो इस संकेत को जानता है वह क्षेत्रवासी कहाजाता है ॥ १ ॥ इसके अनन्तर मैं रुद्रजीकी तीन शक्तियोंके विस्तारको मैं तुमसे कहताहूं इच्छा, ज्ञान व क्रिया वे तीन शक्तियां कहीगई हैं ॥ २ ॥ फिर उनके पूजन के लिये क्रमसे अनुक्रम को सुनो कि चौदह व पांच जो लिंग पहले कहेगयेहैं ॥ ३ ॥ उनमेंसे शक्तिके अनुसार चार, तीन व एक लिंगको पूजकर तदनन्तर उन लिंगोंको पूजकर तीन शक्तियों को पूजै ॥ ४ ॥ सोमेशजीसे ईशान दिशाके भागमें जो वरारोहा ऐसी कहीगईहै यह चन्द्रमाकी व पार्वतीजी की अमानामक कला कहीगई है ॥ ५ ॥ और प्रभासक्षेत्रमें टिकीहुई वह इच्छाशक्ति जाननेयोग्य है वहांपर पृथ्वीमें सब प्राणियों के हितके

याणान्ते रौद्राणांवच्मिविस्तरम् ॥ इच्छाक्रियाज्ञानशक्तिस्तिस्रस्ताःपरिकीर्त्तिताः ॥ २ ॥ पुनस्तासांपूजनायानुक्रामं क्रमतःशृणु ॥ चतुर्दशतथापञ्च पूर्वमुक्तानियानितु ॥ ३ ॥ चत्वारित्रीणिचैकंवा यथाशक्त्याभिपूज्यच ॥ लिङ्गानि तानिसम्पूज्य शक्तीस्तिस्रस्ततोर्चयेत् ॥ ४ ॥ सोमेशादीशदिग्भागे वरारोहेतियास्मृता ॥ अमाकलासौसोमस्य उ मायाश्चप्रकीर्त्तिता ॥ ५ ॥ इच्छाशक्तिस्तुसाज्ञेया प्रभासक्षेत्रसंस्थिता ॥ तत्रदेवीहितार्थाय सर्वेषांप्राणिनाम्भुवि॥ ६ ॥ त स्यामाहात्म्यमखिलं कथयामितवाधुना ॥ पुरासोमेनत्यक्ताभिर्भार्याभिस्तुवरानने ॥ ७ ॥ षड्विंशद्भिस्तपस्तप्तं क्षेत्रे प्राभासकेशुभे ॥ गौरीमाराधमानाभिर्दिव्यवर्षगणान्बहून् ॥ ८ ॥ तासांप्रत्यक्षतांप्राप्ता पार्वतीपरमेश्वरी ॥ उवाचवर दातत्र याचध्वंमनसिस्थितम् ॥ ९ ॥ अथताश्चाब्रुवन्देवि यदितुष्टासिपार्वति ॥ सौभाग्यन्देहिनोभूरिलावण्यंपरमंत था ॥ १० ॥ त्यक्तास्सर्वावयन्देवि निर्दोषास्स्वामिनाशुभे ॥ दौर्भाग्यदोषसन्दग्धा दौर्भाग्येनतुपीडिताः ॥ ११ ॥ गौ

लिये देवीजी स्थित हैं ॥ ६ ॥ इस समय तुमसे उसके सब माहात्म्य को कहताहूं हे वरानने! पुरातन समय चन्द्रमा से छोड़ीहुई छब्बीस स्त्रियोंने देवताओं के बहुत वर्षसमूहोंतक पार्वतीजी का आराधन करतीहुई उत्तम प्रभासक्षेत्र में तप कियाहै ॥ ७ । ८ ॥ उन के नेत्रोंके सामने प्राप्त वरदायिनी परमेश्वरीजी वहां बोलीं कि मनमें स्थित वस्तुको मांगिये ॥ ९ ॥ इस के अनन्तर हे देवि! उन्होंने कहा कि हे पार्वतीजी! यदि प्रसन्नहो तो हम सबोंको बहुत सौभाग्य दीजिये और उत्तम सुन्दरता को दीजिये ॥ १० ॥ हे शुभे, देवि! दोषरहित हम सब स्वामी से छोड़ीगई हैं जोकि दुर्भाग्य के दोषसे जलीहुई व दुर्भाग्यसे पीड़ित हैं ॥ ११ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे

सुन्दर अंगोंवाली ! आजसे लगाकर निशानाथ (चन्द्रमा) मेरी प्रसन्नता से तुम सबोंको तुल्यही देखैगा यह मिथ्या नहोवेगा ॥ १२ ॥ और वरको देनेसे वरदा ऐसा मेरा नाम होगा यहां आकर जो स्त्री मुझ शुभदायिनीको पूजैगी ॥ १३ ॥ उसके कुलमें स्त्रिया कहीं दुर्भाग्यताको न प्राप्त होवैंगी व माघ महीनेमें तीज तिथिमें उपास में तत्पर ॥ १४ ॥ जो स्त्री मुझको देखैगी वह मेरे तुल्य सुन्दर कटिवाली होगी और सोलह स्त्री पुरुषों को यहां यत्नसे भोजन कराना चाहिये ॥ १५ ॥ और जो स्त्री फल, भक्ष्य, भोज्य व सोलह पक्वान्नों को देवैगी वह स्त्री पार्वती की नाईं होगी ॥ १६ ॥ इस गौरीनामक व्रत को तीजमें करै और जो स्त्री कष्टोंसे संयुत होती है व

र्युवाच ॥ अद्यप्रभृतिसर्वाश्च समंद्रक्ष्यतिरात्रिपः ॥ प्रसादान्ममचार्वङ्ग्यो नैतन्मिथ्याभविष्यति ॥ १२ ॥ वरदाचेतिम न्नामवरदानाद्भविष्यति ॥ इहगत्यतुयानारीपूजयिष्यतिमांशुभाम् ॥ १३ ॥ नदौर्भाग्यंकुलेतस्य कचित्प्राप्स्यन्ति योषितः ॥ माघमासेतृतीयायामुपवासपरायणा ॥ १४ ॥ यामांद्रक्ष्यतिसुश्रोणी मत्तुल्यासाभविष्यति ॥ दम्पती षोडशैवात्र भोजनीयाःप्रयत्नतः ॥ १५ ॥ फलानिभक्ष्यंभोज्यञ्च पक्वान्नानिचषोडश ॥ याप्रदास्यतिवैनारी साउ मेवभविष्यति ॥ १६ ॥ एतद्गौरीव्रतन्नामतृतीयायान्तुकारयेत ॥ कष्टैर्वृताचयानारी यानारीदुर्भगाभवेत् ॥ १७ ॥ पुमान्यस्सकृदप्येवं करोत्याप्नोत्यभीप्सितम् ॥ एवमुक्त्वास्थितातत्र सादेवीचारुलोचना ॥ १८ ॥ पश्यतेरात्रिनाथ श्च सर्वास्तारोहिणींयथा ॥ अन्यापिदुःखसन्दग्धा दौर्भाग्येनतुपीडिता ॥ १९ ॥ पूजयिष्यतियादेवि सुभगासाभवि ष्यति ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंशक्तिसम्भवम् ॥२०॥सोमेश्वरेवरारोहा नामेतिकथितन्तव ॥ सर्वपापक्षयकरं स

जो स्त्री दुर्भाग्यवती होती है ॥ १७ ॥ व जो पुरुष एकबार भी ऐसा करता है वह मनोरथ को प्राप्त होता है ऐसा कहकर वहांपर वे सुन्दर लोचनोंवाली पार्वतीदेवीजी स्थित हुईं ॥ १८ ॥ व रात्रिनायक (चन्द्रमा) उनसबोंको रोहिणीकी नाईं देखताहै दुर्भाग्यतासे संयुत व दुःखसे जलीहुई अन्यभी ॥ १९ ॥ जो स्त्री हे देवि ! पूजैगी वह सुभगा होगी यह शक्तिसे उपजाहुआ माहात्म्य संक्षेपसे कहागया ॥ २० ॥ सोमेश्वर में सब पापोंका नाशकारक व सब दरिद्रों का नाशक वरारोहा ऐसा नाम

तुमसे कहागया ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवरारोहामाहात्म्यवर्णनंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

दो० । अजपालेश्वरि को यथा थाप्यो नृप अजपाल। छप्पन के अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! इसके अनन्तर मैं देवताओंकी प्रीतिको बढ़ानेवाली प्रभासमें टिकीहुई क्रियात्मिका महादेवी दूसरी शक्तिको तुम से कहताहूं ॥ १ ॥ वह देवी सोमेशजी से वायव्य भागमें साठ धनुषके अन्तर पै स्थित है हे महादेवि ! वहांपर योगिनीगणों से प्रणाम कियाहुआ पीठहै ॥ २ ॥ हे देवि ! उस स्थान पै बड़ाभारी पाताल का बिलहै उस प्रभावान् स्थानमें वह रक्षाके

वेदारिद्र्यनाशनम् ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये वरारोहामाहात्म्यन्नामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ अथद्वितीयान्तेवच्मि शक्तिन्देविक्रियात्मिकाम् ॥ प्रभासस्थांमहादेवीं देवानांप्रीतिवर्द्धिनीम् ॥१॥ सोमेशाद्वायवेभागे षष्टिधन्वन्तरेस्थिता ॥ तत्रपीठंमहादेवि योगिनीगणवन्दितम् ॥ २ ॥ तस्मिन्स्थानेस्थितन्देवि पातालविवरंमहत् ॥ तस्मिन्महाप्रभेस्थाने रक्षारूपेणसंस्थितम् ॥ ३ ॥ पातालेनिधिनिक्षेपं दिव्यौषधिरसायनम् ॥ क्षेत्रमध्येस्थितंसर्वं तवार्चनरतोलभेत् ॥ ४ ॥ भैरवीतिचतद्देव्याः पूर्वन्नामप्रकीर्त्तितम् ॥ अस्मिन्पुनश्चान्तरेतु अष्टाविंशेचतुर्युगे ॥ ५ ॥ त्रेतायुगमुखेराजा अजापालोबभूवह ॥ तेनचागत्यक्षेत्रेस्मिन् पञ्चवर्षशतानिच ॥ ६ ॥ भैरवीपूजितादेवी व्याधिग्रस्तेनभामिनि ॥ ततःप्रोवाचसादेवी सन्तुष्टाराजसत्तमम् ॥ ७ ॥ अलंक्लेशेनराजर्षे तुष्टाहंतवभक्ति

रूपसे स्थित है ॥ ३ ॥ तुम्हारे पूजन में परायण पुरुष पाताल में निधि (खज़ाने) के न्यास व दिव्य ओषधियों का रसायन तथा क्षेत्रके मध्यमें स्थित सब वस्तुको पाताहै ॥ ४ ॥ पहले उन देवीजी का भैरवी ऐसा नाम कहागया है फिर इस मन्वन्तर में अट्ठाईसवीं चौयुगी में ॥ ५ ॥ त्रेतायुग के आदिमें अजापाल राजा हुआ है रोगसे ग्रसेहुये उसने इस क्षेत्रमें आकर हे भामिनि ! पांचसौ वर्षतक भैरवीदेवी का पूजन किया तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई वह देवी नृपोत्तमजी से बोली ॥ ६ । ७ ॥

किहे राजर्षे ! क्लेश न कीजिये मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्नहूं उस समय ऐसा कहा हुआ वह उत्तम बुद्धिमान् राजा हाथोंको जोड़कर ॥ ८ ॥ और आनन्द के आंसुओं से मलिन लोचनोंवाला होकर प्रणाम करके उन देवीजीसे बोला कि हे देवि ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो और यदि मैंभी वर देनेके योग्यहूं ॥ ९ ॥ तो शरीरमें जो रोगहैं अलग कियेहुये वे सब नाशको प्राप्तहोवें ऐसा कहीहुई वह देवी फिर उस राजा से बोली ॥ १० ॥ कि हे महाराज ! जैसा तुमसे कहागया वह सब वैसाही होगा ऐसा कहनेपर उस समय फिर देवीजी ने राजासे कहा ॥ ११ ॥ कि हे राजन् ! इन बकरीरूपवाले सब रोगोंको पालन कीजिये क्योंकि तुम्हारीही आज्ञाको करनेवाले

तः ॥ इत्युक्तस्सतदाराजा कृताञ्जलिपुटस्सुधीः ॥ ८ ॥ प्रणम्योवाचतान्देवीमानन्दास्राविलेक्षणः ॥ यदितुष्टासिमे देवि वरार्होयदिचाप्यहम् ॥ ९ ॥ सर्वेरोगाश्शरीरेये नाशंयान्तुबहिष्कृताः ॥ एवमुक्तातुसादेवी पुनःप्रोवाचतंनृपम् ॥ १० ॥ सर्वमेवमहाराज यथोक्तन्तेभविष्यति ॥ इत्युक्तेतुतदादेव्या पुनःप्रोक्तोनराधिपः॥ ११ ॥ राजन्नेतान्नजारूपान् व्याधीन्पालयकृत्स्नशः ॥ किंकुर्वाणाभविष्यन्ति तवैवादेशकारिणः ॥ १२ ॥ अजापालेतितेनाम ख्यातिंलोकेग मिष्यति ॥ तवनाम्नाममतथा अजापालेश्वरीतिच ॥ १३ ॥ भविष्यतिधरापृष्ठे तच्चयावच्चतुर्युगम् ॥ अष्टम्याञ्चचतु र्दश्यां योत्रमांपूजयिष्यति ॥ १४ ॥ तस्याष्टगुणमैश्वर्यं दास्येतुष्टानसंशयः ॥ अश्वयुक्शुक्लचाष्टम्यां त्रिःकृत्वासुप्रद क्षिणाम् ॥ १५ ॥ सोमेशंमध्यतःकृत्वा संस्नाप्याभ्यर्च्यमांपृथक् ॥ तत्रवर्षत्रयंराजन् नभीश्शोकोभविष्यति ॥१६॥ यातवन्ध्योभवेन्नारी रोगिणीदुर्भगातथा ॥ तयोक्तानवमीकार्या ममाग्रेतुष्टिवर्द्धिनी ॥१७॥ ईश्वरउवाच ॥ इत्युक्त्वा

वे रोग क्या करनेवाले होंगे ॥ १२ ॥ और संसार में तुम्हारा अजापाल ऐसा नाम प्रसिद्धि को प्राप्तहोगा व तुम्हारे नामसे मेरा अजापालेश्वरी ऐसा नाम ॥ १३ ॥ वह चतुर्युगी तक पृथ्वीमें होगा जो मनुष्य यहां अष्टमी व चौदसि में मुझको पूजैगा ॥ १४ ॥ उसको प्रसन्न होतीहुई मैं आठगुणोंवाले ऐश्वर्य को दूंगी इसमें सन्देह नहीं है और कुँवार की शुक्लपक्षवाली अष्टमी में तीन प्रदक्षिणा कर ॥ १५ ॥ हे राजन् ! वहां तीन वर्षतक सोमेशजी को मध्यमें करके मुझको अलग नहवाकर व भलीभांति पूजकर भय व शोक न होगा ॥ १६॥ और जो स्त्री बांझ व रोगिणी तथा दुर्भगाहोवै उसको मेरे आगे प्रसन्नताको बढ़ानेवाली नवमीकरना चाहिये ॥१७॥

महादेवजी बोले कि ऐसा कहकर तदनन्तर देवीजी वहींपर अन्तर्द्धान हो गईं और अतुलबलवाले वे राजा प्रभासक्षेत्र में स्थित हुये ॥ १८ ॥ और धर्मात्मा राजाने उन रोगरूपी बकरियों को पालन किया और उनके पुष्टिहेतुवाली जो अनेक भांतिकी ओषधी थीं उनको पालन किया ॥ १९ ॥ वहांपर कुछ अधिक सौ वर्षोंतक अजा अलग पुष्टिको प्राप्त कीगईं व अजापालने महानिधान (ख़ज़ाना)के स्थानको बनाया ॥ २० ॥ इसके अनन्तर सूर्यवंश के भूषणरूप व बड़ेपराक्रमी राजा उस देवीकी प्रसन्नतासे सातद्वीपोंके स्वामीहुये ॥ २१ ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देव ! अजादेवी से उपजाहुआ यह आश्चर्यमय चरित्रहै मैं फिर उन अजा-

तुततोदेवी तत्रैवान्तर्हिताभवत् ॥ प्रभासक्षेत्रकेतस्थौ सराजातुलविक्रमः ॥ १८ ॥ पालयामासधर्मात्मा ताअजाव्याधिरूपिकाः ॥ ओषधीर्विविधाकारास्तासांयाःपुष्टिहेतवः ॥ १९ ॥ तत्रवर्षशतंसाग्रं पुष्टिन्नीताअजाःपृथक् ॥ महानिधानसंस्थानमजापालेननिर्मितम् ॥ २० ॥ अथतस्याःप्रसादेन सराजापृथुविक्रमः ॥ सप्तद्वीपाधिपोजातः सूर्यवंशविभूषणः ॥ २१ ॥ देव्युवाच ॥ इत्याश्चर्यमिदन्देव अजादेव्यास्समुद्भवम् ॥ पुनश्चश्रोतुमिच्छामि तस्यराज्ञोद्भुतंमहत् ॥ २२ ॥ कथंराजामदेवेश सप्तद्वीपांवसुन्धराम् ॥ शशासएकएवासौ कथन्तेव्याधयःकृताः ॥ २३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ पुराबभूवराजर्षिर्दिलीपइतिविश्रुतः ॥ दीर्घोनामसुतस्तस्यरघुस्तस्मादजायत ॥ २४ ॥ अजपुत्रोरघोश्चापि तस्माज्जज्ञेतिवीर्यवान् ॥ सभैरवींसमाराध्य कृत्वाव्याधीनजागणान् ॥ २५ ॥ पालयामाससंहृष्टो ह्यजापालस्ततोभवत् ॥ तस्मिन्कालेबभूवाथ रावणोराक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥ लङ्कास्थितस्सुरगणान् निर्युक्तेचस्वकर्मसु ॥ अखण्डमण्डलंचन्द्र मा

पाल राजाके बड़ेभारी अद्भुत चरित्रको सुना चाहती हूं ॥ २२ ॥ हे देवेश ! उस एकही राजाने सात द्वीपोंवाली पृथ्वीको कैसे पालन किया और वे रोग क्या किये गये ॥ २३ ॥ महादेवजी बोले कि पुरातन समय दिलीप ऐसे प्रसिद्ध राजर्षिहुये हैंउनके दीर्घनामक पुत्र हुआ उनसे रघुजी उत्पन्न हुये ॥ २४ ॥ और रघुके भी बड़ा पराक्रमी अज नामक पुत्र हुआ उसने भैरवीजीको भलीभांति आराधन कर रोगोंको अजागण करके ॥ २५ ॥ प्रसन्न होकर पालन किया उसीकारण अजापाल हुआ इसके अनन्तर उसी समय राक्षसोंका स्वामी रावण हुआ ॥ २६ ॥ लङ्कामें स्थित वह रावण देवगणों को अपने कर्मोंमें लगाता था और उसने सम्पूर्ण मण्डलवाले

चन्द्रमा को छत्र किया ॥ २७ ॥ और इन्द्रको सेनापति किया व पवनको धूलि बढ़ोरनेवाला किया और वरुणको दूतके कर्म में स्थितकिया व कुबेरको धनका रक्षक किया ॥ २८ ॥ और यमराज को शत्रुवोंको दण्ड देने में और मनुको सलाह करनेमें युक्त किया व मेघ जल बरसते थे और लीपते थे और वृक्ष पुष्पोंको देते थे॥२९॥ व हे प्रिये ! सप्तर्षि ब्राह्मण शान्ति में तत्पर स्थित थे और नाग पाहरूदारों की डेउढ़ी पै स्थित थे व गंधर्व गीत में तत्पर थे ॥ ३० ॥ और अप्सराओं के समूहको देखने के योग्य में किया व बाजन बजाने में विद्याधर किये गये और पीने में गंगादिक नदियों को किया और गार्हपत्यमें अग्निको किया ॥ ३१ ॥ और अन्नोंका

तपत्रञ्चकारह ॥ २७ ॥ इन्द्रंसेनापतिंचक्रे वायुंपांशुप्रमार्जकम् ॥ वरुणंदूतकर्मस्थं धनदंधनरक्षकम् ॥ २८ ॥ यमंसं यमनेऽरीणां युयुजेमन्त्रणेमनुम् ॥ मेघाश्ववर्षन्तिलिम्पन्तिद्रुमाःपुष्पाणिचिक्षिपुः ॥ २९ ॥ सप्तर्षयश्शान्तिपरा ब्राह्म णास्संस्थिताःप्रिये ॥ नागायामककक्षायां गन्धर्वागीततत्पराः ॥ ३० ॥ प्रेक्षणीयेप्सरोवृन्दं वाद्येविद्याधराःकृताः॥ गङ्गाद्यास्सरितःपाने गार्हपत्येहुताशनः ॥ ३१ ॥ विश्वकर्मान्नसंस्कारे अथशिल्पिनियोजने ॥ तिष्ठन्तिपार्थिवास्स र्वे पुरस्सेवाविधायकाः ॥३२॥ दृश्यन्तेभास्वरैरत्नैः प्रस्खलन्तोविभूषणैः ॥ तान्दृष्ट्वारावणःप्राह प्रहस्तंप्रतिहारकम् ॥ ३३ ॥ सेवांकर्तुममस्थाने ब्रूहिकोत्रसमागतः ॥ उवाचसप्रणम्याग्रे दण्डपाणिर्निशाचरः ॥३४॥ काकुत्स्थएवमान्धा ता धुन्धुमारोनलोऽर्ज्जुनः ॥ ययातिर्नहुषोभीमो राघवोयंविदूरथः ॥ ३५ ॥ एतेचान्येचबहवो राजानइहचागताः ॥ अजापालन्नपश्यामि राजन्संसदिसांप्रतम् ॥ ३६ ॥ रावणःकुपितःप्राह शीघ्रंदूतंविसर्ज्जय ॥ इत्युक्तेप्रहितोदूतो धू

संस्कार करने में व थवइयोंको युक्त करने में विश्वकर्मा कियेगये और सेवा करनेवाले सब राजालोग आगे स्थित रहते थे ॥ ३२ ॥ जोकि प्रकाशवान् रत्नोंवाले गहनों से लरखराते हुये देखपड़ते थे उनको देखकर रावण ने प्रहस्त द्वारपालकसे कहा ॥ ३३ ॥ कि मेरे स्थान में सेवा करनेके लिये यहां कौन आयाहै यह कहिये हाथ में दण्डाको लिये वह प्रहस्त राक्षस आगे प्रणाम कर बोला ॥ ३४ ॥ कि यह ककुत्स्थ वंशमें उत्पन्न मान्धाता व धुन्धुमार, नल, अर्जुन, ययाति, नहुष, भीम और ये रघुवंशी विदूरथहैं ॥ ३५ ॥ ये और अन्य बहुतसे राजा यहां आये हैं परन्तु हे राजन् ! इस समय सभा में अजापालको नहीं देखताहूं ॥ ३६ ॥ क्रोधित होकर

रावण ने कहा कि दूतको शीघ्रही पठाइये ऐसा कहने पर धूम्राक्ष नामक राक्षस पठाया गया ॥ ३७ ॥ कि हे धूम्राक्ष ! तुम जावो और मेरी आज्ञासे अजापालसे कहो कि हे राजन् ! आइये सेवा करिये या कर दीजिये ॥ ३८ ॥ नहीं तो मैं तुम को तलवार से कन्धारहित करूंगा रावण से इसप्रकार कहा हुआ धूम्राक्ष गरुड की नाईं ॥ ३९ ॥ उस सुन्दरी पुरीमें प्राप्तहुआ और उस राजकुलको गया और उस अजाव्रतवाले अकेले आतेहुये अजापालको देखा ॥ ४० ॥ जोकि बालोंको छोड़े व मुक्तकच्छ तथा ऊनी कंबल को धारे हुये व दण्डको कांधे पै धरे तथा धूलिको धारण किये और रोगों से घिरे थे ॥ ४१ ॥ और श्रेष्ठ शत्रुवों को मारेहुये व सब उप-

म्राक्षोनामराक्षसः ॥ ३७ ॥ धूम्राक्षगच्छब्रूहित्वमजापालंममाज्ञया ॥ सेवांकुरुसमागच्छ करंवायच्छपार्थिव ॥ ३८ ॥ अन्यथाचन्द्रहासेन त्वांकरिष्येविकन्धरम् ॥ रावणेनैवमुक्तस्तु धूम्राक्षोगरुडोयथा ॥ ३९ ॥ सम्प्राप्तस्ताम्पुरींरम्यां तचसराजकुलंगतः ॥ ददर्शायान्तमेकंस अजापालमजाव्रतम् ॥ ४० ॥ मुक्तकेशंमुक्तकच्छमूर्णकम्बलधारिणम् ॥ यष्टिस्कन्धंरेणुभृतं व्याधिभिःपरिवारितम् ॥ ४१ ॥ निहतामित्रशार्दूलं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥ महामालिख्यनामानि निघ्नन्तंविद्विषांगणम् ॥ ४२ ॥ दृष्ट्वाहृष्टमनाःप्राह धूम्राक्षोरावणोदितम् ॥ अजापालोपिसाक्षेपं प्रत्युक्त्वाकारणोत्तरम् ॥ ४३ ॥ प्रेषयामासधूम्राक्षं ततःकृत्यंसमादधे ॥ ज्वरमाकारयित्वातु प्रोवाचेदंमहीपतिः ॥ ४४ ॥ गच्छलङ्काधिपस्थानमाचरत्वंमयोदितम् ॥ नियुक्तस्त्वजपालेन ज्वरोदिविजगामह ॥ ४५ ॥ गत्वाचकम्पयामास रावणंराक्षसेश्वरम् ॥ रावणस्तंविदित्वातु ज्वरंपरमदारुणम् ॥ ४६ ॥ प्रोवाचतिष्ठतुनृपस्तेनमेनप्रयोजनम् ॥ ततःसवि

द्रवों के नाशक तथा पृथ्वी में नामों को लिखकर शत्रुवोंके गणको मारते थे ॥ ४२ ॥ ऐसे अजापालको देखकर प्रसन्नमनवाले धूम्राक्ष ने रावण से कहेहुये वचनको कहा और अजापाल ने भी तिरस्कार समेत हेतुपूर्वक प्रत्युत्तरको कहकर ॥ ४३ ॥ धूम्राक्षको पठाया तदनन्तर कार्यको विचारा और ज्वरको बुलवाकर राजा ने यह कहा ॥ ४४ ॥ कि लंकेशके स्थानको जाइये और मेरा कहा कीजिये अजापालसे आज्ञा दियाहुआ ज्वर आकाश को चलागया ॥ ४५ ॥ और जाकर उसने राक्षसों के स्वामी रावण को कँपाया और रावण ने बड़े विकराल उस ज्वरको जानकर ॥ ४६ ॥ कहा कि राजा स्थित होवै उससे मेरा प्रयोजन नहीं है तदनन्तर वह कुबेरका छोटा

भाई राजा रावण ज्वररहित होगया ॥ ४७ ॥ हे देवि ! सूर्यवंश में किरीटरूपी उस अजापाल के ऐसे अन्य करोड़ों चरित्र हैं ॥ ४८ ॥ हे देवि ! उसी बुद्धिमान् अजापाल ने सब रोगोंको नाशनेवाली तथा सब उपद्रवों को नाश करनेवाली देवीकाआराधन किया है ॥ ४९ ॥ यदि मनुष्य सुखोंको चाहै तो भक्तिसे उन भगवतीको चन्दन, धूप, अलंकार, वस्त्र व अन्य वस्तुवों से पूजन करै ॥ ५० ॥ सब दुःखोंको नाशकरनेवाला और समस्त पातकोंको नाशनेवाला यह अजा देवीसे उपजाहुआ सब चरित्र तुमसे कहागया ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषटीकायामजापालेश्वरीमाहात्म्यंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

ज्वरोराजा बभूवधनदानुजः ॥ ४७ ॥ एवंतस्यचरित्राणि सन्तिचान्यानिकोटिशः ॥ अजापालस्यदेवेशि सूर्यान्वय किरीटिनः ॥ ४८ ॥ तेनैवाराधितादेविअजापालेनधीमता ॥ सर्वरोगप्रशमनी सर्वोपद्रवनाशिनी ॥ ४९ ॥ पूजयेत्तांविधानेन भोगेप्सुर्यदिमानवः ॥ गन्धैर्धूपैरलङ्कारैर्वस्त्रैरन्यैश्च भक्तितः ॥ ५० ॥ इतितेकथितंसर्वमजादेव्याःसमुद्भवम् ॥ सर्वदुःखोपशमनं सर्वपातकनाशनम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येऽजापालेश्वरीमाहात्म्यंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवउवाच ॥ अथवच्मितृतीयान्तेज्ञानशक्तिंशिवात्मिकाम् ॥ प्रभासक्षेत्रमध्यस्थां दरिद्रौघविनाशिनीम् ॥ १ ॥ अजेतिनाम्नींतान्देवीं राज्ञीशाद्दक्षिणेस्थिताम् ॥ ममवक्त्रादिनिष्क्रान्ता षष्ठाद्वैविष्णुपूजितात् ॥ २ ॥ देव्युवाच ॥ पञ्चवक्त्राणिदेवेश प्रसिद्धानितवप्रभो ॥ षष्ठंयद्वदनंदेव तस्यकिन्नामसंस्मृतम् ॥ ३ ॥ समुत्पन्नाकथंतस्मादजादेवीति

दो॰। शिवजी के मुख से छठें देवि अजा इमि नाम। सो सत्तावन में कह्यो चरित अतिहि अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त मैं प्रभासक्षेत्रके मध्य में स्थित दरिद्रसमूहोंको दलनेवाली तीसरी शिवात्मिका ज्ञानशक्तिको तुम से कहताहूं ॥ १ ॥ राज्ञीराजी से दक्षिण में स्थित अजा ऐसी नामवाली उन देवी को कहताहूं जोकि विष्णुजी से पूजेहुये मेरे छठें मुख से निकली है ॥ २ ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देवेश, प्रभो ! तुम्हारे पांच मुख प्रसिद्धहैं हे देव ! जो छठा

मुख है उसका क्या नाम कहा गया है ॥ ३ ॥ और उससे जो अजा देवी कही गई है वह कैसे उत्पन्न हुई है महादेवजी बोले कि हे देवि ! तुमने बहुत अच्छा पूंछा जोकि अपने पुत्रों में भी छिपाने योग्य है ॥ ४ ॥ प्रसिद्ध शास्त्रमें कहेहुये उस चारित्रको मैं तुमसे कहूंगा हे देवेशि ! पहिलेही मेरे सात मुख हुये हैं ॥ ५ ॥ पांच सद्योजात और छठां अज ऐसा कहागया है व सातवां पिचुनामक ऐसा हुआ इसप्रकार मेरे सात मुख थे ॥ ६ ॥ उनमें से अज नामक मुख ब्रह्मा के लिये दियागया व पिचुवक्त्र विष्णुजीके लिये दिया गया ॥ ७ ॥ इसलिये हे महादेवि ! मैं इससमय पांच मुखवाला हुआहूं और ब्रह्मा अज हुये व पिचु विष्णु हुये हैं ॥ ८ ॥ हे महादेवि,

यास्मृता ॥ ईश्वरउवाच ॥ साधुपृष्टन्त्वयादेवि यद्गोप्यंस्वसुतेष्वपि ॥ ४ ॥ तत्तेहंसंप्रवक्ष्यामि प्रसिद्धागमनोदितम् ॥ वक्त्राणिममदेवेशि सप्तासन्पूर्वमेवहि ॥ ५ ॥ सद्योजातानिपञ्चैव षष्ठंस्मृतमजेतिच ॥ सप्तमंपिचुनामेति सप्तैवंवदनानिमे ॥ ६ ॥ तेभ्योऽजंब्रह्मणेदत्तं पिचुवक्त्रन्तुविष्णवे ॥ ७॥ तस्मादहंमहादेवि पञ्चवक्त्रोधुनाभवम् ॥ अजस्तुब्रह्मासंजातः पिचुर्विष्णुरजायत ॥ ८ ॥ अजवक्त्रान्महादेवि अजानाममहाप्रभा ॥ अघासुररणेघोरे ममक्रोधेनभामिनि ॥ ९॥ खड्गचर्मधरादेवि सुरूपासिंहवाहिनी ॥ मर्दयन्तीमहादैत्यान् देवीकोटिसमन्विता ॥ १० ॥ तस्याभयेनयेदैत्या विद्रुतादक्षिणार्णवम् ॥ पृष्ठतोनुययौतन्वी सादेवीसिंहवाहिनी ॥ ११ ॥ इतस्ततस्तेधावन्तो मार्गमाणाम्बिकागणैः ॥ प्रभासक्षेत्रसंप्राप्ता नश्यमानामहार्णवम् ॥ १२ ॥ केचित्तत्रहतादैत्याः केचित्पातालमाययुः ॥ निःशेषान्निहतान्दृष्ट्वा सादेवीसिंहवाहनी॥१३॥ क्षेत्रंपवित्रमाज्ञाय संस्थितातत्रभामिनि ॥ सोमेशादीशकोणस्था गौरीशादुत्तरेस्थिता ॥१४॥

भामिनि ! अघासुरके भयंकर युद्धमें मेरेक्रोधसे महाप्रभावती अजा नामवाली देवी हुई ॥९॥ हे देवि ! तलवार व ढालको धारण कियेहुई व स्वरूपवती सिंह पै सवार देवी करोड़ देवियोंसे संयुक्त होकर महादैत्यों को मर्दन करती भई ॥ १० ॥ उसके डरसे जो दैत्य दक्षिण समुद्रकी ओर भग गये उनके पीछे से वे सूक्ष्म अंगोंवाली सिंहवाहिनी देवीजी चली गई ॥ ११ ॥ पार्वती के गणों से ढूंढे जातेहुये वे भागते तथा इधर उधर दौड़ते हुये महासागर के समीप प्रभासक्षेत्रमें प्राप्त हुये ॥ १२ ॥ वहांपर कोई दैत्य मारे गये व कोई पाताल को आये व सबको मारे हुये देखकर वह सिंहवाहनी देवी ॥ १३ ॥ हे भामिनि ! क्षेत्रको पवित्र जानकर वहां भलीभांति स्थित हुई

सोमेशजी से ईशानकोणमें स्थित और गौरीशजी से उत्तर में वे देवीजी स्थित हैं ॥ १४ ॥ वहां टिकी हुई उन देवीजीको जो स्त्री व जो पुरुष देखता है वह सात जन्मों में सब सौभाग्यों से संयुत होता है ॥ १५ ॥ और वहांपर जो मनुष्य गीत, बाजन आदिक व नृत्यको करताहै उसके वंशमें उन भगवतीकी प्रसन्नता से दुर्भाग्यता नहीं होती है ॥ १६ ॥ वहांपर हे महादेवि ! जो स्त्री लालबत्ती के द्वारा घीसे दीप देती है उसमें जितने तन्तु (सूत्रके डोरा) होतेहैं ॥ १७ ॥ उतनेही जन्मों के मध्य तक वह सौभाग्य को प्राप्त होतीहै तीज तिथि में विशेषकर जो मनुष्य सदैव इस चरित्र को पढ़ताहै ॥ १८ ॥ अथवा जो पुरुष भक्ति से इसको सुनताहै

यस्तान्तत्रस्थितांपश्येद्योषिद्वाथनरोपिवा ॥ सभूयात्सर्वसौभाग्यैः सप्तजन्मनिसंयुतः ॥ १५ ॥ गीतवाद्यादिकंनृत्यं यस्तत्रकुरुतेनरः ॥ तस्यान्वयेनदौर्भाग्यं भूयात्तस्याःप्रसादतः ॥ १६ ॥ घृतेनदीपकंतत्र यानारीसंप्रयच्छति ॥ रक्तवर्त्यामहादेवि यावन्तस्तत्रतन्तवः ॥ १७ ॥ तावज्जन्मान्तराण्येव सासौभाग्यमवाप्नुयात् ॥ यश्चैतत्पठते नित्यं तृतीयायांविशेषतः ॥ १८ ॥ शृणुयाद्वापियोभक्त्या सकामानखिलाँल्लभेत ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तो रुद्रशक्तित्रयक्रमः ॥ १९ ॥ एताःशक्तीःपूजयित्वासोमेशंपूजयेत्ततः ॥ सम्यग्यात्राफलाकाङ्क्षी एकांवावरदामथ ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्येऽजादेवीमाहात्म्यंनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ प्रभासक्षेत्रदूतीनां त्रितयंवरवर्णिनि ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामि शृणुह्येकमनाःप्रिये ॥ १ ॥ प्रथमाम

वह सब कामनाओं को प्राप्त होताहै यह संक्षेप से शिवजीकी तीन शक्तियों का क्रम कहा गया ॥ १९ ॥ भलीभांति यात्रा के फलको चाहनेवाला पुरुष इन शक्तियों को पूजकर तदनन्तर सोमेशजी को पूजै अथवा एक वरदायिनीजी को पूजै ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येजादेवीमाहात्म्यंनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कह्यो मंगला देवि कर चरित अनूप अपार । अट्ठावन अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि, प्रिये ! इसके अनन्तर मैं प्रभास

क्षेत्र की तीन दूतियों को कहताहूँ उनको सावधानमनवाली होकर तुम सुनो ॥ १ ॥ पहली मङ्गलादेवी है दूसरी विशालाक्षी वैसेही तीसरी चत्वर देवी कही गई है ॥ २ ॥ हे वरानने ! यदि प्रभासक्षेत्र की यात्राके फल को मनुष्य चाहै तो क्रमपूर्वक उन शक्तियों को पूजना चाहिये ॥ ३ ॥ देवीजी बोलीं कि क्षेत्रोंको रक्षाकरनेवाली वे दूतियां किस स्थान में स्थित हैं व हे जगदीशजी ! किसलिये वे पहले पूजने योग्यहैं और कैसे पूजनीय हैं ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि ब्राह्मी मंगला कही गई है व वैष्णवी विशालाक्षी कहीगईहै और वह चत्वर प्रिया देवी शिवजीकी शक्ति कही गई है ॥ ५ ॥ हे वरानने ! अजा देवी के उत्तर में स्थित तथा राह्वीश से दक्षिण

ङ्गलादेवी विशालाक्षीद्वितीयका ॥ तथाचत्वरदेवीतु तृतीयापरिकीर्त्तिता ॥ २ ॥ यथानुक्रमतःपूज्याः शक्तयस्तावरानने ॥ प्रभासक्षेत्रयात्रायाः फलंप्रेप्सुर्नरोयदि ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ कस्मिन्स्थानेस्थितादेव दूतयस्ताःक्षेत्ररक्षकाः ॥ कस्मात्ताःप्रथमम्पूज्याः कथम्पूज्याजगत्पते ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ब्राह्मीतुमङ्गलाप्रोक्ता विशालाक्षीतुवैष्णवी ॥ रौद्री शक्तिःसमाख्याता देवीसाचत्वरप्रिया ॥ ५ ॥ मङ्गलाप्रथमम्पूज्या अजादेव्युत्तरेस्थिता ॥ राह्वीशाद्दक्षिणेभागे नातिदूरेवरानने ॥ ६ ॥ सोमेश्वरप्रतिष्ठार्थं प्रारब्धेयज्ञकर्मणि ॥ सोमेनतत्रदेवानामागतानांदिदृक्षया ॥ ७ ॥ ब्रह्मादीनांचसायस्मान्मङ्गलंकृतवत्युत ॥ तस्मात्सामङ्गलाप्रोक्ता सर्वमाङ्गल्यदायिनी ॥ ८ ॥ तृतीयायान्तुयानारी मङ्गलाम्पूजयिष्यति ॥ तदमङ्गलदुःखानि नाशंयास्यन्ति कृत्स्नशः ॥ ९ ॥ दम्पतीभोजनंतत्र फलदानंसकञ्चुकम् ॥ प्रशस्तंपृषदाज्यस्य प्राशनंपापनाशनम् ॥ १० ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं महाभाग्यमहोदयम् ॥ मङ्गलायाश्चमाहात्म्यं

भाग में थोड़ेही दूर पै स्थित मंगला पहले पूजने योग्यहै ॥ ६ ॥ सोमेश्वरकी प्रतिष्ठा के लिये वहां जब चन्द्रमाने यज्ञ कर्म का प्रारम्भ किया तब देखने की इच्छा से आये हुये ब्रह्मादिक देवताओं का उसने जिसलिये मङ्गल किया उसीकारण सब मंगलों को देनेवाली वह मंगला कही गई है ॥ ७ । ८ ॥ जो स्त्री तीज तिथि में मंगला को पूजैगी उसके सम्पूर्ण अमंगल के दुःख नाश को प्राप्त होवैंगे ॥ ९ ॥ वहां स्त्री पुरुषों को भोजन व चोली समेत फलदान उत्तमहै और घी का एक बूंद

भोजन पातकों का विनाशक है ॥ १० ॥ इसप्रकार महामाग्य व बड़े ऐश्वर्यवाला तथा समस्त पातकों का विनाशक मङ्कलाका माहात्म्य संक्षेपसे कहागया ॥ ११ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमंगलामाहात्म्यंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । क्षेत्रदूति ललिता अहै, अतिप्रभाव सों युक्त । उनसठि के अध्याय में सोइकथा है उक्त ॥

सर्वपातकनाशनम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येमङ्कलामाहात्म्यंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवीं क्षेत्रदूतींतुवैष्णवीम् ॥ श्रीदैत्यसूदनाद्देवी पूर्वभागेव्यवस्थिता ॥ १ ॥ योगेश्वर्यास्तथैशान्यां धनुषांशतकेस्थिता ॥ महादौर्भाग्यदग्धानां स्थिताभेषजरूपिणी ॥ २ ॥ चाक्षुषस्यान्तरेदेवि यदादैत्याबलोत्कटाः ॥ विष्णुनाहन्यमानाश्च दक्षिणांदिशमाविशन् ॥ ३ ॥ तत्रवर्षशतंसाग्रं दैत्याश्चक्रुर्महाहवम् ॥ विष्णुनासहदेवेशि दिव्यास्त्रैश्चपृथग्विधैः ॥ ४ ॥ दुःखवध्यांस्ततोज्ञात्वा विष्णुःकमललोचनः ॥ सस्मारभैरवींशक्तिं महामायांमहाप्रभाम् ॥ ५ ॥ सास्मृताक्षणमात्रेण विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ तत्रागतामहादेवि आनन्दस्फुरितेक्षणा ॥ ६ ॥ विशालेतुकृतेदेव्या लोचनेविष्णुदर्शनात् ॥ विशालाक्षीततोजाता तत्रस्थादैत्यनाशिनी ॥ ७ ॥ अस्मिन्कल्पेस

महादेवजी बोले कि उसके उपरान्त महादेवी वैष्णवी क्षेत्रदूती के समीप जावै वे देवी श्रीदैत्यसूदन से पूर्वभाग में स्थितहैं ॥ १ ॥ व योगेश्वरी से ईशान दिशा में सौ धनुष पै स्थित हैं जोकि बड़े दुर्भाग्यों से जलेहुये पुरुषों के लिये ओषधी रूपवाली स्थितहैं ॥ २ ॥ हे देवि ! चाक्षुष मन्वन्तर में जब विष्णुसे मारेहुये बलसे उग्रदैत्य दक्षिणदिशाको प्रवेश करतेभये ॥ ३ ॥ वहां हे देवेशि ! कुछ अधिक सौ वर्षोंतक दैत्योंने विष्णुजी के साथ अनेकभांति के दिव्यअस्त्रों से बड़ायुद्ध किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर दुःख से मारनेयोग्य दैत्योंको जानकर कमल सरीखे नेत्रोंवाले विष्णुजी ने महाप्रभावती भैरवी महामाया शक्तिको स्मरण किया ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! समर्थवान् विष्णुजी से स्मरण कीहुई वह आनन्द से फरकतेहुये नेत्रोंवाली भैरवीशक्ति क्षणभर में वहां आगई ॥ ६ ॥ देवीजी ने विष्णुजी के दर्शन से नेत्रोंको विशाल किया उसी कारण वहां टिकीहुई दैत्यनाशिनी देवी विशालाक्षी

हुई ॥ ७ ॥ हे वरानने ! इस कल्पमें वह ललिता व उमा कहीगई है सोमेश व दैत्यसूदन में दो उमा कहीगई हैं ॥ ८ ॥ पहले सोमेश्वर में देखै व पश्चात् श्रीदैत्यसूदन में देखै दो उमाओं को पूजकर मनुष्य तीर्थयात्रा के फलको प्राप्तहोता है ॥ ९ ॥ माघ महीने में तीज तिथिमें जो पुरुष विधि से उन भगवती को पूजता है उसके वंशमें कोई भी मनुष्य सन्तान हीन नहीं होताहै ॥ १० ॥ वहांपर बड़ीभक्ति से संयुत जो मनुष्य नित्य उनको देखता है ॥ ११ ॥ वह बहुत दिनोंतक आरोग्य, सुख व सौभाग्यों से युक्त होताहै यह ललिता से उपजाहुआ माहात्म्य संक्षेप से कहा गया ॥ १२ ॥ सुनाहुआ जोकि पातकों के नाश के लिये व धर्मकी वृद्धिके लिये

माख्याता ललितोमावरानने ॥ उमाद्वयंसमाख्यातं सोमेशेदैत्यसूदने ॥ ८ ॥ पूर्वंसोमेश्वरेपश्येत्पश्चाच्छ्रीदैत्यसूदने ॥ उमाद्वयंपूजयित्वा तीर्थयात्राफलंलभेत् ॥ ९ ॥ माघमासेतृतीयायां विधिनाचार्चयेत्तुताम् ॥ नसन्तानविहीनश्च तस्यकोप्यन्वयेनरः ॥ १० ॥ योनित्यमीक्षतेतत्र भक्त्यापरमयायुतः ॥ ११ ॥ आरोग्यसुखसौभाग्यैर्युक्तःसहिभवेच्चिरम् ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंललितोद्भवम् ॥ १२ ॥ श्रुतंयत्पापनाशाय जायतेधर्मवृद्धये ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येललितामाहात्म्यंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तृतीयांचत्वरप्रियाम् ॥ ललितोत्तरदिग्भागे दशधन्वन्तरेस्थिताम् ॥ १ ॥ क्षेत्रदूतीमहारौद्री रुद्रशक्तिर्महाप्रभा ॥ क्षेत्ररक्षाविधौतत्र मयामुक्तासुमध्यमे ॥ २ ॥ कोटिभूतसमायुक्ता महाकाया महाप्रभा ॥ जीर्णगृहेतथोद्याने प्रासादाट्टालकेपथि ॥ ३ ॥ चत्वरेषुचसर्वेषु क्षेत्रमध्यस्थितासती ॥ रात्रौपर्यटतेदेवी

होताहै ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखंडेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येललितामाहात्म्यंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ॥

दो० । अति प्रभावयुत अहै जिमि चत्वर देवि चरित्र । अहै साठि अध्यायमें सोई कथा विचित्र ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर ललिताजी के उत्तर दिशाके भागमें दशधनुषके अन्तर पै स्थित तीसरी चत्वरप्रिया के समीप जावै ॥ १ ॥ हे सुमध्यमे ! मुझसे छोड़ीहुई वह महाप्रभाववती महारौद्रा शिवशक्ति क्षेत्रदूती वहां क्षेत्रकी रक्षाकरने में स्थित है ॥ २ ॥ करोड़ों भूतोंसे संयुत महाशरीर व महाप्रभावती वह पुरानेघरमें और बगीचे में तथा मन्दिरो की अँटारी पै और रास्ते में स्थित रहती है ॥ ३ ॥

और क्षेत्रके मध्यमें स्थित होकर करोड़ों भूतोंसे घिरीहुई वह देवी रातमें सब चौतरोंपै घूमती है ॥४॥ वहां महानवमी में स्त्री या जो पुरुष विधिपूर्वक पुष्पों व अनेकभांतिके उपहारों से उत्तमदेवीको पूजता है ॥ ५ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न होतीहुई वह देवी समस्त लोकों को देवैगी यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको वहां स्त्री पुरुषोंको भोजन देना चाहिये ॥ ६ ॥ तीसरी क्षेत्रदूती का यह पापनाशक माहात्म्य संक्षेपसे कहागया सुनाहुआ जोकि ऐश्वर्यों को करनेवाला है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचत्वरदेवीमाहात्म्यंनामषष्टितमोऽध्यायः॥६०॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

भूतानांकोटिभिर्वृता ॥ ४ ॥ महानवम्यांयस्तत्र नारीवाथनरोपिवा ॥ पुष्पैर्नानोपहारैश्च पूजयेद्विधिवच्छुभाम् ॥ ५ ॥ तस्यतुष्टाखिलाँल्लोकान्सादेवीसम्प्रदास्यति ॥ दम्पत्योर्भोजनंतत्र देयंयात्राफलेप्सुभिः ॥ ६ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ क्षेत्रदूत्यास्तृतीयायाः श्रुतमैश्वर्यकारकम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे चत्वरदेवीमाहात्म्यन्नामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ * ॥ * ॥ * * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि भैरवेश्वरमुत्तमम् ॥ योगेश्वर्यादक्षिणतो नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ सर्वपापप्रशमनं दिव्यैश्वर्यप्रदायकम् ॥ पुरादैत्यविनाशाय यदादेवीकृतोद्यमा ॥ २ ॥ तदाभैरवमाहूय दूतत्वेनियुयोजह ॥ शिवदूतीतदाख्याता पश्चाद्योगेश्वरीतिच ॥ ३ ॥ भैरवोयेनवैदेव्या दूतत्वेविनियोजितः ॥ तेनलिङ्गंसमाख्यातं भैरवेश्वरनामतः ॥ ४ ॥ पूजितन्देवदैत्यैश्च भैरवेणप्रतिष्ठितम् ॥ तम्पूजयेन्नरोभक्त्या कार्त्तिक्यांविधिनातुयः ॥ ५ ॥

दो० । भैरव थाप्यो लिङ्गजिमि भैरवेश असनाम। इकसठि के अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर योगेश्वरी से दक्षिण ओर थोड़ेही दूरपै स्थित उत्तम भैरवेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि समस्त पातकों का नाशक व दिव्य ऐश्वर्योंको देनेवाला है पुरातन समय जब दैत्यों के नाशके लिये देवीजी ने उद्यम किया ॥ २ ॥ तब भैरवजी को बुलाकर दूतता में युक्त किया इसलिये शिवदूती कहीगई है व पश्चात् योगेश्वरी कहीगई है ॥ ३ ॥ जिसलिये देवीजी ने भैरवको दूतत्व में युक्त किया उसी कारण भैरवेश्वर नामसे लिङ्ग कहागया है ॥ ४ ॥ देवताओं व दैत्योंसे पूजित तथा भैरवजी से थापेहुये उस

लिङ्गको भक्तिसे विधिपूर्वक जो मनुष्य कार्त्तिकी में पूजता है या छः महीनेतक जो सदैव पूजता है वह चाहे हुए मनोरथ को प्राप्त होताहै ॥ ५।६ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभैरवेश्वरमाहात्म्यंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । लक्ष्मीश्वर शिवकी अतुल महिमा अतिहिं अपार । बासठि के अध्याय में सोई चरित सुखार ॥ महादेवजी बोले कि उसीके पूर्वदिशा के भागमें पांच धनुष पै स्थित दरिद्रसमूहों को नाशनेवाले लक्ष्मीश्वर ऐसे प्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥ जिसलिये दैत्योंको मारकर देवीजी लक्ष्मी को लाई हैं उसीसे आपही देवीजी ने लक्ष्मीश्वर

निरन्तरंवाषण्मासं सोभीष्टंलभतेफलम् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येभैरवेश्वरमाहात्म्य न्नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ लक्ष्मीश्वरेतिविख्यातं दरिद्रौघविनाशनम् ॥ १ ॥ येन देव्यासमानीता लक्ष्मीर्दैत्यान्निहत्यच ॥ तेनलक्ष्मीश्वरन्नाम स्वयन्देव्याप्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या श्री पञ्चम्यांविधानतः ॥ नविमुक्तोभवेल्लक्ष्म्या यावन्मन्वन्तरंप्रिये ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे लक्ष्मीश्वर माहात्म्यन्नामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंवैवाडवेश्वरम् ॥ लक्ष्मीशादुत्तरेभागे विशालाक्ष्याश्चदक्षिणे ॥ १ ॥ स्थि तम्महाप्रभावंहि वाडवेनप्रतिष्ठितम् ॥ कृतस्मरोयदादग्धः पर्वतोवाडवाग्निना ॥ २ ॥ समीकृत्वाखिलंस्थानं तेनलिङ्गं

नामक को स्थापित किया ॥ २ ॥ श्रीपंचमी में जो मनुष्य विधिसे लक्ष्मीश्वरजी को पूजता है वह हे प्रिये ! मन्वन्तरतक लक्ष्मीजी से मुक्त नहीं होता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलक्ष्मीश्वरमाहात्म्यंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ⊛ ॥

दो० । वड़वानल लिंगहिं थप्यो वड़वानल इमि नाम । तिरसठि के अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उसके उपरान्त वाड़वेश्वर लिङ्ग के समीप जावै लक्ष्मीशजी से उत्तरभाग में व विशालाक्षीजी से दक्षिणमें ॥ १ ॥ वाड़व से थापाहुआ महाप्रभाववाला लिंग स्थित है जब वड़वानल ने

कृतस्मर पर्वत को जलाया है ॥ २ ॥ तब उसने सब स्थानको बराबर करके लिंग को थापाहै उन शिवजी को दधिसे भलीभांति नहवाकर विधिसे पूजै ॥ ३ ॥ और वहांपर जो मनुष्य वेदके पारगामी ब्राह्मण के निमित्त दधिको देताहै वह अग्निलोकोंको प्राप्तहोता है और भलीभांति यात्राका फल पाताहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवाडवेश्वरमाहात्म्यंनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। देवी थाप्यो लिङ्ग जिमि अर्घेश्वर अस नाम। चौसठि के अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर अर्घेश्वर ऐसे कहेहुये महालिंग के समीप जावै विशालाक्षी के उत्तर में थोड़ेही दूरपै स्थित ॥ १ ॥ वह महाप्रभाववान् लिङ्ग देवताओं व गन्धर्वों से पूजित है जब घोड़ीके रूपको धारनेवाली संज्ञा

प्रतिष्ठितम् ॥ पूजयेत्तंविधानेन दध्नासंस्नाप्यशङ्करम् ॥ ३ ॥ दधिदद्याच्चवैतत्र ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ सोग्निलोकानवाप्नोति सम्यग्यात्राफलंलभेत् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवाडवेश्वरमाहात्म्यन्नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः६३॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महालिङ्गमर्घेश्वरमितिस्मृतम् ॥ उत्तरेतुविशालाक्ष्या नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ लिङ्गं महाप्रभावंहि सुरगन्धर्वपूजितम् ॥ यदादेवीसमायाता वडवारूपधारिणी ॥ २ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य दृष्ट्वातत्रमहोदधिम् ॥ यस्मादर्घंपुरादत्त्वा पश्चादीशःप्रतिष्ठितः ॥ ३ ॥ तेनार्घेशेतिविख्यातं लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य विधिनायस्तमर्चयेत् ॥ ४ ॥ सप्तजन्मनिदेवेशि सविद्यामधिगच्छति ॥ सम्यक्शास्त्रप्रवक्ताच सर्वसन्देहहृत्तमः ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽर्घेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥

देवीजी आईहैं ॥ २ ॥ उन्होंने प्रभासक्षेत्र में आकर वहां समुद्र को देखकर जिसलिये पहले अर्घको देकर पश्चात् शिवजी को थापन किया ॥ ३ ॥ उस लिये पातकोंका विनाशक अर्घेश ऐसा लिंग प्रसिद्ध हुआहै पञ्चामृतसे नहवाकर जो मनुष्यविधिसे उन शिवजी को पूजता है ॥ ४ ॥ हे देवेशि ! वह सात जन्मोंमें विद्याको प्राप्त होताहै और भलीभांति शास्त्रोंको कहनेवाला व सब सन्देहों को उत्तम हरने वालाहोता है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामर्घेश्वरमाहात्म्यंनामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । कामेश्वर इमि लिंग जिमि थापन कीन्हों काम । पैंसठि के अध्याय में सोइ चरित सुखठाम ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर पुरातन समय कामदेवजी से आराधन कियेहुये दैत्यसूदन के पश्चिम में कामेश्वर ऐसे कहेहुये महालिङ्ग के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! वहांपर वह प्रभावान् लिंग सात धनुष पै स्थित है जब मेरे अग्निस्वरूपवाले तीसरे नेत्रसे कामदेव जलायागयाहै ॥ २ ॥ तब पुरातनसमय हजार वर्षतक महादेवजी को भलीभांति आराधन कर कामदेव ने जहांपर सब कामनाको पायाहै ॥ ३ ॥ उससे पृथ्वी में कामेश्वर नामक लिंग प्रसिद्धहुआहै हे देवि ! वह सब पापोंको हरनेवाला व सब कामनाओंके फलको देनेवाला है ॥ ४ ॥ वैशाख

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महालिङ्गं कामेश्वरमितिस्मृतम् ॥ कामेनाराधितंपूर्वं दैत्यसूदनपश्चिमे ॥ १ ॥ धनुषांसप्तकेतत्र स्थितन्देविमहाप्रभम् ॥ निर्दग्धस्तुयदाकामस्तृतीयेनाग्निनामम ॥ २ ॥ तदावर्षसहस्रन्तु समाराध्यमहेश्वरम् ॥ प्रपेदेकामनांसर्वां यत्रानङ्गःपुराकिल ॥ ३ ॥ तेनकामेश्वरन्नाम ख्यातंलिङ्गंधरातले ॥ सर्वपापहरन्देवि सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४ ॥ त्रयोदश्यांविधानेन शुक्लायांमासिमाधवे ॥ सम्पूजितोविधानेन स्त्रीणांकामप्रदोभवेत् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कामेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ इतिप्रोक्तानितेदेवि वक्रलिङ्गानिपञ्च वै ॥ अथतेसम्प्रवक्ष्यामि यत्रगौर्यास्तपोधनम् ॥ १ ॥ स्थानंमहाप्रभावंहि सुरसिद्धनिषेवितम् ॥ सोमेशात्पूर्वदिग्भागे षष्टिधन्वन्तरेस्थितम् ॥ २ ॥ यत्रदेव्यातपस्तप्तं सत्या

महीने में शुक्लपक्षवाली तेरसि में विधिसे पूजेहुये वे शिवदेवजी स्त्रियोंकेमनोरथको देनेवाले होतेहैं ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकामेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । गौरीश्वर को थापि जिमि श्री गौरी तप कीन । छाछठि के अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! ये पांचवक्रलिंग तुमसे कहेगये इसके अनन्तर जहां गौरीजी का तपोधन स्थान है उस देवताओं व सिद्धोंसे सेवित महाप्रभाववाले स्थानको तुमसे कहताहूं जोकि सोमेशजी से पूर्व

॥ १ । २ ॥ हे वरानने ! जहांपर सती देवीजी ने प्रेमसे मेरे साथ कोधकरके पूर्वजन्ममें तप कियाहै ॥ ३ ॥ हे तप-
दिशाके भागमें साठ धनुष के अन्तर पै स्थित है ॥ ४ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि तुम्हारी तपस्या में स्थित वे सतीजी किसलिये छोड़ीगई हैं और वे
स्विनि ! प्रभासक्षेत्र को प्राप्त होकर वे देवीजी भलीभांति स्थित हुई ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि तुम मनस्विनी श्यामरङ्गवाली महादेवी हुईथी और मैंने नामके अर्थ
देवीजी किस स्थानमें स्थितहुई हैं इसको मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ६ ॥ और उसने विस्मयवाले वचन को सुनकर बहुतही कोध से संयुत होकर व भौंहोंसे टेढ़े मुखवाली होकर
के लिये एकान्त में स्थित तुमको काली ऐसा कहा ॥ ६ ॥

प्रभासक्षेत्रमासाद्य संस्थितासातपस्विनि ॥ ४ ॥ वैपूर्वजन्मनि ॥ कृत्वाचप्रणयात्कोपं मयासार्द्धंवरानने ॥ ३ ॥ कस्मिन्स्थानेस्थितादेवी एतन्मेविस्तराद्वद ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ किमर्थंसापरित्यक्ता सतीतेतपसिस्थिता ॥ पार्वत्युवाच ॥ किमर्थंसापरित्यक्ता सतीतेतपसिस्थिता ॥ नामार्थञ्चमयाचोक्ता कालीतिरहसिस्थिता ॥ ६ ॥ साश्रुत्वा उवाच ॥ आसीस्त्वन्तुमहादेवी श्यामवर्णामनस्विनी ॥ नामार्थञ्चमयाचोक्ता कालीतिरहसिस्थिता ॥ यस्मात्कालीत्यहंप्रोक्ता त्वयाशम्भो विस्मयंवाक्यं भृशंरोषपरायणा ॥ अब्रवीत्पुरुषंवाक्यं भृकुटीकुटिलानना ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वामहाभागा सखीगणसमावृता ॥ गत्वा तिविस्मयात् ॥ तस्माद्यास्यामिगौरीति भविष्यामिचयत्रवै ॥ ८ ॥ ततोलिङ्गसमीपस्था एकपाद प्रभासक्षेत्रंसा प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ ९ ॥ गौरीश्वरेतिविख्यातं पूजयन्तीविधानतः ॥ ततोलिङ्गसमीपस्था एकपाद स्थितासती ॥ १० ॥ लिङ्गमाराधयन्तीसा चकारसुमहत्तपः ॥ तेनार्थेशेतिविख्यातंलिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ ११ ॥ पञ्चामृ तेनसंस्नाप्य विधिनायस्तमर्चयेत् ॥ सप्तजन्मनिदेवेशि सविद्यामधिगच्छति ॥ १२ ॥ सम्यक्शास्त्रप्रवक्ताच सभूयाच्चव

कठोर वचन कहा ॥ ७ ॥ कि हे शम्भो ! जिसलिये तुमने बड़े विस्मय से मुझको काली ऐसा कहा इसलिये मैं वहां जाऊंगी जहां कि गौरी ऐसी हूंगी ॥ ८ ॥ ऐसा
कहकर सखीगणों से घिरीहुई वह बड़ी ऐश्वर्यवाली सती प्रभासक्षेत्रको जाकर महादेवजी को थापकर ॥ ९ ॥ गौरीश्वर ऐसे प्रसिद्ध शिवजी को विधि से पूजती रहीं
तदनन्तर लिंगके समीप में स्थित एक चरण से खड़ीहुई उन सतीजी ने ॥ १० ॥ लिंगको आराधन करती हुई बड़ाभारी तप किया उस कारण अर्थेश ऐसा प्रसिद्ध
लिंग पातकों का विनाशक है ॥ ११ ॥ पञ्चामृत से नहवाकर जो पुरुष विधिसे उन शिवजी को पूजताहै वह हे देवेशि ! सात जन्मोंमें विद्याको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥

व हे वरानने ! वह भलीभांति शास्त्रोंका वक्ताहोताहै ग्रीष्मऋतु में जपमें परायण वे देवीजी पञ्चाग्निसाधन करनेवाली हुईं ॥ १३ ॥ और वर्षाऋतुमें बिन छायेहुये स्थान में शयन करनेवाली तथा हेमन्तऋतु में जलाशयवाली हुईं हे महाप्रभे ! ज्यों ज्यों उन सतीजी का तप वृद्धिको प्राप्त होताथा ॥ १४ ॥ त्यों त्यों शरीरको गौरता प्राप्तहोती थी इसके उपरान्त बहुत समयके बाद वे सब अङ्गोंसे गौररङ्गवाली होगईं ॥ १५ ॥ तदनन्तर भगवान् चन्द्रभालजी विहँसकर गौरी ऐसे बड़ेभारी वचनको बोले व उन्होंने कहा कि उठो मन्दिरको जावो ॥ १६ ॥ हे कल्याणि ! जो तुम्हारे मनमें वर्तमानहो उस वरदानको मांगिये गौरीजी बोलीं कि यहांपर टिकीहुई मुझ

रानने ॥ पञ्चाग्निसाधकादेवी ग्रीष्मेजाप्यपरायणा ॥ १३ ॥ वर्षास्वाकाशशयना हेमन्तेसलिलाशया ॥ यथायथा तपोवृद्धिं यातितस्यामहाप्रभे ॥ १४ ॥ तथातथाशरीरस्य गौरत्वंप्रतिपद्यते ॥ कालेनमहतागौरी सर्वाङ्गेनाथसाभव त् ॥ १५ ॥ ततोविहस्यभगवानुवाचशशिशेखरः ॥ गौरीतिचमहद्वाक्यमुत्तिष्ठव्रजमन्दिरम् ॥ १६ ॥ वरंवरयक ल्याणि यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ गौर्य्युवाच ॥ योमामत्रस्थितांपश्येन्नारीवापुरुषोपिवा ॥ १७ ॥ सभूयात्सर्वसौभाग्यैस्स प्तजन्मनिसंयुतः ॥ गीतवाद्यादिकंनृत्यं यःकुर्यात्पुरतोमम ॥ १८ ॥ तस्यान्वयेनदौर्भाग्यं भूयात्तवप्रसादतः ॥ मया प्रतिष्ठितंलिङ्गं सर्वमभ्यर्च्यमान्ततः ॥ १९ ॥ पूजयिष्यतिमद्भक्त्या सयास्यतिपरम्पदम् ॥ गौरीश्वरेतिविख्यातं नामतस्यभवेत्प्रभोः ॥ २० ॥ तथेत्यहंप्रतिज्ञाय यत्रस्थानेस्थितोभवम् ॥ देव्यासहमहादेवि प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ २१ ॥ अद्यापिअयनेप्राप्ते उत्तरेदक्षिणेपिवा ॥ गौरीस्थानंसमभ्येति तत्रदेवगणैर्युता ॥ २२ ॥ तस्मिन्नहनियस्तत्र वि

को जो स्त्री या पुरुष देखै ॥ १७ ॥ वह सात जन्मोंमें सब सौभाग्यों से संयुतहोवै और जो मेरे आगे गीत, वाद्यादिक तथा नृत्यकोकरै ॥ १८ ॥ उसके वंशमें तुम्हारी प्रसन्नतासे दुर्भाग्यन होवै मुझसे थापेहुये शिवलिङ्ग को पूजकर मुझको जो ॥ १९ ॥ मेरी भक्तिसे पूजैगा वह परमपदको प्राप्तहोगा और उस प्रभुका गौरीश्वर ऐसा नाम प्रसिद्धहोवै ॥ २० ॥ वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर हे महादेवि ! मैं देवी समेत प्रसन्नचित्त से जिस स्थान में स्थित हुआ ॥ २१ ॥ वहां आजभी उत्तर व

दक्षिण अयन प्राप्त होनेपर देवगणोंसे संयुत गौरीजी स्थानको प्राप्त होती हैं॥ २२॥ उस दिन जो मनुष्य वहां उत्तमफलोंको ब्राह्मणों के लिये देताहै उसके पुत्र होते हैं॥ २३ ॥ और पुत्रहीन जो स्त्री लोनसमेत नारियलको वहां देती है वह बल समेत पुत्रको शीघ्रही प्राप्त होती है ॥ २४ ॥ व हे महादेवि ! लालबत्ती समेत घृतसे जो स्त्री वहां दीपकको देती है उसमें जितनेतार होते हैं ॥ २५ ॥ उतनेही जन्मों के मध्य में वह सौभाग्य को प्राप्त होती है और बड़ी भक्तिसे संयुत जो स्त्री वहा नृत्य करती है ॥ २६ ॥ वह बहुत दिनोंतक आरोग्य, सुख व सौभाग्य से संयुत होती है वहां मध्यमें निर्मलजल से पूर्ण महाकुण्डतीर्थ है ॥ २७ ॥ जो पुरुष उसमें

शिष्टानिफलानिच ॥ सम्प्रयच्छतिविप्रेभ्यस्तस्यपुत्राभवन्तिच ॥ २३ ॥ पुत्रहीनातुयानारी नालिकेरंप्रयच्छति ॥ पुत्रंसालभतेशीघ्रं सबलंलवणान्वितम् ॥ २४ ॥ घृतेनदीपकंतत्र यानारीसम्प्रयच्छति ॥ रक्तवर्त्यांमहादेवि यावन्तश्चैव तन्तवः ॥ २५ ॥ तावज्जन्मान्तराण्येवसासौभाग्यमवाप्नुयात् ॥ यानृत्यंकुरुतेतत्र भक्त्यापरमयायुता ॥ २६ ॥ आरोग्यसुखसौभाग्यैस्संयुक्तासाभवेच्चिरम् ॥ तत्रान्तस्सुमहाकुण्डंतीर्थंस्वच्छोदपूरितम् ॥ २७॥ यस्स्नानमाचरेत्तत्रमुच्यते सर्वपातकैः ॥ यःश्राद्धंकुरुतेतत्र पितृनुद्दिश्यभक्तितः ॥ २८ ॥ सयातिपरमंस्थानं पितृभिस्सहपुण्यभाक् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंतत्रसमाचरेत् ॥ २९ ॥ गीतवाद्यादिभिर्नृत्यै रात्रौकुर्याच्चजागरम् ॥ दम्पतीपरिधानञ्च तत्रदेयंसदक्षिणम् ॥ ३० ॥ यश्चैतत्पठतेनित्यं तृतीयायांविशेषतः ॥ पार्वत्याःपुरतोदेवि ससौभाग्यमवाप्नुयात् ॥ ३१ ॥ शृणु

स्नान करता है वह सब पातकों से छूटजाताहै और जो पुरुष पितरोंको उद्देशकर वहां भक्तिसे श्राद्ध करताहै ॥ २८ ॥ वह पुण्यभागी पुरुष पितरों समेत उत्तमस्थान को जाताहै इसलिये वहां सब यत्नसे श्राद्धकरै ॥ २९ ॥ और गीत, वाद्यादिक व नृत्योंसे रात्रिमें जागरण करै और वहां स्त्री पुरुष को दक्षिणा समेत परिधान (पहननेके वसन) को देना चाहिये ॥ ३० ॥ हे देवि ! विशेषकर तीजतिथि में पुरुष सदैव इस चरित्र को पार्वतीजी के आगे पढ़ताहै वह सौभाग्यको प्राप्तहोताहै ॥३१॥ और

भलीभांति भक्तिमें तत्पर जो पुरुष इसको सुनताहै वह भी जीवनपर्यन्त सौभाग्यको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाप्रभासतीर्थमाहात्म्येगौरीतपोवनमाहात्म्यंनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ॥ ॥

दो० । जहँ गौरी तप कीन तहँ थप्यो लिङ्ग गौरीश । सरसठि के अध्याय में सोई चरित बरीश ॥ देवीजी बोलीं कि तुमने गौरीश्वर ऐसे प्रसिद्ध जिस लिंग को कहा वह लिंग कहां पर स्थित है और उसको पूजने से मनुष्य जिस फलको पाताहै उसको कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं सब कामनाओंको

यश्चापियोभक्त्या सम्यग्भक्तिपरायणः ॥ सोपिसौभाग्यमाप्नोति यावज्जीवन्नसंशयः ॥ ३२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासतीर्थमाहात्म्येगौरीतपोवनमाहात्म्यन्नामषट्षष्टितमोध्यायः ॥ ६६ ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ गौरीश्वरेतिविख्यातं यत्त्वयालिङ्गमुत्तमम् ॥ कुत्रतिष्ठतितल्लिङ्गं पूजनाद्यत्फलंलभेत् ॥१॥ शिवउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ गौरीश्वरस्यदेवस्यसर्वकामप्रदस्यवै ॥२॥ इदंतपोवनन्देवि ख्यातंगौर्यामहाप्रभम् ॥ धनुषांपञ्चपञ्चाशत्समन्तात्परिमण्डलम् ॥ ३ ॥ तत्रमध्येस्थितादेवि एकपादातपोन्विता ॥ तस्याउत्तरतोदेवि किञ्चिद्दीशानसंस्थितम् ॥ ४ ॥ धनुषांचतुरन्तेच लिङ्गंपापभयापहम् ॥ यस्तत्पूजयतेभक्त्या लिङ्गंश्रद्धायुतोनरः ॥ ५ ॥ कृष्णाष्टम्यांविशेषेण समुक्तःपातकैर्भवेत् ॥ गोदानंचात्रशंसन्ति सुवर्णंद्विजपुङ्गवे ॥ ६ ॥ अन्नदानंविशेषे

देनेवाले गौरीश्वरदेवजी के पापनाशक माहात्म्य को कहताहूं ॥ २ ॥ हे देवि ! सब ओर से पचपन धनुषके मण्डलवाला यह महाप्रभावान् गौरीजी का तपोवन प्रसिद्धहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! तपस्या से संयुत देवीजी वहां मध्यमें एक पैरसे स्थित हुई हे देवि ! उसके उत्तर कुछ ईशान में स्थित ॥ ४ ॥ चार धनुषके अन्तमें पातकोंके भयको नाशनेवाला लिंग है श्रद्धासंयुत जो पुरुष भक्ति से उस लिंग को पूजता है ॥ ५ ॥ व विशेषकर जो कृष्णपक्षवाली अष्टमी में पूजता है वह पातकों से छूटजाता है और विद्वान्लोग यहां द्विजोत्तमके लिये गोदान की प्रशंसा करते हैं और सुवर्ण ॥ ६ ॥ व अन्नदान विशेषकर सब पापोंकी शान्ति के लिये होताहै और

गोघाती या ब्रह्मघाती और पापकर्मों को करनेवाला ॥ ७ ॥ उस लिंग के दर्शन से सब पापों से छूटजाता है ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविर
चितायाभाषाटीकायांगौरीश्वरमाहात्म्यनामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । करिकै तप जिमि वरुणजी थप्यो लिंग वरुणेश । अरसठि के अध्याय में सोइ चरित उपदेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गौरीजी के
तपोवन से आग्नेय दिशामें बीस धनुषपै स्थित उत्तम वरुणेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ वरुण ने महाप्रभाववान् उस लिंगको थापा है हे देवि ! जब पहले घट से

ण सर्वपापप्रशान्तये ॥ गोघ्नोवाब्रह्महावापि तथादुष्कृतकर्मकृत् ॥ ७ ॥ सर्वपापैःप्रमुच्येत तस्यलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ ८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे गौरीश्वरमाहात्म्यन्नामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि वरुणेश्वरमुत्तमम् ॥ गौरीतपोवनाग्नेय्यां धनुषांविंशतास्थितम् ॥ १ ॥ लिङ्गं
महाप्रभावंहि वरुणेनप्रतिष्ठितम् ॥ पूर्वंपीतोयदादेवि समुद्रःकुम्भजन्मना ॥ २ ॥ ततःकोपेनसन्तप्तो वरुणस्सरिता
म्पतिः ॥ कामिकन्तुसमाज्ञाय क्षेत्रंप्राभासिकन्तदा ॥ ३ ॥ तत्रतेपेतपोदेवि सवैपरमदुश्चरम् ॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गं स
म्पूजयतिभक्तितः ॥ ४ ॥ वर्षाणामयुतंसाग्रं पूजितोवृषभध्वजः ॥ ततःप्रसन्नोदेवेशो निजगङ्गाजलेनतु ॥ ५ ॥ पूरया
मासतंरिक्तं समुद्रंयादसाम्पतिम् ॥ छन्दयामासतल्लिङ्गं वरदानैरनेकधा ॥ ६ ॥ तत्प्रभृत्येवतेसर्वे समुद्राःपरिपूरिताः ॥
वरुणेश्वरनामेति लिङ्गंचतत्प्रभृत्यभूत् ॥ ७ ॥ किमर्थंबहुभिर्लिङ्गैर्लिङ्गेनसुरसुन्दरि ॥ वरुणेशेनदृष्टेन सर्वतीर्थफलंल

जन्मवाले अगस्त्यजी नें समुद्रको पिया ॥ २ ॥ तदनन्तर क्रोधसे तचेहुये नदियों के पति समुद्रने उस समय कामनाओं को देनेवाले प्रभासक्षेत्र को जानकर ॥ ३ ॥
हे देवि ! वहांपर उन्होंने बहुत कठिन तप किया और महालिंग को थापकर भक्तिसे पूजन करते रहे ॥ ४ ॥ और कुछ अधिक दश हज़ार वर्षतक शिवजीको पूजा
तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये देवेश शिवजीने अपने गङ्गाजल से ॥ ५ ॥ उस खाली जलजन्तुवों के स्वामी समुद्र को पूर्ण किया और वरुणजी ने उस लिंगकी अनेक
प्रकार के वरदानोंसे इच्छा किया ॥ ६ ॥ तभीसे लगाकर वे सब समुद्र पूर्ण होगये और तबसे लगाकर वरुणेश्वर नामक ऐसा लिंगहुआ ॥ ७ ॥ हे सुरसुन्दरि ! बहुत

लिंगोंसे क्या प्रयोजन है क्योंकि वरुणेश लिंगके देखनेपर मनुष्य सब तीर्थोंके फलको पाताहै ॥ ८ ॥ अष्टमी व चौदसि में यदि उन शिवजी को दधिसे नहवावै तो वह ब्राह्मण चारोंवेदों को जाननेवाला होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ हे वरानने ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र तथा सङ्करवर्ण और गूंगे, बहरे, बालक, स्त्री व नपुंसक ॥ १० ॥ उस लिंगको देखकर हे देवि ! धर्म में तत्पर वे स्वर्गको जाते हैं स्नान, जप, बलि, होम, पूजन व स्तोत्र पाठ ॥ ११ ॥ जो पुरुष उस स्थान में करता है वह सब अक्षय होताहै और वहीं पर भलीभांति यात्रा के फलको चाहने वाला व स्वर्गकी अपेक्षा करनेवाला पुरुष सोने का कमल व मोतीको दान देवै ॥ १२ । १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांवरुणेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

भेत् ॥८॥ अष्टम्याञ्चचतुर्द्दश्यां तन्दध्नास्नापयेद्यदि ॥ सब्राह्मणश्चतुर्वेदी जायतेनात्रसंशयः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्त्यावरानने ॥ मूकान्धबधिराबालाःस्त्रियश्चैवनपुंसकाः ॥ १० ॥ दृष्ट्वागच्छन्तितेदेवि स्वर्गंधर्मपरायणाः ॥ स्नानंजाप्यंबलिहोमं पूजांस्तोत्रमुदीरणम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्स्थानेतुयःकुर्यात् तत्सर्वंचाक्षयंभवेत् ॥ हैमंपद्मञ्चमुक्ताञ्च दानंतत्रैवदापयेत् ॥ १२ ॥ सम्यग्यात्राफलाकाङ्क्षी स्वर्गापेक्षीतथानरः ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभामखण्डे वरुणेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंतत्रैवसंस्थितम् ॥ दक्षिणेवरुणेशस्य धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ भार्ययावरुणस्यैव ईषानाम्न्यावरानने ॥ १ ॥ कृत्वातपोमहाघोरं भर्तृदुःखपरीतया ॥ स्थापितन्तुमहालिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ २ ॥ ईषेश्वरेतिविख्यातं सर्वसिद्धैःप्रपूजितम् ॥ यस्तत्पूजयतेभक्त्या लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ ३ ॥ महापापौ

दो० । ईषेश्वर इमि लिंगको थाप्यो वरुण कि नारि । उनहत्तरि अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! वरुणेशजी के दक्षिणमें तीन धनुष पै स्थित वहींपर भलीभाति टिकेहुये लिंगके समीप जावै हे वरानने ! पतिके दुःख से घिरीहुई ईषानामक वरुणकी स्त्रीने वहां बड़ा भयङ्कर तपकरके सब सिद्धियों को देनेवाले महालिङ्गको थापाहै ॥ १ । २ ॥ सब सिद्धोंसे पूजित उस ईषेश्वर पाप विनाशक लिङ्गको जो भक्तिसे पूजता है ॥ ३ ॥ महापातकों के समूह

से युक्त भी वह उत्तमगति को प्राप्त होताहै वह लिंग स्त्रियों के सौभाग्य फलको देनेवाला व दुःख तथा दुर्भाग्यको नाशनेवालाहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामीषेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ● ॥ ® ॥ ® ॥

दो० । कार्य सिद्धिके हित जिमि जलवासी गणनाथ । पूजे सचरित्र में सोई कह्यो सुहावन गाथ ॥ महादेवजी बोले कि सब विघ्नोंके विनाशके लिये व सब कार्योंकी सिद्धिके लिये वहींपर स्थित जलवासी विघ्नेशजी को देखै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! तपस्या के अविघ्न के लिये वरुणजी ने कमलोंसे उनको पूजाहै उसी कारण जल-

घयुक्तोपि सगच्छेत्परमाङ्गतिम् ॥ स्त्रीणांसौभाग्यफलदं दुःखदौर्भाग्यनाशनम् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे ईषेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येद्विघ्नेशंजलवासिनम् ॥ सर्वविघ्नविनाशाय सर्वकार्यप्रसिद्धये ॥ १ ॥ वरुणेन महादेवि तपसोविघ्नहेतवे ॥ पूजितोजलजैर्भक्त्या जलवासीततस्स्मृतः ॥ २ ॥ चतुर्थ्यांतर्पयेद्भक्त्या गन्धैःपुष्पैश्च मोदकैः ॥ यथाभक्त्यानुसारेण तस्यतुष्टोगणाधिपः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे जलवासीगणपतिमाहात्म्यन्नामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कुमारेश्वरमुत्तमम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि वरुणेशान्नैर्ऋतेस्थितम् ॥ १ ॥ धनुषां त्रिंशतादेवि लिङ्गंपश्चिमवक्त्रकम् ॥ गौरीतपोवनाद्देवि दक्षिणस्थानसंस्थितम् ॥ २ ॥ षण्मुखेनमहादेवि तत्रतप्त्वामह

वासी कहेगयेहैं ॥ २ ॥ चौथि तिथिमें जो भक्तिसे चन्दन, पुष्प व लड्डुवों से उन को तृप्तकरै भक्तिके अनुसार उसके ऊपर गणेशजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांजलवासीगणपतिमाहात्म्यंनामसप्ततितमोध्यायः ॥ ७० ॥ ॥ ® ॥

दो० । महासेन लिंगहिं थप्यो कुमारेश असनाम । इकहत्तरि अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वरुणेश्वरजी से नैर्ऋत्य दिशामें स्थित महाप्रभाववान् उत्तम कुमारेश्वरलिङ्ग के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! तीस धनुष पै पश्चिम मुखवाला लिंग स्थित है हे देवि ! जोकि गौरीजी

के तपोवनसे दक्षिण दिशामें स्थितहै ॥ २ ॥ हे महादेवि ! स्वामिकार्त्तिकेयजीने वहां बड़ाभारी तपकरके महालिङ्गको थापाहै इसलिये कुमारेशजीहुये ॥ ३ ॥ जो पुरुष भक्तिसे एक मासतक उन कुमारेशजी को सदैव पूजता है तो छः महीनेतक पूजनसे जो पुण्य होता है ॥ ४ ॥ वह सब पुण्य उसको एक दिनमें एकवार कुमारेशजी को पूजने से मिलता है यदि विधिसे वह लिंग पूजाजाताहै ॥ ५ ॥ काम, क्रोध, लोभ, स्नेह व अन्य के शुभमें वैरको छोड़कर ब्रह्मचारी व यती होकर एकबार भी इन शिवजी को पूजै ॥ ६ ॥ तो हे देवि ! इसप्रकार भलीभाति पूजनेपर भलीभांति यात्राके फलको पाताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुविरचितायां

त्तपः ॥ प्रतिष्ठितंमहालिङ्गं कुमारेशस्ततोभवत् ॥ ३ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या मासमेकन्निरन्तरम् ॥ षण्मासस्यार्चने नैव यत्पुण्यमुपजायते ॥ ४ ॥ तत्पुण्यंसकलंतस्य कुमारेशार्चनात्सकृत ॥ लभ्यतेदिवसेकेन विधिनायदिपूज्यते ॥ ५ ॥ कामंक्रोधंतथालोभं रागंत्यक्त्वातुमत्सरम् ॥ ब्रह्मचारीयतिर्भूत्वा सकृदप्येनमर्चयेत् ॥ ६ ॥ एवंसम्पूजिते देवि सम्यग्यात्राफलंलभेत ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकुमारेश्वरमाहात्म्यन्नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि साकल्येश्वरमुत्तमम् ॥ दैत्यसूदनवायव्ये धनुषांत्रिंशतास्थितम् ॥ १ ॥ साकल्येनमहादेवि पूजितंसर्वकामदम् ॥ शाकल्योनामराजर्षिर्यत्रतप्त्वामहत्तपः ॥ २ ॥ समाराध्यमहादेवं प्रत्यक्षीकृतवान्भवम् ॥ लिङ्गंवतारयामास सुप्रसन्नंमहेश्वरम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्दृष्टेवरारोहे सप्तजन्मकृतंनृणाम् ॥ पापंप्रणश्यतेशी

भाषाटीकायांकुमारेश्वरमाहात्म्यंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ ❀ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । साकल्येश्वर को यथा साकल्यहुं मुनिनाथ । थप्यो बहत्तरि में सोई कह्यो सुहावन गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर दैत्यसूदन के वायव्य में तीस धनुष पै स्थित उत्तम साकल्येश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! साकल्यजी से पूजाहुआ वह लिंग सब कामनाओं को देनेवाला है साकल्य नामक राजर्षि ने जहां बडा तपकिया है ॥ २ ॥ और महादेवजी को भलीभांति आराधन कर उसने शिवजी को आंखों के सामने प्राप्त किया व भलीभांति प्रसन्न महादेवजी

को लिंग में अवतरण कराया ॥ ३ ॥ हे वरारोहे ! उस लिंग के देखने पर मनुष्यों का सातजन्मों में किया हुआ पाप शीघ्रही नाश होजाताहै जैसे सूर्योदय में अन्धकार नाश होजाता है ॥ ४ ॥ वहां अष्टमी व चौदसि तिथि में दूध से सदाशिव को नहवावै और क्रमसे चन्दन, पुष्पादिकों से उस लिंगको विधि से पूजै ॥ ५ ॥ भलीभांति यात्रा के फल को चाहनेवाले पुरुषों को वहां सुवर्ण देना चाहिये मुझसे कहेजाते हुये उनके चार नामों को सुनिये ॥ ६ ॥ हे देवि ! पहले सतयुग में भैरवेश्वर कहा गयाहै तदनन्तर हे प्रिये ! सावर्णि मनुने भलीभांति आराधन किया ॥ ७ ॥ व उनका त्रेता में सावर्णिकेश्वर नाम विद्वानों से किया गया है तदनन्तर हे देवि !

घ्नं तमस्सूर्योदयेयथा ॥ ४ ॥ तत्राष्टम्यांचतुर्दश्यां स्नापयेत्पयसाशिवम् ॥ पूजयेत्तद्विधानेन गन्धपुष्पादिभिःक्रमात् ॥ ५ ॥ हिरण्यंतत्रदातव्यं सम्यक्यात्राफलेप्सुभिः ॥ चत्वारितस्यनामानि कथ्यमानानिमेशृणु ॥ ६ ॥ आदौकृतयुगेदेवि कीर्त्तितोभैरवेश्वरः ॥ ततस्सावर्णिमनुना सम्यगाराधितःप्रिये ॥ ७ ॥ सावर्णिकेश्वरन्नाम त्रेतायांतस्यसत्कृतम् ॥ ततस्तुद्वापरेदेवि गालवेनमहात्मना ॥ सम्यगाराधितस्तत्र लिङ्गरूपीवृषध्वजः ॥ ८ ॥ तृतीयंतस्यदेवस्य गालवेश्वरसंज्ञितम् ॥ कलौयुगेतुसम्प्राप्ते साकल्योनामवैमुनिः ॥ ९ ॥ यत्रसिद्धिमनुप्राप्त ऐश्वर्यंचाणिमादिकम् ॥ साकल्येश्वरनामेति ततःख्यातंतुरीयकम् ॥ १० ॥ एवंचातुर्युगंनाम तस्यलिङ्गस्यकीर्त्तितम् ॥ पापघ्नंपुण्यदंनृणां कीर्त्तितं सर्वकामदम् ॥ ११ ॥ तस्यैवदेवदेवस्य क्षेत्रोत्पत्तिंशृणुष्वमे ॥ अष्टादशधनुर्देवि समन्तात्परिमण्डलम् ॥ १२ ॥ महापापहरन्देवि तत्रक्षेत्रेनिवासिनाम् ॥ कृमिकीटपतङ्गानां तिरश्चामपिमोक्षदम् ॥ १३ ॥ तत्रकूपादितोयेषु जलं

द्वापर में वहां महात्मा गालवजी ने लिङ्गरूपी सदाशिवजी को भलीभांति आराधनकिया ॥ ८ ॥ व उन शिवदेवजी का तीसरा गालवेश्वरसंज्ञक नाम हुआ और कलियुग प्राप्त होनेपर साकल्य नामक मुनि ॥ ९ ॥ जहां सिद्धि को प्राप्त हुये व अणिमादिक ऐश्वर्य को पातेभये उसी कारण चौथा साकल्येश्वर नाम कहागयाहै ॥ १० ॥ इसप्रकार उस लिङ्ग का चारोंयुगोंवाला नाम कहागया जो कि पातकों का विनाशक व मनुष्योंको पुण्यदायक व कीर्तन कियाहुवा वह सब कामनाओं का दायकहै ॥ ११ ॥ उन देवदेव के क्षेत्र की उत्पत्तिको मुझ से सुनिये हे देवि ! सब ओर से अठारह धनुषका मण्डलहै ॥ १२ ॥ हे देवि ! वह लिंग उसक्षेत्रमें बसने-

वालों के महापातकों को हरनेवाला है और कृमि, कीट, पांखी व पशु, पक्षियों को भी मोक्षदायक है ॥ १३ ॥ वहां कूपादिकों के जलों में सरस्वतीजी का जल कहा गया है कि जहां जहां नहाया हुआ मनुष्य स्वर्गलोक में पूजा जाताहै ॥ १४ ॥ हज़ार अश्वमेध व सौ वाजपेय यज्ञों का जो फलहै उस फलको मनुष्य उस लिंग के दर्शन से प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ और चन्द्रग्रहण प्राप्त होनेपर वहां पवित्र होकर जो बुद्धिमान् पुरुष घृतके होमसे संयुत अघोर मन्त्रको जपता है ॥ १६ ॥ हे प्रिये ! उसको लिङ्ग के समीपही मोक्ष प्राप्तहोता है महापातकों से युक्त व उपपातकों से संयुत भी ॥ १७ ॥ वे सब पुरुष स्वर्ग को जाते हैं व उत्तम सिद्धि को पाते हैं

सारस्वतंस्मृतम् ॥ यत्रयत्रनरस्स्नातस्स्वर्गलोकेमहीयते ॥ १४ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्यच ॥ तत्फलंसमवाप्नोति तस्यलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ १५ ॥ सोमपर्वणिसम्प्राप्ते यस्तत्रशुचिरात्मवान् ॥ अघोरंचजपेत्सम्यक् आज्यहोमसमन्वितम् ॥ १६ ॥ तस्यलिङ्गसमीपेच प्राप्तोमोक्षोभवेत्प्रिये ॥ महापातकयुक्तोपि युक्तोवाप्युपपातकैः ॥ १७ ॥ स्वर्गंगच्छन्तितेसर्वेलभन्तेसिद्धिमुत्तमाम् ॥ कामिकंतत्स्मृतंलिङ्गंसर्वकामफलप्रदम् ॥ १८ ॥ अघोरवक्त्रंदेवस्य तत्रस्थंभैरवंमहत् ॥ भैरवेश्वरनामेति पूर्वंख्यातिंततोगमत् ॥ १९ ॥ अस्मिन्युगेतुसम्प्राप्ते शाकल्येश्वरनामकम् ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेशाकल्येश्वरमाहात्म्यन्नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ * ॥
ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंकलकलेश्वरम् ॥ शाकल्येश्वरनैर्ऋत्ये धनुषांषष्टिभिःस्थितम् ॥ १ ॥ त

वह कामिकलिंग सब कामनाओं के फलों को देनेवाला कहागया है ॥ १८ ॥ शिवदेवजी का बड़ा भयङ्कर अघोर मुख वहां स्थित है इसलिये पहले भैरवेश्वर ऐसा नाम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ १९ ॥ और इस युगके प्राप्तहोनेपर साकल्येश्वरनामक लिंग हुआ ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसाकल्येश्वरमाहात्म्यंनामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कलकलेश्वरक लिंग जिमि नारद थापित कीन । तिहतरिवें अध्यायमें सोइचरित नवीन ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर साकल्येश्वरजी के

नैर्ऋत्य में साठ धनुष पै स्थित कलकलेश्वर लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ वह चतुर्युग नामक ऐसा लिंग पातकों का नाशक कहागया है पहले कामेश्वर नामथा व त्रेतामें पुलहेश्वर नाम हुआ ॥ २ ॥ व द्वापर में सिद्धनाथ और कलियुगमें नारदेशकहा गया है वैसेही उसी का कलकलेश नाम कहा गयाहै ॥ ३ ॥ जिस समय महापवित्र समुद्र में प्रसन्न व सन्तुष्ट वह बड़े ऐश्वर्यवाली सरस्वती उत्तम नदी आई है ॥ ४ ॥ उस समय उस सरस्वती के जल के शब्दसे व महात्मा समुद्र के शब्द से गन्धर्वों समेत देवता, ऋषि, सिद्ध व चारण ॥ ५ ॥ वहां बड़ा भारी लोमहर्षण कोलाहल करते भये उस बड़ेभारी शब्द से मेरी मूर्ति उत्पन्न हुई ॥ ६ ॥ उसीकारण

चतुर्युगनामेति स्मृतंपातकनाशनम् ॥ पूर्वंकामेश्वरन्नाम त्रेतायांपुलहेश्वरम् ॥ २ ॥ द्वापरेसिद्धनाथन्तु नारदेशंकलौ स्मृतम् ॥ तथाकलकलेशञ्च नामतस्यैवकीर्त्तितम् ॥ ३ ॥समुद्रेचमहापुण्ये यस्मिन्कालेसरस्वती ॥ आगतासामहाभागा हृष्टातुष्टासरिद्वरा ॥ ४ ॥ तस्यास्तोयस्यशब्देन सागरस्यमहात्मनः ॥ ततोदेवास्सगन्धर्वा ऋषयःसिद्धचारणाः ॥ ५ ॥ नेदुःकलकलंतत्र तुमुलंलोमहर्षणम् ॥ तेनशब्देनमहता ममर्मूर्त्तिस्समुत्थिता ॥ ६ ॥ कलकलेश्वरनामेति ततोलिङ्गंप्रकीर्त्तितम् ॥ इतितेपूर्ववृत्तान्तं कथितन्नामकारणम् ॥ ७ ॥ साम्प्रतन्तुयथाजातं पुनःकलकलेश्वरम् ॥ तत्तेहंसम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ ८ ॥ पुराद्वापरसन्धौच प्रविष्टेचकलौयुगे ॥ नारदस्तुसमागत्य क्षेत्रंप्राभासिकंशुभम् ॥ ९ ॥ सचकारतपश्चोग्रं तत्रलिङ्गसमीपतः ॥ सचकारमहायज्ञं पौण्डरीकमितिश्रुतम् ॥ १० ॥ देवदेवस्य तुष्ट्यर्थं सदैवभावितात्मवान् ॥ समाहूयऋषींस्तत्र ब्रह्मलोकात्सहस्रशः ॥ ११ ॥ ततस्सम्भृतसम्भारोयज्ञोपकरणान्वि

कलकलेश्वर लिङ्ग कहा गया है यह नाम के कारणवाला पहले का वृत्तान्त तुम से कहा गया ॥ ७ ॥ और इस समय फिर जिसप्रकार कलकलेश्वर नाम कहागयाहै उसको मैं तुमसे कहताहूं हे प्रिये ! सावधान मनवाली होकर सुनिये ॥ ८ ॥ पुरातनसमय द्वापर की सन्धि में कलियुग का प्रवेश होनेपर उत्तम प्रभासक्षेत्र को नारद जी आकर ॥ ९ ॥ वहां लिङ्गके समीप उन्होंने उग्र तपस्या किया और देवदेव शिवजी की प्रसन्नता के लिये सदैव शुद्ध चित्तवाले उन्होंने वहां ब्रह्मलोकसे हज़ारों

ऋषियों को बुलाकर पौंडरीक ऐसे प्रसिद्ध महायज्ञ को किया ॥ १० । ११ ॥ तदनन्तर यज्ञकी सामग्री से संयुत व सामानको इकट्ठा कियेहुये उन्होंने सब कुण्डादिक को बनाकर उसके उपरान्त यज्ञका प्रारम्भ किया ॥ १२॥ तदनन्तर हे वराननें ! उस यज्ञके सम्पूर्णताको प्राप्तहोनेपर उसके उपरान्त वहांक्षेत्रके निवासी सैकड़ों व हजारों ब्राह्मण दक्षिणा के लिये आये तदनन्तर हे महादेवि ! कौतुक से संयुत उन नारदजी ने उन के सिद्ध प्रयोजनही के लिये ॥ १३ । १४ ॥ वहां पृथ्वी में रत्नों व सुवर्ण को फेंकदिया तदनन्तर परस्पर युद्ध करतेहुये वे सब ब्राह्मण ॥ १५ ॥ बहुत रत्नों के मिलने की इच्छा से बहुत कोलाहल किया हे देवि ! कोई दिगंबर (नग्न) व

तः ॥ कृत्वाकुण्डादिकंसर्वमारभच्चततःक्रतुम् ॥ १२ ॥ ततस्सम्पूर्णताम्प्राप्ते क्रतौतस्मिन्वरानने ॥ अथागमंस्ततो विप्रास्तत्रक्षेत्रनिवासिनः ॥ १३ ॥ दक्षिणार्थंमहादेवि शतशोथसहस्रशः ॥ ततस्संकौतुकाविष्टस्तेषांसिद्धार्थमेवहि ॥ १४ ॥ प्राक्षिपत्तत्ररत्नानि सुवर्णंचमहीतले ॥ ततस्तेब्राह्मणास्सर्वे युध्यमानाःपरस्परम् ॥ १५ ॥ कोलाहलंपरंचक्रुर्बहु रत्नपरीप्सया ॥ एकेदिगम्बरादेवि त्यक्तयज्ञोपवीतिनः ॥ १६ ॥ विकचाःकेचिद्दृश्यन्तेत्वन्येरुधिरविक्लवाः॥ अन्येपर स्परंजघ्नुर्मुष्टिभिश्चरणैस्तथा ॥ १७ ॥ एवंतत्रतदाक्षिप्तं यद्द्रव्यंनारदेननु ॥ अथाभावेतुवित्तस्य येचविप्राह्यकिञ्चनाः॥ १८ ॥ विद्याविनयसम्पन्ना ब्राह्मणैर्जर्जरीकृताः ॥ तेतमूचुर्भृशंशान्ता यजमानंमुहुर्मुहुः ॥ १९ ॥ कलहार्थंयतोदानं त्व यादत्तमिदम्मुने ॥ विद्यायुक्तान्परित्यज्य विधिन्त्यक्त्वातुयाज्ञिकम् ॥२०॥ तस्मादस्यमुनेनाम ख्यातंकलकलेश्व रम् ॥ तेननाम्नाद्विजश्रेष्ठलिङ्गमेतद्भविष्यति ॥२१॥ एतस्मात्कारणाद्देवि यातंकलकलेश्वरम् ॥ यस्तंस्नाप्यनरोभक्त्या

कोई यज्ञोपवीतों को त्याग कियेथे ॥ १६ ॥ और कोई विकच (मुण्डित) देख पड़ते थे और अन्यरक्त से विकल थे और अन्यलोगों ने घूंसाओं से व पैरोंसे आपस में मारते थे ॥ १७ ॥ इसप्रकार उस समय वहां नारदजी ने जिस द्रव्यको फेंका था उस धनके न रहनेमें जो ब्राह्मण अकिंचन (धनहीन) रहगये ॥ १८ ॥ ब्राह्मणोंसे जर्जर कियेहुये विद्या व विनय से संयुत वे बहुतही शान्त होकर बार बार उन यजमान से बोले ॥ १९ ॥ कि हे मुने ! जिस जिस लिये विद्यासे युक्त ब्राह्मणोंको व यज्ञकी विधिको छोडकर तुमने इस दानको झगड़ाके लिये दिया ॥ २० ॥ इसलिये हे मुने ! इस लिंगका कलकलेश्वर नाम प्रसिद्धहोगा और हे द्विजोत्तम !

उस नामसे यह लिंग प्रसिद्ध होगा ॥२१॥ हे देवि ! इस कारण से कलकलेश्वर नाम हुआ जो मनुष्य उन शिवजी को भक्तिसे नहवाकर तीन प्रदक्षिणा करता है ॥
२२ ॥ वह मेरी प्रसन्नता से निस्सन्देह शिवलोक को जाताहै जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण को देकर भक्तिसे उन शिवजी को गन्ध, पुष्प व अनुलेपनों से
पूजता है वह परमपदको प्राप्त होताहै ॥२३।२४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकलकलेश्वरमाहात्म्यंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

दो० । जिमि नकुलेश्वर लिंगकर अहै अमित परभाव । चौहत्तरि अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि उन्हीं देवदेवके समीपमें स्थित दो लिंग

कुरुतेत्रिःप्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥ सगच्छेद्रुद्रलोकन्तु मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥
२३ ॥ हेमंदत्त्वाद्विजातिभ्यस्सगच्छेत्परमम्पदम् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासमाहात्म्येकलकले
श्वरमाहात्म्यन्नामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यैवदेवदेवस्य समीपस्थंविराजते ॥ लिङ्गद्वयंमहापुण्यं नकुलीशंप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ नकुलेश्व
रनामानं पूज्यलिङ्गद्वयंतथा ॥ मुच्यतेसकलात्पापादाजन्ममरणान्तकात् ॥ २ ॥ तत्रशुक्लचतुर्दश्यां मासिभाद्रपदे
प्रिये ॥ उपवासपरोभूत्वा यःकरोतिप्रजागरम् ॥ ३ ॥ मूर्त्तिमन्तन्तुसम्पूज्य नकुलीशंमहाप्रभम् ॥ ततस्सम्पूज्यवि
धिना तत्रलिङ्गद्वयंपृथक् ॥ ४ ॥ सम्यक्पूजाविधानेन स्तुतिमन्त्रैरनुक्रमात् ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः॥
५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेनकुलीश्वरमाहात्म्यन्नामचतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ * ॥

विराजते हैं और महापुण्यवान् थापेहुये नकुलीशजी हैं ॥१॥ नकुलेश्वर नामक शिवजी को व उनदोनों लिंगोंको पूजकर मनुष्य जन्मसे लगाकर मरनेके अन्ततक के
पातकसे छूटजाताहै ॥ २ ॥ हे प्रिये ! भादों महीने में शुक्लपक्ष की चौदसिमें जो पुरुष उपासमें तत्पर होकर वहां जागरण करताहै ॥ ३ ॥ और महाप्रभावान् मूर्त्तिमान्
नकुलीशजी को पूजकर तदनन्तर वहां विधिसे दो लिंगों को अलग २ पूजकर ॥ ४ ॥ भलीभांति पूजन की विधिसे व क्रमपूर्वक स्तुतिके मन्त्रों से पूजकर वह मनुष्य
उस उत्तम स्थानकोप्राप्त होताहै जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ ५ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांनकुलीश्वरमाहात्म्यंनामचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

दो० । उत्तङ्केश्वर लिङ्गको थाप्यो जिमि उत्तंक । पचहत्तरि अध्याय में सोईकथा निशङ्क ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके दक्षिणमें थोड़ही दूरपै स्थित उत्तम उत्तङ्केश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि आपही महात्मा उत्तङ्कजी से स्थापित हुआहै हे महादेवि ! उन महादेवजी को देखकर व स्पर्शकर सावधान मनुष्य ॥ २ ॥ विधिपूर्वक भक्तिसे भलीभांति पूजकर सब पातकोंसे छूट जाताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामुत्तङ्केश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि उत्तङ्केश्वरमुत्तमम् ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ स्थापितंयत्स्वयंभक्त्या उत्तङ्केनमहात्मना ॥ तन्दृष्ट्वातुमहादेवि स्पृष्ट्वातुसुसमाहितः ॥ २ ॥ सम्पूज्यविधिवद्भक्त्या मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेउत्तङ्केश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देववैश्वानरेश्वरम् ॥ तस्यैवाग्नेयकोणस्थं धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ १ ॥ पापघ्नं सर्वजन्तूनां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ तत्रकश्चिच्छुकःपूर्वं नीडंरम्यंचकारह ॥ २ ॥ प्रासादेभार्ययासार्द्धं निवसन्सुचिरन्तपः ॥ ततस्तौदम्पतीनित्यं प्रदक्षिणमकुर्वताम् ॥ ३ ॥ कुलायस्यवशाद्देवि नतुभक्त्याकथञ्चन ॥ कालेनमहतातौच पञ्चत्वंसमुपस्थितौ ॥ ४ ॥ जातौतेनप्रभावेन उक्तौजातिस्मरौभुवि ॥ लोपामुद्राह्यगस्त्याख्यौ सिद्धिञ्चपरमाङ्गतौ ॥ ५ ॥

दो० । अतिउत्तम माहात्म्ययुत अहै लिङ्ग अग्नीश । छिहत्तरें अध्यायमें सोइकह्यो गौरीश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उसके उपरान्त उसीके अग्निकोण में स्थित वैश्वानरेश्वरदेवजी के समीप जावै जोकि पांच धनुष पै स्थित है ॥ १ ॥ और दर्शन व स्पर्शसे वह लिंग सब प्राणियोंका पाप नाशकहै पुरातन समय वहां किसी सुवाने सुन्दरघोंसला बनायाहै ॥ २ ॥ और मन्दिरमें स्त्री समेत बसतेहुये उसने बहुत दिनोंतक तपकियाहै तदनन्तरहे देवि ! घोंसलाकेवशसे उन दोनों स्त्री पुरुषोंने नित्य प्रदक्षिण किया भक्तिसे किसी प्रकार नहीं किया और बहुत समयके बाद वे दोनों मृत्युको प्राप्तहुये ॥ ३।४ ॥ उसी प्रभावसे पृथ्वीमें जातिके स्मरणवाले उत्पन्न हुये जोकि लोपामुद्रा

व अगस्त्यनामक कहेगयेहैं वे दोनों उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर पुरातन समय पहलेवाले शरीर को याद करतेहुये विस्मय संयुत महात्मा अगस्त्य जीने गाथाको गायाहै ॥ ६ ॥ कि भलीभांति प्रदक्षिणाकर जो पुरुष अग्नीशजी को देखता है वह निश्चय कर सिद्धिको प्राप्त होताहै जैसे कि पहले पक्षीयोनिवाला मैं सिद्धहुआहू ॥ ७ ॥ हे देवि ! अग्निदेवतावाला माहात्म्य इसप्रकार तुमसे कहागया सुनाहुआ यह मनुष्यों का पापहारक व सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ ८ ॥ भलीभांति श्रद्धासंयुत पुरुष घृत से उन शिवजी को नहवाकर विधिसे उनको पूजै व द्विजेन्द्र के लिये सुवर्ण को देवै ॥ ९ ॥ इसप्रकार विधिसे करके मनुष्य भली-

अथगाथापुरागीता अगस्त्येनमहात्मना ॥ स्मरतापूर्वदेहन्तु विस्मयेनमहात्मना ॥ ६ ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंसम्यक् व ह्नीशंयःप्रपश्यति ॥ नूनंससिद्धिमाप्नोति तिरश्चोहंयथापुरा ॥ ७ ॥ एवन्देवितवाख्यातं माहात्म्यंवह्निदैवतम् ॥ श्रुतंपा पहरंनृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥ ८ ॥ घृतेनतन्तुसंस्नाप्य विधिनातंसमर्चयेत् ॥ हेमंदद्याच्चविप्रेन्द्रे सम्यक्श्रद्धासम न्वितः ॥ ९ ॥ एवंकृत्वाविधानेन सम्यग्यात्राफलंलभेत् ॥ वह्निलोकन्तुसङ्गम्य मोदतेकालमक्षयम् ॥ १० ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे वैश्वानरमाहात्म्यन्नामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लकुलीशंमहाप्रभम् ॥ तस्यपश्चिमदिग्भागे धनुषांसप्तकेस्थितम् ॥ १ ॥ पा पघ्नंसर्वजन्तूनां शान्तमूर्त्तिस्थितंविभुम् ॥ समायातंमहाक्षेत्रे तत्रकायावरोहणात् ॥ २ ॥ कृत्वातत्रतपश्चोग्रं दीक्षयि

भांति यात्राके फलको पाताहै और अग्निलोक को जाकर अक्षय समयतक आनन्दकरता है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांवैश्वानरमाहात्म्यंनामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्र महँ लिङ्ग यथा लकुलीश । सतहत्तरि अध्याय में सोई चरित वरीश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उसके उपरान्त उनके पश्चिम दिशाके भाग में सात धनुष पै स्थित महाप्रभावान् लकुलीशजी के समीप जावै ॥ १ ॥ सब जन्तुवों के पापनाशक व शान्त मूर्त्तिमें स्थित विभुजी वहां कायावरोहण

से महाक्षेत्र में आयेहैं ॥ २ ॥ वहा उग्रतपस्या करके अपने शिक्षकों को दीक्षादेकर कुशकादिक चारों मुनियोंसे अनेक शास्त्रों को कहकर ॥ ३ ॥ व न्याय तथा वैशेषिकादिक शास्त्रोंको कहकर तदनन्तर उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये ऐसा जानकर जो मनुष्य भलीभांति उन शिवजी को पूजता है ॥ ४ ॥ और विशेषकर कार्त्तिकी व दक्षिण तथा उत्तर अयनमें जो पूजता है व वहींपर बुद्धिमान् ब्राह्मणके लिये जो विद्यादान देताहै ॥ ५ ॥ वह सात जन्मोंमें धनाढ्य ब्राह्मण के उत्तमकुल में पैदा होताहै और मतिमान्, बुद्धिमान् व श्रीमान् इसीप्रकार बार २ होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलकुलीश्वरमाहा

त्वात्मशिक्षकान् ॥ कुशकादींश्चचतुर उक्त्वाशास्त्राण्यनेकशः ॥ ३ ॥ न्यायंवैशेषिकादीनि ततःसिद्धिंपराङ्गतः ॥ एवंज्ञात्वातुयस्सम्यक् तंसमर्चयतेनरः ॥ ४ ॥ कार्त्तिक्यान्तुविशेषेण अयनेचोत्तरेपिवा ॥ विद्यादानंचतत्रैव दद्याद्विप्रायधीमते ॥ ५ ॥ सप्तजन्मनिविप्रस्य धनाढ्यस्यकुलेशुभे ॥ जायतेमतिमान्धीमाञ्छ्रीमानेवंपुनःपुनः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे लकुलीश्वरमाहात्म्यन्नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥

शिवउवाच ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे लिङ्गंपातकनाशनम् ॥ गौतमेश्वरनामेति दैत्यसूदनपश्चिमे ॥ १ ॥ धनुषांपञ्चकेदेवि संस्थितंसर्वकामदम् ॥ शल्येनाराधितंयद्वै मद्रराजेनभामिनि ॥ २ ॥ तत्रकृत्वातपश्चोग्रं समाराध्यमहेश्वरम् ॥ अन्योप्येवंनरोयस्तु तंसमाराधयिष्यति ॥ ३ ॥ सप्राप्स्यतिपरांसिद्धिं यथाशल्योमहामनाः ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां

त्म्यंनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो०। गौतमेश्वरहिं लिंग जिमि आराध्यो नृपशल्य। अठहत्तरि अध्यायमें कह्यो सोइ साकल्य ॥ महादेवजीबोले कि उसीके पूर्वदिशाके भागमें पातकोंका विनाशक लिंग है उन गौतमेश्वरजी के समीपजावै दैत्यसूदनके पश्चिममें ॥ १ ॥ पांच धनुष पै हे देवि ! सब कामनाओं को देनेवाला लिंग भलीभांति स्थितहै जोकि हे भामिनि ! मद्रदेशके राजा शल्यसे आराधन कियागयाहै ॥ २ ॥ वहां उग्रतपस्या करके महादेवजीको आराधनकर उस शल्यने पूजनकियाहै अन्य भी जो मनुष्य इसप्रकार उनको आराधन

करैगा ॥ ३ ॥ वह उत्तम सिद्धिको पावैगा जैसे कि उदारमनवाले शल्यने पायाहै चैतकी शुक्लपक्षवाली चौदसि में जो मनुष्य उन शिवजी को दूधसे नहवाता है ॥४॥ और तदनन्तर चन्दन, जल व उत्तम फूलों से विधिपूर्वक इसप्रकार भक्तिसे पूजता है वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाताहै ॥५॥ हे देवि ! जो पाप वचनसे कियागया है व मनसे तथा कर्मसे जो पाप कियागया है वह सब उस लिङ्गके दर्शन से छूट जाताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगौतमेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

स्नापयेत्पयसातुयः ॥ ४ ॥ गन्धोदकेनचततः पूजयेत्कुसुमोत्तमैः ॥ तथैवंविधिवद्भक्त्या सोऽश्वमेधफलंलभेत् ॥ ५ ॥ वाचाकृतन्तुयत्पापं मनसाकर्मणाथवा ॥ तत्सर्वंनश्यतेदेवि तस्यलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगौतमेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवेशंदैत्यसूदनम् ॥ पापघ्नंसर्वजन्तूनां प्रभासक्षेत्रवासिनाम् ॥१॥ अनादियुगसंस्थानं सर्वकार्यप्रदंशुभम् ॥ संसारसागरेघोरे स्थितंनौरिवतारणे ॥ २ ॥ अन्येतुसर्वेनश्यन्ति कल्पान्तेब्रह्मणोदिने ॥ एतानिमुक्त्वादेवेशि न्यग्रोधंसप्तकल्पकम् ॥ ३ ॥ कल्पवृक्षंतथादेवि वैडूर्यंपर्वतोत्तमम् ॥ श्रीदैत्यसूदनन्देवं मार्कण्डेयंमहामुनिम् ॥ ४ ॥ अक्षयाश्चाव्ययाश्चैते सप्तकल्पानियावता ॥ देविकिंबहुनोक्तेन वर्णितेनपुनःपुनः ॥५॥ श्रीदैत्य

दो॰ । दैत्यसूदनहुंकर कह्यो अतिउत्तम परभाव । उन्नासी अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर प्रभासक्षेत्र के बसनेवाले सब प्राणियों के पापनाशक दैत्यसूदन देवेशजी के समीप जावै ॥ १ ॥ सब कार्यों को देनेवाला उत्तम अनादियुगसंस्थान भयङ्कर संसाररूपी समुद्र में उतारने के लिये नावकी नाईं स्थित है ॥ २ ॥ हे देवेशि ! इन वस्तुवों को छोड़कर और सब कल्पान्त तथा ब्रह्माके दिनमें नाश होजाते हैं कि सातकल्पोंवाला बरगद ॥ ३ ॥ व हे देवि ! कल्पवृक्ष व वैडूर्य पर्वतोत्तम और श्रीदैत्यसूदनदेव व महामुनि मार्कण्डेयजी ॥ ४ ॥ सात कल्पोंतक ये अक्षय व अविनाशी हैं हे देवि ! बार बार बहुत

कहने व वर्णन करने से क्या है ॥ ५ ॥ हे देवि ! श्रीदैत्यसूदनजी से उत्तम पृथ्वी में अन्यदेवता नहीं है उन्हींका यवके आकारवाला क्षेत्र पातकों का विनाशक है ॥ ६ ॥ हे भामिनि ! सब ऋषियों से व यक्ष, विद्याधर व नागोंसे वह क्षेत्र सेवित है उस विष्णुजी के क्षेत्रकी सीमा (हद) को कहताहूं ॥ ७ ॥ कि पूर्वमें यमेश्वरतक व पश्चिम में श्रीसोमेशतक और उत्तरमें विशालाक्षीतक व दक्षिण में जहां समुद्र है ॥ ८ ॥ यह यव के आकारवाला विष्णुजी का क्षेत्र पातकों का विनाशक है इस क्षेत्रमें जो पापी भी मनुष्य मरेहुये हैं निश्चय कर ॥ ९ ॥ वे सब स्वर्गको जातेहैं जैसे कि पुण्यवान् सज्जनलोग स्वर्गको जाते हैं यहां दियाहुआ दान, हवन,

सूदनाद्देवि नान्योस्तिभुविदेवता ॥ यवाकारन्तुतस्यैवक्षेत्रंपातकनाशनम् ॥ ६ ॥ सेवितमृषिभिस्सर्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः ॥ तस्यसीमांप्रवक्ष्यामि विष्णुक्षेत्रस्यभामिनि ॥ ७ ॥ पूर्वेयमेश्वरंयावच्छ्रीसोमेशन्तुपश्चिमे ॥ उत्तरेतुविशालाक्षीन्दक्षिणेसरितांपतिः ॥ ८ ॥ एतत्क्षेत्रंयवाकारं वैष्णवंपापनाशनम् ॥ अत्रक्षेत्रेमृतायेच पापिनोपिनराध्रुवम् ॥ ९ ॥ स्वर्गङ्गच्छन्तितेसर्वे मन्तस्सुकृतिनोयथा ॥ अत्रदत्तंहुतंजप्तं तपस्तप्तंकृतंहियत् ॥ १० ॥ तत्सर्वंचाक्षयंप्रोक्तं सप्तकल्पावधिप्रिये ॥ तत्रैकमपियोदेवि ब्राह्मणम्भोजयिष्यति ॥ ११ ॥ विधिनाविष्णुमुद्दिश्य कोटिर्भवतिभोजिता ॥ तत्रोपवासंयःकुर्यान्नरोभक्तिसमन्वितः ॥ १२ ॥ एकेनैवोपवासेन उपवासायुतंफलम् ॥ चक्रतीर्थेनरस्स्नात्वा सोपवासोजितेन्द्रियः ॥ १३ ॥ द्वादश्यांकार्तिकेमासि दद्याद्विप्रेषुकाञ्चनम् ॥ विष्णुंसम्पूज्यविधिनामुच्यते सर्वपातकैः ॥ १४ ॥ देव्युवाच ॥ दैत्यसूदननामेति कथंतस्यप्रकीर्त्तितम् ॥ कस्मिन्कालेतुदेवेश तन्मेविस्तरतोवद ॥ १५ ॥

जप व तप जोकि कियाहुआ होताहै ॥ १० ॥ वह सब हे प्रिये ! सात कल्पोंतक अक्षय कहागया है और हे देवि ! वहां विष्णुजी को उद्देशकर जो विधिसे एकभी ब्राह्मण को भोजन करावैगा उस से करोड़ ब्राह्मण भोजित होवैंगे और भक्तिसे संयुत जो पुरुष वहां उपास करता है ॥ ११ । १२ ॥ उसको एकही उपवास से दश हज़ार उपवासों का फल होताहै चक्रतीर्थ में नहाकर उपवास समेत जितेन्द्रिय पुरुष ॥ १३ ॥ कार्त्तिक महीने मे द्वादशी तिथिमें विष्णुजी को भली-भांति पूजकर विधिसे ब्राह्मणोंके लिये सुवर्णको देवै तो सब पापो से छूटजाताहै ॥ १४ ॥ देवीजी बोलीं कि उनका दैत्यसूदन ऐसा नाम कैसे कहागयाहै व हे देवेश !

किस समय में वे हुये हैं उसको मुझ से विस्तारसे कहिये ॥ १५ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! दैत्यसूदन देवके पहले वर्तमान हुये बड़े ऐश्वर्य्यवान् व पापनाशक माहात्म्यको कहताहूं उसको सुनिये ॥ १६ ॥ हे देवि ! प्रत्येक कल्पमें उन्हींके नाम होतेहैं और अनादि निधन नाम बार२ होताहै ॥ १७ ॥ पहले कल्पमें श्रियावृत्त व दूसरे में वामन और तीसरे में वज्रांग व चौथेमें कमलाप्रिय नाम हुआ ॥ १८ ॥ पांचवें में दुःखहर्ता व छठेंमें पुरुषोत्तम और सातवेंकल्प में श्रीदैत्यसूदनदेवजी कहे गयेहैं ॥ १९ ॥ और उन्हींके नामकी उत्पत्तिको यथार्थ कहताहूं पुरातनसमय देवासुरसंग्राममें देवताओंके कण्टकरूपी दानवोंसे ॥ २० । २१ ॥ जीतेहुये वे सब देवता

ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ दैत्यसूदनदेवस्य पुरावृत्तंमहोदयम् ॥ १६ ॥ देवितस्यैवनामानि कल्पेकल्पेभवन्तिवै ॥ अनादिनिधनन्नाम सम्भवेत्तुपुनःपुनः ॥ १७ ॥ पूर्वेकल्पेश्रियावृत्तो वामनस्तुद्वितीयके ॥ वज्राङ्गस्तुतृतीयेवै तुरीयेकमलाप्रियः ॥ १८ ॥ पञ्चमेदुःखहर्त्ताच षष्ठेतुपुरुषोत्तमः ॥ श्रीदैत्यसूदनोदेवः कल्पेवैसप्तमेस्मृतः ॥ १९ ॥ तस्यैवनाम्नश्चोत्पत्तिं कथयामियथार्थतः ॥२०॥ पुरादेवासुरेयुद्धे दानवैर्देवकण्टकैः ॥ २१ ॥ निर्जितादेवतास्सर्वे जग्मुस्तेशरणंहरिम् ॥ क्षीरोदवासिनन्देवमस्तुवन्प्रणतास्स्थिताः ॥ २२ ॥ देवाऊचुः ॥ जयदेव जगन्नाथ दैत्यासुरविमर्द्दन ॥ वाराहरूपमास्थाय उद्धृतावसुधात्वया ॥ २३ ॥ उद्धृतामत्स्यरूपेण वेदाउदधिमध्यतः ॥ कूर्मरूपीतथाभूत्वा क्षीरोदार्णवमन्थने ॥ २४ ॥ धृत्वाचमन्दरंपृष्ठे उद्धृताश्रीर्नमोस्तुते ॥ श्रीपतिःश्रीधृतो देव आर्त्तानामार्त्तिनाशनः ॥ २५ ॥ बलिर्वामनरूपेण त्वयाबद्धोसुरारिणा ॥ हिरण्याक्षोमहादैत्यो हिरण्यकशिपु

विष्णुजी की शरण में गये और प्रणाम करके स्थित होतेहुये उन्होंने क्षीरसागरवासी विष्णुदेवजी की स्तुतिकिया ॥ २२ ॥ देवता बोले कि हे दैत्यों व असुरों को मर्दनेवाले, जगदीश, देवजी ! तुम्हारी जयहोवै तुमने वाराहरूप में स्थितहोकर पृथ्वीको उधारा है ॥ २३ ॥ और समुद्र के बीचसे तुमने वेदोंको ऊपर निकाला है और क्षीरसमुद्र के मथने में कच्छपरूपी होकर ॥ २४ ॥ मन्दराचल को पीठ पै धरकर तुमने लक्ष्मी को ऊपर निकाला है तुम्हारे लिये नमस्कार है लक्ष्मीकेस्वामी व लक्ष्मी से धारेहुये और क्रीड़ा करनेवाले व दुःखीजनों के दुःखको हरनेवाले हो ॥ २५ ॥ दैत्योंके शत्रु वामनरूपवाले आप से बलि बांधागया व महादैत्य

हिरण्याक्ष मारागया व हिरण्यकशिपु नृसिंहरूप से तुम करके आकाश में धारण कियागया, हे देवमूल, महादेव, प्रभो ! तुमने संसार को उधाराहै ॥ २६ ॥ २७ ॥ हे जगन्नाथ ! तुम्हारे विना संसार दानवों से प्रभाहीन कियागया जैसे कि सूर्यके विना अन्धकारों से संसार प्रकाशहीन होताहै ॥ २८ ॥ उस समय हे देवि ! स्तोत्रको सुनकर कमललोचन विष्णुजी क्षीरसागर में जगानेवाले ब्रह्मादिक देवताओंसे बोले ॥ २९ ॥ कि हे देवताओ ! तुमलोग सब प्रकारसे दानवों से डरको छोड़ देवो मैं थोड़ेही समय में दानवों को मारूंगा ॥ ३० ॥ ऐसा कहकर देवताओं समेत विष्णुजी आये और उन्होंने चक्रसे अलग २ दानवोंको मारा ॥ ३१ ॥ भय से वि-

हतः ॥ २६ ॥ नारसिंहेनरूपेणअन्तरिक्षेधृतस्त्वया ॥ देवमूलमहादेव उद्धृतंभुवनम्प्रभो ॥ २७ ॥ त्वयाविनाजगन्नाथ भुवनंनिष्प्रभीकृतम् ॥ सूर्येणैवविहीनंहि तमोभिरिवदानवैः ॥२८ ॥ श्रुत्वास्तोत्रंतदादेवि विष्णुःकमललोचनः ॥ उवाच देवान्ब्रह्माद्यान् क्षीरोदार्णवबोधिनः ॥ २९ ॥ भयन्त्यजध्वंदेवावै दानवान्प्रतिसर्वथा ॥ अचिरेणैवकालेन घातयिष्यामिदानवान् ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वासुरैस्सार्द्धमाजगामजनार्द्दनः ॥ दानवान्घातयामास चक्रेणचपृथक्पृथक् ॥ ३१ ॥ भयार्तादानवास्सर्वे पलायनपरायणाः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्यसमुद्राभिमुखाभवन् ॥ ३२ ॥ नश्यमानान्ततोदृष्ट्वा दैत्यान्दैत्यविनाशनः ॥ सचक्रेतांश्चचक्रेण निश्शेषान्सर्वदानवान् ॥ ३३ ॥ हतेषुसर्वदैत्येषु देवद्विजतपस्विनाम् ॥ कल्याणमभवत्तत्र जगत्स्वस्थमनाकुलम् ॥ ३४ ॥ तत्प्रभृत्येवदेवस्य दैत्यसूदननामतत् ॥ दैत्यसूदनदेवस्य महाभाग्यंमहोदयम् ॥ ३५ ॥ तन्दृष्ट्वानजडोनान्धो नदरिद्रोनदुःखितः ॥ जायतेसप्तजन्मानि सत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ ३६ ॥ श्रवणे

कल सब दानव भागने में तत्पर होकर प्रभासक्षेत्र को आकर समुद्र के सामने हुये ॥ ३२ ॥ तदनन्तर दैत्योंको विनाशनेवाले उन विष्णुजीने भागतेहुये दैत्योंको देखकर सब दानवों को चक्रसे निःशेष किया ॥ ३३ ॥ और सब दानवों के मरने पर देवता, ब्राह्मण व तपस्वियोंका वहां कल्याणहुआ और आकुलता रहित संसार स्वस्थहुआ ॥ ३४ ॥ तभीसे लगाकर विष्णुदेवजी का वह दैत्यसूदन नाम हुआ दैत्यसूदनदेवजी का बड़ाभाग्य व बड़ा ऐश्वर्य है ॥ ३५ ॥ उनको देखकर मनुष्य

सात जन्मोंतक न जड़ होताहै और न अन्ध न दरिद्री न दुःखित होताहै यह मैं सत्य सत्य कहताहूं ॥ ३६ ॥ श्रवण नक्षत्र में द्वादशी तिथि पुण्यदायिनी होती है और रोहिणी नक्षत्र में अष्टमी उत्तम होतीहै शयन व उत्थापन में मनुष्य बड़े यत्नसे उपास कर ॥ ३७ ॥ दैत्यसूदन के समीप मनुष्य एकही उपवास से दश हज़ार उपवासों के फलको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ चाण्डाल व श्वपच और पशुपक्षी की योनि में प्राप्त भी पुरुष उस स्थानमें प्राणत्याग करनेपर अच्युत विष्णुजी के लोकको प्राप्त होताहै ॥ ३९ ॥ दैत्यसूदनके मध्य में स्थित भलीभांति श्रद्धासंयुत पुरुष कातिकी व वैशाखी में एक महीनातक उपासकरै ॥ ४० ॥ एक

द्वादशीपुण्या रोहिण्यांचाष्टमीशुभा ॥ शयनोत्थापनेचैव नरःकृत्वाप्रयत्नतः ॥ ३७ ॥ एकैकेनोपवासेन उपवासायुतं फलम् ॥ लभतेनात्रसन्देहो दैत्यसूदनसन्निधौ ॥ ३८ ॥ चाण्डालःश्वपचोवापि तिर्यग्योनिगतोपिवा ॥ प्राणत्यागेकृ तेतस्मिन्नच्युतंलोकमाप्नुयात् ॥ ३९ ॥ कार्त्तिक्यांचैववैशाख्यां मासमेकमुपोषयेत् ॥ दैत्यसूदनमध्यस्थः सम्यक्श्र द्धासमन्वितः ॥ ४० ॥ एकैकेनोपवासेन कोटिःकोटिःपृथक्पृथक् ॥ लभतेतत्फलंसर्वं विष्णुक्षेत्रप्रभावतः ॥ ४१ ॥ दीपंददातियस्तत्र मासंवापक्षमेववा ॥ एकैकदीपदानेनकोटिकोटिफलंलभेत् ॥ ४२ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य देवदे वंचतुर्भुजम् ॥ एकादश्यांनिराहारो पूजयित्वाच्युतंततः ॥ ४३ ॥ चातुर्मास्यंविधानेन दैत्यसूदनसन्निधौ ॥ नियमेन क्षिपेद्यस्तु तस्यतुष्यतिकेशवः ॥ ४४ ॥ अन्यक्षेत्रेषुयत्कृत्वाचातुर्मास्यानिकोटिशः ॥ लभतेतत्फलंसर्वं दैत्यसूदनदर्श नात् ॥ ४५ ॥ एकादश्यान्तुयस्तत्र कुरुतेजागरन्नरः ॥ गीतनृत्यैस्तथावाद्यैः प्रेक्षणीयैस्तथाविधैः ॥ ४६ ॥ सयाति

एक उपास से अलग अलग करोड़ करोड़ उपवास होतेहैं और विष्णुजी के क्षेत्र के प्रभाव से मनुष्य उस सब फलको प्राप्त होताहै ॥ ४१ ॥ जो पुरुष वहां महीना-भर या पक्षभर दीपदेता है वह एक एक दीपदान से करोड़ करोड़के फलको प्राप्तहोताहै ॥ ४२ ॥ एकादशीमें निराहार रहकर देवदेव चतुर्भुज अच्युतजी को पंचामृत से नहवाकर तदनन्तर पूजकर ॥ ४३ ॥ और दैत्यसूदन के समीप चातुर्मास्य को विधिसे जो पुरुष नियम से व्यतीत करता है उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ४४ ॥ अन्यक्षेत्रों में करोड़ों चातुर्मास्यव्रतोंको करके जो फल मिलताहै उस सब फल को मनुष्य दैत्यसूदनजी के दर्शन से पाताहै ॥ ४५ ॥ और एकादशी तिथि में

जो मनुष्य वैसे देखनेयोग्य गीत, नृत्य, बाजनों से वहां जागरण करता है ॥ ४६ ॥ वह विष्णुजी के लोकको जाताहै जिसको जाकर फिर नहीं लौटता है ॥ ४७ ॥ इकट्ठा कीहुई दशहज़ार हत्या व सोनेकी चोरी कि जिनकी संख्या नहीं है वे सब पहले कियेहुये पातक वहां एक जागरण से नाश होजाते हैं ॥ ४८ ॥ और जिन की निद्रा वहां जागरण से जातीरही वे लोग यमराज के मार्गको व पुरको व यम दूतोंको और खेटक (अस्त्रभेद) व असिपत्रवाले उस वनको स्वप्न में भी नहीं देखतेहैं ॥ ४९ ॥ व उपास करके जो द्वादशी तिथिमें भोजन करता है उसके सब पाप नाश होजाते हैं और तुलसीपत्र नैवेद्य करोड़ों हत्याका विनाशक है ॥ ५० ॥ हे

वैष्णवंल्लोकं गत्वायन्ननिवर्तते ॥ ४७ ॥ हत्यायुतानीहसुसंचितानिस्तेयानिरुक्मस्यनसन्तिसंख्याः ॥ नश्यन्तिचैकेन पुराकृतानि पापानिसर्वाण्यपिजागरेण ॥ ४८ ॥ यमस्यमार्गंनपुरंनदूतान् वनंचतत्खेटकखड्गपत्रम् ॥ स्वप्नेनपश्यन्तिचतेमनुष्या येषाङ्गताजागरणेननिद्रा ॥ ४९ ॥ कृत्वाचैवोपवासन्तु योऽश्नातिद्वादशीदिने ॥ नैवेद्यन्तुलसीपत्रं हत्याकोटिविनाशनम् ॥ ५० ॥ इतितेकथितन्देवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ दैत्यसूदनदेवस्य किमन्यत्परिपृच्छसि॥ ५१ ॥ पीतवस्त्राणिदेवस्य गांहिरण्यंचदापयेत् ॥ स्नात्वाचक्रेवरेतीर्थे सर्वपातकनाशने ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रेदैत्यसूदनमाहात्म्यन्नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ चक्रतीर्थेतियन्नाम त्वयाप्रोक्तंवृषध्वज ॥ कुत्रतिष्ठतितत्तीर्थं किंप्रभावंवदस्वमे ॥ १ ॥ ईश्वरउवाच ॥

देवि ! दैत्यसूदनदेवजी का यह पापनाशक वृत्तान्त तुमसे कहागया अन्य क्या पूंछती हो ॥ ५१ ॥ सब पातकों को नाश करनेवाले उत्तम चक्रतीर्थ में नहाकर पुरुष दैत्यसूदनदेवजी को पीलेवस्त्र, गऊ व सुवर्ण को देवै ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रेदैत्यसूदनमाहात्म्यंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि पृथ्वी में भयो है चक्रतीर्थ असख्यात । सो अस्सी अध्याय में अहै चरित विख्यात ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे वृषध्वज ! तुमने चक्रतीर्थ

ऐसा जो नाम कहा है, वह किस प्रभाववाला तीर्थ कहां स्थित है उसको मुझ से कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि पुरातनसमय देवासुरसंग्राम में विष्णुजीने दैत्योंको मारकर उसमें रक्त से रंगेहुये चक्रको धोयाहै ॥ २ ॥ वहां आपही विष्णुजी ने आठकोटि तीर्थों को लाकर सुदर्शनतीर्थ में शुद्धिकरके कल्पित किया ॥ ३ ॥ और तीर्थका नाम भी चक्रतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध किया आठकरोड़ व अस्सीज़ार तीर्थ ॥ ४ ॥ हे महादेवि ! उस चक्रतीर्थ में हैं इसमें सन्देह नहीं है सावधान चित्तवाला जो उत्तम मनुष्य उसमें स्नान करता है ॥ ५ ॥ वह सब तीर्थों के स्नानके समस्त फलको प्राप्त होताहै हे वरानने ! वहां आठकरोड़ तीर्थ बसते हैं ॥ ६ ॥

पुरादेवासुरेयुद्धे हत्वादैत्याञ्जनार्द्दनः ॥ चक्रंप्रक्षालयामास तत्रवैरक्तरञ्जितम् ॥ २ ॥ अष्टकोटीस्तुतीर्थानां तत्रानीयस्वयंहरिः ॥ तीर्थंप्रकल्पयामास शुद्धिंकृत्वासुदर्शने ॥ ३ ॥ तीर्थस्यचक्रेनामापि चक्रतीर्थमितिश्रुतम् ॥ अष्टायुतानितीर्थानामष्टौकोट्यस्तथैवच ॥ ४ ॥ तत्रसन्तिमहादेवि चक्रतीर्थेनसंशयः ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानमेकचित्तोनरोत्तमः ॥ ५ ॥ सर्वतीर्थाभिषेकस्य सप्राप्नोत्यखिलंफलम् ॥ तीर्थानामष्टकोट्यस्तु निवसन्तिवरानने ॥ ६ ॥ एकादश्यांविशेषेण चन्द्रसूर्यग्रहेतथा ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि यज्ञकोटिफलंलभेत् ॥ ७ ॥ तस्यैवकल्पनामानि शृणुतेकथयाम्यहम् ॥ कोटितीर्थंपूर्वकल्पे श्रीनिधानंद्वितीयके ॥ ८ ॥ तृतीयेशतधारञ्च चक्रतीर्थंचतुर्थके ॥ एवन्तेकल्पनामानि अतीतान्यखिलानिवै ॥ ९ ॥ कथितान्येवमन्यानि ज्ञेयानिविबुधैःक्रमात् ॥ तत्रयद्दीयतेदानं तस्यसङ्ख्यानविद्यते ॥ १० ॥ अर्द्धक्रोशप्रमाणंतद्विष्णुक्षेत्रंप्रकीर्त्तितम् ॥ ब्रह्महत्यानोपसर्पेत् सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ११ ॥ मासोपवासीतत्क्षेत्रे

व एकादशी में और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणमें विशेषकर बसते हैं हे महादेवि ! उसमें नहाकर मनुष्य करोड़यज्ञों के फलको पाताहै ॥ ७ ॥ उसीके कल्पोंवाले नामों को मैं तुमसे कहताहूं सुनिये कि पहले कल्पमें कोटितीर्थ व दूसरे में श्रीनिधान ॥ ८ ॥ तीसरे में शतधार व चौथेमें चक्रतीर्थ इसभांति सब बीतेहुये कल्पों के नाम तुमसे ॥ ९ ॥ कहेगये और इसीप्रकार अन्य नाम क्रमसे विद्वानोंसे जाननेयोग्यहैं वहां जो दान दियाजाताहै उसकी संख्या नहीं है ॥ १० ॥ आधेकोसकी प्रमाणमरवह

विष्णुक्षेत्र कहागया है वहां ब्रह्महत्या नहीं समीप जाती है इसको मैंने सत्य कहा है ॥ ११ ॥ उस क्षेत्रमें महीनेभर उपवास करनेवाला व अग्निहोत्री, पतिव्रता और अपने वेदको पढ़नेवाला व यज्ञ करनेवाला और चान्द्रायणादिक तप ॥ १२ ॥ पितरोंका विधिपूर्वक तिलोदकश्राद्ध एक रात्र,त्रिरात्रव्रत व कृच्छ्रसांतपनव्रत १३ ॥ और वहींपर मासोपवास व अन्य पुण्य करनेवाला पुरुष दैत्यसूदन के क्षेत्रको प्राप्त होकर जो कुछ करताहै ॥ १४ ॥ वह अन्यक्षेत्र से कोटिगुना पुण्यदायक होताहै इसमें सन्देह नहीं है उस उत्तम सुदर्शनतीर्थ में भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाला पुरुष सब पापोंसे पवित्रताकेलिये गोदान देवै चाण्डाल या श्वपच

अग्निहोत्रीपतिव्रता ॥ स्वाध्यायीयज्ञयाजीच तपश्चान्द्रायणादिकम् ॥ १२ ॥ तिलोदकञ्चपितॄणां श्राद्धंचविधिपूर्वकम् ॥ एकरात्रंत्रिरात्रंवा कृच्छ्रंसान्तपनंतथा ॥ १३ ॥ मासोपवासंतत्रैव अन्यद्वापुण्यकर्मकृत् ॥ दैत्यारिक्षेत्रमासाद्य यत्किञ्चित्कुरुतेनरः ॥ १४ ॥ अन्यत्क्षेत्रात्कोटिगुणं पुण्यंभूयान्नसंशयः ॥ सुदर्शनेवरेतीर्थे गोदानंतत्रदापयेत् ॥ १५ ॥ सम्यग्यात्राफलप्रेप्सुः सर्वपापविशुद्धये ॥ चाण्डालःश्वपचोवापि तिर्यग्योनिगतस्तथा ॥ १६ ॥ तस्मिंस्तीर्थेमृतस्सम्यक् अच्युतंलोकमाप्नुयात् ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं चक्रतीर्थसमुद्भवम् ॥ १७ ॥ माहात्म्यंसर्वपापघ्नं सर्वकामफलप्रदम् ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे चक्रतीर्थमाहात्म्यन्नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्यपूर्वेणसंस्थिताम् ॥ योगेश्वरींमहादेवीं योगसिद्धिफलप्रदाम् ॥ १ ॥ तदुत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि शृणुश्रद्धासमन्विता ॥ पुरादानवशार्दूलो महिषाख्योमहाबलः ॥ २ ॥ बभूवघोरोदेवेशि सर्वदेव

व पशु पक्षीकी योनिमें प्राप्त प्राणी ॥ १५ । १६ ॥ उस तीर्थ में मराहुआ भलीभांति विष्णुजी के लोकको पाताहै यह चक्रतीर्थ से उपजाहुआ माहात्म्य संक्षेप से कहा गया जोकि सब पातकों का विनाशक व सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ १७ । १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेचक्रतीर्थमाहात्म्यंनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

दो० । महिषासुर को हन्यो जिमि योगीश्वरी भवानि । इक्यासी अध्याय में सोइ चरित सुखखानि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उसके उपरान्त उनके पूर्व और स्थित योगकी सिद्धिके फलको देनेवाली योगेश्वरी महादेवी के समीप जावै ॥ १ ॥ उनकी उत्पत्ति को मैं कहताहूं तुम श्रद्धा से संयुक्त होकर सुनो पुरातन

समय दानवों में श्रेष्ठ महाबलवान् महिषासुर ॥ २ ॥ हे देवेशि ! विकराल व सब देवताओं को भयङ्कर हुआहै इच्छा के अनुकूल रूपधरनेवाला वह तीनोंलोकों को वशमें करके सुखीहुआ ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय लोकोंको रचनेवाले ब्रह्माजी ने पृथ्वीमें रूपसे असमान मनोमयी कन्याको बनाया ॥ ४ ॥ उस समय उस रूपवती कन्याने भयङ्कर तपस्या किया तदनन्तर हे वरानने ! किसी समय नारदजी ने उसको देखा ॥ ५ ॥ तदनन्तर हे देवि ! वे नारदजी अचानकही बड़े विस्मय को प्राप्तहुये कि आश्चर्यमयरूप व आश्चर्यवाला धैर्य व आश्चर्य है कि ऐसी सुन्दरता व आश्चर्यहै कि यह अवस्था ॥ ६ ॥ ऐसा विचारतेहुये नारदजीने वहां

भयङ्करः ॥ कामरूपस्सत्रींल्लोकान् वशेकृत्वाभवत्सुखी ॥ ३ कस्मिंश्चिदथकालेतु ब्रह्मणालोककारिणा ॥ सृष्टामनो मयीकन्या रूपेणप्रतिमाभुवि ॥ ४ ॥ अतपत्सातपोघोरं कन्यारूपवतीतदा ॥ नारदेनततोदृष्टा साकदाचिद्वरानने ॥ ५ ॥ ततस्ससहसादेवि विस्मयंपरमङ्गतः ॥ अहोरूपमहोधैर्यमहोकान्तिरहोवयः ॥ ६ ॥ इत्येवंचिन्तयंस्तत्र तान्नारी मिदमब्रवीत् ॥ कुरुष्वात्मप्रदानम्मे नमेदारपरिग्रहः ॥ ७ तवाहंदर्शनाद्देवि कामबाणेनपीडितः ॥ साब्रवीन्नहिमेका र्यं कामधर्मेणसत्तम ॥ ८ ॥ कौमारंव्रतमास्थाय साधयिष्येयथेप्सितम् ॥ नचमन्युस्त्वयाकार्यो ह्यस्मिन्नर्थेकथ ञ्चन ॥ ९ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा समुनिर्नारदःप्रिये ॥ समुद्रान्तेगमद्दिव्यां पुरींमहिषपालिताम् ॥ १० ॥ अर्थार्चितो मुनिस्तेन महिषेणमहात्मना ॥ पृष्टस्त्वनामयन्देवि दत्त्वाचार्घमनुत्तमम् ॥ ११ ॥ सोब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा किमागम

उस स्त्री से यह कहा कि मुझको अपनी देहका दानकरो क्योंकि मेरे स्त्री का परिग्रह नहीं है ॥ ७ ॥ हे देवि ! तुम्हारे दर्शन से मैं कामदेवके बाणसे पीड़ितहूं उसने कहा कि हे सत्तम ! कामके धर्मसे मेरा कार्य नहीं है ॥ ८ ॥ मैं कुमारव्रत में टिककर जैसा मनोरथ है उसको साधन करूंगी इसकार्य में तुमको किसीप्रकार क्रोध न करना चाहिये ॥ ९ ॥ हे प्रिये ! उस स्त्री के उसवचनको सुनकर वे नारदमुनि समुद्रके समीप महिषासुरसे पालन कीहुई दिव्यपुरीको गये ॥ १० ॥ इसके अनन्तर उस महात्मा महिषासुरने मुनिका पूजनकिया व हे देवि ! अतिउत्तम अर्घको देकर कुशल पूंछा ॥ ११ ॥ उसने हाथोंको जोड़कर कहा कि हे नारदजी ! आनेका क्या

कारणहै जो तुम्हारा उद्योगहो उसको कहिये मैं सब करूंगा ॥१२॥ इसके उपरान्त उन नारदमुनि ने दानवों के स्वामी महिषासुरसे कहा कि हे महासुर ! जम्बूद्वीपमें उत्तम कन्या पैदाहुई है ॥ १३ ॥ मैंने वैसे रूपको स्वर्ग, मृत्युलोक व पातालमें न देखाहै न सुनाहै कि जिससे मैं कामदेवके बाणसे वश कियागया ॥ १४ ॥ वह महिषासुर कामदेव को उत्पन्न करनेवाले उसके उत्तम वचन को सुनकर वहां गया जहां कि प्रभासक्षेत्रमें वह उत्तम आचरणोंवाली कन्या स्थित थी ॥ १५ ॥ बड़ीसेना से घिरेहुये महिषासुर ने उससे इसप्रकार प्रार्थना किया कि हे भीरो ! मेरी स्त्री होवो व सुन्दर भोगोंको भोग कीजिये ॥ १६ ॥ हे महाभागे ! यह तप तुम्हारे

नकारणम् ॥ ब्रूहियत्तेव्यवसितंसर्वंकर्त्तास्मिनारद ॥ १२॥ अथोवाचमुनिस्तत्र महिषन्दानवेश्वरम् ॥ कन्यारत्नंसमुत्पन्नं जम्बूद्वीपेमहासुर ॥ १३ ॥ स्वर्गेमर्त्येचपाताले नदृष्टंनचमेश्रुतम् ॥ तादृग्रूपमहंयेन कामबाणवशीकृतः ॥ १४ ॥ सश्रुत्वावचनंतस्य कामस्योत्पादनंपरम् ॥ जगामयत्रसासाध्वी क्षेत्रेप्राभासिकेस्थिता ॥ १५ ॥ तामेवंप्रार्थयामास बलेन महतावृतः ॥ भार्याभवस्वमेभीरो भुङ्क्ष्वभोगान्मनोरमान् ॥ १६ ॥ एतत्तपोमहाभागे विरुद्धंयौवनस्यते ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाजहासवरवर्णिनि ॥ १७ ॥ तस्याहसन्त्यादेवेशि शतशोथसहस्रशः ॥ निश्चेरुस्सहसानार्यः शस्त्रहस्ताभयानकाः ॥ १८ ॥ ताभिर्विध्वंसितंसैन्यं महिषस्यदुरात्मनः ॥ तस्मिन्निपात्यमानेतु सैन्येदानवसत्तमः ॥ १९ ॥ क्रोधंकृत्वाततश्शीघ्रं तामेवाभिमुखोययौ ॥ विधुन्वन्संहतेतीव्रे शृङ्गेभीक्ष्णंभयानके ॥ २० ॥ तयासार्द्धंचसुमहत्कृत्वायुद्धं महासुरः ॥ शृङ्गाभ्यांजगृहेदेवि सातस्योपरिसंस्थिता ॥ २१ ॥ पद्भ्यामाक्रम्यशूलेन निहतोदैत्यपुङ्गवः ॥ छिन्नेशि

यौवनके विरुद्ध है हे वरवर्णिनि ! उसके उस वचनको सुनकर वह हँसतीभई ॥ १७॥ हे देवेशि ! हँसती हुई उस भगवतीके मुखसे अचानकही शस्त्रोंको हाथमें लिये सैकड़ों व हज़ारों भयानक स्त्रियां निकलीं ॥ १८ ॥ और उन्होंने दुष्टात्मा महिषासुरकी सेनाको विध्वंस किया उस सेनाके नाश होनेपर श्रेष्ठदानव महिषासुर ॥ १९ ॥ क्रोधकर तदनन्तर शीघ्रही उसीके सामनेगया और सदैव भयङ्कर व पैने और पुष्ट गड़ेहुये सींगोंको वार२ कँपातेहुये उस॥२०॥महादैत्यने हे देवि ! उन भगवतीके साथ बड़ाभारी युद्धकर सींगोंसे ग्रहणकिया व उसके ऊपर भलीभांति स्थित उन भगवतीने॥२१॥चरणोंसे दबाकर त्रिशूलसे उस श्रेष्ठ दैत्यको मारडाला और तलवारसे मस्तक

के काटनेपर वैसे रूपवाला पुरुष निकला ॥ २२ ॥ व शस्त्रसे माराहुआ वह भयङ्कर दैत्य स्वर्गको गया, तदनन्तर इन्द्रादिक सब देवगण हारेहुए महिषासुरको देखकर प्रसन्न चित्तसे देवीजी की स्तुति किया ॥ २३ । २४ ॥ देवताबोले कि हे भीमदर्शने, गम्भीरे, महाभागे, देवि ! तुम्हारेलिये नमस्कारहै हे नयस्थिते, सुसिद्धेशि, त्रिनेत्रे, सर्वतोमुखे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ २५ ॥ हे विद्याविद्ये, जये, जप्ये, महिषासुरमर्दिनि ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे सर्वगे, सर्वविद्येशे, देवि, विश्वस्वरूपिणि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २६ ॥ हे शोकरहिते, कमलपत्रायतेक्षणे, ध्रुवे, देवि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे शुद्धसत्त्वे, व्रतस्थे, चण्डरूपे, विभावरि ! तुम्हारे

रसिखड्गेन तद्रूपोनिस्सृतःपुमान् ॥ २२ ॥ रौद्रोपिसगतस्स्वर्गं दैत्योवैशस्त्रपातितः ॥ ततोदेवगणास्सर्वे महिषंवीक्ष्यनिर्जितम् ॥ २३ ॥ महेन्द्राद्यास्स्तुतिंचक्रुर्देव्यास्तुष्टेनचेतसा ॥ २४ ॥ देवाऊचुः ॥ नमोदेविमहाभागे गम्भीरेभीमदर्शने ॥ नयस्थितेसुसिद्धेशि त्रिनेत्रेविश्वतोमुखे ॥ २५ ॥ विद्याविद्येजयेजप्ये महिषासुरमर्दिनि ॥ सर्वगेसर्वविद्येशे देविविश्वस्वरूपिणि ॥ २६ ॥ वीतशोकेध्रुवेदेवि पद्मपत्रायतेक्षणे ॥ शुद्धसत्त्वेव्रतस्थेच चण्डरूपेविभावरि ॥ २७ ॥ ऋद्धिसिद्धिप्रदेदेवि कालमृत्युधृतप्रिये ॥ शाङ्करिब्राह्मणिब्राह्मि सर्वदेवनमस्कृते ॥ २८ ॥ घण्टाहस्तेशूलहस्ते महामहिषमर्दिनि ॥ उग्ररूपेविरूपाक्षि महामायेनुतेशुभे ॥ २९ ॥ सर्वगेसर्वदेदेवि सर्वसत्त्वमयोद्भवे ॥ विद्यापुराणशिल्पानां जननीभूतधारिणी ॥ ३० ॥ सर्वदेवरहस्यानां सर्वसत्त्ववतांशुभे ॥ त्वमेवशरणन्देवि विद्याविद्येप्रियेऽप्रिये ॥ ३१ ॥ एवंस्तुतासुरैर्देवि प्रणयादृषिभिस्तथा ॥ उवाचहसतीवाक्यं वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ ३२ ॥ देवाऊचुः ॥ स्तवेनानेनयेदेवि

लिये प्रणाम है ॥ २७ ॥ हे ऋद्धिसिद्धिप्रदे, देवि, कालमृत्युघृतप्रिये, शांकरि, ब्राह्मणि, ब्राह्मि, सर्वदेवनमस्कृते ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ २८ ॥ हे घंटाहस्ते, त्रिशूलहस्ते, महामहिषमर्दिनि, उग्ररूपे, विरूपाक्षि, महामाये, नुते, शुभे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ २९ ॥ हे सर्वगे, सर्वदे, देवि, सर्वसत्यमयोद्भवे ! तुम विद्या, पुराण व शिल्पों की माताहो व प्राणियों को धारनेवालीहो ॥ ३० ॥ हे शुभे, देवि, विद्याविद्ये, प्रिये, अप्रिये ! सब देवताओं के रहस्यों की व सब प्राणियों की तुम्हीं शरणहो ॥ ३१ ॥ हे देवि ! इसप्रकार स्नेह से देवताओं व ऋषियोंसे स्तुतिकीहुई भगवती हंसतीहुई वचनको बोलीं कि उत्तम वरको मागिये ॥ ३२ ॥ देवता बोले

कि हे देवि ! यहांपर जो उत्तम पुरुष इस स्तोत्रसे स्तुतिकरैं वे श्रेष्ठों में श्रेष्ठ पुरुष सदैव कामनाओं से पूर्ण होवैं ॥ ३३ ॥ हे शुचिस्मिते ! इसक्षेत्र में तुमको सदैव निवास करनाचाहिये हे वराननने ! ऐसाही होवैगा यह देवताओं से कहकर वहदेवी ॥ ३४ ॥ ऋषिगणोंको बिदाकर वहींपर स्थितहुई हे वरानने ! कुंवारके शुक्लपक्ष की नवमी में जो पुरुष ॥ ३५ ॥ उपवासमें तत्परहोकर भक्तिसे उन भगवती को देखताहै उसका पाप वैसेही नाशहोजाताहै जैसे कि सूर्योदयमें अन्धकार नाशहोजाताहै ॥ ३६ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इसस्तोत्रको पढ़ताहै उसपुरुषको जीवनपर्यन्त भय नहीं प्राप्तहोताहै ॥ ३७ ॥ कुंवार महीने के शुक्लपक्षमें जो मूलनक्षत्रसे संयुत

स्तुवन्त्यत्रनरोत्तमाः ॥ तेसन्तुकामैस्सम्पूर्णा वरवर्य्यानिरन्तरम् ॥ ३३ ॥ अस्मिन्क्षेत्रेत्वयावासो नित्यंकार्यश्शुचिस्मिते ॥ एवमस्त्वितिसादेवी देवानुक्त्वावरानने ॥ ३४ ॥ विसृज्यऋषिसङ्घांश्च तत्रैवनिरताभवत् ॥ अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य नवम्यांयोवरानने ॥ ३५ ॥ उपवासपरोभूत्वा तांपश्यतिचभक्तितः ॥ तस्यपापंक्षयंयाति तमस्सूर्योदयेयथा ॥ ३६ ॥ यएतत्पठतेस्तोत्रं प्रातरुत्थायमानवः ॥ नभीस्सम्पद्यतेतस्य यावज्जीवंनरस्यवै ॥ ३७ ॥ अश्वयुक्शुक्लपक्षेया अष्टमीमूलसंयुता ॥ सामहानवमीप्रोक्ता त्रैलोक्येपिसुदुर्ल्लभा ॥ ३८ ॥ कन्यागतेसवितरि शुक्लपक्षेष्टमीतुया ॥ मूलनक्षत्रसंयुक्ता सामहानवमीस्मृता ॥ ३९ ॥ अष्टम्याञ्चनवम्याञ्च जगन्मातरमम्बिकाम् ॥ पूजयित्वाश्विनेमासि विशेषाज्जयतिद्विषः ॥ ४० ॥ तस्यांयेउपयुज्यन्ते प्राणिनोमहिषादयः ॥ सर्वेतेस्वर्गतिंयान्ति घ्नतांपापन्नविद्यते ॥ ४१ ॥ नतथाबलिदानेन चतुष्पथविलेपनैः ॥ यथासन्तुष्यतेमेषैर्महिषैर्विन्ध्यवासिनी ॥ ४२ ॥ उद्दिश्यदुर्गांह

अष्टमी होती है वह महानवमी त्रिलोकमें भी दुर्लभ कहीगई है ॥ ३८ ॥ और सूर्यके कन्या राशिमें प्राप्तहोनेपर शुक्लपक्षमें जो अष्टमीहै मूलनक्षत्रसे संयुत वह महानवमी कहीगई है ॥ ३९ ॥ कुंवार महीनेमें अष्टमी व नवमी तिथिमें संसारकी माता अंबिकाजी को पूजकर मनुष्य विशेषकर शत्रुवोंको जीतताहै ॥४०॥ और उस तिथिमें जो महिषादिकजन्तु बलिप्रदानकिये जाते हैं वे सब स्वर्गकी गतिको प्राप्तहोतेहैं और मारनेवालों को पाप नहीं होताहै ॥ ४१ ॥ जिसप्रकार भेंड़ा व भैंसों के बलिप्रदान से

विन्ध्यवासिनी भगवती प्रसन्नहोती हैं उसप्रकार चौराहों के लीपने से नहीं सन्तुष्ट होती हैं ॥ ४२ ॥ हे देवेशि ! दुर्गाजी को उद्देशकर जो जन्तु विधिसे मारेजाते हैं वे और भक्तिसे मारनेवाले भी स्वर्गको जाते हैं ॥ ४३ ॥ हे वरानने ! भवानीजी के आंगन में जिनके प्राणनाशहोते हैं उनका निश्चयकर स्वर्ग में निवासहोता है और वे वीर अप्सराओं को प्यारेहोते हैं ॥ ४४ ॥ हे सुरेश्वरि ! सब मन्वन्तरों व कल्पादिकों में यही क्रम कहागयाहै और इस समय विशेषको सुनिये ॥ ४५ ॥ कि कुंवारके शुक्लपक्ष में जो पापनाशिनी पंचमी है उसमें रात्रिको मंत्रों से भूषित तलवारको पूजै ॥ ४६ ॥ और पताकाओं से भूषित पूर्व व उत्तरको नीचे स्थान में वहां

न्यन्ते विधिनायेतुजन्तवः ॥ तेयान्तिस्वर्गन्देवेशि घातयन्तोपिभक्तितः ॥ ४३ ॥ भवानीप्राङ्गणेप्राणा येषांयातावरानने ॥ तेषांस्वर्गेध्रुवंवासो वीरास्तेप्सरसांप्रियाः ॥ ४४ ॥ मन्वन्तरेषुसर्वेषु कल्पादिषुसुरेश्वरि ॥ एषएवक्रमःप्रोक्तो विशेषंशृणुसाम्प्रतम् ॥ ४५ ॥ अश्वयुक्शुक्लपक्षेया पञ्चमीपापनाशिनी ॥ तस्याञ्चपूजयेद्रात्रौ खड्गंमन्त्रैर्विभूषितम् ॥ ४६ ॥ मण्डपंकारयेत्तत्र नवसप्तकरन्तथा ॥ प्रागुदक्प्रवणेदेशे पताकाभिरलङ्कृते ॥ ४७ ॥ योगेश्वर्यास्सन्निधानं विधिनाकारयेद्द्विजः ॥ आग्नेय्यांकारयेत्कुण्डं हस्तमात्रंसुशोभनम् ॥ ४८ ॥ मेखलात्रयसंयुक्तं योन्याश्वत्थदलाकृति ॥ शस्त्रोक्तमन्त्रैर्होतव्यं पायसंघृतसंयुतम् ॥ ४९ ॥ ततःखड्गन्तुसंस्नाप्य पञ्चामृतरसेनवै ॥ पूजयेद्विविधैः पुष्पैर्मन्त्रपूर्वंद्विजोत्तमः ॥ ५० ॥ असिर्विशसनःखड्गः प्राणिभूतोदुरासदः ॥ श्रीगर्भोविजयश्चैव धर्माधारस्तथैवच ॥ ५१ ॥ इत्यष्टौतवनामानि स्वयमुक्तानिवेधसा ॥ नक्षत्रंकृत्तिकातुभ्यं गुरुर्देवोमहेश्वरः ॥ ५२ ॥ हिरण्यञ्चशरीरन्ते धाता

सोलह हाथका मंडप बनवावै ॥ ४७ ॥ और विधिसे ब्राह्मण योगेश्वरीकी सन्निधान (समीपता) करावै व अग्नेय कुण्ड में हाथभर उत्तम कुण्डको बनवावै ॥ ४८ ॥ जो कि तीन मेखलाओं से संयुत व पीपलके पत्ते के आकारवाली योनिसे युक्तहोवै और शास्त्र में कहेहुए मन्त्रों से घृतसंयुक्त खीरको हवन करना चाहिये ॥ ४९ ॥ तदनन्तर पञ्चामृत के रससे तलवारको नहवाकर द्विजोत्तम अनेकभांति के पुष्पों से मन्त्रपूर्वक पूजनकरै ॥ ५० असि, विशसन, खड्ग, प्राणिभूत, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय व धर्माधार ॥ ५१ ॥ ये आठ तुम्हारे नाम आपही ब्रह्माजीसे कहेगये हैं तुम्हारा कृत्तिका नक्षत्रहै व गुरु महेश्वर देवजी हैं ॥ ५२ ॥ और सुवर्ण तुम्हारा

शरीरहै व महेश्वरदेवजी माताहैं और पिता महादेवजी हैं तुम हमलोगों को सदैव पालनकरो ॥ ५३ ॥ यह खड्ग का मन्त्रहै ॥ इसप्रकारे उस तलवारको विधिमें भलीभांति पूजकर द्विजोत्तम नन्दिघोषपूर्वक रात्रिको नगर में घुमावै ॥ ५४ ॥ और वहां द्विजोत्तमों से व सब सेना से संयुक्तहोवै इसप्रकार विधिकरके फिर योगीश्वरीजी को लावै ॥ ५५ ॥ और इस मन्त्रको उच्चारणकर देवीजीके लिये तलवारको देवै कि हे कुंकुमसेलिप्त ! व चन्दनसे विलेपित ! ॥ ५६ ॥ हे देवेशि ! हे बिल्वपत्र से मालाको कियेहुए, दुर्गे ! मैं तुम्हारी शरण में प्राप्तहूं इसप्रकार अर्घको देकर वहां तलवारको पूजै ॥ ५७ ॥ जब तक अष्टमीहोवै तब तक नित्यही इस

देवोमहेश्वरः ॥ पितापितामहोदेवस्त्वन्नःपालयसर्वदा ॥ ५३ ॥ इति खड्गमन्त्रः ॥ एवंसम्पूज्यविधिना तंखड्गंब्राह्मणोत्तमः ॥ भ्रामयेन्नगरेरात्रौ नन्दिघोषपुरस्सरः ॥ ५४ ॥ सर्वसैन्येनसंयुक्तस्तत्रब्राह्मणपुङ्गवैः ॥ एवंकृत्वाविधानन्तु पुनर्योगेश्वरीन्नयेत् ॥ ५५ ॥ उच्चार्यमन्त्रमेतद्वै खड्गंदेव्यैसमर्पयेत् ॥ कुङ्कुमेनसमालिप्ते चन्दनेनविलेपिते ॥ ५६ ॥ बिल्वपत्रकृतामाले दुर्गेहंशरणङ्गतः ॥ दत्त्वैवमर्घन्देवेशि तत्रखड्गंचपूजयेत् ॥ ५७ ॥ नित्यंसम्पूज्यविधिना अष्टम्यांयावदेवहि ॥ ५८ ॥ अष्टम्यांजागरश्चैव प्रभातेअरुणोदये ॥ पातयेन्महिषान्मेषानग्रतोगतकन्धरान् ॥ ५९ ॥ शतमर्द्धशतंवापि तदर्द्धार्द्धंयथेच्छया ॥ सुरासवभृतैःकुम्भैस्तर्पयेत्परमेश्वरीम् ॥ ६० ॥ कापालिकेभ्यस्तद्देयं दासीदासजनेतथा ॥ ततोपराह्णसमये नवम्यांस्यन्दनेस्थिताम् ॥ ६१ ॥ योगेश्वरींभ्रामयेद्रात्रौ स्वयंराजाचसैन्यवान् ॥ नदद्भिश्शङ्खपटहैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः ॥ ६२ ॥ भूतेभ्यश्चबलिंदद्यात् मन्त्रेणानेनभामिनि ॥ सरक्तंसजलंस्नानं गन्ध

प्रकार विधिसे भलीभांति पूजकर ॥ ५८ ॥ अष्टमी में जागरणकरै और प्रातःकाल अरुणोदयहोनेपर आगे कन्धों से हीन भैंसों व भेड़ोंको पातनकरै याने बलिप्रदान करावै ॥ ५९ ॥ अपनी इच्छा से सौ व पचास अथवा उसके आधे याने पच्चीस महिष व मेषों का बलिप्रदान करावै और मदिराके आसवसे भरेहुए कलशोंसे परमेश्वरीको तृप्तकरै ॥ ६० ॥ और उसको कापालिक व दासी तथा दासजनों के लिये देना चाहिये उसके उपरान्त नवमी तिथिमें दुपहर के इसपार रथपै स्थित ॥ ६१ ॥ योगीश्वरीजी को रात्रि में शंख व नगाड़ों के शब्द होनेपर तथा बहुत अप्सराओं के गण नाचनेपर सेनावान् आपही राजा घुमावै ॥ ६२ ॥ व हे भामिनि ! इस

मन्त्रसे भूतोंके लिये रक्तसमेत बलिदेवै और चन्दन, पुष्प व अक्षतों से संयुक्त व जलसमेत स्नान करना चाहिये ॥ ६३ ॥ और दिशाओं व विदिशाओं में त्रिशूल से तीन तीन बार बलि को फेंकै व कहै कि आदित्य व वसुदेवता मेरी बलि को ग्रहण करें ॥ ६४ ॥ और पवन, अश्विनीकुमार, रुद्र, सुपर्ण, नाग, ग्रह व भूत, प्रेत तृप्त होकर सुखदायक व सौम्य होवैं ॥ ६५ ॥ इसप्रकार क्षेत्र में बसनेवाले जो ब्राह्मण यात्रा करते हैं उनके न शत्रु होते हैं न अग्नि, न चोर बाधाकरते हैं और न विनायक ॥ ६६ ॥ हे देवेशि ! योगेश्वरी की प्रसन्नता से विघ्न करते हैं यहां पर यह योगेश्वरी का बड़ा भारी उत्सव तुम से कहा गया ॥ ६७ ॥ जो कि पढ़ने व सुनने-

पुष्पाक्षतैर्युतम् ॥ ६३ ॥ त्रीन्त्रीन्वारान्त्रिशूलेन दिग्विदिक्षु क्षिपेद्बलिम् ॥ बलिंगृह्णन्तुमेदेवा आदित्यावसवस्तथा ॥ ६४ ॥ मरुतोथाश्विनौरुद्रास्सुपर्णाःपन्नगाग्रहाः ॥ सौम्याभवन्तुतृप्ताश्च भूतप्रेतास्सुखावहाः ॥ ६५ ॥ एवंयेकुर्वतेयात्रां ब्राह्मणाःक्षेत्रवासिनः ॥ नतेषांशत्रवोनाग्निर्नचौरानविनायकाः ॥ ६६ ॥ विघ्नंकुर्वन्तिदेवेशि योगेश्वर्याःप्रसादतः ॥ इतितेत्रसमाख्यातो योगेश्वर्यामहोत्सवः ॥ ६७ ॥ पठतांशृण्वतांचैव सर्वाशुभविनाशनः ॥ ६८ ॥ शूलाग्रभिन्नमहिषासुरपृष्ठभागां नित्यांसुखड्गरुचिराङ्गदबाहुदण्डाम् ॥ अभ्यर्च्यपञ्चवदनानुगतान्नवम्यां दुर्गांसुदुर्गगहनानितरन्तिमर्त्याः ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे योगेश्वर्यामाहात्म्यन्नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि आदिनारायणंहरिम् ॥ तस्याश्चपूर्वदिग्भागे सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ पादु

वालों के सब अमङ्गलों का नाशक है ॥ ६८ ॥ त्रिशूल के अग्रभाग से महिषासुर के पृष्ठभाग को काटनेवाली व उत्तम तलवार तथा सुन्दर बजुल्ले को भुजदण्ड में धारेहुई अविनाशिनी व पञ्चमुख (शिव) जी की अनुगामिनी दुर्गाजीको नवमी तिथि में पूजकर मनुष्य कठिन विपत्तियोंको नांघ जाते हैं ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयोगेश्वर्यामाहात्म्यंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । आदि नरायनदेव जिमि मेघवाह नहिं काहि । हन्यो सोइ उत्तम कथा कह्यो बयासी माहिं ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसी के पूर्व दिशा

के भागमें समस्त पातकों के नाशनेवाले आदिनारायण विष्णुजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जो कि पादुकाओं के आसन से संयुक्त व समस्त दैत्यों के नाश कारक हैं हे देवि ! पहले सतयुग में मेघवाहन दैत्य हुआ है ॥ २ ॥ वह बड़ा बलवान् व बड़े शरीरवाला तथा दशहज़ार योजन चौड़ा और सब देवताओं के अजेय व त्रिलोक का क्षयकारक था ॥ ३ ॥ हे वरानने ! उसको प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माने वरदान दिया कि जब विष्णुजी समरमें तुमको पादुका से मारेंगे ॥ ४ ॥ तभी तुम्हारी मौत होगी अन्यथा तुम्हारी मृत्यु न होगी इसप्रकार वरदान को पायेहुये वह दैत्य पृथ्वी को विकल करता था ॥ ५ ॥ हे देवि ! एक करोड़ युगों तक देवता, दैत्य व मनुष्यों

कासनसंयुक्तं सर्वदैत्यान्तकारिणम् ॥ आदौकृतयुगेदेवि दैत्योभून्मेघवाहनः ॥ २ ॥ महाबलोमहाकायो योजनायुत विस्तरः ॥ अजेयस्सर्वदेवानां त्रैलोक्यक्षयकारकः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणातस्यतुष्टेन वरोदत्तोवरानने ॥ यदापादुकयाविष्णु स्त्वांहनिष्यतिसंयुगे ॥ ४ ॥ तदैवमृत्युर्भविता नान्यथामरणन्तव ॥ इतिलब्धवरोदैत्यस्सन्तापयतिभूतलम् ॥ ५ ॥ युगानांकोटिरेकातु सदेवासुरमानुषम् ॥ सन्ताप्यबहुधादेवि दक्षिणोदधिमागतः ॥ ६ ॥ तत्रविध्वंसयामास ऋषीणामाश्रमाणिवै ॥ ततस्तेऋषयस्सर्वे विध्वस्ताश्रमकेतनाः ॥ ७ ॥ अजेयन्तन्तुसंज्ञात्वा तुष्टुवुर्गरुडध्वजम् ॥ ८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ नमःपरमकल्याण कल्याणायात्मयोगिने ॥ जनार्दनायदेवाय श्रीधरायसुवेधसे ॥ ९ ॥ नमःपरमकिञ्जल्क सुवर्णमुकुटायच ॥ केशवायातिसूक्ष्माय बृहन्मूर्त्तेनमोनमः ॥ १० ॥ नमःपङ्कजनाभाय हरयेहरिवेधसे ॥ नमोहिरण्यगर्भाय जगतःकारणात्मने ॥ ११ ॥ अच्युतायनमोनित्यमुन्नतायनमोनमः ॥ नमोमायापटच्छन्न जगद्धात्रेमहात्म

समेत संसार को बहुतभांति से व्याकुलकर दक्षिणसमुद्र को आया ॥ ६ ॥ वहां ऋषियों के आश्रमों को उसने नष्ट किया तदनन्तर विध्वंस कियेहुये आश्रम व स्थानोंवाले उन सब ऋषियों ने ॥ ७ ॥ उस को न जीतने योग्य जानकर विष्णुजी की स्तुतिकिया ॥ ८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे परमकल्याण ! काल्याणरूपवाले आत्मयोगी के लिये नमस्कार है व जनार्दन, देव, श्रीधर और ब्रह्मारूपवाले के लिये प्रणाम है ॥ ९ ॥ हे परमकिंजल्क ! सोने के मुकुटवाले के लिये प्रणाम है हे बृहन्मूर्ते ! अतिसूक्ष्म केशवजी के लिये नमस्कार है ॥ १० ॥ व शिव तथा ब्रह्मारूपवाले कमलनाभ विष्णुजी के लिये प्रणाम है व संसारके कारणात्मक हिर-

एयगर्भजी के लिये नमस्कार है ॥ ११ ॥ अच्युतजी के लिये प्रणाम है व नित्यही उन्नतके लिये प्रणामहै हे मायारूपी वसनसे छिपेहुये ! संसारके धारनेवाले महात्मा के लिये प्रणाम है ॥ १२ ॥ संसाररूपी समुद्र के उतारने में ज्ञानरूपी जहाज़ को देनेवाले के लिये व तेज बुद्धिवाले तथा धाता और सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले के लिये प्रणाम है ॥ १३ ॥ जैसे वासुदेव ऐसा कहा हुआ नाम पातकों का विनाशक कहागया है वैसेही यह मेघवाहन दैत्य नाशको प्राप्त होवै ॥ १४ ॥ जैसे विष्णुजी के भक्तों में पातक ठिकाना नहीं पाता है वैसेही यह पापकर्मों का करनेवाला दैत्य नाशको प्राप्त होवै ॥ १५ ॥ जैसे स्मरण कियेहुये विष्णुजी सब पापको

ने ॥ १२ ॥ संसारसागरोत्तार ज्ञानपोतप्रदायिने ॥ अकुण्ठमतयेधात्रे सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ १३ ॥ यथाहिवासुदेवेति प्रोक्तंपातकनाशनम् ॥ तथाविलयमभ्येतु दैत्योयंमेघवाहनः ॥ १४ ॥ यथानविष्णुभक्तेषु पापंनाप्नोतिसंस्थितिम् ॥ तथाविनाशमायातु दैत्योयंपापकर्मकृत् ॥ १५ ॥ स्मृतमात्रोयथाविष्णुस्सर्वपापंव्यपोहति ॥ तथाप्रणाशमभ्येतु दैत्योयंमेघवाहनः ॥ १६ ॥ भवन्तुभद्राणिसमस्तदोषाः प्रयान्तुनाशंजगतोखिलस्य ॥ अभ्येत्यभक्त्यापरमेश्वरस्यस्मृते जगद्धातरिवासुदेवे ॥ १७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इतिस्तुतस्तदादेवि आदिनारायणोहरिः ॥ ज्ञात्वासम्भाविकार्यंतत् समारुह्यचपादुके ॥ १८ ॥ बभूवतेषांप्रत्यक्ष ऋषीणांपापनाशनः ॥ उवाचप्रणतान्सर्वान्किंकार्यंहृदिसंस्थितम् ॥ १९ ॥ कथ्यतांतत्करिष्यामि युष्मत्स्तोत्रेणतर्पितः ॥ इत्युक्तेऋषयस्सर्वे कृताञ्जलिपुटाःस्थिताः ॥ २० ॥ आदिदेवंहरिंप्रोचुः

नाश करते हैं वैसेही यह मेघवाहन दैत्य नाश को प्राप्त होवै ॥ १६ ॥ भक्ति से परमेश्वर के सामने आकर संसार के धारनेवाले विष्णुजी के स्मरण करनेपर कल्याण होवै और सब संसार के समस्त दोष नाशको प्राप्त होवैं ॥ १७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! उस समय इसप्रकार स्तुति कियेहुये आदिनारायण विष्णुजी होनेवाले उस कार्य को जानकर पादुकाओं पर चढ़कर ॥ १८ ॥ उन ऋषियों के नेत्रों के सामने हुये व उन पापनाशक विष्णुजी ने प्रणाम कियेहुये सब ऋषियों से बोले कि हृदय में क्या कार्य स्थितहै ॥ १९ ॥ उसको कहिये तुम्हारे स्तोत्रसे तृप्त कियाहुआ मैं उसको करूंगा ऐसा कहनेपर सब ऋषि हाथों को जोड़कर खड़ेहुये ॥ २० ॥

और कन्धाको झुकायेहुये सब ऋषियोंने आदिदेव विष्णुजीसे कहा ॥ २१ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे देव ! तुम सब जानतेहो तुमसे कुछ छिपा नहीं है हे महादेव ! इस महाबलवान् दैत्यको मारिये ॥ २२ ॥ कि जिसप्रकार यह सब संसार सन्ताप रहित होवै उससमय उन ऋषियों से ऐसा कहेहुये विष्णुजी ने युद्ध में दैत्य को बुलाकर ॥ २३ ॥ हे शुभे ! पादुकासे उस दैत्यके हृदय में मारा और माराहुआ वह दैत्य जीवरहित होकर समुद्रमें गिराया गया॥ २४ ॥ उस श्रेष्ठ दैत्यको मारकर विष्णुदेवजी उस स्थान में स्थित हुये वहां पर हे वरानने ! आजभी विष्णुजी पादुकाओं के आसन पै स्थित हैं ॥ २५ ॥ जो उत्तम मनुष्य एकादशी तिथि में उन

सर्वेनतशिरोधराः ॥ २१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ जानासिसर्वंत्वन्देव नचास्त्यविदितंतव ॥ इमंदैत्यंमहादेव संहरस्वमहाबलम् ॥ २२ ॥ यथेदंसकलंविश्वं निरातङ्कंभवेत्प्रभो ॥ इत्युक्तस्तैस्तदाविष्णुर्दैत्यमाहूयसंयुगे ॥ २३ ॥ ताडयामास तन्दैत्यं हृदिपादुकयाशुभे ॥ सहतःपतितोदैत्योविगतासुर्महोदधौ ॥ २४ ॥ हत्वादैत्यवरन्देवस्तत्रस्थानेस्थितोभवत् ॥ पादुकासनसंस्थस्तु तत्राद्यापिवरानने ॥ २५ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या एकादश्यान्नरोत्तमः ॥ सोश्वमेधफलंप्राप्य मोदतेदिविदेववत् ॥ २६ ॥ गोलक्षंब्राह्मणेदत्त्वा यत्फलंप्राप्नुयान्नरः ॥ तदादिदेवंगोविन्दं दृष्ट्वाभक्त्याफलंलभेत ॥२७॥ कलौकृतयुगस्तेषां क्लेशास्तेषांसुखाधिकाः ॥ आदिनारायणोदेवो येषांहृदयसंस्थितः ॥ २८ ॥ एकादश्यांरविदिने स्नात्वासन्निहितोजले ॥ आदिनारायणंपूज्य मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ २९ ॥ इतितेकथितन्देवि माहा

विष्णुजी को भक्तिसे पूजताहै वह अश्वमेध यज्ञके फलको पाकर स्वर्ग में देवताओं की नाईं आनन्द करता है ॥ २६ ॥ ब्राह्मण के लिये लाख गौवों को देकर मनुष्य जिस फलको पाता है भक्ति से आदिदेव गोविन्दजी को देखकर उस फलको पाता है ॥ २७ ॥ और कलियुग में उनको सतयुग होताहै व उनको क्लेश अधिक सुखवाले होते हैं कि आदिनारायणदेवजी जिनके हृदय में भलीभांति टिके हैं ॥ २८ ॥ रविवार को एकादशी तिथि में जल में स्थित होकर मनुष्य आदिनारायण

जी को पूजकर संसार के बन्धनसे छूटजाता है ॥ २९ ॥ हे देवि ! मनुष्यों के दरिद्रसमूह का नाशक व पापहारक विष्णुदेवतावाला यह उत्तम माहात्म्य तुम से कहा गया ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रेआदिनारायणमाहात्म्यंनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ॥

दो॰। सन्निहिता जिमि नदी भइ क्षेत्रप्रभासहिं बीच ॥ तिरासिवें अध्यायमें सोइ कथा रससीच ॥ देवीजी बोलीं कि हे वृषध्वज देव ! वहा पर जो तुमसे सन्निहिता कहीगई है वह महानदी कैसे कुरुक्षेत्रसे आई है ॥ १ ॥ और उसके स्नानादिक से क्या फल होताहै व कैसे प्रभाववाली वह कहीगई है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे

त्म्यंविष्णुदैवतम्॥शुभंपापहरंनृणांदारिद्र्यौघविनाशनम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे आदिनारायणमाहात्म्यन्नामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ तत्रसन्निहिताप्रोक्ता यात्वयावृषभध्वज ॥ कथन्देवसमायाता कुरुक्षेत्रान्महानदी ॥ १ ॥ किंप्रभावातुसा प्रोक्ता फलंस्नानादिकेनकिम् ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि यत्रसन्निहिताशुभा ॥ पापघ्नीसर्वजन्तूनांस्पर्शनादर्शनादपि ॥ ३ ॥ आदिनारायणाद्देवि पश्चिमेधनुषांत्रये ॥ संस्थितासामहादेवी सरिद्रूपामहानदी ॥ ४ ॥ कथयामिसमासेन तदुत्पत्तिंशृणुप्रिये ॥ जरासन्धभयाद्देवि विष्णुःपरिजनैस्सह ॥ ५ ॥ गृहीत्वायादवान्सर्वान् वालवृद्धवणिक्जनान् ॥ सशून्यांमथुरांकृत्वा प्रभासंसमुपागतः ॥ ६ ॥ समुद्रंप्रार्थयामास स्थानंसंवासहेतवे ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु देवदेवोदिवाकरः ॥ ७ ॥ संग्रस्तोराहुणादेवि पर्वकालेह्युपस्थिते ॥ तदातुयादवान्सर्वांस्तानुवाचजनार्दनः ॥ ८

देवि ! सुनिये कि जहां पर स्पर्शन व दर्शन से सब प्राणियों के पापों को नाशनेवाली वह उत्तम सन्निहिता नदी है ॥ ३ ॥ हे देवि ! आदिनारायणजी से तीन धनुष पश्चिम में वह नदीरूपिणी महादेवी महानदी स्थित है ॥ ४ ॥ हे प्रिये ! संक्षेपसे उसकी उत्पत्ति को मैं कहताहू सुनिये हे देवि ! जरासन्ध के डर से कुटुम्बियों समेत वे विष्णुजी ॥ ५ ॥ बालक, वृद्ध व बनिया और सब यादवोंको लेकर मथुरापुरी को शून्यकर वे प्रभासक्षेत्र में आये ॥ ६ ॥ और उन्होंने निवास के लिये समुद्रसे स्थानको मांगा इसीसमय में देव देव सूर्यनारायणजी ॥ ७ ॥ हे देवि ! पर्वसमय प्राप्त होनेपर राहु से ग्रस्तहुये तब विष्णुजी उन सब यादवों से बोले कि

मेरे प्रभाव को आज देखिये जो कि पृथ्वीमें मेरा धर्म है ॥ ८ ॥ मैं पवित्र सान्निहित तड़ागको भलीभांति लाऊंगा तदनन्तर वहां पर दैत्यों के शत्रु यादवों के स्नान के लिये धरातल को फोड़कर बहुतही उत्तम जलकी धारा प्रगटहुई उसके उपरान्त बलभद्र व साम्ब आदिक उन सब यादवों ने ॥ ९ । १० ॥ हे महादेवि ! स्नान किया राहु से सूर्यनारायण के ग्रस्त होनेपर वहां मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञके समस्त फलको पाताहै ॥ ११ ॥ और एक एक आहुति के दानसे कोटि होमके फलको प्राप्त होताहै और यदि उस स्थानमें स्थित होकर मनुष्य मन्त्रका जप करताहै ॥ १२ ॥ तो एक एक मन्त्रके जपसे करोड़ जपके फलको पाताहै और यात्राके फलको चाहने-

श्यतांमत्प्रभावोद्य यद्धर्मममभूतले ॥ ८ ॥ आनयिष्याम्यहंमम्यक्पुण्यंसन्निहितंमरः ॥ प्रादुर्भूताततस्तत्र वारिधाराभूशंशुभा ॥ ९ ॥ विभिद्यधरणीपृष्ठं स्नानार्थंचासुरद्विषाम् ॥ ततस्तेयादवास्सर्वे रामसाम्बपुरोगमाः ॥ १० ॥ चक्रुः स्नानं महादेवि राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य फलंप्राप्नोत्यशेषतः ॥ ११ ॥ एकैकाहुतिदानेन कोटिहोमफलंलभेत् ॥ मन्त्रजाप्यन्नुकुरुते तत्रस्थानेस्थितोयदि ॥ १२ ॥ एकैकमन्त्रजाप्येन कोटिजाप्यफलंलभेत् ॥ सुवर्णदानंदातव्यं तत्रयात्राफलेप्सुभिः ॥ १३ ॥ स्नात्वासम्पूजनीयस्तु आदिदेवोजनार्द्दनः ॥ इतितेकथितंसम्यक्फलंसन्निहितन्तव ॥ १४ ॥ श्रुतंपापहरंनृणां सम्यक्श्रद्धावताम्प्रिये ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सन्निहितामाहात्म्यन्नामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यास्तिदक्षिणेभागे स्थितंलिङ्गंमहाप्रभम् ॥ पाण्डवेश्वरनामानं पञ्चभिस्स्थापितंक्रमात् ॥ १ ॥

वाले पुरुषों को वहां सुवर्ण का दान देनाचाहिये ॥ १३ ॥ और स्नान करके आदिदेव जनार्दनजी पूजने योग्य हैं यह भलीभांति सान्निहित तड़ागका फल तुम से कहागया ॥ १४ ॥ भलीभांति सुनाहुआ जो कि श्रद्धावाले मनुष्यों के पातकों का विनाशक है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसन्निहितामाहात्म्यंनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । पाण्डवेश नामक शिवहिं थाप्यो पांडव पांच । चौरासी अध्याय में सोइ कथा सब सांच ॥ महादेवजी बोले कि उसके दक्षिणभाग मे महाप्रभावान् लिङ्ग

स्थित है पांचों पाण्डवों से थापेहुये उन पांडवेश्वर नामक शिवजी को देखे ॥ १॥ जब गुप्तचर्या को प्राप्त हुये तब वनवासी पाण्डव तीर्थयात्राके प्रसङ्ग से प्रभास क्षेत्रको आये ॥ २ ॥ तब हे देवि ! उस समय सोमपर्व (चन्द्रमाका ग्रहण) प्राप्त होनेपर उन सबोंने सन्निहितानदीके किनारे लिंगको स्थापनकिया ॥ ३॥ मार्कण्डेय आदिक द्विजोत्तमों को ऋत्विज करके वेदोक्तमन्त्रों से शिवजी का अभिषेक कराय ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे वरवर्णिनि, प्रिये ! प्रसन्न होतेहुये मार्कण्डेयादिक ऋषियोंने पाण्डवों से थापेहुये लिङ्गके विषय में कहा ॥ ५ ॥ ऋषिलोग बोले कि पाण्डवोंसे पूजेहुये इस लिङ्गको जो पूजैंगे वे देवता, दानव व राक्षसों के पूजनेयोग्य

गुप्तचर्य्यांयदायाताः पाण्डवावनवासिनः ॥ तीर्त्थयात्राप्रसङ्गेन प्रभासंक्षेत्रमागताः ॥ २ ॥ तस्मिन्कालेतदा देवि सम्प्राप्तेसोमपर्व्वणि ॥ तेसर्व्वेस्थापयामासु लिङ्गंसन्निहितातटे ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयमुखान्कृत्वा ऋत्विजोब्राह्मणोत्तमान् ॥ वेदोक्तैःकारयामासुरभिषेकंमृडस्यच ॥ ४ ॥ ततःप्रसन्नाऋषयो मार्कण्डप्रमुखाःप्रिये ॥ प्रतिष्ठितस्यलिङ्गस्य पाण्डवैर्वरवर्णिनि ॥ ५ ॥ ऋषयऊचुः ॥येचैतत्पूजयिष्यन्ति लिङ्गंपाण्डवपूजितम् ॥ तेवैपूज्याभविष्यन्ति देवदानवरक्षसैः ॥ ६ ॥ अश्वमेधफलन्तेषां सम्यक्श्रद्धार्चनेनवै ॥ भविष्यतिनसन्देहो ह्यस्मद्वाक्यप्रभावतः ॥ ७॥ स्नात्वासन्निहिताकुण्डे योर्चयेत्पाण्डवेश्वरम् ॥ माघेमासिसमग्रेतु ससाक्षात्पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥ दर्शनेनापितस्यापि पापंयातिसहस्रधा ॥ विष्णुरूपोहिसप्रोक्तो नात्रकार्याविचारणा ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पाण्डवेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

होवैंगे ॥ ६ ॥ और मेरे वचन के प्रभाव से उनको भलीभांति श्रद्धापूर्वक पूजन से अश्वमेधयज्ञ का फल होवैगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ सन्निहितानदी के कुण्ड में नहाकर जो पुरुष सम्पूर्ण माघ महीने में पाण्डवेश्वर को पूजता है वह साक्षात् पुरुषोत्तम होताहै ॥ ८ ॥ और उसके दर्शन से भी पापहज़ार खण्ड होजाता है और वह विष्णुरूप कहागया है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपाण्डवेश्वरमाहात्म्यंनाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। गेरह रुद्रक मध्य महँ अहैं रुद्र भूतेश । पच्चासी अध्याय में सोई कह्योउमेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! श्रद्धासंयुत पुरुष इसप्रकार भलीभांति यात्राकर तदनन्तर प्रभासक्षेत्र के मध्यमें टिकेहुये महापातकों को नाशनेवाले क्रमसे गेरहरुद्रों के समीप जावै जो गेरहप्रकार का पाप मनुष्यों से अलग२ इकट्ठा कियागयाहै ॥ १ । २ ॥ वह गेरहरुद्रोंके पूजनसे नाशको प्राप्त होवैगा संक्रान्ति में व अयन तथा चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में ॥ ३ ॥ और अन्य पुण्यदायिनी तिथियों में भलीभांति भावसे शुद्ध चित्तवाला पुरुष क्रमसे गेरहरुद्रों को पूजै ॥४॥ उनके नामोंको मैं तुमसे कहताहूं जोकि पहले व्यतीत हुयेहैं हे देवि ! पहले सत-

शिव उवाच ॥ एवंकृत्वानरोयात्रां सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ततोगच्छेन्महादेवि रुद्रानेकादशक्रमात् ॥ १ ॥ प्रभासक्षेत्रमध्यस्थान् महापातकनाशनान् ॥ यदेकादशधापापमर्जितंमनुजैःपृथक् ॥ २ ॥ तदेकादशरुद्राणां पूजनात्क्षयमेष्यति ॥ संक्रान्तावयनेचापि चन्द्रसूर्यग्रहेथवा ॥ ३ ॥ अन्यासुपुण्यतिथिषु सम्यग्भावेनभावितः ॥ पूजयेदानुपूर्वेण रुद्रैकादशकंक्रमात ॥ ४ ॥ तेषांनामानिवक्ष्यामि यान्यतीतानितेपुरा ॥ आद्येकृतयुगेतानि शृणुदेवियथार्थतः ॥ ५ ॥ अजैकपादहिर्बुध्नो विरूपाक्षोप्यरैवतः ॥ हरश्चबहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चसुरेश्वरः ॥ ६ ॥ आदौकृतयुगेदेवि त्रेतायां द्वापरेपिच ॥ कलौयुगेतुसम्प्राप्ते जातंनामान्तरम्पुनः ॥ ७ ॥ एकादशैवरुद्राणां तानितेवच्मिसाम्प्रतम् ॥ भूतेशोनीलरुद्रश्च कपालीवृषवाहनः ॥ ८ ॥ त्र्यम्बकोघोरनामाच महाकालोथभैरवः ॥ मृत्युञ्जयोथकामेशो योगेशइतिकीर्तितः ॥ ९ ॥ एकादशैवरुद्रास्ते कथिताःक्रमशःप्रिये ॥ अनादिनिधनादेवि भेदभिन्नाःपृथक्पृथक् ॥ १० ॥ एकादशस्वरूपेण

युगमें उनको यथार्थसे सुनिये ॥ ५ ॥ कि अजैकपात, अहिर्बुध्न, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक व सुरेश्वर ॥ ६ ॥ हे देवि ! पहले सतयुग में त्रेतामें व द्वापर में ये नामहुये और कलियुग प्राप्त होनेपर फिर अन्य नामहुये ॥ ७ ॥ गेरहरुद्रों के उन नामोंको तुमसे इस समय कहताहूं कि भूतेश, नीलरुद्र, कपाली, वृषवाहन ॥ ८ ॥ त्र्यम्बक, घोरनामा, महाकाल, भैरव, मृत्युञ्जय, कामेश व योगेश ऐसे कहे गये हैं ॥ ९ ॥ हे प्रिये ! तुमसे गेरहही रुद्र कहेगये जोकि जन्म व मृत्यु से रहित

तथा अलग२भेदसे भिन्नहैं ॥ १० ॥ अलग अलग नामों के भेदसे वे गेरहरूपसेहैं ॥ ११ ॥ देवीजी बोलीं कि हे भगवन् ! गेरहलिंगों के क्रमको विस्तार से कहिये और भेदसे स्थानकी सीमा (हद) व माहात्म्यकी उत्पत्तिके कारणको कहिये ॥ १२ ॥ हे ईश ! वे किसप्रकार पूजनेयोग्यहैं और कौनमन्त्र व कौनविधि कहीगई है और किस पर्व व समयमें पूजना चाहिये सबको विस्तारसे कहिये ॥ १३ ॥ महादेवजीबोले कि हे देवि ! सुनिये मैं पापनाशक गुप्त चरित्रको कहताहूं कि सोमनाथादिक करके सिद्धिनाथादि कारणको ॥ १४ ॥ सुनकर प्राणी पहले इकट्ठा कियेहुये पातकों से छूटजाता है हे वरानने ! मैंने जिन गेरहरुद्रोंको कहा है ॥ १५ ॥ वे दश पवन

पृथङ्नामप्रभेदतः ॥ ११ ॥ देव्युवाच ॥ भगवन्विस्तराद्ब्रूहि लिङ्गैकादशकक्रमम् ॥ स्थानसीमांप्रभेदेन माहात्म्योत्पत्तिकारणम् ॥ १२ ॥ कथंपूज्यानितानीश केमन्त्राःकोविधिःस्मृतः ॥ कस्मिन्पर्वणिकालेच सर्वंविस्तरतोवद ॥१३॥ शिवउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि रहस्यंपापनाशनम् ॥ सोमनाथादिकंकृत्वा सिद्धिनाथादिकारणम् ॥ १४ ॥ श्रुत्वा प्रमुच्यतेजन्तुः पातकैःपूर्वसञ्चितैः ॥ येचैकादशरुद्रावै मयाप्रोक्तावरानने ॥ १५ ॥ दशतेवायवःप्रोक्ता आत्माचैका दशस्स्मृतः ॥ तेषांनामानिवक्ष्यामि वायूनांशृणुमेक्रमात् ॥ १६ ॥ प्राणोपानस्समानश्च उदानोव्यानएवच ॥ नागश्चकूर्मःकृकरो देवदत्तोधनञ्जयः ॥ १७ ॥ आत्माचेतिक्रमाज्ज्ञेया रुद्राधिपतयःक्रमात् ॥ तेषांयात्रांक्रमाद्वक्ष्ये सर्वप्राणिहितायवै ॥१८॥ रुद्राणामादिदेवोसौ पूर्वंसोमेश्वरःप्रिये ॥ भूतेश्वरेतिनाम्नावै पूजयेत्तंविधानतः ॥ १९ ॥ राजोपचारयोगेन श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य सद्योजातेनपूजयेत् ॥ २० ॥ पुष्पैर्मनोहरैर्भक्त्या ध्यात्वादेवंस

कहेगये हैं और गेरहवां आत्मा कहागयाहै उन पवनोंके नामोंको मैं कहता हूं उन को मुझसे क्रमसे सुनिये ॥ १६ ॥ कि प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय ॥ १७ ॥ और आत्मा ये क्रमसे रुद्राधिपति जानने योग्यहैं उनकी यात्राको सब प्राणियों के हितके लिये क्रमसे कहताहूं ॥ १८ ॥ हे प्रिये ! रुद्रोंके मध्यमें ये पहले सोमेश्वरजी आदिदेव हैं उनको भूतेश्वर इस नामसे विधिसे पूजै ॥ १९ ॥ राजसामग्री के योगसे व श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके सद्यो-

जात मन्त्र के द्वारा पञ्चामृत से नहवाकर पूजन करै ॥ २० ॥ भक्तिसे सदाशिवदेवजीको ध्यानकर सुन्दर फूलोंसे पूजनकरै और तीन प्रदक्षिणा करके साष्टाङ्ग प्रणाम कर ॥ २१ ॥ गेरहरुद्रों की यात्राके लिये निर्विघ्न के निमित्त मनुष्य गमनकरै भूतेश्वर ऐसा जो नाम कहागयाहै उसको मैं तुमसे कहताहूं ॥ २२ ॥ कि महत्तत्त्व से लगाकर विशेषके अन्तक जो पचीससंख्यक भूतगण गहागया है उनके स्वामी जिसलिये कहेगये हैं ॥ २३ ॥ उसी कारण पुरातन समय उनका भूतेश्वर ऐसा नाम कहागया है पचीसतत्त्वों को जानकर मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ और भूतेशरुद्रजी को भलीभांति पूजकर मनुष्य अविनाशी मुक्तिको प्राप्त होताहै

दाशिवम् ॥ त्रिभिःप्रदक्षिणीकृत्य साष्टाङ्गंप्रणिपत्यच ॥ २१ ॥ रुद्रैकादशयात्रार्थं निर्विघ्नार्थंव्रजेन्नरः ॥ भूतेश्वरेतिय न्नाम प्रोक्तंतत्तेब्रवीम्यहम् ॥ २२ ॥ महदादिविशेषान्तं भूतजालंयदीरितम् ॥ पञ्चविंशतिसंख्याकं तेषामीशोयतः स्मृतः ॥ २३ ॥ तेनभूतेश्वरेत्युक्तं नामतस्यपुराकिल ॥ पञ्चविंशतितत्त्वानि ज्ञात्वामुक्तिमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥ भूतेश रुद्रंसम्पूज्य गच्छेद्वामुक्तिमव्ययम् ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तमादिरुद्रस्यकीर्तितम् ॥ २५ ॥ कीर्त्तनीयंद्विजातीनां कीर्त्ति तंपुण्यवर्द्धनम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेएकादशरुद्रमाहात्म्ये भूतेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चाशीतित मोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नीलरुद्रंद्वितीयकम् ॥ भूतेशादुत्तरेभागे धनुषांषोडशेस्थितम् ॥ १ ॥ महादे वंमहादेवि गणगन्धर्वपूजितम् ॥ संस्नाप्यतंविधानेन ईशमन्त्रेणपूजयेत ॥ २ ॥ कुमुदोत्पलकल्हारैः सम्यक्सम्भा

यह संक्षेप से आदिरुद्र का माहात्म्य कहागया ॥ २५ ॥ जोकि ब्राह्मणोंके कीर्तन करनेयोग्यहै क्योंकि कीर्तन कियाहुआ यह पुण्यको बढ़ानेवालाहै ॥ २६ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकादशरुद्रमाहात्म्येभूतेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ⊛ ॥

दो० । नीलरुद्र जिमि भये हैं गेरहरुद्र मँझार । छिआसिवें अध्याय में सोई कथा सुखार ॥ महादेवजी बोले कि हेमहादेवि ! तदनन्तर भूतेशजीसे उत्तरभागमें सोलह धनुष पै स्थित दूसरे नीलरुद्र के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! गणों वगन्धर्वों से पूजित उन महादेव को विधिसे नहवाकर ईशमन्त्र से पूजन करै ॥ २ ॥

भलीभांति शुद्धचित्तवाला पुरुष नमस्कार समेत उन शिवजी की प्रदक्षिणाकर कुमुद, उत्पल और कल्हार (लाल कमल) से पूजन करै ॥ ३ ॥ हे देवि ! ऐसाकरके मनुष्य राजसूययज्ञ के फलको पाताहै भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको वहींपर बैल देना चाहिये ॥ ४ ॥ पुरातन समय नीले अञ्जनके समान अन्धकासुर मारागया है उसीकारण उसकी स्त्रियोंको रुलानेवाले शिवजी नीलरुद्र ऐसे कहेगये हैं ॥ ५ ॥ पातकों का विनाशक उन नीलरुद्र का माहात्म्य संक्षेप मे कहा गया उनके दर्शन की उत्कण्ठावाले भलीभांति श्रद्धासे संयुत पुरुषों को उसको सुनना व पढ़ना चाहिये ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविर

वितात्मवान् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंतस्य नमस्कारेणपूजयेत ॥ ३ ॥ एवंकृत्वानरोदेवि राजसूयफलंलभेत ॥ वृषस्तत्रैवदातव्यः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ४ ॥ नीलाञ्जननिभोदैत्यो निहतश्चान्धकःपुरा ॥ तस्यरोदयितास्त्रीणां नीलरुद्रस्ततस्स्मृतः ॥ ५ ॥ तस्यसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ सम्यक्श्रद्धान्वितैःश्राव्यं पाठ्यंतद्दर्शनोत्सुकैः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे एकादशरुद्रमाहात्म्येषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कपालेश्वरमुत्तमम् ॥ रुद्रंतृतीयंपापघ्नं नीलरुद्रस्यपूर्वतः ॥ १ ॥ बुधेश्वरात्पश्चिमतो धनुषांसप्तकेस्थितम् ॥ छिन्नंपुरामयादेवि ब्रह्मणःपञ्चमंशिरः ॥ २ ॥ तत्कपालंकरेलग्नं प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ ततोवर्षसहस्रन्तुसंस्थितःक्षेत्रमध्यतः ॥ ३ ॥ कपालधारीदिग्वासा कपालीतेनचस्मृतः ॥ सर्वपापहरंनृणां दर्शना

चितायांभाषाटीकायामेकादशरुद्रमाहात्म्येनीलरुद्रमाहात्म्यंनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो• । यथा सदाशिवदेवजी भये कपाली नाम । सत्तासी अध्यायमें सोई चरितललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उसके उपरान्त नीलरुद्रके पूर्व व बुधेश्वरसे पश्चिम ओर सात धनुष पै स्थित पातकों के विनाशक तीसरे उत्तम कपालेश्वरजी के समीप जावै हे देवि ! पुरातन समय मैंने ब्रह्मा के पांचवें मस्तक को काटा है ॥ १ । २ ॥ और उनका कपाल मेरे हाथमें लगगया व मैं प्रभासक्षेत्र को आया तदनन्तर हज़ार वर्षतक क्षेत्रके बीचमें भलीभांति स्थित रहा ॥ ३ ॥ और क-

पालधारी व दिग्वसनवाला याने नग्न होकर स्थितहुआ उसीकारण कपाली कहागया वह लिंग दर्शन करनेसे व छूनेसे मनुष्यों के समस्तपातकों का विनाशक है ॥ ४ ॥ हे देवि ! वहां मैंने दुष्टचित्तवाले पापियोंके सकाशसे रक्षाके लिये त्रिशूल हाथवाले हज़ारों गणोंको नियुक्त किया है इसलिये भलीभांति श्रद्धासंयुत पुरुष सब उपाय से ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! उन कल्याणरूप कपालीजी को पूजै और वहां वेदके पारगामी ब्राह्मण के लिये सुवर्ण देना चाहिये ॥ ६ ॥ विधि से तत्पुरुषायुषा इस मन्त्र से भलीभांति विधिपूर्वक पूजकर जन्मसे लगाकर जो पाप प्राणियोंसे इकट्ठा कियागया है ॥ ७ ॥ षडशीतिमुख में उसलिंग को देखकर वह पातक नष्ट होजाता है

त्स्पर्शनादपि ॥ ४ ॥ मयातत्रनियुक्तावै रक्षार्थशूलपाणयः ॥ गणास्सहस्रशोदेवि पापिनांदुष्टचेतसाम् ॥ तस्मात्सर्व प्रयत्नेन सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ५ ॥ पूजयेत्तंमहादेवि कपालिनमनामयम् ॥ हिरण्यंतत्रदातव्यं ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ६ ॥ पूजयित्वाविधानेन सम्यक्तत्पुरुषायुषा ॥ जन्मप्रभृतियत्पापं प्राणिभिस्समुपार्जितम् ॥ ७ ॥ षडशीतिमुखेदृष्ट्वा तल्लिङ्गन्तुव्यपोह्यते ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ ८ ॥ कपालिदेवरुद्रस्य तृतीयस्यवरानने ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेएकादशरुद्रमाहात्म्येकपालेश्वरमाहात्म्यन्नामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि चतुर्थरुद्रमुत्तमम् ॥ वृषभेश्वरनामानं कल्पलिङ्गंसुरप्रियम् ॥ १ ॥ बालरूपी महादेवि यत्रब्रह्मास्वयंस्थितः ॥ तस्यैवचोत्तरेभागे धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ आद्यंमहाप्रभावंहि नोपुण्योवेदमानवः ॥ २ ॥

हे वरानने ! तीसरे कपाली शिवदेवजीका यह पापनाशक माहात्म्य संक्षेप से कहागया है ॥ ८ । ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचिता याभाषाटीकायामेकादशरुद्रमाहात्म्येकापालेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

दो० । जिमि एकादशरुद्र महँ भयो रुद्र वृषभेश । अठ्ठासी अध्याय में सोई कह्यो उमेश ॥

महादेवजी बोले कि हे महादेवि । तदनन्तर वृषभेश्वर नामक चौथे सुरप्रिय उत्तम सदाशिवजी के समीप जावै जोकि कल्पलिंग है ॥ १ ॥ हे महादेवि ! जहांपर बालरूपी ब्रह्माजी आपही स्थित हैं उन्हीं के उत्तरभागमें तीन धनुष पै

स्थित महाभाववाला आद्यलिंग है उसको पुण्यहीन पुरुष नहीं जानता है ॥ २ ॥ उसी के कल्पनामों को इस समय में तुमसे कहताहूं हे महादेवि ! पहले कल्प में ब्रह्मेश्वर ऐसा कहागयाहै ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! पहले दशहज़ार वर्षतक प्रसन्नताकी इच्छावाले ब्रह्मादेवजीने आराधन किया तदनन्तर महादेवजी प्रसन्नहुये ॥ ४ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजीने चार प्रकारकी भूतसृष्टि किया और जिसलिये ब्रह्माकी ईशता से महादेवजी प्रसन्नता को प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ इसलिये पुरातन समय उस कल्प में ब्रह्मेश्वर नामहुआ तदनन्तर हे वरवर्णिनि ! दूसरा कल्प प्राप्त होनेपर ॥ ६ ॥ रैवतेश्वर ऐसा नाम पृथ्वी में प्रसिद्ध हुआ चराचर समेत ब्रह्माण्डमें रैवत नाम राजाहुआ है ॥७॥

तस्यैवकल्पनामानि साम्प्रतंप्रब्रवीमिते ॥ पूर्वंकल्पेमहादेवि ब्रह्मेश्वरमितिस्मृतम् ॥ ३ ॥ ब्रह्मणाराधितंपूर्वं वर्षाणामयुतम्प्रिये ॥ तुष्टिकामेनदेवेन ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ ४ ॥ चतुर्विधांभूतसृष्टिं ततश्चक्रेपितामहः ॥ ब्रह्मणस्त्वीशभावेन गतस्तुष्टिंयतोहरः ॥ ५ ॥ तेनब्रह्मेश्वरन्नामतस्मिन्कल्पेपुराभवत् ॥ ततोद्वितीयकल्पेतु सम्प्राप्ते वरवर्णिनि ॥ ६ ॥ रैवतेश्वरनामेतिप्रख्यातंधरणीतले ॥ रैवतोनामराजाभूद्ब्रह्माण्डेसचराचरे ॥ ७ ॥ जगद्योनिंपरित्यज्य तस्यलिङ्गप्रभावतः ॥ रैवतेश्वरनामाभूत्तेनलिङ्गंमहाप्रभे ॥ ८ ॥ पुनस्तृतीयकेकल्पे सम्प्राप्तेवरवर्णिनि ॥ वृषभेश्वर नामाभूत्तस्यलिङ्गस्यभामिनि ॥ ९ ॥ ममैववाहनंयोसौ धर्मोयंवृषरूपधृक् ॥ तेनतत्पूजितंलिङ्गं दिव्याब्दानांसहस्र कम् ॥ १० ॥ ततस्तुष्टेनदेवेशि नीतस्सायुज्यतांवृषः ॥ तेनतल्लिङ्गमभवद्वृषभेशेतिभूतले ॥ ११ ॥ ततश्चतुर्थेसम्प्रा प्ते वाराहेकल्पकेस्थिते ॥ अष्टाविंशतिमेतत्र त्रेतायुगमुखेतदा ॥ १२ ॥ इक्ष्वाकुनामाराजाभूत्सूर्यवंशविभूषणः ॥

उस लिंगके प्रभावसे जगद्योनि ब्रह्माजी को छोड़कर उसने आराधन कियाहै उसीकारण हे महाप्रभे ! रैवतेश्वर नामक लिंगहुआ है ॥ ८ ॥ हे वरवर्णिनि, भामिनि ! फिर तीसरे कल्पके प्राप्त होनेपर उस लिंगका वृषभेश्वर नाम हुआहै ॥ ९ ॥ जो यह वृषरूपधारी धर्म मेराही वाहनहै उसने देवताओंके हज़ार वर्षतक उस लिंगको पूजा है ॥ १० ॥ तदनन्तर हे देवेशि ! प्रसन्न होतेहुये शिवजीने वृषको सायुज्यमुक्तिमें प्राप्त किया उस लिये पृथ्वीमें वह वृषभेश ऐसा लिंगहुआ ॥ ११ ॥ तदनन्तर चौथे वाराह

कल्पके स्थित होनेपर उस समय उस अट्ठाईसवें त्रेतायुगके आदिमें ॥ १२ ॥ सूर्यवंशमें भूषणरूपी इक्ष्वाकुनामक राजाहुयेहैं भक्तिसे शुद्ध चित्तवाले उन्होंने लिंगका त्रिकाल पूजन किया ॥ १३ ॥ और एकवार भोजन करनेवाले व नियमसे भोजन करनेवाले वे पृथ्वीमें सोनेवाले और व्रतको ग्रहण कियेथे इसप्रकार बहुत दिनोंवाले समय के बीतनेपर तदनन्तर महादेवजी प्रसन्नहुये ॥ १४ ॥ और उन्होंने बड़ीभारी राज्य व पुत्र, पौत्रोंवाले सन्तान को दिया उस लिये यह उत्तम लिंग इक्ष्वाकीश्वर नामक हुआ ॥ १५ ॥ जो मनुष्य उन वृषवाहन शिवदेवजी को भक्तिसे पूजता है वह सातजन्मों में, कियेहुये पातकों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥

सलिङ्गंपूजयामास त्रिकालंभक्तिभावितः ॥ १३ ॥ एकाहारोयताहारो भूमिशायीयतव्रतः ॥ एवंकालेबहुतिथेतत स्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १४ ॥ ददौराज्यंमहोदग्रं सन्ततिम्पुत्रपौत्रिकीम् ॥ ईक्ष्वाकीश्वरनामाभूत्तेनेदंलिङ्गमुत्तमम् ॥ १५ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या देवंवृषभवाहनम् ॥ सप्तजन्मकृतैःपापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ १६ ॥ त्रिंशद्धनुषमानेन त स्यक्षेत्रंचतुर्दिशः ॥ स्नानंजाप्यंबलिंहोमं पूजास्तोत्रमुदीरणम् ॥ १७ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयःकुर्यात तत्सर्वंचाक्षयम्भवे त् ॥ चतुष्कोणान्तरंक्षेत्रमेवंमात्राप्रमाणतः ॥ १८ ॥ एकरात्रोषितोभूत्वा तस्यदेवस्यसन्निधौ ॥ ब्रह्मचर्येणजागर्ति यस्सपापैःप्रमुच्यते ॥ १९ ॥ होमजाप्यसमाधिस्थो नृत्यगीतादिवादनैः ॥ गोघ्नोवाब्रह्मघातीवा मुच्यतेदुष्कृतैर्नरः ॥ २० ॥ यस्सम्प्रीणातिवैविप्रांस्तत्रभोज्यैःपृथग्विधैः ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे कोटिर्भवतिभोजिता ॥ २१ ॥ भैरवंचै वकेदारं पुष्करंकुरुजाङ्गलम् ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं महाकालंचनैमिषम् ॥ २२ ॥ एतत्तीर्थाष्टकन्देवि तस्मिँल्लिङ्गेप्रतिष्ठि

उसके चारों दिशाओं में तीस धनुषके प्रमाण से क्षेत्र है स्नान, जप, बलि, होम, पूजन व स्तोत्रपाठ को ॥ १७ ॥ उस तीर्थ में जो करता है वह सब अक्षयहोता है चौकोन के भीतर क्षेत्र इस मात्राकी प्रमाणसे है ॥ १८ ॥ एक रात उपासकरके उन शिवदेवजी के समीप जो ब्रह्मचर्य से जागताहै वह पातकोंसे छूटजाताहै ॥ १९ ॥ होम, जप व समाधि में स्थित होकर नृत्य, गीतादिक व बाजनों से गोघाती व ब्रह्मघाती पुरुष पातकोंसे छूटजाता है ॥ २० ॥ और वहांपर अनेक भांतिके भोजनों से जो पुरुष ब्राह्मणों को तृप्त करता है उससे एक ब्राह्मण भोजन कराने पर कोटि ब्राह्मण भोजित होतेहैं ॥ २१ ॥ भैरव, केदार, पुष्कर, कुरुजांगल, काशी, कुरुक्षेत्र,

महाकाल व नैमिष ॥ २२ ॥ हे देवि ! ये आठ तीर्थ उस लिंगमें प्रतिष्ठित हैं माघ महीने में कृष्णपक्ष की चौदसिमें वहां जो पुरुष रात्रिमें जागताहै ॥ २३ ॥ हे देवि ! विधिसे उस लिंगको पूजकर वह आठ तीर्थों के फलको पाताहै वहांपर अमावस तिथिमें जो मनुष्य शिवजी के समीप पिण्डको देताहै ॥ २४ ॥ उसके पितर ब्रह्मा के दिनके अन्ततक तृप्तहोते हैं दधि, दुग्ध, घृत, पञ्चगव्य व कुशोदक से ॥ २५ ॥ और कुंकुम, अगुरु व कपूर से रात में उस लिंगको पूजै अघोरमन्त्र से संमन्त्रण कर सदाशिव देवजी को ध्यानकरके पूजन करै ॥ २६ ॥ ऐसा करके हे महादेवि ! पांच पातकों से मनुष्य छूटजाताहै यदि अष्टमी व चौदसि में सदाशिवजी को दही

तम् ॥ माघेकृष्णचतुर्दश्यां तत्रयोजागृयान्निशि ॥ २३ ॥ सम्पूज्यविधिनादेवि सतीर्थाष्टफलंलभेत् ॥ ददातितत्रयः पिण्डं नष्टेन्दौशिवसन्निधौ ॥ २४ ॥ तृप्यन्तिपितरस्तस्य यावद्ब्रह्मदिनान्तकम् ॥ दधिक्षीरघृतेनैव पञ्चगव्यकुशोदकैः ॥ २५ ॥ कुंकुमागुरुकर्पूरैस्तल्लिङ्गंपूजयेन्निशि ॥ संमन्त्र्याघोरमन्त्रेण ध्यात्वादेवंसदाशिवम् ॥ २६ ॥ एवंकृत्वामहादेवि मुच्यतेपञ्चपातकैः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां दध्नासंस्नापयेद्यदि ॥ २७ ॥ सब्राह्मणश्चतुर्वेदी जायतेनात्रसंशयः ॥ क्षीरेणस्नापयेद्देवि यदितंवृषभेश्वरम् ॥ २८ ॥ सप्तधेनुसहस्राणां सफलंविन्दतेमहत् ॥ जन्मान्तरेणयत्पापं साम्प्रतंयत्कृतंप्रिये ॥ २९ ॥ तत्सर्वंनाशमायाति घृतस्नानेनभामिनि ॥ पञ्चगव्येनयोदेवि स्नापयेद्वृषभेश्वरम् ॥ ३० ॥ सहदेत्सर्वपापानि सर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ तन्दृष्ट्वाब्रह्महागोघ्नःस्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ ३१ ॥ शरणागतघातीचमित्र

से स्नान करावै ॥ २७ ॥ तो वह ब्राह्मण चारोंवेदों का पढ़नेवाला होताहै इसमें सन्देह नहीं है व हे देवि ! यदि उन वृषभेश्वरजी को दूधसे नहवावै ॥ २८ ॥ तो वह सात हज़ार गौवों के दानके फलको प्राप्तहोता है और हे प्रिये ! अन्य जन्ममें जो पाप कियागया है व इस समय जो पाप कियागया है ॥ २९ ॥ हे भामिनि ! वह सब पाप घी के स्नानसे नाशको प्राप्तहोता है व हे देवि ! जो मनुष्य पञ्चगव्य से वृषभेश्वरजी को स्नान कराता है ॥ ३० ॥ वह सब पातकों को जलाता है व सब यज्ञोंके फल को पाता है व उन शिवजी को देखकर ब्रह्मघाती, गोघाती चोर व गुरुकी शय्या पै बैठनेवाला पुरुष ॥ ३१ ॥ व शरणागत को मारनेवाला

और मित्र व विश्वासघाती, दुष्ट व पाप आचरणवाला और मातृघाती व पितृघाती मनुष्य ॥ ३२ ॥ उस लिंगके आराधन में उद्यत होकर सब पातकों से छूटजाता है सब कातिकभर जो पुरुष ब्रह्मा समेत ब्रह्मेश्वर महालिंग को पूजताहै वह पातकों से छूटजाताहै उसने सब कुछ देदिया व उससे गुरु प्रसन्न करायेगये ॥ ३३ । ३४ ॥ व उसने गयातीर्थ में श्राद्ध किया और उसने बड़ा तपकिया कि जिसने इन देवाधिदेव वृषभेश्वरजीको पूजाहै ॥ ३५ ॥ हे भामिनि, देवि ! देवताओं से पूजाहुआ यह कल्पलिंग वृषभेश्वरदेवजी का माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ३६ ॥ हे महादेवि ! मूर्ख व पण्डित भी जो देवदेव शिवजी के माहात्म्य को सुनता है वह उत्तमगति

विश्रंभघातकः ॥ दुष्टपापसमाचारो मातृहापितृहातथा ॥३२॥ मुच्यतेसर्वपापैस्तु तल्लिङ्गाराधनोद्यतः ॥ कार्त्तिकंस कलंयस्तु पूजयेद्ब्रह्मणासह ॥ ३३ ॥ ब्रह्मेश्वरंमहालिङ्गं समुक्तःपातकैर्भवेत् ॥ तेनदत्तंभवेत्सर्वं गुरवस्तेनतोषिताः ॥ ३४ ॥ श्राद्धंकृतंगयातीर्थे तेनतप्तंमहत्तपः ॥ येनदेवाधिदेवोसौ पूजितोवृषभेश्वरः ॥ ३५ ॥ इतितेकथितन्देवि माहात्म्यन्देवपूजितम् ॥ वृषभेश्वरदेवस्य कल्पलिङ्गस्यभामिनि ॥ ३६ ॥ यःशृणोतिमहादेवि माहात्म्यन्दैवदैवतम् ॥ मूर्खोवापण्डितोवापि सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे वृषभेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि त्र्यम्बकेश्वरमव्ययम् ॥ यत्पञ्चमंसमाख्यातं रुद्राणामापिदैवतम् ॥ १ ॥ शिखण्डेश्वरमाख्यातं पूर्वंत्रेतायुगेप्रिये ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि यथासंज्ञायतेनरैः ॥ २ ॥ अस्तिसाम्बपुरन्देवि तत्रस्थाप

को प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकादशरुद्रे वृषभेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

दो॰। एकादश शिवलिंग महं त्र्यंबकेश हैं रुद्र। सो नवासिवें में कथा वर्णित सुखद समुद्र ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अविनाशी त्र्यंबकेश्वरजी के समीप जावै रुद्रोंके मध्य में जो पांचवें देवता कहेगये हैं ॥ १ ॥ हे प्रिये ! पहले त्रेतायुग में शिखण्डीश्वर नाम कहाकया है उसकी उत्पत्ति को कहताहूं कि

जिसप्रकार मनुष्यों से भलीभांति जानाजाता है ॥ २ ॥ हे देवि ! जो साम्बपुर है उसमें परमेश्वरीजी स्थितहैं उन्हीं के उत्तर दिशा के भागमें कपिलजी का स्थान कहागया है ॥ ३ ॥ जहांपर कपालेश्वर नामक महादेवजी लिंग मूर्त्तिधारी हैं और पातकों के विनाशने के लिये कपालेश्वर नामको धारनेवाले वे भलीभांति स्थित हैं ॥ ४ ॥ उस स्थानसे सोलह धनुष के अन्तर पै ईशान दिशाके भागमें वहां त्र्यंबकेश्वर नामक शिवजी आपही स्थित हैं ॥ ५ ॥ वे सब के ऊपर दया करनेवाले व सब कामनाओं के फलोंको देनेवाले हैं जहांपर हे देवि ! देवताओं व दानवों के दुस्सह गुरुनामक ऋषिश्रेष्ठःने कठिन व भयङ्कर तप कियाहै व जिसने शिवजी

रमेश्वरी ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे स्थानंकापिलकंस्मृतम् ॥ ३ ॥ कपालेश्वरनामाच यत्रेशोलिङ्गमूर्त्तिमान् ॥ संस्थितःपाप नाशाय कपालेश्वरनामभृत ॥ ४ ॥ तस्मादीशानदिग्भागे धनुषांषोडशान्तरे ॥ त्र्यम्बकेश्वरनामाच तत्ररुद्रःस्थित स्स्वयम् ॥ ५ ॥ सर्वानुग्रहकर्त्ताच सर्वकामफलप्रदः ॥ पुरायत्रातपद्देवि तपोघोरंसुदुश्चरम् ॥ ६ ॥ गुरुर्नामाऋषिवरो देवदानवदुस्सहः ॥ कोटीनांत्रितयंयेन त्र्यम्बकोमन्त्रनायकः ॥ ७ ॥ जप्तोदिव्येनविधिना त्रिकालंपूज्यशङ्करम् ॥ त तःप्रसाद्यदेवेशं दिव्यैश्वर्यमवापसः ॥ ८ ॥ चक्रेनामस्वयंतस्य ततस्सत्र्यम्बकेश्वरम् ॥ सर्वपातकविध्वंसी दर्शनात्स्प र्शनादपि ॥ ९ ॥ यस्त्र्यम्बकंजपेद्विप्रस्त्रयम्बकेश्वरसन्निधौ ॥ सप्राप्नोतिमहासिद्धिं प्रत्यक्षंरुद्रएवसः ॥ १० ॥ द र्शनेनापितस्यापि पापंयातिसहस्रधा ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या विधिनाभावमास्थितः ॥ ११ ॥ वामदेवेतिमन्त्रेण समु क्तःपातकैर्भवेत् ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां तत्रयोजागृयान्निशि ॥ १२ ॥ पूजास्तुतिकथाभिश्च सप्राप्नोतीप्सितंफलम् ॥ धे

को उत्तम विधिसे त्रिकाल पूजकर मन्त्रनायक त्र्यंबक का तीन करोड़ जप किया है उसके उपरान्त देवेश शिवजी को प्रसन्न कराकर उसने दिव्य ऐश्वर्य को पाया है ॥ ६ । ७ । ८ ॥ तदनन्तर उसने आपही उसका त्र्यंबकेश्वर नाम किया जोकि दर्शन व स्पर्श करने से भी समस्त पातकों को नाशनेवाले हैं ॥ ९ ॥ जो ब्राह्मण त्र्यंबकेश्वरजी के समीप त्र्यंबकमन्त्र को जपता है वह महासिद्धि को प्राप्तहोताहै और वह प्रत्यक्षही रुद्रहै ॥ १० ॥ व उसके दर्शन से भी पातक हजारखण्ड होजाता है भावमें स्थित जो पुरुष भक्तिपूर्वक विधिसे वामदेव ऐसे मन्त्रकरके उन शिवजी को पूजता है वह पातकों से छूटजाता है चैतमें शुक्लपक्षवाली चौदसि में जो पुरुष

रातमें वहां जागरण करताहै ॥ ११ । १२ ॥ पूजा, स्तुति व कथाओंसे वह चाहेहुये फलको पाताहै भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषों को वहां गऊ देना चाहिये ॥ १३ ॥ हे देवि ! मनुष्यों को पुण्यदायक व पापनाशक यह त्र्यंबकेश्वर शिवजी का माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्र्यंबकेश्वरमाहात्म्यंनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अघोरेश शिवहै यथा गेरह रुद्र मँझार । नब्बे के अध्याय में सोइ कथाप्रस्तार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम अघोरेश्वरजीके समीप

नुस्तत्रैवदातव्या सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः॥ १३ ॥ इतितेकथितन्देवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ त्र्यम्बकेश्वररुद्रस्यनृणां पुण्यफलप्रदम् ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेत्र्यम्बकेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अघोरेश्वरमुत्तमम् ॥ षष्ठंलिङ्गंसमाख्यातं तद्वक्त्रंभैरवंस्मृतम् ॥ १ ॥ त्र्यम्बकेश्वरवायव्ये धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ सर्वकामप्रदंनृणां कलिकल्मषनाशनम् ॥ २ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या स्नानपूजादिभिःक्रमात् ॥ मेरुदानस्यकृत्स्नस्य सलभेन्मनुजःफलम् ॥ ३ ॥ दक्षिणामूर्त्तिमास्थाय यत्किञ्चित्तत्रदीयते ॥ अघोरेश्वरदेवस्य तत्सर्वंचाक्षयम्भवेत् ॥ ४ ॥ यःश्राद्धंकुरुतेतत्र अघोरेश्वरदक्षिणे ॥ आकल्पंतृप्तिमायान्ति पितरस्तस्य तर्पितः ॥ ५ ॥ किंश्राद्धेनगयातीर्थे वाजिमेधेनकिम्प्रिये ॥ तत्रश्राद्धेनतत्सर्वं फलमभ्यधिकंलभेत् ॥ ६ ॥ त्रुटिमात्रम

जावै वह छटा लिंग कहागया है और उनका मुख भयानक कहागया है ॥ १ ॥ त्र्यंबकेश्वरजी के वायव्य में वह लिंग पांच धनुष पै स्थित है जो शिव कि मनुष्यों के सब कामनाओं को देनेवाले व कलियुग के पातकको नाशनेवाले हैं ॥ २ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे स्नान पूजनादिकों से क्रमपूर्वक उन शिवजी को पूजता है वह सम्पूर्ण मेरुदान के फलको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ दक्षिणामूर्त्तिको प्राप्त होकर वहां जो कुछ अघोरेश्वरदेव को दियाजाता है वह सब अक्षय होताहै ॥ ४ ॥ वहां अघोरेश्वरजी के दक्षिण में जो पुरुष श्राद्ध करता है उसके तृप्त कियेहुये पितर कल्पपर्यंत तृप्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! गयातीर्थ में श्राद्धसे क्याहै व अश्व-

मेषसे क्या प्रयोजन है वहां श्राद्धसे उस सब अधिक फलको मनुष्य प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ वहांपर जो मनुष्य लवलेशमात्रभी सुवर्णको देताहै वह बहुतसे महादान के सब फलको प्राप्तहोता है ॥ ७ ॥ जो पुरुष सोमवार अष्टमी में अघोरेश्वर के समीप अघोरमन्त्रसे अभिमन्त्रित विधिसे ब्रह्मकूर्च कर्मको सोलहवर्ष तक करता है उससे बड़ाभारी प्रायश्चित्त किया होताहै यह संक्षेपसे अघोरेश्वरका महाऐश्वर्य कहागयाहै ॥ ८ । ९ ॥ सुनाहुआ यह माहात्म्य सब पातकोंका नाशक व सब कार्योंको सिद्ध करनेवाला है ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामघोरेश्वरमाहात्म्यंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ ● ॥

पिस्वर्णं तत्रयस्सम्प्रयच्छति ॥ ससर्वफलमाप्नोति महादानस्यभूरिशः ॥ ७ ॥ ब्रह्मकूर्चञ्चरेद्यस्तु सोमाष्टम्यांविधानतः ॥ अघोरेश्वरसान्निध्ये अघोरेणाभिमन्त्रितम् ॥ ८ ॥ षोडशाब्दंमहत्तेन प्रायश्चित्तंकृतम्भवेत ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तमघोरेशमहोदयम् ॥ ९ ॥ माहात्म्यंसर्वपापघ्नं श्रुतंसर्वार्थसाधकम् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेअघोरेश्वरमाहात्म्यन्नामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि महाकालेश्वरंहरम् ॥ अघोरेशादुत्तरतः किञ्चिद्वायव्यसंस्थितम् ॥ १ ॥ धनुषांत्रिंशतादेवि श्रुतंपापप्रणाशनम् ॥ पूर्वंकृतयुगेदेवि स्मृतंचित्राङ्गदेश्वरम् ॥ २ ॥ महाकालेश्वरन्देवि कलौनामप्रकीर्त्तितम् ॥ कालरूपीमहादेवस्तस्मिँल्लिङ्गेव्यवस्थितः ॥ ३ ॥ चराचरगुरुस्साक्षाद्देवदानवदर्पहा ॥ सूर्यरूपेणतत्सर्वं ब्रह्माण्डंद्योततिप्रिये ॥ ४ ॥ सदेवस्संस्थितोदेवि तस्मिँल्लिङ्गेमहाप्रभः ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या कल्पलिङ्गंममप्रियम् ॥ ५ ॥

दो॰ । एकादश शिवलिंग महँ महाकालको हाल । इक्यनबे अध्यायमें वर्णितचरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! अघोरेशजी से उत्तरओर कुछ वायव्य में तीस धनुष पै स्थित महाकालेश्वर शिवजी के समीप जावै हे देवि ! वह लिंग पातकों का विनाशक सुनागया है हे देवि ! पुरातन समय सतयुग में चित्रांगदेश्वर नाम कहागया है ॥ १ । २ ॥ व हे देवि ! कलियुग में महाकालेश्वर नाम कहागया है उस लिंगमें कालरूपी महादेवजी स्थित हैं ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! चराचर के गुरु व साक्षात् देवताओं तथा दानवों के गर्व के विनाशक वे शिवजी सूर्य्य के रूप से उस सब ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करते हैं ॥ ४ ॥ हे देवि ! उस

लिंग में महाप्रभावान् वे सूर्यनारायणजी स्थित हैं उस मेरे प्यारे कल्प लिंगको जो मनुष्य भक्ति से षडक्षरमन्त्र करके पूजता है वह उसीक्षण मृत्युको जीतता है और कृष्णपक्ष की अष्टमी में जो पुरुष विशेषकर घृतसंयुत गुग्गुल को ॥ ५ । ६ ॥ वहां रात्रिके आनेपर विधिपूर्वक पूजन करके जलाता है उसके हज़ार अपराधों को भैरवजी क्षमा करते हैं ॥ ७ ॥ उस स्थान में महर्षिलोग गऊदान की प्रशंसा करते हैं वहां गऊको देनेवाला पुरुष निश्चयकर दश पहलेवाले व दश पीछेवाले पितरों को तारता है ॥ ८ ॥ शिवदेवजी के दक्षिणभाग में जो शतरुद्री को जपता है वह मनुष्य मातृवंश व पितृवंश को उधारता है ॥ ९ ॥ व बाल्यावस्था में वृद्धता व युवा-

षडक्षरेणमन्त्रेण मृत्युञ्जयतितत्क्षणात् ॥ कृष्णाष्टम्यांविशेषेण गुग्गुलंघृतसंयुतम् ॥ ६ ॥ योदहेद्विधिवत्तत्र पूजांकृत्वानिशागमे ॥ अपराधसहस्रन्तु क्षमतेतस्यभैरवः ॥ ७ ॥ धेनुदानंप्रशंसन्ति तस्मिन्स्थानेमहर्षयः ॥ धेनुदस्तारयेन्नूनं दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ८ ॥ देवस्यदक्षिणेभागे योजपेच्छतरुद्रियम् ॥ उद्धरेन्मातृवर्गंच पितृवर्गञ्चमानवः ॥ ९ ॥ बाल्येवयसियत्पापं वार्द्धक्येयौवनेपिवा ॥ क्षालयेच्चैवतत्सर्वं दृष्ट्वाकालेश्वरंहरम् ॥ १० ॥ अयनेचोत्तरे प्राप्ते यःकुर्याद्घृतकम्बलम् ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव महाकालस्यदर्शनात् ॥ ११ ॥ धनधान्यसमायुक्तःस्फीतेसञ्जायतेकुले ॥ भक्तिर्भवतिभूयोपि पुनःकालेश्वरार्चने ॥ १२ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं महाकालेश्वरंप्रिये ॥ १३ ॥ चण्डोनामगणोदेवि तेनचाराधितम्पुरा ॥ दिव्याब्दानांसहस्रन्तु महाकालेश्वरम्पुरा ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे महाकालेश्वरमाहात्म्यन्नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वस्थामें जो पाप कियागया है उस सबको महाकालेश्वर शिवजी को देखकर नाशकरता है ॥ १० ॥ और दक्षिणायन प्राप्त होनेपर जो घृतकंबल करताहै वह महाकालजी के दर्शन से सातजन्मों के मध्यमें ॥ ११ ॥ धन व धान्य से संयुत होकर समृद्धवंश में उत्पन्न होताहै व फिरभी महाकालजी के पूजन में भक्तिहोती है ॥१२॥ हे प्रिये ! यह संक्षेप से महाकालेश्वर लिङ्ग कहागया ॥ १३ ॥ हे देवि ! पहले चण्डनामक गणहुआ है उसने पुरातन समय देवताओंके हज़ार वर्षतक महाकालेश्वर लिंगका आराधन कियाहै ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाकालेश्वरमाहात्म्यंनामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥

दो० । भैरवेशशिव हैं जहां गेरह रुद्र मँझार । सो बनवे अध्याय में वर्णित चरित उदार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके आग्नेयकोण में स्थित बीस धनुष पै टिकेहुये उत्तम भैरवेश्वरजीके समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये,देवि ! वह लिंग सब कामनाओं को देनेवाला व दरिद्रसमूह को नाशनेवाला है पहले सतयुग में चण्डेश्वर नाम कहागया है ॥ २ ॥ हे देवि ! जो चण्डनामक गणहुआ है उसने देवताओं के हजारवर्षतक आराधन कियाहै उसीकारण चण्डेश्वर कहा गयाहै ॥ ३ ॥ सावधान होताहुआ मनुष्य उन देवदेवेशजी को देखकर व स्पर्शकर जन्म से लगाकर मरणके समीपतक के समस्त पातक से छूटजाता है ॥ ४ ॥ हे

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि भैरवेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्यैववह्निकोणस्थं धनुषांविंशकेस्थितम् ॥ १ ॥ सर्वकामप्रदन्देवि दरिद्रौघविनाशनम् ॥ पूर्वंचण्डेश्वरन्नाम ख्यातंकृतयुगेप्रिये ॥ २ ॥ चण्डोनामगणोदेवि तेनचाराधितम्पुरा ॥ दिव्याब्दानांसहस्रन्तु तेनचण्डेश्वरःस्मृतः ॥ ३ ॥ तन्दृष्ट्वादेवदेवेशं स्पृष्ट्वाचसुसमाहितः ॥ मुच्यतेसकलात्पापादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ ४ ॥ तत्रकृष्णचतुर्दश्यां मासिभाद्रपदेप्रिये ॥ उपवासपरोभूत्वा यःकरोतिप्रजागरम् ॥ ५ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ वाचिकंमानसंपापं कर्मणायदुपार्जितम् ॥ ६ ॥ तत्सर्वंनाशमायाति तस्यलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ तिलंहिरण्यंवस्त्राणि तत्रदेयंमनीषिणे ॥ ७ ॥ सर्वकिल्बिषनाशार्थं सम्यग्यात्राफलेप्सुना ॥ भैरवाकारमास्थाय कल्पान्तेसंहरेद्यतः ॥ ८ ॥ विश्वंसमग्रंदेवेशि तेनासौभैरवस्स्मृतः ॥ अस्मिन्कल्पेमहादेवि प्रभासंक्षेत्रमास्थितः ॥ ९ ॥ बभूवभैरवोरुद्रोकल्पान्तेलिङ्गमूर्त्तिमान् ॥ एवंसंक्षेपतःप्रोक्तंमाहात्म्यंभैरवेश्वरम् ॥ १० ॥

प्रिये ! भादों महीने में कृष्णपक्ष की चौदसि में उपास में तत्पर होकर जो पुरुष जागरण करता है ॥ ५ ॥ वह उत्तम स्थानको प्राप्त होताहै जहां कि महेश्वरदेवजी हैं वाचिक, मानस व कर्म से जो इकट्ठा कियाहुआ पापहै ॥ ६ ॥ वह सब उस लिंगके दर्शनसे नाशको प्राप्त होताहै वहां भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुष को विद्वान् के लिये तिल, सुवर्ण व वस्त्रोंको सब पातकों के नाश होनेके लिये देना चाहिये जिससे भयङ्कर आकार में स्थित होकर वे शिवजी कल्पान्तमें समस्त संसार का संहार करते हैं उसीकारण हे देवेशजी ! ये भैरव कहेगये हैं हे महादेवि! वे इस कल्पमें प्रभासक्षेत्रमें स्थित हैं ॥ ७ । ८ । ९ ॥ और कल्पान्त में लिंगमूर्त्ति

वाले वे रुद्रजी भैरवहुये हैं इसप्रकार सत्तेप से भैरवेश्वरजी का माहात्म्य कहागया ॥ १० ॥ जिसको सुनकर बड़े भयङ्कर पातक से प्राणी छूटजाता है ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभैरवेश्वरमाहात्म्यंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो॰ । मृत्युञ्जयेश्वर लिंग जिमि भयो भूमि विख्यात । तिरानबे अध्याय महँ सोइ कथा है ख्यात ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसी के आग्नेय कोणमें टिकेहुये दश धनुष पै स्थित मृत्युञ्जयेश्वरलिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ सागरादित्य से पश्चिममें चार धनुष पै स्थित वह लिंग दर्शन व स्पर्श न करने से सब

यच्छ्रुत्वामुच्यतेजन्तुः पातकादतिभैरवात् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे भैरवेश्वरमाहात्म्यन्नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंमृत्युञ्जयेश्वरम् ॥ तस्यैववह्निकोणस्थं धनुषांदशकेस्थितम् ॥ १ ॥ पश्चिमेसागरादित्यात स्थितंधनुचतुष्टये ॥ पापघ्नंसर्वजन्तूनां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ २ ॥ पूर्वेयुगेसमाख्यातं नामनन्दीश्वरेतिच ॥ यत्रतप्तंतपोघोरं नन्दिनाम्नागणेनमे ॥ ३ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गं नित्यंपूजापरेणच ॥ तत्रजप्तोमहामन्त्रो मृत्युञ्जयइतिश्रुतः ॥ ४ ॥ कोटीनांनियुतन्देवि ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ ददौगणेशतांतस्य मुक्तिसामीप्यकंतथा ॥ ५ ॥ मृत्युञ्जयेनमन्त्रेण तस्यतुष्टोयतोहरः ॥ तेनमृत्युञ्जयेशेतिख्यातंलिङ्गंधरातले ॥ ६ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या पश्येद्वाभावितात्मना ॥ नाशयेत्तस्यपापानि सप्तजन्मार्जितान्यपि ॥ ७ ॥ स्नापयेत्पयसालिङ्गं दध्नाघृतयुतेनच ॥ मधुइक्षुर

प्राणियों के पातकों का विनाशक है ॥ २ ॥ पहलेवाले युगमें नन्दीश्वर ऐसा नाम कहागया है जहांपर नन्दीनामक मेरे गणने भयङ्कर तपकिया है ॥ ३ ॥ महालिंग को थापकर नित्यही पूजामें परायण उसने वहां मृत्युञ्जय ऐसे प्रसिद्ध महामन्त्र को लत्तकोटि जपाहै तदनन्तर हे देवि ! प्रसन्न होतेहुये सदाशिवजी उसको गणाध्यत्तता व समीपवाली मुक्तिको दिया ॥ ४ । ५ ॥ जिसलिये मृत्युञ्जयमन्त्र से उस के ऊपर शिवजी प्रसन्नहुये उसीकारण मृत्युञ्जयेश ऐसा लिंग पृथ्वी मे प्रसिद्धहुआ है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य शुद्धचित्त से उन शिवजीको भक्तिसे पूजता या देखताहै उसके सातजन्मों में भी कियेहुये पापोंको वे शिवजी नाश करते हैं ॥ ७ ॥ घृतसंयुक्त

दही व दूधसे लिङ्गको नहवावै व शहद व ऊंख के रससे व कुंकुमसे लेपन करै ॥ ८ ॥ और कपूर व खससे मिलेहुये कस्तूरी के रससे और सुगन्धित चन्दनसे लेपन करै तदनन्तर पुष्पोंसे पूजन करै ॥ ९ ॥ हे देवि ! पहले धूप देवै तदनन्तर शिवदेवजी को अगुरु देवै और अपने धनके अनुसार अनेकभाति के वस्त्रोंसे पूजकर ॥ १० ॥ तदनन्तर दीप समेत खीर पूरीकी नैवेद्यको देकर भक्तिसे अष्टांग प्रणाम करना चाहिये ॥ ११ ॥ और वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये सुवर्णदान देना चाहिये इसप्रकार उसकी शास्त्रोक्तयात्रा होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ हे देवि ! ऐसा करके मनुष्य जन्मके फलको पाताहै यह संक्षेप से मृत्युञ्जय का बड़ाभारी ऐश्वर्य

सेनैव कुङ्कुमेनविलेपयेत ॥ ८ ॥ कर्पूरोशीरमिश्रेण मृगनाभिरसेनच ॥ चन्दनेनसुगन्धेन पुष्पैस्सम्पूजयेत्ततः ॥ ९ ॥ दद्याद्धूपंपुरादेवि ततोदेवस्यचागुरुम् ॥ वस्त्रैस्सम्पूज्यविविधैरात्मवित्तानुसारतः ॥ १० ॥ नैवेद्यंपरमान्नञ्च दत्त्वा दीपसमन्वितम् ॥ अष्टाङ्गंप्रणिपातञ्च ततःकार्यंसभक्तितः ॥ ११ ॥ हेमदानञ्चदातव्यं ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ एवंयात्राभवेत्तस्य शास्त्रोक्तानात्रसंशयः ॥ १२ ॥ एवंकृत्वानरोदेवि लभतेजन्मनःफलम् ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं मृत्युञ्जयमहोदयम् ॥ १३ ॥ पापघ्नंसर्वजन्तूनां सर्वकामफलप्रदम् ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे मृत्युञ्जयेश्वरमाहात्म्यन्नामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कामेश्वरमितिस्मृतम् ॥ तस्यचोत्तरदिग्भागे धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ १ ॥ रतीश्वरमितिख्यातं त्रेतायांतत्सुरेश्वरि ॥ यस्मिन्दृष्टेमनुष्याणां पूजितेतुवरानने ॥ २ ॥ सप्तजन्मान्तरंपापं नष्टंभ

कहागया जोकि समस्त प्राणियों के पातकों का विनाशक व सब कामनाओंके फलोंको देनेवाला है ॥ १३ । १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमृत्युञ्जयेश्वरमाहात्म्यंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । एकादश शिवलिंग महं अहै एक कामेश । चौरनबे अध्यायमें सोइ कथाआदेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके उत्तर दिशाके भागमें तीन धनुष पै स्थित कामेश्वर ऐसे कहेहुये शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे सुरेश्वरि ! त्रेतामें वह रतीश्वर ऐसा कहागया है हे वरानने ! जिसके देखने व पूजने

पर मनुष्यों का ॥ २ ॥ सात जन्मोंके मध्यका पाप उसीक्षण नाश होजाताहै और सब मनोरथ की सिद्धि होतीहै व गृहका नाश नहीं होताहै ॥ ३ ॥ देवीजी बोलीं कि हे देव ! इन शिवदेवजीको किसने थापन कियाहै व किसलिये रतीश्वर कहेगयेहैं व इनके दर्शनसे क्या पुण्यहोताहै इस सबको विस्तारसे कहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं पातकोंको नाश करनेवाली कथाको कहताहूं कि कामदेवकी स्त्री पतिव्रता व यशस्विनी रतिनामक हुई है ॥ ५ ॥ पहले शिवदेवजी ने जब कामदेव को जलादिया तब उसीके लिये उस स्थाननें अँगूठाके अग्रभाग से खड़ीहुई रतिने चारयुग तक तपस्या कियाहै हे प्रिये ! शान्तमन से उसने महादेव

वतितत्क्षणात् ॥ सर्वाभीष्टस्यसिद्धिःस्याद् गृहभङ्गोनजायते ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ केनायंस्थापितोदेव कस्मात्प्रोक्तोरतीश्वरः ॥ दर्शनेनास्यकिंश्रेयस्सर्वंविस्तरतोवद ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम्॥ रतिर्नामाभवत्साध्वी कामपत्नीयशस्विनी ॥ ५ ॥ दग्धेमनसिजेपूर्वं देवेनत्रिपुरारिणा ॥ तदर्थेचतपस्तेपे तस्मिन्देशेतदा किल ॥ ६ ॥ अङ्गुष्ठाग्रेणतिष्ठन्त्या यावद्युगचतुष्टयम् ॥ आराधितोमहादेवश्शान्तेनमनसाप्रिये ॥ ७ ॥ कस्मिंश्चिदथ कालेतु निर्भिद्यधरणीतलम् ॥ यस्याग्रतस्समुत्तस्थौ लिङ्गंमाहेश्वरंप्रिये ॥ ८ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ आह्लादयन्तीसहसा तस्याश्चित्तंवरानने ॥ ९ ॥ यस्मान्महेश्वरंलिङ्गं त्वद्भक्त्यासहसोत्थितम् ॥ पूजयत्वंमहाभागे ततःकान्तमवाप्स्यसि ॥ १० ॥ एतच्छ्रुत्वातुसासाध्वी देवदेवस्यभाषितम् ॥ तल्लिङ्गंपूजयामास भक्त्यापरमयायुता ॥ ११ ॥ ततःकामस्समुत्तस्थौ सुप्तोत्थितइवप्रिये ॥ ततःप्रभृतितल्लिङ्गं कामेश्वरमितिश्रुतम् ॥ १२॥ ततस्सा

जीका आराधन किया ॥ ६ । ७ ॥ इसके अनन्तर हे प्रिये ! किसी समय उसके आगे पृथ्वीको फोड़कर शिवजी का लिंग ऊपर निकला ॥ ८ ॥ इसी समय में हे वरानने ! उसके चित्तको प्रसन्न करतीहुई अचानकही आकाशवाणी बोली ॥ ९ ॥ कि जिसलिये तुम्हारी भक्तिसे अचानकही शिवजी का लिंग उत्पन्न हुआ इसलिये हे महाभागे ! तुम इसको पूजो तदनन्तर पतिको पावोगी ॥ १० ॥ देवदेव शिवजी के कहेहुये इस वचन को सुनकर बड़ीभक्ति से संयुत उस उत्तम आचरणवाली रतिने उस लिङ्गको पूजन किया ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे प्रिये ! सोकर उठाहुआ सा कामदेव उठखड़ाहुआ तब से लगाकर वह लिंग कामेश्वर ऐसा प्रसिद्ध है ॥ १२ ॥

तदनन्तर वह कामदेव की प्यारी स्त्री प्रसन्न होकर पुष्पधनुषवाले कामदेवके आगे यह वचन बोली कि ॥ १३ ॥ सावधान होतेहुये जो अन्य पुरुष इस लिंगको पूजेंगे इसप्रकार वियोगी भी वे प्रायः उत्तमगति को प्राप्त होवेंगे ॥ १४ ॥ वैसेही यद्यपि जो दुर्लभ भी होगा तथापि उस सब मनोरथ को इस लिंगके प्रसाद से निस्सन्देह प्राप्त होवेंगे ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर कामदेव से संयुत वह पूर्णकामनावाली पतिव्रता रति प्रसन्न चित्तसे अपने स्थान को चलीगई ॥ १६ ॥ इस प्रकार चैत महीने में शुक्लपक्षवाली तेरसिमें जो पुरुष उन कामेश्वरजीको पूजता है वह मनुष्यों के बीचमें कामनाओंवाला व पुत्र तथा सौभाग्य से संयुत होताहै ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपु-

कामदयिता वाक्यमेतदुवाचह ॥ प्रहृष्टाकामदयिता पुरतःपुष्पधन्वनः ॥ १३ ॥ पूजयिष्यन्तिये चान्ये लिङ्गमेतत्समाहिताः ॥ एवन्तेविप्रयुक्तापि प्रायोयास्यन्तिसद्गतिम् ॥ १४ ॥ मनोभीष्टंतथासर्वं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ तत्प्राप्स्यन्तिनसन्देहो लिङ्गस्यास्यप्रसादतः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वागतासाध्वी रतिःकामेनसंयुता ॥ स्वस्थानंपूर्णकामासा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १६ ॥ एवंचैत्रत्रयोदश्यां शुक्लायांयस्तमर्चति ॥ सकामवद्भवेन्नृणां सुतसौभाग्यसंयुतः ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकामेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि योगेश्वरमितिस्मृतम् ॥ कामेशाद्वायवेभागे धनुषांसप्तकेस्थितम् ॥ १ ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि दर्शनात्पापनाशनम् ॥ पूर्वेयुगेतुविख्यातं गणेश्वरमितिस्मृतम् ॥ २ ॥ पुराममगणादेवि असंख्यातामहाबलाः ॥ क्षेत्रंमाहेश्वरंज्ञात्वाप्रभासंसमुपागमन् ॥ ३ ॥ तत्रास्थायतपोघोरं तेपुस्तेयोगमाश्रिताः ॥ दिव्याब्दानां

राणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकामेश्वरमाहात्म्यंनामचतुर्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ ॥

दो० । एकादश शिवलिंग महँ भयो यथा योगेश । पंचनबे अध्याय में सोइकथा उपदेश ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर कामेश्वरजीसे वायव्यदिशाके भागमें सात धनुष पै स्थित योगेश्वर ऐसे कहेहुये शिवजीके समीप जावै ॥ १ ॥ वह महाप्रभाववाला लिंगदर्शन से पातकों को नाश करता है पहलेयुगमें गणेश्वर ऐसा कहाहुआ लिंग विख्यात हुआ है ॥ २ ॥ हे देवि ! पुरातन समय बड़े बलवान् मेरे असंख्यगण शिवजी के क्षेत्रको जानकर प्रभासक्षेत्रको आये ॥ ३ ॥ और वहां टिक-

कर योगमें प्राप्त होतेहुये उन्होंने देवताओं के हज़ारवर्षतक भयङ्कर तपकिया तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी ने ॥ ४ ॥ योगके बलसे उनको सालोक्य मुक्तिको दिया जिसलिये षडङ्गयोग मे शिवजी उनके ऊपर प्रसन्नहुये ॥ ५ ॥ इसलिये योग के फलको देनेवाला योगेश्वर नामक लिङ्गहुआ जो पुरुष भलीभांति पूजनकी विधि से उनको भक्तिसे पूजता है ॥ ६ ॥ वह योगकी सिद्धिको पाताहै व स्वर्गमें देवताओंकी नाईं आनन्द करता है जो पुरुष सोनेका सुमेरु व सम्पूर्ण पृथ्वीको देताहै ॥ ७ ॥ और जो योगेशजीको पूजता है उन दोनोंमें वह पूर्वोक्त अधिक कहागयाहै सम्पूर्ण फलके लिये वहां बैल देना चाहिये ॥ ८ ॥ इसप्रकार प्रभासमें टिकेहुये गेरह

सहस्रन्तु ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ ४ ॥ सालोक्यंचददौमुक्तिन्तेषांयोगबलेनवै ॥ यस्मात्षडङ्गयोगेन तेषांतुष्टोवृषध्वजः ॥ ५ ॥ तेनयोगेश्वरन्नाम लिङ्गंयोगफलप्रदम् ॥ यस्तमर्चयतेभक्त्या सम्यक्पूजाविधानतः ॥ ६ ॥ सयोगसिद्धिमाप्नोति मोदतेदिविदेववत् ॥ योदद्यात्काञ्चनंमेरुं कृत्स्नांचैववसुन्धराम् ॥ ७ ॥ योगेशंपूजयेद्यस्तु सतयोरधिकःस्मृतः ॥ वृष भस्तत्रदातव्यः सम्पूर्णफलहेतवे ॥ ८ ॥ एवमेकादशप्रोक्तारुद्राःप्राभासमाश्रिताः ॥ नित्यंपूज्याश्चवन्द्याश्च क्षेत्रस्यफ लमीप्सुभिः ॥ ९ ॥ यश्चैनान्नैवजानातिरुद्रान्प्राभासमाश्रितान् ॥ सक्षेत्रमध्यसंस्थोपि नास्त्येवसपशुस्स्मृतः ॥ १० ॥ एतेषांचैवरुद्राणां सर्वान्वाएकमेववा ॥ सोमेश्वरंपूजयित्वा जपेद्वाशतरुद्रियम् ॥ ११ ॥ सर्वेषांलभतेपुण्यं रुद्राणांना त्रसंशयः ॥ इदंरहस्यंसंख्यातं माहात्म्यंतवभामिनि ॥ १२ ॥ रुद्राणांपापशमनं श्रुतंपुण्यविवर्द्धनम् ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेएकादशरुद्रमाहात्म्यन्नामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ * ॥ * ॥

रुद्र कहेगये क्षेत्रके फलको चाहनेवाले पुरुषों से वे सब नित्यही पूजनेयोग्य व प्रणाम करनेयोग्यहैं ॥ ९ ॥ जो पुरुष प्रभासक्षेत्रमें टिकेहुये इनरुद्रोंको नहीं जानता है क्षेत्रके बीचमें टिकाहुआ भी वह नहीं है और वह पशु कहागयाहै ॥ १० ॥ और इनरुद्रोंके मध्यमें सबोंको अथवा एकही सोमेश्वरजीको पूजकर मनुष्य शतरुद्रीको जपै ॥ ११ ॥ तो सब रुद्रोंके पूजनवाले फलको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहीं है हे भामिनि ! यह रुद्रोंका गुप्त माहात्म्य तुमसे कहागया सुनाहुआ जो माहात्म्य पातकोंका विनाशक व पुण्यको बढ़ानेवालाहै ॥ १२ । १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्यएकादशरुद्रमाहात्म्यंनामपञ्चनवतितमोध्यायः॥ ९५ ॥

दो॰। चन्द्रेश्वर शिवलिंग को थाप्यो जिमि उडुनाथ। छनवे के अध्याय में सोई वर्णित गाथ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर सोमेशजीसे वायव्य दिशा के भागमें साठ धनुष पै स्थित चन्द्रेश्वर ऐसे कहेहुये महादेवजी के समीप जावै॥ १॥ हे महादेवि! वह दिव्यलिंग सब पापोंको नाश करनेवाला है वह स्वायम्भू मन्वन्तर में पहलेयुग में चन्द्रेश्वर ऐसा प्रसिद्ध हुआ है॥ २॥ व हे देवि! त्रेतायुग के आदि में पृथ्वी से थापागयाहै हे प्रिये! इस पहले मन्वन्तर में चन्द्रेश्वर लिंग॥ ३॥ ब्रह्महत्यादिक पातकोंको नाश करनेवाला व पुण्यको बढ़ानेवाला है हे देवि! उन शिवजी को देखकर मनुष्य सातजन्मों में कियेहुये॥ ४॥

ईश्वरउवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि चन्द्रेश्वरमितिस्मृतम्॥ सोमेशाद्वायवेभागे धनुषांषष्टिभिःस्थितम्॥ १॥ दिव्यंलिङ्गंमहादेवि सर्वपातकनाशनम्॥ तत्पूर्वेतुयुगेख्यातं मनोःस्वायम्भुवेन्तरे॥ २॥ त्रेतायुगेमुखेदेवि पृथिव्यासम्प्रतिष्ठितम्॥ पूर्वेमन्वन्तरेचास्मिँल्लिङ्गंचन्द्रेश्वरम्प्रिये॥ ३॥ ब्रह्महत्यादिपापानां नाशनंपुण्यवर्द्धनम्॥ तन्दृष्ट्वामानुषोदेवि सप्तजन्मसमुद्भवैः॥ ४॥ मुच्यतेकल्मषैस्सर्वैःकृतकृत्यस्तुजायते॥ ५॥ देव्युवाच॥ कथंपृथ्वीश्वरंख्यातं तल्लिङ्गंपापनाशनम्॥ कथंपुनःसमाख्यातं चन्द्रेश्वरमितिप्रभो॥ ६॥ एतद्विस्तरतोब्रूहि श्रोतुकामाहमादरात्॥ ७॥ ईश्वरउवाच॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम्॥ यांश्रुत्वामुच्यतेजन्तुस्त्रिविधैःकर्मबन्धनैः॥ ८॥ आसीत्पूर्वंमहादेवि दैत्यभारार्द्दितामही॥ साधोव्रजन्तीसहसा गोरूपासंबभूवह॥ ९॥ इतस्ततोधावमाना नलेभेनिर्वृतिंक्वचित्॥ ततोवर्षशतेपूर्णे भ्राममाणाक्वचित्क्वचित्॥ १०॥ आससादमहाक्षेत्रं प्रभासमितिवि

समस्त पातकों से छूटजाता है व कृतार्थ होजाता है॥ ५॥ देवीजी बोलीं कि हे प्रभो! वह पापनाशक लिंग किसप्रकार पृथ्वीश्वर कहागया है व फिर किसप्रकार चन्द्रेश्वर कहागया है॥ ६॥ इसको विस्तार से कहिये मैं आदर से सुनने की इच्छा करती हूं॥ ७॥ महादेवजी बोले कि हे देवि! सुनिये मैं पातकोंको नाशनेवाली कथाको कहताहूं जिसको सुनकर मनुष्य तीनभांति के कर्मबन्धन से छूट जाताहै॥ ८॥ हे महादेवि! पुरातन समय पृथ्वी दैत्योंके भार से व्याकुल हुई और नीचे जातीहुई वह अचानकही गऊरूपी होगई॥ ९॥ और इधर उधर दौड़तीहुई उसने कहीं कल्याणको नहीं पाया तदनन्तर सौवर्ष पूर्ण होनेपर जहां कहीं घूमती

हुई वह ॥ १० ॥ प्रभास ऐसे प्रसिद्ध महाक्षेत्रको आई जोकि देवताओं व दानवों तथा गन्धर्वों से सेवित व पातकों का विनाशक है ॥ ११ ॥ उस महाक्षेत्रमें टिककर व मनमें निश्चयकर उस पृथ्वीने उत्तम भक्तिसे संयुत होकर लिंगको थापन किया ॥ १२ ॥ और कुछ अधिक सौवर्ष कठिनतप करनेपर भगवान् शिवजी प्रसन्न हुये व पृथ्वी से वचन बोले ॥ १३ ॥ कि हे विश्वम्भरे, देवि ! तुमने सब उत्तम तप किया है कल्याणि ! शोच मतकरो तुम्हारा अभिलाष होवेगा ॥ १४ ॥ विष्णुजी से मारेहुये दैत्य पृथ्वी में नाशको प्राप्त होवैंगे व हे महादेवि, धरित्रि ! तुम दैत्यों के भार से रहित होवोगी ॥ १५ ॥ तुमने जो इस अतिउत्तम लिंगको थापा है यह

श्रुतम् ॥ देवदानवगन्धर्वैः सेवितंपापनाशनम् ॥ ११ ॥ तत्रस्थित्वामहाक्षेत्रे कृत्वामनसिनिश्चयम् ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठया मास भक्त्यापरमयायुता ॥ १२ ॥ वर्षाणांचशतंसाग्रं कृतेतपसिदुश्चरे ॥ तुतोषभगवान्रुद्रो धरित्रींवाक्यमब्रवीत् ॥ १३ ॥ देविविश्वम्भरेसर्वं तपस्सुचरितन्त्वया ॥ माशोकंकुरुकल्याणि भविष्यतितवेप्सितम् ॥ १४ ॥ दैत्यानाशंगमिष्यन्ति विष्णुनानिहताभुवि ॥ धरित्रित्वंमहादेवि दैत्यभारविवर्जिता ॥ १५ ॥ इदंत्वयास्थापितंयल्लिङ्गंपरमशोभनम् ॥ धरित्रीशेतिनाम्नातु लोकेख्यातिङ्गमिष्यति ॥ १६ ॥ अत्राहंसंस्थितोनित्यं लिङ्गरूपीमहाप्रभः ॥ स्थास्यामिकल्पकल्पेवै नृणांपापापहारकः ॥ १७ ॥ मूर्त्यष्टकसमायुक्तो लिङ्गेस्मिन्संस्थितस्सदा ॥ नृणांवैनाशयेत्पापं पूर्वजन्मशतार्जितम् ॥ १८ ॥ भाद्रेकृष्णतृतीयायां यश्चैनंपूजयिष्यति ॥ सोश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्स्यत्यसंशयम् ॥ १९ ॥ सर्वतीर्थाभिषेकस्य सर्वेषांदानकर्मणाम् ॥ भविष्यतिफलंतस्य लिङ्गस्यैवास्यपूजनात् ॥ २० ॥ धनुषांषोडशोयावत्स

धरित्रीश ऐसे नाम से संसार में प्रसिद्ध होगा ॥ १६ ॥ महाप्रभावान् लिंगरूपी मैं यहां सदैव स्थित रहूंगा और कल्प कल्पमें मनुष्योंके पापोंको हरनेवालामैं टिकूंगा ॥ १७ ॥ आठ मूर्त्तियों से संयुत मैं सदैव इस लिंगमें स्थितहूं और मनुष्यों के पहले सौजन्मों में कियेहुये पातकको मैं नाश करताहूं ॥ १८ ॥ भादोंमें कृष्णपक्षवाली तीजमें जो पुरुष इस लिंगको पूजैगा वह हज़ार अश्वमेधयज्ञ के फलको निस्संदेह पावैगा ॥ १९ ॥ और इस लिंगके पूजन से सब तीर्थोंके स्नानका व सब

दानकर्मों का फल उसको होवैगा ॥ २० ॥ इस लिंगका क्षेत्र सबओर से सोलहयोजन मण्डलवाला है जोकि प्राणियों को मुक्ति देनेवाला है ॥ २१ ॥ उस क्षेत्रमें कामना वा बिन कामना से भी जो प्राणी उस क्षेत्रमें मरतेहैं कृमि व कीटोंके समान भी वे उत्तमगति को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥ जो पुरुष सुवर्ण का सुमेरु देताहै व समस्त पृथ्वीको देताहै व जो चन्द्रेशजीको पूजता है वही उन दोनोंमें अधिक कहागया है ॥ २३ ॥ महादेवजी बोले कि इसप्रकार वरदानों को देकर शिवदेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये तभीसे लगाकर शिवजी पृथिवीश्वर नामक हुये ॥ २४ ॥ फिर वाराह ऐसे प्रसिद्ध इस महाकल्प में किसी समय दक्षजी के शापसे चन्द्रमा

मन्तात्परिमण्डलम् ॥ क्षेत्रमस्यसमाख्यातं प्राणिनांमुक्तिदायकम् ॥ २१ ॥ तस्मिन्मृताःप्राणिनोये कामतोवाप्य कामतः ॥ कृमिकीटसमावापि तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ २२ ॥ योदद्यात्काञ्चनंमेरुं कृत्स्नांचापिवसुन्धराम् ॥ यःपूजयति चन्द्रेशं सतयोरधिकस्स्मृतः ॥ २३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इतिदत्त्वावरान्देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ पृथिवीश्वरनामाभूत्तत्प्र भृत्येवशङ्करः ॥ २४ ॥ पुनरस्मिन्महाकल्पे वाराहइतिविश्रुते ॥ कदाचिद्दक्षशापेन क्षीणश्चन्द्रोबभूवह ॥ २५ ॥ पपा तभूतलेदेवि यक्ष्मणापीडितःशशी ॥ क्षेत्रंप्रभासमासाद्य तन्महोदधिसन्निधौ ॥ २६ ॥ दृष्ट्वापृथ्वीश्वरंलिङ्गं तत्प्रभावं महाप्रभम् ॥ तत्पूजानिरतोभूत्वा वर्षाणान्तुसहस्रकम् ॥ २७ ॥ अतपत्सतपोरौद्रं शीर्णपर्णाम्बुभक्षकः ॥ ततस्समभ वद्देवि सर्वाह्लादकरश्शशी ॥ २८ ॥ तस्यैवलिङ्गमाहात्म्यात्कृतेचन्द्रेश्वरोभवत् ॥ तस्यलिङ्गस्यमाहात्म्याच्चन्द्रमाग तकल्मषः ॥ २९ ॥ अवापसिद्धिमत्युग्रां स्पर्शलिङ्गप्रकाशिनीम् ॥ सोमनाथेतियांप्राहुः प्रसिद्धांलिङ्गरूपिणीम् ॥ ३०

क्षीण होगया ॥ २५ ॥ और हे देवि ! यक्ष्मारोगसे पीड़ित चन्द्रमा पृथ्वीमें गिरपड़ा और महासागर के समीप उस प्रभासक्षेत्रमें प्राप्त होकर ॥ २६ ॥ उस प्रभाववाले महाप्रभावान् पृथ्वीश्वर लिंगको देखकर व हज़ार वर्षतक उसके पूजन में परायण होकर ॥ २७ ॥ गिरेहुये पत्तोंको व जलको भोजन करनेवाले उसने भयङ्कर तप किया तदनन्तर हे देवि ! उसी लिंगके माहात्म्यसे चन्द्रमा सबों का आनन्दकारकहुआ और सतयुग में चन्द्रेश्वर नामहुआ व उसी लिंग के माहात्म्य से चन्द्रमा पापरहित हुआ ॥ २८ । २९ ॥ व उसने स्पर्शलिंग को प्रकाशकरनेवाली अतिउत्तम सिद्धि को पाया है किजिसको महर्षिलोग सोमनाथ ऐसी प्रसिद्ध लिङ्गरूपिणी

कहते हैं ॥ ३० ॥ चन्द्रमा देवतावाला यह माहात्म्य संक्षेप से कहागया सुनाहुआ यह माहात्म्य पापों को हरता है व नीरोगता को देताहैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचन्द्रेश्वरमाहात्म्यंनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । चक्रपाणि अरु दण्डकर अति माहात्म्य विशाल । सत्तनबे अध्याय में वर्णित चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर जहां चक्रधारी जी स्थित हैं वहां जावै और देवेश दण्डपाणिजी जहां एकही स्थान में स्थित हैं वहां जावै ॥ १ ॥ सोमेशजी से उत्तरमें इसी पूर्वदिशा के भागमें पांचवें धनुषके

इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंचन्द्रदैवतम् ॥ श्रुतंहरतिपापानि तथारोग्यंप्रयच्छति ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेचन्द्रेश्वरमाहात्म्यन्नामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यत्रचक्रधरःस्थितः । दण्डपाणिश्चदेवेशो यत्रैकस्थानसंस्थितः ॥ १ ॥ एतस्मिन्पूर्वदिग्भागे सोमेशादुत्तरेस्थितः ॥ धनुषांपञ्चमस्थाने गन्धर्वेशात्समीपतः ॥ २ ॥ उमायानैर्ऋतेभागे ब्रह्मदेवर्षिसंस्तुतः ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशिनीम् ॥ ३ ॥ पौण्ड्रकोवासुदेवश्च वाराणस्यांपुराभवत् ॥ तेनश्रुतंपुराणन्तु पठ्यमानंद्विजातिभिः ॥ ४ ॥ कल्पादौद्वापरान्तेतु क्षत्रियाणांनिवेशने ॥ अवतारंमहाबाहुर्वासुदेवःकरिष्यति ॥ ५ ॥ सतुमूढमतिर्मेने अहंविष्णुरितिप्रिये ॥ चिह्नानिधारयामास चक्रादीनिवरानने ॥ ६ ॥ सदूतंप्रेषयामास द्वारकायांमहोदरम् ॥ शङ्खंगदाञ्चपद्मञ्च चक्रंचापिपरित्यज ॥ ७ ॥ इत्याहपौण्ड्रकोराजा कृष्णंदूतंवचोब्रवीत् ॥ गृहीत

स्थानमें गन्धर्वेशजी से समीपही वे सिवजी स्थित हैं ॥ २ ॥ और ब्रह्मर्षि व देवर्षियोंसे स्तुति कियेहुये वे पार्वतीजी के नैर्ऋत्य दिशाके भागमें स्थित हैं सब पातकों के नाश करनेवाली उनकी उत्पत्ति को कहताहूं ॥ ३ ॥ पुरातन समय काशीमें पौण्ड्रक वासुदेव हुआ है उसने ब्राह्मणों से पढ़ेजातेहुये पुराण को सुना ॥ ४ ॥ कि कलियुग के आदि में व द्वापर के अन्तमें क्षत्रियों के घरमें महाभुज वासुदेवजी अवतारकरैंगे ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! उस मूढ़बुद्धिने यह माना कि मैं विष्णुहूं और हे वरानने ! उसने चक्रादिक चिह्नोंको धारण किया ॥ ६ ॥ और उसने द्वारका में महोदर दूतको पठाया उसने श्रीकृष्णजी से कहा कि शङ्ख, गदा, पद्म व चक्रको छोड़

दीजिये ॥ ७ ॥ यह पौण्ड्रक राजाने कहाहै श्रीकृष्णजी दूत से वचन बोले कि चक्रको लियेही हुये मैं तुम्हारे पुरको आऊंगा ॥ ८ ॥ तदनन्तर चक्र व इस गदाको निस्सन्देह छोड़ूंगा यदि तुम्हारा अभिलाष अन्यथा है तो वह चक्र आप से ग्रहण करनेयोग्य है ॥ ९ ॥ ऐसा कहनेपर इसके अनन्तर जब दूत चलागया तब गरुड़ जीको स्मरणकर श्रीकृष्णजी उस गरुड़ पै चढ़कर शीघ्रही उसके नगर को गये ॥ १० ॥ तदनन्तर मित्रके स्नेहसे वह काशीका राजा अचानकही उसका अनुगामी हुआ ॥ ११ ॥ उसके उपरान्त सब सेना से संयुत वह राजा पौंड्रके समीप गया तदनन्तर बड़ी सेनासे काशीराज की सेना समेत ॥ १२ ॥ यह पौण्ड्रक वासुदेव श्री

चक्रएवाहमागमिष्यामितेपुरम् ॥ ८॥ सन्त्यक्ष्यामिततश्चक्रं गदाचेमामसंशयम् ॥ तद्ग्राह्यंभवताचक्रमन्यथाचेत्त्वेप्सितम् ॥ ९ ॥ इत्युक्तेथगतेदूते संस्मृत्यगरुडंहरिः ॥ गरुत्मन्तंसमारुह्य त्वरिततत्पुरंययौ ॥ १० ॥ मित्रस्नेहात्ततस्तस्य सराजासहसानुगः ॥ ११ ॥ सर्वसैन्यपरीहारस्ततःपौण्ड्रमुपाययौ ॥ ततोबलेनमहता काशिराजबलेन च ॥ १२ ॥ पौण्ड्रकोवासुदेवोसौ केशवाभिमुखोययौ ॥ तन्ददर्शहरिर्दूराद् दुर्वारंस्यन्दनेस्थितम् ॥ १३ ॥ चक्रहस्तं गदाशार्ङ्गसंयुतंगरुडध्वजम् ॥ तन्दृष्ट्वाभावगम्भीरं जहासगरुडध्वजः ॥ १४ ॥ उवाचपौण्ड्रकंमूढमात्मचिह्नोपलक्षितम् ॥ पौण्ड्रोक्तंयत्त्वयावाक्यं दूतवक्त्रेणमाम्प्रति ॥ १५ ॥ समुत्सृजेतिचिह्नानि तच्चसर्वंत्यजाम्यहम् ॥ चक्रमेतत्समुत्सृष्टं गदेयंचाविसर्जिता ॥ १६ ॥ गरुत्मानेषतेगत्वा समारोहतुवैध्वजम् ॥ इत्युच्चार्यविमुक्तेन चक्रेणासौनिपातितः ॥ १७ ॥ रथश्चगदयाभग्नो गजाश्वौचमहात्मना ॥ ततोहाहाकृतेलोके काशीनाथोमहाबली ॥ १८ ॥ युयुधेवासुदेवेन

कृष्णजी के सामने गया व दुःखसे मना करनेयोग्य तथा रथपै बैठेहुये उस पौण्ड्रकको श्रीकृष्णजी ने दूरसे देखा ॥ १३ ॥ और चक्रहाथवाले व गदा तथा शार्ङ्गधनुषसे संयुत उस गम्भीरभाववाले गरुड़ध्वज पौण्ड्रकको देखकर गरुड़ध्वज श्रीकृष्णजी हँसनेलगे ॥ १४ ॥ और अपने चिह्नोंसे उपलक्षित मूढ़ पौंड्रकसे बोले कि हे पौण्ड्रक! जो तुमने दूतके मुखसे वचन को कहाथा ॥ १५ ॥ कि चिह्नोंको छोड़ दीजिये उस सबको मैं छोड़ताहूं यह चक्र छोड़ागया व यह गदा छोड़ीगई ॥ १६ ॥ और यह गरुड़ तुम्हारे ध्वजाके समीप जाकर चढ़ै यह कहकर छोड़ेहुये चक्रसे यह मारागया ॥ १७ ॥ और गदासे रथ नष्ट कियागया और हाथी व घोड़े महात्मा श्रीकृष्णजी

से मारेगये तदनन्तर लोकमें हाहाकार होनेपर महाबलवान् काशीका स्वामी ॥१८॥ मित्रके दुःखसे दुःखित होकर श्रीकृष्णजी के साथ युद्ध करताभया तदनन्तर शार्ङ्गधनुष से छोड़ेहुये बाणोंसे उसका शिर काटकर ॥ १९ ॥ उन श्रीकृष्णजी ने संसार को विस्मय करतेहुये काशीपुरी में फेंक दिया और पौण्ड्रक को मारकर व अनुगामियों समेत काशी के राजाको मारकर श्रीकृष्णजी ने ॥ २० ॥ स्वर्ग में प्राप्तकी नाईं द्वारका में बहुत दिनोंतक रमण किया तदनन्तर काशी के राजाका पुत्र पिता के दुःख से दुःखित होकर ॥ २१ ॥ शिवजीको प्रसन्न करताभया और उन शिवजी ने उसके लिये वरदान दिया व उस काशिराज के पुत्रने यह वरदान मागा कि हे

मित्रदुःखेनदुःखितः ॥ततश्शार्ङ्गविनिर्मुक्तैश्छित्त्वातस्यशरैश्शिरः ॥ १९ ॥ काशिपुर्यांसचिक्षेप कुर्वल्लोँकस्यविस्मयम् ॥ हत्वातुपौण्ड्रकंशौरिः काशिराजञ्चसानुगम्॥२०॥ द्वारकायांचिरङ्कालं रेमेस्वर्गगतोयथा ॥ ततःकाशिपतेःपुत्रः पितुर्दुःखेनदुःखितः ॥ २१ ॥ शङ्करन्तोषयामास सचतस्मैवरन्ददौ ॥ सवव्रेभगवन्कृत्यांपितृहन्तुर्वधायमे॥ २२॥ समुत्तिष्ठतुकृष्णस्य त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ एवंभविष्यतीत्युक्ते दक्षिणाग्नेस्तुमध्यतः ॥ २३ ॥ महाकृत्यासमुत्तस्थौ प्रस्थिताद्वारकाम्प्रति ॥ ज्वालामालाकरालान्तां यादवाभयविह्वलाः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वाजनार्दनंसर्वे शरणार्थमुपागताः ॥ ततस्सुदर्शनंतस्यै मुमोचगरुडध्वजः ॥ २५ ॥ वधायसाततोयाता चक्रतेजोभिपीडिता ॥ कृत्यामनुजगामाशु विष्णोश्चक्रंसुदर्शनम् ॥२६॥ कृत्यावाराणसीम्प्राप्ता तस्याश्चक्रन्तुपृष्ठतः ॥ ततस्साभयसंत्रस्ता शङ्करंशरणङ्गता॥२७॥

भगवन्, सुरेश्वर ! मेरे पिताको मारनेवाले श्रीकृष्णजी को मारने के लिये तुम्हारी प्रसन्नता ते कृत्या उत्पन्न होवै ऐसा होगा यह कहनेपर दक्षिणाग्नि के बीचसे ॥ २२ । २३ ॥ महाकृत्या उठती भई व द्वारका के सामने चली और ज्वालाके समूहों से भयानक उस कृत्याको देखकर भयसे विकल यादव ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी को देखकर सब शरणके लिये आये तदनन्तर गरुड़ध्वज श्रीकृष्णजी ने उस कृत्या के लिये सुदर्शन चक्रको मारने के लिये छोड़ा तदनन्तर चक्रके तेज से पीड़ित वह कृत्याचली और विष्णुका सुदर्शनचक्र शीघ्रही कृत्या के पीछे चला ॥ २५ । २६ ॥ और कृत्या काशी में प्राप्तहुई और उसके पीछे चक्रचला तदनन्तर भयसे डरीहुई

वह कृत्या शिवजी के शरण में प्राप्तहुई ॥ २७ ॥ क्योंकि जगदीश सोमनाथजी को छोड़कर अन्य रक्षा करने के लिये नहीं समर्थ है तदनन्तर शिवजी ने उत्तमबाणों से चक्रको मारा ॥ २८ ॥ और शिवजी के बाणों से मिलाहुआ चक्र वहां द्वारकामें प्राप्तहुआ व शिवजीके नामसे चिह्नित बाणोंसे ताड़ित उसचक्रको देखकर व क्रोधित होकर चक्रको हाथ में लेकर भगवान् कृष्णजी वहांगये जहां कि सोमेशभैरवजी थे ॥ २९।३० ॥ रोषसे ताम्रवर्ण नेत्रोंवाले व चक्रको हाथमें उबायेहुये स्थित उन श्री कृष्णजी ने कालभैरव से निर्माण कीहुई कृत्याको मारनेके लिये बुद्धि किया ॥३१॥ तदनन्तर सबदेवताओं ने व दण्डपाणिगण ने श्रीकृष्णजी को देखा और देवताओंके

सोमनाथंजगन्नाथं नान्यश्शक्तोहिरक्षितुम् ॥ ततश्चक्रंवरैर्बाणैस्ताडयामासशङ्करः ॥ २८ ॥ तत्रद्वारावतींप्राप्तं शिवसायकमिश्रितम् ॥ तन्दृष्ट्वाशिवनामाङ्कैस्ताडितंभगवान्हरिः ॥ २९ ॥ चक्रंशरैस्ततःक्रुद्धो गृहीत्वाचकरेणतु ॥ जगामतत्रयत्रास्ते सोमेशःकिलभैरवः ॥ ३० ॥ सगत्वारोषताम्राक्षश्चक्रोद्यतकरस्स्थितः ॥ कृत्यांहन्तुंमतिञ्चक्रे कालभैरवनिर्मिताम् ॥ ३१ ॥ दृष्टोदेवैस्ततस्सर्वैर्दण्डपाणिगणेनच ॥ देवानांप्रेक्षतान्तत्र दण्डपाणिर्महागणः ॥ ३२ ॥ चक्रोद्यतकरन्दृष्ट्वा विष्णुंकमललोचनम् ॥ ३३ ॥ दण्डपाणिरुवाच ॥ माक्रोधंकुरुदेवेश कृत्याम्प्रतिजगत्प्रभो ॥ अमोघंयुधितेचक्रं कृत्याचापिचशाङ्करी ॥ ३४ ॥ एवंचक्रेविनिर्मुक्ते भवेत्क्रोधोहरेयदि ॥ भविष्यतिमहद्दुःखं लोकानांसंक्षयोभवेत् ॥ ३५ ॥ नमोक्तव्यमतश्चक्रं शृणुभूयोवचोमम ॥ अत्रस्थानेनियुक्तोहं शङ्करेणपुराहरे ॥ ३६ ॥ पापिनांरक्षणार्थंवै नाशार्थंदुष्टचेतसाम् ॥ तस्मात्त्वंममसान्निध्ये तिष्ठचक्रधरोहरे ॥ ३७ ॥ अत्रचक्रधरन्देवाः पूजयिष्य

देखतेहुये वहां दण्डपाणि नामक महागण ॥ ३२ ॥ चक्रको हाथमें उबायेहुये कमललोचन विष्णुजी से बोला ॥ ३३ ॥ दण्डपाणिजी बोले कि हे देवेश, प्रभो ! कृत्याके ऊपर क्रोध मतकीजिये युद्धमें तुम्हारा चक्र अमोघ है याने निष्फल नहीं होताहै और शिवजी की कृत्याभी अमोघ है ॥ ३४ ॥ हे हरे ! यदि क्रोधहोगा तो इसप्रकार चक्र छोड़नेपर बड़ा दुःखहोगा और लोकों का संहार होवैगा ॥ ३५ ॥ इसलिये चक्रको न छोड़ना चाहिये और फिर मेरे वचनको सुनिये कि हे हरे ! पुरातन समय दुष्टचित्तवाले पापियों के सकाशसे रक्षाके लिये व उनके नाशके लिये मैं शिवजी से इस स्थान में नियुक्तहूं इसलिये हे हरे ! चक्रको धारणकर तुम मेरे

समीप स्थित होवो ॥ ३६ । ३७ ॥ यहांपर चक्रधारी को देवता व मनुष्य धूप, माला व उपहारों से तथा अनेकभांति की नैवेद्यों से भी पूजन करेंगे ॥ ३८ ॥ विष्णुजी बोले कि तुम्हारे वचनरूपी अंकुश से मैं अभी निवृत्त होताहूं और यहां पर तुम्हारे समीप चक्रको हाथ में उबायेहुये मैं स्थित हूंगा ॥ ३९ ॥ हे प्रिये, देवि ! इस प्रकार वहांपर चक्रधारीजी स्थित हैं और मेरे रूपवाले गणेश्वर दण्डपाणि भगवान्जी स्थित हैं ॥ ४० ॥ जो पुरुष भक्तिसे उन दण्डपाणि व विष्णुजी को क्रमसे पूजता है वह मनुष्य पापरूपी केंचुलिसे छूटकर शिवलोक को जाताहै ॥ ४१ ॥ माघ महीने में चतुर्दशी व कृष्णपक्ष की अष्टमी में जो पुरुष विशेषकर चन्दन, धूप

न्तिमानवाः ॥ धूपमाल्योपहारैश्च नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ ३८ ॥ विष्णुरुवाच ॥ एषएवनिवृत्तोहं तववाक्यांकुशेनवै ॥ अत्रचक्रोद्यतकरः स्थितस्तवसमीपतः ॥ ३९ ॥ एवंहिसंस्थितोदेवि तत्रचक्रधरःप्रिये ॥ दण्डपाणिश्चभगवान् ममरूपी गणेश्वरः ॥ ४० ॥ यस्तौपूजयतेभक्त्या दण्डपाणिंहरिंक्रमात् ॥ सपापकञ्चुकैर्मुक्तो गच्छेच्छिवपुरन्नरः ॥ ४१ ॥ माघमासेचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यांविशेषतः ॥ गन्धधूपोपहारैर्यः पूजयेद्दण्डनायकम् ॥ ४२ ॥ तस्यक्षेत्रेनिवसतो नविघ्नं जायतेक्वचित् ॥ एकादश्यांजिताहारो योर्चयेच्चक्रपाणिनम् ॥ ४३ ॥ समुक्तःपातकैस्सर्वैर्यातिविष्णोस्सलोकताम् ॥ ४४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंचक्रपाणिनः ॥ दण्डपाणिगणस्यापि श्रुतंपापौघनाशनम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे दण्डपाणिचक्रधरयोर्माहात्म्यन्नामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ * ॥

व उपहारों से दण्डनायकजी को पूजताहै ॥ ४२ ॥ क्षेत्रमें बसतेहुये उस पुरुषको कभी विघ्न नहीं होता है एकादशीतिथि में आहार को जीतेहुये जो पुरुष चक्रपाणिजी को पूजता है ॥ ४३ ॥ वह सब पापों से छूटकर विष्णुजी की सलोकताको प्राप्तहोता है ॥ ४४ ॥ महादेवजी बोले कि यह चक्रपाणि व दण्डपाणिजी का माहात्म्य संक्षेपसे कहागया सुनाहुआ जोकि पापसमूहों का नाशक है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदण्डपाणिचक्रधरयोर्माहात्म्यंनामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । साम्बादित्य सुरेशकर अहै चरित्र उदार । अट्ठनबे अध्यायमें सोई कथासुखार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उन दोनों के उत्तर में व बालरूपी ब्रह्माजी के वायव्य दिशाके भागमें स्थित सांबादित्य सुरश्रेष्ठके समीपजा वै.जोकि साबजी से थापेगये हैं हे देवेश ! इस द्वीपमें सूर्यनारायण के तीन स्थान हैं ॥ १।२॥ पहला इन्द्रवन नामक व दूसरा मुण्डीर कहाजाताहै और प्रभासक्षेत्रमें टिकेहुये सांबादित्यजी हैं ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! उस क्षेत्रमें जो सांबसंज्ञकपुर है वहां सूर्यनारायण का दूसरा नित्यवाला सनातन स्थान है ॥ ४ ॥ वहांपर सांबजी की प्रीति से और माताके ऊपर दयासे सूर्यनारायणजी स्थित हैं वहां सूर्यनारायणजी

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तयोरुत्तरतःस्थितम् ॥ तथावायव्यदिग्भागे ब्रह्मणोबालरूपिणः ॥ १ ॥ साम्बादित्यंसुरश्रेष्ठं यस्साम्बेनप्रतिष्ठितः ॥ स्थानानित्रीणिदेवेशद्वीपेस्मिन्भास्करस्यतु ॥ २ ॥ पूर्वमिन्द्रवनन्नाम तथा मुण्डीरमुच्यते॥ प्रभासक्षेत्रसंस्थश्च साम्बादित्यस्तृतीयकः ॥ ३ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेमहादेवि पुरंयत्साम्बसंज्ञितम् ॥ द्वितीयंशाश्वतंस्थानं तत्रसूर्यस्यनित्यशः ॥ ४ ॥ प्रीत्यासाम्बस्यतत्रार्को जनन्यानुग्रहायच ॥ तत्रद्वादशभागेन मित्रो मैत्रेणचक्षुषा ॥ ५ ॥ अवलोकयञ्जगत्सर्वं श्रेयोर्थेतिष्ठतेसदा ॥ प्रयुक्तांविधिवत्पूजां गृह्णातिभगवान्स्वयम् ॥ ६ ॥ देव्युवाच ॥ कोयंसाम्बस्सुतःकस्य यस्यनाम्नारवेःपुरम्॥ यस्यचायंसहस्रांशुर्वरदःपुण्यकर्मणः ॥७॥ ईश्वरउवाच ॥ यएतेद्वादशादित्या विराजन्तेमहाबलाः॥ तेषांयोविष्णुसंज्ञस्तुसर्वलोकेषुविश्रुतः ॥ ८ ॥ इहासौवासुदेवत्वमवापभगवान्भुवि ॥ तस्यसाम्बस्सुतोजज्ञे जाम्बवत्यांमहाबलः ॥ ९ ॥ सतुपित्राभृशंशप्तः कुष्ठरोगमवाप्नुहि ॥ तेनसंस्थापितस्सू

बारहभाग से मैत्रदृष्टि करके ॥ ५ ॥ सब संसार को देखतेहुये सदैव कल्याण के लिये टिके रहते हैं और विधिपूर्वक कीहुई पूजाको सूर्यनारायणजी आपही ग्रहण करते हैं ॥ ६ ॥ देवीजी बोलीं कि यह सांब कौन हैं कि जिसके नाम से सूर्यनारायण का नगरहुआ और जिस पुण्यकर्मवाले को ये सूर्य्यनारायणजी वरदायक हुये हैं ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि जो बड़े बलवान् ये बारह सूर्य विराजते हैं उन के मध्यमें जो विष्णुसंज्ञक सब लोकोंमें प्रसिद्ध हैं ॥ ८ ॥ इन भगवान् ने पृथ्वी में वासुदेवताको पाया है उनके जांबवती स्त्रीमें बड़ा बलवान् सांबपुत्र पैदाहुआ ॥ ९ ॥ पिताने उसको बहुतही शापदिया कि तुम कुष्ठरोग को प्राप्तहोवो उसने सूर्य-

नारायण को थापा व अपने नामसे नगरको बनाया ॥ १०॥ देवीजी बोलीं कि पिता ने इस औरसपुत्रको किस कारण शापदिया है ॥ ११ ॥ हे देव ! थोड़ा कारण नहीं है कि जिससे इसमें पुत्रको शापदिया महादेवजी बोले कि उसके शापका जो कारण है उसको सावधान होतीहुई सुनो ॥ १२ ॥ कि मेरेही अंशसे उपजेहुये दुर्वासानामक भगवान् हुये हैं घूमतेहुये वे दुर्वासा भगवान्‌जी तीनों लोकोंमें विचरते थे ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर द्वारका में प्राप्तहुये व आयेहुये उन दुर्वासाऋषि को पहले रूपसे गर्वित इन सांबजीने देखा ॥ १४ ॥ जोकि पीलेनेत्रवाले तथा जटाधारी रूपवाले व विरूप और दुबले थे इन सांबजीने उनका अपमान किया व स्पर्श

यों निजनाम्नापुरंकृतम् ॥ १०॥ देव्युवाच ॥ शप्तःकस्मिन्निमित्तेसौ पुत्रःपित्रातथौरसः ॥ ११ ॥ नाल्पंहिकारणन्देवयेनास्मिञ्च्छप्तवान्सुतम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वा तस्यमच्छापकारणम् ॥ १२ ॥ दुर्वासानामभगवान् ममैवांशसमुद्भवः ॥ अटमानस्सभगवांस्त्रीँल्लोकान्प्रचचारह ॥ १३ ॥ अथप्राप्तोद्वारवतीमथासौददृशेपुरा ॥ तमागतमृषिंदृष्ट्वा साम्बोरूपेणगर्वितः ॥ १४ ॥ पिङ्गाक्षंजटिलंरूपं विरूपञ्चकृशंतथा ॥ अपमानञ्चकारासौ चकारस्पर्शनंतथा ॥ १५ ॥ दृष्ट्वातस्यमुखंमुण्डं वक्रंचक्रेतथात्मनः ॥ मुखंयदुकुलश्रेष्ठो गर्वितोयौवनेनतु ॥ १६ ॥ अथक्रुद्धोमहातेजा दुर्वासाऋषिसत्तमः ॥ साम्बंप्रोवाचभगवान् विधुन्वन्मुखमात्मनः ॥ १७ ॥ यस्माद्विरूपंमांदृष्ट्वा आत्मरूपेणगर्वितः ॥ गमनेदर्शनेप्येवमहङ्कारःकृतोयतः ॥ १८ ॥ तस्मात्त्वंकुष्ठरोगेण नचिरेणग्रसिष्यसे ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्येसाम्बादित्यमाहात्म्यन्नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥ * ॥

किया ॥ १५ ॥ और उनके मुण्डितमुखको देखकर यौवनसे गर्वित व यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ सांबजीने वैसाही अपनामुख टेढ़ा किया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर बडे तेजस्वी भगवान् दुर्वासा ऋषिश्रेष्ठ क्रोधितहोकर अपने मुखको कँपातेहुये सांबजीसे बोले ॥१७॥ कि जिसलिये मुझ विरूपको देखकर तुम अपने रूपसे गर्वित हो और जिसकारण गमन व दर्शनमें अहङ्कार कियागया ॥१८॥ इसलिये शीघ्रही तुम कुष्ठरोगसे ग्रसोगे ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेसाम्बादित्यमाहात्म्यंनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

दो• । कृष्णपुत्र जिमि सांबजी थाप्यो सांब आदित्य । निन्नवे अध्याय में सोइ चरित साहित्य ॥ महादेवजी बोले कि इसी समय में ब्रह्माके मानसीपुत्र जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध भगवान् नारद मुनि हैं ॥ १ ॥ ये सब ओर से सब लोकोंमें घूमते थे वे नारद ऋषिश्रेष्ठजी ऋषियों समेत श्रीकृष्णजी को देखने के लिये नित्य द्वारकापुरी को आते थे इसके अनन्तर वहां आतेहुये इनके सब यदुकुमार ॥ २।३ ॥ जो प्रद्युम्न आदिक थे वे अर्घ व पाद्य के अभाव से सब ओरसे पूजा करने के लिये प्रणाम करके नीचे झुक कर स्थित होते थे ॥ ४ ॥ और उस शापके कारण अवश्य होनहार से सांबजी नारद महात्माका नित्य अपमान करतेथे ॥

ईश्वरउवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु नारदोभगवानृषिः ॥ ब्रह्मणोमानसःपुत्रस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ १ ॥ सर्वलोकेचचारासावटमानस्समन्ततः ॥ वासुदेवंसवैद्रष्टुं नित्यंद्वारवतीम्पुरीम् ॥ २ ॥ आयातिऋषिभिस्सार्द्धं नारदोऋषिसत्तमः ॥ अथास्यागच्छतस्तत्र सर्वेयदुकुमारकाः ॥ ३ ॥ प्रद्युम्नप्रभृतयोयेतु तेप्रह्वावनताःस्थिताः ॥ अभावादर्घपाद्यानां पूजांकर्त्तुंसमन्ततः ॥ ४ ॥ साम्बस्त्ववश्यभावित्वात्तस्यशापस्यकारणात ॥ अवज्ञांकुरुतेनित्यं नारदस्यमहात्मनः ॥ ५ ॥ रतिक्रीडासुवैनित्यं रूपयौवनगर्वितः ॥ अब्रवीत्तंसुतंदृष्ट्वा चिन्तयामासनारदः ॥ ६ ॥ अस्याहमविनीतस्य करिष्येविजयंशुभम् ॥ सचैवंचिन्तयित्वातु वासुदेवमथाब्रवीत् ॥ ७ ॥ इमाःषोडशसाहस्राः स्त्रियोयादेवसत्तम ॥ सर्वास्तासांसदासाम्बे भावोदेवसमाश्रितः ॥ ८ ॥ रूपेणाप्रतिमस्साम्बो लोकेस्मिन्सचराचरे ॥ कामार्तास्तम्भितास्तस्य दर्शनादपिसुस्त्रियः ॥ ९ ॥ श्रुत्वैवंनारदाद्वाक्यं चिन्तयामासकेशवः ॥ यदेतन्नारदेनोक्तं सत्यमत्रनुकिम्भवेत् ॥ १० ॥ एवं

५ ॥ और नित्यही रतिकी क्रीड़ाओं में रूप व यौवन से गर्वित थे उस पुत्र को देखकर नारदजी ने कहा व विचार किया ॥ ६ ॥ कि इस अविनीत के मैं उत्तम विनय करूं इसप्रकार चिन्तवन कर उन्होंने श्रीकृष्णजी से कहा ॥ ७ ॥ कि हे देवसत्तम ! जो ये सब सोलह हज़ार स्त्रियां हैं हे देव ! उनका भाव सदैव सांब में टिका रहता है ॥ ८ ॥ इस चराचर समेत संसार में सांबजी असमान रूपवाले हैं उनके दर्शनसे भी उत्तम स्त्रियां कामदेव से विकल होकर स्तंभित होजाती हैं ९ ॥

इसप्रकार नारदजी से वचन को सुनकर श्रीकृष्णजी ने विचार किया कि जो यहनारदजी ने कहा है इसमें क्या सत्य है ॥ १० ॥ और संसार में ऐसा सुनाजाता है कि स्त्रियों में चपलता होती है क्योंकि पुरातन समय स्त्रियों के चित्तको जाननेवाले ब्राह्मणों ने इन दो श्लोकोंको गायाहै ॥ ११ ॥ कि पुंश्चलतासे व अति चञ्चलता तथा अज्ञान व स्वभाव के कारण ये स्त्रियां रक्षा करने योग्य हैं क्योंकि पतियों में विकार करती हैं ॥ १२ ॥ ये रूपको नहीं देखती हैं और इनको अवस्था में सन्देह नहीं होती है और स्वरूपवाले व कुरूप पुरुषको यही मानकर भोग करतीहैं कि यह पुरुष है ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले कि इसप्रकार मनसे विचार कर श्री

चश्रूयतेलोके चापल्यंस्त्रीषुविद्यते ॥ श्लोकाविमौपुरागीतौचित्तज्ञैर्योपितांद्विजैः ॥ ११ ॥ पौंश्चल्यादतिचापल्यादज्ञानाच्चस्वभावतः ॥ रक्षणीयास्ततोह्येता विकुर्वन्तिहिभर्तृषु ॥ १२ ॥ नैतारूपंपरीक्षन्ते नासांवयसिसंशयः ॥ स्वरूपंवा विरूपंवा पुमानित्येवभुञ्जते ॥ १३ ॥ ईश्वरउवाच ॥मनसाचिन्तयित्वैव कृष्णोनारदमब्रवीत् ॥ नह्यहंश्रद्दधाम्येतद्यदेतद्भाषितम्पुरा ॥ १४ ॥ ब्रुवाणमेवंदेवन्तुनारदःप्रत्युवाचह ॥ तथाहंतत्करिष्यामि यथामद्दधतेभवान् ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाययौभूयो नारदस्तुयथागतम् ॥ तथाकतिपयाहस्य द्वारकाम्पुनरभ्यगात् ॥ १६ ॥ तस्मिन्नहनिदेवोपि सहान्तःपौरकैर्जनैः ॥ अनुभूयजलक्रीडां पानमासेवतेरहः ॥ १७ ॥ रम्येरैवतकोद्याने नानाद्रुमविभूषिते ॥ सर्वत्रकुसुमैर्नित्यं वासितेसर्वकानने ॥ १८ ॥ नानाजलजफुल्लाभिर्दीर्घिकाभिरलंकृते ॥ हंससारसघुष्टेचचक्रवाकोपशोभिते ॥ १९ ॥

कृष्णजी नारदजी से बोले कि पहले जो कहागया है इसको मैं विश्वास नहीं करताहूं ॥ १४ ॥ ऐसा कहतेहुये श्रीकृष्णदेवजीसे नारदजी बोले कि जिसप्रकार आप विश्वास करेंगे मैं उसको वैसाही करूंगा ॥ १५ ॥ ऐसा कहकर फिर नारद मुनि जिसप्रकार आयेथे वैसेही चलेगये और कुछ दिनोंके बाद फिर द्वारकापुरीको आये ॥ १६ ॥ उस दिन श्रीकृष्णदेव भी रनिवासों समेत जल क्रीडाको भोगकर एकान्तमें मद्यपान को सेवते थे ॥ १७ ॥ अनेकप्रकार के वृक्षोंसे विभूषित व सब कहीं नित्यही फूलों से सुगंधित व समस्त वन में सुन्दर रैवतोद्यान में ॥ १८ ॥ जोकि अनेकप्रकार के फूलेहुये कमलोंवाली बावलियोंसे शोभित तथा हंसों व सारसों

से शब्दायमान और चकई चकवाओं से शोभित था ॥ १९ ॥ उस वन में स्त्रियोंसे घिरेहुये वे श्रीकृष्णदेव सदैव क्रीडा करते थे और हार, बिछुवा व बजुल्लादिक सु-
न्दर गहनों से ॥ २० ॥ भूषित सुन्दर अगोंवाली स्त्रियोंके मध्यमें विशेषता से वहां बैठेहुये जनोंसे उत्तम सुगन्ध से संयुत अच्छी मदिरा पानकी जाती थी ॥ २१ ॥
इसी अवसर में मदिरा पीने में लगीहुई स्त्रियोंको जानकर नारदजी सांबजी से बोले कि हे कुमार ! आप आइये ॥ २२ ॥ तुमको श्रीकृष्णदेवजी बुलाते हैं तुमको
यहां स्थित होना योग्य नहीं है उनके वचन के अर्थको नहीं जानकर नारदजी सेप्रेरित ॥ २३ ॥ सांबजी ने शीघ्रही जाकर पिताको प्रणाम किया और विष्णुजीसे

**तस्मिन्सरमतेदेवः स्त्रीभिःपरिवृतस्सदा ॥ हारनूपुरकेयूरभूषणाद्यैर्मनोहरैः ॥ २० ॥ भूषितानांवरस्त्रीणां चाव-
ङ्गीनांविशेषतः ॥ तत्रस्थैःपीयतेपानं शुभगंधान्वितंशुभम् ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेबुध्वा मद्यपानरताःस्त्रियः ॥ उवाच
नारदस्साम्बमागच्छत्वंकुमारक ॥ २२ ॥ त्वांसमाह्वयतेदेवो नयुक्तंस्थातुमत्रते ॥ तद्वाक्यार्थमबुद्ध्वैव नारदेनाथनो-
दितः ॥ २३ ॥ गत्वातुसत्वरंसाम्बः प्रणाममकरोत्पितुः ॥ निर्दिष्टमासनंभेजे यथाभावेनविष्णुना ॥ २४ ॥ एतस्मि-
न्नन्तरेतत्र यास्तुवैअल्पसात्त्विकाः ॥ तन्दृष्ट्वासहसासाम्बं सर्वाश्चुक्षुभिरेस्त्रियः ॥ २५ ॥ नसदृष्टःपुरायाभिरन्तः-
पुरनिवासिभिः ॥ मद्यदोषात्ततस्तासां स्मृतिलोपात्तथाचवै ॥ २६ ॥ स्वभावतोल्पसत्त्वानां जघनानिविसुस्रुवुः ॥ श्रू-
यतेचाप्ययंश्लोकः पुराणःप्रथितःक्षितौ ॥ २७ ॥ ब्रह्मचर्येपिवर्त्तन्त्या योगिन्यावाप्रमादतः ॥ प्रकृष्टंपुरुषंदृष्ट्वा वराङ्गं
क्लिद्यतेस्त्रियाः ॥ २८ ॥ लोकेपिदृश्यतेह्येतन्मद्यस्यात्यर्थसेवनात् ॥ लज्जांमुञ्चन्तिनिश्शङ्का ह्रीमन्त्योह्यपिहिस्त्रि-**

मात्रके अनुकूल बतलायेहुये आसन पै बैठगये ॥ २४ ॥ इसी अवसर में वहां जो थोड़े सत्त्ववाली स्त्रिया थीं वे सब उन सांबजी को देखकर क्षोभित होगईं ॥ २५ ॥
तदनन्तर रनिवास में रहनेवाली जिन स्त्रियों ने पहले उन सांबजी को नहीं देखाथा उन थोड़े सत्त्ववाली स्त्रियोंके मदिरा दोषके कारण स्मरण न रहने से स्वभाव
ही से याने आपही आप जघन फरकनेलगे पृथ्वी में प्रसिद्ध यह प्राचीनश्लोक सुनाजाता है ॥ २६ । २७ ॥ कि ब्रह्मचर्य में भी वर्तमान व योगिनी भी स्त्रीकी गुह्य
इन्द्री उत्तम पुरुषको देखकर असावधानता से आर्द्र होती है ॥ २८ ॥ और संसारमें यह भी देखाजाता है कि मद्य के बहुतही सेवनसे लज्जावती भी स्त्रियां निशंक

होकर लज्जाको छोड़देती हैं ॥ २९ ॥ और मांस समेत भोजनोंसे व स्निग्ध पानों से तथा मदिरा के रससे व सुन्दर सुगन्धों तथा वसनों से कामदेव स्त्रियों में बढ़ता है ॥ ३० ॥ विद्वान् पुरुषको स्त्रियोंके लिये बहुत मदिरा न देना चाहिये क्योंकि स्त्रियां पहलेही स्वभावही से मदोन्मत्त होती हैं ॥ ३१ ॥ इसके अनन्तर नारदजी शीघ्रता संयुत उन सांबजी को पठाकर सांबके चरणों के पीछेही वहां आये ॥ ३२ ॥ आते हुये उन उत्तम मनवाले प्यारे नारदमुनि को देखकर मदमें उन्मत्त भी वे उत्तम स्त्रियां वहां आपही अचानक उठपड़ीं ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर श्रीकृष्णजीके देखतेहुये उठीहुई उन स्त्रियोंके बड़े मोलवाले वसन छूटकर चरणों पै गिरपड़े ॥ ३४ ॥

यः ॥ २९ ॥ समांसैर्भोजनैःस्निग्धैः पानैस्सीधुरसेनवै ॥ गन्धैर्मनोहरैर्वस्त्रैः कामःस्त्रीषुविजृम्भति ॥ ३० ॥ मद्यन्नदेयमत्यर्थं पुरुषेणविपश्चिता ॥ मदोन्मत्तास्स्वभावेन पूर्वंसन्तियतःस्त्रियः ॥ ३१ ॥ नारदोप्यथतंसाम्बं प्रेषयित्वात्वरान्वितम् ॥ आजगामाथतत्रैव साम्बस्यानुपदेनतु ॥ ३२ ॥ आयान्तंतास्स्वयंदृष्ट्वा प्रियंसौमनसंमुनिम् ॥ सहसैवोत्थितास्तत्र मदोन्मत्तापिसुस्त्रियः ॥ ३३ ॥ तासामथोत्थितानान्तुवासुदेवस्यपश्यतः ॥ भित्त्वावासांस्यनर्घ्याणि पदेषुपतितानितु ॥ ३४ ॥ जघनेषुविलग्नानि तानिपेतुःपृथक्पृथक् ॥ तन्दृष्ट्वातुहरिःक्रुद्धस्ताः शशापततोबलाः ॥ ३५ ॥ यस्माद्गतानिचेतांसि मांमुक्त्वान्येषुचस्त्रियः ॥ तस्मात्पतिकृताँल्लोकानायुषोन्तेनयास्यथ ॥ ३६ ॥ पतिलोकपरिभ्रष्टाः स्वर्गमार्गात्तथैवच ॥ ३७ ॥ भूत्वाह्यशरणाभूयो दस्युहस्तंगमिष्यथ ॥ ३८ ॥ शापदोषात्ततस्तस्मात्ताःस्त्रियोगाङ्गतेहरौ ॥ हृताःपञ्चतदाचौरैरर्जुनस्यप्रमादतः ॥ ३९ ॥ तुल्यसत्त्वाश्रयाश्चासंस्तागताद्दूषणंस्त्रियः ॥ रुक्मिणीस

और जघनों में लगे हुये वे वसन अलग अलग गिरपड़े तदनन्तर उन सांबजी को देखकर श्रीकृष्णजीने उन स्त्रियोंको शाप दिया ॥ ३५ ॥ कि हे स्त्रियो ! जिसलिये मुझको छोड़कर तुम्हारे चित्त अन्य पुरुषोंमें चलेगये उसी कारण आयुर्बलकेअन्तमें पतिसे रचित लोकोंको तुम सब न जावोगी ॥ ३६ ॥ और स्वर्गके मार्गसे व पति के लोकसे भ्रष्ट होवोगी ॥ ३७ ॥ और तुम सब शरणहीन होकर फिर दस्यु (चोरों) के हाथ में प्राप्तहोवोगी ॥ ३८ ॥ उसीकारण उस शाप के दोषसे वे पांच स्त्रियां जब विष्णुजी पृथ्वी पर प्राप्तहुये तब अर्जुनकी असावधानता से उस समय चोरोंसे हरलीगई ॥ ३९ ॥ दूषणको प्राप्त वे स्त्रियां तुल्यसत्त्व व आश्रयवालीहुई

व हे प्रिये ! रुक्मिणी, सत्यभामा व जांबवती ॥ ४० ॥ अपने सत्त्व से रक्षित वे चोरों के हाथमें नहीं प्राप्तहुईं उन कृष्णजी ने इसप्रकार उन स्त्रियोंको शाप देकर फिर सांबको शाप दिया ॥ ४१ ॥ कि जिस लिये तुम्हारे बहुतही सुन्दर रूपको देखकर ये सब स्त्रियां क्षोभित होगईं उसीकारण तुम कुष्ठरोगको प्राप्तहोवो ॥ ४२ ॥ उनके उस वचन को सुनकर ऋषिश्रेष्ठ नारदजीको स्मरण करतेहुये लज्जासंयुत सांबजी हँसतेहुये वचन बोले ॥ ४३ ॥ कि हे पिताजी ! मैं भावके दोषसे रहितहूं व इस विषय में बिन कारण मैं शापित हुआहूं अन्यथा कोधित दुर्वासाजी नहीं कहते ॥ ४४ ॥ कमललोचन श्रीकृष्णजी से ऐसाकहकर तदनन्तर वे सांबजी वैराग्य

त्यभामाच तथाजाम्बवतीप्रिये ॥ ४० ॥ नप्राप्तादस्युहस्तन्ताः स्वेनसत्त्वेनरक्षिताः ॥ सचैवन्ताःस्त्रियःकृष्णः साम्ब मप्यशपत्पुनः ॥ ४१ ॥ यस्मादतीवतेकान्तं दृष्ट्वारूपमिमाःस्त्रियः ॥ क्षुब्धाःसर्वायतस्तस्मात्कुष्ठरोगमवाप्नुहि ॥ ४२ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा साम्बोलज्जासमन्वितः ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यं संस्मरन्नृषिसत्तमम् ॥ ४३ ॥ आनीमि त्तमहन्तातभावदोषविवर्जितः ॥ शप्तोहमत्रकुद्धोवै दुर्वासानान्यथावदेत ॥ ४४ ॥ एवमुक्त्वासवैसाम्बः कृष्णंक मललोचनम् ॥ ततोवैराग्यसंयुक्तश्चिन्ताशोकपरायणः ॥ ४५ ॥ प्रभासक्षेत्रमगमत्सर्वपातकनाशनम् ॥ एवंतत्क्षेत्र मासाद्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ४६ ॥ प्रतिष्ठाप्यसहस्रांशुं देवंपापनिषूदनम् ॥ ततश्चाराधयामास परंनियममास्थितः॥ ४७॥त्रिसन्ध्यंपूजयामास दिव्यगन्धानुलेपनैः॥ स्तोत्रेणानेनभक्त्यावै स्तौतिनित्यंदिनाधिपम् ॥ ४८ ॥ साम्बउवाच॥ नमस्त्रैलोक्यदीपाय नमस्तेतिमिरापह ॥नमःपङ्कजनाथाय नमःकुमुदशत्रवे ॥ ४९ ॥ नमोजगत्प्रतिष्ठाय जगद्धात्रेन

संयुत होकर चिन्ता व शोकमें परायण हुये ॥ ४५ ॥ और समस्त पातकों के नाशनेवाले प्रभासक्षेत्रको गये इसप्रकार उस क्षेत्रको जाकर उन्होंने भयंकर तपकिया ॥ ४६ ॥ व पापोंको नाशनेवाले सूर्यदेवजीको थापकर तदनन्तर उत्तम नियममें स्थितहोकर आराधनकिया ॥ ४७ ॥ और दिव्यगन्ध व अनुलेपनों से त्रिकाल पूजन किया और वे भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रसे दिननायकजीकी स्तुति करते थे ॥ ४८ ॥ सांबजी बोले कि हे अन्धकारनाशक ! त्रिलोकके दीपकरूप आपके लिये नमस्कारहै व कमल- नाथ के लिये नमस्कारहै और कुमुदोंके शत्रुके लिये नमस्कारहै ॥ ४९ ॥ संसार में प्रतिष्ठावालेके लिये प्रणामहै और संसार को धारण करनेवाले तुम्हारे लिये प्रणामहै

हे देव ! त्रिलोकके दीपक सूर्यनारायणको मैं प्रणाम करताहूं ॥ ५० ॥ आदित्यवर्ण व संसार के रक्षक तथा एकही अपूर्व व देवताओंके मध्यमें प्रथम और हिरण्यगर्भ जो महात्मा पुरुषहै वह अन्धकार से परे कहा जाता है ॥ ५१ ॥ उससमय इसप्रकार स्तुति कियेहुये सूर्यनारायणजी दर्शन में प्राप्त होकर प्रसन्नचित्त से जांबवती के पुत्र सांबजी से बोले ॥ ५२ ॥ कि हे महाबाहो ! हे गोविन्दनन्दनसांब ! हे सांबजी ! सुनिये इस स्तोत्रसे मैं प्रसन्नहूं जो मनोरथ हो उसको तुम कहो ॥ ५३ ॥ सांबजी बोले कि हे सुरश्रेष्ठ, प्रभो, देव ! दुष्टबुद्धि व पापी मैं कुष्ठ रोगसे संयुक्त होकर शापित हूं यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो उसका नाश कीजिये ॥ ५४ ॥ भगवान् सूर्य

मोस्तुते ॥ देवदेवनमस्यामि सूर्यंत्रैलोक्यदीपकम् ॥ ५० ॥ आदित्यवर्णोभुवनस्यगोप्ता अपूर्वएकःप्रथमस्सुराणाम् ॥ हिरण्यगर्भःपुरुषोमहात्मा सपठ्यतेवैतमसःपरस्तात् ॥५१॥ इतिस्तुतस्तदासूर्यः प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ उवाचदर्शनंगत्वा साम्बंजाम्बवतीसुतम् ॥ ५२ ॥ साम्बसाम्बमहाबाहो शृणुगोविन्दनन्दन ॥ स्तोत्रेणानेनतुष्टोहं तत्त्वंब्रूहियदीप्सितम् ॥ ५३ ॥ साम्बउवाच ॥ कुष्ठेनाहंसुरश्रेष्ठशप्तःपापस्सुदुर्मतिः ॥ तस्यान्तंकुरुमेदेवयदितुष्टोसिमेप्रभो ॥ ५४ ॥ भगवानुवाच ॥ भूयएवमहाभाग नीरोगस्त्वंभविष्यति ॥ यादृग्रूपःपुराह्यासीन्ममचैवप्रसादतः ॥ ५५ ॥ अद्यप्रभृतिनेक्ष्यास्ता विष्णुभार्याःकथञ्चन ॥ नतासान्दर्शनेजातु स्थातव्यंयदुनन्दन ॥ ५६ ॥ तासामीर्ष्यावृतेनैव विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ कुष्ठन्तेयादवश्रेष्ठ प्रदत्तंहिमहात्मना ॥ ५७ ॥ योमांस्तोत्रेणचानेन समागत्यस्तविष्यति ॥ नतस्यान्वयसम्भूतः कुष्ठीकश्चिद्भविष्यति ॥५८॥ योमान्द्वादशनामानंसंस्तविष्यतिमानवः ॥ सप्तजन्मोद्भवंतस्यदरिद्रंनाशमेष्यति ॥५९॥

नारायणजीबोले कि हे महाभाग ! तुम फिर नीरोग होवोगे और आप पहले जैसे रूपवालेथे मेरी प्रसन्नता से वैसेही रूपवाले होवोगे ॥ ५५ ॥ और हे यदुनन्दन ! आज से लगाकर तुमको किसीप्रकार उन कृष्णजीकी स्त्रियोंको न देखना चाहिये व उनके दर्शनमें कभी स्थित होना न चाहिये ॥५६॥ क्योंकि हे यादवश्रेष्ठ ! उनकी ईर्ष्या से घिरेहुये प्रभविष्णु(समर्थ) विष्णुमहात्मा ने तुमको कुष्ठदियाहै ॥ ५७ ॥ जो आकर इसस्तोत्रसे मेरी स्तुति करैगा उसके वंशमें उपजाहुआ कोई कुष्ठी न होगा ॥ ५८ ॥

वाराह नाम वाले मुझको जो मनुष्य भलीभांति स्तुति करैगा उसका सात जन्मों में उपजा हुआ दरिद्र नाश को प्राप्त होगा॥ ५९ ॥ इसके उपरान्त सूर्यनारायण के बारह नामों को भली भांति जानिये वैसेही बारह अन्य नामहैं उनको संपूर्णतासे कहताहू ॥ ६० ॥ आदित्य, सविता, सूर्य, मिहर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर ॥ ६१॥ इन सामान्य नामों से सूर्यनारायणजी बारह नामवाले जानने योग्य हैं और विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण व अर्यमा ॥ ६२ ॥ विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा, पर्जन्य ये बारह नाम कहेगये हैं तुमसे ये बारह सूर्य भिन्नतासे कहेगये ॥ ६३ ॥ सदैव ये क्रमसे बारह महीनों करके तपते हैं चैत्रमें सदैव

अथादित्यस्यनामानि सम्यग्जानीहिद्वादश ॥ द्वादशैवतथान्यानि तानिवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ६० ॥ आदित्यस्सवितासूर्यो मिहरोर्कःप्रतापनः ॥ मार्तण्डोभास्करोभानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः ॥ ६१ ॥ रविर्द्वादशनामाच ज्ञेयःसामान्यनामभिः ॥ विष्णुर्धाता भगःपूषामित्रेन्द्रोवरुणोर्यमा ॥ ६२ ॥ विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्ज्जन्योद्वादशस्मृताः ॥ इतितेद्वादशादित्याः पृथक्त्वेनप्रकीर्त्तिताः ॥ ६३ ॥ उत्तपन्तिसदाह्येते मासैर्द्वादशभिःक्रमात ॥ विष्णुस्तपतिवैचैत्रे वैशाखेचार्यमासदा ॥ ६४ ॥ विवस्वाञ्ज्येष्ठमासेतु आषाढेचांशुमांस्तथा ॥ पर्ज्जन्यःश्रावणेमासि वरुणःप्रौष्ठसंज्ञिते ॥ ६५॥ इन्द्रश्चाश्वयुजेमासि धातातपतिकार्त्तिके ॥ मार्गशीर्षेतथामित्रः पौषेपूषादिवाकरः ॥ ६६ ॥ माघेभगश्चविज्ञेयस्त्वष्टातपतिफाल्गुने ॥ शतैर्द्वादशभिर्विष्णू रश्मीनांदीप्यतेसदा ॥ ६७ ॥ दीप्यतेगोसहस्रेण शतैश्चत्रिभिरर्यमा ॥ द्विसप्तकैर्विवस्वांश्च ह्यंशुमान्पञ्चकैस्त्रिभिः ॥ ६८ ॥ विवस्वानिवपर्ज्जन्यो वरुणश्चार्यमेवच ॥ इन्द्रस्तुद्विगुणैःषड्भि

विष्णु व वैशाख में अर्यमा तपते हैं ॥ ६४ ॥ और जेठ महीने में विवस्वान् व आषाढ़ में अंशुमान् श्रावणमें पर्जन्य और भादौंसंज्ञक महीने में वरुण तपते हैं ॥ ६५ ॥ कुंवारमें इन्द्र व कार्त्तिक महीने में धाता तपतेहैं व अगहनमें मित्र व पौषमें पूषा सूर्यनारायणजी तपते हैं ॥ ६६ ॥ माघमें भगदेवता जानने योग्यहैं व फागुनमें त्वष्टा तपते हैं और विष्णुजी सदैव बारहसौ किरणोंसे प्रकाश करते हैं ॥ ६७ ॥ व अर्यमा एक हजार तीनसौ किरणों से प्रकाश करते हैं और विवस्वान् चौदह सौ किरणों से व पन्द्रह सौ किरणों से अंशुमान् प्रकाश करते हैं ॥६८॥ और विवस्वान्कीनाईं पर्जन्य व अर्यमा की नाईं वरुण प्रकाश करते हैं और इन्द्र बारहसौ किरणों से व धाता

गेरह सौ किरणों से प्रकाश करते हैं ॥ ६९ ॥ और मित्र, रवि, भग व त्वष्टा गेरह सौ किरणों से प्रकाश करते हैं सदैव उत्तरायण में उनकी किरणें बढ़ती हैं ॥ ७० ॥ और दक्षिणायन में फिर सूर्यनारायण की किरणें कम पड़ती हैं इसप्रकार प्रभासक्षेत्रके मध्यमें बारह मूर्त्तिवाले सूर्यनारायण हैं ॥ ७१ ॥ हे यादवोत्तम ! माघ के शुक्लपक्ष की पंचमी में सदैव एकभक्तव्रत कहागया है और छठिमें नक्तव्रत कहागया है ॥ ७२ ॥ और सप्तमी में सांबादित्य के समीप उपवास करके महाव्रती विद्वान् लालचन्दन मिलेहुये कनेरके फूलों से सूर्यनारायण के लिये अर्घ देकर और धूप देकर पूजन करै व उत्तमभक्ति से ब्राह्मणों को भी अपनी शक्तिके अनुसार भोजन

र्धातैकादशभिःशतैः ॥ ६९ ॥ मित्रोरविर्भगस्त्वष्टा सहस्रेणशतेनच ॥ उत्तरोपक्रमेतस्य वर्द्धन्तेरश्मयस्सदा ॥ ७० ॥ दक्षिणोपक्रमेभूयो ह्रसन्तेसूर्यरश्मयः ॥ एवंद्वादशमूर्त्तिस्तु प्रभासक्षेत्रमध्यतः ॥७१॥ माघस्यशुक्लपक्षेतु पञ्चम्यां यादवोत्तम ॥ एकभक्तंसदाख्यातं षष्ठ्यांनक्तमुदाहृतम् ॥७२॥सप्तम्यामुपवासन्तु कृत्वासाम्बार्कसन्निधौ॥रक्तचन्दन मिश्रैस्तु करवीरैर्महाव्रती ॥ ७३ ॥ दत्त्वार्घंभानवेधूपं पूजयेद्भास्करंबुधः ॥ ब्राह्मणान्दिव्यभावेन भोजयित्वापिश क्तितः ॥ ७४ ॥ एवंयःकुरुतेसम्यक् साम्बादित्यस्यपूजनम् ॥ सपुमानिहलोकेच सम्प्राप्स्यत्यखिलंफलम् ॥ ७५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ साम्बोपिविज्वरोभूत्वा द्वारकांपुनरागमत् ॥ ७६ ॥ इत्ये तत्कथितन्देविसाम्बादित्यमहोदयम् ॥ श्रुतंहरतिपापानि तथारोग्यंप्रयच्छति ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेसाम्बादित्यमाहात्म्यन्नामैकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ * ॥ *

कराकर ॥ ७३ । ७४ ॥ इसप्रकार जो भलीभांति सांबादित्य का पूजन करता है वह मनुष्य इस संसार में समस्त फलको प्राप्त होताहै ॥ ७५ ॥ महादेवजी बोले कि ऐसा कहकर सूर्यनारायणजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और सांबभी रोगरहित होकर फिर द्वारकापुरी को आये ॥ ७६ ॥ हे देवि ! यह सांबादित्य का माहात्म्य कहागया सुनाहुआ जोकि पापोंको हरता है व आरोग्य को देताहै ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसांबादित्यमाहात्म्यंनामनव नवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

॥

दो० । कण्टकशोधनि भगवती कर उत्तम परभाव । यहि सौके अध्याय में वर्णित चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसी के उत्तर दिशा के भागमें दो धनुष पै स्थित महिषासुर को मारनेवाली व बड़े शरीरवाली तथा ब्रह्मा व देवर्षि (नारद) जी से पूजित कण्टकशोधिनी भगवती के समीप जावै पुरातनसमय देवताओं के कण्टकरूप जो पाप संयुत दानव हुयेहैं ॥ १ । २ ॥ जिससे युगयुगमें उनको शोधन करती है इसलिये वह कण्टकशोधिनी कही जाती है कुंवार के शुक्लपक्षकी नवमी में उन भगवतीको पूजे ॥ ३ ॥ व हे वरानने! पशु व पुष्पोंके उपहारों से तथा उत्तम दीप धूपसे जो पूजन करता है उसके वर्षभरतक

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवींकण्टकशोधिनीम् ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे धनुर्द्वितयसंस्थिताम्॥१॥महिषघ्नींमहाकायां ब्रह्मदेवर्षिपूजिताम् ॥ पुरायेकल्मषोपेता दानवादेवकण्टकाः ॥ २ ॥ युगेयुगेशोधयेत्तांस्तेनकण्टकशोधिनी ॥ अश्वयुक्छुक्लपक्षेतु नवम्यांतामथार्चयेत् ॥ ३ ॥ पशुपुष्पोपहारैश्च दीपधूपस्तथोत्तमैः ॥ तस्यारयोनजायन्ते यावद्वर्षंवरानने ॥ ४ ॥ यस्तांपश्यतिसद्भक्त्या पूजयेन्नित्यमेववा ॥ तम्पुत्रमिवकल्याणी सारक्षतिनसंशयः ॥ ५ ॥ इति संक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ देविकण्टकनाशिन्याःश्रुतंरक्षाकरम्परम् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कण्टकशोधिनीमाहात्म्यन्नामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेद्वरारोहे कपालेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्यचोत्तरदिग्भागे सुरगन्धर्वपूजितम् ॥ १ ॥ पुरायज्ञेवर्त

शत्रु नहीं होतेहैं ॥ ४ ॥ हे कल्याणि ! जो पुरुष उत्तम भक्तिसे उन भगवतीजी को देखता है व नित्य पूजता है उसको वे भगवतीजी पुत्रकी नाईं रक्षा करती हैं इस में सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ हे देवि ! कण्टकनाशिनी भगवती का यह पापनाशकमाहात्म्य संक्षेप से कहागया सुनाहुआ जोकि उत्तम रक्षाकारक है ॥ ६ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकण्टकशोधिनीमाहात्म्यंनामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ● ॥ ●

दो० । भये प्रभासक्षेत्र में कपालेश शिवनाम । इकसौ यक अध्याय में सोइचरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे वरारोहे ! तदनन्तर उसी के उत्तरदिशा

के भागमें देवताओं व गन्धर्वों से पूजेहुये उत्तम कपालेश्वरजी के समीप जावै ॥१॥ पुरातन समय बुद्धिमान् ऋक्षराज (चन्द्रमा) का यज्ञवर्तमान होनेपर व ब्राह्मणों के बैठने पर जब अग्निमें हवन होनेलगा तब ॥२॥ जाल्म (नीच) रूपधारी होकर शिवजी वहां आये हे देवि ! जो कि पुरानी गुदड़ी से संयुत व मलवान् तथा धूरि से धूमरित थे ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर जाल्मरूपधारी व कपालधारी उन शिवजी को देखकर वे सब ब्राह्मण क्रोधित होकर धिक्कार के शब्दों से उनकी निन्दा करते भये ॥ ४ ॥ व बार २ यह कहते भये कि हे पाप ! हे पाप ! हे नीचनर ! जाइये जाइये क्योंकि मनुष्यकी हड्डियों को धारे हुये तुम्हारे योग्य यज्ञ की वेदी

मानेऋक्षराजस्यधीमतः॥ उपविष्टेषुविप्रेषु हूयमानेहुताशने ॥ २ ॥ जाल्मरूपधरोभूत्वा शङ्करस्तत्रचागतः ॥ जीर्णकन्थान्वितोदेवि मलवान्धूलिधूसरः ॥ ३ ॥ अथतेब्राह्मणाःक्रुद्धा दृष्ट्वातंजाल्मरूपिणम् ॥ कपालधारिणंसर्वे धिक्छब्दैस्तंजगर्हिरे ॥ ४ ॥ असकृत्पापपापेति गच्छगच्छनराधम ॥ यज्ञवेदीनतेर्हाहि मानुषास्थिधरस्यवै ॥ ५ ॥ अथप्रहस्यभगवान् क्षिप्रवेद्यांसुरोत्तमः ॥ क्षिप्त्वाकपालंनष्टोसौ नचज्ञातोमनीषिभिः ॥ ६ ॥ तस्मिन्नष्टेकपालञ्च क्षिप्तं मुञ्चतिवाह्यतः ॥ क्षिप्तंक्षिप्तंपुनस्तत्र जायतेचमहीतले ॥ ७ ॥ एवंशतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानिच ॥ तत्रक्षिप्तानि जातानि ततस्तेविस्मयान्विताः ॥ ८ ॥ अथोचुर्मुनयस्सर्वे निर्विघ्नंचास्यचेष्टितम् ॥ कोन्योदेवोमहादेवाद् गङ्गाक्षालितशेखरात् ॥ ९ ॥ समर्थईदृशंकर्तुमस्मिन्यज्ञेविशेषतः ॥ ततस्तेविविधैःस्तोत्रैः स्तुवन्तोवृषभध्वजम् ॥ १० ॥ होमंच

नहीं है ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर ये सुरोत्तम भगवान् शिवजी हँसकर शीघ्रही वेदी पै कपाल को फेंककर अदृश्य होगये और विद्वानों ने नहीं जाना ॥ ६ ॥ उनके अदृश्य होजाने पर विद्वान् लोग फेंकेहुये कपाल को बाहर छोड़ते थे और बार २ फेंका हुआ वह कपाल फिर वहां पृथ्वी में प्राप्त होता था ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर वहां सौ, हज़ार, लक्ष व अरब फेंकेहुये कपाल उत्पन्न हुये तदनन्तर वे विस्मय संयुत हुये ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर सब मुनियोंने कहा कि इनका कर्म विघ्नरहित होगया क्योंकि गंगाजी से धोये मस्तकवाले महादेवजी से अन्य कौन देवता ॥ ९ ॥ विशेषकर इस यज्ञ में ऐसा करने के लिये समर्थ है तदनन्तर वे अनेक प्रकार के स्तोत्रों से

शिवजी की स्तुति करते हुये ॥ १० ॥ फिर उन्होंने शतरुद्रिय मंत्रों से अग्नि में होम किया तदनन्तर महेश्वर देवजी उनकी प्रत्यक्षता में प्राप्त हुये ॥ ११ ॥ उसके उपरान्त उन्होंने अनेकप्रकार के स्तोत्रों से तथा पुराण में कहेहुये अनेक भांति के वेदोक्त मंत्रों से त्रिशूल हाथवाले शिवजीकी स्तुति किया ॥ १२ ॥ ऋषिलोग बोले कि मूलप्रकृति महात्मा अजितजी के लिये प्रणाम है और अनावृत तथा अभिलाष रहित देवता के लिये बार २ नमस्कार है ॥ १३ ॥ और प्रथम बीज के लिये व निषेध तथा निवृत्ति के लिये प्रणाम है व अन्तरहित एक अव्यक्त के लिये बार २ प्रणाम है ॥ १४ ॥ व अनेकभांति के विचित्र सर्परूपी बजुल्ला भूषणवाले

क्रुर्मुहुर्वह्नौ मन्त्रैस्तेशतरुद्रियैः ॥ ततःप्रत्यक्षताम्प्राप्तस्तेषांदेवोमहेश्वरः ॥ ११ ॥ ततस्तेविविधैःस्तोत्रैस्तुष्टुवुश्शूलपाणिनम् ॥ वेदोक्तमन्त्रैर्विविधैः पुराणोक्तैस्तथैवच ॥ १२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ॐनमोमूलप्रकृतये अजितायमहात्मने ॥ अनावृतायदेवाय निस्पृहायनमोनमः ॥ १३ ॥ नमआद्यायवीजाय निषेधायनिवृत्तये ॥ अनन्तकायचैकाय अव्यक्तायनमोनमः ॥ १४ ॥ नानाविचित्रभुजगाङ्गदभूषणाय सर्वेश्वरायविरजायनमोवराय ॥ विश्वात्मनेपरमकारणकारणाय फुल्लारविन्दविपुलायतलोचनाय ॥ १५ ॥ अदृश्यमव्यक्तमनादिमव्ययं यदक्षरंब्रह्मवदन्तिसर्वगम् ॥ निरामयंमृत्युमुखात्प्रमुच्यते तमादिदेवंशरणंप्रपद्ये ॥ १६ ॥ एवंस्तुतस्तदासर्वैर्ऋषिभिर्गतकल्मषैः ॥ ततस्तुष्टोमहादेवः वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ १७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ परितुष्टोसिदेवेश स्थानेस्मिन्निरतोभव ॥ असंख्यातानियस्माच्च कपा

तथा सबों के स्वामी व रजोगुणरहित श्रेष्ठ देवता के लिये प्रणाम है और विश्वात्मा व उत्तम कारण कारण के तथा फूले कमल के समान बड़े चौड़े नेत्रोंवाले के लिये प्रणामहै ॥ १५ ॥ जिसको विद्वान् अदृश्य, अप्रकट, अनादि, विकाररहित, अक्षर, ब्रह्म व सर्वव्यापी और व्याधिहीन कहते हैं और जो मृत्यु के मुख से छूट जाता है मैं उन आदिदेव की शरण में प्राप्त होता हूं ॥ १६ ॥ उससमय पापहीन सब ऋषियों से इसभांति स्तुति किये महादेवजी प्रसन्न होकर तदनन्तर बोले कि तुम लोग उत्तम वर को मांगो ॥ १७ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे देवेश ! यदि प्रसन्न हो तो इस स्थान में स्थित होवो हे सुरेश्वर ! जिस लिये असंख्य कपाल इस स्थान में

हुये उसीकारण निस्सन्देह कपालेश्वर नाम धारी होवो और मन्वन्तर के अन्तर भर स्वयंभूलिंग के रूप से स्थित होवो ॥ १८ । १९ ॥ यहांपर जो मनुष्य तुमको धूप, माला व अनुलेपनों से पूजैंगे उनको उस उत्तम स्थानको दीजियेगा जो कि देवताओं से भी दुर्लभ है ॥ २० ॥ बहुत अच्छा ऐसाही कहकर ये शिवदेवजी वहां स्थित हुये और हे भामिनि ! निशानायक चन्द्रमा का यज्ञ फिर वर्तमान हुआ ॥ २१ ॥ हे प्रिये ! उन शिवजी के देखने पर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के फल को पाता है व पहले जन्मों में इकट्ठा कियेहुये सब पातकों से भी छूट जाताहै ॥ २२ ॥ यह सब माहात्म्य स्वायंभूमन्वन्तर में हुआहै और वैवस्वतमन्वन्तर में दक्षजी के यज्ञ

लानिसुरेश्वर ॥ १८ ॥ अस्मिन्नसंशयंस्थाने कपालेश्वरनामभृत् ॥ स्वयंभूलिङ्गरूपेण तिष्ठमन्वन्तरान्तरम् ॥१९॥ येत्रत्वांपूजयिष्यन्ति धूपमाल्यानुलेपनैः ॥ तेषान्तुपरमंस्थानं यद्देवैरपिदुर्लभम् ॥ २० ॥ वाढमित्येवमुक्त्वासौ स्थितस्तत्रमहेश्वरः ॥ पुनःप्रवर्त्तितोयज्ञो निशानाथस्यभामिनि ॥ २१ ॥ तस्मिन्दृष्टेलभेन्मर्त्यो वाजिमेधफलंप्रिये ॥ मुच्यतेपातकैस्सर्वैः पूर्वजन्मार्जितैरपि ॥ २२ ॥ इदंमाहात्म्यमखिलमभूत्स्वायम्भुवेन्तरे ॥ वैवस्वतमनोश्चान्यद् दक्षयज्ञविनाशनात् ॥ २३ ॥ कपालीतिमहेशानो दक्षेणोक्तःपुराहरः ॥ तेनयज्ञस्यविघ्नं स कपालीतमथाकरोत् ॥ २४ ॥ कपालेश्वरनामेति स्थितोमन्वन्तरेशिवः ॥ अथान्यन्नामदेवस्य सूर्यसावर्णिकेन्तरे ॥ २५ ॥ भविष्यतिवरारोहे नामतत्रेश्वरस्यच ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंरुद्रदैवतम् ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकपालेश्वरमाहात्म्यन्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

के विनाश से अन्य माहात्म्यहुआ है ॥ २३ ॥ पुरातन समय दक्षजी ने महेश को कपाली ऐसा कहा उसीसे उनकपाली ने यज्ञ के उस विघ्नको किया ॥ २४ ॥ और हे वरारोहे ! उस मन्वन्तर में कपालेश्वर नामक शिव स्थितहुये इसके अनन्तर सूर्यसावर्णि के उस मन्वन्तरमें शिव देवजी का अन्य नाम होगा यह शिवदेवजी का माहात्म्य संक्षेप से कहागया ॥ २५।२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकपालेश्वरमाहात्म्यंनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

दो० । कपालेश शिवके निकट अहै लिंग कोटीश । इकसौ दो अध्याय में सोई चरित वरीश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अतिउत्तम कोटीश्वर देवजी के समीप जावै हे देवि ! उस स्थान से उत्तर ओर कोटीश्वर ऐसा कहा हुआ ॥ १ ॥ लिंग सब प्राणियोंका पापनाशक व पशुकी नाईं पाश को छुड़ाने वाला है हे देवि ! पुरातन समय भस्मसे धूसरित अंगोंवाले व जटाओं के मुकुटसे संयुत और मुंडों की मेखलाको धारण कियेहुये शैवलोग निर्मल तपको करते थे ॥ २ । ३ ॥ शान्त व क्रोधको जीतेहुये वे सब शिवयोगी ब्राह्मण ॥ ४ ॥ वहां स्थित होकर चारों दिशाओंमें व्याप्यक्षेत्रमें तपकरते थे हे महादेवि ! वे कोटिसंख्यक

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कोटीश्वरमनुत्तमम् ॥ तस्मादुत्तरतोदेवि कोटीश्वरमितिस्मृतम् ॥ १ ॥ पापघ्नंसर्वजन्तूनां पशुपाशविमोक्षणम् ॥ पुरापाशुपतादेवि कपालेश्वरसन्निधौ ॥ २ ॥ तपःकुर्वन्तिविमलंभस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥ जटामुकुटसंयुक्ता मुण्डमेखलधारिणः ॥ ३ ॥ शान्तास्सर्वेजितक्रोधाः ब्राह्मणाःशिवयोगिनः ॥ ४ ॥ तपःकुर्वन्तितत्रस्था व्याप्यंक्षेत्रंचतुर्दिशम् ॥ कोटिसंख्यामहादेवि मन्त्रजाप्यपरायणाः ॥ ५ ॥ सम्यक्स्थानेस्थितंलिङ्गं कपालेशसमीपगम् ॥ ततस्तेपूजयांचक्रुस्तल्लिङ्गंभक्तिसंयुताः ॥ ६ ॥ तत्रतुष्टोमहादेवो मुक्तिंतेषान्ददौहरः ॥ ऋषयःकोटिसंख्यातास्तस्मिन्सिद्धायतःप्रिये॥७॥ तेनकोटीश्वरंलिङ्गंनाम्नाख्यातन्धरातले ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या कोटीश्वरमनामयम् ॥८॥ सकोटिमन्त्रजाप्यस्य फलंप्राप्स्यतिमानवः॥ हिरण्यंतत्रदातव्यंब्राह्मणेवेदपारगे॥९॥ कोटिहोमफलन्तेनसम्यग्यात्राफलंलभेत्॥ १०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकोटीश्वरमाहात्म्यन्नामद्व्यधिकशततमोध्यायः १०२

मुनि मंत्रके जपमें लगेहुये थे ॥ ५ ॥ तदनन्तर भक्ति से संयुक्त उन्होंने कपालेश्वरजीके समीपमें प्राप्त व स्थानमें स्थित उस लिंगको भलीभांति पूजन किया ॥ ६ ॥ और वहांपर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी ने उनको मुक्ति दिया है प्रिये ! जिसलिये कोटिसंख्यक ऋषि उस स्थानमें सिद्ध हुये ॥७॥ इसलिये पृथ्वीमें नामसे कोटीश्वर लिंग कहागया जो पुरुष भक्तिसे उन व्याधिरहित कोटीश्वरजी को पूजताहै ॥८ ॥ वह मनुष्य करोड़ मंत्रके जपके फलको पाताहै वहांपर वेदके पारगामी ब्राह्मणके लिये सुवर्ण देनाचाहिये॥९॥ क्योंकि उससे पुरुष भलीभांति यात्राके फलकोपाताहै ॥१०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकोटीश्वरमाहात्म्यंनामद्व्यधिकशततमोध्यायः॥१०२

दो० । ब्रह्माके दिनकी अवधि अरु कल्पन के नाम । इकसौ तीजे में यहै कह्यो चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त मनुष्योंके सब पापोंको हरनेवाले अन्य उत्तम गुप्त स्थानको मैं तुमसे विस्तारसे कहताहूं ॥ १ ॥ और प्रधानदेवता का माहात्म्य व कल्पवासियों का माहात्म्य कहताहूं सोमेश, दैत्यहन्ता, बालरूपी पितामह ॥ २ ॥ और अर्कस्थल सूर्य व शशिभूषण ये छः श्रेष्ठ देवता प्रभासक्षेत्र में स्थित हैं ॥ ३ ॥ जिनके दर्शनही से पुरुष कृतकृत्य होताहै और जन्म से लगाकर उत्पन्न हुये पातकों से निश्चय कर घोरपातकों से छूटजाताहै ॥ ४ ॥ देवीजी बोलीं कि तुमने पहले कहेहुये देवताओं का माहात्म्य कहा और प्रभासक्षेत्र में

ईश्वरउवाच ॥ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यंस्थानमुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंनृणां विस्तारात्कथयामिते ॥१॥ प्रधानदेवमाहात्म्यं माहात्म्यंकल्पवासिनाम् ॥ सोमेशोदैत्यहन्ताच बालरूपीपितामहः ॥ २ ॥ अर्कस्थलस्तथादित्यः प्रभासेशशिभूषणः ॥ एतेषट्प्रवरादेवाः प्रभासंक्षेत्रमाश्रिताः ॥ ३ ॥ येषान्दर्शनमात्रेण कृतकृत्यस्तुजायते ॥ मुच्यतेपातकैर्घोरैराजन्मजनितैर्ध्रुवम् ॥ ४ ॥ देव्युवाच ॥ पूर्वेषामुक्तदेवानां माहात्म्यंकथितंत्वया ॥ प्रभासेबालरूपेति यत्प्रोक्तंतत्कथंवचः ॥ ५ ॥ अन्येषुसर्वस्थानेषु वृद्धरूपीपितामहः ॥ कथञ्चसमनुप्राप्तो माहात्म्यंतस्यकिंस्मृतम् ॥ ६ ॥ कथंसपूज्योदेवेश यात्राकार्याकथंनृभिः ॥ एतद्विस्तरतोब्रूहि प्रसन्नोयदिमेप्रभो ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि माहात्म्यंब्रह्मणोद्भवम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ८ ॥ नास्तिब्रह्मासमोदेवो नास्तिब्रह्मासमोगुरुः ॥ नास्तिब्रह्मासमंज्ञानं नास्तिब्रह्मासमन्तपः ॥ ९ ॥ तावद्भवन्तिसंसारे दुःखशोकभयप्लुताः ॥ नभवन्तिसुरश्रे

जो बालरूपी ब्रह्मा कहेगये वह कैसा वचन है ॥ ५ ॥ क्योंकि अन्य सब स्थानों में वृद्धरूपी ब्रह्मा हैं वे कैसे यहां प्राप्तहुये हैं और उनका क्या माहात्म्य कहागया है ॥ ६ ॥ हे देवेश ! वे कैसे पूजने योग्य हैं व किसप्रकार मनुष्योंको उनकी यात्राकरना चाहिये हे प्रभो ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो इसको विस्तारसे कहिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये ब्रह्मासे उपजे हुये माहात्म्य को मैं कहताहूं कि जिसके सुननेही से मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ८ ॥ ब्रह्मा के समान देवता नहीं है व ब्रह्माके समान गुरु नहीं है व ब्रह्माके समान ज्ञान नहीं है और ब्रह्माके समान तप नहीं है ॥ ९ ॥ दुःख व शोकके भय से डूबेहुये मनुष्य तबतक

संसार में होते हैं जबतक कि सुरोत्तम ब्रह्माजीमें भक्त नहीं होते हैं ॥ १० ॥ जैसे कि प्राणीका चित्त विषयगोचरमें लगजाता है वैसेही यदि ब्रह्ममें लगजावै तो बंधन से कौन न छूटजावै ॥ ११ ॥ देवीजी बोलीं कि यदि जगद्गुरु ब्रह्माजी ऐसे प्रभावसे संयुत हैं तो उस प्रभासस्थान तीर्थ में क्यों स्थित हैं ॥ १२ ॥ वहां सुरोत्तम ब्रह्माजी किससमय किसलिये आये हैं और किस तिथि में द्विजेन्द्रों से वे पूजने योग्य हैं इसको क्रमसे कहिये ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले कि सोमनाथके ईशान में व सांबादित्य के आग्नेयदिशा में कल्पभर रहनेवाले दूसरे ब्रह्मलोक की नाईं कल्पान्तवासी ब्रह्माजी का जहां उत्तम स्थान है हे देवि ! उस स्थान में

ष्ठे यावद्भक्तापितामहे ॥ १० ॥ समासक्तंयथाचित्तं जन्तोर्विषयगोचरे ॥ यद्येवंब्रह्मणिन्यस्तं कोनमुच्येतबन्धनात् ॥ ११ ॥ देव्युवाच ॥ एवंमाहात्म्यसंयुक्तो यदिब्रह्माजगद्गुरुः ॥ प्रभासिकेमहातीर्थे तस्मिन्स्थानेतुसंस्थितः ॥ १२ ॥ किमर्थमागतस्तत्र कस्मिन्कालेसुरोत्तमः ॥ कथंसपूज्योविप्रेन्द्रैस्तिथौकस्यांक्रमाद्वद ॥ १३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ सोमनाथस्यईशान्यां साम्बादित्याग्निगोचरे ॥ ब्रह्मणःपरमंस्थानंब्रह्मलोकइवापरः॥ १४॥तिष्ठतेकल्पसंस्थायी यत्रकल्पान्तवासिनः ॥ तत्रस्थानेस्थितोदेवि बालरूपीपितामहः ॥ १५ ॥ जगत्प्रभुर्लोककर्ता सत्त्वमूर्तिर्महाप्रभः ॥ आगतश्चाष्टवर्षस्तु चेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ १६ ॥ कोटिब्रह्मर्षिभिस्सार्द्धं सहितोविश्वकर्मणा ॥ कारयामासविधिवत् प्रतिष्ठायज्ञमुत्तमम् ॥ १७ ॥ प्रतिष्ठाप्यततोलिङ्गं सोमनाथंवरानने ॥ दापयामासविप्रेभ्यो भूरिशोयज्ञदक्षिणाम् ॥ १८ ॥ एवंप्रतिष्ठितंलिङ्गं ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ वर्षाणितत्रजातानि प्रभासेबालरूपिणः ॥ १९ ॥ चत्वारिंशद्द्वयश्चैव चेत्रमध्येनि

बालरूपी पितामहजी टिके हैं ॥ १४ । १५ ॥ संसार के स्वामी व लोकोंको रचनेवाले, सत्त्वमूर्ति तथा महाप्रकाशवान् आठ वर्ष के ब्रह्माजी उत्तम प्रभासक्षेत्र में आये हैं ॥ १६ ॥ करोड़ों ब्रह्मर्षियों समेत वे विश्वकर्मा सहित ब्रह्माजीने विधिपूर्वकउत्तम प्रतिष्ठा के यज्ञको कराया है ॥ १७ ॥ हे वरानने ! सोमनाथ लिंगको थापकर तदनन्तर ब्राह्मणों के लिये बहुतसी यज्ञकी दक्षिणाको दिया ॥ १८ ॥ इसप्रकार लोकोंको रचनेवाले ब्रह्माने लिंगको थापा है उस प्रभासक्षेत्रके मध्य में रहने-

वाले बालरूपी ब्रह्माके बयालीस वर्ष बीते हैं इसप्रकार प्रभासक्षेत्र के वासी ब्रह्माजी का परार्द्ध बीतगया ॥ १६ । २० ॥ देवीजी बोलीं कि ब्रह्माका दिनमान व मास और वर्षका जो प्रमाणहो उस सबको विस्तार से कहिये कि जिसप्रकार ब्रह्माका आयुर्बल कहागया है ॥ २१ ॥ महादेवजी बोले कि ब्रह्माजी परमायुवाले कहेगये हैं उनका परार्द्ध बीतगया है और प्रभासक्षेत्र में टिकेहुये उनका दूसरा परार्द्ध इस समय होवैगा ॥ २२ ॥ जब आठ वर्षवाले लोकोंके पितामह ब्रह्माजी प्रभासक्षेत्र में आये हैं तब बालरूपी कहेगये ॥ २३ ॥ सदैव देवताओंको प्यारे प्रभासक्षेत्रको छोड़कर अन्य सब तीर्थोंमें वृद्धरूपी पितामहजी हैं ॥ २४ ॥ ब्रह्माण्ड में जो तीर्थहैं उनमें जो

वासिनः ॥ एवंपरार्द्धमगमत् प्रभासक्षेत्रवासिनः ॥ २० ॥ देव्युवाच ॥ ब्रह्मणोदिनमानन्तु मासवर्षप्रमाणकम् ॥ तत्स र्वंविस्तराद्ब्रूहि यथायुर्ब्रह्मणःस्मृतम् ॥२१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ परमायुःस्मृतोब्रह्मा परार्द्धंतस्यवैगतम् ॥ प्रभासक्षेत्रसं स्थस्य द्वितीयंभविताधुना ॥ २२ ॥ यदाप्रभासिकेक्षेत्रे ब्रह्मालोकपितामहः ॥ आगतश्चाष्टवर्षस्तु बालरूपीतदोच्य ते ॥ २३ ॥ अन्येषुसर्वतीर्थेषु वृद्धरूपीपितामहः ॥ मुक्त्वाप्रभासिकंक्षेत्रं सदैवविबुधप्रियम् ॥ २४ ॥ ब्रह्माण्डेयानिती र्थानि ब्रह्माणस्तेषुयेस्मृताः ॥ तेषामाद्योमहातेजाः प्रभासेयोऽव्यवस्थितः ॥ २५ ॥ कल्पेकल्पेतुनामानि शृणुत्वंता निवैप्रिये ॥ स्वयंभूःप्रथमेकल्पे द्वितीयेपद्मभूःस्मृतः ॥ २६ ॥ तृतीयेविश्वकर्त्तेति बालरूपीचतुर्थके ॥ एतानिमुख्यना मानि कथितानिस्वयंभुवः ॥ २७ ॥ नित्यंसंस्मरतेयस्तु सदीर्घायुर्नरोभवेत ॥ चन्द्रसूर्यग्रहास्सर्वे देवाश्चासुरदान वाः ॥ २८ ॥ त्रैलोक्यंनश्यतेसर्वं ब्रह्मरात्रिसमागते ॥ पुनर्दिनेतुसञ्जाते प्रबुद्धस्सपितामहः ॥ २९ ॥ तथासृष्टिंप्रकुरु

ब्रह्मा कहेगये हैं उनके आदिभूत ये महातेजवान् ब्रह्माजी हैं जोकि प्रभासक्षेत्र में टिकेहैं ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! तुम कल्प कल्प में उन नामोंको सुनो पहले कल्प मे स्वयम्भू और दूसरे में पद्मभू कहेगये हैं ॥ २६ ॥ व तीसरेमें विश्वकर्ता व चौथेमें बालरूपी कहेगये हैं ये ब्रह्माजी के मुख्यनाम कहेगये ॥ २७ ॥ इनको जो नित्यस्मरण करता है वह पुरुष दीर्घ आयुर्बलवाला होताहै चन्द्रमा सूर्य व ग्रह और सब देवता, असुर व दानव ॥ २८ ॥ और सब त्रिलोक ब्रह्मरात्रि आनेपर नष्ट होजाता है फिर दिन

प्राप्त होनेपर वे पितामहजी जागकर ॥ २६ ॥ हे प्रिये! वैसेही सृष्टिको करते हैं जैसे कि पहले हुईहै लोकोंको रचनेवाले ब्रह्माका दिनमान कहताहूं ॥ ३० ॥ नेत्रपातसे चा-थाईभाग समय त्रुटि कहाजाता है व हे वरानने! उससे दुगुना निमिष जानने योग्यहै ॥ ३१ ॥ और पन्द्रह निमेषों से विद्वानोंकरके काष्ठा ऐसी कहीजाती है और तीस काष्ठाओं से विद्वानों करके कला कहीगई ॥ ३२ ॥ और तीस कलाका मुहूर्त होता है व उन पन्द्रह मुहूर्तों से दिन होता है ॥ ३३ ॥ और दिनकी प्रमाणभर रात जाननेयोग्य है और उन दोनोंका दिन रात होताहै और उन पन्द्रह दिन रातोंसे पक्ष कहाजाता है व दो पक्षोंका मास कहाजाता है ॥ ३४ ॥ और छः महीनों से

ते यथापूर्वमभूत्प्रिये ॥ दिनमानंप्रवक्ष्यामि ब्रह्मणोलोककर्तृणः ॥ ३० ॥ नेत्रपाताच्चतुर्भागस्त्रुटिकालस्तुगीयते ॥ तस्माच्चद्विगुणंज्ञेयं निमिषन्तुवरानने ॥ ३१ ॥ निमिषैःपञ्चदशभिः काष्ठाइत्युच्यतेबुधैः ॥ त्रिंशद्भिश्चैवकाष्ठाभिः कलाप्रोक्तामनीषिभिः ॥ ३२ ॥ त्रिंशत्कलोमुहूर्तस्याद्दिनंपञ्चदशैस्तुतैः ॥ ३३ ॥ दिनमानानिशाज्ञेया अहोरात्रंतयोर्भवेत् ॥ तैःपञ्चदशभिःपक्षो द्विपक्षोमासउच्यते ॥ ३४ ॥ मासैश्चैवायनंषड्भिरब्दंस्यादयनद्वयोः ॥ चत्वारिंशच्चलक्षाणि लक्षाणांत्रितयम्पुनः ॥ ३५ ॥ विंशतिश्चसहस्राणि ज्ञेयंसौरंचतुर्युगम् ॥ चतुर्युगैकसप्तत्या मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ ३६ ॥ ऐन्द्रमेतद्भवेदायुः समासात्तचकीर्त्तितम् ॥ स्वायम्भुवोमनुःपूर्वं मनुस्स्वारोचिषस्ततः ॥ ३७ ॥ उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ वैवस्वतोथसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिरेवच ॥ ३८ ॥ धर्मसावर्णिनामाचदक्षसावर्णिरेवच ॥ तथैवरुद्रसावर्णिर्देवसावर्णिरद्भुतः ॥ ३९ ॥ इन्द्रसावर्णिनामाचभविष्यतितथापरे ॥ चतुर्दशैतेमनवस्संख्यातास्तेयथाक्रमम् ॥ ४० ॥

अयन व दो अयनोंका वर्ष होताहै और चालीस लाख व फिर तीन लाख याने तेंतालीस लाख ॥ ३५ ॥ बीस हज़ार वर्ष और चतुर्युग जाननेयोग्य है व इकहत्तरि चतुर्युगी से मन्वन्तर कहागया है ॥ ३६ ॥ और इतना इन्द्रका आयुर्बल होताहै वह संक्षेप से कहागया पहले स्वायम्भुव मनु उसके उपरान्त स्वारोचिष मनुहुये ॥ ३७ ॥ और उत्तम, तामस, रैवत व चाक्षुष, वैवस्वत व सावर्णि, व ब्रह्मसावर्णि ॥ ३८ ॥ और धर्मसावर्णि नामक व दक्षसावर्णि वैसेही रुद्रसावर्णि तथा अद्भुत देव

सावर्णि ॥ ३९ ॥ ये चौदह मनु तुमसे क्रमपूर्वक कहेगये ॥ ४० ॥ और भूत व भविष्य सर्व इन्द्रोंको मैं तुमसे क्रमसे कहताहूं कि विश्ववक्ता, विपश्चित, स्वचित्ति, और शिबि ॥ ४१ ॥ विभु, मनोभुव तथा ओजस्वी (पराक्रमी) व सुन्दर बलि और अद्भुत, शान्ति व अन्य देववर, वृषा ॥ ४२ ॥ शतधामा, दिवस्वामी, शुचि, व शक्र ये सब चौदह इन्द्र हे प्रिये ! ब्रह्माके दिनमें नाश होजाते हैं ॥ ४३ ॥ औरउतनीही रात्रि जाननेयोग्य है यह कल्पका प्रमाण कहागया है पहला श्वेतकल्प दूसरा नीललोहित ॥ ४४ ॥ और तीसरा वामदेव तदनन्तर अन्य गाथान्तर है और पांचवां रौरव कहागया है व छठा प्राण ऐसा कहागयाहै ॥ ४५ ॥ और सातवां

भूतान्भविष्यानिद्रांश्च सर्वान्वक्ष्येतवक्रमात ॥ विश्ववक्ताविपश्चिच्च स्वचित्तिश्शिविरेवच ॥ ४१ ॥ विभुर्मनोभुवश्चैवतथौजस्वीबलिर्वशी ॥ अद्भुतश्चतथाशान्तिरन्योदेववरोवृषा ॥ ४२ ॥ शतधामादिवस्वामी शुचिश्शक्रश्चतुर्दश ॥ एतेसर्वेविनश्यन्ति ब्रह्मणोदिवसेप्रिये ॥ ४३ ॥ रात्रिस्तुतावतीज्ञेया कल्पमानमिदंस्मृतम् ॥ प्रथमंश्वेतकल्पस्तु द्वितीयोनीललोहितः ॥ ४४ ॥ वामदेवःतृतीयस्तु ततोगाथान्तरोपरः ॥ रौरवःपञ्चमःप्रोक्तः षष्ठःप्राणइतिस्मृतः ॥ ४५ ॥ सप्तमोथबृहत्कल्पः कन्दर्पोष्टमउच्यते ॥सद्योथनवमःप्रोक्त ईशानोदशमस्स्मृतः ॥ ४६ ॥ ध्यानएकादशप्रोक्ते द्विषष्ठश्शाश्वतस्स्मृतः ॥ त्रयोदशउदानस्तु गरुडोथचतुर्दशः ॥ ४७ ॥ कौर्मःपञ्चदशोज्ञेयः पौर्णमासीप्रजायते ॥ षोडशोनारसिंहस्तु समाधिस्तुतथापरः ॥ ४८ ॥ आत्रेयोष्टादशःप्रोक्तः सोमकल्पस्ततोपरः ॥ ४९ ॥ भावनोविंशतिःप्रोक्तस्ततस्तत्पुरुषःस्मृतः ॥वैकुण्ठश्चार्चितोरुद्रोलक्ष्मीकल्पस्ततोपरः॥५०॥षड्विंशचैवविज्ञेयस्तथासारस्व

बृहत्कल्प व आठवां कन्दर्प कहाजाता है व नवां सद्य और दशम ईशान कहागयाहै ॥ ४६ ॥ व ध्यान गेरहवां कहागया है और बारहवां शाश्वत कहागया है और तेरहवां उदान व चौदहवां गरुड़ कल्प है ॥ ४७ ॥ व पन्द्रहवां कौर्म जाननेयोग्य है वही पौर्णमासी होती है और सोलहवां नारसिंह व अन्य समाधि कहागया है ॥ ४८ ॥ अठारहवां आत्रेय उसके उपरान्त अन्य सोमकल्प कहागया है ॥ ४९ ॥ व बीसवां भावन कहागया है उसके उपरान्त तत्पुरुष कहागया है

और वैकुण्ठ, अर्चित, रुद्र व अन्य लक्ष्मीकल्प कहागया है ॥ ५० ॥ वैसेही अन्य छब्बीसवां सारस्वत कल्प कहागया है व सत्ताईसवां वैराज और उसके उपरान्त का गौरीकल्प कहागया है ॥ ५१ ॥ वैसेही माहेश्वरकल्प कहागया है कि जिसमें त्रिपुर मारागया है वैसेही अन्तमें पितृकल्प होताहै जोकि ब्रह्मा की अमावस्या कहीगई है ॥ ५२ ॥ हे प्रिये ! ब्रह्मा के महीने में तीसकल्प कहेगये हैं ये सब व्यतीतकल्प कहेगये इससमय वाराहकल्प वर्तमान है ॥ ५३ ॥ ब्रह्मा की वह प्रतिपदा (परेवा) तिथि है कि जिसमें वाराहजी पृथ्वी को ऊपर लाये हैं तीसकल्पों से मास कहागया है और उन बारहमासोंसे वर्ष कहागया है ॥ ५४ ॥

तोपरः ॥ सप्तविंशश्चवैराजो गौरीकल्पस्तथोर्द्धकः ॥ ५१ ॥ माहेश्वरस्तथाप्रोक्तस्त्रिपुरोयत्रघातितः ॥ पितृकल्पस्त थान्तेच याकुहूर्ब्रह्मणःस्मृता ॥ ५२ ॥ त्रिंशत्कल्पास्समाख्याता ब्रह्मणोमासिवैप्रिये ॥ अतीताःकथितास्सर्वे वाराहो वर्ततेधुना ॥ ५३ ॥ प्रतिपद्ब्रह्मणोयत्र वाराहेणोद्धृतामही ॥ त्रिंशत्कल्पैःस्मृतोमासो वर्षंद्वादशभिस्तुतैः ॥ ५४ ॥ अनेनवर्षमानेन तदाब्रह्माष्टवार्षिकः ॥ ५५ ॥ आनीतस्सोमराजेन सोमनाथःप्रतिष्ठितः ॥ एवंक्षेत्रेनिवसितः प्रभासे बालरूपिणः ॥ ५६ ॥ परार्द्धमेकमगमद् द्वितीयंवर्ततेधुना ॥ एवंप्रभावोसौदेवः प्रभासक्षेत्रमध्यतः ॥ ५७ ॥ ब्रह्मास्व यंभूर्भगवान् बालत्वात्क्षेत्रमाश्रितः ॥ सर्वैर्भूयोनमस्कार्यो वन्दनीयोमनीषिणा ॥ ५८ ॥ आदौसएवपूज्यःस्यात् स म्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ यस्तम्पूजयतेभक्त्या समांपूजयतेध्रुवम् ॥ ५९ ॥ यस्तंद्वेष्टिसमान्द्वेष्टि यस्तमर्च्चयेन्ममैवसः ॥ ब्रह्माणम्पूजमानेनाप्यहंविष्णुश्चपूजितौ ॥ ६० ॥ सत्त्वंब्रह्मारजोविष्णुस्तमोहंसम्प्रकीर्त्तितः ॥ वायुर्ब्रह्मानलोरुद्रो वि

इस वर्षके प्रमाण से उससमय आठ वर्षवाले ब्रह्माको सोमराजजी लाये हैं व उन्होंने सोमनाथकी प्रतिष्ठा किया इसप्रकार प्रभासक्षेत्रमें बसते हुये बालरूपी ब्रह्मा का ॥ ५५ । ५६ ॥ एक परार्द्ध बीतगया है व इससमय दूसरा वर्तमान है प्रभासक्षेत्र के मध्य में इस प्रभाववाले ये स्वयंभू भगवान् ब्रह्माजी बालकपन से क्षेत्र में आश्रित हुये हैं और वे विद्वान् से बार २ प्रणाम करने योग्य हैं ॥ ५७ । ५८ ॥ और भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषको पहले उनको पूजना चाहिये जो पुरुष भक्तिसे उनको पूजता है वह मुझको निश्चय कर पूजता है ॥ ५९ ॥ व जो उनसे वैर करता है वह मुझसे द्वेष करता है और जो उनको पूजता है वह मुझ

ही को पूजता है और ब्रह्माको पूजतेहुये पुरुषसे हम व विष्णु पूजित होते हैं ॥ ६० ॥ सत्त्वगुण ब्रह्माहैं व रजोगुण विष्णु हैं और तमोगुण मैं कहागयाहूं ब्रह्मा पवन हैं शिव अग्नि हैं और विष्णुजी जल कहेगये हैं ॥ ६१ ॥ विष्णु रात हैं व शिव दिन और जो संध्या है वे ब्रह्माजी हैं हे देवि ! मैं सामवेदहूं और ब्रह्मा ऋग्वेद कहेजाते हैं ॥ ६२ ॥ व यजुर्वेद और अथर्वाकी कलाको धरनेवाले विष्णुजी हैं हे देवि ! मैं उष्ण कालहूं व पितामह वर्षाका समय हैं ॥ ६३ ॥ और शीतकाल विष्णुजी हैं इस प्रकार वे तीनों समय हैं मैं दक्षिणाग्नि जानने योग्य हूं व गार्हपत्याग्नि विष्णु कहेगये हैं ॥ ६४ ॥ व ब्रह्मा आहवनीय अग्नि हैं इसप्रकार सब कहीं देवता हैं मैं

ष्णुरापःप्रकीर्तितः॥ ६१ ॥ रात्रिर्विष्णुरहोरुद्रो यासन्ध्यासपितामहः ॥ सामवेदोऽहंदेवि ब्रह्माऋग्वेदउच्यते॥ ६२ ॥ यजुर्वेदोभवेद्विष्णुः कलाधारोह्यथर्वणः ॥ उष्णकालोह्यहंदेवि वर्षाकालःपितामहः ॥ ६३ ॥ शीतकालोभवेद्विष्णुः एवंकालत्रयंहितत ॥ दक्षिणाग्निरहंज्ञेयो गार्हपत्योहरिःस्मृतः ॥ ६४ ॥ ब्रह्माचाहवनीयस्तु एवंसर्वत्रदैवतम् ॥ अहं लिङ्गसरूपस्थो ब्रह्मावीजप्ररोहकः ॥ ६५ ॥ नाभिमध्येस्थितोब्रह्मा विष्णुश्चहृदयान्तरे ॥ चक्रमध्येऽहंदेवि आधारः सर्वदेहिनाम् ॥ ६६ ॥ यश्चाहंसस्वयंब्रह्मा योब्रह्मासहुताशनः ॥ यादेवीसस्वयंविष्णु र्योविष्णुःसचचन्द्रमाः ॥ ६७ ॥ यःकालःसस्वयंब्रह्मा योरुद्रःसचभास्करः ॥ एवंशक्तिविशेषेण परंब्रह्मास्थितम्प्रिये ॥ ६८ ॥ ॐकारस्तत्परम्ब्रह्म गायत्रींप्रकृतिःपरा ॥ उभावेतौनरोज्ञात्वा नपुंजातेर्विमुच्यते ॥ ६९ ॥ एवंयोवेददेवेशि अद्वैतम्परमाक्षरम् ॥ सवेदसर्वंनैवा

लिंगकी सरूपता में स्थितहूं और ब्रह्मा बीजको जमानेवाले हैं ॥ ६५ ॥ ब्रह्मा नाभिके बीचमें स्थित हैं व विष्णुजी हृदयके अन्तर में हैं व हे देवि ! सब शरीरधारियों का आधार मैं चक्र के मध्य में स्थितहूं ॥ ६६ ॥ जो मैं हूं वे आपही ब्रह्मा हैं और जो ब्रह्मा हैं वे अग्नि हैं व जो देवी हैं वे आपही विष्णु हैं और जो विष्णु हैं वह चन्द्रमा है ॥ ६७ ॥ व जो काल है वह आपही ब्रह्मा हैं और जो शिव हैं वे सूर्यनारायण हैं इसप्रकार हे प्रिये ! शक्तिके विशेषसे परब्रह्म स्थित है ॥ ६८ ॥ जो ॐकार है वह परब्रह्म है और गायत्री उत्तम प्रकृतिहै इन दोनोंको नर जानकर प्राणी पुरुषकी जातिसे नहीं छूटताहै ॥ ६९ ॥ हे देवेशि ! इसप्रकार जो द्वैतरहित परब्रह्म

को जानता है वह सब जानता है और अन्य भेद करनेवाला नीच नर नहीं जानता है ॥ ७० ॥ कार्य होनेमें पृथक् स्थित एक रूप परब्रह्म है व हे वरारोहे ! जो उससे वैर करता है वह ब्रह्मद्वेषी कहाजाता है ॥ ७१ ॥ ब्रह्मा दाहिने अंग में स्थित हैं व बांये अंग में विष्णुजी स्थित हैं हे भामिनि ! जो उनका वैर करता है वह मेरा वैरी है ॥ ७२ ॥ हे वरारोहे ! ऐसा जानकर भेदरहित चित्तसे ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी को एक रूपसे पूजै ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांब्रह्मणोमाहात्म्यंनामत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

न्यो भेदकर्त्तानराधमः ॥ ७० ॥ एकरूपम्परम्ब्रह्म कार्यभूतम्पृथक्स्थितः ॥ यस्तंद्वेष्टिवरारोहे ब्रह्मद्वेषीसउच्यते ॥ ७१ ॥ दक्षिणाङ्गस्थितोब्रह्मा वामाङ्गस्थितकेशवः ॥ यस्तयोर्द्वेषमाधत्ते सद्वेष्टाममभामिनि ॥ ७२ ॥ एवंज्ञात्वावरारोहे अभेदेनान्तरात्मना ॥ ब्रह्माणंकेशवंरुद्रमेकरूपेणपूजयेत् ॥ ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेब्रह्मणोमाहात्म्यन्नामत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ एवमद्वैतभावेन यद्ब्रह्मपरिकीर्त्तितम् ॥ तस्यपूजांविधानेन कथयस्वयथार्थतः ॥ १ ॥ क्षेत्रेप्रभासिकेदेव बालरूपीपितामहः ॥ सकथम्पूज्यतेलोके परम्ब्रह्मस्वरूपवान् ॥ २ ॥ केमन्त्राःकिंविधानंतद् ब्राह्मणास्तत्रकीदृशाः ॥ तत्रस्थितानांविप्राणां कथंक्षेत्रफलम्भवेत् ॥ ३ ॥ कतिप्रकारास्तेविप्रास्तत्रक्षेत्रेनिवासिनः ॥ किमाचारामहादेव किंशीलाःकिंपरायणाः ॥ ४ ॥ एतद्विस्तरतोब्रूहि ब्राह्मणानांमहोदयम् ॥ ५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ साधुसाधुमहादेवि सम्यक्

दो॰ । शिवजी निजमुखसों यथा विप्र प्रशंसाकीन । इकसौ चौथेमें सोई है चरित्र रसभीन ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि इसभांति द्वैतभाव से रहित जो ब्रह्म कहा गया है उसके पूजनको विधिपूर्वक यथार्थ से कहिये ॥ १ ॥ हे देव ! प्रभासक्षेत्र में बालरूपी पितामह हैं परब्रह्म स्वरूपवाले वे कैसे पूजे जाते हैं ॥ २ ॥ कौनमंत्र व कौन वह विधि और उसमें कैसे ब्राह्मण होवैं और वहांपर टिकेहुए ब्राह्मणों को कैसे क्षेत्र का फल होता है ॥ ३ ॥ और उस क्षेत्र में बसनेवाले ब्राह्मण कितने भांति के हैं व हे महादेवजी ! किस आचारवाले और किस स्वभाववाले तथा किसमें परायण हैं ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों के इस माहात्म्यको विस्तार से कहिये ॥ ५ ॥ महादेवजीबोले

कि हे भलीभांति प्रश्न में चतुर, महादेवि ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा तुम सावधान मनवाली होकर विप्रदेवतावाले माहात्म्य को सुनो ॥ ६ ॥ हे देवि ! जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है समुद्रअन्तवाली पृथ्वी में जो कोई ब्राह्मण कहे गये हैं ॥ ७ ॥ हे देवेशि ! पृथ्वी में वह मेरा प्रत्यक्षरूप है ब्राह्मण प्रत्यक्ष देवता हैं और स्वर्ग में परोक्ष देवता हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मण मुझको सदैव प्यारे हैं और ब्राह्मण मेरा शरीर हैं जो भक्ति से उनको पूजता है वह सदैव मुझको पूजता है ॥ ९ ॥ और जो भक्तिसे उनको प्रसन्न करता है वह मुझको प्रसन्न करता है ॥ १० हे प्रिये ! जो ब्राह्मण हैं निस्सन्देह वही मैं हूं और उनके पूजित

प्रश्नविशारदे ॥ शृणुष्वैकमनाभूत्वा माहात्म्यंविप्रदैवतम् ॥ ६ ॥ यच्छ्रुत्वामानवोदेवि मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ येकेचित्सागरान्तायां पृथिव्यांकीर्तिताद्विजाः ॥ ७ ॥ तद्रूपंममदेवेशि प्रत्यक्षंधरणीतले ॥ प्रत्यक्षंब्राह्मणादेवाः परोक्षेदिविदेवताः ॥ ८ ॥ ब्राह्मणामतिप्रियानित्यं ब्राह्मणामामकीतनुः ॥ यस्तानर्चयतेभक्त्या समामर्चयतेसदा ॥ ९ ॥ यस्तांस्तोषयतेभक्त्या सचमाम्परितोषयेत् ॥ १० ॥ येब्राह्मणाःसोहमसंशयम्प्रियेतेष्वर्चितेष्वर्चितवान्यथैवस्याम् ॥ तथैवतुष्टेष्वहमेवतुष्टोवैरंचतैर्यस्यममापिवैरी ॥ ११ ॥ यश्चन्दनैःसागुरुगन्धमाल्यैरभ्यर्चयेच्छैलमयींममार्चाम् ॥ नासौममार्चामयतेर्चयन्वै विप्रार्चितादर्चितएवचाहम् ॥ १२ ॥ यावन्तःपृथिवीमध्ये चीर्णवेदव्रताद्विजाः ॥ अचीर्णव्रतवेदाये तेपि पूज्याद्विजाःप्रिये ॥ १३ ॥ नब्राह्मणान्परीक्षेत श्राद्धेक्षेत्रनिवासिनः ॥ समहान्परिवादोस्य ब्राह्मणानाम्परीक्षणे ॥ १४ ॥ काणाःकुष्ठाश्चकुब्जाश्च दरिद्राव्याधितास्तथा ॥ सर्वेश्राद्धेनियोक्तव्या मिश्रितावेदपारगैः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणाजा

होने पर मैं पूजित होता हूं वैसेही उनके प्रसन्न होने पर मैं ही प्रसन्न होता हूं और जिसका उन ब्राह्मणों से वैर है वह मेरा भी वैरी है ॥ ११ ॥ जो पुरुष अगुरु समेत सुगन्धित मालाओं व चन्दनों से मेरी शैलमयी पूजा करता है पूजन करता हुआ यह मेरी पूजा को नहीं प्राप्त होता है क्योंकि ब्राह्मणों के पूजनेही से मैं पूजित होताहूं ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! पृथ्वी के बीचमें वेदव्रतों को किये व व्रतों तथा वेदोंको न कियेहुए जितने ब्राह्मण हैं वे भी ब्राह्मण पूजने योग्य हैं ॥ १३ श्राद्धमें क्षेत्रवासी ब्राह्मणों की परीक्षा न करै क्योंकि ब्राह्मणों की परीक्षा में इनकी यह बड़ी भारी निन्दा होती है ॥ १४ ॥ काने, कोढ़ी, कूबरे, दरिद्री व रोगी सब वेद पारगामियों से मिले

हुए श्राद्ध में नियुक्त करने योग्य हैं ॥ १५ ॥ ब्राह्मण जातिसे पवित्रहैं तदनन्तर वेदाभ्यास से पवित्र होते हैं उसी कारण हव्य कव्य यानें देवताओं व पितरों के कार्य में वे कहीं निन्दा के योग्य नहीं हैं ॥१६॥ काने, कोढ़ी, कुबरे, दरिद्री व रोगी भी ब्राह्मणों का विद्वान् अपमान न करै क्योंकि वे मेरा रूप कहे गये हैं ॥ १७ ॥ जिस प्रकार में ब्राह्मण के रूप से इस पृथ्वी में घूमताहूं उसको ज्ञान से अलग कियेहुए बहुत ब्राह्मण नहीं जानते हैं ॥१८॥ जो मेरे रूपवाले ब्राह्मणों को मारते हैं व विकर्मों को कराते हैं और न पठानेवाले काम में पठाते हैं व सेवा कराते हैं ॥ १९ ॥ मरे हुए उन पुरुषों को बड़े बलवान् यमदूत उस मार्ग में आरा से काटते हैं जैसे कि

तितःपूता वेदाभ्यासात्ततःपरम् ॥ ततोहिहव्यकव्येषु ह्यनिन्द्याब्राह्मणाःक्वचित ॥ १६ ॥ काणान्कुष्ठांश्चकुब्जांश्च द रिद्रान्व्याधितानपि ॥ नावमन्येद्द्विजान्प्राज्ञो ममरूपंयतःस्मृतम् ॥ १७ ॥ बहवोहिनजानन्ति नराज्ञानबहिष्कृताः॥ यथाहंद्विजरूपेण चरामिपृथिवीमिमाम् ॥ १८ ॥ मद्रूपान्घ्नन्तियेविप्रान् विकर्मान्कारयन्तिच ॥ अप्रेषणेप्रेषयन्ति दा सत्वंकारयन्तिच ॥ १९ ॥ मृतांस्तान्करपत्रेण यमदूतामहाबलाः ॥ निष्कृन्तन्तियथाकाष्ठं तत्रमार्गेतुशिल्पिनः ॥ २० ॥ येचैवाश्लक्ष्णयावाचा तर्ज्जयन्तिनराधमाः ॥ वदन्तिपरुषंक्रोधात्पादेनाघ्नन्तिच ॥ २१ ॥ मृतांस्तान्यम लोकेवै निघ्नन्तिधरणीतले ॥ क्रूरम्पादेनचाक्रम्य सक्रोधंरक्तलोचनः ॥२२॥ अग्निवर्णैश्चशस्त्रैश्च जिह्वामुद्धरतेयमः॥ येतुविप्रान्निरीक्षन्ते पापाःपापेनचक्षुषा ॥ २३ ॥ अब्राह्मणाःश्रुतेर्बाह्या नित्यब्रह्मद्विषोनराः ॥ तेषांघोरामहाकाया वज्रतुण्डाभयानकाः ॥२४॥ उद्धरन्तिमुहूर्तेन चक्षुषीचयमाज्ञया ॥ यस्ताडयतिविप्रन्तु क्षतंकुर्याच्चशोणितम् ॥२५॥

बढ़ई काठको काटता है ॥ २० ॥ और जो अधम मनुष्य कठोर वचन से ब्राह्मणों को डरवाते हैं व क्रोध से कठोर वचन कहते हैं और पैर से मारते हैं ॥ २१ ॥ मरे हुए उन प्राणियों को यमलोक में यमदूत मारते हैं और क्रूरता समेत पृथ्वी में उनको दबाकर क्रोध सहित लाललोचनोंवाले ॥ २२ ॥ यमराज अग्नि के समान वर्णवाले शस्त्रों से जीभ को उखाड़ते हैं और जो पापीलोग ब्राह्मणों को पापदृष्टि से देखते हैं ॥ २३ ॥ ब्राह्मण से भिन्न व वेद से बाहर वे मनुष्य नित्यही ब्राह्मणों के वैरी हैं और भयंकर तथा बड़ेशरीरवाले व वज्रके समान चोंचवाले पक्षी यमराज की आज्ञा से थोड़ीही देर में उनके नेत्रोंको निकाल लेते हैं और जो कोई ब्राह्मणको

मारता है व घाव करता है और रक्त को निकालता है ॥ २४ । २५ ॥ और जो अंगों को भंग करता है व जो प्राणों से भिन्न करता है वह ब्रह्मघाती जानने योग्य है उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं कहागया है ॥ २६ ॥ और पचास करोड़ नरकों में क्रमसे वह बहुत हज़ार वर्षोंतक बहुतही पचता है ॥ २७ ॥ इसलिये हे वरारोहे ! मनुष्यों से ब्राह्मण सदैव प्रणाम करने योग्य हैं और अन्न, पानके दानों से ब्राह्मण सदैव पूजने योग्य हैं ॥ २८ ॥ और हे देवेशि ! सब दानोंके ब्राह्मण अधिकारी हैं अन्य नहीं है क्योंकि दानको ग्रहण करताहुआ अन्य पुरुष अधमगति को प्राप्तहोताहै ॥ २९ ॥ हे देवि ! तपस्या से पवित्र कियाहुआ ब्राह्मण पातकों से

अङ्गभङ्गञ्चयःकुर्य्यात् प्राणैरपिवियोजयेत् ॥ ब्रह्मघ्नःसतुविज्ञेयो नतस्मैनिष्कृतिःस्मृता ॥ २६ ॥ पञ्चाशत्कोटिसंख्येषु नरकेष्वनुपूर्वशः ॥ सुबहूनिसहस्राणि वर्षाणिपच्यतेभृशम् ॥ २७ ॥ तस्माद्विप्रावरारोहे नमस्कार्यान्नृभिःसदा ॥ अन्नपानप्रदानैस्तु पूजार्हाःसततंद्विजाः ॥ २८ ॥ सर्वेषांचैवदानानां सर्वेविप्राधिकारिणः ॥ नान्यःसमर्थोदेवेशि गृह्णन्यात्यधमाङ्गतिम् ॥ २९ ॥ तपसापावितोदेवि ब्राह्मणोधौतकिल्बिषः ॥ नसीदतिप्रतिगृह्णन् पृथिवीमनुसागराम् ॥ ३० ॥ नास्तिकिञ्चिन्महादेवि दुष्कृतंब्राह्मणस्यतु ॥ यस्तुस्थितःसदाध्याने नित्यंसद्भावभावितः ॥ ३१ ॥ ब्राह्मणोहि महद्भूतो जन्मनासहजायते ॥ लोकालोकेश्वराश्चापि सर्वेब्राह्मणपूजकाः ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणाःकुपिताहन्युर्भस्मीकुर्युःस्वतेजसा ॥ लोकानन्यान्सृजेयुश्चलोकपालांस्तथापरान् ॥ ३३ ॥ अपेयःसागरोयैश्च कृतःकोपान्महात्मभिः ॥ येषांकोपाग्निनाद्यापि दण्डकंनोपशाम्यति ॥ ३४ ॥ एतेस्वर्गस्यनेतारो देवदेवाः सनातनाः ॥ एभिश्चैवकृतःपन्था

रहित होताहै इसकारण समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको ग्रहण करताहुआ वह क्लेशित नहीं होताहै ॥ ३० ॥ हे महादेवि ! ब्राह्मणके कुछ पातक नहीं होताहै जोकि नित्यही उत्तम भाव से शुद्धचित्त सदैव ध्यान में स्थित रहताहै ॥ ३१ ॥ जन्महीसे ब्राह्मण महान् होता है और लोकालोकोंके स्वामी भी सब ब्राह्मणों को पूजते हैं ॥ ३२ ॥ क्रोधित होतेहुये ब्राह्मण नाश करते हैं व अपने तेजसे भस्म करतेहैं और अन्य लोकों तथा अन्यलोकपालोंको रचते हैं ॥ ३३ ॥ व जिन महात्माओं ने क्रोधसे समुद्रको अपेय (न पीने योग्य) किया और जिनकी कोपाग्नि से जलायाहुआ दण्डक आज भी नहीं शान्त होताहै ॥ ३४ ॥ और ये सनातन देवदेव स्वर्गको लेजानेवाले हैं

और इनसे कियाहुआ वह मार्ग देवयान कहाजाता है ॥ ३५ ॥ वे पूजने योग्य और वे प्रणाम करने योग्यहैं व उनमें सब प्रतिष्ठितहैं और वेही परस्पर इन सब लोकों को पालते हैं ॥ ३६ ॥ गुप्त वेदपाठ व तपवाले ब्राह्मण प्रशंसित नियमोंवाले हैं और विद्या में अभ्यरत व व्रतों में अभ्यास किये हुए ब्राह्मण आश्रित न होकर जीविका करते हैं ॥ ३७ ॥ और सर्पों की नाईं क्रोधित ब्राह्मण सेवने योग्य हैं क्योंकि तपस्या से जलतेहुए वे समुद्रों को भी जलासक्ते हैं ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणों के प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न होते हैं और अध्यातम (ब्रह्म) की गति को चिन्तवन करनेवाले वे सब प्राणियों की गति हैं ॥ ३९ ॥ इसलिये सदैव पाप में परायण भी

देवयानःसउच्यते ॥ ३५ ॥ तेपूज्यास्तेनमस्कार्यास्तेषुसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ तेवैलोकानिमान्सर्वान् पालयन्तिपरस्परम् ॥ ३६ ॥ गूढस्वाध्यायतपसो ब्राह्मणाःशंसितव्रताः ॥ विद्यास्नाताव्रतस्नाता अनुपाश्रित्यजीविनः ॥ ३७ ॥ आशीविषाइवक्रुद्धा उपचर्याहिब्राह्मणाः ॥ तपसादीप्यमानास्तेदहेयुः सागरानपि ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणेषुचतुष्टेषुतुष्यन्तेसर्वदेवताः ॥ तेगतिःसर्वभूतानामध्यात्मगतिचिन्तकाः ॥ ३९ ॥ अवध्याब्राह्मणास्तस्मात्पापेषुचरताःसदा ॥ यश्चसर्वमिदंहन्याद्ब्राह्मणंवापितत्समम् ॥ ४० ॥ सोग्निःसोर्कोमहातेजा विषंभवतिकोपितः ॥ भूतानामग्रभुग्विप्रोवर्णश्रेष्ठः पितागुरुः ॥ ४१ ॥ नस्कन्दतेनव्यथते नविनश्यतिकर्हिचित् ॥ वरिष्ठमग्निहोत्रादि ब्राह्मणस्यमुखेहुतम् ॥ ४२ ॥ विप्राणांवपुराश्रित्य सर्वास्तिष्ठन्तिदेवताः ॥ अतःपूज्यास्तुतेविप्रा अलाभेप्रतिमादयः ॥ ४३ ॥ अविद्योवासविद्योवा ब्राह्मणोममदैवतम् ॥ प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतंमहत् ॥ ४४ ॥ श्मशानेष्वपितेजस्वी पावकोनैवदुष्यति ॥ हव्य

ब्राह्मण अवध्य हैं जो इस सब संसार को व उसी के समान ब्राह्मणको नाश करता है ॥ ४० ॥ वह अग्नि है और वह महातेजस्वी सूर्य है और क्रोधित होता हुआ वह ब्राह्मण विष होता है ब्राह्मण सब प्राणियों के पहले भोजन करनेवाला व जातियों में श्रेष्ठ तथा पिता व गुरु है ॥ ४१ ॥ वह कभी न सूखता है न व्यथित होताहै न नाश होता है और श्रेष्ठ अग्नि होत्रादिक ब्राह्मण के मुख में हवन किया जाताहै ॥ ४२ ॥ व ब्राह्मणों के शरीर में आश्रितहोकर सब देवता टिक्ते हैं इससे वे ब्राह्मण पूजने योग्य हैं और उनके न मिलने में प्रतिमादिक पूजने योग्य हैं ॥ ४३ ॥ विद्या रहित व विद्यासमेत ब्राह्मण मेरा देवता है जैसे कि संस्कार की हुई व बिन संस्कार

की हुई अग्नि बड़ा भारी देवता है ॥ ४४ ॥ श्मशानों में भी तेजस्वी अग्नि दूषित नहीं होती है और हव्य कव्य याने देव व पितर कार्य से रहित भी ब्राह्मण नहीं दूषित होता है ॥ ४५ ॥ हे वरानने ! महापातकों के कारण वर्जित करने योग्य भी ब्राह्मण पूजनीय है ब्राह्मण सब प्रकार पूज्य हैं व सबप्रकार बड़े भारी देवता हैं ॥ ४६ ॥ इस कारण विपत्ति में प्राप्त ब्राह्मण की सब उपाय से रक्षा करै इस प्रकार हे महादेवि ! ब्राह्मण सब कहीं मनुष्यों से पूजने योग्य हैं ॥ ४७ ॥ फिर संयमचित्तवालों को क्या कहना है और क्षेत्रवासी ब्राह्मण विशेषकर पूजनेयोग्य हैं इसके उपरान्त क्षेत्र में स्थित चारों आश्रमों में वसनेवाले ॥ ४८ ॥

कव्यव्यपेतोपि ब्राह्मणोनैवदुष्यति ॥ ४५ ॥ महापातकवर्ज्योंहि पूज्योविप्रोवरानने ॥ सर्वथाब्राह्मणाःपूज्याः सर्वथादैवतंमहत् ॥ ४६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षेदापद्गतंद्विजम् ॥ एवंविप्रामहादेवि पूज्याःसर्वत्रमानवैः ॥ ४७ ॥ किंपुनःसंयतात्मानो विशेषात्क्षेत्रवासिनः ॥ अथक्षेत्रस्थितानांच चतुराश्रमवासिनाम् ॥ ४८ ॥ विप्राणांवृत्तिभेदांस्ते प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ क्षेत्रस्यन्यासंविधिवद् येजानन्तिद्विजातयः ॥ ४९ ॥ वृत्तिभेदक्रमांश्चैव तेक्षेत्रफलभागिनः ॥ यथाक्षेत्रेनिवसता वर्तितव्यंद्विजातिना ॥ ५० ॥ प्राजापत्यादिभेदेन तच्छृणुत्वंवरानने ॥ प्राजापत्यामहीपालाः कपोताग्रन्थिकास्तथा ॥ ५१ ॥ कुटिकाद्याश्चवेताला पद्महंसावरानने ॥ धृतराष्ट्रावकाःकङ्का गोपालाश्चैवभामिनि ॥ ५२ ॥ त्रुटिकाःप्रवराश्चैव गुटिकादण्डिकाःपरे ॥ क्षेत्रस्थानामिमेभेदा वृत्तिंतेषांशृणुष्वथ ॥ ५३ ॥ अहिंसागुरुशुश्रूषा

ब्राह्मणोंकी वृत्ति व भेदों को तुमसे क्रमसे कहताहूं कि जो ब्राह्मण क्षेत्र के संन्यासको विधिपूर्वक जानते हैं ॥ ४९ ॥ और वृत्ति व भेदों के क्रमोंकोही जो जानते हैं वे क्षेत्रके फलके भागी होते हैं जिस प्रकार क्षेत्रमें बसतेहुए ब्राह्मणको प्राजापत्यादिक भेदसे वर्तमान होनाचाहिये हे वरानने ! उसको तुम सुनो कि प्राजापत्य, महिपाल, कपोत व ग्रंथिक ॥ ५० ॥ ५१ ॥ और हे वरानने ! उसीविधि कुटिकादिक भामिनि ! वेताल व पद्म,हंस,धृतराष्ट्र,बक,कंक,गोपाल भी ॥ ५२ ॥ त्रुटिक, प्रवर, गुटिक व अन्य दंडिक क्षेत्र में टिके हुए ब्राह्मणों के ये भेद हैं इसके उपरान्त उनकी वृत्ति को सुनिये ॥ ५३ ॥ कि हिंसा न करना, गुरु की सेवा करना, निज वेदपाठ करना,

शौच व संयम, सत्य, चोरी न करना यह प्राजापत्य व्रत कहा गया है ॥ ५४ ॥ और पुष्टि के लिये वे ब्राह्मण विद्वेषकर्मों से व शांतिकादिक कर्मों से जिसलिये पृथ्वी को पालते हैं उसी कारण महीपाल कहे गये हैं ॥ ५५ ॥ और जो पृथ्वी में गिरेहुए किनुकों को कबूतर की नाईं लेते हैं और शिलोञ्छवृत्ति से जीविका करते हैं वे साधु कपोत हैं ॥ ५६ ॥ और जो उत्तम घरको बनाकर यकायक छोड़ देते हैं वे ग्रंथिक हैं और जो शिवजी के आराधन में लगेहुएहैं वेही कुटिक साधक हैं ॥ ५७ ॥ और जो कुछ मिला उसी से जीविका करनेवाले स्त्री समेत जो ब्राह्मण बड़े साहससे युक्त होकर तीर्थों में आसक्त हैं वे तो वेताल साधक हैं ॥ ५८ ॥ व संयम में प्राप्त होकर

स्वाध्यायःशौचसंयमः ॥ सत्यमस्तेयमेताद्भिः प्राजापत्यंव्रतंस्मृतम् ॥ ५४ ॥ पुष्ट्यर्थन्तेचविद्वेषकर्मभिःशान्तिका दिभिः ॥ पालयन्तिमहींयस्मान्महीपालास्ततःस्मृताः ॥ ५५ ॥ पतितान्येकणान्भूमौ संहरन्तिकपोतवत् ॥ उञ्छ वृत्त्योपजीवन्ति कपोतास्तेतुसाधवः ॥ ५६ ॥ गृहंकृत्वातुसद्ग्रन्थाः सहसैवन्त्यजन्तिये ॥ कुटिकाःसाधकास्तेवै शि वाराधनतत्पराः ॥ ५७ ॥ तीर्थासक्ताःसपत्नीका यथालब्धोपजीविनः ॥ महासाहससंयुक्ता वेतालास्तेतुसाधकाः ॥५८॥ संयताःकामनासक्ता राज्यकामार्थसाधकाः ॥ पद्मास्तेसाधकाःख्याता भिक्षाचर्यारताःसदा ॥ ५९ ॥ ज्ञानयोगसमा युक्ता द्वैताचाररताश्चये ॥ हंसास्तेसाधकाःख्याताः स्वयमुत्पन्नसंविदः ॥ ६० ॥ ब्रह्मचर्येणसत्त्वेन वृत्त्यालब्धतयापि वा ॥ येवैजगद्धारयन्ति धृतराष्ट्रमतास्तुते ॥ ६१ ॥ सदाचरन्तियेज्ञानं व्रतंधर्ममथापिवा ॥ स्वार्थैकगातिनिष्ठास्तु व कास्तेसाधकामताः ॥ ६२ ॥ जलाश्रयंसमाश्रित्य स्थिताउत्कृष्टसिद्धये ॥ विसशीर्णदलाहारास्तेकङ्काःसाधकाःस्मृ

कामनाओं में लगेहुए जो राज्य व कामना तथा द्रव्य के साधक हैं सदैव भिक्षाकी चर्या में लगे हुए वे साधक पद्म कहे गये हैं ॥ ५९ ॥ और ज्ञान व योग में लगे हुए जो द्वैत के आचार में परायण हैं आपही से उत्पन्न ज्ञानवाले वे साधक हंस कहे गये हैं ॥ ६० ॥ और ब्रह्मचर्य व सत्त्व और मिलीहुई जीविका से जो संसार को धारण करते हैं वे धृतराष्ट्र माने गये हैं ॥ ६१ ॥ और जो सदा ज्ञान व व्रतों के धर्मको करते हैं केवल स्वार्थही की गति में निष्ठ वे साधक बक माने गये हैं ॥६२॥

और जलके आश्रय में स्थित होकर जो श्रेष्ठ सिद्धिके लिये स्थित हैं कमलके भंसीड़ व गिरे हुए पत्तों को खानेवाले वे साधक कंक कहे गये हैं ॥ ६३ ॥ और जो यहां गौवों के साथ चलते हैं व गोंड़े में रहते हैं और जो पंचगव्य को खाते हैं वे साधक गोपाल हैं ॥ ६४ और कृच्छ्रचान्द्रायण व्रतको करनेवाले जो पुरुष त्रुटिमात्र भोजन करतेहुए अपने शरीर को दुर्बल करते हैं वे साधक त्रुटिक कहेगये हैं ॥ ६५ ॥ और कुशकी स्त्री को बनाकर जो पुरुष मठ में गृहस्थ होकर रहते हैं भिक्षाकी वृत्ति में लगेहुए वे शुद्ध ब्राह्मण प्रवर साधक कहेगये हैं ॥ ६६ ॥ और कन्द, मूल,फलों से उपजी हुई पलमात्रभर आठ गोलियों से जो जीविका करते हैं वे गुटिक ब्राह्मण

ताः ॥ ६३ ॥ गोभिःसार्द्धंव्रजन्त्यत्र गोष्ठेचनिवसन्तिच ॥ पञ्चगव्यभुजोयेवै गोपालास्तेतुसाधकाः ॥ ६४ ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणाश्चैव क्षपयन्तिस्वकंवपुः ॥ त्रुटिमात्राशिनस्तेवैत्रुटिकास्साधकामताः ॥ ६५ ॥ कृत्वाकुशमयींपत्नीं मठेयगृहमेधिनः ॥ भैक्ष्यवृत्तिरताःशुद्धाः प्रवरास्तेतुसाधकाः ॥ ६६ ॥ पलमात्रसमानाभिर्गुटिकाभिरथाष्टभिः ॥ कन्दमूलफलोत्थाभिर्गुटिकास्तेद्विजातयः ॥ ६७ ॥ स्वदेहंदण्डनेयुक्ता रात्रौवीरासनेयुताः ॥ दण्डिनस्तेसमाख्याताः सर्वमेतत्तवोदितम् ॥ ६८ ॥ सामान्यायेविशेषस्था व्रतिनोगृहिणोपिवा ॥ तेषांभेदोमयाख्यातः सम्यक्क्षेत्रनिवासिनाम् ॥ ६९ ॥ एवंयेवृत्तिभिर्युक्ताः प्रभासक्षेत्रवासिनः ॥ तैःपूज्योभगवान्देवो बालरूपीपितामहः ॥ ७० ॥ महापातकिनोदेवि येतुविप्रैर्बहिष्कृताः ॥ नचतेसंस्पृशेयुर्वै ब्रह्माणंबालरूपिणम् ॥ ७१ ॥ ब्रह्मचारीसदाशान्तो ब्राह्मणोयोजितेन्द्रियः ॥ नैवतानवमन्येत यदीच्छेज्जीवितंचिरम् ॥ ७२ ॥ एवंतेब्राह्मणाःख्याताः क्षेत्रमध्यनिवासिनः ॥ तथाहिभगवान्

हैं ॥ ६७ ॥ और जो पुरुष अपने शरीर को दण्ड देने में युक्त हैं और रातको वीरासन में युक्त होते हैं वे दंडी कहे गये हैं यह सब तुमसे कहागया ॥ ६८ ॥ और जो सामान्य ब्राह्मण विशेष वृत्ति में स्थितहैं और जो व्रती व गृहस्थभी हैं भली भांति क्षेत्रमें बसनेवाले उन ब्राह्मणोंका भेद मैंने वर्णन किया ॥ ६९ ॥ प्रभास क्षेत्रमें बसनेवाले जो ब्राह्मण इस प्रकार जीविकाओं से संयुक्त हैं उनसे बालरूपी भगवान् ब्रह्मा देवजी पूजने योग्यहैं ॥ ७० ॥ हेदेवि ! जो महापातकी हैं व जो ब्राह्मणों से बाहर कियेगयेहैं वे बालरूपी ब्रह्माका स्पर्श न करैं॥ ७१ ॥ जो ब्राह्मण ब्रह्मचारी व सदैव शान्त तथा जितेन्द्रिय है वह यदि बहुत दिनों तक जीना चाहै तो उन ब्राह्मणों का

अपमान न करे॥ ७२ ॥ इसप्रकार क्षेत्र के मध्य में बसनेवाले वे ब्राह्मण तुमसे कहे गये वैसेही भगवान् बालरूपी पितामहदेवजी कहे गये ॥ ७३ ॥ जो वेदाध्ययन में संयुक्त होवै उसे ब्रह्मा पूजना चाहिये ॥ ७४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांब्राह्मणप्रशंसावर्णनंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥

दो० । ब्रह्माजिमि हरिसन कह्यो अष्टोत्तरशत नाम । इकसौ पंचवें में सोई चरित अहै सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त भक्ति के भेदसे पृथक् उन बालरूपी ब्रह्माके पूजनकी विधिको संक्षेपसे कहताहूं ॥ १ ॥ और रथ यात्राकी विधि व स्तोत्र और मंत्रोंकी विधि के क्रमको कहताहूं मन, वचन व शरीर से उपजीहुई

देवो बालरूपीपितामहः ॥ ७३ ॥ योवेदाध्ययनेयुक्तस्तेनपूज्यःपितामहः ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे ब्राह्मणप्रशंसावर्णनंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ अथपूजाविधानञ्च कथयामिसमासतः ॥ भक्तिभेदात्पृथक्तस्य ब्रह्मणोबालरूपिणः ॥ १ ॥ रथयात्राविधानंवा स्तोत्रमन्त्रविधिक्रमम् ॥ विविधाभक्तिरुद्दिष्टा मनोवाक्कायसम्भवा ॥ २ ॥ लौकिकीवैदिकीचापि सावेदाध्यात्मिकीतथा ॥ ध्यानधारणयायातु वेदानांस्मरणेनच ॥ ३ ॥ ब्रह्मप्रीतिकरीचैषा मानसीभक्तिरुच्यते ॥ व्रतोपवासनियमैश्चितेन्द्रियनिरोधिभिः ॥ ४ ॥ कृच्छ्रसान्तपनैश्चान्यैस्तथाचान्द्रायणादिभिः ॥ ब्रह्मोक्तैश्चोपवासैश्च विविधैस्तुवरानने ॥ ५ ॥ कायिकाभक्तिराख्याता त्रिविधातुद्विजन्मनाम् ॥ गोघृतक्षीरदधिभिर्मध्वैक्षवकुशोदकैः ॥ ६ ॥ गन्धमाल्यैश्च विविधैर्वारिभिश्चैवशीतलैः ॥ घृतगुग्गुलधूपैश्च कृष्णागुरुसुगन्धिभिः ॥ ७ ॥ भूषणैर्हेमरत्नाद्यैश्चित्राभिःस्रग्भिरेवच ॥

अनेक भांति की भक्ति कही गई है ॥ २ ॥ और वह लौकिकी व वैदिकी और वेदाध्यात्मिकी होती है जो ध्यान व धारणा और वेदों के स्मरण से होती है ॥ ३ ॥ ब्रह्म में प्रीति करनेवाली यह मानसी भक्ति कहीजाती है और व्रत, उपास, नियम व चित्त तथा इन्द्रियोंको रोकनेवाले ॥ ४ ॥ कृच्छ्र सांतपनोंसे और हे वरानने ! अन्य चान्द्रायणादिकों से व वेद में कहे हुए अनेकभांति के उपवासों से ॥ ५ ॥ ब्राह्मणों की तीन भांतिकी शारीरिकी भक्ति कहीगई है और गऊका घृत, दूध, दही, शहद ऊख के रस व कुशोदकोंसे ॥ ६ ॥ और अनेक भांति के गंध, माला व शीतल जलों से तथा काले अगुरु के सुगन्धवाले घी व गुग्गुल के धूपों से ॥ ७ ॥ व सुवर्ण

तथा रत्नादिक भूषणों से और विचित्र मालाओं के न्यासों से व मंत्रवाले स्तोत्रों से तथा ऊंची पताकाओं से ॥ ८ ॥ और नाच, बाजा व गान से तथा सब वस्तुओं के उपहारों से और भक्ष्य, भोज्य अन्न पानों से जो पूजा ब्रह्माको उद्देशकर मनुष्यों से कीजाती है वह लौकिकी भक्ति मानीगई है और वेदों के मंत्रों व हव्यके भागों से जो क्रिया है वह वैदिकी कहीगई है ॥ ९ । १० ॥ और अमावस व पूर्णमासी में अग्निहोत्रसे उपजाहुआ कर्म करनाचाहिये भोजन, दक्षिणा, दान व पुरोडाश यह जो क्रिया है ॥ ११ ॥ और यज्ञों का होना व सोमपान यहसब यज्ञवाला कर्म है ऋग, यजुः व सामको जप और संहिता के जो पाठ ॥ १२ ॥ हे देवि ! ब्राह्मणों

न्यासैःपरिसरस्तोत्रैः पताकाभिस्तथोच्छ्रितैः ॥ ८ ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्ववस्तूपहारकैः ॥ भक्ष्यभोज्यान्नपानैश्च यापूजाक्रियतेनरैः ॥ ९ ॥ पितामहंसमुद्दिश्य साभक्तिर्लौकिकीमता ॥ वेदमन्त्रहविर्भागैः क्रियायावैदिकीस्मृता ॥ १० ॥ दर्शोप्यपूर्णमास्यायां कर्त्तव्यंचाग्निहोत्रजम् ॥ प्राशनंदक्षिणादानं पुरोडाशइतिक्रिया ॥ ११ ॥ इष्टिवृतिसोमपानं याज्ञियंकर्मसर्वशः ॥ ऋग्यजुःसामजाप्यानि संहिताध्ययनानिच ॥ १२ ॥ क्रियन्तेब्राह्मणैर्देवि साभक्तिर्वैदिकी स्मृता ॥ प्राणायामपरोनित्यं ध्यानवान्नियतेन्द्रियः ॥ १३ ॥ धारणांहृदयेकृत्वा ध्यायमानःप्रजेश्वरम् ॥ हृत्पद्मकर्णिकासीनं रक्तवर्णंसुलोचनम् ॥ १४ ॥ पश्यतिद्योतितमुखं ब्रह्माणम्भ्रुकुटीतटे ॥ रक्तवर्णंचतुर्बाहुं वरदाभयहस्तकम् ॥ १५ ॥ एवंयश्चिन्तयेद्देवं ब्रह्मभक्तःसउच्यते ॥ विधिश्चशृणुमेदेवि यःस्मृतःक्षेत्रवासिनाम् ॥ १६ ॥ निर्ममानिरहङ्काराः निःसङ्गानिष्परिग्रहाः ॥ चतुर्वर्गेपिनिःस्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ १७ ॥ सर्वेषामेवभूतानामर्थेधर्मक्रिया

से कियेजाते हैं वह वैदिकी भक्ति कहीगई है और नित्यही प्राणायाम में परायण, ध्यानवान् और इन्द्रियों को रोककर ॥ १३ ॥ हृदय में धारणकर हृदयकमल की गुजरी पै बैठेहुए अरुणवर्ण व सुन्दरनेत्रोंवाले ब्रह्माको ध्यान करताहुआ ॥ १४ ॥ भौंहों के किनारे प्रकाशित मुखवाले तथा अरुणवर्ण व चारभुजाओंवाले और वरदायक व अभयहाथवाले ब्रह्माजीको देखता है ॥ १५ ॥ इस प्रकार जो ब्रह्मा देवजीको ध्यान करता है वह ब्रह्मभक्त कहाजाताहै और हे देवि ! क्षेत्रवासियों की जो विधि कहीगई है उसको मुझसे सुनिये ॥ १६ ॥ कि ममताहीन, अहंकारसे रहित व संग को छोड़े हुये तथा परिजनों से रहित और चतुर्वर्ग याने धर्म, अर्थ,

काम व मोक्ष में भी स्नेह रहित तथा ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समभाववाले ॥ १७ ॥ और सब प्राणियों के लिये धर्म के कार्य में तत्पर और जो सांख्ययोगकी विधि को जाननेवाले हैं और धर्म से नष्टसन्देहवाले हैं ॥ १८ ॥ और जो नित्य ही ब्रह्माकी पूजा में परायण हैं वे क्षेत्रवासी ब्राह्मण हैं और उनसे जिस प्रकार बालरूपी ब्रह्मा पूजने योग्यहैं ॥ १९ ॥ वैसेही मैं कहता हूं हे प्रिये! एक मनवाली होकर सुनिये कि निर्मल तीर्थों में नहाकर पवित्र होकर श्वेत वसनों को धारेहुए ॥ २० ॥ पूजा के उपहार से संयुक्त होकर तदनन्तर ब्रह्माजीको पूजै पहले विधि से पंचामृत रस व जलसे भलीभांति नहवाकर ॥ २१ ॥ गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध,

पराः ॥ सांख्ययोगविधिज्ञा ये धर्मविच्छिन्नसंशयाः ॥ १८॥ब्रह्मपूजारतानित्यं तेविप्राःक्षेत्रवासिनः ॥ तैर्यथापूजनीयोवै बालरूपीपितामहः ॥१९॥ तथाहंकथयिष्यामिशृणुह्येकमनाःप्रिये ॥ स्नात्वाविमलतीर्थेषुशुक्लाम्बरधरःशुचिः ॥ २०॥ पूजोपहारसंयुक्तस्ततोब्रह्माणमर्चयेत् ॥ पूर्वंसंस्नाप्यविधिनापञ्चामृतरसोदकैः ॥ २१ ॥ गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् ॥ गायत्र्यागृह्यगोमूत्रं गन्धद्वारेतिगोमयम् ॥ २२ ॥ अध्यायस्वेतिचक्षीरंदधिक्राव्णेतिवैदधि ॥ तेजोसिशुक्रमित्याज्यं देवस्यत्वाकुशोदकम् ॥ २३ ॥ आपोहिष्ठेतिमन्त्रेण पञ्चगव्येनस्नापयेत् ॥ कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेनच ॥ २४ ॥ स्नापयेन्मन्त्रपूतेन ब्रह्मस्नानंव्रतंस्मृतम् ॥ वर्षकोटिसहस्रैस्तु यत्पापंसमुपार्ज्जितम् ॥ २५ ॥ सुरज्येष्ठन्तुसंस्नाप्य दहेत्सर्वंनसंशयः ॥ एवंसंस्नाप्यविधिना ब्रह्माणंबालरूपिणम् ॥ २६ ॥ कर्पूरागुरुतोयेन

और गऊका दही व घी और कुशोदककी लेवै अर्थात् गायत्री से गोमूत्र व (गंध द्वारा) इस मंत्रसे गोमय को लेकर ॥ २२ ॥(अध्यायस्व) इस मंत्र से दूध और दधि (काव्णा) इस मंत्रसे दही तथा (तेजोसि शुक्र)इसमंत्रसे घी और (देवस्यत्वा)इसमंत्रसे कुशोदक को लेकर ॥ २३ ॥(आपोहिष्ठा) ऐसे मंत्रसे पंचगव्य करके नहवावे व मंत्र से पवित्र कुशोदकसे संयुक्त कपिला के पंचगव्यसे ब्रह्मा को नहवावै वह ब्रह्म स्नान व्रत कहागया है करोड़ों हज़ार वर्षोंसे जो पाप इकट्ठा कियागयाहै ॥ २४ । २५ ॥ ब्रह्माजी को भलीभांति नहवाकर मनुष्य सब पातक को जलाता है इस प्रकार बालरूपी ब्रह्माको भलीभांति नहवाकर ॥२६॥ तदनन्तर ब्राह्मण कपूर व

अगुरु मिलेहुए जलसे स्नान करावै इस प्रकार करके गायत्री के न्यास के योग से ब्रह्मादेव को पूजन करै ॥ २७ ॥ मस्तक से चरणपर्यन्त विद्वान् ॐकारको न्यास करै और तकारको मस्तक में व मुखमण्डल में सकारको न्यास करै ॥ २८ ॥ और विकार को कंठस्थान में व अंगों की सन्धियों में तुकार को न्यास करै और हृदय के मध्य में चकार व दोनों पार्श्वों में रेकार न्यास करै ॥२९॥ और णकारको दाहिनी कोखिमें व वामसंज्ञक कोखिमें यकार न्यास करै और भकार को कटि व नाभिमें स्थित करै व गोकारको दोनों जंघोंमें न्यास करै ॥ ३० ॥ व देकारको दोनों जानुवों में व चरणकमलों में वकार को न्यास करै और अंगूठों के मध्य में स्यकार न

ततःसंस्नापयेद्द्विजः ॥ एवंकृत्वार्चयेद्देवं गायत्रीन्यासयोगतः ॥ २७ ॥ मूर्द्धिप्रपादतलंयावत् प्रणवंविन्यसेद्बुधः ॥ तकारंविन्यसेन्मूर्द्ध्नि सकारम्मुखमण्डले ॥ २८ ॥विकारंकण्ठदेशेतु तुकारंचाङ्गसन्धिषु ॥ चकारंहृदिमध्येतु रेकारम्पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ २९ ॥ णकारंदक्षिणेकुक्षौ यकारंवामसंज्ञिते ॥भकारंकटिनाभिस्थं गोकारंजङ्घयोर्द्वयोः॥३०॥ देकारंजानुनोर्वापि वकारंपादपद्मयोः ॥ स्यकारमङ्गुष्ठयोर्न्यस्यधीकारंचतलेन्यसेत् ॥ ३१ ॥ मकारंपादमूलेतु हिकारंगुह्यमाश्रितम्॥ धिकारंहृदयेन्यस्ययोकारद्वयमोष्ठयोः॥३२॥नकारंचभ्रुवोर्मध्येप्रकारंनेत्रयोस्तथा ॥ चोकारंकर्णयोर्मध्येदकारंप्राणमाश्रितम्॥यकारंशिरसिन्यस्यतकारंसर्वदेहके॥३३॥न्यासंकृत्वात्मनोदेहे देवेकुर्यात्तथाप्रिये॥ सर्वोपहारसम्पन्नंकृत्वासम्यङ्निरीक्षयेत् ॥ कुङ्कमागुरुकर्पूरचन्दनेनविमिश्रितम् ॥ ३४ ॥ गन्धतोयैरुपस्कृत्य गायत्र्याःप्रणवेनतु ॥ प्रोक्षयेत्सर्वद्रव्याणि पश्चादर्चनमारभेत् ॥ ३५ ॥ दिव्यैःपुष्पैस्सुगन्धैश्चमालतीकमलादिभिः ॥ अशोकशतपत्रैश्च बकुलैःपूजये

धीकारको पादतलमें न्यासकरै ॥ ३१ ॥ और चरणके मूलमें मकार व हिकारको गुह्य (गुदा) इन्द्रियमें न्यासकरै व धिकारको हृदयमें न्यासकर दोनोंयोकारोंको ओठों में न्यासकरै ॥ ३२ ॥ व नकार को भौंहोंके बीचमें और प्रकारको नेत्रोंमें व चोकार को कानोंके बीचमें न्यासकरै दकार को प्राणमें स्थित करै व यकारको मस्तक में न्यासकर तकार को सब शरीर में न्यासकरै ॥ ३३ ॥ हे प्रिये ! अपने शरीरमें न्यासकर वैसाही देव याने ब्रह्मामें न्यासकरै और सब उपहारसे संयुक्तकर भलीभांति देखै व कुंकुम, अगुरु, कपूर और चन्दन से मिलाकर ॥ ३४ ॥ सुगन्धितजलसे उपस्कार कर गायत्री के ॐकार से सब वस्तुवोंको छिड़के पश्चात् पूजनका आरम्भ

करै ॥ ३५ ॥ और सुगन्धित चमेली व कमलादिक उत्तम पुष्पोंसे और अशोक, कमल व मौलसिरी के फूलोंसे क्रमसे पूजन करै ॥ ३६ ॥ व कालागुरु समेत धूप से धूपदेवै और उत्तम घृतके दीपदेवै उसके उपरान्त वहां विधिके क्रमसे नैवेद्य देवै ॥ ३७ ॥ तदनन्तर खाड़ के लड्डुवों से मिश्रित नैवेद्यको देवै ॥ ३८ ॥ और मूल मन्त्रसे पक्केफलोंको देवै व ऋग्वेद,यजुर्वेद और सामवेदकोपूजै॥३९॥ व ज्ञान,वैराग्य से युक्त होकर विद्वान् धर्मको पूजै और हे देवि ! ईशानआदिके क्रमसे दिशाओं व विदिशाओं में पूजै, ॥ ४० ॥ और ब्रह्माके आगे चौदह स्थानोंको पूजै तदनन्तर देवके आगे क्रमसे हृदयादि न्यासकरके पूजै ॥ ४१ ॥ (आपोहिष्ठा) ऐसी यह ऋचा

त्क्रमात् ॥ ३६ ॥ कृष्णागुरुसधूपेन घृतदीपैस्तथोत्तमैः ॥ ततःप्रदापयेत्तत्र नैवेद्यंचविधिक्रमात् ॥ ३७ ॥ खण्डलड्डुकसंमिश्रंनैवेद्यंचततःपरम् ॥ ३८ ॥ फलानिचैवपक्वानि मूलमन्त्रेणदापयेत् ॥ ऋग्वेदंचयजुर्वेदं सामवेदंचपूजयेत् ॥ ३९ ॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तश्च धर्मंसम्पूजयेद्बुधः ॥ ईशानादिक्रमाद्देवि दिशासुविदिशासु च ॥ ४० ॥ चतुर्दशैवस्थानानि ब्रह्मणोग्रेप्रपूजयेत् ॥ हृदयादिततोन्यस्य देवस्यपुरतःक्रमात् ॥ ४१ ॥ आपोहिष्ठेतिऋगियं हृदयंपरिकीर्त्तितम् ॥ ऋतंसत्यंशिखाप्रोक्ता उदुत्यंनेत्रमादिशेत् ॥ ४२ ॥ चित्रंदेवानामिति सर्वकल्पेषुविश्रुतम् ॥ ब्रह्मणस्तेछादयामि कवचंसमुदाहृतम् ॥ ४३ ॥ भूर्भुवस्स्वरितिचास्त्रं पूजनंपरिकीर्त्तितम् ॥ गायत्र्यापूजयेद्देवमोङ्कारेणाभिमन्त्रितम् ॥ ४४ ॥ प्रणवेनापरान्सर्वान् ऋग्वेदादीन्प्रपूजयेत् ॥ गायत्रीपरमोमन्त्रो वेदमाताविभावरी ॥ ४५ ॥ गायत्र्यक्षरतत्त्वैस्तु ब्रह्माणंयस्तुपूजयेत ॥ उपोष्यपञ्चदश्यान्तु सयातिपरमम्पदम् ॥ ४६ ॥ संसारसागरंघोरमुत्तितीर्षुर्द्विजोयदि ॥ प्रभा

हृदय कहीगई है और (ऋतं सत्यं) ऋचा शिखा कहीगई है और(उदुत्यं)ऋचाको नेत्र बतलावै ॥ ४२ ॥ और (चित्रं देवानां) ऐसी ऋचा सब कल्पोंमें प्रसिद्धहै व (ब्रह्मणस्ते छादयामि) यह ऋचाकवच कहीगईहै ॥ ४३ ॥ और(भूर्भुवःस्वः)यह अस्त्र कहागयाहै इसप्रकार पूजन कहागया व ओंकारसे अभिमन्त्रित देवताको गायत्री से पूजै ॥ ४४ ॥ और ओङ्कारसे अन्य सब ऋग्वेदादिकों को पूजै गायत्री उत्तममन्त्र है और वेदोंकी माता व विभावरी है ॥ ४५ ॥ और पौर्णिमासीमें उपासकर गायत्री के अक्षरतत्त्वोंसे जो ब्रह्माको पूजता है वह परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ४६ ॥ यदि भयङ्कर संसाररूपी समुद्रको ब्राह्मण उतरना चाहै तो प्रभासक्षेत्र में सदैव समस्त

कार्त्तिकमास भर ब्रह्मा को पूजै ॥ ४७ ॥ जिनके दर्शनहीसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञके फलको पाताहै उन प्रभासक्षेत्रमें बालरूपी ब्रह्माको कौन विद्वान् न पूजै ॥ ४८ ॥ हे देवेशि ! जिनके एक दिनके अन्त में देवता दैत्य व मनुष्यों समेत सब प्राणी नाश को प्राप्त होतेहैं उनको कौन नहीं पूजै है ॥ ४९ ॥ जिस लिये सब देवताओं के जो ब्रह्मा पिता व प्राणियों के जो यह पितामह हैं उसीसे वे बालरूपी ब्रह्माजी उनसे पूजनीय हैं ॥ ५० ॥ और वही शिवरूपी व विष्णुरूपी भुवनेश्वरहैं पौर्णमासी तिथि में उपासकर लोकों के स्वामी ब्रह्माजी को ॥ ५१ ॥ जो विधिसे पूजताहै वह अश्वमेध यज्ञके फलको पाताहै हे देवेशि ! कार्त्तिक महीनेमें पौर्णमासी तिथि

सेकार्त्तिकंसर्वं ब्रह्माणंपूजयेत्सदा ॥ ४७ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण अश्वमेधफलंलभेत् ॥ कस्तन्नपूजयेद्विद्वान् प्रभासेबालरूपिणम् ॥ ४८ ॥ यस्यैकदिवसप्रान्ते सदेवासुरमानवाः ॥ विलयंयान्तिदेवेशि कस्तन्नप्रतिपूजयेत ॥४९॥ पितायस्सर्वदेवानां भूतानाञ्चपितामहः ॥ यस्मादेषसतःपूज्यो बालरूपी पितामहः ॥ ५० ॥ रुद्ररूपीविष्णुरूपी सएवभुवनेश्वरः ॥ पौर्णमास्यामुपोष्यैव ब्रह्माणंजगताम्पतिम् ॥ ५१ ॥ अर्चयेद्योविधानेन सोश्वमेधफलंलभेत ॥ कार्त्तिकेमासिदेवेशि पूर्णमास्याञ्चतुर्मुखम् ॥ ५२ ॥ मार्गेणकर्मणासार्द्धं सावित्र्याचपरन्तपम् ॥ भ्रामयेन्नगरंसर्वंनादवाद्यैस्समन्वितम् ॥ ५३ ॥ स्थापयेद्भ्रामयित्वातु सालोक्यंनगरंनृपः ॥ब्राह्मणान्भोजयित्वाच शाण्डिल्येयंप्रपूज्यच ॥ ५४ ॥ आरोपयेद्देवदेवं पुण्यवादित्रनिस्वनैः ॥ रथाग्रेशाण्डिलीपुत्रंगमयित्वाविधानतः ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणान्वाचयित्वाच कृत्वापुण्याहमङ्गलम् ॥ देवमारोप्ययित्वातु रथेकुर्यात्प्रजागरम् ॥ ५६ ॥ नानाविधैःप्रेक्षणकैः ब्रह्मघोषैश्चपुष्कलैः ॥ नरे

में सावित्री समेत परंतप चतुराननजी को गीत वाद्यों से संयुत करके कर्ममार्ग के द्वारा सब नगर में घुमावै ॥ ५२ । ५३ ॥ व नगरमें घुमाकर राजा सालोक्य नगर में स्थापित करै और ब्राह्मणों को भोजन कराकर शाण्डिल्येयजी को पूजकर ॥ ५४ ॥ पवित्र बाजनों के शब्दों से देवदेवजी को स्थापित करै और रथ के आगे शांडिली पुत्रको विधिसे गमन कराकर ॥ ५५ ॥ पुण्याह मङ्गल करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर ब्रह्मादेवजी को रथपै आरोपण कर जागरणकरै ॥ ५६ ॥ व हे देवि !

अनेकभांति के देखनेवाले और बहुत वेदशब्दोंसमेत शुभ चाहनेवाले पवित्र पुरुष को इस प्रकार रथपै स्थापित करना चाहिये ॥ ५७ ॥ और अधम पुरुष को विशेष कर न करना चाहिये व एक प्रिय भोजकको छोड़कर हे प्रिये ! ब्रह्माके दाहिने पार्श्व में सावित्रीजी को स्थापन करै ॥ ५८ ॥ और भोजक को बायें पार्श्व में स्थापित करै व आगे कमल को धरै इसप्रकार तुरुही के शब्दोंसे व बहुतसे शङ्खके शब्दोंसे ॥ ५९ ॥ हे देवि ! सब नगर में दक्षिणावर्त से रथको घुमाकर फिर नीराजन करके विद्वान् अपने स्थान में स्थापित करै ॥ ६० ॥ जो पुरुष भक्ति से इस प्रकार यात्रा को करता है और जो देखता है और जो रथको खींचता है वह ब्रह्मा के स्थानको

णैवंरथेदेवि शुद्धेनशुभमिच्छता ॥ ५७ ॥ नाधमेनविशेषेण मुक्त्वैकम्भोजकम्प्रियम् ॥ ब्रह्मणोदक्षिणेपार्श्वे सावित्रीं स्थापयेत्प्रिये ॥ ५८ ॥ भोजकंवामपार्श्वेतु पुरतःपङ्कजंन्यसेत् ॥ एवंतूर्यनिनादैश्च शङ्खशब्दैश्चपुष्कलैः ॥ ५९ ॥ भ्रामयित्वारथन्देवि पुरंसर्वंचदक्षिणम् ॥ स्वस्थानेस्थापयेद्भूयः कृत्वानीराजनंबुधः ॥ ६० ॥ यएवंकुरुतेयात्रां भक्त्यायश्चापिपश्यति ॥ रथंवाकर्षयेद्यस्तु सगच्छेद्ब्रह्मणःपदम् ॥ ६१ ॥ योदीपंधारयेत्तत्र ब्रह्मणोरथपृष्ठतः ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्य सफलंविन्दतेमहत् ॥ ६२ ॥ योनकारयतेराजा रथयात्रान्तुब्रह्मणः ॥ सपच्यतेमहादेवि रौरवेकालमक्षयम् ॥ ६३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन राष्ट्रस्यश्रेयमिच्छता ॥ रथयात्रांविशेषेण स्वयंराजाप्रवर्त्तते ॥ ६४ ॥ प्रतिपद्ब्राह्मणांश्चापि भोजयेद्विधिवत्सुधीः ॥ वासोभिरहतैश्चापि गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ ६५ ॥ कार्त्तिकेमास्यमावस्यां यस्तुदीपप्रदीपनम् ॥ शालायांब्रह्मणःकुर्यात्सगच्छेत्परमंपदम् ॥ ६६ ॥ उत्सवेषुचसर्वेषु सर्वकालेविशेषतः ॥ पूजयेयुरिमन्देवं

जाता है ॥ ६१ ॥ और वहां ब्रह्मा के रथके पीछे जो दीप धरताहै वह पग पगपै अश्वमेधयज्ञके बड़ेभारी फलको प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ हे महादेवि ! जो राजा ब्रह्माकी रथयात्रा नहीं कराता है वह रौरव में अक्षय समयतक पचता है ॥ ६३ ॥ इसलिये राज्य का कुशल चाहतेहुये राजाको सब यत्न से रथयात्रा करानाचाहिये राजा आपही विशेषकर रथयात्रामें वर्तमानहोवै ॥ ६४ ॥ और बुद्धिमान् प्रतिपदा तिथिमें विधिपूर्वक ब्राह्मणोंको भी भोजन करावै और नवीन वस्त्रोंसे व चन्दन, माला तथा अनुलेपनों से पूजन करै ॥ ६५ ॥ और कार्त्तिक महीने में अमावस तिथि में जो ब्रह्मा के मन्दिर में दीपक जलाताहै वह परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ६६ ॥ और सब

उत्सवों में सब काल में विशेषकर लोकों के स्वामी इन ब्रह्मादेव को ब्राह्मण पूजें ॥ ६७ ॥ भलीभांति श्रद्धासंयुत पुरुषों से ऋतु के अनुकूल प्रयोगसे उत्तम उपचार करके द्रव्यके अनुसार पूजने योग्य हैं ॥ ६८ ॥ हे देवि ! इसप्रकार तुमसे बालरूपी ब्रह्माकी पूजाका उत्तम माहात्म्य कहागया और प्रभासक्षेत्रका माहात्म्य कहा गया ॥ ६९ ॥ और उनके एकसौ आठ नामों को कहताहूं जिनको सुनकर व पढ़कर मनुष्य दशहज़ार यज्ञों के फलको पाताहै ॥ ७० ॥ गायत्री के भलीभांति जपेहुये लक्ष जप से जो फल मिलता है उसी फलको ब्राह्मण इस स्तोत्र के पढ़ने से प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ यह अति उत्तम व गुप्त तथा पापनाशक स्तोत्र महात्मा वेदज्ञ

ब्रह्माणंजगताम्पतिम् ॥ ६७ ॥ यथाऋतुप्रयोगेण सम्यक्छ्रद्धासमन्वितैः ॥ पूज्योदिव्योपचारेण यथावित्तानुसारतः ॥ ६८ ॥ एवन्तेकथितन्देवि पूजामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ प्रभासक्षेत्रमाहात्म्यं ब्रह्मणोबालरूपिणः ॥ ६९ ॥ तस्याहंकथयिष्यामि नाम्नामष्टोत्तरंशतम् ॥ यच्छ्रुत्वाचपठित्वाच यज्ञायुतफलंलभेत् ॥ ७० ॥ गायत्र्यालक्षजाप्येन सम्यग्जप्तेनयत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोति स्तोत्रस्यास्यउदीरणात् ॥ ७१ ॥ इमंस्तोत्रंपरंदिव्यं रहस्यंपापनाशनम् ॥ ब्राह्मणायप्रदातव्यं श्रोत्रियायमहात्मने ॥ ७२ ॥ विष्णुनायत्पुराप्रष्टं ब्रह्मणःस्तोत्रमुत्तमम् ॥ केषुकेषुचस्थानेषु देवदेवपितामह ॥ ७३ ॥ सञ्चिन्त्यतन्ममाचक्ष्व त्वंहिसर्वविदुत्तमः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ पुष्करेहंसुरश्रेष्ठो गयायांप्रपितामहः ॥ ७४ ॥ कान्यकुब्जेवेदगर्भो भृगुकच्छेचतुर्मुखः ॥ कौबेर्य्यांसृष्टिकर्त्ताच नन्दिपुष्पेबृहस्पतिः ॥ ७५ ॥ प्रभासेबालरूपीच वाराणस्यांसुरप्रियः ॥ द्वारावत्यांचतुर्वेदो वैदिशेभुवनाधिपः ॥ ७६ ॥ पौण्ड्रकेपुण्डरीकाक्षः पीताक्षोहस्तिनापुरे ॥ जय

ब्राह्मणके लिये देनाचाहिये ॥ ७२ ॥ जो कि पुरातनसमय विष्णुजी ने ब्रह्मा के उत्तम स्तोत्र को पूंछा है कि हे देवदेव, पितामहजी ! आप किन किन स्थानोंमें हो ॥ ७३ ॥ उसको भलीभांति चिन्तवनकर मुझ से कहो क्योंकि तुम सर्वज्ञोंमें उत्तम हो ब्रह्माजी बोले कि पुष्करमें मैं सुरश्रेष्ठनामक हूं और गयामें मैं प्रपितामह हूं ॥ ७४ ॥ और कान्यकुब्ज में वेदगर्भ व भृगु कच्छ में मै चतुर्मुख हूं और कौबेरी में सृष्टिकर्ता व नन्दिपुष्प मे बृहस्पति हूं ॥ ७५ ॥ और प्रभास में बालरूपी

और काशीमें सुरप्रिय व द्वारका में चतुर्वेद तथा वैदिशमें भुवनाधिपनामकहूं ॥ ७६ ॥ और पौण्ड्रकमें पुण्डरीकाक्ष व हस्तिनापुर में पीताक्ष और जयन्तीमें विजय व पुरुषोत्तम में जयन्तहूं ॥ ७७ ॥ और वाद्यदेशोंमें पद्महस्त और तमोलिप्त स्थान में मैं तमोनुदहूं और अहिच्छत्रामें जनानन्द तथा कांचीपुरीमें जनप्रियहूं ॥ ७८ ॥ और कर्णाटक नगर में ब्रह्मा व ऋषिकुण्ड में मुनि तथा श्रीकण्ठ में श्रीनिवास और कामरूप में शुभाकर हूं ॥ ७९ ॥ और उड़ियान में देवकर्ता व जालन्धर में स्रष्टा तथा मल्लिकानामक स्थान में विष्णु और महेन्द्र में भार्गव हूं ॥ ८० ॥ और गोमद स्थान में स्थविराकार तथा उज्जयिनी में पितामहनामक हूं और कौशांबी

न्त्यांविजयश्चास्मि जयन्तःपुरुषोत्तमे ॥ ७७ ॥ वाद्येषुपद्महस्तोहं तमोलिप्तेतमोनुदः ॥ अहिच्छत्र्यांजनानन्दः काञ्चिपुर्यांजनप्रियः ॥ ७८ ॥ कर्णाटस्यपुरेब्रह्मा ऋषिकुण्डेमुनिस्तथा ॥ श्रीकण्ठेश्रीनिवासश्च कामरूपेशुभाकरः ॥ ७९ ॥ उड्डियानेदेवकर्त्ता स्रष्टाजालन्धरेतथा ॥ मल्लिकाख्येतथाविष्णुर्महेन्द्रेभार्गवस्तथा ॥ ८० ॥ गोमदेस्थविराकार उज्जयिन्यांपितामहः ॥ कौशाम्ब्यान्तुमहादेवो ह्ययोध्यायान्तुराघवः ॥ ८१ ॥ विरञ्चिश्चित्रकूटेषु वाराहोविन्ध्यपर्वते ॥ गङ्गाद्वारेसुरश्रेष्ठो हिमवन्तेतुशङ्करः ॥ ८२ ॥ हैहिकायांश्रुतहस्तः पद्महस्तस्तथार्बुदे ॥ वृन्दावनेपद्मनेत्रः कुशहस्तश्चनैमिषे ॥ ८३ ॥ गोपक्षेत्रेचगोविन्दः सुचन्द्रोयमुनातटे ॥ भागीरथ्यांपद्मतनुर्जलनन्दोजनस्थले ॥ ८४ ॥ लङ्कायांचैवपौलस्त्यः काश्मीरेहंसवाहनः ॥ वसिष्ठोचार्बुदेदेवि नारदश्चोत्पलावने ॥ ८५ ॥ मेघेषुश्रुतिदानोहं प्रयागेयजुषांपतिः ॥ शिवलिङ्गेसामवेदो मार्कण्डेचमधुप्रियः ॥ ८६ ॥ अङ्कुलकेब्रह्मगर्भो ब्रह्मवाहेसुरप्रियः ॥ नाराय

में महादेव व अयोध्यामें राघवनामक हूं ॥ ८१ ॥ और चित्रकूटमें विरंचि व विन्ध्यपर्वत पै वाराहनामक हूं और हरिद्वारमें सुरश्रेष्ठ तथा हिमवान् पर्वत पै शंकर नामक हूं ॥ ८२ ॥ और हैहिकापुरी में श्रुतहस्त व अर्बुद पै पद्महस्तनामक हूं और वृन्दावनमें पद्मनेत्र व नैमिषक्षेत्र में कुशहस्तनामकहूं ॥ ८३ ॥ और गोपक्षेत्र में गोविन्द व यमुनाजी के किनारे सुचन्द्रनामकहूं और भागीरथीमें पद्मतनु व जनस्थल में जलनंदनामक हूं ॥ ८४ ॥ और लंकामें पौलस्त्य व काश्मीरमें हंसवाहन हूं और हे देवि ! अर्बुदपर्वत पै वशिष्ठ व उत्पलावन में नारदनामकहूं ॥ ८५ ॥ और मेघोंमें श्रुतिदान व प्रयागमें मैं यजुषांपतिनामक हूं और शिवलिंगमें सामवेद व

मार्कण्ड में मधुप्रियनामकहूं ॥ ८६ ॥ और अंकुलकमें ब्रह्मगर्भ व ब्रह्मवाहमें सुरप्रियनामकहूं और गोमंत पर्वत पै, नारायण व विदर्भापुरीमें द्विजप्रियनामकहूं ॥ ८७ ॥ और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में दुराधर्ष व पंपामें सुदर्शननामकहूं और विरजामें महारूप व सुरूप में राष्ट्रवर्द्धननामकहूं ॥ ८८ ॥ और कदंबस्थान में केलनाध्यक्ष व समस्थलमें देवाध्यक्षनामकहूं और रुद्रपीठमें गंगाधर तथा सुपीठ में जलदनामक कहागयाहूं ॥ ८९ ॥ और त्र्यंबकस्थानमें त्रिपुरारि व श्रीशैल पै त्रिलोचन नामकहूं और शृंगवेरपुर में शौरि तथा निमिष में चक्रधारकनामकहूं ॥ ९० ॥ और नन्दिपुरी में विरूपाक्षनामक व स्वच्छपादप स्थान में गौतमनामकहूं और हरित-

णश्चगोमन्ते विदर्भायांद्विजप्रियः ॥ ८७ ॥ इन्द्रप्रस्थेदुराधर्षः पम्पायाञ्चसुदर्शनः ॥ विरजायां महारूपः सुरूपेराष्ट्र वर्द्धनः ॥ ८८ ॥ कदम्बेकेलनाध्यक्षो देवाध्यक्षस्समस्थले ॥ गङ्गाधरोरुद्रपीठे सुपीठेजलदःस्मृतः ॥ ८९ ॥त्र्यम्बकेत्रि पुरारिश्च श्रीशैलेचत्रिलोचनः ॥ शृङ्गवेरपुरेशौरिर्निमिषेचक्रधारकः ॥९० ॥ नन्दिपुर्य्यांविरूपाक्षो गौतमःस्वच्छपाद पे ॥ मालवान्हस्तिनापुर्य्यां द्विजेन्द्रोवाचिकेतथा ॥ ९१ ॥ इन्द्रपुर्यांदिवानाथः भूतिकायांपुरन्दरः ॥ हंसवाहश्चच न्द्रायां चम्पायांगरुडप्रियः ॥ ९२ ॥ महोदयेमहायक्षस्सुयज्ञःपूजकेवने ॥ शुद्धेश्वरेशुक्लवर्णो विभायांपद्मबोधकः ॥ ९३ ॥ देवदारुवनेलिङ्गी उदकेथउमापतिः ॥ विनायकोमातृस्थाने अलकायांधनाधिपः ॥ ९४ ॥ त्रिकूटेचैवगोविन्दः पाताल्वेवासुकिस्तथा ॥ कोविदारेयुगाध्यक्षः स्त्रीराज्येतुसुरप्रियः ॥ ९५ ॥ पौर्णगिर्यांसुभोगश्च शाल्मल्यांतक्षकस्त था ॥ अपरेपापहाचैव अम्बिकायांसुदर्शनः ॥ ९६ ॥ नरवीथ्यांमहावीरः कान्तारेदुर्गनाशनः ॥ पद्मवत्यांपद्मग्रहो

मापुर में मालवान् व वाचिक में द्विजेन्द्रनामकहूं ॥ ९१ ॥ और इन्द्रपुरी में दिवानाथ व भूतिकामें पुरन्दरनामकहूं और चन्द्रापुरी में हंसवाह व चम्पापुरीमें गरुड-प्रियनामकहूं ॥ ९२ ॥ और महोदय में महायक्ष व पूजक वनमें सुयज्ञनामकहूं और शुद्धेश्वर में शुक्लवर्ण व विभापुरीमें पद्मबोधकनामकहूं ॥ ९३ ॥ और देवदा-रु वनमें लिंगी व उदक में उमापतिनामकहूं और मातृस्थान में विनायक व अलकापुरी में धनाधिपनामकहूं ॥ ९४ ॥ और त्रिकूट में गोविन्द व पाताल में वासु-किनामकहूं तथा कोविदारमें युगाध्यक्ष व स्त्री राज्यमें सुरप्रियनामकहूं ॥ ९५ ॥ और पौर्णगिरिमें सुभोग व शाल्मली में तक्षकनामक हूं और अपरस्थान में पापहा

तथा अम्बिकापुरीमें सुदर्शननामक हूं ॥ ९६ ॥ और नरवीथी में महावीर व कांतार में दुर्गनाशक और पद्मावतीपुरी में पद्मग्रह तथा आकाश में मृगलांछन (चन्द्रमा) रूपहूं ॥ ९७॥ मैंने जो इन एक सौ आठ नामोंको कहाहै हे मधुसूदन ! तीनों संध्याओं में वहीं पर मेरी समीपता है ॥ ९८॥ इनके मध्य में एक भी बालरूपी को जो देखता है वह पहले कहेहुये सब ब्रह्माओं के फलको पाता है ॥ ९९ ॥ हे कृष्ण जी ! प्रभासक्षेत्र में जो पुरुष सदैव इन नामोंसे मेरी स्तुति करताहै वह मेरे विजय स्थानको पाकर सैकड़ों बरसों तक आनन्द करताहै ॥ १०० ॥ व जो मानस, वाचिक और शारीरिक पाप होताहै वह सब मेरे स्तोत्रके पढ़नेसे नाशको प्राप्त होता

गगनेमृगलाञ्छनः॥ ९७ ॥ अष्टोत्तरन्नामशतंयदेतत्कथितंमया ॥ तत्रैवममसान्निध्यं त्रिसन्ध्यंमधुसूदन ॥९८ ॥एतेषामपियस्त्वेकं पश्येद्वैबालरूपिणम् ॥ सर्वेषांलभतेपुण्यं पूर्वोक्तानाञ्चवेधसाम् ॥ ९९ ॥ एतैर्योनामभिःकृष्ण प्रभासे स्तौतिमांसदा ॥ स्थानंमेविजयंलब्ध्वा मोदतेशाश्वतीस्समाः ॥ १०० ॥ मानसंवाचिकञ्चैव कायिकंचैवदुष्कृतम् ॥ तत्सर्वंनाशमायाति ममस्तोत्रानुकीर्त्तनात् ॥ १ ॥ पुष्पोपहारैर्धूपैश्च ब्राह्मणानाञ्चतर्पणैः ॥ ध्यानेनचस्थिरेणाशु प्राप्यतेयत्फलन्नरैः ॥ २ ॥ तत्पुण्यंसमवाप्नोति ममस्तोत्रानुकीर्त्तनात् ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि इहलोकेकृतान्यपि ॥ ३ ॥ अकामतःकामतोवातानिनश्यन्तितत्क्षणात् ॥ इदंस्तोत्रममाभीष्टं शृणुयाद्वापठेच्चवा ॥ ४ ॥ समुक्तःपातकैस्सर्वैः प्राप्नुयान्महदीप्सितम् ॥ अन्यद्वदिष्येदेवेश शृणुकृष्णयथार्थतः ॥ ५ ॥ आग्नेयन्तुयदाऋक्षं कार्त्तिक्यांभवतिक्वचित् ॥ महतीसातिथिर्ज्ञेया प्रभासेममवल्लभा ॥ ६ ॥ प्राजापत्यंयदाऋक्षं तिथौतस्यांभवेद्यदि ॥ सामहाकार्त्तिकीपुण्या

है ॥ १ ॥ पुष्पोंके उपहार व धूपोंसे और ब्राह्मणोंको तृप्त करनेसे व स्थिर ध्यानसे मनुष्य शीघ्रही जिस फलको प्राप्तहोते हैं ॥ २ ॥ उसी फलको मनुष्य मेरे स्तोत्रके पाठसे प्राप्तहोताहै व इस लोकमें इच्छा से व बिन इच्छासे कियेहुये भी ब्रह्महत्यादिक जो पापहैं वे उसीक्षण नाशहोजाते हैं इस मेरे प्यारे स्तोत्रको जो मनुष्य पढ़ता या सुनताहै ॥ ३ । ४ ॥ वह सब पातकोंसे छूटजाताहै और बड़ेभारी मनोरथको प्राप्तहोता है हे देवेश, कृष्णजी ! अन्य चरित्रको कहताहूं उसको यथार्थसे सुनिये ५ ॥ कि कार्त्तिकी पौर्णमासी में जब कभी कृत्तिका नक्षत्र होताहै प्रभासक्षेत्र में वह बड़ीभारी तिथि मुझको प्यारी जानने योग्यहै ॥ ६ ॥ और यदि उस तिथि में

जब रोहिणी नक्षत्र होवै तब वह पवित्र महाकार्त्तिकी देवताओं को भी दुर्लभ है ॥ ७ ॥ और शनैश्चर, रविवार व बृहस्पति दिनमें जो कृत्तिका नक्षत्रसंयुत कार्त्तिकी पौर्णमासी है उसमें बालरूपी ब्रह्माजीकोदेखकर अश्वमेध यज्ञका फल होताहै ॥ ८ ॥ जब विशाखा नक्षत्र में सूर्य व कृत्तिका नक्षत्र में चन्द्रमा होवै तब हे हरे! वह पद्मकनामक योग प्रभासक्षेत्र में दुर्लभ है ॥ ९ ॥ उस योग में करोड़ों पापों से युक्त भी मनुष्य प्रभास क्षेत्र में बालरूपी ब्रह्मा जी को देखकर यमलोक को नहीं देखताहै ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि पुरातन समयमें ब्रह्माने विष्णुजीके लिये इसी स्तोत्र को कहाहै और मैंने तुम से ब्रह्मा देवतावाले माहात्म्य को कहा ॥ ११ ॥

देवानामपिदुर्लभा ॥ ७ ॥ मन्देचार्केगुरौचापि कार्त्तिकीकृत्तिकायुता ॥ तत्राश्वमेधिकंपुण्यं दृष्ट्वावैबालरूपिणम् ॥ ८ ॥ विशाखासुयदासूर्यः कृत्तिकासुचचन्द्रमाः ॥ सयोगःपद्मकोनाम प्रभासेदुर्लभोहरे ॥ ९ ॥ तस्मिन्योगेनरोदृष्ट्वा प्रभासेबालरूपिणम् ॥ पापकोटियुतोवापि यमलोकन्नपश्यति ॥ १० ॥ ईश्वरउवाच ॥ इत्येवंकथितंस्तोत्रं ब्रह्मणाहरयेपुरा ॥ मयातवसमाख्यातं माहात्म्यंब्रह्मदैवतम् ॥ ११ ॥ सर्वपापहरंनॄणां श्रुतंसर्वार्थसाधकम् ॥ भूमिदानञ्चदातव्यं तत्रयात्राफलेप्सुभिः ॥ १२ ॥ कमण्डलुंश्वेतवस्त्रं महादानानिषोडश ॥ तत्रैवदेविदेयानि ब्रह्मणेबालरूपिणे ॥ १३ ॥ महापर्वणिसम्प्राप्ते कुर्युःपारायणंद्विजाः ॥ सर्वेतेब्राह्मणादेवि क्षेत्रमध्यनिवासिनः ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे मध्ययात्रायांब्रह्मणोमाहात्म्यन्नामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ * ॥ * ॥

सुनाहुआ यह मनुष्यों के सब पातकों का विनाशक व सब अर्थों का साधकहै वहां यात्रा के फल को चाहनेवाले पुरुषों को भूमिदान देनाचाहिये ॥ १२ ॥ हे देवि! वहींपर बालरूपी ब्रह्मा के लिये कमंडलु, श्वेत वस्त्र व सोलह महादानों को देना चाहिये ॥ १३ ॥ हे देवि! महापर्व प्राप्तहोनेपर जो ब्राह्मण पारायण करतेहैं वे सब ब्राह्मण क्षेत्रके मध्यमें निवासी होते हैं ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमध्ययात्रायांब्रह्मणोमाहात्म्यंनाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । प्रत्यूषेश्वर लिंगको थाप्यो जिमि प्रत्यूख । इकसौ छः अध्यायमें सोई चरित मयूख ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सोमेशजी से ईशान दिशा के भाग में पचास धनुषके अन्तरपै स्थित वसुवोंके उत्तम लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! महापातकोंको नाशनेवाला सुरप्रिय, वह प्रत्यूषेश्वरनामक चतुरानन लिंग है ॥ २ ॥ उन शिवदेवजी के दर्शन से सात जन्मों में उपजाहुआ पातक नाश होजाताहै देवीजी बोलीं कि यह प्रत्यूषनामक कौनहै और कैसे लिंग थापा गया है ॥ ३ ॥ व हे शंकरजी ! वह किसका पुत्र प्रसिद्धहुआ है इस को मुझसे कहिये महादेवजी बोले कि हे देवि ! ब्रह्माका पुत्र दक्ष प्रजापति नामक कहागया

ईश्वर उवाच ॥ ततो गच्छेन्महादेवि वसूनां लिङ्गमुत्तमम् ॥ सोमेशादीशदिग्भागे पञ्चाशद्धनुषान्तरे ॥ १ ॥ स्थितं लिङ्गं महादेवि चतुर्वक्त्रंसुरप्रियम् ॥ प्रत्यूषेश्वरनामेति महापातकनाशनम् ॥ २ ॥ दर्शनात्तस्यदेवस्यसप्तजन्मान्तरोद्भवम् ॥ देव्युवाच ॥ कोसौप्रत्यूषनामेतिकथंलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥ कस्यपुत्रस्सविख्यातः एतन्मेवदशङ्कर ॥ ईश्वरउवाच ॥ दक्षोब्रह्मसुतोदेवि प्रजापतिरितिस्मृतः ॥ ४ ॥ तस्यकन्याभवत्षष्ठि र्ददौधर्मायवैदश ॥ तासांमध्येमहादेवि चैकाविश्वेतिविश्रुता ॥ ५ ॥ साधर्माच्चमहादेवि अष्टौचाजनयत्सुतान् ॥ आयोभवश्चसोमश्च धरश्चैवनलोनिलः ॥ ६ ॥ प्रत्यूषश्चप्रभासश्च वसवोष्टौप्रकीर्त्तिताः ॥ तेषांमध्येसप्तमोसौ प्रत्यूषइतिविश्रुतः ॥ ७ ॥ सपुत्रकामोदेवेशि प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ सज्ञात्वाकामिकंक्षेत्रं प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ ८ ॥ तपश्चचारविपुलं दिव्यंवर्षशतंप्रिये ॥ ध्यायन्देवंमहादेवंशान्तस्तद्गतमानसः ॥ ९ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्यभक्त्या

है ॥ ४ ॥ उनके साठ कन्याहुई हैं हे महादेवि ! उसने दश धर्मराजकेलिये दिया उनके मध्यमें एक विश्वा ऐसी प्रसिद्धहुई है ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! उसने धर्मराजके सकाश से आठ पुत्रों को पैदा किया है आय, भव, सोम, धर, नल व अनिल ॥ ६ ॥ प्रत्यूष व प्रभास आठ वसु कहेगये हैं उनके मध्य में यह सातवां प्रत्यूष ऐसा प्रसिद्ध हुआहै ॥ ७ ॥ हे देवेशि ! पुत्रकी कामनावाला वह प्रभासक्षेत्र को आया व उसने कामनावाले क्षेत्र को जानकर महादेवजी को थापकर ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! शान्त व उनमें लगेहुये मन वाले उस प्रत्यूषने शिवदेवजी को ध्यान करतेहुये देवताओं के सौवर्षतक बड़ाभारी तप कियाहै ॥ ९ ॥ तदनन्तर उसकी भक्तिसे निरंजन

महादेवजी ने प्रसन्न होकर उसके लिये योगियों में श्रेष्ठ देवल पुत्र को दिया ॥ १० ॥ तब से लगाकर हे देवेशि ! उस लिंग के प्रभावसे प्रत्यूष के भगवान् देवल योगी पुत्र हुये ॥ ११ ॥ इसीकारण से ये प्रत्यूषेश्वरसंज्ञक महादेवजी हुये हे प्रिये ! सन्तानहीन जो पुरुष उन शिवजी को आराधन करताहै ॥ १२ ॥ हे देवेशि ! उसके वंश में सन्तान नहीं नष्ट होती है हे देवि ! सदैव नियतचित्तवाला जो पुरुष उत्तम भक्तिसे प्रत्यूषेश्वरजीको भलीभांति पूजैगा उसका ब्रह्मघातसे भी उपजाहुआ पाप नष्ट होजावैगा ॥ १३ । १४ ॥ भलीभांति यात्रा के फलको चाहने वाले पुरुषों को वहां वृषभदान करनाचाहिये माघमें कृष्णपक्ष की चौदसि में वहां रात्रि को जागरण

निरञ्जनः ॥ ददौतस्मैसुतन्देवि देवलंयोगिनांवरम् ॥ १० ॥ ततःप्रभृतिदेवेशि तस्यलिङ्गप्रभावतः ॥ देवलोभगवान्योगी प्रत्यूषस्याभवत्सुतः ॥ ११ ॥ अनेनकारणेनासौप्रत्यूषेश्वरसंज्ञितः ॥ यश्चानपत्यःपुरुषस्तमाराधयतिप्रिये ॥ १२ ॥ तस्यान्वयेचदेवेशि सन्ततिर्नैवनश्यति ॥ यःप्रत्यूषेमहादेविप्रत्यूषेश्वरमुत्तमम् ॥ १३ ॥ पूजयिष्यतिसद्भक्त्या सततंनियतात्मवान् ॥ तस्येष्यतिक्षयंपापमपिब्रह्मवधोद्भवम् ॥ १४ ॥ वृषस्तत्रैवदातव्यः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ माघेकृष्णचतुर्दश्यां जागृयात्तत्रवैनिशि ॥ १५ ॥ सर्वेषांदानयज्ञानां फलंजागरणाल्लभेत् ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रत्यूषेश्वरमाहात्म्यन्नामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अनिलेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्योत्तरेदिगीशस्थं धनुषांत्रितयंप्रिये ॥ १ ॥ लिङ्गं महाप्रभावंहि दर्शनात्पापनाशनम् ॥ वसूनांपञ्चमोयोसावनिलःपरिकीर्तितः ॥ २ ॥ सचाराध्यमहादेवं प्रत्यक्षीकृ

करै ॥ १५ ॥ क्योंकि सब दान व यज्ञों के फल को मनुष्य जागरण से प्राप्त होताहै ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां प्रत्यूषेश्वरमाहात्म्यंनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अनिल नाम वसु थप्यो जिमि अनिलेश्वर शिव देव । इकसौ सप्तम में सोई चरित अहै सुखदेव ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये महादेवि ! तदनन्तर उस के उत्तर ईशानदिशा में तीन धनुष पै स्थित उत्तम अनिलेश्वरजीके समीपजावै ॥ १ ॥ वह महाप्रभाववान् लिंग दर्शनसे पातकों का विनाशकहै वसुवों के मध्य में जो

यह अनिल कहागयाहै ॥ १ ॥ उसने शिवजीको आराधन कर उस महादेवजी को प्रत्यक्ष किया है और भलीभांति श्रद्धासंयुत उसने लिंगको थापन किया है ॥ ३॥ इसप्रकार शिवजीके प्रभावसे उसके बलवान् व अविज्ञातगतिवाला मनोजव ऐसा प्रसिद्ध पुत्रहुआ ॥ ४॥ उनशिवजीको देखकर मनुष्य कभी रोगसे पीड़ित नहीं होताहै और उसके देखने पर मनुष्य पृथ्वी में कभी न अन्ध न बहरा न गूंगा न रोगी और न निर्धनी होताहै व उस लिंगके ऊपर जो एक पुष्पको देताहै ॥ ५।६॥ वह सुख व सौभाग्यसे संयुक्तहोकर सदैव रूपवान् होताहै हे देवि ! यह ऐसा पापनाशक माहात्म्य कहागया ॥ ७ ॥ इसको भक्तिभावसे सुनकर मनुष्य सब कामनाओं से समृद्ध

तवान्भवम् ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठयामास सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ३ ॥ एवमीशप्रभावेन सुतस्तस्याप्यभूद्बली ॥ मनोजवे तिविख्यातो अविज्ञातगतिस्तथा ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वाव्याधिनामर्त्यः पीड्यतेनकदाचन ॥ नान्धोनबधिरोमूको नरोगीन चनिर्द्धनः ॥ ५ ॥ कदाचिज्जायतेमर्त्यस्तेनदृष्टेनभूतले ॥ पुष्पमेकन्तुयोदद्यात् तस्यलिङ्गस्यचोपरि ॥ ६ ॥ सुखसौ भाग्यसम्पन्नः ससदारूपवान्भवेत् ॥ इत्येवंकथितंदेवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ ७॥ श्रुत्वातुभक्तिभावेन सर्वकामैः समृध्यते ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽनिलेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेद्वरारोहे प्रभासेश्वरमुत्तमम् ॥ गौरीतपोवनाद्देवि पश्चिमेसमुदाहृतम् ॥ १ ॥ धनुषांसप्तके देवि नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ स्थापितंतन्महल्लिङ्गं वसूनामष्टमेनवै ॥ २ ॥ प्रभासइतिनाम्नावै शिवपूजारतेनवै ॥ सपु त्रकामोदेवेशि प्रभासक्षेत्रमागतः॥ ३ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गं चचारविपुलंतपः ॥ आग्नेयमितिविख्यातं दिव्याब्दा

होताहै ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामनिलेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

दो० । प्रभासेश लिंगहिं यथा थाप्यो अहै प्रभास । इकसौ अष्टम में सोई कह्यो चरित्र विलास ॥ महादेवजी बोले कि हे वरारोहे ! तदनन्तर उत्तम प्रभासेश्वरजी के समीप जावै हे देवि ! वह लिंग गौरीतपोवन से पश्चिम में कहागयाहै ॥ १ ॥ जो कि हे देवि ! थोड़ेही दूर पै सात धनुष पर स्थित है और उस बड़ेभारी लिंगको शिवपूजन में परायण प्रभासनामक वसुवों के मध्यमें आठवें वसुने थापा है हे देवेशि ! पुत्रकी कामनावाले वे प्रभासनामक वसु प्रभासक्षेत्रको आये ॥ २ । ३ ॥

और महालिंगको थापकर उसने हे देवि ! देवताओंके सौ बरसतक आग्नेय ऐसा प्रसिद्ध बड़ा तप किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे महादेवि ! भलीभांति श्रद्धासंयुत उस प्रभासके ऊपर भगवान् शिवजी प्रसन्नहुये व जो मनमें मनोर्थथा उसको देतेभये ॥५ ॥ भुवना नामक ब्रह्मवादिनी बृहस्पतिकी बहन आठवें वसु प्रभासकी स्त्री हुई ॥ ६ ॥ उसके विश्वकर्मानामक सृष्टिकर्ता प्रजापति हुये जो विद्वान् कि देवताओं के तक्षक (बढ़ई) व मातामह कहेगये हैं ॥ ७ ॥ वे सूर्य बिम्बके तेजको बड़ेभारी काटनेवाले हुये हैं इसप्रकार वसुवों के मध्य में उन आठवें वसुके पुत्र हुआ है ॥ ८॥ हे देवेशि ! प्रभासनामक वे उस लिंग के आराधन में उद्यतहुये हे देवि ! समस्त

नांशतम्प्रिये ॥ ४ ॥ ततस्तस्यमहादेवि सम्यक्श्रद्धान्वितस्यवै ॥ तुतोपभगवान्रुद्रो ददौयन्मनसीप्सितम् ॥ ५ ॥ बृहस्पतेस्तुभगिनी भुवनाब्रह्मवादिनी ॥ प्रभासस्यतुभार्यासीद् वसूनामष्टमस्यच ॥ ६ ॥ विश्वकर्मासुतस्तस्याः सृष्टिकर्त्ताप्रजापतिः ॥ देवानांतक्षकोविद्वान् योहिमातामहःस्मृतः ॥ ७ ॥ तक्षकःसूर्यबिम्बस्य तेजसःशातनोमहान् ॥ एवंतस्याभवत्पुत्रो वसूनामष्टमस्यवै ॥ ८ ॥ प्रभासनामादेवेशि तल्लिङ्गाराधनोद्यतः ॥ इतितेकथितंदेवि प्रभासेश्वरसूचकम् ॥ ९ ॥ माहात्म्यंसर्वपापघ्नं सर्वकामप्रदंशुभम् ॥ यस्तम्पूजयतेभक्त्या सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ १० ॥ भूमिशायी निराहारो जपेद्वैशतरुद्रियम् ॥ माघेमासिचतुर्दश्यां स्नात्वासागरसङ्गमे ॥ ११ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य पूजयित्वाविधानतः ॥ यएवंकुरुतेदेवि सम्यग्यात्रामहोत्सवम् ॥ १२ ॥ समुक्तःपातकैःसर्वैः सर्वकामैःसमृध्यते ॥ वृषस्तत्रैवदातव्यःसम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥१०८॥

पातकों को नाशनेवाला व सब कामनाओं को देनेवाला यह प्रभासेश्वर का सूचक माहात्म्य तुमसे कहागया भलीभांति श्रद्धासंयुत जो पुरुष उन शिवजी को पूजता है ॥ ९ । १० ॥ व माघ महीने में चौदसि तिथि में समुद्र के संगममें नहाकर भूमिमें सोनेवाला पुरुष निराहार होकर शतरुद्रिय मन्त्रको जपै ॥ ११ ॥ पंचामृत से नहवाकर व विधिसे पूजकर हे देवि ! जो इसप्रकार भलीभांति यात्राके बड़ेभारी उत्सवको करताहै ॥ १२ ॥ वह सब पापोंसे छूटकर सब कामनाओंसे समृद्ध होताहै और भलीभांति यात्राकेफलको चाहनेवाले पुरुषोंको वहींपर वृषभ देनाचाहिये ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥१०८॥

दो० । जिमि रामेश्वरदेवको थाप्यो है श्रीराम । इकसौ नव अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे ईशानकोण में स्थित साठ धनुष पै प्राप्त उत्तम पुष्करारण्य के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि, देवि ! वहां ज्येष्ठपुष्कर में स्थित समस्त पापोंको नाशनेवाला और पापियों को दुर्लभ कुण्ड है ॥ २ ॥ पुरातन समय वहां कुण्ड के समीप बुद्धिमान् रामजीने रामेश्वर ऐसे कहेहुये उस महालिंगको थापा है ॥ ३ ॥ उसके पूजनसे हे देवि ! पुरुष ब्रह्महत्या से छूटजाता है देवीजी बोलीं कि हे भगवन् ! रामेश्वरजीसे उपजेहुये चरित्रको विस्तारसे कहिये ॥ ४ ॥ कि पुरातन समय सीतासमेत व लक्ष्मण समेत श्री

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पुष्करारण्यमुत्तमम् ॥ तस्मादीशानकोणस्थंधनुषांषष्टिभिःस्थितम् ॥ १ ॥ तत्र कुण्डम्महादेवि ज्येष्ठपुष्करसंस्थितम् ॥ सर्वपापहरंदेवि दुष्प्राप्यमकृतात्मभिः ॥ २ ॥ तत्रकुण्डसमीपेतु पुरारामेण धीमता ॥ स्थापितंतन्महल्लिङ्गं रामेश्वरइतिस्मृतम् ॥ ३ ॥ तस्यसम्पूजनाद्देवि मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ देव्युवाच ॥ भगवन्विस्तराद्ब्रूहि रामेश्वरसमुद्भवम् ॥ ४ ॥ कथम्पुराभवद्रामः ससीताचसलक्ष्मणः ॥ कथम्प्रतिष्ठितंलिङ्गं पुष्करेपापतस्करे ॥ ५ ॥ एतद्विस्तरतोब्रूहि फलंमाहात्म्यसंयुतम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ चतुर्विंशेयुगेरामो वशिष्ठेनपुरोधसा ॥ ६ ॥ पुरारावणनाशार्थं जज्ञेदशरथात्मजः ॥ ततःकालान्तरेदेवि ऋषिशापान्महातपाः ॥ ७ ॥ ययौदाशरथीरामः ससीतःसहलक्ष्मणः ॥ वनवासायनिष्क्रान्तो दिव्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥ ८ ॥ ततोयात्राप्रसङ्गेन प्रभासंक्षेत्रमागतः ॥ तत्रदेशेसमासाद्य सुश्रान्तोनिषसादह ॥ ९ ॥ अस्तङ्गतेततःसूर्ये पर्णान्यास्तीर्यभूतले॥ सुष्वापाथनिशाशेषेददृशेपितरंस्वकम् ॥ १० ॥

रामजी कैसे हुये हैं और पापोंके चोररूपी प्रभासक्षेत्रमें किसप्रकार लिंग थापागया है ॥ ५ ॥ माहात्म्यसे संयुत इस फलको विस्तारसे कहिये महादेवजी बोले कि पहले चौबीसवें त्रेतायुग में रावण के नाशके लिये वसिष्ठ पुरोहित के द्वारा दशरथ के पुत्र उत्पन्न हुये हैं तदनन्तर हे देवि ! अन्यकाल में ऋषिके शापसे महातपस्वी ॥ ६ । ७ ॥ दशरथके पुत्र रामजी सीतासमेत व लक्ष्मण समेत वनको गये उत्तम ब्रह्मर्षियोंसे घिरेहुये श्रीरामजी वनवासके लिये निकले ॥ ८ ॥ और वहां यात्राके प्रसंगसे प्रभासक्षेत्र को आये व उस देशमें जाकर थकेहुये वे बैठगये ॥ ९ ॥ तदनन्तर सूर्य नारायणके अस्त होनेपर पृथ्वी में पत्तों को बिछाकर सोगये और हे देवि ! कुछ रात

शेष रहनेपर उन्होंने स्वप्नमें महाबलवान् व सुन्दररूपवाले अपने पिता दशरथजी को देखा व प्रातःकाल उठकर उस सब वृत्तान्तको ब्राह्मणों से बतलाया ॥ १० ॥ ११ ॥ कि जिसप्रकार उन महात्मा श्रीरामजीने स्वप्न में दशरथजी को देखा था ब्राह्मण बोले कि हे राघवजी ! वृद्धिकी इच्छावाले तुम्हारे पितर वरदायक हैं ॥ १२ ॥ क्योंकि वे पितर अपने वंशमें उपजेहुये पुरुषको स्वप्न में दर्शन देते हैं शार्ङ्गधनुषधारी विष्णुजी का यह महापवित्र गुप्ततीर्थ ॥ १३ ॥ पुष्कर में कहागया है यहा श्राद्ध दिया जावै क्योंकि इसतीर्थमें तुमसे दियेहुये उत्तम पिंडको निश्चयकर राजा दशरथ चाहते हैं उसीसे दर्शनको प्राप्तहुये हैं महादेवजी बोले कि उनके उस

स्वप्नेदशरथंदेवि सौम्यरूपंमहाबलम् ॥ प्रातरुत्थायतत्सर्वं ब्राह्मणेभ्योन्यवेदयत ॥ ११ ॥ यथादशरथःस्वप्ने दृष्टस्तेनमहात्मना ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ वृद्धिकामाश्चपितरो वरदास्तवराघव ॥ १२ ॥ दर्शनंहिप्रयच्छन्ति स्वप्नंतेहिस्ववंशजम् ॥ एतत्तीर्थंमहापुण्यं गुप्तंशार्ङ्गधरस्यच ॥ १३ ॥ पुष्करेचसमाख्यातं श्राद्धमत्रप्रदीयताम् ॥ नूनंदशरथोराजा तीर्थेचास्मिन्समीहते ॥ १४ ॥ त्वयादत्तंशुभंपिण्डं ततःसन्दर्शनंगतः ॥ ईश्वरउवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा रामोराजीवलोचनः ॥ १५ ॥ निमन्त्रयामासतदा श्राद्धार्थंत्वरयान्वितः ॥ अब्रवील्लक्ष्मणंपार्श्वे स्थितंवैनतकन्धरम् ॥ १६ ॥ फलार्थंव्रजसौमित्रे श्राद्धार्थंत्वत्रयत्नतः ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय जगामरघुनन्दनः ॥ १७ ॥ आनयामासशीघ्रंस फलानि विविधानिच ॥ बिल्वानिचकपित्थानि तिन्दुकानिचभूरिशः ॥ १८ ॥ बदराणिकरीराणि करमर्दानिसुप्रिये ॥ विमलानिचरूपाणि मातुलिङ्गानिवैतथा ॥ १९ ॥ नालिकेराणि शुभ्राणिइङ्गुदीसम्भवानिच ॥ अथैतानिपपाचाशु सीताज

वचनको सुनकर कमललोचन श्रीरामचन्द्रजी ने ॥ १४ । १५ ॥ शीघ्रता संयुत होकर उस समय श्राद्धके लिये ब्राह्मणोंका निमंत्रण किया और समीप में कंधाको झुकाये खड़ेहुये लक्ष्मणजीसेकहा ॥ १६ ॥ कि हे सौमित्रे ! यहां श्राद्धकेलिये यत्नसे फलोंके निमित्त जाइये बहुत अच्छा यह प्रतिज्ञाकर वे रघुनन्दनजी गये ॥ १७ ॥ और वे शीघ्रही अनेक भांतिके फलोंको लाये बिल्व, कैथा व बहुतसेतिंदुक ॥ १८ ॥ व हे सुप्रिये ! बेर,करीर, करौंदा व निर्मल तथा सुन्दर मातुलिंगोंको ॥ १९ ॥ और

उत्तम नारियल व इंगुदी से उपजेहुये फलोंको लाये इसके अनन्तर जनकनन्दिनी जानकीजीने इन फलोंको शीघ्रही पकाया ॥ २० ॥ तदनन्तर कुतुप समयमें नहा- कर पवित्र होकर वकलोंको धारेहुये श्रीरामजी श्राद्धके योग्य द्विजोत्तम ब्राह्मणोंको लाये ॥ २१ ॥ गालव, देवल, रैभ्य, यवक्रीत, पर्वत, भारद्वाज, वसिष्ठ, जाबालि, गौतम, भृगु ॥ २२ ॥ ये और अन्य बहुतसे वेदके पारगामी ब्राह्मण उन उत्तम कर्मवाले श्रीरामजीके श्राद्धके लिये प्राप्तहुये ॥ २३ ॥ इसी अवसरमें श्रीरामजी सीता जीसे बोले कि हे देवि ! आइये ब्राह्मणोंके चरण धोने के लिये जलको दीजिये ॥ २४ ॥ इस वचनको सुनकर वे सीताजी शीघ्रही वृक्षके बीचमें पैठगई और गुल्मों

नकनन्दिनी ॥ २० ॥ ततस्तुकुतुपेकाले स्नात्वावल्कलभृच्छुचिः ॥ ब्राह्मणानानयामासश्राद्धार्हान्द्विजसत्तमान् ॥ २१ ॥ गालवोदेवलोरैभ्यो यवक्रीतोथपर्वतः ॥ भारद्वाजोवशिष्ठश्च जाबालिर्गौतमोभृगुः ॥ २२ ॥ एतेचान्येचबहवो ब्राह्मणावेदपारगाः ॥ श्राद्धार्थंतस्यसंप्राप्ता रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ २३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु रामःसीतामभाषत ॥ एहि वैदेहिविप्राणां देहिपादावसेचनम् ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुत्वाचसाक्षिप्रं प्रविष्टावृक्षमध्यतः ॥ गुल्मैराच्छाद्यचात्मानं रामस्यादर्शनेस्थिता ॥ २५ ॥ मुहुर्मुहुर्यदारामः सीतेसीतेत्यभाषत ॥ ज्ञात्वातांलक्ष्मणोनष्टांकोपाविष्टश्चराघवम् ॥ २६ ॥ स्वयमेवतदाचक्रे ब्राह्मणार्घप्रतिक्रियाम् ॥ अथभुक्तेषुविप्रेषु कृतेपिण्डप्रदानके ॥ २७ ॥ आगताजानकीसीता यत्ररामोव्यवस्थितः ॥ तान्दृष्ट्वापरुषैर्वाक्यैर्भर्त्सयामासराघवः ॥ २८ ॥ धिक्धिक्पापेद्विजांस्त्यक्त्वा पितृकृत्यंमहोदयम् ॥ क्वत्वंगतासिमांहित्वा श्राद्धकालेह्युपस्थिते ॥ २९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भयभीताचजानकी ॥ कृताञ्ज

से शरीरको आच्छादन कर श्रीरामजीके अदर्शन में स्थितहुई ॥ २५ ॥ जब रामजी ने हे सीते ! हे सीते ! ऐसा बार २ कहा तब उन सीताजीको अदृश्य व श्रीरामजी को क्रोधसे संयुत जानकर लक्ष्मणजीने ॥ २६ ॥ आपही उस समय ब्राह्मणोंके अर्घ कार्यको किया इसके अनन्तर पिंडदान करने पर जब ब्राह्मणों ने भोजन किया तब ॥ २७ ॥ जानकीजी वहां आई जहां कि श्रीरामजी बैठे थे उनको देखकर श्रीरामजी ने कठोर वचनोंसे निन्दा किया ॥ २८ ॥ कि हे पापे ! तुझको धिक्कार है धिक्कार है श्राद्धकाल प्राप्तहोनेपर ब्राह्मणोंको व बड़े ऐश्वर्यवाले पितृकार्यको छोड़कर तुम मुझको छोड़कर कहांगईथी ॥ २९ ॥ महादेवजी बोले कि उन श्रीरामजी के

उस वचनको सुनकर भयभीत जानकीजी काँपतीहुई हाथोंको जोड़कर बोलीं ॥३० कि हे कल्याण, प्रभो ! क्रोध मत कीजिये और मेरी निन्दा मत कीजिये हे विभो ! जिसकारण तुम्हारे समीपको छोड़कर मैं अन्यत्र गईथी उसको सुनिये ॥ ३१ ॥ मैंने आज तुम्हारे पिता व पितामहको देखा और उनके पहलेवाले याने प्रपितामह व जो मातामह(नाना) हैं उनको भी मैंनेदेखा ॥ ३२॥ वे पृथक् पृथक् द्विजेन्द्रोंके अंगोंमें आक्रमण कियेथे उसीसे हे रघुनन्दनजी ! वहां मेरे लज्जाहुई ॥ ३३ ॥ हे महाबाहो ! तुम्हारे पिताने उत्तम व मनोहर और जो गुणवान् थे उन भक्ष्यों (भोजनों) को खाया है ॥ ३४ ॥ हे राजेन्द्र ! वे कसैले व क्षार तथा कडुवे भोजनों को खावेंगे

लिपुटाभूत्वा वेपमानाह्यभाषत ॥ ३० ॥ माकोपंकुरुकल्याण मामान्निर्भर्त्सयप्रभो ॥ शृणुयस्माद्विभोन्यत्र गतात्य क्तातवान्तिकम् ॥ ३१ ॥ दृष्टस्तवपितामेद्य तथाचैवपितामहः ॥ तस्यपूर्वतरश्चापि तथामातामहश्चयः ॥ ३२ ॥ अङ्गे षुब्राह्मणेन्द्राणां क्रान्तास्तेचपृथक्पृथक् ॥ ततोलज्जासमभवत्तत्रमेरघुनन्दन ॥ ३३ ॥ पित्रातवमहाबाहो मनोज्ञा निशुभानिच ॥ भक्ष्याणिभक्षितान्येवयानिवैगुणवन्तिच॥३४॥ सकथंसुकषायाणि क्षाराणिकटुकानिच ॥ भक्षयिष्य तिराजेन्द्र ततोमेदुःखमाविशत् ॥ ३५ ॥ एतस्मात्कारणान्नष्टा लज्जयाहंरघूद्वह ॥ दृष्ट्वाश्वशुरवर्गस्वं त्यजकोपंम हामते ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाविस्मितोराघवोभवत् ॥ ३६॥ विशेषेणददौतस्मिञ्छ्राद्धंतीर्थेतुपुष्करे ॥ तत्रपुष्करसान्नि ध्ये दक्षिणेधनुषान्तरे ॥ ३७ ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठयामास रामेश्वरमितिश्रुतम् ॥ यस्तम्पूजयतेभक्त्या गन्धपुष्पादिभिःक्र मात् ॥ ३८ ॥ सप्राप्नोतिपरंस्थानं यत्रदेवोजनार्दनः ॥ किमत्रबहुनोक्तेन द्वादश्यांयत्प्रदीयते ॥ ३९ ॥ नतस्यपरिसं

उसीकारण मेरे दुःख प्रवेशहुआ ॥ ३५ ॥ हे रघुनायक ! इसीकारण श्वशुर वर्गको देखकर मैं लज्जासे अदृश्य होगई थी हे महामते ! क्रोधको छोड़ दीजिये उन सीताजीके उस वचनको सुनकर राघवजी विस्मितहुये ॥ ३६ ॥ और पुष्करतीर्थ में उन्होंने विशेषकर श्राद्ध दिया और वहां पुष्कर के समीप दक्षिण में एक धनुष के अन्तर पै ॥ ३७ ॥ रामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध लिंगको थापन किया जो पुरुष क्रमसे उन रामेश्वरजीको भक्तिपूर्वक चन्दन व पुष्पादिकों से पूजता है ॥ ३८ ॥ वह उत्तम

स्थानको प्राप्तहोता है जहां कि विष्णुदेवजी हैं बहुत कहने से क्याहै यहां द्वादशी तिथि में जो कुछ दियाजाता है ॥ ३९ ॥ उसकी संख्या तीनों लोकों में नहीं है शुक्र व मंगलसे संयुत जो चौथि कभी होवै ॥ ४० ॥ और कुंवार महीने में जो छठि होती है उसमें श्राद्ध करने पर बड़ाभारी फल होताहै और बारह बरसतक पितामह समेत पितर लोग ॥ ४१ ॥ अपने कुलमें उपजेहुये पुरुषोंसे पुष्कर में तृप्तहोकर अन्य वस्तुकी नहीं इच्छा करते हैं और भलीभांति भक्तिसंयुत जो मनुष्य वहां अश्व को देताहै ॥ ४२ ॥ वह मनुष्य अश्वमेधयज्ञके फलको पाता है हे भामिनि ! रामेश्वर देव व पुष्करका यह पापनाशक माहात्म्य भलीभांति तुमसे कहागया ॥ ४३ ॥

ख्यानं त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ शुक्राङ्गारकसंयुक्ता चतुर्थीयाभवेत्कचित ॥ ४० ॥ षष्ठीचाश्वयुजेमासि तत्रश्राद्धेमहत्फलम् ॥ यावद्द्वादशवर्षाणि पितरःसपितामहाः ॥ ४१ ॥ तर्पितानान्यमिच्छन्ति पुष्करेस्वकुलोद्भवैः ॥ तत्रयोवाजिनंदद्यात सम्यग्भक्तिसमन्वितः ॥ ४२ ॥ अश्वमेधस्ययज्ञस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ इतितेकथितंसम्यङ् माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ ४३ ॥ रामेश्वरस्यदेवस्य पुष्करस्यचभामिनि ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपुष्करमाहात्म्ये रामेश्वरमाहात्म्यंनामनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लक्ष्मणेश्वरमुत्तमम् ॥ रामेशात्पूर्वदिग्भागे धनुस्त्रिंशद्भिरास्थितम् ॥ १ ॥ स्थापितंलक्ष्मणेनैव तत्रयात्रागतेनवै ॥ महापापहरंदेवि तल्लिङ्गंसुरपूजितम् ॥ २ ॥ यस्तम्पूजयतेभक्त्या नारीवापुरुषोपिवा ॥ संस्नाप्यविधिवद्भक्त्या समुक्तःपातकैर्भवेत ॥ ३ ॥ स्नात्वाचपुष्करेतीर्थे यस्तल्लिङ्गम्प्रपूजयेत ॥ नियतोनिय

४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपुष्करमाहात्म्येरामेश्वरमाहात्म्यंनामनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ ❀ ॥

दो० । लक्ष्मणेश लिंगहिं यथा थाप्यो श्रीसौमित्र । इकसौ दश अध्यायमें सोई कथा विचित्र ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर रामेश्वरजीसे तीसधनुष पै पूर्वदिशाके भागमें स्थित उत्तम लक्ष्मणेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! वहां यात्रामें गयेहुये लक्ष्मणजीने महापापहारक उस देवपूजित लिंगको थापाहै ॥ २ ॥ जो स्त्री या मनुष्य विधिपूर्वक भक्तिसे नहवाकर उन शिवजीको भक्तिसे पूजताहै वह पातकोंसे छूटजाताहै ॥ ३ ॥ और पुष्करतीर्थमें नहाकर जो नियत व नियत-

आहारवाला पुरुष उस लिंगको एक महीनातक निरन्तर पूजता है ॥ ४ ॥ उसको दिन दिन में अश्वमेधयज्ञका फल होता है ॥ ५ ॥ माघ महीने में तीज तिथि में जो स्त्री उन शिवजीको पूजतीहै उसके वंशमें दुर्भाग्य व दुःख और शोक नहीं होता है ॥ ६ ॥ हे देवि ! पापनाशक यह माहात्म्य तुमसे कहागया सुनाहुआ यह माहात्म्य पापोंको हरता है व नीरोगताको देताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांलक्ष्मणेश्वरमाहात्म्यंनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

दो॰ । वामनेश माहात्म्यकर अतिहि विचित्र हवाल । इकसौ गेरहमें अहै सुन्दर कथा रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पातकोंके विनाशक विष्णु

ताहारो मासमेकंनिरन्तरम् ॥ ४ ॥ दिनेदिनेभवेत्तस्य वाजिमेधक्रतोःफलम् ॥ ५ ॥ माघेमासितृतीयायां यानारीतम्प्रपूजयेत् ॥ तदन्वयेतुदौर्भाग्यं दुःखशोकंचनोभवेत् ॥ ६ ॥ इतितेकथितंदेवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ श्रुतंहरतिपापानि तथारोग्यंप्रयच्छति ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे लक्ष्मणेश्वरमाहात्म्यंनामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विष्णुंपापप्रणाशनम् ॥ वामनस्वामिनामेति सर्वपातकनाशनम् ॥१॥ पुष्करान्नैर्ऋतेभागे धनुर्विंशतिभिःस्थितम् ॥ येनबद्धोबलिर्देवि विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ २ ॥ तेनैतत्तुपदंन्यस्तं दक्षिणंविश्वरूपिणा ॥ द्वितीयंमेरुश्टृङ्गेतु तृतीयंगगनेप्रिये ॥ ३ ॥ यावदूर्द्ध्वमुत्क्षिपति तावद्भिन्नंसुदूरतः ॥ पादाग्रेणतुब्रह्माण्डं निष्क्रान्तंसलिलंतदा ॥ ४ ॥ ततःस्वजानुमार्गेण संप्राप्तंपृथिवीतले॥ततोविष्णुपदीगङ्गा प्रसिद्धिमगमत्क्षितौ ॥५॥ पूर्वंसा

जीके समीप जावै समस्तपातकों को नाशनेवाला वामनस्वामी नामक लिंग ॥ १ ॥ पुष्करसे नैर्ऋत्य दिशाके भागमें बीस धनुष पै स्थित है हे देवि ! समर्थवान् जिन विष्णुजीने बलिको बाँधाहै ॥ २ ॥ हे प्रिये ! उन विश्वरूपी विष्णुजीने इस दाहिने पांवको धराहै और दूसरे चरणको सुमेरुगिरिके शिखर पै व तीसरे को आकाशमें धरा ॥ ३ ॥ जबतक ऊपरको चरण फेंकै तबतक दूरसे चरण के अग्रभागसे ब्रह्माण्ड भिन्नहोगया तब जल निकला ॥ ४ ॥ तदनन्तर अपने जानुके मार्ग से पृथ्वी

में प्राप्तहुआ उसीसे विष्णुपदी गंगा पृथ्वी में प्रसिद्धिको प्राप्तहुई ॥ ५ ॥ पहले वह महानदी पुष्करसे पुष्करमें प्राप्तहुई पुष्कर आकाश कहाजाताहै व पुष्कर जल क-
हाजाता है ॥ ६ ॥ उसीसे वह पुष्कर प्रजापतिका सन्निधान (स्थान) कहागयाहै ॥ ७ ॥ उसमें स्नानकर जो मनुष्य विष्णुजीके पदको देखताहै वह उत्तम स्थानको
प्राप्तहोताहै जहां कि आपही विष्णुजी हैं ॥ ८ ॥ पुरातन समय वामनस्वामी को देखकर महर्षि वसिष्ठजीने जिस गाथाको गायाहै उसको तुम सावधान होकर सुनो ॥
९ ॥ कि पुष्कर तीर्थ में नहाकर तदनन्तर विष्णुपदको देखकर बड़ेभारी पातक को करके भी इससे क्यों संतप्त होताहै ॥ १० ॥ व्रतको ग्रहण कियेहुये जो पुरुष

पुष्करेप्राप्ता पुष्करात्सामहानदी ॥ पुष्करंकथ्यतेऽयोम पुष्करंकथ्यतेजलम् ॥ ६ ॥ तेनतत्पुष्करंख्यातं सन्निधानंप्रजापतेः ॥ ७ ॥ तत्रस्नानंनरःकृत्वा यःपश्यतिहरेःपदम् ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोहरिःस्वयम् ॥ ८ ॥ अथगाथापुरागीता वशिष्ठेनमहर्षिणा ॥ वामनस्वामिनंदृष्ट्वा तांशृणुष्वसमाहिता ॥ ९ ॥ स्नात्वाचपुष्करेतीर्थे दृष्ट्वाविष्णुपदंततः ॥ अपिकृत्वामहत्पापं किमतःपरितप्यते ॥ १० ॥ यस्तत्रोपानहौदद्याद् ब्राह्मणाययतव्रतः ॥ सयानवरमारूढो विष्णुलोकेमहीयते ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे वामनस्वामिमाहात्म्यंनामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पुष्करेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे जानकीश्वरसन्निधौ ॥ १ ॥ लिङ्गंमहाप्रभावञ्च ब्रह्मपुत्रेणपूजितम् ॥ सनत्कुमारमुनिना श्रद्धयाहेमपुष्करैः ॥ २ ॥ पूजितंतद्विधानेन मुनिनापुष्करेश्व

वहां ब्राह्मणकेलिये पनहियोंको देताहै वह उत्तम विमान पै चढ़कर विष्णुलोक में पूजाजाताहै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवामनस्वामिमाहात्म्यंनामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । पुष्करेश लिंगाहिं यथा पूज्यो सनत्कुमार । इकसौ बारहमें सोई अहै चरित्र उदार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके दक्षिण भाग में जानकीश्वरके समीप उत्तम पुष्करेश्वरजीके समीप जावै ॥ १ ॥ महाप्रभाववान् वह लिंग ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमार मुनिसे श्रद्धासे सुवर्ण कमलों करके पूजागया है ॥ २ ॥

हे वरारोहे ! मुनिसे विधिपूर्वक पूजाहुआ वह लिङ्ग वहां समस्त पातकोंका विनाशक प्रसिद्धहै ॥ ३ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे चंदन पुष्पादिकों करके क्रमसे पूजताहै उसने पुष्करकी यात्रा किया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांपुष्करेश्वरमाहात्म्यंनामद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥

दो॰ । शंख कुण्डके निकट भइ जिमि कुण्डेश्वरि देवि । इकसौ तेरह में सोई है चरित्र सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर पुष्कर से वायव्य दिशामें तीस धनुषपर व भूतनाथ से नैर्ऋत्य दिशामें दुर्भाग्यको नाशनेवाली कुण्डेश्वरी ऐसी प्रसिद्ध भगवतीके समीप जावै जोकि दरिद्रके समूहको नाश-

रम् ॥ ख्यातंतत्रवरारोहे सर्वपातकनाशनम् ॥ ३॥ यस्तम्पूजयतेभक्त्या गन्धपुष्पादिभिःक्रमात् ॥ यात्राकृताभवेत्तेन पौष्करीनात्रसंशयः ॥४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपुष्करेश्वरमाहात्म्यंनामद्वादशाधिकशततमोध्यायः ११२

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवींदौर्भाग्यनाशिनीम् ॥ कुण्डेश्वरीतिविख्याताम्पुष्कराद्वायुगोचरे ॥ १ ॥ धनुषांत्रिंशतादेवि भूतनाथाच्चनैर्ऋते ॥ संस्थितापापदमनी दरिद्रौघविनाशिनी ॥ २ ॥ तस्यानैर्ऋतदिग्भागे धनुः पञ्चदशेस्थितम् ॥ शङ्खोदकंनामकुण्डं सर्वपातकनाशनम् ॥ ३ ॥ तत्रस्नात्वातुयोमर्त्यो नारीवाशुभचारिणी ॥ पूज येत्तांमहादेवि शङ्खावर्त्तेतिविश्रुताम् ॥ ४ ॥ कलौकुण्डेश्वरीनाम्ना सर्वसौख्यप्रदायिनी ॥ शङ्खोनामपुरादेवि विष्णु नानिहतःप्रिये ॥ ५ ॥ तस्यदेहंसमासाद्य महान्तंशङ्खरूपिणम् ॥ तीर्थोदकेनसम्पूज्य प्रभासंक्षेत्रमागतः ॥ ६ ॥ तत्र शङ्खन्तुप्रक्षाल्य कृतंतीर्थंमहाप्रभम् ॥ तत्रपूरितवाञ्छङ्खं मेघगम्भीरनिस्वनम् ॥ ७ ॥ तस्यनादेनमहता देवीतत्रस

नेवाली व पापोंको विनाशनेवाली भलीभांति टिकीहुई ॥ १ । २ ॥ व उसके नैर्ऋत्य दिशा के भागमें पन्द्रह धनुष पै सब पातकोंको विनाशनेवाला शंखोदक नामक कुण्ड स्थितहै ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! उस कुण्ड में नहाकर जो मनुष्य व उत्तम आचरणवाली स्त्री शंखावर्त ऐसी प्रसिद्ध उन देवीको पूजै वह सब मनोरथों का प्राप्त होतीहै ॥ ४ ॥ कलियुग में सब सुखोंको देनेवाली वे देवी कुण्डेश्वरी नामक हैं हे प्रिये, देवि ! पुरातन समय विष्णुजी ने शंख नामक दैत्यको मारा ॥ ५ ॥ और शं खरूपी उसके बड़ेभारी शरीरमें प्राप्तहोकर विष्णुजी तीर्थके जलसे पूजकर प्रभास क्षेत्रको आये ॥ ६ ॥ और उसमें शंखको धोकर उन्होंने महाप्रभावान् तीर्थ किया

और वहां मेघके समान गंभीर शब्दवाले शंखको पूर्ण किया ॥ ७ ॥ उसके बड़ेभारी शब्द से वहांपर देवीजी आई और कारणको पूछतीहुई देवीजी वहां कुण्ड के समीप प्राप्तहुई ॥ ८ ॥ उसीकारण कुण्डेश्वरी प्रसिद्धहुई और कुण्डशंखोदक कहागया है माघमहीने में तीज तिथिमें जो मनुष्य उस देवीको पूजता है ॥ ९ ॥ अथवा जो भक्तिसंयुत स्त्री पूजती है वह पार्वतीजी के स्थानको प्राप्तहोतीहै यात्राके फलको चाहनेवाले मनुष्योंको वहां स्त्री पुरुषको भोजन देना चाहिये ॥ १० ॥ और जामा व फलदान और गौरी कन्याओं को भोजन देना चाहिये ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकुण्डेश्वरीमाहात्म्यंनामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥

मागता ॥ पृच्छतीकारणंतत्र देवीकुण्डसमीपगा ॥ ८ ॥ तेनकुण्डेश्वरीख्याता कुण्डंशङ्खोदकंस्मृतम् ॥ माघेमासि तृतीयायां यस्ताम्पूजयतेनरः ॥ ९ ॥ नारीवाभक्तिसंयुक्ता सागौरीपदमाप्नुयात् ॥ दम्पत्योर्भोजनंतत्र देयंयात्राफले प्सुभिः ॥ १० ॥ कञ्चुकंफलदानञ्च गौरीणाञ्चसुभोजनम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकुण्डेश्वरीमाहात्म्यंनामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि भूतनाथेश्वरंहरम् ॥ कुण्डेश्वर्याईशभागे विंशत्याधनुषान्तरे ॥ १ ॥ कल्पलिङ्गंमहादेवि ह्यनादिनिधनंस्मृतम् ॥ पूर्वंत्रेतायुगेदेवि वीरभद्रेश्वरेतिच ॥ प्रख्यातम्भुविदेवेशि कलौभूतेश्वरंस्मृतम् ॥ २ ॥ पुराद्वापरसन्धौतु तत्रभूतानिकोटिशः ॥ संशुद्धिम्परमांजग्मुस्तल्लिङ्गस्यप्रभावतः ॥ ३ ॥ तेनभूतेश्वरंनाम प्रख्यातंधरणीतले ॥ तत्रकृष्णाचतुर्दश्यां रात्रौसम्पूज्यशङ्करम् ॥ ४ ॥ दक्षिणांदिशमाश्रित्य अघोरंजपतेतुयः ॥ दर्द

दो० । कुण्डेश्वरी समीपही भूतनाथ शिवनाम । इकसौ चौदह में सोई अहै चरित्र ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर कुण्डेश्वरी के ईशान दिशाके भागमें बीस धनुषके अन्तर पै भूतनाथेश्वर शिवजीके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! वह कल्पलिंग अनादिनिधन कहागया है हे देवि ! पहले त्रेतायुग में वीरभद्रेश्वर ऐसा नाम प्रसिद्धहुआ व हे देवेशि ! कलियुग में पृथ्वीमें भूतेश्वर नाम कहागया है ॥ २ ॥ पुरातन समय द्वापरकी संधिमें वहांपर करोड़ों प्राणी उस लिंगके प्रभाव से उत्तम शुद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ ३ ॥ उसीसे पृथ्वी में भूतेश्वर नाम प्रसिद्धहुआ वहां कृष्णपक्षकी चौदसि में सदाशिवजी को पूजकर ॥ ४ ॥ दक्षिण

दिशा में आश्रित होकर जो दृढ़ जितेन्द्रिय होकर निडर व ध्यानसे संयुत पुरुष अघोर मन्त्रको जपता है ॥ ५ ॥ उसीकी वह सिद्धि होतीहै कि जो कोई पृथ्वीमें स्थित है यहां पर तिल, सुवर्ण व पिण्डदान ॥ ६ ॥ पितरोंको उद्देशाकर प्रेतताके छूटनेकेलिये देना चाहिये ॥ ७ ॥ बहुतसे कलियुगके पातकोंके विनाशक व पुण्यके कारणरूप भूतनाथेश्वरजीके कहेहुये इस चरित्रको जो पुरुष इस संसारमें भक्तिसे पढ़ता व सुनता है वह सुरश्रेष्ठ शिवजी की महिमासे पातकों से छूटजाता है ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभूतनाथेश्वरमाहात्म्यं नामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

जितेन्द्रियोभूत्वा निर्भयोध्यानसंयुतः ॥ ५ ॥ तस्यैवजायतेसिद्धिर्याकाचिद्भूतलेस्थिता ॥ तिलाहिरण्यंदानञ्च पिण्डदानंतथात्रवै ॥ ६ ॥ पितॄनुद्दिश्यदातव्यं प्रेतत्वमुक्तयेइति ॥७॥ इतिनिगदितमेतद्भूतनाथेश्वरस्य प्रचुरकलिमलानांनाशनंपुण्यहेतु ॥ पठतिचपुरुषोवायःशृणोतीहभक्त्या सुरवरमहिमाभिर्मुच्यतेपातकैश्च ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे भूतनाथेश्वरमाहात्म्यंनामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गोप्यादित्यमनुत्तमम् ॥ भूतेशाद्वायवेभागे त्रिंशताधनुषान्तरे ॥ १ ॥ बलातिबलदैत्यघ्नाद्दक्षिणाग्नेयसंस्थितम् ॥ धनुषांदशकेदेवि संस्थितम्पापनाशनम् ॥ २ ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि महापापहरांशुभाम् ॥ यच्छ्रुत्वामानवोभक्त्यादुःखशोकैःप्रमुच्यते ॥ ३ ॥ पुराकृष्णोमहातेजा यदाप्राभासमागतः ॥ सहितोयादवैःसर्वैः षट्पञ्चाशत्प्रकोटिभिः ॥ ४ ॥ षोडशैवसहस्राणिगोप्यस्तत्रसमागताः ॥ लक्षमेकंतथाषष्टि सहस्राणि

दो॰ । जिमि गोपिन थाप्यो सबन गोप्यादित्य सुरेश । इकसौपन्द्रहमें सोई कथा कह्यो शुचिवेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर भूतेशजी से वायव्य दिशाके भागमें तीस धनुषके अन्तर पै अति उत्तम गोप्यादित्यजीके समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! बल व अतिबल दैत्यके विनाशक से दक्षिण व आग्नेय दिशा में स्थित दश धनुष पै वह पापनाशक लिंग भलीभांति टिकाहुआ है ॥ २ ॥ महापातकों को नाशनेवाली व उत्तम उन गोप्यादित्य की उत्पत्ति को मैं कहताहूं कि जिसको सुनकर मनुष्य दुःख व शोकोंसे छूटजाता है ॥ ३ ॥ पुरातन समय जब बड़े तेजस्वी श्रीकृष्णजी सब छप्पन करोड़ यादवों समेत प्रभासक्षेत्र को आये ॥४॥

तब वहां सोलह हजारगोपियां आईं व हे प्रिये ! एकलाख साठहजार श्रीकृष्णजी के पुत्र ॥ ५ ॥ उस पापनाशक प्रभासक्षेत्र में स्थित हुए और वे महाबलवान् यादवस्थलको प्राप्त होकर वहां रैवतक पर्वत तक बारह वर्ष टिके रहे व पवित्रक्षेत्र में टिककर उन सबों ने अपने नामों से चिह्नित अलग २ शिवलिंगों को थापन किया इसप्रकार बारहयोजन तक उस समस्त क्षेत्र को ॥ ६ । ७ । ८ ॥ सबयदूत्तमों ने ध्वजाओं के चिह्नों से चिह्नित किया है देवि ! प्रभासक्षेत्र के मध्य में हाथ हाथ भरके अन्तर पै ॥ ९ ॥ सुवर्ण के कलशों से संयुक्त शोभित वसनवाले वहांपर स्थित पताका श्रीकृष्णजीके यशके स्तम्भों की नाईं विराजते थे ॥ १० ॥ तदनन्तर हे महादेवि ! जो सोलह प्रथमवाली गोपिया कहीगई हैं उनके नामोंको मैं तुमसे कहताहूं उनको तुम सावधान मनवाली होकर सुनो ॥ ११ ॥ कि लंबिनी, चन्द्रिका, कांता, कूटा, शांता, महोदया, भीषणी, नन्दिनी, सुपूर्णा, विमला व अक्षया ॥ १२ ॥ शुभदा, शोभना व पुण्यरूपिणी हंसी, सीता व कला ये क्रमसे हैं परमात्मा जनार्दन श्रीकृष्णजी हंसरूप मानेगये हैं ॥ १३ ॥ हे देवि ! उनकी ये सोलहही शक्तिया कहीगई हैं जिसलिये चन्द्ररूपी कृष्णजी हैं उसीकारण वे कलारू-

सुताःप्रिये ॥ ५ ॥ तत्रप्राभासिकेक्षेत्रे संस्थिताःपापनाशने ॥ यादवाःस्थलमासाद्य यावद्रैवतकोगिरिः ॥ ६ ॥ तत्रद्वादशवर्षाणि संस्थितास्तेमहाबलाः ॥ क्षेत्रंपवित्रमास्थाय शिवलिङ्गानितेपृथक् ॥ ७ ॥ स्थापयाञ्चक्रिरेसर्वे अङ्कितानिस्वनामभिः ॥ एवंसमग्रंतत्क्षेत्रं यावद्द्वादशयोजनम् ॥ ८ ॥ ध्वजलिङ्गाङ्कितंचक्रुः सर्वेयादवपुङ्गवाः ॥ हस्तहस्तान्तरेदेवि प्रभासक्षेत्रमध्यतः ॥ ९ ॥ सुवर्णकलशोपेताःपताकाःकलिताम्बराः ॥ विराजन्तेतुतत्रस्थाःकीर्त्तिस्तम्भाहरेरिव ॥ १० ॥ ततोगोप्योमहादेवि आद्यायाःषोडशस्मृताः ॥ तासांनामानितेवक्ष्ये तानिह्येकमनाःशृणु ॥ ११ ॥ लम्बिनीचन्द्रिकाकान्ता कूटाशान्तामहोदया ॥ भीषणीनन्दिनीचैवसुपूर्णाविमलाक्षया ॥ १२ ॥ शुभदाशोभनापुण्याहंसीसीताकलाक्रमात् ॥ हंसएवमतःकृष्णः परमात्माजनार्दनः ॥ १३ ॥ तस्यैताःशक्तयोदेविषोडशैवप्रकीर्त्तिताः ॥ चन्द्ररूपीयतःकृष्णः कलारूपास्तुतास्स्मृताः ॥ १४ ॥ सम्पूर्णमण्डलातासां मालिनीषोडशीकला ॥ प्रतिपत्तिथिमारभ्य विहर

पिणी कहीगई हैं ॥ १४ ॥ व उनके मध्यमें संपूर्ण मण्डलवाली मालिनी सोलहवीं कलाहै परेवा तिथिसे लगाकर जिनमें विहार करताहुआ चन्द्रमा जाताहै ॥ १५ ॥ इसीप्रकार हे वरानने ! सोलह कला गोपीरूपिणी हुई हैं और वे एक एक अलग२ हज़ार२ से भिन्नहुई हैं ॥ १६ ॥ हे देवि ! इसप्रकार ज्ञानसे उपजाहुआ रहस्य तुमसे कहागया जो पुरुष इसप्रकार जानताहै वह वैष्णव जानने योग्यहै ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर उन यादवोंसे पृथक् कियेहुये मन्दिरोंको जानकर तदनन्तर वे सब सोलह हज़ार गोपियां भी ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णजीसे आज्ञाको लेकर भक्तिसे सूर्यनारायणको स्थापनकरतीभई उन गोपियोंने नारदादिक व क्षेत्रमें रहनेवाले ऋषियोंसे ॥ १९ ॥ उन सूर्य-

न्यासुचन्द्रमाः ॥ १५ ॥ षोडशैवकलायाता गोपीरूपावरानने ॥ एकैकशस्ताःसंभिन्नाः सहस्रेणपृथक्पृथक् ॥ १६ ॥ एवन्तेकथितन्देवि रहस्यंज्ञानसम्भवम् ॥ यएवंवेदपुरुषस्सज्ञेयोवैष्णवोबुधैः ॥ १७ ॥ अथतैश्चकृताञ्ज्ञात्वा प्रासादा न्यादवैःपृथक् ॥ ततोगोप्योपिताःसर्वाः सहस्राणिचषोडश ॥ १८ ॥ कृष्णमाज्ञाप्यभावेन स्थापयाञ्चक्रिरेरविम् ॥ ऋषिभिर्नारदाद्यैश्च तथाक्षेत्रनिवासिभिः ॥ १९ ॥ तंप्रतिष्ठापयामासुः प्रतिष्ठाविधिनारविम् ॥ प्रतिष्ठितेततस्सूर्ये द दुर्दानानिभूरिशः ॥ २० ॥ क्षेत्रेक्षेत्रनिवासिन्यस्तीर्थेदेवहृदेषुवै ॥ ततस्तेऋषयस्सर्वे सन्तुष्टाहृष्टमानसाः ॥ २१ ॥ च क्रुर्नामरवेस्तत्र गोप्यादित्येतिविश्रुतम् ॥ सर्वपापहरन्देवं महासौभाग्यदायकम् ॥ २२ ॥ एवंकृतेकृतार्थास्ताः सम्प्रा प्यातिमहद्यशः ॥ जग्मुर्यथागताःसर्वा द्वारकांकृष्णसंयुताः ॥ २३ ॥ पुनःकालान्तरेदेवि शापाद्दुर्वाससःप्रिये ॥ याद वाःक्षयतांप्राप्ताः प्रभासेपापनाशने ॥ २४ ॥ एवन्तेकथितोदेवि गोप्यादित्यसमुद्भवः ॥ माहात्म्यंतस्यतेवच्मि पूजना

नारायणको प्रतिष्ठाकी विधिसे स्थापन कराया तदनन्तर सूर्यनारायणके थापने पर क्षेत्र में और तीर्थ तथा देवकुण्डों में क्षेत्रनिवासी ऋषियों के लिये बहुत से दानोंको दिया तदनन्तर सन्तुष्ट व प्रसन्न मनवाले उन सब ऋषियोंने ॥ २० । २१ ॥ वहां सूर्यनारायण का महासौभाग्यदायक तथा समस्त पातकोंका नाशक गोप्यादित्यदेव ऐसा प्रसिद्ध नाम किया ॥ २२ ॥ ऐसा करने पर वे सब कृतार्थ गोपियां बड़ेभारी यशको पाकर श्रीकृष्णजी से संयुक्त होतीहुई जिसप्रकार आई थीं वैसेही द्वारकाको चलीगईं ॥ २३ ॥ फिर हे प्रिये, देवि ! अन्य समय में दुर्वासाजी के शापसे पापनाशक प्रभासक्षेत्रमें यादव नाशको प्राप्तहुये ॥ २४ ॥ हे देवि ! इसप्रकार तुमसे गो-

प्यादित्य से उपजाहुआ वृत्तान्त कहागया और उनका माहात्म्य तुमसे कहताहूं जोकि पूजनही से पवित्र कारक है ॥ २५ ॥ हे देवेशि ! इस क्षेत्रमें गोपियों से जो सूर्यनारायण थापेगये हैं उनके दर्शनहीसे मनुष्य दुःख व शोकोंसे छूटजाताहै ॥ २६ ॥ यहां भलीभांति कियेहुये तपसे व बहुत दक्षिणाओंवाले यज्ञोंसे जो गति मिलती है उसी गतिको गोप्यादित्यके भलीभाति आश्रित वे मनुष्य प्राप्तहोते हैं॥ २७ ॥ जिसने सर्वात्मा से गोप्यादित्यजी में भावको दिखलाया है व माघ महीनेमें सप्तमी तिथि में उपासकर जो मनुष्य गोप्यादित्यजी को पूजता है ॥ २८ ॥ उसने निरसन्देह सातबार पितरोंको तृप्त किया और वह रोगोंको नाशताहै व दुष्टकर्मवाले

देवपावनम् ॥ २५ ॥ अस्मिन्मित्रश्चदेवेशि योगोपीभिःप्रतिष्ठितः ॥ तस्यदर्शनमात्रेण दुःखशोकैःप्रमुच्यते ॥ २६ ॥ सुतप्तेनेहतपसा यज्ञैर्वाबहुदक्षिणैः ॥ ताङ्गतिन्तेनरायान्ति गोपीरविसमाश्रिताः ॥ २७ ॥ येनसर्वात्मनाभावो गोप्यादित्येप्रदर्शितः ॥ सप्तम्यांपूजयेद्यस्तु माघेमासिह्युपोषितः ॥ २८ ॥ सप्तवारान्पितॄन्सोपि निस्संशयमतर्पयत् ॥ छिनत्तिरोगान्दुश्चेष्टान्दुर्जयाञ्जयतेह्यरीन् ॥ २९ ॥ सप्तम्यांनस्पृशेत्तैलंनीलंवस्त्रन्नधारयेत् ॥ नचाप्यामलकस्नानंनकुर्यात्कलहंकचित् ॥ ३० ॥ नीलरक्तेनवस्त्रेण यत्कर्मकुरुतेद्विजः ॥ स्नानंदानंजपोहोमः स्वाध्यायःपितृतर्प्पणम् ॥ ३१ ॥ नश्यन्त्यस्यमहायज्ञा नीलसूत्रस्यकारणात् ॥ नीलरक्तंयदावस्त्रं विप्रस्त्वङ्गेषुधारयेत् ॥ ३२ ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ रोमकूपेयदागच्छेद्रसंनीलस्यकस्यचित् ॥ ३३ ॥ पतितस्तुभवेद्विप्रस्त्रिभिःकृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ नी

तथा दुःखसे जीतने योग्य शत्रुवोंको जीतता है ॥ २९ ॥ सप्तमी में तैलको न छुवै और नील वसनको न पहनै न आँवलेका स्नान करै और न कहीं कलह(झगड़ा) करै ॥ ३० ॥ नीलसे रंगेहुये वसन करके ब्राह्मण जिसकर्मको करताहै स्नान, दान,जप, होम, वेदपाठ व पितरों का तर्पण ॥ ३१ ॥ और इस द्विजके महायज्ञ नीलसूत्र के कारण नाश होजाते हैं जब ब्राह्मण नील से रंगेहुये वस्त्रको अंगों में धारणकरता है ॥ ३२ ॥ तब दिनरात उपास करके वह पंचगव्य से शुद्ध होता है और यदि किसी द्विज के रोमकूप में नील का रसजावै ॥ ३३ ॥ तो वह ब्राह्मण पतित होजाताहै और तीन कृच्छ्रव्रतों से शुद्ध होता है और यदि कहीं ब्राह्मण असाव-

धानता से नील के बीच में जावै ॥ ३४ ॥ तो दिनरात उपास कर, पंचगव्य से शुद्ध होता है और जब ब्राह्मणों के शरीर में नील का काठ भेदन करै ॥ ३५ ॥ और रुधिर देख पड़े तब ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करै और जो अज्ञान से नीलकी दतून करै ॥ ३६ ॥ तो हे देवि ! दो कृच्छ्र चान्द्रायण करके उस पापसे शुद्ध होता है हे देवि ! समस्त प्राणियों के पातकों का विनाशक यह गोप्यादित्य का बड़ाभारी माहात्म्य तुमसे कहागया सुना हुआ जोकि सब प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाला है ॥ ३७ ॥ हे देवेशि ! कुरुजांगल में एक लाख गौवों के देने से जो पुण्य होता है वह गोप्यादित्य के दर्शन में होता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभास

लमध्येयदागच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मणःक्वचित् ॥ ३४ ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा पञ्चगव्येनशुद्ध्यति ॥ नीलदारुयदाभिन्द्याद् ब्राह्मणानांशरीरके ॥ ३५ ॥ शोणितंदृश्यतेचैव द्विजश्चान्द्रायणंचरेत् ॥ कुर्यादज्ञाततोयस्तु नीलंवैदन्तधावनम् ॥ ३६ ॥ कृत्वाकृच्छ्रद्वयंदेवि तस्मात्पापाद्विशुद्ध्यति ॥ इतितेकथितन्देवि गोप्यादित्यमहोदयम् ॥ पापघ्नंसर्वजन्तूनां श्रुतंसर्वार्थसाधकम् ॥ ३७ ॥ गवांशतसहस्रैस्तु दत्तैयत्कुरुजाङ्गले ॥ पुण्यंभवतिदेवेशि तद्गोप्यादित्यदर्शने ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे गोप्यादित्यमाहात्म्यन्नामपञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि क्षेत्रदेवींमहाप्रभाम् ॥ बलातिबलदैत्यघ्नीं नाम्नेतिप्रथितांक्षितौ ॥ १ ॥ अनादिनिधनादेवी तत्रक्षेत्रेऽव्यवस्थिता ॥ कोटिभूतपरीवारा सर्वदैत्यनिबर्हिणी ॥ २ ॥ देव्युवाच ॥ बलातिबलदैत्यघ्नी कथमुक्तात्वयाप्रभो ॥ बलातिबलनामानौ कथंदैत्यौनिपातितौ ॥ ३ ॥ कुत्रतिष्ठतिसादेवी किंप्रभावामहेश्वर ॥

खण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोप्यादित्यमाहात्म्यंनामपंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ ॥ ॥

दो० । बल अति बल दैत्यन यथा मार्यो अहै भवानि । इकसौ सोलह में सोई चरितअहै सुख खानि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर बलातिबलदैत्यघ्नी ऐसे नाम से पृथ्वी में प्रसिद्ध महाप्रभावती क्षेत्रदेवी के समीप जावै ॥ १ ॥ जन्म व मृत्यु से रहित तथा करोड़ों भूतों से घिरी हुई सब दैत्यों को मारनेवाली वह देवी उस क्षेत्र में स्थित है ॥ २ ॥ देवीजी बोलीं कि हे प्रभो ! तुम से बलातिबलदैत्यघ्नी किसकारण कही गई और बल व अतिबल नामक दैत्य कैसे मारेगये

हैं ॥ ३ ॥ हे महेश्वर ! किस प्रभाववाली वह देवी कहां स्थित है उसके समस्तमाहात्म्य को विस्तार से कहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं पातकों को नाशनेवाली कथा को कहताहूं कि जिसको सुनकर मनुष्य सब पातकोंसे छूट जाता है ॥ ५ ॥ बड़े शरीर तथा बड़े भारी वक्षःस्थलवाला बलवान् रक्तासुर नामक दैत्य महिषासुर का पुत्र दूसरे हिरण्याक्ष की नाईं हुआहै ॥ ६ ॥ उसके बल व अतिबल नामक पुत्र हुये उन्होंने इन्द्र व अग्नि आदिक सब देवताओंको जीत कर ॥ ७ ॥ त्रिलोक में निशंक होकर राज्यकिया और उनकी सेनामुख संज्ञक सेनामें तेंतीस वीर कहेगये हैं ॥ ८ ॥ जो कि भयंकरशरीरवाले तथा महायोधा व हज़ार

माहात्म्यमखिलंतस्याःसर्वंविस्तरतोवद ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथांपातकनाशिनीम् ॥ यांश्रुत्वामानवोभक्त्या मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ५ ॥ आसीद्रक्तासुरोनाम महिषस्यसुतोबली ॥ महाकायोमहावक्षा हिरण्याक्षइवापरः ॥ ६ ॥ बलातिबलनामानौ तस्यपुत्रौबभूवतुः ॥ तौविजित्यसुरान्सर्वान् देवेन्द्राग्निपुरोगमान् ॥ ७ ॥ त्रैलोक्येतुनिरातङ्कौ चक्रतूराज्यमञ्जसा ॥ तयोस्सेनामुखेवीराख्रयस्त्रिंशत्प्रकीर्त्तिताः ॥ ८ ॥ रौद्रात्मानोमहायोधाः सहस्राक्षौहिणीश्वराः ॥ सिंहस्कन्धामहाकाया दुरात्मानोमहाबलाः ॥ ९ ॥ धूम्राक्षोभीमदंष्ट्रश्चकालपाशोमहाहनुः ॥ ब्रह्मघ्नोयज्ञकोपश्च क्षीघ्नःपापनिकेतनः ॥ १० ॥ विद्युन्मालीचबलधृक् शङ्कुकर्णोविभावसुः ॥ देवान्तकोविकर्मा च दुर्भिक्षःक्रूरएवच ॥ ११ ॥ हयग्रीवोऽश्वकर्णश्च केतुमान्वृषभोद्विपः ॥ शलश्चशलभोव्याघ्रो निकुम्भोमणिकोवृकः ॥ १२ ॥ सूर्यकोचिक्षुरोमाली कालोदण्डककेरलौ ॥ एतेदैत्यामहाकायास्तयोस्सेनाधिकारिणः ॥ १३ ॥ एवन्तैःपृथिवी

अक्षौहिणी के स्वामी और सिंहकीनाईं कन्धावाले तथा बड़े शरीरवाले व दुष्टचित्त और महाबलीथे ॥ ९ ॥ धूम्राक्ष, भीमदंष्ट्र, कालपाश, महाहनु, ब्रह्मघ्न, यज्ञकोप, क्षीघ्न, पापनिकेतन ॥ १० ॥ विद्युन्माली, बलधृक्, शंकुकर्ण, विभावसु, देवांतक, विकर्म, दुर्भिक्ष व क्रूर ॥ ११ ॥ हयग्रीव, अश्वकर्ण, केतुमान, वृषभ, द्विप, शल, शलभ, व्याघ्र, निकुंभ, मणिक व वृक ॥ १२ ॥ सूर्यक, चिक्षुर, माली, काल, दंडक और केरल ये बड़ी देहवाले दैत्य उनदोनोंकी सेनाओंके अधिकारी थे ॥ १३ ॥ इसप्रकार

उन दैत्यों से पचासकरोड़ योजन चौड़ी पृथ्वी व्याप्त थी ऐसा जानकर उस समय भय से ऊबे हुये मनवाले सब देवता ॥ १४ ॥ देवर्षियों समेत हिमाचल के वनको गये व उस समय पवित्र होते हुये उन्होंने उस देवीकी इस स्तोत्र से स्तुतिकिया ॥ १५ ॥ देवता बोले कि, हे अक्षरे! तुम्हारी जयहो हे अनन्ते ! जय होवै हे अव्यक्ते, व्याधि रहिते ! तुम्हारी जयहो हे महामाये, देवि ! जय होवे हे देवर्षिवन्दिते ! तुम्हारी जय होवै ॥ १६ ॥ हे विश्वम्भरे, गङ्गे ! तुम्हारी जय होवे हे सर्वार्थसिद्धिदे ! तुम्हारी जय होवै हे ब्रह्माणि, कौमारि ! तुम्हारी जय होवै हे नारायणेश्वरि ! तुम्हारी जय होवै ॥ १७ ॥ हे महालक्ष्मी, मातः ! तुम्हारी जय होवै हे सर्वव्यापिनि, पार्वति !

व्याप्ता पञ्चाशत्कोटिविस्तरा ॥ एवंज्ञात्वातदादेवा भयेनोद्विग्नमानसाः ॥ १४ ॥ सर्वेदेवर्षिभिस्सार्द्धं जग्मुस्तेहिमवद्वनम् ॥ स्तोत्रेणानेनतान्देवीं तुष्टुवुःप्रयतास्तदा ॥ १५ ॥ देवाऊचुः ॥ जयाक्षरेजयानन्ते जयाव्यक्तेनिरामये ॥ जय देविमहामाये जयदेवर्षिवन्दिते ॥ १६ ॥ जयविश्वम्भरेगङ्गे जयसर्वार्थसिद्धिदे ॥ जयब्रह्माणिकौमारि जयनारायणेश्वरि ॥ १७ ॥ जयमातर्महालक्ष्मि जयपार्वतिसर्वगे ॥ जयदेविजगज्ज्येष्ठे जयैरावतिभारति ॥ १८ ॥ जयानन्तेतिविजये जयदेविजलाशये ॥ जयेशानिशिवेसर्वे जयत्यतिजयार्चिते ॥ १९ ॥ मोक्षदेजयसर्वज्ञ जयधर्मार्थकामदे ॥ जयगायत्रिकल्याणि जयसद्योविभावरि ॥ २० ॥ जयदुर्गेमहाकालि शिवदूतिजयाजये ॥ जयचण्डेमहामुण्डे जयदेविशिवप्रिये ॥ २१ ॥ जयक्षेमकरेशैवे जयब्रह्माणिरैवति ॥ जयोमेसिद्धिमाङ्गल्ये वरसिद्धेनमोस्तुते ॥ २२ ॥ जयानन्देमहावर्णे

तुम्हारी जय हो हे जगज्ज्येष्ठे, देवि ! तुम्हारी जयहो हे ऐरावति, भारति ! तुम्हारी जयहो ॥ १८ ॥ हे अनन्ते, अतिविजये ! तुम्हारी जयहो हे जलाशये, देवि ! तुम्हारी जयहो हे ईशानि, शिवे, सर्वे ! तुम्हारी जयहो हे अतिजयार्चिते ! तुम्हारी जयहोवै ॥ १९ ॥ हे मोक्षदायिनि, सर्वज्ञे ! तुम्हारी जय होवै हे धर्मार्थकामदायिनि ! तुम्हारी जय होवै हे गायत्रि, कल्याणि ! तुम्हारी जयहो हे विभावरि ! तुम्हारी शीघ्रही जय होवै ॥ २० ॥ हे महाकालि, दुर्गे ! तुम्हारी जयहो हे शिवदूति, अजये ! तुम्हारी जय हो हे चण्डे, महामुण्डे ! तुम्हारी जयहो हे शिवप्रिये, देवि ! तुम्हारी जयहो ॥ २१ ॥ हे क्षेमकरे, शैवे ! तुम्हारी जयहो हे ब्रह्माणि, रैवति ! तुम्हारी जय होवै

हे उमे, सिद्धिमाङ्गल्ये ! तुम्हारी जयहो हे वरसिद्धे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ २२ ॥ हे आनन्दे, महावर्ये, महिषासुरघातिनि ! तुम्हारी जयहो हे आनन्दे, विशाललोचनि ! तुम्हारी जयहो हे अनङ्गे, सरस्वति ! तुम्हारी जयहो ॥ २३ ॥ हे अशेषगुणावासे ! तुम्हारी जयहो हे आवर्तसरान्तके ! तुम्हारी जयहो हे अतुले,सङ्कल्पे ! तुम्हारी जय हो हे त्रैलोक्यसुन्दरि ! तुम्हारी जयहो ॥ २४ ॥ हे शुम्भनिशुम्भघातिनि ! तुम्हारी जयहो हे कमलेन्दुसन्निभे ! तुम्हारी जयहो हे कौशिकि, कौमारि ! तुम्हारी जयहो हे वारुणि, कामदे ! तुम्हारी जय हो ॥ २५ ॥ हे सर्वाणि ! तुम्हारे लिये बार २ नमस्कार है हे अम्बिके ! तुम्हारी जयहो हे शरण्ये, देवि ! शरण में

महिषासुरघातिनि ॥ जयानन्देविशालाक्षि जयानङ्गेसरस्वति ॥ २३ ॥ जयाशेषगुणावासे जयावर्तसरान्तके ॥ जयातुलेतुसङ्कल्पे जयत्रैलोक्यसुन्दरि ॥ २४ ॥ जयशुम्भनिशुम्भघ्नि जयपद्मेन्दुसन्निभे ॥ जयकौशिकिकौमारि जयवारुणिकामदे ॥ २५ ॥ नमोनमस्तेसर्वाणि भूयोभूयोजयाम्बिके ॥ त्राहिनस्त्राहिनोदेवि शरण्येशरणागतान् ॥ २६ ॥ सैवंस्तुताभगवती देवैस्सर्वैर्वरानने ॥ आत्मानंदर्शयामास भासयन्तीदिगन्तरम् ॥ २७ ॥ नमस्कृत्यतुतामूचुः सुरास्तेभयनाशिनीम् ॥ बलातिबलनामानौ हत्वादैत्यौमहाबलौ ॥ २८ ॥ तयोश्चैवमहासैन्यं पाहिनोमहतोभयात् ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा दत्त्वातेभ्योभयन्ततः ॥ २९ ॥ बभूवाद्भुतरूपासा त्रिनेत्रार्केन्दुशेखरा ॥ सिंहारूढामहादेवी नानाशस्त्रास्त्रधारिणी ॥ ३० ॥ सुवक्त्राविंशतिभुजा स्फूर्जद्विद्युल्लतोपमा ॥ ततोम्बिकाननादोचैस्साट्टहासंमुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ तस्या

आयेहुये हमलोगोंकी रक्षा कीजिये रक्षाकीजिये ॥ २६ ॥ हे वरानने ! सब देवताओंसे स्तुतिकीहुई उस भगवती ने दिगन्तरोंको प्रकाशित करतीहुई अपनाको दिखलाया ॥ २७ ॥ और उन देवताओं ने उन भयनाशिनी भगवतीको प्रणामकर कहा कि बड़े बलवान् बल व अतिबलनामक दैत्यों को मारकर ॥ २८ ॥ व उनकी बड़ी भारी सेनाकोमार कर हम लोगोंकी बड़े भय से रक्षा कीजिये उनके उस वचन को सुनकर उनके लिये अभय देकर तदनन्तर ॥ २९ ॥ सूर्य व चन्द्रमाको मस्तक में धारण किये वह तीन नेत्रोंवाली भगवती अद्भुतरूपिणी हुई और अनेकभांति के शस्त्रों व अस्त्रों को धारण किये व सिंहपै चढ़ीहुई महादेवी ॥ ३० ॥ उत्तम मुखवाली व

बीस भुजाओंवाली चमकतीहुई बिजुली की लताके समानथी तदनन्तर भगवतीजी अट्टहास समेत बार २ उच्चप्रकार से गर्जनेलगीं ॥ ३१ ॥ और उनके भयङ्कर शब्द से सब आकाश पूर्ण होगया और नदी व समुद्रकाञ्चीवाली समस्त पृथ्वी कांप उठी ॥ ३२ ॥ जो कि पर्वतों की नाईं ऊंचे स्तनोंवाली सुन्दरी स्त्री की नाईं भय से विकल होगई और चतुरंगिणी सेनासे उग्र वे दैत्य भी वहां प्राप्त हुये ॥ ३३ ॥ और भलीभांति प्रकट पराक्रमवाले जो काल, अन्तक व यमराज के समान राक्षस, दानव व दैत्य पातालोंमें भी स्थितथे ॥ ३४ ॥ वे सब करोड़ों दैत्य भलीभांति आये तदनन्तर वहां देवीजी का दैत्यों के साथ बड़ा भारी युद्ध हुआ ॥ ३५ ॥ और वह

नादेनघोरेण कृत्स्नमापूरितन्नभः ॥ प्रकम्पिताखिलाचोर्वी सरिद्वारिधिमेखला ॥ ३२ ॥ शैलोत्तुङ्गस्तनीरम्या प्रमदेव भयातुरा ॥ तेपितत्रासुराःप्राप्ताश्चतुरङ्गबलोत्कटाः ॥ ३३ ॥ सम्यग्विदितविक्रान्ताः कालान्तकयमोपमाः ॥ रक्षोदानवदैत्याश्च पातालेष्वपिसंस्थिताः ॥ ३४ ॥ तेसर्वएवदैत्याश्चकोटिशस्समुपागताः ॥ ततोभवन्महायुद्धं देव्यास्तत्रासुरैस्सह ॥ ३५ ॥ बभूवएवब्रह्माण्ड अकाण्डक्षयकारणम् ॥ अक्षौहिणीसहस्राणि त्रयस्त्रिंशत्सुरेश्वरि ॥ ३६ ॥ एकविंशत्सहस्राणि शतान्यष्टौचसप्ततिः ॥ सानुगानांसयोधानां रथानांवातरंहसाम् ॥ ३७ ॥ हत्वासालीलयादेवि निन्ये क्षयमनाकुला ॥ ततोदेव्याहतानाञ्च दानवानांमहौजसाम् ॥ ३८ ॥ गजवाजिरथानांच समूहैरावृतामही ॥ ३९ ॥ कबन्धनृत्यसंकुले स्रवद्वसास्थिकर्दमे ॥ रणाजिरेनिशाचरास्ततोविचेरुरूर्ज्जिताः ॥ ४० ॥ शृगालगृध्रवायसाः परंप्रपानमादधुः ॥ क्वचित्परेतशावकाः प्रपीतशोणितोत्कटाः ॥ ४१ ॥ प्रतर्प्यचासृजापितॄन् समर्च्यवैतथाऋषीन् ॥ ग

युद्ध संसार का बिन समयमें क्षयका कारण हुआ हे सुरेश्वरि ! तेंतीस हज़ार अक्षौहिणी ॥ ३६ ॥ और इक्कीस हज़ार आठसौ सत्तर अनुगामियों समेत व योधाओं समेत पवन के समान वेगवाले रथों को ॥ ३७ ॥ लीला से नाशकर हे देवि ! आकुलता रहित उस भगवती ने क्षय किया तदनन्तर देवीजीसे मारेहुये बड़े पराक्रमी दानवों के ॥ ३८ ॥ व हाथी, घोड़े और रथोंके समूहोंसे पृथ्वी आच्छादित होगई ॥ ३९ ॥ तदनन्तर कबन्धोंके नृत्य से संयुत व बहतेहुये मज्जा व अस्थिरूपी कीचड़वाले रणके आंगनमें बढ़ेहुये निशाचर विचरनेलगे ॥ ४० ॥ और सियार, गीध व कौवों ने उत्तम रक्तको पानकिया और कहीं प्रेतोंके बालक पियेहुये रक्तसे उग्र थे ॥ ४१ ॥

और रक्तसे पितरों को तृप्तकर व ऋषियों को पूजकर निर्दयता समेत हाथी, मनुष्य व घोड़ोंको भक्षण करते थे ॥ ४२ ॥ तथा अन्य रथरूपी नावोंसे रुधिरकी नदीको उतरतेथे इसप्रकार दैत्यगणोंसे व्याप्त बड़ेभारी समर में ॥ ४३ ॥ धनुष, बाण, तलवार व त्रिशूलको धारण किये भगवती विराजतीथी और गजेन्द्ररूपी कमलों को मर्दन करनेवाली व तुरंगों के यूथको नाशनेवाली व दैत्यसेनाको नाशनेवाली अम्बिकाजी युद्धमें शोभितथीं ॥ ४४ ॥ तदनन्तर आठ सिंहोंसे संयुत व महाप्रेतों से युक्त और हंसों से श्वेत तथा प्रकाशित सूर्य के समान रथ पै ज्वलतीहुई स्थित भवानीको वे दैत्येन्द्र वीर देखते थे ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उत्पन्न रोषवाले व भयंकर

जान्नरांस्तुरङ्गमान् प्रभक्षयन्तिनिर्घृणम् ॥ ४२ ॥ रथोडुपैस्तथापरे तरन्तिशोणितापगाम् ॥ इतिप्रगाढसङ्गरे सुरारि सङ्घसंकुले ॥ ४३ ॥ विराजतेम्बिकाधनुश्शरासिशूलधारिणी ॥ गजेन्द्रपद्ममर्दिनी तुरङ्गयूथपोथिनी ॥ सुरारिसैन्यनाशिनी विराजतेरणेम्बिका ॥ ४४ ॥ ततस्तांप्रपश्यन्तिसिंहाष्टयुक्ते महाप्रेतयुक्तेरथेहंसशुभ्रे ॥ ज्वलद्भास्वराभे स्थितांप्रज्वलन्तीं भवानीमथोतेचदैत्येन्द्रवीराः ॥ ४५ ॥ समुद्भूतरोषास्ततस्तेपिजग्मुर्नदन्तेरवंभैरवंनृत्यमानाः ॥ ४६ ॥ हाहाकारंविकुर्वाणा हन्यमानास्ततोसुराः ॥ केचित्समुद्रंविविशुरद्रीन्केचिच्चदानवाः ॥ ४७ ॥ केचिल्लुञ्चितमूर्द्धानो नग्नाभूत्वाजलेविशन् ॥ ४८ ॥ दयाधर्मान्ब्रुवाणाश्च निर्गताव्रतमास्थिताः॥ केचित्प्राणपराभीताः पाखण्डाश्रयमास्थिताः ॥ ४९ ॥ केचिन्मौनव्रताह्यासन् दृश्यन्तेसकलैर्जनैः ॥ सुरास्त्रीमांससंयुक्ता विकर्मस्थाश्चलिङ्गिनः ॥ ५० ॥ परान्नवृत्तिकाःपापा जिह्वोपस्थपरायणाः ॥ एवंदेव्याहतास्सर्वे बलातिबलसंयुताः ॥ ५१ ॥ बलातिबलनिघ्नीति प्रभासेप्र

शब्दको गर्जते व नाचतेहुये वे दैत्य भगवती के सामनेगये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर हाहाकार करते मारेजातेहुये कोई दैत्य समुद्र में पैठगये व कोई दानव पर्वतों में पैठगये ॥ ४७ ॥ और कटेहुये बालोंवाले कोई दैत्य नग्नहोकर जलमें पैठगये ॥ ४८ ॥ और दयाधर्मों को कहतेहुये कोई ब्राह्मण व्रत में स्थितहोकर निकल गये व कोई प्राणोंसे डरकर पाखण्डके आश्रय में स्थितहुये ॥ ४९ ॥ और कोई मौन व्रतवालेहुये व कोई मदिरा, स्त्री और मांस से संयुक्त होकर विकर्मों में स्थित पाखण्डी सब जनोंमे देखे जातेथे ॥ ५० ॥ इसप्रकार पराये अन्नसे जीविका करनेवाले तथा जिह्वा व गुह्य इन्द्रियके सुखमें लगेहुये बल व अतिबल दैत्योंसे संयुत सब

पापी दैत्य देवीजीसे मारेगये ॥ ५१ ॥ उसीकारण पृथ्वी में बलातिबलनिम्नी देवी प्रभासक्षेत्रमें प्रसिद्धहुई ॥ ५२ ॥ देवीजी बोलीं कि हे सुरेश्वर ! तुमने जिन चौंसठि योगिनियों को कहाहै उनके समस्त पातकों को नाशनेवाले नामोंको मुझसे कहिये ॥ ५३ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये सबसे रक्षाकरनेवाले व महाभय के विनाशक योगिनियों के दिव्य माहात्म्यको मैं कहताहूं ॥ ५४ ॥ उनमें पहले महालक्ष्मी व नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महाभद्रा, भ्रामरी, चन्द्रमण्डला ॥ ५५ ॥ रेवती, हरसिद्धि, दुर्गा, विषमलोचना, सहजा, कुलजा, कुब्जा, मायावी, शांभवी व क्रिया ॥ ५६ ॥ आद्या, सर्वगता, शुद्धा, भावमान्या, मनोतिगा, विद्या, अविद्या,

थिताश्चितो ॥ ५२ ॥ देव्युवाच ॥ चतुष्षष्टिस्त्वयाप्रोक्ता योगिन्योयास्सुरेश्वर ॥ तासान्नामानिमेब्रूहि सर्वपापहराणि च ॥ ५३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि योगिनीनांमहोदयम् ॥ सर्वरक्षाकरंदिव्यं महाभयविनाशनम् ॥ ५४ ॥ आदौतत्रमहालक्ष्मी नन्दाक्षेमकरीतथा ॥ शिवदूतीमहाभद्रा भ्रामरीचन्द्रमण्डला ॥ ५५ ॥ रेवतीहरिसिद्धिश्च दुर्गा विषमलोचना ॥ सहजाकुलजाकुब्जा मायावीशाम्भवीक्रिया ॥ ५६ ॥ आद्यासर्वगताशुद्धा भावमान्यामनोतिगा ॥ विद्याविद्यामहामाया सुषुम्नासर्वमङ्गला ॥ ५७ ॥ ओंकारात्मामहादेवी वेदार्थजननीशिवा ॥ पुराणान्वीक्षिकीदीक्षा चामुण्डाशङ्करप्रिया ॥ ५८ ॥ ब्राह्मीशान्तिकरीगौरी ब्रह्मण्याब्राह्मणप्रिया ॥ भद्राभगवतीकृष्णा ग्रहनक्षत्रमालिनी ॥ ५९ ॥ त्रिपुरात्वरितानित्या साङ्ख्याकुण्डलिनीध्रुवा ॥ कल्याणीशोभनानित्या निष्कलापरमाकला ॥ ६० ॥ योगिनी योगसद्भावा योगगम्यागुहाशया ॥ कात्यायनीउमाशर्वाअपर्णेतिप्रकीर्त्तिता ॥ ६१ ॥ स्तोत्रेणानेनदिव्येन भक्त्या

महामाया, सुषुम्ना व सर्वमंगला ॥ ५७ ॥ ॐकारात्मा, महादेवि, वेदार्थजननी, शिवा, पुराणान्वीक्षिकी, दीक्षा, चामुण्डा व शंकरप्रिया ॥ ५८ ॥ ब्राह्मी, शान्तिकरी, गौरी, ब्रह्मण्या, ब्राह्मणप्रिया, भद्रा, भगवती, कृष्णा और ग्रह नक्षत्रमालिनी ॥ ५९ ॥ त्रिपुरा, त्वरिता, नित्या, सांख्या, कुण्डलिनी, ध्रुवा, कल्याणी, शोभना, नित्या, निष्कला, परमा व कला ॥ ६० ॥ योगिनी, योगसद्भावा, योगगम्या, गुहाशया, कात्यायनी, उमा, शर्वा व अपर्णा ऐसी कहीगई है ॥ ६१ ॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रसे भक्ति

समेत चण्डिकाजी की स्तुति करताहै उसकी सब विपत्तियों में भवानीजी पुत्रकी नाईं रक्षा करती हैं ॥ ६२ ॥ और चौदसि व अष्टमी तथा विशेषकर नवमी तिथिमें उपवास, एक भक्त व अयाचित व्रत से ॥ ६३ ॥ हे देवि ! नियमको ग्रहण कियेहुये जो पुरुष इस संसारमें आधे वर्ष या वर्षभर चण्डिकाजी को पूजते हैं वे तत्त्वचारी सिद्ध हैं ॥ ६४ ॥ कुंवारके शुक्लपक्षमें मन्वादि व अष्टका तिथियोंमें महोत्सव कर देवीजीका जप कल्याणको बढ़ाताहै ॥ ६५ ॥ और दुर्गाजीका भक्त भगवतीके सुवर्ण-मय पादुकाओं को धारण करै व असावधानता से विघ्नोंकी शांतिके लिये पुरुष सदैव छुरीको धारण करै ॥ ६६ ॥ इसप्रकार दैत्यभावमें आश्रितहोकर जो पुरुष पशु-

यस्तौतिचण्डिकाम् ॥ तम्पुत्रमिवसर्वाणी सर्वापत्स्वभिरक्षति ॥ ६२ ॥ चतुर्द्दश्यामथाष्टम्यां नवम्याञ्चविशेषतः ॥ उपवासैकभक्तेन तथैवायाचितेनच ॥ ६३ ॥ गृहीतनियमोदेवि पूजयन्तीहचण्डिकाम् ॥ वर्षार्द्धवर्षमेकंवा सिद्धास्ते तत्त्वचारिणः ॥ ६४ ॥ अश्वयुक्शुक्लपक्षेच मन्वादिचाष्टकासुच ॥ कृत्वामहोत्सवंदेवी जपश्श्रेयोभिवर्द्धयेत ॥ ६५ ॥ पादुकेधारयेद्देव्या दुर्गाभक्तोहिरण्मये ॥ प्रमादविघ्नशान्त्यर्थं छुरिकाञ्चसदापुमान् ॥ ६६ ॥ पशुमांसासवैस्त्वेवमासुरंभावमाश्रिताः ॥ येयजन्त्यच्युतान्तेस्युर्दैत्याऐश्वर्यभोगिनः ॥ ६७ ॥ देवत्वंसात्त्विकायान्ति सात्त्विकींभक्तिमास्थिताः ॥ एवन्तेकथितन्देवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ ६८ ॥ बलातिबलदैत्यघ्न्या देव्याःसर्वार्थसाधकम् ॥ प्रभासक्षेत्रसंस्थायाः संक्षेपात्कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे बलातिबलघ्नीभगवतीमाहात्म्यन्नामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

वोंके मांस व मदिरासे भगवतीजीको पूजते हैं वे ऐश्वर्यभोगी दैत्य होते हैं ॥ ६७ ॥ और सात्त्विकी भक्तिमें टिकेहुये सात्त्विक पुरुष देवत्वको प्राप्तहोते हैं हे देवि ! प्रभास-क्षेत्र में टिकीहुई बलातिबलदैत्यघ्नी देवीजी का पापनाशक व सब प्रयोजनोंका साधक तथा यशवर्द्धक माहात्म्य तुमसे संक्षेपसे कहागया ॥ ६८ । ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलातिबलघ्नीभगवतीमाहात्म्यंनामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ● ॥

दो०। जिमि थाप्यो गोपिन सबन गोपीश्वर शिवनाम। इकसौ सत्रहमें सोई चरित अहै सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर बलातिबल-दैत्यघ्नी देवीजी के उत्तर में तीन धनुष पै स्थित गोपियोंसे थापेहुये पापों के विनाशक अति उत्तम गोपीश्वरजी के समीप जावै और पुत्रके लिये महेश्वर महादेवजी को भलीभांति आराधन कर पूजन करै ॥ १।२ ॥ क्योंकि पूजाहुआ वह सब कामनाओंको देनेवाला लिंग मनुष्यों को सन्तान दायक है चैत्रके शुक्लपक्षवाली तीज तिथि में जो पुरुष उन शिवजी को चन्दन व पुष्पोंके उपहारों से पूजताहै वह चाहेहुये फलको पाताहै इसप्रकार प्रभासक्षेत्रनिवासी गोपीश्वरदेवजी का पापनाशक

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गोपीश्वरमनुत्तमम् ॥ बलातिबलदैत्यघ्न्या ह्युत्तरेधनुषांत्रये ॥ १ ॥ संस्थितं पापशमनं गोपीभिस्सम्प्रतिष्ठितम् ॥ समाराध्यमहादेवं पुत्रहेतोर्महेश्वरम् ॥ २ ॥ सर्वकामप्रदंनृणां पूजितंसन्ततिप्रदम् ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायां यस्तंपूजयतेनरः ॥ ३ ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च सप्राप्नोतीप्सितंफलम् ॥ एवंसंक्षेपतःप्रोक्तं माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ ४ ॥ गोपीश्वरस्यदेवस्य प्रभासक्षेत्रवासिनः ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे गोपीश्वरमाहात्म्यन्नामसप्तदशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि रामेश्वरमनुत्तमम् ॥ जामदग्न्येनरामेण स्वयंतत्रप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ गोपीश्वराद्वैशायव्ये धनुषांत्रिंशदन्तरे ॥ स्थितंमहाप्रभावन्तु लिङ्गंपातकनाशनम् ॥ २ ॥ यदारामेणदेवेशि जमदग्निसुतेनवै ॥ कृतोमातृवधोघोरः पितुराज्ञाप्रवर्त्तनात् ॥ ३ ॥ तदामनसिसन्तापं कृत्वानिर्वेदमागमत् ॥ ततःप्रसन्नतांजातो

माहात्म्य संक्षेपसे कहागया ॥ ३।४।५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुविरचितायांभाषाटीकायांगोपीश्वरमाहात्म्यंनामसप्तदशाधिकशततमोध्यायः ॥ ११७॥

दो०। परशुराम थाप्यो यथा रामेश्वर इमिनाम। इकसौ अट्ठारहें महं सो चरित्रअभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर जमदग्निके पुत्र परशुरामजीने आपही थापेहुये वहां अति उत्तम रामेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ गोपीश्वरसे वायव्य में तीस धनुष के अन्तर पै महाप्रभाववान् व पातकोंका विनाशक लिंग स्थित है ॥ २ ॥ हे देवेशि ! जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने जब पिताकी आज्ञा में वर्तमान होने के कारण माता का भयंकर वध किया है ॥ ३ ॥ तब मनमें सन्ताप

कर निर्वेद को प्राप्त हुए तदनन्तर बड़े तपस्वी जमदग्निजी प्रसन्नता को प्राप्त हुये ॥ ४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उन्होंने रेणुका के जीवनरूप वरदान को दिया इसप्रकार हे वरवर्णिनि ! यद्यपि वह जीगई ॥ ५ ॥ तथापि हे देवि ! घृणा समेत महाप्रभावान् परशुरामजी ने प्रभासक्षेत्र में प्राप्त होकर तदनन्तर अद्भुत तपस्या किया ॥ ६ ॥ लोकों का कल्याण करनेवाले शंकर महादेवजी को थापकर देवताओंके एकसौ पचास बरस तक आराधन किया तदनन्तर महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ ७ ॥ और वहीं भलीभांति टिकेहुये शिवजीने आपही उसको सब चाहेहुये मनोरथ को दिया तदनन्तर महर्षि परशुरामजी कृतार्थता को प्राप्त हुये ॥ ८ ॥ और बड़े मनस्वी

जमदग्निर्महातपाः ॥ ४ ॥ ददौवरंततस्तुष्टो रेणुकायाश्चजीवितम् ॥ एवंयद्यपिसातत्र जीवितावरवर्णिनि ॥ ५ ॥ तथापिसघृणोदेवि जामदग्न्योमहाप्रभः ॥ प्रभासंक्षेत्रमासाद्य तपश्चक्रेततोद्भुतम् ॥ ६ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ दिव्यंवर्षशतंसार्द्धं ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ ७ ॥ ददौतस्येप्सितंसर्वं स्वयंतत्रैवसंस्थितः ॥ ततःकृतार्थतांप्राप्तो जामदग्न्योमहानृषिः ॥ ८ ॥ त्रिस्सप्तकृत्वःपृथिवीं हत्वासर्वांश्चक्षत्रियान् ॥ कृत्वापञ्चनदंतत्र कुरुक्षेत्रेमहामनाः ॥ ९ ॥ रक्तैस्सम्पूर्णतांकृत्वा क्षत्रियाणांवरानने ॥ आनृण्यंसमनुप्राप्तः पितृणांयोमहाबलः ॥ १० ॥ एवंक्षत्रान्तकंकृत्वा दत्त्वाविप्रेषुमेदिनीम् ॥ कृतार्थतामनुप्राप्तस्त्रैलोक्येख्यातपौरुषः ॥ ११ ॥ तेनतत्स्थापितंलिङ्गं क्षेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या पापयुक्तोपिमानवः ॥ १२ ॥ समुक्तःपातकैस्सर्वैर्यातिलोकमुमापतेः ॥ ज्येष्ठकृष्णचतु

परशुरामजी ने इक्कीसवार पृथ्वीमें सब क्षत्रियों को मारकर वहां कुरुक्षेत्र में पंचनद करके ॥ ९ ॥ हे वरानने ! क्षत्रियों के रक्तों से पूर्ण कर जो महाबलवान् परशुरामजी पितरों की उऋणता को प्राप्त हुये ॥ १० ॥ इसप्रकार क्षत्रियों का अन्तकर ब्राह्मणों के लिये पृथ्वी को देकर त्रिलोक में प्रसिद्ध पराक्रमवाले परशुरामजी कृतार्थता को प्राप्त हुये ॥ ११ ॥ और उन्होंने उत्तम प्रभासक्षेत्र में उस लिंग को स्थापन किया जो पापसंयुत भी मनुष्य उन शिवजी को भक्ति से पूजता है ॥ १२ ॥

वह सब पापोंसे छूटकर शिवजीके लोकको प्राप्तहोताहै और ज्येष्ठ महीने की कृष्णपक्षकी चौदसि में वहां जो पुरुष जागता है ॥ १३ ॥ वह अश्वमेधयज्ञ के फल को पाकर स्वर्ग में देवताओं की नाईं आनन्द करता है ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजामदग्न्येश्वरमाहात्म्यंनामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चित्रांगदईश्वरहिं जिमि थाप्यो है गंधर्व । इकसौ उन्नीसवें महँ सोइ चरितहै सर्व ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके नैर्ऋत्यदिशाके भागमें बीस धनुष पै स्थित चित्रांगदेश्वर लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवेशि,प्रिये ! गन्धर्वोंके स्वामी चित्रांगदने क्षेत्रको पवित्र जानकर महाभयंकर तपस्याकर व महादेवजीको आराधकर वहां लिंगको थापाहै और भक्तिसंयुक्त जो पुरुष उस लिंगको पूजता है ॥ २ । ३ ॥ वह गन्धर्वलोक को प्राप्तहोता है और गन्धर्वों समेत आनन्द करताहै वहां शुक्लपक्षकी चौदसि तिथिमें विधिसे शिवजीको नहवाकर ॥ ४ ॥ जो अनेक प्रकारके पुष्प व चन्दन तथा धूपसे क्रमपूर्वक पूजनकरै वह मनसे जिस जिस वस्तुको चाहताहै उस सब कामनाको प्राप्तहोताहै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांचित्राङ्गदेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

दश्यां जागृयात्तत्रयोनरः ॥ १३ ॥ सोऽश्वमेधफलंप्राप्य मोदतेदिविदेववत् ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे जामदग्न्येश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंचित्राङ्गदेश्वरम् ॥ तस्यैवनैर्ऋतेभागे धनुर्विंशतिभिःस्थितम् ॥ १ ॥ चित्राङ्गदेनदेवेशि गन्धर्वपतिनाप्रिये ॥ क्षेत्रंपवित्रंज्ञात्वावै लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ कृत्वातपोमहाघोरं समाराध्यमहेश्वरम् ॥ अथयोभावसंयुक्तस्तल्लिङ्गंचप्रपूजयेत् ॥ ३ ॥ गन्धर्वलोकमाप्नोति गन्धर्वैस्सहमोदते ॥ तत्रशुक्लचतुर्दश्यां संस्नाप्यविधिनाशिवम् ॥ ४ ॥ पूजयेद्विविधैःपुष्पैर्गन्धधूपैरनुक्रमात् ॥ सप्राप्नोत्यखिलंकामं मनसायद्यदीप्सितम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे चित्राङ्गदेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

दो• । रावणेश शिवको यथा थाप्यो राक्षस नाथ । कह्यो एकसौ बीसमहँ सोई उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम रावणेश्वरजी के समीप जावे उस स्थान से दक्षिण व नैर्ऋत्य में सोलह धनुष पै स्थित ॥ १ ॥ समस्त पातकों के विनाशक शिवजी को रावण ने थापाहै हे देवि ! पुलस्ति के वंशमें उत्पन्न बड़ा दारुण राक्षस रावण ॥ २ ॥ त्रिलोकके जीतने की इच्छा करके पुष्पक विमानके द्वारा घूमने लगा और आकाशमार्गके द्वारा जाताहुआ वह अचानकही रुकगया ॥ ३ ॥ व रुकेहुये विमानको देखकर पुष्पक पै विस्मय संयुत रावणने प्रहस्तको पठाया कि पृथ्वी को जाइये यह क्याहै ॥ ४ ॥ जिसलिये चराचर समेत त्रि-

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि रावणेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्माद्दक्षिणनैर्ऋत्ये धनुषांषोडशस्थितम् ॥ १ ॥ प्रतिष्ठितंदशास्येन सर्वपातकनाशनम् ॥ पौलस्त्योरावणोदेवि राक्षसस्तुसुदारुणः ॥ २ ॥ त्रैलोक्यविजयाकांक्षी पुष्पकेन चचारह ॥ व्रजन्वैव्योममार्गेण निश्चलंसहसाभवत् ॥ ३ ॥ स्तम्भितंपुष्पकंदृष्ट्वा पुष्पकेविस्मयान्वितः ॥ प्रहस्तंप्रेषयामास किमिदंव्रजमेदिनीम् ॥ ४ ॥ अहतास्यगतिर्यस्मात्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ तत्कस्मान्निश्चलंजातं विमानंपुष्पकंमम ॥ ५ ॥ अथासौसत्वरोदेवि जगामवसुधातले ॥ अपश्यद्देवदेवेशं श्रीसोमेशंमहाबलम् ॥ ६ ॥ स्तूयमानंसुरगणैश्शतशोथसहस्रशः ॥ तन्दृष्ट्वाराक्षसेन्द्राय तत्सर्वंविस्तरात्प्रिये ॥ ७॥ प्रहस्तःकथयामास यद्दृष्टंक्षेत्रमध्यतः॥ ८ ॥ प्रहस्तउवाच ॥ राक्षसेशाशिवक्षेत्रं वन्दनीयंमहामुने ॥ प्रभासेतिसमाख्यातं गणगन्धर्वसेवितम् ॥ ९ ॥ तत्रसोमेश्वरोदेव स्स्वयन्तिष्ठतिशङ्करः ॥ अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्च दन्तोलूखलिभिस्तथा ॥ १० ॥ ऋषिभिर्बालखिल्यैश्च पूज्य

लोक में इसकी गति नहीं रुकी इसकारण यह मेरा पुष्पक विमान क्यों अचल होगया ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर हे देवि ! शीघ्रता समेत यह प्रहस्त पृथ्वी में गया और उसने सैकड़ों व हज़ारों देवगणों से स्तुति किये जातेहुये देवदेवेश श्रीसोमेशजी को देखा व हे प्रिये ! उनको देखकर उस सब वृत्तान्तको राक्षसेन्द्र रावणसे ॥ ६ । ७ ॥ प्रहस्त ने कहा कि जो क्षेत्रके मध्य में देखा था ॥ ८ ॥ प्रहस्त बोला कि हे महामुने, राक्षसेश ! गणों व गन्धर्वोंसे सेवित प्रभास ऐसा कहाहुआ शिवक्षेत्र प्रणाम करने योग्यहै ॥ ९ ॥ वहां सोमेश्वर शङ्करदेवजी आपही टिके हैं और जलही पीनेवाले व पवनभोजी तथा दन्तरूपी ओखलीसे कूटकर खानेवाले ॥ १० ॥ व बालखिल्या

महर्षियों से वह लिंग सब ओरसे पूजाजाता है उसी देवताके प्रभावसे यह पुष्पक नहीं चलता है ॥ ११ ॥ जोकि देवताओं व दैत्योंसे उल्लंघन करने योग्य नहीं हैं वे शिवदेवजी नहीं नॉघेजाते हैं ॥ १२ ॥ महादेवजी बोले कि उसके उस वचन को सुनकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले रावणने पृथ्वी में उतरकर सोमेशजी को देखा ॥ १३ ॥ व हे देवेशि ! बड़ी भक्तिसे संयुत उसने अनेकप्रकार के अरुणवस्त्रों से व चन्दन, पुष्प तथा अनुलेपनोंसे पूजन किया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर हे वरारोहे ! पुरवासीलोग राक्षसेश्वर रावण को देखकर भय से डरकर सब दिशाओं में भगे ॥ १५ ॥ और जहां शिवदेवजी स्थित थे वहां सब शून्य होगया इसी

मानंसमन्ततः ॥ प्रभावादस्यदेवस्य नायंगच्छतिपुष्पकः ॥ ११ ॥ नसप्रलंघ्यतेदेव अलंघ्योयस्सुरासुरैः ॥ १२ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ अवतीर्यधरापृष्ठे सोमेशंसमपश्यत ॥ १३ ॥ पूजयामास देवेशि भक्त्यापरमयायुतः ॥ रक्तैर्बहुविधैर्वस्त्रैर्गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ १४ ॥ अथपौरजनादृष्ट्वा रावणंराक्षसेश्वरम् ॥ सर्वदिक्षुवरारोहे भयाद्भीताःप्रदुद्रुवुः ॥ १५ ॥ शून्यंसमभवत्सर्वं यत्रदेवोऽव्यवस्थितः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वाग्उवाचा शरीरिणी ॥ १६ ॥ दशग्रीवमहाबाहो अयनेचोत्तरेतथा ॥ यात्राकालेतुदेवस्य सर्वपापप्रणाशने ॥ १७ ॥ दूरतस्समनुप्राप्ता भूरिलोकाद्विजातयः ॥ राक्षसानांभयाद्भीतास्तेप्रयान्तिदिशोदश ॥ १८ ॥ तस्मान्मात्वंराक्षसेन्द्र यात्राविघ्नकरोभव ॥ बाल्येवयसियत्पापं वार्द्धकेयौवनेपिवा ॥ १९ ॥ तत्सर्वंक्षालयेन्मर्त्यो दृष्ट्वासोमेश्वरंप्रभुम् ॥ २० ॥ ततस्सराक्षसेन्द्रस्तु गत्वैकान्तेषुगह्वरे ॥ लिङ्गंचस्थापयामास भक्त्यापरमयायुतः ॥ २१ ॥ ततस्तन्निरतोभूत्वा सर्वैस्तैरा

समय में आकाशवाणी बोली ॥ १६ ॥ कि हे महाबाहो, दशानन ! उत्तरायण में शिवदेवजी के समस्त पातकोंके विनाशक यात्रा समयमें ॥ १७ ॥ जो बहुत ब्राह्मण लोग दूरसे प्राप्तहुये थे राक्षसों के भय से डरेहुये वे दशों दिशाओंको जाते हैं ॥ १८ ॥ इसलिये हे राक्षसेन्द्र ! तुम यात्राके विघ्नकारक मत होवो क्योंकि बाल्यावस्था में व वृद्धता तथा युवावस्था में जो पाप कियागया है ॥ १९ ॥ उस सबको मनुष्य सोमेश्वर स्वामीजी को देखकर नष्ट करताहै ॥ २० ॥ तदनन्तर बड़ी भक्तिसे संयुत

उस राक्षसेन्द्र रावणने एकान्त में गुहामें जाकर लिंगको थापन किया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उन शिवजी में तत्पर होकर उन सब राक्षसोंसे घिरेहुये व उपास में तत्पर रावण ने देवेश शिवजी का पूजन किया ॥ २२ ॥ और इनके आगे गीत व बाजनसे जागरण किया तदनन्तर आधे महीने के समय में आकाशवाणी बोली ॥ २३ ॥ कि हे महाबाहो, दशानन ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं और मेरी प्रसन्नतासे त्रिलोक तुम्हारे वशमें प्राप्तहोगा ॥ २४ ॥ और यहां नित्यही स्थितहोकर मैं निस्सन्देह टिकूंगा और हे राक्षसेन्द्र ! जो भक्तिसंयुत मनुष्य इस लिंगको पूजेंगे वे शत्रुवों के न जीतने योग्य होवेंगे ॥ २५ ॥ और मेरी प्रसन्नता से उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोवेंगे

क्षसैर्वृतः ॥ पूजयामासदेवेशमुपवासपरायणः ॥ २२ ॥ चकारपुरतश्चास्य गीतवाद्येनजागरम् ॥ ततोर्द्धमाससमये वागुवाचाशरीरिणी ॥ २३ ॥ दशग्रीवमहाबाहो परितुष्टोस्मितेत्वहम् ॥ ममप्रसादात्त्रैलोक्यं वशगन्तेभविष्यति ॥ २४ ॥ अत्रसन्निहितोनित्यं स्थास्याम्यहमसंशयम् ॥ अथैतत्पूजयिष्यन्ति लिङ्गंभक्तियुतानराः ॥ अजेयास्तेभविष्यन्ति शत्रूणांराक्षसेश्वर ॥ २५ ॥ यास्यन्तिपरमांसिद्धिं मत्प्रसादादसंशयम् ॥ एवमुक्त्वावरारोहे विररामवृषध्वजः ॥ २६ ॥ रावणोपिसुसन्तुष्टो भूयोभूयोमहेश्वरम् ॥ पूजयित्वाचतल्लिङ्गं समारुह्यतुपुष्पकम् ॥ २७ ॥ त्रैलोक्यविजयाकांक्षी इष्टंदेशजगामह ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये रावणेश्वरमाहात्म्यन्नामविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गौरींसौभाग्यदायिनीम् ॥ पश्चिमेरावणेशस्य धनुषांपञ्चकेस्थिताम् ॥ १ ॥ य

हे वरारोहे ! ऐसा कहकर शिवजी चुपहोरहे ॥ २६ ॥ और बहुतही सन्तुष्ट होकर रावण भी बार २ महादेवजी के उस लिंगको पूजकर पुष्पक विमान पै चढ़कर ॥ २७ ॥ त्रिलोकके विजयकी इच्छावाला वह प्रियदेश को चलागया ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येरावणेश्वरमाहात्म्यंनामविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । सौभाग्यद गौरिहिं यथा थप्यो अरुन्धति देवि । इकसौ इक्कीसवें महँ सोइ चरित सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर रावणेश्वर के

पश्चिम में पांच धनुष पै स्थित सौभाग्यको देनेवाली गौरीजीके समीप जावै ॥ १ ॥ जहांपर आपही अरुन्धती देवीजीने भयंकर तप किया व सौभाग्यको चाहतीहुई वे गौरीजीके पूजन में परायणहुई ॥ २ ॥ और उन देवीजी की प्रसन्नतासे उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुई हे वरानने ! माघमहीने में शुक्ल पक्षकी तीज तिथि में ॥ ३ ॥ हे देवेशि ! जो उन भगवतीको भक्तिसे पूजता है वह सात जन्मोंमें सौभाग्य को प्राप्त होताहै इसमें विचार करना न चाहिये ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसौभाग्येश्वरी माहात्म्यंनामैकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

त्रातपत्तपोघोरं स्वयन्देवीह्यरुन्धती ॥ सौभाग्यकांक्षमाणासा गौरीपूजापरायणा ॥ २ ॥ सम्प्राप्तापरमांसिद्धिं तस्यादेव्याःप्रसादतः ॥ तृतीयायांशुक्लपक्षे माघमासेवरानने ॥ ३ ॥ यस्तांपूजयतेभक्त्या ससौभाग्यमवाप्नुयात् ॥ सप्तजन्मनिदेवेशि नात्रकार्याविचारणा ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सौभाग्येश्वरीमाहात्म्यन्नामैकविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि एकलिङ्गंसुरप्रिये ॥ रावणेश्वरवायव्ये धनुषांत्रिंशदुत्तरे ॥ १ ॥ स्थितंकामप्रदंलिङ्गं सर्वपातकनाशनम् ॥ पौलोमीश्वरनामानं पौलोम्यासम्प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ तारकेणयदाध्वस्तास्त्रिदशास्संगरेस्थिताः ॥ त्रैलोक्यंविद्रुतंसर्वं स्वयमिन्द्रत्वमागतः ॥ ३ ॥ तदाशक्रस्सुदुःखार्तो भयोद्विग्नोननाशवै ॥ तदातद्भार्यादेवि इन्द्राण्याशोककृष्टया ॥ ४ ॥ इन्द्रस्यजयमिच्छन्तीसा शम्भुराराधितस्तया ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तामुवाचशु

दो० । पौलोमीश्वर देवको थाप्यो जिमि इन्द्रानि । इकसौ बाईसवें महं सोइ चरित रसखानि ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरप्रिये ! तदनन्तर रावणेश्वरसे वायव्य में तीस धनुषके अन्तर पै पौलोमी (इन्द्राणी) से थापेहुये समस्त पातकोंके नाशक व सब कामनाओं को देनेवाले पौलोमीश्वर नामक मुख्यलिंग के समीप जावै ॥ १ । २ ॥ जब समरमें स्थित देवता तारकासुर से विध्वंस कियेगये व सब त्रिलोक भगगया और आपही इन्द्रताको प्राप्तहुआ ॥ ३ ॥ तब दुःख से विकल व भय से ऊबेहुये इन्द्रजी भगे और हे देवि ! उस समय शोकसे दुबली उनकी स्त्री इन्द्राणी ॥ ४ ॥ जोकि इन्द्रकी जीतको चाहतीथी उन्होंने शिवजीका आराधन किया

तदनन्तर प्रसन्नहोकर महादेवजीने उन उत्तम लोचनोंवाली इन्द्राणीसे कहा ॥ ५ ॥ कि हमारे बड़ा बलवान् षडानन पुत्र पैदा होगा वह इस तारक दैत्यराजको मारैगा ॥ ६ ॥ तुम शोकरहित होकर जावो और फिर मेरे वचन को सुनिये कि यहा पै टिकेहुये इस मेरे लिंगको जो पूजैगा ॥ ७ ॥ वह मनुष्य मेरा गण होकर मेरे समीप प्राप्तहोगा ऐसा कहीहुई वह साध्वी (पतिव्रता) इन्द्राणी वहां गई जहां कि सुरराज स्थित थे ॥ ८ ॥ और वे इन्द्राणी सब दुःखोंसे छूटगई व सब दैत्यों के भय से मुक्त होगई ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांपौलोमीश्वरमाहात्म्यंनामद्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

भेक्षणाम् ॥ ५ ॥ भगवानुवाच ॥ उत्पत्स्यतिसुतोस्माकं षण्मुखस्सुमहाबलः ॥ तारकन्दैत्यराजानं सचैनंघातयिष्यति॥ ६ ॥ गच्छत्वंविज्वराभूत्वा शृणुभूयोवचश्चमे ॥ अत्रस्थितमिदंलिङ्गं योस्माकंपूजयिष्यति ॥ ७ ॥ समर्त्योमद्गणो भूत्वा मत्सकाशमुपैष्यति ॥ एवमुक्तागतासाध्वी देवराड्यत्रसंस्थितः ॥ ८ ॥ सर्वदुःखविनिर्मुक्ता सर्वदैत्यभयोज्झिता ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपौलोमीश्वरमाहात्म्यन्नाम द्वाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि शाण्डिल्येश्वरमुत्तमम् ॥ ब्रह्मणःपश्चिमेभागे धनुषांषोडशान्तरे ॥ १ ॥ महाप्रभावंलिङ्गन्तद्दर्शनात्पापनाशनम् ॥ शाण्डिल्योनामब्रह्मर्षिस्सारथिर्ब्रह्मणस्स्मृतः ॥ २ ॥ तपस्वीसमहातेजा ज्ञाननिष्ठोजितेन्द्रियः ॥ सप्रभासंसमासाद्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ३ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गं सोमेशादुत्तरेस्थितम् ॥ सस्वयं पूजयामास दिव्याब्दानांशतंप्रिये ॥ ४ ॥ ततोभिलषितंप्राप्य कृतकृत्योबभूवह ॥ सईश्वरप्रसादेन अणिमादिगुणैर्यु

दो० । शांडिल्येश्वर देवको थाप्यो जिमि शांडिल्य । इकसौ तेईसवें महं सोइ चरित साकल्य ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर ब्रह्माके पश्चिम भाग में सोलह धनुष के अन्तर पै उत्तम शांडिल्येश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ बड़े प्रभाववाला वह लिंग दर्शनसे पापनाशक है शाडिल्य नामकब्रह्मर्षि ब्रह्माके सारथी कहेगये हैं ॥ २ ॥ वे ज्ञान में निष्ठ व जितेन्द्रिय तथा बड़े तेजवान् तपस्वी थे उन्होंने प्रभासक्षेत्र में आकर दारुण तप कियाहै ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! उन्होंने सोमेशजी से उत्तर में स्थित महालिंगको थापकर देवताओंके सौ वरस तक पूजन किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर वे अभिलाषको प्राप्तहोकर कृतकृत्यहुये और ईश्वरकी प्रसन्नतासे वे

अणिमादिगुणों से युक्तहुये ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! जिन शिवजी को देखकर मनुष्य शीघ्रही पापरहित होताहै बाल्यावस्था में व वृद्धता तथा युवावस्थामें जिस पाप को ॥ ६ ॥ जो मनुष्य अज्ञान या ज्ञानसे भी करताहै वह सब शांडिल्येश्वरजीके दर्शनसे नाशको प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशांडिल्येश्वरमाहात्म्यंनामत्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । थाप्यो क्षेमेश्वर शिवहिं क्षेमेश्वर नरपाल । इकसौ चौबीसवें महं सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे उत्तरके कोने में

तः ॥ ५ ॥ यंदृष्ट्वातुनरस्सद्यो विपापस्समजायते ॥ बाल्येवयसियत्पापं वार्द्धकेयौवनेपिवा ॥ ६ ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि यःकरोतिनरःप्रिये ॥ तत्सर्वंनाशमायाति शाण्डिल्येश्वरदर्शनात ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशाण्डिल्येश्वरमाहात्म्यन्नामत्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि क्षेमेश्वरमनुत्तमम् ॥ तस्मादुत्तरकोणस्थं कपालेशाग्निगोचरे ॥ १ ॥ धनुषांपञ्चदशके कपालेश्वरतःस्थितम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि सर्वपातकनाशनम् ॥ २ ॥ क्षेममूर्त्तिःपुराराजा बभूवसुमहाबलः ॥ तेनतत्रतपस्तप्तं चिरकालंमहात्मना ॥ ३ ॥ तेनात्रस्थापितंलिङ्गं भक्त्याभावितचेतसा ॥ तन्दृष्ट्वाक्षेममायाति कार्यंक्षेमेणसिद्ध्यति ॥ ४ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा भूयाज्जन्मनिजन्मनि ॥ एवंक्षेमेश्वरंलिङ्गं ख्यातंपातकनाशनम् ॥ ५ ॥ सर्वकामप्रदंनॄणां सर्वसौभाग्यदायकम् ॥ दर्शनेनापितस्याशु गोशतस्यफलंस्मृतम् ॥ ६ ॥ तस्मात्क्षेम

स्थित व कपालेश्वरजीसे आग्नेय दिशामें अतिउत्तम क्षेमेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ कपालेश्वर से पन्द्रह धनुष पै स्थित महाप्रभाववाला लिंग सब पातकोंका नाशकहै ॥ २ ॥ पुरातन समय बड़ा बलवान् क्षेममूर्ति राजाहुआ है उस महात्मा ने वहां बहुत दिनोंतक तप कियाहै ॥ ३ ॥ और भक्तिसे शुद्धचित्तकरके उसने यहां लिंगको थापा है उन शिवजीको देखकर मनुष्य कल्याण को प्राप्तहोताहै व क्षेम से कार्य सिद्धहोताहै ॥ ४ ॥ और जन्म जन्ममें सब कामनाओंसे समृद्धात्मा होताहै इसप्रकार पातकोंका नाशक क्षेमेश्वर लिंग प्रसिद्धहुआ ॥ ५ ॥ जोकि मनुष्योंके सब कामनाओं का दायक व सब सौभाग्यों को देनेवालाहै और उसके दर्शन से भी

उसको सौ गोदानका फल कहागयाहै ॥ ६ ॥ इसलिये क्षेमके फलको चाहनेवाला वह नित्यही उस लिंगके आश्रित होवै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवी दयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांक्षेमेश्वरमाहात्म्यंनामचतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । थप्यो सागरादित्यको यथा सगर नरपाल । इकसौ पच्चीसवें महं सोई कह्यो हवाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर भैरवेश व मृत्युञ्जय रुद्र से पश्चिम ओर उत्तम सागरादित्य के समीपजावै ॥ १ ॥ सब रोगों के नाश करनेवाले व दरिद्रसमूह को विनाशनेवाले जोकि कामेश्वरजी से दक्षिण व आग्नेयकोण में थोड़ेही दूर पै टिके हैं ॥ २ ॥ हे महादेवि ! महात्मा सगरजी ने उनको थापा है और उसने इसप्रकार पापनाशक प्रभास महाक्षेत्रको जानकर ॥ ३ ॥ वहीं बड़ा तपकर सूर्यवंशमें उत्पन्न महात्मा सगरजी ने इस क्षेत्रमें सूर्यनारायणजीको प्रसन्न किया ॥ ४ ॥ शत्रुवों को नाशकरनेवाले जिन्होंने साठहज़ार पुत्रोंको पाया है उन सगर भूपति ने वहां सूर्यनारायण को पाकर स्थापित कियाहै ॥ ५ ॥ हे देवि ! वही समुद्र दशहज़ार योजन चौड़ाहै और अट्ठासीहज़ार योजन लम्बा कहागया है ॥ ६ ॥ हे देवि ! इस मन्वन्तर में जो समुद्रों से चारों दिशाओं में फेंका गया है उसका यह सागरसंज्ञक नाम कहागया है ॥ ७ ॥ और जिसके प्रसिद्ध

फलाकांक्षी नित्यंतल्लिङ्गमाश्रयेत ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे क्षेमेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सागरादित्यमुत्तमम् ॥ भैरवेशात्पश्चिमतो रुद्रान्मृत्युञ्जयात्तथा ॥ १ ॥ कामेशाद्दक्षिणाग्नेये नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ सर्वरोगप्रशमनं दारिद्र्यौघविनाशनम् ॥ २ ॥ प्रतिष्ठितंमहादेवि सगरेणमहात्मना ॥ ज्ञात्वासेवंमहाक्षेत्रं प्रभासंपापनाशनम् ॥ ३ ॥ तपस्तप्त्वामहत्तत्र सूर्यस्तत्रैवतोषितः ॥ सूर्यवंशभवेनात्र सगरेणमहात्मना ॥ ४ ॥ षष्टिपुत्रसहस्राणि यःप्रापरिपुसूदनः ॥ सूर्यंतत्रसमासाद्य सगरःपृथिवीपतिः ॥ ५ ॥ सएवसागरो देवि योजनायुतविस्तृतः ॥ अष्टासीतिसहस्रंवै योजनानांप्रकीर्त्तितम् ॥ ६ ॥ अस्मिन्मन्वन्तरेक्षिप्तं सागरैश्चचतुर्द्दिशम् ॥ तस्येदंकीर्त्तितन्देवि स्मृतंसागरसंज्ञितम् ॥ ७ ॥ यस्याद्यापीहगायन्ति पुराणेप्रथितंयशः ॥ तेनायंस्थापितोदेवो

यशको आज भी इस संसार में विद्वान् पुराण में गाते हैं उसने जलको चुरानेवाले इन सूर्यनारायणजीको थापा है ॥ ८ ॥ उन सूर्यनारायणजी को देखकर मनुष्य न जड़ होताहै और न अन्ध, न दरिद्री, न दुःखित होताहै और न प्रियसे वियोगी न रोगी और न पापकारी होताहै ॥ ९ ॥ हे महादेवि ! माघमहीने में शुक्लपक्ष में जितेन्द्रिय पुरुष छठि तिथिमें उपासकरके रातमें उन सूर्यनारायणके आगे सोवै ॥ १० ॥ इसके अनन्तर जागकर सप्तमीमें भक्तिसे सूर्यनारायणजीको पूजै और भक्ति से ब्राह्मणों को भोजन करावै व वित्तशाठ्यको वर्जित करै ॥ ११ ॥ यहां बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे व उत्तम कियेहुये तप से मनुष्य उस गतिको प्राप्तहोते हैं कि

भास्करोवारितस्करः ॥ ८ ॥ तन्दृष्ट्वानजडोनान्धो नदरिद्रोनदुःखितः ॥ नचैवेष्टवियोगीस्यान्नरोगीनैवपापकृत् ॥ ९ ॥ माघेमासिमहादेवि सितपक्षेजितेन्द्रियः ॥ षष्ठ्यामुपोषितोभूत्वा रात्रौतस्याग्रतस्स्वपेत् ॥ १० ॥ ततोविबुध्य सप्तम्यां भक्त्याभानुंसमर्चयेत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या वित्तशाठ्यंविवर्जयेत् ॥ ११ ॥ सुतप्तेनेहतपसा यज्ञैर्वाबहुदक्षिणैः ॥ ताङ्गतिन्तेनरायान्ति याङ्गतिंसूर्यमाश्रिताः ॥ १२ ॥ भक्त्यातुपुरुषैःपूज्यः कृतोदूर्वाङ्कुरैरपि ॥ भानुर्ददाति हिफलं सर्वयज्ञैस्सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सूर्यमेवाभिपूजयेत ॥ जनकादयोयतःसिद्धिं गताभानुंप्रपूज्य च ॥ १४ ॥ सर्वात्मासर्वलोकेशो देवदेवोप्रजापतिः ॥ सूर्यएवात्रिलोकस्य मूलंपरमदैवतम् ॥ १५ ॥ वसन्तेकपिलस्सूर्यो ग्रीष्मेकाञ्चनसुप्रभः ॥ श्वेतवर्णस्तुवर्षासुपाण्डुश्शरदिभास्करः ॥ १६ ॥ हेमन्तेताम्रवर्णस्तु शिशिरेलोहितोरविः ॥ एवंवर्णविशेषेण ध्यायेत्सूर्यंयथाक्रमम् ॥ १७ ॥ पूजयित्वाविधानेन मनसाविजितेन्द्रियः ॥ पठेन्नामसहस्रन्तु सर्वपा

जिसको सूर्यनारायण में टिकेहुये मनुष्य पाते हैं ॥ १२ ॥ और भक्तिसे पुरुषों करके दूर्वाकुरों से भी पूजन कियेहुये सूर्यनारायणजी सब यज्ञों से दुर्लभ फलको देते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये सब यत्नसे सूर्यहीको पूजै क्योंकि जनकादिक सूर्यनारायणको पूजकर सिद्धिको प्राप्तहुयेहैं ॥ १४ ॥ सबोंकी आत्मा व सब लोकोंके स्वामी देवदेव प्रजापति सूर्यही त्रिलोकके मूल व बड़ेभारी देवता हैं ॥ १५ ॥ वसन्तऋतुमें सूर्यनारायण कपिल रंगके होते हैं व ग्रीष्मऋतु में सुवर्ण के समान शोभावाले होते हैं और वर्षाऋतु में श्वेतरंग तथा शरदऋतुमें सूर्यनारायणजी पाण्डुवर्ण होते हैं॥ १६ ॥ हेमन्त में ताम्र रंगवाले व शिशिरमें सूर्यनारायणजी अरुण रंग होते हैं इसप्र-

कार क्रमपूर्वक रंगों के भेदसे सूर्यनारायणजी को ध्यानकरै ॥ १७ ॥ विधि से पूजकर मन करके जितेन्द्रिय मनुष्य समस्त पातकों के नाशनेवाले सहस्रनामको पढ़ै ॥ १८ ॥ देवीजी बोलीं कि हे शङ्करजी ! मेरे ऊपर प्रसन्नतासे हज़ार नामोंको मुझसे कहिये और सहस्रनाम के बराबर कुछ भी अन्यत्र कहागयाहै ॥ १९ ॥ महादेव जी बोले कि सहस्रनामसे कुछ प्रयोजन नहीं किन्तु उत्तम स्तोत्रको पढ़ै जो गुप्त व पवित्र तथा उत्तम नाम हैं ॥ २० ॥ उनको मैं तुमसे कहूंगा बड़े यत्नसे सुनिये कि विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर, रवि ॥ २१ ॥ लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता व अन्धकारनाशक ॥ २२ ॥

तकनाशनम् ॥ १८ ॥ देव्युवाच ॥ नाम्नांसहस्रम्मेब्रुहि प्रसादान्ममशङ्कर ॥ तुल्यन्नामसहस्रस्य किमप्यन्यत्रकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अलन्नामसहस्रेण पठेच्चैवशुभंस्तवम् ॥ यानिनामानिगुह्यानि पवित्राणिशुभानिच ॥ २० ॥ तानितेकीर्तयिष्यामि प्रयत्नादवधारय ॥ विकर्तनोविवस्वांश्च मार्त्तण्डोभास्करोरविः ॥ २१ ॥ लोकप्रकाशकः श्रीमाल्ँलोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥ लोकसाक्षीत्रिलोकेशः कर्ताहर्तातमिस्रहा ॥ २२ ॥ तपनस्तापनश्चैव शुचिस्सप्ताश्ववाहनः ॥ गभस्तिहस्तोब्रह्माच सर्वदेवनमस्कृतः ॥ २३ ॥ एकविंशकइत्येवंस्तवस्तुष्टोमहामनाः ॥ शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः ॥ २४ ॥ स्तवराजइतिख्यातस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ यइदंपठतिस्तोत्रं शृणोतिचमहेश्वरि ॥ २५ ॥ यश्चानेनमहादेवि द्वेसन्ध्येस्तमनोदये ॥ स्तौत्यर्कंप्रयतोभूत्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा सूर्यलोकंसग

तपन, तापन, शुचि, सप्ताश्ववाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा व सब देवों से प्रणाम किये हुये ॥ २३ ॥ यह इक्कीस नामोंवाला स्तोत्र है और प्रसन्न होतेहुये उदारमनवाले सूर्यनारायणजी शरीरको आरोग्यदायक व धनकी बढ़ती तथा यशको करतेहैं ॥ २४ ॥ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध यह स्तवराज ऐसा कहागयाहै हे महेश्वरि ! जो इस स्तोत्र को पढ़ता व सुनताहै ॥ २५ ॥ और हेमहादेवि ! अस्त व उदय दोनों संध्याओंमें जो मनुष्य पवित्रहोकर सूर्यनारायणकी स्तुति करताहै वह सब पापोंसे छूटजाताहै

और सब कामनाओंसे समृद्ध चित्तवाला होकर वह सूर्यलोकको जाताहै ॥ २६ ॥ हे देवि ! सागरादित्यसे उपजाहुआ यह ऐसा माहात्म्य कहागया है सुनाहुआ यह दुःखोंको नाश करनेवाला व महापापोंको विनाशनेवाला होताहै ॥ २७ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसागरादित्यमाहात्म्यं नामपञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । पूजि उग्रसेनेश्वरहिं उग्रसेन भूपाल । इकसौ छब्बीसवें महँ सोई चरितरसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सागरादित्य से ईशानकोण

च्छति ॥ २६ ॥ इत्येवंकथितन्देवि माहात्म्यंसागरार्कजम् ॥ श्रुतंदुःखप्रशमनं महापातकनाशनम् ॥ २७ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सागरादित्यमाहात्म्यन्नामपञ्चविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ ❀ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अक्षमालेश्वरम्परम् ॥ सागरार्कादीशकोणे धनुःपञ्चाशदुत्तरे ॥ १ ॥ संस्थितंपापशमनं युगलिङ्गंमहाप्रभम् ॥ २ ॥ द्वादशाब्दंपुरादेवि नववर्षवलाहकः ॥ ऋषयःकष्टमापन्नाः समयाचन्ततेन्त्यजम् ॥ ३ ॥ प्राणानांपरिरक्षार्थमागतास्तवसद्मनि ॥ एवंज्ञात्वाधर्मबुद्धेसाम्प्रतम्माविचारय ॥ ४ ॥ ददस्वान्नंददस्वान्नमस्माकमिहयाचताम् ॥ ५ ॥ चाण्डालउवाच ॥ यद्येवंभवताकार्यमिदमङ्गीकृतंध्रुवम् ॥ तर्हीयंमत्सुताकन्या भवद्भिपरिगृह्यताम् ॥ ६ ॥ भवतांयोग्रणीःश्रेष्ठः सचेमामुद्वहत्यलम् ॥ दास्येवर्षाशनंपश्चादीप्सितंभवतान्द्विजाः ॥ ७ ॥

व उत्तर में पचास धनुष पै उत्तम अक्षमालेश्वरजीके समीपजावै ॥ १ ॥ पातकोंके विनाशनेवाले व महाप्रभावान् दोनों लिंग भलीभांति स्थित हैं ॥ २ ॥ हे देवि ! पुरातन समय बारहवर्ष तक मेघ नहीं बरसा तब दुःखको प्राप्तहोतेहुये उन ऋषियों ने चाण्डाल से याचना किया ॥ ३ ॥ कि प्राणोंकी रक्षाके लिये हमलोग तुम्हारे घरमें आये हैं ऐसा जानकर हे धर्मबुद्धे ! इस समय विचार मत कीजिये ॥ ४ ॥ किन्तु यहां मांगतेहुये हमलोगोंको अन्न दीजिये अन्न दीजिये ॥ ५ ॥ चाण्डाल बोला कि यदि आपने ऐसे इस कार्यको निश्चयकर अंगीकार कियाहै तो आपलोग इस मेरी कुवारी कन्याको ग्रहणकीजिये ॥ ६ ॥ हे ब्राह्मणो ! आप लोगों में

व दुःखोंको नाश करनेवाला है ॥ २८ । २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामुग्रसेनेश्वरमाहात्म्यंनामषड्विं
ततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कमल नाल महं नन्दि कह मुनिन्ह दिखायो शम्भु । इकसौ सत्ताईस महं सोइ चरित सुख खम्भु ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर उग्रसेनेश्वरजी से पूर्वभागमें स्थित पाशुपतेश्वर देवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ गोप्यादित्यसे आग्नेय व कुछ दक्षिण में आश्रित वह लिंग दर्शन से समस्त पातकों

पशमनं श्रुतंदुःखनिबर्हणम् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्ड उग्रसेनेश्वरमाहात्म्यन्नामषड्विंशाधिकशत
तमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेविदेवंपाशुपतेश्वरम् ॥ उग्रसेनेश्वराद्देविपूर्वभागेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ गोपादित्यात्त थाग्नेयां किञ्चिद्देदक्षिणाश्रितम् ॥ सर्वपापहरंलिङ्गं दर्शनात्सर्वकामदम् ॥ २ ॥ अस्मिन्युगेसमाख्यातं तत्सन्तोषेश्व रंप्रिये ॥ सन्तुष्टोभगवान्यस्मात तेषांतत्रतपस्विनाम् ॥ ३ ॥ तेनसन्तोषनाम्नातु प्रख्यातंधरणीतले ॥ युगलिङ्गंमहा देवि सिद्धिस्थानंमहाप्रभम् ॥ ४ ॥ स्थानंपाशुपतानाञ्च भेषजम्पापरोगिणाम् ॥ चत्वारोमुनयःसिद्धास्तस्मिँल्लिङ्गेय शस्विनि ॥ ५ ॥ वामदेवश्चसावर्णिरघोरःकपिलस्तथा ॥ तस्मिँल्लिङ्गेतुसंसिद्धा अनादीशेनिरञ्जने॥६॥ सम्यग्देवस्यसा मीप्ये वनंश्रीमुखसंज्ञितम् ॥ लक्ष्म्यास्थानंमहादेवि योगिसिद्धैस्तुसेवितम् ॥ ७ ॥ तत्रपाशुपताःश्रेष्ठा ममलिङ्गार्चनेर

का नाशक व सब कामनाओं का दायक है ॥ २ ॥ हे प्रिये ! इस युगमें वह लिंग सन्तोषेश्वरनामक प्रसिद्ध है जिसलिये वहां उन तपस्वियोंके ऊपर भगवान् शिव जी सन्तुष्टहुये ॥ ३ ॥ उससे सन्तोष नाम करके पृथ्वी में वह लिंग प्रसिद्धहुआ हे महादेवि ! यह युगलिंग महाप्रकाशवान् सिद्धिस्थान है ॥ ४ ॥ हे यशस्विनि ! वह शैवोंका स्थान पापरोगीवाले जनोंका औषध है और उस लिंगमें चार मुनि सिद्धहुये हैं ॥ ५ ॥ वामदेव, सावर्णि,अघोर व कपिलजी उस अनादीश्वर व निरंजन लिंग में भलीभांति सिद्धहुये हैं ॥ ६ ॥ हे महादेवि ! उन शिवदेवजी के समीप योगियों व सिद्धों से सेवित श्रीमुखनामक भलीभांति लक्ष्मी का स्थानहै ॥ ७ ॥ वहां उत्तम

कर वहींपर स्थितहुई व हे प्रिये ! देवताओंके सौ वर्षतक उसने उस लिंगको पूजन किया ॥ १९ ॥ इसप्रकार उसके प्रभावसे अरुन्धतीजी आकाशके मध्य में देखपड़ती हैं और देखीहुई यह पतिव्रता अरुन्धती जी पातकोंको नाशकरती हैं ॥ २० ॥ इस प्रकार अक्षमालेश्वरका यथायोग्य प्रभाव कहागया तदनन्तर द्वापरके अन्तमें कलियुग में संध्यांशक प्राप्तहोने पर ॥ २१ ॥ अन्धासुरका पुत्र उग्रसेन ऐसाहुआ है वह प्रभास को प्राप्तहोकर पुत्रके लिये अक्षमालेश्वरनामक लिंगके समीप आया व उत्तम माहात्म्यको जानकर महादेवजीको पन्द्रह बरस तक भलीभांति आराधन कर ॥ २२ । २३ ॥ उस समय उसने कंसासुर ऐसे प्रसिद्ध पुत्रको पाया व उस

इतिसंचिन्त्यमनसा तत्रैवनिरताभवत् ॥ पूजयामासतल्लिङ्गं दिव्याब्दानांशतम्प्रिये ॥ १९ ॥ एवंतस्यप्रभावेण दृश्यतेगगनान्तरे ॥ अरुन्धतीसतीह्येषा दृष्टादुष्कृतनाशिनी ॥ २० ॥ अक्षमालेश्वरस्यैवं यथावत्कथितस्तथा ॥ ततस्तुद्वापरस्यान्ते कलौसन्ध्यांशकेगते ॥ २१ ॥ अन्धासुरसुतोह्यासीदुग्रसेनइतिश्रुतः ॥ सप्रभासंसमासाद्य पुत्रार्थं लिङ्गमेयिवान् ॥ २२ ॥ अक्षमालेश्वरंनाम ज्ञात्वामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ समाराध्यमहादेवं वर्षाणिदशपञ्चच ॥ २३ ॥ सत्रा सवांस्तदापुत्रं कंसासुरमितिश्रुतम् ॥ तत्कालान्तरमारभ्य उग्रसेनेश्वरोभवत् ॥ २४ ॥ पापघ्नःसर्वजन्तूनां दर्शनात्स्प र्शनादपि ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमः ॥ २५ ॥ महान्तिपातकान्येव नश्यन्त्यस्यैवदर्शनात् ॥ तत्रैवऋषि पञ्चम्यां प्राप्तेभाद्रपदेशुभे ॥ २६ ॥ अक्षमालेश्वरंप्राप्य मुच्यतेनारकाद्भयात् ॥ गोप्रदानंप्रशंसन्ति तत्रान्नमुदकं तथा ॥ २७ ॥ सर्वपापविनाशाय प्रेत्यानन्तसुखायच ॥ इतितेकथितंदेवि अक्षमालेश्वरोद्भवम् ॥ २८ ॥ माहात्म्यंपा

समय से लगाकर वे शिवजी उग्रसेनेश्वरनामक हुये ॥ २४ ॥ वे शिवजी दर्शन व स्पर्श करने से सब प्राणियों के पापनाशक हैं ब्रह्महत्या व मदिरापीना, चोरी और गुरुकी स्त्री से भोग करना ॥ २५ ॥ ये बडेभारी पातक इन्हीं शिवजीके दर्शन से नाशहोजाते हैं और उत्तम भादौं महीने के प्राप्तहोनेपर ऋषिपञ्चमी में वहीं पर ॥ २६ ॥ अक्षमालेश्वरजी को प्राप्तहोकर नरकके भयसे मनुष्य छूटजाता है और वहा पर गोदानकी विद्वान् प्रशंसा करते हैं वैसेही अन्न व जलका दान ॥ २७ ॥ सब पापोंके नाशनेके लिये और परलोकमें अमित सुखके लिये होताहै हे देवि ! अक्षमालेश्वर से उपजाहुआ यहमाहात्म्य तुमसे कहागया सुनाहुआ जोकि पातकों

का विनाशक व दुःखोंको नाश करनेवाला है ॥ २८ । २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामुग्रसेनेश्वरमाहात्म्यनामषड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कमल नाल महं नन्दि कहं मुनिन्ह दिखायो शम्भु । इकसौ सत्ताईस महं सोइ चरित सुख खम्भु ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर उग्रसेनेश्वरजी से पूर्वभागमें स्थित पाशुपतेश्वर देवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ गोप्यादित्यसे आग्नेय व कुछ दक्षिण में आश्रित वह लिंग दर्शन से समस्त पातकों

पशमनं श्रुतंदुःखनिबर्हणम् ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्ड उग्रसेनेश्वरमाहात्म्यन्नामषड्विंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेविदेवंपाशुपतेश्वरम् ॥ उग्रसेनेश्वराद्देविपूर्वभागेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ गोपादित्यात्तथाग्नेयां किञ्चिद्देदक्षिणाश्रितम् ॥ सर्वपापहरंलिङ्गं दर्शनात्सर्वकामदम् ॥ २ ॥ अस्मिन्युगेसमाख्यातं तत्सन्तोषेश्वरंप्रिये ॥ सन्तुष्टोभगवान्यस्मात् तेषांतत्रतपस्विनाम् ॥ ३ ॥ तेनसन्तोषनाम्नातु प्रख्यातंधरणीतले ॥ युगलिङ्गंमहादेवि सिद्धिस्थानंमहाप्रभम् ॥ ४ ॥ स्थानंपाशुपतानाञ्च भेषजम्पापरोगिणाम् ॥ चत्वारोमुनयःसिद्धास्तस्मिँल्लिङ्गेयशस्विनि ॥ ५ ॥ वामदेवश्चसावर्णिरघोरःकपिलस्तथा ॥ तस्मिँल्लिङ्गेतुसंसिद्धा अनादीशेनिरञ्जने॥६॥ सम्यग्देवस्यसमीप्ये वनंश्रीमुखसंज्ञितम् ॥ लक्ष्म्यास्थानंमहादेवि योगिसिद्धैस्तुसेवितम् ॥ ७ ॥ तत्रपाशुपताःश्रेष्ठा ममलिङ्गार्चनेर

का नाशक व सब कामनाओं का दायक है ॥ २ ॥ हे प्रिये ! इस युगमें वह लिंग सन्तोषेश्वरनामक प्रसिद्ध है जिसलिये वहां उन तपस्वियोंके ऊपर भगवान् शिवजी सन्तुष्टहुये ॥ ३ ॥ उससे सन्तोष नाम करके पृथ्वी में वह लिंग प्रसिद्धहुआ है महादेवि ! यह युगलिंग महाप्रकाशवान् सिद्धिस्थान है ॥ ४ ॥ हे यशस्विनि ! वह शैवोंका स्थान पापरोगीवाले जनोंका औषध है और उस लिंगमें चार मुनि सिद्धहुये हैं ॥ ५ ॥ वामदेव, सावर्णि,अघोर व कपिलजी उस अनादीश्वर व निरंजन लिंग में भलीभांति सिद्धहुये हैं ॥ ६ ॥ हे महादेवि ! उन शिवदेवजी के समीप योगियों व सिद्धों से सेवित श्रीमुखनामक भलीभांति लक्ष्मी का स्थानहै ॥ ७ ॥ वहां उत्तम

शैवलोग मेरे पूजन में तत्पर रहते हैं उनके निवास के लिये देवीजीमे योग करके वह वन बनागयाहै ॥ ८ ॥ हे सुश्रोणि ! उसके बीचमे पूर्वमुखवाला लिंग स्थितहै उसमें अघोरादिक शैव महर्षि सिद्धहुये हैं ॥ ९ ॥ और वे इसी शरीर से शिवजी के मन्दिर को चलेगये देवताओं व सिद्धों से सेवित उस प्रभासक्षेत्र में ॥ १० ॥ हे प्रिये ! उस मन्दिर में मुझको इससे सदैव निवास रुचताहै कि सब स्थानों में वह अतिसुन्दर है ॥ ११ ॥ हे देवि ! वहां जो शैव मेरे ध्यान में लगेहुये हैं ब्रह्मचर्य से संयुत वे सब मेरे पुत्र हैं ॥ १२ ॥ वैसेही हे देवि ! दान्त व शान्त वे पुरुष पवित्र होकर उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं देवीजी बोलीं कि जो अक्षमालेश्वर नाम पहले

ताः ॥ तेषांवासाययोगेन तद्देव्यानिर्मितंवनम् ॥ ८ ॥ तस्यमध्येतुसुश्रोणि लिङ्गंपूर्वमुखंस्थितम् ॥ तस्मिन्पाशुपताः सिद्धा अघोराद्यामहर्षयः ॥ ९ ॥ अनेनैवशरीरेण गतास्तेशिवमन्दिरम् ॥ तत्रप्राभासिकेक्षेत्रे सुरसिद्धनिषेविते ॥ १० ॥ रोचतेमेसदावासस्तस्मिन्नायतनेसदा ॥ सर्वेषामेवस्थानानामतिरम्यमितिप्रिये ॥ ११ ॥ तत्रपाशुपतादेवि ममध्यानपरायणाः ॥ ममपुत्रास्तुतेसर्वे ब्रह्मचर्येणसंयुताः ॥ १२ ॥ दान्ताःशान्तास्तथादेवि पूताःसिद्धिम्पराङ्गताः ॥ देव्युवाच ॥ अक्षमालेश्वरंनाम यत्पूर्वंसमुदाहृतम् ॥ १३ ॥ कथंतदभवद्देव कथयस्वप्रसादतः ॥ ईश्वरउवाच ॥ आसीत्पुरामहादेवि सतीचाधमयोनिजा ॥ १४ ॥ अक्षमालेतिविनाम्नी सर्वलक्षणलक्षिता ॥ एकदासमनुप्राप्ते दुर्भिक्षेकालपर्ययात् ॥ १५ ॥ सप्तर्षयोमहादेवि क्षुधाक्रान्ताविचेतसः ॥ सर्वेचान्नंपरीप्सन्तो गताश्चाण्डालवेश्मनि ॥ १६ ॥ ज्ञात्वान्नसंग्रहंतस्य प्रार्थयांचक्रुरन्त्यजम् ॥ भोअन्त्यजमहाबुद्धे रक्षास्माननन्नदानतः ॥ १७ ॥ प्राणसन्देहमापन्नान् कृशाङ्गा

कहागया है ॥ १३ ॥ हे देव ! वह कैसेहुआ इसको प्रसन्नता से कहिये महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! पुरातन समय वह अक्षमाला पतिव्रता नीच जातिमें उत्पन्न हुई है ॥ १४ ॥ समस्त लक्षणोंसे लक्षित वह अक्षमाला ऐसे नामवाली थी एक समय कालके व्यतिक्रम से दुर्भिक्षप्राप्त होनेपर ॥ १५ ॥ हे महादेवि ! क्षुधासे संयुत सप्तर्षिलोग चैतन्यता रहितहुये और अन्नको चाहतेहुये सब चाण्डालके घरमेंगये ॥ १६ ॥ और उसके अन्नका संग्रह जानकर चाण्डालसे याचनाकिया कि हे महाबुद्धे,

अन्त्यज ! अन्नदानसे प्राणोंके सन्देह में प्राप्त व दुर्बल अङ्गोंवाले तथा क्षुधासे पीड़ित हमलोगों की रक्षा कीजिये अहो तुम धन्य व पूजनीयहो और चाण्डाल नहीं कहेजाते हो ॥ १७ । १८ ॥ क्योंकि इस प्रलय के होनेपर तुम्हारे घर मे अन्न स्थितहै वे प्रशंसनीय हैं और वे प्रणाम करने योग्य हैं और वे देवताओंसेभी पूजने योग्यहैं ॥ १९ ॥ कि दुर्भिक्ष प्राप्तहोने पर जिनके घर में अन्न होवै अनावृष्टि से देश में अन्न का नाशहोनेपर ॥ २० ॥ जो एक ब्राह्मणको भोजन कराताहै उससे करोड ब्राह्मण भोजितहोते हैं ॥ २१ ॥ चाण्डाल बोला अहो बड़ाआश्चर्य है जोकि इससमय यहदेखपड़ता है कि अन्नकी इच्छावाले ये सब ऋषि मेरे घरमें प्राप्तहुयेहैं ॥ २२ ॥ ब्राह्मणों

न्क्षुत्प्रपीडितान् ॥ अहोधन्योसिपूज्योसि नत्वमन्त्यजउच्यसे ॥ १८ ॥ यदस्मिन्प्रलयेजाते स्थितंधान्यंगृहेतव ॥ तेधन्यास्तेनमस्कार्यास्तेपूज्यादेवतैरपि ॥ १९ ॥ दुर्भिक्षेसमनुप्राप्ते येषामन्नंगृहेभवेत् ॥ अनावृष्टिहतेदेशेसस्येचप्रलयंगते ॥ २० ॥ एकंयोभोजयेद्विप्रं कोटिर्भवतिभोजिता ॥ २१ ॥ अन्त्यजउवाच ॥ अहोआश्चर्यमतुलं यदेतद् दृश्यतेधुना ॥ सर्वेमीमद्गृहंप्राप्ता ऋषयश्चान्नकाङ्क्षिणः ॥ २२ ॥ शूद्रान्नमपिनादेयं ब्राह्मणैःकिमुतान्त्यजात् ॥ आमंवायदिवापक्वं शूद्रान्नंयस्तुभक्षति ॥ २३ ॥ सतावच्छूकरो ग्राम्यस्तस्यवाजायतेकुले ॥ अमृतंब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नंपयःस्मृतम् ॥ २४ ॥ वैश्यान्नमन्नमित्याहुः शूद्रान्नंरुधिरंस्मृतम् ॥ शूद्रान्नंशूद्रसंपर्कं शूद्रेणसहपाचनम् ॥ २५ ॥ शूद्रदानंद्विजंदेवि ज्वलन्तमपिपातयेत् ॥ अग्निहोत्रीनुयोविप्रः शूद्रान्नेननिवर्त्तते ॥ २६ ॥ एवंतस्यप्रणश्यन्ति आत्माब्रह्मत्रयोग्नयः ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन ब्राह्मणोम्रियतेयदि ॥ २७ ॥ षण्मासाभ्यन्तरेविप्रः पिशाचःसोभिजायते ॥ शूद्रान्नेनद्विजोयस्तु

को शूद्रका अन्न भी न लेना चाहिये फिर चाण्डाल से क्या कहनाहै क्योंकि जो ब्राह्मण कच्चे या पक्के शूद्रान्नको खाता है ॥ २३ ॥ वह तबतक ग्रामीण शूकर होताहै या उसके वंशमें पैदा होताहै ब्राह्मण का अन्न अमृतहै व क्षत्रियका अन्न दूध कहागयाहै ॥ २४ ॥ और वैश्यके अन्नको विद्वानों ने अन्न ऐसा कहा है व शूद्रका अन्न रुधिर कहागया है शूद्रका अन्न, शूद्रका मेल और शूद्रके साथ अन्न पकाना ॥ २५ ॥ और हे देवि ! शूद्रका दान जलतेहुये भी ब्राह्मण को पतित करता है जो अग्निहोत्री ब्राह्मण शूद्रके अन्नसे जीविका करताहै ॥ २६ ॥ उसकी इसीप्रकार जीवात्मा, ब्रह्म (वेद) व तीनों अग्नियां नष्ट होजाती हैं शूद्रका अन्न पेटमें स्थित

रहने से यदि ब्राह्मण मरता है ॥ २७ ॥ तो छः महीने के बीचमें वह ब्राह्मण पिशाच होताहै और जो ब्राह्मण शूद्रके अन्नसे अग्निहोत्र में हवन करताहै ॥ २८ ॥ वह ब्राह्मण मरकर चाण्डाल होताहै इसमें सन्देह नहीं है और जो ब्राह्मण एक महीने भर निरन्तर शूद्रान्नको भोजन करताहै ॥ २९ ॥ वह इस जन्म में शूद्रत्वको प्राप्तहोताहै और मरकरभी शूद्रहोताहै राजाका अन्न तेजको लेताहै व शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको ग्रहण करता है ॥ ३० ॥ और सोनारका अन्न आयुर्बलको नाशकरता है व चमारका अन्न यशको नष्ट करताहै तथा कारीगरका अन्न सन्तानको व धोबीका अन्न बलको नाश करता है ॥ ३१ ॥ और ज्योतिषी व वेश्याका अन्न लोकों से

अग्निहोत्रंजुहोतिच ॥ २८ ॥ चाण्डालोजायतेप्रेत्य सद्विजोनात्रसंशयः ॥ भुनक्तियश्चशूद्रान्नं मासमेकंनिरन्तरम् ॥ २९ ॥ इहजन्मनिशूद्रत्वं मृत.शूद्रोपिजायते ॥ राजान्नंतेजआदत्ते शूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम् ॥ ३० ॥ आयुःसुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्त्तिनः ॥ कारुकान्नंप्रजाहन्ति बलंनिर्णेजकस्यच ॥ ३१ ॥ गणान्नंगणिकान्नञ्च लोकेभ्यःपरिकृन्तति ॥ ३२ ॥ पूयञ्चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्याश्चान्नमिन्द्रियम् ॥ विष्ठावार्द्धुषिकस्यान्नं शिशुविक्रयिणोमलम् ॥ ३३ ॥ सहस्रकृत्वस्तस्यैव भोजनेयत्फलम्भवेत् ॥ तदन्त्यजानामन्नेन सकृद्भुक्तेनवैभवेत् ॥ ३४ ॥ तत्कथंममविप्रेन्द्राश्चाण्डालस्याधमात्मनः ॥ धर्ममेवंविजानन्तः कथमन्नंजिहीर्षथ ॥ ३५ ॥ ऋषयऊचुः ॥ जीवितात्ययमापन्नो योन्नमिच्छति चान्यतः ॥ आकाशइवपङ्केन नसपापेनलिप्यते ॥ ३६ ॥ अजीगर्तःसुतंहन्तुमुपासर्पद्बुभुक्षितः ॥ नचालिप्यतपापेन क्षुत्प्रतीघातमाचरन् ॥ ३७ ॥ भारद्वाजःक्षुतार्तस्तु सपुत्रोविजनेवने ॥ बह्वीगाउग्रजग्राह वृत्रशत्रोर्महात्मनः ॥ ३८ ॥

नष्ट करताहै ॥ ३२ ॥ व वैद्यका अन्न पूय (पीब) और पुंश्चलीका अन्न इन्द्रियसंज्ञकहै व ब्याजखोर का अन्न विष्ठा और पुत्र बेंचनेवालेका अन्न मलहै ॥ ३३ ॥ और हजारबार उसी के अन्नके भोजनमें जो फलहोताहै वही फल चाण्डालों के अन्नके एकबार भोजन से होताहै ॥ ३४ ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्रो ! इसप्रकार धर्मको जानतेहुये तुमलोग मुझ नीच चाण्डाल के अन्नको कैसे लियाचाहते हो ॥ ३५ ॥ ऋषिलोग बोले कि जीवके कष्टको प्राप्त जो अन्य पुरुषसे अन्नको चाहताहै वह पापसे नहीं लिप्तहोताहै जैसे कि आकाश कीचड़से नहीं लिप्तहोताहै ॥ ३६ ॥ क्षुधित अजीगर्त पुत्रको मारने के लिये समीप गयेथे क्षुधाके दूर होने का यत्न करताहुआ पुरुष

पापसे नहीं लिप्त होताहै ॥ ३७ ॥ क्षुधासे विकल पुत्र समेत भारद्वाजने निर्जनवन में महात्मा इन्द्रकी बहुतसी गाइयोंको ग्रहण कियाहै ॥ ३८ ॥ और क्षुधासे विकल महामुनि विश्वामित्रजी धर्म व अधर्म में चतुर होकर गऊको चाण्डालके हाथसे लेकरगये हैं ॥ ३९ ॥ ऐसा कहेहुये उस चाण्डालने अन्नदानसे संयुत अक्षमाला ऐसी कन्याको ब्राह्मणों में मुख्य वसिष्ठजी के लिये दिया ॥ ४० ॥ उसने लिंगका आराधन किया और वही पश्चात् सतीहुई व उसके नामसे पृथ्वी में अक्षमालेश्वरनामक शिवजी हुये ॥ ४१ ॥ और प्राणियोंके मध्य में क्रोधको जीतेहुये उन तपस्वी ब्राह्मणों ने उस लिंग के प्रभाव से उत्तम सिद्धिको पायाहै ॥ ४२ ॥ इसलिये क्षेत्रवासी द्विजोत्तम नित्य उन सदाशिवजी को पूजै ॥ ४३ ॥ देवीजी बोलीं कि हे संसाररूपी समुद्र के पार उतारनेवाले, भगवन्, देवदेवेशजी ! प्रभास महाक्षेत्रमें अद्वितीय व्रतको करनेवाले ॥ ४४ ॥ उनके बहुत पुण्यस्थान व शैवयोग और उत्तमलिंग माहात्म्यको प्रसन्नतासे कहिये ॥ ४५ ॥ और जन्मरहित आदि देव शिवजी उत्तम नरोंसे कैसे पूजनेयोग्य हैं और वहां पाशुपत कैसे शरीरसमेत स्वर्ग को प्राप्तहुये हैं ॥ ४६ ॥ हे प्रभो, देवेशजी ! मेरे ऊपर दया करके इसको कहिये महादेवजी बोले कि हे भद्रे ! जो तुम बड़े भारी शैवयोगको पूछतीहो ॥ ४७ ॥ हे सुव्रते ! उनका जो प्रभाव और उसलिंगका प्रभाव तथा आदिनामक महाप्रभु, जन्मरहित

क्षुधार्त्तोह्यभ्यगाद्गान्तु विश्वामित्रोमहामुनिः ॥ चाण्डालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः ॥ ३९ ॥ इत्युक्तःसतुचाण्डालस्त्वक्षमालेतिकन्यकाम् ॥ ददौविप्रप्रमुख्यायअन्नदानेनसंयुताम् ॥ ४० ॥ तयाचाराधितंलिङ्गंसतीपश्चाद्बभूवह ॥ अक्षमालेश्वरोनामा तस्यानाम्नाधरातले ॥ ४१ ॥ प्राणिनाञ्चजितक्रोधा ब्राह्मणास्तेतपस्विनः ॥ तेनलिङ्गप्रभावेण सिद्धिन्तेपरमाङ्गताः ॥ ४२ ॥ तस्मात्तम्पूजयेन्नित्यं क्षेत्रवासीद्विजोत्तमः ॥ ४३ ॥ देव्युवाच ॥ भगवन्देवदेवेश संसारार्णवतारक ॥ प्रभासेतुमहाक्षेत्रेऽद्वितीयव्रतचारिणाम् ॥ ४४ ॥ स्थानंतेषांमहत्पुण्यं योगंपाशुपतंतथा ॥ कथयस्वप्रसादेन लिङ्गमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४५ ॥ अनादिरादिदेवश्च कथम्पूज्योनरोत्तमैः ॥ कथम्पाशुपतास्तत्रसदेहाःस्वर्गमागताः ॥ ४६ ॥ एतत्कथयदेवेश दयांकृत्वाममप्रभो ॥ ईश्वरउवाच ॥ यत्त्वयापृच्छ्यतेभद्रे योगःपाशुपतोमहान् ॥ ४७ ॥ तेषांचैवप्रभावोयस्तस्यलिङ्गस्यसुव्रते ॥ अनादिमस्यदेवस्य आदिनाम्नोमहाप्रभोः ॥ ४८ ॥ तस्मिंल्लिङ्गेतुदेवेशि, मदीय

शिवजी का जो प्रभाव पूंछागया उसको मैं कहताहूं ॥ ४८ ॥ हे सुश्रोणि, देवेशि ! मेरे व्रतमें टिकेहुये पुरुष उस लिंगके समीप बड़े शैवव्रतको करते हैं ॥ ४९ ॥ और मुझको विस्मय करानेवाले यथोक्त योगको करते हैं उनके ऊपर अनुग्रह के लिये मेरा चित्त दौड़ता है ॥ ५० ॥ सूतजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! सदाशिवजी के वचन को सुनकर विस्मयमनवाली देवी पार्वतीजी सब लोकों के स्वामी पति (शिवजी) से वचन बोलीं ॥ ५१ ॥ कि हे देव ! उनके मध्य में मुझको भी कौतुक है हे महेश्वरजी ! जिसप्रकार महेशजी मेरे दर्शनको प्राप्तहोवैं वैसाही कीजिये ॥ ५२ ॥ पार्वतीजी से ऐसा कहेहुये जगदीश देवजी हँसकर समीपही स्थित नन्दिकेश्वरजी से

व्रतमाश्रिताः ॥ चरन्तियोगंसुश्रोणि व्रतंपाशुपतम्महत् ॥ ४९ ॥ चारयन्तियथोक्तन्तु ममविस्मयकारकम् ॥ तेषामनुग्रहार्थाय ममचित्तंप्रधावति ॥ ५० ॥ सूतउवाच ॥ हरस्यवचनंश्रुत्वा देवीविस्मयमानसा ॥ उवाचवचनंविप्राः सर्वलोकपतिम्पतिम् ॥ ५१ ॥ ममापिकौतुकंदेव तेषांमध्येमहेश्वरः ॥ यथामेदर्शनंयातितथाकुरुमहेश्वर ॥ ५२ ॥ एवमुक्तस्तुपार्वत्या प्रहस्यभुवनेश्वरः ॥ उवाचनंदिनन्देवःप्रणतंपार्श्वतःस्थितम् ॥ ५३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ गच्छशीघ्रंनन्दिकेश यत्रते ममपुत्रकाः ॥ चरन्तिचव्रतंघोरं मदीयञ्चातिदुर्लभम् ॥ ५४ ॥ तत्क्षेत्रस्यप्रभावेण भक्तास्तेमयिनित्यशः ॥ तेनतेमुनयः सिद्धाः स्वशरीरेणसुव्रताः ॥ ५५ ॥ तस्मान्मद्वचनान्नन्दिन् गच्छप्राभासिकंशुभम् ॥ आमन्त्रयसुतान्सर्वान् कैलासं शीघ्रमानय ॥ ५६ ॥ इदंपद्मंगृहाणत्वं सनालंकलिकोज्ज्वलम् ॥ लिङ्गस्यमूर्ध्निदत्त्वेदं पद्मनालमिहानय ॥ ५७ ॥ एवमुक्तस्तदानन्दी देवदेवेनशम्भुना ॥ कैलासनिलयात्तस्मात्प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वाचैतन्महालिङ्गं देवदेवस्य

बोले ॥ ५३ ॥ महादेवजी बोले कि हे नन्दिकेश्वरजी ! जहां वे मेरे पुत्र अतिदुर्लभ व भयंकर व्रतको करते हैं वहां जाइये ॥ ५४ ॥ उस क्षेत्रके प्रभावसे वे मुझमें नित्यही भक्तहैं उसीसे उत्तम नियमवाले वे मुनिलोग अपनेशरीरसे सिद्धहुये हैं ॥ ५५ ॥ इसकारण हे नन्दिकेश्वरजी ! मेरेवचनसे उत्तम प्रभासक्षेत्रको जाइये व सब पुत्रोंको बुलाइये और शीघ्रही कैलासको लाइये ॥ ५६ ॥ और कलीसे उज्ज्वल इस नालसमेत कमलको लीजिये इसको लिंगके मस्तक पै देकर कमलकी नालको यहां लाइयेगा ॥ ५७ ॥ उस समय देवदेव शिवजी से ऐसा कहेहुये नन्दीश्वरजी उस कैलास स्थान से प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ५८ ॥ और त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के इस

लिंगको देखकर व उन योगीन्द्रों को देखकर बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ५६॥ वहां कोई ध्यान करते थे व कोई योगमें स्थित थे और कोई व्याख्या करते थे व अन्य विचार भी करते थे ॥ ६० ॥ इसप्रकार व्याकुलता को प्राप्त अन्य पूजन करते थे और अन्य कोई नीराजन करते थे व अन्य प्रणाम करते थे ॥ ६१ ॥ व कोई प्रदक्षिणा करते थे और अन्य उत्तम फूलोंसे पूजन करते थे और कोई भस्म स्नान करते थे व कोई घड़ों से स्नान कराते थे ॥ ६२ ॥ इसप्रकार तपस्वीगणों का मण्डल व्याकुलता को प्राप्तहुआ जैसे तेजोभूत आकाश में किरणों से सूर्यका मण्डल होवै ॥ ६३ ॥ वैसेही तपस्या के सारांशको देखकर नन्दीश्वरजी विस्मयको प्राप्तहुये

शूलिनः ॥ दृष्ट्वातांश्चैवयोगेन्द्रान् परंविस्मयमागतः ॥ ५९ ॥ केचिद्ध्यानकरास्तत्र केचिद्योगसमाश्रिताः ॥ केचिद्व्याख्यांप्रकुर्वन्ति विचारमपिचापरे ॥ ६० ॥ एवंव्याकुलतांयाता अन्येकुर्वन्तिपूजनम् ॥ नीराजनंपरेकेचित् प्रणामंचतथापरे ॥ ६१ ॥ प्रदक्षिणंप्रकुर्वन्ति अर्हणांकुसुमैःशुभैः ॥ भस्मस्नानंप्रकुर्वन्ति घटकैःस्नापयन्तिच ॥ ६२ ॥ एवंव्याकुलतांजातं तपस्विगणमण्डलम् ॥ तेजोभूतेयथाकाशेरश्मिभिःसूर्यमण्डलम् ॥ ६३ ॥ तपस्सारमथालोक्य नन्दी विस्मयमागतः ॥ चिन्तयामासमनसा सर्वंतेषांनिरीक्ष्यच ॥ ६४ ॥ आगतोहमिमन्देशं न कश्चिन्मान्निरीक्षते ॥ न केनचिदहम्पृष्टः क्वागतश्चकुतोपिवा ॥ ६५ ॥ अहङ्कारावृताःसर्वे नवदन्तिचमांकचित् ॥ एवंमनसिसन्ध्याय लिङ्गपार्श्वमुपागतः ॥ ६६ ॥ दत्तंलिङ्गस्यतत्पद्मं नालाच्छित्त्वातुनन्दिना ॥ अर्चयित्वातुतंनन्दी लिङ्गंपशुपतेश्वरम् ॥ ६७ ॥ नालंगृहीत्वायत्नेन ऋषीन्वचनमब्रवीत् ॥ ६८ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ शासनाद्देवदेवस्य भवताम्पार्श्वमागतः ॥

और उनके सब कर्मको देखकर उन्होंने मनसे विचारकिया ॥ ६४ ॥ कि मैं इसस्थानकोआया परन्तु कोई मुझको नहीं देखताहै और न कोई मुझसे पूंछा कि कहां आयेहो और कहां से आये हो ॥ ६५ ॥ और अहंकारसे घिरेहुये सबलोग मुझसे कुछ नहीं कहते हैं ऐसा मनमें भलीभांति विचारकर लिंगके समीप आये ॥ ६६ ॥ और नन्दीश्वरजी ने नाल से कमल को तोड़कर उसको लिंगके ऊपर धर दिया और पाशुपतेश्वर लिंगको पूजकर नन्दीश्वरजी ॥ ६७ ॥ यत्नसे नालको लेकर

ऋषियोंसे वचन बोले॥ ६८॥ नन्दिकेश्वरजी बोले कि देवदेव शिवजी की आज्ञा से मैं तुम लोगों के समीप आया और वे देवेशजी तपस्वीगणोंके मण्डलको बुलाते हैं॥ ६९॥ तुम लोगों को वहां जानाचाहिये जहां कि सनातन सदाशिवदेवजीहैं मैं तुम सबोंको लेकर शिवजीके स्थानको जाऊंगा॥ ७०॥ तुम सब लोग उठो शीघ्रही उत्तम पर्वत कैलासको चलैं तदनन्तर चुपहोकर उन सब ब्राह्मणोंने संज्ञासे कहा॥ ७१॥ कि हे नन्दिन्! तुम आगे जावो हमलोग पश्चात् आवैंगे मुनियों से ऐसा कहेहुये नन्दीजी बहुत शीघ्र गये व उन्होंने क्रोधित चित्तसे उस सब वृत्तान्त को कहा॥ ७२॥ नन्दीजी बोले कि हे देव! मैं वहां गयाथा जहां कि वे योगी

आह्वाययतिदेवेशस्तपस्विगणमण्डलम्॥ ६९॥ युष्माभिस्तत्रगन्तव्यं यत्रदेवःसनातनः॥ युष्मान्सर्वान्समादाय गमिष्यामिभवालये॥ ७०॥ उत्तिष्ठताशुगच्छामः कैलासंपर्वतोत्तमम्॥ तूष्णींभूतास्ततःसर्वे प्रोचुस्तेसंज्ञयाद्विजाः॥ ७१॥ गच्छत्वमग्रतोनन्दिन्पश्चादेष्यामहेवयम्॥ एवमुक्तस्तुमुनिभिर्नन्दीशीघ्रतरंगतः॥ कथयामासतत्सर्वं कुपितेनान्तरात्मना॥ ७२॥ नन्द्युवाच॥ देवतत्रगतोहंवै यत्रतेयोगिनःस्थिताः॥ सन्तोषितोनचैवाहं केनचित्तत्रसंस्थितः॥ ७३॥ नमांदेवनिरीक्षन्ते नालपन्तिकथञ्चन॥ ७४॥ पद्मंतत्रमयादेव स्थापितंलिङ्गमूर्द्धनि॥ उक्तंदेवमयातेषां योगीन्द्राणांमहेश्वर॥ ७५॥ आज्ञातादेवदेवेन इहागच्छतमाचिरम्॥ एतच्छ्रुत्वावचःस्वामिन्सर्वेतत्रमहर्षयः॥ ७६॥ आगमिष्यामइतिवै पृष्ठतोगच्छमाचिरम्॥ इत्युक्तस्तैस्तदादेव अहंशीघ्रमिहागतः॥ ७७॥ नालंचैनं प्रगृहाण यथेष्टंकुरुमेप्रभो॥ एकंमेसंशयंदेव छेत्तुमर्हसिसाम्प्रतम्॥ ७८॥ मयाविनामहादेव आगमिष्यन्तितेकथ

लोग स्थित हैं वहां किसीने भलीभांति स्थित मुझको प्रसन्न नहीं किया॥ ७३॥ हे देव! न मुझको वे देखतेथे और न किसी प्रकार बोलते थे॥ ७४॥ हेदेव! मैंने वहां लिंगके शिरपै कमलको धरदिया व हे महेश्वर, देवजी! उन योगीन्द्रोंसे मैंने कहा॥ ७५॥ कि देवदेव शिवजीसे आज्ञा दियेहुये तुमलोग यहां शीघ्रही आइये हे स्वामिन्! इस वचनको सुनकर वहां सब महर्षियोंने कहा॥ ७६॥ कि हमलोग पीछे से आवैंगे तुम शीघ्रही जावो हे देव! उस समय उनसे ऐसा कहाहुआ मैं यहां शीघ्रही आया॥ ७७॥ हे प्रभो! इस नालको लीजिये और मेरे मनोरथको कीजिये हे देव! इससमय मेरे एक सन्देहको तुम काटने के योग्यहो॥ ७८॥ कि

हे महादेवजी ! वे मेरे विना कैसे आवेंगे क्योंकि वहां भलीभांति टिकेहुये ये योगी सिद्ध नहीं देखपड़ते हैं ॥ ७९ ॥ महादेवजी बोले कि मेरी भक्तिसे शुद्ध चित्तवाले वे सनातनयोग को जानते हैं हे नन्दिन् ! इससमय मैं तुमको जो दिखलाताहूं इस कौतुकको देखिये ॥ ८० ॥ कि तुम जिस नालको लायेहो उस नालमें योगैश्वर्य के बलसे सूक्ष्मकी नाईं पैठकर सब आये हैं ॥ ८१ ॥ उससमय ऐसा कहेहुये विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले नन्दी ने परमाणुकी नाईं नाल के मध्यमें स्थित महर्षियों को देखा ॥ ८२ जैसे सूर्यनारायणकी किरणों के मध्य में स्थित परमाणु देखपड़ते हैं ऐसेही उस नालके मध्यमें स्थित पृथक् २ ऋषि लोग देखपड़ते थे ॥

मद्भावभावितास्तेवै योगंविन्दन्तिशाश्वतम् ॥ नदृश्यन्तइमेसिद्धा योगिनस्तत्रसंस्थिताः ॥ ७९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ प्रविश्यचागम् ॥ पश्यैतत्कौतुकंनन्दिन् दर्शयामितवाधुना ॥ ८० ॥ आनीतंयत्त्वयानालं तस्मिन्नालेतुसूक्ष्मवत ॥ ताःसर्वे योगैश्वर्यबलेनच ॥ ८१ ॥ एवमुक्तस्तदानन्दी विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ अपश्यन्नालमध्यस्थान् महर्षीन्परमाणुवत ॥ ८२ ॥ यथार्करश्मिमध्यस्था दृश्यन्तेपरमाणवः ॥ एवंतन्नालमध्यस्था ऋषयश्चपृथक्पृथक् ॥ ८३ ॥ एवंदृष्ट्वातदानन्दी विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ आश्चर्यंपरमंगत्वा किञ्चिन्नैवाब्रवीत्पुनः ॥ ८४ ॥ एवंतत्कौतुकंदृष्ट्वा देवीवचनमब्रवीत ॥ किंदृश्यतेमहादेव द्रष्टुकामामहेश्वर ॥ ८५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ योगयुक्तामहात्मानो योगेपाशुपते स्थिताः ॥ एतेमाञ्चसमाराध्यप्रभासक्षेत्रवासिनः ॥ ८६ ॥ ईदृशींसिद्धिमापन्नाःस्वच्छन्दगतिचारिणः ॥ इत्युक्तवतिदेवेशे ऋषयस्तेमहाप्रभाः ॥ ८७ ॥ पद्मनालाद्विनिःसृत्यसर्वेवैयोगमायया ॥ प्रदक्षिणंप्रकुर्वन्तिदेवंदेव्याबहिष्कृतम् ॥ ८८ ॥

८३ ॥ उससमय इसप्रकार देखकर विस्मयसे प्रफुल्लित लोचनोंवाले नन्दीजी बड़े आश्चर्यको प्राप्तहोकर फिर कुछ नहीं बोले ॥ ८४ ॥ इसभांति उस कौतुकको देखकर देवी पार्वतीजी वचन बोलीं कि हे महेश्वर, महादेवजी ! क्या देखपड़ताहै मैंभी देखना चाहतीहूं ॥ ८५ ॥ महादेवजी बोले कि योगसे युक्त प्रभासक्षेत्र के वासी ये महात्मालोग शैवयोगमें स्थित होतेहुये मुझको भलीभांति आराधकर ॥ ८६ ॥ ऐसी सिद्धिमें प्राप्तहुये हैं जोकि अपनी इच्छाके अनुसार गतिचारीहैं देवेश शिवजी के ऐसा कहनेपर वे महाप्रभावान् ऋषिलोग ॥ ८७ ॥ सब योगमायासे कमलकी डांड़ीसे निकलकर देवीजीसे बाहर कियेहुये शिवदेवजीकी प्रदक्षिणा करनेलगे ॥ ८८ ॥

देवीजी बोलीं कि दुष्ट आचरणवाले ये ब्राह्मण मुझको क्यों नहीं देखते हैं हे महादेवजी ! यह मुझको विस्मय है इसको प्रसन्नतासे कहिये ॥ ८९ ॥
महादेवजी बोले कि ये बड़े तपस्वी सिद्धलोग प्रकृतिरूपिणी तुमको नहीं देखते हैं त्रिशूलधारी देवदेव शिवजीसे इसप्रकार कहीहुई सुन्दर कटिवाली पार्वतीजीने ॥
९० ॥ क्रोधित मुखवाली होकर उनके ऊपर क्रोधकिया व शाप दिया कि इन्द्रियों से दुराचारी होकर तुमलोग त्रिलोकमें नाशको पावोगे ॥ ९१ ॥ और राजाओं के
दान लेनेमें लगेहुये तुमलोग जीविका से देवपूजन में परायण होगे व कलियुग प्राप्तहोनेपर लिंगके द्रव्य से जीविका करनेवाले होवोगे ॥ ९२ ॥ और ज्ञानसे बाहर

देव्युवाच ॥ किमर्थंमांनपश्यन्ति दुराचाराइमेद्विजाः ॥ विस्मयोहिमहादेव कथयस्वप्रसादतः ॥ ८९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रकृतिन्त्वांनपश्यन्ति सिद्धाह्येतेमहातपाः ॥ एवमुक्तातुगिरिजा देवदेवेनशूलिना ॥ ९० ॥ चुकोपतेषांसुश्रोणी शशापक्रोधितानना ॥ त्रैलोक्येतुदुराचारा नाशमाप्स्यथचेन्द्रियैः ॥ ९१ ॥ राजप्रतिग्रहासक्ता वृत्त्यादेवार्चनेरताः ॥ भविष्यथकलौप्राप्ते लिङ्गद्रव्योपजीविनः ॥ ९२ ॥ वेश्यासक्तास्तुसंभ्रान्ताः सर्वेज्ञानबहिष्कृताः ॥ देवद्रव्यविनाशाय भविष्यथकलौयुगे ॥ ९३ ॥ इतिदत्तेतदाशापे ऋषीणाञ्चमहात्मनाम् ॥ गौरींप्रसादयामास तेषामर्थेसुरेश्वरः ॥ ९४ ॥ देवदेवस्यवचनात् प्रसन्नासाभवत्पुनः ॥ नालंदेवोपिसंगृह्यदक्षिणाशांसमाक्षिपत् ॥ ९५ ॥ पतितंतच्चवैनालंप्रभासक्षेत्रमध्यतः ॥ तदेवलिङ्गंसंजातं महानालेतिविश्रुतम् ॥ ९६ ॥ कलौयुगेतुसंप्राप्तेतद्ध्रुवेश्वरसंज्ञितम् ॥ संस्थितञ्चोत्तरेशाने तस्मात्पाशुपतेश्वरात् ॥ ९७ ॥ पुरानन्दीशनामेतिपश्चात्पाशुपतेश्वरः ॥ प्रभासेतुमहाक्षेत्रे स्थितंपातकनाश

क्रियेहुये तुम सब कलियुगमें वेश्यासक्तहोकर देवद्रव्य के नाशके लिये होवोगे ॥ ९३ ॥ उस समय महात्मा ऋषि लोगोंको इसप्रकार शाप देनेपर उनके लिये सुरेश
शिवजी ने पार्वतीजीको प्रसन्न किया ॥ ९४ ॥ व देवदेव शिवजी के वचन से वे पार्वतीजी फिर प्रसन्नहुईं और शिवदेवजी ने भी कमलनालको लेकर दक्षिण
दिशा में फेंक दिया ॥ ९५ ॥ और वह नाल प्रभासक्षेत्रके बीचमें गिरा और वही महानाल ऐसा प्रसिद्ध लिंग होगया ॥ ९६ ॥ और कलियुग प्राप्तहोनेपर वह ध्रुवेश्वर
संज्ञक लिंग उस पाशुपतेश्वर से उत्तर व ईशानकोणमें स्थित है ॥ ९७ ॥ पहलेनन्दीश नामहुआ पश्चात् पाशुपतेश्वरनामक हुये और हे नन्दिन् ! मेरे व्रतके सेवने

में पातकों का नाशक यह स्थान पहले प्रभास महाक्षेत्रमें श्रेष्ठ स्थित था और यह लिंग अनादीश संज्ञकपरब्रह्म है ॥ ९८ । ९९ ॥ यहांपर निस्सन्देह ब्राह्मणोंकी सिद्धि व मुक्ति होती है और इसी शरीर से ब्राह्मण छः महीने में सिद्ध होजाताहै ॥ १०० ॥ और यह लिंग संसार के मोक्षके लिये दिखलाया गया व यह सब प्राणियोंको दुर्लभ व परमपद मोक्ष है ॥ १ ॥ यह शैवज्ञान इस लिंगमें स्थित है जो इन सदाशिवजीको भक्तिसे माघमहीने में निरन्तर पूजता है ॥ २ ॥ वह सब यज्ञों के व दानके फलको पाताहै वहांपर भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले प्राणियों को सुवर्ण देना चाहिये ॥ ३ ॥ हे देवि ! पशुपतेश्वरजीका यह पापविनाशक

नम् ॥ ९८ ॥ इदंनन्दिन्पुराश्रेष्ठं ममव्रतनिषेवणम् ॥ इदंलिङ्गंपरंब्रह्म अनादीशेतिसंज्ञितम् ॥ ९९ ॥ अत्रसिद्धिश्चमुक्तिश्च ब्राह्मणानांनसंशयः ॥ अनेनैवशरीरेण षड्भिर्मासैस्तुसिद्ध्यति ॥ १०० ॥ संसारस्यविमोक्षार्थमिदंलिङ्गन्तुदर्शितम् ॥ दुर्लभंसर्वलोकानामिदंमोक्षंपरम्पदम् ॥ १ ॥ इदंपाशुपतंज्ञानमस्मिँल्लिङ्गेप्रतिष्ठितम् ॥ यश्चैनम्पूजयेद्भक्त्या माघेमासिनिरन्तरम् ॥ २ ॥ सर्वेषांचक्रतूनांस दानानांलभतेफलम् ॥ हिरण्यंतत्रदातव्यं सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ३ ॥ इत्येतत्कथितंदेवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ पशुपाशविमोक्षार्थं सम्यक्पाशुपतेश्वरम् ॥ ४ ॥ चतुर्णामपिवर्णानाम्पूज्योब्राह्मणउच्यते ॥ तस्यचैवाधिकारोस्ति अस्मिन्पाशुपतेव्रते ॥ ५ ॥ यद्देवतानांप्रथमम्पवित्रं विश्वव्रतम्पाशुपतम्बभूव ॥ अयंपन्थानैष्ठिकोवैमयोक्तो येनदेवायान्तिभुवनानिविश्वाः ॥ ६ ॥ सुराम्पीत्वागुरुदारांश्चगत्वास्तेयंकृत्वाब्राह्मणञ्चापिहत्वा ॥ भस्मच्छन्नोभस्मशय्याशयानो रुद्राध्यायीमुच्यतेपातकेभ्यः ॥ ७ ॥ अग्निरित्यादिना

माहात्म्य पशुवों की नाईं फसरी के भलीभांति छूटने के लिये कहागया ॥ ४ ॥ ब्राह्मण चारों जातियों के भी पूजने योग्य कहाजाताहै उसीका इस शैवव्रत में अधिकार है ॥ ५ ॥ जो पहले देवताओं को पवित्र व विश्वव्रत पाशुपत हुआ है इस नैष्ठिकमार्ग को मैंने कहा कि जिससे सब देवता लोकोंको जाते हैं ॥ ६ ॥ मदिरा पीकर व गुरुवों की स्त्रियों में गमनकर और चोरीकरके व ब्राह्मणों को भी मारकर भस्मसे आच्छादित तथा भस्मकी शय्या पै सोताहुआ रुद्राध्यायी ब्राह्मण पातकों

भस्मगृहीत्वाङ्गानिसंस्पृशेत ॥ गृह्णीयात्मंचितेचाग्नौ भस्मतद्गृहवासिभिः ॥ ८ ॥ अग्निरितिभस्मजलमितिभस्मस्थ मितिभस्मसर्वंहवाइदंभस्माभवत् ॥ इति मन्त्रः ॥ नादीक्षितःसंस्पृशेद्ब्राह्मणैश्चसमादेयन्नतुशूद्रैःकदाचन ॥ ९ ॥ नाधिकारोस्तिशूद्रस्य व्रतेपाशुपतेशुभे ॥ ब्राह्मणीन्तनुमास्थाय सम्भवामियुगेयुगे ॥ १० ॥ स्थलेतुवेश्मन्यथवाचलेतु राज्ञश्चमार्गेचकरीषमध्ये ॥ अपान्तुमध्येपिमृतानराधमाःशैवंपदंयान्तिनसंशयोत्र ॥ १११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पशुपतेश्वरमाहात्म्यन्नामसप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ * ॥ * ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तं नालेश्वरमितिस्मृतम् ॥ ध्रुवेश्वरेतितल्लिङ्गं कथंवैसंवभूवह ॥ १ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि ध्रुवेश्वरमहोदयम् ॥ तच्छ्रुत्वामानवोदेवि मुच्यतेभवबन्धनात् ॥ २ ॥ उत्तानपादनृपतेः पुत्रोभूद्ध्रुवसंज्ञितः ॥ महात्माज्ञानसम्पन्नः सर्वज्ञ प्रियदर्शनः ॥ ३ ॥ सकदाचित्समासाद्य प्रभासक्षेत्रमुत्तमम् ॥ तता

से छूटजाता है ॥ ७ ॥ अग्निः इत्यादि मन्त्र से भस्मको लेकर अंगोंको छुवै और संचित अग्निमें उसभस्मको गृहनिवासी जनोंसे लेना चाहिये ॥ ८ ॥ अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म सर्वं हवा इदंभस्माभवत् । यह भस्म मंत्र है दीक्षारहित मनुष्य ब्राह्मणोंको न छुवै और शूद्रोंसे पाशुपतव्रत न लेना चाहिये ॥ ९ ॥ उत्तम पाशुपतव्रतमें शूद्रका अधिकार नहीं है क्योंकि ब्राह्मणके शरीर में स्थितहोकर मैं युग युगमें पैदा होताहूं ॥ १० ॥ स्थल में व घर में अथवा पर्वत पै व राजाके मार्गमें और करीषके मध्यमें तथा जलके मध्यमें मरेहुये अधम नर शैव स्थानको प्राप्तहोतेहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांपशुपतेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ भयो प्रभासक्षेत्रमहँ लिंग ध्रुवेश्वरनाम । इकसौ अट्ठाईस महं सोई चरित ललाम ॥ श्रीपार्वती देवीजीबोलीं कि जो आपने यहकहा कि नालेश्वर ऐसा कहा हुआ लिंगहै वह ध्रुवेश्वर ऐसा लिंग कैसे हुआ ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं ध्रुवेश्वरजी के माहात्म्य को कहताहूं हे देवि ! उसको सुनकर मनुष्य संसारके बन्धन से छूटजाता है ॥ २ ॥ उत्तानपाद राजाके ध्रुव नामक पुत्र महात्मा व ज्ञान से संपन्न तथा सर्वज्ञ व प्रियदर्शन हुआहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! उसने किसी

समय उत्तम प्रभासक्षेत्रमें प्राप्तहोकर देवताओं के हज़ार वर्षतक बड़ा दारुण व बहुत तपकियाहै व जो मनुष्य महादेवजी को थापकर भक्ति से भलीभांति पूजते थे व अनेक भांतिके स्तोत्रों से स्तुति करते थे ॥ ४ । ५ ॥ मैं उस स्तोत्रको कहूंगा कि जिससे मैं प्रसन्नताको प्राप्तहोताहूं ॥ ६ ॥ ध्रुवजी बोले कि सब कारणोंके कारणरूप तुम्हारे लिये प्रणाम है व भयंकर भवसागरके पुलरूपी तथा ध्यान में प्राप्तहोने योग्य योगी के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ सिद्ध व चारणों से सेवित पवित्रजलवाली तथा बड़ीभारी लहरियोंसे विषम और आकाशसे गिरतीहुई श्रीगंगाजीको जिन्होंने चंचलपुष्पोंवाली मालाके समान मस्तकमें धारण कियाहै उन शरणदायक शंकरजी

पविपुलन्देवि तपःपरमदारुणम् ॥ ४ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ सम्पूजयतियोभक्त्या स्तौतिस्तोत्रैःपृथग्विधैः ॥ ५ ॥ तत्स्तोत्रंसम्प्रवक्ष्यामि येनाहंतुष्टिमागतः ॥ ६ ॥ ध्रुवउवाच ॥ ॐनमस्तेमहेशाय सर्वकारणहेतवे ॥ सेतवेभवघोराब्धेर्ध्यानगम्याययोगिने ॥ ७ ॥ यस्सिद्धचारणनिषेवितचारुतोयां गङ्गांमहोर्मिविषमाङ्गगनात्पतन्तीम् ॥ मूर्द्धादधौस्रजमिवप्रविलोलपुष्पां तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ ८ ॥ येनासकृद्दितिसुताश्चदनोःसुताश्च विद्याधरोरगगणाह्यवनौसमग्राः ॥ संयोजितानतुपदे फलमूलभक्षास्तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ ९ ॥ यस्याखिलंजगदिदंवशवर्त्तिनित्यं योष्टाभिरेवतनुभिर्भुवनानिभुंक्ते ॥ यःकारणंपरमकारणकारणानां तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १० ॥ यस्सव्यपाणिकमलाग्रनखेनदेवः तत्पञ्चमंप्रसभमेवपुरावसानः ॥ ब्राह्मयंशिरस्तरुणपद्मनिभंचकर्त तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ ११ ॥ यस्यप्रणम्यचरणौवरदस्यभक्त्या स्तुत्वाचवाग्भिरमृताभिरनिन्दितात्मा ॥ दीप्त्यात

की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ ८ ॥ और पृथ्वी में जिनसे दितिके पुत्र व दनुके पुत्र और विद्याधर व नागगण तथा फल व मूलों को भक्षण करनेवाले सब बार: स्थान पै युक्त कियेगये उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ ९ ॥ यह सब संसार जिनके वशमें वर्तमान है और जो आठ शरीरों से सदैव लोकों को भोगते हैं व जो परमकारणों के कारणके कारणहैं उन शरणदायक शंकरजी की शरण में मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १० ॥ व त्रिपुरनाशक जिन शिवदेवजीने बायें हस्तकमल के नखाग्रभाग से प्रफुल्लित कमलके समान ब्रह्माके उस पाचवें मस्तकको हठही से काटडाला उन शरणदायक शंकरजी की शरणमें मैं प्राप्तहोताहूं ॥ ११ ॥

और वरदायक जिन शिवजीके चरणों को भक्तिसे प्रणामकर व निर्मल वाणियोंमें स्तुतिकर प्रशंसनीय चित्तवाले सूर्यनारायणजी अपनी किरणोंके द्वारा प्रकाशसे अन्धकारों को दूर करते हैं उन शरणदायक शंकरजीकी शरणमें मैं प्राप्तहोताहूं ॥ १२ ॥ सावधान चित्तवाला जो मनुष्य साक्षात् ध्रुवसे कियेहुये इस सुन्दर अर्थवाले स्तोत्रको पढ़ताहै वह मोहको नहीं प्राप्तहोताहै और सदैव पवित्र व सिद्धकर्मोंवाला वह अनादि सिद्ध शिवलोकको जाताहै ॥ १३ ॥ हे देवि ! शुद्धचित्तवाले उन स्तुति करतेहुये महात्मा ध्रुवजी के ऊपर मैं पूर्णहज़ार वर्ष के अन्तमें प्रसन्नहुआ ॥ १४ ॥ और मैंने कहा कि हे पुत्र ! तुम्हारा कल्याण होवै मैं प्रसन्नहूं तुम इससमय निर्मल

मांसिनुदातिस्वकरैर्विवस्वांस्तंशङ्करंशरणदंशरणंव्रजामि ॥ १२ ॥ योवैपठेत्स्तवमिमंरुचिरार्थवन्तंसाक्षाद्ध्रुवेणचकृतंमनुजोयतात्मा ॥ नोवैविमुह्यतिसदाशुचिसिद्धकर्मा सोपिप्रयातिशिवलोकमनादिसिद्धम् ॥ १३ ॥ तस्यैवंस्तुवतो देवि तुष्टोहंभावितात्मनः ॥ पूर्णवर्षसहस्रान्ते ध्रुवस्यैवंमहात्मनः ॥ १४ ॥ पुत्रतुष्टोस्मिभद्रन्ते जातस्त्वंनिर्मलोधुना॥ दिव्यंददामितेचक्षुः पश्यमांविगतज्वरः ॥ १५ ॥ यद्धितेमनसाकिञ्चित्काङ्क्षितंफलमुत्तमम् ॥ तत्सर्वन्तेप्रदास्यामि ब्रूहिशीघ्रंममाग्रतः ॥ १६ ॥ ब्राह्मयंवावैष्णवंशाक्रं पदमन्यत्सुदुर्लभम् ॥ दातास्मिनात्रसन्देहो भक्त्यासम्प्रेरितस्तव ॥ १७ ॥ ध्रुवउवाच ॥ ब्राह्मयंवैष्णवमाहेन्द्रं पदमावृत्तिलक्षणम् ॥ विदितंममतत्सर्वं मनसापिनकामये ॥ १८ ॥ यदितुष्टोसिमेदेव भक्तिंदेहिसुनिर्मलाम् ॥ अस्मिँल्लिङ्गेसदावासं कुरुदेववृषध्वज ॥ १९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इति यत्प्रार्थितंसर्वं दत्तंतत्सर्वमेवहि ॥ स्थानंचतस्ययद्ध्रौव्यं तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ २० ॥ श्रावणस्यत्वमावस्यां यस्तं

हुये हो मैं तुमको दिव्यदृष्टि देताहूं ज्वररहित होकर तुम मुझको देखो ॥ १५ ॥ तुम्हारे मनसे जो कुछ उत्तम फलचाहागयाहो उस सबको मैं तुमको दूंगा मेरे आगे शीघ्रही कहिये ॥ १६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्रके स्थानको तथा अन्य दुर्लभस्थान को तुम्हारी भक्ति से प्रेरित मैं दूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १७ ॥ ध्रुवजी बोले कि ब्रह्मा, विष्णु व इन्द्रका स्थान फिर लौटने के लक्षणवालाहै उस सबको मैं जानताहूं और मनसे भी नहीं इच्छा करताहू ॥ १८ ॥ हे देव ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो निर्मल भक्तिको दीजिये व हे वृषध्वज ! इस लिंगमें सदा निवास कीजिये ॥ १९ ॥ महादेवजी बोले यह जो मांगागया उस सबको मैंने दिया व जो अचलस्थान

है वह विष्णुका परमपद दियागया ॥ २० ॥ श्रावणकी अमावस तिथिमें व कुँवारकी पौर्णमासीमें जो मनुष्य उस लिंगको पूजताहै वह अश्वमेध यज्ञके फलको पाताहै ॥ २१ ॥ पुत्र रहित मनुष्य पुत्रको पाताहै और धनको चाहनेवाला मनुष्य धनको पाताहै व रूपवान्, सुन्दर ऐश्वर्यवान्, सुखी और सबशास्त्रोंमें प्रवीणहोताहै ॥ २२ ॥ और हंसयुक्त विमानके द्वारा जाकर शिवलोकमें पूजाजाता है ॥ २३ ॥ असुर व सुरगणों मे पूजित ध्रुवजी के इस सुन्दर यशको जो कहता है व जो सुनताहै वह सुरगणों से तथा दानवों से पूजित व सब सुखों के निधान, शान्त व अनन्त शिवलोकको जाताहै ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटी

लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ अश्वयुक्पूर्णिमायाञ्च सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ २१ ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रं धनार्थीलभतेधनम् ॥ रूपवान्सुभगोभोगी सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २२ ॥ हंसयुक्तविमानेन रुद्रलोकेमहीयते ॥ २३ ॥ असुरसुरगणानां पूजितस्य ध्रुवस्य कथयतिकमनीयां कीर्त्तिमेतांशृणोति ॥ सकलसुखनिधानं रुद्रलोकंसुशान्तं सुरगणदनुनाथैरर्चितंयात्यनन्तम् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे ध्रुवेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाविंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि वैष्णवींशक्तिमुत्तमाम् ॥ सोमेशादीशादिग्भागे नातिदूरेऽव्यवस्थिताम् ॥ १ ॥ सिद्धलक्ष्मीतिविख्यातां चेत्रपीठाधिदेवताम् ॥ ब्रह्माण्डेप्रथमंपीठं यत्प्रभासेऽव्यवस्थितम् ॥ २ ॥ तत्रदेविमहापीठे योगिन्योभूचराःखगाः ॥ भैरवेणसमेतास्तु क्रीडन्तिस्वेच्छयाप्रिये ॥ ३ ॥ जालन्धरंमहापीठं कामरूपंतथैवच ॥ ४ ॥

कायांध्रुवेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो०। अहै प्रभासक्षेत्र महँ महालक्ष्मि इमि शक्ति । इकसौ उन्तिस में कह्यो सोइ चरितकी उक्ति ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर सोमेशजीसे ईशान दिशाके मध्य में थोड़ेही दूर पै स्थित उत्तम वैष्णवी शक्तिके समीपजावै ॥ १ ॥ जोकि क्षेत्रपीठकी अधिदेवता सिद्धलक्ष्मी ऐसी विख्यातहै ब्रह्माण्ड में पहला पीठहै जोकि प्रभासमें स्थित है ॥ २ ॥ हे प्रिये, देवि! उस महापीठमें भैरव समेत योगिनी, भूचर व पक्षी अपनी इच्छासे क्रीड़ा करते हैं ॥ ३ ॥ जालन्धर महापीठ वैसे

ही कामरूप ॥ ४ ॥ व श्रीमान् उड्डीनसंज्ञक चौथा उत्तम पीठ है व महापीठ रत्नबीज और काश्मीरपीठ है ॥ ५ ॥ हे देवि ! जो इन पीठोंको जानता है वह मन्त्रवेत्ता होताहै और सब पीठोंका उत्तम आधार पीठ ॥ ६ ॥ हे महादेवि ! सौराष्ट्रदेशमें नामसे महोदय प्रसिद्ध है जहां आजभी कामरूपधारी ज्ञान वर्त्तमानहै ॥ ७ ॥ हे देवि ! उस पीठ पै महालक्ष्मी ऐसी प्रसिद्ध शक्ति सब पापोंको नाशनेवाली व सब कामनाओं तथा मंगलको देनेवाली है ॥ ८ ॥ जो मनुष्य श्रीपञ्चमी तिथि में भक्ति समेत चन्दन पुष्पादिकोंसे उस शक्तिको विधिसे पूजताहै उसके निस्सन्देह लक्ष्मी होतीहै ॥ ९ ॥ और इस लोक व परलोकमें वह शक्ति चाहीहुई सिद्धिको देती है व

श्रीमदुड्डीनसंज्ञंच चतुर्थंपीठमुत्तमम् ॥ रत्नबीजंमहापीठं काश्मीरंपीठमेवच ॥ ५ ॥ एतानिदेविपीठानि योवेत्तिसच मन्त्रवित् ॥ सर्वेषाञ्चैवपीठानामाधारंपीठमुत्तमम् ॥ ६ ॥ सौराष्ट्रेतुमहादेवि नाम्नाख्यातंमहोदयम् ॥ कामरूपधरं ज्ञानं यत्राद्यापिप्रवर्त्तते ॥ ७ ॥ तत्रपीठेस्थितादेवि महालक्ष्मीतिविश्रुता ॥ सर्वपापप्रशमनी सर्वकामशुभप्रदा ॥ ८ ॥ श्रीपञ्चम्यान्नरोयस्तु पूजयेत्तांविधानतः ॥ गन्धपुष्पादिभिर्भक्त्या तस्यलक्ष्मीर्नसंशयः ॥ ९ ॥ ददातिवाञ्छितांसिद्धि मिहलोकेपरत्रच ॥ तृतीयायामथाष्टम्यां चतुर्दश्यांविधानतः ॥ १० ॥ यस्तांपूजयतेभक्त्या तस्यासिद्धिःकरे स्थिता॥ ११॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमहालक्ष्मीमाहात्म्यन्नामैकोनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९॥

ईश्वरउवाच ॥ तत्रैवसंस्थितादेवि महाकालीतिविश्रुता ॥ अधःस्थितेमहापीठे पातालविवरान्विते ॥ १ ॥ सर्वदुःख प्रशमनी सर्वशत्रुक्षयङ्करी ॥ पूजितासाविधानेन कृष्णाष्टम्यांमहानिशि ॥ २॥ गन्धैःपुष्पैस्तथादीपैः कण्ठ्यैर्बलिभिरे

तीज, अष्टमी और चौदसि तिथि में विधि से ॥ १० ॥ जो उस शक्तिको भक्ति से पूजताहै उसके हाथमें सिद्धि स्थित होती है ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामहालक्ष्मीमाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । महाकाल इमि देविकर उत्तम चरित रसाल । इकसौतिसवें में सोई कह्यो विचित्र हवाल ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! वहां नीचे स्थित पाताल छिद्रसे संयुत महापीठ पै महाकाली ऐसी प्रसिद्ध शक्ति स्थितहै ॥ १ ॥ जोकि सब दुःखों को नाशकरनेवाली व शत्रुवोंका नाशकरनेवाली है कृष्णपक्षकी अष्टमी में महा-

रात्रि में वह गन्ध, पुष्प, दीप, मांस व बलियों से विधिसे पूजन कीजाती है और तीज तिथि में शुद्धचित्तवाली जो स्त्री पूजन करती है ॥ २ । ३ ॥ उससे एकवर्षभर शुक्लपक्षमें विधिसे देवीजी पूजने योग्यहैं और ब्राह्मणके लिये फलोंको देवै व विधि से नक्तव्रत करै ॥ ४ ॥ हे सुन्दरि ! नक्तव्रतमें इन अन्नोंको वर्जित करै कि कलाय (मटर) अरहर, मूंग, मोथी, उडद व कुरथी ॥ ५ ॥ मसूर, लोबिया, गेहूं, त्रिपुट, चना, वर्तुल और मुकुट इत्यादिक अन्न ॥ ६ ॥ हे देवि ! तबतक न भक्षण करना चाहिये कि जबतक गौरीव्रत करै उसके पुण्यके फलको कहताहूं मुझसे कहेजाते हुये उसको सुनिये ॥ ७ ॥ कि उसके घरमें कभी धन,धान्य नहीं नाश होताहै और

वच ॥ तृतीयायान्तुयानारी कुरुतेतत्रभाविता ॥ ३ ॥ वर्षमेकंसितेपक्षे देवीपूज्याविधानतः ॥ फलानिब्राह्मणेदद्यात्कुर्यान्नक्तंविधानतः ॥ ४ ॥ एतानिवर्ज्जयेन्नक्ते अन्नानिसुरसुन्दरि ॥ कलायआढकीमुद्गा माषाश्चैवकुलत्थिकाः ॥ ५ ॥ मसूराराजमाषाश्च गोधूमास्त्रिपुटास्तथा ॥ चणकावर्तुलावापि मुकुटाश्चैवमादयः ॥ ६ ॥ नभक्ष्यास्तावतादेवि यावद्गौरीव्रतंचरेत् ॥ तस्यपुण्यफलंवक्ष्ये कथ्यमानंशृणुष्वमे ॥ ७ ॥ धनधान्यंगृहेतस्या नकदाचित्क्षयंव्रजेत् ॥ क्षुधितादुर्भगादीना सप्तजन्मनिनोभवेत् ॥ ८ ॥ महाकालीव्रतंप्रोक्तं देव्यामाहात्म्यसंयुतम् ॥ कृतंपातकनाशाय सर्वकामसमृद्धये ॥ ९ ॥ एवन्देविसमाख्यातं महाकालीमहोदयम् ॥ चैत्रपीठंमहादेवि मन्त्रसिद्धिप्रदायकम् ॥ १० ॥ अश्वयुक्शुक्लपक्षेतु नवम्यांतत्रजागृयात् ॥ पीठेपूजाबलिन्दत्त्वा मन्त्रंकाम्यंजपन्निति॥ ११॥ सौम्यचित्तस्समाप्नोतिवाञ्छितांसिद्धिमुत्तमाम् ॥ १२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमहाकालीमाहात्म्यन्नामत्रिंशाधिकशततमोध्यायः १३०॥

सात जन्मों में वह क्षुधित, दुर्भगा व दुःखिनी नहीं होती है ॥ ८ ॥ देवी के माहात्म्य से संयुत महाकालीका व्रत कहागया कियाहुआ यह व्रत पातकोंके नाश के लिये व सब कामनाओंकी समृद्धिके लिये होता है ॥ ९ ॥ हे देवि ! इसप्रकार महाकाली का माहात्म्य कहागया हे महादेवि ! चैत्रपीठ मन्त्र- सिद्धिका देनेवाला है॥ १०॥ कुँवारके शुक्लपक्षमें नवमी तिथि में वहां जागरणकरै पीठ पै पूजाकीबलिको देकर काम्य मन्त्रको जपताहुआ ॥ ११ ॥ सौम्यचित्तवाला पुरुष चाहीहुई उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाकालीमाहात्म्यंनामत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

दो०। पुष्करवर्तक नदीको रच्यो विधाता नाथ। इकसौ इकतिसमें सोई कह्यो सुहावन गाथ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर ब्रह्मकुण्डसे उत्तरमें थोड़ेही दूर पै स्थित पुष्करावर्तका नदी के समीप जावे ॥ १ ॥ पुरातन समय महात्मा चन्द्रमा का यज्ञ वर्तमान होनेपर देवगणों समेत ब्रह्माजी नक्षत्रनायक चन्द्रमासे निमन्त्रितहोकर सोमनाथकी प्रतिष्ठाके लिये प्रभासक्षेत्रको आये व पुरातन समय लोकों को रचनेवाले उन ब्रह्मा ने प्रतिज्ञा किया ॥ २ । ३ ॥ कि जबतक मैं किसीकारणके मध्यमें मृत्युलोकमें टिकूंगा तबतक नित्यही त्रिपुष्कर में तीनों संध्याओंका वन्दन करना चाहिये ॥ ४ ॥ इसीसमय में लग्नका काल प्राप्तहोने पर

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पुष्करावर्त्तकांनदीम् ॥ ब्रह्मकुण्डादुत्तरतो नातिदूरेऽव्यवस्थिताम् ॥ १ ॥ पुरा यज्ञेवर्त्तमाने सोमस्यतुमहात्मनः ॥ ब्रह्मासुरगणैस्सार्द्धं प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ २ ॥ सोमनाथप्रतिष्ठार्थमृक्षराजनिमन्त्रितः ॥ प्रतिज्ञातंपुरातेन ब्रह्मणालोककारिणा ॥ ३ ॥ यावत्स्थास्याम्यहंमर्त्ये कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ तावत्सन्ध्यात्रयंवन्द्यं नित्यमेवत्रिपुष्करे ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु लग्नकालेह्युपस्थिते ॥ आदिष्टःशोभनःकालो ब्राह्मणैर्वेदचिन्तकैः ॥ ५ ॥ ततस्तंप्रस्थितंज्ञात्वा पुष्करेतुपितामहम् ॥ सन्ध्यार्थंरात्रिनाथस्तु वाक्यमेतदुवाचह ॥ दैवज्ञैःकथितःकाल एषएवशुभोदयः ॥ ६ ॥ यथाकालात्ययोनस्यात्तथानीतिर्विधीयताम् ॥ तंज्ञात्वासाम्प्रतंकालं ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ७ ॥ मनसाचिन्तयामास पुष्कराणिसमाहितः ॥ तानिवैस्मृतमात्राणि ब्रह्मणावरवर्णिनि ॥ ८ ॥ प्रादुर्भूतानितत्रैव नद्यास्तीरेसुशोभने ॥ आवर्त्तास्तत्रसञ्जाता ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकाः ॥ ९ ॥ अथनामाकरोत्तस्या ब्रह्मालोकपितामहः ॥

वेदचिन्तक ब्राह्मणोंने उत्तम समयको बतलाया ॥ ५ ॥ तदनन्तर पुष्करमें प्रस्थानकियेहुये उन ब्रह्माजी को जानकर संध्याके लिये चन्द्रमाने यह वचन कहा कि ज्योतिर्विदों से कहाहुआ यही समय उत्तमहै ॥ ६ ॥ जिसप्रकार समय व्यतीत न होवै वैसाही न्याय कियाजावै उस योग्य समय को जानकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने ॥ ७ ॥ सावधान होकर मनसे पुष्करों को चिन्तवन किया हे वरवर्णिनि ! ब्रह्मासे स्मरण कियेहुये वे पुष्कर ॥ ८ ॥ वहीं नदीके सुन्दर किनारे पै प्रकटहुये और वहां

बड़ा, मध्यम व छोटा तीन आवर्त (भँवर) होगये ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर लोकोंके पितामह ब्रह्माजी ने उसका नाम किया कि आजसे लगाकर पुष्करावर्तकानामक उत्तम ॥ १० ॥ नदी संसार में मेरी प्रसन्नतासे प्रसिद्धिको प्राप्तहोवैगी और इसमें भक्तिसे नहाकर जो पुरुष पितरों को तृप्तकरैगा ॥ ११ ॥ वह त्रिपुष्कर के समान पुण्यको पावैगा इसमें सन्देह नहीं है और श्रावण के शुक्लपक्षकी तीज तिथिमें जो उत्तम मनुष्य ॥ १२ ॥ उसमें पितरों को तर्पण करताहै उसकी दशहजार कल्पतक तृप्ति होती है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांपुष्करावर्तकानदीमाहात्म्यंनामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १३१ ॥

पुष्करावर्त्तकानाम्नी अद्यप्रभृतिशोभना ॥ १० ॥ नदीप्रयास्यतेलोके ख्यातिंममप्रसादतः ॥ अत्रस्नात्वानरोभक्त्या तर्पयिष्यतियःपितॄन् ॥ ११ ॥ त्रिपुष्करसमंपुण्यं लभतेनात्रसंशयः ॥ श्रावणेशुक्लपक्षस्य तृतीयायांनरोत्तमः ॥१२॥ यःपितॄंस्तर्पयेत्तत्र तृप्तिःकल्पायुतंभवेत् ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पुष्करावर्त्तकानदीमाहात्म्यन्नामैकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येत् क्षेत्रपालमनुत्तमम् ॥ कङ्कालंभैरवन्नाम भैरवेणनियोजितम् ॥ १ ॥ तस्यक्षेत्रस्यरक्षार्थं प्राणिनांहृष्टचेतसाम् ॥ श्रावणेशुक्लपञ्चम्यामष्टम्यामाश्विनस्यच ॥ २ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या बलिपुष्पादिभिःक्रमात् ॥ तत्रक्षेत्रनिवासाय पुष्करस्यमहात्मनः ॥ ३ ॥ निर्विघ्नकारीभवति तथारक्षतिपुत्रवत् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कङ्कालभैरवक्षेत्रमाहात्म्यन्नामद्वात्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ * ॥

दो० । भैरव कियो नियुक्त जिमि श्रीभैरव कंकाल । इकसौ बत्तिस में सोई कह्योचरित्र रसाल ॥ महादेवजी बोले कि वहीं पर भलीभांति टिकेहुये अति उत्तम क्षेत्रपालजी को देखै उस क्षेत्रके प्रसन्नचित्तवाले प्राणियोंकी रक्षाके लिये भैरवसे कंकालनामक भैरव नियुक्त कियागया है श्रावणमें शुक्लपक्षकी पंचमी तिथि में व कुँवार की अष्टमी तिथिमें ॥ १।२ ॥ जो पुरुष क्रमसे बलि पुष्पादिकों करके उनभैरवजीको भक्तिसे पूजताहै वहां उस महात्मा के पुष्करक्षेत्रके निवासके लिये॥ ३ ॥ भैरवजी निर्विघ्नकारी होते हैं और पुत्रकी नाईं रक्षा करतेहैं ॥४॥इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांकङ्कालभैरवक्षेत्रमाहात्म्यंनामद्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२ ॥

दो० । चित्रादित्यहिं देव जिमि थाप्योहै नरचित्र । इकसौ तेंतिसमें सोई वर्णितकथा विचित्र ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके दक्षिण भाग में ब्रह्मकुण्डके समीप अति उत्तम चित्रादित्यके समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवेशि ! वे चित्रादित्यजी बड़े प्रभाववान् व सब दरिद्रों को नाश करनेवाले हैं हे देवि ! पुरातन समय पृथ्वी में मित्रनामक धर्मात्मा हुये हैं ॥ २ ॥ जोकि सब प्राणियों के शरीरमें स्थित व नित्यही प्राणियोंके हितमें तत्पर थे ऋतु समय में गमन करनेवाले उनके दो सन्तान पैदाहुये ॥ ३ ॥ हे वरानने ! बड़ा तेजवान् चित्रनामक पुत्र हुआ वैसेही रूपसे संयुत व शील से शोभित चित्रानामक कन्याहुई ॥ ४ ॥ और इनके पैदा

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि चित्रादित्यमनुत्तमम् ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे ब्रह्मकुण्डसमीपतः ॥१॥ महाप्रभावोदेवेशि सर्वदारिद्रनाशनः ॥ मित्रोनामपुरादेवि धर्मात्माभूद्धरातले ॥ २ ॥ कायस्थस्सर्वभूतानां नित्यंभूतहितेरतः ॥ तस्यापत्यद्वयंजज्ञे ऋतुकालाभिगामिनः ॥ ३ ॥ पुत्रःपरमतेजस्वी चित्रोनामवरानने ॥ तथाचित्राभवत्कन्या रूपाढ्याशीलमण्डना ॥ ४ ॥ आभ्याञ्चजातमात्राभ्यां मित्रःपञ्चत्वमेयिवान् ॥ अथतस्यवराभार्या सहतेनाग्निमाविशत् ॥ ५ ॥ अथतौबालकौदीनावृषिभिःपरिपालितौ ॥ वृद्धिङ्गतौमहारण्ये बालावेवस्थितौव्रते ॥ ६ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपःपरममास्थितौ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं भास्करंवारितस्करम् ॥७॥ पूजयामासधर्मात्मा धूपमाल्यानुलेपनैः ॥ वशिष्ठकथितैश्चैव अष्टषष्टिसमन्वितैः ॥ ८ ॥ नामभिस्सूर्यदेवेशं तुष्टावप्राञ्जलिःप्रभुम् ॥ चित्रउवाच ॥ प्रणम्यशिरसादेवंभास्करंगगनस्थितम् ॥ ९ ॥ आदिदेवंजगन्नाथं पापघ्नंरोगनाशनम् ॥ सहस्राक्षंसहस्रांशुं सहस्रकिरणायुधम् ॥१०॥

होतेहीं मित्र मृत्युको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उसकी उत्तम स्त्री उसके साथ अग्निमें पैठगई ॥ ५ ॥ इसके उपरान्त ऋषियोंसे पालेहुये वे दीन बालक महावनमें वृद्धिको प्राप्तहुये और बालकही वे व्रत में स्थितहुये ॥ ६ ॥ और प्रभासक्षेत्र को प्राप्त होकर बड़े तपमें स्थितहुये व जलके तस्कररूपी सूर्यनारायण महादेवजी को थापकर ॥ ७ ॥ धर्मात्मा चित्रने धूप,माला व अनुलेपनों से पूजन किया और हाथोंको जोड़कर चित्रने वशिष्ठजीसे कहेहुये अरसठि नामोंसे सूर्यदेवेश स्वामीकी स्तुति किया चित्र बोले कि आकाशमें स्थित सूर्यनारायण देवजीको मस्तक से प्रणामकर ॥ ८ । ९ ॥ पातकों के विनाशक व रोगनाशक, सहस्रलोचन व सहस्रकिरणोंवाले तथा सह-

स्किरणायुध उन आदिदेव जगदीशजी के भलीभांति आश्रित हूंगा जोकि गुप्त नामोंसे स्तुति कियेगये हैं प्रातःकाल गंगासागरके संगममें मुण्डीर स्वामी ॥१०।११॥ व मध्याह्नमें यमुना के किनारे आश्रित कालप्रिय और अस्तसमय में चन्द्रभागा नदी के किनारे स्थित मूलस्थान ॥ १२ ॥ जहां कि उपास में तत्पर साम्बजी आप ही सिद्धहुये हैं वाराणसी में लोहिताक्ष व गोभिलाक्ष में बृहन्मुख ॥ १३ ॥ व प्रयागमें प्रतिस्थान और महाद्युतिमें वृद्धादित्य तथा कोपङ्गमें द्वादशादित्य व चतुर्वट में गंगादित्य ॥ १४ ॥ और निमिषमें गोलस्थ तथा भद्रपुटमें भद्र स्थितहै और जया में विजयादित्य तथा ऋण सिद्धेश्वरको कहते हैं ॥ १५ ॥ कौशांबीपुरीमें पद्मबोध,

तमहंसंश्रयिष्यामि संस्तुतंगुह्यनामभिः ॥ मुण्डीरस्वामिनंप्रातर्गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ११ ॥ कालप्रियन्तुमध्याह्ने यमुनातीरमाश्रितम् ॥ मूलस्थानंचास्तमने चन्द्रभागातटेस्थितम् ॥ १२ ॥ यत्रसाम्बस्स्वयंसिद्ध उपवासपरायणः ॥ वाराणस्यांलोहिताक्षं गोभिलाक्षेबृहन्मुखम् ॥ १३ ॥ प्रयागेषुप्रतिस्थानं वृद्धादित्यंमहाद्युतौ ॥ कोपङ्गेद्वादशादित्यं गङ्गादित्यंचतुर्वटे ॥ १४ ॥ निमिषेचैवगोलस्थं भद्रंभद्रपुटेस्थितम् ॥ जयायांविजयादित्यमृणसिद्धेश्वरंविदुः ॥१५॥ कौशाम्ब्यांपद्मबोधञ्च ब्रह्मवाहेदिवाकरम् ॥ केदारेचन्द्रप्रत्यूषं नित्येचतिमिरापहम् ॥ १६ ॥ गङ्गाद्वारेशिवंमार्गमादित्यंभूप्रदीपने ॥ हंससरस्वतीतीरे विश्वामित्रंपृथूदके ॥ १७ ॥ उज्जयिन्यांनरद्वीपं सिद्धायाममितद्युतिम् ॥ सूर्यं कुन्तिकुमारेच पञ्चनद्यांविभावसुम् ॥ १८ ॥ मथुरांविमलादित्यं संज्ञादित्यन्तुसंज्ञके ॥ श्रीकण्ठेचैवमार्कण्डं दशार्णे दण्डकंस्मृतम् ॥ १९ ॥गोधनेगोपतिन्देवं कर्णञ्चैवमरुस्थले ॥ पुष्पेदेवगुरुंचैवकेशवार्कन्तुलोहिते ॥ २० ॥ वैदेशेचैवता

ब्रह्मवाहमें दिवाकर, केदारमें चन्द्रप्रत्यूष और नित्यमें तिमिरापह ॥ १६ ॥ हरद्वारमें शिवमार्ग व भूप्रदीपनमें आदित्य तथा सरस्वतीके किनारे हंस और पृथूदकमें विश्वामित्र ॥ १७ ॥ उज्जयिनीमें नरद्वीप व सिद्धामें अमितद्युति,कुन्तिकुमारमें सूर्य,पंचनदीमें विभावसु और मथुरामें विमलादित्य व संज्ञकमें संज्ञादित्य, श्रीकण्ठमें मार्तण्ड और दशार्ण में दण्डक कहागया है ॥ १८ । १९ ॥ व गोधनमें गोपति देव व मरुस्थलमें कर्ण, पुष्पमें देवगुरु और लोहितमें केशवार्क ॥ २० ॥ और वैदेश में ताद्वल,

शोण में अरुणवासी वर्द्धमानमें सांबनामक और कामरूप में शुभंकर हैं ॥ २१ ॥ और कान्यकुब्ज में मिहिर व पुण्यवर्द्धन में मन्दार तथा गांधार में क्षोभणादित्य व लङ्कामें अरुणद्युति ॥ २२ ॥ चम्पा में कर्णादित्य, प्रबोध में शुभदर्शी, द्वारका में पार्वत्य व हिमवान् पै हिमापह ॥ २३ ॥ और लोहित्य में महातेज व धूर्जट में अमलांग और रोहिक में कुमारनामक तथा पद्मा में पद्मसंभव ॥ २४ ॥ खेड़ा में धर्मादित्य और अर्बुद में स्थविर को कहते हैं और कौबेरी में दुःखप्रद व कोशल में गोपति ॥ २५ ॥ कौंकण में पद्मदेव और विन्ध्यपर्वत पै तापन काश्मीर में त्वष्टा और चरित में रत्नसंभव ॥ २६ ॥ पुष्कर में हेमगर्भ व गभस्तिनमें सूर्यनारायणको

द्रूलं शोणेचारुणवासिनम् ॥ वर्द्धमानेचसाम्बाख्यं कामरूपेशुभङ्करम् ॥ २१ ॥ मिहिरंकान्यकुब्जेच मन्दारंपुण्य वर्द्धने ॥ गान्धारेक्षोभणादित्यं लङ्कायामरुणद्युतिम् ॥ २२ ॥ कर्णादित्यञ्चचम्पायां प्रबोधेशुभदर्शिनम् ॥ द्वारावत्या न्तुपार्वत्यं हिमवन्तेहिमापहम् ॥ २३ ॥ महातेजन्तुलोहित्ये ह्यमलाङ्गन्तुधूर्ज्जटे ॥ रोहिकेतुकुमाराख्यं पद्मायांपद्म सम्भवम् ॥ २४ ॥ धर्मादित्यंतुखेहायामर्बुदेस्थविरंविदुः ॥ दुःखप्रदन्तुकौबेर्यां कोशलेगोपतिंतथा ॥ २५ ॥ कौङ्क णेपद्मदेवंच तापनंविन्ध्यपर्वते ॥ त्वष्टाचैवतुकाश्मीरे चरित्रेरत्नसम्भवम् ॥ २६ ॥ पुष्करेहेमगर्भन्तु विद्यात्सूर्यंगभस्ति ने ॥ प्रकाशायान्तुमुज्जालं तीर्थग्रामेप्रभाकरम् ॥ २७ ॥ काम्पिल्लेरिल्लिकादित्यं धन्यकेधन्यवासिनम् ॥ अनलंनर्मदा तीरे सर्वत्रगगनाधिपम् ॥ २८ ॥ अष्टषष्टितुदेवस्य भास्करस्यामितद्युतेः ॥ प्रातरुत्थाययोनित्यं भक्तिमाञ्शुचिमान्न रः ॥ २९ ॥ पठतेश्शृणुतेवापि सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ राज्यार्थीलभतेराज्यं धनार्थीलभतेधनम् ॥ ३० ॥ पुत्रार्थीलभते पुत्रान् सुखार्थीसुखमाप्नुयात ॥ रोगार्त्तोमुच्यतेरोगाद्बद्धोमुच्येतबन्धनात ॥ ३१ ॥ यान्यान्प्रार्थयतेकामांस्तांस्तान्

जाने, प्रकाशामें मुज्जाल और तीर्थग्राम में प्रभाकर ॥ २७ ॥ काम्पिल्लमें रिल्लिकादित्य और धन्यक में धन्यवासी, नर्मदाके किनारे अनल व सर्वत्र गगनाधिप ॥ २८ ॥ अमित तेजवाले सूर्यनारायणजी के अरसठि नामोंको जो भक्तिमान् व पवित्र मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर ॥ २९ ॥ पढ़ता या सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है और राज्यका चाहनेवाला राज्य व धनको चाहनेवाला धनको पाताहै ॥ ३० ॥ और पुत्रका अभिलाषी पुत्रोंको व सुखका चाहनेवाला सुखको पाताहै रोगसे विकल

मनुष्य रोगसे छूटजाता है व बँधुवा पुरुष बन्धन से छूटजाता है ॥ ३१ ॥ व जिन जिन कामनाओंकी प्रार्थना करताहै उन सबको निरसन्देह प्राप्तहोता है ॥ ३२ ॥ महादेवजी बोले इसप्रकार स्तुति करतेहुये उस निर्मल चित्तवाले चित्रके ऊपर बहुत समय से प्रसन्न होतेहुये व्यापक सूर्यनारायणजीने ॥ ३३ ॥ कहा कि हे वत्स ! तुम्हारा कल्याण होवै हे सुव्रत ! वरदान को मांगिये उसने कहा कि हे तीव्रदीधिते ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्नहो ॥ ३४ ॥ तो सब कार्योंमें मेरी प्रवीणताहोवै और रुचिहोवै हे वरवर्णिनि ! सूर्यने यह प्रतिज्ञा किया कि वह वैसाही होवै ॥३५॥ तदनन्तर मित्रकेवंशमें उत्पन्न चित्र सर्वार्थताको प्राप्तहुआ बड़ीबुद्धिसेसंयुत बुद्धिमान्

प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ३२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंचस्तुवतस्तस्य चित्रस्यविमलात्मनः ॥ तस्यतुष्टस्सहस्रांशुः कालेनम हताविभुः ॥ ३३ ॥ अब्रवीद्वत्सभद्रन्ते वरंवरयसुव्रत ॥ सोब्रवीद्यदिमेतुष्टो वाभवांस्तीव्रदीधिते॥ ३४ ॥ प्रौढत्वंसर्वका र्येषुजायताम्मेरुचिस्तथा ॥ तत्तथेतिप्रतिज्ञातं सूर्येणवरवर्णिनि ॥ ३५ ॥ ततस्सर्वार्थताम्प्राप्तश्चित्रोमित्रकुलोद्भवः ॥ तंज्ञात्वाधर्मराजस्तु बुद्ध्यापरमयायुतः ॥ ३६ ॥ चिन्तयामासमेधावी लेखकोयंभवेदिति ॥ ततोमेसर्वसिद्धिश्च निवृ त्तिश्चपराभवेत् ॥ ३७ ॥ एवंचिन्तयतस्तस्य धर्मराजस्यभामिनि ॥ अग्नितीर्थंगतश्चित्रः स्नानार्थंलवणाम्भसि ॥ ३८ ॥ सतत्रप्रविशन्नेव नीतस्तुयमकिङ्करैः ॥ सशरीरोमहादेवि यमादेशपरायणैः ॥ ३९॥ सचित्रगुप्तनामाभूद्विश्व चारित्रलेखकः ॥ चित्रादित्येतिनामास ततोलोकेवरानने॥ ४० ॥ सप्तम्यान्नियताहारो यस्तंपूजयतेनरः ॥ सप्तजन्म

धर्मराजने उसको जानकर यह चिन्तवन किया कि यह लेखक होवै तदनन्तर मेरी सब सिद्धि और उत्तम सुखहोवै ॥ ३६ । ३७ ॥ हेभामिनि ! उन धर्मराजके इसप्रकार चिन्तवन करतेहुये चित्र लवणसमुद्र में स्नानके लिये अग्नितीर्थको गया ॥ ३८ ॥ हे महादेवि ! उसमें पैठतेही शरीर समेत उसको यमराजकी आज्ञा में परायण यमदूत यमपुरीको लेगये ॥ ३९ ॥ हे वरानने ! संसारभरके चरित्रको लिखनेवाले वे चित्रगुप्तनामक हुये उसीकारण वे लोकमें चित्रादित्यनामकहुये ॥ ४० ॥ नियत-

भोजी जो पुरुष सप्तमी तिथि में उनको पूजता है उसके सातजन्मों में दारिद्र व दुःख नहीं होताहै ॥ ४१ ॥ और वहीं घोड़ा देनाचाहिये व म्यान समेत तलवारको देनाचाहिये और ब्राह्मण के लिये सुवर्ण देनाचाहिये इसप्रकार यात्राका फल होताहै ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां चित्रादित्यमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । देवि शीतलहिं पूजि जिमि होत निरोगी बाल । इकसौ चौंतिस में सोई बरन्यो रुचिर हवाल ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! वहींपर स्थित दुःखोंको नाश-

निदारिद्रं न दुःखंतस्यजायते ॥ ४१ ॥ तत्रैवचाश्वोदातव्यःसकोशंखड्गमेवच ॥ हिरण्यञ्चैवविप्राय एवंयात्राफलंभवेत् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे चित्रादित्यमाहात्म्यन्नामत्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

ईश्वरउवाच ॥ तत्रैवसंस्थितांपश्येद् देवि दुःखान्तकारिणीम् ॥ शीतलंकुरुतेदेहं बालानांरोगवर्जितम् ॥ १ ॥ पूजिताभक्तिभावेन तेनसाशीतलास्मृता ॥ विस्फोटकप्रशान्त्यर्थं बालानांचैवकारणम् ॥ २ ॥ भावेनप्रापितान्कृत्वा मयूरांस्तत्रकूर्दयेत् ॥ शीतलाग्रेततोगत्वा बालाःसन्तिनिरामयाः ॥ ३ ॥ विस्फोटंचर्चिकाचैव वातादीनांशमो भवेत् ॥ श्राद्धं तत्रैवकुर्वीत ब्राह्मणांस्तत्रभोजयेत् ॥ ४ ॥ कर्पूरंकुङ्कुमञ्चैव मृगनाभिंसुचन्दनम् ॥ पुष्पाणिचसुगन्धीनि नैवेद्यंघृतपायसम् ॥ ५ ॥ निवेद्यदेव्यैतत्सर्वं दम्पत्योःपरिधापयेत ॥ नवम्यांशुक्लपक्षेतु मालांबिल्वमयींशुभाम् ॥ ६ ॥ भक्त्यानिवे

करनेवाली शीतलाजी को देखै जिसलिये भक्तिभावसे पूजित वह बालकोंके शरीर को रोगरहित व शीतल करती है उसीकारण वह शीतला कहीगई है और बालकों के विस्फोटककी शान्तिके लिये वही कारण है ॥ १ । २ ॥ वहां भक्तिसे मयूरोंको प्राप्तकर क्रीड़ा करावै फिर शीतला के आगे जाकर बालक नीरोग होते हैं ॥ ३ ॥ और विस्फोट व चर्चिका रोग याने खुजली तथा वातादि रोगोंकी शान्ति होतीहै वहीं पर श्राद्धकरै और वहां ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ४ ॥ कपूर, कुंकुम, कस्तूरी, सफेद चन्दन व सुगन्धित पुष्प तथा घृत व खीरकी नैवेद्य ॥ ५ ॥ उस सब वस्तुको देवीजीके लिये निवेदन कर स्त्री पुरुषको वसन पहनावै शुक्लपक्षमें नवमी तिथि में

वेलकी उत्तम मालाको ॥ ६ ॥ देवीजी के लिये भक्तिसे निवेदित कर मनुष्य सब सिद्धियों को प्राप्तहोताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांशीतलामाहात्म्यंनामचतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ ® ॥ ® ॥ ® ॥

दो० । लोमशेश्वरहिं थप्यो जिमि श्रीलोमश मुनिनाथ । इकसौ पैंतीसवें महं सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर दुःखान्तकारिणी के पूर्व में सात धनुष पै स्थित उत्तम लोमशेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवेशि ! वहां पर लोमशमहर्षि ने तपकर गुहा के मध्यमें सुरेश्वर महालिंगको स्थापन

दितान्देव्यै सर्वसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे शीतलामाहात्म्यन्नामचतुस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लोमशेश्वरमुत्तमम् ॥ दुःखान्तकारिणीपूर्वे धनुषांसप्तकेस्थितम् ॥ १ ॥ स्थापितंतत्रदेवेशि लोमशेनमहर्षिणा ॥ गुहामध्येमहालिङ्गं तपःकृत्वासुरेश्वरम् ॥ २ ॥ कोटीनांत्रितयंसार्द्धमिन्द्रास्स्वर्गभुजःप्रिये ॥ यदानाशंगमिष्यन्ति तदातस्यक्षयोध्रुवम् ॥ ३ ॥ यावन्तिदेहरोमाणि इन्द्रास्तावन्तएवच ॥ क्रमादिन्द्रेषुनष्टेषु तल्लोमपतनंभवेत् ॥ ४ ॥ एवमीशप्रसादेन चिरायुर्लोमशोऽभवत् ॥ ब्रह्मणांसप्ततिर्नश्येत् समग्रायुषिलोमशे ॥ यएवंपूजयेद्भक्त्या तल्लिङ्गंलोमशार्चितम् ॥ ५ ॥ सोपिदीर्घायुर्भवति निर्व्याधिर्निर्व्रणःसुखी ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे लोमशेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥ * ॥ ॥ ॥

कियाहै ॥ २ ॥ हे प्रिये ! साढ़े तीनकरोड़ स्वर्ग भोगी इन्द्र जब नाशको प्राप्त होवैंगे तब निश्चयकर उनका नाशहोगा ॥ ३ ॥ जितने शरीरके रोमहैं उतनेही इन्द्र हैं क्रमसे इन्द्रोंके नष्टहोनेपर उनके लोमका पतन होताहै ॥ ४ ॥ इसप्रकार शिवजी की प्रसन्नतासे लोमशजी दीर्घआयुर्बलवान् हुये हैं लोमशजी के समस्त आयुर्बल में सत्तर ब्रह्मा नष्टहोवैंगे लोमशजी से पूजेहुये उस लिंगको जो पुरुष भक्तिसे पूजताहै ॥ ५ ॥ वह भी दीर्घआयुर्बलवान् होता है और व्याधिरहित व घावरहित और सुखी होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलोमशेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५ ॥

दो० । तृणविन्द्वीश्वर लिंगको थाप्यो है तृणबिन्दु । इकसौ छत्तीसवें महँ सोइ चरित सुखसिन्दु ॥ महादेवजी बोले कि उसीके पश्चिमभाग में पांच धनुषपै तृणविन्द्वीश्वरनामक लिंग उनके शिष्यसे स्थापित है ॥ १ ॥ हे देवि ! मुनीश्वर तृणविन्दुजी बड़ा तपकरके महीने महीने में कुशके अग्रभाग से जलके बूंदको पीकर ॥ २ ॥ अनेक वर्षोंतक इसप्रकार शिवजी को आराधन कर उत्तम प्रभासक्षेत्र में बड़ी उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायातृणविन्द्वीश्वरमाहात्म्यंनामषट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ ⊙ ॥ ⊙ ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ तृणविन्द्वीश्वरन्नाम तस्यशिष्यप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ कृत्वामहत्तपोदेवि तृणविन्दुर्मुनीश्वरः ॥ मासेमासेकुशाग्रेणजलविन्दुंनिपीयवै ॥ २ ॥ संवत्सराण्यनेकानि एवमाराध्यचेश्वरम् ॥ सम्प्राप्तःपरमांसिद्धिं क्षेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे तृणविन्द्वीश्वरमाहात्म्यन्नामषट्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नदींचित्रपथांशुभाम् ॥ ब्रह्मकुण्डसमीपस्थां चित्रादित्यस्यमध्यतः ॥ १ ॥ यदाचित्रस्तुमन्नीतो यमदूतैस्सुरप्रिये ॥ सशरीरोमहाप्राज्ञो यमादेशपरायणैः ॥ २ ॥ एवंज्ञात्वातुतत्रस्था भगिनी तस्यदुःखिता ॥ चित्रानदीततोभूत्वा तथातस्यमहात्मनः ॥ ३ ॥ प्रविष्टासागरेदेवि अन्वेषन्तीस्वबान्धवम् ॥ तत्रचित्रपथानाम तस्याश्चक्रुर्द्विजातयः ॥ ४ ॥ एवंतत्रसमुत्पन्ना सानदीवरवर्णिनी ॥ तस्यांस्नात्वानरोयस्तु चित्रादित्यंप्रप

दो० । चित्रपथा सरिता भई ताकर सुभग हवाल । इकसौ सैंतीसवें महँ अहै चरित्र रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर ब्रह्मकुण्डके समीपमें स्थित चित्रादित्यके मध्य में उत्तम चित्रपथा नदीके समीप जावै ॥ १ ॥ हे सुरप्रिये ! जब यमराजकी आज्ञा में तत्पर यमदूत महाबुद्धिमान् चित्रको शरीर समेत लेगये ॥ २ ॥ तब ऐसा जानकर वहीं स्थित उसकी बहिन दुःखित हुई तदनन्तर उस महात्माकी वह बहिन चित्रानदी होकर ॥ ३ ॥ हे देवि ! अपने भाईको ढूंढ़ती हुई समुद्र में पैठगई वहां ब्राह्मणोंने उसका चित्रपथा नाम किया ॥ ४ ॥ इसप्रकार उत्तमवर्णवाली वह नदी वहां उत्पन्न हुई है उसमें नहाकर जो मनुष्य चित्रादित्य

को देखताहै ॥ ५ ॥ वह उत्तम स्थानको प्राप्तहोताहै जहां कि सूर्यनारायण देव जी हैं हे देवि ! इस कलियुग में नदी अन्तर्द्धानको प्राप्तहुई है ॥ ६ ॥ और वर्षा समय में समस्त पातकोंको नाश करनेवाली वह देखपड़तीहै भोजन किये या बिनभोजन किये रात्रिमें व दिनमें ॥ ७ ॥ पर्व समय में व बिन पर्व समय में पवित्र या अपवित्र पुरुष हे प्रिये ! जबहीं चित्रपथा नदी को वहां देखै ॥ ८ ॥ तब उसके दर्शनका प्रमाण है वहां काल कारण नहीं है हे महादेवि ! उस नदीको देखकर पितर लोग स्वर्ग में भलीभांति स्थितहोतेहुये ॥ ९ ॥ वहां हर्ष से गान करते हैं व नाचते और हँसते हैं व यह कहते हैं कि हमारे वंशमें उत्पन्न जो कोई यहां श्राद्ध

श्यति ॥ ५ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोदिवाकरः ॥ अस्मिन्कलियुगेदेवि अन्तर्द्धानगतानदी ॥ ६ ॥ प्रावृट्कालेचदृश्येत सर्वपातकनाशिनी ॥ भुक्तोवाप्यथवाभुक्तो रात्रौवायदिवादिवा ॥ ७ ॥ पर्वकालेऽथवाकाले पवित्रोप्यथवाशुचिः ॥ यदैवपश्येद्दैतत्र नदींचित्रपथांप्रिये ॥ ८ ॥ प्रमाणन्दर्शनंतस्या नकालस्तत्रकारणम् ॥ दृष्ट्वानदींमहादेवि पितरःस्वर्गसंस्थिताः ॥ ९ ॥ गायन्तितत्रहर्षेण नृत्यन्तिचहसन्तिच ॥ अस्माकंवंशजःकश्चिच्छ्राद्धमत्रकरिष्यति ॥ १० ॥ यावत्कल्पंतथास्माकं प्रीतिमुत्पादयिष्यति ॥ एवंज्ञात्वानरस्तत्र स्नानंश्राद्धंचकारयेत ॥ ११ ॥ सर्वपापविनाशार्थं पितॄणांप्रीतयेतथा ॥ इत्येतत्कथितन्देवि यथाचित्रपथानदी ॥ १२ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य संस्थितापापनाशिनी ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे चित्रपथामाहात्म्यन्नामसप्तत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कपर्दीयत्रसंस्थितः ॥ तस्यैवचोत्तरेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थितः ॥ १ ॥ चिन्ति

करैगा ॥ १० ॥ वह कल्पपर्यन्त हमारी प्रीतिको उत्पन्न करैगा ऐसा जानकर वहां मनुष्य सब पापोंके नाशकेलिये व पितरोंकी प्रीतिकेलिये स्नान,श्राद्धकरै और हे देवि ! यह माहात्म्य कहागया कि जिसप्रकार चित्रपथा नदी ॥ ११ । १२ ॥ प्रभासक्षेत्रको प्राप्तहोकर पापनाशिनी स्थितहुई है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचित्रपथामाहात्म्यंनामसप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । यथा कपर्दिहिं पूजिकै होत मनोरथ पूर । इकसौ अर्तीसवें मईं सोइ चरित सुखमूर ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि कपर्दी

जी स्थित हैं उसीके उत्तर भागमें थोड़ेही दूर पै स्थित ॥ १ ॥ हे देवि ! दूसरे चिन्तामणिकी नाईं वे चिन्तित प्रयोजनको देनेवाले हैं हे देवि ! चौथि तिथिमें और मंगल के दिन जो मनुष्य उनको नहवाकर विविध नैवेद्यों से भलीभांति पूजकर विघ्नराजेशको तृप्तकरताहै वह सब कामनाओं को प्राप्तहोताहै ॥ २ । ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकपर्दिमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । चित्रेश्वर शिवलिंगको है जिमि अतुल प्रभाव ॥ इकसौ उन्तालीस में सोइ चरित्र सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उनके आग्नेय व दक्षिण

तार्थप्रदोदेवि चिन्तामणिरिवापरः ॥ चतुर्थ्यांयस्तुतन्देवि अङ्गारकदिनेपुनः ॥ २ ॥ स्नापयित्वातुसम्पूज्य नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ तर्पयेद्विघ्नराजेशं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कपर्दिमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि चित्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ धनुषांसप्तकेतस्य स्थितमाग्नेयदक्षिणे ॥ १ ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि सर्वपातकनाशनम् ॥ तत्रचित्रेश्वरंपूज्य नरकान्नभवेद्भयम् ॥ २ ॥ यतःस्थितंतस्यपापं चित्रोमार्जयतिप्रिये ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चित्रेशंपूजयेत्सदा ॥ ३ ॥ तस्मात्पापयुतोवापि नरकन्नैवपश्यति ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे चित्रेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ ॥

में सात धनुष पै स्थित अति उत्तम चित्रेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ बड़े प्रभाववाला वह लिंग समस्त पातकों का नाश करनेवाला है वहां चित्रेश्वरको पूजकर नरक से भय नहीं होताहै ॥ २ ॥ हे प्रिये ! जिसलिये उसके स्थित पापको चित्र नाशकरते हैं उसीकारण सब यत्नसे सदैव चित्रेश्वरजी को पूजै ॥ ३ ॥ और उसी कारण पाप से संयुत भी मनुष्य नरकको नहीं देखताहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचित्रेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰। जिमि लघुपुष्कर कुण्डको थाप्यो ब्रह्मादेव। इकसौ चालिसमें सोई कह्यौ चरित सुखसेव॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर तीसरे बड़ेभारी पुष्कर के समीप जावै उसीके पूर्वदिशाके भाग में कुछ ईशानगोचरमें॥ १॥ नामसे पुष्करनामक छोटा कुण्ड कियागयाहै जहां पर मध्याह्न (दुपहर) समय में प्रतिष्ठाके लिये गयेहुये ब्रह्मा ने त्रिलोककी माता सन्ध्याकी उपासना कियाहै सावधान होताहुआ जो मनुष्य पौर्णमासी तिथिमें उसमें स्नान करताहै॥ २। ३॥ उसने वहां आदिपुष्कर में भलीभांति स्नान किया सुनाहुआ यह माहात्म्य मनुष्योंके पापको हरनेवाला व सब कामनाओं को देनेवाला है॥ ४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकनीयसःपुष्करस्यमाहात्म्यंनामचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १४०॥

ईश्वर उवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि तृतीयंपुष्करंमहत्॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे किञ्चिदीशानगोचरे॥ १॥ कनीयस्तुकृतंकुण्डं पुष्करन्नामनामतः॥ यत्रमध्याह्नसमये ब्रह्मणासमुपासिता॥ २॥ सन्ध्यात्रैलोक्यजननी प्रतिष्ठार्थंगतेनच॥ तत्रयःकुरुतेस्नानं पौर्णमास्यांसमाहितः॥ ३॥ सम्यक्कृतंभवेत्तेन स्नानंतत्रादिपुष्करे॥ श्रुतंपापहरंनृणां सर्वकामप्रदंतथा॥ ४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपुष्करमाहात्म्यन्नामचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१४०॥

ईश्वर उवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि धर्मराजप्रतिष्ठितम्॥ यमेश्वरम्महादेवं तस्यैवोत्तरतःस्थितम्॥ १॥ यदाशप्तोधर्मराजश्छाययावरवर्णिनि॥ तदातस्यापतत्पादस्सवैदुःखान्वितोभवत्॥ २॥ ततःप्राभासिकेक्षेत्रे तपस्तेपेमहातपाः॥ स्थापयामासलिङ्गन्तु ततोदेवस्यशूलिनः॥ ३॥ तस्यतुष्टोमहादेवस्ततःप्रत्यक्षताङ्गतः॥ अब्रवीद्वत्सभद्रन्ते

दो॰। थप्यो यमेश्वरदेवको यथा देव यमराज। इकसौ इकतालीस महँ सोइ चरित सुखसाज॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर यमराजसे थापेहुये उसीके उत्तरमें स्थित यमेश्वर महादेवजीके समीप जावै॥ १॥ हे वरवर्णिनि! जब छायाने यमराजको शापदिया तब उनका चरण गिरपड़ा और वे दुःखसे संयुतहुये॥ २॥ उसके उपरात बड़े तपस्वी धर्मराज ने प्रभासक्षेत्र में तपकिया तदनन्तर त्रिशूलधारी शिवदेवजीके लिंगको स्थापन किया॥ ३॥ तदनन्तर उनके ऊपर

प्रसन्न होतेहुये महादेवजी प्रत्यक्षताको प्राप्तहुये व बोले कि हे वत्स ! तुम्हारा कल्याणहोवै हे सुव्रत ! वरदानको मांगिये ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त धर्मराज बोले कि मेरा चरण गिरपड़ाहै हे देवेश ! वह तुम्हारी प्रसन्नतासे फिर होवै ॥ ५ ॥ हे सुरश्रेष्ठ ! मैंने जो तुम्हारे इस लिंगको निर्माण किया है इसको पृथ्वी में भक्तिसंयुत जो प्राणी देखैं ॥ ६ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से उनके पापकी मुक्ति होवे ऐसाही होगा ऐसा कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ७ ॥ व यमराज भी चरण को पाकर स्वर्गको चलेगये उन सुरोत्तम शिवजी के देखने पर यमलोकसे उपजाहुआ ॥ ८ ॥ भय पापकारी भी मनुष्योंको नहीं होताहै यमद्वितीयाके संयोगमें यमेश्वरके समीपमें स्थित

वरंवरयसुव्रत ॥ ४ ॥ अथाब्रवीद्धर्मराजः पादःप्रपतितोमम ॥ प्रसादात्तवदेवेश जायतांपुनरेवहि ॥ ५ ॥ एतल्लिङ्गंसुरश्रेष्ठ यन्मयानिर्मितन्तव ॥ एतद्येभक्तिसंयुक्ताः पश्यन्तिप्राणिनोभुवि ॥ ६ ॥ तेषांतवप्रसादेन भूयात्पापविमोक्षणम् ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा अन्तर्द्धानंगतोहरः ॥ ७ ॥ यमोपिलब्धपादस्तु पुनरेवदिवंययौ ॥ तस्मिन्दृष्टेसुरश्रेष्ठे यमलोकसमुद्भवम् ॥ ८ ॥ नभयंविद्यतेनृणामपिदुष्कृतिकारिणाम् ॥ भ्रातृद्वितीयासंयोगे स्नात्वापुष्करिणीजले ॥ ९ ॥ यमेश्वरसमीपस्थे यमेशमवलोकयेत् ॥ तिलपात्रंप्रदातव्यं दीपङ्गाःकाञ्चनादिकम् ॥ १० ॥ यमदेवंसमुद्दिश्य मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेयमेश्वरमाहात्म्यन्नामैकचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ब्रह्मकुण्डमनुत्तमम् ॥ तस्यैवनैर्ऋतेभागे ब्रह्मणानिर्मितम्पुरा ॥ १ ॥ यदातु ऋक्षराजेन सोमनाथःप्रतिष्ठितः ॥ तदाब्रह्मादयोदेवास्सर्वेतत्रसमागताः ॥ २ ॥ प्रतिष्ठार्थंचदेवस्य शशाङ्केननिमन्त्रि

तड़ागके जलमें नहाकर यमेश्वरजीको देखै और तिल समेत पात्र देना चाहिये व यमदेवको उद्देश कर दीप,गऊ सुवर्णादिक देना चाहिये ऐसा करनेपर प्राणी समस्त पातकों से छूटजाता है ॥ ९ । १० । ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांयमेश्वरमाहात्म्यवर्णननामैकचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४१ ॥

दो० । ब्रह्मकुण्ड माहात्म्यकी महिमा अमित अपार । इकसौ बैयालीस महँ सोई चरित सुखार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अतिउत्तम ब्रह्मकुण्डके समीप जावै पुरातन समय ब्रह्मा ने उसीके नैर्ऋत्यभाग में निर्माण कियाहै ॥ १ ॥ जब ऋक्षराज चन्द्रमा ने सोमनाथ की प्रतिष्ठा कियाहै तब शिवदेवजीकी

प्रतिष्ठाके लिये चन्द्रमासे निमन्त्रित ब्रह्मादिक सब देवता वहां आये इसके उपरान्त नियम संयुत रात्रिनायक चन्द्रमाने ब्रह्मासे कहा ॥ २।३ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ! आपने विधिपूर्वक मर्यादा किया व स्थापन किया वैसेही अपनासे उपजेहुये चिह्न को कीजिये ॥ ४ ॥ ऐसा सुनकर उस समय ब्रह्मा ने निश्चल ध्यानकरके पुष्करादिक सब तीर्थोंको बुलाकर ॥ ५ ॥ स्वर्ग में व रसातलमें जो तीर्थ थे उनको ब्रह्माने तपस्या की सामर्थ्य के योगसे आकर्षण किया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर चौदह संयुक्त सहस्रगणों से उसीके नामसे ब्रह्मकुण्ड गायाजाता है ॥ ७ ॥ इसीकारण अभक्ति से संयुत मनुष्यों को उत्तम तीर्थ दुर्लभ है इसके उपरान्त लोकोंके पितामह ब्रह्माजी

ताः ॥ अथाब्रवीन्निशानाथो ब्रह्माणंनियमान्वितः ॥ ३ ॥ कृताभवद्भिर्मर्यादा स्थापनन्तुयथाविधि ॥ तथाकुरुसुरश्रेष्ठ चिह्नमात्ममसुद्भवम् ॥ ४॥ एवंश्रुत्वातदाब्रह्मा ध्यानंकृत्वातुनिश्चलम् ॥ आहूयसर्वतीर्थानि पुष्करादीनिसर्वशः॥ ५ ॥ स्वर्गेवैयानितीर्थानि तथैवचरसातले ॥ तपस्सामर्थ्ययोगेन ब्रह्मणाकर्षितानिवै ॥ ६ ॥ अथतस्यैवनाम्नातु ब्रह्मकुण्डन्नुगीयते ॥ गणानान्तुसहस्रैस्तु चतुर्दशभिरन्वितैः ॥ ७ ॥ अतश्चाभक्तियुक्तानां दुष्प्राप्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ अथाब्रवीत्सर्वदेवान् ब्रह्मालोकपितामहः ॥ ८ ॥ अत्रकुण्डेनरःस्नात्वा यःपितॄंस्तर्पयिष्यति ॥ अग्निष्टोमफलंसर्वं लप्स्यतेसतुमानवः ॥ ९ ॥ तत्प्रसादात्स्वर्गलोके विमानेनचरिष्यति ॥ सर्वपापविनाशार्थं तत्रस्नातासरस्वती ॥ १० ॥ सिद्धं रसायनन्देवि तत्रैवउदकंप्रिये ॥ नानापापसमायुक्तो यस्यस्पर्शेनशुद्ध्यति ॥ ११ ॥ दारिद्रदुःखरुक्छोकान् कथंसेवति मानवः ॥ ब्रह्मकुण्डमनुप्राप्य कल्पवृक्षमिवापरम् ॥ १२ ॥ देव्युवाच ॥ भगवन्विस्तराद्ब्रूहि ब्रह्मकुण्डमहोदयम् ॥

सब देवताओं से बोले ॥ ८ ॥ कि इस कुण्ड में नहाकर जो मनुष्य पितरोंको तर्पण करैगा वह मनुष्य सब अग्निष्टोम यज्ञके फलको पावैगा ॥ ९ ॥ व उनकी प्रसन्नता से स्वर्ग लोकमें वह विमानके द्वारा विचरैगा समस्त पापों के नाशके लिये सरस्वतीजी ने उसमें स्नान किया है ॥ १० ॥ हे प्रिय, देवि ! उसीमें जल सिद्ध रसायन है कि जिसके स्पर्श से अनेकभांतिके पापोंसे संयुत मनुष्य शुद्ध होजाताहै॥ ११॥ दूसरे कल्पवृक्षकी नाई ब्रह्मकुण्डको प्राप्तहोकर मनुष्य कैसे दारिद्र,दुःख,रोग व

शोकको सेवताहै ॥ १२ ॥ देवीजी बोलीं कि हे भगवन् ! ब्रह्मकुण्डके माहात्म्यको विस्तारसे कहिये हे प्रभो ! समस्त प्राणियोंके हितके लिये मुझसे विस्तारसे कहिये ॥ १३ ॥ मनुष्यों के दुःख नाशके लिये व दरिद्रके विनाशके कारण ब्रह्मकुण्डके माहात्म्यको सुनने के लिये मुझको बड़ा कौतुक है ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! रसके पान से मोहित सब मनुष्य दुःख व शोकसे पीड़ित होकर सब जन्म भर भ्रमते हैं॥१५॥ उनके हितके लिये मुझसे उत्तम निर्वाण (मोक्ष) रसको कहिये जब पहलेही शरीर अविनाशी होवै ॥ १६ ॥ और आठों सिद्धियोंसे संयुत व सब विद्याओं से संयुक्त व काम, रूप और कर्म से युक्त तथा सब रोगोंसे मुक्तहोवै ॥ १७ ॥ तदनन्तर

सर्वप्राणिहितार्थाय विस्तराद्वदमेप्रभो ॥ १३ ॥ ब्रह्मकुण्डस्यमाहात्म्यं श्रोतुम्मेकौतुकंमहत् ॥ लोकानांदुःखनाशाय दरिद्रक्षयहेतवे ॥ १४॥ भगवन्मानुषास्सर्वे दुःखशोकनिपीडिताः ॥ भ्रमन्तिसकलंजन्म रसपानविमोहिताः ॥ १५ ॥ तेषांहितायमेब्रूहि निर्वाणंरसमुत्तमम् ॥ आदावेवशरीरन्तु अक्षयन्तुयदाभवेत् ॥ १६ ॥ अष्टसिद्धिसमायुक्तं सर्वविद्यासमन्वितम् ॥ कामरूपक्रियायुक्तं सर्वव्याधिसमुज्झितम् ॥ १७ ॥ ततस्तुपरमन्देव निर्वाणंयेनवैलभेत् ॥ मानवः कृतकृत्यश्च जायतेचयथाप्रभो ॥ १८ ॥ तथाकथयमेदेव दयांकृत्वाजगत्प्रभो ॥ निर्वाणंपरमंकल्यं सर्वभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ संसिद्धंसुन्दरंदिव्यं ममाचक्ष्वमहेश्वर ॥ १९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ साधुसाधुमहादेवि लोकानांहितकारिणि ॥ मर्त्यलोकेमहादेवि तीर्थंतीर्थवरंशुभम् ॥ २० ॥ प्रभासंपरमंख्यातं तच्चद्वादशयोजनम् ॥ तत्रसोमेश्वरोदेवस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ २१ ॥ तस्यपूर्वेसमाख्यातः कृष्णःश्रीदैत्यसूदनः ॥ चण्डिकायोगिनीतत्र स्वगणैःपरिवारिता ॥ २२ ॥

हे देवि ! जिससे उत्तम मोक्षको पावै व हे प्रभो ! जिसप्रकार मानदायक व कृतकृत्य होवै ॥ १८ ॥ हे जगत्प्रभो, महेश, देव ! वैसेही मेरे ऊपर कृपा कर कहिये सब भ्रान्ति से रहित,संसिद्ध,सुन्दर,दिव्य व परम नीरोग निर्वाणको मुझसे कहिये ॥१९॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा हे लोकों के हितको करनेवाली, महादेवि ! मृत्युलोक में तीर्थोंमें श्रेष्ठ उत्तम तीर्थ ॥ २० ॥ प्रभासक्षेत्र उत्तम कहागया है और वह बारह योजनहै व उसमें तीनों लोकों में प्रसिद्ध सोमे-

श्वरदेव हैं ॥ २१ ॥ उसके पूर्व में श्रीदैत्यसूदन कृष्णजी कहेगये हैं और वहीं पर अपने गणों से घिरीहुई चण्डिका योगिनी हैं ॥ २२ ॥ उसके पूर्वदिशाके भागमें चतुराननसे निर्माण कियाहुआ तीर्थोंमें श्रेष्ठ तथा सब आश्चर्यों से प्रधान उत्तम दिव्यतीर्थ ॥ २३ ॥ सब देवताओं, सिद्धों, साध्यों व ग्रहों से तथा अप्सरा, मुनि व दिव्य यक्षों और नागों से सदैव सेवित है ॥ २४ ॥ सिद्धिके लिये व सब कामनाओंके निमित्त दिव्य भोगोंको देनेवाला वह उत्तम कुण्ड जिसलिये ब्रह्मा से निर्माण कियागया है उसीकारण ब्रह्मकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध है ॥ २५ ॥ उसीके वायव्यकोणमें आपही हिरण्येशजी स्थितहैं उन उत्तम हिरण्येश्वर शिवजीको आराधकर ॥२६॥

ततःपूर्वदिशाभागे चतुर्वक्त्रेणनिर्मितम् ॥ तीर्थंतीर्थवरन्दिव्यं सर्वाश्चर्यमयंशुभम् ॥ २३ ॥ सेवितंसर्वदेवैस्तु सिद्धैस्साध्यैर्ग्रहैस्तथा ॥ अप्सरोमुनिभिर्दिव्यैर्यक्षैश्चपन्नगैस्सदा ॥ २४ ॥ सिद्ध्यर्थंसर्वकामार्थं दिव्यभोगावहंशुभम् ॥ ब्रह्मकुण्डमितिख्यातं ब्रह्मणानिर्मितंयतः ॥ २५ ॥ तस्यवायव्यकोणेतु हिरण्येशस्स्वयंस्थितः ॥ तमाराध्यमहादेवं हिरण्येश्वरमुत्तमम् ॥ २६ ॥ महामन्त्रंजपेत्क्षेत्रे दशांशंहोमयेत्सुधीः ॥ होमेनसिद्ध्यतेमन्त्र इतिसत्यंवरानने ॥ २७ ॥ तस्योत्तरेतुदिग्भागे किञ्चिदीशानमाश्रितः ॥ चतुर्वक्त्रोमहादेवि क्षेत्रपोलिङ्गरूपधृक् ॥ २८ ॥ तत्स्थानंरक्षतेदेवि लिङ्गरूपेणशङ्करः ॥ तमाराध्यप्रयत्नेन ततःकुण्डंसमाश्रयेत ॥ २९ ॥ सर्वाश्चर्यमयन्देवि नानावर्णविचित्रितम् ॥ कुण्डस्यचेशदिग्भागे भैरवेश्वरमुत्तमम् ॥ ३० ॥ दुर्गन्धासासरिद्देवि वहतेरसरूपिणी ॥ तस्यारसेनसंयुक्तं पृथग्वर्णंजलंभवेत ॥ ३१ ॥ नानावर्णसमोपेतं दृश्यतेद्यापियज्जलम् ॥ रक्तंपीतंतथाश्वेतं ताम्रवर्णंहिकर्बुरम् ॥ ३२ ॥ मेघवर्णमहादि

बुद्धिमान् पुरुष क्षेत्रमें महामन्त्र को जपै और दशांश होम करावै हे वरानने ! होम से मन्त्र सिद्ध होताहै यह सत्य है ॥ २७ ॥ हे महादेवि ! उसके उत्तर दिशाके भागमें कुछ ईशानमें आश्रित लिंगरूपधारी चतुराननजी क्षेत्रपतिहैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! सदाशिवजी लिंगरूपसे उस स्थानकी रक्षा करतेहैं उनको बड़े यत्नसे आराधनकर तदनन्तर कुण्ड के आश्रित होवै ॥ २९ ॥ हे देवि ! जोकि सर्वाश्चर्य्यमय व अनेक रंगोंसे चित्रित है और कुण्ड के ईशान दिशाके भागमें उत्तम भैरवेश्वर लिंग है ॥ ३० ॥ व हे देवि ! वह दुर्गन्धिनी नदी रसरूपिणी बहतीहै उसके रससे संयुक्त जल भिन्न रंगका होताहै ॥ ३१ ॥ अनेक रंगोंसे संयुक्त जिसका जल आज भी देखपड़ता

है लाल, पीला, सफेद, ताम्रवर्ण व कबरा ॥ ३२ ॥ और महादिव्य आसमानी रंग तथा उत्तम चांदीकासा रंग व कपिला गऊके दूधकी नाई रंग और कपूर के रसकी नाई शोभित है ॥ ३३ ॥ कभी कस्तूरी की नाई शोभित और कभी कुंकुमकी नाई छविको प्राप्त करनेवाला, कभी चन्दनसे संयुक्त सुगन्धित और कभी निर्मल जल ॥ ३४ ॥ ये अनेक भांतिके जल वहां सदैव देखपड़ते हैं जिसके ऊपर महादेवजी प्रसन्न होतेहैं उसका वह मन्त्र उसीक्षण सिद्धहोजाता है ॥ ३५ ॥ उसमें जो चांदी फेंकी जाती है वह सुवर्ण होजाता है प्रत्यक्षही अति उत्तम रसायन उसीमें है ॥ ३६ ॥ हे देवि ! उसीक्षण मनुष्य बड़ेभारी कौतुकको देखते हैं कलियुगमें बहु-

व्यं राजतञ्चपुनश्शुभम् ॥ कपिलादुग्धवर्णंच कर्पूररसशोभितम् ॥ ३३ ॥ कदाकस्तूरिकाभासं कुङ्कुमच्छविकावह म् ॥ सौगन्धंचन्दनोपेतं कदाचिन्निर्मलोदकम् ॥ ३४ ॥ एतेरसाश्चविविधा दृश्यन्तेतत्रसर्वदा ॥ यस्यतुष्टोमहादेवः सिद्ध्यन्तेतस्यतत्क्षणात् ॥ ३५ ॥ रजतंक्षिप्यतेतत्र सुवर्णमिहजायते ॥ प्रत्यक्षमेवतत्रैव रसायनमनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ पश्यन्तिमानवादेवि कौतुकंतत्क्षणाद्भृशम् ॥ रसंहिपरमंदिव्यं तत्रस्थञ्चकलौयुगे ॥ ३७ ॥ सदासिद्धरसंपुंसां व्याधीनांक्षयकारकम् ॥ हेमबीजमयन्दिव्यं ब्रह्मकुण्डोद्भवंमहत् ॥ ३८ ॥ इदानींतेप्रवक्ष्यामि मनुष्याणांहितायवै ॥ दारिद्रंक्षयमाप्नोति तत्क्षणाच्चयशस्विनि ॥ ३९ ॥ आदावेवप्रकुर्वीत ताम्रकुम्भंदृढशुभम् ॥ तीर्थोदकेक्षिपेत्तत्र यन्त्रैस्ताम्रैस्समायुतम् ॥ ४० ॥ निक्षिप्यभूमौतत्कुम्भं पुनरेवजलेक्षिपेत् ॥ मासमेकंपुनर्भूम्यां मासमेकंपुनर्जले ॥ ४१ ॥ ततस्सर्वाणिखण्डानि एकीकृत्यप्रयत्नतः ॥ नियमाचारसंयुक्तं ध्यानधारणासंयुतम् ॥ ४२ ॥ तीर्थोदकेनपाकंवै कृत्वा

तहीं उत्तम रस उसमें स्थित है ॥ ३७ ॥ ब्रह्मकुण्डसे उपजाहुआ सदैव सुवर्णबीज मय बड़ाभारी सिद्ध रसायन पुरुषोंके रोगोंको नाश करनेवाला है ॥ ३८ ॥ हे यशस्विनि ! इससमय मनुष्यों के हितके लिये मैं तुमसे कहताहूं कि जिससे उसीक्षण दारिद्र नाशहोता है ॥ ३९ ॥ पहलेही उत्तम व पुष्ट तांबे के घटको बनवावै और तांबेके यन्त्रों से संयुत उस घटको उस तीर्थ के जल में डालै ॥ ४० ॥ और उस घटको भूमिमें गाडकर फिर जलमें डालै और महीने भर फिर पृथ्वी में गाड़े व फिर जलमें महीने भर डालै ॥ ४१ ॥ तदनन्तर सब खण्डों को बड़े यत्नसे इकट्ठा कर नियम, आचारसे संयुत व ध्यान और धारणासे संयुक्त ॥ ४२ ॥ विद्वान् उसमें तीर्थ के जल

से पाककरके इसप्रकार तीनही वर्षसे दिव्य शरीर होताहै ॥ ४३ ॥ और तेजस्वी बलवान् व सब रोगोंसे रहित होताहै और तीनसौ वर्ष जीता है व दुःखोंसे रहित होताहै ॥ ४४ ॥ और तीन वर्षतक जो पुरुष उसमें नित्य स्नान करताहै और पूजा व होमसे संयुत नित्य सरस्वतीजी को जपताहै ॥ ४५ ॥ उसकी वाणी उत्कर्षतासे वर्तमान होती है और सरस्वती सिद्धहोती है और वह संस्कृत व प्राकृत भाषाको जानताहै व अपभ्रंश नहीं होता है ॥ ४६ ॥ व हे शुभे, गिरिजे, वरारोहे ! गंगाजीके सोतके प्रवाहकी नाईं वचन बोलता है व परिश्रमरहित होता है और अक्षय सन्तान को पाता है ॥ ४७ ॥ और हज़ारों वादियों से बोलता है उसमें श्रमनहीं होता

तस्मिन्विचक्षणः ॥ एवंवर्षत्रयेणैव दिव्यदेहःप्रजायते ॥ ४३ ॥ तेजस्वीबलवान्प्राज्ञः सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ जीवेद्वर्ष शतान्येव त्रीणिदुःखविवर्ज्जितः ॥ ४४ ॥ वर्षत्रयमविच्छिन्नं यस्तत्रस्नानमाचरेत् ॥ वागीश्वरींजपेन्नित्यं पूजाहोम समन्वितः ॥ ४५ ॥ तस्यप्रवर्त्ततेवाणी सिद्धिस्सारस्वतीभवेत् ॥ संस्कृतंप्राकृतंवेत्ति ह्यपभ्रंशोनजायते ॥ ४६ ॥ गङ्गा स्रोतःप्रवाहेव उद्गिरेद्गिरिजेशुभे ॥ अश्रान्तश्चवरारोहे अविच्छिन्नाश्चसन्ततिम् ॥ ४७ ॥ वदेद्वादिसहस्रैस्तु नश्रमस्त त्रजायते ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ४८ ॥ पण्डितागर्विताःसर्वे तर्कशास्त्रविशारदाः ॥ आगच्छ न्तिसमन्तेन विद्यायान्नतकन्धराः ॥ ४९ ॥ नशक्नुवन्तितद्वक्तुं प्रष्टुं द्रष्टुमपिप्रिये ॥ वादिनाश्चसहस्राणि नवक्त्येवं निरीक्षणात् ॥ ५० ॥ उद्गायतिचशास्त्राणि बौद्धार्हन्नादिवैदिकम् ॥ विमलंपञ्चरात्रंच सूत्कलंशैवमेवच ॥ ५१ ॥ इति हासपुराणञ्च भूततन्त्रञ्चगारुडम् ॥ भैरवञ्चमहातन्त्रं कुलमार्गंद्विधाप्रिये ॥ ५२ ॥ रथप्रवरवेगेन वाणीचास्खलिताभ

है व इस तीर्थके प्रभावसे सब शास्त्रोंमें प्रवीण होताहै ॥ ४८ ॥ और न्यायशास्त्रमें चतुर व गर्वित सब पंडितलोग उसके साथ विद्या में नीचे झुकेहुये कन्धेवाले होते हैं ॥ ४९ ॥ और हे प्रिये ! उसको कहने पूंछने व देखनें के लिये भी नहीं समर्थ होतेहैं और देखनेसे हज़ारोंवादी नहीं बोलसक्ते हैं ॥ ५० ॥ और वह शास्त्रोंको उच्च-प्रकार से गान करता है व बौद्ध व जैनादिक तथा वैदिक व निर्मल पंचरात्र, सूत्कल, शैव ॥ ५१ ॥ व हे प्रिये ! इतिहास पुराण, भूततंत्र, गरुड़तंत्र व भैरवमहातंत्र और दो

भांति के कुलमार्ग को जानताहै ॥ ५२ ॥ और उत्तम रथके के वेग की नाईं वाणी अस्खलित होतीहै व जैसे गरुड़के आगे से सांप भागते हैं वैसेही उसके आगे से सब वादी भगते हैं ॥ ५३ ॥ और न दारिद्र, न रोग, न फिर मानसी दुःख होताहै और सरस्वतीजीकी प्रसन्नतासे राजमान्य व महामानी होताहै ॥ ५४ ॥ और उत्साह व बलसे संयुत तथा देवताओं की नाईं वह विद्वान् जीताहै और तीर्थही के प्रसादसे दाता, भोक्ता और अयाची होताहै ॥ ५५ ॥ तैल लगाने से मनुष्योंके जो तेज होताहै तीर्थके प्रसादसे वैसाही तेज स्नान करनेसे होताहै ॥ ५६ ॥ व मनुष्य जिसपापको करताहै और पिशुनता (चुगुली) व कृतघ्नताको करताहै और मित्रद्रोह

वेत् ॥ नश्यन्तिवादिनस्सर्वे गरुडस्येवपन्नगाः ॥ ५३ ॥ नदारिद्र्यन्नरोगश्च नदुःखंमानसम्पुनः ॥ राजमान्योमहामानी भवेद्ब्राह्मीप्रसादतः ॥ ५४ ॥ उत्साहबलसंयुक्तो देववज्जीवतेसुधीः ॥ दाताभोक्ताअयाचीच तीर्थस्यैवप्रसादतः ॥ ५५ ॥ तैलाभ्यक्तेनयत्तेजो जायतेमनुजेषुच ॥ स्नानमात्रेतथातेजस्तीर्थस्यैवप्रसादतः ॥ ५६ ॥ यत्पापंकुरुतेजन्तुः पैशून्यञ्चकृतघ्नताम् ॥ मित्रद्रोहेचयत्पापं यत्पापंपारदारिकम् ॥ ५७ ॥ तत्सर्वंविलयंयाति कुण्डस्नानरतस्य च ॥ अतिथिंलङ्घयेद्यस्तु योगांत्यजतिवैद्विजः ॥ ५८ ॥ तत्पापंक्षयमाप्नोति ब्रह्मकुण्डस्यदर्शनात् ॥ यत्पापंब्रह्महत्यायां पूर्वजन्मकृतम्पुनः ॥ ५९ ॥ तत्पापंक्षयमाप्नोति ब्रह्मकुण्डनिषेवणात् ॥ प्रदक्षिणंचयःकुर्यात्स्नात्वाकुण्डस्यवामतः ॥ ६० ॥ संख्ययापञ्चदशवै शृणुतस्यापियत्फलम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ६१ ॥

में जो पापहै और पराई स्त्रीवाला जो पातक है ॥ ५७ ॥ कुण्डके स्नान में तत्पर पुरुषका वह सब पाप नाशको प्राप्तहोता है और जो अतिथि को भोजन नहीं कराता है व जो ब्राह्मण तथा गऊको छोड़देताहै ॥ ५८ ॥ वह पाप ब्रह्मकुण्डके दर्शन से नाशको प्राप्तहोताहै फिर पूर्वजन्ममें कियाहुआ जो पाप ब्रह्महत्यामें होताहै ॥ ५९ ॥ वह पाप ब्रह्मकुण्ड के सेवनसे नाशको प्राप्तहोताहै और जो मनुष्य नहाकर गिनती से पन्द्रह प्रदक्षिणा कुण्डके बाम ओर से करता है उसका भी जो फल है उस

को सुनिये कि उसने सातों पाताल समेत करोड़ तीर्थों से घिरीहुई सातद्वीपोंवाली पृथ्वीकी प्रदक्षिणा किया और वहां वेदविदों में श्रेष्ठ पुरुष के लिये जो भोजनमात्र देताहै ॥ ६० । ६१ । ६२ ॥ उसने इस तीर्थके प्रभावसे लक्षभोज किया और उत्तम हिरण्येश्वर व ब्रह्मेश्वरको भलीभांति पूजकर ॥ ६३ ॥ चतुरानन क्षेत्रपालजी को पूजै तो चिन्तितमनोरथको प्राप्तहोताहै और सब पापोंसे रहित इक्कीस पुश्तियों समेत ॥ ६४ ॥ वह ब्रह्मलोकको जाताहै इसमें विचार न करना चाहिये और ब्रह्मकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य लक्षजपकी विधिसे गायत्री को जपताहै वह पातकोंसे छूटजाताहै वही पुण्यकर्ता है और वही पुरुषों में उत्तम है ॥ ६५ । ६६ ॥ कि जिसने

सप्तपातालसहिता तीर्थकोटिभिरावृता ॥ आहारमात्रंयोदद्यात् तत्रवेदविदांवरे ॥ ६२ ॥ लक्षभोजंकृतन्तेन तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ब्रह्मेश्वरञ्चसम्पूज्य हिरण्येश्वरमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ क्षेत्रपालञ्चतुर्वक्त्रं पूजयेच्चिन्तितंलभेत् ॥ एकविंशकुलैर्युक्तस्सर्वपापविवर्जितः ॥ ६४ ॥ ब्रह्मलोकेसवैयाति नात्रकार्याविचारणा ॥ विरञ्चिकुण्डेस्नात्वावा योजपेद्वेदमातरम् ॥ ६५ ॥ लक्षजाप्यविधानेन समुक्तःपातकैर्भवेत् ॥ सएवपुण्यकर्त्ताचसएवपुरुषोत्तमः ॥ ६६ ॥ यात्रातत्र कृतायेन ब्रह्मकुण्डेवरानने ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ ६७ ॥ ब्रह्मकुण्डंसमाश्रित्य ब्रह्मकुण्डमुपासते ॥ तावद्गर्जन्तितीर्थानि त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ६८ ॥ यावद्ब्रह्मेश्वरन्तीर्थं नपश्यन्तिनराःप्रिये ॥ ब्रह्मकुण्डेतु पानीयं येपिबन्तिनरास्सकृत॥६९॥ नतेषांसंक्रमेत्पापं वाचिकंमानसन्तनौ ॥ ब्रह्माण्डोदरमध्येतु यानितीर्थानिसन्तिवै ॥ ७० ॥ तेषांपुण्यमवाप्नोति ब्रह्मकुण्डप्रदक्षिणात् ॥ याज्ञवल्क्योमहात्माच परब्रह्मस्वरूपवान् ॥ ७१ ॥ सोम

हे वरानने ! ब्रह्मकुण्ड में यात्रा कियाहै अट्ठासी हज़ार ऊर्द्ध्वरेता ऋषि ॥ ६७ ॥ ब्रह्मकुण्ड के आश्रितहोकर ब्रह्मकुण्डकी उपासना करते हैं चराचरसमेत त्रिलोकमें तीर्थ तबतक गरजते हैं ॥ ६८ ॥ जबतक हे प्रिये ! मनुष्य ब्रह्मेश्वर तीर्थको नहीं देखते हैं और जो मनुष्य एकवार ब्रह्मकुण्ड में जल पीतेहैं ॥ ६९ ॥ उनके शरीर में वाचिक व मानसिक पाप नहीं रहताहै ब्रह्माण्ड के उदरके बीचमें जो तीर्थहैं ॥ ७० ॥ ब्रह्मकुण्डकी प्रदक्षिणासे मनुष्य उनके फलको पाताहै और परब्रह्मस्वरूपवान्

महात्मा याज्ञवल्क्यजी ॥ ७१ ॥ निकुंभगणकी नाईं सोमकुण्ड से मुक्तहुये हैं हे देवेशि ! तुम्हारे स्नेहसे यह ब्रह्मकुण्डका माहात्म्य संक्षेपसे कहागया अन्य क्या पूंछतीहो ॥ ७२ । ७३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांब्रह्मकुण्डमाहात्म्यवर्णनंनामद्विचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२ ॥

दो० । कुण्डलहारक तीर्थकर अति उत्तम माहात्म्य । इकसौ तेंतालीस महँ सोइ चरित याथात्म्य । महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके उत्तर-भाग में ब्रह्मकुण्डके समीप रूपकुण्ड से उपजेहुये तीर्थ के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! वहां रूपकुण्डलका हरनेवाला सिद्धहुआहै हे देवि ! उस कुण्डमें नहा-

कुण्डेनमुक्तोभून्निकुम्भस्तुगणोयथा ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तंमाहात्म्यंब्रह्मकुण्डकम् ॥७२॥ तवस्नेहेनदेवेशिकिमन्यत्परिपृच्छसि ॥ ७३॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेब्रह्मकुण्डमाहात्म्यन्नामद्विचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः॥१४२॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि रूपकुण्डलसम्भवम् ॥ तस्यैवचोत्तरेभागे ब्रह्मकुण्डसमीपतः ॥ १ ॥ तत्रसिद्धोमहादेवि रूपकुण्डलहारकः ॥ तत्रस्नात्वानरोदेविमुच्यतेस्तेयकृत्ततः ॥ २ ॥ सप्तजन्मनिदेवेशिनतस्यान्वयसम्भवः ॥ चौरःकश्चिद्भवेत्क्रूरस्तत्रस्नानप्रभावतः ॥ ३ ॥ शिवरात्र्यांविशेषेण पिण्डदानादिकांक्रियाम् ॥ कुर्याच्छस्त्रहतानाञ्च पापिनांतत्रमुक्तये ॥ ४ ॥ देव्युवाच ॥ कथंकुण्डलरूपन्तु पृथिव्यांख्यातिमागतम् ॥ एतत्कथयमेदेव विस्तराद्वदतांवर ॥ ५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविमहापुण्यां कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ यांश्रुत्वामुच्यतेपापान्नरोजन्मशतार्जितात् ॥ ६ ॥ प्रभासक्षेत्रमाहात्म्याच्छिवरात्रेरुपोषणात् ॥ आसीत्सुदर्शनोराजा पृथिव्यामेकराट्सुधीः ॥ ७ ॥

कर तदनन्तर चोरीसे कियेहुये पापसे छूटजाताहै ॥ २ ॥ व हे देवेशि ! उसमें स्नानके प्रभाव से सात जन्मोंतक उसके वंशमें उपजाहुआ कोई पुरुष चोर और क्रूर नहीं होताहै ॥ ३ ॥ व मुक्तिके लिये शस्त्रसे मरेहुये पापियों का पिण्डदानादिक कार्य वहां विशेषकर शिवरात्रिमें करना चाहिये ॥ ४ ॥ देवीजी बोलीं कि कुण्डलरूप तीर्थ कैसे पृथ्वी में प्रसिद्धहुआहै हे वदतांवर, देव ! इसको मुझसे विस्तारसे कहिये ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पापोंको नाशकरनेवाली महापवित्र कथाको सुनिये कि जिसको सुनकर मनुष्य प्रभासक्षेत्र के माहात्म्य व शिवरात्रिके उपाससे सौ जन्मोंमें इकट्ठा कियेहुये पापसे छूटजाताहै पृथ्वी में बुद्धिमान् सुदर्शननामक

चक्रवर्ती राजाहुआ है ॥ ६ । ७ ॥ वह धन्य और धान्य से धनाढ्य था उसने न्यायसे प्रजाओं का पालन किया और ब्राह्मणों से शोभित उसका राज्य भलीभाति सं-पन्नथा ॥ ८ ॥ और समृद्धि व ऋद्धिसे संयुत व पिशुन और चोरोंसे रहित था व उस सुन्दर देशमें उत्तम भोगवती पुरी ॥ ६ ॥ चारों वर्णों से युक्त और नगर व शहर-दिवालों से शोभित थी और उस श्रेष्ठ नगर में ऋद्धियुक्त सुदर्शन भाइयों समेत निष्कण्टक राज्य करता था गांधारकी कन्यासे हिरण्यदत्तके पुत्र पैदाहुआ ॥ १० । ११ ॥ सुनन्दानामक प्रसिद्ध काशिराजकी उत्तम कन्या उसकी प्यारी पतिव्रता स्त्री पतिव्रत में परायण थी ॥ १२ ॥ उसके साथ उस नृपेन्द्रने सदैव सुखोंको भोग

धन्योधान्यधनाढ्यश्च प्रजान्यायेनपालयेत् ॥ राज्यंतस्यसुसम्पन्नं ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥ ८ ॥ समृद्धिऋद्धिसं युक्तं खलतस्करवर्जितम् ॥ तस्मिञ्जनपदेरम्ये पुरीभोगवतीशुभा ॥ ६ ॥ चातुर्वर्ण्यसमायुक्ता पुरप्राकारमण्डिता ॥ तस्मिन्पुरवरेरम्ये राज्यंनिहतकण्टकम् ॥ १० ॥ करोतिबान्धवैस्सार्द्धमृद्धियुक्तस्सुदर्शनः ॥ हिरण्यदत्तस्यसुतो जातोगान्धारकन्यया ॥ ११ ॥ तस्यभार्याप्रियासाध्वी भर्तुर्व्रतपरायणा ॥ सुनन्दानामविख्याता काशिराजसुताशुभा ॥ १२ ॥ तयासार्द्धंहिराजेन्द्रो भोगान्सबुभुजेसदा ॥ भुञ्जमानस्यभोगान्वै चिरकालोगतस्तदा ॥ १३ ॥ अकरोत्समहायज्ञान् ददौदानानिभूरिशः ॥ एवंकालोगतस्तस्य भार्ययासहसुव्रते ॥ १४ ॥ कदाचिन्माघमासेतु शिवरात्र्यां वरानने ॥ सस्मारपूर्वजातिंस भार्यामाहूयचाब्रवीत् ॥ १५ ॥ सुदर्शनउवाच ॥ शिवरात्रिव्रतन्देवि मयाकार्यंवरानने ॥ व्रतस्यास्यप्रभावेण प्राप्तंराज्यमकण्टकम् ॥ १६ ॥ नियमञ्चकरिष्यामि शिवरात्रिमुपोषणे ॥ कुरुत्वञ्चमयासार्द्धं

किया उससमय भोगोंको भोगकरतेहुये उसका बहुत समय व्यतीत होगया ॥ १३ ॥ हेसुव्रते ! उसने महायज्ञों को किया व बहुतसे दानोंको दिया इसप्रकार स्त्रीसमेत उसका समय व्यतीतहोगया ॥ १४ ॥ हे वरानने ! किसी समय माघमहीनेमें शिवरात्रिमें उसने पहले की जातिको स्मरण किया और स्त्रीको बुलाकर कहा ॥ १५ ॥ सुद-र्शन बोला कि हे वरानने, देवि ! मुझको शिवरात्रि व्रत करना चाहिये इसव्रतके प्रभावसे मुझको निष्कण्टक राज्य मिला है ॥ १६ ॥ और मैं शिवरात्रिके उपासमें

नियम करूंगा तुमभी मुझ समेत व्रतोंके मध्य में उत्तम व्रतकोंकरो ॥ १७ ॥ राजासे ऐसा वचन कहने पर सुनन्दा वचनबोली ॥ १८ ॥ सुनन्दा बोली कि हे नृपेन्द्र ! तुमने मुझसे ऐसा कहा कि इसव्रतके प्रभावसे मैंने बड़े प्रभाववाले राज्यको पायाहै ॥ १९ ॥ मुझसे इसकारणको कहिये क्योंकि हृदयमें आश्चर्य वर्तमानहै ॥ २० ॥ राजा बोले कि शिवरात्रिके उपाससे तीर्थके माहात्म्यको सुनिये कि उस सुन्दर शिवपुर व सुशोभन स्वर्गद्वारमें ॥ २१ ॥ आदितीर्थ प्रभासनामक उत्तम कामुक तीर्थ में नित्यही धर्म व अर्थसे सेवित उस ऋद्धिसंयुत नगरमें ॥ २२ ॥ हे रानी ! तिथियोंके मध्यमें उत्तम शिवरात्रि तिथि प्राप्तहुई वहां जो कोई पुर व राज्यके बसनेवालेथे ॥

व्रतानामुत्तमंव्रतम् ॥ १७ ॥ इत्युक्तेवचनेराज्ञा सुनन्दावाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥ सुनन्दोवाच ॥ व्रतस्यास्यप्रभावेण राज्यंप्राप्तंमयाकिल ॥ महाप्रभावंराजेन्द्र ह्येवमुक्तंत्वयामम ॥ १९ ॥ एतन्मेकारणंब्रूहि आश्चर्य्यंहृदिवर्तते ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ शृणुतीर्थस्यमाहात्म्यं शिवरात्रिमुपोषणात् ॥ तस्मिञ्छिवपुरेरम्ये स्वर्गद्वारेसुशोभने ॥ २१ ॥ आदितीर्थप्रभासेतु कामुकेतीर्थउत्तमे ॥ ऋद्धियुक्तेपुरेतस्मिन्नित्यंधर्मार्थसेविते ॥ २२ ॥ शिवरात्र्यागताराज्ञि तिथीनामुत्तमातिथिः ॥ मानवास्तत्रयेकेचित् पुरराष्ट्रनिवासिनः ॥ २३ ॥ तत्रागतावरारोहे शिवरात्र्यामुपोषितुम् ॥ धर्मनामावणिक्चैव तत्रैववसतेसदा ॥ २४ ॥ धनाढ्यस्सतुधर्मात्मा सदाधर्मपरायणः ॥ भार्ययासहितस्तत्र शिवरात्रिमुपोषते ॥ २५ ॥ तस्यभार्याभवत्साध्वी रूपयौवनसंवृता ॥ २६ ॥ प्रस्खलन्मेखलाहारा सर्वाभरणभूषिता ॥ सतयाभार्ययासार्द्धं कामक्रोधविवर्ज्जितः ॥ २७ ॥ प्रभासस्याग्रतोगत्वा स्नातःशुक्लाम्बरःशुचिः ॥ यथोक्तेनविधानेन भक्त्यानिद्रा

२३ ॥ हे वरारोहे ! वे वहां शिवरात्रि में उपास करने के लिये आये और धर्मनामक बनिया वहीं सदैव बसताथा ॥ २४ ॥ और वह धनाढय धर्मात्मा सदैव धर्म में परायण था और स्त्री समेत वह वहीं शिवरात्रिको उपास करता था ॥ २५ ॥ रूप व यौवनसे संयुत उसकी स्त्री पतिव्रताहुई ॥ २६ ॥ जोकि लरखरातीहुई क्षुद्रघण्टिका व हारको पहने थी उस स्त्रीसमेत वह काम और क्रोधसे रहित था ॥ २७ ॥ प्रभासक्षेत्रके आगे जाकर स्नान करके श्वेत बसनोंको पहनकर पवित्रहोकर भक्तिपूर्वक

पूर्वकर्मानुसंयोगात् विकर्मनिरतस्सदा ॥ तस्यांरात्र्यामहन्तत्र जनमध्येतुसंस्थितः ॥ ३० ॥ अन्तर्लीनस्थितस्तत्र शिवरात्रिमुपोषितुम् ॥ वणिजस्तस्यभार्यायाश्छिद्रान्वेषणतत्परः ॥ ३१ ॥ सारात्रिर्जाग्रतस्तत्र गतामेविजनेतथा ॥ गीतनृत्यादिभिर्घोषैर्वेदमङ्गलपाठकैः ॥ ३२ ॥ तालशब्दैस्तथावाद्यैः पुस्तकानाञ्चवाचनैः ॥ एवंरात्र्यान्तुशेषायां यावत्तिष्ठामितत्रवै ॥ ३३ ॥ निरोधेनसमायुक्ता पीड्यमानासुविस्मिता ॥ धर्मभार्यानिरोधार्त्तादेवागाराद्विनिर्गता ॥ ३४ ॥ तस्याः कर्णौत्रोटयित्वा पुप्लुवेहंजवेस्थितः ॥ ततःकोलाहलस्तत्र जातस्तत्पुरवासिभिः ॥ ३५ ॥ श्रुत्वाकोलाहलंतत्र कर्णत्रोटनजंतदा ॥ धावितारक्षकास्तत्र राजशासनकारकाः ॥ ३६ ॥ तैस्समुद्यतशस्त्रैश्च उल्काहस्तैस्समन्ततः ॥ निरीक्षितोथसम्प्राप्तःसुवर्णंतन्मुखेधृतम् ॥ ३७ ॥ खड्गेनतीक्ष्णधारेण छित्त्वाशीर्षंततोमम ॥ उल्काहस्तानिरीक्षन्तो नापश्य
विवर्जितः ॥ २८ ॥ तत्राहंचौररूपेण पापसैन्यंसमाश्रितः ॥ सक्षुद्राणांकुलेजातो देवब्राह्मणपूजकः ॥ २९ ॥

यथोक्त विधिसे निद्रारहित हुआ ॥ २८ ॥ वहां मैं चोरके रूपसे पापकी सेनामें आश्रित हुआ और क्षुद्रोंके कुलमें उत्पन्न वह देवताओं और ब्राह्मणोंका पूजक था ॥ २९ ॥ और पहलेके कर्म के संयोग से सदैव दुष्टकर्म में लगाहुआ मैं उस रात्रि में मनुष्यों के बीचमें भलीभांति स्थित हुआ ॥ ३० ॥ और शिवरात्रि को उपास करने के लिये मैं वहां भीतर छिपकर स्थित रहा व उस बनिया की स्त्री के छिद्र (असावधानता के समय) के ढूंढ़ने में तत्पर रहा ॥ ३१ ॥ वहां निर्जन स्थान में जागते हुए मुझको वह रात्रि व्यतीत होगई गीत नृत्यादिकों के शब्दोंसे व वेदके मंगलपाठों से ॥ ३२ ॥ तथा तालके शब्दों से व बाजनों से और पुस्तकोंके बांचने से इस प्रकार कुछ रात्रि शेष रहने पर जबतक मैं वहा स्थितरहा ॥ ३३ ॥ तबतक निरोध (रोंक) से संयुत व पीडित होती हुई विस्मित होकर धर्मकी स्त्री निरोधसे विकल होकर देवमन्दिर से निकली ॥ ३४ ॥ उसके कानोंको फाड़कर वेगमें स्थित मैं भगगया तदनन्तर वहा उस नगरके निवासियों से कोलाहल हुआ ॥ ३५ ॥ उससमय कान फाड़ने से उपजेहुये कोलाहलको सुनकर वहां राजाकी आज्ञाको करनेवाले रक्षकलोग दौड़े ॥ ३६ ॥ और सब ओर शस्त्रोंको उठाये व अघपरचोंको हाथ में लियेहुये उन्होंने मुझको देखा व पाया और उस सुवर्णको मैंने मुखमें धरलिया ॥ ३७ ॥ तदनन्तर पैनी धारवाली तलवारसे मेरे मस्तकको काटकर अघपरचों को

हाथमें लिये देखतेहुये उन्होंने मणि व कुण्डलको नहीं देखा ॥ ३८॥ और मुझको मारकर उन्होंने जाकर राजासे कहा कि हम लोगों ने उसीक्षण उसको मारडाला और वहां कुछ नहीं मिला ॥ ३९ ॥ वे सब ऐसा कहकर फिर यथा स्थानको चलेगये तदनन्तर भयभीत बन्धुने वहां चित्रकी नाई ॥ ४० ॥ हे प्रिये! वहां ब्राह्मतीर्थ के उत्तर में खातकर शरीर से संयुत मस्तकको गाड़डाला ॥ ४१ ॥ वहीं उत्तम प्रभास तीर्थ में मैं छिपारहा और उस समय प्रसंग से सावधानचित्तवाले मुझ पाखण्डीने उस वृत्तिसे रात्रि व्यतीत किया और नींद नहीं आई शिवरात्रिके प्रभावसे उस जातिकी स्मरणताको मैं प्राप्तहुआ ॥ ४२।४३ ॥ हे वरवर्णिनि ! समृद्ध व निष्कंटक

न्मणिकुण्डले ॥ ३८ ॥ हत्वामान्तेगतास्सर्वे गत्वाराज्ञेन्यवेदयन् ॥ नकिञ्चित्तत्रसम्प्राप्तं हतोस्माभिश्चतत्क्षणात् ॥ ३९ ॥ कथयित्वातुतेसर्वे यथादेशङ्गताःपुनः ॥ ततश्चबन्धुनातत्र भयभीतेनचित्रवत् ॥ ४० ॥ निखातंममतत्रैव शिरः कायेनसंयुतम् ॥ खातंकृत्वाप्रियेतत्र ब्राह्मतीर्थस्यचोत्तरे ॥ ४१ ॥ पिहितोहन्तुतत्रैव प्रभासन्तीर्थमुत्तमम् ॥ तयावृत्त्या तुसारात्रिर्नीतानिद्राविवर्ज्जिता ॥ ४२ ॥ प्रसङ्गादन्यचित्तेन तदाधर्मध्वजेनवै ॥ शिवरात्रिप्रभावेण तज्जातिस्मरता ङ्गतः ॥ ४३ ॥ राज्यंनिष्कण्टकंप्राप्तं समृद्धंवरवर्णिनि ॥ एतत्प्रभासमाहात्म्यं शिवरात्रेरुपोषणात् ॥ ४४ ॥ एत त्फलंमयालब्धं गत्वातस्मादुपोषणात् ॥ ४५ ॥ राज्युवाच ॥ गच्छावस्तत्रयत्रैव कपालंपतितंतव ॥ स्फोटितेच कपालेवै हिरण्यंदृश्यतेयदि ॥ ४६ ॥ प्रत्ययोमेभवेत्पश्चात् तववाक्येनसंशयः ॥ राजोवाच ॥ कल्पेहितिष्ठतेवास्मि न्यावद्भूमिविपर्ययः ॥ ४७ ॥ उत्तिष्ठव्रजभद्रन्ते प्रभासक्षेत्रमुत्तमम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा यद्राज्ञासमुदीरितम् ॥४८॥

राज्यप्राप्तहुई यह शिवरात्रिके उपाससे प्रभासका माहात्म्य है ॥ ४४ ॥ मैंने जाकर उस उपाससे इस फलको पायाहै ॥ ४५ ॥ रानी बोली कि जहां तुम्हारा शिरपड़ा है वहां हम तुम दोनों चलैं और मस्तक फाड़ने पर यदि सुवर्ण देखपड़ै ॥ ४६ ॥ तो पश्चात् तुम्हारे वचन में मुझको निस्सन्देह विश्वास होवै राजा बोले कि जब तक पृथ्वीका विपर्यय होगा तबतक इस कल्प में वह स्थित है ॥ ४७ ॥ तुम्हारा कल्याणहोवै उठिये और उत्तम प्रभासक्षेत्रको चलिये राजाने जो कहा उनके उस

वचनको सुनकर ॥४८॥ शिवरात्रिके उपाससे जानेके लिये इच्छा किया तदनन्तर वेगवान् घोड़ोंसे संयुत व सुवर्ण से भूषित रथपर ॥ ४९ ॥ स्त्रीसमेत बैठकर प्रभास- क्षेत्र को आये हे वरवर्णिनि ! प्रभासक्षेत्र में यथोक्त व्रत कर ॥ ५० ॥ तदनन्तर ब्रह्मतीर्थ में आकर अपने शिरको खोदकर फाड़करके सब सुवर्णको दिखलाया ॥ ५१ ॥ महादेवजी बोले कि उस राजाकी स्त्रीको विश्वास हुआ और जहां उत्तम कल्याण है उस श्रेष्ठ स्थानको गई ॥ ५२ ॥ और उस विचित्र अद्भुतको देखकर सब मनुष्य विस्मयको प्राप्तहुये हे वरानने ! वहां चित्रपथानामक नदी पैदाहुई ॥ ५३ ॥ चित्रादित्यके पूर्व व ब्रह्मतीर्थ के उत्तर में वहां सब पापोंको नाशकरनेवाला वह

आस्थायसहपत्न्याच गमनायमतिंचक्रे शिवरात्रेरुपोषणात ॥ ततोश्वैर्जावनैर्युक्तं रथंहेमविभूषितम् ॥ ४९ ॥ हिरण्यंद प्रभासक्षेत्रमेयिवान् ॥ व्रतंकृत्वाप्रभासेतु तथोक्तंवरवर्णिनि ॥ ५० ॥ ब्रह्मतीर्थंसमागत्य उद्धृत्यसकलंततः ॥ जगामपरमं र्शयामास स्फोटयित्वाशिरस्स्वकम् ॥ ५१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ जातसम्प्रत्ययाभार्या तस्यराज्ञोवभूवह ॥ नदीचित्रपथानाम तत्रोत्पन्ना स्थानं यत्रकल्याणमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ जनोपिविस्मितस्सर्वो दृष्ट्वाचित्रंतदद्भुतम् ॥ श्रावणेमा वरानने ॥ ५३ ॥ चित्रादित्यस्यपूर्वेण ब्रह्मतीर्थस्यचोत्तरे ॥ तत्खातंतिष्ठतेतत्र सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५४ ॥ सिसम्प्राप्ते तस्मिन्कूपेविधानतः ॥ स्नानंयःकुरुतेदेवि श्राद्धंतत्रविशेषतः ॥ ५५ ॥ चित्रादित्यन्तुसम्पूज्य शिवलोकेमही यते ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकुण्डलाहारकमाहात्म्यन्नामत्रयश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः १४३॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि भैरवेश्वरमुत्तमम् ॥ ब्रह्मकुण्डस्यईशाने स्थितंपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ चतुर्व

कूप पैदाहुआ कि जिसमें वहां भली- गढ़ा स्थित है ॥ ५४ ॥ हे देवि ! श्रावण महीना प्राप्तहोने पर विधिसे जो मनुष्य उस कूपमें स्नान करताहै व विशेषतासे श्राद्ध करताहै ॥ ५५ ॥ चित्रादित्यको भली- भांति पूजकर वह शिवलोकमें पूजाजाता है ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकुण्डलाहारकमाहात्म्यंनामत्रयश्चत्वारिं शाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ❀ ॥

दो॰ । भैरवेश शिवलिंगकी महिमा अमित अपार । इकसौ चौवालीस महँ सोईचरित सुखार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर ब्रह्मकुण्ड के ईशानमें

स्थित पापविनाशक उत्तम भैरवेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ उस महाकुण्ड में नहाकर तीर्थकी रक्षामें स्थित उन चतुरानन महादेवजी को जो भक्तिचित्तवाला जितेन्द्रिय पुरुष पंचोपचारकी विधि से पूजता है उसके जितने कुल वीते हैं और जो होनेवाले हैं ॥ २ । ३ ॥ उनको वह मनुष्य तारताहै इसमें विचार न करना चाहिये और उसका इस संसारमें जन्म व नाश नहीं होताहै ॥ ४ ॥ और सूर्यके समानप्रभावाले विमानोंके द्वारा वह सदैव विचरताहै व हज़ारों स्त्रियोंसे घिराहुआ वह स्वर्गमें सदैव देवताओंकी नाईं क्रीड़ा करताहै ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! चारमुखोंवाला यह महाप्रभावान् लिंगहै इसको देखकर भी मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ६ ॥

क्रमहादेवं संस्थितंतीर्थरक्षणे ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे यस्तंपूजयतेनरः ॥ २ ॥ पञ्चोपचारविधिना भक्तिचित्तोजितेन्द्रियः ॥ कुलानियान्यतीतानि भविष्याणिचयानिवै ॥ ३ ॥ तारयेत्सनरोदेवि नात्रकार्याविचारणा ॥ नचात्रसम्भवस्तस्य विनाशोनैवजायते ॥ ४ ॥ विमानैश्चरतेनित्यं दिवाकरसमप्रभैः ॥ स्त्रीसहस्रैर्वृतोनित्यं क्रीडतेदेववद्दिवि ॥ ५ ॥ एतल्लिङ्गंमहादेविचतुर्वक्त्रंमहाप्रभम् ॥ दृष्ट्वाप्येतद्विमुच्येत सर्वपापैस्तुमानवः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे भैरवेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोब्रह्मेश्वरंगच्छेत्तस्यदक्षिणतःस्थितम् ॥ ब्रह्मणास्थापितंपूर्वं ब्रह्मकुण्डसमीपतः ॥ १ ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातं रक्षमाणंगणैर्मम ॥ तत्रस्नात्वाचतुर्दश्याममावस्यांविशेषतः ॥ २ ॥ श्राद्धंचविधिवत्कृत्वा ब्रह्मेशंपूज

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभैरवेश्वरमाहात्म्यंनामचतुश्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४४ ॥

दो० । जिमि चतुरानन देवजी थाप्योहै ब्रह्मेश । इकसौ पैंतालीस महँ सोई कह्यो उमेश ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर उसीके दक्षिण में स्थित ब्रह्मेश्वरजी के समीप जावै पहले ब्रह्मा ने ब्रह्मकुण्डके समीप उसको स्थापन कियाहै ॥ १ ॥ मेरे गणोंसे रक्षा कियाहुआ वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्धहै वहां चौदसि व अमावस तिथि

में नहाकर विशेषतासे ॥ २ ॥ विधिपूर्वक श्राद्धकर तदनन्तर ब्रह्मेशजी को पूज और शिवजी की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण देवै ॥ ३ ॥ हे देवि ! ऐसा करके मनुष्य जन्मके फलको पाताहै व हे प्रिये ! बड़े यशको प्राप्तहोताहै और ब्रह्मासमेत आनन्द करताहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांब्रह्मेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । सावित्रीशहिं शिवहिं जिमि थाप्योहै सावित्रि । इकसौ छियलिसमें सोई वर्णित कथा विचित्रि ॥ महादेवजी बोले कि उसीके दक्षिणभागमें तीसरे भैरव स्थित

येत्ततः ॥ विप्रेभ्यःकाञ्चनंदद्यात प्रीतयेशङ्करस्यतु ॥ ३ ॥ एवंकृत्वानरोदेवि लभतेजन्मनःफलम् ॥ विपुलांकीर्त्तिमाप्नोति मोदतेब्रह्मणाप्रिये ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे ब्रह्मेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे तृतीयोभैरवःस्थितः ॥ ब्रह्मकुण्डसमीपेतु सावित्र्यासम्प्रतिष्ठितः ॥ १ ॥ आराध्यतत्रदेवेशं देवानांप्रपितामहम् ॥ वायुभक्षानिराहारा तोषयामासशङ्करम् ॥ २ ॥ ततोब्रह्मेश्वरोदेवि प्राब्रवीच्छूलपाणिकः ॥ योस्मिन्कुण्डेनरस्स्नात्वा मल्लिङ्गंपूजयिष्यति ॥ ३ ॥ पूर्णमास्यांविधानेन गन्धपुष्पादिभिःक्रमात् ॥ दास्येतस्यवरानिष्टान्मनसाचेप्सिताञ्छुभान् ॥ ४ ॥ महापातकयुक्तोपि मुक्तोभवतिपातकैः ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा स भूयाद्वृषभध्वजः ॥ ५ ॥ इत्येवमुक्त्वादेवेशस्ततोन्तर्द्धानमागतः ॥ सावित्रीब्रह्मलोकेतु गतासंस्थाप्यशङ्करम् ॥ ६ ॥

हैं जोकि ब्रह्मकुण्डके समीप सावित्रीजीसे थापेगयेहैं ॥ १ ॥ वहां देवताओंके प्रपितामह देवेशजीको थापकर निराहार होतीहुई पवनभक्षण करके सावित्रीजी ने शिवजी को आराधन किया ॥ २ ॥ तदनन्तर हे देवि ! त्रिशूलको हाथमें लिये ब्रह्मेश्वरजी बोले कि जो मनुष्य पौर्णमासी तिथिमें विधिसे क्रमपूर्वक चन्दन पुष्पादिकों से इस कुण्डमें नहाकर मेरे लिंगको पूजैगा उसको मैं मनसे चाहेहुये उत्तम वरदानों को दूंगा ॥ ३ । ४ ॥ और महापातकों से संयुत भी वह पापोंसे छूटजावैगा और सब कामोंसे समृद्धात्मा होकर वह वृषध्वज (शिव) होवैगा ॥ ५ ॥ यही कहकर तदनन्तर देवेश शिवजी अन्तर्द्धान होगये और सावित्रीजी शंकरजीको भलीभांति थापकर

ब्रह्मलोकको चलीगई ॥ ६ ॥ यह संक्षेपसे सावित्रीशजी का माहात्म्य कहागया इसको जो बुद्धिमान् सुनता है वह पातकों से छूटजाताहै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसावित्रीशमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । नारदेश्वरहिं थप्यो जिमि श्रीनारद मुनिनाथ । इकसौ सैंतालीस महँ सोई बरणित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि तीसरे भैरव कहेगये चौथे भैरवको सुनिये कि ब्रह्मेशजी से पश्चिम भागमें तीन धनुष पै स्थित ॥ १ ॥ सब पापों को एकही नाशकरनेवाले व मनुष्यों की सब कामनाओंको देनेवाले नारदेश्वरनामक शिव

इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं सावित्रीशमहोदयम् ॥ शृणुयाद्यस्तुमतिमान्समुक्तःपातकैर्भवेत् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसावित्रीशमाहात्म्यन्नामषट्चत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तृतीयोभैरवःप्रोक्तश्चतुर्थंभैरवंशृणु ॥ ब्रह्मेशात्पश्चिमेभागे धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ १ ॥ सर्वपापैकशमनं सर्वकामप्रदंनृणाम् ॥ नारदेश्वरनामेति स्थापितंनारदेनवै ॥ २ ॥ ब्रह्मलोकेस्थितःपूर्वं नारदोभगवानृषिः ॥ तत्रदृष्ट्वामहावीणां दिव्यतत्त्वगुणैर्वृताम् ॥ ३ ॥ सरस्वत्याविनिर्मुक्तां ब्रह्मलोकेमहाप्रभाम् ॥ सतेनकौतुकाविष्टो वादयामासतान्तदा ॥ तन्त्रीभ्योवाद्यमानाभ्यो ब्राह्मणाःपतिताभुवि ॥ ४ ॥ तान्दृष्ट्वाविस्मयाविष्टो मुक्त्वावीणांप्रयतः ॥ पप्रच्छदेवंब्रह्माणं किमिदंकौतुकंप्रभो ॥ ५ ॥ वाद्यमानासुतन्त्रीषु ब्राह्मणाःपतिताभुवि ॥ कएतेब्राह्मणादेवकिंमृताइवशेरते ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ एतेस्वरामहाभाग मूर्च्छिताःपतिताभुवि ॥ अज्ञानवादनेनैव पापंजातंतवाधुना ॥ ७ ॥

नारदजीसे थापेगये हैं ॥ २ ॥ पुरातन समय भगवान् नारद ऋषि ब्रह्मलोकमें स्थित थे वहां दिव्यतत्त्वके गुणों से संयुत सरस्वतीजीसे छोड़ीहुई महाप्रभावान् महावीणाको देखकर उससे उस समय कौतुक से संयुत उन्होंने उसको बजाया और बाजतीहुई तन्त्रियों से ब्राह्मण पृथ्वी में गिरपड़े ॥ ३ । ४ ॥ उनको देखकर विस्मयसे संयुत नारदजीने बड़े यत्नसे वीणाको छोडकर ब्रह्मादेवसे पूंछा कि हे प्रभो ! यह क्या कौतुक है ॥ ५ ॥ कि तन्त्रियों के बाजने पर ब्राह्मणलोग पृथ्वी में गिरपड़े हे देव ! ये कौन ब्राह्मणहैं और क्यों मरेहुयेकी नाईं सोरहे हैं ॥ ६ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे महाभाग ! ये स्वर मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिरेहैं और अज्ञानसे बजाने के कारण

इस समय तुमको पापहुआ ॥ ७ ॥ हे मुने ! सात ब्राह्मणों के मारनेका पातक तुम को प्राप्त हुआ इसलिये शीघ्रही उत्तम प्रभासक्षेत्रको जाइये ॥ ८ ॥ और सब पापों
की शुद्धिके लिये देवेश शिवजी का आराधन करिये ऐसा कहने पर वहां नारदजी बार २ सन्तापकर ॥ ९ ॥ व बहुत विषाद कर प्रभासक्षेत्रको आये और वहीं बड़े यत्न
से ब्रह्मकुण्डको प्राप्तहोकर ॥ १० ॥ हेप्रिये ! उन्होंने देवताओंके सौबरस तक भैरवको पूजन किया तदनन्तर पातक से रहित हुये व गीतज्ञ हुये ॥ ११ ॥ तबसे लगा-
कर हे महादेवि ! संसार में समस्त पातकोंको नाशकरनेवाला वह लिंग नारदेश्वरभैरव कहागया ॥ १२ ॥ जो मनुष्य अज्ञान से वीणा व स्वरोंको बजाताहै वह माघ

सप्तब्राह्मणविध्वंसपातकन्ते समागतम् ॥ तस्माच्छीघ्रंव्रजमुने प्रभासक्षेत्रमुत्तमम् ॥ ८ ॥ समाराधयदेवेशं सर्व
पापविशुद्धये ॥ इत्युक्तेनारदस्तत्र सन्तप्यचमुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ कृत्वाविषादंबहुशः प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ तत्रैवब्रह्मकुण्ड
न्तं समासाद्यप्रयत्नतः ॥ १० ॥ भैरवंपूजयामास दिव्याब्दानांशतम्प्रिये ॥ ततोनिष्कल्मषोजातो गीतज्ञश्चाभवत्तथा ॥
११ ॥ ततःप्रभृतितल्लिङ्गं नारदेश्वरभैरवम् ॥ ख्यातंलोकेमहादेवि सर्वपातकनाशनम् ॥ १२ ॥ अज्ञानाद्वादयेद्यस्तुवी
णाञ्चैवतथास्वरान् ॥ माघेमासिजिताहारस्त्रिकालंसोर्च्चयेत्तुतम् ॥ १३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गंयातिमनोहरम् ॥
१४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेनारदेश्वरभैरवमाहात्म्यन्नामसप्तचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्येश्वरमुत्तमम् ॥ ब्रह्मकुण्डस्यवायव्ये धनुषांद्वितयेस्थितम् ॥ १ ॥ स
र्वपापप्रशमनं दारिद्र्यौघविनाशनम् ॥ कृतस्मरात्पश्चिमेवै अग्नितीर्थाच्चपूर्वतः ॥ २ ॥ यमेश्वराच्चनैर्ऋत्ये समुद्रस्यो

महीने में आहारको जीतकर त्रिकाल उन शिवजी को पूजै ॥ १३ ॥ तो सब पापोंसे छूटकर सुन्दर स्वर्गको जाताहै ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदया
लुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायानारदेश्वरभैरवमाहात्म्यनामसप्तचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४७ ॥

दो० । हिरण्येश भैरवभये ब्रह्मकुण्ड के पास । इकसौ अर्तालीस महँ सोई कीन्ह प्रकास ॥

महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम हिरण्येश्वरजी के
समीप जावै ब्रह्मकुण्डके वायव्य में दो धनुष पै स्थित ॥ १ ॥ वह लिंग सब पापों को नाशकरनेवाला व दरिद्रसमूह को विनाशनेवाला है कृतस्मर से पश्चिम व

अग्नितीर्थसे पूर्व में ॥ २ ॥ और यमेश्वरजी से नैर्ऋत्य व समुद्र के उत्तरमें उस लिंगके पूर्वभाग में ब्रह्माने बड़ा तप किया ॥ ३ ॥ और उस समय त्रिलोचन देवदेव शिवजीको आराधन किया तदनन्तर प्रसन्नहोकर महादेवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मुझसे वरदानको कहिये ॥ ४ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर तुम प्रसन्न हो तो मैं यज्ञ करूं यह मेरी बुद्धिहै इस लिये जो महापवित्र स्थान होवै उसको मुझसे कहने के योग्यहो ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि कृतस्मरसे ब्रह्मकुण्ड तक व यमेश्वरसे समुद्र तक इस मध्यको प्राप्तहोकर चाण्डाल भी विशेषकर पातकों से छूटजाताहै ॥ ६ ॥ हे विभो ! जहा सदैव पुण्यात्मा मनुष्योंके लिये दृषद्वती नदी

त्तरेतथा ॥ तस्यलिङ्गस्यप्राग्भागे ब्रह्मातेपेमहत्तपः ॥ ३ ॥ आराधयामासतदा देवदेवंत्रिलोचनम् ॥ ततस्तुष्टोमहादेवो ब्रह्मन्ब्रूहिवरंमम ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यजेयमितिमेमतिः ॥ स्थानञ्चयन्महापुण्यं तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ५ ॥ ईश्वरउवाच ॥ कृतस्मराद्ब्रह्मकुण्डं यमेशात्सागरावधि ॥ एतदन्तरमासाद्य श्वपचोपिविमुच्यते ॥ ६ ॥ वहेद्दृषद्वतीयत्र सदापुण्यात्मनांनृणाम् ॥ तत्रयज्ञंकुरुविभो मनसातेयथेप्सितम् ॥ ७ ॥ इत्युक्तस्तुतदाब्रह्मा प्रारभद्यज्ञमुत्तमम् ॥ ततोभागार्थिनोदेवा इन्द्राद्यास्तत्रचागताः ॥ ८ ॥ ऋषयोभागकामास्तु सर्वेतत्रसमागताः ॥ ततोयज्ञेसमारब्धे दक्षिणामददात्पुनः ॥ ९ ॥ ततोथदक्षिणाक्षीणा दीयमानायशस्विनि ॥ ततोब्रह्माभयोद्विग्नो संदध्यौमनसातदा ॥ १० ॥ बद्धाञ्जलिपुटोभूत्वा इदंवचनमब्रवीत् ॥ भगवन्वैविरूपाक्ष क्रतुर्नैवसमाप्यते ॥ ११ ॥ दक्षिणाहीनतोदेव नयातिपरिपूर्णताम् ॥ दक्षिणासहितास्सर्वे यथायान्तितथाकुरु ॥ १२ ॥ पितामहवचःश्रुत्वा ध्यानंकृत्वात

बहतीहै वहां यज्ञ कीजिये तो तुम्हारे मनको जो प्रिय होगा वह होवैगा ॥ ७ ॥ उससमय ऐसा कहेहुये ब्रह्माने उत्तम यज्ञका प्रारंभ किया तदनन्तर भागको चाहनेवाले इन्द्रादिक देवता वहां आये ॥ ८ ॥ और भागकी कामनावाले सब ऋषिलोग वहां आये तदनन्तर यज्ञ प्रारम्भ होनेपर फिर उन्होंने दक्षिणा दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर हे यशस्विनि ! दीजातीहुई दक्षिणा क्षीण होगई तदनन्तर उस समय भयसे ऊबेहुये ब्रह्माने मनसे विचार किया ॥ १० ॥ व हाथोंको जोड़कर यह वचन कहा कि हे विरूपाक्ष, भगवन् ! यज्ञ नहीं समाप्त होताहै ॥ ११ ॥ हे देव ! दक्षिणाहीन होनेके कारण यज्ञ परिपूर्णताको नहीं प्राप्तहोताहै जिसप्रकार सब दक्षिणामें संयुत होवैं

वैसाही कीजिये ॥ १२ ॥ ब्रह्माके वचनको सुनकर उस समय मैंने ध्यान करके देवताओं के हितकी कामना से सरस्वतीजी का स्मरण किया ॥ १३ ॥ व महापुण्यवती वे सरस्वतीजी आईं उस समय मैंने उन देवीजी से कहा कि ब्रह्माका धन क्षीण होगया इससे यज्ञ नहीं समाप्त होताहै ॥ १४ ॥ इसलिये मेरी प्रसन्नताके कारण सुवर्णवाहिनी होवो तदनन्तर सरस्वतीजी का पश्चिममुखवाला स्रोत उत्पन्नहुआ ॥ १५ ॥ और हज़ारों सोने के कमल उत्पन्नहुये व सुवर्ण के प्रवाह से सरस्वतीजीके उत्तम जल ने ॥ १६ ॥ हे प्रिये ! दैत्यसूदनको प्राप्तहोकर अग्नितीर्थतक सब ओर करोड़ों कमलों से पूर्ण किया ॥ १७ ॥ उन्हीं सुवर्ण कम-

दामया ॥ स्मृतासरस्वतीदेवी देवानांहितकाम्यया ॥ १३ ॥ आगतासामहापुण्या उक्तादेवीमयातदा ॥ पद्मयोनेर्धनं क्षीणं क्रतुर्नैवसमाप्यते ॥ १४ ॥ तस्मान्ममप्रसादेन भवकाञ्चनवाहिनी ॥ सरस्वत्यास्ततस्स्रोत उत्थितंपश्चिमामुखम् ॥ १५ ॥ काञ्चनानितुपद्मानि उत्थितानिसहस्रशः ॥ काञ्चनेनप्रवाहेण तोयंसारस्वतंशुभम् ॥ १६ ॥ दैत्यसूदनमासाद्य अग्नितीर्थावधिप्रिये ॥ पूरयामासपद्मैश्च कोटिशश्चसमन्ततः ॥ १७ ॥ काञ्चनानितुतान्येव दत्त्वाविप्रेषुदक्षिणाः ॥ यज्ञंनिवर्तयामास हृष्टोब्रह्माद्विजैस्सह ॥ १८ ॥ शेषाणियानिपद्मानि तानिन्यस्यचभूतले ॥ तदूर्ध्वंस्थापयामास लिङ्गन्तुकनकेश्वरम् ॥ १९ ॥ तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ ऋषिभ्योदक्षिणादत्ता एकैकेभ्योयथाक्रमम् ॥ २० ॥ काञ्चनानाञ्चपद्मानां प्रत्येकमयुतन्ददौ ॥ दत्तशेषाणिपद्मानि निहितानिधरातले ॥ २१ ॥ ब्रह्मकुण्डस्यमध्येतु नाषुण्योलभतेनरः ॥ तत्कुण्डेतोयमद्यापि नानावर्णंप्रदृश्यते ॥ २२ ॥ तत्राधःपद्मसंयोगान्नीरंस्वर्णाय

लोंको ब्राह्मणों के लिये दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंसमेत प्रसन्न होतेहुये ब्रह्माजीने यज्ञ को निवृत्त किया ॥ १८ ॥ और, जो कमल शेष रहे उनको पृथ्वीमें गाड़कर उसके ऊपर कनकेश्वर लिंगको थापन किया ॥ १९ ॥ वहां सब देवताओं से नमस्कार कियेहुये लिंगको थापकर एक एक ऋषिके लिये क्रमपूर्वक दक्षिणा दिया ॥ २० ॥ प्रत्येक ऋषिको दशहज़ार सुवर्ण के कमलोंको दिया व देनेसे बचेहुये कमलों को ब्रह्मकुण्ड के मध्य में पृथ्वी में गाड़ दिया उसको पुण्यहीन मनुष्य नहीं प्राप्तहोता

है और उस कुण्डमें आज भी अनेक रंगका जल देखपड़ताहै ॥ २१ । २२ ॥ वहां नीचे के कमलों के संयोगसे जल क्षणभर में सुवर्ण के समान होजाता है सोने के कमलोंको नीचे करके ब्रह्माजी ने ॥ २३ ॥ ऊपर लिंगको थापकर उस समय आपही दिव्य सुवर्णकमलों से पूजन किया उसीकारण हिरण्येशजी हुये ॥ २४ ॥ सब पापोंको नाशकरनेवाले व दरिद्रको विनाशनेवाले सुवर्णमय ईशान (शिव) जीको देखकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ २५ ॥ जिसने उसलिंगको पूजन किया उसने ब्रह्माण्डको देदिया हे वरवर्णिनि ! मैंने स्नेह से यह तुमसे कहा ॥ २६ ॥ हेवरानने ! महागुप्त करनेयोग्य इस चरित्र को मैंने किसी से नहीं कहाहै भक्तिसंयुत

तेक्षणात् ॥ हिरण्यानिसुपद्मानि अधःकृत्वाप्रजापतिः ॥ २३ ॥ लिङ्गमूर्द्ध्वंप्रतिष्ठाप्य स्वयंपूजितवांस्तदा ॥ हिरण्य कमलैर्दिव्यैर्हिरण्येशस्ततोभवत् ॥ २४ ॥ सर्वपापप्रशमनं तथादारिद्रनाशनम् ॥ दृष्ट्वाहिरण्मयीशानं सर्वपापैःप्रमु ते ॥ २५ ॥ ब्रह्माण्डन्तेनदत्तंस्याद् येनतल्लिङ्गमर्चितम् ॥ एतन्मयातेकथितं स्नेहेनवरवर्णिनि ॥ २६ ॥ नकस्यचिन्म याख्यातं महागोप्यंवरानने ॥ यइदंशृणुयाद्भक्त्या पठेद्वाभक्तिसंयुतः ॥ २७ ॥ सगच्छेद्देवलोकन्तु मुक्तस्सर्वैस्तुपात कैः ॥ इतितेवैसमाख्याताः पवित्राःपञ्चभैरवाः ॥ २८ ॥ ब्रह्मकुण्डसमीपस्थाः कथितास्तवसुन्दरि ॥ २९ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे हिरण्येश्वरभैरवमाहात्म्यन्नामाष्टचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥ * ॥
ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंपापविमोचनम् ॥ हिरण्येश्वरवायव्ये धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ १ ॥ पाप

जो मनुष्य इस चरित्रको भक्तिसे सुनता या पढ़ता है ॥ २७ ॥ वह सब पातकों से छूटकर देवलोकको जाताहै मैंने इन पवित्र पाचभैरवों को तुमसे कहा ॥ २८ ॥ हे सुन्दरि ! ब्रह्मकुण्डके समीप स्थित ये भैरव तुमसे कहेगये ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहिरण्येश्वरभैरवमाहात्म्यं नामाष्टचत्वारिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । गायत्रीश्वर लिंगको थाप्यो है गायत्रि ।सो इकसौ उञ्चास महँ कह्यो चरित्र विचित्रि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्येश्वर के वायव्य

में तीनधनुष पै स्थित पापविमोचन लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! गायत्रीजीसे थापा हुआ वह आद्यलिंग दर्शन व स्पर्श करनेसे भी सब प्राणियों के पापों
को नाशनेवाला है ॥ २ ॥ जो ब्राह्मण पवित्रहोकर उस लिंगको प्राप्त होकर गायत्री को जपताहै वह दुष्टप्रतिग्रह (दानलेने) से छूट जाता है ॥ ३ ॥ जेठकी पौर्ण-
मासी तिथि में जो मनुष्य स्त्री पुरुष को यथाशक्ति वसन पहनाकर भोजन कराताहै वह दुर्भाग्यों से छूट जाताहै ॥ ४ ॥ हे सुन्दरि ! जो पुरुष पौर्णमासी में चन्दन व
पुष्पोपहारों से उस को पूजताहै उस के सातजन्मों तक ब्राह्मणता होती है ॥ ५ ॥ हे प्रिये, देवि ! ब्रह्मकुण्ड के प्रसंगसे यह पापनाशक माहात्म्य कहागया जोकि

घ्नंसर्वजन्तूनां दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ आद्यंलिङ्गंमहादेवि गायत्र्यासम्प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ तल्लिङ्गंसमनुप्राप्य गायत्रीं
जपतेतुयः ॥ ब्राह्मणस्तुशुचिर्भूत्वा मुच्यतेदुष्प्रतिग्रहात् ॥ ३ ॥ ज्येष्ठस्यपूर्णमास्यान्तु दम्पतीयस्तुभोजयेत् ॥ परिधा
प्ययथाशक्त्या दौर्भाग्यैर्मुच्यतेनरः ॥ ४ ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च पौर्णमास्यान्तुयोर्चयेत् ॥ ब्राह्मण्यंजायतेतस्य सप्त
जन्मानिसुन्दरि ॥ ५ ॥ इत्येवंकथितन्देवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ ब्रह्मकुण्डप्रसङ्गेन सारात्सारतरम्प्रिये ॥ ६ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे गायत्रीश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः ॥ १४९ ॥ * ॥
ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि रत्नेश्वरमनुत्तमम् ॥ तत्रैवमहादेवि विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १ ॥ स्थापितंत
त्रतल्लिङ्गं सर्वकामप्रदंप्रिये ॥ रत्नकुण्डेनरस्स्नात्वा यस्तंपूजयतेनरः ॥ २ ॥ लक्ष्मीवान्पशुमान्धीमान् सप्तजन्मा
निजायते ॥ श्रावणद्वादशीयोगे उपोष्यविधिनानरः ॥ ३ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या प्राप्नुयादीप्सितंफलम् ॥ अत्रकृत्वा

सारांश से भी अधिक सारांशवालाहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांगायत्रीश्वरमाहात्म्यंनामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४६ ॥

दो० । रत्नेश्वर शिवलिंगको थाप्योहै जिमि विष्णु । इकसौ पञ्चासवें महँ सोई कथा भविष्णु ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अति उत्तम रत्नेश्वर
के समीप जावै हे महादेवि ! वहीं पर समर्थवान् विष्णुजी ने ॥ १ ॥ हे प्रिये ! सबकामनाओं को देनेवाले उस लिंगको वहां थापाहै रत्नकुण्डमें नहाकर जो मनुष्य
उनको पूजताहै ॥ २ ॥ वह सातजन्मोंतक धनवान्, पशुमान् और बुद्धिमान् होताहै श्रावण द्वादशीके योगमें उपासकर विधिसे जो मनुष्य भक्तिपूर्वक उनको पूजता

है वह चाहेहुये फलको पाताहै यहांपर भयंकर तपस्या करके अमिततेजवाले श्रीकृष्णजी ने ॥ ३ । ४ ॥ सब दैत्योंको नाशकरनेवाले सुदर्शन चक्रको पायाहै हे महादेवि ! यह स्थान मुझको सदैव बहुत प्याराहै ॥ ५ ॥ हे देवेशि ! मैं वहां बसताहूं और प्रलय में भी नहीं छोड़ताहूं ॥ ६ ॥ हे देवि ! नामसे वह सुदर्शन वैष्णवक्षेत्र कहागयाहै जिसका सब ओरसे छत्तीस धनुष मण्डल है ॥ ७ ॥ इसमध्यको प्राप्तहोकर जो कोई अधम प्राणी कालके वशसे मरतेहैं वे परमपदको प्राप्तहोवैंगे ॥ ८ ॥ वहां जो विष्णुजी को उद्देशकर सोने के गरुड़ व पीले वसनोंको देताहै वह यात्राके फलको प्राप्तहोताहै ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्राविरचि

तपोघोरं कृष्णेनामिततेजसा ॥ ४ ॥ प्राप्तंसुदर्शनंचक्रं सर्वदैत्यान्तकारकम् ॥ एतत्स्थानंमहादेवि सदाप्रियतरंमम ॥ ५ ॥ वसामितत्रदेवेशि प्रलयेपिनसन्त्यजे ॥ ६ ॥ स्मृतंतद्वैष्णवंक्षेत्रं नाम्नादेविसुदर्शनम् ॥ षट्त्रिंशद्धनुषांयस्य समन्तात्परिमण्डलम् ॥ ७ ॥ एतदन्तरमासाद्य येकेचित्प्राणिनोधमाः ॥ मृताःकालवशेनैव तेयास्यन्तिपरंपदम् ॥ ८ ॥ काञ्चनंतत्रगरुडं पीतानिवसनानिच ॥ विष्णुमुद्दिश्ययोदद्यात्सतुयात्राफलंलभेत् ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेरत्नेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि वैनतेयप्रतिष्ठितम् ॥ रत्नेश्वरादुत्तरतो धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ १ ॥ वैनतेयेन देवेशि ज्ञात्वाक्षेत्रन्तुवैष्णवम् ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठितंतत्तु सर्वपापविनाशनम् ॥ २ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या पञ्चम्यान्तुविधानतः ॥ नविषंत्रासतेतस्य सप्तजन्मसुसर्पजम् ॥ ३ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य पूजयित्वाविधानतः ॥ प्राप्नुयात्सकलंपुण्यं

तायांभाषाटीकायांरत्नेश्वरमाहात्म्यनामपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । वैनतेय थाप्यो यथा लिंग नाम गरुड़ेश । इकसौ इक्यावनें महँ सोई कह्यो उमेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर रत्नेश्वरसे उत्तरमें तीन धनुष पै स्थित गरुड़जी से थापेहुये लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवेशि ! गरुड़जी ने विष्णुजीके क्षेत्रको जानकर सब पापोंको नाश करनेवाले लिंगको स्थापन किया ॥ २ ॥ पंचमी तिथिमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक विधिसे उनगरुड़ेश्वरजीको पूजताहै उसको सात जन्मोंतक सर्पसे उपजाहुआ विष दुःख नहीं देताहै ॥ ३ ॥ और पंचामृत

से भलीभांति नहवाकर विधि से पूजकर मनुष्य सब पुण्यको प्राप्तहोताहै और स्वर्ग में देवताओंकी नाईं आनन्द करताहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येगरुडेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥ ⊛ ॥

दो॰। सत्यभाम ईश्वरहिं जिमि थाप्योहै सतिभाम। इकसौ बावनमें सोई बरन्यो चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर रत्नेश्वरसे दक्षिण में एक धनुष पै स्थित उत्तम सत्यभामेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! रूप व उदारतासे संयुत कृष्णजी की सत्यभामा स्त्री ने सब पापों को नाशकरनेवाले

मोदतेदिविदेववत् ॥ ४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येगरुडेश्वरमाहात्म्यवर्णनन्नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सत्यभामेश्वरंशुभम् ॥ रत्नेश्वराद्दक्षिणतो धनुषान्तरमास्थितम् ॥ १ ॥ सर्वपापप्रशमनं स्थापितंसत्यभामया ॥ कृष्णस्यकान्तयादेवि रूपौदार्यसमेतया ॥ २ ॥ स्मृतंतद्वैष्णवंस्थानं नृणांपापप्रणाशनम् ॥ माघमासेतृतीयायां नारीवापुरुषोपिवा ॥ ३ ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या समुक्तःपातकैर्भवेत् ॥ दौर्भाग्यदुःखशोकेभ्यस्तथावैपापदोषतः ॥ ४ ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहः सत्यभामान्वितोभवेत् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसत्यभामेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अनङ्गेश्वरमुत्तमम् ॥ रत्नेश्वरादग्रतःस्थं धनुषान्तरमास्थितम् ॥ १ ॥ स्थापि

लिंग को स्थापन कियाहै ॥ २ ॥ वह वैष्णवस्थान मनुष्यों के पापका नाशनेवाला कहागयाहै माघ महीनेमें तीज तिथि को जो स्त्री या जो पुरुष ॥ ३ ॥ भक्तिसे उन शिवजीको पूजताहै वह पातकोंसे छूटजाताहै और दुर्भाग्यता व दुःख तथा शोकसे और पापदोषसे छूटजाताहै और सत्य शोभा व लक्ष्मीसे संयुतहोताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ । ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायागरुडेश्वरमाहात्म्यंनामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५२ ॥

दो॰। अनंगेश लिंगहि यथा थाप्यो देव अनंग। इकसौ तिरपनमें सोई बरन्यो कथाप्रसंग॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर रत्नेश्वर से आगे स्थित

एक धनुष पै प्राप्त उत्तम अनंगेश्वरजीके समीप जावै ॥ १ ॥ कलियुगमें पातकोंके विनाशनेवाले उस वैष्णव स्थानको जानकर विष्णुके पुत्र कामदेव ने उस लिंगको थापन कियाहै ॥ २ ॥ उन शिवजीको देखकर व पूजकर मनुष्य कामदेवके समान होताहै और स्वर्गमें विद्याधरों की स्त्रियोंके चित्तका मोहनेवाला होताहै ॥ ३ ॥ और उसके वंशमें भी कुरूप व दुर्भग नहीं होताहै हे वरवर्णिनि ! वहां अनंगतेरसि में व्रत से ॥ ४ ॥ जन्मको सफलकरनेवाला विशेषकर आराधन श्रेष्ठ है और वहां शीलवान् ब्राह्मण के लिये शय्यादान देना चाहिये ॥ ५ ॥ और विशेषकर विष्णुभक्तके लिये देकर मनुष्य भलीभांति यात्राके फलको प्राप्तहोताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्क

तंकामदेवेन तल्लिङ्गंविष्णुसूनुना ॥ ज्ञात्वातद्वैष्णवंस्थानं कलौपातकनाशनम् ॥ २ ॥ तन्दृष्ट्वापूजयित्वाच कामदेवसमोभवेत् ॥ स्वर्गेविद्याधरीणाञ्च जायतेचित्तमोहकः ॥ ३ ॥ तस्यान्वयेपिनभवेत् कुरूपोदुर्भगोपिवा ॥ तत्रानङ्गत्रयोदश्यां व्रतेनवरवर्णिनि ॥ ४ ॥ विशेषाराधनंश्रेष्ठं जन्मसाफल्यकारकम् ॥ शय्यादानन्तुदातव्यं तत्रविप्रायशीलिने ॥ ५ ॥ विशेषाद्विष्णुभक्ताय सम्यग्यात्राफलंलभेत ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे अनङ्गेश्वरमाहात्म्यन्नामत्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि रत्नकुण्डमनुत्तमम् ॥ रत्नेशाद्दक्षिणेभागे धनुषांसप्तकेस्थितम् ॥ १ ॥ महापापौघशमनं विष्णुनानिर्मितंस्वयम् ॥ अष्टकोट्यस्तुतीर्थानि दिविभूम्यन्तरिक्षयोः ॥ २ ॥ समानीयतुकृष्णेन तत्राकृष्टानिभूरिशः ॥ गणानांकोटिरेकातु तत्कुण्डंरक्षतिप्रिये ॥ ३ ॥ कलौयुगेतुसम्प्राप्ते दुष्प्राप्यमकृतात्मभिः ॥ तत्र

न्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामनङ्गेश्वरमाहात्म्यंनामत्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । रत्नकुण्डतीरथहिं जिमि कियो विष्णु निर्मान । इकसौ चौवनमें सोई कीन्हों कथा बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर रत्नेश्वरसे दक्षिणभाग में सात धनुष पै स्थित अतिउत्तम रत्नकुण्डके समीप जावै ॥ १ ॥ आप ही विष्णुजीने महापातकोंका नाशकरनेवाले उस कुण्डको बनाया है स्वर्ग, पृथ्वी, व आकाश में आठ कोटि तीर्थ हैं ॥ २ ॥ उन बहुत से तीर्थोंको लाकर श्रीकृष्णजी ने आकर्षण कियाहै हे प्रिये ! एक करोड़ गण उस कुण्डकी रक्षा करतेहैं ॥ ३ ॥

और कलियुगके प्राप्तहोनेपर वह पापियोंको दुर्लभहै हे महादेवि ! विधिपूर्वक देखेहुये कर्मसे उस कुण्डमें नहाकर मनुष्य ॥ ४ ॥ अश्वमेधके सौगुने फलको प्राप्तहोताहै वहां विशेषकर एकादशी तिथिमें जो पिंडको देताहै ॥ ५ ॥ हेभामिनि ! उसके पितरअक्षय तृप्तिको प्राप्तहोतेहैं और वहां एकादशी तिथिमें विधिसे जागरणकरै ॥ ६ ॥ तो हेदेवि ! चाहेहुये फलको प्राप्तहोताहै यदि दृढश्रद्धाहोवै और भलीभांति यात्राके फलकी प्राप्तिकेलिये वहां विष्णुजीको उद्देशकरपीले वसन व दूधवाली गऊ देनाचाहिये सतयुग में हेमकुण्ड व त्रेतायुग में रौप्यनामक कुण्ड कहागया है ॥ ७ । ८ ॥ और द्वापरमें चक्रकुण्ड व कलियुगमें रत्नकुण्ड कहागया है वहां पर पातालगंगाजी के

स्नात्वामहादेवि विधिदृष्टेनकर्मणा ॥ ४ ॥ प्राप्नुयादश्वमेधस्य फलंशतगुणोत्तरम् ॥ एकादश्यांविशेषेण पिण्डंत त्रप्रदापयेत् ॥ ५ ॥ अक्षयांतृप्तिमायान्ति पितरस्तस्यभामिनि ॥ कुर्याज्जागरणंतत्र एकादश्यांविधानतः ॥ ६ ॥ वा ञ्छितंलभतेदेवि यदिश्रद्धादृढाभवेत् ॥ देयानिपीतवस्त्राणि तथाधेनुःपयस्विनी ॥ ७ ॥ तत्रविष्णुंसमुद्दिश्य सम्यग्या त्राफलाप्तये ॥ हेमकुण्डंकृतेप्रोक्तं त्रेतायांरौप्यनामकम् ॥ ८ ॥ द्वापरेचक्रकुण्डन्तु रत्नकुण्डंस्मृतंकलौ ॥ तत्रपाता लगङ्गायाःसन्तिस्रोतांसिभूरिशः ॥ ९ ॥ समानीतानिहरिणा तत्रतिष्ठन्तिभामिनि ॥ तत्रस्नानेनदेवेशि सर्वतीर्थनिषेव णम् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेरत्नकुण्डमाहात्म्यन्नामचतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि राजभट्टारकंप्रभुम् ॥ रैवन्तकंसूर्यपुत्रमश्वारूढंमहाबलम् ॥ १ ॥ संस्थितंक्षे त्रमध्येतु सावित्र्यानैर्ऋतेप्रिये ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि सर्वापद्भ्योविमुच्यते ॥ २ ॥ रविवारेणसप्तम्यां यस्तंपूजयते

बहुत से सोत ॥ ९ ॥ विष्णुजी से लायेहुये वहां स्थित हैं हे भामिनि,देवेशि ! उस कुण्डके स्नान से सब तीर्थोंका सेवन होताहै ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांरत्नकुण्डमाहात्म्यंनामचतुष्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । क्षेत्रमध्य में स्थित भये यथा देवरैवन्त । इकसौ पचपन में सोई उत्तम कथा भनन्त ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर घोड़े पै चढ़ेहुये महा-बलवान् सूर्य के पुत्र रैवन्तक राजभट्टारक स्वामीके समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये,देवि ! सावित्रीजीसे नैर्ऋत्यकोणमें क्षेत्रके मध्यमें स्थित उनको देखकर मनुष्य सब विप-

स्त्रियोंसे छूटजाताहै ॥ २ ॥ हे देवि ! रविवारसमेत सप्तमी तिथिमें जो मनुष्य उनको पूजताहै उसके वंशमें भी दरिद्री पुरुष नहीं होताहै ॥ ३ ॥ इसलिये सब यत्नसे पुरुष उन्हीं को पूजै और शीघ्रही बढ़ती के लिये व निर्विघ्न क्षेत्रवास के लिये राजा पूजन करै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरैवन्तमाहात्म्यंनामपञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । अनन्तेश्वरहिं लिंग जिमि थाप्यो नाग अनन्त । इकसौ छप्पनमें सोई बरणत कथासमन्त ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे दक्षिण व

नरः ॥ तस्यान्वयेपिनोदेवि दरिद्रीजायतेनरः ॥३॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तमेवाराधयेत्पुमान् ॥ निर्विघ्नंक्षेत्रवासार्थं राजा चाशुविवृद्धये ॥४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेरैवन्तमाहात्म्यन्नामपञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५५॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्माद्दक्षिणतःस्थितम् ॥ लक्ष्मणेशाच्चपूर्वस्मिँल्लिङ्गमष्टकुलेश्वरम् ॥ अनन्तेश्वरनामानमनन्तेनप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ सर्वपापप्रशमनं महाविषविनाशनम् ॥ पूजितंसिद्धगन्धर्वैर्वाञ्छितार्थप्रदायकम् ॥२॥ यस्तंपूजयतेदेवि कृष्णाष्टम्यांविशेषतः ॥ समुक्तःपातकैर्घोरैर्नागलोकेमहीयते ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेष्टकुलेश्वरमाहात्म्यन्नामषट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्मात्पूर्वेणसंस्थितम् ॥ महापापौघशमनं पूजितंसर्वकामदम् ॥ १ ॥ इतिलि

लक्ष्मणेशजी से पूर्व ओर में स्थित अनन्तजी से थापेहुये अनन्तेश्वरनामक अष्टकुलेश्वर लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ सब पापोंका नाशकरनेवाला व महाविष का विनाशनेवाला सिद्ध व गन्धर्वोंसे पूजाहुआ वह लिंग चाहेहुये अर्थको देनेवाला है ॥ २ ॥ हे देवि ! विशेषकर कृष्णपक्षकी अष्टमी में जो उनको पूजता है वह भयंकर पातकोंसे छूटकर नागलोकमें पूजाजाताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायामष्टकुलेश्वरमाहात्म्यंनामषट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

दो॰ । नासत्येश्वर लिंगको थाप्यो सूरजबाल । इकसौ सत्तावने महँ सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके पूर्व ओर में स्थित

महापातकों को दूर करनेवाले व पूजित होकर सब कामनाओं को देनेवाले लिंग के समीपजावै ॥ १ ॥ हेदेवि ! नासत्येश्वरनामक महापातकोंको दूर करनेवाले ये दो लिंग सूर्य के पुत्रोंसे थापेगये हैं ॥ २ ॥ देखाहुआ जो लिंग सब रोगोंको नाशकरनेवाला व सब प्रयोजनों को सिद्धकरनेवाला है संसार में जो कोई प्राणी रोगी हैं उनको वह बड़ीभारी औषधि है ॥ ३ ॥ माघमहीने में दुइज तिथि में उनका दर्शन दुर्लभ है इसलिये यदि कल्याण को चाहै तो भक्ति से उसलिंग को देखै ॥ ४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनासत्येश्वरमाहात्म्यंनामसप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५७ ॥ ❀ ॥
दो० । अश्विनेश शिवलिंग जिमि भयो भूमि विख्यात । इकसौ अट्ठावने महँसोई चरित सुहात । महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे पूर्वओर में

द्वयन्देवि सूर्यपुत्रप्रतिष्ठितम् ॥ नासत्येश्वरविख्यातं महाकल्मषनाशनम् ॥२॥ सर्वरोगप्रशमनं दृष्टंसर्वार्थसाधकम्॥ येकेचिद्रोगिणोलोके तेषांतद्भेषजंमहत् ॥ ३॥ माघमासेद्वितीयायां दर्शनंतस्यदुर्लभम्॥ तस्मात्पश्येचतद्भक्त्यायदिश्रेयोभिकाङ्क्षि:॥४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेनासत्येश्वरमाहात्म्यन्नामसप्तपञ्चाशदधिकशततमोध्यायः१५७

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्मात्पूर्वेणसंस्थितम् ॥ अश्विनेश्वरनामानं धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ १ ॥ महापापौघशमनं पूजितंसर्वकामदम् ॥ इतिलिङ्गद्वयन्देवि सूर्यपुत्रप्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ तस्मिन्नेवदिनेपश्येत्संयतात्मा नरोत्तमः॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेश्विनेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

ईश्वरउवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि सावित्रींलोकमातरम् ॥ महापापप्रशमनीं सोमेशादीशदिक्स्थिताम् ॥ १ ॥

स्थित पांच धनुष पै प्राप्त अश्विनेश्वरनामक शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! सूर्यनारायण के पुत्रों से ये दो लिंग पूजितहोकर सब कामनाओं को देनेवाले व महापाप समूहको नाशनेवाले हैं ॥ २ ॥ संयतचित्तवाला उत्तम पुरुष उसीदिन उसलिंगको देखै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामश्विनेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । ब्रह्मा अपने यज्ञमें कीन गयत्री ब्याह । इकसौ उंसठि में सोई बरणत सहित उछाह ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सोमेशजी से ईशान

दिशा में स्थित महापातकों को नाश करनेवाली लोकजननी सावित्रीजी के समीप जावै ॥ १ ॥ वहां संयतचित्तवाला व नियमात्मवान् पुरुष उनको देखै यज्ञ करने की इच्छावाले ब्रह्मासे सहधर्मिणी (स्त्री) कीहुई उन गायत्रीजी को जानकर तदनन्तर सावित्रीजी कोप में प्राप्तहुई उसके उपरान्त वे सरस्वती देवी कमलमे उपजे हुये ब्रह्माजीको त्यागकर ॥ २ । ३ ॥ सौतिके क्रोधसे संतप्त होकर प्रभासक्षेत्र में आश्रितहुई और उन सरस्वतीजीने देवताओंसे भी दुस्सह बड़ेभारी तपकोकिया॥४॥ उस स्थल में आजभी प्रियदर्शनवाली वे सरस्वती देवी स्थित हैं ॥ ५ ॥ देवीजी बोलीं कि पुरातन समय ब्रह्माजीने किसलिये उन सावित्रीजी को त्यागकियाहै और

संयतात्मानरःपश्येत् तत्रतांनियमात्मवान् ॥ ब्रह्मणायष्टुकामेन गायत्रींसहधर्मिणीम् ॥ २ ॥ कृतान्तांवैततोज्ञात्वा सावित्रीकोपमाविशत् ॥ ततस्सन्त्यज्यसादेवी ब्रह्माणंकमलोद्भवम् ॥ ३ ॥ सपत्नीरोषसन्तप्ता प्रभासक्षेत्रमाश्रिता ॥ तपोऽकरोत्साविपुलं देवैरपिसुदुस्सहम् ॥ ४ ॥ तत्रस्थलेस्थितादेवी साद्यापिप्रियदर्शना ॥ ५ ॥ देव्युवाच ॥ किमर्थं सापरित्यक्ता सावित्रीब्रह्मणापुरा ॥ गायत्रीचकथम्प्राप्ता केनचापिनिवेदिता ॥ ६ ॥ कीदृशीन्ताञ्चगायत्रीं लब्धवान् पद्मसम्भवः ॥ ज्येष्ठांपत्नींसमुत्सृज्य तस्यामेवमनोदधे ॥ ७ ॥ कस्यसादुहितादेव किमर्थंचविवाहिता ॥ महादेवउवाच ॥ पुराबुद्धिस्समुत्पन्ना ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ८ ॥ इमेवेदामयाप्रोक्ता यज्ञार्थंनात्रसंशयः ॥ यज्ञैस्सन्तर्पितादेवा वृष्टिंदास्यन्तिभूतले ॥ ९ ॥ ततश्चौषधयस्सर्वा भविष्यन्तिमहीतले ॥ तस्मात्सञ्जायतेशुक्रं शुक्रात्सृष्टिःप्रवर्तते ॥ १० ॥ सृष्ट्यर्थंसर्वलोकानां ततोयज्ञंकरोम्यहम् ॥ दृष्ट्वामांयज्ञआसक्तं येचविप्राधरातले॥ ११ ॥ तेयज्ञान्प्रचरिष्यन्ति

किसप्रकार गायत्रीजी प्राप्तहुई व किसने बतलाया है ॥ ६ ॥ और कमल से उपजेहुये ब्रह्माने उस कैसी गायत्रीको पाया और जेठी स्त्रीको छोड़कर उसीमें मन धारण किया ॥ ७ ॥ हे देव ! वह किसकी कन्या थी और किसलिये ब्याहीगई महादेवजी बोले कि पुरातन समय अप्रकटजन्मवाले ब्रह्माके यह बुद्धि पैदाहुई ॥ ८ ॥ कि मैंने यज्ञके लिये इन वेदोंको कहाहै इसमें सन्देह नहीं है यज्ञों से तृप्त कियेहुये देवता पृथ्वी में वृष्टि देते हैं ॥ ९ ॥ और उससे पृथ्वी में सब औषधिया होतीहैं उससे वीर्य होताहै व वीर्यसे सृष्टि होती है ॥१०॥ उसी कारण सब लोकोंकी सृष्टि के लिये मैं यज्ञ करताहूं और यज्ञमें लगेहुये मुझको देखकर पृथ्वीमें जो ब्राह्मण होवैंगे ॥११॥

वे सैकड़ों व हज़ारों ब्राह्मण यज्ञोंको करेंगे हे सुरसुन्दरि ! यज्ञके लिये ऐसा निश्चयकर उन ब्रह्माजी ने ॥ १२ ॥ नामसे पुष्करनामक तीर्थको सेवन किया वहां उन महात्माका बड़ाभारी यज्ञ हुआ ॥ १३ ॥ हे महाप्रिये,महादेवि ! उस यज्ञवाट में इन्द्रादिक सब देवता व देवर्षिलोग आये ॥ १४ ॥ और वे पवित्र व श्रेष्ठ ब्राह्मण उस यज्ञ में आये लोकमाता उन महात्मा ब्रह्माजीकी सावित्री स्त्री ॥ १५ ॥ घरके कार्य में लगी हुई थीं दीक्षाके समय में व्यतिक्रम के कारण अध्वर्यु से बुलाई हुई सावित्रीजी वचन बोलीं कि ॥ १६ ॥ अभी शृंगार नहीं कियागया है और न घर में गृहका अलंकार कियागया व अभी न लक्ष्मीजी प्राप्तहुई हैं और न पार्वती न श्री

शतशोथसहस्रशः ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वा यज्ञार्थंसुरसुन्दरि ॥ १२ ॥ तीर्थन्निषेवयामास पुष्करन्नामनामतः ॥ यज्ञवाटोमहांस्तत्र आसीत्तस्यमहात्मनः ॥ १३ ॥ तत्रदेवर्षयःसर्वे देवास्सेन्द्रपुरोगमाः ॥ समोपेतामहादेवि यज्ञवाटेमहाप्रिये ॥ १४ ॥ पुण्यास्तेचद्विजाःश्रेष्ठास्तत्रयज्ञेसमागताः ॥ सावित्रीलोकजननी पत्नीतस्यमहात्मनः ॥ १५ ॥ गृहकार्येसमासक्ता दीक्षाकालेव्यतिक्रमात् ॥ अध्वर्युणासमाहूता मावित्रीवाक्यमब्रवीत् ॥ १६ ॥ अद्यापिनकृतोवेषो नगृहेगृहमण्डनम् ॥ लक्ष्मीनाद्यापिसम्प्राप्ता नभवानीनजाह्नवी ॥ १७ ॥ नस्वाहानस्वधाचैव तथाचैवाप्यरुन्धती ॥ रुद्राणीदेवपत्न्योथ कथमेकाकिनीव्रजे ॥ १८ ॥ उक्तःपितामहोगत्वा पुलस्त्येनमहात्मना ॥ सावित्रीदेवनायाति प्रसक्तागृहकर्मणि ॥ १९ ॥ नापत्नीकमिदंकर्म फलेनसम्प्रवर्त्तते ॥ तच्छ्रुत्वादीक्षितोवाच शिखीमुण्डीमृगाजिनी ॥ २० ॥ पत्नीकोपेनसन्तप्तः प्राहदेवंपुरन्दरम् ॥ गच्छमद्वचनाच्छक्र पत्नीमन्यांकुतश्चन ॥ २१ ॥ गृहीत्वाशीघ्रमागच्छ नस्या

गंगाजी आई हैं ॥ १७ ॥ और न स्वाहा न स्वधा न अरुन्धती न रुद्राणी और न देवस्त्रियां आईहैं मैं अकेली कैसे जाऊं ॥ १८ ॥ महात्मा पुलस्त्यजीने जाकर ब्रह्माजी से कहा कि हे देव ! घरके कार्य में लगीहुई सावित्रीजी नहीं आती हैं ॥ १९ ॥ और बिन स्त्री के यह कर्म फलसे नहीं वर्तमान होताहै उस वचन को सुनकर क्षौर कर्म करायेहुये मृगाजिनको धारण किये शिखावान् दीक्षित (ब्रह्मा) जी स्त्री के क्रोधसे संतप्त होकर इन्द्रदेवसे बोले कि हे इन्द्रजी ! मेरे वचन से जाइये और

कहीं से अन्य स्त्रीको ॥ २० । २१ ॥ लेकर शीघ्रही आइये कि जिसप्रकार समय न व्यतीत होवै ब्रह्माके वचन से बलदैत्यको नाशकरनेवाले (इन्द्र) जी शीघ्रही गये ॥ २२ ॥ और किसी स्त्रीको न देखतेहुये जोकि हंसवाहन (ब्रह्मा) के योग्य होवै इसके अनन्तर शापसे डरेहुये बुद्धिमान् इन्द्रजी ने ॥ २३ ॥ रूप व यौवनसे शोभित एक अहीरकी कन्याको देखा वह मठासे भरेहुये घड़ेको धारण किये थी उससे कन्या ऐसा इन्द्रजी ने कहा ॥ २४ ॥ तदनन्तर उसको लेकर इन्द्रजी वहां पै-ठगये जहां कि विष्णु व शिवसमेत चतुरानन देवदेव दीक्षितथे॥ २५ ॥ शिव और ब्रह्मा व देवर्षियोंसे प्रेरित मधुसूदन विष्णुजी ने कन्या का दानकिया॥ २६ ॥ तद-

त्कालात्ययोयथा ॥ जगामबलहातूर्णं वचनात्परमेष्ठिनः ॥ २२ ॥ अपश्यमानःस्त्रियंकाञ्चिद्यायोग्याहंसवाहने ॥ अथ शापाद्विभीतेन सहस्राक्षेणधीमता ॥ २३ ॥ दृष्टागोपालकन्यैका रूपयौवनशालिनी ॥ बिभ्रतीतक्रपूर्णंसा कुम्भंक न्येत्यवोचत ॥ २४ ॥ तांगृहीत्वाततश्शक्रः प्रविष्टोयत्रदीक्षितः ॥ देवदेवश्चतुर्वक्त्रो विष्णुरुद्रसमन्वितः ॥ २५ ॥ स म्प्रदानन्तुकृतवान् कन्यायामधुसूदनः ॥ प्रेरितश्शङ्करेणैव ब्रह्मदेवर्षिभिस्तथा ॥ २६ ॥ परिणीताततोदीक्षां तस्या श्चक्रेयथात्मनः ॥ ततःप्रवर्तितोयज्ञस्सर्वकामसमन्वितः ॥ २७ ॥ अत्रिर्होतार्चितस्तत्र पुलस्त्योध्वर्युरेवच ॥ उद्गाताच मरीचिस्तु ब्रह्माहंसुरपुङ्गवः ॥ २८ ॥ सनत्कुमारप्रमुखाः सदस्यास्तस्यनिर्मिताः ॥ वस्त्रैराभरणैर्युक्ता मुकुटैरङ्गुलीय कैः ॥ २९ ॥ भूषिताभूषणोपेता एकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ त्रयस्त्रयःपृष्ठतोन्ये तत्रषोडशऋत्विजः ॥ ३० ॥ प्रोक्ताभव द्भिर्यज्ञेस्मिन्ननुग्राह्योस्मिसर्वदा ॥ पत्नीममेयंगायत्री वेदमाताभविष्यति ॥ ३१ ॥ भवत्प्रसादात्सर्वेषां पूज्यावैब्रह्म

नन्तर ब्रह्माने उसका व्याह किया और अपने नाईं उसकी दीक्षा किया तदनन्तर सब कामनाओंसे संयुत यज्ञ वर्तमान हुआ ॥ २७ ॥ वहां अत्रिजी होता व पुलस्त्य अध्वर्यु थे और मरीचि उद्गाता व सुरश्रेष्ठ मैं ब्रह्मा हुआ ॥ २८ ॥ मुकुटों और मुंदरियोंसे तथा वसनों और आभूषणों से संयुत, सनत्कुमारआदिक उस यज्ञके सभा-सद कियेगये ॥ २९ ॥ उस यज्ञमें भूषणोंसे संयुत वे भूषित महर्षिलोग एक एकद्वारके भिन्न २ तीनतीन ऋत्विज कियेगये और पीछेसे अन्य सोलह ऋत्विज कियेगये ॥ ३० ॥ और उनसे कहागया कि आपलोग सदैव इस यज्ञ में मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिये और यह मेरी स्त्री गायत्री वेदमाता होवैगी ॥ ३१ ॥ और आपलोगोंकी

प्रसन्नता से वेदोंको पवित्र करनेवाली यह सबोंके पूजनेयोग्य होवैगी सब लोकों में पवित्र वह ब्रह्माकी स्त्री ॥ ३२ ॥ साक्षात् कोमल वसनों को धारण किये व रेशमी वस्त्रोंको पहने थी वेदोंके पारगामी ऋत्विजोंसमेत स्त्रीसहित ब्रह्माजी पत्नीशाला में पैठगये ॥ ३३ ॥ गूलर के दण्डसे संयुत व मृगचर्म से घिरेहुये ब्रह्मा उस स्त्रीसमेत उस यज्ञमण्डप में पैठगये ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसावित्रीमाहात्म्यंनामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

दो॰। चतुरानन के यज्ञ महँ किय सावित्री रोष। कह्यो एकसौ साठि महँ सोई चरित सुतोष ॥ महादेवजी बोले कि इसीसमय वे सब न्योतीहुई देवताओंकी स्त्रियां

पावना ॥ पवित्रासर्वलोकेषु पत्नीसापरमेष्ठिनः ॥ ३२ ॥ मृदुवस्त्रधरासाक्षात् चौमवस्त्रावगुण्ठिता ॥ पत्नीशालांसपत्नीक ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ॥ ३३ ॥ औदुम्बरेणदण्डेन संवृतोमृगचर्मणा ॥ तयासार्द्धंप्रविष्टश्चब्रह्मातद्यज्ञमण्डपम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसावित्रीमाहात्म्यन्नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोध्यायः ॥ १५९ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सम्प्राप्तादेवयोषितः ॥ सर्वास्तायत्रसावित्री यज्ञेतस्मिन्निमन्त्रिताः ॥ १ ॥ भृगोः पत्न्यांसमुत्पन्ना विष्णुपत्नीयशस्विनी ॥ आमन्त्रितातुसालक्ष्मी तत्रायातात्वरान्विता ॥ २ ॥ तत्रदेवीमहाभागा योगनिद्राविभूषिता ॥ देवीकान्तिस्तथाश्रद्धा ध्वनिस्तुष्टिस्तथैवच ॥ ३ ॥ सतीयादक्षतनया उमायापार्वतीशुभा ॥ त्रैलोक्यसुन्दरीदेवी स्त्रीणांसौभाग्यदायिका ॥ ४ ॥ जयाचविजयाचैव गौरीचैवमहाधना ॥ मनोजवावायुपत्नी ऋद्धिश्चधनदप्रिया ॥ ५ ॥ देवकन्यास्तथायाता दानव्योदैत्यवल्लभाः ॥ सप्तर्षीणांतथापत्न्य ऋषीणांचतथैवच ॥ ६ ॥ प्रचे

उस यज्ञमें प्राप्तहुई जहां कि सावित्रीजी थीं ॥ १ ॥ भृगुकी स्त्री में जो यशस्विनी विष्णुजी की स्त्री पैदाहुई हैं निमन्त्रणकी हुई वे लक्ष्मीजी शीघ्रतासंयुत होकर वहां आई ॥ २ ॥ व भूषित होकर महाभाग्यवती योगनिद्रा देवी वहां आई और कांतिदेवी तथा श्रद्धा, ध्वनि और तुष्टिजी आई ॥ ३ ॥ और दक्षकी कन्या जो सतीजी थीं व उत्तम उमा पार्वतीजी जोकि त्रिलोकमें सुन्दरी और स्त्रियोंको सौभाग्य देनेवाली हैं वे आई ॥ ४ ॥ और जया, विजया, गौरी, महाधना व पवनकी स्त्री मनोजवा और कुबेरकी स्त्री ऋद्धि ॥ ५ ॥ वैसेही देवकन्या और दानवोंकी प्यारी स्त्रियां दानवी तथा सप्तर्षियों की स्त्रिया और ऋषियों की स्त्रियां आई ॥ ६ ॥ और प्रचेता

की कन्या व विद्याधरियों के गण व मातृका और राक्षसोंकी कन्या व लोकमातृका आईं और पतोहुवों से संयुत सावित्रीजी आईं और अदिति आदिक सब दक्षकी कन्यायें आईं ॥ ७।८ ॥ और उनसे घिरीहुईं साथही कमलालया ब्रह्माणीजी आईं हेवरानने ! कोई लड्डूको लेकर व कोई पुष्पको लेकर आई ॥ ९ ॥ व कोई फलोंको लेकर ब्रह्मा के समीप आई और अन्य समिधाओं को लेकर व राजमाष याने लोबियाको लेकर आई ॥ १० ॥ व सुन्दरे स्तनोंवाली कोई विचित्र अनारोंको लेकर और कोई बिजौरा निंबुवों को लेकर आई व अन्य करीर के फलोंको लेकर और कोई करौंदों को लेकर आई ॥ ११ ॥ व अन्य देवपत्नी कुसुम, जीरक व खजूरको लेकर आई

तसोदुहितरो विद्याधरिगणास्तथा ॥ मातरोरक्षसांकन्यास्तथावैलोकमातरः ॥ ७ ॥ वधूभिरन्विताचैव सावित्रीचसमागता ॥ अदित्याद्यास्तथासर्वा दक्षकन्यास्समागताः ॥ ८ ॥ ताभिःपरिवृतासार्द्धं ब्रह्माणीकमलालया ॥ काचिन्मोदकमादाय काचित्पुष्पंवरानने ॥ ९ ॥ फलानितुसमादाय प्रयाताब्रह्मणोन्तिकम् ॥ आहृत्यसमिधश्चैव राजमाषांस्तथापरा ॥ १० ॥ दाडिमानिविचित्राणि मातुलुङ्गानिसुस्तना ॥ करीराणितथाचान्या गृहीत्वाकरमर्द्दकान् ॥ ११ ॥ कौसुम्भञ्जीरकञ्चैव खर्जूरंचापरातथा ॥ उत्पलान्यपरागृह्य नालिकेराणिचापरा ॥ १२ ॥ द्रव्ययापूरितंपात्रं भृङ्गारञ्चतथापरा ॥ आम्राणिचविचित्राणि जम्बुकानिशुभानिच ॥ १३ ॥ अन्नपानाधिकाराणि बहूनिविविधानिच ॥ शर्करींपुत्तलींचान्या वस्त्रंकौसुम्भकंतथा ॥ १४ ॥ सावित्रीमागतान्दृष्ट्वा भीतस्तत्रपुरन्दरः ॥ अधोमुखःस्थितोब्रह्मा किमेषामांवदिष्यति ॥ १५ ॥ तत्रागतौविष्णुरुद्रौ सर्वेचान्येद्विजातयः ॥ सभासदस्तथाभीतास्तथाचान्येदिवौकसः ॥ १६ ॥ पुत्रपौ

और अन्य कमलोंको लेकर तथा कोई नारियलोंको लेकर आई ॥ १२ ॥ व अन्य देवपत्नी भृंगार और मुनक्का से पूर्णपात्रको लाई व कोई विचित्र आमोंको लेकर और कोई उत्तम फरेंदों को लेकर आई ॥ १३ ॥ और अन्य अनेकप्रकार के अन्नपानके अधिकारवाली वस्तुवोंको लेकर आई व कोई शर्करा की पुतली को लेकर और कोई कुसुमसे रंगेहुये वस्त्रको लेकर आई ॥ १४ ॥ वहां आईहुई सावित्रीजीको देखकर इन्द्रजी डरगये और ब्रह्मा नीचे मुखकरके स्थितहुये कि यह सावित्री मुझ

को क्या कहैगी ॥१५॥ वहां आयेहुये विष्णु व शिव और अन्य सब सभासद ब्राह्मण तथा अन्य देवता डरगये ॥ १६ ॥ और पुत्र,पौत्र, भैने, मामा और भाई तथा देवताओं के भी देवता ऋभुनामक जो देवता थे ॥ १७ ॥ वे सब विलक्षणतामें स्थित हुये कि सावित्री क्या कहैंगी किन्तु गोपकन्यासे ब्रह्मवचन कहने योग्यहैं ॥ १८ ॥ और कहतेहुये सबों के वचनोंको मौनहोकर सावित्रीजी सुनतीरही व अध्वर्यु से बुलाईहुई उत्तमवर्णवाली गायत्रीजी आई ॥ १९ ॥ और इन्द्रजी ले आये व आपही विष्णुजी ने उनको दिया और रुद्रने अनुमोदन किया,तथा आपही पिताजी ने दिया ॥ २० ॥ वह किसप्रकार यज्ञमें होगी व यज्ञ कैसे समाप्तिको प्राप्तहोवैगी इसप्रकार

त्रभागिनेया मातुलाभ्रातरस्तथा ॥ ऋभवोनामयेदेवा देवानामपिदेवताः ॥ १७॥ विलक्ष्यमास्थिताःसर्वे सावित्रीकिं वदिष्यति ॥ ब्रह्मवाक्यानिवाच्यानि किन्तुवैगोपकन्यया ॥ १८ ॥ मौनीभूतासुशृण्वाना सर्वेषांवदतांगिरः ॥ अध्वर्युणासमाहूता आगतावरवर्णिनी ॥ १९ ॥ शक्रेणाथतथानीता दत्तासाविष्णुनास्वयम् ॥ अनुमोदिताचरुद्रेण पित्रादत्तास्वयन्तथा ॥ २० ॥ कथंसाभवितायज्ञे समाप्तिंवाकथंव्रजेत् ॥ एवंचिन्तयतांतेषां प्रविष्टाकमलालया ॥ २१ ॥ ततोब्रह्मासभार्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ॥ हूयन्तेचाग्नयस्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २२ ॥ पत्नीशालान्तथागोपी एणचर्मकमेखला ॥ क्षौमवस्त्रपरीधाना ध्यायन्तीपरमेश्वरम् ॥ २३ ॥ पतिव्रतापतिप्राणा प्राधान्येननिवेशिता ॥ कृपान्विताविशालाक्षी तेजसाभास्करोपमा ॥ २४ ॥ द्योतयन्तीदिशस्तत्र सूर्यस्यैवयथाप्रभा ॥ ज्वलमानस्तथावह्निर्भ्रमन्तोऋत्विजस्तथा ॥ २५ ॥ प्राप्ताभागार्थिनोदेवा विलम्बसमयोऽभवत ॥ २६ ॥ कालहीनन्नकर्त्तव्यं कृतन्नफलदंभ

उनको चिन्तवन करतेहुये कमलालया ब्रह्माणीजी पैठगई ॥ २१ ॥ तदनन्तर स्त्रीसमेत वे ब्रह्माजी वेदपारगामी ऋत्विजोंसहित यज्ञमण्डप में प्राप्तहुये वहां वेदों के पारगामी ब्राह्मणलोग अग्नियों में हवन करते थे ॥ २२ ॥ और मृगचर्मकी मेखलाको धारण किये व रेशमीवस्त्रोंको पहने परमेश्वरको ध्यान करतीहुई गोपी पत्नीशालामें पैठगई ॥२३॥ पतिव्रता व पतिमें प्राणोंवाली गोपी प्रधानता से बैठारीगई जोकि दयासे संयुत व विशाललोचनी तथा तेजसे सूर्यनारायणके समान थी ॥ २४ ॥ वहां पर वह गोपी दिशाओं को प्रकाशित करती थी और जैसे सूर्यनारायणकी प्रभा होवै वैसेही अग्नि जलती थी और ऋत्विजलोग घूमते थे ॥ २५ ॥ और

भागोंको चाहनेवाले देवता प्राप्तहुये व विलम्ब का समय हुआ ॥ २६ ॥ समयहीन कर्म न करना चाहिये क्योंकि कियाहुआ वह फलदायक नहीं होताहै वेदोंमें इस अधिकारको आपही सब विद्वानों ने देखाहै ॥ २७ ॥ वेदके पारगामी ब्राह्मणों से कर्म करनेपर व अध्वर्युसे मन्त्रके द्वारा अग्नि में हवन करने पर ॥ २८ ॥ वैसे ही यज्ञकरने पर देखकर सावित्री देवीजी क्रोधसंयुत हुई ॥ २९ ॥ और सभाके मध्यमें मौन बैठेहुये ब्रह्मासे सावित्री देवी बोलीं कि हे देव ! ऐसा कर्म करने के लिये तुम क्यों इसप्रकार जानते हो ॥ ३० ॥ जोकि मुझको छोड़कर तुमने कामसे पातक किया हे चतुर्मुख ! वह गोपी मेरी चरणधूलिके समान नहीं है ॥ ३१ ॥ कि

वेत् ॥ वेदेष्वयमधीकारो दृष्टस्सर्वैर्मनीषिभिः ॥ २७ ॥ कर्मणिक्रियमाणेतु ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ ज्वलनेहूयमानेतु मन्त्रेणाध्वर्युणातथा ॥ २८ ॥ क्रियमाणेतथायज्ञे दृष्ट्वादेवीक्रुधान्विता ॥ २९ ॥ उवाचदेवीब्रह्माणं सदोमध्येतुमौनिकम् ॥ किमेवंबुद्ध्यसेदेव कर्त्तुमेवंविचेष्टितम् ॥ ३० ॥ माम्परित्यज्ययःकामात् कृतवानसिकिल्बिषम् ॥ तत्तुल्यापादरजसा सामेगोपीचतुर्मुख ॥ ३१ ॥ यद्वदन्तिनरास्सर्वे सङ्गतास्सदसिस्थिताः ॥ आश्चर्यंचप्रभूणान्तु कुरुषेयत्त्वमिच्छसि ॥ ३२ ॥ भवतारूपलोभेन यदेतत्किल्बिषंकृतम् ॥ नपुत्रेषुकृतालज्जा नपौत्रेषुचतेविभो ॥ कामकारकृतंमन्ये एतत्कर्मविगर्हितम् ॥ ३३ ॥ पितामहोसिदेवानामृषीणांप्रपितामहः ॥ कथन्नतत्रयाजाता आत्मनःपश्यतस्तनुम् ॥ ३४ ॥ लोकमध्येकृतंहास्यमहंचैवविगर्हिता ॥ यद्येषतेस्थितोभावस्तिष्ठदेवनमोस्तुते ॥ ३५ ॥ अहंकथंसखीनान्तु दर्शयिष्यामिवैमुखम् ॥ भर्त्राविवाहितापत्नी कथमेवंदृढंवदे ॥ ३६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ऋत्विग्भिरहमाज्ञप्तो दीक्षाकालेतिवर्तते ॥ पत्नीं

जिसको सभा में बैठे आयेहुये सब मनुष्य कहते हैं व समर्थवानों का आश्चर्य करतेहो जो तुम चाहते हो ॥ ३२ ॥ रूपके लोभसे तुमने जो यह पाप कियाहै इससे हे विभो ! न पुत्रोंमें लज्जा किया और न पौत्रोंमें तुमने लज्जा कियाहै इस निन्दित कर्मको मैं कामदेवसे कियाहुआ मानतीहूं ॥ ३३ ॥ तुम देवताओं के पितामह व ऋषियोंके प्रपितामह हो अपने शरीरको देखतेहुये तुमको क्यों नहीं लज्जा आई ॥ ३४ ॥ संसारके मध्यमें हँसीकी गई और मैं निन्दित कीगई हे देव ! यदि तुम्हारे यह भाव स्थितहुआ तो बैठिये तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ मैं सखियोंको कैसे मुख दिखाऊगी और दृढ़तासे कैसे ऐसा कहूंगी कि पतिने स्त्रीको व्याहाहै ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा बोले कि ऋत्विजों ने मुझको आज्ञा दिया कि दीक्षाका समय व्यतीतहोताहै और इसमें स्त्रीके विना होम नहीं होताहै इसलिये यहां शीघ्रही स्त्रीको लाइये ॥ ३७ ॥ इन्द्रजी इसको यहां लाये और विष्णुजी ने दिया व हे सुभ्रु ! मैंने ग्रहण किया मुझसे कियेहुये एक अपराधको क्षमाकरिये ॥ ३८ ॥ हे सुव्रते ! फिर तुम्हारे अन्य अपराधको नहीं करूंगा ॥ ३९ ॥ महादेवजी बोले कि उस समय ब्रह्माजी से ऐसा कहीहुई सावित्री क्रोधितहोकर शाप देने के लिये उद्यत हुई कि यदि मैंने उत्तम तपस्या किया हो और यदि गुरुवोंको प्रसन्न कियाहो ॥ ४० ॥ तो सब ब्राह्मणोंकी सभाओं में और अनेकभांतिके स्थानों में ब्राह्मण तुम्हारा पूजन किसीप्रकार

विनानहोमोत्र शीघ्रंपत्नीमिहानय ॥ ३७ ॥ शक्रेणैषात्विहानीता दत्ताचैवतुविष्णुना ॥ गृहीताचमयासुभ्रु क्षमस्वैकं मयाकृतम् ॥ ३८ ॥ नचापराधंभूयोन्यत्करिष्येतवसुव्रते ॥ ३९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवमुक्तातदाक्रुद्धा ब्रह्मणाशप्तुमुद्यता ॥ यदिमेसुतपस्तप्तं गुरवस्तोषितायदि ॥ ४० ॥ सर्वब्राह्मणशालासु स्थानेषुविविधेषुच ॥ नतुतेब्राह्मणाःपूजां करिष्यन्तिकदाचन ॥ ४१ ॥ ऋतेचकार्त्तिकीमेकां पूजांसांवत्सरीन्तव ॥ ब्राह्मणानकरिष्यन्ति सत्येनानेनतेशपे ॥ ४२ ॥ एतदुक्त्वातुब्रह्माणं सावित्रीपुनरब्रवीत् ॥ ४३ ॥ सावित्र्युवाच ॥ भोभोशक्रत्वयानीता आभीरीब्रह्मणोन्तिकम् ॥ यस्मादीदृक्कृतंकर्म तस्मात्त्वंशृणुमेवचः ॥ ४४ ॥ यदासंग्राममध्येत्वंस्थाताशत्रोर्भविष्यसि ॥ तदात्वंशत्रुभिर्बद्धो नीतःपरमिकान्दशाम् ॥ ४५ ॥ अकिञ्चनोनष्टसुतः शत्रूणान्नगरेस्थितः ॥ पराभवंमहत्प्राप्य अचिरादेवमोक्ष्यसे ॥ ४६ ॥ शक्रंशप्त्वातदादेवी विष्णुंचार्त्तमथोब्रवीत् ॥ गुरुवाक्येनतेजन्म यदामर्त्यंभविष्यति ॥ ४७ ॥ भार्यावियोगजंदुःखं

न करैंगे ॥ ४१ ॥ वर्षभरवाली तुम्हारी एक कार्त्तिकी पूजाको छोड़कर ब्राह्मणलोग अन्यपूजनको न करैंगे इस सत्य से तुमको शाप देती हूं ॥ ४२ ॥ यह कहकर सावित्रीजी फिर ब्रह्मासे बोलीं ॥ ४३ ॥ सावित्रीजी बोलीं कि हे इन्द्रजी ! तुम ब्रह्माके समीप गोपीको लायेहो जिसलिये तुमने ऐसा कर्म किया उसीकारण मेरे वचन को सुनिये ॥ ४४ ॥ कि जब समरके मध्य में तुम शत्रुके आगे स्थित होवोगे तब शत्रुवोंसे बांधेहुये तुम शत्रुकी दशाको प्राप्तहोवोगे ॥ ४५ ॥ और शत्रुवोंके नगर में स्थित होकर तुम अकिंचन (धनहीन) व नष्टपुत्रवाले होवोगे और बड़े तिरस्कार को प्राप्तहोकर शीघ्रही छोडेजावोगे ॥ ४६ ॥ हे देवि ! उस समय इन्द्रजीको शाप

देकर इसके अनन्तर आर्त विष्णुजी से वचन बोलीं कि गुरुके वचन से जब मृत्युलोक में तुम्हारा जन्म होगा ॥ ४७ ॥ तब वहां तुम स्त्रीके वियोगसे उपजेहुये दुःख को पावोगे समुद्रके उस पार शत्रुगणों से हरीहुई स्त्री ॥ ४८ ॥ सीताजी को शोक से नष्टज्ञानवाले तुम न जानोगे और उस समय भाईसमेत दुःखित होकर बड़े कष्टको प्राप्त तुम विपत्तिको प्राप्तहोगे ॥ ४९ ॥ और बहुतसमय तक पशुओं के मध्य में प्राप्तहोगे वैसेही क्रोधित होतीहुई सावित्रीजी शिवजी से बोली कि जब तुम दारुवन में स्थित होवोगे ॥ ५० ॥ तब हे शिवजी ! क्रोधित होतेहुये वे मुनिलोग तुमको शाप देवेंगे कि हे क्षुद्र, कापालिक ! जिस लिये तुम हमलोगोंकी स्त्रियोंको

तदात्वंतत्रप्राप्स्यसे ॥ हृतांशत्रुगणैःपत्नीं परेपारेमहोदधेः ॥ ४८ ॥ नचत्वंज्ञास्यसेसीतां शोकोपहतचेतनः ॥ भ्रात्रासह परंकष्टमापदोदुःखितस्तदा ॥ ४९ ॥ पशूनांमध्यगश्चैव चिरकालंभविष्यसि ॥ तदाहरुद्रंकुपिता यदादारुवनेस्थितः ॥ ५० ॥ तदातुमुनयःक्रुद्धाःशापंदास्यन्तितेहर ॥ भोभोकापालिकक्षुद्र पत्न्योस्माकंजिहीर्षसि ॥ ५१ ॥ तदेतद्भूषितंलिङ्गं भूमौरुद्रपतिष्यति ॥ अग्नेत्वंसर्वभक्षोपि पूर्वपुण्येनमेकृतः ॥ ५२ ॥ भ्रूणहाधमइत्येनं कथंशापंददाम्यहम् ॥ जातवेदस्सरुद्रस्त्वां रेतसाप्लावयिष्यति ॥ ५३ ॥ अमेध्यापिचतेज्वाला यथेष्टंत्वंज्वलिष्यसि ॥ ब्राह्मणानृत्विजस्सर्वान्सावित्रीह्यशपत्तदा ॥ ५४ ॥ प्रतिग्रहरतायूयं वृथादारावृथाश्रमाः ॥ सदाक्षेत्राणितीर्थानि लोभादेवगमिष्यथ ॥ ५५ ॥ परान्नेनसदातृप्ता अतृप्तास्स्वगृहेषुवा ॥ अयाज्ययाजनंकृत्वा कुत्सितस्यप्रतिग्रहम् ॥ ५६ ॥ वृथाधनार्ज्जनंकृत्वा

हरना चाहतेहो ॥ ५१ ॥ उसीकारण हे रुद्र ! यह भूषितलिंग भूमि में गिरपड़ैगा और हे अग्ने ! तुम पहले की पुण्यसे मुझकरके सर्वभक्षी कियेगये ॥ ५२ ॥ गर्भ को नाशकरनेवाला अधम होता है इसलिये इसको मैं कैसे शाप देऊं यह मानकर वे जातवेद रुद्रजी तुमको वीर्य से डुबावैंगे ॥ ५३ ॥ और तुम्हारी ज्वाला अपवित्र भी होवैगी व तुम इच्छाके अनुकूल जलोगे और उसीसमय सावित्रीजी ने सब ऋत्विज ब्राह्मणों को शाप दिया ॥ ५४ ॥ कि वृथादार व वृथाआश्रमवाले तुमलोग दान लेने में तत्पर होवोगे और सदैव क्षेत्रों व तीर्थों को लोभही से जावोगे ॥ ५५ ॥ और पराये अन्नसे सदैव तृप्त होकर अपने घरोंमें तृप्त नहीं होवोगे व यज्ञकराने

के न योग्य मनुष्योंको यज्ञ कराकर और निन्दित पुरुषका दानलेकर ॥ ५६ ॥ और वृथा धनको इकट्ठा कर व वैसेही खर्चकरके वहां मरेहुये तुमलोगों की प्रेतता होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५७ ॥ उस समय इसप्रकार इन्द्र, विष्णु, शिव और अग्नि, ब्रह्मा व उन सब ब्राह्मणोंको शाप दिया ॥ ५८ ॥ उनको शाप देकर सावित्रीजी सभा से निकलीं और उस समय ज्येष्ठपुष्कर में प्राप्तहोकर वे सरस्वतीजी स्थिर होकर स्थितहुईं ॥ ५९ ॥ हे वरानने ! सखी लक्ष्मी व इन्द्राणीने उन सावित्रीजी से कहा व अन्य देवियोंने कहा कि मैं सभामें नहीं स्थितहूंगी ॥ ६० ॥ और मैं वहां जाऊंगी जहां तुम्हारी ध्वनि नहीं सुनूंगी तदनन्तर वे सब स्त्रियां अपने अपने

ऽयश्चैवतथाविधम् ॥ मृतानांतत्रप्रेतत्वं भविष्यतिनसंशयः ॥ ५७ ॥ एवंशक्रंतथाविष्णुं रुद्रंवैपावकन्तथा ॥ ब्रह्माणंब्राह्मणांश्चैव सर्वांस्तानशपत्तदा ॥ ५८ ॥ शापंदत्त्वातथातेषां निष्क्रान्तासदसस्तथा ॥ ज्येष्ठपुष्करमासाद्य तदा सावस्थितास्थिरा ॥ ५९ ॥ लक्ष्मीप्राहसखीतान्तु इन्द्राणीचवरानने ॥ अन्यादेव्यस्तथाप्रोचुर्नाहंस्थास्यामिसंसदि ॥ ६० ॥ तत्रचाहंगमिष्यामि यत्रश्रोष्येनतेध्वनिम् ॥ ततस्ताःप्रमदास्सर्वाः प्रयाताःस्वनिकेतनम् ॥ ६१ ॥ सावित्रीकुपितातासां पुनश्शापायचोद्यता ॥ यस्मान्माञ्चपरित्यज्य गतास्तादेवयोषितः ॥ ६२ ॥ तासामपितथाशापं प्रदास्येकुपिताभृशम् ॥ नैकत्रवासोलक्ष्म्यास्तु भविष्यतिकदाचन ॥ ६३ ॥ क्रुद्धासाचलचित्ताच शूद्रेषुनिवसिष्यति ॥ म्लेच्छेषु पार्वतीयेषु कुत्सितेकुष्ठिकेतथा ॥ ६४ ॥ वाचालेचावलिप्तेच अभिशस्तेदुरात्मनि ॥ एवंविधेनरेतुभ्यं निवासोस्तुसदा प्रियः ॥ ६५ ॥ शापंदत्त्वाततस्तस्यायिन्द्राणीमशपत्तदा ॥ त्वष्टुस्सुतेहतेचेन्द्रेपौवभोदुष्टकारिणि ॥ ६६ ॥ नहुषेचग

स्थानको चलीगईं ॥ ६१ ॥ फिर क्रोधित होकर सावित्रीजी उनको शापदेने के लिये उद्यतहुईं कि जिसलिये मुझको छोड़कर वे देवताओंकी स्त्रियां चलीगईं ॥ ६२ ॥ उसीकारण बहुतही क्रोधित होकर उनको भी शापदूंगी कि लक्ष्मीजी का एक ठिकाने कभी निवास न होगा ॥ ६३ ॥ और क्रोधित व चलायमानचित्तवाली वे लक्ष्मीजी शूद्रों में बसैंगी और पर्वतों के रहनेवाले म्लेच्छों में तथा निन्दित, कुष्ठी ॥ ६४ ॥ वाचाल, गर्वित, अभिशस्त (लोकापवादसे दूषित) व दुष्टचित्तवाले इसप्रकार के मनुष्य में तुमको सदैव निवास प्रिय होवै ॥ ६५ ॥ उन लक्ष्मीके लिये शाप देकर तदनन्तर उससमय इन्द्राणीको शापदिया कि हे दुष्टकारिणि ! जबइन्द्रजी त्वष्टाके

पुत्र वृत्रासुरको मारेंगे ॥६६॥ तब नहुष राज्यपै बैठेगा व तुमको देखकर वह याचना करैगा कि मैं इन्द्रहूं और यह मूर्खिणी क्यों मेरे समीप नहीं प्राप्त होतीहै ॥ ६७ ॥ यदि इन्द्राणीको न पाऊंगा तो सब देवताओं को मारडालूंगा तब हे गर्विते ! दुष्टआचरणवाली शापित तुम नष्टहोकर मेरे शापसे बड़ेभारी वनमें दुःखित होतीहुई बनोगी और उस समय सब देवस्त्रियों को शापदिया ॥ ६८ । ६९ ॥ कि सन्तान से कोहुई प्रीति न होगी इसप्रकार तुम सब होवोगी व दिन रात जलतीहुई तुम सब वन्ध्या के शब्दसे दुःखितहोगी ॥ ७० ॥ हे वरवर्णिनि ! वैसेही इसप्रकार गौरीजी को शाप देकर वे सावित्री देवी बड़े क्रोधसे पतिके यज्ञसे बाहर स्थितहुई ॥ ७१ ॥ रोतीहुई

तेराज्ये दृष्ट्वात्वांयाचयिष्यति ॥ अहमिन्द्रःकथंचैषा नोपतिष्ठतिवालिशा ॥ ६७ ॥ सर्वान्देवान्हनिष्यामि नलप्स्ये हंशचींयदि ॥ नष्टात्वंचतदाशप्ता वनेमहतिदुःखिता ॥ ६८ ॥ वसिष्यसिदुराचारा शापेनममगर्विते ॥ देवभार्यासुसर्वासु तदाशापमयच्छत ॥ ६९ ॥ नचापत्यकृताप्रीतिस्सर्वास्त्वेवंभविष्यथ ॥ दह्यमानादिवारात्रं वन्ध्याशब्देनदुःखिताः ॥ ७० ॥ गौरीमेवंतथाशप्त्वा सादेवीवरवर्णिनि ॥ उच्चैरुषासासावित्री भर्तृयज्ञाद्बहिःस्थिता ॥ ७१ ॥ रुदमानांतुतान्दृष्ट्वा विष्णुनाचप्रसीदिता ॥ मारोदीस्त्वंविशालाक्षि एह्यागच्छसदंशुभे ॥ ७२ ॥ परिधायशुभेयोगे मेखलांक्षौमवाससी ॥ गृहाणदीक्षांब्रह्माणि पादौतेप्रणमेशुभे ॥ ७३ ॥ एवमुक्ताब्रवीदेनं नाहंकुर्यांवचस्तव ॥ तत्राहञ्चगमिष्यामि यत्रश्रोष्ये नतेध्वनिम् ॥ ७४ ॥ एतावदुक्त्वासादेवी उच्चैस्स्थानेस्थितौस्थिता ॥ विष्णुस्तस्याःपुरस्थित्वा बद्ध्वाचकरसम्पुटम् ॥ ७५ ॥ तुष्टावप्रणतोभूत्वा भक्त्याचपरयान्वितः ॥ ७६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नमोस्तुतेमहादेवि भूर्भुवःस्वस्त्रयीमयी ॥

उन सावित्रीजीको देखकर विष्णुजी ने प्रसन्न कराया व कहा कि हे विशाललोचनि ! तुम मत रोवो हेशुभे ! सभाको आइये आइये ॥ ७२ ॥ उत्तम योगमें प्रतिमेखला को पहनकर रेशमी वसनोंको पहनो हे शुभे, ब्रह्माणि ! तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करताहूं दीक्षाको ग्रहण कीजिये ॥ ७३ ॥ इसप्रकार कहीहुई सावित्रीजी इन विष्णुजी से बोलीं कि मैं तुम्हारे वचनको न करूंगी बरन मैं वहां जाऊंगी जहां तुम्हारे शब्दको न सुनूंगी ॥ ७४ ॥ इतना कहकर वे सावित्री देवी पृथ्वी पर उच्चस्थान में बैठगई और विष्णुजीने उनके आगे बैठकर व करसम्पुटको बांधकर ॥ ७५ ॥ बड़ी भक्तिसंयुत होकर प्रणामकरके स्तुतिकिया ॥ ७६ ॥ विष्णुजी बोले कि हे महादेवि !

तुम्हारेलिये नमस्कारहै भूर्भुवःस्वः त्रयीमयी सावित्री तुम दुर्गतरणीहो और सातप्रकारकी तुम वाणी कहीगईहो ॥ ७७ ॥ और सब श्रुतिशास्त्र व लक्षण तथा सब शास्त्रोंमें भविष्य तुम्हींहो हेदेवि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ७८ ॥ श्वेतरूपवाली तुम श्वेताहो और चन्द्रमाकेसमान मुखवाली तुम्हींहो तथा चन्द्रमाकी किरणोंके समान प्रकाशवाले वक्षःस्थलमें शोभित हारसे उपलक्षितहो और दिव्यकुंडलों से पूर्ण कुण्डलवाले कानोंसे भूषितहो और तुम सिद्धि व ऋद्धिहो व कीर्ति,श्री,सन्नति और मति हो ॥ ७९ ।८० ॥ व सन्ध्या,रात्रि, प्रभा तुम्हींहो और तुम्हीं कालरात्रि हो तथा कृषीकरनेवालोंकी तुम सीता (हलकी पद्धति) हो और प्राणियोंकी पृथ्वीहो ॥ ८१ ॥

सावित्रीदुर्गतरणी त्वंवाणीसप्तधास्मृता ॥ ७७ ॥ सर्वाणिश्रुतिशास्त्राणि लक्षणानितथैवच ॥ भविष्यासर्वशास्त्राणां त्वन्तुदेविनमोस्तुते ॥ ७८ ॥ श्वेतात्वंश्वेतरूपासि शशाङ्केनसमानना ॥ शशिरश्मिप्रकाशेन हारेणोरसिराजता ॥ ७९ ॥ दिव्यकुण्डलपूर्णाभ्यां श्रवणाभ्यांविभूषिता ॥ त्वंसिद्धिश्चतथाऋद्धिः कीर्त्तिःश्रीःसन्नतिर्मतिः ॥ ८० ॥ सन्ध्या रात्रिःप्रभासित्वं कालरात्रिस्त्वमेवच ॥ कार्षुकाणांचसीतासि भूतानांधरणीतथा ॥ ८१ ॥ एवंस्तुवन्तंसावित्री विष्णुंप्रो वाचसम्मुखा ॥ सम्यक्स्तुतात्वयापुत्र अजेयस्त्वंभविष्यसि ॥ ८२ ॥ अवितात्वसदावत्स पितृमातृषुवल्लभः ॥ अ नेनस्तवराजेन स्तोष्यतेयस्तुमांसदा ॥ ८३ ॥ सर्वदोषविनिर्मुक्तः परंस्थानंगमिष्यति ॥ गच्छयज्ञंचिरन्तस्य समा प्तिंनयपुत्रक ॥ ८४ ॥ कुरुक्षेत्रेप्रयागेच भविष्येयज्ञकर्मणि ॥ समीपगातत्रभर्तुः करिष्येतवभाषितम् ॥ ८५ ॥ एव मुक्तेगतेविष्णौ ब्रह्मणस्सत्रमुत्तमम् ॥ सावित्रीतुसमायाता प्रभासेवरवर्णिनि ॥ ८६ ॥ गतायामथसावित्र्यां गायत्रीवा

इसप्रकार स्तुति करतेहुये विष्णुजीसे सावित्रीजी सम्मुख होकर बोलीं कि हे पुत्र ! मैं तुमसे भलीभांति स्तुति कीगई तुम अजेय होवोगे ॥ ८२ ॥ हे वत्स ! तुम सदैव रक्षक होगे और पिता माताओंको प्यारे होवोगे इस स्तवराजसे जो सदैव मेरी स्तुति करैगा ॥ ८३ ॥ सब दोषोंसे छूटाहुआ वह उत्तमस्थानको जावैगा हे पुत्र ! जाइये और उनकी यज्ञको समाप्त कीजिये ॥ ८४ ॥ कुरुक्षेत्र व प्रयागमें भविष्य यज्ञकर्ममें वहां पतिके समीप प्राप्तहोकर मैं तुम्हारा वचन करूंगी ॥ ८५ ॥ ऐसा कहने पर जबब्रह्माके उत्तम यज्ञको विष्णुजी चलेगये तब हे वरवर्णिनि ! सावित्रीजी प्रभासक्षेत्रमें आईं ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर जब सावित्रीजी चलीगईं तब गायत्रीजी वचन

को बोलीं कि पतिके समीप मुनिलोग मेरे वचनको सुनैं ॥ ८७ ॥ जोंकि वरदानके लिये उद्यतहोकर सन्तुष्ट होतीहुई मैं कहती हूं कि भक्तिसंयुत जो मनुष्य ब्रह्मा को पूजैंगे ॥ ८८ ॥ उनको वस्त्र, धन, धान्य, स्त्री का सुख तथा निरन्तर सुख और गृह व पुत्र, पौत्रको दूंगी ॥ ८९ ॥ और यह बहुत समय तक सुखको भोगकर तद-नन्तर मोक्षको प्राप्त होगा व हे इन्द्रजी ! मैं तुमको वरदान देतीहूं कि जब समरमें शत्रुवोंके साथ तुम्हारा युद्धहोगा ॥ ९० ॥ तब शत्रुके स्थानको जाकर ब्रह्मा छुड़ा-नेवाले होंगे और अपने नष्टपुत्रको व शत्रुके नाशसे परम आनन्दको पावोगे ॥ ९१ ॥ व त्रिलोकमें निष्कंटक बड़ाभारी राज्य होगा और जब विष्णुजी मृत्युलोक

क्यमब्रवीत् ॥ शृण्वन्तुमुनयोवाक्यं मदीयंभर्तृसन्निधौ ॥ ८७ ॥ यदहंवच्मिसन्तुष्टा वरदानायचोद्यता ॥ ब्रह्माणंपूज यिष्यन्ति नराभक्तिसमन्विताः ॥ ८८ ॥ तेषांवस्त्रंधनंधान्यं दारास्सौख्यंसुखानिच ॥ अविच्छिन्नंतथासौख्यं गृहंवैपुत्र पौत्रकम् ॥ ८९ ॥ भुक्त्वासौसुचिरंकालं ततोमोक्षंगमिष्यति ॥ शक्राहन्तेवरन्दाद्मि संग्रामेशत्रुभिस्सह ॥ ९० ॥ तदा ब्रह्मामोचयिता गत्वाशत्रुनिकेतनम् ॥ स्वंपुत्रंलप्स्यसेनष्टं शत्रुनाशात्पराम्मुदम् ॥ ९१ ॥ अकण्टकंमहद्राज्यं त्रि लोकेचभविष्यति ॥ मर्त्यलोकेयदाविष्णुरवतारंकरिष्यति ॥ ९२ ॥ भ्रात्रासहपरन्दुःखं स्वभार्याहरणंचयत् ॥ हत्वा शत्रुंपुनर्नारीं लप्स्यसेसुरसन्निधौ ॥ ९३ ॥ गृहीत्वातांपुनःप्राज्यं राज्यंकृत्वागमिष्यसि ॥ एकादशसहस्राणि कृत्वा राज्यंयथाविधि ॥ ९४ ॥ ख्यातिस्तेविपुलालोके चानुरागोभविष्यति ॥ गायत्रीब्राह्मणांश्चैव सर्वान्प्रतिवचोऽब्रवी त् ॥ ९५ ॥ युष्माकंपूजनंकृत्वा दत्त्वादानान्यनेकशः ॥ प्राणायामेनचैकेन सर्वमेवतरिष्यति ॥ ९६ ॥ प्रभासेतु

में अवतार करैंगे ॥ ९२ ॥ व भाईके साथ जो बहुत दुःख व अपनी स्त्रीका हरणहोगा तब शत्रुको मारकर देवताओं के समीप फिर अपनी स्त्रीको पावोगे ॥ ९३ ॥ उसको लेकर फिर बड़ाभारी राज्यकरके जावोगे गेरह हजार वर्ष विधिपूर्वक राज्य करकें वैकुण्ठको जावोगे ॥ ९४ ॥ संसार में तुम्हारा बहुत यश व अनुराग होवैगा और गायत्रीजी सब ब्राह्मणोंमे वचन बोलीं ॥ ९५ ॥ कि तुमलोगोंका पूजनकर व अनेक दानोंको देकर एक प्राणायामसे मनुष्य सब कठिनताको तरजावैगा ॥ ९६ ॥

और प्रभासक्षेत्रमें मुझ वेदमाताको जपकर विशेषकर तरजावैगा और हे द्विजोत्तमो ! तुम लोग प्रतिग्रहसे कियेहुये दोषोंको नहीं पावोगे ॥ ९७ ॥ और पुष्कर में अन्न दानसे सबोंके ऊपर देवता प्रसन्न होवैंगे और एक ब्राह्मण भोजन करानेपर करोड़के बराबर फल मिलैगा ॥ ९८ ॥ तुम लोगोंको तृप्तकर देवता तृप्तिको प्राप्तहोवैंगे और पृथ्वी के देवता तुमलोग सबों के पूजनेयोग्य होवोगे ॥ ९९ ॥ और इस पुष्कर में धन देनेपर सब मनुष्य ब्रह्महत्यादिक पाप व जो पातक हैं उनको तर जावैंगे ॥१००॥ और मेरे जपसे कियेहुये तीन प्राणायामोंसे ब्रह्महत्याके समान पाप उसीक्षण नाश होजावैगा ॥ १ ॥ दश गायत्री जपसे एक जन्ममें उपजाहुआ पाप

विशेषेण जप्त्वामांवेदमातरम् ॥ प्रतिग्रहकृतान्दोषान् नप्राप्स्यध्वंद्विजोत्तमाः ॥ ९७ ॥ पुष्करेचान्नदानेन प्रीतास्सर्वा स्तुदेवताः ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रेकोट्याःफलमवाप्स्यते ॥ ९८ ॥ युष्माकंप्रीणनंकृत्वातृप्तिंयास्यन्तिदेवताः ॥ यूयंच भूमिदेवावै सर्वपूज्याभविष्यथ ॥ ९९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि दुरितानिचयानिच ॥ तरिष्यन्तिनरास्सर्वे दत्तेस्मिन्पु ष्करेधने ॥ १०० ॥ मदीयेनतुजाप्येन प्राणायामैस्त्रिभिःकृतैः ॥ ब्रह्महत्यासमंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ १ ॥ दशभि र्जन्मजनितं सतेनचपुराकृतम् ॥ त्रियुगन्तुसहस्रेण गायत्रीहन्तिकिल्बिषम् ॥ २ ॥ एवंज्ञात्वासदापूज्या जाप्येचम मवैकृताः ॥ भविष्यथनसन्देहो नात्रकार्याविचारणा ॥ ३ ॥ ओङ्कारेणत्रिमात्रेण सार्द्धेनचविशेषतः ॥ पूज्यास्सर्वैर्नसन्दे हो जप्त्वामांशिरसासह ॥ ४ ॥ अष्टाक्षरास्थिताचाहं जगद्व्याप्तंमयात्विदम् ॥ माताहंसर्वलोकानां देवैस्सर्वैरलंकृ ता ॥ ५ ॥ जप्त्वामांपरमांसिद्धिं पश्यतद्विजसत्तमाः ॥ प्राधान्यंममजाप्येन सर्वेषांसम्भविष्यति ॥ ६ ॥ गायत्रीसार

व सौसे पूर्वजन्म में उपजाहुआ पातक और हज़ारसे तीन युगका पाप गायत्री नाश करती है ॥ २ ॥ ऐसा जानकर मेरे जपमें सदैव पूजने के योग्य कियेहुये होवोगे इसमें सन्देह नहीं है और इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ३ ॥ साढ़े तीन मात्रा समेत ॐकार से शिरसमेत मुझको जपकर तुमलोग निस्सन्देह सबों से पूजने योग्य होवोगे ॥ ४ ॥ आठ अक्षरोंवाली मैं स्थित हूं और मुझसे यह संसार व्याप्तहै सब देवताओं से भूषित मैं सब लोकोंकी माताहूं ॥ ५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मुझको

जपकर तुमलोग उत्तम सिद्धिको देखोगे और मेरे जप से तुम सबोंकी प्रधानता होवैगी ॥ ६ ॥ गायत्रीका सारमात्र यह ब्राह्मण भलीभांति यन्त्रितहै और अयन्त्रित चतुर्वेदी ब्राह्मण सर्वभक्षी व सब कुछ बेंचनेवाला होताहै ॥ ७ ॥ जिसलिये सावित्रीजी ने आपलोगोंको शापदिया है उसीकारण वहां दिया व हवन कियाहुआ भी सदैव सब अक्षयकारक होताहै ॥ ८ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! उसीकारण मैंने तुमलोगों को वरदान दिया कि अग्निहोत्र में लगेहुये जो ब्राह्मण त्रिकाल में होम देते हैं ॥ ९ ॥ वे इक्कीस पुश्तियों समेत स्वर्गको जावैंगे इसप्रकार इन्द्र, विष्णु, शिव और अग्निको वर देकर ॥ १० ॥ व हे महादेवि ! ब्रह्माके लिये व ब्राह्मणोंको उत्तम वर-

मात्रोयं परंविप्रस्सुयन्त्रितः ॥ अयन्त्रितश्चतुर्वेदः सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ ७ ॥ यतोभवत्सुसावित्र्या शापोदत्तस्सदात्विह ॥ अपिदत्तंहुतंचापि सर्वमक्षयकारकम् ॥ ८ ॥ दत्तोवरोमयातेन युष्माकंद्विजसत्तमाः ॥ अग्निहोत्रपराविप्रास्त्रिकालेहो मदायिनः ॥ ९ ॥ स्वर्गंतेतुगमिष्यन्ति एकविंशतिभिःकुलैः ॥ एवंशक्रंचविष्णुञ्च रुद्रंवैपावकंतथा ॥ १० ॥ ब्रह्मणेब्रा ह्मणानांच गायत्रीवरमुत्तमम् ॥ तस्मिन्कालेमहादेविब्रह्मणःपार्श्वगाभवत् ॥ ११ ॥ ब्रह्मणातुसमाख्यातं लक्ष्म्याश्शा पस्यकारणम् ॥ युवतीनाञ्चसर्वासां शापस्तासांपृथक्पृथक् ॥ १२ ॥ लक्ष्म्याश्चैववरन्दत्त्वा गायत्रीब्रह्मणःप्रिया ॥ अ कुत्सितानराःपुत्रि तेवासेनचशोभने ॥ १३ ॥ भविष्यन्तिनसन्देहःसर्वेभ्यःप्रीतिदायकाः ॥ येत्वयावीक्षिताःसर्वे तेनराः पुण्यभाजनाः ॥ १४ ॥ परित्यक्तास्त्वयायेतु तेनरादुःखभोगिनः ॥ तेषांजातिःकुलंशीलं धर्मोनचवरानने ॥ १५ ॥ स भायान्तेनशोभन्ते मन्यन्तेनचपार्थिवैः ॥ आदेशन्नैवतेषान्तु कुर्वतेयेद्विजोत्तमाः ॥ १६ ॥ सौजन्यन्तेषुकुर्वन्ति नब्रा

दान देकर उस समय गायत्रीजी ब्रह्माके समीप प्राप्तहुई ॥ ११ ॥ और ब्रह्माने लक्ष्मीजीके शापका कारण कहा और उनसब स्त्रियोंके शापको अलग२कहा ॥ १२ ॥ और ब्रह्माकी प्यारी गायत्रीजी लक्ष्मीजी को वर देकर बोलीं कि हे शोभने, पुत्रि ! तुम्हारे निवाससे मनुष्य आनन्दित होवैंगे ॥ १३ ॥ और सबों के लिये निस्सन्देह प्रीतिदायक होवैंगे और जिनको तुमने अवलोकन किया वे सब मनुष्य पुण्यके पात्र होवैंगे ॥ १४ ॥ और जिनको तुमने छोड़ दिया वे मनुष्य दुःखके भोगी होते हैं व हे वरानने ! उनके जाति, कुल व शील और धर्म नहीं होताहै ॥ १५ ॥ और वे सभामें शोभित नहीं होते हैं व राजालोग उनको नहीं मानते हैं और जो द्विजो-

चम हैं वे उनकी आज्ञाको नहीं करते हैं ॥ १६ ॥ और उनमें भाई, पिता व गुरु व बन्धु प्रीति नहीं करते हैं इसमें सन्देह नहीं है और मैं तुम्हारे विना नहीं जीती हूं ॥ १७ ॥ हे वरानने, भगवति, शोभने, महादेवि ! तुम्हारे देखने पर मलिन मनुष्योंका मन प्रसन्न होजाताहै यह सत्यहै सत्य है ॥ १८ ॥ तुम्हारी दृष्टिसे देखेहुये सज्जन पुरुष ऐसे वचनोंको सुनैंगे व मनुष्योंकी प्रीतिको देनेवाले होवैंगे ॥ १९ ॥ हे इन्द्राणि ! तुम नहुषको प्राप्तहोकर व देखकर वंचना करोगी और अगस्त्यजीके वचन के अनुकूल वह पापी न देखकर नष्ट होवैगा ॥ २० ॥ और सर्पताको प्राप्त होकर उन मुनि से प्रार्थना करैगा कि हे मुने ! मैं अहंकारसे नष्टहोगया तुम मेरे

तातपितागुरुः ॥ नबान्धवानसन्देहो नजीवेहन्त्वयाविना ॥ १७ ॥ त्वयादृष्टेभगवति क्लान्तानांशोभनेमनः ॥ प्रसीद तेमहादेवि सत्यंसत्यंवरानने ॥ १८ ॥ एवंविधानिवाक्यानि त्वयादृष्ट्यानिरीक्षिताः ॥ सज्जनास्तेपिश्रोष्यन्ति जनानांप्रीतिदायकाः ॥ १९ ॥ इन्द्राणिनहुषंप्राप्य दृष्ट्वातंवञ्चयिष्यसि ॥ अदृष्ट्वातुहतःपापोह्यगस्त्यवचनादनु ॥ २० ॥ सर्पत्वंसमनुप्राप्य प्रार्थयिष्यतितम्मुनिम् ॥ दर्प्पेणाहंविनष्टोस्मि शरणम्भवमेमुने ॥ २१ ॥ वाक्येनतेनतस्यासौ नृपस्यभगवानृषिः ॥ कृत्वामनसिकारुण्यमिदवाक्यमुवाचह ॥ २२ ॥ उत्पश्यतिकुलेराजा त्वदीयेकुरुनन्दनः ॥ सार्पकलेवरंदृष्ट्वा कृष्णेनसहमङ्गमः ॥ २३ ॥ सोपिराजाजगरतां त्यक्त्वास्वर्गङ्गमिष्यति ॥ अश्वमेधेकृतेभ्रात्रा सहतेनपुनर्दिवम् ॥ २४ ॥ प्राप्स्यसेवरदानेन मदीयेनसुलोचन ॥ यदारुद्रगयामध्ये सर्वदेवसमागमः ॥ २५ ॥ तस्यवारिसमायोगात् ततस्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ देवपत्न्यस्तदातुष्टाः सर्वायापरिभाषिताः ॥ २६ ॥ अपत्यैरपिहीनास्स्युर्नैवदुःखंभ

रक्षक होवो ॥ २१ ॥ उन राजा नहुषके उस वचनसे भगवान् अगस्त्य ऋषि मनमें दयाकरके यह वचन बोले ॥२२॥ कि तुम्हारे वंशमें कुरुनन्दन राजा उत्पन्न होवैंगे और सर्प के शरीरको देखकर श्रीकृष्ण के साथ संयोग होगा ॥ २३ ॥ और वह राजा भी सर्पत्वको छोड़कर फिर स्वर्गको जावैगा और हे सुलोचन ! मेरे वरदान से अश्वमेध यज्ञकरनेपर उस भाईसमेत तुम फिर स्वर्गको प्राप्तहोगे व जब रुद्रगया के बीचमें सब देवताओं का मिलाप होगा ॥ २४ । २५ ॥ तब उस कूपके जल के संयोगसे तदनन्तर सिद्धिको पावोगे और उस समय जो देवताओंकी स्त्रियां थीं उन प्रसन्न सब देवस्त्रियोंसे गायत्रीजी ने कहा ॥ २६ ॥ कि सन्तानसे हीन भी

होवेगी परन्तु दुःख न होगा इसप्रकार इन वरदानोंको देकर लोकोंके संमतवाली गायत्री ॥ २७ ॥ देवी सबोंके देखतेहुये उस समय अन्तर्द्धान होगई तब हे देवि ! सावित्रीजी प्रभासक्षेत्रको आई ॥ २८ ॥ और श्रीसोमेश्वरजीके पूर्वओर कृतस्मरपर्वत के शिखर पै दूसरे उत्तम द्वापरयुग में चाक्षुष मन्वन्तरमें ॥ २९ ॥ लोकोंके रचनेवाले ब्रह्माने वहां यज्ञका प्रारम्भकरनेपर यज्ञमें देवता व महात्मा उत्तम सप्तर्षिलोग प्राप्तहुये हैं ॥ ३० ॥ उससमयसे लगाकर लोकोंकेऊपर दयाकरनेवाली जगत् की जननी सावित्रीजी स्थितहुई हैं जो मनुष्य भक्तिसे उनको एक पाखभर निरन्तर ब्रह्मा के पूजनकी विधि से पूजता है उसके निश्चयकर पुत्र होताहै जेठकी पौर्ण-

विष्यति ॥ इतिदत्त्वावरानेतान् गायत्रीलोकसम्मता ॥ २७ ॥ जगामादर्शनन्देवी सर्वेषांपश्यतांतदा ॥ सावित्रीतु तदादेवि प्रभासक्षेत्रमागता ॥ २८ ॥ कृतस्मरस्यशृङ्गेच श्रीसोमेश्वरपूर्वतः ॥ मन्वन्तरेचाक्षुषेच द्वितीयेद्वापरेशुभे ॥ २९ ॥ तत्रयज्ञेसमारब्धेब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ यज्ञेगतामहात्मानो देवास्सप्तर्षयोवराः ॥ ३० ॥ तस्मात्कालात्समारभ्य प्रभासक्षेत्रमाश्रिता ॥ ३१ ॥ सावित्रीलोकजननी लोकानुग्रहकारिणी ॥ यस्तांपूजयतेभक्त्या पक्षमेकंनिरन्तरम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मपूजाविधानेन तस्यपुत्रोध्रुवंभवेत् ॥ ज्येष्ठस्यपौर्णिमास्यांतु सावित्रीस्थलसन्निधौ ॥ ३३ ॥ पठेद्योब्रह्मसूक्तानि मुच्यतेह्यनुपातकैः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं सावित्र्यारोषकारणम् ॥ ३४ ॥ यश्चेदंशृणुयाद्भक्त्या सगच्छेत्परमं पदम् ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसावित्रीमाहात्म्यन्नामषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ॥

देव्युवाच ॥ प्रभासेसंस्थितायातु सावित्रीब्रह्मणःप्रिया ॥ तस्याश्चरित्रम्मेब्रूहि देवदेवजगत्पते ॥ १ ॥ व्रतंमाहात्म्य

मासी तिथि में सावित्रीस्थलके समीप ॥ ३१ । ३२ । ३३ ॥ जो ब्राह्मण सूक्तों को पढ़ता है वह पातकोंसे छूटजाता है यह सावित्रीजी के क्रोधका सब कारण तुमसे कहागया ॥ ३४ ॥ इसको जो भक्तिसे सुनताहै वह परमपदको प्राप्तहोताहै ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसावित्रीमाहात्म्यंनामषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सावित्रीव्रत कर अहै अतिउत्तम सुविधान । इकसौ इकसठि में सोई कीन्हों कथा बखान ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देवदेव, जगदीशजी ! ब्रह्माकी

प्यारी जो सावित्रीजी प्रभासक्षेत्रमें स्थित हैं उसके चरित्रको मुझसे कहिये ॥ १ ॥ और स्त्रियों के पतिव्रत को करनेवाले व महाभाग्य तथा बड़े ऐश्वर्यवाले इतिहास से संयुत व माहात्म्य से संयुक्त व्रतको कहिये ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे महेश्वरि, महादेवि ! प्रभासक्षेत्रमें स्थित स्थलमें टिकीहुई सावित्रीजी के उत्तम चरित्र को कहताहूं ॥ ३ ॥ जिसप्रकार कि राजाकी कन्या सावित्रीने उत्तम व्रतको किया है मद्रदेशमें सब प्राणियोंके हितमें परायण व धर्मात्मा तथा सदैव पुरवासियों को प्यारा अश्वपतिनामक राजा हुआहै जोकि क्षमावान् व सन्तानहीन तथा सत्यवादी व जितेन्द्रिय था ॥ ४ । ५ ॥ वह राजा प्रभासक्षेत्रकी यात्रामें आया व विधिसे यात्रा

संयुक्तमितिहाससमन्वितम् ॥ पतिव्रतकरंस्त्रीणां महाभाग्यंमहोदयम् ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ कथयामिमहादेविसावि त्र्याश्चरितंशुभम् ॥ प्रभासक्षेत्रसंस्थायास्स्थलस्थायामहेश्वरि ॥ ३ ॥ यथाचीर्णंव्रतवरं सावित्र्याराजकन्यया ॥ आसीन्मद्रेषुधर्मात्मा सर्वभूतहितेरतः ॥ ४ ॥ पार्थिवोश्वपतिर्नामा पौराणाञ्चप्रियस्सदा ॥ क्षमावाननपत्यश्च स त्यवादीजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ प्रभासक्षेत्रयात्रायामाजगामसभूपतिः ॥ यात्राकुर्वन्विधानेन सावित्रीस्थलमागतः ॥ ६ ॥ ससभार्योव्रतमिदं तत्रचक्रेनृपस्स्वयम् ॥ सावित्रीतिप्रसिद्धंयत् सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७ ॥ तस्यतुष्टाभवद्देवी सा वित्रीब्रह्मणःप्रिया ॥ भूर्भुवस्स्वरितित्येषा साक्षान्मूर्त्तिमतीस्थिता ॥ ८ ॥ कमण्डलुधरादेवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥ उ वाचत्वंवरंब्रूहि सवव्रेवरमात्मनः ॥ ९ ॥ उवाचदुहिताह्येका तवराजन्भविष्यति ॥ इत्येवमुक्त्वासादेवी जगामादर्शन म्पुनः ॥ १० ॥ कालेनवहुनाजाता दुहितादेवरूपिणी ॥ सावित्र्याप्रीतयादत्ता सावित्र्याःपूजयायतः ॥ ११ ॥ सावि

को करताहुआ वह सावित्रीजी के स्थलको आया ॥ ६ ॥ व स्त्रीसमेत उस राजाने वहां आपही इस व्रतको किया जोकि सब कामनाओं के फलोंको देनेवाला सावित्री ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ उसके ऊपर ब्रह्माकी प्यारी (स्त्री) सावित्री देवी प्रसन्नहुई जो ये सावित्रीजी भूर्भुवःस्वः इन लोकोंमें साक्षात् मूर्तिमती होकर स्थित हैं ॥ ८ ॥ कमण्डलुको धारण किये प्रसन्न मुख व नेत्रोंवाली सावित्री देवीजी बोलीं कि तुम वरदानको कहो उस राजाने अपने वरदानको मांगा ॥ ९ ॥ और सावित्रीजी बोलीं कि हे राजन् ! तुम्हारे एक कन्या होगी यही कहकर फिर वे सावित्री देवी अन्तर्द्धान होगईं ॥ १० ॥ और बहुत समय के बाद देवरूपिणी कन्या पैदाहुई जिसलिये

सावित्रीजीके पूजन से प्रसन्न होतीहुई सावित्रीजी ने उसको दिया ॥ ११ ॥ उसी कारण ब्राह्मणोंने उस समय उसका सावित्री ऐसा उत्तम नाम किया और वह राज-कन्या शरीरधारिणी लक्ष्मी की नाईं बढ़ती भई ॥ १२ ॥ कमल पत्रके समान चौड़ेनेत्रोंवाली वह सावित्री तेजसे जलती ऐसी थी और उस सावित्रीने उसव्रतको किया कि जिसको भृगुजी ने कहा ॥ १३ ॥ व सुकुमार अंगोंवाली सावित्रीजी यौवन में स्थितहुई और सुन्दरकटिवाली व सुन्दरमध्यभागवाली वह सोने की मूर्तिकी नाईं थी ॥ १४ ॥ प्राप्तहुई उस कन्याको देखकर लोगोंने यह माना कि यह साक्षात् देवकन्या है और कमल के समान नेत्रोंवाली तेजसे जलतीहुई उस ॥ १५ ॥ सावित्री

त्रीतिवरन्नाम चक्रुर्विप्रास्तदाततः ॥ साविग्रहवतीवश्रीः प्रावर्द्धतनृपात्मजा ॥ १२ ॥ सातुपद्मविशालाक्षी प्रज्वलन्तीवतेजसा ॥ चचारसाचसावित्री भृगुणायद्व्रतोदितम् ॥ १३ ॥ सावित्रीसुकुमाराङ्गी यौवनस्थाबभूवह ॥ सासुश्रोणी सुमध्याच प्रतिमाकाञ्चनीइव ॥ १४ ॥ प्राप्ताचदेवकन्येयं दृष्ट्वातांमेनिरेञ्जसा ॥ सातुपद्मविशालाक्षी प्रज्वलन्तीवतेजसा ॥ १५ ॥ व्रतंचकारसावित्री तत्तुयद्भृगुणोदितम् ॥ अथोपोष्यशिरस्स्नात्वा देवतामभिगम्यच ॥ १६ ॥ हुत्वाग्निंविधिवद्विप्रानर्चयद्वरवर्णिनी ॥ तेभ्यस्सुमनसश्शेषां प्रतिगृह्यनृपात्मजा ॥ १७ ॥ सखीपरिवृताभ्येत्य देवीश्रीवस्वरूपिणी ॥ साभिवाद्यपितुःपादौ शेषांपूर्वंनिवेद्यच ॥ १८ ॥ कृताञ्जलिर्वरारोहा नृपतेःपार्श्वतःस्थिता ॥ तान्दृष्ट्वायौवनप्राप्तां भायुतान्देवरूपिणीम् ॥ १९ ॥ उवाचराजाआमन्त्र्य मन्त्रार्थंसहमन्त्रिभिः ॥ अश्वपतिरुवाच ॥ पुत्रिप्रदान

ने उस व्रतको किया कि जिसको भृगुजी ने कहा था इसके अनन्तर उपास कर शिरसे नहाकर व देवताके सामने जाकर ॥ १६ ॥ अग्निमें हवनकर उस उत्तम-वर्णवाली सावित्रीजी ने विधिपूर्वक ब्राह्मणों का पूजन किया और उनके लिये फूलोंकी मालाको पहिनाकर राजकन्या ॥ १७ ॥ जोकि लक्ष्मीकी नाईं स्वरूपवाली थी सखियोंमे घिरीहुई वे सावित्री देवी आकर पहले मालाको देकर पिताके चरणोंको प्रणामकर ॥ १८ ॥ हाथोंको जोड़कर उत्तमकटिवाली सावित्रीजी राजाके समीप स्थित हुई यौवन में प्राप्त व शोभासे मयुत उस देवरूपिणी कन्याको देखकर ॥ १९ ॥ सलाहके लिये मन्त्रियोंको बुलाकर और मन्त्रियोंसे सम्मति करके राजा बोले

अश्वपति बोले कि हे पुत्रि ! तुम्हारे दानका समय है परन्तु कोई मुझसे नहीं मांगता है ॥ २० ॥ और विचार करताहुआ मैं इस संसारमें अपने तुल्य वरको नहीं देखताहूं जिसप्रकार मैं देवादिकों के निन्दनीय न होऊं वैसाही कीजिये ॥ २१ ॥ वैसेही हे पुत्रि ! धर्मशास्त्रोंमें पढ़ाजाताहुआ यह सुनागयाहै कि पिताके घरमें असंस्कृता (बिन व्याही हुई) जो कन्या रजको देखती है ॥ २२ ॥ उसके पिताको ब्रह्महत्या होती है और कन्या शूद्रिणी कहीगई है इसलिये हे पुत्रि ! मैं तुमको पठाताहूं स्वयंवर कीजिये॥२३॥वृद्ध मन्त्रियों समेत तुम निश्चय करनेके लिये शीघ्रही जाओ ऐसाही होगा यह कहकर उस समय सावित्रीजी निकलीं ॥ २४ ॥ और वे

कालस्ते नहिकश्चिद्वृणोतिमाम् ॥ २० ॥ विचारयन्नपश्यामि वरंतुल्यमिहात्मनः ॥ देवादीनांयथावाच्यो नभवेयंतथाकुरु ॥ २१ ॥ पठ्यमानंतथापुत्रि धर्मशास्त्रेषुविश्रुतम् ॥ पितुर्गृहेतुयाकन्या रजःपश्यत्यसंस्कृता ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्यापितुस्तस्याः कन्यातुवृषलीस्थिता ॥ अतोहंप्रेषयामित्वां कुरुपुत्रिस्वयंवरम् ॥ २३ ॥वृद्धैरमात्यैस्सहिता शीघ्रंगच्छावधारितुम् ॥ एवमस्त्वितिसावित्री प्रोक्त्वातस्मिन्विनिर्ययौ ॥ २४ ॥ तपोवनानिरम्याणि राजर्षीणांजगाम सा ॥ मुनीनान्तत्रवृद्धानां कृत्वापादाभिवन्दनम् ॥ २५ ॥ ततोभिगम्यतीर्थानि सर्वाण्येवाश्रमाणिच ॥ आजगामपुनर्वेश्म सावित्रीसहमन्त्रिभिः ॥ २६ ॥ तत्रापश्यतदेवर्षिं नारदंपुरतःस्थितम् ॥ आसीनमासनेविप्रं प्रणम्यस्मितभाषिणी ॥ २७ ॥ कथयामासतत्कार्यं येनारण्यंगताभवत् ॥ २८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ आसीच्छाल्वेषु धर्मात्मा क्षत्रियःपृथिवीपतिः ॥ द्युमत्सेनइतिख्यातो दैवादन्धोबभूवसः ॥ २९ ॥ अन्धस्यराजपुत्रस्य नृपतेस्तस्यरुक्मिणा ॥ सामन्तेनहृ

सावित्रीजी राजर्षियों के सुन्दर तपोवनोंको गईं और वहां वृद्धमुनियों के चरणों को प्रणाम कर ॥ २५ ॥ तदनन्तर सब तीर्थों व आश्रमोंको जाकर फिर मन्त्रियों समेत सावित्रीजी घरको आईं ॥ २६ ॥ वहां आगे स्थित देवर्षि नारदजी को देखती भईं और आसन पै बैठेहुये विप्र नारदजी को प्रणामकर मुसक्यानपूर्वक बोलनेवाली सावित्रीजी ने ॥ २७ ॥ उस कार्यको कहा कि जिससे वनमें प्राप्तहुई थीं ॥ २८ ॥ सावित्रीजी बोलीं कि शाल्वदेशोंमें द्युमत्सेननामक धर्मात्मा क्षत्रिय हुआहै वह

भाग्यवशासे अन्धहोगया ॥ २९ ॥ उस राजपुत्र अन्धनृपति के राज्यको इस छिद्रमें पहले के वैरी रुक्मी राजाने हर लिया ॥ ३० ॥ और छोटे पुत्रवाली स्त्रीसमेत वह राजा वनको चलागया ॥ ३१ ॥ और वन में इस राजाके परमधर्मवान् सत्यवान् पुत्र पैदाहुआ वह मेरे अनुरूप पति मनसे चाहागया ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले कि इसने शिशुतासे गुणवान् उस सत्यवान् को वरण कियाहै इसका पिता सत्यकहताहै व माता सत्य कहती है ॥ ३३ ॥ और यह सत्य कहता है इसलिये मुनियों ने सत्यवान् नाम किया अहो सावित्री ने राजाको बड़ाभारी कष्ट किया ॥ ३४ ॥ उसको सदैव अश्वप्यारे हैं और मिट्टी के अश्वोंको बनाता है व चित्रमें भी अश्वोंको लि-

तंराज्यं छिद्रेस्मिन्पूर्ववैरिणा ॥ ३० ॥ सबालवत्सयासार्द्धं भार्ययाप्रस्थितोवनम् ॥ ३१ ॥ बभूवास्यवनेराज्ञः पुत्रःपरमधार्मिकः ॥ सत्यवाननुरूपोमे भर्तेतिमनसेप्सितः ॥ ३२ ॥ नारदउवाच ॥ सबालभावादनया गुणवान्सत्यवान्वृतः ॥ सत्यंवदत्यस्यपिता सत्यंमाताप्रभाषते ॥ ३३ ॥ सत्यंवक्तीतिमुनिभिस्सत्यवान्नामवैकृतम् ॥ अहोवतमहत्कष्टं सावित्र्यानृपतेःकृतम् ॥ ३४ ॥ नित्यंचाश्वाःप्रियास्तस्य करोत्यश्वांश्चमृन्मयान् ॥ चित्रेप्यवलिखत्यश्वांश्चित्राश्व इतिचोच्यते ॥ ३५ ॥ सत्यवानितिदेवस्य शिक्षादानगुणैस्समः ॥ ब्रह्मण्यस्सत्यवादीच शिविरौशीनरोयथा ॥ ३६ ॥ ययातिरिवचोदारस्सोमवत्प्रियदर्शनः ॥ रूपेणान्यतमोश्विभ्यां द्युमत्सेनसुतोबली ॥ ३७ ॥ एकोदोषोस्तिनान्योस्य जन्मप्रभृतिपार्थिव ॥ संवत्सरेणक्षीणायुर्देहत्यागंकरिष्यति ॥ ३८ ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा कन्यांवैप्राहपार्थिवः ॥ पुत्रि सावित्रिगच्छत्वमन्यंवरयसत्पतिम् ॥ ३९ ॥ संवत्सरेणक्षीणायुर्देहत्यागंकरिष्यति ॥ ४० ॥ सावित्र्युवाच ॥ सकृ

खताहै इसकारण चित्राश्व ऐसा कहाजाता है ॥ ३५ ॥ और सत्यवान् ऐसा वह राजा शिक्षा, दान व गुणोंसे देवताके बराबरहै और जैसा कि उशीनर देशका राजा शिवि हुआ है वैसाही ब्रह्मण्य व सत्यवादी है ॥ ३६ ॥ और द्युमत्सेनका पुत्र ययाति की नाईं उदार है व चन्द्रमा की नाईं प्रियदर्शन है और रूपसे अश्विनीकुमार की नाईं है व बलवान् है ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! जन्मसे लगाकर इसके एक दोषहै अन्य नहीं है कि वर्षभरमें क्षीण आयुवाला यह शरीरको त्यागकरैगा ॥ ३८ ॥ नारद के वचन को सुनकर राजा कन्या से बोले कि हे सावित्रि,पुत्रि ! जाइये अन्य उत्तम पतिको स्वीकार कीजिये ॥ ३९ ॥ क्योंकि क्षीण आयुर्बलवाला वह वर्षभरमें शरीर

को त्याग करैगा ॥ ४० ॥ सावित्रीजी बोलीं कि राजालोग एकही बार कहते हैं व पण्डित एकही बार कहते हैं और कन्यायें एकही बार दीजाती हैं ये तीनों एकही एक बार होते हैं ॥ ४१ ॥ दीर्घायुहो अथवा अल्पायुहो सगुणहो या गुणहीन होवै मैंने एकबार पतिको स्वीकार किया है मैं दूसरेको नहीं वरणकरूंगी ॥ ४२ ॥ मनसे निश्चयकर तदनन्तर वचनसे कहाजाता है पश्चात् कर्मसे कियाजाता है उसीकारण मन प्रमाण है ॥ ४३ ॥ नारदजी बोले कि जो यह आपको प्याराहै तो शीघ्रही कीजिये और तुम्हारी कन्या सावित्री के देने में विघ्न न होवै ॥ ४४ ॥ ऐसा कहकर ऊपर कूदकर नारदजी स्वर्गको चलेगये और राजाने उत्तम मुहूर्तमें समीपही स्थित

कृज्जल्पन्तिराजानस्सकृज्जल्पन्तिपण्डिताः ॥ सकृत्कन्याःप्रदीयन्ते त्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥ ४१ ॥ दीर्घायुरथवा ल्पायुस्सगुणोनिर्गुणोपिवा ॥ सकृद्वृत्तोमयाभर्त्ता नद्वितीयंवृणोम्यहम् ॥ ४२ ॥ मनसानिश्चयंकृत्वा ततोवाचाभिधी यते ॥ क्रियतेकर्मणापश्चात् प्रमाणंहिमनस्ततः ॥ ४३ ॥ नारदउवाच ॥ यदेतदिष्टंभवतश्शीघ्रमेवविधीयताम् ॥ अ विघ्नमस्तुसावित्र्याः प्रदानेदुहितुस्तव ॥ ४४ ॥ एवमुक्त्वासमुत्पत्य नारदस्त्रिदिवङ्गतः ॥ राजातुदुहितुस्सर्वं वैवाहिक मथाकरोत् ॥ ४५ ॥ शुभेमुहूर्त्तेपार्श्वस्थैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ सावित्र्यपिचतंलब्ध्वा भर्त्तारंमनसेप्सितम् ॥ ४६ ॥ मुमु देतीवसाबाला स्वर्गंप्राप्येवपुण्यकृत् ॥ एवंतत्राश्रमेतेषां सदानिवसतांसताम् ॥ ४७ ॥ कालस्तुपश्यतांकिञ्चिदति क्रान्तोबभूवह ॥ सावित्र्याश्चिन्तमानायास्तिष्ठन्त्याश्चदिवानिशम् ॥ ४८ ॥ नारदेनयदुक्तंतद् वाक्यंमनसिवर्त्तते ॥ त तःकालेबहुतिथे व्यतिक्रान्तेकदाचन ॥ ४९ ॥ प्राप्तःकालःसमर्तव्यो यत्रसत्यवतःप्रिया ॥ ज्येष्ठेमासिसितेपक्षे द्वाद

वेदोंके पारगामी ब्राह्मणों के द्वारा कन्याके सब विवाह कार्यको किया और वे बालासावित्री भी मनसे चाहेहुये उस पतिको पाकर अत्यन्तही प्रसन्न हुई जैसे कि पुण्यकारी पुरुष स्वर्गको पाकर प्रसन्न होताहै इसप्रकार सदैव निवास करते व भलीभाति देखतेहुये उन मुनियोंके उस आश्रम में कुछ समयव्यतीत हुआ और दिन रात चिन्ता करती टिकीहुई उस सावित्री के ॥ ४५ । ४६ । ४७ । ४८ ॥ मनमें वह वाक्य वर्तमान थीं कि जिसको नारदजी ने कहा था तदनन्तर बहुत समय बीतने

पर किसीसमय ॥ ४९ ॥ वह मरनेका समय वहां प्राप्तहुआ जहां कि सत्यवान्‌की प्यारी सावित्रीथीं जेठ महीनेमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें सन्ध्याके समय ॥ ५० ॥ नारदजीसे कहेहुये वचनको हृदयमें गिनती हुई सावित्री को यह स्मरण हुआ कि चौथे दिन मरनाहै यह विचारकर सावित्रीजी ॥ ५१ ॥ त्रिरात्रव्रत को उद्देशकर दिनरात घरमें स्थितरहीं तदनन्तर त्रिरात्रव्रत को व्यतीत कर नहाकर व देवताओं को भलीभांति तृप्तकर ॥ ५२ ॥ सुन्दर हास्यवाली सावित्रीजीने सासु व श्वशुरके चरणोंको प्रणामकिया इसके बाद सत्यवान् फरसाको लेकर वनको चले ॥ ५३ ॥ और सावित्री भी जातेहुये पतिकेपीछे चलीं तदनन्तर फल,फूल, समिधा व कुशोंको

ह्यांरजनीमुखे ॥ ५० ॥ गणयन्त्याश्चसावित्र्या नारदोक्तवचोहृदि ॥ चतुर्थेहनिमर्तव्यमितिसञ्चिन्त्यभामिनी ॥ ५१ ॥ व्रतंत्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रंस्थितालये ॥ ततस्त्रिरात्रंनिर्वर्त्य स्नात्वासन्तर्प्यदेवताः ॥ ५२ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववन्देचारुहासिनी ॥ अथप्रतस्थेपरशुं गृहीत्वासत्यवान्वनम् ॥ ५३ ॥ सावित्र्यपिचभर्त्तारं गच्छन्तंपृष्ठतोन्वगात् ॥ ततोगृहीत्वातरसा फलपुष्पसमित्कुशान् ॥५४ ॥ काष्ठानिशुष्कान्यादाय काष्ठभारमकल्पयत् ॥ ५५ ॥ अथवाहयतःकाष्ठं जाताशिरसिवेदना ॥ काष्ठभारंक्षणात्त्यक्त्वा वटशाखावलम्बितः ॥५६ ॥ सावित्रींप्राहशिरसो वेदनामांप्रबाधते ॥ तवोत्सङ्गेक्षणंतावत् स्वप्तुमिच्छामिसुन्दरि ॥ ५७ ॥ विश्रमत्वंमहाबाहो सावित्रीप्राहदुःखिता ॥ पश्चादपिगमिष्यामि आश्रमंश्रमनाशनम् ॥ ५८ ॥ यावदुत्सङ्गकेकृत्वा शिरस्सुष्वापभूतले ॥ तावद्ददर्शसावित्री पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥ ५९ ॥ किरीटिनंपीतवस्त्रं साक्षात्सूर्यमिवोदितम् ॥ तमुवाचाथसावित्री प्रणम्यमधुराक्षरम् ॥ ६० ॥

शीघ्रतासे लेकर ॥ ५४ ॥ और सूखे काठोंको लेकर सत्यवान् ने लकड़ीका बोझबनाया ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर काष्ठको लिये जातेहुये सत्यवान् के मस्तकमें पीड़ा उत्पन्न हुई और क्षणभरमें लकड़ीके बोझको छोड़कर सत्यवान् बरगदकी शाखाके सहारे होगये ॥ ५६ ॥ व सावित्रीजीसे बोले कि मुझको मस्तककी पीड़ा दुःख देती है इसलिये हे सुन्दरि ! तबतक क्षणभर तुम्हारी गोदमें सोना चाहताहूं ॥ ५७ ॥ दुःखित होतीहुई सावित्रीजी बोलीं कि हे महाबाहो ! आप विश्राम कीजिये पश्चात् श्रमको नाशनेवाले आश्रमको चलूंगी ॥ ५८ ॥ जबतक शिरको गोदीमें करके सत्यवान् पृथ्वीमें सोरहे तबतक किरीट व पीले वसनको धारे साक्षात् उदयहुये सूर्य-

मारायणकी नाईं कृष्णपिंगल पुरुषको सावित्रीजी ने देखा इसके अनन्तर सावित्रीने उसको प्रणाम कर मीठे अक्षरों से कहा ॥ ५९ । ६० ॥ कि तुम कौन देवता या दैत्यहो जोकि मुझको धर्षण करने के लिये आये हो भक्तिके कारण मुझको कोई अपने धर्मसे अलग करने के लिये ॥ ६१ ॥ व हे पुरुषोत्तम ! जलतीहुई अग्नि की ज्वालाके समान स्पर्श करने के लिये समर्थ नहीं है ॥ ६२ ॥ यमराज बोले कि हे पतिव्रते ! सब लोकोंका भयंकर मैं दण्डदायक यमराजहूं तुम्हारे समीप क्षीण आयुवाला यह तुम्हारा पति ॥ ६३ ॥ यमदूतों से लेजाने के समर्थ नहीं है इसकारण मैं आपही आया ऐसा कहने पर सत्यवान् के शरीरसे फसरी से संयुत ॥ ६४ ॥

कस्त्वन्देवोथवादैत्यो योमान्धर्षितुमागतः ॥ नचाहंकेनचिद्भक्त्या स्वधर्मादवरोपितुम् ॥ ६१ ॥ स्प्रष्टुंवापुरुषश्रेष्ठ प्रदीप्ताग्निशिखामिव ॥ ६२ ॥ यमउवाच ॥ यमस्संयमिकश्चास्मि सर्वलोकभयङ्करः ॥ क्षीणायुरेवतेभर्त्ता सान्निध्ये तेपतिव्रते ॥ ६३ ॥ नशक्यःकिङ्करैर्नेतुमतोहंस्वयमागतः ॥ एवमुक्तेसत्यवतः शरीरात्पाशसंयुतम् ॥ ६४ ॥ अङ्गुष्ठमात्रंपुरुषं निष्क्रान्तश्चददर्शसा॥अथप्रयातुमारेभे पन्थानंपितृस्वामिनः ॥६५॥ सावित्र्यपिवरारोहा पृष्ठतोनुजगामह ॥ पतिव्रतत्वाच्चाश्रान्तां तामुवाचयमस्तदा ॥ ६६ ॥ निवर्तगच्छसावित्रि सुदूरंत्वमिहागता ॥ ६७ ॥ एषमार्गोविशालाक्षि नकेनाप्यनुगम्यते ॥ ६८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ नश्रमोनचमेग्लानिः कदाचिदपिजायते ॥ भर्त्तारमेकमुत्सृज्य स्त्रीणांनान्यस्समाश्रयः ॥ ६९ ॥ एवमन्यैस्सुमधुरैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ॥ तुतोषसूर्यतनयः सावित्रींचेदमब्रवीत् ॥ ७० ॥ तुष्टोस्मितवभद्रन्ते वरंवरयतामिति ॥ साथवव्रेवरञ्चान्यद् विनयावनतात्मना ॥ ७१ ॥ चक्षुःप्राप्तिस्तथाराज्यं श्वशुरस्य

निकलेहुये अँगूठेभर पुरुषको उन सावित्रीजीने देखा इसके उपरान्त उसने पितरोंके स्वामी यमराजके मार्ग में चलने का प्रारंभ किया ॥ ६५ ॥ और उत्तम कटिवाली सावित्री भी पीछेसे चलीं तब पतिव्रत होनेसे न थकीहुई उस सावित्रीसे यमराज बोले ॥ ६६ ॥ कि हे सावित्रि ! लौटिये व जाइये तुम यहां बहुत दूरआईहो ॥६७ ॥ हे विशालाक्षि ! इस मार्गमें कोई भी नहीं चलताहै ॥ ६८ ॥ सावित्री बोलीं कि मेरे कभी श्रम व ग्लानि नहीं होतीहै एक पतिको छोड़कर स्त्रियोंको अन्य अवलंब नहीं होताहै ॥ ६९ ॥ इसप्रकार धर्मार्थ सहित अन्य मीठे वचनोंसे सूर्यनारायणके पुत्र यमराज प्रसन्नहुये और सावित्रीजीसे यह बोले ॥ ७० ॥ कि तुम्हारा कल्याण होवै मैं

तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं वरदानको मांगिये इसके अनन्तर विनय से नम्र आत्माकरके उस सावित्रीने पांच वरदानोंको मांगा ॥ ७१ ॥ कि महात्मा श्वशुरको नेत्र मिलैं व राज्य मिलै और पतिके जीवन व शाश्वती धर्मवृद्धिको मांगा ॥ ७२ ॥ और कहा कि पुत्ररहित मेरे पिताको विशेषकर पुत्रकी प्राप्तिहोवै धर्मराजने वरदान देकर तद-नन्तर उसको पठाया ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर पतिको पाकर प्रसन्नमनवाली सावित्रीजी आकुलता रहितहोकर पतिसमेत अपने आश्रम (स्थानको) चलीगई ॥ ७४ ॥ जेठकी पौर्णमासी में उसने इस व्रतको कियाहै मैंने इस राजाके सब माहात्म्यको कहा ॥ ७५ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे देव ! वह कैसा व्रत है कि जिसको सावित्री

महात्मनः ॥ जीवितञ्चतथाभर्तु धर्मवृद्धिञ्चशाश्वतीम् ॥ ७२ ॥ पितुर्ममसुतप्राप्तिरपुत्रस्यविशेषतः ॥ धर्मराजोवर न्दत्त्वा प्रेषयामासतान्ततः ॥ ७३ ॥ अथभर्त्तारमासाद्य सावित्रीहृष्टमानसा ॥ जगामस्वाश्रमपदं सहभर्त्रानिराकुला ॥ ७४ ॥ ज्येष्ठस्यपूर्णिमायान्तु तयाचीर्णंव्रतंत्विदम् ॥ माहात्म्यमस्यनृपतेः कथितंसकलम्मया ॥ ७५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कीदृशंतद्व्रतन्देव सावित्र्याचरितञ्चयत् ॥ तस्मिंस्तुज्येष्ठमासेतु विधानंतस्यकीदृशम् ॥ ७६ ॥ कादेवताव्रतेतस्मि न् केमन्त्राःकिंफलंविभो ॥ सविस्तरन्त्वन्देवेश ब्रूहिधर्मंसनातनम् ॥ ७७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ श्रूयतान्देविदेवेशि सावि त्रीव्रतमादरात् ॥ कथयामियथाचीर्णं तयासत्यामहेश्वरि ॥ ७८ ॥ त्रयोदश्यान्तुज्येष्ठस्य दन्तधावनपूर्वकम् ॥ त्रि रात्रंनियमंकुर्यादुपवासस्यभामिनि ॥ ७९ ॥ अशक्तातुत्रयोदश्यां नक्तंकुर्याज्जितेन्द्रिया ॥ अयाचितंचतुर्दश्या मुपवासेनपूर्णिमा ॥ ८० ॥ नित्यंस्नात्वातडागेवा महानद्यांचनिर्झरे ॥ पाण्डुकूपेतुसुश्रोणि सर्वस्नानफलंलभेत् ॥ ८१ ॥

जीने कियाहै और उस जेठ महीने में उसकी कैसी विधि है ॥ ७६ ॥ हे विभो ! उस व्रतमें कौन देवता और कौन मन्त्र व कौन फलहै हे देवेश ! तुम विस्तारसमेत सनातनधर्मको कहो ॥ ७७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि, देवि ! सावित्री व्रतको आदरसे सुनिये हे महेश्वरि ! जिसप्रकार उन पतिव्रता सावित्री ने व्रत कियाहै उसको मैं कहताहूं ॥ ७८ ॥ कि हे भामिनि ! जेठकी तेरसि में दन्तधावनपूर्वक त्रिरात्र उपासका नियमकरै ॥ ७९ ॥ और असमर्थ स्त्री जितेन्द्रिय होकर तेरसि व्रत में नक्तव्रत करै और चौदसि तिथि मे अयाचित व्रत करै व पूर्णिमाको उपासकरै ॥ ८० ॥ हे सुश्रोणि ! नित्य तडाग या महानदी व झरना में नहाकर और पांडु-

कूपमें नहाकर स्त्री सब स्नानोंके फलको प्राप्त होती है ॥ ८१ ॥ पौर्णमासी तिथिमें सरसों, मिट्टी व जल से विशेषकर स्नानकरै हे महेश्वरि, महादेवि ! बालूको पात्रमें लेकर ॥ ८२ ॥ अथवा यव, धान और तिलादिक धान्यको लेकर तदनन्तर दो वस्त्रों से लपेटहुये बासे के पात्रमें ॥ ८३ ॥ सब अंगों से शोभित सुवर्ण, चांदी व मिट्टी की भी सावित्री की मूर्तिको अपनी शक्तिके अनुसार बनाकर ॥ ८४ ॥ ब्रह्मा से संयुत सावित्रीको दो लाल वसन देवै इसप्रकार ब्रह्मा समेत सावित्री को शक्तिके अनुसार पूजन करै ॥ ८५ ॥ चन्दन व सुगन्धित फूल, धूप, दीप, नैवेद्य और परवर या लटजीराके फूलोंसे तथा कूष्माण्ड व ककरीके फलोंसे पूजै ॥ ८६ ॥ और खजूर

विशेषात्पूर्णमास्यान्तु स्नानंसर्षपमृज्जलैः ॥ गृहीत्वाबालुकांपात्रे महादेविमहेश्वरि ॥ ८२ ॥ अथवाधान्यमादाय यवशालितिलादिकम् ॥ ततोवंशमयेपात्रे वस्त्रयुग्मेनवेष्टिते ॥ ८३ ॥ सावित्रीप्रतिमांकृत्वा सर्वावयवशोभिताम् ॥ सौवर्णींराजतींवापि स्वशक्त्यामृन्मयीमपि ॥ ८४ ॥ रक्तवस्त्रयुगंदद्यात्सावित्रींब्रह्मणान्विताम् ॥ सावित्रींब्रह्मणासार्द्धंमेवंशक्त्याप्रपूजयेत ॥ ८५ ॥ गन्धैस्सुगन्धपुष्पैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः ॥ तथाकोशातकैःपुष्पैः कूष्माण्डैःकर्कटीफलैः॥ ८६ ॥ नालिकेरैस्सखर्जूरैः कपित्थैर्दाडिमैश्शुभैः ॥ जम्बूजम्बीरनारङ्गैः कङ्कोलैःपनसैस्तथा ॥ ८७ ॥ जीरकैश्चैवखण्डैश्च गुडेनलवणेनच ॥ चिर्भटैस्सप्तधान्यैश्च वंशपात्रप्रकल्पितैः ॥ ८८ ॥ रञ्जयेत्कण्ठसूत्रञ्च शुभैःकुङ्कुमकेशरैः ॥ अवतारंकरोत्येवं सावित्रीब्रह्मणःप्रिया ॥ ८९ ॥ तामर्चयेत्तुमन्त्रेण सावित्रींब्रह्मणासमम् ॥ इतरेषांपुराणानां मन्त्रोत्रसमुदाहृतः ॥ ९० ॥ ओङ्कारपूर्वकादेवी वीणापुस्तकधारिणी ॥ देव्यम्बिकेनमस्तेस्तु अवैधव्यंप्रयच्छमे ॥ ९१ ॥ एवंसम्पू

समेत नारियल, कैथा व उत्तम अनारोंसे पूजै और फरेंद, जँभीरी निम्बू, नारंगी कंकोल याने शीतलचीनी व कटहरों से पूजै ॥ ८७ ॥ और जीरक, खांड़, गुड़ व लोन और बासके पात्रमें धरेहुये चिर्भट व सप्तधान्यों से पूजै ॥ ८८ ॥ और उत्तम कुंकुम व केशरसे कण्ठसूत्रको रंगै इसप्रकार ब्रह्माकी प्यारी सावित्रीजी अवतार करती हैं ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा समेत उन सावित्रीजी को मन्त्रसे पूजै यहां अन्य पुराणों में कहाहुआ मन्त्र कहागया है ॥ ९० ॥ कि हे अम्बिके, देवि ! वीणा व पुस्तक को धारणकरने-

वाली ॐकारपूर्वक तुम देवीहो तुम्हारे लिये नमस्कार है मुझको अवैधव्य दीजिये ॥ ९१ ॥ इसप्रकार विधिपूर्वक भलीभांति पूजकर वहां स्त्री पुरुषोंके गणों समेत गाने बजाने के शब्दसे जागरण करै ॥ ९२ ॥ और वहां नाचते व हँसतेहुये शास्त्रकी कथाओं से रात्रिको बितावै और द्विजोत्तमों से सावित्री की कथाको बंचावै ॥ ९३ ॥ जबतक प्रातःकाल होवै तबतक गीतों के भाव व रसोंसमेत रात्रि व्यतीतकरै इसप्रकार ब्रह्माके साथ सावित्रीजी का व्याहकर ॥ ९४ ॥ सात स्त्री पुरुषोंको सपेद वस्त्रों को पहनाकर सब सामग्री समेत गृहदान देनाचाहिये ॥ ९५ ॥ इसके अनन्तर सावित्रीकल्पके जाननेवाले व सावित्रीकी कथाको बांचनेवाले वेदज्ञ ब्राह्मणके लिये

ज्यविधिवज्जागरंतत्रकारयेत् ॥ गीतवादित्रशब्देन नरनारीकदम्बकैः ॥ ९२ ॥ नृत्यन्हसन्नयेद्रात्रिं तत्रशास्त्रक थानकैः ॥ सावित्र्याख्यानकेनापि वाचयीतद्विजोत्तमैः ॥ ९३ ॥ यावत्प्रभातसमयो गीतभावरसैस्सह ॥ विवाहमेवंकृत्वातु सावित्र्याब्रह्मणासह ॥ ९४ ॥ परिधाप्यसितैर्वस्त्रैर्दम्पतीनान्तुसप्तकम् ॥ गृहदानन्तुदातव्यं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ९५ ॥ ब्राह्मणेवेदविदुषे सावित्रींविनिवेदयेत् ॥ अथसावित्रिकल्पज्ञे सावित्र्याख्यानवाचके ॥ ९६ ॥ दैवज्ञेकृच्छ्रवृत्तिस्थे दरिद्रेचाग्निहोत्रिणे ॥ एवंदत्त्वाविधानेन तस्यांरात्रौनिमन्त्रयेत् ॥ ९७ ॥ पौर्णमास्यांवटाधस्था दम्पतीनाञ्चतुर्दश ॥ ततःप्रभातसमये उषःकालेह्युपस्थिते ॥ ९८ ॥ भक्ष्यभोज्यादिकंसर्वं सावित्रीस्थलमानयेत् ॥ पाकंकृत्वा तुशुचिना रत्नांकृत्वाप्रयत्नतः ॥ ९९ ॥ ब्राह्मणान्गृहिणीयुक्तांस्ततआह्वानयेत्सुधीः ॥ सावित्र्याःपुरतोदेवि दम्पत्योर्भोजनंददेत् ॥ १०० ॥ तेनाहंभोजितस्तत्र भवामीहनसंशयः ॥ द्वितीयंभोजयेद्यस्तु भोजितस्तेनकेशवः ॥ १ ॥ लक्ष्म्या

सावित्रीजीको निवेदन करै ॥ ९६ ॥ व कृच्छ्रजीविका में स्थित विद्वान् तथा निर्धन अग्निहोत्री ब्राह्मणके निमित्त सावित्रीको देवै इसप्रकार विधिसे देकर उस रातमें निमन्त्रणकरै ॥ ९७ ॥ पौर्णमासी तिथिमें बरगदके नीचे बैठीहुई स्त्री चौदह स्त्री पुरुषोंको निमन्त्रणकरै तदनन्तर प्रातःकाल प्रभात समय प्राप्तहोने पर ॥ ९८ ॥ भक्ष्यभोज्यादिक को सावित्री के स्थलमें लावै और पवित्रतासे रसोई बनाकर बड़ेयत्नसे रत्नाकर ॥ ९९ ॥ तदनन्तर विद्वान् स्त्रियोंसमेत ब्राह्मणोंको बुलावै व हे देवि ! सावित्रीजीके आगे जो स्त्री पुरुषोंको भोजन देताहै ॥ १०० ॥ वहांपर उससे मैं निस्सन्देह भोजित होताहूं और जो दूसरे ब्राह्मणको भोजन कराताहै उसने विष्णुजी

को भोजन कराया ॥ १ ॥ और लक्ष्मीके सहायक श्रीविष्णुजी उसको वरदानों को देते हैं और तीसरा ब्राह्मण भोजन करानेपर सावित्री समेत ब्रह्माजी भोजित होते हैं ॥ २ ॥ वहां एक एक ब्राह्मणको भोजन कराना करोड़ ब्राह्मणों के भोजन के समान कहागया है अठारह प्रकार से भक्ष्यभोज्यों करके उत्तम भोजनको ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! जो वहां सावित्री स्थलके समीपदेताहै उसके वंशमें बन्ध्या व दुर्भगा कभी नहीं होतीहै ॥ ४ ॥ और वह कन्या और माता नहीं होतीहै कि जो पतिको प्यारी न होवै और स्त्रियोंके आठ दोष कभी नहीं होतेहैं ॥ ५ ॥ इसलिये हे देवि ! सावित्रीजी के आगे सदैव कडुवे व तैलसे रहित भोजनको बड़े यत्नसे देना चाहिये ॥ ६ ॥

स्सहायोवरदो वरांस्तस्यप्रयच्छति ॥ सावित्र्यासहितोब्रह्मा तृतीयेभोजितेभवेत् ॥ २ ॥ एकैकंभोजनंतत्र कोटिभोजसमंस्मृतम् ॥ अष्टादशप्रकारेण भक्ष्यभोज्यैस्सुभोजनम् ॥ ३ ॥ दद्यात्तत्रमहादेवि सावित्रीस्थलसन्निधौ ॥ नस्यात्तस्यकुलेबन्ध्या नकदाचिच्चदुर्भगा ॥ ४ ॥ नकन्याजननीचापि भर्त्तुर्यानैववल्लभा ॥ अष्टौदोषास्तुनारीणां नभवन्ति कदाचन ॥ ५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सावित्र्याग्रेचभोजनम् ॥ दातव्यंसर्वदादेवि कटुतैलविवर्ज्जितम् ॥ ६ ॥ नचाम्लं नचवैक्षारं स्त्रीणांभोज्यंकदाचन ॥ पञ्चप्रकारंमधुरं हृद्यंसर्वंसुसंस्कृतम् ॥ ७ ॥ घृतपूर्णाःपूपकाश्च बहुक्षीरसमन्विताः ॥ चतुर्थश्चैवसंयावो गुडाज्याभ्यांसमन्वितः ॥ ८ ॥ पूपकास्तादृशाःकार्या द्वितीयाशोकवर्त्तिका ॥ आह्लादकारिणी पुंसां स्त्रीणांचातीववल्लभा ॥ ९ ॥ धनधान्यजनोपेता नरनारीसमाकुला ॥ पूर्यतेचकुलंतस्याः सदावैनात्रसंशयः ॥ १० ॥ नज्वरोनचसन्तापो दुःखंनचवियोगता ॥ अशोकवर्त्तिदानेन कुलानामेकविंशतिः ॥ ११ ॥ बन्धुभि

और कभी स्त्रियोंको खट्टा व क्षार भोजन न देना चाहिये बरन पांचप्रकारका मधुर और मनोहर व सब भलीभांति बनायाहुआ भोजन देना चाहिये ॥ ७ ॥ घीसे पूरित और बहुत दूधसे संयुत पुवा देना चाहिये और गुड़ व घीसे संयुत चौथा संयाव (गुझिया) देना चाहिये ॥ ८ ॥ वैसे पुवोंको बनवाना चाहिये और दूसरी अशोकवर्तिका बनवाना चाहिये जोकि पुरुषों को आनन्दकारिणी व स्त्रियोंको बहुतही प्यारी होती है ॥ ९ ॥ जो स्त्री ऐसा करती है वह धन, धान्य व मनुष्यों से पूर्ण व स्त्री पुरुषों से संयुत होती है और उसका वंश सदैव पूर्ण रहता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और अशोकवर्त्तिकाके दानसे इक्कीस कुलतक न ज्वर होता है न

सन्ताप होताहै और न दुःख होताहै न वियोग होताहै ॥ ११ ॥ जो स्त्री पुवोंको देतीहै उसका वंश भाई,पुत्र व अमित दास,दासियोंसे पूर्ण होताहै ॥ १२ ॥ इसप्रकार बहुत समयतक पुत्र, पशु व बन्धुवों समेत रहती है और उसके वंशमें कभी वैधव्यता नहीं होती है ॥ १३ ॥ व मोदकोंके देने से सब वंश प्रसन्न रहता है व सब सिद्धियों से पूर्ण होताहै ऐसा ब्रह्माजी ने कहाहै ॥ १४ ॥ व हे देवि ! यह भोजन गौरीकन्याओंको उत्तम है हे देवि ! संयाव (गुझिया) के भोजनसे स्त्री प्रत्येक जन्म में सुभगा, पुत्रवती, पतिव्रता और धन व ऋद्धियोंसे संयुत होतीहै और सरसजल से खांड़ से बनाया हुआ उत्तम ॥ १५ । १६ ॥ पीने के योग्य पदार्थ सुभगा

श्वसुतैश्चैव दासीदासैरनन्तकैः ॥ पूरितश्च कुलंतस्याः पूपकान्याप्रयच्छति ॥ १२ ॥ एवन्तुसुचिरंकालं सपुत्रपशुबान्धवैः ॥ नवैधव्यंभवेत्तस्याः कदाचिदपिसन्ततौ ॥ १३ ॥ मोदतेचकुलंसर्वं सर्वसिद्धिप्रपूरितम् ॥ मोदकानांप्रदानेन एवमाहपितामहः ॥ १४ ॥ एतच्चगौरिकाणांतु भोजनंदेविशिष्यते ॥ सुभगापुत्रिणीसाध्वी धनऋद्धिसमन्विता ॥ १५ ॥ संयावभोजनाद्देवि भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ सरसेनतुतोयेन कृतंखण्डेनवैशुभम् ॥ १६ ॥ सुवासिनीनांपेयंवै दातव्यंच द्विजन्मनाम् ॥ इतरैरितराण्येव वर्णयोग्यानियानिच ॥ १७ ॥ सुस्निग्धानिचपानानि तासुयोग्यानिदापयेत् ॥ प्रतिपूज्य विधानेन वस्त्रदानैस्सकञ्चुकैः ॥ १८ ॥ कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्गाः स्रग्दामाभिरलंकृताः ॥ गन्धधूपैःकृतानन्दा नालिकेरान्प्रदापयेत् ॥ १९ ॥ अक्षिणीचाञ्जनंकृत्वा सिन्दूरंचैवमस्तके ॥ पूगीफलानिदेयानि वासितानिमृदूनिच ॥ २० ॥ हस्ते दत्त्वासुपात्राणि प्रणिपत्यविसर्जयेत् ॥ स्वयन्तुभोजयेत्पश्चाद्बन्धुभिर्बालकैस्सह ॥ २१ ॥ अथवानैवसम्पद्येत्तीर्थेचे

स्त्रियों व ब्राह्मणों को देनाचाहिये और अन्य वस्तुवों से वर्णके योग्य जो अन्य ॥ १७ ॥ सुस्निग्ध (सरस) पान हैं उन योग्य पीनेके पदार्थोंको स्त्रियोंको देनाचाहिये और विधिसे कंचुकी (चोली) समेत वसन के दानों से पूजकर ॥ १८ ॥ और कुंकुमसे लिप्त चन्दनवाली तथा मालाओं से भूषित व चन्दन, धूप से कियेहुये आनन्दवाली स्त्रियोंको नारियल देवै ॥ १९ ॥ व आखोंको आँजकर मस्तकमें सिन्दूर देकर वासित व कोमल सुपारियोंको देना चाहिये ॥ २० ॥ और हाथ में उत्तम पात्रों को देकर प्रणामकर बिदाकरै पश्चात् बन्धुवों व बालकों समेत आप भोजनकरै ॥ २१ ॥ अथवा तीर्थमें भोजन न सिद्ध होवै तो घरको जाकर देनाचाहिये कि जिसप्र-

कार देवी सावित्रीजी प्रसन्नहोवैं ॥ २२ ॥ इसीप्रकार अपने घरमें आकर पिंडदानपूर्वक विधिसे पितरोंका श्राद्धकरै ॥ २३ ॥ उसके पितर प्रसन्न होते हैं यह ब्रह्माने कहा है हे शुभे ! अपने घरमें भोजन देतेहुये पुरुषको तीर्थसे आठगुना पुण्य होताहै ॥ २४ ॥ और ब्राह्मणोंसे दियेहुये श्राद्धको नीच न देखैं क्योंकि एकान्त तथा गुप्तघरमें पितरों का श्राद्ध कियाजाता है ॥ २५ ॥ और नीचों से देखाहुआ वह श्राद्ध नष्ट होजाता है व पितरोंके समीप नहीं प्राप्तहोता हैं इसलिये सब यत्नसे गुप्त श्राद्ध करै ॥ २६ ॥ क्योंकि उसको आपही ब्रह्मा ने पितरोंकी तृप्तिदायक कहा है और जो गौरीभोजनादिक है वह भद्रा के संगम में कहागया है ॥ २७ ॥ हे देवि ! पश्चिमदिशा

वतुभोजनम् ॥ गृहेगत्वाप्रदातव्यं तुष्टादेवीयथाभवेत् ॥ २२ ॥ एवमेवपितॄणाञ्च आगत्यस्वेचमन्दिरे ॥ पिण्डप्रदानपूर्वंतु श्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ २३ ॥ पितरस्तस्यतुष्टाःस्युर्भवन्तिब्रह्मणोदितम् ॥ तीर्थादष्टगुणंपुण्यं स्वगृहेददतश्शुभे ॥ २४ ॥ नैवपश्यन्तिवैनीचाः श्राद्धंदत्तंद्विजातिभिः ॥ एकान्तेतुगृहेगुप्ते पितॄणांश्राद्धमिष्यते ॥ २५ ॥ नीचैर्दृष्टंहतन्तत्तु पितॄणांनोपतिष्ठति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंगुप्तञ्चकारयेत् ॥ २६ ॥ पितॄणांतृप्तिदंप्रोक्तं स्वयमेवस्वयंभुवा ॥ गौरीभोजादिकंयत्तु भद्रायास्सङ्गमेस्मृतम् ॥ २७ ॥ पश्चिमाशांसमासाद्य सङ्गमस्समुदाहृतः ॥ यत्पुण्यंलभतेदेवि पूर्वपश्चिमसङ्गमे ॥ २८ ॥ गङ्गासागरयोस्तत्र तद्भद्रासङ्गमेलभेत् ॥ १२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसावित्रीश्वरमाहात्म्यन्नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ भगवन्देवदेवेश संसारार्णवतारक ॥ पृच्छामित्वामहंभक्त्या किञ्चित्कौतूहलात्पुनः ॥ १ ॥ यत्त्वयाक

को प्राप्तहोकर संगम कहागया है जो पुण्य गंगा व समुद्रके पूर्व व पश्चिमके संगम में मिलताहै उसको मनुष्य वहां भद्राके संगममें प्राप्तहोताहै ॥ २८ । १२९ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसावित्रीश्वरमाहात्म्यंनामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ ॥

दो० । यथा अमित परभावयुत तलस्वामि माहात्म्य । इकसौ बासठि में सोई कह्यो चरित याथात्म्य ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे संसाररूपीसमुद्र के उतारने-

वाले, देवदेवेश, भगवन् ! मैं कौतुकके कारण फिर तुमसे भक्तिसे कुछ पूछती हूं ॥ १ ॥ हे देव! जो तुमने तलस्वामी के माहात्म्यको कहा हे देव ! उसमें क्याकारण है कि जिससे तल मारागया ॥ २ ॥ यह तल कौन कहागया है और किसप्रभाव व किस पराक्रमवाला वह किस स्थानसे पैदाहुआ और किमभांति उत्पन्न हुआ इस को मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं पापनाशक चरित्रको कहताहूं जो किसी से नहीं कहागया है उसको संपूर्णतासे मैं तुमसे कहता हूं ॥ ४ ॥ कि जिस तलकी उत्पत्तिके कारणको देवता भी नहीं जानते हैं हे देवि ! पहले सतयुगमें गोविन्द ऐसा नाम कहागयाहै ॥ ५ ॥ और त्रेतामें वामनस्वामी

थितन्देव तलस्वामिमहोदयम् ॥ किंतत्रकारणन्देव तलोयेननिपातितः ॥ २ ॥ कोसौतलस्समाख्यातः किंवीर्यःकिं पराक्रमः ॥ कस्मात्स्थानात्समुत्पन्नः कथंजातश्चमेवद ॥ ३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि रहस्यंपापनाशन म् ॥ यन्नकस्यचिदाख्यातं तत्तेवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ४ ॥ यद्देवापिनजानन्ति तलस्योत्पत्तिकारणम् ॥ पूर्वंकृतयुगेदेवि गोविन्देतिप्रकीर्त्तितम् ॥ ५ ॥ त्रेतायांवामनस्वामी स्तुतिस्वामीतृतीयके ॥ कलौयुगेमहादेवि तलस्वामीप्रकीर्तितः॥ ६ ॥ तथातप्तोदकस्वामी तस्यनामान्तरंप्रिये ॥ अधुनासम्प्रवक्ष्यामि तलोत्पत्तिंतवप्रिये ॥ ७ ॥ आसीन्महेन्द्रनामा च दानवोरौद्ररूपधृक् ॥ कोटिवर्षाणितेनैव तपस्तप्तंसुरप्रिये ॥ ८ ॥ सतपोबलमाविष्टो जिग्येदेवान्सवासवान् ॥ जि त्वादेवांस्ततस्सर्वांस्ततःकालेसमागतः ॥ ९ ॥ युद्धंचप्रार्थयामास मयासार्द्धंसुभीषणम् ॥ ततोभवन्महायुद्धं ब्रह्माण्ड क्षयकारकम् ॥ १० ॥ ततःकोपान्महायुद्धे ममदेहाद्वरानने ॥ ज्वालातत्रसमुत्पन्ना तन्मध्येसतलोभवत् ॥ ११ ॥ तेनदृ

व तीसरे द्वापरयुग में स्तुतिस्वामी कहागया है व हे महादेवि ! कलियुगमें तलस्वामी कहेगये हैं ॥ ६ ॥ वैसेही हे प्रिये ! उनका तप्तोदकस्वामी दूसरा नाम है हे प्रिये ! इस समय मैं तुमसे तलकी उत्पत्तिको कहताहूं ॥ ७ ॥ हे सुरप्रिये ! भयंकररूपको धारनेवाला महेन्द्र नामक दानव हुआ है उसने करोड वर्षों तक तप किया है ॥ ८ ॥ और तपस्याके बल में प्राप्त उसने इन्द्र समेत देवताओं को जीतलिया तदनन्तर सब देवताओंको जीतकर उसके उपरान्त वह समय में प्राप्तहुआ ॥ ९ ॥ और मेरे साथ उसने भयंकर युद्धको मांगा तदनन्तर ब्रह्माण्ड को क्षय करनेवाला बड़ाभारी युद्धहुआ ॥ १० ॥ तदनन्तर हे वरानने ! महायुद्ध में क्रोधके कारण मेरे

शरीर से वहां ज्वाला पैदाहुई उसीके बीचमें वह तल हुआ ॥ ११ ॥ उसने पर्वत की कन्दरा में आश्रमवाले इस गर्जतेहुये इन्द्रको देखा व कहा कि हे मूढ़ ! क्यों गरजता है मेरे साथ युद्ध कीजिये ॥ १२ ॥ ऐसा कहने पर हे देवेशि ! वहां युद्धवर्त्तमान हुआ तदनन्तर उस समय तल व इन्द्रका युद्ध वर्तमान होने पर ॥ १३ ॥ शिवजी के पराक्रमसे संयुत उदारकर्मवाले बलवान् तलने मल्लयुद्ध (कुश्ती) से इन्द्रको गिरा दिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर उन इन्द्रको गिरेहुये जानकर वह तल विस्मयको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उससमय प्राणोंसे विहीन इन्द्रको जानकर उसने प्रसन्नतासे नृत्यकिया ॥ १५ ॥ हे वरारोहे ! उसके नाचनेपर उसके बलसे व

ष्टोमहेन्द्रोसौ गर्जद्गिरिगुहाश्रमः ॥ कथंगर्जसिरेमूढ कुरुयुद्धंमयासह ॥ १२ ॥ इत्युक्तेतनदेवेशि तत्रयुद्धंप्रवर्त्तत ॥ ततःप्रवर्त्तितेयुद्धे तलमाहेन्द्रयोस्तदा ॥ १३ ॥ रुद्रवीर्ययुतेनैव तलेनोदारकर्मणा ॥ मल्लयुद्धेनबलिना महेन्द्रोविनिपातितः ॥ १४ ॥ ततस्तंपतितन्दृष्ट्वा विस्मयंसतलोगतः ॥ गतप्राणंतदाज्ञात्वा हर्षनृत्यमथाकरोत ॥ १५ ॥ तस्मिन्संनृत्यमानेतु सर्वंस्थावरजङ्गमम् ॥ चकम्पेतुवरारोहे प्रभावात्तस्यवीर्यतः ॥ १६ ॥ ततोभारभराक्रान्ता पृथिवीचापिपीडिता ॥ अतीवभयसन्त्रस्ता सदेवासुरमानुषा ॥ १७ ॥ क्षुभितागिरयस्सर्वे विद्रुतोलवणार्णवः ॥ तरवोनिधनंजग्मुर्नद्यश्चक्षुभितास्तथा ॥१८॥ गतप्रभावाःसूर्याद्याज्योतींषिनांविरेजिरे ॥ त्रैलोक्यंव्याकुलीभूतं तलनृत्यप्रभावतः ॥ १९ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे शरणंरुद्रमाययुः ॥ वृत्तंयथावत्कथितं ततोरुद्रउवाचतान् ॥ २० ॥ अवध्योमेतलोदेवाः पुत्रत्वेहि प्रतिष्ठितः ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशं प्रभासक्षेत्रवासिनम् ॥ २१ ॥ स्तुतिस्वामीतिनामानं स्तुतंदुर्वाससापुरा ॥ प्रभासाक्षेत्र

प्रभावसे सब स्थावर जंगम कांपउठा ॥ १६ ॥ तदनन्तर भारके बोझसे घिरीहुई देवता, दैत्य व मानुषों समेत पृथ्वी भी बहुतही डरसे त्रस्तहोकर पीड़ित हुई ॥ १७ ॥ और सब पहाड़ क्षोभितहुये व लवणसमुद्र क्षोभित हुआ और वृक्ष नाशको प्राप्तहुये व नदियां क्षोभितहुईं ॥ १८ ॥ और सूर्यादिक प्रभावहीन होगये व नक्षत्र नहीं शोभित हुये और तलके नृत्यके प्रभावसे त्रिलोक व्याकुल होगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर सब देवगण शिवजी की शरणमें गये और जैसा हाल था उसको कहा तदनन्तर शिवजी उनसे बोले ॥ २० ॥ कि हे देवताओ ! पुत्रता में स्थापित तल मेरे अवध्यहै ऐसा कहकर यह कहा कि प्रभासक्षेत्रके निवासी हृषीकेशके समीप जावो ॥ २१ ॥

पुरातन समय दुर्वासाजी से स्तुति कियेहुये जो स्तुतिस्वामी ऐसे नामक जहां प्रभासक्षेत्रकी सीमाके पूर्वभाग में स्थित हैं ॥ २२ ॥ हे देवताओ ! तप्तकुण्डके समीप वहां जाइये प्रतिकल्पमें उन्हीं विष्णुजी से यह दानव माराजाता है ॥ २३ ॥ उस समय ऐसा कहेहुये देवता प्रभासक्षेत्रको आये और वे वहां गये जहां कि वह तप्तोदक था ॥ २४ ॥ वहां पर श्रद्धा से संयुत देवताओं ने नारायण देवको देखकर बड़ीभक्ति से उन नारायण देवकी स्तुति किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर हे महादेवि, प्रिये ! विष्णुजीने तलको मारडाला वे सावित्री जननी कीर्तिको देनेवाली राजसी कहीगई हैं ॥ २६ ॥ अपने हितको चाहनेवाले पुरुषको सदैव यह दान देनाचाहिये

सीमायाः पूर्वभागेप्रतिष्ठितम् ॥ २२ ॥ तप्तकुण्डोदसामीप्ये तत्रगच्छतभोसुराः ॥ कल्पेकल्पेतुतेनैव वध्यतेसोहि दानवः ॥ २३ ॥ एवमुक्तास्तदादेवाः प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ तत्रतेविबुधाजग्मुर्यत्रतप्तोदकोहिसः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वानारायणन्देवं तत्रश्रद्धासमन्विताः ॥ तुष्टुवुःपरयाभक्त्या देवंनारायणंहरिम् ॥ २५ ॥ ततोविष्णुर्महादेवि तलंनिहतवान्प्रिये ॥ राजसीसासमाख्याता जननीकीर्त्तिदायिनी ॥ २६ ॥ इदंदानंसदादेयमात्मनोहितमिच्छता ॥ श्राद्धेचैव विशेषेण यदीच्छेत्सात्त्विकंफलम् ॥ २७ ॥ इदमुद्यापनन्देवि सावित्र्याश्चव्रतस्यतु ॥ सर्वपातकशुद्ध्यर्थं कार्यन्देविनरैस्सदा ॥ २८ ॥ अकामतःकामतोवा पापंनश्यतितत्क्षणात् ॥ इहलोकेचसौभाग्यं धनधान्यवरस्त्रियः ॥ २९ ॥ भवन्तिविविधास्तस्य यैर्यात्रास्तत्रसत्कृता ॥ इदंयात्राविधानंयः सावित्र्याःकुरुतेनरः ॥ ३० ॥ शृणोतिवासपापेभ्यस्सर्वैरेवप्रमुच्यते ॥ ज्येष्ठस्यपौर्णमास्यान्तु सावित्रीस्थलकंशुभे ॥ ३१ ॥ प्रदक्षिणांयःकुरुते फलदानैर्यथाविधि ॥ अ

यदि सात्त्विकफलको चाहै तो विशेषकर श्राद्ध में इसदान को देवै ॥ २७ ॥ हेदेवि ! सावित्री व्रतका यह उद्यापनहै हे देवि ! सब पातकोंकी शुद्धिके लिये मनुष्योंको सदैव यह करना चाहिये ॥ २८ ॥ जो मनुष्य कामना से या बिनकामना से इस को करता है उसका पाप उसीक्षण नाशहोजाता है और इस लोक में उसके सौभाग्य, धन और अन्न व अनेक प्रकारकी उत्तम स्त्रियांहोती हैं कि जिन्होंने वहां यात्राको भलीभांति कियाहै जो मनुष्य सावित्रीजीकी इसयात्राकी विधिको करताहै ॥ २९ । ३० ॥ अथवा जो सुनताहै वह सबही पातकों से छूटजाता है हे शुभे ! जेठ की पौर्णमासी में सावित्री स्थलकी ॥ ३१ ॥ जो विधिपूर्वक फलदानों से एकसौ आठ

प्रदक्षिणा करता है अथवा उसकी आधी या उसकी आधी प्रदक्षिणाओं को करताहै उसके सब पाप नष्टहोजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे देवि ! वहां जाकर जो मनुष्य प्रदक्षिणा करता है तो जिन मनुष्योंने ज्ञान से अगम्य स्त्री से प्रसंग किया है ॥ ३३ ॥ उन का वह पाप और अन्य पातक नाशहोजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है और सावित्री के स्थल में जाकर जो सन्ध्योपासन करते हैं ॥ ३४ ॥ और पैंतियों को हाथों में पहनकर जो पाण्डुकूपके जलसे सन्ध्योपासन करते हैं व हे भामिनि ! सोने की व मिट्टी की झारी से ॥ ३५ ॥ उस पवित्र जलको लाकर जो सन्ध्योपासन करता है हे देवि ! उसने बारह वर्षतक सन्ध्योपासन किया ॥ ३६ ॥ स्नान में अश्वमेध का

ष्टोत्तरशतेनापि तदर्द्धाश्चतदर्द्धकाः ॥ ३२ ॥ यःकरोतिनरोदेवि गत्वातत्रप्रदक्षिणाम् ॥ अगम्यागमनंयैस्तु कृतंज्ञानाच्चमानवैः ॥ ३३ ॥ अन्यानिपातकान्येव नश्यन्तेनात्रसंशयः ॥ येगत्वास्थलकेसन्ध्यां सावित्र्यास्समुपासते ॥ ३४ ॥ पवित्रीहस्तिनःकुर्युः पाण्डुकूपजलेनतु ॥ भृङ्गारकेनहैमेन मृन्मयेनाथभामिनि ॥ ३५ ॥ आनीयतज्जलंपुण्यं सन्ध्योपास्तिंकरोतियः ॥ तेनद्वादशवर्षाणि देविसन्ध्याउपासिता ॥ ३६ ॥ अश्वमेधफलंस्नाने दानेदशगुणंतथा ॥ उपवासेत्वनन्तञ्च कथायाःश्रवणेतथा ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सावित्रीमाहात्म्यन्नामद्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रस्थांभूतमातृकाम् ॥ सावित्र्यावारुणेभागे शतधन्वन्तरेस्थिताम् ॥१॥ नवकोटिगणैर्युक्तां भूतप्रेतसमाकुलाम् ॥ देव्युवाच ॥ गायन्नृत्यन्हसँल्लोके सर्वतःपरिधावति ॥ २ ॥ उन्मत्तवत्प्रलपति

फलहोता है और दानमें उससे दशगुना होताहै तथा उपवास में व कथा के सुनने में अमित फलहोता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायासावित्रीमाहात्म्यंनामद्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ ◉ ॥ ◉ ॥ ◉ ॥ ◉ ॥

दो० । अहै प्रभासक्षेत्रमें भूतमातृका देवि । एकसौ तिरसठिमें सोई चरितकह्यो सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहीं स्थित भूतमातृका के समीप जावै जो कि सावित्रीके पश्चिमभाग में सौ धनुष के अन्तरपै स्थितहैं ॥ १ ॥ और नौ करोड़ गणों से संयुक्त व भूतों तथा प्रेतों से युक्त हैं देवीजी बोलीं कि

संसार में गाते, नाचते व हँसतेहुये जो प्रेत सब कहीं दौड़ताहै ॥ २ ॥ और उन्मत्तकी नाईं बकताहै व मतवाले की नाईं पृथ्वी में गिरताहै तथा क्रोधितकी नाईं शत्रुओं के समीप दौड़ताहै और यहां मृत्युकी नाईं खींचताहै ॥ ३ ॥ और संसार में वातसे ग्रहणकियेहुये की नाईं यज्ञोंको भंग करता है और भूतकी नाईं भस्म, मूत्र, जल व कीचड़का अवगाहन करताहै ॥ ४ ॥ हे देव ! क्या यह शास्त्र में कहाहुआ मार्ग है या लौकिक मार्ग है मेरामन मोहित होता है उसको तुम यहां कहने के योग्यहो ॥ ५ ॥ प्रभासक्षेत्र के वासियों से वे किसप्रकार पूजने योग्य हैं और वहां देवी किसकारण आई हैं व किस समय आई हैं ॥ ६ ॥

क्षितौपततिमत्तवत् ॥ क्रुद्धवद्धावतिपरान् मृत्युवत्कर्षतेत्विह ॥ ३ ॥ मखभङ्गानिकुरुते लोकेवातगृहीतवत् ॥ भूतवद्भस्ममूत्राम्बुकर्दमान्यवगाहते ॥ ४ ॥ किमेषशास्त्रनिर्दिष्टो मार्गःकिमुतलौकिकः ॥ मुह्यतेमेमनोदेव तत्त्वंवक्तुमिहार्हसि ॥ ५ ॥ कथंसापुरुषैःपूज्या प्रभासक्षेत्रवासिभिः ॥ कस्मात्तत्रागतादेवी कस्मिन्कालेसमागता ॥ ६ ॥ कस्मिन्दिनेतुदेवेश तस्याःकार्योमहोत्सवः ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि यत्तेकिञ्चिन्मनोगतम् ॥ आस्तिकाःश्रद्धधानाश्च भवन्तीतिमतिर्मम ॥ ८ ॥ चाक्षुषस्यान्तरेदेवि प्राप्तेचैवकृतेप्रिये ॥ दक्षापमानात्त्वंजाता तदापर्वतपुत्रिका ॥ ९ ॥ द्वापरेतुद्वितीयेवै दत्तात्वंपर्वतेनवै ॥ विवाहेतवसंजाते सर्वदेवमनोहरे ॥ १० ॥ क्रीडन्नहंमुदायुक्तो दिव्यक्रीडनकैस्त्वया ॥ पीनोन्नतनितम्बान्त्वां भ्राजमानकुचद्वयाम् ॥ ११ ॥ सिताण्डवदनांहृष्टां दृष्ट्वाहन्त्वांमहाप्रभाम् ॥ दग्ध

व हे देवेश ! किस दिन उसका महोत्सव करना चाहिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! जो कुछ तुम्हारे मनमें प्राप्तहै उसको मैं कहताहूं सुनिये कि जिनके सुनने से पुरुष आस्तिक व श्रद्धावान् होते हैं यह मेरी बुद्धि है ॥ ८ ॥ हे प्रिये, देवि ! चाक्षुष मन्वन्तर में सतयुग प्राप्तहोनेपर उस समय दक्ष के अपमान से तुम पर्वत की कन्या पार्वती उत्पन्नहुई ॥ ९ ॥ और दूसरे द्वापर में तुम पर्वत हिमाचल से दीगई हो सब देवताओं को सुन्दर तुम्हारे विवाह होने पर ॥ १० ॥ दिव्यखेलों से तुम्हारे साथ खेलताहुआ मैं प्रसन्नता से संयुतहुआ और मोटे व ऊंचे नितंबवाली तथा शोभित दोनों स्तनोंवाली ॥ ११ ॥ व चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा महा-

प्रभावती व प्रसन्न तुमको मैं जलेहुये कामवृक्ष की जड़से कदली की नाईं निकलीहुई देखकर ॥ १२ ॥ उससमय बड़े मोलकी शय्या पै स्थित तुम्हारी मैंने इच्छा किया और वहां जब हमको व तुमको देवताओं के सौ बरस बीतगये ॥ १३ ॥ तब हे देवि ! निरोध (गुप्तस्थान) से उठकर तुम बाहर निकली और वहां कुण्डसे जल के मध्य से स्त्री निकली ॥ १४ ॥ जोकि कृष्णवर्णवाली तथा पीले नेत्रोंवाली और छूटे केशोंवालीथी और कपालोंकी मालाका आभूषण पहने तथा आधे मस्तक के केश पाशों को बांधे थी ॥ १५ ॥ और कपाल व खट्वांगको धारण किये तथा मुण्डोंकी मालाको हाथमें लिये शिवारूपिणीथी और व्याघ्र चर्मके वसनको धारण

कामतरोस्कन्दात्कदलीमिवनिस्सृताम् ॥ १२ ॥ महार्हशयनस्थान्त्वां तदाकामितवानहम् ॥ तत्रावयोर्यदाजातं दिव्यं वर्षशतंयदा ॥ १३ ॥ तदादेविसमुत्थाय निरोधान्निर्गताबहिः ॥ तत्रोदकात्समुत्तस्थौ नारीनिर्द्धारिताह्रदात् ॥ १४ ॥ कृष्णाकरालवदना पिङ्गाक्षीमुक्तमूर्द्धजा ॥ कपालमालाभरणा बद्धमुण्डार्द्धपिण्डिका ॥ १५ ॥ कपालखट्वाङ्गधरा मुण्डमालाकराशिवा ॥द्वीपिचर्माम्बरधरा रणत्किङ्किणिमेखला ॥१६॥ डिमडुमरुकारावा फेत्कारापूरिताम्बरा ॥ तस्याश्चपार्श्वगाश्चान्यास्तासांनामानिमेशृणु ॥ १७ ॥ सख्योब्राह्मणराक्षस्यस्तासांचेतास्सुदारुणाः ॥ दशकोटिप्रभेदेन धरांव्याप्यसुसंस्थिताः ॥ १८ ॥ मुख्यास्तत्रचतस्रोवै महाबलपराक्रमाः ॥ रक्तकर्णीमहाजिह्वा क्षयावैपापकारिणी ॥ १९ ॥ एतासामन्वयेजाताःपृथिव्यांब्रह्मराक्षसाः ॥ श्लेष्मान्तकतरौह्येते प्रायशस्सुकृतालयाः॥२०॥ उत्तालाश्चपलाश्चैव नृत्यन्तिचहसन्तिच ॥ विज्ञेयाइहलोकेस्मिन् भूतानांभूतनायकाः॥ २१ ॥ येचान्वयेभवन्त्येषामाकाशान्तरचारि

किये तथा बाजतीहुई घण्टियोंवाली क्षुद्रघण्टिकाको पहनेथी ॥१६॥ और बाजतीहुई डमरू के समान शब्दवाली तथा फेत्कारशब्दसे आकाशको पूर्ण करनेवाली थी और उसके समीप जो अन्य स्त्रिया थीं उनके नामोंको मुझसे सुनिये ॥ १७ ॥ व उसकी जो सखियां ब्रह्मराक्षसी थीं उनके चित्त बड़ेभयंकर थे और दशकरोड के भेद से पृथ्वी में व्याप्तहोकर वे स्थित थीं ॥ १८ ॥ उनमें बहुत बल व पराक्रमवाली चार ब्रह्मराक्षसी मुख्यहैं जोकि रक्तकर्णी, महाजिह्वा, क्षया व पापकारिणी है ॥ १९ ॥ इनके वंशमें पैदाहुये ब्रह्मराक्षस पृथ्वी में हैं और प्रायः ये लहसोरके वृक्ष में आलय (स्थान) किये हैं ॥ २० ॥ और उन्नत तालवाले व चंचल ये नाचते हैं

व हँसते हैं इसलोकमें वे भूतोंके भूतनायक जानने योग्य हैं ॥ २१ ॥ और आकाशमध्यचारी जो इनके वंश में होते हैं वे वृक्ष और आकाशमें विचरते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ वैसेही मेरे शौचसे उसी रूप आभूषणवाले दो पुरुष पैदाहुये जो कि कपाल व खट्वांगको धारणकिये तथा चर्म को पहनेथे ॥ २३ ॥ और बहुतसे भयंकर भूतोंसे अनुगमनकिये जाते थे जो भूत कि सिंह व व्याघ्र मुखवाले तथा अनेकभांति के भयंकर शब्दवाले थे ॥ २४ ॥ हे देवि ! उससमय इसप्रकार पैदाहुये वे क्षुधा से संयुत होकर भूँखेहुये इसके अनन्तर उन दोनोंको भूँखे देखकर मैंने यह वरदान दिया ॥ २५ ॥ कि तुमदोनोंके एकबार हाथसे स्पर्श करनेसे सब विपत्तियों

णः ॥ वृक्षेचैवतथाकाशे तेचरन्तिनशंसयः ॥ २२ ॥ तथैवममशौचात्तु तद्रूपाभरणौनरौ ॥ कपालखट्वाङ्गधरौ जातौचर्मावगुण्ठितौ ॥ २३ ॥ अनुगम्यमानौबहुभिः भूतैरपिभयङ्करैः ॥ सिंहशार्दूलवदनैर्विविधैर्भीषणस्वरैः ॥ २४ ॥ एवंदेवितदाजातौ क्षुधाक्रान्तौबुभुक्षितौ ॥ अतोहंक्षुधितौदृष्ट्वा वरञ्चेदञ्चदत्तवान् ॥ २५ ॥ युवयोर्हस्तसंस्पर्शात्सकृदापत्सुसर्वशः ॥ असृग्मांसंवसाभूत्वा भक्ष्यंभूयाच्चकामतः ॥ २६ ॥ नक्ताहारविहारौच दिवास्वप्नावभाजिनौ ॥ नक्तंचैवबलायासौ दिवानातिबलावुभौ ॥ २७ ॥ पुत्रवद्रक्षतंलोकान्धर्मश्चैवानुपाल्यताम् ॥ इत्युक्तौतौमयातत्र भूतमातृगणौप्रिये ॥ २८ ॥ एकीभूतौक्षणेनैव भवानीभवनोद्भवौ ॥ दृष्ट्वाहृष्टमनाहंवै अवोचंत्वांशुचिस्मिते ॥ २९ ॥ कल्याणि पश्यपश्यैतौ मच्छौचेनसमुद्भवौ ॥ वीभत्साद्भुतशृङ्गारधारिणौहासकारिणौ ॥ ३० ॥ भ्रातृभाण्डौयथादेवि तद्वत्तौ

में इच्छा से रक्त, मांस व वसाहोकर भक्ष्यहोगा ॥ २६ ॥ व रात में आहार, विहार करनेवाले और दिनमें सोनेवाले होंगे व रातही में बल तथा परिश्रम करनेवाले और दिनमें दोनों अत्यन्त बलवान् न होंगे ॥ २७ ॥ और पुत्रकीनाईं लोकों की रक्षा कीजिये व धर्म पालनकीजिये हे प्रिये ! वहां मैंने उनभूत व मातृगणों से ऐसा कहा ॥ २८ ॥ हे शुचिस्मिते ! भवानी के भवन में पैदाहुये उनको क्षणभरमें एक में मिले देखकर प्रसन्न मनहोकर मैंने तुमसे कहा ॥ २९ ॥ कि हे कल्याणि ! मेरे शौच से पैदाहुये इन बीभत्स, अद्भुत व शृंगारको धारणकिये व हास्य करनेवाले गणोंको देखिये ॥ ३० ॥ हे देवि ! जैसे भ्रातृ व भाण्ड थे वैसेही वे मुझ

से मानेगये और तबतक इनदोनों का अन्तर समानता के कारण नहीं जानपड़ता था ॥ ३१ ॥ हे देवि ! भ्रातृभांडा, भूतमाता और उदकसेविता ये तीन संज्ञा संसार में प्रसिद्ध पौरुषवाली हैं ॥ ३२ ॥ फिर उससमय दोनोंहाथों को जोड़कर उन्हों ने मुझसे कहा कि हे भगवन् ! किस स्थान में हमदोनोंका निवासहोगा ॥ ३३ ॥ वहां इस प्रकारकहेहुये उनको मैंने वरदानसे इच्छा कराया कि सौराष्ट्रदेशमें भारतवर्ष में प्रभास ऐसा कहाहुआ उत्तमक्षेत्र है और वह क्षेत्र मुझको प्यारा है जो कि कूर्म के नैर्ऋत्यभागमें दक्षिण व पश्चिम में स्थितहै ॥ ३४ । ३५ ॥ जहां स्वाती, विशाखा व अनुराधा तीन नक्षत्र कहेगये हैं उस स्थान में मन्वन्तर की

चमतौमम ॥ नानयोरन्तरंतावत् सादृश्यात्प्रतिभासते ॥ ३१ ॥ भ्रातृभाण्डाभूतमाता तथैवोदकसेविता ॥ संज्ञात्रयंस्मृतन्देवि लोकेप्रख्यातपौरुषम् ॥ ३२ ॥ पुनःकृताञ्जलिपुटौ दृष्ट्वामामूचतुस्तदा ॥ आवयोर्भगवन्कुत्र स्थाने वासोभविष्यति ॥ ३३ ॥ इत्युक्तवन्तौतौतत्र वरेणच्छन्दितौमया ॥ अस्तिसौराष्ट्रविषये भारतेक्षेत्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ प्रभासेतिसमाख्यातं तच्चक्षेत्रंममप्रिये ॥ कूर्मस्यनैर्ऋतेभागे स्थितंवैदक्षिणेपरे ॥ ३५ ॥ स्वातीविशाखामैत्रञ्च यत्रर्क्षत्रयंस्मृतम् ॥ तस्मिन्स्थानेसदास्थेयं यावन्मन्वन्तरावधि ॥ ३६ ॥ अन्यंचवासंवैदद्मि नवभूतप्रियेधुना ॥ यत्रकण्टकिनोवृक्षा यत्रालेख्याचवल्लरी ॥ ३७ ॥ भार्यापुनर्भूर्वल्मीकस्तत्रतेवसतिश्चिरम् ॥ यस्मिन्गृहेनराःपञ्च स्त्रीत्रयं तावतीचगाः ॥ ३८ ॥ अन्धकारेधनंचैव तद्गृहेवसतिस्तव ॥ एकच्छागंद्विबालेयं त्रिगवंपञ्चमाहिषम् ॥ ३९ ॥ षडश्वंसप्तमातङ्गं तद्गृहेवसतिस्तव ॥ कुद्दालदातृपिटकं तद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ॥ ४० ॥ यत्रतत्रैवक्षिप्तानि तवदद्युः

अवधितक तुमको सदैव स्थितहोना चाहिये ॥ ३६ ॥ व हे भूतप्रिये ! इससमय में तुमको अन्य निवास देता हूं कि जहां कॉटावाले वृक्षहोवैं और जहां वल्लरी (मंजरी)की तसवीरहोवै ॥ ३७ ॥ और जहा उढ़री स्त्रीहोवै व बेंबौरिहोवै वहां तुम्हारा निवास बहुत समयतक होवै और जिस घरमें पांच पुरुष, तीन स्त्रियां व उतनीहीं गऊ होवैं ॥३८॥ और अन्धकारमें धनहोवै उसघरमें तुम्हारा निवास होवै और जिस घरमें एकबकरा दो गधा, तीन गौवैं और पांच भैंसीहोवैं ॥ ३९ ॥ और छः घोड़े व सात हाथीहोवैं उस घरमें तुम्हारा निवासहोवै और कुदार, हॅसिया व पिटार तथा थारी इत्यादिक पात्र ॥ ४० ॥ जिस घरमें जहां तहां फेंकेगयेहों वहां तुमको

वे निवास देवैंगे और मुसल व ओखलीमें तथा देहली पै स्त्रियों का बैठना ॥ ४१ ॥ और प्राणियोंका विष्ठा व मूत्र तुमको उपकारी होताहै व जिस घरमें पक्के व कच्चे अन्न नाघे जाते हैं ॥ ४२ ॥ वैसेही जहा शास्त्र उल्लंघन कियेजाते हैं वहां भूतों समेत तुम विचरोगी और जहां स्थाली के आच्छादन में अग्नि होवै व जो हाथ से अग्नि देताहै ॥ ४३ ॥ उस घरमें सब अरिष्टों का स्थान होवै और जिस घरमें दिन रात मनुष्यकी हड्डी स्थित होवै ॥ ४४ ॥ वहां तुम्हारा भूतगण इच्छापूर्वक विचरैगा और जो सबसे अधिक शिवजीको नहीं कहते हैं ॥ ४५ ॥ व जहां मनुष्य इन शिवजीको साधारण कहतेहैं हे भूत ! वहां तुम स्थित होवो ॥ ४६ ॥ और जिस घरमें सेवती

प्रतिश्रयम् ॥ मुसलोलूखलेस्त्रीणामास्यातद्वदुदुम्बरे ॥ ४१ ॥ अवस्कारश्चमूत्रञ्च भूतानामुपकृत्तव ॥ लङ्घयन्तेयत्रधान्यानि पक्वापक्वानिवेश्मनि ॥ ४२ ॥ तद्वच्छास्त्राणितत्रत्वंभूतैस्सहचरिष्यति॥ स्थालीपिधानेयत्राग्निर्दातादर्विफलेन च ॥ ४३ ॥ गृहेतत्रदुरिष्टानामशेषाणांसमाश्रयः ॥ मानुषास्थिगृहेयत्र अहोरात्रंव्यवस्थितम् ॥ ४४ ॥ तत्रतेभूतनिवहो यथेष्टंविचरिष्यति ॥ सर्वस्मादधिकंयेन प्रवदन्तिपिनाकिनम् ॥ ४५ ॥ साधारणंवदन्त्येनं तत्रभूतसमाविश ॥ ४६ ॥ कन्याचयत्रवैवल्ली रोहितश्चजटीगृहे ॥ अगस्त्यकादयोवृत्ता बन्धुजीवोगृहेषुच ॥ ४७ ॥ करवीरोविशेषेण नदिवृत्तस्तथापिवा ॥ मल्लिकाचगृहेयेषां भूतयोग्यंगृहंहितत् ॥ ४८ ॥ तालंतमालंभल्लान्तं तिन्तिणीखण्डमेववा ॥ बकुलःकदलीषण्डं कदम्बःखदिरोपिवा ॥ ४९ ॥ न्यग्रोधोहिगृहेयेषामश्वत्थश्चूतएववा ॥ ५० ॥ उदुम्बरश्चपनसस्सर्वं भूतगृहंहितत् ॥ यस्याशोकोगृहान्तेच आरामेवागृहेपिवा ॥ ५१ ॥ भिक्षुर्विद्रावितोयत्र गृहेदेविमहेश्वरि ॥ ओड्रवृत्तं

की लताहोवै व जिसघरमें रुहेड़ा व पकरियाजमीहोवै तथा अगस्त्यादिक वृत्त होवैं और जिनघरोंमें दुपहरीका वृत्तहोवै ॥ ४७ ॥ और विशेषकर कनैर व स्थलपद्म होवै व जिनके घरमें बेला होवै वह घर भूतोंके योग्य है ॥ ४८ ॥ और ताल, तमाल, भेलावा व इमली का समूह तथा मौलसिरी, केलासमूह, कदम्ब और खैरकावृत्त होवै ॥ ४९ ॥ और जिनके घरमें बरगद, पीपल व आम होवै ॥ ५० ॥ और गूलरि व कटहर जिस घरमें होवै वह घर सब भूतों के योग्य है और जिसके घरके समीप

व बगीचे तथा घरमें भी अशोक होवे॥ ५१ ॥ व हे महेश्वरि, देवि ! जहां भिक्षुक भगायाजाताहो और जहां गोड़हरका वृक्ष स्थित होवै वहां-प्रेतोंका स्थान होताहै ॥ ५२ ॥ और जहां लिंगपूजन नहीं है व जहां जपादिक नहीं होताहै और जहां भक्ति हीन मनुष्य हैं उनको भूतोंके घर कहे ॥ ५३ ॥ और मलिन मुखवाले जो मनुष्य हैं और मलिन वसनों को जो धारे हैं और जो ग्रहस्थ मलदांतोंवाले हैं उनके घर में पैठिये ॥ ५४ ॥ और मैथुन में अधिक आदरवाले जो पुरुष अगम्यस्त्रियोंमें परायण हैं व जो सन्ध्या में मैथुन को प्राप्तहोते हैं उनके घरमें पैठिये ॥ ५५ ॥ बहुत कहने से क्या है जो नित्य कर्म से पृथक् कियेगये हैं और जो शिवजी की भक्तिसे

चयत्रस्थं तत्रभूतनिवेशनम् ॥ ५२ ॥ लिङ्गार्चनंयत्रनास्ति यत्रनास्तिजपादिकम् ॥ यत्रभक्तिविहीनावै भूतानांतान्गृहान्वदेत् ॥ ५३ ॥ मलिनास्यास्तुयेमर्त्या मलिनाम्बरधारिणः ॥ मलदन्तागृहस्थाये गृहेतेषांसमाविश ॥ ५४ ॥ अगम्यासुरतायेतु मैथुनेचाधिकादराः ॥ सन्ध्यायांमैथुनंयान्ति गृहेतेषांसमाविश ॥ ५५ ॥ बहुनाकिंप्रलापेन नित्यकर्मबहिष्कृताः ॥ रुद्रभक्तिविहीनाये गृहेतेषांसमाविश ॥ ५६ ॥ अदत्त्वेभुञ्जतेयेवै बन्धुपिण्डेतथोदके ॥ सपिण्डान्सोदकांश्चैव तत्कालंतान्नरान्भज ॥ ५७ ॥ यत्रभार्याचभर्त्ताच परस्परविरोधिनौ ॥ ५८ ॥ महाभूतगृहेतस्य विशेषाद्भयवर्जितः ॥ वासुदेवेरतिर्नास्ति यत्रनास्तिसदाहरः ॥ ५९ ॥ जपहोमादिकंनास्ति भस्मनास्तिगृहेनृणाम् ॥ पर्वस्वप्यर्चनंनास्ति चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ ६० ॥ कृष्णाष्टम्यांचतुर्दश्यां सन्ध्यायांभस्मवर्जितम् ॥ पञ्चदश्यांमहादेवं नजपन्तिचयत्रवै ॥ ६१ ॥ पौरजानपदैर्यत्र प्राक्प्रसिद्धामहोत्सवाः ॥ क्रियन्तेपूर्ववन्नैव तद्गृहेवसतिस्तव ॥ ६२ ॥ वे

रहित हैं उनके घरमें पैठिये ॥ ५६ ॥ और बन्धुओंको पिंड व जल न देने पर जो भोजन करते हैं उन सपिंड व सोदक मनुष्योंको उसी समय भजिये ॥ ५७ ॥ और जहां स्त्री व पुरुष परस्पर वैर करते हों ॥ ५८ ॥ हे महाभूत ! विशेषता से भयरहित उसके घरमें प्रवेश करिये जहां विष्णुजीमें स्नेह नहीं है और जहां सदाशिवजी नहींहैं ॥ ५९ ॥ और जहां मनुष्योंके घरमें जप, होमादिक नहीं है और जहां भस्म नहीं है और पर्वों व विशेषकर चौदसि तिथि में जहां पूजन नहीं होताहै ॥ ६० ॥ और कृष्णपक्ष की अष्टमी व चौदसि तिथि में सन्ध्या के समय जो गृह भस्म से रहितहो और पौर्णमासी तिथि में जहां मनुष्य महादेवजी को नहीं पूजते हैं ॥ ६१ ॥ और जहां पुर-

वासी लोग पहले के प्रसिद्ध महाउत्सवोंको पहलेकी नाईं नहीं करते हैं उनके घर में तुम्हारा निवास होवै ॥ ६२ ॥ जहा वेदका शब्द नही है और गुरु का पूजनादिक नहीं है और जो घर पितरों के कर्मोंसे हीन है वह घर भूतका कहागया है ॥ ६३ ॥ और जिसघरमें प्रत्येक रात्रिमें मनुष्योंका कलह (बखेडा) होताहै और जहां बालकों के देखतेहुये भक्ष्यपदार्थों का भोजन करते हैं वहा प्रसन्नहोकर तुम भूतों समेत प्रवेशकरो हे शुभे ! उससमय इसप्रकार कहीहुई उसने फिर मुझसे कहा ॥ ६४।६५॥ भूतमातृका बोली कि हे महाभाग ! मैं क्या भोजन करूं और मुझको कौन बलि देवैगा व किस महीने में और किस दिन मे संसारमे पूजित हूंगी ॥ ६६ ॥ हे

दघोषोनयत्रास्ति गुरुपूजादिकन्नच ॥ पितृकर्मविहीनञ्च तद्भूतस्यगृहंस्मृतम् ॥ ६३ ॥ रात्रौरात्रौगृहेयस्मिन् कलहो जायतेनृणाम् ॥ बालानांप्रेक्षमाणानां यत्रवृद्धाह्यभक्षयन् ॥ ६४ ॥ भक्ष्याणितत्रवैहृष्टो भूतैःसहसमाविश ॥ इत्युक्ता सातदातत्र पुनःप्रोवाचमांशुभे ॥ ६५ ॥ भूतमातृकोवाच ॥ किमश्नामिमहाभाग कोमेदास्यतिवैबलिम् ॥ कस्मिन् मासेदिनेवापि भवेयंलोकपूजिता ॥ ६६ ॥ इत्युक्तोहंतदादेवि तामुवाचपुनःप्रिये ॥ अमायांमाधवेमासि तस्मिन्याच चतुर्दशी ॥ ६७ ॥ तस्यांमहोत्सवस्तत्रभवितातेचिरन्तनः ॥ याःस्त्रियस्त्वांचयक्ष्यन्ति तस्मिन्कालेमहोत्सवे ॥ ६८ ॥ बलिभिर्पुष्पधूपैश्च मासांत्वंचगृहेविश ॥ नारायणहृषीकेश पुण्डरीकाक्षमाधव ॥ ६९ ॥ अच्युतानन्तगोविन्द वासुदेव जनार्दन ॥ नृसिंहवामनाचिन्त्य केशवेतिचयेजनाः ॥ ७० ॥ रुद्ररुद्रेतिरुद्रेति शिवायचनमोनमः ॥ वक्ष्यन्तिसततंहृ ष्टास्तेषान्धनगृहादिषु ॥ ७१ ॥ आरामेचैवगोष्ठेच माविशत्वंकथञ्चन ॥ ७२ ॥ देशाचाराञ्ज्ञातिधर्मान्समानाञ्जा

प्रिये, देवि ! उस समय इसप्रकार कहेहुये मैंने फिर उससे कहा कि अमावस तिथिमें और उस वैशाख महीनेमें जो चौदसि तिथिहै ॥ ६७ ॥ उसतिथिमें वहां तुम्हारा प्राचीन उत्सव होगा उस बडेभारी उत्सववाले समयमें जो स्त्रियां तुमको बलियोंसे व पुष्पों तथा धूपोंसे पूजैंगी इनके घरमें तुम मत प्रवेशकरो और हे नारायण, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष, माधव ! ॥ ६८ । ६९ ॥ हे अच्युत, अनन्त, गोविन्द, वासुदेव, जनार्दन, नृसिंह, वामन, अचिन्त्य, केशव ! ऐसा जो मनुष्य कहते हैं ॥ ७० ॥ व हे रुद्र ! हे रुद्र! हे रुद्र! ऐसा जो कहते हैं और शिवजी के लिये नमस्कारहै नमस्कार है ऐसा जो सदैव प्रसन्न होकर कहते हैं उनके धन व गृहादिकों में ॥ ७१ ॥

और बगीचे व गोशाले में तुम किसीप्रकार न पैठो ॥ ७२ ॥ और देशाचार व समान जातिधर्मों को तथा जप होम मंगल व देवताके अर्नको तथा भलीभांति शौच व लोक और वेद में विधिसे विवादों को करतेहुये पुरुषों में तुम्हारा संग मत होवै ॥ ७३ ॥ श्रीदेवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देवदेवेश ! सदैव अर्थी पुरुषों को कब भूतमाता का पूजन करना चाहिये उसको तुम कहनेके योग्यहो ॥ ७४ ॥ महादेवजी बोले कि बालकों का हितकरनेवाली यह भगवती सब कहीं नामके भेदोंसे व कार्य भेदोंसे और समय के भेदोंसे पूजीजातीहै ॥ ७५ ॥ वैशाख महीनेमें परेवासे लगाकर पौर्णमासी तिथितक मारने योग्य पशुओंके वधसे पूजन करना चाहिये ॥

प्यंहोमंमङ्गलन्देवताध्यर्म् ॥ सम्यक्शौचंमंविधानेनलोके वेदेवादान्कुर्वतोमास्तुसङ्गः ॥ ७३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कदापूजाप्रकर्तव्या भूतमातुस्सदार्थिभिः ॥ पुरुषैर्देवदेवेश तन्मेत्वंवक्तुमर्हसि ॥ ७४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सर्वत्रैषाभगवती बालानांहितकारिणी ॥ नामभेदैःक्रियाभेदैः कालभेदैश्चपूज्यते ॥ ७५ ॥ प्रतिपत्प्रभृतिवैशाखे यावत्पञ्चदशीतिथिः ॥ तावत्पूजाप्रकर्तव्या प्रोक्षणैःप्रोक्षणीयकैः ॥ ७६ ॥ भूमावपिगताञ्चैनां जलस्थलतलेस्थिताम् ॥ सिञ्चयिष्यतियोभक्त्या जलसम्पूर्णगडुकैः ॥ ७७ ॥ ग्रीवांतत्रतुसिन्दूरैः पुष्पैर्धूपैस्तथार्चयेत् ॥ नशाकिन्योगृहेतस्य नपिशाचानराक्षसाः ॥ ७८ ॥ पीडांकुर्वन्तिशिशवो यान्तिवृद्धिंनिरामयाः ॥ भोजयेत्क्षीरसंयावं कृसरैःपूपपायसैः ॥ ७९ ॥ यएवंकुरुतेदेवि पुरुषोभक्तिभावितः ॥ सपुत्रपशुवृद्धिञ्च शरीरारोग्यमाप्नुयात् ॥ ८० ॥ पञ्चम्यान्तुविशेषेण रात्रौकोलाहले शुभे ॥ जागरंतत्रकुर्वीत देवींपूज्यप्रयत्नतः ॥ विश्वास्यधनलोभेन स्वाध्यायीनिहतोयतः ॥ ८१ ॥ आरोप्यमानंशू

७६ ॥ भूमि में प्राप्त व जलस्थल में स्थित इन भगवती को जो भक्तिसे जलसे भरेहुये गडुवों से सींचताहै ॥ ७७ ॥ और वहां ग्रीवाको सिन्दूर, पुष्प व धूपोंसे जो पूजता है उसके घरमें न शाकिनी न पिशाच न राक्षस ॥ ७८ ॥ पीडा करते हैं और बालक रोगरहित होकर वृद्धिको प्राप्तहोते हैं और तिलोदन, पुवा व खीर समेत दूधकी गुझियाको भोजन करावै ॥ ७९ ॥ हे देवि ! भक्तिसे शुद्ध चित्तवाला जो पुरुष ऐसा करताहै वह पुत्रों व पशुओंकी वृद्धि तथा शरीरकी नीरोगताको प्राप्तहोता है ॥ ८० ॥ और विशेषकर पंचमी तिथि में वहां रात्रिको उत्तमकोलाहल में देवीजी को बड़े यत्नसे पूजकर जागरण करै और सब लोगोंसे कहै कि धनके लोभसे वि-

श्वास कराकर जिसलिये स्वाध्यायी मारागया ॥ ८१ ॥ उसीकारण त्रिशूलके अग्रभाग में आरोपित इस चोरको देखिये आप लोगोंने बहुतही प्रसन्नपराई स्त्री से स्नेह करनेवाले पुरुषको देखा ॥ ८२ ॥ कि हाथोंको काटकर दुःखित होताहुआ यह गधे पर चढ़कर जाताहै और टूटेहुये सूपकी छतुरी समेत हड्डियों के गहनोंसे भूषित ॥ ८३ ॥ यह सुखपूर्वक आसनपै बैठाहुआ पुण्यवान् सुखपूर्वक जाता है हे लोगो ! बहुतही स्वामीसे द्रोह करनेवाले पुरुषको क्या नहीं देखते हो ॥ ८४ ॥ जोकि मुशलके मारने से रक्तके कारण उग्रता पूर्वक आरोंसे चीरा जाताहै प्रसिद्धमें सबको उद्वेग करनेवाला यह उत्तम चोर मिलगया ॥ ८५ ॥ जोकि दण्डप्रहार से ताडित

लाग्रे चौरमेनंप्रपश्यत ॥ दृष्टोभवद्भिस्संहृष्टः परदारावमर्शकः ॥ ८२ ॥ छित्त्वाहस्तौसदन्नेष खरारूढश्चगच्छति ॥ शीर्णसूर्पातपत्रेण अस्थ्याभरणभूषितः ॥ ८३ ॥ सुखासनसमारूढः सुकृतीयात्यसौसुखम् ॥ हेजनाःकिन्नपश्यध्वं स्वामिद्रोहकरम्परम् ॥ ८४ ॥ करपत्रैर्विदार्येत मुशलाच्छोणितोत्कटम् ॥ चौरःकिलासौसम्प्राप्तः सर्वोद्वेगकरःपरः ॥ ८५ ॥ दण्डप्रहाराभिहतो नीयतेदण्डपाणिकैः ॥ प्रेक्षकैर्वेष्टितस्तेन आरटन्व्यथितैःस्वरैः ॥ ८६ ॥ संयम्यनीयतेहन्तुं मुखान्वीक्षितलक्षणः ॥ सितकेशंसितश्मश्रु शीर्णाम्बरधरंद्विजम् ॥ ८७ ॥ विटङ्कोट्याचचेटीनां हन्यमानंविपश्यत ॥ गृहान्निष्कामयतांनारीं वृद्धिन्नीत्वातथोदरम् ॥ ८८ ॥ कस्मादसौनकुरुते मूढोभरणपोषणम् ॥ भैरवाभरणानेतान् मदाघूर्णितलोचनान् ॥ ८९ ॥ प्रवृत्तान्ताण्डवेमूढान्वाह्यमानानितस्ततः ॥ निर्वेदकोस्यहृदये धनक्षेत्रादिसम्भवः ॥ ९० ॥ गृहीतंयदनेनाद्य बालेनापिमहाव्रतम् ॥ रक्ताक्षंकाककृष्णाङ्गां साम्बरांकिन्नपश्यसि ॥९१॥ तरुकोटिगतान्बद्धा

होकर दण्डपाणि पुरुषोंमे लायाजाताहै और देखनेवालोंसे घिराहै उसीकारण दुःखित शब्दोंसे रटताहुआ ॥ ८६ ॥ मुखसे देखेहुये लक्षणोंवाला यह दण्ड देकर मारने के लिये लायाजाताहै सपेद केश व श्वेत दाढ़ी मूछवाले तथा फटेहुये वसनों को धारनेवाले धूर्त ब्राह्मणको करोड दासियोंसे मारेजातेहुये देखिये उस स्त्रीको घरसे निकालकर पेटको बढ़ाकर ॥ ८७ । ८८ ॥ यह मूढ़ किसलिये भरण पोषण नहीं करताहै मदसे आघूर्णित नेत्रोंवाले तथा भयंकर गहनोंवाले इन ॥ ८९ ॥ इधर उधर लायेजातेहुये नृत्य में प्रवृत्त मूढ़ोंको देखिये इसके हृदयमें धन व क्षेत्रादि से उपजाहुआ निर्वेद है ॥ ९० ॥ जिसलिये इस बालकने भी इस समय महाव्रत को

ग्रहण कियाहै उसीकारण लाल लोचनोंवाले व कौवाके समान काले अंगवाले मृगको क्या नहीं देखतेहो ॥ ६१ ॥ वृक्षकी कोटि में प्रास व जंजीरसे बाधेहुये बहुत शिरसमूहों से खण्ड करके पृथक् कियेहुये अन्य पशुवों को देखिये ॥ ६२ ॥ और प्रहार करनेसे हिचकी व हुंकारको छोडेहुये पशुवोंको देखिये और अपनी कन्या के सन्तान को लिये व काले अर्धमुखवाली केशोंको छोड़े योगिनीकी नाई नाचतीहुई इसको देखिये और गंभीरता से प्रेरित खर्जूरकी ध्वनि से उद्धत नृत्यवाली ॥ ६३ । ६४ ॥ तथा उन्मत्त वेश व गहनोंवाली यह डिंभ (बाल) मण्डली जाती है कटितट पै पिटारीको धरे काले कम्बलको धारनेवाली ॥ ६५ ॥ छोटे अंगोंवाली स्त्री

नन्याग्छृङ्खलयातथा ॥ शिरोघैःशकलीकृत्य बहुभिश्शकलीकृतान् ॥ ६२ ॥ विमुक्तहिकाहुङ्कारान् सप्रहारान्निरीक्ष त ॥ इमांकृष्णार्द्धवदनां गृहीतस्वदुहित्रिकाम् ॥ ६३ ॥ विमुक्तकेशांनृत्यन्तीं पश्यध्वंयोगिनीमिव ॥ गम्भीरनुन्नखर्जूरध्वनिनोद्धतताण्डवा ॥ ६४ ॥ उन्मत्तवेषाभरणा यात्येषाडिम्भमण्डली ॥ कटीतटस्थपिटका कालकम्बलधारिणी ॥ ९५ ॥ अटतेनटतेतन्वी चक्षुषादहतेगृहम् ॥इत्येवमादिभिर्नित्यं प्रोक्षणैःप्रोक्षणीयकैः ॥ ६६ ॥ प्रेरयित्वाप्यहानीत्थं पुत्रभ्रातृसुहृद्वृतः ॥ एकादश्यांनवम्याञ्च प्रक्षाल्यकुड्यकन्तथा ॥९७॥ मुखबिम्बानितत्रैव लेपकारकृतानिवै ॥ विचित्राणिमहार्हाणि रौद्रशान्तानिकारयेत् ॥ ९८ ॥ मातृणांचण्डिकानाञ्च राक्षसीनांतथैवच ॥ भूतप्रेतपिशाचानां शाकिनीनांतथैवच ॥९९॥ मुखानिकारयेत्तत्र हावभावयुतानिच॥१००॥रक्षकैर्बहुभिर्गुप्तं तूर्य्यध्वनिपुरस्सरम्॥ अमावस्यांमहादेवि क्षिपेत्पूजाक्रमैर्नरः ॥ १ ॥ ततःप्रदोषसमये तत्रदेविजनैर्वृतः॥ तत्रगच्छेन्महारावैः फेत्काराकुल

घूमती व नाचती है और नेत्रसे घरको जलातीहै इत्यादिक मारने योग्य यज्ञ पशुके वधोंसे नित्य ॥ ६६ ॥ इसप्रकार दिनोंको व्यतीत करके पुत्र, भाई व मित्रोंसे घिरा हुआ मनुष्य एकादशी व नवमी तिथिमें दीवारको धुलाकर ॥९७॥ उसीमें लेपकारसे कियेहुये विचित्र तथा बड़े मोलवाले व रौद्र तथा शान्त मुखबिम्बोंको बनवावै॥९८॥ मातृका, चण्डिका, राक्षसी और भूत, प्रेत, पिशाच, शाकिनियोंके ॥ ९९ ॥ हावभाव से संयुत मुखोंको वहां बनवाना चाहिये ॥ १०० ॥ हे महादेवि! तुरुहीके शब्दपूर्वक बहुत रक्षकों से गुप्तहोकर मनुष्य अमावस्याको पूजन के क्रमों से व्यतीत करै ॥ १ ॥ तदनन्तर प्रदोप समयमें वहां पर देवी जनोंसे घिराहुआ मनुष्य फेत्कार

से व्याप्त कीर्तनोंवाले महाशब्दोंकरके वहां जावै ॥ २ ॥ और वीरचर्याकी विधिसे रातमें नगरमें घुमवावै हे ममप्रिये ! वह दीप सब प्रयोजनोंका साधककहागयाहै ॥ ३॥ उसीकारण पौर्णमासी तिथितक दीपकको निकालै और पौर्णमासी तिथि में भूतमाताका महोत्सव करै ॥ ४ ॥ और स्थापन करै व पूजनकरै तथा मांस व भातकी नैवेद्य देवै और अपने जनोंसमेत प्रणामकर क्षमापन कराकर घरको जावै ॥ ५ ॥ हे देवि ! जो मनुष्य प्रतिवर्ष में इसप्रकार महोत्सव करताहै उसके घरमें वर्षभर तक विघ्न नहीं होताहै ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर भूतमाता के शरीर से पसीने के बूंदों से पांच करोड़ पिशाच पैदाहुये ॥ ७ ॥ वे सब उदासीन मुख व

कीर्तनैः ॥ २ ॥ वीरचर्याविधानेन नगरेभ्रामयेन्निशि ॥ ममप्रियेसकथितो दीपस्सर्वार्थसाधकः ॥ ३ ॥ ततोनिष्क्रमयेद्दीपं यावत्पञ्चदशीतिथिः ॥ पञ्चदश्यांप्रकुर्वीत भूतमातुर्महोत्सवम् ॥ ४ ॥ स्थापयेत्पूजयेद्दद्यान्नैवेद्यंपलमोदनम् ॥ प्रणम्यस्वजनैस्सार्द्धं क्षमयित्वागृहंव्रजेत् ॥ ५ ॥ यएवंकुरुतेदेवि वर्षेवर्षेमहोत्सवम् ॥ तद्गृहेवत्सरंयावद्विघ्नं तस्यनजायते ॥६॥ अथकालान्तरेतीते भूतमातुश्शरीरतः ॥ जाताःप्रस्वेदबिन्दुभ्यः पिशाचाःपञ्चकोटयः ॥ ७ ॥ सवैतेदीनवदनाः शिरोहाराःकृशोदराः ॥ पाणिपात्राःपिशाचास्ते निसृष्टाबलिभोजनाः ॥८॥ धमनीसंतताःशुष्काःश्मश्रूलाश्चर्मवाससः ॥ उलूखलैराभरणैः शूर्पच्छत्राःखरस्वराः ॥ ९ ॥ नखज्वालितकेशाभ्यामङ्गारानुद्गिरन्तिवै ॥ अङ्गारकाःपिशाचास्ते गयामार्गानुसारिणः ॥ १० ॥ आकर्णदारितास्याश्च लम्बभ्रूस्थलनासिकाः ॥ पलादास्तेपिशाचावै सूतिकागृहवासिनः ॥ ११ ॥ पृष्ठतःपाणिपादाश्च पृष्ठगावातरंहसः ॥ विपादगाःपिशाचास्ते संग्रामेपिशिताश

मस्तकोंके हारोंको पहने तथा दुबले पेटवाले थे और बलिभोजनवाले तथा हाथहीरूपी पात्रोंवाले वे पिशाच पैदाहुये ॥ ८ ॥ जोकि धमनी (नसों) से संयुक्त व शुष्क तथा दाढ़ी मूछको धारण किये और चर्मरूपी वसनोंको पहनेथे वे ओखलीरूपी गहनोंसे युक्त तथा सूपकी छतुरी को लिये व तीक्ष्ण शब्दवालेथे ॥ ९ ॥ और नखों से जलायेहुये बालों करके अंगारोंको उगिलते थे वे अंगारक पिशाच गयामार्ग के अनुगामी हुये ॥ १० ॥ और कानों तक फटेहुये मुखवाले तथा लम्बी भौंह व नासिकावाले वे मांसभक्षी पिशाच सवरिके घर में रहनेवालेहुये ॥ ११ ॥ और पीछे हाथ पांववाले तथा पीछे से चलनेवाले पवनके वेगवान् व बिन पांवोंसे चलने

वाले पिशाच समरमें मांसको भोजन करनेवाले हुये ॥ १२ ॥ ऐसे पिशाचों को देखकर दोनोंके ऊपर दयासे उनके लिये कुछ करुणा से भीगेहुये चित्तकरके वरदान दिया ॥ १३ ॥ कि प्रजाओं के मध्य में अन्तर्द्धान व इच्छा के अनुकूल रूपधरना और दोनों सन्ध्याओं में स्थानोंको जाना व जीवन दिया ॥ १४ ॥ और जो टूटेहुये घर, स्थान और मन्दिर हैं व जो आचाररहित तथा विध्वस्त स्थान हैं उनको दिया ॥ १५ ॥ और राजमार्ग व गावके भीतरवाले मार्ग, चौराहों व चौतरों को दिया और द्वार, अँटारी व निकलने के द्वार तथा जाने के मार्गों को दिया ॥ १६ ॥ और हे प्रिये ! मार्ग, तीर्थ और मन्दिरके वृक्षोंको व बड़ेभारी मार्गोंको पिशाचोंके निवासके

नाः ॥ १२ ॥ एवंविधान्पिशाचांस्तु दृष्ट्वादीनानुकम्पया ॥ तेभ्योवरन्ददौकिञ्चित् कारुण्यादार्द्रचेतसा ॥ १३ ॥
अन्तर्द्धानंप्रजास्वेव कामरूपत्वमेवच ॥ उभयोस्सन्ध्ययोश्चारः स्थानानांजीवनंतथा ॥ १४ ॥ गृहाणियानिभग्नानि
स्थानान्यायतनानिच ॥ विध्वस्तानिचयानिस्युरनाचाराणियानिच ॥ १५ ॥ राजमार्गोपरथ्याश्च शृङ्गाटश्चत्वराणि
च ॥ द्वाराण्यट्टालिकांश्चैव निर्गमान्संक्रमांस्तथा ॥ १६ ॥ पन्थानश्चैवतीर्थानि चैत्यवृक्षान्महापथान् ॥ स्थानानितु
पिशाचानां निवासायददौप्रिये ॥ १७ ॥ अधर्मिकाजनास्तेषामाजीवोविहितःपुरा ॥ वर्णाश्रमास्सङ्करजाः कारुशिल्पि
जनास्तथा ॥ १८ ॥ अनृताःपापसन्तानाश्चौराविश्वासघातिनः ॥ एभिरन्यैश्चबहुभिरन्यायोपार्जितैर्धनैः ॥ १९ ॥
आरभ्यन्तेक्रियायास्तु पिशाचास्तत्रदेवताः ॥ मधुमान्सौदनैर्दध्ना तिलचूर्णसुरासवैः ॥ २० ॥ पूपैर्हारिद्रकृशरैस्ति
लभक्तगुडोदनैः ॥ कृष्णानिचैववासांसि धूम्राःसुमनसस्तथा ॥२१॥ एभिर्युक्ताःसुबलयस्तेषांवैपर्वसन्धिषु॥ पिशाचाना

लिये दिया ॥ १७ ॥ और पुरातन समय अधर्मी मनुष्य उनकी जीविका कियेगये हैं व संकरवर्ण से उपजेहुये वर्ण व आश्रम और चित्रकार व थवई लोग ॥ १८ ॥ व झूंठे और पापी सन्तानवाले, चोर, विश्वासघाती इनसे व अन्य बहुतलोगों से अन्याय करके इकट्ठा कियेहुये धनोंसे ॥ १९ ॥ जो कर्म प्रारम्भ किये जाते हैं उन में पिशाच देवता होते हैं और मदिरा, मांस, भात, दही, तिलोंका चूर्ण और मदिरा तथा आसवों से ॥ २० ॥ और पुवोंसे व हरिद्रासंयुक्त तिलभात और गुड़, भात

से जो वलि दीजाती है व काले वसन तथा धूम्र रंगके जो फूलहैं ॥ २१ ॥ इनसे संयुक्त बलियां उन पिशाचोंको पर्वोंकी सन्धियों में आज्ञा देकर भूतमाताको हे देवि ! मैंने सब भूतों व पिशाचों की उत्तम अधिदेवता किया इमप्रकारकी सब भूतगणोंसे घिरकर॥ २२ । २३ ॥ हे देवि ! समुद्रसे उत्तरओर प्रभासक्षेत्रमें स्थितहै जो मनुष्य देवीजी की इस पापनाशिनी उत्पत्तिको जानता है ॥ २४ ॥ उसके कभी निन्दित सन्तान नहीं होती है और वह भूत, प्रेत व पिशाचोंके दोषों से तिरस्कृत नहीहोता है ॥ २५ ॥ और सब पातकों से छूटाहुआ वह सदैव सौभाग्यसे संयुत होता है व सब कामोंको प्राप्तहोताहै और स्त्रियोंके हृदय को आनन्द करनेवाला होताहै ॥

मनुज्ञाय भूतमाताधिदेवता ॥ २२ ॥ सर्वभूतपिशाचानां कृतादेविमयाशुभा ॥ एवंविधाभूतमाता सर्वभूतगणैर्वृता ॥ २३ ॥ प्रभासेसंस्थितादेवि समुद्रादुत्तरेणतु ॥ यएतांवेदवैदेव्या उत्पत्तिंपापनाशिनीम् ॥ २४ ॥ कुत्सितासन्ततिस्तस्य नभवेच्चकदाचन ॥ भूतप्रेतपिशाचानांनदोषैःपरिभूयते ॥२५॥ सर्वपातकनिर्मुक्तस्सदासौभाग्यसंयुतः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नारीहृदयनन्दनः ॥ २६ ॥ येमानयन्तिमनुजाःसकलैर्विलासैः संसेवयन्त्यभयदांभवभूतनाथाम् ॥ तेभ्रातृभृत्यसुतबन्धुजनैस्समेताः सर्वोपसर्गरहिताःसुखिनोभवन्ति ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे भूतमातृकामाहात्म्यकथनन्नामत्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवींशालकटङ्कटाम् ॥ सावित्र्यादक्षिणेभागे रेवन्तात्पूर्वतःस्थिताम् ॥ १ ॥ म

२६ ॥ जो मनुष्य संसारके प्राणियों की स्वामिनी व अभयदायिनी भूतमाताको सबविलासों से मानते हैं व भलीभांति सेवते हैं वे भाई, सेवक, पुत्र व बन्धुजनों से संयुत होकर सब उपद्रवोंसे रहित होतेहुये सुखी होतेहैं ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभूतमातृकामाहात्म्यकथनंनामत्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । शालकटंकट देवि कर अति उत्तम परभाव । इकसौ चौंसठि में सोई कह्यो चरित्र सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सावित्रीजी से

दक्षिणभाग में व रेवन्त से पूर्वओर में स्थित शालकटंकटा देवीजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि महापातकों के समूहको नाशनेवाली व सब दुःखोंको विनाशनेवाली और सिद्धों व गन्धर्वोंसे पूजित तथा फरकती हुई दाढ़ोंसे भयकरहै ॥ २ ॥ व पौलस्त्यजी से थापीहुई वे महाप्रचण्ड दैत्योंको नाशनेवाली तथा महिषासुरनाशिनी प्रभासक्षेत्र में स्थित हैं ॥ ३ ॥ माघ महीनेमें चौदसि तिथि में जो मनुष्य उन भगवती को पूजता है वह विद्वान् बुद्धिमान्, पशुमान्, लक्ष्मीवान् व पुत्रवान् होताहै ॥ ४ ॥ और जो भक्तिसे उनको पशुके दान से भलीभांति तृप्त करताहै और बलि, पूजन के उपहारों से सेवता है वह शत्रुवों से रहित होताहै ॥ ५ ॥ इति श्री

हापापौघशमनीं सर्वदुःखविनाशिनीम् ॥ पूजितांसिद्धगन्धर्वैः स्फुरद्दंष्ट्रोग्रभीषणाम् ॥ २ ॥ महाप्रचण्डदैत्यघ्नीं पौलस्त्येनप्रतिष्ठिताम् ॥ महिषघ्नींमहाकायां क्षेत्रप्राभासिकेस्थिताम् ॥ ३ ॥ माघेमासिचतुर्दश्यां यस्तामभ्यर्चयेन्नरः ॥ सभवेत्पशुमान्धीमाँल्लक्ष्मीवान्पुत्रवान्सुधीः ॥ ४ ॥ यस्तांपशुप्रदानेन सन्तर्पयतिभक्तितः ॥ वलिपूजोपहारैश्च सेवतेशत्रुवर्ज्जितः ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशालकटंकटामाहात्म्यन्नामचतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६४॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि एकल्लान्देविवीरकाम् ॥ एकल्लवीरायाम्येतु नातिदूरेऽव्यवस्थिताम् ॥ १ ॥ पूर्वंदशरथोयोसौ सूर्यवंशविभूषणः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपश्चक्रेसुदुष्करम् ॥ २ ॥ लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठाप्य तोषयामासशङ्करम् ॥ सदेवंप्रार्थयामास पुत्रानप्रतिमौजसः ॥ ३ ॥ ददौतस्यतदापुत्रं देवंत्रैलोक्यपूजितम् ॥ रामेतिनामयस्यासी

स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशालकटंकटामाहात्म्यंनामचतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

दो० । दशरथेश्वरहिं लिंग जिमि थाप्यो दशरथ भूप । इकसौ पैंसठि में सोई कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर एकल्लवीरा के दक्षिणमें थोडेही दूर पै स्थित एकल्ला वीरकाके समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय सूर्यवंशके भूषणरूप जो ये दशरथ राजाहुये हैं उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें आकर कठिन तप किया है ॥ २ ॥ और वहापर लिंगको थापकर शिवदेवजीको प्रसन्न किया व उन्होंने अमित बलवाले पुत्रोंको मांगा ॥ ३॥ तब शिवजी ने उनको त्रैलोक्य

पूजित देवताको पुत्र दिया जिनका राम ऐसा नाम हुआ है और त्रिलोकमें यश प्रसिद्धहुआ है ॥ ४ ॥ और जिनके यशको आजभी भूर्भुवः स्वर्लोकके निवासी गाते हैं व देवता, दैत्य तथा सब राक्षस और बाल्मीकि आदिक महर्षि जिनके यशको गाते हैं ॥ ५ ॥ और उस लिंगके प्रभावसे राजाने बड़ेभारी यशको पायाहै कातिक महीने में कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो विधि से उन शिवजी को दीपक, पूजन व उपहारों सें पूजता है वह यशस्वी होता है ॥ ६ । ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदशरथेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

त्रैलोक्येप्रथितंयशः ॥ ४ ॥ यस्याद्यापीहगायन्ति भूर्भुवःस्वर्निवेशिनः ॥ देवादैत्यासुरास्सर्वे बाल्मीक्याद्यामहर्षयः ॥ ५ ॥ तेनलिङ्गप्रभावेण प्राप्तंराज्ञामहद्यशः ॥ कार्त्तिक्यांकार्त्तिकेमासि विधिनायस्तमर्चयेत् ॥ ६ ॥ दीपपूजोपहारेण यशस्वीसोभिजायते ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे दशरथेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंतद्भरतेश्वरम् ॥ तस्मादुत्तरकोणस्थं नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ भरतोनामराजाभूद्विनिद्रःप्रथितःक्षितौ ॥ यस्येदंभारतंवर्षं नाम्नालोकेषुगीयते ॥ २ ॥ सचचक्रेतपोघोरं क्षेत्रेस्मिन्पर्वतेप्रिये ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ ३ ॥ पुत्रकामोनरःश्रेष्ठस्ततस्तुष्टोभवद्भवः ॥ अष्टौपुत्रान्ददौतस्य कन्यांचैकांयशस्विनीम् ॥ ४ ॥ सतुप्राप्याभिलाषितं कृतकृत्योनराधिपः ॥ भारतंनवधाकृत्वा पुत्रेभ्यः

दो० । जिमि भरतेश्वर लिंगको थप्यो भरत भूपाल । इकसौ छाछठि में सोई वर्णित चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे उत्तर-कोण में स्थित थोड़ेही दूर पै प्राप्त उस भरतेश्वर लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ विनिद्र (निरालसी) भरत नामक राजा पृथ्वी में प्रसिद्ध हुये हैं जिनके नामसे लोकों में वह भारतवर्ष गायाजाता है ॥ २ ॥ हे प्रिये ! पुत्रकी कामनावाले उस नरश्रेष्ठ ने महादेवजीको थापकर इस क्षेत्र में पर्वत पै देवताओं के हज़ार वर्षतक भयंकर तप किया उसके उपरान्त शिवजी प्रसन्नहुये और उन्होंने उसको आठ पुत्र व एक यशस्विनी कन्याको दिया ॥ ३ । ४ ॥ और मनोरथको प्राप्तहोकर वे कृतकृत्य

दो० । जिमि कुशकादिक लिंग कर अहै अमित परभाव । इकसौ सरसठिमें सोई बरणत चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सावित्रीजी के पश्चिम में वहां एक स्थान पै स्थित चार लिंगोंके समीप जावै ॥ १ ॥ दो लिंग पूर्वमें और दो पश्चिम में सामने स्थित हैं पहले कुशकेश्वरनामक ईश्वर कहेगये हैं ॥ २ ॥ और दूसरे गर्गेश्वर व तीसरे पौरुषेश्वर तथा चौथे मैत्रेयेश्वरनामक कहेगये हैं ॥ ३ ॥ जो जितेन्द्रिय मनुष्य भक्तिसे इन लिंगोंको देखताहै वह सब पातकोंसे छूटकर बड़ेभारी शिवलोकको जाता है ॥ ४ ॥ वैशाखमें विशेषकर शुक्लपक्ष की चौदसि में वहां स्नानकरके बडे यत्नसे ब्राह्मणोंको पूजै ॥ ५ ॥ और उनके लिये

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गानाञ्चचतुष्टयम् ॥ एकस्थानेस्थितानान्तु सावित्र्यास्तत्रपश्चिमे ॥ १ ॥ लिङ्गानांद्वितयेपूर्वे पश्चिमेसम्मुखेद्वयम् ॥ कुशकेश्वरनामानमीश्वरंप्रथमंस्मृतम् ॥ २ ॥ गर्गेश्वरंद्वितीयन्तु तृतीयं पौरुषेश्वरम् ॥ मैत्रेयेश्वरनामानं चतुर्थंसमुदाहृतम् ॥ ३ ॥ एतानियस्तुलिङ्गानि पश्येद्भक्त्याजितेन्द्रियः ॥ समुक्तः पातकैस्सर्वैर्गच्छेच्छिवपुरंमहत् ॥ ४ ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यां वैशाखेतुविशेषतः ॥ स्नानंकृत्वाप्रयत्नेन ब्राह्मणांस्तत्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ तेभ्योदद्याद्यथाशक्त्या काञ्चनंवसनानिच ॥ एवंतत्रभवेद्यात्रा परिपूर्णासुरेश्वरि ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कुशकादिलिङ्गमाहात्म्यन्नामसप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेविकुन्तीश्वरमनुत्तमम् ॥ सावित्र्यापूर्वभागस्थं खातमध्येऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ कुन्त्याप्रतिष्ठितंलिङ्गं क्षेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ पाण्डवास्तुयदापूर्वं प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ २ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कुन्त्याचै

यथाशक्ति से सुवर्ण व वसनों को देवै इसप्रकार हे सुरेश्वरि ! वहां यात्रा परिपूर्ण होती है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुशकादिलिङ्गमाहात्म्यनामसप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि कुन्तीश्वर लिंगको थाप्यो कुन्ती रानि । इकसौ अरसठिमें सोई कह्यो चरित्र बखानि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सावित्रीजी के पूर्वभाग में स्थित गढ़े के बीचमें प्राप्त अतिउत्तम कुन्तीश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ उत्तम प्रभासक्षेत्र में कुन्ती ने लिंगको थापा है जब पुरातन समय पाण्डवलोग

कुन्तीसमेत तीर्थयात्राके प्रसंग से प्रभासक्षेत्र को आये हैं उस समय हे महादेवि ! अतिउत्तम क्षेत्रको जानकर ॥ २ । ३ ॥ कुन्ती ने सब पापों के भयको दूर करने-वाले लिंगको थापा है विशेषकर कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो मनुष्य उन शिवजीको पूजता है ॥ ४ ॥ वह सब कामनाओं से समृद्धात्मा होकर शिवलोक में पूजाजाता है और वाचिक व मानस पाप तथा जो कर्म से इकट्ठा कियाहुआ पातक है ॥ ५ ॥ वह सब हे देवि ! उस लिंगके दर्शन से नाश होजाता है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुन्तीश्वरमाहात्म्यंनामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

वसमन्विताः ॥ तस्मिन्कालेमहादेवि ज्ञात्वाक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ कुन्त्याप्रतिष्ठितंलिङ्गं सर्वपापभयापहम् ॥ कार्त्तिक्यांचविशेषेण यस्तंपूजयतेनरः ॥ ४ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा रुद्रलोकेमहीयते ॥ वाचिकंमानसंपापं कर्मणायदुपार्जितम् ॥ ५ ॥ तत्सर्वंनश्यतेदेवि तस्यलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कुन्तीश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पुण्यमर्कस्थलंप्रिये ॥ तस्मादाग्नेयकोणस्थं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तन्दृष्ट्वामानुषोदेवि नशोच्यःसम्प्रजायते ॥ सप्तजन्मनिदेवेशि दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ २ ॥ कुष्ठानिनाशमायान्ति तन्दृष्ट्वाष्टदशप्रिये ॥ गोशतस्यप्रदानस्य कुरुक्षेत्रेषुयत्फलम् ॥ ३ ॥ तत्फलंसमवाप्नोति दृष्ट्वाचार्कस्थलंरविम् ॥ स्नात्वा त्रिसङ्गमेतीर्थे सप्तम्यांसुकृतीनरः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वाथ महिषींतत्रदापयेत् ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु स्वर्गलोके

दो० । अर्कस्थल को पूजिकै मिलत अहै फल जौन । इकसौ उनहत्तरे में कह्यो चरित सब तौन ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये, महादेवि ! तदनन्तर उससे आग्नेय कोणमें स्थित समस्तपातकोंके नाशनेवाले व पुण्यरूप अर्कस्थलके समीपजावै ॥ १ ॥ हे देवि ! उसको देखकर मनुष्य शोचने योग्य नहीं होताहै व हे देवेशि ! सात जन्मों तक दारिद्र नहीं होताहै ॥ २ ॥ व हे प्रिये ! उसको देखकर अठारह प्रकार के कुष्ठ नाशको प्राप्तहोते हैं और कुरुक्षेत्र में गोशत के दानका जो फलहोता है ॥ ३ ॥ उस फलको मनुष्य अर्कस्थल सूर्यको देखकर प्राप्तहोताहै सप्तमी तिथि में पुण्यवान् मनुष्य त्रिसंगम तीर्थ में नहाकर ॥ ४ ॥ व ब्राह्मणोंको भोजन कराकर इस

के अनन्तर वहां भैंसी को देवै तो देवताओं के हजार वर्षोंतक वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजाजाता है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामर्कस्थलमाहात्म्यंनामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि सिद्धेश्वर लिंगकर अहै अमित माहात्म्य । इकसौ सत्तरि मे कह्यो सोइ चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अर्कस्थल से आग्नेयकोण में थोड़ेही दूर पै स्थित अतिउत्तम सिद्धेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ अट्ठासी हज़ार ऊर्द्धरेता ऋषिलोग उस लिंगमें प्रसिद्धहुये हैं इससे सिद्धे-

महीयते ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेअर्कस्थलमाहात्म्यन्नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सिद्धेश्वरमनुत्तमम् ॥ अर्कस्थलात्तथाग्नेय्यां नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ अष्टादशसहस्राणि ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ तस्मिँल्लिङ्गेप्रसिद्धानि सिद्धेश्वरमितिस्मृतम् ॥ २ ॥ स्नात्वार्चयेन्नरोभक्त्या चन्द्रवारेजितेन्द्रियः ॥ सम्पूज्यविधिवद्देवं दद्याद्विप्रेषुदक्षिणाम् ॥ ३ ॥ सर्वकामसमृद्धस्तु सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसिद्धेश्वरमाहात्म्यन्नामसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे लकुटेश्वरमूर्त्तिमान् ॥ स्वयन्तिष्ठतिदेवेशि कृत्वाघोरंतपःपुरा ॥ १ ॥ संस्थितः

श्वर ऐसा वह लिंग कहागया है ॥ २ ॥ हे देवि ! सोमवार में जितेन्द्रिय मनुष्य नहाकर और भलीभांति पूजकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देताहै ॥ ३ ॥ वह सब कामनाओं से समृद्ध होकर उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । अहैं प्रभासक्षेत्रमें लकुटेश्वर शिवनाम । इकसौ इकहत्तरे महँ सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि ! पुरातन समय भयंकर तपस्याकर मूर्त्ति-

मान् लकुटेश्वरजी आपही उसी के पूर्वदिशाके भाग में स्थित हैं ॥ १ ॥ पापनाशक उस स्थानमें स्थलके ऊपर वे भलीभांति स्थितहैं कृत्तिका नक्षत्रके योगमें कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो मनुष्य उनको पूजता है ॥ २ ॥ हे महादेवि ! वह सब सुरासुरों से भी पूजाजाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायालकुटेश्वरमाहात्म्यंनामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ❀ ॥ ⊛ ॥ ० ॥

दो० । अहैं प्रभासक्षेत्र में भार्गवेश शिवनाम । इकसौ बहतरिमें सोई वर्णित चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके दक्षिणमें स्थित

पापशमने तत्रस्थानेस्थलोपरि ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगे यस्तंपूजयतेनरः ॥ २ ॥ सपूज्यतेमहादेवि सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे लकुटेश्वरमाहात्म्यन्नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्माद्दक्षिणतःस्थितम् ॥ भार्गवेश्वरनामानं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यस्तंपूजयतेदेवि दिव्यपुष्पोपहारकैः ॥ सभवेत्कृतकृत्यस्तु सर्वकामैस्समृद्धिमान् ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभार्गवेश्वरमाहात्म्यन्नाम,द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ सिद्धेशाद्दक्षिणेभागे धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ १ ॥ माण्डव्येश्वरनामानं महापातकनाशनम् ॥ माघेमासिचतुर्दश्यां पूजांजागरणन्तथा ॥ २ ॥ कुर्याज्जितेन्द्रियोमर्त्यो न सम्मृत्योःपुरंव्रजेत ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाण्डव्येश्वरमाहात्म्यन्नामत्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

सब पापोंके नाशनेवाले भार्गवेश्वरनामक शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! जो उनको दिव्यपुष्पों के उपहारों से पूजताहै वह सब कामोंसे समृद्धिमान् होकर कृतकृत्य होता है ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभार्गवेश्वरमाहात्म्यंनामद्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

दो० । माण्डव्येश्वर लिंगको माण्डव्यो मुनिनाथ । थाप्यो इकसौ तिहतरे माहिं कथित सो गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सिद्धेशजीसे दक्षिणभाग में तीन धनुष पै स्थित पातकोंके विनाशक माण्डव्येश्वर नामक लिंगके समीप जावै जोकि महापातकों का विनाशक है माघमहीने में चौदसि तिथिमें पूजन

व जागरण को ॥ १ । २ ॥ जो जितेन्द्रिय मनुष्य करता है वह मृत्युके पुरको नहीं जाताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांमाण्डव्येश्वरमाहात्म्यंनामत्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । पुष्पदन्त ईश्वराहिं जिमि थाप्यो शिव गणपाल । इकसौ चौहत्तरे महँ सोई वर्णित हाल ॥ महादेवजी बोले कि हे शुभे ! वहीं पर स्थित पुष्पदन्तेश्वरनामक शिवजी को देखै पुष्पदन्तेश्वरनामक शिवजी के गणनायक थे ॥ १ ॥ उन्हों ने भयंकर तपकरके वहां लिंगको थापन किया है उनको देखकर प्राणी जन्मसंसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ २ ॥ और इसलोक व परलोकमें चाहेहुये कामोंको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा

ईश्वरउवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येत् पुष्पदन्तेश्वरंशुभे ॥ पुष्पदन्तेश्वरोनाम गणेशश्शङ्करस्यतु ॥ १ ॥ तेनतप्त्वातपोघोरं तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ तन्दृष्ट्वामुच्यतेजन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ २ ॥ प्राप्नुयादीप्सितान्कामानिहलोकेपरत्रच ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपुष्पदन्तेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुस्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि क्षेत्रपेश्वरमुत्तमम् ॥ सिद्धेश्वरसमीपस्थं पूर्वस्मिन्नातिदूरतः ॥ १ ॥ तन्दृष्ट्वाशुक्लपञ्चम्यां नचनागैस्सदश्यते ॥ पूजयेत्तंविधानेन गन्धपुष्पादिभिःक्रमात् ॥ २ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणाञ्छक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेक्षेत्रपालेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

टीकायांपुष्पदन्तेश्वरमाहात्म्यंनामचतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । क्षेत्रपेश शिवलिंग जिमि भयो भूमिविख्यात । इकसौ पचहत्तरे महँ सोई चरित सुहात ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर थोड़ेही दूर पै पूर्वओर सिद्धेश्वरजी के समीपमें स्थित उत्तम क्षेत्रपेश्वरजीके समीप जावै ॥ १ ॥ शुक्लपक्षकी पंचमी में उनको देखकर उस मनुष्य को सॉप नहीं काटते हैं उनको विधिपूर्वक क्रमसे गन्धपुष्पादिकों से पूजन करै ॥ २ ॥ और यथाशक्ति से अनेक भक्ष्यभोज्यों करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेत्रपालेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । अर्कस्थलके निकट है सुनन्दादि समुदाय । इकसौ छिहत्तरिमें सोई कथा कह्यो समुदाय ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! तदनन्तर नियतचित्तवाला पुरुष नवमी तिथि में जो मातृगणों को देखै वह दुष्टचित्तवाला भी पुरुष समृद्धि को प्राप्तहोता है ॥ १ ॥ वहां दक्षिण में थोड़ेही दूर पै अर्कस्थलके समीप स्थित सुनन्दादिक नामसे मातृगणोंके समीप जावै ॥ २ ॥ कुँवारके शुक्लपक्षमें नवमी तिथिमें जो नियतचित्त तथा शुद्धचित्तवाला पुरुष उन मातृकाओं को विधिसे पूजता है ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! दुष्टचित्तवाला भी वह पुरुष समृद्धिको प्राप्तहोता है व हे प्रिये ! वहींपर भलीभांति स्थित श्रीमुखविवर के समीप जावै ॥ ४ ॥ उसीदिन सिद्धि

ईश्वरउवाच ॥ ततोमातृगणान्पश्येन्नवम्यांनियतात्मवान् ॥ ससमृद्धिमवाप्नोति दुरात्मापिनरःप्रिये ॥ १ ॥ तत्रमातृगणान्पश्येत् सुनन्दादिकनामतः ॥ अर्कस्थलसमीपस्थान् दक्षिणेनातिदूरतः ॥ २ ॥ अश्वयुक्शुक्लपक्षेतु नवम्यांनियतात्मवान् ॥ यस्ताःपूजयतेमातॄन् विधिनाभावितात्मवान् ॥ ३ ॥ ससमृद्धिमवाप्नोति दुरात्मापिनरःप्रिये ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येच्छ्रीमुखंविवरंप्रिये ॥ ४ ॥ तस्मिन्नेवदिनेपूज्यं सिद्धिकामैर्नरैस्सदा ॥ एतत्सर्वंमयाख्यातं सारंतीर्थमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सुनन्दामाहात्म्यन्नामषट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः १७६॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मिश्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ सरस्वतीहिरण्याच समुद्रश्चैवभामिनि ॥ त्रयाणांसङ्गमोयत्र दुष्प्राप्योदैवतैरपि ॥ १ ॥ सर्वेषांतत्रतोयानां प्राधान्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ सूर्यपर्वणिसम्प्राप्ते कुरुक्षेत्राद्विशिष्य

के कामनावाले पुरुषों, से वह सदैव पूजने योग्य है मैंने इस सब अतिउत्तम सारांशरूप तीर्थको कहा ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसुनन्दादिमातृगणमाहात्म्यंनामषट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अति उत्तम माहात्म्ययुत तीर्थ त्रिसंगम नाम । इकसौ सतहत्तरे महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! अतिउत्तम मिश्रतीर्थके समीप जावै हे भामिनि ! जहां सरस्वती, हिरण्या व समुद्रहै वहां तीनों का संगम देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ १ ॥ वहां सब जलोंके मध्यमें उत्तम व प्रधान तीर्थ है

शाके भागमें गौरीरूप में स्थित अविनाशिनी देवमाता के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! वे लोकों में देवमाता ऐसी गानं की जाती हैं वहा जो सरस्वती देवी प्रभासक्षेत्रमें स्थित हैं ॥ २ ॥ वे वहां वड़वानल में शरीरको प्राप्तकर गौरीके रूपसे वड़वानलके डरसे देवताओं की माताकी नाई रक्षाकरती हैं ॥ ३ ॥ इसलिये इसलोकमें वे देवमाता ऐसी कीगईं माघमहीने में तीज तिथि में जो मनुष्य उनको पूजता है ॥ ४ ॥ अथवा स्थिर चित्तवाली जो पतिव्रता स्त्री उनको पूजती है वह सब कामनाओं को प्राप्तहोती है और जो पुरुष शर्करादिक व खीरसे स्त्री पुरुषों को भोजन कराता है ॥ ५ ॥ वह दिये हुये हज़ार गौरीभोज के फलको प्राप्तहोताहै और

मातामहादेवि इतिलोकेषुगीयते ॥ प्रभासक्षेत्रसंस्थाच तत्रदेवीसरस्वती ॥ २ ॥ गौरीरूपेणसातत्र वडवाश्रितविग्रहा ॥ मातृवद्रक्षतेदेवान् वडवानलभीतितः ॥ ३ ॥ देवमातेतिलोकेस्मिंस्ततस्साविबुधैःकृता ॥ माघेमासितृतीयायां यस्तांपूजयतेनरः ॥ ४ ॥ नारीवासंयतासाध्वी सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ दम्पतीभोजयेद्यस्तु पायसैश्शर्करादिभिः ॥ ५ ॥ गौरीसहस्रभोजस्य दत्तस्यफलमाप्नुयात् ॥ सुवर्णपादुकादेया तत्रविप्रायशीलिने ॥ ६ ॥ रक्तवस्त्राणिदेयानि ताम्रकुम्भंतथैवच ॥ एवंतस्यभवेद्यात्रा परिपूर्णावरानने ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवमातृगौरीमाहात्म्यन्नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नागस्थानमनुत्तमम् ॥ मङ्कीशात्पश्चिमेभागे सङ्गमत्रितयंगतम् ॥ १ ॥ पापघ्नंसर्वजन्तूनां पातालविवरंमहत् ॥ बलभद्रःपुरादेवि श्रुत्वाकृष्णस्यपञ्चताम् ॥ २ ॥ भल्लतीर्थेनगत्वासौ ततःप्राभास

वहां शीलवान् ब्राह्मणके लिये सुवर्णकी खड़ाऊं देनाचाहिये ॥ ६ ॥ व हे वरानने ! लाल वसन व तांबे का घडा देनाचाहिये इसप्रकार उसकी यात्रा परिपूर्ण होती है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवमातृगौरीमाहात्म्यंनामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ ⊛ ॥

दो॰ । है अत्यन्त माहात्म्ययुत तीरथ नाग स्थान । इकसौ अस्सी में कियो सोई चरित बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अतिउत्तम नाग स्थान के समीप जावै मंकीश से पश्चिमभागमें तीनों संगमों में प्राप्त ॥ १ ॥ बड़ाभारी पातालका गढ़ा सब जन्तुवोंके पातकों का विनाशक है हे देवि ! पुरातन स-

मय बलभद्रजी कृष्णजीका मरण सुनकर ॥ २ ॥ भल्लतीर्थसे जाकर तदनन्तर ये प्रभासक्षेत्रको आये और बड़े पवित्र क्षेत्रको सब प्रयोजनोंका सिद्धिदायक जानकर ॥ ३ ॥ यादवोंका क्षय देखकर तदनन्तर वैराग्यको प्राप्तहुये तदनन्तर नगरार्कके पूर्व ओर मित्रवन में स्थित होकर ॥ ४ ॥ योगवान् बलभद्रजी ने सात धनुप पै बैठकर प्राणोंको त्यागकिया और शरीर से शेषनाग के स्वरूप से निकलकर ॥५॥ उससमय चलते चलतेहुये उन्होंने त्रिसंगम नामक उत्तम तीर्थको पाया तब विवर रूपी पाताल के द्वारको देखकर ॥ ६ ॥ पैठकर शीघ्रही वहां गये जहा कि आपही अनन्तजी स्थित थे जिसलिये इस स्थान में नागस्वरूप से पैठे हैं ॥ ७ ॥ उसीका-

मागतः ॥ क्षेत्रंमहापुण्यतमं ज्ञात्वासर्वार्थसिद्धिदम् ॥ ३ ॥ यादवानांक्षयंदृष्ट्वा ततोवैराग्यमाप्तवान् ॥ ततोमित्रवने स्थित्वा नगरार्कस्यपूर्वतः ॥ ४ ॥ धनुषांसप्तकेस्थित्वा प्राणांस्तत्याजयोगवान् ॥ शेषनागस्वरूपेण निष्क्रम्यतुशरीरतः ॥ ५ ॥ गच्छन्गच्छंस्तदाप्राप तीर्थंत्रैसङ्गमंपरम् ॥ पातलस्यतदादृष्ट्वा द्वारंविवररूपिणम् ॥ ६ ॥ प्रविष्टोथजगामाशु यत्रानन्तस्स्वयंस्थितः ॥ यतोनागस्वरूपेण स्थानेस्मिंश्चसमाविशत ॥ ७ ॥ तत्प्रभृत्येवदेवेशि नागस्थानमितिश्रुतम् ॥ नगरादित्यपूर्वेण यत्रकायोविसर्जितः ॥८॥ तदद्यापिप्रसिद्धंहि शेषस्थानमितिश्रुतम् ॥ अथस्नात्वामहादेवि तत्रतीर्थेत्रिसङ्गमे ॥ ९ ॥ नागस्थानंसमभ्यर्च्य पञ्चम्यामव्रताशनः ॥ श्राद्धंकृत्वायथाशक्त्या दत्त्वाविप्रायदक्षिणाम् ॥ १० ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकंसगच्छति ॥ पायसंमधुसंमिश्रं भक्ष्यभोज्यैस्समन्वितम् ॥ ११ ॥ शेषनागं

रण हे देवेशि ! तबसे लगाकर वह नागस्थान ऐसा प्रसिद्धहुआ नगरादित्यके पूर्व ओर जहां बलभद्रजीने शरीरको छोड़ाहै ॥ ८ ॥ वह शेषस्थान ऐसा विख्यात आज भी प्रसिद्ध है इसके अनन्तर हे महादेवि ! उस त्रिसंगम तीर्थ में नहाकर ॥ ९ ॥ पंचमी तिथिमें विन भोजन कियेहुये पुरुष नागस्थानको भलीभांति पूजकर श्राद्ध करके यथाशक्ति ब्राह्मणके लिये दक्षिणादेकर ॥ १० ॥ सब पापोंसे छूटकर वह मनुष्य शिवलोकको जाताहै और शहदसे मिश्रित व भक्ष्यभोज्यसे संयुत खीरको ॥ ११ ॥

जो शेषनागको उद्देश कर वहां ब्राह्मणों को भोजन कराता है उसने कोटि भोजकिया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनागस्थानमाहात्म्यंनामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्र में तीरथ आदि प्रभास । इकसौ इक्यासिवें महँ सोई चरित प्रकास ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहांपै स्थित पुण्यस्वरूप व सब कामनाओं तथा शुभ को देनेवाले आदिप्रभासपंचक क्षेत्रको जावै ॥ १ ॥ उसी के पश्चिमभाग में प्रभासक्षेत्र कहा जाता है तदनन्तर उसके दक्षिण

समुद्दिश्य विप्रंयस्तत्रभोजयेत् ॥ कोटिभोजंकृतन्तेन भवत्यत्रनसंशयः ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे नागस्थानमाहात्म्यन्नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सर्वकामशुभप्रदम् ॥ प्रभासपञ्चकंपुण्यमाद्यंतत्रव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ तस्यैव पश्चिमेभागे प्रभासक्षेत्रउच्यते ॥ जलप्रभासस्तुततस्तस्यदक्षिणमास्थितः ॥ २ ॥ महाप्रभासश्चततो दक्षिणेचवरानने ॥ कृतस्मरःप्रभासश्च श्मशानंयत्रभैरवम् ॥ ३ ॥ एवंपञ्चप्रभासान्यः पश्येद्भक्त्यासमन्वितः ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्ज्जितम् ॥ ४ ॥ ननिवर्त्ततियत्प्राप्य दुष्प्राप्यंत्रिदशैरपि ॥ प्रभासंप्रथमंतीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ ५ ॥ देवानामपिदुष्प्राप्यं महापातकनाशनम् ॥ प्रभासेत्वेकरात्रेण अमावस्यांकृतव्रतः ॥ ६ ॥ मुच्यतेपातकैस्सर्वैः शिवलोकंचगच्छति ॥ सप्तजन्मकृतंपापं स्नात्वानश्यतिपुष्करे ॥ ७ ॥ सप्तजन्मकृतंपापं गङ्गासागरसङ्गमे ॥ जन्म

में जलप्रभास स्थित है ॥ २ ॥ हे वरानने ! उसके दक्षिण में महाप्रभास है और कृतस्मर, प्रभास व जहां श्मशान भैरव हैं ॥ ३ ॥ इसप्रकार भक्तिसे संयुत जो मनुष्य पांच प्रभासों को देखताहै वह वृद्धता व मृत्युसे रहित उत्तम स्थानको प्राप्त होता ॥ ४ ॥ और देवताओंको भी दुर्लभ जिस स्थानको प्राप्तहोकर नहीं लौटताहै आदिप्रभास तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ और देवताओं को भी दुर्लभ वह महापातकों को नाशनेवाला है और प्रभासमे अमावस तिथि में एक रात्रिसे व्रत करनेवाला मनुष्य ॥ ६ ॥ सब पापोंसे छूटजाताहै और शिवलोकको जाता है व पुष्करमें नहाकर सात जन्मोंमें कियाहुआ पाप नाशहोजाताहै ॥ ७ ॥ और गंगा व सागर

के संगममें स्नान करने से सातजन्मों में कियाहुआ पाप नाश होजाताहै और हज़ार जन्मोंमें मनुष्य जिस पापको करता है ॥ ८ ॥ वह क्षारसमुद्र में स्नानहीसे नाश होजाताहै ॥ ९ ॥ और चौदसि, अमावस व विशेषकर पौर्णमासी तिथि में दिन रात उपासकर शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर ॥ १० ॥ शिवजी प्रसन्न होवैं इसलिये उनके लिये गऊ व सुवर्णको देकर हे महादेवि ! ऐसा करके सौ कुलोंको उधारता है ॥ ११ ॥ देवीजी बोलीं कि जो तुमने पाच प्रभासों को कहा वे यहां कैसे उत्पन्नहुये हैं यह मुझको बड़ाभारी कौतुक है ॥१२॥ हे देवेश ! मैंने तीर्थवासियों के एकही प्रभासको सुना है और जो तुमने पाच

नाब्दसहस्रेण यत्पापंकुरुतेनरः ॥ ८॥ स्नानमात्रेणनश्येतसागरेलवणाम्भसि ॥ ९॥ चतुर्दश्याममावास्यां पञ्चदश्यांविशेषतः ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा ब्राह्मणान्भोज्यशक्तितः ॥ १० ॥ दत्त्वागांकाञ्चनंतेभ्यः शिवःप्रीतोभवत्विति ॥ एवंकृत्वामहादेवि कुलानांशतमुद्धरेत ॥ ११ ॥ देव्युवाच ॥ प्रभासपञ्चकंह्येतद्यत्त्वयापरिकीर्त्तितम् ॥ कथमत्र समुद्भूतमेतन्मेकौतुकंमहत् ॥ १२ ॥ एकएवश्रुतोस्माभिः प्रभासस्तीर्थवासिनाम् ॥ प्रभासाःपञ्चदेवेश यत्त्वयापरिकीर्तिताः ॥ १३ ॥ एतन्मेसंशयंसर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ १४ ॥ पुरामहेश्वरोदेवि चचारवसुधामिमाम् ॥ दिव्यरूपधरःकान्तो दिग्वासाश्चयदृच्छया ॥ १५ ॥ सएवंचरमाणस्तु ऋषीणामाश्रमंमहत् ॥ जगामकौतुकाविष्टो भिक्षार्थंदारुकेवने ॥ १६ ॥ भ्रममाणस्यतस्याथ दृष्ट्वारूपमनुत्तमम् ॥ तानार्यःकामसन्तप्ता बभूवुर्व्यथितेन्द्रियाः ॥ १७ ॥ सानुरागास्ततस्सर्वा अनुगच्छन्तिताःस्तदा ॥ समालिङ्गति

प्रभासोंको कहा ॥ १३॥ इस मेरे सन्देहको तुम यथायोग्य कहनेके योग्यहो महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं पातकोंको नाशकरनेवाली कथाको कहताहूं ॥१४॥ हे देवि ! पुरातन समय दिव्यरूपको धारणकर नंगेहोकर सुन्दर महेश्वरजी इस पृथ्वी में अपनी इच्छा से घूमतेभये ॥ १५ ॥ और इसप्रकार घूमतेहुये वे विस्मय से संयुत होकर भिक्षाके लिये दारुकवनमें ऋषियोंके बड़ेभारी आश्रमको गये ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर घूमतेहुये उनके अतिउत्तमरूपको देखकर कामदेवसे संतप्तहोती

हुई वे स्त्रियां इन्द्रियों से व्याकुल हुई ॥ १७ ॥ तदनन्तर उस समय अनुरागसमेत वे सब पीछे चलीं और वहां कोई लिपटने लगी व कोई स्नेह से देखनेलगीं ॥ १८ ॥ वैसेही अन्य स्त्रियां अपने घरोंको छोड़कर प्रार्थना करनेलगीं इसप्रकार उनके स्वरूपको देखकर वे सब महर्षिलोग ॥ १९ ॥ कोपसे संयुत होकर उन शिव जी को शाप देतेभये कि जिसलिये तुम नग्नताको प्राप्तहोकर इस आश्रममें आये ॥ २० ॥ और हमलोगोंकी स्त्रियों को मोहित करतेहुये तुम लज्जा नहीं करते हो इसकारण कियेहुये अपराधवाले तुम्हारा लिंग शीघ्रही गिरपड़ै ॥ २१ ॥ तदनन्तर उसी क्षण वह शिवजी का लिंग गिरपड़ा और पृथ्वीमें उस लिंगके गिरनेपर पृथ्वी

तत्रैका काश्चिद्दीक्षान्तिरागतः ॥ १८ ॥ प्रार्थयन्तितथैवान्याःपरित्यज्यगृहान्स्वकान् ॥ एवन्तासांस्वरूपन्ते दृष्ट्वासर्वे महर्षयः ॥ १९ ॥ कोपेनमहतायुक्ताः शेपुस्तंवृषभध्वजम् ॥ यस्मात्त्वन्नग्नतामेत्य आश्रमेस्मिन्समागतः ॥ २० ॥ मोहयंश्चस्त्रियोस्माकं लज्जान्नैवकरोषिच ॥ तस्मात्तेपतताल्लिङ्गं सद्यएवकृतागसः ॥ २१ ॥ ततस्तत्पतितंलिङ्गं तत्क्षणे शङ्करस्यच ॥ तस्मिन्प्रपतितेभूमौ कम्पिताचवसुन्धरा ॥ २२ ॥ क्षुभितास्सागरास्सर्वे मर्यादांविजहुस्तदा ॥ शीर्णानिगिरिश्शृङ्गाणि त्रस्तास्सर्वेदिवौकसः ॥ २३ ॥ ततोदेवास्सगन्धर्वास्समहोरगकिन्नराः ॥ जग्मुःपितामहंप्रोचुः किमेतत्कारणंविभो ॥ २४ ॥ सागराःक्षोभितायेन प्लावयन्तिवसुन्धराम् ॥ शीर्यन्तेगिरिश्शृङ्गाणि कम्पतेचवसुन्धरा ॥ २५ ॥ चिह्नानिलोकनाशाय दृश्यन्तेदारुणानिच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २६ ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालं

कांप उठी ॥ २२ ॥ व उस समय क्षोभित होतेहुये सब समुद्रोंने सीमाको छोडदिया और पर्वतोंके शिखर टूटगये व सब देवता डरगये।२३॥तदनन्तर नागों व किन्नरों समेत तथा गन्धर्वोंसहित देवता ब्रह्माके समीप गये और बोले कि हे विभो ! यह क्या कारण है ॥२४॥ कि जिससे समुद्र क्षोभित होकर पृथ्वीको डुबाते हैं और पर्वतों के शिखर टूटते हैं व पृथ्वी कांपती है ॥ २५ ॥ और लोकोंके नाशके लिये भयंकर चिह्न देखपड़ते हैं उनके उस वचनको सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ॥ २६ ॥

बहुत समय तक ध्यानकर यह वचन बोले कि हे सुरोत्तमो ! भृगुवंशी मुख्य ऋषियों के शाप से पृथ्वी में शिवजी का लिंग गिराहै उसके गिरने पर चराचर समेत यह संसार ॥ २७ । २८ ॥ अस्वस्थता को प्राप्त है इसलिये हे देवताओ ! विष्णुसमेत तबतक वहीं जाइये कि जबतक प्रलय न होवै और शिवजीके लिंगको लेकर अपने स्थान में स्थापित कीजिये ॥ २९ । ३० ॥ तदनन्तर ब्रह्मादिक देवता क्षीरसमुद्रको गये जहां कि योगनिद्राके वशमें प्राप्त चतुर्भुज (विष्णु) जी सोरहे थे ॥ ३१ ॥ उनसे वे सब वृत्तान्तको कहतेभये उसके उपरान्त उन्हीं समेत वहा गये जहा कि लिंगसे रहित विभु महादेवजी थे ॥ ३२ ॥ सब देवताओं ने साथही

शापाच्चऋषिमुख्यानां भार्गवाणांमहात्मना वाक्यमेतदुवाचह ॥ शिवलिङ्गंनिपतितं पृथिव्यांसुरसत्तमाः ॥ २७ ॥ तस्मिन्निपतितेभूमौ त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ २८ ॥ एतदस्वस्थतांप्राप्तं तस्मात्तत्रैवगम्यताम् ॥ विष्णुनासहगीर्वाणा यावन्नप्रलयोभवेत् ॥ २९ ॥ तथादायहरंलिङ्गं स्थापयतस्थलेनिजे ॥ ३० ॥ ततःक्षीरोदधिंजग्मुर्ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ यत्रशेतेचतुर्बाहुर्योगनिद्रावशङ्गतः ॥ ३१ ॥ तस्यसर्वंसमाचख्युस्तेनैवसहितास्ततः ॥ जग्मुर्यत्रमहादेवो लिङ्गेनरहितोविभुः ॥ ३२ ॥ तमूचुस्सहितास्सर्वे प्रणिपत्यदिवौकसः ॥ लिङ्गंप्रक्षिप्यतामेतद्यतक्षितौपतितंविभो ॥ ३३ ॥ यतोमहार्णवास्सर्वे प्लावयन्तिवसुन्धराम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ऋषिभिःपातितंह्येतन्ममलिङ्गंसुरेश्वराः ॥ ३४ ॥ ननुशक्योमयाकर्तुंमोघस्तेषांमहात्मनाम् ॥ शापोहिभार्गवेन्द्राणां मतोमेश्रूयतांवचः ॥ ३५ ॥ पूजयन्तुसुरास्सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ ३६ ॥ लिङ्गमेतत्ततस्सर्वे सर्वंलप्स्यथसत्तमाः ॥ प्रशान्तिंसागरास्सर्वे यास्यन्तिगिरयस्तथा ॥ ३७ ॥ ततश्चैवसुरास्सर्वेप्रभासक्षेत्रमागताः ॥ तत्रैवनिदधुर्लिङ्गं ततःपूजांप्रचक्रिरे ॥ ब्रह्मणापूजितंलिङ्गं विष्णुनाप्र

उनको प्रणाम कर कहा कि हे विभो ! इस लिंगको फेंक दीजिये जोकि पृथ्वी में गिरा है ॥ ३३ ॥ क्योंकि सब महासागर पृथ्वी को डुबाते हैं श्रीभगवान् शिवजी बोले कि हे सुरेश्वरो ! मेरे इसलिंगको ऋषियों ने गिराया है ॥ ३४ ॥ उन भार्गवेन्द्र महात्माओंका शाप मुझसे व्यर्थ नहीं कियाजासक्ता है इसलिये मेरे वचनको सुनिये ॥ ३५ ॥ कि ब्रह्मा व विष्णु आदिक सब देवता इस लिंगको पूजैं तदनन्तर हे सत्तमो ! तुम सब समस्त मनोरथको पावोगे और सब समुद्र व पर्वत प्रवृत्ति

(स्वस्थता) को प्राप्तहोवैंगे ॥३६।३७॥ तदनन्तर सब देवता प्रभासक्षेत्रको आये और वहाँ उन्होंनें लिंगको स्थापन किया तदनन्तर पूजनकिया और ब्रह्मा तथा समर्थ-वान् विष्णुजीने लिंगको पूजा ॥३८॥ और इन्द्र, कुवेर, यमराज व वरुणजीने पूजा तदनन्तर लिंगको भक्तिमे पूजकर देवता बोले ॥३९॥ कि आजसे लगाकर शिवजी का लिंग पूजकर हमलोग निस्सन्देह पूजित होवैंगे और जो पितरगणहैं वे पूजित होवैंगे॥४०॥ और जो भक्तिसे संयुत मनुष्य इसलिंगको पूजैंगे वे उत्तम मनुष्य शरीर समेत देवताओंके स्थानको जावैंगे ॥४१॥ जिसलिये हमलोगोंने यहींपर प्रथम लिंगको थापन कियाहै इस कारण इसका भी प्रथमप्रभास ऐसा नाम होगा ॥४२॥ ऐसा

भविष्णुना ॥ ३८ ॥ शक्रेणाथकुबेरेण यमेनवरुणेनच ॥ ऊचुश्चैवन्ततोदेवा लिङ्गंसम्पूज्यभक्तितः ॥ ३९ ॥ अद्यप्रभृतिरुद्रस्य लिङ्गंपूज्यचपूजिताः ॥ भविष्यामोनसन्देहस्तथापितृगणाश्चये ॥ ४० ॥ यएतत्पूजयिष्यन्ति भक्तियुक्तास्तुमानवाः ॥ तेयास्यन्तिसुरावासं सशरीरन्नरोत्तमाः ॥ ४१ ॥ अत्रैवप्रथमंलिङ्गं यतोस्माभिःप्रतिष्ठितम् ॥ प्रथमं नामचास्यापि प्रभासेतिभविष्यति ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वागतास्सर्वे त्रिदिवंसुरसत्तमाः ॥ तद्दृष्ट्वात्रिदिवंयान्ति भूयांसःप्राणिनोभुवि ॥ ४३ ॥ ततस्त्रिविष्टपेव्याप्ते बहुभिःप्राणिभिःप्रिये ॥ तन्दृष्ट्वाप्रार्थयामास सहस्राक्षस्सुदुःखितः ॥४४॥ ज्ञात्वालिङ्गप्रभावञ्च ततश्चागत्यभूतलम् ॥ वज्रेणाच्छादयामास समंतात्तद्वरानने ॥ ४५ ॥ ततःप्रभृतिनोदेवि स्वर्गं गच्छन्तिमानवाः ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं प्रभासस्यमहोदयम् ॥४६॥ श्रुतंपापौघशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥४७॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे आदिप्रभासक्षेत्रमाहात्म्यन्नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥ * ॥

कहकर सब देवता स्वर्गको चलेगये पृथ्वीमें उस लिंगको देखकर बहुतसे मनुष्य स्वर्गको जातेथे ॥४३॥ तदनन्तर हे प्रिये ! बहुतप्राणियोंसे स्वर्ग व्याप्त होनेपर उसको देखकर बहुत दुःखित होतेहुये इन्द्रजी ने प्रार्थना किया ॥ ४४ ॥ व हे वरानने ! लिंगके प्रभावको जानकर तदनन्तर पृथ्वी में आकर सबओर से उस लिंगको वज्रसे आच्छादन किया ॥ ४५ ॥ तबसे लगाकर हे देवि ! मनुष्य स्वर्गको नहीं जाते हैं यह प्रभासका माहात्म्य संक्षेप से कहागया ॥ ४६ ॥ सुनाहुआ जोकि पापसमूहों का नाशक व सब कामनाओंके फलको देनेवालाहै॥ ४७ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायामादिप्रभासक्षेत्रमाहात्म्यंनामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

दो० । अहैं प्रभासक्षेत्र में रुद्रेश्वर शिवनाम । इकसौ बैयासिवेंमें सोई चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हेमहादेवि ! तदनन्तर उसीस्थानमें स्थित रुद्रेश्वर ऐसे नामक पृथ्वी में आपही से उपजेहुये शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ वह लिंग आदिप्रभासके आगे तीन धनुष पै स्थित है वहां शिवजी ने ध्यान में स्थितहोकर अपने तेजको युक्त किया है ॥ २ ॥ उसीकारण समस्तपातकों का नाशक रुद्रेश्वरनामक लिंग है उसको देखकर व पूजकर मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुद्रेश्वरमाहात्म्यंनामद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥ ❀ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रस्थानेतुसंस्थितम् ॥ रुद्रेश्वरेतिनामानं स्वयम्भूतंधरातले ॥ १ ॥ आदिप्रभासात्पुरतो धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ रुद्रेणध्यानमास्थाय स्वतेजस्तत्रयोजितम् ॥ २ ॥ ततोरुद्रेश्वरन्नाम सर्वपातकनाशनम् ॥ तन्दृष्ट्वापूजयित्वाच सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे रुद्रेश्वरमाहात्म्यन्नामद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थिता ॥ चन्द्रिकाकर्णमोटीच योगिनीकोटिसंवृता ॥ १ ॥ अत्र पीठंमहादेवि आद्यंत्रैलोक्यवन्दितम् ॥ नवम्यांतत्रसम्पूज्य देवीपीठञ्चयोगिनीम् ॥ २ ॥ ससर्वान्प्राप्नुयात्कामान् गच्छेत्स्वर्गमतःपरम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेचन्द्रिकाकर्णमोटीमाहात्म्यन्नामत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा चन्द्रिकाकर्ण अरु मोटिनाम इमि देवि । इकसौ तिरासिवें में सोइ चरित सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि उसीके पश्चिमभागमें थोड़ेही दूर पै करोड़ योगिनियों से घिरीहुई चन्द्रिकाकर्णमोटी है ॥ १ ॥ हे महादेवि ! यहांपर त्रिलोकसे प्रणाम कियाहुआ आदिपीठ है वहा नवमी तिथि में देवीपीठ व योगिनीजी को पूजकर ॥ २ ॥ वह मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्तहोताहै और उसके उपरान्त स्वर्गको जाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचन्द्रिकाकर्णमोटीमाहात्म्यंनामत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्रमें लिंग मुक्तिदातार । इकसौ चौरासिवें महँ सोई चरित उदार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहांपर प्रभासक्षेत्रमें नैर्ऋत्य दिशाके भाग में थोड़ेही दूर पै स्थित मुक्तिदायक शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! विशेष कर माघमहीने में एकादशी तिथि में आहारको जीतेहुये जो पुरुष उन शिवजी को पूजताहै वह अग्निष्टोमयज्ञ के फलको पाताहै ॥ २ ॥ जो पुरुष वहां चान्द्रायणादिक अनशनव्रतको करताहै वह अन्यतीर्थ से कोटिगुने चाहे-हुये फलको पाताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमोक्षस्वामिमाहात्म्यंनामचतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रमुक्तिप्रदंहरम् ॥ प्रभासेनैर्ऋतेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ एकादश्यांजिताहारो यस्तंदेविप्रपूजयेत् ॥ माघेमासिविशेषेण सोग्निष्टोमफलंलभेत ॥ २ ॥ यस्तत्रानशनंकुर्याद् व्रतंचान्द्रायणादिकम् ॥ सोन्यतीर्थात्कोटिगुणं प्राप्नुतात्फलमीप्सितम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे मोक्षस्वामिमाहात्म्यन्नामचतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अजीगर्तेश्वरंहरम् ॥ चन्द्रवापीसमीपस्थं कर्णमोटीसमीपतः ॥ १ ॥ तस्यां स्नात्वामहादेवि यस्तल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ समुक्तःपातकैर्घोरैर्गच्छेद्देवपदंमहत् ॥ २॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽजीगर्तेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विश्वकर्मप्रतिष्ठितम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि मोक्षस्वामिनउत्तरे ॥ १ ॥ धनुषां

दो० । अहैं अमित परभावयुत अजीगर्त शिवदेव । इकसौ पचासिवें में सोइ चरित सुखसेव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर कर्णमोटी के समीप चन्द्रवापी के निकट स्थित अजीगर्तेश्वर शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ उस बावलीमें नहाकर जो मनुष्य उस लिंगको पूजता है वह घोर पातकोंसे छूटकर बडेभारी देवस्थान को जाताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायामजीगर्तेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ ⊛ ॥

दो० । विश्वकर्म ईश्वरहिं जिमि थाप्यो है सुरकारु । कह्यो एकसौ छियासिनें माहिं चरित सो चारु ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मोक्षस्वामी

के उत्तर में पांच धनुष पै स्थित विश्वकर्माजी से थापेहुये महाप्रभाववाले लिंग के समीप जावै हे देवि ! पातकों को नाशकरनेवाले उन शिवजीको देखकर मनुष्य भलीभांति यात्राके फलको पाताहै ॥ २ ॥ और उसके दर्शनसे वाचिक व मानसी पाप नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाविश्वकर्मेश्वरमाहात्म्यंनामषडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । थप्यो यमेश्वरलिंग जिमि यथा देव यमराज । इकसौ सत्तासिवें में सोइ चरित सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके दक्षिण-

पञ्चकेदेवि स्थितंपातकनाशनम् ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि यात्रायाःफलमाप्नुयात् ॥ २ ॥ वाचिकंमानसंपापं दर्शनात्तस्य नश्यति ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे विश्वकर्मेश्वरमाहात्म्यन्नामषडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यमेश्वरमनुत्तमम् ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ दर्शनात्पापशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेयमेश्वरमाहात्म्यन्नामसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंदेवैःप्रतिष्ठितम् ॥ ज्ञात्वाप्रभावंक्षेत्रस्य सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ ततःकृत्वातपश्चोग्रं लिङ्गंदेवैःप्रतिष्ठितम् ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि कृतकृत्यःप्रजायते ॥ २ ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु ब्राह्मणेवेदपारगे ॥

भाग में थोड़ेही दूर पै स्थित अतिउत्तम यमेश्वरलिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि दर्शनही से पातकोंका विनाशक व सब कामनाओं के फलोंको देनेवालाहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयमेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ ⊛ ॥

दो० । थाप्यो सब देवन यथा लिंग सुरेश्वर नाम । इकसौ अट्ठासिवें महँ सोइचरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर देवताओंसे थापेहुये लिंगके समीप जावै समस्त पातकों को नाशनेवाले क्षेत्रके प्रभावको जानकर ॥ १ ॥ तदनन्तर उग्र तपस्या कर देवताओंने लिंगको थापा है हे देवि ! उन शिवजीको

देखकर मनुष्य कृतकृत्य होताहै ॥ २ ॥ वहां पर वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये गोदान देना चाहिये हे देवि ! जो ऐसा करता है वह यात्राके बढ़ेहुये फलको पाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसुरेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्रकर वृद्ध प्रभासक नाम । इकसौ नव्वासिवें में सोई चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर नियतचित्तवाला पुरुष वृद्धप्रभास को जावै आदि प्रभाससे दक्षिणमें थोड़ेही दूर पै स्थित ॥ १ ॥ चतुर्मुख महालिंग दर्शनसे पातकों की नाश करता है ॥ २ ॥ देवीजी बोलीं कि हे प्रभो ! उसका वृद्ध-

समभ्यगलभतेदेवि यात्रायाःफलमूर्जितम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सुरेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोवृद्धप्रभासन्तु गच्छेच्चनियतात्मवान् ॥ आदिप्रभासाद्दक्षिणतो नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ चतुर्मुखंमहालिङ्गं दर्शनात्पापनाशनम् ॥ २ ॥ देव्युवाच ॥ कथंवृद्धप्रभासेति नामतस्याभवत्प्रभो ॥ तस्मिन्दृष्टेफलं किंस्यात् तस्मिन्सम्पूजितेतथा ॥ ३ ॥ एतत्कथयमेदेव संक्षेपान्नातिविस्तरात् ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ आदौस्वायंभुवे देवि पूर्वमन्वन्तरेपुरा ॥ त्रेतायुगेचतुर्थेतु प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ ५ ॥ तस्मिन्कालेमहादेवि ऋषयस्तत्रसङ्गताः ॥ दर्शनार्थंप्रभासस्य उत्तरापथगामिनः ॥ ६ ॥ तन्दृष्ट्वाच्छादितंलिङ्गं वज्रेणतुमहेश्वरि ॥ विषादंपरमंजग्मुर्वाक्यंचेदमथाब्रुवन् ॥ ७ ॥ अदृष्ट्वाशाङ्करंलिङ्गं नयास्यामोवयंगृहम् ॥ स्वर्गार्थिनोवयंप्राप्ता महदध्वानमेवहि ॥ ८ ॥ तस्मादत्रैव

प्रभास ऐसा नाम कैसे हुआ और उसके देखने व उसके पूजनेपर क्या फल होताहै ॥ ३ ॥ हे देवेश ! इसको मुझसे संक्षेप से कहिये अतिविस्तारसे न कहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पुरातन समय पहले स्वायंभुवमन्वन्तर में चौथे त्रेतायुग में उत्तम प्रभासक्षेत्रमें ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! उससमय उत्तरापथगामी ऋषिलोग प्रभासक्षेत्रके दर्शनके लिये वहां आये ॥ ६ ॥ व हे महेश्वरि ! वज्रसे आच्छादित उस लिंगको देखकर बड़े विषादको प्राप्तहुये और यह वचन बोले ॥ ७ ॥ कि हम-लोग शिवजी के लिंगको न देखकर घरको न जावैंगे क्योंकि स्वर्गको चाहनेवाले हमलोग बडेमार्गको चलकर प्राप्तहुये हैं ॥ ८ ॥ इसलिये तबतक यहीं टिकैंगे कि

जबतक लिंगका दर्शन होगा इसप्रकार निश्चय कर वे उग्र तपस्यामें स्थितहुये ॥ ९ ॥ कि वर्षाऋतु में आकाशगामी होकर हेमन्त में जल के आश्रय रहे और नियत व ब्रह्मचारी होकर वे बहुत वर्षगणोंतक ग्रीष्म ऋतुमें पंचाग्निसाधक हुये तब वे ब्राह्मण वृद्धतासे ग्रस्तहुये हे वरवर्णिनि ! इसप्रकार जब वे वृद्धत्वको प्राप्तहुये ॥ १० । ११ ॥ तब महात्मा शंकरजी से वे वरदानों करके लोभित करायेगये और उन्हों ने लिंगका दर्शन छोड़कर अन्य वरदानको नहीं मांगा ॥ १२ ॥ उन सबोंके निश्चयको जानकर दयामें तत्पर होकर शिवजी ने उनको अपने लिंगको दिखाया ॥ १३ ॥ हे वरवर्णिनि ! इसीसमय में अचानकही पृथ्वीको फोड़कर वही लिंग

तिष्ठामो यावल्लिङ्गस्यदर्शनम् ॥ एवन्तेनिश्चयंकृत्वा उग्रेतपसिसंस्थिताः ॥ ९ ॥ वर्षास्वाकाशगाभूत्वा हेमन्तेसलिलाश्रयाः ॥ पञ्चाग्निसाधकाग्रीष्मे नियताब्रह्मचारिणः ॥ १० ॥ बहून्वर्षगणान्विप्रा जराग्रस्तास्तदाभवन् ॥ एवंवृद्धत्वमापन्ना यदातेवरवर्णिनि ॥ ११ ॥ लोभ्यमानावरैस्तेतु शङ्करेणमहात्मना ॥ लिङ्गस्यदर्शनंमुक्त्वा नतेन्यंवव्रिरेवरम् ॥ १२ ॥ तेषान्तुनिश्चयंज्ञात्वा सर्वेषांवृषभध्वजः ॥ अनुकम्पापरोभूत्वा स्वलिङ्गंतानदर्शयत ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भित्त्वाचैववसुन्धराम् ॥ उत्थितंसहसालिङ्गं तदेववरवर्णिनि ॥ १४ ॥ तल्लिङ्गमृषयोदृष्ट्वा सर्वेतेत्रिदिवंगताः ॥ अथतेषुप्रयातेषु शक्रस्तत्क्षमनाभवत् ॥ १५ ॥ तदद्यापिच्छादयामास वज्रेणशतपर्वणा ॥ वृद्धभावेनयत्तेषामृषीणान्दर्शनङ्गतः ॥ १६ ॥ अतोवृद्धप्रभासेति कीर्त्यतेवसुधातले ॥ तस्मिन्दृष्टेवरारोहे अद्यापिलभतेफलम् ॥ १७ ॥ राजसू

उत्पन्नहुआ ॥ १४ ॥ उस लिंगको देख करके वे सब ऋषिलोग स्वर्गको चलेगये इसके उपरान्त उनके चलेजाने पर इन्द्रजी सन्तसमनवाले हुये ॥ १५ ॥ और उन्होंने सौ गांठियोंवाले वज्रसे उस लिंगको भी आच्छादित किया जिसलिये शिवजी वृद्धतासे उन ऋषियोंके दर्शन को प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ इससे पृथ्वी में वृद्धप्रभास कहाजाता है हे वरारोहे ! उसके देखनेपर आज भी भक्तिसंयुत मनुष्य राजसूय व अश्वमेध यज्ञके फलको पाताहै इसप्रकार वहां उत्तम वृद्धप्रभासक्षेत्र उत्पन्न

हुआ है ॥ १७। १८ ॥ भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको यहाँ ब्राह्मणके लिये अश्व देनाचाहिये ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवृद्धप्रभासमाहात्म्यंनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्रमें तीरथ जल परभास । इकसौ नब्बे में सोई चरित कह्यो सविलास ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वृद्धप्रभाससे दक्षिण में थोड़ी दूर पै स्थित जलसंज्ञक प्रभासके समीप जावै ॥ १ ॥ उन्हीं देवदेवके उत्तम माहात्म्यको सुनिये कि जब जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने क्षत्रियोंका वध

याश्वमेधानां नरोभक्तिसमन्वितः ॥ एवंतत्रसमुत्पन्नः प्रभासोवृद्धउत्तमः॥१८॥ अत्राश्वोब्राह्मणेदेयः सम्यग्यात्राफले प्सुभिः ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवृद्धप्रभासमाहात्म्यन्नामैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८९॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि प्रभासंजलसंज्ञितम् ॥ जरत्प्रभासाद्दक्षिणतो नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ तस्यै वदेवदेवस्य शृणुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ जामदग्न्येनरामेण यदाक्षत्रवधःकृतः ॥ २ ॥ तदास्यपरमाजाता घृणामनसि भामिनि ॥ ततस्त्वाराधयामास महादेवंसुरेश्वरम् ॥ ३ ॥ उग्रंतपःसमास्थाय बहून्वर्षगणान्प्रिये ॥ ततस्तुष्टोमहादे वस्तस्यप्रत्यक्षताङ्गतः ॥ ४ ॥ अब्रवीद्वरदस्तेहं वरंवरयसुव्रत ॥ परशुरामउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोम म ॥ ५ ॥ दर्शयस्वस्वकंलिङ्गं यत्तुवज्रेणछादितम् ॥ घृणामेमहतीजाता हत्वेमान्क्षत्रियान्बहून् ॥ ६ ॥ दर्शनेनैवलि ङ्गस्य येनमेनश्यतेघृणा ॥ तथावैपातकंसर्वं प्रसादात्तवशङ्कर ॥ ७ ॥ शङ्करउवाच ॥ ममलिङ्गंसहस्राक्ष उत्थितन्तुपु

किया ॥ २ ॥ तब हे भामिनि ! इनके मनमें बड़ी घृणा उत्पन्नहुई उसके उपरान्त हे प्रिये ! बहुत वर्षगणों तक उग्र तपस्या में स्थितहोकर उन्होंने सुरेश्वर महादेव जी को आराधन किया तदनन्तर उनके ऊपर प्रसन्न होतेहुये शिवजी प्रत्यक्षताको प्राप्तहुये ॥ ३ । ४ ॥ व बोले कि हे सुव्रत ! मैं तुमको वरदेनेवाला हूं वरदानको मांगिये परशुरामजी बोले कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो और यदि मुझको वरदेने योग्य है ॥ ५ ॥ तो उस अपने लिंगको दिखलाइये कि जो वज्रसे आच्छा- दित है इन बहुत क्षत्रियोंको मारकर मेरे बड़ी घृणा उत्पन्नहुई है ॥ ६ ॥ हे शंकरजी ! तुम्हारी प्रसन्नतासे जिस लिंगके दर्शनही से मेरी घृणा व समस्त पातक नाश

होजावै ॥ ७ ॥ शिवजी बोले कि बडे भयसे संयुत इन्द्रजी बार २ उत्पन्नहुये मेरे लिंगको वज्र से आच्छादन करते हैं ॥ ८ ॥ उसीकारण लिंगरूपी मैं कभी तुम्हारे दर्शनको न प्राप्त हूंगा और जो मुझमे कहतेहो कि मैं घृणासे व पातकसे घिराहूं ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे उस पातकको मैं स्पर्श मे नाश करूंगा हे महामते ! इस पवित्र जलाशय में जल के मध्यमें ॥ १० ॥ बड़ाभारी लिंग उठैगा कि जिसको तुम सदैव चाहतेहो और जलके मध्यमें स्थित उस लिंगको स्पर्शकर तदनन्तर तुम पातक से छूटोगे ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! जलके मध्यमें लिंग उत्पन्नहुआ उसीकारण पृथ्वी में इसका जलप्रभास नाम हुआ ॥ १२ ॥ हे देवि ! उसके मली-

नःपुनः ॥ वज्रेणच्छादयत्येव भयेनमहतावृतः ॥८॥ नतेनदर्शनंयास्ये लिङ्गरूपीकदाचन ॥ यन्मांवदसिघृणयावृतो हंपातकेनतु ॥ ९ ॥ तत्तेहंनाशयिष्यामि स्पर्शनाद्द्विजसत्तम ॥ अस्मिञ्जलाशयेपुण्ये जलमध्येमहामते ॥ १० ॥ उत्थास्यतिमहालिङ्गं यत्त्वंवाञ्छसिसर्वदा ॥ तत्स्पर्श्यजलमध्यस्थं ततोमोक्षसिपातकात् ॥ ११ ॥ ततस्समुत्थितंलिङ्गं जलमध्येवरानने ॥ जलप्रभासंनामास्य ततोजातंधरातले ॥ १२ ॥ तस्यसंस्पर्शनाद्देवि शिवलोकंव्रजेन्नरः ॥ एकं भोजयतेतत्र ब्राह्मणंशंसितव्रतम् ॥ १३ ॥ भोजितोहंभवेतेन सपत्नीकोनसंशयः ॥ एवंजलप्रभासस्य सम्भूतिस्ते मयोदिता ॥ १४ ॥ श्रुतापापौघशमनी सर्वकामफलप्रदा ॥१५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेजलप्रभासमाहात्म्यं नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि जामदग्न्येश्वरंशिवम् ॥ वृद्धप्रभाससामीप्ये नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ स

भांति स्पर्श से मनुष्य शिवलोकको जाताहै वहां जो प्रशंसितव्रतवाले एक ब्राह्मण को भोजन कराताहै ॥ १३ ॥ उससे स्त्रीसमेत मैं भोजित होताहूं इसमें सन्देह नहीं है इसप्रकार मैंने तुमसे जलप्रभास की उत्पत्तिको कहा ॥ १४ ॥ सुनीहुई जो कि पापौघ को नाशनेवाली तथा सब कामनाओंके फलों को देनेवाली है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजलप्रभासमाहात्म्यंनामनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥ ॥ ॥

दो०। जामदग्नि ईश्वरहिं जिमि थाप्यो है मुनिनाथ। इकसौ इक्यानवे महँ सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वृद्धप्रभास से

दक्षिण में थोड़ेही दूरपै स्थित जामदग्न्येश्वर शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जमदग्निजी ने समस्तपातकों के नाशनेवाले उन शिवजी को थापाहै हे देवि ! उनको देखकर मनुष्य तीन ऋणों से छूटजाताहै ॥ २ ॥ और वहां धरातीर्थ में नहाकर उनको भलीभांति पूजकर मनुष्य धनको पाताहै हे ममप्रिये ! उस स्थानमें पाण्डवोंने निधानको पायाहै ॥ ३ ॥ और उस निधानमें त्रिलोकसे प्रणाम कीहुई बावली उत्पन्नहुई हे महादेवि ! उसमें नहाकर दुर्भगा स्त्री सुभगा होती है ॥ ४ ॥ और चाहेहुये कामनाओंको पातीहै मैंने तुमसे यह वर्णन किया ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांजामदग्न्येश्वरमाहात्म्यंनामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

र्वपापोपशमनं स्थापितंजमदग्निना ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि मुच्यतेचऋणत्रयात् ॥ २ ॥ स्नात्वातत्रधरातीर्थे सम्पूज्यप्राप्नुयाद्धनम् ॥ निधानंपाण्डवैर्लब्धं तत्रस्थानेममप्रिये ॥ ३ ॥ निधानेतत्रसंजाता वापीत्रैलोक्यवन्दिता ॥ तस्यांस्नात्वामहादेवि दुर्भगासुभगाभवेत् ॥ ४ ॥ लभतेवाञ्छितान्कामानितिप्रोक्तंमयातव ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेजामदग्न्येश्वरमाहात्म्यन्नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि महाप्राभासमुत्तमम् ॥ जलप्रभासतोयाम्ये यममार्गविघातकम् ॥ १ ॥ शृणु तस्यैवमाहात्म्यं यथाजातंधरातले ॥ पूर्वंत्रेतायुगेदेवि स्पर्शलिङ्गन्तुतत्स्मृतम् ॥ २ ॥ दिव्यंतेजोमयंनृणां स्पर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ अथकालेतुकस्मिंश्चिद् वज्रेणाच्छादितंप्रिये ॥ ३ ॥ इन्द्रेणागत्यवसुधां भयाक्रान्तेनसुन्दरि ॥ तस्मात्तुभुवनाद्देवि निर्गतंलिङ्गमुच्छ्रितम् ॥ ४ ॥ दशकोटिप्रविस्तीर्णं ज्वालाग्निलिङ्गरूपधृक् ॥ प्रभासक्षेत्रमास्थाय

दो० । भयो भूमि विख्यात जिमि तीरथ महाप्रभास । इकसौ बनवे में सोई कह्यो चरित सुखरास ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर जलप्रभास से दक्षिण में यमराज के मार्ग को नष्टकरनेवाले उत्तम महाप्रभास के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! जिसप्रकार वह तीर्थ पृथ्वी में उत्पन्न हुआ है उस के माहात्म्य को सुनिये कि पुरातन समय त्रेतायुगमें वह स्पर्श लिंग कहा गया है ॥ २ ॥ दिव्य व तेजोमय वह लिंग स्पर्श करनेसे मुक्तिदायक है इसके अनन्तर हे सुन्दरि, प्रिये ! किसी समय डर से घिरेहुये इन्द्रजी ने पृथ्वी में आकर उसको वज्र से आच्छादन किया व हे देवि ! उस स्थान से उन्नत लिंग निकला ॥ ३ । ४ ॥ जो कि दशकरोड़

भित्त्वातुभुवमागतम्॥५॥वज्रेणरोधितन्देवि भित्त्वाचैववसुन्धराम् ॥ भूतसङ्घैस्समेतन्तु व्यापयाञ्चक्रिरेजगत् ॥ ६ ॥ ततस्त्रैलोक्यमखिलं ज्वालाभिर्व्याकुलीकृतम् ॥ ततस्सुरगणास्सर्वे ऋषयोवेदपारगाः ॥ ७ ॥ अस्तुवन्विविधैस्सूक्तै र्वेदोक्तैःशशिशेखरम् ॥ संहरस्वसुरश्रेष्ठ तेजस्स्वंदहनात्मकम् ॥ ८ ॥ त्रैलोक्यंव्याकुलीभूतमेतत्सर्वंचराचरम् ॥ नयावत्प्रलयंयाति तावद्रक्षसुरेश्वर ॥ ९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवमाभाषमाणेषु त्रिदशेषुसुरेश्वरि ॥ तत्तेजःपञ्चधाविष्टं व्याप्ताशेषजगत्त्रयम् ॥ १० ॥ पञ्चप्रभासरूपेण भित्त्वातत्रवसुन्धराम् ॥ येनमार्गेणनिष्क्रान्तमेतत्तेषुमहन्महः ॥ ११ ॥ तत्रतैःस्थापितंपूर्वं द्वारदेशेममप्रिये ॥ पिहितेतत्ररन्ध्रेस्मिन्धूमोनाशमुपेयिवान् ॥ १२ ॥ स्वस्थाश्चैवाभवँल्लोकास्तेजस्तत्रैवसंस्थितम् ॥ एवंमयाप्रेरितास्ते लिङ्गंतत्रसमादधुः ॥ १३ ॥ तन्महस्तत्रदेवेशि विश्राममकरोत्तदा ॥ ततोमहाप्रभासन्तु कीर्त्यतेदेवदानवैः ॥ १४ ॥ यस्तत्पूजयतेभक्त्या लिङ्गंपुष्पैःपृथग्विधैः ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्ज्जि

योजन चौड़ा था और अग्नि की ज्वाला के समान लिंगरूपधारी वह प्रभासक्षेत्र में पृथ्वी को फोड़कर प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ हे देवि ! पृथ्वी को फोड़कर वज्र से रोंकाहुआ वह लिंग भूतगणोंसमेत संसार को व्याप्त कर लिया ॥ ६ ॥ तदनन्तर समस्तसंसार ज्वालाओं से व्याकुल कियागया उस के उपरान्त समस्त सुरगणों में व वेदों के पारगामी ऋषियों ने ॥ ७ ॥ अनेकभांतिके वेदोक्तसूक्तों से चन्द्रभालजी की स्तुति किया कि हे सुरश्रेष्ठ ! अपने अनलात्मक तेज को संहार कीजिये ॥ ८ ॥ हे सुरेश्वर ! यह चराचर सब संसार व्याकुल होताहुआ जबतक नाश न होवै तबतक रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरेश्वरि ! देवताओंके ऐसा कहनेपर समस्त तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाला वह तेज पांचप्रकार का होकर प्रविष्ट हुआ ॥ १० ॥ और वहा पांच प्रभासोंके रूपसे पृथ्वीको फोड़कर जिसमार्ग से उनमें यह बड़ाभारी तेज निकला ॥ ११ ॥ वहां पर हे ममप्रिये ! उन्होंने पहिले द्वारस्थान में उसको स्थापन किया और वहा इस छिद्र के आच्छादन करने पर धूमनाशको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ और लोक स्वस्थ हुये व तेज वहींपर स्थितहुआ इसप्रकार मुझसे प्रेरणा कियेहुये उन्होंने वहां लिङ्गको धारण किया ॥ १३ ॥ हे देवेशि ! उस समय वहां पर उस तेज ने विश्राम किया उसीकारण देवता व दानवों से महाप्रभास कहा जाता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे उस लिङ्ग को अनेकभांति के

पुष्पोंसे पूजताहै वह वृद्धता व मरणसे रहित उत्तम स्थान को प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ व हे देवेशि ! इस लिङ्गको देखकर उसीकारण मनुष्य पातकोंसे छूट जाता है ॥१६॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामहाप्रभासमाहात्म्यवर्णनन्नामद्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ ❀ ॥

दो० । दक्षयज्ञ विध्वंस किय यथा सदाशिवनाथ । इकसौ तिरानिबे महँ सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां उसके दक्षिण में सरस्वतीजी के सुन्दरकिनारे पै टिकेहुये कृतस्मर देवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! जोकि आपहीसे उत्पन्न व सब पापोंको नाशनेवाले हैं जिसप्रकार पृथ्वीमें वे उत्पन्नहुयेहैं वैसेही मैं उनकी उत्पत्तिको कहताहूं ॥ २ ॥ हे वरानने ! पुरातनसमय मैंने जब वहां कामदेवजी को जलायाहै तब बहुत दुःखित होतीहुई रतिने आकर विलाप किया ॥ ३ ॥ और वहां शोकसे आतुर उस रतिको देखकर मैं दयासंयुत हुआ व मैंने यह कहा कि हे शुभे ! तुम मत रोवो क्योंकि मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा पति समय से फिर उत्पन्न होवैगा इस में सन्देह नहीं है देवीजी बोलीं कि हे विभो ! पुरातनसमय तुमने उस कामदेवको क्यों जलाया है ॥ ४ । ५ ॥ और उसने फिर कैसे जन्म पाया है इसको मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! पुरातनसमय दक्षप्रजापतिजी तुम्हारे पिताहुये उनके सौ कन्या उत्पन्नहुई

तम् ॥ १५ ॥ दृष्ट्वैतत्तेनदेवेशि मुच्यतेपातकैर्नरः ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे महाप्रभासमाहात्म्यवर्णनन्नामद्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्यदक्षिणतःस्थितम् ॥ सरस्वत्यास्तटेरम्ये देवंतत्रकृतस्मरम् ॥ १ ॥ स्वयंभूतंमहादेवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि यथाजातोमहीतले ॥ २ ॥ पुराकामोयदादग्धो मयातत्रवरानने ॥ तदारतिस्समागत्य विललापसुदुःखिता ॥ ३ ॥ तान्तुशोकातुरान्दृष्ट्वा तत्राहंकरुणान्वितः ॥ अवोचंमारुदस्वेति तवभर्त्तापुनश्शुभे ॥ ४ ॥ समुत्थास्यतिकालेन मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ देव्युवाच ॥ किमर्थंसपुरादग्धः कामदेवस्त्वयाविभो ॥ ५ ॥ कथमापपुनर्जन्म विस्तरात्कथयस्वमे ॥ ६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ दक्षःप्रजापतिःपूर्वं बभूवत्वत्पिताप्रिये ॥ तस्यकन्याशतंजज्ञे गौरीणांदीर्घचक्षुषाम् ॥ ७ ॥ ददौत्वांप्रथमांमह्यं सतीनाम्नेतिकीर्त्तिताम् ॥ ददौदशच

और दीर्घलोचनोंवाली उन गौरीकन्याओंके मध्यमें ॥ ७ ॥ सती नामसे कहीहुई तुम जेठी कन्याको उसने मेरे लिये दिया और दश धर्मराजजी के लिये दिया श्रद्धा, मेधा, धृति, क्षमा ॥ ८ ॥ अनसूया, शुचि, लज्जा, स्मृति, शक्ति व श्रुति नामक थीं और रति व प्रीति दो स्त्रियों को कामदेवजी के लिये दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर एक स्वाहाको अग्नि को दिया और पितरों को स्वधा दिया तथा अश्विनी आदिक कहीहुई सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा के लिये दिया ॥ १० ॥ हे देवि ! उन में भी रेवती अन्ततक वे उत्तम कन्या विदित हैं और हे देवि ! उन्होंने कश्यपजी के लिये तेरह कन्याओं को दिया ॥ ११ ॥ अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, इरावती,

धर्माय श्रद्धामेधाधृतिःक्षमा ॥ ८ ॥ अनसूयाशुचिर्लज्जा स्मृतिश्शक्तिःश्रुतिस्तथा ॥ द्वेभार्येकामदेवाय रतिःप्रीतिस्त थैवच ॥ ९ ॥ एकांस्वाहांददौवह्नेः पितॄणांचस्वधान्ततः ॥ सप्तविंशतिसोमाय अश्विन्याद्याःप्रकीर्त्तिताः ॥ १० ॥ तत्रा पिविदितादेवि रेवत्यन्तास्तुताश्शुभाः ॥ कश्यपायददौदेवि सतुकन्यास्त्रयोदश ॥ ११ ॥ अदितिश्चदितिश्चैव दनुः काष्ठाइरावती ॥ विनताचैवकद्रूच सिंहिकासुप्रभातथा ॥ १२ ॥ अनवद्यास्तुतास्सर्वा ईर्ष्याहिंसातथापरा ॥ माया निर्ऋतिसंख्याता दक्षःपूर्वंमहाद्युतिः ॥ १३ ॥ गौरीचवल्लमाचैव वार्त्तासाध्वीसुमालिका ॥ वरुणायददौपञ्च तदासौ पर्वतात्मजे ॥ १४ ॥ भद्राचमदिराचैव विद्याधन्याधनाशुभे ॥ दत्ताःपञ्चकुबेराय पत्न्यर्थंपर्वतात्मजे ॥ १५ ॥ जयाच विजयाचैव मधुच्छन्दाइरावती ॥ सप्रियाजनकाकान्ता सुभद्राधर्मलीशुभा ॥ १६ ॥ रुद्राणांप्रददौकन्या दशामांध र्मवित्तदा ॥ प्रभावतीसुभद्राच विमलानिर्मलावृता ॥ १७ ॥ तीव्रादक्षारुणाविद्या द्वारपालाचववंसा ॥ आदित्यानांद

विनता, कद्रू और सिंहिका व सुप्रभा ॥ १२ ॥ वे सब निर्दोष थीं और ईर्ष्या व अन्य हिंसा, माया और निर्ऋतिसंख्यक कन्याओं को पहले महाद्युतिमान् दक्षजी ने धर्मराजको दिया है ॥ १३ ॥ व हे पर्वतात्मजे ! उससमय इन दक्षजीने गौरी, वल्लमा, वार्ता, साध्वी, सुमालिका इन पांच कन्याओं को वरुणजीके लिये दिया ॥ १४ ॥ व हे पर्वतात्मजे, शुभे ! भद्रा, मदिरा, विद्या, धन्या व धना इन पाच कन्याओंको कुबेरजी के लिये स्त्री के निमित्त दिया ॥ १५ ॥ और जया, विजया, मधुच्छन्दा, इरावती, सुप्रिया, जनका, कान्ता, सुभद्रा व धर्मली, शुभा ॥ १६ ॥ उनमेंसे इन दश कन्याओंको उस समय धर्मज्ञ दक्षजी ने रुद्रोंको दिया है और प्रभावती, सुभद्रा,

विमला, निर्मला, वृता ॥ १७ ॥ व हे प्रिये ! तीव्रा, दक्षा, अरुणा, विधा, द्वारपाला व वर्वसा इन बारह कन्याओं को दक्षजी ने आदित्यों को दिया है ॥ १८ ॥ और योगनिद्रा, विभूति, शिंशपा, शरमा, गुहा, माला, वंथा और ज्योत्स्ना इन कन्याओं को विश्वेदेवताओं के लिये दिया ॥ १९ ॥ और वैसेही सुवेषा व भूषणा दो कन्याओं को अश्विनीकुमारों के लिये दिया व एक कन्या पवन को दीगई ये कन्यायें कही गईं ॥ २० ॥ सावित्री को ब्रह्माजीके लिये दिया व लक्ष्मीको महात्मा विष्णुजी को दिया इसके अनन्तर किसी समय दक्षिणा संयुत उन दक्षजी ने ॥ २१ ॥ हे पर्वतसुते ! हिमवान् महापर्वत पै यज्ञसे पूजन किया और उनका यज्ञवाट सब काम-

दौदत्तः कन्याद्वादशकम्प्रिये ॥१८॥ योगनिन्द्राविभूतिश्च शिंशपाशरमागुहा॥ मालावन्थातथाज्योत्स्ना विश्वेदेवेभ्यएवच ॥ १९ ॥ अश्विभ्यांद्दतथाकन्ये सुवेषाभूषणातथा ॥ एकाकन्यातथावायोर्दत्ताएताःप्रकीर्त्तिताः ॥ २० ॥ सावित्रींब्रह्मणेप्रादाल्लक्ष्मींविष्णोर्महात्मनः ॥ कदाचित्त्वथकालस्य सदक्षोदक्षिणायुतः ॥ २१ ॥ यज्ञेनपर्वतसुते हिमवन्तेमहागिरौ ॥ यज्ञवाटोह्यभूत्तस्य सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ २२ ॥ तस्मिन्यज्ञेसमायाता आदित्यावसवस्तथा ॥ विश्वेदेवाश्चमरुतो लोकपालाश्चसर्वशः ॥ २३ ॥ ब्रह्माविष्णुस्सहस्राक्षो वरुणोयमएवच ॥ धनदस्सागरानद्यस्तडागः पल्वलानिच ॥ २४ ॥ सुपर्णाराक्षसानागाः सर्वेमूर्त्तौव्यवस्थिताः ॥ दानवाप्सरसश्चैव यक्षाःकिन्नरगुह्यकाः ॥ २५ ॥ सानुगास्तेसभार्याश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ सप्तर्षयोमहाभागास्तथादेवर्षयःप्रिये ॥ २६ ॥ तेभार्यासहितास्तत्र समायातावरानने ॥ कपालमालाभरणश्चिताभस्मविभूषितः ॥२७॥ अपवित्रतयाशम्भुर्नाहूतस्तुतथाविधः ॥ यतस्ततस्समायाता कैला

नाओं से समृद्धिमान् हुआ ॥ २२ ॥ और उस यज्ञ में आदित्य व वसुदेवता आये तथा विश्वेदेवा और मरुत् व सब लोकपाल आये ॥ २३ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु, सहस्रलोचन (इन्द्र) वरुण और यमराज, कुबेर, समुद्र, नदियां तड़ाग और छोटे तड़ाग ॥ २४ ॥ व गरुड़, राक्षस व सब नाग शरीर में स्थित होकर आये और दानव, अप्सरा, यक्ष, किन्नर व गुह्यक आये ॥ २५ ॥ व हे प्रिये ! अनुगामियोंसमेत तथा स्त्रियोंसहित वेदवेदांगों के पारगामी वे महाऐश्वर्यवान् सप्तर्षि और देवर्षि आये ॥२६॥ हे वरानने ! स्त्रियोंसमेत वे वहां आये और कपालोंकी माला का आभूषण किये और चिताकी भस्मसे भूषित ॥ २७ ॥ उसप्रकार के सदाशिवजी अशुद्धता

के कारण नहीं बुलायेगये और जहांतहांमे कैलास पर्वतोत्तम पै आईहुई ॥ २८॥ वे अश्विनी आदिक बहनैं सतीजीसे वचन बोलीं कि हे सुमध्यमे, व ल्याणि ! तुम क्यों क्रोधितसी टिकी हो ॥ २९ ॥ हम सब पतियोंसमेत पिता के यज्ञ में जाती हैं हे देवि ! सब आभूषणों से भूषित तुम क्यों श्याममुखी हो ॥ ३० ॥ तुम उठो और हमारे साथ अपने पिता के यज्ञ को चलो तदनन्तर हे वरारोहे ! सतीजी अपने पिता के घरको चलीं ॥ ३१ ॥ हे भामिनि ! मैंने स्त्री के स्नेह से सतीजी को मना किया और गणनाथों से सयुत आईहुई उन सतीजी को देखकर ॥ ३२ ॥ इस के अनन्तर इस दक्षने क्रोधसंयुत होकर उन गणों से कहा कि आपलोग यहांसे

सेपर्वतोत्तमे ॥ २८ ॥ अश्विन्याद्याभगिन्यस्तास्सतींवाक्यमथाब्रुवन् ॥ किंरुष्टाइवकल्याणि तिष्ठसित्वंसुमध्यमे ॥ २९ ॥ वयंचप्रथितास्सर्वाः पितुर्यज्ञेसभर्तृकाः ॥ किन्देविश्यामवदना सर्वाभरणभूषिता ॥ ३० ॥ उत्तिष्ठत्वंसहास्माभिर्याहियज्ञंस्वपैतृकम् ॥ ततस्सतीवरारोहे प्रस्थितास्वपितुर्गृहान् ॥ ३१ ॥ निवारितामयासाध्वी पत्नीस्नेहेनभामिनि ॥ तामागतांसमालोक्य गणनाथैस्समन्विताम् ॥ ३२ ॥ तानुवाचाथदक्षोसौ गणान्क्रोधसमन्वितः ॥ इतोगच्छन्तुवैतूर्णमस्पृश्योहिभवत्पतिः ॥ ३३ ॥ एतद्वाक्यमनादृत्य मातुरन्तिकमागता ॥ ३४ ॥ तयावमानितासाध्वी सतीव्रतधरासती ॥ ततःकोपवतीदेवी कालरात्रिरिवापरा ॥ ३५ ॥ अद्याहंवैद्रुतंयक्ष्ये जीवितंनात्रसंशयः ॥ ततोहरवियोगेन देहंकुण्डेसमाजुहोत् ॥ ३६ ॥ तांत्यक्तदेहामालोक्य गणायुद्धंप्रचक्रिरे ॥ तेपिदेवैःपराभूतास्सदस्यैर्बहुशोर्दिताः ॥ ३७ ॥ ऋत्विजांचैववाक्यैश्च पीडिताहरसन्निधौ ॥ समाचख्युर्यथावृत्तमागत्यगणनायकाः ॥ ३८ ॥ ततोदृष्ट्वाम

शीघ्रही चले जावो क्योंकि आपलोगोंका स्वामी छूनेयोग्य नहीं है ॥ ३३ ॥ इसवचनको अनादरकर सतीजी माताके समीप आई ॥ ३४ ॥ और व्रतको धारण कियेहुई उन पतिव्रता सतीजीका उस माताने अपमान किया उसके उपरान्त सती देवीजी दूसरी कालरात्रि की नाईं क्रोधित हुई ॥ ३५ ॥ व बोलीं कि आज शीघ्रही मैं जीवको त्यागकरूंगी इसमें सन्देह नहीं है तदनन्तर सतीजी ने शिवजीके वियोग से देहको कुण्ड में हवन किया ॥ ३६ ॥ और देहको त्याग किये उन सतीजीको देखकर गणोंने युद्धकिया व सभासद देवताओं से पराजित वे गण भी बहुत व्याकुल किये गये ॥ ३७ ॥ और ऋत्विजोंके वचनोंसे पीड़ित गणनाथोंने शिवजीके समीप

आकर जैसा वृत्तान्त था उसको कहा ॥ ३८ ॥ उसके उपरान्त रक्त से डूबेहुये उन गणों को देखकर वे सदाशिव महादेवजी बोले कि यह क्या अमंगल है ॥ ३९ ॥ उन्होंने भी शिवजी से कहा कि हे देव ! दक्ष के कोप से पीड़ित होती हुई कल्याणी सतीजीने अपने शरीर को अग्नि में हवन करादिया ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर प्राणोंसे विहीन कीहुई सतीजी को सुनकर महादेवजी ने ॥ ४१ ॥ यज्ञविध्वंस करने के लिये गणोंको पठाया इसके उपरान्त विकृत व विकृत आकारवाले बड़े बलवान् असंख्यक सैकड़ों व हज़ारों रौद्रगण उस यज्ञ को जाकर प्राप्त हुये ॥ ४२ । ४३ ॥ तदनन्तर धनुषों को हाथ में लियेहुये बड़े बलवान् सूर्योंसमेत विश्वेदेवता व साध्य देवता

हादेवो गणान्रुधिरसंप्लुतान् ॥ सभर्गस्तानुवाचाथ किंस्विदेतदमङ्गलम् ॥ ३९ ॥ तेचाप्यूचुर्महादेवं सतीचस्वतनुंशुभा ॥ अग्नौहुतवतीदेव दक्षकोपेनपीडिता ॥ ४० ॥ अथश्रुत्वामहादेवः सतींप्राणैर्विनाकृताम् ॥ ४१ ॥ गणान्सम्प्रेरयामास यज्ञविध्वंसनायच ॥ तङ्गत्वाथगणारौद्राश्शतशोथसहस्रशः ॥ ४२ ॥ विकृताविकृताकारा असङ्ख्यातामहाबलाः ॥ ४३ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे वासवस्सहभास्करैः ॥ विश्वेदेवाश्चसाध्याश्च धनुर्हस्तामहाबलाः ॥ ४४ ॥ युद्धायच विनिष्क्रान्ता मुञ्चन्तश्शायकांश्च तान् ॥ तेसमेत्यतथान्योन्यं प्रमथाविबुधैस्सह ॥ ४५ ॥ मुमुचुश्शरवर्षाणि वारिधारायथाघनाः ॥ तेषांमध्येगणोविद्धः शूलेनहृदिभामिनि ॥ ४६ ॥ सतुतेनप्रहारेण विसंज्ञोनिषसादह ॥ अथमुष्ट्याहनत्कुम्भे नागमैरावतंतदा ॥ ४७ ॥ रणेसमाहतस्तेन वरुणोभैरवेणतु ॥ विद्रवञ्जवमास्थाय यज्ञवाटमुपाद्रवत् ॥ ४८ ॥ विश्वेदेवानिरुच्छ्वासाः कृतारौद्रैर्महाशरैः ॥ चकर्षसधनूंष्येव वसुमान्बलवत्तरः ॥ ४९ ॥ निस्तेजसस्तदादेवाः कृता

तथा सब देवगण और इन्द्र ॥ ४४ ॥ उन बाणों को छोड़तेहुये युद्ध के लिये निकले और वे इकट्ठा होकर देवताओंसमेत रुद्रगण परस्पर ॥ ४५ ॥ बाणोंकी वृष्टि छोड़ने लगे जैसे कि मेघ जल की धाराओं को छोड़ते हैं हे भामिनि ! उनके मध्यमें एक गणके हृदयमें त्रिशूल वेधित हुआ ॥ ४६ ॥ और उस प्रहारसे वह मूर्च्छित होकर गिरपड़ा इसके उपरान्त उस समय उसने ऐरावत हाथी के शिर के मांस पिण्ड में घूंसा से मारा ॥ ४७ ॥ और समर मे उसने भैरवअस्त्र से वरुणको मारा व गर्जताहुआ वह वेगको प्राप्त होकर यज्ञवाट को दौड़ा ॥ ४८ ॥ और बड़े रौद्रबाणों से विश्वेदेवता निरुच्छ्वास (विकल) कियेगये व बड़े बलवान् वसुमान् गणने

धनुषों को खींचा ॥ ४६ ॥ उस समय रणके आंगन में वे देवता तेजरहित कियेगये इसी अवसर में हे देवि ! उसने देवों को विमुख करदिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर वे देवता वहीं टिकेहुये विष्णुजी के शरण में गये उसके उपरान्त क्रोधसंयुत विष्णुजी ने इन्द्र समेत सब देवताओं को भगायेहुये देखकर शीघ्रही सुदर्शनचक्रको छोड़ा और वेगसे आतेहुये विष्णुजी के उस सुदर्शनचक्र को ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उसने अचानकही मुख फैलाकर पेटमें स्थित किया हे पर्वतात्मजे ! उस समय उस अमोघ चक्रके ग्रस्त होनेपर ॥ ५३ ॥ उस समय लोकोंको उत्पन्न करनेवाले ये विष्णुजी क्रोधितहुये और उन्होंने पैने दश बाणोंसे नन्दीको व सौ बाणोंसे भृङ्गी को मारकर॥ ५४॥

स्तेतुरणाजिरे ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवि कृतास्तेनपराङ्मुखाः ॥ ५० ॥ ततस्तेशरणंजग्मुर्विष्णुंतत्रैवसंस्थितम् ॥ ततःको पसमाविष्टो विष्णुर्देवान्सवासवान् ॥ ५१ ॥ दृष्ट्वाविद्रावितान्सर्वान् मुमोचाशुसुदर्शनम् ॥ तमापतन्तंवेगेन चक्रं विष्णोस्सुदर्शनम् ॥ ५२ ॥ प्रसार्य्यवक्त्रंसहसा उदरस्थंचकारह ॥ तस्मिंश्चक्रेतदाग्रस्ते अमोघेपर्वतात्मजे ॥ ५३ ॥ चु कोपभगवान्विष्णुस्तदासौलोकभावनः ॥ सहत्वादशभिस्तीक्ष्णैर्नन्दिंभृङ्गिंशतेनच ॥ ५४ ॥ महाकालंसहस्रेण अ युतेनगणाधिपम् ॥ बाणानामयुतैर्भित्त्वा वीरभद्रमुपाद्रवत् ॥ ५५ ॥ तंहत्वागदयाविष्णुर्विह्वलंरुधिरोक्षितम् ॥ गृही त्वापादयोर्भूमौ निजघानातिरोषितः ॥ ५६ ॥ हन्यमानस्यतस्याथ भूमौचक्रंसुदर्शनम् ॥ रुधिरोद्गारसंयुक्तं वक्त्रात्त स्माद्विनिर्गतम् ॥ ५७ ॥ रुद्रलब्धवरोदेवि वीरभद्रोगणोत्तम ॥ यन्नपञ्चत्वमापन्नो गदयापीडितोपिसः ॥ ५८ ॥ पति तंवीक्ष्यतेसर्वे विष्णुतेजोबलार्दिताः ॥ विद्रुतास्सर्वतोयाता यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ५९ ॥ तस्मैवृत्तंतथासर्वं समाचख्युःप

विष्णुजी महाकालको हज़ारबाणोंसे व दशहज़ारसे गणनायकको मारकर तथा दश हज़ार बाणोंसे वीरभद्रको भेदन कर दौड़े ॥ ५५ ॥ और रुधिरसे भीगेहुये व विह्वल उन वीरभद्रको गदासे मारकर विष्णुजीने बहुत क्रोधितहोकर चरणोंको पकड़ कर पृथ्वीमें पटकदिया ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर पृथ्वीमें मारे जातेहुये उसके उस मुखसे रुधिर प्रवाहसे संयुत सुदर्शन चक्र निकला ॥५७॥ हे देवि ! गदासे पीड़ित भी जो वह उत्तम गण वीरभद्र मृत्युको न प्राप्तहुआ उसका यह कारणहै कि उसने शिवजी से वरदानको पायाथा ॥५८॥ गिरेहुये वीरभद्रको देखकर विष्णुजीके तेजसे विकलहोकर वे सब गण सब ओरसे भगकर वहां गये जहां कि सदाशिवदेवजीथे ॥५९॥ और

उनगणोंने उन शिवजीसे सब वृत्तान्त व पराजय तथा वीरभद्रके पराक्रमको कहा तदनन्तर क्रोधित होतेहुये महादेवजी ॥६०॥ अचानकही त्रिशूलको लेकर तदनन्तर अपने गणों समेत पराजय होनेवाले दक्षजीके यज्ञको चले ॥ ६१ ॥ जहां कि वीरभद्रके साथ पराक्रमकर आपही विष्णुजी स्थित थे क्रोधसंयुत आतेहुये उन महादेवजीको देखकर ॥ ६२ ॥ समरमें पराजय मानकर विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और वसुओं व किन्नरों समेत तथा पवनों समेत इन्द्र भी अन्तर्द्धान होगये ॥ ६३ ॥ उसके उपरान्त क्रोधसे घिरे चित्तवाले शिवजी अन्तर्द्धानको प्राप्तहुये हे भामिनि ! वहां केवल सभासद् ब्राह्मणलोग स्थित रहे ॥ ६४ ॥ और क्रोधसे लाललोचनोंवाले

राभवम् ॥ विक्रमंवीरभद्रस्य ततःक्रुद्धोमहेश्वरः ॥ ६० ॥ प्रगृह्यसहसाशूलं प्रस्थितस्स्वगणैस्सह ॥ यज्ञवाटन्तुदक्षस्य पराभवभवन्ततः ॥ ६१ ॥ विक्रम्यवीरभद्रेण यत्रविष्णुस्स्वयंस्थितः ॥ तमायान्तंसमालोक्य कोपयुक्तंमहेश्वरम् ॥ ६२ ॥ संग्रामेत्वजयंमत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ इन्द्रोपिमरुतैस्सार्द्धं वसुभिस्सहकिन्नरैः ॥ ६३ ॥ शिवक्रोधपरीतात्मा ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ केवलंब्राह्मणास्तत्र स्थितास्सदसिभामिनि ॥ ६४ ॥ तेदृष्ट्वाशङ्करंप्राप्तं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥ होमंचक्रुस्ततोभीता रुद्रमन्त्रैस्समन्ततः ॥ ६५ ॥ अन्येत्राससमायुक्ताः पलायन्तोदिशोदश ॥ अथागत्यमहादेवो दृष्ट्वातान्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ ६६ ॥ अपश्यमानोविबुधांस्तत्रयज्ञंजघानसः ॥ ततोमृगवपुर्भूत्वा प्रणष्टोयंविहायसि ॥ ६७ ॥ पृष्ठतस्तुधनुष्पाणिर्जगामभगवाञ्छिवः ॥ अद्यापिदृश्यतेव्योम्नि तारारूपोनिशागमे ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे दक्षयज्ञविध्वंसोनामत्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ * ॥ * ॥

शिवजी को प्राप्तहुये देखकर तदनन्तर डरेहुये उन ब्राह्मणों ने सब ओरसे शिवजीके मन्त्रोंसे हवन किया ॥ ६५ ॥ और डरसे संयुत अन्य ब्राह्मणलोग दशो दिशाओं में भागने लगे इसके उपरान्त महादेवजी आकर उन द्विजोत्तमों को देखकर ॥ ६६ ॥ देवताओं को न देखतेहुये उन्होंने वहां यज्ञको नाश किया तदनन्तर मृग शरीरवाला यह यज्ञ आकाश में भगगया ॥ ६७ ॥ और पीछे से धनुषको हाथमें लियेहुये भगवान् शिवजी चले आज भी रात्रि आनेपर आकाश में नक्षत्ररूपी वह देखपड़ता है ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदक्षयज्ञविध्वंसोनामत्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ ❀ ॥

दो० । कामदेवको भस्मकरि कीन्हो शिव बिन देह। इकसौ चौरानबे महँ सोइ कथा सुखगेह ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! इसप्रकार यज्ञविध्वंस होनेपर वे ब्राह्मण घरको गये और वहा जो अन्य लोग आये थे कामनाको न पायेहुये वे भी अपने घरों को गये ॥ १ ॥ और क्रोधरहित होकर महादेवभी कैलास पर्वतको गये इसी अवसरमें तारक नामक दानव ॥ २ ॥ उत्पन्नहुआ वह महाभुज देवताओं के बलके गर्वको नाश करनेवालाथा हे देवि ! महायुद्ध में वे सब इन्द्रादिक देवता भी जीत कर स्वर्ग से निकालेगये तदनन्तर हे पर्वतात्मजे ! वे ब्रह्मलोकको गये और दुःखसंयुत होतेहुये उन्होंने ब्रह्मासे कहा ॥ ३ । ४ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ! तारकासुरने हम

ईश्वरउवाच ॥ एवंविध्वंसितेयज्ञे गतास्तेब्राह्मणागृहम् ॥ अप्राप्तकामास्तेदेवि येचान्येतत्रचागताः ॥ १ ॥ हरोपि विगतामर्षः कैलासंपर्वतङ्गतः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तारकोनामदानवः ॥ २ ॥ उत्पन्नस्समहाबाहुर्देवानांबलदर्पहा ॥ ते चापीन्द्रादिकास्सर्वे सुराजित्वामहाहवे ॥ ३ ॥ स्वर्गान्निष्कासितादेवि ब्रह्मलोकंततोगताः ॥ ऊचुश्चदुःखसंयुक्ता ब्रह्माणं पर्वतात्मजे ॥ ४ ॥ तारकेणासुरश्रेष्ठ स्वर्गान्निष्कासितावयम् ॥ स्वयमिन्द्रस्समभवद्वसवोन्येतथाकृताः ॥ ५ ॥ रुद्राः साध्यास्तथाविश्वे अश्विनौमरुतस्तथा ॥ आदित्याश्चवधोपायं तस्मात्कुरुपितामह ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अवध्यस्स तुसर्वेषां देवानामितिमेमतिः ॥ ऋतेतुशाङ्करन्तेजो नान्येनविनिपात्यते ॥ ७ ॥ तस्माद्गच्छतुभद्रंवो देवदेवंमहेश्वरम् ॥ तस्यभार्यामृतापूर्वं जाताहिमवतोगृहे ॥ ८ ॥ तस्याञ्चजायतेपुत्रस्सहनिष्यतितारकम् ॥ तस्मात्प्रसादयध्वञ्च त

लोगों को स्वर्ग से निकाल दिया और आपही इन्द्र होगया व अन्य वसु देवता किये गये ॥ ५ ॥ और रुद्र, साध्यदेवता, विश्वेदेवता, अश्विनीकुमार, पवन व आदित्य और कियेगये हैं इसलिये हे पितामहजी ! उसके मारने का यत्न कीजिये ॥ ६ ॥ ब्रह्मा बोले कि वह सब देवताओं के अवध्य है ऐसी मेरी मति है कि शिवके तेजके बिना अन्यसे वह नहीं माराजासक्ता है ॥ ७ ॥ इसलिये आपलोग देवदेव सदाशिवजी के समीप जाइये आपलोगों का कल्याण होवै उन सदाशिवजीकी स्त्री पहिले मरगई थी वही हिमाचलके घरमें पैदा हुई है ॥ ८ ॥ उसमें जो पुत्र पैदाहोगा वह तारकासुरको मारैगा इसलिये उस कार्यके लिये तुम लोग त्रिशूलपाणि (सदा-

शिव) जीको प्रसन्न करावो ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! मरीहुई स्त्रीवाले शिवजीके लिये देवताओंने कामदेवको आज्ञा दिया कि शिवजीके समीप जाकर बाणोंसे पीड़ित करो ॥ १० ॥ कि जिससे काम से संतप्त ये शिवजी स्त्रीके लिये यत्नवान् होवैं और यह तुम्हारा भाई मनोहर वसंत जाताहै ॥ ११ ॥ बहुत अच्छा ऐसी प्रतिज्ञा कर वह कैलास पर्वतको गया तदनन्तर हे देवि ! अस्त्रको धारेहुये वसन्त समेत कामदेवको देखकर अन्धकासुरको मारनेवाले रुद्र महादेवजी जबतक हरद्वारको प्राप्त होकर आगे देखैं तबतक अस्त्रको धारेहुये कामदेवको देखा फिर डरसे वे शिवजी भगे तदनन्तर काशी नैमिष व पुष्करक्षेत्रको जाकर ॥ १२ । १३ । १४ ॥ श्रीकण्ठ,

दर्षेशूलपाणिनम् ॥ ६ ॥ ततोदेवैस्समादिष्टः कामदेवोवरानने ॥ मृतभार्यंहरस्यार्थं गत्वापीडयसायकैः ॥ १० ॥ येनासौकामसन्तप्तो भार्यार्थंयत्नवान्भवेत ॥ अयंगच्छतितेभ्राता वसन्तस्सुमनोहरः ॥ ११ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायाकैलासंपर्वतंगतः ॥ ततोदृष्ट्वामहादेवः कामदेवंधृतायुधम् ॥ १२ ॥ वसन्तसहितन्देवि रुद्रोन्धकनिषूदनः ॥ गङ्गाद्वारमनुप्राप्य पश्यतेयावदग्रतः ॥ १३ ॥ धृतायुधंकामदेवं दृष्ट्वैसभयात्पुनः ॥ ततोवाराणसीङ्गत्वा नैमिषंपुष्करन्तथा ॥ १४ ॥ श्रीकण्ठंरुद्रकोटिञ्च कुरुक्षेत्रंगयांतथा ॥ ज्ञानमार्गंप्रयागञ्च विपाशामर्बुदंतथा ॥ १५ ॥ बहून्वर्षगणानेवं भ्रमन्सधरणीतले ॥ कामदेवभयाद्देवि देवदेवोमहेश्वरः ॥ १६ ॥ यत्रयत्रमहादेवस्तीर्थंगच्छतिभामिनि ॥ तत्रतत्रागतंकामं सपश्यतिधृतायुधम् ॥ १७ ॥ अथप्राप्तःप्रभासन्तु कदाचित्पर्वतात्मजे ॥ ततोपश्यत्कामदेवमग्रतश्चधृतायुधम् ॥ १८ ॥ सश्रमेणाव्याकुलाङ्गस्ततःक्रुद्धोमहेश्वरः ॥ सोप्यवैक्षत्तदाकामं विस्फूर्य्यनयनंतथा ॥ १६ ॥ तृतीयन्देवदेवेशि देव

रुद्रकोटि, कुरुक्षेत्र व गयाको गये और ज्ञानमार्ग, प्रयाग तथा विपाशा व अर्बुदतीर्थको जाकर ॥ १५ ॥ हे देवि ! कामदेवके डरसे वे देवदेव महेश्वरजी इसप्रकार बहुत वर्षगणों तक पृथ्वी में घूमते रहे ॥ १६ ॥ हे भामिनि ! महादेवजी जहां जहां तीर्थ को जाते थे वहां वहां वे शिवजी अस्त्रको धारे आयेहुये कामदेवको देखते थे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर हे पर्वतात्मजे ! किसीसमय प्रभासक्षेत्रको प्राप्तहुये तदनन्तर उन्होंने अस्त्रको धारण किये कामदेवको आगे देखा ॥ १८ ॥ तदनन्तर श्रमसे विकल

अंगोंवाले वे शिवजी क्रोधित हुये तदनन्तर हे देवदेवेशि ! उन देवदेव त्रिलोचन जी ने तीसरे नेत्रको खोलकर कामदेवजी को देखा और उस कामदेवको देखतेहुये उस नेत्रसे अग्निकी ज्वालायें निकलीं ॥ १९ । २० ॥ और उन ज्वालाओंसे धनुषसमेत वह कामदेव भस्मता को प्राप्तहुआ व भगवान् शिवजी उसको जलाकर क्रोध के निर्णयको प्राप्तहोकर ॥२१॥ उस उत्तम प्रभासक्षेत्रमें निवास करतेभये उस कामदेवके जलने पर शोकमें संयुत व पतिकी भक्तिमें परायण रति ने बहुत दुःख से विकल होतीहुई विलाप किया कि हा नाथ, हा नाथ ! हे स्वामिन् ! मुझ पतिव्रताको क्यों छोडतेहो ॥ २२ । २३ ॥ हे प्रभो ! पतिव्रता व पतिमें प्राणोंवाली मुझ

देवस्त्रिलोचनः ॥ तस्यतंवीक्षमाणस्य संयाताःपावकार्चिषः ॥२०॥ ताभिस्सधनुषायुक्तोभस्मसात्समपद्यत ॥ तन्दग्ध्वा भगवाञ्छम्भुर्गत्वारोषस्यनिर्णयम् ॥ २१ ॥ निवासमकरोत्तत्र क्षेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ तस्मिन्दग्धेतदाकामे रतिश्शोकपरायणा ॥ २२ ॥ विललापसुदुःखार्त्ता पतिभक्तिपरायणा ॥ हानाथनाथभोःस्वामिन् किंजहासिपतिव्रताम् ॥ २३ ॥ पतिव्रतांपतिप्राणां कस्मान्मान्त्यजसिप्रभो ॥ २४ ॥ एवन्तुविलपन्तींतान्तु वागुवाचाशरीरिणी ॥ मात्वंरुदविशालाक्षि पुनरेवपतिस्तव ॥ २५ ॥ प्रसादाद्देवदेवस्य उत्थास्यतिशिवस्यतु ॥ एतांवाचंरतिःश्रुत्वा ततःस्वस्थाबभूवह ॥२६॥ ततोदेवाश्शिवंनत्वा प्रार्थयमानास्सुतंप्रति ॥ कलत्रसंग्रहन्देव कुरुकार्यार्थसिद्धये ॥ २७ ॥ एषकामस्त्वयादग्धः क्रुद्धेन सुरसत्तम ॥ विनातेनविभोनष्टा सृष्टिर्वैधरणीतले ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एषकामोमयादग्धः क्रोधेनमहतास्वयम् ॥ तस्मादनङ्गएवैष प्रजासुप्रचरिष्यति ॥ २९ ॥ तद्वीर्यस्तत्प्रभावश्च विनादेहंभविष्यति ॥ ३० ॥ देवाऊचुः ॥ भग

को क्यों त्याग करते हो ॥ २४ ॥ इस प्रकार विलाप करतीहुई उस रति से आकाशवाणी बोली कि हे विशाललोचनि ! तुम मत रोवो क्योंकि फिर तुम्हारा पति देवदेव शिवजी की प्रसन्नतासे उत्पन्न होगा इस वचनको सुनकर तदनन्तर रति स्वस्थहुई ॥ २५ । २६ ॥ तदनन्तर पुत्रके लिये प्रार्थना करतेहुये देवताओंने शिवजी को प्रणामकर कहा कि हे देव ! कार्यार्थ की सिद्धिके लिये स्त्री का संग्रह कीजिये ॥२७॥ हे सुरश्रेष्ठ ! तुमने इस कामदेवको जला दिया हे विभो ! उसके विना पृथ्वीमें सृष्टि नष्ट होगई ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् शिवजी बोले कि मैंने बड़ेभारी क्रोधसे आपही इस कामदेवको जलायाहै इस कारण यह बिन शरीर होकर प्रजाओंमें विचरैगा ॥२९॥

और विना शरीर के यह उसी बल व उसी प्रभाववाला होगा ॥ ३० ॥ देवता बोले कि हे सुरेश्वर, भगवन् ! जिस प्रकार हमलोगोंको विश्वास होवै वैसेही सब लोकोंके हितके लिये पहले तुम कामदेवको रचो ॥ ३१ ॥ तदनन्तर आपही उन महेश्वर देवजी ने कामदेवको रचा उसके उपरान्त वह शाश्वत लिंग पृथ्वी में उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥ फिर वहा वैसाही बलवान् अनंग कामदेव कियागया और उन्हीं महात्मा शंकरजी ने उन शैलकुमारी का व्याह कियाहै ॥ ३३ ॥ और वे सुरश्रेष्ठ स्वामिकार्त्तिकेयजी उत्पन्नहुये कि जिन्होंने तारकासुरको माराहै जिसलिये गिरेहुये लिंगसे स्मर (कामदेव) रचागया ॥ ३४ ॥ उसीकारण संसारमें कृतस्मर शिवजी कहे

वन्कुरुपूर्वंत्वं कामदेवंसुरेश्वर ॥ हितायसर्वलोकानांयथानःप्रत्ययोभवेत् ॥ ३१ ॥ ततस्ससृष्टवान्कामं स्वयन्देवोमहेश्वरः ॥ ततस्तच्छाश्वतंलिङ्गं समुत्तस्थौमहीतले ॥ ३२ ॥ कृतस्मरःपुनस्तत्र अनङ्गोबलवांस्तथा ॥ साप्यूढाशैलजा तेन शङ्करेणमहात्मना ॥ ३३ ॥ जातस्स्कन्दस्सुरश्रेष्ठस्तारकोयेनसूदितः ॥ पतितेनैवलिङ्गेन यस्माच्चैवकृतस्मरः ॥ ३४ ॥ तस्मात्कृतस्मरोलोके कीर्त्यतेतुमहीतले ॥ तन्दृष्ट्वानजडोनान्धो नासुखीनचदुर्भगः ॥ ३५ ॥ जायतेतुक्वचिन्मर्त्यो नदरिद्रोनरोगवान् ॥ तस्मिन्दृष्टेमहादेवि जन्मप्रभृतिपातकम् ॥३६॥ नाशमायातितत्सर्वं ज्ञानादज्ञानतःकृतम् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मांत्वंपरिपृच्छसि ॥ ३७ ॥ दग्धोयथास्मरःपूर्वं पुनर्वीर्यान्वितःस्थितः ॥३८॥ ईश्वरउवाच ॥ तत्रैव संस्थितंकुण्डं दक्षिणेचकृतस्मरात् ॥ कामकुण्डेतिवैनाम यत्रोद्भूतःस्मरःपुनः ॥ ३९ ॥ अनङ्गरूपीदेवेशि तत्रस्थानेपुराभवत् ॥ तत्रैवचत्रयोदश्यां स्नात्वाकुण्डेनरोत्तमः ॥ ४० ॥ सप्तजन्मानिदेवेशि सुभगोरूपवान्भवेत् ॥ इक्षवस्तत्र

जाते हैं पृथ्वी में उन शिवजी को देखकर मनुष्य कभी न मूर्ख होताहै और न अन्ध न दुःखी न दुर्भग होताहै और न दरिद्र न रोगवान् होताहै व हे महादेवि ! उनके देखने पर जन्मसे लगाकर जो पातक ॥ ३५ । ३६ ॥ ज्ञान व अज्ञानसे कियागया है वह सब नाशको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ तुमने जो मुझसे पूछा यह सब वृत्तान्त तुमसे कहागया कि जिसप्रकार पहले कामदेव जलायागया और फिर वह बलसंयुत स्थित हुआ ॥ ३८ ॥ महादेवजी बोले कि कृतस्मर से दक्षिणमें वहीं कुण्ड स्थित है कि जिसका कामकुण्ड ऐसा नाम है जहां कि कामदेव फिर पैदाहुआ है ॥ ३९ ॥ हे देवेशि ! पुरातन समय उस स्थान में अनंगरूपी काम हुआ है तरसि

तिथि में उत्तम मनुष्य उसी कुण्डमें नहाकर ॥ ४० ॥ हे देवेशि ! सात जन्मों में सुन्दर ऐश्वर्यवान् व रूपवान् होताहै वहां ऊंखोंको देनाचाहिये और सुवर्ण व गौवों को देना चाहिये ॥ ४१ ॥ और वेदोंके पारगामी ब्राह्मण के लिये विधिपूर्वक वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकामकुण्डमाहात्म्यंनामचतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अहै प्रभासक्षेत्रमहँ भैरव काल स्थान । इकसौ पंचानबे महँ सोई कियो बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उस स्थान में कालभैरव श्मशान है

देयावै सुवर्णंगास्तथैवच ॥ ४१ ॥ वस्त्राणिविधिवत्तत्र ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कामकुण्डमाहात्म्यन्नामचतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्मिन्स्थानेमहादेवि श्मशानंकालभैरवम् ॥ ब्रह्मकुण्डाद्वरारोहे यावद्देवःकृतस्मरः ॥ १ ॥ तत्रये प्राणिनोदग्धा मृताःकालविपर्ययात् ॥ तेसर्वेमुक्तिमायान्ति महापातकिनोपिवा ॥ २ ॥ कृतस्मरान्महादेवि यावन्मङ्कीश्वरःस्मृतः ॥ महाश्मशानंतद्देवि अपुनर्भवदायकम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्स्थानेदहेद्देवि व्यसुंवैप्राणिनम्प्रिये ॥ तत्रौषधं स्मृतंक्षेत्रं तन्मेप्रियतरंसदा ॥ ४ ॥ कल्पान्तेपिनमुञ्चामि अविमुक्तात्प्रियंकृतम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकालभैरवमाहात्म्यन्नामपञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ * ॥ * ॥

हे वरारोहे ! ब्रह्मकुण्डसे लगाकर जहां तक कृतस्मर देवजी हैं ॥ १ ॥ वहां काल के विलोमसे जो मरेहुये प्राणी जलाये जाते हैं महापापी भी वे सब मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ हे महादेवि ! कृतस्मर से लगाकर जहांतक मंकीश्वरजी कहेगये हैं हे देवि ! फिर जन्मको न देनेवाला वह महाश्मशान है ॥ ३ ॥ हे प्रिये,देवि ! उस स्थान में प्राणों से रहित प्राणीको जलावै वहां क्षेत्र औषध कहागया है वह मुझ को सदैव अत्यन्त प्रिय है ॥ ४ ॥ मैं उसको कल्पान्त में भी नहीं छोड़ताहूं और न मुक्त होने के कारण वह प्रिय कियागया है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांकालभैरवमाहात्म्यंनामपञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

दो० । थाप्योहै बलभद्र जिमि श्रीरामेश्वर नाथ । कह्यो एकसौ छानबे माहिं सुभग सो गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अतिउत्तम रामेश्वर
के समीप जावै मंकीशसे दक्षिण भाग में व कृतस्मरजी से आग्नेय में ॥ १ ॥ पुरातन समय सरस्वतीजी के किनारे बलभद्र से स्थापित महादेवजी हैं जहां पर हे
वे ! राम (बलभद्र) जी ब्रह्मघातसे उपजेहुये पातकसे छूटे हैं ॥ २ ॥ पातकोंके नाश होने के लिये सरस्वतीजीमें स्नान करै देवीजी बोलीं कि वे किसप्रकार पापसे
टे हैं और पुरातन समय कैसे पाप हुआहै ॥३॥ और किसप्रकार वह लिंग स्थापित हुआहै व किस प्रभाववालाहै इसको मुझसे कहिये ॥४॥ महादेवजी बोले कि हे देवि!

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि रामेश्वरमनुत्तमम् ॥ मङ्कीशाद्दक्षिणेभागे आग्नेयेतुकृतस्मरात् ॥ १ ॥ पूर्वंत
टेसरस्वत्या बलभद्रप्रतिष्ठितः ॥ यत्रमुक्तोभवद्देवि रामोब्रह्मवधोद्भवात् ॥ २ ॥ पातकप्रतिलोपाय अवगाहेत्सरस्वती
म् ॥ देव्युवाच ॥ कथंसपातकान्मुक्तः कथंपापमभूत्पुरा ॥ ३ ॥ कथंतत्स्थापितंलिङ्गं किम्प्रभावंवदस्वमे ॥ ४ ॥
ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ यांश्रुत्वामानवोदेवि मुक्तस्संसारसागरात् ॥ ५ ॥ ससर्वा
ल्लँभतेकामान्सन्ततंमनसाप्रियान् ॥ रामःपार्थेपरांप्रीतिं दृष्ट्वाकृष्णस्यलाङ्गली ॥ ६ ॥ चिन्तयामासबहुधा किंकृतंसु
कृतंभवेत् ॥ कृष्णेनहिविनानाहं यास्येदुर्योधनान्तिके ॥ ७ ॥ पाण्डवांश्चसमाश्रित्य कथंदुर्योधनंनृपम् ॥ तीर्थेष्वा
प्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना ॥ ८ ॥ कुरूणांपाण्डवानाञ्च यावदन्तोभविष्यति ॥ इत्यामन्त्र्यहृषीकेशं पार्थं
दुर्योधनंतथा ॥ ९ ॥ जगामद्वारकांसौरिः स्वसैन्यैःपरिवारितः ॥ गत्वाद्वारवतींरामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ १० ॥

सुनिये मैं पातकों को नाशकरनेवाली कथा को कहताहूं हे देवि ! जिसको सुनकर मनुष्य संसारसागर से छूटजाता है ॥ ५ ॥ और मनसे प्यारे सब कामनाओं को
सदैव पाताहै हलको धारनेवाले बलभद्रजी ने अर्जुन के ऊपर श्रीकृष्णजी की बड़ी प्रीतिको देखकर ॥ ६ ॥ बहुत भांति से चिन्तन किया कि कियाहुआ क्या कर्म
सुकृत होगा क्योंकि श्रीकृष्णजी के विना मैं दुर्योधनके समीप नहीं जाऊंगा ॥ ७ ॥ और पाण्डवों के भलीभांति आश्रित होकर कैसे दुर्योधन नृपतिके पास जाऊंगा
॥ ८ ॥ जबतक कि कौरवों व पाण्डवों का नाश होगा इस कारण श्रीकृष्ण, अर्जुन व दुर्योधन से पूछकर ॥९॥

अपनी सेनाओं से घिरेहुये बलभद्रजी द्वारकापुरीको गये व हृष्ट पुष्ट जनों से संयुत द्वारकापुरीको जाकर ॥ १० ॥ और जाने योग्य तीर्थों में हलायुध बलभद्र जी ने मदिरापान किया इसके अनन्तर पान पियेहुये बलभद्रजी समृद्धिमान् रैवतोद्यानको गये ॥ ११ ॥ और अप्सराओं से संयुत अपनी स्त्रीको हाथ में पकड़कर स्त्रीगणों के मध्य में स्थित बलभद्रजी लरखराते हुये उन्मत्त की नाईं चले ॥१२॥ और वीर बलभद्रजी ने अतिउत्तम व मनोहर तथा सब ऋतुवोंके वृक्षों व पुष्पों से संयुत व वानर गणों से युक्त वनको देखा ॥ १३ ॥ जोकि छोटे तड़ागों से युक्त महावन पुष्प, पत्र व फलों से संयुत था और वनमें उत्पन्न तथा मदके कारण मधुर

गन्तव्येषुचतीर्थेषु पपौपानंहलायुधः ॥ पीतपानोजगामाथरैवतोद्यानमृद्धिमत् ॥ ११ ॥ हस्तेगृहीत्वास्वांभार्यामप्सरोभिस्समन्विताम् ॥ स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययावुन्मत्तवत्स्खलन् ॥ १२ ॥ ददर्शचवनंवीरो रमणीयमनुत्तमम् ॥ सर्वर्त्तुतरुपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ॥ १३ ॥ पुष्पपत्रफलोपेतं सपल्लवमहावनम् ॥ सशृण्वन्प्रीतिजनकान् वन्यान्मदकलाञ्छुभान् ॥ १४ ॥ श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्छब्दान्खगमुखेरितान् ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यान् सर्वतःकुसुमोज्ज्वलान् ॥ १५ ॥ अपश्यत्पादपांश्चैव विहगैरनुमोदितान् ॥ आम्रानाम्रातकान्भव्यान् नालिकेरान्सतिन्दुकान् ॥ १६ ॥ आमलांश्चतथावृक्षान् दाडिमान्बीजपूरकान् ॥ पनसाल्लँकुचान्मोचान् नीपांश्चापिमनोहरान् ॥ १७ ॥ भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्चमहाफलान् ॥१८॥ इङ्गुदान्करमर्दांश्चहरीतकविभीतकान् ॥ एतानन्यांश्चसतरून् ददर्शयदुनन्दनः ॥ १९ ॥ तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलांस्तथा ॥ चम्पकान्सप्तपर्णांश्च कर्णिकारान्सुमालतीम् ॥ २० ॥ पारिजा

व अप्रकट उत्तम तथा प्रीतिको पैदा करनेवाले पक्षियों के मुखसे कहेहुये कानोंको रमणीय व मीठे शब्दों को सुनते हुये वे बलभद्रजी चले और उन बलभद्रजी ने सब ऋतुवों के फलों व पुष्पों से संयुत तथा सब ओर फूलों से श्वेत ॥ १४।१५ ॥ व पक्षियोंसे अनुमोदित वृक्षों को देखा उत्तम आम्र, अँवरा व तिंदुक समेत नारियल के वृक्षों को देखा ॥ १६ ॥ और आँवला, अनार, बिजौरा, कटहर, बड़हर, सहिंजन व सुन्दर कदम्बोंको देखा ॥ १७ ॥ और भेलावां, आमलक व बड़े फल वाले तिन्दुक वृक्षोंको देखा ॥ १८ ॥ और इंगुदी, करौंदा, हर्रा व बहेड़ा इन तथा अन्य वृक्षोंको उन यदुनन्दन बलभद्रजीने देखा ॥ १९ ॥ वैसेही अशोक, पुन्नाग,

केतकी, मौलमिरी, चम्पक, छतौंड़, कर्णिकार व चमेली के वृक्षको देखा ॥ २० ॥ और नींब, लालकचनार, मदार व नीले कमल तथा फूलेहुये सुन्दर पाड़र व देवदारु वृक्षोंको देखा ॥ २१ ॥ और सॉखू, ताल, तमाल, जलबेत व मौलसिरीके वृक्षों को देखा और बगुला, शतपत्र (कठफोरवा) और कानोंको मनोहर तथा मीठे शब्दों को बोलतेहुये अन्य पक्षियोंसे अधिष्ठित वृक्षोंको देखा व सुन्दर जलवाले कमलोंसमेत तड़ागोंको देखा ॥ २२ । २३ ॥ जोकि कुमुद, श्वेत कमल व अरुण कमल तथा कह्लार याने सन्ध्या में फूलनेवाले श्वेत कमल और सामान्य कमलों से सब ओर पूजित थे ॥ २४ ॥ व बतक, चकई चकवा और जलमुर्गा तथा पूर्वहंस, कछुवा

तान्कोविदारान् मन्दारेन्दीवरांस्तथा ॥ पाटलान्पुष्पितान्रम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा ॥ २१ ॥ शालांस्तालांस्तमालांश्च निचुलान्वञ्जुलांस्तथा ॥ बकैश्चशतपत्रैश्च शुकैरन्यैर्विहङ्गमैः ॥ २२ ॥ श्रोत्ररम्यंसमधुरं कूजद्भिश्चावधिष्ठितान् ॥ सरांसिचसपद्मानि मनोज्ञसलिलानिवा ॥ २३ ॥ कुमुदैःपुण्डरीकैश्च तथारोचनकोत्पलैः ॥ कह्लारैःकमलैश्चापि अर्चितानिसमन्ततः ॥ २४ ॥ कदम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैवजलकुक्कुटैः ॥ कारण्डवैःपूर्वहंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेवच ॥ २५ ॥ एतैश्चान्यैःप्रकीर्णानि तथान्यैर्जलवासिभिः ॥ क्रमेणसञ्चरञ्छौरिः प्रेक्षमाणोमनोरमम् ॥२६॥ जगामानुगतस्स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥ सददर्शद्विजांस्तत्रवेदवेदाङ्गपारगान् ॥ २७॥ कौशिकान्भार्गवांश्चैव भरद्वाजान्सकौतुकात् ॥ विविधेषुचसम्भूतान् विविधान्द्विजसत्तमान् ॥२८॥ कथाश्रवणबद्धैक्यानुपविष्टान्सभासुच॥ कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कूर्चेषुचवृषीषुच ॥ २९ ॥ सूतञ्चतेषांमध्यस्थं कथमानंकथाश्शुभः ॥ पौराणिकंसुरर्षीणामाद्यानांचरितक्रियाः ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा

और जलकौवा ॥ २५ ॥ इनसे व अन्य जलवासी पक्षियों से संयुत थे क्रमसे विचरते हुये व स्त्रियों से अनुगत बलभद्रजी सुन्दर व अतिउत्तम लतागृहको देखतेहुये चले व उन्होंने वहां वेद वेदांगों के पारगामी ब्राह्मणों को देखा ॥ २६ । २७ ॥ और उन्हों ने कौतुक से कौशिक, भार्गव, भरद्वाजवंशी और विविध वंशों में उत्पन्न अनेक प्रकारके द्विजोत्तमों को देखा ॥ २८ ॥ जोकि कथाके सुनने में एकताको बॉधे हुये व सभाओं में कृष्णाजिन दुपट्टा और कूर्च व आसनों पै बैठे थे ॥ २९ ॥ और उनके मध्य में स्थित पहले उपजे हुये देवर्षियों के चरित व कर्मों को तथा उत्तम कथाओं को कहतेहये पौराणिक सूतजी को देखा ॥ ३० ॥ और मदिरा के पीने

से लाल लोचनोंवाले बलभद्रजी को देखकर यह मत्त है ऐसा मानतेहुये शीघ्रतासंयुत सब ब्राह्मण उठे ॥ ३१ ॥ और सूत वंशमें पैदाहुये उन सूतजी को छोड़कर हलधारी बलभद्रजी को पूजतेहुये प्राप्तभये तदनन्तर महाबलवान् व हलधारी बलभद्रजी ने क्रोध में प्राप्तहोकर सूतजी को ॥ ३२ ॥ मारा जो बलभद्रजी घूमतेहुये नेत्रोंवाले व समस्त दानवोंको क्षोभित किये थे ब्राह्मण के स्थान में बैठेहुये उन सूतके मारने पर ॥ ३३ ॥ कृष्णाजिनको बाँधेहुये वे सब ब्राह्मण निकले और अपना को अवधूत (उन्मत्त) मानतेहुये हलायुध बलभद्रजी ने ॥ ३४ ॥ चिन्तन किया कि मैंने यह बड़ाभारी पाप किया जोकि ब्रह्मासन पै बैठेहुये इस सूत को मारा ॥ ३५ ॥

रामंद्विजास्सर्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥ मत्तोयमितिमन्वानास्समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ॥ ३१ ॥ पूजयन्तोहलधरं तमृतेसूतवंशजम् ॥ ततःक्रोधसमाविष्टो हलीसूतंमहाबलः ॥ ३२ ॥ निजघाननिवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः ॥ अन्वासितेपदेब्राह्मये तस्मिन्सूतेनिपातिते ॥३३॥ निष्क्रान्तास्तेद्विजास्सर्वे बद्धकृष्णाजिनाम्बराः ॥ अवधूतंतथात्मानं मन्यमानोहलायुधः ॥ ३४ ॥ चिन्तयामाससुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥ ब्रह्मासनगतोह्येष यत्सूतोविनिपातितः ॥ ३५ ॥ तथाह्येतेद्विजास्सर्वे मामावेक्ष्यविनिर्गताः ॥ शरीरस्यचमेगन्धो लोहस्येवासुखावहम् ॥ ३६ ॥ आत्मानंचावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिवकुत्सितम् ॥ धिग्ममार्थतयामाद्यं मद्यपानादकीर्त्तिदात् ॥ ३७ ॥ येनाविष्टेनसुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥ स्मृत्युक्तन्तुकरिष्यामि प्रायश्चित्तंयथाविधि ॥ ३८ ॥ उक्तमस्त्येवमनुना प्रायश्चित्तादिकंक्रमात् ॥ तपःप्रच्छिन्नपापानां मनस्सम्पूतमुच्यते ॥ ३९ ॥ पूतेनमनसाविद्याद्बुद्धिज्ञानविशोधनम् ॥ क्षेत्रज्ञेश्वरविज्ञानाद्विशुद्धिःपरमा

और ये सब ब्राह्मण मुझको देखकर निकले हैं और लोहकी नाईं दुःखदायी मेरे शरीर की गन्ध है ॥ ३६ ॥ मैं अपनाको ब्रह्मघातीकी नाईं निन्दित जानताहूं और अर्थतासे अयशदायक मद्यपान के कारण मेरी मत्तताको धिक्कार है ॥ ३७ ॥ कि जिसके प्रवेश होने से मैंने इस बड़े भारी पापको कियाहै और स्मृति में कहेहुये प्रायश्चित्तको मैं विधिपूर्वक करूंगा ॥ ३८ ॥ मनुजीने क्रमसे प्रायश्चित्तादिकको कहा है और तपस्या से नष्ट पातकोंवाले पुरुषोंका मन पवित्र कहाजाता है ॥ ३९ ॥

पवित्र मन से बुद्धि ज्ञानको विशोधन जानै और क्षेत्रज्ञेश्वर के ज्ञानसे परमात्माकी शुद्धि होती है ॥ ४० ॥ और अनेक भांतिके उन प्रायश्चित्तों से शरीर शुद्ध है उस कारण मैं पातकोंके नाशक बारह वर्षवाले व्रतको करूंगा ॥ ४१ ॥ व अपने कर्मको प्रसिद्ध करताहुआ मैं अति उत्तम प्रायश्चित्तको करूंगा अकाम से णको मारनेपर यह शुद्धि कहीगई है ॥ ४२ ॥ और काम से ब्राह्मण के मारने पर प्रायश्चित्त नहीं कियाजाता है जो मनुष्य किसी प्रकार कामनासे महापापको ा है ॥ ४३ ॥ अग्निमें गिरने के सिवा उसका कभी प्रायश्चित्त नहीं देखागया है अकाम से पाप करने पर विद्वानों ने प्रायश्चित्त कहा है ॥ ४४ ॥ और काम से

त्मनः ॥ ४० ॥ शरीरस्तैर्विशुद्धस्तु प्रायश्चित्तैःपृथग्विधैः ॥ ततोघघ्नंकरिष्यामि व्रतंद्वादशवार्षिकम् ॥ ४१ ॥ स्वकर्म ख्यापनंकुर्वन् प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥ इयंविशुद्धिर्विहिता अकामाद्विहतेद्विजे ॥ ४२ ॥ कामतोब्राह्मणवधेनिष्कृति र्नविधीयते ॥ यःकामतोमहापापं नरःकुर्यात्कथञ्चन ॥ ४३ ॥ नतस्यनिष्कृतिर्दृष्टा जात्वग्निपतनादृते ॥ अकामतः कृतेपापे प्रायश्चित्तंविदुर्बुधाः ॥ ४४ ॥ कामकारकृतेप्याहुरेकेश्रुतिनिदर्शनात् ॥ विधेःप्राथमिकादस्माद्द्वितीयेद्विगु णञ्चरेत् ॥ ४५ ॥ तृतीयेत्रिगुणंप्रोक्तं चतुर्थेनास्तिनिष्कृतिः ॥ औषधीधनमाहारं दद्याद्गांब्राह्मणायवै ॥ ४६ ॥ दीयमा नेनिष्कृतिस्स्यान्नसपापेनलिप्यते ॥ अकारणन्तुयःकश्चिद्द्विजःप्राणान्परित्यजेत् ॥ ४७ ॥ तत्रैवतस्यदोषस्स्या न्नन्वयंपरिकीर्त्तितः ॥ तिरस्कृतोयदाविप्रो हत्वात्मानंमृतोयदि ॥ ४८ ॥ मृतश्चसहसाक्रोधाद्गृहक्षेत्रादिकारणात् ॥ त्रिवार्षिकंव्रतंकुर्यात् प्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥ ४९ ॥ गच्छेद्वापिविशुद्ध्यर्थं ततश्शुध्यतिनिश्चितम् ॥ षण्ढन्तुब्राह्मणं

करने पर भी कितेक विद्वानों ने श्रुतिके देखने से प्रायश्चित्त को कहा है कि इस पहली विधि से दूसरे पाप में दुगुना प्रायश्चित्त करै ॥ ४५ ॥ व तीसरे में तिगुना हागया है और चौथे में प्रायश्चित्त नहीं है ब्राह्मणके लिये औषधी, धन व भोजन और गऊको देवै ॥ ४६ ॥ क्योंकि देनेपर प्रायश्चित्त होताहै और वह पापसे लप्त नहीं होताहै और जो कोई ब्राह्मण बिन कारण प्राणोंको छोड़ता है ॥ ४७ ॥ तो उसमें उसीको दोष होताहै यह कहागया है और जब अपमान कियाहुआ ब्राह्मण जीवात्मा को मारकर यदि मरजावै ॥ ४८ ॥ और क्रोधसे अचानक ही गृह व क्षेत्रके कारण मरजावै तो त्रिवार्षिक व्रत करै व प्रतिलोमा सरस्वती के समीप पवित्रता

वहां यात्रा करता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाता है हे वरारोहे ! वहां सरस्वती व समुद्र के सङ्गमम नहाकर
ऋषों को वहां गोदान देना चाहिये हे देवि ! रामेश्वर का माहात्म्य ऐसाही कहागयाहै ॥७१॥ जिसको सुनकर भलीभांति श्रद्धावान् पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होता
७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामेश्वरमाहात्म्यंनामषण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि मंकीश्वर लिंगको थाप्यो मंकिमुनीश । इकसौ सत्तानबे महँ सोई चरित बरीश । महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर रामेशजीसे उत्तरभागमें

ब्धिसङ्गमे ॥ ७० ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ इत्येवंकथितंदेवि रामेश्वरमहोदयम् ॥७१॥ यच्छ्रुत्वामानवःसम्यक्श्रद्धावान्प्राप्नुयाद्दिवम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येरामेश्वरमाहात्म्यंनामषण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मङ्कीश्वरमहालयम् ॥ रामेशादुत्तरेभागे देवमातुःसमीपगम् ॥ १ ॥ अर्कस्थलात्तोयाम्ये पूर्वतस्तुकृतस्मरात् ॥ तंदृष्ट्वामानवःसम्यगश्वमेधफलंलभेत् ॥ २ ॥ देव्युवाच ॥ कोसौमङ्कीमहादेव कथंलिङ्गम्प्रतिष्ठितम् ॥ कथंप्रभावन्तल्लिङ्गमेतन्मेविस्तराद्वद ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच॥ मङ्कीनामाभवत्पूर्वं कुब्जकायो द्विजोत्तमः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपस्तेपेसउत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं शिवभक्तिपरायणः ॥ ततोदुःखंसमभवन्मङ्केस्तत्रवरानने ॥ ५ ॥ कस्मान्मेभगवांस्तुष्टिं नगच्छतिमहेश्वरः ॥ ततस्तीव्ररतिंचक्रे कृत्वामृत्युनिवर्त्तनम्॥६॥

देवमाता के समीप प्राप्त मंकीश्वर महालय को जावै ॥ १ ॥ जोकि उस अर्कस्थल से दक्षिणमें व कृतस्मर से पूर्वमें स्थित है उसको देखकर मनुष्य भलीभांति अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्तहोता है ॥ २ ॥ देवीजी बोलीं कि हे महादेव ! यह मंकी कौनहै और किस प्रकार लिंग थापागया है और किस प्रभाववाला वह लिंगहै इस को मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि पुरातनसमय कुब्जशरीरवाला मंकीनामक द्विजोत्तम हुआहै शिवजीकी भक्तिमें परायण उसने प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर महादेवजी को थापकर उत्तम तप किया तदनन्तर हे वरानने! वहां मङ्कीके दुःख हुआ ॥ ४ । ५ ॥ कि भगवान् महेशजी मेरे ऊपर क्यों नहीं प्रसन्नता

प्रसिद्ध महाक्षेत्र को आये ॥ ६० ॥ व सरस्वती समुद्र के सङ्गमवाले मनोहर तीर्थ को देखकर उन्होंने हृदय में प्रतिलोमा के स्नान करने के निमित्त संकल्प किया ॥ ६१ ॥ व विभु बलभद्रजीने वहां क्षेत्रवासी ब्रह्मण्य ब्राह्मणोंको बुलाकर भलीभांति यात्रा की विधिसे वहां यात्रा किया ॥ ६२ ॥ और प्रभासक्षेत्र में बारह योजनमें स्थित जो अनेक भांति के तीर्थथे उनमें उन बलभद्रजी ने यात्रा किया ॥ ६३ ॥ और उनमें प्रत्येक तीर्थमें अनेक भांतिके दानोंको दिया वैसेही सरस्वती व समुद्रके सङ्गम में पूर्वभाग में यज्ञ विधिके कार्यको करके महालिंगको स्थापन किया हे महादेवि ! ऐसा करनेपर वे बलभद्रजी पातकों से मुक्त हुये ॥ ६४ । ६५ ॥ तदनन्तर हे देवि !

प्रभासमितिविश्रुतम् ॥ ६० ॥ दृष्ट्वामनोरमंतीर्थं सरस्वत्यब्धिसङ्गमम् ॥ चकारहृदिसङ्कल्पं प्रतिलोमावगाहने॥६१॥ आहूयब्राह्मणांस्तत्र ब्रह्मण्यान्क्षेत्रवासिनः ॥ सम्यग्यात्राविधानेन यात्रांतत्राकरोद्विभुः ॥ ६२ ॥ यानिप्राभासिके क्षेत्रे तीर्थानिविविधानितु ॥ रवियोजनसंस्थानि तेषुयात्रांचकारसः ॥ ६३ ॥ प्रत्येकञ्चददौतेषु दानानिविविधानिच ॥ तथाचस्थापयामास सरस्वत्यब्धिसङ्गमे ॥ ६४ ॥ पूर्वभागेमहालिङ्गं कृत्वायज्ञविधिक्रियाम् ॥ एवंकृतेमहादेवि समुक्तःपातकैरभूत ॥ ६५ ॥ निर्मलाङ्गस्ततोदेवि दिनानिदशसंस्थितः ॥ ततस्तस्माचसंस्थानात्प्रतिलोमांक्रमाद्ययौ ॥ ६६ ॥ लच्चावतरणंयावत्समुद्राच्चहिमाह्वयम् ॥ एवंसमुक्तःपापौघै रामोभूत्प्रथितःप्रिये ॥ ६७ ॥ तस्माच्चलिङ्गमाहात्म्यात्सरस्वत्याःप्रभावतः ॥ यस्तत्पूजयतेदेवि लिङ्गंपापभयापहम् ॥ ६८ ॥ रामेश्वरेतिप्रथितं सोपिमुच्येतपातकात् ॥ सोमाष्टम्यांविशेषेण ब्रह्मकूर्चविधानतः ॥ ६९ ॥ यस्तत्रकुरुतेदेवि मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ स्नात्वातत्रवरारोहे सरस्वत्य

निर्मल शरीरवाले बलभद्रजी दश दिनतक भलीभांति टिकेरहे तदनन्तर उस स्थानसे क्रमसे प्रतिलोमा सरस्वती को गये ॥ ६६ ॥ जहांतक कि समुद्र से हिमनामक लच्चावतरण स्थानहै इस प्रकार हे प्रिये ! पापसमूहों से छूटेहुये बलभद्रजी उस लिंगके माहात्म्य से व सरस्वतीजी के प्रभावसे प्रसिद्ध हुयेहैं हे देवि ! जो मनुष्य पाप के भयको दूर करनेवाले रामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध उस लिङ्गको पूजताहै वह भी पातक से छूटजाताहै और विशेषकर सोमवार अष्टमीमें ब्रह्मकूर्चकी विधिसे ॥ ६७।६८।६९॥

हे देवि! जो वहां यात्रा करता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाता है हे वरारोहे! वहां सरस्वती व समुद्र के सङ्गममें नहाकर ॥ ७० ॥ भलीभांति यात्राके फलको चाहने वाले पुरुषों को वहां गोदान देना चाहिये हे देवि! रामेश्वर का माहात्म्य ऐसाही कहागयाहै ॥७१॥ जिसको सुनकर भलीभाति श्रद्धावान् पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामेश्वरमाहात्म्यंनामषण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि मंकीश्वर लिंगको थाप्यो मंकिमुनीश । इकसौ सत्तानबे महँ सोई चरित बरीश । महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर रामेशजीसे उत्तरभागमें

यच्छुद्धिमङ्गमे ॥ ७० ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ इत्येवंकथितंदेवि रामेश्वरमहोदयम् ॥ ७१ ॥ यच्छ्रुत्वामानवःसम्यक्श्रद्धावान्प्राप्नुयाद्दिवम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येरामेश्वरमाहात्म्यंनामषण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मङ्कीश्वरमहालयम् ॥ रामेशादुत्तरेभागे देवमातुःसमीपगम् ॥ १ ॥ अर्कस्थलात्ततोयाम्ये पूर्वतस्तुकृतस्मरात् ॥ तंदृष्ट्वामानवःसम्यगश्वमेधफलंलभेत् ॥ २ ॥ देव्युवाच ॥ कोसौमङ्कीमहादेव कथंलिङ्गम्प्रतिष्ठितम् ॥ कथंप्रभावन्तल्लिङ्गमेतन्मेविस्तराद्वद ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ मङ्कीनामाभवत्पूर्वं कुब्जकायो द्विजोत्तमः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपस्तेपेसउत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं शिवभक्तिपरायणः ॥ ततोदुःखंसमभवन्मङ्केस्तत्रवरानने ॥ ५ ॥ कस्मान्मेभगवांस्तुष्टिं नगच्छतिमहेश्वरः ॥ ततस्तीव्ररतिंचक्रे कृत्वामृत्युनिवर्त्तनम् ॥ ६ ॥

देवमाता के समीप प्राप्त मंकीश्वर महालय को जावै ॥ १ ॥ जोकि उस अर्कस्थल से दक्षिणमें व कृतस्मर से पूर्वमें स्थित है उसको देखकर मनुष्य भलीभांति अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्तहोता है ॥ २ ॥ देवीजी बोलीं कि हे महादेव! यह मंकी कौनहै और किस प्रकार लिंग थापागया है और किस प्रभाववाला वह लिंगहै इस को मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि पुरातनसमय कुब्जशरीरवाला मंकीनामक द्विजोत्तम हुआहै शिवजीकी भक्तिमें परायण उसने प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर महादेवजी को थापकर उत्तम तप किया तदनन्तर हे वरानने! वहां मङ्कीके दुःख हुआ ॥ ४ । ५ ॥ कि भगवान् महेशजी मेरे ऊपर क्यों नहीं प्रसन्नता

को प्राप्तहोते हैं उसके उपरान्त उन्होंने मृत्युका निवर्तनकर तीव्र अनुराग किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार जप व ध्यानमें परायण मंकी वृद्धताको प्राप्त हुये व अवस्था के अन्त में प्रसन्न होते हुये महादेवजी ने उसको वरदान दिया ॥ ७ ॥ कि तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्नहूं कहिये क्या करूं व तुम को क्या देऊं मंकि बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! इस समय मुझ वृद्धको वरदान से क्या कार्यहै ॥ ८ ॥ हे विभो! यहां टिकेहुये मुझको एक बड़ाभारी दुःखहै कि हे शङ्करजी! तुम्हारी प्रसन्नतासे बहुत मनुष्य सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ व हे देव, प्रभो! वह क्या कारणहै कि जिससे मेरे ऊपर नहीं प्रसन्न होतेहो श्रीभगवान् शिवजी बोले कि उस कारणको सुनिये कि जिससे उन तपस्वियों

एवंवृद्धत्वमापन्नो जपध्यानपरायणः ॥ तस्यतुष्टोमहादेवो वयसोन्तेवरंददौ ॥ ७ ॥ परितुष्टोस्मितेब्रूहि किङ्करोमिददामि ते ॥ मङ्किरुवाच ॥ किंवरेणसुरश्रेष्ठ ममवृद्धस्यसांप्रतम् ॥ ८ ॥ एकंचपरमंदुःखं स्थितस्यात्रविभोमम ॥ प्रभूताःसिद्धिमापन्नाः प्रसादात्तवशङ्कर ॥ ६ ॥ किन्तुतत्कारणंदेवनतुष्टोसिममप्रभो ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणुतत्कारणंयेन तेषांतुष्टस्तपस्विनाम् ॥ १० ॥ व्रतचर्यापराविप्राः पूजयाभ्यधिकाहिते ॥ तेपुष्पाणिसमानीय नानावर्णानिसर्वशः ॥ ११ ॥ वृक्षाणामतिगन्धीनि तत्तेषांहर्षकारणम् ॥ त्वंपुनःकुब्जरूपेण यज्ञपूजापरायणः ॥ १२ ॥ नचप्राप्नोषिवृक्षाणां शाखाग्राण्यपियत्नवान् ॥ एकेनापिप्रदत्तेन पुष्पेणद्विजसत्तम ॥ १३ ॥ भक्त्याशिरसिलिङ्गस्य लभतेयज्ञजंफलम् ॥ लिङ्गस्यदक्षिणेब्रह्मा स्वयमेवव्यवस्थितः ॥ १४ ॥ मध्येचभगवान्विष्णुर्वामेहंविप्रतिष्ठितः ॥ त्रयोपिपूजितास्तेन येनलिङ्गम्प्रपूजितम् ॥ १५ ॥ बिल्वपत्रंशमीपत्रं करवीरञ्चमालती ॥ धत्तूरकंचम्पकञ्च सद्यःप्रीतिकरंभवेत् ॥ १६ ॥ उन्मत्ताशो

के ऊपर मैं प्रसन्न हुआ हूं ॥ १० ॥ वे ब्राह्मण व्रतचर्या में तत्पर होकर पूजासे अधिक हैं क्योंकि वे सब वृक्षों के अतिसुगन्धित व अनेक रंगके फूलों को लाकर पूजते थे वह उनके ऊपर हर्षका कारणहै और तुम कुब्जरूप से यज्ञ व पूजन में परायण थे ॥ ११ । १२ ॥ और यत्नवान् तुम वृक्षों के शाखाके अग्र भागोको भी नहीं पातेथे हे द्विजोत्तम ! लिंगके मस्तकपै भक्तिसे एकभी पुष्प देने मे मनुष्य यज्ञसे उपजेहुये फलको पाता है लिंगके दाहिने आपही ब्रह्माजी स्थित हैं ॥ १३ । १४ ॥ व बीचमें भगवान् विष्णुजी और बायें ओर मैं स्थितहूं जिसने लिंगको पूजा उसने तीनों देवताओंका पूजन किया ॥ १५ ॥ बिल्वपत्र, शमीपत्र, कनैर, चमेली, धतूर,

व चम्पक शीघ्रही प्रीतिकारक है ॥ १६ ॥ धतूर, अशोक व कमलोंसे विधिपूर्वक पूजन करै हे द्विजोत्तम ! ये और जो अन्य सुगन्धित पुष्पहैं ॥ १७ ॥ नित्य इनसे पूजने पर तदनन्तर मैं शीघ्रही प्रसन्नताको प्राप्त होता हूं ब्राह्मण बोला कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥ १८ ॥ तो यहा आकर जो मनुष्य स्नानकर जलमेंभी इस लिंगको सींचै वह सब पूजनोंके फलको प्राप्तहोवै ॥ १९ ॥ व हे शङ्करजी! आजसे लगाकर जो वृक्ष दैविकहैं और जो पार्थिवहैं तुम्हारी प्रसन्नतासे उनकी यहां समीपता होवै ॥ २० ॥ श्रीभगवान् शिवजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष इस लिंगमें जलसे भी पूजन करैगा उसको सब पूजन का फल

कह्लारैः पूजयेद्दैयथाविधि ॥ एतानिद्विजशार्दूल येचान्येचसुगन्धिनः ॥ १७ ॥ एतैर्हिपूजितेनित्यं शीघ्रन्तुष्टिंततोग तः ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ १८ ॥ इहागत्यनरःस्नात्वा योजलेनापिसिञ्चयेत् ॥ लिङ्गमेतद्धिसर्वासां पूजानांफलमाप्नुयात् ॥ १९ ॥ अद्यप्रभृतियेवृक्षा दैविकाःपार्थिवाश्चये ॥ तेषांसान्निध्यमत्रास्तु प्रसादात्तवशङ्कर ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सलिलेनापियःपूजामस्मिँल्लिङ्गेविधास्यति ॥ तस्यपूजाफलंसर्वं भविष्यतिद्विजोत्तम ॥ २१ ॥ वृक्षाणामत्रसान्निध्यं सर्वेषांचभविष्यति ॥ अद्यप्रभृतिनाम्नैतन्नागस्थानंभविष्यति ॥ २२ ॥ यतस्तु सर्वनागानांसान्निध्यमत्रसंस्थितम् ॥ त्वमपिद्विजशार्दूल प्रयास्यसिममान्तिकम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वातुभगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ मङ्किस्तुदेहमुत्सृज्य शिवलोकंततोगतः ॥ २४ ॥ इत्येवंकथितंदेवि मङ्कीशोद्भवमुत्तमम् ॥ श्रुतंहरति पापानि सम्यक्श्रद्धासमन्वितैः ॥ २५ ॥ इति श्रीमङ्कीश्वरमाहात्म्यंनामसप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

होगा ॥ २१ ॥ व सब वृक्षोंकी यहां समीपता होगी व आजसे लगाकर नाम से यह नागस्थान होवैगा ॥ २२ ॥ क्योंकि यहा सब नागोंकी समीपता है व हे द्विजोत्तम! तुमभी मेरे समीप प्राप्तहोवोगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर मंकी शरीरको छोड़कर शिवलोकको प्राप्तहुये ॥ २४ ॥ हे देवि ! मंकीश से उपजाहुआ यह उत्तम माहात्म्य कहागया भलीभांति श्रद्धासंयुत पुरुषों से सुनाहुआ यह पातकों को हरता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमङ्कीश्वरमाहात्म्यनामसप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥ ॥ ॥

दो० । सरस्वती अरु नीरनिधि संगमकर परभाव । इकसौ अट्ठानबे महँ सोई चरित सुहाव ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे संसारसमुद्र से पार उतारनेवाले, देवदेवेश, भगवन्! मुझ से सरस्वती के माहात्म्य को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ हे देवेश, शङ्करजी! जहां आयेहुये जितचित्तवाले पुरुषों को पूजाद्वारमें व स्नान, दानमें क्या फल होताहै ॥२॥ और यहा स्नानसेभी क्या फल होताहै और श्राद्धकी क्या विधिहै व कौन मन्त्रहैं और उसमें कौन ब्राह्मण होते हैं॥३॥और श्राद्धकर्म में ब्राह्मणों को क्या ग्रहण करना चाहिये व क्या भोजन करना चाहिये और यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको कौन दान देना चाहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि! सुनिये

श्रीदेव्युवाच ॥ भगवन्देवदेवेश संसारार्णवतारक ॥ सरस्वत्याश्रमाहात्म्यं विस्तरात्कथयस्वमे ॥ १॥ यत्रागतानां देवेश पुरुषाणांजितात्मनाम्॥पूजाद्वारेतुकिम्पुण्यं स्नानेदानेतुशङ्कर ॥ २ ॥ अवगाहेनचाप्यत्र फलंकिन्तुप्रजायते ॥ श्राद्धस्यकिंविधानन्तु केमन्त्रास्तत्रकेद्विजाः ॥ ३ ॥ किंग्राह्यंकिंचभोक्तव्यं ब्राह्मणैःश्राद्धकर्मणि ॥ कानिदानानिदेयानि नृभिर्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि दानश्राद्धविधिक्रमम् ॥ सरस्वत्याश्चमाहात्म्यं कीर्त्यमानंनिबोधमे ॥ ५ ॥ पुण्यंसारस्वतंतोयं यत्रतत्रावगाह्यते ॥ सागरेणतुसंमिश्रं देवानामपिदुर्लभम् ॥ ६ ॥ सरस्वतीसर्वनदीषुपुण्या सरस्वतीलोकसुखावहासदा ॥ सारस्वतींप्राप्यदिवंगतानराः सदानशोचन्तिपरत्रचेहच ॥ ७ ॥ पुण्यंसारस्वतंतोयं पुण्यकृल्लभतेनरः ॥ दुर्लभंत्रिषुलोकेषु वैशाख्यांसोमपर्वणि ॥ ८ ॥ अमासोमेनसंयुक्ता यदितत्रैव लभ्यते ॥ तत्रकिंक्रियतेदेवि पर्वकोटिशतैरपि ॥ ९ ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणि महासान्तपनानिच ॥ प्रायश्चित्तानि

मैं दान व श्राद्धकी विधिके क्रमको कहताहूं और कहेजाते हुये सरस्वती के माहात्म्यको मुझसे सुनिये ॥ ५ ॥ कि सरस्वतीजीका पवित्र जल जहां तहां स्नान किया जाताहै और समुद्र मे मिलाहुआ जल देवताओंको भी दुर्लभहै ॥ ६ ॥ सब नदियों में सरस्वती पुण्यदायिनी है और सरस्वती सदैव लोकोंके सुखको देनेवाली है व सरस्वती को प्राप्तहोकर स्वर्गमें गयेहुये मनुष्य सदैव इस लोक व परलोक में नहीं शोचते हैं ॥ ७ ॥ सरस्वतीजी के पवित्र जल को पुण्यकारी मनुष्य पाता है और वैशाखी पौर्णमासीमें चन्द्रग्रहण होनेपर वह तीनोंलोको में दुर्लभ है ॥ ८ ॥ हे देवि! सोमवार से संयुत अमावस यदि वहीं मिले तो वहा करोड़ों सौपर्वों से क्या किया

जावै ॥ ६ ॥ क्योंकि कृच्छ्र चान्द्रायण व महासांतपन प्रायश्चित्त वहां दियेजाते हैं जहां सरस्वती नहीं है ॥ १० ॥ जबतक मनुष्य का अस्थि सरस्वतीजी के जलमें स्थित रहता है उतने हज़ार वर्षोंतक वह शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ११ ॥ वे जन्मान्ध व पंगु प्राणियोंके समान जाननेयोग्यहैं जो कि समर्थहोकर प्रभासमें स्थित सरस्वतीजी को नहीं देखते हैं ॥ १२ ॥ वे देश और वे तीर्थ तथा वे आश्रम और वे पर्वत हैं कि जिनके मध्यमें उत्तमनदी सरस्वती देवी जातीहैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य त्रिलोक को पवित्र करनेवाली व पुण्यरूपिणी सरस्वतीजी के भलीभांति आश्रित हैं वे फिर संसाररूपी कीचड़के सुगन्धको नहीं सूंघतेहैं॥१४॥ शब्दविद्याकी नाईं विस्तीर्ण

दीयन्ते यत्रनास्तिसरस्वती ॥ १० ॥ यावदस्थिमनुष्यस्यतिष्ठेत्सारस्वतेजले ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ ११ ॥ जन्मान्धैस्तेसमाज्ञेया भूतैःपङ्गुभिरेवच ॥ समर्थायेनपश्यन्ति प्रभासस्थांसरस्वतीम् ॥ १२ ॥ तेदेशास्तानितीर्थानि आश्रमास्तेचपर्वताः॥येषांसरस्वतीदेवी मध्येयातिसरिद्वरा ॥ १३ ॥ त्रैलोक्यपावनींपुण्यां संश्रितायेसरस्वतीम् ॥ संसारकर्दमामोदमाजिघ्रन्तिनतेपुनः ॥ १४ ॥ शब्दविद्येवविस्तीर्णा मातेवजगतःप्रिया ॥ सताम्मतिरिवस्वच्छा रमणीयासरस्वती ॥ १५ ॥ त्रैलोक्यशोभितांदेवीं दिव्यतोयांसुनिर्मलाम् ॥ सचेतनःपुमान्कोत्र नविन्देतसरस्वतीम् ॥ १६ ॥ स्वर्गनिःश्रेणिसम्भूता प्रभासेतुसरस्वती ॥ दर्शनेनसरस्वत्या राजसूयफलंलभेत् ॥ १७ ॥ प्रत्यूषस्याश्वमेधस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ मांसास्थिचर्मलोमानि नखकेशादिकानिच ॥ १८ ॥ बलैरपिहतान्येव स्थितिंसारस्वतेजले ॥ वध्नन्तियदिकालेते नकालवशगानराः ॥ १९ ॥ देविकिंबहुनोक्तेन वर्णितेनपुनःपुनः ॥ सरस्वत्याःपरंतीर्थं नभूतंनभ

व संसारकी माताकीनाईं प्यारी और सत्पुरुषोंकी बुद्धिकीनाईं निर्मल व रमणीय सरस्वती हैं ॥१५॥ त्रिलोकमें शोभित व दिव्यजलवाली निर्मल सरस्वतीजीको इस संसार में कौन सचेतन पुरुष नहीं प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ प्रभासक्षेत्र में सरस्वती स्वर्गकी सोपानभूत है सरस्वतीजी के दर्शनसे मनुष्य राजसूययज्ञके फलको पाताहैं ॥ १७ ॥ और प्रत्यूष अश्वमेधयज्ञके फलको, मनुष्य प्राप्तहोताहै और बालकोंसेभी नष्ट किये हुये मांस, अस्थि, चर्म, रोम, नख व केशादिक यदि सरस्वतीजी के जलमें स्थिति को बाधते हैं तो वे मनुष्य समयमें कालके वश नहीं प्राप्त होतेहैं ॥ १८ । १९ ॥ हे देवि ! बहुत कहने व बारबार वर्णन करनेसे क्याहै सरस्वती से उत्तमतीर्थ न हुआ

है न होवैगा ॥ २० ॥ जहां पर सागर का समागम हुआ है वहांही दुर्लभ स्थान है वहांपर स्नान व दान करने से मनुष्य करोड़ तीर्थों का फल पाता है ॥ २१ ॥ जहां सरस्वतीजी का जल समुद्र के मध्यकी लहरियों से संयुक्तहै उसमें जो मनुष्य स्नानकरेंगे वे युग युगमें ऐश्वर्यवान् होवेंगे ॥ २२ ॥ वे धन्य हैं और वे मुनि हैं व उनका बहुत अधिक यश होताहै कि जिन मनुष्योंका शरीर सरस्वतीजी के जलों से सींचागया है ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसरस्वतीसागरमाहात्म्यंनामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

विष्यति ॥ २० ॥ तत्रैवदुर्लभंस्थानं यत्रसागरसङ्गमः ॥ तत्रस्नानेनदानेन कोटितीर्थफलंलभेत् ॥ २१ ॥ यत्रसारस्वतं तोयं सागरान्तोर्मिसङ्कुलम् ॥ तत्रस्नास्यन्तियेमर्त्या भगवन्तोयुगेयुगे ॥ २२ ॥ तेधन्यास्तेचमुनयस्तेषांस्फीततरंयशः ॥ येषांकलेवरंनॄणां सिक्तंसारस्वतैर्जलैः ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसरस्वतीसागरमाहात्म्यंनामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ भगवन्देवदेवेश संसारार्णवतारक ॥ ब्रूहिश्राद्धविधिंपुण्यं विस्तराज्जगतीतले ॥ १ ॥ कस्मिन्वासरभागेतु श्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ अस्मिन्सरस्वतीतीर्थे प्रभासेक्षेत्रमुत्तमे ॥ २ ॥ तीर्थेषुकेषुचकृतं श्राद्धंबहुफलंभवेत् ॥ एतत्सर्वंचवृत्तान्तं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ प्रातःकालोमुहूर्तांस्त्रीन्सङ्गवस्तावदेवतु ॥ मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तःस्यादपराह्णस्ततःपरम् ॥ ४ ॥ सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तःस्याच्छ्राद्धंतत्रनकारयेत् ॥ राक्षसीनामसावेला गर्हितासर्वकर्म

दो० । पूछयो शिवसन उमा जिमि उत्तम श्राद्ध विधान । इकसौ निन्नानबे महँ सोई कीन बखान ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे संसारसमुद्र से पार उतारनेवाले, देव-भगवन् ! पृथ्वी में श्राद्धकी विधिको विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ कि दिनके किस भाग में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य श्राद्ध करै और इस सरस्वतीतीर्थ में व उत्तम ॥ २ ॥ और किन तीर्थों में कियाहुआ श्राद्ध बहुत फलदायक होताहै इस सब वृत्तान्तको तुम यथायोग्य कहनेकेयोग्यहो ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि तीन ल और उतनाही संगव होताहै और तीन मुहूर्त मध्याह्न व उसके उपरान्त अपराह्न होता है ॥ ४ ॥ और तीन मुहूर्त सायाह्न होताहै उसमें श्राद्ध न करै

क्योंकि राक्षसी नामक वह वेला सब कार्योंमें निन्दित है ॥५॥ सदैव दिनके पन्द्रह मुहूर्त प्रसिद्धहैं उनमें जो आठवां मुहूर्त है वह कुतुपसमय कहागयाहै ॥६॥ जिस लिये सदैव मध्याह्न में सूर्यनारायण मन्द होते हैं इस कारण उसमें आरम्भ अनन्तफलदायक होताहै ॥७॥ हे प्रिये! मध्याह्नसमय व गैंड़ेका पात्र व गऊका घृत, चांदी, कुश, तिल, गऊ और आठवां नाती कहागयाहै ॥८॥ विद्वान् लोग पापको कुत्सित ऐसा कहते हैं और उसके सन्तापकारी आठही मानेगये हैं इसलिये ये कुतुप ऐसे प्रसिद्धहैं ॥९॥ कुतुप मुहूर्तके उपरान्त जो चार मुहूर्त हैं ये पाच मुहूर्त्त स्वधाभवन कहेजाते हैं ॥१०॥ श्राद्धकी रक्षाके लिये विष्णुजीके शरीरसे कुश व काले

सु ॥५॥ अह्नोमुहूर्ताविख्याता दशपञ्चचसर्वदा ॥ तत्राष्टमोमुहूर्त्तोयः सकालःकुतुपःस्मृतः ॥६॥ मध्याह्नेसर्वदाय स्मान्मन्दीभवतिभास्करः॥ तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भोभविष्यति ॥७॥ मध्याह्नःखङ्गपात्रन्तु तथागव्यंघृतम्प्रिये ॥ रौप्यंदर्भास्तिलागावो दौहित्रश्चाष्टमःस्मृतः ॥८॥ पापंकुत्सितमित्याहुस्तस्यसन्तापकारिणः॥ अष्टावेवमतास्तस्मात्कुतुपाइतिविश्रुताः ॥९॥ ऊर्ध्वंमुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्त्तचतुष्टयम् ॥ मुहूर्त्तपञ्चकञ्चैव स्वधाभवनमिष्यते ॥१०॥ विष्णोर्देहात्समुद्भूताः कुशाःकृष्णास्तिलास्तथा ॥ श्राद्धस्यरक्षणार्थाय एवंप्राहुर्दिवौकसः ॥११॥ तिलोदकाञ्जलिर्देया स्थलस्थैस्तीर्थवासिभिः ॥ सदर्भहस्तेनैकेन स्वधाभवनमिष्यते ॥१२॥ त्रीणिश्राद्धेपवित्राणि दौहित्रंकुतुपस्तिलाः ॥ त्रीणिचात्रप्रशंसन्ति शुचिमक्रोधमत्वरम् ॥१३॥ दौहित्रंखड्गमित्युक्तं ललाटेशृङ्गमस्तियत् ॥ तस्यशृङ्गस्य यत्पात्रं तद्दौहित्रमितिस्मृतम् ॥१४॥ क्षीरिणीयासवत्सागौस्तत्क्षीराद्यद्भवेद्घृतम्भवेत् ॥ तद्दौहित्रमितिप्रोक्तं दैवेपै

तिल पैदाहुयेहैं ऐसा देवताओंने कहाहै ॥११॥ स्थलमें टिकेहुये तीर्थवासियोंको कुशसमेत एक हाथसे तिलोदककी अञ्जली देनाचाहिये क्योंकि वह स्वधाभवन कहाजाताहै ॥१२॥ श्राद्धमें दौहित्र (नाती) व कुतुप समय और तिलये तीन पवित्र हैं और पवित्रता, क्रोध न करना व शीघ्रता न करना इन तीनोंकी विद्वान् प्रशंसा करतेहैं ॥१३॥ और दौहित्र खड्ग (गैंड़ा) ऐसा कहागयाहै उसके मस्तकमें जो सींग होताहै उस सींगका जो पात्रहै वह दौहित्र ऐसा कहागयाहै ॥१४॥ और जो

वछड़ा समेत दूधवाली गऊ है उसके दूधसे जो घृत होवै वह देवकार्य व पितरकार्य में दौहित्र ऐसा कहागया है ॥ १५ ॥ कुशका अग्रभाग देव ऐसा कहागया है व तिल समेत अग्रभाग पैतृक कहागया है उसमें जो कुश लगे हैं वे कुश कुतुप कहेगये हैं ॥ १६ ॥ शरीर,द्रव्य,स्त्री,पृथ्वी,मन,मन्त्र व ब्राह्मण इन सातोंमें श्राद्धसमय में विशेषकर शुद्धि जानने योग्यहै ॥ १७ ॥ और विद्वानोंमे सात प्रकारकी शरीरकी पवित्रता कहीगई है और धन सातप्रकारका श्वेत होताहै व इसका उपायभी वैसाही है ॥ १८ ॥ कुसीद (सूद) कृषी व वाणिज्य शुक्लधन कहागयाहै और,कियेहुये उपकारवाला दान कृष्ण कहागया है ॥ १९ ॥ और जो धन छलसे इकट्ठा कियागया

त्र्येचकर्मणि ॥ १५ ॥ दर्भाग्रंदैवमित्युक्तं सतिलाग्रंतुपैतृकम् ॥ तत्रावलम्बिनोयेतु तेकुशाःकुतुपाःस्मृताः ॥ १६ ॥ शरीरद्रव्यदाराभूमनोमन्त्रद्विजन्मसु ॥ शुद्धिःसप्तसुविज्ञेया श्राद्धकालेविशेषतः ॥ १७ ॥ सप्तधादेहशुद्धिस्तु विद्वद्भिःपरिकीर्तिता ॥ धनंसप्तविधंशुक्लमुपायोप्यस्यतादृशः ॥ १८ ॥ कुसीदंकृषिवाणिज्यं शुक्लंधनमुदाहृतम् ॥ कृतोपकारंदानञ्च शबलंसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥ व्याजेनोपार्जितंयच्च कृष्णंतत्समुदाहृतम् ॥ अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियतेनरैः ॥ २० ॥ तृप्यन्तितेनचाण्डालाः पुष्कसाद्यास्तुयोनिषु ॥ अन्नप्रकिरणंयत्तु मनुष्यैःक्रियतेभुवि ॥ २१ ॥ तेनतृप्तिमुपायान्ति येपिशाचत्वमागताः ॥ यदास्नानस्यवस्त्रेण भूमौपततियज्जलम् ॥ २२ ॥ नीचयोनिषुयेप्राप्तास्तेषांतृप्तिःप्रजायते ॥ यास्तुगन्धाम्बुकणिकाः पतन्तिधरणीतले ॥ २३ ॥ ताभिराप्यायनन्तेषां येदेवत्वमुपागताः ॥ उद्धृतेषुचपिण्डेषु येचान्नकणिकाभुवि ॥ २४ ॥ विपन्नास्तेनविकिराः सम्मार्जनजलाशनाः ॥ भुक्त्वाचाचमनंयच्च तेन

है वह कृष्ण कहागया है व मनुष्य अन्यायसे इकट्ठा कियेहुये धनों से जिस श्राद्धको करते हैं ॥ २० ॥ उससे चाण्डाल व पुष्कसादिक योनियों में प्राप्त पितर तृप्त होते हैं और पृथ्वी में मनुष्य जो अन्न फेंकते हैं ॥ २१ ॥ उससे वे पितर तृप्तिको प्राप्तहोते हैं कि जो पिशाचत्वको प्राप्तहुये हैं और जब स्नान के वस्त्र से जो जल भूमि में गिरता है ॥ २२ ॥ उससे वे पितर तृप्तिको प्राप्त होते हैं कि जो नीचयोनियोंमें प्राप्त हुये हैं और जो सुगन्धित जलके बूंद पृथ्वी मे गिरते हैं ॥ २३ ॥ उनसे उनकी तृप्ति होती है जोकि देवत्वको प्राप्त हुये हैं और पिण्डोंके उठाने पर जो अन्नके किनुका पृथ्वी में ॥ २४ ॥ गिरते हैं उससे सम्मार्जनके जलको भोजन करने

वाले विकिर तृप्त होते हैं और भोजन करके जो आचमन कियाजाता है उससे पशुयोनियों में प्राप्त पितर तृप्त होते हैं ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त श्राद्ध में जो उत्तम कहेगये हैं उन ब्राह्मणों को मैं कहता हूं कि श्रोत्रिय, योगी व वेदज्ञ और ज्येष्ठ सामको गानेवाला उत्तम होताहै ॥ २६ ॥ और त्रिणाचिकेत (अध्वर्यु वेदभागको जानने वाला) व पञ्चाग्नि (अग्निहोत्री) और त्रिसुपर्ण (बह्वृच वेदभागको जाननेवाला) तथा शिक्षादिक छह अंगोंको जाननेवाला और नाती, दामाद व भैने उत्तम है॥ २७ ॥ और पंचाग्निकर्म में निष्ठ व तपस्या में परायण तथा मातुल (मामूं) और मामाका पिता याने नाना और शिष्य, सम्बन्धी व बान्धव ॥ २८॥ व वेदार्थ को

वैपशुयोनिजाः ॥ २५ ॥ अथविप्रान्प्रवक्ष्यामि श्राद्धेयेह्युत्तमाःस्मृताः ॥ विशिष्टःश्रोत्रियोयोगी वेदविज्ज्येष्ठसाम गः ॥ २६ ॥ त्रिणाचिकेतःपञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णःषडङ्गवित् ॥ दौहित्रकश्चजामातास्वस्रीयश्चोत्तमंतथा ॥ २७ ॥ पञ्चा ग्निकर्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठोथमातुलः ॥ मातुश्चपितरश्चैव शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥ २८ ॥ वेदार्थवित्प्रवक्ताच ब्रह्म चारीसहस्रदः ॥ शतायुश्चैवविज्ञेया ब्राह्मणाःपङ्क्तिपावनाः॥२९ ॥ भागिनेयंविशेषेण तथाबन्धुगणानपि ॥ नातिक्रमेन्न रश्चैतान् मूर्खानपिवरानने ॥ ३० ॥ नब्राह्मणम्परीक्षेत देवकर्मण्युपस्थिते ॥ पैत्र्येकर्मणिसंप्राप्ते परीक्षेतप्रयत्नतः ॥ ३१ ॥ येस्तेनाःपतिताःक्लीबा येचनास्तिकवृत्तयः ॥ तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ ३२ ॥ जटिलंचान धीयानं दुर्बलंकितवंतथा ॥ याजयन्तिचयेशूद्रांस्तांश्चश्राद्धेनभोजयेत् ॥ ३३ ॥ चिकित्सकान्देवलकान् मांसविक्रयि

जाननेवाला व उसको कहनेवाला, ब्रह्मचारी और हजार गौवोंको देनेवाला और सौ वर्षकी अवस्थावाला ये ब्राह्मण पंक्तिपावन जानने योग्यहैं ॥ २९ ॥ हे वरानने ! विशेष कर भैने व बन्धुगण इन मूर्खोंको भी विद्वान् न उल्लंघन करै ॥३०॥ देवकर्म प्राप्तहोने पर ब्राह्मणको न परखै और पितर कार्य प्राप्तहोनेपर बड़े यत्नसे परखे ॥३१॥ जो ब्राह्मण चोर व धर्म से भ्रष्ट तथा नपुंसक हैं और जो नास्तिकोंका बर्ताव करतेहैं मनुजी ने उन ब्राह्मणों को हव्य कव्य के अयोग्य कहा है ॥३२॥ और जटाधारी वेदाध्ययनरहित, दुश्चर्मा, जुँवारी और जो शूद्रोंको यज्ञ कराते हैं उन ब्राह्मणों को श्राद्धमें भोजन न करावै ॥ ३३ ॥ और वैद्य व नौकरी से देवताकी प्रतिमाको पूजने

वाले तथा मांसको बेंचनेवाले और जो वाणिज्यसे जीविका करनेवालेहैं वे हव्य व कव्य में वर्जितहैं ॥ ३४ ॥ और ग्राम व राजाका आज्ञाकारी और कुत्सित नखवाला व श्यामदन्त तथा गुरुके प्रतिकूल आचरण करनेवाला और श्रौत स्मार्त अग्निको त्याग करनेवाला व ब्याजखोर हव्य कव्यमें वर्जितहै ॥ ३५ ॥ और क्षयरोगी,पशुपालक व परिवेत्ता और पांच महायज्ञों के अनुष्ठान से रहित और ब्राह्मणों का शत्रु तथा परिवित्ति व गणाभ्यन्तर याने मठआदिके धनसे जीविका करनेवाला ॥ ३६ ॥ और नाचने से जीविका करनेवाला व स्त्रीके संसर्ग से ब्रह्मचर्यको छोड़नेवाला तथा शूद्राका पति व उदरी स्त्रीका पुत्र और काना व जुँवारी और मदिरा पीनेवाला ॥३७॥

णस्तथा ॥ विपणैःपरिजीवन्ते वर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः ॥ ३४॥ प्रेष्योग्रामस्यराज्ञश्चकुनखीश्यावदन्तकः ॥ प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्द्धुषिस्तथा ॥ ३५ ॥ यक्ष्मीचपशुपालश्च परिवेत्तानिराकृतिः ॥ ब्रह्मद्विट्परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एवच ॥ ३६ ॥ कुशीलवोवकीर्णीच वृषलीपतिरेवच ॥ पौनर्भवश्चकाणश्च कितवोमद्यपस्तथा ॥ ३७ ॥ पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिकोरसविक्रयी ॥ धनुःशराणांकर्त्ताच यश्चाग्रेदिधिषूपतिः ॥ ३८ ॥ मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ भ्रामरीगण्डमालीच श्वित्र्यथोपिशुनस्तथा ॥ ३९ ॥ उन्मत्तोन्धश्चवर्ज्याःस्युर्वेदनिन्दकएवच ॥ स्रोतसांभेदको यश्च तेषांचावरणेरतः ॥ ४० ॥ गृहेसंवेशकोदूतो वृक्षारोपकएवच ॥ श्वक्रीडीश्येनजीवीच कन्यादूषकएववा ॥ ४१ ॥

और कुष्ठी, कलंकित,पाखण्डी व रसोंको बेंचनेवाला और जो धनुष व बाणोंको बनानेवालाहै तथा जो अग्रेदिधिषूपति होवे याने जेठी कन्याका ब्याह न होने पर छोटी का ब्याह करनेवाला॥३८॥व मित्रद्रोही और जुँवामें जीविका करनेवाला और पुत्रसे पढ़ायाहुआ पिता व मिर्गीरोगवाला और गण्डमाला रोगवाला तथा श्वेतकुष्ठी और चुगुल ॥ ३९ ॥ व उन्मादी, अन्ध और वेदकी निन्दा करनेवाला ये ब्राह्मण वर्जित करने योग्य हैं व जो सोतोंको तोड़नेवाला और उनका आवरण करनेवाला याने रूमकी गनिको रोकनेवाला ॥ ४० ॥ तथा वास्तुविद्या से जीविका करनेवाला व दूत और नौकरीसे वृक्षोंको लगानेवाला तथा क्रीड़ाके लिये कुत्तोंको जो पालता है

१ श्लो० ॥ दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुतेयोग्रजेस्थिते ॥ परिवेत्तासविज्ञेयः परिवित्तिस्तुपूर्वजः ॥२॥ अर्थ ॥ जो बड़ेभाई के स्थित होनेपर स्त्री व अग्निहोत्र का संग्रह करता है वह परिवेत्ता जानने है और जठाभाई परिवित्ति है ॥ १ ॥

सयुत दिनमें श्राद्ध करनाचाहिये और वैशाखकी तीजतिथि में व कातिक की नवमीतिथि में ॥ ६० ॥ और माघकी पौर्णमासी व श्रावण की तेरसि तिथि में श्राद्ध क-
रना चाहिये क्योंकि ये तिथिया युगादि कहीगई हैं और दियें को अक्षय करनेवाली हैं ॥ ६१ ॥ और मन्वन्तर के आदि में जिस माघ महीनेकी सप्तमी तिथिमें सूर्य-
नारायणजी ने रथको पायाहै वह रथसप्तमी होतीहै ॥ ६२॥ और वैशाख व फागुनके कृष्णपक्षकी तीज तिथि में श्राद्ध करना चाहिये और चैत्र महीने की पञ्चमी व
उसीकी अमावस तिथि ॥ ६३ ॥ और माघमें शुक्लपक्षकी तेरसि व कातिककी सप्तमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी अष्टमी व आषाढी पौर्णमासी ॥ ६४॥ और कातिकी

यां नवम्यांकार्त्तिकस्यच ॥ ६० ॥ पञ्चदश्यान्तुमाघस्य नभस्येवत्रयोदशीम् ॥ युगादयःस्मृताह्येता दत्तस्याक्षयका
रकाः ॥ ६१ ॥ यस्यमन्वन्तरस्यादौ रथमापदिवाकरः ॥ माघमासस्यसप्तम्यां सातुस्याद्रथसप्तमी ॥ ६२ ॥ वैशाख
स्यतृतीयायां कृष्णायांफाल्गुनस्यच ॥ पञ्चमीचैत्रमासस्यतस्यैवान्यातथापरा ॥ ६३ ॥ शुक्लात्रयोदशीमाघे कार्त्तिक
स्यचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ॥ ६४ ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठीपञ्चदशीतिच ॥ मा
न्वादयःस्मृताश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ६५ ॥ कार्यंमन्वन्तरस्यादौ द्वादशैववरानने ॥ नित्यंनैमित्तिकंकाम्यं वृ
द्धिश्राद्धंसपिण्डकम् ॥ ६६ ॥ पार्वणंचेतिविज्ञेयं गोष्ठशुद्ध्यर्थमुत्तमम् ॥ कर्माङ्गंनवमंप्रोक्तं दैविकंदशमंस्मृतम् ॥ ६७॥
एकादशंक्षयाहन्तु तुष्ट्यर्थंद्वादशंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवश्राद्धानांश्रेष्ठंसांवत्सरंस्मृतम् ॥ ६८ ॥ अहन्यहनियच्छ्राद्धं
नित्यंतत्परिकीर्तितम् ॥ एकोद्दिष्टन्तुयच्छ्राद्ध तन्नैमित्तिकमुच्यते ॥ ६९ ॥ येसमानाइतिद्वाभ्यामेतच्छ्राद्धंसपिण्डन

फागुनी, चैती और जेठी पौर्णमासी ये मन्वादिक तिथिया दियेहुये को अक्षय करनेवाली कहीगई हैं ॥ ६५ ॥ व हे वरानने ! मन्वन्तरकी आदितिथि में बारह श्राद्ध
करनाचाहिये नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध व सपिण्डक श्राद्ध ॥ ६६ ॥ और पार्वण ऐसा श्राद्ध जानने योग्य है व उत्तम गोष्ठ श्राद्ध तथा शुद्धिके लिये श्राद्ध
और नवाँ कर्मांग जानने योग्य है व दशम दैविक कहागयाहै ॥ ६७॥ और गेरहवां क्षयाह व बारहवां तुष्टि के लिये कहागया है सब श्राद्धोंके मध्य में सांवत्सर श्राद्ध
श्रेष्ठ कहागया है ॥६८॥ जो प्रतिदिन श्राद्ध कियाजाता है वह नित्य श्राद्ध कहागया है और जो एकोद्दिष्ट श्राद्ध है वह नैमित्तिक कहाजाता है ॥ ६९ ॥ और ये समाना

वे कुलटा कहीगई हैं और बिन व्याही हुई जो कन्या पिताके घरमें रजको देखतीहै ॥ ५१ ॥ उसके पितर नरक में पड़ते हैं और वह कन्या वृषली होती है व जो पुरुष ज्ञानपूर्वक उस कन्या का व्याह करता है ॥ ५२ ॥ उसको श्राद्धके अयोग्य व अपांक्तेय वृषलीपति जानै गौरी कन्या मुख्य है और कन्या मध्यम मानी गई है ॥ ५३ ॥ व रोहिणी उसीके समान जानने योग्यहै और रजस्वला अधम कन्याहै और रजोधर्मको नहीं प्राप्त कन्या गौरी है व रज प्राप्तहोने पर रोहिणी है ॥ ५४ ॥ और अव्यञ्जनसे कीहुई याने स्त्रियोंके चिह्नसे रहित कन्या है व स्तनोंसे हीन नग्निका होतीहै और सात वर्षकी गौरी व दशवर्ष की नग्निका होती है ॥ ५५ ॥ और

त्यसंस्कृता ॥ ५१ ॥ पतन्तिपितरस्तस्याः कन्यासावृषलीभवेत् ॥ यस्तुतांवरयेत्कन्यां ब्राह्मणोज्ञानपूर्वतः ॥ ५२ ॥ अश्राद्धेयमपाङ्क्तेयं तंविद्याद्वृषलीपतिम् ॥ गौरीकन्याप्रधानावै मध्यमाकन्यकामता ॥ ५३ ॥ रोहिणीतत्समाज्ञेया अधमाचरजस्वला ॥ अप्राप्तरजसागौरी प्राप्तेरजसिरोहिणी ॥ ५४ ॥ अव्यञ्जनकृताकन्या कुचहीनातुनग्निका ॥ सप्तवर्षाभवेद्गौरी दशवर्षातुनग्निका ॥ ५५ ॥ द्वादशेतुभवेत्कन्या अतऊर्द्ध्वंरजस्वला ॥ उद्वाहयेद्रजोयुक्तां सभवेद्वृषलीपतिः ॥ ५६ ॥ अथकालान्प्रवक्ष्यामि कथ्यमानान्निबोधमे ॥ श्राद्धंकार्यममायांवै मासिमासीन्दुसंक्षये ॥ ५७ ॥ तथाष्टकासुविप्राद्यैः सूर्येन्दुग्रहणेतथा ॥ अयनेविषुवेचैव सामान्येचार्कसंक्रमे ॥ ५८ ॥ अमावस्याष्टकायाञ्च कृष्णपक्षेविशेषतः ॥ आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे ॥ ५९ ॥ गजच्छायाव्यतीपाते विष्टिवैधृतिवासरे ॥ वैशाखस्यतृतीया

बारह वर्ष में कन्या होतीहै व इसके उपरान्त रजस्वला होती है और रजोधर्म से संयुत कन्या को जो व्याहता है वह वृषलीपति होताहै ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त मैं श्राद्धके समयों को कहताहूं कहतेहुये उनको मुझसे सुनिये कि महीने महीने में चन्द्रक्षय होनेपर अमावस तिथि में श्राद्ध करना चाहिये ॥ ५७ ॥ और अष्टका तिथियोंमें व सूर्य, चन्द्रमा के ग्रहण में तथा विषुव अयन व सामान्य सूर्यकी संक्रांतिमें ब्राह्मणादिकों को श्राद्ध करना चाहिये ॥ ५८ ॥ और अमावस व अष्टका तिथि में तथा विशेषकर कृष्णपक्षमें और आर्द्रा, मघा, रोहिणी में व श्राद्धकी वस्तु व ब्राह्मणों के संयोग में ॥ ५९ ॥ व गजच्छाया तथा व्यतीपात व भद्रा और वैधृति

संयुत दिनमें श्राद्ध करनाचाहिये और वैशाखकी तीज तिथि में व कातिक की नवमीतिथि में ॥ ६० ॥ और माघकी पौर्णमासी व श्रावण की तेरसि तिथि में श्राद्ध करना चाहिये क्योंकि ये तिथियां युगादि कहीगई हैं और दिये को अक्षय करनेवाली हैं ॥ ६१ ॥ और मन्वन्तर के आदि में जिस माघ महीनेकी सप्तमी तिथिमें सूर्यनारायणजी ने रथको पायाहै वह रथसप्तमी होतीहै ॥ ६२ ॥ और वैशाख व फागुनके कृष्णपक्षकी तीज तिथि में श्राद्ध करना चाहिये और चैत्र महीने की पञ्चमी न उसीकी अमावस तिथि ॥ ६३ ॥ और माघमें शुक्लपक्षकी तेरसि व कातिककी सप्तमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी अष्टमी व आषाढी पौर्णमासी ॥ ६४ ॥ और कातिकी

यां नवम्यांकार्त्तिकस्यच ॥ ६० ॥ पञ्चदश्यान्तुमाघस्य नभस्येवत्रयोदशीम् ॥ युगादयःस्मृताह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ६१ ॥ यस्यमन्वन्तरस्यादौ रथमापदिवाकरः ॥ माघमासस्यसप्तम्यां सातुस्याद्रथसप्तमी ॥ ६२ ॥ वैशाखस्यतृतीयायां कृष्णायांफाल्गुनस्यच ॥ पञ्चमीचैत्रमासस्यतस्यैवान्यातथापरा ॥ ६३ ॥ शुक्लात्रयोदशीमाघे कार्त्तिकस्यचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ॥ ६४ ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठीपञ्चदशीतिच ॥ मान्वादयःस्मृताश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ६५ ॥ कार्यंमन्वन्तरस्यादौ द्वादशैववरानने ॥ नित्यंनैमित्तिकंकाम्यं वृद्धिश्राद्धंसपिण्डकम् ॥ ६६ ॥ पार्वणंचेतिविज्ञेयं गोष्ठशुद्ध्यर्थमुत्तमम् ॥ कर्माङ्गंनवमंप्रोक्तं दैविकंदशमंस्मृतम् ॥ ६७ ॥ एकादशंक्षयाहन्तु तुष्ट्यर्थंद्वादशंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवश्राद्धानांश्रेष्ठंसांवत्सरंस्मृतम् ॥ ६८ ॥ अहन्यहनियच्छ्राद्धं नित्यंतत्परिकीर्तितम् ॥ एकोद्दिष्टन्तुयच्छ्राद्ध तन्नैमित्तिकमुच्यते ॥ ६९ ॥ येसमानाइतिद्वाभ्यामेतच्छ्राद्धंसपिण्डन

फागुनी, चैती और जेठी पौर्णमासी ये मन्वादिक तिथियां दियेहुये को अक्षय करनेवाली कहीगई हैं ॥ ६५ ॥ व हे वरानने ! मन्वन्तरकी आदितिथि में बारह श्राद्ध करनाचाहिये नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध व सपिण्डक श्राद्ध ॥ ६६ ॥ और पार्वण ऐसा श्राद्ध जानने योग्य है व उत्तम गोष्ठ श्राद्ध तथा शुद्धिके लिये श्राद्ध और नवाँ कर्माग जानने योग्य है व दशम दैविक कहागयाहै ॥ ६७ ॥ और गेरहवां क्षयाह व बारहवां तुष्टि के लिये कहागया है सब श्राद्धोंके मध्य में सांवत्सर श्राद्ध श्रेष्ठ कहागया है ॥ ६८ ॥ जो प्रतिदिन श्राद्ध कियाजाता है वह नित्य श्राद्ध कहागया है और जो एकोद्दिष्ट श्राद्ध है वह नैमित्तिक कहाजाता है ॥ ६९ ॥ और ये समाना

इन दो ऋचाओंसे यह, सपिण्ड श्राद्ध कहाजाता है ॥ ७० ॥ और अमावस में जो श्राद्ध कियाजाता है वह पार्वण कहागया है और गोशाला मे जो श्राद्ध कियाजाता है वह गोष्ठश्राद्ध कहाजाता है ॥ ७१ ॥ और जो शुद्धिके लिये कियाजाता है वह शुद्धिश्राद्ध कहाजाताहै और निषेक समय याने गर्भाधान में व यज्ञमें तथा सीमंतोन्नयन कार्य में ॥ ७२ ॥ और पुंसवन में कर्मांग श्राद्ध कियाजाता है और जो श्राद्ध देवताको उद्देश कर कियाजाता है वह दैविकश्राद्ध कहाजाताहै ॥ ७३ ॥ और जो अन्य देशको जावै उसको घृत से श्राद्ध करना चाहिये इसको तुष्टिके लिये जानना चाहिये और बारहवा क्षयाहश्राद्ध कहागया है ॥ ७४ ॥ हे वरारोहे ! वर्षभरके

म् ॥७० ॥ अमावस्यान्तुयच्छ्राद्धं तत्पार्वणमुदाहृतम् ॥ गोष्ठेयत्क्रियतेश्राद्धं तद्गोष्ठश्राद्धमुच्यते ॥७१ ॥ क्रियतेयच्चशुद्ध्यर्थं शुद्धिश्राद्धन्तदुच्यते ॥ निषेककालेयज्ञेच सीमन्तोन्नयनेतथा ॥ ७२ ॥ तथापुंसवनेचैव श्राद्धंकर्माङ्गमेवच ॥ देवमुद्दिश्यक्रियते यत्तद्दैविकमुच्यते ॥ ७३ ॥ गच्छेद्देशान्तरंयस्तु श्राद्धंकार्यन्तुसर्पिषा॥ तुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयं क्षयाहंद्वादशंस्मृतम् ॥ ७४ ॥ मृतेहनिपितुर्यस्तु नकुर्याच्छ्राद्धमादरात् ॥ मातुश्चैववरारोहे वत्सरान्तेमृतेऽहनि ॥७५ ॥ नाहंतस्य महादेवि पूजांगृह्णामिनोहरिः ॥ मृताहंयोनजानाति मानवोयदिवाक्वचित् ॥ ७६ ॥ तेनकार्यममावस्यां श्राद्धंमाघेथ मार्गके ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेश्राद्धकल्पमाहात्म्यंनामनवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

शिवउवाच ॥ श्राद्धस्यचविधिंवक्ष्ये पार्वणस्यविधानतः ॥ यथाक्रमंमहादेवि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ १ ॥ कृत्वाप

अन्तमें जो मनुष्य पिताके क्षयाहमें और माताके क्षयाहमें आदरसे श्राद्धको नहीं करता है ॥ ७५ ॥ हे महादेवि ! उसके पूजनको न मैं ग्रहण करताहूं और न विष्णुजी ग्रहण करते हैं और जो मनुष्य कहीं मृताह को न जानता होवै॥ ७६ ॥ उसकोमाघ व अगहनमें अमावसको श्राद्ध करना चाहिये ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कह्यो उमा सन शिव यथा श्राद्ध कथा करि हेत । दो सौ में सोई कह्यो अतिही हर्ष समेत ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! इसके अनन्तर मैं क्रमपू-

पूर्वक विधि से पार्वणश्राद्धकी विधिको कहताहूं हे प्रिये ! उसको सावधान मनवाली होकर सुनियें ॥ १ ॥ कि पहले पूर्वाह्णसमय में अपसव्य कर पितरोंका निमन्त्रण करै कि आप लोगोंको पितरोंका कार्य सिद्ध करना चाहिये और तुमलोग प्रसन्न होवो ॥ २ ॥ और अपनी जातिवाले विश्वस्त ब्राह्मणों को निमन्त्रण के लिये पठावै व न्योतेहुये क्षत्रियादिकों से ब्राह्मणका अन्न अभोज्य है ॥ ३ ॥ और वैसेही न्योतेहुये शूद्रादिकों से ब्राह्मण का अन्न अभोज्य है ॥ ४ ॥ ये दोनों अभोजनीय अन्नवाले हैं व इनके अन्नको भोजनकर चान्द्रायण व्रतकरै और जो ब्राह्मण उपनिक्षेपके धर्मसे शूद्रके अन्नको पकावै ॥ ५ ॥ वह अन्न अभोज्य होताहै और वह ब्राह्मण पुरोहित होताहै शूद्रका अन्न व शूद्रका मेल तथा शूद्रके साथ बैठना ॥ ६ ॥ और शूद्रके आसन पै प्राप्त अन्न जलते हुये भी ब्राह्मणको पातित करता है शूद्रके अन्नसे नष्ट व विह्वल तथा मैथुनकी बहुत इच्छावाले ब्राह्मण ॥ ७ ॥ क्रोधित होकर विषरहित सांपोंकी नाईं क्या करैंगे और मलिन वस्त्रोंको पहननेवाला नग्न होता है व कौपीन वस्त्रको पहनेहुये नग्न है ॥ ८ ॥ और गेरुहा वस्त्रको पहननेवाला नग्न होताहै व जप न करनेवाला पुरुष नग्नहै और जिसका अग्रभाग न कटा होवै व जो मिट्टी से धोया गया वस्त्र है ॥ ९ ॥ और जो बिन फटा वस्त्र है वह पवित्र कहागया है आगे मूर्ख बसताहो और गुणसंयुत इसके दूर होवै ॥ १० ॥ तो गुणसंयुत

सव्यंपूर्वेद्युः पितॄन्पूर्वंनिमन्त्रयेत ॥ भवद्भिःपितृकार्यन्तु सम्पाद्यञ्चप्रसीदत ॥ २ ॥ सवर्णान्प्रेषयेदाप्तान् द्विजानुपनिमन्त्रिणे ॥ अभोज्यंब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियाद्यैर्निमन्त्रितैः॥ ३ ॥ तथैवब्राह्मणस्यान्नं शूद्राद्यैश्चनिमन्त्रितैः ॥ ४ ॥ उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत ॥ उपनिक्षेपधर्मेण शूद्रान्नंयःपचेद्द्विजः ॥ ५ ॥ भोज्यंतद्भवेदन्नं सचविप्रःपुरोहितः ॥ शूद्रान्नंशूद्रसम्पर्कः शूद्रेणचसहासनम् ॥ ६ ॥ शूद्रासनगतंचान्नं ज्वलन्तमपिपातयेत् ॥ शूद्रान्नोपहताविप्राविह्वलारतिलालसाः ॥ ७ ॥ कुपिताःकिङ्करिष्यन्ति निर्विषाइवपन्नगाः ॥ नग्नःस्यान्मलवद्वासा नग्नःकौपीनवस्त्रकः ॥ ८ ॥ नग्नःकषायवस्त्रःस्यान्नग्नश्चविजयःस्मृतः ॥ अच्छिन्नाग्रन्तुयद्वस्त्रं मृदाप्रक्षालितंतुयत् ॥ ९ ॥ आहतंवसनंयच्च तत्पवित्रमितिस्मृतम् ॥ अग्रतोवसतेमूर्खोदूरेचास्यगुणान्वितः ॥ १० ॥ गुणान्वितेचदातव्यंनास्तिमूर्खेव्यतिक्रमः ॥

ब्राह्मणके लिये श्राद्ध देना चाहिये क्योंकि मूर्खमें उल्लंघन नहीं होताहै और पतित के सिवाय समीपवाले ब्राह्मणको उल्लंघन कर ॥ ११ ॥ दूर में स्थित गुणवान् ब्राह्मणको जो मूर्ख पूजताहै वह नरकको जाताहै और वेदविद्या व व्रतमें अभ्यास करनेवाले वेदपात्रको गृहमें आनेपर ॥ १२ ॥ विधिसे पूजकर मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्तहोताहै और दोनों सन्ध्याओं के जपमें व भोजन, दन्तधावन ॥ १३ ॥ और पितरकार्य व देवकार्य तथा मल, मूत्र करने में और गुरुसमेत बैठनेमें व विशेष कर यज्ञमें ॥ १४ ॥ इन कार्योंमें मौनपूर्वक स्थितहोताहुआ मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होताहै और यदि जपादिकोंमें किसीप्रकार मौनका लोप होवै ॥ १५ ॥ तो दान, स्नान, होम, भोजन व देव-

यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणंपतिताहृते ॥ ११ ॥ दूरस्थम्पूजयेन्मूढो गुणाढ्यंनरकंव्रजेत् ॥ वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते ॥ १२ ॥ पूजयित्वाविधानेन पुमान्यातिपरांगतिम् ॥ सन्ध्ययोरुभयोर्जाप्ये भोजनेदन्तधावने ॥ १३ ॥ पितृकार्येचदैवेच तथामूत्रपुरीषयोः ॥ गुरुणासन्निधानेच यागेचैवविशेषतः ॥ १४ ॥ एतेषुमौनमातिष्ठन् स्वर्गंप्राप्नोति मानवः ॥ यदिवाग्यमलोपःस्याज्जपादिषुकथञ्चन ॥ १५ ॥ व्याहरेद्वैष्णवंमन्त्रं स्मरेद्वाविष्णुमव्ययम् ॥ दानेस्नानेचहोमेच भोजनेदेवतार्चने ॥ १६ ॥ देवानांऋजवोदर्भाः पितॄणांद्विगुणास्तथा ॥ उदङ्मुखस्तुदेवानां पितॄणांदक्षिणामुखः ॥ १७ ॥ अग्निनाभस्मनावापि यवेनाप्युदकेनवा ॥ द्वारसंक्रमणेनापि पङ्क्तिदोषोनविद्यते ॥ १८ ॥ इष्टःश्राद्धेक्रतुदक्षः सत्योनान्दीमुखेवसुः ॥ नैमित्तिकेकालकामौ काम्येचध्वनिरोचनौ ॥ १९ ॥ पुरूरवोमाद्रवश्च पार्वणेसमुदाहृतः ॥ पालाशेब्रह्मवर्चस्वमश्वत्थेराजमान्यकः ॥ सर्वभूताधिपत्यञ्च प्लक्षेनित्यमुदाहृतम् ॥ २० ॥ पुष्टिंप्रजांचन्यग्रोधे

पूजनमें विष्णुजीके मन्त्रका उच्चारण करै व अविनाशी विष्णुजीको स्मरणकरै ॥ १६ ॥ देवताओंके कुश सीधे व पितरों के द्विगुण होते हैं और देवताओं का कार्य उत्तरमुख व पितरोंका कार्य दक्षिणमुख होकर करना चाहिये ॥ १७ ॥ और अग्नि, भस्म, यव व जलसे और द्वारके उल्लंघनसे भी पंक्तिका दोष नहीं होताहै ॥ १८ ॥ श्राद्धमें क्रतु व दक्ष विश्वेदेवा पूजित होते हैं और नांदीमुखमें सत्य, वसु व नैमित्तिक श्राद्धमें काल, काम और काम्य श्राद्धमें ध्वनि व रोचन ॥ १९ ॥ और पार्वणश्राद्धमें पुरूरव व माद्रवस कहेगये हैं व पलाश पात्रमें ब्रह्मतेज व पीपल में राजमान्य होताहै और पकरिया में सदैव सब प्राणियों की स्वामिता कहीगई है ॥ २० ॥ और बरगदमें

पुष्टि, सन्तान, वृद्धि, बुद्धि, धैर्य व स्मृति को जानै व खंभारिका पात्र राक्षसों का विनाशक व यशदायक कहाजाता है ॥ २१ ॥ और महुवाके पात्रमें उत्तम सौभाग्य संसार में कहागया है और कठूंबरिके पात्रको करताहुआ पुरुष सब कामनाओं को प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ और मदार के पात्रमें विशेष कर उत्तम शोभा व प्रकाशताको प्राप्तहोता है और बिल्वमें सदैव लक्ष्मी, तप, बुद्धि व आयुर्बल होता है ॥ २३ ॥ और बांसके पात्रोंमें श्राद्ध करतेहुये पुरुषके सब क्षेत्र, बगीचे और तड़ागों में मेघ सदैव बरसते हैं ॥२४॥ और सोने व चांदी के पात्रों से इनके फलको मनुष्य प्राप्त होता है और पलाश, कठूंबरि, बरगद, पकरिया, पीपर और स्रुवावृक्ष ॥ २५ ॥ और गूलरि,

वृद्धिंप्रज्ञांधृतिंस्मृतिम् ॥ रक्षोघ्नञ्चयशस्यञ्च काश्मर्याःपात्रमुच्यते ॥ २१॥ सौभाग्यमुत्तमंलोके मधूकेसमुदाहृतम् ॥ फल्गुःपात्रंप्रकुर्वाणः सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ परांद्युतिमथार्केतु प्राकाश्यञ्चविशेषतः ॥ बिल्वेलक्ष्मीस्तपोमेधानित्यमायुष्यमेवच ॥ २३ ॥ क्षेत्रारामतडागेषु तथासर्वेषुचैवहि ॥ वर्षत्यजस्रम्पर्जन्यो वेणुपात्रेषुकुर्वतः ॥ २४ ॥ एतेषांलभतेपुण्यं सुवर्णरजतैस्तथा ॥ पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः ॥ २५ ॥ उदुम्बरन्तथाबिल्वश्चन्दनंयज्ञपादपाः ॥ सरलोदेवदारुश्च सालोथखादिरस्तथा ॥ २६ ॥ समिधार्थंप्रशस्ताःस्युरेतेवृक्षाविशेषतः ॥ श्लेष्मान्तकोनक्तमालः कपित्थःशाल्मलीतथा ॥ २७ ॥ निम्बोविभीतकश्चैव श्राद्धकर्मणिगर्हिताः ॥ अनिष्टशब्दसंकीर्णां रूक्षांजन्तुमतीमपि ॥ २८ ॥ पूतिगन्धयुताम्भूमिं श्राद्धकर्मणिवर्जयेत ॥ अङ्गावङ्गाःकलिङ्गाश्च सिन्धोरुत्तरमेवच ॥ २९ ॥ प्रणष्टाश्रमवर्णाश्च वर्ज्यादेशाःप्रयत्नतः ॥ ब्राह्मणन्तुकृतंप्रोक्तं त्रेतातुक्षत्रियंस्मृतम् ॥ ३० ॥ वैश्यंद्वापर

बेल, चन्दन ये यज्ञके वृक्षहैं और परल, देवदारु, साखू व खैर ॥२६॥ ये वृक्ष विशेषकर समिधाओं के लिये उत्तम हैं और लभेर, कञ्ज, कैथा, सेमर ॥ २७ ॥ नींब,बहेरे ये श्राद्धकर्म में निन्दित हैं और अनिष्ट शब्दों से व्याप्त व रूखी और जन्तुमती ॥ २८ ॥ व दुर्गन्ध से संयुत भूमिको श्राद्ध कर्म में वर्जित करै और अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग व समुद्र का उत्तर भाग ॥ २९ ॥ तथा नष्ट आश्रम व वर्णवाले देश यत्न से वर्जित करने योग्य हैं ब्राह्मण सतयुग कहागया है और क्षत्रिय त्रेता कहागया

है ॥ ३० ॥ व वैश्यको द्वापर कहा है शूद्र कलियुग कहागया है और सतयुग में पितर पूजने योग्य हैं व त्रेतामें देवता ॥ ३१ ॥ और द्वापर में युद्ध व कलियुग में रहे पाखण्ड पूजेजाते हैं विद्वान् शुक्लपक्षके पूर्वाह्ण में श्राद्ध करै ॥ ३२ ॥ और कृष्णपक्षके पराह्ण में रौहिण समयको उल्लंघन न करै ॥ ३३ ॥ और मुठिया हाथ ७ के प्रमाणवाले कुश पितरोंके कार्य में कहेगये हैं और जडमें कटेहुये उत्तम कुश बिछौनाके लिये उत्तम होते हैं ॥ ३४ ॥ वैसेही साँवाँ, तिन्नी फसही व दूर्वा कहीगई है पुरातन समय यशस्वियोंमें श्रेष्ठ प्रजापतिजी बहुकेश हुये हैं ॥ ३५ ॥ उनके गिरेहुये केश पृथ्वी में कुशत्व को प्राप्त हुये हैं इस कारण सदैव पवित्र कुश

मित्याहुः शूद्रःकलियुगंस्मृतम् ॥ कृतेतुपितरःपूज्यास्त्रेतायाञ्चसुरास्तथा ॥ ३१ ॥ युद्धानिद्वापरेनित्यं पाखण्डाश्चक लौयुगे ॥ शुक्लपक्षस्यपूर्वाह्णे श्राद्धंकुर्याद्विचक्षणः ॥ ३२ ॥ कृष्णपक्षेपराह्णेतु रौहिणंनविलङ्घयेत् ॥ ३३ ॥ रत्निमात्र प्रमाणास्तु पितृकार्येकुशाःस्मृताः ॥ उपमूलेतथालूनाः प्रस्तरार्थेकुशोत्तमाः ॥ ३४ ॥ तथाश्यामाकनीवारा दूर्वाचस मुदाहृता ॥ पूर्वंकीर्त्तिमतांश्रेष्ठो बहुकेशःप्रजापतिः ॥ ३५ ॥ तस्यकेशानिपतिताभूमौ दर्भत्वमागताः ॥ तस्मान्मेध्याः सदादर्भाः श्राद्धकर्मणिपूजिताः ॥ ३६ ॥ पिण्डनिर्वापणान्तेषु कर्तव्यंभूतिमिच्छता ॥ उष्णमन्नन्द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ ३७ ॥ हस्तदत्तानिभोज्यानि लवणंव्यञ्जनानिच ॥ आयसेनचपात्रेण तद्वैरक्षांसिभुञ्जते ॥ ३८ ॥ द्वि जपात्रेषुदत्त्वान्नमुष्णंसङ्कल्पमाचरेत् ॥ ३९ ॥ यश्चशूकरवद्भुङ्क्ते यश्चपाणितलेद्विजः ॥ नतदश्नन्तिपितरो यःसवाचंस मश्नुते ॥ ४० ॥ द्विहायनस्यवत्सस्य ग्रासन्यासेयथासुखम् ॥ तथाकुर्यात्प्रमाणेन पिण्डानितिप्रभाषितम् ॥ ४१ ॥ नस्त्री

श्राद्धकर्म में पूजित हैं ॥ ३६ ॥ ऐश्वर्यके चाहनेवाले पुरुषको उन कुशों में पिण्ड धरना चाहिये और ब्राह्मणों के लिये श्रद्धा से उष्ण अन्नको निवेदन करै ॥ ३७ ॥ और हाथमें दियेहुये भोजन, लोन व व्यंजन तथा जो लोहे के पात्रसे दियाजाता है उसको राक्षस भोजन करते हैं ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणों के पात्रों में उष्ण अन्नको देकर संकल्पकरै ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण शूकरकी नाईं भोजन करता है और जो हाथ में भोजन करता है व जो वचन समेत भोजन करताहै उसको पितर नहीं भोजन करते

है ॥४०॥ और जैसे दो वर्षके लड़के को कवल धरने में सुख होताहै वैसेही प्रमाणसे पिण्डोंको बनावै यह कहा है ॥४१॥ और स्त्री पात्रको न चलावै न अज्ञानी और न आच्छादित पुरुष पात्रको चलावै ॥ ४२ ॥ और भोजनों के स्थित होने पर जो ब्राह्मण स्वस्ति करते हैं वह अन्न असुरों से भोजन कियाजाता है व पितर निराश होकर चलेजाते हैं ॥ ४३ ॥ एक पिंडको जलमें डुबावै और एक स्त्री केलिये देवै व एक पिण्डको अग्नि में हवनकरै इन पिण्डोंकी तीन भांतिकी गति है॥४४॥ श्राद्ध में वेदपात्र ब्राह्मणको भोजन करावै और वैश्वदेव श्राद्धमें वैष्णव विप्रको जिमावै तथा पुष्टिकर्म में यजुर्वेदी व शांतिकर्म में अथर्वणवेदीको भोजन करावै ॥४५॥

प्रचालयेत्पात्रं नैवाज्ञानीनचावृतः ॥ ४२ ॥ भोजनेषुचतिष्ठत्सु स्वस्तिकुर्वन्तियेद्विजाः ॥ तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरोगताः ॥ ४३ ॥ अप्स्वेकंप्लावयेत्पिण्डमेकंपत्न्यैनिवेदयेत् ॥ एकंवैजुहुयादग्नावेषातुत्रिविधागतिः ॥ ४४ ॥ छन्दोगंभोजयेच्छ्राद्धे वैश्वदेवेचवैष्णवम् ॥ पुष्टिकर्मण्यथाध्वर्युं शान्तिकर्मण्यथर्वणम् ॥ ४५ ॥ द्वौदैवेथर्वणौविप्रौ प्राङ्मुखौविनिवेशयेत् ॥ त्रींस्त्रीनुदङ्मुखान्कुर्यात्तत्रैवाध्वर्युसामगान् ॥ ४६ ॥ जातीचसर्वदादेया मल्लिकाश्वेतयूथिका ॥ जलोद्भवानिसर्वाणि कुसुमानिचचम्पकम् ॥ ४७ ॥ मधूकंरामठञ्चैव कर्पूरम्मरिचंगुडम् ॥ श्राद्धकर्मणिशस्तानि सैन्धवंरजतंतथा ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणःकम्बलोगावः सूर्योग्निरतिथिस्तथा ॥ तिलादर्भाश्चकालश्च नवैतेकुतुपाःस्मृताः ॥ ४९ ॥ आपद्यनग्नौतीर्थेच चन्द्रसूर्यग्रहेतथा ॥ नाचरेत्तुरवौचैव तथैवास्तमुपागतम् ॥ ५० ॥ संशुद्धास्याचतुर्थेह्नि स्ना

दैवकार्य में दो अथर्वणवेदी ब्राह्मणों को पूर्वमुख बैठावै और वहीं पर यजुर्वेदी व सामवेदी तीन तीन ब्राह्मणों को उत्तर मुख करै ॥ ४६ ॥ और चमेली व बेला और सफ़ेद जूही सदैव देनाचाहिये तथा जलमें उपजेहुये सब पुष्प व चम्पक चढ़ाना चाहिये ॥ ४७ ॥ और महुवा, हींग, कपूर, मिर्च व गुड, सैन्धव व चांदी ये वस्तुयें श्राद्धकर्म में शुभ हैं ॥ ४८ ॥ और ब्राह्मण, कंबल, गऊ, सूर्य, अग्नि व अतिथि, तिल, कुश व काल ये नव वस्तुयें कुतुप कहीगई है ॥ ४९ ॥ और विपत्ति में व बिन अग्नितीर्थ में और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण मे तथा सूर्यनारायण अस्त होनेपर श्राद्ध न करना चाहिये ॥ ५० ॥ और रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नानकर

शुद्ध होती है व दैव तथा पितरकार्य में पांचवें दिन शुद्ध होती है ॥ ५१ ॥ सांप व ब्राह्मणों से मारेहुये और दाढ़वाले तथा सींगवाले व बीछी आदिकों से मारेहुये और आत्मत्यागी याने आपही विष इत्यादिको खाकर मरेहुये इन प्राणियों का श्राद्ध न करै ॥ ५२ ॥ और चाण्डाल, पुष्कस, साप, ब्राह्मण, बिजली व व्याघ्रादिक और श्वपचों से पापकर्मी मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥ सबों से सम्मति कर जेठे भाई से व बिन बांटेहुये धनसे जो कियाजाता है वह सबो से किया होता है ॥ ५४ ॥ माता व पिताके क्षयाहमे जो प्रतिवर्ष, श्राद्ध कियाजाता है उसको मलमासमें न करना चाहिये जैसा कि व्यासजी का वचन है ॥ ५५ ॥ गर्भ व वार्षिक श्राद्ध तथा

तानारीरजस्वला ॥ दैवेकर्मणिपित्र्येच पञ्चमेहनिशुध्यति ॥ ५१ ॥ सर्पविप्रहतानाञ्च दंष्ट्रिश्रृङ्गिसरीसृपैः ॥ आत्मनस्त्यागिनाञ्चैव श्राद्धमेषांनकारयेत् ॥ ५२ ॥ चाण्डालात्पुष्कसात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ॥ दंष्ट्रिभ्यःश्वपचेभ्यश्च मरणम्पापकर्मिणाम् ॥ ५३ ॥ सर्वैरनुमतंकृत्वा ज्येष्ठेनैवचयत्कृतम् ॥ द्रव्येणचाविभक्तेन सर्वैरेवंकृतम्भवेत् ॥ ५४ ॥ वर्षेवर्षेतुयच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेहनि ॥ मलमासेनकर्त्तव्यंव्यासस्यवचनंयथा ॥ ५५ ॥ गर्भेवावार्षिकेप्रेते मृतेमासानुमासिके ॥ आब्दिकेचतथाश्राद्धे नाधिमासोविधीयते ॥ ५६ ॥ विवाहादौस्मृतःसौरो यज्ञादौसावनःस्मृतः ॥ आब्दिकेपितृकार्येतु चान्द्रोमासःप्रशस्यते ॥ ५७ ॥ यस्मिन्राशौगतेसूर्ये विपत्तिःस्याद्द्विजन्मनः ॥ तद्राशावेवकर्त्तव्यं पितृकार्यंमृतेहनि ॥ ५८ ॥ वषट्कारश्चहोमश्च पर्वचाग्रायणंतथा ॥ मलमासेपिकर्त्तव्याः काम्याइष्टीर्विवर्जयेत् ॥ ५९ ॥ अग्न्याधेयंप्रतिष्ठाञ्च यज्ञदानव्रतानिवै ॥ वेदव्रतवृषोत्सर्गं चूडाकरणमेववा ॥ ६० ॥ माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासेविव

मरेहुये प्रेतमें और मास के पश्चात् मासगणनामें व क्षयाह श्राद्ध में मलमास नहीं विधान कियाजाता है ॥ ५६ ॥ विवाहादिक कार्य में सौर व यज्ञादि में सावन मास और वार्षिक पितृकार्य में चान्द्रमास शुभ होता है ॥ ५७ ॥ जिस राशिमें सूर्य प्राप्तहोनेपर ब्राह्मण, क्षत्री व वैश्यकी मृत्युहोवै उसी राशि में क्षयाह में पिताका कार्य करना चाहिये ॥ ५८ ॥ और वषट्कार होम व नवान्नयज्ञ इनको मलमास में भी करना चाहिये और काम्ययज्ञोंको वर्जित करै ॥ ५९ ॥ व अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ,

दान व व्रत, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग और मुण्डन ॥ ६० ॥ व मंगल कार्य तथा अभिषेक मलमास में वर्जित करै और नित्य व नैमित्तिक कर्मको मलमास में यत्नसे करै ॥ ६१ ॥ और तीर्थ में श्राद्ध व गजच्छाया में प्रेतश्राद्ध मलमास में न करै जहां बन्धु व गोत्रवाले पुरुष जहां भोक्ता नहीं देखपडते हैं ॥ ६२ ॥ और अन्त्यजादिकों मे घिरने पर राक्षसी श्राद्धका लक्षण है और श्राद्ध करके जो विह्वल पुरुष पराये श्राद्ध में भोजन करता है ॥ ६३ ॥ उसके लुप्तपिण्ड व जलक्रियावाले पितर नरक में पडते हैं ॥ ६४ ॥ और कटेहुय रोम व नखवाले ब्राह्मणों के लिये दूसरे दिन श्राद्धको देवै और न्यायपूर्वक हव्य, कव्य याने देवकार्य व पितरकार्य में जो ब्राह्मण

उर्जयेत् ॥ नित्यंनैमित्तिकंकुर्यात्कर्मयत्नान्मलिम्लुचे ॥ ६१ ॥ तीर्थेस्नानंगजच्छायाम्प्रेतश्राद्धंतथैवच ॥ नचयत्र प्रदृश्यन्ते भोक्तारोबन्धुगोत्रिणः ॥ ६२ ॥ अन्त्यजाद्यैश्चसंक्रान्ते रक्षःश्राद्धस्यलक्षणम् ॥ श्राद्धंकृत्वापरश्राद्धे यस्तु भुङ्क्तेसुविह्वलः ॥ ६३ ॥ पतन्तिपितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ६४ ॥ कृत्तरोमनखेभ्यश्च दद्याच्चैवापरेहनि ॥ निमन्त्रितायथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमाः ॥ ६५ ॥ कथञ्चिदप्यतिक्रामेद्यःसशूकरतांव्रजेत् ॥ दैवेपितॄणांश्राद्धे तु अशौचंजायतेयदा ॥ ६६ ॥ अशौचान्तेथवातत्र तेभ्यःश्राद्धंप्रदीयते ॥ अथश्राद्धावसानेतु आशिषस्तत्रदापये त ॥ ६७ ॥ एवमेषांप्रमाणेन दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ अपांमध्येस्थितादेवाः सर्वमप्सुप्रतिष्ठितम् ॥ ब्राह्मणस्यक रेन्यस्ताः शिवाआपोभवन्तुनः ॥ ६९ ॥ लक्ष्मीर्वसतिपुष्पेषु लक्ष्मीर्वसतिपुष्करे ॥ लक्ष्मीर्वसतिवैसोमे सौमनस्यंसदा स्तुमे ॥ ७० ॥ अक्षतंचास्तुमेपुण्यं शान्तिःपुष्टिर्धृतिश्चमे ॥ यद्यच्छ्रेयस्करंलोके तत्तदस्तुसदामम ॥ ७१ ॥ दक्षिणा

निमन्त्रित होवैं ॥ ६५ ॥ उनमें जो किसीप्रकार अतिक्रमण करै वह शूकरता को प्राप्तहोता है और देवकार्य व पितरोंके श्राद्ध में जब अशौच होवै ॥ ६६ ॥ तो वहां अशौचके अन्त में उनके लिये श्राद्ध दियाजाता है इसके उपरान्त श्राद्धके अन्त में वहां आशीर्वादों को देवै ॥ ६७ ॥ इस प्रकार इनके प्रमाण से पुरुष दीर्घआयुर्बल को प्राप्तहोताहै ॥ ६८ ॥ जलोंके मध्यमें देवता स्थित हैं व जलों में सब प्रतिष्ठित हैं ब्राह्मणके हाथमें धरेहुये कल्याणदायक जल हमलोगों केलिये होवैं ॥ ६९ ॥ पुष्पोंमें लक्ष्मी बसती है और जलमें लक्ष्मी बसती है व लक्ष्मी चन्द्रमामें बसती है मेरे सदैव सौमनस्य होवै ॥ ७० ॥ और मेरे अक्षय पुण्य होवै व शांति,पुष्टि और धृति होवै व संसारमें जो

जो कल्याणकारक होवै वह वह सदैव मेरे होवै ॥ ७१ ॥ और दक्षिणमें सब कहीं हमारे बहुत देने योग्य होवै ऐसाही होगा इस प्रकार उस सब आशीर्वादको उसको मस्तक से ग्रहण करना चाहिये ॥७२॥ व सुखों को चाहनेवाला मनुष्य सदैव पिण्डको अग्नि में देवै व सन्तानके लिये मध्यम पिण्ड को मन्त्रपूर्वक देवै ॥ ७३ ॥ और जो उत्तम कान्ति को चाहै वह सदैव गौवों के लिये पिण्डको देवै और जो बुद्धि, यश व कीर्तिको चाहै वह सदैव जलमें पिण्डको डाले ॥ ७४ ॥ और दीर्घ आयुर्बलको चाहताहुआ मनुष्य कौवों के लिये देवै व स्वामिकार्त्तिकेय के लोकको चाहताहुआ पुरुष मुर्गों के लिये देवै ॥ ७५ ॥ अथवा आकाश में चलावै या दक्षिण मुख स्थित

यान्तुसर्वत्र वहुदेयंतथास्तुनः ॥ एवमस्त्वितितत्सर्वं मूर्द्धाग्राह्यञ्चतेनतत् ॥ ७२ ॥ पिण्डमग्नौसदादद्याद्भोगार्थी सततंनरः ॥ प्रजार्थंपत्न्यैदद्यान्मध्यमंमन्त्रपूर्वकम् ॥ ७३ ॥ उत्तमांद्युतिमन्विच्छेद्गोषुनित्यंप्रदापयेत् ॥ प्रज्ञामिच्छे द्यशःकीर्तिमप्सुनित्यञ्चप्रक्षिपेत् ॥ ७४ ॥ प्रार्थयन्दीर्घमायुश्चवायसेभ्यःप्रदापयेत् ॥ कुमारलोकमन्विच्छन् कुक्कुटे भ्यःप्रदापयेत् ॥ ७५ ॥ आकाशेगमयेद्वापि स्थितोवादक्षिणामुखः ॥ पितॄणांस्थानमाकाशं दक्षिणाचैवदिक्तथा ॥ ७६ ॥ नक्तन्तुवर्जयेच्छ्राद्धं राहोरन्यत्रदर्शनात् ॥ सर्वस्वेनापिकर्त्तव्यं क्षिप्रंवैराहुदर्शनात् ॥ ७७ ॥ अपरागेनकुर्या द्यः पङ्केगौरिवसीदति ॥ कुर्वाणस्तुतरेत्पापं यथानौरिवसागरम् ॥ ७८ ॥ कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाःस्युर्यवशालयः ॥ महायवाव्रीहियवास्तथैवाथमसूरिकाः ॥ ७९ ॥ कृष्णाःश्वेतास्तिलाग्राह्याः श्राद्धकर्मणिसर्वदा ॥ बिल्वामलकमृद्वीकं पनसाम्रंचदाडिमम् ॥ कदलीकालशाकञ्च मुद्गान्नञ्चसुवर्चलम् ॥ ८० ॥ मांसंशाकंदधिक्षीरं चोचंवेत्राङ्कुरंतथा ॥

होवै क्योंकि पितरों का स्थान आकाश व दक्षिण दिशा है और राहुके दर्शनसे अन्यत्र याने चन्द्रग्रहणके सिवाय रातमें श्राद्धको न करै व राहुके दर्शनसे सर्वस्वसे शीघ्रही श्राद्ध करना चाहिये ॥७६।७७॥ जो ग्रहणमें श्राद्ध नहीं करता है वह कीचड़ में गऊकी नाई दुःखित होताहै और श्राद्धको करता हुआ मनुष्य पापको तरजाता है जैसे कि नाव समुद्रको उतरजाती है ॥ ७८ ॥ काले उडद व तिल और यव व धान श्रेष्ठ हैं महायव, व्रीहियव व मसूर ॥ ७९ ॥ और काले व सफेद तिल सदैव श्राद्धकर्म में ग्रहण करना चाहिये और बेल, आँवला, मुनक्का, कटहर, आम व अनार, केला, कालशाक, मुद्गान्न (मूँग) सुवर्चला (सोंचर नमक) ॥ ८० ॥

मास, दधि, दूध, शाक, दालचीनी व बेतका अंकुर, कपास, धतूर, मुनक्का, बड़हर, सहिंजन ॥ ८१ ॥ चिरौंजी, चमेली, तिंदुक, सौंफ, पीपरि, मिर्चे, परवर, भटकटैया ॥ ८२ ॥ इत्यादिक और पुष्प श्राद्धकर्म में उत्तमहैं और मसूर, सौंफ व कुसुमके फूल सदैव वर्जितहैं ॥ ८३ ॥ और यव व रूस तथा कुरैया सदैव वर्जितकरने योग्य है व बांसका अंकुर (अखुवा) और रासन व भादा वर्जितहैं ॥ ८४ ॥ व नित्यही श्राद्धकर्ममें वर्जने योग्य वस्तुवोंको मैं कहताहूं ॥ ८५ ॥ लहसुन, पियाज, गाजर, पिंडमूल, मूर और बड़ी मूली, ॥ ८६ ॥ इन को देनेवाला पुरुष वृथा श्राद्ध को प्राप्त होता है और नरक को जाता है प्रातः कालसे लगाकर वे सब पंद्रह मुहूर्त हैं ॥ ८७ ॥

कर्पासंकनकंद्राक्षा लकुचंमोचमेवच ॥ ८१ ॥ प्रियालंमालतीचैव तिन्दुकंमधुराह्वयम् ॥ पिप्पलीमरिचंचैव पटोलीबृहतीफलम् ॥ ८२ ॥ एवमादीनिचान्यानि पुष्पाणिश्राद्धकर्मणि ॥ मसूराःशतपुष्पाच कुसुम्भकुसुमानिच ॥ ८३ ॥ वर्ज्याश्चापियवानित्यं तथावृषभवासवौ ॥ वंशाङ्कुरञ्चसुरसावर्ज्यानिभूस्तृणानिच ॥ ८४ ॥ वर्जनीयानिवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणिनित्यशः ॥ ८५ ॥ लशुनंगृञ्जनञ्चैव पलाण्डुंपिण्डमूलकम् ॥ मोरटञ्चात्रवैवर्ज्यं दीर्घमूलकमेवच ॥ ८६ ॥ वृथाश्राद्धमवाप्नोति दाताचनरकंव्रजेत् ॥ प्रातरारभ्यवाणेन्दुमुहूर्तास्सर्वएवते ॥ ८७ ॥ सङ्गवस्त्रिमुहूर्तोथ मध्याह्नस्तुस्मृतस्ततः ॥ ८८ ॥ ततस्त्रयोमुहूर्तावै अपराह्णोविधीयते ॥ पञ्चमोथदिनांशोयः सायाह्नइतिसंस्मृतः ॥ ८९ ॥ प्रातरारभ्यश्राद्धंवै कुर्यादारोहिणाद्बुधः ॥ विधिज्ञोविधिमास्थाय रोहिणन्तुनलङ्घयेत् ॥ ९० ॥ अष्टमोयोमुहूर्त्तश्च कुतुपःसनिगद्यते ॥ नवमोरोहिणःप्रोक्त इतिश्राद्धविदोविदुः ॥ ९१ ॥ एकोद्दिष्टन्तुमध्याह्ने प्रातर्वैजातकर्मणि ॥ पित्र्य

तीन मुहूर्त संगव होताहै उसके उपरान्त मध्याह्न कहागयाहै ॥ ८८ ॥ उसके उपरान्त तीन मुहूर्त अपराह्ण कहाजाताहै इसके उपरान्त जो पांचवा दिन का भागहै वह सायाह्न कहागया है ॥ ८९ ॥ प्रातःकाल से लगाकर रोहिण पर्यन्त विद्वान् श्राद्धको करै और विधिको जाननेवाला पुरुष विधि में स्थित होकर रोहिण मुहूर्तको न उल्लंघन करै ॥ ९० ॥ जो आठवां मुहूर्त है वह कुतुप कहाजाता है और नवां रोहिण कहागया है ऐसा श्राद्धके जाननेवालों ने कहा है ॥ ९१ ॥ मध्याह्न में एकोद्दिष्ट

करना चाहिये व जातकर्म में प्रातःकाल कहागया है पितरोंके लिये व वैश्वदेवके लिये श्राद्ध करै ॥ ९२ ॥ विश्वेदेव श्राद्ध पितरोंके लिये नहीं है और पितरोंका श्राद्ध विश्वेदेवताओं का नहीं होताहै हे महादेवि ! श्राद्ध करके व ब्राह्मणों को विदाकर ॥ ९३ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! विश्वेदेवादिक कर्म करै बहुत हव्य व ईंधनवाले तथा विशेष कर बहुत बढ़तेहुये अग्नि में ॥ ९४ ॥ और धूमरहित व जलती हुई अग्नि में कम कर्मों की सिद्धिके लिये होताहै और बिन बढ़ेहुये व धुँवासमेत अग्निमें जो हवन करताहै ॥ ९५ ॥ वह यजमान पुत्रसमेत अन्धा होताहै यह निश्चितहै और दुर्गन्ध, कृष्ण व विशेषकर नील ॥ ९६ ॥ अग्नि जहां भूमिको प्राप्त होवै

र्थंनिर्वपेच्छ्राद्धं विश्वेदेवार्थमेवच ॥ ९२ ॥ वैश्वदैवन्नपित्र्यर्थं नपित्र्यंविश्वदैविकम् ॥ कृत्वाश्राद्धंमहादेवि ब्राह्मणांश्चविसर्ज्यच ॥ ९३ ॥ विश्वेदेवादिकंकर्म ततःकुर्याद्वरानने ॥ बहुहव्येधनेचाग्नौ सुसमिद्धेविशेषतः ॥ ९४ ॥ विधूमे लेलिहानेच कर्मस्यात्कर्मसिद्धये ॥ अप्रवृद्धेसधूमेच जुहुयाद्योहुताशने ॥ ९५ ॥ यजमानोभवेदन्धः सपुत्रइतिनिश्चितम् ॥ दुर्गन्धश्चैवकृष्णश्च नीलश्चैवविशेषतः ॥ ९६ ॥ भूमिन्तुगाहतेयत्र तत्रविद्यात्पराभवम् ॥ अर्चिष्मान्पिङ्गलशिखः सर्पिःकाञ्चनसन्निभः ॥ ९७ ॥ स्निग्धःप्रदक्षिणश्चैव वह्निःस्यात्कार्यसिद्धये ॥ चन्दनागुरुणीचोभौ तमालोशीरपद्मकाः ॥ ९८ ॥ धूपश्चगुग्गुलःश्रेष्ठस्तुरुष्कोधूपएववा ॥ शुक्लाःसुमनसःश्रेष्ठास्तथापद्मोत्पलानिच ॥ ९९ ॥ गन्धवन्तिच पुष्पाणि तथाचान्यानिकृत्स्नशः ॥ यवानिसुमनाभिण्टी रक्तकःसकुरण्टकः ॥ १०० ॥ पुष्पाणिवर्जनीयानि श्राद्धकर्मणिनित्यशः ॥ सौवर्णंराजतंताम्रं पितॄणांपात्रमुच्यते ॥ १ ॥ राजतस्यकथाकाचिद्दर्शनंपुण्यदायकम् ॥ राजत

वहां पराभव जानै और ज्वालावान् तथा पिंगलज्वालावाली और घृत व सुवर्ण के समान ॥ ९७ ॥ तथा सचिक्कण व दक्षिण अग्नि कार्यसिद्धि के लिये होती है और चन्दन व अगुरु ये दोनों और तमाल, खस, पद्माक ॥ ९८ ॥ और गुग्गुल धूप श्रेष्ठहै व लोबान धूप उत्तम होता है और सफेदफूल श्रेष्ठ हैं व कमल श्रेष्ठ होते हैं ॥ ९९ ॥ और सुगन्धवाले अन्य सब फूल उत्तम हैं व यव, चमेली, नीलपियाबाँसा, दुपहरी और पीतपियाबाँसा ॥ १०० ॥ ये फूल सदैव श्राद्धकर्म में वर्जित करने

योग्यहैं और सोने व चांदी तथा ताँबेका पात्र पितरोंका कहाजाता है ॥ १ ॥ और चांदी के पात्रकी कोई कथा व दर्शन पुण्यदायकहै व चांदीकी समीपता तथा दर्शन व दान ॥ २ ॥ राक्षसों का विनाशक व यशदायक है तथा पितरों को तारताहै इस के उपरान्त ब्रह्मासे बनायेहुये अमृतमन्त्र को मैं कहताहूं ॥ ३ ॥ कि देवता,पितर व महायोगियों के लिये नमस्कार है और स्वधाके लिये प्रणाम है व स्वाहाके लिये नित्यही बार २ प्रणाम है ॥ ४ ॥ श्राद्धके आदि व अन्त में इस मन्त्रको तीनबार जपै ब्राह्मणों से सदैव पूजित यह अश्वमेध के फलको देनेवाला है ॥ ५ ॥ और सावधान होताहुआ पुरुष पिंड विसर्जन के समय में इसको जपै तो पितर प्रियको

स्यचसान्निध्यं दर्शनंदानमेववा ॥ २ ॥ रक्षोघ्नंचयशस्यंच पितॄंश्चतारयेत्तथा ॥ अथमन्त्रम्प्रवक्ष्यामि अमृतंब्रह्मनिर्मितम् ॥ ३ ॥ देवताभ्यःपितृभ्यश्च महायोगिभ्यएवच ॥ नमःस्वधायैस्वाहायै नित्यमेवनमोनमः ॥ ४ ॥ आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावर्त्तामिमंजपेत् ॥ अश्वमेधफलंह्येतद्द्विप्रैःसन्ततपूजितम् ॥ ५ ॥ पिण्डनिर्वपणेवापि जपेदेनंसमाहितः ॥ पितरःप्रियमायान्ति राक्षसाःप्रद्रवन्तिच ॥ ६ ॥ सप्तार्चिषम्प्रवक्ष्यामि सर्वकामशुभप्रदम् ॥ अमूर्त्तानाञ्चमूर्त्तानां पितॄणांदीप्ततेजसाम् ॥ ७ ॥ नमस्यामिसदातेषां व्यापिनांदिव्यचक्षुषाम् ॥ इन्द्रादीनांचनेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ॥ ८ ॥ सप्तर्षीणांपितॄणांतान्नमस्यामिचकामदान् ॥ मन्वादीनाञ्चसर्वेषां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ ९ ॥ तान्नमस्यामि सर्वान्वै पितॄंश्चाहंकृताञ्जलिः ॥ नक्षत्राणांग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योश्चपितॄनपि ॥ १० ॥ द्यावापृथिव्योश्चसदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥ नमःपितृभ्यःसप्तभ्यो नमोलोकेषुसप्तसु ॥ ११ ॥ स्वयम्भुवेनमस्यामो ब्रह्मणेयोगचक्षुषे ॥ एतत्तदुक्तं

प्राप्त होतेहैं और राक्षस भगजाते हैं ॥ ६ ॥ सब कामनाओं को उत्तम देनेवाले सप्तार्चिषमन्त्र को कहताहूं कि प्रकाशिततेजवाले मूर्तिमान् व बिन मूर्त्तिवाले पितरों को ॥ ७ ॥ मैं सदैव प्रणाम करताहूं जोकि दिव्यदृष्टिवाले उन व्यापक इन्द्रादिक देवताओं व दक्ष तथा कश्यपके सदैव नेताहैं ॥ ८ ॥ और सप्तर्षियों व पितरों के कामदायक उन पितरों को मैं प्रणाम करताहूं और सब मनुआदिक व सूर्य, चन्द्रमा के ॥ ९ ॥ उन सब पितरों को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं और नक्षत्र, ग्रह व पवन तथा अग्निके पितरों को भी मैं प्रणाम करताहूं ॥ १० ॥ और हाथों को जोड़कर मैं सदैव आकाश व भूमि के पितरों को प्रणाम करताहूं

र सातोंलोकों में सातोंपितरों के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ११ ॥ और योगदृष्टिवाले स्वयम्भू ब्रह्माके लिये प्रणाम है ब्रह्मर्षिगणों से पूजित यह वह
-तार्चि है ॥ १२ ॥ यह श्रीमत् सप्तार्चि अत्यन्त पवित्र व राक्षसोंका विनाशक है इस विधिसे संयुत मनुष्य तीनबार जपै ॥ १३ ॥ बड़ीभक्तिसे संयुत श्रद्धावान्
जितेन्द्रिय जो पुरुष सावधान होकर नित्यही सतार्चिष् को जपता है ॥ १४ ॥ वह सातसमुद्रोंवाली पृथ्वीका चक्रवर्ती राजा होताहै जो पंक्तिपावन ब्राह्मण इस
ाद्धकल्पको नित्यही पढ़ता है ॥ १५ ॥ वह अठारह विद्याओंका पारगामी कहागयाहै और वे प्रसन्न होकर पितामहलोग मनुष्यों को बुद्धि, पुष्टि, स्मृति व धारणा-

सप्तार्चिर्ब्रह्मर्षिगणपूजितम् ॥ १२ ॥ पवित्रंपरमंह्येतच्छ्रीमद्रक्षोविनाशनम् ॥ अनेनविधिनायुक्तस्त्रीन्वारांस्तुजपेन्न
रः ॥ १३ ॥ भक्त्याचपरयायुक्तः श्रद्दधानोजितेन्द्रियः ॥ सप्तार्चिषंजपेद्यस्तु नित्यमेवसमाहितः ॥ १४ ॥ सचसप्तसमु
द्रायाःपृथिव्याएकराड्भवेत् ॥ श्राद्धकल्पंपठेदेतन्नित्यंयःपङ्क्तिपावनः ॥ १५ ॥ अष्टादशानांविद्यानां सचैवपारगःस्मृ
तः ॥ प्रज्ञांपुष्टिंस्मृतिंमेधां राज्यमारोग्यमेवच ॥ १६ ॥ प्रीतास्तेचप्रयच्छन्ति मानुषाणांपितामहाः ॥ एवंप्राभासिकेक्षे
त्रे सरस्वत्यब्धिसङ्गमे ॥ १७ ॥ कुर्याच्छ्राद्धंविधानेन प्रभासेचैवभामिनि ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेस
रस्वत्यब्धिसङ्गमेश्राद्धविधिवर्णनंनामद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥
ईश्वर उवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि श्राद्धदानान्यनुक्रमात् ॥ तारणार्थंचभूतानां सरस्वत्यब्धिसङ्गमे ॥ १ ॥ लो
केश्रेष्ठतमंसर्वमात्मनश्चापियत्प्रियम् ॥ सर्वंपितृणांदातव्यं तदेवाक्षय्यमिच्छता ॥ २ ॥ जाम्बूनदमयंदिव्यं विमानं

वती बुद्धि तथा राज्य व नीरोगता को देते हैं हे भामिनि ! इसप्रकार प्रभासक्षेत्रमें सरस्वती व समुद्रके सङ्गम में विधिसे श्राद्धकरै ॥ १६ । १७ । ११८ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायासरस्वत्यब्धिसङ्गमेश्राद्धविधिवर्णनंनामद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥

दो० । यया श्राद्धमें विहित हैं विविध भांतिके दान । दोसौ यक अध्याय में कह्यो सोइ आख्यान ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त सरस्वती व समुद्र के
सङ्गम में प्राणियों के तारने के लिये क्रमसे श्राद्धके दानोंको कहताहूं ॥ १ ॥ संसारमें जो सब बहुत श्रेष्ठहो और जो अपनाको प्रियहो उस सब वस्तुको पितरों की

अक्षयता चाहनेवाले मनुष्यको देना चाहिये ॥ २ ॥ और अन्नको देनेवाला मनुष्य दिव्यअप्सराओं से संयुत व सूर्य के समान सुवर्णमय दिव्य व अक्षय विमान को पाताहै ॥ ३ ॥ और श्राद्धकर्ममें जो पुरुष नवीन आच्छादनको देताहै वह आयुर्बल, प्रकाश,ऐश्वर्य्य व रूपको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ और जो वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये कमण्डलु व शहदको देताहै उस दाताके पश्चात् दूध देनेवाली गऊ प्राप्तहोती है ॥५ ॥ और जीवन चाहनेवाले प्राणियोंको जो अभय देताहै वह पृथ्वीमें जो रत्न व सवारी और स्त्रियाँहैं ॥६॥ उस सबको वह पितृभक्त मनुष्य शीघ्रही प्राप्तहोताहै क्योंकि हज़ार अश्वदान व सौ रथदान ॥ ७ ॥ और हज़ार गजदानसे अभय विशेषहै पर्व

सूर्यसन्निभम् ॥ दिव्याप्सरोभिःसंकीर्णमन्नदोलभतेक्षयम् ॥ ३ ॥ आच्छादनन्तुयोदद्यादाहतंश्राद्धकर्मणि ॥ आयुः प्रकाशमैश्वर्यं रूपन्तुलभतेतुसः ॥ ४ ॥ कमण्डलुञ्चयोदद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ मधुक्षीरस्रवाधेनुर्दातारमनुगच्छति ॥ ५ ॥ यःश्राद्धेअभयंदद्यात् प्राणिनांजीवितेच्छताम् ॥ यानिरत्नानिमेदिन्यां वाहनानिस्त्रियस्तथा ॥ ६ ॥ क्षिप्रंप्राप्नोतितत्सर्वं पितृभक्तस्समानवः ॥ अश्वदानसहस्रेण रथदानशतेनच ॥ ७ ॥ दन्तिनांचसहस्रेण अभयंचविशिष्यते ॥ पितरःपर्वकालेषु तिथिकालेषुदेवताः ॥ ८ ॥ सर्वेपुरुषमायान्ति निपानमिवधेनवः ॥ मास्मतेप्रतिगच्छेयुः पर्वकालेह्यपूजिताः ॥ ९ ॥ मेघास्तस्यभवन्त्यर्थाः परत्रइहसर्वतः ॥ सरस्वत्यास्तुसान्निध्येयस्त्वेकम्भोजयेद्द्विजम् ॥ १० ॥ कोटिभोजफलन्तस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ अमावस्यान्नरोयस्तु परान्नमुपभुञ्जते ॥ ११ ॥ तस्यमासकृतंपुण्यमन्नदातुःप्रजायते ॥ वरान्नमयनेभुक्ते त्रिमासान्विषुवेस्मृतम् ॥ १२ ॥ वर्षैर्द्वादशभिश्चैव यत्पुण्यंसमुपार्जितम् ॥ तत्सर्वंविलयंया

समयों में पितर व तिथिकालों में देवता ॥ ८ ॥ सब पुरुषके समीप आतेहैं जैसे कि गौवें पौशालेको जातीहैं पर्व समयोंमें बिन पूजेहुये वे पितर मत लौटजावें ॥ ९ ॥ क्योंकि इसलोक व परलोकमें सब कहीं उसके अर्थ व्यर्थ होजाते हैं और सरस्वती के समीप जो एक ब्राह्मणको भोजन कराता है ॥ १० ॥ उसको कोटिभोज के समान फलहोताहै इसमें सन्देह नहीं है और जो पुरुष अमावस तिथिमें पराये अन्नको भोजन करताहै ॥११॥ उसका महीनेभरमें कियाहुआ पुण्य अन्नदाताको होताहै और विषुवायन में पराया अन्न भोजन करनेपर तीन महीने का पुण्य उसको कहा गयाहै ॥ १२ ॥ और बारहवर्षों से जो पुण्य इकट्ठा कियागया है वह सब सूर्य व

चन्द्रमाके ग्रहणमें नाशको प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ और सूर्यकी संक्रान्तिमें पराया अन्न भोजन करनेसे कुछ अधिक महीनेभरमें जो पुण्य इकट्ठा कियागयाहै वह नाशहो-जाताहै और पहली श्राद्धमें तीनवर्ष और मासिकश्राद्धमें आठ वर्षका व छमाहीश्राद्ध में भोजन करनेसे आधेवर्षमें कियाहुआ पुण्य नाशको प्राप्तहोताहै ॥ १४ ॥ वैसे ही सञ्चयनश्राद्ध में मनुष्यों का जन्मभर में कियाहुआ पाप नाश होजाताहै और मरे पुरुषकी शय्याका दान लेनेवाला और वेदसेवन को बेंचनेवाला ॥ १५ ॥ और जो ब्राह्मण के धनको हरनेवाला है उसकी शुद्धि नहीं विद्यमान है और हज़ार तड़ाग खुदाने से व सौ अश्वमेध यज्ञ करने से ॥ १६ ॥ और करोड़ गौवोंके देनेसे

ति भुक्त्वासूर्येन्दुसंप्लुवे ॥ १३ ॥ साग्रमासंरवेःक्रान्तावाद्यश्राद्धेत्रिवत्सरम् ॥ मासिकेप्यष्टवर्षस्यषण्मासेत्वर्द्धवत्सरे ॥ १४ ॥ तथासञ्चयनेश्राद्धे यातिजन्मकृतंनृणाम् ॥ मृतशय्याप्रतिग्राही वेदसेवनविक्रयी ॥ १५ ॥ ब्रह्मस्वहारीचनर स्तस्यशुद्धिर्नविद्यते ॥ तडागानांसहस्रेण अश्वमेधशतेनच ॥ १६ ॥ गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्तानशुद्ध्यति ॥ सुवर्ण माषंगामेकां भूमेरप्यर्द्धमङ्गुलम् ॥ १७ ॥ हरेन्नरकमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ब्रह्मस्वंब्रह्महत्याच दरिद्रस्यतुवर्द्धन म् ॥ १८ ॥ गुरोर्मित्रहिरण्यञ्च स्वर्गस्थमपिपातयेत् ॥ सहस्रसम्मिताधेनुरनड्वान्दशधेनवः ॥ १९ ॥ दशानडुत्सम मंयानंदशयानसमोहयः ॥ दशघोटसमाकन्या भूमिदानन्ततोधिकम् ॥ २० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विक्रयंनैवकार येत् ॥ विशेषतोमहाक्षेत्रे सर्वपातकनाशने ॥ २१ ॥ चितिकाष्ठचयंस्पृष्ट्वा यज्ञयूपन्तथैवच ॥ वेदविक्रयकर्तारंस्पृष्ट्वा

भूमिको हरनेवाला शुद्ध नहीं होताहै व माशेभर सुवर्ण तथा एक गऊ और भूमि के आधे अंगुल को ॥ १७ ॥ जो हरताहै वह तबतक नरकको प्राप्तहोता है कि जबतक प्रलय होताहै ब्राह्मणका धन व ब्रह्महत्या और दरिद्रीका जो धनहै ॥ १८ ॥ व गुरु और मित्रका सुवर्ण स्वर्गमें टिकेहुये पुरुषको भी गिरानाहै हजार रुपयोंके बराबर गऊहोती है और दश गौवोंके समान बैल होताहै ॥ १९ ॥ और दश बैलोंके के समान एक रथ होताहै व दशरथों के तुल्य घोड़ा होताहै और दश घोड़ोंके बराबर कन्या होती है व भूमिदान उससे अधिकहै ॥ २० ॥ इसलिये सबयत्नसे वेदका विक्रय न करै व समस्त पातकोंको नाशनेवाले महाक्षेत्रमें विशेषकर न करै ॥ २१ ॥

क्योंकि चिताके काठों के समूह को व यज्ञस्तम्भ को छूकर और वेदके विक्रय करनेवाले को स्पर्शकर स्नान करना चाहिये ॥ २२ ॥ और जो मनुष्य राजद्वार में आज्ञा को कहताहै हे देवि ! वह भी ऊषर में कांटेका वृक्षहोता है ॥ २३ ॥ राजाके द्वारमें टिकाहुआ पुरुष वेदका विक्रय न करै और ब्रह्महत्याके समान पातक न हुआ है न होवैगा ॥ २४ ॥ हे देवि ! वेदको बेंचनेवाला पुरुष उसको पाताहै इससे वेदका विक्रय न करै ॥ २५ ॥ प्रत्युत्तर व शपथ में तथा यज्ञके पहले दानलेना और यज्ञ कराने, पढ़ाने व विवाद में छःप्रकार का वेदविक्रय है ॥ २६ ॥ द्रव्यके कारण जितने वेदाक्षरों को नियोग करता है उतनी बालहत्याओं को वेदविक्रयको

स्नानंविधीयते ॥ २२ ॥ आदेशम्पठतेयस्तु राजद्वारेतुमानवः ॥ सोपिदेविभवेद्वृक्ष ऊषरेकण्टकारकः ॥ २३ ॥ स्थितोवैनृपतेर्द्वारि नकुर्याद्वेदविक्रयम् ॥ ब्रह्महत्यासमंपापं नभूतंनभविष्यति ॥ २४ ॥ तदाप्नोतिध्रुवंदेवि नकुर्याद्वेदविक्रयम् ॥ २५ ॥ प्रत्याख्यातेप्रत्ययेच यज्ञपूर्वम्प्रतिग्रहः ॥ याजनाध्ययनेवादे षड्विधोवेदविक्रयः ॥ २६ ॥ वेदाक्षराणि यावन्ति नियुक्तेह्यर्थकारणात् ॥ तावन्त्योभ्रूणहत्यावै प्राप्नुयाद्वेदविक्रयी ॥ २७ ॥ वेदान्तयोगाद्योदद्याद् ब्राह्मणायप्रतिग्रहम् ॥ सपूर्वंनरकंयाति ब्राह्मणस्तदनन्तरम् ॥ २८ ॥ वैश्वदेवेनयेहीना आवसथ्येनकर्मणा ॥ सर्वेतेवृषलाज्ञेया वेदयुक्ताअपिद्विजाः ॥ २९ ॥ येषामध्ययनंनास्ति येचकेचिदनग्नयः ॥ येस्वाचारविहीनावै तेसर्वेशूद्रजातयः ॥ ३० ॥ मृतेहनिपितुर्यस्तुनकुर्याच्छ्राद्धमादरात् ॥ मानुषश्चवरारोहे सद्विजःशूद्रसन्निभः ॥ ३१ ॥ मृतकेयस्तुभुञ्जीत गृहीतशशिभास्करे ॥ गजच्छायासूतकेच तंचशूद्रवदाचरेत् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारिणिसंज्ञेच यतौशिल्पिनिदीक्षिते ॥ यज्ञेविवाहेच्चे

प्राप्तहोता है ॥ २७ ॥ वेदके योगसे जो ब्राह्मण के लिये दान देता है वह पहले नरकको जाताहै और ब्राह्मण उसके उपरान्त जाताहै ॥ २८ ॥ और वैश्वदेवकर्म तथा आवसथ्यकर्म से जो हीनहैं वेदसे संयुतभी वे सब ब्राह्मण शूद्र जाननेयोग्य हैं ॥ २९ ॥ जिनके वेदपाठ नहीं है और जो कोई अग्निरहित ब्राह्मण हैं और जो अपने आचार से, रहित हैं वे सब शूद्र जाति हैं ॥ ३० ॥ और हे वरारोहे ! जो पुरुष पिताके व माताके क्षयाह में आदरसे श्राद्ध नहीं करता है, वह ब्राह्मण शूद्रके समान है ॥ ३१ ॥ और जो ब्राह्मण मृतक व चन्द्रमा, सूर्य के ग्रहण में भोजन करता है व गजच्छाया तथा सूतक में जो ब्राह्मण भोजन करता है उसको शूद्रकी

नाईं जानै ॥ ३२ ॥ और ब्रह्मचारीसंज्ञक तथा संन्यासी व शिल्पी, दीक्षित, यज्ञ व विवाह में और क्षेत्र में किसी प्रकार सूतक नहीं होता है ॥ ३३ ॥ और गोरक्षक, बनिया व शिल्पी और कथिक और दूत व अधिक व्याजलेनेवाले ब्राह्मणोंको शूद्र की नाईं जानै ॥ ३४ ॥ और निषिद्धकर्मोंमें जो ब्राह्मण वर्तमानहोवै और पाखण्डी दुष्कृत व पापी होवै वह ब्राह्मण शूद्रके समान कहागया है ॥ ३५ ॥ व विन नहाये भोजन करनेवाला विष्ठाको भोजन करता है और जप न करनेवाला मनुष्य पीब व रक्तको खाता है और हवन न करके कीटोंको खाता है और न देकर मदिरा को पीता है ॥ ३६ ॥ और पराये अन्नसे जो भोजन करता है उसके बाद मैथुन करता

त्रेच सूतकन्नकदाचन॥३३॥ गोरक्षकान्वणिजकांस्तथाकारुकुशीलवान्॥ प्रेष्यान्वार्द्धुषिकांश्चैव विप्राञ्छूद्रवदाचरेत्॥ ३४॥ ब्राह्मणश्चनिषिद्धेषु वर्त्तमानोवकर्मसु ॥ दाम्भिकोदुष्कृतःपापःसचशूद्रसमःस्मृतः ॥ ३५॥ अस्नाताशीमलंभुङ्क्ते अजपीपूयशोणितम् ॥ अहुत्वाचकृमीन्भुङ्क्ते अदत्त्वामद्यमेवच ॥ ३६ ॥ परान्नेनतुयोभुङ्क्ते मैथुनंचाधिगच्छति॥ यस्यान्नन्तस्यतेपुत्रा अन्नाच्छुक्रंप्रवर्त्तते ॥ ३७ ॥ राजान्नंतेजआदत्ते शूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम् ॥ आयुःसुवर्णकारान्नं यशश्च र्मावकर्त्तिनः ॥ ३८ ॥ कारुकान्नंप्रजाहन्ति बलंनिर्णेजकस्यच ॥ गणान्नंगणिकान्नंच लोकेभ्यःपरिकृन्तति॥३९॥ पूयंचिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ॥ विष्ठावार्द्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणोमलम् ॥ ४० ॥ गायत्रीसारमात्रोपि वरंविप्रःसुयन्त्रितः ॥ नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ ४१ ॥ सद्यःपततिमांसेन लाक्षयालवणेनच ॥

है तो जिसका अन्न होवै उसके वे पुत्रहैं क्योंकि अन्नसे वीर्य प्रवृत्त होता है ॥३७॥ राजाका अन्न तेजको लेता है और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको लेताहै तथा सोनारका अन्न आयुर्बल व चमार का अन्न यशको लेताहै ॥ ३८ ॥ व शिल्पीका अन्न सन्तानको नाशकरता है और धोबी का अन्न बलको विनाशता है और ज्योतिषी व वेश्या का अन्न स्वर्गादिलोकों से काटताहै ॥ ३९ ॥ वैद्यका अन्न पीब व पुंश्चली का अन्न वीर्य और अधिक व्याज लेनेवाले का अन्न विष्ठा और शस्त्रोंको बेंचनेवालेका अन्न मल (विष्ठाको छोड़कर अन्य मल) है ॥ ४० ॥ और गायत्री सारांशवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ व सुयन्त्रित होताहै और चतुर्वेदी ब्राह्मण अयन्त्रितहोकर सब खानेवाला व

सब वस्तुको बेंचनेवाला श्रेष्ठ नहीं है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण मांस लाख व नमक बेंचनेसे उसीक्षण पतित होजाताहै और दूध बेंचनेसे तीन दिनमें शूद्र होजाताहै ॥ ४२ ॥ और रसों (गुड़ादिकों) को रस (घृतादिकों) से बदलना चाहिये और नमकको रसोंसे न बदलना चाहिये और पकेहुये भोजनको बिन पके अन्नसे बदले व धान्य से उसीके बराबर तिलों को बदलना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो ब्राह्मण भोजन, उबटन व दान के सिवा तिलोंसे अन्य (विक्रयादि) कर्म करता है वह कुत्ताके विष्ठा में कीट होकर पितरोंसमेत डूबता है ॥ ४४ ॥ और पुवा, सोना, गऊ, घोड़ा, पृथ्वी व तिलोंका दान लेताहुआ मूर्ख काठकी नाईं भस्म होजाताहै ॥ ४५ ॥ सुवर्ण आ-

त्र्यहेणशूद्रोभवति ब्राह्मणःक्षीरविक्रयात् ॥ ४२ ॥ रसान्रसैर्निमातव्यो नत्वेवलवणंरसैः ॥ कृतान्नंचाकृतान्नेन तिला धान्येनतत्समाः ॥ ४३ ॥ भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुतेतिलैः ॥ कृमिभूतःश्वविष्ठायां पितृभिःसहमज्जति ॥ ४४ ॥ अपूपञ्चहिरण्यञ्च गामश्वंपृथिवींतिलान् ॥ अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवतिकाष्ठवत् ॥ ४५ ॥ हिरण्य मायुषंहन्ति रत्नञ्चस्वतनुंतथा ॥ पुत्रंप्रपौत्रंदौहित्रमन्यंवातत्कुलोद्भवम् ॥ ४६ ॥ पञ्चयोजनमध्येतु श्रूयतेस्वगुरुर्यदा ॥ तदानातिक्रमेद्दानं दद्यात्पात्रेषुमानवः ॥ ४७ ॥ यतश्चेत्प्रार्थयेल्लोभाद्दीयमानंप्रतिग्रहम् ॥ नतस्यदेयंविद्वद्भिर्नलौल्यंशस्यतेयतः ॥ ४८ ॥ सौभाग्यमाप्नुयाल्लोकेनूनंवैरसवर्जनात् ॥ आयुष्मत्यःप्रजाःसर्वा भवन्त्यामिषवर्ज्जनात्॥ ४९ ॥ चीरवल्कलधारेण वस्त्राण्याभरणानिच ॥ नागाधिपत्यमाप्नोति ह्युपवासेनमानवः ॥५०॥ क्रीडतेसत्यवाक्ये

युर्बलको नाशता है व रत्नका दान अपने शरीरको नाशता है और पुत्र, प्रपौत्र, नाती व अन्य उस कुलमें उपजेहुये पुरुषको नाशता है ॥ ४६ ॥ जब पांच योजनके मध्यमें अपना गुरु सुन पड़ै तो उसको उल्लंघन न करै वरन पात्रोंमें मनुष्य दान को देवै ॥ ४७ ॥ दिये जातेहुये दानको जो लोभसे प्रार्थनाकरै उसको विद्वानों करके न देना चाहिये क्योंकि सतृष्णता नहीं उत्तम है ॥ ४८ ॥ रस विक्रयके वर्जनसे ब्राह्मण संसार में निश्चयकर सौभाग्यको प्राप्तहोताहै और मांस विक्रयके वर्जन से सब प्रजा (सन्तान) आयुष्मान् होते हैं ॥ ४९ ॥ और चीर, वल्कल के धारण से ब्राह्मण वस्त्र व आभूषणों को पाता है व उपवास से मनुष्य नागोंकी स्वामिता को

दम्भके कारण दियागया है व क्रोधके वशसे तथा प्रयोजनके कारण जो दियागयाहै उसको बालकपन में भोगता है ॥ १३ ॥ और देश, काल व पात्रमें शुद्ध मनसे जो न्यायसे इकट्ठा कियेहुये धनको देता है उसको वह पुरुष यौवन में भोगता है ॥ १४ ॥ और अन्यायसे इकट्ठा किया हुआ जो धन अपात्र में दियाजाता है और जो क्लिष्ट व हीन दियागयाहै उसको मनुष्य वृद्धतामें भोगताहै ॥ १५ ॥ इसलिये हे शुभे ! शठतावर्जित पुरुष श्रद्धासे विधिपूर्वक उत्तमता से इकट्ठा कियाहुआ धन देश, काल व सुपात्रमें युक्तकरै॥ १६॥ वेदपाठ से संयुक्त व योगवान् तथा शान्त व पुराणको जाननेवाले तथा पापभयवाले और स्त्रियोंके ऊपर क्षमा करनेवाले, धर्मवान्

र्थस्यकारणात् ॥ १३ ॥ देशेकालेचपात्रेच शुद्धेनमनसातथा ॥ न्यायार्जितंचयोदद्याद् यौवनेसतदश्नुते ॥ १४ ॥ अन्यायेनार्जितंद्रव्यमपात्रेप्रतिपादितम् ॥ क्लिष्टञ्चहीनंयद्दत्तं वृद्धभावेतदश्नुते ॥ १५ ॥ तस्माद्देशेचकालेच सुपात्रे विधिनाशुभे ॥ शुभार्जितंप्रयुञ्जीत श्रद्धयाशाठ्यवर्जितः ॥ १६ ॥ स्वाध्यायाढ्यंयोगवन्तंप्रशान्तम्पौराणज्ञंपापभीतिंविहन्तम् ॥ स्त्रीषुक्षान्तंधार्मिकंगोशरण्यं वृत्ताक्रान्तंतादृशंपात्रमाहुः ॥ १७ ॥ सत्यंदमस्तपःशौचंसन्तोषोनैष्ठ्यमार्जवम् ॥१८॥ ज्ञानंशमोदयादानमेतत्पात्रस्यलक्षणम् ॥ एवंविधेतुयःपात्रेगामेकाञ्चप्रयच्छति॥ १९॥ समानवत्सांकपिलां धेनुंसर्वगुणान्विताम् ॥ रौप्यपादांस्वर्णशृङ्गीं रुद्रलोकेमहीयते ॥ २० ॥ एकादशगुणंदद्याद्दशदद्याच्चगोशतीम् ॥ शतंसहस्रगादद्यात्सात्वनल्पफलास्मृता ॥ २१ ॥ सुशीलारूपसम्पन्ना तरुणीचपयस्विनी ॥ सवत्सान्यायलब्धाच प्रदेया

और गऊकी रक्षा करनेवाले व उत्तम आचारसे संयुत वैसे पात्रको विद्वानोंने कहाहै ॥ १७ ॥ और सत्य, दम, तपस्या, शौच, सन्तोष, निष्ठता व कोमलता ॥१८॥ ज्ञान, शम, दया, और दान यह पात्रका लक्षण है ऐसे पात्रमें जो समान बछड़ावाली तथा सब गुणोंसे संयुत, चांदी के खुर व सोने के सींगवाली एक कपिला गऊको देता है वह शिवलोक में पूजाजाता है ॥१९।२०॥ एक गऊ दशगुने फलको देती है और दश सौ गौवोंके फलको देती हैं और सौ गऊ हज़ार गऊके फलको देती हैं क्योंकि वह गऊ बहुत फलदायिनी कहीगई है ॥ २१ ॥ उत्तम स्वाभाववाली व रूपसंयुक्त, युवानी और दूध देनेवाली, बछड़ासमेत व न्यायसे मिलीहुई गऊ ब्राह्मण

के लिये देना चाहिये ॥ २२ ॥ और बांझ व रोग से हीन अंगोंवाली, दुष्टा, वृद्धा व मरे बछड़ेवाली तथा अन्यायसे मिलीहुई व दूर टिकीहुई ऐसी गऊको न देवै ॥ २३ ॥ हे देवदेवेशि ! जो मनुष्य ऐसी पूर्वोक्त गऊको देता है वह प्रत्यक्षही उत्तम गतिको प्राप्तहोताहै और महादेवजी प्रसन्न होतेहैं ॥ २४ ॥ क्रोधवती, दुष्टा, दुर्बली, रोगिणी और मूल्य न देनेसे जो लाईगई है वह न देना चाहिये और ब्राह्मणों के लिये जो क्लेश देती है उसके दाताके स्वर्गादिक लोक निष्फल होतेहैं ॥ २५ ॥ अतिथिप्रिय, शान्त, निर्धनी, अग्निहोत्री व वेदपात्र के लिये दीहुई एकभी गऊ बहुत गुणवती होती है ॥ २६ ॥ व हे देवि ! ज्ञानसे दुर्बल जो ब्राह्मण गऊको बेंचता है

ब्राह्मणायगौः ॥ २२ ॥ वन्ध्यासुरोगहीनाङ्गी दुष्टावृद्धामृतप्रजा ॥ अन्यायलब्धादूरस्थानेदृशीङ्गांप्रदापयेत् ॥ २३ ॥ योहीदृशीङ्गांददाति देवदेवेशिमानवः ॥ सउत्तमांगतिंयाति हृष्यतेचमहेश्वरः ॥ २४ ॥ रुष्टादुष्टादुर्बलाव्याधिताच नोदातव्यायाचमूल्यैरदत्तैः ॥ क्लेशंविप्रेभ्यश्चयाःसंयुनक्ति तस्यादातुर्निष्फलाश्चैवलोकाः ॥ २५ ॥ अतिथिप्रियशान्ताय सीदतेचाहिताग्नये ॥ श्रोत्रियायतथैकापि दत्ताबहुगुणाभवेत् ॥ २६ ॥ विक्रीणातिचयोदेवि ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः ॥ नासौप्रशस्यतेप्राप्तुं ब्राह्मणोनैवसंस्मृतः ॥ २७ ॥ बहुभ्योनप्रदेयानि गांगृहंशरणंस्त्रियः ॥ प्रासादायत्रसौवर्णा रौप्यरत्नोज्ज्वलास्तथा ॥ २८ ॥ वराश्चाप्सरसोयत्र तत्रगच्छन्तिगोप्रदाः ॥ २९ ॥ नास्तिभूमिसमन्दानं नास्तिगङ्गासमासरित् ॥ नास्तिसत्यात्परोधर्मो नान्योदेवोमहेश्वरात् ॥ ३० ॥ उच्चापाषाणयुक्ताच नसन्दग्धानचोषरा ॥ ननदीकूलविकटा भूमिर्देयाकदाचन ॥ ३१ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गेवसतिभूमिदः ॥ अदातानानुमन्ताच तानेवनरकेवसेत् ॥ ३२ ॥

वह गऊपाने के लिये प्रशस्त नहीं है और वह ब्राह्मण नहीं कहागया है ॥ २७ ॥ गऊ, घर, शरण व स्त्री बहुतों के लिये न देना चाहिये जहां चांदी व रत्नोंसे सफेद सोनेके मन्दिर हैं ॥ २८ ॥ और जहां उत्तम अप्सराहैं वहां गौवों के देनेवाले जातेहैं ॥ २९ ॥ पृथ्वीके बराबर दान नहीं है व गङ्गाके समान नदी नहीं है व सत्यसे परे धर्म नहीं है और महादेवजी से परे अन्य देवता नहीं है ॥ ३० ॥ न ऊंची न पत्थरसंयुक्त न जलीहुई और न ऊपरवाली और न नदीके कूलसे विकटभूमि कभी देना चाहिये ॥ ३१ ॥ भूमि देनेवाला पुरुष साठ हज़ार वर्षतक स्वर्गमें बसता है और न देनेवाला, न अनुमोदन करनेवाला उतनेही वर्षोंतक नरक में बसता है ॥ ३२ ॥

जिसके घरमें स्थित होताहै ॥ ५२ ॥ हे देवेशि! उसके घरमें तीर्थ व आपही शिवजी स्थित होतेहैं और यहां बहुत कहने से क्या है वह मोक्षका पात्र होताहै ॥५३॥ इसको दुर्जनके लिये न देना चाहिये और नास्तिक व पाखण्डी के लिये न देना चाहिये वरन इस शास्त्रको शान्त, दान्त व शैव ब्राह्मणके लिये देनाचाहिये ॥५४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाश्राद्धकल्पवर्णनन्नामद्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । मार्कण्डेश्वरशिवहिं जिमि थाप्योहै मुनिनाथ । दोसौ तीजेमें सोई वर्णित है शुभगाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर उससे उत्तर दिशाके भागमें

बहुनात्रकिमुक्तेन भवेन्मोक्षस्यभाजनम् ॥ ५३ ॥ नचैतत्पिशुनेदेयं नास्तिकेदाम्भिकेतथा ॥ इदंशान्तायदान्ताय देयं शैवद्विजन्मने ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेश्राद्धकल्पवर्णनंनामद्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्माद्दुत्तरादिग्भागे मार्कण्डेयप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ सावित्र्याःपूर्वभागेतु नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ महर्षिरभवत्पूर्वं मार्कण्डेयइतिश्रुतः ॥ २ ॥ अजरश्चामरश्चैव प्रसादात्पद्मयोनिनः ॥ सगत्वातत्रविप्रेन्द्रो देवदेवस्यशूलिनः ॥ ३ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास ज्ञात्वातत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ सतम्पूज्यविधानेन स्थित्वादक्षिणतोमुनिः ॥ ४ ॥ पद्मासनपरोभूत्वा ध्यानावस्थस्तदाभवत् ॥ तस्यध्यानरतस्यैव अयुतान्यर्बुदानिवै ॥ ५ ॥ युगानांसमतीतानि नजागर्तिमुनीश्वरः ॥ अथलोपस्समभवत्प्रासादाकारसंस्थितेः ॥ ६ ॥ कालेनमहता

मार्कण्डेयजी से थापेहुये उत्तम मार्कण्डेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि सावित्रीजी से-पूर्वदिशाके भागमें थोड़ेही दूरपै स्थितहैं पुरातन समय मार्कण्डेय ऐसे प्रसिद्ध महर्षि हुयेहैं ॥ २ ॥ जोकि ब्रह्माकी प्रसन्नता से अजर अमर हुये हैं उन द्विजेन्द्रने वहां जाकर उस क्षेत्रको उत्तम जानकर त्रिशूलधारी देवदेव शिवजीके लिंगको थापन किया और वे मुनि दक्षिणओर स्थित होकर उन शिवजीको विधिसे पूजकर॥ ३ । ४ ॥ पद्मासन में तत्पर होकर उस समय ध्यान में स्थितहुये आर ध्यान मे लगे उन मुनिके दशलाख अरब ॥ ५ ॥ युग व्यतीत होगये और मुनीश्वर मार्कण्डेयजी नहीं जगे इसके अनन्तर हे देवि ! बहुत समय से पवनसे उपजीहुई

धूलियोंसे मन्दिराकारकी स्थितिका लोपहोगया इसके उपरान्त किसीसमय मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी जगे ॥ ६ । ७ ॥ और उन्होंने धूलिसे व्याप्त उस सब शिवमन्दिरको देखा तदनन्तर खोदकर मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी उससे निकले ॥ ८ ॥ व हे भामिनि! उन्होंने उसके पूजनकेलिये बडा द्वार किया उसमें पैठकर जो भक्तिसे वृषभध्वज शिवजी को पूजताहै ॥ ९ ॥ वह उत्तमस्थान को प्राप्त होताहै जहा कि सदा शिवदेवजी हैं देवीजी बोलीं कि मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी कैसे अमरता को प्राप्तहुये हैं ॥ १० ॥ यह कौतुक हुआ है इसलिये तुम कहने के लिये योग्यहो जिसलिये हे शङ्करजी ! पृथ्वी में प्राणियों की अमरता नहीं है ॥ ११ ॥ और वे मार्कण्डेय

देवि पांशुभिर्मरुतोद्धवैः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य प्रबुद्धोमुनिसत्तमः ॥ ७ ॥ अपश्यद्रजसाव्याप्तं तत्सर्वंशिवमन्दिरम् ॥ ततस्तस्माद्विनिष्क्रान्तः खनित्वामुनिपुङ्गवः ॥ ८ ॥ अकरोत्समहाद्वारं पूजार्थंतस्यभामिनि ॥ प्रविश्यतत्रयोभक्त्या पूजयेद्वृषभध्वजम् ॥ ९ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ देव्युवाच ॥ अमरत्वंकथंप्राप्तो मार्कण्डोमुनिपुङ्गवः ॥ १० ॥ अभवत्कौतुकंह्येतत तस्मात्त्वंवक्तुमर्हसि ॥ अमरत्वंयतोनास्ति प्राणिनांभुविशङ्कर ॥ ११ ॥ देवानामपिकल्पान्तं सकथंनमृतोमुनिः ॥ ईश्वर उवाच ॥ तथैवाहम्प्रवक्ष्यामि यथासअमरोभवत् ॥ १२ ॥ आसीन्मुनिःपुराकल्पे मृकण्डइतिविश्रुतः ॥ भृगोःपुत्रोमहाभागः सभार्यस्तपसिस्थितः ॥ १३ ॥ तस्यपुत्रस्तदाजातो वसतस्तुवनान्तरे ॥ सपञ्चवार्षिकोभूत्वा बालएवगुणान्वितः ॥ १४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य ज्ञानीतत्रसमागतः ॥ तेनदृष्टस्तदाबालः प्राङ्गणेविचरन्प्रिये ॥ १५ ॥ स्थित्वाससुचिरंकालं पुत्रार्थंप्रतिनोदितः ॥ तस्यपुत्रार्थमहसत्सामुद्रज्ञोविदुत्तमः ॥ १६ ॥ हा

मुनि देवताओं के भी कल्पान्ततक क्यों नहीं मरे महादेवजी बोले कि मैं वैसाहीं कहूंगा कि जिसप्रकार वे मार्कण्डेयजी अमरहुयेहैं ॥ १२ ॥ पुरातन समय कल्पमें भृगुके पुत्र मृकण्ड ऐसे प्रसिद्ध हुयेहैं वे महाभाग स्त्रीसमेत तपस्या में स्थितहुये ॥ १३ ॥ उससमय वनके मध्यमें बसते हुये उनके पुत्र पैदाहुआ वह पाञ्चवर्ष का होकर बालकही गुणोंसे संयुतहुआ ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर किसी समय वहां ज्ञानी आया व हे प्रिये ! उसने आगन में घूमतेहुये बालक को उससमय देखा ॥ १५ ॥ और बहुत समय स्थित होकर वह पुत्रके लिये प्रेरणा कियागया और सामुद्रिक को जाननेवाला उत्तम विद्वान् उसके पुत्रके लिये हँसता भया ॥ १६ ॥ औ विस्मय-

संयुतचित्तवाले उससे हास्यका कारण पूंछागया ॥ १७ ॥ कि हे विप्रजी ! तुमने मेरे पुत्रको देखकर क्यों हास्य किया हे ब्रह्मन् ! उस विषय में मुझसे यथायोग्य कारण को कहिये ॥ १८ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे द्विजोत्तम ! मैं मनुष्यों के लक्षणों का यथार्थ जाननेवाला हूं हे महामुने ! तुम्हारे पुत्रके तेंतीस सौ लक्षण देखपडते हैं कि जिनसे युक्त मनुष्य कहीं नहीं मरताहै और इसकी छः महीने में मृत्युहोगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९।२० ॥ इसको मैं शास्त्रके बलसे जानताहूं तुम शोचनेके योग्य नहीं हो ज्ञानी से कहेहुये इस भयङ्कर वचन को सुनकर ॥ २१ ॥ उससमय पिताने बालकका यज्ञोपवीत किया और आयेहुये ब्राह्मण को देखकर ऋषिने इस

स्यस्यकारणंपृष्टो विस्मयान्वितचेतनः ॥ १७ ॥ कस्मान्मेसुतमालोक्य स्मितंविप्रकृतन्त्वया ॥ तत्रमेकारणंब्रह्मन् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अहंलक्षणतत्त्वज्ञो मनुष्याणांद्विजोत्तम ॥ त्रयस्त्रिंशच्छतान्यस्यलक्षणानिमहामुने ॥ १९ ॥ तवपुत्रस्यदृश्यन्ते यैर्युक्तोनम्रियेत्कचित् ॥ षण्मासान्मृत्युरेवास्य भविष्यतिनसंशयः ॥ २० ॥ एतच्छास्त्रबलाद्वेद्मि मात्वंशोचितुमर्हसि ॥ एतच्छ्रुत्वावचोरौद्रं ज्ञानिनासमुदाहृतम् ॥ २१ ॥ व्रतोपनयनंचक्रे बालकस्यपितातदा ॥ आहचैनमृषिःपुत्रंदृष्ट्वाब्राह्मणमागतम् ॥ २२ ॥ अभिवादयतपोवृद्धांस्ततःश्रेयोह्यवाप्स्यसि ॥ एवमुक्तस्तदापुत्रःकरोत्येवाभिवादनम् ॥ २३ ॥ नवर्णावरजंवेत्ति बालभावाद्वरानने ॥ पञ्चमासाह्यतिक्रान्ता दिवसाःपञ्चविंशति ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु प्राप्ताःसप्तर्षयोऽमलाः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तेनमार्गेणभामिनि ॥ २५ ॥ बालेनतेनसर्वेच यथावदभिवन्दिताः ॥ आयुष्मान्भवतेरुक्तः सबालोदण्डमेखली ॥ २६ ॥ उक्तंतैस्तुपुनर्बालं वीक्ष्यतेक्षीणजीवितम् ॥

पुत्रसे कहा ॥ २२ ॥ कि तपस्या से वृद्ध मुनियोंको प्रणामकर तदनन्तर कल्याणको प्राप्तहोगे उससमय ऐसा कहाहुआ पुत्र प्रणाम करताथा ॥ २३ ॥ व हे वरानने ! शिशुता से वह शूद्रजाति से उपजे हुए मनुष्यको नहीं जानताथा जब पांचमहीना और पचीस दिन बीतगये ॥ २४ ॥ इसी अवसर में हे भामिनि ! तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से उसी मार्गकरके निर्मल सप्तर्षिलोग प्राप्तहुये ॥ २५ ॥ और उस बालक ने सबोंको यथायोग्य प्रणाम किया और उन्होने दण्ड व मेखलाको धारण कियेहुये

उस बालक से कहा कि आयुष्मान् होवो ॥ २६ ॥ और उन्होंने फिर क्षीण आयुवाले बालकको देखकर कहा कि तुम्हारा पांच दिन आयुर्बल है तदनन्तर ऐसा जानकर वे असत्य से डरगये ॥ २७ ॥ और वे सप्तर्षि ब्रह्मचारी को लेकर ब्रह्मा के समीप गये व आगे बालकको स्थापित कर उन्होंने ब्रह्माको प्रणाम किया ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस बालकने भी ब्रह्माको प्रणाम किया और ब्रह्माने सप्तर्षियों के समीप बालकसे कहा कि दीर्घजीवी होवो ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे मुनि ब्रह्मासे वचनको सुनकर प्रसन्न हुये और ब्रह्माने उन विस्मित ऋषियोंको देखकर कहा ॥ ३० ॥ कि तुम किसकार्य से आये हो और किसने बालक को दिया है ॥ ३१ ॥ ऋषिलोग बोले

दिनानिपञ्चतेआयुर्ज्ञात्वाभीतानृतात्ततः ॥ २७ ॥ ब्रह्मचारिणमादाय गतास्तेब्रह्मणोन्तिकम् ॥ प्रतिष्ठाप्याग्रतोबालं प्रणेमुस्तेपितामहम् ॥ २८ ॥ ततस्तेनापिबालेन ब्रह्माचैवाभिवादितः ॥ चिरायुर्ब्रह्मणाबालः प्रोक्तःसप्तर्षिसंनिधौ ॥ २९ ॥ ततस्तेमुनयःप्रीताः श्रुत्वावाक्यंपितामहात् ॥ पितामहस्तुतान्दृष्ट्वा ऋषीन्प्रोवाचविस्मितान् ॥ ३० ॥ केनकार्येणचायाताः केनबालोनिवेदितः ॥ ३१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ भृगोःपुत्रोमृकण्डस्तु क्षीणायुस्तस्यबालकः ॥ अकालेचापिसञ्ज्ञात्वा बबन्धास्यचमेखलाम् ॥ ३२ ॥ यज्ञोपवीतंचततः पुत्रस्तेनप्रबोधितः ॥ यंकञ्चिद्वक्ष्यसेलोके भ्रमन्तंभूतलेद्विजम् ॥ ३३ ॥ तस्याभिवादनंकार्यं नित्यमेवहिपुत्रक ॥ ततोवयमनेनैव दृष्टाबालेनसत्तम ॥ ३४ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दैवयोगात्पितामह ॥ चिरायुरेषवैप्रोक्त अस्माभिस्त्वाभिवादितैः ॥ ३५ ॥ त्वत्सकाशंसमानीतस्त्वयाप्येवमुदाहृतः ॥ कथंनानृतिनोदेव वयञ्चभवतासह ॥ ३६ ॥ उवाचबालमुद्दिश्य प्रहस्यपद्मसम्भवः ॥ मत्समोह्यायुषाबालो

कि भृगु के पुत्र मृकण्डुजी हुये हैं उसका यह क्षीणआयुवाला बालक है उसने यह जानकर असमय में इसके मेखला को बांध दिया ॥ ३२ ॥ व यज्ञोपवीत किया उसके उपरान्त उसने पुत्रको प्रबोध किया कि पृथ्वीमें घूमतेहुये जिस ब्राह्मण को देखना ॥ ३३ ॥ हे पुत्रक ! उसका सदैव तुमको प्रणाम करना चाहिये तदनन्तर हे सत्तम, पितामहजी ! तीर्थयात्रा के प्रसंग से इस बालक ने दैवयोग से हमलोगोंको देखा और प्रणाम कियेहुये हमलोगों ने इससे कहा कि दीर्घजीवी होवो ॥ ३४ । ३५ ॥ और तुम्हारे समीप लाये हुये इसको तुमने भी ऐसाही कहा है देव ! आपसमेत हमलोग कैसे असत्यवादी न होवेंगे ॥ ३६ ॥ कमल से उपजेहुये

ब्रह्मजी ने हँसकर बालक को उद्देश कर कहा कि मार्कंडेय बालक आयुर्बल से मेरे समान होगा ॥ ३७ ॥ और कल्प के आदि व अन्त में मेरा सहायक होगा तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये मुनियों ने मृकण्ड मुनि के पुत्र को लेकर ॥ ३८ ॥ उसी स्थान में उसको छोड़ दिया जहा से गये थे और ब्राह्मणलोग तीर्थ यात्रा को चले गये और मार्कंडेयजी घरको चले गये ॥ ३९ ॥ घर को जाकर इसके अनन्तर मुनिश्रेष्ठ मृकण्डजी से बोले कि हे पिताजी ! सात मुनिलोग मुझको ब्रह्मलोक को लेगये थे ॥ ४० ॥ और ब्रह्मा ने मुझको कहा कि यह बालक कल्प के आदि व अन्त में मेरा मित्र होगा और मेरे तुल्य आयुर्बलवाला होगा इसमें संदेह नहीं है

मार्कण्डेयोभविष्यति ॥ ३७॥ कल्पस्यादौतथाचान्ते सहायोनोभविष्यति ॥ ततस्तुमुनयःप्रीता गृहीत्वामुनिदारकम् ॥ ३८ ॥ तस्मिन्नेवप्रदेशेतं मुमुचुःप्रस्थितायतः ॥ तीर्थयात्रांगताविप्रा मार्कण्डेयोगृहंययौ ॥ ३९ ॥ गत्वागृहमथोवाच मृकण्डंमुनिसत्तमम् ॥ ब्रह्मलोकमहन्नीतो मुनिभिस्तातसप्तभिः ॥ ४० ॥ उक्तोहंब्रह्मणाकल्पस्यादौचान्तेचमेसखा ॥ भविष्यतिनसन्देहो मत्समायुश्चबालकः ॥ ४१ ॥ ततस्तैःपुनरानीतो मुक्तश्चैवाश्रमंप्रति ॥ ४२ ॥ मार्कण्डेयवचःश्रुत्वा मृकण्डोमुनिसत्तमः ॥ जगामपरमंहर्षं क्षणमेवामुनासह ॥ ४३ ॥ ततोधैर्यंसमास्थाय वाक्यमेतदुवाचह ॥ अद्यतेसफलंजन्म जीवितंचसुजीवितम् ॥ ४४ ॥ तत्समेहिद्विजश्रेष्ठ यातुतेमानसोज्वरः ॥ नत्वयामेसुपुत्रेण दृष्टोलोकेपितामहः ॥ ४५ ॥ वाजिमेधसहस्रेण राजसूयशतेनच ॥ यन्नपश्यन्तिविद्वांसः सत्वयालीलयास्तुतः ॥ ४६ ॥ दृष्टश्चिरायुरप्येवं ततस्तेनविकेतनः ॥ दिवारात्रमहन्तात महद्दुःखेनदुःखितः ॥ ४७ ॥ ननिद्रामनुगच्छामि तन्मेदुःखं

४१ ॥ तदनन्तर वे मुझको फिर लेआये और आश्रम में उन्होंने छोड़ दिया ॥ ४२ ॥ मार्कण्डेयजी का वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ मृकण्डजी इससमेत क्षणभर बड़े हर्ष को प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर धैर्य में स्थित होकर यह वचन बोले कि आज तुम्हारा जन्म सफल हुआ और जीवन सुजीवित हुआ ॥ ४४ ॥ इसलिये हे द्विजोत्तम ! आइये तुम्हारा मानसी ज्वर जावै तुझ उत्तम पुत्र से मैंने लोक में ब्रह्मा को नहीं देखा ॥ ४५ ॥ जिसको विद्वान्लोग हजार अश्वमेधों से सौ राजसूय यज्ञों से जिनको नहीं देखते हैं उसको तुमने लीला से स्तुति किया ॥ ४६ ॥ जिसलिये तुमको इसप्रकार मैंने दीर्घजीवी देखा इसकारण कार्यरहित हुआ याने कोई कार्य

शेष न रहा क्योंकि हे पुत्र ! मैं दिन रात बड़े दुःखसे दुःखित था ॥ ४७ ॥ और मैं निद्राको नहीं प्राप्त होता था वह मेरा बड़ाभारी दुःख जातारहा ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामार्कण्डेयेश्वरमाहात्म्यंनामत्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । पुलस्त्येश्वरहि लिङ्गको थाप्यो अहै पुलस्ति । दोसौ चौथे में, सोई बरन्यों कथा प्रशस्ति ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मार्कण्डेश्वरजी के उत्तर दिशा के भाग में पांच धनुष पै स्थित उत्तम पुलस्त्येश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! उनको देखकर व विधि से पूजकर मनुष्य सात जन्मों में इकट्ठा

गतम्महत् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमार्कण्डेयेश्वरमाहात्म्यन्नामत्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २०३ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पुलस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥ मार्कण्डेशोत्तरेभागे धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वामानवोदेवि पूजयित्वाविधानतः ॥ सप्तजन्मार्जितंपापं नाशयेन्नात्रसंशयः ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपुलस्त्येश्वरमाहात्म्यंनामचतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नैर्ऋतेधनुषाष्टके ॥ क्रत्वीश्वरेतिनामानं तञ्चभक्त्याप्रपूजयेत ॥ १ ॥ हिरण्यदानं दत्त्वाच सम्यग्यात्राफलंलभेत् ॥ २ ॥ क्रत्वीश्वरेतिनामानं मत्वाक्रतुफलप्रदम् ॥ तंदृष्ट्वामानवोदेवि पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ३ ॥ सप्तजन्मानिदारिद्र्यंनदुःखंतस्यजायते ॥ ४ ॥ इति क्रत्वीश्वरमाहात्म्येपञ्चाधिकद्विशततमोध्यायः २०५ ॥

किये हुये पापको नाशताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांपुलस्त्येश्वरमाहात्म्यंनामचतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

दो॰ । क्रत्वीश्वर शिवलिंगकर अहै जौन परभाव । दोसौ पंचम में सोई वर्णित है अतिचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर नैर्ऋत्यदिशा में उससे आठ धनुष पै स्थित क्रत्वीश्वर-ऐसे शिवजी के समीप जावै और उनको भक्ति से पूजै ॥ १ ॥ और सुवर्ण का दान देकर मनुष्य भलीभांति यात्राके फल को प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ हे देवि ! महायज्ञोंके फलको देनेवाले उन क्रत्वीश्वरनामक शिव जी को देखकर मनुष्य पुण्डरीक यज्ञ के फल को पाता है ॥ ३ ॥ और उसको सात जन्मोंतक दरिद्र व दुःख नहीं होता है ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांक्रत्वीश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥ ❀ ॥

दो०। कृत्तीश्वर से पूर्व में कश्यपेश इमि नाम। लिंग अहै दोसौ छ में सोई चरित ललाम॥ महादेवजी बोले कि कृत्तीश्वर से पूर्वदिशा के भाग में सोलह धनुष के अन्तर पै महापातकों को नाश करनेवाला कश्यपेश्वरनामक लिंगहै॥ १॥ हे देवि! उन शिवजी को देखकर मनुष्य धनवान् व पुत्रवान् होता है और सब पातकोंसे संयुत भी शुद्ध होजाता है इसमें सन्देह नहीं है॥ २॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकश्यपेश्वरमाहात्म्यंनामषडधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०६॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ईश्वर उवाच॥ कृत्तीशात्पूर्वदिग्भागे धनुषःषोडशान्तरे॥ कश्यपेश्वरनामेति महापातकनाशनम्॥ १॥ तं दृष्ट्वामानवोदेवि धनवान्पुत्रवान्भवेत्॥ सर्वपातकयुक्तोपिशुद्ध्यतेनात्रसंशयः॥ २॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कश्यपेश्वरमाहात्म्यंनामषडधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०६॥ ❋ ॥ ❋ ॥

ईश्वर उवाच॥ धनुषामष्टमेतस्मादीशानेकश्यपेश्वरात्॥ कौशिकेश्वरनामेति महापातकनाशनम्॥ १॥ वशिष्ठतनयंहत्वा तत्रकौशिकसत्तमः॥ स्थापयामासतल्लिङ्गं मुक्तःपापैर्यतोभवत्॥ २॥ तंदृष्ट्वापूजयित्वातु लभतेवाञ्छितंफलम्॥ ३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकौशिकेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०७॥

ईश्वरउवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि कुमारेश्वरमुत्तमम्॥ मार्कण्डेश्वरतोदेवि दक्षिणेनातिदूरतः॥ १॥ धनुर्विंशति

दो०। कश्यपेशसे ईशदिशि कौशिकेश शिवनाम। दोसौ सप्तममें सोई चरित अहै सुखधाम॥ महादेवजी बोले कि उन कश्यपेश्वरजीसे आठ धनुषपै महापातकों को नाश करनेवाला कौशिकेश्वरनामक ऐसा लिंग है॥ १॥ वहां उत्तम कौशिकजी ने वशिष्ठ के पुत्र को मारकर उस लिंग को स्थापन किया कि जिससे पातकों से छूटे हैं॥ २॥ उन शिवजीको देखकर व पूजकर मनुष्य चाहेहुये फलको पाता है॥ ३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकौशिकेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०७॥ ❀ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ❀

दो०। थाप्यो है षण्मुख यथा कुमारेश शिवनाम। दोसौ अष्टम में सोई चरित कह्यो अभिराम॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर उत्तम कुमारेश्वरजी

के समीप जावै हे देवि ! मार्कण्डेश्वरजी से दक्षिण में थोड़ेही दूरपै ॥ १ ॥ बीस धनुष पै वहां कार्त्तिकेयजी से थापाहुआ वह लिंग स्थितहै हे भामिनि ! स्वामिकार्त्तिके-
यजी ने वहा भयङ्कर तपस्या कर ॥ २ ॥ परिवार के वध से उपजे हुये पातकों के नाश के लिये वहां लिंग को स्थापन किया तदनन्तर ने पातक से छूटे हैं ॥ ३ ॥
और वैराग्य से यौवन को छोड़कर फिर कुमार अवस्था में स्थित हुये पुरातन समय सुमाली ने पितरों को मारकर उनका आराधन किया है ॥ ४ ॥ व हे देवि ! पिता
के वध से उपजे हुये पातक से वह मुक्त हुआ है कुमारेश्वरनामक जो लिंग महासुरों से पूजित है ॥ ५ ॥ हे भामिनि ! उन कुमार के आगे कूप स्थित है उसमें नहा-

भिस्तत्र स्थितंस्वामिप्रतिष्ठितम् ॥ तत्रकृत्वातपोघोरंकार्त्तिकेयेनभामिनि ॥२॥ परिवारवधोत्थानां पापानांनाशहेतवे ॥
लिङ्गंस्थापितवांस्तत्र समुक्तःकिल्बिषात्ततः ॥ ३ ॥ वैराग्याद्यौवनंत्यक्त्वा कौमारंपुनरास्थितः ॥ पितॄन्हत्वासुमालीच
तमाराधितवान्पुरा ॥ ४ ॥ सोपिमुक्तोभवद्देवि पापात्पितृवधोद्भवात ॥ कुमारेश्वरनामानं पूजितंयन्महासुरैः ॥ ५ ॥ त
स्याग्रतःकुमारस्य कूपस्तिष्ठतिभामिनि ॥ तत्रयःपूजयेत्स्नात्वा शूलिनंस्वामिपूजितम् ॥ ६ ॥ समुक्तःपातकैःसर्वैर्ग
च्छेत्स्वामिपुरंमहत ॥ ७॥ शातकुम्भमयंयस्तु ताम्रचूडंद्विजातये ॥ दद्यात्स्वामिनमुद्दिश्य सतुयात्राफलंलभेत ॥ ८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकुमारेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ * ॥
ईश्वरउवाच ॥ मार्कण्डेश्वरतोदेवि उत्तरेलिङ्गमुत्तमम् ॥ धनुषःपञ्चदशभिर्गौतमेश्वरनामकम् ॥ १ ॥ गुरुंह

कर जो स्वामिकार्त्तिकेयजी से पूजेहुये त्रिशूलधारी शिवजी को पूजता है ॥ ६ ॥ वह सब पातकों से छूटकर बडे भारी स्वामिकार्त्तिकेयजी के लोक को जाता है जो
[illegible] स्वामिकार्त्तिकेयजी को [illegible] कर सोने के मुर्गे को ब्राह्मण के लिये देता है वह यात्रा के फल को पाता है ७ । ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु
[illegible] माहात्म्यनामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
[illegible] गौतम नाथ । दो सौ नवयें में कह्यो सोई उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! मार्कण्डेश्वरसे उत्तर में पन्द्रह

धनुष पै गौतमेश्वरनामक उत्तम लिंग है ॥ १ ॥ हे देवि ! पुरातन समय पापसे दुःखित गौतमजी गुरु को मारकर वहां लिंगको थापकर वे पापों से छूटगये हैं ॥ २ ॥ वहां नदी में नहाकर जो विधि से कपिलागऊ को देता है वह विधिपूर्वक लिंग को पूजकर पांच पातकों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगौतमेश्वरमाहात्म्यंनामनवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥ ॥ ❀ ॥ ॥

दो० । देवराज लिंगहि यथा थाप्यो है सुरराज । दोसौदश में कह्यो है सोइ चरित सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! वहां गौतमेश्वरजी से पश्चिम भाग

त्वापुरादेवि गौतमःपापदुःखितः ॥ तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य सोपिपापैरमुच्यत ॥ २ ॥ यस्तत्रकपिलांदद्यात्स्नात्वानद्यां विधानतः ॥ सम्पूज्यविधिवल्लिङ्गं मुच्यतेपञ्चपातकैः ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगौतमेश्वरमाहात्म्यंनाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ गौतमेश्वरतस्तत्र देविपाश्चिमभागतः ॥ धनुष्षोडशभिर्देवि देवराजेश्वरःस्थितः ॥ १ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास ततःपापैरमुच्यत ॥ यस्तंसमाहितमनाः पूजयिष्यतिमानवः ॥ २ ॥ सचमानुषसम्भूतैः पातकैःसम्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवराजेश्वरमाहात्म्यंनामदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तत्रैवमानवंलिङ्गं मनुनासम्प्रतिष्ठितम् ॥ पूर्वंहत्वासुतन्देवि मनुःपापसमन्वितः ॥ १ ॥ तत्रंपापहरं

में सोलह धनुष पै देवराजेश्वर स्थित हैं ॥ १ ॥ इन्द्र ने वहां लिंग को स्थापन किया तदनन्तर वे पातकों से छूटे हैं उन शिवजी को सावधान मनवाला जो मनुष्य पूजता है ॥ २ ॥ वह मनुष्ययोनि में उपजे हुये पातकों से छूट जाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवराजेश्वर माहात्म्यनामदेशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मानवेश लिंगहि यथा थाप्योहै मनुराज । दोसौ ग्यारह में सोई कह्यो चरित सुख साज ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! वहींपर मनुजी से थापित मानव

व सब पापसमूहों को नाशनेवाले वहीं पै स्थित रुक्मिणीजी से थापेहुये लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ और वहां महातीर्थ में नहाकर व यत्न से लिंग को पूजकर जो ब्राह्मणों के लिये अन्नको देता है वह सब पातकों से छूट जाताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायारुक्मिणीश्वरमाहात्म्यं नामपञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तीरथ गात्रोत्सर्गकर प्रेतमोचनहु नाम । भो दोसौसोलहें में सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके दक्षिण में स्थित

स्नात्वामहातीर्थे लिङ्गंसम्पूज्ययत्नतः ॥ विप्रेभ्योदापयेदन्नं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे रुक्मिणीश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंत्रैलोक्यपूजितम् ॥ गात्रोत्सर्गमितिख्यातं तस्यदक्षिणतःस्थितम् ॥ १ ॥ यत्रगात्रंपरित्यक्तं बलभद्रेणधीमता ॥ अन्यैश्चैवमहाभागैर्यादवैस्तत्रसंयुगे ॥ २ ॥ यत्रतेयादवाःक्षीणा ब्रह्मशापबलार्दिताः ॥ तत्पुरुषोत्तमंक्षेत्रं समन्ताद्धनुषांशतम् ॥ ३ ॥ यत्रसाक्षात्स्वयंदेवि तिष्ठतेपुरुषोत्तमः ॥ तदेववैष्णवंक्षेत्रं कलौपातकनाशनम् ॥ ४ ॥ रहस्यंपरमंदेवि तीर्थानांप्रवरंहितत् ॥ पूर्वंकृतयुगेदेवि प्रेततीर्थञ्चसंस्मृतम् ॥ ५ ॥ कलौयुगेतु सम्प्राप्ते गात्रोत्सर्गंततोभवत् ॥ ऋणमोचनपार्श्वेतु मध्येतुपापमोचनात् ॥ ६ ॥ एतन्मध्यंसमाश्रित्य मृतःपापैर्विमु

त्रिलोक से पूजित गात्रोत्सर्ग ऐसे प्रसिद्ध तीर्थ के समीप जावै ॥ १ ॥ जहां कि बुद्धिमान् बलभद्रजी ने शरीर को त्यागकिया है और वहीं युद्धमें अन्य महाभाग यादवों ने शरीरको छोड़ाहै ॥ २ ॥ जहांपर ब्राह्मणके शापबल से विकल वे यादव क्षीणहुयें हैं सब ओरसे सौ धनुष वह पुरुषोत्तम क्षेत्रहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! जहा साक्षात् पुरुषोत्तमजी आपही स्थितहैं वहीं वैष्णवक्षेत्र कलियुग में पातकों का विनाशकहै ॥ ४ ॥ हे देवि ! तीर्थोंमें श्रेष्ठ वह बहुतही गुप्तहै हे देवि ! पुरातन समय सतयुगमें प्रेततीर्थ कहागया है ॥ ५ ॥ तदनन्तर कलियुग प्राप्त होनेपर गात्रोत्सर्ग हुआ ऋणमोचन के समीप व पापमोचन के मध्यमें ॥ ६ ॥ इस मध्यको भलीभांति आश्रित

होकर मराहुआ मनुष्य पातकोंसे छूटजाता है हे देवि ! उसकी यात्रामें जो बड़ाभारी फल है वह क्या कहाजावै ॥ ७ ॥ कि जहां स्नानकर हजार अश्वमेधयज्ञों का फल मिलता है ॥ ८ ॥ हे भामिनि ! जहां पीपलवृक्ष को प्राप्त होकर समाधिमें मन को लगायेहुये श्रीकृष्णजी ने ब्रह्मद्वार से दुस्त्यज प्राणोंको छोड़ाहै ॥ ९ ॥ वहां साक्षात् नारायण, बलभद्र व रुक्मिणीजी को विधिसे पूजकर मनुष्य तीनों पातकों से छूटजाता है ॥ १० ॥ वहां स्नानकर जो मनुष्य भक्तिसे पितरों को भलीभांति तर्पण करता है उसके व श्राद्ध देनेवालों के पितर प्रेतत्व से छूटकर मुक्त होजाते हैं ॥ ११ ॥ गोघाती व मदिरापीनेवाला तथा दुर्बुद्धि व ब्रह्मघाती और गुरुकी

च्यते ॥ तस्यकिंवर्ण्यतेदेवि यात्रायांयत्फलंमहत् ॥ ७ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंस्नात्वाह्यवाप्यते ॥ ८ ॥ यत्राश्वत्थंसमासाद्य समाधिन्यस्तमानसः ॥ मुमोचदुस्त्यजान्प्राणान्ब्रह्मद्वारेणभामिनि ॥ ९ ॥ तत्रनारायणंसाक्षाद्बलभद्रञ्चरुक्मिणीम् ॥ पूजयित्वाविधानेन मुच्यतेपातकत्रयात् ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या यःसन्तर्पयतेपितॄन् ॥ प्रेतत्वात्पितरोमुक्ताभवन्तिश्राद्धदायिनाम् ॥ ११ ॥ गोघ्नःसुरापीदुर्मेधाब्रह्महागुरुतल्पगः ॥ तत्रस्नात्वानरःसद्यो विपापःसमपद्यते ॥ १२ ॥ बाल्येवयसियत्पापंवार्द्धकेयौवनेपिवा ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि यःकरोतिनरःप्रिये ॥ १३ ॥ तत्रस्नात्वाप्रमुच्येत तीर्थेगात्रप्रमोचने ॥ तत्रपिण्डप्रदानेन पितॄणांजायतेपरा ॥ १४ ॥ तृप्तिर्वर्षशतंयावदेतदाहपुराहरिः ॥ यःपुनश्चान्नदानन्तु तत्रकुर्यात्समाहितः ॥ १५ ॥ तस्यान्वयेपिदेवेशि नप्रेतोजायतेनरः ॥ देव्युवाच ॥ प्रेततीर्थमितिप्रोक्तं पश्चाद्गात्रविमोचनम् ॥ १६ ॥ एतन्मेवददेवेश प्रेततीर्थस्यकारणम् ॥ १७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि प्रेत

शय्यापै जानेवाला पुरुष उस तीर्थमें नहाकर शीघ्रही पापरहित होताहै ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! बाल्यावस्था में और वृद्धता व युवावस्थामें जो मनुष्य अज्ञान या ज्ञानसे जिस पापको करता है ॥ १३ ॥ गात्रमोचननामक तीर्थ में नहाकर उस पापसे छूटजाता है और वहा पिण्डदान से सौ वर्षतक पितरों की परमतृप्ति होतीहै इसको पुरातन समय विष्णुजी ने कहाहै और फिर सावधान होताहुआ जो मनुष्य वहां अन्नदान करताहै ॥ १४ । १५ ॥ हे देवेशि ! उसके वंशमें भी मनुष्य प्रेत नहीं होता है देवीजी बोलीं कि पहले प्रेततीर्थ ऐसा कहागया पश्चात् गात्रमोचन कहागया ॥ १६ ॥ हे देवेश ! प्रेततीर्थके इसकारणको मुझसे कहिये ॥ १७ ॥ महादेवजी बोले

कि हे देवि ! सुनिये मैं प्रेततीर्थ के कारण को कहता हूं- जिस को भक्तिसे सुनकर मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाता है ॥ १८ ॥ पुरातन समय प्रशंसितव्रतवाले गौतम नामक महर्षि हुये हैं वे पुण्यदायक उत्तर अयन में श्रीसोमेशजी के देखनेकी इच्छासे भृगुकच्छस्थान से उत्तम प्रभासक्षेत्र में आये और सब तीर्थों में नहाकर सोमेश-देवजी को देखकर ॥ १९ । २० ॥ तदनन्तर तीर्थयात्रा में जातेहुये वे गात्रच्छेद तीर्थको गये इसके अनन्तर हे देवि ! यह ब्राह्मण जबतक सीमा (हद) को आया ॥ २१ ॥ तबतक इसने वहां विष्णुजी के प्यारे वैष्णव वनको देखा व सौ धनुष पुरुषोत्तमनामक क्षेत्रको देखा ॥ २२ ॥ और उस क्षेत्रमे उन्होंने बड़ेभारी वृक्षों पै चढ़े-

तीर्थस्यकारणम् ॥ यच्छ्रुत्वामानवोभक्त्या मुक्तःस्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ १८ ॥ पुरासीद्गौतमोनाम महर्षिःशंसितव्रतः ॥ भृगुकच्छात्समायातः क्षेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ १९ ॥ अयनेचोत्तरेपुण्ये श्रीसोमेशदिदृक्षया ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं स्नात्वा तीर्थेषुकृत्स्नशः ॥ २० ॥ गच्छन्सतीर्थयात्रायां गात्रच्छेदंततोगतः ॥ अथासौब्राह्मणोदेवि यावत्सीमामुपागतः ॥ २१ ॥ तावद्विष्णुप्रियंतत्र ददर्शवैष्णवंवनम् ॥ पुरुषोत्तमनामानं क्षेत्रञ्चधनुषांशतम् ॥ २२ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेसचापश्यत्पञ्चप्रेतान्सुदारुणान् ॥ महावृक्षसमारूढान्महाकायान्महोत्कटान् ॥ २३ ॥ ऊर्द्ध्वकेशाञ्शङ्कुकर्णान्स्नायुबद्धकलेवरान् ॥ २४ ॥ वमन्तोरुधिरोद्गारान् नग्नान्कृष्णकलेवरान् ॥ दृष्ट्वासौभयसन्त्रस्तोविनष्टोस्मीतिचिन्तयन् ॥ २५ ॥ ध्यात्वातु सुचिरंकालं धैर्यमास्थाययत्नतः ॥ केयूयंविकृताकारा दृष्टायूयंमयानच ॥ २६ ॥ नचकाचिद्व्यथायूयं किमर्थंक्षेत्रमध्यतः ॥ धावमानाःसुदुःखार्ता एतन्मेकौतुकंमहत् ॥ २७ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ वयंप्रेतामहाभाग दूरादिहसमागताः ॥ श्रु

हुये बड़े शरीरवाले व बड़े उग्र तथा भयङ्कर पांच प्रेतोंको देखा ॥ २३ ॥ कि जिनके ऊपर उठेहुये केश व कीलोंके समान कान थे और नसोंसे जिनके शरीर बँधेथे ॥ २४ ॥ और कालेशरीरवाले तथा नङ्गे व रुधिरप्रवाहों को वमन करतेहुये प्रेतोंको देखकर भयसे डरेहुये ये यह चिन्तवन करतेरहे कि मैं नष्टहुआ ॥ २५ ॥ और बहुत समयतक ध्यानकर यत्नसे धैर्यमें टिककर बोले कि बिगड़ेहुये आकारवाले तुमलोग कौनहो और मैंने तुमलोगोंको नहीं देखा ॥ २६ ॥ कि कोई दुःख नहींहै और तुम लोग क्षेत्रके मध्यमें बहुत दुःखित होतेहुये किसलिये दौड़तेहो यह मुझको बड़ाकौतुकहै ॥ २७ ॥ प्रेतबोले कि हेमहाभाग ! हमलोग प्रेतहैं और पवित्र व उत्तमतीर्थको

जानकर यहां दूरसे आयेहैं परन्तु प्रवेश नहीं मिलताहै ॥ २८ ॥ और अन्तर्द्धानमें प्राप्त दूतोंके प्रहारों से हमलोग जर्जर कियेगये हैं लेखक,रोहक,शीघ्रग व सूचक ॥ २९ ॥ और पांचवां पर्युषितनामक मैं बड़ा पापकारीहूं गौतमजी बोले कि प्रेतयोनिमें प्रवृत्त तुम सब लोगों के नाम क्यों कियेगये यह मुझको बडा कौतुकहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ प्रेत बोले कि यह मांगतेहुये ब्राह्मण को पृथ्वीमें लिखताथा और कुछ उत्तर नहीं देताथा इससे लेखक कहागयाहै॥ ३२ ॥ व हे विप्रजी ! दूसरा यह ब्राह्मणके भयसे मकानपर चढ़जाता था उससे यह रोहकनामक हुआ और तीसरेको सुनिये ॥ ३३ ॥ कि इसने धनसे संयुत बहुत से ब्राह्मणोंको राजासे सूचित किया इसलिये

त्वातीर्थवरंपुण्यं प्रवेशोनैवलभ्यते ॥ २८ ॥ अन्तर्द्धानगतैर्दूतैः प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ लेखकोरोहकश्चैव शीघ्रगःसूचकस्तथा ॥ २९ ॥ अहंपर्युषितोनाम पञ्चमःपापकृत्तमः ॥ गौतम उवाच ॥ प्रेतयोनौप्रवृत्तानां किंनामानितुकृत्स्नशः ॥ ३० ॥युष्माकंनिर्मितान्येव एतन्मेकौतुकंमहत् ॥ ३१ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ याचमानस्यविप्रस्य लिखत्येपधरातले ॥ नोत्तरंयच्छतेकिञ्चित्तेनासौलेख्यकःस्मृतः ॥ ३२ ॥ द्वितीयोब्राह्मणभयात् प्रासादमधिरोहति ॥ ततोसौरोहकाख्योभूच्छृणुविप्रतृतीयकः ॥ ३३ ॥ सूचिताबहवोनेन ब्राह्मणावित्तसंयुताः ॥ राज्ञेपापेनतेनासौ सूचकोभुविविश्रुतः ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणैःप्रार्थ्यमानस्तुशीघ्रंधावतिनित्यशः ॥ नकस्मैचिद्ददातिस्मतेनासौशीघ्रगःस्मृतः ॥३५॥मयाकदन्नंदत्तञ्चपर्युषितन्द्विजोत्तम ॥ ब्राह्मणेभ्यःसदात्मानं मिष्टान्नैरप्यपोषयम् ॥ ३६ ॥ तस्मात्पर्युषितोनाम सञ्जातोहंन्धरातले ॥ ३७ ॥ गौतम उवाच ॥ नविनाभोजनेनैव वर्तन्तेप्राणिनोभुवि ॥ किमाहाराभवन्तोवै वदध्वंममकौतुकात् ॥३८॥ प्रेताऊचुः ॥

पृथ्वीमें यह सूचक प्रसिद्ध हुआ ॥ ३४ ॥ और ब्राह्मणों से याचना कियाजाताहुआ यह नित्यही शीघ्र दौड़ता था और इसने किसीके लिये नहीं दिया उससे यह शीघ्रगामी कहागया है ॥ ३५ ॥ व हे द्विजोत्तम ! मैंने ब्राह्मणों के लिये कदन्न व पर्युषित अन्न दिया और सदैव अपनाको मिष्टान्नोंसे पोषण किया ॥ ३६ ॥ उसकारण भूतलमें मैं पर्युषितनामक हुआ ॥ ३७ ॥ गौतमजी बोले कि विन भोजनके प्राणी पृथ्वी में नहीं वर्तमान होते हैं इसलिये कौतुक के कारण मुझसे कहिये कि आप

लोगोंका क्या आहारहै ॥ ३८ ॥ प्रेत बोले कि हे द्विजोत्तम ! भोजनका समय प्राप्त होनेपर जहा युद्ध वर्तमान होताहै उस अन्नके रसको हम सब खातेहैं ॥ ३९ ॥ और जहा मनुष्य बिन लीपीहुई पृथ्वीमें खातेहैं और जहा शौचरहित ब्राह्मणहैं वहा हमलोगों का भोजन होता है ॥ ४० ॥ और जो बिन पाव धोयें व जो दक्षिणमुख होकर भोजन करता है व जो शिर लपेटकर भोजन करताहै उसके अन्नको सदैव प्रेत खातेहैं ॥ ४१ ॥ और जहां रजस्वला स्त्री श्राद्धको देखती है व चण्डाल और शूकर जहां श्राद्धको देखताहै वह अन्न हमलोगोंका होताहै ॥ ४२ ॥ जिस घरमें सदैव उच्छिष्ट व बखेड़ा होवै और जो घर वैश्वदेवसे रहितहै वहांहमलोग भोजन करते

प्राप्तेभोजनकालेतु यत्रयुद्धंप्रवर्तते ॥ तस्यान्नस्यरसंसर्वे भुञ्जानाद्विजसत्तम ॥ ३९ ॥ नानुलिप्तेधराप्रष्ठे यत्रभुञ्जति मानवः ॥ भ्रष्टशौचाद्विजायत्र तत्रास्माकंचभोजनम्॥४०॥अप्रक्षालितपादस्तु योभुङ्क्तेदक्षिणामुखः॥योवेष्टितशिरा भुङ्क्ते प्रेताभुञ्जन्तिनित्यशः॥४१॥ श्राद्धंसंपश्यतेयत्रनारीचैवरजस्वला॥ अन्त्यजःशूकरश्चान्नतदस्माकंप्रजायते॥ ४२ ॥ यस्मिन्गृहेसदोच्छिष्टं सदाचकलहोभवेत् ॥ वैश्वदेवविहीनन्तु तत्रभुञ्जामहेवयम् ॥ ४३ ॥ विप्र उवाच ॥ युष्माकंकीदृशेगेहे प्रवेशोनचविद्यते॥ सत्यंवदस्वमेसत्यंसत्यंसाधुषुसाम्प्रतम् ॥ ४४ ॥ प्रेता ऊचुः॥ वैश्वदेवभवायत्र धूम्रवर्तिःप्रदृश्यते ॥ तस्मिन्गेहेनचास्माकं प्रवेशोविद्यतेद्विज ॥ ४५ ॥ यस्मिन्गेहेप्रभातेतुक्रियतेचोपलेपनम् ॥ विद्यते वेदनिर्घोषस्तत्रास्माकंनकिञ्चन ॥ ४६ ॥ गौतम उवाच ॥ केनकर्मविपाकेन प्रेतत्वंव्रजतेनरः ॥ एतन्मेविस्तरेणैव यथावद्वक्तुमर्हथ ॥ ४७ ॥ प्रेता ऊचुः॥ न्यासापहारिणोयेचयेचोच्छिष्टाव्रजन्तिच ॥ गोब्राह्मणानांहन्तारः प्रेतत्वन्तेव्र

हैं ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोले कि तुमलोगों का कैसे घरमें प्रवेश नहीं होताहै मुझसे यह सत्य सत्य कहिये क्योंकि साधुओंमें सत्य योग्यहै ॥ ४४ ॥ प्रेत बोले कि हे द्विज ! जहा वैश्वदेव से उपजीहुई धुंआकी वर्ति देख पड़ती है उस घरमें हमलोगों का प्रवेश नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ और जिस घरमें प्रातःकाल लेप कियाजाता है व वेदशब्द होताहै वहा हमलोगों का कुछ नहीं है ॥ ४६ ॥ गौतमजी बोले कि किसकर्म के फल से मनुष्य प्रेतता को प्राप्तहोता है इसको मुझसे विस्तारही से यथायोग्य कहनेके

योग्यहो ॥ ४७ ॥ प्रेत बोले कि जो धरोहरिको हरलेते हैं जो जूंठे होकर चलते हैं व जो गऊ तथा ब्राह्मणोंको मारनेवाले हैं वे प्रेतत्वको प्राप्त होतेहैं ॥ ४८ ॥ और जो पिशुनता में लगे हैं व जो मनुष्य झूठी गवाही देनेमें तत्परहैं और जो न्यायके पक्ष में नहीं वर्तमान हैं वे मरकर प्रेत होतेहैं ॥ ४९ ॥ और कफ, मूत्र व मलको जो सूर्यनारायण के सामने फेंकते हैं वे मनुष्य प्रेतत्वको प्राप्त होकर बहुत दिनोंतक टिकते हैं ॥ ५० ॥ व हे विप्रजी ! गऊ, ब्राह्मण व रोगियोंके लिये देनेपर मत दीजिये जो ऐसा कहतेहैं वे निश्चय प्रेतहोते हैं ॥ ५१ ॥ और शूद्रका अन्न पेटमें स्थितहोने से यदि ब्राह्मण मरै तो यदि षडङ्ग का जाननेवाला होवै तौभी वह अत्यन्त प्रेतत्व

जन्तिहि ॥ ४८ ॥ पैशून्यनिरतायेच कूटसाक्षिरतानराः ॥ न्यायपक्षेनवर्तन्ते मृताःप्रेताभवन्तिते ॥ ४९ ॥ श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि क्षिप्यन्तेभिमुखारवेः ॥ प्रेतत्वंतेसमासाद्य चिरन्तिष्ठन्तिमानवाः ॥ ५० ॥ दीयमानेतुयेविप्र गोषुविप्रातुरेषुच ॥ मादेहीतिप्रजल्पन्ति तेचप्रेताभवन्तिवै ॥ ५१ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदिविप्रोम्रियेतवै ॥ प्रेतत्वंयातिसोत्यन्तं यद्यपिस्यात्षडङ्गवित् ॥ ५२ ॥ यस्त्रीन्हलेबलीवर्दान् वाहयेत्सद्विजोत्तम ॥ अमावस्यांविशेषेण सप्रेतोजायतेनरः ॥ ५३॥ विश्वासघातकोयस्तु ब्राह्मणस्त्रीवधेरतः ॥ गोघ्नःगुरुघ्नःपितृहा सप्रेतोजायतेनरः ॥५४॥ यस्यनैवप्रदत्तानि एकोद्दिष्टानिषोडश ॥ मृतस्यनवृषोत्सर्गःसप्रेतोजायतेनरः ॥ ५५॥ एतद्विसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तम ॥ भूयोब्रूहिद्विजश्रेष्ठ यद्यस्तितवसंशयः ॥ ५६ ॥ गौतमउवाच ॥ येनकर्मविपाकेन नप्रेतोजायतेनरः ॥ तन्मेवदाद्यनिःशेषं कौतुकंमेत्रविद्यते ॥ ५७ ॥ प्रेत उवाच ॥ तीर्थयात्रारतोयस्तु देवार्चनपरायणः ॥ ब्राह्मणेषुसदाभक्तो नप्रेतोजायतेनरः ॥ ५८ ॥

को प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ व हे द्विजोत्तम ! जो विशेषकर अमावस्यामें तीन बैलोंको हलमें जोतताहै वह मनुष्य प्रेत होताहै ॥ ५३ ॥ और जो विश्वासघाती व ब्राह्मणघाती और स्त्रीके मारनेमें तत्परहै और जो गोघाती, गुरुघाती, पितृघातीहै वह मनुष्य प्रेत होताहै ॥ ५४ ॥ और जिसको सोलह एकोद्दिष्ट नहीं दियेगयेहैं व जिस मरेहुये मनुष्य का वृषोत्सर्ग नहीं हुआहै वह मनुष्य प्रेत होताहै ॥ ५५ ॥ हे द्विजोत्तम ! मुझमे जो पूंछागया यह सब कहागया व हे द्विजोत्तम ! यदि तुम्हारे सन्देह होवै तो फिर कहिये ॥ ५६ ॥ गौतमजी बोले कि जिस कर्मके फलसे मनुष्य प्रेत नहीं होता है उस सबको मुझ से आज कहिये क्योंकि इस मे मुझको कौतुक है ॥ ५७ ॥

प्रेत बोला कि जो तीर्थयात्री में रतहै और देवपूजन में लगाहुआ है व जो सदैव ब्राह्मणों में भक्तहै वह मनुष्य प्रेत नहीं होताहै ॥ ५८ ॥ जो नित्य शास्त्रोंको सुनता है व जो पण्डितों को सेवताहै तथा जो सदैव वृद्धोंसे पूंछता है वह प्रेत नहीं होताहै ॥ ५९ ॥ व हे विप्रेन्द्र, द्विज ! जो पवित्र गयाशिरक्षेत्रको जाकर श्राद्ध करताहै उसके वंशमें भी मनुष्य प्रेत नहीं होताहै ॥ ६० ॥ इसी कारणसे हमलोग शीघ्रही दूरसे प्राप्तहुये हैं और इस पवित्र व उत्तमक्षत्र में प्रवेशकरने के लिये समर्थ नहीं हैं ॥ ६१ ॥ और प्रेतरूप से हमलोग निर्वेदको प्राप्त हैं इसलिये हे महाभाग, द्विजोत्तम ! बड़ेयत्न से हमसबों की गतिहोवो ॥ ६२ ॥ गौतमजी बोले कि तुमलोगों

नित्यंशृणोतिशास्त्राणि नित्यंसेवतिपण्डितान् ॥ वृद्धांस्तुपृच्छतेनित्यं सप्रेतोनैवजायते ॥ ५९ ॥ गत्वागयाशिरःपुण्यं यःश्राद्धंकुरुतेद्विज ॥ तस्यान्वयेपिविप्रेन्द्र नप्रेतोजायतेनरः ॥ ६० ॥ एतस्मात्कारणात्प्राप्ता वयंतूर्णंसुदूरतः ॥ नशक्नुमःप्रवेष्टुञ्च पुण्येस्मिन्क्षेत्रउत्तमे ॥ ६१ ॥ निर्विण्णाःप्रेतरूपेण तस्मात्त्वंद्विजसत्तम ॥ गतिर्भवमहाभाग सर्वेषांनः प्रयत्नतः ॥ ६२ ॥ गौतम उवाच ॥ कथंवोजायतेमोक्षं वदध्वंकृत्स्नशोमम ॥ कृपयाविष्टचित्तोहं यतिष्येनात्रसंशयः॥ ६३ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ प्रभूतकालमस्माकं प्रेतत्वेतिष्ठतांविभो ॥ नत्वायातिपुमान्कश्चिदस्माकंयोगतिर्भवेत् ॥ ६४ ॥ तस्मात्त्वंदेहिनःश्राद्धं गत्वाक्षेत्रन्तुवैष्णवम् ॥ नामगोत्राणिचादाय मोक्षंयास्यामहेततः ॥ ६५ ॥ ईश्वर उवाच॥ ततो सौब्राह्मणोगत्वा दयाविष्टोहरेर्गृहम् ॥ श्राद्धञ्चप्रददौतेषामेकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ ६६ ॥ यस्ययस्ययदाश्राद्धं करोति द्विजसत्तमः ॥ सरात्रौस्वप्नतांयाति दर्शनंवाक्यमब्रवीत् ॥ ६७ ॥ प्रसादात्तवविप्रेन्द्र मुक्तोहंप्रेतयोनितः ॥ स्वस्तिते

का किसप्रकार मोक्ष होगा इसको मुझसे सम्पूर्णतासे कहिये तो दयासे संयुत चित्तवाला मैं यत्न करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥ प्रेत बोले कि हे विभो ! प्रेततामें टिकेहुये हमलोगों को बहुत समय हुआ और कोई पुरुष नहीं आता है जोकि हमलोगोंकी गति होवै ॥ ६४ ॥ इसलिये तुम वैष्णवक्षेत्र को जाकर नाम व गोत्रोंको लेकर हमलोगों को श्राद्ध दीजिये उससे हमलोग मोक्षको प्राप्तहोवैंगे ॥ ६५ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर दयासे संयुत इस ब्राह्मण ने विष्णुके क्षेत्रको जाकर उनको अलग २ एक एकको श्राद्ध दिया ॥ ६६ ॥ जब द्विजोत्तम गौतमजी जिस जिसका श्राद्धकरते थे वह रात्रिमें स्वप्नावस्था में दर्शन को प्राप्तहोता था व इस

वचनको कहताथा ॥ ६७ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! तुम्हारी प्रसन्नतासे मैं प्रेतयोनि से छूटगया तुम्हारा कल्याणहोवै मैं जाताहूं क्योंकि मेरे समीप विमान प्राप्तहै ॥ ६८ ॥ इसप्रकार उन गौतमजी ने चार द्विजोत्तमों को तारदिया इसके उपरान्त पांचवां दिन प्राप्त होनेपर इस द्विजोत्तमने ॥ ६९ ॥ विधिपूर्वक पर्युषितनामक प्रेतको श्राद्ध दिया इसके अनन्तर उन गौतमजी ने रातको स्वप्नके मध्यमें प्राप्त दीनवचन से भीगे व बार २ श्वास लेतेहुये पर्युषित प्रेतको देखा पर्युषित बोला कि हे विप्रजी ! मुझ मन्दभाग्यवाले पापीकी गति नहीं हुई ॥ ७०।७१ ॥ मैंने यह पापकिया जोकि धनको इकट्ठाकिया गौतमजी बोले कि किसप्रकार मोक्ष होगा इसको सम्पूर्णतासे

स्तुगमिष्यामि विमानंमेह्युपस्थितम् ॥ ६८ ॥ एवंसन्तारितास्तेन चत्वारस्तेद्विजोत्तमाः ॥ अथासौब्राह्मणश्रेष्ठः संप्राप्तेपञ्चमेदिने ॥ ६९ ॥ प्रददौविधिनापूर्वं श्राद्धंपर्युषितस्यच ॥ अथापश्यत्सस्वप्नान्ते प्राप्तंपर्युषितंनिशि ॥ ७० ॥ दीनवाक्यपरिक्लिन्नं निश्वसन्तम्मुहुर्मुहुः ॥ पर्युषितउवाच ॥नमेजातागतिर्विप्र मन्दभाग्यस्यपापिनः ॥ ७१ ॥ अयाकृतंपापमेतद्यद्धनंप्रगुणीकृतम् ॥ गौतम उवाच ॥ कथंचजायतेमोक्षं वदशीघ्रमशेषतः ॥ ७२ ॥ करिष्येतन्नसन्देहो यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ पर्युषितउवाच ॥ मुक्तोहंत्वत्प्रसादेन प्रेतभावाद्द्विजोत्तम ॥ ७३ ॥ श्राद्धंत्वंदेहिमेनूनं भविष्यतितोगतिः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तःसविप्रेन्द्रस्तेनप्रेतेनवैप्रिये ॥ ७४ ॥ अयनेचोत्तरेप्राप्ते गत्वातीर्थंहरिप्रियम् ॥ प्रददौचपुनःश्राद्धं ततःपर्युषितायच ॥ ७५ ॥ ततःपर्युषितोरात्रौ स्वप्नान्तेवाक्यमब्रवीत् ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा दिव्यमाल्यवपुर्धरः ॥ ७६ ॥ पर्युषितउवाच ॥ मुक्तोहंत्वत्प्रसादेनप्रेतभावाद्द्विजोत्तम ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यामि विमानंमेह्यु

शीघ्र कहिये ॥७२॥ यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि मैं उसको निस्सन्देह करूंगा पर्युषित बोला कि हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हारी प्रसन्नतासे प्रेततासे छूटगया ॥ ७३ ॥ तुम मुझको श्राद्ध देवो उससे निश्चयकर गति होवैगी महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! उस प्रेतसे ऐसा कहेहुये उन द्विजेन्द्र गौतमजी ने ॥ ७४ ॥ उत्तर अयन प्राप्तहोने पर विष्णुप्रियतीर्थ को जाकर तदनन्तर पर्युषितके लिये फिर श्राद्धको दिया ॥ ७५ ॥ तदनन्तर रातमें दिव्य मालाओंवाले शरीरको धारणकिये पर्युषितने प्रसन्नमुख होकर स्वप्नके मध्यमें वचन कहा ॥ ७६ ॥ पर्युषितबोला कि हे द्विजोत्तम ! तुम्हारी प्रसन्नतासे मैं प्रेततासे छूटगया तुम्हारा कल्याण होवै मैं जाताहूं क्योंकि मेरे समीप

विमान प्राप्तहै ॥ ७७ ॥ हे द्विजोत्तम ! मुझको देवत्व मिलाहै और मैं वर देने के लिये समर्थ हूं इसलिये तुम मुझसे उत्तम वरदान को ग्रहण करो ॥ ७८ ॥ क्योंकि ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाले तथा चोर व नष्टव्रतवाले पुरुष के लिये विद्वानों ने प्रायश्चित्त किया है परन्तु कृतघ्न पुरुष के लिये प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ७९ ॥ गौतम जी बोले कि हे वरदायक ! यदि तुम समर्थहो व हमको वर देनेयोग्यहै तो जिसस्थानमें मैंने बहुत दुःखित तुम सब प्रेतोंको देखाहै ॥ ८० ॥ वहां मैं आश्रमकर उत्तम तपस्या करूंगा इसको बड़ाभारी तीर्थ जानकर मैं घरसे यहां आयाहूं ॥ ८१ ॥ वहां भक्तिसे जो मनुष्य स्नानकर व देवताओं का तर्पणकर पितरों को उद्देशकर

पस्थितम् ॥ ७७ ॥ देवत्वंचमयाप्राप्तं समर्थोहंद्विजोत्तम ॥वरंदातुंगृहाणत्वं तस्मान्मत्तोवरंशुभम् ॥७८ ॥ ब्रह्मघ्नेचसुरापे च चौरेभग्नव्रतेतथा ॥ निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ ७९ ॥ गौतमउवाच ॥ यदिदेयोवरोस्माकंसमर्थो सिवरप्रद ॥ यत्रस्थानेमयादृष्टा प्रेतायूयंसुदुःखिताः ॥८०॥ तत्राहंचाश्रमंकृत्वा तपिष्येचोत्तमंतपः ॥ आगतोस्मिगृहा दत्र ज्ञात्वातीर्थमिदंमहत् ॥ ८१ ॥ तत्रयोमानवोभक्त्यापितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ विधिवद्दास्यतिश्राद्धं स्नात्वासन्तर्प्य देवताः ॥ ८२ ॥ युष्मत्प्रसादात्प्रेतत्वन्नान्वयेपिकदाचन ॥ माभूयात्तस्यप्रेतत्वमपिपापान्वितस्यभो ॥ ८३ ॥ पर्युषित उवाच ॥ गच्छत्वंचाश्रमंतत्र कुरुब्राह्मणसत्तम ॥ गमिष्यसिपरांसिद्धिं लोकेख्यातिंगमिष्यसि ॥ ८४ ॥ तत्रयेमान वाभक्त्या श्राद्धंदास्यन्तिसत्तम ॥ पितृभिस्तेविमानस्थायास्यन्तित्रिदशालयम् ॥ ८५ ॥ नतेषांजायतेकश्चित्प्रेतत्वंच द्विजोत्तम ॥ प्राहुःसप्तपदंमित्रं पण्डिताःस्थिरबुद्धयः ॥८६॥मित्रतांहिपुरस्कृत्य किञ्चिद्वक्ष्यामितच्छृणु॥तवाश्रमपदंपु

भक्तिसे विधिपूर्वक श्राद्ध देवै ॥ ८२ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से उसके वंशमें भी कभी प्रेतत्व न होवै और पापसे संयुत भी उसकी प्रेतता न होवै ॥ ८३ ॥ पर्युषित बोला कि हे द्विजोत्तम ! तुम जावो और वहां श्राद्धकरो तो उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोगे व संसार में प्रसिद्धि को प्राप्तहोगे ॥ ८४ ॥ हे सत्तम ! वहां जो मनुष्य भक्तिसे श्राद्ध देवैंगे वे पितरोंसमेत विमान पै बैठकर स्वर्गको जावैंगे ॥ ८५ ॥ व हे द्विजोत्तम ! उनके मध्य में कोई प्रेतत्व को न प्राप्तहोगा स्थिरबुद्धिवाले पण्डितों ने मित्रको

साप्तपद कहाहै ॥ ८६ ॥ मैं मित्रता को अंगीकर कुछ कहताहूं उसको सुनिये कि पृथ्वी में तुम्हारा पवित्र आश्रमस्थान सब पापोंका विनाशक व सब दुःखोंका नाशक होगा और हे प्रभो ! मेरे नामसे वह प्रेततीर्थ ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्तहोवै ॥ ८७।८८ ॥ महादेवजी बोले कि वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वे द्विजोत्तम गौतमजी चलेगये तदनन्तर उन्हों ने वेदोक्तमार्ग से सब कार्य किया ॥ ८९ ॥ व हे प्रिये ! वह पर्युषितप्रेत भी स्वर्गको प्राप्तहुआ पुरातन समय इस गात्रमोचन स्थानमें यह सब वृत्तात हुआहै ॥ ९० ॥ जिसको भलीभांति सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है और शयन व उत्थापनयोग में जो पुरुषोत्तमजी को देखता है ॥ ९१ ॥ वह गात्रोत्सर्ग तीर्थमें नहाकर दश हजार यज्ञोंके फलको पाताहै ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांगात्रोत्सर्गतीर्थमाहात्म्यंनामषोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥

एयं भविष्यतिमहीतले ॥ ८७ ॥ सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखविनाशनम् ॥ मन्नाम्नाख्यातिमायातु प्रेततीर्थमितिप्रभो ॥ ८८ ॥ ईश्वरउवाच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गतस्तत्रद्विजोत्तमः ॥ ततोवेदोक्तमार्गेण सर्वकृत्यंचकारसः ॥ ८९ ॥ सोपि स्वर्गमनुप्राप्तः प्रेतःपर्युषितःप्रिये ॥ एतत्सर्वंपुरावृत्तं स्थानेस्मिन्गात्रमोचने ॥ ९० ॥ यच्छ्रुत्वामानवःसम्यक् सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ शयनोत्थापनेयोगे यःपश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥ ९१ ॥ गात्रोत्सर्गेनरःस्नात्वा यज्ञायुतफलंलभेत् ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगात्रोत्सर्गतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामषोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गमिन्द्रप्रतिष्ठितम् ॥ पापमोचननामानन्दक्षिणेपुरुषोत्तमात् ॥ १ ॥ वृत्रं हत्वापुराशक्रो ब्रह्महत्यासमन्वितः ॥ अब्रवीत्सऋषीन्सर्वान् कथमेषागमिष्यति ॥ २ ॥ ब्रह्महत्याहिदुष्प्रेष्या विवर्णजननीमम ॥ दुर्गन्धचारिणीचैव सर्वतेजोविनाशिनी ॥ ३ ॥ अथोचुस्तंसुरगणा नारदाद्यामहर्षयः ॥ प्रभासंगच्छ

दो० । इन्द्रलिङ्ग को पूजिकरि भये पापसे मुक्त । दोसौ सत्रहमें सोई अहै कथा सब उक्त ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पुरुषोत्तमजीसे दक्षिणमें इन्द्रसे थापेहुये पापमोचननामक लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय वृत्रासुरको मारकर इन्द्रजी ब्रह्महत्यासे संयुतहुये और उन्होंने सब ऋषियोंसे कहा कि यह कैसे जावैगी ॥ २ ॥ क्योंकि मेरे मलिनताको पैदाकरनेवाली ब्रह्महत्या दुःखसे पठानेयोग्य है व दुर्गन्धचारिणी तथा सब तेजोंको नाशकरनेवाली है ॥ ३ ॥ इसके

उपरान्त नारदादिक महर्षि व देवगणों ने उनसे कहा कि हे देवेश ! प्रभासक्षेत्रको जाइये क्योंकि वह पापहारक क्षेत्र है ॥ ४ ॥ वहां महादेवजी को आराधकर ब्रह्महत्यासे छूटोगे हे वरानने ! वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर इन्द्रजी वहां गये ॥ ५ ॥ और उन्होंने त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के लिङ्ग को भलीभांति थापन किया और धूप, चन्दन, व अनुलेपनों से इन्द्रजी उस लिङ्ग के पूजनमें परायण हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर इन इन्द्रजी के शरीर की दुर्गन्धि शीघ्रही नाशको प्राप्तहुई तदनन्तर उन की सब मलिनता उत्तम होगई ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त प्रसन्नमन होकर इन्द्रजी इस वचन को बोले कि यहां आकर जो मनुष्य भक्तिसे इस लिङ्गको पूजैगा ॥ ८ ॥

देवेश क्षेत्रंपापहरंहितत् ॥ ४ ॥ तत्राराध्यमहादेवं मुच्यसेब्रह्महत्यया ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गतस्तत्रवरानने ॥ ५ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास देवदेवस्यशूलिनः ॥ तस्यपूजारतोनित्यं धूपगन्धानुलेपनैः ॥ ६ ॥ ततोस्यगात्रदौर्गन्ध्यं नाशमाश्वभ्यगच्छत ॥ विवर्णत्वंततःसर्वं जातंतस्यतथोत्तमम् ॥ ७ ॥ अथहृष्टमनाभूत्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ अत्रागत्यनरोभक्त्या यश्चैतत्पूजयिष्यति ॥ ८ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं नाशंतस्यप्रयास्यति ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षः प्रहृष्टस्त्रिदिवंययौ ॥ ९ ॥ ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तः पूज्यमानोदिवौकसैः ॥ गोदानंतत्रदातव्यं ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ १० ॥ ब्रह्महत्यापनोदार्थं तत्रश्राद्धंसमाचरेत् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डइन्द्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवंचनरकेश्वरम् ॥ तस्मादुत्तरदिग्भागे सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तन्माहा

उसका ब्रह्महत्यादिक पापनाश को प्राप्तहोगा ऐसा कहकर ब्रह्महत्या से छूटकर देवताओं से पूजेजातेहुये इन्द्रजी प्रसन्न होकर स्वर्गको चलेगये वहां वेदके पारगामी ब्राह्मणके लिये गोदान देना चाहिये ॥ ९ । १० ॥ और ब्रह्महत्या के नाशहोने के लिये वहां श्राद्धकरै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । नरकेश्वर माहात्म्य को कह्यो यथा यमराज । दोसौ अट्ठारहें में सोइ चरित सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे उत्तर दिशाके

भाग में समस्त पातकों को नाशनेवाले नरकेश्वरदेवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! उसके माहात्म्य को कहताहूं सावधान मन होकर सुनिये कि पृथ्वीतल में मथुरानामक नगरी प्रसिद्धहै ॥ २ ॥ पुरातन समय उसमें अगस्त्यवंश में देवशर्मा ऐसा कहाहुआ ब्राह्मण हुआहै वह विद्वान् दरिद्रतासे पीड़ित हुआ ॥ ३ ॥ व हे देवेशि ! वहांपर उसीरूप व अवस्था से संयुत उसी नाम व गोत्रवाला वैसाही अन्य वेदपारगामी ब्राह्मण हुआ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर यमराजने ऊर्ध्वकेशोंवाले भयङ्करदूत से कहा कि हे दूत ! मथुरापुरी को शीघ्रही जाइये और देवशर्मा को लाइये ॥ ५ ॥ तब दोनोंके नामोंकी समानता से जो दरिद्रसे पीड़ित था उस देवशर्मा को

त्म्यंप्रवक्ष्यामि शृणुह्येकमनाःप्रिये ॥ मथुरानामविख्यातानगरीधरणीतले ॥ २ ॥ तत्रविप्रोभवत्पूर्वं देवशर्माइतिस्मृतः ॥ अगस्त्यगोत्रेविद्वान्वै सतुदारिद्र्यपीडितः ॥ ३ ॥ अथापरोभवत्तत्र तादृग्रूपवयोन्वितः ॥ तन्नामगोत्रोदेवेशि ब्राह्मणोवेदपारगः ॥ ४ ॥ अथप्राहयमोदूतं रौद्रमूर्द्धशिरोरुहम् ॥ गच्छभोमथुरांशीघ्रं देवशर्माणमानय ॥ ५ ॥ तेनदूतेनचानीतो देवशर्मापुरस्तदा ॥ उभयोर्नामसादृश्याद्योदरिद्रेणपीडितः ॥ ६ ॥ तन्दृष्ट्वाथयमःप्राह गच्छशीघ्रंद्विजोत्तम ॥ दूतेननामसादृश्यात्त्वमानीतोसिमाचिरम् ॥ ७ ॥ अथाब्रवीद्ब्राह्मणोयं नाहंयास्येगृहंविभो ॥ दरिद्रेणातिनिर्विण्णो यावज्जीवंसुरेश्वर ॥ ८ ॥ इहैववर्त्तयिष्यामि शेषमायुस्तवान्तिकम् ॥ यमउवाच ॥ अकालेनात्रचायाति कश्चिद्ब्राह्मणसत्तम ॥ ९ ॥ मुहूर्त्तमपिनोजीवेत् पूर्णकालेनमेभुवि ॥ अतएवहिमेनाम धर्मराजेतिविश्रुतम् ॥ १० ॥ नमेसुहृन्नमेद्वेष्यः कश्चिदस्तिधरातले ॥ विद्धःशरशतेनापि नाकालेम्रियतेनरः ॥ ११ ॥ कुशाग्रेणापिविद्धःसन् कालेपूर्णे

वह दूत नगरसे लेआया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर उसको देखकर यमराजने कहा कि हे द्विजोत्तम ! शीघ्रही जाइये नामकी समानता से दूत तुमको शीघ्रही लेआया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर इस ब्राह्मण ने कहा कि हे विभो ! मैं घरको नहीं जाऊंगा क्योंकि हे सुरेश्वर ! जीवनपर्यन्त मैं दरिद्र से बहुतही पीडित रहा ॥ ८ ॥ इससे मैं शेष आयुर्बल को यहीं तुम्हारे समीप व्यतीत करूंगा यमराज बोले हे द्विजोत्तम ! बिन समयमें यहां कोई नहीं आताहै ॥ ९ ॥ और पूर्णसमयसे पृथ्वी मे मुझसे मुहूर्त्तभर भी नहीं जीसक्ता है, इसीसे मेरा धर्मराज ऐसा नाम प्रसिद्ध है ॥ १० ॥ पृथ्वीमें मेरा न कोई मित्रहै और न कोई शत्रुहै सैकड़ों बाणोंसे माराहुआ भी मनुष्य

बिन कालमें नहीं मरताहै ॥ ११ ॥ और पूर्वसमय में कुशके अग्रभागसे भी वेधित नहीं जीताहै इसलिये हे द्विजोत्तम ! जबतक शरीर न जलायाजावै तबतक जाइ- ये ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त इस ब्राह्मण ने कहा कि हे प्रभो ! यदि मुझको पठाते हो तो मुझसे पूंछेहुये एक प्रश्नको यथायोग्य कहने के योग्यहो ॥ १३ ॥ हे देव ! साधुवोंका दर्शन कभी वृथा नहीं होताहै और तुम्हारा दर्शन विशेषकर वृथा नहीं होताहै उसीसे मैं कहताहूं ॥ १४ ॥ कि जो येबड़े कठिन व भयङ्कर नरक देखपड़ते हैं हे यमराज ! किस कर्मसे मनुष्य किस नरकको जाताहै ॥ १५ ॥ और फिर उन नरकों की कितनी संख्यायेंहैं व कौन व्यक्ति है और क्या प्रमाण है हे सुरश्रेष्ठ ! इस

नजीवति ॥ तस्माद्गच्छद्विजश्रेष्ठ यावद्गात्रंनदह्यते ॥ १२ ॥ अथाब्रवीद्ब्राह्मणोसौ यदिप्रेषयसेंप्रभो ॥ प्रश्नमेकंमयापृष्टं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ नवृथाजायतेदेव साधूनांदर्शनंकचित् ॥ युष्माकञ्चविशेषेण तस्मादेवब्रवीम्यहम् ॥ १४ ॥ एतेयेनरकारौद्रा दृश्यन्तेचसुदारुणाः ॥ कर्मणाकेनकंगच्छेन्मानवोनरकंयम ॥ १५ ॥ कतिसंख्याःपुनस्तेषां काव्यक्तिःकिंप्रमाणतः ॥ एतत्सर्वंसुरश्रेष्ठ यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ यम उवाच ॥ १६ ॥ शृणुविप्रप्रवक्ष्यामि यावन्तोनरकास्थिताः ॥ कर्मणायेनगच्छन्ति मानवाद्विजसत्तम ॥ १७ ॥ एकविंशसमाख्याता नरकामममन्दिरे ॥ यानेतान्प्रेक्षसेविप्र यन्त्रमध्येह्यवस्थितान् ॥ १८ ॥ पीड्यमानान्किङ्करैर्मे कृतघ्नान्पापसंयुतान् ॥ तुण्डेनवायसायेषां नेत्रोद्धारंप्रकुर्वते ॥ १९ ॥ एतैर्निरीक्षितान्येव कलत्राणिदुरात्मभिः ॥ परेषांद्विजशार्दूल सरागैर्नयनैःसदा ॥ २० ॥ कुम्भीपाकगतानेतान् यांस्त्वं पश्यसिपापिनः ॥ कूटसाक्षिरताह्येते उत्कोचनिरतास्तथा ॥ २१ ॥ एतेलोहमयान्स्तम्भान् सन्तप्तान्पावकप्रभान् ॥

सबको यथायोग्य कहनेकेयोग्य हो ॥ १६ ॥ यमराज बोले कि हे द्विजोत्तम, विप्र ! जितने नरक स्थितहैं उनको मैं कहताहूं सुनिये कि जिसकर्मसे मनुष्य जिस नरक को जातेहैं ॥ १७ ॥ हे विप्रजी ! मेरे मन्दिरमें इक्कीस नरक कहेगयेहैं मेरे दूतोंसे पीड़ित कियेजातेहुये कृतघ्न व पापसंयुत इन यन्त्रोंके मध्यमें स्थित हुये जिनमनुष्यों को तुम देखते हो किकौवे चोंचसे जिनके नेत्रोंको निकालते हैं ॥ १८ । १९ ॥ हे द्विजोत्तम ! इन दुष्टचित्तवाले पुरुषोंने सदैव स्नेहसमेत नेत्रोंसे पराई स्त्रियोंको देखा है ॥ २० ॥ और कुम्भीपाक नरकमें प्राप्त इन जिन पापियोंको तुम देखतेहो ये झूठी गवाही देनेमें परायण तथा घूस लेनेमें तत्पररहे हैं ॥ २१ ॥ और अग्निके समान

तेजवाले व तचेहुये लोहेके खंभोंको जो ये लिपटते हैं ये वही हैं जोकि दुष्टचित्तवाले पुरुष पराई स्त्रियोंमें रतरहे हैं ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तम ! पीव व रक्तसे संयुत पृथ्वी के मध्यमें जो ये स्थितहैं वे सब विश्वासघाती हैं ॥ २३ ॥ व भयङ्कर असिपत्रवनमें जो खण्ड खण्ड काटेजाते हैं ये वही हैं जोकि समर प्राप्त होनेपर स्वामीको छोड़कर भगे हैं ॥ २४ ॥ व हे द्विजश्रेष्ठ ! जो नीच मनुष्य चिल्लाते हुये जलतीहुई अंगारराशियों को अवगाहन करते हैं वे पनहियों के दानसे रहितहुयेहैं ॥ २५ ॥ और वृक्षके अग्रभाग में जो नीचे मुखकर के अग्निके ऊपर बांधेगये हैं ये सब नीच मनुष्य ब्रह्महत्या से संयुत हैं ॥ २६ ॥ और जो मसा, खटमल व काकपक्षियों से

आलिङ्गन्तिदुरात्मानः परदाररतास्तुये ॥ २२ ॥ एतेवैधरणीमध्ये पूयशोणितसंकुले ॥ येतिष्ठन्तिद्विजश्रेष्ठ सर्वविश्वासघातकाः ॥ २३ ॥ असिपत्रवनेघोरे भिद्यन्तेयेतुखण्डशः ॥ येनष्टाःस्वामिनंत्यक्त्वा संग्रामेसमुपस्थिते ॥ २४ ॥ अङ्गारराशयोदीप्तायैर्गाह्यन्तेनराधमैः ॥ क्रन्दमानाद्विजश्रेष्ठ उपानद्दानवर्जिताः ॥ २५ ॥ अधोमुखानिबद्धाये वृक्षाग्रेपावकोपरि ॥ ब्रह्महत्यान्विताःसर्वे एतेचैवनराधमाः ॥ २६ ॥ मशकैर्मत्कुणैःकाकैर्येभक्ष्यन्तेविहङ्गमैः ॥ व्रतभङ्गरताह्येते व्रतिनाञ्चैवहिंसकाः ॥ २७ ॥ कुठारकुट्टिताह्येते प्रहिंस्यन्तेतथाविधम् ॥ गोहन्तारोदुरात्मानो देवब्राह्मणनिन्दकाः ॥ २८ ॥ येभक्ष्यन्तेश्शृगालैश्च वृकैर्लोहमयैर्मुखैः ॥ आत्ममांसानियेपापा भक्षयन्तिबुभुक्षिताः ॥ २९ ॥ नदत्तमन्नमेतैस्तु कदाचिद्द्विजसत्तम ॥ ३० ॥ रुधिरंयेपिबन्त्येते वसापूयपरिप्लुतम् ॥ ब्राह्मणानांविनाशाय गवांचेतिसदास्थिताः ॥ ३१ ॥ कूटसाक्षिनिबद्धाश्च तीक्ष्णकण्टकपीडिताः ॥छिद्रान्वेषणसंयुक्ताः परेषांनित्यसंस्थिताः ॥ ३२ ॥ क्रकचे

भक्षण कियेजातेहैं ये व्रतभङ्गमें रतरहे हैं और व्रतीपुरुषों को मारनेवाले हैं ॥ २७ ॥ और फरसासे फूटेहुये ये वैसेही जो मारेजाते हैं वे दुष्टचित्तवाले पुरुष गोघाती व देवताओं तथा ब्राह्मणोंके निन्दकहैं ॥ २८ ॥ और जो सियार व भेड़ियोंसे लोहमयमुखोंसे खायेजाते हैं और जो पापी क्षुधित होकर अपने मांसोंको खाते हैं ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तम ! इन्होंने कभी अन्नको नहीं दियाहै ॥ ३० ॥ और चर्बी व पीबसेड्बेहुये रक्तको जो पीतेहैं वे सदैव ब्राह्मणोंके व गौवोंके नाशकेलिये स्थितहुये हैं ॥३१ ॥

व झूठीं गवाही में बँधेरहे हैं और पैने काँटोंसे जो पीड़ित हैं वे दूसरों के छिद्र ढूंढ़ने में सदैव संयुत रहे हैं ॥ ३२ ॥ व हे द्विजोत्तम ! जो ये आरामे काटेजाते हैं ये अभक्ष्य भोजनमें तत्पर रहे हैं और अपने धर्मको दूषनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ और कन्याओंको बेंचनेवाले व कन्याओंके यहां जो भोजन करनेवाले हैं कंडियों के मध्यमें प्राप्त जो ये मेरे दूतोंसे पचायेजाते हैं ॥ ३४ ॥ और भयङ्कर सङ्सियों से जिनकी जिह्वा उखाड़ी जातीहै झूठी वार्तामें लगेहुये ये वाणीके दोषमें तत्पर रहे हैं ॥ ३५॥ और बार २ कांपते हुये जो शीतसे विकल कियेजाते हैं वे विशेष कर देवताओं व ब्राह्मणों के धनको हरनेवाले हैं ॥ ३६ ॥ और हे द्विजोत्तम! उनके मस्तक पै बड़ा

नतुच्छिद्यन्ते यएतेद्विजसत्तम ॥ अभक्ष्यनिरताह्येते स्वस्यधर्मस्यदूषकाः ॥ ३३ ॥ कन्याविक्रयकर्त्तारः कन्यानांचैव भुञ्जकाः ॥ करीषमध्यगाह्येते पच्यन्तेममकिङ्करैः ॥ ३४॥ सदंशैर्दारुणैर्येषां जिह्वाचोत्पाट्यतेपुनः ॥ वाग्दोषनिरता ह्येते मृषावादपरायणाः ॥ ३५ ॥ येशीतेनप्रबाध्यन्ते वेपमानामुहुर्मुहुः ॥ देवस्वानाञ्चहर्त्तारो ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ ३६ ॥ तेषांशिरसिनिक्षिप्तो भूरिभारोद्विजोत्तम ॥ ब्राह्मणानांवित्तदाने येशिरःकम्पयन्तिवै ॥ ३७॥ यम उवाच ॥ एव मेतन्मयाख्यातं तवसर्वंद्विजोत्तम ॥ नरकाणांस्वरूपन्तु कर्मणावैयथाक्रमम् ॥ ३८॥ गच्छशीघ्रंमहाभाग यावत्का योनदह्यते ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ कथयत्वंसुरश्रेष्ठ ममसर्वंसमाहितः ॥ ३९ ॥ नगच्छेत्कर्मणायेन नरकंमानवःक्वचित् ॥ ४० ॥ सतांसप्तपदींमैत्रीमित्याहुर्बुद्धिकोविदाः ॥ मित्रतांचपुरस्कृत्य समासाद्वक्तुमर्हसि ॥ ४१ ॥ यम उवाच ॥ प्रभास क्षेत्रमासाद्य नरकेश्वरमुत्तमम् ॥ यःपश्येत्तंनरोभक्त्या नरकंसनपश्यति ॥ ४२ ॥ स्थापितंयन्मयालिङ्गं शिवभक्त्यायु

भारी बोझ डालागया है कि जो ब्राह्मणों को धन देने में शिर को कँपाते हैं ॥ ३७ ॥ यमराज बोले कि हे द्विजोत्तम ! मैंने तुमसे इस प्रकार इस चरित्र को कहा और क्रमपूर्वक कर्मसे नरकोंका स्वरूप कहा ॥ ३८ ॥ हे महाभाग ! तबतक शीघ्रही जाइये जबतक कि शरीर न जलायाजावै ब्राह्मण बोला कि हे सुरश्रेष्ठ ! सावधान होतेहुये तुम मुझसे सब चरित्र को कहो ॥ ३९ ॥ कि जिस कर्म से मनुष्य कभी नरकको न जावै ॥ ४० ॥ बुद्धिमें प्रवीण पुरुषोंने सज्जनों की मित्रता को सप्तपदी कहाहै इससे मित्रताको आगेकर तुम संक्षेपसे कहने के योग्यहो ॥ ४१ ॥ यमराजबोले कि प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर जो पुरुष उन उत्तम नरकेश्वरजी को देखता है

वह नरकको नहीं देखताहै ॥ ४२ ॥ जिस लिङ्गको शिवभक्तिसे संयुत मैंने थापाहै हे द्विजोत्तम ! मैंने तुम्हारी प्रीतिसे इस गुप्तचरित्रको कहा ॥ ४३ ॥ यह मेरे वचन से निरसन्देह बड़े यत्नसे गुप्त करनेयोग्य है उस समय ऐसा कहाहुआ ब्राह्मण अपनेही घरको चलागया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर शरीर को पाकर वह बड़े विस्मय को प्राप्तहुआ और बुद्धिमान् धर्मराज के उस सब वचन को स्मरणकर ॥ ४५ ॥ उस ब्राह्मण ने वहां जाकर जीवनपर्यन्त नित्य उन प्रभुका पूजन किया तदनन्तर हे वरारोहे ! वह बड़ी सिद्धिको प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ इसलिये भक्तिसे उन शिवजीको बड़ेयत्नसे देखै जिससे कि पातकोंसे संयुत भी पुरुष नरकमें नहीं जाता

तेनच ॥ एतद्गुह्यंमयाप्रोक्तं तवप्रीत्याद्विजोत्तम ॥ ४३ ॥ गोपनीयंप्रयत्नेन ममवाक्यादसंशयम् ॥ एवमुक्तस्तदावि प्रः स्वमेवभवनंययौ ॥ ४४ ॥ लब्ध्वाकलेवरंसोथ विस्मयंपरमंगतः ॥ तत्स्मृत्वावचनंसर्वं धर्मराजस्यधीमतः ॥ ४५ ॥ गत्वातत्रसनित्यंवै पूजयामासतंप्रभुम् ॥ यावज्जीवंवरारोहेततःसिद्धिंपराङ्गतः ॥ ४६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्यातम वलोकयेत् ॥ अपिपातकयुक्तोपि नयातिनरकेयतः ॥ ४७ ॥ अश्वयुक्कृष्णपक्षेतु चतुर्दश्यांविधानतः ॥ यस्तत्रकुरुते श्राद्धं सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ ४८ ॥ कृष्णास्तिलास्तत्रदेया ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ यावत्तिलानांसंख्यावै तावत्स्वर्गेमही यते ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेनरकेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टादशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २१८ ॥
ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि संवर्तेश्वरमुत्तमम् ॥ इन्द्रेश्वरात्पश्चिमतः पर्वतश्चार्कभास्वरात् ॥ १ ॥ तन्दृष्ट्वातु

है ॥ ४७ ॥ कुँवारके कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिमें जो वहां विधि से श्राद्धको करता है वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाताहै ॥ ४८ ॥ वहां वेदों के पारगामी ब्राह्मणके लिये काले तिल देना चाहिये जितनी तिलोंकी संख्या होवै उतने दिनोंतक वह स्वर्गमें पूजाजाता है ॥ ४९ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनरकेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । संवर्तेश्वर लिंग अरु मेघेश्वर परभाव । दोसौ उन्नीसवें महँ सोई कथा सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! तदनन्तर इन्द्रेश्वरसे पश्चिम व अर्कभास्वर

से पूर्वमें उत्तम संवर्तेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! पुष्करिणी के जलमें नहाकर उन शिवजी को देखकर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के फलको प्राप्तहोताहै ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि उसीके पूर्वदिशाके भागमें व पापमोचनसे नैर्ऋत्यमें ॥ ३ ॥ समस्त पातकों का नाशक मेघेश्वर ऐसा लिंग प्रसिद्धहै अनवर्षणका भय होनेपर वहींपर मुख्य ब्राह्मणोंसे वरुणकी शांतिकरावै व पृथ्वीको जलोंसे डुबावै मेघोंसे थापाहुआ लिङ्ग जहां नित्य पूजाजाताहै ॥ ४।५ ॥ हे देवि ! वहां अनावृष्टिका भय नहीं होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसंवर्तेश्वरमेघेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१९॥

महादेवि स्नात्वापुष्करिणीजले॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ २॥ ईश्वरउवाच॥ तस्यैवपूर्वभागेतु नैर्ऋ तेपापमोचनात् ॥मेघेश्वरेतिविख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥३॥ अनावृष्टिभयेजाते शान्तिंतत्रैवकारयेत् ॥४॥ वारुणींवि प्रमुख्यैस्तु प्लावयेदुदकैर्महीम् ॥ मेघैःप्रतिष्ठितंलिङ्गं यत्रनित्यंप्रपूज्यते ॥ ५ ॥ अनावृष्टिभयंतत्र नचदेविप्रजायते ॥ ६ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसंवर्त्तेश्वरमेघेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि बलभद्रप्रतिष्ठितम् ॥ लिङ्गंमहापापहरं गात्रोत्सर्गतउत्तरे ॥ १ ॥ महालिङ्गंम हादेवि महासिद्धिफलप्रदम् ॥ बलभद्रेणविधिना स्थापितंपापशुद्धये ॥ २ ॥ यस्तत्पूजयतेभक्त्या गन्धपुष्पादिभिःक्र मात् ॥ तृतीयारेवतीयोगे सयोगीशपदंलभेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे बलभद्रेश्वरमाहात्म्यन्नामविं शाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२२०॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो॰ । बलभद्रेश्वर लिंगको थाप्यो है बलभद्र । दोसौ बिसवें में सोई वर्णित कथा सुभद्र ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गात्रोत्सर्ग से उत्तरमें बलभद्रजी से थापेहुये महापापहारी लिङ्गके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! बलभद्रजी ने पापों की शुद्धिके लिये महासिद्धियों के फलको देनेवाले महालिंग को विधिसे स्थापन कियाहै ॥ २ ॥ जो मनुष्य तीजतिथि व रेवती नक्षत्र के योगमें उस लिङ्गको भक्तिसे चन्दन पुष्पादिकों करके पूजता है वह योगीश के स्थानको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलभद्रेश्वरमाहात्म्यंनामविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥ ❀ ॥

दो० । अहै अमित माहात्म्य युत भैरवमातृस्थान । दोसौ इक्कीसवें महँ सोई कियो बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अतिउत्तम मातृस्थान के समीप जावै भैरवमातृ ऐसा प्रसिद्ध वह स्थान भय व रोगोंको नाश करनेवालाहै ॥ १ ॥ कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिमें चित्तको रोंकनेवाला जो पुरुष विधिसे उसको चन्दनव पुष्पोंसे तथा उत्तम बलिदानोंसे पूजताहै ॥ २ ॥ हे प्रिये ! उसको योगिनी पुत्रकी नाईं सदैव रक्षा करती हैं ॥३॥ इत्येकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

दो० लाये हैं श्रीविष्णुजी जिमि गंगा महरानि । दोसौ बाइस में सोई कह्यो चरित्र बखानि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर अलर्केश्वर से

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मातृस्थानमनुत्तमम् ॥ भैरवमात्रितिख्यातं भयरोगविनाशनम् ॥ १ ॥ चतुर्दश्यांविधानेन कृष्णपक्षेयतात्मवान् ॥ पूजयेद्गन्धपुष्पैश्च बलिदानैस्तथोत्तमैः ॥ २ ॥ तंपुत्रमिवयोगिन्यो रक्षन्तिसततं प्रिये ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभैरवमातृमाहात्म्यंनामैकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गङ्गांत्रिपथगामिनीम् ॥ अलर्केश्वरतोदेवि ईशानदिशिसंस्थिताम् ॥ १ ॥ स्वयंभूताधरामध्यादानीताविष्णुनापुरा ॥ यादवानान्तुमुक्त्यर्थं सर्वपापौघशान्तये ॥ २ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं कथंचित्पुण्यसंश्रयात् ॥ स्नानञ्चैवविधानेन सशोच्योनवरानने ॥ ३ ॥ ब्रह्माण्डंसकलंदत्त्वा यत्पुण्यफलमाप्नुयात् ॥ तत्पुण्यंप्राप्नुयाद्देवि कार्त्तिक्यांजाह्नवीजले ॥ ४ ॥ कलौयुगेतुसंप्राप्ते दुर्लभंतत्रदर्शनम् ॥ किंपुनःस्नानदानेन प्रभासेजाह्नवीजले ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगङ्गामाहत्म्यंनामद्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥ * ॥

ईशानदिशा में भलीभांति स्थित त्रिपथगामिनी गंगाजी के समीपजावै ॥ १ ॥ पुरातन समय विष्णुजी यादवों की मुक्तिके लिये व सब पापसमूहोंकी शान्तिके लिये पृथ्वीतल से आपही उपजीहुई उन गंगाजी को लाये हैं ॥ २ ॥ वहां जो पुरुप पुण्य के आश्रय से किसीप्रकार स्नान व श्राद्ध करता है हे वरानने ! वह शोचने योग्य नहीं होताहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! समस्त ब्रह्माण्ड को देकर मनुष्य जिस पुण्यफलको पाताहै उसी पुण्यको कार्त्तिकीमें गङ्गाजीके जलमें पाताहै ॥ ४ ॥ कलियुग प्राप्तहोने पर वहां दर्शन दुर्लभहै फिर प्रभासक्षेत्रमें गङ्गाजी के जलमें स्नानदानसे क्या कहना है ॥ ५ ॥ इतिद्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥

दो॰ । श्रीगणपतिको पूजिकै विघ्नरहित जिमि होत। दोसौ तेइसमें सोई कह्यो चरित्र उदोत ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये, महादेवि ! तदनन्तर मुझसे वहां नियुक्त कियेहुये वहीं पै भलीभांति स्थित गणपतिदेवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! गङ्गाजी के दक्षिण में वे क्षेत्रकी रक्षामें तत्पर हैं माघमें कृष्णपक्ष की चौदसि में जो मनुष्य उनको उत्तम लड्डुवों की नैवेद्य से व पुष्प धूपादिकोंसे क्रमसे पूजताहै उस को तबतक विघ्न नहीं होताहै जबतक कि यह क्षेत्रमें बसता है ॥ २ । ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायागणपतिमाहात्म्यंनामत्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेविदेवंगणपतिम्प्रिये ॥तत्रैवसंस्थितंसम्यङ्मयातत्रनियोजितम् ॥ १ ॥ गङ्गायादक्षिणेदेवि क्षेत्ररक्षणतत्परः ॥ माघेकृष्णचतुर्दश्यां यस्तम्पूजयतेनरः ॥ २॥ दिव्यमोदकनैवेद्यैः पुष्पधूपादिभिःक्रमात् ॥ नतस्यजायतेविघ्नं यावत्क्षेत्रेवसत्यसौ ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे गणपतिमाहात्म्यंनामत्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यत्रजाम्बवतीनदी ॥ पुराजाम्बवतीनाम विष्णोश्चमहिषीप्रिया ॥ १ ॥ अपृच्छदर्जुनंसाध्वी वदवार्ताकुरूद्वह ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा अर्जुनोनिःश्वसन्मुहुः ॥ २ ॥ बाष्पगद्गदयावाचा इदंवचनमब्रवीत् ॥ परित्यक्तावयंभद्रे यादवैःपावकप्रभैः ॥ ३ ॥ बलदेवस्यवीरस्य सात्यकेश्चमहात्मनः ॥ अन्येषांयदुवीराणां निधनंचबभूवह ॥ ४ ॥ जिजीविषुरहंप्राप्तो वासुदेवनिराकृतः ॥ ५ ॥ साश्रुत्वाभर्तृनिधनमर्जुनाच्चमहासती ॥ समुत्सृज्य

दो॰ । यथा प्रभासक्षेत्रमें भयो पाण्डु अस कूप । दोसौ चौबिस में सोई कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि जाम्बवती नदी है पुरातन समय विष्णुजी की प्यारी स्त्री जाम्बवती नामक हुई है ॥ १ ॥ उस पतिव्रताने अर्जुनजी से पूंछा कि हे कुरूद्वह ! वार्ताको कहिये उसके उस वचनको सुनकर बार २ श्वास लेतेहुये अर्जुनजी ॥२॥ आँसुवों से गद्गदवचन करके इस वचन को बोले कि हे भद्रे ! अग्निके समान प्रभावाले यादवों ने हमको त्याग कियाहै ॥ ३ ॥ बलभद्र वीर व महात्मा सात्यकी तथा अन्य यदुवीरों का विनाशहुआ ॥ ४ ॥ और श्रीकृष्णजी से निकालाहुआ जीनेकी इच्छावाला मैं यहां प्राप्त

हुआ ॥ ५ ॥ वे महासती जाम्बवतीजी अर्जुनजी से पतिकी मृत्युको सुनकर महाशरीरको छोडकर नदी होकर निकलीं ॥ ६ ॥ व हे देवि ! उससमय चितासे पति की सब भस्मको लेकर वे उत्तम जाम्बवती सतीजी समुद्रमें पैठगई ॥ ७ ॥ जो स्त्री उस नदीमें भक्तिसे स्नान करती है उसके वंशमें भी कोई स्त्री वैधव्यको नहीं प्राप्त होतीहै ॥ ८ ॥ इसलिये सब यत्नसे वहां स्नानकरै पुरुष होवै या स्त्री उत्तमगतिको प्राप्तहोती है ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर महात्मा पाण्डवों के उस तीर्थके पश्चिम में त्रिलोक में प्रसिद्ध कूप के समीप जावै ॥ १० ॥ हे महादेवि ! जब पाण्डव वनको प्राप्तहुये तब पृथ्वीमें घूमतेहुये वे प्रभासक्षेत्र को आये ॥

महाकायं नदीभूत्वाविनिर्ययौ ॥ ६ ॥ सागृहीत्वासतीभर्तुर्भस्मसर्वंचितेस्तथा ॥ प्रविष्टासागरंदेवि तदाजाम्बवतीशुभा ॥ ७ ॥ यानारीतत्रनद्यांवै भक्त्यास्नानंसमाचरेत् ॥ तस्याःकुलेपिकाचित्स्त्री नवैधव्यमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत ॥ नरोवायदिवानारी प्राप्नोतिपरमाङ्गतिम् ॥ ९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कूपंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ पश्चिमेतस्यतीर्थस्य पाण्डवानांमहात्मनाम् ॥ १० ॥ यदारण्यमनुप्राप्ताः पाण्डवाःपृथिवीतले ॥ भ्रममाणामहादेवि प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ ११ ॥ ततस्तेन्यवसंस्तत्र किञ्चित्कालंसमाहिताः ॥ ज्ञात्वाक्षेत्रंमहापुण्यं ततःकृष्णाब्रवीदिदम् ॥ १२ ॥ ब्राह्मणानांसहस्राणि भुञ्जतेभवतांगृहे ॥ १३ ॥ तस्माज्जलाशयंकार्यमाश्रमस्य समीपतः ॥ यत्रस्नानंकरिष्यामि युष्माकंसंप्रसादतः ॥ १४ ॥ ततस्तुपाण्डवाःसर्वे सहितानुवरानने ॥ अखनंस्तत्रकूपंवै द्रौपदीवाक्यप्रेरिताः ॥ १५ ॥ अथाजगामतत्रैव भगवान्देवकीसुतः ॥ श्रुत्वासमागतान्पार्थान्द्वारवत्याःसबान्धवः ॥ १६ ॥

११ ॥ तदनन्तर सावधान होतेहुये वे कुछ समय वहां बसतेभये तदनन्तर महापवित्र क्षेत्रको जानकर द्रौपदीजी यह बोलीं ॥ १२ ॥ कि आपलोगोंके घरमें हज़ारों ब्राह्मण भोजन करते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये आश्रम के समीप जलाशय करना चाहिये जिसमें मैं तुमलोगों की प्रसन्नता से स्नान करूं ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! द्रौपदीजी के वचन से प्रेरित सब पाण्डवोंने मिलकर वहा कूपको खोदा ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर आयेहुये पाण्डवों को सुनकर बांधवोंसमेत देवकीसुत श्रीकृष्णजी

द्वारकापुरी से वहां आये ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न,साम्ब,गद, निषद, युयुधान,बलराम व बुद्धिमान् श्रीकृष्णसमेत ॥ १७ ॥ तथा शूर व युद्धमें दुर्मद अन्य समस्तयादवों समेत वे यदुश्रेष्ठ न्यायपूर्वक आकर ॥ १८॥ तदनन्तर कथाके अन्तमें किसीकारणके अन्तमें श्रीकृष्णजी पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिरजीसे यह वचन बोले ॥१६॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे महाबाहो, युधिष्ठिरजी ! मैं तुम्हारा क्या कार्य्य करूं राज्य, धान्य, धन अथवा शत्रुका नाश करूं ॥ २० ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे यादवश्रेष्ठ ! तुम तो अपने कर्मके वशमें स्थित हो हे जगदीश ! सब देवताओंसे प्रणाम कियेहुये तुम्हारे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें वह वस्तु नहीं है जोकि न सिद्धहोवै व उस कूपमें नहाकर

प्रद्युम्नेनचसाम्बेन गदेननिषदेनच ॥ युयुधानेनरामेण तथाकृष्णेनधीमता ॥ १७ ॥ अन्यैश्चनिखिलैश्शूरैर्यादवैर्युद्धदुर्मदैः ॥ तेसमेत्ययथान्यायं समस्तायदुपुङ्गवाः ॥ १८ ॥ ततःकथावसानेव कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ वासुदेवःपाण्डुसुतमिदंवचनमब्रवीत ॥ १६ ॥ कृष्ण उवाच ॥ युधिष्ठिरमहाबाहो किन्तेकामंकरोम्यहम् ॥ राज्यंधान्यंधनंचापि अथवा रिपुनाशनम् ॥ २० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ सतुत्वंयादवश्रेष्ठ स्वकर्मविवशस्थितः ॥ तन्नास्तित्रिषुलोकेषु यन्नसिद्ध्यतिभूतले ॥ २१ ॥ त्वयितुष्टेजगन्नाथ सर्वदेवनमस्कृते ॥ तस्मिन्श्राद्धंनरःकृत्वा वाजिमेधफलंलभेत ॥ २२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पाण्डुकूपमाहात्म्यंनामचतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवपूजयेद्देविपञ्चलिङ्गानिभावितः ॥ प्रतिष्ठितानिदेवेशिपाण्डवैश्चमहात्मभिः ॥ १ ॥ यस्तुपूजयतेभक्त्यासमुक्तःपातकैर्भवेत् ॥२॥ इतिश्रीस्कान्देपाण्डवेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः २२५॥

मनुष्य अश्वमेधयज्ञके फलको पावैहै ॥ २१ । २२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायापाण्डवकूपमाहात्म्यं नाम चतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥

दो० । पाण्डवेश लिंगहिं यथा थाप्यो पाण्डवपञ्च । दोसौ पच्चीसवें में सोई कथा प्रपञ्च ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि, देवि ! वहीं पर शुद्धचित्तवाला पुरुष महात्मा पाण्डवों से थापेहुये पांच लिङ्गोंके समीप जावै ॥ १ ॥ जो पुरुष भक्तिसे उनको पूजताहै वह पातकोंसे छूटजाताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायापाण्डवेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥ ॥ ॥

दो० । किय दशाश्वमेघहिं यथा तीरथ भरतभुवाल । दोसौ छब्बिस में सोई बरन्यो चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर महापातकोंको नाशकरनेवाले दशाश्वमेधिकनामक त्रिलोक में प्रसिद्धतीर्थ के समीप जावै ॥ १ ॥ हे भामिनि ! पुरातन समय भरतजीने अतिउत्तम पवित्र क्षेत्रको आकर दश अश्वमेधोंसे वहां यज्ञ किया है ॥ २ ॥ हे भामिनि ! वहां इन्द्रजी सोमपान से तृप्तहुये और कृपण उत्तम अन्न व पानोंसे तथा दक्षिणाओं से ब्राह्मणलोग तृप्तहुये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न होतेहुये सब देवताओं ने भरत राजासे कहा कि हेमहाबाहो!तुम्हारे यज्ञोंसे भलीभाति तृप्त कियेहुये हमलोग प्रसन्नहैं ॥ ४ ॥ हे नृपेन्द्र ! तुम्हारे

ईश्वर उवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम्॥ दशाश्वमेधिकंनाम महापातकनाशनम्॥ १ ॥ वाजिमेधैः पुराचेष्टं दशभिस्तत्रभामिनि॥ भरतेनसमागत्य पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम्॥ २॥ तत्रतृप्तःसहस्राक्षः सोमपानेनभामिनि॥ कृपणाःस्वान्नपानैश्च दक्षिणाभिर्द्विजातयः॥ ३॥ अथोचुस्त्रिदशाःसर्वे सुप्रीताभरतंनृपम्॥ तुष्टास्तवमहाबाहो यज्ञैःसन्तर्पितावयम्॥ ४॥ वरंवृणीष्वराजेन्द्र यत्तेमनसिवर्त्तते॥ ५॥ राजोवाच॥ अत्रागत्यनरोभक्त्या यःस्नानंकुरुतेसुराः॥ दशानामश्वमेधानां श्रद्धयाफलमाप्स्यति॥ ६॥ देवा ऊचुः॥ दशाश्वमेधिकंनाम तीर्थमेतन्महीतले॥ ख्यातिंयास्यतिराजेन्द्र नात्रकार्याविचारणा॥ ७॥ ईश्वरउवाच॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं प्रख्यातंधरणीतले॥ दशाश्वमेधिकमिति सर्वपापप्रणाशनम्॥ ८॥ ऐन्द्रवारुणमारभ्य गोमुखादाश्वमेधिकम्॥ अत्रान्तरेमहादेवि शिवक्षेत्रंविदुर्बुधाः॥ ९॥ सर्वपापहरंदिव्यं स्वर्गसोपानसन्निभम्॥ सपादकोटितीर्थानां स्थानंतत्परिकीर्त्तितम्॥ १०॥ प्राणत्यागेकृतेत

मनमें जो वर्तमान होवै उस वरदानको मांगिये ॥ ५ ॥ राजा बोले कि हे देवताओ!यहां आकर जो मनुष्य भक्तिसे स्नानकरै वह श्रद्धासे दश अश्वमेधयज्ञों के फलको पावै ॥ ६ ॥ देवताबोले कि हे नृपेन्द्र ! यह तीर्थ पृथ्वीमें दशाश्वमेधिक नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त होगा इसमें विचार न करनाचाहिये ॥ ७ ॥ महादेवजीबोले कि तबसे लगाकर समस्त पातकों को नाश करनेवाला दशाश्वमेधिक ऐसा वह तीर्थ पृथ्वी में प्रसिद्धहुआ ॥ ८ ॥ इन्द्र व वरुणलिंग से लगाकर गोमुख से अश्वमेधिक तीर्थ तक हे महादेवि ! इस मध्यमें विद्वानों ने शिवक्षेत्र कहाहै ॥ ९ ॥ जोकि सब पापोंको हरनेवाला तथा स्वर्गकी सीढ़ीके समान है वह दिव्यतीर्थ सवाकरोड़ तीर्थोंका

स्थान कहागया है ॥ १० ॥ वहां प्राणत्याग करनेपर मनुष्य शिवलोक में प्रसन्न होताहै तिर्यक्योनि में प्राप्त जो पापी कीट, पक्षी व मृगादिक हैं ॥ ११ ॥ वे भी उत्तम स्थानको प्राप्त होतेहैं जहां कि महेश्वरदेवजी हैं और तिल व जलके देनेसे उसके मातृका व पितर तबतक प्रसन्न होते हैं जबतक कि प्रलय होताहै वहां पहले बड़े उत्तम व असंख्य ब्राह्मण पूजेगये हैं ॥ १२ । १३ ॥ व हे प्रिये ! इन्द्रने वहां यज्ञकर देवराजत्व को पायाहै और पुरातन समय कार्त्तवीर्य ने वहीं सौ यज्ञोंको कियाहै ॥ १४ ॥ हे प्रिये ! क्षेत्रगर्भ के समीप इसप्रकार वह उत्तम स्थानहै वहां मरेहुये प्राणियों का वह स्थान फिर जन्मको नहीं देताहै ॥ १५ ॥ और शुद्धचित्तवाला

त्र शिवलोकेचमोदते॥ तिर्यग्योनिगताःपापाः कीटपक्षिमृगादयः ॥ ११ ॥ तेपियान्तिपरंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः॥ तिलोदकप्रदानेन मातृकाःपितरस्तथा ॥ १२॥ तावद्वैतस्यतृप्यन्तियावदाभूतसंप्लवम् ॥ तत्रेष्टाब्राह्मणाःपूर्वमसङ्ख्याताम होत्तमाः ॥ १३ ॥ शक्रश्चदेवराजत्वं तत्रेष्ट्वाप्राप्तवान्प्रिये ॥ कार्त्तवीर्य्येणतत्रैव कृतंयज्ञशतम्पुरा ॥ १४ ॥ एवंतत्प्रवरंस्थानं क्षेत्रगर्भान्तिकेप्रिये ॥ मृतानांतत्रजन्तूनामपुनर्भवदायकम् ॥ १५ ॥ वृषोत्सर्गन्तुयस्तत्र कुर्याद्वैभावितात्मवान् ॥ यावन्तिवृषरोमाणि तावत्स्वर्गेमहीयते॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदशाश्वमेधमाहात्म्यंनामषड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच॥तत्रैवसंस्थितंपश्येल्लिङ्गत्रयमनुत्तमम् ॥ शतमेधंसहस्रमेधं कोटिमेधमितिक्रमात ॥ १ ॥ दक्षिणे शतमेधन्तु शतयज्ञफलप्रदम्॥ कार्त्तवीर्येणतत्रैव कृतंयज्ञशतम्पुरा ॥ २॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गं सर्वपातकनाशनम् ॥

जो पुरुष वहां वृषोत्सर्ग करताहै वह उतने दिनोंतक स्वर्गमें पूजाजाता है कि जितने वृषके रोम होतेहैं ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदशाश्वमेधतीर्थमाहात्म्यंनामषड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । शतमेधादिक लिङ्गकर कह्यो अतुल माहात्म्य । दोसौ सत्ताईस महँ सोइचरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि शतमेध, सहस्रमेध व कोटिमेध इस क्रमसे वहीं स्थित तीन लिङ्गोंको देखै ॥ १ ॥ दक्षिणमें सौयज्ञोंके फलको देनेवाला शतमेधनामक लिङ्गहै पुरातन समय वहीं कार्त्तवीर्य ने सब पातकों को नाशनेवाले महा-

लिङ्गको थापकर सौ यज्ञोंको कियाहै, और मध्यभाग में जो कोटिमेध ऐसा प्रसिद्ध लिङ्ग है ॥ २ । ३ ॥ पुरातन समय ब्रह्माने देवताओं के आदिदेवता महालिङ्ग को थापकर वहां कोटिसंख्यक महायज्ञोंको कियाहै ॥ ४ ॥ हे देवि ! जो पञ्चामृतरसके जलोंसे और चन्दन पुष्पादिकों की विधिसे पूजताहै वह लिङ्गोंके उपजे हुये फलको पाता है ॥ ५ ॥ वहां भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको गोदान देनाचाहिये हे भामिनि ! वहां दशलाख तीर्थ स्थितहैं ॥ ६ ॥ वैसेही मध्यमें समस्त पातकों को नाशनेवाले तीन लिङ्ग हैं ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांशतमेधादिलिङ्गत्रयमाहात्म्यंनामसप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

मध्यभागेतुयल्लिङ्गं कोटिमेधेतिविश्रुतम् ॥ ३ ॥ तत्रेष्टाब्रह्मणापूर्वं कोटिसंख्यामखोत्तमाः ॥ संस्थाप्यचमहालिङ्गं देवानामादिदैवतम् ॥ ४ ॥ गन्धपुष्पादिविधिना पञ्चामृतरसोदकैः ॥ सप्राप्नुयात्फलंदेवि लिङ्गानामुद्भवंक्रमात् ॥ ५ ॥ गोदानंतत्रदेयंवै सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ दशलक्षाणितीर्थानां तत्रतिष्ठन्तिभामिनि ॥ ६ ॥ लिङ्गत्रयंतथामध्ये सर्वपातकनाशनम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे शतमेधादिलिङ्गत्रयमाहात्म्यंनाम सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि दुर्वासादित्यमुत्तमम् ॥ यत्रदुर्वाससातप्तं तपोवर्षसहस्रकम् ॥ १ ॥ निराहारो जिताहारः सूर्याराधनतत्परः ॥ एवंकालेनमहता दिव्यतेजाजनाधिपः ॥ २ ॥ प्रत्यक्षंदर्शनंकृत्वा प्राहसूर्योमहामुनिम् ॥ सूर्य उवाच ॥ माब्रह्मन्साहसंकार्षीर्वरंवरयसुव्रत ॥ ३ ॥ अप्राप्यमपिदास्यामियत्तेमनसिवर्त्तते ॥ दुर्वासा उवाच ॥

दो० । वज्रेश्वर लिङ्गहिं थप्यो यथा वज्रयदुनाथ । दोसौ अट्ठाईसमहँ सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम दुर्वासादित्य के समीप जावै जहांपर दुर्वासाजी ने हज़ार वर्षतक तपकिया है ॥ १ ॥ व निराहार तथा जिताहार होकर वे सूर्यनारायणके आराधन में तत्पर हुये इसप्रकार बहुत समय के बाद दिव्य तेजवाले जनाधिप ॥ २ ॥ सूर्यनारायणजी ने प्रत्यक्ष दर्शनकरके महामुनि दुर्वासाजी से कहा सूर्यनारायण बोले कि हे सुव्रत, ब्रह्मन् ! साहस मतकरो वर

दानको मांगिये ॥ ३ ॥ जो तुम्हारे मनमें वर्तमान होवै उस दुर्लभ पदार्थको भी दूंगा'दुर्वासाजी बोले कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो और यदि मैं वर देनेकेयोग्य हूं ॥ ४ ॥ तो जबतक पृथ्वी स्थितरहै तबतक तुमको इस स्थान में स्थित होना चाहिये और संसार में दुर्वासादित्य नाम करके प्रसिद्धि को प्राप्त होवो ॥ ५ ॥ व हे जगत्पते, देव ! मैंने जो तुम्हारी सुन्दरी मूर्तिको थापाहै उसमें तुम्हारी समीपता होवै ॥ ६ ॥ और यहां तुम्हारी कन्या यमुनाजी समीपता करैं और तुम्हारे पुत्र बड़े तेजस्वी व बड़े बलवान् धर्मराजजी यहां समीपता करैं ॥ ७ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे महामुने ! गङ्गादिक अन्य करोड़तीर्थ तुम्हारे स्थानको मेरे वचन से निश्चय

प्रसन्नोयदिमेदेव वराहोयदिवाप्यहम् ॥ ४ ॥ अत्रस्थानेत्वयास्थेयं यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ दुर्वासादित्यनाम्नावै लोकेख्यातिञ्चगच्छसि ॥ ५ ॥ मयाप्रतिष्ठितायातु प्रतिमातवसुन्दरी ॥ तस्यांसान्निध्यमेवास्तु तवदेवजगत्पते ॥ ६ ॥ सान्निध्यंकुरुतांचात्र यमुनादुहितातव ॥ त्वत्पुत्रस्तुमहातेजा धर्मराजोमहाबलः ॥ सूर्य उवाच ॥ ७ ॥ तीर्थानां कोटिरन्याच गङ्गादीनांमहामुने ॥ आगमिष्यन्तितेस्थानं निश्चितंवचनान्मम ॥ ८ ॥ अत्रस्थानेमयाब्रह्मन्स्थातव्यंसहदैवतैः ॥ आदित्यानांप्रभावैस्तु ब्रह्माण्डोदरवासिनाम् ॥ ९ ॥ तेषांमाहात्म्यसंयुक्तः स्थास्येचात्रमहामुने॥सावित्रीणां सहस्रेण दृष्टेनैवतुयत्फलम् ॥१०॥ तत्फलंकोटिगुणितं दुर्वासादित्यदर्शनात् ॥११॥ लप्स्यन्तेप्राणिनःसर्वे यज्ञकोटिफलंतथा॥ एवमुक्त्वातदासूर्यःसस्मारतनयान्निजाम् ॥ १२॥ तथैवधर्मराजानं सर्वप्राणिनियामकम् ॥ स्मृतमात्रातत्रभित्त्वा पातालतलमाययौ ॥ १३ ॥ सानदीरूपिणीदेवी तीर्थकोटिसमन्विता ॥ यमश्चतत्रभगवान् कालदण्डधरस्त

कर आवैंगे ॥ ८ ॥ व हे ब्रह्मन् ! देवताओं समेत मैं इस स्थानमें स्थितहूंगा औरहे मुने ! सूर्योंके प्रभावों से ब्रह्माण्डके मध्य में बसनेवाले उनके माहात्म्यसे संयुत मैं यहां टिकूंगा और हज़ार सावित्रियों के देखने से जो फल होता है ॥ ९ । १० ॥ उससे कोटिगुना फल दुर्वासादित्यजी के दर्शन से होगा ॥ ११ ॥ और सब प्राणी करोडयज्ञों के फलको पावैंगे ऐसा कहकर उस समय सूर्यनारायणने अपनी कन्या को स्मरण किया ॥ १२ ॥ वैसेही सब प्राणियों को दण्ड देनेवाले धर्मराज को स्मरणकिया और स्मरण कीहुई वे नदीरूपवाली यमुना देवी करोड़ तीर्थोंसे संयुत होकर पातालतलको तोड़कर वहां प्राप्तहुई और उस समय कालदण्डधारी भग-

वान् यमराजजी वहां ॥ १३ । १४ ॥ हे महादेवि ! लोकसाक्षी सूर्यनारायण के समीप प्राप्तहुये सूर्यनारायण बोले कि इस क्षेत्रमें मेरे वचन से तुमको स्वरूप से स्थित होना चाहिये ॥ १५ ॥ और पापी प्राणियों की यहां बड़ेयत्न से रक्षा करना चाहिये और सूर्यनारायण के भक्त गृहस्थ ब्राह्मणों की सदैव रक्षा करना चाहिये ॥ १६ ॥ और करोड़ तीर्थों से संयुत यमुनाजी व तुम यहां बसो व दुर्वासाजी से उपजे हुये स्थानमें तुम बहुत प्रसन्न होवो ॥ १७ ॥ दुर्वासाजी के समीप यही कहकर देवेश सूर्यनारायण स्वामी सब देवताओं के देखतेहुये अन्तर्द्धान होगये ॥ १८ ॥ व उस समय प्रसन्न होतेहुये दुर्वासाजी जबतक अपने आश्रम को देखें तबतक पातालके

दा ॥ १४ ॥ उपस्थितोमहादेवि सूर्यम्भुवनसाक्षिणम् ॥ सूर्य उवाच ॥ अत्रक्षेत्रेस्वरूपेण स्थातव्यंवचनान्मम ॥ १५ ॥ पापिनांप्राणिनांचात्र रक्षाकार्याप्रयत्नतः ॥ सूर्यभक्ताःसदारक्ष्या ब्राह्मणागृहमेधिनः ॥ १६ ॥ त्वंचापियमुनाचात्र कोटितीर्थेनसंयुता ॥ वसतम्भवसुप्रीतः स्थानेदुर्वाससोद्भवे ॥ १७ ॥ इत्येवमुक्त्वादेवेशस्तत्रदुर्वाससोन्तिकम् ॥ पश्यतांसर्वदेवानामन्तर्द्धानमगात्प्रभुः ॥ १८ ॥ दुर्वासास्तुतदाहृष्टो यावत्पश्यतिस्वाश्रमम् ॥ तावत्पातालमार्गेण यमुनाप्रादुराभवत् ॥ १९ ॥ यमश्चदृष्टस्तत्रैव क्षेत्रमध्येस्वरूपधृक् ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्थंसमभवत्तत्र यमुनोद्भवमुत्तमम् ॥ २० ॥ कुण्डमादित्यतोयाम्ये दुन्दुभेस्तत्रपूर्वतः ॥ क्षेत्रपालोमहादेवि यतोदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे माधवेमासिमानवः ॥ पूजयेद्भक्तियोगेन रविङ्गगनभूषणम् ॥ २२ ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे यःसन्तर्पयतेपितॄन् ॥ दशवर्षाणितस्यैव तृप्तिंयान्तिपितामहाः ॥ २३ ॥ पिण्डदानेनपितॄणां शताष्टम्पुष्टिमावहेत ॥ नरकेतुस्थितानाञ्च मुक्तिर्भू

मार्गसे यमुनाजी प्रकट हुई ॥ १९ ॥ और वहींपर क्षेत्रके मध्यमें स्वरूपधारी यमराजजी को देखा महादेवजी बोले कि इस प्रकार वह उत्तम यमुनाजी से उपजा हुआ ॥ २० ॥ कुण्ड वहां दुन्दुभि के पूर्वओर व सूर्यनारायणजी से दक्षिणमें है व हे महादेवि ! जहां दुन्दुभि के समान शब्दवाले क्षेत्रपालहैं ॥ २१ ॥ वहां वैशाख महीने में महाकुण्ड में नहाकर मनुष्य भक्तिके योगसे आकाश के भूषणरूप सूर्यनारायणजी को पूजै ॥ २२ ॥ उस महाकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य पितरों को भलीभांति तर्पण करता है उसके पितामह दश वर्षोंतक तृप्त होतेहैं ॥ २३ ॥ और पिण्डदान से आठसौ पितर पुष्टिको प्राप्त होते हैं और नरकमें स्थित पितरों की

निरसन्देह मुक्ति होतीहै ॥ २४ ॥ और माघ महीने में शुक्लपक्ष में जो मनको रोकनेवाला पुरुष दुर्वासादित्य को पूजता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाताहै ॥ २५ ॥ और जो प्राणी दुर्वासादित्य के समीप सहस्रनामों को पढ़ता है वह मनुष्य यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि पापसे छूटजाता है ॥ २६ ॥ सब मङ्गलों के मध्यमें माङ्गल्य व सब पापोंको नाश करनेवाले दुर्वासादित्य नामक सूर्यनारायण को कौन नहीं पूजता है ॥ २७ ॥ और वह कोई भय नहीं है कि जो इससे न शान्त होवै निर्धनियोंको ऐश्वर्यदायक व कुष्ठियों को बड़ी उत्तम औषध ॥ २८ ॥ और सब बालकों के ग्रहों व राक्षसों को निवारण करनेवाला व महापापसमूहों को नाशनेवाला

यान्नसंशयः ॥ २४ ॥ माघेमासिसितेपक्षे सप्तम्यांयोयतात्मवान् ॥ दुर्वाससोर्कमभ्यर्चेन्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ २५ ॥ पठेत्सहस्रनाम्नान्तु दुर्वासादित्यसन्निधौ ॥ षण्मासान्मुच्यतेजन्तुर्यद्यपिब्रह्महानरः ॥ २६ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्व पापप्रणाशनम् ॥ दुर्वासादित्यनामानं सूर्यंकोनाभिपूजयेत् ॥ २७ ॥ नतदस्तिभयंकिञ्चिद्यदनेननशाम्यति ॥ भूतिप्रदंदरिद्राणां कुष्ठिनाम्परमौषधम् ॥ २८ ॥ बालानाञ्चैवसर्वेषां ग्रहरक्षोनिवारणम् ॥ महापापौघशमनं दुर्वासादित्यदर्शनम् ॥ २९ ॥ हेमंचतत्रदातव्यं सूर्यमुद्दिश्यभामिनि ॥ ब्राह्मणेवेदसंयुक्ते तेनदत्तामहीभवेत् ॥ ३० ॥ यस्तत्रपूजयेद्देवि क्षेत्रपालञ्चदुन्दुभिम् ॥ सपुत्रपशुमान्धीमाञ्छ्रीमान्भवतिमानवः ॥ ३१ ॥ नभयंजायतेतस्य त्रिविधंवरवर्णिनि ॥ अर्द्धगव्यूतिमात्रन्तु तत्रक्षेत्रंरवेःस्मृतम् ॥ ३२ ॥ नतत्रप्रविशेद्यस्तु सूर्यभक्तिविवर्ज्जितः ॥ इत्येतत्कथितंदेवि माहात्म्यंसूर्यदैवतम् ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यादवस्थलमुत्तमम् ॥ यादवायत्रनष्टावै षट्प

दुर्वासादित्यजी का दर्शन है ॥ २९ ॥ व हे भामिनि ! वहां सूर्यनारायण को उद्देश कर वेदसंयुक्त ब्राह्मण के लिये सुवर्ण देना चाहिये जो ऐसा करता है उसने मानो पृथ्वीको दिया ॥ ३० ॥ हे देवि ! वहांपर जो दुन्दुभि क्षेत्रपाल को पूजता है वह मनुष्य पुत्रवान् पशुमान् बुद्धिमान् व लक्ष्मीवान् होताहै ॥ ३१ ॥ व हे वरवर्णिनि ! उसको तीन प्रकारका भय नहीं होताहै वहां आधा गव्यूतिमात्र याने कोसभर सूर्यनारायणका क्षेत्र कहागयाहै ॥ ३२ ॥ जो सूर्यनारायणकी भक्तिसे रहित होवै वह उस क्षेत्रमें न पैठे हे देवि ! सूर्यदेवतावाला यह माहात्म्य कहागया ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम यादवस्थल के समीप जावै जहां छप्पन

वान् यमराजजी वहां ॥ १३ । १४ ॥ हे महादेवि ! लोकसाक्षी सूर्यनारायण के समीप प्राप्तहुये सूर्यनारायण बोले कि इस क्षेत्रमें मेरे वचन से तुमको स्वरूप से स्थित होना चाहिये ॥ १५ ॥ और पापी प्राणियों की यहा बड़ेयत्न से रक्षा करना चाहिये और सूर्यनारायण के भक्त गृहस्थ ब्राह्मणों की सदैव रक्षा करना चाहिये ॥ १६ ॥ और करोड़ तीर्थों से संयुत यमुनाजी व तुम यहां बसो व दुर्वासाजी से उपजे हुये स्थानमें तुम बहुत प्रसन्न होवो ॥ १७ ॥ दुर्वासाजी के समीप यही कहकर देवेश सूर्यनारायण स्वामी सब देवताओं के देखतेहुये अन्तर्द्धान होगये ॥ १८ ॥ व उस समय प्रसन्न होतेहुये दुर्वासाजी जबतक अपने आश्रम को देखैं तबतक पातालके

दा ॥ १४ ॥ उपस्थितोमहादेवि सूर्यम्भुवनसाक्षिणम् ॥ सूर्य उवाच ॥ अत्रक्षेत्रेस्वरूपेण स्थातव्यंवचनान्मम ॥ १५ ॥ पापिनांप्राणिनांचात्र रक्षाकार्याप्रयत्नतः ॥ सूर्यभक्ताःसदारक्ष्या ब्राह्मणागृहमेधिनः ॥ १६ ॥ त्वंचापियमुनाचात्र कोटितीर्थैनसंयुता ॥ वसतम्भवसुप्रीतः स्थानेदुर्वाससोद्भवे ॥ १७ ॥ इत्येवमुक्त्वादेवेशस्तत्रदुर्वाससोन्तिकम् ॥ पश्यतांसर्वदेवानामन्तर्द्धानमगात्प्रभुः ॥ १८ ॥ दुर्वासास्तुतदाहृष्टो यावत्पश्यतिस्वाश्रमम् ॥ तावत्पातालमार्गेण यमुनाप्रादुराभवत् ॥ १९ ॥ यमश्चदृष्टस्तत्रैव क्षेत्रमध्येस्वरूपधृक् ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्थंसमभवत्तत्र यमुनोद्भवमुत्तमम् ॥ २० ॥ कुण्डमादित्यतोयाम्ये दुन्दुभेस्तत्रपूर्वतः ॥ क्षेत्रपालोमहादेवि यतोदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे माधवेमासिमानवः ॥ पूजयेद्भक्तियोगेन रविङ्गगनभूषणम् ॥ २२ ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे यःसन्तर्पयतेपितॄन् ॥ दशवर्षाणितस्यैव तृप्तियान्तिपितामहाः ॥ २३ ॥ पिण्डदानेनपितॄणां शताष्टम्पुष्टिमावहेत ॥ नरकेतुस्थितानाञ्च मुक्तिर्भू

मार्गसे यमुनाजी प्रकट हुई ॥ १९ ॥ और वहींपर क्षेत्रके मध्यमें स्वरूपधारी यमराजजी को देखा महादेवजी बोले कि इस प्रकार वह उत्तम यमुनाजी से उपजा हुआ ॥ २० ॥ कुण्ड वहां दुन्दुभि के पूर्वओर व सूर्यनारायणजी से दक्षिणमें है व हे महादेवि ! जहा दुन्दुभि के समान शब्दवाले क्षेत्रपालहैं ॥ २१ ॥ वहां वैशाख महीने में महाकुण्ड में नहाकर मनुष्य भक्तिके योगसे आकाश के भूषणरूप सूर्यनारायणजी को पूजै ॥ २२ ॥ उस महाकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य पितरों को भलीभांति तर्पण करता है उसके पितामह दश वर्षोंतक तृप्त होतेहैं ॥ २३ ॥ और पिण्डदान से आठसौ पितर पुष्टिको प्राप्त होते हैं और नरकमें स्थित पितरों की

निरसन्देह मुक्ति होतीहै ॥ २४ ॥ और माघ महीने में शुक्लपक्ष में जो मनको रोंकनेवाला पुरुष दुर्वासादित्य को पूजता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाताहै ॥ २५ ॥ और जो प्राणी दुर्वासादित्य के समीप सहस्रनामों को पढ़ता है वह मनुष्य यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि पापसे छूटजाता है ॥ २६ ॥ सब मङ्गलों के मध्यमें माङ्गल्य व सब पापोंको नाश करनेवाले दुर्वासादित्य नामक सूर्यनारायण को कौन नहीं पूजता है ॥ २७ ॥ और वह कोई भय नहीं है कि जो इससे न शान्त होवै निर्धनियोंको ऐश्वर्यदायक व कुष्ठियों को बड़ी उत्तम औषध ॥ २८ ॥ और सब बालकों के ग्रहों व राक्षसों को निवारण करनेवाला व महापापसमूहों को नाशनेवाला

यान्नसंशयः ॥ २४ ॥ माघेमासिसितेपक्षे सप्तम्यांयोयतात्मवान् ॥ दुर्वाससोर्कमभ्यर्चेन्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ २५ ॥ पठेत्सहस्रनाम्नान्तु दुर्वासादित्यसन्निधौ ॥ षण्मासान्मुच्यतेजन्तुर्यद्यपिब्रह्महानरः ॥ २६ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्व पापप्रणाशनम् ॥ दुर्वासादित्यनामानं सूर्यंकोनाभिपूजयेत् ॥ २७ ॥ नतदस्तिभयंकिञ्चिद्यदनेननशाम्यति ॥ भूतिप्रदंदरिद्राणां कुष्ठिनाम्परमौषधम् ॥ २८ ॥ बालानाञ्चैवसर्वेषां ग्रहरक्षोनिवारणम् ॥ महापापौघशमनं दुर्वासादित्यदर्शनम् ॥ २९ ॥ हेमंचतत्रदातव्यं सूर्यमुद्दिश्यभामिनि ॥ ब्राह्मणेवेदसंयुक्ते तेनदत्तामहीभवेत् ॥ ३० ॥ यस्तत्रपूजयेद्देवि क्षेत्रपालञ्चदुन्दुभिम् ॥ सपुत्रपशुमान्धीमाञ्छ्रीमान्भवतिमानवः ॥ ३१ ॥ नभयंजायतेतस्य त्रिविधंवरवर्णिनि ॥ अर्द्धगव्यूतिमात्रन्तु तत्रक्षेत्रंरवेःस्मृतम् ॥ ३२ ॥ नतत्रप्रविशेद्यस्तु सूर्यभक्तिविवर्जितः ॥ इत्येतत्कथितंदेवि माहात्म्यंसूर्यदैवतम् ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यादवस्थलमुत्तमम् ॥ यादवायत्रनष्टावै षट्प

दुर्वासादित्यजी का दर्शन है ॥ २९ ॥ व हे भामिनि ! वहां सूर्यनारायण को उद्देश कर वेदसंयुक्त ब्राह्मण के लिये सुवर्ण देना चाहिये जो ऐसा करता है उसने मानो पृथ्वीको दिया ॥ ३० ॥ हे देवि ! वहांपर जो दुन्दुभि क्षेत्रपाल को पूजता है वह मनुष्य पुत्रवान् पशुमान् बुद्धिमान् व लक्ष्मीवान् होताहै ॥ ३१ ॥ व हे वरवर्णिनि ! उसको तीन प्रकारका भय नहीं होताहै वहां आधा गव्यूतिमात्र याने कोसभर सूर्यनारायणका क्षेत्र कहागयाहै ॥ ३२ ॥ जो सूर्यनारायणकी भक्तिसे रहित होवै वह उस क्षेत्रमें न पैठे हे देवि ! सूर्यदेवतावाला यह माहात्म्य कहागया ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम यादवस्थल के समीप जावै जहां छप्पन

करोड़ यादव नष्टहुये हैं ॥ ३४ ॥ वहां वज्रने सदैव वज्रेश्वरदेव को आराधन किया है जहां कि दिव्यदृष्टिवाले महर्षियों का आश्रम कुलहै ॥ ३५ ॥ देवीजी बोलीं कि हे भगवन् ! वृष्णियों समेत अन्धक किस प्रकारनष्ट हुये और श्रीकृष्णजीके देखतेहुये महारथी भोज किस प्रकार नष्ट हुयेहैं ॥ ३६ ॥ व हे महादेवजी ! किसने शापित वे वृष्णि व अन्धादिक तथा भोजवीर क्षयको प्राप्तहुये हैं इसको मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि छप्पन करोड़ यादवों का जब विनाश हुआहै तब कालसे प्रेरित उन्होंने आपसमें मुसलसे युद्ध कियाहै ॥ ३८ ॥ द्वारका के बसनेवाले सारणआदिक भोजोंने विश्वामित्र, कण्व और यशस्वी नारदजी को

न्चाशच्चकोटयः ॥ ३४ ॥ तत्रवज्रेश्वरोदेवो वज्रेणाराधितःसदा ॥ यत्रास्तिदिव्यदृष्टीनामृषीणामाश्रमंकुलम् ॥ ३५ ॥ देव्युवाच ॥ कथंविनष्टाभगवन्नन्धकावृष्णिभिःसह॥ पश्यतोवासुदेवस्य भोजाश्चैवमहारथाः॥३६॥ केनाभिशप्तास्तेवीराः क्षयंवृष्ण्यन्धकादयः ॥ भोजाश्चैवमहादेवविस्तरेणवदस्वमे ॥ ३७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ षट्पञ्चाशच्चकोटीनां वृष्णी नांचक्षयोभवत् ॥ अन्योन्यंमुसलेनैव युयुधुःकालचोदिताः ॥ ३८ ॥ विश्वामित्रञ्चकण्वञ्च नारदंचयशस्विनम् ॥ सारणप्रमुखाभोजा ददृशुर्द्वारकौकसः ॥ ३९ ॥ तेवैसाम्बंसमानिन्युर्भूषयित्वास्त्रियंयथा ॥ अब्रुवन्नुपसङ्गम्य दैवदण्ड निपीडिताः ॥ ४० ॥ इयंस्त्रीपुत्रकामाच गर्भिणीदृश्यतेतुया॥ऋषयःसाधुजानीत किमियंजनयिष्यति॥४१॥ इत्युक्तास्ते तदादेवि विप्रलम्भप्रधर्षिताः ॥ यतप्रत्यूचुस्तुमुनयस्तच्छृणुध्वंयथातथम् ॥४२॥ ऋषय ऊचुः ॥ वृष्ण्यन्धकविनाशा य मुसलंघोरमायसम् ॥ वासुदेवस्यतनयःसाम्बोयंजनयिष्यति ॥४३॥ येनयूयंदुर्विनीतान्नृशंसाजातमन्यवः ॥ उच्छेत्ता

देखा ॥ ३९ ॥ और वे स्त्रीकी नाईं भूषितकर साम्बको लाये व दैवके दण्डसे पीड़ित उन्होंने समीप जाकर कहा ॥ ४० ॥ कि यह स्त्री पुत्रको चाहती है जोकि गर्भिणी देख पडती है हे ऋषियो ! भलीभांति जानिये कि यह क्या पैदा करैगी ॥ ४१ ॥ हे देवि ! छलसे धर्षित इस प्रकार कहेहुये उन मुनियोंने उस समय उनसे जो कहा उसको यथायोग्य सुनिये ॥ ४२ ॥ ऋषिलोग बोले कि वृष्णि व अन्धकोंके विनाशके लिये यह श्रीकृष्णका पुत्र साम्ब लोहेकेभयङ्कर मुसलको पैदा करैगा ॥ ४३ ॥

जिससे कि क्रूर व दुर्विनीत तुमलोग क्रोधित होकर बलभद्र व श्रीकृष्णजी को छोडकर सब कुलको नाश करोगे और तुमलोगोंको छोडकर श्रीमान् बलभद्र-देवजी आपही चलेजावैंगे ॥ ४४ ॥ और पृथ्वी में सोतेहुये महाभाग श्रीकृष्णजीको बहेलिया बेधैगा हे देवि ! दुष्टात्मा यादवों से छलेहुये उन मुनियों ने उस समय यह कहा ॥ ४५ ॥ और क्रोधमे लाल लोचनोंवाले मुनियोंने आपसमें देखकरवैसाही कहकर तदनन्तर मुनिलोग श्रीकृष्णजीके समीप आये ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर मधुसूदन श्रीकृष्णजीने ऐसा सुनकर उस समय यादवों से कहा कि हे महाभागो ! मत शोचिये वह वैसाही होनेयोग्य है ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी फिर घरमें

रःकुलंसर्वमृतेरामजनार्दनौ ॥ त्यक्त्वावोयास्यतिश्रीमान्स्वयंदेवोहलायुधः ॥ ४४ ॥ यदाकृष्णंमहाभागं शयानंभुविभे त्स्यति ॥ इत्यूचुस्तेतदादेवि प्रलब्धास्तेदुरात्मभिः ॥ ४५ ॥ मुनयःक्रोधरक्ताक्षाःसमीक्ष्याथपरस्परम् ॥ तथोक्त्वामुनय स्तेतु ततःकेशवमभ्ययुः ॥ ४६ ॥ अथाब्रवीत्तदावृष्णीञ्छ्रुत्वैवंमधुसूदनः ॥ माशोचतमहाभागा भवितव्यंतथेतितत् ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशः प्रविवेशपुनर्गृहान् ॥ कृतान्तमन्यथाकर्तुं नैच्छत्सजगतांप्रभुः ॥ ४८ ॥ श्वोभूतेथततःसाम्बो मुसलंतदसूयत ॥ येनवृष्ण्यन्धककुलेनराभस्मीकृताःकिल ॥ ४९ ॥ वृष्ण्यन्धकविनाशाय यत्कालप्रतिमंमहत् ॥ अ सूतशापजंघोरं तच्चराज्ञेन्यवेदयत ॥ ५० ॥ विषरूपमभूद्राजासूक्ष्मचूर्णमकारयत ॥ अक्षिपन्सागरेतत्र पुरुषाराजशास नात् ॥ ५१ ॥ अघोषयत्स्वनगरेवचनादाहुकस्यच ॥ जनार्दनस्यरामस्यबभ्रोश्चैवमहात्मनः ॥ ५२ ॥ अद्यप्रभृतिसर्वेषांवृ

पैठगये और लोकोंके स्वामी उन श्रीकृष्णजीने मृत्युको अन्यथा करनेको न इच्छा किया ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर प्रभात होनेपर साम्ब ने उस मुसल को पैदा किया कि जिससे वृष्णि व अन्धकों के वंशमें सब पुरुष भस्म करदियेगये ॥ ४९ ॥ वृष्णियों व अन्धकों के विनाशके लिये जो बड़ाभारी व कालके समान था शापसे उपजे हुये उस भयङ्कर मुसल को पैदा किया और उसको राजासे निवेदन किया ॥ ५० ॥ जो कि विषरूप हुआ था उसको राजाने सूक्ष्म चूर्ण कराया और राजाकी आज्ञा से पुरुषों ने उसको उस समुद्र में फेंकदिया ॥ ५१ ॥ व आहुक तथा श्रीकृष्ण व बलभद्र तथा महात्मा बभ्रुके वचन से राजाने अपने नगरमें डुग्गी पिटवाया ॥ ५२ ॥

कि आज से लगा कर सब यादवों व अन्धकों के घरों में सब देशवासियोंको मदिराका आसव न करना चाहिये ॥ ५३ ॥ और यदि ऐसा कोई मनुष्य कहीं प्रकट करैगा वह ऐसा करके बन्धुवों समेत जीता हुआ शूलीपर चढ़ैगा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर सहज कर्म वाले बलभद्र जी की आज्ञा को जानकर सब मनुष्यों ने राजाके भय से नियम किया ॥ ५५ ॥ इस प्रकार यत्न करते हुये अन्धकों समेत यादवों के सब घरों में कालने नित्यही परिक्रमा किया ॥ ५६ ॥ वह पुरुष कराल व विकट तथा मुण्डित व कृष्ण पिङ्गलवर्ण था तथा बढ़नीका महाकेतु किये और गुड़हर के फूलों का कर्णभूषण कियेथा ॥ ५७ ॥ और गिरदान, होरिल व कौवोंसे गहनों को किये

ष्ण्यन्धकगृहेषुच ॥सुरासवोनकर्त्तव्यःसर्वैर्विषयवासिभिः ॥५३ ॥ यश्चवाविदितंकुर्यादेवंकश्चित्कचिन्नरः ॥ सजीवञ्छूलमारोहेदेवंकृत्वासबान्धवः ॥ ५४ ॥ ततोराजभयात्सर्वेनियमंतत्रचक्रिरे॥ नराःशासनमाज्ञाय रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ५५ ॥ एवंप्रयतमानानां वृष्णीनामन्धकैःसह ॥ कालोगृहाणिसर्वाणि परिचक्रामनित्यशः ॥ ५६ ॥ करालोविकटोमुण्डः पुरुषःकृष्णपिङ्गलः ॥ संमार्ज्जनीमहाकेतुर्जपापुष्पावतंसकः ॥ ५७ ॥ कृकलासेनहारीतः काकैश्चकृतभूषणः ॥ गृहाण्यावेक्ष्यवृष्णीनां नादृश्यतपुनःकचित ॥ ५८ ॥ तेसर्वेतुमहेष्वासाःशूरैःशतसहस्रशः ॥ नाशक्नुवंस्तदावेद्धुं सर्वभूतात्ययंसदा ॥ ५९ ॥ उत्पेदिरेमहोत्पाता दारुणाहिदिनेदिने ॥ वृष्ण्यन्धकविनाशाय वायवोलोमहर्षिणः ॥ ६० ॥ विष्वग्ववुस्तथारथ्यां विभिन्नमणिकास्तथा ॥ सुप्तानांददृशुःकेशान्नृणांयुवतयोनिशि ॥ ६१ ॥ चीचीकूचीति वासन्ती सारिकावृष्णिवेश्मसु ॥ अजाःशिवानांचरुतमनुकुर्वन्तिभामिनि ॥ ६२ ॥ पाण्डुरारक्तपादाश्च विहगाःकालप्रे

था वह यादवोंके घरोंको देखकर फिर कहीं नहीं देखपड़ा ॥ ५८ ॥ और बड़े धनुषोंवाले वे सब यादव उस समय सैकडों व हज़ारों बाणोंसे सदैव समस्त प्राणियों को नाशनेवाले उसको बेधनेके लिये न समर्थ हुये ॥५९॥ और यादवों व अन्धकों के विनाशके लिये प्रतिदिन बडेभारी उत्पात उत्पन्न हुये कि लोमोंको खड़े करनेवाले पवन ॥ ६० ॥ सबओरसे चलनेलगे व गांवके भीतरवाले मार्गोंकी मणियां टूटगई और रातमे स्त्रियोंने सोतेहुये पुरुषों के केशोंको देखा ॥ ६१ ॥ व यादवों के घरोंमें सारिका (मैना) चीची कूची ऐसा शब्द करतीहै व हे भामिनि ! बकरी सियारियों के शब्दका अनुकार करती हैं ॥ ६२ ॥ और उस समय श्वेतवर्णवाले तथा लाले

पांववाले कबूतर पक्षी वृष्णियों व अन्धकों के घरोंमें विचरते भये ॥ ६३ ॥ और गौवों में गधा तथा ऊंटिनियोंमें बैल उत्पन्नहुये तथा कुतियोंमें बिलार व नेउलियों में मूश पैदाहुये ॥ ६४ ॥ वैसेही यादवलोग निर्लज्जता समेत पाप करनेलगे और ब्राह्मणों तथा पितरों व देवताओं से वैर करतेभये ॥ ६५ ॥ व गुरुवों का अपमान करते थे परन्तु बलभद्र व श्रीकृष्णजी नहीं करते थे और स्त्रियां पतियों को छलनेलगीं व पुरुष स्त्रियों की वञ्चना करनेलगे ॥ ६६ ॥ और नीली, लाली व मंजीठी रंगकी अपनी ज्वालाओं को अलग २ पैदा करती हुई जलती हुई अग्नि वामओर से घूमती थी ॥ ६७ ॥ और उदय व अस्त समय में सूर्यनारायणजी उलटे होजाते

रिताः ॥ वृष्ण्यन्धकगृहेष्वेवकपोताव्यचरंस्तदा ॥ ६३ ॥ व्यजायन्तखरागोषु वृषाश्चाश्वतरीषुच ॥ शुनीष्वपिबिडाला श्चमूषकानकुलीषुच ॥ ६४ ॥ तथात्रपंतुपापानि कुर्वतेवृष्णयस्तथा ॥ अद्विषन्ब्राह्मणांश्चापि पितृदेवांस्तथैवच ॥ ६५ ॥ गुरूंश्चाप्यवमन्यन्ते नतुरामजनार्द्दनौ ॥ भार्याःपतीन्वञ्चयन्ति पत्नीश्चपुरुषास्तथा ॥ ६६ ॥ विभावसुःप्रज्वलि तो वामंविपरिवर्त्तते ॥ नीललोहितमाञ्जिष्ठान् विसृजन्स्वार्चिषःपृथक् ॥ ६७ ॥ उदयास्तमनेनित्यं पर्यस्तःस्याद्दिवा करः ॥ व्यदृश्यतासकृत्पुम्भिः कबन्धःपरिवारितः ॥ ६८ ॥ महानसेषुसिद्धान्ने संस्कृतेतीवभामिनि ॥ उत्तीर्यमाणेकृम यो दृश्यन्तेचवरानने ॥ ६९ ॥ पुण्याहेवाच्यमानेच पठत्सुचमहात्मसु ॥ अभिधानानिश्रूयन्ते नचादृश्यतकश्चन ॥ ७० ॥ परस्परञ्चनक्षत्रं हन्यमानंपुनःपुनः ॥ ग्रहैरपश्यन्सर्वैस्तेनात्मानन्तुकथञ्चन ॥ ७१ ॥ नादत्तपाकयज्ञञ्च वृ ष्ण्यन्धकपुरस्कृतम् ॥ समन्तात्प्रत्यवासन्त रासभारवनिःस्वनाः ॥ ७२ ॥ एवंपश्यन्हृषीकेशस्सम्प्राप्तान्कालपर्यया

थे और मस्तकरहित पुरुषों से घिरेहुये देखपड़ते थे ॥ ६८ ॥ व हे वरानने, भामिनि ! रसोइयों में सिद्धान्न बहुतही संस्कार करनेपर व उतारने पर कीट देख पड़ते थे ॥ ६९ ॥ और पुण्याह बांचेजाने पर व महात्माओं के पढ़नेपर नाम सुनेजाते थे और कोई नहीं देखपडताथा ॥ ७० ॥ और आपसमें सब ग्रहोंसे बार २ मारेजाते हुये नक्षत्रको यादव देखते थे और अपना को किसी प्रकार नहीं देखते थे ॥ ७१ ॥ व वृष्णियों तथा अन्धकों से पुरस्कृत पाकयज्ञ को देवताओ से नहीं ग्रहण किया

गया और कठोर शब्दवाले गधे सबओरसे बोलनेलगे ॥ ७२ ॥ इस प्रकार कालके दोषोंकी प्राप्त देखतेहुये श्रीकृष्णजी ने विचार किया व तेरहवीं उस अमावस को देखकर यह कहा ॥ ७३ ॥ कि यह तेरहवीं पौर्णमासी फिर राहु से ग्रस्त हुई और उस भारतयुद्ध में यह हमलोगों के नाशके लिये प्राप्तहुई थी ॥ ७४ ॥ उस कालको धिक्कारहै २ ऐसा विचारकर केशीदैत्यको मारनेवाले उन श्रीकृष्णजी ने छब्बीसवां वर्ष प्राप्त माना ॥ ७५ ॥ और नष्ट बन्धुवोंवाली गान्धारीजी जिससे पुत्रोंके शोकसे अत्यन्त संतप्तहै वही यह समीप प्राप्तहुआ ऐसा देखतेहुये श्रीकृष्णजीने ॥ ७६ ॥ उस समय अनेक घरोंमें बड़े कठिन उत्पातों को देखकर उन्होंने प्राप्तहुये

न् ॥ त्रयोदशींह्यमावस्यां तान्दृष्ट्वाप्राब्रवीदिदम् ॥ ७३ ॥ त्रयोदशीपञ्चदशी ग्रस्तेयंराहुणापुनः ॥ तदाचभारतेयु द्धे प्राप्ताचेयंक्षयायनः ॥ ७४ ॥ धिग्धिगित्येवकालन्तं परिचिन्त्यजनार्दनः ॥ मेनेप्राप्तंसषड्विंशं वर्षंकेशिनिषूदनः ॥ ७५ ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्ता गान्धारीहतबान्धवा ॥ एवंपश्यन्हृषीकेशस्तदिदंसमुपस्थितम् ॥ ७६ ॥ इदञ्चसमनु प्राप्तमब्रवीच्चयुधिष्ठिरम् ॥ गृहेष्वनेकेषुतदा दृष्ट्वोत्पातान्सुदारुणान् ॥ ७७ ॥ पुण्यग्रन्थस्यश्रवणाच्छान्तिहोमाद्वि शोधनात ॥ पुण्यतीर्थाभिषेकाच्च नान्यच्छ्रेयोभवेदिति ॥ ७८ ॥ इत्युक्त्वावासुदेवस्तं चिकीर्षुःसत्यमेवच ॥ आज्ञाप यामासतदा तीर्थयात्रामरिन्दमः ॥ ७९ ॥ अघोषयन्तपुरुषास्तत्रकेशवशासनात ॥ तीर्थयात्राप्रभासेवै कार्येतिवरव र्णिनि ॥८०॥ अथारिष्टानिवक्ष्यामि पुरींद्वारावतीम्प्रति ॥ कालीस्त्रीपाण्डुरैर्दन्तैः प्रविश्यनगरींनिशि॥८१॥स्त्रियस्स्वप्ने षुमुष्णन्तिद्वारकाम्प्रतिधावति ॥ अग्निहोत्रनिकेतेषु सुमेध्येषुचवेश्मसु ॥८२॥वृष्ण्यन्धकानखादंश्चस्वप्नेदृष्टाभयान

युधिष्ठिरसे यह कहा ॥ ७७ ॥ कि पवित्र ग्रन्थोंके श्रवण व शान्ति होम तथा विशेषकर शोधन व पवित्र तीर्थोंके स्नानके सिवाय अन्य वस्तुसे कल्याण नहीं होगा ॥७८॥ उन युधिष्ठिरजी से यह कहकर और उसको सत्य करने के लिये चाहतेहुये शत्रुविनाशक श्रीकृष्णजी ने उस समय तीर्थयात्राकी आज्ञा दिया ॥ ७९ ॥ व हे वरव-र्णिनि ! श्रीकृष्णजी की आज्ञासे वहां पुरुषोंने डुग्गी पिटाया कि प्रभासमें तीर्थयात्रा करना चाहिये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर द्वारकापुरी में अशुभों को कहताहूं कि सफ़ेद दांतोंसे उपलक्षित काली स्त्री रातको नगरी में पैठकर ॥ ८१ ॥ स्वप्नोंमें स्त्रियों को चुराती है व द्वारकाके सामने दौड़ती है और अग्निहोत्र स्थानोंमें व पवित्र घरों

म ॥८२॥ स्वप्न में देखेहुये भयङ्कर पुरुष यादवों व अन्धकोंको खातेहैं और युद्धमें मुर्गा भयङ्कर शब्द करते हैं ॥ ८३ ॥ और स्त्रियोंके घरोंमें भयङ्कर दो मस्तकोंवाले तथा चार भुजाओंवाले राक्षस व गुह्यक पैदाहुये ॥ ८४॥ और अलङ्कार,छत्र,ध्वजा व कवच भयानक राक्षसोंसे हरेजातेहुये देखपड़तेथे ॥८५॥ और श्रीकृष्णजीको जो लोहेका वज्र अस्त्र अग्निसे दियागयाथा वह और चक्र उस समय यादवों के देखते हुये आकाशको चलागया ॥ ८६ ॥ और दारुकसारथी के देखतेहुये सूर्यके समान दिव्यरथ चलागया व समुद्रके ऊपरतक वर्तमान होनेवाले बड़े वेगवान् तथा सोने के महाध्वजोंसे उपलक्षित चार मुख्य घोड़े आकाशको चलेगये ॥ ८७।८८ ॥ और

काः ॥ कुर्वन्तिभीषणंनादं कुकुटाश्चापिसंयुगे ॥ ८३ ॥ तथाहिद्विशिरारौद्राश्चतुर्बाहवएवच॥ स्त्रीणांगर्भेष्वजायन्तराक्ष साःगुह्यकास्तथा॥८४॥ अलङ्काराणिछत्राणिध्वजाश्चकवचानिच॥ ह्रियमाणानिदृश्यन्तेरक्षोभिश्चभयानकैः॥८५॥ य च्चाग्निदत्तंकृष्णस्य वज्रमस्त्रमयस्मयम् ॥ दिवमाचक्रमेचक्रं वृष्णीनाम्पश्यतांतदा॥ ८६ ॥ रथंचदिव्यमादित्यं पश्य तोदारुकस्यवै॥ सागरस्योपरिष्टादावर्त्तमानामहाजवाः॥ ८७॥ चतुरोवाजिमुख्याश्च सौवर्णैश्चमहाध्वजैः ॥ ८८॥ तालः सुपर्णश्चमहाध्वजौतौसुपूजितौरामजनार्दनाभ्याम् ॥ उच्चैर्गतावाशुतथादिवानिशंबभूवतुस्तौसुखिनावुभावपि ॥ ८९ ॥ गम्यतांतीर्थयात्रायैप्रोचतुस्तौततःपरम्॥ ततोजिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥९०॥ सान्तःपुरास्तीर्थयात्रां म हान्तश्चनरर्षभाः ॥ ततोजग्मुःपुराद्दृष्ट्वा पेयंवेश्मसुवृष्णयः ॥९१॥ वस्तुनानाविधंचक्रुर्मांसानिविविधानिच ॥ तथायदु षुवृद्धाश्च निर्ययुर्नगराद्बहिः ॥ ९२ ॥ यानैर्हयैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः ॥ ततःप्रभासेन्यवसन् यथोद्दिष्टंयथागृ

ताल व गरुड़ वे दोनों महाध्वज बलभद्र व श्रीकृष्णजी से पूजित होकर शीघ्रही उच्चप्रकारसे चलेगये और वे दोनों भी दिन रात सुखी हुये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर उन दोनोंने कहा कि तीर्थयात्राके लिये जाइये उसके उपरान्त जानेकी इच्छावाले वे यादव व अन्धक महारथी ॥ ९० ॥ महान् श्रेष्ठ पुरुष रनिवास समेत तीर्थयात्राको चले तदनन्तर पहले घरोंमें पीनेयोग्य वस्तुको देखकर यादवोंने ॥ ९१ ॥ अनेक प्रकार की वस्तु व अनेकभांति के मांसोंको किया और यादवोंमें जो वृद्धथे वे नगर से बाहर निकले ॥ ९२ ॥ और वे श्रीमान् तथा तीक्ष्ण तेजवाले यादवलोग घोड़े व हाथी की सवारियों से चले तदनन्तर बहुत भक्ष्य व पीनेयोग्य वस्तुवाले वे यादव

लोग उस समय स्त्रियों समेत घरकी नाईं जैसा बतलाया गयाथा वैसेही प्रभासक्षेत्र में बसतेभये इसके अनन्तर समुद्र के समीप टिकेहुये उन यादवों को सुनकर वे योगज्ञानी ॥ ९३ । ९४ ॥ तथा प्रयोजन में चतुर उद्धवजी उन वीरोंसे पूंछकर चले गये और जातेहुये उन महात्मा उद्धवजी को हाथ जोड़कर प्रणाम कर ॥ ९५ ॥ ब्राह्मण से नाशको जानतेहुये श्रीकृष्णजी ने मना करने की इच्छा न किया तदनन्तर कालसे प्रेरित उन वृष्णि व अन्धक महारथियों ने ॥ ९६ ॥ तेजसे पृथ्वी व आकाश को प्रकाशितकर जातेहुये उद्धवजी को देखा तदनन्तर सैकड़ों तुरुहियों से संयुत तथा नटनर्तकों से युक्त ॥ ९७ ॥ तीक्ष्ण तेजवाले यादवों का महापान

हम् ॥ ९३ ॥ प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारायादवास्तदा ॥ निर्विष्टांस्तान्निशम्याथ समुद्रान्तेसयोगवित् ॥ ९४ ॥ जगामामन्त्र्यतान्वीरानुद्धवोर्थविशारदः ॥ प्रस्थितंतम्महात्मानमभिवाद्यकृताञ्जलिः ॥ ९५ ॥ जानन्विप्राद्विनाशं वै नैच्छद्वारयितुंहरिः ॥ ततःकालप्रेरितास्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ ९६ ॥ अपश्यन्नुद्धवंयान्तं तेजसादीप्यरोदसी ॥ ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्त्तकसङ्कुलम् ॥ ९७ ॥ प्रावर्त्ततमहापानं प्रभासेतिग्मतेजसाम् ॥ कृष्णस्यसन्निधौपीता सुराचकृतवर्मणा ॥ ९८ ॥ अपिबद्युयुधानश्च गदोबभ्रुस्तथैवच ॥ ततःपरिषदोमध्ये युयुधानोमदोत्कटः ॥ ९९ ॥ अब्रवीत्कृतवर्माणमाविहस्यावमन्यच ॥ कःक्षत्रियोमन्यमानःसुप्तान्हन्याच्छिशूनपि ॥ १०० ॥ इत्युक्तेयुयुधानेन पूजयामासतद्वचः ॥ १ ॥ प्रद्युम्नोरथिनांश्रेष्ठो हार्दिक्यमवभर्त्सयन् ॥ ततःपुनरपिक्रुद्धः कृतवर्मातमब्रवीत् ॥ २ ॥ निर्दिशन्निववज्रंसतदासव्येनपाणिना ॥ भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धेप्रायोगतस्त्वया ॥ ३ ॥ व्याधेनेवनृशंसेन कथंवीरेणघा

प्रभासमें वर्तमानहुआ और श्रीकृष्णजी के समीपही कृतवर्माने मदिरा पिया ॥ ९८ ॥ और युयुधान, गद व बभ्रुने पिया तदनन्तर मदसे उग्र युयुधानने सभाके मध्यमें ॥ ९९॥ कृतवर्मासे हँसकर व अपमानकर कहा कि मानताहुआ कौन क्षत्रिय सोतेहुये बालकोंको भी मारैगा ॥ १००॥ युयुधानसे ऐसा कहनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी ने उस वचन की प्रशंसा किया और हार्दिक्य (कृतवर्मा) की निन्दा किया तदनन्तर क्रोधित होतेहुये कृतवर्माने फिर उससे कहा ॥ १।२ ॥ उस समय बायें हाथसे वज्रको दिखाते हुयेसे उन्होंने कहा कि प्रायःयुद्धमें तुम कटी भुजावाले भूरिश्रवाके समीप गये ॥ ३ ॥ और वह क्रूर बहेलिया की नाईं तुमसे मारागया तो

वीर से कैसे मारागया है उसके इस वचनको सुनकर शत्रुवीरोंको मारनेवाले श्रीकृष्णजीने ॥ ४ ॥ क्रोधसमेत दृष्टिसे सबओर तिरछा देखा और सत्राजितकी जो वह बड़ीभारी स्यमन्तकमणि थी ॥ ५ ॥ मधुसूदन श्रीकृष्णजी से सात्यकि को उस कथाको याद कराया श्रीकृष्णजी के कहेहुये उस वचन को सुनकर रोतीहुई सत्यभामा जी क्रोधित होकर श्रीकृष्णजी को क्रोध करातीहुई आई तदनन्तर उठकर उन सात्यकि ने क्रोधसे वचन कहा ॥ ६ । ७ ॥ कि द्रौपदी के पाच पुत्र व धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डी की पदवी को यह कृतवर्मा जावैगा इसको सत्यकी सौगन्द से कहताहू ॥ ८ ॥ जिसने बाणोंसे सोतेहुये द्रौपदी के पुत्रोंको मारा उस दुष्टात्मा पापी कृत-

तितः ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा केशवःपरवीरहा ॥ ४ ॥ तिर्यक्सरोषयादृष्ट्या वीक्षांचक्रेसमन्ततः ॥ मणिःस्यमन्तकश्चैव यःससत्राजितोमहान् ॥ ५ ॥ तांकथांस्मारयामास सात्यकिम्मधुसूदनः ॥ तच्छ्रुत्वाकेशवस्योक्तमगमद्रुदतीसती ॥ ६ ॥ सत्यभामाप्रकुपिता कोपयन्तीजनार्द्दनम् ॥ ततउत्थायसक्रोधात्सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ पञ्चानांद्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ॥ गमिष्यत्येषपदवीं सत्येनैवशपेत्वहम् ॥ ८ ॥ सायकैर्निहतायेन सुप्तास्तेनदुरात्मना ॥ भवत्पितापिनिहतः पापेनकृतवर्मणा ॥ ९ ॥ अतस्तेपुरतःसद्यो हनिष्यामिसुमध्यमे ॥ इत्येवमुक्त्वाखड्गेन केशवस्यसमीपतः ॥ १० ॥ अभिहत्यशिरःक्रुद्धश्चिच्छेदकृतवर्मणः ॥ तथान्यानपिनिघ्नन्तं युयुधानंसमन्ततः ॥ ११ ॥ अन्वधावद्धृषीकेशस्तन्निवारयिषुस्तथा ॥ एकीभूतास्ततस्तत्र कालपर्ययप्रेरिताः ॥ १२ ॥ भोजान्धकामहाराज शैनेयंपर्यवारयन् ॥ तान्दृष्ट्वापततस्तूर्णमभिक्रुद्धोजनार्द्दनः ॥ १३ ॥ नचुक्रोधमहातेजापश्यन्कालस्यपर्ययम् ॥ तेचपानमदाविष्टाश्चो

वर्मानें आपके पिताको भी मारा ॥ ९ ॥ इस लिये हे सुमध्यमे ! तुम्हारे आगे शीघ्र ही समर में इसको मारूंगा यही कहकर श्रीकृष्णजी के समीप क्रोधित होतेहुये सात्यकि ने तलवार मे मारकर कृतवर्मा के मस्तक को काटडाला वैसेही सबओर से अन्य यादवों को मारते हुये युयुधान को ॥ १० । ११ ॥ उसको मना करनेकी इच्छावाले श्रीकृष्णजी पीछे दौड़े तदनन्तर वहां काल के दोषसे प्रेरित इकट्ठा होते हुये ॥ १२ ॥ भोज व अन्धकों ने महाराज शिनिके पुत्रको घेर लिया और शीघ्रही आतेहुये उन क्रोधित यादवों को देखकर बड़े तेजस्वी श्रीकृष्णजी कालके दोषको देखतेहुये व क्रोधित भये और मदिरा पीनेके मदसे संयुत व क्रोधसे प्रेरणा कियेहुये

उन यादवों ने ॥ १३ । १४ ॥ उच्छिष्ट भोजनों से युयुधान को मारा और युयुधान के मारेजानेपर रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्नजी क्रोधित हुये ॥ १५ ॥ और उसीसमय शिनिके पुत्र युयुधानको छुडातेहुये वे सामने दौड़े और वे भोजोंके साथ संयुक्त हुये और सात्यकि अन्धकों के साथ संयुक्त हुये ॥ १६ ॥ और बहुतसे लोगोंको मारकर श्रीकृष्णजीके देखतेहुये वे दोनों वीर मारेगये और शैनेय (युयुधान) व पुत्रको मराहुआ देखकर यदुनन्दन ॥१७॥ श्रीकृष्णजी ने उससमय क्रोधसे एरक नामक तृण विशेषोंकी मुट्ठीको लिया और वह वज्रके समान लोहेका भयङ्कर मुसल होगया ॥ १८ ॥ उससे श्रीकृष्णने भी उनको मारा जोकि उनके सामने स्थितथे तदनन्तर उस

दिताश्चैवमन्युना ॥ १४ ॥ युयुधानमथाभ्यघ्नुरुच्छिष्टभोजनैस्तथा ॥ हन्यमानेतुशैनेये क्रुद्धोरुक्मिणिनन्दनः ॥ १५॥ तदन्तरमथाधावन्मोक्तयिष्यञ्छिनेःसुतम् ॥ सभोजैःसहसंयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैःसह ॥ १६ ॥ बहून्हत्वाहतौ वीरावुभौकृष्णस्यपश्यतः ॥ हतंदृष्ट्वातुशैनेयं पुत्रञ्चयदुनन्दनः ॥ १७ ॥ एरकाणांतदामुष्टिं कोपाज्जग्राहकेशवः ॥ तदभून्मुसलंघोरं वज्रकल्पमयस्मयम् ॥ १८ ॥ जघानतेनकृष्णोपि येतस्यप्रमुखेस्थिताः ॥ ततोन्धकाश्चभोजाश्च शतशोवृष्णयस्तदा ॥ १९ ॥ निघ्नन्तोन्योन्यमाक्रन्दन्मुसलैःकालप्रेरिताः ॥ यस्तेषामेरकांकश्चिज्जग्राहहृषितोन रः ॥ २० ॥ वज्रभूताचसादेवि अदृश्यततदाप्रिये ॥ तृणञ्चमुसलीभूतं सर्वंतत्रत्वदृश्यत ॥ २१ ॥ ब्रह्मदण्डकृतंसर्वंमि तितद्विद्धिभामिनि ॥ अमोघांदेवदेवेशि प्रहरन्तिस्मचैरकाम् ॥ २२ ॥ तद्वज्रभूतंमुसलमदृश्यततदादृढम् ॥ अ वधीत्पितरंपुत्रः पितापुत्रञ्चभामिनि ॥ २३ ॥ सर्वतःपर्यटन्तिस्म योधमानाःपरस्परम् ॥ पतङ्गाइवचाग्नौतु न्यपतन्यदु

समय अन्धक, भोज व सैकड़ों यादव ॥ १९ ॥ कालसे प्रेरित होकर मुसलों से आपसमें मारतेहुये चिल्लातेभये उनके मध्य में प्रसन्न होकर जो कोई एरका (तृणविशेष) को ग्रहण करताभया ॥ २० ॥ हे प्रिये, देवि ! उस समय वह एरका वज्रभूत देखीगई और सब तृण वहां मुसल होगया देखपड़ा ॥ २१ ॥ हे भामिनि ! वह सब ब्रह्मदण्डसे कियागया यह जानिये हे देवदेवेशि ! वे अमोघ एरका को चलाते थे ॥ २२ ॥ और उस समय वह पुष्ट तथा वज्रभूत मुसल देख पड़ता था व हे भामिनि ! पुत्रने पिताको मारा और पिताने पुत्रको मारा ॥ २३ ॥ और आपस में युद्ध करतेहुये वे सबओर घूमते थे व अग्नि में पांखियों की नाईं यदूत्तम गिरते भये ॥ २४ ॥

और मारेजाते हुये किसीकी बुद्धि भागनेमें न हुई और उस कालके दोषको देखते व जानते हुये महाभुज ॥ २५ ॥ वे मधुसूदन श्रीकृष्णजी मुसलको लेकर स्थित हुये साम्ब व चारुदेष्ण को माराहुआ देखकर माधव श्रीकृष्णजीने ॥ २६ ॥ हे भामिनि ! प्रद्युम्न व अनिरुद्धको देखकर तदनन्तर क्रोध किया और पुत्रोंका नाश देखकर वे बहुतही क्रोधसंयुत हुये ॥ २७ ॥ और शार्ङ्गधनुष, चक्र व गदाको धारनेवाले श्रीकृष्णजी ने उससमय निःशेष किया इस प्रकार हे महादेवि ! वहां यादवकुल विनाश हुआहै ॥ २८ ॥ हे देवि ! वह यादवोंकी चिता दोकोसतक कहीगई है और उनके कुलकेसमूह से वह पर्वतरूप होगया ॥ २९ ॥ व उससे भस्म के ढेरका आकार यादव

पुङ्गवाः ॥ २४ ॥ नासीत्पलायनेबुद्धिर्वध्यमानस्यकस्यचित् ॥ तन्तुपश्यन्महाबाहुर्जानन्कालस्यपर्ययम् ॥ २५ ॥ मुसलंसमवष्टभ्य तस्थौसमधुसूदनः ॥ साम्बंचनिहतंदृष्ट्वा चारुदेष्णञ्चमाधवः ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नमनिरुद्धंच ततश्चुक्रोधभामिनि ॥ स्वयंवीक्ष्यसुतानाञ्च भृशंकोपसमन्वितः ॥ २७ ॥ सनिश्शेषंतदाचक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः ॥ एवंतत्रमहादेवि अभवद्यादवंकुलम् ॥ २८ ॥ गव्यूतिमात्रेतद्देवि यादवानांचितास्मृता ॥ तेषांकुलस्यनिचयाच्छैलरूपंबभूवतु ॥ २९ ॥ भस्मपुञ्जनिभाकारं तेनाभूद्यादवस्थलम् ॥ दिव्यरत्नसमायुक्तं मणिमाणिक्यपूरितम् ॥ ३० ॥ यादवानांकिरीटैश्च वेष्टितंगन्धपूरितम् ॥ तेषांरक्षानिमित्तंहि गङ्गागणपतिस्तथा ॥ ३१ ॥ यादवानान्तुसर्वेषां जीवितोवज्रएवहि ॥ वयसोन्तेततःसोपि प्रभासंक्षेत्रमागतः ॥ ३२ ॥ अभिषिच्यसुतंराज्ये नाम्नाख्यातंमहद्बलम् ॥ तेनापिस्थापितंलिङ्गं यादवेन्द्रेणधीमता ॥ ३३ ॥ वज्रेश्वरमितिख्यातं तत्स्मृतंयादवस्थले ॥ तत्रैवसुचिरंकालं तपस्तप्तंसुपुष्कलम् ॥ ३४ ॥ ना

स्थल होगया जोकि दिव्यरत्नों से संयुत व मणियों तथा माणिक्यों से पूरित था ॥ ३० ॥ और यादवों के किरीटों से घिराहुआ व गन्ध से पूरित था उनकी रक्षाके लिये श्रीगङ्गा व गणपति नियुक्त हुये ॥ ३१ ॥ और सब यादवों के मध्यमें वज्रही जीतेरहे तदनन्तर अवस्थाके अन्त में वे भी प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ३२ ॥ नामसे महद्बल ऐसे पुत्रको राज्य पै अभिषेक कर उन बुद्धिमान् यादवेन्द्र वज्रने भी लिंग को स्थापन किया ॥ ३३ ॥ वह यादवस्थल में वज्रेश्वर ऐसा प्रसिद्धहै उसी पाप-

नाशक प्रभासक्षेत्र में बहुत दिनोंतक उन यदूत्तम राजा वज्रने नारदजी के उपदेशसे बहुत तप किया व बडी सिद्धिको पायाहै ॥ ३४ । ३५ ॥ वहींपर जो मनुष्य जाम्बवती नदीके जलमें भलीभांति नहाकर व वज्रेश्वरजी को भलीभांति पूजकर वहां यादवस्थल के समीप ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह गोसहस्र के फलको पाताहै और वहापर सुवर्णदानसमेत शय्या देना चाहिये ॥ ३६ । ३७ ॥ ऐसा करनेपर भलीभांति श्रद्धासंयुत पुरुष यात्राके फलको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवज्रेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

रदस्योपदेशेन प्रभासेपापनाशने ॥ प्राप्तवान्परमांसिद्धिं सराजायादवोत्तमः ॥ ३५ ॥ तत्रैवयोनरस्सम्यक् स्नात्वाजाम्बवतीजले ॥ वज्रेश्वरन्तुसम्पूज्य ब्राह्मणांस्तत्रभोजयेत् ॥ ३६ ॥ यादवस्थलसामीप्ये गोसहस्रफलंलभेत् ॥ शय्याचतत्रदातव्या स्वर्णदानसमन्विता ॥ ३७ ॥ यात्राफलमवाप्नोति सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवज्रेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥ * ॥

शिवउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यांपापनाशिनीम् ॥ सर्वकामप्रदाम्पुण्यां दरिद्रस्यतुनाशिनीम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन कृत्वापिण्डोदकक्रियाम् ॥ प्राप्नुयादक्षयाँल्लोकान् पितॄनुद्धृत्यपापतः ॥ २ ॥ एकंयोभोजयेत्तत्र ब्राह्मणंशंसितव्रतम् ॥ तेनायुतंहिसंख्याकं भोजितंस्याद्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥ तत्रहेमरथोदेयो ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ विधिनाशिवमुद्दिश्य यात्रायुतफलंलभेत ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे हिरण्यानदीमाहात्म्यन्नामैकोनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा हिरण्या नदीकर अहै अतुल परभाव । दोसौ उन्तिसमें सोई कह्यो चरित्र सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पापनाशिनी व सब कामनाओं को देनेवाली तथा दरिद्र को विदारनेवाली पवित्र हिरण्यानदीके समीपजावै ॥ १ ॥ उसमें नहाकर व विधिसे पिण्डोदक कर्मकोकर मनुष्य पितरोंको पापसे उधार कर अक्षयलोकोंको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ वहांपर जो मनुष्य प्रशंसित नियमोंवाले एक ब्राह्मणको भोजन कराताहै उसने दशहज़ार संख्यक ब्राह्मणोंको भोजनकराया ॥ ३ ॥

प्रभास० अ० २२९

वहां शिवजी को उद्देशकर वेदोंके पारगामी ब्राह्मण के लिये विधिसे सोने का रथ देना चाहिये ऐसा करनेपर मनुष्य दश हज़ार यात्राओं के फलको पाताहै ॥ ४ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहिरण्यानदीमाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ ❁ ॥
दो० । थप्यो नागरादित्य जिमि सत्राजित नरपाल । दोसौ तिसवेंमें सोई कह्यो चरित्र रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्या के समीप में स्थित सब रोगोंके नाशनेवाले नागरादित्य ऐसे कहेहुये देवके समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय द्वारकापुरी में सत्राजित राजा हुआ है महाव्रत को उपस्थानकर निघ्न के पुत्र इस बुद्धिमान् महात्माने सूर्यनारायण का आराधन किया तब उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये सूर्यनारायण ने स्यमन्तकमणिको दिया ॥ २ । ३ ॥ उस स्यमन्तक

ईश्वरउवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यापार्श्वतःस्थितम् ॥ नागरादित्यमित्युक्तंसर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १ ॥ पुरासत्राजितोराजा द्वारावत्यांबभूवह ॥ आराधितोभास्करेणदेवेनचमहात्मना ॥ २ ॥ महाव्रतमुपस्थाय निघ्नपुत्रेणधीमता ॥ तस्यतुष्टस्तदाभानुः स्यमन्तकमणिंददौ ॥ ३ ॥ स्यमन्तकःससुस्राव भारानष्टौदिनेदिने ॥ सुवर्णस्यसुशुद्धस्य भक्त्याव्रततपोयुतः ॥ ४ ॥ भूयोपिभानुनाप्रोक्तो वरंब्रूहिवरानने ॥ सचाहदेवदेवेशं भास्करंवारितस्करम् ॥ ५ ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरदानंकरोषिच ॥ अत्रैवचाश्रमेपुण्येनित्यंसन्निहितोभव ॥ ६ ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा सूर्यस्सत्राजितंनृपम् ॥ अभिनन्द्यवरंतस्य तत्रैवादर्शनङ्गतः ॥ ७ ॥ तेनापिनिघ्नपुत्रेण देवदेवस्यभास्वतः ॥ स्थापिताप्रतिमाशुभ्रातत्रैववरवर्णिनि ॥ ८ ॥ शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्ब्रह्मघोषैश्चपुष्कलैः ॥ ततस्तुनगरात्सर्वान्समाहूयद्विजोत्तमान् ॥ ९ ॥ अ

मणिने आठभार शुद्ध सुवर्ण को प्रतिदिन उत्पन्न किया फिर हे वरानने ! भक्तिसमेत व्रत व तपस्या से संयुत सत्राजितसे सूर्यनारायण ने कहा कि वरदान को कहिये उस सत्राजित ने भी जलके तस्कररूप देवदेवेश सूर्यनारायणजीसेकहा ॥ ४ । ५ ॥ कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो और वरदान करतेहो तो इसी पवित्र आश्रम में सदैव स्थित होवो ॥ ६ ॥ ऐसाही होगा यह सत्राजित नृपति से कहकर व उसको वर देकर दिवाकरजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७ ॥ व हे वरवर्णिनि ! उस निघ्नके पुत्र सत्राजित ने भी वहींपर शङ्खों व नगारों के शब्दों से तथा बहुत वेदशब्दों से देवदेव सूर्यनारायण की शुभ्र प्रतिमा को स्थापित किया तदनन्तर नगर से सब

द्विजोत्तमों को बुलाकर ॥ ८ । ९ ॥ सत्राजित ने प्रणत होकर अतिउत्तम जीविका को देकर कहा कि तुमलोगोंके चरणों के प्रसादसे व सूर्यनारायणकी दयासे ॥ १० ॥ उग्र तपस्या साधनकर मैंने मूर्त्तिको स्थापन किया पुरातन समय दशानन (रावण) के पुत्र मेघनाद राक्षसने इन्द्रको जीतकर यहा मूर्त्तिको लायाथा व लङ्का में स्थापित किया उसको लक्ष्मण अनुगामीवाले श्रीरामचन्द्रजीने मारकर ॥ ११ । १२ ॥ उसको मित्रावरुण के पुत्र वसिष्ठजी के लिये दिया और प्रसन्न होकर उन वसिष्ठने भी द्वारकापुरी में मुझको दिया ॥ १३ ॥ और मैंने भी अतिउत्तमक्षेत्रको जानकर उसको यहां स्थापन किया इस विषयमें बहुत कहने से क्या है आपलोगों

ब्रवीत्प्रणतोभूत्वा दत्त्वावृत्तिमनुत्तमाम् ॥ युष्मत्पादप्रसादेन सूर्य्यस्यानुग्रहेणवै ॥ १० ॥ साधयित्वातपश्चोग्रं स्थापिताप्रतिमामया ॥ इन्द्रलोकादिहानीता जित्वाशक्रंसुरारिणा ॥ ११ ॥ दशाननस्यपुत्रेण लङ्कायांस्थापितापुरा ॥ तन्निहत्यतुरामेण लक्ष्मणानुगतेनवै ॥ १२ ॥ मित्रावरुणपुत्राय वसिष्ठायसमर्पिता ॥ तेनापिममतुष्टेन द्वारकायांनिवेदिता ॥ १३ ॥ मयापिस्थापिताचात्र ज्ञात्वाक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ किमत्रबहुनोक्तेन भवद्भिस्सर्वथैवहि ॥ १४ ॥ परिपाल्याप्रयत्नेन यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ यस्माद्युष्माकमादिष्टा प्रतिमेयंमयाशुभा ॥ १५ ॥ नागराणान्तुविप्राणां सोमेशपुरवासिनाम् ॥ तस्मान्नाममयादत्तं नागरादित्यमेवहि ॥ १६ ॥ ब्राह्मणाउवाच ॥ सर्वमेवकरिष्यामो देवस्यपरिपालनम् ॥ यावन्महीचचन्द्रार्कौ यावत्तिष्ठतिसागरः ॥ १७॥ तावत्तेचाक्षयाकीर्त्तिस्स्थानेचास्मिन्भविष्यति ॥ एवमुक्त्वातुतेसर्वे नागराद्विजपुङ्गवाः ॥ १८ ॥ राजाचतुष्टःप्रययौ तदाद्वारवतीम्पुरीम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि तस्मिन्दृ

को सबभांति से ॥ १४ ॥ इस प्रतिमा का बड़ेयत्न से तबतक परिपालन करना चाहिये जबतक कि चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्र रहैं जिसलिये सोमेशनगर के निवासी जो आपलोग नागर ब्राह्मण हैं उनको मैंने इस उत्तममूर्त्ति को आदेश किया इस कारण मैंने नागरादित्यही नाम दिया ॥ १५ । १६ ॥ ब्राह्मण बोले कि सबही सूर्यदेवजी का परिपालन करैंगे व जबतक पृथ्वी, चन्द्रमा व सूर्यहैं और जबतक समुद्र स्थितहै ॥ १७ ॥ तबतक इस स्थानमें तुम्हारा यश अक्षयहोगा ऐसा कहकर वे सब द्विजोत्तम नागर चुप होगये ॥ १८ ॥ और उस समय प्रसन्न होताहुआ सत्राजित राजा द्वारकापुरी को चलागया महादेवजी बोले कि हे देवि ! उसके देखनेपर जो

फल होताहै उसको मैं कहताहूं सुनिये ॥ १९ ॥ कि प्रयागतीर्थ में भलीभांति दिये हुये गोशत का जो फलहै नागरादित्यजीके दर्शनसे मनुष्य उस फलको प्राप्तहोता है ॥ २० ॥ पवित्रकारक प्रभासक्षेत्र में नागरादित्यजी को छोड़कर अन्य कौन निर्धनी व दुःख, शोकसे विकल मनुष्यों को उधारने के लिये समर्थ है ॥ २१ ॥ थोड़ी बुद्धिवाले जो पुरुष बन्ध व कुष्ठादिक दुःखको भजते हैं वे वहा नागरादित्य सूर्यनारायणको वैद्य नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ हिरण्यानदी के जलमें नहाकर जो पुरुष उन नागरादित्यजी को पूजता है वह करोड़ हज़ार कल्पोंतक सूर्यलोक में पूजाजाता है ॥ २३ ॥ शुक्लपक्ष में जब सप्तमी तिथिमें सूर्यनारायणकी संक्रान्ति होतीहै ॥ २४ ॥

ष्टेतुयत्फलम् ॥ १९ ॥ गोशतस्यप्रयागेषु सम्यग्दत्तस्ययत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोति नागरार्कस्यदर्शनात् ॥ २० ॥ दरिद्रान्दुःखशोकार्त्तान् कोन्योस्त्युद्धरणेक्षमः॥ प्रभासेपावनेक्षेत्रे मुक्त्वानागरभास्करम् ॥ २१ ॥ बन्धकुष्ठादिकं दुःखं येभजन्त्यल्पबुद्धयः॥तेनतत्रैवजानन्ति वैद्यंनागरभास्करम् ॥ २२ ॥ स्नात्वाहिरण्यातोयेन यस्तंपूजयतेनरः ॥ कल्पकोटिसहस्राणि सूर्यलोकेमहीयते ॥ २३ ॥ शुक्लपक्षेतुसप्तम्यां यदासंक्रमतेरविः ॥ २४ ॥ महाजयातदानाम सप्तमीभास्करप्रिया ॥ स्नानंदानंजपोहोमः पितृदेवाभिपूजनम् ॥ २५ ॥ सर्वंकोटिगुणंप्रोक्तं भास्करस्यवचोयथा ॥ एकंयोभोजयेत्तत्र ब्राह्मणंसूर्यसन्निधौ ॥ २६ ॥ कोटिभोजंकृतन्तेन इत्याहभगवान्हरिः ॥ एतन्मयातेकथितं पुराणोक्तं वरानने ॥२७॥ यःशृणोतिनरोभक्त्या सगच्छेन्भास्करंपदम् ॥ सूर्यस्यदेविनामानि रहस्यानिशृणुष्वमे ॥२८॥ आसीन्नामसहस्रेण पठस्वैनंशुभंस्तवम् ॥ विकर्त्तनोविवस्वांश्च मार्त्तण्डोभास्करोरविः ॥ २९॥ लोकप्रकाशकःश्रीमाँल्लो

तब महाजया नामक सूर्यनारायण को प्यारी सप्तमी होतीहै उसमें स्नान, दान, जप, होम व पितरों तथा देवताओं का पूजन ॥ २५ ॥ सब कोटिगुना कहागया है जैसा कि सूर्यनारायण का वचन है वहां सूर्यनारायण के समीप जो एक ब्राह्मणको भोजन कराता है ॥ २६ ॥ उसने करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन कराया इसको भगवान् विष्णुजी ने कहाहै हे वरानने ! इस पुराणोक्त चरित्र को मैंने तुमसे कहा ॥ २७ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे इसको सुनता है वह सूर्यनारायण के स्थानको जाता है हे देवि ! सूर्यनारायण के गुप्तनामों को मुझ से सुनिये ॥ २८ ॥ जोकि सहस्रनाम के तुल्य हुआ है इस उत्तम स्तोत्रको पढ़िये विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर,

रवि ॥ २९ ॥ लोकप्रकाशक,श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्त्ता,हर्त्ता, अन्धकारनाशक ॥ ३० ॥ और तपन, तापन, शुचि,सप्ताश्ववाहन, किरण-हस्त, ब्रह्मा व सर्वदेवनमस्कृत ॥ ३१ ॥ यह इक्कीस नामोंवाला नागरार्कजी का स्तोत्र कहागया है, स्तवराज ऐसा प्रसिद्ध यह शरीर की निरोगता व वृद्धिको देने-वालाहै ॥ ३२ ॥ हे महादेवि ! जो मनुष्य सूर्यास्त व सूर्योदय दोनों सन्ध्याओं में इस स्तोत्रसे नागरार्कजीकी स्तुति करताहै वह चाहेहुये फलको पाताहै ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येनागरार्कमाहात्म्यंनामत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥ ⊛ ॥

कचक्षुर्ग्रहेश्वरः॥लोकसाक्षीत्रिलोकेशः कर्त्ताहर्त्तातमिस्रहा ॥ ३० ॥ तपनस्तापनश्चैव शुचिःसप्ताश्ववाहनः ॥ गभस्तिहस्तोब्रह्माच सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ३१ ॥ एकविंशकइत्येष नागरार्कस्तवःस्मृतः ॥ स्तवराजइतिख्यातः शरीरारोग्यवृद्धिदः ॥ ३२ ॥ यश्चानेनमहादेवि द्वेसन्ध्येस्तमनोदये ॥ नागरार्कंतुसंस्तौति सलभेद्वाञ्छितंफलम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्येनागरार्कमाहात्म्यन्नामत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि बलभद्रंसुरेश्वरम् ॥ सुभद्रांश्चतथाकृष्णं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ पूर्वकल्पेमहादेवि देहमत्रात्यजद्धरिः ॥ अस्मिन्कल्पेतचपुनर्गात्रच्छेदमितिस्मृतम् ॥ २ ॥ तत्रयेपूजयिष्यन्ति नागरादित्यसन्निधौ ॥ बलभद्रंसुभद्रांच कृष्णन्तेस्वर्गगामिनः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेबलभद्रसुभद्राश्रीकृष्णमाहात्म्यन्नामैकत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । बलभद्रादिक पूजि जिमि मिलत रुचिर फल जौन । दोसौ इकतिस मेंसुभग चरित कह्यो सब तौन ॥ महादेवजी बोलेकिहे महादेवि ! तदनन्तर सुरेश्वर बलभद्र, सुभद्रा व समस्त पातकों को नाशनेवाले श्रीकृष्णजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! पूर्वकल्प में यहां श्रीकृष्णजीने शरीर को त्याग कियाहै वही इस कल्पमें फिर गात्रोच्छेद ऐसा तीर्थ कहागया है ॥ २ ॥ वहा जो मनुष्य नागरादित्यके समीप बलभद्र, सुभद्रा व श्रीकृष्णजीको पूजैंगे वे स्वर्गगामी होवेंगे ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलभद्रसुभद्राश्रीकृष्णमाहात्म्यंनामैकत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥ ⊛ ॥

दो० । अहै प्रभासक्षेत्र में शेषरूप बलभद्र । दोसौ बत्तिसमें सोई कह्यो चरित्र सुभद्र ॥ महादेवजी बोले कि वहींपर स्थित सुरेश्वर बलभद्रजी को देखै जहां इन्होंने शेषरूप से अपने शरीर को त्याग कियाहै ॥ १ ॥ वहां पातालमार्ग से ये त्रिसङ्गमतीर्थमें गयेहैं हे देवि ! दो गव्यूति याने चारकोस चौड़े इस मित्रवन में ॥ २ ॥ रेवतीसमेत महाप्रभावान् व लिंगाकार शरीर वहां स्थितहै जोकि शेषनाम ऐसा प्रसिद्धहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! जहां पुरातनसमय जरानामक बड़ा वाममार्गी सिद्धहुआहै व विधि को नाशकरनेवाला वह इस स्थानमें भल्लतीर्थ में नाशको प्राप्तहुआहै ॥ ४ ॥ तबसे लगाकर यह कलियुग में शेष ऐसा प्रसिद्धहै चैत्रके शुक्लपक्षमें तेरसि तिथिमें जो पुरुष

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येद्बलभद्रंसुरेश्वरम् ॥ शेषरूपेणयत्रासौ प्रात्यजत्स्वंकलेवरम् ॥ १ ॥ गतस्त्रैसङ्गमे तीर्थे तत्रपातालवर्त्मना ॥ अस्मिन्मित्रवनेदेवि गव्यूतिद्वयविस्तृते ॥ २ ॥ कलेवरंस्थितन्देवि लिङ्गाकारंमहाप्रभम् ॥ रेवत्यासहितंतत्र शेषनामेतिविश्रुतम् ॥ ३ ॥ यत्रसिद्धःपुरादेवि जरानामातिकौलिकः ॥ विधिहन्ताभल्लतीर्थे सोऽस्मिन् स्थानेलयङ्गतः ॥ ४ ॥ ततःप्रभृत्येवकलौ शेषइत्यभिविश्रुतः ॥ चैत्रेशुक्लेत्रयोदश्यां यस्तंपूजयतेनरः ॥ ५ ॥ सपुत्रपौत्रपशुमान् वर्षंक्षेमेणगच्छति ॥ मसूरकादिरोगेभ्यः शिशूनांनभयम्भवेत् ॥ ६ ॥ विस्फोटकादिरोगेभ्यो नभयंजायतेक्वचित् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेमहासिद्धे सिद्धयःस्वेच्छयास्मृताः ॥ ७ ॥ वर्णानांसान्तरालानां सर्वेषांचातिवल्लभः ॥ पशुपुष्पोपहारैश्चबलिदानैःपृथग्विधैः ॥ ८ ॥ सन्तुष्टिंशीघ्रमायाति शेषःशेषाघनाशनः ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशेषमाहात्म्यन्नामद्वात्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उनको पूजताहै ॥ ५ ॥ वह पुत्र, पौत्र व पशुमान् पुरुष वर्षभरतक क्षेमसे प्राप्तहोता है और मसूरिकादिक रोगों से बालकों को भय नहीं होताहै ॥ ६ ॥ व विस्फोटकादिकरोगों से कभी भय नहीं होताहै इस महासिद्धक्षेत्र में अपनी इच्छा से सिद्धियां कहीगई हैं ॥ ७ ॥ और वह मनुष्य अन्तरालसमेत सब जातियों को बहुत प्यारा होता है और पशुओं तथा पुष्पों के उपहारों से व अनेकभांतिके बलिदानोंसे ॥ ८ ॥ सब पापोंको नाशकरनेवाले शेषजी शीघ्रही प्रसन्नता को प्राप्त होतेहैं ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशेषमाहात्म्यंनाम द्वात्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥ ॥

दो० । भई कुमारिका देवि जिमि रुरुदानव वधहेत । दो सौ तेतिसमें सोई बरन्यो हर्षसमेत ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि उसीके पूर्वदिशाके भागमें कुमारिका देवी रक्षाही के लिये स्थित हैं ॥ १ ॥ पुरातनसमय रथन्तर कल्पमें सब लोकोंको भय देनेवाला व बड़े शरीरवाला रुरुनामक महादानव उत्पन्न हुआहै ॥ २ ॥ उससे गन्धर्वोंसमेत देवता डरवायेगये तदनन्तर उसके भयसे डरेहुये सब स्वर्गसे ब्रह्मलोकमें स्थितहुये ॥३॥ तदनन्तर उस दुष्टात्मा रुरुने पृथ्वीमें ब्राह्मणों व तपस्वियों को मारा और जो अपने धर्ममें लगेहुये थे उनको मारा ॥ ४ ॥ उस समय पृथ्वी वेदपाठ व वषट्कार से रहित हुई और रुरु

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यत्रदेवीकुमारिका ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे स्थितारक्षार्थमेवहि ॥ १ ॥ पुरारथन्तरेकल्पे रुरुर्नाममहासुरः ॥ उत्पन्नस्सुमहाकायः सर्वलोकभयापहः ॥ २ ॥ तेनदेवास्सगन्धर्वास्त्रासितास्त्रिदशालयात् ॥ तस्यभीतास्ततस्सर्वे ब्रह्मलोकमधिष्ठिताः ॥ ३ ॥ तथाभूमितलेविप्राञ्जघानाथतपस्विनः ॥ निजघानसदुष्टात्मा येवैधर्मपरायणाः ॥ ४ ॥ निस्स्वाध्यायवषट्कारं तदासीद्धरणीतलम् ॥ नष्टयज्ञोत्सवंसर्वं रुरोर्भयनिपीडितम् ॥ ५ ॥ ततः प्रव्यथितादेवास्तथासर्वेमहर्षयः ॥ समेत्यामन्त्रयन्मन्त्रं वधार्थंतस्यदुर्मतेः ॥ ६ ॥ ततःकायोद्भवःस्वेदः सर्वेषांसमजायत ॥ तेषांचिन्तयतान्देवि निरोधाज्जगृहुश्चतम् ॥ ७ ॥ तत्रकन्यासमुत्पन्ना दिव्याकमललोचना ॥ व्यापयन्तीदिशः सर्वाः श्रुत्वातस्यास्तदागिरः ॥ ८ ॥ आचख्युर्दुःखितास्तस्यास्तेदेवारुरुचेष्टितम् ॥ श्रुत्वाजहाससादेवी देवानांकार्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्याहसन्त्यानिश्चेरुर्वराङ्ग्यःकन्यकाःपुनः ॥ पाशाङ्कुशधरास्सर्वाः पीनश्रोणिपयोधराः ॥ १० ॥ फेत्काररर

के डरसे पीड़ित सब पृथ्वीतल यज्ञोंके उत्साहों से रहित हुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर दुःखित होतेहुये देवता व सब महर्षियोंने इकट्ठा होकर उस दुर्बुद्धि के मारने के लिये सम्मति किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे देवि ! चिन्तवन करतेहुये उन सबोंके शरीर से पसीना उत्पन्न हुआ और उन्होंने उसको रोंकसे ग्रहण किया ॥ ७ ॥ उसमें सब दिशाओं को व्याप्त करतीहुई कमलसरीखे लोचनोंवाली दिव्यकन्या उत्पन्न हुई उस समय उसके वचनोंको सुनकर ॥ ८ ॥ दुःखित होतेहुये उन देवताओंने उससे रुरुके कर्मको कहा और देवताओं के उत्तमकार्यको सुनकर वह देवी हँसती भई ॥ ९ ॥ और हँसती हुई उसके मुखसे फिर कन्यायें निकलीं वे सब फसरी व अंकुशोंको

धारण कियेथीं और उनकी कटि व स्तन मोटे थे ॥ १० ॥ और जो भयङ्कर फेंकरने से चराचर को डरवा रहीथीं उनसमेत वे यशस्विनी देवीजी वहां गईं जहां कि वह रुरुथा ॥ ११ ॥ और उनसमेत सब भयङ्कर युद्ध हुवा दानवोंको नाशकरनेवाले शस्त्रों से वे देवी दिशाओं को प्रकाशित कररही थीं ॥ १२ ॥ व उन कन्याओं के प्रहारों से वे दानव जर्जर कियेगये और क्षणहीभर में वे सब विमुख होगये व कोई गिरादिये गये ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे गिरिजे ! सेनाको नष्ट देखकर रुरुने तामसी नामक मायाको रचा उससे वे शुभदायिनी देवीजी मोहित हुईं ॥ १४ ॥ तदनन्तर वहां अन्धकार होजाने पर उससमय देवीजी ने रुरु दैत्यके हृदयको शक्तिसे भेदन

चनैर्घोरैस्त्रासयन्त्यश्चराचरम् ॥ अन्वगात्सारुरुर्यत्र ताभिस्सार्द्धंयशस्विनी ॥ ११ ॥ अभूत्तत्तुमुलंसर्वं युद्धंघोरंचतैस्सह ॥ शस्त्रैर्दिशोदीपयन्ती दानवानांक्षयङ्करैः ॥ १२ ॥ ताभिस्तेदनुजास्सर्वे प्रहारैर्जर्ज्जरीकृताः ॥ पराङ्मुखाःक्षणेनैव जाताःकेचिन्निपातिताः ॥ १३ ॥ ततोहतबलंदृष्ट्वा रुरुर्मायामथासृजत् ॥ तामसीन्नामगिरिजे तयामुह्यतसाशुभा ॥ १४ ॥ तमोभूतेततस्तत्र देवीदैत्यंतदारुरुम् ॥ शक्त्याविभेदहृदयं ततोमूर्च्छांजगामह ॥ १५ ॥ मुहूर्त्ताल्लब्धसंज्ञोपि ज्ञात्वा तस्याःपराक्रमम् ॥ पलायनेकृतोत्साहः समुद्राभिमुखोययौ ॥ १६ ॥ साथदेवीजगामाथ पृष्ठतोस्यदुरात्मनः ॥ स्तूयमानासुरगणैः किन्नरैस्समहोरगैः ॥ १७ ॥ ततःप्रविश्यजलधिं तन्दृष्ट्वादानवंरुषा ॥ खड्गाग्रेणशिरश्छित्त्वा चर्ममुण्डधराततः ॥ १८ ॥ निश्चक्रामपुनस्तस्मात् प्रभासक्षेत्रमागता ॥ कन्यासैन्येनसंयुक्ता बहुरूपेणभास्वती ॥ १९ ॥ देवैस्तुविस्मितैर्दृष्टा चर्ममुण्डधरावरा ॥ देवा ऊचुः ॥ जयत्वन्देविचामुण्डे जयभूतार्तिहारिणि ॥ २० ॥ जयसर्वगते

किया तदनन्तर वह मूर्च्छाको प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ और थोड़ी देरमें चैतन्यता को पायेहुये वह दैत्य उसके पराक्रम को जानकर भागनेमें उत्साहकर समुद्र के सामने गया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर महानागों समेत किन्नरों व देवगणों से स्तुति कीजातीहुईं वे देवीजी इस दुष्टात्माके पीछेसे गईं ॥ १७ ॥ तदनन्तर समुद्रमें पैठकर उस दानव को देखकर क्रोधसे तलवार के अग्रभाग से मस्तक को काटकर तदनन्तर चर्म व मुण्डको धारण किये देवीजी ॥ १८ ॥ फिर उस समुद्र से निकलीं व प्रभासक्षेत्र को आईं और बहुत भांतिकी कन्याओंवाली सेना से युक्त व प्रकाशवती ॥ १९ ॥ तथा चर्म व मुण्डको धारण किये उत्तम देवीजीको उन विस्मित देवता-

ओंने देखा देवता बोले कि हे प्राणियों के दुःखोंके हरनेवाली ! तुम्हारी जय हो हे चामुण्डे, देवि ! तुम्हारी जय हो ॥ २० ॥ हे सर्वव्यापिनि, देवि ! तुम्हारी जय हो हे कालरात्रि ! तुम्हारे लिये प्रणाम होवै हे भीमरूपे, शिवे,विद्ये ! हे महामाये, हे महोदये ! ॥ २१ ॥ हे महाभोगे, जये, जम्भे, भीमलोचनि ! हे भीमदर्शने ! हे महामाये, विचित्रांगे ! हे गानेयोग्य गीत व नृत्यप्रिये, शुभे ! तुम्हारी जय हो ॥ २२ ॥ हे विकरालि, महाकालि, कालिके, कालरूपिणि ! हे पाशहस्ते, दण्डहस्ते, भीमहस्ते, भयानने ! तुम्हारी जय हो ॥ २३ ॥ हे चामुण्डे, ज्वलमानानने, तीक्ष्णदंष्ट्रे, महाबले ! हे शिवयान स्थिते, प्रेतसमूहसेविते, देवि ! तुम्हारे लिये प्रणाम

देवि कालरात्रिनमोस्तुते ॥ भीमरूपेशिवेविद्ये महामायेमहोदये ॥ २१ ॥ महाभोगेजयेजम्भे भीमाक्षिभीमदर्शने ॥ महामायेविचित्राङ्गे गेयनृत्यप्रियेशुभे ॥ २२ ॥ विकरालिमहाकालि कालिकेकालरूपिणि ॥ पाशहस्तेदण्डहस्ते भीमहस्तेभयानने ॥ २३ ॥ चामुण्डेज्वलमानास्ये तीक्ष्णदंष्ट्रेमहाबले ॥ शिवयानस्थितेदेवि प्रेतसङ्घनिषेविते ॥ २४ ॥ एवंस्तुतातदादेवी सर्वैःशक्रपुरोगमैः ॥ प्रहृष्टवदनाभूत्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ २५ ॥ वरंवृणुध्वंभद्रंवो यद्वोमनसिसंस्थितम् ॥ अहंदास्यामितत्सर्वं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ २६ ॥ देवा ऊचुः ॥ कृतकृत्यास्त्वयाभद्रे दानवस्यनिषूदनात् ॥ स्तोत्रेणानेनयोदेवि त्वांवैस्तौतिवरानने ॥ २७ ॥ तस्यत्वंवरदादेवि भवसर्वगतासती ॥ यश्चेदंशृणुयाद्भक्त्या तवदेवि समुद्भवम् ॥ २८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तस्सयातुपरमाङ्गतिम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेत्वयादेवि स्थितिःकार्यासदाशुभे ॥ २९ ॥

है ॥ २४ ॥ उस समय इन्द्रादिक सब देवताओं से इसप्रकार स्तुति कीहुई देवीजी प्रसन्नमुखी होकर इस वचन को बोलीं ॥ २५ ॥ कि तुमलोगों का कल्याण होवै तुमलोग वरको मांगो जो तुम्हारे मनमें भलीभांति टिका है उस सबको मैं दूंगी यद्यपि दुर्लभ भी होवै ॥ २६ ॥ देवता बोले कि हे भद्रे ! दानव के मारनेसे हमलोग तुमसे कृतार्थ होगये हे वरानने, देवि ! जो मनुष्य इस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुतिकरै ॥ २७ ॥ हे देवि ! सर्वव्यापिनी होतीहुई तुम उसको वरदायिनी होवो हे देवि ! तुमसे उपजेहुये इस चरित्र को जो भक्तिसे सुनै ॥ २८ ॥ सब पापोंसे छूटा हुआ वह उत्तमगति को प्राप्तहोवे व हे शुभे, देवि ! तुमको इस क्षेत्रमें सदैव स्थिति

करना चाहिये ॥ २९ ॥ कुँवार महीने में शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें यहां सावधान होताहुआ जो मनुष्य तुमको पूजे उसका सदैव कल्याण करना चाहिये ॥ ३० ॥
महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! ऐसा कहीहुई वह कुमारिका देवी वहीं स्थितहुई और नष्टशत्रुवोंवाले देवता प्रसन्न होकर स्वर्गको चलेगये ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारिकादेवीमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्याय. ॥ २३३ ॥ ॥ ॥
दो० । क्षेत्र रक्षणहिं कार्य जिमि क्षेत्रपाल इमि नाम । मे दोसौ चौंतीसमें सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर आतोंकी मालासे

अत्रत्वांपूजयेद्यस्तु शुक्लपक्षेसमाहितः ॥ नवम्यामाश्विनेमासि तस्यकार्यंसदाशुभम् ॥ ३० ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमु
क्तामहादेवि तत्रैवनिरताभवत् ॥ देवास्त्रिविष्टपंजग्मुः प्रहृष्टाहतशत्रवः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कु
मारीमाहात्म्यन्नाम त्रयस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥
ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि क्षेत्रपालंमहाप्रभम् ॥ ईशानेचस्थितन्देवमन्त्रमालाविभूषितम् ॥ १ ॥ हिर
ण्यातटमाश्रित्य रक्षार्थंसमुपस्थितम् ॥ तत्रैवहीरकंक्षेत्रं तस्मिन्रक्षांकरोतिसः ॥ २ ॥ कृष्णपक्षेत्रयोदश्यां तत्रतंपूज
येन्नरः ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च तथाबलिनिवेदनैः ॥ ३ ॥ एवंसम्पूजितोदेवः सर्वकामप्रदोभवेत् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपु
राणेप्रभासखण्डेक्षेत्रपालमाहात्म्यन्नाम चतुस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥ * ॥ * ॥

भूषित ईशानकोण में स्थित महाप्रभावान् क्षेत्रपालदेवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि हिरण्यानदी के तटमें आश्रित होकर रक्षाके लिये उपस्थित हैं वहीं पर जो
हीरकक्षेत्र है उसमें वे रक्षा करते हैं ॥ २ ॥ वहां कृष्णपक्षमें तेरसि तिथिमें मनुष्य उन क्षेत्रपालजी को चन्दन व पुष्पों के उपहारों से तथा बलिदानों से पूजन करै ॥
३ ॥ इसप्रकार भलीभांति पूजेहुये वे देव सब कामनाओं के दायक होते हैं ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेत्रपालमा
हात्म्यनामचतुस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰ । चित्रेश्वर लिङ्गहिं यथा थाप्यो तप करि चित्र । दोसौ पैंतिस में सोई वर्णित कथा विचित्र ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्यानदी के किनारे स्थानवाले महापातकों के विनाशक अतिउत्तम चित्रेश्वरजीके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! यमराज के लेखक चित्रने वहां भयङ्कर तप करके लिङ्गको थापन कियाहै ॥ २ ॥ हे देवि ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचित्रेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ❀ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि चित्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ हिरण्यातीरनिलयं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ चित्रेणचमहादेवि लेखकेनयमस्यच ॥ तपःकृत्वामहारौद्रं लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि यमलोकन्नपश्यति ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेचित्रेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रैवाग्रेचसंस्थिताम् ॥ सरस्वत्यास्तटेदेवि पिङ्गांपातकनाशिनीम् ॥ १ ॥ तस्यास्संस्पर्शनाद्देवि रूपवाञ्जायतेनरः ॥ पुरामहर्षयःप्राप्ताः सोमेश्वरदिदृक्षया ॥ २ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य नदीतीरेव्यवस्थिताः ॥ दाक्षिणात्यामहादेवि कृष्णरूपाविरूपकाः ॥ ३ ॥ तत्राश्रमवरेतेच पश्यन्तोरूपमात्मनः ॥ कामवत्सदृशंसर्वे विस्मयंपरमंगताः ॥४॥ ततस्तेसहितास्सर्वेविस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ अत्रस्नात्वावयंसर्वेयतःपिङ्गत्वमागताः ॥५॥

दो॰ । पिङ्गानदी नहाय जिमि भये मुनीश सुरूप । दोसौ छत्तिस माहिं सो कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर वहींपर आगे स्थित सरस्वतीनदीके किनारे पातकोंको नाशकरनेवाली पिङ्गानदीके समीप जावै ॥१॥ हे देवि ! उसके भलीभांति स्पर्श करनेसे मनुष्य रूपवान् होताहै पुरातन समय सोमेशजी के देखनेकी इच्छा से महर्षिलोग प्राप्तहुये ॥ २ ॥ व हे महादेवि ! काले रूपवाले वे दाक्षिणात्य विरूप मुनिलोग प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर नदीके किनारे टिकतेभये ॥ ३ ॥ और उसउत्तम आश्रममें कामदेवके समान अपने रूपको देखतेहुये वे सब बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ तदनन्तर विस्मयसे प्रफुल्लितलोचनों वाले

वे सब इकट्ठा होकर बोले कि जिसलिये इसमें नहाकर हम सब पिङ्गत्वको प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ उसीकारण आजसे लगाकर इसका पिङ्गा नाम होगा और बड़ीभक्ति
से संयुत जो पुरुष इसमें स्नान करैंगे ॥ ६ ॥ उनके वंशमें कोई कुरूपवान् न होगा और इसके दर्शनसे मनुष्य पितृमेधयज्ञ के फलको पावैगा ॥ ७ ॥ और स्नान से
दूना व तर्पणसे चौगुना पुण्यहोगा व जो यहां श्राद्ध करैगा उसको असंख्य फल होगा ॥ ८ ॥ हे वरवर्णिनि ! ऐसा कहकर तदनन्तर उन सब ऋषियोंने नदीतटको
विभाग किया और उन सब मुनिश्रेष्ठों ने ॥ ९ ॥ यज्ञोपवीत के प्रमाणभर सब ओर तीर्थोंको किया ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां

अतःप्रभृतिनामास्यास्ततःपिङ्गीभविष्यति ॥ अत्रस्नानंकरिष्यन्ति येभक्त्यापरयायुताः ॥ ६ ॥ नतेषामन्वयेकश्चिद्भ
विष्यतिकुरूपवान् ॥ दर्शनात्पितृमेधस्य लप्स्यतेमानवःफलम् ॥ ७ ॥ स्नानेनद्विगुणंपुण्यं तर्पणेनचतुर्गुणम् ॥ अ
संख्यातंफलंतस्य योत्रश्राद्धंकरिष्यति ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वाततस्सर्वे ऋषयोवरवर्णिनि ॥ विभेजुस्तेनदीतीरं सर्वेतेमुनि
सत्तमाः ॥ ९ ॥ यज्ञोपवीतमात्राणि चक्रुस्तीर्थानिसर्वशः ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पिङ्गानदी
माहात्म्यन्नामषट्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येत् सूर्यंपापप्रणाशनम् ॥ तथाचपिङ्गांदेवींवै पार्वतीरूपधारिणीम् ॥ १ ॥ तृतीया
यांविशेषेण ह्युपवासोविधीयते ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥ २ ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येच्छुक्रेश्वर

भाषाटीकायांपिङ्गानदीमाहात्म्यंनामषट्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । पिङ्गादेवी दर्शसे मिलत अहै फल जोइ । दोसौ सैंतिस माहिं है कह्यो चरित सब सोइ ॥ महादेवजी बोले कि वहां पै भलीभांति स्थित पापोंको नाशकरने-
वाले सूर्यनारायण को देखै और पार्वती के रूपको धारनेवाली पिङ्गादेवी को देखै ॥ १ ॥ और विशेषकर तीज तिथिमें उपास कियाजाताहै जो मनुष्य ऐसा करताहै

वह सब कामनाओंको पाताहै और धनवान् व पुत्रवान् होताहै ॥ २ ॥ व हे देवि ! वहीं भलीभांति स्थित शुकेश्वर ऐसे प्रसिद्ध शिवजीको देखै उनको देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाताहै ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपिङ्गादेवीमाहात्म्यंनामसप्तत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३७॥

दो० । थाप्यो चतुरानन यथा लिंग नाम ब्रह्मेश । दोसौ अर्तिस माहिं सो कह्यो चरित्र उमेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पर्णादित्यके पश्चिममें सरस्वतीजी के किनारे स्थित ब्रह्मासे पूजित ब्रह्मेशजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! मैं उसकी उत्पत्तिको कहताहूं कि एकमन होकर सुनिये पुरातन समय चार

मितिश्रुतम् ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि मुक्तःस्यात्सर्वपातकैः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पिङ्गादेवीमाहात्म्यन्नामसप्तत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ब्रह्मेशंब्रह्मपूजितम् ॥ सरस्वत्यास्तटेसंस्थं पर्णादित्यस्यपश्चिमे ॥ १ ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ सृजतोब्रह्मणःपूर्वं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ २ ॥ उत्पन्नाभूत्सुरूपाढ्या नारीकमललोचना ॥ कम्बुग्रीवासुकेशान्ता बिम्बोष्ठीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥ गम्भीरनाभिस्सुश्रोणी पीनोन्नतपयोधरा ॥ पूर्णचन्द्रमुखीसातु गूढगुल्फाशुभानना ॥ ४ ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनचपन्नगी ॥ यावद्रूपावरारोहा तादृशीसाऽव्यजायत ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वारूपसम्पन्नां ब्रह्माकामवशोऽभवत् ॥ अथतांप्रार्थयामास रत्यर्थंवरवर्णिनीम् ॥ ६ ॥ अथप्रार्थयतस्तस्य

प्रकार के भूतगण को रचतेहुये ब्रह्मासे ॥ २ ॥ कमलसरीखे लोचनोंवाली व शङ्खके समान ग्रीवा तथा सुन्दर केशोंवाली और बिम्बाफलके समान ओठोंवाली व सूक्ष्म कटिवाली स्वरूप से संयुत कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥ जोकि गहरी नाभिवाली व सुन्दर कटिवाली स्थूल व ऊंचे स्तनोंवाली और पूर्णचन्द्रमाके समानमुखवाली वह गुप्तगंठा (पांवकी गाठि) वाली और सुन्दरमुखी थी ॥ ४ ॥ जैसे रूपवाली वह वरारोहा उत्पन्न हुई वैसी न देवी न गन्धर्विणी न असुरपत्नी न नागिनी थी ॥ ५ ॥ रूपसे संयुत उस स्त्रीको देखकर ब्रह्माजी कामदेवके वश हुये इसके अनन्तर उस उत्तम अङ्गोंवाली स्त्रीसे ब्रह्माने रतिके लिये प्रार्थनाकिया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त

हे महादेवि ! प्रार्थना करतेहुये उन ब्रह्माका उत्तमरूपवाला वह पाचवां मस्तक उस पापसे उसीक्षण गिरपड़ा ॥ ७ ॥ तदनन्तर कन्याके काम से उपजेहुये बड़े पापको जानकर बड़ी घृणासे संयुत ब्रह्माजी प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ८ ॥ जिससे विना तीर्थस्नानके शरीरकी शुद्धि न होगी इसकारण हे वरानने ! सरस्वतीनदीके पवित्रजल में नहायेहुये उन ब्रह्माने ॥ ९ ॥ त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के लिङ्ग को थापन किया तदनन्तर पापरहित होकर फिर अपने घरको चलेगये ॥ १० ॥ सरस्वतीनदीके जलमें नहाकर जो पुरुष उस लिङ्गको देखताहै वह सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोक में पूजाजाता है ॥ ११ ॥ चैत महीने में शुक्लपक्ष की तेरसि में जो

न्यपतत्पञ्चमंशिरः ॥ वररूपंमहादेवि तेनपापेनतत्क्षणात् ॥ ७ ॥ ततोज्ञात्वामहत्पापं दुहितुःकामसम्भवम् ॥ घृण्यापरयायुक्तः प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ ८ ॥ नकायस्यततश्शुद्धिर्विनातीर्थावगाहनात् ॥ सस्नातस्सलिलेपुण्ये सरस्वत्या वरानने ॥ ९ ॥ लिङ्गंप्रस्थापयामास देवदेवस्यशूलिनः ॥ ततोविकल्मषोभूत्वा जगामस्वगृहंपुनः॥ १० ॥ स्नात्वासारस्वतेतोये यस्तल्लिङ्गंप्रपश्यति॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥११॥ चैत्रेशुक्लत्रयोदश्यांयस्तंपश्यतिमानवः ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे ब्रह्मेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवंवैसङ्गमेश्वरम् ॥ गङ्गेश्वरमितिख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तस्यैव पश्चिमेभागे सर्वकामफलप्रदम् ॥ ऋषिरुद्दालकोनाम पुराह्यासीन्महातपाः ॥ २ ॥ सपुरासङ्गमंप्राप्य सर्वपापप्रणाश

मनुष्य उन शिवजी को देखता है वह उत्तम स्थानको प्राप्त होताहै जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांब्रह्मेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि गङ्गेश्वर लिङ्गको थप्यो गङ्गमहरानि । दोसौ उन्तालीस महँ सोई कह्यो बखानि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सङ्गमेश्वरदेवजी के समीप जावै और गङ्गेश्वर ऐसा प्रसिद्ध समस्त पातकों का नाश करनेवाला ॥ १॥ लिङ्ग उसीके पश्चिम भागमें सब कामनाओं के फलको देनेवालाहै पुरातन समय

बड़े तपस्वी उद्दालकनामक ऋषि हुये हैं ॥ २ ॥ उन्होंने पुरातन समय समस्तपापोंके नाशक सरस्वती व पिङ्गाके सङ्गमको प्राप्त होकर पृथ्वीमें तपकिया ॥ ३ ॥ तदनन्तर उन महात्माके अत्यन्त भयङ्कर तप करतेहुये उन महात्माकी भक्तिसे आगे लिङ्ग उत्पन्नहुआ ॥ ४ ॥ इसीसमयमें आकाशवाणी बोलीकि हे महाबाहो,उद्दालक ! तुम मेरे इस वचनको सुनो ॥ ५ ॥ कि आजसे लगाकर यहां सदैव मेरा निवासहोगा जिसलिये सङ्गममें यह उत्तम लिङ्ग उत्पन्नहुआ ॥ ६ ॥ इसकारण इसका सङ्गमेश्वर ऐसा नाम होगा व संसार में प्रसिद्ध सङ्गममें स्नानकरके मनुष्य ॥ ७ ॥ सङ्गमेश्वरजीको देखकर तदनन्तर उत्तमगतिको प्राप्तहोगा महादेवजी बोले कि तदनन्तर उद्दालकजीने निरालस्य होकर दिन रात उन शिवजीको पूजाहै तदनन्तर शरीरके अन्तमें यहवहां गया जहां कि महेशजीहैं तदनन्तर हे महादेवि! सङ्गमेश्वरसे पश्चिम में त्रिलोकमें प्रसिद्ध गङ्गेश्वर ऐसे विख्यात लिंगके समीप जावैहे वरानने! जब समर्थवान् विष्णुजी ने अन्तसमय में अपने शरीर के अभिषेक (स्नान) के लिये श्रीगंगाजीको बुलायाहै तब ऋषियोंसे सेवित व पवित्र उस क्षेत्रको देखकर ॥ ८ । ९ । १० । ११ ॥ व सब कहीं तपस्वियों के आश्रमों तथा लिंगोंसे व्यापित

नम् ॥ सरस्वत्याश्चपिङ्गायास्तपस्तेपेमहीतले ॥ ३ ॥ ततस्तपस्यतोत्यर्थं तपोरौद्रंमहात्मनः ॥ पुरतश्चोत्थितंलिङ्गं भक्त्यातस्यमहात्मनः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ उद्दालकमहाबाहो शृणुष्वैतद्वचोमम ॥ ५ ॥ अद्यप्रभृतिवासोत्र ममनित्यंभविष्यति ॥ यस्मादेतत्समुत्पन्नं सङ्गमेलिङ्गमुत्तमम् ॥ ६ ॥ सङ्गमेश्वरमित्येवंनामचास्यभविष्यति ॥ यत्रस्नानंनरःकृत्वा सङ्गमेलोकविश्रुते ॥ ७ ॥ सङ्गमेश्वरमालोक्य ततोयातिपराङ्गतिम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततस्तंपूजयामास दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ ८ ॥ ततोदेहावसानेसौ गतोयत्रमहेश्वरः ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ९ ॥ गङ्गेश्वरेतिविख्यातं सङ्गमेश्वरपश्चिमे ॥ यदागङ्गासमाहूता विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १० ॥ अन्तकालेभिषेकार्थं स्वकायस्यवरानने ॥ तदादृष्ट्वातुतत्क्षेत्रं पुण्यंऋषिनिषेवितम् ॥ ११ ॥ सर्वत्रव्यापितंलिङ्गैराश्रमैश्चतपस्विनाम् ॥ ततोगङ्गासरिच्छ्रेष्ठा पूर्वसागरगामिनी ॥ १२ ॥ स्थापयामासतल्लिङ्गं शिवभक्तिपरायणा ॥ तन्दृष्ट्वा

देखकर तदनन्तर पूर्वसमुद्र में जानेवाली नदियों में उत्तम गंगाजी ने ॥ १२ ॥ शिवजीकी भक्तिमें परायण होकर उस लिंगको थापन किया हे वरारोहे ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य गंगास्नान के फलको प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ और हज़ार अश्वमेधयज्ञोंके फलको मनुष्य पाताहै ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायां भाषाटीकायांगङ्गेश्वरमाहात्म्यनामैकोनचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो०। थप्यो शङ्करादित्य को जिमि शंकर सुरनाथ। दोसौ चालिस में सोई बरन्यो उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गंगेश्वरके पूर्वमें

तुवरारोहे गङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ १३ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगङ्गेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि शङ्करादित्यमुत्तमम् ॥ गङ्गेश्वरस्यपूर्वेण शङ्करेणप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ षष्ठ्यांचैत्रस्यशुक्लायामेनंयःपूजयिष्यति ॥ गमिष्यतिपरंस्थानं यत्रदेवोदिवाकरः ॥ २ ॥ रक्तचन्दनमिश्रैश्च रक्तपुष्पैस्समाहितः ॥ ताम्रपात्रेसमाधाय अर्घ्यंदास्यतिमानवः ॥ ३ ॥ सयास्यतिपरांसिद्धिं नचयातिदरिद्रताम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रेवरानने ॥ ४ ॥ पूजयेच्छङ्करादित्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे शङ्करादित्यमाहात्म्यन्नामचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥ * ॥ * ॥

शंकरजी से थापेहुये उत्तम शंकरादित्यजी के समीप जावै ॥ १ ॥ चैत महीने की उजेरी छठि तिथिमें जो इनको पूजैगा वह उस उत्तमस्थान को जावैगा जहां कि सूर्यनारायण देवजी हैं ॥ २ ॥ और सावधान होताहुआ मनुष्य लालचन्दन से मिलेहुये लालफूलों से तांबेके पात्रमें धरकर अर्घ्यको देवैगा ॥ ३ ॥ वह उत्तमसिद्धि को प्राप्तहोगा और दरिद्रताको न प्राप्त होगा इसलिये हे वरानने ! सब यत्नसे उस क्षेत्रमें ॥ ४ ॥ सब कामनाओंके फलोंको देनेवाले शङ्करादित्यजी को पूजै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशङ्करादित्यमाहात्म्यंनामचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥ ● ॥

दो॰ । थाप्यो शङ्करनाथ जिमि श्रीसूर्यहु दिननाथ । दोसौ इकतालीस मह सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां त्रिलोक से पूजित शङ्करनाथ ऐसे प्रसिद्ध पापनाशक लिङ्गके समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! वहा बहुत तपकर सूर्यनारायणजीने उस लिंगको थापाहै उन महेश्वरदेवजीको उपवास समेत पूजकर ॥ २ ॥ वहां जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन करावै और श्राद्धकरैव सावधान होकर जो भक्तिसे ब्राह्मण के लिये सुवर्ण व वस्त्रोंको देवै ॥ ३ ॥ वह उत्तमस्थान को प्राप्तहोता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४ ॥इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशङ्करनाथमाहात्म्यंना

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंत्रैलोक्यपूजितम् ॥ तत्रशङ्करनाथेति प्रसिद्धंपापनाशनम् ॥ १ ॥ स्थापितंभानुनादेवि कृत्वातत्रमहातपः ॥ तमर्चयित्वादेवेशं सोपवासोमहेश्वरम् ॥ २ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्रश्राद्धंकुर्याज्जितेन्द्रियः ॥ भक्त्याहिरण्यवासांसिविप्रेदद्यात्समाहितः ॥ ३ ॥ सयातिपरमंस्थानं नात्रकार्याविचारणा ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशङ्करनाथमाहात्म्यन्नामैकचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे ऋषीणांपुण्यकर्मणाम् ॥ १ ॥ तस्मिंस्त्रिनेत्रामत्स्याश्च दृश्यन्तेद्यापिभामिनि ॥ अङ्गिरागौतमोगस्त्यः सुमतिस्सुमुखस्तथा ॥ २ ॥ विश्वामित्रस्स्थूलशिरास्संवर्त्तःप्रतिमर्द्दनः ॥ रैभ्योवृहस्पतिश्चैव च्यवनःकश्यपोभृगुः ॥ ३ ॥ दुर्वासाजमदग्निश्च मार्कण्डेयोथगालवः ॥

मैकचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥ ❀ ॥ ❀ ❀ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀

दो॰ । ऋषितीरथ माहात्म्य जिमि भयो अमित परमान । दोसौ बैयालीस मह सोई कियो बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके पश्चिम भागमें त्रिलोक में प्रसिद्ध पुण्यकर्मवाले ऋषियों के तीर्थके समीप जावै ॥ १ ॥ हे भामिनि ! उसमें तीननेत्रोंवाली मछलियां आजभी देख पड़ती हैं अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, सुमति व सुमुख ॥ २ ॥ विश्वामित्र, स्थूलशिरा, सवर्त व प्रतिमर्दन, रैभ्य, बृहस्पति, च्यवन, कश्यप व भृगु ॥ ३ ॥ दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय

व गालव, उशना, भरद्वाज व यवक्रीत ॥ ४ ॥ स्थूलाक्ष, सकलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृत, नारद व पर्वत ये ऋषिलोग पुत्रों व शिष्योंसमेत ॥ ५ ॥ इस प्रभासक्षेत्र को प्राप्त होकर महात्मा मुनिश्रेष्ठों ने बड़े अद्भुत व अनेक भांति के तपको किया ॥ ६ ॥ इसप्रकार दमसे युक्त वे नियतचित्तवाले ऋषिलोग समाधि से सनातन ब्रह्मलोक को जीतने की इच्छा करते थे ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त हे प्रिये ! किसी समय बड़ीभारी अनावृष्टि हुई उसमें क्षुधासे विकल सब संसार क्लेश में प्राप्तहुआ ॥ ८ ॥ तदनन्तर अन्नरहित इस संसार में उन्होंने अपने जीवकी रक्षा करना चाहा और उस समय क्लेशमें प्राप्त उन मुनियों ने मरे पुत्रको लेकर पकाया ॥ ९ ॥ इस

उशनाथभरद्वाजो यवक्रीतस्तथैवच ॥ ४ ॥ स्थूलाक्षःसकलाक्षश्च कण्वोमेधातिथिःकृतः ॥ नारदःपर्वतश्चैव पुत्रशिष्यैस्समन्वितः ॥ ५ ॥ एतत्क्षेत्रंसमासाद्य प्रभासंमुनिसत्तमाः ॥ तपस्तेपुर्महात्मानो विविधंपरमाद्भुतम् ॥ ६ ॥ एवन्तेनियतात्मानो दमयुक्तास्तपस्विनः ॥ समाधिनाजिगीषन्ति ब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ ७ ॥ अथाभवदनावृष्टिः कदाचिन्महतीप्रिये ॥ कृच्छ्रंप्राप्तोह्यभूत्तत्र सर्वलोकःक्षुधार्दितः ॥ ८ ॥ ततोनिरन्नेलोकेस्मिन्नात्मानन्तेपरीप्सवः ॥ मृतंकुमारमादाय कृच्छ्रेप्राप्तास्तदापचन् ॥ ९ ॥ अथोपरिचरंस्तत्र क्लिश्यमानान्हितान्नृषीन् ॥ दृष्ट्वाराजावृषादर्भिः प्रोवाचेदंवचस्तदा ॥ १० ॥ राजोवाच ॥ प्रतिग्रहोब्राह्मणानां दृष्टावृत्तिरनिन्दिता ॥ तस्मात्प्रतिग्रहंमत्तो गृह्णीध्वंमुनिपुङ्गवाः ॥ ११ ॥ मुद्गान्माषांश्चव्रीहींश्च तथारत्नानिकाञ्चनम् ॥ युष्माकंसम्प्रदास्यामि यच्चान्यदपिदुर्लभम् ॥ १२ ॥ निवर्त्तध्वमितस्सर्वे ऋषयःप्रोचुरञ्जसा ॥ तज्जानन्तःकथंराजन् गृह्णीमस्तेप्रतिग्रहम् ॥ १३ ॥ दशसूनासमश्चक्री दशच

के उपरान्त वहां घूमतेहुये वृषादर्भि राजा उन क्लेशित ऋषियों को देखकर उस समय यह वचनबोले ॥ १० ॥ राजा बोले कि दानलेना ब्राह्मणों की अनिन्दित जीविका देखीगई है इसलिये हे मुनिश्रेष्ठो ! मुझसे दान लीजिये ॥ ११ ॥ मैं तुमलोगों को मूंग, उड़द, धान, रत्न व सुवर्ण तथा जो कुछ दुर्लभ भी होगा उसको दूंगा ॥ १२ ॥ तुम सब यहांसे लौटो ऋषिलोग शीघ्रही बोले कि हे राजन् ! उसको जानतेहुये हमलोग कैसे तुम्हारे प्रतिग्रह को ग्रहणकरैं ॥ १३ ॥ क्योंकि दश वध-

स्थानोंके समान एक कुम्हार होताहै और दश कुम्हारोंके समान एक तेली होताहै ॥ १४ ॥ और दश तेलियोंके बराबर वेश्या होती है व दश वेश्याओंके बराबर राजा होताहै लोभसे मोहित जो ब्राह्मण राजाओं का दानलेता है ॥ १५ ॥ वह तामिस्र आदिक भयङ्कर नरकों में पचता है इसलिये हे राजन्! तुम्हारा कुशल होवै दान समेत जाइये ॥ १६ ॥ इसको अन्यलोगों को दीजिये यह कहकर वे वनको चलेगये इसके उपरान्त राजाकी आज्ञासे वहां मन्त्रीलोगों ने जाकर ॥ १७ ॥ सुवर्णगर्भवाले गूलरों को पृथ्वीमें फेंकदिया हे वरवर्णिनि! अन्य ऋषिलोग उनको ढूंढ़ते थे॥ १८ ॥ परन्तु बहुत गरुवे जानकर अङ्गिराजी बोले कि ये नहीं ग्रहण करनेयोग्य

क्रिसमोध्वजी ॥ १४ ॥ दशध्वजिसमावेश्या दशवेश्यासमोनृपः ॥ योराज्ञांप्रतिगृह्णाति ब्राह्मणोलोभमोहितः ॥ १५ ॥
तामिस्रादिषुघोरेषु नरकेषुसपच्यते ॥ तद्गच्छकुशलंतेस्तु सहदानेनपार्थिव ॥ १६ ॥ अन्येषांदीयतामेतदित्युक्त्वा
तेवनंययुः ॥ अथराज्ञस्समादेशात्तत्रगत्वाचमन्त्रिणः ॥ १७ ॥ उदुम्बराण्यकिरन् हेमगर्भाणिभूतले ॥ अन्येतानि
विचिन्वन्ति ऋषयोवरवर्णिनि ॥ १८ ॥ गुरूनतिविदित्वातु नग्राह्याण्यङ्गिराब्रवीत ॥ १९ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ नस्महेन
स्महेमूढा वयमज्ञानबुद्धयः ॥ हेमानीमानिजानीमः प्रतिबुद्धाःस्मजागृमः ॥ २० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ धर्मार्थसञ्चयोय
स्य द्रव्याणांसचशस्यते ॥ तपस्सञ्चयनाच्चैव विशिष्टोधनसञ्चयः ॥ २१ ॥ त्यजतस्सञ्चयान्सर्वान् दृश्यतेनह्युपद्रवः॥
नहिसञ्चयवान्कश्चिद् दृश्यतेनिरुपद्रवः ॥ २२ ॥ यथायथानगृह्णन्ति ब्राह्मणास्तत्प्रतिग्रहम् ॥ तथातथाप्रभावाच्च ब्र
ह्मतेजस्तुवर्द्धते ॥ २३ ॥ अकिञ्चनत्वंराज्यञ्च तुलयासहतोलने ॥ अकिञ्चनत्वमाधिकं राज्यादपिनसंशयः ॥ २४ ॥

हैं ॥ १९ ॥ अङ्गिराजी बोले कि हमलोग अज्ञानबुद्धिवाले नहीं हैं व मूढ़ नहीं हैं इनसुवर्णके गूलरोंको हमलोग जानतेहैं क्योंकि प्रतिबुद्धहैं व जागतेहैं ॥ २० ॥ वसिष्ठजी बोले कि धर्मके लिये जिसके द्रव्योंका संचय है वह उत्तम है और तपस्याके संचयसे धनका संचय श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ और सब संचयोंको त्याग करतेहुये पुरुषको उपद्रव नहीं देखपड़ताहै और संचयवान् कोई पुरुष उपद्रवरहित नहीं देखपड़ताहै ॥ २२ ॥ ज्यों ज्यों ब्राह्मणलोग उस प्रतिग्रहको नहीं ग्रहण करतेहैं त्यों त्यों प्रभाव

से ब्रह्मतेज बढ़ता है ॥ २३ ॥ अकिञ्चनता और राज्य तराजू से तोलने में राज्य से भी अकिञ्चनता अधिक होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ कश्यपजी बोले कि ब्राह्मण को जो बहुत द्रव्यका इकट्ठा करना है यह अनर्थ है क्योंकि द्रव्य के ऐश्वर्य्य से मोहित ब्राह्मण कल्याण से पृथक् होजाता है ॥ २५ ॥ धन मोह व बहुत शोक तथा अनर्थ के लिये होताहै इसलिये कल्याण को चाहनेवाला पुरुष धनको दूरसे त्याग करै ॥ २६ ॥ और जिसका धन धर्महीं के लिये होवै उसको भी नहीं उत्तम होता है क्योंकि कीचड़के धोने से दूरही से देखना अच्छा है ॥ २७ ॥ भरद्वाज बोले कि वृद्ध पुरुष के केश बुढ़ाजाते हैं और वृद्ध मनुष्य के दांत

कश्यप उवाच ॥ अनर्थोब्राह्मणस्यैष यदर्थनिचयोमहान् ॥ अर्थैश्वर्यविमूढोपि श्रेयसोभ्रश्यतेद्विजः ॥ २५ ॥ अर्थोभवतिमोहाय बहुशोकायचैवहि ॥ तस्मादर्थमनर्थाय श्रेयोर्थीदूरतस्त्यजेत् ॥ २६ ॥ यस्यधर्मार्थमप्येव तस्यापिहिनशस्यते ॥ प्रक्षालनाद्धिपङ्कस्य सुदूरादर्शनंवरम् ॥ २७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ जीर्यन्तिजीर्यतःकेशा दन्ताजीर्यन्तिजीर्यतः ॥ चक्षुःश्रोत्रेचजीर्येते तृष्णैकानिरुपद्रवा ॥ २८ ॥ सूचीसूत्र्यंयथावस्त्रं माजंनान्नविवर्द्धते ॥ तथातृष्णाविरागाय वर्द्धमानानवर्द्धते ॥ २९ ॥ अनन्तपारातृष्णावै तृष्णादुःखप्रदासदा ॥ अधर्मबहुलाचैव तस्मात्तांपरिवर्ज्जयेत् ॥ ३० ॥ गौतम उवाच ॥ सन्तुष्टःकोनशक्नोति सुखेनापिहिवर्त्तितुम् ॥ सर्वेपिद्रव्यलोभेन सङ्कटान्यभिगाहते ॥ ३१ ॥ सर्वत्रसम्पदस्तस्य सन्तुष्टंयस्यमानसम् ॥ उपानद्गूढपादस्य ननुचर्मावृतैवभूः ॥ ३२ ॥ सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं

जीर्ण होजातेहैं और नेत्र व कान जीर्ण होजाते हैं परन्तु एक तृष्णा उपद्रवरहित रहती है ॥ २८ ॥ सूचीसे सीनेयोग्य वस्त्र जैसे धोनेसे नहीं बढ़ता है वैसेही बढ़ती हुई तृष्णा विराग के लिये नहीं बढ़ती है ॥ २९ ॥ और तृष्णाका पार अनन्तहै व तृष्णा सदैव दुःखदायिनी है और बहुत अधर्मोंवाली है इसलिये उस तृष्णा को वर्जित करै ॥ ३० ॥ गौतमजी बोले कि कौन सन्तुष्ट पुरुष सुखसे वर्तमान होने के लिये नहीं समर्थ है और सब पुरुष भी द्रव्यके लोभ से संकटों को भोगते हैं ॥ ३१ ॥ जिसका मन सन्तुष्ट है उसको सब कहीं सम्पदायें हैं क्योंकि पनहीं से छिपे पांववाले पुरुषको पृथ्वीचर्म से आच्छादितही है ॥ ३२ ॥ सन्तोषरूपी अमृत से

तृप्त, शान्तचित्तवाले पुरुषों को जो सुख होता है तृष्णा से उदासीन चित्तवाले धनके लोभी मनुष्योंको कहांसे होगा ॥ ३३ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि कामनाको चाहते हुये पुरुषका यदि वह कार्य सिद्धि होजाताहै तो इसके उपरान्त इस पुरुषको और कार्य फिर वाणकी नाईं वेधताहै ॥ ३४ ॥ कामोंके भोगनेमें कभी काम शान्त नहीं होताहै वरन हव्यसे अग्निकी नाईं फिर भी बढ़ताहै ॥ ३५ ॥ लोभसे कामनाओंका अभिलाष करता हुआ पुरुष सुखको नहीं प्राप्तहोताहै क्योंकिवृक्षकी छायाको प्राप्तहोकर पुरुष सूर्यके तेजको स्पर्शकरताहै ॥ ३६ ॥ चारों समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वीको जो भोगताहै वह राजा कभी नहीं सन्तुष्ट होताहै और न कृतार्थ होताहै ॥ ३७ ॥

शान्तचेतसाम् ॥ कुतस्तद्धनलुब्धानां तृष्णयादीनचेतसाम् ॥ ३३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कामंकामयमानस्य यदि कामस्ससिद्ध्यति ॥ अथैनमपरःकामोभूयोवेधतिबाणवत् ॥ ३४ ॥ नजातुकामःकामानामुपभोगेनशाम्यति ॥ हविषाकृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्द्धते ॥ ३५ ॥ कामानभिलषँल्लोभान् ननरस्सुखमेधते ॥ समालभ्यतरुच्छायां सूर्यतेजःस्पृशेज्जनः ॥ ३६ ॥ चतुस्सागरपर्यन्तां योभुङ्क्तेपृथिवीमिमाम् ॥ कदापिनैवतुष्टःस्यात्सकृतार्थोनपार्थिवः ॥ ३७ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ प्रतिग्रहसमर्थोयस्तपोवर्द्धयतेमहान् ॥ नकरोतितपस्तस्य जायतेचसहस्रधा ॥ ३८ ॥ प्रतिग्रहसमर्थानां निवृत्तानांप्रतिग्रहात् ॥ यएवददतांलोकास्तएवाप्रतिगृह्णताम् ॥ ३९ ॥ अरुन्धत्युवाच ॥ विसतन्तुर्यथानित्यं समन्तान्नालसंस्थितः ॥ तृष्णाचैवंसमाधत्ते तथादेहाश्रितासदा ॥ ४० ॥ यादुस्त्यजादुर्मतिभिर्यानजीर्यतिजीर्यतः ॥ योसौप्राणान्तकोरोगस्तान्तृष्णांत्यजतस्सुखम् ॥ ४१ ॥ चन्द्रमा उवाच ॥ उग्राह्यर्थमयीतृष्णा बिभ्यतीहमहेश्व

जमदग्निजी बोले कि प्रतिग्रहमें समर्थ जो महान् पुरुष तपस्याको बढ़ाताहै और प्रतिग्रह नहीं करताहै उसका तप हज़ारगुना होताहै ॥ ३८ ॥ प्रतिग्रहमें समर्थ होकर प्रतिग्रह से निवृत्त याने प्रतिग्रह न लेनेवाले पुरुषों को वेही लोक होतेहैं जोकि देनेवालोंको होतेहैं ॥ ३९ ॥ अरुन्धतीजी बोलीं कि जैसे कमलकी भँसीड़ का ताग निरन्तर सबओर से कमलकी डांड़ीमें स्थित रहताहै वैसेही सदैव देहमें टिकीहुई तृष्णा स्थित रहती है ॥ ४० ॥ दुर्बुद्धियोंसे जो दुस्त्यजहै और वृद्ध होतेहुये पुरुषकी भी जो तृष्णा नहीं बुढ़ाती है और जो यह प्राणनाशक रोगहै उस तृष्णाको छोड़तेहुये पुरुष को सुखहोताहै ॥ ४१ ॥ चन्द्रमा बोले कि धनमयी तृष्णा उग्र होती है

इसलिये महादेवजी जैसे डरतेहैं वैसेही बड़े बलवान् से दुर्बल की नाईं मैं डरताहूं ॥ ४२ ॥ यवक्रीत बोले कि सदैव धर्ममें लगेहुये विद्वान्लोग जो आचरण करते हैं अपने हितको चाहनेवाले विद्वान् को वही करना चाहिये ॥ ४३ ॥ महादेवजी बोले कि ऐसा कहकर सुवर्णगर्भवाले उन फलों को त्यागकर दृढनियमवाले सब ही ऋषिलोग अन्यत्र चलेगये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे वरवर्णिनि ! घूमतेहुये उन ऋषियोंने सबओर कमलिनियोंसे व्याप्त बड़ेभारी तड़ागको देखा ॥ ४५ ॥ उससमय उस तड़ाग के समीप इन्द्रदेवजी संन्यासियों के सामने आये और उन समेत सब महर्षियों ने उसमें स्नान किया ॥ ४६ ॥ और उसमें स्नानकर भसीड़ों को ग्रहण

रः ॥ बलीयसोदुर्बलवत्तथाचैवबिभेम्यहम् ॥ ४२ ॥ यवक्रीत उवाच ॥ यदाचरन्तिविद्वांसः सदाधर्मपरायणाः ॥ तदेवविदुषाकार्यमात्मनोहितमिच्छता ॥ ४३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वाहेमगर्भाणि त्यक्त्वातानिफलानिच ॥ ऋषयोजग्मुरन्यत्र सर्वएवदृढव्रताः ॥ ४४ ॥ ततस्तेविचरन्तोवै ददृशुस्सुमहत्सरः ॥ पद्मिनीभिस्समाकीर्णं सर्वतोवरवर्णिनि ॥ ४५ ॥ तस्मिन्देवस्तदाप्राप्तःपरिव्राजान्तुसम्मुखम् ॥ तेनैवसहितास्तत्र स्नातास्सर्वेमहर्षयः ॥ ४६ ॥ तत्रावगाहनं कृत्वा गृहीतानिविसानितु ॥ निचाय्यसरसश्चक्रुस्तत्पुण्यजलविक्रियाम् ॥ ४७ ॥ अथोत्तीर्यजलात्तस्मात्तेसमेताःपरस्परम् ॥ विशानितान्यपश्यन्त इदंवचनमब्रुवन् ॥ ४८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ केनक्षुधाभितप्तानामस्माकंपापकर्मणा ॥ विशानितानिसर्वाणिहृतानिचमुनीश्वराः ॥ ४९ ॥ तेशंकमानाश्चान्योन्यंपर्यपृच्छन्द्विजोत्तमाः ॥ चक्रुस्तेशपथान्सर्वे यथान्यायञ्चभामिनि ॥ ५० ॥ कश्यप उवाच ॥ सचापुण्यस्यभवनो न्यासलोपंकरोतुसः ॥ कूटसाक्षित्वमभ्येतु विश

किया व इकट्ठाकर तड़ागके उसपवित्रजलके विकारको किया याने जलक्रीड़ा किया ॥ ४७ ॥ उसके उपरान्त उस जलसे ऊपर निकलकर इकट्ठा होतेहुये वे महर्षिलोग उन कमलके भसीड़ों को न देखतेहुये परस्पर यह वचन बोले ॥ ४८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे मुनीश्वरो ! क्षुधासे सन्तप्त हमलोगोंके उनसब विसोंको किस पापकर्मी ने हरलिया ॥ ४९ ॥ और परस्पर शङ्का करतेहुये उन द्विजोत्तमों ने पूँछा और हे भामिनि ! न्यायपूर्वक उन सबोंने सौगन्द किया ॥ ५० ॥ कश्यपजी बोले कि वह

पापका घरहै और वह धरोहरको लोपकरै और कूटसाक्षिताको प्राप्त होवै कि जिसने विसों (कमलके भँसीड़ों)की चोरी कियाहै ॥ ५१ ॥ वशिष्ठजी बोले कि वह बिन ऋतुसमय में मैथुन को प्राप्तहोवै और दिनको शयन सेवन करै व आपस में वह झूंठ कहै जोकि विसोंकी चोरी करताहै॥ ५२ ॥ भरद्वाजजी बोले कि वह क्रूरहोवै और ऐश्वर्य से अहंकारी होवै व ईर्षावान् तथा पिशुन (चुगुल) होवै जोकि भँसीड़ों की चोरी करताहै ॥ ५३ ॥ जमदग्निजी बोले कि वह दुर्बुद्धि माता व पिता का अपमान करै और उसकी व्याजकी जीविका होवे जोकि विसोंकी चोरी करता है ॥ ५४ ॥ पशुसख बोला कि सदैव जन्म जन्म में वह अन्यकी प्रेष्यता को प्राप्त

स्तैन्यंकरोतियः ॥ ५१ ॥ वशिष्ठ उवाच ॥ अनृतौमैथुनंयातु दिवास्वप्नन्निषेवतु ॥ परस्परंकृतामिथ्या विशस्तैन्यं करोतियः ॥ ५२ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ सनृशंसोभवतुवै समृद्ध्याचाप्यहंकृती ॥ मत्सरीपिशुनश्चैव विशस्तैन्यंकरोति यः ॥ ५३ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ मातरंपितरञ्चैव सोवमन्यतुदुर्मतिः ॥ तस्यवार्द्धुषिवृत्तिःस्याद्विशस्तैन्यंकरोतियः ॥ ५४ ॥ पशुसख उवाच ॥ परस्यप्रेष्यतांयातु सदाजन्मनिजन्मनि ॥ सर्वक्रियाहीनभवेद् विशस्तैन्यंकरोतियः ॥ ५५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इष्टमेतद्द्विजातीनां यस्त्वयाशपथःकृतः ॥ त्वयाकृतंविशस्तैन्यं सर्वेषान्नैवसंशयः ॥ ५६ ॥ पशुसख उवाच ॥ मयास्तेयंकृतंह्यासीद् विशानांचैववैद्विजाः ॥ धर्मंवैश्रोतुकामेन जानीध्वंमांपुरन्दरम् ॥ ५७ ॥ अलोभादक्ष यालोका जितावैमुनिसत्तमाः ॥ प्रार्थयध्वंवरंशुभ्रं सर्वएवह्यसंशयम् ॥ ५८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अत्रागत्यनरोयस्तु त्रि रात्रोपोषितश्शुचिः ॥ कृत्वास्नानंपितॄंस्तर्प्य श्राद्धंकुर्यात्समाहितः ॥ ५९ ॥ सर्वतीर्थोद्भवंपुण्यं तस्यभूयात्पुरन्दर ॥

होवै और सब कार्योंके योग्य न होवै जोकि विसोंकी चोरी करता है ॥ ५५ ॥ ऋषिलोग बोले कि जो तुमने सौगन्दकिया यह ब्राह्मणोंके प्रियहै इससे तुमने हमलोगोंके विसोंकी चोरी कियाहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ पशुसख बोला कि हे ब्राह्मणो ! धर्मके सुनने की इच्छावाले मैंने कमलके भँसीड़ोंकी चोरी कियाहै मुझ को तुमलोग इन्द्र जानो ॥ ५७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! तुमलोगों ने अलोभसे अविनाशी लोकोंको जीतलिया इससे तुम सबलोग निस्सन्देह उत्तम वरदानको मांगो ॥५८॥ ऋषिलोग बोले कि यहां आकर तीन रात्रियों में उपास कियेहुये जो पवित्र मनुष्य सावधान होकर स्नानकर व पितरोंको तर्पण करके श्राद्धकरै ॥ ५९ ॥ हे पुरन्दर !

उसको सब तीर्थोंसे उपजाहुआ पुण्य होवै और वह अधोगति को न प्राप्त होवै वरन देवताओं के साथ आनन्द करै ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीद पालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येऋषितीर्थमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । नन्दादित्यहिं थप्यो जिमि नन्दनाम भूपाल । दोसौ तेंतालीस महँ सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सावधान होताहुआ मनुष्य नन्दादित्यके समीप जावै पुरातन समय वहीं पर अमितबुद्धिवाले नन्दने उनको स्थापन कियाहै ॥ १ ॥ पुरातन समय सब लोकोंको सुख देनेवाला नन्दना-

नाधोगतिमवाप्नोति विबुधैस्सहमोदते ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येऋषितीर्थ माहात्म्यन्नामद्विचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नन्दादित्यंसमाहितः ॥ नन्देनस्थापितंपूर्वं तत्रैवामितबुद्धिना ॥ १ ॥ नन्दोरा जापुराह्यासीत्सर्वलोकसुखप्रदः ॥ नदुर्भिक्षंनवैव्याधिर्नाकालेमरणंनृणाम् ॥ २ ॥ तस्मिञ्छासतिधर्मज्ञे नचावृष्टिकृ तंभयम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पूर्वकर्मानुसारतः ॥ ३ ॥ कुष्ठेनमहताव्याप्तो वैराग्यंपरमङ्गतः ॥ तेनरोगाभिभूतेन दे वदेवोदिवाकरः ॥ ४ ॥ प्रतिष्ठितोनदीतीरे सचरोगादमुच्यत ॥ देव्युवाच ॥ किमसौरोगवान्राजा सार्वभौमोमहीपतिः॥ ५ ॥ तस्यधर्मरतस्यापि कस्माद्रोगसमुद्भवः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंधर्मसदाचारो नन्दराजाप्रतापवान् ॥ ६ ॥ व्यचर न्सर्वलोकान्स विमानवरमास्थितः ॥ विमानंतस्यतुष्टेन दत्तंवैविष्णुनास्वयम् ॥ ७ ॥ काञ्चनंवरवर्णेन नित्यंबर्हिनि

मक राजा हुआहै उस धर्मात्माके राज्य करनेपर न दुर्भिक्ष था न व्याधि थी और न असमय में मनुष्यों की मृत्यु होतीथी और न अवर्षणसे कियाहुआ भय था इसके अनन्तर किसी समय पूर्वकर्मके अनुसार ॥ २ । ३ ॥ बड़े कुष्ठसे व्याप्त वह बड़े वैराग्य को प्राप्तहुआ और रोगसे तिरस्कृत उस राजाने देवदेव सूर्यनारायणजीको ॥ ४ ॥ नदीके किनारे स्थापन किया और वह रोगसे छूटगया देवीजी बोलीं कि यहचक्रवर्ती नृपति क्यों रोगी हुआ ॥ ५ ॥ और धर्ममें तत्पर उस राजाके किसकारण रोगकी उत्पत्ति हुई महादेवजी बोले कि इसप्रकार धर्म व सदाचारवान् नन्दराजा प्रतापी था ॥ ६ ॥ और उत्तम विमान पै बैठाहुआ वह सब लोकोंमें विचरताथा

उसको प्रसन्न होतेहुये विष्णुजीने आपही विमान दियाथा ॥ ७ ॥ जोकि सुवर्णमय व उत्तम रंगसे उपलक्षित व मयूरोंसे शब्दायमानथा किसी समय उसविमान पै बैठकर वह नृपोत्तम देवगणोंसे संयुक्त दिव्य मानसतड़ागको गया ॥ ८ ॥ वहां तड़ागके बीचमें प्राप्त सफेद महाकमलको उसने देखा और उस कमलमें भी रत्नजटित वस्त्रों से आच्छादित व द्विभुज तथा तीक्ष्णतेजवाले अँगूठेकी प्रमाणभर बैठेहुये उत्तम पुरुषको देखा और उसको देखकर सारथीसे कहा कि इस कमलको लाइये ॥ ९।१० ॥ क्योंकि मस्तकसे इसको धारण करताहुआ मैं सबलोगोंके समीप प्रशंसनीय हूंगा इसलिये शीघ्रही लाइये ॥ ११ ॥ हे वरवर्णिनि ! तदनन्तर उस राजा से ऐसा कहा

नादितम् ॥ सकदाचिन्नृपश्रेष्ठो विमानेतत्रसंस्थितः ॥ गतवान्मानसंदिव्यं सरोदेवगणान्वितम् ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्महापद्मं सरोमध्यगतंसितम् ॥ तत्राप्यंगुष्ठमात्रन्तु स्थितम्पुरुषसत्तमम् ॥ ९ ॥ रत्नवासोभिराच्छन्नं द्विभुजंतिग्मतेजसम् ॥ तन्दृष्ट्वासारथिंप्राह पद्ममेतत्समाहर ॥ १० ॥ इदन्तुशिरसाबिभ्रन्सर्वलोकस्यसन्निधौ ॥ श्लाघनीयोभविष्यामि तस्मादाहरमाचिरम् ॥ ११ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन सारथिःप्रविवेशह ॥ गृहीतुमुपचक्राम तत्पद्मंवरवर्णिनि ॥ १२ ॥ स्पृष्टमात्रेतदापद्मेन्धकारस्समपद्यत ॥ तेनस्पृष्टेनपद्मेन ममारसचसारथिः ॥ १३ ॥ कुष्ठीविगतवर्णश्च बलवीर्यविवर्जितः ॥ तथाभूतमथात्मानं दृष्ट्वासपुरुषर्षभः ॥ १४ ॥ तस्थौतत्रैवशोकार्त्तः किमेतदितिचिन्तयन् ॥ तस्यचिन्तयतोधीमानाजगाममहातपाः ॥ १५ ॥ वसिष्ठोब्रह्मपुत्रस्तु सतंपप्रच्छपार्थिवः ॥ एषमेभगवञ्जातो देहस्यास्यविपर्ययः ॥१६॥ कुष्ठरोगाभिभूतात्मा नाहंजीवितुमुत्सहे ॥ उपायंब्रूहिमेब्रह्मन् व्याधितस्यचिकित्सितम् ॥ १७ ॥ उताहोव्रत

हुआ सारथी तड़ागमें पैठगया और उस कमलको लेनेके लिये समीपगया ॥ १२ ॥ उस समय कमलके छूनेहीसे अन्धकार प्राप्तहोगया और उस कमलके स्पर्शकरने से वह सारथी मरगया ॥ १३ ॥ और वह राजा कुष्ठी व रंगहीन तथा बल व प्रभावसे रहित होगया अपना को वैसाहुआ देखकर वह पुरुषोत्तम ॥ १४ ॥ नन्द यह क्या हुआ ऐसा विचारता हुआ शोकसे विकल होकर वहीं स्थित हुआ व उसके चिन्तवन करतेहुये बड़े तपस्वी व बुद्धिमान् ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठजी आये व उनसे उसराजाने पूंछा कि हे भगवन् ! मेरे शरीर का यह विलोम होगया ॥ १५।१६ ॥ इसलिये कुष्ठरोगसे तिरस्कृत देहवाला मैं जीने के लिये उत्साह नहीं करताहूं हे ब्रह्मन् ! मुझ

रोगीके ओषधिरूप यत्नको कहिये ॥ १७ ॥ व्रत व अन्य दान तथा यज्ञको कहिये वसिष्ठजी बोले कि यह ब्रह्मोद्भवनामक कमल तीनों लोकोंमें प्रसिद्धहै ॥ १८ ॥ इस के देखनेहीसे सब देवता देखेहुये होतेहैं हे राजन् ! यह कमल धन्यपुरुषों से देखाजाताहै ॥ १६ ॥ और इसके देखनेपर जो मनुष्य जलमें पैठताहै वह सब शोकोंसे छूटकर मोक्षपदको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ हे नृपेन्द्र ! इसको देखकर तुम्हारेवचनसे तुम्हारा सारथी हरनेके लिये जलमें पैठगया इससे यह मरगया और आपरोग-वान् हुये ॥ २१ ॥ मैंभी ब्रह्माका पुत्रहूं इससे प्रतिदिन आकर परमेश्वर को देखताहूं व फिर तुमने देखाहै ॥ २२ ॥ देवता सदैव इस मनोरथको हृदयमें चाहतेहैं कि

मन्यद्वा दानयज्ञमथापिवा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ एतद्ब्रह्मोद्भवन्नाम पद्मंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १८ ॥ दृष्टमात्रेणचानेन दृष्टास्स्युःसर्वदेवताः ॥ एतद्धिदृश्यतेधन्यैः पद्मकंचापिपार्थिव ॥ १९ ॥ एतस्मिन्दृष्टमात्रेतु योजलंविशतेनरः ॥ सर्वशोकविनिर्मुक्तः पदंनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ २० ॥ एतद्दृष्ट्वातुतेसूतोहर्तुन्तोयंप्रविष्टवान्॥ तववाक्येनराजेन्द्र मृतोसौ रोगवान्भवान् ॥ २१ ॥ ब्रह्मपुत्रोप्यहन्तेन पश्यामिपरमेश्वरम् ॥ अहन्यहनिचागत्य त्वंपुनर्दृष्टवानसि ॥ २२ ॥ वाञ्छन्तिदेवतानित्यमिमंहृदिमनोरथम् ॥ मानसेब्रह्मपद्मन्तु द्रक्ष्यामश्चकदावयम् ॥ २३ ॥ प्राप्स्यामःपरमंब्रह्म यद्गत्वानपुनर्भवेत ॥ इदञ्चकारणंभूयो द्वितीयंशृणुपार्थिव ॥ २४ ॥ कुष्ठञ्चयत्त्वयाप्राप्तं हर्तुकामेनपङ्कजम् ॥ प्रद्योतनस्तुगर्भेस्मिन्स्वयमेवव्यवस्थितः ॥ २५ ॥ तवैषाबुद्धिरभवद् दृष्ट्वैववरपङ्कजम् ॥ धारयामिशिरस्येनं लोकमध्येविभूषणम् ॥ २६ ॥ इदंचिन्तयतःपापमेवंदेवेनदर्शितम् ॥ ततस्सर्वप्रयत्नेन तमाराधयभास्करम् ॥ २७ ॥ प्रसादाद्देवदेव

हमलोग मानसतड़ाग में कब ब्रह्मकमल को देखेंगे ॥ २३ ॥ और परब्रह्मको प्राप्त होवैंगे कि जहां जाकर फिर जन्म नहीं होताहै व हे राजन् ! फिर इसदूसरे कारण को सुनिये ॥ २४ ॥ कि जिससे कमलको हरनेकी इच्छावाले तुमने कुष्ठको पायाहै इस गर्भमें सूर्यनारायणजी आपही टिकेहैं ॥ २५ ॥ और उत्तमकमलको देखहीकर तुम्हारे यह बुद्धि हुई कि संसार के मध्यमें मैं इस भूषण को मस्तक से धारणकरूं ॥ २६ ॥ इसको विचारतेहुये तुमको सूर्यदेवजी ने इसप्रकार पातक दिखलाया इस

कारण सब यत्नसे उन सूर्यनारायण को आराधन करिये ॥ २७ ॥ तो देवदेव सूर्य नारायणकी प्रसन्नतासे तुम कुष्ठसे छूटोगे इसमें सन्देह नहीं है हे नृपेन्द्र ! त्रिलो-
कमें प्रसिद्ध प्रभासक्षेत्र को जाइये ॥ २८ ॥ क्योंकि वहां पृथ्वीमें क्लेशित प्राणियों की शीघ्रही सिद्धि होती है महादेवजी बोले उन वसिष्ठ महात्मा के उस वचन को
सुनकर ॥ २९ ॥ प्रभासक्षेत्रको प्राप्त होकर माहेश्वरीनदी के उत्तम किनारे पै नन्दादित्यजी को थापकर चन्दन, धूप व अनुलेपनों से ॥ ३० ॥ व हे देवि ! छोटे बड़े
पुष्पों से उन शिवजीको पूजन किया व उसके ऊपर प्रसन्न होकर दिननायक बोले कि मैं वरदायकहूं ॥ ३१ ॥ राजा बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! बडे कुष्ठसे व्याप्त मुझको

स्य मोक्ष्यसेनात्रसंशयः ॥ प्रभासंगच्छराजेन्द्र तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ २८ ॥ तत्रसिद्धिर्भवेच्छीघ्रमार्त्तानांप्राणि
नाम्भुवि ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा वसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ २९ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य माहेश्वर्यास्तटेशुभे ॥
नन्दादित्यंप्रतिष्ठाप्य गन्धधूपानुलेपनैः ॥ ३० ॥ पूजयामासतन्देवि पुष्पैरुच्चावचैस्तथा ॥ तस्यतुष्टोदिवानाथो वर
दोहमथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ कुष्ठेनमहताऽव्याप्तं पश्यमांसुरसत्तम ॥ यथायंनाशमायाति तथाकुरुदिवाकर ॥
३२ ॥ सान्निध्यंकुरुदेवेश स्थानेस्मिन्नित्यदाविभो ॥ सूर्य उवाच ॥ नीरोगस्त्वंमहाराज सद्यएवभविष्यसि ॥ ३३ ॥ अत्रये
मांसमागत्य द्रक्ष्यन्तिचनराभुवि ॥ सप्तम्यांरविवारेण यास्यन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ३४ ॥ अत्रमेरविवारेण सान्निध्यंसप्तमीदि
ने ॥ भविष्यतिनसन्देहो गमिष्येत्वंसुखीभव ॥ ३५ ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ नीरोगत्वमवाप्यासौ
कृत्वाराज्यमनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ जगामपरमंस्थानं यत्रदेवोदिवाकरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्स्नात्वाकृत्वाश्राद्धंप्रयत्नतः ॥ ३७ ॥

देखिये हे दिनकरजी ! जिसप्रकार यह नाशको प्राप्त होवै वैसाही कीजिये ॥ ३२ ॥ व हे देवेश विभो ! इस स्थान में सदैव समीपता कीजिये सूर्यनारायणजी
बोले कि हे महाराज ! तुम शीघ्रही नीरोगहोगे ॥ ३३ ॥ यहां आकर पृथ्वीमें जो मनुष्य रविवारसमेत सप्तमी तिथिमें मुझको देखैंगे वे उत्तमगतिको प्राप्त होवैंगे ॥
३४ ॥ यहां रविवार सप्तमी दिनमें मेरी समीपता होगी इसमें सन्देह नहीं है और मैं जाताहूं तुम सुखी होवो ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर सूर्यनारायणजी वहीं अन्तर्द्धान
होगये और यह राजा नीरोगता को प्राप्तहोकर व अतिउत्तम राज्यकर ॥ ३६ ॥ उत्तमस्थान को चलागया जहां कि सूर्यनारायणदेवजी हैं इस तीर्थमें नहाकर व बड़े

वर्गमें मनुष्य श्राद्धकर ॥ ३७ ॥ फिर नन्दादित्यजीको देखकर फिर मनुष्यताको नहीं प्राप्तहोता है वहां वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये कपिला गऊको देवै ॥ ३८ ॥ अथवा दिन रात निवासकर जो घृतका गऊको देताहै उसके पुण्यकी संख्या किसी से नहीं गिनीजासक्ती है ॥ ३९ ॥ हे सुश्रोणि ! ज्वलित किरणोंवाले देवदेव सूर्य-नारायणजीका यही समस्त पातकोंका नाशक माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनन्दादित्यमाहात्म्यंनामत्रिचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

नन्दादित्यंपुनर्दृष्ट्वा नपुनर्मर्त्यतांव्रजेत् ॥ प्रदद्यात्कपिलान्तत्र ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ३८ ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा घृतधेनुमथापिवा ॥ नतस्यगणितुंशक्या सङ्ख्यापुण्यस्यकेनचित् ॥ ३९ ॥ इत्येवंदेवदेवस्य माहात्म्यंदीप्तदीधितेः ॥ कथितंतवसुश्रोणि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे नन्दादित्यमाहात्म्यन्नामत्रिचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नृतकूपमितिस्मृतम् ॥ नन्दादित्यस्यपूर्वेण योजनद्वितयेनतु ॥ १ ॥ पुराबभूवविप्रेन्द्रः सौराष्ट्रविषयेसुधीः ॥ आत्रेयइतिविख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २ ॥ तस्यपुत्रत्रयंजज्ञे ऋतुकालाभिगामिनः ॥ एकोविद्वतमश्चैव नृतापश्चैवभामिनि ॥ ३ ॥ नृतस्तेषांकनिष्ठोवै वेदवेदाङ्गपारगः ॥ सर्वैरेवगुणैर्युक्तो मूर्खौज्येष्ठौबभूवतुः ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य आत्रेयोद्विजसत्तमः ॥ तपःकृत्वातुविपुलं कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ५ ॥ ततस्तै

दो० । यथा द्विजोत्तम नृत रच्यो नृत इमि नामककूप । दोसौ चौवालीस महँ सोई चरित अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर नन्दादित्यके पूर्वमें दो योजन पर नृतकूप ऐसे कहेहुये तीर्थके समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय सौराष्ट्र देशमें वेदों व वेदांगों का पारगामी आत्रेय ऐसा प्रसिद्ध बुद्धिमान् द्विजेन्द्र हुआहै ॥ २ ॥ हे भामिनि ! ऋतुसमयमें स्त्रीसङ्ग करनेवाले उस ब्राह्मणके तीन पुत्र पैदा हुये एक विद्वतम व अन्य नृतापनामक हुआ ॥ ३ ॥ और उनके मध्यमें वेदों व वेदाङ्गोंका जाननेवाला नृतनामक छोटाथा वह सबही गुणोंसे संयुतथा और दोनों बड़े मूर्ख हुयेहैं ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय द्विजोत्तम आत्रेय बहुत तपस्या

कर मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर उसका जो छोटा पुत्र था उनके मध्यमें बड़ा गुणवान् वही नृतनामक राजा हुआ और उसने राज्यकी धुरीको आकर्षण किया ॥ ६ ॥ व उसके यह बुद्धि उत्पन्नहुई कि मैं किसप्रकार यज्ञ करूं और उसने यज्ञकर्म में अधिष्ठित द्विजोत्तमोंको निमन्त्रण कर ॥ ७ ॥ व इन्द्रादिक सब देवताओं को विधिपूर्वक आवाहन कर वह ब्राह्मणोत्तमों की दक्षिणाके लिये परदेश को चला गया ॥ ८ ॥ दोनों बड़े भाइयों को लेकर नृत गौवों के लिये चला और जिस जिसके घरमें वह जाताथा उसके पीछे वे दोनों भाई जाते थे ॥ ९ ॥ और वहां २ उसने उत्तम पूजन व बहुतसी गाइयों को पाया इसप्रकार उस समय गो-

षांनृतोराजा बभूवगुणवत्तरः ॥ धुरमाकर्षयामास पुत्रस्तस्यचयोलघुः ॥ ६ ॥ तस्यबुद्धिस्समुत्पन्ना कथंयज्ञंकरोम्यहम् ॥ सनिमन्त्र्यद्विजश्रेष्ठान् यज्ञकर्मण्यधिष्ठितान् ॥ ७ ॥ इन्द्रादींश्चसुरान्सर्वानावाह्यविधिपूर्वकम् ॥ दक्षिणार्थंद्विजेन्द्राणां प्रवासंचजगामह ॥ ८ ॥ गृहीत्वाभ्रातरौज्येष्ठौ गवार्थंप्रस्थितोनृतः ॥ यस्ययस्यगृहेयाति पृष्ठतोभ्रातरौचतौ ॥ ९ ॥ तत्रतत्रपरांपूजां लेभेगावश्चपुष्कलाः ॥ एवंसगोधनंप्राप्य भ्रातृभ्यांसहितस्तदा ॥ १० ॥ गृहायप्रतिदेवेशि निवृत्तिपरमाङ्गतः ॥ नृतस्ताभ्यांपुरोयाति पृष्ठतोभ्रातरौचतौ ॥ ११ ॥ गोधनंचानयन्तस्ते प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ अथ तंगोधनंदृष्ट्वा भूरिदानार्थमाहृतम् ॥ १२ ॥ ज्येष्ठयोस्त्रितयेचेति पापामतिरजायत ॥ परस्परमूचतुस्तौ भ्रातरौदुष्टचेतौ ॥ १३ ॥ नृतोयज्ञेषुकुशलो वेदेषुकुशलस्तथा ॥ मान्यःपूज्यश्चसर्वेषामावांमूर्खौनिरर्थकौ ॥ १४ ॥ एतद्धिगोधनंसर्वं नृतोदास्यतिसम्मुखे ॥ अस्माकंपितुरर्थेन यदाप्तन्तत्समम्भवेत् ॥ १५ ॥ तस्मादत्रैवयुक्तोस्य वधोवैनृत

धन को पाकर भाइयों समेत वह ॥ १० ॥ हे देवेशि ! घरके सामने उत्तम निवृत्तिको प्राप्तहुआ याने लौटा नृत उन दोनोंसे आगे जाताथा और पीछे से वे दोनों भाई जातेथे ॥ ११ ॥ और गोधनको लातेहुये वे प्रभासक्षेत्रको आये इसकेअनन्तर दानकेलिये लायेहुये उस बहुत गोधनको देखकर ॥१२॥ तीसरेमें दोनों जेठ भाइयोंकी यह पापबुद्धि हुई और दुष्टचित्तवाले वे भाई परस्पर बोले ॥ १३ ॥ कि नृत यज्ञोंमें प्रवीण व वेदों में चतुर है और सबोंके मध्यमें मानने योग्य व पूजनीय है व हम तुम दोनों मूर्ख व निरर्थक हैं ॥ १४ ॥ इस सब गोधन को नृत उत्तमयज्ञ में देवैगा और पिताके धनसे जो मिलाहै वह हमलोगों को तुल्य होगा ॥ १५ ॥

इसलिये यज्ञकरनेवाले नृतका यहीं वधयोग्य है इसप्रकार निश्चयकर वे दोनों भाई चले ॥ १६ ॥ और विकल्परहित व महाबुद्धिमान् नृत आगे जाताथा और आगे अत्यन्त भयङ्कर आकारवाला व्याघ्र उठताभया ॥ १७ ॥ हे देवि ! मुखको फैलाये व भयदायक वह अद्भुत शब्द करताथा उसके शब्दसे वे गाइयां डरकर दशोदिशाओं को चलीगईं ॥ १८ ॥ और उस स्थानमें बड़ा भयङ्कर अन्धकूप होगया एकओर कठोर व्याघ्र व अन्यत्र दारुण कूप था ॥ १९ ॥ इसको देखकरभयसे ऊबेहुये सब भाई भगगये इसके अनन्तर हे भामिनि ! कूपके विषमतटको प्राप्तहोकर ॥ २० ॥ वहां अद्भुत व्याघ्र खड़ा होगया तदनन्तर उनलोगों ने जानेके लिये मन

याजिनः ॥ एवन्तौनिश्चयंकृत्वा प्रस्थितौभ्रातरावुभौ ॥ १६ ॥नृतस्तुपुरतोयाति निर्विकल्पोमहासुधीः ॥अग्रतस्तुसमुत्तस्थौ व्याघ्रोरौद्रतराकृतिः ॥ १७ ॥व्यात्तास्योभयदोदेवि नदंस्तत्रैवचाद्भुतम् ॥ तस्यशब्देनतागावस्त्रस्ताजग्मुर्दिशोदश ॥ १८ ॥ अन्धकूपोमहांस्तत्र प्रदेशोदारुणोभवत् ॥ एकतोदारुणोव्याघ्रः कूपोन्यत्रसुदारुणः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तेभ्रातरस्सर्वे भयोद्विग्नाःप्रदुद्रुवुः ॥ अथतेविषमंप्राप्य तटंकूपस्यभामिनि ॥ २० ॥ स्थितस्तत्राद्भुतोव्याघ्रस्ततोगन्तुंमनोदधौ ॥ अथताभ्यांनृतोदेवि भ्रातृभ्यांद्विजसत्तमः ॥ २१ ॥ प्रक्षिप्तोदारुणेकूपे जीर्णेतोयविवर्जिते ॥ ततस्तु गोधनंगृह्य प्रस्थितौहृष्टमानसौ ॥ २२ ॥ ततस्तुपतितस्तत्र कूपेजलविवर्ज्जिते ॥ चिन्तयामासमेधावी नाहंशोचामि जीवितुम् ॥ २३ ॥ मयाहूताद्विजश्रेष्ठा यज्ञार्थेवेदपारगाः ॥ इन्द्राद्याश्चसुरास्सर्वे नकृतस्सतुमेक्रतुः ॥ २४ ॥ सएवंचिन्तयामास वेदवेदाङ्गपारगः ॥ मानसंयज्ञमारभ्य तत्रैववरवर्णिनि ॥ २५ ॥ स्वयमेवतुसूक्तानि प्रोक्त्वाप्रोक्त्वाद्विजोत्त

धारण किया इसके अनन्तर हे देवि ! उन भाइयों से वह नृत द्विजोत्तम ॥२१॥ जलरहित व दारुण तथा प्राचीन कूपमें डालागया तदनन्तर गोधन को ग्रहणकर वे प्रसन्नमन होकर चले ॥ २२ ॥ उसके उपरान्त जलसे रहित उस कूपमें गिरेहुयेबुद्धिमान् नृतने चिन्तवन किया कि मैं जीने के लिये नहीं शोचताहूं ॥ २३ ॥ क्योंकि मैंने यज्ञके लिये वेदोंके पारगामी द्विजोत्तमों को बुलाया है व सब इन्द्रादिक देवताओं को बुलाया परन्तु वह मेरा यज्ञ नहीं कियागया ॥ २४ ॥ वेदों व वेदांगों का पारगामी वह नृत इसप्रकार विचार करता भया और हे वरवर्णिनि ! वहीं मानसीयज्ञ को प्रारम्भ कर ॥ २५ ॥ आपही सूक्तोंको कह २ कर द्विजोत्तमने वालुका

का होम किया उससे देवता प्रसन्न होगये ॥ २६ ॥ और श्रद्धासे दान देतेहुये उसके ऊपर फिर देवता प्रसन्न हुये व कूपके बीचमें स्थित ब्राह्मण के समीप आकर बोले ॥ २७ ॥ देवता बोले कि अहो विप्रजी ! तुमने निश्चयकर हमसबों को मानसीयज्ञ से तृप्त किया इसलिये तुम मनोरथ को कहो ॥ २८ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे देवताओ ! यदि तुमलोग मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो मेरा कूपसे निकलना होवै कि जिसप्रकार मैं अपने घरको जाकर देवयज्ञ करूं ॥ २९ ॥ महादेवजी बोले कि इसके अनन्तर देवताओं ने उस कूपमें सरस्वतीजी को आज्ञादिया और पृथ्वीको फोड़कर निकलीहुई उन्होंने कूपको जलसे पूर्णकिया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर यह ब्राह्मण

मः ॥ कृतवान्बालुकाहोमं तेनतुष्टास्तुदेवताः ॥ २६ ॥ श्रद्धयातस्यददतो भूयस्तृप्तास्तुदेवताः ॥ आगत्यब्राह्मणं प्रोचुः कूपमध्येऽयवस्थितम् ॥ २७ ॥ देवा ऊचुः ॥ भोभोविप्रत्वयानूनं सर्वेसन्तर्पितावयम् ॥ मानसेनतुयज्ञेन तस्मा द्ब्रूहित्वमीप्सितम् ॥ २८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ यदिदेवाःप्रसन्नामे कूपान्निस्सरणम्भवेत् ॥ यथास्वमन्दिरंगत्वा देवय ज्ञंकरोम्यहम् ॥ २९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथदेवैस्समादिष्टा तस्मिन्कूपेरसरस्वती ॥ निर्गतावसुधांभित्त्वा पूरयामासवा रिणा ॥ ३० ॥ अथनिष्क्रम्यविप्रोसौ यातस्स्वभवनम्प्रति ॥ ततःप्रभृतिदेवेशि नृतकूपस्सउच्यते ॥ ३१ ॥ स्नात्वात त्रशुचिर्भूत्वा यस्सन्तर्पयतेपितॄन् ॥ अश्वमेधमवाप्नोति सर्वपापविवर्जितः ॥ ३२ ॥ तिलदानन्तुदेवेशि तत्रशस्तंसका ञ्चनम् ॥ पितॄणांवल्लभंतीर्थं नित्यमेवसुभामिनि ॥ ३३ ॥ अग्निष्वात्तावर्हिषद आज्यपाश्चइतिस्मृताः ॥ येदिव्याः पितरोदेवि तेषांसान्निध्यमत्रहि ॥ ३४ ॥ दर्शनादेवतीर्थस्य तस्यैवसुरसंस्तुते ॥ मुच्यन्तेप्राणिनःपापादाजन्ममरणा

निकलकर अपने घरको चलागया तबसे लगाकर हे देवेशि ! वह नृतकूप कहा जाताहै ॥ ३१ ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य पितरों को तृप्त करता है सब पापों से रहित होकर वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ३२ ॥ हे देवेशि ! वहां सुवर्णसमेत तिलदान उत्तम होताहै हे सुभामिनि ! वह तीर्थ सदैवही पितरों को प्रियहै ॥ ३३ ॥ हे देवि ! अग्निष्वात्त,बर्हिषद व आज्यप ऐसे जो पितर कहेगये हैं व जो दिव्य पितर हैं उनकी यहां समीपताहै ॥ ३४ ॥ हे सुरसंस्तुते ! उस तीर्थके

दर्शनहीसे मनुष्य जन्मसे लगाकर मरण अन्ततकके पातकसे छूटजाते हैं ॥ ३५ ॥ इस लिये यदि अपना कल्याण चाहै तो प्रभासक्षेत्रको प्राप्तहोकर सब यत्नसे उस में स्नानकरै ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनृतकूपमाहात्म्यंनामचतुश्चत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥

दो• । जलसमेत चन्द्रमा जिमि कीन्हों है शशपान । दोसौ पैंतालीस में सोई कियो बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके दक्षिणभाग में सब पापोंको नाशनेवाले शशोपान ऐसे कहेहुये तीर्थके समीप जावै ॥ १ ॥ जिसमें भलीभांति नहाकर मनुष्य अपमृत्युके भयको नहीं भजताहै हे प्रिये ! उसकी उत्पत्ति

न्तकात् ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य यदीच्छेच्छ्रेयमात्मनः ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे नृतकूपमाहात्म्यन्नामचतुश्चत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि शशोपानमितिस्मृतम् ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यस्मिन्स्नात्वानरस्सम्यङ् नापमृत्युभयंभजेत् ॥ शृणुयस्मात्तदुत्पत्तिं वदतोममवल्लभे ॥ २ ॥ मथित्वासागरन्देवा गृहीत्वामृतमुत्तमम् ॥ विविशुस्तत्रतेगत्वा पपुश्चैवयथेच्छया ॥ ३ ॥ पिबतांतत्रपीयूषं देवानांवरवर्णिनि ॥ बिन्दवःपतिताभूमौ शतशोथसहस्रशः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु शशकस्तत्रचागतः ॥ प्रविष्टस्सलिलेतत्र तृषार्त्तोवरवर्णिनि ॥ ५ ॥ अमरत्वमनुप्राप्तो वर्द्धतेसलिलाशये ॥ तन्दृष्ट्वात्रिदशास्सर्वे वर्द्धमानंमुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥ ज्ञात्वामृतान्वितन्तोयं चक्रुर्मन्त्रंभयान्विताः ॥ अत्रामृतंप्रपतितं भक्षयिष्यन्तिमानवाः ॥ ७ ॥ ततोमराभविष्यन्ति नात्रकार्याविचारणा ॥ तिर्य

को कहतेहुये मुझसे सुनिये कि जिससे उसकी उत्पत्ति हुई है ॥ २ ॥ समुद्रको मथकर व उत्तम अमृतको लेकर वे देवता वहीं जाकर बैठतेभये और उन्होंने इच्छाके अनुकूल उसको पिया ॥ ३ ॥ हे वरवर्णिनि ! वहां देवताओं के अमृत पीतेहुये सैकडों व हज़ारों बूंद पृथ्वीमें गिरे ॥ ४ ॥ इसी समय में वहां खरहा आया और प्याससे विकल वह उस जलमें पैठगया ॥ ५ ॥ और अमरताको प्राप्त होकर वह जलाशय में बढ़तारहा और बार २ बढ़ते हुये उस खरहा को देखकर ॥ ६ ॥ व अमृत से संयुत जलको जानकर डरसंयुत उन्होंने सलाह किया कि यहां गिरेहुये अमृत को मनुष्य पियैंगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर अमर होवैंगे इसमें विचार करनेयोग्य

नहीं है और तिर्यग्योनि में उत्पन्न यह बिचारा खरहा ॥ ८ ॥ जिसलिये हमलोगोंसे बढ़ायागयाहै उसीकारण भय प्राप्तहै इसके अनन्तर निशानायक चन्द्रमा प्राप्त हुआ और रोगसे विकल उस चन्द्रमाने ॥ ९ ॥ सब देवताओंसे कहा कि मुझको अमृत दीजिये क्योंकि बड़े क्लेशसे व्याप्त मैं चलने के लिये नहीं समर्थ हूं ॥१०॥ इसके अनन्तर सब देवताबोले कि हे निशानाथ ! हमलोगोंने सब भक्षण करालिया और तुम भूलगयेथे तुम क्यों नहीं यहां आयेथे ॥ ११ ॥ हे अन्धकारनाशक, चन्द्र! तुम हमलोगों का वचनकरो कि यहां हमलोगोंके पीतेहुये इस जलमें बहुत अमृत गिराहै ॥१२॥ हे निशानाथ ! इसलिये इस सब जलाशयको पीओ क्योंकि आधा

ग्योनिसमुत्पन्नः कृपणश्शशकोह्ययम् ॥ ८ ॥ अस्माभिर्वर्द्धितोयस्तु ततोभयमुपस्थितम् ॥ अथप्राप्तोनिशानाथो व्याधिनासपरिप्लुतः ॥ ९ ॥ अब्रवीत्रिदशान्सर्वानमृतम्मेप्रयच्छत ॥ कृच्छ्रेणमहताव्याप्तो नाहंशक्तोविसर्पितुम् ॥ १०॥ अथोचुस्त्रिदशास्सर्वे अस्माभिस्सर्वभक्षितम् ॥ विस्मृतस्त्वंनिशानाथ त्वन्नकस्मादिहागतः ॥ ११ ॥ कुरुष्ववचनं चन्द्र अस्माकंतिमिरापह ॥ अस्मिञ्जलेमृतंभूरि पतितंपिबतामिह ॥ १२ ॥ तत्पिबस्वनिशानाथ सर्वमेतज्जलाश्रयम् ॥ अर्द्धंनिपतितंचात्र सत्यमेतन्निशामय ॥ १३ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा शीतरश्मिस्त्वरान्वितः ॥ तृषार्त्तश्चापिबत्तोयं शशकेनसमन्वितम् ॥ १४ ॥ अस्थिशेषंपुनस्तस्य कायंपीयूषभक्षणात् ॥ तत्क्षणात्तुष्टिमगमत् कान्त्यापरमयायुतः ॥ १५ ॥ अब्रुवन्खन्यतामेतद् यथाभूयोजलंभवेद् ॥ अस्माकंसङ्गमादेतच्छुष्कंशुद्धंजलाशयम् ॥ १६ ॥ तदयुक्तंकृतं कर्म नैतत्साधुविचेष्टितम् ॥ ततोखनंश्चतेसर्वे यावत्तोयंविनिर्गतम् ॥ १७ ॥ अथाब्रुवंस्ततस्सर्वे हर्षेणमहतान्विताः ॥

अमृत यहां गिराहै यह सत्य जानिये ॥ १३ ॥ उन देवताओंके उस वचनको सुनकर प्याससे विकल शीघ्रतासंयुत चन्द्रमाने खरहा समेत जलको पिया ॥ १४ ॥ फिर अमृतके भक्षणसे अस्थिमात्रशेष उसका शरीर उसीक्षण तुष्टिको प्राप्तहुआ और यह चन्द्रमा बड़ी सुन्दरतासे संयुत हुआ ॥१५॥ और देवता बोले कि यह जलाशय खोदाजावै, कि जिसप्रकार फिर जलहोवै हमलोगों के संगमसे यह शुद्ध जलाशय सूखगया है ॥ १६ ॥ वह कर्म अयोग्य कियागया यह कर्म अच्छा नहीं है तदनन्तर

जबतक जल निकला तबतक उन सबोंने खोदा ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर बड़े हर्षमे संयुत सब देवता बोले कि जिसलिये चन्द्रमानें शशसेसंयुत इस जलाशय को पियाहै इस कारण यह शशोपाननामक तीर्थ प्रसिद्ध होगा ॥ १८ । १९ ॥ यहा आकर जो मनुष्य भक्तिसें स्नान करैगा वह उत्तम स्थानको जावैगा जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ २० ॥ यहां सावधान होतेहुये जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये दान देवैंगे उनको सब यज्ञोंका फल होगा इसमें सन्देह नहींहै ॥ २१ ॥ व हे देवताओ ! इसके देखनेपर सब देवता देखेहुये होवैंगे ऐसा कहकर सब देवता स्वर्गको चले गये ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त बहुत समय के बाद वहां सरस्वतीजी प्राप्तहुई और

यस्माच्छशेनसंयुक्तं पीतमेतज्जलाशयम् ॥ १८ ॥ चन्द्रेणहिशशोपानं तस्मादेतद्भविष्यति ॥१९॥ अत्रागत्यनरस्स्नानं यःकरिष्यतिभक्तितः ॥ सयास्यतिपरंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २० ॥ अत्रदानंप्रदास्यन्ति ब्राह्मणेभ्यस्समाहिताः ॥ सर्वयज्ञफलन्तेषां भविष्यतिनसंशयः ॥ २१ ॥ अस्मिन्दृष्टेसुरास्सर्वे दृष्टास्स्युस्सर्वदेवताः ॥ एवमुक्त्वासुरास्सर्वे जग्मुश्चैवसुरालयम् ॥ २२ ॥ अथकालेनमहता प्राप्तातत्रसरस्वती ॥ वडवाग्निंसमादाय तथापिस्नपितम्पुनः ॥ २३ ॥ ततोमेध्यतमंयातं तीर्थञ्चवरवर्णिनि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशशोपानमाहात्म्यन्नामपञ्चचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पर्णादित्यंसुरेश्वरम् ॥ प्राचीसरस्वतीकूले तस्यैवोत्तरतःस्थितम् ॥ १ ॥ पुरा त्रेतायुगेदेवि पर्णादोनामवैद्विजः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ २ ॥ आराधयामासरविं भक्त्याचपरया

वड़वाग्नि को लेकर फिर उन्होंने भी स्नान किया ॥ २३ ॥ उस कारण हे वरवर्णिनि ! वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र होगया इसलिये सब यत्नसे मनुष्य उसमें स्नानकरै ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां शशोपानतीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥

दो० । पर्णादित्यहिं थप्यो जिमि पर्णनाम द्विजराज । दोसौ छियालिसमें कह्यो सो चरित्र सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर प्राची सरस्वतीके किनारे उसीके उत्तर में स्थित पर्णादित्य देवेशजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! पुरातन समय त्रेतायुगमें पर्णादनामक ब्राह्मणने प्रभासक्षेत्रको आकर बहुत दारुण

न्यंकुमती नदी है उन महादेवजी ने सीमाके लिये उसको यात्राके निमित्त प्राप्त किया है ॥ १ ॥ उसीके दक्षिणभाग में सब पापोंको नाश करनेवाली नदी है उसमें नहाकर पवित्र होकर जो मनुष्य भलीभांति श्राद्ध करता है ॥ २ ॥ वह सब नरकवाले पितरों को तारता है इसमें सन्देह नहीं है हे भामिनि! वैशाख में शुक्लपक्षमें तीज तिथिको ॥ ३ ॥ जो उसमें नहाकर भलीभांति भक्तिसे तिल, कुश व जलसे तर्पण करता है हे प्रिये! उसने गङ्गाजी के समीप श्राद्ध किया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां न्यङ्कुमतीमाहात्म्यंनामाष्टचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥ ⊛ ॥

वदक्षिणेभागे सर्वपापप्रणाशिनी ॥ तस्यांस्नात्वाशुचिस्सम्यग् यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ २ ॥ सपितॄंस्तारयेत्सर्वान्नारकान्नात्रसंशयः ॥ वैशाखेशुक्लपक्षेतु तृतीयाञ्चैवभामिनि ॥ ३ ॥ स्नात्वातुतर्पयेद्भक्त्या तिलदर्भजलेनवै ॥ प्रियेश्राद्धं कृतन्तेन गङ्गायांनात्रसंशयः ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेन्यङ्कुमतीमाहात्म्यन्नामाष्टचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि वाराहंतत्रसंस्थितम् ॥ सिद्धेशाद्दक्षिणेभागे स्थितंपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ एकादश्यांसितेपक्षे यस्तंपूजयतेनरः ॥ समुक्तःपातकैस्सर्वैर्गच्छेद्विष्णुपदंमहत् ॥ २ ॥ तत्रैवसंस्थितादेवि गुहापातकनाशिनी ॥ ऋषीणांसंस्थितिर्यत्र सिद्धानांपुण्यचेतसाम् ॥ ३ ॥ तत्रगत्वामहादेवि गुहांयःपश्यतेनरः ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यश्चान्द्रायणफलंलभेत् ॥ ४ ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ईशान्यांदिशिसंस्थिताम् ॥ देवींकनकनन्दाख्यां सर्वकामफल

दो० । अहैं अतुलपरभाव युत यथा देव वाराह । दोसौ उञ्चासवें महँ कह्यो मो सहित उछाह॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर वहां भलीभांति टिकेहुये वाराहजी के समीप जावै जोकि पापनाशक वाराहजी सिद्धेशाजी से दक्षिणभागमें स्थित हैं ॥ १ ॥ शुक्लपक्ष में एकादशी तिथिमें जो मनुष्य उनको पूजता है वह सब पातकों से छूटकर बड़ेभारी विष्णुपदको जाताहै ॥ २ ॥ हे देवि! वहींपर पातकोंको नाशकरनेवाली गुहा स्थितहै जहां कि पवित्रचित्तवाले सिद्ध ऋषियों की स्थिति है ॥ ३ ॥ हे महादेवि! वहां जाकर जो मनुष्य गुहाको देखताहै वह सब पापोंसे छूटकर चान्द्रायणव्रतके फलको पाताहै ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तद-

नन्तर ईशान दिशामें टिकीहुई समस्त कामनाओंके फलको देनेवाली कनकनन्दानामक देवीजी के समीप जावै ॥ ५ ॥ वहां चैत महीने में शुक्लपक्ष की तीज तिथि में जो बुद्धिमान् पुरुष विधिसे यात्रा करै वह सब कामना को प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकनकनन्दामाहात्म्यंनामैकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥ ❀ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गंगापथ तीरथ तथा चमसोद्भव अ्रसनाम । दोसौ पचासवें महँ कह्यो सो चरित्र ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गङ्गापथ ऐसे स्थान

प्रदाम् ॥ ५ ॥ तत्रशुक्लतृतीयायां चैत्रेमासिविधानतः ॥ यात्रांकुर्याच्चमतिमान्सर्वकाममवाप्नुयात् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकनकनन्दामाहात्म्यन्नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि स्थानंगङ्गापथेतिच ॥ यत्रगङ्गामहास्रोता गङ्गेश्वरशिवस्तथा ॥ १ ॥ समुद्रगामिनीदेवी गङ्गापातकनाशिनी ॥ साततोभुविविख्याता नदीत्रैलोक्यभूषणा ॥ २ ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि गङ्गेशंयस्तु पूजयेत् ॥ मुक्तःस्यात्पातकैर्घोरैरश्वमेधायुतंलभेत ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि चमसोद्भेदमुत्तमम् ॥ यत्र ब्रह्माकरोत्सत्रं वर्षाणामयुतम्प्रिये ॥ ४ ॥ चमसैःपीतवन्तस्ते सोमन्देवामहर्षयः ॥ चमसोद्भेदनामेतितेनख्यातन्धरातले ॥ ५ ॥ तत्रस्नात्वासरस्वत्यां पिण्डदानंददातियः ॥ गयाकोटिगुणंपुण्यं वैशाख्यांप्राप्नुयान्नरः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे चमसोद्भेदमाहात्म्यन्नामपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥ * ॥

के समीप जावै जहां महासोतवाली गङ्गाजी व गङ्गेश्वर शिवजी हैं ॥ १ ॥ जिस लिये पातकोंको नाशकरनेवाली समुद्रगामिनी गंगादेवी हैं उसीकारण पृथ्वीमें वह नदी त्रिलोकभूषणा प्रसिद्ध है ॥ २ ॥ हे महादेवि ! उसमें नहाकर जो गङ्गेश्वरजी को पूजता है वह भयङ्कर पातकों से छूटजाता है व दश हज़ार अश्वमेधों के फल को पाताहै ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम चमसोद्भेदतीर्थके समीप जावै जहां कि हे प्रिये ! ब्रह्माने दश हज़ार वर्षतक यज्ञ कियाहै ॥ ४ ॥ जिसलिये उन देवताओं व महर्षियों ने चमसों से सोमको पियाहै उसीकारण पृथ्वी में वह चमसोद्भेदनामक तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ वहां वैशाखी पौर्णमासी में जो

मनुष्य सरस्वतीजी में नहाकर पिण्डदान को देता है वह पुरुष गयासे कोटिगुने पुण्यको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचमसोद्भेदतीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । विदुराश्रम इमि तीर्थकर अहै अतुल माहात्म्य । दोसौ इक्यावने महँ सोइ चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर विदुरजी के बड़े भारी आश्रम के समीप जावै जहांपर त्रिभुवनेश्वर महादेवजी के लिङ्गको थापकर धर्ममूर्त्तिवाले विदुरजीने भयङ्कर तप कियाहै ॥ १ । २ ॥ हे देवि ! गणों व गन्धर्वों से सेवित उस विदुराश्रमनामक तीर्थको देखकर मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ विदुरस्थाननामक तीर्थ थोड़ी पुण्यवाले पुरुष को नहीं मिलता है

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विदुरस्याश्रमंमहत ॥ यत्राकरोत्तपोरौद्रं विदुरोधर्ममूर्त्तिमान् ॥ १ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं लिङ्गंत्रिभुवनेश्वरम् ॥ २ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेविसर्वान्कामानवाप्नुयात ॥ विदुराश्रमकंनाम गणगन्धर्वसेवितम् ॥ ३ ॥ वैदुरंस्थानकंतीर्थं नाल्पपुण्येनलभ्यते ॥ नावर्षणभयंतत्र कदाचिदापिवर्त्तते ॥ ४ ॥ लिङ्गानितत्रदिव्यानि पश्येत्पापोपशान्तये ॥ ५ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे विदुराश्रममाहात्म्यन्नामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यत्रप्राचीसरस्वती ॥ तत्रस्थानेस्थितंलिङ्गं मङ्कीश्वरमितिश्रुतम् ॥ १ ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशिनीम् ॥ शृणुदेविमहाभागेआश्चर्यंयदभूत्पुरा ॥ २ ॥ ऋषिर्मंकनकोनाम सचतेपेम

और वहां कभी अवर्षणका भय नहीं वर्तमान होताहै ॥४॥ वहां पापोंकी शान्ति के लिये मनुष्य दिव्यलिंगोंको देखै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविदुराश्रममाहात्म्यंनामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । महिमा प्राची सरस्वति तथा लिंग मंकीश । दोसौ बावनमें सोई कह्यो चरित्र वरीश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि प्राची सरस्वती है उस स्थान में मंकीश्वर ऐसा प्रसिद्ध लिंग स्थित है ॥ १ ॥ सब पातकों को नाशनेवाली उसकी उत्पत्ति को मैं कहताहूं हे महाभागे, देवि ! पुरातन

समय जो आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये ॥ २ ॥ कि जा मेकनैकनामकं ऋषि हुये हैं प्राचीन स्थान में नियतभोजी व नित्य वेदपाठ में तत्पर उन ऋषिने बड़ा तप किया है ॥ ३ ॥ हे भामिनि ! उसको बहुत हज़ारवर्ष बीतगये इसके अनन्तर हे वरानने ! किसी समय कुशके अग्रभाग से वेधित उस मुनिके हाथसे शाककारस उत्पन्नहुआ व ऐसा हमने सुनाहै कि उस बड़े आश्चर्य को देखकर वह बड़े विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ४ । ५ ॥ व उसने यह माना कि मैं बड़ी सिद्धिको प्राप्तहुआ इसके उपरान्त उसने हर्षसे नृत्य किया और उसके भलीभाति नाचने पर चराचर संसार ॥ ६ ॥ हे वरारोहे ! उस मुनिके प्रभावसे नाचताभया तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु

हत्तपः ॥ प्राचीनेनियताहारो नित्यस्वाध्यायतत्परः ॥ ३ ॥ बहुवर्षसहस्राणि तस्यातीतानिभामिनि ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य विद्धस्यचवरानने ॥ ४ ॥ कराच्छाकरसोजातः कुशाग्रेणेतिनःश्रुतम् ॥ सतन्दृष्ट्वामहाश्चर्यं विस्मयंपरमङ्गतः ॥ ५ ॥ मेनेसिद्धिम्पराम्प्राप्तो हर्षान्नृत्यमथाकरोत् ॥ तस्मिन्सन्नृत्यमानेच जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ६ ॥ अनर्त्तवरारोहे प्रभावात्तस्यवैमुनेः ॥ ततोदेवामहेन्द्राद्या ब्रह्मविष्णुपुरःसराः ॥ ७ ॥ ऊचुस्त्रिपुरहन्तारं नायंनृत्येत्तथाकुरु ॥ चलिताः पर्वतास्थानात् क्षुभितामकरालयाः ॥८॥ धरणीखण्डशोदेव वृक्षाश्चनिधनंगताः ॥ श्रान्ताश्चैवमहानद्यो ग्रहउन्मार्गसंस्थिताः ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यंव्याकुलीभूतं यावन्नोयातिसङ्क्षयम् ॥ तावन्निवारयस्वैनं नान्यःशक्तोनिवारणे ॥ १० ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गत्वातस्यसमीपतः ॥ द्विजरूपंसमास्थाय ततोवाक्यंतमब्रवीत् ॥ ११ ॥ नमन्तिशुभकर्माणि कामरागविवर्जितः ॥ युवतीजनसन्तुष्टं किमर्थंनृत्यसेऋषे ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ किन्नपश्यसिमेब्रह्मन् कराच्छाकरसञ्च्यु

अग्रगामीवाले महेन्द्रादिक देवता ॥ ७ ॥ त्रिपुरनाशक शिवजी से बोले कि यह जिस प्रकार न नाचै वैसाही कीजिये क्योंकि पर्वत स्थानसे चलगये व समुद्र क्षोभित होगये ॥ ८ ॥ व हे देव ! धरणी खण्ड २ होगई व वृक्ष नाशको प्राप्तहुये और महानदियां श्रान्त होगईं और ग्रह उन्मार्ग में स्थितहुये ॥ ९ ॥ और व्याकुल हु असंसार जबतक क्षयको न प्राप्तहोवै तबतक इसको मना करिये क्योंकि अन्य मनाकरने में समर्थ नहीं है ॥ १० ॥ वैसाही होगा ऐसी प्रतिज्ञाकरके महादेवजी ब्राह्मण के रूपमें स्थित होकर तदनन्तर उसके समीप जाकर उससे वचन बोले ॥ ११ ॥ कि हे ऋषे ! तुम्हारे उत्तम कर्म नहीं हैं और काम व स्नेह से रहित तुम जिसभांति

स्त्रीजन प्रसन्न होतीहैं उस प्रकार क्यों नाचतेहो ॥ १२ ॥ ऋषि बोले कि हे ब्रह्मन्! मेरे हाथसे गिरेहुये शाकरस को क्या तुम नहीं देखतेहो इसी कारण मेरा नृत्य होरहा है मैं सिद्ध होगया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले कि हे भामिनि! उसके उस वचन को सुनकर त्रिपुरान्तक भगवान् ने अंगुली के अग्र-भाग से अँगूठे को ताड़न किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर उसीक्षण पालाकी नाईं श्वेत भस्म निकली इसके अनन्तर प्राणियों को पैदाकरनेवाले भगवान् शिवजी हँसकर इससे बोले ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन्! देखिये कि मेरे अंगूठे से बहुत भस्म निकली है तथापि हे मुनिश्रेष्ठ! मैं नहीं नाचता हूं और न मेरे हर्ष है ॥ १६ ॥ उस बड़ेभारी

तम् ॥ अतएवहिमेनृत्यं सिद्धोहंनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ अङ्गुष्ठंताडयामास अङ्गुल्यग्रेणभामिनि ॥ १४ ॥ ततोविनिर्गतंभस्म तत्क्षणाद्धिमपाण्डुरम् ॥ अथाब्रवीत्प्रहस्यैनं भगवान्भूतभावनः ॥ १५ ॥ पश्यमेङ्गुष्ठतोब्रह्मन् भूरिभस्मविनिर्गतम् ॥ ननृत्येहंनमेहर्षस्तथापिमुनिसत्तम ॥ १६ ॥ तद्दृष्ट्वासुमहाश्चर्यं विस्मयंपरमङ्गतः ॥ अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षगद्गदयागिरा ॥ १७ ॥ नान्यंदेवमहंमन्येत्वांमुक्त्वा वृषभध्वजम् ॥ नान्यस्यविद्यतेशक्तिरीदृशीधरणीतले ॥ १८ ॥ भगवानुवाच ॥ ज्ञातोस्मिमुनिशार्दूल त्वयावेदविदांवर ॥ वरंवरयभद्रन्ते नित्यंयन्मनसेप्सितम् ॥ १९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ प्रसादाद्देवदेवेश नृत्येनमहताविभो ॥ यथा नस्यात्तपोहानिस्तथानीतिर्विधीयताम् ॥ २० ॥ शम्भुरुवाच ॥ तपस्तेवर्द्धतांविप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ॥ प्राचीनेहन्तु

आश्चर्य को देखकर बड़े विस्मय को प्राप्त ब्राह्मण ने हाथोंको जोड़कर हर्षसे गद्गद वचन करके कहा ॥ १७ ॥ कि वृषध्वज शिवजी को छोड़कर तुमको मैं अन्य देव नहीं मानताहूं याने तुम शिव हो क्योंकि धरातलमें अन्यके ऐसी शक्ति नहीं विद्यमानहै ॥ १८ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे वेदविदांवर, मुनिश्रेष्ठजी! तुमने मुझको जानलिया तुम्हारा कल्याण होवै और जो सदैव मनको प्रिय होवै उस वरदानको मांगिये ॥ १९ ॥ ऋषि बोले कि हे देव देवेश, विभो! बड़े नृत्यके कारण तुम्हारे प्रसादसे जिस प्रकार तपस्या की हानि न होवै वैसाही न्याय कियाजावै ॥ २० ॥ शिवजी बोले कि हे विप्रजी! मेरे प्रसादसे तुम्हारा तप हज़ार प्रकारका होकर बढ़े

और तुम समेत मैं सदैव प्राचीन स्थानमें बसूंगा ॥ २१ ॥ इस क्षेत्रमें विशेषकर सरस्वती नदी महापवित्र है सरस्वतीजी के उत्तर किनारे पै प्राचीन स्थान पै जो अपने शरीर को त्याग करैगा हे मुनिश्रेष्ठ ! वह फिर इस संसार में न आवैगा और इसमें नहायाहुआ पुरुष अश्वमेधयज्ञ के बड़ेभारी फलको पाताहै ॥ २२ । २३ ॥ और नियमों व उपवासों से अपने शरीर को सुखावै तथा भोजन को जीते व पवनभक्षी व पत्तोंको खानेवाले तपस्वी होवैं ॥ २४ ॥ और चौतरों में बैठना व जो अन्य पृथक् नियम हैं उन नियमों से संयुत जो पुरुष इस तीर्थमें स्नान करैंगे ॥ २५ ॥ वे ब्रह्माके परमपद को व उत्तम सिद्धिको जावैंगे इस तीर्थमें जो त्रुटमात्र

वत्स्यामि त्वयासार्द्धमहंसदा ॥ २१ ॥ सरस्वतीमहापुण्या क्षेत्रेचास्मिन्विशेषतः ॥ सरस्वत्युत्तरेतीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनूम् ॥ २२ ॥ प्राचीनेमुनिशार्दूल नैवेहागच्छतेपुनः ॥ आप्लुतोवाजिमेधस्य फलंप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥ २३ ॥ नियमैश्चोपवासैश्च शोषयेद्देहमात्मनः ॥ जिताहारावायुभक्षाः पर्णाहाराश्चतापसाः ॥ २४ ॥ तथास्थण्डिलविन्यासा येचान्ये नियमाःपृथक् ॥ येस्नानमाचरिष्यन्ति तीर्थेस्मिन्नियमान्विताः ॥२५॥ तेयान्तिपरमांसिद्धिं ब्रह्मणःपरमम्पदम् ॥ अस्मिंस्तीर्थेतुयोदानं त्रुटिमात्रन्तुकाञ्चनम् ॥ २६ ॥ ददातिद्विजमुख्याय मेरुतुल्यंभवेत्फलम् ॥ अस्मिंस्तीर्थेतुयेश्राद्धं करिष्यन्तीहमानवाः ॥ २७ ॥ एकविंशकुलोपेताः स्वर्गंयास्यन्तितेध्रुवम् ॥ पितॄणांवल्लभंतीर्थं पिण्डेनैकेनतर्पिताः ॥ २८ ॥ ब्रह्मलोकंगमिष्यन्ति सुपुत्रेणेहतारिताः ॥ भूयश्चान्नंप्रयच्छन्ति मोक्षमार्गंव्रजन्तिते ॥ २९ ॥ अत्रयेशुभकर्माणः प्रभासस्थांसरस्वतीम् ॥ पश्यन्तितेपियास्यन्ति स्वर्गलोकंद्विजोत्तमाः ॥ ३० ॥ येपुनस्तत्रभावेन नराःस्नानपरा

सुवर्ण को ॥ २६ ॥ मुख्य ब्राह्मणके लिये देताहै उसको सुमेरुके समान फल होताहै और इस तीर्थ में जो मनुष्य श्राद्ध करैंगे ॥ २७ ॥ इक्कीस पुस्तियों समेत वे निश्चयकर स्वर्गको जावैंगे यह तीर्थ पितरों को प्रियहै इससे एक पिण्डसे तृप्त किये हुये पितर ॥ २८ ॥ उत्तम पुत्रसे तारित होकर ब्रह्मलोकको जावैंगे और वे बहुत अन्नको देतेहैं तथा मोक्षमार्ग को जातेहैं ॥ २९ ॥ और यहां जो पुण्यकर्मी द्विजोत्तम प्रभास में सरस्वतीजी को देखते हैं वे भी स्वर्गलोक को जावैंगे ॥ ३० ॥ फिर

वहां जो मनुष्य भक्तिसे स्नान में तत्पर हैं वे सदैव ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर आनन्दकरैंगे॥ ३१ ॥ और जो यहां ब्राह्मणके लिये सुन्दर दहीको देताहै वह भी अग्नि-लोकको प्राप्त होकर उत्तमसुखों को भोगता है ॥ ३२ ॥ और जो भक्तिसे ब्राह्मणके लिये ऊनीवस्त्र को देताहै वह भी अन्य मनुष्यों से दुर्लभ उत्तम सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ और जो पुरुष मलके नाशके लिये यहां जलमें पैठेहैं उनको सुखसे गोदान के फलको कहै ॥ ३४ ॥ जो कोई मनुष्य भक्तिसे उसमें स्नान करता है वह सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोकमें पूजाजाता है ॥ ३५ ॥ और तर्पण व पिण्डदानसे नरकों में भी टिकेहुये पितर यहां उत्तम पुरुष से तारित होकर स्वर्गको जाते

यणाः ॥ ब्रह्मलोकंसमासाद्य तेप्रहृष्यन्तिसर्वदा ॥ ३१ ॥ दधिप्रदद्याद्योपीह ब्राह्मणायमनोरमम् ॥ सोप्यग्निलोकमासाद्य भुङ्क्तेभोगान्सुशोभनान् ॥ ३२ ॥ ऊर्णप्रावरणंयोपि भक्त्यादद्याद्द्विजोत्तमे ॥ सोपियातिपरांसिद्धिं मर्त्यैरन्यैःसुदुर्लभाम् ॥ ३३ ॥ येचात्रमलनाशाय पुमांसोविविशुर्जलम् ॥ गोप्रदानफलंतेषां सुखेनफलमादिशेत् ॥ ३४ ॥ भावे नहिनरःकश्चित तत्रस्नानंसमाचरेत ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥ ३५ ॥ तर्पणात्पिण्डदानेन नरकेष्वपि संस्थिताः ॥ स्वर्गंप्रयान्तिपितरः सुपुत्रेणेहतारिताः ॥ ३६ ॥ भूयश्चान्नप्रदानेन सुपुत्रेणार्चितास्सदा ॥ तेलभन्तेक्षयाँल्लोकान् ब्रह्मविष्णवीशशब्दितान् ॥ ३७ ॥ स्वर्गनिश्रेणिसम्भूता प्रभासेतुसरस्वती ॥ नापुण्यवद्भिःसंप्राप्तुं पुंभिश्शक्या महानदी ॥ ३८ ॥ प्राचीसरस्वतीचैव अन्यत्रैवतुदुर्लभा ॥ विशेषेणकुरुक्षेत्रे प्रभासेपुष्करेतथा ॥ ३९ ॥ प्राचींसरस्वतीं प्राप्य योन्यतीर्थंहिमार्गते ॥ सकरस्थंसमुत्सृज्य कूपेवैवीक्षतेजलम् ॥ ४० ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां स्नानंचविहितंस

हैं ॥ ३६ ॥ और जो फिर अन्नदानसे उत्तमपुत्र करके सदैव पूजित होतेहैं वे ब्रह्मा, विष्णु व शिव ऐसे कहेहुये अक्षयलोकोंको पाते हैं ॥३७ ॥ प्रभासमें सरस्वती स्वर्ग की सीढ़ीहै और बिन पुण्यवाले पुरुषों को वह महानदी नहीं प्राप्त होसक्ती है ॥ ३८ ॥ प्राची सरस्वती अन्यत्रही दुर्लभ है और कुरुक्षेत्र, प्रभास व पुष्कर में विशेष कर दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ प्राची सरस्वती को पाकर जो अन्य तीर्थको ढूँढताहै वह हाथमें स्थित जलको छोड़कर कूपमें जलको देखताहै ॥ ४० ॥ कृष्णपक्ष में चौदसि

तिथिमें वहां सदैव स्नान कियाजाता है और पीना व गुड़से जो वहां पिण्डको देताहै ॥ ४१ ॥ वह पितरों को अक्षयकर पितृलोक को जाताहै ॥ ४२ ॥ सरस्वती में निवासके समान आनन्द कहां है व सरस्वतीजी के समीप निवास केसमान गुण कहांहैं और वे पुरुष सरस्वतीको प्राप्तहोकर स्वर्गको गयेहैं जोकि सरस्वती नदीको स्मरण करते हैं ॥ ४३ ॥ महादेवजी बोले कि इस प्रकार वे भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और तब से लगाकर शिवजीने वहां समीपता किया ॥ ४४ ॥ हे भामिनि ! इस प्राचीनदी महातीर्थ के विषय में समर्थवान् विष्णुजी ने स्नेहसे गाथाको गायाहै ॥ ४५ ॥ कि शरपञ्जर में भीष्मजी ने धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) जी

दा ॥ पिण्याकेर्गुडकेनापि पिण्डंतत्रददातियः ॥ ४१ ॥ पितॄणामक्षयंकृत्वा पितृलोकंसगच्छति ॥ ४२ ॥ सरस्वतीवाससमाकुतोरतिः सरस्वतीवाससमाःकुतोगुणाः ॥ सरस्वतींप्राप्यगतादिवंनरास्तेयेस्मरन्त्येवनदींसरस्वतीम् ॥ ४३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंसभगवान्देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सान्निध्यमकरोत्तत्र ततःप्रभृतिशङ्करः ॥ ४४ ॥ अत्रगाथापुरा गीता विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ प्राचीनदीमहातीर्थे सौहार्देणहिभामिनि ॥ ४५ ॥ धर्मपुत्रंप्रतिप्रोक्तं भीष्मेणशरपञ्जरे ॥ मागङ्गांव्रजकौन्तेय माप्रयागंचपुष्करम् ॥ ४६ ॥ तत्रगच्छकुरुश्रेष्ठ यत्रप्राचीसरस्वती ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ ४७ ॥ महिमानंसरस्वत्या भूयःकिंश्रोतुमिच्छसि ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये प्राचीसरस्वतीमाहात्म्येमङ्कीश्वरमाहात्म्यन्नामद्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसन्निकृष्टन्तु लिङ्गंज्वालेश्वरंस्मृतम् ॥ ॥ शिरःप्रपातितंयत्र ज्वलन्वैत्रिपुरारिणा ॥ १ ॥ पातितो

से कहा है कि हे कौन्तेय ! गङ्गाको मत जाइये और प्रयाग व पुष्कर को मत जाइये ॥ ४६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! वहां जाइये जहां कि प्राची सरस्वती है तुमने जो मुझसे पूंछा यह सब सरस्वतीजीकी महिमा कहीगई फिर क्या सुना चाहतीहो ॥ ४७ । ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येप्राचीसरस्वतीमाहात्म्येमङ्कीश्वरमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । श्रीज्वालेश्वर लिंग अरु वृषतीरथ माहात्म्य । दोसौ तिरपनमें सोई कह्यो चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि वहीं समीप में ज्वालेश्वर लिङ्ग कहागया है

जहांपर त्रिपुरारि शिवजी ने ज्वलते हुये शिरको गिराया है ॥ १ ॥ जिसलिये उस स्थानमें मस्तक गिरायागयाहै उसी कारण ज्वालेश्वर शिव कहेगयेहैं हे देवि ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे भामिनि ! प्राची सरस्वती देवीके समीप वहीं स्थित त्रिपुर महात्माओंके कहेहुये तीन लिंगों को देखै ॥ ३ ॥ जो विद्युन्माली, तारकनामक व कमलाक्ष दैत्य हुयेहैं उनसे थापेहुये लिंगको देखकर मनुष्य पापोंसे छूटजाताहै ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सब कामनाओं के फलको देनेवाले व सब पापोंको नाश करनेवाले अतिउत्तम वृषतीर्थ के समीप जावै ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! उसकी उत्पत्ति

यत्प्रदेशेतु ततोज्वालेश्वरःस्मृतः ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंप श्येत्प्राचीदेव्यास्तुभामिनि ॥ लिङ्गत्रयंसमाख्यातं त्रिपुराणांमहात्मनाम् ॥ ३ ॥ विद्युन्मालीतारकाख्यः कमलाक्ष स्तथैवच ॥ तैश्चप्रतिष्ठितंलिङ्गं दृष्ट्वापापैःप्रमुच्यते ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि वृषतीर्थमनुत्तमम् ॥ सर्वपापोपशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५ ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ पुरायंपञ्चशिराआसीद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ६ ॥ शिरस्तस्यमयाच्छिन्नं कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ तत्रगन्धवतीजाता ब्रह्मणःस्रावशोणितैः ॥ ७ ॥ ततोद्भूतामहातालास्तेनतालवनंस्मृतम् ॥ अथोकरतलेलग्नं कपालंब्रह्मणोमम ॥ ८ ॥ शरीरंकृष्णतांयातं मम चैववृषस्यच ॥ अथतीर्थान्यनेकानि गतोहंपापशङ्कया ॥ ९ ॥ नकिञ्चिद्व्रजतेपापं ततःप्राभासमागतः ॥ क्षेत्रेतत्रम यादृष्टा प्राचीदेवीसरस्वती ॥ १० ॥ तत्रमेवृषभःस्नातुं प्रविष्टोजलमध्यतः ॥ तत्क्षणाच्छ्वेततांप्राप्तो मुक्तोहमपिह

को मैं कहता हूं एक मनवाली होकर सुनो कि पुरातन समय लोकोंके पितामह ब्रह्माजी पांच मस्तकोंवाले हुयेहैं ॥ ६ ॥ उनके एक मस्तकको मैंने किसी कारणके मध्यमें काटडालाहै वहां ब्रह्माके बहतेहुये रक्तसे गन्धवती नदी हुई ॥ ७ ॥ तदनन्तर महाताल उत्पन्न हुये उसीकारण तालवन कहागया है इसके उपरान्त ब्रह्माका कपाल मेरे हाथमें लगगया ॥ ८ ॥ और मेरा व बैलका शरीर कृष्णताको प्राप्तहुआ इसके उपरान्त मैं पापकी शङ्कासे अनेक तीर्थों को गया ॥ ९ ॥ परन्तु कुछ पाप नहीं जाताथा तदनन्तर मैं प्रभासक्षेत्रको आया और उस क्षेत्रमें मैंने प्राची सरस्वती देवी को देखा ॥ १० ॥ वहां जलके मध्यमें नहाने के लिये मेरा बैल पैठा और

वह उसीक्षण श्वेतताको प्राप्तहुआ व मैंभी हत्यासे छूटगया ॥ ११ ॥ तब मेरे हाथके मध्यमें लगाहुआ कपाल गिरपड़ा और यह लिङ्गरूपी कपालमोचन स्थितहुआ ॥ १२ ॥ वहां भी जो प्राची सरस्वती देवी के समीप श्राद्धको देताहै उसका वह सौ मातृकुल व सौ पितृकुल तृप्त होता है ॥ १३ ॥ हे देवि ! कुआर महीनेमें कृष्ण पक्षकी चौदसि में वहां दक्षिणामूर्त्ति में आश्रित जो पुरुष द्रव्यके अनुकूल उपचार से विधिपूर्वक सुपात्र में श्राद्ध देताहै उसके वे पितामह हज़ार युगोंतक तृप्त होते हैं ॥ १४ । १५ ॥ वहां सब पापोंसे शुद्धिके लिये अन्न, सुवर्णदान, दही व कम्बल विधिसे देना चाहिये ॥ १६ ॥ हे देवि ! जिसलिये कालेरूपवाला वृष श्वेतताको

त्त्वया ॥ ११ ॥ करमध्येममालग्नं कपालंपतितंतदा ॥ कपालमोचनश्चासौ लिङ्गरूपीस्थितोऽभवत् ॥ १२ ॥ तत्रापि योददेच्छ्राद्धं प्राचीदेव्यास्तुसन्निधौ ॥ तृप्तंकुलशतंमात्रं पैत्रंकुलशतंचतत् ॥ १३ ॥ मासेश्वयुजेदेवि कृष्णपक्षेच तुर्दशीम् ॥ तत्रदद्यात्तुयःश्राद्धं दक्षिणांमूर्तिमाश्रितः ॥ १४ ॥ यथावित्तोपचारेण सपात्रेचयथाविधि ॥ यावद्युगस हस्रन्तु तृप्तास्तेतुपितामहाः ॥ १५ ॥ अन्नंसुवर्णदानंचदधिकम्बलमेवच ॥ तत्रदेयंविधानेन सर्वपापोपशुद्धये ॥ १६ ॥ कृष्णरूपीवृषोदेवि यतःश्वेतत्वमागतः ॥ वृषतीर्थमितिख्यातं तेनत्रैलोक्यपूजितम् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेवृषतीर्थमाहात्म्यंनामत्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सूर्यप्राचीम्महाप्रभाम् ॥ सर्वपापोपशमनीं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वामहादेवि मुच्यतेपञ्चपातकैः ॥ तत्रगच्छेन्महादेवि देवंचैवत्रिलोचनम् ॥ २ ॥ ऋषितीर्थसमीपेतु सर्वपातकना

प्राप्तहुआ है उसी कारण त्रिलोक में पूजित वृषतीर्थ ऐसा कहागया है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवृषतीर्थमाहात्म्यंनामत्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰ । यथा त्रिलोचन देवकर अहै अतुल परभाव । दोसौ चौवनमें सोई चरित कह्यो चितचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सब कामनाओं के फलको देनेवाली व सब पापोंको नाशनेवाली महाप्रभावती सूर्यप्राची के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! उसमें नहाकर मनुष्य पांच पातकों से छूटजाता है व हे

महादेवि ! वहां त्रिलोचन देवजी के समीप जावै ॥ २ ॥ ऋषितीर्थके समीप न्यंकुमती नदीके उत्तर किनारे पै पुरातन समय ऋषियों से पूजित वह समस्त पातकों को नाशनेवाला लिङ्गहै ॥ ३ ॥ जहां तीन नेत्रोंवाली मछली और बिल्लौर के समान जलहै हे देवि ! उसमें नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूटजाताहै ॥ ४ ॥ भादोंमहीनेमें कृष्णपक्ष की चौदसि में मनुष्य उपास करै व रात्रिमें जागरण करै ॥ ५ ॥ जो प्रातःकाल श्राद्धकरै और विधिपूर्वक शिवजीको पूजै वह हे देवि ! शिवलोकमें तीसहज़ार वर्षोंतक बसताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिनेत्रेश्वरमाहात्म्यंनामचतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५४ ॥

शनम् ॥ न्यङ्कुमत्युत्तरेकूले ऋषिभिःपूजितम्पुरा ॥ ३ ॥ त्रिनेत्रामत्स्यकायत्र जलंस्फटिकसन्निभम् ॥ तत्रस्नात्वा नरोदेवि मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ४ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां मासेभाद्रपदेतथा ॥ उपवासंप्रकुर्वीत रात्रौजागरणंतथा ॥ ५ ॥ प्रातःश्राद्धंप्रकुर्वीत विधिवत्पूजयेच्छिवम् ॥ रुद्रलोकेवसेद्देवि वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेत्रिनेत्रेश्वरमाहात्म्यंनामचतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ऋषितीर्थस्यसन्निधौ॥कामिकंहिपरंक्षेत्रं देविकानाममनामतः ॥ १ ॥ महासिद्धवनंतत्र ऋषिसिद्धैःसमावृतम् ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं पर्वतैरुपशोभितम् ॥ २ ॥ चम्पकैर्बकुलैर्दिव्यैरशोकैःस्तबकैःपरैः ॥ पुन्नागैःकर्णिकारैश्च सुगन्धैर्नागकेशरैः ॥ ३ ॥ मल्लिकोत्पलपुष्पैश्च पाटलापारिजातकैः ॥ चूतजम्बूकपित्थैश्च श्रीफलैःपनसैस्तथा ॥ ४ ॥ खर्जूरैर्बदरैश्चान्यैर्मातुलुङ्गैःसदाडिमैः ॥ जम्बीरैश्चैवदिव्यैश्च नारङ्गैरुपशोभितम् ॥ ५ ॥

दो० । यथा देविकानदी अरु लिंग उमापति नाम । दोसौ पचपन में सोई वरण्यो चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर ऋषितीर्थ के समीप नामसे देविकानामक उत्तम कामदायक क्षेत्रके समीप जावै ॥ १ ॥ वहां सिद्ध ऋषियों से घिराहुआ महासिद्धवन अनेक भांतिके वृक्षों व लताओं से व्याप्त तथा पर्वतों से शोभित है ॥ २ ॥ व दिव्य चम्पक, मौलसिरी व उत्तम अशोक गुच्छों से तथा पुन्नाग, कर्णिकार व सुगन्धित नागकेसरों से शोभितहै ॥ ३ ॥ और बेला, कमलपुष्प, पाडर व पारिजात और आम, जामुन, कैथा, बेल व कटहरों से युक्तहै ॥ ४ ॥ और खजूर, बेर व अनार समेत अन्य मातुलिंग वृक्षोंसे तथा जँभीरी

निम्बू और दिव्य नारंगियों से शोभित है ॥ ५ ॥ और सुखदायक व गानेवाले मयूर तथा कोकिलाओं से व मृग, ऋक्ष, सूकर, सिंह व अन्य व्याघ्रों से संयुत है ॥ ६ ॥ और विविध आकारवाले हिंसक जीवोंसे तथा कन्दराओं व गुहाओं से शोभितहै और देवताओं व दैत्योंके गणोंसे तथा सिद्धोंसे व यक्ष, गन्धर्व और नागोंसे ॥ ७ ॥ और अप्सराओं से व बहुत से नागोंसे संयुत है कोई शिवजीकी स्तुति करते हैं और कोई आगे नाचते हैं ॥ ८ ॥ और कोई फूलोंकी वृष्टिको छोड़ते हैं व अन्य मुखको बजाते हैं व अन्य प्रसन्न होकर हँसते हैं तथा और गरजते हैं ॥ ९ ॥ व अन्य ऊर्ध्वबाहुहैं व कोई उसमें प्राप्त शिवजीको ध्यान करतेहैं उस स्थानमें हे महा-

शिखिभिःकोकिलैश्चैव गायमानैःसुखप्रदैः ॥ मृगैर्ऋक्षैर्वराहैश्च सिंहव्याघ्रैस्तथापरैः ॥ ६ ॥ श्वापदैर्विविधाकारैः कन्दरैर्गह्वरैस्तथा ॥ सुरासुरगणैःसिद्धैर्यक्षगन्धर्वपन्नगैः ॥ ७ ॥ अप्सरोभिश्चनागैश्च बहुभिस्तुसमाकुलम् ॥ केचित्स्तुवन्ति चेशानंकेचिन्नृत्यन्तिचाग्रतः ॥ ८ ॥ पुष्पवृष्टिन्तुमुञ्चन्ति मुखंवादन्तिचापरे ॥ हसन्तिचापरेहृष्टा गर्जन्तिचतथापरे॥ ९ ॥ ऊर्द्ध्वहस्तास्तथान्येच केचिद्ध्यायन्तितद्गतम्॥ तस्मिन्स्थानेमहादेवि देविकायास्तटेशुभे ॥ १० ॥ उमापतीश्वरोनाम तत्राहंसंस्थितःसदा ॥ सदायुगेयुगेपूर्णे कल्पेमन्वन्तरेतथा ॥ ११ ॥ नत्यजामिसदादेवि देविकायास्तटंशुभम् ॥ दुर्लभंसर्वलोकेस्मिन् पवित्रंसुप्रियंहिमे ॥ १२ ॥ त्वयासहस्थितश्चाहं तस्मिन्स्थानेवरानने ॥ उमयायुक्तदेहत्वात्ते नख्यातउमापतिः ॥ १३ ॥ पौषमासेह्यमावस्यां दद्याच्छ्राद्धंसमाहितः ॥ नपश्यामिक्षयंतस्य तस्मिन्दत्तस्यपार्वति ॥ १४ ॥ ब्रह्महत्यासहस्रन्तु तस्यदर्शनतोव्रजेत् ॥ गोभूहिरण्यवासांसि तत्रदद्याद्विचक्षणः ॥ १५ ॥ स एकः परमः पुत्रो

देवि ! देविकाके उत्तम किनारेपर ॥ १० ॥ उमापति ईश्वर नामक मैं वहां सदैव स्थितरहताहूं और सदैव प्रत्येक युग व कल्प तथा मन्वन्तरके पूर्ण होनेपर ॥ ११ ॥ हे देवि ! मैं देविकाके उत्तम किनारेको सदैव नहीं छोडताहूं जोकि इस सब संसारमें दुर्लभ है व पवित्र तथा मुझको बहुत प्रियहै ॥ १२ ॥ हे वरानने ! उस स्थानमें तुम समेतमैं स्थितहूं व उमासे संयुत शरीर के कारणमैं उसी लिये उमापति प्रसिद्धहूं ॥ १३ ॥ पौष महीने में अमावस तिथिमें सावधान पुरुष श्राद्धको देवै क्योंकि हे पार्वति ! उसमें दियेहुये उस श्राद्धके नाशकोमैं नहीं देखताहूं ॥ १४ ॥ और उसके दर्शन से हज़ार ब्रह्महत्या जाती रहती हैं, वहां चतुर मनुष्य गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण व

वस्त्रोंको देवै ॥ १५ ॥ हे सुन्दरि ! वहीं एक उत्तम पुत्रहै कि जो वहां जाकर पितरोंको श्राद्ध देवै क्योंकि उसका अन्त नहीं विद्यमान है ॥ १६ ॥ सब देवताओं ने स्नान के लिये उस उत्तम नदीको बुलाया है इस कारण उस समय वह पापनाशिनी नदी देविका ऐसी कहीगई है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेविकायामुमापतिमाहात्म्यंनामपञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो॰ । भूधरनामकदेव जिमि भये भूमि विख्यात । दोसौ छप्पन में सोई चरित अहै प्रख्यात ॥ महादेवजी बोले कि वहीं पै स्थित नामसे भूधर ऐसे प्रसिद्धदेवको

योगत्वात्तत्रसुन्दरि ॥ ददेच्छ्राद्धंपितॄणाञ्च तस्यान्तोनैवविद्यते ॥ १६ ॥ देवैःसर्वैःसमाहूता स्नानार्थंसासरिद्वरा ॥ देविकेतितदाख्याता तेनसापापनाशिनी ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेविकायामुमापतिमाहात्म्यन्नामपञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येद् भूधरंनामनामतः ॥ उद्धृत्यपृथिवींयस्माद्दंष्ट्राग्रेणादधारसः ॥ १ ॥ भूधरस्तेनचाख्यातो देविकातटसंस्थितः ॥ वेदपादोयूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तःस्रुचोमुखः ॥ २ ॥ अग्निर्जिह्वोदर्भरोमा ब्रह्मशीर्षोमहातपाः ॥ अहोरात्रेक्षणोवेदवेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥३॥ प्राग्वंशकायोद्युतिमान्मात्रादीक्षाविराजितः ॥ दक्षिणाहृदयोयोगो महासत्रमयोमहान् ॥ ४ ॥ उपाकृतोष्ठरुचिकः प्राग्वंशव्रतभूषणः ॥ नानाछन्दोगतिपथो ब्रह्मोक्तक्रमविक्रमः ॥ ५ ॥ भू

देखै जिसलिये उन्हों ने पृथ्वी को उठाकर दाढ़के अग्रभाग से धारण कियाहै ॥ १ ॥ उसी कारण देविकाके तटपै टिकेहुये भूधर कहेगये हैं वे वेदचरण व यज्ञस्तम्भ दाढ़वाले तथा यज्ञरूपी दन्तवाले और स्रुचरूपी मुखवाले हैं ॥ २ ॥ और अग्निरूपी जिह्वावाले तथा कुशरूपी रोमोंवाले व वेदशीर्ष तथा बड़े तपस्वी हैं और दिन रात नयनवारे व वेद, वेदांग तथा श्रुतिभूषण हैं ॥ ३ ॥ और प्राग्वंश याने सभासद् गृह शरीरवाले तथा द्युतिमान् व मात्रारूपी दीक्षाओं से शोभित हैं और दक्षिणारूपी हृदयवाले योगी व महायज्ञमय महान् पुरुष हैं ॥ ४ ॥ और उपाकृतरूपी ओष्ठरुचिवाले तथा सभासद् गृह व व्रतरूपी भूषणवाले हैं व अनेक भांतिके छन्दरूपी

गतिमार्गवाले व वेदोक्त क्रम विक्रमवाले हैं ॥ ५ ॥ ये यज्ञरूपी वराह होकर उस स्थान में स्थित हुयेहैं कुँवार महीने में अमावस व एकादशी तिथिमें ॥ ६ ॥ कन्या राशिमें प्राप्त सूर्यनारायण को जानकर प्रदोषसमय प्राप्त होनेपर गुड़से संयुक्त खीर व गुड़से डूबीहुई हव्य ॥ ७ ॥ व नवीन घीको नमोवः पितरो रसाय इस मंत्रसे अभिमन्त्रित करै व तेजोसिशुक्र इस मन्त्रसे घीको व दधिकाव्णेन इस मन्त्रसे दधि को अभिमन्त्रित करै ॥ ८ ॥ और आप्याय इस मन्त्रसे दूधको अभिमन्त्रित करै और जो व्यञ्जन हैं उनको व सब भक्ष्यभोज्यों को महानिद्रेण इस मन्त्रसे देवै ॥ ९ ॥ और संवत्सर ऐसा जो मन्त्र जपागया है उससे ब्राह्मण जलको देवै इस

त्वायज्ञवराहोसौ तत्रस्थानेस्थितोभवत् ॥ इषमासेह्यमावस्यामेकादश्यामथापिवा ॥ ६ ॥ प्राप्तेप्रदोषकालेच ज्ञात्वा कन्यागतंरविम् ॥ पायसंगुडसंयुक्तंहविष्यंगुडसंप्लुतम् ॥ ७ ॥ नमोवःपितरोरसायनवाज्यमभिमन्त्रयेत् ॥ तेजोसिशुक्र मित्याज्यं दधिक्राव्णेनवैदधि ॥ ८ ॥ क्षीरमाप्यायमन्त्रेण व्यञ्जनानिचयानितु ॥ भक्ष्यभोज्यानिसर्वाणि महानिद्रेणदापयेत् ॥ ९ ॥ संवत्सरेतियोमन्त्रो जप्तोतेनोदकंद्विजः ॥ एवंसंभोज्यवैविप्रान् पिण्डदानन्तुदापयेत ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे भूधरमाहात्म्यन्नामषट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मूलस्थानमितिस्मृतम् ॥ देविकायास्तुसामीप्ये भास्करंवारितस्करम् ॥ १ ॥ यत्रतेपेतपोघोरं बाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ॥ बाल्मीकिनामाविप्रर्षिर्यत्रसिद्धोमहामुनिः ॥ २ ॥ यत्रसप्तर्षयोमुष्टास्तेनैवमुनिना

प्रकार ब्राह्मणोंको भलीभांति भोजन कराकर पिण्डदानको देवै ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभूधरमाहात्म्यंनामषट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । तीरथ मूलस्थान में बाल्मीकि भे सिद्ध । दोसौ सत्तावने महँ सोई कथा प्रसिद्ध ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मूलस्थान ऐसे कहेहुये तीर्थ के समीपजावै व देविकानदीके समीप जलको चुरानेवाले सूर्यनारायणको देखै ॥ १ ॥ जहांपर मुनिश्रेष्ठ बाल्मीकिजीने भयङ्कर तप कियाहै व जहांपर बाल्मीकि

नामक विप्रर्षि सिद्ध हुये हैं ॥ २ ॥ व हे प्रिये ! उसीके पश्चिमभाग में जहां उन्हीं मुनिने मरीचि आदिक सप्तर्षि ब्राह्मणोंकी चोरी कियाहै ॥ ३ ॥ देवीजी बोलीं कि हे शङ्करजी ! बाल्मीकिजी कैसे सिद्ध हुये हैं और उन्होंने कैसे चोरीमें मन किया व किस प्रकार सप्तर्षि मुष्ट (चोरित) हुएहैं इसको मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पुरातन समय नाम से समीमुख ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआहै गृहस्थधर्म में प्राप्त उस द्विजके पुत्र पैदा हुआ ॥ ५ ॥ व वैशाख ऐसा नामक यह भयङ्कर कर्म करनेवाला हुआ इस ब्राह्मणने एक माता, पिताकी सेवाको छोड़कर अन्य कुछ ॥ ६ ॥ उत्तम कर्मको सदैव जन्मसे लगाकर नहीं किया हे प्रिये ! इसके

प्रिये ॥ तस्यैवपश्चिमेभागेमरीचिप्रमुखाद्विजाः ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ कथंचसिद्धोबाल्मीकिः कथंचौर्येकरोन्मनः ॥ कथंसप्तर्षयोमुष्टा एतन्मेवदशङ्कर ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ आसीत्पूर्वंद्विजोदेवि नाम्नाख्यातःसमीमुखः ॥ गार्हस्थ्येवर्त्तमानस्य तस्यपुत्रोऽभ्यजायत ॥ ५ ॥ वैशाखइतिनाम्नासौ रौद्रकर्माऽभ्यजायत ॥ मुक्त्वैकांगुरुशुश्रूषां नान्यत्किञ्चिदसौद्विजः ॥ ६ ॥ अकरोच्छोभनंकर्म जन्मप्रभृतिनित्यशः ॥ अथकालेनमहता पितरौतस्यतौप्रिये ॥ ७ ॥ वार्द्धक्यभावमापन्नौ मर्तव्यौभृशविह्वलौ ॥ सनित्यमटवींगत्वा मुष्ट्वाद्रव्याणिशक्तितः ॥ ८ ॥ द्रव्यमादायपितरौ भार्याञ्चापिपुपोषच ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य गच्छन्तस्तेनवैपथा ॥ ९ ॥ सप्तर्षयस्तदादृष्टास्तीर्थयात्रापरायणाः ॥ सततोयष्टिमुद्यम्य भर्त्सयन्परुषाक्षरैः ॥ १० ॥ वाक्यैरुवाचतान्सर्वांस्तिष्ठध्वमितिभूरिशः ॥ अथतेमुनयःशान्ताः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ११ ॥ समाःशत्रौचमित्रेच द्वेषरागविवर्जिताः ॥ अस्माभिर्दर्शनंचास्य संभाष्यमृषिभिःसह ॥ १२ ॥ संजातंविफलं

अनन्तर बहुत समय के बाद उसके वे माता पिता ॥ ७ ॥ वृद्धता में प्राप्तहुये व मरनेयोग्य वे अत्यन्तही विह्वल हुये और उसने नित्य वनको जाकर अपनी शक्तिसे द्रव्योंको चुराकर ॥ ८ ॥ व द्रव्यको लेकर माता, पिता वस्त्रीको पोषण किया इसके उपरान्त किसी समय उसी मार्गसे जातेहुये ॥ ९ ॥ तीर्थयात्रामें परायण सप्तर्षियों को उस समय उसने देखा तदनन्तर दण्डको उठाकर कठोर अक्षरोंवाले वचनों से घुड़कते हुये उसने उन सबोंसे बहुतही कहा कि खड़ेहूजिये इसके अनन्तर ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समभाववाले वे शान्त मुनिलोग ॥ १० । ११ ॥ जोकि शत्रु व मित्रमें समान थे और शत्रुता व स्नेहसे रहित थे बोले कि हमलोगों ऋषियों

के साथ इसका दर्शन व संभाषण ॥ १२ ॥ हुआहै वह मत निष्फल होवै यह कहकर उससे बोले अङ्गिराजी बोले कि हे तस्कर ! अपने हितके लिये सत्यकहते हुये मेरे वचन को सावधान होकर हर्षसे सुनो कि तुम्हारे घरमें कौन गोत्रवर्ग स्थित है इसको मुझ से कहिये ॥ १३ । १४ ॥ तस्कर बोला कि हे मुने ! मेरे वृद्ध माता पिताहैं व सन्तानहीन एक स्त्री है व ऐसा मैं हूं पाचवां नहीं है ॥ १५ ॥ अङ्गिराजी बोले कि पापसे इकट्ठा कियेहुये धनोंसे पालेहुये उन सबोंसे पूछिये कि मैं पापोंको करता हूं और तुमलोग सब खानेवाले हो ॥ १६ ॥ वह पाप किसको होगा और वह मेरा पातक किस प्रकार शीघ्रही जावैगा ऐसा कहाहुआ वह उसी क्षण

मास्यादित्युक्त्वातमुवाचह ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ भोभोस्तस्करमेवाक्यं शृणुष्वावहितःक्षणात् ॥ १३ ॥ आत्मनस्तुहितार्थाय सत्यञ्चैवप्रजल्पतः ॥ तववेश्मनिकस्तिष्ठेद्गोत्रवर्गोवदस्वमे ॥ १४ ॥ तस्कर उवाच ॥ स्यातांमेपितरौवृद्धौ भार्यैकापत्यवर्जिता ॥ एतादृशोह्यहञ्चैव पञ्चमोनास्तिवैमुने ॥ १५ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ गत्वापृच्छस्वतान्सर्वान् पुष्टान् पापार्जितैर्धनैः ॥ अहङ्करोमिपापानि सर्वेयूयंतुभक्षकाः ॥ १६ ॥ तत्पापम्भविताकस्य कथंयातिचमेलघु ॥ इत्युक्तस्तत्क्षणादेव जगामस्वगृहंततः ॥ १७ ॥ ऋषीणांतत्रवाक्यानि पितरौपर्यपृच्छत ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा तौतुप्रत्यूचतुस्तदा ॥ १८ ॥ पितरावूचतुः ॥ एकःपापानिकुरुतेफलंभुङ्क्तेमहाजनः ॥ भोक्तारोविप्रमुच्यन्तेकर्त्तादोषेणलिप्यते ॥ १९ ॥ यःकरोत्यशुभंकर्म कुटुम्बार्थेतुमन्दधीः ॥ आत्मानवल्लभस्तस्य नूनंपुंसस्तुपापिनः ॥ २० ॥ ईश्वर उवाच ॥ तयोस्तुवचनंश्रुत्वा पुनर्भीतमनाभवत ॥ तयोस्तुसन्निधौगत्वापितरौप्रत्यभाषत ॥ २१ ॥ युवाभ्यांहितमेवाहं यत्करोम्यशु

अपने घरको गया तदनन्तर ॥ १७ ॥ उसने वहां ऋषियोंके वचनोंको माता, पितासे पूंछा उसके उस वचनको सुनकर उस समय उन दोनोंने प्रत्युत्तरदिया ॥ १८ ॥ माता पिता बोले, कि एक पापोंको करता है व महाजन फलको भोगताहैहेविप्र! भोगनेवाले छूटजाते हैं और कर्ता दोषसे लिप्त होताहै ॥ १९ ॥ जो मन्दबुद्धि पुरुष कुटुम्ब के लिये अशुभकर्म करताहै उस पापी पुरुष को निश्चयकर आत्मा नहीं प्रियहै ॥ २० ॥ महादेवजी बोले कि उन दोनोंके वचन को सुनकर फिर वह भीत-

मनवाला हुआ और उन दोनों के समीप जाकर वह माता पितासे बोला ॥ २१ ॥ कि तुम दोनों के हितके लिये मैं जो कहीं अशुभकर्म करताहूं उसका कुछ भाग तुमसे भोग कियाजाता है उसको कहिये ॥ २२ ॥ माता पिता बोले कि हे पुत्र ! पहली अवस्थामें तुम माता पितासे पालनेयोग्य हुयेहो व हे पुत्र ! पिछली अवस्था में फिर तुमसे हमलोग भलीभांति पालनेयोग्य हैं ॥ २३ ॥ यह अन्योन्यधर्म कमलयोनि (ब्रह्मा) से बतलायागया है हम दोनोंने तुम्हारे लिये जिस शुभाशुभ कर्मको कियाहै ॥ २४ ॥ उस सबको हमहीं भोग करेंगे इसमें सन्देह नहीं है व हे वत्स ! तुमभी जो शुभाशुभ कर्म्म को करोगे ॥ २५ ॥ उस कर्मके भोगनेवाले तुम

भंकंचित ॥ तदंशोभुज्यतेकिञ्चिद्युवाभ्यांतन्निवेद्यताम् ॥ २२ ॥ पितरावूचतुः ॥ पूर्वेवयसिपुत्रत्वं पितृभ्यामपाल्य एवहि ॥ उत्तरेतुवयःपाल्याः सम्यक्पुत्रत्वयापुनः ॥ २३ ॥ इतरेतरधर्मोयं निर्दिष्टःपद्मयोनिना ॥ आवाभ्यांयत्कृतंकर्म युष्मदर्थंशुभाशुभम् ॥ २४ ॥ भोक्ष्यामोवयमेवेह तत्सर्वंनात्रसंशयः ॥ अथत्वमपियद्वत्स प्रकरोषिशुभाशुभम् ॥ २५ ॥ कर्म्मणस्तस्यभोक्तात्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ तस्मादेवप्रकर्त्तव्यं शुभंकर्मविपश्चिता ॥ २६ ॥ चौर्य्यंवाथकृषिर्वाथ कुसीदंवाथपुत्रक ॥ वाणिज्यमथवाप्रेष्यं कृत्वास्माकञ्चभोजनम् ॥ २७ ॥ अहर्निशंत्वयादेयं नदोषोस्मासुपुत्रक ॥ ताभ्यांतद्वचनंश्रुत्वा ततोभार्यामभाषत ॥ २८ ॥ तदेववाक्यमवदद् यत्प्रोक्तंगुरुभिःपुरा ॥ ततोवैराग्यमापन्नो वैशाखोमुनिसत्तमः ॥ २९ ॥ गर्हयन्नेवचात्मानं भूयोभूयस्सुदुःखितः ॥ धिङ्मांदुष्कृतकर्माणं पापकर्मरतंसदा ॥ ३० ॥ विवेकेन परित्यक्तः सत्सङ्गेनविवर्जितः ॥ सकरोतिनरःपापं नयस्सेवतिपण्डितम् ॥ ३१ ॥ नचात्मावल्लभस्तस्य एतन्मेवर्त्तते

होगे इसमें सन्देह नहीं है उसी कारण विद्वान् को उत्तम कर्म करना चाहिये ॥ २६ ॥ हे पुत्र ! चोरी या खेती अथवा व्याज व रोजगार और प्रेष्यता करके हमको भोजन ॥ २७ ॥ दिन रात तुमको देना चाहिये हे पुत्र ! हमलोगों में वह दोष नहीं है उन दोनोंसे उस वचन को सुनकर तदनन्तर उसने स्त्री से कहा ॥ २८ ॥ और पहले गुरुवों (श्वशुरों) से जो कहागया था उसी वचन का उसने भी कहा तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वैशाख वैराग्य को प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ व बार २ अपनी निन्दा करताहुआ वह अत्यन्त दुःखी हुआ कि सदैव पापकर्म में लगेहुये मुझ दुष्कृतकर्मवाले को धिक्कार है ॥ ३० ॥ जो पण्डितको नहीं सेवताहै वही विवेक से रहित

व सत्सङ्ग से वर्जित पुरुष पाप को करता है ॥ ३१ ॥ और उसको आत्मा (जीवात्मा) नहीं प्रिय है यह मेरे हृदय में वर्तमान होता है इस प्रकार विकल्प से विद्ध होताहुआ वह ऋषियों के समीप जाकर ॥ ३२ ॥ नम्रवचन से आदरसमेत यह बोला कि जाइये व हे ऋषे! वैसेही इस कमण्डलुको लीजिये ॥ ३३ ॥ और वल्कल व मृगचर्म के वसन तथा सब मृगचर्मों को लीजिये व हे मुनिश्रेष्ठो! सत्सङ्ग से छूटेहुये मुझ दीन मूर्ख व कृपण का अपराध क्षमा कीजिये आजसे लगाकर मैं इस निन्दित कर्मसे निवृत्त होगया ॥ ३४ । ३५ ॥ इसलिये भयङ्कर, क्रूर व साधुवों से निन्दित इस कर्मके प्रायश्चित्तको हमसे कहिये ॥ ३६ ॥ कि जिससे तुमलोगों की

हृदि ॥ एवंविकल्पविद्धस्सन् गत्वासऋषिसन्निधौ ॥३२॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा गम्यतामितिसादरम् ॥ ऋषेप्रगृह्यतामेष तथैवचकमण्डलुः ॥ ३३ ॥ वल्कलाजिनवासांसि मृगचर्माण्यशेषतः ॥ क्षम्यतामपराधोमे दीनस्यकृपणस्य च ॥३४॥ सत्सङ्गेनविमुक्तस्य मूर्खस्यमुनिसत्तमाः ॥ अद्यप्रभृतिनिर्वृत्तः कर्मणोस्माद्विगर्हितात् ॥ ३५ ॥ रौद्रस्यतुनृशंसस्य साधुभिर्गर्हितस्यच ॥ तस्मात्कथयतास्माकं निष्कृतिंचास्यकर्मणः ॥ ३६ ॥ येनयुष्मत्प्रसादेन पापान्मोक्षमहं व्रजे ॥ उपवासोथमन्त्रोवा नियमोवाथसंयमः ॥ ३७ ॥ ऋषयऊचुः ॥ साधुपृष्टंत्वयावत्स तत्त्वमेकमनाःशृणु ॥ सुगुह्यंकीर्तयिष्यामि त्वयाख्येयन्नकस्यचित् ॥ ३८ ॥ तेनस्तेयस्यपापात्त्वं मोक्षंप्राप्स्यसिनिश्चितम् ॥ उद्घोष्यचत्वया कीर्त्यो मन्त्रोयंचतुरक्षरः ॥ ३९ ॥ सर्वपापहरोनृणां स्वर्गमोक्षफलप्रदः ॥ सतैश्चमुनिभिःप्रोक्तो वैशाखोमुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ तस्यौजाप्यपरोनित्यं गतास्तेमुनिपुङ्गवाः ॥ तस्यैवंजपतोदेवि देविकायास्तटेशुभे ॥ ४१ ॥ अनिशंगुरुभक्त

प्रसन्नता से मैं पातकसे मोक्षको प्राप्तहोऊं उपास, मंत्र, नियम या संयम हो उसको कहिये ॥ ३७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे वत्स! तुमने बहुत अच्छा पूंछा उसको एक मनवाले होकर सुनिये मैं अत्यन्त गुप्तभी उस चरित्रको कहूंगा और तुमको किसीसे न कहना चाहिये ॥ ३८ ॥ उससे तुम चोरीके पापसे निश्चयकर मोक्षको प्राप्तहोगे और तुमको इस चार अक्षरोंवाले मन्त्रको उच्चस्वरसे घोषणाकर कहना चाहिये॥ ३९ ॥ जोकि मनुष्योंके सब पापोंको हरनेवाला व स्वर्ग तथा मोक्षके फलको देनेवाला है उन मुनियों से कहेहुये वे मुनिश्रेष्ठ वैशाखजी ॥ ४० ॥ नित्यही जपमें परायण होकर स्थितहुये और वे मुनिश्रेष्ठ चलेगये हे देवि! देविका नदी के उत्तम किनारे पै

इसप्रकार जपतेहुये उन ॥ ४१ ॥ निरन्तर गुरुभक्त मुनिके समाधि प्राप्तहुई उससमय क्षुधा व प्यास नष्ट होगई और शरीर शुद्धिको प्राप्तहुआ ॥ ४२ ॥ मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, पण्डित, औषध व गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है वैसी सिद्धि होती है ॥ ४३ ॥ यह स्वभावसे निर्मल परमात्मा वैसाही है कि जिसप्रकार उपाधि सङ्गको प्राप्त होकर स्फटिकका विकार होताहै ॥ ४४ ॥ व जिसप्रकार बन्ध्या भ्रमरी अनन्यबुद्धि होकर जीवको ध्यान करती है ॥ ४५ ॥ और ध्यानसे संयुत भ्रमरी अपने स्थान में स्थापित जीवको ध्यान करती है और उसके ध्यान से संयुत जीव वैसाही निश्चयकर होजाता है ॥ ४६ ॥ और अन्यजाति से उत्पन्न व सज्जनों का

स्य समाधिस्समपद्यत ॥ क्षुत्पिपासातदानष्टा शुद्धिमापकलेवरः ४२ ॥ मन्त्रेतीर्थेद्विजेदेवे दैवज्ञेभेषजेगुरौ ॥ यादृशीभावनायस्य सिद्धिर्भवतितादृशी ॥ ४३ ॥ निर्मलोयंस्वभावेन परमात्मातथाविधः ॥ उपाधिसङ्गमासाद्य विकारस्स्फाटिकोयथा ॥ ४४ ॥ यथाचभ्रमरीबन्ध्या ध्यायेज्जीवमनन्यधीः ॥ ४५ ॥ स्वस्थानेस्थापितंध्यायेद् भ्रमरीध्यानसंयुता ॥ ननुतद्ध्यानसंयुक्तो जीवोभवतितादृशः ॥ ४६ ॥ अन्यजात्युद्भवंवापि तथानिर्दर्शनंसताम् ॥ आदिष्टोगुरुणायश्च विकल्पंयदिगच्छति ॥ ४७ ॥ नासौसिद्धिमवाप्नोति मन्दभाग्योयथाविधि ॥ एवंवर्षसहस्राणि समतीतानिभूरिशः ॥ ४८ ॥ तस्यजाप्यपरस्यैवममृतत्वंगतस्यच ॥ ततःकालक्रमेणैव वल्मीकेनसवेष्टितः ॥ ४९ ॥ तेनासौसर्वतोव्याप्तो वल्मीकस्तंरुरोधवै ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य मुनयस्तेसमागताः ॥ ५० ॥ तम्प्रदेशन्तुसम्प्रेक्ष्य सहास्यमितरेतरम् ॥ ऊचुःपरस्परंसर्वे हत्वाचैवकरैःकरम् ॥ ५१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अत्रासौतस्करःप्राप्तो वैशाखोदारुणाकृतिः ॥ येनस

आदेश तथा जो गुरुसे बतलाया गयाहै वह यदि विकल्पको प्राप्तहोवै ॥ ४७ ॥ तो वह मन्दभाग्य मनुष्य विधिपूर्वक सिद्धिको नहीं प्राप्त होताहै इसप्रकार जपमें परायण व अमृतत्व को प्राप्त उसके बहुत से हज़ारों वर्ष व्यतीत हुये तदनन्तर समय के क्रमसे वह बँबौरि से घिरगया ॥ ४८ । ४९ ॥ और उससे यह सबओर से व्याप्त होगया व उस बँबौरिने उस मुनिको आच्छादन करलिया ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर किसी समय वे मुनिलोग आये व उस स्थानको देखकर आपस में हास्यसमेत

सब मुनियों ने हाथों से हाथ को मारकर परस्पर कहा ॥ ५१ ॥ ऋषिलोग बोले कि यहां भयङ्कर आकारवाला वह वैशाख चोर प्राप्तहुआथा कि जिसने इस स्थान में आये हुये हम सब लोगोंकी चोरी कियाथा ॥ ५२ ॥ इसप्रकार कहतेहुये उन्होंने बेंबौरि के बीचसे प्रकट उत्तम शब्दको सुना तदनन्तर कौतुक से संयुत उन ॥ ५३ ॥ ऋषियों ने वहां पर्वत के समान बेंबौरि को खोदा इसके अनन्तर उन मुनिश्रेष्ठोंने वहां वैशाख को देखा ॥ ५४ ॥ व बार २ उसी चतुरक्षरमन्त्रको पढ़तेहुये उसको योगसे सत्कार कियेहुये संयमों से समाधि में प्राप्त जानकर ॥ ५५ ॥ सबओर से ब्राह्मण प्रसन्न हुये और वह वहां प्रकट हुआ तदनन्तर सब ऋषियोंसे बोला कि किसलिये पृथ्वी

वेवयंमुष्टा अस्मिन्स्थानेसमागताः ॥ ५२ ॥ एवंसञ्जल्पमानास्ते शुश्रुवुश्शब्दमुत्तमम् ॥ वल्मीकमध्यतोऽव्यक्तं ततस्तेकौतुकान्विताः ॥ ५३ ॥ अखनंस्तत्रवल्मीकं ऋषयःपर्वतोपमम् ॥ अथतेददृशुस्तत्र वैशाखंमुनिसत्तमाः ॥ ५४ ॥ पठन्तमसकृन्मन्त्रं तमेवचतुरक्षरम् ॥ तंसमाधिगतंज्ञात्वा संयमैर्योगसत्कृतैः ॥ ५५ ॥ ननन्दुस्सर्वतोविप्रास्तत्रसप्रकटोभवत् ॥ ततोब्रवीदृषीन्सर्वान् किमर्थंखन्यतेमही ॥ ५६ ॥ गम्यतांतीर्थयात्रायां सर्वंत्यक्तंमयाद्विजाः ॥ ५७ ॥ वाच्यौमेपितरौगत्वा तथाभार्याद्विजोत्तमाः ॥ सर्वसङ्गपरित्यक्तो वैशाखस्समपद्यत॥५८॥दर्शनंकाङ्क्षतेनैव भवद्भिस्तु यथापुरा ॥ ऋषय ऊचुः॥ बहुवर्षाण्यतीतानि तवात्रवसतोमुने ॥ ५९ ॥ सर्वेतेनिधनंप्राप्ता येचान्येचकुटुम्बिनः ॥ वयंचिरात्समायाताः स्थानेस्मिन्मुनिसत्तम ॥ ६० ॥ सत्वंसिद्धिमनुप्राप्तो मन्त्रादस्मादसंशयम् ॥ यस्मात्त्वंमन्त्रमेकाग्रो ध्यायन्वल्मीकमाश्रितः ॥ ६१ ॥ तस्माद्वाल्मीकिनामात्वं भविष्यसिमहीतले ॥ स्वच्छन्दाभारतीदेवी जिह्वाग्रेच

खोदीजाती है ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणो ! तीर्थयात्रा के लिये जाइये मैंने सब कर्मको छोड़ दिया ॥ ५७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मेरे माता, पिता व स्त्री से कहियेगा कि सब संगोंको छोड़कर वैशाख प्राप्तहुआ है ॥ ५८ ॥ और पहले की नाईं वह आपलोगों के साथ दर्शन नहीं चाहता है ऋषिलोग बोले कि हे मुने ! यहां बसते हुये तुम को बहुत वर्ष बीतगये ॥ ५९ ॥ वे सब और जो अन्य कुटुम्बी थे वे नाशको प्राप्तहुये हे मुनिश्रेष्ठ ! हमलोग बहुत दिनोंसे इस स्थान में आये हैं ॥ ६० ॥ सो तुम इस मन्त्रसे निस्सन्देह सिद्धिको प्राप्त हुयेहो जिसलिये एकाग्र होकर मन्त्रको ध्यान करतेहुये तुम बल्मीक (बेंबौरि) में आश्रित हुये ॥ ६१ ॥ इसलिये तुम भूतल

में वाल्मीकिनामक होगे और जिह्वा के अग्रभाग में स्वच्छन्द सरस्वती देवी होगी ॥ ६२ ॥ और रामायण काव्यकर तदनन्तर मोक्षको प्राप्त होगे ॥ ६३ ॥ वैशाख बोले कि हे द्विजोत्तमो ! अपनी गुरुदक्षिणा को ग्रहण कीजिये कि जिससे मैं उऋण होकर बड़ा तप करूं ॥ ६४ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे विप्रजी ! तुम्हारी यही गुरुदक्षिणा है कि जो तुम सिद्धिको प्राप्तहुये हो व हे मुने ! सब कामनाओं से समृद्धात्मा हुयेहो और हमलोग कृतार्थ होगये ॥ ६५ ॥ तुम फिर वरदान को मांगिये जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो वाल्मीकिजी बोले कि आपलोग यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो और यदि मुझको वर देनेयोग्य है ॥ ६६ ॥ तो मुझ से शीघ्रही कहिये कि

भविष्यति ॥ ६२ ॥ कृत्वारामायणंकाव्यं ततोमोक्षंगमिष्यति ॥ ६३ ॥ वैशाख उवाच ॥ गृह्यतांद्विजशार्दूल आत्मनो गुरुदक्षिणा ॥ येनाहमनृणोभूत्वा करोमिसुमहत्तपः ॥ ६४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एषातेदक्षिणाविप्र यत्त्वंसिद्धिमुपागतः ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा कृतकृत्यावयम्मुने ॥ ६५ ॥ वरंवरयभूयस्त्वं यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ भवन्तोय दितुष्टामे यदिदेयोवरोमम ॥ ६६ ॥ कथ्यतांतर्हिमेशीघ्रं कोदेवोह्यत्रसंस्थितः ॥ देविकायास्तटेरम्ये सर्वकामफलप्र दः ॥ ६७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ शृणुष्वैकमनाविप्र योदेवश्चात्रसंस्थितः ॥ पश्यवृक्षमिमंविप्र बहुशाखाप्रविस्तरम् ॥ ६८ ॥ अस्यमूलेस्थितस्सूर्यः कल्पादौब्रह्मणोंशजः ॥ तमाराधयतत्त्वेन अस्यस्थानस्यदैवतम् ॥ ६९ ॥ सूर्यक्षेत्रंसमाख्या तमिदंगव्यूतिमात्रकम् ॥ अत्रस्थानेस्थितायेपि तेषांस्वर्गोध्रुवंभवेत् ॥ ७० ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाराधयामासतंरविम् ॥ ततस्तुष्टोदिवानाथो वरंब्रूहितमब्रवीत् ॥ ७१ ॥ विप्र उवाच ॥ अद्यप्रभृतिदेवेश मूलस्थानमितिश्रुतम् ॥ स्थानंभवतुदे

यहां देविकानदी के सुन्दर तटपै सब कामनाओं के फलको देनेवाला कौन देवता स्थित है ॥ ६७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे विप्रजी ! एक मनवाले होकर सुनिये कि यहां जो देवता स्थितहै हे विप्रजी ! बहुत शाखाओं के विस्तारवाले इस वृक्षको देखिये ॥ ६८ ॥ कल्पके आदि से ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न सूर्यनारायणजी इसके मूल (जड़) में स्थित हैं इस स्थान के देवता उन सूर्यनारायण को यथार्थ आराधन कीजिये ॥ ६९ ॥ दो कोसभर यह स्थान सूर्यक्षेत्र कहागया है व इस स्थान में जो स्थित हैं उनको निश्चयकर स्वर्ग होताहै ॥ ७० ॥ उनके उस वचन को सुनकर उसने उन सूर्यनारायण को आराधन किया तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये सूर्य

नारायणनें उससे कहा कि वरदानको मांगिये ॥ ७१ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे देवेश! आजसे लगाकर मूलस्थान ऐसा प्रसिद्ध स्थान होवै व हे देवेश! तुमको यहां स्थिति करना चाहिये ॥ ७२ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे द्विजेन्द्र! आजसे लगाकर देविकानदी के तटपै स्थित यह तीर्थ पृथ्वी में उत्तम सिद्धिको प्राप्त होगा ॥ ७३ ॥ व हे विप्रजी! पहले में स्थित सूर्यनारायण जिसलिये प्रसन्न हुयेहैं उसी कारण संसारमें मूलस्थान ऐसा नाम प्रसिद्धि को प्राप्तहोगा ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य यहां भक्तिसे सूर्यके उत्तर सङ्गम में स्नान करैंगे वे स्वर्गको जावैंगे ॥ ७५ ॥ हे द्विजोत्तम! तिलमिलेहुये जल से, तर्पण से पितरोंकी गयाश्राद्धके समान तुष्टि

रा कार्याचात्रत्वयास्थितिः ॥ ७२ ॥ सूर्य उवाच ॥ अद्यप्रभृतिविप्रेन्द्र तीर्थमेतन्महीतले ॥ गमिष्यतिपरांख्यातिं देविकातटमाश्रितम् ॥ ७३ ॥ सूर्यस्तुष्टोयतोविप्र मूलस्थानेपुरास्थितः ॥ मूलस्थानेतिवैनाम लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ ७४ ॥ अत्रयेमानवाभक्त्या स्नानंसूर्यस्यसङ्गमे ॥ उत्तरेतुकरिष्यन्ति तेयास्यन्तित्रिविष्टपम् ॥ ७५ ॥ तर्पणात्तिलमिश्रेण जलेनाद्विजसत्तम ॥ गयाश्राद्धसमातुष्टिः पितॄणांचभविष्यति ॥ ७६ ॥ अत्रयेमानवाभक्त्या श्राद्धंदास्यन्ति सत्तमाः ॥ शाकमूलफलैर्वापि पिण्याकेनगुडेनवा ॥ ७७ ॥ तेयास्यन्तिपरंमोक्षं नात्रकार्याविचारणा ॥ अपिकीटपतङ्गाये पक्षिणःपशवोमृगाः ॥ ७८ ॥ तृषार्त्ताजलसंस्पर्शाद् यास्यन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ अहमेवसदात्रस्थः श्रावणेमासिसत्तम ॥ ७९ ॥ पौर्णमास्यांभविष्यामि तवस्नेहादसंशयम् ॥ तस्मिन्नहनियस्तोयैः पितॄन्सन्तर्पयिष्यति ॥ ८० ॥ तस्याष्टादशकुष्ठानि क्षयंयास्यन्तितत्क्षणात् ॥ कापालौदुम्बराख्येतु मण्डलाख्यंविचर्चिका ॥ ८१ ॥ ऋक्षजिह्वंकच्छु

होगी ॥ ७६ ॥ जो श्रेष्ठ विद्वान् मनुष्य यहां भक्तिसे शाक, मूल, फल, पीना व गुड़ से श्राद्धको देवैंगे ॥ ७७ ॥ वे उत्तममोक्ष को प्राप्तहोंगे इसमें विचार न करना चाहिये और जो कीट, पतङ्ग, पक्षी, पशु व मृगहैं ॥ ७८ ॥ वे प्यास से विकल जलके स्पर्शसे उत्तमगतिको प्राप्तहोवैंगे व हे सत्तम! श्रावण महीने में पौर्णमासी तिथि में सदैव तुम्हारे स्नेहसे यहां स्थित हूंगा इसमें सन्देह नहीं है उस दिन जो मनुष्य जलोंसे पितरों को भलीभांति तर्पण करैगा ॥ ७९ । ८० ॥ उसके उसीक्षण अठा-

रह कुष्ठ नाशको प्राप्त होवैंगे कापाल, औदुम्बर, मण्डलनामक व विचर्चिका ॥ ८१ ॥ ऋक्षजिह्व, कच्छु, किटिभ, सिध्म, अलस, विपादिका, दद्रु, शतारु, विस्फोटक, पुण्डरीक, काकण ॥ ८२ ॥ व पामा, चर्मदल और चर्म ये अठारह कुष्ठ जाते रहैंगे इसमें सन्देह नहीं है यह कहकर सूर्यनारायण अन्तर्द्धान होगये ॥ ८३ ॥ और ऋषिने सूर्यनारायण को आराधन किया तदनन्तर रामायण को बनाया इसलिये सब यज्ञों के फलको देनेवाले उन सूर्यदेव को देखै ॥ ८४ ॥ और समस्त पातकों को नाश करनेवाली इस कथाको सुनै ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांदेविकामाहात्म्येमूलस्थानमाहात्म्यंनामसप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥

किटिभे सिध्मालसविपादिकाः ॥ दद्रुश्शतारुर्विस्फोटं पुण्डरीकंचकाकणम् ॥ ८२ ॥ पामाचर्मदलंचर्म कुष्ठानष्टादशैवतु ॥ गमिष्यन्तिनसन्देह इत्युक्त्वान्तर्दधेरविः ॥ ८३ ॥ ऋषिराराधयामास चक्रेरामायणन्ततः ॥ तस्मात्पश्येच्चतन्देवं सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥ ८४ ॥ शृणुयाच्चकथांचैनांसर्वपातकनाशिनीम् ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देविकामाहात्म्येमूलस्थानमाहात्म्यन्नामसप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि च्यवनार्कमनुत्तमम् ॥ हिरण्यापूर्वभागस्थं च्यवनेनप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ सर्वकामप्रदंनृणां पूजितंविधिवन्नरैः ॥ सप्तम्याञ्चविधानेन यश्चस्तौतिरविंनरः ॥ २ ॥ अष्टोत्तरशतैर्नाम्नां सम्यक्छ्रद्धास[illegible]नः ॥ शृणुतानिमहादेवि शुचिर्भूत्वासमाहिता ॥ ३ ॥ तवस्नेहादहन्देवि सर्ववक्ष्याम्यशेषतः ॥ ४ ॥ धौम्येनतु

दो० । च्यवन[illegible] [illegible]प्यो यथा च्यवन नाम मुनिनाथ । दोसौ अट्ठावने महँ सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्या के पूर्वभागमें स्थित च्यवनजी से [illegible] ने अति उत्तम च्यवनार्कजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि मनुष्यों से विधिपूर्वक पूजित व मनुष्यों के सब कामनाओंके फलको देनेवालेहैं सप्तमी तिथिमें जो मनुष्य [illegible] [illegible]ति श्रद्धासंयुत होकर एक सौ आठ नामोंसे सूर्यनारायण की स्तुति करताहै वह अपने मनोरथको प्राप्तहोताहै हे महादेवि ! पवित्र होकर सावधान होतीहुई तुम उन ना[illegible] सुनो ॥ २ । ३ ॥ हे देवि ! तुम्हारे स्नेहसे मैं सम्पूर्णता से सब कहूंगा ॥ ४ ॥ हे महामते ! पुरातन समय जिस

प्रकार धौम्यऋषि ने महात्मा युधिष्ठिरजी से एक सौ आठ नामोंको कहाहै उसको सुनिये ॥ ५ ॥ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता व प्रभाकर ॥ ६ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, पवन, परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, मङ्गल ॥ ७ ॥ इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तकिरण, शुचि, सौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, स्वामिकार्त्तिकेय, कुबेर, यमराज ॥ ८ ॥ विद्युत, जाठराग्नि, इन्धनाग्नि व तेजोंके स्वामी, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेदवाहन ॥ ९ ॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, संवत्सरात्मक, कला, काष्ठा, मुहूर्त, पक्ष, मास, अहर्निश ॥ १० ॥ संवत्सरकारक, निर्मल, कालचक्र, विभावसु, पुरुष,

यथापूर्वं पार्थायसुमहात्मने ॥ नामाष्टशतमाख्यातं तच्छृणुष्वमहामते ॥ ५ ॥ ॐसूर्योर्यमाभगस्त्वष्टा पूषार्कस्सवितारविः ॥ गभस्तिमानजःकालो मृत्युर्धाताप्रभाकरः ॥ ६ ॥ पृथिव्यापश्चतेजश्च खंवायुश्चपरायणः ॥ सोमोबृहस्पतिःशुक्रो बुधोङ्गारकएवच ॥ ७ ॥ इन्द्रोविवस्वान्दीप्तांशुः शुचिस्सौरिश्शनैश्चरः ॥ ब्रह्मारुद्रश्चविष्णुश्च स्कन्दोवैश्रवणोयमः ॥ ८ ॥ विद्युतोजाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसाम्पतिः ॥ धर्मध्वजोवेदकर्त्ता वेदाङ्गोवेदवाहनः ॥ ९ ॥ कृतंत्रेताद्वापरश्च कलिःसंवत्सरात्मकः ॥ कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च पक्षोमासस्त्वहर्निशम् ॥ १० ॥ संवत्सरकरःस्वच्छः कालचक्रोविभावसुः ॥ पुरुषश्शाश्वतोयोगी व्यक्ताव्यक्तस्सनातनः ॥ ११ ॥ लोकाध्यक्षःप्रजाध्यक्षो विश्वकर्मातमोनुदः ॥ वरुणस्सागरोगस्त्यो जीमूतोजीवनौषधम् ॥ १२ ॥ भूताश्रयोभूतपतिः सर्वभूतनिषेवितः ॥ श्रेष्ठस्संवर्तकोवह्निस्सर्वस्यादिकरोमलः ॥ १३ ॥ अनन्तःकपिलोभानुः कामदस्सर्वतोमुखः ॥ जयोनिषादोवरदः सर्वशत्रुनिषेवितः ॥ १४ ॥ समस्सुवर्णोभूतादिश्शीघ्रगःप्राणधारकः ॥ धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोदितेस्सुतः ॥ १५ ॥ द्वादशात्मारविन्दाक्षः पितामा

शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन ॥ ११ ॥ लोकाध्यक्ष, प्रजापति, विश्वकर्मा, अन्धकारनाशक, वरुण, सागर, अगस्त्य, जीमूत, जीवनौषध ॥ १२ ॥ भूताश्रय, भूतपति, समस्त प्राणियों से सेवित, श्रेष्ठ, संवर्तक, वह्नि, सबके आदिकारक व निर्मल ॥ १३ ॥ अनन्त, कपिल, भानु, कामदायक, सर्वतोमुख, जय, निषाद, वरदायक व सब शत्रुवों से सेवित ॥ १४ ॥ सम, सुवर्ण, भूतादि, शीघ्रगामी, प्राणधारक, धन्वन्तरि, धूम्रकेतु, आदिदेव, अदिति के पुत्र ॥ १५ ॥ द्वादशात्मा, कमल-

नयन, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, स्वर्ग ॥ १६ ॥ शरीरकारक, प्रशान्तचित्त, जगदात्मा, सर्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा व मित्रशरीर से संयुत ॥ १७ ॥ कीर्तन करनेयोग्य व अतुल तेजवाले सूर्य्यनारायण के इन एकसौ आठ नामोंको महात्मा इन्द्रजी ने कहा है ॥ १८ ॥ और इन्द्रसे नारद जीने पायाहै तदनन्तर धौम्यने पाया और धौम्यसे युधिष्ठिरजीने प्राप्तहोकर सब कामनाओंको पायाहै ॥ १९ ॥ सूर्योदय में सावधान होताहुआ जो पुरुष इस स्तोत्रको पढ़ता है वह पुत्रलाभ व धन तथा रत्नोंके समूहों को प्राप्त होताहै और वह मनुष्य सदैव जातिके स्मरण व स्मृति व बुद्धिको पाताहै ॥ २० ॥ देवताओं में श्रेष्ठ सूर्य-

तापितामहः ॥ स्वर्गद्वारंप्रजाद्वारं मोक्षद्वारंत्रिविष्टपः ॥ १६ ॥ देहकर्त्ताप्रशान्तात्मा विश्वात्माविश्वतोमुखः ॥ चराचरात्मासूक्ष्मात्मा मित्रेणवपुषान्वितः ॥ १७ ॥ एतद्वैकीर्त्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः ॥ नाम्नामष्टशतंप्रोक्तं शक्रेणसुमहात्मना ॥ १८ ॥ शक्राच्चनारदःप्राप धौम्यस्तुतदनन्तरम् ॥ धौम्याद्युधिष्ठिरःप्राप्य सर्वान्कामानवाप्तवान् ॥ १९ ॥ सूर्योदयेयस्तुसमाहितःपठेत्सपुत्रलाभंधनरत्नसंचयान् ॥ लभेतजातिस्मरणंसदानरस्स्मृतिंचमेधाञ्चसविन्दतेपुमान् ॥ २० ॥ इदंस्तवन्देववरस्ययोनरः प्रकीर्त्तयेद्वैसुमनास्समाहितः ॥ समुच्यतेशोकदवाग्निरोगाल्लभेतकामान्मनसायथेप्सितान् ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेच्यवनादित्यमाहात्म्यसूर्याष्टोत्तरशतनामवर्णनन्नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि च्यवनेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रैवसंस्थितंलिङ्गं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ यत्रश

नारायण के इस स्तोत्रको जो सुन्दर मनवाला मनुष्य सावधान होकर पढ़ता है वह शोकरूपी दावाग्नि के रोगसे छूटजाता है और मनसे चाहेहुये मनोरथों को पाता है ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांच्यवनादित्यमाहात्म्यसूर्याष्टोत्तरशतनामवर्णनन्नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

दो० । यथा सुकन्या को लह्यो च्यवननाम मुनिनाथ । दोसौ उन्सठि में सोई बरण्यो उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम च्यवने-

श्वरजी के समीप जावै वहींपर समस्त पातकों का नाशक वह लिङ्ग स्थितहै ॥ १ ॥ जहांपर शर्यातिने उस सुकन्याको च्यवन महर्षि के लिये दियाहै और जहां उन की सेना स्तम्भित कीगई व उन च्यवन ने आनाहरोग से विकल किया ॥ २ ॥ हे देवि ! साक्षात् पातकों के विनाशक प्रभासक्षेत्र के मध्यमें यह शर्याति राजाके यज्ञ का देश (स्थान) प्रकाशितहै ॥ ३ ॥ उनके यज्ञमें कौशिकजी ने अश्विनीकुमारों समेत सोमको पियाहै और बड़े तपस्वी भार्गव (च्यवन) जीने इन्द्रकेलिये क्रोध किया ॥४॥ और उन च्यवन प्रभुने इन्द्रको स्तम्भित किया और उन्होंने सुकन्या राजकन्याको स्त्री पायाहै ॥ ५ ॥ देवीजी बोलीं कि उन च्यवनजीने भगवान् इन्द्रको

र्यातिनादत्ता सुकन्यासामहर्षये ॥ यत्रसंस्तम्भितंसैन्यमानाहार्तमथाकरोत् ॥ २ ॥ एषशर्यातियज्ञस्य देशोदेविप्रकाशते ॥ प्रभासक्षेत्रमध्येतु साक्षात्पातकनाशने ॥ ३ ॥ तस्ययज्ञेपिबत्सोममश्विभ्यांसहकौशिकः ॥ चुकोपभार्गवश्चैव महेन्द्रायमहातपाः ॥ ४ ॥ संस्तम्भयामासशक्रं सेषतुच्यवनःप्रभुः ॥ सुकन्यांचापिभार्यांस राजपुत्रीमवाप्तवान् ॥ ५ ॥ देव्युवाच ॥ कथंविष्टम्भितस्तेन भगवान्पाकशासनः ॥ किमर्थंभार्गवश्चापि कोपंचक्रेमहातपाः ॥ ६ ॥ नासत्यौचकथन्देव कृतवान्सोमपौचतौ ॥ एतत्सर्वंयथावृत्तमाख्यातुभगवान्मम ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ भृगोर्महर्षेःपुत्रोभूच्च्यवनोनामनामतः ॥ सप्रभासंसमासाद्य तपस्तेपेमहामुनिः ॥ ८ ॥ स्थाणुभूतोमहातेजा वीरस्थानश्चभामिनि ॥ अतिष्ठत्सबहून्कालानेकदेशेवरानने ॥ ९ ॥ सवल्मीकोभवत्तत्र लताभिरभिसंवृतः ॥ कालेनमहतादेवि समाकीर्णः पिपीलिकैः ॥ १० ॥ सतथासंवृतोधीमान् मृत्पिण्डइवसर्वतः ॥ तपन्तिस्मतपोघोरं वल्मीकेनसमावृतः ॥ ११ ॥ अथ

किसलिये स्तम्भित कियाहै और किसकारण भगवान् च्यवन महातपस्वीने क्रोध किया है ॥ ६ ॥ व हे देव ! उन अश्विनीकुमारों को किसकारण सोमप किया इस सब यथायोग्य वृत्तान्त को आप मुझ से कहिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि महर्षि भृगुजी के च्यवन नामक पुत्र हुआहै उस मुनिने प्रभासक्षेत्र को जाकर तप किया है ॥ ८ ॥ हे भामिनि ! वे बड़े तेजस्वी मुनि वीरस्थान याने वीरासन पै स्थाणुभूत (खम्भाकी नाईं) होगये और हे वरानने ! एकही स्थान पै वे बहुत समय तक स्थित रहे ॥ ९ ॥ हे देवि ! वहां लताओं से घिरीहुई वह बँबौरि होगई और बहुत समय के बाद चींटियों से व्याप्त होगई ॥ १० ॥ सबओर से मिट्टी के पिण्ड

की नाई आच्छादित वह बुद्धिमान् बँबौरि से घिरकर भयङ्कर तप करताभया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर किसी समय शर्यातिनामक राजा तीर्थयात्रा के प्रसङ्गसे श्रीसोमेश जीके देखने की इच्छा से ॥ १२ ॥ पापनाशक प्रभास महाक्षेत्र को आया और उस राजा के चार हज़ार स्त्रियां थीं ॥ १३ ॥ और सुन्दरी भौंहोंवाली सुकन्यानामक एकही कन्याथी सब गहनों से भूषित व सखियों से घिरीहुई वह ॥ १४ ॥ विचरती हुई भार्गव (च्यवन) जी के आश्रमको प्राप्त हुई और सुन्दर दांतोंवाली तथा सखियों से घिरीहुई वह सुन्दर वनस्पतियों को देखती व ढूंढ़ती हुई विहार करती रही और रूप, अवस्था व मदिरा पीनेके मदमें ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसने वनके वृक्षोंकी

कस्यापिकालस्य शर्यातिर्नामपार्थिवः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन श्रीसोमेशदिदृक्षया ॥ १२ ॥ आजगाममहाक्षेत्रं प्रभासं पापनाशनम् ॥ तस्यस्त्रीणांसहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः॥ १३ ॥ एकैवतुसुतासुभ्रूः सुकन्यानामनामतः ॥ सासखी भिःपरिवृता सर्वाभरणभूषिता॥ १४॥ चङ्क्रम्यमाणावल्मीकं भार्गवस्यसमासदत् ॥ साचैवसुदतीतत्र पश्यमानामनो रमान् ॥१५॥ वनस्पतीन्विचिन्वन्ती विजहारसखीवृता ॥रूपेणवयसाचैव सुरापानमदेनच ॥ १६ ॥ बभञ्जवनवृक्षा णां शाखाःपरमपुष्पिताः ॥ तांसखीसहितामेकामेकवस्त्रामलंकृताम् ॥ १७॥ददर्शभार्गवोधीमांश्चरन्तीमिवविद्युतम् ॥ तांपश्यमानोविजने सरेमेपरमद्युतिः ॥ १८ ॥ क्षामकण्ठश्चब्रह्मर्षिस्तपोबलसमन्वितः॥तामभाषतकल्याणीं सावाचंन शृणोतिवै ॥ १९ ॥ ततस्सुकन्यावल्मीके दृष्ट्वाभार्गवचक्षुषी ॥ कौतूहलात्कण्टकेन बुद्धिमोहबलान्विता ॥ २० ॥ किन्नुखल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्यलोचने ॥ अक्रुध्यततथाविद्धे नेत्रेसपरमःपुमान् ॥ २१ ॥ ततश्शर्यातिसैन्य

बहुतहीं फूलीहुई डालोंको तोड़डाला सखियों समेत व एक वस्त्रोंवाली तथा भूषित उस एक सुकन्याको ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् भार्गवजी ने बिजली की नाई चलती हुई देखा और निर्जनवनमें उसको देखतेहुये वे बड़े द्युतिमान् च्यवनजी रमण करतेरहे ॥ १८ ॥ और तपस्याके बलसे संयुत व दुर्बल कण्ठवाले वे ब्रह्मर्षि उस कल्याणी से बोलते थे और वह वचन को नहीं सुनती थी ॥ १९ ॥ तदनन्तर सुकन्या ने बँबौरि में भार्गव च्यवनजी के नेत्रोंको देखकर बुद्धिके मोहबल से संयुत होकर यह क्या है ऐसा कहकर कौतुकसे इनके नेत्रोंको कांटेसे फोड़डाला और उससे नेत्रोंके विद्ध होनेपर उन परमपुरुष च्यवनजीने क्रोधकिया ॥ २० । २१ ॥ तदनन्तर शर्याति

राजाकी सेनाके मूत्र व विष्ठाको रोंकदिया उसके उपरान्त विष्ठा व मूत्रके रुकनेपर इस राजाकी सेना बहुत दुःखित हुई ॥ २२ ॥ और तपस्या में निष्ठ व ब्राह्मण के क्रोधसे वैसी हुई सेनाको देखकर राजा विशेषकर दुःखी हुआ ॥ २३ ॥ यहा आज महात्मा भार्गव (च्यवन) जीका किसने अपकार कियाहै जानागया हो या न जानागया हो उसको तुमलोग शीघ्रही कहो ॥ २४ ॥ सब सेनावाले पुरुषोंने उस राजा से कहा कि हमलोग अपकारीको नहीं जानते हैं आप इच्छाके अनुकूल सब यत्नोंसे जानिये ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस पृथ्वीपालने उग्र साम (समझाने) से मित्रवर्ग से आपही पूंछा कि मैंने नहीं जाना ॥ २६ ॥ तदनन्तर उस सेनाको

स्य शकृन्मूत्रेसमावृणोत् ॥ ततोरुद्धेशकृन्मूत्रे सैन्यमस्यसुदुःखितम् ॥२२॥ तथाभूतमभिप्रेक्ष्य पर्यतप्यतपार्थिवः॥ तपोनिष्ठस्यरोषेण ब्राह्मणस्यविशेषतः ॥ २३ ॥ केनापकृतमद्येह भार्गवस्यमहात्मनः ॥ ज्ञातंवायदिवाज्ञातं तदिदंब्रूत माचिरम् ॥ २४ ॥ तमूचुस्सैनिकास्सर्वे नविद्मोपकृतंवयम् ॥ सर्वोपायैर्यथाकामं भवान्समधिगच्छतु ॥ २५ ॥ ततस्स पृथिवीपालस्साम्नाचोग्रेणचस्वयम् ॥ पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं प्रतिज्ञातंनचैवमे ॥ २६ ॥ आनाहार्ततततोदृष्ट्वा तत्सैन्यमसुखार्दितम् ॥ पितरंदुःखितंचापि सुकन्यैनमथाब्रवीत् ॥ २७॥ मयाटन्त्येहवल्मीके दृष्टंसत्त्वमभिज्वलत् ॥ खद्योतवद विज्ञानान्मयाविद्धन्तुकौतुकात् ॥ २८ ॥ एतच्छ्रुत्वातुशर्यातिर्वल्मीकंक्षिप्रमभ्यगात् ॥ तत्रापश्यत्तपोवृद्धं वयोवृद्धञ्च भार्गवम् ॥ २९ ॥ अथावदत्तुसैन्यार्थे प्राञ्जलिस्समहीपतिः ॥ अज्ञानाद्बालयायत्ते कृतंतत्क्षन्तुमर्हसि ॥ ३० ॥ ततो ब्रवीन्महीपालं च्यवनोभार्गवस्तदा ॥ रूपौदार्यसमायुक्तां लोभमोहसमन्विताम् ॥ ३१ ॥ तामेवप्रतिगृह्याहं राजन्दु

आनाह (विष्ठा मूत्रके रुकने) से विकल व दुःखसे व्याकुल देखकर और पिताको भी दुःखित देखकर सुकन्या इस शर्याति से बोली॥ २७ ॥ कि यहां घूमतीहुई मैंने बँबौरि में जुगुनू की नाई प्रकाशवान् जन्तुको देखा और अज्ञानसे मैंने कौतुक से वेधन किया ॥ २८ ॥ इस वचन को सुनकर शर्याति शीघ्रही बँबौरि के समीप आये वहा उन्होंने तपस्या से वृद्ध व अवस्था से वृद्ध च्यवनजी को देखा ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त हाथोंको जोड़कर उस राजाने सेनाके लिये कहा कि अज्ञानसे कन्याने जो तुम्हारा अपकार कियाहै उसको तुम क्षमा करनेके योग्यहो ॥ ३० ॥ तदनन्तर उस समय भृगुके पुत्र च्यवनजीने भूपाल से कहा कि हे भूपाल,राजन्! रूप व उदारता

से संयुत तथा लोभ व मोहसे युक्त तुम्हारी उसी कन्याको ग्रहणकर क्षमा करूँगा मैं इसको तुमसे सत्य कहताहूं ॥ ३१ । ३२ ॥ महादेवजी बोले कि ऋषिके वचनको जानकर न विचारतेहुये शर्यातिने उन महात्मा च्यवनजी के लिये कन्याको दिया ॥ ३३ ॥ और वे भगवान् च्यवनजी उस कन्याको पाकर प्रसन्नहुये व प्रसन्नता को प्राप्त होनेपर सेना समेत राजा नगर को आया ॥ ३४ ॥ और सुकन्या ने उन प्रशंसनीय व तपस्वी च्यवनजी को पाकर प्रीति से तपस्या व नियमसे नित्य सेवा किया ॥ ३५ ॥ शीघ्रही मुनियों व पाहुनों की सेवाकर वह सुन्दरमुखी सुकन्या उन च्यवनजीकी सेवा करती थीं ॥३६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रतीर्थयात्रायांच्यवनेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २५९ ॥

हितरन्तव ॥ क्षमिष्यामिमहीपाल सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ३२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ऋषेर्वचनमाज्ञाय शर्यातिरविचारयन् ॥ ददौदुहितरंतस्मै च्यवनायमहात्मने ॥ ३३ ॥ सप्रतिगृह्यतांकन्यां भगवान्प्रससादह ॥ प्राप्तेप्रसादेराजास ससैन्यपुरमाव्रजत् ॥ ३४ ॥ सुकन्यातम्पतिंलब्ध्वा तपस्विनमनिन्दितम् ॥ नित्यंपर्यचरत्प्रीत्या तपसानियमेनच ॥ ३५ ॥ मुनीनामतिथीनांहि शुश्रूषांचविधायवै ॥ आराधयतितंक्षिप्रं च्यवनंसाशुभानना ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रतीर्थयात्रायांच्यवनेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५९ ॥

ईश्वर उवाच ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य त्रिदशावश्विनौप्रिये ॥ कृताभिषेकांसुदतीं सुकन्यांतावपश्यताम् ॥ १ ॥ तान्दृष्ट्वादर्शनीयाङ्गीं देवराजसुतामिव ॥ ऊचतुस्समभिप्रेत्य नासत्यावश्विनाविदम् ॥ २ ॥ कस्यत्वमसिवामोरु किंवनेस्मिंश्चिकीर्षसि ॥ इच्छावस्त्वामथज्ञातुंतत्त्वमाख्याहिशोभने ॥ ३ ॥ ततस्सुकन्यासम्प्रीता तावुवाचसुरोत्तमौ ॥

दो० । महावृद्ध जिमि च्यवनमुनि भये मनोहर रूप । सो दोसौ अरु साठिमें कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! इसके अनन्तर किसी समय उन अश्विनीकुमार देवताओं ने स्नान कियेहुई सुन्दर दांतोंवाली उस सुकन्याको देखा ॥ १ ॥ और देखनेयोग्य अङ्गोंवाली उसको इन्द्रकी कन्याकी नाईं देखकर अश्विनीकुमारोंने सामने जाकर यह कहा ॥ २ ॥ कि हे वामोरु ! तुम किसकी स्त्री हो व इस वनमें क्या करना चाहतीहो हे शोभने ! तुमको हम दोनों जाना चाहतेहैं

उसको कहिये ॥ ३ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई सुकन्या उन सुरोत्तमों से बोली कि मुझको शर्याति की कन्या व च्यवनकी स्त्री जानिये ॥ ४ ॥ तदनन्तर अश्विनीकुमार इससे हँसकर फिर बोले कि पिताने जानकर कैसे तुमको इन क्षीणआयुर्बलवाले च्यवन के लिये दियाहै ॥ ५ ॥ और इस स्थानमें प्राप्त तुम सौदामिनी बिजली की नाईं शोभितहो हे भामिनि ! देवताओं में भी तुम्हारे समान नहीं देखताहूं ॥ ६ ॥ व सब आभूषणोंसे संयुत तथा उत्तम वस्त्रोंको धारनेवाली व निर्दोष अङ्गवाली तुम इन वृद्ध व अविवेकी च्यवन को छोड़ दीजिये ॥ ७ ॥ और हे कल्याणि ! इसप्रकार की होकर तुम पृथ्वीमें वृद्धता से जर्जरित तथा कामदेव के

शर्यातितनयांविद्धि भार्याञ्चच्यवनस्यमाम् ॥ ४ ॥ ततोश्विनौप्रहस्यैनामब्रूतांपुनरेवतु ॥ कथंचास्मैविदित्वातु पित्रादत्तागतायुषे ॥ ५ ॥ भ्राजसेत्रगतादेशे विद्युत्सौदामिनीयथा ॥ नदेवेष्वपितुल्यांहि त्वांपश्यामिचभामिनि ॥ ६ ॥ सर्वाभरणसम्पन्ना परमाम्बरधारिणी ॥ वृद्धंत्वमनवद्याङ्गी त्यजैनमविवेकिनम् ॥ ७ ॥ कस्मादेवंविधाभूत्वा जराजर्ज्जरितम्भुवि ॥ रमयस्यत्रकल्याणि कामभावबहिष्कृतम् ॥ ८ ॥ असमर्थपरित्राणे पोषणेवाशुचिस्मिते ॥ सात्वं च्यवनमुत्सृज्य वरयस्वैकमावयोः ॥ ९ ॥ पत्यर्थन्देवगर्भाभे मावृथायौवनंकृथाः ॥ एवमुक्तासुकन्यासा सुरौताविद मब्रवीत ॥ १० ॥ रताहंच्यवनेपत्यौ मैवंवांपर्यशङ्कताम् ॥ तावब्रूतां पुनश्चैनामावान्देविभिषग्वरौ ॥ ११ ॥ युवानंरूप सम्पन्नं करिष्यामिपतिन्तव ॥ ततस्तस्यावयोश्चैव पतिमेकतमंवृणु ॥ १२ ॥ एतेनसमयेनावां समुन्नयसुमध्यमे ॥

भावसे बाहर कियेहुये इनको किसकारण इस संसार में रमणकराती हो ॥ ८ ॥ हे शुचिस्मिते ! रक्षा करनें व पालन करनें में असमर्थ च्यवनजी को छोड़कर सो तुम हम दोनोंके मध्यमें एकको पतिके लिये वरण करिये हे देवगर्भाभे ! यौवनको मत वृथा करिये इसप्रकार कहीहुई वह सुकन्या उन देवताओं से बोली ॥ ९।१० ॥ कि मैं च्यवन पतिमें आसक्तहूं और तुम दोनों ऐसी मत शङ्का करिये फिर वे दोनों इससे बोले कि हे देवि ! वैद्योंमें उत्तम हम दोनों ॥ ११ ॥ तुम्हारे पतिको रूप से युत व ज्वान करैंगे तदनन्तर उनको या हम दोनोंके मध्यमें एक पतिको वरण कीजियेगा ॥ १२ ॥ हे सुमध्यमे ! इस सिद्धान्त से हम दोनों को उन्नत कीजिये हे

देवि ! उन दोनों के वचनसे वह सुकन्या भार्गव (च्यवन) जी के समीप जाकर ॥ १३ ॥ जो वचन भृगुपुत्र च्यवनजी के निमित्त उन दोनों से कहागया था उस वाक्यको उसने कहा और च्यवन ने स्त्री से यह कहा कि वह वचन आदर कियाजावै ॥ १४ ॥ च्यवनजी से ऐसा कहीहुई वह सुकन्या दिव्यरूपवाले अश्विनीकुमारों से बोली कि हे देववैद्यो ! आप दोनोंने जो कहा वह शीघ्रही कियाजावै ॥ १५ ॥ वहां उस सुकन्या से इसप्रकार कहेहुये उन वैद्य अश्विनीकुमारों ने उस राजकन्या से कहा कि तुम्हारा पति तड़ाग में पैठे ॥ १६ ॥ तदनन्तर रूप को चाहनेवाले च्यवन भी शीघ्रही तड़ागमें पैठगये तदनन्तर हे देवि ! अश्विनी-

सातयोर्वचनाद्देवि उपसङ्गम्यभार्गवम् ॥ १३ ॥ उवाचवाक्यंयत्ताभ्यामुक्तंभृगुसुतम्प्रति ॥ तद्वाक्यंच्यवनोभार्यामुवाचाद्रियतामिति ॥ १४ ॥ इत्युक्ताच्यवनेनाथ दिव्यरूपावुवाचवै ॥ देववैद्योभवद्भ्यांयत् प्रोक्तंतत्क्रियतांलघु ॥ १५ ॥ इत्युक्तौभिषजौतौच तयातत्रसुकन्यया ॥ ऊचतूराजपुत्रींतां पतिस्तवविशेत्सरः ॥ १६ ॥ ततोपिच्यवनश्शीघ्रं रूपार्थीप्रविवेशह ॥ अश्विनावपितद्देवि ततोविविशतुर्जलम् ॥ १७ ॥ ततोमुहूर्त्तादुत्तीर्णास्सर्वेतेसरसस्ततः ॥ दिव्यरूपधराभूत्वा युवानोमृष्टकुण्डलाः ॥१८ ॥ दिव्यवेषधराश्चैव मनसःप्रीतिवर्द्धनाः॥ तेब्रुवन्सहिताःसर्वे वृणीष्वैकतमंशुभे ॥ १९ ॥ अस्माकमीप्सितोभद्रे यस्तेस्तिवरवर्णिनि ॥ यत्रत्वंधृतकामासि तंवृणुष्वसुशोभने ॥ २० ॥ सासमीक्ष्यतुतान्सर्वांस्तुल्यरूपधरान्स्थितान् ॥ निश्चित्यमनसाबुद्ध्या चैकंवव्रेपतिंस्वकम् ॥ २१ ॥ लब्ध्वातुच्यवनोभार्यां वयोरूपसमन्विताम्॥ हृष्टोब्रवीन्महातेजा तौनासत्याविदंवचः ॥ २२ ॥ यदहंरूपसम्पन्नो वयसाचसमन्वि

कुमारभी उस जलमें पैठे ॥ १७ ॥ तदनन्तर थोड़ी देरमें निर्मल कुण्डलोंवाले व ज्वान वे सब दिव्यरूपधारी होकर उस तड़ागसे ऊपर निकले ॥ १८ ॥ और मन की प्रीतिको बढ़ानेवाले व दिव्यरूपधारी वे सब साथही बोले कि हे शुभे ! एकको वरण कीजिये ॥ १९ ॥ हे वरवर्णिनि, भद्रे ! हम सबोंके मध्यमें जो तुमको प्रियहो और जिसमें तुम कामना को धारेहो हे सुशोभने ! उसको वरण कीजिये ॥२०॥ उसने तुल्यरूपधारी उन सबोंको स्थित देखकर व मनसे और बुद्धिसे निश्चयकर अपने एक पतिको वरणकिया ॥ २१ ॥ और अवस्था व रूपसे संयुत स्त्रीको पाकर प्रसन्न होतेहुये बड़े तेजवान् च्यवनजी उन अश्विनीकुमारोंसे यह वचन बोले ॥ २२॥

कि जिसलिये आप दोनों की कृपासे मैं रूप से संयुक्त व अवस्था से संयुत कियागया और मैंने अपनी स्त्री को पाया ॥ २३ ॥ इसलिये मैं आप दोनों को यज्ञों में भागभाजी करूंगा उस वचन को सुनकर प्रसन्नमनवाले अश्विनीकुमार चलेगये ॥ २४ ॥ और च्यवन व सुकन्या ने देवताओं की नाईं विहार किया ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांच्यवनेश्वरमाहात्म्यंनामषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥ ● ॥

दो॰ । शर्यातिहिं करवाय जिमि यज्ञ च्यवन मुनिनाथ । दोसौ इकसठि में सोई वर्णितहै शुभगाथ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर फिर अपने स्थानमें स्थित

तः ॥ कृतोभवद्भ्यांकृपया स्वाम्भार्याप्राप्तवानिति ॥ २३ ॥ अतोभवन्तौयज्ञेषु करिष्येभागभाजिनौ ॥ तच्छ्रुत्वाहृष्टमनसावश्विनौप्रतिजग्मतुः ॥ २४ ॥ च्यवनोपिसुकन्याच सुराविवविजहतुः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे च्यवनेश्वरमाहात्म्यन्नामषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोभूपस्सशर्यातिस्तदास्वस्थानसंस्थितः ॥ वयस्थंच्यवनंश्रुत्वा आनन्दोद्धतमानसः ॥ १ ॥ प्रहृष्टस्सेनयासार्द्धमुपायाद्भार्गवाश्रमम् ॥ च्यवनंचसुकन्याञ्च दृष्ट्वादेवसुताविव ॥ २ ॥ रेमेमहीपश्शर्यातिः सत्कृतस्समहीपतिः ॥ ऋषिणासत्कृतस्तेन सभार्यःपृथिवीपतिः ॥ ३ ॥ ततोपविष्टःकल्याणि कथाञ्चक्रेमहामनाः ॥ अथैनंभार्गवोदेवि उवाचपरिसान्त्वयन् ॥ ४ ॥ याजयिष्यामिराजंस्त्वां सम्भाराननुकल्पय ॥ ततःपरमसंहृष्टश्शर्यातिःपृथिवीपतिः ॥ ५ ॥ च्यवनस्यमहादेवि तद्वाक्यंप्रत्यपूजयत् ॥ प्रशस्तेहनियज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमत ॥ ६ ॥ कारयामासश

वह शर्याति राजा उस समय अवस्था में स्थित च्यवनमुनिको सुनकर आनन्दसे उद्धतमन हुआ ॥ १ ॥ और बहुत प्रसन्न होतेहुये वे शर्याति च्यवनजी के आश्रमको आये और च्यवन व सुकन्याको देवताओं के पुत्रोंकी नाईं देखकर वे ॥ २ ॥ सत्कार कियेहुये भूपति शर्यातिजी प्रसन्नहुये और स्त्रीसमेत भूपतिका उन च्यवन ऋषिने सत्कार किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे कल्याणि ! समीप बैठकर उन उदारमनवाले च्यवनजी ने कथाको वर्णन किया इसके अनन्तर हे देवि ! समझातेहुये च्यवनजी इन शर्याति से बोले ॥ ४ ॥ कि हे राजन् ! मैं तुमको यज्ञ कराऊंगा सामग्रियोंको इकट्ठा कीजिये तदनन्तर बहुत प्रसन्न होतेहुये शर्याति भूपतिने ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! च्य-

वनके उस वचन का पूजन किया और यज्ञवाले उत्तम दिनमें सब कामनाओं से समृद्धिमान् ॥ ६ ॥ व उत्तम यज्ञमन्दिर को शर्याति ने बनवाया उसमें भार्गव (च्यवन) जीने इन शर्याति को यज्ञ कराया ॥ ७ ॥ उसमें जो अद्भुत वस्तुयें हुईहैं उनको मुझसे सुनिये कि उससमय च्यवन मुनिने अश्विनीकुमार देवताओं के निमित्त सोमको ग्रहण किया ॥ ८ ॥ और उनको इन्द्रने मनाकिया कि उनके निमित्त भागको मत ग्रहण कीजिये इन्द्रजी बोले कि ये दोनों अश्विनीकुमार सोम के योग्य नहींहैं यह मेरी बुद्धि है ॥ ९ ॥ देवताओं केवे वैद्यहैं उसकर्मसे निन्दित हैं ॥ १० ॥ च्यवनजी बोले कि रूपकी सम्पदा से तेजवान् उन महात्माओं का अप-

र्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥ तत्रैनंच्यवनोदेवि याजयामासभार्गवः॥ ७ ॥ अद्भुतानिचतत्रासन् यानितानिनिबोधमे ॥ अगृह्णाच्च्यवनस्सोममश्विनोर्देवयोस्तदा ॥ ८ ॥ तमिन्द्रोवारयामास मागृहाणतयोर्ग्रहम् ॥ इन्द्र उवाच ॥ उभावेतौ नसोमार्हौ नासत्याविति मेमतिः ॥ ९ ॥ भिषजौदेवतानांहि कर्मणातेनगर्हितौ ॥ १० ॥ च्यवन उवाच ॥ मावमंस्थाम हात्मानौ रूपद्रविणवर्चसौ ॥ तौचक्रतुर्मामधुना वृन्दारकमिवाजरम् ॥ ११ ॥ अश्विनावपिदेवेन्द्र देवौविद्धिपरन्तप॥ १२ ॥ इन्द्र उवाच॥ चिकित्सकौकर्मकरौ कामरूपसमन्वितौ ॥ लोकेचरन्तौमर्त्यानां कथंसोममिहार्हतः ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एतदेवतदावाक्यमुदाहरतिवासवे ॥ अनादृत्यततश्शक्रं ग्रहंजग्राहभार्गवः ॥ १४॥ गृह्णन्तन्तुततस्सोम मश्विनोस्सत्तमन्तदा ॥ समीक्ष्यबलभिद्देव इदंवचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ मामवज्ञायत्वंसोमं गृहीष्यसियदिस्वयम् ॥ व

मान न कीजिये क्योंकि उन्होंने मुझको इससमय देवता की नाईं अजर किया है ॥ ११ ॥ हे परन्तप ! अश्विनीकुमारों को भी देवेन्द्र के देवता जानो ॥ १२ ॥ इन्द्रजी बोले कि कामदेव के समान रूपसे संयुत व मूल्य लेकर काम करनेवाले वे वैद्यहैं और मनुष्यों के लोकमें घूमते हैं इसकारण वे यहां कैसे सोमके योग्य हैं ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले कि उससमय इन्द्र के उसी वचन के कहनेपर तदनन्तर च्यवनजी ने इन्द्रको अनादरकर भागको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर उससमय अश्विनीकुमार के सोम को ग्रहण करतेहुये उन सत्तम च्यवनजी को देखकर बलदैत्य के नाशक इन्द्रदेवजी यह वचन बोले ॥ १५ ॥ कि यदि मुझ

को अपमान कर तुम आपही सोम को ग्रहण करोगे तो घोररूपवाले अतिउत्तम वज्रको मैं तुम्हारे मारूँगा ॥ १६ ॥ ऐसा कहनेपर आपही इन्द्रजी को देखकर उन च्यवनजी ने विधिपूर्वक अश्विनीकुमारों के लिये उत्तम भाग को ग्रहण किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन शचीपति इन्द्रजी ने शीघ्रही इन च्यवनके लिये वज्रका प्रहार किया व प्रहार करतेहुये उन इन्द्रकी भुजाको च्यवनने स्तम्भित करदिया ॥ १८ ॥ स्तम्भितकर इसके अनन्तर कृत्याको चाहनेवाले च्यवनजीने मन्त्रसे अग्निमें हवन किया और बड़े तेजवाले वे मुनि इन्द्रदेव को मारने के लिये उद्यत हुये ॥ १९ ॥ और उस यज्ञमें उन मुनिके तपोबल से महाशरीरवान् व बडापरा-

ऋन्तेप्रहरिष्यामि घोररूपमनुत्तमम् ॥ १६ ॥ एवमुक्तेस्वयंचेन्द्रमभिवीक्ष्यसभार्गवः ॥ जग्राहविधिवत्सोममश्वि भ्यामुत्तमंग्रहम् ॥ १७ ॥ ततोस्मैप्राहरत्क्षिप्रं वज्रमिन्द्रश्शचीपतिः ॥ तस्यप्रहरतोबाहुं स्तम्भयामासभार्गवः ॥ १८ ॥ स्तम्भयित्वाथच्यवनो जुहुवेमन्त्रतोनलम् ॥ कृत्यार्थीसुमहातेजा देवंहिंसितुमुद्यतः ॥ १९ ॥ तत्रकृत्योद्भ वोयज्ञे मुनेस्तस्यतपोबलात् ॥ मदोनाममहावीर्यो महाकायोमहासुरः ॥ २० ॥ शरीरंयस्यानिर्दिष्टमसह्यमसुरासुरैः ॥ तस्यप्रमाणंवपुषानतुल्यमिहविद्यते ॥ २१ ॥ तस्यास्यञ्चाभवद्घोरं दंष्ट्रादुर्दर्शनंमहत् ॥ एकोऽधरःस्थितस्तस्य भूमा वेकोदिवङ्गतः ॥ २२ ॥ चतस्रश्चायतादंष्ट्रा योजनानांशतंशतम् ॥ इतरेत्वस्यदशना बभूवुर्दशयोजनाः ॥ २३ ॥ प्राका रसदृशाकाराः शूलाग्रसमदर्शनाः ॥ बभुःपर्वतसंकाशाश्चायताबहुयोजनाः ॥ २४ ॥ नेत्रेरविशशिप्रख्ये वक्त्रमन्तक सन्निभम् ॥ लेलिहंजिह्वयावक्त्रं विद्युच्चलितलोलया ॥ २५ ॥ व्यात्ताननोघोरदृष्टिर्ग्रसन्निवजगद्बलात् ॥ सभक्षयिष्य

क्रमी मदनामक महादैत्य कृत्यासे उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥ जिसका शरीर देवताओं व दैत्योंसे असह्य बतलायागया है और उसके शरीर के तुल्य प्रमाण इस संसार में नहीं विद्यमान है ॥ २१ ॥ व उसका मुख दाढ़ोंसे बड़ा दुर्दर्श व भयङ्कर हुआ और उसका एक ओंठ पृथ्वीमें स्थित था व एक आकाशमें प्राप्त था ॥ २२ ॥ और चार दाढ़ें सौ सौ योजन चौडी थीं और उसके अन्य दांत दशयोजन हुये हैं ॥ २३ ॥ और बहुत योजन चौड़े व छहारदिवालीके समान आकारवाले तथा त्रिशूलके अग्रभागके समान दर्शनवाले दांत पर्वतोंके समान शोभितहुये ॥ २४ ॥ और सूर्य व चन्द्रमाके समान नेत्र तथा कालके समान मुख था और बिजलीके समान चलायमान

चञ्चल जिह्वासे मुखको बार २ चाटता तथा ॥ २५ ॥ और भयङ्कर दृष्टिवाला तथा मुखको फैलायेहुये बलसे संसारको ग्रसताहुआ व भक्षण करताहुआ सा वह बहुत क्रोधित होकर बड़े भयङ्कर शब्दसे लोकोंको शब्दायमान करताहुआ इन्द्रके सामने दौड़ा ॥ २६ । २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांच्यवनेश्वरमाहात्म्यंनामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० जिमि अश्विनीकुमारको च्यवन दीन यज्ञांश । दोसौ बासठि में सोई कथा कही सारांश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! भक्षणकरलेनेवाले व आते

न्संक्रुद्धश्शतक्रतुमुपाद्रवत् ॥ २६ ॥ महताघोरनादेन लोकाञ्शब्देननादयन् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे च्यवनेश्वरमाहात्म्यन्नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तञ्चदृष्ट्वारिवदनं सर्वेदेवश्शतक्रतुः ॥ आयान्तंभक्षयिष्यन्तं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥१॥ भयात्संस्तम्भितमिव लेलिहानञ्चसृक्किणीम् ॥ प्रणतोब्रवीन्महादेवि च्यवनंभयपीडितः ॥ २ ॥ सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृतिभार्गव ॥ भविष्यतस्सर्वमेतद्वचस्सत्यंब्रवीमिते ॥ ३ ॥ मातेमिथ्यासमारम्भो भवत्वेषतपोधन ॥ जानामिचाहं विप्रर्षे नमिथ्यात्वंकरिष्यसि ॥ ४ ॥ सोमार्हावश्विनावेतौयथैवाद्यत्वयाकृतौ ॥ भूयएवतुतेवीर्यं प्रकाशेदितिभार्गव ॥ ५ ॥ सुकन्यायाःपितुश्चास्य लोकेकीर्त्तिर्भवेदिति ॥ यतोमयैतद्विहितं तद्वीर्यस्यप्रकाशनम् ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रसादंकुरुमे

हुये मुखको फैलाये तथा गलफरों को चाटतेहुये व भयसे स्तम्भित की नाईं उस दानव शत्रुके मुखको देखकर वे इन्द्रजी भयसे पीड़ित होकर च्यवनको प्रणाम कर बोले ॥ १ । २ ॥ कि हे भार्गव ! आजसे लगाकर ये अश्विनीकुमार सोमके योग्य होवैंगे इस सब वचन को मैं तुमसे सत्य कहताहूं ॥ ३ ॥ हे तपोधन ! तुम्हारा यह मिथ्या आरम्भ मत होवै हे विप्रर्षे ! मैं जानताहूं कि तुम मिथ्या नहीं करोगे ॥ ४ ॥ जिसप्रकार तुमने इन अश्विनीकुमारों को सोमके योग्य कियाहै वैसेही हे भार्गव ! फिर भी तुम्हारा बल या प्रभाव प्रकाशित होवै ॥ ५ ॥ और सुकन्याके पिता इन शर्यातिका यश संसार में होवै जिसकारण उसके वीर्यका प्रकाश करनेवाला

यह कर्म मुझसे कियागया ॥ ६ ॥ उस कारण मेरे ऊपर प्रसन्नता करो और यह जैसा चाहते हो वैसाही होवै इन्द्रके ऐसा कहने पर महात्मा च्यवनजी का ॥ ७ ॥ क्रोध शीघ्रही शान्त होगया और इन्द्रजी चलेगये और हे देवि ! मद मद्यपान व स्त्रियों में वीर्यवान् हुआ ॥८॥ और पांसों में व शिकार में वीर्यवान् हुआ उससमय च्यवन पहले रचेहुये मदको बार बार निक्षेपकर व इन्द्रको पूजकर ॥ ९ ॥ तथा अश्विनीकुमारोंसमेत सब देवताओं को पूजकर व उस राजा शर्याति को यज्ञ कराकर हे वरवर्णिनि ! सब लोकोंमें प्रभाव को प्रसिद्धकर ॥ १० ॥ उन च्यवनमुनि ने सुकन्यासमेत इस क्षेत्रवन में विहार किया हे महादेवि ! उन च्यवनमुनि का

भवत्वेतद्यथेच्छसि ॥ एवमुक्तेतुशक्रेण च्यवनस्यमहात्मनः ॥ ७ ॥ मन्युर्व्युपारमच्छीघ्रं यातश्चैवपुरन्दरः ॥ मदश्चै वामवद्देवि पानेस्त्रीषुचवीर्यवान् ॥ ८ ॥ अक्षेषुमृगयायाञ्च पूर्वंसृष्टम्पुनःपुनः ॥ तदामदंविनिःक्षिप्य शक्रमभ्यर्च्यभा र्गवः ॥ ९ ॥ अश्विभ्यांसहितान्सर्वान् याजयित्वाचतन्नृपम् ॥ विख्याप्यवीर्यंसर्वेषु लोकेषुवरवर्णिनि ॥ १० ॥ सुक न्ययासहारण्ये क्षेत्रेस्मिन्विजहारसः ॥ तस्यैतत्तुमहादेवि च्यवनेश्वरनामभृत् ॥ ११ ॥ लिङ्गंमहापापहरं च्यवनेनप्र तिष्ठितम् ॥ पूजयेत्तंविधानेन सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ १२ ॥ एतच्चन्द्रमसस्तीर्थमृषयःपर्युपासते ॥ वैखानसाश्चऋषयो बालखिल्यास्तथैवच ॥ १३ ॥ अत्राश्विनेमासिनरः पौर्णमास्यांविशेषतः ॥ श्राद्धंकुर्याद्विधानेन ब्राह्मणान्भोजयेत्पृ थक् ॥ १४ ॥ कोटितीर्थफलंतस्य भवतेनात्रसंशयः ॥ यइमांशृणुयाद्देविकथांपातकनाशिनीम् ॥ १५ ॥ समस्तजन्म सम्भूतात् पापान्मुक्तोभवेन्नरः ॥ १६ ॥ इति च्यवनेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

यह च्यवनेश्वरनामधारी ॥ ११ ॥ महापातकों का विनाशक लिङ्ग च्यवनजी से थापागया है जो उन शिवदेव को विधिसे पूजता है वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ १२ ॥ और चन्द्रमाके इस तीर्थकी वैखानस बालखिल्य महर्षिलोग उपासना करतेहैं ॥ १३ ॥ यहां कुंवार महीनेमें विशेषकर पौर्णमासी तिथिमें जो विधिसे श्राद्धकरै व ब्राह्मणों को पृथक् भोजन करावै ॥ १४ ॥ उसको कोटितीर्थ का फल होताहै इसमें सन्देह नहीं है हे देवि ! जो मनुष्य पातकों को नाश करनेवाली इस कथाको सुनता है ॥ १५ ॥ वह मनुष्य सब जन्मोंमें उपजे हुये पातकसे छूटजाता है ॥ १६ ॥ इति च्यवनेश्वरमाहात्म्यंनामद्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

दो० । यथा सुकन्यासर अहै अतुल प्रभाव समेत । दोसौ तिरसठिमें सोई कथा सुहर्षनिकेत ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम सुकन्यासर के समीपजावै जहां कि हे अम्बिके ! च्यवनसमेत वे अश्विनीकुमार स्नान करतेभये ॥ १ ॥ व जहांपर अश्विनीकुमार समेत च्यवनमुनि समानरूप हुयेहैं व हे वरवर्णिनि ! जहां सुकन्या ने तड़ाग के स्नानके प्रभावसे मनोरथको पायाहै उसीकारण कन्यासर कहागया है उसमें विशेषकर तीज तिथिमें स्नान कीहुई उत्तम स्त्री ॥ २ । ३ ॥ सात हज़ार जन्मोंतक गृहभङ्ग को नहीं प्राप्त होती है और उसका पुत्र दरिद्र, व्याकुल, दीन व अन्ध नहीं होताहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सुकन्यासरउत्तमम् ॥ यत्राश्विनौनिमग्नौतौ च्यवनेनसहाम्बिके ॥१॥ समानरूपोह्यभवदश्विभ्यांसहितोमुनिः ॥ यत्रप्राप्तवतीकामं सुकन्यावरवर्णिनि ॥ २ ॥ सरस्स्नानप्रभावेण तेनकन्यासरस्स्मृतम् ॥ तत्रस्नाताशुभानारी तृतीयायांविशेषतः ॥ ३ ॥ सप्तजन्मसहस्राणि गृहभङ्गन्नप्राप्नुयात ॥ दरिद्रोविकलोदीनो नान्धस्तस्याभवेत्सुतः ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे च्यवनेश्वरमाहात्म्ये कन्यासरोमाहात्म्यन्नामत्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ततोगच्छेन्महादेवि पुनर्न्यङ्कुमतीन्नदीम् ॥ तत्रकृत्वागयाश्राद्धं गोष्पदेतीर्थउत्तमे ॥ १ ॥ ततःपश्येद्वराहन्तु तस्माद्वारिगृहंव्रजेत् ॥ तत्रमातृसुतंपूज्य स्नात्वासागरसङ्गमे ॥ २ ॥ न्यङ्कुमत्यास्तटंगत्वा ततश्चैवमनुव्रजेत् ॥ अगस्तेराश्रमंदिव्यं क्षुधाहरमितिस्मृतम् ॥ ३ ॥ यत्रेल्वलश्चवातापिःसंहत्यभगवान्मुनिः ॥ मुक्त्वापद्भ्योब्राह्मणांश्च तेभ्य

मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांच्यवनेश्वरमाहात्म्येकन्यासरोमाहात्म्यंनामत्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि अगस्तिकर आश्रम भयो क्षुधाहरनाम । दोसौ चौंसठि में सोई बरन्यो चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर फिर न्यंकुमती नदीके समीप जावै वहां उत्तम गोष्पदतीर्थ में गयाश्राद्धकर ॥ १ ॥ तदनन्तर वराहजी को देखै और वहांसे वारिगृह को जावै और वहां सागर के सङ्गममें नहाकर मातृपुत्र को पूजकर ॥ २ ॥ न्यंकुमतीके किनारे जाकर तदनन्तर क्षुधाहर ऐसे कहेहुये अगस्तिजीके दिव्य आश्रमको जावै ॥ ३ ॥ जहां कि इल्वल व वातापि

को मारकर भगवान् अगस्तिमुनि ने ब्राह्मणों को विपत्तिसे छुड़ाकर तदनन्तर उनके लिये स्थान दियाहै ॥ ४ ॥ यह उत्तम अगस्तिजी का आश्रम समस्त पातकों के नाशक न्यंकुमती के सुन्दर किनारे पै अगस्ति को प्रिय है ॥ ५ ॥ देवीजी बोलीं कि अगस्तिजीने वातापि को किसलिये नाश कियाहै और इनका क्या प्रभावहै और वह दैत्य ब्राह्मणों का नाशक था ॥ ६ ॥ व उन महात्मा अगस्तिसे वह वातापि किसलिये मारागया ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि ! पुरातन समय मणिमतीपुरी में इल्वलनामक दैत्येन्द्र हुआहै और उसका छोटाभाई वातापि था ॥ ८ ॥ उस दैत्यपुत्र ने तपस्या से संयुत ब्राह्मण से कहा कि हे भगवन् ! मुझको

स्स्थानंततोददौ ॥ ४ ॥ अगस्त्याश्रममेतद्धि अगस्तिप्रियमुत्तमम् ॥ न्यङ्कुमत्यास्तटेरम्ये सर्वपातकनाशने ॥ ५ ॥ देव्युवाच ॥ अगस्तिनाहिवातापिः किमर्थमुपशामितः ॥ अस्यवाकःप्रभावश्च सदैत्योब्राह्मणान्तकः ॥ ६ ॥ किमर्थं वाहतस्तेन वातापिश्चमहात्मना ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इल्वलोनामदैत्येन्द्र आसीद्देववरवर्णिनि ॥ मणिमत्यांपुरापुर्यां वातापिस्तस्यचानुजः ॥ ८ ॥ सब्राह्मणंतपोयुक्तमुक्तवान्दितिनन्दनः ॥ पुत्रम्मेभगवंश्चैकमिन्द्रतुल्यंप्रयच्छतु ॥ ९ ॥ तस्मैसब्राह्मणोनैच्छत् पुत्रंदातुंतथाविधम् ॥ चुक्रोधसोसुरस्तस्य ब्राह्मणस्यतपोभृतः ॥ १० ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य सदैत्यःपापबुद्धिमान् ॥ मेषरूपीचवातापिः कामरूपोभवत्क्षणात् ॥ ११ ॥ संस्कृत्यभोजयेत्तत्र विप्रान्सर्वाञ्जिघांसया ॥ समाह्वयतितंवाचा गतश्चैवततःक्षयम् ॥ १२ ॥ सपुनर्देहमास्थाय जीवन्संप्रत्यदृश्यत ॥ ततोवातापिमसुरं छागं कृत्वातुसंस्कृतम् ॥ १३ ॥ ब्राह्मणंभोजयित्वातु पुनरेवसमाह्वयत् ॥ सतस्यपार्श्वंनिर्भिद्य ब्राह्मणस्यमहात्मनः ॥ १४ ॥

इन्द्रके तुल्य एक पुत्रको दीजिये ॥ ९ ॥ उस ब्राह्मणने उस दैत्यके लिये वैसे पुत्रको देनेके लिये नहीं इच्छा किया और उस दैत्यने उस तपधारी ब्राह्मण के ऊपर क्रोध किया ॥ १० ॥ और पापबुद्धिवाला वह दैत्य प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर कामरूपी वातापि क्षणभर में मेष (भेंड़ा) रूप होगया ॥ ११ ॥ मारने की इच्छासे उसको पकाकर वहां ब्राह्मणों को भोजन कराताथा तदनन्तर क्षयको प्राप्त उस वातापि को वचन से पुकारता था ॥ १२ ॥ और वह फिर शरीर को प्राप्त होकर जीताहुआ देखपड़ताथा तदनन्तर छागरूपी पकायेहुये वातापि दैत्यको ॥ १३ ॥ ब्राह्मणको भोजन कराकर फिर बुलाया और हँसताहुआ वह वातापि उस महात्मा ब्राह्मण के

पार्श्व (बगल) को फाड़कर वहां ब्राह्मण के पेटसे निकल आया हे देवि ! इस प्रकार वह बार २ ब्राह्मणों को भोजन कराकर ॥ १४ । १५ ॥ उनके पेटको फाड़ कर ऐसेही बहुत ब्राह्मणों को मारता था तदनन्तर भयभीत होकर सब ब्राह्मण भगगये ॥ १६ ॥ व अगस्तिजी के आश्रम को गये और उन्होंने उनके आगे कहा कि हे भगवन् ! हमलोगों के भयको प्राप्त करनेवाले वचन को सुनिये ॥ १७ ॥ कि हे प्रभो ! हम सबलोग इल्वल से न्योतेगये हैं और वह भोजन हम सबोंका मृत्युरूप है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ इसलिये हे भगवन् ! मेषरूपी वातापि महादैत्यको पकायाहुआ देखकर दीन व गताचित्तवाले हमलोगों की इससे रक्षा

वातापिःप्रहसंस्तत्र निश्चक्रामद्विजोदरात् ॥ एवंसब्राह्मणान्देवि भोजयित्वापुनःपुनः ॥ १५ ॥ विनिर्भिद्योदरन्तेषा मेवंहन्तिद्विजान्बहून् ॥ ततोवैब्राह्मणास्सर्वे भयभीताःप्रदुद्रुवुः ॥ १६ ॥ अगस्तेराश्रमंजग्मुः कथयामासुरग्रतः ॥ भगवञ्छृणुवाक्यन्तु अस्माकन्तुभयावहम् ॥ १७ ॥ निमन्त्रिताःस्मसर्वेवै इल्वलेनवयम्प्रभो ॥ अस्माकंमृत्युरूपन्त द्भोजनन्नास्तिसंशयः ॥ १८ ॥ तदस्माद्रक्षभगवन् कृपणान्गतचेतसः ॥ वातापिंसंस्कृतंदृष्ट्वा मेषरूपंमहासुरम् ॥ १९ ॥ ततःप्रभासमासाद्य यत्रतौदैत्यपुङ्गवौ ॥ ब्रह्मघ्नौपापनिरतौ ददर्शसमहामुनिः ॥ २० ॥ उवाचदेहिमेभोज्यं बुभुक्षामवर्त्तते ॥ इत्युक्तौस्वागतंतत्र चक्रातेमुनयेतदा ॥ २१ ॥ भगवन्भोजनंतुभ्यं दास्येहंबहुविस्तरम् ॥ कियन्मानस्तवाहारस्तावन्मानंपचाम्यहम् ॥ २२ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ अन्नंपचस्वदैत्येन्द्र येनतृप्तिर्भविष्यति ॥ एवमस्त्वितिदैत्येन्द्रः पक्वमस्तिमहामुने ॥ २३ ॥ आस्यतामासनमिदं भुज्यतांस्वेच्छयामुने ॥ इत्युक्तेघोरमन्त्रंस जनकल्पान्तका

करिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर जहां वे श्रेष्ठदैत्यथे वहां प्रभासक्षेत्रको जाकर उन महामुनिने पापमें लगेहुये व ब्रह्मघाती उन दैत्योंको देखा ॥ २० ॥ व कहा कि मुझको भोजन दीजिये मेरे क्षुधा वर्तमान है ऐसा कहेहुये उन्होंने उस समय वहां मुनिके लिये स्वागत किया ॥ २१ ॥ व कहा कि हे भगवन् ! मैं तुम्हारे लिये बहुत विस्तारवाले भोजन को दूंगा कितनी प्रमाणभर तुम्हारा भोजन है उतनी प्रमाणभर मैं पकाऊं ॥ २२ ॥ अगस्तिजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! अन्नको पकाइये जिससे तृप्ति होगी ऐसाही होगा यह कहकर दैत्येन्द्रने कहा कि हे महामुने ! अन्न पकायागयाहै ॥ २३ ॥ हे मुने ! इस आसनपै बैठिये और अपनी इच्छासे भोजन करिये ऐसा कहनेपर

जनोंके कल्पान्त को करनेवाले अघोरमन्त्र को जपकर थे ॥ २४ ॥ महामुनि अगस्तिजी ऋषियों के आसन को पाकर बैठगये और हँसतेहुये इल्वलने उनको परिवेषण किया याने परोसा ॥ २५ ॥ और वह अन्नकी राशि सौ हाथके प्रमाणसे हुई तदनन्तर प्रसन्नमनवाले अगस्तिजी हँसतेहुये दो कौर खाकर ॥ २६ ॥ वहा बड़ा रूपकर उन्होंने समुद्र का शोषण किया तदनन्तर उस समस्त भोजन व वातापि को भोजन किया ॥ २७ ॥ और भोजन करनेपर वहां इल्वल ने दैत्यका आह्वान किया तदनन्तर इसने महात्मा अगस्तिजीको अन्नदिया ॥ २८ ॥ और उन महामुनि अगस्तिजीने दानवसमेत उस सब अन्नको भस्मकिया और क्रोधकी दृष्टिसे इल्वल

रकम् ॥ २४ ॥ दृष्ट्यासनमथासाद्य निषसादमहामुनिः ॥ तम्पर्यवेषद्दैत्येन्द्र इल्वलःप्रहसन्निव ॥ २५ ॥ शतहस्तप्रमाणेन राशिरन्नस्यसोभवत् ॥ ततोहृष्टमनागस्तिःप्रहसन्कवलद्वयम् ॥ २६ ॥ रूपंकृत्वामहत्तत्र चक्रेसागरशोषणम् ॥ समस्तमेवतद्भोज्यं वातापिंबुभुजेततः ॥ २७ ॥ मुक्तवत्यसुराह्वानमकरोत्तत्रइल्वलः ॥ ततोसौदत्तवानन्नमगस्तेश्च महात्मनः ॥ २८ ॥ भस्मीचकारसर्वंस तदन्नञ्चसदानवम् ॥ इल्वलंक्रोधदृष्ट्याच भस्मीचक्रेमहामुनिः ॥ २९ ॥ ततोहाहारवंकृत्वा सर्वेदैत्याननाशिरे ॥ ततोगस्तिर्महातेजा आहूयद्विजपुङ्गवान् ॥ ३० ॥ तत्स्थानञ्चददौतेभ्यो दैत्यानांद्रव्यपूरितम् ॥ क्षुधाहृतायतोदेवि तत्रागस्तेश्चदानवैः ॥ ३१ ॥ तेनक्षुधाहरन्नाम स्थानमासीद्द्विजन्मनाम् ॥ तस्य पश्चिमभागेतु नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ ३२ ॥ गङ्गेश्वरमितिख्यातं गङ्गयाचप्रतिष्ठितम् ॥ वातापिभक्षणेपूर्वमगस्तेश्च महात्मनः ॥ ३३ ॥ शरीरपापशुद्ध्यर्थं दैत्यसम्भक्षणोद्भवम् ॥ तत्रदेवीसमायाता गङ्गापातकनाशिनी ॥ ३४ ॥ शु

को भस्म किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर हाहाशब्द कर सब दैत्य भगगये उसके उपरान्त महातेजस्वी अगस्तिजीने द्विजोत्तमों को बुलाकर ॥ ३० ॥ उनके लिये दैत्यों के द्रव्यसे पूर्ण उस स्थान को दिया हे देवि ! जिसलिये वहां दानवों से अगस्तिजीकी क्षुधा हरीगई ॥ ३१ ॥ उस कारण वह ब्राह्मणों का स्थान क्षुधाहरनामक हुआ और उसके पश्चिमभाग में थोड़ेही दूरपै स्थित ॥ ३२ ॥ गङ्गाजी से थापाहुआ गङ्गेश्वर ऐसा प्रसिद्ध लिङ्गहै पुरातन समय वातापि के भक्षण करने में महात्मा अगस्ति के ॥ ३३ ॥ दैत्यभक्षण करने से उपजेहुये शरीर के पापकी शुद्धिके लिये वहां पातकों को नाश करनेवाली गङ्गादेवीजी आईहैं ॥ ३४ ॥ और उन्होंने उस

ऋषिकी शुद्धि किया व वे गङ्गाजी उस स्थान में स्थित हुईं मनुष्योंके पापविनाशक व मनोहर अगस्तिजी के आश्रम में ॥ ३५ ॥ वहां गङ्गेश्वरजी को देखकर मनुष्य स्नान, दान व जपादिक से अभक्ष्यसे उपजेहुये पातकसे छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांन्यङ्कुमतीमाहात्म्येऽगस्त्याश्रमगङ्गेश्वरमाहात्म्यंनामचतुष्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अजापाल ईश्वरहिं जिमि थाप्यो नृप अजपाल । दो सौ पैंसठि में सोई बरन्यो चरित रसाल । महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पापनाशक

द्धिञ्चकारतस्यर्षेस्तत्रस्थानेस्थिताभवत् ॥ अगस्तेराश्रमेरम्ये नृणांपापभयापहे ॥ ३५ ॥ तत्रगङ्गेश्वरन्दृष्ट्वा अभक्ष्योद्भवपातकात् ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहः स्नानदानजपादिना ॥३६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे न्यङ्कुमतीमाहात्म्येऽगस्त्याश्रमगङ्गेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुष्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि बालार्कंपापनाशनम् ॥ अगस्त्याश्रमतोदेवि उत्तरेणातिदूरतः ॥ १ ॥ बाल एवतुयत्रार्कस्तपस्तेपेपुराप्रिये ॥ तेनबालार्कइत्येतन्नामाख्यातंधरातले ॥ २ ॥ तंदृष्ट्वारविवारेण नकुष्ठीजायतेनरः ॥ बालानांरोगजापीडा नसम्भूयात्कदाचन ॥३॥ ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अजापालेश्वरींशुभाम् ॥ अगस्त्यस्थानपूर्वेण नातिदूरेव्यवस्थिताम् ॥ ४ ॥ रघुवंशेसमुत्पन्नो ह्यजापालोन्नृपोत्तमः ॥ सतत्रदेवीमाराध्य पापरोगवशीकृतः ॥ ५ ॥ यस्त्वजारूपरोगान्वै चारयामासभूमिपः ॥ तत्रसंस्थापयामासस्वनाम्नापापनाशिनीम् ॥६॥ यस्तां

बालार्कजी के समीप जावै हे देवि ! अगस्तिजी के आश्रम से उत्तरमें थोड़ेही दूरपै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! जहां बालही सूर्यनारायणजीने पुरातन समय तप कियाहै उसी कारण पृथ्वी में बालार्क ऐसा यह नाम कहागया है ॥ २ ॥ उनको रविवार में देखकर मनुष्य कुष्ठी नहीं होताहै और बालकों के रोग से उपजी हुई पीडा कभी नहीं होती है ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अगस्त्यजी के स्थानसे पूर्व में थोड़ेही दूर पै स्थित उत्तम अजापालेश्वरीजीके समीप जावै ॥ ४ ॥ रघुवंश में अजापाल नामक वह उत्तम राजा उत्पन्न हुआ है पाप रोगसे वश किये हुये जिस राजा ने देवीजी को आराध कर बकरीरूपी रोगोंको चराया है उसी ने

वहां पापोंको नाशनेवाली देवीजी को अपने नाम से स्थापन किया है ॥ ५ । ६ ॥ जो पुरुष भक्ति से तीज तिथि में उन देवीजी को विधि से पूजताहै वह बल, बुद्धि, यश, विद्या व सौभाग्यको प्राप्तहोता है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामजापालेश्वरीमाहात्म्यंनामपञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

दो० । थाप्यो विश्वामित्र जिमि बालादित्य सुरेश । दो सौ छाछठि में सोई कह्यो चरित्र उमेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अगस्त्यजीके स्थान से पूर्व ओर दो गव्यूति याने चार कोसपै बालादित्य ऐसे प्रसिद्ध देव के समीप जावै ॥ १ ॥ उसके दक्षिण में वह रोगहृत्नामक स्थान कहागया है हे देवेशि !

पूजयतेभक्त्या तृतीयायांविधानतः ॥ बलंबुद्धियशोविद्यां सौभाग्यंप्राप्नुयान्नरः ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डअजापालेश्वरीमाहात्म्यन्नामपञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि बालादित्यमितिश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्थानपूर्वेण गव्यूतिद्वितयेनतु ॥ १ ॥ स्थानंतद्रोगहृन्नाम तस्यदक्षिणतस्स्मृतम् ॥ गव्यूतिमात्रन्देवेशि बालार्कइतिविश्रुतः ॥ २ ॥ यत्रचाराधितविद्या विश्वामित्रेणधीमता ॥ संस्थाप्यलिङ्गत्रितयं प्रतिष्ठाप्यतथारविम् ॥ ३ ॥ विद्यायांस्साधनंचक्रे सिद्धिंसूर्यादवाप्तवान् ॥ बालादित्येतितेनासौ ततःख्यातिमगात्प्रभुः ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि भास्करंपापतस्करम् ॥ नदारिद्र्यमवाप्नोति यावज्जीवतिमानवः ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेबालार्कमाहात्म्यन्नामषट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २६६ ॥

दो कोस तक बालार्क ऐसे प्रसिद्ध देव हैं ॥ २ ॥ जहां कि बुद्धिमान् विश्वामित्रजी ने विद्याको आराधन किया है तीन लिंग व सूर्यनारायणको थापकर ॥ ३ ॥ उन्हों ने विद्याका साधन किया व सूर्यसे सिद्धिको पायाहै उसीसे प्रभुजी बालादित्य ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ हे देवि ! पापों के चोररूपी उन सूर्यनारायण को देखकर मनुष्य जबतक जीता है तबतक दरिद्रता को नहीं पाता है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबालादित्यमाहात्म्यंनामषट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

दो० । कुबेरेश्वरहिं पूजि जिमि भये कुबेरहुँ सिद्ध । दो सौ सरसठि में सोई वरन्यो चरित प्रसिद्ध ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! उसी के दक्षिण में उस से दो कोस पर पातकोंको नाश करनेवाली पातालगामिनी गंगाजी स्थित हैं ॥ १ ॥ हे वरवर्णिनि ! विश्वामित्रजी ने स्नान के लिये उनको बुलायाहै ॥ २ ॥ हे महादेवि ! उस में नहाकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है और वहां गंगेश्वर विश्वामित्रेश्वरजी को देखकर ॥ ३ ॥ व बालेश्वरजी को देखकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम कुबेरस्थान को जावै ॥ ४ ॥ जहां कि हे देवि ! पुरातन समय धनदायक कुबेरजी सिद्ध हुये हैं पुरातन समय चोररूप से

ईश्वर उवाच ॥ तस्यैवदक्षिणेदेवि तस्माद्गव्यूतिमात्रतः ॥ पातालगामिनीगङ्गा संस्थितापापनाशिनी ॥ १ ॥ विश्वामित्रेणचाहूता स्नानार्थंवरवर्णिनि ॥ २ ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ तत्रगङ्गेश्वरंदृष्ट्वा विश्वामित्रेश्वरंतथा ॥ ३ ॥ बालेश्वरंचसंप्रेक्ष्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कुबेरस्थानमुत्तमम् ॥ ४ ॥ यत्रसिद्धःपुरादेवि कुबेरोधनदोऽभवत् ॥ ब्राह्मणश्चौररूपेण तत्रस्थानेवसत्पुरा ॥ ५ ॥ सचमेभक्तियोगेन पुरावैधनदः कृतः ॥ पार्वत्युवाच ॥ कथंसब्राह्मणोभूत्वा चौररूपीनराधमः ॥ ६ ॥ तन्मेकथयदेवेश धनदःसयथाभवत् ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थेमहादेवि यद्वृत्तञ्चगतान्तरे ॥ ७ ॥ कथयिष्यामितत्सर्वं शिवमाहात्म्यसूचकम् ॥ कश्चिदासीद्द्विजोदेवि देवशर्मेतिविश्रुतः ॥ ८ ॥ प्रभासक्षेत्रनिलयो न्यङ्कुमत्यास्तटेवसन् ॥ पुत्रक्षेत्रकलत्रादिव्यापारैकरतःसदा ॥ ९ ॥ विहायाथसगार्हस्थ्यं धनार्थंलोभमोहितः ॥ प्रचचारमहीमेतां सग्रामनगरांतथा ॥ १० ॥ भार्यातस्यविलोला

ब्राह्मण उस स्थानमें बसता भया ॥ ५ ॥ वह पुरातन समय मेरी भक्तिके योगसे धनद कियागया पार्वतीजी बोलीं कि वह ब्राह्मण होकर कैसे चोररूप अधम पुरुषहुआ ॥ ६ ॥ हे देवेश ! उसको मुझसे कहिये कि जिसप्रकार वह धनद हुआ हे महादेवजी बोले; कि हे महादेवि ! उस तीर्थ में बीतेहुये मन्वन्तर में जो वृत्तान्त हुआ है ॥ ७ ॥ शिवजी के माहात्म्य को सूचित करनेवाले उस सब चरित्रको कहूंगा हे देवि ! देवशर्मा ऐसा प्रसिद्ध कोई ब्राह्मण हुआ है ॥ ८ ॥ न्यंकुमती नदीके किनारे बसता हुआ प्रभासक्षेत्रमें स्थानवाला वह ब्राह्मण सदैव पुत्र, क्षेत्र व स्त्री आदिकों के व्यापार में केवल स्थित था ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर गृहस्थी को छोड़कर लोभ

से मोहित वह धनके लिये ग्रामों व नगरोंसमेत इस पृथ्वी में घूमता भया॥ १०॥ और चञ्चल लोचनोंवाली उसकी स्त्री उसके घर से निकलगई जोकि नित्यही अपनी इच्छाके अनुकूल घूमनेवाली व सदैव कामदेवसे मोहित थी॥ ११॥ विधिवशसे किसी समय शूद्रके सकाश से उसमें पुत्र पैदाहुआ जोकि नाम से दुःसह ऐसा प्रसिद्ध बहुतही दुष्टचित्त व मूर्ख था॥ १२ ॥ बहुत समय के बाद नामके कर्म में वर्तमान होकर व्यसनों से नष्ट व पापी वही यह बन्धुजनों से त्याग किया गया॥ १३॥ और सन्ध्या में पूजनकी सामग्री के द्रव्य से संयुत नरको किसी शिवालयमें देखकर तदनन्तर हरनेकी इच्छावाले उसने निवास किया॥ १४॥ और

स्त्री तस्यगेहाद्विनिर्गता ॥ स्वच्छन्दचारिणीनित्यं नित्यंचानङ्गमोहिता॥ ११॥ तस्यांकदाचित्पुत्रस्तु शूद्राज्जातो विधेर्वशात ॥ दुष्टात्मातीवमूर्खश्च नाम्नादुःसहइत्युत ॥ १२॥ सोयंकालेनमहता नामकर्मप्रवर्तितः ॥ व्यसनोपर तःपापस्त्यक्तोबन्धुजनैस्तथा॥ १३ ॥ पूजोपकरणद्रव्यैः सकस्मिंश्चिच्छिवालये॥ जनंदोषामुखेदृष्ट्वा हर्त्तुकामोवस त्ततः॥ १४॥ यावद्दीपोगतप्रायो वर्तिच्छेदोभवत्किल॥ तावत्तदन्तिकंप्राप द्रव्यान्वेषणकारणात ॥ १५ ॥ प्रबुद्ध श्चोत्थितस्तत्र देवपूजाकरोनरः ॥ कोयंकोयमितिप्रोच्चैर्व्याहरत्परिघायुधः ॥ १६॥ सचप्राणभयान्नष्टः शूद्रत्वाच्चापि मूढधीः ॥ विनिन्दन्नात्मनोजन्म कर्मचापिसुदुःखितः ॥ १७॥ पुरपालैर्हतोदेवि मृतःकालादभूच्चसः ॥ गान्धारविष येराजा ख्यातोनाम्नातुदुर्मुखः॥ १८॥ गीतवाद्यरतस्तत्र वेश्यास्वस्यरुचिर्भृशम् ॥ प्रजोपद्रवकृन्मूर्खः सर्वधर्मवहि

जब दीप जातारहा व बत्ती नाशहोगई तब तक वह द्रव्य ढूंढ़नेके कारण उस मनुष्यके समीप प्राप्तहुआ॥ १५॥ और वहां देवपूजनको करनेवाला मनुष्य जगा व उठपड़ा और परिघ अस्त्रवाला वह यह कौनहै यह कौनहै ऐसा उच्च प्रकारसे कहता भया॥ १६॥ और मूढ़बुद्धिवाला वह शूद्रताके कारण प्राणों के भयसे भगगया तथा अपने जन्म व कर्मको निन्दताहुआ वह दुःखितहुआ॥ १७॥ व हे देवि! नगरके रक्षकोंसे माराहुआ वह कालसे मरगया और गान्धारदेशमें वह दुर्मुख नामक राजा प्रसिद्ध हुआ॥ १८ ॥ वहां वह गाने व बजानेमें तत्पर हुआ और वेश्याओंमें इसकी बहुत रुचिहुई और प्रजाओं में उपद्रव करनेवाला व मूर्ख वह सब धर्मों से बाहर किया

गयाथा ॥ १९ ॥ किन्तु पूजन करता हुआ वही यह पुष्प, माला, धूप, नैवेद्य व गन्धादिकोंसे विन मन्त्रकी नाईं लिंग के आराधन में तत्परथा ॥ २० ॥ और वह सदैव यज्ञों में जाता था व देवमन्दिरों में वह बत्तीसे उज्ज्वल बहुत दीपोंको देताथा ॥ २१ ॥ किसी समय शिकार में लगाहुआ, वह पराक्रमी राजा घूमता भया और प्रभासक्षेत्रको आकर वह पहले के संस्कार से शुद्ध होगया ॥ २२ ॥ पहले भी वह युद्ध में न्यंकुमती के उत्तम किनारे पै मारागया था व शिवपूजन करने से इसके सब पाप नष्ट होगये ॥ २३ ॥ तदनन्तर जो यह विश्रवा का पुत्र पृथ्वी में प्रसिद्धहुआ है बड़ा तेजस्वी व बलवान् वह सब यक्षोंका स्वामी हुआ ॥ २४ ॥ शास्त्र व

ष्कृतः ॥ १९ ॥ किन्त्वर्चयन्सचैवासौ लिङ्गाराधनतत्परः ॥ पुष्पस्रग्धूपनैवेद्यगन्धादिभिरमन्त्रवत् ॥ २० ॥ मखेषुच सदायाति देवतायतनेषुच ॥ दद्यात्सबहुलान्दीपान् वर्त्तिनैवसमुज्ज्वलान् ॥ २१ ॥ कदाचिन्मृगयासक्तो बभ्रामसचवीर्यवान् ॥ प्रभासक्षेत्रमागत्य पूर्वसंस्कारभावितः ॥ २२ ॥ पूर्वंचाभिहतोयुद्धे न्यङ्कुमत्यास्तटेशुभे ॥ शिवपूजाविधानेन विध्वस्ताशेषपातकः ॥ २३ ॥ ततोविश्रवसश्चासौ पुत्रोभूद्भुविविश्रुतः ॥ यःसएवमहातेजाः सर्वयक्षाधिपोबली ॥ २४ ॥ कुबेरइतिधर्मात्मा श्रुतशीलसमन्वितः ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठयामास न्यङ्कुमत्याश्चपूर्वतः ॥ २५ ॥ कौवेरात्पश्चिमेभागे सोमनाथेतिविश्रुतम् ॥ सम्पूज्यचमहेशानं न्यङ्कुमत्यास्तटेशुभे ॥ २६ ॥ स्तोत्रेणानेनचास्तौषीद्भक्त्यातंसर्वकामदम् ॥ २७ ॥ मूर्तिःकापिमहेश्वरस्यमहतीयज्ञस्यमूलोदया तुम्बीतुङ्गफलाकृतिश्चशतशोब्रह्माण्डकोटिस्थिता ॥ यन्मानंनपितामहो नचहरिर्ब्रह्माण्डमध्यस्थितो जानात्यन्यसुरेषुकात्रगणना सासन्ततंनोवतात् ॥ २८ ॥ नमाम्यहंदेवमजम्पुराणमुपे

शीलसे संयुत धर्मात्मा कुबेरजी ने न्यंकुमती के पूर्व और लिंग को थापन किया ॥ २५ ॥ और कुबेरेश्वर से पश्चिमभाग में न्यंकुमतीके उत्तम किनारेपै सोमनाथ ऐसे प्रसिद्ध शिवजी को पूजकर ॥ २६ ॥ भक्तिसे सब कामनाओंवाले उन शिवजी की इस स्तोत्र से स्तुति किया ॥ २७ ॥ कि शिवजी की कोई (अनिर्वाच्य) बड़ीभारी मूर्ति है जोकि यज्ञकी जड़ व ऐश्वर्यवती है और तुम्बी के ऊंचे फलके समान आकारवाली व सैकड़ों ब्रह्माण्डों के ऊपर स्थित है और ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित ब्रह्मा व विष्णुजी जिसकी प्रमाण को नहीं जानते हैं तो अन्य देवताओंकी इसमें क्या गिनती है वह मूर्ति सदैव हमारी रक्षा करै ॥ २८ ॥ न जन्म लेने-

वाले व प्राचीन तथा इन्द्रसे प्रणाम करने योग्य और उत्तम राजाओं से सेवित तथा चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि के समान नेत्रोंवाले और वृषेन्द्र (नन्दी) से चिह्नित व प्रलय के आदिकारण शिवदेवजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ और सबके एकहीस्वामी व देवताओं के एकही बन्धु तथा योग से प्राप्त होनेयोग्य व संसार के अधिवासरूप उन विस्मय आधार व अमित शक्तिवाले तथा ज्ञान से उत्पन्न और धैर्यगुण से अधिक देवको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३० ॥ पिनाक, पाश, अंकुश व त्रिशूल को हाथ में लिये, जटाधारी व मेघ के समान शब्दवाले और काले कण्ठवाले तथा बिल्लौर के समान प्रकाशवाले सहस्रमूर्तिमान् विशिष्ट पुरुष को मैं प्रणाम

न्द्रवन्द्यंवरराजजुष्टम् ॥ शशाङ्कसूर्याग्निसमाननेत्रं वृषेन्द्रचिह्नंप्रलयादिहेतुम् ॥ २९ ॥ सर्वेश्वरैकन्त्रिदशैकबन्धुं योगाधिगम्यंजगतोधिवासम् ॥ तंविस्मयाधारमनन्तशक्तिं ज्ञानोद्भवंधैर्यगुणाधिकञ्च ॥ ३० ॥ पिनाकपाशाङ्कुशशूलहस्तं कपर्दिनंमेघसमानघोषम् ॥ सकालकण्ठंस्फटिकावभासं सहस्रमूर्तिंपुरुषंविशिष्टम् ॥ ३१ ॥ यदक्षरंनिर्गुणमप्रमेयं सज्योतिरेकंप्रवदन्तिसन्तः ॥ दूरङ्गमंवेद्यमनिन्द्यवेद्यं सर्वस्यहृत्स्थंपरमम्पवित्रम् ॥ ३२ ॥ तेजोनिभंबालमृगाङ्कमौलिं नमामिरुद्रंस्फुरदुग्रवक्त्रम् ॥ कालान्तकंकामदमस्तसङ्गं धर्मासनस्थंप्रकृतिद्वयस्थम् ॥ ३३ ॥ अतीन्द्रियंविश्वभुजंजितारिं गुणत्रयातीतमजंनिरीहम् ॥ तपोमयंवेदमयंमहेशं प्रजापतिंत्वांपुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ३४ ॥ अनागतातीतविदंमहेशं ध्यायन्तियंयोगविदोमुनीन्द्राः ॥ संसारपाशच्छिदुरंविमुक्तं पुनःपुनस्तंप्रणमामिदेवम् ॥ ३५ ॥

करता हूं ॥ ३१ ॥ विद्वान्लोग जिसको अक्षर, निर्गुण, अप्रमेय, ज्योतिसंयुत व मुख्य, दूर जानेवाला, अनिन्द्य, वन्दनीय व सबके हृदय में स्थित और परमपवित्र कहते हैं ॥ ३२ ॥ व तेज के समान तथा बाल चन्द्रमा को माथे में धारण किये व फरकतेहुये उग्र मुखवाले कालनाशक, कामदायक, संगरहित, धर्मासन पै स्थित व दो प्रकृतियों में स्थित रुद्रजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ व इन्द्रियों के अगोचर, विश्वभुक्, शत्रुवों को जीतेहुये, तीनोंगुणोंसे परे, जन्मरहित, चेष्टावर्जित, तपोमय, वेदमय तथा पुरुहूत व इन्द्ररूपी तुम महेश को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३४ ॥ भविष्य व भूत को जाननेवाले जिन शिवजी को योग के जाननेवाले

मुनीन्द्रलोग ध्यान करते हैं संसाररूपी फसरी को काटनेवाले उन विमुक्त देव को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३५ ॥ जिस परम पुरुष का शरीर उपमारहित है व जिसका प्रभाव व स्वभाव ॥ ३६ ॥ विष्णु व ब्रह्मादिक देवताओं से नहीं जानाजाता है उन अचिन्तनीय शिवदेवजी को मैं प्रणाम करता हूं जिन उग्रमूर्तिवाले शिवजी का आराधनकर भगवान् अगस्त्यजी ने समुद्र को पीलिया ॥ ३७ ॥ और दिलीप ने भी सब कामनाओं को पाया है उन विश्वयोनि शिवजी की शरण में मैं प्राप्त होता हूं हे देवेन्द्र, वन्दनीय, शंभो ! मुझ अनाथ को उधारिये व कृपा करिये क्योंकि तुम कृपालु हो ॥ ३८ ॥ हे उमेश, भव ! दुःख के समुद्र में डूबे हुये मुझ दीन को

निरूपमस्यास्यवपुःप्रभावो नचस्वभावःपरमस्यपुंसः ॥ ३६ ॥ विज्ञायतेविष्णुपितामहाद्यैस्तंवामदेवंप्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥ शिवंसमाराध्ययमुग्रमूर्त्तिं पपौसमुद्रंभगवानगस्त्यः ॥३७॥ लेभेदिलीपोप्यखिलांश्च कामांस्तंविश्वयोनिंशरणंप्रपद्ये ॥ देवेन्द्रवन्द्योद्धरमामनाथं शम्भोकृपांकारुणिकःकिलत्वम् ॥ ३८ ॥ दुःखार्णवेमग्नमुमेशदीनं समुद्धरत्वम्भवशंकरोसि ॥ सम्पूजयन्तोदिविदेवसङ्घा ब्रह्मेन्द्रपूर्वाविहरन्तिकामम् ॥ ३९ ॥ त्वांस्तौमिनौमीहजपामिसर्वं वन्देभिवन्द्यं शरणंप्रपन्नः ॥ स्तुत्वैवमीशंविररामयावत्तावत्सरुद्रोपिसहस्रतेजाः ॥ ४० ॥ ददौसतस्मैवरदोन्धकारिर्वरत्रयंवैश्रवणायदेवः ॥ सख्यञ्चदिक्पालपदंतृतीयं धनाधिपत्यञ्चदिवौकसांहि ॥ ४१ ॥ यस्मादत्रत्वयासम्यङ् न्यङ्कुमत्यास्तटेशुभे ॥ आराधितोहंविधिवत् कृत्वामूर्तिंमहीमयीम् ॥ ४२ ॥ तस्मात्तवैवनाम्नैतत् स्थानंख्यातम्भविष्यति ॥ कुबेर

ऊपर निकालिये क्योंकि तुम कल्याणकारक हो और तुमको पूजतेहुये ब्रह्मा व इन्द्रादिक देवतागण स्वर्ग में इच्छापूर्वक विहार करते हैं ॥ ३९ ॥ शरण में प्राप्त मैं तुम सर्व को प्रणाम करता हूं व स्तुति करता हूं और जपता हूं व प्रणाम करनेयोग्य तुमको प्रणाम करता हूं इसप्रकार शिवजी की स्तुति कर जबतक वे चुपहुये तबतक हज़ारों तेजवाले व वरदायक उन अन्धकारि देवजीने उन कुबेरजी के लिये तीन वरदानों को दिया कि मित्रता व दिक्पालस्थान और देवताओं के मध्य में धनेशत्वरूप तीसरे वरदानको दिया ॥ ४०।४१ ॥ व यह कहा कि जिसलिये तुमने न्यंकुमती के उत्तम किनारे पै पृथ्वीमयी मूर्ति कर मुझको विधिपूर्वक आराधन किया ॥४२ ॥

इसलिये तुम्हारेही नामसे मेरी प्रीतिको देनेवाला कुबेरनगर ऐसा यह स्थान प्रसिद्ध होगा ॥ ४३ ॥ और तुमने इस स्थान से पश्चिम में उमानाथके लिंग को विधिपूर्वक थापा है वह सोमनाथ ऐसा कहागया है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य श्रीपञ्चमी में उसको विधि से पूजैगा उसके सात पुश्तियों तक लक्ष्मी होगी ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांन्यंकुमतीमाहात्म्येकुबेरनगरोत्पत्तिकुबेरेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

दो॰ । यथा कुबेर स्थान ढिग भद्रकालि हैं देवि । दोसौ अरसठि मे सोई चरित कह्यो सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि उस कुबेरसंज्ञक स्थान से उत्तर भाग में

नगरंचैवं ममप्रीतिप्रदायकम् ॥ ४३ ॥ त्वयाप्रतिष्ठितंलिङ्गमस्मात्स्थानाच्चपश्चिमे ॥ उमानाथस्यविधिवत्सोमनाथेति तत्स्मृतम् ॥४४॥ श्रीपञ्चम्यांविधानेन यस्तंवैपूजयिष्यति ॥ सप्तपुंसावधिर्यावत् तस्यलक्ष्मीर्भविष्यति ॥ ४५॥ इति श्री प्रभासखण्डेन्यङ्कुमतीमाहात्म्येकुबेरनगरोत्पत्तिकुबेरेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २६७ ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्मादुत्तरभागेतु स्थानात्कौबेरसंज्ञिकात् ॥ भद्रकालीमहादेवी वाञ्छितार्थप्रदायिनी ॥ १ ॥ दक्षयज्ञस्यविध्वंसे वीरभद्रसमन्विता ॥ भद्रकालीमहादेवी दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ २ ॥ चैत्रेमासितृतीयायांतांदेवींयस्तु पूजयेत् ॥ नवकोट्यस्तुचामुण्डा भविष्यन्तिचपूजिताः ॥ ३ ॥ सौभाग्यंविजयंचैव तस्यलक्ष्मीर्भविष्यति ॥ ४॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्मादुत्तरभागेतु स्थानात्कौबेरसंज्ञिकात् ॥ बालार्कस्तुमहादेवि स्थितोवैरोगनाशनः ॥ ५ ॥ रविवारेण सप्तम्यां गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ यस्तम्पूजयतेभक्त्या कोटियज्ञफलंलभेत् ॥ ६ ॥ मुच्यतेवातपित्तोत्थरोगैरन्यैश्चपुष्क

चाहे हुये प्रयोजन को देनेवाली भद्रकाली महादेवी हैं ॥ १ ॥ दक्षयज्ञ के विध्वंस में वीरभद्रसे संयुत भद्रकाली महादेवी दक्षजी के यज्ञको नाशनेवाली हुई हैं ॥ २ ॥ चैत महीनेमें तीज तिथि में जो उन देवीजी को पूजता है उससे नवकरोड़ चामुण्डा पूजित होती हैं ॥ ३ ॥ और उसके सौभाग्य, विजय व लक्ष्मी होवैगी ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उस कुबेरसंज्ञक स्थान से उत्तरभाग में रोगनाशक बालार्कजी स्थित हैं ॥ ५ ॥ रविवार सप्तमी तिथि में जो पुरुष भक्ति से गन्ध पुष्प व अनुलेपनों से उन बालार्कजी को पूजता है वह करोड़ यज्ञों के फल को पाता है ॥ ६ ॥ और वात व पित्त से उपजेहुये अन्य बहुत से रोगों से छूट

जाता है और वहींपर भलीभांति यात्रा के फल को चाहनेवाले पुरुषों को अश्व देनाचाहिये ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभद्रकालीबालार्कमाहात्म्यंनामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जाल टांगि ध्वजदण्डमें धीवर भो जिमि भूप । दो सौ उनहत्तरे महँ सोई चरित अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि ! उस वैश्रवण (कुबेर) स्थान से नैर्ऋत्यदिशामें सब दरिद्रोंके नाशनेवाले कुबेरजी आपही स्थित हैं ॥ १ ॥ अणिमादिक आठों निधियों से भूषित उनको जो पंचमी तिथिमें भक्तिसे गन्ध

लैः ॥ अश्वस्तत्रैवदातव्यः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभद्रकालीबालार्कमाहात्म्यंनामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्माद्वैश्रवणस्थानान्नैर्ऋत्यांवरवर्णिनि ॥ स्वयंस्थितःकुबेरस्तु सर्वदारिद्र्यनाशनः ॥१॥ अणिमादिनिधानैस्तु अष्टभिःपरिभूषितम् ॥ पञ्चम्याम्पूजयेद्भक्त्यागन्धपुष्पानुलेपनैः॥२॥ निधानप्राप्तिरतुलानिर्विघ्नंतस्यजायते ॥ ३ ॥ कुबेरात्पूर्वदिग्भागे बालार्कम्पापनाशनम् ॥ तत्रकुण्डेनरःस्नात्वा ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ४ ॥ बालार्केश्वरनामेति पूर्वभागेव्यवस्थितम् ॥ उत्तरेचाम्बिकास्थानं गयाक्षेत्रेणसंयुतम् ॥५॥ तयोर्दर्शनमात्रेणवाजपेयफलंलभेत् ॥ तत्रैवशतशस्सन्तितीर्थलिङ्गानिभामिनि ॥ ६ ॥ तेषांदर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कौबेरात्पूर्वसंस्थितम् ॥ ७ ॥ गव्यूतिपञ्चकेदेवि पुष्करंनामनामतः ॥ तत्रसिद्धोमहादेवि कैवर्तोमत्स्यघातकः ॥ ८ ॥

पुष्पादिक व अनुलेपनों से पूजताहै ॥ २ ॥ उसको विघ्नरहित अतुल निधानकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ और कुबेरसे पूर्व दिशा के भागमें पापनाशक बालार्कजी के समीप जावै वहा कुण्ड में नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्याको नाश करता है ॥ ४ ॥ और पूर्वभागमें स्थित बालार्केश्वर नामक लिंग व उत्तर में गयाक्षेत्रसे संयुत अम्बिका स्थान है ॥ ५ ॥ उन दोनों के दर्शनमात्र से मनुष्य वाजपेय यज्ञके फलको पाता है हे भामिनि ! वहीं पर सैकड़ों तीर्थ व लिंग हैं ॥ ६ ॥ उनके दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर कुबेर स्थान से दश कोस पै स्थित पुष्कर नामक तीर्थ को जावै हे महादेवि !

वहां मछलियों को मारनेवाला केवट सिद्ध हुआ है ॥ ७ । ८ ॥ देवीजी बोलीं कि वह कैसे सिद्धि को प्राप्त हुआ है इसको मुझ से विस्तार समेत कहिये हे देवदेव, महेश्वरजी ! प्रसन्नतासे उसको कहिये ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! जो पुरातन समय स्वारोचिष मन्वन्तरमें वृत्तान्त हुआहै उसको सुनिये कि दुष्ट आचरणोंवाला कोई मछलियोंको मारनेवाला केवट हुआ ॥ १० ॥ पृथ्वीमें घूमता हुआ वह किसी समय पुष्करक्षेत्र में गया व उसने लताओं व वृक्षों से व्याप्त शिवजी के मन्दिर को देखा ॥ ११ ॥ और भीगेहुये जालसे संयुत व दुःखी वह माघमहीनेमें शीत से विकल होकर सूर्यनारायणके तापको ग्रहण करने की इच्छा से मन्दिर पै

देव्युवाच ॥ सविस्तरंममब्रूहि कथंसिद्धिमवापवै ॥ कथयस्वप्रसादेन देवदेवमहेश्वर ॥ ९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविपुरावृत्तं यत्तुस्वारोचिषेन्तरे ॥ आसीत्कश्चिद्दुराचारः कैवर्त्तोमत्स्यघातकः ॥ १० ॥ सकदाचिच्चरन्भूमौ पुष्करेतुजगामवै ॥ ददर्शशाङ्करंवेश्म लतापादपसङ्कुलम् ॥ ११ ॥ समाघमासेशीतार्तः क्लिन्नजालसमन्वितः ॥ प्रासादमारुरोहार्त्तः सूर्यतापजिघृक्षया ॥ १२ ॥ ततःसक्लिन्नजालंयच्छोषणायरवेःकरैः ॥ प्रासादध्वजदण्डाग्रे तज्जालंप्राक्षिपत्तदा ॥ १३ ॥ ततःप्रासादतोदेविभूमौसपतितःक्रमात ॥ समृतःसहसादेवि तस्मिन्क्षेत्रेशिवस्यच ॥ १४ ॥ जालंतस्यप्रभूतेन जीर्णकालेनयत्तदा ॥ ध्वजाद्बद्धंयतोधूतं प्रासादेशाङ्करेतदा ॥ १५ ॥ ततोसौध्वजमाहात्म्यात् सूतश्चैव नराधिपः ॥ क्रतुध्वजेतिविख्यातः सौराष्ट्रविषयेसुधीः॥१६॥सविस्फूर्यध्वजाग्रेण वित्रासितनरामरः ॥ कामभोगाभिभू

चढ़गया ॥ १२ ॥ तदनन्तर जो भीगा हुआ जाल था उस जालको सूर्यकी किरणों से सूखने के लिये उस समय मन्दिर के ध्वजा के दण्ड के अग्रभाग पै फेंक दिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे देवि ! वह क्रमसे मन्दिरसे गिरपडा वहे देवि ! अचानकही वह शिवजी के क्षेत्रमें मरगया ॥ १४ ॥ जिस लिये उस समय बहुत समय के बाद जालजीर्ण हुआ व जिसकारण उस समय शिवजी के मन्दिरमें ध्वजासे बँधा हुआ जाल कंपित हुआ ॥ १५ ॥ उसी कारण ध्वजा के माहात्म्यसे यह पैदा होकर सौराष्ट्र देशमें क्रतुध्वज ऐसा प्रसिद्ध बुद्धिमान् राजा हुआ ॥ १६ ॥ और स्फुरित ध्वजा के अग्रभाग से मनुष्यों व देवताओं को डरवानेवाले उस प्रतापी

व कामनाओं के भोग से तिरस्कृत चित्तवाले राजा ने राज्य किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर इस प्रभुने शिवजी के मन्दिर में शोभासे संयुत व शुभ्र तथा विचित्र ध्वजा को दिया और कुछ भी नहीं दिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर जातिको स्मरण करनेवाला राजा प्रभासक्षेत्रको आया व उसने पहले आराधन कियेहुये अजागन्ध देवके ध्वजा व जालसे संयुत मंदिरको देखा और उस लिंगके प्रभाव से उस महामनस्वीने दश हज़ार वर्षतक राज्य किया तदनन्तर मृत्यु से स्वर्ग को चलागया उसीकारण वहां बड़े यत्न से जाकर लिंगको पूजै ॥ १९ । २० । २१ ॥ और लिंगसे पश्चिम ओर पापों को चुरानेवाले कुण्ड के समीप जहां ब्रह्मा ने पहले बहुत दक्षिणाओंवाले यज्ञों

तात्मा राज्यंचक्रेप्रतापवान् ॥ १७ ॥ ततोसौभवनेशम्भोर्ददौशोभासमन्विताम् ॥ ध्वजांशुभ्रांविचित्रांच नान्यत्किञ्चिदपिप्रभुः ॥ १८ ॥ ततोजातिस्मरोराजा प्रभासंक्षेत्रमागतः ॥ ददर्शतत्रायतनं ध्वजाजालसमन्वितम् ॥ १९ ॥ अजागन्धस्यदेवस्य पूर्वमाराधितस्यच ॥ दशवर्षसहस्राणि राज्यंचक्रेमहामनाः ॥ २० ॥ तस्यलिङ्गप्रभावेण ततःकालाद्दिवङ्गतः ॥ तस्मात्तत्रप्रयत्नेनगत्वालिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ २१ ॥ लिङ्गात्पश्चिमतःकुण्डे पश्चिमेपापतस्करे ॥ यत्रब्रह्मायजत्पूर्वं यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥ २२ ॥ समाहूयचतीर्थानि पुष्करादीनिपार्वति ॥ तस्मिन्कुण्डेतुविन्यस्य अजागन्धसमीपतः ॥ २३ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहात्मानमजागन्धेतिनामतः ॥ त्रिपुष्करेमहादेवि सर्वपातकनाशनम् ॥ २४ ॥ सौवर्णंकमलंतत्र दद्याद्ब्राह्मणपुङ्गवे ॥ एवंसम्पूज्यविधिवद्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ २५ ॥ मुच्यतेपातकैःसर्वैः सप्तजन्मार्जितैरपि ॥

[illegible]न्दपुराणेप्रभासखण्डेऽजागन्धेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

ति ! वहां पुष्करादिक तीर्थों को आह्वान कर अजागन्ध के समीप उस कुण्ड में विन्यास कर ॥ २३ ॥ हे महादेवि ! अजागन्ध ऐसे शक महात्मा शिवजी को त्रिपुष्कर में थापकर ॥ २४ ॥ वहां द्विजोत्तम के लिये सुवर्ण का कमल देवै इसप्रकार विधिपूर्वक चन्दन, पुष्प भांति पूजकर ॥ २५ ॥ सात जन्मों में इकट्ठा किये हुये भी समस्त पातकों से मनुष्य छूटजाता है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे अयामजागन्धेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

दो॰। जिमि ऋषितोया नदीकर अहै अमित माहात्म्य। दोसौ सत्तर में सोई कह्यो चरित याथात्म्य॥ महादेवजी बोले कि हे देवि! उससे आग्नेय दिशा के भाग में चौदह कोस पै देवकुल नामक स्थान है जहां कि देवताओं का सगम हुआ है॥ १॥ हे महादेवि! जिसलिये पुरातन समय लिंग गिरानेमें जहां ऋषियों व सिद्धों का संगम हुआ है उसीकारण वह स्थान देवकुल कहा गया है॥ २॥ उसके पश्चिम दिशा के भाग में ऋषितोया महानदी है हे देवि! वह समस्त पातकों को नाशनेवाली व ऋषियों को प्यारी है॥ ३॥ उसमें भलीभांति नहाकर जो मनुष्य पितरोंको तर्पण करताहै वह सत्तर हज़ार वर्षोंतक पितरोंकी तृप्ति करताहै॥ ४॥

ईश्वर उवाच॥ तस्मादाग्नेयदिग्भागे गव्यूतिसप्तकेनच॥ स्थानंदेवकुलंनाम देवानांयत्रसङ्गमः॥ १॥ ऋषीणां यत्रसिद्धानां पुरालिङ्गनिपातने॥ यस्माद्यातोमहादेवि तस्माद्देवकुलंस्मृतम्॥ २॥ तस्यपश्चिमदिग्भागे ऋषितोयामहानदी॥ ऋषीणांवल्लभादेवि सर्वपातकनाशिनी॥ ३॥ तत्रस्नात्वानरःसम्यक् पितॄन्निर्वर्तयेत्तुयः॥ सप्तवर्षायुतान्येव पितॄणांतृप्तिमावहेत्॥ ४॥ सुवर्णंतत्रदेयन्तु अजिनंकम्बलंतथा॥ आषाढेचाप्यमायांवैयत्किञ्चिद्दीयतेध्रुवम्॥ ५॥ वर्द्धतेतद्दशगुणं यावदायातिपूर्णिमा॥ मुच्यतेपातकैःसर्वैः सप्तजन्मार्जितैरपि॥ ६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेऋषितोयामाहात्म्यंनामसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७०॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच॥ देवदेवजगन्नाथ संसारार्णवतारक॥ सविस्तरन्त्वंमेब्रूहि ऋषितोयामहोदयम्॥ १॥ ऋषितोयेति

वहां सुवर्ण व मृगचर्म तथा कम्बल देना चाहिये व आषाढ़ में अमावस तिथिमें जो कुछ वहां दिया जाता है निश्चय कर॥ ५॥ वह तबतक दशगुना बढ़ता है जबतक कि पौर्णमासी आती है और वह सात जन्मों में भी इकट्ठा कियेहुये पातकोंसे छूटजाता है॥ ६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांऋषितोयामाहात्म्यंनामसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७०॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। जो ऋषितोया नदी कर भयो यथाविधि नाम। दो सौ इकहत्तरे महँ सोई चरित ललाम॥ देवीजी बोलीं कि हे संसाररूपी समुद्रसे उतारनेवाले, देवदेव! तुम

ऋषितोया के माहात्म्य को विस्तार समेत मुझ से कहो ॥ १ ॥ और ऋषितोया ऐसा जो नाम है वह पृथ्वी में कैसे प्रसिद्धहुआ और वह नदी उत्तम देवदारुवन में फिर कैसे आई है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! मैं कहताहूं सावधान होतीहुई तुम मेरे वचन को सुनो और ऋषितोया के समस्त पातकों के नाशक माहात्म्य को सुनिये ॥ ३ ॥ हे वरारोहे ! पवित्र देवदारुवन में सैकड़ों व हज़ारों तपस्यासे संयुत ऋषिलोग बसते थे ॥ ४ ॥ और उस प्रभासक्षेत्र में वे सब द्विजोत्तम नित्य बावली, कुँवा व तड़ागादिकमें स्नान करतेथे ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! वहां उनको बसतेहुये बहुत समय व्यतीत हुआ और पुत्रों व पौत्रों से बढ़ेहुये वे देवदारुवनको व्याप्त

यन्नाम कथंख्यातंधरातले ॥ कथंसापुनरायाता देवदारुवनेशुभे ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि सावधाना वचोमम ॥ माहात्म्यमृषितोयायाः सर्वपातकनाशनम् ॥ ३ ॥ देवदारुवनेपुण्ये ऋषयस्तपसायुताः ॥ निवसन्तिवरारोहे शतशोथसहस्रशः ॥ ४ ॥ तस्मिन्प्राभासिकेक्षेत्रे सर्वेतेद्विजसत्तमाः ॥ वापीकूपतडागादौ स्नानंकुर्वन्तिनित्यशः॥ ५ ॥ तेषांनिवसतांतत्र बहुकालोगतःप्रिये ॥ पुत्रपौत्रैःप्रवृद्धास्ते दारुकंव्याप्यसंस्थिताः ॥ ६ ॥ तेसर्वेचिन्तयामासुः समेत्यचपरस्परम् ॥ सरस्वतीमहापुण्या शिरस्याधायवाडवम् ॥ ७ ॥ प्रभासंचिरकालेन क्षेत्रंचैवागमिष्यति ॥ वापीकूपतडागादौ मुक्त्वादेवींसमुद्रगाम् ॥ ८ ॥ नरुचिंकुरुतेचेतः स्नानहोमजपेषुच ॥ ब्रह्माणंप्रार्थयिष्यामो गत्वाब्रह्मनिकेतनम् ॥ ९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंसंमन्त्र्यतेसर्वेऋषयश्चतपोधनाः ॥ गतास्तेब्रह्मलोकन्तु द्रष्टुंदेवंपितामहम् ॥१०॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैर्ब्रह्माणंकमलोद्भवम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नमःप्रणवरूपाय विश्वकर्त्रेनमोनमः ॥ ११ ॥ तथाविश्व

कर टिकते भये ॥ ६ ॥ और उन सबोंने इकट्ठा होकर परस्पर विचार किया कि महापुण्यवती सरस्वती बड़वानलको मस्तक पै धरकर ॥ ७ ॥ बहुत समयसे प्रभासक्षेत्रको आवैगी और समुद्रगामिनी सरस्वती देवी को छोडकर बावली, कूप व तड़ागादिकों में ॥ ८ ॥ चित्त स्नान, होम और जप में रुचि नहीं करता है इसकारण ब्रह्मस्थानको जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना करैंगे ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि इस प्रकार सम्मति कर तपस्यारूपी धनवाले वे सब ऋषिलोग ब्रह्मा देवको देखने के लिये ब्रह्मलोक को गये ॥ १० ॥ और उन्होंने कमल से उपजे हुये ब्रह्माकी अनेक प्रकार के स्तोत्रोंसे स्तुति किया ऋषिलोग बोले कि ॐकाररूपी आपके लिये

प्रणाम है व संसार को रचनेवाले आपके लिये बार २ प्रणामहै ॥ ११ ॥ वैसेही संसार की रक्षा करनेवाले परमात्मा के लिये प्रणाम है व उसी का संहार करनेवाले ब्रह्मस्वरूपी आपके लिये प्रणामहै ॥ १२ ॥ हे पितामह ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे सुरज्येष्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणामहै इसप्रकार स्तुति करतेहुये उन ऊर्द्ध्वरेता ऋषियों से ॥१३॥ बहुत प्रसन्न होकर लोकोंके पितामह ब्रह्माजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुम्हारा आना अच्छाहुआ और इस दिव्यस्तोत्रसे मैं तुम लोगोंके ऊपर प्रसन्न हुआहूं उत्तम वरदानको मांगिये ॥ १४।१५॥ ऋषिलोग बोले कि हम लोगोंके स्नानकेलिये पापोंको नाश करनेवाली नदीको दीजिये हे सुरश्रेष्ठ ! इसको देखकर हम लोगोंको

स्यरचित्रे नमोस्तुपरमात्मने ॥ तथातस्यैवसंहर्त्रे नमोब्रह्मस्वरूपिणे ॥ १२ ॥ पितामहनमस्तुभ्यं सुरज्येष्ठनमोस्तु ते ॥ एवंसंस्तुवतांतेषामृषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ १३ ॥ उवाच परमप्रीतो ब्रह्मालोकपितामहः ॥ स्वागतंवोद्विजश्रेष्ठा युष्मा कन्तुष्टवानहम् ॥ १४ ॥ स्तोत्रेणानेनदिव्येन वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अभिषेकायनोदेहि नदीं पापप्रणाशिनीम् ॥ विलोक्यैतत्सुरश्रेष्ठ देहिनोवरमुत्तमम् ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्तैस्तदाब्रह्मा मुनिभिस्त पसोज्ज्वलैः ॥ वीक्षांचक्रेतदासर्वा मूर्तिमत्यश्चनिम्नगाः ॥ १७ ॥ गङ्गाचयमुनाचैवतथादेवीसरस्वती ॥ चन्द्रभागाचरे वाच सरयूगण्डकीतथा ॥ १८ ॥ तापीचैववरारोहेतथागोदावरीनदी ॥ कावेरीमाहेन्द्रपुत्री शिप्राचर्मण्वतीतथा ॥१९॥ सिन्धुश्चदेविकाचैव नदाःसर्वेवरानने ॥ मूर्तिमन्तःस्थिताःसर्वे पवित्राःपापनाशनाः ॥ २० ॥ दृष्ट्वापितामहःसर्वाः सत्व राधरणीम्प्रति ॥ देवदारुवनेरम्ये प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ २१ ॥ कमण्डलौकृतादृष्टिर्विविशुस्ताःकमण्डलुम् ॥ ब्रह्मो

उत्तम वर को दीजिये ॥ १६ ॥ महादेवजी बोले कि उस समय तपस्यासे उज्ज्वल उन मुनियोंसे ऐसा कहेहुये ब्रह्माजी ने तब मूर्तिमती नदियों को देखा ॥ १७ ॥ और गंगा, यमुना व सरस्वती देवी तथा चन्द्रभागा, नर्मदा, सरयू व गण्डकी ॥ १८ ॥ व हे वरारोहे ! तापी व गोदावरी नदी, कावेरी, महेन्द्रपुत्री, शिप्रा,चर्मण्वती॥ १९॥ व हे वरानने ! सिन्धु व देविका नदी और पातकोंके नाशक व पवित्र सब नद मूर्तिमान् होकर स्थित हुये ॥ २० ॥ व पितामहजी ने पृथ्वी में उत्तम प्रभासक्षेत्र में सुन्दर देवदारु वनमें शीघ्रतासमेत सब नदियोंको देखकर ॥ २१ ॥ कमण्डलुमें दृष्टि किया और वे नदियां कमण्डलुमें पैठगईं ब्रह्माजी बोले कि महापवित्र ये सब न-

दियां ऋषियोंके ऊपर दयासे पृथ्वी में जानेके लिये ब्रह्मकमण्डलु में पैठी हैं हे ब्राह्मणो ! यदि मैं एक नदीको पठाऊं तो अन्य क्रोधित होवेंगी ॥ २२ । २३ ॥ इस लिये कमण्डलु में स्थान किये हुई सब नदियों को छोडूंगा ॥ २४ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर उस कमण्डलु में स्थित महानदियों को छोड़दिया व उनको छोड़कर ब्रह्मा ने सब मुनियों से बार २ यह कहा ॥ २५ ॥ कि ऋषियों से प्रार्थना कियेहुये मैंने जिसलिये स्नान के निमित्त महावेगवती व जलमयी तथा शीघ्रतासमेत नदियों को छोड़ा है ॥ २६ ॥ इसकारण हे देवि ! समस्त पातकों को नाशनेवाली व ऋषियोंको प्यारी वह ऋषितोयानामक नदी पृथ्वी में होगी ॥ २७ ॥

वाच ॥ एताःसर्वामहापुण्या नद्योब्रह्मकमण्डलुम् ॥ २२ ॥ प्रविष्टाःपृथिवींयातुमृषीणामनुकम्पया ॥ प्रहिणोमियदेका श्च अन्यारुष्यन्तिभोद्विजाः ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वाःप्रमोक्ष्यामि कमण्डलुकृतालयाः ॥ २४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोब्रह्मामुमोचाथ तत्रस्थाश्चमहापगाः ॥ मुक्त्वाब्रह्मामुनीन्सर्वान् प्रोवाचेदंपुनःपुनः ॥ २५ ॥ ऋषिभिःप्रार्थ्यमानेन नद्योमुक्तामयायतः ॥ तोयरूपामहावेगा अभिषेकायसत्वराः ॥ २६ ॥ ऋषितोयेतिनामासा भविष्यतिधरातले ॥ ऋषीणां वल्लभादेवि सर्वपातकनाशिनी ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंदेवीसमायाता देवदारुवनेनदी ॥ ऋषितोयेतिविख्याता पवित्राचवरानने ॥२८॥तूर्यदुन्दुभिनिर्घोषैर्वेदमङ्गलनिस्वनैः ॥ समुद्रंप्रापितादेविऋषिभिर्वेदपारगैः ॥२९॥ सर्वत्रसुलभा देवि त्रिषुस्थानेषुदुर्लभा ॥ महोदयेमहातीर्थे मूलचण्डीशसन्निधौ ॥ ३० ॥ समुद्रेणसमेतातु यत्रसापूर्ववाहिनी॥ यत्रर्षितोयालभ्येत तत्रकिंमृग्यतेपरम् ॥ ३१ ॥ मनुष्यास्तेसदाधन्यास्तत्तोयन्तुपिबन्तिये ॥ अस्थीनियत्रलीयन्ते षण्मा

महादेवजी बोले कि हे वरानने ! इसप्रकार देवदारुवन में ऋषितोया ऐसी प्रसिद्ध देवी व पवित्र नदी आई है ॥ २८ ॥ हे देवि ! वेदों के पारगामी ऋषियोंने तुरुही व नगारों के शब्दों से और वेदोंके मंगलशब्दों से वह नदी समुद्रको प्राप्तकराईगई है ॥ २९ ॥ हे देवि ! वह सब कहीं सुलभ है और महोदय, महातीर्थ व मूलचण्डीशके समीप तीन स्थानोंमें दुर्लभहै ॥ ३० ॥ जहां समुद्रसमेत वह पूर्ववाहिनी नदी है व जहां ऋषितोया नदी मिलती है वहां अन्य क्या ढूंढ़ाजाताहै ॥ ३१ ॥

वे मनुष्य सदैव धन्य हैं जो कि उसके जलको पीते हैं और छः महीने के मध्य में जहां अस्थि लीन होजाते हैं ॥ ३२ ॥ प्रातःकाल में गंगा व संगव समय में यमुना नदी बहती है और हजारों नदियों से संयुत सरस्वतीजी मध्याह्न में बहती हैं ॥ ३३ ॥ व अपराह्न में नर्मदा तथा सायाह्न समयमें यमुनाजी बहती हैं एसा जानताहुआ जो विद्वान् पुरुष उसमें स्नान करता है ॥ ३४ ॥ व विधिसेजो श्राद्ध करता है वह उसके फलका भागी होता है इसप्रकार ऋषितोया का माहात्म्य संक्षेप से कहागया ॥ ३५ ॥ जोकि मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाला व सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमि

साभ्यन्तरेणतु ॥ ३२ ॥ प्रातःकालेवहेद्गङ्गा सङ्गवेयमुनातथा ॥ नदीसहस्रसंयुक्ता मध्याह्नेतुसरस्वती ॥ ३३ ॥ अपराह्णेवहेद्रेवा सायाह्नेसूर्यपुत्रिका ॥ एवंजानन्नरोयस्तु तत्रस्नानंविचक्षणः ॥ ३४ ॥ आचरेद्विधिनाश्राद्धं सतस्याःफलभाग्भवेत् ॥ एवंसंक्षेपतःप्रोक्तमृषितोयामहोदयम् ॥ ३५ ॥ सर्वपापहरंनृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे ऋषितोयामाहात्म्यन्नामैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ऋषितोयापश्चिमेतु तत्रगव्यूतिमात्रतः ॥ शृगालेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ गुप्तस्तत्रप्रयागश्च देवोवैमाधवस्तथा ॥ जाह्नवीयमुनाचैव देवीतत्रसरस्वती ॥ २ ॥ अन्यानितत्रतीर्थानि बहूनिचवरानने ॥ स्नात्वास्पृष्ट्वापूजयित्वा मुक्तःस्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ ३ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कथयत्वंमहेशान सर्वदेवनमस्कृतः ॥ तीर्थरा

श्रविरचितायांभाषाटीकायामृषितोयामाहात्म्यंनामैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । भयो अमित माहात्म्य युत तीरथ गुप्त प्रयाग । दो सौ बहतरि में सोई चरित कह्यो सुखपाग ॥ महादेवजी बोले कि वहां ऋषितोयाके पश्चिम में दो कोसके प्रमाण पर समस्त पातकों के नाशक शृगालेश्वरनामक शिवजी के समीपजावै ॥ १ ॥ वहां गुप्त प्रयाग व माधव देवहैं और वहीं परगंगा, यमुना व सरस्वती देवी हैं ॥ २ ॥ व हे वरानने ! वहीं पर अन्य बहुत से तीर्थ हैं उनमें नहाकर, स्पर्शकर व पूजकर सब पातकों से मनुष्य छूटजाता है ॥ ३ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे

महेशजी ! कहिये कि सब देवताओं से नमस्कार कियेहुये तीर्थराज प्रयाग व सनातन विष्णुजी किसप्रकार वहां आये हैं ॥ ४ ॥ व यमुनासमेत गंगाजी व सरस्वती देवी किसप्रकार आई हैं व हे वृषभध्वज ! अन्य भी बहुत से तीर्थ ॥ ५ ॥ वहीं शृगालेश्वर के समीप आये हैं और शृगालेश्वर नाम क्यों हुआ इस कौतुक को मुझसे कहिये ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरसुन्दरि ! पुरातन समय लिंग के गिरने पर जब सब देवताओं का समागम हुआ तब साढ़ेतीन करोड़ मुख्य ॥ ७ ॥ तीर्थ व यह तीर्थराज प्रयाग प्राप्तहुवा व करोड़ों तीर्थोंसे घिरेहुये इसने अपनाको छिपाया ॥ ८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता वहां आये और उन्होंने दिव्य-

जःप्रयागश्च कथंविष्णुस्सनातनः ॥ ४॥ कथंगङ्गासयमुना तथादेवीसरस्वती ॥ अन्यान्यपिबहून्येव तीर्थानिवृषभ ज॥ ५ ॥ समायातानितत्रैव शृगालेश्वरसन्निधौ॥ शृगालेश्वरकिन्नाम एतन्मेवदकौतुकम् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ पुरा वैलिङ्गपतने सर्वदेवसमागमे ॥ सार्द्धत्रितयकोटीनि मुख्यानिसुरसुन्दरि ॥ ७॥ तीर्थानितीर्थराजोयं प्रयागस्समुपस्थि तः ॥ आत्मानङ्गोपयामास तीर्थकोटिभिरावृतम् ॥ ८ ॥ ततस्तत्रसमायाता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ विबुधास्तीर्थराजा नं दद्दशुर्दिव्यचक्षुषः ॥ ९ ॥ तीर्थकोटिभिराकीर्णं पवित्रंपापनाशनम् ॥ लिङ्गस्यपतनंश्रुत्वा महादुःखेनसंयुताः ॥१०॥ स्थितास्सर्वेतदादेवि ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु देवोरुद्रस्सनातनः ॥ ११ ॥ समायातस्तुतत्रैव वाक्य मेतदुवाचह ॥ शृणुध्वंवचनंदेवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ १२ ॥ ऋषिशापान्निपतितं ममलिङ्गमनुत्तमम् ॥ तस्माल्लि ङ्गंपूजयध्वं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामहादेवो देशेतस्मिन्स्थितःप्रिये ॥ ब्राह्मयञ्चवैष्णवंरौद्रं तत्रकुण्डत्र

दृष्टि से करोड़ों तीर्थों से व्याप्त व पापनाशक तथा पवित्र तीर्थराजको देखा लिंगका गिरना सुनकर बड़े दुःखसे संयुत ॥ ९ । १० ॥ सब ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठ हे देवि ! उससमय स्थितहुये इसीसमय में सनातन शिवदेवजी ॥ ११ ॥ आये व इस वचन को बोले कि हे ब्रह्मा, विष्णु आदिक देवताओ ! वचन को सुनय ॥ १२ ॥ कि ऋषियों के शाप से मेरा अति उत्तम लिंग गिरा है इसलिये सब कामनाओं की सिद्धिके लिये लिंगको पूजिये ॥ १३ ॥ हे प्रिये ! ऐसा कहकर महादेवजी उस

स्थान में स्थित हुये वहां ब्रह्मा, विष्णु व महादेवजी के तीन कुण्ड कहेगये हैं ॥ १४ ॥ और चौथा त्रिसंगमनामक कुण्ड है जहां कि नदियों का संगम हुआ है गंगा सरस्वती व यमुना का वह संगम है ॥ १५ ॥ ब्रह्मकुण्ड में एककरोड़ तीर्थ स्थितहैं वैसेही वैष्णवकुण्ड में एक करोड़ तीर्थ हैं ॥ १६ ॥ और डेढ़ करोड़ तीर्थ सुन्दर शिवकुण्ड में हैं पश्चिम में ब्रह्मकुण्ड है व पूर्व में वैष्णवकुण्ड कहागया है ॥ १७ ॥ और जो मध्यभाग में स्थितहै वह रुद्रकुण्ड कहागया है हे वरानने ! कुण्डके मध्यसे निकल कर जहां गंगाजी ॥ १८ ॥ सूर्य कन्या (यमुना जी) से मिली हैं वहां संगम कहाजाता है इन दोनोंके सूक्ष्म अन्तर में वहां गुप्त सरस्वतीजी हैं ॥

गङ्गायाश्चसरस्वत्यास्सूर्यपुत्र्यास्तथैवच ॥ १५ ॥ कोटि यंस्मृतम् ॥ १४ ॥ चतुर्थंत्रिस्सङ्गमाख्यं नदीनांयत्रसङ्गमः ॥ रेकाचतीर्थानां ब्रह्मकुण्डेऽयवस्थिता ॥ तथावैवैष्णवेकुण्डे कोटिरेकाचतीर्थतः ॥ १६ ॥ सार्द्धकोटिस्सुसंप्रोक्ता शिव कुण्डेमनोहरे ॥ पश्चिमेब्रह्मकुण्डश्च पूर्वेवैवैष्णवंस्मृतम् ॥ १७ ॥ मध्यभागेस्थितंयच्च रुद्रकुण्डंप्रकीर्त्तितम् ॥ कुण्ड मध्याद्विनिर्गत्य यत्रगङ्गावरानने ॥ १८ ॥ सूर्यपुत्र्याचमिलिता तत्रसङ्गमउच्यते ॥ अनयोरन्तरेसूक्ष्मे तत्रगुह्यासर स्वती ॥ १९ ॥ आस्तेसन्निहितोनित्यं प्रयागस्तीर्थनायकः ॥ अत्रागत्यनरोयस्तु माघेमासिवरानने ॥ २० ॥ स्नायात्प्र भातसमये मकरस्थेरवौप्रिये ॥ किञ्चिदभ्युदितेसूर्ये शृणुतस्यचयत्फलम् ॥ २१ ॥ तत्रैकेनचस्नानेन पापंयन्मनसाकृ तम् ॥ व्यपोहतिनरस्सम्यक्छ्रद्धायुक्तोजितेन्द्रियः ॥ २२ ॥ वाचिकन्तुद्वितीयेन तृतीयेनतुकायिकम् ॥ संसर्गञ्चचतु र्थेन रहस्यंपञ्चमेनतु ॥ २३ ॥ उपपातकानिषष्ठेन स्नानेनैवव्यपोहति ॥ अभिषेकेनकुण्डानां सप्तकृत्वोवरानने ॥ २४ ॥

१९ ॥ व इन नदियोंमें तीर्थराज प्रयागजी सदैव स्थित रहते हैं हे वरानने ! जो मनुष्य यहां आकर माघ महीने में ॥ २० ॥ हे प्रिये ! मकर राशि में सूर्यनारायणके स्थित होने पर प्रातःकाल कुछ सूर्योदय होने पर जो नहाता है उसको जो फल मिलता है उसे सुनिये ॥ २१ ॥ कि जो मनसे पाप कियागया है उसको एक स्नान से भलीभांति श्रद्धायुक्त व जितेन्द्रिय पुरुष नाशकरता है ॥ २२ ॥ और दूसरे स्नान से वाचिक पाप व तीसरे से शारीरक पापको नाश करताहै और चौथे स्नान से संसर्गिक पाप व पांचवें से गुप्त पापको नाशताहै ॥ २३ ॥ व छठे स्नान हीसे उपपातकोंको नाशता है और हे वरानने ! कुण्डोंका सातबार अभिषेक कर ॥ २४ ॥

मनुष्य सदैव बड़े पातकोंको नाशताहै और गुप्तसंज्ञक प्रयागमें जो सम्पूर्ण महीनेभर नहाताहै ॥ २५ ॥ उसका फल ब्रह्मादिक देवताओं से करोड़ों कल्पोंसे भी नहीं कहाजासक्ता है हे भामिनि ! प्रभास में जो कोई तीर्थ हैं ॥ २६ ॥ उनसे अत्यन्त प्रिय व समस्त पातकों को नाश करनेवाला यह तीर्थ है इनकी रक्षा के लिये मैंने वहां मातृकाओं को नियुक्त किया है ॥ २७ ॥ वे अनेकभांति के उत्तम नैवेद्यों से बड़े यत्नसे पूजने योग्यहैं कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिमें दृढ़व्रत व श्रद्धासंयुत पुरुष ॥ २८ ॥ हे देवि ! उन मातृकाओं के जो करोड़ों भूत, प्रेत अनुचर हैं उनके भय को नाशने के लिये उन मातृकाओं को पूजै ॥ २९ ॥ इस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य

महान्तिचैवपापानि नाशयेत्पुरुषस्सदा ॥ यस्स्नातिसकलंमासं प्रयागेगुप्तसंज्ञिके ॥ २५ ॥ ब्रह्मादिभिर्नतद्वक्तुं शक्यतेकल्पकोटिभिः ॥ यानिकानिचतीर्थानि प्रभासेसन्तिभामिनि ॥ २६ ॥ तेभ्योतिवल्लभंतीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ एषांसंरक्षणार्थाय मयावैतत्रमातरः ॥ २७ ॥ पूजनीयाःप्रयत्नेन नैवेद्यैर्विविधैश्शुभैः ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां श्रद्धायुक्तोदृढव्रतः ॥ २८ ॥ तासामनुचरादेवि भूतप्रेताश्चकोटिशः ॥ तेषांभयविनाशाय तामातॄश्चप्रपूजयेत् ॥ २९ ॥ अस्मिंस्तीर्थेनरस्स्नात्वा ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ यःकश्चित्कुरुतेश्राद्धं पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ ३० ॥ उद्धरेच्चपितुर्वर्गं मातृवर्गंन्नरोत्तमः ॥ वृषभस्तत्रदातव्यः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ३१ ॥ एवंयःकुरुतेयात्रां भवेत्फलमनन्तकम् ॥ एवंगुप्तप्रयागस्य माहात्म्यंकथितन्तव ॥ ३२ ॥ श्रुत्वाभिनन्द्यपुरुषः प्राप्नुयाच्छङ्करालयम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगुप्तप्रयागमाहात्म्यन्नामद्विसप्तत्याधिकाद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥ * ॥

ब्रह्महत्याको नाशता है और पितरोंको उद्देश कर जो कोई मनुष्य भक्तिसे वहां श्राद्ध करता है ॥ ३० ॥ वह उत्तम पुरुष पिता के वर्ग व माताके वर्ग को उधारता है वहां भलीभांति यात्रा के फलको चाहनेवाले पुरुषको वृष (बैल) देना चाहिये ॥ ३१ ॥ इसप्रकार जो मनुष्य यात्रा करता है उसको अमित फल होताहै इसप्रकार गुप्तप्रयागका माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ३२ ॥ इसको सुनकर व प्रशंसा कर मनुष्य शिवजी के स्थानको प्राप्तहोता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगुप्तप्रयागमाहात्म्यंनामद्विसप्तत्याधिकाद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । माधवजी को पूजि जिमि मिलत रुचिर फल जौन । दो सौ तिहतरिमें सोई कथा कही सब तौन ॥ महादेवजी बोले कि उसी के दक्षिणभाग में थोड़े ही दूर पै स्थित शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले माधवजी वहां भलीभांति टिकेहुये हैं ॥ १ ॥ शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में धोयेहुये वसनको पहने जो जितेन्द्रिय पुरुष उनको भक्ति से चन्दन, पुष्प व अनुलेपनों से पूजता है ॥ २ ॥ वह फिर जन्मको न देनेवाले उत्तमस्थान को प्राप्तहोता है इस विषय में पुरातनसमय लोकों को रचनेवाले ब्रह्माने गाथा को गाया है ॥ ३ ॥ कि विष्णुकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य माधवजी को पूजता है वह उस उत्तम स्थान को प्राप्तहोता है जहां कि आ-

ईश्वर उवाच ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थितः ॥ शङ्खचक्रगदाधारी माधवस्तत्रसंस्थितः ॥ १ ॥ एकादश्यांसितेपक्षे धौतवासाजितेन्द्रियः ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ २ ॥ सयातिपरमंस्थानमपुनर्भवदायकम् ॥ अत्रगाथापुरागीता ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ ३ ॥ विष्णुकुण्डेनरस्स्नात्वा योवैमाधवमर्चयेत् ॥ सयास्यतिपरं स्थानं यत्रदेवोहरिस्स्वयम् ॥ ४ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं माहात्म्यंविष्णुदैवतम् ॥ सर्वकामप्रदंनृणां सर्वपातकनाशनम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे माधवमाहात्म्यन्नामत्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

शिव उवाच ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे किञ्चिद्वायव्यदिक्स्थितम् ॥ शृगालेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्रब्रह्माचविष्णुश्च लिङ्गस्याराधनोद्यतौ ॥ शक्रश्चैवमहातेजा लिङ्गंपूजितवान्प्रिये ॥ २ ॥ वरुणोधनदश्चैव धर्मराजो

प्रही विष्णुजी हैं ॥ ४ ॥ मनुष्यों के समस्त पातकों को नाशनेवाला व सब कामनाओं को देनेवाला यह विष्णु देवताका सब माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येमाधवमाहात्म्यंनामत्रिसप्तत्यधिकाद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

दो० । शृगालेश्वरहिं लिंग जिमि थाप्यो सुर समुदाय । दो सौ चौहत्तर महँ सोई चरित सुहाय ॥ महादेवजी बोले कि उसीके उत्तर दिशाके भाग में कुछ वायव्यमें स्थित समस्त पातकोंको नाशनेवाले शृगालेश्वरनामक शिवके समीप जावै ॥ १ ॥ वहां ब्रह्मा व विष्णु लिंगके आराधनमें तत्पर हुये हैं व हे प्रिये ! बड़े तेजस्वी इन्द्र-

जीने लिंगको पूजा है ॥ २ ॥ और वरुण, कुबेर, यमराज व अग्नि ने उस लिंगको पूजाहै व आदित्य, वसु और लोकपालों ने सब ओर से ॥ ३ ॥ शृगालेश्वर-नामधारी महालिंग को आराधन किया है व उन सबों ने पूजकर तथा उत्तम माहात्म्य को देखकर ॥ ४ ॥ हे देवि ! बड़े आनन्दसे संयुत उन्होंने अचानक ही कहा कि जिसलिये देवताओं के गणों ने आकर लिंगको थापन किया है ॥ ५ ॥ उसीकारण पृथ्वी में इसका शृगालेश्वर नाम होगा जो मनुष्य शृगालेश्वर-नामक शिवजीको पूजैंगे ॥ ६ ॥ उनके वंशमें कोई निर्धनी न पैदा होगा और कुरुक्षेत्रमें हज़ार गौवोंके देनेका जो फल है ॥ ७ ॥ उस फलको मनुष्य शृगालेश्वरजी

थपावकः ॥ आदित्यैर्वसुभिश्चैव लोकपालैस्समन्ततः ॥ ३ ॥ आराधितंमहालिङ्गं शृगालेश्वरनामभृत ॥ पूजयित्वा तुतेसर्वे दृष्ट्वामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ ऊचुस्तेसहसादेवि परमानन्दसंयुताः ॥ देवानांनिवहैर्यस्मात्समागत्यप्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥ शृगालेश्वरनामास्य भविष्यतिधरातले ॥ शृगालेश्वरनामानं पूजयिष्यन्तिमानवाः॥६॥ नतेषामन्वयेकश्चिन्निर्धनस्सम्भविष्यति ॥ गोसहस्रप्रदत्तस्य कुरुक्षेत्रेचयत्फलम् ॥ ७ ॥ तत्फलंसमवाप्नोति शृगालेश्वरदर्शनात् ॥ ८ ॥ अमावस्याञ्चसम्प्राप्य स्नानंकृत्वाविधानतः ॥ यःकरोतिनरःश्राद्धं पितॄणांरोषवर्जितः ॥ ९ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ अर्द्धक्रोशंचतत्क्षेत्रं समन्तात्परिमण्डलम् ॥ १० ॥ सर्वकामप्रदंनृणांसर्वपातकनाशनम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेमहादेवि, जीवाउत्तममध्यमाः ॥ ११ ॥ कालेननिधनंप्राप्तास्तेपियान्तिपराङ्गतिम् ॥ गृहीत्वानशनंयेतु प्राणांस्त्यक्ष्यन्तिमानवाः ॥ १२ ॥ निश्चयन्तेमहादेवि लीयन्तेपरमेश्वरे ॥ गवाहताद्विजहता येदंष्ट्रिपशु

के दर्शनसे प्राप्तहोता है ॥ ८ ॥ और अमावस तिथिको प्राप्तहोकर स्नानकर क्रोधवर्जित जो मनुष्य विधि से पितरोंका श्राद्ध करता है ॥ ९ ॥ उसके पितर प्रलयपर्यन्त तृप्त होते हैं सब ओर से मण्डलवाला वह क्षेत्र आध कोसहै ॥ १० ॥ जोकि मनुष्यों के सब कामनाओं को देनेवाला व समस्त पातकोंको नाशनेवाला है हे महादेवि ! इस क्षेत्रमें जो उत्तम मध्यम जीवहैं ॥ ११ ॥ कालसे मृत्युको प्राप्त हुये वे भी उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं और अनशन व्रतको ग्रहणकर जो मनुष्य प्राणोंको छोड़ते हैं ॥ १२ ॥ वे हे महादेवि ! निश्चयकर परमेश्वर में लीन होजाते हैं जो पशुसे मारेगये हैं व जो पक्षियों से मारेगये हैं और जो दाढ़वाले

पशुवोंसे मारेगये हैं ॥ १३ ॥ व जो आत्मघाती हैं और सांपसे काटेहुये जो मरे हैं और शौचसे वर्जित जिन मनुष्योंके शय्या में प्राण जाते रहे हैं ॥ १४ ॥ उनको फिर जन्मको न देनेवाले इस महापवित्र तीर्थ में सोलह श्राद्धों के देनेसे तदनन्तर फिर वृषोत्सर्ग करने पर ॥ १५ ॥ व विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराने से निरसन्देह मुक्ति होती है ऐसा कहकर सब देवता स्वर्गको चलेगये ॥ १६ ॥ यह शृगालेश्वर का माहात्म्य तुमसे संक्षेपसे कहागया सुनाहुआ जोकि पापोंको हरता है व दुःख और शोकको नाश करता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येशृगालेश्वरमाहात्म्यंनामचतुस्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

भिर्हताः ॥ १३ ॥ आत्मनोघातकायेतु सर्पदष्टाश्चयेमृताः ॥ शय्यायाञ्चगतप्राणा येचशौचविवर्जिताः ॥ १४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेमहापुण्ये अपुनर्भवदायके ॥ दत्तैःषोडशभिःश्राद्धैर्वृषोत्सर्गेततःपुनः ॥ १५ ॥ विधिवद्भोजितैर्विप्रैर्भवेन्मुक्तिर्नसंशयः ॥ एवमुक्त्वासुरास्सर्वे गतवन्तस्त्रिविष्टपम् ॥ १६ ॥ शृगालेश्वरमाहात्म्यंसंक्षेपात्कथितन्तव ॥ श्रुतंहरतिपापानि दुःखंशोकंतथैवच ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येशृगालेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुस्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सिद्धेश्वरमनुत्तमम् ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ यदासुरैस्समेत्याशु शिवलिङ्गप्रतिष्ठितम् ॥ शृगालेश्वरनामेति सर्वपापहरंशुभम् ॥ २ ॥ तदासिद्धगणास्सर्वे आराध्य वृषभध्वजम् ॥ स्थापयाञ्चक्रिरेलिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३ ॥ सिद्धेश्वरेतिनामानं महापातकनाशनम् ॥ तुष्टुवुर्वि

दो० । जिमि सिद्धेश्वर लिंगको थाप्यो है सब सिद्ध । दो सौ पचहत्तरे महँ सोई कथा प्रसिद्ध ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके पूर्वदिशा के भाग में थोड़ेही दूर पै स्थित अति उत्तम सिद्धेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जब देवताओं ने आकर शीघ्रही समस्त पातकों को नाश करनेवाले शृगालेश्वरनामक उत्तम शिवजी के लिंगको थापन किया ॥ २ ॥ तब सब सिद्धगणों ने वृषध्वजजीको आराधकर सब सिद्धियों को देनेवाले लिंगको थापन किया है ॥ ३ ॥

व हे प्रिये ! उस समय सिद्धगणोंने सिद्धेश्वर ऐसे नामक शिवजी को अनेकप्रकार के स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी बोले
कि उत्तम वरदानको मांगिये तदनन्तर प्रणाम कर सब देवताओं ने उन चन्द्रभालजी से कहा ॥ ५ ॥ कि यहां आकर जो मनुष्य विधिपूर्वक नहाकर सिद्धिनाथ-
जी को पूजै व शतरुद्रियको जपै ॥ ६ ॥ व जो शिवजी के अघोरमन्त्र और गायत्रीको जपै हे सुरप्रिये ! छः महीने के अन्तरमें वह मनुष्य ॥ ७ ॥ निश्चय कर
अणिमादिक ऐश्वर्य व समृद्धि को प्राप्तहोता है ॥ ८ ॥ ऐसाही होगा यह कहकर महादेवजी अन्तर्द्धान होगये कुँवार के कृष्णपक्षमें चौदसि महारात्रि में जो धैर्यका

विधैःस्तोत्रैस्तदासिद्धगणाःप्रिये ॥ ४ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवो याच्यतांवरमुत्तमम् ॥ नमस्कृत्यततस्सर्वे प्रोचुस्तंशशि
शेषरम् ॥ ५ ॥ इहागत्यनरोयस्तु स्नात्वाचविधिपूर्वकम् ॥ अर्चयेत्सिद्धिनाथञ्च जपेद्वाशतरुद्रियम् ॥ ६ ॥ अघोरंवा
जपेन्मन्त्रं गायत्रींवामहेश्वरम् ॥ षण्मासाभ्यन्तरेणैव सनरस्तुसुरप्रिये ॥ ७ ॥ अणिमादिकमैश्वर्यं समृद्धिंप्राप्नु
याद्ध्रुवम् ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा अन्तर्द्धानंगतोहरः ॥ सिद्धेश्वरन्तुसम्पूज्य अघोरंयोजपेन्न
रः ॥ ९ ॥ अश्वयुक्कृष्णपक्षेच चतुर्दश्यांमहानिशि ॥ धैर्यमालम्ब्यनिर्भीतस्ससिद्धिंप्राप्नुयान्नरः ॥ १० ॥ इत्येत
त्कथितन्देवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ सिद्धेश्वरस्यदेवस्यसर्वकामफलप्रदम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासख
ण्डे सिद्धेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥ * ॥ * ॥
ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गन्धर्वेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ १ ॥ त

अवलम्बन कर निर्भीत होकर सिद्धेश्वरजी को भलीभांति पूजकर अघोरमन्त्रको जपता है वह मनुष्य सिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ ९ । १० ॥ हे देवि ! सिद्धेश्वर देवजी
का यह समस्त कामनाओं के फलको देनेवाला व पापनाशक माहात्म्य कहागया ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीका
यांसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० । गन्धर्वेश्वर लिंग अरु नारदेश परभाव । दो सौ छिहत्तरिमें सोई बरन्यो कथा सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके उत्तर दिशाके भाग

में पांच धनुष पै स्थित गन्धर्वेश्वरसंज्ञक लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य रूपवान् होता है गन्धर्वोंसे थापेहुये लिंगको जो नहाकर एक बार पूजन करै ॥ २ ॥ वह सब कामनाओं को प्राप्तहोता है और रक्तकण्ठ (अच्छेस्वरवाला) होता है महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम नारदादित्य के समीप जावै ॥ ३ ॥ वृद्धता से ग्रस्तशरीरवाले उन नारदजीने सब दरिद्रों को नाशनेवाली सूर्यनारायणकी मूर्तिको स्थापन किया है ॥ ४ ॥ और अनेक भातिके स्तोत्रों से अन्धकारनाशक सूर्यनारायणकी स्तुति किया कि शुद्धरूपवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व सामों के धाम में प्राप्त आपके लिये नम-

न्दृष्ट्वाचमहादेवि रूपवाञ्जायतेनरः ॥ गन्धर्वैस्स्थापितंलिङ्गं स्नात्वाचपूजयेत्सकृत् ॥ २ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति रक्तकण्ठश्चजायते ॥ शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नारदादित्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥ जरयाग्रस्तदेहस्स स्थापयामास नारदः ॥ सूर्यस्यप्रतिमांरम्यां सर्वदारिद्र्यनाशिनीम् ॥ ४ ॥ तुष्टावविविधैःस्तोत्रैरादित्यंतिमिरापहम् ॥ नमस्तेशुद्धरूपाय साम्नांधामगतेनमः ॥ ५ ॥ ज्ञानैकरूपदेहाय निर्धूततमसेनमः ॥ शुद्धज्योतिस्स्वरूपाय निर्मूर्तायामलात्मने ॥ ६ ॥ वरिष्ठायवरेण्याय सर्वस्मैचपरात्मने ॥ नमोखिलजगद्व्यापिरूपायानन्तमूर्त्तये ॥ ७ ॥ सर्वकारणभूताय निष्ठायज्ञानचेतसाम् ॥ नमस्सर्वस्वरूपाय प्रकाशाल्लक्ष्यरूपिणे ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवन्तुब्रुवतस्तस्य पुरतस्तेजसांनिधिः ॥ प्रादुर्बभूवदेवेशि जगद्योनिस्सनातनः ॥ ९ ॥ उवाचपरमप्रीतो नारदंमुनिपुङ्गवम् ॥ सूर्य उवाच ॥ वरंव

स्कार है ॥ ५ ॥ व ज्ञानके एकही रूप व शरीरवाले व अन्धकारनाशक आपके लिये नमस्कार है और शुद्धज्योतिःस्वरूप व विनमूर्तिवाले अमलात्मा के लिये नमस्कार है ॥ ६ ॥ व वरिष्ठ, वरेण्य तथा सब, परमात्माके लिये प्रणाम है व समस्तसंसारमें व्यापितस्वरूपवाले अनन्तमूर्ति के लिये नमस्कार है ॥ ७ ॥ व सबों के कारणभूत तथा ज्ञान चित्तवालों में स्थित आपके लिये प्रणाम है व सर्वस्वरूप तथा प्रकाश से अलक्ष्य रूपवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि ! इसप्रकार स्तुति करतेहुये उन नारदजी के आगे तेजनिधान व संसारको उत्पन्नकरनेवाले सनातन सूर्यनारायणजी प्रकटहुये ॥ ९ ॥ व बहुत

प्रसन्न होकर वे मुनिश्रेष्ठ नारदजी से बोले सूर्यनारायण बोले कि हे विप्रर्षे! तुम्हारे मन में जो वर्तमान हो उस वरदान को मांगिये ॥ १० ॥ यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि मैं प्रसन्न होकर उसको तुम्हैं दूंगा नारदजी बोले कि हे दिवाकर, देव! यदि तुम प्रसन्न हो तो वृद्धतासे ग्रस्त शरीर तुम्हारी प्रसन्नतासे कुमार अवस्था से युक्त होवै और रविवारसमेत सप्तमी तिथि में जो मनुष्य तुमको देखै ॥ ११ । १२ ॥ हे अन्धकारनाशक! उसके तुम्हारी प्रसन्नतासे रोगका भय मत होवै महादेवजी बोले कि ऐसाही होगा यह कहकर सूर्यनारायण अन्तर्द्धान होगये ॥ १३ ॥ हे देवि! मैंने नारदादित्य देवजीके इस समस्त पातकोंको नाशनेवाले सब माहात्म्य को

रयविप्रर्षे यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ १० ॥ तुष्टोहंतवदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ नारद उवाच ॥ कुमारवयसायुक्तो जराग्रस्तकलेवरः ॥ ११ ॥ प्रसादादस्तुतेदेव यदितुष्टोदिवाकर ॥ सप्तम्यांरविवारेण यस्त्वांपश्यतिमानवः ॥ १२ ॥ तस्यरोगभयंमास्तु प्रसादात्तिमिरापह ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा अन्तर्द्धानंगतोरविः ॥ १३ ॥ इत्येतत्कथितन्देवि माहात्म्यंसकलंतव ॥ नारदादित्यदेवस्य सर्वपातकनाशनम् ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेनारदादित्यमाहात्म्यन्नामषट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि साम्बादित्यमनुत्तमम् ॥ तस्मादुत्तरभागेतु सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ यत्र साम्बस्तपस्तप्त्वा आराध्यचदिवाकरम् ॥ प्राप्तवान्सुन्दरन्देहं सहस्रांशुप्रसादतः ॥ २ ॥ यदारोषेणसंशप्तः पित्राजाम्बवतीसुतः ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा विष्णुःप्रोवाचतम्प्रति ॥ ३ ॥ गच्छप्रभासिकेक्षेत्रे ब्राह्मयभागमनुत्तमम् ॥ ऋषितो

तुमसे कहा ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनारदादित्यमाहात्म्यंनामषट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

दो० । सांबादित्यहिं थप्यो है यथा साब यदुराय । दो सौ सतहत्तरे महँ कह्यो सो चरित बनाय ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर उससे उत्तर दिशा के भाग में समस्त पातकों को नाशनेवाले सांबादित्यजीके समीप जावै ॥ १ ॥ जहां पर साम्बजी ने तपस्या कर सूर्यनारायणजी को आराध कर सहस्रकिरणोंवाले सूर्य देवकी प्रसन्नतासे सुन्दर शरीरको पाया है ॥ २ ॥ जब जाम्बवती के पुत्र सांबजी को पिता श्रीकृष्णने क्रोधसे शाप दिया तब प्रसन्नमुख होकर विष्णुजी ने उन

से कहा ॥ ३ ॥ कि प्रभासक्षेत्र में ऋषितोया के सुन्दर किनारे पै ब्राह्मणों से शोभित अतिउत्तम ब्राह्मय भागको जाइये ॥ ४ ॥ वहांपर हे पुत्र ! सूर्यरूप से मैं वरदान दूंगा उस समय समर्थवान् विष्णुजी से ऐसा कहेहुये साम्बजी ॥ ५ ॥ मनोहर व कल्याणदायक शिवपुर प्रभासक्षेत्र में गये ॥ ६ ॥ वहां जल के चोररूप सूर्यनारायण उत्तम देवको आराधकर उस समय अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उन्होंने प्रसन्न कराया ॥ ७ ॥ और सूर्यनारायण इन से बोले कि हे महामते ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं हे यदुश्रेष्ठ ! ऋषितोयाके उत्तम किनारे पै शीघ्रही जाइये ॥ ८ ॥ वहां समर्थवान् विष्णुजी से तुम्हारी शुद्धिकीजावैगी ऐसा कहेहुये वे साम्बजी उस समय

यातटेरम्ये ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥ तत्राहंसूर्यरूपेणवरंदास्यामिपुत्रक ॥ इत्युक्तस्सतदासाम्बो विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ५ ॥ गतःप्रभासिकेक्षेत्रे रम्येशिवपुरेशिवे ॥ ६ ॥ तत्राराध्यपरन्देवं भास्करंवारितस्करम् ॥ प्रसादयामासतदा स्तुत्वास्तोत्रैरनेकधा ॥ ७ ॥ प्रत्युवाचरविस्साम्बं प्रसन्नस्तेमहामते ॥ शीघ्रंगच्छयदुश्रेष्ठ ऋषितोयातटेशुभे ॥८॥ तत्रतेविहिताशुद्धिर्विष्णुनाप्रभविष्णुना॥ इत्युक्तस्सतदागत्य ऋषितोयातटेशुभे ॥ ९ ॥ नारदोमुनिशार्दूलस्तपस्तप्यतियत्रवै ॥ तत्रगत्वाहरेस्सूनुस्तत्रस्थानेनिवासिनः ॥ १० ॥ आहूयब्राह्मणान्सर्वानिदंवचनमब्रवीत ॥ ११ ॥ साम्बउवाच ॥ एषवैब्राह्मणोभागः प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ अत्रवैब्राह्मणायेतु तेवैश्रेष्ठास्स्मृताभुवि ॥ १२ ॥ भवतांवचनाद्विप्रास्सूर्यमाराधयाम्यहम् ॥ बाढमित्येवतैस्सर्वैरुक्तंचद्विजपुङ्गवैः ॥ सूर्यमाराधयामास साम्बोजाम्बवतीसुतः ॥ १३ ॥ तपोनिष्ठंचतन्दृष्ट्वा विष्णुःकारुणिकोमहान् ॥ इदंवैचिन्तयामास पुत्रवान्सत्यसंयुतः ॥ १४ ॥ शुद्धिकर्मयथातोयं मृत्तिकाभस्म

उत्तम ऋषितोया नदी के किनारे पै आकर ॥ ९ ॥ जहां मुनिश्रेष्ठ नारदजी तप करते थे वहां जाकर विष्णुजी के पुत्र साम्बजी उस स्थान में बसनेवाले ॥ १० ॥ सब ब्राह्मणों को बुलाकर इस वचन को बोले ॥ ११ ॥ साम्बजी बोले कि उत्तम प्रभासक्षेत्र में यह ब्राह्मणभाग है यहां जो ब्राह्मण हैं वे पृथ्वी में श्रेष्ठ कहेगये हैं ॥ १२ ॥ आपलोगोंके वचन से मैं सूर्यनारायणको आराधन करूंगा बहुत अच्छा ऐसा उन सब द्विजोत्तमोंने कहा और जाम्बवती के पुत्र साम्बजी ने सूर्यनारायण को आराधन किया ॥ १३ ॥ और तपस्या में स्थित उन साम्बजी को देखकर पुत्रवान् व सत्य से संयुक्त तथा दयावान् विष्णुजीने यह चिन्तन किया ॥ १४ ॥ कि

जैसे जल शुद्धि कर्म व मिट्टी भस्मसे संयुत होती है और जैसे दहनात्मक अग्नि व विघ्नकर्ता गणेशजी हैं ॥ १५ ॥ और जैसे ब्रह्मपुत्र मनुष्यों को सरस्वती दानमें स्वच्छन्द है वैसेही दिवाकर देवजीसे अन्य नीरोगता को देनेवाला नहीं है ॥ १६ ॥ अनेक भांति से आराधन किये हुये उन पवित्र सूर्यनारायणजी ने उन साम्बको मेरे शापहीके कारण वर नहीं दिया ॥ १७ ॥ इसप्रकार भलीभांति चिन्तन कर कमललोचनोंवाले भक्तदुःखनाशक भगवान् विष्णुजी सूर्यनारायण के रूपमें स्थित होकर उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १८ ॥ और जो अन्य नारायणनामक हैं उन्हीं के समीप स्थितहुये तदनन्तर सूर्यरूपी विष्णुजी प्रत्यक्षता को प्राप्तहुये ॥ १९ ॥ और

संयुता ॥ दहनात्मायथावह्निर्विघ्नकर्त्तागणेश्वरः ॥ १५ ॥ स्वच्छन्दाभारतीदाने यथाब्रह्मसुतान्नृणाम् ॥ तथारोग्यप्रदाता च नान्योदेवाद्दिवाकरात् ॥ १६ ॥ अनेकधाराधितोपि सदेवोभास्करश्शुचिः ॥ ददौवरंनतंसाम्बं मच्छापस्यैवकारणात् ॥ १७ ॥ एवंसञ्चिन्त्यभगवान् विष्णुःकमललोचनः ॥ सूर्यरूपंसमाश्रित्य तस्यतुष्टोजनार्द्दनः ॥ १८ ॥ योपरोनारायणाख्यस्तस्यैवसन्निधौस्थितः ॥ ततःप्रत्यक्षतांविष्णुस्सूर्यरूपीजगामवै ॥ १९ ॥ उवाचपरमप्रीतो वरदःपुण्यकर्मणः ॥ अलंक्लेशेनतेसाम्ब किमर्थंतप्यसेबहु ॥ २० ॥ प्रसन्नोहंहरेस्सूनो वरंवरयसुव्रत ॥ साम्ब उवाच ॥ निर्मलस्त्वत्प्रसादेन कुष्ठयुक्तःकलेवरः ॥ २१ ॥ भवेत्तुदेवदेवेश शीघ्रंगगनभूषण ॥ अस्मिन्स्थानेमहारण्ये नित्यंसन्निहितोभव ॥ २२ ॥ सूर्य उवाच ॥ अधुनानिर्मलोदेहस्साम्बस्तवभविष्यति ॥ इहागत्यनरोयस्तु सप्तम्यांरविवासरे ॥ २३ ॥ उपवासपरोभूत्वा रात्रौजागरणेस्थितः ॥ अष्टादशापिकुष्ठाश्च पापरोगास्तथैवच ॥ २४ ॥ कदाचिन्नभविष्यन्ति कु

बहुतही प्रसन्न होकर वे वरदायक विष्णुजी बोले कि हे साम्ब ! पुण्यकर्मवाले तुम्हारे क्लेशसे कुछ कार्य न होगा और किसलिये बहुत तप करते हो ॥ २० ॥ हे विष्णुजी के पुत्र, सुव्रत ! मैं प्रसन्न हूं तुम वरदानको मांगो साम्बजी बोले कि हे आकाशभूषण, देवदेवेश ! तुम्हारी प्रसन्नतासे कुष्ठसंयुत शरीर शीघ्र निर्मल होवै व इस महावन स्थान में सदैव स्थित होवो ॥ २१ । २२ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे साम्बजी ! इसी समय तुम्हारा शरीर निर्मल होगा और यहां आकर जो मनुष्य रवि-

वार सप्तमी तिथि में ॥ २३ ॥ उपास में तत्पर होकर रात्रि में जागरण में स्थित होवैगा उस महात्मा के वंश में अठारह कुष्ठ व पापरोग कभी न होवैंगे और भक्ति से संयुत जो जितेन्द्रिय मनुष्य स्नानकर ॥ २४ । २५ ॥ रविवार को महाप्रभावान् साम्बादित्यजी को पूजता है वह मनुष्य रोगहीन व धनवान् तथा पुत्रवान् होता है ॥ २६ ॥ और उसीके पूर्वदिशा के भागमें कुछ ईशानमें मनुष्यों के पापों को हरनेवाला व पवित्र तथा निर्मल जलसे पूरित कुण्ड स्थितहै ॥ २७ ॥ उसमें नहाकर जो चतुर पुरुष विधिपूर्वक श्राद्ध करै व ब्राह्मणों को भोजन करावै तथा साम्बादित्यको पूजै ॥ २८ ॥ वह सब कामनाओं से समृद्धात्मा होकर सूर्यलोक में पूजाजाता

लेतस्यमहात्मनः ॥ कृत्वास्नानंनरोयस्तु भक्तियुक्तोजितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ पूजयेद्रविवारेण साम्बादित्यंमहाप्रभम् ॥ सरोगहीनोधनवान् पुत्रवाञ्जायतेनरः ॥ २६ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे किञ्चिदीशानमाश्रितम् ॥ कुण्डंपापहरंनृणां पुण्यस्वच्छोदपूरितम् ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वाचविधिवत् कुर्याच्छ्राद्धंविचक्षणः ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान्यस्तु साम्बादित्यंप्रपूजयेत् ॥ २८ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा सूर्यलोकेमहीयते ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे साम्बादित्यमाहात्म्यन्नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवउवाच ॥ साम्बादित्याच्चपूर्वेण किञ्चिदाग्नेयसंस्थितः ॥ अन्यनारायणोनाम यस्मान्नास्तिपराभवः ॥ १ ॥ सतुसाम्बस्यदेवेशि सूर्योविष्णुस्वरूपवान् ॥ अपरांमूर्त्तिमास्थाय विष्णुरूपोवरन्ददौ ॥ २ ॥ तेनापरेतिनाम्नेति ख्यातोविष्णुःपुराभवत ॥ फाल्गुनामलपक्षेतु एकादश्यांविधानतः ॥ ३ ॥ पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं तत्रविष्णुस्वरूपिणम् ॥

है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसाम्बादित्यमाहात्म्यंनामसप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥ ❀ ॥

दो० । साम्बादित्य समीप हैं अपरनरायण देव । दोसौ अठहत्तरे महँ कह्यो सोइ सब भेव ॥ महादेवजी बोले कि साम्बादित्य से पूर्व में कुछ आग्नेय में अन्य नारायणनामक देव स्थित हैं जिनसे पराभव (तिरस्कार) नहीं होताहै ॥ १ ॥ हे देवेशि ! विष्णुस्वरूपवाले वे सूर्यजी हैं जिसलिये अन्य मूर्ति में स्थित होकर विष्णुरूपी उन्हों ने साम्बको वर दिया है ॥ २ ॥ उसी कारण पुरातन समय अपर विष्णु ऐसे नाम से प्रसिद्ध हुये हैं फागुनके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथि में विधिसे ॥ ३ ॥

जो वहां विष्णुस्वरूपवाले पुण्डरीकाक्षजी को पूजै वह पापों से छूटजाता है और सब कामनाओं से समृद्धवान् होता है ॥ ४ ॥ व उन नारायणजी से पूर्व में कुछ ईशान में स्थित मूलचण्डीश नामसे लिंग तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ हे प्रिये, देवि ! जहां पर क्रोधसे लाल लोचनोंवाले ऋषियों ने पुरातन समय शिव जी के लिंगको गिराया है वह मूलचण्डीश नाम से ॥ ६ ॥ ऋषियों के क्रोध से गिरायाहुआ आद्य लिंग हुआ हे देवि ! वहां देवदारुवन में जो कोई ऋषिलोग स्थित थे ॥ ७ ॥ हे महादेवि ! अन्य समय में उनके जानने की इच्छा से मैं वहां प्राप्त हुआ तदनन्तर हे देवि ! वे ऋषिलोग क्रोधित हुये ॥ ८ ॥ तदनन्तर मैं शापित

मुक्तोभवतिपापेभ्यस्सर्वकामैस्समृद्ध्यते ॥ ४ ॥ तस्मान्नारायणात्पूर्वे किञ्चिदीशानसंस्थितम् ॥ मूलचण्डीशनाम्नातु विख्यातंभुवनत्रये ॥ ५ ॥ यत्रलिङ्गंपुराशैवं पातितंऋषिभिःप्रिये ॥ क्रोधरक्तेक्षणैर्देवि मूलचण्डीशनामतः ॥ ६ ॥ आद्यंलिङ्गमभूद्देवि ऋषिकोपान्निपातितम् ॥ येकेचिदृषयस्तत्र देवदारुवनेस्थिताः ॥ ७ ॥ कालान्तरेमहादेवि अहंतत्र समागतः ॥ तेषांजिज्ञासयादेवि ततस्तेरोषिताभवन् ॥ ८ ॥ शप्तस्ततोहंतेचापि चक्रुर्मेलिङ्गपातनम् ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽपरनारायणमाहात्म्यन्नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि उरगेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ १ ॥ शेषाहिप्रमुखैर्नागैर्महतातपसायुतैः ॥ समाराध्यमहादेवं स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ २ ॥ यस्समाराधयेद्देवं सर्पैराराधितम्पुरा ॥

हुआ और उन्हों ने मेरा लिंगपात किया है ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामपरनारायणमाहात्म्यंनामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ● ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । उरगेश्वरलिंगाहि यथा थाप्यो है सब नाग । दोसौ उन्नासिवें महँ सोइ चरित रसपाग ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसी के पश्चिम भाग में तीन धनुष पै स्थित उत्तम उरगेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ बड़ी तपस्या से संयुत शेष सर्पादिक नागोंने महादेवजीको आराधन कर उत्तम लिंगको थापा

है ॥ २ ॥ हे प्रिये ! पुरातन समय सर्पों से आराधन किये हुये शिवदेवजी को जो पूजता है उसके शरीर में जन्मपर्यन्त विष नहीं व्यापता है ॥ ३ ॥ और उसके ऊपर सांप प्रसन्न होते हैं व कभी नहीं डसते हैं इस लिये सब यत्न से मनुष्य उस लिंगको पूजै ॥ ४ ॥ और ऋषियों से थापेहुये वहा अनेक लिंग हैं हे वरवर्णिनि ! महापवित्र गंगाजी के पश्चिम किनारे में ॥ ५ ॥ उन लिंगों को देखकर व पूजकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है व हज़ार अश्वमेध यज्ञोंके फल को पाताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामुरगेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥ ⊛ ॥

नविषंक्रमतेदेहे तस्यजन्मावधिप्रिये ॥ ३ ॥ सर्पास्तस्यप्रसीदन्ति नदंशन्तिकदाचन ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तल्लिङ्गंपूजयेन्नरः ॥ ४ ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानि ऋषिभिस्स्थापितानितु ॥ गङ्गातीरेमहापुण्ये पश्चिमेवरवर्णिनि ॥ ५ ॥ तानिदृष्ट्वापूजयित्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे उरगेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गङ्गांत्रिपथगामिनीम् ॥ शृगालेश्वरईशान्यां धनुषांसप्तकेस्थिताम् ॥ १ ॥ तस्यांत्रिनेत्रामत्स्याःस्युर्नित्यमाम्भसिकाःप्रिये ॥ कलौयुगेपिदृश्यन्ते सत्यंसत्यंमयोदितम् ॥ २ ॥ तस्यांस्नात्वामहादेविमुच्यतेपञ्चपातकैः ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा विस्मितागिरिजात्मजा ॥ ३ ॥ उवाचतंद्विजश्रेष्ठाःप्रचलच्चन्द्रशेखरम् ॥ पार्वत्युवाच ॥ कथंतत्रसमायाता गङ्गात्रिपथगामिनी ॥ ४ ॥ कथंत्रिनेत्राःसंजाता मत्स्याआम्भसिकाशि

दो० । मूलचण्डि प्रभु अरु कह्यो श्रीगंगा परभाव । दोसौ अस्सीमें सोई वर्णित चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर शृगालेश्वरजीसे ईशान में सात धनुष पै त्रिपथगामिनी गङ्गाजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! उसमें जलमें उत्पन्न होनेवाली मछलियां सदैव तीन नेत्रोंवाली कलियुग में भी देखपड़ती हैं मैंने इसको सत्य सत्य कहा ॥ २ ॥ हे महादेवि ! उसमें नहाकर मनुष्य पांच पातकों से छूटजाता है सूतजी बोले कि उन शिवजी के उस वचन को सुनकर विस्मित होतीहुई शैलकुमारी पार्वतीजी ने ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! चलायमानचन्द्रभालवाले उन शिवजी से कहा पार्वतीजी बोलीं कि हे शिवजी !

वहां त्रिपथगामिनी गङ्गाजी किसप्रकार आई हैं व जलमें पैदा होनेवाले मत्स्य कैसे तीन नेत्रोंसे युक्त हुये हे विभो ! यदि मैं तुमको प्यारी होउं तो इसको मुझ से विस्तारसे कहिये ॥ ४ । ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे शुभे ! यदि तुम मुझसे पूंछती हो तो मैं कहताहूं सुनिये और मेरी ऐसी मति है कि आस्तिक व श्रद्धावती होवो ॥ ६ ॥ जब अज्ञानरूपी अन्धकार से आच्छादित व क्रोधसंयुत ऋषियों ने किसी कारणके मध्य में महादेवजी को शाप दिया है ॥ ७ ॥ तब वे मुनिलोग महादेवजी को शापित जानकर व सब संसार तथा अपनाको आनन्दरहित देख कर ॥ ८ ॥ गजरूपको धारण किये महादेवजी को आराध कर व उन्नत स्थान पै

व ॥ एतद्विस्तरतोब्रूहि यद्यहन्तेप्रियाविभो ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि यदिपृच्छसिमांशुभे ॥ आस्तिकाश्रद्धधानाच भवत्विितिमतिर्मम ॥ ६ ॥ यदाशप्तोमहादेव अज्ञानतिमिरावृतैः ॥ ऋषिभिःकोपयुक्तैश्च कस्मिंश्चित कारणान्तरे ॥ ७ ॥ तदातेमुनयस्सर्वे शप्तंज्ञात्वामहेश्वरम् ॥ निरानन्दंजगत्सर्वं दृष्ट्वाचात्मानमेवहि ॥ ८ ॥ आराध्यपरमेशानं दधन्तंगजरूपकम् ॥ उन्नतंस्थानमानीय सानन्दंचक्रिरेद्विजाः ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतितेसर्वे शिवद्रोहकरंपरम् ॥ आत्मानंमेनिरेनित्यं प्रसन्नेपिमहेश्वरे ॥ १० ॥ ततःकालेनतेसर्वे महतामुनिसत्तमाः ॥ ध्यायन्तस्त्र्यम्बकंचैव अदृष्टेतु महेश्वरे ॥ ११ ॥ त्रिनेत्रत्वमनुप्राप्तास्तपोनिष्ठास्तपोधनाः ॥ महोदयान्महातीर्थान् ऋषयोभ्येत्यसत्वरम् ॥ १२ ॥ तपस्तेपुर्महाघोरं शृगालेश्वरसन्निधौ ॥ शृगालेश्वरनामानं सर्वेपूज्ययथाविधि ॥ १३ ॥ भृगुरत्रिस्तथामङ्किः कश्यपःकण्वएवच ॥ गौतमःकौशिकश्चैव कुशिकश्चमहातपाः ॥ १४ ॥ जातूकर्ण्योवसिष्ठश्च सावस्तिश्चपराशरः ॥ शाण्डि

लाकर द्विजों ने आनन्दसमेत किया ॥ ९ ॥ तबसे लगाकर महादेवजीके प्रसन्न भी होने पर उन सब मुनियों ने सदैव अपना को उत्तम शिवद्रोहीकारक माना ॥ १० ॥ तदनन्तर बहुत समय के बाद त्रिलोचन शिवजी को ध्यान करते हुये वे सब तपस्यारूपी धनवाले व तपस्या मे स्थित मुनिश्रेष्ठ शिवजी के न देखने पर त्रिलोचनता को प्राप्तहुये व शीघ्रही बड़े माहात्म्यवाले महातीर्थों में ऋषिलोग आकर ॥ ११ । १२ ॥ शृगालेश्वरजी के समीप बड़ा भयंकर तप करते भये व शृगालेश्वरनामक शिवजी को विधिपूर्वक सब ऋषिलोग पूजकर ॥ १३ ॥ भृगु, अत्रि, मङ्कि, कश्यप, कण्व, गौतम, कौशिक व बडे तपस्वी कुशिक ॥ १४ ॥ व

जातूकर्ण्य, वसिष्ठ, सावर्ति, पराशर, शाण्डिल्य, पुलस्त्य व बड़े तपस्वी वत्स ॥ १५ ॥ शूकर, भरद्वाज और बड़े तपस्वी भार्गव ये और अगस्त्य आदिक अन्य बहुत से महर्षिलोग ॥ १६ ॥ श्रृगालेश्वरजी को प्राप्तहोकर महादेवजीको थापकर सदैव तप करते रहे ॥ १७ ॥ तदनन्तर बहुत समय के उपरान्त महादेवजी के न देखनेपर वे सब मुनिश्रेष्ठ त्रिलोचन शिवजीके ध्यानसे ॥ १८ ॥ त्रिनेत्रताको प्राप्त हुये व तपस्या में निष्ठ तपस्यारूपी धनवाले वे सब आपस में देखतेहुये त्रिनेत्र की शंकासे ॥ १९ ॥ महादेवजी को मानते हुये अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करतेथे और शिवदेवजीके ध्यानसे त्रिनेत्रताको प्राप्त जानकर ॥ २० ॥ उन्होंने त्रिशूलधारी

ल्यश्चपुलस्त्यश्च वत्सश्चैवमहातपाः ॥ १५ ॥ शूकरोथभरद्वाजो भार्गवोपिमहातपाः ॥ एतेचान्येचबहवोऽगस्त्याद्या श्चमहर्षयः ॥ १६ ॥ श्रृगालेश्वरमासाद्य प्रभासेपापनाशने ॥ तपःकुर्वन्तिसततं प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ १७ ॥ ततः कालेनमहता तेसर्वेमुनिपुङ्गवाः ॥ ध्यानात्रिलोचनस्यैव अदृष्टेतुमहेश्वरे ॥ १८ ॥ त्रिनेत्रत्वमनुप्राप्तास्तपोनिष्ठास्त पोधनाः ॥ परस्परंवीक्षमाणास्त्रिनेत्रस्याभिशङ्कया ॥ १९ ॥ स्तुवन्तिविविधैस्स्तोत्रैर्मन्यमानामहेश्वरम् ॥ ज्ञात्वाध्या नेनदेवस्य त्रिनेत्रत्वमुपागतम् ॥ २० ॥ चक्रुरुग्रंतपस्तेतु पूजान्देवस्यशूलिनः ॥ तेषुवैतप्यमानेषु कृपाविष्टोमहेश्व रः ॥ २१ ॥ उवाचतान्मुनीन्सर्वान् वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ प्रसन्नोहंमुनिश्रेष्ठास्तपसापूजयापिच ॥ २२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यदिप्रसन्नोदेवेश वरन्नोदातुमर्हसि ॥ गङ्गामानयप्रागेव अभिषेकायनोहर ॥ २३ ॥ तस्यांकृताभिषेकास्तु तवद्रोहक रावयम् ॥ अज्ञानभावात्पूतत्वं यास्यामःपृथिवीतले ॥ २४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यूयंपवित्रकरणाः पावनानाञ्चपावनाः ॥

शिवदेवजी का उग्रतप व पूजन किया व उनके तप करनेपर महादेवजी दयासंयुक्त हुये ॥ २१ ॥ व उन सब मुनियों से बोले कि उत्तम वरदानको मांगिये हे मुनि- श्रेष्ठो ! मैं तपस्या व पूजनसे प्रसन्नहूं ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्नहो और हमलोगोंको वरदेने योग्यहो तो हे शिवजी ! पहले हमलोगों के स्नानके लिये श्रीगङ्गाजी को लाइये ॥ २३ ॥ क्योंकि अज्ञानतासे शिवजीसे वैरकरनेवाले हमलोग उसमें नहाकर पृथ्वीमें पवित्रताको प्राप्तहोवैंगे ॥ २४ ॥ महादेव

जी बोले कि शुद्ध इन्द्रियोंवाले तुमलोग पवित्रकारकों को भी पवित्र करनेवाले हो और मैं तुमलोगों के चित्त की प्रसन्नता के लिये गङ्गाजी को लाऊंगा ॥ २५ ॥
हे ब्राह्मणो ! दर्शनसे तुमलोगों के त्रिनेत्रता प्राप्त हुई इसी प्रकार सब लोगों को दृष्टान्त दिखायागया ॥ २६ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे त्रिनेत्र ! इस कुंड में महादेव
जी को देखते हुये पुरुषों के सब युग युग में सदैव सन्तान होवै ॥ २७ ॥ व भली भांति आकर जो मनुष्य इस कुण्डमें स्नान करै और ब्राह्मण के लिये सुवर्ण, गऊ,
वस्त्र व तिलों को देवै ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य विशेष कर अमावस में इन वस्तुओं को देवैं वे त्रिलोचन होवैं ऐसाही होगा यह कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥

गङ्गाञ्चैवानयिष्यामि युष्माकंचित्ततुष्टये ॥ २५ ॥ युष्माकंदर्शनाद्विप्रास्त्रिनेत्रत्वमुपागतम् ॥ एवंनिदर्शनंसर्वं लोका
नाञ्चप्रदर्शितम् ॥ २६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्मिन्कुण्डेमहादेवं पश्यतांसन्ततिस्सदा ॥ त्रिनेत्रत्वत्प्रसादेन भंयात्स
र्वेयुगेयुगे ॥ २७ ॥ अस्मिन्कुण्डेसमागत्य नरस्स्नानंकरिष्यति ॥ ददातिहेमंविप्राय गाश्चवस्त्रंतथातिलान् ॥ २८ ॥
अमावास्यांविशेषेण त्रिनेत्रास्तेभवन्तुवै ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा अन्तर्द्धानंगतोहरः ॥ २९ ॥ ब्राह्मणास्तुष्टिसंयुक्ता
गतास्सर्वेमहोदयम् ॥ एतत्तेकथितन्देवि गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३० ॥ श्रुतंपापप्रशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३१ ॥
ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्याःपूर्वेणसंस्थितम् ॥ नारदादित्यनामानंनरदारिद्र्यनाशनम् ॥ ३२ ॥ पश्चिमेमू
लचण्डीशाद्धनुषाञ्चशतत्रये ॥ आराध्यनारदोदेवि भास्करंवारितस्करम् ॥ जरानिर्मुक्तदेहस्तु तत्क्षणात्समपद्यत ॥
३३ ॥ देव्युवाच ॥ कथंजरामनुप्राप्तो नारदोमुनिपुङ्गवः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एकदानारदोयोगी द्वारकामगमद्यदा ॥ स

२९ ॥ और प्रसन्नतासमेत सब ब्राह्मणलोग बड़े माहात्म्यवाले लिंगके समीप गये हे देवि ! यह तुमसे उत्तम गंगाजी का माहात्म्य कहागया ॥ ३० ॥ सुना हुआ
जोकि पापोंको नाश करनेवाला व सब कामनाओं के फलोंको देनेवालाहै ॥ ३१ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके पूर्वमें स्थित मनुष्योंके दारिद्र्य
को विदारनेवाले नारदादित्यनामक देवके समीप जावै ॥ ३२ ॥ हे देवि ! मूलचण्डीशसे तीनसौ धनुष पश्चिम में वे नारदजी जलके तस्कररूपी सूर्यनारायण को
आराधकर उसी क्षण वृद्धतासे मुक्तशरीरवान् होगये ॥ ३३ ॥ देवीजीबोलीं कि मुनिश्रेष्ठ नारदजी किस प्रकार वृद्धताको प्राप्तहुये हैं महादेवजी बोले कि एक समय

जब नारद योगी द्वारकापुरी को गये तब उन्होंने उस समय विष्णुजीके महाबलवान् सब पुत्रोंको देखा ॥ ३४ ॥ उस राजकुलके मध्यमें आपसमें खेलतेहुये वे सब आतेहुये नारदजी को देखकर नम्रतासंयुत होकर ॥ ३५ ॥ सांबको छोड़कर शीघ्रतासंयुत होतेहुये सबोंने यथायोग्य प्रणाम किया और उन सांबको अविनीत देखकर नारदजी ने कहा ॥ ३६ ॥ कि हे श्रीकृष्णके पुत्र,सांब ! जिसलिये तुम शरीरकेमदसे मत्तहो इसकारण थोड़ेही समयमें कठिन शापको पावोगे ॥ ३७ ॥ सांब बोले कि चित्तको रोंकेहुये ऋषियोंको नमस्कारसे क्या कार्य है और आशीर्वादसे उनके तपकी हानि होती है ॥ ३८ ॥ हे नारदजी ! मुनियोंका जो स्वभाव होताहै उसका लेश भी

वैंदृष्टास्तदातेन विष्णोःपुत्रामहाबलाः ॥ ३४ ॥ तद्राजकुलमध्येतु क्रीडमानाःपरस्परम् ॥ आयान्तंनारदंदृष्ट्वा स वैंविनयसंयुताः ॥ ३५ ॥ नमश्चक्रुर्यथान्यायं विनासाम्बंत्वरान्विताः ॥ अविनीतंतुतन्दृष्ट्वा कथयामासनारदः ॥३६॥ शरीरमदमत्तोसि यस्मात्साम्बहरेःसुत ॥ अचिरेणैवकालेन शापंप्राप्स्यसिदारुणम् ॥ ३७॥ साम्ब उवाच॥ नमस्कारेणकिंकार्यमृषीणांचयतात्मनाम् ॥ आशीर्वादेनतेषांच तपोहानिःप्रजायते ॥ ३८ ॥ मुनीनांयःस्वभावोहि त्वयिलेशोननारद ॥ ३९ ॥ विद्यतेब्रह्मणःपुत्र उच्यतेकिमतःपरम् ॥ नकलत्रंनतेपुत्रा नचपौत्राःप्रपौत्रकाः ॥ ४० ॥ नगृहंचैवनद्वारं नहिगावोनवत्सकाः ॥ ब्रह्मणोमानसाःपुत्रा ब्रह्मचर्येऽव्यवस्थिताः ॥ ४१ ॥ अयुक्तंकुरुषेनित्यंकस्मात्प्रकृतिरीदृशी ॥ युद्धंविनानतेसौख्यं सौख्यंनकलहंविना ॥ ४२ ॥ यादृशस्तादृशोवापि वाग्वादोपिसदाप्रियः ॥ स्नानंसन्ध्यातपोहोमं तर्पणंपितृदेवयोः ॥ ४३ ॥ नारदत्वंकरोष्यन्यदन्यत्कुर्वन्तिब्राह्मणाः ॥ कौमारेणतुगर्विष्ठो

तुममें नहीं विद्यमानहै हे ब्रह्माके पुत्र ! इससे अधिक और क्या कहाजावै तुम्हारे न स्त्रीहै न तुम्हारे पुत्रहैं और न पौत्र, प्रपौत्रहैं ॥ ३९ । ४० ॥ और न घरहै न द्वारहै न गाइयां हैं न बछड़ा हैं और ब्रह्माके मानसीपुत्र ब्रह्मचर्य में स्थित हैं ॥ ४१ ॥ और तुम सदैव अयोग्य कर्म करतेहो किसकारण तुम्हारा ऐसा स्वभावहै कि युद्धके विना तुमको सुख नहीं होताहै और न झगड़ा के विना तुमको सुख होताहै ॥ ४२ ॥ जैसा होवै वैसा होवै वचन विवाद तुमको सदैव प्रिय है स्नान, सन्ध्या, तप, होम व

पितरों तथा देवताओंका तर्पण ॥ ४३ ॥ हे नारदजी ! तुम अन्य करतेहो और ब्राह्मण अन्य करतेहैं जिसलिये कुमारअवस्थासे संयुत तुम मुझको शाप देतेहो ॥ ४४ ॥ इसलिये हे ब्रह्मर्षे ! तुम भी वृद्धतासे युक्त होवोगे हे देवि ! उस समय इसप्रकार शापित मुनिश्रेष्ठ नारदजी ॥ ४५ ॥ कांटा व हड्डियोंसे रहित निर्मल स्थानमें एकांत मृगचर्म से आच्छादित उत्तम आसन पै बैठगये और जय शब्दके बड़े शब्दसे व वेदोंके मंगल गीतोंसे ॥ ४६ ॥ उन्होंने जहां फिर बड़े ऐश्वर्यवाले लिंगको उत्पन्न किया वह तपस्या करनेवालोंका उन्नत ऐसा स्थान कहागयाहै ॥ ४७ ॥ वहां महाबलवान् शिवजी गजरूपधारी स्थित हुये और गणनाथके स्वरूपसे उन्नत शिवजी गज

यस्मान्मांशापयिष्यसि ॥ ४४ ॥ तस्मात्त्वमपिविप्रर्षे जरायुक्तोभविष्यसि ॥ एवंशप्तस्तदादेवि नारदोमुनिपुङ्गवः ॥ ४५ ॥ एकान्तेनिर्मलस्थाने कण्टकास्थिविवर्जिते ॥ कृष्णाजिनपरिच्छन्ने उपविष्टोवरानने ॥ जयशब्दप्रघोषेण वेदमङ्गलगीतकैः ॥ ४६ ॥ उन्नामितंपुनस्तेन लिङ्गंयत्रमहोदयम् ॥ तदुन्नतमितिप्रोक्तं स्थानंतुतपतांवरम् ॥ ४७ ॥ गजरूपधरस्तत्र स्थितःस्थानेमहाबलः ॥ गणनाथस्वरूपेणह्युन्नतोगजनिष्ठितः ॥ ४८ ॥ शुण्डिरूपधरोभूत्वा रुद्रःप्राह तपोधनान् ॥ यन्मयाभवतांकार्यं कर्तव्यंतदिहोच्यताम् ॥ ४९ ॥ एवमुक्तास्तुतेसर्वे प्रोचुर्ज्ञानक्रियापराः ॥ सानन्दाःप्राणिनःसन्तु त्वत्प्रसादाद्यथापुरा ॥५०॥ क्षन्तव्यंदेवदेवेश कृतंयन्ममममानसैः ॥ त्वत्प्रसादात्सुरेशानसदासानुग्रहोभव ॥ ५१ ॥ एवमस्त्वितितेनोक्ता स्तेसर्वेविगतज्वराः ॥ तल्लिङ्गावकृतंलिङ्गमातिष्ठन्मुनयस्तदा ॥ ५२ ॥ चक्रुस्तेमुनयःसर्वे

में स्थित हुये ॥ ४८ ॥ व हाथीके रूपको धारण कर शिवजी तपस्यारूपी धनवाले मुनियोंसे कहा कि जो मुझसे आपलोगोंका कार्य करने योग्यहोवै वह इस समय कहा जावै ॥ ४९ ॥ इसप्रकार कहेहुये ज्ञानकी क्रियामें परायण उन सबों ने कहा कि तुम्हारी प्रसन्नतासे सब प्राणी जैसे पहले थे वैसेही आनन्दसमेत होवैं ॥ ५० ॥ व हे देवदेवेश ! जो मेरे मन से कियागया है वह तुम्हारी प्रसन्नता से क्षमा करने योग्य है व हे सुरेशान ! सदैव दयासमेत हूजिये ॥ ५१ ॥ ऐसाही होगा उन से इसप्रकार कहेहुये वे सब शोकरहित हुये और उस समय मुनिलोग उसी लिंगके आकारवाले लिंग के समीप स्थित हुये ॥ ५२ ॥ व ईर्षा से रहित उन सब मुनियों

ने स्तुति किया व कहा कि हे देवदेवेश ! क्षमा करिये व हमलोगों के ऊपर दया करिये ॥ ५३ ॥ और मूलचण्डीशनामक इस लिङ्गमें लयको प्राप्तहोवो व हे देव देवेश ! तुमको उसमें त्रिकाल कलाग्रहण करनाचाहिये ॥ ५४ ॥ महादेवजी बोले कि चण्डी देवी कहीजाती है और उसका ईश (स्वामी) मैं कहागया हूं व उसका मूल लिंग कहागया है वह जिस लिये यहां गिराहै ॥ ५५ ॥ इसकारण वह मूलचण्डीश ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा बहुतसे बावली, कूप व तड़ागोंके खुदाने से ॥ ५६ ॥ व दश हज़ार यज्ञ किये पर जो पुण्य होता है वह पुण्य लिंगके दर्शन से होता है सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको देकर मनुष्य जिस पुण्यफल को पाता है ॥ ५७ ॥

स्तुतिंविगतमत्सराः ॥ क्षमस्वदेवदेवेश कुर्वस्माकमनुग्रहम् ॥ ५३ ॥ अस्मिँल्लिङ्गेलयंगच्छ मूलचण्डीशसंज्ञिके ॥ त्रिकालंदेवदेवेश ग्राह्यातत्रकलात्वया ॥ ५४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ चण्डीतुप्रोच्यतेदेवी तस्यईशस्त्वहंस्मृतः ॥ तस्यमूलं स्मृतंलिङ्गं तदत्रपतितंयतः ॥ ५५ ॥ तस्मात्तुमूलचण्डीश इतिख्यातिंगमिष्यति ॥ वापीकूपतडागानां खातैस्तुविपुलै रपि ॥ ५६ ॥ कृतेयज्ञायुतेपुण्यं तत्पुण्यंलिङ्गदर्शनात् ॥ ब्रह्माण्डंसकलंदत्त्वा यत्पुण्यफलमाप्नुयात् ॥५७॥ तत्पुण्यं लभतेदेवि मूलचण्डीशदर्शनात् ॥ तत्रदानानिदेयानि षोडशैवनरोत्तमैः ॥ ५८ ॥ एवंतद्भवितासर्वं यन्मयोक्तंद्विजो त्तमाः ॥ यातदारुवनंविप्राः सर्वेयूयंतपोधनाः ॥ ५९ ॥ मयासर्वंसमादिष्टा नूनंवैब्रह्मवित्तमाः ॥ ६० ॥ ततस्तुतेप्राप्यम हद्वचोमम सर्वेप्रहृष्टामुनयोमहोदयम् ॥ गत्वाचतेदारुवनंतपोधनाः पुनश्चचेरुःसुतपस्तपोधनाः ॥ ६१ ॥ एतस्मात् कारणाद्देवि मूलचण्डीशसंज्ञितम् ॥ लिङ्गंपापहरंनृणामर्द्धचन्द्रेणभूषितम् ॥ ६२ ॥ दोहनीदुग्धदानेन मुनीनांतृषि

हे देवि ! उस पुण्य को मनुष्य मूलचण्डीशजी के दर्शन से प्राप्तहोता है और वहां उत्तम मनुष्यों को सोलह ही दान चाहिये ॥ ५८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैंने जो कहाहै वह सब होवैगा हे ब्राह्मणो ! तपस्यारूपी धनवाले तुम लोग दारुवनको जावो ॥ ५९ ॥ और मुझसे आज्ञा दियेहुये तुम सब बड़े ब्रह्मज्ञानी होवोगे ॥ ६० ॥ तदनन्तर बड़े ऐश्वर्यवाले मेरे बड़े भारी वचन को प्राप्तहोकर वे सब तपोधन मुनि प्रसन्न हुये और दारुवनको जाकर उन तपस्यारूपीधनवाले मुनियों ने फिर उत्तम तप किया ॥ ६१ ॥ हे देवि ! इसीकारण आधे चन्द्रमासे भूषित मूलचण्डीशनामक लिंग मनुष्यों के पापोंको हरनेवाला है ॥ ६२ ॥ हे देवि ! जिसलिये तुम

ने दोहनी, व दूधके दानसे तृषितचित्तवाले मुनियों का अतिउत्तम श्रमहरण किया ॥ ६३ ॥ उसीकारण हे वरानने ! वह तृप्तोदक नाम से कुण्ड हुआ है ऋषितोयाके जलमें नहाकर जो चण्डीशजी को पूजता है ॥ ६४ ॥ वह लोकों का प्रचण्ड स्वामी होता है हे देवि ! तुमसे मूलचण्डीश देवजी का यह माहात्म्य संक्षेपसे कहा गया सुना हुआ जोकि पातकों का विनाशक है ॥ ६५ । ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमूलचण्डीशोत्पत्तिकथननामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तात्मनाम् ॥ श्रमापहारंयद्देवि त्वयाकृतमनुत्तमम् ॥ ६३ ॥ तत्तृप्तोदकनाम्नावै ह्यभूतकुण्डंवरानने ॥ ऋषितोयाजले स्नात्वा चण्डीशंयःप्रपूजयेत् ॥ ६४ ॥ सप्रचण्डोभवेद्भूमौ भुवनानामधीश्वरः ॥ एतत्संक्षेपतोदेवि माहात्म्यंकीर्तितंतव ॥ ६५ ॥ मूलचण्डीशदेवस्य श्रुतंपातकनाशनम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमूलचण्डीशोत्पत्तिकथनंनामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विनायकमनुत्तमम् ॥ चतुर्मुखेतिविख्यातं चण्डीशादुत्तरेस्थितम् ॥ १ ॥ किञ्चिदीशानदिग्भागे धनुषांचचतुष्टये ॥ तंप्रयत्नात्सुसम्पूज्यसर्वविघ्नैःप्रमुच्यते ॥ २ ॥ गन्धपुष्पादिभिस्तत्र भक्ष्यैर्भोज्यैःसमोदकैः ॥ चतुर्मुखंचतुर्थ्यांतु सम्पूज्यसिद्धिभाग्भवेत् ॥ ३ ॥ तस्माद्वायव्यदिग्भागे धनुषांद्वितयेस्थितम् ॥ कलम्बेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वासम्पूजयित्वाच मुक्तःस्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ सोमवारेत्वमावस्यां

दो० । यथा चतुर्मुख विघ्नपति कर है अतुल प्रभाव । दो सौ इक्यासिवें महँ सो चरित्र चितचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर चण्डीशजी से उत्तर में स्थित चतुर्मुख ऐसे प्रसिद्ध अति उत्तम विनायकजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि मूलचण्डीशजी से कुछ ईशानदिशाके भागमें चार धनुष पै स्थित हैं उनको बड़े यत्नसे पूजकर मनुष्य सब विघ्नों से छूटजाताहै ॥ २ ॥ वहा चौथि तिथि में चन्दन पुष्पादिकों से तथा लड्डुवोंसमेत भक्ष्य भोज्यों करके चतुर्मुखजी को पूजकर मनुष्य सिद्धियोंका भागी होताहै ॥ ३ ॥ व उससे वायव्य दिशाके भागमें दो धनुषपै स्थित समस्त पातकों को नाशकरनेवाले कलम्बेश्वरनामक देवके समीप

जावै ॥ ४ ॥ उनको देखकर व भलीभांति पूजकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाताहै और वहीं पर सोमवार को अमावस तिथि में बहुत पुण्यदायक ॥ ५ ॥ भोजन वहां पुण्यके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको ब्राह्मणोंके लिये देना चाहिये ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकलम्बेश्वरमाहात्म्यंनामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो०। श्रीगोपाल स्वामी तथा बकुलस्वामि माहात्म्य। दो सौ बैयासिवें महँ सोइ चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर चण्डीशजीसे पूर्व

तत्रैवबहुपुण्यदम् ॥ ५ ॥ विप्राणाम्भोजनंदेयं तत्रपुण्यफलेप्सुभिः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकलम्बेश्वरमाहात्म्यंनामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गोपालस्वामिनंहरिम् ॥ चण्डीशात्पूर्वभागेतु धनुषांविंशतिस्थितम् ॥ १ ॥ सर्वपापौघशमनं दारिद्र्यौघविनाशनम् ॥ तन्दृष्ट्वापूजयित्वाच माघेमासिविशेषतः ॥ २ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा तत्रगच्छेत्परम्पदम् ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्मादुत्तरादिग्भागेधनुषामष्टभिःप्रिये ॥ बकुलस्वामिनंसूर्यं तम्पश्येद्दुःखनाशनम् ॥ ४ ॥ रविवारेणसप्तम्यां कुर्याज्जागरणंनरः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे बकुलस्वामिमाहात्म्यंनामद्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥ * ॥

भाग में बीस धनुष पै स्थित गोपालस्वामी विष्णुजीके समीप जावै ॥ १ ॥ सब पापसमूहोंको नाशनेवाले व दरिद्रगणको विनाशनेवाले उन गोपालस्वामीको विशेष कर माघ महीने में देखकर व पूजकर ॥ २ ॥ और वहां रात्रिमें जागरणकर मनुष्य परमपदको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! उससे उत्तरदिशाके भागमें आठ धनुषपै उन दुःखनाशक बकुलस्वामी सूर्यनारायणको देखै ॥ ४ ॥ और रविवार सप्तमीमें जो मनुष्य जागरण करताहै वह सब कामनाओंको पाताहै व स्वर्गलोकमें पूजाजाताहै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबकुलस्वामिमाहात्म्यंनामद्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

दो० । ऋषितोयासंगम तथा उत्तरार्क परभाव । दोसौ तिराँसिवें में सो चरित्र सतिभाव ॥ महादेवजी बोले कि उसके वायव्य दिशा के भाग में सोलह धनुष पै शीघ्रही विश्वासकारक उत्तरार्क ऐसे नाम से सूर्यनारायण स्थित हैं वहां रथसप्तमी को उपास कर मनुष्य सब रोगों से छूटजाता है ॥ १ । २ ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त वहां देवकुल से आग्नेय दिशा में दो कोस पर समुद्र के सुन्दर किनारे पै अति उत्तम ऋषितीर्थ स्थितहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! वहां सब पातकोंको नाशने- वाले पत्थर के आकार वहीं प्राप्त ऋषिलोग आज भी मनुष्यों से देखे जाते हैं ॥ ४ ॥ जहां पर जेठकी अमावस तिथि में अधम मनुष्य नहीं प्राप्त होतेहैं वहां श्रद्धा-

शिव उवाच ॥ तस्माद्वायव्यदिग्भागे धनुःषोडशभिःस्थितः ॥ उत्तरार्केतिनाम्नावै सद्यःप्रत्ययकारकः ॥ १ ॥ मुच्यतेसर्वरोगैस्तु उपोष्यरथसप्तमीम् ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथदेवकुलाग्नेय्यां गव्यूत्यातत्रसंस्थितम् ॥ समुद्रस्य तटेरम्ये ऋषितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ पाषाणाकृतयस्तत्र ऋषयोद्यापितत्रगाः ॥ दृश्यन्तेमानुषैर्देवि सर्वपातकनाशनाः ॥ ४ ॥ यत्रज्येष्ठेत्वमावस्यांप्राप्यतेनाधमैर्नरैः ॥ पिण्डदानंविशेषेण स्नानंश्रद्धासमन्वितैः ॥ ५ ॥ ऋषितोयासङ्गमेतु स्नानंश्राद्धंसुदुर्लभम् ॥ अश्वदानंप्रशंसन्ति तत्रतेमुनिपुङ्गवाः ॥ ६ ॥ भोजनंब्राह्मणानान्तु यथाशक्त्याप्रदापयेत् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऋषितोयासङ्गमतीर्थमाहात्म्यंनामत्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मरुद्देवींमहाप्रभाम् ॥ तस्मात्पश्चिमदिग्भागे क्रोशार्द्धेनव्यवस्थिताम् ॥ १ ॥

संयुत पुरुषों को विशेषकर पिण्डदान व स्नान करना चाहिये ॥ ५ ॥ ऋषितोया के संगम में स्नान व श्राद्ध दुर्लभहै वहां वे मुनिश्रेष्ठ अश्वदान की प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥ और यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन देवै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामृषितोयासङ्गमतीर्थमाहात्म्यंनामत्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मरुद्देवि माहात्म्य अरु क्षेमादित्य प्रभाव । दो सौ चौरासिवें में सोई चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे पश्चिम दिशा के

भाग में आध कोस पै स्थित महाप्रभावती मरुदेवी के समीप जावै ॥ १ ॥ महानवमी व सप्तमी तिथि में सब कामनाओं की सिद्धि के लिये मरुद्देवताओं से पूजी हुई सब कामनाओं के फलको देनेवाली देवी को मनुष्य यत्नसे चन्दन व पुष्पादिकी विधि से पूजन करै ॥ २ । ३ ॥ महादेवजी बोले कि इसके अनन्तर देवकुलसे पूर्व में दश कोसपर शबरस्थान के मध्य में क्षेमादित्य ऐसे प्रसिद्ध ॥ ४ ॥ उन सूर्यनारायण को देखकर हे देवि ! मनुष्य क्षेमार्थ सिद्धि का भागी होताहै और रविवार सप्तमी में पूजेहुये वे सब कामनाओं के दायक होते हैं ॥ ५ ॥ देवकुलस्थान में इसप्रकार तीर्थोंकी स्थिति कहीगई ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु

मरुद्भिःपूजितांदेवीं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ महानवम्यांयत्नेन सप्तम्याम्पूजयेन्नरः ॥ २ ॥ गन्धपुष्पादिविधिना सर्वकामप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथदेवकुलात्पूर्वे पञ्चगव्यूतिमात्रतः ॥ शबरस्थानमध्येतु क्षेमादित्येतिविश्रुतम् ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि भवेत्क्षेमार्थसिद्धिभाक् ॥ सप्तम्यांरविवारेण पूजितःसर्वकामदः ॥ ५ ॥ इतिदेवकुलस्थाने कथिता तीर्थसंस्थितिः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे क्षेमादित्यमाहात्म्यंनाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवींकण्टकशोधिनीम् ॥ उत्तरेणदेवकुण्डाद्दक्षिणेभास्करात्स्थिताम् ॥ १ ॥ तदुत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ उन्नतांदक्षिणेभागे यजन्तिद्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ भृगुरत्रिर्मरीचिस्तु भरद्वाजोथकश्यपः ॥ कण्वोमङ्किश्चसावर्णिर्जातूकर्ण्यस्तथैवच ॥ ३ ॥ वत्सश्चैववसिष्ठश्च पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ मुनिश्चाप्य

मिश्रविरचितायांभाषाटीकायाक्षेमादित्यमाहात्म्यंनामचतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । जिमि कण्टकशोधिनी इमि भयो भगवती नाम । दो सौ पचासिवें महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर देवकुण्डसे उत्तर व भास्कर से दक्षिण में स्थित कण्टकशोधिनी देवी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! उसकी उत्पत्तिको मैं कहताहूं एकमनवाली होकर सुनिये कि दक्षिणभागमें उन्नत उन देवीको द्विजोत्तमलोग पूजते हैं ॥ २ ॥ भृगु, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, कश्यप, कण्व, मङ्कि, सावर्णि व जातूकर्ण्य ॥ ३ ॥ वत्स व वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह व क्रतु

और अंगिरा मुनि व विष्णु, शातातप और पराशर ॥ ४ ॥ व शाण्डिल्य, कौशिक, ऋषिशृंग, विभाण्डक, विश्वामित्र,शतानन्द, जह्नु व विश्वावसु ॥५॥ ये और अन्य मुनिलोग ऋषितोयाके उत्तम किनारे पै यज्ञवाट को बनाकर अनेक भांति के यज्ञों से पूजन करते थे ॥ ६ ॥ देवताओं व गन्धर्वों के नृत्योंसे तथा वेणु व वीणा के शब्दोंसे और वेदध्वनि के शब्दसे तथा यज्ञ, होम व अग्निहोत्रसे उपजेहुये ॥७॥ धूपोंसे सब स्थान आच्छादित था व अष्टगन्धियों से पूजित था और चतुर्वेदी दिव्य द्विजोत्तमों से शोभित था ॥ ८ ॥ ऐसे स्थानको देखकर महाबलवान् दैत्य यज्ञ विध्वंस के लिये समुद्र के बीचसे आये ॥ ९ ॥ बड़े शरीरवाले, मायावी व श्याम-

ङ्गिराविष्णुः शातातपपराशरौ ॥ ४ ॥ शाण्डिल्यःकौशिकश्चैव ऋषिशृङ्गोविभाण्डकः ॥ विश्वामित्रःशतानन्दो जह्नु विश्वावसुस्तथा ॥ ५ ॥ एतेचान्येचमुनयो यजन्तिविविधैर्मखैः ॥ यज्ञवाटश्चनिर्माय ऋषितोयातटेशुभे ॥ ६ ॥ देवगन्धर्वनृत्यैश्च वेणुवीणानिनादितैः ॥ वेदध्वनिनिनादेन यज्ञहोमाग्निहोत्रजैः ॥ ७ ॥ धूपैःसमावृतंसर्वमष्टगन्धिभिरर्चितम् ॥ शोभितंमुनिभिर्दिव्यैश्चातुर्वेद्यैर्द्विजोत्तमैः ॥ ८ ॥ एवंविधंप्रदेशन्तु दृष्ट्वादैत्यामहाबलाः ॥ समुद्रमध्यादायाता यज्ञविध्वंसहेतवे ॥ ९ ॥ मायाविनोमहाकायाः श्यामकर्णामहोदराः ॥ लम्बभ्रूश्मश्रुनासाग्रा रक्ताक्षारक्तमूर्द्धजाः ॥ १० ॥ यज्ञंसमागताःसर्वे दैत्यास्तत्रवरानने ॥ तान्दृष्ट्वामुनयःसर्वे रौद्ररूपान्भयङ्करान् ॥ ११ ॥ केचिन्निपतिताभूमौ वग्नौचकरसंवृताः ॥ पत्नीशालांसमाविष्टा हविर्द्धानंतथापरे ॥ १२ ॥ ऋत्विजस्तुसदोमध्ये स्थितावाचंयमास्तथा ॥ एवंदेवियदावृत्तं मुनीनांचमहात्मनाम् ॥ १३ ॥ तदाध्वर्युर्महातेजा धैर्यमालम्ब्यसादरम् ॥ अग्निहोत्रहविष्यश्च

कर्ण तथा बड़े पेटवाले और लम्बी भौंह व दाढ़ी, मूछ व नासिका के अग्रभागवाले, अरुणनयन व लाल बालोंवाले ॥ १० ॥ सब दैत्य हे वरानने ! वहां यज्ञमें आये सब मुनिलोग उन रौद्ररूपी भयंकर दैत्यों को देखकर ॥ ११ ॥ कोई पृथ्वी में गिर पड़े व हाथोंसे आच्छादित कोई अग्नि में गिरपड़े वैसेही अन्य मुनि पत्नीशाला में पैठगये व कोई हविर्धान (हव्यगृह) में पैठगये ॥ १२ ॥ और ऋत्विज् चुप होकर सभा के मध्य में स्थितरहे हे देवि ! जब महात्मा मुनिलोगोंका ऐसा वृत्तान्त

हुआ ॥ १३ ॥ तब बड़े तेजस्वी व मन्त्रज्ञानी यजुर्वेदी ने धैर्यको अवलम्बन कर आदरसमेत अग्निहोत्रकी हविष्य व हविको धरकर ॥ १४ ॥ राक्षसों के नाश के लिये बहुतही जलतीहुई अग्नि में हवन किया हे देवेशि ! हव्य हवन करने पर उसी क्षण शक्ति, त्रिशूल, तलवार, व ढालको हाथों में लिये बड़ी उज्ज्वल शक्ति उत्पन्न हुई व उसने यज्ञके विध्वंस करनेवाले उन दैत्यों को मारा ॥ १५ । १६ ॥ तदनन्तर उस समय मुनियों ने अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उन भगवतीकी स्तुति किया और वह देवी प्रसन्न हुई व उस समय उन ऋषियों से बोली ॥ १७ ॥ कि हे मुनिलोगो ! वरदान को मांगिये मैं उत्तम वर को दूंगी ॥ १८ ॥ मुनिलोग बोले

हविर्विन्यस्यमन्त्रवित् ॥१४॥ सुसमिद्धेजुहावाग्नौ रक्षसांनाशहेतवे ॥ हुतेहविषिदेवेशि तत्क्षणादेवचोत्थिता ॥ १५ ॥ शक्तिःशक्तित्रिशूलासिचर्महस्तामहोज्ज्वला ॥ तयातेनिहतादैत्या यज्ञविध्वंसकारिणः ॥ १६ ॥ ततस्तांविविधैस्स्तोत्रैर्मुनयस्तुष्टुवुस्तदा ॥ प्रसन्नासाभवद्देवी तानृषीन्प्रत्युवाचह ॥ १७ ॥ वरंवृणुध्वंमुनयो दास्यामिवरमुत्तमम् ॥ मुनय ऊचुः ॥ १८ ॥ कृतंवैसकलंकार्यं यज्ञानोरक्षितास्त्वया ॥ यदिदेयोवरोस्माकं त्वयासुरविमर्द्दिनि ॥ १९ ॥ अस्मिन् स्थानेसदातिष्ठ मुनीनांहितकाम्यया ॥ कण्टकाःशोधितादैत्यायेनकण्टकशोधिनी ॥ २० ॥ अद्यप्रभृतिनामास्तु तेनदेविसदात्विह ॥ २१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वासादेव्यन्तर्हितातदा ॥ अष्टम्यांवानवम्यांवा पूजयेद्यस्तुमानवः ॥२२॥ राक्षसेभ्यःपिशाचेभ्यो भयंतस्यनजायते॥ प्राप्नुयात्परमांसिद्धिं मानवोनात्रसंशयः ॥२३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकण्टकशोधिनीमाहात्म्यंनामपञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥ * ॥

कि तुमने हमलोगों के यज्ञोंकी रक्षा किया इससे सब कार्य कियागया हे असुरमर्दिनि ! यदि तुम से हमलोगों को वर देने योग्य है ॥ १९ ॥ तो मुनियों के हितकी कामनासे तुम सदैव इस स्थान में स्थित होवो जिस लिये तुमसे कण्टकरूपी दैत्य शोधेगये उसीकारण हे देवि ! आजसे लगाकर यहां कण्टकशोधिनी नाम होवै ॥ २०।२१॥ महादेवजी बोले कि ऐसाही होगा यह कहकर वह देवी उस समय अन्तर्द्धान होगई जो मनुष्य अष्टमी व नवमी में उन भगवतीको पूजता है॥२२॥उसको राक्षसों से व पिशाचों से भय नहीं होताहै और वह मनुष्य बड़ी सिद्धिको प्राप्तहोताहै इसमें सन्देह नहीं है॥२३॥इति श्रीस्कान्देपञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८५॥

दो० । दियो द्विजनको नगर शिव त्वष्टा सन रचवाय । दो सौ छिय्यासिवें में सोई चरित सुहाय ॥ महादेवजी बोले कि उसके पूर्वदिशाके भागमें थोड़ीही दूर पै स्थितसमस्त पातकों को नाशनेवाले व महाप्रभाववाले ब्रह्मेश्वर ऐसे नामक ब्राह्मणों से थापेहुये इस लिङ्ग के समीप जावै ऋषितोयाके जलमें नहाकर जो उस लिंगको पूजता है ॥ १।२ ॥ वह ब्राह्मण जाड्यभाव से रहित होकर वेदवित् होता है ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम उन्नत स्थानके समीप जावै उसी के उत्तर दिशाके भागमें थोड़ीही दूरपै स्थित ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों से थापाहुआ ब्रह्मेश्वर ऐसा नामक समस्त पातकोंको नाशनेवाला व महाप्रभाववान् यह लिंग है ॥ ५ ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्याश्चपूर्वदिग्भागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ ब्रह्मेश्वरेतिनामेदं ब्राह्मणैश्चप्रतिष्ठितम् ॥ऋषितोयाजलेस्नात्वा तल्लिङ्गंयःप्रपूजयेत् ॥ २ ॥ सभवेद्वेदविद्विप्रो जाड्यभावविवर्ज्जितः ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि उन्नतस्थानमुत्तमम् ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ ४ ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि सर्वपातकनाशनम् ॥ ब्रह्मेश्वरेतिनामेदं ब्राह्मणैश्चप्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥ एतत्स्थानंमहादेवि विप्रेभ्यः प्रददौबलात ॥ सर्वसीमासमायुक्तं चण्डीगणसुरक्षितम् ॥ ६ ॥ देव्युवाच ॥ कथमुन्नतनामास्य बभूवसुरसत्तम ॥ कथं त्वयाबलाद्दत्तंकियत्सीमासमन्वितम्॥ ७ ॥ एतत्सर्वंसमाचक्ष्वसंक्षेपान्नातिविस्तरात ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथाम्पापप्रणाशिनीम् ॥ यांश्रुत्वामानवोदेवि मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ९ ॥ एतत्सर्वंपुराप्रोक्तं स्थानसंकेतकारणम् ॥ तृतीयेब्रह्मणःखण्डे सृष्टिसंक्षेपसूचके ॥ १० ॥ तथापितेप्रवक्ष्यामि संक्षेपाच्छृणुपार्वति ॥ उन्नामितंपुनस्तत्र

हे महादेवि ! चण्डीजीके गणोंसे रक्षित व सब हद्दोंसे युक्त इस स्थानको मैंने हठसे ब्राह्मणोंके लिये दियाहै ॥ ६ ॥ देवीजीबोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! इसका कैसे उन्नत नाम हुआहै और कितनी सीमासे संयुत इसको तुमने कैसे हठसे दियाहै ॥ ७ ॥ इस सब वृत्तान्तको संक्षेप से कहिये बड़े विस्तारसे न कहिये ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं पातकों को नाश करनेवाली कथाको कहताहूं हे देवि ! जिसको सुनकर मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाताहै ॥ ९ ॥ पुरातन समय सृष्टिके संक्षेपको सूचित करनेवाले तीसरे ब्रह्मखण्ड मे यह सब स्थानके संकेत का कारण कहागया है ॥ १० ॥ तो भी हे पार्वति ! तुमसे उसको संक्षेप से कहूँगा। सुनिये फिर जहां बड़े

ऐश्वर्यवाला लिङ्ग उत्पन्न कियागयाहै ॥ ११ ॥ वह स्थानवालों में श्रेष्ठ उन्नत ऐसा स्थान कहागया है जहां कि लिङ्गपात करनेमें द्विजोत्तमों की शक्ति उन्नतहुई है ॥ १२ ॥ अथवा प्रभासक्षेत्र का पूर्वद्वार उन्नत है और मूलचण्डीशनामक देवकुलस्थान में ब्राह्मणलोग ॥ १३ ॥ महादेवजी को प्रसन्न कराकर फिर महोदयतीर्थ को प्राप्तहुये और बिन जन्म व मृत्युवाले परमात्मा शिवजी को ध्यान करतेहुये महर्षियोंने साठहज़ार वर्षतक तप किया व हे पार्वति ! कोटिसंख्यक उन मुनियों के तप करनेपर ॥ १४ । १५ ॥ हे भामिनि ! ऋषितोया के पवित्र व पापनाशक तथा सुन्दर किनारे पै मैं भिक्षुक होकर फिर वहीं गया ॥ १६ ॥ व हे वरानने ! उससमय

यत्रलिङ्गंमहोदयम् ॥ ११ ॥ तदुन्नतमितिप्रोक्तं स्थानंस्थानवतांवरम् ॥ यत्रोन्नताद्विजाग्रयाणां शक्तिर्लिङ्गनिपातने ॥ १२ ॥ अथवाचोन्नतंपूर्वद्वारंप्राभासिकस्यवै ॥ स्थानेदेवकुलेविप्रा मूलचण्डीशसंज्ञिके ॥ १३ ॥ प्रसाद्यचमहादेवं पुनःप्राप्तामहोदयम् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपुर्महर्षयः ॥ १४ ॥ ध्यायमानामहेशानमनादिनिधनंपरम् ॥ तेषुवै तप्यमानेषु कोटिसंख्येषुपार्वति ॥ १५ ॥ ऋषितोयातटेरम्ये पवित्रेपापनाशने ॥ भिक्षुर्भूत्वागतश्चाहं पुनस्तत्रैवभामिनि ॥ १६ ॥ त्रिकालदर्शिभिस्तत्र रागरोषविवर्जितैः ॥ तपस्विभिस्तदासर्वैर्लक्षितोहंवरानने ॥ १७ ॥ दृष्टमात्रस्तदाविप्रैर्विररामहेश्वरः ॥ क्वयासिविदितोदेव इत्युक्त्वातेययुर्द्विजाः ॥ १८ ॥ यावदायान्तिमुनय ईशईशेतिभाषकाः ॥ धावमानाःस्वतपसा द्योतयन्तोदिशोदश ॥ १९ ॥ लिङ्गमेवप्रपश्यन्ति नपश्यन्तिमहेश्वरम् ॥ येयेचददृशुर्लिङ्गं मूलचण्डीशसंज्ञिकम् ॥ २० ॥ तदातेमुनयस्सर्वे शरीरैस्स्वर्गमाययुः ॥ तदात्रिविष्टपंव्याप्तं दृष्टन्देविमहाद्विजैः ॥ २१ ॥

क्रोध व स्नेहसे रहित त्रिकालदर्शी सब ऋषियोंने मुझको देखा ॥ १७ ॥ और उससमय ब्राह्मणोंसे देखेहुये महादेवजी चुप होरहे व हे देव ! कहां जातेहो यह कहकर वे ब्राह्मण चले ॥ १८ ॥ और हे ईश ! हे ईश ! ऐसा कहनेवाले व अपने तप से दशोंदिशाओं को प्रकाशित करते दौड़तेहुये वे मुनिलोग जबतक आये ॥ १९ ॥ तबतक उन्होंने लिङ्गही को देखा महादेवजी को नहीं देखा और जिन जिनने मूलचण्डीशसंज्ञक लिङ्गको देखा ॥ २० ॥ वे सब मुनिलोग उस समय शरीरोंसे स्वर्ग

को प्राप्तहुये तब हे देवि ! महाद्विजों से स्वर्गव्याप्त देखागया ॥ २१ ॥ और तपस्यासे उज्ज्वल अन्य मुनिलोग आते थे इस अवसरको पाकर पृथ्वीमें भलीभांति आ-कर ॥ २२ ॥ इन्द्रजी ने वज्रही से लिङ्गको आच्छादित किया और अठारह हज़ार ऊर्द्ध्वरेता मुनियोंने ॥ २३ ॥ स्थित होकर इस अतिउत्तम लिङ्गको नहीं देखा और अचानकही वज्रसे संयुत इन्द्रको देखा ॥ २४ ॥ व जबतक वे शापदेवें तबतक इन्द्रजी अदृश्य होगये और त्रिपुरविनाशक भगवान् शिवजी ने कोपसे संयुत मुनियों को देखा ॥ २५ ॥ और भगवान् सदाशिवजी ने मीठीवाणी से मुनियों को समझाया कि हे द्विजोत्तमो ! सदैव शान्ति में परायण तुमलोग क्यों दुःखी हो ॥ २६ ॥

आयान्तिचतथैवान्ये मुनयस्तपसोज्ज्वलाः ॥ एतदन्तरमासाद्य समागत्यमहीतले ॥ २२ ॥ लिङ्गमाच्छादयामास वज्रेणैवशतक्रतुः ॥ अष्टादशसहस्राणि मुनीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ २३ ॥ स्थितानिनह्यपश्यन्वै लिङ्गमेतदनुत्तमम् ॥ शक्रस्तुसहसादृष्टो वज्रेणैवसमन्वितः ॥ २४ ॥ यावद्दिशन्तिशापन्ते तावन्नष्टःपुरन्दरः ॥ दृष्टवान्कोपसंयुक्तान् भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ २५ ॥ भगवान्सान्त्वयामास वाचामधुरयामुनीन् ॥ कथंखिन्नाद्विजश्रेष्ठाः सदाशान्तिपरायणाः ॥ २६ ॥ प्रसन्नवदनाभूत्वा शृणुध्वंवचनंमम ॥ भवद्भिर्ज्ञानसंयुक्तैः स्वर्गःकिंमन्यतेबहु ॥ २७ ॥ यत्राष्टौवसवःप्रोक्ता आदित्याश्चतथापरे ॥ एतेषामधिपःकश्चिदेकइन्द्रःप्रकीर्त्तितः ॥ २८ ॥ स्वपुण्यस्यक्षयेप्राप्ते यस्माद्भ्रश्यतेनरः ॥ एवंदुःखसमायुक्तः स्वर्गोनैवेष्यतेबुधैः ॥ २९ ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः कुरुध्वंवचनंमम ॥ गृहीध्वंनगरंरम्यं निवासायमहाप्रभम् ॥ ३० ॥ हूयन्तामग्निहोत्राणि देवतास्सर्वदाद्विजाः ॥ इज्यतांविविधैर्यज्ञैः क्रियताञ्चापिपूजनम् ॥ ३१ ॥ आति

प्रसन्नमुख होकर तुमलोग मेरे वचनको सुनो कि ज्ञानसे संयुत आपलोग स्वर्गको क्यों बहुत मानते हो ॥ २७ ॥ जहां आठ वसु व अन्य आदित्य कहेगयेहैं व इनका अधिप स्वामी कोई एक इन्द्र कहागयाहै ॥ २८॥ जिसलिये अपने पुण्यका क्षयप्राप्त होनेपर मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्टहोताहै व इसप्रकार दुःखसंयुत होताहै इसीकारण विद्वान् स्वर्गकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ २९ ॥ इसकारण हे ब्राह्मणो ! तुमलोग मेरे वचनको कीजिये कि बसने के लिये महाप्रकाशवान् सुन्दर नगरको लीजिये ॥ ३० ॥ व हे

ब्राह्मणो ! सदैव अग्निहोत्र हवन कियेजावैं व अनेकभांतिके यज्ञोंसे देवता पूजेजावैं व पूजन भी कियाजाय ॥ ३१ ॥ व नित्य आतिथ्य (अतिथि का सत्कार) किया जाय व वेदाभ्यास कियाजावै हे द्विजेन्द्रो ! विद्या व ज्ञानके संचयों से इसप्रकार नित्य करतेहुये तुमलोगोंकी अन्तमें मेरी प्रसन्नतासे मुक्ति होगी ॥ ३२ । ३३ ॥ ऋषि लोगबोले कि आहारको जीतेहुये हमलोग तपस्वी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं और तुम्हारी भक्तिको चाहनेवाले हमलोग यहां नगरसे क्या करैंगे ॥ ३४ ॥ महादेवजी बोले कि तुमलोगों की परमेश्वरमें सदैव भक्ति होगी सुन्दर नगरको ग्रहण कीजियेव मेरे वचनको कीजिये ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर भगवान् शिवदेवजीने कुछ आंखोंको मूंद

थ्यंक्रियतान्नित्यं वेदाभ्यासस्तथापिच ॥ एवंवैकुर्वतांनित्यं विद्याज्ञानस्यसञ्चयैः ॥ ३२ ॥ प्रसादान्ममविप्रेन्द्रा अन्ते मुक्तिर्भविष्यति ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ असमर्थाःपरित्राणे जिताहारास्तपस्विनः ॥ नगरेणेहकिंकुर्मस्तवभक्तिमभीप्सवः ॥ ३४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ भविष्यतिसदाभक्तिर्युष्माकंपरमेश्वरे ॥ गृहीध्वंनगरंरम्यं कुरुध्वंवचनंमम ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्देव ईषन्मीलितलोचनः ॥ सस्मारविश्वकर्माणं सर्वशिल्पवतांवरम् ॥ ३६ ॥ स्मृतमात्रोविश्वकर्मा प्राञ्जलिश्चाग्रतःस्थितः ॥ ३७ ॥ आज्ञापयद्रुतन्देव वचनंकरवाणिते ॥ ईश्वर उवाच ॥ नगरंकुरुत्वंत्वष्टर्विप्रार्थंसुन्दरंशुभम् ॥ ३८ ॥ इत्युक्तोविश्वकर्मापि भूमिंवीक्ष्यसमन्ततः ॥ उवाचप्रणतोभूत्वा शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ ३९ ॥ परीक्षितामयाभूमिर्नयुक्तंनगरंत्विह ॥ अत्रदेवकुलंसाक्षाल्लिङ्गस्यपतनंतथा ॥ ४० ॥ यतिभिश्चात्रवस्तव्यं नयुक्तंगृहमेधिनाम् ॥ त्रिरात्रंपञ्चरात्रंवा सप्तरात्रंमहेश्वर ॥ ४१ ॥ पक्षंमासमृतुंचापि अयनंगृहमेधिभिः ॥ पुत्रदारयुतैस्तीर्थे वस्तव्यं

कर सब शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माका स्मरण किया ॥ ३६ ॥ और स्मरण कियेहुये विश्वकर्माजी हाथोंको जोड़कर आगे स्थितहुये ॥ ३७ ॥ व बोले कि हे देव ! शीघ्रही आज्ञा दीजिये मैं तुम्हारा वचन करूंगा महादेवजी बोले कि हे विश्वकर्मा ! ब्राह्मणोंके लिये तुम उत्तम व सुन्दर नगरको बनावो ॥ ३८ ॥ ऐसा कहेहुये विश्वकर्माने भी सब ओर पृथ्वीको देखकर व प्रणामकर लोकोंका कल्याण करनेवाले शङ्करजीसेकहा ॥ ३९ ॥ कि मैंने भूमिकी परीक्षा किया इससे यहां नगर योग्य नहीं है क्योंकि यहां साक्षात् देवकुलहै व लिङ्गका पतन हुआहै ॥ ४० ॥ यहां संन्यासियों को बसना चाहिये और गृहस्थोंके योग्य नहीं है हे महेश्वर ! तीनरात्रि व पांचरात्रि तथा

सातरात्रिपर्यन्त ॥ ४१ ॥ व हे परमेश्वर ! पक्ष, महीना, ऋतु व अयन (छः महीना) तक पुत्रों व स्त्रियोंसे संयुत गृहस्थों को तीर्थमें बसना चाहिये ॥ ४२ ॥ जब गृहाधिप (गृहस्थ) छः महीने के उपरान्त तीर्थमें बसता है तो उसका मन चञ्चलता के भावसे विकृत होताहै ॥ ४३ ॥ और तब गृहस्थके सब धर्म नाश होजाते हैं उससमय उन विश्वकर्माजी से इसप्रकार कहेहुये उन शङ्करदेवजी ने ॥ ४४ ॥ उन के वचन की प्रशंसाकर फिर उनसे कहा कि मुझको यहां गृहस्थ ब्राह्मणों का निवास रुचता है ॥ ४५ ॥ जहां ऋषितोया के उत्तम किनारे पै लिङ्ग उत्पन्न कियागया है वहांपर हे शिल्पियों में श्रेष्ठ, विश्वकर्माजी ! नगर को निर्माण कराइये ॥

परमेश्वर ॥ ४२ ॥ वसत्यूर्द्ध्वंतुषण्मासाद् यदातीर्थेगृहाधिपः ॥ विकृतंजायतेतस्य मनश्चाञ्चल्यभावतः ॥ ४३ ॥ तदाधर्माविनश्यन्ति सकलागृहमेधिनः ॥ इत्युक्तस्सतदादेवस्तेनवैविश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥ पुनःप्रोवाचतन्तस्य प्रशस्यवचनंशिवः ॥ रोचतेमेनिवासोत्र विप्राणांगृहमेधिनाम् ॥ ४५ ॥ यत्रचोन्नामितंलिङ्गमृषितोयातटेशुभे ॥ तत्रनिर्मापयत्वष्टर्नगरंशिल्पिनांवर ॥ ४६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा विश्वकर्माप्युवाचन ॥ गत्वाचकारनगरं शिल्पिकोटिभिरावृतः॥४७॥ उन्नतंनामयल्लोके विख्यातंसुरसुन्दरि ॥ ततोहृष्टमनाभूत्वा विलोक्यनगरंशिवः ॥ ४८ ॥ आहूयब्राह्मणान्सर्वांनुवाचनतकन्धरः ॥ इदंस्थानवरंरम्यं निर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ४९ ॥ गृहाणाञ्चसहस्रन्तु प्रोक्तंसर्वासुदिक्षुच ॥ नगरात्सर्वतःपुण्यो देशोनाग्नहरस्स्मृतः ॥ ५० ॥ अष्टयोजनविस्तीर्ण आयामव्यासतस्तथा ॥ नग्नोभूत्वाहरोयत्र देशेभ्रान्तो यदृच्छया ॥ ५१ ॥ तन्नाग्नहरमित्याहुर्देशंपुण्यतमंजनाः ॥ पूर्वंतुशङ्कराचार्यः पश्चिमेन्यङ्कुमत्यपि ॥ ५२ ॥ उत्तरे

४६ ॥ उन शिवजी के उस वचन को सुनकर विश्वकर्मा भी न बोले और करोड़ों शिल्पियों से घिरेहुये विश्वकर्मा ने जाकर नगर को बनाया ॥ ४७ ॥ जोकि हे सुरसुन्दरि ! संसारमें उन्नत नाम प्रसिद्धहै तदनन्तर प्रसन्नमन होकर नगरको देखकर सदाशिवजी ने कन्धेको झुकाकर सब ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा कि इस मनोहर व श्रेष्ठस्थान को विश्वकर्मा ने बनायाहै ॥ ४८।४९॥ जिसमें सब दिशाओं में हज़ार घर कहेगये हैं और नगरसे सबओर नाग्नहर पवित्रदेश कहागया है ॥५०॥ जोकि आठ योजन लम्बा, चौड़ा व ऊंचा है जिस स्थानमें नग्नहोकर सदाशिवजी अपनी इच्छा से घूमेहैं ॥ ५१ ॥ उसको मनुष्य नाग्नहर ऐसा अत्यन्त पवित्र देश कहते हैं पूर्वमें

शङ्कराचार्य व पश्चिम में न्यंकुमती ॥ ५२ ॥ और उत्तर में स्वर्णनन्दा है व दक्षिण में समुद्र हदहै इस अन्तर को प्राप्त होकर नाग्नहरदेश कहागया है ॥ ५३ ॥ मैंने उँचाईसमेत लम्बाईसे व चौड़ाईसे इससमस्त देशको आठयोजनके प्रमाणसे कहाहै ॥५४॥ हे द्विजोत्तमो ! श्रेष्ठनगरको ग्रहण कीजिये व प्रसन्नहूजिये यहा निस्सन्देह मुक्ति व मुक्तिहोगी ॥ ५५ ॥ उससमय इसप्रकार कहेहुये वे सब ब्राह्मण शिवजीसे बोले ब्राह्मणबोले कि हे ईश्वर ! हमलोग परमात्माकी आज्ञाको वृथा करनेके लिये नहीं समर्थहैं ॥ ५६ ॥ तपस्या व अग्निहोत्रमें लगेहुये तथा वेदपाठसे शोभित हमलोगोंका भयङ्कर कलिकालमें कौन रक्षकहै ॥ ५७ ॥ व कौनदाता कौन आरोग्यदायक

स्वर्णनन्दास्याद्दक्षिणेसागरावधिः ॥ एतदन्तरमासाद्य देशोनाग्नहरस्स्मृतः ॥ ५३ ॥ अष्टयोजनमानेन आयामव्या सतस्तथा ॥ प्रोक्तोयंसकलोदेश उन्नतेनसमम्मया ॥ ५४ ॥ गृह्यतान्नगरंश्रेष्ठं प्रसीदध्वंद्विजोत्तमाः ॥ अत्रभुक्तिश्चमु क्तिश्च भविष्यतिनसंशयः ॥ ५५ ॥ इत्युक्तास्तेतदासर्वे विप्राऊचुर्महेश्वरम् ॥ विप्रा ऊचुः ॥ ईश्वराज्ञांवृथाकर्तुं नशक्ताः परमात्मनः ॥ ५६ ॥ तपोग्निहोत्रनिष्ठानांवेदाध्ययनशालिनाम् ॥ अस्माकंरक्षिताकोस्तिकलिकालेचदारुणे ॥ ५७ ॥ कोदातारोग्यदःकश्च कोवैमुक्तिप्रदास्यति ॥ ५८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ महाकालस्यरूपेण स्थित्वातीर्थेमहोदधेः ॥ नाश यिष्यामिशत्रून्वस्सम्यगाराधितोह्यहम् ॥ ५९ ॥ उन्नतोविघ्नराजस्तु विघ्नच्छेत्ताभविष्यति ॥ गणनाथस्वरूपोयंनिधी नान्धनदःपतिः ॥ ६० ॥ युष्मभ्यन्दास्यतिद्रव्यंसम्यगाराधितोपिसः ॥ सम्यगाराधितोब्रह्मासर्वकार्येषुसर्वदा ॥ ६१ ॥ स र्वान्कामांश्चमुक्तिञ्च प्रदास्यतिनसंशयः ॥ विप्रा ऊचुः ॥ यादितीर्थानितिष्ठन्ति सर्वाणिसुरसत्तम ॥ ६२ ॥ श्रृगालेश्वर

और कौन मुक्तिको देवैगा ॥ ५८ ॥ महादेवजी बोले कि समुद्रके तीर्थमें महाकालस्वरूपसे स्थित होकर भलीभांति आराधन कियाहुआ मैं तुमलोगोंके शत्रुवोंको नाश करूंगा ॥ ५९ ॥ और गणनायकस्वरूपी ये उन्नत विघ्नराज विघ्नोंको विदारनेवाले होवैंगे और जो निधियोंके स्वामी धनद (कुबेर) हैं ॥ ६० ॥ भलीभांति आराधन कियेहुये वे भी तुमलोगों के लिये द्रव्यको देवैंगे और सदैव सब कार्योंमें भलीभांति आराधन कियेहुये ब्रह्माजी ॥ ६१ ॥ सब कामनाओंको व मुक्ति तथा मुक्तिको नि-

रसन्देह देवैंगे ब्राह्मणबोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! यदि शृगालेश्वरतीर्थमें व उत्तम देवकुलतीर्थमें हमलोगोंको पवित्र करनेकेलिये महाभयङ्कर कलियुगमें भी यदि सब तीर्थ स्थितहोवैं ॥ ६२।६३ ॥ तो हे महेश्वरजी ! हमलोग उस स्थानको ग्रहणकरैं अन्यथा नहीं ग्रहण करैंगे वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर उन महादेवजीने सात ड्योढ़ियोंसे संयुत व चन्द्रशाला से युक्त मन्दिरोंसे सब ओर भूषित व अनेकप्रकारकी सवारियोंसे संयुत तथा सबओर हद्दसे युक्त नगरको उन ब्राह्मणोंके लिये दिया ॥ ६४।६५ ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार उन ब्राह्मणों के लिये नगरको देकर शिवदेवजीने हाथों को जोड़ेहुये आगे स्थित विश्वकर्मा को देखा ॥ ६६ ॥ विश्वकर्मा बोले कि हे महा-

तीर्थेच तथादेवकुलेशुभे ॥ कलावपिमहारौद्रे अस्माकंपावनायवै ॥ ६३ ॥ स्थानंतत्तर्हिगृह्णीमो नान्यथाचमहेश्वर ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय ददौतेभ्योमहेश्वरः ॥ ६४ ॥ सप्तभौमैश्शशाङ्काढ्यैः प्रासादैःपरिभूषितम् ॥ नानायानसमायुक्तं सर्वतस्सीमयान्वितम् ॥ ६५ ॥ सूत उवाच ॥ एवन्तेभ्योहिनगरं दत्त्वादेवोमहेश्वरः ॥ ददर्शविश्वकर्माणं प्राञ्जलिपुरतःस्थितम् ॥ ६६ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ विलोकयतांमहादेव नगरंनगरोत्तमम् ॥ सौवर्णस्थलमारुह्य निर्मितंत्वत्प्रसादतः ॥ ६७ ॥ विश्वकर्मवचश्श्रुत्वा भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ तमारुरोहस्थलकं सहसर्वैर्महर्षिभिः ॥ ६८ ॥ नगरंविलोकयामास रम्यंप्राकारमण्डितम् ॥ ऋषयस्तुष्टुवुस्सर्वे तत्रस्थंत्रिपुरान्तकम् ॥ ६९ ॥ तानुवाचमहादेवो वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यदितुष्टोमहादेव स्थलकेश्वरनामभृत् ॥ आलोकयंस्तन्नगरं सदातिष्ठस्थलेहर ॥ ७० ॥ तथेत्युक्त्वातदादेवः स्थलकेस्मिन्सदास्थितः ॥ कृतेरत्नमयन्देवि त्रेतायाञ्चहिरण्मयम् ॥ ७१ ॥ रौप्यंचद्वापरेप्रोक्तं स्थल

देवजी ! सुवर्ण की चट्टानपै चढ़कर तुम्हारी प्रसन्नता से बनायेहुये नगरों में उत्तम नगरको देखिये ॥ ६७ ॥ विश्वकर्मा के वचनको सुनकर त्रिपुरविनाशक भगवान् शिवजी सब महर्षियों समेत उस स्थल पै चढ़गये ॥ ६८ ॥ और छहरदिवालीसे शोभित तथा मनोहर नगरको उन्होंने देखा और वहांपै स्थित त्रिपुरविनाशकजीकी सब ऋषियों ने स्तुति किया ॥ ६९ ॥ और महादेवजी ने उनसे कहा कि उत्तम वरदानको मांगिये ऋषिलोग बोले कि हे हर, महादेवजी ! यदि प्रसन्नहो तो नगरको देखतेहुये स्थलकेश्वर नामधारी तुम सदैव स्थलमें स्थितहोवो ॥७०॥ वैसाही होगा यह कहकर उससमय शिवदेवजी सदैव इस स्थलमें स्थितहुये हे देवि ! सतयुगमें रत्नमय

व त्रेतामें सुवर्णमय ॥ ७१ ॥ व द्वापरमें रजतमय और कलियुगमें वह स्थल पत्थरमय कहागया है इसप्रकार वहां स्थलकेश्वर नाम से शिवदेवजी स्थित हुये ॥ ७२ ॥ उन्नतस्थान में बसनेवाले जनोंको सदैव उन महादेवजी को पूजना चाहिये और माघ महीने में चौदसि तिथिमें वहां जागरण विशेष होताहै ॥ ७३ ॥ हे देवि ! इस प्रकार यह उन्नतस्थलका माहात्म्य कहागया सुनाहुआ जोकि मनुष्यों के पातकों को हरनेवाला व सब कामनाओं के फलोंको देनेवाला है ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांस्थलकेश्वरोत्पत्तिमाहात्म्यंनामषडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥ ● ॥

मश्ममयंकलौ ॥ एवंतत्रस्थितोदेवस्स्थलकेश्वरनामतः ॥ ७२ ॥ सदापूज्योमहादेव उन्नतस्थानवासिभिः ॥ माघेमासि चतुर्दश्यां विशेषस्तत्रजागरः ॥ ७३ ॥ इत्येतत्कथितन्देवि उन्नतस्यमहोदयम् ॥ श्रुतंपापहरंनृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेस्थलकेश्वरोत्पत्तिमाहात्म्यन्नामषडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्मात्पूर्वस्यदिग्भागे किञ्चिदाग्नेयसंस्थितम् ॥ लिङ्गद्वयंमहापुण्यं विश्वकर्मप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ यदावैनगरंकर्तुं त्वष्टातत्रसमागतः ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं नगरंकृतवांस्ततः ॥ २ ॥ कृत्वाचनगरंरम्यं लिङ्गस्यास्यप्रभावतः ॥ पुनःप्रतिष्ठितंलिङ्गं तेनवैविश्वकर्मणा ॥ ३ ॥ कर्मादौकर्मणश्चान्ते यत्रोद्वाहगृहादिके ॥ लिङ्गद्वयंपूजयित्वा सिद्धिमाप्नोतितत्क्षणात् ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पञ्चामृतरसोदकैः ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्देवि लिङ्गयुग्मंप्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेलिङ्गद्वयमाहात्म्यन्नामसप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८७ ॥ * ॥

दो० । विश्वकर्म थाप्यो यथा लिंग रुचिर अतिसोइ । दो सौ सत्तासिवें महँ कह्यो चरित सब सोइ ॥ महादेवजी बोले कि उससे पूर्वदिशा के भागमें कुछ आग्नेय में स्थित विश्वकर्माजी से थापेहुये बड़े पुण्यदायक दो लिंग हैं ॥ १ ॥ जब नगर को बनाने के लिये वहां विश्वकर्माजी आये हैं तब उन्होंने महादेवजी को थापकर तदनन्तर नगर को बनाया है ॥ २ ॥ और इसलिंग के प्रभावसे मनोहर नगरको बनाकर फिर उन विश्वकर्माने लिंगको थापित कियाहै ॥ ३ ॥ जहां विवाह व गृहादिक कार्य में कर्मके आदि में व कर्मके अन्तमें दोनों लिङ्गोंको पूजकर मनुष्य उसीक्षण सिद्धिको पाताहै ॥ ४ ॥ इसलिये हेदेवि ! सब यत्नसे पञ्चामृत रस व जलसे

तथा अनेकभांतिके नैवेद्योंसे मनुष्य दोनों लिंगोंको पूजै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांलिङ्गद्वयमाहात्म्यंनामसप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८७॥

दो० । बालरूप ब्रह्मा यथा आये उन्नत थान । दो सौ अट्ठासिवें में सोई कीन् बखान ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त मैं तुमसे गुप्त व उत्तम स्थानको कहूंगा जोकि उन्नतस्थान में बसनेवाले मनुष्यों के सब पापोंको हरनेवाला है ॥ १ ॥ उन्नतस्थान में स्थित क्रीड़ा करनेवाले व अप्रकटजन्मवाले बालरूपी ब्रह्मादेव का माहात्म्य श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ जिनके दर्शनही से मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै देवीजी बोलीं कि जो बालरूपी ऐसे ब्रह्मा कहेगये हैं वे उन्नतस्थान में कैसे स्थितहुये ॥

ईश्वर उवाच ॥ अथतेकीर्त्तयिष्यामि रहस्यंस्थानमुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंनृणामुन्नतस्थानवासिनाम् ॥ १ ॥ श्रेष्ठंदेवस्यमाहात्म्यं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ उन्नतस्थानसंस्थस्य देवस्यबालरूपिणः ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ देव्युवाच ॥ बालरूपीतियःप्रोक्त उन्नतेसकथंचन ॥ ३ ॥ स्थानेष्वन्येषुसर्वत्र वृद्धरूपीपितामहः ॥ कस्मिन्स्थानेस्थितस्तत्र किमर्थंतत्रचागतः ॥ ४ ॥ कथंसपूज्योविप्रेन्द्रैस्स्थितःकस्मात्क्रमाद्वद ॥ ईश्वर उवाच ॥ ऋषितोयापश्चिमेतु ईशान्यांस्थलकेश्वरात् ॥ ५ ॥ ब्रह्मणःपरमंस्थानं ब्रह्मलोकइवापरः ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च पूज्याःप्राभासिकेसदा ॥ ६ ॥ ब्रह्मभागेस्थितोब्रह्मा ऋषितोयातटेशुभे ॥ रुद्रभागेग्नितीर्थेच पूज्योरुद्रस्सनातनः ॥ ७ ॥ गिरौरैवतकेरम्ये पूज्योदामोदरोहरिः ॥ सोमेनप्रार्थितोदेवो बालरूपीपितामहः ॥ ८ ॥ आगतश्चाष्टवर्षस्तु उन्नतंस्थानमुत्तमम् ॥ ९

३ ॥ क्योंकि अन्यस्थानों में सब कहीं वृद्धरूपी पितामह हैं और वे वहां किस स्थानमें स्थितहैं तथा किसलिये वहां आये हैं ॥ ४ ॥ और वे किसप्रकार द्विजेन्द्रों से पूजने योग्य हैं व किसकारण स्थित हैं इसको क्रमसे कहिये महादेवजी बोले कि ऋषितोया के पश्चिम में स्थलकेश्वर से ईशानदिशा में ॥ ५ ॥ अन्य ब्रह्मलोक की नाईं ब्रह्माका उत्तम स्थान है प्रभासमें ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी सदैव पूजनेयोग्य हैं ॥ ६ ॥ उत्तम ऋषितोया के किनारे पै ब्रह्मभाग में ब्रह्मा स्थित हैं और रुद्रभाग व अग्नितीर्थ में सनातन शिवजी पूजनेयोग्य हैं ॥ ७ ॥ और मनोहर रैवतक पर्वत पै दामोदर विष्णुजी पूजनेयोग्य हैं चन्द्रमा ने बालरूपी पितामह देवजी से प्रार्थना

कियाहै ॥ ८ ॥ और उत्तम उन्नतस्थानमें आठवर्षवाले ब्रह्मा आये हैं व द्विजोत्तमोंको देखकर व्यापक ब्रह्माजी उस स्थानमें स्थितहुये ॥ ६ ॥ ब्रह्मके समान देवता नहीं है व ब्रह्मके समान गुरु नहीं है और ब्रह्म के समान ज्ञान नहीं है व ब्रह्मके समान तप नहीं है ॥ १० ॥ दुःख, शोक व भयसे संयुत मनुष्य तबतक संसारमें भ्रमते हैं जबतक कि भक्तिसे सुरोत्तम ब्रह्माजी को नहीं भजतेहैं ॥ ११ ॥ जैसे प्राणीका चित्त विषय गोचरमें आसक्त होताहै वैसेही यदि यह चित्त ब्रह्ममें लगै तो कौन पुरुष बन्धन से न छूटजावै ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी परमायु कहेगये हैं उनका प्रथम परार्द्ध बीतगया व उन्नतस्थान में स्थित ब्रह्माका इससमय दूसरा परार्द्ध होगा ॥ १३ ॥

ष्ट्वाब्रह्माद्विजश्रेष्ठांस्तत्रस्थानेस्थितोविभुः ॥ ६ ॥ नास्तिब्रह्मसमोदेवो नास्तिब्रह्मसमोगुरुः ॥ नास्तिब्रह्मसमंज्ञानं नास्तिब्रह्मसमन्तपः ॥ १० ॥ तावद्भ्रमन्तिसंसारे दुःखशोकभयप्लुताः ॥ नभजन्तिसुरश्रेष्ठं यावद्भक्त्यापितामहम् ॥ ११ ॥ समासक्तंयथाचित्तं जन्तोर्विषयगोचरे ॥ यद्येतद्ब्रह्मणान्यस्तं कोनमुच्येतबन्धनात् ॥ १२ ॥ परमायुस्स्मृतो ब्रह्मा परार्द्धतस्यवैगतम् ॥ उन्नतस्थानसंस्थस्य द्वितीयोभविताधुना ॥ १३ ॥ यदासावुन्नतेस्थाने ब्रह्मालोकपितामहः ॥ आगतश्चाष्टवर्षस्तु तदाचब्रह्मणःप्रियम् ॥ १४ ॥ स्नात्वाचविधिवत्पूर्वं ब्रह्मकुण्डेनरोत्तमः ॥ पूजयेत्पुष्पधूपाद्यैर्ब्रह्माणंबालरूपिणम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे उन्नतस्थानेबालरूपिब्रह्ममाहात्म्यन्नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्यदक्षिणतःस्थितम् ॥ दुर्गादित्येतिनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ यदा

जब लोकों के पितामह ये आठवर्षवाले ब्रह्माजी उन्नतस्थान में आये तब यह स्थान ब्रह्माको प्रिय हुआ ॥ १४ ॥ पहले ब्रह्मकुण्ड में नहाकर फिर उत्तम मनुष्य विधिपूर्वक पुष्पधूपादिकों से बालरूपी ब्रह्माको पूजै ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामुन्नतस्थानेबालरूपिब्रह्ममाहात्म्यंनामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो॰ । भये प्रभासक्षेत्र महँ दुर्गादित्यक नाम । दोसौ उन्नासिवें में सोइ चरितअभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके दक्षिणमें स्थित समस्त

पातकोंको नाशनेवाले दुर्गादित्यनामक देवजीके समीप जावै ॥ १ ॥ जब दुःखोंके विनाशनेवाली दुर्गाजी दुःखको प्राप्तहुईहैं तब उन्होंने दुःखके नाशके लिये सूर्यनारायणको आराधन किया ॥ २ ॥ तदनन्तर बहुत समयके बाद सूर्यनारायणजी उन दुर्गाजीके ऊपर प्रसन्नहुये व महाप्रकाशवती दुर्गा देवीसे बोले ॥ ३ ॥ कि हे देवेशि ! वरदान को मांगिये मैं तपस्यासे प्रसन्नहुआहूं दुर्गाजी बोलीं कि हे दिननाथजी ! यदि प्रसन्नहो तो मेरे दुःखको नाशकरो ॥ ४ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि थोड़े ही समय में त्रिपुरविनाशक भगवान् सदाशिवजी उत्तम उन्नतस्थानमें उत्तमलिंग को प्राप्त होवेंगे ॥ ५ ॥ हे देवि ! यहां दुर्गादित्य ऐसा मेरा नाम होगा ऐसा कहकर

दुःखमनुप्राप्ता दुर्गादुःखविनाशिनी ॥ सूर्यमाराधयामास तदादुःखविपत्तये ॥ २ ॥ ततःकालेनवहुना तस्यास्तुष्टोदिवाकरः ॥ उवाचमधुरंवाक्यं दुर्गादेवींमहाप्रभाम् ॥ ३ ॥ वरंवरयदेवेशि तपसातुष्टवानहम् ॥ दुर्गोवाच ॥ यदितुष्टोदिवानाथ दुःखंममविनाशय ॥ ४ ॥ सूर्य उवाच ॥ अचिरेणैवकालेन भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ सम्प्राप्स्यत्युत्तमंलिङ्गमुन्नतेस्थानउत्तमे ॥ ५ ॥ दुर्गादित्येतिमेनाम इहदेविभविष्यति ॥ एवमुक्त्वामहादेवि तदाचान्तर्हितोरविः ॥ ६ ॥ सप्तम्यांरविवारेण दुर्गादित्यंप्रपूजयेत् ॥ तस्यदुःखानिसर्वाणि कुष्ठानिविविधानिच ॥ ७ ॥ विलयंयान्तिदेवेशि दुर्गादित्यंप्रपूजनात् ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदुर्गादित्यमाहात्म्यन्नामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततःपश्येन्महादेवि तस्यदक्षिणतस्स्थितम् ॥ सोमेश्वरेतिनामानं ऋषितोयातटेस्थितम् ॥ १ ॥

हे महादेवि ! उससमय सूर्यनारायण अन्तर्द्धान होगये ॥ ६ ॥ रविवार सप्तमी में जो दुर्गादित्य को पूजता है हे देवेशि ! उसके सब दुःख व अनेकप्रकार के कुष्ठ दुर्गादित्यजी के पूजनसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ७ । ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदुर्गादित्यमाहात्म्यंनामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि सोमेश्वरदेव अरु है गणनाथ प्रभाव । दोसौ नब्बेमें सोई कथा हर्ष सरसाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके दक्षिण में स्थित

व ऋषितोयाके किनारे पै टिकेहुये सोमेश्वर ऐसे नामक शिवदेवजीको देखै ॥ १ ॥ पहले इनका भूतेश्वर ऐसा नाम कहागयाहै व हे देवि ! कलियुगमें उनका सोमेश ऐसा नाम कहागया है ॥ २ ॥ उनको देखकर व पूजकर मनुष्य सब पातकोंसे छूट जाताहै ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! उससे उत्तरदिशा के भागमें कुछ वायव्य में स्थित सब सिद्धियों को देनेवाले विनायकजी को देखै ॥ ४ ॥ मैंने जिन इन कुबेरदेवजी को कहाहै वे पुरातन समय मेरे मित्र हुये हैं और निधियों के पालक वे गणनाथ के स्वरूप से ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! इस स्थानमें लोकोंको सिद्धिदेने के लिये स्थित हैं मङ्गल दिनमें चौथि तिथिको लड्डुवोंसमेत भक्ष्य, भोज्यों से ॥ ६ ॥ जो उनको वि-

भूतेश्वरेतिनामास्य पूर्वेपरिकीर्त्तितम् ॥ सोमेशेतिकलौदेवि तस्यनामप्रकीर्त्तितम् ॥ २ ॥ तन्दृष्ट्वापूजयित्वा च मुक्तस्स्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ ३ ॥ तस्मादुत्तरदिग्भागे किञ्चिद्वायव्यमाश्रितम् ॥ विनायकंमहादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४ ॥ योसौदेवोमयाख्यातस्सखामेधनदःपुरा ॥ गणनाथस्वरूपेण निधीनांपरिपालकः ॥ ५ ॥ लोकानांसिद्धिदानार्थमस्मिन्स्थानेस्थितःप्रिये ॥ चतुर्थ्यांभौमवारेण भक्ष्यभोज्यैस्समोदकैः ॥ ६ ॥ पूजयेद्विधिवद्देवि तस्यसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे गणनाथमाहात्म्यन्नामनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९०॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विनायकमनुत्तमम् ॥ ऋषितोयातटेरम्ये सर्वविघ्नविदारणम् ॥ १ ॥ योसौदेवोगणाध्यक्षः ससाक्षात्त्रिपुरान्तकः ॥ वाजरूपंसमाश्रित्य उन्नतेस्थानकेस्थितः ॥ २ ॥ प्रभासिकेमहाक्षेत्रे गणानांको

धिपूर्वक पूजता है हे देवि ! उसके निश्चयकर सिद्धि होती है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणनाथमाहात्म्यंनामनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । यथा विनायक देव अरु महाकाल कर हाल । दोसौ इक्यानबे महँ सोईचरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सुन्दर ऋषितोया के किनारे पर सब विघ्नोंको विदारनेवाले अतिउत्तम विनायकजी के समीप जावै ॥ १ ॥ त्रिपुरविनाशक जो ये साक्षात् गणनायक देवजी हैं करोड़ों गणों से घिरेहुये

वे राजरूप में स्थित होकर प्रभास महाक्षेत्र में उन्नतस्थान पै स्थित हैं इसलिये सब यत्नसे यात्राके निर्विघ्नके लिये ॥ २ । ३ ॥ चन्दन व पुष्पादिकों से गणनाथ को आराधन करना चाहिये व हे महादेवि ! चौथि तिथिमें सब नगरवासियों को ॥ ४ ॥ योगक्षेमार्थ सिद्धिके लिये यात्राका महोत्सव करना चाहिये ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरारोहे ! तदनन्तर नगर में उसीके उत्तरओर स्थित सब से रक्षा करनेवाले महाकालेश्वरदेवजी के समीप जावै ॥ ६ ॥ रौद्ररूपधारी भैरवजी इस पुरके अधिष्ठाताहैं अमावस व पौर्णमासी तिथिमें इनका महापूजनकरै ॥ ७ ॥ जो मनुष्य महोदयतीर्थमें नहाकर महाकालजीको देखताहै वह संसारमें सात हज़ार

टिभिर्वृतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रानिर्विघ्नहेतवे ॥ ३ ॥ आराध्योगणनाथश्च गन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥ चतुर्थ्याञ्च महादेवि सर्वैर्नगरवासिभिः ॥ ४ ॥ यात्रामहोत्सवःकार्यो योगक्षेमार्थसिद्धये ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेद्वरारोहे तस्यैवोत्तरतःस्थितम् ॥ महाकालेश्वरन्देवं सर्वरक्षाकरंपुरे ॥ ६ ॥ अधिष्ठातापुरस्यास्य भैरवोरौद्ररूपधृक् ॥ दर्शेच पौर्णमास्याञ्च महापूजांप्रकारयेत् ॥ ७॥ महोदयेनरस्स्नात्वा महाकालंप्रपश्यति ॥ धनाढ्योजायतेलोके सप्तजन्म सहस्रकम् ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमहाकालेश्वरमाहात्म्यन्नामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः२९१॥

ईश्वर उवाच॥ ततोमहोदयंगच्छेत्तस्मादीशानसंस्थितम् ॥ विधिनातत्रयस्स्नाति तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ १ ॥ प्रतिग्रहकृताद्दोषान् नभयंतस्यविद्यते ॥ महोदयंमहानन्ददायकञ्चद्विजन्मनाम् ॥ २ ॥ प्रतिग्रहेप्रसक्तानां विषयासक्तचेतसाम् ॥ तेषामपिददेन्मुक्तिं तेनख्यातंमहोदयम् ॥ ३ ॥ तस्यैवरक्षणार्थाय महाकालस्यचोत्तरे ॥ नियुक्ताश्चमयादेवि

जन्मतक धनाढ्य होताहै ॥ ८ ॥ इति स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाकालेश्वरमाहात्म्यंनामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

दो० । अहै महोदयतीर्थकर यथा अतुल माहात्म्य । दोसौ बनबेमें सोई कह्यो चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर उससे ईशानमें स्थित महोदयतीर्थ के समीप जावै जो उसमें विधिसे नहाता है व पितरों और देवताओं को तर्पण करता है ॥ १ ॥ उसको प्रतिग्रह (दानलेने) के दोषसे उपजाहुआ भय नहीं होता है और महोदयतीर्थ ब्राह्मणों के बड़े आनन्दका दायक है ॥ २ ॥ जिसलिये वह प्रतिग्रह में लगेहुये व विषयों में आसक्त चित्तवाले उन ब्राह्मणों को भी मुक्ति देताहै

...क उत्तर में मुझसे नियुक्त कीहुई मातृका वहां स्थित हैं ॥ ४ ॥ पहले उम
. महोदयका बड़ाभारी ऐश्वर्य कहा ॥ ५ ॥ जोकि मनुष्यों के सब पापोंको हरनेवाला व स्नानसे
... ॥ ६ ॥ इसका मध्यभाग महासारांशवान् व सदैव मुनियोंको प्रियहै ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि उससे वायव्य
...तकों का विनाशक लिंग स्थित है जहांपर मुनिलोग प्राप्त हैं ॥ ८ ॥ उसीके पूर्वदिशाके भागमें पापोंको विनाशनेवाली कुण्डिका

...रस्तत्रसंस्थिताः ॥ ४ ॥ तस्मिन्स्नात्वानरःपूर्वं मातृस्ताश्चप्रपूजयेत् ॥ एवन्देविमयाख्यातं महोदयमहोदयम् ॥ ५ ॥ सर्वपापहरंनृणामभिषेकाचमुक्तिदम् ॥ अर्द्धक्रोशञ्चतत्तीर्थं समन्तात्परिमण्डलम् ॥ ६ ॥ एतन्मध्यं महासारंसदैवमुनिवल्लभम् ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्माद्वायव्यदिग्भागेस्थितंपापप्रणाशनम् ॥ सङ्गमेश्वरनामेति मुनयोयत्रसङ्गताः ॥ ८ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे कुण्डिकापापनाशिनी ॥ वडवानलसंयुक्ता यत्रयातासरस्वती ॥ ९ ॥ कुण्डिकायांनरस्स्नात्वा सङ्गमेश्वरमर्चयेत ॥ तस्यजन्मसहस्राणि लक्ष्म्यापुत्रैःप्रियैस्सह ॥ १० ॥ असङ्गमोमहादेवि नकदाचित्प्रजायते ॥ मुच्यतेपातकैस्सर्वैराजन्ममरणान्तकैः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसङ्गमेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ तस्मादेवोत्तमस्थानादुत्तरेयोजनत्रयम् ॥ तत्रतप्तोदकःस्वामी तल्लोयत्रहतःपुरा ॥ १ ॥ दैत्या

स्थित है जहां कि वड़वानल से संयुक्त सरस्वतीजी आई हैं ॥ ९ ॥ जो मनुष्य कुण्डिका में नहाकर सगमेश्वरजी को पूजताहै उसको हज़ार जन्मोंतक लक्ष्मी, पुत्र व प्रियोंके साथ ॥ १० ॥ हे महादेवि ! कभी वियोग नहीं होताहै और वह जन्म से लगाकर मरण अन्ततक के सब पापोंसे छूटजाता ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसङ्गमेश्वरमाहात्म्यंनामद्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । तलस्वामि माहात्म्य अरु कालमेघ असनाम । दो सौ तिरानबे महँ सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि उसी उत्तम स्थानसे उत्तर में तीनयोजन

(बारहकोस) पर वहां तप्तोदकस्वामी हैं जहां कि पुरातन समय हे देवि ! समर्थवान् विष्णुजीने सौ वर्ष युद्धकर दैत्योंके स्वामी तलको मारा है उसीकारण तलस्वामी हुये हैं ॥ १ । २ ॥ तप्तकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य तलस्वामी को पूजता है वह पिण्डदानकर करोड़ यात्राओं के फलको पाता है ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे महादेवि ! उस से पूर्वदिशा के भागमें कालमेध ऐसे प्रसिद्ध लिंगरूपी क्षेत्रपालके समीप जावै ॥ ४ ॥ अष्टमी व चौदसि तिथिमें ये बहुत विस्तारों से पूजनेयोग्य हैं भलीभांति चाहे हुये प्रयोजन को देनेवाले वे कलियुगमें कल्पवृक्षरूपहैं ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतलस्वामिकालमेधमाहात्म्य

नामधिपोदेवि विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ कृत्वावर्षशतंयुद्धं तलस्वामीततोभवत् ॥ २ ॥ तप्तकुण्डेनरस्स्नात्वा तलस्वा मिनमर्चयेत् ॥ कृत्वापिण्डप्रदानन्तु कोटियात्राफलंलभेत् ॥ ३ ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कालमेधेतिविश्रुतम् ॥ तस्मा च्चपूर्वदिग्भागे क्षेत्रपंलिङ्गरूपिणम् ॥ ४ ॥ अष्टम्यांवाचतुर्दश्यां पूज्योसौवहुविस्तरैः ॥ वाञ्छितार्थप्रदःसम्यक्सकलौ कल्पपादपः ॥ ५ ॥ इति श्रीप्रभासखण्डेतलस्वामिकालमेधमाहात्म्यन्नामत्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९३॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे धनुषांपञ्चविंशतिः ॥ रुक्मिणीसंस्थितादेवी सर्वपातकनाशिनी॥ १॥ तत्रत प्तोदकेकुण्डे कोटिहत्याविनाशने ॥ स्नात्वासम्पूजयेद्देवि रुक्मिणींरुक्मदायिनीम् ॥ २ ॥ सप्तजन्मानिनारीणां गृहभङ्गोनजायते ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वलभद्राच्चपूर्वेण स्थिताचासीत्सरिद्वरा ॥ दुर्वासेश्वरनामेति यत्रलिङ्गंप्रति

वर्णनन्नामत्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तलहिं मारि जिमि विष्णुजी तलस्वामि भे ख्यात । दो सौ चौरानबे में सोइ चरित विख्यात ॥ महादेवजी बोले कि उससे दक्षिण दिशाके भागमें पचीस धनुष पै सब पातकों को नाश करनेवाली रुक्मिणी देवी स्थित हैं ॥ १ ॥ हे देवि ! वहां करोड़ों हत्याओं को नाश करनेवाले तप्तोदककुण्ड में नहाकर स्वर्गदायिनी रुक्मिणीजीको भलीभांति पूजै ॥ २ ॥ तो सात जन्मोंतक स्त्रियोंके गृहभङ्ग नहीं होताहै ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि वलभद्र से पूर्वओर उत्तम नदी स्थित हुई है जहां

कि दुर्वासेश्वरनामक ऐसा लिङ्गस्थापित हुआ है ॥ ४ ॥ सब पापोंको नाशकरनेवाला वह सब सुखोंको प्राप्त करनेवाला है उस नदीमें नहाकर अमावस तिथि में जो पिण्डदान देताहै ॥ ५ ॥ वह कुछ अधिक करोड़ सौ कल्पोंतक पितरों की तृप्तिको प्राप्त करताहै और वहां दुर्वासेश्वर नामक शिवजी को विधिसे पूजकर ॥ ६ ॥ मनुष्य करोड़यज्ञों के फलको पाकर सब कामनाओं को प्राप्त होताहै और वहां ऋषियोंसे थापेहुये अनेकों लिङ्गोंको ॥ ७ ॥ देखकर व स्पर्शकर और पूजकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है हे देवि ! यह क्रमपूर्वक क्षेत्रका आदि अन्त कहागया ॥ ८ ॥ भद्राके पश्चिम से पूर्वतक क्रमपूर्वक पहले से सुनाहुआ यह चरित्र पापोंको

ष्ठितम् ॥ ४ ॥ सर्वपापोपशमनं तत्तुसर्वसुखावहम् ॥ स्नात्वातस्याममावास्यां पिण्डदानंददातियः ॥ ५ ॥ कल्पको टिशतंसाग्रं पितृणांतृप्तिमावहेत ॥ दुर्वासेश्वरनामानं तत्राभ्यर्च्यविधानतः ॥ ६ ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्य सर्वान्कामा नवाप्नुयात ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानि ऋषिभिस्स्थापितानितु ॥ ७ ॥ दृष्ट्वास्पृष्ट्वापूजयित्वा मुक्तस्स्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ इत्येतत्कथितन्देवि क्षेत्राद्यन्तंयथाक्रमम् ॥ ८ ॥ भद्रायाःपश्चिमात्पूर्वं यथानुक्रममादितः ॥ श्रुतंपापोपशमनं को टियज्ञफलप्रदम् ॥ ९ ॥ यत्रक्षेत्रस्यपरिधिस्स्थानंमधुमतीतिच ॥ १० ॥ तत्रलिङ्गेश्वरोदेवः समुद्रतटसन्निधौ ॥ कूपा नांसप्तकंतत्र पितृणांयत्रपाणयः ॥ ११ ॥ दृश्यन्तेद्यापिदेवेशि प्रतिपर्वणिपर्वणि ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वा गयाकोटिगु णंफलम् ॥ १२ ॥ लभतेनात्रसन्देहः सोमायांयदिजायते ॥ तत्रैवनातिदूरेणावदन्देवाजनार्दनम् ॥ १३ ॥ वैकुण्ठत्रा हिनोदेवतलेनोद्घाटितावयम् ॥ माहेन्द्रक्रोधसम्भूतरुद्रतेजोद्भवेनवै ॥ १४ ॥ अस्माभीरुद्रसामीप्ये कार्यंसर्वंनिवे

नाश करनेवाला व कोटियज्ञों के फलको देनेवाला है ॥ ९ ॥ जहा मधुमती ऐसा स्थान क्षेत्र की परिधि है ॥ १० ॥ वहां समुद्र के किनारे लिङ्गेश्वर देव हैं और वहां सात कूप हैं जहां पितरों के हाथ ॥ ११ ॥ हे देवेशि ! प्रतिपर्व पर्वमें आजभी देख पड़ते हैं वहां श्राद्धकर मनुष्य गयासे कोटिगुने फलको ॥ १२ ॥ प्राप्त होताहै इस में सन्देह नहीं है यदि सोमवार को अमावस होवै और वहींपर थोड़ीदूर पै देवताओं ने जनार्दन विष्णुजी से कहाहै ॥ १३ ॥ कि हे वैकुण्ठ, देव ! इन्द्रके क्रोधसे उत्पन्न व शिवजी के तेजसे उपजेहुये तलदैत्य से हमलोग विकल कियेगये हैं हमलोगोंकी रक्षा कीजिये ॥ १४ ॥ हमसबों ने शिवजी के समीप सब कार्यको निवेदन

किया तदनन्तर हे महादेव ! शिवजी ने व ब्रह्माने हम सबोंको तुम्हारे समीप पठाया इसलिये हे देव ! तुम हमारी गति होवो उन देवताओंके इसप्रकार वचनको सुन
कर देवदेव विष्णुजी ने ॥ १५ । १६ ॥ दानव को मारने के लिये व देवताओं की रक्षाके लिये यत्न किया व प्रभासक्षेत्र, प्रिय, महाभुज ॥ १७ ॥ विष्णुदेवजी ने तल्ल
दैत्यको बुलाकर उससमय प्रभासक्षेत्र के मध्यमें संसार का प्रलयकारक युद्ध किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर अपनी सेनाओं से घिरेहुये सब देवताओं ने दैत्यके साथ रोमों
को खड़ा करनेवाला बड़ायुद्ध किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर बड़े बलवान् पर्वत के समान दैत्यको देखकर चञ्चल नेत्रान्तवाले तथा गरुड़ को वाहन कियेहुये विष्णुजी

दितम् ॥ ततःप्रस्थापितास्सर्वे रुद्रेणपरमेष्ठिना ॥ १५ ॥ तवपार्श्वेमहादेव तत्त्वन्देवगतिर्भव ॥ इतिश्रुत्वावचस्तेषां देव
देवोजनार्द्दनः ॥ १६ ॥ दानवस्यवधार्थाय देवानांरक्षणायच ॥ चक्रेयत्नंमहाबाहुः प्रभासक्षेत्रवल्लभः ॥ १७ ॥ समाहू
यतल्लंदैत्यं प्रभासक्षेत्रमध्यतः ॥ युद्धंचक्रेतदादेवो विश्वप्रलयकारकम् ॥ १८ ॥ ततस्तुदेवास्सर्वेच स्वसैन्यैःपरिवारि
ताः ॥ चक्रुर्युद्धञ्चदैत्येन तुमुलंलोमहर्षणम् ॥ १९ ॥ ततःपर्वतसङ्काशं दृष्ट्वादैत्यंमहाबलम् ॥ उवाचचपलापाङ्गगरु
डीकृतवाहनः ॥ २० ॥ अहोदैत्यमहाबाहो मल्लयुद्धंददस्वमे ॥ त्वद्बाहुयुगलंदृष्ट्वा बाहुयुद्धेस्थितंमनः ॥ २१ ॥ नारा
यणवचःश्रुत्वा करमुद्यम्यदानवः ॥ अन्वधावत्तदादैत्यः कालान्तकसमप्रभः ॥ २२ ॥ ततःप्रवर्त्तितंयुद्धमन्योन्यंज
यकाङ्क्षिणोः ॥ जङ्घाभ्यांप्रसृताबन्धो बाहुभ्यांबाहुबन्धनम् ॥ २३ ॥ कण्ठेनाबन्धयत्कण्ठमुदरेणोदरंतथा ॥ एतस्मि
न्नन्तरेदेवास्सभयास्सम्बभूविरे ॥ २४ ॥ तलेनैवसमाक्रान्तो विष्णुरप्यस्मरद्धरम् ॥ तत्क्षणादागतोरुद्रः किङ्करोमिम

बोले ॥ २० ॥ कि हे महाबाहो, दैत्य ! मुझको मल्लयुद्ध (कुश्ती) दीजिये तुम्हारी दोनों भुजाओं को देखकर मेरा मन बाहुयुद्ध में स्थित हुआ ॥ २१ ॥ विष्णुजी के
बचनको सुनकर उस समय काल व यमराज के समान प्रभावान् वह दैत्य हाथको उठाकर दौड़ा ॥ २२ ॥ तदनन्तर आपस में जयको चाहतेहुये उन दोनोंका युद्ध
वर्तमान हुआ जांघों से जांघैं बँधगईं और भुजाओं से भुजाओं का बन्धन हुआ ॥ २३ ॥ व कण्ठसे कण्ठको बांधा वैसेही पेटसे पेटको बांधा इसी अवसर में देवता

सभयहुये ॥ २४ ॥ और तलसे आक्रान्त विष्णुजी ने भी शिवजी को स्मरण किया उसीक्षण शिवजी आगये और बोले कि हे महाबल ! मैं क्या करूं ॥ २५ ॥ विष्णु जी बोले कि हे देवदेवेश, शङ्करजी ! मैं मल्लयुद्ध से थकगया तुम इस समय परिश्रमके नाशके लिये यहां तप्तोदक करो ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे भैरव ! मैं क्षणभर में तलको मारूंगा महादेवजी बोले कि हे कृष्ण ! पुरातन समय पहले सतयुग में पार्वतीजी ने ऋषियों के श्रम नाशके लिये जिसको किया वह वहां तप्तोदककुण्ड बनायागया ॥ २७ ॥ फिर उस दैत्यके पापके प्रभावसे फिर वह शीतताको प्राप्तहुआ और फिर वह उष्णताको प्राप्त किया गया तदनन्तर कल्पान्ततक स्थितरहा ॥

हाबल ॥ २५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ श्रान्तोहन्देवदेवेश मल्लयुद्धेनशङ्कर ॥ तप्तोदकंकुरुष्वेह श्रमनाशायसाम्प्रतम् ॥ २६ ॥ ततस्तलंहनिष्यामि क्षणमात्रेणभैरव ॥ ईश्वर उवाच ॥ आदौकृतयुगेकृष्ण उमयायत्कृतम्पुरा ॥ ऋषीणांश्रमनाशार्थं तप्तोदंतत्रनिर्मितम् ॥ २७ ॥ तद्दैत्यपापमाहात्म्यात्पुनस्तच्छीततांगतम् ॥ पुनस्तदुष्णतांनीतं ततःकल्पान्तसंस्थितम् ॥ २८ ॥ एवमुक्त्वातदादेवं वीक्षांचक्रेमहेश्वरः ॥ तृतीयलोचनेनैव ज्वालामालोपशोभिना ॥ २९ ॥ तेन ज्वालासमूहेन व्याप्तंकुण्डंचतुर्दिशम् ॥ तप्तोदकुण्डमभवत्तेनख्यातंधरातले ॥ ३० ॥ ततोनारायणेनेह क्षालितंगात्रमुत्तमम् ॥ क्षालनात्तस्यदेवस्य श्रमोनाशमुपागमत् ॥ ३१ ॥ ततस्तुष्टेनदेवेन तीर्थानांदशकोटयः ॥ संस्मृत्वाविधिवत्तत्र क्षिप्तास्तत्रवरानने ॥ ३२ ॥ ततश्चक्रेतदायुद्धं तलेनातिभयङ्करम् ॥ जघानसतलंदैत्यं मुष्टिपातेनमस्तके ॥ ३३ ॥ तस्मिन्प्रवृत्तेयुद्धेतु चकम्पेभुवनत्रयम् ॥ तथामहान्धकारेण मूर्च्छितञ्चजगत्त्रयम् ॥ ३४ ॥ देवा ऊचुः ॥ ध्रुवंसमिद्धो

२८ ॥ उस समय विष्णुदेवजी से ऐसा कहकर तदनन्तर महादेवजी ने ज्वाला मालासे शोभित तीसरे नेत्रसे देखा ॥ २९ ॥ व उस ज्वालासमूह से कुण्ड चारों दिशाओं में व्याप्त होगया उसीसे पृथ्वी में तप्तोदकुण्ड प्रसिद्धहुआ ॥ ३० ॥ तदनन्तर विष्णुजीने इस तप्तोदकुण्डमें उत्तम शरीर को धोया और धोनेसे उन विष्णु देवजीका श्रम नाशको प्राप्तहुआ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! प्रसन्न विष्णुदेवजीने वहां दश करोड़ तीर्थोंको भलीभांति स्मरणकर विधिपूर्वक उस कुण्डमें डाल दिया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर उस समय उन्होंने तलसे बड़ा भयङ्कर युद्धकिया और तलदैत्य के मस्तक में मुष्टिपात (घूँसा) से मारा ॥ ३३ ॥ व उस युद्धके वर्तमान

होनेपर त्रिलोक काँप उठा वैसेही बड़ेभारी अन्धकार से त्रिलोक मूर्च्छित होगया ॥ ३४ ॥ देवतालोग बोले कि भलीभांति बढ़ेहुये ये विष्णुजी इस संसार की शान्ति करैं व पापरूपी दैत्यको नाशकरैं हे देवेश, महर्षिगणों की रक्षा कीजिये और प्राणी डरगये हैं इसलिये तुम तलकोमारो ॥ ३५ ॥ तदनन्तर मल्लयुद्ध (कुश्ती) से दानव पृथ्वीमें गिरायागया और पांवसे गलेको दबाकर विष्णुजी ने तलवारसे मारा ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी से नष्टकन्धेवाले दैत्यने हास्य किया और कमललोचन विष्णुजी ने उससे कहा कि यह हँसने का क्या कारण है ॥ ३७ ॥ हे दैत्य ! मनुष्य वृद्धिमें हर्षको प्राप्त होताहै और क्षयमें दुःखी होताहै यही लोककी गाथाहै उससे

जगतोस्यशान्तिं करोत्वयंपापविनाशनंहरिः ॥ त्राहीतिदेवेशमहर्षिसङ्घान् भूतानिभीतानितलंजहित्वम् ॥ ३५ ॥ ततोवैमल्लयुद्धेन पातितोभुविदानवः ॥ कण्ठमाक्रम्यपादेन खड्गेनपरिपीडितः ॥ ३६ ॥ हास्यंचकारदैत्योथ विष्णुना हतकन्धरः ॥ तमाहपुण्डरीकाक्षः किमेतद्धास्यकारणम् ॥ ३७ ॥ वृद्धौहर्षमवाप्नोति क्षयेभवतिदुःखितः ॥ इत्येवंलौकिकीगाथा ततोदैत्यविपर्ययः ॥ ३८ ॥ इत्युक्तस्सतदादैत्यः प्रत्युवाचजनार्दनम् ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्वेदाभ्यासैरनेकधा ॥ ३९ ॥ नित्योपवासनियमैः स्नानदानैर्जपादिभिः ॥ निर्मलैर्योगयुक्तैश्च प्राप्यतेयत्परम्पदम् ॥ ४० ॥ तन्मयादुष्टभावेन प्राप्तंविष्णोपरम्पदम् ॥ इत्युक्तेभगवान्विष्णुः परदानपरोभवत् ॥ ४१ ॥ उवाचपरमंवाक्यं तलंदैत्याधिनायकम् ॥ वरंवरयदैत्येन्द्र यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ ४२ ॥ इतिविष्णोर्वचःश्रुत्वा प्रार्थयामासदानवः ॥ ममाख्यावर्त्ततेलोके तथाकुरुमहाभुज ॥ ४३ ॥ मार्गमासेतुशुक्लेतु एकादश्यांसमाहितः ॥ यस्त्वांपश्यतिभावेन तस्यपापंविन

यह विपरीत है ॥ ३८ ॥ ऐसा कहेहुये उस दैत्यने उस समय विष्णुजीको प्रत्युत्तर दिया कि अग्निष्टोमादिक यज्ञों से व अनेकभांति के वेदाभ्यासों से ॥ ३९ ॥ तथा नित्योपवास व नियमों और स्नान, दान व जपादिकों से निर्मल व योगयुक्त प्राणियों को जो उत्तम स्थान मिलताहै ॥ ४० ॥ हे विष्णो ! उस परमपद को मैंने दुष्टतासे पाया ऐसा कहनेपर विष्णुजी वर देनेमें तत्पर हुये ॥ ४१ ॥ व दैत्योंके स्वामी तलसे उत्तम वचन को बोले कि हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारे मनमें जो वर्तमान हो उस वरदान को मांगिये ॥ ४२ ॥ इस प्रकार विष्णुजी के वचन को सुनकर दानवने मांगा कि हे महाभुज ! जिस प्रकार संसार में मेरा नाम वर्तमान होवै वैसाही

कीजिये ॥४३॥ और अगहन महीने में शुक्लपक्ष में एकादशी तिथिमें सावधान होताहुआ जो पुरुष भक्तिसे तुमको देखै उसका पाप नाश होजावै ॥४४॥ ऐसाही होगा यह कहकर विष्णुदेवजी हर्षको प्राप्त हुये व हे महाभागे ! अनेक भांतिके नगारे बजे व विष्णुजीके मस्तक पै फूलोंकी वृष्टि झरी और लोक निर्मल हुये तदनन्तर प्रसन्नता से संयुत सब देवगण नाचते हैं ॥ ४५ । ४६ ॥ और नारायण में परायण वे हर्षसंयुक्त होकर कहते हैं कि यह तीर्थ महातीर्थ है और सब पापोंको नाशनेवाला है ॥ ४७ ॥ जोकि विष्णुजी के श्रमको दूर करनेवाला व ब्रह्महत्यादिकों का शोधन करनेवाला है वहां नारायणजी स्थित हैं व सदाशिवजी स्थित हैं ॥ ४८ ॥ जोकि

इयतु ॥४४॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा देवोहर्षमुपागतः ॥ नानादुन्दुभयोनेदुः पुष्पवर्षंपपातह ॥ ४५ ॥ विष्णोर्मूर्द्धिमहाभागे लोकास्स्वच्छाबभूविरे ॥ ततोदेवगणास्सर्वे नृत्यन्तिचमुदान्विताः ॥ ४६ ॥ वदन्तिहर्षसंयुक्ता नारायणपरायणाः ॥ एतत्तीर्थंमहातीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४७ ॥ श्रमापनोदनंविष्णोर्ब्रह्महत्यादिशोधनम् ॥ स्थितोनारायणस्तत्र स्थितस्तत्रचशङ्करः ॥ ४८ ॥ क्षेत्रपालस्वरूपेण कालमेघेतिविश्रुतः ॥ तत्रयात्राविधिंवक्ष्ये गत्वातत्रशुचिर्नरः ॥ ४९ ॥ स्मरेद्विष्णुंमहादेवि तलस्वामीतिविश्रुतम् ॥ सहस्रशीर्षामन्त्रेण तर्पणादिप्रकारयेत् ॥ ५० ॥ एवंस्नात्वाविधानेन दत्त्वाचार्घंजनार्द्दनम् ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पैश्च वस्त्रैःपुण्यानुलेपनैः ॥ ५१ ॥ मधुनेक्षुरसेनैव कुङ्कुमेनविलेपयेत् ॥ कर्पूरोशीरमिश्रेण मृगनाभियुतेनच ॥ ५२ ॥ वस्त्रैःसंवेष्टयेत्पश्चाद्दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥ धर्मश्रवणसंयुक्तं कार्यंजागरणंततः ॥ ५३ ॥ वृषस्तत्रप्रदातव्यः सुवर्णंवस्त्रयुग्मकम् ॥ विप्रायवेदयुक्ताय श्रोत्रियायप्रदापयेत् ॥ ५४ ॥ उपवासंत

क्षेत्रपाल के स्वरूप से कालमेघ ऐसे प्रसिद्ध हैं उस तीर्थमें मैं यात्राकी विधिको कहताहूं कि वहां पवित्र मनुष्य जाकर ॥ ४९ ॥ हे महादेवि ! तलस्वामी ऐसे प्रसिद्ध विष्णुजी को स्मरणकरै और सहस्रशीर्षा मन्त्रसे तर्पण आदिक करै ॥ ५० ॥ इसप्रकार विधिसे स्नानकर व विष्णुजीको अर्घ देकर चन्दन व पुष्पोंसे पूजकर व पवित्र अनुलेपनों से ॥ ५१ ॥ तथा शहद व ऊंखके रससे और कपूर व खससे मिश्रित तथा कस्तूरी से संयुत कुंकुम से लेपन करै ॥ ५२ ॥ पश्चात् वस्त्रों से लपेटै और उत्तम नैवेद्य को देवै तदनन्तर धर्मश्रवणसंयुक्त जागरण करना चाहिये ॥ ५३ ॥ और वहां बैल देना चाहिये और वेदयुक्त व श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये सुवर्ण व दो

वस्त्रोंको देवै ॥ ५४ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! उस दिन उपास करै और विष्णुजीको प्रणामकर रुक्मिणी को देखै ॥ ५५ ॥ ऐसा भक्तिसे करके मनुष्य जन्मके फल को पाताहै और सबही यज्ञों व दानोंके फलको पाताहै ॥ ५६ ॥ वैसेही सब तीर्थों व व्रतोंके फलको पाताहै और पिताके वर्ग व माताके वर्गको उधारता है ॥ ५७ ॥ और जन्मसे लगाकर कियेहुये पातकों का नाश होताहै व वेदपारगामी ब्राह्मणके निमित्त हज़ार अशर्फ़ियों के ॥ ५८ ॥ देनेसे जो फल होताहै हे देवि ! वह फल कुण्ड में स्नान से होताहै ॥ ५९ ॥ इसप्रकार पुरातन समय सिद्धों व महर्षिगणों से तलस्वामी का चरित्र सुनागयाहै श्रुतिदेव के समीप इस प्रभाव को सुनकर जो

तःकुर्यात्तस्मिन्नहनिभामिनि ॥ रुक्मिणीञ्चप्रपश्येत नमस्कृत्यजनार्दनम् ॥ ५५ ॥ एवंकृत्वानरोभक्त्या लभतेजन्म नःफलम् ॥ सर्वेषामेवयज्ञानां दानानांलभतेफलम् ॥ ५६ ॥ तथाचसर्वतीर्थानां व्रतानांलभतेफलम् ॥ उद्धारयेत्पितुर्व र्गमातृवर्गंतथैवच ॥ ५७ ॥ जन्मप्रभृतिपापानां कृतानांनाशनंभवेत् ॥ सुवर्णानांसहस्रेण ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ५८ ॥ दत्तेनयत्फलन्देवि तत्कुण्डेस्नानतोभवेत् ॥ ५९ ॥ एवंतलस्वामिचरित्रमुत्तमं श्रुतम्पुरासिद्धमहर्षिसङ्घैः ॥ श्रुत्वाप्र भावंश्रुतिदेवसन्निधौ प्राप्नोतिसर्वंमनसायदीप्सितम् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे तलस्वामिमाहात्म्य न्नामचतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततःपश्चिमतोगच्छेन्न्यङ्कुमत्यास्तटेशुभे ॥ दक्षिणांदिशमाश्रित्य स्थितंतीर्थंमहाप्रभम् ॥ १ ॥ शङ्खावर्तमितिख्यातं यत्रचक्राङ्किताशिला ॥ स्वयंभूतामहादेवि रक्तगर्भासुशोभना ॥ २ ॥ त्वत्रेत्वयापितत्रैव रक्तवि

मनसे चाहागया है उस सबको मनुष्य पाता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतलस्वामिमाहात्म्यंनामचतुर्नवत्यधि कद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि शङ्खासुर मारिकै भयो तीर्थ शङ्खोद । दोसौ पञ्चानबे महँ सोई चरित सुखोद ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर पश्चिमओर न्यंकुमती के उत्तम किनारे पै जावै वहां दक्षिणदिशा में आश्रित होकर शङ्खावर्त ऐसा प्रसिद्ध महाप्रभावान् तीर्थ स्थितहै हे महादेवि ! जहांपर आपहीं से उपजीहुई अतिउत्तम रक्तगर्भा

शिलाचक्रसे चिह्नित है ॥ १ । २ ॥ उसी क्षेत्रमें आजभी रक्तका बूंद देखपड़ता है हे देवेशि ! पुरातन समय समर्थवान् विष्णुजी ने वेदोंको हरनेवाले शङ्खासुर को जहां माराहै वह विष्णुक्षेत्र कहागया है शङ्खाकार कियाहुआ शङ्खोदकतीर्थ देखपड़ता है ॥ ३ । ४ ॥ हे देवि ! उसमें नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूटजाता है व शूद्र के भी सात जन्मोंतक ब्राह्मणता होती है ॥ ५ ॥ पहले वहां जाकर तदनन्तर रुद्रगयाको जावै वहां भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषों को गोदान देना चाहिये ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशङ्खावर्ततीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥

न्दुःप्रदृश्यते ॥ विष्णुक्षेत्रंहितत्प्रोक्तं शङ्खोयत्रहतःपुरा ॥ ३ ॥ वेदापहारीदेवेशि विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ कृतंशङ्खोदकंतीर्थं शङ्खाकारन्तुदृश्यते ॥ ४ ॥ तत्रस्नात्वानरोदेवि मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ सप्तजन्मानिविप्रत्वं शूद्रस्यापिप्रजायते ॥ ५ ॥ पूर्वंतत्रैवगत्वाच ततोरुद्रगयांव्रजेत् ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशङ्खावर्ततीर्थमाहात्म्यन्नामपञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गोष्पदन्तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रश्राद्धंनरःकृत्वा गयासप्तगुणंफलम् ॥ १ ॥ लभतेनात्रसन्देहो यदिश्रद्धादृढाभवेत् ॥ यत्रश्राद्धंपृथुःकृत्वा पितरंपापयोनितः ॥ २ ॥ उद्दधारमहादेवि वैन्योनाममहाप्रभम् ॥ देव्युवाच ॥ कस्मिन्स्थानेस्थितंतीर्थमुत्पत्तिस्तस्यकीदृशी ॥ ३ ॥ कथंसवेनोराजावै उद्धृतःपापयोनितः ॥ गयासप्तगुणंपुण्यं कथंतत्रप्रजायते ॥ ४ ॥ श्राद्धस्यकिंविधानञ्च केमन्त्रास्तत्रकेद्विजाः ॥ एतन्मेकौतुकन्देव यथा

दो॰ । यथा वेनके पुत्र भे पृथुनामक महराज । दोसौ छनवे में सोई चरित कह्यो सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम गोष्पदतीर्थ के समीप जावै जहांपर श्राद्धकरके मनुष्य गयासे सतगुने फलको ॥ १ ॥ प्राप्तहोताहै यदि दृढ श्रद्धा होवै इसमें सन्देह नहीं है हे महादेवि ! जहां श्राद्धकर वेनके पुत्र पृथुनामक राजाने महाप्रभावान् पिताको पापयोनिसे छुड़ायाहै देवीजी बोलीं कि किस स्थानमें वह तीर्थ स्थितहै और उसकी कैसी उत्पत्ति है ॥ २ । ३ ॥ और वह वेनराजा कैसे पापयोनि से उधारागया है और वहां गयासे सतगुना पुण्य कैसे होताहै ॥ ४ ॥ और श्राद्धकी क्या विधिहै कौन मन्त्रहैं और उसमें कौन ब्राह्मण योग्य

हैं हे देव ! मुझको यह कौतुक है तुम यथायोग्य कहने के योग्यहो ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि ! जो तुमसे पूंछाजाता है यह गुप्त करनेयोग्य है व हे प्रिये ! इस पापयुग में यह तीर्थ प्रकाश करनेयोग्य नहीं है ॥ ६ ॥ तौ भी हे सुरेश्वरि ! तुम्हारे स्नेहसे मैं भलीभांति कहूंगा इसको पापीसे व पापमें परायण पुरुष से न कहै ॥ ७ ॥ व हे देवेशि ! नास्तिक तथा सुवर्ण चुरानेवालेसे न कहै हे देवि! महासिद्ध व पवित्र न्यंकुमतीनदी है ॥ ८ ॥ हे महाप्रभे ! जोकि इस क्षेत्रकी हद्दके लिये लाईगई है वह पापोंको नाशनेवाली पर्णादित्यजीसे दक्षिणमें स्थितहै ॥ ९ ॥ और नारायण गृहसे उत्तरमें थोड़ेही दूरपै स्थितहै व हे महादेवि ! उसके बीचमें

वद्वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इदंरहस्यन्देवेशि यत्त्वयापरिपृच्छ्यते ॥ अप्रकाश्यमिदन्तीर्थमस्मिन्पापयुगेप्रिये ॥ ६ ॥ तथापिसम्प्रवक्ष्यामि तवस्नेहात्सुरेश्वरि ॥ इदंनपापिनेब्रूयान्नैवंपापरतायवै ॥ ७ ॥ ननास्तिकायदेवेशि नसुवर्णहरायवै ॥ अस्तिदेविमहासिद्धा पुण्यान्यङ्कुमतीनदी ॥ ८ ॥ मर्यादार्थंसमानीता क्षेत्रस्यास्यमहाप्रभे ॥ संस्थितापापशमनी पर्णादित्याच्चदक्षिणे ॥ ९ ॥ नारायणगृहात्सौम्ये नातिदूरेऽव्यवस्थिता ॥ तस्यामध्येमहादेवि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १० ॥ गोष्पदन्नामविख्यातमस्तिपापापहंनृणाम् ॥ गोष्पदस्यसमीपेतु नातिदूरेऽव्यवस्थितः ॥ ११ ॥ अनन्तोनामनागेन्द्रस्स्वयंभूतोधरातले ॥ तस्यतीर्थस्यरक्षार्थं विष्णुनासुनियोजितः ॥ १२ ॥ काङ्क्षन्तिपितरःपुत्रान् नरकादतिभीरवः ॥ गन्तायोगोष्पदेपुत्रस्सनस्त्राताभविष्यति ॥ १३ ॥ गोष्पदेचसुतंदृष्ट्वा पितॄणामुत्सवोभवेत् ॥ पद्भ्यामपिजलंस्पृष्ट्वा अस्मभ्यंकिन्नदास्यति ॥ १४ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं योदद्याच्चजलाञ्जलिम् ॥ प्र

मनुष्यों के पातकों को नाश करनेवाला त्रिलोक में प्रसिद्ध गोष्पदनामक तीर्थ विख्यात है और गोष्पदके समीप थोड़ेही दूरपै स्थित ॥ १० । ११ ॥ आपही से उपजेहुये नागराज अनन्त पृथ्वीमें उस तीर्थकी रक्षाके लिये भलीभांति नियुक्त कियेगये हैं ॥ १२ ॥ नरकसे बहुत डरनेवाले पितर पुत्रोंको चाहते हैं व कहते हैं कि जो गोष्पदतीर्थ में जावैगा वह हमलोगों का रक्षक होगा ॥ १३ ॥ और गोष्पदतीर्थमें पुत्रको देखकर पितरों को आनन्द होताहै कि चरणोंसे भी जलको स्पर्शकर

क्या वह हमलोगों के लिये नहीं देवैगा ॥ १४ ॥ हमलोगों के वंशमें वह भी पुत्र होवै जोकि प्रभासक्षेत्र को जाकर उत्तम गोष्पदतीर्थ में जलकी अञ्जलि को देवै ॥ १५ ॥ और वह भी हमारे कुलमें होवै जोकि बड़े यत्नसे गैंडाके मांससे एकबार श्राद्ध करै व फिर कालशाक से श्राद्धकरै ॥ १६ ॥ और वह भी हमारे वंश में होवै जोकि गोष्पदतीर्थ में दीपको देवै क्योंकि उससे कल्पसमय पर्यन्त हमलोगों को प्रकाश होवैगा ॥ १७ ॥ और गोष्पदतीर्थ में जो अन्नको देताहै उससे पितर पुत्रवान् होतेहैं क्योंकि पुत्र एक दिनभी वहां टिककर सात पुश्तियोंतक पवित्र करताहै ॥ १८ ॥ वहां पितादिकोंको व अपनाको भी आपही मनुष्य पीना व जलसे पिण्ड

भासक्षेत्रमासाद्य गोष्पदेतीर्थउत्तमे ॥ १५ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं खड्गमांसेनयस्सकृत ॥ श्राद्धंकुर्य्यात्प्रयत्नेन कालशाकेनवैपुनः ॥ १६ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं गोष्पदेदत्तदीपकः ॥ आकल्पकालिकादीप्तिस्तेनास्माकंभविष्य ति ॥ १७ ॥ गोष्पदेचान्नदातायः पितरस्तेनपुत्रिणः ॥ दिनमेकमपिस्थित्वा पुनात्यासप्तमंकुलम् ॥ १८ ॥ पिण्डंद द्याच्चपित्रादेरात्मनोपिस्वयन्नरः ॥ पिण्याकमुदकेनापि तेनशोच्यावरानने ॥ १९ ॥ ब्रह्मज्ञानेनकिंयोगैर्गोगृहेमरणेन किम् ॥ किंकुरुक्षेत्रवासेन गोष्पदेयदिगच्छति ॥ २० ॥ सकृत्तीर्थाभिगमनं सकृत्पिण्डप्रपातनम् ॥ दुर्लभंकिम्पुन र्नित्यमस्मिंस्तीर्थेव्यवस्थितः ॥ २१ ॥ अर्द्धक्रोशन्तुतत्तीर्थं तदर्द्धार्द्धन्तुदुर्लभम् ॥ तन्मध्येश्राद्धकृत्पुण्यं गयाशत गुणंलभेत ॥ २२ ॥ श्राद्धकृद्गोप्रदानात्तु पितॄणामनृणोहिसः ॥ पदमध्येविशेषेण कुलानांशतमुद्धरेत् ॥ २३ ॥ गृहा च्चलितमात्रस्य गोष्पदागमनम्प्रति ॥ स्वर्गारोहणसोपानंपितॄणान्तुपदेपदे ॥ २४ ॥ पायसेनैवमधुना सक्तुनापिष्टकेन

देवै हे वरानने ! जो ऐसा करते हैं वे शोचनेयोग्य नहीं होते हैं ॥ १९ ॥ यदि गोष्पदतीर्थ में जावै तो ब्रह्मज्ञान से व योगोंसे तथा गऊके गृहमें मरने से और कुरु-क्षेत्रमें निवाससे क्या प्रयोजनहै ॥ २० ॥ यदि एकबार उस तीर्थमें गमन होवै व एकबार पिंडपात होवै तो फिर क्या दुर्लभ है क्योंकि वह नित्यही इस तीर्थमें स्थित है ॥ २१ ॥ आधकोस वह तीर्थहै और उसके आधाका भी आधा दुर्लभहै क्योंकि उसके मध्यमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष गयासे सौगुने फलको प्राप्तहोता है ॥ २२ ॥ और पदमध्य में विशेषकर श्राद्ध करनेवाला वह मनुष्य पितरों से उऋण होताहै और सौ पुश्तियों को उधारता है ॥ २३ ॥ और गोष्पदतीर्थ में आनेके लिये घरसे

चलेही हुये पुरुषके पितरों को पगपग पै स्वर्गमें चढ़ने के लिये सोपान होताहै ॥ २४ ॥ खीर, शहद, सत्तू व आटा और तिलों व अक्षतादिकों से श्राद्धको देकर पुरुष पितरों को स्वर्ग में प्राप्त करता है ॥ २५ ॥ गोष्पदतीर्थ में पिंडदान से मनुष्य जिस फलको पाता है उसको मैं करोड़ों सौ कल्पों से भी नहीं कहसक्ता हूं ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त मैं वहां उत्तम श्राद्ध की विधिको व यात्राकी विधिको कहताहूं उसको भलीभांति श्रद्धासंयुत होतीहुई तुम सुनो ॥ २७ ॥ यदि मनुष्य तीर्थ में जावै व गयाश्राद्धको चाहै तो चतुर पुरुष शास्त्रकी विधिसे श्राद्ध करै ॥ २८ ॥ ब्रह्मचारी व पवित्र होकर हाथों व पावों में संस्कार कर तदनन्तर श्रद्धावान् व आस्तिक विद्वान्

च ॥ तिलैस्तुतण्डुलाद्यैर्वा दत्त्वास्वर्गंनयेतपितॄन् ॥ २५ ॥ गोष्पदेपिण्डदानेन यत्फलंलभतेनरः ॥ नतच्छक्यंमया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥ २६ ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि तत्रश्राद्धविधिंशुभम् ॥ यात्राविधानञ्चतथा सम्यक्श्रद्धान्विताशृणु ॥ २७ ॥ यदितीर्थेनरोगच्छेद्गयाश्राद्धमभीप्सति ॥ तदाशास्त्रविधानेन यात्रांकुर्याद्विचक्षणः ॥ २८ ॥ ब्रह्मचारीशुचिर्भूत्वा हस्तपादेषुसंस्कृतः ॥ श्रद्धावानास्तिकोवापि गच्छेत्तीर्थंततस्सुधीः ॥ २९ ॥ ननास्तिकस्यसंसर्गं तस्मिंस्तीर्थेनरोत्तमः ॥ सर्वोपस्करसंयुक्तः श्रद्धावानास्तिकेनवा ॥ ३० ॥ गच्छेत्तीर्थंसगतवान् गयांमनसिभावयेत ॥ एवंयस्तुद्विजोगच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ॥ ३१ ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलंप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ तत्रस्नात्वान्यङ्कुमत्यां सिद्धयेपितृमुक्तये ॥ ३२ ॥ स्नात्वाथतर्पणंकुर्याद्देवादीनांयथाविधि ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ॥ ३३ ॥ तृप्यन्तुपितरस्सर्वे मातृमातामहादयः ॥ एवंसन्तर्प्यविधिना कृत्वाहोमादिकन्नरः ॥ ३४ ॥ श्राद्धंसपिण्डकंकु

तीर्थ में जावै ॥ २९ ॥ व उस तीर्थ में उत्तम पुरुष नास्तिक का संसर्ग न करै सब सामग्रियों से संयुत श्रद्धावान् पुरुष आस्तिक के साथ ॥ ३० ॥ तीर्थको जावै और गयाहुआ वह पुरुष मनमें गयाको भावना करै इसप्रकार प्रतिग्रह (दानलेने) से वर्जित जो ब्राह्मण जाता है ॥ ३१ ॥ वह पगपग पै अश्वमेधयज्ञके फलको पाता है इसमें सन्देह नहीं है और वहां न्यंकुमतीनदी में नहाकर मनुष्य सिद्धिके लिये व पितरोंकी मुक्ति के लिये होताहै ॥ ३२ ॥ नहाकर इसके उपरान्त विधिपूर्वक देवादिकों को तर्पण करै कि ब्रह्मा से लगाकर स्तम्ब (तृणसमूह) पर्यन्त देवता, ऋषि, मनुष्य ॥ ३३ ॥ व सब पितर व माता और मातामह (नाना) आदिक तृप्त होवैं इस

प्रकार विधि से भलीभांति तर्पण व होमादि करके मनुष्य ॥ ३४॥ उत्तमतन्त्रोक्त विधि से सपिण्डश्राद्धकोकरै और वहां शास्त्र को जाननेवाले व दोषसे रहित ब्राह्मणों को बुलाकरके ॥ ३५ ॥ इस प्रकार उपहार कियेहुये पुरुष इस मन्त्रको कहै कि कव्यवाड, नल, सोम, यम व अर्यमा ॥ ३६ ॥ और महाभाग्यवाले अग्निष्वात्त, बर्हिषद् व सोमपा पितर देवता तुमलोगों से रक्षित होकर यहां आवैं ॥ ३७ ॥ व हे पितामह ! वंशमें पैदाहुये जो मेरे सनाभि पितर हैं उनको पिण्ड देनेवाला मैं आयाहूं ॥ ३८॥ इसप्रकार कहकर हे महादेवि ! इस मन्त्रको कहै कि पिता, पितामह और प्रपितामह ॥ ३९ ॥ व माता, पितामही और प्रपितामही व

र्यात्सुतन्त्रोक्तविधानतः ॥ आमन्त्र्यब्राह्मणांस्तत्र शास्त्रज्ञान्दोषवर्जितान् ॥ ३५ ॥ एवंकृतोपहारस्तु अमुंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ कव्यवाडोनलस्सोमो यमश्चैवार्यमातथा ॥ ३६ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषदस्सोमपाःपितृदेवताः ॥ आगच्छन्तुमहाभागा युष्माभीरक्षितास्त्विह ॥ ३७ ॥ मदीयाःपितरोयेच कुलेजाताःसनाभयः ॥ तेषांपिण्डप्रदाताहि आगतोस्मि पितामह ॥ ३८ ॥ एवमुक्त्वामहादेवि अमुंमन्त्रमुदीरयेत ॥ पितापितामहश्चैव प्रपितामहएवतु ॥ ३९ ॥ मातापितामहीचैव तथैवप्रपितामही ॥ मातामहस्तत्पिताच प्रमातामहकादयः ॥ ४० ॥ तेषांपिण्डोमयादत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ॐनमोभगवतेभर्त्रे सोमभौमेज्यरूपिणे ॥४१॥ एवंनत्वार्चयित्वातु इमांस्तुतिमथोपठेत ॥ तत्रगोष्पदसामीप्येवरुणासंस्कृतेनच ॥ ४२ ॥ पितॄणांसत्वनाथानांमन्त्रैःपिण्डांश्चनिर्वपेत् ॥ अस्मत्कुलेमृतायेच गतिर्येषांनविद्यते ॥ ४३ ॥ रौरवेचान्धतामिस्रे कालसूत्रेचयेगताः ॥ तेषामुद्धरणार्थायइदंपिण्डंददाम्यहम् ॥ ४४ ॥ अनन्तयातनासंस्थाः प्रेतलो

मातामह और उसका पिता व जो प्रमातामह आदिक हैं ॥ ४० ॥ मुझसे दियाहुआ पिण्ड अक्षयता से उनके समीप स्थित होवै और सोम, मङ्गल व बृहस्पति रूपी भगवान् स्वामी के लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ इसप्रकार प्रणामकर व पूजनकर इसके उपरान्त इस स्तुतिको पढ़ै और वहां गोष्पद तीर्थ के समीप संस्कार कियेहुये चरुसे ॥ ४२ ॥ अनाथ पितरों को मन्त्रों से पिण्डदेवै कि हमारे कुलमें जो मरेहैं और जिनकी गति नहीं विद्यमान है ॥ ४३ ॥ और रौरव अन्धतामिस्र व कालसूत्र नरकमें जो प्राप्तहैं उनके उधारने के लिये मैं इस पिण्डको देताहूं ॥ ४४ ॥ और जो अनन्त यातना (नरकपीड़ा) में स्थित हैं और जो प्रेतलोकों

में प्राप्तहैं व जो पशुवोंकी योनिमें प्राप्तहैं तथा जो पक्षी, कीट व सर्पादिक हैं ॥ ४५ ॥ अथवा जो वृक्षयोनि में स्थितहैं उनके लिये मैं पिण्डको देताहूं और जो बन्धु हैं जो अबन्धुहैं तथा जो अन्य जन्म में बान्धव हुयेहैं ॥ ४६ ॥ वे सब पिण्डदान से सदैव तृप्तिको प्राप्तहोवैं और जो कोई मेरे पितर प्रेतरूप से वर्तमान हैं ॥ ४७ ॥ वे सब पिण्डदानसे सदैव तृप्तिको प्राप्त होवैं और जो बान्धवादिक पितर स्वर्ग, आकाश व पृथ्वीमें स्थितहैं ॥ ४८ ॥ और बिन संस्कार किये जो मरेहैं उनकी मुक्ति के लिये पिण्डहोवै और जो पिताके वंशमें मरेहैं व जो माताके वंशमें मरेहैं ॥ ४९ ॥ और गुरु व श्वशुर तथा बन्धुवोंके जो अन्य बन्धुलोग कहेगये हैं ॥५०॥ और मेरे

केषुयेगताः ॥ पशुयोनिंगतायेच पक्षिकीटसरीसृपाः ॥ ४५ ॥ अथवावृक्षयोनिस्थास्तेभ्यःपिण्डंददाम्यहम् ॥ ये बान्धवाबान्धवावायेन्यजन्मनिबान्धवाः ॥ ४६ ॥ तेसर्वेतृप्तिमायान्तु पिण्डदानेनसर्वदा ॥ येकेचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरोमम ॥ ४७ ॥ तेसर्वेतृप्तिमायान्तु पिण्डदानेनसर्वदा॥ दिव्यन्तरिक्षभूमिस्थाः पितरोबान्धवादयः ॥ ४८ ॥ मृता असंस्कृतायेच तेषांपिण्डस्तुमुक्तये ॥ पितृवंशेमृतायेच मातृवंशेतथैवच ॥ ४९ ॥ गुरुश्वशुरबन्धूनां येचान्येबान्धवाः स्मृताः ॥ ५० ॥ येमेकुलेलुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्ज्जिताः ॥ क्रियालोपगतायेच जात्यन्धाःपङ्गवस्तथा ॥ ५१ ॥ विरूपाआमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताःकुलेमम ॥ तेषांपिण्डोमयादत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ५२ ॥ प्रेतत्वात्पितरोमुक्ता भवन्तु ममशाश्वतम् ॥ यत्किञ्चिन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरंघृतपायसम् ॥ ५३ ॥ अक्षय्यमुदकंदद्यात्तस्मिंस्तीर्थेतुगोष्पदे ॥ स्वाध्यायंश्रावयेत्तत्र पुराणान्यखिलानिच ॥ ५४ ॥ ऐन्द्राणिसामसूक्तानि पावमानांश्चशक्तितः ॥ तथैवशान्तिका

वंशमें पुत्रों व स्त्रियोंसे रहित जो लुप्तपिण्डहैं और जो क्रियालोपको प्राप्तहुयेहैं व जो जन्मान्ध और पंगुहैं ॥५१॥ और जो विरूप व कच्चे गर्भवाले, ज्ञात व अज्ञात मेरेवंश में पैदाहुये हैं मुझसे दियाहुआ पिण्ड अक्षयता से उनके समीप स्थितहोवै ॥ ५२ ॥ और मेरे पितर सदैव प्रेतयोनि से मुक्त होवैं शहदसे मिलाहुआ जो कुछ गऊका दूध, घी व खीर ॥ ५३ ॥ और जलको उसगोष्पदतीर्थ में देवै वह सब अक्षय होताहै वहां निज वेदपाठ व सब पुराणोंको सुनावै ॥ ५४ ॥ और ऐन्द्र, सा-

मसूक्त व पावमान सूक्तोंको शक्तिसे सुनावै और वैसेही शान्तिकाध्याय व मधुब्राह्मण को सुनावै ॥ ५५ ॥ फिर वहां ब्राह्मणोंको व अपनी प्रीतिकारक जो मण्डल ब्राह्मण है उस सबको कहै ॥ ५६ ॥ इस प्रकार न्यंकुमतीनदी में नहाकर उत्तम गोष्पदतीर्थ में विधिपूर्वक पिण्डोंको देकर फिर इस मन्त्रको पढ़ै ॥ ५७ ॥ कि ब्रह्मादिक देवता व ऋषिश्रेष्ठ मेरे साक्षी होवैं मैंने इस तीर्थको प्राप्त होकर पितरों की निष्कृति (प्रायश्चित्त) किया ॥ ५८ ॥ हे सुरोत्तमो ! मैं पितृकार्य में इस तीर्थ को आयाहूं आप सब साक्षी होवैं मैं तीनों ऋणोंसे छूटगया ॥ ५९ ॥ इस प्रकार उत्तम गोष्पदतीर्थकी प्रदक्षिणाकर ब्राह्मणोंके लिये दक्षिणाको देवै और पिण्डोंको नदीमें

ध्यायंमधुब्राह्मणमेवच ॥ ५५ ॥ मण्डलंब्राह्मणंतत्र प्रीतिकारिचयत्पुनः ॥ विप्राणामात्मनश्चैव तत्सर्वंसमुदीरयेत् ॥ ५६ ॥ एवंन्यङ्कुमतींस्नात्वा गोष्पदेतीर्थउत्तमे ॥ दत्त्वापिण्डांश्चविधिवत्पुनर्मन्त्रममुम्पठेत् ॥ ५७ ॥ साक्षिणः सन्तुमेदेवा ब्रह्माद्याऋषिपुङ्गवाः ॥ मयेदंतीर्थमासाद्य पितृणांनिष्कृतिःकृता ॥ ५८ ॥ आगतोस्मिइदंतीर्थं पितृकार्येसुरोत्तमाः ॥ भवन्तुसाक्षिणःसर्वे मुक्तश्चाहंऋणत्रयात् ॥ ५९ ॥ एवंप्रदक्षिणीकृत्य गोष्पदंतीर्थमुत्तमम् ॥ विप्रेभ्योदक्षिणांदद्यान्नद्यांपिण्डान्विसर्जयेत् ॥ ६० ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु तद्वत्कृष्णाजिनम्प्रिये ॥ अष्टकासुचवृद्धौच गयायां मृतवासरे ॥ ६१ ॥ अत्रमातुःपृथक्श्राद्धमन्यत्रपतिनासह ॥ वृद्धश्राद्धेतुमात्रादि गयायांपितृपूर्वकम् ॥ ६२ ॥ दत्त्वा पुनर्गयायांतु श्राद्धंकार्यंनरोत्तमैः ॥ तस्माद्गुप्तगयाप्रोक्ताइयंसाविष्णुमास्वयम् ॥६३॥ गन्धदानेनगन्धाढ्यंसौभाग्यं पुष्पदानतः ॥ धूपदानेनराज्याप्तिर्दीप्त्याप्तिर्दीपदानतः ॥ ६४ ॥ ध्वजदानात्पापहानिर्यात्रयाब्रह्मलोकभाक् ॥ आ

विसर्जनकरै ॥ ६० ॥ व हे प्रिये ! वहां गोदान व कृष्णाजिन देना चाहिये अष्टकाओं में व वृद्धिश्राद्धमें व गयामें और क्षयाहमें ॥ ६१ ॥ इसमें माताका पृथक् श्राद्धकरना चाहिये और अन्यत्र पतिके साथ श्राद्ध करना चाहिये और वृद्धश्राद्धमें मात्रादि व गयामें पितृपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६२ ॥ और गयातीर्थ में श्राद्ध देकर फिर उत्तम मनुष्यों को श्राद्ध करना चाहिये इस कारण विष्णुजी से आपही यह वही गुप्तगया कहीगई है ॥ ६३ ॥ गन्धदान से गन्धसंयुत वस्तु मिलती है और पुष्पके दान से सौभाग्य होताहै और धूपदानसे राज्यकी प्राप्तिहोती है व दीपदानसे दीप्ति (प्रकाश) की प्राप्तिहोती है ॥ ६४ ॥ व ध्वजाके दानसे पापकी हानि होती है और

यात्रासे ब्रह्मलोकका भागी होताहै और श्राद्ध पिण्डको देनेवाला पुरुष पितरोंको विष्णुजी के लोकको लेजावैगा ॥ ६५ ॥ उस गोष्पद महातीर्थमें. प्रशंसित नियमवाले एक ब्राह्मण को जो भोजन कराता है उससे कोटि ब्राह्मण भोजित होतेहैं ॥ ६६ ॥ यह उस तीर्थमें तुमसे श्राद्धकी विधि संक्षेप से कहीगई इसके अनन्तर मैं वेन राजाका चरित्र व महात्मा पृथुका प्राचीन इतिहास तुमसे कहूंगा जिस प्रकार कि वहां उनकी चाण्डालयोनि से मुक्ति हुईहै ॥ ६७।६८ ॥ हे देवेशि ! भलीभाति श्रद्धा संयुत होतीहुई तुम उस सब चरित्रको सुनो कि न अपवित्रके लिये व न पापी तथा न अशिष्य और न शत्रुके लिये ॥६९॥ व न अव्रतकेलिये इसचरित्रको किसीप्रकार

द्धपिण्डप्रदोलोके विष्णोर्नेष्यतिवैपितॄन् ॥ ६५ ॥ एकंयोभोजयेत्तत्र ब्राह्मणंशंसितव्रतम् ॥ गोप्रचारेमहातीर्थे कोटिर्भवतिभोजिता ॥ ६६ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तस्तत्रश्राद्धविधिस्तव ॥ अथतेकथयिष्यामि इतिहासंपुरातनम् ॥ ६७ ॥ वेनराज्ञश्चचरितं पृथोश्चैवमहात्मनः ॥ यथातत्राभवन्मुक्तिस्तस्यचाण्डालयोनितः ॥ ६८ ॥ तत्सर्वंशृणुदेवेशि सम्यक्श्रद्धासमन्विता ॥ नाशुचेर्नापिपापाय नाशिष्यायाहितायच ॥ ६९ ॥ कथनीयमिदंपुण्यं नाव्रतायकथञ्चन ॥ स्वर्ग्यंयशस्यमायुष्यं धन्यंवेदेनसम्मितम् ॥ ७० ॥ रहस्यंऋषिभिःप्रोक्तं शृणुयाद्योनसूयकः ॥ यश्चैनंश्रावयेन्मर्त्यः पृथोर्वैन्यस्यसम्भवम् ॥ ७१ ॥ ब्राह्मणेभ्योनमस्कृत्वा नसशोच्योवरानने ॥ गोप्ताधर्मस्यराजासौ बभौचात्रिसमःप्रभुः ॥ ७२ ॥ अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गोनामप्रजापतिः ॥ समातामहदोषेण येनकालात्मजात्मजः ॥ ७३ ॥ स्वधर्मंपृष्ठतःकृत्वा पापबुद्धिरजायत ॥ स्थितिमुत्थापयामास धर्मोपेतांसनातनीम् ॥ ७४ ॥ वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य ह्यधर्मनिरतोभ

कहना चाहिये स्वर्गको देनेवाले व यशदायक तथा प्रशंसनीय व वेदसे सम्मित ॥७०॥ ऋषियोंसे कहेहुये इस गुप्तचरित्रको जो ईर्षारहित पुरुष सुनताहै और हे वरानने ! जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये प्रणामकर वेनके पुत्र पृथुजी के उपजेहुये इस चरित्रको सुनाता है वह शोचनेयोग्य नहीं होताहै यह पृथुराजा धर्मका रक्षक हुआहै और वह प्रभु अत्रिके समान शोभित हुआहै ॥ ७१।७२ ॥ अङ्गनामक प्रजापति अत्रिवंशमें उत्पन्नहुआ और वह वेन कालकन्याका पुत्र था उसी मातामह (नाना)के दोष से ॥ ७३ ॥ अपने धर्मको पीछेकर पापबुद्धिवालाहुआ व उसने धर्मसे संयुत सनातनी स्थितिको उठादिया ॥ ७४ ॥ और वेदों व शास्त्रोंको उल्लङ्घनकर वह अधर्ममें तत्पर

हुआ उस राजा के राज्य करनेपर प्रजालोग निजवेदपाठरहित व वषट्कारहीन ॥ ७५ ॥ हुयेहैं और विनाश प्राप्त होनेपर यह बुद्धि हुई कि द्विजोत्तमों से सब यज्ञों में मैं स्तुति करनेयोग्य व पूजनेयोग्य हू ॥ ७६ ॥ मुझमें यज्ञ करनेयोग्यहैं व मुझमें हवन करना चाहिये इसप्रकार धर्मको उल्लङ्घनकर वह प्रजाओंकी पीडामें तत्पर हुआ ॥ ७७ ॥ तब क्रोधित होतेहुये मरीचि आदिक महर्षिलोग बोले कि हे वेन ! तुम अधर्म मतकरो यह सनातन धर्म नहीं है ॥ ७८ ॥ अत्रिके वंशमें पैदा हुये तुम निस्सन्देह प्रजापति हो और पहले तुमने यह प्रतिज्ञा कियाथा कि मैं प्रजाओं को, पालन करूंगा ॥ ७९ ॥ उस समय उस प्रकार कहतेहुये उन सब महर्षियों से

वम् ॥ निःस्वाध्यायवषट्काराः प्रजास्तस्मिन्प्रशासति ॥ ७५ ॥ आसन्नियंमतिश्चेति विनाशेप्रत्युपस्थिते ॥ अहमी ड्यश्चपूज्यश्च सर्वयज्ञैर्द्विजोत्तमैः ॥ ७६ ॥ मयियज्ञाविधातव्या मयिहोतव्यमित्यपि ॥ इत्थंधर्ममतिक्रम्य प्रजापीडन तत्परः ॥ ७७ ॥ ऊचुर्महर्षयःक्रुद्धा मरीचिप्रमुखास्तदा ॥ माधर्मंकुरुत्वंवेन नैषधर्मःसनातनः ॥ ७८ ॥ अत्रेर्वंशेप्रसू तोसि प्रजापतिरसंशयः ॥ पालयिष्येप्रजाश्चेति पूर्वंतेसमयःकृतः ॥ ७९ ॥ तांस्तथावादिनःसर्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा ॥ वेनःप्रहस्यदुर्बुद्धिरिदंवचनकोविदः ॥ ८० ॥ स्रष्टाधर्मस्यकश्चान्यःश्रोतव्यंकस्यवैमया ॥ वीर्यश्रुततपस्सत्यैर्मयाको न्यःसमोभुवि ॥ ८१ ॥ माहात्म्येनचनूनंमां यूयंजानीथतंतथा ॥ प्रभवंसर्वलोकानां धर्माणांचविशेषतः ॥ ८२ ॥ इच्छ न्दहेयंपृथिवीं भावेनयजनेनच ॥ सृजेपञ्चग्रसेपञ्च नात्रकार्याविचारणा ॥ ८३ ॥ यदानाशक्नुवन्स्तम्भान्मानाच्चैव विमोहितम् ॥ अनुनेतुंनृपंवेनं तदाक्रुद्धामहर्षयः॥८४॥ आथर्वणेनमन्त्रेण हत्वातंचमहाबलम् ॥ ततोस्यवामबाहुंते मम

वाक्योंमें चतुर व दुर्बुद्धि वेनने हँसकर इस वचनकोकहा ॥ ८० ॥ कि अन्य कौन धर्मको रचनेवालाहै व मुझ से किसका यश सुननेयोग्यहै और पृथ्वीमें बल,शास्त्र, तपस्या व सत्यसे मेरे बराबर कौनहै ॥ ८१ ॥ तुमलोग माहात्म्य से मुझको सब लोकों के उत्पत्तिकारक व विशेषकर धर्मका उत्पत्ति स्थान यथार्थ से जानो ॥ ८२ ॥ इच्छा करताहुआ मैं भक्तिसे यजन (यज्ञ) से पृथ्वीको जलासक्ताहूं और सृष्टि करसक्ताहूं व ग्रससक्ताहूं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८३ ॥ जब गर्वसे व मानसे मोहित वेन राजाको समझाने के लिये वे न समर्थहुये तब महर्षिलोग क्रोधितहुये ॥ ८४ ॥ और अथर्वणवेद के मंत्र से उस महाबलवान् वेनको मारकर तदनन्तर धर्म

को जाननेवाले उन्हों ने इसकी बाईं भुजाको मथा ॥ ८५ ॥ तदनन्तर हे प्रिये ! उससमय मथीजातीहुई उस बाईं भुजासे बहुतही छोटा व काला पुरुष पैदाहुआ ॥ ८६ ॥ व हे प्रिये ! सभीत वह हाथों को जोड़कर आगे खड़ाहुआ और उसको दुःखित व विकल देखकर मुनियों ने यह कहा कि निषीद याने बैठ जाइये ॥ ८७ ॥ उस से बडा पराक्रमी वह निषादवंश का कर्ताहुआ और वेन के पापसे उपजेहुये अन्य धीवरों को उत्पन्न करतेहुये उसके ॥ ८८ ॥ जो अन्य निषादहुये वे विन्ध्य-वासी व तुम्बर और खस हुये जिसलिये अधर्म का संचय था उसी कारण वेनके पापसें उपजेहुये उनको जानिये ॥ ८९ ॥ फिर उत्पन्न क्रोधवाले उन महर्षियों ने

न्थुर्धर्मकोविदाः ॥ ८५ ॥ तस्माच्चमथ्यमानाद्विजज्ञेसव्यभुजात्ततः ॥ ह्रस्वोतिमात्रंपुरुषः कृष्णश्चापितदाप्रिये ॥ ८६ ॥ सभीतःप्राञ्जलिश्चैव तस्थिवानग्रतःप्रिये ॥ तमार्त्तंविह्वलंदृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन्किल ॥ ८७ ॥ निषादवंशकर्त्तावै तेनाभूत्पृथुविक्रमः ॥ धीवरान्सृजतश्चापि वेनपापसमुद्भवान् ॥ ८८ ॥ येचान्येविन्ध्यनिलयास्तथावैतुम्बराःखसाः ॥ अधर्मसञ्चयोयस्माद्विद्धितान्वेनपापजान् ॥ ८९ ॥ पुनर्महर्षयस्तेथ पाणिंवेनस्यदक्षिणम् ॥ अरणीमिवसंरब्धं ममन्थुर्जातमन्यवः ॥ ९० ॥ पृथुस्तस्मात्समुत्पन्नःसूर्यज्वलनसन्निभः ॥ पृथोःकरतलादेव यस्माज्जातस्ततःपृथुः ॥ ९१ ॥ दीप्यमानश्चवपुषा साक्षादग्निरिवज्वलन् ॥ धनुराजगवंगृह्यशरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ९२ ॥ खड्गञ्चरक्षणार्थञ्च कवचंच महत्प्रभम् ॥ तस्मिञ्जातेथभूतानिसंप्रहृष्टानिसर्वशः ॥ ९३ ॥ संबभूवुर्महादेवि वेनश्चत्रिदिवङ्गतः ॥ ततोनद्यःसमुद्राश्च रत्नान्यादायसर्वशः ॥ ९४ ॥ अभिषेकायतेसर्वे राजानमुपतस्थिरे ॥ पितामहस्तुभगवान् ऋषिभिश्चसहामरैः ॥

क्रोध से वेन के दाहिने हाथको अरणी (अग्नि उत्पन्न होनेवाली लकड़ी) की नाईं मथा ॥ ९० ॥ उसमें से सूर्य व अग्नि के समान पृथुजी पैदाहुये जिसलिये पृथु (मोटे) हाथ से पैदाहुये उसीकारण पृथुनामक हुये ॥ ९१ ॥ और साक्षात् अग्नि की नाईं जलतेहुये वे शरीर से प्रकाशमान हुये और अजगव धनुष व सर्पों के समान बाणों को लेकर ॥ ९२ ॥ उन्होंने रक्षा के लिये बड़ी प्रकाशमान कवच व तलवार को लिया उन पृथुके पैदा होने पर सब प्राणी प्रसन्न ॥ ९३ ॥ हुये और वेन स्वर्ग को चलागया तदनन्तर नदियां व समुद्र सब रत्नोंको लेकर ॥ ९४ ॥ वे सब अभिषेक के लिये राजा के समीप प्राप्तहुये और भगवान् ब्रह्माजी ऋषियों व

देवताओं समेत आगये ॥ ९५ ॥ और उस समय सब स्थावर व जंगम प्राणियोंने भलीभांति आकर पृथु राजाको अभिषेककिया ॥ ९६ ॥ अंगिरा के पुत्र देवताओंसे वे महाभाग वेनके पुत्र बड़े तेजस्वी व प्रतापवान् पृथुजी राज्य के अधिकार पै अभिषेक कियेगये ॥ ९७ ॥ पिता से न रंजित प्रजा वेन के पुत्र पृथु से अनुरक्त किये गये उसकारण स्नेह से इनका राजा ऐसा नाम हुआ ॥ ९८ ॥ और इसको समुद्र के सामने जाते हुये जल रुक गये और पर्वत भी टूट गये व ध्वजभंग भी नहीं हुआ ॥ ९९ ॥ और बिन जोती हुई पृथ्वी अन्नों को पैदा करती थी व अन्नचिन्ता (ध्यान) से सिद्ध होते थे ॥ १०० ॥ और गौवें सब कामनाओं को देती थीं व

९५ ॥ स्थावराणिचभूतानि जङ्गमानिचसर्वशः ॥ समागम्यतदावैन्यमभिषेचुर्नराधिपम् ॥ ९६ ॥ सोभिषिक्तोमहातेजा देवैरङ्गिरसस्सुतैः ॥ अधिराज्येमहाभागः पृथुर्वैन्यःप्रतापवान् ॥ ९७ ॥ पित्रानरञ्जिताश्चापि प्रजावैन्येनरञ्जिताः ॥ ततोराजेतिनामास्य अनुरागादजायत ॥ ९८ ॥ आपस्तस्तम्भिरेचास्य समुद्रमभियास्यतः ॥ पर्वताश्चाप्यशीर्यन्त ध्वजभङ्गोपिनाभवत् ॥ ९९ ॥ अकृष्टपच्यापृथिवी सिध्यन्त्यन्नानिचिन्तया ॥ १०० ॥ सर्वकामदुघागावः पुटकेपुटकेमधु ॥ तस्मिन्नेवतदाकाले पुनर्जज्ञेथमागधः ॥ १ ॥ सामगेषुचगायत्सु स्रुग्भाण्डंवैश्वदेविकम् ॥ सामगेषुसमुत्पन्नस्तस्मान्मागधउच्यते ॥ २ ॥ ऐन्द्रेणहविषाचापि हविस्तस्यबृहस्पतिः ॥ जुहावैन्द्रपदेनैव ततस्सूतोव्यजायत ॥ ३ ॥ प्रमदस्तत्रसंजज्ञे प्रायश्चित्तेषुकर्मसु ॥ शेषहव्येनयष्टव्यमभ्यनन्दद्गुरोर्हविः ॥ ४ ॥ अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥ सूतस्तस्यांसमभवद्ब्राह्मण्यांक्षत्रयोगतः ॥ ५ ॥ ततस्सर्वेतुसाधर्म्या अल्पधर्माःप्रकीर्त्तिताः ॥ मध्यमा

प्रति पुटक में शहद होता था व उसीसमय मागध उत्पन्न हुआ है ॥ १ ॥ विश्वेदेववाले स्रुवापात्र प्रति सामगों के गानेपर जिसलिये सामगों के मध्य में पैदा हुआ उसकारण मागध कहा जाता है ॥ २ ॥ और इन्द्र सम्बन्धी हव्य से उनकी हव्य को बृहस्पति ने इन्द्र के पद से हवन किया उससे सूत उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ और प्रायश्चित्त कर्मों में वहां प्रमद पैदा हुआ उसने शेष हव्य से यज्ञ करने योग्य बृहस्पति के हव्य की प्रशंसा किया ॥ ४ ॥ नीच व उच्च के गमन से वह जातियों की विकृति उत्पन्न हुई याने उस ब्राह्मणी में क्षत्रिय के योग से सूत पैदा हुआ ॥ ५ ॥ उसकारण सब समान धर्म व थोड़े धर्मवाले कहे गये हैं और क्षत्रिय से

जीविका करनेवाले उस सूत का यह मध्यम धर्म है ॥ ६ ॥ और रथ हाथी व घोड़ों का चलाना व वैद्यकी अधम कर्म है वहां महर्षियों ने पृथुकी कथा के लिये उन सूत व मागध दोनों को बुलाया ॥ ७ ॥ और सब मुनियोंने उन दोनोंसे यह कहा कि राजा की स्तुति (प्रशंसा) कीजिये क्योंकि यह भूपति कर्मों से अनुरूप (समान) है ॥ ८ ॥ तब वे सूत मागध सब ऋषियों से बोले कि हम दोनों देवताओं व ऋषियों को अपने कर्मों से प्रसन्न करेंगे ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस राजा के कर्म, लक्षण व यशको हम लोग नहीं जानते हैं कि जिससे इस तेजस्वी राजा की स्तुति करैं ॥ १० ॥ ऋषियों ने उन को आज्ञा दिया कि भविष्य (होनेवाले) कर्मों से

होषतत्तस्य धर्मःक्षेत्रोपजीविनः ॥ ६ ॥ रथनागाश्वचरितं जघन्यंचचिकित्सितम् ॥ पृथोःकथार्थंतौतत्र समाहूतौमहर्षिभिः ॥ ७ ॥ तावूचुर्मुनयस्सर्वे स्तूयतामितिपार्थिवः ॥ कर्मभिश्चानुरूपोहि यतोयंपृथिवीपतिः ॥ ८ ॥ तावूचतुस्तदासर्वान्ऋषींश्चसूतमागधौ ॥ आवान्देवानृषींश्चैव प्रीणयावःस्वकर्मभिः ॥ ९ ॥ नचास्यविद्मोवैकर्म तथाचलक्षणंयशः ॥ स्तोत्रंयेनास्यसंकुर्वो राज्ञस्तेजस्विनोद्विजाः ॥ १० ॥ ऋषिभिस्तौनियुक्तौतु भविष्यैःस्तूयतामिति ॥ यानिकर्माणिकृतवान् पृथुःपश्चान्महाबलः ॥ ११ ॥ तानिगीतानिबद्धानि स्तुवद्भिस्सूतमागधैः ॥ ततस्तदर्थेसुप्रीतः पृथुःप्रादात्प्रजेश्वरः ॥ १२ ॥ अनूपदेशंसूताय मागधान्मागधायच ॥ तदादिपृथिवीपालास्स्तूयन्तेसूतमागधैः ॥ १३ ॥ आशीर्वादैःप्रसेव्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥ तन्दृष्ट्वापरमप्रीताः प्रजाऊचुर्महर्षयः ॥ १४ ॥ एषवोवृत्तिदोवैन्यो विहितोथनराधिपः ॥ ततोवैन्यंमहाभागं प्रजास्समभितुष्टुवुः ॥ १५ ॥ त्वन्नोवृत्तिविधातेति महर्षिवचनात्तथा ॥ सोभिष्टु

स्तुति कीजिये महाबलवान् पृथु राजा ने पश्चात् जिन कर्मों को किया ॥ ११ ॥ स्तुति करते हुये सूत मागधों ने उनको गीतों में बद्ध किया तदनन्तर उस अर्थमें प्रसन्न पृथु प्रजेश ने जलप्राय देशको सूतके लिये दिया व मागध के लिये मगध देशों को दिया तबसे लगाकर सूत मागध भूपालों की स्तुति करते हैं ॥ १२ । १३ ॥ और सूत, मागध व बन्दी लोग आशीर्वादोंसे सेवते हैं व उन पृथुको देखकर बहुत ही प्रसन्न महर्षियोंने प्रजाओंसे कहा ॥ १४ ॥ कि वेन का पुत्र यह पृथु तुमलोगों को वृत्ति (जीविका) दायक राजा कियागया तदनन्तर प्रजाओं ने बड़े ऐश्वर्यवान् पृथुकी स्तुति किया ॥ १५ ॥ कि महर्षियों के वचन से तुम हमलोगोंको वृत्तिदा-

यक हो प्रजाओं से स्तुति कियेहुये उन बलवान् पृथु ने प्रजाओं के हितको करनेकी इच्छा से धनुष व बाणोंको लेकर पृथ्वीको विकल किया तदनन्तर पृथु के डर से डरीहुई पृथ्वी गऊ होकर भगी ॥ १६।१७ ॥ और धनुषको लेकर पृथुजी भागतीहुई उस गऊके पीछे दौड़े तब वैन्य (पृथु) के डरसे उस समय ब्रह्मलोकादिक लोकों को जाकर उस पृथ्वीने ॥ १८ ॥ धनुषको हाथमें उठायेहुये पृथुको आगे देखा और जलतेहुये पैने बाणोंसे प्रकाशित तेजके समान छविवाले ॥ १९ ॥ तथा देवताओं से भी असह्य व महायोगी तथा महात्मा पृथुहीके समीप रक्षकको न पाती हुई वह पृथ्वी प्राप्तहुई ॥ २० ॥ और तीनों लोकोंसे सदैव पूजने योग्य पृथ्वी देवी हाथोंको

तःप्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥ १६ ॥ धनुर्गृहीत्वाबाणांश्च वसुधामर्दयद्बली ॥ ततोवैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ॥ १७ ॥ तान्धनुःपृथुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥ सालोकान्ब्रह्मलोकादीन् गत्वावैन्यभयात्तदा ॥ १८ ॥ ददर्शत्वग्रतोवैन्यं कार्मुकोद्यतपाणिनम् ॥ ज्वलद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्दीप्ततेजस्समद्युतिम् ॥ १९ ॥ महायोगंमहात्मानं दुर्द्धर्षममरैरपि ॥ अलभन्तीतुशरणं वैन्यमेवाभ्यपद्यत ॥ २० ॥ कृताञ्जलिपुटादेवी पूज्यालोकैस्त्रिभिस्सदा ॥ उवाचवैन्यंसाधर्मं स्त्रीवधंपरिपश्यसि ॥ २१ ॥ कथंधारयिताचासि प्रजाराजन्मयाविना ॥ मयिलोकाःस्थताराजन् मयेदंधार्यतेजगत् ॥ २२ ॥ मामृतेतेविनश्येयुः प्रजाःपार्थिवविद्धितत् ॥ तन्मांनार्हसिहन्तुंवै श्रेयश्चेत्त्वंचिकीर्षसि ॥ २३ ॥ प्रजानांपृथिवीपाल शृणुचेदंवचोमम ॥ उपायास्तेसमारब्धास्सर्वेसिद्ध्यन्तुविक्रमाः ॥ २४ ॥ हत्वामान्त्वंनशक्तोसि प्रजाःपालयितुन्नृप ॥ अनुभूताभविष्यामि त्यजकोपंमहीपते ॥ २५ ॥ अवध्याश्चस्त्रियःप्राहुस्तिर्यग्योनिग

जोड़कर पृथुसे बोली कि स्त्रीके वधरूपी अधर्मको देखिये ॥ २१ ॥ व हे राजन्! मेरे विना तुम प्रजाओंको कैसे धारण करोगे हे राजन्! मुझमें लोक स्थितहैं व मुझ से यह संसार धारण कियाजाता है ॥ २२ ॥ व हे राजन्! मेरे विना तुम्हारी प्रजा नाश होवैंगी उसको जानिये इसकारण तुम मुझको मारने के लिये नहीं योग्यहो व यदि तुम प्रजाओं का कल्याण करना चाहतेहो तो हे भूपाल! मेरे इस वचनको सुनिये कि जानकर प्रारम्भ कियेहुये तुम्हारे सब उपाय सिद्ध होवैंगे ॥ २३। २४॥ हे राजन्! मुझको मारकर तुम प्रजाओं को पालन करने के लिये नहीं समर्थ हो हे महीपते! क्रोध को छोड़ दीजिये मैं अनुभूत याने तुम्हारी आज्ञा के अनुकूल

चलनेवाली हूंगी ॥ २५ ॥ विद्वान् लोग तिर्यग्योनि में भी प्राप्त स्त्रियों को अवध्य कहते हैं एक क्रूरकर्मी व पापिष्ठ के मृत्यु में प्राप्त होने पर ॥ २६ ॥ बहुतों का कल्याण होता है इसलिये उसका वध पुण्यदायक होता है ऐसा होने पर हे पृथ्वीपाल ! तुम धर्म को छोड़ने के लिये नहीं योग्यहो ॥ २७ ॥ इस प्रकारके उस वचन को सुनकर उदारमनवाले धर्मात्मा राजा ने क्रोध को रोककर पृथ्वी से यह कहा ॥ २८ ॥ कि अपने या पराये एक के हित प्रयोजन के लिये जो कामना से एक या बहुत प्राणियों को मारता है उसको पातक होता है ॥ २९ ॥ और एक को मृत्यु प्राप्त होनेपर यदि बहुत सुख को प्राप्त होते हैं तो उस प्राणी के मरने पर उसको

तास्त्रपि ॥ एकस्मिन्निधनेप्राप्ते पापिष्ठेक्रूरकर्मणि ॥ २६ ॥ बहूनांभवतिच्चेमस्तस्यपुण्यप्रदोवधः ॥ सत्येवंपृथिवीपाल धर्ममात्यक्तुमर्हसि ॥ २७ ॥ एवंविधन्तुतद्वाक्यं श्रुत्वाराजामहामनाः ॥ क्रोधन्निगृह्यधर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥ २८ ॥ एकस्यार्थेचयोहन्यादात्मनोवापरस्यवा ॥ एकंवापिबहून्वापि कामतश्चास्तिपातकम् ॥ २९ ॥ एकस्मिन्निधने प्राप्ते एधन्तेबहवस्सुखम् ॥ तस्मिन्हतेचभूतेवै पातकंनास्तितस्यवै ॥ ३० ॥ सोहंप्रजानिमित्तंत्वां हनिष्यामिवसुन्धरे ॥ यदिमेवचनेनाद्य करिष्यसिजगद्धितम् ॥ ३१ ॥ त्वांनिहत्याद्यबाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ॥ आत्मानंपृथुकृत्वेह प्रजाधारयितास्वयम् ॥ ३२ ॥ सात्वंवचनमास्थायममधर्मभृतांवरे ॥ सञ्जीवयप्रजानित्यं शक्ताह्यसिनसंशयः ॥ ३३ ॥ दुहितृत्वेहिमेगच्छ एवमेतन्महत्परम् ॥ अपृच्छंत्वद्वधार्थंच प्रयुक्तंघोरदर्शनम् ॥ ३४ ॥ प्रत्युवाचततोवैन्यमेवमुक्तामहासती ॥ सर्वमेतदहंराजन् विधास्यामिनसंशयः ॥ ३५ ॥ वत्संप्रकल्पयत्वम्मे त्वरेयंयेनवत्स

पातक नहीं होता है ॥ ३० ॥ हे वसुन्धरे ! यदि आज मेरे वचन से संसार का हित न करोगी तो मैं इसीक्षण प्रजाओंके कारण तुमको मारूंगा ॥ ३१ ॥ मेरी आज्ञा से विमुख होनेवाली तुम को मैं आज बाण से मारकर अपने शरीर को स्थूलकर मैं आपही प्रजाओं को धारण करूंगा ॥ ३२ ॥ हे धर्मभृतांवरे ! सो तुम मेरे वचन में स्थित होकर सदैव प्रजाओं को भलीभांति जिलाइये क्योंकि तुम समर्थवती हो इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ और मेरे कन्या के भाव में प्राप्त होवो इस प्रकार मैं ने इस बहुत उत्तम वचन को पूछा और तुम्हारे मारने के लिये भयंकर दर्शन नियुक्त किया गया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर इसप्रकार कही हुई महासती पृथ्वी ने पृथु से

कहा कि हे राजन् ! मैं इस सब को करूंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ तुम मेरे बछड़ा की कल्पना करो कि जिससे वत्सला (स्नेहवती) होकर मैं पन्हाऊं व हे धर्मभृतांवर ! मुझको सब कहीं बराबर कीजिये ॥ ३६ ॥ कि जिसप्रकार प्रस्रावयुक्त होती हुई मैं सब कहीं दूधको प्रकट करूं ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर पृथुजी ने धनुषकी कोटि से सब शिलासमूहों को उच्चाटन किया तदनन्तर उससे पर्वत तोड़ डालेगये ॥ ३८ ॥ अन्य मन्वन्तरों में पृथ्वी विषम (ऊंची नीची) थी और उसके सम व विषम स्थान स्वभावही से थे ॥ ३९ ॥ और पहली सृष्टि में ऊंचीनीची पृथ्वी में पुरों व ग्रामोंका विभाग नहीं विद्यमान था ॥ ४० ॥ और न

ला ॥ समाञ्चकुरुसर्वत्र मान्त्वन्धर्मभृतांवर ॥ ३६ ॥ यथावैस्यन्दमानाहि क्षीरंसर्वत्रभावये ॥ ३७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततउच्चाटयामास शिलाजालानिसर्वशः ॥ धनुःकोट्याततोवैन्यस्तेनशैलाविपाटिताः ॥ ३८ ॥ मन्वन्तरेषुचान्येषु विषमासीद्वसुन्धरा ॥ स्वभावेनाभवंस्तस्याः समानिविषमाणिच ॥ ३९ ॥ नहिपूर्वविसर्गेवै विषमेपृथिवीतले ॥ प्रविभागःपुराणांवा ग्रामाणांवाथविद्यते ॥ ४० ॥ नसस्यानिनगोरक्षा नकृषिर्नवणिक्पथः ॥ चाक्षुषस्यान्तरेपूर्वमासीदेतत्पुराकिल ॥ ४१ ॥ वैवस्वतेन्तरेचास्मिन्सर्वस्यैतस्यसम्भवः ॥ सकल्पयित्वावत्सन्तु चाक्षुषंमनुमीश्वरम् ॥ ४२ ॥ पृथुर्दुदोहसस्यानि स्वहस्तेपृथुविक्रमः ॥ सस्यानितेनदुग्धावै वैन्येनेयंवसुन्धरा ॥ ४३ ॥ वत्सस्सोमस्ततस्तस्या दोग्धाचापिबृहस्पतिः ॥ पात्राण्यासंश्चछन्दांसि गायत्र्यादीनिसर्वशः ॥ ४४ ॥ क्षीरमासीत्तदातेषां तपोब्रह्मचशाश्वतम् ॥ पुनस्ततोदेवगणैः पुरन्दरपुरोगमैः ॥ ४५ ॥ सौवर्णपात्रमादाय दुग्धेयंश्रूयतेमही ॥ वत्सस्तुमघवाह्यासीद्दोग्धा

अन्न होते थे न गौवों की रक्षा न खेती न रोजगार होताथा पहले चाक्षुष मन्वन्तरमें यह हुआ है ॥ ४१ ॥ और इस वैवस्वत मन्वन्तरमें इस सबकी उत्पत्ति हुई है व स्वामी चाक्षुष मनुको बछड़ा कल्पितकर उन ॥ ४२ ॥ बड़े पराक्रमी पृथुजीने अपने हाथमें अन्नोंको दुहा वेनके पुत्र उन पृथुजीने इस पृथ्वीसे अन्नोंको दुहा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर उस पृथ्वीका चन्द्रमा बछड़ा हुआ व दुहनेवाले बृहस्पति हुये और सब गायत्री आदिक छन्द पात्र हुये ॥ ४४ ॥ तब उनका तप व सनातन ब्रह्म दुग्ध हुआ

तदनन्तर फिर इन्द्रादि सुरसमूहों से ॥ ४५ ॥ सोने के पात्रको लेकर यह पृथ्वी दुहीगई ऐसा सुनाजाता है और इन्द्र बछडा हुये व दुहनेवाले सूर्य हुये ॥ ४६ ॥ व अमृतमय दुग्ध कहागया है उससे देवता वर्तमान होते हैं फिर पितरों से भी पृथ्वी दुहीगई है ऐसा सुनाजाता है ॥ ४७ ॥ उन्होंने चांदी के पात्रको लेकर तृप्ति के लिये स्वधाको दुहाहै व उन पितरोंके बछड़ा सूर्य के पुत्र प्रतापी यमराज जी हुये हैं ॥ ४८ ॥ व पितरों के दुहनेवाले भगवान् कालजी हुये हैं फिर सुनाजाता है कि दैत्यों से भी पृथ्वी दुहीगई है ॥ ४९ ॥ लोहेके पात्रको लेकर व सब सेनाको लेकर प्रह्लाद के पुत्र प्रतापी विरोचनजी उनके बछडा हुये ॥ ५० ॥ और दैत्यों के

चसविताभवत् ॥ ४६ ॥ क्षीरंसुधामयंप्रोक्तं वर्त्तन्तेतेनदेवताः ॥ पितृभिःश्रूयतेवापि पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ ४७ ॥ राजतंपात्रमादायतथातृप्त्यैस्वधामपि ॥ वैवस्वतोयमश्चासीत्तेषांवत्सःप्रतापवान् ॥ ४८ ॥ अन्तकश्चाभवद्दोग्धा पितॄणांभगवान्प्रभुः ॥ असुरैःश्रूयतेचापि पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ ४९ ॥ आयसंपात्रमादाय बलमादायसर्वशः ॥ वैरोचनस्तु प्राह्लादिस्तेषांवत्सःप्रतापवान् ॥ ५० ॥ सम्यग्द्विमूर्द्धादैत्यानां दोग्धातुदितिनन्दनः ॥ तेनतेमाययाद्यापि सर्वेमायाविनोऽसुराः ॥ ५१ ॥ वर्त्तयन्तिमहावीर्यास्तयातेषांपरंबलम् ॥ नागैश्चश्रूयतेदुग्धावत्संकृत्वातुतक्षकम् ॥ ५२ ॥ अलाबूपात्रमादाय विषंक्षीरंतदामही ॥ तेषांवैवासुकिर्दोग्धा काद्रवेयोमहायशाः ॥ ५३ ॥ नागानांवैमहादेवि सर्पाणाञ्चैवसर्वशः ॥ तेनवैवर्त्तयन्त्युग्रा महाकायाविषोल्वणाः ॥ ५४ ॥ तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः ॥ आमपात्रेपुनर्दुग्धात्वन्तर्द्धानमयंमही ॥ ५५ ॥ वत्संवैश्रवणंकृत्वा यक्षपुण्यजनैस्तथा ॥ दोग्धारजतनागस्तु चिन्तामणिसुतस्तु

भलीभांति दुहनेवाले दितिपुत्र द्विमूर्धा हुये उस कारण मायासे वे दैत्य आज भी मायावी हैं ॥ ५१ ॥ और वे बड़े पराक्रमी उस मायासे वर्तमान होते हैं और वही उनका बड़ा बल है व तक्षक को बछडा बनाकर नागों से पृथ्वी दुहीगई है ऐसा सुनाजाता है ॥ ५२ ॥ उस समय तुम्बी पात्रको लेकर पृथ्वी से विषरूपी दुग्ध दुहागया हे महादेवि ! उन नागों व सब सापों के बड़े यशस्वी काद्रवेय वासुकि दुहनेवाले हुये हैं और उससे वे बडे उग्र व महाशरीरवान् उग्र सर्प विषसे तीक्ष्ण वर्तमान होते हैं ॥ ५३ । ५४ ॥ व उस आहारवाले तथा उसी आचारवाले व उस पराक्रमवाले और उसीके आश्रयहैं फिर कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे पात्रमें पुण्य-

जन यक्षों ने पृथ्वी से अन्तर्द्धानमय दुग्धको दुहा है और जो चिन्तामणि के पुत्र थे वे रजत नाग दुहनेवाले हुये ॥ ५५ । ५६ ॥ जोकि यक्षात्मक व बड़े तेजस्वी व सुन्दर, ज्ञानी और बड़े तपस्वी थे उसी कारण बढ़े हुये कर्मों से वे यक्ष वर्तमान होते हैं ॥ ५७ ॥ फिर राक्षसों व पिशाचों से पृथ्वी दुहीगई उनके ब्रह्म संयुक्त कुबेर जी दुहनेवाले हुये हैं ॥ ५८ ॥ और बलवान् सुमाली बछड़ा हुआ व दुग्ध रक्त हुआ और कपाल के पात्रमें राक्षसों ने अन्तर्द्धानरूपी दुग्ध को दुहा ॥ ५९ ॥ उस दूध से सब राक्षस वर्तमान होते हैं और गंधर्वों व अप्सराओं के गणोंने कमलपत्रों में पृथ्वी को दुहा है ॥ ६० ॥ उस समय चित्ररथको बछड़ा बनाकर पृथ्वी दुहीगई है

यः ॥५६॥ यक्षात्मकोमहातेजा वशीज्ञानीमहातपाः॥ तेनतेवर्त्तयन्तीति यक्षाःकर्मभिरूर्जितैः॥ ५७॥ राक्षसैश्चपिशाचैश्च पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ ब्रह्मोपेतस्तुदोग्धावै तेषामासीत्कुबेरकः॥ ५८ ॥ वत्सस्सुमालीबलवान् क्षीरंरुधिरमेवच॥ कपालपात्रेदुग्धंवै ह्यन्तर्द्धानन्तुराक्षसैः ॥ ५९ ॥ तेनक्षीरेणरक्षांसि वर्त्तयन्तीतिसर्वशः ॥ पद्मपात्रेषुवैदुग्धा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥ ६० ॥ वत्संचित्ररथंकृत्वा श्रुतंदुग्धामहीतदा॥ तेषांवत्सोरुचिस्त्वासीद्दोग्धापुत्रोमुनेश्शुभे ॥ ६१ ॥ शैलैश्चश्रूयतेसर्वैः पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ तदौषधीर्मूर्त्तिमती रत्नानिविविधानिच ॥ ६२ ॥ वत्सस्तुहिमवांस्तेषां दोग्धा मेरुर्महागिरिः ॥ पात्रंशैलमयंत्वासीत्तेनशैलाःप्रतिष्ठिताः ॥ ६३ ॥ श्रूयतेवृक्षवीरुद्भिः पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ पालाशं पात्रमादाय दुग्धंछिन्नप्ररोहणम् ॥ ६४ ॥ दोग्धातुपुष्पितस्सालः प्लक्षोवत्सोयशस्विनि ॥ सर्वकामदुघादुग्धा पृथिवीभूतभाविनी ॥ ६५ ॥ सैषाधात्रीविधात्रीच धरणीचवसुन्धरा ॥ दुग्धाहितार्थंलोकानां पृथुनाइतिनःश्रुतम् ॥ ६६ ॥

ऐसा सुनागया है हे शुभे ! उनके दुहनेवाले मुनिके पुत्र रुचि हुये हैं ॥ ६१ ॥ फिर सुनाजाता है कि सब पर्वतों से पृथ्वी दुही गई है उस समय उन्होंने मूर्तिमती ओषधी व अनेक भांति के रत्नों को दुहा है, ॥ ६२ ॥ उनके हिमवान् बछड़ा हुये व सुमेरु महाचल दुहनेवाला हुआ व पर्वत का पात्र हुआ उसी से पर्वत प्रतिष्ठित हुये ॥ ६३ ॥ फिर सुनाजाता है कि वृक्षों व लताओं से पृथ्वी दुहीगई है पलाश के पात्रको लेकर कटेहुये का फिर जमना दुहागया ॥ ६४ ॥ व हे यशस्विनि ! पुष्पित सांखू दुहनेवाला हुआ और पकरिया बछड़ा हुआ और सब कामनाओं को देनेवाली व प्राणियों को पैदा करनेवाली पृथ्वी दुहीगई है ॥ ६५ ॥ वही यह धात्री, विधात्री,

धरणी व वसुन्धरा लोकोंके हितके लिये पृथुसे दुहीगई है ऐसा हमलोगोंने सुनाहै ॥६६॥ स्थावर जंगम समेत संसारके स्थापनके लिये यह समुद्र अन्त तक पृथ्वी जलोंसे घिरी थी ऐसी सुनी गईहै ॥६७॥ और पहले मधु व कैटभके रक्त व मांससे पृथ्वी डूबीथी व जिसलिये वसु (धन) को धारण करती है उसीसे वसुधा कही गई है ॥६८॥ जिसलिये वेन के पुत्र बुद्धिमान् पृथुराजा के समीप जाने से कन्यापन को प्राप्त हुई उसकारण पृथ्वी कही जाती है ॥ ६९ ॥ तदनन्तर पृथ्वी पृथु से बांटी गई व शोभित हुई और जो रत्नाकरमालिनी है वह रसवती पृथ्वी राजा से दुही गई ॥ ७० ॥ इस प्रभाववाला वह नृपोत्तम पृथु राजा हुआ है तदनन्तर उस राजा ने उस

चराचरस्यलोकस्य स्थापनायाद्भिरेवच ॥ आसीदियंसमुद्रान्ता मेदिनीतिपरिश्रुता ॥ ६७ ॥ मधुकैटभयो पूर्वं रक्तमांसपरिप्लुता ॥ वसुधारयतेयस्माद्वसुधातेनकीर्तिता ॥ ६८ ॥ यतोभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्यधीमतः ॥ दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यतेततः ॥ ६९ ॥ ततोविभक्तापृथुना शोभिताचवसुन्धरा ॥ दुग्धारसवतीराज्ञा यारत्नाकरमालिनी ॥ ७० ॥ एवंप्रभावोराजासीद्वैन्यस्सनृपसत्तमः ॥ ततस्सरञ्जयामास धर्मेणपृथिवीन्तदा ॥ ७१ ॥ ततोराजेतिशब्दोथ पृथिव्यांरञ्जनादभूत् ॥ सराज्यंप्राप्यवैन्यस्तु चिन्तयामासपार्थिवः ॥ ७२ ॥ पितामममह्यधर्मिष्ठो यज्ञाद्युच्छिन्नकारकः ॥ कस्मिन्स्थानेगतश्चासौ ज्ञेयंस्थानंकथम्मया ॥ ७३ ॥ कथंतस्यक्रियाकार्या हतस्यब्राह्मणैःकिल ॥ कथंगतिर्भवेत्तस्य यज्ञदानक्रियावताम् ॥ ७४ ॥ इत्येवंचिन्तयानस्य नारदोभ्याजगामह ॥ तस्यैवमासनंदत्त्वा प्रणिपत्याथपृष्टवान् ॥ ७५ ॥ भगवन्सर्वलोकस्य जानासित्वंशुभाशुभम् ॥ पितामहदुराचारो देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ ७६ ॥

समय धर्म से पृथ्वी को रंजन किया ॥ ७१ ॥ उसीकारण रंजन (अनुराग) से पृथ्वी में राजा ऐसा शब्द हुआ और वेन के पुत्र उस पृथु ने राज्य को पाकर चिन्तन किया ॥ ७२ ॥ कि मेरा अधर्मी पिता यज्ञादिकों को नष्ट करनेवाला था यह किस स्थान में गया है वह स्थान मुझसे किसप्रकार जानने योग्य है ॥ ७३ ॥ और ब्राह्मणों से मारे हुये उस पिता की क्रिया किसप्रकार करना चाहिये व उसकी यज्ञ दान कर्म वाले पुरुषों कीसी गति कैसे होवेगी ॥ ७४ ॥ इसीप्रकार उसको चिन्तन करते हुये नारदमुनि आगये उनको आसन देकर व प्रणाम कर पृथु ने पूंछा ॥ ७५ ॥ कि हे भगवन् ! तुम सब संसार के शुभ अशुभ को जानते हो मेरा दुराचारी

पिता देवताओं व ब्राह्मणों का निन्दक था ॥ ७६ ॥ व अपनेही कर्म से ब्राह्मणों करके माराहुआ वह परलोक को प्राप्त हुआ और शुभ या अशुभ किस स्थान में पिता गया है ॥ ७७ ॥ तदनन्तर नारदजी ने दिव्यदृष्टि से देखकर कहा कि हे महाभुज, राजन् ! सुनिये जहां कि तुम्हारा पिता स्थित है ॥ ७८ ॥ कि जहा जल व वृक्षों से रहित मरुनामक देश है उस भयंकर देश में मनुष्यों में उत्तम तुम्हारा पिता ॥ ७९ ॥ म्लेच्छों के मध्य में उत्पन्न होकर यक्ष्मा व कुष्ठ से संयुत है और म्लेच्छों का उच्छिष्टभोजी वह कीड़ों व व्रणों (घावों) से घिरा है ॥ ८० ॥ उन महात्मा नारदजी के उस वचन को सुनकर हाहाकार कर तदनन्तर मूर्च्छित होते हुये पृथु

स्वकर्मणाहतोविप्रैः परलोकमवाप्तवान् ॥ कस्मिन्स्थानेगतस्स्नातश्शुभेवाप्यशुभेपिवा ॥ ७७ ॥ ततोब्रवीन्नारदस्तु ज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ शृणुराजन्महाबाहो यत्रातिष्ठतितेपिता ॥ ७८ ॥ यत्रदेशोमरुर्नाम जलवृक्षविवर्जितः ॥ तत्रदेशेमहारौद्रे जनकस्तेनरोत्तमः ॥ ७९ ॥ म्लेच्छमध्येसमुत्पन्नोयक्ष्मकुष्ठसमन्वितः ॥ उच्छिष्टभोजीम्लेच्छानां कृमिभिस्संवृतोव्रणैः ॥ ८० ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य नारदस्यमहात्मनः ॥ हाहाकारंततःकृत्वा मूर्च्छितोनिपपातह ॥ ८१ ॥ चिन्तयामासदुःखार्तः कथंकार्यंमयाधुना ॥ इत्येवंचिन्तयानस्य मतिर्जातामहात्मनः ॥ ८२ ॥ पुत्रस्सकथ्यते लोके पितरंत्रायतेतुयः ॥ सकथन्तुमयाताताः पापान्मुक्तोभविष्यति ॥ ८३ ॥ एवंसञ्चिन्त्यसततो नारदंपृष्टवान्पुनः ॥ भगवन्कथितंसर्वं पितुर्ममविचेष्टितम् ॥ ८४ ॥ केनतस्यभवेन्मुक्तिः कर्मणाद्विजसत्तम ॥ व्रतैर्दानैस्तपोभिर्वा तीर्थानां यात्रयाथवा ॥ ८५ ॥ नारदउवाच ॥ गच्छराजन्प्रधानानितीर्थानिमनुजेश्वर ॥ पितातेषुसस्नानेयस्तस्माद्राजन्मरुस्थ

जी गिर पड़े ॥ ८१ ॥ व दुःख से विकल पृथु ने चिन्तन किया कि इससमय मुझको किसप्रकार करना चाहिये इसप्रकार विचारते हुये उन पृथु महात्मा के यह बुद्धि पैदा हुई ॥ ८२ ॥ कि संसार में वह पुत्र कहाजाता है जो कि पिता की रक्षा करता है और वह पिता मुझ से किसप्रकार पातक से मुक्त होगा ॥ ८३ ॥ इस प्रकार विचारकर तदनन्तर उन्हों ने फिर नारदजी से पूछा कि हे भगवन् ! मेरे पिता का सब कर्म कहा गया ॥ ८४ ॥ हे द्विजोत्तम ! व्रतों से या दानों से अथवा तपों से व तीर्थों की यात्रा से उसकी किस कर्म से मुक्ति होगी ॥ ८५ ॥ नारदजी बोले कि हे मनुजेश्वर, राजन् ! मुख्य तीर्थों को जाइये व हे राजन् ! उन तीर्थों

में उस मरुस्थल से पिता लाने योग्यहै ॥ ८६ ॥ हे प्रभो ! जहां प्रभाव समेत देवता व निर्मल तीर्थ हैं हे महाराज ! वहां जाते हुये तुम तीर्थयात्रा करो ॥ ८७ ॥ यादि इसप्रकार होवै तो किसीभांति तुम्हारे पिता का मोक्ष होगा महात्मा नारदजी के वचन को सुनकर तदनन्तर ॥ ८८ ॥ पृथुजी मंत्री के ऊपर अपने राज्य का भार धर कर चले गये और मरुभूमि को जाकर उन पृथु ने म्लेच्छों के बीच में बड़े कीटरोग से व राजरोग से घिरे हुये पिता को देखा वहींपर कोसभरतक स्थान शून्य व मनुष्यों से रहित था ॥ ८९ । ९० ॥ ऐसा देखकर वह राजा संतप्त होकर वचन बोला कि हे म्लेच्छ ! हे रोगयुक्त पुरुष ! मैं तुमको अपने घरको ले चलूं ॥ ९१ ॥

लात ॥ ८६ ॥ यत्रदेवास्सप्रभावास्तीर्थानिविमलानिच ॥ तत्रगच्छन्महाराज तीर्थयात्रांकुरुप्रभो ॥ ८७ ॥ एवंयदिकथं चिद्वा मोक्षस्तेभवितापितुः ॥ ततःश्रुत्वातुवचनं नारदस्यमहात्मनः ॥ ८८ ॥ सचिवेभारमाधायस्वराज्यस्यजगामह ॥ सगत्वामरुभूमिन्तुम्लेच्छमध्येददर्शह ॥ ८९ ॥ कृमिरोगेणमहता क्षयेणचसमावृतम् ॥ गव्यूतिमात्रंतत्रैव शून्यंमानुष वर्जितम् ॥ ९० ॥ एवंदृष्ट्वासराजातु संतप्तोवाक्यमब्रवीत् ॥ हेम्लेच्छरोगपुरुषस्वगृहंत्वान्नयाम्यहम् ॥ ९१ ॥ तत्राहंत्वांसु निरुजं करोमियदिमन्यसे ॥ ज्ञात्वेतिसर्वेतेम्लेच्छाः पुरुषन्तंदयापरम् ॥ ९२ ॥ ऊचुःप्रणतसर्वाङ्गाः शीघ्रन्नयजगत्पते ॥ अस्मद्भाग्यवशान्नाथ त्वमेवात्रसमागतः ॥ ९३ ॥ दुर्गन्धोपहतालोकास्त्वयानाथसुखीकृताः ॥ ततआनीयपुरुषाञ्छिबिका वाहनोचितान् ॥ ९४ ॥ दत्त्वाशुल्कञ्चद्विगुणं सतीर्थेनयतामिति ॥ ततःश्रुत्वातुवचनं तस्यराज्ञोदयायुतम् ॥ ९५ ॥ प्रापु स्तीर्थान्यनेकानि केदाराद्यानिकोटिशः ॥ यत्रयत्रावगच्छेच्च सराजावेनसंयुतः ॥ ९६ ॥ तत्रतत्रैवतीर्थानामाक्रन्दःश्रू

यदि मानो तो वहां मैं तुमको निरोग करूंगा उस पुरुष (पृथु जी) को दया में तत्पर जानकर उन सब म्लेच्छों ने ॥ ९२ ॥ सब अंगों को झुकाकर कहा कि हे जगदीश ! शीघ्रही लेजाइये हे नाथ ! हमलोगों के भाग्यवश से तुम यहां आये हो ॥ ९३ ॥ हे नाथ ! दुर्गन्धि से नष्ट मनुष्य तुमलोगों से सुखी किये गये तदनन्तर पालकी के लेजाने के योग्य पुरुषों को लाकर ॥ ९४ ॥ व दुगुना मूल्य देकर उन पृथुजी ने कहा कि तीर्थ में ले चलिये तदनन्तर उस राजा के दयासंयुत वचन को सुनकर ॥ ९५ ॥ वे केदारादिक करोड़ों तीर्थों में प्राप्त हुये जहां जहां वेन समेत वह राजा जाता था ॥ ९६ ॥ वहां वहां तीर्थों का बड़ा भारी शब्द सुन पड़ता था

कि हमलोगों के नाश के लिये यह कौन शत्रु आता है ॥ ९७ ॥ इससमय हमलोग कहां जावैं यह बार २ चिन्ता होती थी और उसके दर्शन से भी हाहाकार कर ॥ ९८ ॥ तीर्थ भगते थे व उसी क्षण देवता भग जाते थे इसप्रकार राजापृथु ने तीन वर्ष तक तीर्थयात्रा किया ॥ ९९ ॥ व उसकी मुक्ति न देखपड़ी तब राजा बड़े शोच को प्राप्त हुये तदनन्तर प्रेरणा किये हुये सेवक फिर कहते थे कि महाप्रभावान् कुरुक्षेत्र में पापकी मुक्ति होगी तदनन्तर हे प्रिये ! कन्धे पै पालकी को लेकर कुरुक्षेत्र में गये ॥ २०० । २०१ ॥ और वहां लेजाकर स्थाणुतीर्थ में उतारकर वे चले गये तदनन्तर दुपहर में वह राजा आदर से स्नान की इच्छा करता भया ॥ २ ॥

यतेमहान् ॥ कएषरिपुरायाति अस्माकंनाशहेतवे ॥ ९७ ॥ अधुनाक्वगमिष्याम इतिचिन्तापुनःपुनः ॥ दर्शनेनापित स्यैव हाहाकारंविधायवै ॥ ९८ ॥ पलायन्तेचतीर्थानि देवानश्यन्तितत्क्षणात् ॥ एवंवर्षत्रयंराजा तीर्थयात्राञ्चकारवै॥ ९९ ॥ नतस्यमुक्तिर्ददृशे ततश्शोकमगात्परम् ॥ ततस्तुप्रेरिताभृत्याः कुरुक्षेत्रेमहाप्रभे ॥ २०० ॥ कथयन्तिपुनस्त त्र पापमुक्तिर्भवेत्ततः ॥ गृहीत्वाशिबिकांस्कन्धे कुरुक्षेत्रेगताःप्रिये ॥ १ ॥ तत्रनीत्वास्थाणुतीर्थे अवतार्यचतेगताः ॥ त तस्सराजामध्याह्ने चिकीर्षुस्स्नानमादरात् ॥ २ ॥ तस्यैवतुपितुस्तत्र तथादानानिषोडश ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तथादित्सुः श्रद्धावान्भावतत्परः ॥ ३ ॥ ततोवायुश्चान्तरिक्ष इदंवचनमब्रवीत् ॥ मातातसाहसंकुर्यास्तीर्थंरक्षप्रयत्नतः ॥ ४ ॥ अ यंशापेनघोरेण समन्तात्परिवेष्टितः ॥ वेदनिन्दासमाचारो ब्रह्महत्याशतैर्युतः ॥ ५ ॥ सोयंपापोदुराचारस्तीर्थंनाशन्न यिष्यति ॥ मातीर्थंन्नाशयविभो महदेनोभविष्यति ॥ ६ ॥ एतद्वायोर्वचःश्रुत्वा दुःखेनमहतार्दितः ॥ उवाचशोकसन्त

और उसने उसी पिता को स्नान कराने की इच्छा किया वैसेही श्रद्धावान् व भक्तिमें तत्पर उन पृथुजीने ब्राह्मणों के लिये सोलह दानों को देनेकी इच्छा किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर आकाश में पवन ने इस वचन को कहा कि हे तात ! साहस मत करो वरन बड़े यत्न से तीर्थ की रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥ यह भयङ्कर शाप से सब ओर घिरा है और वेदनिन्दा करनेवाला व सैकड़ों ब्रह्महत्याओं से संयुत है ॥ ५ ॥ सो यह दुष्ट आचरणवाला पापी तीर्थ को नाश करैगा हे विभो ! तीर्थ को मत नाश

करो क्योंकि बड़ाभारी पाप होगा ॥ ६ ॥ पवन के इस वचन को सुनकर बड़े दुःख से विकल व पिता के दुःख से दुःखित होकर शोक से संतप्त पृथु ने कहा ॥ ७ ॥ व भुजाओं को उठाकर बार २ हे महादेव ! ऐसा उच्चस्वर से कहा कि यह बहुतही घोर पातक से घिरा है ॥ ८ ॥ कि जो इस तीर्थ से भी शुद्धि नहीं कीजासक्ती है तो पिता के प्रयोजन में लगाहुआ मैं प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ९ ॥ इसप्रकार उस राजा के वचन को सुनकर बडी भारी दयाकर फिर आकाशचारी प्राणियों ने आकाश से उपजी हुई वाणी को कहा ॥ १० ॥ हे नृपश्रेष्ठ, राजन् ! शोचको छोड़कर वचन को सुनिये कि जिससे तुम्हारे इस पिता का बड़ाभारी पातक नाश होगा ॥ ११ ॥

प्तः पितुर्दुःखेनदुःखितः ॥ ७ ॥ महादेवेतिचुक्रोश ऊर्द्ध्वबाहुःपुनःपुनः ॥ एषघोरेणपापेन अतीवपरिवेष्टितः ॥ ८ ॥ यद नेनापितीर्थेन शुद्धिःकर्तुन्नशक्यते ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्येहं पितुरर्थेपरायणः ॥ ९ ॥ एवंतस्यवचःश्रुत्वा दयांकृत्वा महीयसीम् ॥ अन्तरिक्षभवांवाचं खेचराःपुनरब्रुवन् ॥ १० ॥ भोभोराजन्नृपश्रेष्ठ त्यक्त्वाशोकंवचःशृणु ॥ येनतेजन कस्यास्य भवेत्पापक्षयोमहान् ॥ ११ ॥ अस्तिक्षेत्रंमहासिद्धं प्रभासमितिविश्रुतम् ॥ सर्वपापप्रशमनं महापातकना शनम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मतत्त्वंहरेस्तत्त्वं रुद्रतत्त्वंतृतीयकम् ॥ तस्मिन्नेवमहातीर्थे प्रभासेशङ्करप्रिये ॥ १३ ॥ शाक्तेयंयदिवा चान्द्रं सौरंसारस्वतंतथा ॥ आग्नेयंवारुणञ्चापि स्मृतंक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ १४ ॥ ब्रह्माण्डेयानितीर्थानि पुराक्षेत्राणिया नितु ॥ प्रभासमागमिष्यन्ति सम्प्राप्तेतुकलौयुगे ॥ १५ ॥ अष्टौकोटिसहस्राणि अष्टौकोटिशतानिच ॥ क्षेत्रंरक्षन्तितत्र स्थाः प्रभासंशाङ्करागणाः ॥ १६ ॥ इयंसरस्वतीपुण्या सर्वदैवहिविद्यते ॥ पञ्चस्रोताप्रभासेतु दुष्प्राप्यात्रिदशैरपि ॥ १७ ॥

सब पापोंको नाश करनेवाला व महापातकों को विनाशनेवाला महासिद्ध प्रभास ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ १२ ॥ उसी शंकरजीको प्यारे प्रभास महातीर्थ में ब्रह्मतत्त्व, विष्णुतत्त्व व तीसरा शिवतत्त्व है ॥ १३ ॥ शक्ति का व चन्द्रमा का अथवा सूर्य का या सरस्वती जीका तथा अग्नि का वरुणका भी वह अतिउत्तमक्षेत्र कहागया है ॥ १४ ॥ पुरातन समय ब्रह्माण्ड में जो तीर्थ व जो क्षेत्र थे वे कलियुग प्राप्त होने पर प्रभास को आवैंगे ॥ १५ ॥ आठकरोड हज़ार व आठ सौ करोड शिवजी के गण वहा स्थित होकर प्रभासक्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥ १६ ॥ व देवताओं से भी दुर्लभ पांच सोतोंवाली यह पवित्र सरस्वती नदी सदैवही विद्यमान रहती है ॥ १७ ॥

उसका ... व स्रोत व न्यंकुमतीके जो तटहैं उसके मध्यमें गोष्पद ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ स्थितहै ॥ १८ ॥ वहां प्रेतों को मुक्ति देनेवाले प्रेतशिला के मध्य में जहां कि पुरातन से अट्ठाईस करोड़ प्रेत मुक्त हुये हैं ॥ १९ ॥ जो पापियों को मुक्तिदायक तीर्थ है व जो आदिरुद्रगया कही गई है वही इस कलियुग में गोष्पद नामक तीर्थ में प्रसिद्ध हुआ ॥ २० ॥ जब क्षीरसमुद्र मथने से लोकमातृका निकली हैं तब वे देवताओंसमेत तीर्थ के समीप आई ॥ २१ ॥ वहां नन्दा का चरण शिला पै डूबगया और खुरसे चिह्नित वैसेही घुटनूसे चिह्नित शिला को देखकर ॥ २२ ॥ विस्मित होते हुये सब देवताओं ने नन्दिनी गऊसे पूंछा कि

तस्मात्स्रोतो न्यङ्कुमत्यास्तटानिच ॥ तस्यमध्येस्थितंतीर्थं गोष्पदेतिचविश्रुतम् ॥ १८ ॥ तत्रप्रेतशिलामध्ये प्रेतानांमुक्तिदायके ॥ यत्रप्रेताःपुरामुक्ता अष्टाविंशतिकोटयः ॥ १९ ॥ पापिनांमुक्तिदंतीर्थमाद्यारुद्रगयास्मृता ॥ तदस्मिन्गोष्पदन्नाम कलौख्यातंधरातले ॥ २० ॥ यदाक्षीरोदमथनान्निस्सृतालोकमातरः ॥ तदादेवैस्समन्तास्तु आगतास्तीर्थसन्निधौ ॥२१ ॥ पदंतत्रनिमग्नञ्च नन्दायाश्चशिलातले ॥ शिलांखुराङ्कितान्दृष्ट्वा जानुदेशाङ्कितान्त था ॥ २२ ॥ विस्मितास्सर्वदेवावै पप्रच्छुर्गाञ्चनन्दिनीम् ॥ किमेतद्दृश्यतेदेवि पदंप्रेतशिलातले ॥ २३ ॥ क थन्तुखेदस्सञ्जातस्त्वस्माकंस्खलनंकथम् ॥ नन्दिन्युवाच ॥ इदंममपदन्देवाः शिलासंस्थंविराजते ॥ २४ ॥ गग नाङ्गणभूमिस्थं चन्द्रबिम्बमिवापरम् ॥ अद्यप्रभृतिभोदेवास्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ २५ ॥ गोष्पदन्नामविख्यातं लोकेख्या तिंगमिष्यति ॥ अत्रागत्यनरोयस्तु स्नानंश्राद्धंकरिष्यति ॥ २६ ॥ गयासप्तगुणंतस्य फलन्देवाभविष्यति ॥ नवारोन

हे देवि ! प्रेतशिलातलपै यह पदचिह्न क्यों देख पड़ता है ॥ २३ ॥ और कैसे खेद हुआ व हमलोगों का स्खलन (लरखराना) कैसे हुआ नन्दिनी बोली कि हे देवताओ ! शिला में स्थित यह मेरा पद विराजित है ॥ २४ ॥ आकाश के आंगनकी भूमि में स्थित मानो दूसरा चन्द्रबिम्ब है हे देवताओ ! आजसे लगाकर चराचर समेत त्रिलोक में ॥ २५ ॥ गोष्पद नामसे प्रसिद्ध यह प्रसिद्धिको प्राप्त होगा और यहां आकर जो मनुष्य स्नान व श्राद्ध करैगा ॥ २६ ॥ हे देवताओ ! उसको गयासे

सतगुना फल होगा न दिन, न न[illegible] न समय वहां कारण है ॥ २७ ॥ वरन जबही तीर्थ देखाजावै तभी हज़ार पर्व होते हैं अथवा पर्व को चाहै तो हे पार्वति ! उन पर्वों को मुझसे सुनिये ॥ २[illegible] दोनों विषुवायन (बराबर दिन रात्रिवाले समय) में और साधारण सूर्यकी संक्रांति में व अमावस, अष्टका तथा विशेषकर कृष्णपक्ष में ॥ २९ ॥ और आर्द्रा[illegible] रोहिणी व द्रव्य और ब्राह्मणों के समागम में और गजच्छाया व व्यतीपात तथा वैधृतियोग व चन्द्रवार में ॥ ३० ॥ और वैशाख की तीज व कातिक की[illegible] तथा माघकी पौर्णमासी में व भादौं की तेरसि ॥ ३१ ॥ ये तिथियां युगादि कही गई हैं उससमय में और फिर मन्वन्तरादि

चनचत्रं नकालस्त[illegible]रणम् ॥ २७ ॥ यदैवदृश्यतेतीर्थं तदापर्वसहस्रकम् ॥ अथवापर्वमाकाङ्क्षेत्तानिमेशृणुपार्वति ॥ २८ ॥ अय[illegible]वेयुग्मे सामान्येचार्कसंक्रमे ॥ अमावास्याष्टकायाञ्च कृष्णपक्षेविशेषतः ॥ २९ ॥ आर्द्रामघारोहिणीद्रव्य[illegible]सङ्गमे ॥ गजच्छायाव्यतीपाते वैधृतौचन्द्रवासरे ॥ ३० ॥ वैशाखस्यतृतीयायां नवम्यांकार्त्तिकस्यतु ॥ पञ्चद[illegible]न्तुमाघस्य नभस्येचत्रयोदशी ॥ ३१ ॥ युगादयस्स्मृताह्येतास्तस्मिन्कालेचवापुनः ॥ मन्वन्तरादौवाश्वे तत्र[illegible]विजानता ॥ ३२ ॥ अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशीकार्त्तिकीतथा ॥ तृतीयामाघमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ॥ ३[illegible] फाल्गुनस्यत्वमावस्या पञ्चम्येकादशीतथा ॥ आषाढस्यापिदशमी माघमासस्यसप्तमी ॥ ३४ ॥ श्रावणस्य[illegible] कृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैव ज्येष्ठपञ्चदशीतथा ॥ ३५ ॥ मन्वन्तरादयश्चैव दत्तस्याक्षय[illegible]काः ॥ वैशाखस्यतृतीयायां कृष्णायांफाल्गुनस्यच ॥ ३६ ॥ पञ्चमीचेषमासस्य तस्यैवसप्तमीतिथिः ॥

दिनमें वहां वि[illegible]र जानते हुये पुरुष को श्राद्ध करना चाहिये ॥ ३२ ॥ कुँवार के शुक्लपक्षकी नवमी, द्वादशी व कार्त्तिकी पौर्णमासी और माघ महीने की व भादौं कीतीज ॥ [illegible] और फागुन की अमावस, पंचमी, एकादशी व आषाढ़की भी दशमी और माघ महीने की सप्तमी ॥ ३४ ॥ व श्रावण के कृष्णपक्षकी अष्टमी और आषाढ़ी पौर्णमासी व कार्त्तिकी, फाल्गुनी व जेठ की पौर्णमासी ॥ ३५ ॥ ये मन्वन्तरादि तिथियां दिये हुये को अक्षय करनेवाली हैं और वैशाख की तीज में व फागुन

के कृष्ण दौज में ॥ ३६ ॥ व कुँवार की पंचमी व उसी की सप्तमी तिथि तथा माघ में शुक्ल पक्ष की तेरसि व कातिककी सप्तमी ॥ ३७ ॥ व अगहन की नमी ये सत्तर्वां कल्पादि में प्राप्त हैं कल्पादि तिथिमें श्राद्ध करने पर कल्प की तृप्ति व स्वधा होती है ॥ ३८ ॥ ऐसाही देवताओं से कहकर वह आनन्दरूपिणी ननिनी शीघ्र अन्तर्द्धान होगई जैसे कि पवन से ताड़ित दीपक बुझ जाताहै ॥ ३९ ॥ इस कौतुक को देखकर इन्द्रसमेत सब देवता और महर्षियों व देवर्षियों ने इस पुराणवाले श्लोक को गाया ॥ ४० ॥ कि तीर्थके माहात्म्य व नन्दा के तपस्या के बल को आश्चर्य है क्योंकि यहा एकवार श्राद्ध देने से गया श्राद्ध के समान

शुक्लात्रयोदशीमाघे कार्त्तिकस्यतुसप्तमी ॥ ३७ ॥ नवमीमार्गशीर्षस्य सप्तैताःकल्पमादिगाः ॥ कल्पतृप्तिर्भवेच्छ्राद्धे कल्पादिकृतेस्वधा ॥ ३८ ॥ इत्येवमुक्त्वासानन्दा देवानांप्रतिनन्दिनी ॥ अन्तर्द्धानंजगामाशु दीपोवाताहतोयथा ॥ ३९ ॥ तन्तुकौतुकन्दृष्ट्वा सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ महर्षयोदेवर्षयः श्लोकंपौराणिकंजगुः ॥ ४० ॥ अहोतीर्थस्य माहात्म्यं नन्दायास्तपसोबलम् ॥ सकृच्छ्राद्धेनदत्तेन गयाश्राद्धसमंफलम् ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वाततोदेवाश्चक्रुःश्राद्धादिकाःक्रियाः ॥ यथोक्तंफलमापुस्ते नन्दिन्यापूर्वभाषितम् ॥ ४२ ॥ इत्थंत्वमपिराजेन्द्र गच्छशीघ्रन्तुगोष्पदम् ॥ तत्रश्राद्धादिकं कृत्वा लप्स्यसेफलमीप्सितम् ॥ ४३ ॥ अयन्तेजनकोराजन् पापिनांप्रवरःस्मृतः ॥ नान्यैस्तीर्थशतैश्शक्यः प्रोद्धर्तुंगोष्पदेना ॥ ४४ ॥ तस्माद्व्रजमहाराज माकार्षीस्त्वंविलम्बकम् ॥ एवंश्रुत्वातदाराजा प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ ४५ ॥ तत्रस्थितान्विप्रांस्तीर्थमाहात्म्यकोविदान् ॥ अग्रेकृत्वामहाराजो ययौन्यङ्कुमतीन्नदीम् ॥ ४६ ॥ तेश

फल होता है ॥ ४१ ॥ ऐसा कह तदनन्तर देवताओं ने श्राद्धादिक कर्मोंको किया और उन्होंने नंदिनी से पहले कहेहुये यथोक्त फल को पाया ॥ ४२ ॥ हे नृपेन्द्र ! इसप्रकार तुम भी शीघ्रही उस गोष्पदतीर्थ को जाइये वहां श्राद्धादिक कर चाहेहुये फल को पावोगे ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! यह तुम्हारा पिता पापियों में श्रेष्ठ कहागया है इस से विना गोष्पद के अन्य सैकड़ों तीर्थों से भी नहीं उधारा जासक्ता है ॥ ४४ ॥ इसलिये हे महाराज ! आप जाइये विलंब मत कीजिये ऐसा सुनकर उससमय पृथुराजा प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ४५ ॥ और उस स्थान में टिकेहुये तीर्थ के माहात्म्य को जाननेवाले ब्राह्मणों को आगे कर महाराजा पृथु न्यंकुमती नदी

के समीप गये ॥ ४६ ॥ और उन [illegible] ने प्रेतशिला में स्थित पदरूप तीर्थ को राजा को दिखाया व उस निर्मल तीर्थको देखकर विस्मय से प्रफुल्लितलोचनों-
वाले राजापृथु ने ॥ ४७ ॥ यज्ञ की [illegible] के लिये कुण्डों व वेदियों को किया तदनन्तर बहुत दक्षिणावाला यज्ञ विधिपूर्वक प्रारम्भ हुआ ॥ ४८ ॥ और अग्नि के
समान प्रभाववाले उसके पितर प्र[illegible] तदनन्तर श्राद्धवाले यज्ञों से बड़े ऐश्वर्यवाले श्राद्ध को ग्रहण कर ॥ ४९ ॥ उसके उपरान्त प्रसन्न होते हुये पितर नृपश्रेष्ठ
से वचन बोले कि हे राजन्! ध[illegible] व पुण्यरूप हो और हम तीनों धन्य हैं ॥ ५० ॥ और गोष्पद के तीर्थ श्राद्ध से हमलोग आप से उधारे गये ऐसा कहकर

ज्ञोदर्शितन्तीर्थं पद[illegible]शिलास्थितम् ॥ तद्दृष्ट्वाविमलंतीर्थं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ४७ ॥ चकारकुण्डान्वेदींश्च
मण्डपान्यज्ञसिद्ध[illegible] ततोयज्ञस्समारब्धो विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ ४८ ॥ प्रत्यक्षंपितरस्तस्य बभूवुर्ज्वलनप्रभाः ॥
ततःश्राद्धंसमादा[illegible]द्धैर्यज्ञैर्महोदयम् ॥ ४९ ॥ ततोब्रुवन्वचस्तुष्टाः पितरोराजसत्तमम् ॥ धन्योसिराजन्पुण्योसि व
यंधन्यतरास्त्रय[illegible]० ॥ यदस्यतीर्थश्राद्धेन उद्धृताभवतावयम् ॥ एवमुक्त्वाततस्सर्वे वेनेनसहितास्तदा ॥ विमानवर
संस्थाश्च जग्मु[illegible]त्रिदशालयम् ॥ ५१ ॥ गच्छन्नुवाचवेनस्तं राजानंपृथुवक्षसम् ॥ ५२ ॥ राजञ्जन्मानिचत्वारि अ
भवंश्चान्यजन्[illegible] ॥ कुष्ठीपापोदुराचारश्चाण्डालोच्छिष्टभुक्तथा ॥ ५३ ॥ सोहंपापविनिर्मुक्तो गच्छामित्रिदशालय
म्[illegible]महाभाग राज्यंभुङ्क्ष्वचिरायच ॥ ५४ ॥ कृतन्तेसफलंकार्यं पुत्रेणाक्रियतेचयत् ॥ एवंश्रुत्वातदाराजा मु
मु[illegible] ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणान्हर्षयामास दानैर्भूकाञ्चनादिभिः ॥ नतदस्तिजगत्यस्मिंस्तत्रयन्नददौनृपः ॥ ५६ ॥

[illegible]हां ति[illegible]व पितर उससमय उत्तम विमान पै बैठकर स्वर्गको चले गये ॥ ५१ ॥ और जातेहुये वेन उन स्थूल वक्षःस्थलवाले पृथुराजासे बोले ॥ ५२ ॥ कि
तदन[illegible] ॥ और फ[illegible]चार जन्महुये कि कुष्ठी, पापी व दुराचारी और उच्छिष्ट भोजन करनेवाला चाण्डाल हुआहूं ॥ ५३ ॥ वही मैं पापसे छूटकर स्वर्गको जाता हूं
हे [illegible] व कार्त्ति[illegible]र! तुम जावो व बहुत दिनोंतक राज्यको भोग करो ॥ ५४ ॥ जो पुत्र से कियाजाता है उस कार्य को तुमने सफल किया ऐसा सुनकर उस
प्रसन्न हुआ ॥ ५५ ॥ व उन्होंने पृथ्वी व सुवर्णादिक दानोंसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न कराया इस संसारमें वह वस्तु नहीं है कि जिसको राजा

पू... कृष्ण ...तीज में ॥ ...य का प्रभाव व पितरों का प्रत्यक्ष दर्शन देखकर वह राजा ऐसा कर अपने स्थानको आया ॥ ५७ ॥ और सब पृथ्वी को भोगकर वे पृथुजी ...नमी ये स... कल ... ५८ ॥ ऐसे प्रभाववाला वह पापनाशक प्रभासक्षेत्र है जिसमें तीर्थ आते हैं व करोड़ों देवता स्थितहैं ॥ ५९ ॥ प्रभासक्षेत्रको प्राप्त होकर जो ... ...नी शीघ्र... तर्द्धा ... वह हाथ में स्थित जलको छोड़कर कूप (घटखण्ड) की रेणु को चाटता है ॥ ६० ॥ व हे प्रिये ! पितरों ने पुराण की कथा को कहा कि यदि पु... गयावाले ... गया को जाने के लिये न समर्थ होवै ॥ ६१ ॥ तो यत्न से उत्तम गोष्पदतीर्थ को जाना चाहिये व कन्द, मूल, फल, पीना व जलसे ॥ ६२ ॥ [illegible]

दृष्ट्वा प्रभावं तीर्थस्य प्रत्यक्षं पितृदर्शनम् ॥ एवंकृत्वासराजातु स्वकीयंस्थानमाययौ ॥ ५७॥ भुक्त्वाभूमिन्तुसकलां प्रेतस्वर्गंसमवान् ॥ ५८ ॥ एवंप्रभावंतत्क्षेत्रं प्रभासंपापनाशनम् ॥ यस्मिन्नायान्तितीर्थानि देवास्तिष्ठन्तिकोटिशः ॥ ५९ ॥ सत्क्षेत्रमासाद्य योन्यतीर्थंहिमार्गते ॥ सकरस्थंसमुत्सृज्य कूपरेणुंसमुल्लिहेत ॥ ६० ॥ अब्रुवन्पितरश्चैव करांपौर कीम्प्रिये ॥ गयांगन्तुन्नशक्नोति यदिपुत्रःकथञ्चन ॥ ६१ ॥ तदायत्नेनगन्तव्यं गोष्पदन्तीर्थमुत्तमम् ॥ कन्दमूलैर्वापि पिण्याकैरुदकैस्तथा ॥ ६२ ॥ अपिनस्सकुलेभूयाद्योत्रश्राद्धंप्रदास्यति ॥ तत्रस्नात्वाप्रयत्नेन ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ६३ ॥ आमन्त्र्यविधिवच्छ्राद्धे भोजयित्वाप्रयत्नतः ॥ पितुःश्राद्धञ्चकर्त्तव्यं पितॄणांतृप्तिमिच्छता ॥ ६४ ॥ नतिथिर्नचनक्षत्रं पर्वमासादिकन्नहि ॥ सर्वदातत्रगन्तव्यं श्रद्धायुक्तेनचेतसा ॥ ६५ ॥ नकालनियमस्तत्र प्रमाणंनयतः ॥ तत्राक्षयतृतीयायां दुर्लभंगमनंप्रिये ॥ ६६ ॥ कार्त्तिकेमाघसप्तम्यां पद्मकेवाथपर्वं

जो यहां श्राद्ध देवै वह हमलो... वंश में होवै वहां स्नानकर बड़े यत्न से वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को ॥ ६३ ॥ बुलाकर विधिपूर्वक श्राद्ध में बड़े यत्न से भोजन कराकर पितरों की तृप्तिवा... करते हुये पुरुषको पिता का श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६४ ॥ न तिथि, न नक्षत्र और न पर्व, मासादिक होवै वरन सदैव वहां श्रद्धायुक्त चित्त करके जाना चाहिये ॥ ६५ ॥ वहां समय का नियम नहीं है क्योंकि दर्शन प्रमाणहै व हे प्रिये ! वहां अक्षय तीज में गमन दुर्लभ है ॥ ६६ ॥ व कातिक

दो॰। है उत्तम माहात्म्ययुत नारायणगृह नाम। दोसौ सत्तानवे महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गोष्पद से दक्षिण भाग में समुद्र के उत्तम किनारे पै उत्तम नारायणगृहके समीप जावै ॥ १ ॥ समस्त पातकों को नाशनेवाले न्यङ्कुमती के समीपही स्थित उस स्थान में कल्पावधि तक टिकनेवाले विष्णुजी आपही स्थित हैं ॥ २ ॥ हे देवि ! वे विष्णुजी सतयुग व द्वापर संज्ञक युग में सुमेरुगिरि पर्वत सुवर्ण के प्रकाश से भूषित वे सुवर्णमय हैं ॥ ३ ॥ व हे महादेवि ! त्रेता में रत्नसयुत वे चांदी से उत्पन्न वस्तु से निर्मित हैं और कलियुग में वे पत्थर पै स्थित शोभित हैं ॥ ४ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नारायणगृहंपरम् ॥ गोष्पदाद्दक्षिणेभागे सागरस्यतटेशुभे ॥ १ ॥ न्यङ्कुमत्यास्समीपस्थे सर्वपातकनाशने ॥ तत्रकल्पान्तरस्थायी स्वयंतिष्ठतिकेशवः ॥ २ ॥ सुमेरुपर्वतेचैव स्वर्णभासाविभूषितः ॥ ससुवर्णमयोदेवि कृतेद्वापरसंज्ञके ॥ ३ ॥ निर्मितोरौप्यजातेन त्रेतायांरत्नसंयुतः ॥ कलौयुगेमहादेवि पाषाणस्थोविराजते ॥ ४ ॥ पश्चिमेतुसरस्वत्या गोपीनांजलपूरितम् ॥ चक्रतीर्थञ्चतत्रैव विष्णुनानिर्मितंस्वयम् ॥ ५ ॥ तत्रस्नात्वानरोदेवि ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ नृणामुद्धरणार्थाय अस्मिन्रौद्रेकलौयुगे ॥ ६ ॥ यदादैत्यविनाशंस कुरुतेभगवान्हरिः ॥ विश्रामार्थंतदातत्र गृहेतिष्ठतिनित्यशः ॥ ७ ॥ नारायणगृहंतत्र विख्यातंजगतीतले ॥ कृतेजनार्दनोनाम त्रेतायांमधुसूदनः ॥ ८ ॥ द्वापरेपुण्डरीकाक्षः कलौनारायणःस्मृतः ॥ एवंचतुर्युगेप्राप्ते पुनःपुनररिन्दमः ॥ ९ ॥ कृत्वाधर्मव्यवस्थानं तत्स्थानंप्रतिपद्यते ॥ एकादश्यांनिराहारो यस्तन्देवंप्रपश्यति ॥ १० ॥ सपश्यतिध्रुवंस्थानं प्रेत्यानन्दं

और वहींपर सरस्वती के पश्चिम में आपही विष्णुजी से गोपियों के जल से पूरित चक्रतीर्थ निर्माण किया गया है ॥ ५ ॥ हे देवि ! उसमें नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है मनुष्यों के उधारने के लिये इस भयङ्कर कलियुग में ॥ ६ ॥ जब वे विष्णुभगवान् दैत्यों का विनाश करते हैं तब विश्राम (सहताने) के लिये सदैव उस घरमें स्थित होते हैं ॥ ७ ॥ वह नारायणगृह उस पृथ्वी में प्रसिद्ध है सतयुग में जनार्दननामक व त्रेता में मधुसूदन ॥ ८ ॥ तथा द्वापर में पुण्डरीकाक्ष व कलियुग में नारायण कहे गये हैं इसप्रकार चतुर्युग प्राप्त होने पर बार २ शत्रुनाशक विष्णुजी ॥ ९ ॥ धर्म को थापकर उस स्थान में प्राप्त होते हैं एकादशी तिथि

में निराहार होकर जो मनुष्य उन विष्णुदेवजी को देखता है ॥ १० ॥ वह मरकर विष्णुजी के आनन्दमय स्थान को निश्चयकर देखताहै उस कारण द्विजोत्तम के लिये पीतवस्त्रों को देना चाहिये ॥ ११ ॥ व भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषों को स्नान व श्राद्ध करना चाहिये ॥ १२ ॥ विष्णुजी के संकेतस्थान से उपजा हुआ यह महाप्रभाववाला चरित्र तुम से कहागया जो विद्वान् पुरुष इसको सुनता या पढ़ताहै वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांन्यङ्कुमतीमाहात्म्येनारायणगृहमाहात्म्यंनामसप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९७ ॥ ❀ ॥

हरेःपदम् ॥ तेनपीतानिवस्त्राणि देयानिद्विजपुङ्गवे ॥ ११ ॥ स्नानंश्राद्धञ्चकर्तव्यं सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ १२ ॥ इतितेकथितंमहाप्रभावं हरिसङ्केतनिकेतनोद्भवम् ॥ शृणुतेप्रयतस्तुयस्सुधीरः पठतेवालभतेससद्गतिम् ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेन्यङ्कुमतीमाहात्म्येनारायणगृहमाहात्म्यन्नामसप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९७ ॥

ईश्वर उवाच ॥ न्यङ्कुमत्यास्तटेरम्ये कुबेरनगरंवरम् ॥ चतुस्सीमासुपर्यन्तं पद्मरागविभूषितम् ॥ १ ॥ तस्मादाग्नेयदिग्भागे कोटीशंसर्वकामदम् ॥ ईशानेचमहादेवि सर्वपातकनाशनम् ॥ २ ॥ कुबेरात्पूर्वदिग्भागे बालार्कपापनाशनम् ॥ तत्रकुण्डेनरस्स्नात्वा ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ३ ॥ बालार्केश्वरनामेति पूर्वभागेव्यवस्थितम् ॥ उत्तरेचाम्बिकास्थानं गयाक्षेत्रेणसंयुतम् ॥ ४ ॥ तयोर्दर्शनमात्रेण वाजपेयफलंलभेत् ॥ कुबेरात्परितोदेवि तीर्थानांदशकोटयः ॥ ५ ॥

दो० । अहै कुबेरहु नगरकी महिमा अतिहि अपार । दोसौ अट्ठानबे में सोइ चरित विस्तार ॥ महादेवजी बोले कि न्यंकुमती के सुन्दर किनारे पै उत्तम कुबेर नगर है वह चारों सीमाओं पर्यन्त पद्मराग से भूषित है ॥ १ ॥ उससे आग्नेय दिशा के भाग में सब कामनाओं को देनेवाला कोटीशलिंग है व हे महादेवि ! ईशान में सब पातकों को नाशनेवाला लिंग है ॥ २ ॥ और कुबेर से पूर्व दिशा के भाग में पापनाशक बालार्केश्वरजी के समीप जावै वहां कुण्ड में नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाशता है ॥ ३ ॥ पूर्व भाग में बालार्केश्वरनामक स्थित हैं व उत्तर में गयाक्षेत्र से संयुत अम्बिकास्थान है ॥ ४ ॥ उन दोनों के दर्शनही से मनुष्य वाजपेययज्ञ

के फल को पाता है हे देवि ! कुबेर से सब ओर दशकरोड़ तीर्थ हैं ॥ ५ ॥ व हे देवि ! नारायणगृह से पचीस धनुषपर महाबलवान् बालादित्यजी को देखै ॥ ६ ॥ व करंजाभिधसंज्ञक को देखै कि जिसने स्वर्ग को जीता है और वहां नव करोड़ देवियों से संयुत महादेवीजी स्थित हैं ॥ ७ ॥ और कुबेरनगर में जो सैकड़ों तीर्थ व लिंग स्थित हैं उन के दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुबेरनगरमाहात्म्यंनामाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥ ● ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

नारायणगृहाद्देवि धनुषांपञ्चविंशतिम् ॥ उत्तरेसंस्थितंपश्येद्बालादित्यंमहाबलम् ॥ ६ ॥ करञ्जाभिधसंज्ञञ्च जितंयेनत्रिविष्टपम् ॥ तत्रस्थितामहादेवी संवृतानवकोटिभिः ॥ ७ ॥ कुबेरेसन्तिशतशस्तीर्थलिङ्गानियानिच ॥ तेषांदर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकुबेरनगरमाहात्म्यन्नामाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देविकातटसंस्थितम् ॥ जालेश्वरेतिविख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ १ ॥ मन्वन्तरेचाक्षुषेच सम्प्राप्तेद्वापरेयुगे ॥ नाम्नाजालेश्वरंलिङ्गं देविकातटसंस्थितम् ॥ २ ॥ पूज्यतेनागकन्याभिर्नतत्पश्यन्तिमानवाः ॥ महातेजोमणिमयंचन्द्रबिम्बसमप्रभम् ॥ ३ ॥ स्मरणात्तस्यदेवस्य ब्रह्महत्याप्रणश्यति ॥ ४ ॥ देव्युवाच ॥ कथंजालेश्वरन्नाम कस्मिन्कालेबभूवतत ॥ साधुभिस्सहसंवासात केगुणाःपरिकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥ केलोकाःका

दो॰ । जालेश्वर इमि लिंग जिमि भयो भूमि विख्यात । दोसौ निन्नानबेमहँ सोइ चरित प्रख्यात ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर देवताओं व दैत्यों से नमस्कार कियेहुये देविका नदी के किनारे स्थित जालेश्वर ऐसे प्रसिद्ध लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ चाक्षुष मन्वन्तर में द्वापर युग प्राप्त होने पर देविका के किनारे स्थित नाम से जालेश्वर लिंग ॥ २ ॥ नागकन्याओं से पूजा जाता है महातेजस्वी व मणिमय तथा चन्द्रबिम्ब के समान प्रभावाले उस लिंगको मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ ३ ॥ उन शिवदेवजी के स्मरण से ब्रह्महत्या नाश होजाती है ॥ ४ ॥ देवीजी बोलीं कि कैसे जालेश्वर नाम हुआ व किस समय वह हुआहै और

साधुवोंके साथ बसनेसे कौन गुण कहेगये हैं ॥५॥ और कौन लोक व कौन पुण्य होतेहैं हे प्रभो ! उस सबको मुझसे कहिये ॥६॥ महादेवजी बोले कि इसीविषयमें आपस्तम्ब तपस्वी व नाभाग के संवादरूपी प्राचीन इतिहास को विद्वान् कहते हैं ॥ ७ ॥ पुरातन समय ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वबुद्धिमान् आपस्तम्ब महर्षि हुये हैं उनका जलवास प्रारम्भ हुआ व जलाशय में बसताहुआ वह ॥ ८ ॥ हे प्रिये ! शिवको भलीभांति जानकर सुन्दर प्रभासक्षेत्र में बसताभया उससमय वहां उत्तम ध्यान योग से स्थाणुभूत टिके व बसतेहुये उनका बहुत समय व्यतीत हुआ तदनन्तर किसीसमय मछलियों से जीविका करनेवाले (निषाद) उस स्थान को आकर ॥ ९ । १० ॥ बड़े

निपुण्यानि तत्सर्वंशंसमेप्रभो ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम् ॥ नाभागस्यचसंवादमापस्तम्बतपोनिधेः ॥ ७ ॥ महर्षिरात्मवान्पूर्वमापस्तम्बोद्विजाग्रणीः ॥ उदवासस्तदारम्भो विवसन्सलिलाशये ॥ ८॥ क्षेत्रेप्राभासिकेरम्ये सम्यग्ज्ञात्वाशिवम्प्रिये ॥ तत्रास्यवसतःकालस्समतीतोमहांस्तदा ॥ ९ ॥ परेणध्यानयोगेन स्थाणुभूतस्यतिष्ठतः ॥ ततःकदाचिदागत्य तन्देशंमत्स्यजीविनः ॥ १० ॥ प्रसार्यसुमहज्जालं सर्ववाकर्षयन्बलात् ॥ अथतेतुमहात्मानं निषादाबलदर्पिताः ॥ ११ ॥ तस्मादुत्तारयामासुः सलिलाद्ब्रह्मनन्दनम् ॥ तन्दृष्ट्वातपसादीप्तं कैवर्त्ताभयविह्वलाः ॥ १२ ॥ शिरोभिःप्रणिपत्योच्चैरिदंवचनमब्रुवन् ॥ निषादाऊचुः ॥ अज्ञानकृतपापानामस्माकंच्चन्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ किञ्चकार्यंप्रियंतेद्य तदाज्ञापयसुव्रत ॥ समुनिस्तन्महद्दृष्ट्वा अज्ञानात्कदनंकृतम् ॥१४॥ क्षमयापरयाविष्टोदाशान्प्रोवाचदुःखितः ॥ किन्तुमेस्यादुपायोहिमोहात्स्वार्थवशंस्थितः ॥ १५ ॥ ज्ञानिनामपियच्चेतः केवला

भारी जालको फैलाकर सब को बल से खींच लिया इसके अनन्तर बलसे गर्वित निषादों ने महात्मा ॥ ११ ॥ व ब्रह्मपुत्र आपस्तंबको उस जलसे ऊपर निकाला और तपस्या से प्रकाशित उन आपस्तंब को देखकर भयसे विकल केवटों ने ॥ १२ ॥ मस्तकों से प्रणामकर उच्च प्रकार से यह वचन कहा निषाद बोले कि अज्ञान से किये पापवाले हमलोगों के ऊपर क्षमा करनेयोग्य हो ॥ १३ ॥ व हे सुव्रत ! इससमय तुम्हारा क्या प्रिय करना चाहिये उसको आज्ञा दीजिये अज्ञानसे बड़ेभारी कियेहुये पीड़नको देखकर वे मुनि ॥ १४ ॥ बड़ी क्षमासे युक्त व दुःखी होकर निषादों से बोले कि मोह से स्वार्थ के वशमें स्थित मेरा कौन उपावहै ॥ १५ ॥ यदि ज्ञानियोंका भी चित्त केवल

अपनेही लिये रत होवै और यदि ज्ञानीभी स्वार्थ में आश्रित होकर ध्यान में स्थित होवैं ॥ १६ ॥ तो इस संसारमें दुःख से विकल प्राणी कहां सुखको प्राप्त होवेंगे और
जो पुरुष केवल दुःख भोगने के लिये चाहता है ॥ १७ ॥ उसको मोक्षके चाहनेवाले पुरुष पापी से भी अधिक पापी कहते हैं परन्तु मेरा यह उपायहै कि जिससे मैं दुःखित-
चित्तवाले ॥ १८ ॥ प्राणियों के भीतर पैठकर सबों के दुःख का भागी होऊं मेरा जो कुछ कल्याण होवै वह दुःखियों के समीप प्राप्तहोवै ॥ १६ ॥ और उनसे जो
पाप कियागयाहो वह सब मुझको प्राप्तहोवै अन्ध, कृपण, व्यंग अनाथ व रोगी पुरुषों को देखकर ॥ २० ॥ जिसके दया नहीं होती है वह राक्षसहै ऐसी मेरी बुद्धि

त्मकृतेरतम् ॥ ज्ञानिनोपियदास्वार्थमाश्रित्यध्यानमास्थिताः ॥ १६ ॥ दुःखार्तानीहसत्त्वानि कयास्यन्तिसुखन्ततः ॥
योभिवाञ्छतिभोक्तुंवै दुःखान्येकान्ततोजनः ॥ १७ ॥ पापात्पापतरंतंहि प्रवदन्तिमुमुक्षवः ॥ किन्तुमेस्यादुपायोहि
येनाहंदुःखितात्मनाम् ॥ १८ ॥ अन्तःप्रविष्टःसत्त्वानां भवेयंसर्वदुःखभाक् ॥ यन्ममास्तिशुभंकिञ्चित्तद्दीनानुपग
च्छतु ॥ १६ ॥ यत्कृतंदुष्कृतन्तैस्तु तदशेषमुपैतुमाम् ॥ दृष्ट्वान्धान्कृपणान्व्यङ्गाननाथान्रोगिणस्तथा ॥ २० ॥
दयानजायतेयस्य सरक्षइतिमेमतिः ॥ प्राणसंशयमापन्नान् प्राणिनोभयविह्वलान् ॥ २१ ॥ योनरक्षतिशक्तोपि सपा
पंसमुपाश्नुते ॥ आहुर्जनानामार्त्तानां सुखंयदुपजायते ॥ २२ ॥ तस्यस्वर्गोपवर्गोपि कलान्नार्हतिषोडशीम् ॥ तस्मा
देतानहन्दीनांस्त्यक्त्वाभीतान्सुदुःखितान् ॥ २३ ॥ पदमात्रंनयास्यामि किम्पुनस्त्रिदशालयम् ॥ ईश्वर उवाच ॥
निशम्यतदृषेर्वाक्यं दाशास्तेजातसम्भ्रमाः ॥ २४ ॥ यथावृत्तन्तुतत्सर्वं नाभागायन्यवेदयन् ॥ नाभागोपिचतच्छ्रुत्वा

है प्राण के संशय में प्राप्त व भय से विकल प्राणियों की ॥ २१ ॥ जो समर्थ भी रक्षा नहीं करता है वह पाप को भोगता है ऐसा विद्वान् कहते हैं कि दुःखी
प्राणियोंको जो सुखहोता है ॥ २२ ॥ उसके सोलहवें अंश को भी स्वर्ग व मोक्ष नहीं योग्य होताहै इस लिये डरेहुये व दुःखित इन जन्तुओं को छोड़कर मैं ॥ २३ ॥
पगभर न जाऊंगा फिर स्वर्ग को क्या कहना है महादेवजी बोले कि ऋषि के उस वचन को सुनकर संभ्रमयुक्त होकर केवटों ने ॥ २४ ॥ जैसा वृत्तान्त था उस सब

को नाभाग से कहा और नाभाग भी उसको सुनकर उन ब्रह्मपुत्र को देखने के लिये ॥ २५ ॥ शीघ्रतासंयुत होकर मंत्रियोंसमेत व पुरोहितोंसमेत वहां गये और देवताओं के समान उन मुनिको भलीभांति पूजकर वे राजा ॥ २६ ॥ बोले कि हे भगवन्! कहिये मैं तुम्हारी आज्ञा से क्या करूं आपस्तंब बोले कि बड़ेपरिश्रम से युक्त व दुःख से जीविका करनेवाले केवटों को ॥ २७ ॥ हे राजन्! जो योग्य मानते हो उस परिश्रम के मूल्य को दीजिये नाभाग बोले कि मैं निषादों के लिये सौ हज़ार मूल्य दूंगा ॥ २८ ॥ आपस्तंब बोले कि हे राजन्! सौ हजारों से मैं तुम से नहीं निग्रह करने योग्य हूं इसके समान मूल्य दीजिये और मंत्रियोंसमेत चिन्तवन

तन्द्रष्टुंब्रह्मनन्दनम् ॥ २५ ॥ त्वरितःप्रययौतत्र सामात्यस्सपुरोहितः ॥ ससम्यक्पूजयित्वातं देवकल्पंमुनिन्नृपः ॥ २६ ॥ प्रोवाचभगवान्ब्रूहि किङ्करोमितवाज्ञया ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ श्रमेणमहताविष्टान् कैवर्त्तान्दुःखजीविनः ॥ २७ ॥ श्रममौल्यंप्रयच्छेति यद्योग्यंमन्यसेनृप ॥ नाभाग उवाच ॥ सहस्राणांशतंमूल्यं निषादेभ्योददाम्यहम् ॥ २८ ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ नाहंशतसहस्रेश्च नियम्यःपार्थिवत्वया ॥ सदृशन्दीयतांमौल्यममात्यैस्सहचिन्तय ॥ २९ ॥ नाभाग उवाच ॥ कोटिःप्रदीयतांमूल्यं निषादेभ्योद्विजोत्तम ॥ यद्येतदपिनोमूल्यं ततोभूयःप्रदीयते ॥ ३० ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ राजन्नार्हाम्यहंकोटिमधिकंवापिपार्थिव ॥ सदृशंदीयताम्मूल्यं ब्राह्मणैस्सहचिन्तय ॥ ३१ ॥ नाभाग उवाच ॥ अर्द्धराज्यंसमस्तञ्च निषादेभ्यःप्रदीयताम् ॥ एतन्मूल्यमहंमन्ये किञ्चान्यन्मन्यसेद्विज ॥ ३२ ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ अर्द्धराज्यंसमस्तंवा नाहमर्हामिपार्थिव ॥ सदृशंदीयताम्मौल्यमृषिभिस्सहचिन्तय ॥ ३३ ॥ महर्षेस्तद्वचः

कीजिये ॥ २९ ॥ नाभाग बोले कि हे द्विजोत्तम! निषादों के लिये कोटि मूल्य दिया जावै और यदि यह भी न मूल्य होवै तो फिर दियाजायगा ॥ ३० ॥ आपस्तंब बोले कि हे राजन्! मैं करोड़ व अधिक के भी योग्य नहीं हूं किन्तु समान मूल्य दियाजावै इसको ब्राह्मणोंसमेत विचार कीजिये ॥ ३१ ॥ नाभाग बोले कि आधा राज्य व सब राज्य निषादों के लिये दियाजावे मैं इसको मूल्य मानता हूं व हे ब्राह्मण! तुम क्या अन्य मानते हो ॥ ३२ ॥ आपस्तंब बोले कि हे राजन्! मैं आधे राज्य व समस्त राज्य के नहीं योग्य हूं समान मूल्य दियाजावै इसको ऋषियोंसमेत विचार कीजिये ॥ ३३ ॥ महर्षि के उस वचन को सुनकर विषाद करतेहुये

नामागने मंत्रियोंसमेत व पुरोहितसमेत दुःखसे विकल होकर चिन्तन किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर बड़े तपस्वी कोई लोमश ऋषिने वहां नाभाग से कहा कि मत डरिये मैं उनको प्रसन्न कराऊंगा ॥ ३५ ॥ नाभाग बोले कि हे महाभाग ! इस महात्माके मूल्यको कहिये और कुटुम्बी, कुल व बन्धुओंसमेत मुझको इमसे रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ भगवान् शिवजी चराचरसमेत त्रिलोक को जलासक्ते हैं फिर अत्यन्त विषय चित्तवाले हीन मनुष्यको क्या कहनाहै ॥ ३७ ॥ लोमशजी बोले कि हे महाराज ! तुम स्तुति करनेयोग्यहो व द्विजोत्तम संसारसे पूजनेयोग्यहै और गौवैं दिव्य होती हैं इसकारण इनके लिये उत्तम गऊ मूल्य दियाजावै ॥ ३८ ॥ उस वचनको सुनकर

श्रुत्वा नाभागस्सविषादयन् ॥ चिन्तयामासदुःखार्तस्सामात्यस्सपुरोहितः ॥ ३४ ॥ ततःकश्चिदृषिस्तत्र लोमशस्तुम हातपाः ॥ नाभागमब्रवीन्माभैस्तोषयिष्याम्यहम्मुनिम् ॥ ॥ ३५ ॥ नाभाग उवाच ॥ ब्रूहिमूल्यंमहाभाग मुनेरस्यम हात्मनः ॥ परित्रायस्वमामस्मात्सज्ञातिकुलबान्धवम् ॥ ३६ ॥ निर्दहेद्भगवान्रुद्रस्त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ किम्पुनर्मानु षंहीनमत्यन्तविषयात्मकम् ॥ ३७ ॥ लोमश उवाच ॥ त्वमीड्योहिमहाराज जगत्पूज्योद्विजोत्तमः ॥ गावश्चदिव्यास्त स्माद्गौर्मूल्यमस्मैप्रदीयताम् ॥ ३८ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराजासामात्यस्सपुरोहितः ॥ हर्षेणमहताविष्टः प्रोवाचेदंवचोमु निम् ॥ ३९ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभगवन् क्रीतएवनसंशयः ॥ एतद्योग्यतमंमूल्यं भवतोमुनिसत्तम ॥ ४० ॥ आपस्तम्ब उ वाच ॥ उत्तिष्ठाम्येपसुप्रीतस्सम्यक्क्रीतोस्मिपार्थिव ॥ गोभ्यांमूल्यन्नपश्यामि पवित्रंपरमंशुचि ॥ ४१ ॥ गावःप्रदक्षि णीकार्याः पूजनीयाश्चनित्यशः ॥ मङ्गलायतनंदिव्यास्सृष्टाह्येतास्स्वयम्भुवा ॥ ४२ ॥ स्थानागाराणिविप्राणां देवता

मंत्रियोंसमेत व पुरोहितसमेत राजा बड़े हर्षसे संयुत हुये और मुनिसे यह वचन बोले ॥ ३९ ॥ कि हे भगवन् उठिये उठिये मोललेलिये गये हो इसमें सन्देह नहीं है हे मुनिश्रेष्ठ ! यह मूल्य आपके बहुतही योग्य है ॥ ४० ॥ आपस्तम्ब बोले कि हे राजन् ! बहुतही प्रसन्न होकर मैं शीघ्रही उठताहू और मैं भलीभांति मोल लिया गया क्योंकि गौवोंसे पवित्र परमशुचि मूल्यको मैं नहीं देखताहूं ॥ ४१ ॥ गौवोंकी नित्य प्रदक्षिणा करना चाहिये व पूजना चाहिये क्योंकि ये दिव्य गौवैं ब्रह्माजीसे

मङ्गलस्थान रचीगई हैं ॥ ४२ ॥ जिसके गोमय से ब्राह्मणों के घर व देवमन्दिर पवित्र होतेहैं उससे अधिक क्या हुआहै ॥ ४३ ॥ गोमूत्र, गोमय व गौवोंका दूध, दही व घी ये पांचो पवित्र वस्तुवें सब संसारको पवित्र करती हैं ॥ ४४ ॥ मेरे आगे सदैव गौवैं होवैं पीछे गौवैं होवैं और मेरे हृदयमें गौवैं स्थितहैं व गौवोंके मध्यमें मैं बसताहूं ॥ ४५ ॥ ऐसे पवित्रमन्त्रको जपताहुआ नियत व पवित्र पुरुष सब पापोंसे छूट जाताहै और वह स्वर्गलोकको जाताहै ॥ ४६ ॥ प्रति दिन गवाह्निक पर गौवैं करना चाहिये क्योंकि गौवोंको न देकर आपही भोजन करता हुआ पुरुष दुर्गतिको पाताहै ॥ ४७ ॥ उसने भलीभांति अग्नियोंमें हवन किया और पितरों को तृप्त कि-

यतनानिच ॥ यद्गोमयेनशुद्ध्यन्ति किम्भूतमधिकन्ततः ॥ ४३ ॥ गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिस्तथैवच ॥ गवांपञ्च पवित्राणि पुनन्तिसकलंजगत् ॥ ४४ ॥ गावोममाग्रतोनित्यं गावःपृष्ठतएवच ॥ गावोमेहृदयेचैव गवांमध्येवसाम्यहम् ॥ ४५ ॥ एवंजपन्नरोमन्त्रं विशुद्धंनियतश्शुचिः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकंसगच्छति ॥ ४६ ॥ गवाह्निकप्रागावः कर्त्तव्याभक्तितोन्वहम् ॥ अदत्त्वास्वयमाहारं कुर्वन्नाप्नोतिदुर्गतिम् ॥ ४७ ॥ तेनाग्नयोहुतास्सम्यक् पितरश्चापितर्पिताः ॥ देवाश्चपूजितास्तेन योददातिगवाह्निकम् ॥ ४८ ॥ अथ मन्त्रः ॥ सौरभेयीजगत्पूज्या देवीविष्णुपदेस्थिता ॥ सर्वमेतन्मयादत्तं मयादत्तंप्रतीच्छतु ॥ ४९ ॥ रक्षणान्ममपुत्राणांगवांकण्डूयनैस्तथा ॥ क्षीणार्त्तरक्षणाच्चैव नरः स्वर्गेमहीयते ॥ ५० ॥ आदौगावोबहिश्चापि मध्येचान्तेप्रकीर्त्तिताः ॥ रक्षन्तितास्तुदेवानां क्षीराज्यममृतंसदा ॥ ५१ ॥ तस्माद्गावःप्रदातव्याः पूजनीयाश्चनित्यशः ॥ स्वर्गस्यसङ्गमायैताः सोपानमिवनिर्मिताः ॥ ५२ ॥ एतच्छ्रुत्वा

या व उसने देवताओं को पूजन किया कि जो गौवोंको भोजन देता है ॥ ४८ ॥ अब मन्त्र कहते हैं कि संसार के पूजनेयोग्य गऊ देवी विष्णुपद पै स्थित है यह सब मुझसे दियागया और मुझसे दियेहुये अन्नको गऊ ग्रहण करै ॥ ४९ ॥ मेरे पुत्रोंकी रक्षासे व गौवों के खुजलाने से और क्षीण व दुःखीकी रक्षा करने से मनुष्य स्वर्गलोक में पूजाजाताहै ॥ ५० ॥ पहले व बाहर और मध्य व अन्तमें गौवैं कही गईहैं और वे गौवैं देवताओं की सदा रक्षा करती हैं क्योंकि उनका दूध व घी अमृत है ॥ ५१ ॥ इसलिये सदैव गौवों को देना चाहिये व पूजना चाहिये क्योंकि स्वर्गके मिलनेके लिये ये गौवैं सीढ़ीकी नाईं बनाईगई हैं ॥ ५२ ॥ गौवों के इस उत्तम

माहात्म्यको सुनकर वे निषाद प्रणामकर इसके उपरान्त आपस्तम्ब महात्मासे बोले ॥ ५३ ॥ निषाद बोले कि साधुओं का सम्भाषण, दर्शन, स्पर्शन, कीर्तन व स्मरण ये पवित्रकारक हैं ऐसा सुनागयाहै ॥ ५४ ॥ हमलोगों ने तुम्हारे साथ सम्भाषण व दर्शन किया इसलिये दया कीजिये व इस गऊको ग्रहण कीजिये ॥ ५५ ॥ आपस्तम्ब बोले कि हे निषादो ! मैं इसीसमय तुमलोगोंकी इस गऊको लेताहूं और पातकोंसे रहित तुमलोग जलसे निकालीहुई मछलियोंसमेत स्वर्गको जावो ॥ ५६ ॥ यदि निन्दित भी कर्मसे प्राणियों की प्रीतिको उत्पन्नकर मैं नरकको प्राप्तहूंगा तो उसको स्वर्गही देखताहूं ॥ ५७ ॥ मैंने मन, वचन व शरीर के कर्मसे जिस किसी पुण्यको किया

निषादास्ते गवांमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ प्रणिपत्यमहात्मानमापस्तम्बमथाब्रुवन् ॥ ५३ ॥ निषादाऊचुः ॥ सम्भाषादर्शनंस्पर्शः कीर्त्तनंस्मरणंतथा ॥ पावनानिकिलैतानि साधूनामितिचश्रुतम् ॥ ५४ ॥ सम्भाषादर्शनंचैव सहास्माभिःकृतंत्वया ॥ कुरुष्वानुग्रहंतस्माद्गोरिसम्प्रतिगृह्यताम् ॥ ५५ ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ एषवःप्रतिगृह्णामि गामिमांमुक्तकिल्बिषाः ॥ निषादागच्छतस्वर्गं सहमत्स्यैर्जलोद्धृतैः ॥ ५६ ॥ प्राणिनांप्रीतिमुत्पाद्य निन्दितेनापिकर्मणा ॥ नरकंयदिप्राप्स्यामि पश्यामिस्वर्गमेवतत् ॥ ५७ ॥ यन्मयासुकृतंकिञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ कृतन्तेनैवदुःखार्तास्सर्वेयान्तुशुभांगतिम् ॥ ५८ ॥ ततस्तस्यप्रसादेन महर्षेर्भावितात्मनः ॥ निषादास्तेनवाक्येन सहमत्स्यैर्दिवङ्गताः ॥ ५९ ॥ तान्दृष्ट्वास्वर्गिणस्सर्वान् समत्स्यामत्स्यजीविनः ॥ सामात्यभृत्योनृपतिर्विस्मयादिदमब्रवीत् ॥ ६० ॥ सेव्याःश्रेयोर्थिभिस्सन्तः पुण्यतीर्थजलोपमाः ॥ क्षणोपासनमप्यत्र नयेषांनिष्फलंभवेत् ॥ ६१ ॥ सद्भिस्सहासनंकार्यं सद्भिःकुर्वीतसत्क

है उससे दुःख से विकल सब प्राणी उत्तमगति को प्राप्त होवैं ॥ ५८ ॥ तदनन्तर शुद्ध चित्तवाले उन महर्षि के प्रसाद से केवट उस वचन से मछलियोंसमेत स्वर्ग को चलेगये ॥ ५९ ॥ मछलियोंसमेत उन सब मत्स्यजीवी (केवटों) को स्वर्गी देखकर मन्त्रियों व नौकरोंसमेत राजाने आश्चर्य से यह कहा ॥ ६० ॥ कि पवित्र तीर्थजल की उपमावाले सन्त कल्याणको चाहनेवाले पुरुषों से सेवनेयोग्यहैं क्योंकि इस संसारमें जिनका क्षणभर भी उपासन निष्फल नहीं होताहै ॥ ६१ ॥ सन्तों

के साथ बैठना चाहिये व सन्तोंके साथ उत्तम कथाकरै और सज्जनकी सभामें वर्तमान होनेपर वर्तमान होवै व असज्जनोंके साथ कुछ न करैं ॥ ६२ ॥ क्योंकि सज्जनों के समागमही से मछलियोंसमेत मत्स्यजीवी (निषाद) पुण्यकारी पुरुषों की नाईं स्वर्गको प्राप्तहुये ॥ ६३ ॥ वहा आपस्तम्ब मुनि व लोमश महामुनि ने उन राजा को अनेक प्रकारके प्रिय वरदानोंसे इच्छा कराया ॥६४॥ तदनन्तर उन्होंने अति दुर्लभ धर्मबुद्धिको किया व वैसाही होगा यह कहनेपर उन्होंने राजाकी प्रशंसा किया ॥ ६५ ॥ कि हे नृपेन्द्र ! धन्य हो जोकि तुम्हारी बुद्धि धर्म में लगी है क्योंकि पुरुषों को धर्म दुर्लभहै और राजाओं को विशेषकर दुर्लभ है ॥ ६६ ॥ यदि मदसे संयुत

थाम् ॥ सभांवृत्तेनवर्त्तेत नासद्भिःकिञ्चिदाचरेत् ॥ ६२ ॥ सतांसमागमादेव समत्स्यामत्स्यजीविनः ॥ त्रिविष्टपमनुप्राप्ता नराःपुण्यकृतोयथा ॥ ६३ ॥ आपस्तम्बोमुनिस्तत्र लोमशश्चमहामुनिः ॥ वरैस्तंविविधैरिष्टैश्छन्दयामासभूमिपम् ॥ ६४ ॥ ततस्सकारयामास धर्मबुद्धिंसुदुर्लभाम् ॥ तथेतिचोक्तेवैप्रीत्या तेन्नृपंप्रशशंसतुः ॥ ६५ ॥ अहोधन्योसिराजेन्द्र यत्तेधर्मपरामतिः ॥ धर्मस्सुदुर्लभःपुंसां विशेषेणमहीक्षिताम् ॥ ६६ ॥ यदिराजामदाविष्टः स्वधर्मन्नपरित्यजेत् ॥ ततोजगतिकस्तस्मात्पुमान्योभ्यधिकोभवेत् ॥ ६७ ॥ ध्रुवंजन्मसदाराज्ञां मोहश्चापिसदाध्रुवः ॥ मोहाद्ध्रुवञ्चनरको राज्यंनिन्दन्तिधीयुताः ॥ ६८ ॥ राज्यंहिबहुमन्यन्ते नराविषयलोलुपाः ॥ मनीषिणस्तुपश्यन्ति तदेवनरकोपमम् ॥६९॥ तस्माल्लोकद्वयध्वंसो नकर्त्तव्योमदस्तथा ॥ यदीच्छसिमहाराज शाश्वतीङ्गतिमात्मनः ॥७०॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वातौमहात्मानौ जग्मतुस्स्वंस्वमाश्रमम् ॥ नाभागोपिवरंलब्ध्वा प्रहृष्टःप्राविशत्पुरम् ॥ ७१ ॥ एत

राजा अपने धर्मको न छोड़ै तो संसारमें कौन पुरुष है जोकि उससे अधिक होवै ॥ ६७ ॥ निश्चयकर सदैव राजाओं का जन्म होता है और मोह भी सदैव अचल होताहै और मोहसे निश्चयकर नरक होताहै इस कारण बुद्धिसंयुत पुरुष राज्यकी निन्दा करते हैं ॥ ६८ ॥ और विषयों के लोभी पुरुष राज्यको बहुत मानते हैं व विद्वान् उसीको नरकके समान देखते हैं ॥ ६९ ॥ इस कारण हे महाराज ! यदि अपनी सनातनी गतिको चाहते हो तो दोनों लोकों को नाश करनेवाला मद न करना चाहिये ॥ ७० ॥ महादेवजी बोले कि ऐसा कहकर वे महात्मा अपने अपने आश्रमको चलेगये और नाभागभी वरदानको पाकर प्रसन्न होकर नगरमें पैठे ॥ ७१ ॥

हे देवि ! देविकानदीसे उपजाहुआ यह माहात्म्य तुमसे कहागया ऋषिने भी जालेश्वर ऐसे लिङ्गको थापन किया ॥ ७२ ॥ जिसलिये मुनीश्वर आपस्तम्बजी जालमें गिरे हैं उसी कारण पृथ्वीमें जालेश्वर ऐसे नामक ये शिवजी प्रसिद्ध हुये ॥ ७३ ॥ हे महादेवि ! उसमें नहाकर जालेश्वर के पूजनसे आपस्तम्ब नाभाग व मछलियों से जीविका करनेवाले निषाद ॥ ७४ ॥ मछलियोंसमेत देविका के प्रभावसे स्वर्ग को चलेगये चैत महीने के शुक्लपक्ष में तेरसि तिथिको ॥ ७५ ॥ पितरों के लिये जो पिण्ड देवै उसका अन्त नहीं विद्यमानहै और वहां वेदों के पारगामी ब्राह्मण के लिये गोदान देना चाहिये ॥ ७६ ॥ और माहात्म्य सुनना चाहिये और जालकेश्वरको

त्तेकथितन्देवि प्रभावंदेविकोद्भवम् ॥ ऋषिणास्थापितञ्चापि लिङ्गंजालेश्वरेतिच ॥ ७२ ॥ जालेनिपतितोयस्मादाप स्तम्बोमुनीश्वरः ॥ जालेश्वरेतिनामासौ विख्यातःपृथिवीतले ॥ ७३ ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि जालेश्वरसमर्चनात् ॥ आपस्तम्बश्चनाभागो निषादामत्स्यजीविनः ॥ ७४ ॥ मत्स्यैस्सहगताःस्वर्गं देविकायाःप्रभावतः ॥ चैत्रस्यैवतुमासस्य शुक्लपक्षेत्रयोदशीम् ॥ ७५ ॥ दद्यात्पिण्डंपितृभ्योयत्तस्यान्तोनहिविद्यते ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु ब्राह्मणेवेदपारगे ॥७६॥ श्रोतव्यञ्चैवमाहात्म्यं द्रष्टव्योजालकेश्वरः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे जालेश्वरमाहात्म्यन्नामनवन वत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कूपंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ देविकायास्तटेरम्ये हुङ्कारेणैवपूर्य्यते ॥ १ ॥ ततोध स्तात्पुनर्याति सलिलंतत्रभामिनि ॥ तुण्डीनामपुराप्रोक्तो देविकातटमाश्रितः ॥ २ ॥ तपस्तेपेमहादेवि शिवभक्तिपरा

देखना चाहिये ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजालेश्वरमाहात्म्यंनामनवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥

दो० । जिमि मुनिके हुंकार से भयो पूर्ण यककूप । सोइ तीनसौ सर्गमें कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर त्रिलोकमें प्रसिद्ध कूपके समीप जावै देविका के सुन्दर किनारे पै वह हुङ्कारही से पूर्ण होताहै ॥ १ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! फिर वहां जल नीचे चलाजाता है पुरातन समय देविका के

किनारे टिकेहुये तुण्डीनामक महर्षि कहेगये हैं ॥ २ ॥ हे महादेवि ! शिवजीकी भक्तिमें परायण उन्होंने तप कियाहै हे वरानने ! उस स्थानमें उसको इस प्रकार तप करतेहुये ॥ ३ ॥ हे वरानने ! बँधाहुआ मृग उस स्थानको आया और वह जलसंयुत व गहरे बड़ेभारी गढ़ेमें गिरपडा ॥ ४ ॥ उसको देखकर तपस्या में स्थित मुनि दयासे संयुत हुये और हे भामिनि ! वे वहां बार २ हुङ्कार करनेलगे ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर उनके हुङ्कारशब्द से गढ़ापूर्ण होगया तदनन्तर उस समय वह मृग क्लेशसे जलसे निकला ॥ ६ ॥ और मनुष्य के रूपमें स्थित होकर उससे बड़े विस्मयको प्राप्त होकर उन ऋषिने पूंछा कि किस कर्म का यह फलहै ॥ ७ ॥ कि यहां

यणः ॥ तस्यैवंतप्यमानस्य तस्यदेशेवरानने ॥ ३ ॥ आजगाममृगोवद्धस्तन्देशञ्चवरानने ॥ सपपातमहागर्त्ते ह्यगाधे जलसंयुते ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वाकृपयाविष्टः समुनिस्तपसिस्थितः ॥ हुङ्कारंकुरुतेतत्र भूयोभूयश्चभामिनि ॥ ५ ॥ अथहुङ्कारशब्देन तस्यगर्तःप्रपूरितः ॥ ततोमृगोविनिष्क्रान्तः कृच्छ्रेणसलिलात्तदा ॥ ६ ॥ मानुषंरूपमाश्रित्य तमृषिःपर्यपृच्छत ॥ विस्मयंपरमंगत्वा कस्येदंकर्मणःफलम् ॥ ७ ॥ मृगत्वेपतितश्चात्र नरोभूत्वाविनिर्गतः ॥ सोब्रवीत्तस्यमाहात्म्यं सलिलस्यद्विजोत्तमम् ॥ ८ ॥ अतोहंनरताम्प्राप्तो नान्यदस्तीहकारणम् ॥ ततस्तुसलिलंभूयः प्रविष्टंधरणीतले ॥ ९ ॥ ततोहुंकृतवान्भूयः सऋषिःकौतुकान्वितः ॥ आपूरितःपुनःकूपः सलिलेनपुरायथा ॥ १० ॥ ततस्सकृतवान्स्नानंतथा चपितृतर्पणम् ॥ ज्ञात्वातीर्थवरंतच्च ततःप्रापपराङ्गतिम् ॥ ११ ॥ अद्यापिहुंकृतेतस्मिन्सलिलौघःप्रवर्तते ॥ तत्रस्नात्वा

मृगत्व में गिरे और मनुष्य होकर तुम निकलेहो उसने उस जलके माहात्म्य को द्विजोत्तमसे कहा ॥ ८ ॥ कि इसीकारण मैं मनुजत्वको प्राप्तहुआ इसमें अन्य कारण नहीं है तदनन्तर फिर जल पृथ्वीमें पैठगया ॥ ९ ॥ उसके उपरान्त कौतुक से संयुत उन ऋषिने फिर हुङ्कार किया और फिर जैसा पहले था वैसेही कुँवा जलसे पूर्ण करादिया गया ॥ १० ॥ तदनन्तर उसको उत्तमतीर्थ जानकर उसने स्नान व पितरोंका तर्पण किया उसके उपरान्त उत्तमगतिको पाया ॥ ११ ॥ आजभी हुङ्कार

करनेपर उसमें जलका प्रवाह वर्तमान होताहै उसमें भक्तिसे नहाकर मनुष्य पितरों के लोकमें पूजाजाता है ॥ १२ ॥ और वह बीतेहुये व आनेवाले सातकुलों को तारता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहुङ्कारकूपमाहात्म्यंनामत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि चण्डीश्वर लिंग अरु आशापूर गणेश । सोइ तीनसौ एक महँ कह्यो चरित्र उमेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसी स्थान में स्थित समस्त पातकों को नाशनेवाले चण्डीश्वर महालिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे भामिनि ! वहां कातिक महीने में शुक्लपक्षकी चौदसि तिथि में उपासमें तत्पर

नरोभक्त्या पितृलोकेमहीयते ॥ १२ ॥ कुलानितारयेत्सप्त अतीतान्यागतानिच ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे हुङ्कारकूपमाहात्म्यन्नामत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रस्थानेतुसंस्थितम् ॥ चण्डीश्वरंमहालिङ्गं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्र शुक्लचतुर्दश्यां कार्त्तिकेमासिभामिनि ॥ उपवासपरोभूत्वा यःकरोतिप्रजागरम् ॥ २ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ३ ॥ आशापुरन्ततोगच्छेद्विघ्नराजमकल्मषम् ॥ शशिभूषणवायव्ये संस्थितंविघ्ननाशनम् ॥ ४ ॥ आशांपूर्यतेयस्मात्तेनैवाशापुरस्स्मृतः ॥ यत्ररामेणदेवेशि सीतयालक्ष्मणेनच ॥ ५ ॥ समाराध्यचविघ्नेशं प्राप्तंकाममभीप्सितम् ॥ यत्रचन्द्रमसादेवि समाराध्यगणाधिपम् ॥ ६ ॥ लब्धंतद्वाञ्छितंसर्वं सर्वकष्टविनाशनम् ॥ चतुर्थ्यांशुक्लपक्षे तु मासिभाद्रपदेशुभे ॥ ७ ॥ तत्रसम्पूज्यदेवेशं मोदकैर्भोजयेद्द्विजान् ॥ वाञ्छितांलभतेसिद्धिं विघ्नराजप्रसादतः ॥ ८ ॥

होकर जो जागरण करता है ॥ २ ॥ वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर चन्द्रभूषण के वायव्य में भलीभांति टिकेहुये पापविहीन व विघ्ननाशक आशापूर विघ्नराज के समीप जावै ॥ ४ ॥ जिसलिये आशाको पूर्ण करतेहैं उसीकारण वे आशापुर कहेगये हैं जहां कि हे देवेशि ! श्रीरामचन्द्रजी ने व सीता और लक्ष्मणजी ने ॥ ५ ॥ विघ्नेशजीको भलीभांति आराध कर चाहेहुये मनोरथ को पाया है व जहा पर हे देवि ! चन्द्रमा ने गणनायकजीको भलीभांति आराध कर ॥ ६ ॥ सब कष्टोंको नाशनेवाले उस समस्त मनोरथ को पाया है और उत्तम भादौं महीने में शुक्लपक्षकी चौथि मे ॥ ७ ॥ वहां देवेश

विघ्नराजको भलीभांति पूजकर जो लड्डुवों से ब्राह्मणों को भोजन करावै वह विघ्नराजके प्रसादसे चाहीहुई सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे महादेवि,देवेशि ! पुरातन समय इस क्षेत्रकी रक्षाके लिये पार्वतीजी ने पापियों के विघ्ननाशक उन गणेश जी को नियुक्त किया है ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामाशापुरविघ्नराजमाहात्म्यंनामैकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। कपिला सरिता कर यथा है माहात्म्य अपार। कह्यो तीनसौ दोइ महँ सोइ चरित विस्तार ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! उसके थोड़ीही दूर पै दक्षिण

क्षेत्रस्यास्यमहादेवि रक्षार्थमुमयापुरा ॥ सर्वैनियुक्तोदेवेशि पापिनांविघ्ननाशनः ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे आशापुरविघ्नराजमाहात्म्यन्नामैकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्यदक्षिणनैर्ऋत्ये नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ लिङ्गंपापहरन्देवि स्वयंसोमप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ तत्रैवामृतकुण्डन्तु कुलकुण्डञ्चतत्स्मृतम् ॥ तत्रस्नात्वातुचन्द्रेशं योनरःपूजयिष्यति ॥ २ ॥ सतुवर्षसहस्रस्य तपःफलमवाप्स्यति ॥ तत्रैवसंस्थितन्देवि तडागंचन्द्रनिर्मितम् ॥ ३ ॥ धनुःषोडशविस्तारं चन्द्रेशात्पूर्वपश्चिमे ॥ तत्पूर्वन्तुसमाख्यातं मुक्तिदानादिपूर्वकम् ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच॥ततोगच्छेन्महादेवि कपिलेश्वरमुत्तमम् ॥ शशिभूषणपूर्वेण कोटितीर्थाचपश्चिमे ॥ ५ ॥ जरद्गवाद्दक्षिणेच समुद्रोत्तरतस्तथा॥ एतद्वैकपिलंक्षेत्रं नापुण्यैःप्राप्यतेनरैः ॥ ६ ॥ कपिलेनपुरा

व नैर्ऋत्य में आपही चन्द्रमा से थापाहुआ पापहारक लिंग स्थित है ॥ १ ॥ वहीं पर अमृतकुण्ड और वह कुलकुण्ड कहागया है उसमें नहाकर जो मनुष्य चन्द्रेशजी को पूजैगा ॥ २ ॥ वह हज़ार वर्षके तपस्या के फलको पावैगा हे देवि ! वहीं पर चन्द्रेशजी से पूर्व पश्चिम सोलह धनुष चौड़ा चन्द्रमा से बनायाहुआ तड़ाग स्थित है वह पहले मुक्तिदानादिपूर्वक कहागया है ॥ ३ । ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर शशिभूषण के पूर्व व कोटितीर्थ से पश्चिम में उत्तम कपिलेश्वरजी के समीप जावै ॥ ५ ॥ जरद्गव से दक्षिण व समुद्र के उत्तरमें यह कपिलक्षेत्र पापी मनुष्यों को नहीं प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ हे देवि ! पुरातन समय

जहां कपिलजी ने महादेवजी को थापकर कुछ अधिक दश हजार वर्ष तक बड़ाभारी तप किया है ॥ ७ ॥ और वहां कपिलधारा महानदी देवी लाई गई है समुद्र के बीचमें आज भी वह पुण्यवृद्धिवाली नदी देखपड़ती है ॥ ८ ॥ हे महादेवि ! उस कपिलनदी में नहाकर वहां जो विशेषकर कपिला गऊको देताहै वह करोड़ गौवों के फलका भागी होताहै ॥ ९ ॥ और सबही पातकोंका यह प्रायश्चित्त कहागया है ॥ १० ॥ देवीजी बोलीं कि हे महेश्वर, देवेश ! मुझको आश्चर्य है इससे मैं कपिलाकी विधि को सुना चाहतीहूं व प्रमाणादिपूर्वक दानको सुना चाहती हूं ॥ ११ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! मनुष्यों के जीवन मध्य में यदि मनुष्यों को

देवि यत्रतप्तंतपोमहत् ॥ वर्षाणामयुतंसाग्रं प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ ७ ॥ समाहृतातत्रदेवी कपिलधारामहानदी ॥ समुद्रमध्येसाद्यापि पुण्यवृद्धिश्चदृश्यते ॥ ८ ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि कपिलायांविशेषतः ॥ कपिलान्दापयेत्तत्र गोकोटिफलभाग्भवेत् ॥ ९ ॥ सर्वेषाञ्चैवपापानां प्रायश्चित्तमिदंस्मृतम् ॥ १० ॥ देव्युवाच ॥ आश्चर्यंममदेवेश कपिलायामहेश्वर ॥ विधानंश्रोतुमिच्छामि दानंमात्रादिपूर्वकम् ॥ ११ ॥ ईश्वर उवाच ॥ जनजीवितमध्येतु यद्येकालभ्यतेनरैः ॥ संयोगयुक्तासाषष्ठी तत्किन्देविब्रवीम्यहम् ॥ १२ ॥ प्रौष्ठपद्यसितेपक्षेषष्ठ्यांभौमोभवेद्यदि ॥ व्यतीपातश्चरोहिण्यां साषष्ठीकपिलास्मृता ॥ १३ ॥ तत्रक्षेत्रेनरस्स्नात्वा अथचार्कस्थलेशुभे ॥ मृदाक्षतैस्तिलैश्चैव कपिलासङ्गमेशुभे ॥ १४ ॥ कृतस्नानजपःपश्चात् सूर्यार्घञ्चनिवेदयेत् ॥ रक्तचन्दनतोयेन करवीरयुतेनच ॥ १५ ॥ कृत्वार्घपात्रंशिरसि मन्त्रेणानेनदापयेत् ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय उद्भासितजगत्त्रय ॥ १६ ॥ तेजरश्मेनमस्तुभ्यं गृहाणार्घन्नमोस्तुते ॥ सूर्यप्रदक्षि

संयोग युक्त एक छठि तिथि मिलै तो मैं क्या कहूं ॥ १२ ॥ भादौं के कृष्णपक्ष में यदि छठि तिथि में मंगल दिन होवै और रोहिणी समेत व्यतीपात होवै तो वह कपिला षष्ठी कहीगई है ॥ १३ ॥ उस क्षेत्रमें नहाकर मनुष्य इसके उपरान्त उत्तम अर्कस्थल में मिट्टी अक्षत व तिलों से उत्तम कपिला के संगम में ॥ १४ ॥ स्नान व जपकर पश्चात् मनुष्य सूर्यनारायणको कनैर संयुत लाल चन्दन मिलेहुये जलसे अर्घ देवै ॥ १५ ॥ अर्घपात्रको मस्तक पै करके इस मन्त्रसे अर्घदेवै कि हे तीनों लोकों को प्रकाशित करनेवाले ! त्रिलोकके स्वामी आपके लिये प्रणामहै ॥ १६ ॥ हे तेजरश्मे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै अर्घको ग्रहण कीजिये आपके लिये प्रणाम

है सूर्यकी प्रदक्षिणा कर व कपिलेश्वरजी को पूजकर ॥ १७ ॥ लीपेहुये तथा पुष्पों व अक्षतों से भूषित बराबर स्थान में चन्दन व जलसे पूर्ण तथा बिन फूटेहुये घट को स्थापन करै ॥ १८ ॥ जोकि पंचरत्नों से संयुत व दूर्वा, पुष्प तथा अक्षतादिकों से युक्त और दो लाल वस्त्रों से आच्छादित व ताम्र पात्रसे संयुत होवै ॥ १९ ॥ इस के अनन्तर पलभर सुवर्णकी एक मूर्तिको बनाकर पलभर सुवर्णकी सूर्यनारायण की मूर्तिको बनावै ॥ २० ॥ और घटके ऊपर भलीभांति स्थापित कर चन्दन व पुष्पों से पूजै व कपिलेश्वरके समीप विधिसे संस्कार कियेहुये मण्डपमें ॥ २१ ॥ अपने यथायोग्य नामोंसे सूर्यदेवको पूजनकरै कि हे महाप्रभाकर ! तुम्हारे लिये नम-

णीकृत्य सम्पूज्यकपिलेश्वरम् ॥ १७ ॥ उपलिप्तेसमेदेशे पुष्पाक्षतविभूषितम् ॥ स्थापयेदव्रणंकुम्भं चन्दनोदकपूरितम् ॥ १८ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् ॥ रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्रपात्रेणसंयुतम् ॥ १९ ॥ अथोरुक्मपलस्यैव एकांमूर्त्तिंविरच्यवै ॥ सौवर्णपलसंयुक्तां मूर्त्तिंसूर्यस्यकारयेत ॥ २० ॥ कुम्भस्योपरिसंस्थाप्य गन्धपुष्पैस्समर्चयेत् ॥ कपिलेश्वरसान्निध्ये मण्डपेविधिसंस्कृते ॥ २१ ॥ आदित्यंपूजयेद्देवं नामभिस्स्वैर्यथोचितैः ॥ प्रभाकरनमस्तुभ्यं संसारान्मांसमुद्धर ॥ २२ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदोयस्मात्तस्माच्छान्तिंप्रयच्छनः ॥ २३ ॥ नमोनमस्तेदेवेशऋक्सामयजुषाम्पते ॥ नमोस्तुविश्वरूपाय विश्वधात्रेनमोस्तुते ॥ २४ ॥ अमृतन्देवितेक्षीरं पवित्रमिहपुष्टिदम् ॥ त्वत्प्रसादात्प्रमुच्येत मनुजस्सर्वपातकैः ॥ २५ ॥ ब्रह्मणोत्पादितेदेवि सर्वतीर्थमयेशुभे ॥ दातारंपूजमानंसा ब्रह्मलोकेनयेत्स्वयम् ॥ इति पूजार्घमन्त्रः ॥ २६ ॥ एवंसम्पूज्यकपिलांकुम्भस्थञ्चदिवाकरम् ॥ विप्रायवेदविदुषे उभयम्प्रतिपादयेत ॥ २७ ॥

स्कार है मुझको संसारसे उधारिये ॥ २२ ॥ जिसलिये तुम भुक्ति व मुक्ति के देनेवाले हो इस कारण मुझको शांति दीजिये ॥ २३ ॥ हे देवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है हे ऋक्सामयजुषांपते ! विश्वरूप आपके लिये प्रणाम है व संसारको धारण करनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है हे देवि ! तुम्हारा दूध अमृत व पवित्र तथा इस संसार में पुष्टिदायक है और तुम्हारी प्रसन्नतासे मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २४ । २५ ॥ हे देवि ! ब्रह्मा से उत्पन्न कियेहुये समस्त तीर्थमय उत्तम तीर्थ में पूजतेहुये दाताको वह कपिला आपही ब्रह्मलोक में प्राप्त करती है यह पूजन के अर्घका मन्त्र है ॥ २६ ॥ इसप्रकार कपिला को व घट में

स्थित सूर्यनारायणको भलीभांति पूजकर वेदके जाननेवाले ब्राह्मण के निमित्त दोनों को देवै ॥ २७ ॥ कपिला समेत विश्वमूर्ति,विश्वनेत्र, द्वादशात्मा व दिवाकर देवजी मुझको मुक्ति देवैं ॥ २८ ॥ हे पुण्ये, कपिले ! जिसलिये तुम सब संसार को पवित्र करनेवाली हो उस कारण सूर्य समेत दीहुई तुम मुझको मुक्तिदायिनी होवो ॥ २९ ॥ और पलभर सुवर्ण से दक्षिणा करना चाहिये व फिर उसकी चौथाईमे दक्षिणा करना चाहिये और शक्तिके अनुसार दक्षिणाको देकर उसगऊको देवै ॥ ३० ॥ जो इस विधि से कपिलासञ्ज्ञक छठिको करता है वह मनुष्य हज़ार अश्वमेध यज्ञों के फलको पाता है ॥ ३१ ॥ सब तीर्थों में जो फल होता है व सब दानों

विश्वमूर्त्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मादिवाकरः ॥ कपिलासहितोदेवो ममयुक्तिंप्रयच्छतु ॥ २८ ॥ यस्मात्त्वंकपिलेपुण्ये सर्वलोकस्यपावनी ॥ प्रदत्तासहसूर्येण ममयुक्तिप्रदाभव ॥ २९ ॥ पलेनदक्षिणाकार्या तदर्द्धार्द्धेनवापुनः ॥ शक्तितोदक्षिणान्दत्त्वा तांधेनुंप्रतिपादयेत् ॥ ३० ॥ योनेनविधिनाकुर्यात्षष्ठींकपिलसंज्ञिताम् ॥ सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ३१ ॥ यत्फलंसर्वतीर्थेषु सर्वदानेषुयत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोति यःषष्ठींकपिलाञ्चरेत् ॥ ३२ ॥ कपिलाकोटिसहस्राणि कपिलाकोटिशतानिच ॥ सूर्यपर्वणियद्दत्त्वा तत्फलंकोटिशोभवेत ॥ ३३ ॥ कोटिगोरोमसंख्यानि वर्षाणिवरवर्णिनि ॥ तावन्तिसंवसेत्स्वर्गे यःषष्ठींकपिलाञ्चरेत् ॥ ३४ ॥ ज्ञानतोज्ञानतोवापि यत्पापंपूर्वसञ्चितम् ॥ तत्सर्वंनाशमायाति इत्याहकपिलोमुनिः ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कपिलाषष्ठीमाहात्म्यन्नामद्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

में जो फल होताहै उस फलको वह मनुष्य पाताहै जोकि कपिला छठिको करता है ॥ ३२ ॥ सूर्यपर्व में कोटि हज़ार कपिला व करोड़ सौ कपिलाओं को देकर जो फल होता है कपिला के देने से वह कोटिगुना फल होताहै ॥ ३३ ॥ हे वरवर्णिनि ! करोड़ गोरोम संख्यक उतने वर्षोंतक वह पुरुष स्वर्ग में बसता है जोकि कपिला षष्ठीको करता है ॥ ३४ ॥ ज्ञान व अज्ञान से भी जो पहले का इकट्ठा कियाहुआ पाप है वह सब नाशको प्राप्त होता है ऐसा कपिलमुनि ने कहा है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकपिलाषष्ठीमाहात्म्यंनामद्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । थप्यो जरद्गव मुनि यथा लिंग जरद्गव नाम । कह्यो तीनसौ तीन महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर कपिलेश्वर से ईशान व उत्तरमें स्थित पापविनाशक लिंगके समीपजावै ॥ १ ॥ जरद्गवसे थापाहुआ जरद्गवेश्वर नामक लिंग ब्रह्महत्यादि पातकोंका विनाशकहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ व हे देवि ! वहींपर नदीरूपिणी अंशुमती देवी स्थित है उसमें नहाकर जो विधि से पिण्डदानको देता है ॥ ३ ॥ वह कुछ अधिक करोड़ सौ वर्षोंतक पितरों की तृप्ति करताहै और वहां वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये बैल देनाचाहिये ॥ ४ ॥ तदनन्तर चन्दन व पुष्पोंसे तथा पञ्चामृत रससे और गुग्गुलके धूपोंसे जरद्गव

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ कपिलेश्वरईशान्यामुत्तरेचव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ जरद्गवेश्वरन्नाम जरद्गवप्रतिष्ठितम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां नाशनन्नात्रसंशयः ॥ २ ॥ तत्रैवसंस्थितादेवि देवीह्यंशुमतीनदी ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन पिण्डदानन्तुदापयेत् ॥ ३ ॥ वर्षकोटिशतंसाग्रं पितृणांतृप्तिमावहेत् ॥ वृषभस्तत्रदातव्यो ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ४ ॥ ततस्तुपूजयेद्देवं गन्धपुष्पैर्जरद्गवम् ॥ पञ्चामृतरसेनैव तथागुग्गुलुधूपनैः ॥ ५ ॥ स्तुतिदण्डनमस्कारैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र भक्ष्यभोज्यैःपृथग्विधैः ॥ ६ ॥ एकेनभोजितेनैव कोटिर्भवतिभोजिता ॥ कृतेजिह्वोदकन्नाम तत्तीर्थंपरिकीर्त्तितम् ॥ ७ ॥ जरद्गवेश्वरन्तीर्थं कलौतुपरिकीर्त्यते ॥ ८ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे जरद्गवेश्वरमाहात्म्यन्नामत्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंवैहाटकेश्वरम् ॥ जरद्गवात्पूर्वभागे धनुषांषष्टिभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥ नाम्ना

देवजी को पूजै ॥ ५ ॥ व स्तुति और दण्डवत् प्रणामों से तथा बलिप्रदानों से दिनरात पूजै और वहां अनेक भांति के भक्ष्यभोज्यों से ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ६ ॥ क्योंकि वहा एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मण भोजित होते हैं सतयुग में जिह्वोदक नामक वह तीर्थ कहागया है ॥ ७ ॥ और कलियुगमें जरद्गवेश्वर नामक तीर्थ कहाजाताहै ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाजरद्गवेश्वरमाहात्म्यंनामत्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥

दो० । अहै जरद्गव पूर्व में जिमि कोटिक दिननाथ । कह्यो तीनसौ चार महँ सोई उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर जरद्गव से पूर्व

भाग में एकसौ अस्सी धनुष पै हाटकेश्वरलिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! उस उत्तम क्षेत्रको जानकर दमयन्ती के पति नलने नाम से नलेश्वरलिंगको थापा है ॥ २ ॥ हे देवि ! उस लिंगको देखकर व विधि से पूजकर प्राणी बखेड़ों से छूटजाता है व युद्धमें विजयवान् होताहै ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उससे आग्नेय दिशाके भाग में कोटिक सूर्यनारायण स्थित हैं पूर्वकल्पमें वे कर्कोटकनामक कहेगये हैं ॥ ४ ॥ उनके दर्शनहीसे सब देवता प्रसन्न होतेहैं रविवार सप्तमी में धूप, चन्दन व अनुलेपनों से ॥ ५ ॥ जो उनको विधि से पूजताहै वह सब पातकोंसे छूटजाताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमि

नलेश्वरेदेवि स्थापितश्चनलेनवै ॥ दमयन्तीधवेनैव ज्ञात्वातत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ २ ॥ तद्दृष्ट्वामानवोदेवि पूजयित्वाविधानतः ॥ कलिभिर्मुच्यतेजन्तू रणेचविजयीभवेत ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्मादाग्नेयदिग्भागे संस्थितःकोटिकोरविः ॥ पूर्वकल्पेमहादेवि स्मृतःकर्कोटकाभिधम् ॥ ४ ॥ तस्यदर्शनमात्रेण प्रीताःस्युस्सर्वदेवताः ॥ सप्तम्यांरविवारेण धूपगन्धानुलेपनैः ॥ ५ ॥ पूजयेद्योविधानेन मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कोटिकमाहात्म्यन्नामचतुराधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंवैहाटकेश्वरम् ॥ नलेश्वरात्पूर्वभागे शतधन्वन्तरेप्रिये ॥ १ ॥ अगस्त्याश्रमकन्नाम तत्रस्थानेचसंस्थितम् ॥ २ ॥ चिन्तामणिस्तुपूर्वेण धनुषांत्रिंशतास्थितः ॥ पूर्वंतत्रतपस्तप्तं अगस्त्येनमहात्मना ॥ ३ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कस्मिन्कालेमहादेवि ह्यगस्तिरतपत्तपः ॥ प्रियाहंतवभूतेश सर्वविस्तरतोवद ॥ ४ ॥

अविरचितायांभाषाटीकायांकोटिकमाहात्म्यंनामचतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०४ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि अगस्ति जलनिधि पियो देवन कियो सुखार। कह्यो तीनसौ पांच महँ सोई चरित उदार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर नलेश्वरसे पूर्वभाग में हाटकेश्वर लिंगके समीप जावै और हे प्रिये ! नलेश्वर से पूर्वभाग में सौ धनुषके अन्तर पै उसी स्थान में अगस्त्याश्रमनामक वन भलीभांति स्थित है ॥ १ । २ ॥ और पूर्व में तीस धनुष पै चिन्तामणिहैं पुरातन समय वहां महात्मा अगस्त्यजी ने तप कियाहै ॥ ३ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे महादेव ! अगस्त्यजी

ने किस समय तप किया है हे भूतेश ! मैं तुम्हारी प्यारी हूं इससे सबको विस्तारसे कहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि ! पुरातन समय त्रिलोक को नाश करनेवाले कालकेय ऐसे प्रसिद्ध भयंकर दैत्यगण हुये हैं ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर प्रभासक्षेत्रवासी दैत्यसूदननामक समर्थवान् विष्णुजी ने उन सबको मारा है ॥ ६ ॥ व्याघ्रका रूपकर चक्रमुखनामक उस रूपसे दैत्य मारेगये उसीकारण दैत्यसूदन हुये और मारने से बचेहुये भयसे विकल दैत्य समुद्र में पैठगये तदनन्तर उन्होंने सलाह किया कि देवता किसप्रकार पीड़ित कियेजावैं ॥ ७ । ८ ॥ हे प्रिये ! जहां धर्मवान् मारेजाते हैं व पृथ्वी में तपस्या व निजवेदपाठ में परायण

ईश्वर उवाच ॥ पुरादैत्यगणारौद्रा बभूवुर्वरवर्णिनि ॥ कालकेयाइतिख्यातास्त्रैलोक्योच्छेदकारकाः ॥ ५ ॥ अथतेनिहतास्सर्वे विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ दैत्यसूदननाम्नातु प्रभासक्षेत्रवासिना ॥ ६ ॥ कृत्वाव्याघ्रस्यरूपन्तु नाम्नाचक्रमुखेतिच ॥ हतावैतेनरूपेण ततोभूद्दैत्यसूदनः ॥ ७ ॥ हताश्शेषास्समुद्रन्ते प्रविष्टाभयविह्वलाः ॥ ततस्तेमन्त्रयामासुः पीड्यन्तेदेवताःकथम् ॥ ८ ॥ हन्यन्तेधर्मिणोयत्र वध्यन्तेधरणीतले ॥ तपस्स्वाध्यायनिरता यज्ञदानरताःप्रिये ॥ ९ ॥ अथतेसमयंकृत्वा रात्रौनिष्क्रम्यसागरात् ॥ निजघ्नुस्तापसांस्तत्र यज्ञदानरतान्प्रिये ॥ १० ॥ प्रभासेतुमहादेवि तत्र द्वादशयोजने ॥ वसिष्ठस्याश्रमेतत्र महर्षीणांमहात्मनाम् ॥ ११ ॥ भक्षितानिसहस्राणि पञ्चसप्तचपार्वति ॥ शतानि पञ्चरैभ्यस्य विश्वामित्रस्यषोडश ॥ १२ ॥ च्यवनस्यचसप्तैव जाबालेर्द्विशतंप्रिये ॥ बालखिल्याश्रमेपुण्ये षट्शतानिदुरात्मभिः ॥ १३ ॥ यत्रकश्चिद्भवेद्यज्ञस्तत्रगत्वानिशागमे ॥ यज्ञदानसमायुक्ता न्त्विजोभक्षयन्तिच ॥ १४ ॥

तथा यज्ञ व दानमें लगेहुये पुरुष मारेजाते हैं वहां देवता पीड़ित होते हैं ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर हे प्रिये ! उन्होंने प्रतिज्ञाकर रात में समुद्र से निकल कर वहां यज्ञ व दान में तत्पर तपस्वियों को मारा ॥ १० ॥ व हे महादेवि, पार्वति ! उस बारह योजन प्रभास में वहां वसिष्ठजीके आश्रममें बारहहज़ार महर्षि व महात्मा भक्षण किये गये और रैभ्य के आश्रम में पांच सौ व विश्वामित्रजी के आश्रम में सोलह सै तपस्वियोंको मारा ॥ ११ । १२ ॥ व हे प्रिये ! च्यवन के आश्रम में सात सौ व जाबालिके आश्रम में दो सौ मुनियों को मारा और बालखिल्या के पवित्र आश्रममें दुष्टोंसे छःसौ तपस्वी मारेगये ॥ १३ ॥ और जहां कहीं यज्ञ होता था वहां रात्रि

आने पर जाकर दैत्यलोग यज्ञ व दान में संयुत ऋत्विजों को भक्षण करते थे ॥ १४ ॥ तदनन्तर पृथ्वी में सब भयसे विकलहुये और कोई दैत्यों के कर्मको नहीं जानताथा ॥ १५ ॥ रात्रिमें मुनिलोग जिनको आसनों पै सुख से प्राप्त देखते थे प्रातःकाल यज्ञमें केवल उनके अस्थिसमूहों को देखते थे ॥ १६ ॥ तदनन्तर पृथ्वी में सब मनुष्यों ने धर्मके कार्योंको छोड़ दिया और पृथ्वी धर्महीन व वषट्काररहित होगई ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर रात्रिमें तपस्यासे संयुत व व्रतरूपी अस्त्रवाले अन्य तपस्वी नष्ट कियेगये इसके उपरान्त धर्म के नाश होनेपर पीड़ित होकर देवता ॥ १८ ॥ यह क्या है ऐसा कहतेहुये ब्रह्माकी शरण में गये व बोले कि हे भग-

ततोभयाकुलास्सर्वे बभूवुर्जगतीतले ॥ नतुकश्चिद्विजानाति दैत्यानांचविचेष्टितम् ॥ १५ ॥ रात्रौपश्यन्तिमुनयः सुखप्राप्तान्वृषीषुच ॥ प्रभातेत्वध्वरेतेषामस्थिसङ्घांश्चकेवलम् ॥ १६ ॥ ततोधर्मक्रियास्त्यक्ता भूतलेसर्वमानवैः ॥ निर्धर्मंनिर्वषट्कारं भूतलंसमपद्यत ॥ १७ ॥ अथान्येतपसारात्रौ संयुताश्चव्रतायुधाः ॥ अथोच्छेदङ्गतेधर्मे पीडितास्त्रिदिवौकसः ॥ १८ ॥ किमेतदितिजल्पन्तो ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥भगवंस्तापसास्सर्वे तथायेज्ञानशालिनः ॥ १९ ॥भक्ष्यन्तेके नचिद्रात्रौ नतंजानीमहेवयम् ॥ नष्टधर्माःक्रियास्सर्वा भूतलेप्रपितामह ॥ २० ॥ योधर्ममाचरत्यह्नि सरात्रौमृत्युमेति च ॥ नस्वाध्यायोवषट्कारः समस्तेभूतलेविभो ॥ २१ ॥ धर्माभावाद्वयंसर्वे संदेहंपरमङ्गताः ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाध्यात्वादेवपितामहः ॥ २२ ॥ अब्रवीत्त्रिदशान्सर्वान् सन्देहंपरमङ्गतान् ॥ कालेयाइतिविख्याता दानवारौद्रकारिणः ॥ २३ ॥ तेसमुद्रंसमासाद्य तापसान्भक्षयन्तिच ॥ युष्माकंचविनाशाय तेनशक्यानिपूदितुम् ॥ २४ ॥ यतध्वमेषांना

वन् ! सब तपस्वी व जो ज्ञानसे शोभित हैं ॥ १९ ॥ उनको कोई रातमें भक्षण करता है और उसको हमलोग नहीं जानते हैं हे प्रपितामह ! पृथ्वी में धर्मवाले कार्य नाश होगये ॥ २० ॥ दिनमें जो धर्मको करता है वह रात्रि में मृत्युको प्राप्तहोता है व हे विभो ! सब पृथ्वी में वेदपाठ व वषट्कार नहीं है ॥ २१ ॥ और धर्म के अभाव से हम सब लोग बड़े सन्देहको प्राप्त हैं उनके उस वचनको सुनकर ब्रह्मादेवजीने ध्यानकर ॥ २२ ॥ बड़े सन्देहको प्राप्त सब देवताओं से कहा कि भयंकर कर्म करनेवाले जो कालेय ऐसे दानव प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ वे समुद्रको प्राप्त होकर तपस्वियोंको भक्षण करते हैं और वे तुमलोगोंके नाशके लिये हैं व तुमलोगों

से वे नहीं मारेजासक्ते हैं ॥२४॥ इनके नाशके लिये यत्न कीजिये नहीं तो विनाश होगा जहां उत्तम प्रभासक्षेत्र में व्रतचर्या में तत्पर होकर अगस्त्यजी स्थितहैं वहां शीघ्रही पृथ्वी में जाइये क्योंकि मित्रावरुण से उपजे हुये वे अगस्त्यजी समुद्रको पीने के लिये समर्थ हैं ॥ २५ । २६ ॥ वे तुमलोगों से प्रसन्न कराने योग्यहैं क्योंकि वे मुनिनाथ समुद्रको पीवैंगे तदनन्तर उनके वैसा करने पर वे सब अधम दानव ॥ २७ ॥ हे देवताओ ! उस समय तुमलोगों से नाशको प्राप्तहोवैंगे महादेवजी बोले कि लोकोंके रचनेवाले ब्रह्माजीसे ऐसा कहेहुये सब देवता ॥ २८ ॥ प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर अगस्त्यजीकी शरण में गये ॥ २९ ॥ देवता बोले कि हे द्विजोत्तम!

शाय नोचेन्नाशोभविष्यति ॥ व्रजध्वंभूतलंशीघ्रमगस्त्योयत्रातिष्ठति ॥ २५ ॥ व्रतचर्यारतोभूत्वा प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ सशक्तःसागरंपातुं मित्रावरुणसम्भवः ॥ २६ ॥ प्रसाद्यस्सचयुष्माभिः पिबत्यब्धिंमुनीश्वरः ॥ ततस्तथाकृते तेन तेसर्वेदानवाधमाः ॥ २७ ॥ युष्माभिर्नाशमेष्यन्ति तदाचत्रिदशेश्वराः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तास्सुरास्सर्वे ब्रह्मणालोककारिणा ॥ २८ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य अगस्त्यंशरणङ्गताः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ रक्षरक्षद्विजश्रेष्ठत्रैलोक्यंसंशयङ्गतम् ॥ कालकेयैःप्रतिध्वस्तं समुद्रंसमुपाश्रितैः ॥ ३० ॥ त्वंशोषयद्विजश्रेष्ठ हितार्थंत्रिदिवौकसाम् ॥ नान्यश्शक्तःपुमान्कश्चित्कर्तुमीदृक्क्रियांविभो ॥ ३१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तस्सुरगणैरगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ जगामत्रिदशैस्सार्द्धं समुद्रंप्रतिहर्षितः ॥ ३२ ॥ गीयमानस्तुगन्धर्वैःस्तूयमानस्तुकिन्नरैः ॥ श्लाघ्यमानस्तुविबुधैर्वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३३ ॥ एषत्रैलोक्यरक्षार्थं शोषयामिमहार्णवम् ॥ पश्यध्वंकौतुकन्देवास्समीनमकरंमहत् ॥ ३४ ॥ एवमुक्त्वा

समुद्र में टिकेहुये कालकेय दानवों से विध्वंसित व सन्देह में प्राप्त त्रिलोककीरक्षा कीजिये ॥ ३० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! देवताओंके हितके लिये तुम उसको शोष लेवो हे विभो ! अन्य कोई पुरुष ऐसा कार्य करने के लिये नहीं समर्थ है ॥ ३१ ॥ महादेवजीबोले कि देवगणों से ऐसा कहेहुये मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी प्रसन्न होकर देवताओंसमेत समुद्र के समीप गये ॥ ३२ ॥ और गन्धर्वों से गाये जातेहुये व किन्नरों से स्तुति किये जाते हुये व देवताओं से प्रशंसा किये जाते हुये अगस्त्यजी इस वचन को बोले ॥ ३३ ॥ कि त्रिलोककी रक्षाके लिये इसी समय मछलियों व नाकोंसमेत बड़ेभारी समुद्रको मैं शोषताहूं हे देवताओ ! उस कौतुकको देखिये ॥ ३४॥

ऐसा कहकर द्विजश्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ने नदियों के पति सब समुद्रको गण्डूष (पान) किया ॥ ३५ ॥ महात्मा अगस्त्यजी से उस बड़ेभारी समुद्र के पीने पर भय में प्राप्त सब दानव इधर उधर घूमने लगे ॥ ३६ ॥ और वहां देवताओं से बड़े पैने बाणों करके मारे जातेहुये अन्य दानव भागने में तत्पर होकर वन को जाते थे ॥ ३७ ॥ और दैत्योंके नष्टभूत होनेपर रक्तसे डूबेहुये दानव पृथ्वीको फोड़कर शीघ्रही पातालमें पैठगये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न होतेहुये देवताओंने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से कहा कि हमलोगों का सब मनोरथ सिद्ध होगया समुद्र फिर पूर्ण कियाजाय ॥ ३९ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे देवताओ ! मुझ से

द्विजश्रेष्ठस्त्वगस्त्योभगवान्मुनिः ॥ गण्डूषमकरोत्सर्वं समुद्रंसरिताम्पतिम् ॥ ३५ ॥ पीतेतत्रमहत्यब्धावगस्त्येनमहात्मना ॥ दानवाभयसम्पन्ना इतश्चेतश्चबभ्रमुः ॥ ३६ ॥ वध्यमानास्सुरैस्तत्र शस्त्रैःसुनिशितैस्तथा ॥ कान्तारमन्येगच्छन्ति पलायनपरायणाः ॥ ३७ ॥ हतभूतेषुदैत्येषु विदार्यधरणीतलम् ॥ पातालंविविशुस्तूर्णं रुधिरेणपरिप्लुताः ॥ ३८ ॥ अथोचुस्त्रिदशाहृष्टा अगस्त्यंमुनिपुङ्गवम् ॥ सिद्धन्नोवाञ्छितंसर्वं पूर्यतांसागरःपुनः ॥ ३९ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ जीर्णन्तोयंमयादेवास्तथैवामेध्यताङ्गतम् ॥ अथोवाचसुरान्सर्वानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ उत्पत्स्यतिरघूणांहि कुलेनृपतिसत्तमः ॥ भगीरथेतिविख्यातस्सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ ४१ ॥ सज्ञातिकारणादेव गङ्गांतत्रानयिष्यति ॥ ब्रह्मलोकात्सधर्मिष्ठस्तयापूर्णोभविष्यति ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वासुरैस्सार्द्धं स्वस्थानंचागमन्मुनिः ॥ ततस्स्वमाश्रमंप्राप्तंदेवावाक्यमथाब्रुवन् ॥ ४३ ॥ अनेनकर्मणाब्रह्मन् परितुष्टावयम्मुने ॥ किंकुर्मोब्रूहितेभीष्टं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ४४ ॥

पियाहुआ जल जीर्ण होगया याने पचगया वैसेही अपवित्रता में प्राप्त है इसके उपरान्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी सब देवताओं से बोले ॥ ४० ॥ कि रघुवों के वंशमें सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भगीरथ ऐसे प्रसिद्ध नृपोत्तम उत्पन्न होवेंगे ॥ ४१ ॥ वे धर्मिष्ठकुटुम्बियोंके कारण ब्रह्मलोकसे वहां गंगाजी को लावेंगे उनसे वह समुद्र पूर्ण होगा ॥ ४२ ॥ ऐसा कहकर देवताओंसमेत अगस्त्य मुनि अपने आश्रमको आये तदनन्तर अपने आश्रम में प्राप्त अगस्त्यजीसे देवताओंने वचन कहा ॥ ४३ ॥ कि

हेब्रह्मन्, मुने ! इस कर्मसे हमलोग बहुत प्रसन्नहुये हैं कहिये यद्यपि दुर्लभ भी होवै तथापि मैं तुम्हारे किस मनोरथको करूं ॥ ४४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि पच्चीस करोड़ हज़ार वर्षतक दक्षिण और आकाश के ऊपर मैं विमानयुक्त होऊं ॥ ४५ ॥ और मेरे इस उत्तम आश्रम स्थान में आकर जो हाटकेश्वरजी के समीप उत्तम प्रभासक्षेत्र में ॥ ४६ ॥ भलीभांति स्नान करै वह उत्तम गतिको प्राप्तहोवै और मुझसे तपस्याके प्रभावसे पाताल से अवतारित उन लिंगरूपी महादेवजी को जो शुद्धचित्त पुरुष पूजै मनुष्यों के मध्य में उसको प्रतिदिन हज़ार गोदानका फल होवै ॥ ४७ । ४८ ॥ सावधान होताहुआ जो पुरुष लोपामुद्राके सहायक मुझको पूजै व शरद्समय

अगस्त्य उवाच ॥ यावद्वर्षसहस्राणि पञ्चविंशतिकोटयः ॥ वैमानिकोभविष्यामि दक्षिणाम्बरमूर्द्धनि ॥ ४५ ॥ अत्रागत्यनरोयस्तु ममाश्रमपदेशुभे ॥ हाटकेश्वरसान्निध्ये प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ ४६ ॥ स्नानमाचरतेसम्यक् सया तुपरमाङ्गतिम् ॥ पातालादेवतीर्णन्तल्लिङ्गरूपंमहेश्वरम् ॥ ४७ ॥ मयातपःप्रभावेण भावितोयःप्रपूजयेत् ॥ दिनेदिने भवेत्तस्य गोसहस्रफलंनृणाम् ॥ ४८ ॥ लोपामुद्रासहायंमां योमर्त्यस्सम्प्रपूजयेत ॥ अर्घंदद्याद्विधानेन काशपुष्पैस्स माहितः ॥ ४९ ॥ प्राप्तेशरदिकालेतु सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ लोपामुद्रासहायंमां हाटकेश्वरसंयुतम् ॥ ५० ॥ अयनेचो त्तरेपूज्य गोलक्षफलमाप्नुयात् ॥ यःश्राद्धंकुरुतेचात्र अयनेचोत्तरेद्विजः ॥ ५१ ॥ भूयात्तस्यफलंदेवा गयाश्राद्धस्य सत्तमाः ॥ ५२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वाढमित्येवतेचोक्त्वा सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ स्वस्थानन्तुगतास्सर्वे सुहृष्टमनसस्त दा ॥ ५३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्राप्तेशरदिमानवः ॥ अगस्त्यस्याश्रमंगत्वा हाटकेशंप्रपूजयेत् ॥ ५४ ॥ अगस्त्येश्वर

प्राप्तहोने पर काशके फूलोंसे विधिपूर्वक अर्घ देवै वह उत्तम गतिको प्राप्तहोवै और हाटकेश्वरसंयुक्त लोपामुद्रा के सहायक मुझको ॥ ४९ । ५० ॥ उत्तरायण में पूजकर मनुष्य लक्ष गोदानके फलको पावै व हे सत्तमो, देवताओ ! उत्तरायण में जो ब्राह्मण यहां श्राद्ध करै उसको गयाश्राद्धका फल होवै ॥ ५१ । ५२ ॥ महादेव जी बोले कि उस समय बहुत अच्छा ऐसाही कहकर इन्द्रसमेत वे सब देवता अपने स्थानको गये व सब प्रसन्नमन हुये ॥ ५३ ॥ उसीकारण शरद् प्राप्तहोने पर

मनुष्य सब यत्नसे अगस्त्यजी के आश्रमको जाकर हाटकेश्वरलिंग को पूजै ॥ ५४ ॥ व अगस्त्येश्वरनामक सुरप्रिय कल्पलिंगको पूजै जो मनुष्य इसप्रकार भक्तिसे उन ऋषिके कर्मको सुनताहै ॥ ५५ ॥ वह उसीक्षण दिन रातमें कियेहुये पातकोंसे छूट जाताहै ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाप्रभासक्षेत्रयात्रायामगस्त्याश्रममाहात्म्यंनामपञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰। सुपर्णेश्वरिहिं देवि जिमि थाप्यो अहै सुपर्ण। कह्यो तीनसौ छठे में सोईचरित सुवर्ण ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर भीमेश्वरके समीप पहले

नामेति कल्पलिङ्गंसुरप्रियम् ॥ यश्चैवंशृणुयाद्भक्त्या ऋषेस्तस्यविचेष्टितम् ॥ ५५ ॥ अहोरात्रकृतात्पापात् तत्क्षणादेवमुच्यते ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रयात्रायामगस्त्याश्रममाहात्म्यन्नामपञ्चाधिकात्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवीमन्त्रविभूषणाम् ॥ भीमेश्वरस्यसान्निध्ये सोमेनाराधिताम्पुरा ॥ १ ॥ श्रावणेमासिविधिनायानारीताम्प्रपूजयेत ॥ तृतीयायांशुक्लपक्षे सादुःखैर्मुच्यतेखिलैः ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेविविघ्नेशंदुर्गकण्टकम् ॥ भल्लतीर्थस्यपूर्वेण योगिनीचक्रदक्षिणे ॥ ३ ॥ आराधितोसौभीमेनसर्वकामप्रदोभवत् ॥ फाल्गुनस्यचतुर्थ्यांतु शुक्लपक्षेविधानतः ॥ ४ ॥ यस्तंपूजयतेदेवं गन्धपुष्पैस्समोदकैः ॥ विघ्नन्नजायतेतस्य वर्षमेकन्नसंशयम् ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कौबेरेशीम्प्रयत्नतः ॥ यस्यनाम्नाकुरुक्षेत्रं तेनसाराधितापुरा ॥ ६ ॥

चन्द्रमासे आराधन की हुई अन्त्रविभूषणा देवी के समीप जावै ॥ १ ॥ श्रावण महीने में शुक्ल पक्षकी तीज तिथिमें जो स्त्री विधिसे उन भगवतीजीको पूजती है वह सब दुःखोंसे छूट जाती है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर भल्लतीर्थ के पूर्व व योगिनीचक्रसे दक्षिण में दुर्गकण्टक विघ्नेशजी के समीप जावै ॥ ३ ॥ भीम से आराधन कियेहुये ये सब कामनाओं के दायकहुये हैं फागुनके शुक्लपक्षमें चौथि तिथिमें विधिसे ॥ ४ ॥ जो पुरुष उन विघ्नेश देवजीको लड्डुवोंसमेत चन्दन व पुष्पों से पूजता है उसको एक वर्षतक विघ्न नहीं होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर बड़े यत्न से कौबेरेश्वरीजीके समीप

ावै जिनके नाम से कुरुक्षेत्र है उन कुरुक्षे पहले वे भगवती आराधन कीगई हैं ॥ ६ ॥ व क्षेत्रकी रक्षाकर भीमजी ने इनको आराधन किया है महानवमी में जो नुष्य यत्नसे उन भगवती को पूजता है ॥ ७ ॥ उसको वे कल्याणी पुत्र की नाईं रक्षा करती हैं इसमें सन्देह नहीं है वहां मिष्टान्नसमेत भक्ष्यों व भोज्यों मे निस्स- देह स्त्री पुरुषों को भोजन देनाचाहिये क्योंकि इस प्रकार वे भगवती प्रसन्न होतीहैं ॥ ८ । ९ ॥ तदनन्तर हे महादेवि दुर्गकूट से दक्षिण में पचास धनुष के अन्तर सुपर्णेशी भैरवी के समीपजावै ॥ १० ॥ हे देवि ! पुरातन समय गरुड़ने पातालसे अमृत को हरलिया व लेकर वहां नागोंके देखते हुये छोड़दिया ॥ ११ ॥ जिस

आराधितासौभीमेन कृत्वाक्षेत्रस्यरक्षणम् ॥ महानवम्यांयत्नेन यस्तांपूजयतेनरः ॥ ७ ॥ तंपुत्रमिवकल्याणी रक्ष तेनात्रसंशयः ॥ भोजनंतत्रदातव्यं दम्पतीनान्नसंशयः ॥ ८ ॥ भक्ष्यैर्भोज्यैःसमिष्टान्नैरेवंप्रीतातुसाभवत् ॥ ९ ॥ त तोगच्छेन्महादेवि सुपर्णेशीञ्चभैरवीम् ॥ दुर्गकूटाद्दक्षिणतो धनुःपञ्चाशदन्तरे ॥ १० ॥ सुपर्णेनपुरादेवि पातालाद मृतंहृतम् ॥ गृहीत्वातत्रमुक्तन्तु नागानांपश्यताङ्किल ॥ ११ ॥ यतोदेव्यातदादृष्ट्वा रक्षितंनागपार्श्वतः ॥ तस्मात्तु कथ्यतेसद्भिः सुपर्णेनप्रतिष्ठिता ॥ १२ ॥ सुपर्णेशीतिनाम्नावै ततःपातकनाशिनी ॥ सुपर्णकुण्डेतत्रैव स्नात्वातां पूजयेन्नरः ॥ १३ ॥ विप्रेभ्योभोजनंदत्त्वा नापद्भिर्म्रियतेनरः ॥ जीववत्साभवेन्नारी आत्मजैश्चाप्यलंकृता ॥१४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सुपर्णेशीमाहात्म्यन्नामषडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥ * ॥ * ॥

लिये उस समय देवीजी ने देखकर नागोंके समीप उसकी रक्षाकिया उसीकारण विद्वानोंसे सुपर्ण (गरुड़) जी से थापीहुई भगवती कहीजाती हैं ॥ १२ ॥ व उसी कारण सुपर्णेशी ऐसे नाम से वे पापविनाशिनी भगवती प्रसिद्ध हैं वहीं सुपर्णकुण्डमें नहाकर जो मनुष्य उनको पूजै ॥ १३ ॥ ब्राह्मणों के लिये भोजन देकर वह मनुष्य विपत्तियों से नहीं मरता है और स्त्री जीवपुत्रिणीहोती है और पुत्रों से शोभित होती है ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांसुपर्णेश्वरीमाहात्म्यंनामषडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥ ● ॥ . ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अहै अमित माहात्म्ययुत भल्लतीर्थ असनाम । कह्यो तीनसौ सात महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अति उत्तम भल्लतीर्थ को जावै वहीं विष्णुजी की भलीभांति स्थिति है क्योंकि अन्यत्र रति (प्रीति) नहीं होती है ॥ १ ॥ विद्वान् उस वैष्णवक्षेत्रको क्षेत्रों के मध्य में आदिक्षेत्र कहते हैं हे भामिनि ! स्वर्ग, पृथ्वी व आकाश में जो साढ़े तीन करोड़ तीर्थों के मध्य में श्रेष्ठ तीर्थ हैं वे वहीं प्राप्त हैं और वहीं पर विष्णुजी को भलीभांति स्नान कराने के लिये व प्राणियों के हितके लिये मूर्तिमती गंगाजी आपही स्थित हैं और गंगा, गया, कुरुक्षेत्र, व निमिष और पुष्करोंको ॥ २ । ३ । ४ ॥ तथा द्वार-

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि भल्लतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रैवसंस्थितिर्विष्णोर्नान्यत्रचरतिर्भवेत् ॥ १ ॥ क्षेत्राणामादिक्षेत्रन्तु वैष्णवंतद्विदुर्बुधाः ॥ तिस्रःकोट्यर्द्धकोटीनां तीर्थानांप्रवराणिच ॥ २ ॥ दिविभुव्यन्तरिक्षेच तानितत्रैव भामिनि ॥ तत्रमूर्त्तिमतीगङ्गा स्वयमेवव्यवस्थिता ॥ ३ ॥ विष्णोःसंप्लावनार्थाय प्राणिनांचहितायवै ॥ गङ्गांगयांकुरुक्षेत्रं निमिषंपुष्कराणिच ॥ ४ ॥ पुरींद्वारावतींत्यक्त्वा अत्रैववसतेहरिः ॥ तस्यौर्ध्वदैहिकंदेवि प्रकरोमियुगेयुगे ॥ ५ ॥ नभस्येद्वादशीयोगे तत्रगत्वास्वयंप्रिये ॥ करोमितद्विधानेन तत्रब्राह्मणपुङ्गवैः ॥ ६ ॥ तत्रदत्त्वातुदानानि विधिवद्वेदपारगे ॥ तत्रैवद्वादशीयोगे स्नात्वातत्रविधानतः ॥ ७ ॥ सन्तर्प्यचपितॄन्भक्त्या मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ तत्रविष्णुंतु सम्पूज्य कृत्वाजागरणंनिशि ॥ ८ ॥ दीपदानादिकंकृत्वा कृतकृत्योभिजायते ॥ अथतस्यप्रवक्ष्यामि यथोक्तंभगवान् प्रभुः ॥ ९ ॥ संहृत्ययादवान्सर्वान् वासुदेवःप्रतापवान् ॥ दुर्वाससातुशप्तान्वै तपस्तेपेमहीतले ॥ १० ॥ यज्ञाङ्गभूतदेह

कापुरी को छोड़कर विष्णुजी यहीं बसते हैं हे देवि ! उनके और्ध्वदैहिक कर्मको मैं युगयुग में करता हूं ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! भादों में द्वादशी के योगमें वहीं आपही जाकर मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणों से वहां उसको विधि से करता हूं ॥ ६ ॥ और विधिपूर्वक वहां वेदपारगामी ब्राह्मण के लिये दानों को देकर व द्वादशी के योग में वहीं विधि से नहाकर ॥ ७ ॥ भक्तिसे पितरोंको भलीभांति तर्पणकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है और वहां विष्णुजी को भलीभांति पूजकर व रात में जागरण कर ॥ ८ ॥ दीपदानादिक करके मनुष्य कृतकृत्य होता है इसके अनन्तर मैं उसके यथोक्त फलको कहताहूं कि भगवान् प्रभु ॥ ९ ॥ प्रतापी वासुदेव (श्रीकृष्ण) जी ने दुर्वा-

सासे शापित सब यादवों को संहार कर पृथ्वी में तप किया है ॥ १० ॥ यज्ञांगसे उत्पन्नशरीरवाले सर्वव्यापी जनार्दनजी समुद्र के किनारे जाकर सब इन्द्रियों को रोंककर व आत्मा (परमेश्वर) में आत्मा (चित्त) को लगाकर समाधिमें स्थितहुये इसी अवसर में बाणको हाथ में लिये जरनामक पुरुष प्राप्त हुआ ॥ ११।१२ ॥ जोकि बड़े काले शरीरवाला व मछलियों को मारनेवाला तथा पापकारी केवट का पुत्र था उसने निषादपुत्रोंसमेत दूरसे श्रीकृष्णजी को देखा तदनन्तर ॥ १३ ॥ उसने मृग जानकर उन विष्णुजी के ऊपर बाणको छोड़ा तदनन्तर उसके समीप जाकर जबतक यह देखै ॥ १४ ॥ तबतक उसने चतुर्भुज व महाशरीरवान् तथा

स्तु सर्वव्यापीजनार्द्दनः ॥ गत्वातीरंसमुद्रस्य समाधिस्थोबभूवह ॥ ११ ॥ सर्वस्रोतांसिसंयम्य निवेश्यात्मानमात्मनि ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो बाणहस्तोजराभिधः ॥ १२ ॥ दासपुत्रेतिकृष्णाङ्गो मत्स्यघातीचपापकृत् ॥ तेनदृष्टस्ततोदूरा न्नि षादात्मसमुद्भवैः ॥ १३ ॥ विष्णोःसतुमृगंमत्वा बाणंतस्यमुमोचह ॥ ततोसौपश्यतेयावद्गत्वातस्यतुसन्निधौ ॥ १४ ॥ चतुर्बाहुंमहाकायं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ पुरुषंनीलमेघाभं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥ १५ ॥ तंदृष्ट्वाभयभीतस्तु वेपमा नःकृताञ्जलिः ॥ अब्रवीन्नमयाज्ञातस्त्वंविभोदिव्यरूपधृक् ॥ १६ ॥ अज्ञानात्त्वंमयाविद्धः स्वेपादाग्रेसुरोत्तम ॥ क्षन्तु मर्हसिमेनाथ नत्वन्द्रोग्धुमिहार्हसि ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शापस्यान्तोहिमेभद्र शरपातःकृतस्त्वया ॥ अस्मात्त्वंमे प्रसादेन स्वर्गंगच्छमहाद्युते ॥ १८ ॥ येचान्येमामिहागत्यद्रक्ष्यन्तिहिनरोत्तमाः ॥ तेयास्यन्तिपरंस्थानं यत्राहंनित्य

शङ्ख, चक्र व गदाको धारनेवाले और नीलमेघों के समान कमलसदृश लोचनोंवाले पुरुषको देखा ॥ १५ ॥ व उनको देखकर हाथोंको जोड़े व कांपतेहुये भय-भीत निषाद ने कहा कि हे विभो ! मैंने दिव्यरूपधारी तुमको नहीं जाना ॥ १६ ॥ व हे सुरोत्तम ! मुझ से तुम अपने चरण के अग्रभाग में अज्ञान से वेधित हुये हो हे नाथ ! मेरे ऊपर तुम क्षमा करने के योग्य हो और यहां तुम द्रोह करने के योग्य नहीं हो ॥ १७ ॥ विष्णुजी बोले कि हे भद्र ! मेरे शापका अन्त हुआ है इसलिये तुमनें बाण को मारा इस कारण हे महाद्युते ! तुममेरी प्रसन्नता से स्वर्ग को जावो ॥ १८ ॥ और जो अन्य उत्तम मनुष्य यहां आकर मुझको देखैंगे वे उत्तम स्थान

को प्राप्तहोवैंगे जहां कि मैं सदैव स्थित रहताहूं ॥ १९ ॥ जिस लिये मैं उत्तम चरणतलमें तुम से भल्लबाण से वेधितहुआ उस कारण यह भल्लतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा ॥ २० ॥ पहले स्वायम्भुवमन्वन्तर में यह हरिक्षेत्र ऐसा कहागया है महादेवजी बोले कि यह कहकर विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये और बहेलिया भी स्वर्गको चलागया ॥ २१ ॥ बड़ी भक्तिसे संयुत जो मनुष्य वहां स्नान करैंगे वे मेरी प्रसन्नता व प्रीति से विष्णुलोकको जावैंगे ॥ २२ ॥ और पितरोंकी भक्तिमें परायण जो पुरुष वहां श्राद्ध करैंगे उसके पितर तर्पित होकर बड़ी तृप्तिको प्राप्त होवैंगे ॥ २३ ॥ इसलिये सब यत्नसे उस उत्तम क्षेत्रको प्राप्त होकर चतुर्भुज देवजीको देखकर भल्ल-

संस्थितः ॥ १९ ॥ भल्लेनाहंयतोविद्धस्त्वयापादतलेशुभे ॥ भल्लतीर्थमितिख्यातं ततोह्येतद्भविष्यति ॥ २० ॥ हरिक्षेत्रमितिप्रोक्तं पूर्वंस्वायम्भुवेन्तरे ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधौविष्णुर्लुब्धकोपिदिवङ्गतः ॥ २१ ॥ तत्रस्नानंकरिष्यन्ति भक्त्याचपरयायुताः ॥ विष्णुलोकंगमिष्यन्ति प्रीत्याममप्रसादतः ॥ २२ ॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति पितृभक्तिपरायणाः ॥ तृप्तिंपरांगमिष्यन्ति पितरस्तस्यतर्पिताः ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्राप्यतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ दृष्ट्वादेवंचतुर्बाहुं स्नात्वातीर्थेतुभल्लके ॥ २४ ॥ मद्भक्तिबलदर्पिष्ठा मद्भक्तंप्रणमन्तिये ॥ मद्भक्तोपिहियोभूत्वा भुञ्जत्येकादशीदिने ॥ २५ ॥ मल्लिङ्गस्यार्चनंकार्यं नतेनपापबुद्धिना ॥ यातिथिर्दयिताविष्णोः सातिथिर्ममवल्लभा ॥ २६ ॥ नतामुपोषयेद्यस्तु सपापिष्ठतरोधिकः ॥ तद्वत्सद्वादशीयोगे भल्लतीर्थस्यसन्निधौ ॥ २७ ॥ यस्तुमाम्पूजयेद्भक्त्या नारीवापिनरोपिवा ॥ तस्यजन्मसहस्राणि गृहभङ्गोनजायते ॥ २८ ॥ इत्येतत्कथितंदेवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ भल्लतीर्थस्यविष्णोश्च सर्वपात

तीर्थ में नहाकर ॥ २४ ॥ जो मेरे भक्तको प्रणाम करते हैं वे मेरी भक्तिके बल से गर्वितहोवैंगे और मेरा भक्त भी होकर जो एकादशी तिथि में भोजन करता है ॥ २५ ॥ उस पापबुद्धिको मेरे लिंगका पूजन न करना चाहिये क्योंकि जो विष्णुजीकी प्यारी तिथि है वह तिथि मुझको प्यारी है ॥ २६ ॥ उस तिथिको जो उपास नहीं करता है वह पापियों में अधिक है वैसेही द्वादशीसमेत योग में भल्लतीर्थ के समीप ॥ २७ ॥ स्त्री या जो पुरुष भी मुझको भक्तिसे पूजता है उसके हज़ार जन्मों

तक गृहभंग नहीं होता है ॥ २८ ॥ हे देवि ! विष्णुजी का व भल्लतीर्थका यह समस्त पातकों का नाशनेवाला पापविनाशक माहात्म्य कहागया ॥ २९ ॥ वहां विष्णुजी के समीप वायव्य मे भल्लतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध उत्तम कुण्डहै जहां पर श्रीकृष्णजी भल्लसे मारेगये हैं ॥ ३० ॥ वहां वस्त्रोंको देनाचाहिये व भलीभाति यात्रा के फलको चाहनेवाले मनुष्यों को उत्तम ब्राह्मणों के लिये विधि से सुवर्ण व गौवों को देनाचाहिये ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीद्यालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांभल्लतीर्थमाहात्म्यंनामसप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

कनाशनम् ॥२९॥ तत्रविष्णोस्तुसान्निध्ये वायव्येकुण्डमुत्तमम्॥ भल्लतीर्थमितिख्यातं यत्रभल्लहतोहरिः ॥ ३० ॥ तत्रदेयानिवासांसि स्वर्णंगावोविधानतः ॥ देयाश्वविप्रमुख्येभ्यः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेभल्लतीर्थमाहात्म्यंनामसप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कर्दमालयमुत्तमम् ॥ तीर्थंत्रैलोक्यविख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तस्मिन्नेकार्णवेघोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ चन्द्रार्कपवनेनष्टे ज्योतिषिप्रलयंगते ॥ २ ॥ रसातलगतामुर्वीं दृष्ट्वादेवोजनार्दनः ॥ वाराहंरूपमास्थाय दंष्ट्राग्रेणवरानने ॥ ३ ॥ उत्क्षिप्यधरणींमूर्ध्ना स्वस्थानेसंन्यवेशयत् ॥ उद्धृत्यधरणीं विष्णुर्वाक्यमेतदुवाचह ॥ ४ ॥ अत्रस्थानेस्थितेनैव मयात्वंदेविचोद्धृता ॥ ममात्रनियतंवासः सदैवात्रभविष्यति ॥ ५ ॥

दो० । कर्दमाल तीरथ भयो अति माहात्म्यसमेत । कह्यो तीनसौ आठ महँ सोई हर्षनिकेत ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम कर्दमालय को जावै समस्त पातकोंको नाशनेवाला वह तीर्थ त्रिलोक में प्रसिद्धहै ॥ १ ॥ उसभयंकर प्रलय में जब स्थावर जंगम नष्ट होगया तब चन्द्रमा, सूर्य व पवनके नष्ट होने पर व ज्योति नाश होने पर ॥ २ ॥ हे वरानने ! पृथ्वी को रसातल में प्राप्त देखकर विष्णुदेवजी ने वराहरूपमें स्थित होकर दाढ़के अग्रभाग से ॥ ३ ॥ पृथ्वी को मस्तक से ऊपर फेंककर अपने स्थान मे धर दिया व पृथ्वीको ऊपर उठाकर विष्णुजी इस वचन को बोले ॥ ४ ॥ हे देवि ! इस स्थान में स्थित मुझ से तुम

उठाई गईहो यहांपर मेरा निश्चयकर सदैव निवास होगा ॥ ५ ॥ हे वरानने ! कर्दमालतीर्थ में जो मनुष्य पितरों को तर्पण करेंगे उससे कल्पपर्यन्त पितर तृप्त होवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ हे शुभे ! जो वहां शाक, मूल व फलसे श्राद्ध करेंगे उनसे सब तीर्थोंमें श्राद्ध कियाहुआ होगा ॥ ७ ॥ हे भामिनि ! इस तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य मुझको देखता है वह महापातकको करके भी उससे छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ जो कृमि, कीट व पक्षी और मनुष्य वहां मृत्युको प्राप्तहोते हैं मरेहुये वे प्राणी स्वर्गको जाते हैं जैसे कि ब्राह्मण पुण्यसे स्वर्गको प्राप्तहोते हैं ॥ ९ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों में पैदा होते हैं व उत्तम वंशमें धनाढ्य होते हैं

येपितॄंस्तर्पयिष्यन्ति कर्द्दमालेवरानने ॥ आकल्पंतर्पितास्तेन भविष्यन्तिनसंशयः ॥ ६ ॥ तत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति शाकमूलफलेनवा ॥ भविष्यतिकृतंश्राद्धं सर्वतीर्थेषुतैःशुभे ॥ ७ ॥ अत्रतीर्थेनरःस्नात्वा योमांपश्यतिभामिनि ॥ अपिकृत्वामहापापं मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ कृमिकीटपतङ्गाये निधनंयान्तिमानवाः ॥ तेमृतास्त्रिदिवंयान्ति सुकृतेनयथाद्विजाः ॥ ९ ॥ ततोविप्रेषुजायन्ते धनाढ्याश्चोत्तमेकुले ॥दंष्ट्राभेदेनयत्तोयं निर्गतंपृथिवीतले ॥१०॥ तत्रस्नात्वानरोदेवि तिर्य्यग्योनौनजायते ॥ ११ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेवियथापृष्टमाश्चर्य्यंतत्रवैपुरा ॥ मृगयूथंसुमन्त्रस्तं लुब्धकैःपरिपीडितम् ॥ १२ ॥ प्रविष्टंकर्द्दमालेत्र सद्योमानुषताङ्गतम् ॥ अथतेलुब्धकाद्दृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ १३ ॥ अपृच्छन्तसुसंभ्रान्ता मर्त्यांस्तान्वरवर्णिनि ॥ मृगयूथमनुप्राप्तं केनमार्गेणनिर्गतम् ॥ १४ ॥ अथोचुस्तेवयंप्राप्ता मानु

जिस लिये पृथ्वी में दाढ़के भेदनसे जल निकला है ॥ १० ॥ इसकारण हे देवि ! उसमें नहाकर मनुष्य तिर्य्यग्योनिमें नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ११ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! जैसा पूंछागया है वैसेही सुनिये वहां जो पुरातन समय आश्चर्य हुआ है कि बहेलियों से पीड़ित मृगयूथ बहुतही डरकर ॥ १२ ॥ इस कर्दमाल तीर्थ में पैठा और उसी क्षण वह मनुष्यताको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उसको देखकर विस्मय से प्रफुल्लितलोचनोंवाले उन बहेलियों ने ॥ १३ ॥ बहुतही संभ्रम में प्राप्तहोकर हे वरवर्णिनि ! उन मनुष्यों से पूंछा कि जो मृगयूथ प्राप्तहुआ था वह किस मार्ग से निकलगया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने कहा कि इस तीर्थ के

प्रभावसे मृगरूपवाले हमलोग मनुष्यताको प्राप्तहुयेहैं और इस विषयमें हमलोग कारणको नहीं जानतेहैं ॥१५॥ तदनन्तर हे महाभाग ! वे बहेलिया धनुषों व बाणों को छोड़कर उसमें नहाकर वध से उपजेहुये पातकसे छूटगये ॥ १६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! कर्दमालसे उपजे हुये गुप्तचरित्र को सुनिये गुप्त व ब्रह्मर्षियों के सर्वस्वरूप इस चरित्रको जिसकिसी को न देना चाहिये ॥ १७ ॥ पहले भयंकर एकार्णवमें चराचर नष्ट होने पर व चन्द्रमा, सूर्य व पवनके नाश होने पर तथा प्रकाश नाश होने पर ॥ १८ ॥ ब्रह्मा ने इस समस्त संसार को एकार्णव देखा व हे वरानने ! वाराहजी ने सब पृथ्वी को दाढ़के अग्रभाग से ऊपर धर दिया ॥१९॥

ष्यंमृगरूपिणः ॥ एतत्तीर्थप्रभावेण नविद्मश्चात्रकारणम् ॥ १५ ॥ ततस्तेलुब्धकास्त्यक्त्वा धनूंषिचशराणिच ॥ तत्र स्नात्वामहाभागे मुक्ताःपापावधोद्भवात् ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविरहस्यन्तु कर्दमालसमुद्भवम् ॥ गूढंब्रह्मर्षि सर्वस्वं नदेयंयस्यकस्यचित ॥ १७ ॥ पूर्वमेकार्णवेघोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ चन्द्रार्कपवनेनष्टे ज्योतिषिप्रलयंगते ॥ १८ ॥ एकार्णवंजगदिदं ब्रह्मापश्यन्नशेषतः ॥ उद्दधारमहींकृत्स्नां दंष्ट्राग्रेणवरानने ॥ १९ ॥ वेदपादोयूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तःस्रुचोमुखः ॥ अग्निजिह्वोदर्भरोमा ब्रह्मशीर्षोमहातपाः ॥ २० ॥ अहोरात्रेक्षणपरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥ आज्यनासःस्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वनोमहान् ॥ २१ ॥ प्राग्वंशकायोद्युतिमान् मात्रादीक्षाभिराजितः ॥ दक्षिणाहृदयोयोगी महासत्रमयोमहान् ॥ २२ ॥ उपाकृतोष्ठरुचिकः प्राग्वंशव्रतभूषणः ॥ नानाछन्दोगतिपथो ब्रह्मोक्तक्रमविक्रमः ॥२३॥ भूत्वायज्ञवराहोसौ उद्दधारमहींततः ॥ दंष्ट्रयानिहतापृथ्वीबहिस्तस्मान्महार्णवात् ॥ २४ ॥ तस्मिन्प्राभासिकेक्षेत्रे क

जो वाराहजी वेद चरण, यज्ञस्तम्भ दाढ़ व यज्ञदन्त तथा स्रुचानन थे व अग्निजिह्व, कुशलोमा व वेदमस्तक तथा महातपस्वी थे ॥ २० ॥ व दिन रात नयन-वाले और वेदाङ्ग श्रुति आभरण तथा घृत नासिकावारे व स्रुवामुखवाले और सामवेदध्वनि शब्दवाले तथा महान् थे ॥ २१ ॥ व प्राग्वंश (सभासदगृह) शरीर-वाले, द्युतिमान् और मात्रारूपी दीक्षाओंसे विराजित थे और दक्षिणारूपी हृदयवाले,योगी व महायज्ञमय तथा महान् थे ॥ २२ ॥ और उपाकृत (यज्ञपशु) रूपी ओष्ठ रुचिवाले तथा सभासदगृह व व्रतरूपी भूषणोंवाले और अनेक भांतिके छन्दरूपी गतिमार्गवारे व वेदोक्त क्रम विक्रमवाले थे ॥ २३ ॥ यज्ञवराह होकर इन्होंने

पृथ्वीको ऊपर निकाला तदनन्तर दाढ़से पृथ्वी उस महासागर से बाहर धरीगई ॥ २४ ॥ हे देवि ! जिसलिये उस प्रभासक्षेत्र में उन वाराह की दाढ़के अग्रभाग पै कर्दम (कीचड़) से लेपहुआ उसी कारण कर्दमाल कहागया है ॥ २५ ॥ जहां पृथ्वी दाढ़ोंपै स्थितहुई है उन वाराहजी की दाढ़से ऊपर लायेहुये जलवाला वह दंष्ट्रोद्भेद महाकुण्ड करोड़गङ्गाके समान है ॥ २६ ॥ वहां दोकोसभर तक वह सनातन विष्णुक्षेत्र है जो विदेशमें गये हैं और जो पुण्यहीन मनुष्य मरते हैं ॥ २७ ॥ वे हज़ार कल्पोंतक विष्णुलोकको जातेहैं हे महादेवि ! कर्दमालतीर्थ में जो महादेवजी को देखताहै ॥ २८ ॥ करोड़ हत्याओंसे संयुत भी वह उत्तम गतिको पावैगा और

र्दमेनविलेपनम् ॥ तद्दंष्ट्राग्रेयतोदेवि कर्दमालंततःस्मृतम् ॥ २५ ॥ दंष्ट्रोद्भेदंमहाकुण्डं यत्रदंष्ट्रासुसंस्थिता ॥ तद्दंष्ट्रोद्धृ ततोयन्तुकोटिगङ्गासमंहितत् ॥२६॥ तत्रगव्यूतिमात्रन्तद्विष्णुक्षेत्रंसनातनम् ॥ देशान्तरगतायेचपुण्यहीनाम्रियन्ति ये ॥ २७ ॥ यावत्कल्पसहस्राणि विष्णुलोकंव्रजन्तिते ॥यस्तुपश्येन्महादेवि कर्दमालेतुशङ्करम् ॥ २८ ॥ कोटिहत्या युतोवापिसम्प्राप्स्यतिपराङ्गतिम् ॥ दशजन्मकृतंपापंतस्यदर्शनतोनशेत् ॥ २९ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु यत्कृतंपापसञ्च यम् ॥ कर्दमालेवरारोहे दृष्ट्वातन्नाशमेष्यति ॥३०॥ हेमकोटिसहस्राणि गवांकोटिशतानिच ॥ दत्त्वायल्लभ्यतेपुण्यं तद्वाराहस्यदर्शनात् ॥ ३१ ॥ कलौयुगेमहारौद्रे प्राणिनांचभयावहे ॥ नान्यत्रजायतेमुक्तिर्मुक्त्वाक्षेत्रेहिशाङ्करम् ॥ ३२ ॥ एतत्सारमयन्देवि प्रोक्तमुद्देशतस्तव ॥ कर्दमालस्यमाहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेकर्दमालयमाहात्म्यंनामाष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥ * ॥ * ॥

उन वाराहजी के दर्शन से दशजन्मों में कियाहुआ पाप नाश होजाता है ॥ २९ ॥ हे वरारोहे ! अन्यहज़ार जन्मों में जो पाप इकट्ठा कियागयाहै वह कर्दमालतीर्थ में वाराहजी को देखकर नाशको प्राप्तहोगा ॥ ३० ॥ करोड़ हज़ार अशर्फी व करोड़सौ गौवोंको देकर जो पुण्य मिलताहै वह वाराहजी के दर्शन से प्राप्तहोता है ॥३१॥ प्राणियोंको भयदेनेवाले महाभयंकर कलियुगमें शिवजीके क्षेत्रको छोड़कर अन्यत्र मुक्ति नहीं होती है ॥३२॥ हे देवि ! तुम्हारे उद्देशसे यह सारांशमय समस्त पातकों का नाश करनेवाला कर्दमालतीर्थका माहात्म्य कहागया ॥३३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांकर्दमालयमाहात्म्यंनामाष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३०८॥

दो० । थाप्यो है चन्द्रमा जिमि गुप्तेश्वर शिवनाम । कह्यो तीनसौ नवैं महँ सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये, महादेवि ! तदनन्तर वहां गुप्तसोमेश्वरजी के समीप जावै जहां कि पश्चिम व वायव्य में कुष्ठरोगके कारण लज्जासे नीचे मुख किये स्थित चन्द्रमाने गुप्त होकर देवताओंके हज़ारवर्षतक उत्तम प्रभासक्षेत्र में तप कियाहै ॥ १ । २ ॥ तदनन्तर सब देवताओं के स्वामी सदाशिवजी प्रत्यक्षता को प्राप्तहुये व प्रसन्न हुये और उन शिवजी ने चन्द्रमाके क्षयरोगको नाश किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर देवताओं व दैत्यों से नमस्कार कियेहुये महालिंगको थापकर मृगांक (चन्द्रमा) जी क्षयरोग से छूटगये ॥ ४ ॥ जिसलिये वहां गुप्त

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गुप्तसोमेश्वरम्प्रिये ॥ तत्रपश्चिमवायव्ये यत्रसोमोकरोत्तपः ॥ १ ॥ गुप्तोभूत्वाकुष्ठरोगाल्लज्जयाधोमुखःस्थितः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ २ ॥ ततोप्रत्यक्षतांयातः सर्वदेवपतिःशिवः ॥ तुष्टोबभूवचन्द्रस्य क्षयनाशमथाकरोत् ॥ ३ ॥ क्षयरोगविनिर्मुक्तः ततोभून्मृगलाञ्छनः ॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ४ ॥ गुप्तंतत्रतपोयस्मात् तस्माद्गुप्तेश्वरःस्मृतः ॥ सर्वकुष्ठहरोदेवो दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ५ ॥ सोमवारेविशेषेण यस्तल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ तस्यान्वयेपिदेवेशि कुष्ठीकश्चिन्नजायते ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवंबहुसुवर्णकम् ॥ हिरण्यापूर्वदिग्भागे स्थानेबहुसुवर्णके ॥ ७ ॥ धर्मपुत्रेणयत्रैव कृतोयज्ञःसुदुष्करः ॥ नाम्नाबहुसुवर्णेति स्थाप्यलिङ्गंमहाप्रभम् ॥ ८ ॥ सर्वक्रतूनांफलदं नाम्नासर्वेश्वरंविदुः ॥ तत्रैवसंस्थितंतीर्थं पूर्णंसारस्वतैर्जलैः ॥ ९ ॥ स्नात्वातत्रविधानेन पिण्डदानंददातियः ॥ कुलकोटिंसमुद्धृत्य रुद्रलोकेमहीयते ॥ १० ॥ यस्तम्पू

तप कियागया उसीकारण दर्शन व स्पर्शन करनेसे भी सब कुष्ठों को हरनेवाले गुप्तेश्वर देव कहे गये हैं ॥ ५ ॥ विशेषकर सोमवार में जो पुरुष उस लिंगको पूजै हे देवेशि ! उसके वंशमें भी कोई कुष्ठी नहीं होताहै ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर बहुसुवर्णक देवके समीप जावै हिरण्या के पूर्व दिशाके भाग में बहु सुवर्णकस्थान में ॥ ७ ॥ जहां धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने बहु सुवर्णक ऐसे नाम से महाप्रभावान् लिंगको थापकर बहुत कठिन यज्ञ किया है ॥ ८ ॥ सब यज्ञों के फल को देनेवाले उनको विद्वान्लोग नाम से सर्वेश्वर कहते हैं और वहीं पर सरस्वतीजी के जलों से पूर्ण तीर्थ स्थित है ॥ ९ ॥ उस में नहाकर जो विधिसे

पिण्डदान देताहै वह करोड़ कुलोंको उधारकर शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥१०॥ जो पुरुष उन शिवजीको विधिसे भक्तिपूर्वक चन्दन व पुष्पोंसे पूजताहै उसको कोटि पूजनका फलहोता है ऐसा सदाशिवजीने कहाहै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेभाषाटीकायासुवर्णेश्वरमाहात्म्यंनामनवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥

दो० । शृंगेश्वर कोटीश्वरहुं लिंग भये जिमि दोइ । कह्यो तीनसौ दशम महँ सुभग चरित सब सोइ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर शुक्रस्थान के समीप समस्त पातकों को नाश करनेवाले अति उत्तम शृंगेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ वहीं विधिपूर्वक नहाकर जो मनुष्य शृंगेश्वरजी को पूजै वह समस्त

जयतेभक्त्या गन्धपुष्पैर्विधानतः ॥ कोटिपूजाफलंतस्य स्यादित्याहसदाशिवः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसुवर्णेश्वरमाहात्म्यंनामनवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि शृङ्गेश्वरमनुत्तमम् ॥ शुक्रस्थानस्यसांनिध्ये सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ स्नात्वातत्रैवविधिवच्छृङ्गेशम्पूजयेन्नरः ॥ मुक्तःस्यातपातकैः सर्वैर्ऋष्यशृङ्गोन्यथापुरा ॥ २ ॥ तस्मादीशानदिग्भागे स्थितंयोजनमात्रके ॥ कोटीश्वरंमहालिङ्गं कोटियज्ञफलप्रदम् ॥ ३ ॥ स्नात्वातत्रविधानेन यस्तल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ समुक्तःपातकैःसर्वैः कोटियज्ञफलंलभेत् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकोटीश्वरमाहात्म्यंनामदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव वाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तीर्थनारायणाभिधम् ॥ तस्यैवचेशदिग्भागे वापीशाण्डिल्यनिर्मिता ॥ १ ॥

पातकोंसे छूटजाता है जैसे कि ऋष्यशृंगजी पहले पापोंसे मुक्त हुयेहैं ॥ २ ॥ औरउससे ईशान दिशाके भागमें योजनभर पै कोटियज्ञोंके फलको देनेवाला कोटीश्वर महालिंग स्थित है ॥ ३ ॥ वहां स्नानकर जो मनुष्य विधि से उस लिंगको पूजता है वह सब पातकों से छूटजाता है और करोड़ यज्ञों के फलको पाताहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकोटीश्वरमाहात्म्यंनामदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि शाण्डिल्यहुंतीर्थ कर अहै अमित परभाव । कह्यो तीनसौ गेरहे माहिं चरित चितचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर नारा-

यणनामक तीर्थ के समीप जावै उसी के ईशानदिशा के भाग में शाण्डिलयजी से निर्माणकीहुई बावली है ॥ १ ॥ हे देवेशि ! विधिपूर्वक उसी में नहाकर जो पुरुष शाण्डिल्यजी, को पूजै और पतिव्रता स्त्री विधि से ऋषिपंचमी तिथि में ॥ २ ॥ उन शाण्डिल्यजी को देखकर व स्पर्श कर निश्चय कर रजोदोषके दोषसे छूटजाती है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनारायणतीर्थेशाण्डिल्यतीर्थमाहात्म्यंनामैकादशाधिक त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३११ ॥
दो॰ । शृंगारेश्वर पूजिकै होत दुःख सों मुक्त । सोइ तीनसौ बारहे माहिं चरित है उक्त ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर शृंगेश्वरनामक स्थान

स्नात्वातत्रैवदेवेशि शाण्डिल्यंयःप्रपूजयेत ॥ विधिनाऋषिपञ्चम्यां नारीचैवपतिव्रता॥२॥दृष्ट्वास्पृष्ट्वाविमुच्येत रजोदोषभयाद्ध्रुवम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कान्देनारायणतीर्थेशाण्डिल्यतीर्थमाहात्म्यंनामैकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥
शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि स्थानंशृङ्गेश्वराभिधम् ॥ शृङ्गारेश्वरनामाच तत्रदेवःप्रतिष्ठितः ॥ १ ॥ शृङ्गारं विधिवच्चक्रे यत्रगोपीयुतोहरिः ॥ शृङ्गारेश्वरनामाच तेनपापौघनाशनः ॥ २ ॥ पूजयेद्योविधानेन तत्रस्थानेस्थितम्भवम् ॥ दरिद्रदुःखसंयुक्तो नसभूयाद्भवेक्कचित ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशृङ्गारेश्वरमाहात्म्यंनामद्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥
ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यातटसंस्थितम् ॥ घटिकास्थानमितिच यत्रसिद्धःपुराऋषिः ॥ १ ॥

के समीप जावै और वहां शृंगारेश्वरनामक देव थापेगये हैं ॥ १ ॥ जहां कि गोपियों से संयुत श्रीकृष्णजी ने विधिपूर्वक शृंगार किया है उसीसे शृंगारेश्वरनामक देवजी पापौघको नाशनेवाले हैं ॥ २ ॥ उस स्थान में स्थित शिवजी को जो विधिसे पूजता है वह किसी जन्म में दरिद्र व दुःख से संयुत नहीं होताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशृङ्गारेश्वरमाहात्म्यंनामद्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥
दो॰ । मण्डुकीश इमि लिंग जिमि भयो युक्त परभाव । सोइ तीनसौ तेरहे माहिं चरित सुखभाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्यानदी

के किनारे स्थित घटिकास्थान के समीप जावै जहां कि हे वरानने ! पुरातन समय मृकण्ड ऋषि एक घड़ी में ध्यान के योगसे सिद्ध हुये हैं वहीं पर भलीभांति स्थित मार्कण्डेश्वरनामक लिंग ॥ १ । २ ॥ दर्शन व पूजन से भी सब पापसमूहोंको नाशनेवाला है ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे महादेवि ! मण्डुकीश्वर ऐसे लिंगके समीपजावै वहा मण्डुकीश्वरनामक लिंग थापागया है ॥ ४ ॥ व हे देवि ! वहां कोटिप्रद व कोटीश्वर देव कहेगये हैं और वहां कामनाओं के फलको देनेवाला मातृगण स्थित है ॥ ५ ॥ कोटिप्रदतीर्थमें नहाकर जो मनुष्य उस लिंगको पूजै वह वैसेही मातृकाओंको भलीभांति पूजकर दुःख व शोकसे छूटजाता है ॥ ६ ॥ हे देवेशि ! उस

नाड्यैकयामृकण्डस्तु ध्यानयोगाद्वरानने॥ तत्रैवसंस्थितंलिङ्गं मार्कण्डेश्वरनामतः ॥२॥ सर्वपापौघशमनं दर्शनात्पूज नादपि ॥ ३ ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मण्डुकीश्वरमित्यपि॥ मण्डुकीश्वरनामेति तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ४॥ तत्रकोटि प्रदोदेवि तथाकोटीश्वरःस्मृतः ॥ तत्रमातृगणश्चैव स्थितःकामफलप्रदः ॥ ५ ॥ स्नात्वाकोटिप्रदेतीर्थे तल्लिङ्गंयःप्रपू जयेत् ॥ मातृस्तथैवसम्पूज्य दुःखशोकाद्विमुच्यते ॥ ६ ॥ तस्मात्पूर्वेणदेवेशि योजनैकेननिर्मलम् ॥ अत्रिकूपेतिवि ख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमण्डुकीश्वरमातृगणमाहात्म्यंनामत्रयोदशाधिक त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गोष्पदस्योत्तरेस्थितम् ॥ गव्यूतिद्वितयेनैव बालार्कमितिविश्रुतम् ॥ १ ॥ त त्रैकादशरुद्राणां स्थानंलिङ्गान्यपिप्रिये ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्येसन्तीत्यादीनिनामतः ॥२॥ पूजयेत्तानिविधिवन्मुच्यते

से पूर्व दिशामें एक योजन पर समस्त पातकोंको नाशकरनेवाला निर्मल अत्रिकूप ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचिता यांभाषाटीकायांमण्डुकीश्वरमातृगणमाहात्म्यंनामत्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि गेरह शिवलिंगकर अहै सुन्दर स्थान । कथा तीनसौ चौदहे माहिं सोइ आख्यान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गोष्पद के उत्तर में चार कोस पै स्थित बालार्क ऐसे प्रसिद्ध देवके समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! वहा गेरह रुद्रोंका स्थानहै व अजैकपात् और अहिर्बुध्न्य इत्यादि नामोंसे लिंग हैं ॥२॥

उनको जो विधिपूर्वक पूजता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे महादेवि ! हिरण्यानदी के किनारे पै स्थित स्थान के समीप जावै जहा कि ये मुण्डेश्वरनामक सदाशिव हैं ॥ ४ ॥ वहां कोटेश्वरनामक शिवदेवजी हैं जहां कि मैंने जटाको बांधा है वहां नहाकर जो मनुष्य रुद्रेशजी को पूजता है ॥ ५ ॥ वह सब पापोंसे छूटजाता है व शिवजी की आज्ञाको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहिरण्यायांकोटेश्वरमाहात्म्यं नामचतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

सर्वपातकैः ॥ ३ ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यातटसंस्थितम् ॥ स्थानंमुण्डेश्वरोनाम यत्रासौचसदाशिवः ॥ ४ ॥ तत्रकोटेश्वरोनाम यत्रबद्धाजटामया ॥ तत्रस्नात्वानरःसम्यग्रुद्रेशंयःप्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ समुक्तःपातकैःसर्वैः प्राप्नुयाच्छिवशासनम् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेहिरण्यायांकोटेश्वरमाहात्म्यंनाम चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यायाश्चउत्तरे ॥ सिद्धस्थानानिदिव्यानि यत्रसिद्धामहर्षयः ॥ १ ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानि शक्यन्तेकथितुन्नहि ॥ साग्रंशतम्पुनस्तत्र लिङ्गानांप्रवरंस्मृतम् ॥ २ ॥ शोणायास्तुतटेदेविलिङ्गान्येकोनविंशतिः ॥ न्यङ्कुमत्यास्तटेदेवि सहस्रंद्विशताधिकम् ॥ ३ ॥ प्राधान्येनवरारोहे पूर्वस्वायम्भुवेन्तरे ॥ कपिलायास्तटेदेवि लिङ्गानांषष्टिरुत्तमा ॥ ४ ॥ सरस्वत्यांपुनस्तत्र लिङ्गसंख्यानविद्यते ॥ एवंपञ्चमुखान्येव लिङ्गान्येको

दो० । यथा प्रभासक्षेत्र में लिंग अहैं बहुतेर । सोइ तीनसौ पन्द्रहे माहिं चरित सुखढेर ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्यानदी के उत्तरमें दिव्य सिद्धस्थानों को जावै जहा कि महर्षिलोग सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ और वहां अनेक लिंग हैं जोकि कहे नहीं जासक्ते हैं फिर वहा कुछ अधिक सौ लिंग श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ २ ॥ हे देवि ! शोणा नदीके किनारे उन्नीस लिंग हैं व हे देवि ! न्यंकुमती के किनारे बारह सौ लिंग हैं ॥ ३ ॥ व हे वरारोहे, देवि ! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रधानतासे कपिला नदी के किनारे उत्तम साठ लिंग हैं ॥ ४ ॥ फिर सरस्वती नदीके समीप लिंगों की संख्या नहीं विद्यमान है इसीप्रकार पञ्चमुखवाले

उन्नीस लिंग हैं ॥ ५ ॥ व हे देवि ! प्रभासक्षेत्र में पांच सोतोंवाली सरस्वती कही गई है उसके प्रभावों से संभिन्न बारह योजन क्षेत्र है ॥ ६ ॥ वहां बावलियों में व कूपों में जहां तहां उपजाहुआ जो जल है उसको सरस्वतीजी का जल जानना चाहिये व जो उस जलको पीते हैं वे धन्य हैं ॥ ७ ॥ भलीभांति श्रद्धासंयुत मनुष्य जहां तहां स्नानकर सरस्वती के स्नानफलको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है॥ ८ ॥ श्रीसोमेश ऐसा प्रसिद्ध जो स्पर्शलिंग कहागया है प्रभासक्षेत्र के लिंगों के मध्यमें वह उन्हीं शिवजी की कला है ॥ ९ ॥ क्षेत्र के मध्य में प्राप्त जिस किसी लिंगको श्रीसोमेश ऐसा जानकर पूजन कर सोमेशजी पूजित होते हैं ॥ १० ॥

नविंशतिः ॥५॥ प्रभासेकथितादेवि पञ्चस्रोताःसरस्वती ॥ तस्याःप्रभावैःसंभिन्नं क्षेत्रंद्वादशयोजनम् ॥६॥ तत्रवापीषुकूपेषु यत्रतत्रोद्भवंजलम् ॥ सारस्वतन्तुतज्ज्ञेयं तेधन्यायेपिबन्तितत् ॥७॥ यत्रतत्रनरःस्नात्वा सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ सारस्वतंस्नानफलं लभतेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ यत्प्रोक्तंस्पर्शलिङ्गन्तु श्रीसोमेशेतिविश्रुतम् ॥ प्रभासक्षेत्रलिङ्गानां कलातस्यैवशाङ्करी ॥ ९ ॥ यद्वातद्वापूजयित्वा लिङ्गंक्षेत्रस्यमध्यगम् ॥ श्रीसोमेशमितिज्ञात्वा सोमेशःपूजितोभवेत् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेलिङ्गानांमाहात्म्यवर्णनन्नामपञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कौशिकस्याश्रमम्प्रति ॥ तपस्तप्त्वापुरादेवि सिद्धिंनारायणोगतः ॥ १ ॥ पश्चिमाभिमुखंलिङ्गं तत्रस्थापितवान्किल ॥ शिवयोगेतुसंप्राप्ते यस्तत्पूजयतेसुधीः ॥ २ ॥ सर्वसौख्यानिसंप्राप्य देहान्ते शिवमाप्नुते ॥ यत्राघमर्षणंकृत्वा सस्नौकौशिकसत्तमः ॥ ३ ॥ तत्रस्नात्वानरोदेवि मुच्यतेपातकैरिह ॥ भैरवंक्षेत्रपा

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलिङ्गानांवर्णनंनामपञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि कौशिक कर आश्रमहुं अहै अमित शुभदाइ । सोइ तीनसौ सोलहे माहिं चरित है गाइ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर कौशिकजी के आश्रम को जावै जहां कि हे देवि ! पुरातन समय तपस्या कर नारायणजी सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १ ॥ व उन्होंने पश्चिमाभिमुख लिंगको थापित किया है शिव योग प्राप्तहोनेपर जो विद्वान् उस लिंगको पूजता है ॥ २ ॥ वह सब सुखोंको पाकर देहान्त में शिवजीको प्राप्तहोता है जहां पर श्रेष्ठ कौशिकजी ने अघमर्षण कर

स्नान किया है ॥ ३ ॥ हे देवि ! उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य यहां पातकों से छूटजाता है और वहां जो विद्वान् चौदसि व पञ्चमी तिथि में लाल फूलों व अनुलेपनों से भैरवक्षेत्रपालजी को पूजता है उसके लिये प्रसन्न होतेहुये वे भैरवजी चाहेहुये मनोरथों को देते हैं ॥ ४ । ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांकौशिकाश्रममाहात्म्यंनामषोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा रैवतक अचल पै हैं दामोदर देव । कह्यो तीनसौ सत्रहे माहिं चरित सुखसेव ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त मैं वस्त्रापथमाहात्म्यसमेत क्षेत्र-

लश्च तत्रयःपूजयेत्सुधीः ॥ ४ ॥ चतुर्दश्यांचपञ्चम्यां रक्तपुष्पानुलेपनैः ॥ तस्मैप्रीतोददात्त्येव वाञ्छितान्समनोरथान् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकौशिकाश्रममाहात्म्यन्नामषोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१६ ॥

शिव उवाच ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामि क्षेत्रगर्भमहोदयम् ॥ सवस्त्रापथमाहात्म्यं यत्ररैवतकोगिरिः ॥ १ ॥ दामोदरंरैवतके भवंचस्नापयेत्तथा ॥ एतद्वस्त्रापथंक्षेत्रं प्रभासाच्चयवाधिकम् ॥ २ ॥ स्वर्णरेखाचयत्रैव महापातकनाशिनी ॥ इन्द्रेश्वरश्चयत्रैवमथोवैमृन्मयेश्वरः ॥ ३ ॥ तत्रपुष्करिणीतत्र तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ब्रह्मकुण्डंचतत्रैव रुद्रसौभाग्यमेवच ॥ ४ ॥ कुण्डंचरेवतीसंज्ञं वसिष्ठस्याश्रमस्तथा ॥ एतद्वस्त्रापथंक्षेत्रं कैलासान्ममवल्लभम् ॥ ५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ भगवन्विस्तराद्ब्रूहि दामोदरमहोदयम् ॥ क्षेत्रगर्भस्यमाहात्म्यं कर्णिकारूपसंस्थितम् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु

गर्भ के माहात्म्यको कहताहूं जहां कि रैवतक पर्वत है ॥ १ ॥ वहां रैवतक पर्वत पै दामोदर व शिवजी को स्नान करावै यह वस्त्रापथक्षेत्र प्रभाससे यवभर अधिक है जहां कि महापातकों को नाशनेवाली स्वर्णरेखा है व जहां पर इन्द्रेश्वर व मृन्मयेश्वर हैं ॥ २।३ ॥ वहां पुष्करिणी नदी है और वहीं त्रिलोकमें प्रसिद्ध तीर्थ है व वहीं परब्रह्मकुण्ड तथा रुद्रसौभाग्यतीर्थ है ॥ ४ ॥ व रेवतीसंज्ञक कुण्ड तथा वसिष्ठजी का आश्रम है यह वस्त्रापथक्षेत्र मुझको कैलास से प्रिय है श्रीदेवी पार्वती जी बोलीं कि हे भगवन् ! विस्तारसे दामोदर के माहात्म्यको कहिये व क्षेत्रगर्भ के माहात्म्यको कहिये जोकि कर्णिकारूप स्थित है ॥ ५।६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि !

सुनिये पुरातन समय दामोदर विष्णुके विषयमें कल्पवासी ऋषियों से इतिहास कहागया है ॥ ७ ॥ देशों से संयुत, मनोहर व पवित्र तथा ऋषियों से सेवित व नित्यही स्वर्ग मार्गदायक तथा अचल गङ्गाजी के किनारे पै ॥ ८ ॥ जहां ज्ञानवेदी ब्राह्मण अनेक प्रकार के यज्ञोंसे पूजते हैं व ऋषिलोग सांख्ययोग से तथा अन्य मनुष्य दानही से पूजते हैं ॥ ९ ॥ व स्वर्गको चाहनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र देवताओं को भी दुर्लभ उस दिव्य जलको सेवतेहैं ॥ १० ॥ वहां सब मनुष्यों का स्वामी व बलवान् गजनामक राजा राज्यको छोड़कर गंगाजल में स्नान के लिये गया ॥ ११ ॥ और उसकी जो रूपसंयुत व पुत्रवती तथा उत्तम आचरणवाली

देविप्रवक्ष्यामि दामोदरहरिंप्रति ॥ इतिहासपुराख्यातं ऋषिभिःकल्पवासिभिः ॥ ७ ॥ गङ्गातीरेशुभेरम्ये पुण्येजनपदाकुले ॥ ऋषिभिःसेवितेनित्यं स्वर्गमार्गप्रदेध्रुवे ॥ ८ ॥ यत्रज्ञानविदोविप्रा यजन्तिविविधैर्मखैः ॥ ऋषयःसांख्ययोगेन दानेनैवेतरेजनाः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शूद्राःस्वर्गमभीप्सवः ॥ सेवन्तेतज्जलंदिव्यं देवानामपिदुर्लभम् ॥ १० ॥ तत्रराजागजोनाम बलीसर्वजनाधिपः ॥ गङ्गाजलाभिषेकार्थं त्यक्त्वाराज्यंजगामह ॥ ११ ॥ भार्यातस्यसतीसाध्वी पुत्रिणीरूपसंयुता ॥ साप्यगातसहतेनैव भर्त्रावैभर्तृवत्सला ॥ १२ ॥ एवंविवसतातत्र वर्षाणामयुतंगतम् ॥ १३ ॥ आजगामऋषिस्तत्र भद्रोनाममहायशाः ॥ सहितोबहुभिर्विप्रैर्जपहोमपरायणैः ॥ १४ ॥ त्यक्त्वासंसारमार्गन्तु स्वर्गमार्गंजिगीषवः ॥ गङ्गांत्रिषवणंकृत्वा स्फोटयित्वाङ्गजंमलम् ॥ १५ ॥ जलंदत्त्वातुभूतेभ्यः पूजयित्वाजनार्दनम् ॥ येवसन्तिनदीतीरे ऋषयोभद्रकादयः ॥ १६ ॥ तावत्पश्यन्तिराजानं गजंवरगजोपमम् ॥ तेनैवदृष्टामुनयो राज्ञानिहतक

पतिव्रता स्त्री थी पतिप्रिया वह भी उसी पतिके साथ गई ॥ १२ ॥ इसप्रकार वहां बसतेहुये उसको दशहज़ार वर्ष बीतगये ॥ १३ ॥ तब वहां बड़े यशस्वी भद्रनामक ऋषि जप व हवन में परायण बहुत ब्राह्मणोंसमेत आये ॥ १४ ॥ और संसार के मार्गको छोड़कर स्वर्गमार्गको जानेकी इच्छावाले वे गंगाजी में त्रिकालस्नानकर अंग से उपजेहुये मलको छुड़ाकर ॥ १५ ॥ प्राणियों के लिये जल देकर व विष्णुजीको पूजकर जो नदी के किनारे भद्रकादिक ऋषि बसते थे ॥ १६ ॥ वे तबतक उत्तम

हाथी के समान गज राजाको देखने लगे व उन राजाने पातकोंसे रहित मुनियोंको देखा ॥ १७ ॥ जैसे कि बुद्धिमान् इन्द्रने स्वर्ग में सप्तर्षियों को देखाहै इसके अनन्तर पन्द्रह पग पर उन ऋषियोंको देखकर राजा बोले ॥ १८ ॥ कि यहां पूजन के योग्य आपलोग मेरे घरको आइये व सब लोग संगतानामक मेरी यशस्विनी स्त्री को देखिये ॥ १९ ॥ व हे महाभागो! उसके पूजन को ग्रहण कर जो मार्ग मनमें स्थितहो पवित्रमार्गको चाहनेवाले तुमलोग उस मार्गको जाइयेगा ॥ २० ॥ राजासे इसप्रकार कहेहुये वे ऋषिलोग विना कौतुक इन्द्रनगर के समान उत्तम मन्दिरको आये ॥ २१ ॥ उनको मनस्विनी संगता रानी विचित्र आसनों को देकर राजराज गजसमेत

त्मषाः ॥ १७ ॥ सप्तर्षयोयथास्वर्गे सुरराजेनधीमता ॥ तानृषीनथसंवीक्ष्य पदानिदशपञ्चच ॥ १८ ॥ आगच्छन्त्वत्र पूजार्हाभवन्तोममममन्दिरम् ॥ पश्यन्तुसङ्गतांसर्वे ममभार्यांयशस्विनीम् ॥ १९ ॥ तस्याःपूजांसमादाय योमार्गोमनसिस्थितः ॥ तंगच्छध्वंमहाभागाः पुण्यंमार्गमभीप्सवः ॥ २० ॥ एवमुक्तास्तुतेराज्ञा ऋषयःकौतुकंविना ॥ आजग्मुर्मन्दिरंशुभ्रं पुरन्दरपुरोपमम् ॥ २१ ॥ आसनानिविचित्राणि दत्त्वातेषांमनस्विनी ॥ सङ्गताराजराजेन सार्धमग्रेऽव्यवस्थिता ॥ २२ ॥ कृत्वाकरपुटंराजा ऋषीणांपुण्यकर्मणाम् ॥ बभाषेवचनंराजा भद्रंभद्रैस्सुसङ्गतम् ॥ २३ ॥ वसुधावसुसम्पूर्णा मण्डितानगरीपुरी ॥ पर्वतैश्चसमुद्रैश्च सरिद्भिश्चसरोवरैः ॥ २४ ॥ ग्रामैश्चतुष्पदैर्घोरैर्गोकुलैराकुलीकृता ॥ नररत्नैश्चरत्नैश्च सागराकरसङ्कुला ॥ २५ ॥ दुस्त्यजाभोगभोक्तॄणां परंज्ञानमजानताम् ॥ संसारेसुमहाघोरे पुनरावृत्तिकारिणी ॥ २६ ॥ पतन्तिपुरुषाभद्र अत्रैवचपुनःपुनः ॥ कृतेनयेनविप्रेन्द्र स्वर्गंप्राप्नोतिनिर्मलम् ॥ २७ ॥ दानेनतपसा

आगे स्थितहुई ॥ २२ ॥ और राजा पुण्यकर्मी ऋषियों के आगे हाथोंको जोड़कर कल्याणकारी मुनियों के साथ आयेहुये भद्रमुनिसे वचन बोले ॥ २३ ॥ कि पृथ्वी धन से संपूर्ण है व नगरी तथा पुरी शोभित है और पर्वतों तथा समुद्रों व नदियों और तड़ागों से युक्त है ॥ २४ ॥ और ग्रामों से व भयंकर चतुष्पदोंसे व गोकुलों से व्याप्तकीगई है और श्रेष्ठ मनुष्यों से व रत्नों से और समुद्रों व खानियों से युक्त है ॥ २५ ॥ और उत्तम ज्ञानको न जानतेहुये सुखों को भोगनेवाले पुरुषों को दुस्त्यज है और महाभयंकर संसारमें पुनरावृत्तिको करनेवाली है ॥ २६ ॥ व हे भद्र ! बार २ पुरुष यहीं गिरते हैं हे द्विजेन्द्र ! जिस दान व तपस्याके करने से मनुष्य

निर्मल स्वर्गको प्राप्तहोवै हे सुव्रत! उसको मुझ से कहिये॥ २७। २८॥ भद्र बोले कि तीर्थ जल से पूर्ण हैं व देवता पत्थर तथा मिट्टी के विकार से बनायेगये हैं इससे जो शरीर में स्थित ईश्वर को नहीं देखते हैं वे उस परम पुरुषको नहीं देखते हैं॥ २९॥ अनेकों पवित्र तीर्थ व पवित्र देवमन्दिर हैं और पुण्यरूपी जल-वाले अपवित्र नदी व समुद्र हैं॥ ३०॥ व प्रत्येक स्थान में व पग पग पै पृथ्वी बहुत पुण्यको देनेवाली है हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ, नृपेन्द्र! यदि ज्ञान होवै तो॥३१॥ प्रभासमें कृष्ण, विष्णु, हृषीकेश, शङ्खधारी, गदाधारी, चतुर्भुज, महाबाहु व दैत्यसूदन॥ ३२॥ वराह, वामन, नारसिंह, बल व अर्जुन, तथा रामचन्द्र, बलराम व

चैव तन्ममाचक्ष्वसुव्रत॥ २८॥ भद्र उवाच॥ तीर्थानितोयपूर्णानि देवाःपाषाणमृन्मयाः॥ आत्मस्थंयेनपश्यन्ति तेनपश्यन्तितत्परम्॥ २९॥ सन्तितीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यायतनानिच॥ पुण्यतोयाःपवित्राश्च सरितःसागरास्तथा॥ ३०॥ बहुपुण्यप्रदापृथ्वी स्थानेस्थानेपदेपदे॥ यद्यस्तितर्हिराजेन्द्र ज्ञानंज्ञानवतांवर॥३१॥ कृष्णंविष्णुंहृषीकेशं शङ्खिनंगदिनंतथा॥ चतुर्भुजंमहाबाहुं प्रभासेदैत्यसूदनम्॥ ३२॥ वराहंवामनञ्चैव नारसिंहंबलार्जुनौ॥ रामं रामंचरामंच पुरुषोत्तममेवच॥ ३३॥ पुण्डरीकेक्षणञ्चैवगदापाणिन्तथैवच॥ राघवंशत्रुदमनं गोविन्दंबहुपुण्यदम्॥ ३४॥ जयञ्चभूधरंचैव देवदेवंजनार्द्दनम्॥ सुरेशंश्रीधरंचैव हरियोगीश्वरंतथा॥ ३५॥ कपिलेश्वरनाथञ्च श्वेतद्वीपपतिंहरिम्॥ बदराश्रमवासौच नरनारायणौतथा॥३६॥ पद्मनाभंसुनाभंच हयग्रीवंविशाम्पते॥ द्विजनाथंधरानाथंशार्ङ्गपाणिनमेवच॥ ३७॥ दामोदरंजगन्नाथं सर्वपापहरंहरिम्॥ एतान्येवहि स्थानानि देवदेवस्यचक्रिणः॥ ३८॥

परशुराम और पुरुषोत्तम स्थान॥ ३३॥ व पुण्डरीकनयन, गदापाणि, राघव, शत्रुदमन, गोविन्द, बहुपुण्यदायक,॥ ३४॥ जय, भूधर, देवदेव, जनार्द्दन, सुरेश, श्रीधर, हरि व योगीश्वर॥ ३५॥ और कपिलेश्वर नाथ व श्वेतद्वीपपति, हरि और बदरिकाश्रम निवासी नरनारायण॥ ३६॥ व हे विशांपते! पद्मनाभ, सुनाभ हयग्रीव, द्विजनाथ, धरानाथ, व शार्ङ्गपाणि॥ ३७॥ और दामोदर, जगन्नाथ व सब पापों के हरनेवाले हरिचक्रधारी देवदेवजी के इतनेही स्थान हैं॥ ३८॥ इन

में से जहां तहां जावै तो सब पापों से मनुष्य छूटजाता है और गंगा, यमुना व गोदावरी नदी ॥ ३९ ॥ और शतद्रु तथा विन्ध्या, पयोधा व वरदा तथा चर्मण्वती, सरयू व प्रचण्ड पातकोंको नाशनेवाली गण्डकी ॥ ४० ॥ व चन्द्रभागा, विपाशा तथा शोणा व पुनपुना नदी ये और अन्य जो बहुत सी नदियांहैं व हिमवान् पर्वत भी ॥ ४१ ॥ इनके नाम के कहने से भी पातक रसातलको चलाजाताहै ॥ ४२ ॥ गज बोले कि हे भद्र ! अमृतके समान व कल्याणकारक चरित्र कहागया व हे सब धर्मोंको जाननेवाले ! मैं तुमसे कुछ पूंछताहूं ॥ ४३ ॥ कि जिस महीनेमें व जिसदिन जिस तीर्थमें मनुष्य जाने से अक्षय स्वर्ग को सेवता है उसको तुम मुझसे कहने

गच्छन्तेयत्रतत्रैव मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ गङ्गाचयमुनाचैव नदीगोदावरीतथा ॥ ३९ ॥ शतद्रुश्चतथाविन्ध्या पयोधाव रदातथा ॥ चर्मण्वतीचसरयू गण्डकीचण्डपापहा ॥ ४० ॥ चन्द्रभागाविपाशाच शोणाचैवपुनःपुनः ॥ एताश्चान्याश्च यावन्त्यस्सरितोहिमवानपि ॥ ४१ ॥ नामोच्चारेणयेषांहि पापंयातिरसातलम् ॥ ४२ ॥ गज उवाच ॥ भद्रंहिभाषितम्भ द्र आख्यानममृतोपमम् ॥ पृच्छामिसर्वधर्मज्ञ त्वामहंकिञ्चिदेवहि ॥ ४३ ॥ यस्मिन्मासेदिनेयस्मिंस्तीर्थेयस्मिन् क्रमान्नरः ॥ अक्षयंसेवतेस्वर्गं तन्मेगदितुमर्हसि ॥ ४४ ॥ भद्र उवाच ॥ श्रूयतांराजशार्दूल कथांकथयतोमम ॥ ऋ षीनकथयत्पूर्वं नारदोमुनिसत्तमः ॥ ४५ ॥ कथयामाससंहृष्टो मेघदुन्दुभिनिस्वनैः ॥ रम्येहिमवतःपृष्ठे तत्सर्वंचमया श्रुतम् ॥ ४६ ॥ तदहंतववक्ष्यामि शृणुकामंनरर्षभ ॥ तीर्थान्येवतुसर्वाणि पुष्करावर्त्तकानिच ॥ ४७ ॥ अक्षयाल्लँल भतेलोकांस्तत्तीर्थंकथयामिते ॥ मार्गशीर्षेकान्यकुब्जे उषित्वाऋषिसत्तम ॥ ४८ ॥ नशोचतिनरोनारी स्वर्गंयाति

के योग्य हो ॥ ४४ ॥ भद्र बोले कि हे नृपोत्तम ! कथाको कहते हुये मुझसे सुनिये जोकि पुरातन समय मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने ऋषियों से कहाहै ॥ ४५ ॥ सुन्दर हिमाचल के पृष्ठपै प्रसन्न होतेहुये नारदजी ने मेघ व दुन्दुभिके समान शब्दोंसे जो कहाहै उस सबको मैंने सुनाहै ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! मैं उसको तुमसे कहताहूं इच्छापूर्वक सुनिये और पुष्करावर्तकादिक सब तीर्थोंको सुनिये ॥ ४७ ॥ जिससे मनुष्य अक्षयलोकों को प्राप्तहोताहै उस तीर्थको मैं तुमसे कहताहूं हे मुनिनाथ ! अगहन

महीने में कान्यकुब्जतीर्थ में बसकर ॥ ४८ ॥ स्त्री या पुरुष नहीं शोचता है बरन उत्तम स्वर्गको जाताहै और जो पौषमास की पौर्णमासी है वह यदि अर्बुद पर्वतपर कीजाती है ॥ ४९ ॥ तो पितरोंसमेत मनुष्य अरब वर्षोंतक स्वर्ग में आनन्द करता है और यदि माघी पौर्णमासीमें मनुष्य गयाश्राद्ध को देताहै ॥ ५० ॥ तो वह उत्तम स्थानको प्राप्तहोता है जहां कि जनार्दनदेवजी हैं व फागुनी पौर्णमासी में जो मनुष्य हिमाचल के ऊपर एक रात बसता है ॥ ५१ ॥ और चैती पौर्णमासी में जो विद्वान् प्रभासक्षेत्रमें श्राद्ध करते हैं वे अतिउत्तम मनुष्यवंश में उपजेहुये मनुष्योंसमेत इस संसार में उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥ व वैशाखी पौर्णमासी में जो मनुष्य

परावरम् ॥ पौषस्यपौर्णमासीया यदिसाक्रियतेर्बुदे ॥ ४९ ॥ वर्षाणामर्बुदंस्वर्गे मोदतेपितृभिःसह ॥ माघ्यांयदिगया श्राद्धं पितृणांयच्छतेनरः ॥ ५० ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोजनार्द्दनः ॥ फाल्गुन्यांहिमवत्पृष्ठे वसत्येकांनिशान्नरः ॥ ५१ ॥ चैत्र्यांश्राद्धंप्रभासेतु कुर्वन्तिचमनीषिणः ॥ नतेमर्त्याभवन्तीह कुलजैःसहसत्तमाः ॥ ५२ ॥ जलपानंचवैशाख्यां येकुर्वन्तिजलप्रिये ॥ तथावन्त्यांनरःकश्चित्सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ५३ ॥ ज्येष्ठ्यांचपौर्णमास्यांवै सुश्राद्धंचत्रिकूपके ॥ तिष्ठतेचनरःस्वर्गे वैकुण्ठमधिगच्छति ॥ ५४ ॥ श्रावणस्याप्यमावास्या पूर्णिमापूर्वसागरे ॥ स्नानंदानंजपंश्राद्धं नरःकुर्वन्नशोच्यते ॥ ५५ ॥ तथाभाद्रपदेक्षेत्रे प्रभासेशशिभूषणम् ॥ पूजयित्वानरोलिङ्गं देवलिङ्गोभवेत्ततः ॥ ५६ ॥ आश्विनेचन्द्रभागायाः श्राद्धस्नानंकरोतियः ॥ स्नानंयुगसहस्राणां कृतंवासस्त्रिविष्टपे ॥ ५७ ॥ अष्टाक्षरैश्चतुर्बाहुं ध्या

जलप्रियतीर्थ में जलपान करते हैं वैसेही जो कोई अवन्तीपुरी में जाताहै वह उत्तमगति को प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ और जेठी पौर्णमासी में जो मनुष्य त्रिकूप में उत्तम श्राद्धको करता है वह पुरुष स्वर्गमें टिकता है व वैकुण्ठ को जाताहै ॥ ५४ ॥ और श्रावण की जो अमावस व पौर्णमासीहै उसमें पूर्वसमुद्रमें स्नान,दान,जप व श्राद्ध करता हुआ पुरुष नहीं शोचाजाता है ॥ ५५ ॥ वैसेही भादौं महीनेमें प्रभासक्षेत्र में शशिभूषण लिंगको पूजकर तदनन्तर मनुष्य देवलिंग होताहै ॥ ५६ ॥ और कुँवार महीने में चन्द्रभागानदी के समीप जो श्राद्ध व स्नान करता है उसने हजारयुगों तक स्नान किया व स्वर्ग में निवास करता है ॥ ५७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ !

अष्टाक्षर मन्त्रोंसे जो चतुर्भुजजी को ध्यान करते हैं वे उत्तमगति को प्राप्त होतेहैं व हे गजराज ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या है तुमसे कहताहूं कि ॥ ५८ ॥ दामोदर के समान तीर्थ न हुआहै न होवैगा और महीनों के मध्यमें कातिक श्रेष्ठहै व कातिक में भीष्मपञ्चक श्रेष्ठ है ॥ ५६ ॥ व हे राजन् ! उसमें भी दामोदरतीर्थ के जल में द्वादशी तिथि श्रेष्ठहै अन्य बहुत से तीर्थोंसे क्या है व क्षेत्रोंसे क्या है और महावनों से क्या है ॥ ६० ॥ दामोदरतीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है गज बोले कि हे भद्र ! तुमने दूसरे रसायन की नाईं कल्याणकारक चरित्र को कहा ॥ ६१ ॥ मैं इस तीर्थके बड़ेभारी फलको फिर सुना चाहताहूं कि कौन देशहैं

यन्तिमुनिसत्तम ॥ बहुनात्रकिमुक्तेन गजराजवदामिते ॥ ५८ ॥ दामोदरसमंतीर्थं नभूतन्नभविष्यति ॥ मासानांकार्तिकंश्रेष्ठं कार्त्तिकेभीष्मपञ्चकम् ॥ ५६ ॥ तत्रापिद्वादशीश्रेष्ठा राजन्दामोदरेजले ॥ किमन्यैर्बहुभिस्तीर्थैः किंक्षेत्रैःकिंमहावनैः ॥ ६० ॥ दामोदरेनरःस्नात्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ गज उवाच ॥ भद्रंभद्रत्वयाप्रोक्तं रसायनमिवापरम् ॥ ६१ ॥ भूयोहंश्रोतुमिच्छामि तीर्थस्यास्यमहाफलम् ॥ केदेशाःकिंप्रमाणन्तु कानद्यःकेचपर्वताः ॥ ६२ ॥ जनावसन्तिकेतत्रऋषयःकेतपस्विनः ॥ भद्र उवाच ॥ पृथिवीवसुसम्पूर्णा सागरेणतुवेष्टिता ॥ ६३ ॥ मण्डितानगरैर्ग्रामैः पुरैःपरपुरंजय ॥ वाराणसीप्रभासश्च सङ्गमःसितकृष्णयोः ॥ ६४ ॥ एवंसाराणितीर्थानि तस्मान्मृत्युहराणिच ॥ दामोदरेतितीर्थेयेमृतावैयत्रतत्रहि ॥ ६५ ॥ तेवसन्तिहरेर्देहे नसरन्तिकदाचन ॥ सोमनाथस्यसान्निध्ये उदयान्तोगिरिर्महान् ॥ ६६ ॥ तस्यपश्चिमभागेतु रैवतश्चइतिस्मृतः ॥ सावाहिनीवहेत्तत्र नदीकाञ्चनशेखरा ॥ ६७ ॥ धातवस्तत्रतेरक्ताः श्वेतानी

व क्या प्रमाण है और कौन नदियां हैं व कौन पर्वत हैं ॥ ६२ ॥ व कौन मनुष्य वहां बसते हैं और कौन ऋषि व कौन तपस्वीहैं भद्र बोले कि पृथ्वी धनोंसे सम्पूर्ण है व समुद्र से वेष्टित है ॥ ६३ ॥ व हे शत्रुपुरञ्जय ! नगरों से व ग्रामों से और पुरों से शोभितहै और काशी, प्रभास व श्वेत,कृष्णका संगम याने प्रयागतीर्थ ॥ ६४ ॥ इस प्रकार सारांशमय तीर्थ हैं व उसीकारण मृत्युको हरनेवाले हैं और दामोदर ऐसे तीर्थ में जो जहां तहां मरेहैं ॥ ६५ ॥ वे विष्णुजी के शरीरमें बसते हैं और कभी जन्मको नहीं प्राप्त होतेहैं व सोमनाथ के समीप बड़ाभारी उदयान्त पर्वत है ॥ ६६ ॥ उसके पश्चिमभाग में रैवत ऐसा कहाहुआ पर्वत है वहां कांचनशेखरा वह

वाहिनीनदी बहती है ॥६७॥ उसमें लाल सफेद,नील व श्याम वे धातुवें हैं और हाथीके आकार सोनेके समान पत्थरहैं ॥ ६८ ॥ और अन्य चनाके आकारहैं तथा अन्य गऊके खुरकेसमान हैं और वृक्ष,व वल्ली व गुल्म अनेक प्रकारके विस्तारितहैं ॥ ६९ ॥ और मूल,पुष्प,फल व पत्र वह सब सुवर्णमयहै उसको पापी पुरुष नहीं देखता है और जो पापसे मुक्तहोता है वह उसको देखता है ॥ ७० ॥ वह पर्वत धातुवाद में परायण पुरुषों से सदैव सेवन कियाजाता है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व शूद्रोंके अनुचर उसको सेवते हैं ॥ ७१ ॥ और वहांपर कल्याणकारिणी वाणीवाले बहुत से कल्याणमय पक्षी हैं व हंस, सारस, चक्रवाक,सुवा,कोकिल व मयूर हैं ॥

ला:सिताश्चवै॥पाषाणाःकुञ्जराकाराः सन्त्यन्येस्वर्णसन्निभाः ॥ ६८ ॥ चणकाकृतयश्चान्ये अन्येगोक्षुरकप्रभाः ॥ वृक्षावल्ल्यश्चगुल्माश्च सन्तानाःसन्त्यनेकशः ॥ ६९ ॥ सर्वंतत्काञ्चनमयं मूलंपुष्पदलंदलम् ॥ नहिपश्यतिपापा त्मा मुक्तःपापेनपश्यति ॥ ७० ॥ सेव्यतेसगिरिर्नित्यं धातुवादपरैर्नरैः ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैःशूद्रानुगैस्तथा ॥ ७१ ॥ पक्षिणस्तत्रबहवः शिवाःशिवगिरस्तथा ॥ हंससारसचक्राह्वाः शुककोकिलबर्हिणः ॥ ७२ ॥ मृगाश्चवानरेन्द्राश्च हंसव्याघ्रास्तथैवच ॥ तस्यतीर्थप्रभावेण दुष्टान्याचरन्तिते ॥ ७३ ॥ कालेनमृत्युमायान्ति पशुपक्षिसरीसृपाः ॥ सर्वेवि मानमारूढा गच्छन्तिहरिमन्दिरम् ॥७४॥ वायुनापतितंयच्च पत्रपुष्पफलादिकम् ॥ तस्यानद्याजलस्पृष्टं सर्वंवैमुक्तिमे यिवान् ॥ ७५ ॥ सानदीपृथिवींभित्त्वा पातालादागतानृप ॥ पूर्वंपन्नगराजस्तु तेनमार्गेणचागतः ॥ ७६ ॥ स्नात्वादामो दरेतीर्थे जन्ममृत्युप्रहायिणि ॥ स्वर्गादागत्यचेन्द्रोपि यष्ट्वायज्ञैःसुपुष्कलम् ॥ ७७॥ अनुत्तमंपदंगत्वा गतःस्वर्गान्निरा

७२॥ और मृग, वानरेन्द्र, हंस व व्याघ्रहैं व उस तीर्थ के प्रभाव से वे दुष्टकर्मों को नहीं करते हैं ॥ ७३ ॥ और जो पशु, पक्षी व सर्पकाल से मृत्युको प्राप्तहोते हैं वे सब उत्तम विमान पै चढ़कर विष्णुजी के मन्दिरको जातेहैं ॥ ७४ ॥ और जो पत्र, पुष्प व फलादिक पवनसे गिरताहै उस नदीके जलसे छुवाहुआ वह सब मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥ ७५ ॥ हे राजन्! वह नदी पृथ्वीको फोड़कर पाताल से आई है पुरातन समय नागराज जन्म व मृत्युको हरनेवाले दामोदरतीर्थमें नहाने के

लिये उस मार्गसे आयेहैं और स्वर्गसे आकर इन्द्रभी बड़ेभारी यज्ञको करके ॥ ७६।७७॥ अतिउत्तम स्थानको जाकर व्याधिहीन स्वर्गको प्राप्तहुयेहैं व कातिकमें बलि जीने आकर दानोंको दियाहै ॥ ७८ ॥ और हरिश्चन्द्र, शिबि, नल व नहुष और नाभाग व अम्बरीषादिकों ने बहुत कठिन कर्म किया है ॥ ७९ ॥ व अनेक दानोंको देकर हाथी, गऊ, घोड़े और रथ दियेगये हैं व बैल, सुवर्ण, पृथ्वी व अनेकप्रकारके रत्न दियेगयेहैं ॥ ८० ॥ और मुख्य ब्राह्मणों के लिये छत्रदानों को देकर व बहुत से वस्त्रों के जोड़े तथा रसों से मिश्रित अन्नों को दामोदर के आगे देकर ॥ ८१ ॥ वे विष्णुभवन को चले गये और पृथ्वीपर नहीं आते हैं जो भक्तिसंयुत पुरुष उस

मयम् ॥ बलिनाचैवदानानि दत्तान्यागत्यकार्त्तिके ॥ ७८ ॥ हरिश्चन्द्रेणशिबिना नलेननहुषेणवा ॥ नाभागअम्बरीषाद्यैः कृतंकर्मसुदुष्करम् ॥ ७९ ॥ दत्त्वादानान्यनेकानि गजागावोहयास्तथा ॥ अनड्वान्काञ्चनंभूमी रत्नानिविविधानिच ॥ ८० ॥ छत्राणिविप्रमुख्येभ्यो दानानिबहुवाससी ॥ अन्नानिरसमिश्राणि दत्त्वादामोदराग्रतः ॥ ८१ ॥ गतास्तेविष्णुभवनं नागच्छन्तिमहीतले ॥ पत्रंपुष्पंफलंतोयं तस्मिंस्तीर्थेददातियः ॥ ८२ ॥ द्विजानांभक्तिसंयुक्तः सयातिजलशायिनम् ॥ प्रसृतिंचापियोदद्यान्मुष्टिंचापिक्षुधार्दिते ॥ ८३ ॥ विमानवरमारूढः ससोमंप्रतिगर्जति ॥ दामोदराग्रतःकृत्वा पर्वतानन्नसम्भवान् ॥ ८४ ॥ पूजितान्जलपुष्पैश्च दीपंदद्यात्सवर्तिकम् ॥ अथवापुष्कलंस्थानं कुलानांतारयेच्छतम् ॥ ८५ ॥ चतुरङ्गुलमात्रेपि दत्तेदामोदराग्रतः ॥ दानेयुगसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ८६ ॥ मागच्छहिमवत्पृष्ठं मलयंमाचपर्वतम् ॥ गच्छरैवतकंशैलं यत्रदामोदरःस्थितः ॥ ८७ ॥ कृत्वामासोपवासन्तु द्विजोदामोदराग्रतः ॥

तीर्थमें पत्र, पुष्प, फल व जलको ब्राह्मणों को देताहै वह जलशायी विष्णुजी के समीप जाताहै व क्षुधासे व्याकुल मनुष्य के लिये जो पसर भर या मुट्ठीभर अन्नको देताहै ॥ ८२ । ८३ ॥ उत्तम विमान पै चढ़कर वह चन्द्रमा के सामने गर्जता है और अन्नसे उपजेहुये पर्वतों को दामोदर के आगे बनाकर ॥ ८४ ॥ जलसे व पुष्पोंसे पूजित उन पर्वतों को उत्तमबत्तीसमेत दीप देवै अथवा श्रेष्ठस्थान सौकुलोंको तारताहै ॥ ८५ ॥ और दामोदरजी के आगे चार अंगुलभी दान देनेपर हज़ारयुगों तक स्वर्गलोक में पूजाजाताहै ॥ ८६ ॥ हिमवान् के पृष्ठपै मत जाओ व मलयपर्वत पर मत जावो बरन रैवतपर्वत पर जावो जहां कि दामोदरजी स्थितहैं ॥ ८७ ॥ दामोदर

के आगे महीनेभर उपासकर ब्राह्मण कालसे दामोदरनगर को जाताहै और फिर नहीं लौटता है ॥ ८८ ॥ और जो फिर स्त्री या पुरुष वहां अनशन व्रत करताहै वह सब लोकोंको नांघकर विष्णुजी के शरीरको प्राप्त होताहै ॥ ८९ ॥ और जहां धर्म को विध्वंस करनेवाले पांचसौ विघ्न सदैव नाश होतेहैं वहां वह मनुष्य जाताहै ॥ ९० ॥ और प्रद्युम्न, बल, शैनेय, गद व चक्रादिक सौलक्ष प्रमाणवाले यादवों से वह बड़ाभारी पर्वत सेवन कियाजाता है ॥ ९१ ॥ व उनकी स्त्रियां नित्य दामोदरके आगे क्रीड़ा करती हैं और सुन्दर चन्द्रमा के समान मुखवाली व गौर वर्णवाली तथा श्यामा (सोलह वर्षवाली) और सूक्ष्म कटिवाली ॥ ९२ ॥ और वहां

ननिवर्तेतकालेन दामोदरपुरंव्रजेत् ॥ ८८ ॥ करोत्यनशनंयश्चनरोनारीचवापुनः ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य सहरेर्देहमाप्नुयात् ॥ ८९ ॥ विघ्नानियत्रनश्यन्तिनित्यंपञ्चशतानिच ॥ धर्मविध्वंसकारीणिनरस्तत्रसगच्छति ॥ ९० ॥ प्रद्युम्नबलशैनेय गदचक्रादिभिःसदा ॥ शतलक्षप्रमाणैस्तु सेव्यतेसगिरिर्महान् ॥ ९१ ॥ क्रीडन्तिनार्यस्तेषांहि नित्यंदामोदराग्रतः ॥ सुचन्द्रवदनागौर्यः श्यामाश्चतनुमध्यमाः ॥ ९२ ॥ नितम्बिन्यःसुकेश्यश्च सुनासायतलोचनाः ॥ सुगुल्फाःसुभ्रुवस्तत्र सुकुक्ष्यःसुपयोधराः ॥ ९३ ॥ शोभमानाःसुजङ्घाश्च सुपादाङ्घ्र्युदरास्तथा ॥ राजपुत्रौगिरौतस्मिन् हसन्तिचरमन्तिच ॥ ९४ ॥ कौसुम्भंपीतवसनं कुसुम्भापीतकञ्चुकान् ॥ ब्राह्मणीभ्योददातीह प्रार्थमानाचयापृथक् ॥ ९५ ॥ भक्ष्यंभोज्यंचपेयंच लेह्यंचोष्यंचपिच्छिलम् ॥ ताम्बूलंपुष्पयुक्तं कार्त्तिकेहरिवासरे ॥ ९६ ॥ दृष्ट्वातुरेवतीकुण्डं दद्यात्फलमनुत्तमम् ॥ पुत्रिणीऋद्धिसम्पन्ना सुभगाजायतेसती ॥ ९७ ॥ एवंकृत्वातुसारात्रिर्नीयतेनिद्रयाविना ॥ वेदघोषैश्चपुण्यैस्तु

नितम्बिनी, सुकेशी तथा सुन्दरनासिकावाली व दीर्घ नेत्रोंवाली और सुन्दर घुट्ठनूवाली, सुन्दर भौंह व सुन्दर कुक्षि तथा सुन्दर कुचोंवाली ॥ ९३ ॥ शोभमान, सुन्दर जङ्घावाली और सुन्दर पांव, चरण व पेटवाली राजकन्या उसपर्वतपै हँसती व क्रीड़ा करती हैं ॥ ९४ ॥ और प्रार्थना करतीहुई जो स्त्री पृथक् कुसुमसे रंगेहुये पीले वसन व कुसुम से रँगीहुई कञ्चुकी को ब्राह्मणियों के लिये देतीहै ॥ ९५ ॥ और भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य व पिच्छिल (दधि) तथा पुष्पसंयुक्त ताम्बूल को जो कातिक महीने में द्वादशी तिथिमें देतीहै ॥ ९६ ॥ और जो रेवतीकुण्डको देखकर अतिउत्तमफल को देतीहै वह पुत्रिणी व ऋद्धियों से संयुक्त तथा सुन्दर ऐश्वर्य-

वाली व पतिव्रता होतीहै ॥ ९७ ॥ ऐसा करके पवित्र वेदशब्दोंसे तथा भारतकथा के बांचनेसे वह रात्रि विना निद्राके व्यतीत कीजातीहै ॥ ९८ ॥ और हुङ्कार व ताल शब्दोंसे व बार २ गान व नृत्यसे रात्रि व्यतीत कीजातीहै व देशभाषाको बोलनेवाली स्त्रियां मण्डलके मध्यमें ॥ ९९ ॥ हास्य व नृत्यसे संयुक्त होवैं व हे राजन् ! जो महानृप दामोदर के आगे पांच पत्थरोंवाले मन्दिरको करता है ॥ १०० ॥ व जो स्त्री सुन्दर तथा उत्तम मन्दिर को करती है वह विष्णुजी के मन्दिर को जाती है और बहुतरूप से संयुत हज़ार मन्दिरों को बनाकर ॥ १ ॥ सब कामनाओं को उल्लङ्घनकर मनुष्य परब्रह्मको प्राप्त होताहै व जो दामोदर के मन्दिरके ऊपर पच-

भारताख्यानवाचनैः ॥ ९८ ॥ हुङ्कृतैस्तालशब्दैश्च गीतनृत्यैःपुनःपुनः ॥ देशभाषाविभाषिण्यो रामामण्डलमध्यतः ॥ ९९ ॥ हास्यनृत्यसमायुक्ता राजन्दामोदराग्रतः ॥ पञ्चपाषाणकंहर्म्यं यःकरोतिमहानृपः ॥ १०० ॥ मन्दिरंसुन्दरंशुभ्रं सायातिहरिमन्दिरम् ॥ कृत्वासाहस्रकंचैत्यं बहुरूपसमन्वितम् ॥ १ ॥ सर्वान्कामानतिक्रम्य परंब्रह्माधिगच्छति ॥ पञ्चवर्णध्वजंदद्याद् दामोदरगृहोपरि ॥ २ ॥ तन्तुप्रमाणवर्षाणि दिव्यानिसदिवंव्रजेत् ॥ तस्यगव्यूतिमात्रेण क्षेत्रंवस्त्रापथंशुभम् ॥ ३ ॥ यद्दृष्ट्वासर्वपापानि लीयन्तेसुबहूनिच ॥ राजंस्तत्पदमायाति यद्गत्वाननिवर्त्तते ॥ ४ ॥ पूजयित्वाभवन्देवं भवसम्भवनाशनम् ॥ नरोनारीनरश्रेष्ठ शिवलोकेमहीयते ॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य भद्रस्यचसुभाषितम् ॥ आगतःकार्त्तिकींकर्तुं देवेदामोदरेतथा ॥ ६ ॥ ऋग्यजुःसामसंयुक्तैर्ब्राह्मणैर्ब्रह्मवित्तमैः ॥ क्षत्रियैःक्षत्रधर्म

रंगे ध्वजाको देताहै ॥ २ ॥ वह तागोंके प्रमाणभर देवताओं के वर्षोंतक स्वर्गको प्राप्त होताहै और उसके दोकोस पर वस्त्रापथनामक उत्तमक्षेत्र है ॥ ३ ॥ जिसको देखकर बहुत से सब पातक नाश होजाते हैं व हे राजन् ! उस स्थानको मनुष्य प्राप्त होताहै कि जिसको जाकर नहीं लौटताहै ॥ ४ ॥ व हे नरश्रेष्ठ ! स्त्री या पुरुष संसार में उत्पत्तिको नाश करनेवाले शिवदेवजी को पूजकर शिवलोक में पूजाजाताहै ॥ ५ ॥ उस भद्रके सुन्दर कहेहुये वचनको सुनकर वह राजा दामोदरदेव में कार्त्तिकी करने के लिये आया ॥ ६ ॥ ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ व ऋक्, यजु व सामवेदसे संयुक्त ब्राह्मणोंसमेत तथा क्षत्रिय के धर्मको जाननेवाले क्षत्रियोंसमेत व

दान में परायण वैश्योंसहित ॥ ७ ॥ और शूद्रोंसमेत गजराजा उस तीर्थ में आया और अनेक दानोंको देकर व अग्निमें हव्यको हवनकर ॥ ८ ॥ उस राजा ने अग्निष्टोमादिक व अश्वमेधादियज्ञों को किया व ऊपर चरण तथा नीचे मुख करके खड़े होकर धुवाँको पिया ॥ ९ ॥ और अन्यलोग सूखेपत्तोंको खानेवाले तथा अन्य फलोंको भोजन करनेवाले हुये व और लोग जड़ोंको खातेथे तथा अन्य ब्राह्मण पवनभोजी थे ॥ १० ॥ और अन्य फलोंको सेवनेवाले तथा अन्य जलशायी थे व अन्य पञ्चाग्निको साधन करनेवाले तथा पत्थरके चूर्णको खानेवाले थे ॥ ११ ॥ और अन्य पुरुष वेदमाता गायत्रीको जपते थे व अन्य पुरुष मनसे सावित्रीजी को

ज्ञैर्वैश्यैर्दानपरायणैः ॥ ७ ॥ सहशूद्रैःसमायातस्तस्मिंस्तीर्थेगजोनृपः ॥ दत्त्वादानान्यनेकानि हविर्हुत्वाहुताशने ॥ ८ ॥ अग्निष्टोमादयोयज्ञा हयमेधादिकाश्चवै ॥ ऊर्द्ध्वपादःस्थितोभूत्वापिबद्धूममधोमुखः ॥ ९ ॥ शुष्कपत्राशनाश्चान्ये अन्येवैफलभोजनाः ॥ मूलानिचान्येभक्षन्ति अन्येवाय्वशनाद्विजाः ॥ १० ॥ फलोपसेविनश्चान्ये अन्येवैजलशायिनः ॥ पञ्चाग्निसाधकाश्चान्ये शिलाचूर्णस्यभक्षकाः ॥ ११ ॥ जपन्तिचान्येमनुजा गायत्रींवेदमातरम् ॥ सावित्रींमनसाचान्ये देवीमन्येसरस्वतीम् ॥ १२ ॥ सूक्तानिहिपवित्राणि ब्रह्मणानिर्मितानिच ॥ अन्येसर्वेतदातत्र द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ १३ ॥ आलोक्यसर्वशास्त्राणि विचार्यचपुनःपुनः ॥ इदमेकन्तुनिष्पन्नं ध्येयोनारायणःसदा ॥ १४ ॥ आधिस्तमःसुदुष्पारं भवेद्भगवताविना ॥ तत्रनान्योमहादेवात्पतन्तंयोभिरक्षति ॥ १५ ॥ गतागतानिवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्यादयोग्रहाः ॥ अद्यापिनानिवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ १६ ॥ येनराऋषयश्चान्ये देवलोकंजिगीषवः ॥ प्राप्नुवन्तिचत

व सरस्वतीदेवीजी को ध्यान करते थे ॥ १२ ॥ व अन्य ब्राह्मण ब्रह्मासे बनायेहुये पवित्र सूक्तोंको पढ़ते थे व उस समय अन्य सब वहां द्वादशाक्षर मन्त्रको ध्यान करनेवाले थे ॥ १३ ॥ व सब शास्त्रोंको देखकर तथा बार २ विचारकर यह एक सिद्ध होताथा कि सदैव नारायण ध्यान करनेयोग्य हैं ॥ १४ ॥ व विना भगवान् के मानसी व्यथा व दुष्पार अन्धकार होताहै उसमें महादेव से अन्य देवता नहीं है जो कि गिरतेहुये पुरुषकी रक्षा करता है ॥ १५ ॥ चन्द्रमा व सूर्यादिक ग्रह बार २ जाकर लौटआते हैं, परन्तु द्वादशाक्षरके ध्यान करनेवाले लोग आज भी नहीं लौटतेहैं ॥ १६ ॥ और देवलोक को जानेकी इच्छावाले जो मनुष्य व अन्य ऋषिलोगहैं

वे उस स्थानको प्राप्तहोतेहैं जैसे कि जलाहुआ बीज पृथ्वीमें प्राप्तहोताहै ॥ १७ ॥ जिसने हरि ऐसे दो अक्षरोंको कहाहै उसने मोक्षमें जानेके लिये फेंट बांधीहै ॥ १८ ॥ एक भक्त, नक्त, अयाचित व उपास इत्यादिक अन्य कर्मोंको दामोदर के आगेकरके ॥ १९ ॥ इस संसार में प्रलयपर्यन्त मनुष्य कृतकृत्य होते हैं ऋषियोंसमेत वह राजा जबतक वहा स्थित रहा ॥ २० ॥ तबतक वहां सैकड़ों व हज़ारों विमान चलेगये और वहां गन्धर्व्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण और किन्नर ॥ २१ ॥ सब सैकड़ों व हज़ारों पुरुष विमानपर चढ़गये और सब देशवासियोंसमेत व स्त्रीसहित वह राजा ॥ २२ ॥ विमान पै चढ़कर जो व्याधिहीन स्थानहै उसको चलागया जो मनुष्य

त्स्थानं दग्धबीजंयथावनौ ॥ १७ ॥ सकृदुच्चारितंयेन हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ बद्धःपरिकरस्तेन मोक्षोपगमनम्प्रति ॥ १८ ॥ एकभक्तंतथानक्तमयाचितमुपोषितम् ॥ एवमादीनिचान्यानि कृत्वादामोदराग्रतः ॥ १९ ॥ कृतकृत्याभवन्तीह यावदाभूतसंप्लवम् ॥ सराजाऋषिभिस्सार्द्धं यावत्तिष्ठतितत्रवै ॥ २० ॥ विमानानांसहस्राणि तावत्तत्रगतानिच ॥ गन्धर्वाप्सरसस्तत्र सिद्धचारणकिन्नराः ॥ २१ ॥ सर्वेविमानमारूढाः शतशोथसहस्रशः ॥ सर्वैर्जानपदैःसार्द्धं सराजाभार्ययासह ॥ २२ ॥ गतोविमानमारूढो यत्तत्पदमनामयम् ॥ यइदंपठतेनित्यं शृणुयाद्वापिमानवः ॥ २३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सवैविष्णुपदंव्रजेत् ॥ परमंशृणुयाद्भक्त्या अनुमोद्यप्रशंसयेत् ॥ २४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः परंब्रह्माधिगच्छति ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदामोदरमाहात्म्यंनामसप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१७ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ॥ क्षेत्रंवस्त्रापथंपुनः ॥ यत्प्रभासस्यसर्वस्य क्षेत्रेचातिप्रियंमम ॥ १ ॥ यत्रसा

इस चरित्र को नित्य पढ़ता है या सुनता है ॥ २३ ॥ वह सब पापों से छूटकर विष्णुपद को प्राप्तहोता है भक्तिसे जो इस उत्तम चरित्र को सुनै और अनुमोदनकर प्रशंसाकरै ॥ २४ ॥ तो सब पापोंसे छूटकर वह परब्रह्मको प्राप्तहोताहै ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रेदामोदरमाहात्म्यंनामसप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१७ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तीरथ वस्त्रापथ तथा भवसुर को परभाव । कह्यो तीनसौ अठरहे माहिं सोइ सुर राव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर फिर वस्त्रापथक्षेत्रको

जावै जोकि सब प्रभासक्षेत्र के मध्यमें बहुत प्रियहै ॥ १ ॥ जहां कि सृष्टिको संहारकरनेवाले साक्षात् भवदेवजी हैं वे पृथ्वीपै स्थितहैं व वे प्रभु वहां प्रविष्टहुयेहैं ॥ २ ॥ उस प्रभासक्षेत्र में ऐश्वर्यको देनेवाले आपहीसे उपजेहुये शिवदेवजी हैं जिसलिये उनसे यह संसार उत्पन्न होताहै उसीकारण भव ऐसे कहेगये हैं ॥ ३ ॥ फिर वस्त्रापथक्षेत्र में जो एकबार यात्रा करता है वहां तीर्थोंको अवगाहन (स्नान) कर वह कृतकृत्य होताहै ॥ ४ ॥ और भवदेवजीको देखकर एकबार विधिसे पूजकर वह उत्तम मनुष्य केदारक्षेत्र की यात्राके फलका भागी होताहै ॥ ५ ॥ चैत महीने में भवजी को देखकर फिर संसारमें उत्पन्न नहीं होताहै अथवा वैशाखी पौर्णमासी में

त्वाद्भवोदेवः सृष्टिसंहारकारकः ॥ पृथिवींसत्वधिष्ठाता तथातत्राविशत्प्रभुः ॥ २ ॥ स्वयम्भूचस्थितस्तत्र प्रभासेभूतिदो भवः ॥ भवतीदंजगद्यस्मात्तस्माद्भवइतिस्मृतः ॥ ३ ॥ यःसकृत्कुरुतेयात्रां क्षेत्रेवस्त्रापथेपुनः ॥ विगाह्यतत्रतीर्थानिकृतकृत्यःप्रजायते ॥ ४ ॥ अथदृष्ट्वाभवन्देवं सकृत्पूज्यविधानतः ॥ केदारयात्राफलभाक् सभवेन्मनुजोत्तमः ॥ ५ ॥ चैत्रेमासिभवन्दृष्ट्वा नपुनर्जायतेभवे ॥ वैशाख्यामथवासम्यग् भवन्दृष्ट्वाविमुच्यते ॥ ६ ॥ वाराणस्यांकुरुक्षेत्रे नर्मदायांचयत्फलम् ॥ निमिषार्द्धेभवन्दृष्ट्वा दुर्लभंचदिनेदिने ॥ ७ ॥ प्रेतत्वंनैवतस्यास्ति नयातिनरकंतथा ॥ येषाम्भवालयेप्राणा गतावैवरवर्णिनि ॥ ८ ॥ धन्यानामपिधन्यास्ते देवानामपिदेवताः ॥ वस्त्रापथेमतिर्येषाम्भवेयेषांमतिःस्थिरा ॥ ९ ॥ गोदानंयत्रशंसन्ति ब्राह्मणानाञ्चभोजनम् ॥ पिण्डदानंचतत्रैव कल्पान्तंतृप्तिमावहेत् ॥ १० ॥ इतिसंक्षेप

भलीभांति भवजीको देखकर विमुक्त होजाताहै ॥ ६ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र व नर्मदामें जो फल होताहै वह फल आधे पलमें शिवजीको देखकर दिन दिनमें दुर्लभहै ॥ ७ ॥ हे वरवर्णिनि ! उसको प्रेतता नहीं होती है और वह नरक को नहीं जाताहै कि जिनके प्राण भवजी के मन्दिरमें गयेहैं ॥ ८ ॥ धन्य पुरुषोंके मध्यमें भी वे धन्यहैं और वे देवताओं के भी देवताहैं कि जिनकी बुद्धि वस्त्रापथमें है और जिनकी बुद्धि भवजी में स्थिरहै ॥ ९ ॥ जहां पर विद्वान् गोदान व ब्राह्मणों के भोजन की प्रशंसा करते हैं

और वहीं पर पिंडदान कल्पान्त तक तृप्तिको करताहै ॥ १० ॥ हे महादेवि ! भव से उपजा हुआ यह माहात्म्य संक्षेप से कहा गया सुनाहुआ जो कि पापसमूहों को नाशनेवाला व दश हज़ार यज्ञोंके फलको देनेवालाहै ॥ ११॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांवस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्यनामाष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥३१८॥

दो० । है वस्त्रापथक्षेत्र महँ प्रवरतीर्थ जिमि नाम। सोइ त्रिशत उन्नीसवें माहिं चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि इसके अनन्तर वस्त्रापथक्षेत्र में करोड़ों तीर्थ हैं तथापि मैं सब तीर्थों के महाऐश्वर्यवाले साराशको तुमसे कहता हूं ॥ १ ॥ दामोदर तीर्थ में सुवर्ण की रेखा से संयुत यह नदी कही गई है वहीं ब्रह्मकुंड व ब्रह्मे-

तःप्रोक्तं महादेविभवोद्भवम् ॥ श्रुतम्पापौघशमनं यज्ञायुतफलप्रदम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्यंनामाष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ अथवस्त्रापथक्षेत्रे सन्तितीर्थानिकोटिशः ॥ तथापिसारन्तेवच्मि सर्वतीर्थमहोदयम् ॥ १ ॥ दामोदरेसरितप्रोक्ता सौवर्ण्यारेखयायुता ॥ ब्रह्मकुण्डंचतत्रैव तथाब्रह्मेश्वरःस्मृतः ॥ २ ॥ कालमेघश्चसंप्रोक्तो भवोदामोदरःस्मृतः ॥ गव्यूतिद्वितयेनैव कालिकातत्रकीर्त्तिता ॥ ३ ॥ इन्द्रेश्वरश्चतत्रैव तत्रक्षेत्रंमहाप्रभम् ॥ कृतेसारिणकंप्रोक्तं त्रेतायांहेममारकम् ॥ ४ ॥ पञ्चगव्यूतिमात्रन्तु तत्क्षेत्रंसंप्रकीर्त्तितम् ॥ मृगीकुण्डंचतत्रैव सर्वपातकनाशनम् ॥ ५ ॥ एतद्वस्त्रापथेक्षेत्रं रत्नधातोस्तथोत्तमम् ॥ कथितंतवदेवेशि पुनःसंक्षेपतोमया ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवस्त्रापथक्षेत्रे प्रवरतीर्थानुकीर्त्तनंनामैकोनविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१९ ॥ * ॥ * ॥

श्वरजी कहे गये हैं ॥ २ ॥ वहीं पर कालमेघ, व भव और दामोदरजी कहे गये हैं और वहा चार कोसपर कालिकाजी कही गई हैं ॥ ३ ॥ वहां इन्द्रेश्वरहैं व वहीं पर महाप्रभावान् क्षेत्र है सतयुग में सारिणक व त्रेता में हेममारक कहा गया है ॥ ४ ॥ वह क्षेत्र दश कोस कहा गया है और वहीं पर समस्त पातकों को नाशनेवाला मृगीकुण्ड है ॥ ५ ॥ वस्त्रापथ में यह उत्तम रत्न व धातुका क्षेत्रहै हे देवेशि ! तुमसे फिर यह तीर्थ संक्षेपसे कहा गया ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवस्त्रापथक्षेत्रेप्रवरतीर्थानुकीर्तननामैकोनविंशाधिकत्रिशततमोऽध्याय ॥ ३१९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो• । उन्न बिल्लनामक यथा भयो अनूपस्थान । सोइ तीनसौ बीसमहँ कियो चरित्रबखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उन्नबिल्ल ऐसे प्रसिद्ध
तीर्थके समीप जावै हे देवि ! वह मंगलतीर्थसे पश्चिम में योजनके अन्तर पै स्थित है ॥ १ ॥ वहीं पर महापातालके मार्गको जानेवाला दिव्य विवरहै ॥ २ ॥ पुरातन
समय पाताल के उत्तर संग्रहमें उसका कल्प कहागयाहै वहा अनेकों लिंग व सोलह सिद्धस्थान कहेगये हैं ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! पुरातन समय वह स्थान सुवर्ण के
समान हुआ है हे देवि ! ऐश्वर्य को चाहनेवाले पुरुषको सदैव उस स्थानमें जानाचाहिये ॥ ४ ॥ इतिश्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटी

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि उन्नबिल्लेतिविश्रुतम् ॥ योजनस्यान्तरेदेवि पश्चिमेमङ्गलात्स्थितम् ॥ १ ॥ त
त्रैवविवरंदिव्यं महापातालमार्गगम् ॥ २ ॥ तस्यकल्पःपुराप्रोक्तःपातालोत्तरसंग्रहे ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानि सिद्धस्थाना
निषोडश ॥३॥ सुवर्णसान्निभंपूर्वं तत्स्थानमभवत्प्रिये ॥ तस्मिन्स्थानेसदादेवि गतव्यंभूतिमिच्छता ॥ ४ ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणे प्रभासखण्डयुन्नगिरिस्थानमाहात्म्यंनामविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२० ॥ * ॥ * ॥
ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मङ्गलात्पश्चिमेस्थितम् ॥ गङ्गेश्वरंतथालिङ्गं सुरार्कंचविशेषतः ॥ १ ॥ गन्तव्यं
तत्रविधिवत्सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ स्नात्वाहिपिण्डदानंच कुर्यात्तत्रयथार्थतः ॥ २ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तथादेयमन्नम्भू
रिसदक्षिणम् ॥ इतितेकथितंमेद्य कलिपापौघनाशनम् ॥ ३ ॥ श्रोतव्यंविधिनातद्वद्भविष्योक्तविधानतः ॥ ईश्वर

॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

कायामुन्नतगिरिस्थानमाहात्म्यंनामविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२० ॥
दो• । जिमि मृगानना नारि सन पूछ्यो नृपति हवाल । कह्योत्रिशत इक्कीसमहँ सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मंगलसे पश्चिम
में स्थित गंगेश्वरलिंग व सुरार्कजीके समीप विशेषकर जावै ॥ १ ॥ वहां भलीभांति यात्रा के फलको चाहनेवाले पुरुषों को विधिपूर्वक जाना चाहिये और वहां स्नान
कर यथार्थ पिंडदानकरै ॥ २ ॥ वैसेही ब्राह्मणोंके लिये दक्षिणासमेत बहुत अन्न देना चाहिये कलियुग के पापसमूहको नाशनेवाले इस चरित्रको मैंने तुमसे कहा ॥ ३ ॥

भविष्योक्त विधि से इसको विधिपूर्वक सुनना चाहिये महादेवजी बोले कि देवताओंके पापनाशक इस चरित्रको दुर्बुद्धिको न देना चाहिये ॥ ४ ॥ इस समय मैं कहता हूं कि मङ्गल से पश्चिम में जावै और वहां सब सिद्धियों के देनेवाले सिद्धेश्वरजीको देखै ॥ ५ ॥ और वहीं पर करोड़ तीर्थोंके फलको देनेवाला चक्रतीर्थ है व आपही से उपजाहुआ लोकेश्वरलिङ्ग पहले इन्द्रेश्वरलिङ्ग था ॥ ६ ॥ हे देवि! उसको विधिपूर्वक देखकर तदनन्तर यक्षेश्वरी के समीप जावै मङ्गल से पश्चिम भाग में जहां चाहे हुये अर्थको देनेवाली व महाऐश्वर्यवती यक्षेश्वरी देवी आपही स्थितहैं उनको विधि से भलीभांति पूजकर तदनन्तर फिर वस्त्रापथ को जावै और रैवतक पर्वत

उवाच ॥ इदंनदेयंदुर्बुद्धेः सुराणांपापनाशनम् ॥ ४ ॥ अधुनासंप्रवक्ष्यामि मङ्गलात्पश्चिमेव्रजेत् ॥ तत्रसिद्धेश्वरंपश्येत्सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५ ॥ तत्रैवचक्रतीर्थञ्च तीर्थकोटिफलप्रदम् ॥ लोकेश्वरंस्वयम्भूतं पूर्वमिन्द्रेश्वरेतिच ॥ ६ ॥ तद्दृष्ट्वाविधिवद्देवि ततोयक्षेश्वरींव्रजेत् ॥ मङ्गलात्पश्चिमेभागे यत्रदेवीस्वयंस्थिता ॥ यक्षेश्वरीमहाभागा वाञ्छितार्थप्रदायिनी ॥ ७ ॥ ताम्सम्पूज्यविधानेन ततोवस्त्रापथम्पुनः ॥ गिरिंरैवतकङ्गत्वा कुर्याद्यात्रांविधानतः ॥ मृगीकुण्डादितीर्थानि सन्तितत्रैवकोटिशः ॥ ८ ॥ यदुक्तंशिखरंदेवि सोमलिङ्गंहितत्स्मृतम् ॥ दशकोट्यस्तुतीर्थानां सन्तितत्र वरानने ॥ ९ ॥ यत्रवैयादवाःसिद्धाः कलौयेबुद्धरूपिणः ॥ शतंसहस्रमयुतं लिङ्गंतत्रैवतिष्ठति ॥ १० ॥ गजेन्द्रस्यपदंतत्र तत्रैवरसकूपिका ॥ शतकुण्डानितत्रैव रैवतेपर्वतोत्तमे ॥ ॥ ११ ॥ अम्बिकाचस्थितातत्र प्रद्युम्नःसाम्बएवच ॥ लिङ्गाकारेपर्वतेतु तत्रतीर्थानिकोटिशः ॥ १२ ॥ मृगीकुण्डञ्चतत्रैव कालमेघस्तथैवच ॥ क्षेत्रपालस्वरूपेण महादंष्ट्रः

को जाकर विधि से यात्रा करै वहींपर मृगीकुण्डादिक करोड़ों तीर्थ हैं ॥ ७ । ८ ॥ हे देवि! जो शिखर कहागया है, वह सोमलिंग कहागया है हे वरानने! वहींपर दश करोड़ तीर्थ हैं ॥ ९ ॥ जहा कि यादव सिद्ध हुये हैं जोकि कलियुगमें बुद्धरूपीहैं और वहीं पर शत, सहस्र व अयुत (दश हजार) लिंग स्थितहैं ॥ १० ॥ और वहां गजेन्द्र का स्थान है वहींपर रसकूपिका है और उसी उत्तम रैवतपर्वत पै सौ कुण्डहैं ॥ ११ ॥ और वहींपर अम्बिका स्थितहैं व प्रद्युम्न तथा साम्बजी हैं व लिङ्ग

के आकार पर्वत पै वहां करोड़ों तीर्थ हैं ॥ १२ ॥ और वहींपर मृगीकुण्ड व काल मेघहै और क्षेत्रपाल के स्वरूपसे आपही महोदधि स्थितहै ॥ १३ ॥ वहींपर दामोदर व ब्रह्माण्डके स्वामी भवजी स्थितहैं पार्वतीजी बोलीं कि हे देवेश ! तुम्हारे मुखसे सब तीर्थ सुनेगये ॥ १४ ॥ गङ्गा व पुण्यदायिनी सरस्वती तथा यमुना महानदी व गोदावरी,गोमतीनदी और तापी व नर्मदा ॥ १५ ॥ और सरयू व पातकोंको नाशनेवाली वह स्वर्णरेखानदी और समुद्रके संयोगसे जो पवित्र नदियाहैं उन सबको मैंने सुना ॥ १६ ॥ तथा दिव्य मोक्षारण्य व जो दिव्य क्षेत्रहैं और जो मुक्तिदायिनी पुरी हैं वे तुम्हारी प्रसन्नतासे सुनीगईं ॥ १७ ॥ व ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक

स्वयंस्थितः ॥१३॥ दामोदरश्चतत्रैव भवोब्रह्माण्डनायकः ॥ पार्वत्युवाच ॥ श्रुतानिसर्वतीर्थानि देवेशवदनात्तव ॥१४॥ गङ्गासरस्वतीपुण्या यमुनाचमहानदी ॥ गोदावरीगोमतीच नदीतापीचनर्मदा ॥ १५ ॥ सरयूस्वर्णरेखाच तमसापापनाशिनी ॥ नद्यःसमुद्रसंयोगात्सर्वाःपुण्याःश्रुतामया ॥ १६ ॥ मोक्षारण्यानिदिव्यानि दिव्यक्षेत्राणियानिच ॥ नगर्योमुक्तिदायिन्यः ताःश्रुतास्त्वत्प्रसादतः ॥ १७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सूर्येन्दुवरुणस्यच ॥ देवतानामृषीणांच सन्तिस्थानान्यनेकशः ॥ परंदेवत्वयापुण्यं प्रभासंकथितंमम ॥ १८ ॥ तस्माच्चाप्यधिकंप्रोक्तं क्षेत्रंवस्त्रापथंत्वया ॥ शृण्वन्त्याचमयापूर्वं नपृष्टंचकारणंतदा ॥ इदानींचश्रुतंसर्वं स्वस्थाहंकारणंवद ॥ १९ ॥ प्रभावंप्रथमंब्रूहि क्षेत्रस्यच जलस्यच ॥ कस्मिन्देशेचतत्तीर्थं शिवःकेनात्रसंस्थितः ॥ २० ॥ स्वयम्भूभगवान्रुद्रः कथंतत्रस्थितःस्वयम् ॥ प्रभो मेमहदाश्चर्यं वर्ततेतद्वदस्वनः ॥ २१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्य प्रभावंप्रथमंश्रृणु ॥ पश्चाद्भवस्यमाहा

देवताओं के और सूर्य, चन्द्रमा व वरुण के तथा ऋषियों के अनेक स्थानहैं व हे देव ! तुमने मुझ से पवित्र व उत्तम प्रभासक्षेत्र को कहा ॥ १८ ॥ व उससे भी अधिक वस्त्रापथक्षेत्र को तुमने कहा पहले सुनतीहुई मैंने उस समय कारणको नहीं पूंछा व इस समय सब सुनागया और मैं स्वस्थहूं कारण को कहिये ॥ १९ ॥ पहले क्षेत्र व जलके प्रभावको कहिये और किस स्थानमें वह तीर्थहै व किसकारण सदाशिवजी यहां स्थितहैं ॥ २० ॥ और आपही से उपजेहुये भगवान् शिवजी वहां कैसे आपही स्थितहुये हे प्रभो ! मेरे बड़ाभारी आश्चर्य वर्तमान है उसको मुझ से कहिये ॥ २१ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरानने ! पहले तुम वस्त्रापथक्षेत्रके

प्रभावको सुनो पश्चात् तुम भवजी के माहात्म्यको सुनो ॥ २२ ॥ हे देवि ! पुरातन समय कान्यकुब्ज महाक्षेत्र में भोज ऐसा राजा प्रसिद्ध हुआ जोकि पवित्रयुग में धर्मसे प्रजाओं को पालन करता था ॥ २३ ॥ वह विशालनयन, दीर्घभुज, विद्वान् प्रशस्त वचन व प्रियवक्ता था और सब लक्षणों से पूर्ण व बहुत आश्चर्य्य को देखनेवाला था ॥ २४ ॥ किसी समय वनपालकने वनसे आकर उससे यह कहा कि हे देव ! वनमें घूमतेहुये मैंने इससमय आश्चर्यको देखा ॥ २५ ॥ कि बहुत वृक्षों से संयुत पर्वत पै विषम भूमिभाग में मैंने मृगयूथ में प्राप्त उत्तम मुखवाली स्त्रीको देखाहै ॥ २६ ॥ वह स्त्री मृगीकी नाईं देखती है और सदैव वहीं देखपड़ती है ऐसे

त्म्यं शृणुत्वंचवरानने ॥ २२ ॥ कान्यकुब्जेमहाक्षेत्रे राजाभोजेतिविश्रुतः ॥ पुरापुण्ययुगेदेवि प्रजाधर्मेणशासति ॥ २३ ॥ विशालाक्षोदीर्घबाहुर्विद्वान्वाग्मीप्रियंवदः ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णो बह्वाश्चर्यविलोककः ॥ २४ ॥ वनात्कदाचिदभ्येत्य वनपालोब्रवीदिदम् ॥ आश्चर्यंभ्रमतादेव मयादृष्टंवनेधुना ॥ २५ ॥ गिरौविषमभूभागे बहुवृक्षसमाकुले ॥ मृगयूथगतानारी मयादृष्टावरानना ॥ २६ ॥ मृगीवपुवर्तेबाला सदातत्रैवदृश्यते ॥ इतिश्रुत्वावचोराजा तुष्टस्तस्मैधनंददौ ॥ २७ ॥ अन्नंचतुर्विधंदिव्यं वाससीस्वर्णभूषणम् ॥ ततस्तुभोजराजस्स सेनाध्यक्षमुवाचह ॥ २८ ॥ इदानीमेवयास्यामि सेनाध्यक्षत्वयासह ॥ अश्वानांदशसाहस्रं वागुराणांत्वनेकधा ॥ २९ ॥ पत्तयोयान्तुसर्वत्र वेष्टयन्तुगिरिंवरम् ॥ नहन्तव्योमृगःकश्चिद्रक्षणीयाहिसामृगी ॥ ३० ॥ स्त्रीवेषधारिणीनारी मृगीभवतिभूतले ॥ अश्वाधिरूढोबलवान् भोजराजोययौस्वयम् ॥ ३१ ॥ निःशब्दपदसंचारः संज्ञासङ्केतभाषणः ॥ गिरिंसंवेष्टयामास वागुराभिःस्वयंनृपः ॥ ३२ ॥

वचन को सुनकर प्रसन्न होतेहुये राजाने उसके लिये धन दिया ॥ २७ ॥ और चार प्रकार का दिव्य अन्न तथा दो वस्त्र व सुवर्ण के भूषण को दिया तदनन्तर वे भोजराज सेनापति से बोले ॥ २८ ॥ कि हे सेनाध्यक्ष ! इसी समय मैं तुमसमेत जाऊंगा दश हज़ार घोड़े व अनेक प्रकार के जालोंको लेकर ॥ २९ ॥ पैदल चलैं व सब कहीं उत्तम पर्वतको घेरलेवैं किसी मृगको न मारना चाहिये और वह मृगी रक्षा करनेयोग्यहै ॥ ३० ॥ क्योंकि स्त्रीके वेषको धारनेवाली मृगी स्त्री पृथ्वीमेंहै बलवान् भोजराजा आपही घोड़ेपै चढ़करगया ॥ ३१ ॥ और बिन शब्दके पगको चलानेवाले व संज्ञासे सङ्केतको कहनेवाले राजाने आपही जालोंसे पर्वतको घेरलिया ॥ ३२ ॥

व वनपालसमेत उस राजाने मृगोंके गणको देखा और मृगोंके मध्यमें स्थित वह मृगी स्त्री शरीरवाली व मुखमें मृगीकी नाईं उपलक्षित थी ॥ ३३ ॥ उस क्षणमें सब मृग क्षोभित व भ्रमित होकर दशो दिशाओंको चलेगये और जो मृगमुखी नारी थी वह कितेक मृगोंसमेत ॥ ३४ ॥ कूदतीहुई चैतन्यतारहित होकर जालमें गिरपड़ी और सेनापतिसमेत राजाने सैकड़ों मृगोंसमेत मृगीको पकड़लिया ॥ ३५ ॥ और जनोंसे घिरेहुये भोजराजाने बड़ेभारी आश्चर्यको देखा तदनन्तर बड़े आनन्द शब्द-वाला कोलाहल पैदाहुआ ॥ ३६ ॥ और मृगोंसमेत मृगीको राजा कान्यकुब्जदेश में लाया और दिव्यवस्त्रों से आच्छादित तथा दिव्यभूषणों से भूषित ॥ ३७ ॥ व

वनपालेनसहितोमृगयूथंददर्शसः ॥ सामृगीमृगमध्यस्था नारीदेहामुखेमृगी ॥ ३३ ॥ क्षुब्धाभ्रान्ताःक्षणेतस्मिन्सर्वेयान्तिदिशोदश ॥ मृगवक्त्रातुयानारी मृगैःकतिपयैःसह ॥ ३४ ॥ प्लवमानानिपतिता वागुरायांविचेतना ॥ बलाध्यक्षेणविधृता मृगैःसहशतैर्नृपः ॥ ३५ ॥ ददर्शमहदाश्चर्यं भोजराजोजनैर्वृतः ॥ ततःकोलाहलोजातः परमानन्दनिस्वनः ॥ ३६ ॥ मृगैःसहसमानिन्ये कान्यकुब्जेमृगींनृपः ॥ दिव्यवस्त्रसमाछन्ना दिव्याभरणभूषिता ॥ ३७ ॥ नरैर्यानस्थितानारी प्रविवेशमृगैर्वृता ॥ वादित्रैर्ब्रह्मघोषैश्च नीयतेनृपमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ जनैर्जानपदैर्मार्गे दृश्यतेनृपमन्दिरे ॥ नीयमानानागरैश्च महदाश्चर्यभाषकैः ॥ ३९ ॥ पुण्येमुहूर्त्तेसंप्राप्ता सामृगीनृपमन्दिरे ॥ प्रतिहारेणराजेन्द्र वचसावारितोजनः ॥ ४० ॥ गतःसेनापतिःसैन्यं गृहीत्वास्वनिकेतनम् ॥ राजापिस्वगृहंप्राप्य स्नात्वासम्पूज्यदेवताः ॥ ४१ ॥ तांमृगींस्नापयामास दिव्यगन्धानुलेपनैः ॥ कुङ्कुमेनविलिप्ताङ्गींदिव्यवस्त्रावगुण्ठिताम् ॥ ४२ ॥ यथोचितंयथा

मृगोंसे घिरीहुई स्त्रीने पालकी पै बैठकर प्रवेश किया जोकि बाजनों से व वेदशब्दों से राजाके मन्दिर में लाईजाती थी ॥ ३८ ॥ व देशोंमें बसनेवाले मनुष्य उसको मार्गमें देखते थे व बड़े आश्चर्य को कहनेवाले नगरवासी उसको राजाके मन्दिर में लियेजाते थे ॥ ३९ ॥ और उत्तम मुहूर्त्त में वह मृगी राजाके मन्दिर में प्राप्त हुई व नृपेन्द्र के वचन से द्वारपालक ने मनुष्यों को मनाकिया ॥ ४० ॥ और सेनापति सेनाको लेकर अपने घरको गया और राजाने भी अपने घरको प्राप्त होकर स्नानकर व देवताओं को भलीभांति पूजकर ॥ ४१ ॥ दिव्य चन्दन व अनुलेपनों से उस मृगीको स्नान कराया व कुंकुम से लिप्तअङ्गोंवाली तथा दिव्य वस्त्रों को

पहनेहुई ॥ ४२॥ यथायोग्य व यथा स्थान दिव्य आभूषणोंसे भूषित सुन्दर नेत्रोंवाली उसमृगीसे राजाने निर्जन (एकान्त) में कहा ॥४३॥ कि तुम कौन हो व किस की कन्याहो और किसकारण मृगोंके साथ प्राप्तहुई व किस कारण तुम्हारा शरीर स्त्रियोंका हुआ व किसकारण मृगियोंकासा मुख हुआ ॥ ४४ ॥ इस सबको कहिये मुझको बड़ा कौतुकहै इसप्रकार कहीहुई भी उसने किसी प्रकार न कहा ॥ ४५॥ और सुन्दर लोचनोंवाली उस मृगीने गूंगेकी नाईं मौन धारण किया और वह भोजन नहीं करती थी और भूपाल भोजन नहीं करता था व राज्यको बहुत नहीं मानता था ॥ ४६ ॥ और कहताथा कि न स्त्रियोंसे मेरा कार्यहै न हाथियोंसे न रथोंसे

स्थानं दिव्याभरणभूषिताम् ॥ एकान्तेनिर्जनेराजा बभाषेचारुलोचनाम् ॥ ४३ ॥ कात्वंकस्यसुताकेन कारणेनमृगैः सह ॥ स्त्रीणांशरीरंतेकस्मान्मृगीणांवदनंकुतः ॥ ४४ ॥ इदंसर्वंसमाचक्ष्व परंकौतूहलंमम ॥ एवंसाप्रोच्यमानापि न बभाषेकथञ्चन ॥ ४५ ॥ मूकवन्मौनमाधात्सा नचभुङ्क्तेसुलोचना ॥ नभुङ्क्तेपृथिवीपालो नराज्यंबहुमन्यते ॥ ४६ ॥ नदारैर्विद्यतेकार्यं नाश्वैर्नचगजैरथैः ॥ तदेवराज्यंदारास्ते तेगजास्तद्धनंबहु ॥ ४७ ॥ प्रमदामुदसंयुक्ता यत्रसंक्रीडते मम ॥ आचख्यौचप्रतीहारं तयासंमोहिताशयः ॥ ४८ ॥ पुरोधसःपुराद्विप्रानाचार्याञ्छीघ्रमानय ॥ दैवज्ञानथमन्त्रज्ञान्भिषजस्तान्त्रिकांस्तथा ॥ ४९ ॥ इतिविज्ञापितोराज्ञा प्रतीहारोययौस्वयम् ॥ आजगामसवेगेन समानीयद्विजोत्तमान् ॥ ५० ॥ राज्ञेविज्ञापयामास देवविप्राःसमागताः ॥ प्रवेशयगुरून्द्वाःस्थान् संप्राप्तान्मद्धितेरतान् ॥ ५१ ॥ अभ्यु

कार्य विद्यमानहै वही राज्यहै वही स्त्रियांहैं वही हाथीहैं और वही बहुत धनहै ॥ ४७॥ जहां कि प्रसन्नतासे संयुत मेरी स्त्री क्रीड़ा करती है व उस स्त्रीसे मोहित आशयवाले राजाने द्वारपालसे कहा ॥ ४८ ॥ कि नगर से पुरोहित ब्राह्मणों को व आचार्योंको शीघ्रही लाइये व ज्योतिषियों को तथा मन्त्रके जाननेवाले व वैद्योंको तथा तन्त्रके जाननेवाले विद्वानों को लाइये ॥ ४९ ॥ राजा से इस प्रकार कहाहुआ वह द्वारपाल आपही गया व उत्तम ब्राह्मणोंको लाकर वह वेगसे आया ॥ ५० ॥ व उसने राजा से निवेदन किया कि हे देव ! ब्राह्मणलोग आयेहैं और द्वारपै स्थित व मेरे हित में लगे हुये भलीभांति प्राप्त गुरुओं को प्रवेश कराइये ॥ ५१ ॥ कार्यमें तत्पर

राजाने पहले उठकर प्रणामकर व पूजनकर आसनोंपै बैठेहुये उन ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ५२ ॥ कि यह एक आश्चर्य कैसे कहाजासक्ताहै तुमलोग आपही लोक व शास्त्रसे भी जानो ॥५३॥ कि यह मृगी कैसे उत्पन्नहुई और किस कर्मका यह फलहै व किसप्रकारसे इसका मनुष्यका वचन होगा ॥५४॥ व किस प्रकार यह आपही मनुजमुखी होगी सब सावधान ब्राह्मणों ने बड़ेयत्नसे भलीभांति चिन्तवनकर कहा ॥ ५५ ॥ कि हे देव ! कुरुक्षेत्रमें सारस्वतनामक उत्तम ब्राह्मण है उस जितेन्द्रिय व ऊर्ध्वरेता तपस्वी ने सरस्वती नदीके समीप तप किया है ॥ ५६ ॥ वह तुमसे सब कहैगा और उसने आपही मृगीको देखा है ऐसा सुनकर तदनन्तर राजा आपही सारस्वत

त्थायनृपःपूर्वं नमस्कृत्यप्रपूज्यच ॥ आसनेषूपविष्टांस्तान्बभाषेकार्यतत्परः ॥ ५२ ॥ इदमाश्चर्यमेवैकं कथंशक्यंनिवेदितुम् ॥ जानीतहिस्वयंसर्वे लोकतःशास्त्रतोपिवा ॥ ५३ ॥ कथमेषासमुत्पन्ना कस्येदंकर्मणःफलम् ॥ अस्याःकेनप्रकारेण वचनंमानुषंभवेत् ॥ ५४ ॥ स्वयंमनुष्यवदना कथमेषाभविष्यति ॥ सावधानैर्द्विजैरुक्तं सर्वैःसञ्चिन्त्ययत्नतः ॥ ५५ ॥ देवसारस्वतोनाम कुरुक्षेत्रेद्विजोत्तमः ॥ ऊर्ध्वरेताःसरस्वत्यां तपस्तेपेजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥ कथयिष्यतितेसर्वं तेनदृष्टामृगीस्वयम् ॥ इतिश्रुत्वाततोराजा ययौसारस्वतंद्विजम् ॥५७॥ सरस्वतीजलेस्नातं प्रभातेध्यानतत्परम् ॥ दृष्ट्वा प्रदक्षिणीकृत्य साष्टाङ्गंतम्प्रणम्यच ॥ ५८ ॥ उपविष्टोनृपोभूमौ प्राञ्जलिःसजितेन्द्रियः ॥ मनुष्यपदसञ्चारं श्रुत्वाज्ञात्वाचकारणम् ॥ ५९ ॥ सारस्वतोबभाषेथ तंनृपंभक्तितत्परम् ॥ भोजराजशुभंतेस्तु ज्ञातंतत्कारणंमया ॥ ६० ॥ मृगाननात्वयानारी समानीतावनात्किल ॥ महदाश्चर्यमेवैतत्तवचेतसिवर्त्तते ॥ ६१ ॥ आदिष्टातुमयाबाला सर्वंतेकथयि

ब्राह्मणके समीप गया ॥ ५७ ॥ प्रातःकाल व सरस्वतीजी के जलमें नहायेहुये तथा ध्यानमें तत्पर उस ब्राह्मण को देखकर प्रदक्षिणाकर व साष्टांग प्रणामकर ॥ ५८ ॥ हाथोंको जोड़ेहुये राजा भूमिमें बैठगया व उस जितेन्द्रिय सारस्वत ब्राह्मणने मनुष्य के चरण की चालको सुनकर व कारण को जानकर भक्तिमें तत्पर उस ब्राह्मणने कहा कि हे भोजराज ! तुम्हारा कल्याण होवै मैंने उस कारणको जानलिया ॥ ५९ । ६० ॥ कि तुम मृगमुखी स्त्रीको वनसे लायेहो तुम्हारे चित्तमें यह बड़ा भारी

आश्चर्य वर्तमान है ॥ ६१ ॥ मुझसे आज्ञा दीहुई वह स्त्री तुमसे सब वृत्तान्तको कहेगी हे महाराज ! जैसा जो चरित्र है उसको मैं जानताहूं ॥ ६२ ॥ और उससे कहाजाता हुआ आश्चर्य संसारमें होगा इस प्रकार आज्ञाको देकर तदनन्तर वेग से सूर्यके समान तेजवाले रथके द्वारा वह ब्राह्मण ॥ ६३ ॥ दोही दिन रातमें राजा के घरमें प्राप्तहुआ और जहां वह मृगनयनी थी वहां पैठकर मृगीको देखकर स्थित हुआ ॥ ६४ ॥ व उस मृगीने धर्मको जाननेवाले व सर्वज्ञ सारस्वत ब्राह्मणको जाना कि यह सब जानताहै जो जैसा कारणहै ॥ ६५ ॥ त्रिलोक में जो वर्तमान, भविष्य व भूत है उसको ये जानते हैं इन्होंने पूर्वजन्ममें मेरे मरणको जानाहै ॥ ६६ ॥

ष्यति ॥ जानाम्यहंमहाराज चरित्रंयच्चयादृशम् ॥ ६२ ॥ आश्चर्यंसम्भवेल्लोके कथ्यमानन्तयास्वयम् ॥ इत्यादिश्य ततोवेगाद्रथेनादित्यवर्चसा ॥ ६३ ॥ अहोरात्रद्वयेनैव संप्राप्तोनृपमन्दिरम् ॥ प्रविश्यचमृगीन्दृष्ट्वा यत्रास्तेमृगलोचना ॥ ६४ ॥ तयासारस्वतोज्ञातो धर्मज्ञःसर्वविद्द्विजः ॥ एषसर्वंहिजानाति कारणंयच्चयादृशम् ॥ ६५ ॥ वर्तमानम्भविष्यंच भूतंयद्भुवनत्रये ॥ अनेनमरणंज्ञातं मदीयंपूर्वजन्मनि ॥ ६६ ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे तपस्तप्तम्भवालये ॥ विधूयकलुषंसर्वं ज्ञानमुत्पाद्ययत्नतः ॥ ६७ ॥ जरामरणनिर्मुक्तः प्रत्यक्षंदृष्टवानयम् ॥ अस्यतुष्टोभवद्देवो ज्ञातंतीर्थस्यकारणम् ॥ ६८ ॥ आदिष्टयामयावाच्यं यद्भवेज्जन्मकारणम् ॥ इतिचिन्तापरायावत्तावद्विप्रःसमागतः ॥ ६९ ॥ तस्मैप्रणाममकरोन्मूर्च्छितानिपपातसा ॥ अथसारस्वतोज्ञानाज्ज्ञातवान्कारणञ्चतत् ॥ ७० ॥ आनयन्तुद्विजावेगात् कलशं तोयसम्भृतम् ॥ सर्वौषधीःपल्लवांश्च दूर्वापुष्पाणिचाक्षतान् ॥ ७१ ॥ धूपंचचन्दनंचैव गोमयंमधुसर्पिषी ॥ इत्यादिष्टैर्द्वि

व इसने वस्त्रापथ महाक्षेत्र में शिवजी के मन्दिर में तप कियाहै व सब पापको नष्ट कर व यत्नसे ज्ञानको उत्पन्नकर ॥ ६७ ॥ वृद्धता व मृत्युसे रहित इसने प्रत्यक्षही देखा है व इसके ऊपर शिवदेवजी प्रसन्न हुये हैं इससे तीर्थका कारण जानागया ॥ ६८ ॥ और जो जन्मका कारण है उसको आज्ञा दीहुई मुझको कहना चाहिये इस प्रकार जबतक चिन्ता में परायण हुई तबतक वह ब्राह्मण आगया ॥ ६९ ॥ उसके लिये उसने प्रणाम किया और मूर्छित होतीहुई वह गिरपड़ी इसके अनन्तर सारस्वतने ज्ञानसे उस कारणको जाना ॥ ७० ॥ व कहा कि शीघ्रही जलसे भरेहुये कलशको ब्राह्मण लावैं और सब ओषधि, पंचपल्लव, दूब, पुष्प व अक्षतोंको लावैं ॥ ७१ ॥

और धूप, चन्दन, गोमय, शहद व घीको लावें इस प्रकार आज्ञा दियेहुये ब्राह्मणलोग शीघ्रता से राजाकी आज्ञासे लेआये ॥ ७२ ॥ और पृथ्वी के भागको लीपकर व स्वस्तिककलशको थापकर पहले अग्निकार्य को करके उन्होंने देवताओंको घटमें थापकर ॥ ७३ ॥ व उसमें उन्होंने इन्द्रको थापकर क्रमपूर्वक दिक्पालों को थापकर चरु बनाकर अग्नि में हवनकर ग्रहपूजन कराया ॥ ७४ ॥ व जलको सुवर्ण के पात्रमें स्थितकर गुरुने आपही घटोंको थापकर तदनन्तर सब कामनाओंवाले मुहूर्तमें अभिषेक किया ॥ ७५ ॥ और उस जलसे अभिषेक कराईहुई व नहाईहुई वह पवित्रहुई और वह स्त्री चैतन्यतासमेत हुई व नेत्रसे सब देखनेलगी॥७६॥

जैर्वेगात् समानीतंनृपाज्ञया ॥ ७२ ॥ उपलिप्यचभूभागं स्वस्तिकंसन्निवेश्यच ॥ कृत्वाग्निकार्यंप्रथमं देवान्कुम्भेनिधायसः ॥ ७३ ॥ इन्द्रंतस्मिन्सविन्यस्य दिक्पालांश्चयथाक्रमम् ॥ हुत्वाग्निञ्चचरुंकृत्वा ग्रहपूजामकारयत् ॥ ७४ ॥ तोयंसुवर्णपात्रस्थं कृत्वाकुम्भान्स्वयंगुरुः ॥ अभिषेकंततश्चक्रे मुहूर्तेसर्वकामिके ॥ ७५ ॥ अभिषिक्तातुसातेन पूता स्नाताथवारिणा ॥ जातासचेतनाबाला सर्वंपश्यतिचक्षुषा ॥ ७६ ॥ शृणोतिसर्वंजानाति चरित्रंपूर्वजन्मनः ॥ बदरीफलमात्रन्तु पुरोडाशंददौगुरुः ॥ ७७ ॥ तयोपभुक्तंयत्नेन ततश्चक्रेसमार्जनम् ॥ मानुषंवचनंकर्णे ददौज्ञानंगुरुर्नृपः ॥ ७८ ॥ गुरवेदक्षिणांदत्त्वा उपविष्टोवरासने ॥ तामुवाचगुरुश्चैव वक्तव्यंवचनंत्वया ॥ ७९ ॥ भोजराजायसर्वेषां चरित्रं पूर्वजन्मनाम् ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य साप्युवाचनृपंतदा ॥ ८० ॥ नविषादस्त्वयाकार्यो राजञ्श्रुत्वामयोदितम् ॥ वक्तुं प्रचक्रमेबाला यद्वृत्तंपूर्वजन्मनि ॥ ८१ ॥ नमस्कृत्यगुरुंपूर्वं ब्राह्मणान्ऋत्विजस्तथा ॥ इतस्त्वंसप्तमेस्थाने कलिङ्गाधि

और वह पूर्वजन्म के सब चरित्र को सुनती व जानती थी गुरुने बेरके फल भर पुरोडाश को दिया ॥ ७७ ॥ व उस स्त्रीने यत्न से भोजन किया तदनन्तर उस गुरुने मार्जन किया व कानमें गुरुने मनुष्यवचन से ज्ञानको दिया और राजा ॥ ७८ ॥ गुरुके लिये दक्षिणा को देकर उत्तम आसन पै बैठगये व गुरुने उस स्त्री से कहा कि तुमको वचन कहना चाहिये ॥ ७९ ॥ और भोजराजा से सबोंके पहले जन्मोंका चरित्र कहिये उस गुरुके ऐसे वचन को सुनकर उसने भी उस समय राजासे कहा ॥ ८० ॥ कि हे राजन् ! मेरे कहेहुये वचनको सुनकर तुमको विषाद न करना चाहिये पहले गुरुको व ब्राह्मणोंको तथा ऋत्विजोंको प्रणामकर उस स्त्री

ने पूर्वजन्म में जो हुआथा उसको कहने के लिये प्रारम्भ किया कि इससे सातवें स्थान याने जन्ममें तुम कलिंगदेशके स्वामी के पुत्र हुये हो ॥ ८१ । ८२ ॥ व पिता के मरनेपर तुम्हीं बालकको अपने मन्त्रियों ने अभिषेक किया और मैं भी वङ्गदेशके राजाकी कन्याहुई ॥ ८३ ॥ व हे नृप, देव ! पितासे आपही दीहुई मैं तुमसे ब्याही गई और जिसलिये स्त्रियोंमें मैं उत्तम थी उसी कारण तुमसे पटरानी कीगई ॥ ८४ ॥ व क्रमसे तुम युवा हुये व हिंसक तथा क्रूरहुये और वेदशास्त्रमें प्रवीण न हुये तथा दया व धर्मसे रहितहुये ॥ ८५ ॥ और वह लोभी, मानी, महाक्रोधी व सत्य तथा आचार से पृथक् था व दुष्टआशयवाला वह न देवता न गुरु न ब्राह्मणों को

पतेःसुतः ॥ ८२ ॥ मृतेपितरिबालस्तु अभिषिक्तःस्वमन्त्रिभिः ॥ अहंहिवङ्गराजस्य सञ्जाताद्दुहिताकिल ॥ ८३ ॥ परिणीतात्वयादेव पित्रादत्तास्वयंनृप ॥ त्वयाहंपट्टमहिषी कृतायोषिद्वरायतः ॥ ८४ ॥ युवाजातःक्रमेणैव हिंस्रःक्रूरोबभूविथ ॥ नवेदशास्त्रकुशलो दयाधर्मविवर्जितः ॥ ८५ ॥ लुब्धोमानीमहाक्रोधी सत्याचारबहिष्कृतः ॥ नदेवंनगुरुंविप्रान् नजानातिदुराशयः ॥ ८६ ॥ विरक्ताहिप्रजास्तस्य ब्राह्मणोच्छेदकारिणः ॥ समाचक्रेनृपैस्तस्य देशःसर्वोविलुम्पितः ॥ ८७ ॥ सैन्यंसर्वंसमादाय युद्धायोपजगामह ॥ सहैवाहंगतादेवयुद्ध्यताचनृपैस्सह ॥ ८८ ॥ जितास्तुसैनिकास्तस्य गतानष्टादिशोदश ॥ ८९ ॥ त्यक्त्वाधर्मंनिजंराजा पलायनपरोभवत् ॥ गच्छमानस्तुनृपतिः शत्रुभिःपरिपीडितः ॥ ९० ॥ असत्यवादीदुष्टात्मा हतोलोकविरोधकः ॥ देहन्तस्यगृहीत्वाग्नौ प्रविष्टाहंनृपोत्तम ॥ ९१ ॥ मृतस्यैवंगतिर्नास्ति न रकान्नविमुच्यते ॥ मृतंकान्तंसमादाय भार्याग्नौप्रविशेद्यदि ॥ ९२ ॥ सातारयतिपापिष्ठं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ इहपाप

जानताथा ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणों को नाशकरनेवाले उसकी प्रजा विरक्त होगई और राजाओंने उसके सब देशको लूट लिया ॥ ८७ ॥ तब सब सेनाको लेकर वह युद्धके लिये गया व हे देव ! राजाओं के साथ युद्ध करतेहुये तुम्हारे साथही मैं गई ॥ ८८ ॥ और हारेहुये उसकी सेनावाले मनुष्य भागकर दशो दिशाओंको चलेगये ॥ ८९ ॥ और राजा अपने धर्मको छोड़कर पलायन में परायण हुआ याने भगा और जाताहुआ वह राजा शत्रुओं से पीड़ितहुआ ॥ ९० ॥ व हे नृपोत्तम ! संसार का विरोधी तथा असत्यवादी व दुष्टात्मा वह राजा मारागया और उसके शरीर को लेकर मैं अग्नि में पैठ गई ॥ ९१ ॥ क्योंकि इस प्रकार मरेहुये की गति नहीं होती है और

वह नरक से नहीं छुटता है व यदि मरेहुये पतिको लेकर स्त्री अग्नि में पैठे ॥ ९१ ॥ तो वह स्त्री प्रलयपर्यंत पापी पतिको तारतीहै और इसलोक में पातक को नाश कर पश्चात् स्वर्ग में पूजीजाती है ॥ ९३ ॥ इसी कारण हे राजन्! तुम मालवदेशमें ब्राह्मण हुये था हे नृप! वहां मैं ब्राह्मणी होकर उस की यानें तुम्हारी स्त्री प्र सहुई ॥ ९४ ॥ और वह धन, धान्यसे समृद्धहुआ तथा धान्य व धन से अधिक हुआ और पिता मरगया व माता मरगई तथा वह भाइयों से रहित हुआ ॥ ९५ ॥ और वह स्नान व सन्ध्या से विहीन था और मायावी वह मनुष्यों से याचना करताथा और मैं बड़ी भक्ति करती थी परन्तु वह मेरे ऊपर क्रोध करता था ॥ ९६ ॥

क्षयंकृत्वा पश्चात्स्वर्गेमहीयते ॥ ९३ ॥ अतस्त्वंब्राह्मणोजातो देशेमालवकेनृप ॥ तस्यैवतत्रभार्याहं संप्राप्ताब्राह्मणी नृप ॥ ९४ ॥ धनधान्यसमृद्धोभूत तथाधान्यधनाधिकः ॥ मृतःपितामृतामाता सचभ्रातृविवर्जितः ॥ ९५ ॥ स्नान सन्ध्याविहीनश्च मायावीयाचतेजनम् ॥ भक्तिंकरोमिपरमांसचकुप्यतिमाम्प्रति ॥ ९६ ॥ सन्तानंनैवतस्यास्ति धनर क्षापरोहिसः ॥ नददातिनचाश्नाति नजुहोतिनसरक्षति ॥ ९७ ॥ नतर्पणंतिलैर्विप्रो विदधात्यतिलोभतः ॥ मासेनभस्ये संप्राप्ते पक्षेकृष्णेनृपोत्तम ॥ ९८ ॥ नकरोतिगृहेश्राद्धं स्नानतर्पणवर्जितः ॥ नजानातिदिनंपित्र्यं पक्षमेवंनिरन्तर म् ॥ ९९ ॥ अन्यत्रभुङ्क्तेविप्रोसौ क्षयाहेपिसमागते ॥ मकरस्थेरवौचैव कृसरंनददातिसः ॥ १०० ॥ तिलान्सुवर्णरजतं व स्त्रंवाफलमेववा ॥ शाकपत्रंसुपात्रेच नददातितथाधनम् ॥ १ ॥ गवांगवाह्निकंनैव कथंमुक्तिर्भविष्यति ॥ नयातिविष्णु

और उसके सन्तान न थी तथा वह धनकी रक्षा में परायण हुआ न देताथा न भोजन करताथा और न हवन करताथा बरन वह धनकी रक्षा करताथा ॥ ९७ ॥ व हे नृपोत्तम! वह ब्राह्मण बड़ेलोभके कारण तिलोंसे तर्पण नहीं करता था और भाद्रपद महीना प्राप्तहोनेपर कृष्णपक्षमें ॥ ९८ ॥ स्नान व तर्पणसे रहित वह घरमें श्राद्ध नहीं करताथा ऐसेही सदैव वह पितरोंके दिन व पक्षको नहीं जानताथा ॥ ९९ ॥ और क्षयाह भी प्राप्त होनेपर यह ब्राह्मण अन्यत्र भोजन करताथा व सूर्यनारा- यणके मकरराशि में स्थित होनेपर कृसर (तिल,चावल) नहीं देताथा ॥ १०० ॥ और तिल, सुवर्ण,चांदी,वस्त्र, फल,शाकपत्र व धनको वह सुपात्रमें नहीं देताथा ॥ १ ॥

और गौवोंको गवाह्निक नहीं देताथा तो किस भांति मुक्ति होवे और दक्षिणायन प्राप्त होनेपर यह विष्णुजी के शरणमें नहीं जाताथा ॥ २ ॥ व चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें ब्राह्मणके लिये गऊको नहीं देताथा क्योंकि वस्त्रसमेत घण्टा व आभूषण से युक्त तथा बछड़ासमेत एकभी जो गऊ पात्रमें दीगईहै वह मुक्तिको देतीहै व वंशकी भी वृद्धिको करती है ॥ ३ । ४ ॥ और उस गऊके जितने रोम होतेहैं उतने वर्षोंतक वह पूजाजाता है और सूर्यनारायण के समान तेजस्वी यह पुरुष सिद्धगणों से घिरकर ब्रह्मस्थान में स्थित होताहै ॥ ५ ॥ और यह ब्राह्मण न देवालय रचता है न बावली न कूप न तड़ाग और न कुण्ड को करता है व न

शरणं संप्राप्तेदक्षिणायने ॥२॥ धेनुंददातिनोविप्रे ग्रहणेसूर्यचन्द्रयोः ॥ ३ ॥ एकापिदत्तासुपयस्विनीसा सवस्त्रघण्टाभरणोपपन्ना ॥ वत्सेनयुक्ताहिददातिपात्रे मुक्तिंकुलस्यापिकरोतिवृद्धिम् ॥ ४ ॥ यावन्तिरोमाणिभवन्तितस्यास्तावन्तिवर्षाणिमहीयतेसः ॥ ब्रह्मालयेसिद्धगणैर्वृतोसौ सन्तिष्ठतेसूर्यसमानतेजाः ॥ ५ ॥ देवालयंनोविदधातिवापीं कूपंतडागंनकरोतिकुण्डम् ॥ पुण्यंविवाहंस्वजनोपकारं नासौसतांवाद्विजमन्दिरंवा ॥ ६ ॥ धनंसदाभूमिगतंकरोति धनंनजानातिकुलंचतस्य ॥ अहंहितस्यैवगतिर्भवामि कथंचकान्तम्परिवञ्चयामि ॥ ७ ॥ एवंहिवर्त्तमानःस कालधर्ममुपेयिवान् ॥ धनलोभान्मयादेव मरणंपरिवर्जितम् ॥ ८ ॥ पश्यन्त्यागोत्रिभिःसर्वं गृहीतंधनसञ्चयम् ॥ कालेनमहतादेव मृताहंद्विजमन्दिरे ॥ ९ ॥ श्वेतसर्पःसञ्जभवद्देशेतस्मिन्नृपोत्तम ॥ तत्रैवाहंब्राह्मणस्य सञ्जातातनयानृप ॥ १० ॥ वर्षेष्टमेतुसं

पुण्य करता था न विवाह और न अपने जनोंका उपकार न सज्जनों का उपकार करताथा और न ब्राह्मण के मन्दिर को बनवाता था ॥ ६ ॥ बरन यह सदैव धन को भूमिमें प्राप्त करताथा और वंश उसके धनको नहीं जानता था व मैं उसीकी गति थी इससे किस प्रकार पतिको छलूं ॥ ७ ॥ इस प्रकार वर्तमान वह कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्तहुआ व हे देव ! धनके लोभसे मैंने मृत्यु नहीं की ॥ ८ ॥ और मेरे देखतेहुये सब धनके सञ्चयको कुटुम्बियों ने ले लिया व हे देव ! बहुत समय के बाद मैं ब्राह्मण के घर में मरगई ॥ ९ ॥ हे नृपोत्तम ! उस देश में वह सफेद सांप हुआ और हे राजन् ! वहींपर मैं ब्राह्मण की कन्या हुई ॥ १० ॥ और हे राजन् !

आठवां वर्ष प्राप्त होनेपर ब्राह्मण ने मेरा व्याह किया व उसी मेरे घर में सांप बसता था ॥ ११ ॥ मेरी स्त्रीहै इस कारण महासर्परूपी पतिने उसको काट खाया और वह मरगया व सब ब्राह्मणों ने उस साप को दण्डों से मारडाला ॥ १२ ॥ मुझको विधवापन देकर ब्राह्मण व साप दोनों मरगये और पिता, माताने बडाशोक करके मेरे शिरको मुण्डित किया ॥ १३ ॥ उस समय श्वेत वसनों को पहने व विष्णुजी की भक्तिमें परायण तथा महीनेभर के उपासमें तत्पर मैं जो अनेकों तीर्थ थे उनमें घूमने लगी ॥ १४ ॥ और सांप गोदावरी नदीका नाक हुआ और मैं शिवालयमें भीमेश्वरदेवको देखनेके लिये अपने जनोंसमेत गई ॥ १५ ॥ व हे राजन्!

प्राप्ते परिणीताद्विजन्मना ॥ तस्मिन्नेवगृहेसर्पो मदीयेचावसन्नृप ॥ ११ ॥ भार्याममेतिसंदष्टो रात्रौभर्त्रामहाहिना ॥ मृतोपिब्राह्मणैःसर्वैर्लकुटैर्विनिपातितः ॥ १२ ॥ वैधव्यंममदत्त्वातु द्विजसर्पौमृतावुभौ ॥ पित्रामात्रामहाशोकं कृत्वामे मुण्डितंशिरः ॥ १३ ॥ तदाहंश्वेतवस्त्राच विष्णुभक्तिपरायणा ॥ मासोपवासनिरता यानितीर्थान्यनेकशः ॥ १४ ॥ स पर्स्तुमकरोजातो गोदावर्याःशिवालये ॥ देवंभीमेश्वरंद्रष्टुंगताहंस्वजनैःसह ॥ १५ ॥ यावत्स्नातुंप्रविष्टाहं वृतासर्वजनैर्नृप ॥ मकरेणतदाकृष्टा भार्येयंममवल्लभा ॥ १६ ॥ गृहीतामकरेणाहंनेतुमन्तर्जलेनृप ॥ हाहाकारःसमभवज्जनाः क्षुब्धाःसमन्ततः ॥ १७ ॥ कुन्तघातेनकेनासौ मकरस्तुनिपातितः ॥ ऊर्ध्ववक्त्रास्थिताचाहं मृताकृष्टाजनैर्बहिः ॥ १८ ॥ अग्निदत्त्वाजलेक्षिप्त्वा सर्वेलोकागृहंगताः ॥ स्त्रीवधाल्लुब्धकोजात ऋषितीर्थप्रभावतः ॥ १९ ॥ मानुषींयोनिमापन्ना तस्मिन्नेवमहावने ॥ अग्नेर्जलाचसर्पाच गजात्सिंहाद्भयादपि ॥ २० ॥ रोगाद्विस्फोटकान्मृत्युर्येषांतेनरकेगताः ॥

सब जनोंसे घिरीहुई मैं जबतक स्नान करने के लिये पैठी तबतक उस समय मकर ने खींचा कि यह मेरी प्यारी स्त्री है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जलके बीचमें लेजाने के लिये नाकने मुझको पकड़ लिया तब हाहाकार हुआ और सबओर मनुष्य क्षोभित होगये ॥ १७ ॥ और किसीने भालेके घातसे नाकको मारा और ऊपर मुखकरके मैं स्थितहुई व मरगई और मनुष्योंने बाहर खींचा ॥ १८ ॥ व अग्निको देकर और जल में फेंककर सब मनुष्य घरको गये और स्त्रीको वध करने के कारण वह बहेलिया

हुआ व ऋषितीर्थ के प्रभावसे ॥ १९ ॥ उसी महावन में मैं मनुष्यकी योनिमें प्राप्त हुई अग्नि, जल, सांप, हाथी, सिंह व घोड़ेसे भी ॥ २० ॥ और क्रोध व विस्फोटक (चेचक) से भी जिनकी मृत्यु होतीहै वे नरक में प्राप्त होतेहैं और आत्मघाती, बालघाती, स्त्रीको मारनेवाले, ब्रह्मघाती व झूंठी गवाही देनेवाले ॥ २१ ॥ और कन्याको बेंचनेवाला व जो मिथ्याव्रत धारनेवालाहै और जो यज्ञको बेंचताहै व जो ब्राह्मण मदिरा पीताहै ॥ २२ ॥ और राजासे वैर करनेवाला, सोनाको चुरानेवाला तथा ब्राह्मण की जीविका को हरनेवाला और गोघाती व धरोहर हरनेवाला और जो गांवकी हद्दको हरनेवाला है ॥ २३ ॥ व जो स्त्री पतिको छलती है वे सब

आत्महाभ्रूणहास्त्रीहा ब्रह्मघ्नःकूटसाक्षिणः ॥ २१ ॥ कन्याविक्रयकर्त्ताच मिथ्याव्रतधरस्तुयः ॥ विक्रीणातिक्रतुंयस्तु मद्यंपातिद्विजस्तुयः ॥ २२ ॥ राजद्रोहीस्वर्णचौरो ब्रह्मवृत्तिविलोपकः ॥ गोघ्नस्तुनिक्षेपहरो ग्रामसीमाहरस्तुयः ॥ २३ ॥ सर्वेतेनरकंयान्ति याचस्त्रीपतिवञ्चका ॥ अहंमृत्युप्रभावेण जाताक्रौञ्चीवनेनृप ॥ २४ ॥ गोदावरीवनेव्याधो भ्रमतेमृगमार्गकः ॥वनेसक्रौञ्चःकामात्तु मयाक्रीडितुमुद्यतः ॥ २५ ॥ दृष्टाहंभ्रमतातेन व्याधेनाकृष्यकार्मुकम् ॥ हतः क्रौञ्चोमृतोराजन् नष्टास्थानादहन्ततः ॥२६॥ गोदावरीवनेतस्मिन्व्याधरूपंददर्शतम् ॥ ऋषिर्व्याधंशशापाथ दृष्ट्वा कर्मविगर्हितम् ॥ २७॥ कामधर्मंप्रकुर्वाणं प्रियसम्भाषतत्परम् ॥ क्रौञ्चंत्वमवधीर्यस्मात्तस्मात्सिंहोभविष्यसि ॥ २८ ॥ ऋषिस्तेनविनीतेन स्थित्वासन्तोषितोनृप ॥ ऋषिर्वदतितस्याग्रे नमेमिथ्यावचोभवेत् ॥ २९॥ सिंहस्थस्यप्रसादन्ते करिष्येमुक्तिहेतवे ॥ सुराष्ट्रदेशेभविता सिंहोरैवतकेगिरौ ॥ ३० ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे मुक्तिस्तेभविताध्रुवम् ॥

नरकको जाते हैं हे राजन् ! मृत्युके प्रभावसे मैं वनमें क्रौंची हुई ॥ २४ ॥ और मृगको ढूंढ़नेवाला बहेलिया गोदावरी के वनमें घूमताथा और वनमें वह क्रौञ्चपक्षी कामदेवके कारण मेरे साथ क्रीड़ा करने के लिये उद्यत हुआ ॥ २५ ॥ हे राजन् उस व्याधने मुझको देखा और धनुषको खींचकर क्रौंचको मारा वह मरगया तदनन्तर मैं स्थानसे भगगई ॥ २६ ॥ व उस गोदावरीके वनमें ऋषिने उस व्याधरूपी पुरुषको देखा इसके अनन्तर निन्दितकर्मको देखकर बहेलियाको शापदिया ॥ २७ ॥ कि प्रियसम्भाषण में लगे व कामधर्म को करतेहुये क्रौंचको तुमने जिसलिये माराहै उसी कारण सिंह होओगे ॥ २८ ॥ हे राजन् ! उस विनीतने स्थित होकर ऋषि

को प्रसन्न कराया और ऋषि उसके आगे कहते थे कि मेरा वचन झूंठ न होगा ॥ २९ ॥ और सिंहयोनि में स्थित तुम्हारे ऊपर मैं मुक्तिके लिये प्रसन्नता करूंगा सुराष्ट्रदेश में रैवतक पर्वत पै आप सिंह होंगे ॥ ३० ॥ और वस्त्रापथ महाक्षेत्र में तुम्हारी निश्चयकर मुक्तिहोगी ऐसा कहकर वे ऋषिजी भीमेश्वरदेवके समीपगये ॥ ३१ ॥ दुर्वचन के सुनने से व्याध क्रम से मृत्युको प्राप्तहुआ व क्रौंचके वियोगसे क्रौंची कहीं वनके मध्यमें गई ॥ ३२ ॥ और मरकर भाग्यके वशसे वह रैवतपर्वत पै मृगी हुई व मृगगण में प्राप्त तथा मदसे विकल वह नित्यही प्रसन्न रहती थी॥ ३३॥ व इस पहाड़के महावनमें व्याध सिंह हुआ मृगसमूह में कामसे विकल मृगीको

इत्युक्त्वासऋषिर्देवं गतोभीमेश्वरम्प्रति ॥ ३१ ॥ दुर्वचःश्रवणाद्व्याधः क्रमात्पञ्चत्वमाययौ ॥ क्रौञ्चीक्रौञ्चवियोगेन गताकुत्रवनान्तरे ॥ ३२ ॥ मृतादैववशाज्जाता मृगीरैवतकेगिरौ ॥ मृगयूथगतानित्यं मोदतेमदविह्वला ॥ ३३ ॥ व्याधःसिंहःसमभवद्गिरेस्तस्यमहावने ॥ कामार्तांभ्रमतीन्दृष्ट्वा मृगसङ्घेचयत्नतः ॥३४॥ यत्रसम्भजतेतत्र सिंहोपिप्रस्थितोवने ॥ सिंहोपिदैवयोगेन ममैवमितिमन्यते ॥ ३५ ॥ परंहिंस्रप्रभावेण मृगींहन्तुंप्रचक्रमे ॥ चलत्वंमृगजातीनां विहितंवेधसास्वयम् ॥ ३६ ॥ पुनर्गतामृगीयूथं क्रीडतेचारुलोचना ॥ भवस्यपश्चिमेभागे तत्ररैवतकेगिरौ ॥ ३७ ॥ अनुयातःशनैस्सोथ मृगेन्द्रोमृगयूथपः ॥ उत्पपाततततःसिंहो मृगसङ्घस्यमूर्द्धनि ॥ ३८ ॥ सिंहस्यनमृगैःकार्यं हरिणींप्रतिपश्यतः ॥ यत्रसाहरिणीयाति ययौसिंहश्चतत्रताम् ॥ ३९ ॥ यदावेगंमृगीचक्रे सिंहःक्रुद्धस्तदावने ॥ सिंहोपिवेगवाञ्जा

घूमतीहुई यत्नसे देखकर ॥ ३४ ॥ जहां वह जातीथी वहां वनमें सिंह भी जाताथा व सिंह दैवयोगसे यह मानताथा कि यह मेरीहै ॥ ३५॥ परन्तु हिंसकके प्रभावसे मृगी को मारनेके लिये प्रारम्भ किया ब्रह्माने आपही मृग जातिवालोंको चलत्व कियाहै ॥ ३६ ॥ इस कारण भवके पश्चिमभाग में वहां रैवतक पर्वत पै सुन्दर लोचनोंवाली मृगी फिर यूथमें प्राप्तहोकर क्रीड़ा करनेलगी ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर मृगयूथका स्वामी वह मृगेन्द्र धीरे २ उसके पीछे गया तदनन्तर सिंह मृगसमूहके मस्तकपै कूद पड़ा ॥ ३८ ॥ और मृगीको देखते हुये सिंहका मृगोंसे कुछ कार्य न था जहां हरिणी जाती थी वहां उसके पीछे वह सिंह भी जाता था ॥ ३९ ॥ जब मृगी ने वेग

किया तब सिंह क्रोधित हुआ और सिंह भी वेगवान् हुआ व मृगी अधिकवेगवती हुई ॥ ४० ॥ जब सिंहने मृगीको घेर लिया तब सिंहके डर से वह मृगी भवजी के आगे नदी के जल में गिरपडी ॥ ४१ ॥ और उसका शिर आकाशमें लम्बित था याने किसी आधार में ऊपर लटक गया व शरीर जल के मध्यमें प्राप्त था और सिंह साथही गिरपड़ा व जल के मध्य में मरगया ॥ ४२ ॥ व मेरा वह शरीर वहां स्वर्णरेखा नदी के जल में टूटगया और मुख नहीं गिरा बरन त्वचा व मांस शिर में स्थित रहा ॥ ४३ ॥ यह सब जो चरित्र हुआ है उसको सारस्वतने देखा है व उस तीर्थ के प्रभाव से नृपता हुई है ॥ ४४ ॥ सब पापों को क्षय करनेवाला यह

तो मृगीवेगाधिकाभवत् ॥ ४० ॥ यदासिंहेनसंक्रान्ता मृगीसिंहभयात्ततः ॥ भवस्याग्रेनदीतोये पतिताजलमूर्द्धनि ॥ ४१ ॥ प्रलम्बतेशिरोव्योम शरीरंजलमध्यगम् ॥ सिंहःसहैवपतितो मृतःपयसिमध्यतः ॥ ४२ ॥ स्वर्णरेखाजलेतत्र विशीर्णममतद्वपुः ॥ नतुवक्त्रंनिपतितं त्वङ्मांसंशिरसिस्थितम् ॥ ४३ ॥ एतच्चरित्रंयत्सर्वं दृष्टंसारस्वतेनवै ॥ तस्यतीर्थप्रभावेण नृपत्वंसमजायत ॥ ४४ ॥ इदंहिसप्तमंजन्म सर्वपापक्षयावहम् ॥ कान्यकुब्जेमहादेशे राजाभोजेतिविश्रुतः ॥ ४५ ॥ अहंहिहरिणीगर्भे जातामानुषरूपिणी ॥ जातंवक्त्रंमृगीणांमे यस्मान्नपतितंजले ॥ १४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेस्वर्णरेखामाहात्म्यंनामैकविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२१ ॥ * ॥ * ॥

राजोवाच ॥ कथंत्वंहरिणीगर्भे जातामानुषरूपिणी ॥ केनसंवर्द्धिताबाल्ये कथंतेरूपमीदृशम् ॥ १ ॥ मृग्युवाच ॥ शृणुदेवप्रवक्ष्यामि यद्वृत्तंकन्यकेवने ॥ ऋषिरुद्दालकोनाम गङ्गातीरेमहातपाः ॥ २ ॥ प्रभातेमूत्रमुत्स्रष्टुं गतोदेवव

सातवां जन्म है जिसमें कान्यकुब्ज महादेशमें तुम राजा भोज ऐसे प्रसिद्धहो ॥ ४५ ॥ और मैं मृगी के गर्भमें मनुजरूपिणी हुई और जिसलिये शिर जलमें नहीं गिरा उसीकारण मेरा मुख मृगियोंका सा हुआ ॥ १४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांस्वर्णरेखामाहात्म्यंनामैकविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२१ ॥

दो॰ । स्वर्णरेख परभाव सों भइ मृगानना नारि। कह्यो त्रिशत बाईसमें सोइ चरित सुखकारि ॥ राजा बोले कि हरिणी के गर्भ में तुम मनुजरूपिणी क्यों हुई और बचपनमें किसने तुमको बढ़ाया व किसप्रकार तुम्हारा ऐसा रूप हुआ ॥ १ ॥ मृगी बोली कि हे देव ! जो चरित कन्यकवनमें हुआहै उसको मैं कहती हूं सुनिये

कि गङ्गाजीके किनारे बड़े तपस्वी उद्दालकनामक ऋषिहुये हैं ॥ २ ॥ हे देव ! वे प्रातःकाल वन के मध्यमें मूत्रोत्सर्ग याने पेशाब करने के लिये गये और मूत्रके अन्त में उस ब्राह्मणका वीर्य पृथ्वी में गिरपड़ा ॥ ३ ॥ और जबतक शौच करके बड़े यत्नसे ब्राह्मण चला तबतक मृगी वीर्यको देखकर वनके बीचसे आगई ॥ ४ ॥ व चञ्चलतासे उसने वीर्यको खा लिया व आपही ब्रह्मर्षिने देखा व कहा कि जिसलिये मेरे वीर्यको तू खाती है उसीकारण गर्भ होगा ॥ ५ ॥ व मेरे समान रूपवती तथा तुम्हारे समान मुखवाली स्त्री गर्भमेंहोगी उसतुम्हारी कन्याको देवियां दिव्य रसोंसे बढ़ावैंगी ॥ ६ ॥ व किसी भी दैवयोगसे उसको ज्ञान होगा हे देव ! इसप्रकार उद्दा-

नान्तरे ॥ मूत्रान्तेपतितंभूमौ वीर्यंतस्यद्विजन्मनः ॥ ३ ॥ यावत्सचलितोविप्रः शौचंकृत्वाप्रयत्नतः ॥ तावन्मृगीसमा याता दृष्ट्वावीर्यंवनान्तरात् ॥ ४ ॥ चापल्याद्भक्षितंवीर्यं दृष्टंब्रह्मर्षिणास्वयम् ॥ यस्माद्दश्नासिमेवीर्यं तस्माद्गर्भोभवि ष्यति ॥ ५ ॥ ममरूपाचत्वद्वक्त्रा नारीगर्भेभविष्यति ॥ वर्द्धयिष्यन्तिदेव्यस्तां रसैर्दिव्यैःसुतांतव ॥ ६ ॥ केनापिदैव योगेन ज्ञानंतस्याभविष्यति ॥ एवमुद्दालकाद्देव सञ्जाताहंमृगानना ॥ ७ ॥ प्रविश्याग्नौमृतापूर्वं त्वयासार्द्धंनराधिप ॥ तस्माज्जातंसतीत्वंमे सप्तजन्मनिवैप्रभो ॥ ८ ॥ यत्त्वयाकुर्वताराज्यं पापंवैसमुपार्जितम् ॥ क्षत्रधर्मंपरित्यज्य पला यनपरोमृतः ॥ ९ ॥ तदेनोहिमयादग्धं चिताग्नौनृपसत्तम ॥ पतिंगृहीत्वायानारी मृतमग्नौविशेद्यदि ॥ १० ॥ सा तारयतिभर्त्तारमात्मानंचकुलद्वयम् ॥ गोगृहेदेशभङ्गेच संग्रामेसम्मुखेनृपः ॥ ११ ॥ ससूर्यमण्डलंभित्त्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १२ ॥ अभोजनंयोविदधातिमर्त्यो दिनेदिनेयज्ञसहस्रपुण्यम् ॥ सयातियानेनगणान्वितेन विधूयपापानि

लकसे मैं मृगमुखी पैदाहुई हूं ॥ ७ ॥ हे नराधिप,प्रभो ! जिसलिये अग्निमें पैठकर मैं तुम्हारे साथ मरगई उसीकारण सात जन्मों में मेरे पतिव्रतत्व हुआहै ॥ ८ ॥ व राज्य करतेहुये तुमने जो पाप इकट्ठा किया व क्षत्रियके धर्मको छोड़कर भागने में तत्परहोकर मरेहो ॥ ९ ॥ हे नृपोत्तम ! उस पापको मैंने चिताकी अग्निमें जलादिया क्योंकि यदि मरेहुये पतिको लेकर जो स्त्री अग्निमें पैठजावै ॥ १० ॥ वह पतिको व अपनाको तारतीहै व दोनों कुलोंको तारतीहै और गऊके घरमें व देशभंग होने पर युद्धमें जो राजा सामने मरताहै ॥ ११ ॥ वह सूर्यमण्डलको फोड़कर ब्रह्मलोकमें पूजाजाता है ॥ १२ ॥ और जो मनुष्य अनशन व्रत करताहै उसको प्रतिदिन हजार यज्ञोंका

पुण्य होताहै और वह पापोंको नाशकर गणोंसे संयुक्त विमानके द्वारा जाताहै और वह देवताओंसे पूजा जाताहै ॥ १३ ॥ जो गङ्गाजलमें प्रयागमें केदारक्षेत्रमें व पुष्कर में और वस्त्रापथ तथा प्रभासमें मरेहैं वे स्वर्गगामी होते हैं ॥ १४ ॥ और द्वारका व कुरुक्षेत्रमें जो योगाभ्यास से मरे हैं व हरि ऐसे अक्षरोंको जो जपते हैं वे स्वर्गगामी होते हैं ॥ १५ ॥ और जो विष्णुजी को पूजकर कुशों व तिलोंसमेत पृथ्वी पै जो मरेहैं और तिलोंको व लोहको देकर व दूधवाली गऊको देकर ॥ १६ ॥ हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य मरेहैं वे स्वर्गगामी होतेहैं और जो व्रत व उपासमें परायण हैं तथा जो सत्य व आचार में लगेहुए हैं ॥ १७ ॥ व जो अहिंसामें तत्पर हैं व

सुरैःसपूजनम् ॥ १३॥ गङ्गाजलेप्रयागेवा केदारेपुष्करेचये ॥ वस्त्रापथेप्रभासेच मृतास्तेस्वर्गगामिनः ॥ १४॥ द्वारावत्यां कुरुक्षेत्रे योगाभ्यासेनयेमृताः ॥ हरिरित्यक्षरंमत्वा जपन्तिस्वर्गगामिनः ॥ १५ ॥ पूजयित्वाहरिंयेतु भूमौदर्भतिलैः सह ॥ तिलानपिचलोहञ्च दत्त्वाधेनुंपयस्विनीम् ॥ १६ ॥येमृताराजशार्दूल तेनरःस्वर्गगामिनः ॥ व्रतोपवासनिरताः सत्याचारपरायणाः ॥ १७ ॥ अहिंसानिरताःशान्तास्तेनराःस्वर्गगामिनः ॥ सापवादीरणंत्यक्त्वा मृतोयस्मान्नराधिपः ॥ १८ ॥ सप्तयोनिषुतेजन्म तस्माज्जातम्मयासह ॥ त्वांविनामेपतिर्माभून्मरणेयाचितम्मया ॥ १९ ॥ तदान्तरिक्षेराजेन्द्रवागुवाचाशरीरिणी ॥ आदौपापफलम्भुक्त्वा पश्चात्स्वर्गंगमिष्यसि ॥ २० ॥ यदिवस्त्रापथेगत्वा शिरःकश्चिद्विमुञ्चति ॥ स्वर्णरेखाजलेराजन् मानुषंस्यान्मुखंमम ॥ २१ ॥ अहंमानुषवक्त्राच पापच्छायावृतंमुखम् ॥ दृश्यतेमृगवक्त्राभं तस्माच्छीघ्रंविमुञ्चय ॥ २२ ॥ इतिश्रुत्वावचोराजो सारस्वतमुदैक्षत ॥ ज्ञानीविहस्यसानन्दं सर्वंसत्यंमृगी

शान्तहैं वे मनुष्य स्वर्गगामी होतेहैं हे नराधिप ! युद्धको छोड़कर जिस लिये तुम कलङ्कसमेत मरेथे ॥ १८ ॥ उसी कारण सात योनियों में मेरे साथ तुम्हारा जन्म हुआ जब मैंने मरणमें यह मांगा कि तुम्हारे सिवा मेरा पति न होवै ॥ १९ ॥ तब हे नृपेन्द्र ! आकाशमें अशरीरवाली वाणी बोली कि पहले पापके फलको भोग कर पश्चात् स्वर्गको जावोगी ॥ २० ॥ यदि वस्त्रापथतीर्थ में जाकर कोई स्वर्णरेखा नदी के जलमें शिरको छोड़ देवै तो हे राजन् ! मेरा मनुष्य का मुख होजावै ॥ २१ ॥ और मैं मनुजमुखी होऊं जिस लिये पापकी छाया से घिराहुआ मुख मृगमुखके समान देख पड़ताहै इसकारण उसको शीघ्रही छोड़ दीजिये ॥ २२ ॥ ऐसे

वचनको सुनकर राजाने सारस्वतको देखा व उस ज्ञानी सारस्वतने बिहँसकर कहा कि मृगीका वचन सब सत्यहै ॥२३॥ व उस द्विजेन्द्रने यह कहा कि हे नृपोत्तम ! ऐसाही कीजिये व इसप्रकार राजासे आज्ञा दियाहुआ द्वारपाल बनको गया ॥ २४॥ व शीघ्रतासंयुत वह वस्त्रापथ महाक्षेत्रमें भवजीको देखनेकेलियेगया और स्वर्णरेखा नदीके जलके ऊपर बड़े बासके समूहमें ॥ २५ ॥ उसका शिर जिस महावन में बांसमें लटकाथा उसको सारस्वतके प्रवीण शिष्यने बतला दिया ॥ २६ ॥ वस्त्रापथ तीर्थ को जाकर भवजीके आगे जहां महानदी थी वहां जलमें शिरको देखने के लिये व उसको जलमें छोड़ने के लिये ॥ २७ ॥ द्वारपाल तीर्थ में नहाकर व

वचः ॥ २३ ॥ इत्युवाचद्विजेन्द्रस्य एवंकुरुनृपोत्तम ॥ एवंराज्ञासमादिष्टः प्रतीहारोययौवनम् ॥ २४ ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे भवन्द्रष्टुंत्वरान्वितः ॥ त्वक्सारजालेमहति स्वर्णरेखाजलोपरि ॥ २५ ॥ वर्त्ततेतच्छिरोयत्र वंशप्रोतंमहावने ॥ सारस्वतस्यशिष्येण कुशलेननिवेदितम् ॥ २६ ॥ तीर्थंवस्त्रापथंगत्वा भवस्याग्रेमहानदी ॥ जलेतत्रशिरोद्रष्टुं तच्चतोये विमोक्षितुम् ॥ २७ ॥ स्नात्वासम्पूज्यतीर्थेच प्रतीहारःसमभ्यगात् ॥ शिष्येणसहितोवेगाद्रथेनादित्यवर्चसा ॥ २८ ॥ यदागतःप्रतीहारस्तदासारस्वतेन च ॥ कृतञ्चान्द्रायणव्रतं मासमेकंनिरन्तरम् ॥ २९ ॥ सम्पूर्णेतुव्रतेतस्या दिव्यंवक्त्रं सुलोचनम् ॥ सुशोभनंदीर्घकेशं दीर्घकर्णंशुभद्विजम् ॥ ३० ॥ कम्बुग्रीवंपद्मगन्धं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ व्रतान्तेमूर्च्छिताबाला गतज्ञानाबभूवसा ॥ ३१ ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनचकिन्नरी ॥ यादृशीसातदाजाता तीर्थभावेनसुन्दरी ॥ ३२ ॥ परिणीतातुसातेन भोजराजेनसुन्दरी ॥ मृगाननेतिविख्याता देवीसाभुवनेश्वरी ॥ ३३ ॥ नजानातिपुनः

पूजकर सूर्य के समान तेजवाले रथके द्वारा शिष्यसमेत शीघ्रता से गया ॥ २८ ॥ और जब द्वारपाल चला गया तब सारस्वत ने महीनेभर निरन्तर चान्द्रायणव्रत किया ॥ २९ ॥ और व्रत सम्पूर्ण होनेपर उसका सुन्दर लोचनोंवाला मुख दिव्य होगया जो कि सुशोभन व लम्बे केशवाला तथा लम्बेकानोंवाला व उत्तम दातोंवाला ॥ ३० ॥ और शङ्ख के समान ग्रीवा तथा कमल के समान गन्धवान् व सब लक्षणोंसे संयुत था और व्रतके अन्तमें वह स्त्री मूर्च्छितहुई और ज्ञान जाता रहा ॥ ३१ ॥ व तीर्थ के प्रभावसे उस समय जैसी वह होगई वैसी न देवी, न गन्धर्विणी न दैत्यपत्नी न किन्नरी है ॥ ३२ ॥ और उस सुन्दरी स्त्री को उन भोजराजने ब्याह

। और वह भुवनेश्वरी देवी मृगानना ऐसी प्रसिद्ध हुई ॥ ३३ ॥ फिर जो कुछ राजमन्दिरमें किया गया उसको वह नहीं जानती थी और बुद्धिमान् भोजराजा ने
हो पटरानी किया ॥ ३४ ॥ महादेवजी बोले कि वह देशोंके मध्यमें श्रेष्ठ देश है व पर्वतोंमें उत्तम पर्वत है और क्षेत्रोंके मध्यमें उत्तम क्षेत्रहै व वनों के मध्यमें
म वनहै ॥ ३५ ॥ गङ्गा, सरस्वती व तापी नदी स्वर्णरेखाके जलमें स्थित है और ब्रह्मा, विष्णु व सूर्य तथा रुद्रादिक सब देवता स्थितहैं ॥ ३६ ॥ और नाग, यक्ष
न्धर्व इस क्षेत्र में स्थित हैं व चराचरसमेत ब्रह्माण्ड व त्रिलोक जिनसे रचा गया है ॥ ३७ ॥ व जिनसे ब्रह्मादिक देवता उत्पन्न हुये हैं वे भवजी यहां स्थित हैं

किञ्चिद्यत्कृतंराजमन्दिरे॥ कृतासौपट्टमहिषी भोजराजेनधीमता ॥ ३४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ देशानांप्रवरोदेशो गिरीणां
प्रवरोगिरिः ॥ क्षेत्राणामुत्तमंक्षेत्रं वनानामुत्तमंवनम् ॥ ३५ ॥ गङ्गासरस्वतीतापी स्वर्णरेखाजलेस्थिता ॥ब्रह्माविष्णुश्च
सूर्यश्च सर्वेरुद्रादयःसुराः ॥ ३६ ॥ नागयक्षाश्चगन्धर्वा अस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थिताः ॥ ब्रह्माण्डंनिर्मितंयेन त्रैलोक्यंसच
राचरम् ॥ ३७॥ देवाब्रह्मादयोजाताःसभवोत्रव्यवस्थितः ॥ शिवोभवेतिविख्यातः स्वयंदेवस्त्रिलोचनः ॥ ३८॥ अवति
स्कन्दवचनाद् भवानीचात्रसंस्थिता ॥ अतोपिचाधिकंप्रोक्तं तत्तीर्थंयन्मयातव ॥ ३९ ॥ तस्मिन्यदिस्नानपरोनरस्तु
सन्ध्यांविधायानुकरोतितर्पणम् ॥ श्राद्धंपितॄणाञ्चददातिदक्षिणां भवोद्भवंपश्यतिमुच्यतेपुमान् ॥ ४०॥ अथयदिभ
वपूजांदिव्यपुष्पैःकरोतितदनुशिवशिवेतिस्तोत्रपाठंचगीतम् ॥ सुरनरगणवृन्दैःस्तूयमानोविमानैर्नखशिखशिवरूपो

ौर आपही त्रिलोचन शिव देवजी भव ऐसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३८ ॥ व स्वामिकार्त्तिकेयजी के वचन से यहां टिकीहुई भवानी रक्षा करती हैं इसी कारण वह अधिक तीर्थ
कि जिसको मैंने तुमसे कहा है ॥ ३९ ॥ और उस तीर्थमें स्नानकरनेवाला पुरुष यदि सन्ध्या करके पश्चात् तर्पण करताहै व जो दक्षिणासमेत श्राद्ध को पितरों को
ता है व संसार को उत्पन्नकरनेवाले शिवजीको देखता है वह पुरुष मुक्त होजाताहै ॥ ४० ॥ और यदि मनुष्य दिव्य पुष्पोंसे शिवजीका पूजन करता है उसके पश्चात्

हे शिव, हे शिव ! ऐसे स्तोत्रपाठके गीतको जो गान करता है नखसे शिखापर्यन्त शिवरूप वह उत्तम सुरगणों से स्तुति किया जाता हुआ मनुष्य विमानों के द्वारा वैकुण्ठ को जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्यंनामद्वाविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३२२॥

दो॰ । यथा दक्षके यज्ञ महँ सती कीन तनु त्याग । कह्यो त्रिशत तेईसमें सोइ चरित सुखपाग ॥ भोज बोले कि हे सारस्वत, प्रभो ! वस्त्रापथक्षेत्र व रैवतक पर्वत के उत्तम माहात्म्यको मैंने सुना ॥ १ ॥ व विशेषकर स्वर्णरेखाके जलका माहात्म्य व भवजी के माहात्म्यको मैंने सुना इस समय तीर्थकी उत्पत्तिको सुना चाहता हूं

मानवोयातिनाकम् ॥ ४१ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे वस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्यं नामद्वाविंशाधिक त्रिशत तमोऽध्यायः ॥ ३२२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भोज उवाच ॥ प्रभोसारस्वतमया श्रुतंमाहात्म्यमुत्तमम् वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्य गिरेरैवतकस्यच ॥ १ ॥ भवस्यचविशेषेण स्वर्णरेखाजलस्यच ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामि तीर्थोत्पत्तिंवदस्वमे ॥ २ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां मध्येकोयंव्यवस्थितः ॥ कथंनदीस्वर्णरेखा सर्वपातकनाशिनी ॥ ३ ॥ कस्माद्ब्रह्मादयोदेवा अस्मिन्क्षेत्रेसमागताः ॥ कथंनारायणो देवः स्वयमेवसमागतः ॥ ४॥ हिमालयंपरित्यज्य भवानीगिरिमूर्द्धनि ॥ संस्थितास्कन्दमादाय देवैरिन्द्रादिभिःसह ॥ ५ ॥ सारस्वत उवाच ॥ शृणुसर्वंमहाराज कथयिष्येसुविस्तरम् ॥ येनवैकथ्यमानेन सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ६ ॥ पुराब्रह्मदिनस्यान्ते जगदेतच्चराचरम् ॥ संहृत्यभगवान्रुद्रो ब्रह्मविष्णुपुरस्कृतः ॥ ७ ॥ तावतींसकलांरात्रिमेकमूर्तिभवास्र

उसको मुझ से कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों के मध्य में यह कौन स्थित है व समस्त पातकों को नाशकरनेवाली यह स्वर्णरेखा नदी कौन है ॥ ३ ॥ व ब्रह्मादिक देवता किसकारण इस क्षेत्रमें आये हैं व आपही सनातन नारायणदेव किसप्रकार आये हैं ॥ ४ ॥ व हिमाचलको छोड़कर पार्वतीजी स्वामिकार्त्तिकेय को लेकर इन्द्रादिक देवताओंसमेत किसप्रकार पर्वत के ऊपर स्थितहुई ॥ ५ ॥ सारस्वत बोले कि हे महाराज ! सुनिये सब चरित्रको विस्तारसमेत कहता हूं कि जिसके कहनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ६ ॥ पुरातन समय ब्रह्माके दिनके अन्तमें इस चराचर संसारको ब्रह्मा व विष्णुसे पुरस्कृत भगवान् शिवजी संहारकर ॥ ७ ॥

उतनी ही सब रात्रि तक एकमूर्ति से उपजेहुये तीनों स्थित रहते हैं और रात्रिके अन्तमें वे फिर अलग होते हैं ॥ ८ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व शिव देवता रज, सत्त्व व तमोगुणी हैं भगवान् ब्रह्माजी सृष्टिको करते हैं व विष्णुजी पालन करते हैं ॥ ९ ॥ और शिवजी कालके प्रमाणमें सब संसार को संहार करते हैं उन ब्रह्माजी ने पहले दक्षनामक प्रजापति को रचाहै ॥ १० ॥ व चराचरसमेत सब संसारको संक्षेपसे रचकर तीनों देवता भिन्न होकर सत्यलोक में स्थित हुये ॥ ११ ॥ और कौतुकमें संयुत चित्तवाले देवताओं से घिरेहुये वे तीनों देवता पृथ्वीको आकर उत्तम कैलासपर्वत पै चढ़गये ॥ १२ ॥ और मैं बड़ा हूं मैं बड़ा हूं यह ब्रह्मा व शिवजी का विवाद

यः ॥ तिष्ठन्तिरात्रिपर्यन्ते पुनर्भिन्नाभवन्तिते ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादेवा रजःसत्त्वतमोमयाः ॥ सृष्टिंकरोतिभगवान् ब्रह्मापालयतेहरिः ॥ ९ ॥ सर्वंसंहरतेरुद्रो जगत्कालप्रमाणतः ॥ तेनादौभगवान्सृष्टो दक्षोनामप्रजापतिः ॥ १० ॥ स र्वंसंक्षेपतःकृत्वा ब्रह्माण्डंसचराचरम् ॥ भिन्नादेवास्त्रयोजाताः सत्यलोकेऽव्यवस्थिताः ॥ ११ ॥ त्रयोभुवंसमासाद्यकौ तुकाविष्टचेतसः ॥ कैलासंतेगिरिवरं समारूढाःसुरैर्वृताः १२ ॥ अहंज्येष्ठस्त्वहंज्येष्ठोवादोभूद्ब्रह्मरुद्रयोः ॥ तदाक्रुद्धोम हादेवो ब्रह्माणंहन्तुमुद्यतः ॥ १३ ॥ विष्णुनावारितोब्रह्मा नतेवादस्तुयुज्यते ॥ नत्वंनाहंयदानेदं ब्रह्माण्डंसचराचरम् ॥ १४ ॥ एकएवतदादेवो जलेशेतेमहेश्वरः ॥ जागर्तिचयदादेवः स्वेच्छयाकौतुकात्ततः ॥ १५ ॥ अनेनत्वंकृतःपूर्वमहं पश्चात्त्वयाकृतः ॥ ब्रह्माण्डंकूर्मरूपेण धृतमस्यप्रसादतः ॥ १६ ॥ अनुप्रविश्यब्रह्माण्डं प्रसादाच्छंकरस्यच ॥ सृष्टिस्त्व याकृतासर्वा मयारक्षाव्यवस्थिता ॥ १७ ॥ उदासीनवदासीनः संसारासारमीक्षितुम् ॥ एकएवशिवोदेवः सर्वव्यापी

हुआ तब क्रोधित होकर महादेवजी ब्रह्माको मारने के लिये उद्यत हुये ॥ १३ ॥ तब विष्णुजी ने ब्रह्मा को मना किया कि तुम्हारा विवाद योग्य नहीं है क्योंकि जब न तुम थे और न मैं था और न स्थावर जङ्गमसमेत यह संसार ॥ १४ ॥ तब एकही महेश्वरदेवजी जलमें शयन करते थे और जब वे सदाशिवजी अपनी इच्छा से जागते हैं तदनन्तर कौतुक से ॥ १५ ॥ पहले इन्होंने तुमको रचा पश्चात् तुम ने मुझको किया व इन शिवजी की प्रसन्नता से ब्रह्माण्ड कूर्म (कच्छप) के रूप से धारण कियागया है ॥ १६ ॥ और शिवजी के प्रसाद से ब्रह्माण्ड में प्रवेशकर तुमने सृष्टि किया व सब रक्षा मुझमें स्थितहुई ॥ १७ ॥ और संसारके असार को

देखने के लिये एकही सर्वव्यापी महेश्वरदेवजी उदासीन की नाईं स्थितहैं ॥ १८ ॥ हे पितामह ! वे शिवदेवजी जब अपनी इच्छा से जागते हैं तब शिवजी की प्रसन्नतासे तुम सृष्टि करतेहो ॥ १६ ॥ विष्णुजी के वचनको सुनकर ब्रह्माने शिवजीको प्रसन्न कराया कि हे महाभुज ! तुम जन्म व मृत्युमे रहित तथा वेदशीर्षदेव हो ॥ २० ॥ इत्यादि देववचनों से महादेवजी प्रसन्नहुये तदनन्तर उन्होंने कहाकि हे पितामह! जो तुम्हारे मनमें प्रिय हो उस वरदानको मागो ॥ २१ ॥ ब्रह्मा बोले कि यदि चराचरसमेत सब संसार मुझसे रचागयाहै तो इस मूर्त्तिको छोड़कर इस समय मुझसे रचितहोवो ॥ २२ ॥ व जिस प्रकार पितामहत्व होवै वैसाही शीघ्रही किया

महेश्वरः ॥ १८ ॥ जागर्तियदादेवःस्वेच्छयाचपितामह ॥ त्वंकरोषितदासृष्टिं प्रसादाच्छङ्करस्यतु ॥ १९ ॥ प्रसादयामासहरं श्रुत्वाब्रह्मावचोहरेः ॥ अनादिनिधनोदेवो ब्रह्मशीर्षोमहाभुज ॥ २० ॥ इत्यादिदेववचनैस्ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ पितामहवरंयत्ते वृणीष्वमनसाप्सितम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदिसृष्टंमयासर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ तदामूर्त्तिमिमान्त्यक्त्वा भवसृष्टोमयाधुना ॥ २२ ॥ यथापितामहत्वंस्यात तथाशीघ्रंविधीयताम् ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा विष्णुनासम्प्रणोदितः ॥ २३ ॥ महदाश्चर्यजनके सम्प्राप्तोगिरिमूर्द्धनि ॥ विष्णुरुवाच ॥ नविचारस्त्वयाकार्यःकर्त्तव्यंब्रह्मभाषितम् ॥ २४ ॥ तथेत्युक्त्वाशिवोदेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ब्रह्माययौमेरुशृङ्गं समेरोःशिरसिस्थितम् ॥ २५ ॥ तपस्तेपेप्रजानाथो वेदोद्धरणतत्परः ॥ अथर्ववेदोद्धरणंयावच्चक्रेपितामहः ॥ २६ ॥ मुखाद्रुद्रःसमभवद्रौद्ररूपोभयावहः ॥ अर्द्धनारीनरवपुः दुष्प्रेक्ष्योतिभयङ्करः ॥ २७ ॥ विभजात्मानमित्याह ब्रह्माचान्तर्द्धेभयात ॥ तथोक्तोसौद्विधास्त्रीत्वं पुरुषत्वंतथाक

जावै ब्रह्माके वचनको सुनकर विष्णुजीसे प्रेरणा कियेहुये वे शिवजी ॥ २३ ॥ बड़ेआश्चर्यको पैदाकरनेवाले पहाड़ के ऊपर प्राप्त हुये विष्णुजी बोले कि तुमको विचार न करना चाहिये और ब्रह्माका कहाहुआ करना चाहिये ॥ २४ ॥ वैसाही होगा यह कहकर शिवदेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और ब्रह्माजी सुमेरुगिरि के शिखरपै गये व सुमेरु पर्वतके मस्तकपै स्थितहुये ॥ २५ ॥ और वेदों के उद्धरणमें तत्पर ब्रह्माजी ने तप किया व ब्रह्माजी ने जबतक अथर्ववेद का उद्धरण किया ॥ २६ ॥ तबतक भयङ्कररूप व भयको देनेवाले शिवजी मुखसे उत्पन्न हुये जोकि आधा स्त्री व आधा पुरुषशरीर तथा दुःख से देखनेयोग्य व अतिभयङ्करथे ॥ २७ ॥ उन्होंने यह कहा

कि अपने शरीरको विभाग कीजिये और ब्रह्मा भयसे अन्तर्द्धान होगये उसप्रकार कहेहुये इन ब्रह्माने दो खण्ड स्त्रीत्व व पुरुषत्व ऐसे किये ॥ २८॥ और फिर पुरुषत्व को दश खण्ड व एक खण्ड विभेदकिया ये तीनोंलोकों के स्वामी गेरह रुद्र कहे गये ॥ २९ ॥ और सबोंके नामोंको करके वे देवकार्यमें नियुक्त कियेगये फिर व्यापक शङ्करजी से अपने शरीर को व ईशानी पार्वतीजी को विभागकर ॥ ३० ॥ महादेवकी आज्ञासे ब्रह्माजी प्राप्तहुये व भगवान् ब्रह्माने उन ईशानीसे कहा कि दक्षकी कन्याहोवो ॥ ३१ ॥ और वे भी उन ब्रह्माकी आज्ञा से प्रजापति दक्षजी से प्रकट हुईं व ब्रह्माकी आज्ञासे दक्षजीने उन सतीको शिवजी के लिये दिया ॥ ३२ ॥ और

रोत् ॥ २८ ॥ विभेदपुरुषत्वंचदशधाचैकधापुनः ॥ एकादशैतेकथितारुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ २९ ॥ कृत्वानामानिसर्वेषां देवकार्येनियोजिताः ॥ विभज्यपुनरीशानीं स्वात्मानंशङ्कराद्विभोः ॥ ३० ॥ महादेवनियोगेन पितामहउपस्थितः ॥ तामाहभगवान्ब्रह्मा दक्षस्यदुहिताभव ॥ ३१ ॥ सापितस्यनियोगेन प्रादुरासीत्प्रजापतेः ॥ नियोगाद्ब्रह्मणोदक्षो ददौ रुद्रायतांसतीम् ॥ ३२ ॥ दक्षाद्रुद्रोपिजग्राह स्वकीयामेवशूलभृत् ॥ अथब्रह्मावभाषेतं सृष्टिंकुरुसतीपते ॥ ३३ ॥ रुद्र उवाच ॥ सृष्टिर्मयानकर्त्तव्या कर्त्तव्याभवतास्वयम् ॥ पालनंविष्णुनाकार्यं संहर्त्ताहंव्यवस्थितः ॥ ३४ ॥ स्थाणुवत्संस्थितोयस्मात्तस्मात्स्थाणुर्भवाम्यहम् ॥ रजोरूपाःसत्त्वरूपास्तमोरूपाश्चयेनराः ॥ ३५ ॥ सर्वेतेभवताकार्या गुणत्रयविभागतः ॥ यदातेतामसंकार्यं तदारौद्रोभवस्वयम् ॥ ३६ ॥ सात्त्विकंतेयदाकार्यं तदात्वंसात्त्विकोभव ॥

त्रिशूलधारी शिवजीने भी दक्षजीसे अपनीही स्त्री सतीजीको ग्रहणकिया इसके अनन्तर उन ब्रह्माने उन शिवजीसे कहा कि हे सतीपते ! सृष्टिको करिये ॥ ३३॥ शिवजी बोले कि मुझको सृष्टि न करना चाहिये बरन आपहीको स्वयं करनाचाहिये व विष्णुको पालनकरना चाहिये और मैं संहार करनेवाला स्थितहूं ॥ ३४ ॥ जिस लिये मैं स्थाणु (स्तम्भ) की नाईं स्थितहूं उसीकारण मैं स्थाणुनामक हूंगा और जो मनुष्य रजोगुणरूपी व सत्त्वगुणरूपी तथा तमोगुणरूपी हैं ॥ ३५ ॥ उन सबको तीनों गुणों के विभागसे आपको करना चाहिये जब तुम्हारा तामसी कार्य होवै तब तुम आपही रुद्र होवो ॥ ३६ ॥ और जब तुम्हारा सात्त्विककार्य होवै तब तुम सात्त्विक

होवो उन सतीजी को लेकर शिवजी कैलास के ऊपर स्थित हुये ॥ ३७ ॥ और बहुत समय के बाद दक्षजी शिवजी के स्थान को आये इसके उपरान्त शिवजी ने उठकर बड़ा गौरव किया ॥ ३८ ॥ और यथोचित पूजन कियागया उसको दक्षजी ने बहुत न माना व उससमय ब्रह्माके पुत्र दक्षजी अधिक तमोगुण से युक्तहुये ॥ ३९ ॥ और अर्घ्यरहित पूजनको न चाहतेहुये दक्षजी क्रोधित होकर घर को चलेगये किसीसमय घरमें प्राप्तहुई उन सतीजी को दुष्टमनवाले दक्षजी ने ॥ ४० ॥ पतिसमेत निन्दाकर क्रोधसे इनको भर्त्सन किया कि पञ्चानन व दश भुज तथा तीन नेत्रोंसे संयुत ये शिवजी ॥ ४१ ॥ जटाको धारे व चन्द्रमा के खण्डको

गृहीत्वातांसतींरुद्रः कैलासमधितस्थिवान् ॥ ३७ ॥ दक्षःकालेनमहताहरस्यालयमाययौ ॥ अथरुद्रःसमुत्थाय कृतवा नगौरवंबहु ॥ ३८ ॥ कृतायथोचितापूजा नदक्षोबहुमन्यते ॥ तदावैतमसाविष्टः सोधिकंब्रह्मणःसुतः ॥ ३९ ॥ पूजामन र्घ्यामनिच्छन्स् जगामकुपितोगृहम् ॥ कदाचित्तांगृहप्राप्तांसतींदक्षःसुदुर्मनाः ॥ ४० ॥ भर्त्रासहविनिन्द्यैनाम्भर्त्सया मासवैरुषा ॥ पञ्चवक्त्रोदशभुजोमुखोनेत्रत्रयान्वितः ॥ ४१ ॥ कपर्दीखण्डचन्द्रोसौतथासौनीललोहितः ॥कपालीशूलह स्तोसौ गजचर्मावगुण्ठितः ॥ ४२ ॥ नास्यमातानचपिता नभ्रातानचबान्धवाः ॥ सर्पास्थिमण्डनग्रीवस्त्यक्त्वाहेमवि भूषणम् ॥ ४३ ॥ भिक्षयाभोजनंयस्य कथमन्नम्प्रदास्यति कदाचित्पूर्वतोयाति गच्छत्यनिमपश्चिमे ॥ ४४ ॥ दक्षि णस्यांवृषोयाति स्वयंयातिसचोत्तरे ॥ तिर्यगूर्द्ध्वमधोयातिनातिष्ठतिकथञ्चन ॥ ४५ ॥ इतिचित्रंचरित्रंते भर्तुर्नान्यस्यदृ श्यते ॥ निर्गुणःसगुणातीतो निःस्नेहोमूकवत्स्थितः ॥४६॥ सर्वज्ञःसर्वगःसर्व उच्यतेभुवनत्रये ॥ कदाचिन्नैवजानाति

धारण किये हैं वैसेही ये शिव नीललोहित हैं व कपालको धारे तथा त्रिशूल को हाथमें लिये ये हाथी के चर्मको पहने हैं ॥ ४२ ॥ और न इनके माता है न पिता है न भाई है न बान्धव हैं व सुवर्ण के भूषणको छोड़कर सांप व अस्थिसे ग्रीवा भूषित है ॥ ४३ ॥ व जिसका भिक्षासे भोजन है वह कैसे अन्नको देवैगा कभी पूर्व जाता है व कभी चलताहुआ वह पश्चिम को जाताहै ॥ ४४ ॥ और बैल दक्षिणदिशामें जाताहै स्वयं वह उत्तरमें जाताहै तिरछा व ऊपर और नीचे ये शिवजी जातेहैं व किसी प्रकार स्थित नहीं होते हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे पतिका ऐसा विचित्र चरित्रहै अन्यका ऐसा चरित्र नहीं देख पड़ता है वह निर्गुण व गुणोंसे अतीत, स्नेहसे रहित

व गूंगेकी नाई स्थितहै ॥ ४६ ॥ और त्रिलोक में वह सर्वज्ञ सर्वव्यापी व सर्व कहाजाताहै और कभी वह न जानताहै न सुनताहै न देखता है ॥ ४७॥ और जो दैत्यों, दानवों व राक्षसोंको वरदानादिक देताहै इसके न कोई बान्धवहै न कोई भाई है ॥ ४८ ॥ और बैलपै चढ़ाहुआ यह नग्न होकर अकेले पृथ्वीपरघूमता है न इसके घरहै न धनहै न कुटुम्बहै बरन यह जन्म व मृत्युसे रहित और विकाररहित है ॥४९॥ और इसकी बुद्धि स्थिर नहींहै और यह त्रिलोक में क्रीडा करता है किसीसमय यह सत्यलोकमें जाताहै व कभी पातालमें स्थितहोताहै ॥५०॥ और कभी पर्वतोंके शिखरोंपै व कभी पर्वतों पै स्थितहोताहै और अशिव (अमङ्गल) भी यह शिव कहागया

नशृणोतिनपश्यति ॥४७॥ दैत्यानांदानवानाञ्च राक्षसानांददातियः ॥ नचास्यबान्धवः कश्चिन्नवैभ्रातास्तिकश्चन ॥ ४८॥ एकएववृषारूढो नग्नोभ्रमतिभूतले ॥ नगृहंनधनंगोत्रमनादिनिधनोऽव्ययः ॥ ४९ ॥ स्थिराबुद्धिर्नचैवास्य क्रीडतेभुवनत्रये ॥ कदाचित्सत्यलोकेसौ पातालमधितिष्ठति ॥ ५० ॥ गिरिसानुपुशैलेपु अशिवोपिशिवःस्मृतः ॥ श्रीखण्डादीनिसन्त्यज्य सदाभस्मावगुण्ठितः ॥ ५१ ॥ सर्वदेतिवचःसत्यं किमन्यस्यप्रदास्यति ॥ धिक्त्वांजामातरंधिक्चययोःस्नेहःपरस्परम् ॥ ५२ ॥ तस्यत्वंवल्लभाभार्या सचप्राणाधिकस्तव ॥ नचपित्रास्तितेकार्यं नचमात्रासखीषुच ॥ ५३ ॥ केवलम्भर्तृभक्तात्वं तस्माद्गच्छगृहान्मम ॥ अन्येजामातरःश्रेष्ठा भर्त्तुस्तवपिनाकिनः ॥५४॥ त्वंममाद्याशुचास्माकं गृहाद्गच्छवरम्प्रति ॥ तस्यतद्वाक्यमाकर्ण्य सादेवीशङ्करप्रिया ॥ ५५ ॥ विनिन्द्यपितरंदत्तं ध्यात्वादेवंमहेश्व

है और चन्दनादिकों को छोड़कर यह सदैव भस्मको लगाता है ॥ ५१ ॥ और सर्वदायक ऐसा वचन झूठहै क्योंकि अन्य पुरुषको यह क्या देवैगा तुमको धिक्कार है व दामाद (शिवजी) को धिक्कार है कि जिनका परस्पर स्नेहहै॥ ५२ ॥ और उन शिवकी तुम प्यारी स्त्री हो व वे शिवजी तुमको प्राणोंसे अधिकहैं और पिता व माता से तुम्हारा कार्य नहींहै और सखियोंके मध्यमें तुम्हारा कार्य नहीं है॥५३॥ केवल तुम पतिकी सेवा करनेवालीहो इसलिये तुम मेरे घरसे जावो क्योंकि अन्य दामाद पिनाकधारी तुम्हारे पतिसे श्रेष्ठहैं॥ ५४॥ आज शीघ्रही तुम हमारे घरसे पति के समीप जावो उन दक्षजी के उस वचन को सुनकर शङ्करजीकी प्यारी वे पार्वतीदेवी

जी ॥ ५५ ॥ पिता दक्षजी को निन्दकर व महादेवजी को ध्यानकर सफेद वस्त्रको पहनकर जलमें नहाकर आत्मा से शरीरको जला दिया ॥ ५६ ॥ व उन सतीजी ने फिर अन्य जन्म में शिवजी को पति मांगा व कहा कि मेरे पिता हिमाचल होवैं और मैं मेना के गर्भमें होऊं ॥ ५७ ॥ इसी अवसरमें हिमवान् ने तपस्यासे शिवजी को प्रसन्न कराया शिवजी बोले कि यह जो तुम्हारी कन्या दीगई है उसको मैं ब्याहूंगा ॥ ५८ ॥ और देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये वह गिरिजा होगी अपनी मूर्त्तिमें स्थित उन पार्वतीजी को जानकर महेश्वरदेवजी ने ॥ ५९ ॥ क्रोधित होकर उनके घरको आकर दक्षजी को शाप दिया कि इस ब्राह्मणके शरीर को

रम् ॥ श्वेतवस्त्राजलेस्नात्वा ददाहात्मानमात्मना ॥ ५६ ॥ याचितस्तुशिवोभर्त्ता पुनर्जन्मान्तरेतया ॥ पितामेहिमवानस्तु मेनागर्भेभवाम्यहम् ॥ ५७ ॥ अत्रान्तरेहिमवता तपसातोषितोहरः ॥ शिव उवाच ॥ एषादत्तासुतायाते परिणेष्यामितामहम् ॥ ५८ ॥ देवानांकार्यसिद्ध्यर्थं गिरिजासाभविष्यति ॥ आत्ममूर्त्तौप्रतिष्ठान्तां ज्ञात्वादेवोमहेश्वरः ॥ ५९ ॥ शशापदक्षंकुपितः समागत्याथतद्गृहम् ॥ त्यक्त्वादेहमिमंब्राह्मयं क्षत्रियाणांकुलेभव ॥ ६० ॥ स्वायम्भुवत्वं सन्त्यज्य दक्षःप्राचेतसोभव ॥ ६१ ॥ एवंशप्त्वामहादेवो ययौकैलासपर्वतम् ॥ स्वायम्भुवोपिकालेन दक्षःप्राचेतसोभवत् ॥ ६२ ॥ भवानींस्वसुतांलब्ध्वा गिरिस्तुष्टोहिमालयः ॥ मेनापितांसुतांलब्ध्वा धन्यंमेनेगृहाश्रमम् ॥ ६३ ॥ तान्दृष्ट्वाजायमानान्तुस्वेच्छयैववराननाम् ॥ हितायसर्वभूतानांजातांसुतपसाशुभाम् ॥ ६४ ॥ सोपिदृष्ट्वामहादेवींतरुणादित्यवर्चसाम् ॥ कपर्दिनींचतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिसुन्दरीम् ॥ ६५ ॥ मेनाहिमवतःपार्श्वे प्राहेदंपर्वतेश्वरम् ॥ पश्यजाता

त्यागकर तुम क्षत्रियोंके वंशमें उत्पन्न होवो ॥ ६० ॥ और स्वयंभूकी पुत्रताको छोड़कर प्रचेताओंके पुत्र दक्ष होवो ॥ ६१ ॥ इसप्रकार शापको देकर महादेवजी कैलासपर्वत पर चलेगये और ब्रह्माके पुत्र दक्षभी समयसे प्रचेताओं के पुत्र हुये ॥ ६२ ॥ व अपनी कन्या पार्वतीजीको पाकर हिमालय पर्वत प्रसन्न हुये और मेना ने भी उस कन्याको पाकर गृहाश्रम को धन्य माना ॥ ६३ ॥ और अपनी इच्छासे पैदा होतीहुई उस उत्तम मुखवाली कन्याको देखकर व सब प्राणियों के हितके लिये उत्तम तपसे कल्याणकारिणी उत्पन्नहुई ॥ ६४ ॥ तरुण सूर्यनारायणके समान तेजवाली व जटाधारिणी, चतुर्मुखी, त्रिलोचना व बहुत सुन्दरी महादेवीको देखकर उस

हिमाचलने भी गृहस्थाश्रम को धन्य माना ॥ ६५ ॥ और हिमाचलके समीपही मेनाने पर्वतेश्वर हिमालय से यह कहा कि हे राजन् ! कमलके समान मुखवाली इस उत्पन्नहुई कन्याको देखिये ॥ ६६ ॥ आठ हाथोंवाली,विशालनयनी तथा चन्द्रमाके समान अङ्ग भूषणोंवाली उस कन्याको पृथ्वीमें मस्तकसे प्रणामकर हिमाचल उसके तेज से विह्वलहुये ॥ ६७ ॥ व डरेहुये हिमाचलजी हाथोंको जोड़कर उन परमेश्वरी पार्वती जी से बोले हिमाचल बोले कि हे विशाललोचनि, देवि ! तुम कौन हो मेरे चित्तमें बड़ा सन्देह है ॥ ६८ ॥ देवीजी बोलीं कि महादेवमें आश्रयवाली मुझको उत्तम शक्ति जानिये तिसको मुक्त होनेकी इच्छावाले मनुष्य देखते

मिमांराजन् राजीवसदृशाननाम् ॥ ६६ ॥ अष्टहस्तांविशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम् ॥ प्रणम्यशिरसाभूमौ तेजसातुसविह्वलः ॥ ६७ ॥ भीतःकृताञ्जलिस्तान्तु प्रोवाचपरमेश्वरीम् ॥ हिमवानुवाच ॥ कात्वंदेविशालाक्षि चित्तेमेसंशयोमहान् ॥ ६८ ॥ देव्युवाच ॥ विद्धिमाम्परमांशक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ॥ पश्यमामव्ययामेकां यांपश्यन्तिमुमुक्षवः ॥ ६९ ॥ दिव्यंददामितेचक्षुः पश्यमेरूपमैश्वरम् ॥ एतावदुक्त्वाविज्ञानं ददौहिमवतश्चसा ॥ ७० ॥ सूर्यबिम्बप्रतीकाशं तेजोबिम्बंनिराकुलम् ॥ ज्वालामालासहस्राढ्यंकालानलशतोपमम् ॥ ७१ ॥ दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षं जटामण्डलमण्डितम् ॥ प्रशान्तंसौम्यवदनमनन्तैश्वर्यसंयुतम् ॥ ७२ ॥ चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् ॥ ७३ ॥ दिव्यमालाम्बरधरंदिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ शङ्खचक्रधरंकान्तं त्रिनेत्रंकृत्तिवा

हैं उस एक व विकाररहित मुझको देखिये ॥ ६९ ॥ मैं तुमको दिव्यनेत्र देतीहूं मेरे ईश्वर सम्बन्धीरूप को देखिये इतनाही कहकर उसने हिमवान् को ज्ञान दिया ॥ ७० ॥ व सूर्यबिम्ब के समान तेज बिम्बवाले व आकुलतारहित तथा हज़ारों ज्वालामालाओं से युक्त व सैकड़ों कालाग्नियों के समान ॥ ७१ ॥ और भयङ्कर दाढ़ोंसे दुर्द्धर्ष, जटामण्डल से शोभित व शान्त तथा सौम्यमुख व अमित ऐश्वर्य से संयुक्त ॥ ७२ ॥ और चन्द्राङ्ग के चिह्नोंवाले व करोड़ चन्द्रमाओं के समान प्रभावान्, किरीटको धारे, गदाको हाथमें लिये व नूपुरों से शोभित ॥ ७३ ॥ और दिव्य मालाओं व वसनों को धारे तथा दिव्य गन्धोंको लेपन किये शङ्ख, चक्रको

तिलक से उज्ज्वल व सुन्दर सब अङ्गभूषण और भूषणों से अत्यन्त कोमल ॥ ८४ ॥ तथा सुवर्ण से बनाईहुई विशालमाला को धारण किये, कुछ सुमक्यानयुक्त व सुन्दरबिम्बाफल के समान ओठोंवाले और नूपुर के शब्द से शोभित ॥ ८५ ॥ व सुन्दरी भौंहोंकी महिमा के स्थानवाले, दिव्य व प्रसन्न मुखवाले उस ऐसे स्वरूप को देखकर पर्वतोत्तम हिमालयने ॥ ८६ ॥ भयको छोड़ प्रसन्नमन होकर परमेश्वरी पार्वतीजीसे कहा हिमवान् बोले कि आज मेरा जन्म सफल हुआ और आज मेरे कर्म सफल होगये ॥८७॥ जोकि अव्यक्त तुम प्रसन्न होतीहुई साक्षात् दृष्टिगोचरहुई हो हे परमेश्वरि! इस समय मुझको क्या करना चाहिये उसको मुझसे कहिये ॥८८॥

दधानंसुन्दरींमालां विशालांहेमनिर्मिताम् ॥ ईषत्स्मितंसुबिम्बोष्ठं नूपुरारावशोभितम् ॥ ८५ ॥ प्रसन्नवदनंदिव्यं चारुभ्रूमहिमास्पदम् ॥ तदीदृशंसमालोक्य स्वरूपंशैलसत्तमः ॥ ८६ ॥ भयंसन्त्यज्यहृष्टात्मा बभाषेपरमेश्वरीम् ॥ हिमवानुवाच ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेसफलाःक्रियाः ॥ ८७ ॥ यन्मेसाक्षात्त्वमव्यक्ता प्रसन्नादृष्टिगोचरा ॥ इदानींकिंमयाकार्यं तन्मेब्रूहिमहेश्वरि ॥ ८८ ॥ महेश्वर्युवाच ॥ शिवपूजात्वयाकार्या ध्यानेनतपसासदा ॥ अहंतस्मैप्रदातव्या केनकार्येणहेतुना ॥ ८९ ॥ यादृशस्तुत्वयादृष्टो ध्येयोवैतादृशस्त्वया ॥ एकएवशिवोदेवः सर्वाधारोधराधरः ॥ ९० ॥ तथेतिचोक्तवान्रुद्रं समाराध्यहिमाचलः ॥ तस्योमांपरमांशक्तिं चकारशिवसन्निधौ ॥ ९१ ॥ देवकार्येणकेनापि देवोविज्ञापितःप्रभुः ॥ उपायेमेहरोदेवीमुमांत्रिभुवनेश्वरीम् ॥ ९२ ॥ सशप्तःशम्भुनापूर्वं दक्षःप्राचेतसोभवत् ॥ विनिन्द्यपूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेयजत्सवम् ॥ ९३ ॥ यज्ञंप्रवर्तयामास रुद्रभागविवर्जितम् ॥ देवाश्चयज्ञभागार्थमाहताविष्णुना

महेश्वरी जी बोलीं कि ध्यान व तपस्यासे तुमको सदैव शिवपूजन करना चाहिये व किसी कार्यके कारण मैं उनके लिये देनेयोग्य हूं ॥ ८९ ॥ तुमने जैसे स्वरूपको देखाहै वैसाही रूप तुमको ध्यान करना चाहिये क्योंकि एकही शिवदेवजी सब के आधार व पृथ्वीको धारनेवाले हैं ॥ ९० ॥ वैसाही होगा ऐसा हिमाचल ने कहा व शिवजी को ध्यानकर उनकी उमानामक उत्तम शक्तिको शिवजी के समीप किया ॥ ९१ ॥ और किसी भी देवकार्य के कारण शिवदेव प्रभु प्रार्थना किये गये व महादेवजीने त्रिभुवनेश्वरी उमा देवीको ब्याहा ॥ ९२ ॥ और पहले शिवजी से शापित वे दक्ष प्रचेताओं के पुत्र हुये व उन्होंने पहलेके वैरसे ...

में यज्ञ किया ॥ ९३ ॥ और शिवभाग से रहित यज्ञको प्रवृत्त कराया विष्णुजी आपही यज्ञभाग के लिये देवताओं को लाये व सब मुनियोंसमेत मुनिश्रेष्ठलोग आये ॥ ९४ ॥ बिन शङ्करजी के सब देवगणको आयेहुये देखकर इसके अनन्तर दधीचिनामक ब्रह्मर्षिने प्राचेतस (दक्षजी) से कहा ॥ ९५ ॥ दधीचिजी बोले कि ब्रह्मा से लगाकर पिशाचपर्यन्त जिसकी आज्ञा के अनुकूल काम करते हैं वे शिवदेवजी इस समय विधिसे क्यों नहीं पूजेजाते हैं ॥ ९६ ॥ दक्षजी बोले कि सब यज्ञोंमें भी उनका भाग नहीं कहागया है और स्त्रीसमेत शिवजी का मन्त्र नहीं कहाजाताहै ॥ ९७ ॥ क्रोधित होतेहुये महामुनि दधीचिजी ने हँसकर सब देवताओं के सुनतेहुये

स्वयम् ॥ सहैवमुनिभिस्सर्वैरागतामुनिपुङ्गवाः ॥ ९४ ॥ दृष्ट्वादेवकुलंसर्वं शङ्करेणविनागतम् ॥ दधीचिर्नामाविप्रर्षिः प्राचेतसमथाब्रवीत् ॥ ९५ ॥ दधीचिरुवाच ॥ ब्रह्माद्याःसुपिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः ॥ सरुद्रःसाम्प्रतंदेवो विधिनाकिंनपूज्यते ॥ ९६ ॥ दक्ष उवाच ॥ सर्वेषुचापियज्ञेषु नभागःपरिकीर्त्तितः ॥ नमन्त्रोभार्यया सार्द्धं शङ्करस्यनिगद्यते ॥ ९७ ॥ विहस्यदक्षंकुपितो वच प्राहमहामुनिः ॥ शृण्वतांसर्वदेवानां सर्वज्ञानमयाशुभम् ॥ ९८ ॥ यतःप्रवृत्तिर्विश्वस्य यश्चासौभुवनेश्वरः ॥ नत्वंपूजयसेरुद्रं देवैःसम्पूज्यतेहरः ॥ ९९ ॥ दक्ष उवाच ॥ अस्थिमालाधरोनग्नः संहर्त्ता तमसाहरः ॥ विषादःशूलहस्तोसौ कपालीनागवेष्टितः ॥ १०० ॥ दधीचिरुवाच ॥ ईश्वरोसौजगत्स्रष्टा प्रभुर्योसौसनातनः ॥ सत्त्वात्मकोसौभगवान्निज्यतेसर्वकर्मसु ॥ १ ॥ किंत्वयाभगवानेष सहस्रांशुर्नदृश्यते ॥ सर्वलोकैकसंहर्त्ता

सब ज्ञानमय व उत्तम वचनको दक्षजी से कहा ॥ ९८ ॥ कि जिस से संसार की प्रवृत्तिहोतीहै व जो ये शिवजी जगदीश्वर हैं औरजो शिवजी देवताओं से पूजेजाते हैं उन शिवजीको तुम नहीं पूजते हो ॥ ९९ ॥ दक्षजी बोले कि शिवजी अस्थियोंकी मालाको धारे व नग्न और तमोगुण से संहार करनेवालेहैं व ये विषको खानेवाले तथा त्रिशूल को हाथ में लिये और कपालको धारण किये व नागोंसे वेष्टित हैं ॥ १०० ॥ दधीचि बोले कि ये संसार को रचनेवाले ईश्वर हैं व जो ये सनातन प्रभु हैं वेही सत्त्वगुणात्मक ये भगवान् सब कामोंमें पूजेजाते हैं ॥ १ ॥ क्या हज़ार किरणोंवाले इन भगवान् को तुम नहीं देखते हो जो कि सब लोकोंके एकही सहार

करनेवाले व काल पुरुष की जीवात्मा और परमेश्वर हैं ॥ २ ॥ ये रुद्र, महादेव, जटाधारी और अग्रणी व भक्तदुःखनाशक हैं व आदित्य, भगवान्, सूर्य, नीलकण्ठ व विलोहित हैं ॥ ३ ॥ दक्षजी बोले कि इससमय यज्ञभागवाले जो बारह सूर्य आये हैं वे सब सूर्य ऐसे जानने योग्य हैं अन्य सूर्य नहीं विद्यमान हैं ॥ ४ ॥ ऐसा कहनेपर देखने की इच्छावाले मुनिलोग आये व उनकी सहायता करनेवाले वे बहुत अच्छा ऐसा दक्षजीसे कहा ॥ ५ ॥ और तमोगुणसे संयुत मनवाले वे वृषध्वज (शिव) जीको नहीं देखतेथे ॥ ६ ॥ और इन्द्रादिक सब देवता भागके लिये आये और दक्षने यज्ञमें नारायण विष्णुजी को व शिवदेवजी को नहीं देखा ॥ ७ ॥ और

कालात्मापरमेश्वरः ॥ २ ॥ एषरुद्रोमहादेवः कपर्दीचाग्रणीर्हरः ॥ आदित्योभगवान्सूर्यो नीलग्रीवोविलोहितः ॥ ३ ॥ दक्ष उवाच ॥ एषायेद्वादशादित्या आगतायज्ञभागिनः ॥ सर्वेसूर्याइतिज्ञेया नह्यन्योविद्यतेरविः ॥ ४ ॥ एवमुक्ते तुमुनयः समायातादिदृक्षवः ॥बाढमित्यब्रुवन्दक्षं तस्यसाहाय्यकारिणः ॥ ५ ॥ तमसाविष्टमनसो नपश्यन्तिवृषध्वजम् ॥ ६ ॥ देवाश्चसर्वेभागार्थमागतावासवादयः ॥ नापश्यद्देवमीशानं क्रतौनारायणंहरिम् ॥ ७ ॥ रक्षकंजगतान्देवं जगामशरणंस्वयम् ॥ प्रवर्त्तयामासतदा यज्ञंदक्षोपिनिर्भयः ॥ ८ ॥ रक्षकोभगवान्विष्णुः शरणागतरक्षकः ॥ पुनःप्राहचतंदक्षं दधीचिर्भगवान्नृपम् ॥ ९ ॥ निर्भयोमायजस्वत्वंयज्ञभङ्गोभविष्यति ॥ अपूज्यपूजनाद्दक्ष पूज्यस्यतुविसर्जनात् ॥ १० ॥ नरःपापमवाप्नोति महान्तंनात्रसंशयः ॥असताम्प्रग्रहोयत्र सताञ्चैवविमानता ॥ ११ ॥ दण्डोदैवकृतस्तत्र सद्यःपततिदारुणः ॥ एवमुक्त्वासविप्रर्षिः शशापेश्वरविद्विषः ॥ १२ ॥ यस्माद्बहिष्कृतोदेवो भवद्भिःपरमेश्व

आपही वह लोकों के रक्षक विष्णुदेवकी शरण में गया व उस दक्षने भी निडर होकर उस समय यज्ञको प्रवृत्त कराया ॥ ८ ॥ कि रक्षा करनेवाले भगवान् विष्णुजी शरणागत की रक्षा करनेवाले हैं फिर भगवान् दधीचिजीने उस दक्ष नृपतिसे कहा ॥ ९ ॥ कि निडर होकर तुम यज्ञको मत करो क्योंकि यज्ञका भंग होगा हे दक्षजी ! अपूजनीयके पूजनसे व पूजनीयके त्यागसे ॥ १० ॥ मनुष्य बड़े पापको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहींहै और जहां असज्जनोंका प्रग्रह (सत्कार) व सज्जनोंका अनादर होताहै ॥ ११ ॥ वहां शीघ्रही दैवसे किया हुआ दण्ड पतित होताहै ऐसा कहकर उन ब्रह्मर्षिने ईश्वरके शत्रु दक्षादिकों को शाप दिया ॥ १२ ॥ कि जिस लिये

आपलोगों ने सदा शिवदेवको बाहर किया उस कारण भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर मिथ्या रीति व आचार तथा मिथ्या शास्त्रोंको कहनेवाले और कलिसे उपजेहुये दोषोंसे पीड़ित होवोगे व भयंकर तपोबल करके फिर नरकको जावोगे॥ १३।१४॥ और अपने अधीन भी तुमलोग विष्णुजी से विमुख होवोगे ऐसा कहकर वे तपस्या के निधान ब्रह्मर्षि दधीचिजी चुप होगये॥ १५॥ और मनके द्वारा सब यज्ञों को नाशनेवाले रुद्रजी के समीप गये इसी अवसर में हे देवि ! महादेवी पार्वतीजी ने दक्षजीके यज्ञ को सुनकर व जानकर शिवजीसे विनय किया कि पूर्व जन्ममें मेरे पिता दक्षजी यज्ञसे पूजन करतेहैं॥ १६। १७॥ पहले उसने तुमको दूषित किया

रः॥ मिथ्यारीतिसमाचारा मिथ्याशास्त्रप्रभाषिणः॥ १३॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे कलिजैःकिल पीडिताः॥ कृत्वातपोबलं घोरं गच्छध्वंनरकंपुनः॥ १४॥ भविष्यथहृषीकेशात्स्वाधीनाश्चपराङ्मुखाः॥ एवमुक्त्वासविप्रर्षिर्विररामतपोनिधिः॥ १५॥ जगाममनसारुद्रमशेषाध्वरनाशनम्॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवि महादेवीमहेश्वरम्॥ १६॥ श्रुत्वाविज्ञापयामास ज्ञात्वादक्षमखंशिवा॥ दक्षोयज्ञेनयजते पितामेपूर्वजन्मनि॥ १७॥ तेनत्वंदूषितःपूर्वमहंचातीवदूषिता॥ विनाशयस्वतंयज्ञं वरमेनंवृणोम्यहम्॥ १८॥ एवंविज्ञापितोदेव्यादेवदेवोमहेश्वरः॥ ससर्जसहसारुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया॥ १९॥ सहस्रशिरसंक्रूरं सहस्राक्षंमहाभुजम्॥ सहस्रपाणिदुर्द्धर्षं युगान्तानलसन्निभम्॥ २०॥ दंष्ट्राकरालंदुष्प्रेक्ष्यं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ दण्डहस्तंमहानादं शार्ङ्गिणंभूतिभूषणम्॥ २१॥ वीरभद्रइतिख्यातो देवोदेवीसमन्वितम्॥

व मुझको भी बहुतही दूषित किया है इसलिये उस यज्ञको नाश कीजिये मैं इस वरदानको मांगती हूँ॥ १८॥ इसप्रकार देवी पार्वतीजी से विज्ञापित देवदेव महेश्वरजी ने दक्षजीके यज्ञ को नाश करनेकी इच्छासे अचानकही हज़ार मस्तकोंवाले व क्रूर तथा हज़ार लोचनोंवाले व महाभुज, हज़ार हाथोंवाले दुर्द्धर्ष और युगान्त की अग्निके समान रुद्र को उत्पन्न किया॥ १९। २०॥ जो कि दाढ़ों से कराल, दुर्निरीक्ष्य व शङ्ख, चक्र,गदा को धारण किये थे व दण्ड को हाथमें लिये तथा बड़ा भारी शब्दकरनेवाले और शार्ङ्ग धनुषको लिये व विभूतिको भूषण किये थे॥ २१॥उत्पन्न होतेही वीरभद्र ऐसे कहेहुये वे देव हाथोंको जोड़कर देवीसे संयुत देवेशजी

के समीप स्थित हुये ॥ २२ ॥ उनसे शिवजीने कहा कि हे गणेश्वर ! तुम्हारे लिये प्रणाम है दक्षजी के यज्ञको नाश कीजिये क्योंकि वह मेरी निन्दाकर हरद्वारमें यज्ञ करताहै ॥ २३ ॥ तदनन्तर लीलासे वीरभद्रने वधके लिये कियेहुये सिंहनादसे दक्षजी के महायज्ञको नाशके लिये ॥ २४ ॥ अन्य हज़ारों रुद्रोंको उत्पन्न किया व उन बुद्धिमान् वीरभद्रजी ने वहां सहायता करनेवाले रोमज ऐसे प्रसिद्ध रुद्रोंको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ व शूल, शक्ति तथा गदा को हाथमें लिये व दण्ड और पत्थरोंको हाथमें धारण किये कालाग्नि व रुद्रके समान तथा दशों दिशाओंको शब्दायमान करतेहुये ॥ २६ ॥ सब बैलों पै चढ़े व स्त्रियोंसमेत तथा अति भयंकर वे गणों में

सजातमात्रोदेवेशमुपतस्थेकृताञ्जलिः ॥ २२ ॥ तमाहदक्षस्यमखं विनाशयनमोस्तुते ॥ विनिन्द्यमांसयजते गङ्गाद्वारेगणेश्वर ॥ २३ ॥ ततोवधप्रमुक्तेन सिंहनादेनलीलया ॥ वीरभद्रेणदक्षस्य विनाशायमहाक्रतुम् ॥ २४ ॥ अन्ये सहस्रशोरुद्रानिसृष्टास्तेनधीमता ॥ रोमजाइतिविख्यातास्तत्रसाहाय्यकारिणः ॥ २५ ॥ शूलशक्तिगदाहस्तदण्डोपलकरास्तथा ॥ कालाग्निरुद्रसंकाशा नादयन्तोदिशोदश ॥ २६ ॥ सर्वेवृषभमारूढा सभार्याश्चातिभीषणाः ॥ समाश्रित्यगणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखम्प्रति ॥ २७ ॥ देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम् ॥ वीणावेणुनिनादाढ्यं वेदनादाभिवादितम् ॥ २८ ॥ दृष्ट्वादक्षंसमासीनं सहदेवैर्महर्षिभिः ॥ उवाचसवृषारूढो दक्षंवीरःस्मयन्निव ॥ २९ ॥ वयमनुचराःसर्वे शर्वस्यामिततेजसः ॥ भागार्थलिप्सयायातान्भागान्यच्छत्वमीप्सितान् ॥ ३० ॥ भागोभवद्भ्योदेयस्तु माभैःस्मइतिकथ्यताम् ॥ नप्तॄनाज्ञापयसिभो भोक्ष्यामोहिवयंततः ॥ ३१ ॥ एवमुक्तागणेशेन प्रजापतिपुरस्सराः ॥ देवा

श्रेष्ठ वीरभद्रजीके आश्रित होकर दक्षजीके यज्ञकोगये ॥ २७ ॥ जोकि हज़ारों देवांगनाओंसे युक्त तथा अप्सराओंके गीतों से शब्दित व वीणा और वेणुके शब्दोंसे संयुक्त व वेदशब्दों से प्रशंसित था ॥ २८ ॥ और देवताओं व महर्षियोंसमेत बैठेहुये दक्षजीको देखकर बैल पै चढ़ेहुये वे वीरभद्रजी मुसक्याते हुयेसे दक्षसे बोले ॥ २९ ॥ कि हम सब अतुलतेजवाले शिवजी के अनुचर (गण) हैं और भाग के पाने की इच्छा से आयेहुये हमलोगों को तुम चाहेहुये भागोंको देवो ॥ ३० ॥ आपलोगों को भाग देना चाहिये व मत डरिये ऐसा कहा जावै और हे दक्षजी ! नप्ताओं को आज्ञा दीजिये तदनन्तर हमलोग भोजन करैंगे ॥ ३१ ॥ गणनायक वीरभद्रजी

से ऐसे कहेहुये दक्ष प्रजापति आदिकै देवताओंने यह कहा देवता बोले किहे प्रभो ! भागमें प्रमाण व मन्त्रको हमलोग नहीं जानते हैं ॥ ३२ ॥ मन्त्र बोले कि हे देवताओ ! हमलोग नहीं जानते हैं कि जिससे तमोगुणमे नष्ट चित्तवाले यज्ञपुरुष के राजा महादेवजीको नहीं पूजतेहैं ॥३३॥ और सब प्राणियोंके स्वामी व सब देवताओं के शरीर शिवजी सब यज्ञोंमें पूजेजातेहैं उनको दक्षजी कैसे नहीं पूजतेहैं ॥ ३४ ॥ वीरभद्रजी बोले कि बलसे गर्वित तुमलोगोंने मन्त्रोंका प्रमाण नहीं किया और जिस लिये वह प्रमाण सत्य हैं उसीकारण आज गर्वित तुमलोगों को नाश करूंगा ॥ ३५ ॥ उन देवताओं से ऐसा कहकर गणों में श्रेष्ठ वीरभद्र व क्रोधित होकर गण

ऊचुः ॥ प्रमाणंनोविजानीमो भागेमन्त्राइतिप्रभो ॥ ३२ ॥ मन्त्रा ऊचुः ॥ सुरावयंनजानीमस्तमोपहतचेतसः ॥ येनाध्वरस्यराजानं पूजयेयुर्महेश्वरम् ॥ ३३ ॥ ईश्वरःसर्वभूतानां सर्वदेवतनुर्हरः ॥ पूज्यतेसर्वयज्ञेषु कथंदक्षोनपूजयेत् ॥ ३४ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ मन्त्राःप्रमाणंनकृता युष्माभिर्बलगर्वितैः ॥ यस्माच्चसत्यंतस्माद्वो नाशयाम्यद्यगर्वितान् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वायज्ञशालायां तान्देवान्गणपुङ्गवाः ॥ गणेश्वरास्तुसंक्रुद्धा यूपानुत्पाट्यचिक्षिपुः ॥३६॥ उद्गातारंसहोतारं अध्वर्युञ्चगणेश्वराः ॥ गृहीत्वाभीषणाःसर्वे गङ्गास्रोतसिचिक्षिपुः ॥ ३७ ॥ वीरभद्रोपिदीप्तात्मा वज्रयुक्तंकरंहरेः ॥ व्य ष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषांदिवौकसाम् ॥ ३८ ॥ भगनेत्रेतथोत्पाट्य कराग्रेणचलीलया ॥ धर्षयामासबलवान् स्मयमानोगणेश्वरः ॥ ३९ ॥ वह्नेर्हस्तद्वयंछित्त्वा जिह्वामुत्पाट्यलीलया ॥ जघानमूर्ध्निपादेन मुनीनपिमुनीश्वरान् ॥ ४० ॥ तथाविष्णुंसगरुडंसमायान्तंमहाबलम् ॥ विव्याधनिशितैर्बाणैः स्तम्भयित्वासुदर्शनम् ॥ ४१ ॥ ततःसहस्रशोभद्रः

नायकों ने यज्ञ शाला में यज्ञस्तम्भों को उखाड़कर फेंक दिया ॥ ३६ ॥ और ऋग्वेदीसमेत सामवेदी व यजुर्वेदी को सब भयङ्कर गणनायकों ने लेकर गङ्गाजीके सोत में फेंक दिया ॥ ३७ ॥ और प्रसन्नचित्त तथा प्रकाशितशरीरवाले वीरभद्र ने वज्रसंयुत इन्द्रके हाथ को व अन्य देवताओं को स्तंभित करदिया ॥ ३८ ॥ और लीला से भग देवताके नेत्रों को हाथके अग्रभाग से उखाड़कर हँसते हुये उन बलवान् गणनायक वीरभद्र ने धर्षण किया ॥ ३९ ॥ और अग्निके दोनों हाथों को काटकर लीलासे जिह्वाको उखाड़कर मुनियों व मुनीश्वरोंके भी शिरमें चरणसे मारा ॥ ४० ॥ वैसेही सुदर्शन चक्र को स्तंभितकर आयेहुये महा बलवान् विष्णुजी को गरुडसमेत

पैने बाणोंसे मारा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वीरभद्रने बहुतसे हज़ारों गरुड़ोंको पैदाकिया और वे गरुड़ वैनतेयसे भी अधिक दौड़े ॥ ४२ ॥ उनको देखकर बुद्धिमान् गरुड़
भागनेमें तत्पर हुये जैसे किवसन्तऋतु में वैशाख महीनेमें सिंहसे पीड़ित गऊ भागे ॥ ४३ ॥ और गरुड़ व विष्णुजीके अन्तर्द्धान होनेपर कमलसे उपजेहुये ब्रह्माजी ने
आकर शिवजी के प्यारे वीरभद्रको मना किया ॥ ४४ ॥ वे रुद्रजी ने ब्रह्मा के गौरव से उन वीरभद्रको प्रसन्न कराया और देवताओं ने वहां आयेहुये ऐसे रुद्रको नहीं
जानते थे ॥ ४५ ॥ और उन रुद्रदेवजी को विष्णु, ब्रह्मा व दधीचिजीने जाना और भगवान् ब्रह्मा, दक्ष, विष्णु व देवताओंने स्तुतिकिया ॥ ४६ ॥ और हाथोंको जोड़कर

ससर्जगरुडान्बहून् ॥ वैनतेयादप्यधिका गरुडास्तेप्रदुद्रुवुः ॥ ४२ ॥ तान्दृष्ट्वागरुडोधीमान् पलायनपरोभवत् ॥ वस
न्तेमाधवेवेगाद्यथागोःसिंहपीडिता ॥ ४३ ॥ अन्तर्हितेवैनतेये विष्णौचपद्मसम्भवः ॥ आगत्यवारयामास वीरभद्रंशिव
प्रियम् ॥ ४४ ॥ प्रसादयामासचतं गौरवात्परमेष्ठिनः ॥ ईदृशंनैवजानन्ति रुद्रंतत्रागतंसुराः ॥ ४५ ॥ सदेवोविष्णुना
ज्ञातो ब्रह्मणाचदधीचिना ॥ तुष्टावभगवान्ब्रह्मा दक्षोविष्णुर्दिवौकसः ॥ ४६ ॥ विशेषात्पार्वतींदेवीमीश्वरार्द्धशरीरिणी
म् ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्यचकृताञ्जलिः ॥ ४७ ॥ ततोभगवतीदेवी प्रहसन्तीमहेश्वरम् ॥ त्वमेवजगतःस्रष्टा
संहर्ताचैवरक्षकः ॥ ४८ ॥ अनुग्राह्योभगवता दक्षश्चापिदिवौकसः ॥ ततःप्रहस्यभगवान् कपर्दीनीललोहितः ॥ ४९ ॥
उवाचप्रणतान्देवान् दक्षंप्राचेतसंहरः ॥ गच्छध्वंदेवताःसर्वाः प्रसन्नोभवतामहम् ॥ ५० ॥ सम्पूज्यःसर्वयज्ञेषु प्रथमं
देवकर्मणि ॥ त्वंचापिशृणुमेदक्ष वचनंसर्वरक्षणम् ॥ ५१ ॥ त्यक्त्वालोकेघृणामेनां मद्भक्तोभवयत्नतः ॥ भविष्यसिगणे

प्रणाम करके दक्षजीने अनेकप्रकारके स्तोत्रों से शिवजी के अर्धशरीरवाली पार्वती देवी की विशेषकर स्तुति किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर हँसतीहुई भगवती पार्वतीदेवी
ने महादेवजी से कहा कि तुम्हीं संसारके रचनेवाले व संहारकरनेवाले और रक्षा करनेवाले हो ॥ ४८ ॥ आप दक्ष व देवताओंके ऊपर दया कीजिये तदनन्तर विहँ-
सकर जटाधारी व नीललोहित भगवान् ॥ ४९ ॥ शिवजीने प्रणाम कियेहुये देवताओं व प्रचेताओंके पुत्र दक्षजी से कहा कि हे देवताओ ! तुम सबलोग जावो मैं
आपलोगोंके ऊपर प्रसन्नहूं ॥ ५० ॥ और सब यज्ञोंमें व देवकर्म में मैं पहले पूजने योग्यहूं व हे दक्ष ! तुम भी सबों की रक्षा करनेवाले मेरे वचन को सुनो ॥ ५१ ॥

कि संसारमें इस घृणाको छोड़कर बड़े यत्नसे तुम मेरे भक्त होवो और मेरी दया से तुम कल्पान्तमें मेरे गणनायक होगे ॥ ५२ ॥ तबतक मेरी आज्ञासे प्रसन्न होकर अपने अधिकारों में स्थित होवो यह कहकर शिवजी अमिततेजवाले दक्षके अदर्शनको प्राप्त हुये याने अन्तर्द्धान होगये ॥ ५३ ॥ और दधीचिजी ने शिवजीको देखा व शाप छुड़ाने के लिये कहा कि कैसे तुमने शाप दिया और वे ब्राह्मण कैसे तुम्हारी आज्ञासे तरेंगे ॥ ५४ ॥ शिवजी बोले कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण वेदत्रयीसे बाहर होवैंगे और जो ब्राह्मण वेदोंको पढ़ैंगे वे स्वर्गगामी होवैंगे ॥ ५५ ॥ और जो ब्राह्मण विष्णुनिर्मित शास्त्रों को पढ़ैंगे वे भी मेरी प्रसन्नतासे स्वर्गको

शस्त्वं कल्पान्तेनुग्रहान्मम ॥५२॥ तावत्तिष्ठममादेशात्स्वाधिकारेषुनिर्वृतः ॥ इत्युक्त्वाऽदर्शनंप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥ ५३ ॥ दधीचिनाशिवोदृष्टो विज्ञप्तःशापमोचने ॥ कथंशापंत्वयादत्तं तरिष्यन्तितवाज्ञया ॥ ५४ ॥ शिव उवाच ॥ भविष्यन्तित्रयीबाह्याः संप्राप्तेतुकलौयुगे ॥ पठिष्यन्तिचयेवेदांस्तेविप्राःस्वर्गगामिनः ॥ ५५ ॥ आगमाविष्णुरचिताः पठ्यन्तेयैर्द्विजातिभिः ॥ तेपिस्वर्गप्रयास्यन्ति मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ ५६ ॥ कलिकालप्रभावेण येषाम्पाठोनविद्यते ॥ गृहस्थधर्माचरणं कर्त्तव्यंममपूजनम् ॥ ५७ ॥ अवश्यंचमयाकार्यं तेषांपापमोचनम् ॥ भिक्षांभ्रमामिमध्याह्ने अतीते भस्मगुण्ठितः ॥ ५८ ॥ जटाजूटधरःशान्तो भिक्षापात्रकरोद्विजः ॥ योददातिचमेभिक्षां स्वर्गंयातिसमानवः ॥ ५९ ॥ उपानहौवाछत्रंवा कौपीनंवाकमण्डलुम् ॥ योददातितपस्विभ्यो नरोमुक्तःसपातकैः ॥ ६० ॥ दधीचेःसवरान्दत्त्वा बभाषेविष्णुनासह ॥ रुद्र उवाच ॥ यस्तेमित्रंसमेमित्रं यस्तेशत्रुःसमे रिपुः ॥ ६१ ॥ यस्त्वाम्पूजयतेविष्णो समाम्पूज

जावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ और कलिकालके प्रभावसे जिनके वेदपाठ नहीं विद्यमानहै उनको गृहस्थधर्म का आचरण व मेरा पूजन करनाचाहिये ॥ ५७ ॥ और मुझको अवश्य उनके पापका मोचन करना चाहिये दुपहर बीतजानेपर भस्म को लगायेहुये मैं भिक्षा के लिये घूमताहूं ॥ ५८ ॥ और जटाजूट को धारण करता हूँ व शान्त होताहूँ और भिक्षापात्रको हाथमें लेताहूं जो ब्राह्मण मुझको भिक्षादेता है वह मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥ ५९ ॥ और पनहीं या छत्र व कौपीन अथवा कमण्डलुको जो तपस्वियोंके लिये देताहै वह मनुष्य पातकोंसे छूटजाताहै ॥ ६० ॥ दधीचिको वरदानोंको देकर उन शिवजीने विष्णुके साथ सम्भाषण किया रुद्रजी

बोले कि जो तुम्हारा मित्रहै वह मेरा मित्रहै और जो तुम्हारा शत्रुहै वह मेरा शत्रु है ॥ ६१ ॥ व हे विष्णो! जो तुमको पूजता है वह निश्चयकर मुझको पूजताहै और जो तुम्हारी स्तुति करताहै वह मेरी स्तुति करता है व जो तुमको प्रिय है वह मुझको प्रिय है ॥ ६२ ॥ व जहां मैं हूं वहां तुम हो परस्पर भेद नहीं है विष्णुजी बोले कि हे देव! यह ऐसाही है परन्तु जो जो कहना चाहिये वह वैसाही है ॥ ६३ ॥ पुरातन समय जब मैंने आधा स्त्री व आधा पुरुष का स्वरूप देखा तब मैंने इस स्त्री को नहीं देखा बरन शंख चक्र व गदाको हाथमें लिये और वनमालासे शोभित व श्रीवत्स से चिह्नित और पीत वसन पहने व कौस्तुभमणि से अपने

यतेध्रुवम् ॥ यस्त्वांस्तौतिसमांस्तौति प्रियोयस्तेसमेप्रियः ॥ ६२ ॥ अहंयत्रचतत्रत्वं नास्तिभेदःपरस्परम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ एवमेतत्परंदेव वक्तव्यंयत्तथैवतत् ॥ ६३ ॥ अर्द्धनारीनरवपुर्यदादृष्टामयापुरा ॥ नेयंनारीमयादृष्टा दृष्टंरूपंकिमात्मनः ॥ ६४ ॥ शङ्खचक्रगदाहस्तं वनमालाविभूषितम् ॥ श्रीवत्साङ्कम्पीतवस्त्रं कौस्तुभेनविराजितम् ॥ ६५ ॥ द्वितायार्द्धंमयादृष्टं शूलहस्तंत्रिलोचनम् ॥ चन्द्रावयवसंयुक्तं जटाजूटकपालिनम् ॥ ६६ ॥ एकभावंप्रपन्नोहं यथापूर्वं तथाधुना ॥ नेमांगौरीम्प्रपश्यामि प्रपश्यामितथैवच ॥ ६७ ॥ आवयोरन्तरंनास्ति चैकरूपावुभावपि ॥ योजानातिसजानाति सत्यलोकंसगच्छति ॥ ६८ ॥ इत्युक्त्वासययौतत्र कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ कृष्णोपिमन्दिरंप्राप्तो देवकार्येणकेनचित् ॥ ६९ ॥ अत्रान्तरेदैत्यराजो महादेवप्रसादतः ॥ हिरण्यनेत्रतनयो बाधतेसौजगत्त्रयम् ॥ ७० ॥ अमरत्वंहरा

स्वरूपको देखा ॥ ६४ । ६५ ॥ व द्वितीय अर्द्धभागको मैंने त्रिशूलको हाथमें लिये व त्रिनयन, चन्द्रांगसे संयुत तथा जटाजूट व कपालको धारणकिये देखा ॥ ६६ ॥ जिसप्रकार पहले मैं एकताको प्राप्त था वैसेही इस समय हूं कि इस पार्वतीजी को नहीं देखताहूं बरन वैसाही देखताहूं ॥ ६७ ॥ हम तुम दोनोंका अन्तर नहीं है व हम तुम दोनों भी एक रूप हैं जो जानता है वह जानता है और वह सत्यलोक को जाता है ॥ ६८ ॥ यह कहकर वे वहां उत्तम कैलास पर्वतको चलेगये और श्री कृष्ण भी किसी देवकार्यसे मन्दराचलको प्राप्तहुये ॥ ६९ ॥ इसी समयमें हिरण्यनेत्रका पुत्र यह दैत्यराज महादेवजीकी प्रसन्नतासे तीनोंलोकोंको पीड़ा करताथा ॥ ७० ॥

व शिवजी से अमरताको पाकर कामदेव से अन्ध वह नहीं देखता था व महादेवजीके अङ्गमें रमणकरनेवाली दिव्यरूपिणी तथा सुनयना पार्वती देवीको ॥ ७१ ॥ वह यह जानता था कि मेरी है और शिवजीसे मांगताथा और कार्य के व्यसनी महादेव भी कैलास पर्वतको छोड़कर ॥ ७२ ॥ जनार्दनदेवजी को देखनेके लिये मन्दराचल को प्राप्तहुये व मन्दराचल पै देवी पार्वतीजी को छोड़कर परस्पर देखकर शिवजी चलेगये ॥ ७३ ॥ व देवगणों से घिरीहुई देवी नारायणगृह में स्थित हुई इसी अवसर में गौतमजी गोघात से मलिन कियेगये ॥ ७४ ॥ व उनके पवित्र करने के लिये भिक्षुकरूपधारी महादेवजी गौतमजी के घर में प्राप्तहुये व अन्ध-

लुब्ध्वा कामान्धोनैवपश्यति ॥ हराङ्गरमणीन्देवीं दिव्यरूपांसुलोचनाम् ॥ ७१ ॥ ममेतिचसजानाति याचतेचहरम्प्र ति ॥ हरोपिकार्यव्यसनस्त्यक्त्वाकैलासपर्वतम् ॥ ७२ ॥ मन्दरंसमनुप्राप्तो देवंद्रष्टुंजनार्दनम् ॥ परस्परंसमालोच्य मुक्त्वादेवींसमन्दरे ॥ ७३ ॥ नारायणगृहेदेवी स्थितादेवगणैर्वृता ॥ अत्रान्तरेगौतमस्तु गोवधान्मलिनीकृतः ॥ ७४ ॥ सावित्रीकरणार्थाय भिक्षुरूपधरोहरः ॥ गौतमस्यगृहंप्राप्तो मन्दरंचान्धकोगतः ॥ ७५ ॥ ययाचेपार्वतींविष्णुं युद्धंचक्रेसविष्णुना ॥ रक्षितांतुगणैःसर्वैर्देवींदैत्योनपश्यति ॥ ७६ ॥ स्त्रीरूपधारीकृष्णोसौ गौरींरक्षतिमन्दरे ॥ गौरीणाञ्चशतंचक्रे हरिस्तत्रसमाययौ ॥ ७७ ॥ विष्णोर्देहसमुद्भूता दिव्यरूपावरास्त्रियः ॥ अन्धकोनैवजानाति कैषागौरीतिपार्वती ॥ ७८ ॥ विलम्बस्तत्रसंजातो मोहितोविष्णुमायया ॥ तावच्छिवःसमायातः कृत्वागौतमपावनम् ॥ ७९ ॥ भिक्षामात्रेणचान्नेन गौतमोनिर्मलीकृतः ॥ अन्धकेनतदायुद्धं चक्रेरुद्रोतिकोपितः ॥ ८० ॥ अमरोसौहराज्जातः शू

कासुर मन्दराचल को गया ॥ ७५ ॥ व उसने पार्वतीजी को मांगा व विष्णुजी से युद्ध किया और सब गणों से रक्षित देवीको वह दैत्य नहीं देखताथा ॥ ७६ ॥ और स्त्रीके रूपको धारनेवाले ये कृष्णजी मन्दराचलपै गौरीकी रक्षा करतेथे और सौगौरियोंको उन्होंने बनाया व वे विष्णुजी वहां आये ॥ ७७ ॥ और विष्णुजीके शरीर से उपजीहुई जो दिव्यरूपिणी स्त्रियां थीं उनमेंसे अन्धक यह नहीं जानताथा कि गौरी ऐसी पार्वती यह कौनहै ॥ ७८ ॥ वहां विलम्ब हुआ और वह दैत्य विष्णुजी की मायासे मोहित होगया तबतक गौतमकी पवित्रताकर सदाशिवजी आगये ॥ ७९ ॥ और भिक्षामात्र अन्नसे गौतमजी निर्मल कियेगये व उस समय बड़े क्रोधित

शिवजी ने भी अन्धकासुरसे युद्ध किया ॥ ८० ॥ और यह शिवजी से अमर हुआ था इसकारण भयानक शूल में छेदागया व शूल में स्थित उसने स्तुति किया और उसके ऊपर शिवजी प्रसन्न हुये ॥ ८१ ॥ और प्रलयपर्यन्त उसके लिये शिवजी ने गणेशत्व दिया व श्रीकृष्णजी ने आपही उनके लिये धरोहररूपिणी पार्वती देवी को दिया ॥ ८२ ॥ और सभोंके नामों को करके गौरी रूपवाली वे अन्य स्त्रियां पृथ्वी में पठाई गईं व उनसे यह कहा कि तुम सब संसारमें पूजनीय होवोगी ॥ ८३ ॥ व यह कहा कि जो इनको पूजैंगे वे पार्वतीजी को पूजैंगे और जो पार्वतीजीको पूजैंगे वे विष्णु व शिवको पूजैंगे ॥ ८४ ॥ देवताओं से पूजित महादेवजी बैल

लेप्रोतस्तुदारुणे॥ शूलस्थःसस्तुतिंचक्रे तस्यतुष्टोमहेश्वरः॥८१॥ गणेशत्वंददौतस्मै यावदाभूतसंप्लवम् ॥ न्यासरूपामुमान्देवीं कृष्णस्तस्मैददौस्वयम् ॥ ८२ ॥ गौरीरूपाःस्त्रियश्चान्या धरित्र्यान्तास्तुप्रेषिताः ॥ कृत्वानामानिसर्वासां लोकेपूजाभविष्यथ ॥ ८३ ॥ एतायेपूजयिष्यन्ति पूजयिष्यन्तितेशिवाम् ॥ शिवांयेपूजयिष्यन्ति तेर्चयन्तिहारिंहरम् ॥८४॥ उमांसमादायययौहरोगिरिं वृषंसमारुह्यशुभंसुरार्चितः ॥ हरःसुरेमेउमयासहान्धके हतेचदेवाःसुरराजमाययुः ॥ ८५ ॥ ब्रह्मेशनारायणपुण्यचेतसां शृण्वन्तिचित्रंचरितं महात्मनाम् ॥ मुच्यन्तिपापैःकलिकालसम्भवैर्यान्तिनाकंगणवृन्दवन्दिताः ॥ ८६ ॥ एवंकालेवर्त्तमानो हरःकैलासपर्वते ॥ रक्षोदानवदैतेयैर्गृह्यतेसौवरान्बहून् ॥ ८७ ॥ ब्रह्मदत्तवरोरौद्रस्तारकाख्योमहासुरः ॥ तेनसर्वंजगद्व्याप्तं तस्यनष्टाःसुरारणे ॥ ८८ ॥ महादेवस्तुतेनाजौ तद्वधाय

पै चढ़कर पार्वतीजी को लेकर उत्तम पर्वत पै चलेगये और शिवजी ने पार्वतीजीसमेत रमण किया व अन्धकासुरके मारने पर देवता सुरराज (इन्द्र) के समीप गये ॥ ८५ ॥ जो मनुष्य ब्रह्मा, शिव, विष्णु व पवित्र चित्तवाले महात्माओं के विचित्र चरित्र को सुनते हैं गणसमूहों से वन्दित वे पुरुष कलिकालमें उपजेहुये दोषों से छूटजाते हैं और वैकुण्ठको जावैंगे ॥ ८६ ॥ इसीप्रकार समय में शिवजी कैलास पर्वत पै वर्तमान हुये और राक्षस, दानव व दैत्य इन शिवजी को बहुत वरदानों के लिये ग्रहण करते थे ॥ ८७ ॥ और ब्रह्मा से दिये हुये वरदानवाला जो यह भयंकर तारकनामक महादैत्य था उससे सब संसार व्याप्त होगया और उसके

युद्धमें देवता भग गये ॥ ८८ ॥ उसीकारण महादेवजी ने युद्धमें उसके मारने के लिये रुद्रवीर्य से उपजे हुये उन उमापुत्र स्वामिकार्त्तिकेयजीको रचा ॥ ८९ ॥ और सब इन्द्रादिक देवताओं ने उनको सनापति का अभिषेक किया और उन स्वामिकार्त्तिकेय ने भी दैवयोग से तारकनामक दैत्य को मारा ॥ १९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायादक्षयज्ञविध्वंसनंनामत्रयोविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पूंछ्यो है शिव सन यथा उमा तुष्टि कर हेत । कह्यो त्रिशत चौबीस में सोई हर्षसमेत ॥ महादेवजी बोले कि कैलास पर्वतके शिखरपै बैठहुये जगद्गुरु

ससर्जतम् ॥ कार्त्तिकेयमुमापुत्रं रुद्रवीर्यसमुद्भवम् ॥ ८९ ॥ दैवैरिन्द्रादिभिःसर्वैः सेनाध्यक्षोभिषेचितः ॥ तेनापिदैवयोगेन तारकाख्योनिपातितः ॥ १९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदक्षयज्ञविध्वंसनंनामत्रिविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ कैलासशिखरासीनो देवदेवोजगद्गुरुः ॥ उमयासहसन्तुष्टो नन्दभद्रादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ स्कन्देन गजवक्त्रेण सेनाध्यक्षेणसंस्तुतः ॥ अथहासपरंदेवं शनैःप्रोवाचतंशिवा ॥ २ ॥ केनदेवप्रकारेण तुष्टिंयास्यसिशङ्कर ॥ मर्त्यानांकेनदानेन तपसानियमेनच ॥ ३ ॥ केनवाकर्मणादेव केनमन्त्रेणवापुनः ॥ स्नानेनकेनदेवेश केनहोमेनतुष्यसि ॥ ४ ॥ पुष्पेणकेनहेनाथ केनपात्रेणशङ्कर ॥ केनसन्तुष्यसेदेव साहसेनचकेनवै ॥ ५ ॥ नैवेद्येनचकेनत्वं केनहोमेनतुष्यसि ॥ केनकष्टेनवादेव केनार्घेणममप्रभो ॥ ६ ॥ षोडशैतान्मयापृष्टान् प्रश्नान्मेनिर्णयंवद ॥ रुद्र उवाच ॥

देवदेव शिवजी नन्द व भद्रादिक गणों से घिरेहुये पार्वतीसमेत सन्तुष्ट थे ॥ १ ॥ और सेना के पति स्वामिकार्त्तिकेय व गजाननजी उनकी स्तुति करते थे इसके उपरान्त हास्यमें तत्पर उन शिवजी से पार्वतीजी धीरेसे बोलीं ॥ २ ॥ कि हे देव,शंकरजी ! किस दान,तपस्या व नियम से मनुष्यों के ऊपर किसप्रकार तुम प्रसन्नता को प्राप्तहोते हो ॥ ३ ॥ व हे देव ! किस कर्म व किस मन्त्रसे और किस स्नान व किस होमसे तुम प्रसन्न होतेहो ॥ ४ ॥ व हे नाथ,शंकरजी ! किस पुष्प व किस पात्रसे प्रसन्नहोते हो और हे देव ! किसप्रकार किस साहससे प्रसन्न होते हो ॥ ५ ॥ और किस नैवेद्य व किस होमसे प्रसन्न होते हो तथा हे मम प्रभो, देव ! किस

कष्ट और किस अर्घ्यसे प्रसन्न होतेहो ॥ ६ ॥ मुझसे पूछेहुये इन सोलह प्रश्नोंको निश्चयकर कहिये शिवजी बोले कि हे ममप्रिये, देवि ! तुमने अच्छा पूछा और मैं कहताहूं ॥ ७ ॥ कि यह शिवजीके पूजनका प्रकार गुरुके वचनसे किया जाताहै व हे देवि ! सब जन्तुवोंको अभयदान मुझको प्रियहै ॥ ८ ॥ और सत्य तप कहा गयाहै व हेदेवि ! पराई स्त्रीसे रहित यह नियम प्रियहै और जो मनुष्योंके अनुराग करताहै वह कर्महै ॥ ९ ॥ व (ॐनमः शिवाय) ऐसा यह मन्त्र अङ्गीकार कियागया है व हे देवि ! सब पापोंसे जो विमुक्तहै वह मुझको प्रियहै ॥ १० ॥ और पापोंका क्षय स्नान होताहै और गुग्गुल धूप मुझको प्रिय है और धतूरका पुष्प मुझको प्रिय

साधुपृष्टंत्वयादेवि कथयिष्येममप्रिये ॥ ७ ॥ शिवपूजाप्रकारोयं क्रियतेवचसागुरोः ॥ अभयंसर्वजन्तूनां दानंदेविमम प्रियम् ॥ ८ ॥ सत्यंतपःसमाख्यातं परदारविवर्जितम् ॥ प्रियोयंनियमोदेवि कर्मयल्लोकरञ्जनम् ॥ ९ ॥ ॐनमःशिवायेति मन्त्रोयमुररीकृतः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सदेविममवल्लभः ॥ १० ॥ पापक्षयोभवेत्स्नानं धूपोमेगुग्गुलःप्रियः ॥ धत्तूरकश्चपुष्पंमे बिल्वपत्रंममप्रियम् ॥ ११ ॥ स्तुतिःशिवशिवायेति साहसंरणकर्मणि ॥ नबिभेतिनरोयस्तु तस्याग्रेसम्भवाम्यहम् ॥ १२ ॥ अन्नदानंगवांयत्तु नैवेद्यंममवल्लभम् ॥ पूर्णाहुत्यापराप्रीतिर्जायतेममसुन्दरि ॥ १३ ॥ शुश्रूषावल्लभंकष्टं यतीनांचतपस्विनाम् ॥ सूर्योदयेमहादेवि मध्याह्नेस्तमनेतथा ॥ १४ ॥ अर्घोयोदीयतेसूर्ये वल्लभोसौममप्रिये ॥ किंदानैःकिंतपोभिर्वा किंयज्ञैर्भक्तिवर्जितैः ॥ १५ ॥ एवंयावत्कथयति प्रश्नान्सर्वान्यथाक्रमम् ॥ तावद्ब्रह्मादयोदेवा विष्णुस्तत्रायर्यौस्वयम् ॥ १६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नाहंपालयितुंशक्तस्त्वंददासिवरान्बहून् ॥ दैत्यानांदान

हैं व बिल्वपत्र मुझको प्रियहै ॥ ११ ॥ व शिव शिवाय ऐसी स्तुतिहै और युद्धके कर्म में साहस प्रिय है और जो मनुष्य डरता नहीं है उसके आगे मैं प्रगट होताहूँ ॥ १२ ॥ व गौवोंको जो अन्नदानहै वह नैवेद्य मुझको प्रिय है व हे सुन्दरि ! पूर्णाहुतिसे मेरे बड़ी प्रीति होतीहै ॥ १३ ॥ और संन्यासियों व तपस्वियों की सेवारूप कष्ट मुझको प्रियहै व हे महादेव ! सूर्योदय मध्याह्न और सायंकाल में ॥ १४ ॥ जो अर्घ सूर्यनारायण के लिये दिया जाता है हे प्रिये ! यह मुझको प्रिय है और भक्तिसे वर्जित दानों व तपों व यज्ञोंसे क्या होताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार जबतक क्रमपूर्वक सब प्रश्नोंको शिवजी कहैं तबतक वहां ब्रह्मादिक देवता व आपही विष्णुजी

आये ॥ १६ ॥ विष्णुजी बोले कि मैं पालन करनेके नहीं समर्थहूं क्योंकि हे महेश्वर ! दैत्यों, दानवों व राक्षसोंको तुम बहुतसे वरोंको देते हो ॥ १७ ॥ और पश्चात् वे विकारको प्राप्त होतेहैं व मुझसे कष्टसे मारनेके योग्य होतेहैं और पत्र व पुष्पही से तथा ॐकार व हे शिव ! ऐसा कहनेसे ॥ १८ ॥ हे देव ! मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होतेहैं तो कौन तुम्हारी भक्ति करै और जो इन्द्रादिक देवताहैं वे यज्ञोंसे पूजते हैं ॥ १९ ॥ व जो ब्राह्मण नहीं पूजते हैं उनके ऊपर तुम भिक्षा दानसे प्रसन्न होतेहो रुद्रजी बोले कि इन्द्रादिकों से मेरा कार्य नहींहै एक ब्रह्मा सृष्टि करैंगे ॥ २० ॥ व जिस किसी भांतिसे तुमको इससमय प्रजापालन करना चाहिये और मेरी यह

वानाञ्च राक्षसानांमहेश्वर ॥ १७॥ विकृतिंयातिपश्चात्ते कष्टवद्ध्याभवन्तिमे ॥ पत्रेणपुष्पमात्रेण ॐकारेणशिवेतिच ॥ १८॥ मुक्तियान्तिनरादेव तवभक्तिंकरोतुकः ॥ इन्द्रादयोपियेदेवा यज्ञैरपियजन्तिते ॥ १९ ॥ नयजन्तिद्विजायेता न् भिक्षादानेनतुष्यसि॥ रुद्र उवाच ॥ इन्द्रादिभिर्नमेकार्यंब्रह्माएकःकरिष्यति ॥ २० ॥ येनकेनप्रकारेण प्रजाःपाल्या स्त्वयाधुना ॥ मदीयाप्रकृतिर्ह्येषा तांकथंत्यक्तुमुत्सहे ॥ २१ ॥ त्वयाहंब्रह्मणादेवैर्वरकर्मणियोजितः ॥ इदानीमेवकिंन ष्टो मुक्त्वादेवींतवाग्रतः ॥ २२ ॥ मूलमूर्तिंपरित्यज्य एकाकीविचराम्यहम् ॥ इत्युक्त्वासशिवोदेवस्तत्रैवान्तरधीय त ॥ २३ ॥ गतेतस्मिञ्शिवेतत्र संक्षोभःसुमहानभूत् ॥ उमाप्रोवाचचेन्द्रादीन् ब्रह्मविष्णुसुरांस्तथा ॥ २४ ॥ इदानीं किंमयाकार्यं भवद्भिःशिववर्जितैः ॥ अत्रान्तरेचयेचान्ये देवास्तत्रसमागताः ॥ २५ ॥ ऋषयोमुनयश्चैव तथानारदपर्व तौ ॥ गङ्गासरस्वतीनद्यो नागायक्षाःसमागताः ॥ २६ ॥ ब्रह्मादिभिःसमालोच्य कथमेतद्भविष्यति ॥२७॥ विष्णुरुवाच ॥

प्रकृतिहै उसको त्याग करनेके लिये कैसे उत्साहकरूं ॥२१॥ व तुमसे ब्रह्मासे और देवताओंसे मैं वरदानके कर्ममें युक्त कियागयाहूँ क्या इसीसमय तुम्हारे आगे देवीजीको छोड़कर मैं भागजाऊं ॥ २२ ॥ व मूल मूर्तिको छोड़कर मैं अकेले घूमताहूं यह कहकर वे शिवदेवजी वहीं अंतर्द्धान होगये ॥ २३ ॥ व उन शिवजीके जानेपर वहां बड़ाभारी क्षोभ हुआ और पार्वतीजीने इन्द्रादिक व ब्रह्मा, विष्णु आदिक देवताओं से कहा ॥ २४ ॥ कि इससमय शिवजीके विना आपलोगोंसे मेरा क्या कार्यहै इसी अवसरमें जो अन्य देवता वहां आयेथे ॥ २५ ॥ और ऋषि, मुनि व नारद, पर्वत तथा गङ्गा सरस्वती आदिक नदियां व जो नाग, यक्ष आये थे ॥ २६ ॥ वे ब्रह्मादिक

देवताओंसमेत समालोचना कर यह बोले कि यह किस प्रकार होगा ॥ २७॥ विष्णुजी बोले कि जहां शिवदेवजी गयेहैं वहां साथही चलिये और थोड़ेही परिश्रमसे वे सब देवता भूतलमें जावैं ॥ २८ ॥ सदाशिवजी राक्षस,दानव व दैत्योंको वर देतेहैं और जो सदैव ईर्षासे संयुतहैं उनकी पीड़ा मुझको करना चाहिये ॥ २९ ॥ व शिवजी, के देखनेपर स्वर्गगामियों की व्यवस्था मुझको करना चाहिये और जो वेदत्रयी के धर्मको छोड़कर अन्य धर्मकी उपासना करते हैं ॥ ३० ॥ वे मनुष्य प्रलयपर्यन्त नरकको प्राप्त होते हैं जब शिवजी दृश्य हुये तब वे शिव पर्वत के वन में पैठगये ॥ ३१ ॥ और पर्वतोंके बीच में बैठकर दिव्य वस्त्रों को त्यागकर व गजचर्म को

सहैवगम्यतांतत्र यत्रदेवोगतःशिवः ॥ स्वल्पायासेनतेसर्वे देवायान्तुधरातले ॥ २८ ॥ रक्षोदानवदैत्यानां वरान्यच्छ[illegible]तिशङ्करः ॥ तेषांबाधामयाकार्या येचस्पर्द्धायुतास्सदा ॥ २९ ॥ दृष्टेशिवेमयाकार्या व्यवस्थास्वर्गगामिनाम् ॥ [illegible]धर्मंपरित्यज्य येन्यंधर्ममुपासते ॥ ३० ॥ तेनरानरकंयान्तियावदाभूतसंप्लवम् ॥ यदादृश्यःशिवोजातःप्रविवेशगिरेर्वनम् ॥ ३१ ॥ गिरीणांमध्यमास्थाय त्यक्त्वादिव्येचवाससी ॥ गजाजिनम्परित्यज्य त्यक्त्वामूर्त्तिंमहेश्वरः ॥ ३२ ॥ भित्त्वाभूमितलंदेवः स्थाणुरूपोबभूवह ॥ यस्मात्स्वयंबभूवेति भवस्तस्मात्स्वयंहरः ॥ ३३ ॥ अत्रान्तरेसुरास्तेनापश्यन्तिमहेश्वरम् ॥ ज्ञानातीतंकलातीतं दिव्यध्यानव्यवस्थितम् ॥ ३४ ॥ ततोदेवाःप्रचलिताः कृत्वागौरींपुरःसराम् ॥ नन्दिभद्रादयःसर्वे देवाइन्द्रादयस्तथा ॥ ३५ ॥ स्कन्देनसहितादेवी सिंहारूढाययौस्वयम् ॥ अभिरुह्यगरुत्मन्तं ययौविष्णुःसनातनः ॥ ३६ ॥ हंसाधिरूढोभगवान् ब्रह्मायातिसपृष्ठतः ॥ ऐरावणंसमारुह्य देवराजोगतःस्वयम् ॥ ३७ ॥

छोड़कर तदनन्तर मूर्तिको त्यागकर महेश्वर ॥ ३२ ॥ देवजी भूमितलको फोड़कर स्तम्भरूप हुये जिस लिये वे आपही हुये इसीकारण शिवजी आपही भव ऐसे नामके हुये ॥ ३३ ॥ इसीअवसरमें वे सब देवता ज्ञानसे परे व कलाओंसेपरे तथा दिव्य ध्यानसे बाहर स्थित महादेवजीको नहीं देखतेथे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर गौरीजीको आगे गामिनीकर देवता चले व नन्दिभद्रादिक सब गण और इन्द्रादिक सब देवता चले ॥ ३५ ॥ और स्वामिकार्तिकेयसमेत देवी पार्वतीजी आपही सिंहपै चढ़कर गईं व गरुड़पै चढ़कर सनातन विष्णुजी गये ॥ ३६ ॥ और हंस पै चढ़कर वे भगवान् ब्रह्माजी पीछेसे चले व ऐरावतपै चढ़कर आपही सुरराजजी गये ॥३७॥ और ब्रह्मा

व सरस्वती देवी और यमुना तथा शरद्वती व देवता आये और सब नाग, यक्ष व किन्नर आये ॥ ३८ ॥ सब संक्षेपसे वहां गये जहां कि महेश्वर देवजी थे और पर्वतके शिखरपै चढ़कर अम्बादेवीजी स्थित हुईं ॥ ३९ ॥ जब ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओंने सब ओर से स्तुति किया तब उन भगवान् सदाशिवदेवजीको उन्होंने देखा ॥ ४० ॥ तदनन्तर सब देवता प्रसन्न हुये और अम्बाजी प्रसन्न हुईं व जो गण थे वे प्रसन्न हुये व पार्वतीदेवी उनसे बोलीं कि हे देव ! तुम कैलासपर्वतपर चलो ॥ ४१ ॥ महादेवजी बोले कि यदि सब देवता प्रसन्न होवैं व गङ्गादिक नदियां प्रसन्न होवैं तो रैवत पर्वतपै विष्णुजी स्थित होवैं व अम्बाजी यहीं स्थित होवैं ॥ ४२ ॥ और

गङ्गासरस्वतीदेवी यमुनाचशरद्वती ॥ देवताश्चागताःसर्वा नागायक्षाश्चकिन्नराः ॥ ३८ ॥ गताःसंक्षेपतःसर्वेयत्रदेवोमहेश्वरः ॥ अभिरुह्यगिरेःशृङ्गमम्बादेवीऽव्यवस्थिता ॥ ३९ ॥ ब्रह्माविष्णुर्यदादेवाः स्तुतिंचक्रुःसमन्ततः ॥ ददृशुस्तंतदादेवं भगवन्तंसदाशिवम् ॥ ४० ॥ ततोहृष्टाःसुराःसर्वे अम्बाहृष्टागणाश्चये ॥ गम्यतान्देवकैलासो देव्यावैसप्रणोदितः ॥ ४१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यदितुष्टाःसुराःसर्वे गङ्गाद्याःसरितस्तथा गिरौरैवतकेविष्णुरम्बाचात्रैवतिष्ठतु ॥ ४२ ॥ गङ्गासरस्वतीपुण्या यमुनात्रव्यवस्थिता ॥ स्वर्णरूपजलंयस्मात्स्वर्णरेखेतिसानदी ॥ ४३ ॥ वस्त्रापथमिदंक्षेत्रं भवोदेवोत्रतिष्ठतु ॥ तीर्थमेतन्मयाप्रोक्तं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ४४ ॥ तत्रस्नातोनरोनारी मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ इतिप्रोक्ताशिवो देवः कलांन्यस्यभवेतदा ॥ ४५ ॥ पश्यतांसर्वदेवानां ययौकैलासपर्वतम् ॥ अम्बेतिस्कन्दवचनात् कलांन्यस्यगिरौ तदा ॥ ४६ ॥ देवेनसहितादेवी वृषारूढाययौस्वयम् ॥ नारायणोगिरौरम्ये स्थितोरैवन्तकेस्वयम् ॥ ४७ ॥ कल्पादौच

गङ्गा, सरस्वती व पवित्र यमुनाजी यहीं स्थित होवैं जिस लिये स्वर्णरूपी जल है उसीकारण वह स्वर्णरेखा नदी है ॥ ४३ ॥ और जो यह वस्त्रापथक्षेत्रहै यहां भवदेवजी स्थित होवैं मैंने भुक्ति मुक्तिको देनेवाले इस क्षेत्रको कहा ॥ ४४ ॥ उसमें नहायाहुआ पुरुष व स्त्री सब पातकोंसे छूटजाती है ऐसा कहकर शिवदेवजी उस समय भवजी मे कलाको धरकर ॥ ४५ ॥ सब देवताओंके देखतेहुये कैलासपर्वत को चलेगये और अम्बा ऐसी भगवती स्वामिकार्त्तिकेयजी के वचन से उससमय पर्वत में कलाको न्यासकर ॥ ४६ ॥ शिवदेवसमेत देवीजी बैलपर चढ़कर आपही चलीगईं व आपही नारायणजी सुन्दर रैवन्तपर्वतपै स्थित हुये ॥ ४७ ॥ और कल्पादि

व युगादि में विष्णुजी सदैव पर्वत पै स्थित रहे व दैत्यों को नाशकर विष्णुजी पर्वत पै बहुत दिनोंतक स्थितरहे ॥ ४८ ॥ और वे विष्णुदेवजी प्रलयपर्यन्त रैवन्त पर्वत पै रमण करते रहे व नारसिंहरूपसे हिरण्यकशिपु मारेगये ॥ ४९ ॥ व उसको मारकर उस समय नृसिंहजी यहां आये व उन्होंने नारसिंहरूपको छोड़ा और महावराह रूपसे उन्होंने हिरण्याक्षको मारा ॥ ५० ॥ व उसीरूपको छोड़कर देवेशजी रैवन्त पर्वतपै स्थित हुये और वे पृथुराजका शरीर कर देवकार्यके लिये ॥ ५१ ॥ सुरपूजित देवजी रैवन्तपर्वत पै बसतेभये व पुरातन समय पृथुजी ने यहां आकर देवपूजन किया ॥ ५२ ॥ तब पृथुजीने कण्ठ में जयमाला डाल दिया और देवेश पृथुजी ने

युगादौच स्थितोविष्णुःसदागिरौ ॥ बहुरात्रंस्थितोविष्णुः कृत्वादैत्यनिबर्हणम् ॥ ४८ ॥ रेमेरैवतकेदेवो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ नारसिंहेनरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ४९ ॥ हत्वातदागतश्चात्रनारसिंहंमुमोचह ॥ महावाराहरूपेण हिरण्याक्षोनिपातितः ॥ ५० ॥ तदेवमुक्त्वादेवेशः स्थितोरैवतकेगिरौ ॥ सपृथुःपार्थिवंकृत्वा देवकार्येणवैन्नृपः ॥ ५१ ॥ गिरौरैवतकेदेवउवाससुरपूजितः ॥ अत्रागत्यपृथुःपूर्वं चक्रेदेवप्रपूजनम् ॥ ५२ ॥ जयमालातदाकण्ठे पृथुनासंनिवेशिता ॥ दामोदरेतिदेवेशो नामचक्रेपृथुःस्वयम् ॥ ५३ ॥ वस्त्रापथेदेववरोभवस्थितो दामोदरोरैवतकेऽयवस्थितः ॥ अम्बेतिदेवीगिरिमूर्ध्निसंस्थिता देवाश्चसर्वेपरितःप्रविष्टाः ॥ ५४ ॥ क्षेत्राधिपास्तीर्थवरस्यरक्षकादेवेनमुक्ताभवसन्निधानतः ॥ पश्यन्ति येदेववरंभवंमुदा मोदन्तितेयान्तिदिवन्नराश्चते ॥ ५५ ॥ वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्यभवस्यचमयातव ॥ उत्पत्तिःकथितादेविकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५६ ॥ शृणोतिपठतेयस्तु कथांचेमांसमाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ५७ ॥

आपही दामोदर ऐसा नाम किया ॥ ५३ ॥ और देवताओं में श्रेष्ठ भवजी वस्त्रापथ क्षेत्रमें स्थित हुये व दामोदरजी रैवन्तपर्वतपै स्थित हुये व अम्बा ऐसी देवी पर्वत के शिखरपै स्थित हुईं और सब देवता चारोंओर बैठगये ॥ ५४ ॥ और क्षेत्रके स्वामी जो उत्तम तीर्थके रक्षकथे वे भवजीके समीप शिवदेवसे मुक्त हुये और जो देवोत्तम भवजीको देखते हैं वे प्रसन्नता से हर्षको पाते हैं व वे मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥ हे देवि ! मैंने वस्त्रापथक्षेत्र व भवजी की उत्पत्ति को तुमसे कहा अन्य क्या सुना चाहती हो ॥ ५६ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस कथाको सुनता या पढ़ता है वह सब पापोंसे छूटकर स्वर्गलोक में पूजा जाता है ॥ ५७ ॥

और ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला, गर्भ या बालघाती व गुरुकी शय्या पै बैठनेवाला स्वर्णरेखानदी के जलमें नहाकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ५८ ॥ और जो कीट पतङ्गादिक स्वर्णरेखा के जलमें मरते हैं वे भी सब पापोंसे छूटजाते हैं और स्वर्णरेखानदी के जलमें नहाकर जो पुरुष सन्ध्योपासन व श्राद्ध करता है ॥ ५९ ॥ वह वस्त्रापथतीर्थ में भवजी को पूजकर ब्रह्मलोक को जाताहै इस प्रकार पुरातन समय वस्त्रापथक्षेत्र में भवजी की उत्पत्ति हुई है ॥ ६० ॥ पार्वतीजी बोलीं कि तीर्थ का माहात्म्य व रैवतपर्वत का माहात्म्य आश्चर्यमय है और वैसेही भवदेव का व वस्त्रापथक्षेत्र का माहात्म्य आश्चर्यरूप है ॥ ६१ ॥ और गङ्गा, सरस्वती, गोमती व

ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्च भ्रूणहागुरुतल्पगः ॥ स्वर्णरेखाजलेस्नातो मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ५८ ॥ येचकीटपतङ्गाद्याः स्वर्णरेखाजलेस्मृताः ॥ स्वर्णरेखाजलेस्नात्वा सन्ध्यांश्राद्धंकरोतियः ॥ ५९ ॥ वस्त्रापथेभवम्पूज्य ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ इतिवस्त्रापथक्षेत्रे भवोत्पत्तिरभूत्पुरा ॥ ६० ॥ पार्वत्युवाच ॥ अहोतीर्थस्यमाहात्म्यं गिरेरैवतकस्यच ॥ भवस्यदेवदेवस्य तथावस्त्रापथस्यच ॥ ६१ ॥ गङ्गासरस्वतीचैव गोमतीनर्मदानदी ॥ स्वर्णरेखाजलेसर्वास्तथाब्रह्मादयःसुराः ॥ ६२ ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुदेवानां देव्यानांनशङ्करस्यच ॥ वासोविरचितस्तत्र यावद्ब्रह्मदिनम्भवेत् ॥ ६३ ॥ क्षेत्रतीर्थप्रभावंच प्रसादाद्भुवनत्रयम् ॥ श्रुतंसविस्तरंसर्वमिदमत्यद्भुतम्मया ॥ ६४ ॥ महेश्वरप्रभोब्रूहि किञ्चकारजनेश्वरः ॥ भोजराजो मृगींप्राप्य सचसारस्वतोमुनिः ॥ ६५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तासुसर्वासुनारीषु रूपौदार्यगुणाधिका ॥ नित्यंप्रमोदितासातु नित्यंमङ्गलकारिका ॥ ६६ ॥ माताचभगिनीपुत्रीस्त्रीषुसम्बन्धिनीतथा ॥ पिताभ्रातागुरुःपुत्रःपुरुषेषुतथाकृता ॥ ६७ ॥

नर्मदानदी ये सब स्वर्णरेखानदी के जलमें हैं वैसेही ब्रह्मादिक देवता स्वर्णरेखा नदी में स्थित हैं ॥ ६२ ॥ और जबतक ब्रह्माका दिन होताहै तबतक वहां ब्रह्मा, इन्द्र व विष्णुदेव का और देवियों का व शङ्करजी का निवास निर्मित कियागया है ॥ ६३ ॥ आपकी प्रसन्नता से मैंने विस्तारसमेत इस बड़े अद्भुत सब क्षेत्र व तीर्थ के प्रभाव को सुना व त्रिलोक को सुना ॥ ६४ ॥ हे प्रभो, महेश्वरजी ! भोजराज नरपाल ने मृगीको पाकर क्या किया है व सारस्वत मुनि ने क्या कियाहै इसको मुझ से कहिये ॥ ६५ ॥ महादेवजी बोले कि उन सब स्त्रियोंमें रूप व उदारता गुणमें अधिक वह स्त्री नित्यही प्रसन्न रहतीथी व नित्य मङ्गलकारिणीथी ॥ ६६ ॥ और

स्त्रियोंमें वह माता, बहन, पुत्री सम्बन्धिनी कीगई तथा पुरुषों में पिता, भाई, गुरु व पुत्र कीगई ॥ ६७ ॥ इस प्रकार गुणवती स्त्रीको पाकर मनुष्यों के स्वामी राजा भोज प्रसन्न हुये व सारस्वतमुनिकी प्रशंसाकर वचनबोले ॥ ६८ ॥ कि हे प्रभो ! तुमने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सूर्य, इन्द्र, अग्नि व पवनगणोंको ब्रह्मचर्य व तपस्या से प्रसन्न कियाहै ॥ ६९ ॥ तुम मेरे परम देवता हो और पिता, माता, गुरु व प्रभुहो कि जिन तुमने मुझसे अन्य जन्मके वृत्तान्तको प्रत्यक्ष कहा ॥ ७० ॥ सौराष्ट्र देशमें बड़ाभारी रैवतकपर्वत प्रसिद्धहै और वस्त्रापथक्षेत्र में स्वयंभू भगवान् प्रसिद्ध हैं ॥ ७१ ॥ और ऊर्जयन्त पर्वतके ऊपर गौरी, स्वामिकार्त्तिकेय व गणनायक हैं

एवंगुणवतींभार्याम्प्राप्यहृष्टोजनेश्वरः ॥ सारस्वतंमुनिंस्तुत्वा राजावचनमब्रवीत् ॥ ६८ ॥ ब्रह्माविष्णुर्हरःसूर्य इन्द्रोग्निर्मरुतांगणाः ॥ ब्रह्मचर्येणतपसा त्वयासन्तोषिताःप्रभो ॥ ६९ ॥ दैवतंपरमंमेत्वं पितामातागुरुःप्रभुः ॥ येनजन्मान्तरंसर्वं प्रत्यक्षंकथितंमम ॥ ७० ॥ सुराष्ट्रदेशेविख्यातो गिरिरैवतकोमहान् ॥ भवःस्वयम्भूर्भगवान् क्षेत्रेवस्त्रापथेश्रुतः ॥ ७१ ॥ ऊर्जयन्तगिरौमूर्द्धि गौरीस्कन्दगणेश्वराः ॥ भवम्भावयतःसर्वे संस्थिताभववासरम् ॥ ७२ ॥ वामनोनगरम्प्राप्य ध्यात्वासिद्धेश्वरंशिवम् ॥ जित्वादैत्यंबलिंबद्ध्वास्वयंरैवतकेस्थितः ॥ ७३ ॥ त्यक्त्वाराज्यंप्रियान्पुत्रान् पत्यश्वरथकुञ्जरान् ॥ पुत्रेराज्यंप्रतिष्ठाप्य गन्तव्यंनिश्चितंमया ॥७४॥ त्वत्प्रसादाच्छ्रुतंसर्वं गम्यतेयदिदृश्यते ॥ सूर्यलोकेसोमलोक इन्द्रलोकेहरिःस्वयम् ॥ ७५ ॥ ब्रह्मलोकमतिक्रम्य यास्येहंशिवमन्दिरम् ॥ ७६ ॥ श्रुत्वाहिवाक्यंविविधंनरेन्द्रात्प्रहृष्टरोमासमुनिर्बभूव ॥ जिज्ञासमानोहिनृपस्यसर्वं निवारयामासमुनिर्नरेन्द्रम् ॥ ७७ ॥ गृहेपिदेवाहरविष्णु

भवजी को ध्यान करतेहुये वे सब शिवजीके दिनतक स्थित रहतेहैं ॥ ७२ ॥ और वामनजी नगरको प्राप्त होकर सिद्धेश्वर शिवजी को ध्यानकर बलि दैत्यको जीत कर व बाँधकर आपही रैवतकपर्वतपै स्थितहुये ॥ ७३ ॥ राज्य व प्यारे पुत्रोंको छोड़कर और पैदल, घोड़े, रथ व हाथियोंको त्यागकर राज्यको पुत्रमें थापकर मुझको निश्चयकर जाना चाहिये ॥ ७४ ॥ तुम्हारी प्रसन्नतासे सब सुनागया और यदि गमन किया जाताहै व सूर्यलोक, चन्द्रलोक तथा इन्द्रलोक में यदि आपही विष्णु देखे जातेहैं ॥ ७५ ॥ तो मैं ब्रह्मलोकको नांघकर शिवमन्दिरको जाऊंगा ॥ ७६ ॥ नरेन्द्र से अनेक भांति के वचनको सुनकर वे मुनि प्रसन्न रोमोंवालेहुये

और राजाके सब वृत्तान्तको जाननेकी इच्छावाले उन मुनिने नरेन्द्र भोजराज को मना किया ॥ ७७ ॥ कि हे राजन् ! घरमें भी शिव व विष्णु आदिक देवताहैं और जल, कुश व तिल हैं इस लिये हे नृपते ! अनेक देशभेदोंके देखने के लिये तुमको भी मन रोकना चाहिये ॥ ७८ ॥ उन मुनिके इसप्रकार वचनको सुनकर नृपश्रेष्ठ भोज उदासीनमुख होकर मुनिके चरणों को पकड़कर बोले कि हे मुने ! तुमको ऐसा न कहना चाहिये क्योंकि मुझको निश्चयकर जाना चाहिये ॥ ७९ ॥ जहां नारायणजी स्थित हैं वहां कैसे जावै यह कहिये व क्या ग्रहण करना चाहिये क्या भोजन करना चाहिये क्या देना चाहिये व क्या नहीं दियाजाता है ॥ ८० ॥

मुख्या जलानिदर्भान्नृपतेतिलाश्च ॥ अनेकदेशान्तरदर्शनार्थं मनोनिवार्यंन्नृपतेत्वयापि ॥ ७८ ॥ इतिश्रुत्वावच स्तस्य मुनेर्नृपतिसत्तमः ॥ विवर्णवदनोभूत्वा प्रगृह्यचरणौमुनेः ॥ मुनेनैवंत्वयावाच्यं गन्तव्यंनिश्चितंमया ॥ ७९ ॥ नारायणःस्थितोयत्र कथयस्वकथंव्रजेत् ॥ किंग्राह्यंकिंचभोक्तव्यं किंदेयंकिन्नदीयते ॥ ८० ॥ तीर्थोपवासःस्नानंच स न्ध्यास्नानविधिक्रमः ॥ पूजानिद्राजपोरात्रौ सर्वंसंक्षेपतोवद ॥ ८१ ॥ सारस्वत उवाच ॥ सौराष्ट्रदेशेगन्तव्यं गिरौरै वतकेयदि ॥ नृपयात्राविधिंवक्ष्ये त्वमेकाग्रमनाःशृणु ॥ ८२ ॥ बृहस्पतिबलंगृह्य सूर्यसन्तर्प्यचोत्तमम् ॥ वामतःपृष्ठतः सर्वं कृत्वासंशोध्यवासरम् ॥ ८३ ॥ चन्द्रलग्नग्रहाञ्ज्ञात्वाबलिष्ठाञ्जन्मराशितः ॥ शकुनंचशुभंबुद्ध्वा प्रस्थातव्यंनृ पैर्नृप ॥ ८४ ॥ तीर्थेसदैवगन्तव्यं सर्वेमासाश्चशोभनाः ॥ तिथयश्चोत्तमाःसर्वाः स्नानदानार्चनादिषु ॥ ८५ ॥ अष्ट

और तीर्थोपवास, स्नान, सन्ध्या व स्नानकी विधिका क्रम और पूजन व रात्रिमें निद्रा का जीतना इस सबको संक्षेपसे कहिये ॥ ८१ ॥ सारस्वत बोले कि हे राजन् ! सौराष्ट्रदेश में यदि रैवतक पर्वत पर तुमको जानाहै तो यात्राकी विधिको मैं कहताहूं तुम एकाग्रमन होकर सुनो ॥ ८२ ॥ कि बृहस्पति के बलको ग्रहणकर व उत्तम सूर्यनारायण को तर्पणकर अन्य सब वाम व पीठपर करके दिनको शोधकर ॥ ८३ ॥ हे राजन् ! जन्मकी राशिसे चन्द्रमा, लग्न व ग्रहोंको बलिष्ठ जानकर व उत्तम शकुन जानकर राजाओं को प्रस्थान करना चाहिये ॥ ८४ ॥ व तीर्थमें सदैव जानना चाहिये और सब महीना उत्तम हैं व स्नान,दान व पूजनादिकों में सब

तिथियां उत्तम हैं ॥ ८५ ॥ और अष्टमी, चौदसि व मासान्त तथा पौर्णमासी दिनमें और संक्रान्ति व ग्रहणसमय में ये काल भवजी के पूजन में कहेहैं ॥ ८६ ॥ और कैलास पर्वत को छोड़कर व देवी पार्वतीजीको व आयेहुये देवताओं को त्यागकर वैशाख में पौर्णमासी तिथिमें पृथ्वीको फोड़कर भवजी हुयेहैं ॥ ८७ ॥ हे देवि! उसी दिन वासुकिने स्वर्णरेखानदीके जलसे सब पापोंको नाशनेवाले मार्गको पायाहै ॥ ८८ ॥ और ऐरावत के पैरसे दबेहुये ऊर्जयन्त महागिरिने गजपाद से टपजेहुये बहुत पवित्र जलको बहाया ॥ ८९ ॥ सब ब्रह्मादिक देवता व गङ्गादिक नदियां वस्त्रापथ महाक्षेत्र में भवजी के भाव से प्राप्तहुये ॥ ९० ॥ हे राजन्! वस्त्रापथक्षेत्रके

म्याञ्चचतुर्दश्यां मासान्तेपूर्णिमादिने ॥ संक्रान्तौग्रहणेकाला एतेप्रोक्ताभवार्चने ॥ ८६ ॥ कैलासंपर्वतंत्यक्त्वा देवींदेवांश्चसङ्गतान् ॥ वैशाखेपञ्चदश्यान्तु भूमिंभित्त्वाभवोऽभवत् ॥ ८७ ॥ तस्मिन्नेवदिनेदेवि स्वर्णरेखानदीजलात् ॥ पन्थानंवासुकिःप्राप सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ८८ ॥ ऐरावतपदाक्रान्त ऊर्जयन्तोमहागिरिः ॥ सुस्रावतोयंबहुधा गजपादोद्भवंशुचि ॥ ८९ ॥ देवाब्रह्मादयःसर्वे गङ्गाद्याःसरितस्तथा ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे भवभावेनसङ्गताः ॥ ९० ॥ वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्य प्रमाणंशृणुभूपते ॥ हरस्यपततोभूमौ पतितंवस्त्रभूषणम् ॥ ९१ ॥ तावन्मात्रंस्मृतंक्षेत्रं देवैर्वस्त्रापथंततः ॥ उत्तरेणनदीभद्रा पूर्वस्यांयोजनद्वयम् ॥ ९२ ॥ दक्षिणेचबलेस्थानमूर्ज्जयन्तींनदीमनु ॥ अपरस्यांपरंनद्योःसङ्गमंवामनात्पुरः ॥ ९३ ॥ एतद्वस्त्रापथंक्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ क्षेत्रस्यविस्तरोज्ञेयो योजनानांचतुष्टयम् ॥ ९४ ॥ वैशाखेपञ्चदश्यान्तु भवम्भावेनपश्यति ॥ पूज्यतेशिवलोकेच स्थीयतेब्रह्मवासरम् ॥ ९५ ॥ अतोवसन्तेसम्प्राप्ते प्रयाणंकुरुभूपते ॥

प्रमाण को सुनिये कि पृथ्वीमें गिरतेहुये शिवजी का वस्त्ररूप भूषण गिरा ॥ ९१ ॥ उसी कारण उतने प्रमाणभर देवताओं से वस्त्रापथक्षेत्र कहागया है उत्तर व पूर्व दिशामें दो योजन पर भद्रा नदीहै ॥ ९२ ॥ और ऊर्जयन्तीनदी के पश्चात् दक्षिणमें बलिका स्थानहै व पश्चिममें वामनसे आगे नदियों का उत्तम सङ्गम है ॥ ९३ ॥ मुक्ति, मुक्तिको देनेवाला यह वस्त्रापथक्षेत्र है और क्षेत्रका विस्तार चार योजन जाननेयोग्य है ॥ ९४ ॥ वैशाखमें पौर्णमासी तिथिमें जो भक्तिसे भवजी को देखता है वह शिवलोक में पूजाजाता है व ब्रह्माके दिनतक स्थित होताहै ॥ ९५ ॥ इस कारण हे राजन्! वसन्त प्राप्त होनेपर यात्रा करो नियमों को ग्रहणकर पवित्र होकर

स्नानकर जितेन्द्रिय ॥ ९६ ॥ जो पुरुष हाथी, घोड़े व रथोंको त्यागकर पैदल जाताहै वह पुष्पकविमान के द्वारा शिवमन्दिर को जाताहै ॥ ९७ ॥ और एक भक्त, नक्त व्रत, अयाचित, भिक्षाहार, जल व फलाहार से ॥ ९८ ॥ तथा उपवास व चान्द्रायणादि कृच्छ्रव्रत से और शाकभोजन से जो जाताहै वह सुन्दरीगणों से वीज्यमान होकर गणों समेत स्वर्गको जाताहै ॥ ९९ ॥ और मार्गमें मलस्नान न करै तथा चरणोंमें उबटन न लगावै क्योंकि मलको धारण किये, पवित्र शरीर व दण्डको हाथ में लिये और जितेन्द्रिय ॥ १०० ॥ व शीत, घाम, जलसे विकल तथा शिवजी के स्मरणमें तत्पर मनुष्य यदि यात्रा करताहै तो वह सूर्यमण्डलको फोड़कर जाता

निगृह्य नियमान्भूत्वा शुचिःस्नातोजितेन्द्रियः ॥ ९६ ॥ गजवाजिरथांस्त्यक्त्वा पादाभ्यांयातियोनरः ॥ पुष्पकेनविमानेन सयातिशिवमन्दिरम् ॥ ९७ ॥ एकभक्तेननक्तेन तथैवायाचितेनच ॥ भिक्षाहारेणतोयेन फलाहारेणवा यदि ॥ ९८ ॥ उपवासेनकृच्छ्रेण शाकाहारेणयातियः ॥ सयातिसुन्दरीवृन्दवीज्यमानोगणैर्दिवि ॥ ९९ ॥ मलस्नानंविनामार्गे पादाभ्यङ्गविवर्जितः ॥ मलधारीशुचितनुर्यष्टिहस्तोजितेन्द्रियः ॥ १०० ॥ शीतातपजलक्लिष्टः शिवस्मरणतत्परः ॥ यदियातिनरोयाति सभित्त्वासूर्यमण्डलम् ॥ १ ॥ नरकादपिस्वपितॄन्मातृतःपितृतस्तथा ॥ अक्षयंसप्तसप्तैव नयेद्देवशिवालयम् ॥ २ ॥ लुण्ठन्भूमौयोयाति मृगचर्मावगुण्ठितः ॥ दण्डप्रमाणभूमेर्वा संख्यांकुर्वन्नरोयदि ॥ ३ ॥ अरण्येनिर्जलेदेशे जलान्नपरिपीडितः ॥ शरणंशङ्करंगत्वा मनोनिश्चलमात्मनः ॥ ४ ॥ सप्तद्वीपवतींपृथ्वीं समुद्रवसनांनृप ॥ सलब्ध्वाबहुभिर्यज्ञैर्यजेद्दत्त्वाचमेदिनीम् ॥ ५ ॥ सप्तभौमविमानस्थो दिव्यदेहोहराकृतिः ॥ निरीक्ष्यमेदिनीं

है ॥ १ ॥ व हे नृपोत्तम ! वह मातृकुल व पितृकुलमे सात सात पुश्तिवाले अपने पितरोंको नरकसे अक्षय शिवालय में प्राप्तही करताहै ॥ २ ॥ और मृगचर्मको पहिने भूमि में लोटता हुआ जो पुरुष जाताहै व यदि दण्डके प्रमाणसे पृथ्वीकी संख्या करता हुआ मनुष्य ॥ ३ ॥ वन व निर्जलदेशमें जल तथा अन्नसे पीड़ित होकर शङ्करजीको शरणके योग्यकर और अपने मनको निश्चल कर यात्रा करता है ॥ ४ ॥ वह हे राजन् ! समुद्र वसनवाली सप्तद्वीपवती पृथ्वीको पाकर बहुत यज्ञोंसे पूजन

करताहै और पृथ्वीको देकर ॥ ५ ॥ सात भूमियोंवाले विमान पै बैठकर दिव्यदेह व शिवाकार वह पृथ्वीको देखकर धीरे धीरे मङ्गलरूप मण्डन (भूपण) को कियें ॥६॥ मृग नयनी के भुजाओं के स्पर्शसमेत स्थूल स्तनों से लग्न होकर मनुष्य गीत व बाजनों के विनोद से सत्यलोक को जाता है ॥ ७ ॥ और भुजाओं का बन्धन कर चरणों को बांधकर जो मनुष्य धीरे २ मौनसे जाता है वह मायाको छोड़कर शिवजी के स्थानको पाता है ॥ ८ ॥ और ब्रह्मघाती या मदिरा पीनेवाला व चोर और गुरुकी शय्या पै जानेवाला व कृतघ्न पातकों से छूटजाता और मरकर वह मुक्ति को पाता है ॥ ९ ॥ व माता, पिता, देश, भाई, स्वजन व बान्धव, ग्राम और

मन्दं कृतमङ्गलमण्डनः ॥ ६ ॥ मृगनेत्राभुजस्पर्शलग्नपीनपयोधरः ॥ गीतवाद्यविनोदेन सत्यलोकंव्रजेन्नरः ॥ ७ ॥ विधायभुजबन्धंवा पादौबद्धाशनैःशनैः ॥ मौनेनमानुषोमायां त्यक्त्वायातिशिवालयम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मघ्नोवासुरापोवा स्तेयीवागुरुतल्पगः ॥ कृतघ्नोमुच्यतेपापैर्मृतोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ मातरंपितरंदेशं भ्रातृस्वजनबान्धवान् ॥ ग्रामंभूमिंगृहंत्यक्त्वा कृत्वाचेन्द्रियसंयमम् ॥ १० ॥ गृहीत्वाशिवसंस्कारं नरोभ्राम्यतिभूतले ॥ द्रष्टुंतीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ ११ ॥ कस्मिंस्तीर्थेशुभेस्थाने स्थित्वासंसारबन्धनम् ॥ अभयंदक्षिणान्दत्त्वा शिवशिवेतिप्रभाषकः ॥ १२ ॥ एकान्तेनिर्जनस्थाने शिवस्मरणतत्परः ॥ यदितिष्ठतितंयान्ति नमस्कर्तुंनराधिपाः ॥ १३ ॥ आयान्तिदेवताःसर्वाः चिह्नंतस्यनिरीक्षितुम् ॥ विमानवृन्दैर्नेतव्यः कदासौपुरुषोत्तमः ॥ १४ ॥ यदातुपञ्चत्वमुपैतिकाले कलेवरंस्कन्धकृतंनरैश्च ॥ निरीक्ष्यमाणःसुरसुन्दरीभिः सनीयमानोमदविह्वलाभिः ॥ १५ ॥ सुरेन्द्रसूर्याग्निधनेशच

भूमिको छोड़कर तथा इन्द्रियों का संयमकर ॥ १० ॥ शिवदीक्षा को लेकर मनुष्य अनेक तीर्थों व पवित्र देवमन्दिरों को देखने के लिये पृथ्वी में घूमता है ॥ ११ ॥ व किसी तीर्थ तथा उत्तम स्थान में स्थित होकर संसार के बन्धनको छोड़ अभय दक्षिणा को देकर हे शिव ! हे शिव ! ऐसा कहनेवाला पुरुष ॥ १२ ॥ यदि एकान्त व निर्जन स्थान में शिवजी के स्मरण में तत्पर होकर टिकता है तो उसको प्रणाम करने के लिये राजालोग जाते हैं ॥ १३ ॥ व सब देवता उसके चिह्नको देखने के लिये आते हैं कि कब यह उत्तम पुरुष विमानगणों से लेजाने योग्य होगा ॥ १४ ॥ और जब काल में उसका शरीर मृत्यु को प्राप्त होताहै व मनुष्यों से कन्धे पै किया

जाता है तब मदसे विकल सुरस्त्रियोंसे देखा जाताहुआ वह लायाजाताहै ॥ १५ ॥ और सुरेन्द्र, सूर्य, अग्नि, कुबेर व चन्द्रमा से भलीभांति पूजाजाता हुआ वह शिव रूपधारी शिवभक्त वेगसे सुरादिलोकों को छोडकर शिवजीके स्थानमें टिकता है ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्विंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । जौन वस्तुके दानसों मिलत अहै फल जौन । कह्यो त्रिशत पच्चीस मेंकथा रुचिर सब तौन ॥ सारस्वतजी बोले कि गङ्गाजल, शहद घृत, कुङ्कुम, अगुरु,

न्द्रैः सम्पूज्यमानःशिवरूपधारी ॥ सुरादिलोकान्प्रविमुच्यवेगाच्छिवालयेतिष्ठतिरुद्रभक्तः ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेप्रभासखण्डेचतुर्विंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सारस्वत उवाच ॥ गङ्गोदकंमधुघृतं कुङ्कुमागुरुचन्दनम् ॥ गुग्गुलंबिल्वपत्राणि बकपुष्पंचयोवहेत् ॥ १ ॥ पादचारीशुचितनुर्भारंस्कन्धेनिधायच ॥ तीर्थेस्नात्वाशिवंविष्णुं ब्रह्माणंशङ्करप्रियम् ॥ २ ॥ दृष्ट्वानिवेदयेद्यस्तु समुक्तःसर्वबन्धनैः ॥ सनरोगणतांयाति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३ ॥ कलत्रमित्रपुत्रैर्वा भ्रातृभिःसुजनैर्जनैः ॥ सहितोन्यनरैर्याति तीर्थेदेवंविचिन्त्यच ॥ ४ ॥ देवमूर्तिंशुभांकृत्वा रथस्थांसुप्रतिष्ठिताम् ॥ चन्दनागुरुकर्पूरैरर्चितांकुङ्कुमेनच ॥ ५ ॥ पूजयन्विविधैःपुष्पैर्धूपदीपादिकैर्नृप ॥ गीतनृत्यैःसवादित्रैर्हास्यैर्लास्यैरनेकधा॥६॥धरित्रींकाञ्चनंगाञ्चजलान्नवसनानिच॥

चन्दन, गुग्गुल, बिल्वपत्र और गूमा के फूलको लेजाता है ॥ १ ॥ और पैदल चलकर पवित्र शरीरवाला जो पुरुष भारको कन्धे पै धरकर तीर्थ में नहाकर शिव, विष्णु व शिवप्रिय ब्रह्माको देखकर निवेदन करता है वह सब बन्धनों से छूटजाता है और वह पुरुष प्रलयपर्यन्त गणत्व को प्राप्त होता है ॥ २ । ३ ॥ और तीर्थमें शिवदेवजी को ध्यानकर स्त्री, मित्र, पुत्र, भाई व स्वजनलोगोंसमेत तथा मनुष्य अन्य मनुष्योंसमेत स्वर्गको जाता है ॥ ४ ॥ और उत्तम देवमूर्त्ति को बनाकर भलीभांति प्रतिष्ठित व रथ पै स्थित चन्दन, अगुरु, कपूर से व कुङ्कुम से रचितमूर्त्ति को ॥ ५ ॥ हे राजन् ! अनेक भांति के पुष्पों से पूजताहुआ मनुष्य धूप,

दीपादिकों से तथा बाजनसमेत गीत, नृत्य, हास्य व अनेक प्रकार के नाट्योंसे पूजकर ॥ ६ ॥ सुवर्णसमेत पृथ्वी, गौ, जल, अन्न, वसन और तृण, इन्धन और प्यारी वाणीको देताहुआ पुरुष यदि जाताहै ॥ ७ ॥ तो देवाङ्गनाओं के हस्तग्राह में ग्रहण कियाहुआ पुरुष नन्दनवनमें प्राप्त होकर जबतक चन्द्रमा व नक्षत्र रहतेहैं तबतक उत्तम भोगोंको भोगता है ॥ ८ ॥ और तीर्थमें जाताहुआ जो पुरुष दैवतीर्थ को न देखकर रोगों से प्राणोंको छोडता है वह देखेहुये तीर्थ के फलको पाता है ॥ ९ ॥ और पुत्रों व मित्रों मे भी अनेक भांति के संसारके दोषों को विवेक कर जो बन्धन से छूटजाताहै वह मनुष्य बुद्धिसे परम प्रधानको जानकर सब तीर्थोंको करता

तृणेन्धनेप्रियांवाणीं यच्छन्यातिनरोयदि ॥ ७ ॥ देवाङ्गनाकरग्राहे गृहीतोनन्दनेवने ॥ प्राप्यभुङ्क्तेशुभान्भोगान् यावदाचन्द्रतारकम् ॥ ८ ॥ तीर्थंचसचरन्योवै रोगैःप्राणान्विमुञ्चति ॥ अदृष्ट्वादैवतंतीर्थं दृष्टतीर्थफलंलभेत् ॥ ९ ॥ संसारदोषान्विविधान्विविच्य पुत्रेषुमित्रेष्वपिमुक्तबन्धः ॥ विज्ञायबुद्ध्यापुरुषंप्रधानं ससर्वतीर्थानिकरोतिदेही ॥ १० ॥ आजन्मजन्मान्तरसञ्चितानि दग्ध्वासपापानिनरोनरेन्द्र ॥ तेजोमयंसर्वगतंपुराणं भवोद्भवंपश्यतिमुच्यतेसः ॥ ११ ॥ तीर्थेविप्रवचोग्राह्यं स्नात्वासन्ध्यार्चनादिके ॥ दर्भांस्तिलान्हविष्यान्नं प्रयुञ्ज्याच्छ्रद्धयाततः ॥ १२ ॥ अगस्त्यंभृङ्गराजञ्च पुष्पंशतदलंशुभम् ॥ कर्पूरागुरुश्रीखण्डं कुङ्कुमंतुलसीदलम् ॥ १३ ॥ तीर्थेसङ्कल्पितंमर्त्यैस्तदनन्त्यंप्रजायते ॥ बिल्वप्रमाणपिण्डानि देयानितीर्थभूमिषु ॥ १४ ॥ ताम्बूलफलनैवेद्यतिलदर्भोदकेनच ॥ मासान्तरेशुक्लपक्षे क्षयाहे

है ॥ १० ॥ व हे नरेन्द्र ! वह मनुष्य जन्मसे लगाकर जन्मके मध्य में इकट्ठा किये हुये पापोंको जलाकर तेजोमय, सर्वव्यापी, संसार को उत्पन्न करनेवाले, पुराण पुरुष को देखताहै और वह मुक्त होजाता है ॥ ११ ॥ तीर्थ में स्नान व सन्ध्या पूजनादिक में ब्राह्मण का वचन ग्रहण करना चाहिये तदनन्तर कुश, तिल व हविष्यान्न को श्रद्धासे प्रयुक्तकरै ॥ १२ ॥ और अगस्त्य, भृंगराज व कमल पुष्प उत्तम है तथा कपूर, अगुरु, चन्दन, कुंकुम व तुलसीदल ॥ १३ ॥ जो तीर्थ में सकल्प कियाजाताहै वह अनन्तताको प्राप्त होताहै और तीर्थकी भूमियोंमे बिल्वके प्रमाणभर पिंडोंको देनाचाहिये ॥ १४ ॥ व तांबूल, फल, नैवेद्य, तिल, कुश व जल

से मासान्तर, कृष्ण व पिता, माताके क्षयाह में ॥ १५ ॥ और गजच्छाया तेरसि व द्रव्य और द्विजोत्तम प्राप्त होनेपर पितरों के ऋणकी मुक्ति के लिये घरमें श्राद्ध करनाचाहिये ॥ १६ ॥ और जो नदीसमुद्र में जाती है उस नदी के समीप घर से सौगुना फल होताहै व हे राजन् प्रभास, पुष्कर, गया व पिंडतारकतीर्थ में ॥ १७ ॥ व हे राजन् ! प्रयाग व गोमती नदी और भव व दामोदरके आगे तथा नर्मदादिक तीर्थों में यदि मनुष्य श्राद्धकरै ॥ १८ ॥ तो सब पातकों से छूटेहुये पितर उत्तम गतिको पातेहैं और वह उत्तम सन्तान को पाकर अति उत्तम भोगोंको भोग कर ॥ १९ ॥ अन्तमें दिव्य विमान पै चढ़कर स्वर्गको जाताहै तथा जातकर्मादिक

मातृपैतृके ॥ १५ ॥ गजच्छायांत्रयोदश्यांद्रव्येप्राप्तेद्विजोत्तमे ॥ गृहेश्राद्धंप्रकुर्वीत पितॄणामृणमुक्तये ॥ १६ ॥ गृहाच्छतगुणंनद्यां यानदीयातिसागरम् ॥ प्रभासेपुष्करेराजन्गयायांपिण्डतारके ॥ १७ ॥ प्रयागेनृपगोमत्यां भवदामोदराग्रतः ॥ नर्मदादिषुतीर्थेषु कुर्याच्छ्राद्धंनरोयदि ॥ १८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताः पितरोयान्तिसद्गतिम् ॥ सन्तानमुत्तमंलब्ध्वा भुक्त्वाभोगाननुत्तमान् ॥ १९ ॥ दिव्यंविमानमारुह्य चान्तेयातिसुरालयम् ॥ जातकर्मादियज्ञेषु विवाहेगृहकर्मणि ॥ २० ॥ देवप्रतिष्ठाप्रारम्भे कूपवाप्यादिकर्मणि ॥ तृप्यन्तिदेवताःसर्वा हृष्यन्तिपितरोनृणाम् ॥ २१ ॥ वृद्धिश्राद्धेकृतेगेहे जायतेसर्वमङ्गलम् ॥ कामःक्रोधश्चलोभश्च मोहोमद्यंमदादयः ॥ २२ ॥ मायामात्सर्यपैशून्यमविवेकोविचारणा ॥ अहङ्कारोयदृच्छाच चापल्यंलौल्यतानृप ॥२३॥ अन्यायसाधनायासप्रमादोद्रोहसाहसम् ॥ आलस्यंदीर्घसूत्रत्वं परदारोपसेवनम् ॥ २४ ॥ अल्पाहारोनिराहारः शोकश्चौर्यंनृपोत्तम ॥ एतान्दोषान्गृहेनित्यं वर्जयन्परिवर्त्त

यज्ञों में, विवाह व गृहकर्म में ॥ २० ॥ व देवताओं की प्रतिष्ठा के प्रारम्भ में व कूप तथा बावली इत्यादि के कर्म में सब देवता तृप्त होतेहैं और मनुष्यों के पितर प्रसन्न होतेहैं ॥ २१ ॥ और वृद्धि श्राद्ध करनेपर घरमें सब मंगल होताहै व काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्य व मदादिक ॥ २२ ॥ व हे राजन् ! माया, मात्सर्य, पिशुनता, अविवेक, अविचार, अहङ्कार, स्वच्छन्दता, चपलता, चंचलता ॥ २३ ॥ अन्याय साधन, परिश्रम, प्रमाद, द्रोह, साहस, आलस्य, दीर्घसूत्रता व पराई

स्त्री का सेवन ॥ २४ ॥ व हे नृपोत्तम ! अत्याहार, निराहार, शोक, चोरी इन दोषों को नित्यही वर्जित करताहुआ जो पुरुष घरमें वर्तमान होताहै ॥ २५ ॥ वह मनुष्य भूमिका व देश तथा नगरका भूषण होताहै और यह श्रीमान् विद्वान् व कुलीन होताहै तथा वही पुरुषोत्तम होताहै ॥ २६ ॥ और कोई घरमें कामादिक से दोषोंको छोड़ने के लिये नहीं समर्थ होताहै और स्नान, संध्या तथा पितरोंका जप, होम व पितरों तथा देवताओंका ॥ २७ ॥ श्राद्ध और देवताका पूजन दोषसे छूटेहुये पुरुष के होताहै प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सरस्वती व समुद्र ॥ २८ ॥ गया व रुद्रपद तथा नर नारायण के आश्रममें व प्रभास पुष्कर, कृष्णा, गोमती और पिंडतारकमें ॥ २९ ॥ व

ते ॥ २५ ॥ सनरोमण्डनम्भूमेर्देशस्यनगरस्यच ॥ श्रीमान्विद्वान्कुलीनोसौ सएवपुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥ कामादिनागृहेदोषान् कश्चित्त्यक्तुंनशक्यते ॥ स्नानंसन्ध्याजपोहोमः पितॄणांपितृदैवतम् ॥ २७ ॥ श्राद्धंदेवस्यपूजाच त्यक्तदोषस्यजायते ॥ प्रयागेचकुरुक्षेत्रे सरस्वत्यांचसागरे ॥ २८ ॥ गयायांवारुद्रपदे नरनारायणाश्रमे ॥ प्रभासेपुष्करेकृष्णे गोमत्यांपिण्डतारके ॥ २९ ॥ वस्त्रापथेगिरौपुण्ये तथादामोदरेनृप ॥ भीमेश्वरेनर्मदायां स्कन्देरामेश्वरादिषु ॥ ३० ॥ उज्जयिन्यांमहाकाले वाराणस्यांचभूर्भुवे ॥ कालिङ्गेमथुरायाञ्च सकृद्यातिनरोयदि ॥ ३१ ॥ सदोषैर्मुच्यतेसर्वैर्ब्रह्महत्यादिभिःकृतैः ॥ अपिकीटःपतङ्गोवा पक्षीश्वाशूकरोपिवा ॥ ३२ ॥ खरोष्ट्रौकुञ्जरोश्वापि मृगसिंहसरीसृपाः ॥ ज्ञानतोज्ञानतोराजंस्तेषुस्थानेषुयेमृताः ॥ ३३ ॥ सर्वेतेपुण्यकर्माणः स्वर्गेभुक्तासुखंबहु ॥ चातुर्वर्ण्येषुतेसर्वे जायन्तेकर्मबन्धनात् ॥ ३४ ॥ कर्मबन्धंविधूयाशु मुक्तियान्तिनराःपुनः ॥ यदितेतीर्थमरणात्स्वर्गस्थानप्रभावतः ॥ ३५ ॥ संप्रा

हे राजन् ! वस्त्रापथतीर्थ तथा पवित्र पर्वतमें और दामोदर, भीमेश्वर, नर्मदा, स्वामिकार्त्तिकेय व रामेश्वरादिक तीर्थों में ॥ ३० ॥ व उज्जयिनी में महाकाल में तथा काशीमें भूर्भुवमें और कालिंग व मथुरामें यदि मनुष्य एकबार जाताहै ॥ ३१ ॥ तो वह कियेहुये ब्रह्महत्यादिक सब दोषोंसे छूटजाताहै व कीट, पतंग, पक्षी, कुत्ता व शूकर भी ॥ ३२ ॥ और गधा, ऊंट, हाथी, घोड़ा, मृग, सिंह व सांप हे राजन् ! जो ज्ञान व अज्ञानसे उन स्थानों में मरतेहैं ॥ ३३ ॥ वे सब पुण्यकर्मी मनुष्य स्वर्ग में बहुत सुखको भोगकर कर्म के बन्धनसे चारोंवर्णों में उत्पन्न होतेहैं ॥ ३४ ॥ और फिर कर्मबन्धनको नाशकर मनुष्य शीघ्रही मुक्तिको पातेहैं और यदि वे तीर्थके

मरने के प्रभावसे स्वर्गस्थानको प्राप्त होतेहैं ॥ ३५ ॥ तो वे भरतखण्डमें प्राप्तहोकर अनेकों आश्चर्य से संयुत और बहुत पर्वतोंसे शोभित कर्मभूमिके बड़ेभारी ऐश्वर्य को पाते हैं ॥ ३६ ॥ जहां कि गंगादिक सब नदियां समुद्रों के साथ मिली हैं और पग २ पै निधान (खज़ाना) हैं व अनेकों तीर्थ हैं ॥ ३७ ॥ जिनके स्मरणही से सब पापों का नाश होताहै और बहुतसे पाताल के मार्गहैं व स्वर्गका मार्ग देखपड़ताहै ॥ ३८ ॥ आकाशमें सूर्यनारायण देख पड़तेहैं व हृदयमें शिवजी देखपड़तेहैं और ध्यान से व ज्ञानके योग से, तपस्या से तथा गुरुके वचन से ॥ ३९ ॥ व सत्य से और साहससे त्रिलोक देखपड़ताहै वेद स्मृति व पुराणों से जो पृथ्वी को

प्यभारतेखण्डे कर्मभूमिमहोदयम् ॥ अनेकाश्चर्यसंयुक्तं बहुपर्वतमण्डितम् ॥ ३६ ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वाः समुद्रैस्सहसङ्गताः ॥ पदेपदेनिधानानि सन्तितीर्थान्यनेकशः ॥ ३७ ॥ येषांस्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ पातालमार्गाबहवः स्वर्गमार्गश्चदृश्यते ॥ ३८ ॥ गगनेदृश्यते सूर्योहृदयेदृश्यतेहरः ॥ ध्यानेनज्ञानयोगेन तपसावचसागुरोः ॥ ३९ ॥ सत्येनसाहसेनैव दृश्यतेभुवनत्रयम् ॥ वेदस्मृतिपुराणैश्च येनपश्यन्तिभूतलम् ॥ ४० ॥ पातालंस्वर्गलोकञ्च वञ्चितास्तेनराइह ॥ येचरन्तिनराःस्त्रीषु कामासक्ताविचेतसः ॥ ४१ ॥ देहोन्यश्चवरस्त्रीणामन्यथातैश्चचिन्तितम् ॥ जन्मभूमिषुयेरक्ता जन्मनेजन्तवःपुनः ॥ ४२ ॥ मुक्तिमार्गात्पुनर्भ्रष्टा जायन्तेपशुयोनिषु ॥ ४३ ॥ धनानिसंप्राप्यवरांश्चकामान्द्विजातिमुख्यायविधायपूजाम् ॥ यच्छन्तिनोनिर्मलचेतसोये नराधमादैवहताम्मृतास्ते ॥ ४४ ॥ देहंसुपुष्टंनिरुजंचयौवनंलब्ध्वा नगङ्गादिषुयान्तियेनरः ॥ जीवन्मृताज्ञानविवर्जिताः खलाःगत्वानपश्यन्तिहरंमहेश्वरम् ॥ ४५ ॥

नहीं देखते हैं ॥ ४० ॥ और जो पाताल व स्वर्गलोक को नहीं देखते हैं वे मनुष्य इस संसार में वंचित होगये और कामदेव में लगेहुये तथा जो मूढ़ पुरुष स्त्रियों में विचरतेहैं ॥ ४१ ॥ उन्होंने यह अन्यथा विचाराहै कि उत्तम स्त्रियोंका शरीर अन्यहै और जो प्राणी फिर जन्मके लिये जन्मभूमियों में स्नेह कियेहैं ॥ ४२ ॥ वे मुक्तिमार्ग से भ्रष्ट होकर फिर पशुयोनियों में उत्पन्न होतेहैं ॥ ४३ ॥ और उत्तम कामनाओं व धनोंको पाकर जो निर्मल चित्तवाले पुरुष उत्तम ब्राह्मण के लिये पूजन कर धनको नहीं देतेहैं दैवसे मारेहुये वे नीचनर मरेहैं ॥ ४४ ॥ और जो मनुष्य पुष्ट शरीर व नीरोग यौवन को पाकर गंगादिक तीर्थों में नहीं जाते हैं वे ज्ञानसे

हित दुष्ट पुरुष जीतेहुये मरेहैं जो कि जाकर महेश्वर सदाशिवजीको नहीं देखतेहैं ॥ ४५ ॥ शुभ व अशुभ कर्मको काटकर तदनन्तर कल्याणकारिणी मुक्तिको चाहै तो यदि यह उत्तम काम मनुष्यों से सदैव न कियाजासकै ॥ ४६ ॥ तो नित्य उठकर स्नान करनाचाहिये व आपही विष्णु तथा महादेवको पूजना चाहिये और सत्य कहना चाहिये व हित करनाचाहिये और अपनी शक्तिसे दान देनाचाहिये ॥ ४७ ॥ और पराये अपवाद(निन्दा) से डरनाचाहिये व पराई स्त्रियोंको वर्जित करै तथा सुवर्ण व पृथ्वी का हरना और ब्राह्मणके द्रव्यको वर्जित करनाचाहिये ॥ ४८ ॥ और ब्राह्मण, स्त्री, राजा, बालक, वृद्ध व तपस्वी तथा पिता, माता व गुरुओंका अप्रिय

छित्त्वाशुभाशुभंकर्म मुक्तिमिच्छेच्छिवान्ततः ॥ इदन्नशक्यतेकर्त्तुंशुभंकार्यंसदानरैः ॥ ४६ ॥ उत्थायोत्थायस्नातव्यं पूज्यौहरिहरौस्वयम् ॥ सत्यंवाच्यंहितंकार्यं दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ ४७ ॥ परापवादभीरुत्वं परदारान्विवर्जयेत ॥ सुवर्णभूमिहरणंब्रह्मस्वस्यविवर्जनम् ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणस्त्रीनरेन्द्राणां बालवृद्धतपस्विनाम् ॥ पितृमातृगुरूणाञ्च नाप्रियं मनसावहेत ॥४९॥ देशकालपरिज्ञानं पात्रापात्रविवेचनम्॥छायातृणान्नवासांसि तक्राग्नीन्धनकाञ्जिकाः ॥५०॥ औषधं शाकमर्थिभ्यो दातव्यंगृहमेधिभिः ॥ एकादशीपञ्चदशीचतुर्दश्याष्टमीषुच ॥ ५१ ॥ अमावस्याव्यतीपाते संक्रान्ते ग्रहणेषुच ॥ वैधृतौपितृमातॄणां क्षयाहेदिवसेषुच॥५२॥ युगादिमन्वादिदिने गृहेकार्योमहोत्सवः ॥ तीर्थेवागमनंकार्यं गृहाच्छतगुणंयतः ॥ ५३ ॥ इन्द्रियाणांजयःकार्यो मद्यद्यूतविवर्जनम् ॥ विवादगमनंयुद्धं गृहीयत्नेनवर्जयेत् ॥ ५४ ॥

मन से न करै ॥ ४९ ॥ और देश व कालका परिज्ञान व पात्र, अपात्र का विवेक करनाचाहिये और छाया,तृण,अन्न,वसन,मठा,अग्नि,इन्धन,काजी (खटाई)॥ ५० ॥ और औषध व शाक गृहस्थों को अर्थियों के लिये देना चाहिये व एकादशी, पौर्णमासी, चौदसि और अष्टमी में ॥ ५१ ॥ व अमावस तथा व्यतीपात, संक्रान्ति और ग्रहण में तथा वैधृति व पिता, माताके क्षयाह दिनों में ॥ ५२ ॥ और युगादि व मन्वादि दिनमें घर में बड़ा भारी उत्सव करना चाहिये व तीर्थमें गमन करना चाहिये क्योंकि वहां घरसे सौ गुना पुण्यहोताहै ॥ ५३ ॥ और इन्द्रियोंका जय करना चाहिये व मदिरा और जुवाको वर्जित करनाचाहिये और गृहस्थ विवादसे गमन व युद्ध

को यत्न से वर्जित करे ॥ ५४ ॥ स्नान, दान, जप, होम, देवपूजन व ब्राह्मणपूजन जो कुछ विधि से इनमें कियागया है वह सब अक्षय होताहै ॥ ५५ ॥ और दूधको देनेवाली, बछड़ासमेत, जवानी और वस्त्र व अलङ्कार से भूषित एक भी कल्पित कीहुई गऊ मुख्य ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ५६ ॥ जो धन्य पुरुष गऊ को देताहै वह मनुष्य भरतखण्ड को भलीभांति प्राप्त होकर व उत्तम जन्मको पाकर सूर्यमण्डल को ॥ ५७ ॥ फोड़कर गवादिकोंसे गम्यमान होकर विमानके द्वारा जाता है और वह सात जन्मों में पापी और इसजन्ममें अधम (नीच) होताहै ॥ ५८ ॥ जो कि ब्राह्मण के लिये एक भी गऊको नहीं देताहै और जो एकगऊको देताहै वह

स्नानंदानंजपोहोमो देवपूजाद्विजार्चनम् ॥ अक्षयंजायतेसर्वं विधिनैतेषुयत्कृतम् ॥ ५५ ॥ एकापिगौःप्रदातव्या वस्त्रालङ्कारभूषिता ॥ दोग्ध्रीसवत्सातरुणी द्विजमुख्यायकल्पिता ॥ ५६ ॥ संप्राप्यभारतंखण्डं मानुषंजन्मचोत्तमम् ॥ धन्योददातियोधेनुं सनरःसूर्यमण्डलम् ॥ ५७ ॥ भित्त्वायातिविमानेन गम्यमानोगवादिभिः ॥ सप्तजन्मनिपापिष्ठ इहजन्मनिचाधमः ॥ ५८ ॥ एकामपिचधेनुंयो विप्रायनददातिवै ॥ एकांददातियोधेनुं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ५९ ॥ यदासौनीयतेबद्धो यममार्गेणकिङ्करैः ॥ तदानन्दासमागत्यस्वंपुत्रमिवपश्यति ॥ ६० ॥ विजित्यहुंकृतेनैव तान्दूतान्दूरतःस्थिता ॥ गौर्दातारंसमादायसायातिशिवमन्दिरम् ॥ ६१ ॥ वृषोधर्मइतिप्रोक्तो येनयुक्तःसमुच्यते ॥ गोषुमध्येपि तन्सर्वान् हरमुद्दिश्यवाहरिम् ॥ ६२ ॥ सूर्यब्रह्मपुरेवासो जायतेब्रह्मवासरम् ॥ गजदानाद्गजेन्द्राणां नीयतेनन्दनंवनम् ॥ ६३ ॥ पृथिव्यांसागरान्तायां असौराजाभविष्यति ॥ गृहंसोपस्करंदत्त्वा विप्रायगृहमेधिने ॥ ६४ ॥ लभतेनन्दने

सब पातकों से छूट जाताहै ॥ ५९ ॥ जब यमदूत इस पुरुषको बांधकर यममार्गमें लेजाते हैं तब नन्दा आकर अपने पुत्रकी नाईं देखती है ॥ ६० ॥ और दूरही स्थित उन यमदूतों को हुङ्कारही से जीतकर वह गऊ दाताको लेकर शिवजीके मन्दिरको जाती है ॥ ६१ ॥ वृष धर्म ऐसा कहा गयाहै कि जिस से युक्त वह पुरुष मुक्त हो जाता है और गौवों के मध्य में सब पितरों को व शिव तथा विष्णुजी को उद्देश कर ॥ ६२ ॥ सूर्य व ब्रह्मपुर में ब्रह्मा के दिन तक याने एक कल्प तक निवास होता है और हाथी के दान से उत्तम हाथियों के नन्दनवन में वह प्राप्त किया जाताहै ॥ ६३ ॥ और समुद्र अन्तवाली पृथ्वी में यह पुरुष राजा होगा और सामग्रीसमेत

घर को गृहस्थ ब्राह्मण के लिये देकर ॥ ६४ ॥ नन्दनवन में सब कामनाओंवाले विमान को पाताहै ॥ ६५ ॥ पृथ्वीमें सुवर्ण उत्तम द्रव्यहै यदि वह दियाजाताहै तो देवता प्रसन्न होतेहैं और सूर्यनारायणभी उसके लिये तबतक सुन्दर विमानको देते हैं जबतक कि वह इसलोक में घूमताहै ॥ ६६ ॥ और चांदी पितरों को बहुत प्यारी है उसको देकर मनुष्य निर्मलता को प्राप्त होताहै और जबतक सप्तर्षि ध्रुव में बँधेहैं तबतक वह चन्द्रमा के लोक में बसताहै ॥ ६७ ॥ और लौंग व कपूर से संयुत ताम्बूलों व फलों को देकर तथा पुष्पों व वस्त्रोंको देकर देवगणोंसमेत वह सुखसे इन्द्र व चन्द्रमाके लोकको जाता है और स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ६८ ॥

दिव्यं विमानंसार्वकामिकम् ॥ ६५ ॥ द्रव्यंपृथिव्यांपरमं सुवर्णं हृष्यन्तिदेवायदिदीयतेतत ॥ सूर्योपितस्मैरुचिरंविमानं ददातितावद्भ्रमतेत्रयावत ॥ ६६ ॥ रूप्यंपितॄणामतिवल्लभंतद्दत्त्वानरोनिर्मलतामुपैति ॥ सोमस्यलोकेवसतेस तावद्ध्रुवे निबद्धाऋषयोपियावत् ॥ ६७ ॥ लवङ्गकर्पूरसमाकुलानि ताम्बूलपर्णानिफलानिदत्त्वा ॥ पुष्पाणिवस्त्राणिसुखेनयाति साकंशशाङ्कंदिविदेववृन्दैः ॥ ६८ ॥ आत्माहाराच्चतुर्भागः सिद्धान्नंयदिदीयते ॥ तदासोपुरुषोराजन् ध्रुवंयाति ध्रुवालये ॥ ६९ ॥ आत्माहारप्रमाणेनप्रत्यहङ्गोषुदीयते ॥ गवाह्निकंतासुदत्त्वानरोयातिशिवालयम् ॥ ७० ॥ खण्डनी पेषणीचुल्हीमार्ज्जनीभिश्चयत्कृतम् ॥ पापंगृहीत्वालयति ददद्भिक्षांदिनम्प्रति ॥ ७१ ॥ ग्रासमात्राभवेद्भिक्षा सा नित्यंयत्रदीयते ॥ तद्गृहंगृहमन्यच्चश्मशानमिवदृश्यते ॥ ७२ ॥ कुम्भान्तोदकसिद्धान्नछत्रोपानतकमण्डलुम् ॥

यदि अपने भोजनसे चौथाई भाग सिद्धान्न दियाजाताहै तो हे राजन्! यह पुरुष निश्चयकर ध्रुवजी के स्थान में प्राप्त होताहै ॥ ६९ ॥ और यदि अपने भोजनके प्रमाण से प्रति दिन गौवों के लिये गवाह्निक दियाजाताहै तो उनके लिये भोजन देकर मनुष्य शिवजीके स्थान को प्राप्तहोताहै ॥ ७० ॥ खंडनी (ओखली आदि) पेषणी (चक्की) व चूल्हा और मार्ज्जनी (झाडू) से जो पाप कियागयाहै उसपापको प्रतिदिन भिक्षा देताहुआ पुरुष नाशकरताहै ॥ ७१ ॥ भिक्षा कवल भर होतीहै और जहां वह भिक्षा नित्य दीजाती है वह घर घरहै और अन्य घर श्मशान की नाईं देख पड़ताहै ॥ ७२ ॥ घट, अन्न, जल, सिद्धान्न, छतुरी, पनहीं,

कमण्डलु, मुंदरी व कपड़ों को देकर मनुष्य स्वर्गको जाताहै ॥ ७३ ॥ हे नरेन्द्र ! थकेहुये को जलपान व प्यासेको जलपान तथा क्षुधासे विकल पुरुष को अन्न देकर सुरागनाओं से स्तुति कियाजाताहुआ वह पुरुष विमान केद्वारा जाताहै ॥ ७४ ॥ सदैव घीसे संयुत भोजन यथाशक्ति देनाचाहिये जिसलिये तन्मय याने अन्नमय प्राणहैं इसीकारण प्राणी उससे प्रसन्न होतेहैं ॥ ७५ ॥ संसार में क्षुधा की पीड़ा बड़ीभारी है व उसकी औषध अन्न कहागयाहै उससे वह शान्तिको प्राप्त होतीहै उसीकारण अन्नदान उत्तमहै ॥ ७६ ॥ व अन्न, वस्त्र, फल, जल, मट्ठा, शाक, घृत, शहद, पत्र, पुष्प, पनहीं, गुदड़ी, दंड, कमंडलु ॥ ७७ ॥ छत्र, पात्र, विद्या, पुस्तक,

अङ्गुलीयकवासांसिदत्त्वायातिनरोदिवि ॥ ७३ ॥ श्रान्तस्यपानंतृषितस्यपानमन्नंक्षुधार्त्तस्यनरोनरेन्द्र ॥ दत्त्वाविमानेनसुराङ्गनाभिः संस्तूयमानस्त्रिदिवंसयाति ॥ ७४ ॥ भोजनंसततंदेयं यथाशक्त्याघृतप्लुतम् ॥ तन्मयाहियतःप्राणास्तस्तुष्यन्तिप्राणिनः ॥ ७५ ॥ क्षुत्पीडामहतीलोके तस्यान्नंभेषजंस्मृतम् ॥ तेनसाशान्तिमायाति अन्नदानंतदुत्तमम् ॥ ७६ ॥ अन्नंवस्त्रंफलंतोयं तक्रंशाकंघृतंमधु ॥ पत्रंपुष्पंतथोपानत्कन्थायष्टिःकमण्डलुः ॥ ७७ ॥ छत्रंपात्रंतथाविद्या पुस्तकंचसुरार्चनम् ॥ कन्याकुशोपवीतानि बीजौषधिगृहाणिच ॥ ७८ ॥ रत्नंक्षेत्रंयज्ञपात्रं योगपट्टञ्चपादुके ॥ कृष्णाजिनंबुद्धिदानंधर्मदेशकथानकम् ॥ ७९ ॥ अनेनसततंदेयंतेनश्रेयोमहान्भवेत ॥ सर्वपापक्षयंकृत्वादातायातिशिवालयम् ॥ ८० ॥ श्राद्धेगृहस्थाभोक्तव्याः कुलीनावेदपारगाः ॥ अक्रोधनाःस्नानशीलाः सुदेशाचारतत्पराः ॥ ८१ ॥ आमन्त्र्यपूर्वदिवसे निरीहाअपियेद्विजाः ॥ अलोलुपाव्याधिहीना नतुयेग्रामयाजिनः ॥ ८२ ॥ तेषांपुराप्रदातव्यं पिण्डदा

देवपूजन, कन्या, कुश, यज्ञोपवीत, बीज़ ओषधि, गृह, ॥ ७८ ॥ रत्न, क्षेत्र, यज्ञपात्र, योगवस्त्र, खड़ाऊं, कृष्णाजिन, बुद्धिदान व धर्म और देशका कथानक ॥ ७९ ॥ सदैव याचक के लिये देनाचाहिये क्योंकि उससे बड़ाभारी कल्याण होताहै और दाता सव पापोंको नाश कर शिवजीके स्थानको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥ श्राद्ध में क्रोधरहित व स्नान करनेवाले तथा उत्तमदेश व आचारमें तत्पर और वेदों के पारगामी कुलीन गृहस्थों को भोजन कराना चाहिये ॥ ८१ ॥ और पहले दिन उन ब्राह्मणों को निमन्त्रण कर जोकि इच्छारहित ब्राह्मण होवैं और लोभी न होवैं व रोगोंसे हीन होवैं और जो ग्रामयाजी न होवैं ॥ ८२ ॥ उनके आगे विधि से पिंडदान

देना चाहिये व श्रद्धा से हीन पुरुष करके कियाहुआ श्राद्ध अन्य से कियाहोताहै ॥ ८३ ॥ इसलिये क्रोध से रहित व श्रद्धासंयुत पुरुषों को श्राद्ध करना चाहिये और वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, पथिक व तीर्थसेवक ॥ ८४ ॥ और अतिथि को विश्वदेव के अन्तमें श्राद्धकर्म में भलीभांति पूजना चाहिये और अपनी शक्तिसे सदैव गृहस्थों से संन्यासी पूजनेयोग्य हैं ॥ ८५ ॥ राजाने उस समस्त वृत्तान्त को सुनकर फिर उन सारस्वत से इस वचन को पूछा ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रयात्रायांदानविधिवर्णनंनामपञ्चविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२५ ॥ ॥ ॥

नंविधानतः ॥ श्राद्धंश्रद्धाविहीनेन कृतमन्यकृतंभवेत् ॥ ८३ ॥ तस्माच्छ्रद्धान्वितैःश्राद्धं कर्त्तव्यंक्रोधवर्जितैः ॥ वानप्रस्थोब्रह्मचारी पथिकस्तीर्थसेवकः ॥ ८४ ॥ अतिथिर्विश्वदेवान्ते सम्पूज्यःश्राद्धकर्मणि ॥ सर्वदायतयःपूज्याः स्वशक्त्यागृहमेधिभिः ॥ ८५ ॥ तदेतत्सकलंश्रुत्वा नृपःपप्रच्छतंपुनः ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रयात्रायांदानविधिवर्णनंनाम पञ्चविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२५ ॥ * ॥ * ॥

सारस्वत उवाच ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे नगरेवामनेपुरा ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तो वसिष्ठोभगवानृषिः ॥ १ ॥ आजगामतपस्तप्तुं स्वर्णरेखानदीतटे ॥ ईशानकोणेनगरात् स्वर्णरेखानदीजले ॥ २ ॥ स्नात्वाध्यात्वाशिवंदेवं प्रणनामसुनिर्यदा ॥ तदारुद्रःसमायातस्त्रिनेत्रोवृषभध्वजः ॥ ३ ॥ महर्षेतवतुष्टोहं किङ्करोमिवदस्वतत् ॥ द्विज उवाच ॥ यदितुष्टोमहादेव वरोदेयोममाधुना ॥ ४ ॥ तदात्रभवतास्थेयं यावदाचन्द्रतारकम् ॥ तत्रस्थानंकरिष्यन्ति येनराःपापकर्मि

दो० । जिमि वस्त्रापथ क्षेत्र महँ भे सोमेश्वर नाथ । कह्यो त्रिशत छब्बीस में सोई उत्तमगाथ ॥ सारस्वत मुनि बोले कि वस्त्रापथ महाक्षेत्र में पुरातन समय वामन नगरमें पुत्रशोकसे संतप्त भगवान् वसिष्ठ ऋषि ॥ १ ॥ स्वर्णरेखा नदी के किनारे तपस्या करने के लिये आये और नगर से ईशान कोण में स्वर्णरेखानदी के जलमें ॥ २ ॥ स्नानकर व शिवदेवजीको ध्यानकर जब उन मुनिने प्रणाम किया तब त्रिलोचन व वृषभध्वज शिवजी आगये ॥ ३ ॥ व बोले कि हे महर्षे ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं क्या करूं उसको कहिये ब्राह्मण बोले कि हे महादेव ! यदि आप प्रसन्न हो व यदि इस समय मुझको वर देने योग्य है ॥ ४ ॥ तो जबतक

चन्द्रमा व नक्षत्र रहैं तबतक आपको यहां टिकना चाहिये और वहां जो पापकर्मी मनुष्य स्नान करैंगे ॥ ५ ॥ हे देव! आपको सदैव उनके पाप का नाश करना चाहिये व जो पापकर्मी मनुष्य त्रिलोचनजी को पूजते हैं ॥ ६ ॥ हे देवेश! उनको तुम विमानों के द्वारा शिवमन्दिर को लावो वैसाही होगा यह कहकर शिवदेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७ ॥ व हिरण्यकशिपुको मारकर महाबलवान् नृसिंहजी ने त्रिलोकको इन्द्रके लिये दिया और आपही कालरुद्रजी चलेगये ॥ ८ ॥ उसके वंशमें बलि पैदा हुआ वह भी महाबलवान् था और अधिक बलवान् बलिने एक छत्र पृथ्वी किया ॥ ९ ॥ व विन खोदी जोती हुई सब पृथ्वी में अन्न पैदा होता था

णः ॥ ५ ॥ तेषांपापक्षयोदेव कर्त्तव्योभवतासदा ॥ नरायेपापकर्माणः पूजयन्तित्रिलोचनम् ॥ ६ ॥ तानानयत्वंदेवेश विमानैःशिवमन्दिरम् ॥ तथेत्युक्त्वाहरोदेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपुंहत्वा नारसिंहोमहाबलः ॥ त्रैलोक्यमिन्द्रायददौ कालरुद्रःस्वयंययौ ॥ ८ ॥ तदन्वयेबलिर्जातः सचातीवमहाबलः ॥ एकातपत्रांपृथिवीं बलिश्चक्रे बलाधिकः ॥ ९ ॥ अकृष्टपच्यासकला पृथिवीसस्यशालिनी ॥ गन्धवन्तिचपुष्पाणि रसवन्तिफलानिच ॥ १० ॥ आस्कन्धफलिनोवृक्षाः पुटकेपुटकेमधु ॥ चतुर्वेदाद्विजाःसर्वे क्षत्रियाःयुद्धकोविदाः ॥ ११ ॥ गोषुसेवापरावैश्याः शूद्राः शुश्रूषणेरताः ॥ कुङ्कुमागुरुलिप्ताङ्गाः सुवेषाःसाधुमण्डिताः ॥ १२ ॥ दारिद्र्यदुःखमरणैर्विमुक्ताश्चिरजीविनः ॥ दीपयोजितभूभागा रात्रावपियथादिवा ॥ १३ ॥ विचरन्तितथामर्त्या देवादेवालयेयथा ॥ पृथिव्यांस्वर्गरूपायां राज्यंचक्रे

व पृथ्वी अन्नोंसे शोभित थी और सुगन्धित पुष्प व रसीले फल होते थे ॥ १० ॥ और वृक्षोंमें मोटे ठसापर्यन्त फल लगते थे व प्रति पत्तेमें शहद होताथा व सब ब्राह्मण चारोंवेदों को पढ़ते थे और सब क्षत्रिय युद्धमें चतुर होतेथे ॥ ११ ॥ और वैश्यलोग गौवोंकी सेवा में तत्पर थे व शूद्र सेवा में लगे हुए थे तथा सब मनुष्य कुंकुम अगुरु को अंगों में लेपन किये व सुन्दर वेषवाले तथा भलीभांति शोभित ॥ १२ ॥ और दारिद्र, दुःख व मरण से मुक्त होकर बहुत दिनतक जीते थे और दीपोंसे योजित पृथ्वी के भाग रात्रिमें भी दिनके समान थे ॥ १३ ॥ व मनुष्य पृथ्वी में वैसेही विचरते थे जैसे कि स्वर्गमें देवता विचरते हैं व स्वर्गरूपिणी पृथ्वी में बलि

ने सुखपूर्वक राज्य किया ॥ १४ ॥ व नित्यही विवाह के बाजनों से शब्दित और यज्ञस्तम्भों से शोभित पृथ्वी को बलिदैत्यने वैसेही भोग किया कि जैसे सुरराज (इन्द्र) स्वर्ग को भोगते हैं ॥ १५ ॥ उस समय बलिने सदैव यज्ञोंसे देवेन्द्रको प्रसन्न किया और देवताओं व दानवों का परस्पर युद्ध नहीं होता था ॥ १६ ॥ और वह एकही राजा था व पृथ्वी में युद्ध नहीं होताथा और शत्रुवों का बखेड़ा नहीं होता था और सिंहों व हाथियों से युद्ध नहीं होताथा ॥ १७ ॥ और सदैव साप व नेउला युद्ध नहीं करते थे और बिलार व मूस युद्ध नहीं करते थे तथा स्थावर व जंगम सब संसार मित्रताको प्राप्त था ॥ १८ ॥ नारदजी त्रिलोकमें भ्रमणकर नन्दन

सुखंबलिः ॥ १४ ॥ नित्यंवैवाहवादित्रैर्नादितांयूपमण्डिताम् ॥ धरित्रीम्बुभुजेदैत्यो देवराजोयथादिवम् ॥ १५ ॥ देवेन्द्रोबलिनानित्यं यज्ञैःसन्तोषितस्तदा ॥ देवानांदानवानांच नास्तियुद्धंपरस्परम् ॥ १६ ॥ एकएवमहीपालो युद्धंनास्तिधरातले ॥ सापत्निकंकलिर्नास्ति युद्धंचहरिभिर्गजैः ॥ १७ ॥ नसर्पनकुलौनित्यं नबिडालश्चमूषकः ॥ मैत्रीभावंगतंसर्वंजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यभ्रमणंकृत्वा नारदोनन्दनेवने ॥ गतोनपश्यतेयुद्धं त्रैलोक्येसचराचरे ॥ १९ ॥ तावत्तस्योदरेपीडा महतीसमजायत ॥ नमेस्नानादिनाकार्यं तर्पणैःकिंप्रयोजनम् ॥ २० ॥ जपहोमादिनासर्वमन्यथाममचेष्टितम् ॥ यत्स्नानंयत्रयुध्यन्ते गजोदन्तविघट्टनैः ॥ २१ ॥ सासन्ध्यायत्रनिहतैः कबन्धैर्भूर्विभूषिता ॥ कुन्तघातविनिर्भिन्ना गजकुम्भोद्भवापगा ॥ २२ ॥ तृप्यन्तियत्रक्रव्यादास्तर्पणंतन्ममप्रियम् ॥ पूजाद्यायत्रदृश्यन्ते निहताःक्षत्रियारणे ॥ २३ ॥ सहोमोयत्रहन्यन्ते नागाश्वनरपुङ्गवाः ॥ शस्त्राग्नौनारदस्यायं होमस्त्रैलोक्यविश्रु

वनमें गये और उन्होंने चराचरसमेत त्रिलोक में युद्ध को नहीं देखा ॥ १९ ॥ तब तक उन नारदजीके पेटमें बड़ी पीड़ा उत्पन्न हुई कि मेरा स्नानादिकसे कार्य नहीं है व तर्पणों से क्या प्रयोजन है ॥ २० ॥ व जप, होमादिक से क्या है क्योंकि मेरा सब व्यवहार अन्यथा है क्योंकि जहां हाथी दांतोंके घिसने से लड़ते हैं वह स्नानहै ॥ २१ ॥ और वह संध्याहै जहां कि मारेहुए कबन्धोंसे पृथ्वी भूषितहै और भालोंके मारनेसे कटेहुए हाथी के शिरोभाग से उपजीहुई नदी है ॥ २२ ॥ और जहां राक्षस तृप्त होते हैं वह तर्पण मुझको प्यारा है और जहां युद्ध में मरेहुए क्षत्रिय देख पड़ते हैं वह पूजाहै ॥ २३ ॥ और वह होम है जहां कि हाथी, घोड़े व

उत्तम मनुष्य मारेजाते हैं शस्त्ररूपी अग्नि में यह नारदका होम त्रिलोक में प्रसिद्धहै ॥ २४ ॥ और यदि लटकाये व कटेहुए पांव, शिर और हाथोंसे अन्तर न होवै वरन सब आच्छादित किया जावै तो वह भूमितल कहाजाताहै॥ २५॥ स्वर्ग में देवताओं से मेरा क्या कार्यहै व पृथ्वी में मनुष्योंसे मेरा क्या प्रयोजन है और पातालमें नागों से मेरा क्या प्रयोजन है जो कि वे परस्पर युद्ध न करैं॥ २६ ॥ मैं वैसाही करूंगा कि जिसप्रकार देवेन्द्र (इन्द्र) पृथ्वी से स्वर्ग में जावैं और बलि रसातलको जावै व मेरा वचन सत्य होवै ॥ २७ ॥ और जब बलि जीवनव राज्य से दामोदर विष्णुजीको उपायसे प्रसन्न करैगा तब यह इन्द्र होगा ॥ २८॥ और

तः ॥ २४ ॥ छिन्नपादशिरोहस्तैरन्तरन्नविलम्बितैः ॥ तदुच्यतेभूमितलं सकलंछाद्यतेयदि ॥ २५ ॥ किंदेवैर्दिविमेकार्यं किंमनुष्यैर्धरातले ॥ पन्नगैःकिन्नुपाताले नयुध्यन्तेपरस्परम् ॥ २६ ॥ तथाकरिष्येदेवेन्द्रो दिवियातुधरातलात् ॥ रसातलंबलिर्यातु सत्यमस्तुवचोमम ॥ २७ ॥ जीवितेनापिराजेन यदादामोदरंहरिम् ॥ तोषयिष्यतियत्नेन तदेन्द्रोसौ भविष्यति ॥ २८ ॥ देवेन्द्रोवृत्रहाभूत्वा भ्रष्टराज्योभविष्यति ॥ यदावस्त्रापथेगत्वा भवंभावेनपूजयेत ॥ २९ ॥ सुराधिपस्तदाभूयो ब्रह्महत्याविवर्जितः ॥ अनेनमन्त्रजाप्येन सशान्तोदरवेदनः ॥ ३० ॥ नारदोदेवराजस्य समीपंसहसाययौ ॥ सिंहासनंसमारूढो नन्दनेसंस्थितोहरिः ॥ ३१ ॥ आस्तेपरिवृतोदेवैर्देवराजोमहाबलः ॥ निरीक्ष्यमाणोपवने नृत्यन्तींसुरसुन्दरीम् ॥ ३२ ॥ ददर्शदेवआयान्तं नारदंविस्मयान्वितः ॥ अहोविरूपोभगवान् नारदोदृश्यतेमया ॥ ३३ ॥ नृत्यतेकिन्नवाभृत्यैर्गीयतेकिंनसाम्प्रतम् ॥ वाद्यतांतालमानैःकिं यावच्चिन्तापरोहरिः ॥ ३४ ॥ ऋषिःसमागत

देवेन्द्र वृत्रघाती होकर राज्य से भ्रष्ट होंगे व जब वे वस्त्रापथ तीर्थ में जाकर भवजी को भक्ति से पूजैंगे ॥ २९ ॥ तब फिर सुरनायक ब्रह्महत्या से रहित होवैंगे इस मंत्र जप याने सम्मतिसे शान्त पेटपीड़ावाले ॥ ३० ॥ वे नारदजी सहसा सुरराजके समीपगये और सिंहासन पै बैठेहुए इन्द्र नन्दनवनमें स्थितथे॥ ३१ ॥ व उपवनमें नाचतीहुई सुरसुन्दरी को देखते हुये महाबलवान् इन्द्रजी देवों से घिरेहुए बैठेथे॥ ३२ ॥ व इन्द्रदेवजी ने आतेहुए नारदको देखा व इन्द्रजी विस्मयसंयुक्त हुए कि अहो भगवान् नारदजी मुझको विरूप (उदास) देख पड़ते हैं ॥ ३३ ॥ इससमय सेवकलोग क्यों नहीं नाचते हैं व क्यों नहीं गाते हैं क्या तालके प्रमाणोंसे बजाया

जावै इस प्रकार इन्द्रजी जबतक चिन्तामें तत्पर हुए ॥ ३४ ॥ तबतक जलके अभिषेक में तत्पर ऋषि (नारदजी) आगये और इन्द्रजी सिंहासनको छोड़ उठकर आगे स्थित हुए ॥ ३५ ॥ और इन्द्रजी स्वागत से अभिवन्दन कर नारदसे बोले कि हे महर्षे ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ आज तुम कहां से आतेहो ॥ ३६ ॥ और स्नान, संध्या, पूजन व होममें तुम्हारा कुशलहै इसप्रकार कहेहुए नारदजी ने हँसकर इन्द्रजीसे कहा ॥ ३७ ॥ कि यदि यह होवै तो अन्य वस्तुसे मेरा क्या प्रयोजनहै तुम्हारा स्थान देखने योग्यहै और मैं युद्धको नहीं देखताहूं ॥ ३८ ॥ जब तक बलिका राज्यहै तबतक तुमसे मेरा प्रयोजन नहीं है सूर्यादिक सब ग्रह कालके

स्तावज्जलाभ्युत्तणातत्परः ॥ सिंहासनंपरित्यज्य समुत्थायाग्रतःस्थितः ॥ ३५ ॥ स्वागतेनाभिवन्द्याथ बभाषेनारदंह रिः ॥ महर्षेस्वागतंतवद्य कुतोवागम्यतेत्वया ॥ ३६ ॥ स्नानेसन्ध्यार्चनेहोमे कुशलंतवविद्यते ॥ इतिप्रोक्तोविहस्याथ बभाषेनारदोहरिम् ॥ ३७ ॥ यदेतज्जायतेमह्यं किमन्येनप्रयोजनम् ॥ प्रेक्षणीयश्चतेस्थानं नाहंपश्यामिसंयुगम् ॥ ३८ ॥ यावद्राज्यंबलेस्तावत्त्वयामेनप्रयोजनम् ॥ आदित्याद्याग्रहाःसर्वे कालमानेनयोजिताः ॥ ३९ ॥ आहुत्याप्लाविताभेघा वर्षन्तेहत्रिषाभुवि ॥ रोगादिमरणंनास्ति यमोधर्मेणपीडितः ॥ ४० ॥ एकातपत्राम्बुभुजेनराधिपस्त्रैलोक्यनाथेतिमहा नृपेति ॥ सङ्ग्रामविद्याकुशलेतिनित्यं त्रैलोक्यलक्ष्मीकुचकामुकेति ॥ ४१ ॥ संस्तूयतेचारणवृन्दपद्यैर्ब्रह्मेतिकृष्णेतिह रेतिभूमौ ॥ इन्द्रेतिसूर्येतिधनाधिपेति देवारिनाथेतिसुराधिपेति ॥ ४२ ॥ सगीयतेपठ्यतेदैत्यवृन्दैर्युद्धंविनादैत्यगणा हसन्ति ॥ मत्ताःप्रमत्ताःकरिणोनदन्ति रथादिरूढाःपुरुषाभवन्ति ॥ ४३ ॥ सेनाधिपाःस्त्रीषुगृहेरमन्तियज्ञाग्निधूमेननभो

प्रमाणसे योजितहैं ॥ ३९ ॥ हव्य की आहुति से तृप्त किये हुए मेघ पृथ्वी में बरसते हैं व रोगादिकों से मरण नहीं होताहै और यमराज धर्मसे पीड़ितहोतेहैं ॥ ४० ॥ नराधिप (बलि) ने त्रिलोकको भोग किया व हे त्रिलोकनाथ, हे महाराज, हे संग्राम विद्यामें प्रवीण, हे त्रिलोककी लक्ष्मी के कुचोंके कामुक ! इस प्रकार ॥ ४१ ॥ चारणवृन्दके छन्दों से बलिकी स्तुति की जाती है व हे ब्रह्म, हेकृष्ण, हे हर, हे इन्द्र, हे सूर्य, हे धनाधिप, हे दैत्यनाथ, हे सुरनायक ! इसप्रकार पृथ्वी में ॥ ४२ ॥ वह बलि दैत्यगणोंसे गान कियाजाताहै व पढ़ाजाताहै और विना युद्ध के दैत्यों के गण हँसतेहैं व मतवाले तथा उन्मत्त हाथी गरजतेहैं व पुरुष रथादिकों पै सवार

होतेहैं ॥ ४३ ॥ और सेनापति घरमें स्त्रियों के मध्यमें रमण करतेहैं व यज्ञकी अग्नि के धुँवा से आकाश व्याप्त न हुआ व सुवर्णरूपिणी पृथ्वी शोभित है और बलिका स्थान दैत्यगणों से शोभितहै ॥ ४४ ॥ व बलि तुमको सुरनायक नहीं जानताहै और सब देवता बलिके यज्ञभोजी हुयेहैं तबतक तुम्हीं हृदय में आपही विचार करो कि मैंने तुमसे यह योग्य कहाहै ॥ ४५ ॥ रंभा स्वर्ग में नहीं सोहती है और मेनका तुमको नहीं मानतीहै व हे सुरेश्वर ! तिलोत्तमा बलिके राज्यमें प्राप्त हुई है ॥ ४६ ॥ और उर्वशी व जो उर्वराहै वह और सुकेशी तुमसे नहीं बोलती है और मंजुघोषा बलिके स्थानमें है व तुमको नहीं देखती है ॥ ४७ ॥ और पुलोमा बलिके विना

नजातम् ॥ सुवर्णरूपापृथिवीविराजतेधिष्ठानंबलेर्दैत्यगणैश्चशोभते ॥ ४४ ॥ बलिर्नजानातिसुराधिपन्त्वां सुराश्चस र्वेबलियज्ञभोजिनः ॥ त्वमेवतावद्धृदिचिन्तयस्वयं युक्तंतवेदंकथितंमयेति ॥ ४५ ॥ रम्भानराजतेस्वर्गे मेनकात्वांनम न्यते ॥ तिलोत्तमाकिलप्राप बलिराज्यंसुरेश्वर ॥ ४६ ॥ उर्वशीचोर्वरायातु सुकेशीत्वांनभाषते ॥ मञ्जुघोषाबलेः स्थाने नत्वांसानिरीक्षते ॥ ४७ ॥ पुलोमापुलकोद्भेदं नकरोतिबलिंविना ॥ पौलोमीपुरतोगत्वा बलिंस्तौतिवसुन्धरा ॥ ४८ ॥ नारदःपर्वतश्चैव हाहाहूहूश्चतुम्बुरुः ॥ बलिराज्यंप्रशंसन्ति तदेवंकथितंमया ॥ ४९ ॥ बृहस्पतिर्यदाचष्टे नतद्वा च्यंमयातव ॥ इन्द्राणीबलिनंमत्वा बलिंचित्रेषुपश्यति ॥ ५० ॥ अनेनवाक्येनसुराधिपस्तु चचालकोपात्त्वरितस्त दानीम् ॥ गजेतिवज्रेतिजगादसूतं समानयत्वंहिरथंचसारथे ॥ ५१ ॥ रथेनसूर्योमरुतोगजेन वृषेणरुद्रोमहिषेणसौरिः ॥ वाद्यन्तुवाद्यानिरणायमेद्य चण्डीगणेशास्त्वरिताःप्रयान्तु ५२ ॥ दृष्ट्वासुरेन्द्रंसंक्रुद्धं बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ऋषिमध्ये

रोमांच नहीं करताहै और इन्द्राणी व पृथ्वी आगे जाकर बलिकी स्तुति करतीहै ॥ ४८ ॥ और नारद, पर्वत, हाहा, हूहू, व तुंबुरु बलिके राज्यकी प्रशंसा करतेहैं उसी को मैंने कहा ॥ ४९ ॥ व जो बृहस्पति ने कहाहै वह मुझसे तुमसे नहीं कहने योग्यहै ॥ और इन्द्राणी बलवान् मानकर बलिको चित्रों में देखती है ॥ ५० ॥ इस वचन से सुरनायक इन्द्रजी उससमय शीघ्रतासंयुत होकर क्रोधसे चले व सारथीसे यह बोले कि हे सारथे ! हाथी, वज्र व रथको तुमलाओ ॥ ५१ ॥ और सूर्यनारायण रथ से, पवन हाथीसे, शिवजी बैलसे और यमराज भैंसे के बाहन समेतचलैं और आज मेरे युद्धकेलिये बाजन बाजैं व चण्डीगणनायक शीघ्रता समेत चलैं ॥ ५२ ॥

को सुनकर व आपही चित्तसे विचारकर विष्णुजी ने वैसाही करूंगा ऐसा उन इन्द्रजी से यह कहकर मुनियों से कहा ॥ ७३ ॥ कि हे ऋषियो ! आपलोग वहां जाइये व महायज्ञको कराइये मैं वहां आऊंगा और उस बलिको साधन करूंगा ॥ ७४ ॥ इसप्रकार कहेहुये वे सब मुनि यज्ञमण्डपमें गये और सर्वस्व दक्षिणावाला बारह दिन का महायज्ञ प्रारम्भ हुआ ॥ ७५ ॥ और शुक्रजीने यज्ञ के कर्म में सब मुनियों को बुलाया व बहुतही प्रसन्न बलिने यज्ञ में अनेक भांति के दानों को दिया ॥ ७६ ॥ व सबोंके लिये सोनेके पात्रों में बहुत भोजन दियाजाताथा व अतिथि और विद्वान् ब्राह्मण सर्वस्व से भी पूजाजाता था ॥ ७७ ॥ क्योंकि

नः ॥ ७३ ॥ ऋषयस्तत्रगच्छन्तु कारयन्तुमहामखम्॥ अहंतत्रागमिष्यामि साधयिष्यामितंबलिम् ॥ ७४ ॥ इत्युक्ता मुनयःसर्वे गतास्तेयज्ञमण्डपे॥ द्वादशाहोमहायज्ञः प्रारब्धःसर्वदक्षिणः ॥ ७५ ॥ शुक्रेणामन्त्रिताःसर्वे मुनयोयज्ञकर्मणि ॥ अतिहृष्टोबलिर्यज्ञे ददौदानान्यनेकधा॥७६॥ स्वर्णपात्रेषुसर्वेभ्यो दीयतेभोजनंबहु ॥ अतिथिर्ब्राह्मणोविद्वान्सर्वस्वेनापिपूज्यते ॥७७॥ दानाद्यज्ञोभवेत्पूर्णो दानहीनोवृथाभवेत ॥ सौराष्ट्रदेशेविख्यातं क्षेत्रंवस्त्रापथंनृप ॥७८॥ तस्यदक्षिणदिग्भागे बलेरस्तिमहामखः ॥ क्षेत्राद्बहिःसमारब्धो यज्ञःसर्वस्वदक्षिणः ॥ ७९ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु विष्णुर्वामनतांगतः ॥ मध्यदेशेचतुर्वेदी ब्राह्मणस्तीर्थयात्रया ॥ ८० ॥ महोदरोह्रस्वभुजः ह्रस्वपादोमहाशिराः ॥ महाहनुःस्थूलकण्ठः स्थूलजङ्घोतिलम्पटः ॥ ८१ ॥ श्वेतवस्त्रोबद्धशिखः छत्रोपानत्कमण्डलुः ॥द्रष्टुंतीर्थान्यनेकानि

दान से यज्ञ पूर्ण होता है व दानसे रहित यज्ञ वृथा होताहै, हे राजन् ! सौराष्ट्र देश में वस्त्रापथक्षेत्र प्रसिद्ध है ॥ ७८ ॥ उसके दक्षिण दिशा के भाग में बलि का महायज्ञ होताहै क्षेत्रसे बाहर सर्वस्व दक्षिणावाला यज्ञ प्रारम्भ हुआहै ॥ ७९ ॥ इसी अवसरमें विष्णुजी वामनरूप को प्राप्त हुये व चतुर्वेदी ब्राह्मण वामनजी तीर्थ यात्रा से मध्यदेश में गये ॥ ८० ॥ और बड़े पेटवाले तथा छोटी भुजाओंवाले व छोटे चरण और बड़े भारी शिरवाले और बड़ी ठोढ़ी व मोटे कण्ठवाले तथा मोटी जङ्घावाले व बड़े लम्पट ॥ ८१ ॥ और सफेद वसनको पहने,शिखाको बाँधे व छतुरी, पनहीं और कमण्डलुको धारण किये वे वामनजी अनेकों तीर्थों को देखने

के लिये पृथ्वी में घूमते भये ॥ ८२ ॥ और वे ब्राह्मण वामनजी सौराष्ट्र देश में वस्त्रापथक्षेत्र में प्राप्तहुये व स्वर्णरेखा नदी के किनारे वामनजीने चिन्तवन किया ॥ ८३ ॥ कि पहले भवजी को देखकर क्या सोमेश्वर शिवजी के समीप जाऊं अथवा पहले सोमेश्वरजी को पूजकर पश्चात् भवनामक शिवजी के समीप जाऊं ॥ ८४ ॥ इसप्रकार चिन्तामें परायण होकर चित्तसे कार्य का भलीभांति चिन्तवनकर कहा कि यहां स्थित सोमनाथजीको मैं निश्चयकर पूजन करूंगा ॥ ८५ ॥ वस्त्रापथ महाक्षेत्र में जिसप्रकार भव व सोमेश्वरजीको सदैव मनुष्य पूजैं मुझको निश्चयकर वैसाही करना चाहिये ॥ ८६ ॥ देशों के मध्य में उत्तम देश व पर्वतों के मध्यमें उत्तम पर्वत

बभ्रामसमहीतले ॥ ८२ ॥ सौराष्ट्रदेशेसंप्राप्तः क्षेत्रेवस्त्रापथेद्विजः ॥ स्वर्णरेखानदीतीरे चिन्तयामासवामनः ॥ ८३ ॥ प्रथमंकिंभवन्दृष्ट्वा यामिसोमेश्वरंशिवम् ॥ अथसोमेश्वरंपूज्य पश्चाद्यास्येभवंशिवम् ॥ ८४ ॥ इतिचिन्तापरोभूत्वा कृत्यंसञ्चिन्त्यचेतसा ॥ अत्रस्थितंसोमनाथं पूजयिष्यामिनिश्चितम् ॥ ८५ ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे भवंसोमेश्वरंयथा ॥ पूजयन्तिजनानित्यं तथाकार्यंमयाध्रुवम् ॥ ८६ ॥ देशानामुत्तमोदेशो गिरीणामुत्तमोगिरिः ॥ क्षेत्राणामुत्तमंक्षेत्रं नदीनामुत्तमासरित् ॥ ८७ ॥ दिव्यंवनंवनानान्तु देवानामुत्तमोत्तमः ॥ यदासोमेश्वरोदेवो भूमिंभित्त्वाभविष्यति ॥ ८८ ॥ तदाभूमण्डलेदिव्यं क्षेत्रमेतद्यवाधिकम् ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यामग्निसाधनतत्परः ॥ ८९ ॥ ऊर्द्ध्वबाहुःसूर्यकान्तो भवं यावत्सपश्यति ॥ मध्यंदिनेपरंयाते दिननाथेविलम्बिते ॥ ९० ॥ अग्निनातापसन्तप्तः तावत्पश्यतिशङ्करम् ॥ सोमनाथंशिवंशान्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ ९१ ॥ वर्षेणपुष्पमिश्रेण जलमिश्रेणभामिनि ॥ भूमिंभित्त्वामहादेवः स्वयंसो

है और क्षेत्रों के मध्यमें उत्तम क्षेत्र व नदियों के मध्य में उत्तम नदी है ॥ ८७ ॥ और वनों के मध्य में दिव्य वन व देवताओं के मध्य में उत्तमोत्तम देवता है जब भूमि को फोड़कर सोमेश्वर देवजी होवेंगे ॥ ८८ ॥ तब पृथ्वीमण्डल में यह यवाधिक दिव्य क्षेत्र होगा चैत महीने में शुक्ल पक्ष की चौदसि में अग्निसाधन में तत्पर ॥ ८९ ॥ व ऊपर भुजाओं को उठाकर सूर्यनारायण के समान सुन्दर वे वामनजी जबतक भवजी को देखैं तबतक सूर्यनारायण को दुपहरके इसपार प्राप्त होने पर व विलम्बित होनेपर ॥ ९० ॥ अग्नितापसे संतप्त अंगवाले वामनजीने सब देवताओंसे नमस्कार कियेहुये शान्त सोमनाथ शिवजीको देखा ॥ ९१ ॥ व हे भामिनि !

वैसेही वस्त्रापथ तीर्थ में भवजी के आगे महाबलवान् कालमेघ स्वर्णरेखा नदी के किनारे निरूपित हुआ ॥ ३१ ॥ पुरातन समय वामनजी ने आपही जाकर सब लोकों के उपकार केलिये तीर्थ में स्नान किया व क्षेत्रपालों को भलीभांति पूजन किया ॥ ३२ ॥ व हे नृपेन्द्र ! पुरातन समय युगादि में सब देवता आये व सुराष्ट्र देश में पवित्र रैवतकपर्वतपै भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ३३ ॥ उस समय सब लोकोंकी रक्षा के लिये व सुरशत्रुवों के मारने के लिये सुरोत्तमों ने विष्णुजी के गले में जयमाला को छोड़दिया ॥ ३४ ॥ उसी कारण विष्णुजी का दामोदर ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ उस समय पहले कातिक के शुक्लपक्ष में विष्णुप्रिय दिन में ॥ ३५ ॥

स्वयंवस्त्रापथेचैव भवस्याग्रेनिरूपितः ॥ स्वर्णरेखानदीतीरे कालमेघोमहाबलः॥३१॥ सर्वलोकोपकारार्थं तीर्थेसंस्नपितम्पुरा ॥ वामनेनस्वयंगत्वा क्षेत्रपालाःसुपूजिताः ॥ ३२ ॥ पुरायुगादौराजेन्द्र सर्वेदेवाःसमागताः ॥ सुराष्ट्रदेशेसंप्राप्ताः पुण्येरैवतकेगिरौ ॥ ३३ ॥ रक्षार्थंसर्वलोकानां वधार्थंदेववैरिणाम् ॥ विष्णोःकण्ठेतदामुक्ता जयमालासुरोत्तमैः ॥ ३४ ॥ दामोदरेतिविख्यातमभून्नामततोहरेः ॥ तदादौकार्त्तिकेशुक्ले वासरेविष्णुवल्लभे ॥ ३५ ॥ उपोषसहितैर्देवैस्त त्तीर्थंवैष्णवोत्तमम् ॥ सर्वतीर्थमयीपुण्या स्वर्णरेखानदीस्थिता ॥ ३६ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदापुण्या विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ क्षालनंसर्वपापानां रोगदारिद्र्यनाशनम् ॥ ३७ ॥ दामोदरेरैवतके परमानन्ददायकम् ॥ येपश्यन्तिविमानैस्ते नीयन्तेविष्णुमन्दिरे ॥ ३८ ॥ नगृहेकार्त्तिकःकार्यो विशेषाद्भीष्मपञ्चकम् ॥ ३९ ॥ पञ्चसुद्वादशीश्रेष्ठा ज्ञेयादामोदरे

देवताओं समेत विष्णुजीने उपास किया वह तीर्थ वैष्णवों को उत्तमहै और स्वर्णरेखा नदी समस्त तीर्थमयी तथा पवित्र स्थितहै ॥ ३६ ॥ और वह पवित्र नदी भुक्ति, मुक्ति को देनेवाली है और वह तीर्थ विष्णुलोक को देनेवाला तथा सब पापों को नाशनेवाला व रोग और दारिद्र को नाश करनेवाला है ॥ ३७ ॥ रैवतक पर्वत पै बड़े आनन्द को देनेवाले दामोदरजी को जो देखते हैं वे विमानोंके द्वारा विष्णु जीके मन्दिर में प्राप्त किये जातेहैं ॥ ३८ ॥ घरमें कात्तिक महीना न व्यतीत करना चाहिये व भीष्मपंचक को विशेषकर न व्यतीत करना चाहिये ॥ ३९ ॥ व पांचों तिथियों में द्वादशी तिथि श्रेष्ठ जानने योग्य है और कातिक महीना प्राप्त

होनेपर दामोदर तीर्थके जलमें मनुष्यों को प्रातःकाल स्नान करना चाहिये ॥ ४० ॥ और संन्यासी व ब्रह्मचारियों को महीने भर उपवास करना चाहिये और मुक्ति स्थानको चाहनेवाली सतियों व विधवाओंको मासोपवास करना चाहिये ॥ ४१ ॥ व एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास, कृच्छ्र व फिर शाकाहारसे ॥ ४२ ॥ दीपदान में परायण पुरुषोंको कातिकमें विष्णुजीको सेवन करना चाहिये यदि ब्रह्मचर्य में तत्पर पुरुष कातिक महीनेको व्यतीत करते हैं ॥ ४३ तो आपही विष्णुजी से ब्रह्मपुर में निवास किया जाता है और भीष्मपंचक प्राप्त होनेपर पंचोपचार करना चाहिये ॥ ४४ ॥ एकादशीको प्रारभ कर जबतक पौर्णमासी तिथि होती है वही

जले ॥ प्रातःस्नानंप्रकर्त्तव्यं संप्राप्तेकार्त्तिकेजनैः ॥ ४० ॥ मासोपवासःकर्त्तव्यो यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥ सतीभिर्विधवाभिश्च मुक्तिस्थानमभीप्सुभिः ॥ ४१ ॥ एकभक्तेननक्तेन तथैवायाचितेनच ॥ उपवासेनकृच्छ्रेण शाकाहारेणवापुनः ॥ ४२ ॥ संसेव्यःकार्त्तिकेविष्णुर्दीपदानपरैर्नरैः ॥ ब्रह्मचर्यपरैर्मासो नीयतेयदिमानवैः ॥ ४३ ॥ तदाब्रह्मपुरेवासः क्रियतेविष्णुनास्वयम् ॥ पञ्चोपचारःकर्त्तव्यः संप्राप्तेभीष्मपञ्चके ॥ ४४ ॥ एकादशींसमारभ्य यावद्वैपूर्णिमातिथिः ॥ तदेतत्पञ्चकंप्रोक्तं सर्वपापहरंनृणाम् ॥ ४५ ॥ सर्वेषामपिमासानां पञ्चकात्कार्त्तिकादपि ॥ एकादशीकार्त्तिकस्य पुण्यदामोदरेव्रते ॥ ४६ ॥ मिष्टान्नंकार्त्तिकेदेयं हविष्यंसघृतप्लुतम् ॥ सुवर्णरजतंवस्त्रं तोयमन्नंफलानिच ॥ ४७ ॥ मासान्तेविविधंदेयं गास्तिलान्कुसुमानिच ॥ सर्वदानेषुयत्पुण्यं सर्वतीर्थेषुयत्फलम् ॥ ४८ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्गयायांपिण्डदानतः ॥ तत्फलंजायतेनॄणां दृष्टेदामोदरेभुवि ॥ ४९ ॥ एकादश्यांकृतस्नाने देवपूजापरोभवेत् ॥ स्नाप्यप

यह पंचक मनुष्योंके समस्तपातकोंका नाशक कहागया है ॥ ४५ ॥ सब महीनोंके मध्य में व कातिकवाले पंचकसे भी दामोदर व्रतमें कातिककी एकादशी पुण्यदायिनी है ॥ ४६ ॥ कातिक में घृतसे संयुत हविष्य व मिष्टान्नको देना चाहिये व सुवर्ण, चांदी, वस्त्र, जल, अन्न व फलोंको ॥ ४७ ॥ तथा अनेक प्रकारकी वस्तु व गऊ, तिल व पुष्पोंको मासान्त में देना चाहिये सब दानोंमें जो पुण्य है व सब तीर्थों में जो फल है ॥ ४८ ॥ व अश्वमेधादिक यज्ञों से तथा गयामें पिंडदान से जो फल होताहै वही फल मनुष्योंको पृथ्वी में दामोदर जीके देखने पर होताहै ॥ ४९ ॥ एकादशी में स्नानको कियेहुए मनुष्य देवपूजन में परायण होवै और तीर्थके जल

से नहाकर पंचामृत से नहलाकर ॥ ५० ॥ व कुंकुम, अगुरु, चन्दन व कपूरसे मिश्रित जलोंसे पूजकर तदनन्तर सुगन्धित कमल पुष्पों से ॥ ५१ ॥ व श्वेत चमेली के फूलोंसे और बहुत से तुलसीदलोंसे पूजकर वस्त्र व जनेऊ को चढ़ावै और धूप देवै ॥ ५२ ॥ और घीसे दीप देवै व घीके विना तैलसे भी दीप देवै व अनेक प्रकारकी नैवेद्य देना चाहिये॥ और फल व तांबूल देनाचाहिये ॥ ५३ ॥ व हे राजन्! ध्वजाके दानादिसे मन्दिर का पूजन करना चाहिये तदनन्तर संसाररूपी समुद्र को उतारनेवाली गऊ देना चाहिये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर गीत व बाजनोंके शब्दों से प्रदक्षिणाकर वेदपाठ व पुराणोंसे और दिव्य कथाओं से व्याख्यान करना चाहि-

ञ्चामृतेनैवं स्नात्वातीर्थोदकेनच ॥ ५० ॥ कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकर्पूरोदकमिश्रितैः ॥ पूजयित्वाततःपुष्पैः शतपत्रैस्सुगन्धिभिः ॥ ५१ ॥ मालतीकुसुमैःशुभ्रैर्बहुभिस्तुलसीदलैः ॥ वस्त्रंयज्ञोपवीतंच धूपंचैवप्रधूपयेत् ॥ ५२ ॥ दीपंदद्याद्घृतेनैव तैलेनापिघृतंविना ॥ नैवेद्यंविविधंदेयं फलंताम्बूलमेववा ॥ ५३ ॥ प्रासादपूजाकर्त्तव्या ध्वजदानादिनानृप॥ गौःसवत्साततोदेया संसारार्णवतारिणी ॥ ५४॥ ततःप्रदक्षिणांकृत्वा गीतवादित्रनिस्वनैः ॥ वेदपाठपुराणैश्च व्याख्यादिव्यकथानकैः ॥ ५५ ॥ देवाग्रेजागरःकार्योदीपद्योतितभूमिषु ॥ सप्तधान्यमयाःसप्त पर्वतादीपसंयुताः ॥ ५६ ॥ फलताम्बूलपक्वान्नपूजिताःपरिकल्पिताः ॥ विद्वद्भिःश्रोत्रियैःशान्तैर्ब्राह्मणैर्गृहमेधिभिः ॥ ५७॥ स्त्रीभिश्चनरशार्दूल श्रोतव्यावैष्णवीकथा ॥ एवंजागरणंकार्यं रागक्रोधविवर्जितैः ॥ ५८ ॥ कृत्वाजागरणंरात्रावुदितेसूर्यमण्डले ॥ पूर्वांसन्ध्यांकृतस्नानः कृत्वामध्याह्नमाचरेत् ॥ ५९ ॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च सन्तर्प्यविधिपूर्वकम् ॥ कृत्वास्नानंपितॄणान्तु

ये ॥ ५५ ॥ व दीपकों से प्रकाशित भूमियोंमें शिवदेवजीके आगे जागरण करना चाहिये और दीपकोंसे संयुक्त सप्तधान्यके सात पर्वतों को ॥ ५६ ॥ बनाकर फल, ताम्बूल व पक्वान्नसे पूजितकर श्रोत्रिय, विद्वान् व शान्त गृहस्थ ब्राह्मणोंको देना चाहिये ॥ ५७ ॥ व हे नरश्रेष्ठ ! स्त्रियों को विष्णुजीकी कथा सुनना चाहिये इस प्रकार स्नेह व क्रोधसे रहित पुरुषोंको जागरण करना चाहिये॥ ५८ ॥ रात्रिमें जागरणकर सूर्यमण्डल उदय होनेपर स्नान किये हुए मनुष्य पहली सन्ध्या करके मध्याह्न

कार्य करै ॥ ५९ ॥ व विधिपूर्वक देवताओं, पितरों व मनुष्यों को भलीभांति तर्पणकर और स्नानकर पितरोंको अपनी शक्तिसे दान देना चाहिये ॥ ६० ॥ फिर दामोदर देवजी को पुष्प धूपादिकसे पूजकर नरसिंहदेवको पूजकर गरुड़ खगनायक को पूजना चाहिये ॥ ६१ ॥ कंसको मारकर व चाणूर समेत महाबली दैत्योंको मारकर रेवती समेत बलरामजीने रैवतक पर्वत पै सब देवताओं समेत इन्द्र की नाईं यादवों समेत रमणकिया और यादवोंके गुरु गर्गाचार्यजी शिवदेव को देखने के लिये आये ॥ ६२ । ६३ ॥ उनको रेवतीजीने प्रणामकर सन्तानके कारणको पूंछा व यह पूंछा कि स्त्रियोंका अविधवापन किसप्रकार होगा ॥ ६४ ॥ और जिसप्रकार सब

देयंदानंस्वशक्तितः ॥ ६० ॥ देवंदामोदरंपूज्य पुष्पधूपादिनापुनः ॥ नरसिंहंसुरंपूज्य वैनतेयंखगोत्तमम् ॥ ६१ ॥ कंसंहत्वासचाणूरान् हत्वादैत्यान्महाबलान् ॥ रेवतीसहितोरामो रेमेरैवतकेगिरौ ॥ ६२ ॥ सहितोयादवैःसर्वैर्देवैरिवशतक्रतुः ॥ यादवानांगुरुर्गर्गो देवंद्रष्टुंसमागतः ॥ ६३ ॥ नमस्कृत्यसरेवत्या पृष्टःसन्तानकारणम् ॥ अवैधव्यंचनारीणां कथंवैप्रभविष्यति ॥ ६४ ॥ सौभाग्यंसर्वनारीणां यथाभवतितद्वद ॥ गर्ग उवाच ॥ साधुपृष्टंत्वयादेवि कथयामिशृणुष्वतत् ॥ ६५ ॥ देवाग्रेपरमंकुण्डं व्रतान्तेपूर्वकल्पितम् ॥ तत्रस्नात्वाभवेन्नारी बहुपुत्राधनान्विता ॥ ६६ ॥ नवैधव्यंभवेत्तस्याः सौभाग्यमतुलंभवेत् ॥ स्नात्वाफलानिदेयानि कुङ्कुमञ्चसकज्जलम् ॥ ६७ ॥ गौरीसूत्रंप्रदातव्यं पुष्पंताम्बूलमेवच ॥ पीतवस्त्रंप्रदातव्यं कञ्चुकंयष्टिसंयुतम् ॥ ६८ ॥ फलानिवंशपात्रेषु कृत्वाभक्ष्यान्नसंयुतान् ॥ स्त्रीणांदेयंयथाशक्त्या सतीनान्तुसदक्षिणम् ॥ ६९ ॥ एवंश्रुत्वाविधानेन रेवत्यातदनुष्ठितम् ॥ कुण्डेस्नानंकृतन्देव्या रेवत्याप्रथमं

स्त्रियोंको सौभाग्य होताहै उसको कहिये गर्गाचार्यबोले कि हे देवि! तुमने अच्छा प्रश्न किया मैं कहताहूं उसको सुनिये ॥ ६५ ॥ कि शिवदेवजीके आगे बहुत उत्तम कुण्ड व्रतके अन्तमें कल्पित कियागया है उसमें नहाकर स्त्री बहुत पुत्रोंवाली व धनसे संयुत होतीहै ॥ ६६ ॥ व उसके विधवापन नहीं होताहै और अतुलसौभाग्य होताहै स्नानकर फलोंको देना चाहिये व कज्जल समेत कुंकुम देनाचाहिये ॥ ६७ ॥ और गौरीसूत्र, पुष्प व ताम्बूल को देना चाहिये और पीतवसन तथा दण्ड समेत कंचुकी को देना चाहिये ॥ ६८ ॥ और बांसोंके पात्रोंमें फलोंको करके भक्ष्यान्न संयुक्त व दक्षिणासमेत पात्रको यथाशक्तिसे पतिव्रताओं को देना चाहिये ॥ ६९ ॥

ऐसा सुनकर विधिसे रेवतीने उसको अनुष्ठानकिया पहले कुण्डमें रेवती देवीने स्नान कियाहै उसी कारण ॥ ७० ॥ कुण्डका रेवतीनाम त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ उसमें पुत्रके लिये पतिव्रताओं को स्नान करना चाहिये ॥ ७१ ॥ वह कुण्ड स्त्रियों को अवैधव्यता देनेवाला और सौभाग्य व आरोग्य का दायकहै और स्नानही से पुरुषों के सब पातकों का नाश होताहै ॥ ७२ ॥ सारस्वत बोले कि रात्रिमें जागरणकर मधुसूदनजी को पूजकर द्वादशी तिथिके भोगको प्राप्त होकर मनुष्यों को पारण करना चाहिये ॥ ७३ ॥ और पुत्रों व बान्धवों समेत मनुष्य ब्राह्मणों को भोजन कराकर विकल, अन्ध व कृपणों को अपनी शक्ति के अनुसार अन्नदेना

ततः ॥ ७० ॥ कुण्डस्यरेवतीनाम विख्यातम्भुवनत्रये ॥ तत्रस्नानंप्रकर्त्तव्यं सतीभिःपुत्रकारणात् ॥ ७१ ॥ अवैधव्य प्रदंस्त्रीणां सौभाग्यारोग्यदायकम् ॥ सर्वपापक्षयंपुंसां स्नानमात्रेणजायते ॥ ७२ ॥ सारस्वत उवाच ॥ कृत्वाजागरणं रात्रावभ्यर्च्यमधुसूदनम् ॥ द्वादशीभुक्तिमासाद्य कार्यंपारणकन्नरैः ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वातु सहितःपुत्रबा न्धवैः ॥ विकलान्धकृपणानां देयमन्नंस्वशक्तितः ॥ ७४ ॥ दामोदरंरैवतके स्वर्णरेखानदीजले ॥ एवंयःकुरुतेयात्रां त स्यपुण्यफलंशृणु ॥ ७५ ॥ ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्च ग्रामसीमाविलोपकः ॥ राजद्रोहीगुरुद्रोही मिथ्याव्रतधरःस्वयम् ॥७६॥ कूटसाक्षिप्रदोयश्च यश्चन्यासापहारकः ॥ बालस्त्रीघातकोविप्रः सन्ध्यास्नानविवर्जितः ॥ ७७॥ देवद्रव्यापहर्त्ताच वेद विक्रयकारकः ॥ परिणीतामृतुस्नातां स्त्रियंयोनाधिगच्छति ॥ ७८ ॥ कन्याविक्रयकर्त्ताच देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ वि

चाहिये ॥ ७४ ॥ और रैवतक पर्वत पै स्वर्णरेखा नदी के जल में नहाकर दामोदर जी को पूजै इस प्रकार जो मनुष्य यात्राको करता है उसके पुण्य के फल को सुनिये ॥ ७५ ॥ कि ब्रह्मघाती, मदिरा को पीनेवाला व गांवकी हदको नाश करनेवाला तथा राजशत्रु, गुरुद्रोही व आपही मिथ्याव्रतको धारनेवाला ॥ ७६ ॥ और झूंठी गवाही देनेवाला व जो धरोहरिको हरनेवाला है व बालघाती, स्त्रीघाती व सध्या, स्नान से रहित ब्राह्मण ॥ ७७ ॥ और देवताओंके धनको हरनेवाला व वेद बेंचने वाला तथा विवाहिता व ऋतुस्नाता स्त्री के समीप जो नहीं जाताहै ॥ ७८ ॥ व कन्याको बेचनेवाला और देवताओं व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला, विश्वासघाती

व शूद्रके अन्नको भोजन करनेवाला ब्राह्मण और बहेलिया ॥ ७६ ॥ व पराई स्त्रियोंका पति तथा अपनी दीहुई वस्तु को हरनेवाला और पर्वों में मैथुन करनेवाला तथा सेतुओंको तोड़नेवाला ॥ ८० ॥ और जो ब्राह्मणी व विधवाभी शास्त्रधारिणी न होवै ॥ ८१ ॥ हे राजन् ! वे और अन्य बहुतसे महापातकी पुरुष स्वर्णरेखा नदीके जलमें नहाकर दामोदर विष्णुजीको देखकर ॥ ८२ ॥ व रात्रिमें जागरणकर सब पातकों से छूटजाते हैं और जो पापिकर्मी मनुष्य संसार सागरमें प्रजागर तीर्थ में नहीं आये हैं वे विष्णुलोकको नहीं जातेहैं ॥ ८३ । ८४ ॥ ज्यों २ मनुष्य प्रजागर तीर्थमें जाताहै त्यों त्यों विष्णुलोकके कारण विष्णुलोकमें देवताओं से मृदंग व

श्वासघातकोविप्रः शूद्रान्नादोथलुब्धकः ॥ ७९ ॥ नायकःपरदाराणां स्वयंदत्तापहारकः ॥ पर्वमैथुनसेवीच तथावैसेतुभेदकः ॥ ८० ॥ ब्राह्मणीविधवाबाला नभवेच्छ्रुतधारिणी ॥ ८१ ॥ महापातकिनश्चैते तथान्येबहवोनृप ॥ स्वर्णरेखाजलेस्नात्वा दृष्ट्वादामोदरंहरिम् ॥ ८२ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा मुच्यन्तेसर्वपातकैः ॥ नतुयेपापकर्माणः समायाताःप्रजागरे ॥ ८३ ॥ संसारसागरेतीर्थे नगच्छन्तिहरेःपुरम् ॥ ८४ ॥ यथायथायातिनरःप्रजागरे तथातथाविष्णुपुरंविचिन्त्यते ॥ वासःसुरैर्वैष्णवलोकहेतवे मृदङ्गगीतध्वनिनादितेगृहे ॥ ८५ ॥ गदासिशङ्खादिधरश्चतुर्भुजो देवैर्वृतोवैहरिरूपधारी ॥ प्रगीयमानःसुरसुन्दरीभिः सयातिस्वःखेचरमात्रसङ्गी ॥ ८६ ॥ वाराहकल्पेप्रथमेयुगादौ दामोदरोरैवतकेप्रसिद्धः ॥ सैषानदीयासरितांवरिष्ठा सोयंहरिर्योभुवनस्यकर्त्ता ॥ ८७ ॥ इदंपुराणंपठतेशृणोति नरोविमानैर्मधुसूदनालये ॥ देवाङ्गनादत्तभुजश्चतुर्भुजः सनीयतेदेवगणैरभिष्टुतः ॥ ८८ ॥ इतिश्रीस्कान्देसप्तविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३२७

गीतकी ध्वनिसे शब्दायमान घर में निवास विचार कियाजाता है ॥ ८५ ॥ और गदा, तलवार व शंखादिको धारनेवाला चतुर्भुज व देवताओं से घिराहुआ विष्णु रूपधारी वह पुरुष सुरस्त्रियों से गाया जाता हुआ आकाशगामियों का संगीहोकर स्वर्गको जाताहै ॥ ८६ ॥ युगादिमें पहले वाराह कल्प में रैवतक पर्वत पै दामोदर प्रसिद्धहुये हैं वही यह नदी है जो कि नदियोंमें श्रेष्ठहै व ये विष्णुजी हैं जो कि संसारके रचनेवाले हैं ॥ ८७ ॥ जो मनुष्य इसपुराणको पढ़ता या सुनताहै वह चतुर्भुज मनुष्य देवांगनाओंसे भुजावलम्बनकर देवगणोंसे स्तुति कियाजाताहुआ विमानोंके द्वारा स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ८८ ॥ इतिसप्तविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३२७

दो० । गये रैवतक शिखरपै जिमि वामन सुरनाथ । कह्यो त्रिशत अट्ठाइसे माहिं सोइ शुभ गाथ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि इसके अनन्तर वामन विप्रजी ने अकेले सघन वनमें पैठकर क्या किया है उस कौतुक को मुझसे कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि इसके अनन्तर ये वामन विप्र रैवतक पर्वत पै जाकर विधिपूर्वक स्वर्ण-रेखा नदीके जलमें नहाकर ॥ २ ॥ भक्तिसे सुगन्धित पुष्प,धूपादिकों से शिव देव जी को भलीभांति पूजकर हे राजन् ! निर्जन वनमें अकेले उनके आगे स्थित हुये ३ ॥ व सब प्राणियों से युक्त तथा सांपों से व्याप्त व अनेक स्वरों से घोषित तथा मयूर के शब्द से शब्दायमान ॥ ४ ॥ व कोकिलाओंके शब्द से मनोहर तथा मुर्गों

पार्वत्युवाच ॥ अथासौवामनोविप्रः प्रविष्टोगहनेवने ॥ एकाकीकिञ्चकाराथ कौतुकंतद्वदस्वमे ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथासौवामनोविप्रो गत्वारैवतकंगिरिम् ॥ स्वर्णरेखानदीतोये स्नात्वाहिविधिपूर्वकम् ॥ २ ॥ सुगन्धपुष्पधूपाद्यै र्देवंसम्पूज्यभक्तितः ॥ तस्थौतदग्रतोराजन्नेकाकीनिर्जनेवने ॥ ३ ॥ सर्वसत्त्वसमायुक्ते सरीसृपसमाकुले ॥ अनेक स्वरसंपुष्टे मयूरध्वनिनादिते ॥ ४ ॥ कोकिलारावरम्येच वनेकुक्कुटघोषिते ॥ खद्योतद्योतितेतस्मिन् वलीमुखविधूनि ते ॥ ५ ॥ क्वचिद्दावाग्निनाशेते क्वचित्पुष्पितपादपे ॥ गगनासक्तविटपे सूर्यतापविवर्जिते ॥ ६ ॥ लुब्धकप्राणसन्त्रस्त भ्रान्तशूकरसञ्चरे ॥ संहृष्टक्षत्रियत्रस्ते स्नानदानफलप्रदे ॥ ७ ॥ अनेकाश्चर्यसम्पन्ने सस्मारमनसाहरिम् ॥ तम्भीत मिवविज्ञाय नरसिंहःसमाययौ ॥ ८ ॥ रक्षार्थंतस्यविप्रस्य वभाषेपुरतःस्थितः ॥ नभेतव्यंत्वयाविप्र वदतेकिङ्करोम्यह म् ॥ ९ ॥ विप्र उवाच ॥ यदितुष्टोवरोदेयो नरसिंहत्वयामम ॥ सदात्ररक्षाकर्त्तव्या सर्वेषांतीर्थवासिनाम् ॥ १० ॥ देव

से शब्दित और जुगुनुओं से प्रकाशित व वानरों से कम्पित उस वनमें ॥ ५ ॥ कहीं दवाग्नि संयुत वनमें सोते हैं कहीं फूले हुये वृक्षके नीचे सोते हैं व कभी वामन जी सूर्य के तापसे रहित आकाश में लगेहुये वृक्षके नीचे सोते हैं ॥ ६ ॥ बहेलियों के कारण प्राणोंसे भीत व भ्रमित शूकरों के संचार तथा प्रसन्न क्षत्रियों से भीत व स्नान दान से फलदायक ॥ ७ ॥ और अनेकों आश्चर्य से संयुत वनमें वामनजी ने मनसे विष्णुजी को स्मरण किया व उन वामनजी को डरेहुये से जानकर नृसिंह जी आये ॥ ८ ॥ व उन वामन द्विजकी रक्षाके लिये आगे स्थित होकर वे बोले कि हे विप्रजी ! तुमको डरना न चाहिये कहिये मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ ९ ॥

विप्र बोले कि हे नरसिंहजी ! यदि तुम प्रसन्न हो तो तुमको मुझे वर देना चाहिये और सदैव सब तीर्थवासियों की यहां रक्षा करना चाहिये ॥ १० ॥ व जब तक चौदह इन्द्र रहैं तबतक तुमको देवताके आगे स्थित होना चाहिये ऐसाही होगा यह उन मे कहकर विष्णुजीने उस समय वैसाही किया ॥ ११ इसीकारण दामोदर जीके आगे नृसिंहजी पूजेजाते हैं उन्होंने वनको सौम्य किया और वे तीर्थकी रक्षा करतेहैं ॥ १२ ॥ व उस वनमें भूत प्रेतादिकों का निवास नहीं होताहै और नृसिंह जीकी प्रसन्नतासे सिंहादिक का डर नष्ट होगया ॥ १३ कार्तिकमें विष्णुजी के द्वादशी वासरमें पारण करनेपर दामोदरजी को प्रणामकर तदनन्तर भवजीको देखने के

स्याग्रेतदास्थेयंयावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ एवमस्त्विवतितंप्रोक्त्वातथाचक्रेहरिस्तदा ॥ ११ ॥ अतोदामोदरस्याग्रे नरसिंहःप्रपूज्यते ॥ वनंसौम्यंकृतंतेन तीर्थरक्षांकरोतिसः ॥ १२ ॥ भूतप्रेतादिसंवासो वनेतस्मिन्नजायते ॥ नरसिंहप्रसादेन नष्टं सिंहादिकंभयम् ॥ १३ ॥ कार्त्तिकेवासरेविष्णोर्द्वादश्यांपारणेकृते ॥ दामोदरंनमस्कृत्य भवंद्रष्टुंततोययौ ॥ १४ ॥ चतुर्दश्यांकृतस्नानो भवंसम्पूज्यभावतः ॥ भवभावभवंपापं भस्मीभूतम्भवार्चनात् ॥ १५ ॥ संक्षीणःपापनिचयो जातोदेवस्यदर्शनात् ॥ भवस्याग्रेस्थितंशान्तं तथावस्त्रापथस्यच ॥ १६ ॥ कालमेघंसमभ्यर्च्य ततोवस्त्रापथंययौ ॥ देवंसम्पूज्यमन्त्रैःस वेदोक्तैर्विधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥ धूपदीपादिनैवेद्यैः सर्वंचक्रेसवामनः ॥ प्रदक्षिणाशतंकृत्वा भवस्याग्रेव्यवस्थितः ॥ १८ ॥ यावन्निरीक्ष्यतेसर्वं तावत्पश्यतिपर्वतम् ॥ ऊर्ज्जयन्तंगिरिवरं मैनाकस्यसहोदरम् ॥ १९ ॥ सौराष्ट्रदेशेविख्यातं युगादौप्रथमंस्थितम् ॥ भूधरंभूधरश्रेष्ठं शिलापादपमण्डितम् ॥ २० ॥ तन्दृष्ट्वाचिन्तयामास

लिये गये ॥ १४ ॥ और चौदसिमें स्नानकर भवजी को भक्तिसे पूजकर भवजीके पूजनसे संसारमें उपजा हुआ पातक भस्म होगया ॥ १५ ॥ और भवदेवजीके दर्शनसे उनके पातकों के समूह नष्ट होगये व वस्त्रापथ तथा भवजी के आगे स्थित शान्त ॥ १६ ॥ कालमेघजी को पूजकर तदनन्तर वस्त्रापथ तीर्थको गये और भवदेवजी को उन्होंने विधिपूर्वक वेदोक्त मन्त्रों से पूजकर ॥ १७ ॥ धूप, दीपादिक नैवेद्य से सब कर्म किया व सौ प्रदक्षिणा करके वे वामनजी भवजी के आगे स्थित हुये ॥ १८ ॥ व जबतक शिवजीको देखैं तबतक उन्होंने मैनाक के छोटे भाई ऊर्ज्जयन्तनामक गिरिवर पहाड़को देखा ॥ १९ ॥ व सौराष्ट्रदेशमें प्रसिद्ध तथा पहले

युगादिमें स्थित शिला व वृक्षों से शोभित व पर्वतों में श्रेष्ठ उस पर्वत को देखकर सूक्ष्म शरीरवाले उन वामनजी ने चिन्तवन किया कि थोड़े परिश्रमवाले व पुत्रों और लक्ष्मी को देनेवाले बहुतसे ॥ २०।२१ ॥ देवताओं को देखते हुये पुरुषको यहां उत्तम धर्म होताहै और समुद्रगामिनी नदीमें नहाकर मनुष्य पातकों से छूट जाताहै ॥ २२ ॥ व गऊको छूकर और ब्राह्मणको प्रणामकर तथा गुरू व देवताओं को भलीभांति पूजकर तथा तपस्वी, पति, शान्त, वेदमात्र व ब्रह्मचारी ॥ २३ ॥ और पिता, माता, बहन व उसके पति को और कन्याके पति (दामाद) को व भैने, नाती, मित्र, सम्बन्धी व बान्धवों को ॥ २४ ॥ भलीभांति भोजन कराकर

सूक्ष्मवर्ष्मासवामनः ॥ अल्पायामान्सबहुलान् पुत्रलक्ष्मीप्रदायकान् ॥ २१ ॥ देवानुपश्यतश्चात्र सुधर्मसुपजायते ॥ दृष्ट्वानदींसागरगां स्नात्वापापैःप्रमुच्यते ॥ २२ ॥ गांस्पृष्ट्वाब्राह्मणंनत्वा सम्पूज्यगुरुदैवतान् ॥ तपस्विनंयतिं शान्तं श्रोत्रियंब्रह्मचारिणम् ॥ २३ ॥ पितरंमातरंभगिनीं तत्पतिंदुहितुःपतिम् ॥ भागनेयंचदौहित्रं मित्रसम्बन्धिबान्धवान् ॥ २४ ॥ सम्भोज्यपातकैःसर्वैर्मुच्यन्तेगृहमेधिनः ॥ राजागजाश्वनकुलसतीवृषमहीधराः ॥ आदर्शक्षीरवृक्षाये सततान्नप्रदास्तुये ॥ दृष्टमात्राःपुनन्त्येते येनित्यंसत्यवादिनः ॥ २६ ॥ वेदधर्मकथांश्रुत्वा दृष्ट्वामुक्तिपरान्नरान् ॥ स्मृत्वाहरिहरौ गङ्गांकृत्वातुरणमार्जनम् ॥ २७ ॥ गत्वाजागरणंविष्णोर्दत्त्वादानंस्वशक्तितः ॥ ताम्बूलंकुसुमं दीपं नैवेद्यंतुलसीदलम् ॥ २८ ॥ गीतंनृत्यंचवाद्यञ्च विधायसुरमन्दिरे ॥ एतेसूक्ष्माःस्मृताधर्माः क्रियमाणामहोदयाः ॥ २९ ॥ अतोगिरीन्द्रंपश्यामि सर्वदेवालयंशुभम् ॥ तेषांकरतलेस्वर्गं येयान्तिशिखरंनराः ॥ ३० ॥ इतिज्ञात्वा

गृहस्थ सब पातकोंसे छूट जाते हैं और राजा, हाथी, घोड़ा, नेउला, पतिव्रता, वृषभ व पर्वत ॥ २५ ॥ दर्पण व जो दूधवाले वृक्ष हैं और जो सदैव अन्न को देनेवाले हैं व जो सदैव सत्य बोलते हैं ये देखनेही से पवित्र करते हैं ॥ २६ ॥ और वेद व धर्म की कथा को सुनकर व मुक्ति में तत्पर पुरुषों को देखकर और विष्णु, शिव व गङ्गाको स्मरणकर तथा युद्ध का मार्जनकर ॥ २७ ॥ व विष्णुजी के जागरणक्षेत्रको जाकर तथा शक्तिसे दानेको देकर व ताम्बूल, पुष्प, दीप, नैवेद्य व तुलसीदलको देकर ॥ २८ ॥ और देवमन्दिर में गीत, नृत्य व वाद्य करके मनुष्य पापों से छूट जाताहै क्योंकि बड़े ऐश्वर्यवाले कियेहुये ये सूक्ष्म धर्म कहेगयेहैं ॥ २९ ॥ इस लिये

सब देवताओंके स्थान उत्तम पर्वतेन्द्रको देखूं जो मनुष्य शिखरको जातेहैं उनके करतलमें स्वर्ग होताहै ॥ ३० ॥ ऐसा जानकर वे वामनजी स्वामिकार्त्तिकेयकीमाता भवानीको देखने के लिये पर्वत पै चढ़े और आकाशमें मिलेहुये शिखरपै गये ॥३१॥ ज्यों ज्यों मनुष्य उत्तम पर्वत पै चढ़तेहैं त्यों त्यों सब प्राणी पातकोंसे छूटजाते हैं ॥ ३२ ॥ ऐसी बुद्धि करके वामन द्विज पर्वतके शिखर पै गये व भवजी के भक्त उन वामनजीने स्वामिकार्त्तिकेयकी माताको देखा ॥ ३३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी उनको अम्बा ऐसा कहते हैं उसी कारण अन्य सब देवता अम्बा कहते हैं और पृथ्वी में सब मनुष्य व पाताल में सब नाग अम्बा कहते हैं ॥ ३४ ॥ उसी कारण

समारूढो भवानींस्कन्दमातरम् ॥ द्रष्टुंसवामनोयातः शिखरेगगनाश्रिते ॥ ३१ ॥ यथायथागिरिवरे समारोहन्तिमानवाः ॥ तथातथाविमुच्यन्ते पातकैःसर्वदेहिनः ॥ ३२ ॥ इतिकृत्वामतिंविप्रो जगामगिरिमूर्द्धनि ॥ भवभक्तोभवानींस ददर्शस्कन्दमातरम् ॥ ३३ ॥ अम्बेतिभाषतेस्कन्दस्ततोन्येसर्वदेवताः ॥ पृथिव्यांमानवाःसर्वे पातालेसर्वपन्नगाः ॥३४॥ ततोह्यम्बेतिविख्याता पूज्यतेगिरिमूर्द्धनि ॥ सम्पूज्यविविधैःपुष्पैः फलैर्नानाविधैर्द्विजः ॥ ३५ ॥ गगनासक्तशिखरे संस्थितःकौतुकान्वितः ॥ एकाकीशिखरेतस्मिन्नूर्द्ध्वबाहुर्व्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ निरीक्ष्यमेदिनींसर्वा मपर्वतससागराम् ॥ आद्यंसनातनंदेवं भास्करंत्रिगुणात्मकम् ॥ ३७ ॥ सर्वतेजोमयंदेवं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ भ्रममाणंनिराधारं कालमानप्रयोजकम् ॥ ३८ ॥ यावत्पश्यतितंविम्बं तावत्पश्यतिशङ्करम् ॥ दिगम्बरंहरंदेवं समन्ताद्भस्मगुण्ठितम् ॥ ३९ ॥

पर्वत के शिखर पै अम्बा ऐसी प्रसिद्ध भगवती पूजीजाती हैं अनेक भांतिके पुष्पों से व अनेक प्रकार के फलोंसे पूजकर वामन द्विज ॥ ३५ ॥ कौतुकसे सयुक्त होकर आकाश में लगेहुए शिखर पै स्थित हुए और ऊपर भुजाओं को उठाकर वामनजी अकेले उस शिखर पै स्थितहुए ॥ ३६ ॥ व पर्वतोंसमेत तथा समुद्रों समेत समस्त पृथ्वीको देखकर आदिभूत व त्रिगुणात्मक सनातन सूर्यदेव ॥ ३७ ॥ व सब देवताओंसे प्रणाम किये व घूमते हुए, निराधार तथा कालके प्रमाणके प्रयोजक समस्त तेजोमय देव ॥ ३८ ॥ उस सूर्यबिंबको जबतक देखैं तबतक उन्होंने दिगम्बर (नग्न) व सब ओरसे भस्मको लपेटेहुए शिव शंकरदेवजीको देखा॥ ३९ ॥

वे शिवदेवजी बुद्धि व रूपके आकार, सर्वज्ञ, गुणोंसे भूषित, भस्मको अंग में लगाये, जटाओंको धारे, सौम्य व आकाशमार्गमें स्थित थे ॥ ४० ॥ शिवजी बोले कि हे वामनजी ! सुनिये मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं व तुमको अनेक प्रकारके वरोंको दूंगा व त्रिलोकव्यापिनी वृद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ और तुम वेदोंको कहोगे व जो गीत तथा नृत्यादिकहैं उसको जानोगे और तुम्हारे असाध्य वस्तुको साधन करनेवाली शक्ति होगी ॥ ४२ ॥ परन्तु वस्त्रापथ तीर्थमें जाकर तीर्थों का अवलोकन कीजिये ॥ ४३ ॥ वामनजी बोले कि हे महादेव,देव ! वस्त्रापथ तीर्थमें जो तीर्थ हैं उनको विशेषकर मुझसे कहिये यदि मेरे ऊपर दया होवै ॥ ४४ ॥

बुद्धिरूपाकृतिंदेवं सर्वज्ञंगुणभूषितम् ॥ भस्माङ्गंजटिलंसौम्यंव्योममार्गेव्यवस्थितम् ॥ ४० ॥ शिव उवाच ॥ शृणुवामनतुष्टोहं दास्येतेविविधान्वरान् ॥ त्रैलोक्यव्यापिनीवृद्धिर्भविष्यतिनसंशयः ॥ ४१ ॥ कथयिष्यसित्वंवेदं गीतन्नृत्यादिकंचयत् ॥ असाध्यसाधनाशक्तिर्भविष्यतितवस्थिता ॥ ४२ ॥ परंवस्त्रापथेगत्वा कुरुतीर्थावलोकनम् ॥ ४३ ॥ वामन उवाच ॥ वस्त्रापथेमहादेव यानितीर्थानितानिमे ॥ वददेवविशेषेण यद्यस्तिकरुणामयि ॥४४॥ रुद्र उवाच॥ वस्त्रापथस्यवायव्ये कोणेदिव्यंसरोवरम् ॥ तस्यपश्चिमदिग्भागे जालीगहनपल्लवम् ॥४५॥ बिल्ववृक्षमयीमध्येलिङ्गंतत्रास्ति मृन्मयम् ॥ ४६ ॥ तत्रासौलुब्धकःसिद्धो गतोममपुरेपुरा ॥ तस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्महत्याविनश्यति ॥ ४७ ॥ इन्द्रोवैवृत्रहायस्मिन्विमुक्तोब्रह्महत्यया ॥ तस्मादुत्तरदिग्भागे धनदेनप्रतिष्ठितम् ॥ ४८ ॥ लिङ्गंत्रैलोक्यविख्यातं तत्रदेवीत्रिशूलिनी ॥ यस्यादर्शनमात्रेण पुत्रस्तुनलकूबरः ॥ ४९ ॥ शापानुग्रहशक्तोभूदेवंचक्रेत्रिशूलिनी ॥ भवस्यानिर्ऋतेकोणे

शिवजी बोले कि वस्त्रापथतीर्थ के वायव्यकोणमें दिव्य सरोवर है व उसके पश्चिमदिशाके भागमें सघनपत्तोंवाली बिल्ववृक्षमयी जाली है वहां उसके बीच में मिट्टीका लिंगहै ॥ ४५ । ४६ ॥ वहां यह बहेलिया सिद्ध होकर पुरातन समय मेरे नगरमें प्राप्तहुआ है उसकेदर्शनहीसे ब्रह्महत्या नाशहोजाती है ॥ ४७ ॥ जिस में वृत्रासुरको विनाशनेवाले इन्द्रजी ब्रह्महत्यासे छूटगये हैं उससे उत्तर दिशाके भागमें (धनद) कुबेर से थापित ॥ ४८ ॥ लिंग त्रिलोक में प्रसिद्ध है वहां

त्रिशूलिनीदेवी हैं जिसके दर्शनहीसे नल कूबर पुत्र ॥ ४९ ॥ शाप व अनुग्रह में समर्थहुआ ऐसा त्रिशूलिनीने कियाहै और भवजीके निर्ऋति कोणमें हेरवसंज्ञक गण है ॥ ५० ॥ पहले लिंगको करतेहुये यमराजने उसको थापन कियाहै व विचित्र मयूरी चित्रहै चित्रगुप्तजी बहुत विस्मित होकर ॥ ५१ ॥ पुरातन समय उसको सुनकर उन मृन्मयदेवको देखने के लिये आये व हे द्विजोत्तम ! उन्होंने भी उसक्षेत्र में लिंगको निर्माण कियाहै ॥ ५२ ॥ जो कि चित्रगुप्तेश्वरनामक लिंग प्रसिद्ध है और पश्चिम ओर उदार बुद्धिवाले प्रजापतिजी ने उस समय रैवतक पर्वत पै स्थित केदारनामक देवको किया है और वहां आपही प्रजापतिजी पर्वतों के शिखरों पै

गणोहेरम्बसंज्ञितः ॥ ५० ॥ यमेनकुर्वतालिङ्गंप्रथमंसंप्रातिष्ठितम् ॥ विचित्रंवर्हिकाचित्रं चित्रगुप्तोतिविस्मितः ॥ ५१ ॥ श्रुत्वासमागतोद्रष्टुं देवंतन्मृन्मयंपुरा ॥ तेनापिनिर्मितंलिङ्गं तस्मिन्क्षेत्रेद्विजोत्तम ॥ ५२ ॥ चित्रगुप्तेश्वरंनाम विख्यातम्भुवनत्रये ॥ पश्चिमेनचकारोच्चैः प्रजापतिरुदारधीः ॥ ५३ ॥ केदाराख्यंतदादेवं गिरौरैवतकेस्थितम् ॥ प्रजापतिःस्वयंतस्थौ तत्रपर्वतसानुषु ॥ ५४ ॥ रुद्र उवाच ॥ इन्द्रेश्वरस्यमाहात्म्यं कथयिष्येशृणुष्वतत ॥ ईशानकोणेविख्यातं भवस्यविदितंमम ॥ ५५ ॥ वामन उवाच ॥ कस्मादिन्द्रःसमायातः कथंचक्रेहरिस्त्विह ॥ कथांसुविस्तरामेतां कथयस्वममप्रभो ॥ ५६ ॥ रुद्र उवाच ॥ लुब्धकस्तुपुरासिद्धः शिवरात्रिप्रजागरात् ॥ शिवलोकेतदाप्राप्तं विमानंगुणसंयुतम् ॥ ५७ ॥ सर्वत्रगंसुरचितं दिव्यस्त्रीगीतनादितम् ॥ तमारुह्यसमायातो द्रष्टुंतांनगरींहरेः ॥ ५८ ॥ यस्यांयुद्धंसमभवदिन्द्रेण

स्थित हुये हैं ॥ ५३ । ५४ ॥ रुद्रजी बोले कि इन्द्रेश्वर के माहात्म्यको कहताहूं उसको सुनिये जो लिंग कि भवजीके ईशानकोणमें प्रसिद्ध है व मुझको विदित है ॥ ५५ ॥ वामनजी बोले कि इन्द्रजी किस कारण आये हैं व यहां इन्द्रजीने किस कारण उसको कियाहै हे प्रभो ! बहुत विस्तारवाली इस कथाको मुझसे कहिये ॥ ५६ ॥ रुद्रजी बोले कि पुरातन समय शिवरात्रिमें जागरण से बहेलिया सिद्ध हुआहै तब शिवलोकमें गुणोंसे संयुत विमान प्राप्त हुआ है ॥ ५७ ॥ जो कि सब कहीं जानेवाला व उत्तम रचित तथा दिव्य स्त्रियों के गीतों से शब्दित था उसपै चढ़कर वह इन्द्रकी उस नगरीको देखने के लिये आया ॥ ५८ ॥ जिसमें

यमदूतोंसे व इन्द्रसे युद्ध हुआ है आते हुये उसको जानकर सुरराजने विचार किया ॥ ५९ ॥ कि यह चित्रगुप्त व यमादिकोंसे सबसे शिवजी की नाईं पूजने योग्य है ॥ ६० ॥ इस कारण मैं हाथीपै चढ़कर व यमराज भैंसे पर सवार होकर तथा मेरी आज्ञासे चित्रगुप्त लेखनी (कलम) को कान पै धरकर चलैं ॥ ६१ ॥ बहेलिया को घर आनेपर अतिथिका पूजन करना चाहिये क्योंकि विन पूजे हुये इसके जानेपर शिवजी मुझको शाप देवैंगे ॥ ६२ ॥ उसी कारण लोकों का कल्याण करनेवाले शिवजीको सब पूजैंगे स्वर्गको देखने के लिये आयेहुये दूरमें स्थित उसको उन्होंने देखा ॥ ६३ ॥ जोकि विमान पै स्थित व शिवजीके समान

यमकिङ्करैः ॥ आगच्छमानंतंज्ञात्वा देवराजेनचिन्तितम् ॥ ५९ ॥ पूज्योयंहरवत्सर्वैश्चित्रगुप्तयमादिभिः ॥ ६० ॥ अहंगजंसमारुह्य महिषेणयमोप्यतः ॥ विधायलेखनींकर्णे चित्रगुप्तोममाज्ञया ॥ ६१ ॥ आतिथ्यपूजाकर्त्तव्यालुब्धकेगृहमागते ॥ अपूजितेगतेह्यस्मिन् हरोमांशपयिष्यति ॥ ६२ ॥ तस्माच्चपूजयिष्यन्ति शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ दिवंद्रष्टुंसमायातं ददृशुर्दूरतःस्थितम् ॥ ६३ ॥ विमानस्थंहराकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ संस्तूयमानंमाहात्म्यैः शिवरात्रेःशिवस्यच ॥ ६४ ॥ माघेसोमेचतुर्द्दश्यां कृष्णायांजागरेकृते ॥ तदेतज्जायतेसर्वं सुरेश्वरधरातले ॥ ६५ ॥ एवंदिव्याङ्गना काचिदावेष्टन्तीपुरन्दरम् ॥ निवार्यहस्तमुद्यम्य गजेन्द्रंचारुलोचना ॥ ६६ ॥ किंदानैर्बहुभिर्दत्तैर्व्रतैःकिंकिंसुरार्चनैः ॥ किंयज्ञैःकिंतपोभिश्च ब्रह्मचर्यैःसुरेश्वर ॥ ६७ ॥ गयायांपिण्डदानेन प्रयागेमरणेनकिम् ॥ सोमेश्वरेसरस्वत्यां सोमपर्वणिकिंगतैः ॥ ६८ ॥ कुरुक्षेत्रेगतैःकिंस्याद् राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ तुलासुवर्णदानेन वेदपाठेनकिंभवेत् ॥ ६९ ॥ सर्वपाप

आकारवान् तथा करोड़ सूर्यों के समान प्रभावान् और शिवरात्रि व शिवजी के माहात्म्यों से स्तुति किया जाता था ॥ ६४ ॥ कि हे सुरेश्वर ! माघ महीने में कृष्ण पक्षवाली सोमवार चौदसि में जागरण करने पर वह सब फल पृथ्वी में होता है ॥ ६५ ॥ इसप्रकार सुन्दर नेत्रोंवाली कोई देवांगना हाथको उठाकर गजेन्द्रको रोक कर इन्द्रको घेरती थी व कहतीथी ॥ ६६ ॥ कि हे सुरेश्वर ! बहुत दियेहुये दानोंसे, व्रतोंसे व देवपूजन करनेसे क्याहै व यज्ञोंसे, तपोंसे और ब्रह्मचर्य्योंसे क्याहै ॥ ६७ ॥ गयामें पिंडदानसे व प्रयागमें मरने से क्याहै व चन्द्रमा के ग्रहणमें सोमेश्वर और सरस्वतीके समीप जाने से क्या है ॥ ६८ ॥ व राहुसे सूर्य नारायणके ग्रस्त होनेपर

कुरुक्षेत्रमें जानेसे क्याहै और तुलापै सुवर्णदानसे व वेदपाठसे क्या होताहै ॥ ६९ ॥ और जिससे सब पातकोंका नाश होता है उस वृषोत्सर्ग से क्याहै व गोदान क्या करता है और तिलदान क्या करता है ॥ ७० ॥ व विषुव अयन तथा संक्रान्तिमें कैसा फलहै जैसा कि माघ महीने में चौदसि तिथिमें जागरण करनेपर होताहै ॥७१॥ व भैंसेपर बैठेहुये बुद्धिमान् यमराज कहतेथे कि हे चित्रगुप्त ! शूद्रके माहात्म्य को देखिये व विचारिये ॥ ७२ ॥ यह वही बहेलियाहै जिसने पुरातन समय शिवजीको पूजा है सुराष्ट्र देशमें वस्त्रापथ तीर्थ प्रसिद्ध है उसको सुनिये ॥ ७३ ॥ कि वहा ऊर्जयन्त पर्वतहै व रैवतक पहाड़ है उन दोनोंके बीच में बड़ीभारी जाली है ऐसा मैंने

गोदानंकिंकरोत्येव तिलदानंकरोतुकिम् ॥ ७० ॥ अयनेविषुवेचैव संक्रान्तौकीदृशं त्वयोयेन वृषोत्सर्गेणातेनकिम् ॥ गोदानंकिंकरोत्येव ... यमःसम्भाषतेधीमान् महिषोपरिसंस्थितः ॥ पश्यशूद्रस्य फलम् ॥ माघेमासिचतुर्दश्यां यादृशंजागरेकृते ॥ ७१ ॥ यमःसम्भाषतेधीमान् महिषोपरिसंस्थितः ॥ पश्यशूद्रस्य माहात्म्यं चित्रगुप्तविचारय ॥ ७२ ॥ अयंसलुब्धकोयेन हरःसम्पूजितःपुरा ॥ सुराष्ट्रदेशेविख्यातं तीर्थंवस्त्रापथंशृणु ॥ ७३ ॥ ऊर्ज्जयन्तोगिरिस्तत्र तथारैवतकोगिरिः ॥ महतीवर्त्ततेजालिस्तयोर्मध्येमयाश्रुतम् ॥ ७४ ॥ मृन्मयंवर्त्ततेलिङ्गं रात्रौचानेनपूजितम् ॥ रात्रौकृतंजागरणं येनकार्येणचागतः ॥ ७५ ॥ तदस्माभिःकथंवाच्यं सर्वेजानन्तितेसुराः ॥ वराङ्गनावरंद्रष्टुं वरयन्तिपरस्परम् ॥ ७६ ॥ इन्द्रावासात्समायाता नन्दनेवेगवत्तराः ॥ ७७ ॥ विरञ्चिनारायणशङ्करैःसमो देहःसमागच्छतिकोपिपूरुषः ॥ पुरींसुरेशाधिपतेर्निरीक्षितुं भर्त्ताममायन्तवचास्तिकिंपतिः ॥ ७८ ॥ मृदङ्गवीणापटहस्वरस्तुतिप्रबोधिताभिःसुरराजमन्दिरे ॥ देवोहरोयंननरोहराकृतिर्दृष्टोङ्गनाभिस्तवकिंकिमावयोः ॥ ७९ ॥

सुना है ॥ ७४ ॥ और वहां मिट्टीका लिंग है उसको रात्रि में इसने पूजन किया है व रात्रिमें जागरण किया है कि जिस कार्य से आया था ॥ ७५ ॥ वह हमलोगों से कैसे कहा जासक्ताहै वे सब देवता जानते हैं और इन्द्रके स्थान से बड़े वेगवाली उत्तम स्त्रियां वरको देखने के लिये नन्दनवनमें आईं और परस्पर पतिको वरण करती थीं ॥ ७६ । ७७ ॥ कि ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी के समान शरीरवाला कोई पुरुष इन्द्रकी पुरी को देखने के लिये आता है यह मेरा स्वामी है या तुम्हारा पति है ॥ ७८ ॥ मृदङ्ग, वीणा व नगारे के शब्दों की स्तुतिसें जगाईहुई देवांगनाओं ने इन्द्रमन्दिरमें इन शिव देवजी को देखाहै यह शिवजी के समान आकारवान् पुरुष

मनुष्य नहीं है और यह तुम्हारा पतिहै कि हम दोनोंमें से किसीका पतिहै ॥ ७९ ॥ कोई गाती हैं कोई हँसती है कोई नाचती हैं व कोई पढ़ती हैं व माता, पिताओंके समीप कोई जयशब्दसे संयुत अनेक वाक्यों से बोलती हैं ॥८०॥ कोई शिवजीकी स्तुति करती है व कोई स्त्री पार्वतीकी स्तुति करती है व कोई बिल्वपत्रोंसे पूजती है और उपासका क्या फलहै व जागरणमें जो फलहोवै उसको कहिये ॥ ८१ ॥ नन्दन वनमें उन देवांगनाओंके अनेकप्रकारके वचन सुनेजातेहैं ब्रह्मलोकसे अधिक वार्ता को करके तदनन्तर ॥ ८२ ॥ फिर कौतुकसे संयुक्त इन्द्रजी लुब्धक (बहेलिया) से बोले कि किस देशमें पर्वतमें जालीहै व जहां लिंगहोवै उसको दिखलाइये ॥ ८३ ॥

गायन्तिकाश्चिद्विहसन्तिकाश्चिन्नृत्यन्तिकाश्चित्प्रपठन्तिकाश्चित ॥ वदन्तिकाश्चिज्जयशब्दसंयुतैर्वाक्यैरनेकैर्गुरुसन्निधाने ॥ ८० ॥ काचिच्छिवंस्तौतिशिवांतथान्या काचित्समभ्यर्चयतिबिल्वपत्रैः ॥ किंचोपवासस्यफलंवदस्व निद्राक्षयेवायदनुष्ठितंतत ॥ ८१ ॥ तासांनानाविधावाचः श्रूयन्तेनन्दनेवने ॥ ब्रह्मलोकाधिकांवार्त्तां कृत्वाचतदनन्तरम् ॥ ८२ ॥ देवेन्द्रोलुब्धकंभूयो बभाषेकौतुकान्वितः ॥ कस्मिन्देशेगिरौजालिर्लिङ्गंयत्रास्तिदर्शय ॥ ८३ ॥ लुब्धक उवाच ॥ सुराष्ट्रदेशोविख्यातो यत्रदेवीसरस्वती ॥ वाडवंशिरसाधृत्वा प्रविष्टालवणाम्बुधौ ॥ ८४ ॥ यत्रसागोमतीयाति यत्रास्तेगन्धमादनम् ॥ ऊर्ज्जयन्तोगिरिवरो यत्ररैवतकोगिरिः ॥ ८५ ॥ तत्रवस्त्रापथंक्षेत्रं भवोदेवोऽव्यवस्थितः ॥ तत्रास्ते मृन्मयंलिङ्गं जालिमध्येसुरोत्तम ॥ ८६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ मयावैतत्रगन्तव्यं पूजयिष्येभवंस्वयम् ॥ जालिमध्येतथालिङ्गं दर्शयस्वचलुब्धक ॥ ८७ ॥ परदारादिजंपापं दैत्यानांचविकृन्तनम् ॥ वधेवृत्रसंजातं तत्सर्वंक्षालयाम्यहम् ॥ ८८ ॥

लुब्धक बोला कि सुराष्ट्र ऐसा देश प्रसिद्धहै जहां कि सरस्वती देवी मस्तकसे वड़वानलको धारणकर क्षारसमुद्रमें पैठी हैं ॥८४ ॥ और जहां वह गोमती जातीहै व जहां गन्धमादन पर्वतहै और जहां ऊर्जयन्तनामक उत्तम पर्वतहै व जहा रैवतक पहाड़है ॥ ८५ ॥ हे सुरोत्तम ! वहां वस्त्रापथ क्षेत्रहै व भवदेवजी स्थितहैं और वहां जालीके मध्यमें मिट्टीका लिंगहै ॥ ८६ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे लुब्धक ! मुझको वहां जाना चाहिये और भवजीको आपही पूजूंगा जालीके मध्यमें लिंगको दिखलाइये ॥ ८७ ॥

पराई स्त्रियोंसे उपजाहुआ पाप व दैत्योंका विनाश और वृत्रासुरसे उपजा हुआ जो पाप बढ़ाहै उस सबको मैं नाशकरूं ॥ ८८ ॥ ऐसा कहकर सब साथही पर्वत के
शिखर पै प्राप्तहुये और जो देवता थे वे सवारियोंको छोड़कर पैदल स्थितहुये ॥ ८९॥ और ऊर्जयन्त पर्वतके शिखरपै गजराज (ऐरावत) आया व उसके आगे उस
पर्वतके मस्तक पै उसने चरण दिया इस कारण ॥९०॥ उस हाथीसे दबेहुये उत्तम पर्वतने निर्मल जलको बहाया तब इन्द्रने लोकों के हितकी कामनासे यह कहा
कि हाथी के पांवसे उपजाहुआ जल स्थिर होगा और जहां जाली स्थित थी वहां सब आये ॥ ९१ । ९२ ॥ व माघ महीने में चौदसि को अनेक भांतिके पुष्पोंसे शिवजी

इत्युक्त्वासहिताःसर्वे संप्राप्तागिरिमूर्द्धनि ॥ वाहनानिचतेत्यक्त्वा येस्थिताःपादचारिणः ॥ ८९ ॥ ऊर्जयन्तागिरेर्मूर्द्ध्नि
गजराजःसमागतः ॥ तदग्रेचरणंतस्य ददौमूर्द्ध्निसकारणात ॥ ९० ॥ तेनाक्रान्तोगिरिवरस्तोयंसुस्रावनिर्मलम् ॥ ग
जपादोद्भवंवारि भविष्यतितदास्थिरम् ॥ ९१ ॥ इतिप्रोक्तंसुरेन्द्रेण लोकानांहितकाम्यया ॥ सर्वेसमागतास्तत्र यत्रजा
लिंर्यवस्थिता ॥ ९२ ॥ सम्पूज्यविविधैःपुष्पैर्माघेमासेचतुर्दशीम् ॥ तस्यांजागरणंकृत्वा संजातोनिर्मलोहरिः ॥९३॥
वस्त्रापथेभवम्पूज्य हरीरैवतकेगिरौ ॥ इन्द्रेश्वरंप्रतिष्ठाप्य सम्प्राप्तःस्वनिकेतनम् ॥ ९४ ॥ यादृग्रूपशिवोदृष्टः सूर्य
विम्बादिगम्बरम् ॥ पद्मासनस्थितःसौम्यस्तथातन्तत्रसंस्मरन् ॥ ९५ ॥ प्रतिष्ठाप्यतथामूर्त्तिंपूजयामासवत्सरम् ॥ मनो
भीष्टार्थसिद्ध्यर्थं ततःसिद्धिमवाप्तवान् ॥ ९६ ॥ निमिनाथशिवेत्येवं नामचक्रेसवामनः ॥ तत्रस्यपश्चिमेभागे प्रत्या
सन्नेधरातले ॥ ९७ ॥ वामनोवसतिंचक्रे तीर्थेवस्त्रापथेतदा ॥ अतोयवाधिकंप्रोक्तं तीर्थंदेवैःसवासवैः ॥ ९८ ॥ इन्द्रेणच

को पूजकर व उस रात्रिमें जागरण कर इन्द्रजी निर्मल हुये ॥ ९३ ॥ व वस्त्रापथ तीर्थ में भवजीको पूजकर इन्द्रजी रैवतक पर्वत पै इन्द्रेश्वर को थापकर अपने
घरको प्राप्तहुये ॥ ९४ ॥ सूर्य नारायण के बिंबमें जैसे रूपवाले शिवजी देखपड़ेथे कमलासनसे बैठेहुये सौम्य वामनजीने वहां वैसेही उन दिगंबर शिवजीको स्मरण
करतेहुये ॥ ९५ ॥ मूर्तिको थापकर मनोरथ की सिद्धिके लिये वर्ष भर तक पूजनकिया तदनन्तर सिद्धिको पाया ॥ ९६ ॥ व उन वामनजीने निमिनाथ शिव
ऐसा नाम किया व भवजीके पश्चिम भागमें समीपही पृथ्वीपर ॥ ९७ ॥ उस समय वामनजीने वस्त्रापथ तीर्थ में निवास किया इसी कारण इन्द्रसमेत सब देवताओं

कृतंदेविसमागत्यभवाग्रतः ॥ यवाधिकंप्रभासेतु तीर्थमेतद्भवाज्ञया ॥ ९९ ॥ अन्येषांषड्गुणंतीर्थं भविष्यतिशिवाज्ञया ॥ इत्येतत्कथितंसर्वं किमन्यत्परिपृच्छसि ॥ १०० ॥ देव्युवाच ॥ शिवरात्रेःप्रभावोयमतुलःपरिकीर्तितः ॥ अजानता कृतंतेन लुब्धकेनपुराश्रुतम् ॥ १ ॥ इदानींवदकर्त्तव्यं कथमन्यैर्जनैर्विभो ॥ किंग्राह्यंकिंचभोक्तव्यं शिवरात्र्यांवदस्व मे ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सम्प्राप्यमानुषंजन्म ज्ञात्वादेवंमहेश्वरम् ॥ शिवरात्रिःसदाकार्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ३ ॥ यादृशंजायतेपुण्यं तत्सर्वंकथ्यतेनृप ॥ येकुर्वन्तिसदामर्त्यास्तेषांपुण्यमनन्तकम् ॥ ४ ॥ द्वादशाब्दंव्रतमिदं कर्त्तव्यंप्रतिवासरम् ॥ जीवितञ्चञ्चलंनृणां यदिकर्त्तुंनशक्यते ॥ ५ ॥ तदाद्वादशभिर्मासैर्व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ मासेमासेचतुर्दश्यां प्रारम्भःक्रियतेनृप ॥ ६ ॥ प्रतिमासंततःकार्यं यद्येतन्नसमाप्यते ॥ विघ्नश्चजायतेमध्ये कथंवैदेवयोगतः ॥ ७ ॥ नभवेद् व्रतभङ्गश्चपुनःकार्यमनन्तरम् ॥ द्वादशैवप्रकर्त्तव्याकृत्वासंख्याविशेषतः ॥ ८ ॥ कृतेननश्यतेकर्म शुभंवायदि

ने यवाधिक तीर्थको कहाहै ॥ ९८ ॥ हे देवि ! इन्द्रने भवजीके आगे आकर प्रभासक्षेत्रमें भवजीकी आज्ञासे इस यवाधिक तीर्थ को किया है ॥ ९९ ॥ शिवजी की आज्ञासे अन्य तीर्थोंमें छगुना वह तीर्थ होगा यह सब चरित्र कहा गया तुम अन्य क्या पूंछती हो ॥ १०० ॥ देवीजी बोलीं कि शिवरात्रि का यह अतुल प्रभाव कहा गया पुरातन समय न जानतेहुये लुब्धक (बहेलिया) ने उस को किया है ऐसा सुना गया ॥ १ ॥ हे विभो ! इससमय कहिये कि अन्य मनुष्यों को किसप्रकार करना चाहिये व शिवरात्रिमें क्या ग्रहण करना चाहिये व क्या भोजन करना चाहिये उसको मुझ से कहिये ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि मनुष्य के जन्मको पाकर महेश्वरदेवजी को जानकर भुक्ति मुक्ति की देनेवाली शिवरात्रि सदैव करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे राजन् ! जैसा पुण्य होताहै वह सब कहा जाताहै जो मनुष्य सदैव उसको करते हैं उनको अनन्त पुण्य होता है ॥ ४ ॥ प्रतिदिन बारह वर्षतक इस व्रतको करना चाहिये और मनुष्यों का जीवन चलायमानहै इस लिये यदि वह न किया जासकै ॥ ५ ॥ तो बारह महीनों से इस व्रतको करै हे राजन् प्रति महीनेमें चौदसि तिथिमें प्रारम्भ किया जाताहै ॥ ६ ॥ तदनन्तर प्रत्येक महीनेमें करना चाहिये और यदि यह न समाप्त होवै और बीचमें दैवयोग से किसीप्रकार विघ्न होजावै ॥ ७ ॥ तो व्रत भंग नहीं होताहै और इसके उपरान्त फिर

करना चाहिये और संख्या करके विशेषकर बारहही व्रत करना चाहिये ॥ ८ ॥ इस व्रतके करने से शुभ या अशुभ कर्म नष्ट होजाताहै कृष्णपक्षवाली चौदसिमें पूर्वदिन के कर्मको करके ॥ ९ ॥ व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये और नदीमें स्नान किया जाताहै उसके अभावमें अपनी शक्तिसे तड़ागादिमें स्नान करना चाहिये ॥ १० ॥ और तैलाभ्यंग न करना चाहिये व कहीं गमन न करना चाहिये व तीर्थसेवा करना चाहिये या उस तीर्थ में गमन उत्तम होताहै ॥ ११ ॥ व आपहीसे उपजे हुये लिंगके समीप मनुष्योंको सदैव शिवरात्रि करना चाहिये उसके अभावमें सौ वर्षसे अधिक लिंग महा पुण्यवान् होताहै ॥ १२ ॥ पर्वत, वन, समुद्रके मध्य में

वाशुभम् ॥ कृष्णायान्तुचतुर्दश्यां कृतपूर्वाह्णिकक्रियः ॥ ९ ॥ व्रतस्यनियमोग्राह्योनद्यांस्नानंविधीयते ॥ तदभावेतडागादौ स्नानंकार्यंस्वशक्तितः ॥ १० ॥ तैलाभ्यङ्गोनकर्तव्यो नकार्यंगमनंक्वचित् ॥ तीर्थसेवाप्रकर्त्तव्या तस्मिन्वागमनंशुभम् ॥ ११ ॥ शिवरात्रिःसदाकार्या लिङ्गेस्वायंभुवेनरैः ॥ तदभावेमहापुण्यं लिङ्गंवर्षशताधिकम् ॥ १२ ॥ गिरौवनेसमुद्रान्ते नद्यांयत्रशिवालये ॥ तद्देस्वायंभुवंलिङ्गं स्वयंतत्रैवसंस्थितः ॥ १३ ॥ बाणलिङ्गादिकंलिङ्गं पूजितंफलदंस्मृतम् ॥ दिवासंपूजनीयंतत्पुष्पधूपादिनाततः ॥ १४ ॥ वर्जयेन्मदिरांद्यूतं नारींनखनिकृन्तनम् ॥ ब्रह्मचर्यपरैःशान्तैः कर्तव्यंसमुपोषणम् ॥ १५ ॥ रात्रौदेवाग्रतोगत्वा कर्त्तव्याःसप्तपर्वताः ॥ पक्वान्नफलताम्बूलपुष्पधूपादिचर्चिताः ॥ १६ ॥ घृतेनदीपःकर्त्तव्यः पापनाशनहेतवे ॥ यतोदीपस्यमाहात्म्यं विज्ञेयंमुक्तिदायकम् ॥ १७ ॥ दीपःसदैवकर्त्तव्यः गृहेदेवालयेनरैः ॥

व नदीमें जहां शिवालय में वह आपही से उपजा हुआ लिंग होवै वहां आपही स्थित होवै ॥ १३ ॥ पूजा किया हुआ बाणलिंगादिक लिंग फलदायक कहागयाहै उसी कारण दिनमें पुष्पधूपादिक से वह लिंग पूजने योग्यहै ॥ १४ ॥ और मदिरा जुँवा, स्त्री व नखच्छेदको वर्जित करै व ब्रह्मचर्यमें परायण तथा शान्त मनुष्योंको उपास करना चाहिये ॥ १५ ॥ रात्रिमें शिवदेवजी के आगे जाकर सात पर्वतों को बनाना चाहिये और पकान्न, फल, ताम्बूल व पुष्प धूपादिकों से उनका पूजन करै ॥ १६ ॥ और पाप नाशने के लिये घीसे दीप करना चाहिये क्योंकि दीपकका माहात्म्य मुक्तिदायक जानने योग्यहै ॥ १७ ॥ घरमें व देवस्थानमें मनुष्योंको सदैव

दीपक करना चाहिये दिन, रात्रि या संध्यामें अपनी शक्तिके अनुसार दीपक करना चाहिये ॥ १८ ॥ कुछ उद्योतनही से देवता पृथ्वीमें तृप्त होते हैं श्राद्धकर्म में पहले पितरोंका दीपक करना चाहिये ॥ १६ ॥ व जिस प्रकार निद्रा न होवै उसी भांति रात्रिमें जागरण करना चाहिये व शिवजीके समीप शिवरात्रिकेइस माहात्म्य को सुनना चाहिये ॥ २० ॥ व रात्रिमें बहुत विस्तारवाला शिवजीका चरित्र सुनना चाहिये और शिवजीके समीप गीत, नृत्य व बाजन बजाना चाहिये ॥ २१ ॥ इस प्रकार वह रात्रि व्यतीत की जाती है क्योंकि जागरण मुख्यहै व जागरण में अपनी शक्तिसे दानोंको देना चाहिये ॥ २२ ॥ फिर प्रातःकाल स्नान व शिवपूजन

दिवावानिशिसन्ध्यायांदीपःकार्यःस्वशक्तितः ॥ १८ ॥ किञ्चिदुद्योतमात्रेण देवास्तुष्यन्तिभूतले ॥ पितॄणांप्रथमं दीपः कर्त्तव्यःश्राद्धकर्मणि ॥ १६ ॥ रात्रौजागरणंकार्यं यथानिद्रानजायते ॥ शिवरात्रिप्रभावोयं श्रोतव्यःशिवसन्निधौ ॥ २० ॥ शिवस्यचरितंरात्रौश्रोतव्यंबहुविस्तरम् ॥ गीतन्नृत्यंतथावाद्यं कर्त्तव्यंशिवसन्निधौ ॥ २१ ॥ एवंसानीयते रात्रिर्मुख्यंजागरणंयतः ॥ रात्रौदेयानिदानानि स्वशक्त्यातानिजागरे ॥ २२ ॥ पुनःस्नानंप्रभातेतु कर्त्तव्यंशिवपूजनम् ॥ पूजनीयाश्चयतयो भोजनाच्छादनादिभिः ॥२३॥ तपस्विनांप्रदातव्यं भोजनंगृहमेधिभिः ॥ द्वादशाष्टौचतस्रःषड् भोक्तव्याएकएवच ॥२४॥ एकोपिब्रह्मचारीयो ब्रह्मविच्छिवपूजकः ॥ सहस्राणांसमोभक्त्या गृहेसम्पूजितोभवेत्॥२५॥ अक्षारलवणैश्चान्नैर्भोक्तव्यंवाग्यतैःस्वयम् ॥पुत्रमित्रकलत्राणां दातव्यंभोजनंपुरा ॥२६॥ अनेनविधिनाकार्या शिवरात्रिःसदानरैः ॥ २७ ॥ व्रतान्तेगौःप्रदातव्या कृष्णावत्सयुताद्दृढा ॥ सवस्त्रभरणादिव्या घण्टाभरणभूषिता ॥ २८ ॥

करना चाहिये और भोजन व आच्छादनादिकों से संन्यासियों को भोजन कराना चाहिये ॥ २३ ॥ और गृहस्थोंको तपस्वियों को भोजन देना चाहिये व बारह, आठ, चार व छः व एकही ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये ॥ २४ ॥ वेदको जाननेवाला जो एकभी शिवपूजक ब्रह्मचारी होवै घरमें भक्तिसे पूजन कियाहुआ वह हज़ार ब्राह्मणों के बराबर है ॥ २५ ॥ व अक्षार (बिन सांभर) लोनवाले अन्नों से आपही मौनी मनुष्योंको भोजन करना चाहिये और पहले पुत्र, मित्र व स्त्रियों को भोजन देना चाहिये ॥ २६ ॥ इस विधिसे मनुष्यों को सदैव शिवरात्रि करना चाहिये ॥ २७ ॥ व्रतके अन्तमें वस्त्रों व गहनोंसमेत तथा घण्टाके आभूषण से

भूषित तथा बछड़ासे संयुक्त व पुष्टकृष्णा गऊको देना चाहिये ॥ २८ ॥ और मुंदरी वस्त्र, छतुरी, पनहीं, लोटा व दक्षिणाको गुरुके लिये देवै और ब्राह्मणों के लिये अपनी शक्तिसे दक्षिणा देवै ॥ २९ ॥ इस प्रकार शिवदेवजीसे क्षमापन करावै व तपस्वियोंके लिये अनेक प्रकारके मिष्टान्नको देकर व क्षमापन कराकर विदाकरै ॥ ३० ॥ जो मनुष्य इस प्रकार करताहै उसके पाप नहीं रहताहै और उत्तम सन्तान को पाकर अति उत्तम सुखोंको भोगकर ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान पै चढ़कर दिव्य स्त्रियों से घिराहुआ वह गीत व बाजनों के शब्दों से शिवमन्दिरमें प्राप्त किया जाताहै ॥ ३२ ॥ इस कारण मैंने इस पुण्यदायक शिवरात्रिके व्रतको कहा कि जिसके

अङ्गुलीयकवासांसि छत्रोपानत्कमण्डलुः ॥ गुरवेदक्षिणांदद्याद्ब्राह्मणेभ्यःस्वशक्तितः ॥ २९ ॥ एवंक्षमापयेद्देवं तपस्विभ्योथभोजनम् ॥ मिष्टान्नंविविधंदत्त्वा क्षमाप्यचविसर्जयेत् ॥ ३० ॥ एवंयःकुरुतेमर्त्यस्तस्यपापंनविद्यते ॥ सन्तानमुत्तमंलब्ध्वा भुक्त्वाभोगाननुत्तमान् ॥ ३१ ॥ दिव्यंविमानमारूढो दिव्यस्त्रीपरिवेष्टितः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्नीयतेशिवमन्दिरम् ॥ ३२ ॥ तदेतत्कथितंपुण्यंशिवरात्रिव्रतंमया ॥ श्रुतेनयेनमर्त्यानांसर्वपापक्षयोभवेत् ॥ १३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे वस्त्रापथक्षेत्रे शिवरात्रिमाहात्म्यंनामाष्टाविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२८ ॥

पार्वत्युवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं त्वत्प्रसादाच्छ्रुतंमया ॥ दृष्ट्वानारायणंशान्तंनारदोमन्दरेगिरौ ॥ १ ॥ किञ्चकार मुनीन्द्रोथतन्मेविस्तरतोवद ॥ संसारसरणोद्भूतपापाचारप्रपीडितम् ॥ २ ॥ कथामृतजलौघेनवितृषांकुरुमांप्रभो ॥ ३ ॥

सुनने से मनुष्योंके समस्त पातकोंका नाश होता है ॥ १३३ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवस्त्रापथक्षेत्रेशिवरात्रिमाहात्म्यं नामाष्टाविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२८ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ अति उत्तम जिमि यज्ञको कियो दैत्य बलिराज। सोइत्रिशत उन्तीसमें कह्यो चरित सुखसाज ॥ पार्वतीजी बोलीं कि तुम्हारी प्रसन्नतासे मैंने इस विचित्र कथाको सुना और नारदजी मन्दराचलपै शान्त नारायणजीको देखकर ॥ १ ॥ मुनिनायकने क्या कियाहै उसको मुझसे विस्तारसे कहिये व हे प्रभो ! संसारमें

भ्रमण से उपजे हुये पापके आचारसे पीड़ित मुझको कथारूपी अमृतजल के प्रवाह से प्यासरहित कीजिये ॥ २ । ३ ॥ महादेवजी बोले कि पहले भृगु ब्राह्मण से शापित देवको जानकर नारदजीने आराधनका विचार किया कि यह वैसाही होगा अन्यथा न होवैगा ॥ ४ ॥ और वह भविष्य होना है व वर्तमान को विचार कर पहले वामन होकर विष्णुजी उस पुरीको जावेंगे ॥ ५ ॥ पश्चात् वे वामनजी मुझको प्यारे बलिके बन्धन को करेंगे और महाउग्र वर्तमान युद्धके विना मुझको किसप्रकार टिकना चाहिये ॥ ६ ॥ और देवताओं व दानवों के युद्ध तथा दैत्य, गंधर्व व राक्षसों के और सर्पों व पक्षियों के सब युद्ध मना कियेगये ॥ ७ ॥ व मेरे

ईश्वर उवाच ॥ आराध्यनारदोदेवं ज्ञात्वाशप्तांद्विजन्मना ॥ भृगुणाचतथापूर्वं नान्यथैतद्भविष्यति ॥ ४ ॥ भविष्यं भविताह्येतद्वर्त्तमानंविचिन्त्यच ॥ प्रथमंवामनोभूत्वा विष्णुर्यास्यतितांपुरीम् ॥ ५ ॥ निग्रहंसबलेःपश्चात्करिष्यतिमम प्रियम् ॥ युद्धंविनाकथंस्थेयं वर्त्तमानंमहोल्बणम् ॥ ६ ॥ देवदानवयुद्धानि दैत्यगन्धर्वरक्षसाम् ॥ निवारितानिसर्वाणि सरीसृपपतत्रिणाम् ॥ ७ ॥ सापत्निककलिर्नास्ति ममभाग्यपरिक्षये ॥ देवेन्द्रोगुरुणापूर्वं वारितोकिंकरोम्यहम् ॥ ८ ॥ माननीयोगुरुर्यस्मादतस्तंनाशयाम्यहम् ॥ युद्धार्थंचकृतोयत्नोनासिद्ध्यतिकरोमिकिम् ॥ ९ ॥ केनापिदैवयोगेन पुरुषार्थोनसिद्ध्यति ॥ तथापियत्नःकर्त्तव्यः पुरुषार्थेविपश्चिता ॥ १० ॥ दैवंपुरुषकारेण कोनिवर्तितुमर्हति ॥ यदुक्तं तद्विबोधार्थं यतःसिद्धिर्हिदैविकी ॥ ११ ॥ बलिंगत्वाभणिष्यामि यथायुद्धंकरिष्यति ॥ वारयिष्यतिशुक्रश्चेन्निश्चितन्तंशपाम्यहम् ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वासययौवेगान्नारदोबलिमन्दिरे ॥ निमिषान्तरमात्रेण शिष्याभ्यांगगनेस्थितः॥१३॥

भाग्य के क्षयमें शत्रुवोंका झगड़ा नहीं होता है और बृहस्पति ने पहलेही इन्द्रको मना किया मैं क्या करूं ॥ ८ ॥ जिस लिये गुरु मानने योग्य है इसकारण मैं उस को शाप नहीं देताहू और युद्ध के लिये उपाय कियागया परन्तु सिद्ध नहीं होता है मैं क्या करूं ॥ ९ ॥ व किसी दैवयोगसे भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होताहै तथापि विद्वान् को पुरुषार्थ में यत्न करना चाहिये ॥ १० ॥ और पुरुषार्थसे दैव को निवृत्त करने के लिये कौन योग्य है और जो कहागयाहै वह बोधके लिये है क्योंकि दैवी सिद्धि होतीहै ॥ ११ ॥ मैं जाकर बलिसे कहूंगा कि जिसप्रकार वह युद्धको करैगा और जो शुक्राचार्यजी मनाकरैंगे तो मैं निश्चयकर उनको शापदूंगा ॥ १२ ॥ यह

कहकर वे नारदजी वेगसे बलिके मन्दिर में गये और पलभर में शिष्योंसमेत वे आकाशमें स्थित हुये ॥ १३ ॥ और सात दर्जेवाले तथा बड़े उज्ज्वल व पर्वत के समान मन्दिर में प्राप्त हुए उसके ऊपर विश्वकर्माने दिव्य सभाको बनाया था ॥ १४ ॥ उस सभामें दिव्य सिंहासन था उसपै राजाबलि बैठेथे और जैसे देवताओं से घिरेहुए इन्द्र होवैं वैसेही सब दैत्योंसे बलि घिरेथे ॥ १५ ॥ व दिव्य मन्दिरमें ऋषियोंसे और शान्त ब्राह्मणों से व आपही शुक्राचार्यसे और पुत्रों, मित्रों व कलत्रोंसे घिरेथे ॥ १६ ॥ और देवांगनाओंके हाथों में ग्रहण कियेहुये चामरों से वीजित उस बलि नृपेन्द्रकी चारण स्तुति करते थे ॥ १७ ॥ वहांजो धनसे उन्मत्त थे वे आपस

तस्योपरिसभादिव्यानिर्मिताविश्वकर्मणा ॥ १४ ॥ तस्यांसिंहासनंदिव्यं प्रासादेशैलसंकाशे सप्तभौमेमहोज्ज्वले ॥ तत्रासीनोबलिर्नृपः ॥ दैतेयैःसंवृतःसर्वैर्देवराजोयथामरैः॥१५॥ ऋषिभिर्ब्राह्मणैःशान्तैस्तथाचोशनसास्वयम् ॥ पुत्रमित्रकलत्रैश्च संवृतोदिव्यमन्दिरे ॥ १६ ॥ देवाङ्गनाकरग्राहगृहीतैर्दिव्यचामरैः ॥ संवीज्यमानोराजेन्द्रःस्तूयमानःस तथा चारणैः ॥ १७ ॥ येचतत्रधनोन्मत्ता मन्त्रयन्तिपरस्परम् ॥ दैत्यदानवमुख्याये तेसर्वेयुद्धकाङ्क्षिणः ॥ १८ ॥ उत्थायोत्थायभाषन्ते प्रगल्भास्तेसुरैस्सह ॥ अस्मदीयमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसाम्प्रतङ्गतम् ॥ १९ ॥ शुक्रबुद्ध्याविनायुद्धं प्राप्यतेकिंमहोदयम् ॥ दैत्येन्द्रोदेवराजेन स्नेहञ्चकुरुतेयदि ॥ २० ॥ ऐरावणंसदामत्तं कथन्नोयाचतेबलिः ॥ चतुरन्तुरगं कस्मान्नायंयाचेद्दिवाकरम् ॥ २१ ॥ यावन्नाक्रम्यतेलुब्धो धनाध्यक्षोरणाजिरे ॥ तावन्नार्पयतेवित्तं पुरायत्सञ्चितंसुरैः ॥ २२ ॥ नदर्शयतिरत्नानि जलराशीरसातलात् ॥ यावन्नमन्दरंक्षिप्त्वाविमथ्नीमोवयंप्रति ॥ २३ ॥यथामृतकला

में सलाह करते थे और जो मुख्य दैत्य व दानव थे वे सब युद्धकी इच्छा करते थे ॥ १८ ॥ व देवताओंके साथ प्रगल्भ (ढीठ) वे दैत्य उठ उठ कर यह कहते थे कि इस समय हमारा यह सब त्रिलोक जाता रहा ॥ १९ ॥ और यदि दैत्येन्द्र (बलि) इन्द्रसे स्नेह करैं तो विना शुक्राचार्यकी बुद्धिके क्या बड़े ऐश्वर्यवाला युद्ध प्राप्त होगा ॥ २० ॥ और सदैव मतवाले ऐरावतको बलि क्यों नहीं मांगता है और सूर्य नारायणसे ये बलि चतुर घोड़ेको क्यों नहीं मांगतेहैं ॥ २१ ॥ जबतक लोभी कुबेरजी युद्धके आंगनमें आक्रमण न किये जावैंगे तब तक पहले जो देवताओंसे इकट्ठा कियागयाहै उसधनको न देवैंगे ॥ २२ ॥ और जबतक हमलोग मन्दराचल

को डालकर न मथैंगे तबतक समुद्र रसातलसे रत्नोंको न दिखावैगा ॥ २३ ॥ व हे बले ! जिस प्रकार देवता क्रमसे चन्द्रमावाली अमृतकी कलाओंको भोगतेहैं ऐसेही जलात्मक (चन्द्रमा) किसकारण बलिको भाग नहीं देताहै ॥ २४ ॥ कमल की धूलिसे सुगन्धित गंगाजीका पवन जिस प्रकार धीरे २ स्वर्ग में चलता है उस भांति बलिके मन्दिरमें नहीं चलता है ॥ २५ ॥ और इन्द्रसे उत्पन्न कियेहुए मेघ पृथ्वीमें जलको छोड़तेहैं तदनन्तर फिर वे मेघ पृथ्वीसे स्वर्गको चले जाते हैं ॥ २६ ॥ और मेरी पृथ्वीमें यमराज मनुष्योंको मारते हैं इस प्रकार स्वर्ग व पातालमें नहीं मारतेहैं हमलोग इसकार्यके कारण को देखते हैं॥ २७ ॥ और ये चित्रगुप्तजी

आन्द्र्योभुज्यन्तेक्रमशःसुरैः ॥ एवंभागंबलेःकस्मान्नददातिजलात्मकः ॥ २४ ॥ स्वर्धुनीशीतलोवातः पद्मकिञ्जल्कवासितः ॥ स्वर्गेयथाशनैर्वाति नतथाबलिमन्दिरे ॥ २५ ॥ इन्द्रेणोत्पादितामेघा जलंमुञ्चन्तिभूतले ॥ ततोजलधराःस्वर्गं पुनस्तेयान्तिभूतलात् ॥ २६ ॥ अस्मदीयेधरापृष्ठे यमोमारयतेजनम् ॥ नैवंस्वर्गेनपाताले यमःकार्यस्यकारणम् ॥ २७ ॥ आयुर्वित्तंसुतान्सौख्यमस्माकंलिखतिस्वयम् ॥ ललाटेचित्रगुप्तोसौ नदेवानान्तुतत्समम् ॥ २८ ॥ वर्षाशीतातपाःकाला वर्त्तन्तेभुविसाम्प्रतम् ॥ स्वर्गेनैवचपाताले भूताभूमौभ्रमन्तिहि ॥२९॥ एकवीर्योद्भवायूयं स्वस्रीयादेवदानवाः ॥ भूमौस्थितावयंकस्माद्देवाःकेनोपरिस्थिताः ॥ ३० ॥ समुद्रेमथ्यमानेतु दैत्येन्द्रोवञ्चितःसुरैः ॥ एकतःसर्वदेवाश्च बलिश्चैवैकतःकृतः ॥ ३१ ॥ उत्पन्नेषुचरत्नेषु वैषम्यंपश्ययादृशम् ॥ गजाश्वकल्पवृक्षांश्च चन्द्रंगांको

हमारे मस्तकमें आयुर्बल, द्रव्य, पुत्र व सुखको आपही लिखते हैं और उसके बराबर देवताओंके मस्तक में नहीं लिखते हैं ॥ २८ ॥ और वर्षा, जाड़ व घाम ये समय इस समय पृथ्वी में वर्तमान हैं और न स्वर्ग में हैं न पातालमें हैं व प्राणी पृथ्वी में घूमते हैं ॥ २९ ॥ व तुमलोग एकही (कश्यप) के वीर्य से उत्पन्न हो व देवता और दैत्य स्वस्रीय हैं याने एक बहन के देवता व एकके दैत्य हैं और किस कारण हमलोग भूमि में स्थित हैं व देवता किस कारण ऊपर स्थितहैं ॥ ३० ॥ और समुद्र मथे जानेपर दैत्येन्द्र (बलि) को देवताओंने छल लिया एकओर सब देवता कियेगये व एक ओर बलि कियागया ॥ ३१ ॥ व रत्नोंके उत्पन्न होने पर

जैसी विषमता हुई है उसको देखिये कि हाथी, घोड़ा, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, गऊ और कौस्तुभ मणिको ॥ ३२ ॥ व अमृतको लेकर देवताओंने हमलोगों को मद्य पानमें नियुक्त किया व इस मदिरा से घूर्णित (मतवाले) हमलोग बहुत गर्वित होकर नहीं जानते हैं ॥ ३३ ॥ और पीने से बचेहुए अमृतको देवताओंने सत्यलोक में धरदिया यह आश्चर्य है कि देवता बड़े कुटिल हैं क्योंकि शेष अमृत किस कारण नहीं दियाजाताहै ॥ ३४ ॥ स्वर्गमें अमृतहै ऐसा जानकर हमलोग अमृत से छलेगये और तिलमें तैलही देखागयाहै घी कहीं नहीं देखागयाहै ॥ ३५ ॥ और विष्णुजीके बहुत चरित्रोंकी गणना नहीं कीजासक्तीहै तथापि उन हृष्ट पुष्ट देवताओं

स्तुभंमणिम् ॥ ३२ ॥ गृहीत्वाह्यमृतंदेवैर्वयंपानेनयोजिताः ॥ एतयाघूर्णिताःसर्वे नजानीमेतिगर्विताः ॥ ३३ ॥ पीता वशेषंपीयूषं सत्यलोकेधृतंसुरैः ॥ अहोतिकुटिलादेवाः कस्माच्छेषंनदीयते ॥ ३४ ॥ स्वर्गेमृतमितिज्ञात्वा पीयूषाद्व ञ्चितावयम् ॥ तैलमेवतिलेदृष्टं नैवदृष्टंघृतंक्वचित ॥ ३५ ॥ विष्णोर्बहुचरित्राणां संख्याकर्तुन्नशक्यते ॥ तथापिकथ्य तेपुष्टैर्हृष्टैस्तैर्यदनुष्ठितम् ॥ ३६ ॥ गौराङ्गीसुन्दरीसुभ्रूः पीनोन्नतपयोधरा ॥ सुकेशीचन्द्रवदना कर्णासक्तविलोचना ॥ ३७ ॥ वलित्रयाङ्किता मध्ये याचमुष्ट्याभिगृह्यते ॥ स्थलारविन्दचरणा लतेवभुजभूषिता ॥ ३८ ॥ सासर्वलक्षणोपेता सर्वाभरणभूषिता ॥ त्रैलोक्यसुन्दरीदेवी सञ्जातामृतमन्थने ॥ ३९ ॥ अमृतादुत्थितापूर्वं यस्यसातस्यतद्ध्रुवम् ॥ त्रै लोक्यंवशगन्तस्य यस्यसाचारुलोचना ॥ ४० ॥ तयासम्मोहिताः सर्वे देवदानवराक्षसाः ॥ विमुच्यमानन्तेसर्वे गृही

ने जो कियाहै वह कहा जाताहै ॥ ३६ ॥ कि गौरवर्ण अंगोंवाली, सुन्दरी तथा सुन्दरी भौंहोंवाली और मोटे व ऊँचे कुचोंवारी, सुकेशी, चन्द्रमुखी व कानोंतक लगेहुये लोचनोंवाली ॥ ३७ ॥ त्रिवलीसे चिह्नित व कटिमें जो मुष्टिसे ग्रहण की जाती थी याने कृशोदरी, स्थल कमलके समान चरणोंवाली व भुजाओंसे भूषित जो लता की नाईथी ॥ ३८ ॥ वह सब लक्षणों से संयुक्त तथा सब आभूषणों से भूषित, त्रिलोक में सुंदरी देवी अमृतके मथने में उत्पन्नहुई ॥ ३९ ॥ अमृतसे पहले पैदाहुई वह जिसकी है उसका वह अमृत निश्चय करहै और त्रिलोक उसके वशमें है जिसकी वह चारुनेत्रा (लक्ष्मी) है ॥ ४० ॥ उससे देवता, दानव व राक्षस सब

मोहित होगये और वे सब गर्वको छोड़कर पकड़ने के लिये उद्यत हुए ॥ ४१ ॥ एक स्त्री और बहुतसे देवता, दानव, दैत्य व राक्षस थे इससे बड़ा विवाद हुआ कि इसमें कैसा होगा ॥ ४२ ॥ विष्णुजीने भुजाको पकड़कर सबको मना किया कि हे दैत्यो ! इसके लिये परस्पर क्यों बड़ा विवाद कियाजाताहै ॥ ४३ ॥ अमृतके लिये प्रारंभहुआहै और तुमलोग स्त्रीके लिये नाश होवोगे पहले संकेत करके आपही विष्णुजीने हम सबोंको छल लिया ॥ ४४ ॥ और दिव्य रूपको धारे, मालाको पहने व वनमालासे भूषित तथा कौस्तुभमणिसे प्रकाशित शरीरवाले, शंख, चक्र व गदा को धारण किये ॥ ४५ ॥ विष्णुजी उन लक्ष्मीजीके हाथमें उत्तम मालाको देकर

तुंवैसमुद्यताः ॥ ४१ ॥ एकास्त्रीबहवोदेवा दानवादैत्यराक्षसाः ॥ विवादःसुमहाञ्जातः कथमत्रभविष्यति ॥ ४२ ॥ आगत्यविष्णुनासर्वे भुजंधृत्वानिवारिताः ॥ अस्यार्थेकिंमहावादः क्रियतेभोपरस्परम् ॥ ४३ ॥ अमृतार्थेसमारम्भो महिलार्थेविनश्यथ ॥ सङ्केतंप्रथमंकृत्वा विष्णुनावञ्चिताःस्वयम् ॥ ४४ ॥ दिव्यरूपधरःस्रग्वी वनमालाविभूषितः ॥ कौस्तुभोद्द्योतिततनुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४५ ॥ तस्याहस्तेशुभांमालां दत्त्वाविष्णुःपुरस्थितः ॥ उद्धृत्यबाहुंसर्वेषां बभाषेवचनंहरिः ॥ ४६ ॥ कुर्वन्तुकुण्डलंसर्वे तिष्ठन्तुस्वयमासने ॥ विलोक्यस्वेच्छयालक्ष्मीर्वनमालाप्रयच्छतु ॥ ४७ ॥ स्वयंवरविभेदंयः कथयिष्यतिलम्पटः ॥ सवध्यःसहितैःसर्वैः परस्त्रीलुब्धकोयथा ॥ ४८ ॥ परदाराकृतंपापंस्त्री वधात्तस्यजायताम् ॥ अन्योपियःकरोत्येवमेवमस्तुतदुच्यताम् ॥ ४९ ॥ मध्येरणेहरिंज्ञात्वा तथेत्युक्तन्त्वयाकृत म् ॥ देवदानवदैत्यानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ ५० ॥ मध्येयोभिमतोभर्त्ता सत्यंसत्यंभवेदिति ॥ तेनासौमोहितापूर्व

आगे स्थितहुये व भुजाको उठाकर विष्णुजीने सबोंसे वचन कहा ॥ ४६ ॥ कि सब कुंडलको धारण करैं व आपही सब आसन पै बैठें व लक्ष्मीजी देखकर अपनी इच्छासे वनमालाको देवैं ॥ ४७ ॥ और जो लंपट स्वयंवरकेभेदको कहैगा वह सब दैत्योंसमेत मारने योग्य होगा जैसे कि परस्त्रीमें लुब्ध पुरुष वध्य होताहै ॥ ४८ ॥ व उसको स्त्रीके वधके कारण पराई स्त्रीसे कियाहुआ पाप होवै व अन्यभी जो ऐसा करै वह ऐसाही होवै वह कहा जावै ॥ ४९ ॥ और समरमध्यमें विष्णुजीको जान कर तुमसे कियाहुआ वैसाही होवै और देवता, दानव व दैत्योंके मध्यमें व गंधर्व, नाग व राक्षसोंके ॥ ५० ॥ मध्यमें जो पति ईप्सित होवै वह सत्य सत्य होवै पहले

ही दृष्टिके दानसे हर्षित यह लक्ष्मी उन विष्णुजीसे मोहितहुई ॥ ५१ ॥ पहले दृष्टिके देखनेसे उन्होंने स्त्रियोंको वश किया व ऐसाही करने पर कानमें हाथको देकर जो कहाजाता था ॥ ५२ ॥ तब यह स्त्री हृदयमें कामदेवके बाणसे पीड़ित होती थी और कलह होने पर विष्णुजीने उस सबको मना किया ॥ ५३ ॥ और जब सबोंके बीचमें विष्णुजीको ग्रहण किया व विष्णुजीको वे लक्ष्मीजी नहीं छोड़ती थीं व उन लक्ष्मीने यह कहा कि तुम्हीं पति हो तब विष्णुजीने कहा कि मुझको छोड़ो दूर जावो ॥ ५४ ॥ तदनन्तर विष्णुजी छोड़कर दूर देवमण्डलमें बैठे तब सबोंने छोड़दिया व यथायोग्य स्थानों में बैठगये ॥ ५५ ॥ पहले लक्ष्मीजीने क्रमपूर्वक

दृष्टिदानेनहर्षिता ॥ ५१ ॥ आदौसंवननंस्त्रीणां चक्रेदृष्टिनिरीक्षया ॥ एवमेवकृतेकर्णे हस्तंदत्त्वायदुच्यते ॥ ५२ ॥ तदासौहृदयेनारी कामबाणप्रपीडिता ॥ सञ्जातेकलहेसर्वं हरिणातन्निवर्त्तितम् ॥ ५३ ॥ यदागृहीतःसर्वेषां हरिर्नैवविमुञ्चति ॥ त्वमेवभर्त्तासाचष्टे मुञ्चमांव्रजदूरतः ॥ ५४ ॥ मुक्त्वादूरन्ततोविष्णुः संविष्टःसुरमण्डले ॥ तदासर्वेव्यमुमुचुर्यथास्थानेस्वयंगजाः ॥ ५५ ॥ आचष्टेविजयापूर्वं सर्वान्देवान्यथाक्रमम् ॥ सानिरीक्ष्यचतंविष्णुं विवाहार्थंनमुञ्चति ॥ ५६ ॥ उदासीनःशिवःशान्तो गौरीकान्तस्त्रिलोचनः ॥ नान्यंनिरीक्षतेनित्यं ध्यानासक्तस्त्रिलोचनः ॥ ५७ ॥ पितामहेनचेत्युक्तस्ततोयंमेनरोचते ॥ नमस्कृत्यगतातत्रकृतमौनानपश्यति ॥ ५८ ॥ आदित्यचन्द्रौमुक्त्वाच दहनं दहनात्मकम् ॥ वातोवातिगतोदूरे वरुणोमेपितायतः ॥ ५९ ॥ पौलोमीवदनासक्तो देवेन्द्रोनैवरोचते ॥ वधबन्धनकृच्छे

सब देवताओंको देखा व विवाहके लिये उन विष्णुजीको देखकर वे लक्ष्मी उनको नहीं छोड़तीथीं ॥ ५६ ॥ क्योंकि पार्वतीजीके पति त्रिलोचन शिवजी शांत व उदासीनहैं और ध्यानमें लगेहुए त्रिलोचनजी सदैव अन्य पुरुषको नहीं देखते हैं ॥ ५७ ॥ व पितामह अज ऐसे कहेगयेहैं उस कारण मुझको नहीं रुचते हैं और उनको प्रणामकर वहां चलीगई व मौन होकर नहीं देखती थी ॥ ५८ ॥ और सूर्य व चन्द्रमा तथा दहनात्मक अग्निको छोड़कर लक्ष्मीने विचारकिया कि द्वारपै प्राप्तहोकर पवन चलताहै व जिसलिये वरुण मेरे पिताहैं उस कारण ग्रहण करने योग्य नहीं हैं ॥ ५९ ॥ और इन्द्राणी के मुखमें आसक्त इन्द्रजी नहीं रुचते हैं व वध, बन्धन

करनेवाले तथाछेद, भय, दंड व खींचको ॥ ६० ॥ सूर्यनारायण के पुत्र यमराज करतेहैं व सौम्यरूपको करतेहैं और देवता, दानव, गंधर्व, दैत्य, नाग, राक्षस ॥ ६१ ॥ देखेगये व इनको छोड़कर लक्ष्मीजी आगे चलीं व कानोंतक नेत्रोंवाले तथा शोभित टेढ़ी दृष्टिसे देखनेवाले इन पुरुषोत्तम विष्णुजीको उन्होंने देखा ॥ ६२ ॥ जोकि सौभाग्यकी अधिकतासे संयुक्त व मनोहर कामदेवकी नाईं सुन्दर तथा रोमाच होनेसे पसीने के जलकणोंसे चिह्नित थे ॥ ६३ ॥ और देवता, दानव व दैत्ये-न्द्रोंकी क्रोध दृष्टिसे देखीहुई लक्ष्मीजी ने मनोहर विष्णुजीको वर किया तदनन्तर आपही मालाको दिया ॥ ६४ ॥ और मलिनमुख शोभावाले सब दैत्य परस्पर बोले

दभयदण्डविकर्षणम् ॥ ६० ॥ करोतिकुरुतेसौम्यं रूपंवैवस्वतोयमः ॥ देवदानवगन्धर्वा दैत्यपन्नगराक्षसाः ॥ ६१ ॥ दृष्टास्त्यक्त्वाग्रतोयाति दृष्टोसौपुरुषोत्तमः ॥ कर्णान्तलोचनंभ्राजवक्रदृष्ट्यावलोकितम् ॥ ६२ ॥ सौभाग्यातिशयाकान्तरम्यःकाममनोहरम् ॥ सञ्जातपुलकोद्भेदस्वेदवारिकणाङ्कितम् ॥ ६३ ॥ देवदानवदैत्येन्द्रक्रोधदृष्ट्यानिरीक्षिता ॥ रम्यंरामावरंचक्रे ददौमालांस्वयन्ततः ॥ ६४ ॥ दैत्याःपरस्परंसर्वे प्रोचुर्म्लानमुखश्रियः ॥ विभागंपश्यदेवानां स्वर्गंसर्वेस्वयंगताः ॥ ६५ ॥ पातालस्यतलेयूयंमानवाधरणीतले ॥ देवास्त्रिभुवनेयान्ति नवयंस्वर्गगामिनः ॥ ६६ ॥ मानवाःक्षत्रियाराज्यं कुर्वन्तुपृथिवीतले ॥ पातालन्तुपरित्यज्य धात्री यदितुरोचते ॥ ६७ ॥ देवदानवजः कश्चिद्राजातत्रभवेत्किल ॥ अथकिम्बहुनोक्तेन राजात्रिभुवनेबलिः ॥ ६८ ॥ संविभज्याधिरत्नानि समंराज्यंविधीयताम् ॥ यावदेवंप्रजल्पन्ते तावत्पश्यन्तिनारदम् ॥ ६९ ॥ गगनात्समुपायान्तं द्वितीयमिवभास्करम् ॥ ब्रह्मदण्डकरासक्तं शुद्ध

कि देवताओंके विभागको देखिये कि आप सब स्वर्गको गये हैं ॥ ६५ ॥ व तुमलोग पातालके नीचे हो और पृथ्वीमें मनुष्य हैं और देवता त्रिलोकमें जाते हैं व हमलोग स्वर्गगामी नहीं होते हैं ॥ ६६ ॥ व क्षत्रिय मनुष्य पृथ्वीमें राज्य करैं और पाताल को छोड़कर यदि पृथ्वी रुचै ॥ ६७ ॥ तो हे देव ! दानवोंसे उत्पन्न कोई वहां राजा होवै अथवा बहुत कहने से क्याहै त्रिलोकमें बलि राजा होवै ॥ ६८ ॥ और रत्नों को बांटकर बराबर राज्य कियाजावै जबतक वे सब ऐसा कहते थे तबतक उन्होंने

आकाशसे आतेहुए दूसरे सूर्यकी नाईं नारदजी को देखा जोकि ब्रह्मदण्डको हाथमें लिये व शुद्ध पुस्तकको धारे थे ॥ ६९ । ७० ॥ और कृष्णाजिनको धारण किये व शान्त तथा दिव्य रुद्राक्ष से भूषित थे और बीतेहुए कल्पोंसे की हुई ग्रंथियोंकी सूत्रमालाको पहने थे ॥ ७१ ॥ व ब्रह्मा तथा शिवजीके संवादसे उपजेहुए जन्मके अहंकार से गर्वित व क्रोधित तथा कर्मसे चतुर व चिन्तामें लगे हुये मनवाले थे॥ ७२ ॥ और आतेहुये नारदजीको देखकर सब दैत्य विस्मित होकर स्थित हुये व बलि बोले कि हे प्रभो ! प्रसन्नता कीजिये व मेरे घरमें आइये ॥ ७३ ॥ मैं धन्यहूं व पुण्य किये हूं कि जिस मेरे घरमें तुम आये बलिसे ऐसा कहे हुये नारद विप्रजी बलि

पुस्तकधारिणम् ॥ ७० ॥ कृष्णाजिनधरंशान्तं दिव्यरुद्राक्षभूषितम् ॥ गतकल्पकृतग्रन्थिसूत्रमालावलम्बितम् ॥७१॥ विरञ्चिहरसंवादो जन्माहङ्कारगर्वितः ॥ संक्रुद्धः क्रिययादक्षो चिन्तातत्परमानसः ॥७२॥ आयान्तंनारदंदृष्ट्वाविस्मिताः समुपस्थिताः ॥ बलिरुवाच ॥ प्रभोप्रसादः क्रियतामागन्तव्यंगृहेमम ॥ ७३ ॥ धन्योहंकृतपुण्योहं यस्यमेत्वंगृहागतः ॥ इत्युक्तोबलिनाविप्रो विवेशसुरमन्दिरे ॥ ७४ ॥ आसनंपाद्यमर्घ्यंञ्चदत्त्वासम्पूज्यतंद्विजम् ॥ प्रविश्यसहिताःसर्वे संविष्टादैत्यदानवाः ॥ ७५ ॥ शुक्रेणसहितोदैत्यो बभाषेनारदंबलिः ॥ इदंराज्यमिमेदाराइमेपुत्रास्त्वहंबलिः ॥ ७६ ॥ ब्रूयाद्येनात्रतेकार्यं दानंमेप्रथमंव्रतम् ॥ ७७ ॥ नारद उवाच ॥ भक्त्यातुष्यन्तियेविप्रास्तेविप्राभूमिदेवताः ॥ नतुयेपूजिता भक्त्या पुनर्याचन्तितेधमाः ॥ ७८ ॥ त्वयासम्पूजितोहृष्टोमेवित्तैर्नप्रयोजनम् ॥ हृष्टोहन्तवराज्येन यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तथा ॥ ७९ ॥ देवैः कृतंविप्रियन्तेकिञ्चित्पश्याम्यहंबले ॥ त्वयासम्पूजितस्सम्यग्देवराजोनतुष्यति ॥ ८० ॥ नक्षमन्तिसुराः

दैत्यके मन्दिर में पैठे ॥ ७४ ॥ और आसन,पाद्य व अर्घ्यको देकर उन नारद द्विज को प्रणामकर सब दैत्य व दानव साथही पैठकर बैठगये ॥ ७५ ॥ व शुक्रसमेत बलिदैत्य ने नारदसे कहा कि यह राज्य,ये स्त्रियां, ये पुत्र और मैं बलिहूं ॥ ७६ ॥ जिससे तुम्हारा कार्यहो उसको कहिये और दान मेरा पहला नियम है ॥ ७७ ॥ नारदजी बोले कि जो ब्राह्मण भक्तिसे प्रसन्न होते हैं वे द्विज पृथ्वी के देवता हैं व जो भक्तिसे नहीं पूजे जाते हैं वे नीच फिर याचना करते हैं ॥ ७८ ॥ और तुमसे पूजित मैं प्रसन्नहूं व द्रव्यों से मेरा प्रयोजन नहीं है तुम्हारे राज्यसे मैं प्रसन्नहूं ॥ और यज्ञोंसे, दानोंसे व व्रतोंसे प्रसन्नहूं ॥ ७९ ॥ और देवताओंसे किये हुए तुम्हारे कुछ

अप्रिय को मैं देखताहूं और तुमसे भलीभांति पूजित सुरराज (इन्द्र) प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ ८० ॥ और सब देवता पृथ्वीमें तुम्हारे राज्यको नहीं सहते हैं और देवताओं के व तुम्हारे वैर में स्वर्ग पृथ्वीके समान होगया ॥ ८१ ॥ और जीतकी इच्छा करनेवाले सेनासमेत इन्द्राणी के पति सुरनायक इन्द्रजी तैयार होकर पहले जातेहैं व उसका राज्य बढ़ता है ॥ ८२ ॥ और तुम्हारे राज्यका नाश होगा ऐसा मैंने सुनाहै ऐसा सुनकर जैसा योग्य होवै वह शीघ्रही कियाजावै ॥ ८३ ॥ बलि बोले कि हे विभो ! जिन गुणों से राजा राज्य को करताहै उनको मुझसे कहिये और दानको पात्र व अपात्रमें भी देना चाहिये उसको कहिये ॥ ८४ ॥ नारदजी बोले

सर्वे तवराज्यंधरातले ॥ स्वर्गोभूमिसमोजातो देवानांतवविग्रहे ॥ ८१ ॥ सन्नह्यप्रथमंयाति ससैन्यश्चशचीपतिः ॥ देवो योविजयाकाङ्क्षी तस्यराज्यञ्चवर्द्धते ॥८२॥ उच्छेदस्तवराज्यस्य भविष्यतिश्रुतंमया ॥ एवंश्रुत्वायथायुक्तं तच्छीघ्रं चविधीयताम् ॥ ८३ ॥ बलिरुवाच ॥ यैर्गुणैःकुरुतेराज्यं राजात्वंवदमेविभो ॥ दानंपात्रेप्रदातव्यमपात्रेचापितद्वद ॥ ८४॥ नारद उवाच ॥ षट्त्रिंशद्गुणसम्पन्नो राजाराज्यंकरोतिचेत् ॥ सराज्यफलमाप्नोति शृणुतत्कथयाम्यहम् ॥८५॥ चरन्धर्मानकलुषो सर्वान्स्नेहेनचास्तिकः ॥ अप्रकाशंचरेदर्थं त्यक्तकाममनुद्धतः ॥ ८६ ॥ प्रियंब्रूयादकृपणःशूरःस्याद विकत्थनः ॥ दातानापात्रवर्षीस्यात्प्रगल्भस्स्यादनिष्ठुरः ॥ ८७ ॥ सन्दधीतनचानार्यान्विरुध्येन्नचबन्धुभिः ॥ नानार्यैश्चारयेच्चारैः कुर्यात्काममंनपीडया ॥ ८८ ॥ अर्थज्ञोयत्रआपत्सु गुणान्ब्रूयान्नचात्मनः ॥ विरुध्येन्नचसाधुभ्यो नासत्पुरुष

कि यदि छत्तीस गुणसे संयुक्त राजा राज्यको करताहै तो वह राज्य के फलको पाता है मैं कहताहूं उसको सुनिये ॥ ८५ ॥ कि आस्तिक पुरुष सब धर्मोंको करताहुआ पापहीन होताहै व गर्वहीन मनुष्य प्रकाश न करताहुआ कामनाओंसे रहित अर्थको करै ॥ ८६ ॥ व कृपण न होकर प्रिय बोलै और अपनी प्रशंसा न करताहुआ शूर होवै व अपात्रमें न बरसनेवाला दाता होवै व निठुर न होकर ढीठ होवै ॥ ८७ ॥ और दुष्टोंसे मेल न करै व भाइयों से वैर न करै और दुष्ट चारोंसे भेदिहा दूतोंका कार्य न करावै व पीडासे कामको न करै ॥ ८८ ॥ और जहां अर्थका जाननेवाला होवै वहां आपत्तियों में अपने गुणोंको न कहै व साधुवों से विरोध न करै और

असत्य पुरुष के आश्रित न होवै ॥ ८९ ॥ और परीक्षा न करके दण्ड न देवै मंत्रको प्रकाशित न करै और लोभियोंके लिये दान न देवै व अपकारियों में विश्वास न करै ॥ ९० ॥ और स्त्रियोंको अत्यन्त गुप्तकरै व बलवान् राजा क्षमा करै व स्त्री का बहुत सेवन न करै व प्रिय भोजन करै अहित भोजन न करै ॥ ९१ ॥ और बिन चोर पुरुषको पूजै व बिन माया से गुरुकी सेवा करै तथा पाखण्ड से देवता का पूजन न करना चाहिये व बिन निन्दित लक्ष्मीकी इच्छा करै ॥ ९२ व याचना को छोड़कर सेवा करै और प्रवीण व समयका ज्ञाता होवै और बकताहुआ भोजन न करै व दया करता हुआ पुरुष निन्दा न करै ॥ ९३ ॥ और जानकर प्रहार करै

माश्रयेत् ॥ ८९ ॥ नापरीक्ष्यनयेद्दण्डं नचमन्त्रंप्रकाशयेत् ॥ विसृजेन्नचलुब्धेभ्यो विश्वसेन्नापकारिषु ॥ ९० ॥ अतीवगुप्तदारस्स्याद्बलीयान्क्षमतेनृपः ॥ स्त्रियंसेवेतनात्यर्थं चेष्टंभुञ्जीतनाहितम् ॥ ९१ ॥ अस्तेनंपूजयेन्मर्त्यं गुरुंसेवेदमायया ॥ अर्च्योदेवोनदम्भेन श्रियमिच्छेदकुत्सिताम् ॥ ९२ ॥ सेवेतप्रणयंहित्वादक्षस्स्यादथकालवित् ॥ जल्पन्नपिनभुञ्जीत अनुगृह्णन्नचाक्षिपेत् ॥ ९३ ॥ प्रहरेदेवविज्ञाय हत्वाशत्रून्नशेषयेत् ॥ क्रोधंकुर्यान्नचाकस्मान्मृदुःस्यादपकारिषु ॥ ९४ ॥ एवंचराज्यसंस्थेयं यदिश्रेयमिहेच्छसि ॥ तपःस्वाध्यायदानानि तीर्थयात्राश्रमाणिच ॥ ९५ ॥ योगेनात्मप्रबोधस्य कलान्नार्हन्तिषोडशीम् ॥ त्वयासंसारवैराग्यं कर्त्तव्यंविप्रपूजनम् ॥ ९६ ॥ यष्टव्यंविविधैर्यज्ञैर्ध्येयोनारायणोहरिः ॥ प्रसङ्गेनसमायातो यास्येरैवतकेगिरौ ॥ ९७ ॥ तत्रास्तेभगवान्विष्णुर्नदीत्रैलोक्यपावनी ॥ तत्रास्तेचशिवोवृक्षो बहुपुष्पफलान्वितः ॥ ९८ ॥ तत्रगत्वाकरिष्यामि व्रतंतद्विष्णुवल्लभम् ॥ बलिरुवाच ॥ शिववृक्षस्तुकः

व शत्रुवोंको मारकर शेष न करै व अचानक ही क्रोध न राखै और अपकारियों में कोमल होवै ॥ ९४ ॥ इस प्रकार यह राज्यकी संस्था है यदि तुम यहां कल्याणको चाहतेहो तो तपस्या, वेदपाठ, दान तीर्थयात्रा व आश्रम ॥ ९५ ॥ ये आत्मज्ञानी के योगसे सोलहवीं कलाके योग्य नहीं होते हैं और तुमको संसारसे वैराग्य व द्विजपूजन करना चाहिये ॥ ९६ ॥ व अनेक भांति के यज्ञोंसे पूजन करना चाहिये व नारायण विष्णुका ध्यान करना चाहिये मैं प्रसंगसे आया था अब रैवतक पर्वतपै जाऊँगा ॥ ९७ ॥ वहां भगवान् विष्णुजी हैं व त्रिलोकको पवित्र करनेवाली नदीहै और बहुत पुष्पों व फलोंसे संयुत वहां शिववृक्षहै ॥ ९८ ॥ वहां जाकर मैं उसविष्णु

प्रियव्रत को करूंगा बलि बोले कि शिवृत्त कौन है और वह कैसे हुआ उसको मुझसे कहिये ॥ ९९ ॥ नारदजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! पुरातन समय युगादिमें पर्वत पखनोंसमेत किये गये फिर पश्चात् ब्रह्मासे विचारकर वे अचल किये गये ॥१०० ॥ और बड़ेशरीरवाले वे पर्वत ऊपर उड़ते थे व अपनी इच्छासे गिरतेथे और मेरु,मन्दर कैलास ब्रह्मासे स्थिर होकर स्थित होकर स्थित हुये ॥ १ ॥ व जब मना कियेहुये अन्य पर्वत नहीं स्थितहुये तब इन्द्रसे स्थिर कियेगये सुमेरु गिरिके दक्षिण शिखर पै कुमुद नामक पर्वतहै ॥ २ ॥ पखनोंसमेत वह सुवर्णका दिव्यपर्वत दिव्य वृक्षों से घिराहै उसके ऊपर विष्णुजीने दिव्यवैष्णवी पुरीको निर्माण कियाहै ॥ ३ ॥ उसके मध्यमें दिव्य

प्रोक्तः कथंतत्कथयस्वमे ॥ ९९ ॥ नारद उवाच ॥ पुरायुगादौदैत्येन्द्र सपक्षाःपर्वताःकृताः ॥ सञ्चिन्त्यब्रह्मणापश्चाद बलास्तेकृताःपुनः ॥ १०० ॥ उत्पतन्तिमहाकाया निपतन्तियदृच्छया ॥ मेरुमन्दरकैलासावेधसासंस्थितास्थिराः ॥ १ ॥ वारितानस्थितायाता तदेन्द्रेणस्थिरीकृताः ॥ मेरोर्दक्षिणशृङ्गेतु कुमुदोनामपर्वतः ॥ २ ॥ दिव्यःसपक्षःसौवर्णो दिव्यवृक्षैःसमावृतः ॥ तस्योपरिपुरीदिव्या वैष्णवीविष्णुनाकृता ॥ ३ ॥ तस्यामध्येगृहंदिव्यं यस्मिँल्लक्ष्मीःसदास्थिरा॥मेरोःशृङ्गेपुरीरम्यागृहंतत्रमनोरमम् ॥ ४ ॥ तत्रास्तेभगवान्देवो भवानीयत्रसंस्थिता ॥ सभामाहेश्वरीरम्या सौवर्णा रत्नमण्डिता॥५॥तत्रास्तेभगवान्रुद्रो विष्णुर्ब्रह्मादिभिर्वृतः॥६॥तस्यांविष्णुःसदायातिदेवंद्रष्टुंमहेश्वरम् ॥सौवर्णैःकुमुदैर्यस्मादसौसर्वत्रमण्डितः ॥ ७ ॥ कुमुदेतिकृतन्नाम देवैस्तत्रसमागतैः ॥ एकदाभगवान्रुद्रो गिरौतस्मिन्समागतः ॥ ८ ॥ द्रष्टुन्तच्छिखरेरम्ये ताम्पुरींविष्णुपालिताम् ॥ गृहागतंहरंदृष्ट्वा हरिणासतुपूजितः ॥९ ॥ लक्ष्म्यासम्पूजितागौरी

मन्दिरहै जिसमें सदैव लक्ष्मीजी स्थित रहतीहैं व सुमेरु गिरिके शिखर पै सुन्दरी पुरी है उसमें मनोहर घरहै ॥ ४ ॥ वहां भगवान् शिवदेवजी हैं जहा कि पार्वतीजी स्थित हैं और शिवजीकी सुवर्ण की मनोहर सभा है जो कि रत्नोंसे शोभितहै ॥ ५ ॥ वहां ब्रह्मादिक देवताओं से घिरेहुये भगवान् शिवजीहैं ॥ ६ ॥ और उसपुरीमें महेश्वर देवजीको देखने के लिये विष्णुजी सदैव आते हैं जिसलिये सोनेके कमलों से यह सब कहीं शोभित है ॥ ७ ॥ उसीकारण वहा आये हुये देवताओंने कुमुद ऐसानाम कियाहै एक समय भगवान् शिवजी उस पर्वत पै आये व उसके सुन्दर शिखर पै विष्णुजीसे पालित उस पुरीको देखनेके लिये घर में आयेहुये शिवजीको देखकर

विष्णुजीने उनको पूजा ॥ ८९ ॥ व लक्ष्मीसे पूजीहुई पार्वतीजी प्रसन्न होकर वहां स्थित हुईं व एक आसन पै बैठे हुये वे दोनों शिव व विष्णुजी परस्पर सलाह कर रहे थे ॥ १० ॥ और शिवजीने कारण जानकर उस सबको विष्णुजी से कहा कि उत्तम मन्दराचल पै तुमको इस नगरीको बनाना चाहिये ॥ ११ ॥ यदि अवश्य होवै तो कारण न पूछना चाहिये और महादेवही कारणको जानतेथे कुमुद भी नहीं जानताथा ॥ १२ ॥ वैसाही होगा ऐसा वे दोनों कहकर स्थित हुये और वह पर्वत भी स्थित हुआ और आये हुये शिवजीको देखकर वह कुमुद आपही आया ॥ १३ ॥ व उसने कहा कि मैं धन्यहूं व पुण्य कियेहू कि जिसके घरमें आप दोनों आयेहो

हर्षितातत्रसंस्थिता ॥ एकामनोपविष्टौतौ मन्त्रयन्तौपरस्परम् ॥ १० ॥ हरेणकारणंज्ञात्वा तत्सर्वंकथितंहरेः ॥ त्वयेयंनगरीकार्या मन्दरेपर्वतोत्तमे ॥ ११ ॥ प्रष्टव्यंकारणंनैवमवश्यंचेद्भविष्यति ॥ हरएवविजानाति कारणंकुमुदोपिन ॥ १२ ॥ एवंतथेतितौप्रोक्त्वा संस्थितःपर्वतोपिसः ॥ सदृष्ट्वासङ्गतंरुद्रं कुमुदःस्वयमाययौ ॥ १३ ॥ धन्योहंकृतपुण्योहं यस्येमौगृहमागतौ ॥ द्वाभ्यामुक्तोगिरिवरो ददावःकिंवरन्तव ॥ १४ ॥ इत्युक्तःपर्वतस्ताभ्यांवरंचक्रेसमूढधीः ॥ भविष्यकार्यहेतुत्वाद् भविष्यतिचतद्ध्रुवम् ॥ १५ ॥ यत्राहंतत्रवस्तव्यं भवद्भ्यामस्तुमेवरः ॥ मत्सन्निधौसमागत्य स्थातव्यंब्रह्मवासरम् ॥ १६ ॥ तथेत्युक्त्वासपत्नीकौ गतौहरिहरावुभौ ॥ ईश्वर उवाच ॥ कथेयंदैत्यपुत्रस्यमयातेविनिवेदिता ॥ १७ ॥ सर्वपापोपशमनी संसारध्वान्तदीपिका ॥ कृष्णद्वैपायनोव्यासो विस्तरेणवदिष्यति ॥ १८ ॥ सूतपुत्रायदेवेशि

विष्णु व शिव दोनों ने पर्वतोत्तम कुमुदसे कहा कि हम दोनों तुमको क्या वरदान देवैं ॥ १४ ॥ उन दोनों से ऐसा कहे हुये उस मूढबुद्धिवाले कुमुद पर्वत ने वरदान मांगा कि होनेवाले कार्यके कारण वह निश्चय कर होगा ॥ १५ ॥ जहां मैं हूं वहां आप दोनों को वसना चाहिये यह मेरा वरदान होवै और मेरे समीप आकर ब्रह्माके दिन तक टिकना चाहिये ॥ १६ ॥ वैसाही होगा यह कहकर स्त्रियोंसमेत विष्णु व महादेव दोनों चलेगये महादेवजी बोले कि दैत्यपुत्र बलिकी इस कथा को मैंने तुमसे कहा ॥ १७ ॥ जो कि समस्त पातकों को नाश करनेवाली व संसार के अन्धकार के लिये दीपिका (मसाल) है और हे देविशि ! कृष्ण द्वैपायन

व्यासजी अपने शिष्य महात्मा सूतपुत्रके लिये विस्तार से कहेंगे और वे नैमिष महारण्य में बारह वर्षका महायज्ञ ॥ १८ । १९ ॥ वर्तमान होनेपर उस सबको महर्षियोंसे कहेंगे हे पार्वति ! कृष्ण द्वैपायन व्यासजीको मेरे समान जानो ॥ २० ॥ जिनके मुखमे सरस्वतीजीके प्रभाव व मेरी सेवासे कथा उत्पन्नहुईहै व यथार्थ प्रकाशित किया गया है ॥ २१ ॥ उनको कर्णरूपी अंजलियोंसे पीकर मनुष्य मेरी कीर्ति करैगा व जिन व्यासजी की वचनमयी कीर्ति पृथ्वी में स्थिर होकर घूमती है ॥ २२ ॥ और पितरोंसमेत वे सनातन लोकों को प्राप्त हैं हे देवि ! जो पांचवें रैवतनामक मनु प्रसिद्ध हुए हैं ॥ २३ ॥ उन माहात्मा मनुके पुत्रके रेवती नक्षत्र

स्वशिष्यायमहात्मने ॥ सनैमिषेमहारण्ये सत्रेद्वादशवार्षिके ॥ १९ ॥ वर्त्तमानेमहर्षीणां तत्सर्वंकथयिष्यति ॥ कृष्णंद्वैपायनंव्यासं मत्समंविद्धिपार्वति ॥ २० ॥ सरस्वतीप्रभावेण ममशुश्रूषणेनच ॥ यस्यवक्त्रात्समुत्पन्ना यथार्थंकनकाशितम् ॥ २१ ॥ पीत्वाकर्णाञ्जलीभिश्च ममकीर्तिंकरिष्यति ॥ यस्येयंवाङ्मयीकीर्त्तिःस्थिराभ्रमतिभूतले ॥ २२ ॥ सपुनःशाश्वताल्लोँकान्प्राप्नोतिपितृभिस्सह ॥ पञ्चमोयोमनुर्देवि रैवतोनामविश्रुतः ॥ २३ ॥ तस्यपुत्रस्यपुत्रोभूद्रैवत्यान्तुमहात्मनः ॥ सतस्यविधिवच्चक्रे जातकर्मादिकांक्रियाम् ॥ २४ ॥ तथोपनयनादींश्च सचाशीलोभवन्नृपः ॥ यतःप्रभृतिजातोसौ ततःप्रभृत्यसावृषिः ॥ २५ ॥ दीर्घरोगपरामर्शमवाप्नोतीवदुर्गतिम् ॥ माताचास्यपराभूता कुष्ठरोगाभिपीडिता ॥ २६ ॥ जगामचिन्तांसऋषिः किमेतदितिदुःखितः ॥ मूर्खस्तुमन्दधीःपुत्रो दुःखंजनयतेपितुः ॥ २७ ॥ अमार्गगोविशेषेण दुःखाद्दुःखतरंहिनः ॥ अपुत्रतामनुष्याणां श्रेयसेनकुपुत्रता ॥ २८ ॥ सुहृदांनोपकाराय पितृणांनो

में पुत्र हुआ और उन्होंने उसका जातकर्मादिक कर्म किया ॥ २४ ॥ व यज्ञोपवीतादिक कर्मोंको किया और वह राजा अशीलहुआ है जबसे लगाकर यह पैदा हुआ तबसे लगाकर ये ऋषि हुये हैं ॥ २५ ॥ और उसने बहुतही कठिन बड़े भारी रोग की विकलताको पाया व इसकी माता कुष्ठ रोगसे पीडित होकर दुःखित हुई ॥ २६ ॥ और वे ऋषि रैवतजी चिन्ताको प्राप्त हुये व यह क्या है इस कारण दुःखी हुये कि मूर्ख व मंदबुद्धि पुत्र पिताके दुःख को पैदा करता है ॥ २७ ॥ व कुमार्गगामी पुत्र विशेषकर दुःखको उत्पन्न करता है यह हमको दुःखमे भी अधिक दुःख है पुत्रका न होना मनुष्यों के कल्याण के लिये है और कुपुत्र होना कल्याण के

लिये नहीं है ॥ २८ ॥ क्योंकि कुपुत्र मित्रों के उपकार के लिये नहीं होता है व पितरोंकी तृप्ति के लिये नहीं होता है व सुपुत्र दिन दिन माता, पिताके हृदयको जानता है ॥ २९ ॥ व पुत्रसे दुःखी उस दुष्कृतकर्मों के जन्मको धिक्कारहै और वे पुत्र धन्य हैं कि जिनके सब लोक सम्मत हैं॥ ३० ॥ और जो पराया उपकार करने-वाले, शान्त व उत्तम कर्मों में अनुव्रत हैं और दुःखसंयुत, आनन्दरहित व दुःख, शोकसे रहित ॥ ३१ ॥ हमारा कुपुत्र से मलिन जन्म नरकके लिये है स्वर्गके लिये नहीं है और कुपुत्र हृदयमें उदासीनता व शत्रुवोंको आनन्द करता है ॥ ३२ ॥ और कुपुत्र पुत्र असमय में पिताकी वृद्धताको करताहै महादेवजी बोले कि इस

पतृप्तये ॥ सुपुत्रोहृदयंवेत्ति मातापित्रोर्दिनेदिने ॥ २९ ॥ पुत्राद्दुःखस्यधिग्जन्म तस्यदुष्कृतकर्मणः ॥ धन्यास्तेतन यायेषांसर्वलोकाभिसम्मताः ॥३०॥ परोपकारिणःशान्ताःसाधुकर्मण्यनुव्रताः ॥ अनिर्वृतंनिरानन्दं दुःखशोकपरिप्लु तम् ॥३१॥ नरकाय न स्वर्गाय दुष्पुत्राविलजन्मनः ॥ करोतिहृदयंदैन्यमहितानांतथामुदम् ॥ ३२ ॥ अकालेतुजरां पुत्रः कुपुत्रःकुरुतेपितुः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंसोत्यन्तदुष्टस्य पुत्रस्यचरितेनच ॥ ३३ ॥ दह्यमानमनोवृत्तिर्वृद्धंगर्गम पृच्छत ॥ कृतवागुवाच ॥ सुव्रतेनपुरावेदा अधीताविधिनामया ॥ ३४ ॥ समाप्यविद्याविधिवत्ततोदारपरिग्रहः ॥ सदा रेणहिसाकार्य्या श्रौतस्मार्त्तक्रियाविभो ॥ ३५ ॥ परिणीताविधानेन कामंसमनुरुद्ध्यता ॥ पुत्रार्थंजनितश्चायं पुत्रःप्राप्त श्च्युतोमुने ॥३६॥ सोयंकिमात्मदोषेण मातुर्दोषेण किम्मम ॥ अस्मद्दुःखावहोजातो दौश्शील्याद्बन्धुकोविदः ॥ ३७ ॥ गर्गउवाच ॥ रेवत्यन्तेमुनिश्रेष्ठ जातोयन्तनयस्तव ॥ तेनदुःखायतेदुष्टे कालेयस्मादजायत ॥ ३८ ॥ नचोपचारोनैवास्य

प्रकार अत्यन्त दुष्ट पुत्रके चरित्रसे उन ॥ ३३ ॥ जलती हुई मनोवृत्तिवाले मुनि ने वृद्ध गर्गाचार्यजीसे पूंछा कृतवाक् बोले कि पुरातन समय मुझ सुव्रतने विधिसे वेदों को पढ़ा ॥ ३४ ॥ और विधिसे विद्याओंको समाप्तकर तदनन्तर स्त्रीको ग्रहण किया क्योंकि हे विभो ! स्त्रीसमेत पुरुषको ब्रह्मश्रौत स्मार्त्त कार्यको करना चाहिये ॥ ३५ ॥ इसलिये कामको अनुरोध करते हुये मैंने विधिसे उसको ब्याहा व पुत्रके लिये यह पैदा किया गया व हे मुने ! पुत्र प्राप्तहुआ और छूटगया ॥ ३६ ॥ सो यह क्या अपने दोषसे या माताके दोषसे मुझको दुःखदायक हुआ और दुश्शीलता से वह बन्धुवोंमें चतुर है ॥ ३७ ॥ गर्गाचार्यजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! यह तुम्हारा

पुत्र रेवती नक्षत्र के अन्त में पैदा हुआ है उसीसे दुःखित करताहै जिसलिये कि दुष्ट समय में पैदा हुआ है ॥ ३८ ॥ इसका उपचार नहीं है और माता व कुलका भी दोष नहीं वरन दुश्शीलता का कारण होना अन्य है जो कि रेवती नक्षत्रका अन्त प्राप्त था ॥ ३९ ॥ क्योंकि रेवती व अश्विनी का मध्य व श्लेषा, मघा और ज्येष्ठा व मूलका मध्य व गण्डान्तभयदायक कहा गया है ॥ ४० ॥ इन तीन गण्डान्तों में जो स्त्री पुरुष व अश्व उत्पन्न होते हैं वे बहुत दिनों तक घरमें नहीं टिकतेहैं और टिकतेहुये भी वे भयंकर होते हैं ॥ ४१ ॥ गर्गाचार्यजी से ऐसा कहे हुये अत्यन्त क्रोधित उन्होंने बहुतही कोप किया कृतवाक् बोले कि जिसलिये मेरे

मातुर्नापिकुलस्यवा ॥ अन्यदौश्शील्यहेतुत्वं रेवत्यन्तमुपागतम् ॥ ३९ ॥ रेवत्यश्विनिमध्यंच आश्लेषामघयोस्त था ॥ ज्येष्ठामूलयोश्चप्रोक्तं गण्डान्तंतद्भयावहम् ॥ ४० ॥ गण्डत्रयेतुयेजाता नरनारीतुरङ्गमाः ॥ तिष्ठन्तिनचिर ङ्गेहे तिष्ठन्तोपिभयङ्कराः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोथगर्गेण चुक्रोधातीवकोपनः ॥ कृतवागुवाच ॥ यस्मान्ममैकपुत्रस्य रेवत्य न्तेसमुद्भवः ॥ ४२ ॥ रेवतीकिन्नजानाति मांविप्रःशापयिष्यति ॥ जाज्वल्यमानागगनात्तस्मात्पततुरेवती ॥ ४३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तेनैवंव्याहृतेवाक्ये रेवत्यन्तंपपातह ॥ पश्यतःसर्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः ॥ ४४ ॥ ईश्वरेच्छा प्रभावेण पतितागिरिमूर्द्धनि ॥ रेवत्यन्तन्निपतितंकुमुदाद्रौसमन्ततः ॥ ४५ ॥ भासयामाससहसा वनकन्दरनिर्झरम् ॥ खमुत्पपातसगिरिर्दह्यमानःसमन्ततः ॥ ४६ ॥ सौराष्ट्रदेशेसम्प्राप्ते पतितोभूतलेशुभे ॥ हिमाचलस्यपुत्रोयमूर्ज्जयन्तो

एक पुत्र का रेवती के अन्तमें जन्म हुआ ॥ ४२ ॥ तो क्या रेवती नहीं जानती है कि मुझको वे विप्र शाप देवैंगे इस कारण जलतीहुई रेवती आकाश से गिरै ॥ ४३ ॥ महादेवजी बोले कि उनसे ऐसा वचन कहनेपर विस्मयसे संयुत चित्तवाले सब संसारके देखते हुये रेवती का अन्त गिरपड़ा ॥ ४४ ॥ ईश्वर की इच्छा के प्रभावसे रेवती पर्वत के शिखर पै गिरी और कुमुद पर्वत पै सब ओर गिरा हुआ रेवतीका अन्त ॥ ४५ ॥ अचानकही वन, कंदरा व झरनोंको प्रकाशित करताभया और सब ओर से जलता हुआ वह पर्वत आकाशको उड़ा ॥ ४६ ॥ व सौराष्ट्र देश प्राप्त होने पर उत्तम पृथ्वी पै गिरपड़ा यह हिमाचल का पुत्र ऊर्जयन्त बडा भारी

पर्वत है ॥ ४७ ॥ इसने कुमुदके साथ पहले परस्पर मैत्री किया है कि जहां तुम जावोगे वहां मैं भी निश्चय कर जाऊँगा ॥ ४८ ॥ ऐसा निश्चय कर वह पुण्यको इकट्ठा करने के लिये यमुनासमेत हरद्वार को पवित्र सारस्वत क्षेत्रको गया ॥ ४९ ॥ और प्रलयपर्यन्त वे दोनों परस्पर को स्थित हुये व उसके गिरने के कारण कुमुद पर्वत रैवत ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ ५० ॥ हेभूपते ! यह पर्वत बाहर रंग से कमल के समान हुआ व मध्य में वह सुवर्ण का उत्तम पर्वत सुमेरुगिरिके समान रंगवाला है ॥ ५१ ॥ उसके पश्चात् रैवतक पर्वत ने रेवती की शोभा के समान व रेवती के समान मुखवाली कन्या को पैदा किया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर प्रमुचनामक राजर्षि

गिरिर्महान् ॥ ४७ ॥ कुमुदेनसमम्मैत्री कृतापूर्वंपरस्परम् ॥ यत्रत्वंयास्यसेस्थातुं तत्राहमपिनिश्चितम् ॥ ४८ ॥ इतिकृत्वागृहीत्वाथ गङ्गाद्वारंसयामुनम् ॥ सारस्वतंतथापुण्यं सञ्चेतुंससमागतः ॥ ४९ ॥ अभूतसंप्लवंयावत्संस्थितौतौपरस्परम् ॥ कुमुदाद्रिश्चतत्पातात् ख्यातोरैवतकोभवत् ॥ ५० ॥ पङ्कजाभस्मबाह्येन जातोवर्णेनभूपते ॥ मेरुवर्णःसमध्येतु सौवर्णःपर्वतोत्तमः ॥ ५१ ॥ तत्पश्चाज्जनयामास कन्यांरैवतकोगिरिः ॥ रेवतीकान्तिसदृशीं रेवतीसदृशाननाम् ॥ ५२ ॥ प्रमुचोनामराजर्षिस्ततोदृष्ट्वावराङ्गनाम् ॥ पितृवद्रेवतीनामाकरोत्तस्यान्नृपोत्तमः ॥ ५३ ॥ रेवतीतिचविख्याता सासर्वत्रवराङ्गना ॥ सर्वतेजोमयंस्थानं सर्वतीर्थजलाश्रयम् ॥ ५४ ॥ गङ्गाजलप्रवाहैश्च संयुक्तंयामुनैस्तथा ॥ स्थितंसारस्वतन्तोयं तत्रगर्तेषुतत्त्रयम् ॥ ५५ ॥ विख्यातंरेवतीकुण्डं यत्रराजतिरेवती ॥ स्मरणाद्दर्शनात्स्नानात्स्पर्शात्पापक्षयोभवेत् ॥ ५६ ॥ साबालावर्द्धितातेन प्रमुचेनमहात्मना ॥ यौवनन्तुतयाप्राप्तं तस्मिन्रैवतकेगिरौ ॥ ५७ ॥ तान्तुयौवनसम्प

ने उत्तम कन्याको देखकर उस नृपोत्तमने पिताकी नाईं उसका रेवती नाम किया ॥ ५३ ॥ वह उत्तम कन्या सब कहीं रेवती ऐसी प्रसिद्ध हुई और वह स्थान समस्त तेजोमय व समस्त तीर्थ जलके आश्रयवाला है ॥ ५४ ॥ और यमुना व गंगा जलके प्रवाहोंसे संयुक्तहै और सरस्वतीजीका जलहै वहां गढ़ोंमें वे तीनों तीर्थहैं ॥ ५५ ॥ वहां रेवतीकुण्ड प्रसिद्ध है जहां कि रेवतीजी राजती हैं उसके स्मरण, दर्शन व स्नान व स्पर्शसे समस्त पातकोंका नाश होता है ॥ ५६ ॥ उन महात्मा प्रमुचजीने उस

कन्या को बढ़ाया व उसने उस रैवत पर्वत पै यौवन को पाया ॥ ५७ ॥ और यौवनसे संयुत उस कन्या को देखकर प्रमुच मुनिने एकान्त में चिन्तवन किया कि इसका कौन पति होगा ॥ ५८ ॥ उस द्विजोत्तम ने हवन कर गुरु व अग्नि से पूंछा कि मेरे उपर प्रसन्नता कीजिये और इसका कौन पति होगा ॥ ५९ ॥ इसके समान कोई वर नहीं है मैं क्या करूं तब अग्निकुंडसे उठकर मूर्तिमान् अग्निजी बोले ॥ ६० ॥ कि हे विप्रजी ! मेरे वचन को सुनिये कि जो इसका पति होगा प्रियव्रतके वंश में उत्पन्न बड़ा बलवान् व पराक्रमी ॥ ६१ ॥ कालिन्दी के पेट से पैदा हुआ विक्रमशीलका पुत्र दुर्दमनामक राजा इसका पति होगा ॥ ६२ ॥ इसी

न्नांदृष्ट्वाथप्रमुचोमुनिः ॥ एकान्तेचिन्तयामास कोस्याभर्त्ताभविष्यति ॥ ५८ ॥ हुत्वाहुत्वासपप्रच्छ गुरुंवह्निंद्विजोत्तमः ॥ प्रसादंकुरुमेब्रूहि कोस्याभर्त्ताभविष्यति ॥ ५९ ॥ अस्यास्तिसदृशःकोपि वरोनास्तिकरोमिकिम् ॥ वह्निकुण्डात्समुत्थाय मूर्तिमान्हव्यवाहनः ॥ ६० ॥ शृणुमेवचनंविप्र योस्याभर्त्ताभविष्यति ॥ प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः ॥ ६१ ॥ पुत्रोविक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ॥ दुर्दमोनामभविता भर्त्ताह्यस्यामहीपतिः ॥ ६२ ॥ अत्रान्तरेसमायातो दुर्दमःसमहीपतिः ॥ गिरौमृगवधाकाङ्क्षी मुनिगेहमपश्यत ॥ ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वाकन्यांदुर्दमस्स उवाचप्रिययागिरा ॥ प्रियेपितातेकगत एहिसत्यंब्रवीहिमे ॥ ६४ ॥ अग्निशालास्थितेनैव तच्छ्रुतंवचनंप्रियम् ॥ प्रियेत्यामन्त्रणंकोपि करोतिममवेश्मनि ॥ ६५ ॥ सददर्शमहात्मानं राजानंदुर्दमंमुनिः ॥ जहर्षदुर्दमंदृष्ट्वा मुनिःप्राहसगौतमम् ॥ ६६ ॥ शिष्यंविनयसम्पन्नं पाद्यमर्घ्यंसमानय ॥ एकस्तावदयंराजा चिरकालादुपागतः ॥ ६७ ॥ जामातासाम्प्रतंराजा जायास्यात्तु

अवसर में वह मृगोंके मारने की इच्छावाला दुर्दमनामक राजा उस पर्वत पै आया व उसने मुनिके गृहको देखा ॥ ६३ ॥ व उसकन्याको देखकर उसदुर्दमने प्रिय वाणी से कहा कि हे प्रिये ! आइये मुझसे सत्य कहिये कि तुम्हारा पिता कहां गयाहै ॥ ६४ ॥ उस प्रिय वचन को अग्निशाला में स्थित मुनि ने सुना कि हे प्रिये ! ऐसा आमंत्रण कोई मेरे घरमें करता है ॥ ६५ ॥ उस मुनिने महात्मा दुर्दम राजा को देखा व दुर्दम को देखकर वे मुनि प्रसन्न हुए व विनय से संयुत गौतम शिष्य से बोले कि पाद्य व अर्घ्य को लाइये यह अकेला राजा बहुत दिनों से आया है ॥ ६६ । ६७ ॥ इस समय यह राजा दामाद होगा और मेरी कन्या इसकी स्त्री होगी

तदनन्तर दामाद के कारण को जानकर विचार किया ॥ ६८ ॥ और उन मुनिकी आज्ञासे उस दुर्दम नृपति ने मौन विधिसे उस अर्घ्य पाद्य को ग्रहण किया और आसन पै प्राप्त व अर्घको ग्रहण किये हुए उन दुर्दम से महामुनि विप्रजीने कहा कि हे ईश्वर, नृपेन्द्र, नृपते ! तुम्हारे पुर में कुशल है व खज़ाना, सेना, मित्र, सेवक व मंत्रियों में कुशल है ॥ ६९ । ७० ॥ वैसेही हे महाबाहो ! अपने शरीर में कुशल है कि जिसमें सब प्रतिष्ठित है और तुम्हारी स्त्री कुशलिनी है जो कि यहां आगे स्थित है ॥ ७१ ॥ और अन्य स्त्रियोंका कुशल कहिये जो कि तुम्हारे मन्दिरमें हैं राजा बोले कि तुम्हारी प्रसन्नता से मेरे राज्यमें कहीं अकुशल नहीं है ॥ ७२ ॥

सुताममः ॥ ततस्सञ्चिन्तयामास ज्ञात्वाजामातृकारणम् ॥६८॥ मौनेनविधिनाराजा जगृहेतंतदाज्ञया ॥ तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घ्यंमहामुनिः ॥ ६९ ॥ दुर्दमम्प्राहराजेन्द्रन्नृपतेकुशलम्पुरे ॥ कोशेबलेचमित्रेच भृत्यामात्येषुचेश्वर ॥ ७० ॥ तथात्मनिमहाबाहो यत्रसर्वम्प्रतिष्ठितम् ॥ भार्याचतेकुशलिनी यापुरश्चात्रतिष्ठति ॥७१॥ अन्यासांकुशलंब्रूहि याःसन्तितवमन्दिरे ॥ राजोवाच ॥ त्वत्प्रसादादकुशलं नास्तिराज्येकचिन्मम ॥ ७२ ॥ जातकौतूहलश्चास्मि मम भार्यात्रकामुने ॥ प्रमुच उवाच ॥ रेवतीतेवराभार्य्या किंनास्तिचन्नृपोत्तम ॥ ७३ ॥ त्रैलोक्यसुन्दरीयातु कथंसाविस्मृतातव ॥ राजोवाच ॥ सुभद्रांशान्तपापांच कावेरीतनयांतथा ॥ ७४ ॥ सुरामांजानुजाताञ्च कन्दम्बांप्रवरप्रजाम् ॥ विपाठान्नन्दिनीञ्चैव वेद्मिभार्यागृहेमम ॥ ७५ ॥ तिष्ठन्तिनैवजानामि भार्यामेरेवतीकुतः ॥ ऋषिरुवाच ॥ प्रियेतिसाम्प्रतम्प्रोक्ता रेवतीसाप्रियातव ॥ ७६ ॥ तदन्यथानभविता वचनंन्नृपसत्तम ॥ ७७ ॥ राजोवाच ॥ नास्तिभावकृतोदोषः

व हे मुने ! मेरे यह कौतुक उत्पन्नहै कि यहां मेरी कौन स्त्री है प्रमुच बोले कि हेनृपोत्तम ! तुम्हारी रेवतीनामक उत्तम स्त्री है क्या उसको नहीं जानतेहो ॥ ७३ ॥ जो त्रिलोक में सुन्दरी है वह तुमको कैसे भूलगई राजा बोले कि सुभद्रा, शान्तपापा व कावेरीकी कन्या ॥ ७४ ॥ वसुरोमा, जानुजाता, कदबा और वरप्रजा, विपाठा व नन्दिनी स्त्रीको मैं जानता हूँ और मेरे घरमें अन्य जो स्त्रियां ॥ ७५ ॥ ये स्थितहैं उनको जानता हूँ और मेरी रेवती स्त्री कहा है उसको मैं नहीं जानताहूँ ऋषि बोले कि जो इस समय प्रिया ऐसी कही गईहै वह तुम्हारी स्त्री है ॥ ७६ ॥ हेनृपोत्तम ! यह वचन अन्यथा न होगा ॥ ७७ ॥ राजा बोले कि भावसे किया हुआ

दोष नहीं है मेरे वचन को क्षमा कीजिये हे द्विजोत्तम ! मुखसे वचन निकलगया उसको मैं नहीं जानता हूं ॥ ७८ ॥ ऋषि बोले कि भावसे किया हुआ दोष नहीं है मैं जानता हूं और उस श्रेष्ठ वचन को कीजिये ॥ ७९ ॥ क्योंकि आज अग्नि ने कहा है इससे तुम दामाद होगे इत्यादिक वचनोंसे राजा स्त्रीके लिये प्रतिपादित किये गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर ऋषि विधिपूर्वक विवाह करने के लिये उद्यत हुये और कन्या पितासे बोली कि हे पिताजी ! मेरे कुछ वचन को सुनिये ॥ ८१ ॥ कि हे पिताजी ! दुर्दम के साथ विवाह करने योग्य हो इसलिये रेवती नक्षत्र में प्रसन्नता से विवाह कीजिये ॥ ८२ ॥ ऋषि बोले कि हे भद्रे ! रेवती नक्षत्र चन्द्रमा

क्षम्यतांवचनंमम ॥ विनिर्गतंवचोवक्त्रान्नाहंजानेद्विजोत्तम ॥ ७८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ नास्तिभावकृतो दोषः परंवेद्मि कुरुष्वतत् ॥ ७९ ॥ वह्निनाकथितस्त्वंहि जामाताद्यभविष्यति ॥ इत्यादिवचनैराजा भार्यायैप्रतिपादितः ॥ ८० ॥ ऋषिस्तथोद्यतःकर्त्तुं विवाहंविधिपूर्वकम् ॥ उवाचकन्यापितरं किञ्चिन्मेश्रूयतांपितः ॥ ८१ ॥ दुर्दमेनसमंतात विवाहंकर्त्तुमर्हसि ॥ रैवत्यर्क्षेविवाहन्तु तत्करोतुप्रसादतः ॥ ८२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ रैवतर्क्षनवैभद्रे चन्द्रयोगेदिविस्थिता ॥ ऋक्षाण्यन्यानिसन्त्येव शुद्धवैवाहिकानिच ॥ ८३ ॥ कन्योवाच ॥ तातेतेनविनाकालो विफलःप्रतिभातिमे ॥ विवाहो विफलस्तात मद्विधायाःकथंभवेत् ॥ ८४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ कृतवागितिविख्यातस्तपस्वीरेवतींप्रति ॥ चकारकोपंक्रुद्धेन तेनर्क्षंतन्निपातितम् ॥ ८५ ॥ मयाचास्मैप्रतिज्ञाता भार्येतिविदितंतव ॥ नचेच्छसिविवाहन्त्वं सङ्कटन्नुसमागतम् ॥ ८६ ॥ कन्योवाच ॥ कृतवागेवंसुमुनिःकिमेतत्तप्तवांस्तपः ॥ नत्वयाममतातेन ब्रह्माधमसुतास्मिकिम् ॥ ८७ ॥

के योग में आकाश में नहीं स्थित है व शुद्ध विवाहवाले अन्य नक्षत्र हैं ॥ ८३ ॥ कन्या बोली कि हे पिताजी ! उसके विना मुझको समय विफल जान पडता है और मेरे समान कन्या का विवाह कैसे विफल होगा ॥ ८४ ॥ ऋषि बोले कि कृतवाक् ऐसे प्रसिद्ध तपस्वीने रेवती के ऊपर कोप किया व उस क्रोधित तपस्वीने उस नक्षत्र को गिरादिया ॥ ८५ ॥ और मैंने इससे स्त्री की प्रतिज्ञा किया है वह तुमको प्रगट है और तुम विवाह को नहीं चाहती हो यह हमको संकट प्राप्त हुआ ॥ ८६ ॥ कन्या बोली कि क्या कृतवाक्ही मुनि ने इस तपस्या को किया है और मेरे पिता तुमने ऐसा तप नहीं किया है तो क्या मैं अधम ब्राह्मण की कन्या हूं ॥ ८७ ॥

ऋषि बोले कि तुम अधम ब्राह्मण की कन्या नहीं हो और मुझसे अधिक कोई तपस्वी नहीं है व तुम कन्या मुझसे देने योग्य हो व तप करने के लिये मैं उत्साह करता हूं ॥ ८८ ॥ हे भद्रे ! ऐसाही होवै व तुम्हारा कल्याण होवै और तुम प्रीतिमती होवो मैं तुम दोनोंके लिये रेवती नक्षत्र को चन्द्रमा के मार्ग में आरोपण करूंगा ॥ ८९ ॥ तदनन्तर महामुनि द्विजोत्तम ने तपस्या के प्रभाव से रेवती नक्षत्र को पहले की नाईं चन्द्रमा के योग में किया ॥ ९० ॥ व कन्या का विवाह करके दामादसे बोले कि हे भूपाल ! कहिये मैं तुमको क्या दहेज देऊं ॥ ९१ ॥ मैं दुर्लभ भी वस्तुको दूंगा क्योंकि मेरे तपस्या वर्तमान है राजा बोले कि हे मुने !

ऋषिरुवाच ॥ ब्रह्मबन्धोःसुतानत्वं तपस्वीनास्तिमेधिकः ॥ सुतात्वञ्चमयादेयातपःकर्त्तुंसमुत्सहे ॥ ८८ ॥ एवंभवतु भद्रन्ते भद्रेप्रीतिमतीभव ॥ आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यर्त्थंकृतेयुवाम् ॥ ८९ ॥ ततस्तपःप्रभावेण रेवत्यर्त्थंमहामुनिः ॥ यथापूर्वंतथाचक्रेसोमयोगंद्विजोत्तम ॥ ९० ॥ विवाहंदुहितुःकृत्वा जामातरमुवाचह ॥ उद्वाहिकंतेभूपाल कथ्यतांकिं ददाम्यहम् ॥ ९१ ॥ दुष्प्रायमपिदास्यामि विद्यतेमेमहत्तपः ॥ राजोवाच ॥ मनोःस्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नःसन्ततौमु ने ॥ ९२ ॥ मन्वन्तराधिपंपुत्रंत्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम् ॥ ऋषिरुवाच ॥ भविष्यतिमहीपालोमहाबलपराक्रमः ॥ ९३ ॥ रेवतीरेवतीकुण्डेस्नात्वापुत्रंजनिष्यति ॥ एवंकृत्वाततोराजा साचपुत्रमजीजनत् ॥ ९४ ॥ रैवतेतिकृतंनाम बभूवसम नुर्नृपः ॥ अमुनाचतदाप्रोक्तमस्मिन्रैवतकेगिरौ ॥ ९५ ॥ स्त्रियःस्नानंकरिष्यन्ति दुःखदारिद्र्यवर्जिताः॥ ९६ ॥ वैशम्पा यन उवाच ॥ इत्युच्चैःपर्वतोराजन्दीर्घोभूत्वापपातसः॥ एतौतौसंस्मृतौदेवौसभार्य्यौहरिशङ्करौ॥९७॥स्मृतमात्रौतदापा

मैं स्वायंभुव मनुके वंश में उत्पन्न हुआ हूं ॥ ९२ ॥ और तुम्हारी प्रसन्नता से मैं मन्वन्तरके स्वामी पुत्रको मांगता हू ऋषि बोले कि बड़ा बली व पराक्रमी राजा पुत्र होगा ॥ ९३ ॥ और रेवतीकुण्डमें नहाकर रेवतीजी पुत्रको पैदा करैंगी ऐसा कह करके तदनन्तर राजा व उस स्त्री ने पुत्रको पैदा किया ॥ ९४ ॥ और रैवत ऐसा नाम किया गया वही राजा मनु हुआ व उस समय इसने कहा कि इस पर्वतपै ॥ ९५ ॥ जो स्त्रियां स्नान करैंगी वे दुःख व दारिद्र्य से रहित होवैंगी ॥ ९६ ॥ वैशम्पायनजी बोले कि हे राजन् ! इसकारण वह पर्वत दीर्घ होकर उच्चप्रकारसे गिरपडा और ये विष्णु व शङ्कर दोनों स्त्रीसमेत देवता स्मरण कियेगये ॥ ९७ ॥

और उस समय स्मरण किये हुये वे दोनों देवता आये क्योंकि पहले वचनसे बँधे थे कि जहां मैं जाऊँ वहां आप दोनों को निश्चयकर टिकना चाहिये ॥ ९८ ॥ इस कारण विष्णु व शिव देवता रैवतकनामक मनोहर व उत्तम पर्वत पै स्वर्णरेखा नदी के जल में भलीभांति स्थित हुये ॥ ९९ ॥ और रेवती ने विष्णु व शिवदेवजी को तपस्या से आराधन किया तब प्रसन्न होकर शिवजी ने रेवती से कहा कि ब्रह्मा की आज्ञा से आकाश में तुम्हारा चन्द्रमा के साथ योग होगा ॥ २०० ॥ और मैं प्रसन्न हूँ इससे मन में जो वरदान स्थितहो उसको मांगिये रेवतीजी बोलीं कि हे देव ! रैवतक पर्वत पै आप को सदैव टिकना चाहिये ॥ १ ॥ जहां मैंने स्नान किया

तौ वाचाबद्धौपुरायतः ॥ यत्राहंतत्रस्थातव्यं भवद्भ्यामितिनिश्चितम् ॥ ९८ ॥ अतोविष्णुहरौदेवौ संस्थितौपर्वतोत्तमे ॥ गिरौरैवतकेरम्ये स्वर्णरेखानदीजले ॥ ९९ ॥ आरराधहरिंदेवं रेवतीतपसाभवम् ॥ तदाप्रसन्नःसशिवोरेवतींप्रत्युवाचह ॥ भविताचन्द्रयोगस्ते गगनेब्रह्मणाज्ञया ॥ २०० ॥ अन्यद्वृणीहितुष्टोहं वरंमनसियत्स्थितम् ॥ रेवत्युवाच ॥ गिरौरैवतकेदेव स्थातव्यंभवतासदा ॥ १ ॥ मयास्नानंकृतंयत्र तत्रस्थास्यन्तियेजनाः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विलीयन्तुचतत्क्षणात् ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वाः संस्थिताविष्णुनासह ॥ २ ॥ क्षीरोदेमथ्यमानेतु यदावृक्षःसमुत्थितः ॥ आमर्दैसर्वदेवानां तेनआमर्दकीस्मृता ॥ ३ ॥ अस्मिन्वृक्षेस्थितालक्ष्मीः सदापितृगृहेनृप ॥ लक्ष्मीर्वृक्षेस्थिताचैव सेव्यतेसुरसत्तमैः ॥४॥ देवैर्ब्रह्मादिभिःसर्वैर्वृक्षोसौवैष्णवःस्मृतः ॥ सर्वैःसञ्चिन्त्यमुक्तोसौ गिरौरैवतकेपुरा ॥ ५ ॥ अस्यवृक्षस्ययात्रांयेकरिष्यन्तिहरेर्दिने ॥ फाल्गुणेतुसितेपक्षे एकादश्यांनृपोत्तम ॥ ६ ॥ तेषांपुत्राश्चपौत्राश्च भविष्यन्तिगुणाधिकाः ॥ अ

है वहां जो मनुष्य स्नान करै उनके ब्रह्महत्यादिक पाप उसी क्षण नाश होजावैं क्योंकि वहां विष्णुसमेत सब नदियां स्थितहैं ॥ २ ॥ क्षीर सागर मथे जानेपर जिस लिये सब देवताओं का आमर्द होनेपर वृक्ष उत्पन्न हुआ है उसकारण आमर्दकी वृक्ष कहा गया है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उस वृक्ष पै व पितृगेह में सदैव लक्ष्मी स्थित रहतीहै और वृक्ष पै स्थित लक्ष्मी सब ब्रह्मादिक उत्तम देवताओं से सेवनकीजाती है ॥ ४ ॥ और यह वृक्ष वैष्णव कहा गया है पुरातन समय सबोंने भलीभांति विचार कर इसको रैवतक पर्वत पै छोड़ा है ॥ ५ ॥ हे नृपोत्तम ! फागुन के शुक्लपक्ष में विष्णु के दिन एकादशी तिथि में जो मनुष्य इस वृक्षकी यात्रा करैंगे ॥ ६ ॥ उनके

अधिक गुणवान् पुत्र व पौत्र होवैंगे और अन्तमें विष्णुलोक में निवास होगा इस में सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि विष्णुजी को प्यारे इसवैष्णव व्रतको किसप्रकार करना चाहिये व किस विधि से रात्रिमें जागरण करना चाहिये उसको कहिये ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि फागुनके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिमें उपास करके नदी, तड़ाग, बावली, कुवां व घरमें भी नहाकर ॥ ९ ॥ और पर्वत व वनमें भी जहां वह कल्याणकारिणी एकादशी तिथि प्राप्त होवै वहां उत्तम पुष्पों से पूजना चाहिये और रात्रिमें मनुष्योंको जागरण करना चाहिये ॥ १० ॥ और एकसौ आठ फलों से उसकी प्रदक्षिणा करना चाहिये व प्रदक्षिणाकर तदनन्तर मनुष्योंको फल

न्तेविष्णुपुरेवासो जायतेनात्रसंशयः ॥ ७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कथमेतद्व्रतंकार्यं वैष्णवंविष्णुवल्लभम् ॥ रात्रौजागरणंका र्यं विधिनाकेनतद्वद ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ फाल्गुणस्यसितेपक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥ स्नात्वानद्यांतडागेवा वाप्यां कूपेगृहेपिवा ॥ ९ ॥ गत्वागिरौवनेवापि यत्रसाप्राप्यतेशिवा॥पूज्यापुष्पैश्शुभैरात्रौ कार्यंजागरणंनरैः ॥ १० ॥ अष्टाधिकैः शतैःकार्याः फलैस्तस्याःप्रदक्षिणाः ॥ प्रदक्षिणीकृत्यततो भोक्तव्यंतुफलंनरैः ॥ ११ ॥ करकंजलसम्पूर्णं श्रीफलै श्चापिसंयुतम् ॥ हविष्यान्नन्तुकर्त्तव्यं दीपःकार्योयथाविधि ॥ १२ ॥ एवंजागरणंकार्यं कथाश्रवणतत्परैः ॥ मुच्यतेम नुजाःपापैः कठिनैःकार्यसम्भवैः ॥ १३ ॥ देहान्तेतेनराःसर्वे पूज्यन्तेहरिमन्दिरे ॥ इत्युक्त्वानारदोदैत्यं ययौरैवतकंगि रिम् ॥ १४ ॥ दैत्येन्द्रोमन्त्रयामास किंकार्यंसाम्प्रतंमया ॥ नरोचतेसुरैःसार्द्धं विग्रहोमेसुरोत्तमाः ॥ १५ ॥ मन्त्रिण ऊ चुः ॥ नास्तिक्षमाभृतान्तेषां क्षत्रियाणांयतोजयः ॥ अस्मानशक्तान्मत्वाच स्वयमायान्तितेयतः ॥ १६ ॥ तस्मात्स्व

भोजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ व श्रीफलोंसे संयुत और जलसे पूर्ण कुम्भ व हविष्यान्न करना चाहिये और विधिपूर्वक दीपक करना चाहिये ॥ १२ ॥ व कथाके सुननेमें लगेहुये पुरुषोंको जागरण करना चाहिये इसकारण मनुष्य शरीरसे उपजे हुये कठिन पातकों से छूटजाते हैं ॥ १३ ॥ और वे सब मनुष्य देहान्त में विष्णु-मन्दिरमें पूजेजाते हैं यह बलि दैत्यसे कहकर नारदजी रैवतक पर्वत पै चले गये ॥ १४ ॥ व दैत्येन्द्र (बलि) ने सलाह किया कि हे असुरोत्तमो ! इससमय मुझ को क्या करना चाहिये क्योंकि देवताओंके साथ मुझको वैर नहीं रुचता है ॥ १५ ॥ मन्त्री बोले कि जिस लिये उन क्षमाधारी क्षत्रियों की जीत नहीं होती है और जिस

मरू, डामरू व पश्चात् हुंकारको करता था और विन समयमें मेघ कोपित होकर बहुत जलको छोडते थे ॥ ३७ ॥ और ओलों से पूर्ण मेघ बहुत गरजते थे और
त्रीकंप हुआ व दिग्दाह भी हुआ ॥ ३८ ॥ और रातको सब कुत्तोंका गण मुख ऊंचे कर घुघुवा के शब्दसे शब्दित नगर में नित्यही रोता था ॥ ३९ ॥ और बलि
राज्य का नाश हुआ व आकाश में रातको केतु का उदय हुआ व सूर्यमंडल कीलों से घिरा हुआ देख पड़ता था ॥ ४० ॥ और मस्तकरहित धड़ों से व्याप्त
ाकाश में चन्द्रमा नहीं प्रकाशित होता था और जो युगों के नाश में हुआ है वह रोहिणी का वेध हुआ ॥ ४१ ॥ और अधिक गुणी मनुष्य दिनमें नक्षत्रों को गिनते

पूरिताश्चैव गर्जन्तिजलदाबहु ॥ समजायतभूकम्पोदिग्दाहश्चाप्यजायत ॥ ३८ ॥ मिलित्वाश्वगणस्सर्वो मुखमुच्चैर्विधा
यच ॥ रौतिरात्रौपुरेनित्यं घूकशब्दविशब्दिते ॥ ३९ ॥ बलिराज्यक्षयोजातो दिविकेतूदयोनिशि ॥ आदित्यमण्डल
ञ्चैवकीलकैर्दृश्यतेवृतः ॥ ४० ॥ कबन्धसङ्कुलेव्योम्निचन्द्रमानप्रकाशते ॥ सञ्जातोरोहिणीवेधो योजातोयुगसंक्षये ॥
४१ ॥ नक्षत्राणिदिवालोकैर्गणयन्तेगुणवत्तरैः ॥ बीजानांव्यत्ययोजज्ञेभूमिस्त्रीगोमृगीषुच ॥ ४२ ॥ अश्वाह्रेषन्तिसहसा
मदंकुर्वन्तिनोगजाः॥ मन्त्रिणोमन्त्रितामन्त्रे भिद्यन्तेराज्यसंक्षये॥४३॥घृतहुत्याहुतोवह्निर्ज्वलतेननदाद्विजैः ॥प्रचण्ड
पवनोवाति वात्यया घूर्णितद्रुमः ॥ ४४ ॥ ध्वजाज्वलन्तिसैन्येषु नभोभवतिधूसरम् ॥ एतेचान्येचबहव उत्पाताबलिनो
गृहे ॥ ४५ ॥ सञ्जातावामनेजातेनारदागमनादनु ॥ अन्यश्चजायतेरौद्रो विवादःस्वप्नदर्शनः॥४६॥यदासन्नह्यदैत्येन्द्रो

थे व पृथ्वी, स्त्री, गऊ व मृगियों में बीजों का उलट पुलट हुआ ॥ ४२ ॥ और सहसा घोड़े बोलने लगे व हाथी मद नहीं करते थे और सलाह के लिये बुलाये
हुये मंत्रीलोग राज्य के नाशमें भेदको प्राप्त होते थे ॥ ४३ ॥ व उस समय ब्राह्मणों से घीकी आहुति से हवन की हुई अग्नि नहीं जलती थी और आंधी से वृक्षों को
झिकोर कर प्रचण्ड पवन चलता था ॥ ४४ ॥ व सेनाओं में ध्वजा जलते थे और आकाश धूसर वर्ण होता था ये और अन्य बहुत से उत्पात बलिके घरमें ॥ ४५ ॥
वामनजी के उत्पन्न होनेपर नारद के आगमनसे पीछे हुये और अन्य भयंकर विवाद व स्वप्न दर्शन होता था ॥ ४६ ॥ जब सन्नद्ध होकर दैत्येन्द्र बलि चलता था तब

सेनासमेत इसको वे अशकुन होते थे कि जिनसे जानेवाला मनुष्य नहीं लौटता है ॥ ४७ ॥ बलि सदैव घरमें टिका रहता है व राज्य करता है उसके शरीर में सुख नहीं होता है व अंगों का टूटना तथा शिर में पीड़ा होती है ॥ ४८ ॥ और ज्वर से संयुक्त यह बलि सुखसे न सोता है न खाता है न पीता है और मनुष्य रात में भोजन नहीं करते हैं व सब रोग से विकल किये गये ॥ ४९ ॥ संसार को विपरीत देखकर बलिका मन विकल हुआ और उसने ब्राह्मणों से सलाह किया कि यह क्या है और वह बलि दुःखी हुआ ॥ ५० ॥ और शुक्राचार्य गुरुको लाकर सभा में बिठाकर बड़ी भक्ति से संयुत बलि दैत्य ने कुशल पूंछा ॥ ५१ ॥ कि यह सब विप-

पातितानिभवन्तिच॥निमित्तानिससैन्यस्ययैर्गन्तानविवर्तते॥४७॥सदासन्तिष्ठतेगेहे राज्यंचकुरुतेबलिः॥शरीरेणसुखंतस्य गात्रभङ्गःशिरोऽव्यथा॥४८॥ ज्वरितोनसुखंशेते नभुङ्क्तेनपिबत्यसौ॥नक्तंनभुञ्जतेलोकाः सर्वेऽव्याध्याकुलीकृताः॥४९॥ विपरीतंजगद्दृष्ट्वा बलिर्व्याकुलमानसः॥ मन्त्रयामासकिमिदं ब्राह्मणैरासदुःखितः॥५०॥शुक्रंगुरुंसमानीय सभायांसन्निवेश्यच ॥ पप्रच्छकुशलंदैत्यो भक्त्याचपरयायुतः ॥ ५१ ॥ विपरीतमिदंसर्वं वर्त्ततेतद्वदस्वमे ॥ ५२॥ शुक्र उवाच ॥ उत्पातशान्तिकेकार्ये यज्ञस्सर्वस्वदक्षिणः ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैस्सार्द्धं द्वादशाब्दोविधीयताम् ॥ ५३ ॥ ऋषयोब्राह्मणायेच मुनयोब्रह्मचारिणः ॥ आगच्छन्तुमहायज्ञे येचदूरेऽव्यवस्थिताः ॥ ५४ ॥ नगरात्पूर्वदिग्भागे कर्त्तव्यो यज्ञमण्डपः ॥ यस्ययस्याभिरुचितं दानंदेयन्त्वयानृप ॥ ५५ ॥ तथाकरिष्यइत्युक्त्वा यज्ञार्थंसत्वरोभवत् ॥ आनीय ब्राह्मणान्सर्वान् कुशलान्यज्ञकर्मणि॥५६॥ गृहीत्वायज्ञदीक्षांच दातव्यासर्वदक्षिणा ॥ ब्राह्मणायसदादेयं सर्वस्वमिहया

रीत वर्तमान है उसको मुझसे कहिये ॥ ५२ ॥ शुक्राचार्य बोले कि उत्पातोंकी शांति के कार्य में ब्राह्मणों व क्षत्रियों समेत बारह वर्षवाला सर्वस्वदक्षिण यज्ञ किया जावै ॥ ५३ ॥ और जो ऋषि, ब्राह्मण, मुनि, ब्रह्मचारी और जो दूर टिके हैं वे महायज्ञ में आवैं ॥ ५४ ॥ और नगर से पूर्व दिशा के भाग में यज्ञमंडप करना चाहिये व हे राजन् जिसको जिसको जो रुचि होवै उसको वह दान तुम्हें देना चाहिये ॥ ५५ ॥ वैसाही करूंगा यह कहकर बलि यज्ञके लिये शीघ्रतासंयुत हुये और यज्ञकर्म में प्रवीण सब ब्राह्मणों को लाकर बोले ॥ ५६ ॥ कि यज्ञदीक्षा को लेकर सर्वस्व दक्षिणा देना चाहिये और यहां याचना करते हुये ब्राह्मण के लिये सदैव सर्वस्व

देना चाहिये ॥ ५७ ॥ और याचना किया हुआ मैं शरीर, पुत्र, मित्र व स्त्रियों को दूंगा और यज्ञ में ब्राह्मणों के लिये मुझको सदैव दान देना चाहिये ॥ ५८ ॥ और मना किये हुये भी मुझको न स्थित होना चाहिये व मुझको निश्चय कर दानदेना चाहिये उसी कारण अपने यज्ञ में देने योग्य द्रव्य में याचना किया हुआ मैं दूंगा॥ ५९ ॥ और बहुत योजन विस्तारवाले दिव्य मंडप को बनाकर वहां भोजन, आच्छादन व दान दिये जावैं ॥ ६० ॥ आकाशसे पृथ्वी में सप्तर्षि आये व सब देवता और जो पृथ्वी में ब्राह्मण थे वे आये ॥ ६१ ॥ और क्षत्रिय, नट, नर्तक व याचक आये, व वेदध्वनि से मिला हुआ गाने बजाने का शब्द हुआ ॥ ६२ ॥ दीजिये

चिते ॥ ५७ ॥ शरीरंपुत्रमित्राणि दारान्दास्यामियाचितः॥ दातव्यंसततंदानं ब्राह्मणेभ्योमयाध्वरे ॥ ५८ ॥ वारितेनापिनस्थेयं दातव्यंनिश्चितंमया ॥ याचितस्तेनदास्यामि दातव्येऽर्थेनिजेध्वरे ॥ ५९ ॥ विधायमण्डपंदिव्यं बहुयोजनविस्तरम् ॥ तत्रदानानिदीयन्तां भोजनाच्छादनानिच ॥ ६० ॥ सप्तर्षयःसमायाता गगनाद्धरणीतले ॥ देवाःसमागताः सर्वे ब्राह्मणाःसन्तियेभुवि ॥ ६१ ॥ क्षत्रियाश्चसमायाता नटनर्तकयाचकाः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषो वेदध्वनिविमिश्रितः ॥ ६२ ॥ त्रैलोक्यंबधिरीचक्रे देहिदेहीतियाचितम् ॥ मादेहीतिवचोनास्ति स्तोकंदेहीतिभाष्यते ॥ ६३ ॥ यद्यद्याचतेयत्र तत्तस्मैतत्रदीयते॥ ब्राह्मणोहिनसोप्यस्ति यस्तत्रबहुयाचते॥६४॥भोजनाच्छादनार्थेच नगृह्णन्तिद्विजातयः॥ बलिराज्येनसन्तुष्टाः किंकुर्वन्तिधनेनते ॥ ६५ ॥ एवंप्रवर्त्ततेयज्ञो महान्सर्वस्वदक्षिणः ॥ ६६ ॥ नृत्यन्तिगायन्तिपठन्तिचान्ये स्तुवन्तियज्ञेबहुदानयुक्ते ॥ ब्रह्मेन्द्ररुद्रग्रहसूर्यचन्द्राःप्रसादिताआहुतिभिश्चमन्त्रैः ॥ ६७॥ बलिंप्रशंसन्ति

दीजिये ऐसी याचना ने त्रिलोक को बधिर किया और मत दीजिये यह वचन नहीं होता था व थोड़ाही दीजिये यह कहा जाता था ॥ ६३ ॥ और जो जहां पर जिस जिस वस्तु को मांगता था वहां उसके लिये वह दिया जाता था और वह ब्राह्मण नहीं था जो कि वहां बहुत याचना करै ॥ ६४ ॥ व भोजन, आच्छादन के लिये ब्राह्मण धनको नहीं ग्रहण करते थे क्योंकि बलिके राज्य से प्रसन्न वे धनसे क्या करैं ॥ ६५ ॥ इस प्रकार सर्वस्व दक्षिणावाला बड़ा यज्ञ वर्तमान था ॥ ६६ ॥ और बहुत दानसे संयुत यज्ञ में कोई नाचते थे कोई गाते थे कोई पढ़ते थे और अन्य प्रशंसा करते थे व ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र व सूर्य, चन्द्रादिक ग्रह आहुतियों से व

मंत्रों से प्रसन्न किये गये ॥ ६७ ॥ अन्य मनुष्य बलिकी प्रशंसा करते थे व कोई गुरुकी प्रशंसा करते थे और कोई ऋग्वेदी व कोई परिवार की प्रशंसा करते थे व ब्राह्मणलोग इस वचन को कहते थे कि यदि दैत्यों के स्वामी बलि का राज्य समाप्त होवै तो श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये राज्य को देकर पुत्रों व मित्रों समेत यह निश्चय कर रसातल को जावैगा इसको दैत्य सुनते थे व यह क्या है ऐसा कहते थे ॥ ६८ । ६९ ॥ बलि के आगे मिलकर दैत्य यह कहते थे बलि प्रसन्न होकर मांगी हुई वस्तु को देताथा ॥ २७० ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलियज्ञवर्णनंनामैकोनत्रिंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२९ ॥ ❀ ॥

गुरुंतथान्ये होतारमेकेपरिचारमेके ॥ वैरोचनेश्चाप्यसुराधिपस्य समाप्यतेचेदथयास्यतिध्रुवम् ॥ ६८ ॥ प्रदायराज्यं द्विजपुङ्गवेभ्यः सपुत्रमित्रैस्सहितोरसातलम् ॥ इतीतिवाच प्रवदन्तिवाडवा शृण्वन्तिदैत्याःकिमिदंवदन्तिच ॥ ६९ ॥ बलेःपुरस्तात्कथयन्तिसङ्गता बलिःप्रहृष्टःप्रददातियाचितम् ॥ २७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रयात्रायांबलियज्ञवर्णनंनामैकोनत्रिंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३२९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पार्वत्युवाच ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे सम्प्राप्तोवामनोयदा ॥ तदाप्रभृतिकिंचक्रे तन्मेविस्तरतोवद ॥१॥ ईश्वर उवाच ॥ वामनोवसतिंचक्रे भवस्याग्रेसुरोत्तमः ॥ स्वर्णरेखाजलेस्नात्वा भवंसम्पूज्यभावतः ॥ २ ॥ एकान्तेनिर्मलेस्थाने कण्टकास्थिविवर्जिते ॥ कृष्णाजिनपरिच्छन्ने उपविष्टोवरासने ॥३॥ कृत्वापद्मासनंधीरो निश्चलोभूद्द्विजोत्तमः ॥ विधायकन्धराबन्धमृजुनासावलोककः ॥ ४ ॥ गृहक्षेत्रकलत्राणांचिन्तांमुक्त्वाधनस्यच ॥ मायांचवैष्णवींत्यक्त्वा वामनोविजि

दो० । विष्णु वामनहुं रूप धरि गे बलियज्ञ मँझार । कह्यो तीनसौ तीसमहँ सोइ चरित-सुखसार ॥ पार्वतीजी बोलीं कि वस्त्रापथ महाक्षेत्र में जब वामनजी प्राप्त हुये तबसे लगाकर उन्होंने क्या किया उसको मुझसे विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि देवताओं में उत्तम वामनजी ने महादेवजी के आगे निवास किया और स्वर्णरेखा नदी के जलमें नहाकर भवजी को भक्ति से पूजकर ॥ २ ॥ कांटों व अस्थियों से रहित एकान्त व निर्मल स्थानमें कृष्णाजिन बिछे हुये उत्तम आसन पै बैठ गये ॥ ३ ॥ और कमलासन करके कन्धरा बन्धनकर सीधे बैठकर नासिका के अग्रभाग को देखनेवाले द्विजोत्तम व विद्वान् वामनजी निश्चल हुये ॥४॥

और घर, क्षेत्र व स्त्रियों की चिन्ता को छोड़कर तथा धनकी चिन्ता व विष्णुजी की माया को छोड़कर जितेन्द्रिय वामनजी ॥ ५ ॥ निराहार क्रोधको जीत
कर संसारके बन्धनसे छूटगये व भुजाओं को कमलासन पै करके कुछ नेत्रों को मूंदे हुये ॥ ६ ॥ वामन द्विज ने मनको अति चञ्चल जानकर हृदयमें स्थित किया
और क्रमसे अभ्यासके योग करके उन्होंने प्राण, अपान, उदान व्यान व समान पांच पवनों को एक ओर से भिन्न किया इसप्रकार उनको हृदयमें करके सब संधि-
योंमें ग्रहणकर ॥ ७ । ८ ॥ ब्रह्मके स्थान में लाकर सबों को ब्रह्ममें युक्त करै और जब बाहरवाले पवनको लेकर शरीर को पूर्ण करै ॥ ९ ॥ तब वह पूरक जानने

तेन्द्रियः ॥ ५ ॥ निराहारोजितक्रोधो मुक्तसंसारबन्धनः ॥ भुजौपद्मासनेकृत्वा किंचिन्मीलितलोचनः ॥ ६ ॥ मनोति
चञ्चलंज्ञात्वा स्थिरंचक्रेहृदिद्विजः ॥ क्रमेणाभ्यासयोगेन भिन्नाश्चक्रेसचैकतः ॥ ७ ॥ प्राणापानोदानव्यानसमाना
न्पंचमारुतान् ॥ एवंतान्हृदयेकृत्वा गृहीत्वासर्वसन्धिषु ॥ ८ ॥ आनीयब्रह्मणःस्थाने सर्वान्ब्रह्मणियोजयेत् ॥ गृहीत्वा
पवनंबाह्यं यावदापूरयेत्तनुम् ॥ ९ ॥ तदासपूरकोज्ञेयो रेचकन्तुवदाम्यहम् ॥ १० ॥ यदाचाभ्यन्तरोवायुर्बाह्येयातिमहे
श्वरि ॥ तदासरेचकोज्ञेयस्तम्भनात्कुम्भकोभवेत् ॥ ११ ॥ पञ्चविंशतितत्त्वानि यदाजानन्तियोगिनः ॥ मुच्यन्ते
पातकैःसर्वैः सप्तजन्मकृतैरपि ॥ १२ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कानितत्त्वानिकोदेही किंज्ञेयंयोगिनांवद ॥ उत्पन्नज्ञानसद्भावोयो
गयुक्तःकथंभवेत् ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रकृतिश्चततोबुद्धिरहङ्कारस्ततोऽभवत् ॥ तन्मात्रपञ्चकंतस्मादेषाप्रकृति
रष्टधा ॥ १४ ॥ बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणिच ॥ एकादशमनोबुद्धिर्महाभूतानिपञ्चच ॥ १५ ॥ गणःषोड

योग्यहै और मैं रेचकको कहताहूं ॥ १० ॥ कि हे महेश्वरी ! जब भीतरवाला पवन बाहर जाता है तब वह रेचक जानने योग्य है और रोंकने से कुम्भक होता
है ॥ ११ ॥ और जब योगी पच्चीस तत्त्वोंको जानते हैं तो वे सात जन्मों में भी किये हुये पातकों से छूट जाते हैं ॥ १२ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि तत्त्व कौन हैं और देही
कौनहै व योगियोंको क्या जानने योग्य है उसको कहिये और ज्ञानके उत्पन्न होने से उत्तम भाववाला पुरुष किसप्रकार योगयुक्त होवै ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले कि
पहले प्रकृति हुई तदनन्तर बुद्धि हुई उससे अहङ्कार हुआ उससे पांच तन्मात्रा हुईं यह आठप्रकार की प्रकृति है ॥ १४ ॥ और पांच ज्ञान इन्द्रिय व पांच कर्म

इन्द्रिय तथा गेरहवां मन व बुद्धि और पांच महाभूत याने पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन व आकाश ॥ १५ ॥ यह षोडश गुण विस्तारसे कहा गया ये चौबीस तत्त्वहैं और पच्चीसवां पुरुष है ॥ १६ ॥ और जो शरीर में देही ऐसा कहा जाता है वह आत्मा को देखता है और विद्वान् लोग ज्ञानके उत्पन्न होने के कारण उत्तम भाववाले पुरुषों को योगी कहते हैं ॥ १७ ॥ पहले वृद्धता जीर्णता को प्राप्त होती है पश्चात् सब पापों का समूह क्षीण होने पर वह मृत्यु को प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ यदि आपही योग को जानता है वह मनुष्यलोक में नहीं होता है और तब द्वारों को रोंककर वह दश प्राणों को छोड़ता है ॥ १९ ॥ और सब पापों को नाशकर प्राणियों के प्राण

शकस्त्वेष विस्तरेणप्रकीर्त्तितः ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानि पुरुषःपञ्चविंशति ॥ १६ ॥ देहीतिप्रोच्यतेदेहे सचात्मानञ्चप श्यति । उत्पन्नज्ञानसद्भावा भण्यन्तियोगिनोबुधैः ॥१७॥ पूर्वंजराजरांयाति रोगानश्यन्तिदूरतः ॥ सर्वपापक्षयेक्षीणे पश्चान्मृत्युंसविन्दति ॥ १८ ॥ मर्त्यलोकेनरोनास्ति योगंजानातिचेत्स्वयम् ॥ तदाद्वाराणिसंरुध्य दशप्राणान्समुञ्च ति ॥ १९ ॥ सर्वपापक्षयंकृत्वा प्राणागच्छन्तिदेहिनाम् ॥ अणिमादिगुणैश्वर्यं प्राप्नुवन्तिशिवालये ॥ २० ॥ अनेनध नयोगेन भुवंपश्यतिमानवः ॥ मनसाचिन्तितंसर्वं सम्प्राप्तंभवदर्शनात् ॥ २१ ॥ एवंस्थितोयदाविष्णुर्वामनोभवसन्नि धौ ॥ गगनादवतीर्णंतं तदापश्यत्सनारदम् ॥ २२ ॥ वामन उवाच ॥ महर्षेःकुशलंतेच कस्मादागम्यतेत्वया ॥ प्रतिभा सिमहर्षेत्वं ब्रह्मैवात्रजगत्त्रये ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ स्वर्गतोऽत्राप्यहंप्राप्तः कुशलंकस्यवर्त्तते ॥ यातेयातेदिनेशस्य पूर्यतेब्रह्मणोदिनम् ॥२४॥ दिनान्तेजायतेरात्री रात्रौनश्यन्तिदेवताः ॥ काकथामर्त्यलोकस्य येम्रियन्तेदिनेदिने ॥२५॥

निकल जाते हैं और वे शिवजी के स्थान में अणिमादिक गुणों के ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ इस धनके योग से मनुष्य शिवजीको देखता है और शिवजीके दर्शन से मनसे चिन्तवन किया हुआ सब प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ इस प्रकार जब वामन विष्णुजी भवजी के समीप स्थित हुये तब उन्होंने आकाश से उतरे हुये उन नारदजीको देखा ॥ २२ ॥ वामनजी बोले कि हे महर्षे ! तुम्हारा कुशल है व आज तुम किस स्थान से आतेहो और हे महर्षे ! तुम इस त्रिलोक में ब्रह्महीं जान पड़तेहो ॥ २३ ॥ नारदजी बोले कि मैं स्वर्ग से यहां प्राप्त हुआ हूं और किसके कुशल वर्तमान है क्योंकि सूर्य के प्रति दिन चलने पर ब्रह्मा का दिन पूर्ण होता

है ॥ २४ ॥ और दिनके अन्त में रात्रि होती है व रात्रि में देवता नाश होते हैं तो मृत्युलोक की कौन कथा है जो कि प्रति दिन मरते हैं ॥ २५ ॥ आकाश धुँवा से व्याप्त हुआ और देवता बलि के घरमें गये व सप्तर्षि ब्रह्मचारी ब्राह्मण वहां गये ॥ २६ ॥ और हाहा, हूहू, तुंबुरु व नारद, पर्वत गंधर्व वहा गये और अप्सराओं के गण तथा गंधर्व बलिके मन्दिर को गये ॥ २७ ॥ और बलि आपही उत्पात की शान्तिवाले यज्ञ को करता है वहां बलि के मन्दिर में मैं बलिके यज्ञको सुनने व देखने की इच्छा करता हूं ॥ २८ ॥ बलिने एक कम हज़ार यज्ञों को किया है और इसके पूर्ण होनेपर दैत्यों के सब लोक होवैंगे ॥ २९ ॥ और यज्ञकर्म में यह कोई

नभोधूमाकुलंजातं देवाबलिगृहेगताः ॥ सप्तर्षयोगतास्तत्र ब्राह्मणाब्रह्मचारिणः ॥ २६ ॥ हाहाहूहूःतुम्बुरुश्च गतौनारद पर्वतौ ॥ अप्सरोगणगन्धर्वाः सम्प्राप्ताबलिमन्दिरम् ॥ २७ ॥ उत्पातशान्तिकोयज्ञः क्रियतेबलिनास्वयम् ॥ तत्राहं श्रोतुमिच्छामि द्रष्टुंयज्ञंबलेर्गृहे ॥ २८ ॥ सहस्रमेकंयज्ञानामेकोनंविदधेबलिः ॥ दैत्यानांभुवनंपूर्णं सम्पूर्णेस्मिन्भविष्यति ॥ २९ ॥ असौचसमयःकोपि प्रारब्धोयज्ञकर्मणि ॥ द्विजातिभ्योमयादेयं यद्यद्यस्ययथेप्सितम् ॥ ३० ॥ वारिते नापिदेयस्स सत्यमस्तुवचोमम ॥ आत्मानमपिदारांश्च राज्यंपुत्रान्प्रियानहम् ॥ ३१ ॥ प्रार्थितश्चात्रदास्यामि व्यर्थो भवतुमाध्वरः ॥ अनेनवचसाजाता महतीमेशिरोव्यथा ॥ ३२ ॥ प्रतिज्ञायकथंयज्ञः सम्पूर्णोयंभविष्यति ॥ भङ्गोपायंन पश्यामि भ्रमामिभुवनत्रये ॥ ३३ ॥ विध्वंसकारणंज्ञात्वा भवन्तंपर्युपस्थितः ॥ यथानपूर्यतेयज्ञस्तथेदानींविधीयताम् ॥ ३४ ॥ वामन उवाच ॥ महर्षेशृणुमेवाक्यं काशक्तिर्ममविद्यते ॥ कोहंकस्मात्करिष्यामियज्ञेदेवाःसमागताः ॥ ३५ ॥

प्रतिज्ञा प्रारंभ की गई है कि जिसका जो जो मनोरथ होवै ब्राह्मणों के लिये मुझको वह देना चाहिये ॥ ३० ॥ और मना किये हुये मुझको देना चाहिये व मेरा वचन सत्य होवै और प्रार्थना किया हुआ मैं शरीर, सेवक, राज्य व प्यारे पुत्रों को यहां दूंगा क्योंकि यज्ञ व्यर्थ न होवै इस वचन से मेरे बड़ी मस्तकपीडा हुई ॥ ३१।३२ ॥ कि प्रतिज्ञा करके यह यज्ञ कैसे पूर्ण होगा और यज्ञभंग होनेका उपाय मैं नहीं देखता हूं व त्रिलोक में घूमता हूं ॥ ३३ ॥ व विध्वंस का कारण जानकर मैं आपके समीप स्थित हुआ जिस प्रकार यज्ञ न पूर्ण होवै इस समय वैसाही किया जावै ॥ ३४ ॥ वामनजी बोले कि हे महर्षे ! मेरे वचन को सुनिये कि मेरे

कौन शक्ति विद्यमान है मैं कौनहूं व किस कारण करूंगा क्योंकि यज्ञमें देवता आये हैं ॥ ३५ ॥ और ऋषि व सब ब्राह्मण आयेहैं तो वह यज्ञ कैसे व्यर्थ होगा हे महर्षे ! अन्य मेरे वचन को सुनिये कि तुम ब्राह्मण के ॥ ३६ ॥ न स्त्री है न पुत्र हैं तो किस लिये ऐसा स्वभाव है कि युद्ध के विना तुमको सुख नहीं होता है और न विना बखेड़ा के तुमको सुख होता है ॥ ३७ ॥ और जैसाहो वैसा हो वचनोंका विवाद भी तुमको सदैव प्रिय है और स्नान, संध्या, जप, होम व पितरों तथा देवताओं का तर्पण ॥ ३८ ॥ नारद अन्यही करते हैं और ब्राह्मण अन्य करते हैं हे महर्षे ! मुझको भी आश्चर्य हुआहै शीघ्रही कहिये ॥ ३९ ॥ नारदजीबोले कि ब्रह्मकल्प बीतनेपर

ऋषयोब्राह्मणास्सर्वे कथंव्यर्थोभविष्यति ॥ अपरंशृणुमेवाक्यं महर्षेब्राह्मणस्यते ॥ ३६ ॥ नकलत्रन्नतेपुत्राः कस्मात्प्रकृतिरीदृशी ॥ युद्धंविनानतेसौख्यं नसौख्यंकलहंविना ॥ ३७॥ यादृशस्तादृशोवापिवाग्वादोपिसदाप्रियः ॥ स्नानंसन्ध्याजपोहोमस्तर्पणंपितृदेवयोः ॥ ३८ ॥ नारदःकुरुतेचान्यदन्यत्कुर्वन्तिब्राह्मणाः ॥ ममापिकौतुकंजातं महर्षेवदसत्वरम् ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मकल्पेव्यतिक्रान्ते रात्र्यन्तेब्रह्मणस्तथा ॥ ब्रह्माण्डंवारिणाव्याप्तमन्यतकिञ्चिन्नविद्यते ॥ ४० ॥ अप्सुशेतेदेवदेवः सवैनारायणःस्मृतः ॥ सएवब्रह्माचैवास्ति भेदस्तेषांपरस्परम् ॥ ४१ ॥ यदाभवन्तितेभिन्नास्तदादेवास्त्रयश्चते॥ कल्पकेतुवराहेतु भिन्नाजातास्त्रयस्तदा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मविष्णुहरादेवा रजःसत्त्वतमोमयाः ॥ सृष्टिंब्रह्माकरोत्येवं तांचपालयतेहरिः ॥ ४३ ॥ हरःसंहरतेसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ एवंतेद्युतिमन्तोहि उपविष्टावरासने ॥ ४४॥ कैलासशिखरेरम्ये मन्त्रयन्तिपरस्परम् ॥४४॥ त्रयाणांकोवरोदेवः कोज्येष्ठःकोगुणाधिकः ॥४५॥

ब्रह्माकी रात्रिके अन्त में ब्रह्माण्ड जलसे व्याप्त होगया और कुछ नहीं रहा ॥४०॥ जो जलके मध्य में सोते हैं वे देवदेव नारायणजी कहे गये हैं और वही ब्रह्मा हैं उनका परस्पर भेद है ॥ ४१ ॥ कि जब वे भिन्न होते हैं तब वे तीन देवता होते हैं जब वाराह कल्प में तीनों देवता भिन्न हुये तब ॥ ४२ ॥ रजोगुणी, सत्त्वगुणी व तमोगुणी ब्रह्मा, विष्णु व शिव देवता हुये इस प्रकार ब्रह्मा सृष्टि करते हैं उसको विष्णुजी पालन करते हैं ॥ ४३ ॥ और महादेवजी स्थावर जंगम समेत त्रिलोक को संहार करते हैं इस प्रकार शोभावान् वे उत्तम आसन पै बैठे थे ॥ ४४ ॥ व सुंदर कैलासपर्वत के शिखर पै परस्पर सलाह करते थे कि तीनों देवताओं के मध्य में

कौन श्रेष्ठ देवता है व कौन बड़ा है और कौन गुणों में अधिक है ॥ ४५ ॥ चौथा नहीं है जो कि ज्येष्ठ, श्रेष्ठ व गुणों में अधिक देवता को जानता है उन से उत्पन्न हुई ज्योति जो मध्य में इकट्ठा हुई ॥ ४६ ॥ काल के प्रमाण में नियुक्त वह सूर्यमंडल में घूमती है मैं बड़ा हूं मैं बड़ा हूं ऐसा विष्णु व ब्रह्मा का विवाद हुआ ॥ ४७ ॥ और क्रोध के कारण दोनों के विवाद से प्रभु के मुखसे मैं पैदा हुआ व मैंने कहा कि हे देव ! जो उस समय ब्रह्मा ने कहा है उसको तुम क्यों नहीं जानते हो ॥ ४८ ॥ कि पहले तुम्हारे मत्स्य, कूर्मादिक दश अवतार हुये हैं शिवजीने जाकर उन दोनोंको मना किया कि तुमको कलह योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥ और विष्णुजी

चतुर्थोनास्तियोवेत्ति ज्येष्ठंश्रेष्ठंगुणाधिकम् ॥ तेभ्यःसमुत्थितंज्योतिरेकीभूतंयदन्तरे ॥ ४६ ॥ कालमानेनियुक्तं तद्भ्राम्यतेरविमण्डलम् ॥ अहंज्येष्ठस्त्वहंज्येष्ठ वादोभूद्धरिब्रह्मणोः ॥ ४७ ॥ द्वयोर्विवादतःक्रोधात्सञ्जातोहंमुखात्प्रभो ॥ कथंदेवनजानासियदुक्तंब्रह्मणातदा ॥ ४८ ॥ दशावतारास्तेह्यासन् मत्स्यकूर्मादयःपुरा ॥ रुद्रेणवारितोगत्वा कलहंतेनयुज्यते ॥ ४९ ॥ तथैवकृतवान्विष्णुरवतारान्दशैवतान् ॥ कल्पादौब्रह्मणोवक्त्रात्सञ्जातोहंद्विजोत्तम ॥ ५० ॥ कलहाज्जन्ममेयस्मात्तस्मान्मेकलहःप्रियः ॥ कल्पादौसृजतापूर्वं ब्रह्मणाचिन्तितंस्वयम् ॥ ५१ ॥ वेदान्विनाकथं सृष्टिः कर्त्तव्याहोहरेवद ॥ नष्टान्वेदान्नजानामि किंस्थानेकिमधोगताः ॥ ५२ ॥ गन्तुन्नविद्यतेशक्तिर्जलमध्येममाधुना ॥ अवतारैस्त्वयाकार्यं दशभिस्सृष्टिरक्षणम् ॥ ५३ ॥ जलेजलचरोमत्स्यो महानद्यांभविष्यसि ॥ आदायवेदान्वे

ने वैसेही उन दश अवतारों को किया व हे द्विजोत्तम ! कल्प के आदि में मैं ब्रह्मा के मुख से पैदा हुआ ॥ ५० ॥ जिस लिये बखेड़ा से मेरा जन्म हुआ है उसी कारण मुझको कलह (झगड़ा) प्रिय है पुरातन समय कल्प के आदि में ब्रह्मा ने आपही विचार किया ॥ ५१ ॥ कि हे हरे ! कहिये वेदों के विना कैसे सृष्टि करने योग्य है और वेद नष्ट होगये हैं उनको मैं नहीं जानता हूं कि वे क्या स्थान में स्थित हैं या नीचे गये हैं ॥ ५२ ॥ इस समय जलके बीच में जाने के लिये मुझ को शक्ति नहीं है और दश अवतारोंसे तुमको सृष्टि की रक्षा करना चाहिये ॥ ५३ ॥ महा नदी में तुम जलमें जलचारी मछली होगे और वेग से वेदों को लेकर तुम

मुझको देने योग्य हो ॥ ५४ ॥ विष्णुदेवजीने वैसाही किया कि जलमें वें विष्णुजी मछलीरूपधारी हुये वे पुरातन समय वेदों को लाये व उन्होंने ब्रह्मा के लिये दिया है ॥ ५५ ॥ फिर कछुवा का रूप करके तुम मन्दराचलको धारण करोगे और लक्ष्मीजी तुमको पति स्वीकार करैंगी ब्रह्माजी ने विष्णु से ऐसा कहा ॥ ५६ ॥ व यह कहा कि पुरातन समय समुद्र के मथने में मैंने तुम्हारे अद्भुत चरित्र को देखा है कि जब पृथ्वी रसातल में प्राप्तहुई व न देख पड़ी ॥ ५७ ॥ और ब्रह्माण्ड के लिये स्थान किया गया था परन्तु वह पृथ्वी वहां नहीं देख पड़ती थी तब ब्रह्मा ने विष्णुजीको आपही प्रेरणा किया कि वाराहजीका रूप कीजिये ॥ ५८ ॥ तब वे विष्णुजी

गेन ममत्वंदातुमर्हसि ॥ ५४ ॥ तथाचकृतवान्देवो मत्स्यरूपीजलेऽभवत् ॥ वेदान्सआनयामास सददौब्रह्मणेपुरा ॥ ५५ ॥ कूर्मरूपंपुनःकृत्वा मन्दरंधारयिष्यति ॥ इत्युक्तोब्रह्मणाविष्णुर्लक्ष्मीस्त्वांवरयिष्यति ॥ ५६ ॥ पुराचित्रंच रित्रन्ते मन्थनेदृष्टवानहम् ॥ यदारसातलंप्राप्ता पृथिवीनैवदृश्यते ॥ ५७ ॥ ब्रह्माण्डार्थंकृतंस्थानं तत्रसानैवदृश्यते ॥ वाराहंक्रियतांरूपम्ब्रह्मणाप्रेरितःस्वयम् ॥ ५८ ॥ महावराहरूपंस कृत्वाभूमेरधोगतः ॥ उद्धृत्यचतदाविष्णुर्दंष्ट्राग्रे णवसुन्धराम् ॥ ५९ ॥ सनिनाययथास्थानं मुमुचेधरणीतलम् ॥ अवतारस्तृतीयस्ते हरेश्चापिमनोहरः ॥ ६० ॥ येनसा पृथिवीपृथ्वी पर्वतैःसहिताधृता ॥ चतुर्थंनरसिंहन्ते कथयामिसुदारुणम् ॥ ६१ ॥ आदित्याआदितेःपुत्रा दितेःपुत्रौम हाबलौ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ ६२ ॥ स्वर्गेदेवाःस्थिताःसर्वे पातालेदैत्यदानवाः ॥ हिरण्यकशि पुश्चक्रे दैत्योराज्यंरसातले ॥ ६३ ॥ मनोःपुत्राधरापृष्ठेस्थापितादेवदानवैः ॥ व्यवस्थांतामतिक्रम्य हिरण्यकशिपुर्द्वि

महावराह का रूप करके पृथ्वी के नीचे गये और दाढ़के अग्रभागसे पृथ्वी को उठा कर ॥ ५९ ॥ लाये और उन्होंने स्थान के अनुसार पृथ्वी को छोड़ दिया यह आप विष्णुजीका तीसरा मनोहर अवतार है ॥ ६० ॥ जिससे पर्वतोंसमेत वह पृथ्वी धारी गई है और तुम्हारे बहुतही भयंकर चौथे नृसिंह अवतार को मैं कहताहूं ॥ ६१ ॥ कि अदिति के पुत्र आदित्य हुये और दितिके हिरण्यकशिपु दैत्य व महाबलवान् हिरण्याक्ष ये दो बड़े बली पुत्र हुये ॥ ६२ ॥ स्वर्ग में सब देवता स्थित हुये व पाताल में दैत्य व दानव स्थित हुये और हिरण्यकशिपु दैत्य ने रसातल में राज्य किया ॥ ६३ ॥ और मनुके पुत्र देवताओं व दैत्यों से पृथ्वी में स्थापित किये गये

हे द्विज ! उस व्यवस्था को नांघकर उस हिरण्यकशिपु ने इन्द्रको जीतकर पृथ्वी में राज्य किया और अमरावतीसमेत सात द्वीपोंवाली पृथ्वी को ग्रहण कर ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ कामनाओं को ग्रहण किये तथा पुत्रों व पौत्रों से घिरे हुये हिरण्यकशिपु दैत्य ने भोग किया और वह मन्दबुद्धि हिरण्यकशिपु प्रह्लाद आदिक पुत्रों को पढ़ाता था ॥ ६६ ॥ और पढ़ते हुये पुत्रों के मध्य में प्रह्लाद ने भी उसको पढ़ा कि जिसके पढ़ने से उसके पीड़ा होती थी ॥ ६७ ॥ और दो लोकों की राज्य से दैत्य व देवता प्रसन्न किये गये व तपस्या से प्रसन्न कराये हुये प्रभु ब्रह्माजीने उसकेलिये वर दिया ॥ ६८ ॥ और उस हिरण्यकशिपुने कहा कि हे सुरोत्तम ! अमरता को

ज ॥ ६४ ॥ राज्यंचक्रेधराप्रष्ठे सुरेन्द्रंसविजित्यच ॥ सप्तद्वीपवतींपृथ्वीं गृहीत्वासोमरावतीम् ॥ ६५ ॥ गृहीतकामोबुभुजेपुत्रपौत्रैर्वृतोसुरः ॥ प्रह्लादप्रमुखान्पुत्रान्सपाठयतिमन्दधीः ॥ ६६ ॥ पुत्रेषुपठ्यमानेषु प्रह्लादेनाप्यपाठितत ॥ येनवैपठ्यमानेन जायतेतस्यवेदना ॥ ६७ ॥ भुवनद्वयराज्येन दैत्यादेवाश्चतोषिताः ॥ तपसातोषितोब्रह्मा ददौतस्मैवरंप्रभुः ॥६८॥ अमरत्वंसदेवेभ्यो मानुषेभ्यःसुरोत्तम ॥ कस्मादपिनमेभूयान्मरणंयदिचेद्भवेत् ॥ ६९ ॥ किञ्चित्सिंहोनरःकिञ्चिद्योभवेद्धरणीधरः ॥ तस्मात्करतलैर्भिन्नो मरिष्येधरणीतले ॥ ७० ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वागतोब्रह्माचदैत्यपः ॥ कालेनगच्छतातस्य सञ्जातोविग्रहोमहान् ॥ ७१ ॥ देवाःकिंमेकरिष्यन्ति विष्णुनाकिम्प्रयोजनम् ॥ यष्टव्योहंसदायज्ञै रुद्रःकिंमेकरिष्यति ॥ ७२ ॥ एवंहिवर्त्तमानस्यप्रह्लादस्स्तौतितंहरिम् ॥ येनास्यजायतेमत्युस्तमेवस्मरतेहरिम् ॥ ७३ ॥ यदासपाठ्यमानोपि विरौतिचहरिंहरिम् ॥ ७४ ॥ चतुर्भुजंशङ्खगदासिधारिणं पीताम्बरंकौस्तुभभा

दीजिये व देवताओं और मनुष्यों से तथा किसी से भी मेरी मृत्यु न होवै और यदि मरण होवै ॥ ६९ ॥ तो जो पृथ्वी को धारनेवाला कुछ सिंह और कुछ मनुष्य होवै उससे चँपोटों करके भिन्न मैं पृथ्वी में मरूं ॥ ७० ॥ ऐसाही होगा यह कहकर ब्रह्मा व दैत्यों का स्वामी हिरण्यकशिपु चलागया और समय व्यतीत होनेसे उसके बड़ा भारी वैर पैदा हुआ ॥ ७१ ॥ कि देवता मेरा क्या करैंगे व विष्णुजी से मेरा क्या प्रयोजन है और यज्ञों से मैं सदैव पूजने योग्य हूं शिवजी मेरा क्या करैंगे ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उसके वर्तमान होने पर प्रह्लाद उन विष्णुजीकी स्तुति करते थे जिससे इसकी मृत्यु होगी उन्हीं विष्णुजीको वे प्रह्लाद स्मरण करते थे ॥ ७३ ॥

और जब वह पढ़ाया जाता था तब विष्णुही विष्णुको कहता था ॥ ७४ ॥ कि चतुर्भुज व शंख, गदा, तलवार को धारनेवाले, पीताम्बर को पहने व सदैव कौस्तुभ मणि से प्रकाशित संसार के एकही स्वामी उन विष्णुजी को मैं स्मरण करता हूं स्मरण कियेही हुये जो कि मुक्ति को देते हैं ॥ ७५ ॥ इस वचन से क्रोधित हिरण्य काशपु दैत्य ने दैत्यों को आज्ञा दिया कि तुमलोग दुष्ट पुत्रको हाथी, सांप, जल व अग्नि से मारडालो ॥ ७६ ॥ प्रह्लाद बोले कि हाथी में भी विष्णु हैं, सांप में भी विष्णु हैं, जलमें भी विष्णु हैं और थल में भी विष्णु हैं व हे दैत्य ! तुम में वे विष्णुजी स्थित हैं व मुझमें स्थितहैं और विष्णुजीके विना दैत्योंका गणभी नहीं है ॥ ७७ ॥ सदैव वध कराये जाते हुये भी वे प्रह्लाद कहीं मृत्यु को नहीं प्राप्त होते थे और हिरण्यकशिपु का वक्षस्थल क्रोधकी अग्नि से जलता था ॥ ७८ ॥ तब

सितंसदा ॥ स्मरामिविष्णुंजगदेकनाथंददातिमुक्तिंस्मृतमात्रएव ॥ ७५ ॥ अनेनवचसाक्रुद्धोदैत्योदैत्यान्दिदेशच ॥ मारयध्वंसुतंदुष्टंगजसर्पजलाग्निना ॥ ७६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ गजेपिविष्णुर्भुजगेपिविष्णुर्जलेपिविष्णुश्चस्थलेपिविष्णुः ॥ त्वयिस्थितोदैत्यमयिस्थितश्च विष्णुंविनादैत्यगणोपिनास्ति ॥ ७७ ॥ सदासमार्यमाणोपि मृत्युमाप्नोतिनक्वचित् ॥ हिरण्यकशिपोर्वक्षोदह्यतेक्रोधवह्निना ॥ ७८ ॥ तदाशिक्षयितुंपुत्रं मुखाग्रेसन्निवेश्यच ॥ वचोभिःकठिनैःपुत्रं स्वयंहन्तुंसमुद्यतः ॥ ७९ ॥ धिक्त्वांनारायणंस्तौषि ममारिंस्तौषियत्पुनः ॥ पुष्कलञ्चहरिष्यामि शिरस्तेहंवरासिना ॥ ८० ॥ अहंविष्णुरहंब्रह्मा रुद्रइन्द्रोवरप्रदः ॥ आत्मीयंपितरंमुक्त्वा किमन्यंस्तौषिबालक ॥ ८१ ॥ यदानबालःपठतिस्तौतिनोपितरंस्वकम् ॥ दण्डेनाहत्यगुरुणाप्रह्लादःपाठ्यतेपुनः ॥ ८२ ॥ यदेकंवचनंशिष्य देहिमेगुरुदक्षिणाम् ॥ प्रह्लाद

पुत्रको नाश करने के लिये तलवार को मुख के अग्रभाग में धरकर कठिन वचनों से आपही पुत्रको मारने के लिये तैयार हुआ ॥ ७९ ॥ व बोला कि तुमको धिक्कार है जो कि नारायण की स्तुति करते हो व फिर मेरे शत्रु विष्णुजीकी स्तुति करते हो मैं उत्तम तलवार से तुम्हारे बड़े भारी मस्तक को नाश करूंगा ॥ ८० ॥ हे बालक ! मैं विष्णु हूं और मैं ब्रह्मा हूं व वरको देनेवाला मैं शिव व इन्द्र हूं तो अपने पिताको छोड़कर तुम क्यों अन्य की स्तुति करते हो ॥ ८१ ॥ जब बालक प्रह्लाद जी नहीं पढ़ते थे और अपने पिता की स्तुति नहीं करते थे तब फिर गुरुजी दंड से मारकर प्रह्लाद को पढ़ाते थे ॥ ८२ ॥ कि हे शिष्य ! जो एक वचन है उसको

मुझे गुरुदक्षिणा दीजिये प्रह्लाद बोले कि मैं उनकी स्तुति करताहूं कि जिन विष्णुजीने चराचरसमेत त्रिलोक को ॥ ८३ ॥ रचा है व बढ़ाया है और शान्त किया है वे विष्णुजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवैं ब्रह्मा विष्णु हैं व शिव विष्णु हैं और इन्द्र, पवन, यमराज व अग्नि विष्णु हैं ॥ ८४ ॥ और प्रकृतिआदिक तत्त्व व पचीसवां पुरुष विष्णु हैं और वे पिताके शरीर में, गुरुके शरीर में और मेरे देह में भी स्थित हैं ॥ ८५ ॥ ऐसा जानता हुआ मरनेवाला मनुष्य कैसे नीच नरकी स्तुति करता है ॥ ८६ ॥ गुरुजी बोले कि हे शिष्य ! मनुष्यों में कौन अधम है प्रह्लादजी बोले कि जन्मादिक में व मरण में तथा शुभ में जिसके मुखमें हरि ऐसे दो अक्षर नहीं

उवाच ॥ स्तौम्यहंविष्णुनायेन त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ८३ ॥ कृतंसंवर्द्धितंशान्तं समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ब्रह्माविष्णुर्हरो विष्णुरिन्द्रोवायुर्यमोनलः ॥ ८४ ॥ प्रकृत्यादीनितत्त्वानिपुरुषःपञ्चविंशकः ॥ पितुर्देहेगुरोर्देहे ममदेहेपिसंस्थितः ॥ ८५ ॥ एवंजानन्कथंस्तौति म्रियमाणोनराधमम् ॥ ८६ ॥ गुरुरुवाच ॥ नरेषुकोधमःशिष्यजन्मादिमरणेशुभे ॥ हरि रित्यक्षरोनास्ति यन्मुखेसनराधमः ॥ ८७ ॥ भयेराजकुलेयुद्धे व्याधौस्त्रीसङ्गसेवने ॥ विपत्त्यांचप्रमाणेच मरणेभुविसं स्थिताः ॥ ८८ ॥ स्मरन्तिमातरंमूर्खाः पितरंचनराधमाः ॥ मातानास्तिपितानास्ति नास्तिमेस्वजनोजनः ॥ ८९ ॥ ह रिंविनानकोप्यस्ति यद्युक्तंतद्विधीयताम् ॥ इत्यादिवचनैः क्रुद्धोहन्तुंदैत्यःसमागतः ॥ ९० ॥ तदामातासमागत्यपुत्रस्यो परिसंस्थितः ॥ भ्रातरःस्वजनोभग्नी भाषतेमाहरिंवद ॥ ९१ ॥ अहंमातास्वसाचेयं भ्रातरःस्वजनाजनाः ॥ यतःसमन्य तेसर्वैः स्थीयतेबहुवासरम् ॥ ९२ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मातामेकामताभग्नी भ्रातरःकेपिताचकः ॥ स्वजनंशृणुमेमातः

हैं वह अधम मनुष्य है ॥ ८७ ॥ व भय, राजकुल, युद्ध, व्याधि, स्त्रीका संगम वन, विपत्ति व यात्रा और मरण में पृथ्वीमें स्थित ॥ ८८ ॥ नीच नर माता व पिताको स्मरण करते हैं मेरे न माता है न पिता है और न स्वजन जन हैं ॥ ८९ ॥ विना विष्णुजीके कोई नहीं है जो योग्य हो वह किया जावै इत्यादिकवचनोंसे क्रोधित हिरण्यकशिपु दैत्य मारने के लिये आया ॥ ९० ॥ तब माता आकर पुत्रके ऊपर स्थित हुई और भाई, स्वजन व बहन कहती है कि विष्णुजी को मत कहो ॥ ९१ ॥ मैं माता हूं यह बहनहै और भाई व जो स्वजनहैं वे सब जिसलिये उसको मानते हैं उसी कारण बहुत दिनों तक स्थित होते हैं ॥ ९२ ॥ प्रह्लाद बोले कि मेरी माता

कौन मानी गई है व कौन बहन है और कौन भाई व कौन पिता है हे माता ! मुझ से स्वजन को सुनिये मैं सब यथायोग्य जानताहूं ॥ ९३ ॥ कि प्रकृति हमारी माता है व बुद्धि भगिनी ऐसी कही जाती है उस से अहंकार पैदा हुआ है जो कि अहं ऐसा अनुमान किया जाता है ॥ ९४ ॥ और पांच तन्मात्रा सहोदर भाई हैं जो कि मेरे साथही जाते हैं और इनका जो उत्पन्न करनेवाला है वह पचीसवां पुरुष है ॥ ९५ ॥ इस शरीर में स्थित वह परमात्मा हरि मेरा पिता है ॥ ९६ ॥ यदि यह देह में माना जाता है व हृदय में विष्णु देख पडते हैं तो उसीके अणिमादिक गुणों से ऐश्वर्य स्थान होता है ॥ ९७ ॥ आप लोगों का राज्य सम्मत है वह मुझको

सर्वंवेद्मियथातथम् ॥ ९३ ॥ माताप्रकृतिरस्माकंबुद्धिर्भग्नीतिगद्यते ॥ अहङ्कारस्ततोजातो योहमित्यनुमीयते ॥ ९४॥ तन्मात्राःसोदराःपञ्च येगच्छन्तिसहैवमे ॥ एषामुत्पादकोयस्तु पुरुषःपञ्चविंशकः ॥ ९५ ॥ समेपिताशरीरेस्मिन् परमात्माहरिःस्थितः ॥ ९६ ॥ यद्यसौमन्यतेदेहे दृश्यतेहृदयेहरिः ॥ अणिमादिगुणैश्वर्यं यदन्तस्यैवजायते ॥९७॥ भवतांसम्मतंराज्यं तन्मेनित्यंतृणैःसमम् ॥ यत्रनोपूज्यतेविष्णुर्ब्रह्मारुद्रोनिलोनलः ॥ ९८ ॥ प्रत्यक्षोदृश्यतेयस्तु निरालम्बोभ्रमत्यसौ ॥ सएवभगवान्विष्णुर्यएतेगगनेस्थिताः ॥ ९९ ॥ ध्रुवेबद्धाग्रहाःसर्वे दृश्यन्तेभुविसंस्थिताः ॥ तेसर्वेविष्णुवचसा नपतन्तिधरातले ॥ १०० ॥ कालेविनाशःसर्वेषां तेनैवविहितःस्वयम् ॥ इतिसञ्चिन्त्यमेनास्ति भवद्भ्योमरणाद्भयम् ॥ १ ॥ इतितंवचनस्यान्ते यदाहत्वापिताब्रवीत् ॥ कुत्रासौहन्मितंपूर्वं पश्चात्त्वांहरिभाषिणम् ॥ २ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ पृथिव्यादीनिभूतानि तान्येवभगवान्हरिः ॥ स्थलेजलेकिंबहुना सर्वंविष्णुमयंजगत् ॥ ३ ॥ तृणे

सदैव तृणोंके बराबर है जिसमें कि विष्णु ब्रह्मा, शिव, पवन व अग्नि नहीं पूजे जाते हैं ॥ ९८ ॥ जो प्रत्यक्ष देख पडता है यही निरालंब होकर घूमता है नहीं भगवान् विष्णुजी हैं और जो ये आकाश में स्थित हैं ॥ ९९ ॥ व ध्रुवमें बँधे हुये जो सब ग्रह भूमि में देख पडते हैं वे सब विष्णुजीके वचन से पृथ्वी में नहीं गिरते हैं ॥ १०० ॥ उसीने आपही काल में सबका विनाश बनाया है ऐसा विचार कर मुझको आपलोगों से मरने से डर नहीं है ॥ १ ॥ इस वचन के अन्त में पिता हिरण्यकशिपु ने उसको पैर से मारकर कहा कि यह कहा है पहले उसको मारूं पश्चात् विष्णुको कहनेवाले तुमको मारूं ॥ २ ॥ प्रह्लादजी बोले कि जो पृथ्वी

आदिक भूत हैं वे भगवान् विष्णुही हैं और स्थल में व जलमें हैं बहुत कहने से क्या है सब संसार विष्णुमय है ॥ ३ ॥ तृण, काष्ठ, घर, खेत, द्रव्य व देहमें विष्णुजी स्थित हैं और ज्ञान के योग से वे जाने जाते हैं नेत्र से नहीं देख पड़ते हैं ॥ ४ ॥ और वृत्ति ब्रह्मालय में तथा रसातल व पृथ्वी में जाती है और ये विष्णुजी आपही सब लोकों में क्षणभर में घूमते हैं ॥ ५ ॥ और वे विष्णुजी सब सुनते हैं, जानतेहैं व सब करते हैं ऐसा कहा हुआ हिरण्यकशिपु सहसा सिंहासन को छोड़कर भूमि में स्थित हुआ ॥ ६ ॥ और पुष्ट फेंटा को बांधकर उजली तलवार को खींच कर उन प्रह्लाद को ढालके अग्रभागसे मारकर उसने दुस्सह वचन को कहा ॥ ७ ॥

काष्ठेगृहेक्षेत्रे द्रव्येदेहेस्थितोहरिः ॥ ज्ञायतेज्ञानयोगेन दृश्यतेनतुचक्षुषा ॥ ४ ॥ वृत्तिर्ब्रह्मालयेयाति रसातलधरातले ॥ असौक्षणेनाभ्रमति सर्वाँल्लोकान्हरिःस्वयम् ॥ ५ ॥ सर्वंशृणोतिजानाति सविष्णुर्विदधातिच ॥ इत्युक्तःसहसा भूमौ त्यक्त्वासिंहासनंस्थितः ॥ ६ ॥ दृढंपरिकरम्बद्ध्वा खड्गमाकृष्यचोज्ज्वलम् ॥ हत्वातंफलकाग्रेण बभाषेदुःसहंवचः ॥ ७ ॥ इदानींस्मरत्वंविष्णुं नोचेज्ज्वलितकुण्डलम् ॥ पातयिष्येशिरोभूमौ फलंपक्वंयथानगात् ॥ ८ ॥ नोचेद्दर्शयतंविष्णुमस्मात्स्तम्भाद्विनिस्सृतम् ॥ प्रह्लादस्तद्वयन्त्यक्त्वा चक्रेपद्मासनंभुवि ॥ ९ ॥ विधायकन्धरानीचैरुच्चैःश्वासान्निरुध्यच ॥ हृदिध्यात्वाहरिंदेवं मरणाभिमुखःस्थितः ॥ १० ॥ प्रभोमयातदादृष्टमाश्चर्यंगगनाद्भुवि ॥ पुष्पमालास्थिताकण्ठे प्रह्लादस्यस्वयंविभो ॥ ११ ॥ गगनेस्थीयमानैश्च किमेवंकथितंजनैः ॥ झटितिह्युद्गतेस्तम्भाच्छब्देनक्षु

कि इस समय तुम विष्णुजीको स्मरण करो नहीं तो ज्वलित कुंडलोंवाले मस्तक को मैं भूमि में गिरा दूंगा जैसे कि पका फल वृक्षसे गिराया जाता है ॥ ८ ॥ नहीं तो इस खंभसे निकले हुये उन विष्णुजीको दिखलाइये प्रह्लादजी ने आसन को छोड़कर भूमि में कमलासन किया ॥ ९ ॥ और कँधे को झुकाकर श्वासों को ऊपर रोंककर प्रह्लादजी हृदय में विष्णु देवजीको ध्यान कर मरण के सम्मुख स्थित हुये ॥ १० ॥ हे प्रभो ! उस समय मैंने आकाश पृथ्वी में आश्चर्य देखा कि हे विभो ! प्रह्लादजी के गले में फूलों की माला आपही स्थित हुई ॥ ११ ॥ और खंभ से शीघ्रही निकलने पर आकाश में स्थित लोगों ने ऐसा कहा कि क्या है और

शब्द से मनुष्य क्षोभित होगये ॥ १२ ॥ व मन में विचारने लगे कि पृथ्वी क्या पाताल को जाती है अथवा आकाश पृथ्वी में आवैगा या तलवारसे नाश किया हुआ शिर क्या पृथ्वी में गिरेगा ॥ १३ ॥ तब तक खंभ से भयंकर सिंह शब्द निकला और शब्द से मूर्छित सब दैत्य पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १४ ॥ हिरण्यकशिपु के हाथ से तलवार व ढाल गिर पड़ी तदनन्तर हिरण्यकशिपु ने विचार किया कि यह क्या है ॥ १५ ॥ व उठकर जब तक देखै तब तक उसने उन विष्णुजीको देखा कि नीचे मनुष्य रूपहै व ऊपर भयंकर सिंहरूप स्थित है ॥ १६ ॥ व दाढ़ोंसे जिनका मुख भयकरहै मानो आकाशको ग्रस रहेहैं व शरीरसे जाज्वल्यमान और

भिताजनाः ॥ १२ ॥ धरणीयातिपातालं द्यौर्वाभूमिंसमेष्यति ॥ पतिष्यतिशिरोभूमौ खड्गपाताहतंनुकिम् ॥ १३ ॥ तावत्स्तम्भाद्विनिष्क्रान्तः सिंहनादोभयङ्करः ॥ भूमौनिपतिताःसर्वे दैत्याःशब्देनमूर्च्छिताः ॥ १४ हिरण्यकशिपोर्हस्तात् खड्गचर्मपपातह ॥ ततोहिरण्यकशिपुःकिमेतदित्यचिन्तयत् ॥ १५ ॥ उच्छ्रितोवीक्षतेयावत्तावत्पश्यतितंहरिम् ॥ अधोनरःस्थितंसिंहमुपरिष्टाद्विभीषणम् ॥ १६ ॥ दंष्ट्राकरालवदनं लेलिहानमिवाम्बरम् ॥ जाज्वल्यमानंवपुषंपुच्छाघोटितमस्तकम् ॥ १७ ॥ महाकटकटारावं सशब्दमिवतोयदम् ॥ समुच्छ्वसितकेशान्तंदुर्निरीक्ष्यंसुरासुरैः ॥ १८ ॥ नरसिंहमथोदृष्ट्वा निपपातपुनःक्षितौ ॥ १९ ॥ विधृत्यकेशपाशान्तं भ्रामयामासचाम्बरम् ॥ भ्रामयित्वाशतगुणंपृथिव्यांसमपोथयत् ॥ २० ॥ नममारयदादैत्यो ब्रह्मणोवरकारणात् ॥ गगनस्थैस्तदादेवैरुच्चैःसंस्मारितोहरिः ॥ २१ ॥ दैत्यंजानुसमानीय वक्षोदृष्ट्वानिरीक्ष्यच ॥ जयेतिवदतांतेषां सुराणांसव्यदारयत ॥ २२ ॥ शब्दंकर्णौभुजौचैव कृत्वास्वपदला

पूंछको मस्तकपैघुमा रहेहैं ॥ १७ ॥ और शब्दसमेत मेघकी नाई महा कटकटा शब्दकरतेहैं और जिनके बाल ऊपर उठेहैं और देवता व दैत्य जिनको दुःखसे देखसक्ते हैं ॥ १८ ॥ ऐसे नृसिंहजीको देखकर वह हिरण्यकशिपु फिर पृथ्वी पै गिर पड़ा ॥ १९ ॥ व नृसिंहजीने केशपाश के अन्तको पकड़कर आकाशमें घुमाया और सौगुना घुमाकर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ २० ॥ जब ब्रह्माके वरदानके कारण वह दैत्य न मरा तब आकाशमें स्थित देवताओंने उच्च प्रकार से विष्णुजीको स्मरण कराया ॥ २१ ॥ और उन देवताओंके जय ऐसा शब्द कहते हुये उन नृसिंहजी ने हिरण्यकशिपु दैत्यको जंघों पै धरकर व वक्षस्थल को देखकर विदारण किया ॥ २२ ॥ और

कर्ण में शब्द करके व भुजाओं को अपने चरण से चिह्नित कर याने दबाकर नृसिंहजीने हिरण्यकशिपु दैत्य के वज्रपात से चिह्नित वक्षस्थल को फाड डाला ॥ २३ ॥ व कुन्द पुष्पदल के समान नखों से अस्थिसमूह को खींचा और वक्षस्थल विदीर्ण होने पर दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु मरगया व गिरपडा ॥ २४ ॥ तब सब संसार व चराचरसमेत तीनों लोक शान्त होगये व हे केशवजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरी भी तृप्ति होगई ॥ २५ ॥ जैसे कि त्रिपुर के जलने पर शिवजी की प्रसन्नता से मेरी तृप्ति हुई थी फिर हिरण्याक्ष उत्पन्न होने पर वह तुम्हीं से मारा गया है ॥ २६ ॥ इस समय मेरी तृप्ति नहीं है कहां जाऊ व क्या करूं पृथ्वी

ङ्ख्रितौ ॥ बिभेदवक्षोदैत्यस्य वज्रपातकणाङ्कितम् ॥ २३ ॥ नखैःकुन्ददलप्रख्यैरस्थिसङ्घस्तुकर्षितः ॥ भिन्नेवक्षसिदै त्येन्द्रो ममारचपपातच ॥ २४ ॥ तदाशान्तंजगत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ममापितृप्तिःसञ्जाता प्रसादात्तवकेश व ॥ २५ ॥ यथापुरत्रयेदग्धे प्रसादाच्छङ्करस्यमे ॥ हिरण्याक्षेपुनर्जातो सत्वयैवनिपातितः ॥ २६ ॥ इदानींनास्ति मेतृप्तिः कुत्रयामिकरोमिकिम् ॥ पृथिव्यांक्षत्रियाःसन्ति नयुध्यन्तिपरस्परम् ॥ २७ ॥ पञ्चमोयोवतारस्ते नजानेकिं करिष्यति ॥ बलिनिग्रहकालोयं तद्दर्शयजनार्दन ॥ २८ ॥ तदेतत्सकलंश्रुत्वा बभाषेवामनोमुनिम् ॥ शृणुनारदयद्वृ त्तं हिरण्यकशिपौहते ॥ २९ ॥ दैत्यराज्येकृतोराजा प्रह्लादोयत्रवैष्णवः ॥ तेनराज्यंधरापृष्ठे कृतंसंवत्सरान्बहून् ॥ ३० ॥ तस्यापिकुर्वतोराज्यं विग्रहोहिसुरैस्समम् ॥ नोपशाम्यतिदैत्यानां पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३१ ॥ उत्पाद्यपुत्रान्सुबहून्

में जो क्षत्रिय हैं वे परस्पर नहीं युद्ध करते हैं ॥ २७ ॥ और जो तुम्हारा पांचवां अवतार है वह क्या करेगा इसको नहीं जानता हूं हे जनार्दनजी ! बलिके बाधने का यह समय है उसको दिखलाइये ॥ २८ ॥ इस वचन को सुन कर वामनजी उस समय नारद मुनि से बोले कि हे नारदजी ! हिरण्यकशिपु के मारने पर जो वृत्तान्त हुआहै उसको सुनिये ॥ २९ ॥ कि उस दैत्य के राज्यपै विष्णुभक्त प्रह्लादजी राजा किये गये उन्होंने बहुत वर्षों तक पृथ्वी में राज्य किया ॥ ३० ॥ और उस के भी राज्य करते हुये पहले के वैरको स्मरण करता हुआ दैत्यों का वैर नहीं शान्त होता था ॥ ३१ ॥ बहुत पुत्रों को पैदा कर व बड़ी भारी राज्य

को करके विरोचन से बलि हुए और जब इस प्रकार बलि हुए ॥ ३२ ॥ तब एकान्त में किसी योग से विष्णुजी को जानकर वे विरोचन राज्य पै प्यारे पुत्रों को छोड़ कर पर्वत के शिखरों पै चले गये ॥ ३३ ॥ विष्णुजी ने उसके शरीर को कल्पान्तस्थायी किया और राज्य के कारण बहुत से दैत्यों व दानवों का ॥ ३४ ॥ बड़ा भारी विवाद हुआ कि हमलोगों के मध्य में से कौन राजा होगा हिरण्याक्ष के जो पुत्र व पौत्र थे वे बड़े बली थे ॥ ३५ ॥ व विरोचन आदिक जो हैं वे भी बड़े बलवान् थे और बलवान् वृषपर्वा भी राज्यके लिये प्राप्तहुआ ॥ ३६ ॥ और इन्द्र, कुबेर, वरुण पवन, सूर्य, अग्नि व यमराज बल, रूप व क्षमादिकों से दैत्यों के सदृश नहीं

राज्यंकृत्वातुपुष्कलम् ॥ विरोचनाद्बलिर्जातो बलिरेवयदाभवत् ॥ ३२ ॥ एकान्तेसहरिंज्ञात्वा तदायोगेनकेनचित् ॥ मुक्त्वाराज्येप्रियान्पुत्रान् गतोसौगिरिसानुषु ॥ ३३ ॥ कल्पान्तस्थायिनंदेहं तस्यचक्रेजनार्दनः ॥ दैत्यानांदानवानांच बहूनांराज्यकारणात ॥ ३४ ॥ विवादोतीवसञ्जातो कोनोराजाभविष्यति ॥ हिरण्याक्षस्ययेपुत्राः पौत्राश्चबलवत्तराः ॥ ३५ ॥ विरोचनप्रभृतयः सन्तियेबलवत्तराः ॥ वृषपर्वापिबलवान् राज्यार्थंसमुपस्थितः ॥ ३६ ॥ इन्द्रवित्तेशवरुणा वायुःसूर्योनलोयमः ॥ दैत्यानांसदृशानस्युर्बलरूपक्षमादिभिः ॥ ३७ ॥ औदार्यादिगुणैःसर्वे सम्पत्त्यावासुराधिकाः ॥ शुक्रेणवार्यमाणास्ते युद्ध्यन्तेचपरस्परम् ॥ ३८ ॥ अमृतहरणेयुद्धं यदादैत्यास्स्मरन्तितत् ॥ पीतावशेषममृतं कस्माच्छिन्दन्तिदेवताः ॥ ३९ ॥ नास्माकमितिसन्नह्य युध्यन्तेचपरस्परम् ॥ कदाचिदपिनोयुद्धं विश्रान्तमुपगच्छति ॥ ४० ॥ एककार्योद्यतोयस्माद् बहवोदैत्यदानवाः ॥ पीत्वामृतंसुराजाताअमरास्तेजयन्तिच ॥ ४१ ॥ जनमेजय उवाच ॥

हैं ॥ ३७ ॥ और सब देवता उदारतादिक गुणों में व सम्पत्ति में अधिक हैं शुक्राचार्य जी से मना किये हुये वे परस्पर युद्ध करते हैं ॥ ३८ ॥ जब दैत्य अमृत के हरने में उस युद्ध को स्मरण करते हैं कि पीने से बचे हुये अमृत को देवता क्यों नाश करते हैं ॥ ३९ ॥ और हमलोगों को नहीं देते हैं तब इस कारण कवचको पहनकर वे परस्पर युद्ध करते हैं और कभी युद्ध विश्राम को नहीं प्राप्त होता है ॥ ४० ॥ जिस लिये बहुत से दैत्य व दानव एक कार्य में उद्यत हुये उसी कारण अमृत को

पीकर देवता अमर होगये और वे देवता जीतते हैं ॥ ४१ ॥ जनमेजयजी बोले कि देवता, दानव, दैत्य गंधर्व, नाग व राक्षसों के मध्य में विष्णुजी युद्धमें अधिक बली हैं इस लिये इस कारण को कहिये ॥ ४२ ॥ वैशंपायनजी बोले कि जिसलिये विष्णुजी जन्म मृत्यु रहित कर्ता व हर्त्ता हैं व एक शिव देवजी हैं और वे भी ब्रह्मसंज्ञक हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप! जब संसार में एक का कार्य होता है तब उसके देह में भली भांति आश्रित होकर वे तीनों कार्य करते हैं ॥ ४४ ॥ हे पृथ्वीपते ! सब ब्रह्माण्ड विष्णुजीके हाथ में स्थित है उसी कारण विष्णु अधिक बलवान् हैं व उनका बहुत विस्तारवाला अन्य कर्म ॥ ४५ ॥ देवताओं से नहीं जाना

देवदानवदैत्यानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ विष्णुर्बलाधिकोयुद्धे तदेतत्कारणंवद ॥ ४२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अनादि निधनःकर्त्ता यतोहर्ताजनार्दनः ॥ एकएवशिवोदेवः सचापिब्रह्मसञ्ज्ञितः ॥ ४३ ॥ एकस्यतुयदाकार्यं जायतेभुवने नृप ॥ तस्यदेहंसमाश्रित्य कार्यंकुर्वन्तितेत्रयः ॥ ४४ ॥ ब्रह्माण्डंसकलंविष्णोः करस्थंजगतीपते ॥ तस्माद्बलाधि कोविष्णुस्तस्यान्यद्बहुविस्तरम् ॥ ४५ ॥ नशक्यतेसुरैर्ज्ञातुं किमन्येचर्मचक्षुषः ॥ इन्द्राद्याश्चसुराःसर्वे विष्णोर्व्यापार कारिणः ॥ ४६ ॥ सृष्टिंकृत्वाततोब्रह्मा कैलासेसंस्थितोहरः ॥ पालनायोद्यतोविष्णुर्भ्राम्यतेभुवनत्रये ॥ ४७ ॥ जग त्यस्मिन्यदाकश्चिद्विपरीतेनवर्त्तते ॥ तस्योच्छेदंसमागत्यकरोत्येवजनार्दनः ॥ ४८ ॥ जनमेजयमहाबाहो वामनो नारदायच ॥ सर्वपापक्षयांदिव्यां तांकथांकथयाम्यहम् ॥ ४९ ॥ वामन उवाच ॥ एवंविवदतान्तेषां दैत्यानांराज्यहेत वे ॥ प्रह्लादेनसमागत्य व्यवस्थाविहितास्वयम् ॥ ५० ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नो दीर्घायुर्बलवत्तरः ॥ यज्ञशीलःसदानन्दो

जासक्ता है तो अन्य चर्म दृष्टिवाले पुरुष क्या जानैंगे और इन्द्रादिक सब देवता विष्णु के व्यापारकारी हैं ॥ ४६ ॥ उसी कारण ब्रह्माजी सृष्टि करके स्थित होते हैं और महादेवजी कैलास पर्वत पै टिके हैं और पालन के लिये उद्यत विष्णुजी त्रिलोक में घूमते हैं ॥ ४७ ॥ और इस संसार में जब कोई विपरीत कर्म से वर्तमान होताहै तब विष्णुजी भलीभांति आकर उसका नाश करतेही हैं ॥ ४८ ॥ हे महाबाहो, जनमेजय ! वामनजीने नारदजीसे जिस कथा को कहा है सब पापों को नाश करनेवाली उस दिव्य कथा को मैं कहता हूं ॥ ४९ ॥ वामनजी बोले कि राज्यके कारण इस प्रकार विवाद करते हुये उन दैत्यो के मध्य में प्रह्लादजीने आकर आपही

व्यवस्था किया ॥ ५० ॥ कि जो सब लक्षणों से संयुक्त, दीर्घायु, बड़ा, बलवान्, यज्ञशील, सदैव आनन्दयुक्त, बहुत पुत्रोंवाला व अत्यन्त दुर्जय होवै ॥ ५१ ॥
व जो देवताओं के साथ युद्ध न करै और जो विष्णुजीको दुर्जय जानता है ॥ ५२ ॥ और युद्धमें जिसकी मृत्यु नहीं है और जो सर्वस्व दक्षिणा देता है और जो
किसी प्रकार अपने वचन को व्यर्थ नहीं करता है ॥ ५३ ॥ व सब पुत्रों के मध्य में जो लक्ष्मी से शोभित होवै, शुक्राचार्य से अभिषेक किया हुआ वह तुमलोगों के
मध्य में राजा होगा ॥ ५४ ॥ और गुरु प्रमाण है यह कहकर फिर दैत्यों के स्वामी प्रह्लादजी चले गये और उन दैत्य व दानवों ने मिलकर वैसाही किया ॥ ५५ ॥

**बहुपुत्रोतिदुर्जयः ॥५१॥ नयुद्ध्यतेसुरैःसाकंविष्णुंयोवेत्तिदुर्जयम् ॥५२॥ सङ्ग्रामेमरणंनास्ति यश्चसर्वस्वदक्षिणः ॥ आ
त्मनोवचनंव्यर्थं नकरोतिकथञ्चन ॥५३॥ सर्वेषामेवपुत्राणां मध्येयोराजतेश्रिया ॥ अभिषिक्तस्तुशुक्रेण सवोराजा
भविष्यति ॥५४॥ गुरुःप्रमाणमित्युक्त्वा ययौदैत्याधिपःपुनः ॥ तथाचकृतवतस्तेवै सहितादैत्यदानवाः ॥ ५५ ॥ वि
रोचनप्रभृतयःपुत्राः पौत्राःस्वयङ्गताः ॥ प्रत्येकंवीक्ष्यतान्सर्वान् गुरुर्ज्ञानप्रपूर्वकम् ॥५६॥ प्रह्लादेयेगुणाःप्रोक्तानतेस
न्तिविरोचने ॥ अन्येषामपिदैत्यानां दृष्टाःपूर्वाश्चनेदृशाः ॥५७॥ तथानिरीक्षिताःपौत्रा बलिप्रभृतयोमुने ॥ सर्वान्संवी
क्ष्यशुक्रेण बलौदृष्टागुणास्तथा ॥ ५८ ॥ बलिदेहादिकंदृष्ट्वा तेभ्योदैत्योनिवेदितः ॥ बलिर्गुणाधिकोदैत्याः कथंका
र्यंभवेन्मया ॥५९॥ केनापिदैवयोगेन बलिरिन्द्रोभविष्यति ॥ यादृशस्तुपितालोके तादृशश्चसुतोभवेत् ॥६०॥ पुत्रस्सु**

और विरोचन आदिक पुत्र व पौत्र आपही प्राप्त हुये व गुरु शुक्राचार्यजी ने उन सबों को प्रत्येक देख कर कहा ॥ ५६ ॥ कि प्रह्लाद में जो गुण कहे गये हैं वे विरो-
चन में नहीं हैं व अन्य दैत्योंके भी ऐसे गुण नहीं देखे गये हैं ॥ ५७ ॥ हे मुने ! उन शुक्राचार्यजीने सब दैत्यों को देखकर वैसेही बलि आदिक पौत्रों को देखा
व शुक्राचार्यजीने बलिमें वैसे गुणों को देखा ॥ ५८ ॥ व बलि के शरीरादिक को देखकर उन दैत्यों से बलि दैत्य को बतलाया कि हे दैत्यो ! बलि गुणों में अधिक
हैं मुझको कैसा करना चाहिये ॥ ५९ ॥ व किसी भी दैवयोग से बलि इन्द्र होवैंगे संसार में जैसा पिता होता है वैसाही पुत्र होता है ॥ ६० ॥ और यदि पुत्र न होवै

तो उसका पौत्र निश्चय कर वैसाही होता है और विष्णुप्रिय व विष्णुभक्त प्रह्लाद जी बड़े योगी हैं ॥ ६१ ॥ उसी कारण हिरण्यकशिपु के कोई गुण विरोचन में हैं हे दैत्यो ! यदि ज्येष्ठ विरोचन राज्य पै किया जावै ॥ ६२ ॥ तो नृसिंहजी आकर निश्चय कर मना करैंगे व मृत्यु से डरनेवाले विरोचन ने भी राज्य को छोड़ दिया है ॥ ६३ ॥ और प्रह्लाद के सब गुण बलिके शरीर में स्थित हैं दैत्यों ने ऐसा सिद्धान्त या प्रतिज्ञा कर राज्य पै बलिको किया ॥ ६४ ॥ व इन्द्रजी किसी के भी वचनको सुनकर मेरे मन्दिर में आये व बालखिल्या महर्षियों से शापित मैं वामन किया गया ॥ ६५ ॥ और मैंने प्रसन्न कराकर उनसे कहा कि कब मेरे शापकी मुक्ति

निश्चितन्तस्य भवतीतिनचेत्सुतः ॥ प्रह्लादस्सुमहायोगी वैष्णवोविष्णुवल्लभः ॥ ६१ ॥ तस्माद्विरोचनेकेचि द्धिरण्यकशिपोर्गुणाः ॥ ज्येष्ठोविरोचनोराज्ये यदिचक्रियतेसुराः ॥ ६२ ॥ नरसिंहःसमागत्य निश्चितंवारयिष्यति ॥ त्यक्तंवैरोचनेनापि राज्यंमरणभीरुणा ॥ ६३ ॥ प्रह्लादस्यगुणाःसर्वे वलिदेहेऽव्यवस्थिताः ॥ एवंतुसमयंकृत्वा बलीरा ज्येकृतोसुरैः ॥ ६४ ॥ कस्यापिवचनंश्रुत्वा देवेन्द्रोममन्दिरे ॥ समागतोबालखिल्यैः शप्तोहंवामनःकृतः ॥ ६५ ॥ प्रसाद्यतेमयाप्रोक्ता शापमुक्तिःकदामम ॥ भविष्यतिचतैरुक्तं बलिनिग्रहणादनु ॥ ६६ ॥ तथापिकौतुकंयुद्धे वलिर्य ज्ञंकरोतिच ॥ देवानांविग्रहोनास्ति सर्वेयज्ञेसमागताः ॥ ६७ ॥ समायजतियज्ञेन सर्वंभाव्यंकरोम्यहम् ॥ नारद उवाच प्रसादंकुरुदेवेश युद्धार्थंकौतुकंमम ॥ ६८ ॥ एकेनब्राह्मणेनाजौ हन्यन्तेक्षत्रियायदा ॥ तदादेवेशहर्षोमे जायतेसुम हान्प्रभो ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोसिभवाञ्जातः कदायुद्धंकरिष्यति ॥ विहस्यवामनोब्रूते सत्यंसत्यंभविष्यति ॥ ७० ॥ जम

होगी तब उन्हों ने कहा कि बलिनिग्रह के पश्चात् शापकी मुक्ति होगी ॥ ६६ ॥ और तुमको भी युद्ध में कौतुक है व बलि यज्ञको करता है और देवताओं का वैर नहीं है क्योंकि सब देवता यज्ञ में आये हैं ॥ ६७ ॥ बलि यज्ञसे भलीभांति पूजन करता है और मैं सब होने योग्य कार्य को करूंगा नारदजी बोले कि हे देवेश ! प्रसन्नता कीजिये मुझको युद्ध के लिये कौतुक है ॥ ६८ ॥ हे प्रभो, देवेश ! जब समर में एक ब्राह्मण क्षत्रियों को मारता है तब मुझको बहुतही आनन्द होता है ॥ ६९ ॥

तुम ब्राह्मण हो और पैदा होकर आप कब युद्ध को करैंगे वामनजी हँसकर कहने लगे कि सत्य सत्य होवैगा ॥ ७० ॥ कि मैं जमदग्नि का पुत्र होकर महा-देवजीको गुरु करके बहुत क्षत्रियोंसमेत कार्तवीर्य को मारूंगा ॥ ७१ ॥ और स्यमंतपंचक क्षेत्र में रक्तों से पांच कुण्डों को करूंगा और वहां मैं पिता व पितामहों का तर्पण करूंगा ॥ ७२ ॥ जहां मैं पवित्र क्षेत्र करूंगा वहां आप आवैंगे व युद्ध में तुम को बहुत प्रिय कौतुक होगा ॥ ७३ ॥ और जब क्षत्रिय फिर ब्राह्मणों से राज्य को लेवैंगे तब मैं फिर वहां मनोहर उपवनों में उनको मारूंगा ॥ ७४ ॥ और बड़ा बलवान् रावण लंकापुरी में राज्य करैगा व जब यह त्रिलोककंटक नामको धारण

दग्निसुतोभूत्वा गुरुंकृत्वामहेश्वरम् ॥ कार्त्तवीर्यंवधिष्यामि बहुभिःक्षत्रियैःसह ॥ ७१ ॥ स्यमन्तपञ्चकेपञ्च करिष्ये रुधिरैर्ह्रदान् ॥ तत्राहंतर्पयिष्यामि पितॄनथपितामहान् ॥ ७२ ॥ पुण्यक्षेत्रंकरिष्यामि भवांस्तत्रागमिष्यति परञ्च कौतुकंयुद्धे भविष्यतितवप्रियम् ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणेभ्योग्रहीष्यन्ते यदातुक्षत्रियाःपुनः ॥ पुनस्तत्रहनिष्यामि रम्येषू पवनेषुच ॥ ७४ ॥ लङ्कायांरावणोराज्यं करिष्यतिमहाबलः ॥ त्रैलोक्यकण्टकंनाम यदासौधारयिष्यति ॥ ७५ ॥ तदादाशरथीरामःकौशल्यानन्दवर्द्धनः ॥ भविष्येभ्रातृभिःसार्द्धं गमिष्येयज्ञमण्डपे ॥ ७६ ॥ ताडकांताडयित्वादौसु बाहुंयममन्दिरे ॥ नीत्वायज्ञंगमिष्यामि सीतायाःसुस्वयंवरे ॥ ७७ ॥ परिणेष्यामितांसीतां भङ्क्त्वामाहेश्वरंधनुः ॥ त्यक्त्वाराज्यंगमिष्यामि वनेवर्षचतुर्दश ॥ ७८ ॥ सीताहरणजंदुःखं प्रथमंमेभविष्यति ॥ नासाकर्णविहीनान्ता क रिष्येराक्षसींवने ॥ ७९ ॥ चतुर्दशसहस्राणि त्रिशिरःखरदूषणान् ॥ हत्वाहनिष्येमारीचराक्षसंमृगरूपिणम् ॥ ८० ॥

करैगा ॥ ७५ ॥ तब कौशल्या के आनन्द को बढ़ानेवाला मैं दशरथ का पुत्र राम हूंगा और भाइयोंसमेत मैं यज्ञमंडप में जाऊंगा ॥ ७६ ॥ पहले ताड़का को मार-कर व सुबाहु को यममंदिर में प्राप्त कर यज्ञ को जाऊंगा व सीताजीके स्वयंवर में ॥ ७७ ॥ शिवजीके धनुष को तोड़कर उन सीता को व्याहूंगा व राज्य को छोड़कर चौदह वर्ष वनमें जाऊंगा ॥ ७८ ॥ पहले मुझको सीताहरण से उपजा हुआ दुःख होगा व वनमें मैं उस शूर्पणखा राक्षसी को नासिका व कानों से हीन करूंगा ॥ ७९ ॥

और चौदह हज़ार त्रिशिरा व खरदूषणादिक राक्षसों को मारकर उस मृगरूपी मारीच राक्षस को मारूंगा ॥ ८० ॥ व हरीहुई स्त्रीवाला मैं जाऊंगा और जटायु गीधको जलाकर सुग्रीव के साथ मित्रता कर बालिको मारकर ॥ ८१ ॥ नलादिक वानरोंसे समुद्र को बँधाऊंगा और लंका को घिराऊँगा ॥ ८२ ॥ और देवताओं से बनाई हुई उस लंकापुरी को विभीषण के लिये दूंगा फिर अयोध्यापुरी को आकर निष्कंटक राज्यकर ॥ ८३ ॥ काल व दुर्वासाजीके विचित्र चरित्र से मैं राज्य को पुत्रके लिये देकर भाइयोंसमेत अमरावती पुरीको जाऊंगा ॥ ८४ ॥ और द्वापर प्राप्त होने पर बहुत से क्षत्रियों से भार करके घिरीहुई

हृतदारोगमिष्यामि दग्ध्वागृध्रजटायुषम् ॥ सुग्रीवेणसमंमैत्रीं कृत्वाहत्वाथबालिनम् ॥ ८१ ॥ समुद्रम्बन्धयिष्यामि नलप्रमुखवानरैः ॥ लङ्कांसंवेष्टयिष्यामि मारयिष्यामिराक्षसान् ॥ ८२ ॥ विभीषणायदास्यामि लङ्कांतांदेवनिर्मिताम् ॥ अयोध्यांपुनरागत्य कृत्वाराज्यमकण्टकम् ॥ ८३ ॥ कालदुर्वाससोश्चित्रचारित्रेणामरावतीम् ॥ यास्येहंभ्रातृभिःसार्द्धं राज्यंपुत्रेनिवेद्यच ॥ ८४ ॥ द्वापरेसमनुप्राप्ते क्षत्रियैर्बहुभिर्महीम् ॥ भाराक्रान्तांनशक्नोमि पातालंगन्तुमुद्यताम् ॥ ८५ ॥ मथुरायांतदाकर्त्ता कंसोराज्यंमहासुरः ॥ शिशुपालंजयिष्यामि हत्वावैगजवाजिनः ॥ ८६ ॥ कलौ स्वल्पोदकामेघा अल्पदुग्धाश्चधेनवः ॥ दुग्धेघृतंनचैवास्ति नास्तिसत्यंजनेषुच ॥ ८७ ॥ चौरैरुपद्रुतालोका व्याधिभिःपरिपीडिताः ॥ त्रातारंनाधिगच्छन्ति वृद्धावस्थाङ्गतेमयि ॥ ८८ ॥ क्षुद्राःपश्चिमवाहिन्यो नद्यश्शुष्यन्तिकार्त्तिके ॥ एकादशीव्रतंनास्ति कृष्णायाचचतुर्दशी ॥ ८९ ॥ नजानातिजनःकश्चिद्विक्रान्तमपिस्वग्रहे ॥ दरिद्रोपहतंसर्वं सन्ध्या

व पाताल को जाने के लिये उद्यत पृथ्वी को नहीं देख सक्ताहूं ॥ ८५ ॥ तब मथुरापुरी में महादैत्य कंस राज्य करैगा और मैं हाथी व घोड़ोंको मारकर शिशुपाल को जीतूंगा ॥ ८६ ॥ कलियुग में मेघों में थोड़ा जल होता है व गौवों में थोड़ा दूध होता है व दूध में घी नहीं होता है और मनुष्यों में सत्य नहीं होता है ॥ ८७ ॥ व चोरों से मनुष्य विकलते हैं और रोगों से पीड़ित होते हैं मुझको बुद्धावस्था में प्राप्त होने पर वे रक्षक के समीप नहीं जाते हैं ॥ ८८ ॥ और पश्चिम ओर बहनेवाली क्षुद्र नदिया कातिक महीने में सूख जाती हैं व एकादशी व्रत नहीं होता है और जो कृष्णपक्ष की चौदसि है उसका व्रत नहीं होता है ॥ ८९ ॥ और कोई

को कँपाते थे व तालके प्रमाण से नाचते थे और बहुत सुन्दर गाते थे ॥ २०० ॥ व चतुर वामनजी ब्राह्मणों की सभा में चारों वेदों को पढ़ते थे व दैत्यों के सब बालक और ब्राह्मणों के पुत्र ॥ १ ॥ दिनरात मनोहर वामनजी की उपासना करते थे इसके अनन्तर वे बालक वामनजी को यज्ञमंडप में लेगये ॥ २ ॥ व उन्हों ने कहा कि मठिकास्थानको निश्चय कर तुमको बलिसे मांगना चाहिये क्योंकि जब नगर में विद्वान् ब्राह्मण अत्यन्त पूजा जाता है ॥ ३ ॥ तब हमलोगों का वा नगर का बड़ा भारी कल्याण देख पड़ता है उस समय इन वामन द्विज से सब मनुष्यों ने बतलाया ॥ ४ ॥ कि हे वामन ! दैत्येन्द्र बलिके नगर में तुमको सदैव बसना

नृत्यतेतालमानेन गायन्त्यतिमनोहरम्॥वेदानधीतेचतुरो वामनोद्विजसंसदि॥२००॥दैत्यानांतनुजाःसर्वे ब्राह्मणानांतथैवच ॥१॥ वामनंपर्युपासन्तेदिवारात्रंमनोरमम् ॥ कुमारस्तैरथोनीतोवामनोयज्ञमण्डपे ॥२॥ निश्चित्यमठिकास्थानं याचनीयोबलिस्त्वया ॥ विद्वानतीवविप्रेन्द्रः पूज्यतेनगरेसदा ॥ ३ ॥ तदास्माकंमहाञ्श्रेयो दृश्यतेनगरस्यच॥ विज्ञप्तोमानवैस्सर्वैस्तदासौवामनोद्विजः ॥४॥ त्वयावामनवस्तव्यं दैत्येन्द्रनगरेसदा ॥ प्रविवेशतथेत्युक्तो वामनोयज्ञमण्डपे ॥ ५ ॥ ततःकोलाहलोजातो द्वास्थैर्द्वारिगतोमहान् ॥ ब्राह्मणैर्बहुभिस्सार्द्धंवेदानुच्चारयन्स्थितः ॥ ६ ॥ ततोवेदध्वनिर्जाता महतीयज्ञमण्डपे ॥ प्रविष्टैःप्रथमंदैत्यैर्दैत्यायनिवेदितः ॥ ७ ॥ द्रष्टुंसमागतोदेव ब्राह्मणोवामनोऽध्वरे ॥ भवन्तंकौतुकात्तावद्द्वास्स्थंद्वारिसमादिश ॥ ८ ॥ एकएवमथायाति वामनस्तवसन्निधौ ॥ निरीहोवामनोदेव याचते नैवकिञ्चन ॥ ९ ॥ वेदानाञ्चध्वनिंश्रुत्वा चतुर्णामेकवक्त्रतः ॥ बलिर्हृष्टोब्रवीद्वाक्यंद्वास्थमेनंप्रवेशय ॥ १० ॥पूजयि

चाहिये इस प्रकार कहे हुये वामनजी यज्ञमंडप में पैठे ॥ ५ ॥ तब द्वार पै टिके हुये लोगों से बड़ा कोलाहल द्वार पै प्राप्त हुआ और बहुत ब्राह्मणों के साथ वेदों को उच्चारण करते हुये वामनजी स्थित हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर यज्ञमण्डप में बड़ी भारी वेदध्वनि हुई और पहले पैठे हुये दैत्यों ने बलि दैत्य से वामनजीको बतलाया ॥ ७ ॥ कि हे देव ! वामन ब्राह्मण कौतुक से यज्ञ में आपको देखने के लिये आया है तब तक द्वार पै दरबानी को आज्ञा दीजिये ॥ ८ ॥ व एकही वामनजी तुम्हारे समीप आते हैं और हे देव ! वामनजी कुछ इच्छा नहीं करते हैं व कुछ नहीं मांगते हैं ॥ ९ ॥ चारों वेदों की ध्वनिको एक मुख से सुनकर प्रसन्न होते हुये

बलिने द्वारपालक से वचन कहा कि इन वामनजी को प्रवेश कराइये ॥ १० ॥ मैं द्विजेन्द्र को पूजूंगा और इसका जो मनोरथ होगा उसको दूंगा मैं उन वचनों को स्मरण करता हूं कि जिनको गुरुने मुझसे कहा है ॥ ११ ॥ कि कोई वेदमय पात्र होता है व कोई तपोमय पात्र होता है जो पात्र आवैगा वह पात्र तारैगा ॥ १२ ॥ और यज्ञ वर्तमान होने पर मुझको दक्षिणा देना चाहिये यह वामन विचारने योग्य नहीं है मेरा वचन सत्य होवै ॥ १३ ॥ यह सुनकर गुरु शुक्राचार्यजी ने उन बलिको मना किया कि सब ब्राह्मणों को व दीन, अन्ध और कृपण आदिकों को द्वार पै पूजना चाहिये ॥ १४ ॥ व बधिर, वामन, कुबरे और जो निठुर रोगी हैं

ष्यामिविप्रेन्द्रं दास्येचास्ययदीप्सितम् ॥ स्मरामितानिवाक्यानि यानिप्राहगुरुर्मम ॥११॥ किञ्चिद्वेदमयंपात्रं किञ्चित्पात्रंतपोमयम् ॥ आगमिष्यतियत्पात्रं तत्पात्रंतारयिष्यति ॥ १२ ॥ यज्ञेप्रवृत्तमानेतु दातव्यादक्षिणामया ॥ वामनोनविचार्यासौ सत्यमस्तुवचोमम ॥ १३ ॥ इतिश्रुत्वागुरुःशुक्रो वारयामासतंबलिम् ॥ द्वारिपूज्याद्विजास्सर्वे दीनान्धकृपणादयः ॥ १४ ॥ बधिरावामनाःकुब्जा रोगिणोयेतुनिष्ठुराः ॥ सुवर्णरजतैर्वस्त्रैर्वामनोद्वारिपूज्यताम् ॥१५॥ चतुर्णान्तुवृथाजन्म वृथादानानिषोडश ॥ अपुत्राणांवृथाजन्म येचधर्मबहिष्कृताः ॥ १६ ॥ परपाकञ्चयेश्नन्ति परदाररताश्चये ॥ अन्यायोपार्जितंवित्तं नदेयंश्रेयमिच्छता ॥ १७ ॥ व्यर्थमब्राह्मणेदानमनूढेपतितेतथा ॥ सन्ध्याहीने द्विजेनष्टे पतितेतस्करेतथा ॥ १८ ॥ गुरोश्चाप्रीतिजनके पितृमातृपराङ्मुखे ॥ ब्रह्मबन्धौचयद्दत्तं यद्दत्तंवृषलीपतौ ॥१९॥

वे द्वार पै पूजने योग्य हैं इस कारण सुवर्ण, चांदी व वस्त्रों से वामन को द्वार पै पूजिये ॥ १५ ॥ क्योंकि चार पुरुषों का जन्म वृथा है व सोलह दान वृथा हैं बिन पुत्रवाले मनुष्यों का जन्म व जो धर्म से बाहर किये गये हैं उनका जन्म वृथा है ॥ १६ ॥ और जो पराये पकाये हुये अन्न को खाते हैं और जो पराई स्त्रियों में रत हैं उनका जन्म वृथा है ॥ १७ ॥ कल्याण चाहनेवाले पुरुष को अन्याय से इकट्ठा कियाहुआ धन न देना चाहिये और जो ब्राह्मण नहीं है उसके लिये दान वृथा है व बिन ब्याहे हुये तथा पतित व संध्या से हीन नष्ट व पतित और चोर के लिये दान वृथा है ॥ १८ ॥ व गुरुकी प्रीतिको न उत्पन्न करनेवाले व पिता, माता

से विमुख तथा अधम ब्राह्मण के लिये जो दिया गया है व शूद्रापति के लिये जो दिया गया है वह वृथा है ॥ १९ ॥ और वेदों के बेंचनेवाले व कृतघ्न तथा ग्राम-याचक के लिये और स्त्रियों से जीते हुये पुरुषों के लिये व सांप पकडनेवाले के लिये जो दिया गया है ॥ २० ॥ और निन्दकों के लिये जो दिया गया है ये सोलह दान वृथा हैं इसी अवसर में बलि कहने लगा कि हे गुरो ! तुमको ऐसा न कहना चाहिये ॥ २१ ॥ क्यों कि जो कोई वेदों को पढ़ता है वह मुझको विष्णुसमान सम्मत है और वेदपात्र को घर आने पर देर न करना चाहिये ॥ २२ ॥ और अभ्युत्थान (आते देखकर उठना) व वचन और पादप्रक्षालन से गृहस्थ को

वेदविक्रयिणेचैव कृतघ्नेग्रामयाचके ॥ स्त्रीनिर्जितेषुयद्दत्तं व्यालग्राहेतथैवच ॥ २० ॥ परिवादिषुयद्दत्तं वृथादानानिषोडश ॥ अत्रान्तरेबलिर्ब्रूते नैवंवाच्यन्त्वयागुरो ॥२१॥ वेदानधीतेयःकश्चित्समेविष्णुःसमोमतः ॥ नविलम्बस्तु कर्त्तव्यः श्रोत्रियेगृहमागते ॥ २२ ॥ अभ्युत्थानेनवचसा पादप्रक्षालनेनच ॥ यथाशक्त्याप्रदातव्यंभोजनंगृहमेधिना ॥ २३ ॥ अपूजितोयदायाति वामनोयज्ञमण्डपात् ॥ तदायंव्यर्थतांयाति यज्ञस्सर्वस्वदक्षिणः ॥ २४ ॥ अत्रान्तरेसमानीतो वामनोबलिसन्निधौ ॥ आयान्तंतंद्विजंदैत्यो वामनोविष्णुरूपिणम् ॥२५॥ जाज्वल्यमानंवपुषा पिङ्गलंसूर्यसन्निभं ॥ उत्थायाभिमुखःप्राप्य नमस्कृत्याग्रतस्स्थितः ॥ २६ ॥ धन्योहंयस्यमेयज्ञे प्राप्तोविष्णुसमोद्विजः ॥ वेदीमध्येसमानीतो ददौतस्यासनंबलिः ॥ २७ ॥ पाद्यमाचमनीयञ्च तद्वदर्घंददौबलिः ॥ श्रीखण्डधूपगन्धाद्यैः पूजयित्वा

यथाशक्ति भोजन देना चाहिये ॥ २३ ॥ यदि बिन पूजे हुये वामनजी यज्ञके मण्डप से चले जावैंगे तो यह सर्वस्वदक्षिण यज्ञ व्यर्थताको प्राप्त होवैगा ॥ २४ ॥ इसी अवसर में वामनजी बलिके समीप लाये गये और उन विष्णुरूपी वामन द्विजको आते हुये देखकर बलि दैत्य ॥ २५ ॥ उठकर व शरीर से ज्वलते हुये व सूर्य के समान पिंगलवर्ण वामनजीके सामने प्राप्त होकर प्रणाम कर आगे स्थित हुये ॥ २६ ॥ व बोले कि मैं धन्य हूं जिसके यज्ञ में विष्णु के समान ब्राह्मण प्राप्त हुआ वेदी के मध्य में विष्णुजी लाये गये और बलिने उन वामन को आसन दिया ॥ २७ ॥ वैसेही बलिने पाद्य, आचमनीय व अर्घको दिया व चन्दन और धूप, गन्धों

से पूजकर बलिजी आगे स्थित हुये ॥ २८ ॥ और उन बलिने उन वामनजी के लिये शीघ्रही मधुपर्क व गऊको दिया और वामनजी ने मधुपर्क को सूंघकर गऊको प्रणाम किया ॥ २९ ॥ बलिने स्वागत किया और वामन द्विजने स्वस्ति ऐसा कहा व यह कहा कि मैं अर्थी (याचक) आया हूं तब बलिने कहा कि हे प्रभो ! कहिये क्या दिया जावै ॥ ३० ॥ वामनजी ने कहा कि हे दैत्य ! पृथ्वीको दीजिये बलि ने कहा कि हे द्विजोत्तम ! कितनी पृथ्वी देऊ वामनजीने कहा कि हे दैत्येन्द्र ! मेरे निवास के लिये मेरे तीन पग पृथ्वी को दीजिये ॥ ३१ ॥ क्योंकि उत्तम कुटीको बनाकर मैं शिष्यों को पढ़ाऊंगा बलिने कहा कि मैंने तुम्हारे लिये तीन

ग्रतस्स्थितः ॥ २८ ॥ मधुपर्कंचगान्तस्मै सत्वरंसन्यवेदयत ॥ आघ्रायमधुपर्कंगोर्नामनेनेनमस्कृता ॥ २९ ॥ स्वागतं बलिनाप्रोक्तं स्वस्तीत्युक्तंद्विजन्मना ॥ अहमर्थीसमायातो दीयतांवदकिंप्रभो ॥ ३० ॥ मेदिनींदेहिमेदैत्य कियन्मात्रांद्विजोत्तम ॥ वासार्थंममदैत्येन्द्र दीयतांमेक्रमत्रयम् ॥ ३१ ॥ विधायकुटिकांदिव्यां शिष्यानध्यापयाम्यहम् ॥ दत्तंक्रमत्रयंतुभ्यं गृहीतंवामनोब्रवीत ॥ ३२ ॥ मादेहीत्यवदच्छुक्रो विष्णुरेषसनातनः ॥ ततोब्रवीद्बलिश्शुक्रं पात्रंस्यात्किमतःपरम् ॥ ३३ ॥ सव्यंकृत्वाबलिर्दर्भान्साक्षतान्दक्षिणेकरे ॥ प्रयोगंनगुरुश्चक्रे नमुञ्चतिजलंकरे ॥३४॥ विस्मिताऋषयस्सर्वे होतारोयेसभासदः ॥ ब्राह्मणाबहवोदैत्या भार्यापुत्राश्चबान्धवाः ॥ ३५ ॥ दत्तंगृहीतमित्युक्ते कस्मात्तोयन्नमुञ्चति ॥ वामनायकरेतोयं विवेकायप्रदीयते ॥ ३६ ॥ यद्दानंवचसादत्तं कर्मणानोपपद्यते ॥ विधायपूर्वंन

पग पृथ्वी को दिया तब वामनजीने कहा कि मैंने ग्रहण किया ॥ ३२ ॥ शुक्राचार्यजीने कहा कि मत दीजिये ये सनातन विष्णुजी हैं तदनन्तर बलिने शुक्र से कहा कि इनसे अधिक कौन पात्र होगा ॥ ३३ ॥ बलि सव्य होकर अक्षतोंसमेत कुशों को दाहिने हाथ में किया और गुरु ने प्रयोग नहीं किया न हाथ में जल छोडा ॥ ३४ ॥ सब ऋषिलोग व होता और जो सभासद थे वे विस्मय को प्राप्त हुये और बहुत से ब्राह्मण, दैत्य, स्त्रियां, पुत्र व जो बन्धु लोग थे ॥ ३५ ॥ वे कहने लगे कि दिया गया व ग्रहण किया गया ऐसा कहने पर शुक्र किस लिये जलको नहीं छोड़ते हैं क्योंकि वामनजी के लिये हाथ में कल्याण के निमित्त जल दिया जाता

है ॥ ३६ ॥ जो दान वचन से दिया गया और कर्म से नहीं सिद्ध किया गया वह पहले यजमान को नरक में करके काटताहै ॥ ३७ ॥ शुक्राचार्यजीने दैत्येन्द्र बलि से कहा कि ये वामनजी विष्णु हैं किसी भी दैवयोग से तुमको देखने के लिये आये हैं ॥ ३८ ॥ अप्रिय या प्रिय नहीं जानता हूं कि यह क्या करेंगे शिष्य दैत्य जीने भार्गव (शुक्र) से कहा कि हे गुरो ! वचन को सुनिये ॥ ३९ ॥ कि मैं यह जानता हूं कि जब समय होगा तब ब्राह्मणों से यज्ञ पूर्ण होगा व मैं इन्द्र हूं और ब्राह्मण विष्णु हैं व द्रव्य सूर्य देवता हैं ॥ ४० ॥ तो विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस लिये मुझको विष्णुजी के लिये क्यों न देना चाहिये यह कहकर

रके यजमानंनिकृन्तति ॥ ३७ ॥ उशनाप्राहदैत्येन्द्रं वामनोहरिरित्ययम् ॥ केनापिदैवयोगेन त्वांद्रष्टुंसमुपागतः ॥ ३८ ॥ अप्रियंवाप्रियंवापि नजानेकिङ्करिष्यति ॥ बभाषेभार्गवंशिष्यश्श्रूयतांवचनंगुरो ॥ ३९ ॥ पूर्यतेचयदाकालं यज्ञोमेनेद्विजैरपि ॥ अहमिन्द्रोद्विजोविष्णुर्द्रव्यमादित्यदेवता ॥ ४० ॥ तत्कथंनमयादेयं विष्णवेप्रीयतामिति ॥ इत्युक्त्वासददौतोयं वामनायकरेबलिः ॥ ४१ ॥ ततःकिमिदमित्युक्त्वा संस्थितोमण्डपाद्बहिः ॥ मध्येपिवामनोविप्रो बलिमात्रोबभूवसः ॥ ४२ ॥ कृतहस्तेसुरेन्द्रेण गृहीतन्तुपदत्रयम् ॥ यजमानद्विजौदृष्टौ उभौयज्ञेसुरासुरैः ॥ ४३ ॥ ववृधेवामनोतीव कृत्वारूपञ्चतुर्भुजम् ॥ नारदोपितदायातो बभाषेकिंकृतंबले ॥ ४४ ॥ शिष्याभ्यांसहितोविप्रो दृष्टोनर्तन्पुनःस्थितः ॥ गृहाणदक्षिणांदेव सभार्योभाषतेबलिः ॥ ४५ ॥ अधिकन्नमयिप्राप्तं यद्गृह्णातिजनार्द्दनः ॥ सार्द्धक्र

उन बलि ने वामनजीके लिये हाथमें जलको दिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर यह क्या है ऐसा कहकर मंडप से बाहर स्थित हुये इसी मध्य में वे वामन द्विज भी बलि के बराबर होगये ॥ ४२ ॥ और दैत्येन्द्र बलिसे कृतहस्त होने पर वामनजी ने तीन पग पृथ्वी को ग्रहण किया यज्ञ में देवता व दैत्यों ने यजमान बलि व द्विजवामनजी दोनों को देखा ॥ ४३ ॥ और वामनजी चतुर्भुज रूप करके बहुतही बढ़े और उस समय नारद भी आये व बोले कि हे बले ! तुमने क्या किया ॥ ४४ शिष्यों समेत ब्राह्मण को देखा फिर नाचते हुये स्थित हुये व स्त्रीसमेत बलि कहने लगे कि हे देव ! दक्षिणा को ग्रहण कीजिये ॥ ४५ ॥ मैंने अधिक नहीं पाया कि जिसको

विष्णुजी ग्रहण करैं जो कि आपही साढ़े तीन पग करके मागते हैं ॥ ४६ ॥ हे मधुसूदन ! जो है उसी से सन्तोष करना चाहिये बढ़ते हुये विष्णुजी को देखकर ब्राह्मण, ऋषि व देवता ॥ ४७ ॥ आकाश में प्राप्त जनार्दन भगवान् की स्तुति करते भये कि हे देव ! आपकी जयहो हे अनन्त ! आपकी जयहो हे विष्णो ! जय होवै हे अच्युत ! आपकी जय हो ॥ ४८ ॥ हे मत्स्य ! आपकी जयहो तुम्हारे लिये नमस्कार है हे पृथ्वी को धारनेवाले, कूर्मजी ! आपकी जय हो नह, वाराहरूपधारी आपके लिये प्रणाम है और हे नृसिंह ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ४९ ॥ हे जामदग्न्य ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे लक्ष्मणसमेत, रामजी ! आप

मत्रयंकृत्वा धरणींयाचसेस्वयम् ॥४६॥ यदस्तितेनकर्त्तव्यः सन्तोषोमधुसूदन॥ वर्द्धमानंहरिंदृष्ट्वा ब्राह्मणाऋषयःसुराः॥४७॥तुष्टुवुर्गगनेजातं भगवन्तंजनार्द्दनम् ॥ जयदेवजयानन्त जयविष्णोजयाच्युत ॥४८॥ जयमत्स्यनमस्तुभ्यं जयकूर्मधराधरम् ॥ वाराहनमस्तुभ्यं नरसिंहनमोनमः ॥ ४९ ॥ जामदग्न्यनमस्तुभ्यं जयरामसलक्ष्मण ॥ जय कृष्णजगन्नाथ जयदेवकिनन्दन ॥ ५० ॥ प्रणमामिबुधंकृष्णं कल्किनंप्रणमाम्यहम् ॥ नरोनारीतथास्तौति नारदोगगनंगतः ॥ ५१ ॥ योगिनःसनकाद्याये तेस्तुवन्तिजनार्द्दनम् ॥ गगनार्धंगतेकृष्णे वर्द्धमानेबलेःपुरः ॥ ५२ ॥ ऊर्द्ध्ववक्त्रास्थितास्सर्वे निरीक्षन्तेदिवाकरम् ॥ दृष्टच्छत्राकृतिस्तावत्पश्चादूर्द्ध्वंगतोहरिः ॥ ५३ ॥ चूडामणिरिवाभाति भास्करोहरिमस्तके ॥ दैत्यैर्निरीक्षितःसम्यग्ललाटेतिलकायते ॥ ५४ ॥ हरिःसंवर्द्धितोवेगात्कर्णेसौकुण्ड

की जय हो हे कृष्ण हे जगन्नाथ ! आपकी जयहो हे देवकिनन्दन ! आपकी जयहो ॥ ५० ॥ बुध व कृष्णजीको मैं प्रणाम करता हूं और कल्की को मैं प्रणाम करता हूं पुरुष व स्त्री स्तुति करती हैं और आकाश में प्राप्त नारदजी स्तुति करते हैं ॥ ५१ ॥ और जो सनकादिक योगी हैं वे विष्णुजीकी स्तुति करते हैं और बलि के आगे बढ़ते हुये श्री कृष्णजी जब आकाश के अर्धभाग को गये ॥ ५२ ॥ तब ऊपर मुख किये सब स्थित हुये और सूर्यनारायण को देखने लगे तबतक छतुरी के आकार वामनजी देखपड़े पश्चात् विष्णुजी ऊपर को गये ॥ ५३ ॥ और विष्णुजीके मस्तक में सूर्य नारायण चूड़ामणि की नाईं शोभित थे व दैत्यों से देखे हुये

वे मस्तक में तिलक की नाईं जान पड़ते थे ॥ ५४ ॥ और विष्णुजी जब वेग से बढ़े तो कान में ये सूर्य नारायण कुंडलकी नाईं देख पड़े व जब विष्णुजी उससे ऊँचे गये तो हृदय में कौस्तुभकी नाईं देख पडते थे ॥ ५५ ॥ उस समय इन्द्र ने गले में जयमाला को डाल दिया डरती हुई पृथ्वी कांपने लगी व आकाशमें स्थित सूर्यमंडल कांपने लगा ॥ ५६ ॥ और क्या होगा यह विचार कर डरे हुये वे दैत्य सूर्य नारायण को देखते थे व विष्णु वामनजीके शरीर में सूर्य नारायण नाभि में कमल की नाईं जान पड़ते थे ॥ ५७ ॥ इस प्रकार विष्णुजी बढ़े व उन्हों ने दो पग पृथ्वी को ग्रहण किया और तीसरे पगका स्थान नहीं रहा क्योंकि सब ब्रह्माण्ड

लायते ॥ उच्चैर्यातिहरिस्सूर्यो हृदयेकौस्तुभायते ॥ ५५ ॥ वनमालातदाकण्ठे वासवेननिवेशिता ॥ पृथिवीकम्पतेभीता दिविस्थंसूर्यमण्डलम् ॥ ५६ ॥ किंभविष्यतिदैत्यास्तेभीताःपश्यन्तिभास्करम् ॥ नाभौपद्मायतेसूर्यो वामनस्यहरेःस्तनौ ॥ ५७ ॥ एवंसंवर्द्धितोविष्णुर्जगृहेचपदद्वयम् ॥ स्थानंनास्तितृतीयस्य ब्रह्माण्डंसकलंकृतम् ॥ ५८ ॥ अङ्घ्रिदण्डोजगद्योनेर्ब्रह्मदण्डायतेतदा ॥ देवदानवगन्धर्वमनुष्योरगराक्षसैः ॥ ५९ ॥ पूज्यतेचरणोविष्णोस्स्तूयतेचानुर्मायते ॥ धरानौक्रमदण्डोहि गन्धर्वैर्गीयतेगुणैः ॥६० ॥ ज्योतिश्चक्राक्षदण्डोहि हरिणानिर्मितस्स्वयम् ॥ जित्वेदंभुवनंगङ्गा ध्वजदण्डामरैःकृतः ॥ ६१ ॥ त्रिविक्रमाङ्घ्रिदण्डोयं कीर्तिर्दण्डायतेध्रुवम् ॥ वेगेनाक्षिप्यहरिणा नीतोब्रह्माण्डमस्तके ॥ ६२ ॥ प्राप्तेतन्मस्तकंभित्त्वा बहिर्यास्यतिवेगतः ॥ तावद्ब्रह्माण्डस्वर्गेयं विराडितिविस

किया गया याने दोही पगमे नाप लिया गया ॥ ५८ ॥ उस समय वामनजीका चरणदण्ड ब्रह्माके ब्रह्मदण्ड की नाईं जान पड़ता था और देवता, दानव, गन्धर्व, मनुष्य नाग व राक्षस ॥ ५९ ॥ विष्णुजीके चरण को पूजते थे व स्तुति करते थे और गंधर्व गुणों से गाते थे व अनुमान करते थे कि पृथ्वीरूपी नाव के नापने का दण्ड है ॥ ६० ॥ व विष्णुजीने ज्योतिश्चक्रके आंक का दण्ड आपही निर्माण किया है और इस लोक को जीतकर देवताओं ने गंगाजी के ध्वजदंडको बनाया है ॥ ६१ ॥ और यह वामनजीका दंड व यश निश्चय कर दडकी नाईं है इसको विष्णुजी ने वेग से उठाकर ब्रह्माण्ड के मस्तक में प्राप्त किया है ॥ ६२ ॥ वहां प्राप्त होकर व

उस ब्रह्माण्ड के मस्तक को फोड़कर यह चरण वेगसे बाहर आवैगा तब तक ब्रह्माण्ड के स्वर्ग में यह विराट् ऐसा संज्ञक स्थित है ॥ ६३ ॥ जिस पुरुष ने बीज को रचा है वह परमात्मा ऐसा कहा जाता है और उससे यह सब पैदा हुआ है जो कि चरण के आगे स्थित है ॥ ६४ ॥ व चरण के संकोचनसे भी ब्रह्माण्ड जर्जर होगया व भिन्न होगया व उस त्रिलोक में जल बाहर आगया ॥ ६५ ॥ उस समय विष्णुजीके चरण से उपजी हुई श्री गंगाजी मस्तक से निकली हैं तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली जिन गंगाजी देवी को आपही शिवजीने धारण कियाहै ॥६६॥ वे स्वर्ग में स्वर्धुनी ऐसी गंगा पूजी जाती हैं व पृथ्वी में प्राप्त होती हुई गंगा ऐसी

ञ्ज्ञितः ॥ ६३॥ ससर्जबीजंपुरुषः परमात्मेतिनिगद्यते॥ तेनेदंसकलंजातं पादस्याग्रेऽव्यवस्थितम् ॥६४॥ ब्रह्माण्डञ्जर्जरंजातं पादसंकोचनादपि ॥ भिन्नंतस्मिन्समायातं बाह्यंतोयंजगत्त्रये॥६५॥विष्णुपादोद्भवागङ्गा मस्तकान्निःसृतातदा॥ त्रैलोक्यपावनीदेवी यारुद्रेणस्वयंधृता ॥ ६६ ॥ स्वर्धुनीपूज्यतेस्वर्गे गङ्गेतिगाङ्गतासती ॥ पातालेसायदाप्राप्ता ख्याताित्रिपथगैवसा ॥ ६७ ॥ तस्यास्स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ दर्शनादश्वमेधस्य सम्पूर्णस्यफलंलभेत् ॥६८॥ स्नानमात्रेणनश्येत सप्तजन्मकृतोह्यघः ॥ स्नात्वासम्पूजयेद्यस्तु देवींहरिहरौनरः ॥ ६९ ॥ इन्द्रलोकमतिक्रम्यविष्णोर्लोकेमहीयते ॥ विष्णुपादोदकंपीत्वा स्नात्वानत्वातिसंयमी ॥ ७० ॥ उपोष्यदिवसंविष्णोर्मुक्तिंगच्छन्तिदेहिनः ॥ शुद्धभावस्वभावस्था विरक्ताजनभूमिषु ॥ ७१ ॥ संसारबन्धनंछित्त्वा यान्तितेपरमांगतिम् ॥ २७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्येबलेर्निग्रहवर्णनंनामत्रिंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३० ॥ * ॥

पूजी जाती हैं और जब वे गंगाजी पाताल में प्राप्त हुई तो वही त्रिपथगा ऐसी कही गई हैं ॥ ६७ ॥ उन गंगाजी के स्मरणही से सब पापों का नाश होता है व दर्शन से संपूर्ण अश्वमेध यज्ञ का फल होता है ॥ ६८ ॥ व स्नान से सात जन्मों में किया हुआ पाप नाश होता है और नहाकर जो मनुष्य देवीव विष्णु तथा शिवजीको पूजता है ॥ ६९ ॥ वह इन्द्रलोक कोनांघकर विष्णुजीके लोक में पूजा जाता है और विष्णुजीके चरणोदक को पीकर, स्नानकर व प्रणाम कर बड़ा संयमी पुरुष विष्णुजीके लोक में पूजा जाता है ॥ ७० ॥ और विष्णुजीके दिनको उपास कर प्राणी मुक्तिको प्राप्त होते हैं और शुद्ध भावके स्वभाव में स्थित तथा मनुष्यों व

भूमियों में विरक्त व प्राणी संसारके बन्धन को काटकर उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ । २७२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलेर्निग्रहवर्णनंनामत्रिंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३० ॥

॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛

दो० । वामन बलिको छलि यथा पठयो है पाताल । कह्यो त्रिंशत इकतीस में सोई चरित रसाल ॥ पार्वतीजी बोलीं कि बलि दैत्य ने उस दक्षिणा को देकर और विष्णुजीने ग्रहण कर क्या किया है उसको मुझसे कहिये क्योंकि मुझको बड़ा कौतुक है ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! देवताओंसे ऐसा कहेहुये विष्णुजी ने पृथ्वी को लेकर व उस बलिके राज्य को लेकर मनुके पुत्र में नियुक्त किया ॥ २ ॥ और विष्णुजीने उन दैत्यों को आपही अन्य द्वीप में पठाया और पाताल

पार्वत्युवाच ॥ दत्त्वातांदक्षिणांदैत्यो गृहीत्वाकिंजनार्दनः ॥ चकारतन्मयाचक्ष्व परंकौतूहलंहिमे ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तःसुरैर्देवि गृहीत्वामेदिनींहरिः ॥ गृहीत्वातद्बलेराज्यं मनुपुत्रेतियोजितम् ॥ २ ॥ द्वीपान्तरेचतेदैत्या विष्णुनाप्रेरितास्स्वयम् ॥ पातालनिलयायेतु तेतत्रैवनिवासिताः ॥ ३ ॥ देवानांपरमोहर्षः सञ्जातोबलिनिग्रहे ॥ पुत्रमित्रकलत्राणि त्यक्त्वाविष्णुर्हिमालयम् ॥ ४ ॥ विधायपरमंवेषं दध्यौदेवंजनार्दनम् ॥ परमात्मानमात्मानं द्रष्टारंचहृदिस्थितम् ॥ ५ ॥ तद्देहस्थंबलिंज्ञात्वा देवराजःसमागतः ॥ बलिंपातालनिलयं ततश्चक्रेसुरेश्वरः ॥ ६ ॥ बलिदैत्यपुरभ्रंशःसञ्जातोबलिनिग्रहे ॥ निवासायमनश्चक्रे वामनोवामनस्थलीम् ॥ ७ ॥ वामनेनपुरायत्र कृतपञ्चाग्निसाधनम् ॥ तत्रस्थंब्राह्मणंगर्गं पप्रच्छभगवान्हरिः ॥ ८ ॥ कस्मिन्स्थानेमयाकार्यं वैष्णवंनगरंवद ॥ यत्रभुक्तिर्भवेन्नॄणामन्तेमुक्ति

में जिनका स्थान था वे वहीं बसाये गये ॥ ३ ॥ और बलिके निग्रह में देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ और पुत्र, मित्र व स्त्रियों को छोड़कर विष्णु वामनजी हिमालय को गये ॥ ४ ॥ व उत्तम वेष करके उन्होंने विष्णुदेवजीको ध्यान किया व परमात्मा तथा द्रष्टा आत्मा को अपने हृदय में स्थित देखकर ॥ ५ ॥ और बलिको उनके शरीर में स्थित जानकर सुरराज इन्द्र आये तदनन्तर सुरेश्वर इन्द्रजीने बलिको पातालस्थायी किया ॥ ६ ॥ व बलिके निग्रह में बलि दैत्य के नगर का विध्वंस हुआ और वामनजी ने वामनस्थली में बसने के लिये मन किया ॥ ७ ॥ पुरातन समय जहां वामनजीने पंचाग्नि का साधन किया था वहां टिके हुये गर्ग

दोहा। सिद्धि सदन गज बदन के चरण कमल युग ध्याय। कियो प्रभासहुं खण्ड कर टीका सुख समुदाय॥ १॥ नैमिष से पूरब दिशा ग्राम अहै मनुकोस। दौनाभारी नाम अस राजत देव भरोस॥ २॥ मिश्रवंस अवतंस तहँ भे द्विज चण्डिप्रसाद। तिनके देविदयालु सुत कीन्हों यह अनुवाद॥ ३॥ भूल चूक जो होय कहुं ताको देखि बहोरि। शोधहिं मम अपराध क्षमि यही प्रार्थना मोरि॥ ४॥ जो नर याको पढ़ैं अरु सुनैं सदा चितलाय। करहिं शिवा शिवदेवजी तिनकी सदा सहाय॥ ५॥ शुभम्॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति प्रभासखण्डंसम्पूर्णम्॥

प्रथमवार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्ध से।

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने में छपा

सन् १९१० ई०

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतद्वारकाखण्डप्रारम्भः ॥

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतद्वारकामाहात्म्यस्य सूचीपत्रम् ॥

इति श्रीद्वारकामाहात्म्यस्य सूचीपत्रं समाप्तिं पफाणेति शम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतद्वारकामाहात्म्यखण्डप्रारम्भः ॥

दो० । गे मुनि सब प्रह्लाद ढिग विष्णु जानिबे काज । सोइ प्रथम अध्याय में चरित अहै सुखसाज ॥ श्रीशौनकजी बोले कि हे सूतजी ! बहुत पाखंडों से व्याप्त इस कलि नामक भयंकर युग में हमलोग किस प्रकार मधुसूदन विष्णुजी को पावैंगे ॥ १ ॥ और सदैव धर्म के आचार में परायण तीनों युगों के भी बीतने पर व भयंकर कलियुग प्राप्तहोने पर विष्णुभगवान् कहां हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि दशरथ के पुत्र महाराज श्रीरामचन्द्रजी जब स्वर्ग को चलेगये तब दुष्टराजाओं के भार से पृथ्वी पीड़ित हुई ॥ ३ ॥ और देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये पृथ्वी के भार को उतारने के कारण वसुदेव के वंश में साक्षात् जनार्दन कृष्णजी प्रकट

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीशौनक उवाच ॥ कथंसूतयुगेह्यस्मिन्रौद्रेवैकलिसंज्ञके ॥ बहुपाखण्डसङ्कीर्णे प्राप्स्यामोम धुसूदनम् ॥ १ ॥ युगत्रयेप्यतिक्रान्ते धर्माचारपरेसदा ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे क्वविष्णुर्भगवानिति ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ दिवंयातेमहाराजे रामेदशरथात्मजे ॥ दुष्टराजन्यभारेण पीडितेधरणीतले ॥ ३ ॥ देवानांकार्यसिद्ध्यर्थं भुवोभाराव तारणात् ॥ वसुदेवकुलेसाक्षादाविर्भूतोजनार्द्दनः ॥ ४ ॥ नन्दव्रजङ्गतेदेवे पूतनानाशितातदा ॥ ॥ घातितेचतृणावर्ते शकटेपरिवर्त्तिते ॥ ५ ॥ दमितेकालियेनागे प्रलम्बेचनिषूदिते ॥ धृतेगोवर्द्धनेशैले परित्रातेचगोकुले ॥ ६ ॥ सुरत्वेचा भिषिक्तेच इन्द्रेहिविमदेकृते ॥ रासक्रीडारतेदेवे दारितेकेशिदानवे ॥ ७ ॥ अक्रूरवचनादेव मधुपुर्यांगतेहरौ ॥ हतेकुवल

हुए ॥ ४ ॥ और नन्द के व्रज में श्रीकृष्णदेव के जाने पर उस समय पूतना नाशकीगई और तृणावर्त के मारने पर व शकट (गाड़ा) लौटने पर ॥ ५ ॥ कालिय नाग के दमन करने पर व प्रलंबासुर के मारने पर गोवर्धन पर्वत के धारण करने व गोकुल की रक्षा करने पर ॥ ६ ॥ देवत्व में अभिषेक करने पर व इन्द्र के मदविहीन करने पर जब श्रीकृष्णदेव रासकी क्रीडा में रत हुए व केशी दानव नाश कियागया ॥ ७ ॥ और अक्रूर के वचनही से जब श्रीकृष्णजी मथुरापुरी में गये व

कुवलयापीड हाथी मारागया व मल्लराज (चाणूर) नाश कियागया ॥ ८ ॥ तब दैत्यों का राजा भोजराज कंस मारागया और मथुरापुरी में उग्रसेन राजा का अभिषेक कियागया ॥ ९ ॥ और जरासंध की असंख्य भयंकर सेना के नष्ट होनेपर पृथ्वी में उत्तम राजसूय यज्ञ में शिशुपाल के मारे जाने पर ॥ १० ॥ जब महाभारत युद्ध निवृत्त हुआ व पृथ्वी में भार नष्ट हुआ तब यात्रा में यादववंश प्रभास को लायागया ॥ ११ ॥ और मद्यपान में लगे हुए व परस्पर वध के लिये तैयार यादववंश जब महाभयंकर कलह (झगड़ा) रूपी अस्त्र में जलगया ॥ १२ ॥ तब वहीं अस्त्र को धर कर जनार्दन श्रीकृष्णजी पृथ्वी में गये और पीपल की जड़ के आश्रित

यापीडे मल्लराजेचघातिते ॥ ८ ॥ कंसेराजनिदैत्यानां भोजराजेनिपातिते ॥ मधुपुर्य्यांचाभिषिक्ते ह्युग्रसेनेनराधिपे ॥९॥ जरासन्धेबलेरौद्रे त्वसंख्यातेहतेक्षितौ ॥ राजसूयेक्रतुवरे चैद्येचविनिपातिते ॥ १० ॥ निवृत्तेभारतेयुद्धे भारेचक्षयितेभुवि ॥ यात्रायान्तुसमानीते प्रभासंयादवेकुले ॥ ११ ॥ मद्यपानमसक्तेतु परस्परवधोद्यते ॥ कलहास्त्रेमहारौद्रे प्रदग्धे यादवेकुले ॥ १२ ॥ अस्त्रंसंन्यस्यतत्रैव गतेतुपृथिवीतले ॥ अश्वत्थमूलमाश्रित्य समासीनेजनार्द्दने ॥ १३ ॥ व्याधप्रहारभिन्नाङ्घ्रिपरित्यक्तकलेवरे ॥ स्वधाम्निसंस्थितेदेवे पार्थेचपुनरागते ॥ १४ ॥ प्लावितायांयदोःपुर्य्यां सागरेणसमन्ततः ॥ शक्रप्रस्थंगतेवज्रे कारयित्वाहरेर्गृहम् ॥ १५ ॥ द्वापरेचव्यतिक्रान्ते धर्माधर्मविमिश्रिते ॥ सम्प्राप्तेचमहारौद्रे युगेवैकलिसंज्ञके ॥ १६ ॥ क्षीयमाणेचसद्धर्मे वेदवादवहिःकृते ॥ एकपादस्थितेधर्मे वर्णाश्रमविवर्जिते ॥ १७ ॥ तस्मिन्युगेविलुलिते ऋषयोवनचारिणः ॥ सङ्गत्यामन्त्रयन्सर्वे गर्गच्यवनगालवाः ॥ १८ ॥ असितोदेवलोधौम्यो मुनिरुद्दा

होकर बैठगये ॥ १३ ॥ और बहेलिया के मारने से भिन्न चरण के कारण शरीर छोड़ने पर व श्रीकृष्णदेव के अपने धाम में स्थित होने व फिर अर्जुनजी के आने पर ॥ १४ ॥ जब समुद्र ने सब ओर से यदुपुरी को डुबालिया और विष्णुजी के मन्दिर को बनाकर वज्र दिल्ली को चलेगये ॥ १५ ॥ तब धर्म व अधर्म से मिले हुए द्वापर के बीतने पर व कलि नामक महाभयंकर युग के प्राप्त होने पर ॥ १६ ॥ उत्तम धर्म के क्षीणहोने व वेदवाद से बाहर करने पर वर्ण व आश्रमोंसे रहित धर्म के एकचरण से स्थित होनेपर ॥ १७ ॥ व उस युगके विलुलित होने पर वनमें घूमनेवाले सब ऋषिलोगों ने मिलकर सलाह किया याने गर्ग, च्यवन, गालव ॥ १८ ॥ असित, देवल, धौम्य व

उद्दालक मुनि इन और अन्य मुनियों ने परस्पर कहा ॥ १९ ॥ कि अहो आश्चर्य है कलियुग से व्याप्त दिगन्तरोंवाली उस पृथ्वी को देखिये कि सब ओर से दौड़ते हुए चोरों से प्रजा पीडित कीजाती है ॥ २० ॥ जो पुरुष कि अधर्म में तत्पर व सत्य और कोमलता से विहीन कियेगये हैं हे मुनिश्रेष्ठो ! भगवान् विष्णुजी को हम लोग कैसे पावेंगे ॥ २१ ॥ और संसाररूपी समुद्र में गिरे हुए व समागम को प्राप्त हमलोगों को कौन उतारैगा और तीनों युगों में जो विष्णुजी थे उन की उत्पत्ति कलियुग में नहीं है ॥ २२ ॥ व उन कमललोचन विष्णुजी के विना हमलोग कैसे कलियुग में होवैंगे उन दुःखित तपस्वियों के इस प्रकार चिन्तन करने

लकस्तथा ॥ एतेचान्येचमुनयः परस्परमवोचत ॥ १९ ॥ अहोपश्यध्वमुर्वीतां कलिव्याप्तदिगन्तराम् ॥ समन्तात्परिधावद्भिर्दस्युभिर्बाध्यतेप्रजा ॥ २० ॥ अधर्मपरमैःपुम्भिः सत्यार्जवविनाकृतैः ॥ भगवन्तंकथंविष्णुं प्राप्स्यामोमुनिसत्तमाः ॥ २१ ॥ कोवाभवाब्धौपतितांस्तारयिष्यतिसङ्गतान् ॥ नकलौसम्भवस्तस्य त्रियुगेमधुसूदनः ॥ २२ ॥ तंविना पुण्डरीकाक्षं कथंस्यामकलौयुगे ॥ तेषांचिन्तयतामेवं दुःखितानांतपस्विनाम् ॥ २३ ॥ उवाचवचनंतेभ्य ऋषिरुद्दालकस्तथा ॥ उद्दालक उवाच ॥ यावन्नकलिदोषेण लिप्यामोमुनिसत्तमाः ॥ २४ ॥ अपापाब्रह्मसदनं तावद्द्रक्ष्याममाचिरम् ॥ पृच्छामलोकेधातारं स्थितिंविष्णोःकलौयुगे ॥ २५ ॥ यदिविष्णोःस्थितिर्नस्याद्ब्रह्मणोवचनेनहि ॥ विष्णुंविनातदाविप्रास्त्यक्ष्यामःस्वंकलेवरम् ॥ २६ ॥ विनाभगवतोलोके कःस्थास्यतिकलौयुगे ॥ तच्छ्रुत्वाऋषयस्तस्य वचनं संशितव्रताः ॥२७॥ साधुसाध्वितिचप्रोक्का प्रस्थिताब्रह्मणोन्तिकम् ॥ कथयन्तःकथांविष्णोः स्वरूपमनुवर्त्तनम् ॥२८॥

पर ॥२३॥ उन से उद्दालक ऋषि ने वचन कहा उद्दालकजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! जब तक हमलोग कलियुग के दोष से न लिप्त होवैं ॥ २४ ॥ तबतक पापरहित हमलोग शीघ्रही ब्रह्ममन्दिर को देखैं व कलियुग में विष्णुजी की संसार में स्थिति को ब्रह्माजी से पूछैं ॥ २५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ब्रह्माजी के वचन से यदि विष्णुजी की स्थिति न होगी तो विष्णुजी के विना हमलोग शरीर को छोड़ देवैंगे ॥ २६ ॥ क्योंकि कलियुग में भगवान् के विना संसार में कौन स्थित होगा उसके उस वचन को सुनकर प्रशंसित व्रतोंवाले ऋषिलोग ॥ २७ ॥ बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहकर ब्रह्मा के समीप प्राप्तहुए और विष्णुजी की कथा व स्वरूपके अनुवर्तन को कहते हुए ॥ २८ ॥

सब प्रसन्न महर्षिलोग ब्रह्मा के समीप गये व उस समय उन्हों ने उत्तम आसन पै बैठे हुए ब्रह्मादेवजी को देखा ॥ २९ ॥ तब मूर्तिमान् व बिन मूर्तिवाले भूतगणों से घिरे हुए चतुरानन ब्रह्मादेवजी को देखकर वे पृथ्वी में दंडा की नाईं प्रणाम करते भये ॥ ३० ॥ और देवदेव ब्रह्माजी को प्रणाम कर उस समय उन्होंने स्तोत्र से स्तुति किया ऋषिलोग बोले कि हे कमलोत्पन्न, चतुर्मुख, अक्षत, अव्यय! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ व सृष्टि को करनेवाले आप के लिये नमस्कार होवै व हे पितामहजी! आप के लिये नमस्कार होवै इस प्रकार मुनियों से स्तुति किये हुए ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ और पाद्य व अर्घ्य से पूजकर ब्रह्मा ने मुनि-

तपसाप्रययुस्सर्वे संहृष्टाब्रह्मणोन्तिकम् ॥ ददृशुस्तेतदादेवमासीनंपरमासने ॥ २९ ॥ पितामहंभूतगणैर्मूर्त्तामूर्त्तैर्वृतंतदा ॥ दृष्ट्वाचतुर्मुखंदेवं दण्डवत्प्रणताःक्षितौ ॥ ३० ॥ प्रणम्यदेवदेवन्तु स्तोत्रेणतुतुषुस्तदा ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नमस्तेपद्मसम्भूत चतुर्वक्त्राक्षताव्यय ॥ ३१ ॥ नमस्तेसृष्टिकर्त्रेस्तु पितामहनमोस्तुते ॥ एवंस्तुतःसमुनिभिः सुप्रीतःकमलोद्भवः ॥ ३२ ॥ पाद्येनार्घ्येणाभिनन्द्य पप्रच्छमुनिपुङ्गवान् ॥ किमागमनकृत्यंवो ब्रूततत्त्वेनपुत्रकाः ॥३३॥ कुशलंवोमहाभागाः पुत्रशिष्याग्निबन्धुषु ॥ ऋषय ऊचुः ॥ भगवत्प्रसादात्कुशलं सम्प्राप्तंतपसःफलम् ॥ ३४ ॥ यद्भवन्तम्प्रपश्यामः सर्वदेवगुरुम्प्रभो ॥ शृणुतत्कारणंसर्वं येनप्राप्तास्तवान्तिके ॥ ३५ ॥ युगत्रयेव्यतिक्रान्ते कृताद्येद्वापरान्तके ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे कविष्णुःपृथिवीतले ॥ ३६ ॥ यंदृष्ट्वापरमाम्मुक्तिं यास्यामोमुक्तबन्धनाः ॥ ३७ ॥

श्रेष्ठों से पूंछा कि हे पुत्रो! तुमलोगों के आने का क्या कार्य है उसको यथार्थ कहिये ॥ ३३ ॥ हे महाभागो! तुमलोगों के पुत्र, शिष्य व अग्नि और बन्धुवों में कुशल है ऋषिलोग बोले कि आप की प्रसन्नता से कुशल है और तपस्या का फल मिलगया ॥ ३४ ॥ जो कि हे प्रभो! सब देवताओं के गुरु आप को हमलोग देखते हैं उस सब कारण को सुनिये कि जिस से हमलोग तुम्हारे समीप प्राप्त हुए हैं ॥ ३५ ॥ कि सतयुग से लगाकर द्वापर के अन्त तक तीनों युगों के व्यतीत होने पर व भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर पृथ्वीतल में विष्णुजी कहां हैं ॥ ३६ ॥ कि जिन को देखकर बन्धन से छूटे हुए हमलोग उत्तम मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ ३७ ॥

ब्रह्माजी बोले कि तुमलोग विषाद को मत प्राप्त होवो मैं तुमलोगों के हित को उपदेश करूंगा ॥ ३८ ॥ उस कारण तुमलोग पाताल को जावो जहां कि दैत्यों में उत्तम प्रह्लादजी हैं वहां जाकर दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लादजी से पूंछो ॥ ३९ ॥ वे विष्णुजी के स्थान को जानैंगे और तुमलोगों से सब कहैंगे परमात्मा ब्रह्माजी के उस वचन को सुनकर ॥ ४० ॥ देवेश ब्रह्माजी को प्रणाम कर वे तपस्यारूपी धनवाले महर्षिलोग चले व दैत्यों में उत्तम प्रह्लादजी की स्तुति करते हुए प्रसन्नमनवाले वे गये ॥ ४१ ॥ कि वह दैत्यों का राजा प्रह्लाद धन्य है जो कि विष्णुजी को जानता है इस प्रकार चिन्तन करते हुए वे पृथ्वीतल में प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ और दैत्य के

ब्रह्मोवाच ॥ माविषादंव्रजध्वंहि उपदेक्ष्यामिवोहितम् ॥ ३८ ॥ ततोव्रजध्वम्पातालं यत्रास्तेदैत्यसत्तमः ॥ तंगत्वापरिपृच्छध्वं प्रह्लादंदैत्यसत्तमम् ॥ ३९ ॥ सज्ञास्यतिहरेःस्थानं युष्मान्सर्ववदिष्यति ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य ब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ ४० ॥ प्रणिपत्यचदेवेशं प्रस्थितास्तेतपोधनाः ॥ जग्मुःसंहृष्टमनसः स्तुवन्तोदैत्यसत्तमम् ॥ ४१ ॥ धन्यःसदैत्यराजोयं योजानातिजनार्द्दनम् ॥ इतिचिन्तयमानास्ते सम्प्राप्ताधरणीतलम् ॥ ४२ ॥ गत्वादैत्यस्यनगरं विविशुर्भुवनोत्तमम् ॥ दूरादेवसतान्दृष्ट्वा बलिर्वैरोचनिस्तथा ॥ ४३ ॥ प्रत्युत्थायार्हणांचक्रे प्रह्लादेनसमन्वितः ॥ मधुपर्कञ्चधेनुञ्च दत्त्वाचार्घन्तथैवच ॥ ४४ ॥ उवाचप्राञ्जलिर्भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ स्वागतंवोमहाभागाः सुप्रभारजनीमम ॥ ४५ ॥ यद्भवन्तोनुपश्यामि ब्रूतकिङ्करवाणिवः ॥ एवंहिदैत्यराजेन सत्कृताद्विजसत्तमाः ॥ ४६ ॥ ऊचुःसंहृष्टमनसो दानवेन्द्रसुतंतदा ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कार्यार्थिनस्तुसम्प्राप्ता प्रह्लादहरिवल्लभ ॥ ४७ ॥ तदस्माकंमहाबाहो त्राताभव

नगर को जाकर उत्तम मन्दिर में पैठे व विरोचन के पुत्र उस बलि ने उन ऋषियों को दूरही से देखकर ॥ ४३ ॥ प्रह्लाद समेत आगे उठकर पूजन किया और मधुपर्क, गऊ व अर्घ को देकर ॥ ४४ ॥ हाथों को जोड़कर प्रसन्न चित्त से कहा कि हे महाभागो ! आपलोगों का आना अच्छा हुआ मेरी रात्रि उत्तम प्रभातवाली थी ॥ ४५ ॥ जो कि मैं आपलोगों को देखता हूं कहिये कि मैं तुमलोगों का क्या कार्य करूं इस प्रकार दैत्योंके राजा से सत्कार कियेहुए द्विजोत्तमलोग ॥ ४६ ॥ उससमय प्रसन्नमन होकर दानवेन्द्र के पुत्र प्रह्लादजी से बोले ऋषिलोग बोले कि हे हरिप्रिय, प्रह्लादजी ! कार्य को चाहनेवाले हमलोग प्राप्त हुए हैं ॥ ४७ ॥ इसलिये हे महाबाहो ! संसार-

रूपी समुद्र से हमलोगों के रक्षक होवो हे दैत्य ! इस कलिसंज्ञक भयंकर युग में किस प्रकार ॥ ४८ ॥ हमलोग डरे हुए प्राणियों को अभय देनेवाले विष्णुजी के विना होवैंगे इस युग में अधर्म से सनातन धर्म जीत लियागया ॥ ४९ ॥ व झूंठ से सत्य जीतागया और शूद्रों से ब्राह्मण जीतेगये और राजारूपी म्लेच्छों से ब्राह्मण मारे जाते हैं ॥ ५० ॥ वर्णों व आश्रमों से रहित प्रायः इस युग के विचलित होनेपर व वेदमार्ग के लुप्त होनेपर विष्णुभगवान् कहां हैं ॥ ५१ ॥ विना ज्ञान, विना ध्यान व विना इन्द्रियों के रोंकने से भगवान् जहां प्राप्त हुए हों उस गुप्त स्थान को हमलोगों से कहिये ॥ ५२ ॥ हे दैत्यराज ! तुम हमलोगों के मित्रमार्ग को दि-

भवार्णवात् ॥ कथंदैत्ययुगेह्यस्मिन्रौद्रेवैकलिसंज्ञके ॥ ४८ ॥ भविष्यामोविनाविष्णुं भीतानामभयप्रदम् ॥ ह्यस्मिन् युगेह्यधर्मेण जितोधर्मःसनातनः ॥ ४९ ॥ अनृतेनजितंसत्यं विप्राश्चवृषलैर्जिताः ॥ ब्राह्मणाश्चापिवध्यन्ते म्लेच्छैराजन्यरूपिभिः ॥ ५० ॥ अस्मिन्विलुलितप्राये वर्णाश्रमविवर्जिते ॥ वेदमार्गेप्रलुप्तेच कविष्णुर्भगवानिति ॥ ५१ ॥ विनाज्ञानाद्विनाध्यानाद्विनाचेन्द्रियनिग्रहात् ॥ सम्प्राप्तोभगवान्यत्र तद्गुह्यंकथयस्वनः ॥ ५२ ॥ दैत्यराजत्वमस्माकं सुहृन्मार्गप्रदर्शकः ॥ कथयस्वमहाभाग यत्रातिष्ठतिकेशवः ॥ ५३ ॥ एवंसर्वैर्द्विजैर्मुख्यैः सम्पृष्टोदैत्यसत्तमः ॥ प्रणम्यब्राह्मणान्सर्वान् भक्त्यासंहृष्टमानसः ॥ ५४ ॥ नमस्कृत्यसदेवेभ्यो ब्रह्मणेपरमात्मने ॥ भगवद्भक्तिसंयुक्तो व्याहर्त्तुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ सर्वेषामपि देवानां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ भवन्तो वै पूज्यतमा देवानां च तथैव

खानेवाले हो हे महाभाग ! जहां विष्णुजी स्थित होवैं उसको कहिये ॥ ५३ ॥ इस प्रकार मुख्य ब्राह्मणों से भलीभांति पूंछे हुए वे दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लादजी सब ब्राह्मणों को भक्ति से प्रणाम कर प्रसन्नमन हुए ॥ ५४ ॥ और विष्णु की भक्ति से संयुत उन प्रह्लादजी ने देवताओं के लिये व परमात्मा ब्रह्मा के लिये प्रणाम कर कहने का प्रारंभ किया ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । दुर्वासा मुनिनाथ जिमि शाप रुक्मिणिहिं दीन । सो दूजे अध्याय में वर्णित चरित नवीन ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि सब देवताओं व दैत्य, दानव और राक्षसों

के आपलोग श्रेष्ठ पूजने योग्य हो वैसेही देवताओं के भी हो ॥ १ ॥ मैं पूजनीय आपलोगों की आज्ञा से व विष्णुजी की प्रसन्नता से भगवान् विष्णुजी के स्थान को कहता हूं सुनिये ॥ २ ॥ कि पश्चिम समुद्र के किनारे आश्रित होकर कुशस्थली स्थित है जो कि पहले कुश से बनाई गई है ॥ ३ ॥ जहा पर समुद्र से संगम को प्राप्त गोमती जी बहती हैं हे ब्राह्मणो ! वह द्वारावती व आनर्त ऐसी कही जाती है ॥ ४ ॥ उस में भुक्ति व मुक्ति को देनेवाले विश्वात्मा विष्णुजी बसते हैं जो कि सोलह कलाओं से संयुत व बारह मूर्तियों से युक्त हैं ॥ ५ ॥ वही उत्तम धाम है और वही उत्तम स्थान है और वह द्वारका धन्य है जहां कि मधुसूदन विष्णुजी

च ॥ १ ॥ अनुज्ञयातुपूज्यानां प्रसादात्केशवस्यहि ॥ अवस्थानंभगवतः कथयामिनिबोधत ॥ २ ॥ पश्चिमस्यसमुद्रस्य तीरमाश्रित्यातिष्ठति ॥ कुशस्थलीतुयापूर्वं कुशेननिर्मितापुरी ॥ ३ ॥ वहतेगोमतीयत्र सागरेणचसङ्गता ॥ द्वारावतीतुसा विप्रा आनर्तेतिप्रकीर्त्यते ॥ ४ ॥ तस्यांवसतिविश्वात्मा भुक्तिमुक्तिप्रदोहरिः ॥ कलाषोडशसंयुक्तो मूर्त्तिद्वादशभि र्युतः ॥ ५ ॥ तदेवपरमंधाम तदेवपरमम्पदम् ॥ द्वारकासाचवैधन्या यत्रास्तेमधुसूदनः ॥ ६ ॥ यत्रकृष्णश्चतुर्बाहुः शङ्खच क्रगदाधरः ॥ नरामुक्तिप्रयास्यन्तियत्रगत्वाकलौयुगे ॥७॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य प्रह्लादस्यमहात्मनः ॥ विस्मयाविष्टमन सस्तप्रूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ ८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ क्षयंयदुकुलेयाते भारेचापिहृतेभुवि ॥ प्रभासेयादवश्रेष्ठः स्वस्थानमगम द्धरिः ॥ ९ ॥ द्वारावत्यांप्लावितायां समन्तात्सागरेणहि ॥ कथंसभगवांस्तत्र कलौदैत्यप्रकीर्तितः ॥ १० ॥ कथंयातःस

हैं ॥ ६ ॥ व जहा पर शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले चतुर्भुज कृष्णजी हैं और जहा जाकर कलियुग में मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ ७ ॥ उन महात्मा प्रह्लाद के उस वचन को सुनकर विस्मय से संयुक्त चित्तवाले द्विजोत्तमों ने उन प्रह्लादजी से कहा ॥ ८ ॥ ऋषि लोग बोले कि प्रभास में यदुवंश के नाश होने पर व पृथ्वी में भार के भी हरजाने पर विष्णु जी अपने स्थान को चले गये ॥ ९ ॥ और जब सब ओर से समुद्र ने द्वारकापुरी को डुबालिया तब हे दैत्य ! वे विष्णु भगवान् वहा कैसे कलियुग में कहे गये हैं ॥ १० ॥ कैसे इस यदुवंश को समाप्तकर गये हैं और कैसे विष्णुजी पृथ्वी में प्राप्त हुए आनर्त देश में स्थित विष्णुजी के इस चरित्र

को विस्तार से कहो ॥ ११ ॥ प्रह्लादजी बोले कि जब उग्रसेन राजा पृथ्वी का राज्य करने लगा तब इस यदुपुरी में सब ओर से श्रीकृष्णजी शोभित हुए ॥ १२ ॥ और रामाभिरमण रमानाथ विष्णुजी के रमण करने पर एक समय सभा में यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी के बैठने पर ॥ १३ ॥ कीजाती हुई अनेक विचित्र कथाओं से उद्धवजी ने यात्रा में प्राप्त अत्रिजी के पुत्र पापरहित व श्रेष्ठ दुर्वासाजी को कहा उस वचनको सुनकर अचानकही उठकर भगवान् श्रीकृष्णजी रुक्मिणीके घर को ॥१४।१५॥ प्रसन्नमन से गये व विश्वशक्ति से पूजित श्रीकृष्णजी ने आकर प्राप्त हुए ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासाजी को रुक्मिणी जी से कहा ॥ १६ ॥ कि जिसलिये नष्टपापात्मा

माप्यैतत्कथंविष्णुर्महीतले ॥ स्थितस्यानर्तविषये चैतद्विस्तरतोवद ॥ ११ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ उग्रसेनेनरपतौ प्रशासतिवसुन्धराम् ॥ कृष्णेयदुपुरीमेतां शोभमानेसमन्ततः ॥ १२ ॥ रममाणेरमानाथे रामाभिरमणेहरौ ॥ एकदातुसमासीने सभायांयदुसत्तमे ॥ १३ ॥ कथाभिःक्रियमाणाभिर्विचित्राभिरनेकधा ॥ उद्धवःकथयामास प्रवरञ्चात्रिनन्दनम् ॥ १४ ॥ यात्रायामनुसम्प्राप्तं दुर्वाससमकिल्बिषम् ॥ तच्छ्रुत्वासहसोत्थाय भगवान्रुक्मिणीगृहम् ॥ १५ ॥ जगामहृष्टमनसा विश्वशक्तिपुरस्कृतः ॥ आगत्योवाचवैदर्भीं सम्प्राप्तंऋषिसत्तमम् ॥ १६ ॥ यतोनिर्धूतपापात्मा सोऽत्रिपुत्रोमहायशाः ॥ आतिथ्येनार्चितोविप्रः सदास्यतिमहोदयम् ॥ १७ ॥ गृहिणीनगृहेयस्य सत्पात्रगमनम्भवेत् ॥ तस्यदेवानगृह्णन्ति पितरश्चोदकंतथा ॥ १८ ॥ तदागच्छस्वगच्छामो निमन्त्रयत्वमत्रिजम् ॥ तथेत्युक्त्वाचसादेवी रथमारुरुहेसती ॥ १९ ॥ रथमारुह्यदेवेशो रुक्मिण्यासहितोहरिः ॥ जगामतत्रयत्रास्ते दुर्वासामुनिसत्तमः ॥ २० ॥ दृष्ट्वा

वाले वे अत्रि के पुत्र बड़े यशस्वी दुर्वासाजी हैं उस कारण आतिथ्य से पूजे हुए वे दुर्वासा ब्राह्मण बड़े ऐश्वर्य को देवैंगे ॥ १७ ॥ जिसके घर में स्त्री न होवै और उत्तम पात्र का गमन होवै तो उसके जल को देवता व पितर नहीं ग्रहण करते हैं॥ १८॥ इसलिये आइये चलैं तुम अत्रि के पुत्र दुर्वासाजी को निमंत्रण करो बहुत अच्छा यह कहकर वे पतिव्रता रुक्मिणी देवीजी रथ पै चढ़ीं ॥ १९ ॥ और रथ पै चढ़कर देवेश श्रीकृष्णजी रुक्मिणी समेत वहां गये जहां कि दुर्वासा मुनिश्रेष्ठजी थे ॥ २० ॥

कापालिन के आगे करवीरक्षेत्र में भली भांति नहाये व तपस्या से जलते हुए दुर्वासाजी को समुद्र के किनारे देखकर ॥ २१ ॥ व भक्ति से प्रणाम कर भगवान् श्रीकृष्णजी ने कुशल पूंछा पश्चात् विदर्भ की कन्या रुक्मिणीजी ने भी प्रणाम किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर दर्शन के लिये प्राप्त उन रुक्मिणी व श्रीकृष्णजी को देख कर दुर्वासाजी ने उन दोनों को स्वागत से पूजकर वहां कुशल पूंछा ॥ २३ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे कृष्णजी ! सबकहीं कुशल है और इस समय तुम्हारा कहां निवास है व स्त्रियां और धन कितने हैं इसको विस्तार से कहिये ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! समुद्र ने मुझ को बारह योजन पृथ्वी दिया है

ज्वलन्तंतपसा कूलेनदनदीपतेः ॥ कापालिनस्यपुरतः सुस्नातंकरवीरके ॥ २१ ॥ प्रणम्यभगवान्भक्त्या पप्रच्छा नामयंतथा ॥ पश्चाद्विदर्भतनया रुक्मिण्यपिप्रणामकृत् ॥ २२ ॥ दुर्वासाश्चततोदृष्ट्वा दर्शनार्थमुपस्थितौ ॥ पप्रच्छकुशलंतत्र स्वागतेनाभिनन्द्यतौ ॥ २३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ कुशलंकृष्णसर्वत्र कुत्रवासस्तवाधुना ॥ कतिदाराधनान्येव मेतद्विस्तरतोवद ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ समुद्रेणप्रदत्तामे भूमिर्द्वादशयोजना ॥ तस्यांनिवेसिताब्रह्मन् पुरीहैममयीमया ॥ २५ ॥ प्रासादास्तत्रसौवर्णा नवलक्षाणिसंख्यया ॥ तस्यांवसामिसंहृष्टस्त्वत्प्रसादात्सुनिर्भयः ॥ २६ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य विस्मयाविष्टमानसः ॥ प्रत्युवाचसदुर्वासाः प्रहस्यमधुसूदनम् ॥ २७ ॥ वसन्तितावकायेच तेषांसंख्यां वदस्वमे ॥ यावत्यश्चमहिष्यःस्युः पुत्राःपरिजनास्तथा ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ब्रह्मन्षोडशसाहस्रं भार्याचाष्टाधिकाममम ॥ तासांमध्येश्रेष्ठतमा विदर्भाधिपतेःसुता ॥ २९ ॥ एकैकस्यांदशसुताः कन्याचैकाममप्रजा ॥ षट्पञ्चा

उसमें मैंने सुवर्णमयी पुरी को बनाया है ॥ २५ ॥ उसमें गिनती से नव लाख सोने के मन्दिर हैं उसमें तुम्हारी प्रसन्नता से निडर होकर प्रसन्न होता हुआ मैं बसता हूं ॥ २६ ॥ उन विष्णुजी के उस वचन को सुनकर विस्मययुक्त चित्तवाले उन दुर्वासाजी ने हँसकर विष्णुजी से कहा ॥ २७ ॥ कि जो तुम्हारे वंशवाले बसते हैं उन की संख्या को मुझ से कहो और जितनी स्त्रियां व पुत्र तथा परिजन होवैं उन को कहिये ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! आठ अधिक सोलह हज़ार मेरे स्त्रियां हैं उन के मध्य में अधिक श्रेष्ठ विदर्भाधीश की कन्या रुक्मिणीजी हैं ॥ २९ ॥ और एक एक स्त्री में दश दश पुत्र और एक कन्या मेरे सन्तान हैं और

छप्पन करोड़ मेरे परिवार के लोग हैं ॥ ३० ॥ और जो शेष प्रजा हैं उन की संख्या नहीं है उस वचन को सुनकर चिन्तन किया कि यह क्या है और विस्मित हुए कि ॥ ३१ ॥ आश्चर्य है समुद्र के आश्रित होकर टिकते हुए अनंत पराक्रमवाले विष्णुजी की अनंत सृष्टि के करने में इस प्रवृत्ति को देखिये ॥ ३२ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे महाबाहो ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ कहिये मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं तुम्हारे दर्शन से मेरा मन अधिक प्रसन्न है ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि यदि आप प्रसन्न हो तो मेरे घरको चलिये तुम्हारे चरणकमल को मस्तक से धारण कर तदनन्तर पवित्रता को प्राप्त होऊं ॥ ३४ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे माधव !

शच्चसंख्याकाः कोट्यःपरिजनाममम ॥ ३० ॥ शेषाःप्रकृतयोब्रह्मंस्तेषांसंख्यानविद्यते ॥ तच्छ्रुत्वाचिन्तयामास किमेतदितिविस्मितः ॥ ३१ ॥ अहोऽनन्तवीर्यस्य ह्यब्धिमाश्रित्यतिष्ठतः ॥ अनन्तसर्जकर्तृत्वे प्रवृत्तिर्दृश्यतामियम् ॥ ३२ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ स्वागतन्तेमहाबाहो ब्रूहिकिङ्करवाणिते ॥ दर्शनेनत्वदीयेन प्रहृष्टम्मेमनोधिकम् ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ यदिप्रसन्नोभगवांस्तदागच्छतुमेगृहे ॥ शिरसाधार्यपादाब्जं ततोयामिपवित्रताम् ॥ ३४ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ अक्षमासारसर्वस्वं किंमांनयसिमाधव ॥ नयमांयदिमद्वाक्यं करोषिसहभार्यया ॥ ३५ ॥ एवमस्त्वितिचोक्त्वातम्प्रस्थितःस्वरथेनहि ॥ तंदृष्ट्वाप्रस्थितंकृष्णं प्रहस्योवाचरोषतः ॥ ३६ ॥ यदिमांनेतुकामोसि सभार्यस्त्वंरथंवह ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ यथायथादिशसिमां विप्रकर्त्तास्मितत्तथा ॥ त्वयाकृपालुनाब्रह्मन् पवित्रोहंसबान्धवः ॥ ३७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तदाचऋषिवर्योसौ युक्त्वादेवींस्वकेरथे ॥ तथैवपुण्डरीकाक्षं याहियाहीत्यभाषत ॥ ३८ ॥ तंदृष्ट्वादेवताः

अक्षमासार व सर्वस्ववाले मुझ को क्यों लिये जाते हो और यदि स्त्री समेत मेरे वचन को करिये तो मुझ को ले चलिये ॥ ३५ ॥ ऐसाही होवैगा यह उन से कह कर श्रीकृष्णजी अपने रथ के द्वारा चले और चले हुए उन श्रीकृष्णजीको देखकर दुर्वासाजी हँसकर क्रोध से बोले ॥ ३६ ॥ कि यदि तुम मुझको ले जाना चाहते हो तो समेत तुम रथ को ले चलो श्रीकृष्णजी बोले कि हे विप्रजी ! मुझ को जैसी जैसी आज्ञा दोगे उस को वैसाही करूंगा हे ब्रह्मन् ! तुम दयालु से बांधवों समेत मैं पवि-होगया ॥ ३७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि उससमय ऋषियों में श्रेष्ठ इन दुर्वासाजी ने रुक्मिणी देवी व पुण्डरीकाक्षको अपने रथमें लगाकर चलिये चलिये ऐसा कहा ॥ ३८ ॥

रथ को लिये जाते हुए उन श्रीकृष्णजी को देखकर बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहते हुए सब देवताओं ने परस्पर कहा ॥ ३९ ॥ कि अहो ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णदेवजी की उत्तम भक्ति को देखिये जो कि स्त्री समेत रथ को कन्धे पै करके लिये जाते हैं ॥ ४० ॥ सुरगणों से फूलों करके वृष्टि किये हुए स्त्री समेत श्रीकृष्णजी रथ को लेकर द्वारका को ले चले ॥ ४१ ॥ और उस रथ के लेचलने पर रुक्मिणी जी प्यासी हुई और परिश्रम से विकल लोचनोंवाली रुक्मिणीजी ने कृष्णजी से कहा ॥ ४२ ॥ कि क्रोधित ब्राह्मण को ले चलती हुई मैं भार से दुःखित होकर थक गई हूं हे कांत ! जल को पिलाकर मुझे अपने मन्दिर को ले चलिये ॥ ४३ ॥ उसके उस वचन

सर्वे वहमानंहरिंरथे ॥ साधुसाध्विति भाषन्त ऊचुःसर्वेपरस्परम् ॥ ३९ ॥ अहोब्रह्मण्यदेवस्य परांभक्तिंप्रपश्यत ॥ स्कन्धेकृत्वातुयोयानं वहतेसहभार्यया ॥ ४० ॥ विकीर्यमाणःकुसुमैः सुरसङ्घैर्जनार्दनः ॥ जगामरथमारुह्य सभार्यो द्वारकाम्प्रति ॥ ४१ ॥ उह्यमानेरथेतस्मिन्रुक्मिणीतृषिताभवत् ॥ उवाचकृष्णंवैदर्भी श्रमव्याकुललोचना ॥ ४२ ॥ श्रान्ताभारपरिक्लिष्टा वहन्तीकोपितंद्विजम् ॥ पाययित्वोदकंकान्त नयमांमन्दिरंस्वकम् ॥४३॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्याः पदाक्रान्त्याधरातले ॥ तस्मिंस्तामानयामास गङ्गांत्रिपथगांशुभाम् ॥ ४४ ॥ तदृष्ट्वानिर्मलंशीतं सुगन्धंपावनंजलम् ॥ पपौपिपासितादेवी रुक्मिणीजाह्नवीजलम् ॥ ४५ ॥ पीतंतथाजलंदृष्ट्वा चुकोपऋषिसत्तमः ॥ प्रज्वलज्ज्वलनप्रख्यः शशापपरमेश्वरीम् ॥ ४६ ॥ मामपृष्ट्वाजलंयस्माद्भूमिपृष्ठेजलंत्वया ॥ पीतंतस्माच्चकृष्णेन वियुक्तात्वंभविष्यसि ॥ ४७ ॥ एतावदुक्त्वावचनं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ परित्यज्यरथंविप्रो भूमावेवाध्यतिष्ठत ॥ ४८ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥

को सुनकर चरण के आक्रमण से उस पृथ्वी में त्रिपथगामिनी उत्तम गंगाजी को प्राप्त किया ॥ ४४ ॥ उस निर्मल, शीत, सुगन्धित व पवित्रकारक जल को देखकर प्यासी रुक्मिणी देवी ने गंगाजल को पिया ॥ ४५ ॥ और वैसे पिये हुए जल को देखकर ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासाजी ने क्रोध किया और जलती हुई अग्नि के समान दुर्वासाजी ने परमेश्वरी रुक्मिणी को शाप दिया ॥ ४६ ॥ कि जिस लिये मुझ से न पूंछकर तुम ने पृथ्वी में जल पिया है उस कारण तुम कृष्ण जी से वियोगिनी होगी ॥ ४७ ॥ इतना वचन कहकर क्रोध से लाल लोचनोंवाले दुर्वासा ब्राह्मण रथ को छोड़कर पृथ्वी में स्थित हुए ॥ ४८ ॥ प्रह्लादजी बोले कि

उस समय इस प्रकार शापित व अत्यन्तही विकल रुक्मिणी देवी ने रोदन किया व करुणापूर्वक श्रीकृष्णजी से कहा कि तुम्हारे विना मैं कैसे जाऊंगी ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे देवि ! मैं प्रतिदिन दो समय तुम्हारे मन्दिर को आऊंगा और द्वार पै स्थित मुझ को जो देखता है वह तुम को देखता है ॥ ५० ॥ और मुझ को देखकर जो मनुष्य भक्ति से तुम को नहीं देखता है उस को आधी यात्राका फल होगा इस में सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर विलाप कर ब्रह्मण्य यदुनन्दन जी गये तदनन्तर उन्होंने पापरहित दुर्वासाजी को प्रसन्न कराया ॥ ५२ ॥ व उस समय बाहर उपवन को जाकर उन को पूजन किया और आपही चरणों को धोकर

एवंशप्तातदादेवी रुरोदातीवविह्वला ॥ उवाचकरुणंकृष्णं कथंयास्येत्वयाविना ॥ ४६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ आयास्ये प्रत्यहंदेवि द्विकालंभवनंतव ॥ योमांपश्यतिद्वारस्थं सत्वामेवप्रपश्यति ॥ ५० ॥ माञ्चदृष्ट्वानरोयस्तु त्वान्नपश्यति भक्तितः ॥ अर्द्धयात्राफलंतस्य भविष्यतिनसंशयः ॥ ५१ ॥ विलप्यप्रययौचाथ ब्रह्मण्योयदुनन्दनः ॥ ततःप्रसादयामासदुर्वाससमकल्मषम् ॥ ५२ ॥ बाह्योपवनमासाद्य पूजयामासतंतदा ॥ अवनिज्यस्वयंपादौ विप्रपादावनेजनम् ॥ ५३ ॥ शिरसाधारयामास जगतःपावनोहरिः ॥ दत्त्वार्घंगांचविप्राय मधुपर्कञ्चभक्तितः ॥ ५४ ॥ विधिवद्भोजयामास षड्रसेनद्विजोत्तमम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदुर्वासानयनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ अहोब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥ महिमायदयंनैव मृषाचक्रेमुनेर्वचः ॥ १ ॥ नैतच्चित्रमशे

ब्राह्मण के चरणावनेजन को ॥ ५३ ॥ संसार को पवित्र करनेवाले विष्णुजी ने मस्तक से धारण किया और ब्राह्मण के लिये अर्घ व गऊ को देकर और भक्ति से मधुपर्क को देकर ॥ ५४ ॥ विधिपूर्वक द्विजोत्तम दुर्वासाजी को छः रसवाले भोजन से जिंवाया ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां दुर्वासानयनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा समुद अरु नारद दिय रुक्मिणि समुझाय। सो तीजे अध्याय में कह्यो चरित सुखदाय ॥ ऋषिलोग बोले कि अमिततेजवाले ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णजी की महिमा को आश्चर्य है जो कि इन कृष्णजी ने मुनि के वचन को झूंठ नहीं किया ॥ १ ॥ सबों की मर्यादा के पालनेवाले विष्णुजी में यह आश्चर्य नहीं है

क्योंकि उन्होंने भृगु के चरण की चोट को हृदय में चिह्न धारण किया है ॥ २ ॥ व हे असुरेश्वर ! उन्होंने शाप से उन रुक्मिणी देवी को कैसे अलग किया है जो कि अकेले वहा स्थित हुई इस को कहिये ॥ ३ ॥ हम लोग प्रसन्नता से द्वारकापुरीको सुनने के लिये उत्कंठित हैं और चित्त के खेद को दूर करने के लिये पहले इस को जानना चाहते हैं ॥ ४ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे सब ऋषियो ! विस्तार से कहते हुए मुझ से तुमलोग सुनो कि जिस प्रकार हरिप्रिया रुक्मिणीजी ने शाप से उपजे हुए दुःख को छोड़ा है ॥ ५ ॥ उस समय इस प्रकार यकायक दुर्वासा के शाप को पाकर यादवेन्द्र की स्त्री उन रुक्मिणीजी ने बहुत विलाप किया ॥ ६ ॥

षाणां सेतुपालेजनार्दने ॥ भृगोर्यच्चरणाघातं दधारहृदिलाञ्छनम् ॥ २ ॥ सातुदेवीकथंतेन शापेनविप्रयोजिता ॥ एकाकिनीस्थितातत्र कथ्यतामसुरेश्वर ॥ ३ ॥ उत्कण्ठिताइतिवयं श्रोतुंद्वारावतीम्मुदा ॥ इदमादौबुभुत्सामश्चित्तखेदापनुत्तये ॥ ४ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ श्रूयतामृषयःसर्वे वदतोममविस्तरात् ॥ यथाशापोद्भवंदुःखं मुमोचहरिवल्लभा ॥ ५ ॥ इति दुर्वाससःशापमवाप्यसहसातदा ॥ यादवेन्द्रस्यगृहिणी वहुसापर्यदेवयत् ॥ ६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ कल्याणीतववाणीयं लौकिकीसंविभाव्यते ॥ कुम्भस्यान्धोश्चनिर्माणात्प्राप्यतेनाधिकंजलम् ॥ ७ ॥ यन्नामाऽभूरिभाग्याहं प्राप्यनाथं जगत्पतिम् ॥ इयमेकाकिनीजाता पौरस्त्याद्देवहेलनात् ॥ ८ ॥ क्वमङ्गलायनःश्रीमाननवद्यगुणोहरिः ॥ अल्पपुण्याशु चांधाम कुमतिःक्वचमादृशी ॥ ९ ॥ अपिसन्तापयामास धातावचनकोविदः ॥ विधायचाशुभायामे वियोगंविषमव्ययम् ॥ १० ॥ अन्यथावर्णगुरवःस्नातास्त्रैविद्यकर्मणि ॥ कथंमांशप्तुमर्हन्ति रथखिन्नामनागसम् ॥ ११ ॥ ध्रुवमेतदयो

रुक्मिणीजी बोलीं कि तुम्हारी यह कल्याणकारिणी वाणी लौकिकी जान पड़ती है और कूप के बनाने से घड़े को अधिक जल नहीं मिलता है ॥ ७ ॥ क्योंकि थोडे भाग्यवाली यह मैं जगदीश (कृष्ण) जी को स्वामी पाकर पहलेके देवहेलन से अकेली होगई ॥ ८ ॥ कहां मंगलों के स्थान व निर्दोष गुणवाले श्रीमान् श्रीकृष्णजी और कहां कुबुद्धिनी व थोड़े पुण्यवाली और शोकों का स्थान मेरे समान स्त्री ॥ ९ ॥ वचन में चतुर विधाता ने विषरूपी अविनाशी वियोग को करके मुझ अमंगला को संतप्त किया ॥ १० ॥ नहीं तो वेदत्रयी के कर्म में अभ्यस्त व वर्णों के गुरु मुनिलोग रथ से क्लेशित व अपराधरहित मुझ को कैसे शाप देने के योग्यहैं ॥ ११ ॥

ब्रह्मा ने आपही इस मेरे हृदय को निश्चय कर लोहमय बनाया है क्योंकि वह हृदय मधुसूदन विष्णुजी के वियोग में सौ खण्ड नहीं होजाता है ॥ १२ ॥ निश्चय कर यह बड़ा भारी कठिन है व खेद की बात है कि ये यमराज विलोम आचरणवाले हैं कि जिसने इस अशुभ को चाहा और वह मेरी अशुभ मृत्यु को करता है ॥ १३ ॥ बहुत कठिन तपस्या कर पहले महापुरुष विष्णुजी को पाकर मैं विना पति के कीगई अहो (खेद है) कि पांच दिनों में मैं मृत्युको न प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ इस बड़ी पीड़ा को पाकर मैं उस कारण लज्जा को प्राप्त हुई हूं जो कि मुनि से शापित यह शरीर शीघ्रही न नाश होगया ॥ १५ ॥ दुःख को नाश करनेवाला सुख

मयंविधिर्विदधेमेहृदयंस्वयंहितत् ॥ शतधानविदीर्यतेयतोविरहेदुर्विषहेमधुद्विषः ॥ १२ ॥ कठिनःखलुएषवैमहान्बत वामाचरितोयमन्तकः ॥ अभिवाञ्छितमित्यशोभनं मरणंमेविदधात्यशोभनम् ॥ १३ ॥ अधिकृत्यसुदुश्चरन्तपः प्रतिलभ्यप्रथमंमहाजनम् ॥ रमणेनविनाकृताप्यहोनमृतापञ्चसुवासरेष्वहम् ॥ १४ ॥ उपलभ्यसुदारुणांव्यथामथव्रीडाधिगतास्म्यहंततः ॥ यदिदंनिधनंगतंनवै मुनिनाशप्तकलेवरंद्रुतम् ॥ १५ ॥ परियातिहिदुःखहासुखं जगदीशोपिहियातिमित्रताम् ॥ निजवृत्तिजिघृक्षयायदिह्यधमर्णंधनिकोभिपालयेत् ॥ १६ ॥ इतिसाविलपन्त्यनारतं कुररीवाकुलितातपस्विनी ॥ व्यसनेनविदूषिताशया द्विजशापोपहतामुमूर्च्छहा ॥ १७ ॥ आधिनाधिष्ठिता साक्षाद्रुक्मिणीकृष्णवल्लभा ॥ मूर्च्छितामतदर्हांतामाजगामपयोनिधिः ॥ १८ ॥ सुधाशीकरगर्भेण करपङ्कजवायु

को प्राप्त होता है और जगदीश (विष्णु) भी मित्रता को प्राप्त होते हैं यदि धनी पुरुष अपनी वृत्ति के लेने की इच्छा से ऋण लेनेवाले मनुष्य को पालन करता है ॥ १६ ॥ इस प्रकार कुररी पक्षिणी की नाईं नित्य विलाप करती हुई तपस्विनी वे रुक्मिणी जी व्याकुल हुईं और व्यसन (विपत्ति) से दूषित आशयवाली व ब्राह्मण के शाप से ताडित रुक्मिणीजी मूर्च्छित हुईं ॥ १७ ॥ और श्रीकृष्ण की प्यारी साक्षात् रुक्मिणीजी मानसी व्यथा से संयुत हुईं और उसके न योग्य व मूर्च्छित उन रुक्मिणीजी के समीप समुद्र आया ॥ १८ ॥ और समुद्र ने अमृतबिन्दु गर्भवाले करकमल के पवन से पूर्व जन्म की कन्या उन रुक्मिणीजी को भली भांति

आश्वासन किया याने समझाया ॥ १९ ॥ इसी अवसर में वहा वामन शरीरवाले नारद मुनि वीणा को बजाते हुए आकाशमार्ग से आगये ॥ २० ॥ और समुद्र से समझाई जाती हुई उन जगदम्बिकाजी को देखकर कथा को सुनेहुए उन भक्तिमान् नारदजी ने उतरकर समझाया ॥ २१ ॥ कि हे देवदेवेशि, दयिते ! खेद मत करो व हे कल्याणि ! विप्र दुर्वासाजी के शाप से प्रिय पति के दूर करने पर धीरज करिये ॥ २२ ॥ साक्षात् भगवती देवी ने व पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये अपनी इच्छा से अवतार लिया है ॥ २३ ॥ ये श्रीकृष्ण देव जी परब्रह्म, विकाररहित व निरंजन हैं और माया शक्तिके आश्रित होकर सृष्टि, पालन व संहार का

ना ॥ तांसमाश्वासयामास सिन्धुःपूर्वभवात्मजाम् ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र व्योममार्गेणनारदः ॥ उपवीणन्नुपप्रागा त्रिविक्रमतनुर्मुनिः ॥ २० ॥ सदृष्ट्वासिन्धुनाश्वास्यमानांतांविश्वमातरम् ॥ अवतीर्य्यश्रुतकथो बोधयामासभक्तिमान् ॥ २१ ॥ माखिदोदेवदेवेशि दयितेदयितेपतौ ॥ दूरेकृतेविप्रशापात्कुरुकल्याणिधीरताम् ॥ २२ ॥ देवीभगवती साक्षात् कृष्णश्चपुरुषोत्तमः ॥ अवतीर्णौधराभारमपनेतुंयदृच्छया ॥ २३ ॥ देवोसौहिपरंब्रह्म निर्विकारोनिरञ्जनः ॥ मायाशक्तिंसमाश्रित्य सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥ २४ ॥ संहृत्यनिखिलंशेते यदासौकलयास्वराट् ॥ तदाभूतानिलीयन्ते देवदेवेजगत्पतौ ॥ २५ ॥ लीलावतारेष्वेतस्य त्वंसर्वेषुसहायिनी ॥ २६ ॥ सायोगमाययासृष्टिं करोत्येषत्वयासह ॥ विडम्बयतिभूतानामुपकारार्थमीश्वरः ॥ २७ ॥ आत्मनःकर्मणाशप्ता भूदेवैर्भूतिमीप्सुभिः ॥ शप्तुंयोग्याश्चनैवैते वन्द्यपूज्या हितपस्विनः ॥ २८ ॥ इत्येवंशिक्षयल्लोके वियोगन्तेकरोत्ययम् ॥ अनुशापादयंदेवि गूढःकपटमानुषः ॥ २९ ॥ अपि

कारण हैं ॥ २४ ॥ जब ये स्वराट् विष्णुजी सब को संहार कर सोते हैं तब प्राणी देवदेव जगदीशजी में लीन होजाते हैं ॥ २५ ॥ और तुम इनके सब लीलावतारों में सहायिनी होती हो ॥ २६ ॥ और वह परमेश्वर तुम्हारे मायासे सृष्टि करता है व प्राणियों के उपकार के लिये विडम्बना करता है ॥ २७ ॥ और ऐश्वर्य को चाहने वाले ब्राह्मणों से तुम अपने कर्म से शापित हुई हो और वे तपस्वी शाप देने के योग्य नहीं हैं क्योंकि वे प्रणाम व पूजन करने योग्य हैं ॥ २८ ॥ इसीप्रकार शिक्षा करता हुआ यह शापसे तुम्हारा वियोग करता है जो कि हे देवि ! गूढ़ व कपट से मानुष रूप है ॥ २९ ॥ हे कल्याणि ! क्या स्मरण करती हो कि

जिस प्रकार लोकों के अनुग्रह की इच्छा करते हुए रघुवंशधारी इन रामचन्द्रजीने तुमको विदेशको पठाया था ॥ ३० ॥ मनुष्यों के स्नेह के कारण यह मनुष्य तुमको प्राणों से भी प्यारी जानता है इस कारण कृष्ण देवजी ने वैसा किया ॥ ३१ ॥ हे सुव्रते ! जिस विश्वात्मा से बाहर व भीतर यह सब संसार पूरित है उससे वियोग कैसे सिद्ध होता है ॥ ३२ ॥ यदि संगरहित विभु परमेश्वर का अन्य प्राणियों से संग होवै तो तुम से भी वियोगी है यह विद्वान् विश्वास करता है ॥ ३३ ॥ इसलिये बहुतही मानसी व्याधि को छोड़ देवो और तुम अपना को स्मरण करो हे मातः ! प्रसन्न होवो और अपनी बुद्धिसे धीरज धरो ॥ ३४ ॥ देवर्षि नारदजी के

स्मरसिकल्याणि रघुवंशधरोयथा ॥ लोकानुग्रहमन्विच्छंस्त्वांविवासितवानयम् ॥ ३० ॥ अवैतितवलोकोयंजनानामनुरञ्जनात् ॥ प्राणेभ्योपिगरीयस्या इतिदेवस्तथाव्यधात् ॥ ३१ ॥ येनेदंपूरितंविश्वं बहिरन्तश्चसुव्रते ॥ विश्वात्मनावियोगस्तु कथन्तेनोपपद्यते ॥ ३२ ॥ असङ्गस्यविभोःसङ्गो यदिस्यादितरैःसह ॥ त्वयापिविप्रयुक्तोस्मि इतिप्रत्येतिकोविदः ॥ ३३ ॥ तद्विमुञ्चाधिमत्यर्थमात्मानंत्वमनुस्मर ॥ प्रसीदमातःसन्धेहि धीरतांस्वमनीषया ॥ ३४ ॥ इतिब्रुवतिदेवर्षौ वचनेतुनदीपतिः ॥ प्रोवाचतांचसारज्ञो गिरामृदुलवर्णया ॥ ३५ ॥ समुद्रउवाच॥ यदाह देविदेवर्षिरेवमेवनचान्यथा ॥ गीयसेत्वंहिवेदेषु नित्यंविष्णोःसहायिनी ॥ ३६ ॥ एकःपुमान्योनिरहंकृतश्च जगद्विधत्तेपिदधातिभूयः ॥ विश्वंव्यवस्थापयितुंस्वरोचिषात्वयासहायेनविभर्तिमूर्त्तिम् ॥ ३७ ॥ तदेवंपरिखेदस्ते नमनागपियुज्यते ॥ वक्षस्थलस्थाचयतो नित्यंश्रीवत्सलक्ष्मणः ॥ ३८ ॥ इयंभागीरथीदेवी महादेशादुपागता ॥ विनोदयि

ऐसा वचन कहते हुए सारांश को जाननेवाले समुद्र ने उनसे कोमल अक्षरोंवाली वाणी से कहा ॥ ३५ ॥ समुद्र बोला कि हे देवि ! देवर्षि नारदजी ने जो कहा है वह वैसाही है अन्यथा नहीं है क्योंकि वेदों में तुम सदैव विष्णुजी की सहायिनी गाई जाती हो ॥ ३६ ॥ जो अहंकाररहित एक पुरुष है वह संसार को रचता है व फिर संहार करता है और संसार को भली भांति स्थापन करने के लिये तुम्हारी सहायता से अपने प्रकाश से मूर्ति को धारण करता है॥ ३७ ॥ उस कारण तुम को कुछ भी खेद योग्य नहीं है क्योंकि श्रीवत्स चिह्नवाले विष्णुजी के तुम सदैव वक्षस्थल में स्थित रहती हो ॥ ३८ ॥ मेरी आज्ञा से ये गंगा देवीजी आई हैं और ये

शरीरधारिणी गंगादेवी सदैव तुमको विनोद करावैंगी ॥ ३९ ॥ व इन गंगाजी में प्रवाह से शोभित जल स्वादिष्ठ होगा और यह स्थान सब के नेत्रों का आनन्द-दायक होगा ॥ ४० ॥ और अनेक प्रकार के पक्षियों व लताओं से व्याप्त तथा कुंजों से शोभित व मत्त मयूरों से सेवित तथा भ्रमरों से सुन्दर कूजित ॥ ४१ ॥ व नवीन पत्तों से शोभित गुच्छोंवाले उत्तम पुष्पों व अमृत के समान फलों से और मंजरी की पांतियों से ॥ ४२ ॥ व नन्दन (इन्द्रवन) की लक्ष्मी से शोभित तथा मन व नेत्रों को आनंद देनेवाला बहुतही मनोहर व सुन्दर वन शीघ्रही होगा ॥ ४३ ॥ हे मातः ! तुमसे हमलोग सदैव समझाने योग्य हैं और अशेषरूपिणी विद्या तुम

ष्यत्यनिशं त्वांहिदेवीशरीरिणी ॥ ३९ ॥ एतस्यांस्यान्मृदुस्वादुपयःपूरोपशोभितम् ॥ प्रदेशोयमशेषस्य भविता नयनोत्सवः ॥ ४० ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं निकुञ्जैरुपशोभितम् ॥ मत्तबर्हिसमाजुष्टं मञ्जुगुञ्जन्मधुव्रतम् ॥ ४१ ॥ नवपल्लवराजद्भिःस्तबकैःकुसुमैःशुभैः ॥ फलैरमृतकल्पैश्च मञ्जरीराजिभिस्तथा ॥ ४२ ॥ नन्दनस्यश्रियाजुष्टं मनोनयननन्दनम् ॥ वनंरम्यतरंचारु अचिरेणभविष्यति ॥ ४३ ॥ त्वयासम्बोधनीयाःस्मो वयंमातःसदैवहि ॥ अशेषरूपा विद्यात्वमस्माभिर्बुध्यसेकथम् ॥ ४४ ॥ तदावामनुजानीहिप्रसीदपरमेश्वरि ॥ नमस्तेविश्वजननि भूयोपिचनमोनमः ॥ ४५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ एवमुक्त्वाजगद्धात्रीं जग्मतुस्तौयथातथम् ॥ आजगामाथतत्राशु देवीभागीरथीस्वयम् ॥ ४६ ॥ वनेसमभवत्तत्र दिव्यभूरुहभूषितम् ॥ दृश्यंसमस्तलोकानां फलपुष्पसमृद्धिमत् ॥ ४७ ॥ प्रवाहेणैवभूतानामशेषाघौघनाशिनी ॥ भूषयामासतंदेशं साचविष्णुपदीसरित् ॥ ४८ ॥ देवीचमुनिवाक्येन गङ्गायाश्चविनोद

हमलोगों से कैसे समझोगी ॥ ४४ ॥ इसलिये हे परमेश्वरि ! हम दोनों को आज्ञा दीजिये व प्रसन्न हूजिये हे जगन्मातः ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व बार २ प्रणाम है ॥ ४५ ॥ प्रह्लादजी बोले इस प्रकार जगत् को धारनेवाली रुक्मिणीजी से यथायोग्य कहकर वे चलेगये इसके अनन्तर वहां गंगा देवीजी आपही शीघ्र आगई ॥ ४६ ॥ और वहां दिव्य वृक्षों से शोभित वन होगया और फल व पुष्पकी समृद्धिवाला वह सबों के देखने योग्य हुआ ॥ ४७ ॥ और प्राणियों के सब पापसमूहों को नाशनेवाली उन विष्णुपदी गंगा नदी ने प्रवाहही से उस स्थान को भूषित किया ॥ ४८ ॥ और मुनि के वचन व गंगाजी की क्रीड़ा तथा उस स्थान की सुन्दरता से उन

रुक्मिणी देवी जी ने कुछ स्वस्थता को पाया॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर विष्णुपदी गंगा देवी को समुद्र में प्राप्त सुनकर इधर उधर घूमते हुए तपस्वी लोग आये॥ ५० ॥ व द्वारकावासी लोग वनकी शोभा से प्रसन्नचित्त होकर सदैव रुक्मिणीवनको आने लगे ॥ ५१ ॥ उस सब चरित्र को सुनकर शंभुजी की कला दुर्वासाजीने क्रोध किया और कोप करते हुए उन्होंने फिर यह कहा ॥ ५२ ॥ दुर्वासाजी बोले कि तीनों लोकों में मेरे वचन को अन्यथा करने के लिये कौन समर्थ है कि जिसको लोकों के पितामह व आद्य ब्रह्माजी नहीं करसके हैं ॥ ५३ ॥ क्या यह मनुष्य नहीं जानता है कि मेरे क्रोध से कषायित होनेपर उस समय इन्द्र त्रिभुवन से भ्रष्ट-

नात् ॥ सौन्दर्यात्तस्यदेशस्य किञ्चित्स्वास्थ्यमवापसा ॥ ४९ ॥ अथविष्णुपदींदेवीं श्रुत्वासागरसङ्गताम् ॥ इतस्ततः समाजग्मुरटमानास्तपस्विनः ॥ ५० ॥ द्वारकावासिनश्चैव जनाःकाननशोभया ॥ हृष्टचित्ताःसमाजग्मुरनिशंरुक्मिणीवनम् ॥ ५१ ॥ श्रुत्वातदखिलंवृत्तं दुर्वासाःशाम्भवीकला ॥ चुकोपकोपमानश्च भूयएतदभाषत ॥ ५२ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ कःप्रभुस्त्रिषुलोकेषु मद्वचनमन्यथा ॥ विधातुमपिदेवानामधोलोकपितामहः ॥ ५३ ॥ किंनजानातिलोकोयं मयिरोपकषायिते ॥ शक्रःप्रतित्रिभुवनभ्रष्टश्रीकोह्यभूत्तदा ॥ ५४ ॥ ममशापमवज्ञाय नन्दनप्रतिमेवने ॥ कथन्तुरुक्मिणीतत्र रमतेजनसेविते ॥ ५५ ॥ तदेतेतरवःसर्वे सन्त्वभोगफलान्नृणाम् ॥ विभ्रष्टसर्वसौभाग्याः कुसुमस्तबकोज्झिताः ॥ ५६ ॥ इयन्तुसर्वपापघ्नी हरचूडामणिःसरित् ॥ शरीरिणीतथापीयं नैवेहस्थातुमर्हति ॥ ५७ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ तदासर्वमभूत्तत्र यद्यदाहचवैमुनिः ॥ वाचिवीर्यंहिविप्राणांनिर्मितंविष्णुनास्वयम् ॥ ५८ ॥ सातुदेवीतथावृत्तम

लक्ष्मीवाले हुए हैं ॥ ५४ ॥ मेरे शाप को अपमान कर रुक्मिणीजी नन्दनवन के समान उस मनुष्यों से सेवित वन में कैसे क्रीड़ा करती हैं ॥ ५५ ॥ इसलिये ये सब वृक्ष मनुष्यों के अभोग फलवाले होवैं और सब सौभाग्यों से रहित व पुष्पों के गुच्छोंसे त्यागित होवैं ॥ ५६ ॥ और सब पापोंको नाश करनेवाली व शिवजी की चूड़ामणि यह गंगा नदी यद्यपि शरीरिणी है तथापि यहां स्थित होने के योग्य नहीं है ॥ ५७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि दुर्वासा मुनिने जो जो कहा वह सब वहां होगया क्योंकि ब्राह्मणों के वचन में आपही विष्णुजी ने बल या प्रभाव को रचा है॥ ५८ ॥ और वे रुक्मिणी देवी वैसे वृत्तान्त को देखकर बहुत दुःखित हुईं व दुःख को प्राप्त

करनेवाले दैव को बार २ प्राप्त मानती भई ॥ ५९ ॥ तदनन्तर उन रुक्मिणीजी ने दुःख की औषध मरण जानकर उत्तम दुपट्टे से गले की फँसरी किया ॥ ६० ॥ व उन रुक्मिणीजी ने पति के संतापनाशक चरणकमल को सावधान मन से ध्यान किया व उस समय कुछ बाहर न जाना ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर सब प्राणियों के गुहा में आशयवाले विष्णुजी ने उस सब को जांना व शीघ्रता संयुत श्रीकृष्ण देवजी शीघ्रही गरुड़ से आगये ॥ ६२ ॥ व विभु श्रीकृष्णजी ने दूर से गले की फँसरी को हाथ में लिये हुए रुक्मिणी देवीजी को देखा कि वृक्ष की शाखा के नीचे नेत्रों को मूंदे हुई हैं ॥ ६३ ॥ उन पीत मुखवाली व चंचल एक वेणी से गिरेहुए भूषणगणों

वेक्ष्यसमुदुःखिता ॥ मेनेदुखावहंदैवमापतन्तंपुनःपुनः ॥ ५९ ॥ ततस्तुसाविनिश्चित्य मरणंदुःखभेषजम् ॥ उत्तरीयवरेणैव कण्ठपाशञ्चकारसा ॥ ६० ॥ दध्यौसचरणाम्भोजं भर्त्तुःसन्तापनाशनम् ॥ तदैकहृदयेनैव बहिःकिञ्चिदबुध्यत ॥ ६१ ॥ अथाबुध्यततत्सर्वं सर्वभूतगुहाशयः ॥ देवःसत्वरमभ्यागात्सुपर्णेनत्वरान्वितः ॥ ६२ ॥ ददर्शदूरतोदेवींकण्ठपाशकरांविभुः ॥ अधस्तात्तरुशाखाया विनिमीलितलोचनाम् ॥ ६३ ॥ तांवीक्ष्यपाण्डुवदनांतरलैकवेणिविभ्रष्टभूषणगणांकृशदेहवल्लीम् ॥ शुष्यन्मुखाम्बुजरुचंमरणप्रयुक्तां मेनेसचगृहवर्तीकरुणांकृपालुः ॥ ६४ ॥संश्रुत्यसापिपतिगाधिपतेःप्रडीनसम्भूतसम्भ्रमगतेश्चलपक्षजन्म ॥ सामान्यवत्त्रिकविवर्तितलोचनाभ्यां प्राप्तंददर्शदायितंनिजजीवनाथम् ॥ ६५ ॥ तर्ह्येवहर्षविवशात्परितःप्रणष्टकोपोपरागकलुषास्मृतविप्रलम्भा ॥ सारुक्मिणीस्वगुणवृन्दसुशोभमाना नानारसंबतदृशांविषयम्प्रपेदे ॥ ६६ ॥ तस्याद्रुतंह्यसुविसर्गचिकीर्षितायाः पाशंविपोह्यकरचारुसरोरुहाग्रा

वाली व दुबली शरीररूपी लता तथा सूखते हुए मुख कमल की शोभावाली और मरने में लगीहुई रुक्मिणी जी को देखकर उन दयालु श्रीकृष्णजी ने स्त्री के दुःख को माना ॥ ६४ ॥ और गरुड़ के उड़ने से उपजीहुई संभ्रम गति से चलतेहुए पंखों से उपजेहुए सामवेद को सुनकर अन्य की नाईं त्रिकके घुमाने से नेत्रों करके अपने जीवनाथ प्यारे श्रीकृष्णजी को प्राप्त देखा ॥ ६५ ॥ व उसी समय हर्ष के वश से सब ओर से नष्टक्रोधरूपी ग्रहण की मलीनतावाली तथा स्मरण किये वियोगवाली व निजगुणगणों से शोभित वे रुक्मिणीजी अनेक भांति के रस से नेत्रों के विषय को प्राप्तहुई ॥ ६६ ॥ व शीघ्रही प्राणों को छोड़ने की इच्छा करतीहुई उन रुक्मिणीजी

की फँसरी को सुन्दर हाथरूपी कमल के अग्रभाग से छुड़ाकर व हाथ को पकड़कर अमृत के समान वचन से जिलातेहुए से कृष्ण ने इस उदार वचन को कहा ॥ ६७॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे भीरु ! बिन विचारेहुए इस साहस को क्यों करने की इच्छा करती हो व हे देवि ! तुम्हारे खेद का क्या कारण है उसको मुझ से निश्चय कर कहो ॥ ६८ ॥ तुम विद्या हो मैं परब्रह्महूं और तुम माया हो मैं ईश्वरहूं और तुम बुद्धिहो मैं जीव हूं तो हम तुम दोनों का कैसे वियोग है ॥ ६९ ॥ और माया से मोहित चित्तवाले ब्रह्मा व शिवादिक भ्रमते हैं सो तुम अपने तेजों के चिन्तन से कैसे मोहित होती हो ॥ ७० ॥ तुम से बँधेहुए ऋषिलोग इस संसार में कर्मों से

त् ॥ आदायपाणिममृतोपमयाचवाचा सञ्जीवयन्निदमुदारमुदाजहार ॥ ६७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमेतत्साहसंभीरु चिकीर्षस्यविचारितम् ॥ ननुदेविममाचक्ष्व किन्नुतेखेदकारणम् ॥ ६८ ॥ त्वंविद्याहम्परंब्रह्म त्वंमायाचेश्वरस्त्वहम् ॥ त्वञ्चबुद्धिरहंजीवोवियोगःकथमावयोः ॥ ६९ ॥ मायाविमोहितात्मानो भ्राम्यन्त्यजभवादयः ॥ साकथम्मुह्यसित्वंतु स्वधाम्नामनुचिन्तनात् ॥ ७० ॥ त्वयाहिबद्धाऋषयः संसरन्तीहकर्मभिः ॥ तांत्वाकथमृषिःशप्तुं शक्नुयादथवासुरः ॥ ७१ ॥ रक्षार्थंत्विहलोकानामेवमेवंविचेष्टितम् ॥ मयात्वयासमाविष्टः कुरुतेविवशःपुमान् ॥ ७२ ॥ कस्मात्कोपपरीतात्मा दुर्वासायोऽभवत्तदा ॥ सोपैतिभक्तिनम्रोयमधुनामत्प्रकीर्तितः ॥ ७३ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ विभोर्मनोरथंज्ञात्वा पश्चात्तापानुगाशयः ॥ किम्मयाकृतमित्यार्त्तो दुर्वासाःसमुपागतः ॥ ७४ ॥ अदूराद्विलुठन्भूमौ द्रुतमेत्याश्रुसंप्लुतः ॥ पितरौजगतोदेवौ क्षमयामासदीनवाक् ॥ ७५ ॥ तुष्टावसूक्तवाक्यैस्तु रहस्यैर्भक्तिसंयुतः ॥ आहचेदंजगन्नाथ यदिमय्य

भ्रमते हैं उन तुम को शाप देने के लिये ऋषि व देवता कैसे समर्थ हैं ॥ ७१ ॥ इस संसार में लोकों की रक्षा के लिये मुझ से व तुम से संयुत विवश पुरुष ऐसाही कर्म करता है ॥ ७२ ॥ व किसी कारण जो दुर्वासा जी उस समय क्रोध से संयुत चित्तहुए थे मुझ से कहेहुए वे इस समय भक्ति से नम्रचित्त होकर समीप आते हैं ॥ ७३॥ प्रह्लादजी बोले कि विभु श्रीकृष्णजी के मनोरथ को जानकर पश्चात्ताप से अनुगत आशयवाले दुर्वासाजी इस कारण दुःखित होकर आये कि मैंने क्या किया ॥ ७४ ॥ व समीपही से पृथ्वी में लोटतेहुए शीघ्रही आकर आंसुवों से संयुत दुर्वासाजी ने दीन वचन होकर संसारके माता पिता रुक्मिणी व श्रीकृष्णजी से क्षमा कराया ॥ ७५ ॥

और भक्ति संयुत दुर्वासाजी ने रहस्य व सूक्तवाक्यों से स्तुति किया व यह कहा कि हे जगदीशजी ! यदि मेरे ऊपर दया होवै ॥ ७६ ॥ तो हे देव ! पहले की नाईं देवीजी से संयोग किया जावै इसके अनन्तर श्रीकृष्णजी ने हँसकर उन मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी से कहा ॥ ७७ ॥ कि तुम्हारा वचन कभी झूंठ होने के योग्य नहीं है क्योंकि वह वज्रकी नाईं सफल है व मैंनेही इस मर्यादा को किया है ॥ ७८ ॥ तो लोक के पालक मैं कैसे अपने कियेहुए सेतु (मर्यादा) को भेदन करूं हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रतिदिन दो समयो में इसका संयोग होगा ॥ ७९ ॥ और कल्याणकारी हास्यवचनों से व मेरी कथाओं के कहने से भी उन्मत्तरूपी मैं व तुम इस से

स्त्यनुग्रहः ॥ ७६ ॥ तदापुरेवसंयोगो देवदेव्याविधीयताम् ॥ अथप्रहस्यगोविन्दस्तमाहमुनिपुङ्गवम् ॥ ७७ ॥ नहितेव चनंजातु मृषाभवितुमर्हति ॥ मयैवविहितःसेतुर्यदमोघमिवाशनिः ॥७८॥ तत्कथंस्वकृतंसेतुं भिन्द्यांलोकस्यपालकः ॥ दिनेदिनेद्विकालेस्याः संयोगोमुनिसत्तमः ॥ ७९ ॥ विनोदयिष्यतव्यौत्वं मुनिरुन्मत्तकोप्यहम् ॥ प्रहासवचनैर्भव्यैर्म त्कथाकथनैरपि ॥ ८० ॥ यतःपूज्याहिलोकस्य समस्तस्यभविष्यति ॥ यदाचमयिवैकुण्ठमधिरूढे महोमम ॥८१॥ प्रवे क्ष्यतिकलौगोपेत्रिविक्रमतनौहरौ ॥ तदातस्मिन्कलौविप्रसम्यक्साकलयासह ॥८२॥ तस्यामेवपुनर्मूर्त्तौ समवस्थिति मेष्यति ॥ इयंभागीरथीचापि सागरेणसमागता ॥८३॥ नृणामशेषदुःखानि तस्मादुपहरिष्यति ॥ अनुग्रहंविधायैवमृ षिणासहकेशवः ॥८४॥ विवेशस्वपुरेतत्र विधायोन्मत्तकंवपुः ॥ सापिदेवीचसम्बुद्ध्वा तदातस्यविचेष्टितम् ॥ ८५ ॥ अनु

विनोद के योग्य होवैंगे ॥ ८० ॥ जिससे कि सब लोक के यह पूजने योग्य होगी और मेरे वैकुण्ठ जाने पर जब मेरा तेज॥ ८१ ॥ कलियुग में वामन शरीरवाले गोप विष्णु (श्रीकृष्ण) जी में प्रवेश करैगा तब हे विप्रजी ! उस कलियुग में भली भांति कला समेत वह ॥ ८२ ॥ फिर उसी मूर्ति में स्थिति को प्राप्तहोगी और जिस लिये यह भागीरथी गङ्गा समुद्र से संगम हुई है ॥ ८३ ॥ उस कारण मनुष्यों के सब दुःखों को हरैगी इस प्रकार ऋषि समेत श्रीकृष्णजी अनुग्रह करके ॥ ८४ ॥ उन्मत्त शरीर धारण कर उस अपने नगर में पैठे और वे रुक्मिणी देवी उस समय उन श्रीकृष्णजी के चेष्टित को भलीभांति जानकर ॥ ८५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी की दया

से शोकरहित हुई इस कारण यहां विष्णुजी की प्यारी रुक्मिणी देवीजी दुःख से छूटगईं ॥ ८६ ॥ उसी कारण वे भागीरथी गङ्गाजी दुःखमोचिनी कहीगई हैं और अमावस व पौर्णमासी तिथि में जो मनुष्य उसके उत्तम संगम में ॥ ८७ ॥ स्नान करता है वह मनुष्य सब दुःखों से छूटजाता है और अष्टमी, चौदसि व नवमी तिथि में देखीहुई ॥ ८८ ॥ रुक्मिणी देवीजी मनुष्यों के सब कामनाओं को देती हैं हे ऋषिलोगो ! देवी रुक्मिणीजी का यह दुःखमोचन चरित्र कहागया ॥ ८९ ॥ और इन श्रीकृष्णदेवजी का अनुग्रह कहागया फिर क्या सुनना चाहते हो ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुक्मिणी

ग्रहाद्भगवतो बभूवविगतज्वरा ॥ अतश्चमुक्तादुःखेन तत्रदेवीहरिप्रिया ॥८६॥ ततोभागिरथीसातु गदितादुःख मोचिनी ॥ अमावास्यांचपूर्णायां यस्तस्याःसङ्गमेशुभे ॥ ८७ ॥ स्नायादशेषदुःखेभ्यः सनरःपरिमुच्यते ॥ अष्ट म्याञ्चचतुर्दस्यां नवम्यांचविलोकिता ॥ ८८ ॥ नराणांरुक्मिणीदेवी सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥ इत्येतत्कथितंदे व्या ऋषयोदुःखमोचनम् ॥ ८९ ॥ अनुग्रहोस्यदेवस्य किंभूयःश्रोतुमिच्छथ ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारका माहात्म्येरुक्मिणीदुःखमोक्षणंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ एवंसम्पूजितस्तेन हरिणाब्राह्मणोत्तमः ॥ उपचारैस्तुसन्तुष्टो वरम्ब्रूहीतिकेशवम् ॥ १ ॥ श्री कृष्ण उवाच ॥ यदितुष्टोसिभगवन् यदिदेयोवरोमम ॥ स्थातव्यमत्रभवता न त्यक्तव्यंकथञ्चन ॥ २ ॥ दुर्वासा उ

दुःखमोक्षणन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । दुर्वासा श्रीकृष्ण अरु जिमि द्वारका मँझार । टिके चौथ अध्याय में सोइ चरित सुखसार ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उन विष्णुजी से इस प्रकार उपचारों से भलीभांति पूजित व सन्तुष्ट द्विजोत्तम दुर्वासाजी ने श्रीकृष्णजी से यह कहा कि वरदान को मांगिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे भगवन् ! यदि तुम प्रसन्न हो और यदि मुझ को वर देने योग्य है तो आपको यहीं स्थित होना चाहिये और कभी न छोड़ना चाहिये ॥ २ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे कृष्णजी ! यदि मैं स्थित होऊं तो सोलह कलावाले

तुम भी मेरे वचन से सदैव यहीं स्थित होवो ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे द्विजोत्तम! यहां जो मनुष्य भक्ति से तुमको व मुझको भी देखैंगे उनको तुम क्या दोगे हे भगवन्! उसको मुझ से कहिये ॥ ४ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे कृष्णजी! गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर जो मनुष्य तुमको व मुझको देखैगा वह सब पापों से छूटजावैगा ॥ ५ ॥ हे देवेश, कृष्णजी! मेरे दियेहुए के सोलह गुन अधिक की सम्भावना करतेहुए तुम भी इसी प्रकार जो देवो उसको कहो ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण जी बोले कि जो मनुष्य यहा तुमको पूजकर मुझको पूजैगा उसको मैं उस मुक्ति को दूंगा जोकि देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ ७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि परस्पर वरदान

वाच ॥ यदितिष्ठाम्यहंकृष्ण तदात्वमपिकेशव ॥ तिष्ठस्वषोडशकलो नित्यंमद्वचनेनहि ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ येत्रपश्यन्तिभक्त्यात्वां मांचापिद्विजसत्तम ॥ किंददासिचतेषांत्वं मत्तस्तद्भगवन्वद ॥ ४ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ यः स्नात्वासङ्गमेकृष्ण गोमत्याःसागरस्यच ॥ त्वांमांचैवाभिवीक्षेत्तु सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५ ॥ त्वमप्येवंविधंकृष्ण यत्प्र दास्यसितद्वद ॥ ममदत्तस्यदेवेश भावयन्षोडशोत्तरम् ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ योनरःपूजयित्वात्वां पूजयिष्यति मामिह ॥ तस्यमुक्तिंप्रदास्यामि यासुरैरपिदुर्लभा ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ परस्परंवरंदत्त्वा तस्मिन्स्थानेऽयतिष्ठत ॥ वरदानेतियत्प्रोक्तं तत्स्थानंसर्वकामदम् ॥ ८ ॥ तदाप्रभृतिदेवेशो द्वारकांहरिरीश्वरः ॥ दुर्वाससोगिराबद्धो नजहाति कदाचन ॥ ९ ॥ यत्रवैचित्रिकीमूर्तिर्वसतेयत्रगोमती ॥ नरामुक्तिंप्रयास्यन्ति चक्रतीर्थेनसङ्गता ॥ १० ॥ कलेवरम्परि त्यक्तम्प्रभासेहरिणायदा ॥ कलयासहितस्तस्यां मूर्तौचाधिष्ठितोद्विजाः ॥ ११ ॥ तस्मात्कलियुगेविप्रा नान्यत्रप्राप्य

को देकर श्रीकृष्णजी उस स्थान में टिके और वरदान ऐसा जो कहागया है वह स्थान सब कामनाओं को देनेवाला है ॥ ८ ॥ तब से लगाकर दुर्वासाजी की वाणी से बँधेहुए देवेश विष्णु भगवान् द्वारका को कभी नहीं छोड़ते हैं ॥ ९ ॥ जहां पर चक्रतीर्थ से मिलीहुई विचित्र मूर्तिवाली गोमती बसती है वहां मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो! जब विष्णुजी ने प्रभासक्षेत्र में शरीर को छोड़ा है तब कला समेत वे उस मूर्ति में स्थित हुए हैं ॥ ११ ॥ इस लिये हे ब्राह्मणो! कलियुग में

विष्णु जी अन्यत्र नहीं मिलते हैं यदि कृष्ण से कार्य होवै तो तुम शीघ्रही वहां जावो ॥ १२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे उत्तममार्गदर्शक, भागवतोत्तम ! बहुत अच्छा इस समय तुमने उसको जाना है जोकि कोई नहीं जानता है ॥ १३ ॥ और उस द्वारकापुरी में जाने से क्या फल होता है व कृष्णजी के दर्शन में क्या फल है और वहां कौन तीर्थ व कौन देवता हैं उसको हमलोगों से कहिये ॥ १४ ॥ व हे दनुजर्षभ ! किस महीने व किस तिथि में और किस पर्व में मनुष्यों को वहां जाना चाहिये और कौन दानों को देना चाहिये ॥ १५ ॥ उस समय उन महर्षियों से इस प्रकार पूंछेहुए भगवद्भक्ति से संयुत उन महाभागवत प्रह्लादजी ने ब्राह्मणों से

तेहरिः ॥ यदिकार्यंहिकृष्णेन तत्रगच्छतमाचिरम् ॥ १२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ साधुभागवतश्रेष्ठ साधुमार्गप्रदर्शक ॥ तत्त्वयाद्यपरिज्ञातं यन्नजानातिकश्चन ॥ १३ ॥ किम्फलङ्गमनेतस्यां किम्फलंकृष्णदर्शने ॥ कानितीर्थानितत्रैव केदेवास्तद्वदस्वनः ॥ १४ ॥ कस्मिन्मासेतिथौकस्यां कस्मिन्पर्वणिमानवैः ॥ गन्तव्यंकानिदेयानि दानानिदनुजर्षभ ॥ १५ ॥ इतिपृष्टंतदातैस्तु महाभागवतोहिसः ॥ कथयामासविप्रेभ्यो भगवद्भक्तिसंयुतः ॥ १६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ भोभूमिदेवाःशृणुत परंगुह्यंसनातनम् ॥ यन्नकस्यसमाख्यातं तद्वदामिसुविस्तरात् ॥ १७ ॥ यदामतिञ्चकुरुते द्वारकागमनम्प्रति ॥ तदानरकनिर्मुक्ता गायन्तिपितरोदिवि ॥ १८ ॥ यावत्पदानिकृष्णस्य मार्गेगच्छतिमानवः ॥ पदेपदेश्वमेधस्य यज्ञस्यलभतेफलम् ॥ १९ ॥ यात्रार्थंकृष्णदेवस्य यःप्रेरयतिचापरान् ॥ मानवान्नात्रसन्देहो लभतेवैष्णवम्पदम् ॥ २० ॥ द्वारकांगच्छमानस्य योददातिप्रतिश्रियम् ॥ तथैवमथुरायाञ्च नन्दतेक्रीडितेहिसः ॥ २१ ॥ अध्वनिश्रान्त

कहा ॥ १६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस परमगुप्त व सनातन को सुनिये जो किसी से नहीं कहागया है उसको मैं विस्तार से कहताहूं ॥ १७ ॥ जब मनुष्य द्वारका को जाने के लिये बुद्धि करता है तब नरक से छूटेहुए पितर स्वर्ग में गाते हैं ॥ १८ ॥ व मनुष्य कृष्णजी के मार्ग में जितने पग चलता है उतने पग २ पै अश्वमेध यज्ञ के फलको पाता है ॥ १९ ॥ और श्रीकृष्णदेवजी की यात्राके लिये जो अन्य पुरुषों को प्रेरणा करता है वह विष्णुजी के स्थान को पाता है इस में सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ और द्वारका को जातेहुए पुरुष को जो धन देता है वैसेही मथुरा में जातेहुए पुरुष को जो धन देता है वह आनन्द व क्रीड़ा करता है ॥ २१ ॥ और

मार्ग में थके शरीरवाले पुरुष को जो सवारी देता है वह मनुष्य हंसोंसे संयुत विमानके द्वारा स्वर्ग को जाता है ॥ २२ ॥ और यात्रा में जातेहुए भूँखे पुरुष को जो भक्ति से अन्न को देता है वह जिस फलको पाता है उसको सुनिये ॥ २३ ॥ कि पृथ्वी में मनुष्य गयाश्राद्ध से जिस फलको पाता है उस पुण्य को अन्नदान से पाता है और पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ २४ ॥ और द्वारका को जानेवाले पुरुष को जो पनही देता है कृष्णजी की प्रसन्नता से वह पुरुष हाथी की पीठ पै सवार होकर जाता है ॥ २५ ॥ और द्वारका को जातेहुए पुरुष का जो विघ्न करता है वह मूढ़ कल्पभर तक रौरव नरक में डूबता है ॥ २६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! मार्ग में टिकेहुए

देहस्य वाहनंयःप्रयच्छति ॥ हंसयुक्तेनसनरो विमानेनदिवंव्रजेत् ॥ २२ ॥ यात्रायांगच्छमानस्य मध्याह्नेक्षुधितस्य च ॥ अन्नंददातियोभक्त्या शृणुयल्लभतेफलम् ॥ २३ ॥ गयाश्राद्धेनयत्पुण्यं लभतेमानवोभुवि ॥ अन्नदानेनतत्पुण्यं पितॄणांतृप्तिरक्षया ॥ २४ ॥ उपानहौचयोदद्याद्द्वारकाम्प्रतिगच्छतः ॥ कृष्णप्रसादात्सनरो गजपृष्ठेनगच्छति ॥ २५ ॥ विघ्नमाचरतेयस्तु द्वारकाम्प्रतिगच्छतः ॥ नरकेमज्जतेमूढः कल्पमात्रन्तुरौरवे ॥ २६ ॥ मार्गस्थितस्य योविप्राः प्रयच्छतिकमण्डलुम् ॥ प्रपादानसहस्रस्य फलमाप्नोतिमानवः ॥ २७ ॥ यात्रायांगच्छमानस्य पादाभ्यङ्गं ददातियः ॥ पादप्रक्षालनंवापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २८ ॥ कथांशृणोतियोविष्णोर्गीतंवागच्छतःपथि ॥ दानं ददातिमनुजस्तस्माद्धन्यतरोनहि ॥ २९ ॥ कैलासशिखराकारं श्वेताभ्रमिवनिर्मलम् ॥ प्रासादंदेवदेवस्य यःपश्यति नरोत्तमः ॥ ३० ॥ दूराद्धेममयंदृष्ट्वा कलशंध्वजसंयुतम् ॥ वाहनंसम्परित्यज्य लुठतेधरणींगतः ॥ ३१ ॥ पञ्चसूना

पुरुष को जो कमण्डलु देता है वह मनुष्य हज़ार पौशाला देने के फलको पाता है ॥ २७ ॥ और यात्रा में जातेहुए पुरुष को जो पैरों का उबटन देता है या पैरों को धोता है वह सब कामनाओं को पाता है ॥ २८ ॥ और मार्ग में जातेहुए पुरुष से जो विष्णुजी की कथा व गीत को सुनता है व दान देता है उससे अधिक धन्य मनुष्य नहीं है ॥ २९ ॥ और जो उत्तम मनुष्य कैलास के शिखर के समान व निर्मल तथा श्वेत आकाश के समान देवदेव विष्णुजी के मन्दिर को देखता है ॥ ३० ॥ और कलश व ध्वजा से संयुत सुवर्णमय मन्दिर को दूर से देखकर सवारी को छोड़ पृथ्वी पै प्राप्त होकर जो लोटता है ॥ ३१ ॥ उसका पांच वधस्थानों से किया हुआ पाप व जो

उग्र पाप किया गया है और मार्ग में चलनेवाले से जो कृमि, कीट व पतंग मरे हैं ॥ ३२ ॥ और पराया अन्न व पराये जलके स्पर्श से जो पाप हुआ है वह सब विष्णुजी के क्षेत्र को देखने से नाश होजाता है ॥ ३३ ॥ और विष्णुसहस्रनाम व स्तवराज और गजेन्द्रमोक्ष को पढ़ताहुआ पुरुष मार्ग में धीरे २ चलै ॥ ३४ ॥ और विष्णुजी के प्रकटवाले अनेक गीतों को गाताहुआ हर्ष से संयुत पुरुष नित्य पवित्र व प्रसन्न मन होकर जावै ॥ ३५ ॥ पहले पैरों को न धोयेहुए पुरुष लक्ष्मीपति को प्रणाम करै तो वह सब विघ्नों के नाश को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ पहले जेठे भाई (बलभद्रजी) को प्रणाम कर नीलकमल के समान

कृतम्पापं तथाचोग्रंकृतञ्चयत् ॥ कृमिकीटपतङ्गाश्च निहताःपथिगच्छता ॥ ३२ ॥ परान्नपरपानीयस्यस्पर्शेनचसङ्गमम् ॥ तत्सर्वंनाशमायाति भगवत्क्षेत्रदर्शनात् ॥ ३३ ॥ पठन्नामसहस्रञ्च स्तवराजमथापिवा ॥ गजेन्द्रमोक्षणञ्चापि पथिगच्छेच्छनैःशनैः ॥ ३४ ॥ गायमानोभगवतः प्रादुर्भूतान्यनेकधा ॥ नित्यञ्चहर्षसंयुक्तो गच्छेद्हृष्टमनाःशुचिः ॥ ३५ ॥ अधौतपादःप्रथमं नमस्कुर्याद्रमेश्वरम् ॥ सर्वविघ्नविनाशंच लभतेनात्रसंशयः ॥३६॥ नीलोत्पलदलश्यामं कृष्णंदेवकिनन्दनम् ॥ दण्डवत्प्रणमेत्प्रीत्या प्रणिपत्याग्रजम्पुरा ॥ ३७ ॥ बाल्येचयत्कृतम्पापं कौमारेयौवने तथा ॥ दर्शनादेवकृष्णस्य तन्नष्टंनात्रसंशयः ॥ ३८ ॥ कर्मणामनसायच्च वाचायत्समुपार्जितम् ॥ पापंजन्मसहस्रेण तन्नष्टंनात्रसंशयः ॥ ३९ ॥ हेमभारसहस्रैस्तु दत्तैर्यत्फलमाप्यते ॥ तत्फलंकोटिगुणितं कृष्णवक्त्रावलोकने ॥ ४० ॥ नमस्कृत्यचदेवेशं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ॥ दुर्वाससंमहेशानं द्वारकापतिरक्षणम् ॥ ४१ ॥ प्रणम्य

श्याम देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी को प्रीति से दण्डा की नाईं प्रणाम करै ॥ ३७ ॥ बाल्यावस्था में और कुमार व युवावस्था में जो पाप कियागया है वह श्रीकृष्णजी के दर्शनही से नाश होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ और हज़ार जन्मों में कर्म, मन व वचन से जो पाप इकट्ठा किया गया है वह नाश होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ व हज़ार सुवर्णभार के देने से जो फल मिलता है उससे कोटि गुना फल श्रीकृष्णजी के मुखको देखने से मिलता है ॥ ४० ॥ कमललोचन व अच्युत देवेशजी को प्रणाम कर और द्वारकानाथ की रक्षा करनेवाले दुर्वासा शिवजी को ॥ ४१ ॥ गरुड़ समेत बड़ी भक्ति

से प्रणाम कर फिर स्वर्गद्वारके समान उत्तम द्वार पै आकर ॥ ४२ ॥ आधा मुहूर्त सहेंता कर मित्रों व बन्धुवों समेत मनुष्य वहां टिकेहुए मन्त्रों में चतुर ब्राह्मणों को बुला कर ॥ ४३ ॥ हव्य की द्रव्य को लाकर तदनन्तर तीर्थ को लावै ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दो० । यथा गोमती नदी अरु, चक्रतीर्थ दोउ आय । सो पंचम अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाय ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर कृष्णजी के आश्रय वाली गोमती को जावै कि जिसके दर्शन से मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ १ ॥ पापपुंज को नाश करनेवाले और अमंगल को नाशनेवाले तथा पुरुषों की सब

परयाभक्तया वैनतेयसमन्वितम् ॥ द्वारमागत्यचपुनः स्वर्गद्वारोपमेशुभे ॥ ४२ ॥ विश्रम्यचमुहूर्तार्द्धं सुहृद्भिर्बान्धवैःसह ॥ तत्रस्थितान्समाहूय ब्राह्मणान्मन्त्रकोविदान् ॥ ४३ ॥ हविर्द्रव्यंसमानीय ततस्तीर्थंसमानयेत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठा गोमतींकृष्णसंश्रयाम् ॥ यस्यादर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ १ ॥ दुरितौघक्षयकरममङ्गल्यविनाशनम् ॥ सर्वकामप्रदंपुंसां प्रणमेद्गोमतीजलम् ॥ २ ॥ महापापक्षयकरमगतीनांगतिप्रदम् ॥ सर्वपुण्यवशात्प्राप्तं सुशीतंगोमतीजलम् ॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ दैत्येन्द्रसंशयोस्माकं छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ इयंकागोमतीतत्र केनानीतामहामते ॥ ४ ॥ केनकार्यवशेनैव सम्प्राप्तावरुणालयम् ॥ सर्वंभागवतश्रेष्ठ ह्येतद्विस्तरतोवद ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ एकार्णवेपुराभूते नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ तदाब्रह्मासमभवद्विष्णोर्नाभिसरोरुहात् ॥ ६ ॥ आदि

कामनाओं को देनेवाले गोमती के जलको प्रणाम करै ॥ २ ॥ क्योंकि महापापों को क्षय करनेवाला तथा अगतियों की गति को देनेवाला और ठण्ढा गोमती का जल सब पुण्यों के वश से मिलता है ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे दैत्येन्द्र ! हमलोगोंके जो सन्देह है उसको तुम सम्पूर्णता से काटने योग्य हो कि हे महामते ! यह गोमती कौन है और वहा इसको कौन लाया है ॥ ४ ॥ व हे भागवतोत्तम ! किस कार्यवश से समुद्र को प्राप्तहुई है इस सब को विस्तार से कहिये ॥ ५ ॥ प्रह्लादजी बोले कि पुरातन समय जब चराचर नाश होगया तब एकार्णव (प्रलय) होने पर विष्णुजी की नाभि के कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ और प्रभु विष्णुजी ने ब्रह्मा को

पु०
२७

आज्ञा दिया कि अनेक भांति के प्रजाओं को रचो विष्णुजी ने सृष्टि के कारण में इस प्रकार ब्रह्मा को आज्ञा दिया ॥ ७ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर तदनन्तर उन ब्रह्मा ने सृष्टि में मन धारण किया और उसी क्षण मन से सनकादिक कुमारों को रचा ॥ ८ ॥ व ब्रह्मा ने उनसे कहा कि हे पुत्रो ! प्रजाओं को रचो ब्रह्मा का वचन सुनकर हाथों को जोड़ेहुए उन्होंने कहा ॥ ९ ॥ कि हे भगवन्, प्रजापते ! हमलोग विष्णुका स्वरूप देखा चाहते हैं और बन्धन में नहीं पड़ैंगे व कठिन सृष्टि को नहीं करैंगे यह कहकर वे सब सनकादिक कुमार चलेगये ॥ १० ॥ और पश्चिम दिशा में समुद्र के किनारे टिक कर महात्मा विष्णुजी के तेजोमय स्वरूप को देखने की इच्छा

ष्टः प्रभुणाब्रह्मा सृजस्वविविधाप्रजाः ॥ इतिब्रह्मासमादिष्टो हरिणासृष्टिकारणे ॥ ७ ॥ बाढमित्येवचोक्त्वास ततः सृष्टौमनोदधे ॥ ससर्जमानसात्सद्यः सनकाद्यान्कुमारकान् ॥ ८ ॥ उवाचवचनंब्रह्मा प्रजाःसृजतपुत्रकाः ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा कृताञ्जलिपुटाब्रुवन् ॥ ९ ॥ भगवन्भगवद्रूपं द्रष्टुकामाःप्रजापते ॥ नबन्धमनुवर्त्तामःसृष्टिं नचदुरासदाम् ॥ इत्युक्त्वातेययुःसर्वे सनकाद्याःकुमारकाः ॥ १० ॥ पश्चिमांदिशमास्थाय तीरेनदनदीपतेः ॥ तेजोमयस्वरूपस्य द्रष्टुकामामहात्मनः ॥ ११ ॥ तस्मिन्मनःसमाधाय तेपिरेपरमंतपः ॥ बहुवर्षसहस्रैस्तु प्रसन्नोधरणीधरः ॥ १२ ॥ भित्त्वाजलंसमुत्तस्थौ सूर्यरूपंदुरासदम् ॥ अनेकदैत्यदमनं बहुयन्त्रविदारणम् ॥ १३ ॥ सूर्यकोटिसमाभासं सहस्रारंसुदर्शनम् ॥ तंदृष्ट्वाविस्मिताःसर्वे ब्रह्मपुत्राःपरस्परम् ॥ १४ ॥ वीक्षमाणाभगवतः परमायुधमुत्तमम् ॥ तान्विस्मितांस्तदोवाच ब्राह्मणानशरीरिणी ॥ १५ ॥ भोब्रह्मपुत्राभगवाञ्छीघ्रमाविर्भविष्यति ॥ अर्हणार्थंभग

वाले उन्होंने ॥ ११ ॥ उन विष्णुजी में मन को लगाकर उत्तम तप किया और बहुत हज़ार वर्षों के बाद धरणीधर (विष्णुजी) प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ और जलको फोड़ कर अनेकों दैत्यों को नाशनेवाला व बहुत से यन्त्रों को विदारनेवाला सूर्य के समान रूपवान् असह्य तेज उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ करोड़ सूर्यों के समान प्रकाशमान व हज़ार धारोंवाले उस सुदर्शन चक्र को देखकर सब ब्रह्मा के पुत्र परस्पर विस्मित हुए ॥ १४ ॥ और विष्णुजी के उत्तम आयुध चक्र को देखते रहे तब उन विस्मित ब्राह्मणों से आकाशवाणी बोली ॥ १५ ॥ कि हे ब्रह्मपुत्रो ! भगवान् विष्णुजी शीघ्रही प्रकट होवैंगे और भगवान् की पूजा के लिये शीघ्रही

अर्घ देवो ॥ १६ ॥ व संसार के स्वामी विष्णुजी के अस्त्र को शीघ्रही अर्घ देवो उसके उस वचन को सुन कर उन्होंने सुदर्शन चक्र की स्तुति किया ॥ १७ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे ज्योतिर्मय ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे हरिप्रिय ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे सहस्रार, सुदर्शन ! अविनाशी आपके लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ सूर्यरूपी आपके लिये नमस्कार है व ब्रह्मरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है आप अमोघ के लिये नमस्कार है व चक्रके लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ इन सनकादिकों ने फूलों व अक्षतों से पूजन किया और अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति कर विष्णुप्रिय चक्र को प्रणाम किया ॥ २० ॥ व चक्रको प्रसन्न कराकर स्वामी विष्णुजी के दर्शन

वतः शीघ्रमर्घम्प्रयच्छत ॥ १६ ॥ आयुधंलोकनाथस्य शीघ्रमर्घंप्रयच्छत ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यास्तुष्टुवुस्तेसुदर्शनम् ॥ १७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ज्योतिर्मयनमस्तेस्तु नमस्तेहरिवल्लभ ॥ सुदर्शननमस्तुभ्यं सहस्राराक्षयायच ॥ १८ ॥ नमस्तेसूर्यरूपाय ब्रह्मरूपायतेनमः ॥ अमोघायनमस्तुभ्यं रथाङ्गायनमोनमः ॥ १९ ॥ एतेसम्पूजयामासुः सुमनोभिस्तथाक्षतैः ॥ स्तवैर्नानाविधैःस्तुत्वा प्रणेमुर्हरिवल्लभम् ॥ २० ॥ तेप्रसाद्यसुनाभंतु प्रभुसंदर्शनोत्सुकाः ॥ स्मरन्तोमनसादेवं ब्रह्माणंपितरंस्वकम् ॥ २१ ॥ तेषांतुचिन्तितंज्ञात्वा ब्रह्मागङ्गांतदाब्रवीत् ॥ याहितीर्थसरिच्छ्रेष्ठे पृथिव्यांहरिकारणात् ॥ २२ ॥ गङ्गतस्त्वंमहाभागे यतोबहुमतासिमे ॥ उर्व्यान्तेगोमतीनाम सुप्रसिद्धंभविष्यति ॥ २३ ॥ वशिष्ठस्यानुगाभूत्वा याहिशीघ्रंधरातलम् ॥ पितेवपुत्रीतियथा वशिष्ठतनयाभव ॥ २४ ॥ वाढमित्येवतंदेवी प्रस्थितावरुणालयम् ॥ वशिष्ठश्चाग्रतोयाति गङ्गातंपृष्ठतोन्वगात् ॥ २५ ॥ तांदृष्ट्वामनुजाःसर्वे वशिष्ठेनसमन्विताम् ॥ नमश्चक्रुर्महा

में उत्कण्ठित वे सनकादिक मुनि मन से अपने पिता ब्रह्मादेव को स्मरण करनेलगे ॥ २१ ॥ और उनके चिन्तित को जानकर तब ब्रह्मा ने गङ्गा से कहा कि हे तीर्थों व नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी ! पृथ्वी में तुम विष्णुजी के लिये जावो ॥ २२ ॥ और जिसलिये हे महाभागे ! तुम गङ्गाजी से मेरे बहुत संमत हो उसी कारण पृथ्वी में तुम्हारा गोमती ऐसा नाम प्रसिद्ध होगा ॥ २३ ॥ व पिता और कन्या की नाईं वशिष्ठ के पीछे चलकर तुम शीघ्रही पृथ्वी को जावो और वशिष्ठ की कन्या होवो ॥ २४ ॥ उन ब्रह्मा से बहुत अच्छा ऐसा कहकर गङ्गा देवी समुद्र को चलीं वशिष्ठजी आगे चले और गङ्गाजी उनके पीछे चलीं ॥ २५ ॥ वशिष्ठ से संयुत

पश्चिम समुद्र को जातीहुई उन महाऐश्वर्य्यवती गङ्गाजी को देखकर सब मनुष्यों ने प्रणाम किया ॥ २६ ॥ और जहां वे मुनि स्थित थे वहां प्रकट हुई और विष्णुजी के रूप को देखने की इच्छावाली वे गङ्गाजी मुनि समेत चलीं ॥ २७ ॥ और महाभाग सब मुनियों ने दिव्य व सुगन्धित माला तथा चन्दन, धूप व अक्षतों से व फूलों से वृष्टि किया ॥ २८ ॥ व लक्ष्मी से संयुत तथा चतुर्भुज विष्णुजी के रूप को देखने की इच्छावाली तथा सब देहधारियों को पवित्र करनेवाली व महाऐश्वर्य्यवती गङ्गाजी की प्रशंसा किया ॥ २९ ॥ देवताओं को पवित्र करनेवाली वशिष्ठ की कन्या को आतीहुई देखकर प्रसन्नमनवाले सब ब्राह्मणों ने बहुत

भागां गच्छन्तींपश्चिमार्णवम् ॥ २६॥ आविर्बभूवतत्रैव यत्रतेमुनयःस्थिताः ॥ द्रष्टुकामाहरेरूपं प्रस्थितामुनिनास ह ॥ २७ ॥ समाकिरन्महाभागाः सुमनोभिश्चसर्वशः ॥ दिव्यैर्माल्यैःसुगन्धैश्च गन्धैर्धूपैस्तथाक्षतैः ॥ २८ ॥ साधुसाधु महाभागां पावनींसर्वदेहिनाम् ॥ द्रष्टुकामांहरेरूपं श्रियाजुष्टंचतुर्भुजम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वावशिष्ठतनुजामायान्तींसुरपाव नीम् ॥ संहृष्टमनसःसर्वे साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ ३० ॥ वशिष्ठंतत्रतेदृष्ट्वा साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ वशिष्ठंतत्रतेदृष्ट्वा उत्तस्थुःसर्वतोद्विजाः ॥ ३१ ॥ यस्मात्त्वयासमानीता ह्यस्मिन्स्थानेसरिद्वरा ॥ तस्माद्धिगोमतीनाम ख्यातिंलो केगमिष्यति ॥ ३२ ॥ अस्यादर्शनमात्रेण मुक्तिंयास्यन्तिमानवाः ॥ किम्पुनःस्नानदानादि कृत्वायान्तिपदं हरेः ॥ ३३ ॥ तामेवह्यर्घ्यंदत्त्वाते योगीन्द्राईडिरेहरिम् ॥ परंपुरुषसूक्तेन रमेशंशेषशायिनम् ॥ ३४ ॥ इतिसंस्तुवतां

अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ३० ॥ और वहां वशिष्ठजी को देखकर उन्होंने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा और वहां वशिष्ठजी को देख कर वे ब्राह्मण सब ओर से उठपड़े ॥ ३१ ॥ व बोले कि जिसलिये इस स्थान में तुम उत्तम नदी को लाये हो उस कारण संसार में गोमती नाम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥ और इसके दर्शनही से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होवेंगे फिर स्नान दानादिक करके विष्णुजी के स्थान को जावेंगे इसमें क्या कहना है ॥ ३३ ॥ उन योगीन्द्रों ने उन गोमती को अर्घ देकर पुरुषसूक्त से उन शेषशायी रमानाथ विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार उन मुनियों के स्तुति करतेहुए विष्णुजी

प्रकटहुए और पीत रेशमी वस्त्रको पहने व वनमाला से भूषित ॥ ३५ ॥ तथा दिव्य चन्दन को अंग में लगाये व दिव्य आभूषणोंसे भूषित, शेषासन पै प्राप्त और अनेकों दिव्य अस्त्रों को उठायेहुए देव ॥ ३६ ॥ और जलतेहुए किरीट, मुकुटवाले तथा चमकतेहुए मकराकृति कुण्डलवाले और सुन्दर व श्रीवत्स से चिह्नित, महाभुज ॥ ३७ ॥ व सदैव प्रसन्नमुख, मेघकी नाईं श्याम व चतुर्भुज और चरण चापने के आनन्द से लक्ष्मी के ऊपर प्रसन्न व सुन्दर विष्णुजी को ॥ ३८ ॥ देखकर उन सब मुनियों ने हर्ष से संयुत उन विष्णुजी की वेद से उपजे हुए स्तोत्रों से व विष्णुसूक्त से हर्ष से स्तुति किया ॥ ३९ ॥ व इस प्रकार उनके

तेषां हरिराविर्बभूवह ॥ पीतकौशेयवसनवनमालाविभूषितम् ॥ ३५ ॥ दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्याभरणभूषितम् ॥ शेषासनगतंदेवं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ ३६ ॥ ज्वलत्किरीटमुकुटं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ भक्ताभयप्रदंकान्तं श्रीवत्साङ्कंमहाभुजम् ॥ ३७ ॥ सदाप्रसन्नवदनं घनश्यामंचतुर्भुजम् ॥ पादसंवाहनमुदा लक्ष्म्यास्तुष्टंमनोहरम् ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वाचमुनयःसर्वे हर्षाद्धर्षसमन्वितम् ॥ विष्णुंतेविष्णुसूक्तेन तुष्टुवुर्वेदसम्भवैः॥ ३९ ॥ एवंसंस्तुवतांतेषां विष्णुर्दीनानुकम्पनः ॥ उवाचसुप्रसन्नेन मनसाद्विजसत्तमान् ॥ ४० ॥ भोभोःकुमारास्तुष्टोहं प्रदास्यामियथेप्सितम् ॥ भविष्यथ ज्ञानयुता असृष्टाममायया ॥ ४१ ॥ यस्मान्मोक्षार्थिभिर्विप्रा जलवासीप्रसादितः ॥ तस्मादिदंपरंतीर्थं मोक्षदंसर्वदा मम ॥ ४२ ॥ अनुग्रहायभवतां यस्माचक्रंसुदर्शनम् ॥ निःसृतम्प्रथमंविप्रा जलम्भित्त्वाममाग्रतः ॥ ४३ ॥ चक्रतीर्थमितिख्यातं चक्रनाम्नाभविष्यति ॥ ममापिनियतंवासो भविष्यतिमहार्णवे ॥ ४४ ॥ येत्रस्नानंप्रकुर्वन्ति प्रसङ्गेनापि

स्तुति करते हुए दीनों के ऊपर दया करनेवाले विष्णुजी प्रसन्नमन से द्विजोत्तमों से बोले ॥ ४० ॥ कि हे कुमारो ! मैं प्रसन्न हूं और जैसा प्रिय होगा वैसा वर दूंगा और ज्ञान से संयुत होगे व मेरी माया से रचित न होवोगे ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसलिये मोक्ष को चाहनेवाले पुरुषों से जलवासी विष्णुजी प्रसन्न कराये गये उसी कारण यह मेरा उत्तम तीर्थ सदैव मोक्षदायक होगा ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसलिये आपलोगों के ऊपर दया से मेरे आगे पहले जलको फोड़कर सुदर्शन चक्र निकला है ॥ ४३ ॥ इस कारण चक्र के नाम से चक्रतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा और मेरा भी महासागर में निश्चय कर निवास होगा ॥ ४४ ॥ व हे द्विजोत्तमो !

जो मनुष्य इस चक्रतीर्थ में प्रसंग से भी स्नान करते हैं उनके हाथ में मुक्ति स्थित होती है ॥ ४५ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! सब कामनाओं को देनेवाले आप लोग भी पवन होकर आकाश में स्थित होकर सदैव यहां बसो ॥ ४६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि इस वचन को सुनकर प्रसन्न मनवाले सनकादिकों ने अर्घ करके विष्णुजी के चरणों को धोकर सुख से पवित्र करनेवाली इन गंगाजी को मस्तक से धारण किया ॥ ४७ ॥ और चरणों को धोकर वह समुद्र में जानेवाली महापापहारिणी गोमती उस समुद्र में पैठगई ॥ ४८ ॥ यह कहकर भगवान् कृष्णजी अन्तर्द्धान होगये और सावधान होतेहुए सनकादिक ब्रह्मपुत्र वहां टिकते भये ॥ ४९ ॥ इस प्रकार

मानवाः ॥ चक्रतीर्थेद्विजश्रेष्ठास्तेषांमुक्तिःकरेस्थिता ॥ ४५ ॥ भवन्तोपिसदाह्यत्र निवसध्वंद्विजर्षभाः ॥ वायुभूतान्तरिक्षस्थाः सर्वकामप्रदायकाः ॥ ४६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वातुहृष्टमनसः कृत्वार्घंसुखपावनीम् ॥ अवनिज्यहरेःपादौ मूर्द्ध्नी चैनामधारयन् ॥ ४७ ॥ प्रक्षाल्यसातथापादौ प्रविष्टावरुणालये ॥ तस्मिन्महापापहरा गोमतीसागरङ्गमा ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्कृष्णस्तथाचान्तरधीयत ॥ सनकाद्याब्रह्मसुतास्तस्थुस्तत्रसमाहिताः ॥ ४९ ॥ एवंसागोमतीतत्र संजातासागरङ्गमा ॥ सर्वपापहराप्रोक्ता पूर्वंगङ्गेतियाश्रुता ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्ये गोमतीचक्रतीर्थयोरुत्पत्तिर्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

* ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ साधुसाधुमहाभाग प्रह्लादासुरसत्तम ॥ येननःकलिमध्येतु दर्शितोभगवान्हरिः ॥ १ ॥ तिष्ठतेतत्रभ

वहां समुद्र में जानेवाली वह गंगा उत्पन्न हुई जो कि पहले समस्त पातकों को हरनेवाली गंगा ऐसी प्रसिद्ध हुई है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोमतीचक्रतीर्थयोरुत्पत्तिर्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

* ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा गोमती जलधि के संगम में फल होत । सोइ छठे अध्याय में वरणब चरित उदोत ॥ ऋषिलोग बोले कि हे असुरोत्तम, महाभाग, प्रह्लादजी ! आप को साधुवाद है कि जिन आपने कलियुग के मध्य में हमलोगों को भगवान् विष्णुजी को दिखला दिया ॥ १ ॥ कि वहां सुन्दर तीर्थ में भगवान् विष्णुजी स्थित हैं तुम्हारे

मुखरूपी क्षीरसमुद्र से उपजी हुई अमृतात्मिका इस कथा को ॥ २ ॥ कानों से पीते हुए मुनियों की तृप्ति नहीं होती है हे महाबाहो ! बहुत विस्तारवाली तीर्थयात्रा को कहिये ॥ ३ ॥ जहां गोमती नदी बहती है वहां हमलोगों को जाना चाहिये जहां कि चक्रतीर्थ को देखनेवाले भगवान् विष्णुजी स्थित हैं ॥ ४ ॥ हे महामते, तात ! भवसागर में गिरेहुए हमलोगों को उधारिये ॥ ५ ॥ व हे महामते ! कृष्णजीके पूजन की विधि को कहिये प्रह्लादजी बोले कि गोमती के किनारे जाकर व दण्डा की नाईं उन गोमतीजी को प्रणामकर ॥ ६ ॥ हाथों व पांवों को धोकर हाथों में कुशों को करके अक्षतों से संयुत उत्तम फल को लेकर ॥ ७ ॥ पूर्व मुख बैठकर

गवांश्चक्रतीर्थेमनोहरे ॥ त्वन्मुखक्षीरसिन्धूत्थाममृताढ्यांकथामिमाम् ॥ २ ॥ कर्णाभ्यांपिबतांतृप्तिर्नमुनीनांप्रजायते ॥ कथयस्वमहाबाहो तीर्थयात्रांसुविस्तराम् ॥ ३ ॥ अस्माभिस्तत्रगन्तव्यं वहतेयत्रगोमती ॥ तिष्ठतेयत्रभगवांश्चक्रतीर्थावलोककः ॥ ४ ॥ भवाब्धौपतितांस्तात उद्धरास्मान्महामते ॥ ५ ॥ कृष्णपूजाविधानञ्च कथयस्वमहामते ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ गत्वाचगोमतीतीरे प्रणम्यदण्डवद्धिताम् ॥ ६ ॥ प्रक्षाल्यपाणिपादौच धृत्वाचकरयोःकुशान् ॥ गृहीत्वाच फलंशुभ्रमक्षतैश्चसमन्वितम् ॥ ७ ॥ प्राङ्मुखःसंयतोभूत्वा दद्यादर्घंविधानतः ॥ ब्रह्मलोकात्समायाते वशिष्ठतनयेशुभे ॥ ८ ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं ददाम्यर्घञ्चगोमति ॥ वशिष्ठदुहितेदेवि शक्तिज्येष्ठेयशस्विनि ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यवन्दिते देवि पापम्मेहरगोमति ॥ इत्युच्चार्यद्विजश्रेष्ठो मृदमालभ्यपाणिना ॥ १० ॥ विष्णुंसंस्मृत्यमनसा मन्त्रमेनमुदीरयत् ॥ अश्वक्रान्तेरथक्रान्ते विष्णुक्रान्तेवसुन्धरे ॥ ११ ॥ उद्धृतासिवराहेण कृष्णेनशतबाहुना ॥ मृत्तिकेहरमेपापं

विधि से अर्घ को देवै कि हे ब्रह्मलोक से आईहुई, शुभे, वशिष्ठतनये ! ॥ ८ ॥ हे गोमति ! सब पापों से शुद्धि के लिये मैं अर्घ को देता हूं हे वशिष्ठकन्ये, शक्तिज्येष्ठे, यशस्विनि, देवि ! ॥ ९ ॥ हे त्रैलोक्यवन्दिते, गोमति, देवि ! मेरे पाप को हरिये यह कहकर द्विजोत्तम हाथ से मिट्टी को स्पर्श कर ॥ १० ॥ मन से विष्णुजी को स्मरणकर इस मन्त्र को कहै कि हे अश्वक्रान्ते, रथक्रान्ते, विष्णुकान्ते, वसुन्धरे ! ॥ ११ ॥ सौ भुजाओंवाले वराहरूपी कृष्णजी से तुम ऊपर लाईगई हो हे मृत्तिके !

मैंने जो पहले इकट्ठा किया है उस पाप को हरिये ॥ १२ ॥ तुम से नष्ट कियेहुए पाप से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है इस प्रकार मिट्टी को छूकर विधिपूर्वक स्नानकरै ॥ १३ ॥ आपो अस्मान् इस मन्त्र से नहाकर मनुष्य जिस फल को पाताहै उसको सुनिये कि राहु से सूर्य के ग्रस्त होने पर कुरुक्षेत्र में जो पुण्य होता है ॥ १४ ॥ वह कृष्ण के समीप गोमती में नहाने से कहागया है और उत्तम भक्ति से उसमें नहाकर यथायोग्य कर्म को करै ॥ १५ ॥ व भक्ति से संयुत पुरुष देवता, पितर व मनुष्यों को तर्पणकरै जो रौरवनरक में टिके हैं व जो कीटत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ वे गोमती नदी के नीरदान से निस्सन्देह मुक्ति को पाते हैं व अक्षत और कुशों

यन्मयापूर्वसञ्चितम् ॥ १२ ॥ त्वयाहतेनपापेन सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ इत्येवंमृदमालभ्य स्नानंकुर्याद्यथाविधि ॥ १३ ॥ आपोअस्मानितिस्नात्वा शृणुध्वंयत्फलंलभेत् ॥ कुरुक्षेत्रेचयत्पुण्यं राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ १४ ॥ स्नानमात्रेणतत्प्रोक्तं गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ भक्त्यास्नात्वाचपरया कुर्यात्कर्मयथोचितम् ॥ १५ ॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च तर्पयेद्भावसंयुतः ॥ येचरौरवसंस्थाहि येचकीटत्वमागताः ॥ १६ ॥ गोमतीनीरदानेन मुक्तिंयान्तिनसंशयः ॥ विनाप्यक्षतदर्भेण विनाभावनयातथा ॥ १७ ॥ वारिमात्रेणगोमत्या गयाश्राद्धफलंलभेत् ॥ ततश्चविप्रानाहूय वेदज्ञांस्तीर्थसंश्रयान् ॥ १८ ॥ विश्वेदेवादिसम्पूज्य पितॄणांश्राद्धमाचरेत् ॥ श्रद्धयापरयायुक्तः श्राद्धंकुर्याद्विधानतः ॥ १९ ॥ दक्षिणाञ्चततोदद्यात्सुवर्णंरजतंतथा ॥ सुवर्णशृङ्गसहितां खुरराजतभूषिताम् ॥ २० ॥ रत्नपुच्छींदुग्धयुतां ताम्रपृष्ठींसवत्सकाम् ॥ दद्याद्धेनुंसमभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ २१ ॥ सप्तधान्ययुतांदद्याद् विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ आसीमान्तेविसृज्यै

के विना तथा विना भावना से ॥ १७ ॥ गोमती के जलमात्र से मनुष्य गयाश्राद्ध के फलको पाता है तदनन्तर तीर्थ में टिकेहुए वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर ॥ १८ ॥ विश्वेदेवादिकों को पूजकर पितरों का श्राद्धकरै बड़ी श्रद्धा से संयुत मनुष्य विधि से श्राद्धकरै ॥ १९ ॥ तदनन्तर सुवर्ण या चांदी को दक्षिणा देवै और सुवर्ण के शृंगों समेत व चांदीके खुरों से भूषित ॥ २० ॥ तथा रत्नसंयुत पूंछवारी और दूधयुक्त व तांबे की पीठ से संयुत व बछड़ा समेत गऊको पूजकर वस्त्र, अलंकार व भूषणों से युक्त गऊको देवै ॥ २१ ॥

मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इसलिये नियत व पवित्र पुरुष सप्तधान्य से संयुत गऊ को देवै और सीमा (हद) पर्यन्त इन ब्राह्मणों को बिदाकर ॥ २२ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्ध व कृपणों को दान देना चाहिये गोमती व गोमय का स्नान और गोदान व गोपीचन्दन ॥ २३ ॥ और गोपीनाथ का दर्शन ये पांच गकार दुर्लभ हैं इस कारण मनुष्य को गोमती के किनारे गोदान करना चाहिये ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करने पर मनुष्य कृतकृत्य होता है और जो भयंकर नरक में प्राप्त हैं व जो प्रेतयोनि में प्राप्त हैं ॥ २५ ॥ और पूर्वकर्म के फल से जो स्थावरता (वृक्षादि) योनि में प्राप्त हैं और जो कोई पितृपक्ष में हैं व जो माता के वंश में

तान् ब्राह्मणान्नियतःशुचिः ॥ २२ ॥ दीनान्धकृपणानाञ्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ गोमतीगोमयस्नानं गोपादंगोपिचन्दनम् ॥ २३ ॥ दर्शनंगोपिनाथस्य गकाराःपञ्चदुर्लभाः ॥ तस्मान्नरेणकर्तव्यं गोदानंगोमतीतटे ॥ २४ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ येगतानरकेघोरे प्रेतयोनिगतास्तथा ॥ २५ ॥ पूर्वकर्मविपाकेन स्थावरत्वंगताश्चये ॥ पितृपक्षेचयेकेचिन्मातुश्चापिकुलोद्भवाः ॥ २६ ॥ तेसर्वेमुक्तिमायान्ति गोमतीदर्शनात्कलौ ॥ कृतेनतत्रश्राद्धेन गोमत्यां द्विजसत्तमाः ॥ २७ ॥ हयमेधस्ययज्ञस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ गङ्गास्नानेनयत्पुण्यं प्रयागेपरिकीर्तितम् ॥ २८ ॥ तत्फलंसमवाप्नोति गोमत्यांश्राद्धकृन्नरः ॥ विष्णुलोकंहिगच्छन्ति पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ २९ ॥ अनेकजन्मसाहस्रं पापंयातिनसंशयः ॥ वाचायच्चकृतंपापं यत्कृतंकर्मणातथा ॥ ३० ॥ तत्सर्वंविलयंयाति गोमतीदर्शनेनहि ॥ योन

उत्पन्न हैं ॥ २६ ॥ वे सब कलियुग में गोमतीजी के दर्शन से मुक्ति को प्राप्त होते हैं व हे द्विजोत्तमो ! उस गोमती नदी के समीप श्राद्ध करने से ॥ २७ ॥ निस्सन्देह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है और प्रयाग में गंगाजी के स्नान से जो पुण्य कहागया है ॥ २८ ॥ उस फल को गोमती नदी के समीप श्राद्ध करनेवाला पुरुष पाता है और तीन कुलों में उपजे हुए पितर विष्णुलोक को जाते हैं ॥ २९ ॥ और अनेक हज़ार जन्मों में किया हुआ पाप निस्सन्देह नाश होजाता है और वचन से जो पाप किया गया है व कर्म से जो पाप किया गया है ॥ ३० ॥ वह सब पातक गोमती के दर्शन से नाश होजाता है व हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य कातिक में गोमती

में स्नान करता है ॥ ३१ ॥ उसके ऊपर लक्ष्मी समेत विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और सावधान मनुष्य प्रतिदिन अग्नि को तृप्तकरै ॥ ३२ ॥ और प्रतिदिन ब्राह्मण के लिये छः प्रकार का भोजन देना चाहिये ॥ ३३ ॥ और प्रतिदिन भक्ति में तत्पर मनुष्य कृष्णदेव को प्रणाम करै व हे द्विजेन्द्रो ! जिस किसी नियम से टिकना चाहिये ॥ ३४ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ब्राह्मण की आज्ञा से मनुष्य नियम को ग्रहणकरै और कातिक पूर्ण होने पर बुधदिन प्राप्त होनेपर ॥ ३५ ॥ तीर्थ के जल से देवेश विष्णुजी को पंचामृत से स्नान करावै और कस्तूरी से उत्पन्न व कुंकुम से मिलेहुए चन्दन को ॥ ३६ ॥ भक्ति से देवेश दामोदर विष्णुजी के लेपन करै और जल से उपजे

रःकार्त्तिकेस्नानं गोमत्यांकुरुतेद्विजाः ॥ ३१ ॥ प्रसन्नोभगवांस्तस्य लक्ष्म्यासहनसंशयः ॥ प्रत्यहंहुतभोक्तारं तर्पयेत्सु समाहितः ॥ ३२ ॥ प्रत्यहंषड्विधंदेयं भोजनञ्चद्विजातये ॥ ३३ ॥ प्रत्यहंकृष्णदेवञ्च प्रणमेद्भक्तितत्परः ॥ येनकेनच विप्रेन्द्राः स्थातव्यंनियमेनहि ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणानुज्ञयाविप्रा गृह्णीयान्नियमन्नरः ॥ सम्पूर्णेकार्त्तिकेमासे सम्प्राप्तेबुधवासरे ॥ ३५ ॥ पञ्चामृतेनदेवेशं स्नापयेत्तीर्थवारिणा ॥ श्रीखण्डंकुङ्कुमोन्मिश्रं मृगनाभिसमुद्भवम् ॥ ३६ ॥ विलेपयेच्च देवेशं भक्त्यादामोदरंहरिम् ॥ कुसुमैर्वारिसम्भूतैः फलैश्चफलपूरकैः ॥ ३७ ॥ तद्देशसम्भवैश्चान्यैः पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ नैवेद्यंरुचिरंदद्याद्विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ ३८ ॥ गीतवाद्यादिनृत्येन तथापुस्तकवाचनैः ॥ रात्रौजागरणंकार्यं स्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥ ३९ ॥ आहूयब्राह्मणान्भक्त्या भोजयेच्चस्वशक्तितः ॥ ततोरथस्थितंदेवं पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ ४० ॥ कार्त्तिकान्तेचविप्रेन्द्रा गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ स्नात्वापितॄंश्चसन्तर्प्य पूजयेच्चजनार्दनम् ॥ ४१ ॥ सुवस्त्रैर्भूषणैश्चापि सम

हुए पुष्पों तथा बिजौरा निम्बूफलों से ॥ ३७ ॥ और उस देश में उपजेहुए अन्य पुष्पों से विष्णुजी को पूजै और मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस मन्त्र से सुन्दर नैवेद्य को देवै ॥ ३८ ॥ और गान, बाजन व नृत्य से तथा पुस्तकों के बांचने से व अनेक भांति के स्तोत्रों से रात्रि में जागरण करना चाहिये ॥ ३९ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भक्ति से भोजन करावै तदनन्तर रथ पै बैठेहुए विष्णुदेवजी को पूजै ॥ ४० ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! कातिक के अन्त में गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर और पितरों को तर्पण कर विष्णुजी को पूजै ॥ ४१ ॥ और सुन्दर वस्त्रों व भूषणों से रमानाथ (विष्णु) जी को पूजकर ब्राह्मणों की आज्ञा से व्रतसम्पूर्णता को प्राप्त

होता है ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से गोमती में माघस्नान करता है उसके ऊपर स्त्री समेत गरुड़वाहन विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४३ ॥ और उत्तम ब्राह्मण के लिये तिल, सुवर्ण व चांदी देना चाहिये और दक्षिणा से संयुत व गुड़ से मिले हुए लड्डुवों को प्रतिदिन उत्तम ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ४४ ॥ व प्रतिदिन मनुष्यों को घी संयुत तिलों से हवन करना चाहिये और होम के लिये अग्नि को लावै जाड़े के लिये कभी न लावै ॥ ४५ ॥ और माघवव्रत करके जो मनुष्य भक्ति से गोमती में नहाता है व व्रत के समाप्त होने पर लाल वस्त्र और जामा व पगड़ी ॥ ४६ ॥ और पनही व कुंकुम को विशेष कर देवै और मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न

भ्यर्च्यरमापतिम् ॥ अनुज्ञयातुविप्राणां व्रतंसम्पूर्णतांव्रजेत् ॥ ४२ ॥ माघस्नानंनरोभक्त्या गोमत्यांकुरुतेतुयः ॥ वैनतेयोद्वहत्कायः सन्तुष्टःसहभार्यया ॥ ४३ ॥ तिलाहिरण्यंरजतं देयंब्राह्मणसत्तमे ॥ मोदकागुडसंमिश्राः प्रत्यहंदक्षिणान्विताः ॥ ४४ ॥ तिलैराज्ययुतैर्होमः कर्तव्यःप्रत्यहंनरैः ॥ होमार्थमानयेद्वह्निं नशीतार्थंकदाचन ॥ ४५ ॥ गोमत्यांस्नातियोभक्त्या विधायमाधवव्रतम् ॥ समाप्तौरक्तवस्त्राणि कञ्चुकोष्णीषमेवच ॥ ४६ ॥ दद्यादुपानहौचैव कुङ्कुमञ्चविशेषतः ॥ केवलंतैलपकञ्च विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ ४७ ॥ स्वामिकार्य्येमृतायेच संग्रामेरिपुसंकुले ॥ गवार्थेब्राह्मणार्थेच मृतानांयागतिःस्मृता ॥ ४८ ॥ माघस्नानेनसाप्रोक्ता गोमत्यांनात्रसंशयः ॥ सर्वदानफलंतस्य सर्वतीर्थफलंतथा ॥ ४९ ॥ माघस्नानान्नरोयाति विष्णुलोकंसनातनम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति समभ्यर्च्यजनार्द्दनम् ॥ ५० ॥ माघंसमापयेन्माघ्यां गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ब्राह्मणानुज्ञयाविप्राः सर्वंसम्पूर्णतांव्रजेत् ॥ ५१ ॥ पाणिनापिद्विजश्रेष्ठा ये

होवैं इसलिये केवल तैलपक अन्न को देवै ॥ ४७ ॥ और शत्रुवों से संयुत समर में जो स्वामी के कार्य के लिये मरे हैं और गऊ व ब्राह्मण के लिये मरेहुए पुरुषों की जो गति कहीगई है ॥ ४८ ॥ वह गोमती में माघस्नान से कहीगई है इसमें सन्देह नहीं है और उसको सब दानों का फल व सब तीर्थों का फल होता है ॥ ४९ ॥ व माघस्नान से मनुष्य सनातन विष्णुलोक को जाता है और विष्णुजी को पूजकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ५० ॥ और गोमती व समुद्र के संगम में माघी पौर्णमासी में माघ के व्रत को समाप्त करै हे ब्राह्मणो ! ब्राह्मण की आज्ञा से सब सम्पूर्णता को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिन मनुष्यों ने

हाथ से गोमती के जल में नहाया है वे चक्रपाणिजी की प्रसन्नता से यज्ञकर्ताओं की गति को पाते हैं ॥ ५२ ॥ और ब्रह्मा व शिवजी के स्थान से ऊपर जो चक्रपाणि विष्णुजी का स्थान है वह कृष्णजी के समीप गोमती में नहाने से कहागया है ॥ ५३ ॥ और मित्रद्रोह में जो पाप होता है व गुरुघाती मनुष्य को जो पाप होता है उस पाप को वह पाता है जोकि यात्रा का विघ्न करता है ॥ ५४ ॥ ब्राह्मण के धन को हरनेवाले को जो पाप होते हैं व देवता के धन को हरनेवाले को जो पाप होते हैं वे गोमती में नहाने से शुद्ध होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५५ ॥ डरेहुए प्राणी को अभय देने से मनुष्य जिस पुण्य को पाता है उस पुण्य को गोमती के जलके संगम से

स्नातागोमतीजले ॥ यज्विनाञ्चगतिंयान्ति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मरुद्रपदादूर्ध्वं यत्पदञ्चक्रपाणिनः ॥ स्नानमात्रेणतत्प्रोक्तं गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ ५३ ॥ मित्रद्रोहेचयत्पापं यत्पापंगुरुघातिनः ॥ तत्पापंसमवाप्नोति यात्राविघ्नङ्करोतियः ॥ ५४ ॥ ब्रह्मस्वहारिणःपापास्तथादेवस्वहारिणः ॥ स्नानमात्रेणशुध्यन्ति गोमत्यान्नात्रसंशयः ॥ ५५ ॥ भीताभयप्रदानेन यत्पुण्यंलभतेनरः ॥ तत्प्राप्नोतिनसन्देहो गोमतीनीरसङ्गमात् ॥ ५६ ॥ कृतकृत्योभवेद्विप्रा ऋणान्मुच्येतपैतृकात् ॥ वाचाकृतञ्चमनसा कर्मणासमुपार्जितम् ॥ ५७ ॥ तत्सर्वंनश्यतेपापं गोमतीनीरसङ्गमात् ॥ कृतकृत्योभवेद्विप्रा ऋणान्मुच्येतपैतृकात् ॥ ५८ ॥ वनमालीचतुर्बाहुर्दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ यातिविष्णुलयंविप्रा अपुनर्भवलक्षणम् ॥ ५९ ॥ गोमतीस्नानमात्रेण शुद्ध्यतेत्रनसंशयः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येगोमतीमाहात्म्यंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

निस्सन्देह पाता है ॥ ५६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! कृतकृत्य होजाता है और पितरों के ऋण से छूट जाता है व वाणी से और मन से कियाहुआ व कर्म से इकट्ठा किया जो पाप है ॥ ५७ ॥ वह सब पातक गोमती के जल के संगम से नाश होजाता है व हे ब्राह्मणो ! कृतकृत्य होता है और पितरों के ऋण से छूट जाता है ॥ ५८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! वनमाली तथा चतुर्भुज व दिव्य सुगन्धों को लेपन किये हुए वह पुरुष अपुनर्जन्म लक्षणवाले विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ ५९ ॥ व गोमती में नहानेही से शुद्ध होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोमतीमाहात्म्यंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दो० । चक्रतीर्थ में न्हाय जिमि नर पावत फलभूरि। सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित सुखमूरि ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर चक्रतीर्थ से संयुत समुद्र के समीप जावै जहां कि चक्र से संयुत व मुक्तिदायक पत्थर देख पड़ते हैं ॥ १ ॥ कि जिनको गले में धारने से व सदैव यकटक नेत्रों से विष्णुजी को देखने से मनुष्य पूजित होकर जगदीश कृष्णजी को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ जहां साक्षात् कृष्णभगवान् दृष्टि से देखेगये हैं वहीं पर समस्त पातकों का विनाशक चक्रनामक विष्णु जी का उत्तमतीर्थ है ॥ ३ ॥ और जो स्थावर जंगम समेत समस्त संसार में प्रसिद्ध है व जो प्रयाग से अधिक है और जो अस्थि डालने से मुक्तिदायक है ॥ ४ ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठा रथाङ्गाढ्यंमहोदधिम् ॥ चक्राङ्किताशिलायत्र दृश्यन्तमुक्तिदायिकाः ॥ १ ॥ यैःपूजितोजगन्नाथं कृष्णंयातिगलेधृतैः ॥ सदानेत्रैरनिमिषैर्वीक्षितेचजनार्द्दने ॥ २ ॥ यत्रैवसाक्षाद्भगवान् कृष्णो दृष्ट्यावलोकितः ॥ तत्रैवसर्वपापघ्नं चक्राख्यंपरमंहरेः ॥ ३ ॥ यच्चप्रसिद्धंसकले त्रैलोक्येसचराचरे ॥ प्रयागादधिकं यच्च मुक्तिदंत्वस्थिपातने ॥ ४ ॥ सुरैरपिहिपूज्यन्ते यत्राङ्गानिमनीषिणाम् ॥ अङ्कितानांहिचक्रेण षण्मासैर्नात्रसं शयः ॥ ५ ॥ यद्दृष्ट्वामुच्यतेपापात्प्रसङ्गेनापिमानवः ॥ तत्तीर्थंसर्वतीर्थानां प्रवरंपावनंतथा ॥ ६ ॥ तत्रगत्वाद्द्विजश्रेष्ठाः प्रक्षाल्यचरणौमुदा ॥ करावाचम्यचपुनःप्रणमेद्दण्डवत्ततः ॥ ७ ॥ प्रणिपत्यगृहीत्वार्घं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥ सपुष्पाक्षत गन्धैश्च फलहेमसचन्दनैः ॥ ८ ॥ सम्पन्नमर्घमादाय मन्त्रमेनमुदीरयेत् ॥ प्रत्युन्मुखःसनियमः सम्मुखोवामहोदधेः ॥ ९ ॥

और जहां चक्र से चिह्नित विद्वानों के अंग छमहीने में देवताओं से भी पूजे जातेहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ व प्रसंग से भी जिसको देखकर मनुष्य पाप से छूट जाता है वह तीर्थ सब तीर्थों के मध्य में श्रेष्ठ व पवित्रकारक है ॥ ६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वहां जाकर हर्ष से चरणों व हाथों को धोकर आचमन कर फिर दंडवत् प्रणाम करै ॥ ७ ॥ और प्रणाम करके पंचरत्नों से संयुत अर्घ को लेकर पुष्पों व अक्षतों तथा गंध समेत व फल, सुवर्ण और चन्दन से ॥ ८ ॥ संयुत अर्घ को लेकर नियम संयुत मनुष्य समुद्र के पश्चात् या सन्मुख होकर इस मन्त्र को कहै ॥ ९ ॥ कि हे अव्यय, विष्णुचक्रनामक ! विष्णुरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है मुझसे दिये हुए अर्घ्य को

ग्रहण कीजिये और सब कामनाओं के दायक होवो ॥ १० ॥ और अग्नि तुम्हारा उत्पत्तिस्थान है व यज्ञ शरीर है और विष्णु के जीव को तुम धारनेवाले हो और मोक्ष का साधन हो हे पाण्डव ! इस वाक्य को कहता हुआ पुरुष नदियों के पति समुद्र में स्नान करै ॥ ११ ॥ व हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! जल समेत मिट्टी को स्पर्श कर व उसको मस्तक से धारण कर ॐकारपूर्वक नहाकर ॥ १२ ॥ क्रमपूर्वक देवताओं, पितरों व मनुष्यों को तर्पणकर भक्ति से विष्णु व शिवजी को पूजकर ॥ १३ ॥ भलीभांति हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल होता है हे द्विजोत्तमो ! चक्रतीर्थ में नहाने से वह कहागया है ॥ १४ ॥ तदनन्तर श्रद्धा संयुत मनुष्य पितरों का श्राद्ध

नमोस्तुविष्णुरूपाय विष्णुचक्राख्यमव्ययम् ॥ गृहाणार्घ्यंमयादत्तं सर्वकामप्रदोभव ॥ १० ॥ अग्निश्चतेयोनि रिडाचदेहो रेतोधाविष्णोरमृतस्यनाभिः ॥ एतद्ब्रुवन्पाण्डवसत्यवाक्यं ततोवगाहेतपतिंनदीनाम् ॥ ११ ॥ मृदमालभ्यसजलां विप्राविप्रवराश्चताम् ॥ धारयित्वाचशिरसा स्नात्वाप्रणवपूर्वकम् ॥ १२ ॥ तर्प्यदेवान्पितॄंस्तत्र मनुष्यांश्चयथाक्रमात् ॥ तर्पयित्वाहरिंरुद्रं प्रार्चयित्वाचभक्तितः ॥ १३ ॥ अश्वमेधसहस्रेण सम्यगिष्टेनयत्फलम् ॥ स्नानमात्रेणतत्प्रोक्तं चक्रतीर्थेद्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥ कारयेच्चततःश्राद्धं पितॄणांश्रद्धयान्वितः ॥ विश्वेदेवान्सुवर्णेन रजतेनतथापितॄन् ॥ १५ ॥ सन्तृप्तान्भोजनेनैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ दीनेभ्यःकृपणेभ्यश्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ १६ ॥ चक्रतीर्थेतीर्थवरे विशेषेणद्विजर्षभाः ॥ रथदानम्प्रकुर्वीत प्रीणनार्थंजगत्पतेः ॥ १७ ॥ अनडुद्भिर्युतांगन्त्रीं तथासोपस्करंहयम् ॥ भूषयित्वाचविप्राय दद्याद्दक्षिणयासह ॥ १८ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ मुक्तिंप्रयान्तिपि

करै और विश्वेदेवताओं को सुवर्ण से व चांदी से पितरों को पूजकर ॥ १५ ॥ भोजनसे तृप्त ब्राह्मणों को वस्त्र, अलंकार व भूषणों से पूजै और अपनी शक्ति के अनुसार दीनों व कृपणों के लिये दान देना चाहिये ॥ १६ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! जगदीश विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये तीर्थों में उत्तम चक्रतीर्थ में विशेषकर रथ दान करै ॥ १७ ॥ और बैलों से संयुत गाड़ी व सामग्री समेत घोड़े को भूषित कर दक्षिणा समेत ब्राह्मण के लिये देवै ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करने पर मनुष्य कृतार्थ

होता है और उसके तीन पुश्तियों में उपजे हुए पितर मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ और जो प्रेतयोनि में प्राप्त हैं व जो कीटता को प्राप्त हैं और महारौरव नामक नरक में जो पचते हैं ॥ २० ॥ वे सब चक्रतीर्थ के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त होते हैं व हे द्विजोत्तमो ! श्राद्ध करने पर गयाश्राद्ध का फल होता है ॥ २१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मातृभक्तों की जो गति होती है व यज्ञ करनेवालों की जो गति होती है चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य उस गति को पाता है ॥ २२ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! चन्द्रक्षय (अमावस) प्राप्त होने पर श्राद्ध शुभ होता है और सूर्यग्रहण में विशेष कर कुरुक्षेत्र में अधिक कहागया है ॥ २३ ॥ और चन्द्रमा के ग्रहण में श्राद्ध, दान व देवताओं व पितरों

तरस्तस्यैवत्रिकुलोद्भवाः ॥ १९ ॥ प्रेतयोनिङ्गतायेच येचकीटत्वमागताः ॥ पच्यन्तेनरकेचैव महारौरवसंज्ञके ॥ २० ॥ तेसर्वेमुक्तिमायान्ति चक्रतीर्थप्रभावतः ॥ श्राद्धेकृतेद्विजश्रेष्ठा गयाश्राद्धफलम्भवेत् ॥ २१ ॥ यागतिर्मातृभक्तानां यज्विनांयागतिर्भवेत् ॥ चक्रतीर्थेद्विजश्रेष्ठास्तांस्नात्वालभतेनरः ॥ २२ ॥ श्राद्धंप्रशस्तंविप्रेन्द्राः सम्प्राप्तेचन्द्रसंक्षये ॥ सूर्यपर्वविशेषेण कुरुक्षेत्रेधिकंस्मृतम् ॥ २३ ॥ श्राद्धेदानेतथादेवपितॄणांतर्पणेकृते ॥ प्रभासेनसमम्प्रोक्तं सोमपर्वण्यसंशयम् ॥ २४ ॥ सर्वदापावनंविप्राश्चक्रतीर्थंनसंशयः ॥ यस्तुश्राद्धम्प्रकुर्वीत यात्रायामागतोनरः ॥ २५ ॥ चक्राङ्किताश्चतत्रोत्थाः सम्पूज्यामानवैःसदा ॥ यैःपूजितैश्चविप्रेन्द्रा विष्णुसान्निध्यतांव्रजेत् ॥ २६ ॥ वाचाकृतञ्चमनसा कर्मणासमुपार्जितम् ॥ स्नानमात्रेणतत्सर्वं नश्यतेनात्रसंशयः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येचक्रतीर्थमाहात्म्यंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

का तर्पण करने पर प्रभास के समान कहा गया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणो ! चक्रतीर्थ सदैव पवित्रकारक है इसमें सन्देह नहीं है और यात्रा में आया हुआ जो मनुष्य श्राद्ध करता है वह उत्तम फल को पाता है ॥ २५ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! वहां उपजे हुए चक्र से चिह्नित शिला सदैव मनुष्यों से पूजने योग्य हैं कि जिनके पूजने से मनुष्य विष्णुजी की समीपता को जाता है ॥ २६ ॥ और वचन व मनसे जो पाप कियागया है तथा जो कर्म से इकट्ठा किया गया है वह सब चक्रतीर्थ में नहाने से नाश होजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचक्रतीर्थमाहात्म्यंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दो० । यथा गोमती अरु समुद कर है अतुल प्रभाव । सो अठवें अध्याय में बरन्यो चरित सुहाव ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुमलोग गंगा, यमुना व सरस्वती को मत जावो किन्तु उस गोमती व समुद्र के संगम में जावो ॥ १ ॥ जहां कि खेलही से निस्सन्देह सब मनोरथ मिलते हैं व हे द्विजोत्तमो ! जहां समुद्र के साथ गोमती क्रीड़ा करती है ॥ २ ॥ जहां कहीं पापनाशक गोमती का किनारा मिलता है वहां समुद्र से मिला हुआ वह महापातकों का नाशक है ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जहा गोमती समुद्र से मिली है वह कलिकाल में मुक्ति का द्वार कहागया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ गंगा व समुद्र के संगम में मनुष्यों को जो फल

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ मागच्छतसुरनदीं कालिन्दींमासरस्वतीम् ॥ ततोयातद्विजश्रेष्ठा गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ १ ॥ प्राप्य न्तेहेलयायत्र सर्वेकामानसंशयः ॥ गोमतीक्रीडतेयत्र सागरेणद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ पापघ्नंगोमतीतीरं प्राप्यतेयत्रतत्र च ॥ सागरेणचसंमिश्रं महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥ गोमतीसङ्गतायत्र सागरेणद्विजोत्तमाः ॥ मुक्तिद्वारंतुतत्प्रोक्तं कलि कालेनसंशयः ॥ ४ ॥ यत्पुण्यंलभ्यतेनॄणां गङ्गायाःसागरस्यच ॥ सङ्गमेनतदाप्नोति गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ५ ॥ यत्पुण्यं लभतेस्नात्वा सिन्धुसागरसङ्गमे ॥ गोमत्युदधियोगेच तत्फलंलभतेनरः ॥ ६ ॥ वचसामनसाचैव कर्मणायदुपार्जि तम् ॥ पापंप्रणश्यतेसर्वं गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ७ ॥ नमस्कृत्यचतोयेशं गोमतींचसरिद्वराम् ॥ अर्घंदद्याद्विधानेन कृ त्वाचकरयोःकुशान् ॥ ८ ॥ मन्त्रेणानेनविप्रेन्द्रा दद्यादर्घंविधानतः ॥ ब्राह्मणैःसहसङ्गत्य सदातत्तीर्थवासिभिः ॥ ९ ॥ भक्तयाचार्घम्प्रदास्यामि देवायपरमात्मने ॥ त्राहिमांनरकाद्घोरान्नमस्तेबुद्धिरूपिणे ॥ १० ॥ तीर्थराजनमस्तुभ्यं

मिलता है उस फल को मनुष्य गोमती व समुद्र के संगम में पाता है ॥ ५ ॥ और सिन्धुनदी व समुद्र के संगम में नहाकर मनुष्य जिस पुण्य को पाता है उस फल को मनुष्य गोमती व समुद्र के संगम में पाता है ॥ ६ ॥ और वचन, मन व कर्म से जो पाप इकट्ठा कियागया है वह सब पाप गोमती व समुद्र के संगम में नाश होजाता है ॥ ७ ॥ समुद्र व उत्तम नदी गोमती को प्रणाम कर दोनों हाथों में कुशों को करके विधि से अर्घ को देवै ॥ ८ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! सदैव उस तीर्थवासी ब्राह्मणों के साथ जाकर विधि से इस मन्त्र से अर्घ को देवै ॥ ९ ॥ कि परमात्मादेव के लिये मैं भक्ति से अर्घ को देता हूं घोरनरक से मेरी रक्षा कीजिये बुद्धिरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १० ॥

हे महार्णव, रत्नाकर, तीर्थराज, देव ! तुम्हारे लिये नमस्कार है गोमती समेत तुम अर्घ को ग्रहण करो ॥ ११ ॥ और अर्घ देकर शिखा को बांधकर जलशायी विष्णुजी को स्मरण कर पूर्वमुख व पश्चिममुख होकर स्नान करै ॥ १२ ॥ व बड़ी भक्ति से नहाकर तदनन्तर पितरों को तर्पण करै और विश्वेदेवादिकों को पूजकर पितरों का श्राद्धकरै ॥ १३ ॥ और विष्णुर्मे प्रीयतां इस मन्त्र से यथोक्त दक्षिणा देवै व हे द्विजोत्तमो ! सुवर्ण को विशेषकर देवै ॥ १४ ॥ व स्त्री पुरुषों को वसन देवै और कंचुकी व पगड़ी को इस मन्त्र से देवै कि लक्ष्मी समेत जगदीश विष्णुजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवैं ॥ १५ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! यदि अपना कल्याण चाहै तो

रत्नाकरमहार्णव ॥ गोमत्यासहितोदेव गृहाणार्घंनमोस्तुते ॥ ११ ॥ दत्त्वार्घञ्चशिखांबद्ध्वा संस्मृत्यजलशायिनम् ॥ कुर्यात्स्नानंप्राङ्मुखःसन् पुनःप्रत्यङ्मुखस्तथा ॥ १२ ॥ स्नात्वाचपरयाभक्त्या पितॄन्सन्तर्पयेत्ततः ॥ विश्वेदेवादिसम्पूज्य पितृश्राद्धंसमाचरेत् ॥ १३ ॥ यथोक्तंदक्षिणांदद्याद् विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ विशेषतश्चदद्याद्वै सुवर्णंद्विजसत्तमाः ॥ १४ ॥ दम्पत्योर्वाससीचैव कञ्चुकोष्णीषमेवच ॥ लक्ष्म्यासहजगन्नाथो विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ १५ ॥ महादानानिसर्वाणि गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ देयानिवैद्विजश्रेष्ठा यदीच्छेत्क्षेममात्मनः ॥ १६ ॥ यस्तुलापुरुषंदद्याद्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ सप्तद्वीपपतिर्भूत्वा विष्णुलोकेमहीयते ॥ १७ ॥ आत्मानन्तोलयेद्यस्तु सुवर्णरजतेनवा ॥ वस्त्रैर्वाकुङ्कुमैर्वापि फलैर्वाचतथारसैः ॥ १८ ॥ भुक्त्वाभोगान्सुविपुलांस्तथाकामान्मनोहरान् ॥ सम्पूज्यमानस्त्रिदशैर्यातिविष्णुलयन्नरः ॥ १९ ॥ हिरण्यदानंकृत्वाच वाजपेयंतथैवच ॥ गोमतीसङ्गमेस्नात्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २० ॥ भूमिदानञ्च

गोमती व समुद्र के संगम में सब महादानों को देवै ॥ १६ ॥ और गोमती व समुद्र के संगम में जो तुलापुरुष को देता है वह सातो द्वीपों का स्वामी होकर विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १७ ॥ और जो सुवर्ण व चांदी से अपना को तोलता है या वस्त्र, कुंकुम, फल व रसों से तोलता है ॥ १८ ॥ वह मनुष्य बहुत सुखों व सुन्दर कामों को भोग कर देवताओं से पूजित होता हुआ विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ १९ ॥ और सुवर्णदान व वाजपेय यज्ञ करके और गोमती के संगम में नहाकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ २० ॥ और गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर पवित्र होता हुआ जो भूमिदान देता है उससे अधिक धन्य

नहीं है ॥ २१ ॥ और गोमती के संगम में नहाकर जो कन्यादान देताहै या विद्यादान देता है वह मनुष्य ब्रह्मस्थान को जाता है ॥ २२ ॥ और जो सुवर्ण की गऊ व घी की गऊ को देता है व ब्रह्माण्ड का दान देता है उसको अमित पुण्य होता है ॥ २३ ॥ अथवा तिलकी गऊ व जल की गऊ को जो गोमती व समुद्र के संगम में देता है वह उत्तम स्थान को पाता है ॥ २४ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! गोमती और समुद्र के संगम में सब युगादिक तिथियों में नहाकर उत्तम स्थान को जाता है और पंचका व अष्टका तिथियों में ॥ २५ ॥ और वैधृति, व्यतीपात व गजच्छाया, छठि, अमावस और एकादशी, अष्टमी व द्वादशी तिथियों में ॥ २६ ॥ गोमती के संगम में नहाकर

योदद्याद्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ सङ्गमेचशुचिःस्नात्वा तस्माद्धन्यतरोनहि ॥ २१ ॥ कन्यादानञ्चयोदद्याद्विद्यादानमथापिवा ॥ गोमत्याःसङ्गमेस्नात्वा यातिब्रह्मपदन्नरः ॥ २२ ॥ योदद्यात्स्वर्णधेनुंहि घृतधेनुमथापिवा ॥ ब्रह्माण्डदानमथवा तस्यपुण्यमनन्तकम् ॥ २३ ॥ तथावैतिलधेनुञ्च नीरधेनुमथापिवा ॥ सयातिपरमंस्थानं गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ २४ ॥ युगादिषुचसर्वासु गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ पञ्चकासुद्विजश्रेष्ठास्तथाचैवाष्टकासुच ॥ २५ ॥ वैधृतौचव्यतीपाते छायायांकुञ्जरस्यच ॥ षष्ठ्याञ्चवैअमावस्यां रुद्राहिद्वादशीषुच ॥ २६ ॥ गोमत्याःसङ्गमेस्नात्वा दद्याद्दानंस्वशक्तितः ॥ निर्मलंलोकमाप्नोति यत्रगत्वानशोचति ॥ २७ ॥ श्राद्धपक्षेत्वमावस्यां गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ हेलयाप्राप्यतेपुण्यं गोमतीचक्रतीर्थयोः ॥ २८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अमावस्यांद्विजोत्तमाः ॥ श्राद्धंहिपितृपक्षान्ते कार्यंगोमतिसङ्गमे ॥ २९ ॥ यद्यदश्रोत्रियंश्राद्धं यद्यदापहतंभवेत् ॥ पक्षश्राद्धकृतम्पुण्यं दिनैकेनलभेन्नरः ॥ ३० ॥ श्रद्धाहीनंमन्त्रहीनं पात्रहीनमथापि

मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार दान देवै तो वह निर्मल लोक को पाता है जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ २७ ॥ और श्राद्धपक्ष व अमावस में गोमती तथा समुद्र के संगम में नहाकर जो पुण्य मिलता है वह हेलाही से गोमती व चक्रतीर्थ में मिलता है ॥ २८ ॥ उस कारण हे द्विजोत्तमो ! पितृपक्ष के अन्त में अमावस तिथि में सब यत्न से गोमती व समुद्र के संगम में श्राद्धकरै ॥ २९ ॥ क्योंकि जो जो अश्रोत्रिय श्राद्ध होता है व जो जो अपहत श्राद्ध होता है उस सबको व पक्ष में श्राद्ध से किये हुए पुण्य को मनुष्य एकही दिन से पाता है ॥ ३० ॥ और श्रद्धाहीन, मन्त्रहीन व पात्रहीन तथा द्रव्यरहित, समयहीन व मन की स्वस्थता से रहित

जो श्राद्ध होवै ॥ ३१ ॥ वह सब श्राद्धपक्ष में अमावस तिथि में गोमती और समुद्र के संगम के समीप परिपूर्ण होता है और पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ ३२ ॥ और गोमती, कमला व चन्द्रभागा वे तीनों नदियां उस समुद्र में प्राप्त हैं ॥ ३३ ॥ गया में पिंडदान से व प्रयाग में अस्थि डालने से जो पुण्य होता है उस पुण्य को पक्षान्त में श्राद्ध करनेवाला पुरुष पाता है ॥ ३४ ॥ यदि सब तीर्थों में हेला से स्नान चाहै तो भक्ति से गोमती व समुद्र के संगम में स्नान करै ॥ ३५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! पितृपक्ष में अमावस तिथि में श्राद्ध करने पर पितर तृप्त होते हैं इस कारण सब यत्न से वहीं श्राद्धकरै ॥ ३६ ॥ और जो बिन पुत्रवाली स्त्री होवै वह विधि से स्नान

वा ॥ द्रव्यहीनङ्कालहीनं मनसःस्वास्थ्यवर्जितम् ॥ ३१ ॥ श्राद्धपक्षेह्यमावस्यां गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ परिपूर्णम्भवेत्सर्वं पितॄणांतृप्तिरक्षया ॥ ३२ ॥ गोमतीकमलाचैव चन्द्रभागातथैवच ॥ तिस्रस्तावैगतानद्यस्तत्रैववरुणालयम् ॥ ३३ ॥ गयायांपिण्डदानेच प्रयागेह्यस्थिपातने ॥ तत्पुण्यंसमवाप्नोति पक्षान्तेश्राद्धकृन्नरः ॥ ३४ ॥ यदीच्छेत्सर्वतीर्थेषु हेलया चाभिषेचनम् ॥ स्नानंकुर्वीतभक्त्यावै गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ३५ ॥ श्राद्धेकृतेत्वमावस्यां पितृपक्षेचवैद्विजाः ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंतत्रैवकारयेत् ॥ ३६ ॥ अपुत्राचैवयानारी स्नानंकुर्याद्विधानतः ॥ मृतपुत्रातथाविप्राः काकवन्ध्यातु याभवेत् ॥ ३७ ॥ दोषैःप्रमुच्यतेसर्वैर्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ दर्शनादेवपापस्य क्षयोभवतिवैद्विजाः ॥ ३८ ॥ प्रयाणेनतु सन्तुष्टिर्मुक्तिश्चैवावगाहने ॥ श्राद्धेकृतेपितॄणान्तु तृप्तिर्भवतिशाश्वती ॥ ३९ ॥ दानेमनोरथावाप्तिर्भवतेनात्रसंशयः ॥ कृतकृत्यास्तुतेधन्या यैःकृतंपितृतर्पणम् ॥ ४० ॥ श्राद्धञ्चऋषिशार्दूला गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ पितृपक्षेतुयेकेचिद्येच

करै व हे ब्राह्मणो ! मृतपुत्रा व काकवन्ध्या जो स्त्री होवै ॥ ३७ ॥ वह गोमती और समुद्र के संगम में नहाकर सब दोषों से छूट जाती है व हे ब्राह्मणो ! उसके दर्शनही से पाप का नाश होता है ॥ ३८ ॥ यात्रा से प्रसन्नता व स्नान से मुक्ति और श्राद्ध करने पर पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ ३९ ॥ और दान से मनोरथ की प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है और जिन्हों ने पितरों का तर्पण किया है वे कृतकृत्य हैं ॥ ४० ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठो ! जिन्हों ने गोमती व समुद्र के संगम में

श्राद्ध किया है उनके जो पितृपक्ष में हैं व जो माता के वंश में उत्पन्न हैं ॥ ४१ ॥ वैसेही जो श्वशुर के पक्ष में हैं और अन्य जो मित्र व बान्धव हैं ॥ ४२ ॥ व जो तिर्यग्योनि में प्राप्त हैं और जो कीटता को प्राप्त हैं वे सब नहाने ही से मुक्ति को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ फिर गोमती के संगम में श्राद्ध व दानों को क्या कहना है क्योंकि वहां श्राद्ध व दान करके मनुष्य मुक्ति को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ और श्रवण नक्षत्र व द्वादशी के योग में गोमती और समुद्र के संगम में नहाकर वामनजी को पूजकर मनुष्य उत्तम लोक को पाता है ॥ ४५ ॥ सब तीर्थों को छोड़कर गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर व श्राद्ध

मातृकुलोद्भवाः ॥ ४१ ॥ तथाश्वशुरपक्षेच तथान्येमित्रबान्धवाः ॥ ४२ ॥ तिर्यग्योनिगतायेच येचकीटत्वमागताः ॥ स्नानमात्रेणतेसर्वे मुक्तियान्तिनसंशयः ॥ ४३ ॥ किम्पुनःश्राद्धदानानि गोमतीसङ्गमेनच ॥ कृत्वामुक्तिमवाप्नोति मानवोनात्रसंशयः ॥ ४४ ॥ श्रावणद्वादशीयोगे गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ परमंलोकमाप्नोति समभ्यर्च्यतुवामनम् ॥ ४५ ॥ सन्त्यज्यसर्वतीर्थानि गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ स्नानंकृत्वातथाश्राद्धं कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ ४६ ॥ सम्यक्स्नात्वानरोयस्तु पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ पीताम्बरधरोभूत्वा दिव्याभरणभूषितः ॥ ४७ ॥ चतुर्भुजधरश्चैव वनमालाविभूषितः ॥ सेव्यमानःसुरस्त्रीभिर्विमानकृतकेतनः ॥ ४८ ॥ संस्तूयमानोऋषिभिर्यातिविष्णुलयन्नरः ॥ गोमतीसङ्गमेस्नात्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येसमुद्रगोमतीमाहात्म्यंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥

कर मनुष्य कृतकृत्य होता है ॥ ४६ ॥ व जो मनुष्य भलीभांति नहाकर विष्णुजी को पूजता है वह पीताम्बरधारी व दिव्य आभूषणों से भूषित होकर ॥ ४७ ॥ चतुर्भुजधारी व वनमाला से भूषित होकर देवाङ्गनाओं से सेवित व विमान पै बैठकर ॥ ४८ ॥ ऋषियों से भलीभांति स्तुति किया जाता हुआ मनुष्य विष्णुजी के स्थान को जाता है और गोमती के संगम में नहाकर मनुष्य कृतकृत्य होता है ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसमुद्रगोमतीमाहात्म्यंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो रुक्मिणीकुण्ड अस तीरथ यथा ललाम । सोइ नवम अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! तदनन्तर बहुतही प्रसिद्ध सात कुण्डों को जावै जोकि सब पापों को नाश करनेवाले व ऋद्धि, वृद्धि को बढ़ानेवाले हैं ॥ १ ॥ और जब वे आराधन किये गये तब मुनियों से स्तुति किये जातेहुए जगदीश विष्णुजी लक्ष्मी समेत प्रकट हुए ॥ २ ॥ तब द्विजोत्तमों ने विष्णुजी के लिये पूजन किया और बाई ओर बैठीहुई लक्ष्मीजी को नहवाने के लिये ये सनकादिक सातों ब्रह्मा के मानसी पुत्र द्विजलोग उद्यत हुए और समुद्र से उपजे अलग २ कुण्डों को करके उन्होंने स्नान कराया ॥ ३ । ४ ॥ उसी कारण हे सत्तमो ! देवीजी

श्रीप्रह्लाद उवाच॥ ततोगच्छेत्सुविप्रेन्द्राः सप्तकुण्डान्सुविश्रुतान् ॥ सर्वपापप्रशमनान् ऋद्धिवृद्धिविवर्द्धनान् ॥ १ ॥ आराधितःसचयदा हरिराविर्बभूवह ॥ संस्तूयमानोमुनिभिर्लक्ष्म्यासहजगत्पतिः ॥ २ ॥ अर्हणाञ्चतदाचक्रुर्हरयेद्विज सत्तमाः ॥ वामपार्श्वेस्थितांपद्मामभिषेक्तुंसमुद्यताः ॥ ३ ॥ सनकाद्याब्रह्मसुताः सप्तैतेमानसाद्विजाः ॥ पृथक्पृथग् ह्रदान्कृत्वा सिषिचुःसागरोद्भवान् ॥ ४ ॥ ततोलक्ष्मीह्रदाप्रोक्तो देव्यानाम्नैवसत्तमाः ॥ प्राप्तेचद्वापरस्यान्ते रुक्मिणी संश्रयेनच ॥ ५ ॥ रुक्मिणीह्रदमित्येतत् कलौख्यातम्भविष्यति ॥ भृगुणासेवितंयस्माद् भृगुतीर्थमितिस्मृतम् ॥ ६ ॥ तस्मिन्गत्वामहाभागाः प्रक्षाल्यचरणौमुदा ॥ आचम्यचकुशान्गृह्य प्राङ्मुखोनियतःशुचिः ॥ ७ ॥ सम्पूर्णंचार्घमादाय फलपुष्पाक्षतादिभिः ॥ रजतेनशिरःकृत्वा मन्त्रमेतन्मुदीरयेत् ॥ ८ ॥ भक्त्यात्वर्घंप्रदास्यामि ह्रदेरुक्मिणिसंज्ञिते ॥ सर्वपापप्रणाशाय रुक्मिणीप्रीणनायच ॥ ९ ॥ स्नानंकुर्यात्ततोविप्राः कृत्वाशिरसिमार्जनम् ॥ देवान्मनुष्यान्स

के नाम से लक्ष्मीह्रद ऐसे नाम से कहागया और द्वापर का अन्त प्राप्त होने पर रुक्मिणीजी के आश्रय से ॥ ५ ॥ कलियुग में रुक्मिणीह्रद ऐसा यह प्रसिद्ध होगा और जिस कारण भृगुजी से सेवित हुआ इसलिये भृगुतीर्थ ऐसा कहागया ॥ ६ ॥ हे महाभागो ! उस तीर्थ में जाकर प्रसन्नता से चरणों को धोकर आचमन कर कुशों को लेकर पूर्वमुख होकर नियत व पवित्र पुरुष ॥ ७ ॥ फल, फूल व अक्षतादिकों से और चांदी से पूर्ण अर्घ को लेकर मस्तक पै करके इस मन्त्र को कहै ॥ ८ ॥ कि सब पापों के नाश के लिये व रुक्मिणीजी की प्रसन्नता के लिये मैं रुक्मिणी नामक कुण्ड में भक्ति से अर्घ को देता हूं ॥ ९ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! मस्तक में

०पु० ४७

मार्जन करके स्नानकरै इसके उपरान्त देवता, मनुष्य व पितरों को विशेषता से तर्पणकर ॥ १० ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों को बुलाकर भक्ति से श्राद्धकरै उसके उपरान्त चांदी या सुवर्ण को दक्षिणा देवै ॥ ११ ॥ व रसीले फलों को विशेषकर देना चाहिये व हे द्विजोत्तमो ! मिष्टान्न से स्त्री पुरुष को भोजन देवै ॥ १२ ॥ और रुक्मिणी प्रीयतां (रुक्मिणीजी प्रसन्न होवै) इस मन्त्र से पितृपंक्तियों को पूजकर व शक्ति से अन्यस्त्रियों को चोली व लाल वस्त्रों से पूजै ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करने पर मनुष्य कृतकृत्य होता है और सब कामनाओं को पाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ १४ ॥ और उसके घरमें सदैव निस्सन्देह लक्ष्मी बसती है व लक्ष्मी उसके

न्तर्प्य पितॄनथविशेषतः ॥ १० ॥ श्राद्धंततःप्रकुर्वीत विप्रानाहूयभक्तितः ॥ दक्षिणाञ्चततोदद्याद्रजतंरुक्ममेवच ॥ ११ ॥ विशेषतःप्रदेयानि फलानिरसवन्तिच ॥ दम्पत्योर्भोजनंदद्यान्मिष्टान्नेनाद्विजर्षभाः ॥ १२ ॥ पितृपङ्क्तीश्चसम्पूज्य स्त्रियश्चान्याश्चशक्तितः ॥ कञ्चुकैरक्तवस्त्रैश्च रुक्मिणीप्रीयतामिति ॥ १३ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकञ्चगच्छति ॥ १४ ॥ वसतेचसदागेहे लक्ष्मीस्तस्यनसंशयः ॥ परमंसुखमाप्नोति लक्ष्मीस्तस्यप्रसीदति ॥ १५ ॥ हीनसत्त्वोनचभवेन्नभवेत्परयाचकः ॥ आद्योभवतिसर्वत्र यःस्नातिरुक्मिणीह्रदे ॥ १६ ॥ पुनरागमनंनस्यात्संसारभ्रमणंतथा ॥ दुःखशोकैर्विमुक्तः स्याद्यःस्नातिरुक्मिणीह्रदे ॥ १७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो महाभयविवर्जितः ॥ सर्वकामसमायुक्तो यातिविष्णुपदन्नरः ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येरुक्मिणीह्रदवर्णनन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऊपर प्रसन्न होती है और वह बहुत सुख को पाता है ॥ १५ ॥ और जो रुक्मिणीकुण्ड में नहाता है वह हीनबल व दूसरे से याचना करनेवाला नहीं होता है और सब कहीं श्रेष्ठ होता है ॥ १६ ॥ व फिर आगमन नहीं होता है और संसार में भ्रमण नहीं होता है और जो रुक्मिणीकुण्ड में नहाता है वह दुःख व शोकों से छूटजाता है ॥ १७ ॥ और सब पापों से छूटाहुआ व महाभय से रहित तथा सब कामनाओं से संयुत वह मनुष्य विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुक्मिणीह्रदवर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यथा द्वारकापुरी ढिग भयो तीर्थ कृकलास । सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित सहुलास ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! तदनन्तर कृकलास ऐसे प्रसिद्ध अति उत्तम व पापविनाशक नृगतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ जहां कि गिरगट के शरीर को धारनेवाले उन नृग राजा ने कृष्णजी के साथ समागम कर उत्तम गति को पाया है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि यह नृग नामक राजा कौन है व कैसे कृष्णजी के साथ समागम को प्राप्त हुआ है और किस कर्म से गिरगट हुआ है उसको विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! नृग नामक राजा सब पृथ्वी में अधिक बलवान् था और बुद्धिमान्, लक्ष्मीवान्, चतुर, शोभावान् व

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेत्सुविप्रेन्द्रास्तीर्थम्पापप्रणाशनम् ॥ कृकलासमितिख्यातं नृगतीर्थमनुत्तमम् ॥ १ ॥ नृगोयत्रमहीपालः कृकलासवपुर्द्धरः ॥ कृष्णेनसहसङ्गत्य सम्प्रापपरमांगतिम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नृगोनामनृपः कोयं कथंकृष्णेनसङ्गतः ॥ कर्मणाकृकलासत्वं केनतद्वदविस्तरात् ॥ ३ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नृगोनामनृपोविप्राः सर्वभूमौबलाधिकः ॥ बुद्धिमानृद्धिमान्दक्षः श्रीमान्सर्वगुणान्वितः ॥ ४ ॥ अनेकशतसाहस्रा भूमिपालाश्चतद्वशे ॥ हस्त्यश्वरथसंयोधपत्तिभिर्बहुभिर्वृतम् ॥ ५ ॥ सैन्यञ्चतस्यनृपतेः कोशश्चैवाक्षयंतथा ॥ सनित्यंगुरुभक्तश्च देवताराधने रतः ॥ ६ ॥ महादानानिविप्रेन्द्रा ददात्यनुदिनंनृपः ॥ शश्वत्सगोसहस्रन्तु प्रददौनृपसत्तमः ॥ ७ ॥ प्रक्षाल्यचरणौ भक्त्या उपवेश्यासनेशुभे ॥ परिधाप्यशुभेक्षौमे सुगन्धेनोपलिप्यच ॥ ८ ॥ पुष्पमालाभिरापूज्य धूपेनापिसुगन्धिना ॥ ददौदक्षिणयासार्द्धं प्रतिविप्रायगांतथा ॥ ९ ॥ ताम्बूलसहितांचात्र विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ एवंप्रदद

सब गुणों से संयुत था ॥ ४ ॥ और अनेकों सैकड़ों व हज़ार राजा उसके वश में थे और हाथी, घोड़ा, रथ व पैदल योधाओं से घिरी हुई ॥ ५ ॥ सेना उस राजा के थी व अक्षयकोष (खज़ाना) था और वह सदैव गुरुभक्त व देवताओं के आराधन में तत्पर था ॥ ६ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! वह राजा प्रतिदिन महादानों को देता था और सदैव उस श्रेष्ठ राजा ने हजार गौवों को दिया ॥ ७ ॥ भक्ति से चरणों को धोकर उत्तम आसन पै बिठाकर और उत्तम दो रेशमी वस्त्रों को पहनाकर व सुगन्ध लगा कर ॥ ८ ॥ फूलों की मालाओं से पूजकर व सुगन्धित धूप से पूजनकर प्रत्येक ब्राह्मण के लिये दक्षिणा समेत गऊ को वह देता था ॥ ९ ॥ व विष्णुजी मेरे ऊपर

प्रसन्नहोवैं इस मंत्र से ताम्बूल समेत गऊको देता था हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार देते व यज्ञों से पूजते तथा सुखों को भोगते हुए उस राजा का समय व्यतीतहुआ और एक समय तीक्ष्ण व्रतवाले द्विजोत्तम जैमुनि ॥ १० । ११ ॥ जोकि दानलेने से विमुख थे उनसे हाथोंको जोड़ेहुए स्थित राजाने श्रद्धा से यह वचन कहा ॥ १२ ॥ कि हे महाभाग, दयानिधे ! मुझको उधारिये व दया कीजिये व मेरे ऊपर दयाकर मुझ से दीहुई गऊको ग्रहण कीजिये ॥ १३ ॥ उस वचनको सुनकर उन राजाके गौरव से लज्जित ब्राह्मण ने यह कहा कि ऐसाही होवै ॥ १४ ॥ तदनन्तर राजा ने चरणों को धोकर मस्तक से धारण किया और सोने के सींगों समेत चांदी के रंगवाली

तस्तस्य यजतश्चतथामखैः ॥ १० ॥ ययौकालोद्विजश्रेष्ठा भोगांश्चैवानुभुञ्जतः ॥ एकदातुद्विजश्रेष्ठं जैमुनिंसंशितव्रतम् ॥ ११ ॥ श्रद्धयातञ्चनृपतिः प्रतिग्रहपराङ्मुखम् ॥ उवाचवाक्यंनृपतिः कृताञ्जलिपुटस्थितः ॥ १२ ॥ मामुद्धरमहाभाग कृपांकुरुकृपानिधे ॥ गृहाणगांमयादत्तां दयांकृत्वाममोपरि ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य त्वनिच्छन्नपिगौरवात् ॥ नृपस्यचाब्रवीद्विप्र एवमस्त्वतिलज्जितः ॥ १४ ॥ अवनिज्यततःपादौ शिरसाधारयन्नृपः ॥ सुवर्णशृङ्गसहितां रौप्यवर्णाञ्चविश्रुताम् ॥ १५ ॥ गांगृह्यस्वगृहम्प्राप्तो दामबद्धांसवत्सकाम् ॥ सतत्रयवसैःसार्द्धं ददौ ब्राह्मणसत्तमाः ॥ १६ ॥ सुतृप्तांयवसाचैव मध्याह्नेतृषितांतथा ॥ गृहीत्वानिर्ययौविप्रो दामबद्धांजलाशयम् ॥ १७ ॥ मार्गेराज्ञश्चसंबाधे त्रस्तासाचोष्ट्रदर्शनात् ॥ हस्तादाच्छिद्यसाधेनुर्ब्राह्मणस्यययौतदा ॥ १८ ॥ विचिन्वन्सकलामुर्वीं नतांप्रापद्विजर्षभः ॥ साययौचततोधेनुः सुमहद्राजगोधनम् ॥ १९ ॥ द्वितीयेह्निपुनर्विप्रमाहूयन्नृपसत्तमः ॥ सम्पूज्यवि

प्रसिद्ध ॥ १५ ॥ व रस्सी में बँधीहुई बछड़ा समेत गऊको लेकर जैमुनि अपने घरमें प्राप्तहुए व हे द्विजोत्तमो ! वहां उस राजाने घास समेत गऊको दिया था ॥ १६ ॥ और मध्याह्न में घास से तृप्त व प्यासी, रस्सी में बँधीहुई गऊ को लेकर जैमुनि ब्राह्मण जलाशय को गये ॥ १७ ॥ और राजा के सघन मार्ग में वह ऊंटके देखने से डरगई और उस समय वह गऊ ब्राह्मण के हाथ से छुटाकर चलीगई ॥ १८ ॥ और सब पृथ्वी में ढूंढ़तेहुए द्विजोत्तम ने उस गऊको नहीं पाया तदनन्तर वह गऊ राजा के बड़ेभारी गोधन को चलीगई ॥ १९ ॥ फिर दूसरे दिन नृपोत्तम ने ब्राह्मण को बुलाकर व भक्ति से विधिपूर्वक वस्त्र, भूषण व भोजनों

से पूजकर ॥ २० ॥ उस राजा ने विधिपूर्वक उस गऊ को सोमशर्मा ब्राह्मण के लिये दिया और वह द्विजोत्तम ब्राह्मण गऊ को लेकर धर्मज्ञ राजाकी प्रशंसा करता हुआ राजमन्दिर से निकला प्रह्लादजी बोले कि वह ब्राह्मण सब कहीं गऊ को ढूंढ़ताहुआ दुःखित हुआ ॥ २१ । २२ ॥ व उसने सोमशर्मा ब्राह्मण के पीछे जातीहुई गऊ को मार्ग में देखा व कहा कि मेरी इस गऊ को हरकर चोर की नाईं कैसे जाते हो ॥ २३ ॥ उसके वचन को सुनकर वह चोर कहने से विस्मित हुआ व बोला कि मैंने इसको राजा से पाया है और गऊ को अपने घर लिये जाता हूं ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! तुम मुझको गोहर्ता क्यों कहते हो ब्राह्मण बोला कि मैंने भी राजा से पाया था यह

धिवद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभोजनैः ॥ २० ॥ विधिवद्गांददौताञ्च सनृपःसोमशर्मणे ॥ गृहीत्वाराजभवनान्निर्ययौगांद्विजर्षभः ॥ २१ ॥ प्रशंसमानोराजानं धर्मज्ञमितिवैद्विजः ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ सचविप्रोविचिन्वानः सर्वतोगांसुदुःखितः ॥ २२ ॥ ददर्शपथिगच्छन्तीं पृष्ठतःसोमशर्मणः ॥ ममेमांचापहृत्वात्वं दस्युवद्यास्यसेकथम् ॥ २३ ॥ सतस्यवचनंश्रुत्वा विस्मितो दस्युकीर्त्तनात् ॥ राजतोथमयालब्धा गांनयामिस्वमन्दिरम् ॥ २४ ॥ गोहर्तेतिचमांकस्माद् ब्रवीषित्वंद्विजर्षभ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ मयापिराजतोलब्धा मदीयागौरसंशयम् ॥ २५ ॥ कथंनयसिविप्रत्वं मयिजीवतिमन्दिरे ॥ सोब्रवीदद्यलब्धेयं कथंमांवदसेमृषा ॥ २६ ॥ गतेह्निवैमयालब्धा बलान्नेतुंत्वमिच्छसि ॥ ममेयमितिसंक्रुद्धः सोमशर्माब्रवीद्वचः ॥ २७ ॥ प्रज्वलत्क्रोधरक्ताक्षो ममेयमितिचापरः ॥ विवदन्तौतथाविप्रौ राजद्वारमुपागतौ ॥ २८ ॥ कुर्वाणौकलहङ्घोरं त्यक्तुकामौस्वजीवितम् ॥ संक्रुद्धौब्राह्मणौदृष्ट्वा विवदन्तौपरस्परम् ॥ २९ ॥ राज्ञेनिवेदयामास द्वास्थःप्रणय

गऊ निरसन्देह मेरी है ॥ २५ ॥ व हे विप्र ! मेरे जीतेहुए तुम कैसे इसको घर लेजावोगे उसने कहा कि मैंने आज इसको पाया है तुम झूंठ क्यों कहते हो ॥ २६ ॥ बीतेहुए दिन में मैंने इसको पाया है और तुम बलसे लेजाना चाहते हो सोमशर्मा ब्राह्मण ने क्रोधित होकर यह वचन कहा कि यह गऊ मेरी है ॥ २७ ॥ और जलते हुए व क्रोध से लाल लोचनोंवाले दूसरे ब्राह्मण ने यह कहा कि यह मेरी है वैसेही झगड़ा करते हुए दोनों ब्राह्मण राजा के द्वार पै आये ॥ २८ ॥ और भयंकर झगड़ा करते हुए व अपने प्राणों को छोड़ने की इच्छावाले तथा परस्पर विवाद करते हुए क्रोधित ब्राह्मणों को देखकर ॥ २९ ॥ द्वारपालक ने विनयपूर्वक राजा से कहा कि क्रोध से

संयुत व विवाद करते हुए उन ब्राह्मणों को जानते हो ॥३०॥ क्रोध से विकल चित्तवाले जोकि तुम्हारे नगर में पैठे हैं इस प्रकार विवाद करते हुए उन तीनं रात्रितक भूँखे॥३१॥ ब्राह्मणों का राजा ने अनादर किया और राजा के ऊपर क्रोध से उन क्रोधित व समर्थ ब्राह्मणों ने राजा से वचन कहा ॥ ३२ ॥ कि जिसलिये तुम हमलोगों का अपमान करते हो और घर से नही निकलते हो व आप प्रजाओं के पालक हो व उनको अन्याय से युक्त करते हो ॥ ३३ ॥ इस कारण आप गिरगट होगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार शाप देकर उस समय दोनों ब्राह्मणों ने अन्य के लिये गऊ को दे दिया ॥ ३४ ॥ और दुःखित व खेदसंयुत वे दोनों अपने घरको जाने के लिये तैयार

पूर्वकम् ॥ अपिजानासिविप्रौतौ विवदन्तौरुषान्वितौ ॥ ३० ॥ कोपव्याकुलचेतस्कौ पुरंविवशतुस्तव ॥ एवंविवदमानौ तौ त्रिरात्रंसमुपोषितौ ॥ ३१ ॥ अवज्ञातौनृपेणाथ राजानंप्रतिक्रोधतः ॥ ऊचतुःकुपितौवाक्यं समर्थौनृपतिं प्रति ॥ ३२ ॥ अवमन्यसेयदस्मात्त्वं ननिर्गच्छसिमन्दिरात् ॥ शास्ताभवान्प्रजाश्चैव ह्यन्यायेननियोक्ष्यसि ॥ ३३ ॥ भविष्यतिभवानस्मात्कृकलासोनसंशयः ॥ एवंशप्त्वातदाविप्रावन्यस्मैददतुश्चगाम्॥ ३४ ॥ दुःखितौखेदसंयुक्तौ स्वगृहंगन्तुमुद्यतौ ॥ प्रस्थितौतौनृगोद्वारमागत्यसमुपस्थितः ॥ ३५ ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याथ कृताञ्जलिरभाषत ॥ अमोघवचनायूयन्तत्तथानतदन्यथा ॥ ३६ ॥ ममोपरिकृपांकृत्वा शापान्तमुपदिश्यताम् ॥ ३७ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सोमशर्माप्युवाचह ॥ द्वापरस्ययुगस्यान्ते भगवान्देवकीसुतः ॥ ३८ ॥ वसुदेवगृहेराजन् हरिराविर्भविष्यति ॥ तस्य संस्पर्शनादेव पापमुक्तिर्भविष्यति ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वातौतदाविप्रौ जग्मतुःस्वन्निवेशनम् ॥ ४० ॥ राजाचविविधान्भो

हुए और जाते हुए उन दोनों के समीप नृगजी द्वार पै आकर प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर दंडा की नाई प्रणाम कर हाथों को जोड़कर बोले कि तुमलोग सफल वचन हो वह वैसाही है अन्यथा नहीं है॥ ३६ ॥ मेरे ऊपर दया करके शाप का अन्त कहिये ॥ ३७ ॥ उन राजा के उस वचन को सुनकर सोमशर्मा ने कहा कि द्वापर युग के अन्त में देवकीनन्दन भगवान् ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णजी वसुदेव के घरमें प्रकट होवैंगे हे राजन्! उनके स्पर्शही करने से पाप की मुक्ति होगी ॥ ३९ ॥ यह कहकर उस समय वे दोनों ब्राह्मण अपने घर को चलेगये ॥ ४० ॥ और राजा भी अनेक प्रकार के बहुत से श्रेष्ठ सुखों को भोगकर व अनेक भांति के यज्ञों से पूजकर मृत्यु को

प्राप्तहुए ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वह राजा उत्तम धर्मराज के स्थान को गया और धर्मराजने उत्तम राजा का स्वागत से सत्कार किया ॥ ४२ ॥ व कहा कि हे विभो, राजन्! तुम पहले पुण्य या पाप जो भोगकरो हे राजन्! उसको आप शीघ्रही कहिये ॥ ४३ ॥ यम से इस प्रकार कहेहुए नृगजी उस समय गिरगट होगये तदनन्तर हज़ार वर्षतक वह गिरगट रहा ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणो! एक दिन सब यदुबालकों से खींचा हुआ वह गिरगट गरू होने के कारण उस समय नहीं चला ॥ ४५ ॥ जब वे सब खींचने के लिये समर्थ न हुए तब उन यदुकुमारों ने कृष्ण से कहा और उस समय मुसकराते हुए श्रीकृष्णजी नृग को जानकर वहां गये ॥ ४६ ॥ व जगदीश श्रीकृष्णजी ने

गान् भुक्त्वाश्रेष्ठांश्चभूरिशः ॥ इष्ट्वाचविविधैर्यज्ञैः कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ४१ ॥ ततःसगतवान्दिव्यं धर्मराजनिवेशनम् ॥ सत्कृतोधर्मराजेन स्वागतेननृपोत्तमः ॥ ४२ ॥ प्रथमंसुकृतंराजन्नथवादुष्कृतंविभो ॥ यद्भोक्ष्यसेत्वंतद्ब्रूहि शीघ्रमेवम हीपते ॥ ४३ ॥ अनुज्ञातोयमेनैव कृकलासोभवत्तदा ॥ ततोवर्षसहस्राणि कृकलासत्वमाप्तवान् ॥ ४४ ॥ एकस्मिन्दिवसे विप्राः सर्वैर्यदुकुमारकैः ॥ आकृष्यमाणःसतदा गुरुत्वान्नचचालह ॥ ४५ ॥ यदानशक्तुस्तेसर्वे त्वाचख्युस्तेकुमारकाः ॥ तदाकृष्णोनृगंमत्वा ययौतत्रस्मयन्निव ॥ ४६ ॥ पस्पर्शवामहस्तेन लीलयैवजगत्पतिः ॥ संस्पृष्टःसभगवता निर्मुक्तः शापबन्धनात् ॥ ४७ ॥ त्यक्त्वाकलेवरंराजा दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ कृताञ्जलिरुवाचेदं भक्त्यापरमयायुतः ॥ ४८ ॥ नमस्तेजगदाधार सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ सहस्रशिरसेतुभ्यं ब्रह्मणेनन्तशक्तये ॥ ४९ ॥ एवंसंस्तुवतस्तस्य भगवान् देवकीसुतः ॥ तुष्टोहंतेवरम्ब्रूहि यत्तेमनसिवर्तते ॥ ५० ॥ याहिपुण्यकृतोलोकान् दर्शनात्स्पर्शनाच्चवै ॥ एवमुक्तःस

लीलाही से बायें हाथ से स्पर्श किया और भगवान् श्रीकृष्णजी से छुवा हुआ वह शाप के बन्धन से छूटगया ॥ ४७ ॥ और शरीर को छोड़कर दिव्य गंधों को अनुलेपन किये हुए बड़ीभक्ति से संयुत राजा ने हाथों को जोड़कर यह कहा ॥ ४८ ॥ कि हे संसार के आधार! सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले आप के लिये प्रणाम है व हज़ार मस्तकोंवाले तथा अनन्त शक्तिवाले आप परब्रह्म के लिये नमस्कार है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उससे देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी बोले कि मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं जो तुम्हारे मनमें वर्त्तमान होवै उस वर को कहो ॥ ५० ॥ और दर्शन व स्पर्श करने से पुण्य से कियेहुए लोकों को जाइये श्रीकृष्णदेवजी से

इस प्रकार कहेहुए प्रसन्न रोमों वाले उस नृग राजा ने ॥ ५१ ॥ कहा कि यदि तुम प्रसन्न हो और यदि मुझ को वर देने योग्य है तो हे केशव ! यह बिल मेरे नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ ५२ ॥ व हे गोविन्दजी ! बड़ी भक्ति से इसमें नहाकर जो मनुष्य पितरों को तर्पण करै वह तुम्हारी प्रसन्नता से विष्णुलोक को जावै ॥ ५३ ॥ ऐसाही होगा यह कहकर श्रीकृष्णजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और दिव्य मालाओं को पहने व दिव्य चंदन को लगाये हुए वह राजा विमान के द्वारा ॥ ५४ ॥ देवताओं से पीछे प्रशंसित होकर विष्णुजी के मन्दिर को चलागया प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! तब से लगाकर वहां वह नृग के आश्रयवाला कूप हुआ ॥ ५५ ॥ हे

देवेन सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ५१ ॥ उवाचयदितुष्टोसि यदिदेयोवरोमम ॥ गर्तोयंममनाम्नातु ख्यातिंगच्छतुकेशव ॥ ५२ ॥ यःस्नात्वापरयाभक्त्या पितॄन्सन्तर्पयिष्यति ॥ त्वत्प्रसादेनगोविन्द विष्णुलोकंसगच्छतु ॥ ५३ ॥ एवम्भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ सचराजाविमानेन दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ ५४ ॥ जगामभवनंविष्णोर्विबुधैरनुसंस्तुतः ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तदाप्रभृतिविप्रेन्द्रास्तत्रकूपोनृगाश्रयः ॥ ५५ ॥ तत्रगत्वाद्विजश्रेष्ठा अर्घंदद्याद्विधानतः ॥ फलपुष्पाक्षतैर्युक्तं चन्दनेनचभूसुराः ॥ ५६ ॥ नमस्तेविश्वरूपाय विष्णवेपरमात्मने ॥ अर्घ्यंगृहाणदेवेश कूपेस्मिन्नृगसंज्ञके ॥ ५७ ॥ ततःस्नात्वाद्विजश्रेष्ठा मृदमालभ्यपूर्वतः ॥ सन्तर्पयेत्पितॄन्देवान् मनुष्यांश्चयथाक्रमम् ॥ ५८ ॥ ततःश्राद्धंप्रकुर्वीत पितॄणांश्रद्धयान्वितः ॥ विप्रेभ्योदक्षिणांदद्याद्विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ दीनान्धकृपणानाञ्च सदातीर्थनिवासिनाम् ॥ ५९ ॥ दद्याद्दानंस्वशक्त्याच वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ स्नानमात्रेणविप्रेन्द्रा लभेद्गोदानजम्फलम् ॥ ६० ॥

द्विजोत्तमो, ब्राह्मणो ! वहां जाकर फल, फूल, अक्षतों व चन्दन से संयुत अर्घ को देवै ॥ ५६ ॥ कि विश्वरूपी परमात्मा विष्णुजी के लिये प्रणाम है हे देवेश ! इस नृगसंज्ञक कूप में अर्घ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! पहले मिट्टी को छूकर स्नान करके क्रम से पितर, देवता व मनुष्यों को तर्पण करै ॥ ५८ ॥ तदनन्तर श्रद्धा से संयुत मनुष्य पितरों का श्राद्धकरै व मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस मन्त्रसे ब्राह्मणोंके लिये दक्षिणा देवै और सदैव तीर्थमें बसनेवाले दीन, अन्ध व कृपणों को ॥ ५९ ॥ वित्तशाठ्य से रहित पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार दान देवै व हे द्विजेन्द्रो ! स्नानमात्र से मनुष्य गोदान से उपजे हुए फल को पाता है ॥ ६० ॥

और पितरों को श्राद्ध दान से मनुष्य अन्य योनि को नहीं जाता है जिन मनुष्यों ने कृकलासतीर्थ में श्राद्ध किया है व जिसने तर्पण किया है ॥ ६१ ॥ वह मनुष्य पितरों समेत विष्णुलोक को जाता है और मनोरथ की प्राप्ति होती है व यात्रा सफल होती है ॥ ६२ ॥ व सब तीर्थके फलकी प्राप्ति को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकृकलासतीर्थमाहात्म्यंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥

दो० । विष्णुपदोद्भव तीर्थ कर है जिमि अतुल प्रभाव । सो गेरहें अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर विष्णुपद से

पितॄणांश्राद्धदानेन वियोनिंनचगच्छति ॥ कृकलासेकृतंश्राद्धं यैर्नरैस्तर्पणंकृतम् ॥६१॥ सगच्छेद्विष्णुलोकन्तु पितृभिः सहितोनरः ॥ तथामनोरथावाप्तिर्यात्रातुसफलाभवेत् ॥६२॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभतेनात्रसंशयः ॥६३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येकृकलासतीर्थमाहात्म्यन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठास्तीर्थेविष्णुपदोद्भवे ॥ यस्यदर्शनमात्रेण गङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ १ ॥ यस्योत्पत्तिर्मयापूर्वं कथिताद्विजसत्तमाः ॥ यस्यचस्मरणादेव कीर्त्तनात्पापनाशनम् ॥ २ ॥ हरिणायासमानीता रुक्मिण्यर्थेमहात्मना ॥ यस्यांगण्डूषमात्रेण हयमेधफलंलभेत् ॥३॥ विष्णोःपदेप्रसूताया वैष्णवीतिचविश्रुता ॥ तत्रगत्वामहाभागा गृहीत्वार्घ्यंविधानतः ॥ ४ ॥ इत्युच्चार्यद्विजश्रेष्ठा मृदमालभ्यपाणिना ॥ प्राङ्मुखःसंयतोभूत्वा स्नानंकृत्वाजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ देवान्पितॄन्द्विजांश्चार्च्य तर्पयेदथतांस्ततः ॥ उपहृत्योपहारांश्च त्वाहूयब्राह्मणांस्तथा ॥ ६ ॥ नमस्येत्वां

उपजेहुए तीर्थ में जावै जिसके दर्शनही से मनुष्य गंगास्नान के फलको पाता है ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पहले मैंने जिस की उत्पत्ति कही है और जिसके स्मरण व कीर्तन करने से पाप का नाश होता है ॥ २ ॥ व जिन गंगाजी को रुक्मिणी के लिये विष्णुजी लाये हैं व जिसके आचमन करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के फल को पाता है ॥ ३ ॥ विष्णुजी के चरण में उपजी हुई जो वैष्णवी ऐसी प्रसिद्ध है हे महाभागो ! वहां जाकर विधि से अर्घ को लेकर ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! यह कहकर हाथ से मिट्टी को लेकर जितेन्द्रिय मनुष्य स्नान करके पूर्वमुख बैठकर ॥ ५ ॥ देवता, पितर व ब्राह्मणों को पूजकर तदनन्तर उपहारों को लाकर व ब्राह्मणों को बुलाकर उनको तर्पण करै ॥ ६ ॥

हे विष्णुजी के चरण से उपजीहुई, भगवति ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे गंगे, देवि ! विष्णु-समेत तुम इस अर्घ को ग्रहण करो ॥ ७ ॥ और चतुर पुरुष बड़ी श्रद्धा से संयुत होकर श्राद्धकरै और सुवर्ण व चांदी की यथोक्त दक्षिणा देवै ॥ ८ ॥ व अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्ध व कृपणों के लिये दान देना चाहिये व हे द्विजोत्तमो ! सुवर्ण को विशेष कर देना चाहिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर पनही व जल के घट को ब्राह्मण के लिये देना चाहिये और लोन समेत व मिर्च और जीरा समेत दही भात देना चाहिये ॥ १० ॥ और लाल वसन व कंचुकी को रुक्मिणीजी को पहनावै और मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस मन्त्र से ब्राह्मणों की स्त्री व ब्राह्मणों को

भगवति विष्णुपादतलोद्भवे ॥ गृहाणार्घमिमंदेवि गङ्गेत्वंहरिणासह ॥ ७ ॥ श्रद्धयापरयायुक्तः श्राद्धंकुर्याद्विचक्षणः ॥ यथोक्तांदक्षिणांदद्यात्सुवर्णंरजतंतथा ॥ ८ ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ विशेषतःप्रदातव्यं सुवर्णंद्विज सत्तमाः ॥ ९ ॥ उपानहौततोदेयो जलकुम्भोद्विजातये ॥ दध्योदनंसलवणं कोलजीरकसंयुतम् ॥ १० ॥ रक्तवस्त्रंकञ्चुकीं च रुक्मिणींपरिधापयेत् ॥ विप्रपत्नीश्चविप्रांश्च विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ ११ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ पितॄणांतुयथातृप्तिर्गयाश्राद्धेनवैतथा ॥ १२ ॥ वैष्णवंलोकमायान्ति पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ भवेच्चैवश्रियायुक्तः पुत्र पौत्रसमन्वितः ॥ १३ ॥ प्रीतःसदाभवेत्तस्य रुक्मिण्यासहकेशवः ॥ यच्छतेवाञ्छितान्कामानैहिकामुष्मिकान् प्रभुः ॥ १४ ॥ एतन्माहात्म्यमतुलं विष्णोःपादोदकस्यच ॥ यःशृणोतिनरोभक्त्या सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १५ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येविष्णुपादोदकंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

पूजना चाहिये ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करनेपर मनुष्य कृतकृत्य होताहै और जिस प्रकार गयाश्राद्ध से पितरों की तृप्ति होती है वैसेही वहां होती है ॥ १२ ॥ और तीनों पुश्तियों में उपजेहुए पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं और लक्ष्मी से संयुत व पुत्र, पौत्र से युक्त होता है ॥ १३ ॥ और उसके ऊपर सदैव रुक्मिणी समेत विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और वे प्रभु इस लोक व परलोकवाले मनोरथों को देते हैं ॥ १४ ॥ विष्णुजी के चरणोदक के इस अतुल माहात्म्य को जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविष्णुपादोदकमाहात्म्यंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥

दो० । गोपिचार इमि तीर्थ जिमि भयो भूमि विख्यात । सो बरहें अध्याय में कह्यो चरित प्रख्यात ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर गोपिचार तीर्थ को जावै जिसमें भक्ति से नहाकर मनुष्य गोदान से उपजेहुए फल को पाता है ॥ १ ॥ और जिस तीर्थ में श्रावण महीने में देवताओं से घिरेहुए जगदीश विष्णुजी नहाते हैं हे द्विजोत्तमो ! द्वादशी तिथि में वहां हाथीका दान कहा गया है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे दैत्येन्द्र ! वहां गोपिसंज्ञक तीर्थ कैसे हुआ है उस को यथार्थ कहिये कि जिससे मनुष्य विष्णुजी को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ प्रह्लादजी बोले कि अमित तेजवाले महात्मा कृष्णजी ने जब भोजराज कंस को मारा और

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठा गोपिचारंततःपरम् ॥ यत्रस्नात्वानरोभक्त्या लभेद्गोदानजंफलम् ॥ १ ॥ यत्रस्नातिजगन्नाथो नभस्येदैवतैर्वृतः ॥ करिदानञ्चतत्रोक्तं द्वादश्यांद्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथन्तुतत्रदैत्येन्द्र ह्यभवद्गोपिसंज्ञकम् ॥ तीर्थंकथयतत्त्वेन येनायान्तिजनार्दनम् ॥ ३ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ हतेकंसेभोजराजे कृष्णेनामिततेजसा ॥ उग्रसेनेभिषिक्तेच मधुपुर्यांमहात्मना ॥ ४ ॥ उद्धवम्प्रेषयामास गोकुलंगोकुलप्रियम् ॥ सुहृदाम्प्रियकामार्थं गोपगोपीजनस्यच ॥ ५ ॥ सनमस्कृत्यगोविन्दं प्रययौनन्दगोकुलम् ॥ सतत्सादृश्यवेषेण वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ ६ ॥ तंदृष्ट्वादिवसस्यान्ते गोविन्दानुचरंप्रियम् ॥ उद्धवम्पूजयामास वस्त्रालङ्कारकादिभिः ॥ ७ ॥ तम्भुक्तवन्तंविश्रान्तं यशोदापुत्रवत्सला ॥ नन्दश्चबाष्पपूर्णाक्षः पप्रच्छानामयंहरेः ॥ ८ ॥ कच्चिदास्तेसुखम्पुत्रो रामःकृष्णोयदू

उग्रसेन का मथुरा में अभिषेक किया ॥ ४ ॥ तब मित्रों के प्रिय के लिये गोपी व गोपजनों के प्यारे उद्धवजी को गोकुल को प्रिय गोकुलनगर को पठाया ॥ ५ ॥ और वे उद्धवजी श्रीकृष्णजी को प्रणामकर नन्द के गोकुल को गये और वे उद्धवजी उन श्रीकृष्णजी के समान वेष से व वस्त्र, अलंकार व भूषणों से उपलक्षित थे ॥ ६ ॥ दिन के अन्त में उन प्यारे गोविन्दके अनुचर उद्धवजी को देखकर नन्दजी ने वस्त्र व अलंकारादिकों से पूजन किया ॥ ७ ॥ और आँसुवों से पूर्ण लोचनोंवाले नन्द ने व पुत्रवत्सला यशोदाजी ने उन भोजन किये व सहँतायेहुए उद्धवजी से श्रीकृष्णजी के कुशलको पूंछा ॥ ८ ॥ कि यदूत्तम श्रीकृष्ण व बलभद्रजी क्या सुख से हैं व श्रीकृष्णजी

क्या समान अवस्था वाले गोपपुत्रों का स्मरण करते हैं ॥ ९ ॥ और प्यारे देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी क्या गोकुल को आवैंगे और हमारे पुत्र श्रीकृष्णजी गोकुल को क्या दुःख के समुद्र से तारैंगे ॥ १० ॥ यह कहकर आँसुवों से पूर्ण नयनों वाली यशोदा व नन्दजी उदासीन होकर बड़े उच्चस्वर से रोते हुए पुत्र के स्नेह के वश में प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ और उद्धवजी ने उनको स्नेह संयुत व मीठे कृष्ण के सन्देशों से जिलाया व कहा कि जेठे भाई समेत उन श्रीकृष्णजी ने आप के लिये प्रणाम किया है ॥ १२ ॥ और तुम दोनों की कुशल को पूंछा है व वे दोनों कुशल से स्थित हैं ॥ १३ ॥ और दाशार्ह श्रीकृष्णस्वामी बलभद्र समेत शीघ्रही आवैंगे और

त्तमः ॥ कच्चित्स्मरतिगोविन्दो वयस्यान्गोपबालकान् ॥ ९ ॥ कच्चिदेष्यतिगोष्ठंस देवकीनन्दनःप्रियः ॥ तारयिष्यतिनःपुत्रो गोकुलंवृजिनार्णवात् ॥ १० ॥ इत्युक्त्वाबाष्पपूर्णाक्षी यशोदानन्दएवच ॥ रुदतःसुस्वरंदीनौ पुत्रस्नेहवशंगतौ ॥ ११ ॥ मधुरैःकृष्णसन्देशैः स्नेहयुक्तैरजीवयत् ॥ नमस्करोतिभवते सकृष्णश्चसहाग्रजः ॥ १२ ॥ अनामयंपृच्छतिवां तौचक्षेमेणतिष्ठतः ॥ १३ ॥ द्रुतमेष्यतिदाशार्हो रामेणसहितःप्रभुः ॥ अत्रागत्यजगन्नाथो विधास्यतिसवोहितम् ॥ १४ ॥ इत्येवंकृष्णसन्देशैः समाश्वास्यतुह्युद्धवः ॥ सुखंसुष्वापशयने नन्दाद्यैरभिवन्दितः ॥ १५ ॥ गोप्यस्तदारथंदृष्ट्वा द्वारेनन्दस्यविस्मिताः ॥ कोयंकोयमितिप्राहुः कृष्णागमनशङ्कया ॥ १६ ॥ गोपालराजस्यगृहे रथेनादित्यवर्चसा ॥ समागतोमहाबाहुः कृष्णवेषोनुगःसदा ॥ १७ ॥ परस्परंसमागत्य सर्वास्ताव्रजयोषितः ॥ विविक्तेकृष्णसन्देशं पप्रच्छुःशोककर्षिताः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ कस्मात्त्वमिहसम्प्राप्तः कथञ्चात्रत्वमागतः ॥ इत्येवमुक्त्वाता

यहां आकर वे जगदीश श्रीकृष्णजी तुम दोनों का हित करैंगे ॥ १४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजी के सन्देशों से समझाकर नन्दादिकों से प्रणाम कियेहुए उद्धवजी ने सुखपूर्वक शय्या में शयन किया ॥ १५ ॥ तब नन्द के द्वार पै रथ को देखकर गोपियां विस्मित हुईं और श्रीकृष्णजी के आने की शंका से यह बोलीं कि यह कौन है कौन है ॥ १६ ॥ सूर्यनारायणके समान तेजवान् रथ के द्वारा कृष्णवेषवाले व सदैव अनुचर महाबाहु उद्धवजी गोपालराज (नन्द) के घर में आये हैं ॥ १७ ॥ शोक से दुबली उन सब व्रजनागरियों ने परस्पर एकान्त में आकर श्रीकृष्णजी के संदेश को पूंछा ॥ १८ ॥ गोपियां बोलीं कि तुम किसलिये यहां प्राप्तहुए हो और तुम यहां कैसे,

आये हो यह कहकर वे शोक से विकल गोपियां मोहित हुईं ॥ १६ ॥ व कृष्णजी के भक्त उन उद्धवजी को देखतीहुईं वे गोपियां पृथ्वी में गिरपड़ीं व कृष्ण के स्नेह से वश कियेहुए उस स्त्रीजन को देखकर उद्धवजी ने ॥२०॥ उस समय कानों को सुख देनेवाले वचनों से समझाया ॥ २१ ॥ उद्धवजी बोले कि दशार्ह भगवान् श्रीकृष्ण भी कामदेव के बाण से पीड़ित होकर दिन रात तुम को चिन्तन करते हुए सदैव दुःखी रहते हैं ॥ २२ ॥ उसके उस वचन को सुनकर वह क्रोध से मूर्च्छित ताम्रलोचनोंवाली ललिता रोती हुई उद्धवजी से बोली ॥ २३ ॥ ललिता बोली कि श्रीकृष्णजी असत्य व मर्याद रहित तथा क्रूर व क्रूरजनों को प्यारे हैं तुम उन अकृतात्मा कृष्णजी

उद्धवस्तज्जनंदृष्ट्वा कृष्णस्नेहवशीकृ गोप्यो मुमुहुःशोकविह्वलाः ॥ १६ ॥ ईक्षन्त्यःकृष्णदासन्तं निपेतुर्धरणीतले ॥ तम् ॥ २० ॥ आश्वासयामासतदा वाक्यैःश्रोत्रसुखावहैः ॥ २१ ॥ उद्धव उवाच ॥ भगवानपिदाशार्हः कन्दर्पशरपीडि तः ॥ दुःखीभवत्यविरतं चिन्तयंस्त्वामहर्निशम् ॥ २२ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य ललिताक्रोधमूर्च्छिता ॥ उद्धवंताम्र नयना सोवाचरुदतीतथा ॥ २३ ॥ ललितोवाच ॥ असत्योभिन्नमर्यादः क्रूरःक्रूरजनप्रियः ॥ माकुथास्मत्पुरस्तस्य कथांत्वमकृतात्मनः ॥ २४ ॥ धिग्धिक्पापसमाचारं धिगमुंनिष्ठुराशयम् ॥ हित्वायःस्त्रीजनान्मूढो गतोद्वारवतीं हरिः ॥ २५ ॥ श्यामलोवाच ॥ किंतस्यमन्दभाग्यस्य स्वल्पपुण्यस्यदुर्मतेः ॥ माकुर्वन्तुकथाःसाध्व्यः कथाःकथयता पराः ॥ २६ ॥ धन्योवाच ॥ केनायंहिसमानीतोदूतो दुष्टोरमापतेः ॥ हीनस्यपुरुषार्थेषु तेनसङ्गोनिरर्थकः ॥ २७ ॥ राधो वाच ॥ पूतनांघातयानस्य नासीत्पापकृतम्भयम् ॥ तस्यस्त्रीहननेसाध्व्यः शङ्कापिनविद्यते ॥ २८ ॥ शैव्योवाच ॥

को मत कहो ॥ २४ ॥ पाप आचरणवाले कृष्ण को धिक्कार है धिक्कार है व इन निष्ठुर आशयवाले कृष्ण को धिक्कार है जो मूढ़ कृष्णजी स्त्रीजनों को छोड़कर द्वारका को चले गये ॥ २५ ॥ श्यामला बोली कि हे उत्तम आचरणवाली गोपियो ! थोड़ी पुण्य वाले उस मन्दभाग्य कृष्णकी कथाओं को मत कहो अन्य कथाओं को कहिये ॥ २६ ॥ धन्या बोली कि पुरुषार्थ में हीन रमापति विष्णुजी के इस दुष्ट दूत को कौन लाया है उससे संग निरर्थक है ॥ २७ ॥ राधा बोलीं कि पूतना को मारते हुए इसको पाप से किया हुआ भय नहीं है हे साध्वियो ! स्त्री के मारने में उसको कोई भी शंका नहीं है ॥ २८ ॥ शैव्या बोली कि हे महाभागे ! सत्य कहिये

यदूत्तम श्रीकृष्णजी क्या करते हैं नागरियों से घिरेहुए ये श्रीकृष्णजी किस प्रकार क्याकरैं ॥ २९ ॥ पद्मा बोली कि ये महाबाहु कृष्णजी नागरियों को प्यारे हैं और कमल-पत्र के समान चौड़े नेत्रोंवाले दाशार्ह कृष्णजी यहां कैसे टिकैंगे ॥ ३० ॥ भद्रा बोली कि हे गोपोत्तम, कृष्ण ! हा गोपीजनप्रिय, महाबाहो ! गोपियों को संसाररूपी समुद्र से उधारिये ॥ ३१ ॥ प्रह्लादजी बोले कि इस प्रकार अनेक भांति के वचनों से विलाप करती व कृष्णजी के कर्म को स्मरण करती हुई वे गोपियां बड़े स्वर से रोने लगीं ॥ ३२ ॥ और उनका रोदन सुनकर उद्धवजी उत्तम भक्ति को प्राप्त हुए व बड़े विस्मय को प्राप्त होकर बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा बोले ॥ ३३ ॥ उद्धवजी बोले

सत्यम्ब्रूहिमहाभागे किङ्करोतियदूत्तमः ॥ संवृतोनागरस्त्रीभिः कथमेषकरोतिकिम् ॥ २९ ॥ पद्मोवाच ॥ कृष्णएष महाबाहुर्नागरीजनवल्लभः ॥ किंस्थास्यतीहदाशार्हः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥ ३० ॥ भद्रोवाच ॥ हाकृष्णगोपप्रवर हागोपीजनवल्लभ ॥ समुद्धरमहाबाहो गोपीःसंसारसागरात् ॥ ३१ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ इतिताविविधैर्वाक्यैर्विलपन्त्योव्रजस्त्रियः ॥ रुरुदुःसुस्वरैर्गोप्यः स्मरन्त्यःकृष्णचेष्टितम् ॥ ३२ ॥ तासान्तुरुदितंश्रुत्वा भक्तिंचश्रेयसींगतः ॥ विस्मयंपरमंगत्वा साधुसाध्वितिचाब्रवीत् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच ॥ यन्नब्रह्मानचहरो नदेवानमहर्षयः ॥ स्वभावमनुगच्छन्ति सर्वा धन्याव्रजस्त्रियः ॥ ३४ ॥ सर्वासांसफलंजन्म जीवितंयौवनंधनम् ॥ यासामभूद्भगवति भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ ३५ ॥ गोप्युवाच ॥ साधुदर्शयगोविन्दं साधुदर्शयवल्लभम् ॥ नयास्मान्साधुतत्रैव यत्रतिष्ठतिसोच्युतः ॥३६॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तासांतद्भाषितंश्रुत्वा तथाविलपितंबहु ॥ बाढमित्येवमित्यूचे उद्धवःस्नेहविह्वलः ॥ ३७ ॥ उद्धवेनसमंसर्वास्ततस्ता

कि जिस स्वभाव को ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता व महर्षि नहीं प्राप्तहोते हैं उसको ये गोपियां प्राप्तहोती हैं इससे सब व्रजनारियां धन्य हैं ॥ ३४ ॥ सबों का जन्म, जीवन, यौवन व धन सफल है जिन की भगवान् श्रीकृष्णजी में अहैतुकी भक्ति है ॥ ३५ ॥ गोपी बोली कि श्रीकृष्णजी को भलीभांति दिखलाइये व प्यारे को दिखाइये और हम सबों को वहीं ले चलिये जहां कि वे अच्युत श्रीकृष्णजी टिके हैं ॥ ३६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि उनके उस वचन व बहुत विलाप को सुनकर स्नेह से विह्वल उद्धवजी बहुत अच्छा यह बोले ॥ ३७ ॥ तदनन्तर कृष्णजी के दर्शन की इच्छावाली वे प्रसन्नतासंयुत सब व्रजनारियां उद्धव

के साथ पीछे चलीं ॥ ३८ ॥ और उनके बालचरित्रोंवाले प्रिय गीतों को गातीहुई वे गोपियां धीरे २ उद्धवजी के साथ चलीं ॥ ३९ ॥ तदनन्तर यदुपुरी में बगीचों के वन की पांतियों को देखकर कहनेलगीं कि यहां हम सब नन्दनन्दन कमललोचन श्रीकृष्णदेवजी को देखैंगी ॥ ४० ॥ और द्वारका को जाने से उस समय लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजी के ध्यान से सब पातकों को छोड़कर हम सब समस्त बन्धन से छूटजावैंगी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वे सब मयतड़ाग के किनारे प्राप्तहुईं और कृष्णदेवतावाली गोपियों को शीघ्रही प्रणामकर उद्धवजी बोले ॥ ४२ ॥ कि यहां तुम सब टिको क्योंकि महाभुज श्रीकृष्णजी से पूंछकर वहां जाना चाहिये और कमल सरीखे लोचनोंवाले वे

व्रजयोषितः ॥ अनुजग्मुर्मुदायुक्ताः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ ३८ ॥ गायन्त्यःप्रियगीतानि तद्बालचरितानिच ॥ जग्मुःसहैवशनकैरुद्धवेनव्रजाङ्गनाः ॥ ३९ ॥ यदुपुर्यान्ततोदृष्ट्वा उद्यानवनराजयः ॥ अत्रदेवम्प्रपश्यामः पद्माक्षंनन्दनन्दनम् ॥ ४० ॥ द्वारावत्यास्तुगमनाद् ध्यानाल्लक्ष्मीपतेस्तदा ॥ अशेषकिल्बिषान्मुक्ता विध्वस्ताशेषबन्धनाः ॥ ४१ ॥ सम्प्राप्तास्तास्ततःसर्वास्तीरेमयसरस्यच ॥ उद्धवःप्रणिपत्याशु गोपिकाःकृष्णदेवताः ॥ ४२ ॥ स्थीयतामत्रगन्तव्यं तत्रपृष्ट्वामहाभुजम् ॥ कृष्णःकमलपत्राक्षो विधास्यतिसवोहितम् ॥ ४३ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ कस्योद्धवइदञ्चात्र सरःसारसशोभितम् ॥ सम्फुल्लैःपङ्कजैश्चित्रं कह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ ४४ ॥ उद्धव उवाच ॥ मयोनाममहादैत्यो मायावीलोकविश्रुतः ॥ कृतं तेनसरःशुभ्रं तस्यनाम्नाचविश्रुतम् ॥ ४५ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ शीघ्रमानयगोविन्दं साधुदर्शयचाच्युतम् ॥ नयनानन्दजननं तापत्रयविनाशनम् ॥ ४६ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतासां गोपिकानान्तदोद्धवः ॥ द्रुतंसमानयामास कृष्णं

श्रीकृष्णजी तुम सबों का हित करैंगे ॥ ४३ ॥ गोपियां बोलीं कि हे उद्धवजी ! यहां फूलेहुए सुर्ख कमल व कोकाबेली तथा श्वेत कमलों से विचित्र व सारसों से शोभित यह किसका तड़ाग है ॥ ४४ ॥ उद्धवजी बोले कि मयनामी मायावी जो महादैत्य संसार में प्रसिद्ध है उसने इस उत्तम तड़ाग को बनाया है और उसी के नाम से प्रसिद्ध है ॥ ४५ ॥ गोपियां बोलीं कि शीघ्रही श्रीकृष्णजी को लाइये और नयनों को आनन्द पैदा करनेवाले तथा तीनों तापों को विनाशनेवाले अच्युत श्रीकृष्णजी को भलीभांति दिखाइये ॥ ४६ ॥ उससमय उन गोपियों के उस वचन को सुनकर उद्धवजी अपने वचन के गुणों से शीघ्रही श्रीकृष्णजी

को ले आये ॥ ४७ ॥ और पालकी के द्वारा आयेहुए व अपने शरीर से शोभित तथा वनमाला से भूषित देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ४८ ॥ व जलते हुए किरीट, मुकुट व चमकते हुए मकराकृत कुण्डलोंवाले तथा श्रीवत्स से चिह्नित व महाभुज और पीले रेशमी वसनों को पहनेहुए ॥ ४९ ॥ और श्रेष्ठ यादवों से हज़ारों छत्रों करके घिरे व मुख्य वंदियों से गाने, बजाने के शब्दों करके प्रशंसित ॥ ५० ॥ और देश निवासी मनुष्यों से सब दिशाओं में घिरे व हंस के जोड़ों से व सारसों से शोभित तड़ाग को देखतेहुए श्रीकृष्णजी को गोपियों ने देखा ॥ ५१ ॥ और संसार में सुन्दर व मनोहर श्रीकृष्ण प्यारे को आतेहुए बहुत दिनों में देखकर वे प्यारी व्रजनारियां

शीघ्रंस्ववाग्गुणैः ॥ ४७॥ आयातंनरयानेन दृष्ट्वादेवकिनन्दनम् ॥ भ्राजमानंस्ववपुषा वनमालाविभूषितम् ॥ ४८॥ ज्वलत्किरीटमुकुटं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ श्रीवत्साङ्कंमहाबाहुं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४९ ॥ आतपत्रसहस्रैस्तु संवृतंवृष्णिपुङ्गवैः ॥ संस्तुतंवन्दिमुख्यैस्तु गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ५० ॥ पौरजानपदैर्लोकैः संवृतंसर्वतोदिशम् ॥ पश्यतंहंसमिथुनैः सरःसरसशोभितम् ॥ ५१ ॥ तंदृष्ट्वाच्युतमायान्तं लोककान्तंमनोहरम् ॥ प्रियम्प्रियाश्चिरंदृष्ट्वा मुमुहुस्ताव्रजाङ्गनाः ॥ ५२ ॥ चिरात्संज्ञामवाप्नुस्ता विलापंचक्रुरञ्जसा ॥ हानाथकान्तहास्वामिन् हाव्रजेशमनोहर ॥ ५३ ॥ संवर्द्धितोसियैर्बाल्ये क्रीडितोवत्सपालकैः ॥ तेपित्वयापरित्यक्ताः कथंरुष्टोसिनिर्घृण ॥ ५४॥ नतेधर्मोनसौहार्दं सख्यंनोसत्यमेवच ॥ पितृमातृपरित्यागी कथंयास्यसिसद्गतिम् ॥ ५५ ॥ स्वामिन्भक्तपरित्यागः सर्वशास्त्रेषुगर्हितः॥ त्यजतास्मान्वनेवीर तथानावेक्षितंत्वया ॥ ५६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वातासांविलपितं गोपीनांनन्दनन्दनः ॥ अन

मोहित हुईं ॥ ५२ ॥ और बहुत देर में चैतन्यता को प्राप्त हुईं व उन्होंने विलाप किया कि हा नाथ, कांत ! हा स्वामिन् ! हा व्रजेश, मनोहर ! ॥ ५३ ॥ जिन वत्सपालों से बाल्यावस्था में तुम बढ़ायेगये हो व जिन के साथ तुम ने क्रीड़ा किया उनको भी छोड़ दिया हे निर्दय ! क्यों क्रोधित होगये हो ॥ ५४ ॥ तुम्हारे न धर्म है न मैत्री है न सत्य है और न मित्रता है व पिता, माता को छोड़नेवाले तुम कैसे उत्तम गति को पावोगे ॥ ५५ ॥ हे स्वामिन् ! भक्त को छोड़ना सब शास्त्रों में निन्दित है व हे वीर ! वन में हम सबों को छोड़ते हुए तुम ने उस त्याग को नहीं देखा ॥ ५६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि उन गोपियों का विलाप सुनकर

भाव के जाननेवाले व्यापक नन्दनन्दन भगवान् व्रजराजजी ने उन अनन्य शरणवाली सब गोपियों को समझाते हुए वेदान्त की शिक्षा से उन व्रजनारियों से योग को कहा व उन्होंने वार २ सीखा ॥ ५७।५८ ॥ भगवान् बोले कि मेरा व आप सबों का कभी वियोग नहीं है क्योंकि प्राणियों के हृदय में मैं विशेषतारहित सदैव बसता हूं ॥ ५९ ॥ मैं सब का उत्पत्तिस्थान हूं और मुझ से इन्द्र समेत देवता व आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवता व पवनगण उत्पन्नहुए हैं ॥ ६० ॥ और ब्रह्मा, विष्णु, शिव व आदि शक्ति और महर्षि, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सत्त्व, रज व तमोगुण ॥ ६१ ॥ और काम, क्रोध, लोभ, मद व अहंकार हे गोपियो ! यह सब संपूर्णता से मुझ से वर्त्तमान

न्यशरणाःसर्वा भावज्ञोभगवान्विभुः ॥ ५७ ॥ प्रोवाचसान्त्वयन्सर्वाः व्रजेशस्ताव्रजाङ्गनाः ॥ अध्यात्मशिक्षयायोगं मुहुस्ताअन्वशिक्षत ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनांवियोगोमे कदाचिदपिनैवहि ॥ वसामिहृदयेशश्वद्भूतानामविशेषतः ॥ ५९ ॥ अहंसर्वस्यप्रभवो मत्तोदेवाःसवासवाः ॥ आदित्यावसवोरुद्रा विश्वेदेवामरुद्गणाः ॥ ६० ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च शक्तिराद्यामहर्षयः ॥ इन्द्रियाणिमनोबुद्धिस्तथासत्त्वंरजस्तमः ॥ ६१ ॥ कामःक्रोधश्चलोभश्च मदोहङ्कारएवच ॥ एतत्सर्वमशेषेण मत्तोगोप्यःप्रवर्त्तते ॥ ६२ ॥ एतज्ज्ञात्वामहाभागा मास्मशोकेमनःकृथाः ॥ सर्वभूतेषु मांनित्यं चिन्तयध्वमकिल्बिषाः ॥ ६३ ॥ ताःकृष्णवचनंश्रुत्वा गोप्योविध्वस्तबन्धनाः ॥ विमुक्तसंशयक्लेशा दर्शनादेवसंप्लुताः ॥ ६४ ॥ ऊचुश्चगोपवध्वस्ताः कृष्णदर्शननिर्मलाः ॥ अद्यनःसफलंजन्म त्वद्यनःसफलादृशः ॥ ६५ ॥ यत्त्वांपश्यामिगोविन्द नागरीजनवल्लभम् ॥ पुण्यहीनानपश्यन्ति कृष्णाख्यम्पुरुषंस्त्रियः ॥ ६६ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ वाक्यैर्हेत्वर्थ

है ॥ ६२ ॥ हे महाभागियो ! इसको जानकर शोक में मन मत करो और पापरहित तुम मुझ को सदैव सब प्राणियों में चिन्तवन करो ॥ ६३ ॥ कृष्णजी का वचन सुनकर बन्धन रहित वे गोपियां संदेह व क्लेश से छूटगईं और दर्शनही से मुक्त होगईं ॥ ६४ ॥ और श्रीकृष्णजी के दर्शन से निर्मल उन गोपनारियों ने कहा कि आज हम सबों का जन्म सफल होगया और आज हमारे नेत्र सफल होगये ॥ ६५ ॥ जोकि हे गोविन्दजी ! नागरियों के प्यारे तुमको मैं देखती हूं और पुण्य से रहित स्त्रिया कृष्णनामक पुरुष को नहीं देखती हैं ॥ ६६ ॥ गोपियां बोलीं कि हे मधुसूदनजी ! यद्यपि हेतु व अर्थ से संयुत वचनों से तुमने हम सबों को समझाया तथापि मेरे हृदय में

दर्शन व कीर्तन तथा दिन रात तुम्हारे स्मरण करने से हम सब उत्तम गति को प्राप्त होवैं ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे साध्वी गोपियो ! मैं तुमलोगों का प्रिय करूंगा क्योंकि तुम सब मेरी स्त्रियां हो और सदैव मेरे दया करने योग्य हो व मैं सदैव भक्ति से ग्रहण करने योग्य हूं ॥ ६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि श्रीकृष्णजी के इस वचन को सुनकर प्रसन्न मनवाली गोपियां उस मयतड़ाग में नहाकर सब बन्धनों से छूट गईं ॥ ७ ॥ और यह कहकर भगवान् श्रीकृष्णजी ने गोपियों के हित की इच्छा से उस तड़ाग के समीप अन्य तड़ाग को बनाया ॥ ८ ॥ और वह निर्मल जलवाला तड़ाग गहरा तथा कमलिनीदलों से शोभित व हंसों और सारसों के जोड़ों से व

परमांगतिम् ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ करिष्येवःप्रियंसाध्व्यो यूयंममपरिग्रहाः ॥ अनुग्राह्यामयानित्यं भक्तिग्राह्यास्मिसर्वदा ॥ ६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ इतिकृष्णवचःश्रुत्वा गोप्यःसंहृष्टमानसाः ॥ तस्मिन्मयसरेस्नात्वा विमुक्ताशेषबन्धनाः ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वाभगवाञ्छौरिर्गोपीनांहितकाम्यया ॥ सन्निधौसरसस्तस्य सरस्त्वन्यच्चकारह ॥ ८ ॥ तदगाधंस्वच्छजलं नलिनीदलशोभितम् ॥ हंससारसयुग्मैश्च चक्रवाकैःसुशोभितम् ॥ ९ ॥ कुमुदोत्पलकह्लारैः पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ सेवितंद्विजमुख्यैश्च सिद्धविद्याधरैस्तथा ॥ १० ॥ सेवितंयदुनारीभिस्तथायदुकुमारकैः ॥ दिवारात्रौसुसम्पूर्णं सर्वैर्जानपदैर्जनैः ॥ ११ ॥ तद्दृष्ट्वाजलकल्लोलैः सुसम्पूर्णञ्जलाशयम् ॥ हर्षाद्गोपिजनंकृष्ण उवाचवचनंतदा ॥ १२ ॥ पश्यध्वङ्गोपिकाःशुभ्रं सरोमयकृतान्तिके ॥ स्वच्छमृष्टजलाकीर्णं सज्जनानांयथामनः ॥ १३ ॥ कारणाद्भवतीनाञ्चमया

चकई, चकवा से शोभित हुआ ॥ ९ ॥ और कुमुद, उत्पल, सुर्ख कमल और कमलिनीगणों से शोभित तथा मुख्य ब्राह्मणों से व सिद्धों और विद्याधरों से सेवित हुआ ॥ १० ॥ और यदुवंश की स्त्रियों व यदुवंश के बालकों से सेवित और दिन रात सब देशवासी मनुष्यों से पूर्णहुआ ॥ ११ ॥ उस समय जलकी बड़ी भारी लहरियों से संपूर्ण तड़ाग को देखकर श्रीकृष्णजी ने हर्ष से गोपीजनों से वचन कहा ॥ १२ ॥ कि हे गोपियो ! मय दानव से रचेहुए तड़ाग के समीप सज्जनों के मन के समान निर्मल व शुद्ध जल से भरेहुए उत्तम तड़ाग को देखो ॥ १३ ॥ आप सबों के कारण मैंने इस तड़ाग को बनाया कि जिस भांति आप सबों के नाम से

यह प्रसिद्ध होवै ॥ १४ ॥ व गोशब्द वचन का वाचक है और आप सबों समेत मेरा यहां संभाषण हुआ इस कारण गोप्रचार ऐसा नाम संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ जिसलिये तुम सबों के प्रिय काम के लिये मैंने इस तड़ाग को बनाया है इस कारण गोपीसर ऐसी प्रसिद्धि को संसार में प्राप्तहोगा ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि मन में जो वर्त्तमानहो व जो प्रयोजन हो उसको मांगिये क्योंकि मेरी भक्ति से तुम सब आई हो उस कारण मुझको अदेय (न देने योग्य) नहीं है ॥ १७ ॥ गोपियां बोलीं कि यदि आप प्रसन्न हो व यदि मुझको वर देने योग्य है तो हे माधवजी ! तुम को प्रसन्नता से यहां बसना चाहिये ॥ १८ ॥ क्योंकि जहां तुम हो वहा दान,

कृतमिदंसरः ॥ भवतीनांतथानाम्ना ख्यातमेतद्भविष्यति ॥ १४ ॥ गोवचोवाचकःशब्दो भवतीभिर्मयासह ॥ गोप्रचारेतिवैनाम ख्यातिंलोकेगमिष्यति ॥ १५ ॥ युष्माकम्प्रियकामार्थं यस्मात्कृतमिदंसरः ॥ तस्माद्गोपीसरइति ख्यातिंलोकेगमिष्यति ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ प्रार्थ्यतांयदभिप्रेतं यद्वामनसिवर्त्तते ॥ भक्त्याममागतायूयं नास्त्यदेयंततो मया ॥ १७ ॥ गोप्युवाच ॥ यदितुष्टोसिभगवान् यदिदेयोवरोमम ॥ तस्मात्त्वयात्रवस्तव्यं प्रसादेनहिमाधव ॥ १८ ॥ यत्र त्वंतत्रदानानि व्रतानिनियमास्तथा ॥ ॐकारश्चवषट्कारः स्वाहाकारःस्वधातथा ॥ १९ ॥ भूर्भुवःस्वर्महर्लोको जनःसत्यं तपस्तथा ॥ त्वन्मयंहिजगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ २० ॥ तस्मात्त्वयिजगन्नाथ स्नातमात्रेजनार्द्दन ॥ स्नातमत्रत्रिभुवनं भविष्यतिनसंशयः ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यपावनीगङ्गा तवपादजलंहियत् ॥ लक्ष्म्यावक्षस्थलेस्थानं मुखेदेवीसरस्वती ॥ २२ ॥ सर्वभूतमयेनात्र स्नातव्यंजगदीश्वर ॥ यंददासिमनुष्याणां भावितानांकलौयुगे ॥ २३ ॥ तद्ददस्वमहाबाहो दयांकृत्वा

व्रत व नियम हैं और वहीं ॐकार, वषट्कार, स्वाहाकार व स्वधाकार है ॥ १९ ॥ और भूर्लोक, भुवर्लोक, महर्लोक व स्वर्ग, जन, तप और सत्यलोक व देवता, दैत्य और मनुष्यों समेत सब संसार आपमय है ॥ २० ॥ इस कारण हे जगदीश, जनार्दनजी ! तुम्हारे नहानेपर यहां त्रिलोक नहाया हुआ होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ जो तुम्हारे चरण का जल है वही त्रिलोक को पवित्र करनेवाली गंगा हैं और तुम्हारे वक्षस्थल में लक्ष्मीजी का स्थान है व मुख में सरस्वती देवी है ॥ २२ ॥ और तुम समस्त प्राणीमय हो हे जगदीश्वर ! तुमको इसमें स्नान करना चाहिये व कलियुग में पवित्र चित्तवाले पुरुषों को तुम जो देते हो ॥ २३ ॥

हे महाबाहो, जगदीशजी ! मेरे ऊपर दया करके उसको कहिये यहां यात्रा में आयेहुए मनुष्य को जो फल होता है उसको हम सबों से कहिये ॥ २४ ॥ श्री कृष्णजी बोले कि हे गोपियो ! गोपीतीर्थ के जल में नहाये हुए मनुष्यों को जो फल होता है उसको मेरे प्रसन्न होने पर निस्सन्देह सुनिये ॥ २५ ॥ कि सामग्री समेत व बछड़ा सहित तथा वस्त्र व अलंकार से भूषित व यथोक्त दक्षिणा से संयुत गऊ को उत्तम आचार व शुद्ध तथा निर्धनी और उपकारी व कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये देकर मनुष्य जिस फल को पाता है वह फल यहां नहानेहीं से होता है ॥ २६ । २७ ॥ श्रीकृष्णजी के साथ मनुष्य जितने पग चलता है उतनी पुश्तियां

जगत्पते ॥ यात्रायामागतस्येह यत्फलंतद्वदस्वनः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ यत्फलंहिमनुष्याणां स्नातानाङ्गोपिका जले ॥ तच्छृणुध्वमसंदिग्धं प्रसन्नेमयिगोपिकाः ॥ २५ ॥ सोपस्करांसवत्साञ्च वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ॥ यथोक्तदक्षिणोपे तां ब्राह्मणायकुटुम्बिने ॥ २६ ॥ सदाचारायशुद्धाय दरिद्रायोपकारिणे ॥ गांदत्त्वाफलमाप्नोति स्नानमात्रेणतत्फ लम् ॥ २७ ॥ यावत्पादानिमनुजः कृष्णेनसहगच्छति ॥ कुलानिदिवितावन्ति वसन्तिहरिमन्दिरम् ॥ २८ ॥ कृष्णेन सहगच्छन्ति गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ स्तुवन्तोविविधैःस्तोत्रैर्गोविन्दङ्गोपिकासरे ॥ २९ ॥ नमातुर्जठरेतेषां यातनाभ वतेनृणाम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति वैष्णवंलोकमाप्नुयात् ॥ ३० ॥ अर्घंदत्त्वाविधानेन स्नानंकुर्याद्विचक्षणः ॥ मन्त्रेणानेनवैसाध्व्यः श्रद्धयापरयायुतः ॥ ३१ ॥ नमस्तेगोपरूपाय विष्णवेपरमात्मने ॥ गोप्रचारजगन्नाथ गृहाणार्घंनमोस्तुते ॥ ३२ ॥ अर्घंदत्त्वाविधानेन मृदमालभ्यपाणिना ॥ स्नायाच्छ्रद्धासमायुक्तस्तर्पयेत्पितॄ

स्वर्ग में विष्णुजी के मन्दिर में वसती हैं ॥ २८ ॥ और अनेक भांति के स्तोत्रों से विष्णुजी की स्तुति करते हुए जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के साथ गाने, बजाने के शब्दों से गोपीतड़ाग में जाते हैं ॥ २९ ॥ उन मनुष्यों को माता के पेट में पीड़ा नहीं होती है और वह मनुष्य सब कामनाओं को पाता है व विष्णुजी के लोक को जाता है ॥ ३० ॥ हे साध्वी गोपियो ! बड़ी श्रद्धा से संयुत चतुर पुरुष इस मन्त्र से अर्घ देकर विधि से स्नानकरै ॥ ३१ ॥ कि गोपरूपी आप परमात्मा विष्णुजी के लिये प्रणाम है हे गोप्रचार, जगन्नाथजी ! अर्घ को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ विधि से अर्घ को देकर व हाथ से मिट्टी को छूकर श्रद्धासंयुत

पुरुष स्नानकरै और पितरों व देवताओं को तर्पण करै ॥ ३३ ॥ तदनन्तर एकचित्त व सावधान होकर मनुष्य भक्ति से श्राद्धकरै व चांदी या सोना की यथोक्त दक्षिणा देवै ॥ ३४ ॥ और तावूल व कज्जल को विशेषकर देना चाहिये और दुकूल व कुसुम के रंगे हुए वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ३५ ॥ व स्त्री, पुरुषों के वसन और भूषणों को अपनी शक्ति के अनुसार देना चाहिये और धुरी को धारनेवाले बैल व गौवों को ब्राह्मणों के लिये देना चाहिये ॥ ३६ ॥ और दीन, अन्ध व कृपणों को अपनी शक्ति से दान देना चाहिये इस प्रकार भलीभांति करके मनुष्य उत्तम गति को पाता है ॥ ३७ ॥ और तीन पुश्तियों में उपजे हुए उसके पितर उत्तम लोक को

देवताः ॥ ३३ ॥ श्राद्धंकुर्यात्ततोभक्त्या एकचित्तःसमाहितः ॥ यथोक्तांदक्षिणांदद्याद्रजतंरुक्ममेवच ॥ ३४ ॥ विशेषतः प्रदातव्यं ताम्बूलंकज्जलंतथा ॥ दुकूलानिचदेयानि तथाकौसुम्भकानिच ॥ ३५ ॥ दम्पत्योर्वाससीचैव भूषणानिस्वशक्तितः ॥ गावोदेयाद्विजातिभ्यो वृषभाश्चधुरन्धराः ॥ ३६ ॥ दीनान्धकृपणानाञ्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ एवंकृत्वानरःसम्यग्गुत्तमाङ्गतिमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ प्रयान्तिपरमंलोकं पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ लभतेपुत्रकामस्तु पुत्रानिष्टान्मनोनुगान् ॥ ३८ ॥ यंयंकामयतेकामं स्वर्गमोक्षादिकंनरः ॥ तत्सर्वंसमवाप्नोति यःस्नातोगोपिकासरे ॥ ३९ ॥ यावल्लोकाभविष्यन्ति तावत्स्थास्यतिवैसरः ॥ यावत्सरस्ततःकीर्तिर्भवतीनांभविष्यति ॥ ४० ॥ यावत्कीर्तिर्मनुष्येषु तावत्स्वर्गेनसंशयः ॥ विमुक्तपापाःसकला यास्यन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ४१ ॥ पुण्यञ्चोपीसरइदं जलपूर्णंसदैवहि ॥ अवगाह्यम्मयागोप्यो नभस्येनियमेनहि ॥ ४२ ॥ भवत्यःपतिभावेन ब्रह्मभावेनवापुनः ॥ चिन्तयन्त्यःपरंमांहि पराङ्गति

जाते हैं और पुत्र की इच्छावाला पुरुष मन के अनुगामी व प्यारे पुत्रों को पाता है ॥ ३८ ॥ और जो गोपीसर में नहाता है वह मनुष्य स्वर्ग व मोक्षादिक जिस जिस कामना की इच्छा करता है उस सबको पाता है ॥ ३९ ॥ और जबतक लोक रहैंगे तबतक वह तड़ाग स्थित रहैगा व जबतक तडाग रहैगा तबतक आप लोगों की कीर्ति होगी ॥ ४० ॥ व जबतक मनुष्यों में कीर्ति रहैगी तबतक निस्सन्देह स्वर्ग होगा व पापरहित होकर आप सब उत्तम गति को पावोगी ॥ ४१ ॥ और यह पवित्र गोपीसर सदैव जल से पूर्ण रहैगा व हे गोपियो ! श्रावण में मुझसे यह सदैव नियम से नहाने योग्य होगा ॥ ४२ ॥ और तुम सब पतिभाव व फिर

परब्रह्मभाव से मुझको चिन्तन करती हुई उत्तम गति को पावोगी ॥ ४३ ॥ प्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजी से आज्ञा दीहुई वे सब गोपकुमारी श्रीकृष्णजी को प्रणामकर जिस प्रकार आई थीं वैसेही चलीगईं ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उद्धवजी समेत भगवान् श्रीकृष्णजी सब गोपियों को बिदाकर अपने घर को चलेगये ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रह्लादसंहितायांद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोपीसरोमाहात्म्यंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो पंचनदतीर्थ जिमि पुरी द्वारका मध्य । चौदहवें अध्याय में सोइ चरित सुख सध्य ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि बहुत आश्चर्यों से संयुत अनेकों तीर्थ हैं वे

मवाप्स्यथ ॥ ४३ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ अनुज्ञाताभगवता ततस्तागोपकन्यकाः ॥ नमस्कृत्यचगोविन्दं ययुःसर्वायथागताः ॥ ४४ ॥ भगवानपिगोविन्द उद्धवेनसमन्वितः ॥ विसृज्यगोपिकाःकृष्णः स्वंधामचततोययौ ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रह्लादसंहितायांद्वारकामाहात्म्येगोपीसरोमाहात्म्यंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ सन्त्यनेकानितीर्थानि बह्वाश्चर्यान्वितानिच ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे तानिसन्तिचसागरे ॥ १ ॥ उद्देशतोमयाविप्राः कीर्त्यमानानिशृणुवथ ॥ संक्षेपतोविप्रवरा यथातेषाञ्चयाःक्रियाः ॥ २ ॥ संहृत्यचभुवोभारं साधून्संस्थाप्यसत्पथे ॥ द्वारवत्यामगात्कृष्णो वृष्णिवृद्धैःसमावृतः ॥ ३ ॥ दर्शनार्थंतदाविप्रा दैवतैःपरिवारितः ॥ पाशीन्द्रयमवित्तेशाः सूर्याचन्द्रमसौतदा ॥ ४ ॥ सङ्गत्यसहकृष्णेन कार्यंसंसाध्यचात्मनः ॥ वेधाश्चक्रेचतत्तीर्थं स्वनाम्नाकीर्तितम्भुवि ॥ ५ ॥ ब्रह्मकुण्डमितिख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तत्तीरेस्थापयामास सहस्रकिरणम्प्र

कलियुग प्राप्त होने पर समुद्र में हैं ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! उद्देश से मुझसे कहे जाते हुए उनको संक्षेप से सुनिये व हे द्विजोत्तमो ! जिस प्रकार उनके जो कर्म हैं उनको सुनिये ॥ २ ॥ कि पृथ्वी का भारसंहार कर व साधुओं को उत्तम मार्ग में थापकर वृद्ध यादवों से घिरेहुए श्रीकृष्णजी द्वारकापुरी को गये ॥ ३ ॥ तब हे ब्राह्मणो ! उनके दर्शन के लिये देवताओं से घिरेहुए वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर, सूर्य व चन्द्रमा उस समय ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णजी के साथ जाकर व अपने कार्य को साधन कर ब्रह्मा ने अपने नाम से पृथ्वी में कहेहुए उस तीर्थ को निर्माण किया ॥ ५ ॥ जो कि समस्त पातकों का नाशक ब्रह्मकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध है व उसके किनारे उन्हों

ने हज़ार किरणोंवाले सूर्यनारायण स्वामी को स्थापित किया ॥ ६ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजी देवताओं की मूल (जड़) हैं जिस लिये उनसे सूर्य स्थापित हुए हैं उस कारण मूलस्थान ऐसा कहागया है ॥ ७ ॥ और उस ब्रह्मतीर्थ को देखकर चन्द्रमा ने तड़ाग को रचा है उस कारण चन्द्रमा के नाम से प्रसिद्ध तड़ाग सब पापों का विनाशक है ॥ ८ ॥ तेज से संयुत उस तीर्थ को सुनकर सुरोत्तम प्रसन्न हुए व उन्हों ने संसार को रचनेवाले ब्रह्माजी से कहा कि हमलोगों के वचन को सुनिये ॥ ९ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में जो स्नान करैगा व पितरों को तर्पण करैगा और देवेश मूलस्थान को पूजैगा ॥ १० ॥ सब पापों से छूटा हुआ वह धन व

भुम् ॥ ६ ॥ मूलंसुराणांहिकिल ब्रह्मालोकपितामहः ॥ तेनसंस्थापितोयस्मान्मूलस्थानमितिस्मृतम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मतीर्थन्तुतद्दृष्ट्वा चन्द्रश्चक्रेसरस्ततः ॥ तडागंचन्द्रनाम्नावै सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वातेजसायुक्तं संहृष्टासुरसत्तमाः ॥ ऊचुस्तेलोकस्रष्टारं शृणुध्वंवचनानिनः ॥ ९ ॥ योत्रस्नानंप्रकुर्वीत पितॄन्सन्तर्पयिष्यति ॥ पूजयिष्यतिदेवेशं मूलस्थानंसुरर्षभ ॥ १० ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ॥ सप्तम्यांमाघमासस्य शुक्लपक्षेसुरर्षभ ॥ ११ ॥ योत्रस्नानंप्रकुरुते मानवोभक्तिसंयुतः ॥ मूलस्थानञ्चदेवेश सुगन्धेनविलिप्यच ॥ १२ ॥ पूजयिष्यतिवित्ताद्यैः स्वशक्त्याभूषणोत्तमैः ॥ पुष्पधूपादिभिश्चैव नैवेद्येनचमानवः ॥ १३ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोकञ्चगच्छति ॥ सावित्रीञ्चततोदृष्ट्वा ब्रह्मणास्थापितांरथे ॥ १४ ॥ कृत्वाचायतनम्पुण्यं स्वांमूर्तिंसन्निवेश्यच ॥ नामचक्रेस्वयंतस्याविधिंदेव्याःपितामहः ॥ १५ ॥ नचव्याधिभयंतस्य यःपश्यतिविधिंनरः ॥ गत्वासंस्नापयेद्देवीं कुङ्कुमेनकुसु

धान्य से संयुत होगा व हे सुरर्षभ ! माघ महीने के शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि में ॥ ११ ॥ भक्तिसंयुत जो मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करै व हे देवेश ! सुगन्ध से मूलस्थान को लेपन कर ॥ १२ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार धनादिकों से व उत्तम भूषणों से पूजै व जो मनुष्य पुष्पों व धूपादिकों से तथा नैवेद्य से पूजन करै ॥ १३ ॥ वह सब कामनाओं को पाता है और ब्रह्मलोक को जाता है तदनन्तर ब्रह्माजी से रथ पै स्थापित कीहुई सावित्रीजी को देखकर ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १४ ॥ व पवित्र मन्दिर को बनाकर व अपनी मूर्ति में प्रवेश कर पितामहजी ने आपही उस देवी का विधि नाम किया ॥ १५ ॥ जो मनुष्य विधि को देखता है

उसको रोग का भय नहीं होता है देवीजी के समीप जाकर मनुष्य कुंकुम व कुसुम से स्नान करावै ॥ १६ ॥ व रेशमी वस्त्रों तथा अनेक भांति के पुष्पों से पूजकर नैवेद्य, फल, तांबूल, ग्रीवासूत्र और दीपों से ॥ १७॥ भलीभाति पूजकर देवीजी को स्नान करावै तो यात्रा सफल होती है और विधवापन, दुर्भाग्यता, बंध्या व मृतवत्सा स्त्री उस वंश में नहीं होती है कि जिन मनुष्यों ने विधि को देखा है इस कारण हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! सब यत्न से विधि को देखै ॥ १८ । १६ ॥ तो श्रीकृष्णजी प्रसन्न होते हैं और यात्रा सफल होती है प्रह्लादजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मा ने ब्रह्मलिंग को स्थापन किया है व तड़ाग को निर्माण किया है ॥ २० ॥ व महाभाग

म्भकैः ॥ १६ ॥ सूक्ष्मीयवस्त्रैःसम्पूज्य पुष्पैर्नानाविधैस्तथा ॥ नैवेद्यफलताम्बूलग्रीवासूत्रकदीपकैः ॥ १७॥ सम्पूज्यस्नापयेद्देवीं यात्राचसफलाततः ॥ नवैधव्यंनदौर्भाग्यं नवन्ध्यानमृतप्रजा ॥ १८ ॥ विधिर्दृष्टामनुष्यैर्यैः कुलेह्यस्मिन्प्रजायते ॥ तस्मात्सर्वात्मनाविप्रा विधिंपश्येद्द्विजर्षभाः ॥ १६ ॥ परितुष्टोभवेत्कृष्णो यात्राचसफलाभवेत् ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मणास्थापितंविप्रा ब्रह्मलिङ्गंसरस्तथा ॥ २० ॥ इन्द्रश्चक्रेमहाभागः सरःपरमशोभनम् ॥ स्थापयामासदेवेश इन्द्रलिङ्गमितिश्रुतम् ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वाचलभते यस्मादिन्द्रपदन्नरः ॥ तस्मादिन्द्रपदंनाम प्रसिद्धञ्चधरातले ॥ २२ ॥ इन्द्रेणस्थापितंलिङ्गं यस्माद्भावनयासह ॥ प्रसिद्धमिन्द्रनाम्नावै इन्द्रेश्वरमितिश्रुतम् ॥ २३ ॥ यच्चप्रसिद्धमतुलं वृद्धिलिङ्गमितिद्विजाः ॥ यस्यदर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २४ ॥ पितॄणामक्षयातृप्तिर्जायतेद्विजसत्तमाः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यां स्नात्वाचेन्द्रपदेनरः ॥ २५ ॥ इन्द्रेश्वरञ्चसम्पूज्य यातिमुक्तिपदंनरः ॥ विशेषतस्तुसम्पूज्यो मकरस्थे

इन्द्रजी ने बड़े उत्तम तड़ाग को निर्माण किया है व देवेश इन्द्रजी ने इन्द्रलिंग ऐसे प्रसिद्ध लिंग को थापा है ॥ २१ ॥ जिस लिये उसमें नहाकर मनुष्य इन्द्रपद को पाता है उस कारण वह पृथ्वी में इन्द्रपद नामक प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ जिसलिये भक्ति समेत इन्द्रजीने लिंग को थापा है उस कारण इन्द्र के नाम से इन्द्रेश्वर ऐसा प्रसिद्ध लिंग है ॥ २३ ॥ जोकि हे ब्राह्मणो ! अतुलवृद्धिलिंग ऐसा प्रसिद्ध है और जिसके दर्शनही से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ २४ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! पितरों की अक्षय तृप्ति होती है और अष्टमी व चौदसि तिथि में मनुष्य इन्द्रपदतीर्थ में नहाकर ॥ २५ ॥ व इन्द्रेश्वरजी को पूजकर मनुष्य मुक्तिपद को पाता

है और सूर्यनारायण के मकरराशि में स्थित होने पर इन्द्रेश्वरजी विशेषकर पूजने योग्य हैं ॥ २६ ॥ और उत्तरायण व संक्रान्ति में तथा विशेषकर शिवरात्रि में पार्वतीजी समेत इन्द्रेश्वरलिंग को पूजकर मनुष्य ॥ २७ ॥ रात्रि में जागरण करै तो उत्तम लोक को पाता है प्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर ब्रह्मतीर्थ व इन्द्रभव तड़ाग को देखकर ॥ २८ ॥ विष्णुजी समेत अपने एक रूप को दिखाते हुए उमापति भगवान् शिवजीने तड़ाग को निर्माण किया है ॥ २९ ॥ और पवित्र व निर्मल जलवाले तथा कमलिनीदलों से शोभित और हंस व कारंडव पक्षी से पूर्ण तथा चकई, चकवा से शोभित ॥ ३० ॥ व सब ओर कमलों से आच्छादित तथा सारसों

दिवाकरे ॥ २६ ॥ उत्तरायणेचसंक्रान्तौ लिङ्गमिन्द्रेश्वरंनरः ॥ शिवरात्र्यांविशेषेण सम्पूज्यचोमयासह ॥ २७ ॥ रात्रौ जागरणंकुर्यात् परमंलोकमाप्नुयात् ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मतीर्थंततोदृष्ट्वा तथाशक्रभवंसरः ॥ २८ ॥ दर्शयन्विष्णुनासार्द्धमेकरूपत्वमात्मनः ॥ सरश्चकारदेवेशो भगवान्पार्वतीपतिः ॥ २९ ॥ सुमृष्टनिर्मलजलं नलिनीदलशोभितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३० ॥ उत्पलैःसर्वतश्छन्नं सरःसारसशोभितम् ॥ तदगाधजलंदृष्ट्वा स्वयमेवपिनाकधृक् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणाविष्णुनासार्द्धं स्नातस्तत्रवृषध्वजः ॥ देवास्तत्रसरोदृष्ट्वा ब्रह्मविष्णुमुखाःसुराः ॥ ३२ ॥ ऊचुःसर्वेसुसंहृष्टाः वीक्षन्तःपार्वतीपतिम् ॥ यस्मात्कृतमिदंविप्रा ईश्वरेणमहत्सरः ॥ ३३ ॥ महादेवसरोनाम सुप्रसिद्धम्भविष्यति ॥ योत्रस्नानम्प्रकुरुते पितॄणांतर्पणंतथा ॥ ३४ ॥ श्राद्धम्पितॄणांभक्त्याच सगच्छेत्परमाङ्गतिम् ॥ सुप्रसन्नाभविष्यन्ति सर्वेदेवानसंशयः ॥ ३५ ॥ दर्शनात्पापनिर्मुक्तो महादेवसरस्यच ॥ महेशस्यचतद्दृष्ट्वा सरःपरम

से शोभित उस गहरे जलवाले तड़ाग को देखकर आपही पिनाकधारी शिवजीने ब्रह्मा व विष्णुजी समेत उसमें स्नान किया और वहां तड़ाग को देखकर ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओं ने ॥ ३१ । ३२ ॥ उमापति शिवजी को देखते हुए सबों ने प्रसन्न होकर कहा कि हे ब्राह्मणो ! जिसलिये शिवजीने इस बड़े भारी तड़ाग को निर्माण किया है ॥ ३३ ॥ उस कारण यह महादेवसरनामक प्रसिद्ध होगा और जो इसमें स्नान व पितरों का तर्पण करैगा ॥ ३४ ॥ व भक्ति से जो पितरों का श्राद्ध करैगा वह उत्तमगति को पावैगा और सब देवता निस्सन्देह प्रसन्न होवैंगे ॥ ३५ ॥ और महादेवतड़ाग को देखने से मनुष्य पाप से छूट जाता है और शिवजी

के उस अति उत्तम तड़ाग को देखकर ॥ ३६ ॥ व भक्ति से उसमें नहाकर मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है व हे द्विजोत्तमो ! स्त्री की दुर्भाग्य नहीं होती है व सन्तान की हीनता नहीं होती है ॥ ३७ ॥ व पवित्र गौरीसर में नहाकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है तदनन्तर पवित्र स्थानों को देखकर वरुणजी ने ॥ ३८ ॥ विष्णुजी की भक्ति से पुरस्कृत होकर उन्हों ने दिव्य तड़ाग को बनाया है जो मनुष्य नाम से वरुणतीर्थ को देखता है पृथ्वी में उसका पाप नाश होता है ॥ ३९ ॥ और भादौ की पौर्णमासी तिथि में पितरों तथा देवताओं को तर्पण कर श्रद्धासंयुत मनुष्य विधि से पितरों का श्राद्ध कर ॥ ४० ॥ उत्तम लोक को प्राप्त होता है जहां

शोभनम् ॥ ३६ ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या नदुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ नदौर्भाग्यंस्त्रियश्चैव नाप्रजस्त्वंद्विजर्षभाः ॥ ३७ ॥ स्नात्वागौरीसरेपुण्ये सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ वरुणश्चततोदृष्ट्वा पुण्यान्यायतनानिवै ॥ ३८ ॥ चकारससरोदिव्यं विष्णुभक्तिपुरस्कृतः ॥ नाम्नाचवारुणम्पश्येत् तस्यपापक्षयम्भुवि ॥ ३९ ॥ नभस्यपूर्णिमायांच सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ श्राद्धंकृत्वाविधानेन पितॄणांश्रद्धयान्वितः ॥ ४० ॥ उत्तमंलोकमाप्नोति यत्रगत्वानशोचति ॥ प्रदद्यादुदकुम्भांश्च दध्योदनसमन्वितान् ॥ ४१ ॥ गाश्चवासांसिरत्नानि विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ सरोदृष्ट्वाजलेशस्य सरश्चक्रेधनाधिपः ॥ ४२ ॥ यक्षाधिपसरोनाम सुप्रसिद्धंधरातले ॥ स्नात्वातत्रनरोभक्त्या सम्पूज्यपितृदेवताः ॥ ४३ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति दद्याद्वस्त्रंद्विजातये ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ विष्णुंवरप्रदंश्रुत्वा भ्रातॄणांब्रह्मसूनुना ॥ ४४ ॥ मन्दाकिनीवशिष्ठेन समानीता धरातले ॥ आमरीच्यादयःसर्वे आजग्मुःकृष्णपालिताम् ॥ ४५ ॥ द्वारावतीञ्चतेदृष्ट्वा गोमतीसागरङ्गमाम् ॥ तीर्थानि

जाकर शोचता नहीं है और दही व भात से संयुत जल के घटों को देवै ॥ ४१ ॥ व मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस मन्त्र से गऊ व वस्त्रों को देवै वरुणजी के तड़ाग को देखकर धनेश कुबेरजी ने तड़ाग को निर्माण किया है ॥ ४२ ॥ वह पृथ्वी में यक्षाधिप तड़ाग नामक प्रसिद्ध है उस में मनुष्य भक्ति से नहाकर व पितरों तथा देवताओं को पूजकर ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण के लिये वस्त्र को देवै तो सब कामनाओं को पाता है प्रह्लादजी बोले कि भाइयों को वर देनेवाले विष्णुजी को सुनकर ब्रह्मा के पुत्र ॥ ४४ ॥ वशिष्ठजी पृथ्वी में मन्दाकिनी को लाये और मरीचिआदिक सब ऋषिलोग श्रीकृष्णजी से पालित द्वारकापुरी को आये ॥ ४५ ॥ और

उन्हों ने द्वारकापुरी व समुद्रगामिनी गोमती को देखकर और देवताओं के तीर्थ व पवित्र देवमन्दिरों को देखकर ॥ ४६ ॥ प्रजापतियों ने पंचनदतीर्थ को बनाया है और बुलाई हुई पाच नदियां शीघ्रतासंयुत होकर वहां आईं ॥ ४७ ॥ मरीचि के लिये गोमती व अत्रि के लिये लक्ष्मणा और अंगिरा के लिये चन्द्रभागा तथा पुलह के लिये कुशावती आई ॥ ४८ ॥ व उस समय क्रतुजी को पवित्र करने के लिये जाम्बवती आई और उन नदियों में नहाकर यशस्वी ब्रह्मपुत्र ॥ ४९ ॥ तपस्वियों ने उस समय उस तीर्थ का पंचनद्य ऐसा नाम किया उस कारण पंचनदीतीर्थ सब पापों का विनाशक है ॥ ५० ॥ स्वर्ग व मोक्ष को चाहनेवाले मनुष्यों को उसमें

देवतानाञ्च पुण्यान्यायतनानिच ॥ ४६ ॥ तीर्थंपञ्चनदंचक्रुः प्रजानांपतयस्तथा ॥ पञ्चनद्यःसमाहूतास्तत्राजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४७ ॥ मरीचयेगोमतीच लक्ष्मणाचात्रयेतथा ॥ चन्द्रभागाह्यङ्गिराय पुलहायकुशावती ॥ ४८ ॥ पावनार्थंजाम्बवती जगामक्रतवेतदा ॥ तासुस्नातामहाभागा ब्रह्मपुत्रायशस्विनः ॥ ४९ ॥ नामतस्यतदाचक्रुः पञ्चनद्येति तापसाः ॥ तस्मात्पञ्चनदीतीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५० ॥ स्नातव्यंतत्रमनुजैः स्वर्गमोक्षार्थिभिःसदा ॥ तत्रगत्वासुनियतो गृहीत्वार्घंफलेनवै ॥ ५१ ॥ मन्त्रेणानेनवैविप्रा दद्यादर्घंविधानतः ॥ ब्रह्मपुत्रैःसमानीताः पञ्चैताःसरितोवराः ॥ ५२ ॥ गृह्णन्त्वर्घमिमंदेव्यः सर्वपापप्रशान्तये ॥ अर्घमन्त्रः ॥ स्नानंकृत्वाततोदेवान् पितॄन्सन्तर्पयेन्नरः ॥ ५३ ॥ श्राद्धंकुर्याद्विधानेन श्रद्धयापरयायुतः ॥ पञ्चरत्नंततोदेयं सप्तधान्यंद्विजातये ॥ ५४ ॥ दीनान्धकृपणानाञ्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोकञ्चगच्छति ॥ ५५ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो परंसौख्यमवाप्नुयात् ॥

सदैव नहाना चाहिये वहां नियमसंयुत मनुष्य जाकर फल समेत अर्घ को लेकर ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस मन्त्र से विधिपूर्वक अर्घ देवै कि ब्रह्मपुत्रों से लाई हुई ये उत्तम पांच नदी देवियां सब पापों की शांति के लिये इस अर्घ को ग्रहण करैं (यह अर्घ का मन्त्र है) उसके उपरान्त नहाकर मनुष्य देवताओं व पितरों को तर्पण करै ॥ ५२ । ५३ ॥ तदनन्तर उत्तम श्रद्धा से संयुत मनुष्य विधि से श्राद्ध करै व ब्राह्मण के लिये पञ्चरत्न व सप्तधान्य देना चाहिये ॥ ५४ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्ध व कृपणों को दान देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने पर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ ५५ ॥ और पुत्रों

व पौत्रों से संयुत वह उत्तम सुख को पाता है और जो प्रेत की योनि में प्राप्त हैं व जो कीटता को प्राप्त हैं ॥ ५६ ॥ तीन पुश्तियों में उपजे हुए वे सब पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चनदमाहात्म्यंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❁ ॥

दो० । सिद्धेश्वर शिवलिंग को थप्यो योग से सिद्ध । सनकादिक सो पंद्रहे माहिं चरित्र प्रसिद्ध ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उन आयेहुए अपने पिता ब्रह्मा देवजी को सुनकर सब सनकादिक मुनिलोग ब्रह्माजी को प्रणाम करने के लिये गये ॥ १ ॥ और उन लोककर्त्ता (ब्रह्मा) जी को देखकर दंडा की नाईं उन्हों ने पृथ्वी में प्रणाम किया

प्रेतयोनिङ्गतायेच येचकीटत्वमागताः ॥ ५६ ॥ सर्वेतेतृप्तिमायान्ति पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे द्वारकामाहात्म्येपञ्चनदमाहात्म्यंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वातमागतंदेवं ब्रह्माणंपितरंस्वकम् ॥ सनकाद्यानमस्कर्तुं जग्मुःसर्वेपितामहम् ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वा लोककर्त्तारं दण्डवत्प्रणताःक्षितौ ॥ चिराद्दृष्ट्वास्वतनयान्संहृष्टःपरिषस्वजे ॥ २ ॥ पृष्ट्वाचानामयंतांस्तु दृष्ट्वातो नयनेनहि ॥ उवाचब्रह्मासंहृष्टः सनकाद्यान्स्वपुत्रकान् ॥ नज्ञातम्पुत्रकाःसम्यगज्ञानाद्बालबुद्धिभिः ॥ ३ ॥ येनार्चितोमहादेवस्तस्यतुष्यतिकेशवः ॥ अनर्चितेनीलकण्ठे नपूजांनयतेहरिः ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यतां नीललोहितः ॥ येनसम्पूर्णतांयाति पूजाविष्णुकृतासदा ॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य ब्रह्मपुत्राययुस्तदा ॥ देवगोष्ठींतुते

और बहुत दिनों से अपने पुत्रों को देखकर प्रसन्न होते हुए उन्हों ने लिपटा लिया ॥ २ ॥ इसके उपरान्त उनसे कुशल को पूंछकर व लोचनों से देखकर प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा ने अपने सनकादिक पुत्रों से कहा कि हे पुत्रो ! अज्ञान के कारण बालबुद्धिवाले तुमने भलीभांति नहीं जाना है ॥ ३ ॥ कि जिसने महादेव को पूजा है उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और शिवजीके अपूजित होनेपर विष्णुजी पूजा को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ इस कारण सब यत्न से शिवजी को पूजो कि जिससे सदैव विष्णुजीकी कीहुई पूजा सम्पूर्णता को प्राप्त होवै ॥ ५ ॥ उनके उस वचन को सुनकर उस समय ब्रह्मा के पुत्र चलेगये और योग से सिद्ध उन महर्षियों ने

देवताओं की सभा को जाकर ॥ ६ ॥ शिवभक्ति को आगे करके लिंग को थापन किया व शिवजी के लिंग को थापकर तदनन्तर तीक्ष्णव्रतवाले उन सब मुनिश्रेष्ठ ऋषियों ने स्नान के लिये कूप को निर्माण किया व उस समय जलसे पूर्ण व निर्मल उस कूप को देखकर ॥ ७ । ८ ॥ प्रसन्न होते हुए सब ऋषियों ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा और वहां थापेहुए लिंग को देखकर लोकों के पितामह पद्मज ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर पुत्रों से यह वचन कहा कि योग से सिद्ध आप लोगों ने जिस कारण शिवजी को थापन किया ॥ ९ । १० ॥ उसलिये इस का सिद्धेश्वर ऐसा नाम होगा और जिसलिये शिवजी के समीप यह कूप ऋषियों

गत्वा योगसिद्धामहर्षयः ॥ ६ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामासुः शिवभक्तिपुरस्कृताः ॥ संस्थाप्यशिवलिङ्गन्ते स्नानार्थंमुनिसत्तमाः ॥ ७ ॥ कूपञ्चक्रुस्ततःसर्वे ऋषयःसंशितव्रताः ॥ दृष्ट्वातदावृतंकूपं जलपूर्णंसुनिर्मलम् ॥ ८ ॥ संहृष्टाऋषयःसर्वे साधुसाध्विवतिचाब्रुवन् ॥ स्थापितंतत्रलिङ्गन्तु दृष्ट्वालोकपितामहः ॥ ९ ॥ उवाचवचनम्ब्रह्मा प्रीतःपुत्रान्हिपद्मजः ॥ भवद्भिर्योगसंसिद्धैर्यस्मात्तुस्थापितःशिवः ॥ १० ॥ तस्मात्सिद्धेश्वरइति नामचास्यभविष्यति ॥ समीपेसितकण्ठस्य कूपोयमृषिभिःकृतः ॥ ११ ॥ ऋषितीर्थमितिख्यातंतस्माल्लोकेभविष्यति ॥ विनाश्राद्धेनविप्रेन्द्रा विनैवपितृतर्पणम् ॥ १२ ॥ भक्तितःस्नानमात्रेण ब्रह्मलोकमवाप्यते ॥ असत्यवादिनोयेच परनिन्दापरायणाः ॥ १३ ॥ स्नानमात्रेणशुद्ध्यन्ति ऋषितीर्थेनसंशयः ॥ वाचिकंमानसञ्चैव कर्मणासमुपार्जितम् ॥ १४ ॥ स्नातस्यऋषितीर्थेतु नश्यतेनात्र संशयः ॥ स्नानंप्रशस्तंविषुवे मन्वादिषुतथैवच ॥ १५ ॥ तथाकृष्णेयुगाद्यांहि माघस्यद्विजसत्तमाः ॥ शिवरात्र्यांव

से बनाया गया है ॥ ११ ॥ उस कारण ससार में ऋषितीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा हे द्विजेन्द्रो ! विना श्राद्ध व विना पितृतर्पण के ॥ १२ ॥ भक्ति से स्नान ही करने से ब्रह्मलोक मिलता है और जो भूंठ बोलनेवाले व पराई निन्दा में परायण हैं ॥ १३ ॥ वे ऋषितीर्थ में स्नानही करने से पवित्र होजाते हैं और वाचिक, मानस व कर्म से इकट्ठा किया हुआ पाप ॥ १४ ॥ ऋषितीर्थ में नहायेहुए पुरुष का नाश होजाता है इसमें सन्देह नहीं है और विषुवायन व मन्वादिक तीर्थों में स्नान उत्तम होता है ॥ १५ ॥ वैसेही हे द्विजोत्तमो ! माघ महीने के कृष्णपक्ष की युगादि तिथि में व शिवरात्रि में जो मनुष्य सिद्धेशसंज्ञक लिंग के समीप

घसता है ॥ १६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ऋषियों से कियेहुए तीर्थ में जिसने स्नान कियाहै उसको अन्य तीर्थ से क्या है हे महाभागो ! वहां जाकर उत्तमफल को लेकर ॥ १७ ॥ हाथों में कुशों को करके विधि से इस मन्त्र से अर्घ को देवै कि मुझसे भक्ति से दिये हुए अर्घ को सिद्धेशजी के समीप पापनाशक ऋषितीर्थ में योग से सिद्ध महर्षिलोग ग्रहणकरैं इस मन्त्र से अर्घ को देकर व मिट्टी को छूकर विधिपूर्वक स्नान करै ॥ १८ । १६ ॥ और क्रमपूर्वक पितरों, देवताओं व मनुष्यों को तर्पणकरै तदनन्तर श्रद्धासंयुत मनुष्य पितरों का श्राद्धकरै ॥ २० ॥ व वित्तशाठ्य से रहित पुरुष वहां दक्षिणा को देवै व रसीले फलों को विशेषकर देना चाहिये ॥ २१ ॥ और सांवा व तिन्नी फसही

सेयस्तु लिङ्गेसिद्धेशसंज्ञके ॥ १६ ॥ स्नातस्तीर्थेऋषिकृते किंतस्यान्येनवैद्विजाः ॥ गत्वातत्रमहाभागा गृहीत्वाफल मुत्तमम् ॥ १७ ॥ अर्घंदद्याद्विधानेन कृत्वाचकरयोःकुशान् ॥ गृह्णन्त्वर्घंमयाभक्त्या योगसिद्धामहर्षयः ॥ १८ ॥ ऋषिती र्थेचपापघ्ने सिद्धेशस्यसमीपतः ॥ दत्त्वार्घंमृदमालभ्य स्नानंकुर्याद्यथाविधि ॥ १६ ॥ तर्प्पयेच्चपितॄन्देवान् मनुष्यां श्चयथाक्रमम् ॥ ततःश्राद्धम्प्रकुर्वीत पितॄणांश्रद्धयान्वितः ॥ २० ॥ दद्याच्चदक्षिणांतत्र वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ दातव्यानिविशेषेण फलानिरसवन्तिच ॥ २१ ॥ देयौश्यामाकनीवारौ विद्रुमञ्चतिलानपि ॥ सप्तधान्यंशालयश्च सक्तवो द्रव्यसंयुताः ॥ २२ ॥ गन्धमाल्यानिताम्बूलं वस्त्राणिचतथापयः ॥ एवंकृत्वासमग्रञ्च कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ २३ ॥ पू जयित्वामहादेवं सिद्धेश्वरमुमापतिम् ॥ सफलंजन्ममर्त्यस्य जीवितञ्चसुजीवितम् ॥ २४ ॥ यःस्नत्वाऋषितीर्थेषु पश्येत्सिद्धेश्वरंशिवम् ॥ अपुत्राःपुत्रिणःसन्ति तथासन्त्येवपौत्रिणः ॥ २५ ॥ निर्धनाधनवन्तश्च सिद्धेश्वरगतानराः ॥

और मूंगा व तिलों को देना चाहिये तथा सप्तधान्य, शाली व द्रव्य से संयुत सत्तुवों को देना चाहिये ॥ २२ ॥ और सुगंधितमाला, तांबूल, वस्त्र व दूध को देना चाहिये इस प्रकार सब करके मनुष्य कृतार्थ होता है ॥ २३ ॥ व उमापति सिद्धेश्वर महादेवजी को पूजकर मनुष्य का जन्म सफल होता है व जीवन सुजीवित होता है ॥ २४ ॥ और ऋषितीर्थों में नहाकर जो सिद्धेश्वरजी को देखता है तो पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् होते हैं और पौत्रवान् होते हैं ॥ २५ ॥ और सिद्धेश्वर को गयेहुए

निर्धनी मनुष्य धनवान् होते हैं और पाप नाश होजाता है व पुण्य बढ़ता है ॥ २६ ॥ व सिद्धेश्वरजी को प्रणाम करते हुए पुरुष को मनोरथ की प्राप्ति होती है व उसके पितर प्रसन्न होते हैं और पितामह नाचते हैं ॥ २७ ॥ और ऋषितीर्थ में नहाकर व सिद्धेशजी का पूजन करके शिवरात्रि तिथि में महात्मा मनुष्यों को विशेषकर पूजना चाहिये ॥ २८ ॥ और मनुष्य जिस जिस कामना की इच्छा करता है उस उसको चिन्तामणि के समान स्वामी सिद्धेश्वरजी देते हैं और उसके सदैव अक्षयनिधि होती है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ⊛ ॥

दुष्कृतंयातिविलयं सुकृतञ्चापिवर्द्धते ॥ २६ ॥ भवेन्मनोरथावाप्तिर्नमतःसिद्धनायकम् ॥ पितरस्तस्यतुष्यन्ति नृत्यन्तिचपितामहाः ॥ २७ ॥ ऋषितीर्थेनरःस्नात्वा कृत्वासिद्धेशपूजनम् ॥ शिवरात्र्यांविशेषेण पूजनीयोमहात्मभिः ॥ २८ ॥ यंयंकामयतेकामं तंददातिनसंशयः ॥ चिन्तामणिसमःस्वामी सर्वदाचाक्षयोनिधिः ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेत्सुविप्रेन्द्रा गदातीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नात्वानरःसम्यगग्निष्टोमफलंलभेत् ॥ १ ॥ नमस्कृत्यचदेवेशं विष्णुंवाराहरूपिणम् ॥ सम्पूज्यपरयाभक्त्या विष्णुलोकेमहीयते ॥ २ ॥ नागतीर्थंततोगच्छेन्नरःपरमशोभनम् ॥ यत्रस्नात्वानरःसम्यग्दिव्यलोकमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ चित्रासुरंततोगच्छेत्तीर्थंत्रिभुवनार्चितम् ॥ स्नानमात्रेणलभते तिलधेनुफलंनरः ॥ ४ ॥ यदाद्वारवतीविप्राः प्लावितासागरेणहि ॥ पुण्यानिबहुतीर्थानि छन्नानिजल

दो० । गदातीर्थ आदिक यथा बरने तीर्थ अनेक । सो सोलह अध्याय में कह्यो चरित शुभटेक ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! तदनन्तर मनुष्य अतिउत्तम गदातीर्थ को जावै जिसमें भलीभांति नहाकर मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ के फल को पाता है ॥ १ ॥ वाराहरूपी देवेश विष्णुजी को प्रणामकर व उत्तम भक्ति से पूजकर मनुष्य विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ २ ॥ तदनन्तर मनुष्य बहुतही उत्तम नागतीर्थ को जावै जिसमें भलीभांति नहाकर मनुष्य दिव्यलोक को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ तदनन्तर त्रिलोक से पूजित चित्रासुरतीर्थ को जावै उसमें नहाने से मनुष्य तिलधेनु के समान फल को पाता है ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब समुद्र ने द्वारकापुरी को डुबालिया

तव बहुत से पवित्र तीर्थ जल व धूलियों से आच्छादित होगये ॥ ५ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! कुछ तीर्थ देखपड़ते हैं व अन्य कितेक तीर्थ नहीं देखपड़ते हैं उन सबों को मैं संक्षेप से कहता हूं ॥ ६ ॥ कि तदनन्तर मनुष्य सब पापों को नाशनेवाली चन्द्रभागा नदी को जावै उसमें नहाकर मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को पाता है ॥ ७ ॥ और जहा पर यशोदा व नंद की कुमारी चन्द्रपूजित देवीजी हैं जोकि कुंवारी व शक्ति को हाथ में लिये तथा तलवार व खेटक अस्त्र को धारे हैं ॥ ८ ॥ कंसादि दैत्यों को संहारनेवाली उन बलराम व श्रीकृष्णजी की बहन देवीजी के समीप जावै कि जिसके दर्शनही से मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ९ ॥ तदनन्तर

पांशुभिः ॥ ५ ॥ दृश्यानिकतिचित्सन्ति ह्यदृश्यान्यपराणिच ॥ तानिसर्वाणिविप्रेन्द्राः कथयामिसमासतः ॥ ६ ॥ चन्द्रभागांततोगच्छेत् सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या वाजपेयफलंलभेत् ॥ ७ ॥ देवीचन्द्रार्चितायत्र यशोदानन्दनन्दिनी ॥ कुमारिकाशक्तिहस्ता खड्गखेटकधारिणी ॥ ८ ॥ कंसादिदैत्यदलिनीं स्वसारंरामकृष्णयोः ॥ यस्या दर्शनमात्रेण सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ ततोगच्छतविप्रेन्द्रास्तीर्थंनागेन्द्रसंज्ञितम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १० ॥ भुक्तिद्वारंततोगच्छेत् तीर्थम्पापप्रणाशनम् ॥ वशिष्ठेनसमानीता मुनिनायत्रगोमती ॥ ११ ॥ स्नातो भवतिगङ्गायां यत्रस्नात्वाकलौयुगे ॥ गोमतीनिःसृतायस्मात् प्रविष्टावरुणालयम् ॥ १२ ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या अश्वमेधफलंलभेत् ॥ भृगुणाहितपस्तप्तं स्थापितायत्रचाम्बिका ॥ १३ ॥ भृग्वर्चिताततोदेवी प्रसिद्धाश्रूयतेक्षितौ ॥ संसिद्धिम्परमांयान्ति यस्याःसंस्मरणान्नरः ॥ १४ ॥ शिवलोकान्यनेकानि यत्रसन्तिमहीतले ॥ ततोगच्छतविप्रेन्द्राः

हे द्विजेन्द्रो ! नागेन्द्र नामक तीर्थ को जावो कि जिसके दर्शनही से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ १० ॥ तदनन्तर पापविनाशक मुक्तिद्वारतीर्थ को जावै जहां कि वशिष्ठमुनिजी गोमती नदी को लाये हैं ॥ ११ ॥ कलियुग में जिस तीर्थमें नहाकर मनुष्य गंगा में नहाया हुआ होता है जहां से गोमतीजी निकली हैं और जहां समुद्र में पैठी हैं ॥ १२ ॥ उसमें भक्ति से नहाकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फल को पाता है जहां भृगुजी ने तप किया है व अम्बिकाजी को थापा है ॥ १३ ॥ उसी कारण पृथ्वी में भृगुपूजित देवी प्रसिद्ध हैं जिनके स्मरण से मनुष्य उत्तम सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे द्विजेन्द्रो ! जहां पृथ्वी में अनेक

शिवलोक हैं वहां उत्तम यमुनाजी के किनारे जावै ॥ १५ ॥ यहां पर सूर्य की कन्या यमुनाजी व अति उत्तम तड़ाग है उसमें भक्ति से नहाकर मनुष्य दुर्गति को नहीं पाता है ॥ १६ ॥ तदनन्तर पातकों के विनाशक साम्बतीर्थ को जावै जिसमें भक्ति से नहाकर मनुष्य बहुत सुवर्ण को पाता है ॥ १७ ॥ तदनन्तर त्रिलोक में प्रसिद्ध नागसरतीर्थ को जावै उसमें विधिपूर्वक पितरों को तर्पणकर मनुष्य नागलोक को पाता है ॥ १८ ॥ तदनन्तर गोमती नदी से द्रोह करतीहुई लक्ष्मी नदी को जावै जिसके स्पर्श करने से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ १९ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! वहां श्राद्ध करने से पितरों की तृप्ति को करता है और दान करने से मनोरथ की

कालिन्दीतटमुत्तमम्॥१५॥कालिन्दीसूर्यतनया सरश्चात्रत्वनुत्तमम् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या नदुर्गतिमवाप्नुयात् ॥१६॥ साम्बतीर्थंततोगच्छेत् तीर्थम्पापप्रणाशनम् ॥ यत्रस्नात्वानरोभक्त्या लभेद्बहुसुवर्णकम् ॥ १७ ॥ ततोनागसरोगच्छेत् तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ पितॄन्सन्तर्प्यविधिवन्नागलोकमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥ लक्ष्मीनदींततोगच्छेद्द्रुहतींगोमतीम्प्रति ॥ यस्याःस्पर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ १९ ॥ श्राद्धेकृतेतुविप्रेन्द्राः पितॄणांतृप्तिमावहेत् ॥ दानेमनोरथावाप्तिं लभतेनात्रसंशयः ॥ २० ॥ कम्बूसरस्ततोगच्छेत्स्नात्वासन्तर्पयेत्पितॄन् ॥ दानंदत्त्वायथाशक्त्या निर्मलंलोकमाप्नुयात् ॥ २१ ॥ दुर्वाससायत्रशप्ताः कोपाद्यदुकुमारकाः ॥ यत्रजालेश्वरोदेवः प्रादुर्भूतोह्युमापतिः ॥ २२ ॥ जालेश्वरंनरोदृष्ट्वा सद्यःपापात्प्रमुच्यते ॥ सम्पूजयित्वाभक्त्याच शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ २३ ॥ चक्रस्वामिसुतीर्थञ्च ततोगच्छेच्चमानवः ॥ जरत्कारुकृतंतत्र तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ २४॥ स्नात्वातत्रद्विजश्रेष्ठा नदुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ आसीत्खञ्जन

प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ तदनन्तर कम्बूसर को जावै जिसमें नहाकर पितरों को तर्पण करै और यथाशक्ति से दान देकर मनुष्य निर्मल लोक को पाता है ॥ २१ ॥ जहां दुर्वासाजी ने क्रोध से यदुकुमारों को शाप दिया है और जहां पार्वतीपति जालेश्वरदेवजी प्रकट हुए हैं ॥ २२ ॥ जालेश्वरजी को देखकर मनुष्य शीघ्रही पाप से छूट जाता है और उनको भक्ति से पूजकर मनुष्य शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ तदनन्तर मनुष्य चक्रस्वामी के उत्तम तीर्थ को जावै वहा जरत्कारु से किया हुआ तीर्थ त्रिलोक में प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसमें नहाकर मनुष्य दुर्गति को नहीं पाता है बड़े बल से संयुत खंजनक

नामक दैत्य हुआ है ॥ २५ ॥ उसमें नहाकर मनुष्य सनातन शिवलोक को जाता है और वहां कलियुग में छिपे हुए अनेकों तीर्थ हैं ॥ २६ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! वहां वसुदेवजीके तीर्थ को जावै इसके उपरान्त उत्तम सूरतीर्थ को जाकर ॥ २७ ॥ गावलगनि अक्रूर महात्मा के तीर्थ को जावै और बलदेवजी के तीर्थ व अन्य उग्रसेनजी के तीर्थ को जावै ॥ २८ ॥ और अर्जुन के तीर्थ व सुभद्राजी के तीर्थ को जावै और पहला देवकीतीर्थ व उत्तम रोहिणीतीर्थ है ॥ २९ ॥ और कर्दमजी का तीर्थ व महात्मा कपिलजी का तीर्थ है और वहीं सोमतीर्थ व रोहिणीतीर्थ है ॥ ३० ॥ ये व अन्य तीर्थ मुझ करके तुमलोगों से संक्षेप से कहे गये

कोनाम दैत्यश्चातिबलान्वितः ॥ २५ ॥ तत्रस्नात्वानरोयाति शिवलोकंसनातनम् ॥ सन्तितीर्थान्यनेकानि सुगुप्तानि कलौयुगे ॥ २६ ॥ तत्रगच्छतविप्रेन्द्रास्तीर्थमानकदुन्दुभेः ॥ सूरतीर्थंपरमकं गत्वातीर्थमतःपरम् ॥ २७ ॥ गावलगने स्तुतीर्थन्तु ह्यक्रूरस्यमहात्मनः ॥ बलदेवस्यतीर्थञ्च ह्युग्रसेनस्यचापरम् ॥ २८ ॥ अर्जुनस्यचतीर्थञ्च सुभद्रातीर्थमेवच ॥ देवकीतीर्थमाद्यन्तु रोहिणीतीर्थमुत्तमम् ॥ २९ ॥ कर्दमस्यचतीर्थन्तु कपिलस्यमहात्मनः ॥ सोमतीर्थन्तुतत्रैव रोहिणी तीर्थमेवच ॥ ३० ॥ एतान्यन्यानिसंक्षेपान्मयावःकथितानिच ॥ सर्वपापहराणीह मोक्षदानिनसंशयः ॥ ३१ ॥ प्रवक्ष्या मिद्विजश्रेष्ठास्तीर्थानिकलिसङ्गमे ॥ प्लावितानिसमुद्रेण पांशुनाह्युदकेनच ॥ ३२ ॥ एतन्मयावःकथितं संक्षेपात्तीर्थवि स्तरम् ॥ आत्मप्रज्ञानुमानेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ३३ ॥ शृणुयुःपरयाभक्त्या तीर्थयात्रामिमांद्विजाः ॥ सर्वपापवि निर्मुक्ता विष्णुलोकंव्रजन्तिते ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येतीर्थयात्राकथनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

जोकि इस लोक में सब पापों को हरनेवाले व निस्सन्देह मोक्षदायक हैं ॥ ३१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उन तीर्थों को मैं तुम से कहता हूं जो कि कलियुग प्राप्त होने पर समुद्र की बालू व जल से डुबाये गये हैं ॥ ३२ ॥ मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार तुमलोगों से इस तीर्थविस्तार को कहा अन्य क्या सुना चाहते हो ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उत्तम भक्ति से जो मनुष्य इस तीर्थयात्रा को सुनते हैं सब पापों से छूटे हुए वे विष्णुलोक को जाते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांतीर्थयात्राकथनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

के स्वामी गणेशजी पूर्वद्वार पै रक्षा के लिये हैं ॥ १० ॥ और रक्षा के लिये सूर्य व सात मातृदेवी स्थित हैं और नग्न महादेवजी व नागराज तक्षक स्थित हैं ॥ ११ ॥ और सेनाध्यक्ष स्वामिकार्त्तिकेय व राजस महामुख स्थित हैं और वहां दीर्घनर नामक दानव स्थित है ॥ १२ ॥ और विश्वावसु गंधर्व व उत्तम अप्सरा मेनका स्थित है और सनत्कुमार समेत भगवान् वशिष्ठ ऋषि हैं ॥ १३ ॥ ये पूर्व और पूजने योग्य हैं और बरगद का बड़ाभारी वृक्ष है पूर्वद्वार पै स्थित इन सबों को पूजै व आग्नेय में मुझसे सुनिये ॥ १४ ॥ कि ज्वालामुख, रक्ताक्ष, श्मशाननिलय, कुश, मासाशी, रुधिराहार, कृष्ण व कृष्णजटाधर ॥ १५ ॥ व त्रासन और भंजन

विनायकः ॥ १० ॥ रक्षणार्थश्चवैसूर्यो देव्योवैसप्तमातरः ॥ ईश्वरश्चापिदिग्वासा नागराजश्चतक्षकः ॥ ११ ॥ सेनानीः कार्त्तिकेयश्च राजसश्चमहामुखः ॥ तत्रदीर्घनरोनाम दानवःसुप्रतिष्ठितः ॥ १२ ॥ विश्वावसुश्चगन्धर्वो मेनकाचव राप्सराः ॥ सनत्कुमारसहितो वशिष्ठोभगवानृषिः ॥ १३ ॥ एतेपूज्याःपूर्वतस्तु न्यग्रोधश्चमहावटः ॥ पूर्व द्वारिस्थितानेतानाग्नेय्यामथमेशृणु ॥ १४ ॥ ज्वालामुखोथरक्ताक्षः श्मशाननिलयःकुशः ॥ मांसाशीरुधिरा हारः कृष्णःकृष्णजटाधरः ॥ १५ ॥ त्रासनोभञ्जनश्चैव आग्नेय्यांदिशिसंस्थितः ॥ दिशंरक्षतितेनादौ दक्षिणाम थमेशृणु ॥ १६ ॥ दण्डपाणिर्महानादः पाशहस्तस्त्रिलोचनः ॥ अतिवर्त्तकोमारणश्च तथादुन्दुभिनिःस्वनः ॥ १७ ॥ खरस्वरोघर्घरवस्तथामौनाप्रियःसदा ॥ मल्लिकश्चैवएतेस्युः प्रणेतृद्वारपालकाः ॥ १८ ॥ दक्षिणद्वाररक्षार्थं दुर्दर्शश्च विनायकः ॥ महिषीकश्चवैसूर्यो भूषणश्चतुरस्तथा ॥ १९ ॥ चित्राङ्गदःसुगन्धश्च उर्वशीचवराप्सराः ॥ गोरजोदानवश्चैव

आग्नेय दिशा में स्थित हैं व उसीसे दिशा की रक्षा करते हैं इसके उपरान्त दक्षिण दिशा में स्थित दैत्यों को सुनो ॥ १६ ॥ कि दंडपाणि, महानाद, पाशहस्त, त्रिलो-चन, अतिवर्तक, मारण व दुंदुभिनिःस्वन ॥ १७ ॥ और खरस्वर, घर्घरव व सदैव मौनप्रिय और मल्लिक ये प्रणेता (स्वामी) के द्वारपालक हैं ॥ १८ ॥ और दक्षिणद्वार की रक्षा के लिये दुर्दर्श विनायक स्थित हैं और महिषीक्र सूर्य हैं व भूषण, चतुर ॥ १९ ॥ और चित्रांगद व सुगंध गन्धर्व हैं व उर्वशी नामक उत्तम अप्सरा है और

गोरज दानव व सांखू का बड़ाभारी वृक्ष है ॥ २० ॥ व बड़े तपस्वी तथा श्रेष्ठ अगस्त्य व सनातनऋषि हैं व सावधान होतेहुए ये दक्षिण दिशा में द्वार की रक्षा करते हैं ॥ २१ ॥ और गोमुख, मुंडक, नग्न, कंबली व रुदनप्रिय, हसन, ग्रीवलम्ब, भ्रूविकार व द्विजंभक दैत्य हैं ॥ २२ ॥ और वहा मुशलीसूर्य व मेनका उत्तम अप्सरा है ये नैर्ऋत्य दिशा की रक्षा करते हैं और पश्चिम दिशा में अन्य को सुनिये ॥ २३ ॥ कि स्वस्तिक, शंखमूर्द्धा, नीलवासा व शुभानन और पादहस्त, मूलहस्त, एकपाद व एकलोचन ॥ २४ ॥ और स्थूलजंघ, स्थूलशिरा ये सुमुख के वश में स्थित हैं व शस्त्रों को हाथ में उठायेहुए ये पश्चिमदिशा में रक्षक हैं ॥ २५ ॥

शालश्चापिमहाद्रुमः ॥ २० ॥ सनातनऋषिश्रेष्ठो ह्यगस्त्यश्चमहातपाः ॥ एतेयाम्यदिशिद्वारं रक्षन्तिसुसमाहिताः ॥२१॥ गोमुखोमुण्डकोनग्नः कम्बलीरुदनप्रियः ॥ हसनोग्रीवलम्बश्च भ्रूविकारोद्विजम्भकः ॥ २२ ॥ मुशलीसूर्यकस्तत्र मेनकेववराप्सराः ॥ रक्षन्तिनैर्ऋतीमाशां पश्चिमांशृणुतापरान् ॥ २३ ॥ स्वस्तिकःशङ्खमूर्द्धाच नीलवासाःशुभाननः॥ पादहस्तोमूलहस्त एकपादैकलोचनः ॥ २४ ॥ स्थूलजङ्घःस्थूलशिराः सुमुखस्यवशेस्थिताः ॥ एतेशस्त्रोद्यतकरा वारुण्यांदिशिपालकाः ॥ २५ ॥ पश्चिमायांदिशितथा पुष्पदन्तोविनायकः ॥ ऊर्ध्वबाहुश्चवैसूर्यः शिवःसत्राजितेश्वरः ॥२६॥ तुम्बुरुर्नामगन्धर्वो घृताचीतुवराप्सराः ॥ महोदरश्चनागेन्द्रो राक्षसश्चघटोत्कचः ॥२७॥ दैत्यःपञ्चजनोनाम ऋषिःकाश्यपएवच ॥ देवीकपालिनीनाम्नी अश्वत्थश्चमहाद्रुमः ॥ २८ ॥ कपिलःक्षेत्रपालश्च प्रतीचींपालयन्दिशम् ॥ नमस्कार्यस्तथापूज्यो वायव्यांशृणुतदिशि ॥ २९ ॥ भजतोभैरवश्चैव कालिकोथघटोदरः ॥ दण्डकोमर्दनःषङ्गो रुरुः

वैसेही पश्चिम दिशा में पुष्पदंत विनायक हैं और ऊर्ध्वबाहु नामक सूर्य व सत्राजितेश्वर शिव हैं ॥ २६ ॥ और तुम्बुरुनामक गंधर्व व घृताची उत्तम अप्सरा है और महोदर नागेन्द्र व घटोत्कच राक्षस है ॥ २७ ॥ व पंचजन नामक दैत्य और काश्यपऋषि व कपालिनी नामक देवी व पीपल का बड़ा भारी वृक्ष है ॥ २८ ॥ और पश्चिम दिशा की रक्षा करते हुए कपिलजी क्षेत्रपाल प्रणाम व पूजने के योग्य हैं इसके उपरान्त वायव्य दिशा में सुनिये ॥ २९ ॥ कि भंजन, भैरव, कालिक, घटोदर,

दण्डक, मर्दन, षंग, रुरु व सर्वभुज और घृणी है ॥ ३० ॥ व उत्तर दिशा की रक्षा करता हुआ सुपार्श्व इनका स्वामी है व मूलस्थान नामक सूर्य व इन्द्रेश शिव हैं ॥ ३१ ॥ व कंठेश्वरी देवी और खंजन क्षेत्रपाल व वासुकि नागराज और कूर्मपृष्ठ दानव है ॥ ३२ ॥ और सनक नामक उत्तम ऋषि व गोलक राक्षस है और नारद नामक गन्धर्व व रंभा नामक उत्तम अप्सरा है ॥ ३३ ॥ ये बड़े यत्न से पूजने योग्य हैं और पंकरिया का बड़ाभारी वृक्ष है कुबेर से सेवित (उत्तर) दिशा में ये यत्न से पूजने योग्य हैं ॥ ३४ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! ईशान दिशा में बड़ा बलवान् किलीक और दुर्धर, भैरवमुख, दीर्घास्य तथा मेघनिस्वन है ॥ ३५ ॥ और कराल, विकच,

सर्वभुजोघृणी ॥ ३० ॥ सुपार्श्वःप्रभुरेतेषामुदीचीम्पालयन्दिशम् ॥ मूलस्थानश्चवैसूर्य इन्द्रेशश्चमहेश्वरः ॥ ३१ ॥ देवी कण्ठेश्वरीनाम क्षेत्रपालश्चखञ्जनः ॥ वासुकिर्नागराजश्च कूर्मपृष्ठश्चदानवः ॥ ३२ ॥ सनकश्चऋषिश्रेष्ठो गोलकोराक्षसस्तथा ॥ नारदोनामगन्धर्वो रम्भाचैववराप्सराः ॥ ३३ ॥ एतेपूज्याःप्रयत्नेन प्लक्षोनाममहाद्रुमः ॥ यक्षेशसेवितामाशामेतेपूज्याःप्रयत्नतः ॥ ३४ ॥ ईशान्यांदिशिविप्रेन्द्राः किलीकोवैमहाबलः ॥ दुर्द्धरोभैरवमुखो दीर्घास्योमेघनिस्वनः ॥ ३५ ॥ करालोविकचोमूको बलिभुक्चबलिप्रियः ॥ मांसप्रियमुखाश्चैते ईशान्यांपालयन्तिवै ॥ ३६ ॥ एतेषांक्षेत्रपालानामसुराणांद्विजोत्तमाः ॥ नेताप्रभुश्चस्वामीच जयन्तःपालकस्तथा ॥ ३७ ॥ निगृह्णात्यनुगृह्णाति रक्षितापुरवासिनाम् ॥ जयन्तादेशमादाय विदुष्टंघातयन्तिच ॥ ३८ ॥ नागस्थलस्थितःस्वामी जयन्तःपालकस्तथा ॥ नागराजैःपरिवृतः पूजनीयःप्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ सहस्रशिरसंतत्र शेषंनागस्थलस्थितम् ॥ अनन्तोवासुकिश्चैव तक्षकः

मूक, बलिभुक् व बलिप्रिय और मांसप्रिय आदिक ये ईशान दिशा में रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इन क्षेत्रपालों व अप्सराओं के नायक, प्रभु, स्वामी व पालक जयन्त हैं ॥ ३७ ॥ और वे पुरवासियों को दण्ड देते हैं व अनुग्रह करते हैं और जयन्त की आज्ञा को लेकर क्षेत्रपाल दुष्ट प्राणी को मारते हैं ॥ ३८ ॥ नागस्थल में स्थित स्वामी व पालक जयन्त जोकि नागों से घिरे हैं वे यत्न से पूजने योग्य हैं ॥ ३९ ॥ और वहां नागस्थल में स्थित हज़ार मस्तकोंवाले शेषजी को पूजै

पद्मएवच ॥ ४० ॥ शङ्खःकम्बलकश्चैव नागस्त्रातारतस्तथा ॥ कर्कोटकमुखानागास्तत्रसन्तिसहस्रशः ॥ ४१ ॥ तेपूज्या गन्धपुष्पैश्च बलिभिःपुष्पसञ्चयैः ॥ पायसेनचमांसेन त्वन्नाद्यैःसुरयातथा ॥ ४२ ॥ तथासंस्नाप्यदेवेशं जयन्तंरक्षिणां वरम् ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च धूपवस्त्रादिभूषणैः ॥ ४३ ॥ ततोगच्छेत्सुरश्रेष्ठं कृष्णंदेवकिनन्दनम् ॥ सम्पूज्यःप्रथमंतत्र गणेशोरुक्मिसंज्ञकः ॥ ४४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथंरुक्मीतिदैत्येन्द्र योदुष्टोगणताङ्गतः ॥ साक्षाद्भगवतोद्वारि प्रत्यहम्पूज्यते नृभिः ॥ ४५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ कृष्णायरुक्मिणींदातुं यदाराजाकृतक्षणः ॥ तद्वशात्क्रोधसंयुक्तो रुक्मीनैवान्वमन्यत ॥ ४६ ॥ यदाजहारभगवान् रुक्मिणींत्वम्बिकालयात् ॥ तंहत्वाविनिवर्त्तिष्येधुनाहंयादवंरणे ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वासुसन्नद्धो रथेनपरिधावितः ॥ सयुध्यमानःकृष्णेन भग्नमानोहतौजसः ॥ ४८ ॥ रामेणबन्धनान्मुक्तो मरणायमतिंदधे ॥ रुक्मिणीभ्रातरंदृष्ट्वा मरणेकृतनिश्चयम् ॥ ४९ ॥ उवाचकृष्णंवैदर्भी भ्रातरंत्वानयाशुमे ॥ ततस्तांप्रियमाकर्ण्य प्रि

और अनंत, वासुकि, तक्षक व पद्म ॥ ४० ॥ और शंख, कंबलक व त्रातारतनाग और कर्कोटक आदिक वहां हज़ारों नाग हैं ॥ ४१ ॥ और वे चन्दन, पुष्प, बलि तथा पुष्पसमूहों से पूजने योग्य हैं और खीर, मांस व अन्नादिक तथा मदिरा से पूजने योग्य हैं ॥ ४२ ॥ वैसेही रक्षकों में उत्तम जयन्त देवेशजी को भलीभांति नहवाकर चन्दन, पुष्प व उपहारों से तथा धूप व वस्त्रादिक भूषणों से पूजै ॥ ४३ ॥ तदनन्तर देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी के समीप जावै वहां रुक्मिनामक गणेश पहले पूजने योग्य हैं ॥ ४४ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे दैत्येन्द्र ! रुक्मी ऐसा जो दुष्ट था वह कैसे गणेशता को प्राप्त हुआ जो कि भगवान् श्रीकृष्णजी के द्वार पै प्रतिदिन मनुष्यों से पूजा जाता है ॥ ४५ ॥ प्रह्लादजी बोले कि जब राजा भीष्मक ने रुक्मिणीजी को श्रीकृष्णजी के देने के लिये उत्सव किया तब उसके वश से क्रोधसंयुत रुक्मी प्रसन्न न हुआ ॥ ४६ ॥ और जब भगवान् श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणीजी को भगवती के मन्दिर से हरलिया तब इस समय मैं उन यादव श्रीकृष्णजी को युद्ध में मारकर लौटूंगा ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर व तैयार होकर रुक्मी रथ के द्वारा दौड़ा और युद्ध करते हुए उसके मान व पराक्रम को श्रीकृष्णजी ने नाश कर दिया ॥ ४८ ॥ और बलरामजी से बन्धन से छुटाया हुआ वह मरने के लिये बुद्धि करता भया और विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणीजी ने मरने में

किये हुए निश्चयवाले भाई को देखकर श्रीकृष्णजी से कहा कि शीघ्रही मेरे भाई को लाइये तदनन्तर प्यारी रुक्मिणीजी के उस प्रिय वचन को सुनकर जनार्दन श्रीकृष्णजी ने ॥ ४९ । ५० ॥ उसको सभाओं के मध्य में श्रेष्ठ गणनायक किया हे ब्राह्मणो ! इसी कारण वे रुक्मी रुदैव पहले पूजे जाते हैं ॥ ५१ ॥ व उनको धूप, चन्दन, अक्षत, वस्त्र व लड्डुवों से तृप्त करै ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्धारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवयात्रायांपरिचारकथनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

दो० । वामन के ढिग गये जिमि दुर्वासा मुनिनाथ । अठरहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ प्रह्लादजी बोले कि सुवर्ण से भूषित रुक्मी गणेश को पूजकर दुर्वासा

यावाक्यञ्जनार्द्दनः ॥ ५० ॥ चक्रेपरिषदाम्मध्ये प्रवरंविघ्ननाशनम् ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः प्रथमम्पूज्यतेसदा ॥ ५१ ॥ धूपगन्धाक्षतैर्वस्त्रैर्मोदकैःपरितर्पयेत् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवयात्रायांपरिचारकथनन्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ सम्पूज्यगणनाथञ्च रुक्मिणंरुक्मभूषितम् ॥ दुर्वाससञ्चदेवंवै बलदेवञ्चभक्तितः ॥ १ ॥ यजत्येकोमहायज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलंतयोः ॥ २ ॥ प्राणायामादिसंयुक्तो ध्यानेज्ञानेपरायणः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलंतयोः ॥ ३ ॥ जाह्नव्यादिपुतीर्थेषु स्नायात्वेकःसमाहितः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलंतयोः ॥ ४ ॥ वापीकूपतडागादि करोत्येकःसमाहितः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलंतयोः ॥ ५ ॥ त्रिभिःपदक्रमैर्येन विक्रान्तंभुवनत्रयम् ॥ त्रिविक्रमञ्चतंदृष्ट्वा मुच्यतेपातक

देव व बलभद्रजी को भक्ति से पूजै ॥ १ ॥ एक मनुष्य सम्पूर्ण उत्तम दक्षिणाओंवाले यज्ञों से पूजता है व एक देवेश श्रीकृष्णजी को पूजता है उन दोनों को फल बराबर होता है ॥ २ ॥ और एक मनुष्य प्राणायामादिकों से संयुत होकर ध्यान व ज्ञान में लगाहोवै और एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखै उन दोनों को फल बराबर है ॥ ३ ॥ और सावधान होकर एक मनुष्य गङ्गादिक तीर्थों में नहावै और एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखै उन दोनों को फल बराबर होता है ॥ ४ ॥ और सावधान एक पुरुष बावली, कूप व तड़ागादिकों को बनवाता है और एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखता है उन दोनों को तुल्य फल होता है ॥ ५ ॥ जिन विष्णुजी ने

तीन पगसे त्रिलोक को नाप लिया उन वामनजी को देखकर मनुष्य तीनों पापों से छूट जाता है ॥ ६ ॥ ऋषिलोग बोले कि जो वामनजी की मूर्ति पृथ्वी में त्रिराजती है इसको दुर्वासा व कृष्णजी ने किस समय व कैसे पाया है ॥ ७ ॥ हे दैत्येन्द्र ! हमलोगों की इस सन्देह को तुम सम्पूर्णता से काटने के योग्य हो और दुर्वासा व कृष्णजी की उत्पत्ति को कहिये ॥ ८ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उसको सुनिये कि जिसप्रकार दुर्वासा से संयुत त्रिविक्रमजी की मूर्ति पृथ्वी में उत्पन्न हुई है ॥ ९ ॥ कि पहले सतयुग के आदि में बलि ने इन्द्र को जीतलिया व स्थान से अलग करदिया उसीलिये मधुसूदन ॥ १० ॥ ये वामनजी उस समय कश्यपजी

त्रयात् ॥ ६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथंत्रैविक्रमीमूर्त्ती राजतेयाधरातले ॥ दुर्वाससाचकृष्णेन कदेयंप्राप्तिमागता ॥ ७ ॥ दैत्येन्द्रसंशयोस्माकं छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ दुर्वाससश्चकृष्णस्य सम्भवःकथ्यतामिति ॥ ८ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तच्छ्रूयतां द्विजश्रेष्ठा यथामूर्तिस्त्रिविक्रमी ॥ दुर्वाससासमायुक्ता सम्भूताधरणीतले ॥ ९ ॥ पूर्वेयुगेकृतादौच बलिनाचपुरन्दरः ॥ निर्जितश्च्यावितःस्थानात्तदर्थंमधुसूदनः ॥ १० ॥ कश्यपाददितेर्जातस्तदासौचत्रिविक्रमः ॥ त्रिभिःक्रमैरिमाँल्लोकानाक्रम्यमधुहाहरिः ॥ ११ ॥ बलिञ्चकारभगवान् पातालतलवासिनम् ॥ भक्त्यात्वनन्ययाकृष्णः पूजितःपरितोषितः ॥ १२ ॥ स्वयञ्चैवावसत्तत्र भक्त्याकृतनिकेतनः ॥ अनुग्रहायभगवान् द्वारपालोनभूवह ॥ १३ ॥ दुर्वासाश्चापि भगवानात्रेयोमुनिसत्तमः ॥ अटंस्तीर्थानिभोविप्राश्चक्रतीर्थंचमुक्तिदम् ॥ १४ ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वागमनायमतिं दधे ॥ सोतीत्यनगरंग्रामानुद्यानानिवनानिच ॥ १५ ॥ आनर्तविषयम्प्राप्तो दैत्यभूमिंविवेशह ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारां

से अदिति स्त्री के पैदा हुए हैं और इन लोकों को तीन पगसे मापकर मधुसूदन विष्णु ॥ ११ ॥ भगवान् ने बलि को पातालतलनिवासी किया और अनन्य भक्ति से श्रीकृष्णजी पूजेगये व प्रसन्न कियेगये ॥ १२ ॥ और भक्ति के कारण स्थान को कियेहुए वामनजी आप भी वहां बसे और दया करने के लिये भगवान् वामनजी द्वारपालक हुए ॥ १३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! अत्रि के पुत्र मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा भगवान् भी तीर्थों को जातेहुए चक्रतीर्थ मुक्तिदायक है ॥ १४ ॥ ऐसा निश्चय कर उन्होंने जाने के लिये बुद्धि किया और वे दुर्वासाजी नगर, गांव, बगीचों व वनों को नांघ कर ॥ १५ ॥ आनर्त देश को प्राप्तहुए व दैत्यकी भूमि में प्रवेश करते भये जोकि वेदपाठ

व वषट्कार से रहित तथा वेदध्वनि से वर्जित ॥ १६ ॥ और कुशनामक दैत्यराज से सेवित व पालित थी और बहुत से म्लेच्छोंसे पूर्ण व अधर्म को इकट्ठा करनेवाले पुरुषों से संयुत थी ॥ १७ ॥ उस समय हे ब्राह्मणो ! प्रत्यासन्न ऐसे प्रसिद्ध चक्रतीर्थ में नहाकर दैत्यकी भूमि को छोड़कर मैं शीघ्रही चलाजाऊंगा ॥ १८ ॥ यही विचार करतेहुए वे दुर्वासाजी शीघ्रही गये और गोमती व समुद्र के पवित्र संगम को जाकर ॥ १९ ॥ वहां वसनों को धरकर गोमतीजी की मिट्टी को लेकर मस्तक में शिखा (चोटी) को बांधकर हाथों में कुशों को करके ॥ २० ॥ जब ये विप्र दुर्वासाजी नहाने लगे तब यह कौन है यह कौन है ऐसा कहतेहुए दुष्ट दैत्यों ने

वेदध्वनिविवर्जिताम् ॥१६॥ कुशेनदैत्यराजेन सेवितांपालितांयथा ॥ बहुम्लेच्छसमाकीर्णामधर्मोपार्जितैर्नरैः ॥ १७ ॥ प्रत्यासन्नमितिख्याते चक्रतीर्थेतदाद्विजाः ॥ स्नात्वाशीघ्रन्तुयास्यामि दैत्यभूमिंविहायच ॥ १८ ॥ इत्येवंचिन्तयन्मार्गे शीघ्रमेवजगामसः ॥ गत्वातुसङ्गमम्पुण्यं गोमत्याःसागरस्यच ॥ १९ ॥ निधायवाससीतत्र मृदमाहृत्यगोमया ॥ शिखाञ्चबद्ध्वाशिरसि कृत्वाचकरयोःकुशान् ॥ २० ॥ यदास्नास्यतिविप्रोसौ दुष्टोदैत्यैर्दुरात्मभिः ॥ ब्रुवद्भिःकोयमित्येवंहन्यतांहन्यतामिति ॥२१॥ इतिब्रुवन्तोहन्युस्ते जानुभिर्मुष्टिभिस्तथा ॥ ब्राह्मणोहंनहन्तव्यस्तच्छ्रुत्वाचात्यताडयन् ॥ २२ ॥ तंदृष्ट्वाहन्यमानन्तु ब्राह्मणंतैर्दुरात्मभिः ॥ निवारयामासचतां रुरुर्नाममहासुरः ॥ २३ ॥ जगृहुस्तस्यवस्त्राणि कुशांस्तेचिक्षिपुर्जले ॥ चक्रुषुश्चरणौगृह्य शपन्तोदुष्टचेतसः ॥ २४ ॥ तदानिर्विषयञ्चक्रुः सीमान्तेरुचिरेतदा ॥ अत्रागतोयदिपुनर्हनिष्यामोनसंशयः ॥ २५ ॥ आनर्त्तविषयान्तेवै दृष्ट्वातत्रजलाशयम् ॥ प्राणसंशयमापन्न इति

उनको घेरलिया व इसको मारिये मारिये ॥ २१ ॥ ऐसा कहतेहुए उन्होंने जानुवों व घूंसों से मारा और मैं ब्राह्मण हूं मारनेयोग्य नहीं हूं उस वचन को सुनकर बहुत मारा ॥ २२ ॥ और उन दुष्टात्मा दानवोंसे मारे जातेहुए उस ब्राह्मण को देखकर रुरु नामक महादैत्य ने उनको मना किया ॥ २३ ॥ और उन दैत्यों ने उन दुर्वासा जी के वस्त्रों को ले लिया व कुशों को जल में फेंकदिया और निन्दा करतेहुए दुष्ट चित्तवाले दैत्यों ने चरणों को पकड़कर खींचा ॥ २४ ॥ और उस समय सुन्दरी हद के बाहर निकाल दिया व कहा कि यदि फिर यहां आवोगे तो मारैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ और आनर्त देश के अन्त में वहां जलाशय को देखकर प्राणों की

सन्देह को प्राप्त दुर्वासाजी इस चिन्ता में तत्परहुए ॥ २६ ॥ कि मैं यदि दैत्यों को शापदूं तो मुझ को जीवन कौन देवैगा और यहां मुझको कौन चक्रतीर्थ का स्नान करावैगा ॥ २७ ॥ और इन महादैत्यों को समर में जीतने के लिये कौन समर्थ है भक्तों को अभय देनेवाले उन कमललोचन विष्णुजी को ध्यानकर कहा ॥ २८ ॥ कि ब्रह्मादिकों के नायक व शरणागतपालक व चक्रको हाथ में लिये विष्णुजी के बिना कौन शरणदायक होगा ॥ २९ ॥ ऐसा ध्यानकर व विचारकर पाताल में टिकेहुए विष्णुजी को जानकर अत्रि के पुत्र दुर्वासाजी पृथ्वी में विष्णुजी की शरण में गये ॥ ३० ॥ और उपास से दुर्बल व दीन वे दुर्वासाजी पृथ्वी के नीचे पैठे और गन्धर्वों व अ-

चिन्तापरोऽभवत् ॥२६॥ शप्ताहंयदिदैतेयान् कोमेदास्यतिजीवितम् ॥ चक्रतीर्थञ्चकःस्नानं कारयिष्यतिमामिह॥२७॥ कोवादैत्यगणानेताञ्च्छक्तोजेतुंमहाहवे ॥ सञ्चिन्त्यपुण्डरीकाक्षं भक्तानामभयप्रदम् ॥ २८ ॥ ब्रह्मादीनाञ्चनेतारं शरणागतवत्सलम् ॥ चक्रहस्तंविनामेद्य कोन्यःशरणदोभवेत् ॥ २९ ॥ इतिध्यात्वाससञ्चिन्त्य ज्ञात्वापातालसंस्थितम् ॥ आत्रेयोविष्णुशरणं जगामधरणीतले ॥ ३० ॥ उपवासात्कृशोदीनो भूतलम्प्रविवेशह ॥ सदैत्यराजभवनं गन्धर्वाप्सरसावृतम् ॥ ३१ ॥ शोभितंसुरमुख्येन विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ दुर्वासाःप्रविवेशाथ प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३२ ॥ दुर्वाससमथायान्तं दृष्ट्वादैत्यपतिस्तथा ॥ प्रत्युत्थायार्हणाञ्चक्रे आसनेसन्न्यवेशयत् ॥३३॥ मधुपर्कञ्चगांदैत्यो दत्त्वार्घंपार्श्वतःस्थितः ॥ प्रोवाचप्रणतोब्रूहि ह्यत्रागमनकारणम् ॥ ३४ ॥ सुखोपविष्टःसऋषिस्तत्रापश्यत्त्रिविक्रमम् ॥ दैत्येन्द्रद्वारदेशेतु तिष्ठन्तमकुतोभयम् ॥ ३५ ॥ तंदृष्ट्वादेवदेवेशं श्रीवत्साङ्कंचतुर्भुजम् ॥ रुदन्नृषिवरस्सोथ

प्सराओं से घिरा दैत्यराज (बलि) का मन्दिर ॥ ३१ ॥ जोकि देवताओं में मुख्य समर्थवान् विष्णुजी से शोभित था दुर्वासाजी प्रसन्नचित्त से उसमें पैठगये ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त आतेहुए दुर्वासाजी को देखकर दैत्योंके स्वामी बलि ने उठकर पूजन किया व आसन पै बिठाया ॥ ३३ ॥ और मधुपर्क, गऊ व अर्घ को देकर बलि दैत्य समीप में स्थित हुआ व उसने प्रणाम कर कहा कि यहां के आने का कारण कहो ॥ ३४ ॥ सुखसे बैठेहुए उन दुर्वासा मुनि ने वहां दैत्यराज बलि के द्वार पै बैठेहुए सब कहीं से निडर वामनजी को देखा ॥ ३५ ॥ और श्रीवत्ससे चिह्नित उन चतुर्भुज देवदेवेश (विष्णु) जी को देखकर रोतेहुए उन श्रेष्ठ ऋषि दुर्वासाजी ने यह

कहा कि रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ हे जनार्दनजी ! संसार के डरसे डरे हुए व दुःखित तथा शत्रुवों से तिरस्कृत मनुष्यों के रक्षक आपही हो ॥ ३७ ॥ इस कारण हे ब्रह्मण्यदेव, केशव ! शत्रुवों से खींचेहुए तथा दुःख से सन्तप्त व तिरस्कृत और क्षुधा से पीड़ित व अपूर्ण नियमवाले और दानवों से खींचेहुए मुझ ब्राह्मण के रक्षक होवो ॥ ३८ । ३९ ॥ यह कहकर दुर्वासाजी ने दैत्यों से मारेहुए शरीर को दिखाया और उस ब्राह्मण के अपमान को देखकर विष्णुजी क्रोधित हुए ॥ ४० ॥ व बोले कि हे ब्रह्मन् ! धर्म के रक्षक मेरे स्थित होने पर किसने तुम्हारा अपमान किया व किसने नियम को खण्डन किया हे महाभाग ! उसको कहो ॥ ४१ ॥ दुर्वासाजी बोले कि

त्राहित्राहीत्यभाषत ॥ ३६ ॥ संसारभयभीतानां दुःखितानाञ्जनार्द्दन ॥ शत्रुभिःपरिभूतानां शरणंशरणार्थिनाम् ॥ ३७॥ ममदुःखाभितप्तस्य शत्रुभिःकर्षितस्यच॥ पराभूतस्यदीनस्य क्षुधयापीडितस्यच॥ ३८॥ अपूर्णनियमस्याथ कर्षितस्यचदानवैः ॥ ब्रह्मण्यदेवविप्रस्य शरणम्भवकेशव ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वादर्शयामास शरीरंदैत्यताडितम् ॥ तद्ब्राह्मणापमानन्तु दृष्ट्वाचुक्रोधमाधवः ॥ ४० ॥ केनापमानितोब्रह्मन् नियमःकेनखण्डितः ॥ कथयस्वमहाभाग धर्मगोप्तरिमयिस्थिते ॥ ४१ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ मुक्तितीर्थमिदंज्ञात्वा ज्ञानेनमधुसूदन ॥ चक्रतीर्थङ्गतःस्नातुं यात्रायां हर्षसंयुतः ॥ ४२ ॥ अकृतस्नानएवाहं कृष्टोदैत्यैर्दुरात्मभिः ॥ गलेगृहीतःकृष्णाहं मुष्टिभिस्ताडितस्तथा ॥ ४३ ॥ बलाद्गृहीत्वावासांसि कुशांश्चैवाक्षतैःसह ॥ हनिष्यामोयदिपुनरागतोसिनसंशयः ॥ ४४ ॥ स्नातोहञ्चक्रतीर्थेतु करिष्येभोजनम्प्रभो ॥ तस्मात्स्नापयगोविन्द नियमंसफलंकुरु॥ ४५ ॥ तवप्रसादात्स्नात्वाच भुक्त्वाचप्रीतमान

हे मधुसूदन ! इस मुक्तितीर्थ को ज्ञान से जानकर हर्षसंयुत मैं यात्रा में चक्रतीर्थ को गया ॥ ४२ ॥ व हे श्रीकृष्णजी ! स्नान न कियेही हुए मुझ को दुष्ट दैत्यों ने खींचा व गलेमें पकड़लिया और घूंसों से मुझ को मारा ॥ ४३ ॥ और बल से वस्त्र व अक्षतों समेत कुशों को लेकर जल में फेंक दिया व कहा कि यदि फिर आवोगे तो तुम को मारेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! चक्रतीर्थ में नहाकर मैं भोजन करूंगा इसलिये हे गोविन्दजी ! उसमें स्नान कराइये और नियम सफल कीजिये॥४५॥

तुम्हारी प्रसन्नतासे नहाकर व भोजन करके प्रसन्नमनवाला मैं प्रतिज्ञा को सफल कर इस पृथ्वी में विचरूंगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चक्रतीर्थ में न्हाय जिमि दुर्वासा मुनिनाथ । उनइसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ प्रह्लादजी बोले कि उस वचन को सुनकर देवदेवेश वामनजी ने बार २ विचार कर वहां पापरहित दुर्वासाजी से वचन कहा ॥ १ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! मैं पराधीन हूं और भक्ति से प्रसन्न होता हूं अन्यथा नहीं होता

सः ॥ प्रतिज्ञांसफलांकृत्वा विचरिष्येमहीमिमाम् ॥ ४६ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

प्रह्लाद उवाच ॥ तच्छ्रुत्वादेवदेवेशश्चिन्तयित्वापुनःपुनः॥ उवाचवचनंतत्र दुर्वाससमकिल्बिषम् ॥ १॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ पराधीनोस्मिविप्रेन्द्र भक्तिप्रीतोस्मिनान्यथा ॥ बलेरादेशकारीच दैत्येन्द्रवशगोह्यहम् ॥ २॥ तस्मात्प्रार्थयविप्रेन्द्र दैत्यंवैरोचनिंबलिम् ॥ अस्यादेशात्करिष्यामि यदभीष्टन्तवाधुना ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंविप्रो बलिंप्रोवाचसत्वरम् ॥ यज्ञिनांत्वंवरिष्ठश्च दातॄणान्त्वमतोधिकः ॥ ४ ॥ कृपापरश्चकृपिणान्दयांकुरुममोपरि ॥ प्रेषयस्वमहाभागं देवंदैत्येन्द्रनिग्रहे ॥ ५ ॥ सम्पूर्णनियमस्तात त्वत्प्रसादाद्भवाम्यहम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदैत्यो नातिहृष्टमनास्तथा ॥ ६ ॥ दुर्वाससमुवाचेदं नैतदेवम्भविष्यति ॥ अन्यत्प्रार्थयविप्रेन्द्र यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ७ ॥ तद्दास्यामिनसन्दे

हूं और बलि का आज्ञाकारी हूं व दैत्यराज (बलि) के वश में मैं प्राप्तहूं ॥ २ ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्र ! विरोचन के पुत्र बलिदैत्यसे प्रार्थना करिये क्योंकि इसकी आज्ञा से मैं उसको करूंगा जोकि इस समय तुम को प्रिय होगा ॥ ३ ॥ उस वचन को सुनकर दुर्वासा ब्राह्मण ने शीघ्रही बलि से कहा कि यज्ञ करनेवालों में तुम श्रेष्ठहो और इस कारण तुम दाताओं में अधिक हो ॥ ४ ॥ और दया करनेवालों में तुम दयावान् हो मेरे ऊपर दया करो और बड़े ऐश्वर्य्यवान् विष्णु देवजी को दैत्यों को दण्ड देने के लिये पठाइये ॥ ५ ॥ हे तात ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं सम्पूर्णनियम होऊं उस वचन को सुनकर बलि दैत्य का मन बहुत प्रसन्न न हुआ ॥ ६ ॥ और उसने दुर्वासाजी से यह कहा कि ऐसा न होगा हे द्विजेन्द्र ! और कुछ मांगिये जो तुम्हारे मन में वर्तमान हो ॥ ७ ॥ यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि

मैं उसको दूंगा इसमें सन्देह नहीं है दुर्वासाजी बोले कि मुझको बहुत लोभी न जानिये मैं तुम से और क्या मांगूं॥ ८ ॥ हे दैत्य ! मेरे जीवकी रक्षा कीजिये कि विष्णुजी को पठाइये बलि बोले कि हे विप्र ! मारेहुए हिरण्याक्ष को तुम जानते हो ॥ ९ ॥ कि यज्ञवराह होकर इन विष्णुजी ने बल से उसको मारा है और देवताओं व मनुष्यों से अवध्य श्रेष्ठ दानव ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु को मारकर सर्वव्यापी नृसिंहजी हुए व विष्णुजी ने लङ्केश (रावण) के समान नमुचि दैत्य को मारकर सुरश्रेष्ठ विष्णुजी ने देवताओं के लिये माया से वृक दैत्य को मारा और पहले वामन होकर तीन पग मांगा ॥ ११ । १२ ॥ फिर त्रिविक्रम होकर लोकों को

हो यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ दुर्वासा उवाच ॥ नातिलुब्धंहिमांविद्धि किमन्यत्प्रार्थयामिते ॥ ८ ॥ रक्षमेजीवितंदैत्य प्रेषयस्वजनार्द्दनम् ॥ बलिरुवाच ॥ जानासित्वमिदंविप्र हिरण्याक्षन्निपातितम् ॥ ९ ॥ भूत्वायज्ञवराहस्तु जघानैवंबलादिव ॥ तथाचदैत्यप्रवरमवध्यंदेवमानुषैः ॥ १० ॥ हत्वाहिरण्यकशिपुं नृसिंहःसर्वगःप्रभुः ॥ तथाहत्वाचनमुचिं वृकंलङ्केशसन्निभम् ॥ ११ ॥ जघानमाययाविष्णुः सुरार्थंसुरसत्तमः ॥ प्रथमंवामनोभूत्वायाचयच्चपदत्रयम् ॥ १२ ॥ पुनस्त्रिविक्रमोभूत्वा भुवनानिजहारच ॥ मयापुण्यवशाद्विष्णुर्यदिप्राप्तःकथञ्चन ॥ १३ ॥ नाहम्मोक्ष्येजगन्नाथं मायावामनकम्प्रभुम् ॥ दुर्वासा उवाच ॥ नाहम्भोक्ष्येविनास्नानाद्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ १४ ॥ यदिनप्रेषयसिहरिं ततस्त्यक्ष्येकलेवरम् ॥ बलिरुवाच ॥ यद्भाव्यंतद्भवतुते यज्जानासितथाकुरु ॥ १५ ॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रनमितं नाहन्त्यक्ष्येपदद्वयम् ॥ तथाविवदमानौतौ दृष्ट्वासजगदीश्वरः ॥ १६ ॥ ब्रह्मण्यदेवःकृपया ब्राह्मणंतमुवाचह ॥ स्वस्थोभवद्विजश्रेष्ठ स्नापयि

हरलिया यदि मैंने किसी प्रकार पुण्य के वश से विष्णुजी को पाया है ॥ १३ ॥ तो माया से वामन रूपवाले जगदीश विष्णु स्वामी को मैं नहीं छोड़ूंगा दुर्वासाजी बोले कि गोमती व समुद्र के संगम में स्नान के बिना मैं भोजन न करूंगा ॥ १४ ॥ और यदि विष्णुजी को न पठावोगे तो मैं शरीर को छोड़दूंगा बलि बोले कि तुम को जो होना होवै वह होवै और जो जानते हो उसको वैसा करो ॥ १५ ॥ मैं ब्रह्मा, शिव व इन्द्रजी से प्रणाम कियेहुए दोनों चरणों को नहीं छोड़ूंगा उसप्रकार विवाद करतेहुए उन दोनों को देखकर जगदीश्वर ॥ १६ ॥ व ब्रह्मण्यदेव विष्णुजी ने दया से उस ब्राह्मण (दुर्वासाजी) से कहा कि हे द्विजोत्तम ! स्वस्थ होवो मैं सब

दैत्यगणों को मारकर गोमती व समुद्र के संगम में तुम को नहवाऊंगा इसमें सन्देह नहीं है विष्णुजी का वचन सुनकर दैत्यराज बलि ने ब्राह्मण दुर्वासाजी के ॥ १७ । १८ ॥ चरणों में गिरकर उस समय चरणों को दृढ़ता से पकड़ लिया तदनन्तर वे स्वामी विष्णुजी बलि को चरणों को देकर वृद्धि को प्राप्तहुए ॥ १९ ॥ और शङ्ख, चक्र व गदा को हाथ में लेकर शार्ङ्गधनुष को धारेहुए वामन विष्णुजी चले और उनके आगे संकर्षणजी चले ॥ २० ॥ व उन दोनों के पीछे विप्र दुर्वासाजी चले और पृथ्वी से बाहर रसातल को फोड़कर शीघ्रता संयुत सब पृथ्वी से बाहर निकले ॥ २१ ॥ और वहीं गोमती व समुद्र के संगम में प्रकटहुए व पुष्ट धनुष को

ष्येनसंशयः ॥ १७॥ हत्वादैत्यगणान्सर्वान् गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वाभगवतोवाक्यं ब्राह्मणस्याथ दैत्यराट् ॥ १८ ॥ दृढञ्जग्राहचरणौ पतित्वापादयोस्तदा ॥ ततःसवृद्धिमगमत्पादौदत्त्वाबलेःप्रभोः ॥ १९ ॥ शङ्खचक्र गदापाणिः शार्ङ्गबिभ्रत्प्रभुस्तदा ॥ मुशलीत्वग्रतस्तेषां ययौविष्णुस्त्रिविक्रमः ॥ २० ॥ तयोरन्वगमद्विप्रो दुर्वासाभूत लाद्बहिः॥ भित्त्वारसातलंसर्वे समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ॥ २१ ॥ आविर्बभूवुस्तत्रैव गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ तावुभौदृढधन्वानौ संकर्षणजनार्दनौ ॥ २२ ॥ ऊचतुस्तौतदाविप्रं कुरुस्नानंयदृच्छया ॥ तयोस्तुवचनंश्रुत्वा स्नानंचक्रेत्वरान्वितः ॥ २३ ॥ स्नात्वाचावश्यकंकर्म कर्तुमारभतद्विजः ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मघोषध्वनिंश्रुत्वा दानवोदुर्मुखस्तदा ॥ क्रोधसंरक्तनयनो दुर्वाससमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ हन्यमा

धारण किये बलभद्र व श्रीकृष्ण उन दोनों ने उस समय दुर्वासा ब्राह्मण से कहा कि अपनी इच्छा से स्नान करो उन दोनों के वचन को सुनकर शीघ्रता संयुत दुर्वासाजी ने स्नान किया ॥ २२ । २३ ॥ और स्नान करके दुर्वासा ब्राह्मण ने आवश्यक कर्म करने का प्रारम्भ किया ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कुश दैत्यहिं जिमि मारि प्रभु लिङ्ग थापना कीन । सोइ बीसवें में कह्यो उत्तम चरित नवीन ॥ प्रह्लादजी बोले कि वेदध्वनि का शब्द सुनकर उस समय क्रोध से लाललोचनोंवाले दुर्मुख दानव ने दुर्वासाजी से कहा ॥ १ ॥ कि हे द्विज ! हमलोगों से मारेहुए तुम यदि छोड़ेगये तो बहुतही मन्दबुद्धिवाले तुम मरने के

लिये यहां फिर क्यों आये ॥ २ ॥ यह कहकर दुष्ट दानव ने घूंसा से मारने के लिये इच्छा किया और ब्राह्मण को मारने के लिये तैयार उस दानव को देखकर विष्णुजीने ॥ ३ ॥ पैनी धारवाले चक्र से मस्तक को लीला से काटडाला श्रीप्रह्लादजी बोले कि मरेहुए दुर्मुख को देखकर उस समय दुस्सह दानव ने ॥ ४ ॥ इस प्रकार दैत्यों को पुकारा कि शीघ्रही आइये और मरेहुए दुर्मुख को सुनकर सब दैत्यगण आये ॥ ५ ॥ और फिर वहां विष्णुजी से रक्षित दुर्वासाजी को देखकर कूर्मपृष्ठ, गोलक, क्रोधन व वेददूषक ॥ ६ ॥ यज्ञघ्न, यज्ञहंता, धर्मान्तक व तपस्विहा और अन्य बहुत से दानव अनेक प्रकार के अस्त्रों को हाथ में लिये हुए ॥ ७ ॥ व क्रोध से

नस्त्वमस्माभिर्यदिमुक्तोसिवैद्विज ॥ कस्मात्पुनरिहायातो मरणायसुमन्दधीः ॥ २ ॥ इत्युक्त्वामुष्टिनाहन्तुमियेषदुष्ट दानवः ॥ तंदृष्ट्वादानवंविष्णुर्ब्राह्मणंहन्तुमुद्यतम् ॥ ३ ॥ चक्रेणक्षुरधारेण शिरश्चिच्छेदलीलया ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ दुर्मुखंनिहतंदृष्ट्वा दानवोदुस्सहस्तदा ॥ ४ ॥ प्राक्रोशदुच्चैर्दितिजाञ्छीघ्रमागम्यतामिति ॥ श्रुत्वादैत्यगणाःसर्वे दुर्मुखंविनिपातितम् ॥ ५ ॥ दुर्वाससंपुनस्तत्र परित्रातंचविष्णुना ॥ कूर्मपृष्ठोगोलकश्च क्रोधनोवेददूषकः ॥ ६ ॥ यज्ञघ्नोयज्ञहन्ताच धर्मान्तश्चतपस्विहा ॥ एतेचान्येचवहवो विविधायुधपाणयः ॥ ७ ॥ क्रोधसंरक्तनयनाः क्रोशन्तोब्राह्मणंतथा ॥ परिक्षिप्यतदात्रेयं विष्णुंसंकर्षणंतदा ॥ ८ ॥ तोमरैर्भिन्दिपालैश्च मुशलैश्चभुशुण्डिभिः ॥ शस्त्रैर्नानाविधैश्चापि युयुधुः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ९ ॥ दानवैःसंवृतोविष्णुः समन्ताद्घोरदर्शनैः ॥ संकर्षणश्चशुशुभे चन्द्रादित्यौघनैरिव ॥ १० ॥ निन्यतुर्धनुषीदिव्ये तथाववृषतुश्शरान् ॥ तेमार्गणगणादैत्यान् तयोर्मुक्तानिजघ्निरे ॥ ११ ॥ तेहन्यमानाःसमरे

लाललोचनोंवाले वे दैत्य अत्रि के पुत्र दुर्वासाजीकी निन्दा करतेहुए उस समय विष्णु व संकर्षणजीको तिरस्कारकर ॥ ८ ॥ क्रोध से मूर्च्छित दैत्यों ने तोमर, भिन्दिपाल, मुशल व बंदूकों से तथा अनेक भांति के अस्त्रों से युद्ध किया ॥ ९ ॥ भयंकर दर्शनोंवाले दानवों से सब ओर घिरे हुए विष्णु व संकर्षणजी वैसेही शोभित हुए जैसे कि मेघों से घिरे चन्द्रमा व सूर्य होवें ॥ १० ॥ विष्णु व संकर्षणजी ने दिव्य धनुषों को लिया व बाणों की वर्षा किया व उनसे छोड़ेहुए उन बाणगणों ने दैत्यों को मारा ॥ ११ ॥

व युद्ध में विष्णुजी मे मारेहुए दैत्य दिशाओं को भगे और विष्णुजी से मारे व भगेहुए दैत्यों को देखकर ॥ १२ ॥ गोलक व कूर्मपृष्ठ शब्द को सुनकर लौटे व गोलक ने संकर्षण को तीन बाणों से मारा ॥ १३ ॥ और संकर्षणजी को व्यथित देखकर दुर्वासाजी बहुतही विकल हुए और उसने वेग से कूदकर दुर्वासाजी के मस्तक में मारा ॥ १४ ॥ और घूंसा से मारेहुए वे दुर्वासाजी चिल्ला उठे व पृथ्वी में गिरपड़े व घूंसा से मस्तक में मारेहुए व गिरे दुर्वासाजी को देखकर भगवान् संकर्षणजी क्रोधितहुए व खड़े हो खड़े हो ऐसा बोले और मुशल को लेकर वीर बलभद्रजी ने युद्ध में मारा ॥ १५ । १६ ॥ और मुशल से मस्तक में मारा हुआ

विष्णुनाविद्रुतादिशः ॥ दानवान्विद्रुतान्दृष्ट्वा विष्णुनानिहतांस्तथा ॥ १२ ॥ गोलकःकूर्मपृष्ठश्च शब्दंश्रुत्वान्यवर्त्तताम् ॥ संकर्षणंगोलकश्च निजघानशरैस्त्रिभिः ॥ १३ ॥ अनन्तंव्यथितंदृष्ट्वा त्वात्रेयोतीवविह्वलः ॥ उत्पत्यतरसामूर्द्ध्नि दुर्वाससमताडयत् ॥ १४ ॥ समुष्टिघाताभिहतः प्राक्रोशत्पतितःक्षितौ ॥ संकर्षणश्चपतितं मुष्टिनामूर्द्ध्निताडितम् ॥ १५ ॥ दृष्ट्वाचुकोपभगवांस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ संगृह्यमुशलंवीरो जघानसमरेरिपुन् ॥ १६ ॥ मुशलेनहतोमूर्द्ध्नि गोलको विकलेन्द्रियः ॥ सवैभिन्नास्थिमस्तिष्कः पपातचममारच ॥ १७ ॥ गोलकंपतितंदृष्ट्वा क्रदन्तंब्राह्मणंतदा ॥ कूर्मपृष्ठंचभगवान् विष्णुर्हन्तुंमनोदधे ॥ १८ ॥ नाराचेनसुतीक्ष्णेन हृदयेभ्यहनद्रिपुम् ॥ सविष्णुबाणाभिहतस्त्यक्तशस्त्रःपलायितः ॥ १९ ॥ तस्मिन्प्रभग्नेतिबले कूर्मपृष्ठेचदानवे ॥ अभज्यतबलंसर्वं विद्रुतंचदिशोदश ॥ २० ॥ तत्प्रभग्नंबलंसर्वं निहतंगोलकंतथा ॥ द्वाःस्थस्तुकथयामास दैत्यराजकुशायसः ॥ २१ ॥ गोलकंनिहतंदृष्ट्वा सर्वान्दैत्यान्सदैत्य

गोलक इन्द्रियों से विकल हुआ और टूटेहुए अस्थि व मस्तिष्कवाला वह गिरपड़ा व मरगया ॥ १७ ॥ और गिरेहुए गोलक को देखकर उस समय ब्राह्मण दुर्वासाजी को पुकारते हुए कूर्मपृष्ठ को मारने के लिये विष्णुजी ने मन किया ॥ १८ ॥ और पैने बाण से शत्रु के हृदय में मारा व विष्णुजी के बाण से माराहुआ वह शस्त्र को छोड़ कर भगगया ॥ १९ ॥ उस बड़े बलवान् कूर्मपृष्ठ दानव के नष्ट होनेपर सब सेना नष्ट होगई और दशो दिशाओं को भगगई ॥ २० ॥ और उस सब भगीहुई सेना व मरेहुए गोलक को उस द्वारपालक ने दैत्यों के राजा कुश से कहा ॥ २१ ॥ और मरेहुए गोलक व सब दैत्यों को भगेहुए देखकर उस दैत्यराज कुश ने तैयार सेना

को युद्ध करने की आज्ञा दिया ॥ २२ ॥ व कुशकी आज्ञा को धारणकर वे पञ्चजन आदिक सब दैत्य शीघ्रता से रथों व हाथियों के द्वारा निकले ॥ २३ ॥ और कूर्मपृष्ठ की दशहज़ार सेना निकली व बीसहज़ार रथ व दशहज़ार हाथी चले ॥ २४ ॥ और महामुख की सेना के एकलाख घोड़े चले और बहुत सेना से संयुत वक्रग दैत्य निकला ॥ २५ ॥ वैसेही अनीक संख्यक सेना से संयुत दीर्घनख दैत्य चला और दैत्यराज कुश का महामंत्री मंत्रियों के पुत्रों समेत चला ॥ २६ ॥ व निघस दैत्य और महाबली प्रसव, ऊर्ध्वबाहु, वक्रशिरा, कंचुक व शिलोन्मुख दैत्य चला ॥ २७ ॥ और ब्रह्मयज्ञघ्न व राहु और वर्वरक दैत्य निकला व बुद्धि में श्रेष्ठ सुनामा व वसुनामा

राट् ॥ योद्धुमाज्ञापयामास सन्नद्धस्यबलस्यच ॥ २२ ॥ आज्ञांकुशस्यतेधार्य दैत्याःपञ्चजनोन्मुखाः ॥ युद्धायत्वरया सर्वे रथैर्नागैश्चनिर्ययुः ॥ २३ ॥ अनीकंदशसाहस्रं कूर्मपृष्ठस्यनिर्ययौ ॥ अयुतेद्वेरथानान्तु नागानामयुतंतथा ॥ २४ ॥ दशायुतानिचाश्वानां महामुखपरिग्रहाः ॥ वक्रगोनिर्ययौदैत्यो बहुसैन्यसमन्वितः ॥ २५ ॥ तथादीर्घनखोदैत्यः सेनानीकेनसंवृतः ॥ मन्त्रिपुत्रैर्महामात्यो दैत्यराजकुशस्यच ॥ २६ ॥ निर्ययौनिघसोदैत्यः प्रसवश्चमहाबलः ॥ ऊर्ध्वबाहुर्वक्रशिराः कञ्चुकश्चशिलोन्मुखः ॥ २७ ॥ ब्रह्मयज्ञघ्नकश्चैव राहुर्वर्वरकस्तथा ॥ सुनामावसुनामाच मन्त्रिणौबुद्धिसत्तमौ ॥ २८ ॥ सेनापतिश्चोग्रदंष्ट्रा तस्यभ्रातामहाहनुः ॥ एतेचान्येचबहवो दैत्याःक्रोधसमन्विताः ॥ २९ ॥ महतारथघोषेण निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ स्नातःशुक्लाम्बरधरो शुक्लमालाविभूषितः ॥ ३० ॥ कुशःशम्भुंमहादेवं भवानीपतिमव्ययम् ॥ अर्चयामासभूतेशममरेशंसमाधिना ॥ ३१ ॥ गीतवादित्रशब्दैश्च तथामङ्गलवाचकैः ॥ पूजयित्वामहादेवं

मंत्री चले ॥ २८ ॥ और सेनापति उग्रदंष्ट्रा व उसका भाई महाहनु चला ये और अन्य बहुतसे क्रोध संयुत दैत्य ॥ २९ ॥ युद्ध की इच्छाकरते हुए बड़े रथ के शब्द समेत निकले और स्नानकर सफेद वस्त्रों को धारणकर सफेद मालाओं से भूषित होकर ॥ ३० ॥ कुश दैत्य ने पार्वती के पति व देवेश अविनाशी, शिव महादेवजी को समाधि से पूजन किया ॥ ३१ ॥ और गाने व बजाने के शब्दों से तथा मंगल वचनों से महादेवजी को पूजकर व ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन

कराकर ॥ ३२ ॥ और पञ्चामृत से नहवाकर तथा गन्धों से लेपन कर दैत्यराज कुश ने अनेक पुष्पराशियों से महादेवजी को पूजा ॥ ३३ ॥ और मणियों व हीरा के गहनों से भूषित कर तथा जलतेहुए सूर्यनारायण के समान प्रकाशवाले व सूर्य के समान रंगवाले मुकुट से ॥ ३४ ॥ व अत्यन्तही शोभावाले हार से शोभित दैत्यराज कुश महाभुज ने तैयार होकर सारथी को देखा ॥ ३५ ॥ और सुनामा व वसु मंत्रियों से वचन कहा कि इस समय किसलिये युद्ध का उद्योग है इसको कहिये ॥ ३६ ॥ उसके उस वचन को सुनकर रुरुने वचन कहा कि दुर्वासा ब्राह्मण गोमती व समुद्र के सङ्गम में नहाने के लिये आया था ॥ ३७ ॥ व हे भूपते ! वहा दैत्यों से मना

ब्राह्मणान्स्वस्तिवाच्यच ॥ ३२ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य तथागन्धैर्विलेप्यच ॥ अर्चयामासदैत्येन्द्रस्त्वनेककुसुमोत्करैः ॥ ३३ ॥ भूपयित्वाभूषणैश्च मणिवज्रविभूषणैः ॥ मुकुटेनार्कवर्णेन ज्वलद्भास्कररोचिषा ॥ ३४ ॥ शोभमानोदैत्यराजो हारेणातीवशोभिना ॥ संनह्यचमहाबाहुः सारथिंसमुदैक्षत ॥ ३५ ॥ सुनामानंवसुंचैव मन्त्रिणौवाक्यमब्रवीत् ॥ किमर्थंसमरोद्योगो जायतेत्वधुनावद ॥ ३६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा रुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ आगतोब्राह्मणःस्नातुं गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ३७ ॥ गतोहिप्रतिषिद्धःस दैत्यैस्तत्रमहीपते ॥ तञ्चविष्णुःसमानिन्ये संकर्षणसमन्वितः ॥ ३८ ॥ कथंगोलकहन्तारं सुहनिष्यामिकेशवम् ॥ एतावदुक्त्वासरुरुर्ययौदैत्यपतिस्तदा ॥ ३९ ॥ राजन्वृथाविग्रहेण किंकार्यंकथयस्वनः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा कुशःक्रोधसमन्वितः ॥ ४० ॥ ततोवादित्रशब्दांश्च भेरीशङ्खसमन्वितान् ॥ ददर्शतत्रदेवेशं सहस्रशिरसंप्रभुम् ॥ ४१ ॥ चक्रपाणिंचविष्णुंवै दुर्वाससमकिल्बिषम् ॥ ईश्वरांशञ्चतंदृष्ट्वा नहन्तव्योयमीश्वरः ॥ ४२ ॥

कियेहुए वे दुर्वासाजी चलेगये और संकर्षणसमेत विष्णुजी उनको लेआये हैं ॥ ३८ ॥ और गोलक को मारनेवाले विष्णुजी को मैं कैसे मारूंगा यह कहकर वह दैत्यों का स्वामी रुरु उस समय चला व यह बोला ॥ ३९ ॥ कि हे राजन् ! वृथा वैरसे क्या कार्य है इसको हमसे कहिये उसके उस वचन को सुनकर कुश क्रोध से संयुत हुआ ॥ ४० ॥ तदनन्तर उसने नगारों व शङ्खों के शब्द से संयुत बाजनों के शब्दों को सुना और वहां हज़ार मस्तकोंवाले अनन्त देवेश स्वामी को देखा ॥ ४१ ॥ और चक्रपाणि विष्णु व शिवांश उन पापरहित दुर्वासाजी को देखकर कहा कि ये ईश्वर शिवजी मारनेयोग्य नहीं हैं ॥ ४२ ॥

और विष्णुजी को उद्देश कर उसने उन सब दानवों को पठाया और उन दैत्यों ने पर्वतों के समान हाथी व मेघों के समान शब्दवाले रथों से ॥ ४३ ॥ और बड़े वेगवान् घोड़ों के द्वारा जाकर सब ओर से घेर लिया तदनन्तर विष्णु व संकर्षणदेवजी का दानवों के साथ बड़ाभारी युद्ध हुआ ॥ ४४ ॥ और सब दैत्यनायकों से आच्छादित विष्णु व संकर्षणजी देखपड़े तदनन्तर बलवान् बलभद्रजी ने नंदन मुशल को लेकर ॥ ४५ ॥ काल, अन्तक व यमराज के समान श्रेष्ठ दैत्यों को मारा और बलशाली बलभद्रजी से मारेहुए वे दैत्य ॥ ४६ ॥ भग्नहोकर सब ओर भगे और कुश के समीप गये व बक, यज्ञकोप, यज्ञघ्न और वेददूषक ॥ ४७ ॥ व

विष्णुमुद्दिश्यतान्सर्वान्प्रेरयामासदानवान् ॥ नागैःपर्वतसंकाशै रथैर्जलदनिस्स्वनैः ॥ ४३ ॥ अश्वैर्महाजवैर्गत्वा परिवव्रुःसमन्ततः ॥ ततोयुद्धंसमभवद्देवयोर्दानवैःसह ॥ ४४ ॥ आच्छादितौचददृशातेऽखिलैर्दैत्यनायकैः ॥ ततोगृहीत्वामुशलं बलवान्नन्दनंहली ॥ ४५ ॥ जघानदैत्यप्रवरान् कालान्तकयमोपमान् ॥ तेहन्यमानादैतेया बलेनबलशालिना ॥ ४६ ॥ सर्वतोदुद्रुवुर्भग्ना जग्मुश्चकुशमेववै ॥ बकश्चयज्ञकोपश्च यज्ञघ्नोवेददूषकः ॥ ४७ ॥ महामुखःखञ्जनकोराहुर्यज्ञशिरास्तथा ॥ एतेचान्येचबहवः प्रवरादानवोत्तमाः ॥ ४८ ॥ क्रोधसंरक्तनयना बिभिदुस्तेजनार्दनम् ॥ ततःकोपसमाविष्टौ संकर्षणजनार्दनौ ॥ ४९ ॥ चक्रलाङ्गलपातेन जघ्नतुर्दानवर्षभान् ॥ चक्रेणचशिरःकोपाच्चिच्छेदाशुबकस्य च ॥ ५० ॥ चूर्णयामासमुशली यज्ञहन्तारमेवच ॥ राहुंजघानचक्रेण तथान्यान्मुशलेनच ॥ ५१ ॥ तेदैत्याहन्यमानाश्च भग्नाजग्मुर्दिशोदश ॥ कुशःस्ववाहिनींदृष्ट्वा विह्वलांनिहतांतथा ॥ ५२ ॥ क्रोधसंरक्तनयनो याहियाहीति

महामुख, खंजनक, राहु और यज्ञशिरा ये और अन्य बहुत से जो श्रेष्ठ व उत्तम दानव थे ॥ ४८ ॥ क्रोध से लाललोचनोंवाले उन्हों ने जनार्दन श्रीकृष्णजी को मारा तदनन्तर क्रोधसे संयुत संकर्षण व विष्णुजी ने ॥ ४९ ॥ चक्र और हल के मारने से श्रेष्ठ दानवों को मारा और विष्णुजी ने क्रोध से शीघ्रही बक के मस्तक को चक्र से काटडाला ॥ ५० ॥ व मुशली बलभद्रजी ने यज्ञहंता नामक दैत्यको चूर्ण किया और राहु को विष्णुजी ने चक्र से मारा व अन्य दानवों को बलभद्रजी ने मुशल से मारा ॥५१॥ और मारेहुए वे भग्न दानव दशो दिशाओं को चलेगये और कुश ने मारीहुई व विकल अपनी सेना को देखकर ॥ ५२ ॥ क्रोधसे अरुणनयन होकर सारथी

से कहा कि चलिये चलिये और उस कुश ने उन दोनों के समीप जाकर व अपने नाम को सुनाकर ॥ ५३ ॥ कहा कि हे गदाधर ! तुम कौन हो जो कि इन दैत्यों को मारते हो ॥ ५४ ॥ श्रीवासुदेव कृष्णजी बोले कि जिसलिये मुक्तिदायक व पवित्र गोमती तथा समुद्र का सङ्गम दुष्टात्मा व पापियों से आच्छादित है उस कारण मैंने उनको मारा है ॥ ५५ ॥ कुश बोला कि यहां टिकेहुए मुझको जानते हो और जीते हुए तुम कैसे जावोगे स्थिर होकर तुम युद्ध करो तदनन्तर जीवन को छोड़ोगे ॥ ५६ ॥ यह कहकर उसने पचीस बाणों से विष्णुजी को मारा और आठ बाणों से संकर्षणजी को मारकर अत्रि के पुत्र दुर्वासाजी को

सारथिम् ॥ सतयोरन्तिकंगत्वा नामविश्राव्यचात्मनः ॥ ५३ ॥ उवाचकस्त्वंदैतेयानिमान्हंसिगदाधर ॥ ५४ ॥ श्रीवासुदेव उवाच ॥ यस्माद्विमुक्तिदंपुण्यं गोमत्युदधिसङ्गमम् ॥ रुद्धंदुरात्मभिःपापैस्तस्मात्तेनिहतामया ॥ ५५ ॥ कुश उवाच ॥ मांजानासिचह्यत्रस्थं कथंजीवन्प्रयास्यसि ॥ युध्यस्वत्वंस्थिरोभूत्वा ततस्त्यक्ष्यसिजीवितम् ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वापञ्चविंशत्या ताडयामासकेशवम् ॥ अनन्तंचाष्टभिर्बाणैर्हत्वात्रेयमवैक्षत ॥ ५७ ॥ ईश्वरांशंचतंदृष्ट्वा कोत्रत्वंगच्छमाचिरम् ॥ सबाणैर्भिन्नहृदयः शार्ङ्गंहिधनुषांवरम् ॥ ५८ ॥ विकृष्यघातयामास चतुर्भिश्चतुरोहयान् ॥ सारथेस्तुशिरःकोपादर्द्धचन्द्रेणचिच्छिदे ॥५९॥ धनुश्चिच्छेदचैकेन ध्वजमेकेनयन्त्रिणा ॥ ६० ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथो हताश्वोहतसारथिः ॥ प्रगृह्यचमहाखड्गमुवाचवचनंतदा ॥ ६१ ॥ यदित्वांपातयिष्यामि कीर्तिर्मेह्यतुलाभवेत् ॥ पातितोहन्त्वयावीर यास्यामिपरमांगतिम् ॥ ६२ ॥ तिष्ठतिष्ठहरेस्थानं माव्रजत्वमतःपरम् ॥ धावन्तमतिसंरब्धं खड्गहस्तंतथारि

देखा ॥ ५७ ॥ और उन शिवांश दुर्वासाजी को देखकर कहा कि यहां तुम कौन हो शीघ्रही चलेजावो और बाणों से कटेहुए वक्षस्थलवाले उन विष्णुजी ने धनुषों में उत्तम शार्ङ्गधनुष को ॥ ५८ ॥ खींचकर चार बाणों से चार घोड़ों को मारा और क्रोध से सारथी के शिरको तलवार से काटडाला ॥ ५९ ॥ और एक बाण से धनुष को व एक बाण से ध्वजा को काटडाला ॥ ६० ॥ उस समय कटे धनुष व नष्ट सारथी तथा नष्ट घोड़ोंवाले रथरहित उस दैत्य ने बड़ी तलवार को लेकर वचन कहा ॥ ६१ ॥ कि मैं यदि तुमको मारूंगा तो मेरा बड़ाभारी यश होगा व हे वीर ! तुमसे माराहुआ मैं उत्तम गति को प्राप्तहूंगा ॥ ६२ ॥ हे हरे ! स्थान में

खड़े रहो खड़े रहो इससे आगे न जाइयेगा बहुत क्रोधित व दौड़तेहुए तथा तलवार को हाथ में लियेहुए शत्रु के ॥ ६३ ॥ मस्तक को विष्णु ने लीला से सौ धारोंवाले चक्रसे काटडाला और पृथ्वी में गिरेहुए उस कटे मस्तकवाले दानव को देख कर ॥ ६४ ॥ इसके अनन्तर खञ्जनक समर में रथ से उसको लेचला व कुश दैत्य के चलेजाने पर वे विष्णु व संकर्षणजी ॥ ६५ ॥ दुर्वासा समेत बहुत प्रसन्न होकर लौटे और पड़ेहुए कुश दानव को शिवालय में धरकर खञ्जनक दैत्यने ॥ ६६ ॥ स्नान,चन्दन, नैवेद्य व गीतों और बाजनों से प्रसन्न किया व शंकरजी की प्रसन्नता से उसने उसी क्षण जीवनको पाया ॥ ६७ ॥ व उस समय हे शिव ! हे शिव ! ऐसा कहताहुआ

पुम् ॥ ६३ ॥ चक्रेणशतधारेण शिरश्चिच्छेदलीलया ॥ तंछिन्नशिरसंभूमौ पतितंवीक्ष्यदानवम् ॥ ६४ ॥ अथोवाहरथेनाजौ दैत्यःखञ्जनकस्तथा ॥ अथयातेकुशेदैत्ये विष्णुःसंकर्षणस्तथा ॥ ६५ ॥ दुर्वाससाचसहितः सन्यवर्ततहार्षितः ॥ शिवालयेतुपतितं कुशंनिक्षिप्यदानवम् ॥ ६६ ॥ स्नानैर्गन्धैश्चनैवेद्यैर्गीतवाद्यैरतोषयत् ॥ अवापजीवितंसद्यः प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ ६७ ॥ उत्थितःसतदादैत्यो ब्रुवञ्छिवशिवेतिच ॥ तंपुनर्जीवितंदृष्ट्वा दैत्यंदैत्यगणास्तदा ॥ ६८ ॥ सुनामोवाचवाक्यंवै वर्द्धस्वसुचिरंविभो ॥ स्नापयित्वायदिपुनर्ब्राह्मणंविनिवर्तत ॥ ६९ ॥ यथेष्टंगच्छतुतदा किंवृथाविग्रहेणते ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा कुशोवचनमब्रवीत् ॥ ७० ॥ गत्वाप्रेषयतौशीघ्रं विप्रत्राणकरावुभौ ॥ सचराज्ञासमादिष्टः सुनामामन्त्रिसत्तमः ॥ ७१ ॥ उवाचविष्णुमानम्य नमस्कृत्यहलायुधम् ॥ कुशेनप्रेषितश्चास्मि तवपार्श्वेजनार्दन ॥ ७२ ॥

वह दैत्य उठपड़ा और उस समय फिर जियेहुए उस दैत्य को देखकर दैत्यों के गण प्रसन्न हुए ॥ ६८ ॥ व सुनामा ने यह वचन कहा कि हे विभो ! बहुत दिनों तक बढ़ो यदि ब्राह्मण दुर्वासाजी को नहवाकर वे श्रीकृष्णजी लौटजावैं ॥ ६९ ॥ तो इच्छाके अनुकूल वे चलेजावैं तुम्हारा वृथा विग्रह (वैर) से क्या प्रयोजन है उसके उस वचन को सुनकर कुश ने वचन कहा ॥ ७० ॥ कि तुम जाकर ब्राह्मण की रक्षा करनेवाले उन दोनों को पठावो राजा से आज्ञा दियेहुए उस उत्तम मंत्री सुनामा ने ॥ ७१ ॥ विष्णुजी को व हलायुध बलभद्रजी को प्रणामकर कहा कि हे जनार्दनजी ! कुशने मुझको तुम्हारे समीप पठाया है ॥ ७२ ॥

उस उपाय को करूंगा कि जिससे यह न होवै तदनन्तर शंकरजीकी प्रसन्नता से वह फिर जीवन को पाकर ॥ ९३ ॥ उस समय तलवार व ढाल को लेकर आया व उस ने खड़े हो खड़े हो ऐसा कहा शिवजी के परिग्रह उस कुश को फिर आतेहुए देख कर ॥ ९४ ॥ विष्णुजीने गरुई गदा से उस समय गदाको हाथ में लियेहुए कुश को मारा व टूटे मस्तकवाला वह गदा से माराहुआ कुश गिरपड़ा ॥ ९५ ॥ व भूमि में गिरेहुए उस कुश को विष्णुजी ने वेग से पकड़कर उसके शरीर को बिल में फेंक दिया और फिर पूर्ण करदिया ॥ ९६ ॥ व उसके ऊपर विष्णुजी ने लिंग को थापन किया और चैतन्यता को पाकर कुश दानव ने उस समय अपने शरीर के ऊपर स्थित

करिष्यामि येनायंनभवेदिति ॥ ततःसजीवितंप्राप्य प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ ९३ ॥ खड्गीचर्मीतदायातस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ तमायान्तंपुनर्दृष्ट्वा कुशंशिवपरिग्रहम् ॥ ९४ ॥ जघानगदयागुर्व्या गदाहस्तंतदाकुशम् ॥ सभिन्नमूर्द्धान्यपतद्गदयाताडितःकुशः ॥ ९५ ॥ तंभूमौपतितंवेगात्परिगृह्यकुशंहरिः ॥ गर्तेनिक्षिप्यतद्देहं पूरयामासवैपुनः ॥ ९६ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास तस्योपरिजनार्द्दनः ॥ सलब्धसंज्ञोदनुजः शिवलिङ्गमपश्यत ॥ ९७ ॥ आत्मोपरिस्थितंदेहे तदा चिन्तापरोभवत् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ शिवलिङ्गमलङ्घ्यंहि बुद्धिपूर्वंहतोह्यहम् ॥ उवाचकृष्णंदनुजस्तारितोहन्त्वयानघ ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ परितुष्टोस्मिदैत्येन्द्र शौर्येणशिवसंश्रयात् ॥ वरंवरयभद्रन्ते यदीच्छसिमहामते ॥ २ ॥ कुश उवाच ॥ यथा

शिवलिंग को देखा तब वह चिन्ता में परायण हुआ ॥ ९७ । ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दो० । टिके द्वारकामध्य जिमि दुर्वासा मुनिनाथ । इकइसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस दैत्यने श्रीकृष्णजी से कहा कि शिवलिंग नांघने योग्य नहीं है और मैं बुद्धिमत्तापूर्वक मारागया व तुमसे तारागया ॥ १ ॥ विष्णुजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! शिवजीके आश्रय से तुम्हारी शूरता से मैं प्रसन्न हूं हे महामते ! जो चाहते हो उस वर को मांगो तुम्हारा कल्याण होवै ॥ २ ॥ कुश बोला कि हे हरे ! जैसे शिवजी मेरे पूजनेयोग्य हैं वैसेही तुमहो और दोनों

को भी मारा ॥ ८३ ॥ विष्णुजीने इनको व अन्य बहुत से दानवों को मारा व मरेहुए दानवों को देखकर बड़े क्रोधित कुश ने ॥ ८४ ॥ युद्ध में क्रोधित होकर उत्तम अस्त्र से विष्णुजी को मारा व क्रोध संयुत भगवान् विष्णुजी ने चक्र से उसके शिर को गिरा दिया ॥ ८५ ॥ और कटेहुए मस्तकवाले उस कुश दैत्य को पृथ्वी में पड़ेहुए देखकर विष्णुजी ने उस समय पांव व हाथों को तिलभर खंड २ काटडाला ॥ ८६ ॥ उस समय विष्णुजी से खंड २ काटेहुए कुश को देखकर वे सब दैत्य फिर लेकर शिवालय को लेआये ॥ ८७ ॥ व त्रिशूलधारी उन शिवजी की प्रसन्नता से कुश दानव शीघ्रही जीवको प्राप्त होकर यकायक उठा व यह बोला कि विष्णुजी कहां

हरिः ॥ उल्मुकश्चापिनिहतो ब्रह्मघ्नश्चापिपातितः ॥ ८३ ॥ एतेचान्येचबहवो घातिताःकेशवेनहि ॥ दानवान्निहतान्दृष्ट्वा कुशःपरमकोपनः ॥ ८४ ॥ जघानयुधिसंरब्धः परमास्त्रेणकेशवम् ॥ भगवान्क्रोधसंयुक्तश्चक्रेणापातयच्छिरः ॥ ८५ ॥ तंछिन्नशिरसंभूमौ पतितंवीक्ष्यकेशवः ॥ चिच्छेदबाहुपादौच खण्डशस्तिलशस्तदा ॥ ८६ ॥ खण्डशोघातितंदृष्ट्वा केशवेनकुशंतदा ॥ संगृह्यतेपुनर्दैत्या निन्युःसर्वेशिवालयम् ॥ ८७ ॥ प्रसादाच्छूलिनस्तस्य जीवंसम्प्राप्यदानवः ॥ उत्थितःसहसाक्रुद्धः क्वविष्णुरितिचाब्रवीत् ॥ ८८ ॥ गदामुद्यम्यसंक्रुद्धो योद्धुमागाज्जनार्दनम् ॥ तमुद्यतगदंदृष्ट्वा निहतंजीवितंपुनः ॥ ८९ ॥ दुर्वाससमुवाचेदं विष्णुःकमललोचनः ॥ जीवत्यसौपुनःकस्मात्कारणंकथयस्वनः ॥ इत्युक्तश्चिन्तयामास ध्यानेनऋषिसत्तमः ॥ ९० ॥ ज्ञात्वातत्कारणंसर्वमुवाचमधुसूदनम् ॥ महादेवेनतुष्टेन कुशोयममरःकृतः ॥ ९१ ॥ खण्डशोपिकृतस्तस्मान्नचप्राणैर्वियुज्यते ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मयाविष्टो हन्तव्योयंकथंमया ॥ ९२ ॥ उपायंतं

हैं ॥ ८८ ॥ और गदा को उठाकर क्रोधित होताहुआ वह युद्ध करने के लिये विष्णुजीके समीप आया और नष्ट होकर फिर जिये व गदा को उठायेहुए उस दानव को देखकर ॥ ८९ ॥ कमल सरीखे लोचनोंवाले विष्णुजी ने दुर्वासाजी से कहा कि फिर यह किस कारण जीता है उस कारण को हमसे कहिये ऐसा कहेहुए ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासाजी ने ध्यान से चिन्तन किया ॥ ९० ॥ व उस सब कारण को जानकर विष्णुजी से कहा कि प्रसन्न होतेहुए महादेव ने इस कुश को अमर किया है ॥ ९१ ॥ उस कारण खंड २ कियाहुआ वह प्राणों से रहित नहीं होता है उस वचन को सुनकर विष्णुजी विस्मयसंयुत हुए कि मुझसे यह किस प्रकार मारने योग्य है ॥ ९२ ॥ मैं

उस उपाय को करूंगा कि जिससे यह न होवै तदनन्तर शंकरजीकी प्रसन्नता से वह फिर जीवन को पाकर ॥ ९३ ॥ उस समय तलवार व ढाल को लेकर आया व उस ने खड़े हो खड़े हो ऐसा कहा शिवजी के परिग्रह उस कुश को फिर आतेहुए देख कर ॥ ९४ ॥ विष्णुजीने गरुई गदा से उस समय गदाको हाथ में लियेहुए कुश को मारा व टूटे मस्तकवाला वह गदा से माराहुआ कुश गिरपड़ा ॥ ९५ ॥ व भूमि में गिरेहुए उस कुश को विष्णुजी ने वेग से पकड़कर उसके शरीर को बिल में फेंक दिया और फिर पूर्ण करदिया ॥ ९६ ॥ व उसके ऊपर विष्णुजी ने लिंग को थापन किया और चैतन्यता को पाकर कुश दानव ने उस समय अपने शरीर के ऊपर स्थित

करिष्यामि येनायंनभवेदिति ॥ ततःसजीवितंप्राप्य प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ ९३ ॥ खड्गीचर्मीतदायातस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ तमायान्तंपुनर्दृष्ट्वा कुशंशिवपरिग्रहम् ॥ ९४ ॥ जघानगदयागुर्व्या गदाहस्तंतदाकुशम् ॥ सभिन्नमूर्द्धान्यपतद्गदयाताडितःकुशः ॥ ९५ ॥ तंभूमौपतितंवेगात्परिगृह्यकुशंहरिः ॥ गर्तेनिक्षिप्यतद्देहं पूरयामासवैपुनः ॥ ९६ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास तस्योपरिजनार्द्दनः ॥ सलब्धसंज्ञोदनुजः शिवलिङ्गमपश्यत ॥ ९७ ॥ आत्मोपरिस्थितंदेहे तदा चिन्तापरोभवत् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ शिवलिङ्गमलङ्घ्यंहि बुद्धिपूर्वंहतोह्यहम् ॥ उवाचकृष्णंदनुजस्तारितोहन्त्वयानघ ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ परितुष्टोऽस्मिदैत्येन्द्र शौर्येणशिवसंश्रयात् ॥ वरंवरयभद्रन्ते यदीच्छसिमहामते ॥ २ ॥ कुश उवाच ॥ यथा

शिवलिंग को देखा तब वह चिन्ता में परायण हुआ ॥ ९७ । ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दो० । टिके द्वारकामध्य जिमि दुर्वासा मुनिनाथ । इकइसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस दैत्यने श्रीकृष्णजी से कहा कि शिवलिंग नांघने योग्य नहीं है और मैं बुद्धिमत्तापूर्वक मारागया व तुमसे तारागया ॥ १ ॥ विष्णुजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! शिवजीके आश्रय से तुम्हारी शूरता से मैं प्रसन्न हूं हे महामते ! जो चाहते हो उस वर को मांगो तुम्हारा कल्याण होवै ॥ २ ॥ कुश बोला कि हे हरे ! जैसे शिवजी मेरे पूजनेयोग्य हैं वैसेही तुमहो और दोनों

मूर्तियां एकही हैं इस कारण तुमसे मैं वर को मांगता हूं ॥ ३ ॥ कि हे नाथ ! तुमने मेरे ऊपर जिस शिवलिंगको थापा है वह मेरे नामसे कुशेश ऐसा प्रसिद्ध होवै ॥४॥ व यदि मैं तुमसे दयाकरने योग्य हूं तो यह मेरा यश होवै ऐसाही होवैगा इस प्रकार कहाहुआ वह दैत्य वहीं स्थित हुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर विष्णुजी ने अन्य सब दानवों को शोषलिया कुछ दानव रसातल को चलेगये और कितेक विष्णुजीके आश्रित हुए ॥ ६ ॥ और संकर्षणजी वहीं स्थितहुए तदनन्तर विष्णुजी स्थित हुए और मुक्तिदायक तीर्थको जानकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी वहीं स्थित हुए ॥ ७ ॥ गोमतीचक्रतीर्थ में भगवान् वामनजी स्थितहुए उसी से इसको

पूज्योमहादेवो ममत्वञ्चतथाहरे ॥ एकएवाद्वयीमूर्त्तिस्तस्मात्त्वांवरयाम्यहम् ॥ ३ ॥ शिवलिङ्गंत्वयानाथ स्थापितं यन्ममोपरि ॥ ममनाम्नाभवतुतत् कुशेशइतिविश्रुतम् ॥ ४ ॥ अनुग्राह्योयद्यहन्ते ममकीर्तिर्भवेदियम् ॥ एवंभविष्य तीत्युक्तस्तत्रैवावस्थितोऽसुरः ॥ ५ ॥ ततोन्यान्दानवान्सर्वाञ्शोषयामासमाधवः ॥ रसातलगताःकेचित्केचिद्विष्णुंस माश्रिताः ॥ ६ ॥ अनन्तश्चस्थितस्तत्र विष्णुश्चतदनन्तरम् ॥ ज्ञात्वाविमुक्तिदंतीर्थं दुर्वासामुनिसत्तमः ॥ ७ ॥ गोमतीच क्रतीर्थेच भगवांश्चत्रिविक्रमः ॥ तेनेदंमुक्तिदंमत्वा दुर्वासास्तत्रसंस्थितः ॥ ८ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ विशेषात्फलदःप्रोक्तः पूजितोमधुहाहरिः ॥ मधुसूदनंनरोगत्वा द्वारवत्यांप्रपूजयेत् ॥ ९ ॥ पूजयेत्कृष्णदेवञ्च विलिप्यचसुगन्धिना ॥ गन्धैश्च वसनैश्चैव तथापुष्पैरनेकधा ॥ १० ॥ नैवेद्यैर्भूषणैश्चैव ताम्बूलेनफलेनच ॥ आरार्तिकेणसम्पूज्य दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ ११ ॥ घृतेनदीपंदेयञ्च रात्रौजागरणंतथा ॥ कुर्याच्चगीतवादित्रे तथापुस्तकवाचनम् ॥ १२ ॥ कृत्वाजागरणंरात्रौ

मुक्तिदायक जानकर वहां दुर्वासाजी स्थितहुए ॥ ८ ॥ प्रह्लादजी बोले कि मधुसूदन विष्णुजी पूजित होकर विशेषता से फलदायक कहेगये हैं इस कारण द्वारकापुरी में जाकर मनुष्य मधुसूदनजी को पूजै ॥ ९ ॥ व सुगन्धि से लेपनकर कृष्णदेव को पूजै और चंदन, वसन व अनेक प्रकार के पुष्पों से ॥ १० ॥ तथा नैवेद्य, भूषण, तांबूल व फल से और आरती से पूजकर व दंडाकी नाईं प्रणामकर ॥ ११ ॥ घृत से दीपक देनाचाहिये व रात्रि में जागरण तथा गाना, बजाना करै व पुस्तक को पढ़ै ॥ १२ ॥

व रात्रि में जागरण कर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है और भादौं में अष्टमी व द्वादशी तिथि में विष्णुजी को पूजना चाहिये ॥ १३ ॥ कलियुग में मनुष्य गोमती व समुद्र के सङ्गम में श्रीकृष्णजी को पूजकर निर्मल लोक को पाता है कि जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा रुक्मिणीदेवि को पूजि लहत फल जौन । बाइसवें अध्याय में कही कथा सब तौन ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैं तुमलोगों से यथायोग्य

सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ तथानभस्येसम्पूज्यो ह्यष्टमीद्वादशीषुच ॥ १३ ॥ कलौकृष्णंपूजयित्वा गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ विमलंलोकमाप्नोति यत्रगत्वानशोचति ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येएकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ शृणुध्वंद्विजशार्दूला यथावत्कथयामिवः ॥ स्नापयित्वाजगन्नाथं तत्रगन्धैर्विलेप्यच ॥ १ ॥ तुलसींपूजयित्वातु भूषयित्वातुभूषणैः ॥ नैवेद्येनचसन्तर्प्य तथानीराजनादिभिः ॥ २ ॥ दुर्वाससंतथापूज्य पुण्डरीकाक्षमेवच ॥ गणेशंवैनतेयन्तु स्वशक्त्यापूज्यमानवः ॥ ३ ॥ रुक्मिणींचततोगच्छेद्विदर्भतनयांनरः ॥ उपहृत्योपहारांश्च बलिभिर्गन्धदीपकैः ॥ ४ ॥ पीडयन्तिग्रहास्तावद्व्याधयोभिभवन्तिच ॥ भक्त्यानपश्यतेयावत्कलौकृष्णप्रियांनरः ॥ ५ ॥ उपसर्गभवंतावच्छाकिनीभूतसम्भवम् ॥ भक्त्यानपश्यतेयावत्कलौकृष्णप्रियांनरः ॥ ६ ॥ तावन्मृत

कहता हूं उसको सुनिये कि जगदीशजी को नहवाकर वहां गंधों से लेपन कर ॥ १ ॥ व तुलसीजी को पूजकर तथा भूषणों से भूषितकर और नैवेद्य मे तृप्तकर व नीराजनादिकों से पूजकर ॥ २ ॥ वैसेही दुर्वासाजी को व कमललोचन विष्णुजी को पूजकर व गणेश और गरुड़जी को मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार पूज कर ॥ ३ ॥ तदनन्तर उपहारों को लेकर मनुष्य बलि, गंध व दीपों समेत विदर्भ की कन्या रुक्मिणीजीके समीप जावै ॥ ४ ॥ तबतक ग्रह पीड़ित करते हैं व रोग दुःखित करते हैं जबतक कि मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को भक्ति से नहीं देखता है ॥ ५ ॥ और शाकिनी से उत्पन्न व उपद्रवों से उपजाहुआ दोष तबतक होता है जबतक कि मनुष्य कलियुग में भक्ति से श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को नहीं देखता है ॥ ६ ॥ और तबतक स्त्री मृतवत्सा व दुर्भगा और दुःख

से संयुत होती है जबतक कि मनुष्य कलियुग में भक्ति से श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को नहीं देखता है ॥ ७ ॥ विधिपूर्वक श्रीकृष्णजी को पूजकर तदनन्तर रुक्मिणीजी के समीप जावै और दही, दूध, शहद व शक्कर से नहवावै ॥ ८ ॥ और घृत से व अनेक भाति के गंधों से नहवावै और पुष्पों से पूजनकरै तीर्थ के जल से भलीभांति नहवाकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य इसप्रकार हरिप्रिया रुक्मिणी देवीजी को नहवाता है उसको इसलोक व परलोक में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ १० ॥ और जो चंदन कुंकुम व कस्तूरी से लेपन करता है वह अपुत्रता व निर्धनता को नहीं देखता है ॥ ११ ॥ और वह सदैव सुखी व रूप-

प्रजानारी दुर्भगादुःखसंयुता ॥ भक्त्यानपश्यतेयावत्कलौकृष्णप्रियांनरः ॥ ७ ॥ सम्पूज्यकृष्णंविधिवत्ततोगच्छेत्तुरुक्मिणीम् ॥ स्नापयेद्दधिदुग्धेन मधुशर्करयातथा ॥ ८ ॥ घृतेनविविधैर्गन्धैस्तथापुष्पैःप्रपूजयेत् ॥ तीर्थोदकेनसंस्नाप्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ एवंयःस्नापयेद्देवीं रुक्मिणींहरिवल्लभाम् ॥ नतस्यदुर्लभंकिञ्चिदिहलोकेपरत्र च ॥ १० ॥ श्रीखण्डकुङ्कुमेनैव तथामृगमदेनच ॥ विलेपयेदपुत्रत्वमधनत्वंनपश्यति ॥ ११ ॥ सदासभोगीभवति रूपवान्धनपूजितः ॥ पूजयेन्मालतीपुष्पैः शतपत्रैःसुगन्धिभिः ॥ १२ ॥ करवीरैर्मल्लिकाभिस्तुलस्याराजचम्पकैः ॥ करवीरैर्वारिसम्भूतैः केतकीभिश्चपालकैः ॥ १३ ॥ धूपेनागुरुणाचैव धूपयेद्गुग्गुलेनच ॥ वस्त्रैःकौसुम्भकैःशुभ्रैर्नानादेशसमुद्भवैः ॥ १४ ॥ भक्त्यासंछाद्यवैदर्भीं रुक्मिणींकृष्णवल्लभाम् ॥ भूषणैर्भूषयेद्देवीं मणिरत्नैर्विभूषितैः ॥ १५ ॥ तस्मिन्कुलेनासुखीस्यान्नापुत्रोनिर्धनस्तथा ॥ पतितोनविकर्मस्थः कितवोनीचसेवकः ॥ १६ ॥ सम्पूज्यतांजगद्धात्रीं रुक्मिणीं

वान् और धन से पूजित होता है और चमेली के फूलों से व सुगन्धित कमलों से पूजै ॥ १२ ॥ व कनेर, बेला, तुलसी और राजचंपकों से पूजै तथा कनेर, कमल व केतकी और पालक पुष्पों से पूजै ॥ १३ ॥ और अगुरु धूप व गुग्गुल से धूप देवै और अनेक देशों में उपजेहुए कुसुम के रंगे उत्तम वसनों से ॥ १४ ॥ भीष्मक की कन्या रुक्मिणी विष्णुप्रियाजी को भक्तिसे आच्छादित कर मणियों व रत्नों से भूषित भूषणों से देवीजी को जो भूषित करै ॥ १५ ॥ उस वंश में कोई दुःखी, पुत्रहीन व निर्धन नहीं होता है और न पतित न पराये कर्म में स्थित होता है और न धूर्त न नीच का सेवक होता है ॥ १६ ॥ कलियुग में मनुष्य उन जगद्धात्री रुक्मिणीजी

को भलीभांति पूजकर व भक्ष्य, भोज्यादिक नैवेद्यों से पूजकर मेरेऊपर देवीजी प्रसन्न होवैं इस मंत्र से ॥ १७ ॥ कर्पूर समेत तांबूल को भक्ति से निवेदन करै और अक्षतों समेत उत्तम फलको लेकर ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस मंत्र से विधिपूर्वक अर्घ को देवै कि हे कृष्णप्रिये ! हे विदर्भदेशाधिपतिनन्दिनि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे सर्वकामप्रदे, देवि ! अर्घ को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है तदनन्तर मनुष्य जलतेहुए दीपक समेत आरती करै ॥ २० ॥ व विशेषकर कपूर से नीराजन करना चाहिये व भावसंयुत मनुष्य शङ्ख में जल करके घुमावै ॥ २१ ॥ और घुमाकर पवित्रता के लिये मस्तकसे धारणकरै व हे कृष्णप्रिये ! तुम्हारे लिये प्रणाम

मानवःकलौ ॥ नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्याद्यैर्देवीमेप्रीयतामिति ॥ १७ ॥ ताम्बूलंचसकर्पूरं भावेनविनिवेदयेत् ॥ गृहीत्वाचफलं दिव्यमक्षतैश्चसमन्वितम् ॥ १८ ॥ मन्त्रेणानेनवैविप्रा अर्घंदद्याद्विधानतः ॥ कृष्णप्रियेनमस्तुभ्यं विदर्भाधिपनन्दिनि ॥ १९ ॥ सर्वकामप्रदेदेवि गृहाणार्घंनमोस्तुते ॥ आरार्तिकंततःकुर्याज्ज्वलद्दीपकसंयुतम् ॥ २० ॥ नीराजनंप्रकर्तव्यं कर्पूरेणविशेषतः ॥ शङ्खेकृत्वातुपानीयं भ्रामयेद्भावसंयुतः ॥ २१ ॥ भ्रामयित्वाचशिरसा धारयेच्चविशुद्धये ॥ दण्डवत्प्रणमेद्भूमौ नमःकृष्णप्रियेवदन् ॥ २२ ॥ विप्रपत्नीश्चविप्रांश्च पूजयेद्वित्तशक्तितः ॥ सिन्दूरैर्विविधैर्हारैर्वासोभिःकुङ्कुमैस्तथा ॥ २३ ॥ सुगन्धकुसुमैरर्च्य कुङ्कुमेनविलिप्यच ॥ कौसुम्भकैःकज्जलैश्च ताम्बूलेनचतोषयेत् ॥ २४ ॥ स्नापयित्वासुगन्धेन कुङ्कुमेनविलिप्यच ॥ धूपेनधूपयित्वातां पुष्पवर्यैःप्रपूजयेत् ॥ २५ ॥ नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च मांसेनसुरयातथा ॥ प्रभूतबलिभिश्चैव विधिपूर्वंप्रपूजयेत् ॥ २६ ॥ योगिनीश्चचतुष्षष्टिः पीठेतस्याःप्रपूजयेत् ॥ अर्चयेद्वारिसिद्धिश्च

है ऐसा कहताहुआ मनुष्य दंडवत् करै ॥ २२ ॥ और ब्राह्मणों की स्त्रियों व ब्राह्मणों को द्रव्य की शक्ति के अनुसार पूजै व सिंदूर तथा अनेक भांति के हारों से तथा वसनों व कुंकुमों से ॥ २३ ॥ और सुगन्धित फूलों से पूजकर व कुंकुम से लेपनकर कुसुंभी वसन, कज्जल व तांवूल से प्रसन्न करावै ॥ २४ ॥ और सुगन्ध से नहवाकर व कुंकुम से लेपन कर तथा धूप से धुपाकर उन रुक्मिणीजी को उत्तम पुष्पों से पूजै ॥२५॥ व भक्ष्य, भोज्य नैवेद्यों से और मांस व मदिरा तथा बहुतसी बलियों से विधिपूर्वक पूजै॥२६॥व उनके

पीठ पै चौंसठि योगिनियों को पूजै व हरिसिद्धि और क्षेत्रपालों को सब ओर पूजै ॥ २७ ॥ और वहां विरूपस्थायिनी व सात मातृकाओं को पूजै व उस पीठ में अष्टमूर्ति से स्थित लक्ष्मीजी को पूजै ॥ २८ ॥ और रुक्मिणी, सत्यभामा व जाम्बवती देवी को पूजै और मित्रविंदा, कालिंदी, भद्रा व अग्निजिती को पूजै ॥ २९ ॥ व वैष्णव मनुष्य उसी पीठ में कृष्णकी प्यारी लक्ष्मीजी को पूजकर विधिपूर्वक इनको भलीभांति पूजकर तथा खीर से तृप्तकर ॥ ३० ॥ गाने, बजाने के योगों से व दीप तथा जागरणादिकों से पूजकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है और उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ व रोगों से छूटाहुआ ऋद्धि की वृद्धि से संयुत वह जीता है उसको बहुत

क्षेत्रपालांश्चसर्वतः ॥ २७ ॥ विरूपस्थायिनींतत्र तथावैसप्तमातरः ॥ अष्टमूर्तिस्थितांपद्मां पीठेतस्मिन्प्रपूजयेत् ॥ २८॥ रुक्मिणींसत्यभामांच देवींजाम्बवतींतथा ॥ मित्रविन्दांचकालिन्दीं भद्रामग्निजितींतथा ॥ २९ ॥ सम्पूज्यलक्ष्मींत त्रैव वैष्णवःकृष्णवल्लभाम् ॥ एताःसम्पूज्यविधिवत्संतर्प्यचैवपायसैः ॥ ३० ॥ गीतवादित्रयोगैश्च दीपैर्जागरणादि भिः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति तस्यविष्णुःप्रसीदति ॥ ३१ ॥ जीवतेव्याधिनिर्मुक्तो ऋद्धिवृद्धिसमन्वितः ॥ किंतस्यबहु भिर्दानैः किंव्रतैर्नियमैस्तथा ॥ ३२ ॥ येनदृष्टाजगन्माता रुक्मिणीकृष्णवल्लभा ॥ किंयज्ञैर्बहुभिश्चैव सम्पूर्णवरदक्षि णैः ॥ ३३ ॥ तेनदत्तंहुतंतेन जप्तंतेनसनातनम् ॥ हेलयातेनसंप्राप्ताः सिद्धयोष्टौनसंशयः ॥ ३४ ॥ गताद्वारवतीयेन दृ ष्टाकेशववल्लभा ॥ सफलंजीवितंतस्य जन्ममानुषमेवच ॥ ३५ ॥ कलौकृष्णपुरींगत्वा दृष्ट्वामाधववल्लभाम् ॥ सर्वान्का मानवाप्नोति परत्रेहचमानवः ॥ ३६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रुक्मिणीकृष्णवल्लभा ॥ स्नानगन्धादिवस्त्रैश्च प्रभूतबलि

दानों से व व्रतों और नियमों से क्या है ॥ ३२ ॥ कि जिसने कृष्णकी प्यारी रुक्मिणी जगदम्बिकाजी को देखा है व संपूर्ण उत्तम दक्षिणावाले यज्ञों से क्या है ॥ ३३ ॥ उसने दान दिया व उसने हवन किया और सनातन जप किया और उसने हेला से निस्सन्देह आठ सिद्धियों को पाया है ॥ ३४ ॥ जिसने कि द्वारकापुरी को जाकर विष्णुप्रिया रुक्मिणीजी को देखा है उसका जीवन व मनुष्य का जन्म सफल है ॥ ३५ ॥ कलियुग में श्रीकृष्णजी की पुरी द्वारकाजी को जाकर विष्णुप्रिया रुक्मिणीजी को देखकर मनुष्य इस लोक व परलोक में सब कामनाओं को पाताहै ॥ ३६ ॥ इस कारण सब यत्न से स्नान, चन्दनादिक व वस्त्रों से तथा बहुत सी

बलियों से और गाने, बजाने के शब्दों से तथा दीपों व जागरण से प्रसन्न कीहुई भीष्मक की कन्या रुक्मिणी कृष्णप्रियाजी सब कामनाओं को देती हैं ॥ ३७ । ३८ ॥ वैसेही उत्सव के दिन में व चतुर्दशी में सावधान होता हुआ मनुष्य रुक्मिणीजी को पूजकर इच्छा के अनुकूल चाहे हुए फल को पाता है ॥ ३९ ॥ और माघ महीने में शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि में जिन्हों ने चन्दन, पुष्प व अनेक भांति के उपहारों से कामदेव की माता रुक्मिणीजी को पूजा है ॥ ४० ॥ उसका जीवन सफल है और उसके मनोरथ सफल होते हैं और चैत महीने में द्वादशी तिथि में कृष्ण समेत रुक्मिणीजी को ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य देखते हैं व जो चैत और वैशाख में कृष्णजी समेत

भिस्तथा ॥ ३७ ॥ गीतवादित्रघोषैश्च दीपैर्जागरणेनच ॥ तोषिताभीष्मकसुता सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥ ३८ ॥ तथाचै वोत्सवदिने चतुर्दश्यांसमाहितः ॥ पूजयित्वायथाकामं वाञ्छितंलभतेफलम् ॥ ३९ ॥ माघेमासिसिताष्टम्यां कन्दर्पज ननींबुधैः ॥ पूजितागन्धपुष्पैश्च ह्युपहारैरनेकधा ॥ ४० ॥ सफलंजीवितंतेषां सफलाश्चमनोरथाः ॥ द्वादश्यांचैत्रमा सेतु कृष्णेनसहरुक्मिणीम् ॥ ४१ ॥ येपश्यन्तिनरादेवीं रुक्मिणींमधुमाधवे ॥ कृष्णेनसहगच्छन्ति तेधन्यामानवा दिवि ॥ ४२ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमन्विताः ॥ जीवन्तिव्याधिनिर्मुक्ताः पदंगच्छन्त्यनामयम् ॥ ४३ ॥ ज्येष्ठाष्टम्यांनरैर्यैस्तु पूजिताकृष्णवल्लभा ॥ तेषांमनोरथावाप्तिर्लभ्यतेनात्रसंशयः ॥ ४४ ॥ सदाभाद्रपदेमासि यैस्तु पूजाकृताबुधैः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्तिविष्णुपदन्नराः ॥ ४५ ॥ कार्त्तिकेशुक्लद्वादश्यां रुक्मिणींकृष्णसंयुताम् ॥ स

रुक्मिणी देवी को देखते हैं पृथ्वी में वे धन्य मनुष्य स्वर्ग को जातेहैं ॥ ४२ ॥ व पुत्रों और पौत्रों से संयुत तथा धन, धान्य से युक्त व रोगरहित होकर वे मनुष्य जीते हैं व उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ व ज्येष्ठ की अष्टमी तिथि में जिन मनुष्यों ने कृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को पूजा है उन को मनोरथ की प्राप्ति मिलती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ और सदैव भादों महीने में जिन विद्वानों ने उन का पूजन किया है सब पापों से छूटे हुए वे विष्णुजी के स्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ और कातिक में शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि में जिसने कृष्ण से संयुत रुक्मिणीजी को देखा है उसका जीवन सफल होता है व पुत्रों की सन्तान

नाश नहीं होतीहै ॥ ४६ ॥ और एक ठिकाने स्थित कृष्ण से संयुत रुक्मिणी जी को जो देखता है उसका जीवन सफल होता है व पुत्र की सन्तान नाश नहीं होती है ॥ ४७ ॥ व बहुत धन धान्य होता है और कभी दरिद्रता नहीं होती है इस प्रकार जो मनुष्य रुक्मिणीजी को देखै व श्रीकृष्णजी को पूजै ॥ ४८ ॥ और जो सब तीर्थों में नहावै व शक्ति के अनुसार दान देवै हे ब्राह्मणो ! उसको कलियुग में जो जो पुण्य का फल होता है ॥ ४९ ॥ वह संपूर्णता से कहा गया और कलियुग में कृष्णजी की स्थिति कही गई हे ब्राह्मणो ! द्वारकापुरी को छोड़कर अन्यत्र कलियुग में मुक्ति नहीं मिलती है ॥ ५० ॥ इस पुराण की संहिता को बलि को बांधनेवाले

फलंजीवितंतस्य चाक्षयापुत्रसन्ततिः ॥ ४६ ॥ एकत्रसंस्थितांयश्च रुक्मिणींकृष्णसंयुताम् ॥ सफलंजीवितंतस्य चाक्षयापुत्रसन्ततिः ॥ ४७ ॥ पुष्कलंधनधान्यञ्च कदानैवदरिद्रता ॥ एवंयोरुक्मिणींपश्येत्पूजयेत्कृष्णमेवच ॥ ४८ ॥ स्नायाच्चसर्वतीर्थेषु दानंशक्त्यादादातियः ॥ तस्यपुण्यफलंचैव कलौयद्यद्भवेद्द्विजाः ॥ ४९ ॥ कथितंतदशेषेण कलौकृष्णस्यसंस्थितिः ॥ मुक्त्वाद्वारावतींविप्रा मुक्तिर्नप्राप्यतेकलौ ॥ ५० ॥ पुराणसंस्थितामेतां कृतवान्बलिबन्धनः ॥ ददौसतुप्रसादेन प्रह्लादायमहात्मने ॥ ५१ ॥ ऋषिभ्यःकथयामास सपृष्टोदैत्यसत्तमः ॥ शृणुयाद्योनरोभक्त्या यःपठेद्भावसंयुतः ॥ ५२ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोकंसगच्छति ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येरुक्मिणीदर्शनमाहात्म्यंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यमिन्द्रद्युम्न निबोध मे ॥ कलौ निवसते यत्र रुक्मिणीपति

कृष्णजी ने किया व प्रसन्नता से उन्होंने प्रह्लाद महात्मा के लिये दिया ॥ ५१ ॥ और पूंछे हुए उन श्रेष्ठ दानव प्रह्लादजी ने ऋषियों से कहा भक्तिसंयुत जो मनुष्य इसको भक्ति से पढ़ता या सुनता है ॥ ५२ ॥ वह सब कामनाओं को पाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां रुक्मिणीदर्शनमाहात्म्यंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा द्वारकापुरी कर अहै अतुल परभाव । सो तेइस अध्याय में कह्यो चरित चितचाव ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि हे इन्द्रद्युम्न ! मुझ से द्वारका का

माहात्म्य सुनिये जहां कि रुक्मिणी के पति विष्णुजी कलियुग में बसते हैं ॥ १ ॥ कलियुग में जो मनुष्य श्रीकृष्णजी का माहात्म्य सुनते व पढ़ते हैं उनका यमलोक में आठयुगों तक निवास नहीं होता है ॥ २ ॥ जिसको श्रीकृष्णजी की कथा सदैव प्राण से भी प्यारी है उसको इस लोक व परलोक में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ३ ॥ और हज़ार मन्वन्तरतक काशी में जो फल कहा गया है वह द्वारका में पांच दिन बसनेवालों को होता है ॥ ४ ॥ और कलियुग में यदि द्वारकापुरी में जो चाण्डाल बसता है वह यतियों की गति को पाता है ऐसा प्रजापति ने कहा है ॥ ५ ॥ व हे नरनायक ! प्रतिदिन द्वारका को जाता हुआ मनुष्य कुरुक्षेत्र से उपजे हुए फल को

केशवः ॥ १ ॥ कलौकृष्णस्यमाहात्म्यं येशृण्वन्तिपठन्तिच ॥ नतेषांभवतेवासो यमलोकेयुगाष्टकम् ॥ २ ॥ नित्यं कृष्णकथायस्य प्राणादपिगरीयसी ॥ नतस्यदुर्लभंकिञ्चिदिहलोकेपरत्रच ॥ ३ ॥ मन्वन्तरसहस्रन्तु काश्यांवैयत्फलं स्मृतम् ॥ तत्फलंद्वारवत्यांवै वसतांपञ्चभिर्दिनैः ॥ ४ ॥ कलौनिवसतेयस्तु श्वपचोद्वारकांयदि ॥ यतीनांगतिमाप्नोति प्राहचैवंप्रजापतिः ॥ ५ ॥ द्वारकांगच्छमानश्च प्रत्यहंनरनायक ॥ फलंप्राप्नोतिमनुजः कुरुक्षेत्रसमुद्भवम् ॥ ६ ॥ सोम ग्रहशतेनापि यत्फलंसोमनायके ॥ दृष्टेतत्फलमाप्नोति द्वारवत्यांदिनेदिने ॥ ७ ॥ पुष्करेकार्त्तिकंनीत्वा यत्फलंवर्षको टिभिः ॥ तत्फलंद्वारकावासे प्रत्यहंनरनायक ॥ ८ ॥ अवन्त्यांयत्फलंप्रोक्तं मन्वन्तरशतंनृप ॥ तत्फलंद्वारकांगत्वा दि नैकेनप्रजायते ॥ ९ ॥ द्वारावत्यांदिनैकेन दृष्टेदेवकिनन्दने ॥ यत्फलंकोटिगुणितं व्रतलक्षशतोद्भवम् ॥ १० ॥ कलौनि

पाता है ॥ ६ ॥ और सौ चन्द्रमा के ग्रहणों में सोमनायकजी के देखने पर जो फल मिलता है उसको मनुष्य द्वारकापुरी में प्रतिदिन पाता है ॥ ७ ॥ व हे नरनायक ! पुष्करतीर्थ में करोड़ों वर्षों तक कातिक महीने को व्यतीत कर जो फल होता है वह फल द्वारकापुरी के निवास में प्रतिदिन होता है ॥ ८ ॥ व हे राजन् ! सौ मन्वन्तरों तक अवन्तीपुरी में जो फल कहा गया है द्वारका को जाकर एक दिन में वह फल होता है ॥ ९ ॥ और द्वारकापुरी में एक दिन देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी के देखने पर वह कोटिगुना फल होता है जोकि सैकड़ों लक्ष व्रतों से उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ हे राजन् ! कलियुग में बसते हुए उन मनुष्यों के मनोरथ धन्य हैं कि जिनकी

बुद्धि श्रीकृष्णजी के दर्शन व द्वारका के गमन में है ॥ ११ ॥ लोकों को पवित्र करनेवाले वे मनुष्य धन्य व कृतार्थ और प्रणाम करने योग्य हैं कि जिन्हों ने करोड़ों दश हज़ार पातकों को नाशनेवाले श्रीकृष्णजी के मुख को देखा है ॥ १२ ॥ हे नरोत्तम ! पृथ्वी में कृष्णजी के समीप जो द्वारकापुरी में एक द्वादशी को उपास करता है उसके फल को सुनिये ॥ १३ ॥ कि व्रत से संयुत कृष्णसंज्ञक दश सौ दिनों से मनुष्य जिस फलको पाता है वह द्वारका में एक द्वादशी तिथि से मिलता है ॥ १४ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के मस्तक पै दुग्धस्नान कराते हैं वे सौ अश्वमेधों से उपजे हुए पुण्य को पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ व क्षीर से दश

वसतांभूप धन्यास्तेषांमनोरथाः ॥ कृष्णस्यदर्शनेयेषां द्वारकागमनेमतिः ॥ ११ ॥ धन्यास्तेकृतकृत्यास्ते वन्द्यास्ते लोकपावनाः ॥ दृष्टंकृष्णमुखंयैस्तु पापकोट्ययुतापहम् ॥ १२ ॥ एकान्तुद्वादशींलोके यःकरोतिनरोत्तम ॥ कृष्णस्य सन्निधौभूमौ द्वारकायांफलंशृणु ॥ १३ ॥ यत्फलंव्रतसंयुक्तैर्वासरैःकृष्णसंज्ञकैः ॥ शतैर्दशभिराप्नोति द्वारकायांतदे कया ॥ १४ ॥ क्षीरस्नानंकारयन्ति येनराःकृष्णमूर्द्धनि ॥ शताश्वमेधजंपुण्यं तेलभन्तिनसंशयः ॥ १५ ॥ क्षीराद्दशगुणं दर्भाद्घृतात्तस्माद्दशोत्तरम् ॥ घृताद्दशगुणंक्षौद्रं कम्बुनातद्दशोत्तरम् ॥ १६ ॥ पुष्पोदकंचदर्भोदं वर्द्धतेचदशोत्तरम् ॥ मन्त्रोदकंचगन्धोदं तथैवनृपसत्तम ॥ १७ ॥ स्नानमिक्षुरसेनैवं शतवाजिमखैःसमम् ॥ तथैवतीर्थनीरञ्च फलंयच्छति भूमिप ॥ १८ ॥ स्नपनंकृष्णदेवस्य यःकरोतिस्वशक्तितः ॥ फलमाप्नोतितत्प्रोक्तं निष्कामोमुक्तिमाप्नुयात् ॥ १९ ॥ कृष्णंस्नानार्द्रगात्रन्तु वस्त्रेणपरिमार्जति ॥ जन्मार्जितस्यपापस्य भवतेपापमार्जनम् ॥ २० ॥ स्नापयित्वाजगन्नाथं

गुना पुण्य कुश से व उससे दशगुना घृत से होता है तथा घृत से दशगुना शहद और शंख से उससे दशगुना पुण्य होता है ॥ १६ ॥ और पुष्पोदक व कुशोदक दशगुना बढ़ता है वैसेही हे नृपोत्तम ! मन्त्रोदक व गंधोदक होता है ॥ १७ ॥ व ऊंख के रससे स्नान कराना सौ अश्वमेधों के समान होता है वैसेही हे राजन् ! तीर्थ का जल फलको देताहै ॥ १८ ॥ जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार कृष्णदेवजी को स्नान कराता है वह कहेहुए फल को पाता है व अकाम मनुष्य मुक्ति को पाता है ॥ १९ ॥ व स्नान से भीगेहुए अंगोंवाले श्रीकृष्णजी को जो वस्त्र से मार्जन करता है उसके जन्म में इकट्ठा किये हुए पापका नाश होता है ॥ २० ॥ और जगदीश कृष्णजी को नहवा कर

जो फूलों की माला को चढ़ाता है उसको प्रत्येक पुष्प में सोने की हज़ार अशर्फ़ियों का फल होता है ॥ २१ ॥ और श्रीकृष्णजी के स्नान के समय में जो शंखादिकों को बजाता है व जो विष्णुदेवजी के हज़ार नामों को पढ़ता है वह प्रत्येक अक्षर में सौ कपिला गऊ के दान से उपजे हुए फल को पाता है ॥ २२ ॥ व हे भूपाल ! गीता के पढ़ने में यह फल होता है और गजेन्द्रमोक्ष व स्तवराज के कीर्तन करने पर यह फल होता है ॥२३॥ व हे नराधिप ! मुनियों से किये हुए अन्य स्तोत्रों के पढ़ने से यही फल होता है व देवेश विष्णुजी उनके समीप आते हैं व सब कामनाओं को देते हैं ॥ २४ ॥ फिर हे नरनायक ! जो स्नान के समय में वेदपाठ करता है उसको

पुष्पमालावरोहणम् ॥ कुरुतेप्रतिपुष्पन्तु स्वर्णनिष्कायुतंफलम् ॥ २१ ॥ स्नानकालेतुकृष्णस्य शङ्खादीनांसुवादनम् ॥ कुरुतेचैवदेवस्य पठेन्नामसहस्रकम् ॥ प्रत्यक्षरंलभेत्पुण्यं कपिलागोशतोद्भवम् ॥ २२ ॥ फलमेतन्महीपाल गीतायाः पठनेभवेत् ॥ गजेन्द्रमोक्षणेचापि स्तवराजेचकीर्तिते ॥ २३ ॥ स्तवैर्मुनिकृतैरन्यैः पठनैश्चनराधिप ॥ तेषामायातिदेवेशः सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥ २४ ॥ किंपुनर्वेदपाठन्तु स्नानकालेकरोतियः ॥ तस्ययद्भवतेपुण्यं न ज्ञातंनरनायक ॥ २५ ॥ स्नानकालेतुसम्प्राप्ते कृष्णस्याग्रे तु नर्तनम् ॥ गीतंचैव पुनर्मर्त्यः कुरुतेतस्यकाकथा ॥ २६ ॥ स्नानकालेतुकृष्णस्य जयशब्दंकरोतियः ॥ करताडनसंयुक्तं गीतंनृत्यंकरोतियः ॥ २७ ॥ उन्मत्तचेष्टांकुर्वाणो हसञ्जल्पन्यथेच्छया ॥ त्यक्तंतेनधराधीश योनियन्त्रस्यनिर्गमम् ॥ २८ ॥ नोत्तानशायीभवति मातुरङ्केनरेश्वर ॥ गुणान्वक्ष्यतिकृष्णस्य यःकलौममसंख्यया ॥ २९ ॥ कल्पान्तेमुच्यतेविष्णोर्वसतेपितृभिःसह ॥ निस्सन्देहंभवेदेवमिन्द्रद्युम्न नचा

जो पुण्य होता है वह नहीं जाना गया है ॥ २५ ॥ और श्रीकृष्णजी के स्नान का समय प्राप्त होने पर जो श्रीकृष्णजी के आगे नृत्य व गान करता है उसको क्या कहना है ॥ २६ ॥ और श्रीकृष्णजी के स्नान के समय में जो जय शब्द करता है और हस्तताड़न याने ताली समेत जो गीत व नृत्य करता है ॥ २७ ॥ और इच्छा के अनुकूल हँसता व बकता हुआ जो मतवाले की नाईं कर्म करता है हे पृथ्वीनाथ ! उसने योनिरूपी यन्त्र से निकलना छोड़दिया ॥ २८ ॥ व हे नरेश्वर ! वह मनुष्य माता की गोदी में उतान नहीं सोता है और जो मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्णजी के गुणों को कहता है वह मेरी गिनती से ॥ २९ ॥ कल्पान्त में मुक्त

होजाता है व पितरों समेत विष्णुजी के लोक में बसता है हे इन्द्रद्युम्न ! निस्सन्देह ऐसाही होता है अन्यथा नहीं होता है ॥ ३० ॥ और जो मनुष्य अनेक देशों में उपजे हुए कोमल वसनों से पूजकर उत्तम भक्ति से विष्णुजी को धूप देता है ॥ ३१ ॥ वह सौ मन्वन्तर की संख्या तक विष्णुजी के घर में बसता है व देवदेवेश विष्णुजी को जो मनुष्य अपनी भक्ति से सुवर्ण व रत्नों से उत्पन्न तथा मणियों से उपजे हुए सुन्दर भूषणों से भूषित करते हैं उनको जो फल होता है उसको न इन्द्र न शिव और न ब्रह्माजी ॥ ३२ । ३३ ॥ जानते हैं और विष्णुजी को छोड़कर मुनिलोग भी उसको नहीं जानते हैं और हे राजन् ! कलिमल को नाशनेवाले जगदीश श्रीकृष्णजी को

न्यथा ॥ ३० ॥ नानादेशसमुद्भूतैः सुवस्त्रैश्चसुकोमलैः ॥ पूजयित्वासुभक्त्या च प्रधूपयतिमाधवम् ॥ ३१ ॥ मन्वन्तराणिवसते शतसंख्यंहरेर्गृहे ॥ स्वभक्त्यादेवदेवेशं भूषणैर्भूषयन्तिये ॥ ३२ ॥ हेमजैरत्नजैःशुभ्रैर्मणिजैश्च सुशोभनैः ॥ तेषांयच्च फलंनेन्द्रो नरुद्रोब्रानवैविधिः ॥ ३३ ॥ जानन्तिमुनयोनैव वर्जयित्वा तु माधवम् ॥ येर्चयन्तिजगन्नाथं कृष्णं कलिमलापहम् ॥ ३४ ॥ केतकीतुलसीपत्रैः पुष्पैर्मालतिसम्भवैः ॥ स्वदेशसम्भवैश्चान्यैः कुसुमैर्भूरिभिर्नृप ॥ ३५ ॥ एकैकं नृपशार्दूल दीनारशतसम्मितम् ॥ येकुर्वन्तिनराःपूजां स्वशक्त्यारुक्मिणीपतेः ॥ ३६ ॥ क्रीडन्तिदैवतेलोके मन्वन्तरशतानि च ॥ यःपुनस्तुलसीपत्रैः कोमलैर्मञ्जरीयुतैः ॥ ३७ ॥ पूजयेच्छुद्धवस्त्रैश्च कृष्णंदेवकिनन्दनम् ॥ यागतिर्योगयुक्तानां यागतिर्यज्ञशीलिनाम् ॥ ३८ ॥ यागतिर्दानशीलानां यागतिस्तीर्थसेविनाम् ॥ यागतिर्मातृभक्तानां द्वादशीं

केतकी व तुलसीपत्र तथा चमेली से उपजे हुए व अपने देश में उत्पन्न अन्य बहुत से पुष्पों से जो पूजते हैं ॥ ३४ । ३५ ॥ हे नृपोत्तम ! उनका एकएक फूल सौ अशर्फियों के समान होता है और अपनी शक्ति के अनुसार जो मनुष्य रुक्मिणी के पति श्रीकृष्णजी का पूजन करते हैं ॥ ३६ ॥ वे सौ मन्वन्तरों तक देवताओं के लोक में क्रीड़ा करते हैं और जो मनुष्य फिर मंजरी से संयुत कोमल तुलसीदलों से ॥ ३७ ॥ और शुद्ध वस्त्रों से देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी को पूजता है उसकी वह गति होती है जोकि योग से संयुत यज्ञकर्ता ब्राह्मणों की होती है ॥ ३८ ॥ और दान करनेवालों की जो गति होती है व तीर्थसेवी लोगों की जो गति होती है

व मातृभक्तों की जो गति होती है और वेधवर्जित द्वादशी तिथि को॥ ३९॥ जागरण करते हुए व विष्णुजी के आगे नाचते व गाते हुए लोगों को व वेदवादी वैष्णव मनुष्यों को जो फल होता है॥ ४०॥ व वैष्णवशास्त्र को पढ़ते हुए विष्णुभक्तों को जो फल होताहै तुलसी की मालासे पूजे हुए रुक्मिणीके पति श्रीकृष्णजी॥ ४१॥हे राजन्! इस फल को देते हैं इसमें सन्देह नहीं है जिस प्रकार विष्णुजी को लक्ष्मीजी प्यारी हैं उससे अधिक तुलसीजी प्यारी हैं॥ ४२॥ जहां जहां स्थित विष्णुजी तुलसीदल की माला से पूजे जाते हैं वहा २ कलियुग में द्वारका के समान सब पुण्य होता है॥ ४३॥ और जो मनुष्य कलिमलनाशक श्रीकृष्णजीको केतकी के पुष्पों

वेधवर्जिताम्॥ ३९॥ कुर्वतांजागरंविष्णोर्नृत्यतांगायतांफलम्॥ वैष्णवानान्तु भक्तानां यत्फलंवेदवादिनाम्॥ ४०॥ पठतांवैष्णवंशास्त्रं वैष्णवानान्तु यत्फलम्॥ तुलसीमालयाकृष्णः पूजितोरुक्मिणीपतिः॥ ४१॥ फलमेतन्महीपाल यच्छतेनात्रसंशयः॥ यथालक्ष्मीःप्रियाविष्णोस्तुलसी च ततोधिका॥ ४२॥ यत्रयत्रस्थितोविष्णुस्तुलसीदलमालया॥ पूज्यतेद्वारकापुण्यसमग्रंभवतेकलौ॥ ४३॥ योर्चयेत्केतकीपुष्पैः कृष्णंकलिमलापहम्॥ पुष्पेपुष्पेश्वमेधस्य फलंयच्छतिचाद्भुतम्॥ ४४॥ योर्चयेन्मालतीपुष्पैः कृष्णंत्रिभुवनेश्वरम्॥ तेनाप्तंनात्रसन्देहस्तत्पदंदुर्लभंहरेः॥ ४५॥ ऋतुकालोद्भवैःपुष्पैर्योर्चयेद्रुक्मिणीपतिम्॥ सर्वान्कामानवाप्नोति स तु दिव्यांश्चमानुषान्॥ ४६॥ अष्टाक्षरोयंमन्त्रोहि श्रीकृष्णःशरणंमम॥ कृष्णागुरुणायेकृष्णं भूषयन्तिकलौनराः॥ ४७॥ सकर्पूरेणराजेन्द्र कृष्णतुल्या भवन्ति च॥ ४८॥ आज्येनगुग्गुलेनापि सुगन्धेनजनार्द्दनम्॥ धूपयित्वानरोयाति पदंभूपसदाशिवम्॥ ४९॥ योद

से पूजता है उसको विष्णुजी प्रत्येक पुष्प में अश्वमेध यज्ञ के अद्भुत फल को देतेहैं॥ ४४॥ और चमेली के पुष्पों से त्रिलोकेश्वर कृष्णजी को जो पूजताहै वह विष्णु जीके उस दुर्लभ स्थानको पागया इसमें सन्देह नहीं है॥ ४५॥ व ऋतु और समयमें उपजेहुए पुष्पों से जो रुक्मिणी के पति श्रीकृष्णजीको पूजताहै वह देवताओं व मनुष्यों की सब कामनाओं को पाता है॥ ४६॥ और श्रीकृष्णः शरणंमम यह अष्टाक्षर मन्त्रहै कलियुग में जो मनुष्य कपूर समेत काले अगुरुसे श्रीकृष्णजी को भूषित करतेहैं हे नृपेन्द्र! वे श्रीकृष्णजी के समान होतेहैं॥ ४७।४८॥ व हे राजन्! घी, गुग्गुल व सुगंधि से विष्णुजी को धूप देकर मनुष्य सदैव कल्याणमय स्थान को जाताहै॥ ४९॥ व हे

भूपाल ! जो मनुष्य श्रीकृष्णजी को अगुरु दीप देता है वह सब पातकको छोड़कर सदैव बड़े भारी रूप को पाता है ॥ ५० ॥ और श्रीकृष्णजी के द्वारपै जो नित्य दीपों की माला करता है वह सात द्वीपोंवाली पृथ्वी का राजा होता है और प्रत्येक दीपक में इस फल को पाता है ॥ ५१ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के आगे सुगंधित नैवेद्यों को निवेदन करता है उसके पितरों की कल्पान्त तक सनातनी तृप्ति होती है ॥ ५२ ॥ व हे नरनायक ! कपूर समेत व सुपारी समेत ताम्बूल को जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के लिये देता है उसको देवताओं का स्थान होताहै ॥ ५३ ॥ और जो मनुष्य करवा से संयुत जल समेत घट को श्रीकृष्णजी के आगे धरता है

दातिमहीपाल कृष्णस्यागुरुदीपकम् ॥ पातकंसर्वमुत्सृज्य सोतिरूपंलभेत्सदा ॥ ५० ॥ द्वारेकृष्णस्ययोनित्यं दीपमालांकरोतिहि ॥ सप्तद्वीपवतीराजा दीपेदीपेफलंलभेत् ॥५१ ॥ नैवेद्यानिसुगन्धानि कृष्णाग्रे तु निवेदयेत् ॥ पितृणांतस्य कल्पान्तं तृप्तिर्भवतिशाश्वती ॥ ५२ ॥ ताम्बूलं च सकर्पूरं सपूगंनरनायक ॥ कृष्णाययच्छतेयोवै पदंतस्यास्तिदैवतम् ॥ ५३ ॥ सनीरंकरकोपेतं कुम्भंकृष्णाग्रतोन्यसेत् ॥ कल्पान्तंनजलापेक्षां कुर्वन्ति च पितामहाः ॥ ५४ ॥ फलानि यच्छतेयो वै सुहृद्यानिनरेश्वर ॥ ५५ ॥ कल्पान्तंतस्यजायन्ते सफलाःसुमनोरथाः ॥ देवदेवस्यराजेन्द्र कुरुतेयःप्रदक्षिणाम् ॥ ५६ ॥ तत्कुलेयमलोके तु दण्डोनैवभवेत्किल ॥ वायुलोकान्महीपाल पुनर्नगमनंभवेत् ॥ ५७ ॥ कृष्णवेश्मनियःकुर्यात्सुरूपंपुष्पमण्डपम् ॥ सपुष्पकविमानैश्च क्रीडतेकोटिभिर्दिवि ॥ ५८ ॥ श्वेतचामरवातेन कृष्णंयस्तोषयेन्नरः ॥ तस्योत्तमाङ्गंदेवेशश्चुम्बतेस्वमुखेन वै ॥ ५९ ॥ यःकुर्यात्कृष्णभवनं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥ कुरुतेचाप्स

उसके पितामह लोग कल्पान्त तक जल की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ५४ ॥ व हे नरेश्वर ! जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के लिये सुन्दर फलों को देता है ॥ ५५ ॥ उसके मनोरथ कल्पान्त तक सफल होते हैं व हे नृपेन्द्र ! जो मनुष्य देवदेव श्रीकृष्णजी की प्रदक्षिणा करता है ॥ ५६ ॥ उसके वंश में यमलोक में दंड नहीं होता है व हे भूपाल ! पवन के लोक से फिर गमन नहीं होता है ॥ ५७ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के मन्दिर में सुन्दर पुष्पमंडप करता है वह करोड़ों पुष्पक विमानों से स्वर्ग में क्रीड़ा करता है ॥ ५८ ॥ व जो मनुष्य सफेद चँवर के पवन से श्रीकृष्णजी को प्रसन्न करता है उसके मस्तक को श्रीकृष्णजी अपने मुख से चूमते हैं ॥ ५९ ॥ व जो मनुष्य

श्रीकृष्णजी के मन्दिर को केला के खंभों से शोभित करता है अप्सराओं से संयुत सुरराज (इन्द्र) जी उसका स्वागत करते हैं ॥ ६० ॥ और जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के स्थान को पताकाओं से शोभित करताहै हे राजन् ! वह सदैव सूर्यलोकमें बसता है ॥ ६१ ॥ और जो श्रीकृष्णजी के मन्दिर में धूप, चंदन व माला को रचता है वह देवकन्याओं से संयुत स्वर्ग में अप्सराओं के गणों से सेवित होता है ॥ ६२ ॥ व मन्दिर के ऊपर जो ध्वजा को आरोपण करता है उसका ब्रह्मस्थान में निवास होता है और वह ब्रह्मा के साथ क्रीड़ा करता है ॥ ६३ ॥ और देवकीनन्दन श्रीकृष्णजीको जो स्वस्तिकों से संयुत करता है वह देवदेव विष्णुजी के त्रिलोक में क्रीडा

रोयुक्तः स्वागतंतस्यदेवराट् ॥ ६० ॥ कृष्णालयंप्रकुरुते पताकाभिश्च शोभितम् ॥ सदैवसूर्यलोकेतु वसतेमनुजाधिप ॥ ६१ ॥ धूपचन्दनमालान्तु कुरुतेकृष्णसद्मनि ॥ देवकन्यावृतेस्वर्गे सेव्यतेप्सरसाङ्गणैः ॥ ६२ ॥ ध्वजमारोपयेद्यस्तु प्रासादोपरिभक्तितः ॥ तस्यब्रह्मपदेवासः क्रीडतेब्रह्मणासह ॥ ६३ ॥ कृष्णंदेवकिपुत्रं च स्वस्तिकैश्च समन्वितम् ॥ कुरुतेदेवदेवस्य क्रीडतेभुवनत्रये ॥ ६४ ॥ योदद्यात्पुष्पमालान्तु मण्डपेरुक्मिणीपतेः ॥ देवोद्यानेषुसर्वेषु स च क्रीडातिभूमिप ॥ ६५ ॥ प्रासादेकृष्णदेवस्य चित्रंकर्मकरोतियः ॥ वसतेरुद्रलोकेतु यावत्तिष्ठन्तिसागराः ॥ ६६ ॥ दद्याच्चन्द्रोदयंयस्तु कृष्णोपरिनरेश्वर ॥ वसतेसोमलोकेतु यावत्तिष्ठतिद्वारका ॥ ६७ ॥ छत्रंबहुशलाकन्तु रुचिरंवस्त्रगुण्ठितम् ॥ दिव्यरत्नैश्चसंयुक्तं हेमचन्द्रसमन्वितम् ॥ ६८ ॥ यःप्रयच्छतिकृष्णाय छत्रलक्षायुतैर्वृतः ॥ प्रावृतस्त्वमरैःसर्वैः क्रीडतेपितृ

करता है ॥ ६४ ॥ व हे भूपते ! रुक्मिणीपति विष्णुजी के मंडप में जो फूलों की माला को देता है वह सब देवबगीचों में क्रीड़ा करता है ॥ ६५ ॥ और श्रीकृष्णदेवजी के मन्दिर में जो चित्रकर्म करता है वह तबतक शिवलोक में बसता है जबतक कि समुद्र रहते हैं ॥ ६६ ॥ हे नरेश्वर ! श्रीकृष्णजी के ऊपर जो चन्द्रोदय को देता है वह तबतक चन्द्रमा के लोक में बसता है जबतक कि द्वारकापुरी रहेगी ॥ ६७ ॥ और वस्त्र से सिलेहुए व दिव्य रत्नों से संयुत और सुवर्ण के चन्द्रमा से संयुत बहुत शलाकों से युक्त सुन्दर छत्र को जो कृष्णजी के लिये देता है वह लाखों छत्रों से संयुत तथा सब देवताओं से घिरा हुआ पितरों समेत क्रीड़ा

करता है ॥ ६८।६९ ॥ व हे नरनायक ! जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के लिये विमान देताहै कुबेर से सत्कार किया हुआ वह ब्रह्मा के दिन तक बसताहै ॥ ७० ॥ व हे राजन् ! कृष्णके सब पूजनादिक व आरतीको जो करताहै वह मनुष्य सात कल्पों तक श्रीकृष्णजी के लोक में बसताहै ॥ ७१ ॥ और जो मनुष्य शंख में जलको करके कृष्णजी के ऊपर घुमाता है वह कल्पान्त तक क्षीरसागर में विष्णुजी के समीप बसता है ॥ ७२ ॥ विष्णुजी के हज़ार नाम व अन्य स्तोत्र को पढ़ता हुआ मनुष्य ऐसा करके जो प्रदक्षिणा करता है ॥ ७३ ॥ वह सातद्वीपोंवाली पृथ्वी के पुण्य को पग २ पै प्राप्त होता है और जो दंडवत् नमस्कार करता है वह दश हज़ार अश्वमेधों के समान

भिस्समम् ॥ ६९ ॥ दद्यान्नरोविमानंयः कृष्णायनरनायक ॥ सत्कृतोधनदेनैव वसतेब्रह्मवासरम् ॥ ७० ॥ कृष्णपूजादिकंसर्वं करोत्यारार्तिकंनृप ॥ कृष्णस्यवसतेलोके सप्तकल्पानिमानवः ॥ ७१ ॥ शङ्खेकृत्वातुपानीयं भ्रामितंकेशवोपरि ॥ सन्निधौवसतेविष्णोः कल्पान्तंक्षीरसागरे ॥ ७२ ॥ एवंकृत्वातुकृष्णस्य यःकरोतिप्रदक्षिणम् ॥ पठन्नामसहस्राणि स्तवमन्यत्पठन्नपि ॥ ७३ ॥ सप्तद्वीपवतीपुण्यं सलभेत्तु पदेपदे ॥ कुर्याद्दण्डनमस्कारमश्वमेधायुतैःसमम् ॥ ७४ ॥ कृष्णंसन्तोषयेद्यस्तु सुगीतैर्मधुरस्वरैः ॥ सामवेदफलंतस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ ७५ ॥ योनृत्यतिप्रहृष्टात्मा भावैर्बहुसुभक्तितः ॥ सनिर्दहतिपापानि मन्वन्तरशतान्यपि ॥ ७६ ॥ ॥ कृष्णागतोमहाभक्त्या कुर्यात्स्वस्तिकवाचनम् ॥ प्रत्यक्षरंलभेत्पुण्यं कपिलाशतदानजम् ॥ ७७ ॥ ऋग्यजुःसामगीर्भिर्वा कृष्णंसन्तोषयन्तिये ॥ कल्पान्तंब्रह्मलोकेतु वसन्तिद्विजसत्तमाः ॥ ७८ ॥ योगशास्त्राणिवेदान्तान् योगिनःकृष्णसन्निधौ ॥ पठन्तिरविबिम्बन्तु भित्त्वायान्ति

फल को पाता है ॥ ७४ ॥ और मीठे स्वरवाले उत्तम गीतों से जो श्रीकृष्णजी को प्रसन्न करता है उसको सामवेद का फल होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७५ ॥ और प्रसन्न मनवाला जो मनुष्य भक्ति से कृष्णजी के आगे बहुत नाचता है वह सौ मन्वन्तरों के भी पातकों को नाश करता है ॥ ७६ ॥ और श्रीकृष्णजी के समीप आकर जो मनुष्य बड़ी भक्ति से स्वस्तिवाचन करता है वह प्रत्येक अक्षर में सौ कपिलादान से उपजे हुए फल को पाता है ॥ ७७ ॥ और जो ऋग्वेद व यजुर्वेद और सामवेद के वचनों से कृष्णजी को प्रसन्न करते हैं वे द्विजोत्तम कल्पान्त तक ब्रह्मलोक में बसते हैं ॥ ७८ ॥ और जो योगी लोग योगशास्त्रों व वेदान्तों को पढ़ते

लयंहरेः ॥ ७९ ॥ गीतानामसहस्रन्तु स्तवराजस्त्वनुस्मृतिः॥ गजेन्द्रमोक्षणं चापि कृष्णस्यातीवदुर्ल्लभम् ॥८०॥ श्रीमद्भागवतंशास्त्रं यःपठेत्कृष्णसन्निधौ॥ कुलकोटिशतैर्युक्तः क्रीडतेयोगिभिस्सह ॥ ८१ ॥ यःपठेद्रामचरितं भारतंव्यासभाषितम् ॥ पुराणानिमहीपाल प्राप्नोमुक्तिनसंशयः ॥ ८२ ॥ द्वादशीवासरेप्राप्ते एवंकुर्वन्तियेनराः ॥ गीतकैःशतसाहस्रैः पुण्यंयच्छतिकेशवः ॥ ८३ ॥ जागरेकोटिगुणितं पुण्यंभवतिभूमिप ॥ वसतांद्वारकांपुण्यं प्रत्यहंलभतेनरः ॥ ८४ ॥ गोमतीनीरपूतानां कृष्णवक्त्रावलोकिनाम् ॥ दर्शनात्पातकंयाति तेषांवर्षशतार्जितम् ॥ ८५ ॥ धन्यास्तेमानुषालोके गोमत्युदधिसंगमे ॥ तर्पयन्तिपितॄन्देवान्गत्वाद्वारावतींकलौ ॥ ८६ ॥ गङ्गाद्वारेप्रयागे च गयायांकुरुजाङ्गले ॥ पुष्करे च प्रभासे च श्रीस्थलेशुक्लतीर्थके ॥ ८७॥ चान्द्रायणसहस्रस्य फलमाप्नोतियत्नतः ॥ ८८ ॥ धन्याद्वारवतीलोके वहते यत्रगोमती ॥ स्वयम्भूस्तिष्ठतेयत्र नित्यंरुक्मिणिवल्लभः ॥ ८९ ॥ न स्नातागोमतीनीरे कलौपापेनमोहिताः ॥ भविष्य

हैं वे सूर्यबिम्बको फोड़कर विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ ७९ ॥ और गीता व सहस्रनाम, स्तवराज तथा अनुस्मृति व गजेन्द्रमोक्ष श्रीकृष्णजी को बहुत दुर्लभ हैं ॥ ८० ॥ और श्रीकृष्णजी के समीप जो श्रीमद्भागवत शास्त्र को पढ़ता है करोड़सौ पुश्तियों से संयुत वह योगियों समेत क्रीड़ा करता है ॥ ८१ ॥ व हे भूपाल! व्यासजी से कहे हुए महाभारत व रामचरित्र तथा पुराणों को जो पढ़ाता है वह मुक्ति को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८२ ॥ और द्वादशी दिन प्राप्त होने पर जो मनुष्य ऐसा करते हैं उनको विष्णुजी एक लक्ष गीतों के समान फल देतेहैं ॥ ८३ ॥ व हे राजन्! जागरण में कोटि गुना फल होता है व प्रतिदिन मनुष्य द्वारकामें बसते हुए लोगों के फलको प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥ और गोमतीजलको पूजनेवाले व श्रीकृष्ण के मुख को देखनेवाले उन मनुष्योंके दर्शनसे सौ वर्षों में इकट्ठा कियाहुआ पाप नाश होजाता है ॥ ८५ ॥ संसार में वे मनुष्य धन्यहैं जो कि कलियुगमें द्वारकापुरीको जाकर पितरों व देवताओंको तर्पणकरते हैं ॥ ८६ ॥ और हरिद्वार, प्रयाग, गया व कुरुजांगल, पुष्कर और प्रभास तथा श्रीस्थल व शुक्लतीर्थ में ॥ ८७ ॥ मनुष्य यत्नसे हज़ार चान्द्रायणके फलको पाता है ॥ ८८ ॥ और जहां गोमती नदी बहती है वह द्वारका संसारमें धन्य है जहां कि रुक्मिणीजी के प्यारे व आपही से उपजेहुए श्रीकृष्णजी सदैव स्थिर रहते हैं ॥ ८९ ॥ व कलियुगमें पापसे मोहित जिन

मनुष्यों ने गोमतीजी के जल में स्नान नहीं किया है उनके पापरूपी बंधन का कैसे नाश होगा ॥ ९० ॥ हे नरोत्तम ! कलियुग में श्रीकृष्णजीने मनुष्योंके मनकी प्रीति को पैदा करनेवाली गोमतीजी को स्वर्ग की सीढ़ी बनाया है ॥ ९१ ॥ और गोमती के समान ऐसी स्वर्ग की सीढ़ी नहीं देख पड़ती है जो कि ध्यान करनेवाले मनुष्यों को सुखदायक तथा स्नानही करने से मोक्षदायक है ॥ ९२ ॥ जहां कि गोमतीजल से मिलाहुआ समुद्र जागताहै हे नरव्याघ्र ! वहां जाइये जहां कि श्रीकृष्णजी स्थित हैं ॥ ९३ ॥ व जहां पूजेहुए गोमती व समुद्र से निकलेहुए चक्रचिह्नित शिला मोक्षको देते हैं उस पुरीको कौन सेवन न करै ॥ ९४ ॥ हे राजन् ! जहां कलियुग में

तिकथंतेषां पापबन्धस्यसंक्षयः ॥ ९० ॥ निर्मितास्वर्गनिश्रेणिः कलौकृष्णेनगोमती ॥ मनःसंप्रीतिजननी जनानां नरसत्तम ॥ ९१ ॥ नेदृशंस्वर्गसोपानं दृश्यतेगोमतीसमम् ॥ सुखदंध्यायिनांपुंसां स्नानमात्रेणमोक्षदम् ॥ ९२ ॥ गोमतीनीरसंपृक्तो यत्रजागर्तिसागरः ॥ तत्रगच्छनरव्याघ्र कृष्णस्तिष्ठतियत्र वै ॥ ९३ ॥ यत्रचक्राङ्किताःशैलाः गोमत्युदधिनिस्सृताः ॥ यच्छन्तिपूजितामोक्षं तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ९४ ॥ यत्रचक्राङ्कितामृत्स्ना तिष्ठतेनिर्मलान्नृप ॥ कलौपापविनाशाय तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ९५ ॥ द्वारकायापुरीलोके दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ शरणंदेवतादीनां तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ९६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणुराजेन्द्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ श्रुत्वायांमुच्यते नूनं दुःखसंसारबन्धनैः ॥ ९७ ॥ त्यजतेयांकलौनैव कृष्णोदेवकिनन्दनः ॥ कर्मणामनसावाचा तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ९८ ॥ अवन्तीविषयेपूर्वं ब्राह्मणोवेदपारगः ॥ चन्द्रशर्मेतिविख्यातः शिवभक्तःसदानृप ॥ ९९ ॥ सदाचारोद्विजश्रेष्ठो कुरुते न

चक्र से चिह्नित निर्मल मिट्टी पापोंके नाशने के लिये स्थितहै उस पुरीको कौन सेवन न करै ॥ ९५ ॥ संसारमें जो द्वारकापुरी दैत्य, दानव व देवतादिकों की शरण है उस पुरी को कौन सेवन न करै ॥ ९६ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! सुनिये मैं पातकों को नाश करनेवाली कथाको कहताहूं जिसको सुनकर मनुष्य निश्चयकर दुःख व संसारके बन्धनोंसे छूट जाता है ॥ ९७ ॥ कलियुग में देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी जिसको कर्म, मन व वचन से नहीं छोड़ते हैं उसपुरी को कौन सेवन न करै ॥ ९८ ॥ हे राजन् ! पुरातन समय अवन्ती देशमें सदैव शिवजीका भक्त चन्द्रशर्मा ऐसा प्रसिद्ध वेदोंका पारगामी ब्राह्मण रहता था ॥ ९९ ॥ हे राजन् ! वह उत्तम आचरणवाला

द्विजोत्तम ! चतुर्दशी के सिवा अन्य देव से उत्पन्न व्रतको नहीं करता था और न विष्णुजी का व्रत करता था ॥१००॥ व शिवजीके सिवा मन, कर्म, वचनसे अन्य देवता को ध्यान नहीं करता था व हे राजन्! शिवपूजन को छोड़कर अन्य पूजन नहीं करताथा ॥ १ ॥ और हरिवासर द्वादशी तिथि में न उपास करता था न व्रत करता था व हे राजन् ! चतुर्दशी के सिवा अन्यदेव से उत्पन्न हुए व्रतको नहीं करता था ॥ २ ॥ व हे नृपेन्द्र ! जहा जहां शिवक्षेत्र व शंकरजीका क्षेत्र था वहां वह जाता था विष्णुजी के क्षेत्र को नहीं जाता था ॥ ३ ॥ और प्रतिवर्ष में वह सोमनाथजी का दर्शन करता था व हे नरेश्वर ! सोमग्रहणको विशेषकर नहीं छोड़ता था ॥ ४ ॥ हे नृपेन्द्र ! इस

व्रतंहरेः ॥ विनाचतुर्दशींराजन्नान्यदेवसमुद्भवम् ॥ १०० ॥ मनसाकर्मणावाचा नान्यंध्यायेद्विनाशिवम् ॥ शिवपूजामृतेनान्यं न करोतिनराधिप ॥१॥ नोपवासंहरिदिने कुरुते न व्रतंहरेः ॥ विनाचतुर्दशींराजन्नान्यदेवसमुद्भवम् ॥२॥ यत्र यत्रशिवक्षेत्रं यत्रतीर्थन्तुशाङ्करम् ॥ तत्रगच्छतिराजेन्द्र वैष्णवंगच्छते नहि ॥ ३ ॥ प्रतिवर्षं च कुरुते सोमनाथस्यदर्शनम् ॥ न जहातिविशेषेण सोमपर्वनरेश्वर ॥ ४ ॥ एवं च कुर्वतस्तस्य नववर्षाणिसप्ततिः ॥ गतानितस्यराजेन्द्र शिवभक्तिप्रकुर्वतः ॥ ५ ॥ सकदाचित्सोमपर्वणि गतःसोममनामयम् ॥ नानादेशान्महीपाल त्वसंख्याताश्च मानवाः ॥ ६ ॥ गताःकृष्णपुरेसर्वे द्रष्टुंसोमेश्वरंप्रभुम् ॥ आप्लुतास्तेचन्द्रशर्मा न गतोद्वारकांपुरीम् ॥ ७ ॥ वैशाखेद्वादशीशुक्ला दुर्लभाकृष्णसन्निधौ ॥ सम्बोधितोपिस्वजनैर्न गतोद्वारकांपुरीम् ॥ ८ ॥ नान्यदेवस्यविज्ञानमीश्वराद्देवनायकात् ॥ विना वै चन्द्रशर्माणं गतान्येद्वारकांपुरीम् ॥ ९ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेराजन्प्रास्वपत्स्वगृहंप्रति ॥ चक्रस्तेदर्शनंस्वप्ने चन्द्रशर्मापि

प्रकार शिवभक्ति करतेहुए उसके उन्नासी वर्ष व्यतीत हुए ॥ ५ ॥ किसी समय चन्द्रमाके ग्रहणमें वह व्याधिरहित सोमेश्वरजीके समीप गया व हे भूपाल ! अनेक देशों से असंख्य मनुष्य ॥ ६ ॥ सब सोमेश्वर स्वामी को देखने के लिये कृष्णपुर (द्वारकापुरी) को गये व उन्हों ने स्नान किया परन्तु चन्द्रशर्मा द्वारकापुरी को नहीं गया ॥ ७ ॥ वैशाख महीने में शुक्लपक्ष की द्वादशी श्रीकृष्णजी के समीप दुर्लभ है इस प्रकार स्वजनों से समझाया हुआ भी वह द्वारकापुरीको न गया ॥ ८ ॥ क्योंकि उसको देवताओं के स्वामी शिवजीके सिवा अन्य देवता का ज्ञान नहीं था चन्द्रशर्मा के सिवा अन्य लोग द्वारकापुरीको गये ॥ ९ ॥ अन्य दिन प्राप्त होनेपर वह अपने

घरमें सोगया और उन चन्द्रशर्मा के पितरोंने स्वप्नमें दर्शनकिया ॥१०॥ जो कि बड़े शरीरवाले, प्रेतरूप तथा क्षुधासे दुर्बल व अत्यन्त भयानक और बड़ेभयंकर थे उन पितरों को उसने स्वप्न में देखा व डराहुआ यह कांपने लगा ॥११॥ चन्द्रशर्मा बोला कि बिगड़े आकारवाले व जंतुवों के भयदायक तुम लोग कौन हो पृथ्वीमें उपजेहुए ऐसे जीवों को मैंने न देखा है न सुनाहै ॥ १२ ॥ प्रेत बोले कि हे द्विजेन्द्र ! डर मतकरो तुम्हारे पहले के पितरलोग हम सब बड़े दुःखसे पीड़ित होकर तुम्हारे समीप आये हैं ॥१३॥ चन्द्रशर्मा बोले कि मेरे पितर आपलोगोंने यज्ञ, दान व तप कियाहै तो आप लोगों के प्रेत होनेमें क्या कारणहै यह मुझको विस्मयहै ॥१४॥ प्रेत बोले कि

तामहाः ॥ १० ॥ प्रेतरूपामहाकायाः क्षुत्क्षामातीवभीषणाः ॥ दृष्ट्वास्वप्नेमहारौद्रान्भीतोसौ च प्रकम्पितः ॥ ११ ॥ चन्द्रशर्मोवाच ॥ केयूयंविकृताकारा जन्तूनांचभयावहाः ॥ पृथ्वीसमुद्भवाजीवा न दृष्टा न श्रुतामया ॥१२॥ प्रेता ऊचुः॥ माभयंकुरुविप्रेन्द्र तवपूर्वपितामहाः ॥ आयातास्त्वत्समीपे तु महद्दुःखप्रपीडिताः ॥ १३ ॥ चन्द्रशर्मोवाच ॥ इष्टंदत्तं तपस्तप्तं भवद्भिर्मेपितामहैः ॥ प्रेतत्वेकारणंकिंस्याद्भवतांविस्मयोमम ॥ १४ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ शृणुपुत्रप्रवक्ष्यामि प्रेतयोनेस्तु कारणम् ॥ वासरंवासुदेवस्य सदाविद्धंकृतंपुरा॥१५॥ प्रेतत्वंतेनसम्प्राप्तमस्माभिःशृणुपुत्रक ॥ विशेषेणकृतंरात्रौ विद्धंजागरणंहरेः ॥ १६ ॥ पितरोनरकेघोरे पतिष्यन्ति न संशयः ॥ त्वयासह न सन्देहो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १७ ॥ यतस्त्वं च विशेषेण शिवभक्तिबलाश्रितः ॥ नकृताकेशवेभक्तिर्नकृतंवासरंहरेः ॥ १८ ॥ चन्द्रशर्मोवाच ॥ सन्तोषितो महादेवो भक्त्यात्रिपुरनाशनः ॥ प्रदास्यतिगतिंनूनं प्रेतत्वंनाशयिष्यति ॥ १९ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ हरिभक्तिविहीनानां द्वादशी

हे पुत्र ! प्रेतयोनि के कारणको मैं कहता हूं उसको सुनिये कि पुरातन समय मैंने सदैव वेधित हरिवासर द्वादशी तिथिका व्रत कियाहै ॥ १५ ॥ हे पुत्र ! सुनिये उसी से हमलोगोंको प्रेतता मिली है व वेधित विष्णुके वासर द्वादशी तिथिमें मैंने विशेषकर जागरण कियाहै ॥ १६ ॥ उससे तुम समेत पितर लोग निस्सन्देह भयंकरनरक में प्रलय पर्यन्त पड़ैंगे ॥ १७ ॥ क्योंकि तुम विशेषकर शिवभक्ति के बल के आश्रित हो और विष्णुजी में भक्ति नहीं कीगई व विष्णु का वासर द्वादशी व्रत नहीं किया गया ॥ १८ ॥ चन्द्रशर्मा बोला कि मैंने त्रिपुरविनाशक महादेवजी को भक्तिसे प्रसन्न किया है वे निश्चयकर गतिको देवैंगे व प्रेतत्वको नाश करैंगे ॥ १९ ॥ प्रेत बोले

कि विष्णुजीकी भक्ति से रहित व द्वादशी व्रतसे वर्जित पुरुषों की प्रेतता पूजेहुए शिवादिकों से नहीं नाश होती है ॥२०॥ हे पुत्र ! द्वादशी के वेधसे उपजेहुए प्रायश्चित्त के विना निश्चयकर पाप नहीं जाता है व प्रेतता नहीं जाती है ॥ २१ ॥ हे पुत्र ! शिवजीके पूजने पर भी केशवजी की पूजा के विना प्रायश्चित्त होताहै व गोवध पाप होता है ॥ २२ ॥ पहले विष्णुजी पूजने योग्य हैं पश्चात् शिवदेवजी पूजने योग्य हैं व जो अन्य देवता हैं वे भी बड़ी भक्ति से पूजनीय हैं ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! जड़ से बहुत सी शाखा व प्रशाखा होती है और यह चराचर संसार विष्णुजी से पैदा हुआ है ॥ २४ ॥ इस कारण जड़ को छोड़कर विद्वान् शाखाओं को न पूजै और त्रिलोक

व्रतवर्जिनाम् ॥ नाशं न यातिप्रेतत्वं पूजितैःशङ्करादिभिः ॥ २० ॥ प्रायश्चित्तंविनापुत्र द्वादशीवेधजंकृतम् ॥ पापघ्न ग च्छतेनूनं प्रेतत्वं नैव गच्छति ॥ २१ ॥ प्रायश्चित्तंसदापुत्र पूज्यमानेपिशङ्करे ॥ विनाकेशवपूजायाः पापंभवतिगोव धम् ॥ २२ ॥ प्रथमंकेशवःपूज्यः पश्चाद्देवोमहेश्वरः ॥ पूजनीयामहाभक्त्या येचान्येसन्तिदेवताः ॥ २३ ॥ मूला च्छाखाःप्रशाखाश्च भवन्तिबहुशःसुत ॥ वासुदेवात्समुद्भूतं जगदेतच्चराचरम् ॥ २४ ॥ तस्मान्मूलंपरित्यज्य शाखांनै वार्चयेद्बुधः ॥ विशेषेणजगन्नाथं त्रैलोक्याधिपतिंहरिम् ॥ २५ ॥ तद्दिनंये न कुर्वन्ति सम्यग्दैवज्ञशोधितम् ॥ निःशल्यं तेनसन्देहः प्रेतत्वंयान्तिपुत्रक ॥ २६ ॥ न पूजारक्षतेरौद्री भास्करी न पितामही ॥ प्रेतत्वंयेप्रकुर्वन्ति सशल्यंवासरं हरेः ॥ २७ ॥ पूर्णमासीद्वयेप्राप्ते याशैवतिथिवर्जिता ॥ विशेषेणसुवैशाखी शूद्रादीनांप्रशस्यते ॥ २८ ॥ वैशाखेतुतृती यायां वै पूर्वविद्धांकरोतियः ॥ हव्यंदेवा न गृह्णन्ति तथैव च पितामहाः ॥ २९ ॥ यत्रदेवा न गृह्णन्ति कथंतत्रपितामहाः ॥

के स्वामी विष्णु भगवान् को छोड़कर विशेषकर अन्य देवता को न पूजै ॥ २५ ॥ हे पुत्र! भलीभांति ज्योतिषी से शोधे हुए वेधरहित उन विष्णुजी के दिन द्वादशी व्रत को जो नहीं करते हैं वे निस्सन्देह प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ वेधसहित हरिवासर को जो मनुष्य करते हैं उनके प्रेतता की शिवपूजा व सूर्यनारायण की पूजा रक्षा नहीं करती है ॥ २७ ॥ और दो पौर्णमासी प्राप्त होने पर जो चतुर्दशी तिथि से रहित होवै वह वैशाखी विशेषकर शूद्रादिकों को उत्तम है ॥ २८ ॥ और वैशाख में जो मनुष्य पूर्वविद्धा तीज को करता है उसकी हव्य को देवता व पितर नहीं ग्रहण करते हैं ॥ २९ ॥ जिसमें देवता हव्य को नहीं ग्रहण करते हैं

उसमें पितामह कैसे ग्रहण करेंगे इस कारण विद्वानों को पूर्वविद्धा तृतीया न करना चाहिये ॥ ३० ॥ व हे पुत्र ! यदि मोह से मनुष्य उसको करता है तो सदैव प्रेतता होती है और वह बहुत तीर्थ सेवन करने से भी नहीं जाती है ॥ ३१ ॥ और पूर्वविद्धा द्वादशी व पौर्णमासी और माता, पिता के सांवत्सर दिनको करता हुआ मनुष्य नरक को जाता है ॥ ३२ ॥ और फिर क्षयाह में तत्कालव्यापिनी तिथि कहीगई है उसी में श्राद्ध करना चाहिये ह्रास व वृद्धि का कारण नहीं है ॥ ३३ ॥ और अमावस व पौर्णमासी साग्निक पुरुषों से पूर्वसंयुत करने योग्य है व अग्निहीन पुरुषों से नहीं करने योग्य है ऐसा मनु प्रजापति ने कहा है ॥ ३४ ॥

तस्मात्तृतीयाकार्या न पूर्वविद्धाबुधैरपि ॥ ३० ॥ कुरुतेयदिमोहाद्वा प्रेतत्वंशाश्वतंसुत ॥ नोपयातिकृतैःपुण्यैर्बहुभिस्तीर्थसेवितैः ॥ ३१ ॥ द्वादशीपूर्णमासी च पित्रोःसांवत्सरंदिनम् ॥ पूर्वविद्धंप्रकुर्वाणो नरकंप्रतिपद्यते ॥ ३२ ॥ क्षयाहे तु पुनःप्रोक्ता तत्कालव्यापिनीतिथिः ॥ श्राद्धंतत्रप्रकर्तव्यं ह्रासवृद्धेरकारणम् ॥ ३३ ॥ दर्शश्च पौर्णमासी च साग्निकैः पूर्वसंयुता ॥ कर्त्तव्यानाग्निहीनैस्तु मनुराहप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ एतैःप्रकारैःप्रेतत्वं भवतिप्राणिनांभुवि ॥ निरीक्ष्य धर्मशास्त्राणि कार्या वै विहितात्मना ॥ ३५ ॥ यथोक्तंमनुनापुत्र वेदान्तैर्भाष्यकारकैः ॥ तत्प्रमाणंप्रकर्तव्यं प्रेतत्वमन्यथाभवेत् ॥ ३६ ॥ प्रणम्यसोमनाथन्तु यात्रांकृत्वा न गच्छति ॥ कृष्णस्यदर्शनार्थाय तस्यकिंलभतेफलम् ॥ ३७ ॥ कथ्यतेपरमामूर्तिर्हरेरीश्वरसंज्ञिता ॥ विभेदोनात्रकर्तव्यो नान्तरंदृश्यतेकचित् ॥ ३८ ॥ यात्राश्रीरामनाथस्य प्रपूर्णाकृष्णदर्शनात् ॥ तस्मादुभयतःपुत्र गन्तव्यंनात्रसंशयः ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं गन्तव्यंद्वारकांपुरीम् ॥

इन भेदों से पृथ्वी में प्राणियों को प्रेतता होती है इस से धर्मशास्त्रों को देखकर बुद्धिमान् मनुष्य को करना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे पुत्र ! जैसा मनु ने व भाष्यकारक तथा वेदान्तों से कहा गया है उसका प्रमाण करना चाहिये अन्यथा प्रेतता होती है ॥ ३६ ॥ जो यात्रा करके सोमनाथजी को प्रणामकर श्रीकृष्णजी के दर्शन के लिये नहीं जाता है उसको क्या फल मिलता है ॥ ३७ ॥ विष्णुजी की शिवसंज्ञक उत्तम मूर्त्ति कही जाती है इसमें भेद न करना चाहिये और कुछ अन्तर नहीं देखपड़ता है ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णजी के दर्शन से रामनाथ की यात्रा पूर्णहोती है उस कारण हे पुत्र ! दोनों ठिकाने जाना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ और सोमेश्वर देवजी

को देखकर द्वारकापुरी को जाना चाहिये प्रभासक्षेत्र में सोमनाथजी का लिंग बीच में स्थित है ॥ ४० ॥ व आपही विष्णुजी टिके हैं व भाग को ग्रहण करते हैं जो मनुष्य सोमेश्वर देवजी को देखकर द्वारका को नहीं जाता है ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! पितरों समेत वह भयंकर नरक में गिरता है व हे वत्स ! तुम ने विशेष कर द्वादशीव्रत नहीं किया है ॥ ४२ ॥ और जो हमलोगों ने व्रत किया है उसको वेधसंयुत किया है इस कारण हमलोगों का यमलोक से निकलना नहीं देख पड़ता है ॥ ४३ ॥ चन्द्रशर्मा बोले कि हे तात ! यदि मैंने अज्ञान से द्वादशीव्रत नहीं किया तो आपलोगों ने क्यों वेध समेत द्वादशीव्रत को किया ॥ ४४ ॥

प्रभासेसोमनाथस्य लिङ्गंमध्येऽव्यवस्थितम् ॥ ४० ॥ स्वयंतिष्ठतिपुण्यात्मा भागंगृह्णातिकेशवः ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं द्वारकांनैव गच्छति ॥ ४१ ॥ पतेत्सनरकेघोरे पितृभिस्सहितोनृप ॥ विशेषेणत्वयावत्स नकृतंद्वादशीव्रतम् ॥ ४२ ॥ व्रतंकृतंयदस्माभिस्तत्कृतंवेधसंयुतम् ॥ निर्गमोयमलोकाच्च तदस्माकंनदृश्यते ॥ ४३ ॥ चन्द्रशर्मोवाच ॥ यदि तातमयाज्ञानान्न कृतंद्वादशीव्रतम् ॥ कस्मात्कृतंसशल्यं च भवद्भिर्द्वादशीव्रतम् ॥ ४४ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ कुविप्रैस्तु कुदैवज्ञैर्विष्णुमायाविमोहितैः ॥ सशल्यव्रतकर्तारो प्रेतयोनिमिमाङ्गताः ॥ ४५ ॥ दत्तंतप्तंहुतंजप्तमस्माकंविफलंकृतम् ॥ सम्प्राप्ताःप्रेतयोनिं तु सशल्याद्द्वादशीव्रतात् ॥ ४६ ॥ सविद्धंयेप्रकुर्वन्ति वासरंकेशवप्रियम् ॥ तेषांपितामहाःसर्वे प्रेतत्वंयान्तिपुत्रक ॥ ४७ ॥ मागयांमाप्रयागन्तु पुष्करेकुरुजाङ्गले ॥ नाम्बाहके च नावन्त्यां मथुरायां न चार्बुदे ॥ ४८ ॥ न चान्यतीर्थलक्षे तु वर्जयित्वा तु गोमतीम् ॥ गङ्गासारस्वतंनीरं नार्बुदं नैव पुत्रक ॥ ४९ ॥ प्रेतत्वंनाशमायाति त्वत्पि

प्रेत बोले कि विष्णुजी की माया से मोहित निन्दित ब्राह्मणों व निन्दित ज्योतिषियों से वेध समेत व्रत के करनेवाले हमलोग इस प्रेतयोनि को प्राप्त हुए हैं ॥ ४५ ॥ हमलोगों का कियाहुआ तप, हवन और जप निष्फल करदिया गया और वेध समेत द्वादशीव्रत से प्रेतयोनि को प्राप्त हुए हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य वेधसंयुत विष्णुप्रिय दिन को करते हैं हे पुत्र ! उनके सब पितरलोग प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ गया को मत जावो व प्रयाग को मत जावो और पुष्कर व कुरुजांगल तीर्थ में मत जावो और न अम्बाहक, न अवन्ती, न मथुरा और न अर्बुदतीर्थ में जावो ॥ ४८ ॥ क्योंकि हे पुत्र ! गोमती व गंगासागर के जल को छोड़कर अन्य लाखों

तीर्थों में और अर्बुदतीर्थ में भी कलियुग में तुम्हारे पितरों की प्रेतता नाश न होगी और प्रेतत्व से रहित मनुष्यों को गोमतीजल के दान से ॥ ४६ ।५०॥ व विना पिंड-
दान से सनातनी मुक्ति होती है हे पुत्र ! श्रीकृष्णजी का मुख देखनेपर दशमी के वेध से उपजा हुआ ॥ ५१ ॥ पाप नाश होजाता है यदि फिर न करै गोमती के जल के
स्पर्श से व श्रीकृष्ण का मुख देखने से ॥ ५२ ॥ करोड़ों सौ जन्मों के भी पाप नाश को प्राप्त होते हैं संन्यासियो व वनवासियों का पुण्य वृथा है ॥ ५३ ॥ यदि हे पुत्र ! शुद्ध
नामक विष्णु का दिन द्वादशीव्रत किया जावै इस कारण पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशमान श्रीकृष्णजी के मुख को देखो ॥ ५४ ॥ क्योंकि श्रीकृष्णजी की द्वारकापुरी को

तृणांकलौयुगे ॥ प्रेतत्ववर्जितानान्तु गोमतीनीरदानतः ॥ ५० ॥ विनापिण्डप्रदानाद्वा मुक्तिर्भवतिशाश्वती ॥ दृष्टेकृ
ष्णमुखेपुत्र दशमीवेधसम्भवम् ॥ ५१ ॥ पापंप्रणाशमभ्येति पुनर्न कुरुते यदि ॥ गोमतीनीरसंपर्कात् कृष्णवक्त्राव
लोकनात् ॥ ५२ ॥ विलययान्तिपापानि जन्मकोटिशतान्यपि ॥ वृथासंन्यासिनांपुण्यं वृथा च वनवासिनाम् ॥ ५३ ॥
शुद्धाख्यंवासरंविष्णोः क्रियतेयदिपुत्रक ॥ तस्मात्कृष्णमुखंपश्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ ५४ ॥ कृष्णस्यद्वारकांगत्वा
ह्यस्माकं च गतिर्भवेत् ॥ विफलंतवसंजातं सुकृतंयदुपार्जितम् ॥ ५५ ॥ न कृतंवासरंविष्णोर्न कृतंकेशवार्चनम् ॥ यत्त्व
यासर्वतीर्थेषु गत्वापुण्यमुपार्जितम् ॥ ५६ ॥ तत्सर्वमफलंजातं विनाकेशववासरात् ॥ विनाकेशवपूजायाः शङ्करोय
त्त्वयार्चितः ॥ ५७ ॥ तत्पुण्यंविफलंजातं प्रेतयोनिंगमिष्यसि ॥ सम्पूर्णंतवपुण्यन्तु द्वारकांकृष्णदर्शनात् ॥ ५८ ॥ भ
विष्यति न सन्देहो गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं कृष्णंयदि न पश्यति ॥ ५९ ॥ यात्राफलं न चाप्नोति वदत्ये

जाकर हम सबों की गति होगी जो पुण्य इकट्ठा कियागया था तुम्हारा वह सब विफल होगया ॥ ५५ ॥ क्योंकि विष्णु का दिन (द्वादशीव्रत) नहीं कियागया व
विष्णुपूजन नहीं कियागया है सब तीर्थों में जाकर तुमने जो पुण्य इकट्ठा किया ॥ ५६ ॥ बिन विष्णुजी के दिन के वह सब निष्फल होगया और बिन विष्णु की
पूजा के तुमने जो शिवजी को पूजा है ॥ ५७ ॥ वह पुण्य विफल होगया और प्रेतयोनि को जावोगे और द्वारका में गोमती व समुद्र के संगम में श्रीकृष्णजी के दर्शन
से तुम्हारा पुण्य संपूर्ण होगा इस में सन्देह नहीं है यदि सोमेश्वर देवजी को देखकर जो श्रीकृष्णजी को नहीं देखता है ॥ ५८।५९ ॥ वह यात्रा के फल को नहीं पाता

है ऐसा आपही शिवजी कहते हैं कि जिन्हों ने श्रीकृष्णजी को देखा है उन्हों ने निस्सन्देह मुझको देखा है ॥ ६० ॥ और जो श्रीकृष्णजी को देखकर मुझको देखै तो यात्रा बहुतही फलवती होती है व कृष्णजी के दर्शन से पवित्र चित्तवाला जो मनुष्य मुझको देखता है ॥ ६१ ॥ उसकी ब्रह्मलोक व विष्णुलोक से पुनरावृत्ति नहीं होती है पुरातनसमय आपही देवदेवेश सोमेश शिवजी ने यह कहा है ॥ ६२ ॥ व हे सुत ! पुष्करक्षेत्र में ऐसा कहतेहुए ब्राह्मणों से हम सबों ने सुना है और पापों के नाश के लिये जो श्रीकृष्णजी का दर्शन करता है ॥ ६३ ॥ वह दश हज़ार जन्मों में कियेहुए पातकों से छूटजाता है और देवकीसुत श्रीकृष्ण देवदेवेश के पूजने

वंस्वयंशिवः ॥ दृष्टोहन्तैर्नसन्देहो यैःकृतंकृष्णदर्शनम् ॥ ६० ॥ दृष्ट्वाकृष्णन्तुमांपश्येद्यात्रातीवमहाफला ॥ कृष्णदर्शनपूतात्मा योमांपश्यतिमानवः ॥ ६१ ॥ न तस्यपुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकाच्च वैष्णवात् ॥ इत्याहदेवदेवेशः स्वयंसोमपतिःपुरा ॥ ६२ ॥ विप्राणांश्रुतमस्माभिर्वदतांपुष्करेसुत ॥ यश्च पापप्रणाशार्थं कुरुतेकृष्णदर्शनम् ॥ ६३ ॥ मुच्यतेनात्र सन्देहो पापैर्जन्मायुतैःकृतैः ॥ पूजितेदेवदेवेशे कृष्णेदेवकिनन्दने ॥ ६४ ॥ पूजिताश्चैव कुर्वन्ति पुष्टिंपुत्रापितामहाः ॥ ततोद्वारवतींगत्वा कुरुकृष्णस्यदर्शनम् ॥ ६५ ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ता यास्यामःपरमांगतिम् ॥ गोमतीनीरधौतानि यस्याङ्गानिकलौयुगे ॥ ६६ ॥ न पुनर्योनिमाप्नोति दृष्टंमुनिभिरेवतत् ॥ ताडिताःपादयुग्मेन गोमतीनीरविप्रुषः ॥ ६७ ॥ अगतीनांप्रकुर्वन्ति सुगतिंब्रह्मवासरम् ॥ यःपुनःकुरुतेश्राद्धं गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ६८ ॥ पितृणांजायतेतृप्तिर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ सागरे च गयायां च सर्वतीर्थेषुयत्फलम् ॥ ६९ ॥ वासरेकेनतत्पुण्यं द्वारकांकृष्णसन्निधौ ॥ यत्फलंत्रिदशे

पर ॥ ६४ ॥ हे पुत्र ! पूजेहुए पितरलोग पुष्टि करते हैं इस कारण द्वारकापुरी को जाकर श्रीकृष्णजी का दर्शन करो ॥ ६५ ॥ तो प्रेतयोनि से छूटेहुए हमलोग उत्तम गति को प्राप्त होवेंगे कलियुग में जिसके अंग गोमतीजी के जल से धोयेगये हैं ॥ ६६ ॥ वह फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है उसको मुनियों ने देखा है और दोनों चरणों से ताड़ित गोमतीजी के जलबिन्दु ॥ ६७ ॥ अगति मनुष्यों की ब्रह्मदिन तक सुगति करते हैं और जो फिर गोमती व समुद्र के संगम के समीप श्राद्ध करता है ॥ ६८ ॥ उसके पितरों की कल्पपर्यन्त तृप्ति होती है और समुद्र व गया तथा सब तीर्थों में जो फल होता है ॥ ६९ ॥ वह पुण्य द्वारका में श्रीकृष्णजी के समीप एक दिन में होता है

सर्वतीर्थों में उपजेहुए देवताओं के देखने से जो फल होता है ॥ ७० ॥ वह सब पुण्य द्वारका में प्रतिदिन मिलता है करोड़ों हज़ार तीर्थों में श्राद्ध करने से जो फल होता है ॥ ७१ ॥ गोमतीजी के जल से तर्पण करने से वह फल पितरों को कहागया है और जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के समीप संन्यासियों को भोजन देता है ॥ ७२ ॥ उसके पितरों की युगपर्यन्त तृप्ति होती है और कौपीनाच्छादन, छत्र, खड़ाऊं व कमंडलु को ॥ ७३ ॥ संन्यासियों को देकर मनुष्य सात कल्पोंतक उन विष्णुजी के स्थान को जाते हैं वे मनुष्य धन्य हैं जोकि चांडाल आदिक ॥ ७४ ॥ द्वारकापुरी में गति को प्राप्त होते हैं जहां कि योगीलोग बसते हैं और जो मनुष्य नित्य श्रीकृष्णजी के मुख को

दृष्टैः सर्वतीर्थसमुद्भवैः ॥ ७० ॥ तत्फलंलभ्यतेसर्वं द्वारकायांदिनेदिने ॥ तीर्थकोटिसहस्रैस्तु कृतैःश्राद्धैस्तु यत्फलम् ॥ ७१ ॥ पितॄणांतत्फलंप्रोक्तं गोमतीनीरतर्पणात् ॥ यतीनांभोजनेयस्तु यच्छतेकृष्णसन्निधौ ॥ ७२ ॥ तस्यचैव भवेत्प्रीतिः पितॄणांयुगसंज्ञिका ॥ कौपीनाच्छादनंछत्रं पादुकां च कमण्डलुम् ॥ ७३ ॥ दत्त्वासंन्यासिनांयान्ति सप्त कल्पानितत्पदम् ॥ धन्यास्तेमानवाःपुत्र वसन्तिश्वपचादयः ॥ ७४ ॥ द्वारकायांगतिंयान्ति वसन्ते यत्र योगिनः ॥ त्रिकालंयेप्रपश्यन्ति मुखंकृष्णस्यनित्यशः ॥ ७५ ॥ न तेषांपुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ यानारीविधवाभूत्वा कुरुते द्वारकाश्रयम् ॥७६॥ कलौयुगसहस्रञ्च सायातिपरमंपदम् ॥ पुत्रेणापीहकिंकार्यं न गतोद्वारकांपुरीम् ॥७७॥ नारीपुत्रशताच्चैका धन्याकृष्णपुरींवसेत् ॥ कृष्णंकृष्णपुरींगत्वा योर्चयेत्तुलसीदलैः ॥ ७८ ॥ प्राप्तंजन्मफलंतेन तारिताःप्रपितामहाः॥ तुलसीदलमालान्तु कृष्णोत्तीर्णान्तुयोवहेत् ॥७९॥ पत्रेपत्रेश्वमेधानां दशानांलभतेफलम् ॥ तुलसीकाष्ठस

त्रिकाल देखते हैं ॥ ७५ ॥ उनकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है और विधवा होकर जो स्त्री कलियुग में द्वारकानिवास करती है वह हज़ार युगों तक उत्तम पद को प्राप्त होती है व जो द्वारकापुरी को नहीं गया है उसको इस संसारमें पुत्र से भी क्या कार्य है ॥ ७६ । ७७ ॥ जो स्त्री श्रीकृष्णजी की द्वारकापुरी में बसती है वह एक स्त्री सौ पुत्रों से भी धन्य है व श्रीकृष्णजी की द्वारकापुरी को जाकर जो श्रीकृष्णजी को तुलसीदलों से पूजता है ॥ ७८ ॥ उसने जन्म का फल पाया व पितरों को तारदिया और जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के ऊपर से उतारीहुई तुलसीदल की मालाको धारण करता है ॥ ७९ ॥ वह प्रत्येक पत्ते में दश अश्वमेधयज्ञों के फलको पाता

है और तुलसीजीके काठ से उपजाहुआ बहुत भूषण जिसके मस्तक में होता है उसके शरीर में विष्णुजी सदैव स्थित रहते हैं और तुलसी के काठ की मालासे भूषित जो मनुष्य पुण्य करता है ॥ ८० । ८१ ॥ कलियुग में उसने पितरों व देवताओं का कोटिगुना कर्म किया और तुलसी के काठ की माला को देखकर यमराज के दूत दूरही से भगजाते हैं जैसे कि पवन से उड़ायाहुआ पत्ता भगजाता है और जिसके घर में तुलसी का काठ होता है व सूखा या हरा तुलसी का पत्ता होता है ॥ ८२ । ८३ ॥ उसके घर में किसी कारण से पाप का संक्रमण नहीं होता है ब्रह्मवादियों से कहेहुए पुराण को हमलोगों ने सुना है ॥ ८४ ॥ इस कारण तुलसी के काठ की

म्भूतं मस्तकेबहुभूषणम् ॥ ८० ॥ भवतेयस्यमर्त्यस्य तद्देहस्थःसदाहरिः ॥ तुलसीकाष्ठमालाया भूषितःपुण्यमाचरेत् ॥ ८१ ॥ पितॄणांदेवतानां च कृतंकोटिगुणंकलौ ॥ तुलसीकाष्ठमालान्तु यमराजस्यदूतकाः ॥ ८२ ॥ दृष्ट्वानश्यन्तिदूरेण वातोद्धूतंयथादलम् ॥ यद्गृहेतुलसीकाष्ठं पत्रंशुष्कमथार्द्रकम् ॥ ८३ ॥ भवतेतद्गृहे नैव पापसंक्रमणंकुतः ॥ श्रुतंपुराणमस्माभिः कथितंब्रह्मवादिभिः ॥ ८४ ॥ तस्मान्मालात्वयाधार्या तुलसीकाष्ठसम्भवा ॥ हरते नात्र सन्देहो ह्यैहिकामुष्मिकंभयम् ॥ ८५ ॥ भवतेयस्यहृदये भक्तिःकृष्णेसुनिश्चला ॥ तुलसीकाष्ठमालाया भूषितोभ्रमतोयदि ॥ ८६ ॥ दुःस्वप्नंदुर्निमित्तं च नभयंशात्रवंक्वचित् ॥ कृत्वा वै तीर्थसंन्यासं यतिर्वैश्योथवा स्त्रियः ॥ ८७ ॥ जीवन्मुक्तःकलौज्ञेयः कुलकोटिसमन्वितः ॥ धारयन्तिजनामालां न तु येपापमोहिताः ॥ ८८ ॥ नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाःपापाग्निना हि ते ॥ उन्मीलिनी च शयनी त्रिःस्पृशापक्षवर्द्धिनी ॥ ८९ ॥ त्वयापुत्रप्रकर्त्तव्या जयन्तीविजयाजया ॥ पा

माला तुमको धारण करना चाहिये जिसके हृदय में श्रीकृष्णजी में अचल भक्ति होती है वह इस लोक व परलोक के भय को हरती है इसमें सन्देह नहीं है और तुलसी के काठ की माला से भूषित यदि मनुष्य भ्रमता है ॥ ८५ । ८६ ॥ तो दुःस्वप्न, दुःशकुन और शत्रुवों का भय कहीं नहीं होता है तीर्थसंन्यास करके स्त्री, संन्यासी व वैश्य भी ॥ ८७ ॥ कलियुग में करोड़ पुश्तियों से संयुत जीवन्मुक्त जानने योग्य है और पाप से मोहित जो मनुष्य तुलसी की माला को नहीं धारण करते हैं ॥ ८८ ॥ पाप की अग्नि से जलेहुए वे नरक से नहीं निवृत्त होते हैं बोधिनी, शयनी, त्रिःस्पृशा व पक्षवर्द्धिनी एकादशी ॥ ८९ ॥ करना चाहिये व हे पुत्र ! जयन्ती, विजया और

जयानामक कृष्णजी को बहुतही प्यारी व पापनाशिनी अष्टमी तुमको करना चाहिये॥ ६० ॥ हे पुत्र ! कलियुग में द्वारका पुत्रदायिनी कीगई है ॥ १६१ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायात्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥

दो० । तास्यो निजपितरन यथा चन्द्रशर्म द्विजनाथ । चौबिसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! प्रेतरूपी पितरों के वचन को सुन कर द्विजोत्तम चन्द्रशर्मा द्वारकापुरी को आया ॥ १ ॥ जहां प्रतिदिन रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी स्थित रहते हैं व जहां तीर्थ स्थित हैं वहां चन्द्रशर्मा द्विजोत्तम गया ॥ २ ॥

पष्ठी चाष्टमीप्रोक्ता कृष्णस्यातीववल्लभा ॥ ६० ॥ कृताकलौयुगेपुत्र द्वारकापुत्रदायिनी ॥ १६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे द्वारकामाहात्म्येत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ पितॄणांप्रेतरूपाणां श्रुत्वावाक्यंमहीपते ॥ चन्द्रशर्माद्विजश्रेष्ठो द्वारकांसमुपागतः ॥ १ ॥ रुक्मिणीसहितःकृष्णो यत्रतिष्ठतिप्रत्यहम् ॥ यत्र तिष्ठन्तितीर्थानि तत्र यातोद्विजोत्तमः ॥ २ ॥ यत्र तिष्ठन्तियज्ञाश्च यत्र तिष्ठन्तिदेवताः ॥ यत्र तिष्ठन्तिऋषयो मुनयोयोगवित्तमाः ॥ ३ ॥ यापुरीसिद्धगन्धर्वैः सेव्यतेकिन्नरैःसदा ॥ अप्सरोगणगन्धर्वैर्द्वारकासर्वकामदा ॥ ४ ॥ स्वर्गारोहणनिःश्रेणी वहते यत्र गोमती ॥ सापुरीमोक्षदानॄणां दृष्टाविप्रवरेणहि ॥ ५ ॥ यस्याःसीमाप्रविष्टस्य ब्रह्महत्यादिपातकाः ॥ नश्यन्तिदर्शनादेव तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ६ ॥ गोमतीसहितोनित्यं क्रीडते यत्र सागरः ॥ चन्द्रशर्मागतस्तत्र कृष्णस्तिष्ठति यत्र वै ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाद्वारावतींपुण्यां मुदंप्राप्तोद्विजोत्तमः ॥

और जहां यज्ञ टिकते हैं व जहां देवता स्थित होते हैं व योग के जाननेवालों में श्रेष्ठ ऋषि व मुनिलोग जहां स्थित रहते हैं ॥ ३ ॥ व जिस पुरी को सदैव सिद्ध, गंधर्व व किन्नर सेवते हैं व जिसको अप्सराओं के गण तथा गंधर्व सेवन करते हैं वह द्वारकापुरी सब मनोरथों को देनेवाली है ॥ ४ ॥ और जहां गोमती बहती है वह स्वर्ग को चढ़ने की सीढ़ी है मनुष्यों को मोक्ष देनेवाली उस पुरी को द्विजोत्तम चन्द्रशर्मा ने देखा ॥ ५ ॥ और जिसकी हद में पैठेहुए पुरुष के ब्रह्महत्यादिक पाप दर्शनही से नाश होजाते हैं उस पुरी को कौन नहीं सेवता है ॥ ६ ॥ जहा गोमती समेत समुद्र सदैव क्रीड़ा करता है वहां चन्द्रशर्मा गया जहां कि श्रीकृष्णजी टिकेरहते हैं ॥ ७ ॥ और पवित्र

द्वारकापुरी को देखकर द्विजोत्तम चन्द्रशर्मा आनन्द को प्राप्तहुआ और श्रीकृष्णजी की पुरी द्वारका, गोमती और समुद्र को प्रणामकर ॥ ८ ॥ उस ब्राह्मण ने अपना को और जीवन, यौवन व धन को कृतार्थ माना कि श्रीकृष्णजी की सुन्दरीपुरी व कमल के समान मुख को देखकर ॥ ९ ॥ पृथ्वी में मैं धन्य व कृतार्थ और भाग्यवान् हूं मैंने श्रीकृष्णजी के पवित्र मुख को व रुक्मिणी और द्वारकापुरी को देखा ॥ १० ॥ तो करोड़ों हज़ार तीर्थों के सेवन से क्या प्रयोजन है मैंने लाखों व हज़ारों पुण्यों से द्वारकापुरी को पाया ॥ ११ ॥ और वैशाख में करोड़ों पापोंको नाश करनेवाली शुक्लपक्ष की त्रिस्पृशा नामक मधुसूदनी द्वादशी को मैंने पाया ॥ १२ ॥

नत्वाकृष्णपुरीं चैव गोमतीं चैव सागरम् ॥ ८ ॥ मेनेकृतार्थमात्मानं जीवितंयौवनंधनम् ॥ दृष्ट्वाकृष्णपुरींरम्यां कृष्णस्यमुखपङ्कजम् ॥ ९ ॥ धन्योहंकृतकृत्योस्मि सभाग्योहंधरातले ॥ दृष्टंकृष्णमुखंपुण्यं रुक्मिणीद्वारकापुरी ॥ १० ॥ तीर्थकोटिसहस्रैस्तु सेवितैःकिंप्रयोजनम् ॥ पुण्यलक्षसहस्रैस्तु प्राप्ताद्वारावतीमया ॥ ११ ॥ शुक्लावैशाखमासे तु सम्प्राप्तामधुसूदनी ॥ द्वादशीत्रिस्पृशानाम पापकोटिक्षयावहा ॥ १२ ॥ धन्याःसर्वेमनुष्यास्ते वैशाखेमधुसूदनी ॥ सम्प्राप्तात्रिस्पृशायैस्तु बुधवारेणसंयुता ॥ १३ ॥ न यज्ञैर्दानलक्षैस्तु न वेदैस्तीर्थसेवनैः ॥ प्राप्यतेतत्फलं नैव यादृशोद्वारकांनृणाम् ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वाद्विजश्रेष्ठो गोमतीतटमाश्रितः ॥ अपःस्पृश्ययथान्यायं शास्त्रदृष्टेनकर्मणा ॥ १५ ॥ कृत्वास्नानंयथोक्तन्तु सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ चक्रतीर्थंसमासाद्य शिलाश्चक्राङ्किताःशुभाः ॥ १६ ॥ पूजिताःपुरुषसूक्तैर्यथोक्तविधिनाहरेः ॥ शिवपूजाकृतापश्चात्पितृवाक्यमनुस्मरन् ॥ १७ ॥ दत्त्वापिण्डोदकंसम्यक् पितृणांविधिपूर्वकम् ॥

और वे सब मनुष्य धन्य हैं कि जिन्हों ने वैशाख में बुधवार से संयुत त्रिस्पृशानामक मधुसूदनी-द्वादशी को पाया है ॥ १३ ॥ मनुष्यों को द्वारका में जैसा फल मिलताहै वह यज्ञों से और लाखों दानों व वेदों व तीर्थसेवनों से नहीं मिलता है ॥ १४ ॥ ऐसा कहकर द्विजोत्तम चन्द्रशर्मा गोमती के किनारे आश्रित हुआ और विधिपूर्वक शास्त्र में देखेहुए कर्म से जल को स्पर्श कर ॥ १५ ॥ यथोक्त स्नानकर पितरों व देवताओं को भलीभाति तर्पणकर चक्रतीर्थ को जाकर चक्र से चिह्नित उत्तम शिला ॥ १६ ॥ यथोक्त विधि से विष्णुजी के पुरुषसूक्तों से पूजेगये और पश्चात् शिवजीका पूजन किया गया और पितरों का वचन स्मरण करते हुए उसने ॥ १७ ॥ भलीभाति विधि-

पूर्वक पितरों को पिंड व जल को देकर हे राजन् ! विधि से श्रीकृष्णजी को दुग्धादि स्नान कराकर ॥ १८ ॥ लेपन, वस्त्र, पूजन व धूप समेत दीप को देकर नवान्न, कन्द, मूल व फलों की नैवेद्य दिया ॥ १९ ॥ और तांबूल को देकर कपूर समेत नीराजनादिक कर वार २ स्तुतिपूर्वक प्रदक्षिणा व नमस्कार किया ॥ २० ॥ फिर देवेश विष्णुजी से क्षमापन कराकर जागरण किया और तीन पहर बीतने पर चन्द्रशर्मा ने कहा ॥ २१ ॥ कि हे कृष्णजी ! मुझ आतुर व दीन के वचन को सुनिये क्योंकि संसाररूपी समुद्र में मग्न पुरुषों के एक तुम्हीं रक्षक हो ॥ २२ ॥ और तुम्हारे चरणकमलों में स्नेह करनेवाले पापियों को भी दुःख नहीं होता है फिर

कृत्वाकृष्णस्यविधिना क्षीरादिस्नपनंनृप ॥ १८ ॥ विलेपनं च वस्त्राणि पूजांदीपंसधूपकम् ॥ नैवेद्यानिनवान्नानि कन्दमूलफलानि च ॥ १९ ॥ ताम्बूलञ्च सकर्पूरं कृत्वानीराजनादिकम् ॥ प्रदक्षिणानमस्कारं स्तुतिपूर्वंपुनःपुनः ॥ २० ॥ क्षमापयित्वादेवेशं चक्रेजागरणंपुनः ॥ यामत्रयेऽव्यतीते तु चन्द्रशर्माप्युवाच ह ॥ २१ ॥ आतुरस्य च दीनस्य शृणुकृष्णवचोमम ॥ संसारार्णवमग्नानां त्वमेकःशरणंनृणाम् ॥ २२ ॥ त्वत्पादाम्बुजरक्तानां न दुःखंपापिनामपि ॥ किंपुनःपापहीनानां द्वादशीसेविनांनृणाम् ॥ २३ ॥ दशमीवेधजंपापं तद्दिनेममपूर्वजैः ॥ यत्कृतंनाशमायाति त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ २४ ॥ संविद्धंतद्दिनंकृष्ण यत्कृतंजागरंप्रभो ॥ तत्पापंविलयंयाति लवणन्तु यथाम्भसि ॥ २५ ॥ संविद्धंवासरंयस्मात्कृतंममपितामहैः ॥ प्रेतत्वंतेनसम्प्राप्तं महादुःखप्रदायकम् ॥ २६ ॥ यथाप्रेतत्वनिर्मुक्ता ममपूर्वपितामहाः ॥ मुक्तिंप्रयान्तिदेवेश तथाकुरुजगत्पते ॥ २७ ॥ पुनरेवयदुश्रेष्ठ प्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ अविद्यामोहितेनापि न कृतंतवपूज

पाप से रहित द्वादशी को सेवनेवाले पुरुषों को क्या कहना है ॥ २३ ॥ और मेरे पितरों ने दशमीवेध से उपजेहुए जिस पाप को उस दिन किया हो हे जनार्दनजी ! वह तुम्हारी प्रसन्नता से नाश होजावै ॥ २४ ॥ हे प्रभो, श्रीकृष्णजी ! उस वेधित दिन में मेरे पितामहों ने जो पाप किया है वह पाप वैसेही नाशहोजावै जैसे कि जल में नमक नाश होजाता है ॥ २५ ॥ जिसलिये मेरे पितामहों ने वेधित दिन किया है उसी से महादुःखों को देनेवाला प्रेतत्व मिला है ॥ २६ ॥ हे देवेश ! जिस प्रकार प्रेतता से छूटेहुए मेरे पहले के पितामह लोग मुक्ति को प्राप्त होवैं हे जगदीशजी ! वैसाही कीजिये ॥ २७ ॥ हे यदूत्तम ! फिर भी तुम प्रसन्नता करने के योग्य हो

क्योंकि हे देवेश ! अज्ञान से मोहित मुझ पापी ने तुम्हारा पूजन नहीं किया बरन शिवभक्ति का आश्रय किया और तुम्हारी भक्ति नहीं किया व तुम्हारा वासर याने द्वादशीव्रत नहीं किया ॥ २८। २९॥ हे कृष्णजी ! मैंने द्वारकापुरी को नहीं देखा व गोमती में नहीं नहाया है व मोक्ष को देनेवाले तुम्हारे चरणकमल को नहीं देखा ॥ ३० ॥ व सोमेश्वर स्वामीजी को देखकर द्वारका की यात्रा नहीं किया और मैंने जो इकट्ठा किया है वह कियाहुआ विफल होगया ॥ ३१ ॥ व हे सुरेश्वर ! मेरे पूर्वज पितरों ने जो इस सब को किया है हे सुरेश्वर ! तुम्हारी प्रसन्नता से वह पुण्य वृथा मत होवै ॥ ३२ ॥ हे देवकीपुत्र ! तुम्हारा मुख देखनेपर त्रिलोक में कुछ

नम् ॥ २८॥ मयापापेनदेवेश शिवभक्तिःसमाश्रिता॥ तवभक्तिःकृता नैव न कृतंतववासरम् ॥ २९॥ न दृष्टाद्वारकाकृष्ण न स्नातागोमतीमया ॥ न दृष्टंपादपद्मञ्च त्वदीयंमोक्षदायकम् ॥ ३० ॥ न कृताद्वारकायात्रा दृष्ट्वासोमेश्वरंप्रभुम्॥ विफलंतत्कृतंयातं यन्मयासमुपार्जितम् ॥ ३१ ॥ मत्पूर्वजैःकृतंयच्च सर्वमेतत्सुरेश्वर ॥ तत्पुण्यंमावृथायातु प्रसादात्त वकेशव ॥ ३२ ॥ दृष्टे तु तववक्त्रे तु दुर्लभंभुवनत्रये ॥ नैवास्तिदेवकीपुत्र पुराणेषुश्रुतंमया ॥ ३३ ॥ सापराधास्तु येकेचि-च्छिशुपालादयःस्मृताः ॥ त्वत्करेणाहताःकोपान्मुक्तिंप्राप्तामहीधराः ॥ ३४ ॥ अद्यप्रभृतिकर्तव्यं प्रत्यहंपूजनंतव॥ प लार्द्धेनापि विद्धंस्यात्त्यक्तव्यंवासरंतव ॥ ३५ ॥ त्वत्प्रियासौमयाकार्या द्वादशीरुद्रसंयुता ॥ भक्तिर्भागवतीकार्या प्राणैरपिधनैरपि ॥ ३६ ॥ नित्यंनामसहस्रन्तु पठनीयंतवप्रियम् ॥ पूजातुलसिपत्रैस्तु मयाकार्यासदैव हि ॥ ३७ ॥ तुलसीकाष्ठसम्भूतचन्दनेनविलेपनम् ॥ करिष्यामितवाग्रे तु गुणानांतवकीर्तनम् ॥ ३८ ॥ द्वारकायांप्रकर्त्तव्यं प्रत्य

दुर्लभ नहीं होता है यह मैंने पुराणों में सुना है ॥ ३३ ॥ और जो कोई शिशुपालादिक अपराध समेत कहेगये हैं क्रोध से तुम्हारे हाथ से मारेहुए वे राजा मुक्ति को प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ आज से लगाकर प्रतिदिन तुम्हारा पूजन करना चाहिये व आधे पल से भी वेधित तुम्हारे दिन को छोड़ना चाहिये ॥ ३५ ॥ व एकादशी से संयुत इस द्वादशी तिथि को मैं करूंगा व प्राणों और धनों से भी आप की भक्ति करना चाहिये ॥ ३६ ॥ और तुम्हारे प्यारे हज़ार नामों को नित्य पढ़ना चाहिये व सदैव मुझ को तुलसीदलों से पूजन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ और तुलसी के काष्ठ से उपजेहुए चंदन से मैं तुम्हारे लेपन करूंगा व तुम्हारे आगे तुम्हारे गुणों का कीर्तन करूंगा ॥ ३८ ॥

व प्रतिदिन मैं द्वारकापुरी में गमन करूंगा व तुम्हारी कथा को श्रवण करूंगा और नित्य पुस्तक पढ़ूंगा ॥ ३९ ॥ व उत्तम भक्तिसे मैं सदैव मस्तक से तुम्हारे चरणोदक को धारण करूंगा व व्रतको ग्रहण कियेहुए मैं नैवेद्य को भक्षण करूंगा ॥ ४० ॥ व मैं तुम्हारे निर्माल्य को आदर समेत मस्तक से धारण करूंगा व जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता होगी वैसाही मैं करूंगा हे श्रीकृष्णजी ! मैंने तुम्हारे आगे यह सत्य कहा ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे महाभाग, द्विजोत्तम, चन्द्रशर्मन् ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं तुम्हारा मनोरथ होवैगा ॥४२॥ हे द्विजोत्तम ! नित्य तुम्हारे कहेहुए नियमों से मैं प्रसन्न हूं और तुम समेत पितामह

क्षंगमनंमया ॥ त्वत्कथाश्रवणंकार्यं नित्यंपुस्तकवाचनम् ॥ ३९ ॥ नित्यंपादोदकंमूर्द्ना मयाधार्यंसुभक्तितः ॥ नैवेद्यभक्षणंकार्य्यं करिष्यामियतव्रतः ॥ ४० ॥ निर्माल्यंशिरसाधार्यं त्वदीयंसादरंमया ॥ तथातथाप्रकर्तव्यं तवतुष्टिःप्रजायते ॥ सत्यमेतन्मयाकृष्ण तवाग्रेपरिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधुसाधुमहाभाग चन्द्रशर्मन्द्विजोत्तम ॥ तुष्टोहंतवभक्त्या च वाञ्छितंतेभविष्यति ॥ ४२ ॥ तवोक्तैर्नियमैर्नित्यं सन्तुष्टोहंद्विजोत्तम ॥ आगमिष्यन्तिमल्लोके त्वयासहपितामहाः ॥ ४३ ॥ पितामहा ऊचुः ॥ त्वत्प्रसादेनसत्पुत्र मुक्तिप्राप्तानसंशयः ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ताः कृष्णवक्त्रावलोकनात् ॥ ४४ ॥ गोमतीनीरदानेन पिण्डदानेनपुत्रक ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ता यास्यामःपरमांगतिम् ॥ ४५ ॥ तेधन्यामानुषालोके पुत्रपौत्रप्रपौत्रक ॥ दृष्ट्वाश्रीसोमनाथन्तु पश्येयुर्द्वारकांहरिम् ॥ ४६ ॥ धन्यासाविधवानारी कृष्णयात्रांकरोतिया ॥ विनाध्यानेनलोकेस्मिन् कुलानांतारयेच्छतम् ॥ ४७ ॥ श्वपचोपिकरोत्येवं

लोग मेरे लोक में आवैंगे ॥ ४३ ॥ पितामह लोग बोले कि हे सत्पुत्र ! तुम्हारी प्रसन्नता से हमलोग निस्सन्देह मुक्ति को प्राप्तहुए और श्रीकृष्णजी का मुख देखने से प्रेत-योनि से छूटगये ॥ ४४ ॥ व हे पुत्र ! गोमती का जल देने से व पिण्ड देने से प्रेतयोनि से छूटेहुए हमलोग उत्तम गति को प्राप्तहोंगे ॥ ४५ ॥ हे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र ! संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जोकि श्रीसोमनाथजी को देखकर द्वारका में श्रीकृष्णजी को देखते हैं ॥ ४६ ॥ और जो श्रीकृष्णजी की यात्रा करती है वह विधवा स्त्री धन्य है क्योंकि विना ध्यान के वह सौ पुश्तियों को तारती है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार जो चाण्डाल भी विष्णु व शिवजी की यात्रा करता है पितरों से घिराहुआ वह उत्तम मुक्ति

को प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ फिर जो तीर्थयात्रा करके वहां टिकता है करोड़ों सौ कल्पोंतक उसकी विष्णुलोक में स्थिति होती है ॥ ४९ ॥ और जो सोमेश्वर स्वामी को नहीं देखते हैं वे वंचित होगये व जो सोमेश्वरजी को देखकर द्वारका में नहीं टिकता है वह वंचित है ॥ ५० ॥ व सोमेश्वर देवजी देखकर को जिन्होंने गोमती के जल में स्नान किया उनको करोड़ों तीर्थों से उपजेहुए बहुत पवित्र जलों से क्या है ॥ ५१ ॥ और सोमेश्वर स्वामी को देखकर जिन्होंने गोमती के जल में स्नान नहीं किया व सोमेश्वरजी को देखकर जो द्वारका में नहीं स्थित होता है ॥ ५२ ॥ उसके पापी पुत्र व कुल को धिक्कार है और पितर नरक में स्थित होते हैं व सोमेश्वर देवजी

योयात्रांहरिशाङ्करीम् ॥ सयातिपरमांमुक्तिं पितृभिःपरिवारितः ॥ ४८ ॥ यःपुनस्तीर्थयात्रां च कृत्वातिष्ठति तत्र वै ॥ विष्णुलोकेस्थितिस्तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४९ ॥ वञ्चितास्ते न पश्यन्ति ये वै सोमेश्वरंप्रभुम् ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरं यस्तु द्वारकां नैव तिष्ठति ॥ ५० ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं येस्नातागोमतीजले ॥ किंजलैर्बहुभिःपुण्यैस्तीर्थकोटिसमुद्भवैः ॥ ५१ ॥ न स्नातागोमतीनीरे दृष्ट्वासोमेश्वरंप्रभुम् ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंयस्तु द्वारकां नैव तिष्ठति ॥ ५२ ॥ धिक्सुतञ्च कुलंपापं पितरोनरकेस्थिताः ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं कृष्णंदृष्ट्वापुनःशिवम् ॥ यःपश्येत्कथितंपुण्यं यात्राशतसमुद्भवम् ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं यःकृष्णं चैव पश्यति ॥ प्रभासक्षेत्रसंज्ञे तु फलमाप्नोतिमानवः ॥ ५४ ॥ यस्मात्सर्वाणितीर्थानि सर्वेदेवास्तथामखाः ॥ द्वारकायांसमायान्ति त्रिकालंकृष्णसन्निधौ ॥ ५५ ॥ तीर्थैर्नानाविधैःपुत्र समायान्ति च तत्र हि ॥ फलंसमग्रतीर्थानां दृष्ट्वाद्वारावतींलभेत् ॥ ५६ ॥ हतेकंसेजरासन्धे नरके च निपातिते ॥ उत्ता

को देखकर फिर श्रीकृष्णजी को देखकर जो शिवजी को देखता है उसको सौ यात्राओं से उपजा हुआ पुण्य कहागया है ॥ ५३ ॥ और सोमेश्वर देवजी को देखकर जो श्रीकृष्णजी को देखता है वह मनुष्य प्रभासक्षेत्रसंज्ञक में फल को पाता है ॥ ५४ ॥ जिसलिये सब तीर्थ व सब देवता और यज्ञ श्रीकृष्णजी के समीप त्रिकाल द्वारकापुरी में आते हैं ॥ ५५ ॥ व हे पुत्र ! वे अनेक भांति के तीर्थों समेत वहा आते हैं इसलिये द्वारकापुरी को देखकर मनुष्य सब तीर्थों के फल को पाता है ॥ ५६ ॥ कंस व

जरासंध के मारनेपर व नरकासुर के मारनेपर अब देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी का भार उतारा तब ॥ ५७ ॥ उन्हों ने समुद्र के समीप सुन्दरीपुरी को बनाया व स्त्रियों के सुख को चाहनेवाले प्रसन्नमनवाले श्रीकृष्णजी स्थितहुए ॥ ५८ ॥ और ब्रह्मा, शिव, सूर्य व इन्द्रादिक देवता और मनुष्य, ब्राह्मण, राजा व पातालसे नागराज ॥५९॥ और नदियां, नद, पर्वत, वन व उपवन, पुरी तथा सुन्दर गाव, समुद्र और तड़ाग ॥६०॥ व यक्ष, गण, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर तथा रंभादिक अप्सरा व प्रह्लादादिक दिति के पुत्र ॥ ६१ ॥ और विभीषणादिक राक्षस व यक्षपति कुबेर, ऋषि, मुनि, सिद्ध और सनकादिक योगी ॥ ६२ ॥ तथा ग्रह, नक्षत्र, योग व उत्तम

रितेभुवोभारे कृष्णेदेवकिनन्दने ॥ ५७ ॥ चकारद्वारकांरम्यां सन्निधौसागरस्य च ॥ स्थितःप्रीतमनाःकृष्णो लिप्सितःकामिनीसुखम् ॥ ५८ ॥ ब्रह्माशिवश्च सूर्यश्च वासवाद्यादिवौकसः ॥ मर्त्याविप्राश्च राजानः पातालात्पन्नगेश्वराः॥५९॥ नद्योनदाश्च शैलाश्च वनान्युपवनानि च ॥ पुर्योग्रामाणिरम्याणि सागरांश्च सरांसि च ॥६०॥ यक्षाश्च गणगन्धर्वाः सिद्धा विद्याधरास्तथा ॥ रम्भाद्याप्सरसश्चैव प्रह्लादाद्यादितेःसुताः ॥ ६१ ॥ रक्षोविभीषणाद्यास्तु धनदोयक्षनायकः ॥ ऋषयोमुनयःसिद्धाः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ ६२ ॥ ग्रहान्नक्षत्राणियोगाश्च ध्रुवःपरमवैष्णवः ॥ यत्किञ्चित्त्रिषुलोकेषु तिष्ठतेस्थाणुजङ्गमम् ॥ ६३ ॥ श्रीकृष्णसन्निधौनित्यं तिष्ठतेप्रत्यहंसदा ॥ न त्यजन्तिपुरींरम्यां द्वारकांकृष्णसेविताम् ॥ ६४ ॥ सात्वयासेवितापुत्र साम्प्रतंकृष्णदर्शनात् ॥ पिशाचयोनिनिर्मुक्ता यास्यामःपरमांगतिम् ॥ ६५ ॥ द्वादशीलोपसम्भूतं न त्वयापापमर्जितम् ॥ कृष्णस्यदर्शनेक्षीणं न जहिद्वादशीव्रतम् ॥ ६६ ॥ रक्ष चेदंप्रयत्नेन वेधंदशमिसम्भवम् ॥

वैष्णव ध्रुवजी तथा तीनोंलोकों में जो कुछ चराचर स्थित है ॥ ६३ ॥ वह सदैव प्रतिदिन श्रीकृष्णजी के समीप स्थित रहता है और कृष्णजी से सेवित सुन्दरीपुरी को ये नहीं छोड़ते हैं ॥ ६४ ॥ हे पुत्र ! इससमय तुमने श्रीकृष्णजी के दर्शन से उस पुरी को सेवन किया इससे पिशाचयोनि से छूटेहुए हमलोग उत्तम गति को प्राप्त होवेंगे ॥६५॥ व द्वादशी के लोप से उपजेहुए पाप को तुमने नहीं इकट्ठा किया है वश्रीकृष्णजी के दर्शन में क्षीण द्वादशीव्रतको न छोड़िये ॥ ६६ ॥ और दशमी से उपजेहुए

वेध की बड़े यत्न से रक्षा कीजिये नहीं तो हे पुत्र ! निस्सन्देह प्रेतयोनि का प्राप्तहोगे ॥ ६७ ॥ और जो मनुष्य वेधसमेत विष्णुसंज्ञक (द्वादशी) व्रत को करते ह उनको पृथ्वी में त्रिलोक से उपजा हुआ पाप होता है ॥ ६८ ॥ और जो मूढ़चित्त मनुष्य वेधसमेत विष्णुजी के दिन को करता है उसका प्रायश्चित्त सैकड़ों मन्वन्तर से भी नहीं होता है ॥६९॥ हे पुत्र ! प्रेतता दुःसह दुःसहाय और दुःखदायिनी होती है इस कारण हे पुत्र ! वेधसमेत द्वादशीव्रत न करना चाहिये ॥ ७० ॥ व जो मूर्ख मनुष्य झूंठी गवाही कराते हैं वे पितरों समेत प्रेतयोनि को प्राप्त होते हैं अन्यथा नहीं होताहै ॥ ७१ ॥ दशमी से वेधित द्वादशी धन व संतान को नाश करती है और पहले

नो चेत्पुत्र न सन्देहो प्रेतयोनिमवाप्स्यसि ॥ ६७ ॥ त्रैलोक्यसम्भवंपापं तेषांभवतिभूतले ॥ सशल्यंये च कुर्वन्ति वासरंकृष्णसंज्ञकम् ॥ ६८ ॥ प्रायश्चित्तं नतस्यास्ति सशल्यंवासरंहरेः ॥ यःकरोतिविमूढात्मा मन्वन्तरशतैरपि ॥ ६९ ॥ प्रेतत्वंदुःसहंपुत्र दुःसहाय च दुःखदम् ॥ तस्मात्पुत्र न कर्त्तव्यं सशल्यंद्वादशीव्रतम् ॥ ७० ॥ कारयन्ति च येत्वज्ञाः कूटसाक्षित्वमानुषाः ॥ प्रेतयोनिंप्रयास्यन्ति पितृभिःसह नान्यथा ॥ ७१ ॥ द्वादशीदशमीविद्धा धनसन्ताननाशिनी ॥ ध्वंसिनीपूर्वपुण्यानां कृष्णभक्तिप्रणाशिनी ॥ ७२ ॥ स्वस्तितेस्तु गमिष्यामः प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ प्राप्तंविष्णुपदंपुत्र त्वपुनर्भवसंज्ञितम् ॥ ७३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ चन्द्रशर्मन्प्रसन्नोहं तवभक्त्याद्विजोत्तम ॥ शैवंभावंपरित्यज्य भवत्वमपिवैष्णवः ॥ ७४ ॥ नवसप्ततिवर्षाणि न कृतंवासरंमम ॥ सम्पूर्णंमत्प्रसादेन तवजातन्न संशयः ॥ ७५ ॥ एकेनैवोपवासेन त्रिस्पृशासम्भवेन हि ॥ द्वादश्याश्च प्रभावेण सर्वसम्पूर्णतांव्रजेत् ॥ ७६ ॥ अविद्यामोहितेनेह शिवभक्त्या

के पुण्य को विध्वंस करती है तथा श्रीकृष्णजी की भक्ति को नाशती है ॥ ७२ ॥ तुम्हारा कल्याण होवै और हमलोग रुक्मिणीपति विष्णुजी की प्रसन्नता से जाते हैं हे पुत्र ! अपुनर्भवसंज्ञक विष्णुजी का स्थान मिलगया ॥ ७३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे द्विजोत्तम, चन्द्रशर्मन् ! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं और तुम भी शिवजी के भाव को छोड़कर वैष्णव होवो ॥ ७४ ॥ उन्नासी वर्षतक तुमने द्वादशीव्रत नहीं किया और मेरी प्रसन्नता से वह तुम्हारा व्रत पूर्ण होगया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७५ ॥ क्योंकि त्रिस्पृशा से उपजेहुए एकही उपास से व द्वादशी के प्रभाव से सब संपूर्ण होजाता है ॥ ७६ ॥ अज्ञान से मोहित तुमने इस लोक में मेरा पूजन नहीं किया वह

मेरी प्रसन्नता से पूर्ण होजावैगा ॥ ७७ ॥ हे द्विजोत्तम ! वैशाख महीने में जिन्होंने मुझको द्वारका में देखा है और त्रिस्पृशा के दिन व शयनी के दिन ॥ ७८ ॥ तथा उन्मीलिनीदिन प्राप्त होनेपर व पक्षवर्द्धिनी द्वादशी प्राप्त होनेपर यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि उसका अपराध नहीं होता है ॥ ७९ ॥ और मेरी पुरी के दर्शन से मनुष्य जन्म से लगाकर बिन कियेहुए भी बहुत से पुण्यका भागी होता है ॥ ८० ॥ सब तीर्थों को देखकर जो मेरी पुरी को नहीं देखता है उसका परिश्रम व्यर्थ होजाता है और वह समस्त फल को नहीं पाता है ॥ ८१ ॥ इस पृथ्वी में प्रभासादिक सब तीर्थोंको न देखकर मेरी पुरी को देखने से वे देखेगये इस फलको

ममार्चनम् ॥ न कृतंमत्प्रसादेन तत्सम्पूर्णंभविष्यति ॥ ७७ ॥ वैशाखेयैरहंदृष्टो द्वारकायांद्विजोत्तम ॥ त्रिस्पृशावासरे चैव शयनीवासरे तथा ॥ ७८ ॥ उन्मीलिनीदिनेप्राप्ते प्राप्ते वा पक्षवर्द्धिनि ॥ नैवतस्यापराधोस्ति यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥ ७९ ॥ जन्मप्रभृतिपुण्यस्य ह्यकृतस्यापि भूरिशः ॥ मत्पुरीदर्शनेनापि फलभागीभवेन्नरः ॥ ८० ॥ दृष्ट्वासमस्ततीर्थानि मत्पुरीं न हि पश्यति ॥ वृथापरिश्रमस्तस्य नो कृत्स्नंफलमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ अदृष्ट्वासर्वतीर्थानि प्रभासादीनि भूतले ॥ मत्पुरीदर्शनेतानि दृष्टानीह फलंलभेत् ॥ ८२ ॥ न कलौफलदावेदा न दानानिमखा न च ॥ पुरींद्वारवतीं मुक्त्वा तथैव हरिवासरे ॥ ८३ ॥ ममाग्रेजागरंयस्तु गृहे वा यत्र वा पठेत् ॥ मत्पुरीवासजंपुण्यं लभतेमत्प्रसादतः ॥ ८४ ॥ मत्पुरीवसतांपुण्यं त्रिकालंममदर्शनात् ॥ तत्फलंसमवाप्नोति यस्त्विदंपठतेकलौ ॥ ८५ ॥ कलौकाशी च मथुरा ह्यवन्ती च द्विजोत्तम ॥ अयोध्या च तथा माया काञ्ची चैव च मत्पुरी ॥ ८६ ॥ शालग्रामभवं चैव बदरी च तथा गया ॥

मनुष्य पाता है ॥ ८२ ॥ कलियुग में द्वारकापुरी व हरिवासर द्वादशी तिथि को छोड़कर वेद फलदायक नहीं होते हैं और दान व यज्ञ फलदायी नहीं होते हैं ॥ ८३ ॥ जो मनुष्य मेरे आगे जागरण करता है व जिस घर में इसको पढ़ता है वहां मेरी प्रसन्नता से मेरी पुरी के निवास से उपजेहुए पुण्य को पाता है ॥ ८४ ॥ मेरी पुरी में बसते हुए मनुष्यों को त्रिकाल मेरे दर्शन से जो फल होता है उस फल को वह मनुष्य पाता है जोकि कलियुग में इसको पढ़ता है ॥ ८५ ॥ हे द्विजोत्तम ! कलियुग में काशी, मथुरा, अवन्ती, अयोध्या, माया व मेरी कांचीपुरी ॥ ८६ ॥ और शालग्रामभवक्षेत्र तथा बदरिकाश्रम, गया,

कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र व शुक्लसंज्ञक पुष्कर ॥ ८७ ॥ तथा प्रयाग, प्रभासक्षेत्र व हाटकेश्वर, हरिद्वार और सूकरक्षेत्र व गंगासागर का संगम ॥ ८८ ॥ व हे द्विज ! नैमिष, दंडकारण्य तथा वृंदावन, सैंधव और अर्बुदारण्य व सब स्थान ॥ ८९ ॥ और हे द्विजोत्तम ! मागधादिक वन व ऊषर तथा शैलराज आदिक पर्वत व हिमाचल आदिक स्थावर ॥ ९० ॥ व हे द्विजोत्तम ! पृथ्वी में जो गंगादिक नदियां हैं व जो तीनोंलोकों में तीर्थ हैं वे मेरी आज्ञा से ॥ ९१ ॥ कलियुग में द्वारकापुरी में गोमती के जल में स्थित है तीनोंलोकों में द्वारकापुरी के समान पुरी नहीं है ॥ ९२ ॥ व मेरी पुरी को छोड़कर कलियुग से सब स्थान व्याप्त है व मेरी पुरी को छोड़कर सब

कुरुक्षेत्रंभृगुक्षेत्रं पुष्करंशुक्लसंज्ञकम् ॥ ८७ ॥ प्रयागं च प्रभासं च क्षेत्रं वै हाटकेश्वरम् ॥ गङ्गाद्वारंसूकरं च गङ्गासाग रसङ्गमम् ॥ ८८ ॥ नैमिषंदण्डकारण्यं तथावृन्दावनंद्विज ॥ सैन्धवंचार्बुदारण्यं सर्वाण्यायतनानि च ॥ ८९ ॥ वना निमागधादीनि ऊषराणिद्विजोत्तम ॥ शैलराजादयःशैला हिमाद्रिस्थावराणि च ॥ ९० ॥ गङ्गादयस्तु सरितो भूतले यानिसन्ति वै ॥ तीर्थानित्रिषुलोकेषु द्विजवर्यममाज्ञया ॥ ९१ ॥ तिष्ठन्तिगोमतीनीरे द्वारकायांकलौयुगे ॥ नास्ति वै त्रिषुलोकेषु पुरीद्वारावतीसमा ॥ ९२ ॥ कलिनाकलितंसर्वं वर्जयित्वा तु मत्पुरीम् ॥ सर्वंकलिवशंयातं वर्जयित्वा तु म त्पुरीम् ॥ ९३ ॥ व्याप्तंपाखण्डिभिःसर्वं वर्जयित्वा तु मत्पुरीम् ॥ तस्मात्कलियुगेप्राप्ते सेवनीयामहापुरी ॥ ९४ ॥ विप्रव र्षशतेप्राप्ते मत्पुरींममदर्शने ॥ संन्यासग्रहणेमृत्युर्मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ९५ ॥ त्रिस्पृशावासरेप्राप्ते वैशाखेशुक्लप क्षतः ॥ संयोगेबुधवारस्य दिवाभूमौममाग्रतः ॥ ९६ ॥ दशमद्वारमासाद्य तवप्राणस्यनिर्गमम् ॥ भविष्यति न सन्देहो

कलियुग के वश में प्राप्त है ॥ ९३ ॥ और मेरी पुरी को छोड़कर पाखंडियों से सब संसार व्याप्त है इस कारण कलियुग प्राप्त होनेपर द्वारका महापुरी सेवने योग्य है ॥ ९४ ॥ हे विप्रजी ! सौ वर्ष प्राप्त होनेपर मेरी पुरी में मेरे दर्शन से मेरी प्रसन्नता से संन्यास के ग्रहण में मृत्यु होगी ॥ ९५ ॥ और वैशाख में शुक्लपक्ष में त्रिस्पृशा द्वादशी का दिन प्राप्त होनेपर बुधवार के संयोग में दिन में व पृथ्वी में मेरे आगे ॥ ९६ ॥ हे भूदेव ! मेरी प्रसन्नता से दशमद्वार को प्राप्त होकर निस्सन्देह तुम्हारे प्राण का

निकलना होगा ॥ ९७ ॥ हे द्विजेन्द्र ! अपने स्थान का जाइये तुम सब कामनाओं को पावोगे और मेरे भक्तों का युगान्त में भी नाश नहीं होता है ॥ ९८ ॥ व मेरी भक्ति को करते हुए मनुष्यों को इस लोक व परलोक में कुछ अशुभ नहीं होता है और वह करोड़ पुश्तियों को स्वर्ग में लेजाता है ॥ ९९ ॥ और अन्य देवताओं के शरण में प्राप्त लोगों को जाने आने का परिश्रम व बहुत क्लेश को करनेवाला दुःख बार २ होता है ॥ १०० ॥ व मेरे दिन को उपास करनेवाले तथा मेरी भक्ति के भागी मनुष्यों को संसार में जाने आने का परिश्रम नहीं होता है ॥ १ ॥ और जो मनुष्य वेधसमेत मेरे मुक्तिदायक दिन को करते हैं उनका करोड़ों सौ कल्पों में इकट्ठा

मत्प्रसादेनभूसुर ॥ ९७ ॥ स्वस्थानंगच्छविप्रेन्द्र सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥ मद्भक्तानांयुगान्तेपि विनाशोनोपजायते ॥ ९८ ॥ मद्भक्तिंकुर्वतांपुंसामिहलोकेपरेपि वा ॥ नाशुभंविद्यतेकिञ्चित्कुलकोटीर्नयेद्दिवि ॥ ९९ ॥ अन्यदेवप्रपन्नानां गमागमपरिश्रमः ॥ बहुक्लेशकरंदुःखं जायते च पुनःपुनः ॥ १०० ॥ मद्भक्तिभागिनांलोके गमागमपरिश्रमः ॥ जायते नैव मर्त्यानां मद्दिनोपास्तिकुर्वताम् ॥ १ ॥ पुण्यंसुसञ्चितंयाति कल्पकोटिशतार्जितम् ॥ सशल्यंयेप्रकुर्वन्ति मुक्तिदंममवासरम् ॥ २ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तूष्णींचक्रेततस्स च ॥ दृष्टःसर्वजनैःसर्वैर्भक्त्यानामितकन्धरैः ॥ ३ ॥ नमस्कृतोर्चितोध्यातः संस्तुतोगीतनृत्यकैः ॥ तोषितःपरयाभक्त्या देवकीनन्दनोहरिः ॥ ४ ॥ चन्द्रशर्मापि हृष्टोसौ प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥ स्तवैःसन्तोषयामास सहस्राख्यादिकैःशुभैः ॥ ५ ॥ स्वस्थानंप्राप्यविप्रर्षिः कृष्णस्याराधनंप्रति ॥ यत्नंप्रकुरुतेनित्यं द्वादशीव्रततत्परः ॥ ६ ॥ ततोवर्षशतेपूर्णे गत्वाद्वारावतींपुरीम् ॥ प्राणान्कृष्णो

किया हुआ पुण्य जाता रहता है ॥ २ ॥ यह कहकर भगवान् विष्णुजी चुप होरहे तदनन्तर भक्ति से झुकेहुए कंधेवाले सब मनुष्यों ने उन विष्णुजी को देखा ॥ ३ ॥ और बड़ी भक्ति से देवकीनन्दन विष्णुजी को गीतों व नृत्यों से प्रसन्न किया और प्रणाम, पूजन, ध्यान व स्तुति किया ॥ ४ ॥ और इस प्रसन्न चन्द्रशर्मा ने भी बार २ प्रणामकर सहस्रनामादिक उत्तम स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ५ ॥ और द्वादशीव्रत में तत्पर चन्द्रशर्मा ब्रह्मर्षि अपने स्थान को प्राप्तहोकर नित्य श्रीकृष्णजी के आराधन के लिये यत्न करते रहे ॥ ६ ॥ तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर श्रीकृष्णजी के उपदेश से द्वारकापुरी को जाकर वह चन्द्रशर्मा प्राणों को

छोड़कर मोक्षको प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ हे इन्द्रद्युम्न ! तुम से द्वारका से उपजाहुआ माहात्म्य कहा गया और जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उसको फिर भी कहूंगा ॥ ८ ॥ और श्रीकृष्णजी से जो कहागया है वह फल द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को सुनते व पढ़तेहुए मनुष्यों को मिलता है ॥ ९ ॥ और लिखाहुआ यह माहात्म्य संसार में जिसके घर में स्थित होता है उसको प्रतिदिन श्रीकृष्णजी से उपजा हुआ द्वारका का पुण्य मिलता है ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पदेशेन त्यक्त्वामोक्षंजगामह ॥ ७ ॥ इन्द्रद्युम्नतवाख्यातं माहात्म्यंद्वारकाभवम् ॥ पुनरेव प्रवक्ष्यामि यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ८ ॥ शृण्वतांपठतांचैव माहात्म्यंद्वारकाभवम् ॥ लभ्यते वै फलंसर्वं कृष्णेनकथितं च यत् ॥ ९ ॥ इदंस्थितं च लोकेस्मिँल्लिखितंयस्यवेश्मनि ॥ प्रत्यहंद्वारकापुण्यं प्राप्यतेकृष्णसम्भवम् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येचतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ निहतेकौरवेसैन्ये सर्वयोधेक्षयंगते ॥ अर्जुनोभक्तियुक्तात्मा गतोसौकृष्णसन्निधौ ॥ १ ॥ प्रदक्षिणांततःकृत्वा प्रणम्यशिरसाहरिम् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा इदंवचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ अद्यापिसंशयंकृष्ण हृदये ममवर्त्तते ॥ शङ्खोद्धारफलंब्रूहि अनुग्राह्योभवाम्यहम् ॥ ३ ॥ शङ्खस्यदर्शनादेव किन्तु पुण्यंसुरेश्वर ॥ रुक्मिणीकुण्डके चैव किंपुण्यंध्यानदर्शने ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो यन्मांत्वंपरिपृच्छसि ॥ अहन्तेकथयि

दो० । शंखोद्धारक तीर्थ कर अहै यथा परभाव । सो पचीस अध्याय में कह्यो चरित चितचाव ॥ मार्कंडेयजी बोले कि कौरवों की सेना नष्ट होनेपर जब सब योधा नष्ट होगये तब भक्ति से संयुत चित्तवाले ये अर्जुनजी श्रीकृष्णजी के समीप गये ॥ १ ॥ तदनन्तर प्रदक्षिणा कर व मस्तक से श्रीकृष्णजी को प्रणाम कर हाथों को जोड़ेहुए अर्जुनजी यह वचन बोले ॥ २ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! मेरे हृदय में आज भी संदेह वर्तमान है तुम शंखोद्धार तीर्थ का फल कहो तो मैं दया करने योग्य होऊं ॥ ३ ॥ व हे सुरेश्वर ! शंख के दर्शन से क्या पुण्य होता है व रुक्मिणीकुंड के ध्यान व दर्शन में क्या पुण्य होता है ॥ ४ ॥ श्रीभगवान्‌जी बोले कि हे महा-

वाहो! बहुत अच्छा बहुत अच्छा तुम जो मुझ से पूछते हो उसको मैं तुम से कहूंगा जोकि देवताओं को भी दुर्लभ है॥ ५ ॥ जिसके स्मरणही से सब पाप नाश होजाता है उस शंखोद्धार के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा ॥ ६ ॥ प्रभासादिक तीर्थ व गंगादिक नदियां और समुद्र व पवित्र पर्वत और सब वानस्पत आदिक ॥ ७ ॥ व अश्वमेधादिक यज्ञ और वेद वहा स्थित हैं इसमें सन्देह नहीं है व इन्द्रादिक सब देवता तथा भृगु आदिक ऋषि ॥ ८ ॥ और तुंबुरु आदिक गंधर्व तथा कुबेरादिक धनेश्वर व विष्वक्सेन आदिक सब गण और ब्रह्मा, विष्णु व महेश्वरजी ॥ ९ ॥ व हे धनंजय! सिद्ध व अप्सरा शंखोद्धार तीर्थ में स्थित हैं अथवा बहुत कहने से क्या है चराचर

ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥५॥ यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापंव्यपोहति ॥ शङ्खोद्धारसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥६॥ प्रभासाद्यानितीर्थानि गङ्गाद्याःसरितस्तथा ॥ सागराःपर्वताः पुण्याः सर्ववानस्पतादयः ॥७॥ अश्वमेधादयोयज्ञा वेदास्तत्र न संशयः ॥ इन्द्रादिदेवताःसर्वे भृग्वाद्यात्रृषयस्तथा ॥ ८ ॥ गन्धर्वास्तुम्बुराद्याश्च कुबेरादिधनेश्वराः॥ विष्वक्सेनादिकगणा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९ ॥ सिद्धाश्चाप्सरसश्चैव शङ्खोद्धारेधनञ्जय ॥ अथकिंबहुनोक्तेन त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ १० ॥ सरक्षोगणगन्धर्वा पुरीद्वारावतीतथा ॥ तथा च सर्वतीर्थानि शङ्खोद्धारमिदंसरः ॥ ११ ॥ येस्मरन्तिविदंनित्यं शङ्खोद्धारंगृहेस्थिताः ॥ न तेषांपुनरावृत्तिर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १२ ॥ येचिन्तयन्तिमनसि शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम् ॥ कुलकोटिशतैर्युक्ता विष्णुलोकेवसन्तिते ॥ १३ ॥ दिवमारोहयेद्यस्तु शङ्खोद्धारं च पश्यति ॥ सम यावन्दनीयस्तु यथादेवी नु शङ्करः ॥ १४॥ क्षीयतेयदिमार्गस्थः शङ्खोद्धारन्न चेक्षते ॥ वल्लभस्तुसमेपार्थ यथाश्रीश्र

समेत त्रिलोक वहां स्थित है ॥ १० ॥ व राक्षसगणों समेत व गन्धर्वों सहित यह द्वारकापुरी है वैसेही सब तीर्थ इस शंखोद्धार तड़ाग में हैं ॥ ११ ॥ और घरमें स्थित जो मनुष्य सदैव इस शंखोद्धार तीर्थ को स्मरण करते हैं प्रलयपर्यन्त उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ १२ ॥ और शंखोद्धार तीर्थ में जो मनुष्य मन में शंखधारी जी को स्मरण करते हैं करोड़ों सौ पुश्तियों से संयुत वे विष्णुलोक में बसते हैं ॥ १३ ॥ व जो शंखोद्धार तीर्थ को देखता है वह स्वर्ग को जाता है और वह वैसेही मुझ से प्रणाम करने योग्य है जैसे कि पार्वती देवी व शंकरजी हैं ॥ १४ ॥ और यदि मार्ग में नष्ट होजावै मुझको न देखै तो हे पार्थ! वह मुझको वैसेही प्रिय है जैसे कि

लक्ष्मीजी हैं॥ १५॥ और यदि मनुष्य विपत्ति में स्थित होवै तो जिस किसीप्रकार से भी जिसकी बुद्धि शंखोद्धारतीर्थ में होवै वह स्वर्ग में स्थित है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हे पार्थ ! कुरुक्षेत्र, काशी व नैमिष में नहीं बरन अपने घरमें शंखोद्धार तथा शंखी विष्णुजीको स्मरण करै ॥ १७ ॥ करोड़ों सूर्यग्रहणों में सरस्वतीतीर्थ में जो फल होता है वह फल आधे पलमें शंखोद्धार के दर्शन से होता है ॥ १८ ॥ व जो मनुष्य सौ बरसतक नित्य यतियों को भक्ति से भोजन कराता है वह शंखोद्धार तीर्थ में नहानेवाले पुरुष की सोलहवीं कला के योग्य नहीं होता है ॥ १९ ॥ व शंखोद्धार में नहाकर जो शंखधारी देव को देखता है उसके पुण्यकी संख्या को मैं

तथैव हि ॥ १५ ॥ येनकेनप्रकारेण चापदस्थोपि मानवः ॥ शङ्खोद्धारेमतिर्यस्य स्वर्गस्थोनात्रसंशयः ॥ १६ ॥ किन्तुनैव कुरुक्षेत्रे वाराणस्यान्तु नैमिषे ॥ स्वगृहेचिन्तयेत्पार्थ शङ्खोद्धारं हि शङ्खिनम् ॥ १७॥ यत्फलन्तु सरस्वत्यां सूर्यग्रहण कोटिभिः ॥ तत्फलंनिमिषार्द्धेन शङ्खोद्धारस्यदर्शनात् ॥ १८ ॥ योयतीन्भोजयेद्भक्त्या नित्यमब्दशतंनरः ॥ शङ्खो द्धारे च तुःस्नातुः कलांनार्हतिषोडशीम् ॥ १९ ॥ शङ्खोद्धारेनरःस्नात्वा दृष्ट्वादेवं च शङ्खिनम् ॥ पुण्यसङ्ख्यां न जानामि यद्दानस्य च वैधृतौ ॥ २० ॥ तावद्भ्रमन्तिसंसारे नरकेपापसंकुले ॥ शङ्खोद्धारं न पश्यन्ति यावत्कलिम लापहम् ॥ २१ ॥ शङ्खोद्धारेनरःस्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ गर्भवासं न कुरुते प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ २२ ॥ यानि कानि च तीर्थानि निवसन्तिमहीतले ॥ शङ्खोद्धारसमंतीर्थं मोक्षदं न च दृश्यते ॥ २३ ॥ त्रीणिकोटीनिसार्द्धानि ती र्थानां च धनञ्जय ॥ शङ्खोद्धारे च सम्पूर्णं सर्वतीर्थात्मकंफलम् ॥ २४ ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि अगम्यागमनानि च ॥

नहीं जानता हूं व वैधृति में दानका जो फल है उसको मैं नहीं जानता हूं ॥ २० ॥ तबतक मनुष्य पापों से संयुत नरक व संसार में भ्रमते हैं जबतक कि कलिमल-नाशक शंखोद्धार तीर्थ को नहीं देखते हैं ॥ २१ ॥ शंखोद्धारतीर्थ में नहाकर मनुष्य फिर जन्मको नहीं पाता है और रुक्मिणीनाथ श्रीविष्णुजी की प्रसन्नता से गर्भवास नहीं करता है ॥ २२ ॥ व पृथ्वी में जो कोई तीर्थ बसते हैं उनमें शंखोद्धार के समान मोक्षदायक तीर्थ नहीं है ॥ २३ ॥ हे धनञ्जय ! साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं परन्तु शंखोद्धार में सब तीर्थों का समस्तफल होता है ॥ २४ ॥ और हज़ारों ब्रह्महत्या व अगम्यागमन पाप नाश होजाते हैं व जिसकी बुद्धि शंखोद्धार में होती

हे व जो मन से स्मरण करता है ॥ २५ ॥ स्वर्ग में टिकेहुए उसके पितर आशीर्वाद देते हैं ॥ २६ ॥ और जिसका मन श्रीकृष्णजी में नहीं लगता है व जो शंखोद्धार को नहीं देखता है उसके पितर स्वर्ग में भी भयङ्कर शाप को देते हैं ॥ २७ ॥ शंखोद्धार में नहाकर मनुष्य निर्मल सुवर्णदान को देवै और तिल, गऊ, गृह, अन्न व पृथ्वी को देवै ॥ २८ ॥ जो एक गऊ को देता है वह करोड़ गौवों से उपजेहुए फल को पाता है व सुवर्ण से संयुत एक घरको जो ब्राह्मण के लिये देता है ॥ २९ ॥ हे पार्थ ! वह श्रीकृष्णजी की सुन्दरी पुरी को पाता है व जो देवताओं को भी दुर्लभ है उस सुवर्ण के घरमें पितरों से धिराहुआ वह निवास करता है ॥ ३० ॥ व

शङ्खोद्धारेमतिर्यस्य मनसायस्तु चिन्तयेत् ॥ २५ ॥ आशीर्वादंप्रयच्छन्ति पितरोदिविसंस्थिताः ॥ २६ ॥ यस्यना स्तिमनःकृष्णे शङ्खोद्धारन्नपश्यति ॥ तस्यस्वर्गेपि पितरः शापंदास्यन्तिदारुणम् ॥ २७॥ शङ्खोद्धारेनरःस्नात्वा दानं दद्याच्च निर्मलम् ॥ सुवर्णं च तिलान्गाश्च गृहमन्नं च मेदिनीम् ॥ २८ ॥ योददाति च गामेकां लभतेकोटिजंफलम् ॥ विप्रायगृहमेकन्तु योदद्यात्स्वर्णसंयुतम् ॥ २९ ॥ लभेत्कृष्णपुरींरम्यां यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ काञ्चने च गृहे पार्थ पितृभिःसहवेष्टितः ॥ ३० ॥ अन्नदानंददेद्यस्तु शङ्खोद्धारेव्यवस्थितः ॥ तेनलब्धास्वयंमुक्तिः प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ ३१ ॥ अन्नदानसमंपार्थ न भूतो न भविष्यति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अन्नदानंसमाचरेत् ॥ ३२ ॥ तपसाकिंसुतप्तेन जपहोमादिकैर्व्रतैः ॥ कृष्णधर्मविहीनस्य सर्वंतस्यनिरर्थकम् ॥ ३३ ॥ प्रभासेयद्भवेत्पुण्यं राहुग्रस्तेनिशाकरे ॥ ततःकोटिगुणंपार्थ शङ्खोद्धारस्यदर्शनात् ॥ ३४ ॥ कन्यासहस्रंयोदद्यात्तीर्थंगत्वाहिमाचले ॥ तत्फलंपाण्डवश्रेष्ठ शङ्खोद्धारस्य

शंखोद्धार में टिकाहुआ जो मनुष्य अन्नदान को देता है वह रुक्मिणीपति की प्रसन्नता से आपही मुक्तिको पागया ॥ ३१ ॥ हे पार्थ ! अन्नदान के समान दान न हुआ है न होवैगा इस कारण सब यत्न से मनुष्य अन्नदान करै ॥ ३२ ॥ भलीभांति कियेहुए तपसे व जप होमादिक तथा व्रतों से क्या है क्योंकि कृष्णजी के धर्म से रहित उस पुरुष का सब व्यर्थ होता है ॥ ३३ ॥ राहु से चन्द्रमा के ग्रस्त होनेपर प्रभासक्षेत्र में जो पुण्य होता है हे पार्थ ! उससे कोटिगुना पुण्य शंखोद्धार के दर्शन से होता है ॥ ३४ ॥ व हे पाण्डवश्रेष्ठ ! हिमाचलतीर्थ में जाकर जो हज़ार कन्याओं को देता है वह फल शंखोद्धार के दर्शन से

होता है ॥ ३५ ॥ व कुरुक्षेत्र के निवास व गंगाजी के समीप मरने से तथा गोमती में स्नानमात्र से व शंखोद्धार के दर्शन से ॥ ३६ ॥ व शंखोद्धार में नहाकर वेदपात्र, चाडाल व जो अन्य सब प्राणी हैं वे तथा अन्य मनुष्य द्विज जातियों में उत्पन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ और गोघाती, कृतघ्न, ब्रह्मघाती तथा गुरुकी शय्या पै जानेवाला पुरुष शंखोद्धार के दर्शन से सब पापों से छूटजाता है ॥ ३८ ॥ हे पार्थ ! तुलसी से उपजेहुए पुष्पों से जो मुझको पूजता है उससे इन्द्रदेवजी डरते हैं व उनका आसन चलता है ॥ ३९ ॥ व जिस किसी विनोदसे भी श्रीकृष्णजी के दिनको उपासकर वे मनुष्य धन्य होते हैं व मरकर चतुर्भुज विष्णुजी को प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ और समुद्र के

दर्शनात् ॥ ३५ ॥ कुरुक्षेत्रस्यवासेन जाह्नवीमरणेन तु ॥ गोमतीस्नानमात्रेण शङ्खोद्धारस्यदर्शनात् ॥ ३६ ॥ श्रोत्रियोप्यन्त्यजोवापि चान्ये वा सर्वजन्तवः ॥ शङ्खोद्धारेनरःस्नात्वा जायतेद्विजयोनिषु ॥ ३७ ॥ गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शङ्खोद्धारस्यदर्शनात् ॥ ३८ ॥ योमांपूजयतेपार्थ पत्रैस्तुलसिसम्भवैः ॥ तस्माद्धि शङ्कतेदेव इन्द्रश्च चलितासनः ॥ ३९ ॥ येनकेनविनोदेन कृत्वाकृष्णस्यवासरम् ॥ धन्यास्तेपुरुषालोके मृतायान्ति चतुर्भुजम् ॥ ४० ॥ जलमध्येसमुद्रस्य द्वारकापरिदुर्जया ॥ तत्र मध्येस्थितोदेवः शङ्खःपापप्रणाशनः ॥ ४१ ॥ शङ्खोद्धारे नरःस्नात्वा श्राद्धंकृत्वायथाविधि ॥ सयातिपरमंलोकं पितॄनुद्धृत्यपाण्डव ॥ ४२ ॥ शङ्खिनं च नमस्कृत्य पूजयित्वा विधानतः ॥ विमलंलोकमाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥ ४३ ॥ कृतकृत्योभवेन्मर्त्यो दृष्ट्वादेवन्तु शङ्खिनम् ॥ मुच्यतेपातकैर्घोरैर्बहुजन्मकृतैरपि ॥ ४४ ॥ यथाभिलषितान्कामाञ्छङ्खस्तस्यप्रयच्छति ॥ विधवा चैव दृष्ट्वातं लभतेलो

जलके बीच में द्वारका सबओर से दुर्जय है और उसके मध्य में पापनाशक शंखदेवजी स्थित हैं ॥ ४१ ॥ हे पांडव ! शंखोद्धार तीर्थ में नहाकर व विधिपूर्वक श्राद्धकर वह मनुष्य पितरों को उधारकर उत्तमलोक को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ और शंखी को प्रणाम कर व विधि से पूजकर मनुष्य निर्मललोक को प्राप्तहोता है जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ ४३ ॥ और शंखीदेवजीको देखकर मनुष्य कृतार्थ होता है व बहुत जन्मों में भी कियेहुए घोर पापों से छूटजाता है ॥ ४४ ॥ और उसको शंखजी इच्छा

के अनुकूल मनोरथों को देते हैं व विधवा स्त्री उन शंखजी को देखकर चाहे हुए लोक को पाती है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायां शङ्खोद्धारमाहात्म्यंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । है पिंडारकतीर्थकर जिमि उत्तम माहात्म्य । छब्बिसवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर पापनाशक पिंडारकतीर्थ को जावै जहां कि आपही चतुर्भुजदेवजी स्थित हैं ॥ १ ॥ विधिसे उन जगदीश शंखजीको पूज व देखकर मनुष्य अनेकभांति के पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं

कमीप्सितम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येशङ्खोद्धारमाहात्म्यंनामपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततःपिण्डारकंगच्छेत्तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ यत्रदेवश्चतुर्बाहुः स्वयमेवव्यवस्थितः ॥ १ ॥ विधिनापूजयित्वा तु तंदृष्ट्वा तु जगत्पतिम् ॥ मुच्यतेविविधैःपापैर्मानवोनात्रसंशयः ॥ २ ॥ कपालमोचनंनाम देवंलोकेषु विश्रुतम् ॥ तंदृष्ट्वादेवदेवेशं मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥ पिण्डारकेमहातीर्थे यत्ररुक्मिवतीनदी ॥ श्राद्धेतृप्तास्तु पितरो गर्जमानास्तु सर्वशः ॥ ४ ॥ नृत्यमानाःसमायान्ति मानवस्यसमीपतः ॥ तस्मिन्कूपे तु गच्छन्ति नरंदृष्ट्वाकृतोद्यमम् ॥५॥ वैशाखस्य तु मासस्य शुक्लपक्षेद्विजोत्तमाः ॥ चतुर्दश्यांकृतस्नानः श्राद्धंकृत्वायथाविधि ॥ ६ ॥ कपालमोचनंदृष्ट्वा मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ अगस्त्यस्यऋषेस्तत्र तडागंलोकविश्रुतम् ॥ ७ ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन श्राद्धंकृत्वायथा

है ॥ २ ॥ व लोकों में कपालमोचन नामक प्रसिद्ध उन देवदेवेश देवको देखकर मनुष्य ब्रह्महत्या से छूटजाता है ॥ ३ ॥ और जहां रुक्मिवती नदी है उस पिंडारक महातीर्थ में श्राद्ध में तृप्त सब पितर लोग गरजते हैं ॥ ४ ॥ व मनुष्य के समीप नाचतेहुए पितर आते हैं और उद्यम कियेहुए पुरुष को देखकर उस कूप में जाते हैं ॥ ५ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! वैशाखमहीने के शुक्लपक्ष में चौदसि तिथि को विधिपूर्वक श्राद्धकर ॥ ६ ॥ व कपालमोचनजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है और वहां संसार में प्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि का तड़ाग है ॥ ७ ॥ उसमें विधि से नहाकर व विधिपूर्वक श्राद्धकर गयाश्राद्ध की नाईं

उसके पितर प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥ और वहींपर यज्ञकुंड है जहां कि पहले प्रजापतिजी ने सब मनुष्यों के हित के लिये विधि से यज्ञ किया है ॥ ९ ॥ व जहांपर सामर्थ्यवान् विष्णु ने यज्ञ नाशने के लिये छलसे ब्राह्मणरूप से स्थित पुरुषों के भुजाओं को छेदन किया है ॥ १० ॥ उस यज्ञकुंड को देखकर मनुष्य तीन पापों से छूटजाता है और वहीं पर श्राद्धकरने पर मनुष्य कृतार्थ होता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर जहां रुक्मिवती नदी है उस पिंडारकतीर्थ में सब पापों को नाशनेवाली जाम्बवती नदी है ॥ १२ ॥ और त्रिलोक में जो कोई तीर्थ हैं वे सब वैशाखी में उसी तीर्थमें आते हैं ॥ १३ ॥ और गंगा, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पुष्कर, यज्ञ, वेद व देवता निस्सन्देह वहां आते हैं ॥ १४ ॥ पितर

विधि ॥ पितरस्तुष्टिमायान्ति गयाश्राद्धेन वै यथा ॥८॥ यज्ञावटो हि तत्रैव यत्र पूर्वंप्रजापतिः ॥ चकारविधिनायज्ञं स र्वलोकहिताय च ॥ ९ ॥ भुजच्छेदःकृतो यत्र विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ छद्मनाद्विजरूपेण स्थितानांयज्ञनाशने ॥१०॥ यज्ञावटन्तु तंदृष्ट्वा मुच्यतेपातकत्रयात् ॥ कृतेश्राद्धे तु तत्रैव कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ ११ ॥ ततःपिण्डारकेतीर्थे यत्र रु क्मिवतीनदी ॥ नदीजाम्बवतीनाम सर्वपातकनाशिनी ॥ १२ ॥ यानिकानि च तीर्थानि त्रैलोक्येसम्भवन्ति हि ॥ वै शाख्यांतानिसर्वाणि तत्रैवायान्तितीर्थके ॥ १३ ॥ गङ्गा चैव कुरुक्षेत्रं नैमिषंपुष्कराणि च ॥ यज्ञावेदास्तथादेवाः समा यान्ति न संशयः ॥ १४ ॥ अपि नः सकुलेजातो यो वै पिण्डप्रदोभवेत् ॥ पिण्डारकंमहातीर्थे यास्यामःपरमांगति म् ॥ १५ ॥ वृक्षत्वं च गता ये च पिशाचत्वं च ये गताः ॥ भूतत्वं वै गता ये च ये च प्रेतत्वमागताः ॥ १६ ॥ ये च कीटत्वमापन्ना तिर्यग्योनिगताश्च ये ॥ नरकेयेनिमग्नाश्च गच्छन्तिपरमांगतिम् ॥ १७ ॥ गयातोप्यधिकंप्रोक्तं श्राद्धं

कहते हैं कि वही मेरे वंश में पैदा हुआ है जोकि मुझको पिंडारक महातीर्थ में पिंडदायक होवै क्योंकि उससे हम उत्तमगति को प्राप्त होवैंगे ॥ १५ ॥ और जो वृक्षत्व को प्राप्त हैं व जो पिशाचता को प्राप्त हैं और जो भूतत्वको प्राप्त हैं तथा जो प्रेतता में स्थित हैं ॥ १६ ॥ और जो कीटता को प्राप्त हैं तथा जो पशु, पक्षी की योनि में प्राप्त हैं व जो नरक में मग्न हैं वे उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तम ! वहां गया से भी अधिक श्राद्ध कहा गया है और वहां वैशाखी में श्राद्ध करनेवाला

मनुष्य कृतार्थ होता है ॥१८॥ और वहां वैशाख में श्राद्ध करने से मनुष्य तीन पातकोंसे छूटजाता है इस कारण पितरों की तृप्ति के लिये वहां श्राद्ध करना चाहिये ॥१६॥ पितरों की भक्ति से संयुत जो मनुष्य उत्तम पिंडारकतीर्थ में पिंडपात करते हैं उसी से पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं व निर्मल तथा विशेष लोकों को जाते हैं ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायापिण्डारकतीर्थमाहात्म्यंनामपड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अहै वर्द्धिनी द्वादशी कर जिमि अतुल प्रभाव । सत्ताइसवें में सोई कह्यो चरित प्रस्ताव ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझ से कुछ कौतुक को कहिये

तत्र द्विजोत्तमाः ॥ कृतकृत्योभवेन्मर्त्यो वैशाख्यांश्राद्धकृन्नरः ॥ १८ ॥ वैशाखे तु कृतेश्राद्धे मुच्यतेपातकत्रयात् ॥ कर्त्तव्यंपितृतृप्त्यर्थं तस्माच्छ्राद्धन्तु तत्र वै ॥ १६ ॥ पिण्डारकेतीर्थवरेमनुष्याः कुर्वन्तिपिण्डंपितृभक्तियुक्ताः ॥ तेनैवतृप्तिंपितरःप्रयान्ति गच्छन्तिलोकान्विमलान्विशेषान् ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येपिण्डारकतीर्थमाहात्म्यन्नामषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ कथयस्वमुनिश्रेष्ठ किञ्चित्कौतूहलंमम ॥ पुण्यंपवित्रंपापघ्नं तीर्थन्तुवदविस्तरात् ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ मथुराद्वारकायोध्या कलिकालेपुरीत्रयम् ॥ धर्मार्थकामदंभूप मोक्षदंहरिवल्लभम् ॥ २ ॥ मथुरायान्तु कालिन्दी गोमतीकृष्णसन्निधौ ॥ अयोध्यायान्तु सरयूर्मुक्तिदासेविता तु या ॥ ३ ॥ अयोध्यायांहरिंविष्णुं द्वारकां कृष्णमेव हि ॥ मथुरायांकेशवं च स्मृत्वामुक्तिरवाप्यते ॥ ४ ॥ धन्यासौमथुरालोके यत्र जातोहरिःस्वयम् ॥ द्वारका

और पुण्यदायक व पवित्र तथा पापनाशक तीर्थ को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि हे भूप ! कलिकाल में मथुरा, द्वारका व अयोध्या ये तीनों पुरी धर्म, अर्थ व काम को देनेवाली तथा मोक्षदायिनी व विष्णुजी को प्यारी हैं ॥ २ ॥ मथुरा में यमुना व कृष्ण के समीप गोमती तथा अयोध्या में सरयू जोकि सेवित होकर मुक्तिदायिनी है ॥ ३ ॥ अयोध्या में हरि विष्णुजी को और द्वारका में कृष्ण को तथा मथुरा में केशवजी को स्मरणकर मुक्ति मिलती है ॥ ४ ॥ संसार में यह मथुरा

धन्य है जहां कि आपही विष्णुजी पैदाहुए है और संसार में द्वारका सफल है जहां कि विष्णुजी ने क्रीड़ा किया है ॥ ५ ॥ और सब कामनाओं को देनेवाली अयोध्या धन्यों के मध्य में भी धन्य है जिसको धर्म के जाननेवाले आपही श्रीरामदेवजी ने पालन किया है ॥ ६ ॥ कल्प की संज्ञा से सेवन कीहुई काशी जिस फल को देती है कलियुग में एक दिन से मथुरा उस फलको देती है ॥ ७ ॥ हज़ार मन्वन्तरों में मनुष्य प्रयाग में जिस फलको पाता है द्वारका में आधे पल से बसते हुए मनुष्यों को वही फल मिलता है ॥ ८ ॥ और प्रभास व कुरुक्षेत्र में सौ वर्षों से जो फल मिलता है आधेपल भर अयोध्या में बसते हुए पुरुषों को वही फल होता है ॥ ९ ॥ और

सफलालोके क्रीडितं यत्र विष्णुना ॥ ५ ॥ धन्यानामपि साधन्या अयोध्यासर्वकामदा ॥ यास्वयंरामदेवेन पालिता धर्मवेदिना ॥ ६ ॥ यद्ददातिफलंकाशी सेविताकल्पसंज्ञया ॥ कलौददातिमथुरा वासरेणापि तत्फलम् ॥ ७ ॥ मन्वन्तर सहस्रैस्तु प्रयागेयत्फलंलभेत् ॥ निमिषार्द्धेनवसतां द्वारकायान्तु तत्फलम् ॥ ८ ॥ प्रभासे च कुरुक्षेत्रे यत्फलंशतव त्सरैः ॥ वसतांनिमिषार्द्धेन अयोध्यायान्तु तद्भवेत् ॥ ९ ॥ अयोध्याधिपतिंरामं मथुरायान्तु केशवम् ॥ द्वारकावासिनं कृष्णं कीर्त्तयेदतिसुन्दरम् ॥ १० ॥ कीर्त्तनेनापि मथुरा स्मरणाद्द्वारकापुरी ॥ अयोध्यागमनेनापि त्रिभिःशुद्धम्प दम्भवेत् ॥ ११ ॥ कृष्णंस्वयम्भुवंविष्णुं द्वारकांत्रिदिवोपमाम् ॥ श्रुत्वा वाप्यथवा दृष्ट्वा कुरुतेजन्मसंक्षयम् ॥ १२ ॥ श्रुताभिलषितादृष्टा अयोध्यामथुरापुरी ॥ पापंहरतिकल्पोत्थं द्वारका च तृतीयका ॥ १३ ॥ कृष्णंविष्णुंहरिंदेवं यः स्मरेच्च कलौयुगे ॥ द्वादश्यांजागृयाद्रात्रौ वाजिमेधायुतम्फलम् ॥ १४ ॥ बालक्रीडनकंस्थानं येस्मरन्तिदिनेदिने ॥

अयोध्या के स्वामी श्रीरामजी व मथुरा में केशव तथा द्वारकावासी सुन्दर श्रीकृष्णजी को कीर्तन करै ॥ १० ॥ कीर्तन से मथुरा व स्मरण करने से द्वारकापुरी तथा अयोध्या गमन से और तीनों से भी पग शुद्ध होता है ॥ ११ ॥ कृष्ण व आपही से उपजेहुए विष्णु तथा स्वर्ग के समान द्वारका को सुनकर व देखकर मनुष्य जन्म को नाश करता है ॥ १२ ॥ और सुनी, चाही व देखी हुई अयोध्या, मथुरापुरी व तीसरी द्वारका कल्प से उपजेहुए पाप को हरती है ॥ १३ ॥ और कृष्ण, विष्णु व हरिदेव को जो कलियुग में स्मरण करता है व द्वादशी तिथिमें जो रात्रि को जागता है उसको दश हज़ार अश्वमेध का फल होता है ॥ १४ ॥ व हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य प्रतिदिन

बालखेल के स्थान को स्मरण करते हैं वे सुवर्ण पर्वत के देनेवाले पुण्य को पाते हैं ॥ १५ ॥ वे मनुष्य कलियुग में धन्य व सुरोत्तम हैं जिन्हों ने कि सरयू के जल में व गोमती में स्नान किया तथा यमुना में नहाया है ॥ १६ ॥ और हाथों को जोड़ कर जो मनुष्य पश्चिम दिशा के सामने नहाकर द्वारका को स्मरण करेंगे उनको कोटिगुना फल होगा ॥ १७ ॥ और कलियुग में जो मनुष्य मन से द्वारकापुरी को स्मरण करता है वह मनुष्य लीला से दशहज़ार कपिला गौवों के फल को पाता है ॥ १८ ॥ व हे मनुजाधिप ! कलियुग में द्वारकापुरी को जाकर मनुष्य गंगासागर से उपजेहुए व हरिद्वार से उत्पन्न फल को पाता है ॥ १९ ॥ व हे राजन् ! मैं मार्कण्डेय मुनीश्वर सात

स्वर्णशैलप्रदम्पुण्यं लभतेराजसत्तम ॥ १५ ॥ धन्यास्तेमानुषालोके कलिकालेसुरोत्तमाः ॥ प्लवनंसरयूतोये गोमत्यांयमुनाकृतम् ॥ १६ ॥ पश्चिमाशांनरःस्नात्वा कृत्वा वै करसम्पुटम् ॥ द्वारकांयेस्मरिष्यन्ति तेषांकोटिगुणम्फलम् ॥ १७ ॥ मनसाचिन्तयेद्यो वै कलौद्वारावतीम्पुरीम् ॥ कपिलायुतपुण्यञ्च लभतेहेलयानरः ॥ १८ ॥ गङ्गासागरजम्पुण्यं गङ्गाद्वारभवंतथा ॥ कलौद्वारावतीं गत्वा प्राप्नोतिमनुजाधिप ॥ १९ ॥ सप्तकल्पस्मरोभूप मार्कण्डेयोमुनीश्वरः ॥ समाना चाधिका नापि कलौद्वारावतीयथा ॥ २० ॥ दुर्वाससासमोधन्यो ह्यन्योनास्तिनृपोत्तम ॥ भारस्य वन्धनंकृत्वा द्वारकायांधृतोहरिः ॥ २१ ॥ मा काशीं मा कुरुक्षेत्रं प्रभासं मा च पुष्करम् ॥ द्वारकांव्रजराजर्षेपश्यकृष्णमुखंशुभम् ॥ २२ ॥ अश्वमेधसहस्रन्तु राजसूयशतंकलौ ॥ पदेपदे च लभते द्वारकांगच्छतेनरः ॥ २३ ॥ सफलंजीवितंतेषां कलौनृपवरोत्तम ॥ येषां न स्खलतेचित्तं द्वारकांपरिगच्छताम् ॥ २४ ॥ माता च पुत्रिणीतेन पुत्रवन्तःपिताम

कल्पों का स्मरण करनेवाला हूं जैसी कलियुग में द्वारकापुरी है उसके समान व उससे अधिक दूसरी पुरी नहीं है ॥ २० ॥ हे नृपोत्तम ! दुर्वासा के समान अन्य धन्य मनुष्य नहीं है कि जिन्होंने भार का बंधनकर द्वारका में विष्णुजी को धारण किया ॥ २१ ॥ हे राजर्षे ! काशी व कुरुक्षेत्र, प्रभास और पुष्कर को मत जावो बरन द्वारका को जावो और श्रीकृष्णजी के उत्तम मुख को देखो ॥ २२ ॥ कलियुग में जो मनुष्य द्वारका को जाता है वह पग २ पै हज़ार अश्वमेध व सौ राजसूय यज्ञों के फल को पाता है ॥ २३ ॥ हे नृपवरोत्तम ! कलियुग में उनका जीवन सफल है व द्वारका को जातेहुए जिन मनुष्यों का चित्त चंचल नहीं होता है ॥ २४ ॥ उससे माता

पुत्रिणी होती है व पितामह पुत्रवान् होते हैं कि जिसने कृष्ण के समीप गोमती के किनारे पिंडदान किया है ॥ २५ ॥ और गोपीचन्दन की मुद्रा करके जो पृथ्वी में घूमता है वह देश भी पवित्र होजाता है फिर जहां वह स्थित होवै वहां क्या कहना है ॥ २६ ॥ व जो मनुष्य द्वारका में उपजी हुई तथा कृष्ण से सेवित तुलसी को मस्तक से धारण करता है वह स्वर्ग का स्वामी होता है ॥ २७ ॥ दैत्यों के शत्रु विष्णुजी को भस्म अधिक प्यारी है व श्रीगंगाजी से उत्पन्न जल प्रिय है और सदैव काशीपुरी तथा तुलसी व आमला प्रिय है वैसेही व्यासरचित शास्त्र तथा रामायण प्रिय है और द्वारका व चॅबेली से उपजा हुआ पुष्प व हरिवासर में किया

द्धः ॥ पिण्डदानंकृतंयेन गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ २५ ॥ गोपीचन्दनमुद्रान्तु कृत्वाभ्रमतिभूतले ॥ सोपि देशोभवेत्पूतः किम्पुनर्यत्र संस्थितः ॥ २६ ॥ द्वारकायांसमुद्भूतां तुलसींकृष्णसेविताम् ॥ नित्यंबिभर्तिशिरसा सभवेत्रिदिवेश्वरः ॥ २७ ॥ दैत्यारेर्हि प्रियाविभूतिरधिका नीरञ्च गङ्गोद्भवं नित्यं काशिपुरी तथा च तुलसीधात्रीफलंवल्लभम् ॥ शास्त्रं व्यासकृतं तथा च दयितं रामायणंद्वारका पुष्पम्मालतिसम्भवञ्च दयितं गीतंकृतंवासरे ॥ २८ ॥ गृहेयस्य सदा तिष्ठेद्गोपीचन्दनमृत्तिका ॥ द्वारकातिष्ठते तत्र कृष्णेनसहिताकलौ ॥ २९ ॥ कृतघ्नोवापि गोघ्नोपि योनरःसर्वपापकृत् ॥ गोपीचन्दनसम्पर्कात्पूतोभवतितत्क्षणात् ॥ ३० ॥ गोपीचन्दनखण्डन्तु योददाति हि वैष्णवे ॥ कुलमेकोत्तरंतेन तारितं सशतंभवेत् ॥ ३१ ॥ द्वारकासम्भवाभूप तुलसीयस्यमन्दिरे ॥ तस्यवैवस्वतो नित्यं बिभेति सह किङ्करैः ॥ ३२ ॥ द्वारकासम्भवामृत्स्ना तुलसीकृष्णकीर्त्तनम् ॥ क्रतुकोटिशतंपुण्यं कथितंव्याससूनुना ॥ ३३ ॥ आलोड्य सर्वशास्त्राणि

हुआ गान प्रिय है ॥ २८ ॥ व जिसके घर में गोपीचंदन की मिट्टी सदैव स्थित रहती है वहां कलियुग में श्रीकृष्णसमेत द्वारका स्थित होती है ॥ २९ ॥ व जो मनुष्य कृतघ्न तथा गोघाती और सब पापों का करनेवाला है वह गोपीचंदन के स्पर्श से उसीक्षण पवित्र होजाता है ॥ ३० ॥ और जो वैष्णव के लिये गोपीचन्दन का खण्ड देता है उससे एक सौ एक पुश्तियां तारित होती हैं ॥ ३१ ॥ व हे राजन् ! जिसके मन्दिर में द्वारका में उपजी हुई तुलसी होवै उससे दूतों समेत यमराज डरते हैं ॥ ३२ ॥ व हे भूप ! द्वारका में उपजी हुई मिट्टी व तुलसी और श्रीकृष्ण का कीर्तन व्यास के पुत्र श्रीशुकदेवजी से करोड़ सौ यज्ञों के समान पुण्यवान् कहा गया है ॥ ३३ ॥ हे

भूपाल ! सब शास्त्रों व पुराणों को मैंने बार २ खोजकर देखा परन्तु द्वारका के समान पुरी नहीं देखीगई ॥ ३४ ॥ जिसने द्वारका गमन व श्रीकृष्णजी का कीर्तन किया उसने हज़ारों तीर्थों में स्नान किया व करोड़ों यज्ञों से पूजन किया ॥ ३५ ॥ यदि मनुष्य द्वारका को जावै तो इन्द्रियों का दमन व सांख्य का अभ्यास मनुष्यों का क्या करैगा ॥ ३६ ॥ जिन्होंने द्वारकापुरी को जाकर श्रीकृष्णजीका मुख नहीं देखा वे मनुष्य पंगु हैं और जन्मान्ध के समान हैं ॥ ३७ ॥ और भक्ति से बार २ नाचतेहुए जिन्होंने द्वारका में हरिवासर द्वादशी तिथि में जागरण किया वे कृतार्थ व धन्य हैं ॥ ३८ ॥ और श्रीकृष्णजी के स्थान को जाकर जो गोमती

पुराणानि पुनःपुनः ॥ मयादृष्टामहीपाल द्वारका न समापुरी ॥ ३४ ॥ द्वारकागमनंयेन कृतंकृष्णस्यकीर्त्तनम् ॥ स्नानं तीर्थसहस्रैस्तु तेनेष्टंक्रतुकोटिभिः ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणां तु दमनं किंकरिष्यतिदेहिनाम् ॥ सांख्यस्याभ्यसनं वापि द्वारकांगच्छते यदि ॥ ३६ ॥ पङ्गवस्ते न सन्देहो जन्मान्धेनसमाजनाः ॥ दृष्टंकृष्णमुखं नैव यैर्गत्वाद्वारकाम्पुरीम् ॥ ३७ ॥ कृतकृत्यास्तु तेधन्या द्वारकांवासरेहरेः ॥ कृतंजागरणंभक्त्या नृत्यमानैर्मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥ कृष्णालयन्तु योगत्वा गोमत्यांपिण्डपातनम् ॥ करोतिशक्त्यादानन्तु तृप्तास्तस्यपितामहाः ॥ ३९ ॥ पिशाचत्वं तु प्रेतत्वं न भवेत्तस्यदेहिनः ॥ शतजन्मनिराजेन्द्र योगतोद्वारकाम्पुरीम् ॥ ४० ॥ अन्नदानेनयत्पुण्यं प्रयागेत्यजतस्तनुम् ॥ द्वादश्यांनिमिषार्द्धेन तत्फलंकृष्णसन्निधौ ॥ ४१ ॥ सूर्यग्रहेगवांकोटिं दत्त्वायत्फलमाप्नुयात् ॥ तत्फलंकलिकाले तु द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ ४२ ॥ कोटिभारंसुवर्णस्य ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलंकृष्णदर्शने ॥ ४३ ॥ दोलासंस्थञ्च येकृष्णं

नदी में पिंडपात करता है व शक्ति के अनुसार दान देता है उसके पितामह तृप्त होजाते हैं ॥ ३९ ॥ व हे नृपेन्द्र ! जो द्वारकापुरी को गया है उस मनुष्य को सौ जन्मों तक पिशाचत्व व प्रेतत्व नहीं होता है ॥ ४० ॥ और प्रयाग में शरीर को छोड़तेहुए पुरुष को अन्नदान से जो पुण्य होता है कृष्णजी के समीप द्वादशी में आधे पलसे वह फल होता है ॥ ४१ ॥ और सूर्यग्रहण में करोड़ गौवोंको देकर मनुष्य जिस फल को पाता है कलियुग में वह फल द्वारकापुरी में प्रतिदिन होता है ॥ ४२ ॥ और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में कोटि भार सुवर्ण को देकर मनुष्य जिस फलको पाता है वह फल श्रीकृष्णजी के दर्शन में होता है ॥ ४३ ॥ और चैत व वैशाख महीने

में जो मनुष्य हिंडोला पै बैठे हुए श्रीकृष्णजी को देखते हैं उनके पुत्र, पौत्र, नाना व प्रपितामह ॥ ४४ ॥ व हे नृपोत्तम ! श्वशुर, दास, नौकर व पशु प्रलय पर्यन्त विष्णुजी के साथ क्रीड़ा करते हैं ॥ ४५ ॥ व श्रीकृष्णजी के समीप जो मनुष्य द्वादशी को उपवास करते हैं कलिकाल में मैं उनका श्रीकृष्णजी से कुछ अन्तर नहीं देखता हूं ॥ ४६ ॥ और श्रीकृष्णजी के समीप द्वादशी के समान दिन नहीं है व सदैव श्रीकृष्णजी के समीप सब तिथियां युगादितिथियों के समान होती हैं ॥ ४७ ॥ कलियुग में अधिक पुण्यवाले मनुष्यों को जाकर द्वारकापुरी को सेवन करना चाहिये हे राजन् ! कलियुग में छः पुरी सुलभ हैं और द्वारका दुर्लभ है ॥ ४८ ॥ जिसलिये कि

पश्यन्तिमधुमाधवे ॥ तेषाम्पुत्राश्च पौत्राश्च मातामहपितामहाः ॥ ४४ ॥ श्वशुरादासभृत्याश्च पशवश्च नृपोत्तम ॥ क्रीडन्तिविष्णुना सार्द्धं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ४५ ॥ द्वादश्याह्युपवासंये कुर्वतेकृष्णसन्निधौ ॥ पश्यामिनान्तरंकिञ्चित्कलिकाले च कृष्णतः ॥ ४६ ॥ कृष्णस्यसन्निधौ नैव वासरोद्वादशीसमः ॥ युगादयःसमाःसर्वा नित्यंकृष्णस्यसन्निधौ ॥ ४७ ॥ कलौद्वारावतीसेव्या गत्वापुण्याधिकैर्नरैः ॥ षट्पुरीसुलभाराजन् दुर्लभाद्वारकाकलौ ॥ ४८ ॥ स्मरणात् कीर्तनाद्यस्माद्भुक्तिमुक्तिप्रदानृणाम् ॥ दुर्वाससा तु ऋषिणा रक्षितातिष्ठतापुरी ॥ ४९ ॥ कलौ न शक्यतेगन्तुं विनाकृष्णप्रसादतः ॥ कृष्णस्यदर्शनंकर्तुं यान्तिरुद्रादयःसुराः ॥ ५० ॥ त्रिकालमवनीनाथ रुक्मिणीदर्शनाय च ॥ रुक्मिणीसहितंसर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ५१ ॥ कृष्णेनपालितंसर्वं सन्तिष्ठतियुगेयुगे ॥ सफलंजीवितंतस्य सफलंतस्यचेष्टितम् ॥ ५२ ॥ सफलाभारतीतस्य कृष्णकृष्णेतिवक्ष्यति ॥ द्वारकायांसुतंदृष्ट्वा गायन्तिदिविसंस्थिताः ॥ ५३ ॥

वह स्मरण व कीर्तन करने से मनुष्यों को भुक्ति, मुक्ति देनेवाली है उसी कारण टिकेहुए दुर्वासाजी से वह पुरी रक्षित है ॥ ४९ ॥ और कलियुग में श्रीकृष्णजी की प्रसन्नता क विना उस पुरी को कोई नहीं जासक्ता है और श्रीकृष्णजी का दर्शन करने के लिये शिवादिक देवता जाते हैं ॥ ५० ॥ व हे पृथ्वीनाथ ! त्रिकाल रुक्मिणीनाथ के दर्शन के लिये जाते हैं और रुक्मिणी समेत देवता, दैत्य व मनुष्यों समेत सब संसार ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्णजी से पालित होकर युग २ में स्थित है उसका जीवन सफल है व उसका व्यवहार सफल है ॥ ५२ ॥ व उसकी वाणी सफल है जोकि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है और द्वारका में पुत्र को देखकर नरक से छूटेहुए पापी

पितरलोग स्वर्ग में स्थित होते हैं व गाते हैं व चलते हैं तथा हँसते हैं और जो मनुष्यों का गुप्त पाप होता है उसको गोमती स्मरण व कीर्तन करने से नाश करती है फिर स्तुति करने से क्या कहना है और रुक्मिणी सहित शंखी देव को शंखोद्धार में देखकर ॥ ५३।५४।५५ ॥ और पिंडारकतीर्थ में चतुर्भुजजी को देखकर मनुष्य अन्य कर्मों से क्या करैगा और रुक्मिणी व देवकीनन्दन तथा चक्रतीर्थ और गोमती ॥ ५६ ॥ व गोपीचन्दन संसार में दुर्लभ है और कलियुग में तुलसी दुर्लभ है और पितरों को तृप्तिदायक पुत्र तीनों लोकों में दुर्लभ हैं ॥ ५७ ॥ व पृथ्वी को भार देनेवाले वे पुत्र दुर्लभ जानने योग्य हैं जोकि गया में पिंडदान व द्वारकामें श्रीकृष्णजी का दर्शन

नरकात्पापिनोमुक्ताः प्रचलन्तिहसन्ति च ॥ गोप्यंयत्पातकंपुंसां गोमतीतद्व्यपोहति ॥ ५४ ॥ स्मरणात्कीर्त्तनाद्वापि किम्पुनःस्तवनेकृते ॥ रुक्मिणीसहितंदेवं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम् ॥ ५५ ॥ पिण्डारकेचतुर्बाहुं दृष्ट्वान्यैःकिंकरिष्यति ॥ रुक्मिणीदेवकीपुत्रश्चक्रतीर्थञ्च गोमती ॥ ५६ ॥ गोपीनांचन्दनंलोकेदुर्लभातुलसीकलौ ॥ दुर्लभास्त्रिषुलोकेषु पितॄणां तृप्तिदास्सुताः ॥ ५७ ॥ दुर्लभास्तेसुताज्ञेया धरणीभारदायकाः ॥ गयायांपिण्डदानञ्च द्वारकांकृष्णदर्शनम् ॥ ५८ ॥ करिष्यन्तिकलौप्राप्ते वर्द्धिनीसमुपोषणम् ॥ समपुण्यफलाह्येषा द्वारकावर्द्धिनीगया ॥ ५९ ॥ न न्यूनाचाधिकावापि कथिताविष्णुनास्वयम् ॥ वर्द्धिनी चाधिका राजञ्छृणुवक्ष्यामिकारणम् ॥ ६० ॥ द्वादश्यामुपवासेन द्वादश्याम्पारणे न तु ॥ प्राप्यतेहेलयायेन तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ ६१ ॥ गृहेपि वसतांतीर्थं गृहेपि वसतांतपः ॥ गृहेपि वसतां मोक्षं वर्द्धिनीसमुपोषणात् ॥ ६२ ॥ वर्द्धिनीद्वारकागङ्गा गयागोविन्ददर्शनम् ॥ गोमतीगोकुलंगीता दुर्लभङ्गापि

करते हैं ॥ ५८ ॥ व कलियुग प्राप्त होनेपर जो वर्द्धिनी एकादशी का व्रत करैंगे वे दुर्लभ होवैंगे और यह द्वारका व वर्द्धिनी एकादशी तथा गया समान पुण्यवाली है ॥ ५९ ॥ क्योंकि विष्णुजी से आपही न्यून व अधिक नहीं कहीगई है वरन हे राजन्! वर्द्धिनी अधिक है उस कारण को सुनिये मैं कहता हूं ॥ ६० ॥ कि जिससे द्वादशी में उपास करने से व द्वादशी में पारण करनेसे वह विष्णुजी का परमपद लीलाही से मिलता है ॥ ६१ ॥ और वर्द्धिनी के उपवास से घर में वसतेहुए लोगोंको भी तीर्थ होता है व घरमें वसतेहुए मनुष्यों को भी तप होता है और घरमें वसतेहुए लोगोंको भी मोक्ष होता है ॥ ६२ ॥ और वर्द्धिनी, द्वारका, गंगा, गया व गोविन्दजी का दर्शन तथा

गोमती, गोकुल, गीता और गोपीचन्दन दुर्लभ है ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! वर्द्धिनी के विना श्रीकृष्णजी हलासे नहीं मिलते हैं तुम इस संसारमें सैकड़ों व्रतोंको छोड़कर वर्द्धिनी का व्रत करो ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य मनमें श्रीकृष्णजी को करके भक्ति से इस चरित्र को सुनता है ।ह हज़ार अश्वमेध यज्ञोंके फलको पाता है ॥ ६५ ॥ और केशवजी के माहात्म्य को जो जागरण में सुनैंगे सब पापों से छूटेहुए वे विष्णुजी के स्थान को जावैंगे ॥ ६६ ॥ व जो मनुष्य नित्य पढ़ैंगे व सुनैंगे वे तुला पुरुषके दानका फल पावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६७ ॥ व हे राजन् ! श्रीकृष्णजी के वासर में जो थोड़ा भी दियाजाता है वह सब कोटिगुना जानने योग्य है ऐसा कवियों ने कहा है ॥ ६८ ॥

चन्दनम् ॥ ६३ ॥ वर्द्धिनीं न विनाकृष्णो हेलयालभ्यतेन्नृप ॥ हित्वाव्रतशतानीह कुरुत्वंवर्द्धिनीव्रतम् ॥ ६४ ॥ एतच्छृणोतिभक्त्यायः कृत्वामनसिकेशवम् ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥६५॥ श्रोष्यन्तिजागरेये वै माहात्म्यं केशवस्य च ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताः पदंयास्यन्तिवैष्णवम् ॥ ६६ ॥ पठिष्यन्तिनरोनित्यं ये वै श्रोष्यन्तिभक्तितः ॥ तुलापुरुषदानस्य फलंप्राप्स्यन्त्यसंशयम् ॥६७॥ कृष्णस्यवासरे नूनं यत्स्वल्पमपि दीयते ॥ सर्वंकोटिगुणंज्ञेय मित्याहुःकवयोन्नृप ॥ ६८ ॥ मानकूटंतुलाकूटं कन्याकूटञ्च यद्भवेत् ॥ तत्सर्वंविलयंयान्ति एकादश्यान्तुजागरे ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ राज्यं येन पटान्तलग्नतृणवत् त्यक्तं गुरोराज्ञया पाथेयं परिगृह्य धर्ममतुलं घोरं वनं प्रस्थितः ॥ श्रुत्वाप्याऽऽत्मविवासनं च बलवान् यो नागतो विक्रियां पापाढ्यः स विभीषणार्तिहरणो रामाभिधानो

और मानकूट, तुलाकूट व जो कन्याकूट पाप होता है वह सब एकादशी के जागरण में नाश होजाता है ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । किये जागरण द्वादशी माहिं जौन फल होत । अट्ठाइस अध्यायमें सोइ चरित्र उदोत ॥ मार्कंडेयजी बोले कि जिन्होंने वस्त्र में लगेहुए तिनुका की नाईं राज्य को पिता की आज्ञा से छोड़दिया और अतुल धर्म को मार्गव्यय लेकर जो भयंकर वनको चलेगये व अपने वनगमन को भी सुनकर जो विकार को न प्राप्तहुए वे विभी-

पण के दुःख को हरनेवाले श्रीरामनामक विष्णुजी तुमलोगों की रक्षा करैं ॥ १ ॥ श्रीविष्णु रामजी के तत्त्व को जाननेवाले और वेदों व शास्त्रों के अर्थों के पारगामी व सब धर्मों को जाननेवाले तथा भगवद्भक्ति में तत्पर व सुख से बैठेहुए प्रह्लादजी से पूछने के लिये सब शास्त्रार्थों को जाननेवाले तथा अपने धर्मके पालक ऋषिलोग आये ॥ २ । ३ ॥ व बोले कि विना ज्ञान व विना ध्यान और विना इन्द्रियोंके दमन व विन परिश्रम जिससे यह विष्णुका परमपद मिलता है हे दनुजोत्तम! देखे व न देखेहुए फल से उत्पन्न उस सब धर्म को संपूर्णता से संक्षेप से कहो ॥ ४ । ५ ॥ ऐसा कहेहुए सबलोकोंके हित में उद्यत व नारायणमें परायण इन महाभाग प्रह्लादजीने संक्षेप से

हरिः ॥ १ ॥ प्रह्लादंसर्वधर्मज्ञं वेदशास्त्रार्थपारगम् ॥ विष्णोरामस्यतत्त्वज्ञं भगवद्भक्तितत्परम् ॥ २ ॥ सुखासीनोपविष्टन्तु ऋषयःप्रष्टुमागताः ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञाः स्वधर्मपरिपालकाः ॥ ३ ॥ विना ज्ञानाद्विना ध्यानाद्विना चेन्द्रियनिग्रहात् ॥ अनायासेनयेनैतत्प्राप्यतेपरमंपदम् ॥ ४ ॥ संक्षेपात्केशवस्येह दृष्टादृष्टफलोद्भवम् ॥ धर्मंदनुजशार्दूल ब्रूहिसर्वमशेषतः ॥ ५ ॥ इत्युक्तोसौमहाभागो नारायणपरायणः ॥ कथयामाससंक्षेपात्सर्वलोकहितोद्यतः ॥ ६ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि गुह्याद्गुह्यतरंमहत् ॥ यस्यसंश्रवणादेव सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ७ ॥ अष्टादशपुराणानां सारात्सारतरं च यत् ॥ तदहंकथयाम्यद्य सर्वलोकहितायवः ॥ पृच्छतःषण्मुखस्याह यत्पुराभगवान्हरः ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ चतुर्विधञ्च यत्पापं कोटिजन्मार्जितंकलौ ॥ जागरेवैष्णवंशास्त्रं वाचयित्वाप्रणश्यति ॥ ९ ॥ वैष्णवस्य तु शास्त्रस्य यो वक्ताहरिवासरे ॥ मद्भक्तंतंविजानीयान्नरकीत्वन्यथाभवेत् ॥ १० ॥ हरिजागरणेयस्य न निद्राजायते मुहुः ॥ मद्भक्तश्च वि

कहा ॥ ६ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि गुप्तसे भी बहुतही गुप्त चरित्रको मैं कहता हूं उसको सुनिये कि जिसके सुननेही से सब पापों का नाश होताहै ॥ ७ ॥ अठारह पुराणों के मध्य में जो साराश से भी अधिक सारांश है उसको मैं सब लोकों के हितके लिये इस समय तुमलोगों से कहता हूं जिसको पुरातन समय पूछतेहुए स्वामिकार्त्तिकेयजी से शिवजी ने कहा है ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि कोटिजन्मों में इकट्ठा कियाहुआ जो चार प्रकार का पाप है वह कलियुग में जागरण में विष्णुजी के शास्त्र को पढ़कर नाश होजाता है ॥ ९ ॥ हरिवासर द्वादशी तिथिमें जो विष्णुजी के शास्त्र को पढ़ता है उसको मेरा भक्त जानै अन्यथा मनुष्य नरकगामी होता है ॥ १० ॥ व

विष्णुजी के जागरण में जिसको बार २ निद्रा नहीं आती है और जो नाचता व गाता है वह विशेषकर मेरा भक्त है ॥ ११ ॥ उसको मैं उत्तम ज्ञान को देता हूं व विष्णुजी मोक्ष को देते हैं इस कारण जानतेहुए मेरे भक्त को जागरण करना चाहिये ॥ १२ ॥ अन्यथा जो विष्णुजी से वैर करते हैं वे पाखण्डी जानने योग्य हैं और हरिवासर में जो जागरण करते हैं व जो गाते हैं ॥ १३ ॥ हे षण्मुख ! उनको आधे निमेष से अग्निष्टोम व अतिरात्र यज्ञ के समान फल होता है व रात्रिमें विष्णुजी के मुख को बार २ देखते हुए पुरुष को वही फल होता है ॥ १४ ॥ व विष्णुजी के जागरण में जिनके रोम रात्रि में प्रसन्न होते हैं उनके उतने वंश विष्णुजी के समीप

शेषेण नृत्यतेगायते च यः ॥ ११ ॥ प्रयच्छामिपरंज्ञानं मोक्षंविष्णुःप्रयच्छति ॥ तस्माज्जागरणंकार्यं मद्भक्तेनविजानता ॥ १२ ॥ अन्यथालिङ्गिनोज्ञेया येद्विषन्तिजनार्द्दनम् ॥ जागरंये तु कुर्वन्ति गायन्तिहरिवासरे ॥ १३ ॥ अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां निमिषार्द्धेनषण्मुख ॥ जागरेपश्यतोविष्णोर्मुखंरात्रौमुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥ येषांहृष्यन्तिरोमाणि रात्रौजागरणे हरेः ॥ कुलानिदिवितावन्ति वसन्तिहरिसन्निधौ ॥ १५ ॥ यमस्यपाशनिर्मुक्ता नराःपापशतैर्वृताः ॥ द्वादश्यांयेप्रकुर्वन्ति जागरंपुरतोहरेः ॥ १६ ॥ कृतंयत्सुकृतंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ गीतशास्त्रविनोदेन द्वादशीजागरान्वितैः ॥ १७ ॥ शुभान्वितानिशानित्यं कलौकृष्णार्पितंमनः ॥ प्राणात्यये न मुह्यन्ति द्वादश्यांजागरेहरेः ॥ १८ ॥ पुत्रिणस्तेनरालोके धन्यास्तेख्यातपौरुषाः ॥ येषांवंशोद्भवाःपुत्राः कुर्वन्तिहरिजागरम् ॥ १९ ॥ इष्टंमखैःकृतंदानं दत्तंपिण्डंगयासुतैः ॥

स्वर्ग में वसते हैं ॥ १५ ॥ और जो मनुष्य द्वादशी तिथि में विष्णुजी के आगे जागरण करते हैं सैकड़ों पापोंसे घिरेहुए वे यमराज की फँसरी से मुक्त होजाते हैं ॥१६॥ और त्रिलोक में जो कुछ पुण्य है वह पुण्य गीतशास्त्र की क्रीड़ा से द्वादशी के जागरण से संयुत मनुष्यों से किया जाता है ॥ १७ ॥ और विष्णुजी की द्वादशी तिथि में व जागरण में जिनका मन श्रीकृष्णजी में लगगया उनकी रात्रि सदैव शुभ से संयुत होती है और वे प्राणों के विनाश में मोहित नहीं होते हैं ॥ १८ ॥ प्रसिद्ध पौरुषवाले वे मनुष्य धन्य व पुत्रवान् होते हैं जिनके वंशमें उपजेहुए पुत्र विष्णुजी का जागरण करते हैं ॥ १९ ॥ व जिन्होंने विष्णुजी का जागरण किया उन्होंने

यज्ञों से पूजन किया व दान दिया तथा गया में पिंड दिया और प्रयाग में नित्य स्नान किया ॥ २० ॥ व जिन्होंने हरिवासर में जागरण किया वे संन्यासियों के पुण्य को पागये व नित्य आश्रम में बसनेवालों के पुण्य को पागये व उन्होंने सब इष्टापूर्त कर्म किया ॥ २१ ॥ व हे षडानन ! जिसलिये जागरण से संयुत विष्णुजी के वासर को करते हैं उस कारण विष्णुभक्त मुझको सदैव प्यारे हैं ॥ २२ ॥ व द्वादशी तिथिमें जो श्रद्धा से जागरण नहीं करता है मनुष्यों के बीच में उसका दुष्टकर्म प्रकटता को प्राप्त है ॥ २३ ॥ विष्णुजी के वासर को प्राप्त होकर जिन्होंने जागरण नहीं किया उनका सौ जन्मों में उपजा हुआ वह पुण्य व्यर्थ होगया ॥ २४ ॥ पितर

स्नानंनित्यंप्रयागे तु यैःकृतंहरिजागरम् ॥ २० ॥ प्राप्तंसंन्यासिनांपुण्यं नित्यमाश्रमवासिनाम् ॥ इष्टापूर्त्तं तु सकलं यैःकृतंहरिजागरम् ॥ २१ ॥ दयिताविष्णुभक्ताश्च नित्यंममषडानन ॥ कुर्वन्तिवासरंविष्णोर्यस्माज्जागरणान्वितम् ॥ २२ ॥ श्रद्धयासहद्वादश्यां जागरं न करोतियः ॥ प्राकट्यमस्ति वै तस्य जनानांदुर्विचेष्टितम् ॥ २३ ॥ सम्प्राप्यवासरंविष्णोर्न यैर्जागरणंकृतम् ॥ व्यर्थंगतञ्च तत्पुण्यं तेषांजन्मशतोद्भवम् ॥ २४ ॥ पुत्रो वाप्यथ पौत्रो वा दौहित्रोदुहिता तथा ॥ करिष्यतिकुलेस्माकं कलौजागरणंहरेः ॥ २५ ॥ प्राप्तंसन्यासिनांपुण्यं नित्यमाश्रमवासिनाम् ॥ पीड्यमानाःप्रजल्पन्ति पितरोयमकिङ्करैः ॥ २६ ॥ मुक्तिर्भविष्यत्यस्माकं नरकाज्जागराद्धरेः ॥ भवेन्न चान्यथास्माकं मुक्तिर्यज्ञशतैःकृतैः ॥ २७ ॥ विनाजागरणेनैव नरकाद्धिकथञ्चन ॥ तस्माज्जागरणंकार्यं पितॄणांहितमिच्छता ॥ २८ ॥ भक्तिर्भागवतानाञ्च गोविन्दस्यानुकीर्त्तनम् ॥ तदेहभ्रमणंतस्मात्पुनर्लोकाद्भविष्यति ॥ २९ ॥ यस्यजागरणंजातं वर्द्धिनीद्वा

लोग कहते हैं कि हमलोगों के वंशमें जो पुत्र, पौत्र, नाती या कन्या विष्णुजी के दिनमें जागरण करै ॥ २५ ॥ वह संन्यासियों तथा सदैव आश्रम में बसनेवालों के पुण्य को पागया और यमदूतों से पीड़ित किये जातेहुए पितर कहते हैं ॥ २६ ॥ कि विष्णुजी के जागरण से हमलोगों की नरक से मुक्ति होगी और विना जागरण सौ यज्ञों के करने से भी किसी प्रकार नरक से मुक्ति न होगी इस कारण पितरों का हित चाहते हुए पुरुष को जागरण करना चाहिये ॥ २७ । २८ ॥ और जब भगवद्भक्तों की भक्ति व गोविन्द का कीर्तन होगा तब यहां फिर उस लोक से भ्रमण होगा ॥ २९ ॥ और वर्द्धिनी द्वादशी के दिन जिसका जागरण हुआ है उसने

आपही फिर देह की उत्पत्ति को जलादिया ॥ ३० ॥ वैसेही त्रिस्पृशा के दिन जिसने जागरण किया है वह विष्णुजी के शरीर में लीन होजाता है ॥ ३१ ॥ व हे षण्मुख! जिसने बोधिनी एकादशी को रात्रि में जागरण से संयुत किया है उसके स्थूल व सूक्ष्म पाप नाश होजाते हैं ॥ ३२ ॥ व विष्णुजी के द्वादशी दिन में फिर जो जागरण करता है व जो विष्णु के जागरण में ताल समेत व वाद्य से संयुत गीत को भक्ति से कराते हैं व हे स्कन्द! द्वादशी में शक्ति के अनुसार दान संयुत दोला-दिक आगे धराहुआ विष्णुजी को प्रिय है ॥ ३३ । ३४ ॥ और उस महाभगवद्भक्त के पुण्य को मैं कहता हूं कि सुवर्ण समेत हज़ार प्रस्थ प्रमाण भर तिलों को ब्राह्मण के

दशीदिने ॥ पुनर्देहप्रजननं दग्धंतेनात्मनास्वयम् ॥ ३० ॥ त्रिस्पृशावासरेयेन कृतंजागरणं तथा ॥ केशवस्यशरीरे तु सलीनोभवतीति च ॥ ३१ ॥ उन्मीलिनीकृतायेन रात्रौजागरणान्विता ॥ नश्यन्तितस्यपापानि स्थूलसूक्ष्माणिषण्मुख ॥ ३२ ॥ द्वादश्यांजागरंविष्णोर्यःकरोतिपुनर्दिने ॥ सतालंवाद्यसंयुक्तं संगीतंजागरंहरेः ॥ ३३ ॥ कारयन्ति च येभक्त्या द्वादश्यांदानसंयुतम् ॥ प्रेंखादिकंहरेरिष्टं शक्त्यास्कन्दपुरोधृतम् ॥ ३४ ॥ तस्यपुण्यञ्च वक्ष्यामि महाभागवतस्य हि ॥ तिलप्रस्थसहस्रन्तु सहिरण्यंद्विजातये ॥ ३५ ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति अयनेरविसंक्रमे ॥ हेमभारशतं नित्यं सवत्सकपिलायुतम् ॥ ३६ ॥ प्रेंखायाश्च प्रदानेन तत्फलम्प्राप्नुयात्कलौ ॥ यःपुनर्वासरेविष्णोर्दिव्यैर्ऋषिकृतैःस्तवैः ॥ ३७ ॥ तोषयेत्पद्मनाभन्तु वैदिकैर्मन्त्रसंयुतैः ॥ ऋग्यजुःसामसम्भूतैर्वैष्णवैश्चैव पुत्रक ॥ ३८ ॥ संस्कृतैःप्राकृतैः स्तोत्रैर्गीतवाद्यैरनेकधा ॥ प्रीतिंकरोतिदेवेशो द्वादश्यांजागरेस्थितः ॥ ३९ ॥ शृणुपुण्यंसमासेन यत्कृतंतेनषण्मुख ॥

लिये ॥ ३५ ॥ देकर मनुष्य जिस फलको पाता है व सूर्य के अयन व संक्रान्ति में नित्य बछड़ा समेत कपिला से युक्त सुवर्ण के सौ भारको देकर मनुष्य जिस फलको पाता है ॥ ३६ ॥ कलियुग में दोला के देने से मनुष्य उस फल को पाता है फिर जो विष्णुजी के वासर में उत्तम ऋषियों से किये हुए स्तोत्रों से ॥ ३७ ॥ व मन्त्र समेत वैदिक स्तोत्रों से जो विष्णुजी को प्रसन्न करता है व हे पुत्र! ऋक्, यजुः व सामवेद से उपजेहुए विष्णुजी के स्तोत्रों से जो स्तुति करता है ॥ ३८ ॥ व संस्कृत और प्राकृत स्तोत्रों से तथा अनेक प्रकार के गीतों व बाजनों से द्वादशी में जो विष्णुजी को प्रसन्न करता है जागरण में स्थित विष्णुजी उसकी प्रीति करते हैं ॥ ३९ ॥ हे

षडानन ! उसने जो पुण्य किया है उसको संक्षेप से सुनिये कि हे षण्मुख ! तिगुनी करके इक्कीस बार पृथ्वी को ॥ ४० ॥ देकर मनुष्य जिस फलको पाता है उस फल को वह मनुष्य पाता है व बछड़ा समेत लाख गौवों के देने से जो फल होता है ॥ ४१ ॥ उस फलको वह मनुष्य पाता है जो कि वैदिक स्तोत्रों से विष्णुजी की स्तुति करता है और एक पहर जागरण में दशगुनी प्रीति होती है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार फल के अनुसार विष्णु का जागरण करना चाहिये फिर जो रात्रि में गीता व सहस्रनाम को वैष्णवों के समीप विष्णुजी के आगे पढ़ता है वह विष्णुजी के उत्तम स्थान को जाता है जहां कि आपही नारायणजी हैं और पवित्र

त्रिःसप्तकृत्वाधरणीं त्रिगुणीकृत्य षण्मुख ॥ ४० ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलम्प्राप्नुयान्नरः ॥ गवांशतसहस्रेण सवत्सेनापि यत्फम् ॥ ४१ ॥ तत्फलम्प्राप्नुयान्मर्त्यः स्तोत्रैर्यःस्तोष्यतेहरिम् ॥ वैदिकैर्दशगुणाप्रीतिर्यामेनैकेनजागरे ॥ ४२ ॥ एवम्फलानुसारेण कर्तव्यंजागरंहरेः ॥ यःपुनःपठतेरात्रौ गीतांनामसहस्रकम् ॥ ४३ ॥ द्वादश्याम्पुरतो विष्णोर्वैष्णवानांसमीपतः ॥ सगच्छेत्परमंस्थानं यत्रनारायणःस्वयम् ॥ पुण्यंभागवतंस्कन्दं पुराणंदयितं हरेः ॥ ४४ ॥ मथुराम्बालचरितं यत्प्रोक्तंवैष्णवंहरेः ॥ एतत्पठतियोरात्रौ पूजयित्वा तु केशवम् ॥ ४५ ॥ नो जानेहंफलंवत्स जातुजानातिकेशवः ॥ फलन्तु गीतनृत्याद्यैः स्तोत्रैर्नानाविधैश्च यत् ॥ ४६ ॥ फलंतद्वैदिकैर्जाप्यैर्जागरेचक्रपाणिनः ॥ कलौनामसहस्रेण गीतापाठेनपुत्रक ॥ ४७ ॥ पुण्यंसहस्रगुणितं तथाभागवतेन च ॥ दीपम्प्रज्वलयेद्रात्रौ यस्तु वै हरिजागरे ॥ ४८ ॥ न चास्तङ्गच्छतेतस्य पुण्यङ्कल्पशतैरपि ॥ मञ्जरीसहितैःपत्रैस्तुलसीसम्भवै

भागवत स्कन्दपुराण विष्णुजी को प्रिय है ॥ ४३ । ४४ ॥ मथुरा में श्रीकृष्णजी का जो बालचरित्र कहागया है इस वैष्णव चरित्र को जो रात्रि में विष्णुजी को पूजकर पढ़ता है ॥ ४५ ॥ उसके फल को मैं नहीं जानता हूं कदाचित् विष्णुजी जानते हों और गीत व नृत्यादिक तथा अनेक भांति के स्तोत्रों से जो फल होता है ॥ ४६ ॥ वह फल चक्रपाणिजी के जागरण में वैदिक स्तोत्रों के पढ़ने से होता है हे पुत्र ! कलियुग में सहस्रनाम व गीता के पाठ से ॥ ४७ ॥ तथा भागवत से हज़ार गुना पुण्य होता है और विष्णुजी के जागरण में जो रात्रि में दीपक जलाता है ॥ ४८ ॥ उसका पुण्य सौ कल्पों में भी नाश को नहीं प्राप्त होता है और मञ्जरी समेत तुलसी

से उत्पन्न दलों से जो विष्णुजी को ॥ ४६ ॥ जागरण में भक्ति से पूजता है उसका फिर जन्म नहीं होता है और स्नान, लेपन व धूप, दीप से उत्पन्न पूजन ॥ ५० ॥ और ताम्बूल समेत नैवेद्य जागरण में दिया हुआ अक्षय होता है व हे षण्मुख ! भक्ति में तत्पर जो मनुष्य मुझको ध्यान करना चाहै ॥ ५१ ॥ वह द्वादशी तिथि में बड़ी भक्ति से विष्णुजी का जागरण करै और विष्णु के दिन में इन्द्र समेत सब देवता ॥ ५२ ॥ उनके शरीर का आश्रय कर टिकते हैं जो कि जागरण करते हैं और वासुदेव के जागरण में महाभारत का कीर्तन ॥ ५३ ॥ जो करते हैं वे वहा जाते हैं जहां कि संन्यासी लोग जाते हैं व रामजी के चरित्र व रावण के वध को जो ॥ ५४ ॥

हरिम् ॥ ४६ ॥ जागरेपूजयेद्भक्त्या नास्तितस्यपुनर्भवः ॥ स्नानंविलेपनम्पूजा धूपदीपेनसम्भवा ॥ ५० ॥ नैवेद्यन्तु सताम्बूलं जागरेदत्तमक्षयम् ॥ ध्यातुमिच्छतिषड्वक्त्र योमांभक्तिपरायणः ॥ ५१ ॥ सकरोतुमहाभक्त्या द्वादश्यांजागरंहरेः ॥ वासरेवासुदेवस्य सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ ५२ ॥ देहमाश्रित्यतिष्ठन्ति येकुर्वन्तिप्रजागरम् ॥ जागरेवासुदेवस्य महाभारतकीर्तनम् ॥ ५३ ॥ येकुर्वन्ति च तेयान्ति यत्र संन्यासिनोजनाः ॥ चरितंरामदेवस्य येवधंरावणस्य च ॥ ५४ ॥ पठन्तिजागरेविष्णोर्यान्तियोगविदोजनाः ॥ अधीताश्चतुरोवेदा इष्टादेवामखादयः ॥ ५५ ॥ स्नानंतीर्थेषुसर्वेषु यैःकृतंजागरंहरेः ॥ हयानामयुतंदत्तं सहस्रवरवारणम् ॥ ५६ ॥ लक्षंमखवराणाञ्च यैःकृतंजागरंहरेः ॥ कन्याकोटिप्रदानञ्च स्वर्णभारशतं तथा ॥ ५७ ॥ दत्तंरत्नायुतशतं यैःकृतंजागरंहरेः ॥ अष्टादशपुराणैस्तु पठितैर्यत्फलंलभेत् ॥ ५८ ॥ तत्फलंशतसाहस्रं कृतेजागरणेहरेः ॥ संन्यासिनांसहस्रैस्तु यत्फलम्भोजितैः

योग के जाननेवाले लोग विष्णुजी के जागरण में पढ़ते हैं वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं और उन्होंने चारों वेदों को पढ़ा व देवता और यज्ञादिकों को पूजा ॥ ५५ ॥ तथा सब तीर्थों में उन्होंने स्नान किया जिन्होंने विष्णुजी का जागरण किया उन्होंने दश हज़ार घोड़ों व हज़ार उत्तम हाथियों को दिया ॥ ५६ ॥ व लाख उत्तम यज्ञों को उन्होंने किया कि जिन्होंने विष्णुजी का जागरण किया और उन्होंने करोड़ कन्यादान व सौभार सुवर्ण दिया ॥ ५७ ॥ व दश हज़ार सौ रत्नों को दिया कि जिन्होंने विष्णुजी का जागरण किया और अठारह पुराणों के पढ़ने से मनुष्य जिस फल को पाता है ॥ ५८ ॥ उससे सौ व हज़ार गुना फल विष्णुजी का

जागरण करने पर होता है और कलियुग में हज़ार मंन्यासियों को भोजन कराने से जो फल होता है॥ ५६ ॥ व दुर्भिक्ष में अन्न को देनेवाले पुरुषों को जो फल होता है वह और अधिक फल विष्णु का जागरण करनेवाले पुरुषों को होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांद्वादशीमाहात्म्यंनामाष्टाविंशतमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यथाद्वादशीकर अहै अतिही अतुल प्रभाव । उन्तिसवें अध्याय में सोइ हर्ष उपजाव ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि जो मनुष्य यज्ञ के समान व दुःखनाशक तथा

कलौ ॥ ५६ ॥ दुर्भिक्षेचान्नदातॄणां पुंसाम्भवतियत्फलम् ॥ तत्फलञ्चाधिकम्प्रोक्तं कुर्वतांजागरंहरेः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येद्वादशीमाहात्म्यंनामाष्टाविंशतमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ स्थित्वायो हरिजागरे क्रतुसमे दुःखापहेपुण्यदे रम्यंजागरणंश्रृणोतिपठतां कृत्वाहरेःपूजनम् ॥ पुण्यंवाजिमखस्यकोटिगुणितं सम्प्राप्यकल्पद्वयं छित्त्वापापसमूलवृक्षनिचयं प्राप्नोतिकृष्णालयम् ॥ १ ॥ हित्वापापसमूलकोटिनिचयं गुर्वङ्गनाकोटिभिःस्तेयैर्लक्षशतैर्गुरोर्वधकृतैः संवेष्टितोयद्यपि ॥ अन्यैःपापसहस्रकैरपि च यः संवेष्टितोमानवो विष्णोर्जागरणेकृतेस हि परं गच्छेत्पदंशाश्वतम् ॥ २ ॥ एकादशीद्वादशिसम्प्रविष्टा कृतानभस्य श्रवणेनयुक्ता ॥ विशेषतःसोमसुतेनसङ्गात् करोतिमुक्तिम्प्रपितामहानाम् ॥ ३ ॥ यद्दीयतेद्वादशिवासरेशुभे विष्णुंसमुद्दि

पुण्यदायक विष्णुजी के जागरण में स्थित होकर विष्णुजी का पूजन कर पढ़तेहुए पुरुषों से सुन्दर जागरण को सुनता है वह अश्वमेध के कोटिगुने फल को पाकर दो कल्पों तक स्थित होकर जड़ समेत पापरूपी वृक्षों के समूह को काटकर श्रीकृष्णजी के स्थान को पाता है ॥ १ ॥ व पाप के जड़ समेत कोटिसमूह को छोड़कर यद्यपि करोड़ गुरुस्त्रीगमन व लाख सौ चोरी व गुरुवों के मारने से किये हुए पापों से घिरा होवै तथा अन्य भी हज़ारों पापों से जो मनुष्य संयुत होवै वह विष्णुजी का जागरण करने पर विष्णुजी के अविनाशी स्थान को जाता है ॥ २ ॥ और द्वादशी से संयुत तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त कीहुई भादों की एकादशी बुध के संयोग से विशेषकर प्रपितामहों की मुक्ति करती है ॥ ३ ॥ और विष्णु व पितरों को उद्देश कर उत्तमद्वादशी दिन में जो दियाजाता है वह पूर्ण यज्ञों व उत्तम तीर्थ दानों समेत भक्ति

से दिये हुए सुमेरु के समान होता है ॥ ४ ॥ और विष्णु के दिन में महानदी को प्राप्त होकर जो पितरों को जल की अञ्जली देता है उसने हज़ार गयाश्राद्ध किया और भलीभाँति तृप्त पितर उसको मनोरथों को देते हैं ॥ ५ ॥ व शरण में प्राप्त मनुष्यों का पालन व जल की वृष्टि से रहित देश में अन्नदान और ब्राह्मणों व देवताओं के ऋण को जो देता है उनका फल विष्णुजी के जागरण से होता है ॥ ६ ॥ और उत्तम ब्राह्मण से सब आश्रमों का पालन करने से जो फल सुना जाता है व प्रभास क्षेत्र व पुष्कर में जो फल होता है उनका फल विष्णुजी के जागरण से होता है ॥ ७ ॥ व हे नरेश्वर! क्षमा, दया व दान समेत सत्य, शौच तथा यम से जो फल

श्य तथा पितॄणाम् ॥ पर्याप्तमिष्टैश्च सुतीर्थदानैर्भक्त्याप्रदत्तञ्च सुमेरुतुल्यम् ॥ ४ ॥ महानदींप्राप्यदिने च विष्णोस्तो याञ्जलिंयस्तु पितॄन्ददाति ॥ श्राद्धंकृतंतेनगयासहस्रं यच्छन्तिकामान्पितरःसुतृप्ताः ॥ ५ ॥ शरणङ्गतानाम्परिपालनं वै चान्नप्रदानंजलवृष्टिवर्जिते ॥ ऋणप्रदाताद्विजदेवतानां तेषाम्फलंजागरणेनविष्णोः ॥ ६ ॥ सर्वाश्रमाणाम्परिपालने न यच्छ्रूयतेविप्रवरेणपुण्यम् ॥ क्षेत्रेप्रभासस्य च पुष्करे च तेषाम्फलंजागरणेनविष्णोः ॥ ७ ॥ सत्येनशौचेनयमेन यत्फलं क्षमादयादानसमंनरेश्वर ॥ दशाश्वमेधैर्बहुदक्षिणैश्च तेषाम्फलंजागरणेनविष्णोः ॥ ८ ॥ यःस्वर्णधेनुंघृत नीरधेनुं कृष्णाजिनंरूप्यसुवर्णमेरुम् ॥ ब्रह्माण्डदानम्प्रददातिमाघे पुण्यंतदाप्नोतिहरेस्तु जागरे ॥ ९ ॥ यदस्थि पातेन प्रयागकेफलं यत्पिण्डदानेन तथा गयायाम् ॥ यद्दानपुण्यंकुरुजाङ्गले च तेषाम्फलंजागरणेनविष्णोः ॥ १० ॥ हत्यायुताभिर्यदिसञ्चितानि स्तेयानिरुक्मस्य न सन्तिसंख्या ॥ नश्यन्त्यनेकानिपुराकृतानि पापानिभद्रातिथिजाग

होता है व बहुत दक्षिणाओंवाले दश अश्वमेध यज्ञों से जो फल होता है उनका फल विष्णुजी के जागरण से होता है ॥ ८ ॥ और जो माघमहीने में सुवर्ण की गऊ व घी और जल की धेनु तथा मृगचर्म व चांदी तथा सुवर्ण के सुमेरु को व ब्रह्माण्डदान को करता है उस पुण्य को मनुष्य विष्णुजी के जागरण में पाता है ॥ ९ ॥ और प्रयाग में अस्थि डालने से व गया में पिण्डदान से जो फल होता है और कुरु व जाङ्गल में जो दान का पुण्य है उनका फल विष्णुजी के जागरण से होता है ॥ १० ॥ व यदि दश हज़ार हत्याओं से पाप संचित किये गये व सुवर्ण की चोरी की जिनकी गिनती नहीं है वे पहले किये हुए पातक भद्रा याने द्वादशी तिथि के जागरण से

नाश होजाते हैं ॥ ११ ॥ और यह मनुष्य यमपुरी को नहीं जाता है व अन्य जन्म में वे स्वप्न में भी खेचर व खड्गपत्र नरक को नहीं देखते हैं जिनकी द्वादशी जागरण से व्यतीत हुई है ॥ १२ ॥ व गेरुहा वस्त्रों से किये हुए भारों के विडम्बित से व पूर्ण अग्निहोत्र आदिक के पूजन से क्या होगा बरन धर्म, अर्थ, काम फल व मोक्ष को करनेवाली तथा कलियुगरूपी पर्वत को तोड़नेवाली एक भद्रा यानें द्वादशी तिथि का सेवन करो ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय कल्याण के प्रयोजन की बुद्धि से नारदमुनि ने यह कहा है कि कृष्ण से उत्तम और देवता नहीं है व उनके दिन से परे अन्य दिन नहीं है ॥१४॥ हे भूमिदेवो ! व हे द्विजेन्द्र, ऋषि, सिद्ध, मुनीन्द्रगणो !

रेण ॥ ११ ॥ नासौव्रजेत्सौरिपुरीं न चैव भवान्तरेखेचरखड्गपत्रम् ॥ स्वप्ने न पश्यन्ति च तेमनुष्या येषांगताजागरणेनभद्रा ॥ १२ ॥ काषायवस्त्रकृतभारविडम्बितैस्तु पूर्णाग्निहोत्रयजनादिभिरेव किं स्यात् ॥ धर्मार्थकामफलमोक्षकरीञ्च भद्रामेकाम्भजस्वकलिशैलविकर्त्तनीञ्च ॥ १३ ॥ इत्युक्तपूर्वंकिलनारदेन श्रेयोर्थबुद्ध्यामुनिना च भूसुराः ॥ कृष्णात्परश्चैव न देवतान्यद्व्रतन्तदह्नःपरमन्न किञ्चित् ॥ १४ ॥ भोभूसुराःशृणुतनारदभाषितंतद्भोभोद्विजेन्द्रऋषिसिद्धमुनीन्द्रसङ्घाः ॥ उत्क्षिप्यबाहुंहरिभक्तिपरेणचोक्तमेकादशीव्रतसमंव्रतमस्ति नान्यत् ॥ १५ ॥ विप्राश्च पापपुरुषा न हरिम्भजन्ति भक्तिश्च शास्त्रनिरता न कलौभविष्यति ॥ कुर्वन्तिमूढमनसोदशमीविमिश्रामेकादशींशुभकरीं न परित्यजन्ति ॥ १६ ॥ जातःसदाश्वपच एव सदासरोगी पापीसदा चैव सदासदुःखी ॥ सदाकृतघ्नोथसदासनारकी विद्धम्मुरारेर्दिनमाश्रितंयैः ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥

उस नारदजी के वचन को सुनिये कि भुजा को ऊपर उठाकर विष्णु की भक्तिमें तत्पर नारदजी ने कहा कि एकादशीव्रत के समान अन्य व्रत नहीं है ॥ १५ ॥ व कलियुग में ब्राह्मण व पापी पुरुष विष्णुजी को नहीं भजते हैं व शास्त्र में तत्पर भक्ति न होवैगी और मूढ़मनवाले लोग दशमी से संयुत एकादशी को नहीं करते हैं और कल्याणकारिणी एकादशी को नहीं छोड़ते हैं ॥१६॥ व जिन्हों ने विष्णुजी के वेधित दिन को किया है वह सदा चाण्डाल होता है और वह सदैव रोगी व पापी तथा सदैव वह दुःखी होता है और वह सदा कृतघ्न व सदैव नरकगामी होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दो० । किये द्वादशी जागरण होत अहै फल जौन । यहि तिसवें अध्याय में वर्णित है सब तौन ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे नरेश्वर ! यथायोग्य विष्णुजी का जागरण कर पितरों को जो पुण्य देता है उसका गया क्या करती है ॥ १ ॥ भुक्त हो या अभुक्त और क्लीव हो या अस्वस्थ होवै विष्णुजी के जागरण में अवश्य कर मनुष्यों की मुक्ति कहीगई है ॥ २ ॥ व नहाया हुआ जो मनुष्य जागरेशजी के समीप स्थित होता है वह सब तीर्थों में नहाया हुआ जानने योग्य है और भलीभांति स्पर्श किया हुआ वह स्वर्ग को जाता है ॥ ३ ॥ और चाण्डाल भी जागरण कर उत्तम मोक्ष को प्राप्त होता है तथा जागरण में उपवास समेत जो मनुष्य स्त्री के बाजनों समेत उस

मार्कण्डेय उवाच ॥ कृत्वाजागरणंविष्णोर्यथान्यायंनरेश्वर ॥ पितृणांयच्छतेपुण्यं तस्य किं कुरुतेगया ॥ १ ॥ भुक्तो वा यदि वाभुक्तः क्लीबो वास्वस्थ एव वा ॥ विमुक्तिःकथितावश्यं हरिजागरणेनृणाम् ॥ २ ॥ स्नातो वा योनरोराजञ्जागरेशंव्यवस्थितः ॥ सर्वतीर्थप्लवीज्ञेयः संस्पृष्टोदिवमाव्रजेत् ॥ ३ ॥ श्वपचोजागरंकृत्वा परंनिर्वाणमागतः ॥ जागरेसोपवासस्तु सत्कथागीतनर्त्तनम् ॥ ४ ॥ युवतीवाद्यसंयुक्तं यथा निद्रा न जायते ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमम् ॥ ५ ॥ उत्फुल्लनयनःपापं शोधयेद्विष्णुजागरी ॥ विमुक्तिःकथितासद्यो नृत्यतांहरिजागरे ॥ ६ ॥ विमुक्तिःकामुकस्योक्ता किम्पुनर्वीक्षतेहरिम् ॥ ७ ॥ वाचिकम्मानसम्पापं कर्मणायदुपार्जितम् ॥ अन्यंनिमिषमात्रेण व्यपोहति न संशयः ॥ ८ ॥ येः कृतोजागरोराजन् यैश्च सम्यङ्निरीक्षितः ॥ गोष्ठ्यांसमागतायेतु तेषाम्पापंकुतःस्मृतम् ॥ ९ ॥ मातृपूजागयाश्राद्धं

प्रकार उत्तम कथा, गीत व नृत्य करता है जिस प्रकार कि निद्रा न होवै तो ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी व गुरुस्त्रीगमन पाप को प्रफुल्लित लोचनोंवाला विष्णुजागरी पुरुष पाप को शोधन करता है और विष्णुजी के जागरण में नाचते हुए पुरुषों की शीघ्रही मुक्ति कहीगई है ॥ ४ । ६ ॥ और कामुक पुरुष की भी मुक्ति कहीगई है फिर जो विष्णुजी को देखता है उसको क्या कहना है ॥ ७ ॥ और वाचिक व मानसी पाप तथा कर्म से जो इकट्ठा किया गया है तथा अन्य पाप को भी पलक भर में नाशता है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जिन्होंने जागरण किया व जिन्होंने भलीभाति विष्णुजी को देखा है और जो सभा में आये उनको पाप कहा से कहा गया है ॥ ९ ॥

हे राजन् ! मातृपूजा, गयाश्राद्ध, उत्तम तीर्थ में मरण और जागरण इनको कवियों ने समान कहा है ॥ १० ॥ व हे नृपेन्द्र ! उसी नृत्य करतेहुए पुरुष के जो वस्त्र व जो आभूषण तथा जो उत्तम पुण्य होते हैं ॥ ११ ॥ व काठ और चर्म समेत वाजन जो विष्णुजी में युक्त हुए हैं वे उन मनुष्यों समेत व उस स्त्री समेत यहां जाते हैं ॥ १२ ॥ और विष्णुजी के जागरण में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों व शूद्रादिकों को और मनुष्यों को समान फल कहा गया है ॥ १३ ॥ और कन्यादान, गयाश्राद्ध व पीपल वृक्ष का आरोपण करना तथा द्वादशी तिथि में जागरण ये दश हज़ार अश्वमेधों के समान हैं ॥ १४ ॥ पुरातन समय

सुतीर्थेमरणं तथा ॥ जागरश्च नृणांराजन्समानिकवयोविदुः ॥ १० ॥ यानिवासांसिराजेन्द्र यानि चाभरणानि च ॥ पुण्यानियानितस्यैव नृत्यतःशोभनानि च ॥ ११ ॥ सकाष्ठचर्मयुक्तानि वाद्यानिमनुजैःसह ॥ तयासहव्रजन्तीह यानियुक्तानि माधवे ॥ १२ ॥ ब्राह्मणक्षत्रवैश्यानां शूद्रादीनाञ्च योषिताम् ॥ सममेव समादिष्टं हरिजागरणेनृणाम् ॥ १३ ॥ कन्यादानंगयाश्राद्धमश्वत्थारोपणं तथा ॥ जागरश्चापि द्वादश्यां वाजिमेधायुतैःसमम् ॥ १४ ॥ पूर्वमयाशतैर्वर्षैः कुशाग्रेणोद्धृतंजलम् ॥ पिबन्पात्रेस्थितंसम्यक् तीर्थेपुष्करसंज्ञके ॥ १५ ॥ हरिजागरणस्यैव कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ कृत्वा काञ्चनसम्पूर्णां वसुधांवसुधाधिप ॥ १६ ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलंकृष्णजागरे ॥ विप्रायवसुधांदत्त्वा क्षेत्रेकौरवसंज्ञके ॥ १७ ॥ तथापिषोडशांशेन न समोहरिजागरः ॥ तस्य चैव हि मर्त्यस्य पाप्मानंनिखिलं तथा ॥ १८ ॥ व्यपोहयेन्न सन्देहो येनजागरणंहरेः ॥ संक्षेपतःप्रवक्ष्यामि पुनरेव महीपते ॥ १९ ॥ जागरेपद्मनाभस्य यांतुष्टिंकवयोविदुः ॥

सौ वरस तक कुश के अग्रभाग से उठाये हुए जलको पात्र में पीता हुआ मैं पुष्कर नामक तीर्थ में भलीभांति स्थित रहा ॥ १५ ॥ व विष्णुजी के जागरण की सोलहवीं कला के योग्य अन्य कर्म नहीं होते हैं हे पृथ्वीनाथ ! सुवर्ण से पूर्ण पृथ्वी को करके ॥ १६ ॥ व उसको देकर मनुष्य जिस फल को पाता है वह फल श्रीकृष्णजी के जागरण में होता है और कौरवसंज्ञक क्षेत्र में ब्राह्मण के लिये पृथ्वी को देकर ॥ १७ ॥ तथापि सोलहवें अंश के समान न हुआ और विष्णुजी का जागरण उस पुरुप के सब भी पाप को ॥ १८ ॥ निस्सन्देह नाश करता है कि जिसने विष्णुजी काजागरण किया है व हे राजन् ! फिर भी संक्षेपसे मैं उसको कहता हूं ॥ १९ ॥ कि जिस

प्रसन्नता को कवियों ने पद्मनाभजी के जागरण में कहा है और वह इस स्वर्गबिंब को भेदन कर विष्णुजी के जागरण में जाता है ॥ २० ॥ और वह योग से गम्य उत्तम निरंजन स्थान को जाता है व हे राजन्! विषयों समेत वह परमपद को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ हे राजन्! दुःख समेत सांख्ययोगों से जो फल मिलता है वह सब फल क्रमसे श्रीविष्णुजी के जागरण में मिलता है ॥ २२ ॥ इस कारण जागरण में उन पापों को विष्णुजी निस्सन्देह नाश करते हैं और राज्य, धन, मोक्ष व अन्य वस्तु को मनुष्यों को ॥ २३ ॥ संगीतों से जागरणों में स्थित भगवान् कृष्णजी देते हैं व हे भूपते! पापी व चांडालों को भी जागरण

स्वर्गबिम्बमिमंभित्त्वा सयातिहरिजागरे ॥ २० ॥ सयातिपरमंस्थानं योगगम्यंनिरञ्जनम् ॥ विषयैःसहितोराजन् प्राप्नोतिपरमम्पदम् ॥ २१ ॥ सांख्ययोगैःसदुःखेन प्राप्यतेयत्फलंनृप ॥ तत्फलंलभ्यतेसर्वं जागरेश्रीहरेःक्रमात् ॥ २२ ॥ एवंजागरणेतानि व्यपोहति न संशयः ॥ राज्यमर्थं तथा मोक्षं तथान्यच्चापि वै नृणाम् ॥ २३ ॥ ददातिभगवान्कृष्णः सङ्गीतैर्जागरेस्थितः ॥ जागरेणैव पापानां श्वपचानांमहीपते ॥ २४ ॥ तत्पदंकविभिःप्रोक्तं किम्पुनः स्तुतियाचिनाम् ॥ ध्यानध्येयविहीनस्य सङ्गीतस्य च भूपते ॥ २५ ॥ कर्मभ्रष्टस्तु कथितो मोक्षस्तु हरिजागरे ॥ तन्नास्तित्रिषुलोकेषु पुण्यं पुण्यवतांनृणाम् ॥ २६ ॥ यन्न साधयतेभूप जागरेशंव्यवस्थितः ॥ त्वयापुनरिदंकार्यं स्मर्त्तव्योगरुडध्वजः ॥ २७ ॥ एकादश्यां न भोक्तव्यं कर्त्तव्योजागरःसदा ॥ जागरेवर्त्तमानस्य श्वपचस्यगतिर्भवेत् ॥ २८ ॥ किम्पुनर्वर्णजातानां

से ॥ २४ ॥ वह स्थान कवियों से कहागया है फिर स्तुति से याचना करनेवालों को क्या कहना है व हे राजन्! ध्यान तथा ध्येयसे रहित व संगीत का ॥ २५ ॥ विष्णुजी के जागरण में कर्म से भ्रष्ट मोक्ष कहागया है तीनों लोकों में पुण्यवान् मनुष्यों का वह पुण्य नहीं है ॥ २६ ॥ जिसको कि हे राजन्! जागरेश के समीप स्थित मनुष्य साधन नहीं करता है फिर तुमको यह करना चाहिये कि विष्णुजी को स्मरण करो ॥ २७ ॥ और एकादशी में भोजन न करना चाहिये व सदैव जागरण करना चाहिये क्योंकि जागरण में वर्तमान चाण्डाल की भी गति होती है ॥ २८ ॥ फिर हे भूपते! वर्णों में उत्पन्न वैष्णवों

को क्या कहना है और चाण्डाल धर्मवाले पापीलोग विष्णुजी का जागरण कर ॥ २९ ॥ शरीर से उपजे हुए रोग से छूटजाते हैं और उस परमपद को प्राप्त होते हैं व हे नृपश्रेष्ठ ! जिनको जागरण में निद्रा नहीं आती है ॥ ३० ॥ उनकी माता गर्भ के धारण से दुःख को नहीं प्राप्त होती है इस कारण माता के पेट को वर्जित करनेवाला जागरण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ और भीत व मोक्ष में तत्पर तथा मुख्य चेष्टा से अलग कियेहुए जिन कृष्णभक्ति से संयुत पुरुषोंने रात्रि को जागरण से व्यतीत किया है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! उनको पल पल भर में अश्वमेध यज्ञ का फल होता है और शयन व बोधन से बराबर पुण्य कहागया है ॥ ३३ ॥

वैष्णवानांमहीपते ॥ चाण्डालधर्मिणःपापाः कृत्वाजागरणंहरेः ॥ २९ ॥ मुच्यन्तेदेहजाद्रोगात्प्रविष्टास्तत्परंपदम् ॥ येषां च जागरेनिद्रा नायातिनृपपुङ्गव ॥ ३० ॥ न तेषांजननीयाति खेदंगर्भावधारणात् ॥ तस्माज्जागरणंकार्यं मातुर्जठरवर्जनम् ॥ ३१ ॥ भीतैर्मोक्षपरैर्मर्त्यैर्मुख्यचेष्टाबहिःकृतैः ॥ यैस्तु जागरणेरात्रिः कृष्णभक्तिसमन्वितैः ॥ ३२ ॥ निमिषेनिमिषेराजन्नश्वमेधफलंभवेत् ॥ शयनोत्थापनाभ्यान्तु समंपुण्यमुदाहृतम् ॥ ३३ ॥ विशेषो नास्तिभूपाल विष्णुनाकथितम्पुरा ॥ भुक्त्वा चाप्यथवा भुक्त्वा जागरेशंव्यवस्थितः ॥ ३४ ॥ गोष्ठ्यांसमागतो वापि तेयान्तिपरमंपदम् ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शूद्राःस्थित्वास्यजागरे ॥ ३५ ॥ पक्षिणःकृमिकीटाश्च उद्भिन्नाजागरेस्थिताः ॥ राक्षसाबहुधा चैव जागरेचक्रपाणिनः ॥ ३६ ॥ तेगताःपरमंस्थानं योगगम्यंनिरञ्जनम् ॥ विना सांख्यैर्विना ज्ञानाद्विना चेन्द्रियनिग्रहात् ॥ ३७ ॥ विना ध्यानाद्विना योगात्प्रयान्तिपरमम्पदम् ॥ मेरुमन्दरमात्राश्च कृताःपापस्यराशयः ॥ ३८ ॥

हे भूपाल ! कुछ विशेष नहीं है पुरातन समय यह विष्णुजी ने कहा है और भोजन कर या न भोजन करके जागरेश के समीप स्थित ॥ ३४ ॥ व जो सभा में आया है वे परमपद को प्राप्त होते हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इन विष्णुजी के जागरण में स्थित होकर ॥ ३५ ॥ और पक्षी, कृमि व कीट तथा वृक्षादिक जो जागरण में स्थित होते हैं व बहुत प्रकार के राक्षस चक्रपाणि विष्णुजी के जागरण में ॥ ३६ ॥ वे सब योग से जाने योग्य निरंजन व उत्तम स्थान को जाते हैं और वे विना सांख्य, विना ज्ञान व विना इन्द्रियों के निग्रह ॥ ३७ ॥ व विना ध्यान और विना योग से उत्तम स्थान को जाते हैं और सुमेरु व मन्दर के समान कियेहुए पापसमूह ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्णके जागरण में रुई के ढेर की नाईं जलजाते हैं और ब्रह्महत्या के समान जो कोई पाप हैं ॥ ३९ ॥ वे विष्णुजी के जागरण में निस्सन्देह नाश होजाते हैं और एक ओर सब तीर्थों से संयुत सब यज्ञ हैं ॥ ४० ॥ व एक ओर कृष्णजी को प्रिय देवदेवजी का जागरण है और कृष्णजी के जागरण से अन्य समान व अधिक कवियों से नहीं कहागया है ॥ ४१ ॥ और कृष्णजी के प्यारे जागरण में सूर्य और इन्द्रादिक देवता तथा ब्रह्मा व रुद्रादिक गण सदैवही आते हैं ॥ ४२ ॥ और गङ्गा, सरस्वती, नर्मदा, यमुना, शतह्रदा, चन्द्रभागा व विपाशादिक सब नदिया वहां आती हैं ॥ ४३ ॥ व हे नृपोत्तम ! श्रीकृष्णजी के जाग-

कृष्णजागरणे चैव दह्यन्तेतूलराशिवत् ॥ यानिकानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ ३९ ॥ विष्णोर्जागरणेतानि क्षयंयान्ति न संशयः ॥ एकतःक्रतवःसर्वे सर्वतीर्थसमन्विताः ॥ ४० ॥ एकतोदेवदेवस्य जागरः कृष्णवल्लभः ॥ न समः कविभिःप्रोक्तमधिकंकृष्णजागरात् ॥ ४१ ॥ सूर्यशक्रादयोदेवा ब्रह्मरुद्रादयोगणाः ॥ नित्यमेव समायान्ति जागरे कृष्णवल्लभे ॥ ४२ ॥ गङ्गासरस्वतीरेवा यमुना च शतह्रदा ॥ चन्द्रभागाविपाशाद्या नद्यःसर्वाश्च तत्र वै ॥ ४३ ॥ सरांसि च ह्रदश्चैव समुद्राःकृष्णजागरे ॥ एकादश्यांनृपश्रेष्ठ गच्छन्तिहरिजागरे ॥ ४४ ॥ स्पृहणीयास्तु देवस्य येनराःकृष्ण जागरे ॥ नृत्यंगीतंप्रकुर्वन्ति वीणावाद्यं तथैव च ॥ ४५ ॥ सूत उवाच ॥ कृत्वापापसहस्राणि शुचिर्भूत्वा च योनरः ॥ कुर्याज्जागरणंविष्णोर्मुच्यतेपापकोटिभिः ॥ ४६ ॥ यावत्पदानिस्वगृहात् केशवायतनम्प्रति ॥ अश्वमेधसमान्यस्य जागरार्थंप्रगच्छतः ॥ ४७ ॥ पादयोःपांशुकणिका धरण्यानिपतन्तिये ॥ तावद्वर्षसहस्राणि जागराद्वसतेदिवि ॥ ४८ ॥

रण में तड़ाग, कुण्ड व समुद्र एकादशी तिथि में विष्णुजी के जागरण में जाते हैं ॥ ४४ ॥ और जो मनुष्य विष्णुदेवजी को प्रिय होतेहैं जोकि श्रीकृष्णजी के जागरण में नृत्य, गीत व वीणावाद्य करते हैं ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले कि हज़ारों पापों को करके जो मनुष्य पवित्र होकर श्रीविष्णुजी का जागरण करता है वह करोड़ों पापों से छूट जाता है ॥ ४६ ॥ व विष्णुजी के मन्दिर के सामने मनुष्य जितने पग चलता है इसके वे पग अश्वमेध के समान होते हैं और जागरण के लिये जाते हुए मनुष्य के ॥ ४७ ॥ चरणों में जो पृथ्वी के किनुका गिरते हैं उतने हज़ार वर्षों तक मनुष्य जागरण से स्वर्ग में बसता है ॥ ४८ ॥

उस कारण कलियुग में पातकों के विनाश के लिये प्रत्येक द्वादशी में मनुष्य को विष्णुजी के जागरण में घर से जाना चाहिये ॥ ४९ ॥ विष्णुजी का जागरण करके मनुष्य करोड़ों युगों में कियेहुए भी सुमेरु के समान बहुत से पातकों को जलाता है ॥ ५० ॥ व हे राजन् ! कलियुग में बोधिनी एकादशी जिनसे व्रत संयुत कीगई उनके जागरण से संयुत फल को मैं कहताहूं उसको सुनिये ॥ ५१ ॥ कि सतयुग में हज़ार युगोंतक जो एक पैरसे स्थित रहता है उसके फल को कलियुग में बोधिनी एकादशी को प्राप्त होकर जागरण में मनुष्य पाता है ॥ ५२ ॥ और कलियुग में मनुष्य काशी में गंगाजी के किनारे जिस फल को पाता है और

तस्माद्गृहात्प्रगन्तव्यं जागरेमाधवस्य च ॥ कलौमलविनाशाय द्वादशीद्वादशीषु च ॥ ४९ ॥ बह्वन्यपि च पापानि कृत्वा जागरणंहरेः ॥ निर्दहेन्मेरुतुल्यानि युगकोटिकृतान्यपि ॥ ५० ॥ उन्मीलिनीमहीपाल यैःकृताव्रतसंयुता ॥ कलौ जागरणोपेतं फलंवक्ष्यामितच्छृणु ॥ ५१ ॥ कृतेयुगसहस्रन्तु पादेनैकेनतिष्ठति ॥ उन्मीलिनींसमासाद्य फलंजागरणे कलौ ॥ ५२ ॥ काश्यान्तु जाह्नवीतीरे यत्फलंलभतेनरः ॥ दुःप्राप्यंवैष्णवंस्थानं मखकोटिशतैःकृतम् ॥ ५३ ॥ हेलयाप्राप्यते नूनं द्वादश्यांजागरेकृते ॥ येकुर्वन्तिदिनं विष्णोर्जागरेणसमन्वितम् ॥ ५४ ॥ परस्वंपरदारञ्च हिंसांकुर्वन्तिदेहिनाम् ॥ विना दानैर्विना तीर्थैर्विना यज्ञैर्विना व्रतैः ॥ ५५ ॥ द्वादशीजागरोपेता कृताकल्मषनाशिनी ॥ एकेनैवोपवासेन भावहीनास्तु मानवाः ॥ ५६ ॥ निर्दग्ध्वास्वीयपापानि प्रयान्तिस्वर्गमुत्तमम् ॥ यत्र भागवतं शास्त्रं यत्र जागरणंहरेः ॥ ५७ ॥ शालग्रामशिला यत्र तत्र गच्छेद्धरिःस्वयम् ॥ न पुर्यःपावनाःसप्त कलौवेदाश्चये

करोड़ों सौ यज्ञों से जो विष्णुजी का स्थान दुर्लभ कियागयाहै ॥ ५३ ॥ उसको द्वादशी में जागरण करने पर मनुष्य हेला से निश्चय कर पाता है और जो मनुष्य विष्णुजी के दिन को जागरण से संयुत करते हैं ॥ ५४ ॥ व पराया धन और पराई स्त्री को जो हरते हैं व जो प्राणियों की हिंसा करते हैं उनके विना दान, विना तीर्थ, विना यज्ञों व विना व्रतों से ॥ ५५ ॥ जागरण संयुत द्वादशी पापनाशिनी कीगई है और एकही उपवास से भक्तिहीन मनुष्य ॥ ५६ ॥ अपने पापों को जलाकर उत्तमस्वर्ग को जाते हैं और जहां भागवतशास्त्र है व जहां विष्णुजी का जागरण है ॥ ५७ ॥ व जहां शालग्रामशिला होती है वहां आपही विष्णुजी जाते हैं और कलियुग

में सात पुरियां पवित्रकारक नहीं हैं और जो वेद हैं वे भी पवित्रकारक नहीं हैं ॥ ५८ ॥ जैसा कि मनुष्यों को विष्णु का दिन व जागरण पवित्र है विष्णुजी का दिन प्राप्तहोने पर जो जागरण नहीं करते हैं ॥ ५९ ॥ वे मनुष्य भयंकर नरक में पड़ते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभापाटीकायाद्वादशीमाहात्म्यंनामत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा द्वारका गमन हित किय तीरथ उद्योग । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित सुयोग ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि इसके उपरान्त मैं गुप्त से भी अधिक गुप्त

नहि ॥ ५८ ॥ यादृशंवासरंविष्णोः पूतंजागरणंनृणाम् ॥ सम्प्राप्तेवासरेविष्णोर्ये नकुर्वन्तिजागरम् ॥ ५९ ॥ पतन्तिनरके घोरे तेनरा नात्र संशयः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येद्वादशीमाहात्म्यन्नामत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरंशिवम् ॥ द्वारकायाःपरंपुण्यं माहात्म्यंह्युत्तमोत्तमम् ॥ १ ॥ इतिहासम्पुरावृत्तं कथयिष्येमनोहरम् ॥ तीर्थक्षेत्रादिदेवानामृषीणांसंशयापहम् ॥ २ ॥ सौभाग्यमतुलं दृष्ट्वा सिंहराशिगतेगुरौ ॥ गोदावर्यांमुनिःश्रेष्ठो नारदोभगवान्मुनिः ॥ ३ ॥ गौतमस्याश्रमंप्राप्तः त्रैलोक्यसम्भवानि वै ॥ तीर्थानिसरितःसर्वा विस्मयंपरमंगतः ॥ ४ ॥ यत्र काशीकुरुक्षेत्रमयोध्यामथुरापुरी ॥ मायाकाञ्चीअवन्ती च अरण्यान्याश्रमाणि च ॥ ५ ॥ हरिक्षेत्रंगयातिस्रः क्षेत्रञ्च पुरुषोत्तमम् ॥ प्रभासादीनिपुण्यानि मुक्तिक्षेत्राण्यशेषतः ॥ ६ ॥

तथा उत्तमोत्तम व कल्याणकारक द्वारकाजी के पवित्र माहात्म्य को कहताहूं ॥ १ ॥ और तीर्थ व क्षेत्रादिक तथा देवताओं व ऋषियों के पुरातन समय में हुए मनोहर तथा सन्देह नाशक इतिहास को कहताहूं ॥ २ ॥ कि सिंह राशि में बृहस्पति प्राप्त होनेपर गोदावरी के बड़े सौभाग्य को देखकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् नारद मुनि ॥ ३ ॥ गौतमजी के आश्रम में प्राप्तहुए और तीनों लोकों मे उपजेहुए तीर्थों व सब नदियों को देखकर बड़े विस्मय को प्राप्तहुए ॥ ४ ॥ जहां कि काशी, कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मथुरापुरी और माया, काची व अवन्ती तथा वन व आश्रम ॥ ५ ॥ और हरिक्षेत्र व तीनों गया और पुरुषोत्तमक्षेत्र तथा प्रभासादिक सब पवित्र मुक्तिक्षेत्र ॥ ६ ॥

और वहां गङ्गा व यमुना देवी तथा पवित्र सरस्वतीजी और सरयू, गंडकी, तापी व उत्तम नदी पयोष्णी ॥ ७ ॥ और कृष्णा, भीमरथी व नदियों में श्रेष्ठ पवित्र कावेरी नदी और स्वर्ग, मृत्युलोक व पाताल में जो उत्तम तीर्थ वर्तमान थे ॥ ८ ॥ वे सब सिंहराशि में बृहस्पति प्राप्त होनेपर गोदावरी के किनारे स्थित हुए व पुष्करादिक तीर्थों और नदियों व तडागों को देखकर ॥ ९ ॥ दर्शन से पापों को नाशनेवाले व पवित्र मर्यादापर्वत देखे गये व सब तीर्थों से संयुत तीर्थराज प्रयागजी को देखा ॥ १० ॥ व वेद, उपवेद, शास्त्र व सब पुराण तथा सिद्ध व सब मुनियों के गण और देवर्षि, पितर, देवता ॥ ११ ॥ व इन्द्रादिक सब सुरेश्वर सिंह राशि में बृहस्पति

जाह्नवीयमुनादेवी तत्र पुण्यासरस्वती ॥ सरयूगण्डकीतापी पयोष्णी च सरिद्वरा ॥ ७ ॥ कृष्णाभीमरथीपुण्या कावेरीसरितांवरा ॥ स्वर्गेमर्त्ये च पाताले वर्त्तमानाःसुतीर्थकाः ॥ ८ ॥ स्थितागोदावरीतीरे सिंहराशिगतेगुरौ ॥ दृष्ट्वा च पुष्करादीनि तथा सिन्धुसरांसि च ॥ ९ ॥ मर्यादापर्वताःपुण्या दर्शनात्पापनाशनाः ॥ तीर्थराजंप्रयागं च सर्व तीर्थसमन्वितम् ॥ १० ॥ वेदोपवेदशास्त्राणि पुराणानि च सर्वशः ॥ सिद्धामुनिगणाःसर्वे देवर्षिपितृदेवताः ॥ ११ ॥ इन्द्रादयःसुरश्रेष्ठाः सिंहे चैव बृहस्पतौ ॥ स्थितागोदावरीतीरे वर्षमेकंप्रहर्षिताः ॥ १२ ॥ यानिकानि च पुण्यानि तीर्थक्षेत्राणिसन्ति वै ॥ त्रैलोक्येतानिसर्वाणि गौतमोवीक्ष्य विस्मितः ॥ १३ ॥ देवर्षिर्नारदस्तत्र मुनिभिर्मुदितोऽवसत् ॥ सिंहे गते तु सर्वाणि स्वस्थानगमनाय वै ॥ १४ ॥ आमन्त्र्य गौतमींदेवीं स्थितानिपुरतस्तदा ॥ सर्वेषांशृण्वतां विप्रा गौतमीखिन्नमानसा ॥ १५ ॥ तप्तादुर्जनसम्पर्कान्नारदंदुःखिताब्रवीत् ॥ गोदावरीमहापुण्या यत्संसर्गाय

के स्थित होनेपर प्रसन्न होकर एक वर्षतक गोदावरी के किनारे स्थित रहे ॥ १२ ॥ और त्रिलोक में जो कोई पवित्र तीर्थ व क्षेत्र हैं उन सबों को देखकर गौतमजी विस्मित हुए ॥ १३ ॥ और वहां मुनियों समेत प्रसन्न होतेहुए देवर्षि नारदजी बसते भये व सिंहराशि व्यतीत होनेपर सब तीर्थ अपने स्थानों को जाने के लिये ॥ १४ ॥ गौतमी देवीजी से पूंछकर उस समय आगे स्थित हुए व हे ब्राह्मणो ! सबों के सुनतेहुए दुःखित मनवाली गौतमी ने ॥ १५ ॥ दुर्जन के संगम से संतप्त व दुःखित

होतीहुई नारदजी से कहा कि गोदावरी महापुण्यवती है कि जिसका संसर्ग यह ऐसा है ॥ १६ ॥ तुम इन तीर्थों व गङ्गादिक निर्मल नदियों को देखो कि समुद्र व पवित्र पर्वत और तीनों गया ॥ १७ ॥ व हे नारद ! इस त्रिलोक में जो मोक्षदायक तीर्थ हैं व जो देवता, पितर, सिद्ध, ऋषि और मनुष्यादिक हैं॥ १८ ॥ उनको व सब तीर्थों से संयुत तीर्थों के राजा प्रयाग को देखो व हे महामुने ! विशुद्ध इन सबों का मेरा संसर्ग प्रकाश से त्रिलोक में शोभित है व दिन रात पुण्य के प्रकाश से प्रकाशित इन प्रसन्न तीर्थों को ॥ १९ । २० ॥ हे नारदजी ! इस समय मेरे संसर्ग से सौभाग्य प्राप्तहुआ है और ये तीर्थ व प्रसन्न होतेहुए ये देवता अपने स्थानों

मीदृशः ॥ १६ ॥ तीर्थानिपश्यैतानित्वं गङ्गाद्याःसरितोऽमलाः ॥ सागरागिरयःपुण्या गयात्रितयमेव च ॥ १७ ॥ क्षेत्राणि मोक्षदानीह त्रैलोक्येयानिनारद ॥ देवाश्च पितरःसिद्धा ऋषयोमानवादयः ॥ १८ ॥ तीर्थराजंप्रयागं च सर्वतीर्थसमन्वितम् ॥ एतेषामपि सर्वेषां मत्संसर्गोमहामुने ॥ १९ ॥ विशुद्धानांप्रकाशेन राजतेभुवनत्रये ॥ पुण्यप्रकाशदीप्तानां मुदितानामहर्निशम् ॥ २० ॥ सौभाग्यमधुनाप्राप्तं मत्संसर्गेणनारद ॥ प्रयान्त्येतानि चैते च स्वस्थानानिप्रहर्षिताः ॥ २१ ॥ अधुनाहंपरिश्रान्ता दग्धमाना त्वहर्निशम् ॥ दुर्जनानां तु सम्पर्काद् भृशम्पापाग्निनाप्रभो ॥ २२ ॥ एतानिमत्प्रसादेन पुण्यानिमुदितानि च ॥ कयामिभोमुनेऽत्यर्थं दुःखिताकिंकरोम्यहम् ॥ २३ ॥ क्षेत्रराजाधिराजानं सर्वतीर्थोत्तमं तथा ॥ सर्वतीर्थोत्तमंदेव कथ्यतांमेसुखावहम् ॥ २४ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ गोदावर्यावचःश्रुत्वा भगवान्नारदोब्रवीत् ॥ क्षणंध्यात्वा तु दुःखार्त्तः प्राहसंशयमानसः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ अहोअत्यद्भुतंह्येतद्गौतम्याश्शासनंमहत् ॥ पश्यतामृ

को जाते हैं ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! इस समय दिन रात दुर्जनों के संसर्ग से बहुतही पाप की अग्नि से जलेहुए मानवाली मैं थकगई हूं ॥ २२ ॥ और मेरी प्रसन्नता से ये पवित्र व प्रसन्न हैं हे मुने ! मैं कहा जाऊं और बहुतही दुःखित मैं क्या करूं ॥ २३ ॥ हे देव ! सब तीर्थों में उत्तम क्षेत्रराजों के राजा और सब तीर्थों में उत्तम तथा सुखदायक तीर्थ को मुझ से कहो ॥ २४ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि गोदावरीके वचन को सुनकर भगवान् नारदजी बोले और क्षण भर ध्यान कर दुःख से विकल तथा संशय मनवाले नारद ने कहा ॥ २५ ॥ नारदजी बोले कि अहो यह गौतमी का बड़ाभारी व बहुत अद्भुत शासन (कथन) है हे ऋषियो, देवताओ, तीर्थो,

क्षेत्रो व हे उत्तम नदियो ! देखिये ॥ २६ ॥ कि जिसके संसर्ग से तुमलोगों का जल बहुत पवित्र व कल्याणकारी हुआ है उसके पापरूपी अग्नि की शान्ति कैसे होगी इस को विचारिये ॥ २७ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस समय उन के अनिश्चित व अप्रिय वचन को चिन्तन करतेहुए भगवान् गौतम मुनीश्वरजी वहां आये ॥ २८ ॥ व उनको देखकर ऋषियों व देवताओं ने यथायोग्य पूजन किया और श्रीगङ्गा, यमुना व पवित्र नर्मदा व सरस्वती ॥ २९ ॥ और जो सब नदियां त्रिलोक के मध्य में वर्तमान थीं वे और आश्रमों समेत काशी व कुरुक्षेत्र आदिक ॥३०॥ हर्ष व शोक से संयुत प्रयागादिक सब तीर्थ साथही मुनि को पूजन कर बोले ॥३१॥ कि हे मुने ! तुम्हारी प्रसन्नता से

षयोदेवास्तीर्थक्षेत्राःसरिद्वराः ॥ २६ ॥ सुपुण्यं च शिवंयस्या युष्माकंसमभूज्जलम् ॥ तस्याःपापाग्निशमनं कथंस्या दितिचिन्त्यताम् ॥ २७ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ तदाचिन्तयतांतेषामनिर्द्धारितमप्रियम् ॥ गौतमोभगवांस्तत्र समाया तोमुनीश्वरः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वातमृषयोदेवा यथोचितमपूजयन् ॥ जाह्नवीयमुनापुण्या नर्मदा च सरस्वती ॥ २९ ॥ अन्या श्च सरितःसर्वास्त्रैलोक्यान्तरगाश्च याः ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रप्रमुखान्याश्रमैःसह ॥ ३० ॥ प्रयागादीनितीर्थानि हर्षशो कयुतानि च ॥ युगपत्तानिसर्वाणि सम्पूज्यमुनिमब्रुवन् ॥ ३१ ॥ त्वत्प्रसादेननोजाता सम्यक्सिद्धिर्महामुने ॥ यदानी तात्वया चेयं गौतमीभूतलंशुभम् ॥ ३२ ॥ कृतार्थामानवाःसर्वे सर्वपापविवर्जिताः ॥ किन्तु दुर्जनसम्पर्कात्सतप्तागौत मीभृशम् ॥ ३३ ॥ कथम्पापैर्विनिर्मुक्ता परमानन्दसम्प्लुता ॥ सुप्रभाजायतेदेवी तत्तुगौतमचिन्त्यताम् ॥ ३४ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ एवमुक्तोमुनिस्तैस्तु चिन्ताकुलितमानसः ॥ नारदस्यमुखंवीक्ष्य प्राहतान्गौतमस्तदा ॥ ३५ ॥ गौतम उवाच ॥

हमलोगों की भलीभांति सिद्धि होगई जोकि तुमसे गौतमीजी उत्तम पृथ्वी पै लाई गईं ॥३२॥ उमसे सब मनुष्य कृतार्थ होगये और सब पापसे रहित होगये परन्तु दुर्जनों के संसर्ग से वे गौतमीजी संतप्त हैं ॥ ३३ ॥ हे गौतमजी ! पापों से मुक्त होकर बड़े आनन्द संयुत गौतमीदेवी किस प्रकार उत्तम प्रकाशवती होवैंगी उसको चिन्तन कीजिये ॥ ३४ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस समय उनसे इस प्रकार कहेहुए चिंता से विकल मनवाले गौतमजी ने नारदजीका मुख देखकर उनसे कहा ॥३५॥ गौतमजी

बोले कि सब तीर्थों व क्षेत्रों के बड़े पापों को नाशनेवाली यह गौतमी बड़ी ऐश्वर्यवती है इस लिये इसका पाप कहां शुद्ध कियाजावै ॥ ३६ ॥ क्योंकि त्रिलोक में वह तीर्थ व क्षेत्र नहीं है जोकि सिंहराशिमें बृहस्पति के प्राप्त होनेपर विशुद्धि के लिये गौतमी में नहीं आताहै ॥ ३७ ॥ काशी व प्रयाग आदिक तीर्थ उसके प्रभाव से शोभित हैं और गोदावरी के दुष्ट संसर्ग के संतापको मैं कहा शुद्ध करूं ॥ ३८ ॥ मोहित होतेहुए देवता व सब मुनियों ने कुछ नहीं कहा और शुद्ध व योग्य अर्थ को विचार कर वे इस ज्ञान के संकट में प्राप्तहुए ॥३९॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि ऐसा कहेहुए सब मुनियों ने मोहित होकर कुछ नहीं कहा तदनन्तर ध्यान से गौतमीजी को जानकर गौतमजीने

सर्वेषांतीर्थक्षेत्राणां महाशुभविनाशिनी ॥ गौतमीयंमहाभागा अस्याःपापंकमाज्र्यते ॥ ३६ ॥ नास्तिलोकत्रयेतीर्थं स्नातुंसिंहगतेगुरौ ॥ यन्नायातिगौतम्यां क्षेत्रं वापि विशुद्धये ॥ ३७ ॥ काशीप्रयागमुख्यानि राजन्तेतत्प्रभावतः ॥ दुष्टसम्पर्कसन्तापं गोदावर्याःक्रमाज्र्म्यहम् ॥ ३८ ॥ देवास्तु मुनयःसर्वे नोचुःकिंचिद्विमोहिताः ॥ शुद्धंविचार्ययुक्तार्थं प्राप्तास्मिञ्ज्ञानसंकटे ॥ ३९ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ इत्युक्तामुनयःसर्वे नोचुःकिंचिद्विमोहिताः ॥ ततोध्यानेनविज्ञाय गौतमींगौतमोब्रवीत् ॥ ४० ॥ गौतम उवाच ॥ आनीतास्तिमहादेवी तपसाराध्यशङ्करम् ॥ गौतमीश्रद्धयाभक्त्या गङ्गामौलिमखण्डधीः ॥ ४१ ॥ तदाद्यंमहदाश्चर्यं शृण्वन्तुमुनयोमलाः ॥ जनकंपरमानन्दं सर्वेषांमूढचेतसाम् ॥ ४२ ॥ ध्यायमानेमहादेवे गौतमेनमहात्मना ॥ अकस्मादभवद्वाणी हर्षयन्तीजगत्त्रयम् ॥ ४३ ॥ नादयन्तीजगत्सर्वमाब्रह्म भुवनाद्द्विजाः ॥ अरूपाक्षणदाकारा विषादशमनीशुभा ॥ ४४ ॥ दिव्यवाण्युवाच ॥ अहोबतमहाश्चर्यं सर्वेषांशुभदे

कहा ॥४०॥ गौतमजी बोले कि गंगाजी जिनके मस्तक में हैं उन शिवजी को भक्तिसे तपसे आराधनकर श्रद्धासे अखण्ड बुद्धिवाली गौतमी महादेवी लाई गई हैं ॥४१॥ उस समय पहले के बड़े भारी आश्चर्य को निर्मल मुनिलोग सुनैं जोकि मूढ़चित्तवाले सबों के बड़े आनन्द को पैदा करनेवाला है ॥ ४२ ॥ महात्मा गौतमजी से महादेवजी के ध्यान करने पर हे द्विजो ! ब्रह्मभवन से लगाकर सब संसार को शब्दायमान करती व त्रिलोक को प्रसन्न करतीहुई आकाशवाणी अचानक हुई जोकि अरूपिणी व रात्रि के समान तथा विषादको नाश करनेवाली व उत्तम थी ॥४३।४४॥ दिव्यवाणी बोली कि अहो बड़े खेदकी बात है कि हे बुधो ! संसार के दुःख

रूपी समुद्र में सबों के शुभदायक व उत्तम क्षेत्र के विद्यमान होनेपर भी ॥ ४५ ॥ अहो मूर्ख नष्टलोग अज्ञान के समुद्रमें डूबते हैं और ऋषिलोग भी सब पापोंको नाशनेवाले क्षेत्रको नहीं जानते हैं ॥ ४६ ॥ और मुनिलोगों ने भी सब कामनाओं को देनेवाले व सनातन तथा अचल क्षेत्र को नहीं जाना यह बड़े खेदकी बात है व हे गौतमादिक तथा नारदादिक ऋषियो ! ॥ ४७ ॥ क्षेत्रों व तीर्थों को सुनो मैं दया से कहताहूं कि पश्चिम समुद्र के किनारे को प्राप्तहोकर हमसे भी अन्य कल्याणदायक व अति उत्तम द्वारक्षेत्र वर्तमान है जहां कि समुद्र से संयुत पवित्र गोमती स्थित है ॥ ४८।४९ ॥ और जहां पश्चिमाभिमुख महाविष्णुजी सदैव स्थित

शुभे ॥ विद्यमानेमहाक्षेत्रे भवदुःखार्णवेबुधाः ॥ ४५ ॥ अहोमूर्खाविनष्टा वै मज्जन्त्यज्ञानसागरे ॥ ऋषयोपि न जानन्ति सर्वाशुभविनाशिनम् ॥ ४६ ॥ सर्वकामप्रदंनित्यं न विदुर्मुनयोध्रुवम् ॥ वताहोगौतमाद्याश्च ऋषयोनारदादयः ॥ ४७ ॥ शृण्वन्तुक्षेत्रतीर्थानि कृपयासंवदाम्यहम् ॥ पश्चिमस्यसमुद्रस्य तीरमाश्रित्यवर्त्तते ॥ ४८ ॥ अस्मादपि शिवं चान्यद् द्वारक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ यत्रास्तेगोमतीपुण्या सागरेणसमन्विता ॥ ४९ ॥ पश्चिमाभिमुखो यत्र महाविष्णुःसदास्थितः ॥ तत्सर्वपापराशीनामुग्राणामपि सर्वदा ॥ ५० ॥ दाहस्थानंसमाख्यातमिन्धनानांयथानलः ॥ देवोविश्वद्रुहो यत्र दाहस्थानकमद्भुतम् ॥ ५१ ॥ लोकत्रयवधाज्जातं विराजत्यर्कवत्सदा ॥ तद्गम्यतांमहाभागा गौतम्यास्तु विदाहकम् ॥ ५२ ॥ गोदावरीम्पुरस्कृत्य क्षेत्रतीर्थसमन्विताम् ॥ प्राप्याद्वारावतीपुण्या मत्प्रसादाद्द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥ प्रभावो द्वारकायात्रः सत्यमाविर्भविष्यति ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ इत्युक्त्वोपरतेदेवे सर्वेतेहर्षमानसाः ॥ ५४ ॥ श्रुत्वासर्वोत्तरं

हैं वह सब उग्र भी पापराशियों का सदैव ॥ ५० ॥ दाहस्थान कहा गया है जैसा कि इन्धनों की अग्नि होती है और जहां विश्वद्रुह देव व अद्भुत दाह स्थान है ॥ ५१ ॥ व त्रिलोक के वध से उपजाहुआ वह सदैव सूर्यनारायण की नाईं प्रकाशित है हे महाभागो ! गौतमी के विदाहक उस क्षेत्रको जाइये ॥ ५२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! क्षेत्रों व तीर्थों से संयुत गोदावरी को आगे कर मेरी प्रसन्नता से पवित्र द्वारकापुरी प्राप्तहोने योग्य है ॥ ५३ ॥ और द्वारका का प्रभाव तुमलोगों को सत्य प्रकट होगा श्रीप्रह्लादजी बोले कि ऐसा कहकर देवके चुपहोजाने पर वे सब प्रसन्नमन हुए ॥ ५४ ॥ और सब से

व हे ब्राह्मणो ! गोमती का स्नान तथा रुक्मिणी का दर्शन दुर्लभ है और सुमेरु व मन्दराचल के समान जो पुण्यपुञ्ज किये गये हैं ॥ ६५ ॥ व तपस्या, यज्ञ, दान व जो कुछ बड़ाभारी सुकृत होवै तो हमलोगों को देवदेव श्रीकृष्णजी का दर्शन होवै ॥ ६६ ॥ व हमलोगों को पवित्र द्वारका का दर्शन होवैगा ॥६७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थक्षेत्रदर्शनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । गये क्षेत्र अरु तीर्थ जिमि पुरी द्वारका मध्य । बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसध्य ॥ प्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर उस समय द्वारका के जाने में उन

दुर्लभंगोमतीस्नानं रुक्मिणीदर्शनंद्विजाः ॥ मेरुमन्दरतुल्या वै पुण्यपुञ्जाःकृताश्च ये ॥ ६५ ॥ तपांसियज्ञदानानि यत्किञ्चित्सुकृतंमहत् ॥ तर्हिस्याद्देवदेवस्य कृष्णस्यदर्शनं हि नः ॥ ६६ ॥ द्वारकादर्शनम्पुण्यमस्माकंसम्भविष्यति ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येतीर्थक्षेत्रदर्शनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ततस्तेषांसुतीर्थानामुद्योगंपरमं तदा ॥ द्वारकागमनेहृष्टौ दृष्ट्वानारदगौतमौ ॥ १ ॥ महोत्सवोमहानत्र भविष्यतिमनोरथः ॥ तीर्थानांकृष्णयात्रायां गन्तव्यमिति चोचतुः ॥ २ ॥ अथतेऋषयोदेवाः सर्वतीर्थसमन्विताः ॥ गौतमींताम्पुरस्कृत्य ययुर्द्वारवतींमुदा ॥ ३ ॥ तदा सर्वाणिक्षेत्राणि तथारण्यानिसर्वशः ॥ द्वारकागमनारम्भे सानन्दाऋषयःसुराः ॥ ४ ॥ श्रद्धयापरयाभक्त्या कृष्णदर्शनलालसाः ॥ वीणावादित्रसंयुक्तं नारदंचाथतेब्रवन् ॥ ५ ॥ क्षेत्रतीर्थऋषिदेवा ऊचुः ॥ द्वारकापुण्यपुञ्जानां स्थानं वै तपसस्तथा ॥ यज्ञदानव्रतानाञ्च तीर्थानांतपसामपि ॥ ६ ॥

उत्तम तीर्थों के परम उद्योग को देखकर नारद व गौतमजी प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ कि यहां तीर्थों की कृष्णयात्रा में बड़ाभारी उत्सव होगा और मनोरथ होगा व यह बोले कि जाना चाहिये ॥ २ ॥ इसके अनन्तर सब तीर्थों से संयुत वे ऋषि व देवता उन गौतमीजी को आगे कर हर्ष से द्वारकापुरी को गये ॥ ३ ॥ तब सब क्षेत्र व सब वन और ऋषि व देवता द्वारका के गमन के प्रारम्भ में आनन्द समेत हुए ॥ ४ ॥ और बड़ी श्रद्धा व भक्ति से श्रीकृष्णजी के दर्शन की लालसावाले उन्होंने वीणा के बाजन से संयुत नारदजी से कहा ॥ ५ ॥ क्षेत्र, तीर्थ, ऋषि व देवता बोले कि द्वारका पुण्यपुंजों का व तपस्या का स्थान है और यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ व तपों का भी स्थान है ॥ ६ ॥

और संसार में जो देश व समय और स्वभाव से उपजाहुआ जो कुछ पुण्य है वह प्राप्तहुआ और यह तुम्हारी प्रसन्नता है जोकि हमलोग द्वारका को देखैंगे ॥ ७ ॥ व इस समय योगियों के उत्तम गुरु तुम से हम पूछते हैं कि द्वारका की यात्रा की कौन विधि कहीगई है ॥ ८ ॥ व हे मुने ! इसमें कौन नियम करना चाहिये व क्या वर्जित करना चाहिये और मार्ग में सब मनुष्यों को क्या सुनना व क्या कहना चाहिये ॥ ९ ॥ व उसमें क्या जपने योग्य है और यात्रा में क्या उत्तम फल होता है और यहां द्वारका के उस मार्ग में कौन उत्सव कहेगये हैं ॥ १० ॥ हे गुरो, महाभाग, भक्तानन्दविवर्द्धन ! एक एक के इस सब चरित्र

यत्किञ्चित्सुकृतंलोके देशकालस्वभावजम् ॥ सम्प्राप्तंत्वत्प्रसादोयं यद्द्रक्ष्यामःकुशस्थलीम् ॥ ७ ॥ पृच्छामहेधुना त्वां वै योगिनांपरमंगुरुम् ॥ द्वारकायास्तु यात्रायाः कोविधिःसम्प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥ नियमाःकेत्र कर्तव्या वर्जनीयश्च किम्मुने ॥ श्रोतव्यंकीर्तितव्यश्च किंसर्वैर्मानवैःपथि ॥ ९ ॥ जप्यश्च तत्र किम्प्रोक्तं यात्रायाम्फलमुत्तमम् ॥ उत्सवाश्चात्र केप्रोक्ता द्वारकायास्तु तत्पथि ॥ १० ॥ एकैकस्यमहाभाग भक्तानन्दविवर्द्धन ॥ एतत्सर्वंगुरोऽस्माकं कृपयासम्प्रकीर्तय ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ कृताभ्यङ्गस्तु पूर्वेद्युः सम्पूज्यश्रद्धयान्वितः ॥ भोजयेद्वैष्णवान्सर्वान् स्वशक्त्यातान्प्रहर्षितः ॥ १२ ॥ अनुज्ञातोमहाविष्णोः पक्वान्नमुपभुज्य वै ॥ शयीतभुविसुप्रीतो द्वारकाकृष्णमानसः ॥ १३ ॥ प्रभाते च शुचिःस्नात्वा सम्पूज्यजगदीश्वरम् ॥ प्रदक्षिणंनमस्कृत्वा महाविष्णोरनुज्ञया ॥ १४ ॥ सदृष्ट्वाकुलसंवृद्धान् ब्राह्मणान् वैष्णवान्प्रियान् ॥ अभ्यर्च्यगन्धताम्बूलैः कुर्यादग्रेमहोत्सवम् ॥ १५ ॥ ततस्तु तदनुज्ञातो गीतवादित्रसंस्तवैः ॥ या

को हम लोगों से दया से कहिये ॥ ११ ॥ नारदजी बोले कि पहले दिन श्रद्धा संयुत मनुष्य उबटन लगाकर सब वैष्णवों को भलीभांति पूजकर अपनी शक्ति के अनुसार उनको प्रसन्न होकर भोजन करावै ॥ १२ ॥ और महाविष्णुजी से आज्ञा को लेकर पक्वान्न को भोजन कर द्वारका व श्रीकृष्ण में मन को लगाकर प्रसन्न होकर पृथ्वी में शयन करै ॥ १३ ॥ और प्रातःकाल नहाकर पवित्र मनुष्य जगदीश्वर विष्णुजी को पूजकर प्रदक्षिणा व प्रणाम कर महाविष्णुजी की आज्ञा से ॥ १४ ॥ कुल में वृद्ध व प्यारे वैष्णव ब्राह्मणों को देखकर चन्दन व ताम्बूलोंसे पूजकर आगे बड़ाभारी उत्सव करै ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन विष्णुजीसे आज्ञाको लेकर प्रसन्न पुरुष गाने, बजाने

से व स्तोत्रोंसे द्वारका में यात्रा का आरम्भ करै ॥ १६ ॥ और द्वारका को जाताहुआ शान्त, दान्त व पवित्र मनुष्य इन्द्रियोंको रोंककर ब्रह्मचर्य व नीचे शयन करै ॥ १७ ॥ और मार्ग में सावधान होकर सहस्रनामादिक स्तोत्र व पुराणों का पठन तथा वैदिक सूक्तों को पढ़ताहुआ मनुष्य ॥ १८ ॥ गाने व बजाने के शब्दों से तथा नृत्य की ध्वनि से प्रसन्न होवै तथा जिस प्रकार प्रसन्न मनुष्यों का परिश्रम दूरहोवै उस प्रकार एकही साथ सबों को पूजताहुआ मनुष्य ॥ १९ ॥ नित्य प्रिय वचन कहै व सदैव सबों का सन्मान करै और श्रम को दूर करनेवाला भक्तों का पादसंवाहन करै याने चरणों को चापै ॥ २० ॥ व मार्ग में द्वारका को जातेहुए पुरुषों को जल और सुखपूर्वक

आरम्भंप्रकुर्वीत द्वारकायांप्रहर्षितः ॥ १६ ॥ द्वारकांगच्छमानस्तु शान्तोदान्तःशुचिस्तथा ॥ ब्रह्मचर्यमधःशय्यां कुर्वीतनियतेन्द्रियः ॥ १७ ॥ सहस्रनामादिस्तोत्राणि पुराणपठनानि च ॥ वैदिकानि च सूक्तानि पठन्पथिसमाहितः ॥ १८ ॥ गीतवाद्यप्रघोषेण नृत्यनादप्रहर्षितः ॥ अर्चयन्युगपत्सर्वान् मुदितानांश्रमापहम् ॥ १९ ॥ प्रियवाचंवदेन्नित्यं सर्वान्संमानयेत्सदा ॥ पादसंवाहनंकार्यं भक्तानाञ्च श्रमापहम् ॥ २० ॥ पानीयंसुखवासञ्च द्वारकाम्पथिगच्छताम् ॥ वृद्धानामक्षमाणाञ्च वाहनस्य च दापनम् ॥ २१ ॥ कर्त्तव्यंसकृपंचित्तं तेषांशुश्रूषणं तथा ॥ अन्नदानादिकंसर्वं विभवेसतिमानवः ॥ २२ ॥ कुर्याच्छ्रीकृष्णसम्प्रीत्यै महापुण्यंलभेद्ध्रुवम् ॥ अपिस्वल्पंस्वशक्त्या वै कृतंकोटिगुणं भवेत् ॥ २३ ॥ पथिकृष्णस्ययोभक्त्या ग्रासमेकम्प्रयच्छति ॥ सद्वीपातेनदत्ताभूः पुण्यस्यान्तो न विद्यते ॥ २४ ॥ किन्तु तद्वारकाक्षेत्रे श्रीकृष्णस्यसमीपतः ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे राजसूयायुतंफलम् ॥ २५ ॥ गयाश्राद्धसहस्राणि

निवास को देवै तथा वृद्ध व असमर्थ लोगों को वाहन देवै ॥ २१ ॥ व दया समेत चित्त और उनकी सेवा करना चाहिये व ऐश्वर्य होने पर मनुष्य सब अन्नदानादिक ॥ २२ ॥ श्रीकृष्णजी की प्रीति के लिये करै तो निश्चय कर महापुण्य को पावै व अपनी शक्ति के अनुसार थोडा भी कियाहुआ कोटिगुना होता है ॥ २३ ॥ व जो मनुष्य मार्ग में श्रीकृष्णजी की भक्ति से एक कवल देता है उसने द्वीपों समेत पृथ्वी को दिया और उसके पुण्य का अन्त नहीं होता है ॥ २४ ॥ बरन उस द्वारका क्षेत्र में श्रीकृष्णजी के समीप एक ब्राह्मण भोजन कराने पर मनुष्य दश हज़ार राजसूय यज्ञों के फल को पाता है ॥ २५ ॥ और द्वारका के मार्ग में जानेवाले पुरुषों को

जिन्होंने अन्नदान किया उन्होंने सैकडों व हज़ारों गयाश्राद्धों को किया ॥ २६ ॥ और जूता, अन्न, जल, खड़ाऊं, छतुरी, कम्बल, वस्त्र और जल के पात्रों को ऐश्वर्य होने पर देवै ॥ २७ ॥ व जो कुछ दान देवै उसका अन्त नहीं होता है- और महाविष्णुजी की प्रीति के लिये तथा सब मनोरथों की सिद्धि के लिये ॥ २८ ॥ मनस्वी पुरुषों को आदर से विष्णु का आराधन करना चाहिये और ऐश्वर्य से सब फलता है व उसके विना विफल होता है ॥ २९ ॥ और संकरवर्ण व वृथाजात मनुष्य को वर्जित करै और निन्दा वर्जित है जोकि शास्त्रों से निषिद्ध है ॥ ३० ॥ और जिसके हाथ, पाव व मन बंधा है उसका बड़ा यश होता है व निश्चय कर

कृतानिशतसंख्यया ॥ अन्नदानंकृतंयैस्तु द्वारकापथिगच्छताम् ॥ २६ ॥ उपानदन्नपानीयं पादुकेछत्रकम्बलान् ॥ वासांसितोयपात्राणि दद्याच विभवेसति ॥ २७ ॥ दद्याद्दानञ्च यत्किंचित्तस्यान्तो नहि विद्यते ॥ प्रीत्यर्थञ्च महाविष्णोः सर्ववाञ्छितसिद्धये ॥ २८ ॥ विष्णोराराधनंकार्यमादरेणमनस्विभिः ॥ सर्वंविभवेनफलति विफलंतद्विनाभवेत् ॥ २९ ॥ वर्जयेत्सङ्करंविद्वान् वृथाजातं तथैव च ॥ परिनिन्दानिषिद्धा च या तु शास्त्रैर्निषेधिता ॥ ३० ॥ यस्यहस्तौ च पादौ च मनो यस्यसुसंयतम् ॥ तस्य चैव पराकीर्तिर्भवेत्तीर्थफलंध्रुवम् ॥ ३१ ॥ परान्नम्परपाकं च सतिवित्तेत्यजेद्ध्रुवम् ॥ न दोषोस तिवित्तेस्य तावन्मात्रप्रतिग्रहे ॥ ३२ ॥ श्रोतव्यासत्कथाविष्णोर्नामसंकीर्त्तनम्मुदा ॥ द्वारकापथिगच्छद्भिरन्योन्यंभक्तिवर्द्धनम् ॥ ३३ ॥ जप्तव्यंवैदिकंजाप्यं स्तोत्रमागमिकं तथा ॥ पौराणिकं च यत्स्तोत्रं विष्णोःसुप्रीतिहेतवे ॥ ३४ ॥ यात्रायांयत्फलम्प्रोक्तं श्रीकृष्णस्य च वै कलौ ॥ न शक्यतेमयावक्तुं तच्च वै युगसंख्यया ॥ ३५ ॥ उत्सवोत्र प्रकर्त्तव्यः सा

तीर्थ का फल होता है ॥ ३१ ॥ व ऐश्वर्य होने पर पराये अन्न और पराये पाक को अवश्य कर त्याग करै और ऐश्वर्य न होने पर प्रयोजन भर ग्रहण करने पर दोष नहीं होता है ॥ ३२ ॥ और विष्णुजी की उत्तम कथा को सुनना चाहिये व द्वारका के मार्ग में चलनेवाले मनुष्यों को परस्पर भक्ति को बढ़ानेवाला विष्णु का नाम कीर्तन हर्ष से करना चाहिये ॥ ३३ ॥ व वैदिक जप और शास्त्र के स्तोत्र को जपना चाहिये व विष्णुजी की उत्तम प्रीति के लिये जो पुराण का स्तोत्र होवै उसको पढ़ना चाहिये ॥ ३४ ॥ व कलियुग में श्रीकृष्णजी की यात्रा में जो फल कहागया है वह मुझ से युग की गिनती से भी नहीं कहा जासक्ता है ॥ ३५ ॥ व हे द्विजोत्तमो !

यहां आनन्द समेत मनुष्यों को गाने, बजाने के शब्दों से तथा पताकाओं से उत्तम उत्सव करना चाहिये ॥ ३६ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठो ! तुमलोगों ने जो पूंछा यह सब कहा गया और मेरी भी व विष्णुजी की प्रीति के लिये उसको बड़े यत्न से करना चाहिये ॥ ३७ ॥ और एक एक व अन्यों को भी उद्देश कर इसको करना चाहिये और कोमलता से संयुत मनुष्य विष्णुजी की प्रीति को पावेंगे ॥ ३८ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि नारदजी से इस प्रकार कहेहुए उन प्रसन्नमनवाले सब मुनियों ने यकायक मार्ग में श्रीकृष्णदेवजी के उस कर्म को किया ॥ ३९ ॥ और कितेक मुनिलोग संसार में प्रसिद्ध उत्तम कथाओं को सुनने लगे कि जिनके सुननेही से भगवान् हृदय में

नन्दैर्द्विजसत्तमाः ॥ गीतवादित्रघोषेण पताकाभिःसुशोभनः ॥ ३६ ॥ इत्येतत्कथितंसर्वं यत्पृष्टमृषिपुङ्गवाः ॥ कर्तव्यं तत्प्रयत्नेन विष्णुप्रीत्यैममापि च ॥३७॥ एकैकेन तु कार्यं च अन्यैश्चापि तथा सह ॥ उद्दिश्यभगवत्प्रीतिं लभिष्यन्त्यार्जवान्विताः ॥ ३८ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ एवंतेनारदेनोक्ता मुनयोहर्षमानसाः ॥ चक्रुस्तेसहसासर्वे कृष्णदेवस्यतत्पथि ॥ ३९ ॥ केपि शृण्वन्तिविष्णोश्च सत्कथालोकविश्रुताः ॥ यासांसंश्रवणादेव भगवान्वसतेहृदि ॥ ४० ॥ कीर्त्यमानानिनामानि महापुण्यप्रदानि वै ॥ पावनानिसदालोके कलौविप्राविशेषतः ॥ ४१ ॥ पुराणसंहितादिव्या मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ प्रकाशयतियाविष्णोर्महिमानंसुमङ्गलम् ॥ ४२ ॥ सद्गुणाःकर्मवीर्याणि कृतानिविष्णुनापुरा ॥ लीलावताररूपैस्ते शृण्वन्तिपरयामुदा ॥ ४३ ॥ अपरेवासुदेवस्य चरितानिसुमङ्गलाः ॥ वदन्तिपरयाभक्त्या सानन्दाःसाश्रुलोचनाः ॥ ४४ ॥ कीर्तितानिपुरायानि मुनिभिश्चरितानि वै ॥ गायन्त्यन्यान्यकस्माच्च तानिसर्वाणि

बसते हैं ॥ ४० ॥ व हे ब्राह्मणो ! संसार में कहेजाते हुए विष्णुजी के नाम सदैव महापुण्यों को देनेवाले व पवित्रकारक हैं और कलियुग में विशेषता से हैं ॥ ४१ ॥ और मुनियों ने दिव्य पुराणसंहिता को कहा जोकि विष्णुजी की उत्तम मंगलरूपिणी महिमा को प्रकाशित करती है ॥ ४२ ॥ और पुरातन समय विष्णुजी ने लीलावतारों के रूपों से उत्तम गुण, कर्म व जिन वीर्यों को किया है उनको वे मुनिलोग बड़े हर्ष से सुनने लगे ॥ ४३ ॥ और आनन्द समेत व आँसुवों सहित लोचनोंवाले अन्य मंगलरूप मुनिलोग बड़ी भक्ति से श्रीकृष्णजी के चरित्रों को कहने लगे ॥ ४४ ॥ और पुरातन समय मुनियों ने जिन अन्य चरित्रों को कहा है उन

सबों को प्रसन्न होकर यकायक गाने लगे ॥ ४५ ॥ व अन्य मुनिलोग प्रसिद्ध रूपवाले तथा इच्छारूपी, अनादिनिधन व्यापक विष्णु देवेशजी को भक्ति से स्मरण करनेलगे ॥ ४६ ॥ व हर्ष समेत कितेक संयमी मुनिलोग वैदिक व पुराणों के विष्णुजी के स्तोत्रों को जपने लगे ॥ ४७ ॥ व अन्य मुनिलोग पुराणादिकों में ऋषियों से कहेहुए नारायण व विष्णुजी के पापहारक बहुत से नामों को कहने लगे ॥ ४८ ॥ और कोई मुनिलोग मार्ग में सौ नामों को जपते थे तथा अन्य सहस्रनाम व लक्षनाम को जपते थे ॥ ४९ ॥ और संसार को ज्ञान करनेवाले तथा महापुण्यवान् कितेक मुनिलोग प्रसन्न होकर लोक में गाये हुए विष्णुजी के नामों

हर्षिताः ॥४५॥ अन्येस्मरन्तिदेवेशमनादिनिधनंविभुम् ॥ स्वच्छन्दरूपिणम्भक्त्या विष्णुंविश्रुतरूपिणम् ॥ ४६ ॥ केचिज्जपन्तिमुनयः स्तोत्रादीनिमुदान्विताः ॥ वैदिकानिपुराणानि वैष्णवानिसुसंयताः ॥ ४७ ॥ अन्येऋषिप्रणीतानि पुराणादिषुभूरिशः ॥ नारायणस्यविष्णोर्वै नामान्यघहराणि च ॥ ४८ ॥ केचित्तु शतनामानि जपन्तिमुनयःपथि ॥ अन्येसहस्रनामानि लक्षनाम तथापरे ॥ ४९ ॥ केचिल्लौकिकगीतानि हरिनामानिहर्षिताः ॥ गायन्तिसुमहापुण्या जगतोबोधकारकाः ॥ ५० ॥ सुगीतंसरसाविष्टं विस्मृत्यदेहभावजम् ॥ पश्यन्तिरुचिराण्यस्य विष्णोरूपाणितेधुना ॥ ५१ ॥ यद्यत्पश्यन्तिशृण्वन्ति मुनयस्तीर्थकैःसह ॥ तत्तच्चतुर्भुजंविष्णुं यद्गीतंविष्णुमानसाः ॥ ५२ ॥ उत्सवैश्च व्रजन्त्यन्ये पताकाद्यैर्विभूषिताः ॥ गीतवादित्रघोषेण करतालस्वनेन च ॥ ५३ ॥ गायन्त्येके च नृत्यन्ति वादित्राणि परम्मुदा ॥ वादयन्तिमहात्मानो नृत्यतालैश्च केचन ॥ ५४ ॥ सर्वेगर्जन्तियुगपन्मिलिताहरिनामभिः ॥ परमानन्द

को गाने लगे ॥ ५० ॥ और शरीर के भावसे उपजे हुए सरस प्रविष्ट उत्तम गीत को भूलकर इस समय वे उन विष्णुजी के सुन्दर रूपों को देखने लगे ॥ ५१ ॥ और तीर्थों समेत मुनिलोग जो जो देखते व सुनते थे उस उसको वे विष्णुजी में मनवाले मुनिलोग चतुर्भुज विष्णु को देखते थे जोकि गायागया है ॥ ५२ ॥ व अन्य मुनिलोग पताकादिकों से भूषित होकर गाने, बजाने के शब्द से तथा हाथ की तालियों की ध्वनि से जाते थे ॥ ५३ ॥ व कितेक मुनि गाते थे और कितेक महात्मा बड़े हर्ष से नृत्यों व तालों से बाजनों को बजाते थे ॥ ५४ ॥ और सब लोग मिलकर विष्णुजी के नामों से गरजते थे व बड़े आनन्द में

मग्न होकर परस्पर हँसते थे ॥ ५५ ॥ और हर्ष से विष्णुजी का उत्सव तथा गीतादिक व नृत्य करते थे और सदैव केवल विष्णुजी में चित्त से विष्णुजी के मन्त्रों को जपते थे ॥ ५६ ॥ विष्णुजी की क्रीड़ा के लय में लगेहुए मनुष्य वैष्णवों को प्यारे होते हैं उनको देखकर ब्रह्मघाती मनुष्य शुद्ध होजाता है इसको मैंने सत्य कहा है ॥ ५७ ॥ तीनों लोकों में उससे अधिक धन्य कोई नहीं है कि जिसको अति उत्तम वैष्णवों का दर्शन हुआ है ॥ ५८ ॥ वैसेही पवित्र गङ्गा, यमुना व सरस्वती तथा नर्मदादिक सब नदियों ने गीत व नृत्य किया ॥ ५९ ॥ और प्रयागादिक तीर्थ, समुद्र व उत्तम पर्वत, काशी, कुरुक्षेत्र व अन्य सब बहुत से पवित्र ॥ ६० ॥

निमग्ना अन्योन्यंप्रहसन्तिहि ॥ ५५ ॥ विष्णूत्सवम्प्रकुर्वन्ति गीतादिनर्त्तनम्मुदा ॥ जपन्तिवैष्णवान्मन्त्रान्सदाविष्णवेकचेतसा ॥ ५६ ॥ विष्णुक्रीडालयेसक्ता जनावैष्णववल्लभाः ॥ तान्दृष्ट्वाब्रह्महाशुध्येत्सत्यंसत्यम्मयोदितम् ॥ ५७ ॥ नास्तिधन्यतमस्तस्मात्रिषुलोकेषुकश्चन ॥ दर्शनंयस्यसञ्जातं वैष्णवानामनुत्तमम् ॥ ५८ ॥ तथैव जाह्नवीपुण्या यमुना च सरस्वती ॥ रेवाद्याःसरितःसर्वाः प्रचक्रुर्गीतनर्तनम् ॥ ५९ ॥ प्रयागादीनितीर्थानि सागराःपर्वतोत्तमाः ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं पुण्यान्यन्यानिकृत्स्नशः ॥ ६० ॥ त्रैलोक्येयानितीर्थानि क्षेत्राणिदेवनायक ॥ सर्वैर्गीतं च नृत्यञ्च द्वारकायास्तु सत्पथि ॥ ६१ ॥ मुदितानान्तुसर्वेषां द्वारकापथिनृत्यताम् ॥ पुण्यंस्यादश्वमेधानां तत्पदेरजसंख्यया ॥ ६२ ॥ एकैकस्मिन्पदेदत्ते द्वारकापथिगच्छताम् ॥ पुण्यंक्रतुसहस्राणां तत्पादरजसंख्यया ॥ ६३ ॥ इत्येतत्कुर्वतांतेषां मुनीनांतीर्थकैःसह ॥ अन्वमन्यततत्सर्वं नारदोभगवत्प्रियः ॥ ६४ ॥ इति श्रीद्वारकामाहात्म्येदेवतीर्थयात्रानामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

जो तीर्थ व क्षेत्र त्रिलोक में हैं हे देवनायक ! उन सबों ने द्वारका के उत्तम मार्ग में गीत व नृत्य किया ॥ ६१ ॥ द्वारका के मार्ग में नाचते हुए सब मुदित मनुष्यों को उनके पग में धूलियों की संख्या से अश्वमेध यज्ञों का फल होता है ॥ ६२ ॥ और एक एक पग देने पर द्वारका के मार्ग में चलतेहुए मनुष्यों को उनके चरणों की धूलिकी संख्या से हज़ारों यज्ञों का फल होता है ॥ ६३ ॥ तीर्थों समेत इसको करतेहुए उन मुनियों के उस सब कर्म को भगवान् के प्यारे नारदजी ने अनुमोदन किया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवतीर्थयात्रानामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दो० । गये सकल तीरथ यथा द्वारावती समीप । तेंतिसवें अध्याय में सोई चरित प्रदीप ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि द्वारका अपने प्रकाश से बाहरी बड़े अन्धकार को नाश करती है व भक्तों के भयनाशक बड़े आनन्द को उत्पन्न करती है ॥ १ ॥ और पुण्य को बढ़ानेवाली द्वारका पताकाओं व ध्वजों से दिव्य पुण्यों के प्रकाश से गिरिराज की नाईं शोभित है ॥ २ ॥ उस समय अस्त्रों से भूषित महाविष्णुजी के मन्दिर को देखकर मुनिलोग पादुकाओं व छत्रों को छोड़कर दण्डा की नाईं पृथ्वी में गिर पड़े ॥ ३ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! पृथ्वी में लोटतेहुए उन तीर्थों व सब क्षेत्रों को बड़ा अद्भुत हुआ ॥ ४ ॥ और काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग व उत्तम गङ्गाजी तथा यमुना व

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ द्वारकास्वभयागाढं तमोबाह्यंविनाशयेत् ॥ जनयेत्परमानन्दं भक्तानाञ्च भयापहम् ॥ १ ॥ पताकाभिर्ध्वजैश्चापि द्वारकापुण्यवर्द्धनी ॥ दिव्यपुण्यप्रकाशेन राजतेगिरिराडिव ॥ २ ॥ दृष्ट्वालयंमहाविष्णोस्त दायुधविभूषितम् ॥ विहायपादुकेछत्रं दण्डवत्पतिताभुवि ॥ ३ ॥ भुविस्वलुण्ठतांतेषां तीर्थानामद्भुतम्महत् ॥ अभ वद्विप्रशार्दूलाः क्षेत्रादीनाञ्च सर्वशः ॥ ४ ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रम्प्रयागंजाह्नवीशुभा ॥ यमुनानर्मदापुण्या पुण्याप्राची सरस्वती ॥ ५ ॥ गोदावरीमहापुण्या गयास्तिस्रःसुमङ्गलाः ॥ शालग्रामम्महाक्षेत्रं पुण्याचक्रनदीशुभा ॥ ६ ॥ प योष्णीतापिनीकृष्णा कौबेर्याद्याःसरिद्वराः ॥ पुष्कराद्यानितीर्थानि सागराःपर्वतोत्तमाः ॥ ७ ॥ अयोध्यामथुरामाया अवन्त्याद्याश्च मुक्तिदाः ॥ स्यमन्तकञ्च श्रीरङ्गं प्रभासञ्च विशेषतः ॥ ८ ॥ पुरुषोत्तमंमहाक्षेत्रमरण्यान्याश्रमाः शुभाः ॥ त्रैलोक्येवर्त्तमानानि सर्वतीर्थानिसर्वशः ॥ ९ ॥ दृष्ट्वाकृष्णालयंदिव्यं हर्षिताश्च मुहुर्मुहुः ॥ तेस्वभक्तिप्रकर्षेण

पवित्र नर्मदा और पवित्र प्राचीसरस्वती ॥ ५ ॥ तथा महापवित्र गोदावरी और उत्तम मंगलरूप तीनों गया व शालग्राम महाक्षेत्र और पवित्र तथा उत्तम चक्रनदी ॥ ६ ॥ व पयोष्णी, तापिनी, कृष्णा और कौबेरी आदिक उत्तम नदियां तथा पुष्करादिक तीर्थ, समुद्र और उत्तम पर्वत ॥ ७ ॥ अयोध्या, मथुरा, माया व अवन्ती आदिक मुक्तिदायक तीर्थ, स्यमन्तक, श्रीरंग व विशेषता से प्रभास ॥ ८ ॥ और पुरुषोत्तम महाक्षेत्र, वन व उत्तम आश्रम तथा त्रिलोकमें वर्तमान सब तीर्थ ॥ ९ ॥ उत्तम श्रीकृष्णजीके स्थान

को देखकर बार २ प्रसन्न हुए और वे अपनी भक्ति की अधिकता से बार २ लोटनेलगे ॥ १० ॥ तदनन्तर जयशब्दों व नमस्कार के शब्दों से विष्णुजी के नामों से गरजतेहुए बड़े आनन्द में मग्न वे स्तुति करनेलगे ॥ ११ ॥ और आनन्द के आँसुवों को छोड़तेहुए सब ऋषिलोग और सब तीर्थादिक प्रेम से गद्गदी वाणी से स्तुति करनेलगे ॥ १२ ॥ व गङ्गा, गौतमी, समुद्र व पर्वतादिक तीर्थ नारद व गौतम ऋषि की प्रशंसा करनेलगे ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर परस्पर स्तुति करतेहुए उन प्रसन्नचित्तवाले सब तीर्थों के मुखों को देखकर प्रसन्न होतेहुए नारदजी बोले ॥ १४ ॥ नारदजी बोले कि तुमलोगों ने हज़ारों

लुएठन्तिस्मपुनःपुनः ॥ १० ॥ जयशब्दैर्नमःशब्दैर्गर्जन्तोहरिनामभिः ॥ ततोन्ये च स्तुवन्तिस्म परमानन्दसम्पुताः ॥११॥ आनन्दाश्रुप्रमुञ्चन्तः प्रेम्णागद्गदयागिरा ॥ स्तुवन्तिऋषयःसर्वे तीर्थादीनि च सर्वशः ॥ १२ ॥ प्रशंसन्तिस्मतीर्थानि ऋषीनारदगौतमौ ॥ जाह्नवीगौतमीगङ्गा सागराःपर्वतादयः ॥ १३ ॥ अथ संस्तुवतांतेषामन्योन्यंमुदितात्मनाम् ॥ वीक्ष्यवक्त्राणिसर्वेषां हर्षितोनारदोब्रवीत् ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ राशयःपुण्यपुञ्जानां कृतावो हि सहस्रशः ॥ यज्जन्मनांसहस्रैस्तु यद्दृष्टंकृष्णमन्दिरम् ॥ १५ ॥ दर्शनंकृष्णदेवस्य द्वारकागमनेमतिः ॥ दृढाभक्तिर्महादेवे नाल्पस्यतपसःफलम् ॥ १६ ॥ धन्यास्तेपूर्वजायेषां वंशजाःकृष्णदर्शनम् ॥ सोत्सवंद्वारकांयान्ति पश्यन्ति च हरिंप्रियम् ॥ १७ ॥ यूयंसर्वाणितीर्थानि क्षेत्राण्यपि च कृत्स्नशः ॥ धन्यान्यत्र भवद्भिश्च दृष्टाकृष्णपुरीयतः ॥ १८ ॥ यज्जायते तु दानानां तपोव्रतसमाधिनाम् ॥ सम्प्राप्तम्फलमस्माभिस्तदद्यसर्वतीर्थकाः ॥ १९ ॥ पश्यपश्यमहाभागे गो

पुण्यपुंजों की राशियों को किया है जोकि हज़ारों जन्मों से श्रीकृष्णजी के मन्दिर को देखा ॥ १५ ॥ क्योंकि श्रीकृष्णदेव का दर्शन व द्वारकागमन में बुद्धि तथा महादेवजी में दृढ़ भक्ति यह थोड़ी तपस्या का फल नहीं है ॥ १६ ॥ और वे पूर्वजलोग धन्य होते हैं कि जिनके वंश में उपजेहुए पुरुष श्रीकृष्णजी का दर्शन करते है और उत्सव समेत द्वारका को जाते हैं तथा प्यारे विष्णुजी को देखते हैं ॥ १७ ॥ तुम सब तीर्थ व क्षेत्र धन्य हो क्योंकि आप लोगों ने यहां श्रीकृष्णजी की पुरी को देखा ॥ १८ ॥ हे सब तीर्थो ! दान, तपस्या, व्रत व समाधियों का जो फल होता है उस फल को हमलोगों ने आज पाया ॥ १९ ॥ हे महाभागे, गोदावरि ! हे जाह्नवि !

देखिये देखिये जोकि यह श्रीकृष्णजी से पालित द्वारका शोभित है ॥ २० ॥ इसको तुम सब तीर्थ व उत्तम नदियां देखो और सब तीर्थों समेत जो त्रिलोक में नदियां उत्पन्न हैं वे देखें ॥ २१ ॥ इस उत्तम व महापवित्र द्वारकापुरी को देखो हे महाबाहो, सुशोभने, वाराणसि ! देखिये देखिये ॥ २२ ॥ कि कुरुक्षेत्र श्रीकृष्णजी की प्यारी द्वारका को देखते हैं जो ज्ञाननाशिनी द्वारका महापुण्यों के प्रकाश से शोभित है ॥ २३ ॥ ऐसी मथुरा, काशी, माया व अयोध्यापुरी नहीं शोभित है जैसी कि यह पुण्यरूपिणी द्वारका सदैव पृथ्वी में शोभित है ॥ २४ ॥ अन्य सब तीर्थों का माहात्म्य पृथ्वी में कहा जाता है परन्तु सब तीर्थों में उत्तमोत्तम जो द्वारका है वह

दावर्य्यथजाह्नवि ॥ शोभतेयात्वियंपुण्या द्वारकाकृष्णपालिता ॥ २० ॥ इमाम्पश्यततीर्थानि यूयंसर्वाःसरिद्वराः ॥ त्रैलोक्यसम्भवायाश्च सर्वतीर्थसमन्विताः ॥ २१ ॥ पश्यतेमांमहापुण्यां द्वारकांशोभनाम्पुरीम् ॥ पश्यपश्यमहाबाहो वाराणसिसुशोभने ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्राणिपश्यन्ति द्वारकांकृष्णवल्लभाम् ॥ महापुण्यप्रकाशेन राजतेज्ञाननाशिनी ॥ २३ ॥ नेदृशीमथुराकाशी मायायोध्याविराजते ॥ यथेयंशोभतेपुण्या द्वारकासर्वदाभुवि ॥ २४ ॥ अन्येषांसर्वतीर्थानां माहात्म्यंकथ्यतेभुवि ॥ द्वारकायासदापुण्या सर्वतीर्थोत्तमोत्तमा ॥ २५ ॥ प्रभासंमाघमासेपि नेदृशं हि विराजते ॥ यथेयंशोभतेपुण्या द्वारकासुमनोहरा ॥ २६ ॥ पश्यन्तुमुनयःसर्वे सुपुण्यामृतसागराः ॥ द्वारकेयंसुरश्रेष्ठा विभातिभुवनत्रये ॥ २७ ॥ भुवःकीर्तिस्वरूपाभूद्द्वारकाकृष्णवल्लभा ॥ गोमतीकृष्णदेवश्च रुक्मिणी च हरिप्रिया ॥ २८ ॥ पुण्यध्वजपताकाभिर्मुक्तिर्यत्र चकासते ॥ स्वर्गादप्यधिकाभूमिर्यत्सम्बन्धाद्विराजते ॥ २९ ॥ सेयंद्वारवती

सदैव पवित्र है ॥ २५ ॥ माघमहीने में भी ऐसा प्रभासक्षेत्र नहीं शोभित होता है जैसी कि यह बहुत सुन्दरी व पवित्र द्वारकापुरी सोहती है ॥ २६ ॥ हे सुरोत्तमो ! उत्तम पुण्यरूपी अमृत के समुद्ररूप सब मुनिलोग देखें कि यह द्वारका तीनों लोकों में शोभित है ॥ २७ ॥ कृष्णप्रिया द्वारका, गोमती व कृष्णदेव और विष्णुप्रिया रुक्मिणीजी पृथ्वी की यशरूपिणी हुई हैं ॥ २८ ॥ जहां कि पवित्र ध्वजों व पताकाओं से मुक्ति शोभित है और जिसके सम्बन्ध से पृथ्वी स्वर्ग से भी अधिक शोभित है ॥ २९ ॥ वही यह

पवित्र द्वारकापुरी उत्तम तेज से शोभित है और त्रिलोक में असमान पुरी निश्चय कर पृथ्वी में वैकुण्ठ कहीगई है ॥ ३० ॥ और ग्रहों, नक्षत्रों व ताराओं के मध्य में जैसे सूर्य प्रकाशित हैं वैसेही क्षेत्रों समेत तीर्थराजों के मध्य में द्वारकारूपी सूर्य शोभित हैं ॥ ३१ ॥ तीनों लोकों में वे तीर्थ और क्षेत्र नहीं हैं जो कि द्वारका की समता को प्राप्त होवें जैसे कि सुमेरुगिरि के समान पर्वत नहीं हैं ॥ ३२ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! नारदजी से कहेहुए वचन को सुनकर वे प्रसन्न हुए और सब क्षेत्रतीर्थ व क्षेत्र गौतमी को आगेकर ॥ ३३ ॥ आये व सब ऋषि व देवताओं के गण द्वारका के माहात्म्य को देखकर कृष्णजी

पुण्या शोभतेदिव्यतेजसा ॥ भूवैकुण्ठमितिप्रोक्ता त्रैलोक्येप्रतिमाध्रुवम् ॥ ३० ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां यथासूर्य्यःप्रकाशते ॥ सक्षेत्रतीर्थराज्ञाञ्च द्वारकाकोविराजते ॥ ३१ ॥ न सन्तितानितीर्थानि क्षेत्राणिभुवनत्रये ॥ द्वारकायास्तुलांयान्ति मेरुणागिरयोयथा ॥ ३२ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ निशम्यनारदेनोक्तं प्रहृष्टास्तेद्विजोत्तमाः ॥ क्षेत्राणिसर्वतीर्थानि पुरस्कृत्य च गौतमीम् ॥ ३३ ॥ समायातानिसर्वे वै ऋषयोदेवतागणाः ॥ माहात्म्यंद्वारकायास्तु दृष्ट्वा च कृष्णवल्लभाम् ॥ ३४ ॥ विहायगोमतींतत्र प्रययुश्चाग्रतस्ततः ॥ प्रहृष्टागोमतीतेन ऋषिभिस्त्वरितायथौ ॥ ३५ ॥ गीतवाद्यैश्च नृत्यैश्च पताकाभिःसमन्ततः ॥ प्रययुःस्तोत्रपाठैस्तु स्तुवन्तोद्वारकाप्रियम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वासङ्गर्जितंतेषाम्मुदाग्र्यैर्हरिनामभिः ॥ प्रहृष्टोनारदस्तत्र व्यूहञ्चक्रेमनोहरम् ॥ ३७ ॥ सतीर्थान्यग्रतःकृत्वा ततःकृत्वासुशोभनम् ॥ प्रयागंतीर्थराजानं प्रहृष्टंतीर्थदर्शनात् ॥ ३८ ॥ ततःपश्चात्सरित्स्थानं चकारऋषिसत्तमः ॥ जाह्नवीगोमतीगङ्गा यमुनाप्राक्सरस्व

की प्यारी ॥ ३४ ॥ गोमतीजी को वहां छोड़कर तदनन्तर आगे चले उससे प्रसन्न होतीहुई गोमती शीघ्रता समेत ऋषियों के साथ चलीं ॥ ३५ ॥ और सब ओर से गान, बाजन, नृत्य व पताकाओं से तथा स्तोत्रपाठों से द्वारका के प्यारे श्रीकृष्णजी की स्तुति करतेहुए चले ॥ ३६ ॥ और प्रसन्नता से श्रेष्ठ विष्णुजी के नामों से उन के गर्जित को सुनकर वहा प्रसन्न होते हुए नारदजी ने व्यूह (सेना की रचना) किया ॥ ३७ ॥ और उन नारदजी ने तीर्थों को आगे कर तदनन्तर तीर्थ के दर्शन से प्रसन्न व शोभन तीर्थराज प्रयाग को करके ॥ ३८ ॥ उन ऋषिश्रेष्ठ नारदजी ने उसके पीछे नदियों का स्थान किया जाह्नवी, गोमती, गङ्गा, यमुना व प्राच

सरस्वती ॥ ३९ ॥ और सरयू, गण्डकी, तापी व पयोष्णी महानदी और कृष्णा, भागीरथी, तुङ्गा तथा पापनाशिनी कावेरी ॥ ४० ॥ और महापवित्र मन्दाकिनी व पवित्र भागवती नदी तथा तीर्थों समेत स्वर्ग, मृत्युलोक व पाताल में वर्तमान ॥ ४१ ॥ सब नदिया द्वारकापुरी को देखती हुई एकही साथ चलीं उसके पीछे हे ब्राह्मणो ! उन देवर्षि नारद महामुनि ने नाचते व गातेहुए क्षेत्रों को शीघ्रही हर्ष से किया और काशी व कुरुक्षेत्र आदिक अन्य सब तीर्थ ॥ ४२ । ४३ ॥ जाते व परस्पर द्वारकापुरी को दिखाते थे तदनन्तर अपने अपने तीर्थों समेत सातों समुद्र चले ॥ ४४ ॥ उसके पीछे नारदजी ने आश्रमों व मुनियों समेत वनों को किया तदनन्तर पवित्र पर्वत

ती ॥ ३९ ॥ सरयूर्गण्डकीतापी पयोष्णी च महानदी ॥ कृष्णाभागीरथीतुङ्गा कावेरीचाघनाशिनी ॥ ४० ॥ मन्दाकिनीमहापुण्या पुण्याभागवतीनदी ॥ स्वर्गेमर्त्ये च पाताले वर्त्तमानाःसतीर्थकाः ॥ ४१ ॥ व्रजन्तियुगपत्सर्वाः पश्यन्त्यो द्वारकापुरीम् ॥ ततःपश्चाच्चकाराशु सक्षेत्राणाम्महामुनिः ॥ ४२ ॥ देवर्षिर्नारदोविप्रा नृत्यतांगायतांमुदा ॥ वाराणसी कुरुक्षेत्रमुखान्यन्यानिकृत्स्नशः ॥ ४३ ॥ व्रजन्तिदर्शयन्तिस्म अन्योन्यंद्वारकांपुरीम् ॥ ततस्तु सागराःसप्त स्वैःस्वैस्तीर्थैःसमन्विताः ॥ ४४ ॥ ततःपश्चादरण्यानामाश्रमैर्मुनिभिःसह ॥ ततस्तु पर्वताःपुण्याः सर्वानद्यःसुशोभनाः ॥४५॥ नृत्यन्तोगायमानाश्च सुवाद्यैःसुप्रहर्षिताः ॥ व्रजन्तोदर्शयन्तस्ते अन्योन्यंद्वारकाश्रियम् ॥ ४६ ॥ ततश्च ऋषयोदेवाः समन्तात्कृष्णमानसाः ॥ गायन्तोनृत्यमानाश्च गर्जन्तोहरिनामभिः ॥४७॥ वादित्रनिनदैरुच्चैर्जयशब्दैःप्रहर्षिताः ॥ प्राप्ताःश्रीगोमतीतीरे सर्वेहरिसमन्विताः ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वातेगोमतींदेवीं सर्वतीर्थादिसंयुताम् ॥ ववन्दिरेमहापुण्यां संहृष्टा

और सब उत्तम नदिया चलीं ॥ ४५ ॥ व उत्तम बाजनों से नाचते व गातेहुए वे प्रसन्न होकर द्वारकाकी शोभा को देखते हुए जाते व परस्पर दिखलाते थे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी में मनवाले ऋषि और देवता सब ओर से नाचते व गातेहुए विष्णुजी के नामों से गरजते थे ॥ ४७ ॥ बाजनों के शब्दों से तथा उच्चप्रकार के जयशब्दों से प्रसन्न होतेहुए विष्णुजी समेत सब श्रीगोमतीजी के किनारे प्राप्तहुए ॥ ४८ ॥ और सब तीर्थों से संयुत गोमती देवी को देखकर उन्होंने बड़े पुण्यवाली

गोमती को प्रणाम किया तदनन्तर वे प्रसन्नहुए ॥ ४६ ॥ और गोमती की महिमा को देखकर प्रसन्न होतेहुए नारदजी बोले कि हे भागीरथि ! हे रेवे ! हे यमुने ! हे गौतमि ! सुनिये ॥ ५० ॥ कि वही यह श्रीगोमती देवी है जोकि तीनों लोकों में प्रसिद्ध है और एकबार जिसका जलस्नान ब्रह्मविद्या के साथ स्पर्द्धा करता है ॥५१॥ और जिसका केवल स्नान सदैव इस कारण स्पर्द्धा करता है कि पूर्वजों समेत सबों की मुक्ति मुझ में है तुम से क्या कार्य है ॥ ५२ ॥ यह तीर्थों में उत्तमोत्तम नदी ब्रह्मज्ञान के समान है क्योंकि मनुष्य ब्रह्मज्ञान व प्रयाग के मरण से मुक्त होते हैं ॥ ५३ ॥ अथवा श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में स्नानही करने से मनुष्य मुक्त हो-

आभवंस्ततः ॥४६॥ दृष्ट्वामहत्त्वंगोमत्याः प्रहृष्टोनारदोब्रवीत् ॥ भोभागीरथिभोरेवे यमुनेशृणुगौतमि ॥ ५० ॥ सेयं श्रीगोमतीदेवी विख्याताभुवनत्रये ॥ यस्याःसकृज्जलस्नानं स्पर्द्धतेब्रह्मविद्यया ॥ ५१ ॥ पूर्वजैःसहसर्वेषां मोक्षार्थमयिकिंत्वया ॥ इतिसंस्पर्द्धतेनित्यं यस्याःस्नानन्तु केवलम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मज्ञानेनतुल्येयं सरित्तीर्थोत्तमोत्तमा ॥ ब्रह्मज्ञानेनमुच्यन्ते प्रयागमरणेन वा ॥ ५३ ॥ अथवा स्नानमात्रेण गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ महिमानं च गोमत्या अनेकैर्युगसंख्यया ॥ ५४ ॥ वक्त्रैर्न शक्यतेवक्तुमीदृशीयंसरिद्वरा ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ निशम्यसर्वतीर्थानि सरितःसागरादयः ॥ ५५ ॥ ददृशुर्द्वारकांरम्यामागताराजमण्डले ॥ स्थितांसिंहासनेदिव्ये काञ्चनेमणिभूषिते ॥ ५६ ॥ सुगात्रां शुक्लवर्णाञ्च चन्द्रादित्यसमप्रभाम् ॥ दिव्यवस्त्रांसुगन्धाढ्यां रत्नाभरणभूषिताम् ॥ ५७ ॥ किरीटैःकुण्डलैर्दिव्यैः शोभितांकङ्कणादिभिः ॥ वरदाभयहस्ताञ्च शङ्खचक्रवरायुधाम् ॥ ५८ ॥ सर्वाङ्गैश्चिह्नितांसुभ्रूं सुप्रसन्नमुखाम्बुजाम् ॥

जाते हैं और गोमती की महिमा युगों की संख्या से अनेकों मुखों से भी नहीं कही जासक्ती है ऐसी यह उत्तम नदी है श्रीप्रह्लादजी बोले कि यह सुनकर नदियां व समुद्र आदिक सब तीर्थ ॥ ५४ । ५५ ॥ राजमण्डल में आकर मणियों से भूषित सुवर्ण के दिव्य सिंहासन पै स्थित सुन्दरी द्वारकापुरी को देखा ॥ ५६ ॥ और उत्तम अंगोंवाली तथा गौररंग व चन्द्रमा तथा सूर्यनारायण के समान प्रभावाली और दिव्य वसनोंवारी व सुगन्ध से संयुत तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित ॥ ५७ ॥ और किरीटों व दिव्य कुण्डलों से शोभित और वरदायिनी व अभय हाथवाली तथा शङ्ख चक्र व उत्तम अस्त्रोंवाली ॥ ५८ ॥ और सब अङ्गों से चिह्नित तथा सुन्दरी भौंहों

वाली और प्रसन्नमुखकमलवाली व श्वेत छत्रकी शोभा से संयुत और चामरों व व्यजनादिकों से शोभित ॥ ५९ ॥ और सब दिशाओं में भक्ति से सब तीर्थों करके भलीभांति सेवित तथा सब स्तोत्रों से स्तुति कीजातीहुई व गीतों, वाद्यादिकों से हर्षित ॥६०॥ बड़ेभारी सिंहासन पै बैठीहुई द्वारकापुरी को देखकर एकही बार सब ऋषि, देवता, तीर्थ, नदी व क्षेत्रों ने उत्तम भक्ति से प्रणाम किया ॥ ६१ । ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

दो० । तीरथ अरु देवादिकन किय द्वारकाभिषेक । चौंतिसवें अध्याय में सोई चरित सुनेक ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि नारदजी ने आगे जाकर व हरिप्रिया द्वारका

श्वेतातपत्रशोभाढ्यां चामरव्यजनादिभिः ॥ ५९ ॥ भक्त्यासंसेवितांतीर्थप्रवरैःसर्वतोदिशम् ॥ सर्वैःस्तवैःस्तूयमानां गीतवाद्यादिहर्षिताम् ॥६०॥ महासिंहासनस्थाञ्च दृष्ट्वाद्वारावतीम्पुरीम् ॥ प्रणेमुर्युगपत्सर्वे सर्वाणि च सुभक्तितः॥६१॥ ऋषयोदेवतीर्थानि सरित्क्षेत्राण्यशेषतः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ नारदस्त्वग्रतोगत्वा प्रणिपत्यहरिप्रियाम् ॥ उवाचललितांवाचं हर्षयन्द्वारकाम्प्रति ॥ १ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ पश्येदंपुरतःप्राप्तं प्रयागंतीर्थकैःसह ॥ द्वारकेतवपादाग्रे लुण्ठतिश्रद्धयाद्भुतम् ॥ २ ॥ इमानिपुष्करा ण्येवं नमन्तिश्रद्धयाशुभे ॥ इयञ्च गौतमीपुण्या सर्वतीर्थसमाश्रया ॥ ३ ॥ सिंहस्थितेगुरौभद्रे सम्प्राप्तासौभगंमहत् ॥ किन्तुदुर्जनसंसर्गाद्दग्धापापाग्निनाभृशम् ॥ ४ ॥ तत्रोपायमभिज्ञातमृषीणांशृण्वतां तदा ॥ श्रुत्वाकाशान्महा शब्दं सम्प्राप्तेयन्तवान्तिके ॥ ५ ॥ सर्वक्षेत्राधिराजोयं तीर्थराजेश्वरस्तथा ॥ नमस्करोतितेपादौ द्वारकेगौतमी

जी को प्रणाम कर द्वारका को प्रसन्न करतेहुए सुन्दर वचन को कहा ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे द्वारके ! तीर्थों समेत आगे प्राप्त इस प्रयाग को देखो कि तुम्हारे चरणों के आगे यह श्रद्धा से आश्चर्यपूर्वक लोटता है ॥ २ ॥ व हे शुभे ! ये पुष्कर श्रद्धा से प्रणाम करते हैं और सब तीर्थों से आश्रित यह पवित्र गौतमी ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होने पर बड़े ऐश्वर्य को प्राप्तहुई परन्तु दुर्जनों के संसर्ग के कारण पापरूपी अग्निसे बहुतही दग्ध होगई है ॥ ४ ॥ वहां उस समय ऋषियों के सुनते हुए यत्न जाना गया और आकाश से बड़े शब्द को सुनकर यह तुम्हारे समीप प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ व हे द्वारके ! सब क्षेत्रों का राजा और

सब तीर्थों का राजा यह प्रयाग तुम्हारे चरणों कों प्रणाम करता है और उत्तम गौतमी ॥ ६ ॥ दुष्टों के संसर्ग के दोष से कज्जलगिरि के समान होगई और शरदृऋतु के चन्द्रमा के समान प्रभावान् यह गौतमी तुम्हारे आगे है ॥ ७ ॥ और देखिये, देखिये बड़े पुण्यवाली यह उत्तम भागीरथी बार २ प्रसन्न होतीहुई तुम्हारे चरणों को प्रणाम करती है ॥ ८ ॥ और तुम्हारे चरणों को प्रणाम करतीहुई इस पवित्र नर्मदा को देखिये यह यमुना व चन्द्रभागा है और यह प्राची सरस्वती है ॥ ९ ॥ और सरयू, गण्डकी, क्षिप्रा व पूर्ववाहिनी गोमती, शोणा, सिन्धु, विपाशा व अन्य जो श्रेष्ठ नदियां हैं ॥ १० ॥ हे महाभागे ! इनको देखिये जोकि किसी किसी प्रकार

शुभा ॥ ६ ॥ कज्जलाचलसंकाशा दुष्टसम्पर्कदोषतः ॥ गौतमीयंतवाग्रेस्ति शरच्चन्द्रसमप्रभा ॥ ७ ॥ पश्यपश्य महापुण्या त्वियंभागीरथीशुभा ॥ नमस्करोतितेपादौ प्रहृष्टा च पुनःपुनः ॥ ८ ॥ पश्येमांनर्मदांपुण्यां प्रणतान्तवपादयोः ॥ यमुनाचन्द्रभागेयं त्वियंप्राचीसरस्वती ॥ ९ ॥ सरयूंगण्डकीक्षिप्रा गोमतीपूर्ववाहिनी ॥ शोणासिन्धुर्विपाशा वै अन्याश्च सरितांवराः ॥ १० ॥ पश्यपश्यमहाभागे लुण्ठन्त्येताःकथङ्कथम् ॥ पयोष्णीतापतीपुण्या नमतस्तेपदाम्बुजे ॥ ११ ॥ कृष्णाभीमारथीपुण्या कावेर्याद्याःसरिद्वराः ॥ शीता च चन्द्रभागा च नमन्तित्वत्पदाम्बुजे ॥ १२ ॥ द्वारके वै महापुण्ये सप्तद्वीपोद्भवापुरः ॥ मन्दाकिनीमहापुण्या भोगवत्यःसरिद्वराः ॥ १३ ॥ त्रैलोक्येवर्त्तमानानि सर्वतीर्थानियानि वै ॥ नमन्तिचरणाम्भोजं क्षेत्रतीर्थवरेश्वरि ॥ १४ ॥ पश्याश्चर्यमियं शुभ्रे वाराणसीविमुक्तिदा ॥ सद्भक्त्यातेपदाम्भोजं शिरसाधायवर्तते ॥ १५ ॥ कुरुक्षेत्रमिदंपुण्यं नमतित्वाम्प्रहर्षितम् ॥

से लोटती हैं व पयोष्णी और पवित्र तापती तुम्हारे चरणकमलों में प्रणाम करती हैं ॥ ११ ॥ व पवित्र कृष्णा, भीमारथी तथा कावेरी आदिक श्रेष्ठ नदियां व शीता, चन्द्रभागा तुम्हारे चरणकमल में प्रणाम करती हैं ॥ १२ ॥ व हे महापुण्ये, द्वारके ! सातों द्वीपों में उत्पन्न महापवित्र मन्दाकिनी और शरीरवाली श्रेष्ठ नदियां तुम्हारे आगे वर्तमान हैं ॥ १३ ॥ व हे क्षेत्रतीर्थवरेश्वरि ! त्रिलोक में जो सब तीर्थ वर्तमान हैं वे तुम्हारे चरणकमल को प्रणाम करते हैं ॥ १४ ॥ व आश्चर्य को देखिये कि यह मुक्तिदायिनी काशी उत्तम भक्ति से तुम्हारे चरणकमल को मस्तक से धारण कर वर्तमान है ॥ १५ ॥ व यह पवित्र तथा प्रसन्न कुरुक्षेत्र तुमको प्रणाम

करता है व हे द्वारके! तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करती हुई मथुरा को देखो ॥ १६ ॥ व अयोध्या, अवन्ती, माया तुम्हारे चरणकमल में प्रणाम करती है व कांची, गया, विशाल और विरज पृथ्वी में लोटता है ॥ १७ ॥ और शालग्राम महाक्षेत्र तुम्हारे चरणों में गिरता है और तीर्थों में उत्तम प्रभास व पुरुषोत्तम क्षेत्र तुम्हारे चरणों में गिरता है ॥ १८ ॥ व हे क्षेत्रराजवरेश्वरि ! सब तीर्थों से संयुत तुम्हारे चरणों में पड़ेहुए इन सात समुद्रों को देखो ॥ १९ ॥ और सब वनों को देखिये जोकि तुम्हारे चरणों में पड़ते हैं और धेनुक, दशारण्य, दण्डकारण्य व अर्वुद को देखो ॥ २० ॥ व हे द्वारके ! प्रणाम करतेहुए नारायणसर को देखो और तुम्हारे चरणों में पड़ेहुए

द्वारकेमथुराम्पश्य प्रणतान्तवपादयोः ॥ १६ ॥ अयोध्यावन्तिकामाया नमन्तेतेपदाम्बुजे ॥ काञ्चीगयाविशालञ्च विरजंलुएठतेभुवि ॥ १७ ॥ शालग्राममम्महाक्षेत्रं पततेतवपादयोः ॥ तीर्थोत्तमंप्रभासञ्च क्षेत्रञ्च पुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥ पश्येमान्सागरान्सप्त पतितांस्तवपादयोः ॥ सर्वतीर्थसमोपेतान् क्षेत्रराजवरेश्वरि ॥ १९ ॥ पश्यारण्यानि सर्वाणि पतन्तितवपादयोः ॥ धेनुकञ्च दशारण्यं दण्डकारण्यमर्बुदम् ॥ २० ॥ नारायणसरःपश्य द्वारकेप्रणतंतथा ॥ पश्यैतान् पर्वतान्पुण्यान्पतितांस्तवपादयोः ॥ २१ ॥ अयंमेरुश्च कैलासो मन्दराद्याःसहस्रशः ॥ हेमाद्रिविन्ध्यशैलाद्याः सर्वे शैलाःप्रहर्षिताः ॥ २२ ॥ भक्त्यानमन्तितेपादौ द्वारकेसर्वतोत्तमे ॥ एतेऋषिगणाःसर्वे नमन्तिस्मपुनःपुनः ॥ २३ ॥ देवतीर्थानिक्षेत्राणि भक्त्यात्वांप्रणमन्ति हि ॥ लोकत्रयेस्तियत्किञ्चित्पुण्यम्पापप्रणाशनम् ॥ २४ ॥ तत्सर्वंतवयात्रायां नृत्यमानंविराजते ॥ गीतवाद्यप्रघोषैश्च नृत्यमानानिहर्षिताः ॥ २५ ॥ द्वारकेपश्य चैतानि प्रयागादीनिकृत्स्न

इन पवित्र पर्वतों को देखिये ॥ २१ ॥ और यह सुमेरु, कैलास व मन्दरादिक हज़ारों पर्वत तथा हेमाद्रि, विन्ध्याचल आदिक सब पर्वत प्रसन्न होतेहुए ॥ २२ ॥ हे सर्वतोत्तमे, द्वारके ! भक्ति से तुम्हारे चरणों को प्रणाम करते हैं और ये सब ऋषियों के गण बार २ प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ और देवतीर्थ व क्षेत्र भक्ति से तुमको प्रणाम करते हैं और त्रिलोक में जो कुछ पापनाशक व पवित्र है ॥ २४ ॥ तुम्हारी यात्रा में नाचता हुआ वह सब शोभित है व हे द्वारके ! गाने, बजाने के शब्दों से नाचते

हुए प्रसन्न इन सब प्रयागादिक तीर्थों को देखो और काशी व कुरुक्षेत्र आदिक तथा उत्तम नदियां ॥ २५ । २६ ॥ गङ्गादिक व समुद्र और पर्वत तुम्हारे आगे नाचते हैं व ऋषियों और देवताओं के गण सब विष्णुजी के नामों से गरजते है ॥ २७ ॥ और ये सब प्रशंसनीय तीर्थ तुम्हारे चरित्र का वर्णन करते हैं और ये मुक्त जनों को भी दुर्लभ सिद्धि को प्राप्तहुए हैं ॥ २८ ॥ और द्वारका में ये बड़े आनन्द में मग्न होकर नाचते हैं और वे धन्य व अधिक पुण्यवान् हैं जोकि देवता को प्रणाम करते हैं ॥ २९ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि इस प्रकार उन नारदजी के कहतेहुए प्रसन्नमनवाली द्वारका प्रसन्न व नाचतेहुए तीर्थों को देखकर सबों को बहुत मानदायिनी हुई॥३०॥

शः ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रप्रमुखानिसरिद्वराः ॥ २६ ॥ गङ्गाद्याःसागराःशैला नृत्यन्तिपुरतस्तव ॥ ऋषिदेवगणाःसर्वे गर्ज्जन्तोहरिनामभिः ॥ २७ ॥ धन्यानीमानिसर्वाणि चरित्रंवर्णयन्तिते ॥ एतेप्राप्ता हि संसिद्धिं मुक्तानामपि दुर्लभाम् ॥ २८ ॥ नृत्यन्तिद्वारकाम्प्राप्ताः परमानन्दसंप्लुताः ॥ धन्याःपुण्यतमास्ते वै येनमन्तिदिवौकसम् ॥ २९ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ इत्येवंवदतस्तस्य द्वारकाहृष्टमानसा ॥ नृत्यन्तोमुदितान्वीक्ष्य सर्वेषामतिमानदा ॥ ३० ॥ तीर्थादिपर्वतानां च संलापालिङ्गनादिभिः ॥ उवाचललितांवाचं गौतमींस्पृश्यपाणिना ॥ ३१ ॥ भागीरथीं च यमुनां प्रयागादीनिसर्वशः ॥ द्वारकामधुरालापैः सर्वमानन्दयत्तदा ॥ ३२ ॥ अथाश्चर्यमभूत्तत्र सर्वानन्दविवर्द्धनम् ॥ प्रावर्त्ततदाकाशे गीतवाद्यजयस्वनः ॥ ३३ ॥ गर्जमानानिपुण्यानि दैवतानिपृथक्पृथक् ॥ अदृश्यन्ततदाकाशे ब्रह्माद्यादेवतागणाः ॥ ३४ ॥ महेशःस्वैर्गणैःसार्द्धं भवान्यासमदृश्यत ॥ इन्द्रश्च त्रिदशैःसार्द्धं यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ ३५ ॥ मरुद्भि

और तीर्थादिक व पर्वतों को आलाप व आलिङ्गनादिकों से सत्कार कर गौतमीजी को हाथ से छूकर द्वारका ने सुन्दर वचन को कहा ॥ ३१ ॥ और उस समय भागीरथी यमुना व प्रयागादिक सब तीर्थों को द्वारका ने मीठे आलापों से सबों को आनन्द किया ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त वहां सब के आश्चर्य को बढ़ानेवाला आश्चर्य हुआ कि उस समय आकाश में गाने, बजाने व जय का शब्द हुआ ॥ ३३ ॥ और उस समय अलग २ गरजतेहुए पुण्यरूप देवता देखपड़े और आकाश में ब्रह्मादिक देवगण देखपड़े ॥ ३४ ॥ व शिवजी अपने गणों समेत और पार्वतीजी समेत देखपड़े और यक्षों, गन्धर्वों व किन्नरों समेत तथा देवताओं समेत इन्द्रजी देखपड़े ॥ ३५ ॥ व पवनों

और नाचतेहुए व प्रसन्न भृगु आदिक तथा सनकादिक देखपड़े और ब्रह्मा को आगे कर सब देवता आकाश में स्थित हुए ॥ ३७ ॥ व उस समय द्वारका को देखकर ब्रह्मा व शिव आदिक बोले और हर्ष से विह्वलचित्तवाले व परस्पर देखकर विस्मित हुए ॥ ३८ ॥ देवता बोले कि वही यह द्वारका देवी है जहां कि गोमती बहती है व जहां भगवान् श्रीकृष्णजी रहते हैं वही यह पवित्र द्वारका विराजती है ॥ ३९ ॥ और सब क्षेत्रों में उत्तम व दिव्य तथा सब तीर्थों से उत्तमोत्तम यह द्वारका पृथ्वी में स्वर्ग से भी अधिक विराजती है ॥ ४० ॥

तथा लोकपालों समेत नाचतेहुए व प्रसन्न सब सिद्ध, विद्याधर और विश्वेदेवता, सूर्य व ग्रह देखपडे ॥ ३६ ॥

भृग्वाद्याःसनकाद्याश्च नृत्य लोकपालैश्च नृत्यमानास्तु हर्षिताः ॥ सिद्धाविद्याधराःसर्वे विश्वादित्याश्च वै ग्रहाः ॥ ३६ ॥ ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य सर्वेस्वर्गस्थितासुराः ॥ ३७ ॥ ऊचुस्तेद्वारकांदृष्ट्वा ब्रह्मेशानादयस्तदा ॥ हर्षमानाःप्रहर्षिताः ॥ विह्वलितात्मानो वीक्ष्यान्योन्यं च विस्मिताः ॥ ३८ ॥ देवा ऊचुः ॥ सेयं वै द्वारकादेवी वहते यत्र गोमती ॥ यत्रास्तेभगवान्कृष्णः सेयम्पुण्याविराजते ॥ ३९ ॥ सर्वक्षेत्रोत्तमादिव्या सर्वतीर्थोत्तमोत्तमा ॥ स्वर्गादप्यधिकाभूमौ द्वारकेयम्प्रकाशते ॥ ४० ॥ एतद्वै चक्रतीर्थन्तु यच्छिलाचक्रचिह्नितम् ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मादीनागतान्दृष्ट्वा विस्मितानारदादयः ॥ ४१ ॥ क्षेत्राणितीर्थमुख्यानि विस्मितानिसरिद्वराः ॥ प्रणेमुर्युगपत्सर्वे सर्वतीर्थानिसर्वशः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मादीनां च तीर्थानां दृष्ट्वायात्रांमनोहराम् ॥ द्वारकाम्प्रतिविप्रेन्द्रा विस्मिताद्वारकौकसः ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वादेवगणाःसर्वे द्वारकां च ववन्दिरे ॥ ४४ ॥ गीतवाद्यानिर्घोषैश्च नृत्यमानाःप्रहर्षिताः ॥ वदन्तोजयशब्दांश्च सेयंकृष्णमयेति च ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वाब्रह्म

और यह चक्रतीर्थ है जोकि शिला के चक्रों से चिह्नित है श्रीप्रह्लादजी बोले कि ब्रह्मादिकों को आयेहुए देखकर नारदादिक विस्मित होगये ॥ ४१ ॥ व क्षेत्र और मुख्य तीर्थ विस्मित हुए तथा श्रेष्ठ नदियों ने व सब तीर्थों ने और सब मुनियों ने एकही बार प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ व हे द्विजेन्द्रो! ब्रह्मादिक तथा तीर्थों की द्वारका में सुन्दरी यात्रा को देखकर द्वारकावासी विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ व सब देवगणों ने द्वारका को देखकर प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ और गाने बजाने के शब्दों से नाचतेहुए व प्रसन्न वे देवगण इस कारण जयशब्दों को कहते थे कि वही यह कृष्णमयी द्वारकापुरी है ॥ ४५ ॥ और ब्रह्मा व शिवजी को देखकर प्रसन्नमनवाली

द्वारका सुन्दर सिंहासन को छोड़कर दण्डाकी नाईं पृथ्वी पै गिरपड़ी॥ ४६ ॥ तदनन्तर प्रणाम कीहुई द्वारका को देखकर ब्रह्मा व शिवजी प्रसन्नहुए तदनन्तर पार्वतीजी द्वारका को देखकर प्रसन्नहुईं॥ ४७ ॥ व उन्होंने कहा कि हे अम्ब! हमलोगों से व सबों से भी तुम श्रेष्ठ हो क्योंकि विकाररहित साक्षात् विष्णु भगवान् तुमको नहीं छोड़ते हैं॥ ४८ ॥ इस कारण कंस को विनाशनेवाले देवेश श्रीकृष्णजी को दिखलाइये कि जिनके भलीभांति दर्शन से हम सबों की भी सिद्धि होगी ॥४९॥ प्रह्लादजी बोले कि इस प्रकार कहीहुई क्षेत्रों व तीर्थादिकों से संयुत प्रसन्नमनवाली द्वारका देवीजी गीतों व बाजनों और पताकाओं समेत ब्रह्मा व शिवजी को आगे कर चलीं

महेशानौ द्वारकाप्रीतमानसा ॥ त्यक्त्वासिंहासनंरम्यं दण्डवत्पतिताभुवि ॥ ४६ ॥ ब्रह्मेशानौततोदृष्ट्वा द्वारकामभिवन्दिताम् ॥ भवानी च ततोदृष्ट्वा द्वारकाम्प्रतिहर्षितौ ॥ ४७॥ श्रेष्ठात्वमम्बसर्वेभ्योऽस्मदादिभ्योपि सर्वशः ॥ यतस्त्वां न त्यजेत्साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ ४८ ॥ अतोदर्शयदेवेशं कृष्णंकंसविनाशनम् ॥ यद्दर्शनान्महासिद्धिः सर्वेषांनोभविष्यति ॥४९॥ प्रह्लाद उवाच ॥ इत्युक्ताप्रययौदेवी क्षेत्रतीर्थादिसंयुता ॥ ब्रह्मेशानौपुरस्कृत्य द्वारकाहृष्टमानसा ॥५०॥ गीतवाद्यपताकैश्च दिव्योपायनपाणिनः ॥ प्राप्योवाचतदादेवान् द्वारकाहर्षविह्वला ॥ ५१ ॥ पश्यतांपश्यतांदेवाः सोयं वै द्वारकेश्वरः ॥ यस्यसंदर्शनम्प्राप्य मुक्तानामपि सत्फलम् ॥ ५२ ॥ तदादेवगणाःसर्वे क्षेत्रतीर्थसमन्विताः ॥ पश्चिमाभिमुखंदृष्ट्वा कृष्णंक्लेशविनाशनम् ॥ ५३ ॥ प्रणेमुर्युगपत्सर्वे प्रहृष्टाश्चाभवंस्ततः ॥ गीतवाद्यप्रघोषैश्च नृत्यमानाःसमन्ततः ॥ ५४ ॥ जयशब्दैर्नमःशब्दैर्गर्ज्जन्तोहरिनामभिः ॥ ब्रह्माभवोभवानी च सेन्द्रादेवगणामुदा ॥ ५५ ॥

और प्राप्तहोकर उस समय हर्ष से विह्वल द्वारकाजी ने दिव्य उपायनों को हाथ में लियेहुए देवताओं से कहा ॥ ५० । ५१ ॥ कि हे देवताओ! देखिये देखिये वही ये द्वारकानाथजी हैं कि जिनके दर्शन को पाकर मुक्तों को भी उत्तम फल होता है ॥५२॥ उस समय क्षेत्रों व तीर्थों से संयुत सब देवताओं के गणों ने पश्चिम दिशा के सामने मुखवाले क्लेशनाशक श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ५३ ॥ एक साथही सबों ने प्रणाम किया तदनन्तर सब प्रसन्नहुए और गाने, बजाने के शब्दों से सब ओर नाचने लगे ॥५४॥ व जयशब्दों तथा नमस्कार के शब्दों से व विष्णुजी के नामों से गरजने लगे और ब्रह्मा, शिव, पार्वती तथा इन्द्र समेत देवताओं के गणों ने हर्ष से ॥ ५५ ॥

श्रीकृष्णजी को देखकर उन्हों ने बार २ भक्ति से उठकर प्रणाम किया और प्रयागादिक तीर्थों ने तथा गङ्गादिक निर्मल नदियों ने प्रणाम किया ॥ ५६ ॥ व काशी और कुरुक्षेत्र आदिक सब तीर्थों ने व पवित्र समुद्र तथा पर्वतों ने और आश्रमों समेत वनों ने ॥ ५७ ॥ और ऋषि, यक्ष, गन्धर्व तथा इन्द्रादिक व सनकादिकों ने और उन अन्य सबों ने हर्ष से बड़ी भक्ति से ॥ ५८ ॥ महाविष्णुजी का मुख देखकर बार २ प्रणाम किया और हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो व हे कृष्ण ! ऐसा वे कहने लगे ॥ ५९ ॥ वैसे ही आनन्द से पूर्ण चित्तवाले उन सब सिद्धों की श्रीकृष्णजी के दर्शन में सिद्धि होगई ॥ ६० ॥

दृष्ट्वाकृष्णंप्रणेमुस्ते भक्त्योत्थायपुनःपुनः॥ प्रयागादीनितीर्थानि गङ्गाद्याःसरितोमलाः ॥ ५६ ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्र मुखान्यन्यानिकृत्स्नशः ॥ सागराःपर्वताःपुण्या अरण्यान्याश्रमैःसह ॥ ५७॥ ऋषयोयक्षगन्धर्वाः शक्राद्याःसन कादयः ॥ तथाचान्ये च तेसर्वे भक्त्यापरमयामुदा ॥५८॥ वीक्ष्यवक्त्रम्महाविष्णोः प्रणेमुश्च पुनःपुनः ॥ कृष्णकृष्णेति कृष्णेति जयकृष्णेतिवादिनः ॥ ५९ ॥ तथा तेषान्तु सर्वेषां प्रमोदविभृतात्मनाम् ॥ अभूद्वै सर्वसिद्धानां संसिद्धिःकृष्ण दर्शने ॥६०॥ स्नात्वा तु गोमतीनीरे नीरे चैव महोदधेः ॥ चक्रतीर्थे तु तेसर्वे कृष्णदर्शनलालसाः ॥६१॥ दृष्ट्वाश्रीकृष्ण वक्त्राब्जं परमानन्दसम्प्लुताः ॥ मुमुचुःप्रेमबाष्पंते आत्मानंनापि तेविदुः ॥ ६२ ॥ अथ दिव्योपचारैस्तु श्रद्धाभक्तिसम न्विताः ॥ कमलासनस्थंदृष्ट्वाथो रामंकृष्णमपूजयन् ॥६३॥ सर्वे तु पयसास्नाप्य दिव्यैश्चामृतकैस्तथा ॥ त्रैलोक्यसम्भ वैस्तीर्थैर्ब्रह्माप्राप्तमनोरथः ॥ ६४ ॥ भवश्चाथ भवानी च पूजयामासतुस्तदा ॥ इन्द्रोदेवगणाःसर्वे योगिनःसनकाद

और श्रीकृष्णजी के दर्शन की इच्छावाले वे सब गोमती के जल में व समुद्र के जल में नहाकर तथा चक्रतीर्थ में स्नान कर ॥ ६१ ॥ श्रीकृष्णजी के मुखकमल को देख कर बड़े आनन्द में मग्न होगये और उन्हों ने प्रेम के आंसुवों को छोड़ा व अपना को भी नहीं जाना ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर श्रद्धा व भक्ति से संयुत उन्हों ने कमलासन पै बैठेहुए बलभद्र व श्रीकृष्णजी को देखकर उत्तम उपचारों से पूजन किया ॥ ६३ ॥ और सबों ने जलसे नहवाकर व दिव्य पञ्चामृतों से नहवाकर त्रिलोक में उत्पन्न तीर्थों से नहवाया और ब्रह्मा ने मनोरथ को पाया ॥ ६४ ॥ व उस समय शिव और पार्वतीजी ने पूजन किया व इन्द्र तथा सब देवगणों ने और सनकादिक योगियों

ने पूजन किया ॥ ६५ ॥ और नारदादिक ऋषियों ने व गङ्गादिक श्रेष्ठ नदियों ने पूजन किया व उस समय सब समुद्रों ने तथा उत्तम पर्वतों ने पूजन किया ॥ ६६ ॥
व क्षेत्र और मुख्यक्षेत्र तथा काशी है मुख्य जिन में ऐसे मुक्तिदायक तीर्थ और अरण्यादिक सब आश्रमों ने श्रीमान् श्रीकृष्णजी को पूजा ॥ ६७ ॥ और प्रसन्न होतेहुए
सबों ने उत्तम श्रद्धा व भक्ति से पृथक् पृथक् अमूल्य दिव्य वसनों से व दिव्य गन्धों और अनुलेपनों से पूजन किया ॥ ६८ ॥ और महारत्नों से बनायेहुए दिव्य आ-
भूषणों से तथा चन्दनादिकों से उपजेहुए अनेकों दिव्य मालाओं से पूजन किया ॥ ६९ ॥ व उन्हों ने प्यारी श्रीतुलसीजी से श्रीकृष्णजी को पूजा व पृथक् २ धूपों व

यः ॥ ६५ ॥ ऋषयोनारदाद्याश्च गङ्गाद्याश्च सरिद्वराः ॥ सर्वेसमुद्राश्च तदा तथा वै पर्वतोत्तमाः ॥ ६६ ॥ क्षेत्राणिक्षेत्रमुख्यानि काशीमुख्याश्च मुक्तिदाः ॥ अरण्याद्याश्रमाःसर्वे श्रीमत्कृष्णमपूजयन् ॥ ६७ ॥ श्रद्धयापरयाभक्त्या सर्वेहृष्टाःपृथक्पृथक् ॥ अमूल्यैर्दिव्यवस्त्रैश्च दिव्यगन्धानुलेपनैः ॥ ६८ ॥ सुदिव्याभरणैर्भक्त्या महारत्नविनिर्मितैः ॥ दिव्यमाल्यैरनेकैश्च चन्दनादिसमुद्भवैः ॥ ६९ ॥ प्रिययाश्रीतुलस्या वै तेश्रीकृष्णमपूजयन् ॥ धूपैर्नीराजनैर्दिव्यैः कर्पूरैश्च पृथक्पृथक् ॥ ७० ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्दिव्यैः पुण्यैःकर्पूरवासितैः ॥ सकर्पूरैश्च ताम्बूलैः प्रियैश्चोपायनैस्तथा ॥ ७१ ॥ महामाङ्गल्यकैःसर्वे सुदिव्यैर्मङ्गलात्मकैः ॥ संस्तवैर्वैष्णवैर्भक्त्या चामरव्यजनादिभिः ॥ ७२ ॥ सम्पूज्यैवं महाविष्णुं कृष्णंकंसविनाशनम् ॥ प्रहृष्टाननृतुःसर्वे गीतवाद्यप्रहर्पिताः ॥ ७३ ॥ पुरतःकृष्णदेवस्य अप्सरोभिःसमन्विताः ॥ ब्रह्माद्याब्रह्मपुत्राश्च ततःसेन्द्राश्च भक्तितः ॥ ७४ ॥ ब्रह्मादीन्नृत्यतोवीक्ष्य भगवान्कमलेक्षणः ॥ वारयामासहस्तेन प्री

नीराजनों से और दिव्य कपूरों से पूजा ॥ ७० ॥ व कपूर से अधिवासित तथा पवित्र व दिव्य अनेकों प्रकार के नैवेद्यों से पूजा तथा कपूर समेत ताम्बूलों और प्रिय उ-
पायनों से पूजा ॥ ७१ ॥ व सबों ने भक्ति से महामांगल्यक और दिव्य व मंगलात्मक विष्णुजी के स्तोत्रों से और चँवर व व्यजन आदिकों से पूजन किया ॥ ७२ ॥
इस प्रकार कंसविनाशक श्रीकृष्णजी को भली भांति पूजकर गीतों व बाजनों से प्रसन्न होतेहुए अप्सराओं समेत सबों ने श्रीकृष्णदेवजी के आगे नृत्य किया तदनन्तर
भक्ति से इन्द्र समेत ब्रह्मादिक और ब्रह्मपुत्रों ने नृत्य किया ॥ ७३ । ७४ ॥ और नाचतेहुए ब्रह्मादिकों को देखकर कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण स्वामीजी ने प्रसन्न

होकर देवताओं को हाथ से मना किया ॥ ७५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! हे शिव ! हे सुरेश्वरि, भवानि ! हे सब तीर्थ, क्षेत्र, नारद, सनकादिको ! ॥ ७६ ॥ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं तुमलोगों का क्या मनोरथ है प्रह्लादजी बोले कि इस प्रकार श्रीकृष्णजी के वचन को सुनकर सब देवता हर्षसंयुत हुए ॥ ७७ ॥ व श्रीकृष्णजी को देखकर बडी भक्ति से प्रसन्न होतेहुए उन्होंने कहा ॥ ७८ ॥ श्रीब्रह्मा व शिवादिक बोले कि हे विभो ! आपकी दया से हमलोगोंने यथेच्छ वर को पाया और तुम्हारे चरणकमल में हमलोगों की अविनाशिनी भक्ति होवै ॥ ७९ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि वैसेही प्रसन्न होतेहुए तीर्थादिक व ब्रह्मा और शिवादिकों ने श्रीकृष्ण

तःप्राहसुरान्प्रभुः ॥ ७५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भोभोब्रह्मन्महेशान भवानि च सुरेश्वरि ॥ क्षेत्राणिसर्वतीर्थानि नारद सनकादयः ॥ ७६ ॥ प्रीतोहंभवतांसम्यगीप्सितंवोस्तिकिञ्चन ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ इत्थंकृष्णवचःश्रुत्वा देवाःसर्वेमुदान्विताः ॥ ७७ ॥ ऊचुस्तेपरयाभक्त्या कृष्णंदृष्ट्वाप्रहर्षिताः ॥ ७८ ॥ श्रीब्रह्ममहेश्वरादय ऊचुः ॥ प्राप्तःकामवरोस्माभिर्भवतःकृपयाविभो ॥ भूयात्तवपदाम्भोजे भक्तिर्नोह्यनपायिनी ॥ ७९ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ तथैव पूजयामासू रुक्मिणीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ८० ॥ ब्रह्मेशानादयःसर्वे तीर्थाद्याश्च प्रहर्षिताः ॥ अथ ब्रह्ममहेशानौ सर्वेषांशृण्वताम्मुदा ॥ ८१ ॥ श्रद्धयापरयाविष्टौ द्वारकाम्प्रत्यवोचतुः ॥ त्वंदेविसर्वतीर्थानां क्षेत्राणामुत्तमोत्तमा ॥ ८२ ॥ पर्वतानांयथामेरुःसिन्धूनांक्षीरसागरः ॥ प्राणो यथा शरीराणामिन्द्रियाणां च वै मनः ॥ ८३ ॥ तेजस्विनांयथावह्निस्सत्त्वानांमनुजोयथा ॥ चन्द्रोग्रहर्क्षताराणामिन्द्रियाणां च वै मनः ॥ ८४ ॥ एवंप्रकाशपुञ्जानां यथासूर्यःप्रकाशते ॥ तथा नःसर्वदेवानां महाविष्णुरयम्म

की प्यारी रुक्मिणीजी को पूजा इसके अनन्तर सबों के सुनतेहुए बड़ी श्रद्धा से संयुत ब्रह्मा व शिवजी ने हर्ष से द्वारकाजी से कहा कि हे देवि ! सब तीर्थों व क्षेत्रों के मध्य में तुम उत्तमोत्तम हो ॥ ८० । ८१ । ८२ ॥ जैसे पर्वतों के मध्य में सुमेरु और समुद्रों के मध्य में जैसे क्षीरसागर व शरीरों के मध्य में जैसे प्राण और इन्द्रियों के मध्य में जैसे मन श्रेष्ठ है ॥ ८३ ॥ व तेजवानों के मध्य में जैसे अग्नि और प्राणियों के मध्य में जैसे मनुष्य तथा ग्रह, नक्षत्र व ताराओं के मध्य में जैसे चन्द्रमा व इन्द्रियों के मध्य में जैसे मन श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥ ऐसेही जैसे प्रकाशपुंजों के मध्य में सूर्यनारायण विराजते हैं वैसेही हम सब देवताओं के मध्य में ये महान्

महाविष्णुजी हैं ॥ ८५ ॥ और वैसेही त्रिलोक में वर्तमान इन सब तीर्थों व सब क्षेत्रों के मध्य में उत्तमोत्तमा ॥ ८६ ॥ श्रीमती व पुण्यवती द्वारकापुरी पृथ्वी में सूर्य नारायण की नाई प्रकाशित है और जैसे हम सब देवताओं के ये विष्णु भगवान् पूजने योग्य हैं ॥ ८७ ॥ वैसेही यह द्वारका सदैव सबों के प्रणाम करने योग्य है श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे सत्तमो ! सब तीर्थों व क्षेत्रादिकों से यह कहकर ॥ ८८ ॥ स्वामिता में सुरेश्वर ब्रह्मा व शिवजीने द्वारका को अभिषेक किया और ब्रह्मा, शिव, देवता, प्रजापति व निर्मल ऋषियों ने ॥ ८९ ॥ उस समय तीर्थों व क्षेत्रराजों की स्वामिता में सब तीर्थों से उपजेहुए जलों से प्रसन्न होकर द्वारका का अभिषेक किया ॥ ९० ॥

हान् ॥ ८५ ॥ तथैव सर्वतीर्थानां क्षेत्राणां चैव सर्वशः ॥ त्रैलोक्येवर्त्तमानानामेतेषामुत्तमोत्तमा ॥ ८६ ॥ श्रीमद्द्वारवती पुण्या सूर्यवद्भासतेभुवि ॥ यथा नःसर्वदेवानां पूज्योयम्भगवान्हरिः ॥ ८७ ॥ तथा चैव हि सर्वेषां वन्द्येयंद्वारकासदा ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ इत्युक्त्वासर्वतीर्थानां क्षेत्रादीनाञ्च सत्तमाः ॥ ८८ ॥ आधिपत्येसुरेशानौ द्वारकामभिषेचतुः ॥ ब्रह्मेशानौ तथा देवाः प्रजेशाऋषयोमलाः ॥ ८९ ॥ तीर्थानांक्षेत्रराजानामाधिपत्येतदाजलैः ॥ चक्रुर्महाभिषेकन्तु द्वारकायाःप्रहर्षिताः ॥ ९० ॥ वादयन्तोविचित्राणि वादित्राणिमहोत्सवैः ॥ गव्यैःपञ्चामृतैस्तोयैः सर्वतीर्थसमुद्भवैः ॥ ९१ ॥ अथासीन्महदाश्चर्यं द्वारकायांद्विजोत्तमाः ॥ पुण्यैश्चाकाशगङ्गाया दिग्गजानांकरोद्धृतैः ॥ ९२ ॥ अथ वासांसिदिव्यानि दत्त्वासूक्ष्मादिकानि च ॥ अभ्यर्च्यचन्दनैर्दिव्यैर्दिव्याभरणभूषिताम् ॥ ९३ ॥ पूजयांचक्रिरेदिव्यैर्ऋतुकालसमुद्भवैः ॥ अथासीन्महदाश्चर्यं ब्रह्मादीनांमुदावहम् ॥ ९४ ॥ तदा यातामहादिव्याः पुरुषाःपार्षदाहरेः ॥ विश्वाकां

और विचित्र बाजनों को बजातेहुए उन्होंने बड़े उछाहों से गव्यों पञ्चामृतों से व सब तीर्थों से उपजेहुए जलों से अभिषेक किया ॥ ९१ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! द्वारका में बड़ाभारी आश्चर्य हुआ कि दिग्गजों के शुण्डों से ऊपर उठायेहुए पवित्र जलों से नहवाकर ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर रेशमी आदिक दिव्य वस्त्रों को देकर दिव्य चन्दनों से पूजकर दिव्य आभूषणों से भूषित द्वारकाजी को ॥ ९३ ॥ ऋतुओं व समयों में उपजेहुए दिव्य पुष्पों से पूजन किया इसके उपरान्त ब्रह्मादिकों को आनन्ददायक बड़ाभारी आश्चर्य हुआ ॥ ९४ ॥ कि उस समय दशो दिशाओं को प्रकाशित करतेहुए विश्वेदेवता, सूर्य व सनकादिक विष्णुजी के महा-

दिव्य पार्षद पुरुष आये ॥ ९५ ॥ और जय शब्द व नमस्कार के शब्द को कहतेहुए वे पुष्पों को बरसानेवाले प्रसन्न पार्षद गाने, बजाने के शब्द से नाचनेलगे ॥ ९६ ॥ और वहां श्याम वसन के नाईं प्रभावान् महाभागवत ऋषियों को देखकर ब्रह्मा, शिव, नारद व सनकादिकों ने प्रणाम किया ॥ ९७ ॥ और बहुत प्रसन्न उन्हों ने भी उस समय हर्ष समेत उनको प्रणाम किया और आलिङ्गनादिकों से प्रसन्न उन्होंने परस्पर प्रणाम किया ॥ ९८ ॥ और ऋषियों व देवताओं ने भी विष्णुजी के पार्षदों को प्रणाम किया और जेठे भाई (बलभद्र) समेत द्वारकानाथ श्रीमान् कृष्णजी को प्रणाम कर ॥ ९९ ॥ व श्रद्धा और भक्ति से निश्रेयस वन से उपजेहुए अनेक भांति के दिव्य पुष्पों से

स्सनकाद्याश्च द्योतयन्तोदिशोदश ॥ ९५ ॥ जयशब्दंनमःशब्दं वदन्तःपुष्पवर्षिणः ॥ गीतवादित्रघोषेण नृत्यमानाः प्रहर्षिताः ॥ ९६ ॥ श्यामवासप्रभांस्तत्र दृष्ट्वाब्रह्ममहेश्वरौ ॥ नारदःसनकाद्याश्च महाभागवतानृषीन् ॥ ९७ ॥ तेपितैरेव संहृष्टाः सहर्षनमितास्तदा ॥ ववन्दिरेपि तेन्योन्यं प्रहृष्टालिङ्गनादिभिः ॥ ९८ ॥ ऋषयोपि च देवाश्च प्रणेमुर्विष्णुपार्षदान् ॥ नत्वापि द्वारकानाथं श्रीमत्कृष्णं च साग्रजम् ॥ ९९ ॥ सम्पूज्यश्रद्धयाभक्त्या निश्रेयसवनोद्भवैः ॥ कुसुमैर्विविधैर्दिव्यैस्तुलस्याराजचम्पकैः ॥ १०० ॥ तदुत्पन्नैःफलैर्दिव्यैर्धूपनीराजनैःप्रभुम् ॥ विविधान्नैश्च ताम्बूलैर्नत्वाकृष्णमतोषयत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्णानुगताःसर्वे द्वारकायाःप्रहर्षिताः ॥ पूजान्तेस्तवनंचक्रुर्निश्रेयसवनोद्भवैः ॥ २ ॥ दिव्यगन्धैः फलैःपुष्पैस्तुलस्याकृष्णप्रीतये ॥ एवंसम्पूजितातैस्तु ब्रह्मेशानादिभिःसुरैः ॥ ३ ॥ ऋषिभिःक्षेत्रतीर्थैश्च द्वारकाकृष्णपार्षदैः ॥ महासिंहासनस्थासा राजतेविष्णुवल्लभा ॥ ४ ॥ ततस्तेकुसुमैर्दिव्यैर्महानीराजनैस्तथा ॥ नैवेद्यैर्विविधै

व तुलसी और राजचम्पकों से पूजकर ॥ १०० ॥ और उससे उत्पन्न दिव्य फलों व धूप तथा नीराजनों से स्वामी श्रीकृष्णजी को पूजकर व विविध अन्नों तथा ताम्बूलों से श्रीकृष्णजी को पूज व प्रणाम कर प्रसन्न किया ॥ १ ॥ और प्रसन्न होतेहुए रुव श्रीकृष्णजी के पार्षदों ने निश्रेयस वन से उपजेहुए पुष्पों से पूजन के अन्त में स्तुति किया ॥ २ ॥ व श्रीकृष्णजी की प्रीतिके लिये दिव्य गन्धों, फलों व पुष्पों से और तुलसी से इस प्रकार उन ब्रह्मा व शिवादिक देवताओं ने द्वारका का पूजन किया ॥ ३ ॥ और ऋषियों व क्षेत्रों तथा तीर्थों से और श्रीकृष्णजी के पार्षदों से पूजीहुई महासिंहासन पै स्थित वह विष्णु की प्यारी द्वारका शोभितथी ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन्होंने दिव्य

पुष्पों व महानीराजनों से और अनेकभांति के दिव्य नैवेद्यों व ताम्बूलों से पूजन किया ॥ ५ ॥ व नीराजन में परायण उन्होंने पुष्पाञ्जलियों से कहा कि क्षेत्रतीर्थादिराजों की तुम महारानी व ईश्वरी हो ॥ ६ ॥ ब्रह्मा, शिव, देवता, ऋषि व विष्णुजी के पार्षद ऐसा कहतेहुए उन सबोंने द्वारका को प्रणाम किया ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसी अवसर में बड़े भारी देवदुन्दुभि शब्द सुनपड़े और पुष्पों की वृष्टिया हुई ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त हे ऋषिश्रेष्ठो ! बड़ाभारी आश्चर्य हुआ उसको सुनिये कि कुरुक्षेत्र व प्रयाग बायें व दाहिने हाथोंमें ॥ ९ ॥ उस समय द्वारका के सुन्दर सफ़ेद छत्र को धारण किया और उत्तम चँवर व व्यजन को बड़े आनन्द से वीजन किया ॥१०॥ और बड़ी भक्ति से

दिव्यैस्ताम्बूलैःसमपूजयन् ॥ ५ ॥ पुष्पाञ्जलिभिरूचुस्ते नीराजनपरायणाः ॥ क्षेत्रतीर्थादिराजानां महाराज्ञीत्वमीश्वरी ॥ ६ ॥ इतिसर्वेवदन्तस्ते द्वारकामभिवन्दिरे ॥ ब्रह्मामहेश्वरोदेवा ऋषयोविष्णुपार्षदाः ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रा देवदुन्दुभिनिस्वनाः ॥ अश्रूयन्तमहाशब्दा अभवन्पुष्पवृष्टयः ॥ ८ ॥ अथासीन्महदाश्चर्यं शृण्वन्तु ऋषिपुङ्गवाः ॥ कुरुक्षेत्रम्प्रयागश्च सव्यदक्षिणहस्तयोः ॥ ९ ॥ श्वेतच्छत्रंमनोहारि द्वारकायास्तदादधे ॥ चामरव्यजने शुभ्रे वीजिरेपरयामुदा ॥ १० ॥ अयोध्यापरयाभक्त्या वाराणसिजयस्वनैः ॥ स्तुवन्त्यस्यास्तथान्यानि सर्वक्षेत्राणिसर्वशः ॥ ११ ॥ तीर्थानिसरितस्सर्वा द्वारकायाःपदाम्बुजम् ॥ पश्यन्तःपरमानन्दं लेभिरेदेवमानवाः ॥ १२ ॥ अथाहुः पार्षदाविष्णोरन्यान्येतानिसर्वशः ॥ यैर्दृष्टाद्वारकापुण्या सर्वलोकैकमण्डना ॥ १३ ॥ नवेदैर्नैवयज्ञैश्च तपोयोगसमाधिभिः ॥ द्वारकागमनेनृणां मतिःस्यात्कृपयाहरेः ॥ १४ ॥ बहुयज्ञतपोयोगैः सम्यगाराधितोहरिः ॥ प्रसा

अयोध्या व काशी जयशब्दोंसे स्तुति करनेलगी और अन्य सब क्षेत्र इस द्वारकाकी स्तुति करनेलगे ॥ ११ ॥ व द्वारकाजीके चरणकमलको देखते हुए देवता, मनुष्य, तीर्थ व सब नदियोंने बड़े आनन्दको पाया ॥१२॥ इसके उपरान्त विष्णुजीके पार्षदोंने व इन अन्य सब तीर्थोंने कहा कि सब लोकोंकी एकही मण्डन (आभूषण) रूपी द्वारकाको जिन्होंने देखाहै ॥ १३ ॥ द्वारकाको जानेमें उन मनुष्योंकी बुद्धि विष्णुजीकी दयासे होती है और वेदों, यज्ञों व तपस्या, योग तथा समाधियोंसे नहीं होती है ॥१४॥ क्योंकि

बहुत यज्ञों व तपस्या के योगों से भलीभांति आराधन कियेहुए विष्णुजी द्वारका को जाने के लिये प्रसन्नता करते हैं ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीद्वारकाभिषेकोनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कह्यो द्वारका का विभव यथा उमापति नाथ । पैंतिसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस समय ब्रह्मा व शिवजी पार्षदों के वचन को सुनकर ईश्वर ने द्वारकाजी के माहात्म्य को वर्णन किया ॥ १ ॥ कि हे क्षेत्रो, तीर्थो, नदियो, समुद्रादिको ! हे प्रयागादिको, सब तीर्थो ! हे मुक्तिदायक काशी

दंकुरुतेयस्माद्द्वारकागमनम्प्रति ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येश्रीद्वारकाभिषेकोनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वाब्रह्ममहेशानौ पार्षदानांवचस्तदा ॥ द्वारकायाश्च माहात्म्यं वर्णयामास चेश्वरः ॥ १ ॥ भोभोःक्षेत्राणितीर्थानि सरितःसागरादयः ॥ प्रयागादीनिसर्वाणि काश्याद्यामुक्तिदायकाः ॥ २ ॥ सर्वेषांतीर्थराजानां महाराज्ञीत्वियंशुभा ॥ द्वारकासेवनीयाँ वै स्थीयतांस्वेच्छयाबहिः ॥ ३ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ महेशवचनंश्रुत्वा सर्वेषामुत्सवोभवत् ॥ ततःप्रदक्षिणंकृत्वा द्वारकाम्प्रणिपत्य च ॥ ४ ॥ आवासञ्चक्रिरे तत्र क्षेत्रतीर्थादिहर्षिताः ॥ भागीरथीप्रयागं च यमुना च सरस्वती ॥ ५ ॥ सरयूर्गण्डकीपुण्या गोमतीपूर्ववाहिनी ॥ अन्याश्च सरितःसर्वाः सिन्धुशोणौनदौ तथा ॥ ६ ॥ स्थिताउत्तरदिग्भागे पञ्चाशत्कोटिभिस्सह ॥ लभन्तःकृष्णसेवां वै पश्यन्तोद्वारकांमुहुः ॥ ७ ॥

आदिको ! ॥ २ ॥ सब तीर्थराजों के मध्य में महारानी यह उत्तम द्वारकापुरी सेवने योग्य है तुमलोग अपनी इच्छा से बाहर स्थित होवो ॥ ३ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि शिवजी का वचन सुनकर सबों को आनन्द हुआ तदनन्तर प्रदक्षिणा कर व द्वारका को प्रणाम कर ॥ ४ ॥ प्रसन्न होतेहुए क्षेत्रों व तीर्थादिकों ने वहां निवास किया भागीरथी, प्रयाग, यमुना, सरस्वती ॥ ५ ॥ सरयू, गण्डकी व पूर्ववाहिनी पवित्र गोमती व अन्य सब नदियां और सिन्धु व शोण नद ॥ ६ ॥ पचास करोड़ तीर्थों समेत उत्तर दिशा के भाग में स्थितहुए श्रीकृष्णजी की सेवा को पातेहुए वे द्वारका को बार २ देखते थे ॥ ७ ॥

वैसेही पवित्र मन्दाकिनी नदी व जो भागीरथी नदी है और महानदी, नर्मदा, शिप्रा व प्राची सरस्वती ॥८॥ व चक्षुर्भद्रा और पापनाशिनी अन्य शीतानदी साठ करोड़ तीर्थों समेत पूर्वदिशा के भाग में वर्तमान है ॥ ९ ॥ और पयोष्णी, तापिनी व पवित्र तथा पापनाशिनी अन्य नदी निन्नानवे करोड़ अपने तीर्थों समेत भक्ति से ॥१०॥ द्वारका की सेवा में उत्कण्ठावाली नदियां दक्षिणदिशा के भाग में स्थितहुई और गोमती के किनारे व जल में तथा श्रीकृष्णजी के समीप क्रीड़ा करती हैं ॥११॥ और सातों द्वीपों में जो अन्य श्रेष्ठ नदियां हैं वे और सातों समुद्र पश्चिम दिशा में स्थित हुए ॥ १२ ॥ और वे चक्रतीर्थ में तथा सौ करोड़ तीर्थों समेत तीर्थ में क्रीड़ा करते हैं और सदैव

तथा मन्दाकिनीपुण्या नदीभागीरथी तु या ॥ महानदीनर्मदा च शिप्राप्राचीसरस्वती ॥८॥ चक्षुर्भद्रा तथा शीता तथान्यापापनाशिनी ॥ वर्त्ततेपूर्वदिग्भागे तीर्थैःषष्टिककोटिभिः ॥ ९ ॥ पयोष्णीतापिनीपुण्या अन्या चैवाघनाशिनी ॥ स्वतीर्थैःसहिताभक्त्या नवनवतिकोटिभिः ॥ १० ॥ स्थितादक्षिणदिग्भागे द्वारकासेवनोत्सुकाः ॥ क्रीडन्तिगोमतीतीरे नीरे वा कृष्णसन्निधौ ॥११॥ सप्तद्वीपे च याःसन्ति तथान्या वै सरिद्वराः ॥ सागराश्च तथा सप्त पश्चिमायांदिशिस्थिताः ॥ १२ ॥ क्रीडन्तिचक्रतीर्थे च तीर्थैश्च शतकोटिभिः ॥ पश्यन्ति च मुहुःकृष्णं पश्चिमाभिमुखंसदा ॥ १३ ॥ विदिशासु च सर्वासु तीर्थसंख्या न विद्यते ॥ पुष्करादीनितीर्थानि विशालंविरजंगया ॥ १४ ॥ शतैश्च कोटिभिस्तीर्थैर्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ वर्तन्तेकृष्णसेवायां सोत्सवानिद्विजोत्तमाः ॥ १५ ॥ वाराणसी च हीशाने अवन्तीपूर्वदिक्स्थिता ॥ आग्नेय्यांवर्ततेकाञ्ची दक्षिणेमथुरास्थिता ॥ १६ ॥ नैर्ऋत्यान्तुस्थितामाया अयोध्यापश्चिमेस्थिता ॥ वायव्याञ्च कुरुक्षेत्रं

पश्चिमाभिमुख श्रीकृष्णजी को बार २ देखते हैं ॥१३॥ और सब विदिशाओं में तीर्थों की संख्या नहीं विद्यमान है और पुष्करादिक तीर्थ व विशाल, विरज, गया ॥१४॥ हे द्विजोत्तमो ! सौकरोड़ तीर्थों समेत आनन्द सहित तीर्थ श्रीकृष्णजी की सेवा में गोमती व समुद्र के संगम में वर्तमान हैं ॥१५॥ और ईशान में काशी व अवन्ती पूर्व-दिशा में स्थित है और आग्नेय में कांची वर्तमान है व दक्षिण में मथुरा स्थित है ॥१६॥ और नैर्ऋत्य में माया स्थित है व पश्चिम में अयोध्या स्थित है और वायव्य में

कुरुक्षेत्र व उत्तर में हरिक्षेत्र है ॥ १७ ॥ व ईशान में कुरुक्षेत्र, पूर्व में पुरुषोत्तम, आग्नेय में भृगुक्षेत्र और दक्षिण में प्रभास स्थित है ॥ १८ ॥ व नैर्ऋत्य दिशा के भाग में श्रीरंग तथा पश्चिम में लोहदण्ड स्थित है और वायव्य में नारसिंह व उत्तर में कोकामुख है ॥ १९ ॥ और कामाक्षी व रेणुकादिक तथा सब शाक्रेयादिक और क्षेत्र राजादिक सब क्षेत्र यथायोग्य स्थानों में बसते हैं ॥ २० ॥ और धेनुक, नैमिषारण्य, दण्डक, सैन्धव, दशारण्य, अर्बुद व नरनारायणाश्रम ॥ २१ ॥ ये द्वारका के सब ओर यथायोग्य दिशाओं में बसते हैं व द्वारका की सेवा में उत्कण्ठित सुमेरु आदिक पर्वत पूर्व में बसते हैं ॥ २२ ॥ और रामगिरि आदिक व महेन्द्र तथा ऋषभादिक

हरिक्षेत्रंतथोत्तरे ॥ १७ ॥ ईशाने च कुरुक्षेत्रं पूर्वस्यांपुरुषोत्तमम् ॥ आग्नेय्यां च भृगुक्षेत्रं प्रभासंदक्षिणेस्थितम् ॥ १८ ॥ श्रीरङ्गंराक्षसेभागे लोहदण्डन्तु पश्चिमे ॥ नारसिंहन्तु वायव्ये कोकामुखमथोत्तरे ॥ १९ ॥ कामाक्षीरेणुकादीनि शाक्रेयादीनि कृत्स्नशः ॥ क्षेत्रराजादिसर्वाणि यथास्थानेवसन्ति हि ॥ २० ॥ धेनुकंनैमिषारण्यं दण्डकंसैन्धवं तथा ॥ दशारण्यंचार्बुदं च नरनारायणाश्रमम् ॥ २१ ॥ यथादिशंवसन्तिस्म द्वारकायाःसमन्ततः ॥ मेर्वादिपर्वताःपूर्वे द्वारकासेवनोत्सुकाः ॥ २२ ॥ दक्षिणेरामगिर्याद्या महेन्द्रऋषभादयः ॥ अन्ये च पुण्यशैलाश्च सलोकालोकमानसाः ॥ २३ ॥ द्वारकाम्परितःसन्ति पर्युपासन्ततेन्वहम् ॥ पश्यन्तिकृष्णवक्त्राब्जं परमानन्दनिर्वृताः ॥ २४ ॥ द्वारकाभिमुखैरेतैः परितःसुरपङ्क्तिभिः ॥ विराजतेयथावत्तु दलैःसुकर्णिकाइव ॥ २५ ॥ तीर्थादिपर्वताश्चैव तथा सिंहासनस्थिता ॥ द्वारकाप्रभयाविष्णूराजतेपार्षदैर्यथा ॥ २६ ॥ तीर्थक्षेत्रादिभिस्तत्र परितःपरिपालिता ॥ प्रजेश्वरैर्द्वितीयंतु तृतीयंदेवनायकैः ॥ २७ ॥ चतुर्थमृषि

दक्षिण में बसते हैं और लोकालोक व मानसाचल समेत अन्य पवित्र पर्वत ॥ २३ ॥ द्वारका के सब ओर हैं और वे प्रतिदिन द्वारका की उपासना करते हैं व बड़े आनन्द में मग्न वे श्रीकृष्णजी के मुख कमल को देखते हैं ॥ २४ ॥ सब ओर द्वारका के सामने इन तीर्थों व देवपंक्तियों से द्वारका यथायोग्य शोभित हुई जैसे कि पत्तों से कमल की गुजरी शोभित होवै ॥ २५ ॥ और तीर्थादिक पर्वत व सिंहासन पै स्थित द्वारका प्रभा से वैसेही शोभित हुई जैसे कि पार्षदों से विष्णुजी शोभित होते हैं ॥ २६ ॥ वहां क्षेत्रों व तीर्थादिकों से वह द्वारका सब ओर पालित है और दूसरा आवरण प्रजेश्वरों से व तीसरा सुरनायकों से है ॥ २७ ॥ और चौथा आवरण ऋषि

सिद्धसमूहों से है व पांचवां आवरण गङ्गादिकों का है व छठा आवरण प्रयाग और पुष्करादिक तीर्थों से है ॥ २८ ॥ और काशी आदिक सातवीं आवृत्ति कहीगई है व विमल, विरज और गया आठवां आवरण है व हे द्विजोत्तमो ! मुख्य क्षेत्रों व वनों तथा आश्रमादिकों और समुद्रों से नवां आवरण है और सुमेरु आदिक उत्तम पर्वतों से दशवां आवरण कहागया है ॥ २९ । ३० ॥ इस प्रकार बड़े सिंहासन पै स्थित वह दिव्य द्वारका उत्तम व पुष्ट दश आवरणों से बाहर घिरी है ॥ ३१ ॥ जैसे सातों द्वीपों व समुद्रों से सुवर्ण का मेरुगिरि शोभित है वैसेही इन आवरणों से द्वारका सदैव शोभित है ॥ ३२ ॥ दश आवरणों से संयुत द्वारका को देवता भी

सिद्धौघैर्गङ्गादीनां च पञ्चमम् ॥ षष्ठं त्वावरणंतीर्थैः प्रयागैःपुष्करादिभिः ॥ २८ ॥ काश्याद्याःसप्तमीप्रोक्ता विमलं विरजंगया ॥ अष्टमंक्षेत्रमुख्याद्यैर्नवमावरणं तथा ॥ २९ ॥ अरण्यैश्चाश्रमाद्यैश्च सागरैश्च द्विजोत्तमाः ॥ दशमावरणम्प्रोक्तं मेर्वाद्यैःपर्वतोत्तमैः ॥ ३० ॥ एवंसाद्वारकादिव्या महासिंहासनेस्थिता ॥ शुभैरावरणैःपुष्टैर्दशभिर्बहिरावृता ॥ ३१ ॥ सप्तद्वीपैःसमुद्रैश्च मेरुर्वै काञ्चनोयथा ॥ तथैवावरणैरेतैर्द्वारकाशोभतेसदा ॥ ३२ ॥ विबुधा न प्रपश्यन्ति दशावरणसंयुताम् ॥ मानवाश्चापि कृष्णस्य कृपयैव हि केचन ॥ ३३ ॥ एतैरावरणैर्युक्तां द्वारकांयेस्मरन्ति हि ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्तिविष्णोःपरम्पदम् ॥ ३४ ॥ एवम्ब्रह्मादयोदेवा ऋषयःसनकादयः ॥ क्षेत्रतीर्थादियुक्ताश्च ह्यन्यैःपुण्यतमैर्युताः ॥ ३५ ॥ द्वारकायांस्थिताःसर्वे कृष्णसेवनलम्पटाः ॥ सेवयापरयाभक्त्या कन्याराशिस्थितेगुरौ ॥ ३६ ॥ नन्दन्ते द्वारकाङ्गत्वा दृष्ट्वातांतदनुज्ञया ॥ गोमतींचक्रतीर्थन्तु गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ३७ ॥ द्वारावतीमशक्तानि त्यक्तुंतीर्थानि

नहीं देखते हैं और कोई मनुष्य भी श्रीकृष्णजी की दयाही से देखते हैं ॥ ३३ ॥ व इन आवरणों से संयुत द्वारका को जो स्मरण करते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णु जी के परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार क्षेत्रों व तीर्थादिकों से संयुत व अन्य अत्यन्त पवित्र स्थानों से संयुत ब्रह्मादिक देवता व सनकादिक ऋषि ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी की सेवा में लम्पट सब द्वारका में स्थित हैं और कन्याराशि में बृहस्पति के स्थित होने पर उत्तम भक्ति व सेवा से ॥ ३६ ॥ द्वारका को जाकर व उसको देखकर उसकी अनुज्ञा से प्रसन्न होते हैं और गोमती व समुद्र के संगम में गोमती, चक्रतीर्थ ॥ ३७ ॥ और द्वारकापुरी को छोड़ने के लिये सब तीर्थ असमर्थ होते हैं

वैसेही अन्य क्षेत्रादिक देखकर व बार २ प्रणाम कर ॥ ३८ ॥ वे तीर्थ अपने अंशों समेत गये और जो गङ्गादिक नदियां हैं वे सब गईं और फिर ये सब सिंहराशि में बृहस्पति स्थित होने पर ॥ ३६ ॥ द्वारका को देखने के लिये आते हैं व प्रसन्न होते हुए ब्रह्मादिक देवता आते हैं हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार द्वारका का अद्भुत माहात्म्य ॥४०॥ सब तीर्थों व क्षेत्रों के महापातकों का नाशक है और सब वर्णों व आश्रमों तथा पतितों के ॥४१॥ महापातकों का हारक व महापुण्य को बढ़ानेवाला कहा गया है और अत्यन्त उग्र पापराशियों का दाहस्थान कहागया है ॥ ४२ ॥ विद्वानों ने द्वारका के गमन को ऐसा कहा है फिर सदैव द्वारका को क्या कहना है व हे

कृत्स्नशः ॥ क्षेत्रादीनितथान्यानि दृष्ट्वानत्वापुनःपुनः ॥ ३८ ॥ स्वांशकैश्च ययुस्तानि गङ्गाद्यायाश्च कृत्स्नशः ॥ पुनश्चैतानिसर्वाणि सिंहराशिस्थितेगुरौ ॥ ३६ ॥ आयान्तिद्वारकांद्रष्टुं ब्रह्माद्याश्चैव हर्षिताः ॥ एवमद्भुतमाहात्म्यं द्वारकायामुनीश्वराः ॥ ४० ॥ सर्वेषांतीर्थक्षेत्राणां महापापविदारकम् ॥ वर्णानामाश्रमाणां च पतितानां च सर्वशः ॥ ४१ ॥ महापापहरम्प्रोक्तं महापुण्यविवर्द्धनम् ॥ अत्युग्रपापराशीनां दाहस्थानम्प्रकीर्त्तितम् ॥ ४२ ॥ द्वारकागमनम्प्राहुः किम्पुनर्द्वारकांसदा ॥ विशेषेण तु विप्रेन्द्राः सिंहराशिस्थितेगुरौ ॥ ४३ ॥ ब्रह्मादयोपि दृश्यन्ते यत्र तीर्थादिसंयुताः ॥ तन्माहात्म्यम्महालोके वक्तुंकेनात्र शक्यते ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ माहात्म्यंद्वारकायास्तु मदीयंयस्यमन्दिरे ॥ लिखितंतिष्ठतेनित्यं स चाप्नोतिफलंशुभम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

द्विजेन्द्रो ! विशेषकर बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होने पर ॥ ४३ ॥ जहां तीर्थादिकों से संयुत ब्रह्मादिक देवता भी देखपड़ते हैं वह माहात्म्य इस महालोक में किससे कहा जासक्ता है ॥ ४४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि द्वारका का मेरा माहात्म्य लिखा हुआ जिसके घर में सदैव स्थित होता है वह उत्तम फल को पाता है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । वज्रलेप पातक यथा भयो यती कर नाश । छत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखराश ॥ प्रह्लादजी बोले कि फिर ये पवित्र तीर्थ सिंहराशि में बृहस्पति स्थित होने पर द्वारका को देखने के लिये आते हैं व प्रसन्न होतेहुए ब्रह्मादिक देवता आते हैं ॥ १ ॥ व हे मुनीश्वरो ! द्वारका का ऐसा अद्भुत माहात्म्य सब तीर्थों व क्षेत्रों के महापापों को जलानेवाला है ॥ २ ॥ और वर्णों व आश्रमों तथा विशेष कर पतितों के महापापों को हरनेवाला व महापुण्य को बढ़ानेवाला कहागया है ॥ ३ ॥ और द्वारका गमन अत्यन्त उग्र पापराशियों का दाहस्थान कहागया है फिर हे ब्राह्मणो! सदैव द्वारका को क्या कहना है ॥ ४ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! सिंहराशि में बृहस्पति

प्रह्लाद उवाच ॥ पुनश्चैतानिपुण्यानि सिंहराशिस्थितेगुरौ ॥ आयान्तिद्वारकांद्रष्टुं ब्रह्माद्याश्चैव हर्षिताः ॥ १ ॥ एव मद्भुतमाहात्म्यं द्वारकायामुनीश्वराः ॥ सर्वेषांतीर्थक्षेत्राणां महापापविदाहकम् ॥ २ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च पतितानां विशेषतः ॥ महापापहरम्प्रोक्तं महापुण्यविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ अत्युग्रपापराशीनां दाहस्थानम्प्रकीर्तितम् ॥ द्वारकागमनं विप्राः किम्पुनर्द्वारकांसदा ॥ ४ ॥ विशेषेण तु विप्रेन्द्राः सिंहराशिस्थितेगुरौ ॥ ब्रह्मादयोपि दृश्यन्ते यत्रतीर्थादिसंयुताः ॥ ५ ॥ प्रतिवर्षम्प्रकुर्वन्ति द्वारकागमनञ्च ये ॥ तेषाम्पादरजःस्पृष्ट्वा दिवंयान्त्येवपापिनः ॥ ६ ॥ सत्यंसत्यम्पुनः सत्यं सत्यंममसुभाषितम् ॥ दृष्ट्वादृष्ट्वापुनःसर्वे पुनन्तेपापिनो हि यत् ॥ ७ ॥ गोमतीनीरपूतानां कृष्णवक्त्रावलोकिनाम् ॥ दर्शनात्पातकंतेषां यातिजन्मशतार्जितम् ॥ ८ ॥ इतिहासं च पूर्वोक्तं श्रूयतांमुनिपुङ्गवाः ॥ दिलीपवशिष्ठसंवादे परमाश्चर्यवर्द्धनम् ॥ ९ ॥ काश्यान्न वज्रलेपं हि पापंकृत्वाव्यपोहति ॥ वशिष्ठादितिश्रुत्वा हि दिलीपोवाक्यम

स्थित होनेपर जहां तीर्थादिकों से संयुत ब्रह्मादिक देवता भी विशेषकर देखपड़ते हैं ॥ ५ ॥ और प्रतिवर्ष जो द्वारका को गमन करते हैं उनके चरणों की धूलि को छूकर पापी भी मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं ॥ ६ ॥ और मेरा उत्तम वचन सत्य है सत्य है व फिर सत्य है क्योंकि देख देखकर फिर सब पापी पवित्र होजाते हैं ॥ ७ ॥ और गोमती के जल से पवित्र व श्रीकृष्णजी के मुख को देखनेवाले उन मनुष्यों के दर्शन से सौ जन्मों में इकट्ठा किया हुआ पाप नाश होजाता है ॥ ८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! दिलीप व वशिष्ठजी के संवाद में बड़े आश्चर्य को बढ़ानेवाले पूर्वोक्त इतिहास को सुनिये ॥ ९ ॥ कि काशी में वज्रलेप पापको करके मनुष्य नष्ट नहीं करता है वशिष्ठजी

से ऐसा सुनकर दिलीप ने वचन कहा ॥ १० ॥ दिलीप बोले कि काशी का भयंकर वज्रलेप जहां नाश होजाता है और सम्पूर्ण महापुण्य जहां मिलता है उस को कहिये ॥ ११ ॥ व हे द्विजोत्तम ! जिस क्षेत्र में पाप नहीं जमते हैं उस पवित्र क्षेत्र को कहिये यदि त्रिलोक में वर्तमान होवै ॥ १२ ॥ वशिष्ठजी बोले कि काशी में मोक्षधर्म को जाननेवाला कोई त्रिदण्डी यती दशाश्वमेध पै गायत्री को जपता हुआ सावधान बैठा था ॥ १३ ॥ वहा कोई गजगामिनी स्त्री आई और किनारे वस्त्रों को धरकर गङ्गा में परिश्रम की शान्ति के लिये ॥ १४ ॥ क्रीड़ा करतीहुई उस स्त्री को देखकर यती कामदेव से पूर्ण होगया व दैव से मार्ग से भ्रष्ट होकर पुंश्चली के

ब्रवीत् ॥१०॥ दिलीप उवाच॥ वज्रलेपस्तु काश्या वै सुघोरो यत्र नश्यति॥ कृत्स्नशोथ महापुण्यं प्राप्यते यत्र तद्वद॥११॥ न प्ररोहन्तिपापानि यस्मिन्क्षेत्रेद्विजोत्तम ॥ क्षेत्रन्तु कथ्यतांपुण्यं त्रैलोक्येयदिवर्त्तते ॥ १२॥ वशिष्ठ उवाच ॥ वाराणस्यांयतिःकश्चित्त्रिदण्डीमोक्षधर्मवित् ॥ जपन्दशाश्वमेधे च गायत्रीं च समाहितः ॥ १३॥ तत्र काचित्समायाता युवतीगजगामिनी ॥ तीरेसंस्थाप्यवासांसि गङ्गायांश्रमशान्तये ॥ १४ ॥ क्रीडन्तींवीक्ष्यतांनारीं यतिर्मदनपूरितः ॥ दैवाद्विभ्रंशितोमार्गात् स्वैरिण्यङ्गविमोहितः ॥ १५ ॥ मनसाकामयामास सापि तंतरुणम्प्रति ॥ तयोश्च सङ्गतिस्तत्र सञ्जातापापकर्मणा ॥ १६ ॥ तयायतिर्मोहितःसंस्तामेवानुससारसः ॥ तत्प्रीत्यैयाचयामास न्यायतोऽन्यायतोधनम्॥ १७॥ वाराणस्यां हि गृह्णाति चण्डालस्यप्रतिग्रहम्॥ स्नानहीनोऽशुचिःपापो रात्रौचौर्येणवर्त्तते ॥ १८॥ कस्मिन् कालेदुराचारो मांसार्थी तु वनङ्गतः ॥ ददर्शप्रमदांतत्र मातङ्गींमदिरेक्षणाम् ॥ १९॥ तस्यास्त्वतीवसौन्दर्य्यं दृष्ट्वापूर्वे

अंगों से मोहित होगया ॥१५॥ और उस स्त्री ने भी मन से उस युवा यती की इच्छा किया और पाप के कर्म से वहां उन दोनों का संगम होगया ॥१६॥ और उस स्त्री से मोहित होता हुआ वह यती भी उसके पीछे चलागया और उसकी प्रसन्नता के लिये उसने न्याय व अन्याय से धन को मांगा ॥ १७ ॥ और वह काशी में चाण्डाल के दान को लेता था व स्नान से हीन तथा अशुद्ध व पापी वह रात्रि में चोरी से वर्तमान होता था ॥ १८ ॥ किसी समय मांस की इच्छावाला वह दुराचारी पुरुष वन को गया और वहां उसने मदिरेक्षणा चाण्डाली स्त्री को देखा ॥ १९ ॥ और उसकी बहुतही सुन्दरता को देखकर पहले के पाप से उस निर्जन वन में भी वह यती

चाण्डाली के संग से प्रसन्न हुआ ॥ २० ॥ और पाप से मोहित उसने उसके साथ अन्नपानादिक किया व पाप से लम्पट वह मदिरा के साथ पकायेहुए गोमांस को खाता था ॥ २१ ॥ व उसके घर में मृत्यु को पाकर पापात्मा व सर्वभक्षी वह काशी के प्रभाव से उस समय नरक को न प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ किन्तु वहा वज्रलेप व भयंकर पाप किया गया इस कारण शूद्री के संसर्ग के पाप से यह क्रूर योनियों में पैदाहुआ ॥ २३ ॥ याने भेड़िया, व्याघ्र, सिंह, कुत्ता, सियार व शूकर हुआ और पाप से दुःख को प्राप्त हुआ व कल्याण के कुछ अंश को न पातेहुए ॥ २४ ॥ इस प्रकार हज़ार जन्मों में उस पापकर्मी मनुष्य का चाण्डाली के संग से पाप दश हज़ार

णपाप्मना ॥ वनेपि निर्जनेतस्मिन्मातङ्गीसङ्गहर्षितः ॥ २० ॥ तयासहान्नपानादि कृतवान्पापमोहितः ॥ अश्नातिसुरया पक्वं गोमांसम्पापलम्पटः ॥ २१ ॥ तद्गेहेनिधनम्प्राप्य पापात्मासर्वभक्षकः ॥ वाराणसीप्रभावेण न प्राप्तोनरकं तदा ॥ २२ ॥ किन्तु तत्र कृतम्पापं वज्रलेपंसुदारुणम् ॥ शूद्रीसंसर्गपापेन जातोसौक्रूरयोनिषु ॥ २३ ॥ वृकोव्याघ्रोहरिः श्वा च शृगालः शूकरोभवत् ॥ दुष्कृताद्यातनाम्प्राप्तः शर्मलेशंनविन्दतः ॥ २४ ॥ एवंजन्मसहस्रैस्तु तस्यतत्पापकर्मणः ॥ मातङ्ग्याःसङ्गतःपापं नानश्यतयुगायुतैः ॥ २५ ॥ ततोसौराक्षसोजातः पापात्मासर्वभक्षकः ॥ प्राणिनोभक्षयन् सर्वान्सम्प्राप्तोविन्ध्यपर्वते ॥ २६ ॥ अस्मादनन्तरम्भाव्यं कृकलासत्वमद्भुतम् ॥ शूद्रीसङ्गमपापेन भाव्योथ कृमियोनिना ॥ २७ ॥ अनन्तदुःखदंघोरं पुनःपुनरयंयतिः ॥ मातङ्गीसङ्गपापानाम्फलमत्तिजुगुप्सितम् ॥ २८ ॥ युगायुतसहस्रैस्तु भोक्ष्यमाणंसुदारुणम् ॥ अथाश्चर्यमभूत्तत्र दिलीपश्रूयतांमहत् ॥ २९ ॥ अलौकिकं च विन्ध्याद्रौ सर्वेषांवि

जन्मों में भी नाश न हुआ ॥ २५ ॥ तदनन्तर यह पापात्मा व सर्वभक्षी मनुष्य राक्षस हुआ और सब प्राणियों को खाता हुआ यह विन्ध्याचल पै प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ इसके अन्तर अद्भुत गिरगटपन हुआ और इसके बाद शूद्री के संगम के पाप से कीटयोनि में हुआ ॥ २७ ॥ और बार २ यह यती अनन्त दुःखदायक व भयंकर चाण्डाली के संगवाले पापों के फल को भोगता था ॥ २८ ॥ और हजारों युगों से वह भयंकर पाप भोगनेवाला था। इसके अनन्तर हे दिलीप! वहां बड़ाभारी आश्चर्य हुआ उसको सुनिये ॥ २९ ॥ जोकि अलौकिक व सबों को विस्मय देनेवाला आश्चर्य विन्ध्याचल पै हुआ है कि कोई मनुष्य द्वारका व सुन्दर श्रीकृष्णजी के मुख

को देखकर ॥ ३० ॥ गोमती के जल से पवित्र वह पथिक विन्ध्याचल पै प्राप्त हुआ और श्रीकृष्णजी की प्रसन्नता से यात्रा व निवास करके वह प्रसन्न हुआ ॥ ३१ ॥ और जातेहुए उसने उस मार्ग में उस राक्षस के घर को देखा व खाने के लिये आयेहुए क्रूरकर्मी राक्षस को देखकर ॥ ३२ ॥ जो प्रिय था वह मिलगया यह कहकर श्रीकृष्णजी का पथिक न चला और उसके दर्शनही से उस चाण्डाली के दर्शन से उपजाहुआ बड़ा भयंकर वज्रलेप पाप क्षणभर में भस्म होगया और करोड़ों सौ जन्मों में भी दुःख के भोग से राक्षस का वह पापरूपी पर्वत श्रीकृष्णजी के यात्री के दर्शन से जलगया ॥ ३३ । ३४ ॥ व उसीक्षण मेघों से मुक्त जैसे चन्द्रमा

स्मयावहम् ॥ दृष्ट्वाद्वारवतींकश्चित् कृष्णवक्त्रंसुशोभनम् ॥ ३० ॥ गोमतीनीरपूतस्तु विंध्यम्प्राप्तःसपान्थिकः ॥ यात्रांकृष्णप्रसादेन वासंकृत्वाप्रहर्षितः ॥ ३१ ॥ गच्छंस्तस्यगृहंतत्र ददर्शपथिरक्षसः ॥ राक्षसंक्रूरकर्माणं दृष्ट्वाभक्षितु मागतम् ॥ ३२ ॥ यदिष्टम्प्राप्तमित्युक्त्वा नाकम्पत्कृष्णपान्थिकः ॥ तस्यदर्शनमात्रेण वज्रलेपःसुदारुणः ॥ ३३ ॥ तस्याःसङ्गसमुद्भूतो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ जन्मकोटिशतेनापि दुःखभोगेनरक्षसः ॥ तत्पापपर्वतोदग्धः कृष्णपान्थि कदर्शनात् ॥ ३४ ॥ सद्योथ क्रूरपापेन घनैर्मुक्तोयथाशशी ॥ रेजेपुण्यप्रकाशेन कृष्णपान्थिकदर्शनात् ॥ ३५ ॥ ततो भिमुखमभ्येत्य द्वारकापथिकम्मुदा ॥ ननामश्रद्धयाभूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ३६ ॥ नत्वाथ विस्मितःप्राह अहोमे तवदर्शनात् ॥ गतोघोरतमोभावः प्राप्तासंसिद्धिरुत्तमा ॥ ३७ ॥ कस्मात्त्वमागतोभद्र प्रभावःकिन्तवेदृशः ॥ वज्रलेपस्तु काश्या वै दग्धस्तेदर्शनादनु ॥ ३८ ॥ श्रीवशिष्ठ उवाच ॥ इत्येवंराक्षसेनोक्तं श्रुत्वाकृष्णस्यपान्थिकः ॥ वि

होवै वैसेही क्रूर पाप से छूटाहुआ वह श्रीकृष्णजी के यात्री के दर्शन से पुण्यरूपी प्रकाश से शोभित हुआ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर सामने आकर उसके दर्शन से बड़े आनन्दवाले उसने हर्ष से द्वारकायात्री को श्रद्धा से भूमि में प्रणाम किया ॥ ३६ ॥ व प्रणाम कर विस्मित होतेहुए उसने कहा कि आश्चर्य है जोकि तुम्हारे दर्शन से मेरी भयंकरी राक्षसता जाती रही और उत्तम सिद्धि मिलगई ॥ ३७ ॥ हे भद्र! तुम कहां से आये हो और ऐसा तुम्हारा क्यों प्रभाव है क्योंकि तुम्हारे दर्शन से पीछे काशी का वज्रलेप पाप जलगया ॥ ३८ ॥ श्रीवशिष्ठजी बोले कि राक्षस से कहेहुए इसी वचन को सुनकर बड़े विस्मय को प्राप्त उससे प्रसन्नमनवाले श्रीकृष्णजी

के यात्रीने कहा ॥ ३९ ॥ यात्री बोला कि हे राक्षस ! श्रीमती द्वारकापुरी को देखकर मैं यहां आयाहूं और श्रीकृष्णजी के दर्शनसे हमारा वज्रलेप को हरनेवाला प्रभाव है ॥ ४० ॥ ऐसा कहाहुआ प्रसन्न व शुद्धचित्त तथा भक्ति से संयुत राक्षस उसको प्रणाम व प्रदक्षिणा कर उस समय द्वारका को प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ और गोमती में अपने शरीरको छोड़कर यह विष्णुजीके स्थान को प्राप्त हुआ और सुरेश्वरों तथा गन्धर्वों से पुष्पवृष्टियों समेत स्तुति किया गया ॥ ४२ ॥ इस प्रकार द्वारकाका बड़ाभारी प्रभाव कहागया कि जिसके यात्री के दर्शन से पाप नहीं जमते हैं ॥ ४३ ॥ फिर द्वारकामें पातक नहीं जमते हैं इसको क्या कहनाहै और पृथ्वीमें विष्णुजीने पापों का

स्मयम्परमापन्नं प्राहतंहर्षमानसः ॥ ३९ ॥ पान्थिक उवाच ॥ श्रीमद्वारावतींदृष्ट्वा ह्यागतोस्म्यत्र राक्षस ॥ वज्रलेपहरोस्माकम्प्रभावःकृष्णदर्शनात् ॥ ४० ॥ इत्युक्तोराक्षसोहृष्टः शुद्धात्माभक्तिसंयुतः ॥ नत्वातंदक्षिणं कृत्वा सम्प्राप्तो द्वारकांतदा ॥ ४१ ॥ गोमत्यांस्वतनुंत्यक्त्वा प्राप्तोसौवैष्णवम्पदम् ॥ स्तूयमानःसुरेशानैर्गन्धर्वैःपुष्पवृष्टिभिः ॥ ४२ ॥ इत्थम्महाप्रभावो हि द्वारकायाःप्रकीर्त्तितः ॥ न प्ररोहन्तिपापानि यस्याःपान्थिकदर्शनात् ॥ ४३ ॥ द्वारकायान्तु किं वाच्यं न प्ररोहन्तिपातकम् ॥ दाहदेशोपि पापानां विष्णुनास्थापितोभुवि ॥ ४४ ॥ इत्येतत्कथितंराजन् यत्पृष्टोहंत्वयानघ ॥ सर्वक्षेत्रोत्तमंक्षेत्रं वज्रलेपविनाशनम् ॥ ४५ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ वशिष्ठेनोदितंश्रुत्वा दिलीपोहृष्टमानसः ॥ द्वारकाक्षेत्रराजत्वं ज्ञात्वासविस्मयंययौ ॥ ४६ ॥ ययौद्वारावतींद्रष्टुं देवदेवस्यसादरात् ॥ कृष्णंदृष्ट्वापरांसिद्धिं सम्प्राप्तोदेवमन्दिरे ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येवज्रलेपपापहरोनामषट्त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दाहस्थान भी स्थापित किया है ॥ ४४ ॥ हे अनघ, राजन् ! तुमने जो मुझ से पूंछा यह वज्रलेप का नाशक व सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र कहागया ॥ ४५ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि वशिष्ठजी से कहेहुए वचन को सुनकर वे प्रसन्नमनवाले दिलीपजी द्वारका की क्षेत्रराजता को जानकर विस्मय को प्राप्तहुए ॥ ४६ ॥ व देवदेव श्रीकृष्णजी की द्वारकापुरी को देखने के लिये आदर समेत गये व देवमन्दिर में श्रीकृष्णजी को देखकर उत्तम सिद्धि को प्राप्तहुए ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवज्रलेपपापहरोनामषट्त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दो• । अहै यथा द्वारका अरु कृष्णदेव परभाव । सैंतिसवें अध्याय में कथा हर्ष उपजाव ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि सब ओर दशयोजन क्षेत्र के माहात्म्यको आश्चर्य है जहां स्वर्ग में स्थित प्राणी सबही चतुर्भुजों को देखते हैं ॥ १ ॥ अहो क्षेत्र का माहात्म्य सब शास्त्रों में प्रसिद्ध है जिसमें जहां कहीं भी छुयेहुए भी पाषाण मुक्तिदायक होते हैं ॥ २ ॥ अहो क्षेत्र के माहात्म्य को निर्मल ऋषिलोग सुनैं कि जहां के रहनेवाले मनुष्य श्रीकृष्णजी की सेवा में सदैव उत्कण्ठित हैं ॥ ३ ॥ व क्षेत्र के माहात्म्य को आश्चर्य है जोकि नित्य चतुर्भुजजी को देखकर सब द्वारकावासी देवताओं को प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥ आश्चर्य है कि क्षेत्र का माहात्म्य तीनों लोकों के

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं समन्ताद्दशयोजनम् ॥ दिविस्था यत्र पश्यन्ति सर्वानेव चतुर्भुजान् ॥ १ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं सर्वशास्त्रेषुविश्रुतम् ॥ यत्र स्पृष्टाश्च पाषाणा यत्र कापि विमुक्तिदाः ॥ २ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं शृण्वन्तुऋषयोमलाः ॥ मुक्तिंनेच्छन्तियत्रत्याः कृष्णसेवासदोत्सवाः ॥ ३ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं दृष्ट्वानित्यं चतुर्भुजम् ॥ द्वारकावासिनःसर्वे नमस्यन्तिदिवौकसः ॥ ४ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं त्रैलोक्योपरिराजते ॥ यत्प्राप्य ऋषयोदेवा वर्त्तन्तेस्वर्गसंस्थिताः ॥ ५ ॥ सर्वदा चैव सर्वज्ञा द्वारकाममवर्णने ॥ ब्रह्मेशाद्यैश्च वन्द्याङ्घ्रिः कृष्णो यत्र सदास्थितः ॥ ६ ॥ अपि कीटपतङ्गाद्याः पशवोथ सरीसृपाः ॥ विमुक्ताःपापिनःसर्वे द्वारकायाःप्रभावतः ॥ ७ ॥ किं पुनर्मानवानित्यं द्वारकायांवसन्तिये ॥ सोत्सवादेवकृष्णस्य सेवायांविजितेन्द्रियाः ॥ ८ ॥ यागतिःसर्वजन्तूनां द्वारकापुरवासिनाम् ॥ सागतिर्दुर्लभालोके मुनीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ क्षेत्रेभ्यःसर्वतीर्थेभ्यो द्वारकाह्युत्तमास्मृता ॥ सर्वेषु

ऊपर विराजता है जहां कि प्राप्तहोकर ऋषि व देवता स्वर्ग में स्थित होते हैं ॥ ५ ॥ और मेरे वर्णन में द्वारका सब कुछ देनेवाली व सर्वज्ञ है जहां कि ब्रह्मा व शिवादिकों से प्रणाम करने योग्य चरणवाले श्रीकृष्णजी सदैव स्थित रहते हैं ॥ ६ ॥ और द्वारका के प्रभाव से कीट, पतंगादिक, पशु व सांप और सब पापी मुक्त होजाते हैं ॥ ७ ॥ फिर उन मनुष्यों को क्या कहना है इन्द्रियों को जीतेहुए जोकि सदैव द्वारका में बसते हैं व श्रीकृष्णदेवजी की सेवा में आनन्द सहित होते हैं ॥ ८ ॥ और द्वारका नगर में बसनेवाले सब प्राणियोंकी जो गति होती है वह गति संसार में ऊर्ध्वरेता मुनियोंको दुर्लभ है ॥ ९ ॥ और सब तीर्थों व क्षेत्रों से द्वारका उत्तम कही

गई है क्योंकि सब तीर्थों व क्षेत्रों में जो करोड़ों वर्षों से फल होता है ॥ १० ॥ वह फल द्वारका में प्रतिदिन आधे निमेष से होता है और द्वारका में जो कियाहुआ हवन, जप, दान व तप होता है ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह सब श्रीकृष्णजी के समीप कोटिगुना व अनन्त होता है और द्वारका में स्थित चतुर्भुज व पार्षदरूपी सब स्त्री व पुरुष सदैव श्रीकृष्णजी को देखकर देखने योग्य हैं व जो मनुष्य उत्तम पार्षदरूपी सब द्वारकावासियों को देखता है ॥ १२ । १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह सत्य सत्य श्रीकृष्णजी को बहुत प्रिय होता है मेरा कहा हुआ सत्य, सत्य व फिर सत्य है झूंठ नहीं है ॥ १४ ॥ कि द्वारकावासी सब स्त्री व पुरुष चतुर्भुज हैं और जो

तीर्थक्षेत्रेषु यत्फलंवर्षकोटिभिः ॥ १० ॥ तत्फलंनिमिषार्द्धेन द्वारकायांदिनेदिने ॥ द्वारकायांहुतंजप्तं दत्तंयच्चतपः कृतम् ॥ ११ ॥ सर्वकोटिगुणंविप्रा अनन्तंकृष्णसन्निधौ ॥ द्वारकायांस्थिताःसर्वे नरनार्यश्चतुर्भुजाः ॥१२॥ श्रीकृष्णस्य सदादृष्ट्वा द्रष्टव्याःपार्षदोत्तमाः ॥ द्वारकावासिनःसर्वान् यःपश्येत्पार्षदोत्तमान् ॥ १३ ॥ सत्यंसत्यंद्विजश्रेष्ठाः कृष्णस्यातिप्रियोभवेत् ॥ सत्यंसत्यम्पुनःसत्यं नानृतम्ममभाषितम् ॥ १४ ॥ द्वारकावासिनःसर्वे नरानार्यश्चतुर्भुजाः ॥ द्वारकावासिनःसर्वान् दोषबुद्ध्याविपश्यति ॥ १५ ॥ सत्यंसत्यंद्विजश्रेष्ठाः कृष्णस्तेनविदूषितः ॥ द्वारकावासिनोयेवै निन्दन्तिपुरुषोत्तमान् ॥ १६ ॥ कृष्णकृपाविहीनास्ते पतन्तिदुःखसागरे ॥ जयन्तेनभृशंत्रस्ताः शूलाग्रारोपिताश्चिरम् ॥ १७॥ कर्षितास्ताडितास्ते वै मूर्च्छिताःपुनरुत्थिताः ॥ त्राहित्राहिजयन्तत्वं नोवदन्तोपि पातिताः ॥१८॥ स्मार्यन्ते च जयन्तेन पूर्वपापंसुदारुणम् ॥ श्रीजयन्त उवाच ॥ किंकृतंमन्दभाग्यैश्च तत्पापं च सुदारुणम् ॥ १९ ॥ सर्वपुण्य फलं लब्ध्वा

मनुष्य सब द्वारकावासियों को दोष की बुद्धिसे देखता है ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उससे सत्यसत्य श्रीकृष्णजी दूषितहोते हैं और जो द्वारकावासी उत्तम जनोंकी निन्दा करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी की दयासे रहित वे मनुष्य दुःख के समुद्रमें पड़ते हैं और जयन्त बहुतही डरेहुए उनको शूलके अग्रभाग पै बहुत दिनतक आरोपण करते हैं ॥ १७ ॥ और खींचे व ताड़न कियेहुए वे मूर्च्छितहोकर फिर उठते हैं और हे जयन्त ! तुम हमारी रक्षा कीजिये ऐसा कहतेहुए भी वे गिरायेजाते हैं ॥ १८ ॥ और जयन्त उनको पहले के बड़े भयंकर पाप को स्मरण कराते हैं श्रीजयन्तजी कहते हैं कि मन्दभाग्यवाले तुमलोगोंने क्यों भयंकर पापकिया था ॥ १९ ॥ और सब पुण्यके

फल को पाकर उत्तम द्वारका निवास होता है व निश्चय कर द्वारकावासियों की निन्दा महापापों से भी अधिक होती है ॥ २० ॥ और अग्नि व विष्णुजी से उत्पन्न पाप निवृत्त नहीं होता है इस कारण मैं श्रीकृष्णजी की आज्ञा से तुम सबों को भी शुद्ध करता हूं ॥ २१ ॥ और वैष्णवों की निन्दा के भयानक पाप को भोग कर तदनन्तर तुमलोगों का द्वारका में पवित्र जन्म होगा ॥ २२ ॥ और श्रीकृष्णजी को प्रसन्न कराकर बहुत दुर्लभ सिद्धि होगी इस कारण वैष्णवों की निन्दा से उपजाहुआ वह पाप भोग कियाजावै ॥ २३ ॥ और वहां के रहनेवाले मनुष्यों के ब्रह्मा, इन्द्र व शिवजी स्वामी नहीं हैं इस कारण द्वारकापुरी को जाकर सब चतुर्भुज पुरुषों को

द्वारकावासउत्तमः ॥ द्वारकावासिनांनिन्दा महापापाधिकाध्रुवम् ॥ २० ॥ न निवर्तेततत्पापमाग्नेयम्परमेश्वरम् ॥ अतः कृष्णाज्ञयासर्वान् विशुद्धान्वःकरोम्यहम् ॥ २१ ॥ वैष्णवानान्तु निन्दायाः फलम्भुक्त्वासुदारुणम् ॥ ततस्तु द्वारकायां वः पुण्यञ्जन्मभविष्यति ॥ २२ ॥ कृष्णम्प्रतोष्यसंसिद्धिर्भविष्यतिसुदुर्लभा ॥ तस्मात्तद्भुज्यताम्पापं जातंवैष्णवनिन्दनात् ॥ २३ ॥ तत्रत्यानाम्प्रभुर्नैव ब्रह्माइन्द्रोमहेश्वरः ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ तस्माद्द्वारवतीङ्गत्वा पश्येत्सर्वांश्चतुर्भुजान् ॥ २४ ॥ संसेव्योभगवान्सर्वैः सर्वेषाम्प्रीतिदायकः ॥ अतोविप्राःसदापूज्या द्वारकावासिनोजनाः ॥ २५ ॥ दत्तमत्राणुमात्रंवं तदक्षयफलम्भवेत् ॥ गोमतीतीरमाश्रित्य द्वारकायाम्प्रयच्छति ॥ २६ ॥ यत्किञ्चिच्च धनंविप्राः श्रूयतांतत्फलोदयम् ॥ हेमभारसहस्रैस्तु रविवारेरविग्रहे ॥ २७ ॥ कुरुक्षेत्रेयदाप्नोति गजाश्वरथदानतः ॥ सहस्रगुणितंतस्मात्सत्यंसत्यम्मयोदितम् ॥ २८ ॥ हेममाषार्द्धदानेन द्वारकायान्तु सर्वदा ॥ द्वारकायान्तु यःकुर्यादन्नदानंसदानरः ॥ २९ ॥

देखै ॥ २४ ॥ व सबों को प्रीति देनेवाले भगवान् विष्णुजी सबों से पूजने योग्य हैं इस कारण हे ब्राह्मणो! द्वारकावासी लोग पूजने योग्य हैं ॥ २५ ॥ व यहां जो लवमात्र भी दियाजाता है वह अक्षय फलवाला होता है व हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य गोमती के किनारे आश्रित होकर जो कुछ धन द्वारका में देता है उसके फलोदय को सुनिये कि रविवार को सूर्यग्रहण में हज़ार सुवर्ण के भारों से ॥ २६ । २७ ॥ और हाथी, घोड़े व रथों के दानसे कुरुक्षेत्रमें मनुष्य जिस फल को पाता है उससे हज़ार गुना फल द्वारका में सदैव आधा माशा सुवर्ण के दानसे होता है यह सत्य, सत्य मैंने कहा है व जो मनुष्य द्वारका में सदैव अन्नदान करता है ॥ २८ । २९ ॥

उसने सब यज्ञों से पूजन किया व बालू के किनुकों की संख्या से पृथ्वी दिया और जो मनुष्य द्वारका में अन्नदान करता है उसके फल को ॥ ३० ॥ कहने के लिये ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी समर्थ नहीं हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व चाण्डालादिक ॥ ३१ ॥ और जो स्त्री भक्ति से द्वारका में निवास करती है वह करोड़ों हजार पुश्तियों समेत विष्णुलोक में पूजी जाती है ॥ ३२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मेरा वचन सत्य, सत्य व सत्य है झूंठ नहीं है और द्वारकावासी को देखकर व विशेष कर छूकर ॥ ३३ ॥ बड़े पापों से छूटेहुए वे स्वर्गलोक में बसते हैं और द्वारका का माहात्म्य सब से श्रेष्ठ विराजता है ॥ ३४ ॥ जिसकी बहुत पवित्र धूलियां पापियों

तेनेष्टंक्रतुभिःसर्वैर्दत्ताभूस्सिकतसंख्यया ॥ अन्नदानन्तु यःकुर्याद्द्वारकायान्तु तत्फलम् ॥३०॥ न च वक्तुंभवेच्छक्ता ब्रह्म विष्णुमहेश्वराः ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शूद्राश्चाप्यन्त्यजादयः ॥ ३१ ॥ नारीवाद्वारकायांवै भक्त्यावासंकरोतिया ॥ कुलकोटिसहस्रैस्तु विष्णुलोकेमहीयते ॥३२॥ सत्यंसत्यंद्विजश्रेष्ठा नानृतंममभाषितम् ॥ द्वारकावासिनंदृष्ट्वा स्पृष्ट्वा चैव विशेषतः ॥ ३३ ॥ महापापविनिर्मुक्ताः स्वर्गलोकेवसन्तिते ॥ माहात्म्यंद्वारकाया वै सर्वश्रेष्ठंविराजते ॥ ३४ ॥ सुपुण्याः पांसवोयस्याः पापिनांमुक्तिदायकाः ॥ द्वारकायारजःपुण्यं वायुनासमुदीरितम् ॥ ३५ ॥ अपिपापसमाचारान् प्रापयेद्वैष्णवंपदम् ॥ पांसवोद्वारकाया वै वायुनासमुदीरिताः ॥ ३६ ॥ पापिनांमुक्तिदाःप्रोक्ताः किंपुनर्द्वारिकाभुवः ॥ पांशुनास्पर्शनेविप्रा द्वारकायाश्च मानुजः ॥ ३७ ॥ किंचासौदेहिनांकोपि मुक्तिदः सर्वपापिनाम् ॥ एवंभूतामहापुण्या द्वारकाराजतेभुवि ॥ ३८ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ श्रूयतांद्विजशार्दूला मोहस्थानंविदाहकम् ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं

को मुक्तिदायिनी हैं और पवन से प्रेरित द्वारका की पवित्र धूलि ॥ ३५ ॥ पाप आचरणवाले पुरुषों को भी विष्णुजी के स्थान में प्राप्त करती है और पवन से प्रेरित द्वारका की धूलियां ॥ ३६ ॥ पापियों को मुक्तिदायिनी कहीगई हैं फिर द्वारका की पृथिवियों को क्या कहना है व हे ब्राह्मणो ! द्वारका की धूलिसे स्पर्श करने पर यह मनुष्य सब पापी प्राणियों के मध्य में कोई मुक्तिदायक है ऐसी महापवित्र द्वारका पृथ्वी में विराजती ॥ ३७ । ३८ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! गोमती व

कृष्णजी के समीप मोहस्थान को जलानेवाले द्वारका के माहात्म्य को सुनिये ॥ ३९ ॥ कि कुशावर्त से लगाकर जहांतक गोमती समुद्र से संयुत है वहां तक जिस तिथि में देवपुरोहित (बृहस्पति) जी सिंहराशि में आते हैं ॥ ४० ॥ उसमें गोमती का स्नान बासठि गोदावरी स्नान के फल के समान होता है और सिंह राशि के अन्त में एकबार गौतमी में बड़े यत्न से स्नान करने से वही फल होता है ॥ ४१ ॥ और एक वर्ष तक निरन्तर गोदावरी में जो पुण्य होता है उस पुण्य को मनुष्य कलियुग में गोमती के सेवन से पाता है ॥ ४२ ॥ व अन्यत्र वर्ष समूहों से जो फल होता है वह द्वारका में प्रतिदिन गोमती में नहाने व द्वारका में

गोमतीकृष्णसन्निधौ ॥ ३९॥ कुशावर्त्तात्समारभ्य यावद्वै सागरान्विता ॥ यस्यांतिथौयदायाति सिंहेदेवपुरोहितः॥४०॥ तस्यां हि गोमतीस्नानं द्विषड्गोदावरीफलम् ॥ अवगाहिताप्रयत्नेन सिंहान्तेगौतमीसकृत् ॥ ४१ ॥ गोदावर्यां तु यत्पुण्यं वर्षमेकंनिरन्तरम् ॥ तत्पुण्यंसमवाप्नोति गोमतीसेवनेकलौ ॥ ४२ ॥ अन्यत्रवर्षपूगैर्यद्द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ गोमत्यांश्रद्धयास्नानाद्द्वारावत्यांनिवासनात् ॥ ४३ ॥ अन्यं चैव समुत्सृज्य सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ गच्छगच्छमहाभाग द्वारकामितियोवदेत् ॥ ४४ ॥ तस्यावलोकनादेव मुच्यन्तेपातकैर्नराः ॥ द्वारकेति च योब्रूयाद्द्वारकाभिमुखोनरः ॥ ४५ ॥ कृपयाकृष्णदेवस्य मुक्तिभागीभवेद्ध्रुवम् ॥ द्वारकांगोमतीम्पुण्यां रुक्मिणींकृष्णमेव च ॥ ४६ ॥ स्मरन्तिप्रत्यहम्भक्त्या द्वारकाफलभागिनः ॥ सहस्रयोजनस्थस्य यस्य वै बुद्धिरीदृशी ॥ ४७ ॥ द्वारावतींगमिष्यामि पश्यामिद्वारकेश्वरम् ॥ वक्त्रावलोकनादेव महापातकिनोजनाः ॥ ४८ ॥ धन्यास्तेकृष्णभक्ताश्च सर्वलोकैकपावनाः ॥ नमस्याःसर्व

बसने से होता है ॥ ४३ ॥ और अन्य पुरुष को पठाकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और हे महाभाग ! द्वारका को जाइये जाइये ऐसा जो कहता है ॥ ४४ ॥ उसके देखने ही से मनुष्य पातकों से छूटजाते हैं व द्वारका के सामने जो मनुष्य हे द्वारके ! ऐसा कहता है ॥ ४५ ॥ वह श्रीकृष्णदेवजी की दयासे निश्चय कर मुक्ति का भागी होता है और द्वारका व पवित्र गोमती, रुक्मिणी और श्रीकृष्णजीको ॥ ४६ ॥ जो प्रतिदिन भक्ति से स्मरण करते हैं वे द्वारका के फलके भागी होते हैं और हज़ार योजन पै टिकेहुए जिस मनुष्य की बुद्धि ऐसी होवै ॥ ४७ ॥ कि मैं द्वारका को जाऊंगा व द्वारकानाथको देखूंगा उसका मुख देखनेही से महापापी नर ॥४८॥ वे

श्रीकृष्णजी के भक्त धन्य हैं व सब लोकों के एकही पवित्रकारक हैं और सब पुण्यों के फल की इच्छा से वे सब मनुष्यों के प्रणाम करने योग्य हैं ॥ ४६ ॥ और श्रीकृष्णजी के दर्शन में पुण्य शेषसे भी सर्वज्ञ विद्वानों से भी नहीं कहा जासक्ता है क्योंकि फल का अन्त नहीं है ॥ ५० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! जो मनुष्य यहां बड़े पापी हैं और मित्रद्रोही, भ्रातृघाती, गोघाती और पराई स्त्री में जो आसक्त है ॥ ५१ ॥ और मातृघाती, पितृघाती, गर्भघाती व गुरु की शय्या पै जानेवाला ये और अन्य महापातकों से संयुत जो पापी हैं ॥ ५२ ॥ वे श्रीकृष्णदेवजी के दर्शन से सब पापों से छूटजाते हैं व हे मुनिश्रेष्ठो ! बड़ाभारी भी पाप नाश होजाता है ॥ ५३ ॥

लोकानां सर्वपुण्यफलेच्छया ॥ ४९ ॥ कृष्णस्यदर्शनेपुण्यं न वक्तुंशक्यतेबुधैः ॥ अनन्तादपि सर्वज्ञैः फलस्यान्तो न विद्यते ॥ ५० ॥ महापातकिनोये च वर्तन्तेत्रद्विजोत्तमाः ॥ मित्रध्रुग्भ्रातृहागोघ्नः परदाररतश्च यः ॥ ५१ ॥ मातृहापितृहाभ्रूणब्रह्महागुरुतल्पगः ॥ एतेचान्ये च पापिष्ठा महापापयुताश्च ये ॥ ५२ ॥ सर्वपापैःप्रमुच्यन्ते कृष्णदेवस्यदर्शनात् ॥ क्षिप्यते हि मुनिश्रेष्ठा ह्यत्यन्तमपि पातकम् ॥ ५३ ॥ कृष्णस्यदर्शनात्सर्वं विनश्यति च पातकम् ॥ न्यायहीने सभामध्ये न द्विजःशोभतेध्रुवम् ॥ ५४ ॥ यत्सान्निध्याज्जडन्तोयं स्पर्द्धतेब्रह्मविद्यया ॥ गोमत्याःस्नानमात्रेण महापापविदाहकम् ॥ ५५ ॥ यत्क्षेत्रस्थास्तु पाषाणाश्चक्रेणात्र विचिह्निताः ॥ मोक्षदाश्चापि सर्वेषां पूजिताःकीटकेष्वपि ॥ ५६ ॥ यत्क्षेत्रस्थंरजःपुण्यं वायुनीतंविमुक्तिदम् ॥ पापिनामपि सर्वेषां सवायुरपि मोक्षदः ॥ ५७ ॥ यत्क्षेत्रगमनेबुद्धिर्जाताहन्त्यत्र पातकम् ॥ नश्यतेदर्शनात्पापं किमेतत्स्तुतिवर्णनम् ॥ ५८ ॥ कृष्णस्यदर्शनात्पापं यत्र नश्यतिभाषणात् ॥

व श्रीकृष्णजी के दर्शन से सब पाप नाश होजाता है और न्याय से रहित सभा के मध्य में ब्राह्मण निश्चयकर नहीं शोभित होता है ॥ ५४ ॥ और जिसकी समीपता से जड़ जल ब्रह्मज्ञान से स्पर्द्धा करता है उस गोमती के नहानेही से महापापों का जलानेवाला होताहै ॥ ५५ ॥ और चक्रसे चिह्नित जिस क्षेत्रमें स्थित पत्थर सबों को मोक्षदायक व कीटों में भी पूजित हैं ॥ ५६ ॥ और जिस क्षेत्र में स्थित पवन से लाईहुई धूलि मुक्तिदायक है वह पवन भी सब पापियों को मोक्षदायक है ॥ ५७ ॥ और जिस क्षेत्र के जाने में उपजीहुई बुद्धि पाप को नाश करती है उसके दर्शन से पाप नाश होता है क्या यह स्तुति का वर्णन है ॥ ५८ ॥ और जहां श्रीकृष्णजी के

दर्शन व कथन से पाप नाश होता है वहां श्रीकृष्णजी के दर्शन में इतनी पुण्यकी संख्या नहीं होसक्ती है ॥ ५९ ॥ और वहां जाताहुआ जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के दर्शन के माहात्म्य को कहता है वह पुण्य शेष के समान विद्वानों से नहीं कहाजासक्ता है ॥ ६० ॥ और जहां यह कहने से पाप नाश होजाता है कि श्रीकृष्णजी के दर्शन से पातक विनाशहोता है वहां श्रीकृष्णजी के दर्शन में पुण्य की गणना कौन करैगा ॥ ६१ ॥ क्योंकि ब्रह्मा व शिवजी नहीं समर्थ हैं तो अन्य जनों को क्या कहना है व सदैव मनुष्य श्रीकृष्णजी के दर्शन से मुक्तहोजाते हैं ॥ ६२ ॥ और दर्शन व स्पर्श करने में पुण्य को कौन जानै व पूजन में कौन फल को जानै यह

एतावत्पुण्यसंख्यानां न शक्यंकृष्णदर्शने ॥ ५९ ॥ कृष्णदर्शनमाहात्म्यं तत्रगच्छंश्च योवदेत् ॥ अनन्तेनसमैःपुण्यं न तच्छक्यंमनीषिभिः ॥ ६० ॥ कृष्णस्यदर्शनात्पापं यत्र नश्यतिभाषणात् ॥ कृष्णस्यदर्शनेपुण्यं गणनांकःकरिष्यति ॥ ६१ ॥ अपि ब्रह्ममहेशानौ न शक्तौकिमुतापरे ॥ श्रीकृष्णस्मरणादेव विमुक्ताःसर्वदाजनाः ॥६२॥ दर्शनेस्पर्शनेपुण्यं कोजानात्यर्चनेफलम् ॥ सत्यंसत्यम्पुनःसत्यं नानृतम्ममभाषितम् ॥ ६३ ॥ श्रीकृष्णस्यमुखंदृष्ट्वा ह्यनन्तम्फलमाप्नुयात् ॥ सर्वज्ञोपि न सर्वज्ञो द्वारकानाथदर्शनात् ॥६४॥ वक्तुम्पुण्यफलंयच्च शेषोपि किमुतापरे ॥ सर्वज्ञाश्चाप्यसर्वज्ञाः कृष्णदेवस्यपूजने ॥६५॥ पुण्यम्फलानांवक्तुं च ब्रह्मेशानादयोपि हि ॥ तस्माच्छ्रीकृष्णदेवस्य दर्शनंसर्वसिद्धिदम् ॥६६॥ अनन्तफलदम्प्रोक्तं स्वर्गमोक्षादिकामदम् ॥ किंवेदैःश्रद्धयाधीतैर्व्याख्यानैरपि कृत्स्नशः ॥६७॥ धर्म

सत्य, सत्य व फिर सत्य है मेरा वचन झूंठ नहीं है ॥६३॥ व श्रीकृष्णजी का मुख देखकर मनुष्य अमित फल को पाता है और द्वारकानाथजी के दर्शन से जो पुण्य का फल होता है उसको कहने के लिये सर्वज्ञ शेष भी सर्वज्ञ नहीं होते हैं फिर अन्य जनों को क्या कहना है और श्रीकृष्णदेवजी के पूजन में फलों के पुण्य को कहने के लिये सर्वज्ञ ब्रह्मा व शिवादिक भी सर्वज्ञ नहीं हैं इसलिये श्रीकृष्णदेव का दर्शन सब सिद्धियों का दायक है ॥ ६४ । ६५ । ६६ ॥ व अनन्त फलदायक तथा स्वर्ग व मोक्षादि कामनाओं का दायक है और श्रद्धा से पढ़े हुए वेदों से व सब व्याख्यानों से क्या है ॥ ६७ ॥ और सब धर्मशास्त्रादिकों से तथा योगशास्त्रों से क्या होता है व

इतिहासों तथा पुराणों व व्रत, दान और जपादिकों से क्या होता है ॥ ६८ ॥ और सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी के दानसे व सब अन्य दानों से क्या होता है ॥ ६९ ॥ और सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र तीर्थ में हज़ार सुवर्ण भारों से क्या होता है व हाथी, घोड़े और रथों के दानों से तथा मन्दिर में देवस्थापनों से क्या है ॥ ७० ॥ व भलीभांति उन देवताओं के पूजनसे तथा इष्टापूर्तादिकों से क्या होता है और राजसूय तथा अश्वमेधादिक यज्ञों से व यहां सर्वज्ञों से क्या होता है ॥ ७१ ॥ और तीर्थों व क्षेत्रों के सेवन से तथा अनेक प्रकार के तपों से क्या होता है व कियेहुए अनेक प्रकार के धर्मों से तथा वर्णों व आश्रमों के सेवन से क्या होता है ॥ ७२ ॥ और मोक्ष को

शास्त्रादिभिःसर्वैर्योगशास्त्रैश्च किम्भवेत् ॥ इतिहासैःपुराणैः किं व्रतदानजपादिभिः ॥ ६८ ॥ सप्तद्वीपापि भूदानैरन्यै दानैश्च कृत्स्नशः ॥ ६९ ॥ हेमभारसहस्रैःकिं कुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ गजाश्वरथदानैःकिं प्रतिष्ठाभिश्च मन्दिरे ॥ ७० ॥ किं तेषाम्पूजयासम्यगिष्टापूर्त्तादिभिस्तु किम् ॥ राजसूयाश्वमेधाद्यैः सर्वज्ञैश्चात्र किम्भवेत् ॥ ७१ ॥ सेवनैस्तीर्थक्षेत्राणां तपोभिर्विविधैश्च किम् ॥ किंकृतैर्विविधैर्धर्मैर्वर्णाश्रमनिषेवणैः ॥ ७२ ॥ किम्मोक्षसाधनैःक्लेशैर्ज्ञानयोगसमाधिभिः ॥ द्वारकेश्वरकृष्णस्य दर्शनंयद्भविष्यति ॥ ७३ ॥ एतेषामपि सर्वेषां संसिद्धिःकृष्णदर्शनम् ॥ विशेषेण तु वैशाख्यां जयन्त्यांविष्णुवासरे ॥ ७४ ॥ माघे तु फाल्गुने चैव चैत्रे चैव विशेषतः ॥ पौर्णमास्याममावास्यामेकादश्यान्तु सङ्गमे ॥ ७५ ॥ द्वादश्याम्प्रतिपक्षे तु रोहिणीश्रवणे तथा ॥ पुष्येपुनर्वसौ चैव व्यतीपातेदिनक्षये ॥ ७६ ॥ सपुष्येतिथिनक्षत्रे ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ दर्शनंकृष्णदेवस्य द्वारकायामनुत्तमम् ॥ ७७ ॥ अनन्तफलदम्प्रोक्तं सर्वज्ञैःशङ्करादिभिः ॥

साधनेवाले क्लेशों से तथा ज्ञान, योग व समाधियों से क्या होता है यदि द्वारकानाथ श्रीकृष्णजी के दर्शन होवैं ॥ ७३ ॥ क्योंकि इन सबों की भी संसिद्धि श्रीकृष्णजीका दर्शन है और विशेष कर वैशाखी व जयन्ती तथा एकादशी तिथि में होता है ॥ ७४ ॥ और माघ, फागुन व चैत में विशेषकर होता है तथा पौर्णमासी, अमावस, एकादशी और संगम में विशेषकर होता है ॥ ७५ ॥ और प्रत्येक पक्ष में द्वादशी तथा रोहिणी व श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, व्यतीपात व दिनक्षय में ॥ ७६ ॥ और पुष्यसमेत तिथि, नक्षत्र में व चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में द्वारका में श्रीकृष्णदेवजी का दर्शन अति उत्तम होता है ॥ ७७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! शंकरादिक सर्वज्ञों ने

देवताओं को दुर्लभ श्रीकृष्णदेवजी का दर्शन अनन्त फलदायक कहा है ॥ ७८ ॥ संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जोकि प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी का दर्शन करते हैं और सर्वज्ञ मुनिलोग उसको नहीं जानते हैं ॥ ७९ ॥ फिर स्पर्श करने व दूध से स्नानादिकों व पूजनादिकों में क्या होता है और रात्रि में चौथे पहर में दुग्ध स्नान उत्तम होता है ॥ ८० ॥ व हे ब्राह्मणो ! पूजन, नीराजन, नैवेद्य, ताम्बूल, नमस्कार, गीत, वाद्य व नृत्य श्रीकृष्णजी को प्रिय होता है ॥ ८१ ॥ और उस विष्णुवासर (एकादशी) में जो मनुष्य श्रीकृष्ण देवजी के लिये नृत्य व गीत करते हैं वे नृत्य व गान से प्रसन्न होते हैं और जो मनुष्य वहा गीत व नृत्य करते हैं ॥८२॥८३॥ ब्रह्मा

देवानांदुर्लभंविप्राः कृष्णदेवस्यदर्शनम् ॥ ७८ ॥ धन्यास्तेमानवालोके येकुर्वन्तिप्रहर्षिताः ॥ मुनयस्तन्नजानन्तिसर्वज्ञाःकृष्णदर्शनम् ॥ ७९ ॥ किम्पुनःस्पर्शनैःक्षीरैःस्नानादिपूजनादिषु ॥ रात्रौचतुर्थयामेतु क्षीरस्नानंप्रशस्यते ॥८०॥ पूजानीराजनंविप्रा नैवेद्यंकृष्णवल्लभम् ॥ ताम्बूलं च नमस्कारं गीतवाद्यं च नर्त्तनम् ॥ ८१ ॥ विष्णोश्च वासरेतस्मिन् गीतंनृत्यञ्च येजनाः ॥ ८२ ॥ कुर्वन्तिकृष्णदेवाय नृत्यगीतप्रहर्षिताः ॥ तत्र गीतं च नृत्यञ्च येकुर्वन्ति हि मानवाः ॥ ८३ ॥ ब्रह्मेशानादिभिस्तुल्या अद्यापिकृष्णवल्लभाः ॥ कृष्णंसम्पूजितंदृष्ट्वा महापुण्यमवाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ श्रीकृष्णस्यमहापूजां कर्तुःपुण्यमनन्तकम् ॥ धन्यास्तेमानवालोके कृष्णदेवस्यदर्शनम् ॥ ८५ ॥ स्पर्शनंपूजनं स्तोत्रं नमस्कुर्वन्तिसर्वदा ॥ धन्याधन्यतमास्तेवै धन्याधन्यतमोत्तमाः ॥ ८६ ॥ तत्पुण्यगणनांकर्तुं तेषान्नेशाःसुरेश्वराः ॥ इत्थंसभगवान्कृष्णो न जहातिप्रहर्षितः ॥ ८७ ॥ अद्यापिद्वारकाम्पुण्यां कलावपि विशेषतः ॥ ततःसाद्वारकादेवी

व शिवादिकों के समान वे आज भी श्रीकृष्णजी को प्यारे हैं और पूजेहुए श्रीकृष्णजीको देखकर मनुष्य महापुण्य को पाता है ॥ ८४ ॥ और श्रीकृष्णजी का महापूजन करनेवाले पुरुष को अनन्त पुण्य होता है व संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जोकि श्रीकृष्णदेवजी का दर्शन ॥ ८५ ॥ स्पर्श, पूजन व स्तोत्र और नमस्कार सदैव करते हैं और वे धन्य व अधिक धन्य हैं तथा धन्य व अधिक धन्यों में उत्तम होते हैं ॥ ८६ ॥ व उनकी उस पुण्यकी गिनती करने के लिये सुरेश्वर समर्थ नहीं हैं इस प्रकार आज भी कलियुग में विशेषकर प्रसन्न होतेहुए वे भगवान् श्रीकृष्णजी पवित्र द्वारका को नहीं छोड़ते हैं उसी कारण वह द्वारका देवी, श्रीकृष्णदेवजी से शोभित

है ॥८७।८८॥ और क्षेत्रों व तीर्थादिकों के मध्य में सब से उत्तमोत्तम हुई है तुमलोग सब से उत्तम फलोदय व उत्तम पुण्य को सुनो ॥ ८९ ॥ कि द्वारकाका यह प्रभाव त्रिलोक में प्रसिद्ध है जिसमें यज्ञ, पौशाला, मन्दिर व मठ बनाकर ॥ ९० ॥ और यतियों की रक्षाकर तीर्थ सेवन करै व बावली, कूप, तड़ाग और जीर्णोद्धार करके व विष्णुजीकी मूर्त्ति की प्रतिष्ठाकर व भोग साधनकर हे ब्राह्मणो ! उस फलको सुनिये मैं सबसे उत्तम उसको कहता हूं ॥ ९१ । ९२ ॥ कि चाहे हुए मनोरथों को पाकर श्रीकृष्ण जी की दया का पात्र वह तेजोमय लोकों में अति उत्तम सुखोंको भोगकर ॥ ९३ ॥ मनुष्य एक एक से विष्णुजी की समता को पाताहै और जो मनुष्य द्वारका में काष्ठ

कृष्णदेवेनराजते ॥ ८८ ॥ क्षेत्रतीर्थादिकानांसा जातासर्वोत्तमोत्तमा ॥ श्रूयताम्परमम्पुण्यं सर्वोत्तमफलोदयम् ॥८९॥ द्वारकायाःप्रभावोयं विख्यातोभुवनत्रये ॥ यस्यांसत्रम्प्रपांकृत्वा प्रासादम्मठमेव वा ॥ ९० ॥ यतीनांशरणं कृत्वा कुर्यात्तीर्थनिषेवणम् ॥ वापीकूपतडागञ्च जीर्णोद्धारमथापि वा ॥ ९१ ॥ मूर्तेर्विष्णोःप्रतिष्ठाञ्च दत्त्वा वा भोगसाधनम् ॥ श्रूयतांतत्फलंविप्राः सर्वोत्कर्षंवदाम्यहम् ॥ ९२ ॥ सम्प्राप्यवाञ्छितान्कामान् कृष्णानुग्रहभाजनः ॥ तेजोमयेषुलोकेषु भुक्त्वाभोगाननुत्तमान् ॥ ९३ ॥ प्राप्नुयाद्विष्णुनासाम्यमेकैकेनैवमानवः ॥ स्थापयेद्द्वारकायांयो मूर्त्तिं दारुशिलामयीम् ॥ ९४ ॥ त्रैलोक्यंस्थापितन्तेन विष्णोःसामान्यतामियात् ॥ सार्वभौमत्वमापन्नो भुवनत्रयमेव च ॥ ९५ ॥ एकैकेनब्रह्मलोकं श्रीविष्णोःसाम्यतान्तथा ॥ द्वारकायाःप्रभावेण श्रीकृष्णस्य च सन्निधौ ॥ ९६ ॥ स्वल्पेनापि हरिम्पूज्य ह्यनन्तफलमाप्नुयात् ॥ एवम्माहात्म्यमुक्तं च द्वारकायाःद्विजोत्तमाः ॥ ९७ ॥ विराजतेसुतीर्था

व पत्थर की प्रतिमा को स्थापित करताहै ॥ ९४ ॥ उसने त्रिलोकको स्थापन किया व विष्णुजीकी समानता को वह प्राप्त होताहै और त्रिलोकमें वह चक्रवर्त्तित्व को प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ और एक एक से वह ब्रह्मलोक व श्रीविष्णुजी की समता को पाताहै व द्वारका के प्रभाव से श्रीकृष्णजी के समीप ॥ ९६ ॥ थोडे उपचार से भी श्रीविष्णुजीको पूजकर अमित फलको पाताहै हे द्विजोत्तमो ! द्वारका का ऐसा माहात्म्य कहागया ॥ ९७ ॥ उत्तम तीर्थों के मध्य में दशपंक्तियों से संयुत द्वारका विराजती है जो

मनुष्य दश आवरणों से संयुत द्वारका को प्रतिदिन दोनों संध्याओं में स्मरण करते हैं उनके फलोदय को सुनो कि बड़ेभारी सुखों को भोगकर चाहेहुए मनोरथों को पाकर ॥ ९८ । ९९ ॥ देवताओं से पूजित होतेहुए वे मनुष्य विष्णुजीके परमपद को प्राप्त होते हैं फिर द्वारका में टिककर इन दश आवरणों से संयुत द्वारका को जो भाव संयुत मनुष्य ध्यान करते हैं उनको क्या कहना है बरन उनको देखकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूट जाता है ॥ १०० । १ ॥ और सात पुश्तियों को उधारकर वे स्वर्गलोक में बसते हैं और यह अपनी एक सौ एक पुश्तियों को उधार कर ॥ २ ॥ व सब पापों को जलाकर स्वर्गलोक में पूजाजाता है और जो मनुष्य प्रति वर्ष द्वारका

नाम्पङ्क्तिभिर्दशभिर्युता ॥ स्मरन्तिद्वारकांये वै दशावरणसंयुताम् ॥ ९८ ॥ प्रत्यहंचोभयोःसन्ध्योः श्रूयतान्तत्फलो दयः ॥ भुक्त्वाभोगान्सुविपुलान् प्राप्यकामान्यथेप्सितान् ॥ ९९ ॥ सम्पूज्यमानास्त्रिदशैर्यान्तिविष्णोःपरम्पदम् ॥ किंपुनर्द्वारकांस्थित्वा एतैरावरणैर्युताम् ॥ १०० ॥ ध्यायन्तिद्वारकांये वै दशभिर्भावसंयुताः ॥ तान्दृष्ट्वासर्वपापैस्तु मुच्यतेमानवोभुवि ॥ १ ॥ उद्धृत्यसप्तगोत्राणि स्वर्गलोकेवसन्तिते ॥ उद्धृत्यसस्वगोत्राणि कुलमेकोत्तरंशतम् ॥ २ ॥ दग्ध्वा च सर्वपापानि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ प्रतिवर्षम्प्रकुर्वन्ति द्वारकागमनन्नराः ॥ ३ ॥ तेषाम्पादरजःस्पृष्ट्वा दिवं यान्त्येवपापिनः ॥ द्वारकांसिन्धुसङ्गःस्यात् सेतौगच्छेच्छिवालयम् ॥ ४ ॥ गत्वाकुशस्थलीम्पुण्यां गङ्गाद्वारञ्चशङ्करम् ॥ आदितीर्थंजगन्नाथं तथा गोदावरींनदीम् ॥ ५ ॥ कुम्भेश्वरं च रेवायां गङ्गासागरसङ्गमे ॥ रजस्वलानितीर्थानि सिंहे चैव बृहस्पतौ ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥

गमन करते हैं ॥ ३ ॥ उनके चरणों की धूलि को छूकर पापी भी पुरुष स्वर्ग को जाते हैं और द्वारका में समुद्र का संगम है व सेतु पै श्रीशिवजी के स्थानको जावै ॥ ४ ॥ और पवित्र कुशस्थली (द्वारका) पुरी को जाकर कल्याणकारक हरिद्वार को जावै और आदितीर्थ जगन्नाथ व गोदावरी नदी को जावै ॥ ५ ॥ और नर्मदा नदी में कुम्भेश्वर तथा गंगासागरसगम में जावै और सिंहराशि में बृहस्पति स्थित होनेपर तीर्थ रजस्वल होते हैं ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कथा द्वारकापुरी को गये मिलत फल भूरि । अतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखमूरि ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि द्वारकापुरी के सामने एक एक पग देनेपर कलियुग में मनुष्यों को हज़ारों यज्ञों का पुण्य होता है ॥ १ ॥ व पृथ्वी में जो मनुष्य सुन्दरी कृष्णपुरी को जाते हैं करोड़ों सै पुश्तियों से संयुत वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ २ ॥ और जो मनुष्य मनकी वृत्ति से द्वारका को जाने की इच्छा करते हैं उनके दशहज़ार जन्मों में इकट्ठा कियाहुआ पाप नाश होजाता है ॥ ३ ॥ व जिस मनुष्य की बुद्धि श्रीकृष्णजी के दर्शनमें होती है उसका मुख देखने से पाप हज़ार खण्ड होजाता है ॥ ४ ॥ और जो द्वारका में मरे हैं व जो श्रीकृष्णजी के समीप मरे

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ एकैकस्मिन्पदेदत्ते पुरींद्वारवतीम्प्रति ॥ पुण्यंक्रतुसहस्राणां कलौभवतिदेहिनाम् ॥ १ ॥ कलौ कृष्णपुरींरम्यां येगच्छन्तिनराभुवि ॥ कुलकोटिशतैर्युक्तास्तेगच्छन्तिहरेःपदम् ॥ २ ॥ येध्यायन्तिमनोवृत्त्या गमनं द्वारकाम्प्रति ॥ तेषांविधूयतेपापम्पूर्वजन्मायुतार्जितम् ॥ ३ ॥ कृष्णस्यदर्शनेबुद्धिर्जायतेयस्यदेहिनः ॥ वक्त्रावलोकनात्तस्य पापंयातिसहस्रधा ॥ ४ ॥ येमृताद्वारकायान्तु येमृताःकृष्णसन्निधौ ॥ नतेषाम्पुनरावृत्तिर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५ ॥ दुर्लभामथुराकाशी अवन्ती च तथाकलौ ॥ अयोध्यादुर्लभालोके द्वारका च तथाकलौ ॥ ६ ॥ गत्वाकृष्णपुरींरम्यां गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ कृत्वापिण्डप्रदानन्तु पितृणामुक्तिमावहेत् ॥ ७ ॥ वैशाखशुक्लद्वादश्यां कृत्वाकृष्णस्यजागरम् ॥ मुखावलोकनाच्छौरेर्मुच्यतेपितृभिःसह ॥ ८ ॥ कृष्णक्रीडाकरस्थानं मनसाकामयन्तिये ॥ तेषामस्थिगतम्पापं क्षालयेत्प्रेतनायकः ॥ ९ ॥ अत्युग्राण्यपिपापानि तावत्तिष्ठन्तिविग्रहे ॥ यावन्नपश्यतेजन्तुः कलौद्वारा

है प्रलय पर्यन्त उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ५ ॥ कलियुग में मथुरा, काशी व अवन्ती दुर्लभ है वैसेहीं कलियुग में अयोध्या व द्वारका संसारमें दुर्लभ है ॥ ६ ॥ सुन्दरी कृष्णपुरी को जाकर गोमती व समुद्र के संगम में पिंडदान करके मनुष्य पितरों को मुक्ति देता है ॥ ७ ॥ और वैशाख के शुक्लपक्ष की द्वादशी में श्रीकृष्णजी का जागरण कर श्रीकृष्णजी का मुख देखनेसे पितरों समेत मुक्त होजाता है ॥ ८ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के क्रीड़ा करनेवाले स्थान की मन से इच्छा करते हैं उनकी अस्थियों में प्राप्त पातक को प्रेतनाथ (यमराज) जी नाश करते हैं ॥ ९ ॥ तबतक शरीर में बड़े उग्र पाप रहते हैं जबतक कलियुग में प्राणीद्वारकापुरी को नहीं

देखता है ॥ १० ॥ पुरातन समय ब्रह्मा ने कलियुग में द्वारकापुरी को छोड़कर दान, पठन व यज्ञों का पुण्य तीर्थों के अनुसंख्यक किया है ॥ ११ ॥ व जो मनुष्य प्रसंग से भी चक्रतीर्थ को जाता है इक्कीस पुश्तियों समेत वह उस स्थान को जाता है ॥ १२ ॥ और लोभ, विरोध, दंभ व कपट से भी जो चक्रतीर्थ को जाता है वह फिर पृथ्वी में नहीं बसता है ॥ १३ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! सब अवस्था में प्राप्त भी मनुष्य यदि श्रीकृष्णजी की पुरी को जावै तो भली भांति कियेहुए तप से व दान और पठन से क्या है याने कुछ नहीं ॥ १४ ॥ हे पुत्र ! यदि हीनवर्ण भी पापी मनुष्य कृष्णपुरी को जावै तो दान, पठन व पवित्रता कारण नहीं है ॥ १५ ॥ और भक्ति से श्रीकृष्ण

वतीम्पुरीम् ॥ १० ॥ पुण्यंतीर्थानुसंख्यानं विहितंब्रह्मणापुरा ॥ दानाध्ययनयज्ञानां मुक्त्वाद्वारवतींकलौ ॥ ११ ॥ चक्रतीर्थन्तु योगच्छेत् प्रसङ्गेनापिमानवः ॥ कुलैकविंशसहितः सोपिगच्छतितत्पदम् ॥ १२ ॥ लोभेनाथविरोधेन दम्भेनकपटेनवा ॥ चक्रतीर्थन्तुयोगच्छेन्नपुनर्वसतेभुवि ॥ १३ ॥ तपसाकिंसुतप्तेन दानेनाध्ययनेनकिम् ॥ सर्वावस्थोपिविप्रेन्द्रा गतःकृष्णपुरीं यदि ॥ १४ ॥ दानाध्ययनशौचं च कारणं न हि पुत्रक ॥ हीनवर्णोपि पापात्मा गतः कृष्णपुरीं यदि ॥ १५ ॥ कलिकालकृतैर्दोषैरत्युग्रैरपि मानवः ॥ भक्त्याकृष्णमुखंदृष्ट्वा न लिप्यतिकदाचन ॥ १६ ॥ तावद्विराजते काशी अवन्तीमथुरापुरी ॥ यावन्न पश्यतेजन्तुः पुरींकृष्णेनपालिताम् ॥ १७ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे नर्मदायाञ्च यत्फलम् ॥ तत्फलन्निमिषार्द्धेन द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ १८ ॥ यस्यकस्यापि मासस्य द्वादशीम्प्राप्यमानवः ॥ कृष्णक्रीडापुरींदृष्ट्वा मुक्तोभवतिब्राह्मणाः ॥ १९ श्रवणद्वादशीयोगे गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ स्नात्वा

जीका मुख देखकर मनुष्य कलिकाल से कियेहुए बड़े उग्र भी दोषों से नहीं लिप्त होताहै ॥ १६ ॥ तबतक काशी, अवन्ती व मथुरापुरी विराजती है जबतक कि मनुष्य श्रीकृष्णजी से पालित पुरी को नहीं देखता है ॥ १७ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र व नर्मदा में जो फल होता है वह फल द्वारकापुरी में प्रतिदिन आधे निमेषसे होता है ॥ १८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जिस किसी भी महीने की द्वादशी तिथि को प्राप्त होकर कृष्णजी की क्रीड़ापुरी को देखकर मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ १९ ॥ और श्रवणद्वादशी के

योग में मनुष्य गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर व श्रीकृष्णजी का मुख देखकर मुक्ति को पाता है ॥ २० ॥ व जिस किसी भी महीने की द्वादशी तिथि को प्राप्त होकर मनुष्य श्रीकृष्णजी की क्रीड़ापुरी को देखकर संसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ २१ ॥ व वैशाख महीने में जो द्वादशी तिथि में श्रीकृष्णजी के दर्शनमें रात्रि को जागरण करते हैं वे मनुष्य कलियुग में धन्य हैं ॥ २२ ॥ व हे दानवाधिप ! श्रीकृष्णजी के मन्दिर में जिनके प्राण जाते हैं करोड़ों सौ कल्पों से भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ २३ ॥ व हे दैत्येन्द्र ! जिसने कृष्णपुरी की यात्रा किया उसने माता की प्रसवपीड़ाओं को नष्ट करदिया ॥ २४ ॥ द्वारका का निवास दुर्लभहै व

कृष्णमुखंदृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोतिमानवः ॥ २० ॥ यस्यकस्यापिमासस्य द्वादशीम्प्राप्यमानवः ॥ कृष्णक्रीडापुरीं दृष्ट्वा मुक्तःसंसारबन्धनात् ॥ २१ ॥ कृष्णस्यंदर्शनेरात्रौ येकुर्वन्ति च जागरम् ॥ माधवेमासिधन्यास्ते द्वादश्याम्मानवाःकलौ ॥ २२ ॥ येषांकृष्णालयेप्राणा गतादानवनायक ॥ नतेषाम्पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ २३ ॥ नाशितास्तेनदैत्येन्द्र मातुःप्रसववेदनाः ॥ प्रयाणकंकृतंयेन कलौकृष्णपुरीम्प्रति ॥ २४ ॥ दुर्लभोद्वारकावासो दुर्लभं कृष्णदर्शनम् ॥ दुर्लभंगोमतीस्नानं रुक्मिणीदर्शनंकलौ ॥ २५ ॥ नात्रदानम्प्रशंसन्ति न जपो न च भावना ॥ शस्यतेजागरंरात्रौ कृष्णवक्त्रावलोकनम् ॥ २६ ॥ वारिमात्रेणगोमत्यां पिण्डदानंविनाकलौ ॥ पितॄणांजायते तृप्तिश्चक्रतीर्थप्रभावतः ॥ २७ ॥ प्रेतत्वं नैव गच्छेत्स नैवास्यनारकीव्यथा ॥ येनद्वारवतींगत्वा कृष्णवक्त्रावलोकनम् ॥ २८ ॥ नृत्यमानाःप्रकुर्वन्ति कृष्णस्याग्रे तु जागरम् ॥ न तेषाम्पुनरावृत्तिर्मयादृष्टारिसूदन ॥ २९ ॥ नित्यं

श्रीकृष्णजी का दर्शन दुर्लभ है और कलियुग में गोमती का स्नान व रुक्मिणीजी का दर्शन दुर्लभ है ॥ २५ ॥ यहां विद्वान् दान की प्रशंसा नहीं करते हैं और जप व भावना यहां नहीं प्रशंसित है बरन रात्रि में जागरण व श्रीकृष्णजी के मुख को देखना उत्तम है ॥ २६ ॥ व कलियुग में पिंडदान के विना गोमती में जलमात्र से चक्रतीर्थ के प्रभाव से पितरों की तृप्ति होती है ॥ २७ ॥ द्वारकापुरी को जाकर जिसने श्रीकृष्णजी का मुख देखा है वह प्रेतत्व को नहीं जाता है और न इसको नरक का दुःख होताहै ॥ २८ ॥ व हे शत्रुसूदन ! नाचतेहुए जो मनुष्य श्रीकृष्णजीके आगे जागरण करते हैं मैंने उनकी पुनरावृत्ति को नहीं देखा है ॥ २९ ॥ व घरमें बैठेहुए

जो मनुष्य नित्य सुन्दरी कृष्णपुरी को स्मरण करते हैं इस कलियुग में उनके कुछ पाप नहीं होता है ॥ ३० ॥ व घर में टिकेहुए जो मनुष्य द्वारकावासी देव को स्मरण करतेहैं उनके शरीर को आश्रय कर कुछ पाप नहीं टिकता है ॥ ३१ ॥ और जो कालागुरु समेत चन्दन से श्रीकृष्णजी को विलेपन करते हैं उनके सौ जन्मों का पाप जलजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ व हे महासुर! जो मनुष्य द्वादशी तिथिमें पंचामृत से लोकनाथ को स्नान कराते हैं उनका फिर जन्म नहीं होता है ॥ ३३ ॥ और श्रीकृष्णजी को उद्देश कर जो मनुष्य पितरों को दान करते हैं वे विशेषकर परमपद को पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥ ब्रह्मज्ञान व प्रयाग में मरने से

कृष्णपुरींरम्यां ये स्मरन्तिगृहेस्थिताः ॥ न तेषाम्पातकंकिञ्चिद्वर्ततेऽस्मिन्कलौयुगे ॥ ३० ॥ द्वारकावासिनंदेवं ये स्मरन्तिगृहेस्थिताः ॥ न तेषाम्पातकंकिञ्चिद्देहमाश्रित्यतिष्ठति ॥ ३१ ॥ विलेपयन्तियेकृष्णं सकृष्णागुरुचन्दनैः ॥ तेषांजन्मशतम्पापं दह्यते नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ पञ्चामृतेनयेस्नानं कुर्वन्ति च महासुर ॥ द्वादश्यांलोकनाथस्य नास्तितेषाम्पुनर्भवः ॥ ३३ ॥ कृष्णमुद्दिश्ययेदानं पितॄणां च विशेषतः ॥ कुर्वन्तिते न सन्देहः प्राप्नुवन्तिपरम्पदम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मज्ञानेनमुच्यन्ते प्रयागमरणेन च ॥ मुच्यन्तेस्नानमात्रेण गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ ३५ ॥ पूर्णैर्वर्षसहस्रैस्तु वाराणस्यान्तु यत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेप्राज्ञो द्वारावत्यादिनेदिने ॥ ३६ ॥ चक्रतीर्थेनरःस्नात्वा गोमत्यांरुक्मिणीह्रदे ॥ दृष्ट्वाकृष्णमुखंरम्यं कुलानांतारयेच्छतम् ॥ ३७ ॥ स्कन्धेकृत्वा तु योध्वानं वहतेशैलनायकम् ॥ तेनोढन्तु भवेत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३८ ॥ कृष्णं हि येद्वारवतीम्मनुष्याः स्मरन्तिनित्यंहरिभक्तियुक्ताः ॥ विधूयपापंकलिसम्भवन्ते ग

मनुष्य मुक्त होते हैं व श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में स्नानही करने से मुक्त होजाते हैं ॥ ३५ ॥ और पूर्ण हज़ार वर्षों से काशी में जो फल मिलता है उस फलको विद्वान् द्वारकापुरी में प्रतिदिन पाता है ॥ ३६ ॥ और गोमती में चक्रतीर्थ तथा रुक्मिणीकुण्ड में नहाकर श्रीकृष्णजी के सुन्दर मुखको देखकर मनुष्य सौ पुश्तियों को तारता है ॥ ३७ ॥ व कन्धेपर शैलनायक को करके जो मार्ग में लेचलता है वह चराचर समेत सब त्रिलोक को लेगया ॥ ३८ ॥ व विष्णुभक्ति से संयुत जो

मनुष्य सदैव द्वारकापुरी को स्मरण करते हैं वे कलियुग से उपजेहुए पातक को नाशकर विष्णुजी के उत्तम लोक को जाते हैं ॥ ३९ ॥ व हे भूपाल ! वैशाख महीने में जो भक्ति से श्रीकृष्णपुरी को जाकर मधुसूदनी एकादशी को करते हैं वे मनुष्य चतुर्भुज हैं ॥ ४० ॥ और जो मन से द्वारका को जाने की इच्छा करता है उसके पितरों की तृप्ति होती है जैसे अमृत को पाकर देवता तृप्त होजाते हैं ॥ ४१ ॥ व हे राजन् ! जिस के घरमें विष्णुपूजन नहीं होता है उसका अन्न खाना न चाहिये क्यों कि वह मद्यभक्षण के समान कहागया है ॥ ४२ ॥ व चन्द्रमा में उष्णता और अग्नि में शीतता नहीं होती है तथा एकादशी में उपास करनेवाले वैष्णवों के पाप

च्छन्तिलोकम्परमम्मुरारेः ॥ ३९ ॥ येकुर्वन्तिमहीपाल माधवेमधुसूदनीम् ॥ भक्त्याकृष्णपुरीङ्गत्वा तेमनुष्याश्चतुर्भुजाः ॥ ४० ॥ मनसाकामयेद्यस्तु गमनंद्वारकाम्प्रति ॥ पितॄणांजायतेतृप्तिः प्राप्यदेवायथामृतम् ॥ ४१ ॥ केशवार्चागृहेयस्य न तिष्ठतिमहीपते ॥ तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं मद्यभक्षसमंस्मृतम् ॥ ४२ ॥ नोष्णत्वंद्विजराजे तु नशीतत्वंहुताशने ॥ वैष्णवानां न पापत्वमेकादश्युपवासिनाम् ॥ ४३ ॥ नास्तिनास्तिमहाभाग कलिकालसमंयुगम् ॥ स्मरणात् कीर्तनाद्विष्णोः प्राप्यतेपरमम्पदम् ॥ ४४ ॥ कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति कलौवक्ष्यतिप्रत्यहम् ॥ नित्यंयज्ञायुतम्पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम् ॥ ४५ ॥ कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति नित्यंजपतियोजनः ॥ तस्यप्रीतिःकलौनित्यं कृष्णस्योपरिवर्द्धते ॥ ४६ ॥ कृष्णेननिर्मितंस्नानं दुर्लभंदैत्यसत्तम ॥ दुर्वाससोगिरावद्धो यत्र तिष्ठतिकंसहा ॥ ४७ ॥ सत्यभामापतिर्यत्र

नहीं होता है ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! कलिकाल के समान युग नहीं है नहीं है कि जिसमें विष्णुजी को स्मरण व कीर्तन करने से परमपद मिलता है ॥ ४४ ॥ कलियुग में जो प्रतिदिन हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है उसको नित्य दशहज़ार यज्ञों का पुण्य व करोड़ तीर्थों मे उपजा हुआ पुण्य होता है ॥ ४५ ॥ व जो मनुष्य नित्य हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा जपता है उसकी प्रीति सदैव श्रीकृष्णजी के ऊपर बढ़ती है ॥ ४६ ॥ हे दैत्यसत्तम ! श्रीकृष्णजी से निर्मित स्नान दुर्लभ है जहां कि कंसविनाशक श्रीकृष्णजी दुर्वासा की वाणी से बँधेहुए स्थित हैं ॥ ४७ ॥ जहां सत्यभामा के पति (श्रीकृष्णजी) हैं और जहां पवित्र गोमतीजी हैं वहा मनुष्य

कलियुग में जाकर मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ ४८ ॥ हज़ार सुवर्ण भारवाले यज्ञों से जिस फल को मनुष्य पाता है उससे कोटिगुने फल को श्रीकृष्णजी का मुख देखने से पाता है ॥ ४९ ॥ व पुष्पभारों से पूजित विष्णुजी नहीं प्रसन्न होते हैं और तुलसी के एक पत्ते से पूजित विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५० ॥ वैशाख में शुक्लपक्ष में जो मनुष्य द्वारकामें श्रीकृष्णजी के दर्शन को पाता है उससे अधिक धन्य नहीं है ॥ ५१॥ त्रिस्पृशा द्वादशी को पाकर जो मनुष्य श्रीकृष्णजी की पुरी को जाकर भक्ति से करता है वह अश्वमेध यज्ञ के फल को पाता है ॥ ५२ ॥ यदि पहले नंदा (एकादशी) व अन्त में जया (त्रयोदशी) होवै और मध्य में भद्रा याने द्वादशी होवै तो वह श्री

यत्र पुण्या च गोमती ॥ नरामुक्तिम्प्रयास्यन्ति तत्र गत्वाकलौयुगे ॥ ४८ ॥ हेमभारसहस्रैस्तु क्रतुभिर्यत्फलंलभेत् ॥ तत्फलङ्कोटिगुणितं कृष्णवक्त्रावलोकने ॥ ४९ ॥ न तुष्येद्भारपुष्पैस्तु अर्चितोमधुसूदनः ॥ तुलस्याएकपत्रेण तुष्यतेगरुडध्वजः ॥ ५० ॥ माधवेशुक्लपक्षे तु कृष्णवक्त्रावलोकनम् ॥ लभतेद्वारकायान्तु नास्तिधन्यतरस्ततः ॥ ५१ ॥ त्रिस्पृशांद्वादशीम्प्राप्य गत्वाकृष्णपुरीन्नरः ॥ यःकरोतिनरोभक्त्या अश्वमेधफलंलभेत् ॥ ५२ ॥ आदौनन्दाजयाचान्ते मध्येभद्राभवेद्यदि ॥ उपवासार्चनैर्गीतैर्दुर्लभाकृष्णसन्निधौ ॥ ५३ ॥ उदयेल्पैकादशीस्यादन्ते चैव त्रयोदशी ॥ सम्पूर्णाद्वादशीमध्ये त्रिस्पृशासाहरेःप्रिया ॥ ५४ ॥ एकेनैवोपवासेन उपवासायुतम्फलम् ॥ जागरेशतसाहस्रं नृत्येकोटिगुणंकलौ ॥ ५५ ॥ वञ्जुलीवासरे चैव रात्रौकुर्वन्तिजागरम् ॥ यज्ञकोटययुतम्पुण्यं निमिषार्द्धेनतद्भवेत् ॥ ५६ ॥ उन्मीलिनीमनुप्राप्य ये कुर्वन्ति च जागरम् ॥ निमिषेनिमिषेपुण्यं गवांकोटिफलप्रदम् ॥ ५७ ॥ पक्षवृद्धिकरीम्प्राप्य येकरि

कृष्णजी के समीप उपास, पूजन व गीतों से दुर्लभ है ॥ ५३ ॥ व उदय में थोड़ी एकादशी होवै और अन्त में त्रयोदशी हो तथा मध्य में संपूर्ण द्वादशी होवै वह त्रिस्पृशा विष्णु को प्यारी है ॥ ५४ ॥ और उसके एकही उपवास से दशहज़ार उपवासों का फल होता है और जागरण में एक लक्ष का फल होता है व नृत्य में कोटिगुना होताहै ॥ ५५ ॥ और वंजुलीवासरमें जो रात्रि को जागरण करते हैं तो आधे निमेष से उनको करोड़ दशहज़ार यज्ञों का फल होता है ॥ ५६ ॥ और उन्मीलिनी (बोधिनी) एकादशी को प्राप्त होकर जो मनुष्य जागरण करते हैं उनको प्रत्येक निमेष में करोड़ गौवों के फल को देनेवाला पुण्य होता है ॥ ५७ ॥ और पक्षवृद्धिकरी एकादशी को

प्राप्त होकर जो जागरण करते हैं उनको चौथाई निमेष में करोड़गुना फल होता है ॥ ५८ ॥ और पक्षवृद्धिकारिणी एकादशी को पाकर जो जागरण करते हैं घर में भी करतेहुए उनको यह फल होता है फिर श्रीकृष्णजी के समीप क्या कहना है ॥ ५९ ॥ कलियुग में द्वारकापुरी में एकादशी को पाकर सब कोटिगुना फल होता है और त्रिस्पृशा द्वादशी को पाकर जो जागरण नहीं करता है ॥ ६० ॥ उसने अपने कल्याण को बहुतसी पापाग्नि से जलादिया व वचन, मन और शरीर से उपजेहुए दोषों से जो पापबुद्धि पुरुष नष्ट होते हैं ॥ ६१ ॥ वे द्वारकापुरी में श्रीकृष्णजी का उत्तम मुख देखकर मुक्त होजाते हैं व संसाररूपी अग्नि के संताप से विकल किये मन

ष्यन्तिजागरम् ॥ निमिषार्द्धार्द्धमात्रेण भवेत्कोटिगुणम्फलम् ॥ ५८ ॥ पक्षवृद्धिकरीम्प्राप्य येकरिष्यन्तिजागरम् ॥ गृहेपिकुर्वतामेतत् किम्पुनःकृष्णसन्निधौ ॥ ५९ ॥ द्वारावत्यांकलौप्राप्य सर्वंकोटिगुणम्फलम् ॥ त्रिस्पृशांद्वादशीम्प्राप्य कुरुते नैव जागरम् ॥ ६० ॥ तेनात्मनस्तु कल्याणं दग्धम्पापाग्निनाभृशम् ॥ वाङ्मनःकायजैर्दोषैर्हतायेपापबुद्धयः ॥ ६१ ॥ द्वारावत्यांविमुच्यन्ते दृष्ट्वाकृष्णमुखंशुभम् ॥ संसारानलसन्तापविह्वलीकृतमानसाः ॥ ६२ ॥ कृष्णदर्शनतोयेन शीतत्वंयान्तिमानवाः ॥ बुद्ध्याभक्त्यानुभावेन द्वारकांयान्तियेनराः ॥ ६३ ॥ दुष्कुलीनादुराचारास्तेयान्ति परमम्पदम् ॥ मायिनोमत्सरग्रस्ताः क्रूरालुब्धामदोद्धताः ॥ ६४ ॥ मुच्यन्तेपातकैःस्नात्वा गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ यदीच्छेच्छाश्वतंस्थानं सन्तानंचाक्षयंबलम् ॥ ६५ ॥ द्वारावत्यांकलौप्राप्ते मनःकृष्णेनिवेशयेत् ॥ न ददातिनरः श्राद्धं गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ ६६ ॥ क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः पितरस्तस्यदुःखिताः ॥ अपिकीटाःपतङ्गाये पशवःकृमयो

वाले ॥ ६२ ॥ मनुष्य श्रीकृष्णजी के दर्शनरूपी जल से शीतलता को प्राप्त होते हैं और बुद्धि, भक्ति व भाव से जो मनुष्य द्वारका को जाते हैं ॥ ६३ ॥ दुष्कुलीन व दुराचारी भी वे मनुष्य परमपद को प्राप्त होते हैं और मायावी, मत्सरग्रस्त, क्रूर, लोभी व मद से उद्धत पुरुष ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में नहाकर पापों से छूटजाते हैं यदि सनातन स्थान को चाहै व अविनाशी संतान और बल को चाहै ॥ ६५ ॥ तो कलियुग प्राप्त होने पर द्वारकापुरी में मन को श्रीकृष्णजी में निवेशित करै और श्रीकृष्णजी के समीप गोमती के किनारे जो श्राद्ध नहीं देता है ॥ ६६ ॥ क्षुधा व प्यास से घिरे अंगोंवाले उसके पितर दुःखित होते हैं और जो कीट, पतग, पशु,

कृमि व मृग भी हैं ॥ ६७ ॥ व द्वारका में जो मरते हैं वे सब द्वारका को प्राप्त होते हैं और प्रयाग व काशी में मरने से मुक्ति होती है ॥ ६८ ॥ वैसेही श्रीकृष्णजी की पुरी को पाकर पातक नहीं जमता है और उसको स्वर्ग, मृत्यु लोक व रसातल में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ६९ ॥ कि जिसने द्वादशी तिथि में जागरण में श्रीकृष्णजी का कीर्तन किया है व हे दैत्येश्वर ! जो द्वारकापुरी में नहीं गये हैं वे प्रशंसनीय नहीं हैं ॥ ७० ॥ व जिन्होंने विष्णुभक्तों का पूजन नहीं किया वे विष्णुजी की भक्ति से रहित हैं और कलिकाल में जिसका अंग गोमतीजी के जल में डूबा है ॥ ७१ ॥ वह रुक्मिणीनाथजी की प्रसन्नता से फिर योनि को नहीं प्राप्त होता है

मृगाः ॥ ६७ ॥ मुक्तिम्प्रयान्ति ते सर्वे द्वारकायान्तु येमृताः ॥ प्रयागेमरणे चैव मुक्तिःकाश्यां तथैव च ॥ ६८ ॥ तथा कृष्णपुरीम्प्राप्य न प्ररोहतिपातकम् ॥ न किञ्चिद्दुर्लभंतस्य स्वर्गेमर्त्येरसातले ॥ ६९ ॥ द्वादश्यांजागरेयेन कृतंकृष्णस्यकीर्त्तनम् ॥ दैत्येश्वर न तेश्लाघ्या द्वारावत्यांगता न ये ॥ ७० ॥ नार्चिताविष्णुभक्ताश्च विष्णोर्भक्ति विवर्जिताः ॥ यस्याङ्गंकलिकाले तु गोमतीनीरसम्प्लुतम् ॥ ७१ ॥ न पुनर्योनिमाप्नोति प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ कलिकाले तु येस्नाताश्चक्रतीर्थेनरोत्तमाः ॥ ७२ ॥ पद्मनाभपदंयान्ति पितृभिःपरिवारिताः ॥ चक्रतीर्थे तु यच्छ्राद्धम्पितॄणांकुरुतेनरः ॥ ७३ ॥ तदक्षयम्भवेत्पुत्र प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ शतैश्चन्द्रोपरागैर्यत् प्रभासेपरिकीर्तितम् ॥ ७४ ॥ तत्फलंद्वारकांस्थित्वा दिनैकेनकलौभवेत् ॥ अमावस्यांकुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहणकोटिभिः ॥ ७५ ॥ तत्फलंकलिकाले तु द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ सुलभाःसर्वतीर्थाश्च सुलभाःपर्वतोत्तमाः ॥ ७६ ॥ दुर्लभावैष्णवालोके द्वारका च तथा

व कलिकाल में जिन उत्तम मनुष्यों ने चक्रतीर्थ में स्नान किया है ॥ ७२ ॥ पितरों से घिरेहुए वे पद्मनाभ विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होते हैं व मनुष्य चक्रतीर्थ में पितरों के जिस श्राद्ध को करता है ॥ ७३ ॥ हे पुत्र ! रुक्मिणीपति की प्रसन्नता से वह अक्षय होता है और सौ चन्द्रग्रहणों से प्रभासक्षेत्र में जो फल कहा गया है ॥ ७४ ॥ द्वारका में एक दिन टिककर वह फल कलियुग में होता है और कुरुक्षेत्र में अमावस में करोड़ सूर्यग्रहणों से जो फल होता है ॥ ७५ ॥ कलिकाल में वह फल प्रतिदिन द्वारका में होता है सब तीर्थ सुलभ हैं व उत्तम पर्वत सुलभ हैं ॥ ७६ ॥ परन्तु संसारमें वैष्णव व द्वारका कलियुग में दुर्लभ है और हज़ार अश्वमेध यज्ञों

को करके जो फल मिलता है ॥ ७७ ॥ वह फल द्वारका में टिक्कर प्रतिदिन होता है व करोड़ हज़ार गौवों को और करोड़ सौ रत्नों को देकर मनुष्य जिस फल को पाता है उस फल को श्रीकृष्णजी के समीप पाता है ॥ ७८ ॥ और बिन ज्ञान, बिन ध्यान व बिन इन्द्रिय दमन के श्रीकृष्णजी की सुन्दरी पुरी को जाकर मनुष्य उत्तम फल को पाता है ॥ ७९ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी का मुख देखते हैं वे उत्तमगति को प्राप्त होते हैं अब स्नान का मंत्र कहा जाता है कि हे शक्तिज्येष्ठे, यशस्विनि, वशिष्ठदुहितः देवि ! ॥ ८० ॥ हे त्रिलोकवंदिते, गोमति, देवि ! मेरे पाप को हरिये ॥ ८१ ॥ हे असुरश्रेष्ठ ! जहां समुद्र गोमती के जल की बड़ी

कलौ ॥ अश्वमेधसहस्राणि कृत्वायत्फलमाप्यते ॥ ७७ ॥ तत्फलम्प्राप्यतेस्थित्वा द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ गवांकोटिसहस्राणि रत्नकोटिशतानि च ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलंकृष्णसन्निधौ ॥ ७८ ॥ विनाज्ञानाद्विनाध्यानाद्विनाचेन्द्रियनिग्रहात् ॥ गत्वाकृष्णपुरींरम्यां लभतेफलमुत्तमम् ॥ ७९ ॥ श्रीकृष्णवक्रम्पश्यन्ति तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ अथ स्नानमन्त्रः ॥ वशिष्ठदुहितर्देवि शक्तिज्येष्ठेयशस्विनि ॥ ८० ॥ त्रैलोक्यवन्दितेदेवि पापम्मेहरगोमति ॥ ८१ ॥ गोमतीजलकल्लोलैः क्रीडतेयत्रसागरः ॥ तत्रस्नात्वासुरश्रेष्ठ सर्वतीर्थफलम्भवेत् ॥ ८२ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं समन्तात्क्रोशपञ्चकम् ॥ दिविस्थायत्रपश्यन्ति सर्वानेव चतुर्भुजान् ॥ ८३ ॥ यस्याःसीमाम्प्रविष्टस्य ब्रह्महत्यादिपातकम् ॥ नश्यतेदर्शनादेव ताम्पुरींको न सेवयेत् ॥ ८४ ॥ यत्र चक्राङ्किताः शैला गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ यच्छन्तिपूजितामोक्षं ताम्पुरींको न सेवयेत् ॥ ८५ ॥ यत्रचक्राङ्किताभृत्स्ना तिष्ठतेनिर्मलानृप ॥ कलौमलविनाशाय ताम्पुरींको न सेवयेत् ॥ ८६ ॥ सिंहस्थे

भारी लहरियों से क्रीड़ा करता है वहा नहाकर मनुष्य सब तीर्थों के फल को पाता है ॥ ८२ ॥ सब ओर पांच-कोस क्षेत्र के माहात्म्य को आश्चर्य है जहां कि स्वर्ग में टिकेहुए प्राणी सबही चतुर्भुजों को देखते हैं ॥ ८३ ॥ व जिसकी सीमा में प्रविष्ट पुरुष का ब्रह्महत्यादिक पाप दर्शनही से नाश होजाता है उस पुरी को कौन नहीं सेवन करता है ॥ ८४ ॥ और गोमती व समुद्र के संगम में जहां पूजीहुई चक्रचिह्नित शिला मोक्ष को देती हैं उस पुरी को कौन नहीं सेवन करता है ॥ ८५ ॥ व हे राजन् ! जहां चक्र से चिह्नित निर्मल मिट्टी कलियुग में मलके विनाशने के लिये स्थित है उस पुरी को कौन सेवन नहीं करता है ॥ ८६ ॥ हे ब्राह्मणो ! बृहस्पति के सिंह

राशि में स्थित होनेपर गोदावरी में जो फल होता है वह फल श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में नहानेही से होता है ॥ ८७ ॥ व जो मनुष्य द्वारका में स्थित जल को छा महीने तक पीता है उसका शरीर चक्र से चिह्नित होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८८ ॥ ब्रह्मघाती या कृतघ्न तथा अगम्यागमन व सब पातक करनेवाला ब्राह्मण या चाण्डाल भी होवै ॥ ८९ ॥ या पुण्यवान् व पापी होवै कलियुग में जो इस पुरी में बसता है मैंने सब देवताओं के मध्य में उसको निश्चय कर मुक्ति दिया ॥ ९० ॥ कलियुग में जिसको देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी नहीं छोड़ते हैं उस पुरी को कर्म, मन व वचन से कौन नहीं सेवता है ॥ ९१ ॥ व जो द्वारका में बसते हैं वे कलि के

च गुरौविप्रा गोदावर्यां च यत्फलम् ॥ तत्फलंस्नानमात्रेण गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ ८७ ॥ द्वारकावस्थितंतोयं षण्मासम्पिबतेनरः ॥ तस्यचक्राङ्कितोदेहो भवतेनात्रसंशयः ॥ ८८ ॥ ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा अगम्यागमनोपि वा ॥ सर्वपातककर्त्ता वा विप्रो वा श्वपचोपि वा ॥ ८९ ॥ सुकृतीदुष्कृती वापि वसतीमाम्पुरींकलौ ॥ मुक्तिर्दत्तामयानूनं सर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ ९० ॥ त्यजतेयांकलौ नैव कृष्णोदेवकिनन्दनः ॥ कर्मणामनसावाचा ताम्पुरीङ्को न सेवयेत् ॥ ९१ ॥ न तेकलिवशंयान्ति द्वारकायांवसन्तिये ॥ व्याप्तम्पाखण्डिभिःसर्वं वर्जयित्वाहरेःपुरीम् ॥ ९२ ॥ तस्मात्कलियुगेप्राप्ते सेवनीयाहरेःपुरी ॥ मन्वन्तरसहस्राणि काशीवासेनयत्फलम् ॥ ९३ ॥ तत्फलंद्वारकायान्तु वसताम्पञ्चभिर्दिनैः ॥ पीडयन्तिग्रहास्तावद् व्याधयोपि भवन्ति हि ॥ ९४ ॥ यावन्न पश्यतेभक्तया कलौकृष्णपुरींनरः ॥ उपसर्गभयन्तावच्छाकिनीभूतसम्भवम् ॥ ९५ ॥ भक्तया न पश्यतेयावत् कलौकृष्णप्रियान्नरः ॥ तावन्मृतप्रजानारी दुर्भगादैत्यपुङ्गव ॥ ९६ ॥

वश में नहीं प्राप्त होते हैं और विष्णुपुरी को छोड़कर सब स्थान पाखंडियों से व्याप्त है ॥ ९२ ॥ इस कारण कलियुग प्राप्त होनेपर विष्णुजी की पुरी सेवने योग्य है हज़ार मन्वन्तर तक काशीनिवास से जो फल होता है ॥ ९३ ॥ वह फल द्वारका में पांच दिनोंतक बसनेवालों को होता है तबतक ग्रह पीड़ित करते हैं व रोग भी होते हैं ॥ ९४ ॥ जबतक कि मनुष्य कलियुग में भक्ति से श्रीकृष्णजी की पुरी को नहीं देखता है तबतक शाकिनी और भूतों से उपजा हुआ उत्पात का भय होता है ॥ ९५ ॥ जबतक कि मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को नहीं देखता है हे दैत्यपुंगव ! तबतक स्त्री मृतवत्सा व दुर्भगा होती है ॥ ९६ ॥

जबतक कि मनुष्य कलियुग में भक्ति से श्रीकृष्णजी की प्यारी को नहीं देखता है रुक्मिणी, सत्यभामा देवी व जांबवती ॥ ९७ ॥ और मित्रविंदा, कालिन्दी, भद्रा व नाग्निजिती और लक्ष्मणा वहां ये विष्णुप्रिया वैष्णवी भलीभांति पूजने योग्य हैं ॥ ९८ ॥ नियमों व व्रतों से संयुत पुरुष विधिपूर्वक इनको गाने, बजाने के शब्दों से तथा दीपों व जागरण से भलीभाति पूजकर ॥ ९९ ॥ सब कामनाओं को पाता है और उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं उसको बहुत दानों से क्या है और व्रतों व नियमों से क्या है ॥ १०० ॥ कि जिसने कृष्णप्रिया जगदम्बिका रुक्मिणीजी को देखा है और सब कामनाओं को देनेवाली रुक्मिणीजी मनुष्यों से

यावन्न पश्यतेभक्त्या कलौकृष्णप्रियान्नरः ॥ रुक्मिणीसत्यभामा च देवीजाम्बवती तथा ॥ ९७ ॥ मित्रविन्दा च कालिन्दी भद्रानाग्निजिती तथा ॥ सम्पूज्यालक्ष्मणा तत्र वैष्णव्याःकृष्णवल्लभाः ॥ ९८ ॥ एताःसम्पूज्यविधिवद्युक्तश्च नियमैर्व्रतैः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्दीपैर्जागरणेन वा ॥ ९९ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति तस्यविष्णुःप्रसीदति ॥ किं तस्यबहुभिर्दानैः किंव्रतैर्नियमैश्च किम् ॥ १०० ॥ येनदृष्टाजगन्माता रुक्मिणीकृष्णवल्लभा ॥ सदार्चनीयामनुजैर्द्रष्टव्यासर्वकामदा ॥ १ ॥ तावद्भवभयम्पुंसां ग्रहभङ्गं भवेत्तथा ॥ यावन्न पश्यतेजन्तुः कलौकृष्णपुरीन्नरः ॥ २ ॥ तावद्गर्जन्तितीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ॥ यावत्कृष्णाङ्गसम्भूता दृश्यते न हि गोमती ॥ ३ ॥ प्रयागेमरणेमुक्तिर्मुक्तिःकाश्यां तथैव च ॥ द्वारकांहरिसान्निध्ये गोमत्यांस्नानमात्रतः ॥ ४ ॥ दत्तैस्तीर्थोदकैःपिण्डैः पितॄणांजायतेगतिः ॥ दृष्ट्वा तु गोमतीनीरम्प्रीतिंयान्तिपितामहाः ॥ ५ ॥ गोमत्यांयेमहीपाल स्नात्वाकुर्वन्तितर्पणम् ॥ पिण्डदानंपितॄणान्तु

सदैव पूजने योग्य व देखने योग्य हैं ॥ १ ॥ तबतक मनुष्यों को संसार का भय व ग्रहभंग होता है जबतक कि मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्णजी की पुरी को नहीं देखता है ॥ २ ॥ और समुद्र व तड़ागों से लगाकर तीर्थ तबतक गरजते हैं जबतक कि श्रीकृष्णजी के अंग से उपजीहुई गोमती नहीं देखीजाती है ॥ ३ ॥ प्रयाग में मरने से मुक्ति होती है व काशी में मरने से मुक्ति होती है और द्वारका में श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में स्नानही करने से मुक्ति होती है ॥ ४ ॥ तीर्थजल व पिंडों के देने से पितरों की गति होती है और गोमती का जल देखकर पितामह लोग प्रीति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ व हे भूपाल ! कलियुग में जो गोमती में नहाकर तर्पण करते हैं

उनके पितरों का पिंडदान गोमती के जल से होता है ॥ ६ ॥ व जिस प्रकार गोमती का जल देखने से तृप्ति होती है उस प्रकार लाखों तीर्थजलों से व सैकड़ों पिंडों के देने से नहीं होती है ॥ ७ ॥ वेदों के पारगामी व अग्निहोत्री सैकड़ों पैदा हुए पुत्रों से क्या है कि जिन्हों ने कलियुग प्राप्त होनेपर समुद्र के संगम में गोमती को नहीं देखा है ॥ ८ ॥ व समुद्र का संगम सर्वत्र महापवित्र है परन्तु गंगाजी के संगमसे मुक्ति होती है व गोमती के संगममें मुक्ति होती है ॥ ९ ॥ समुद्र प्रतिदिन अपना को कृतार्थ मानता है कि श्रीकृष्णजी के समीप में गोमती का जल मिलने से पवित्र हूं ॥ १० ॥ व गोमतीजी के जल से मिलेहुए मुझको जो नित्य देखते हैं उनकी पुनरावृत्ति

गोमतीवारिणाकलौ ॥ ६ ॥ दृष्टे तु गोमतीनीरे यथा तृप्तिःप्रजायते ॥ तथा तीर्थजलैर्लक्षैरेतैःपिण्डशतैरपि ॥ ७ ॥ किंजातैर्बहुभिःपुत्रैः साग्निकैर्वेदपारगैः ॥ यैर्न दृष्टाकलौप्राप्ते गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ८ ॥ सर्वत्र च महापुण्यः सङ्गमः सरिताम्पतेः ॥ जाह्नवीसङ्गमान्मुक्तिर्गोमतीसङ्गमे तथा ॥ ९ ॥ मन्येत्कृतार्थमात्मानं प्रत्यहंसरिताम्पतिः ॥ गोमती नीरसंपर्कात्पूतोहंकृष्णसन्निधौ ॥ १० ॥ गोमतीनीरसंपृक्तं येमांपश्यन्तिनित्यशः ॥ न तेषांपुनरावृत्तिरित्याहस रिताम्पतिः ॥ ११ ॥ सभाग्योहंतदाजातो यदाकृष्णेनतेन वै ॥ मत्तीरेस्थापितायेन द्वारकामुक्तिदायिनी ॥ १२ ॥ कृष्णपादप्रसूताया सरिद्वैपूतकारिणी ॥ दृष्टातावेव नाथस्य पूतोहंनास्तिमत्समः ॥ १३ ॥ गोमतीनीरसंपर्के मज्जले स्नातियोनरः ॥ मुच्यतेब्रह्महत्याभिरन्यैःपातकसम्भवैः ॥ १४ ॥ द्वारकांगच्छमानस्य विपत्तिश्च भवेद्यदि ॥ न त स्यपुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ १५ ॥ यजत्येकोमहायज्ञैः सम्पूर्णैर्वरदक्षिणैः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यं

नहीं होती है ऐसा समुद्र ने कहा है ॥ ११ ॥ मैं उस समय उन श्रीकृष्णजी से सभाग्य हुआ जब कि मेरे किनारे जिन श्रीकृष्णजी ने मुक्तिदायिनी द्वारका को स्थापित किया ॥ १२ ॥ और श्रीकृष्णजी के चरणों से पैदा हुई जो नदी पवित्रकारिणी है स्वामी के उन चरणों को देखकर मैं पवित्र होगया और मेरे समान कोई नहीं है ॥ १३ ॥ और गोमती के जलसे मिश्रित मेरे जलमें जो मनुष्य नहाता है वह ब्रह्महत्याओं से तथा पातकों से उपजेहुए अन्य दोषों से छूटजाता है ॥ १४ ॥ और यदि द्वारका को जातेहुए पुरुष की मृत्यु होजावै तो करोड़ों सौ कल्पों से भी उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ १५ ॥ व एक मनुष्य उत्तम दक्षिणाओंवाले यज्ञों से पूजता है व

एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखता है वे दोनों समान फलवाले होते हैं ॥ १६ ॥ व सावधान होताहुआ एक मनुष्य बावली, कूप व तड़ागादिकों को करता है और एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखता है वे दोनों तुल्य फलवाले होते हैं ॥ १७ ॥ व सावधान होताहुआ एक मनुष्य गङ्गादिक तीर्थों में नहाता है और प्राणायामादिकों से संयुत तथा ध्यान व ज्ञान में परायण होवै ॥ १८ ॥ व तीन पगों से जिन्हों ने त्रिलोक को नापलिया उन त्रिविक्रमजी को देखकर मनुष्य तीन पापों से छूटजाता है ॥ १९ ॥ और कलियुग में उस तीर्थ के समान व अधिक तीर्थ नहीं है और कलियुग प्राप्त होने पर समुद्र ने उस पुरी को डुबालिया ॥ २० ॥ और वहा श्रीकृष्णजी के मन्दिर

फलावुभौ ॥ १६ ॥ वापीकूपतडागानि करोत्येकःसमाहितः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलावुभौ ॥ १७ ॥ जाह्नव्यादिषुतीर्थेषु स्नायादेकःसमाहितः ॥ प्राणायामादिसंयुक्तो ध्यानज्ञानपरायणः ॥ १८ ॥ त्रिभिर्विक्रमणैर्येन विक्रान्तंभुवनत्रयम् ॥ त्रिविक्रमन्तु तंदृष्ट्वा मुच्यते पातकत्रयात् ॥ १९ ॥ तस्यतीर्थस्यतुल्यं हि नाधिकंविद्यते कलौ ॥ जलधिःप्लावयामास कलौप्राप्ते तु तांपुरीम् ॥ २० ॥ श्रीकृष्णमन्दिरंतत्र प्लावितुं नैव शक्यते ॥ प्रभासेसोमपर्वाणि द्वारकांमधुसूदनी ॥ प्रबोधनीरैवतके शयनीमाधवे तथा ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येऽष्टत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति नित्यंजाग्रन्स्वपंश्च यः ॥ कीर्त्तयेत्तु कलौ चैव कृष्णरूपीभवेद्धिसः ॥ १ ॥ नोष्णत्वं

को वह नहीं डुबासक्ता है प्रभास में चन्द्रग्रहण, द्वारकामें मधुसूदनी, रेवतक पर्वतपै प्रबोधिनी और माधव में शयनी एकादशी करना चाहिये ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । तीर्थ अनेकनकर कह्यो अति उत्तम परभाव । उन्तालिसवें में सोई कह्यो चरित्र सुहाव ॥ प्रह्लादजी बोले कि नित्य जागता या सोताहुआ जो मनुष्य हे कृष्ण, कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है वह कृष्णरूप होता है ॥ १ ॥ चन्द्रमा में गरमी व अग्नि में ठण्ढक नहीं होती है और एकादशी उपास करनेवाले वैष्णवों के पाप

नहीं होता है ॥ २ ॥ हे महाभाग ! कलिकाल के समान युग नहीं है नहीं है कि जिसमें विष्णुजी का स्मरण व कीर्तन करने से परमपद मिलता है ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण एकादशी होकर यदि प्रतिदिन बढ़ै तो उन्मीलिनी ऐसी प्रसिद्ध वह तिथियों के मध्य में उत्तम तिथि है ॥ ४ ॥ व व्यंजुली वासर में जो रात्रि में जागरण करते हैं उनको आधे मुहूर्त से दशहज़ार यज्ञों के समान पुण्य होता है ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! सम्पूर्ण द्वादशी होकर दूसरे दिन त्रयोदशी तिथि में बढ़ै तो वह व्यंजुली कलियुग में दुर्लभ है ॥ ६ ॥ और उन्मीलिनी को प्राप्त होकर जो जागरण करते हैं उनको आधे निमेष में करोड़ गौवों के फलको देनेवाला पुण्य होता है ॥ ७ ॥ व सम्पूर्ण

च नशीतत्वं द्विजराजेहुताशने ॥ वैष्णवानां न पापत्वमेकादश्युपवासिनाम् ॥ २ ॥ नास्ति नास्ति महाभाग कलिकालसमंयुगम् ॥ स्मरणात्कीर्तनाद्विष्णोः प्राप्यतेपरमंपदम् ॥ ३ ॥ सम्पूर्णैकादशीभूत्वा प्रत्यहंवर्द्धते यदि ॥ उन्मीलिनीतिविख्याता तिथीनामुत्तमातिथिः ॥ ४ ॥ व्यञ्जुलीवासरे ये वै रात्रौकुर्वन्तिजागरम् ॥ यज्ञायुतसमंपुण्यं मुहूर्तार्द्धेनजायते ॥ ५ ॥ सम्पूर्णाद्वादशीभूत्वा वर्द्धते चापरेदिने ॥ त्रयोदश्यांमुनिःश्रेष्ठा व्यञ्जुली दुर्लभा कलौ ॥ ६ ॥ उन्मीलिनीमनुप्राप्य ये कुर्वन्ति च जागरम् ॥ निमिषार्द्धेन तत्पुण्यं गवां कोटिफल प्रदम् ॥ ७ ॥ सम्पूर्णैकादशीभूत्वा प्रत्यहंवर्द्धतेयदि ॥ दर्शश्च पूर्णमासी च पक्षवृद्धिस्तदोच्यते ॥ ८ ॥ पक्षवृद्धिकरींप्राप्य ये करिष्यन्तिजागरम् ॥ निमिषार्द्धार्द्धमात्रेण भवेद्गोकोटिदंफलम् ॥ ९ ॥ गृहेपि कुर्वतामेतत् किंपुन विष्णुसन्निधौ ॥ द्वारावत्यांकलौप्राप्ते भवेत्कोटिगुणंफलम् ॥ १० ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ततःप्रभातसमये कृत्वास्नानं

एकादशी होकर यदि प्रतिदिन बढ़ै और अमावस व पौर्णमासी बढ़ै तो वह पक्षवृद्धि कहीजाती है ॥ ८ ॥ और पक्षवृद्धिकरी को प्राप्त होकर जो जागरण करते हैं उन को करोड़ गौवों को देनेवाला फल होता है ॥ ९ ॥ और घरमें भी करनेवालों को यह फल होता है फिर विष्णुजी के समीप क्या कहना है और कलियुग प्राप्त होने पर द्वारका में कोटिगुना फल होता है ॥ १० ॥ प्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान कर व विधिपूर्वक श्रीकृष्णजी को पूजकर तथा यथोदित

कर्म कर ॥ ११ ॥ वैष्णव ब्राह्मणों को अन्न पान से पूजै और अनेकभांति के वस्त्रों तथा गऊ, सुवर्ण से संयुत अन्नों से ॥ १२ ॥ विधिपूर्वक पूजकर वित्तशाठ्य न करै अथवा यथाशक्ति देकर वे बड़े यत्नसे प्रसन्न करने योग्य हैं ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करनेपर वह कृतार्थ होता है और उसके तीन पुश्तियों में उपजेहुए पितर उत्तम स्थान को जाते हैं ॥ १४ ॥ और जो रौरव नरक में स्थित हैं व जो वृक्षत्व तथा कीटता को प्राप्त हैं वे वहांपर उसी चिह्न के रूप से शीघ्रही आकर स्थित होते हैं ॥ १५ ॥ और उनको देखकर मनुष्य विधाता से रचेहुए उत्तम मनोरथों को पाता है और पहले गंगा ऐसी प्रसिद्ध गोमती नदी वहीं पर है ॥ १६ ॥ उसको देख

यथाविधि ॥ सम्पूज्यकृष्णंविधिवत्कृत्वाकर्मयथोदितम् ॥ ११ ॥ विप्रान्भागवतांश्चैव पूजयेदन्नपानतः ॥ वस्त्रैर्बहुविधैरन्नैर्गोहिरण्यसमन्वितैः ॥ १२ ॥ सम्पूज्यविधिवत्तांस्तु वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ यथाशक्त्याथवा दत्त्वा तोषणीयाःप्रयत्नतः ॥ १३ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेद्धि सः ॥ गच्छन्तिपरमंस्थानं पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ १४ ॥ ये च रौरवसंस्थाश्च वृक्षकीटत्वमागताः ॥ तत्रैव लिङ्गरूपेण द्रुतमेत्यव्यवस्थिताः ॥ १५ ॥ तान्दृष्ट्वाप्राप्नुयात्कामान्विधात्राविहिताञ्छुभान् ॥ नदीतुगोमतीतत्र पूर्वगङ्गेतिविश्रुता ॥ १६ ॥ तांदृष्ट्वापातकैर्घोरैर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ विधिस्तत्रैव द्रष्टव्यो ह्येषआत्महितेक्षणैः ॥ १७ ॥ कृष्णस्यवामपार्श्वे तु महापातकनाशिनी ॥ तत्रस्नात्वापितॄंस्तर्प्य न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥ तृप्यमानास्तु पितरो गच्छन्तिपरमांगतिम् ॥ कृकलासेतिविख्यातं तीर्थंकृष्णप्रदक्षिणे ॥ १९ ॥ स्नात्वातत्र पितॄंस्तर्प्य श्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ कृतकृत्योभवेत्सर्वादृणान्मुच्येतपैतृकात् ॥ २० ॥ दृष्टाऽ

कर भयंकर पातकों से मनुष्य छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है और वहां अपने हितको देखनेवाले पुरुषों को यह विधि देखना चाहिये ॥ १७ ॥ कि श्रीकृष्णजी के बायें ओर महापापविनाशिनी जो नदी है उसमें नहाकर व पितरों को तर्पण कर मनुष्य दुर्गति को नहीं पाता है ॥ १८ ॥ व तृप्त कियेहुए पितर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और श्रीकृष्णजी के दाहिने ओर कृकलास ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ १९ ॥ उसमें नहाकर व पितरों को तर्पणकर तथा विधिसे श्राद्धकर मनुष्य कृतार्थ होता है व पितरों के समस्त ऋणसे छूटजाता है ॥ २० ॥ और देखे व न देखेहुए भी पितर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और वहां विष्णुपद नामक तीर्थ है उससे भी परमपद

होता है ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसमें स्नान व विधि से श्राद्ध करने पर उसके पितर उत्तम विष्णुजीके लोक को जाते हैं ॥ २२ ॥ और वह कृतार्थ होता है व यात्रा सफल होती है और वहींपर पापविनाशक गोप्रचारनामक तीर्थ है ॥ २३ ॥ उसको भलीभांति देखकर मनुष्य विष्णुजी के लोक को प्राप्त होता है क्योंकि जहां पुराण व पुरुषोत्तम देवेश श्रीकृष्णजी हैं ॥ २४ ॥ वहां वेद, यज्ञ, देवता और वहीं पर तीर्थ होते हैं और सदैव श्रीकृष्णजी को प्यारी रुक्मिणीजी वहां देखने योग्य हैं ॥ २५ ॥ उन जगदम्बिकाजी को देखकर मनुष्य तीनों पातकों से छूटजाते हैं और चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ २६ ॥ और

दृष्टाश्च पितरो गच्छन्तिपरमांगतिम् ॥ तत्रविष्णुपदंनाम तस्माच्चपरमंपदम् ॥ २१ ॥ तस्मिन्स्नानेकृतेविप्राः कृतेश्राद्धेविधानतः ॥ गच्छन्तिपितरस्तस्य वैष्णवंलोकमुत्तमम् ॥ २२ ॥ सभवेत्कृतकृत्यस्तु यात्रा च सफला भवेत् ॥ गोप्रचारन्तु तत्रैव तीर्थंपापविनाशनम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा च मानवःसम्यग् वैष्णवंलोकमाप्नुयात् ॥ यत्र कृष्णश्च देवेशः पुराणः पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥ तत्रवेदास्तथायज्ञादेवास्तीर्थानि तत्र वै ॥ रुक्मिणीतत्रद्रष्टव्या नित्यंकृष्णस्यवल्लभा ॥ २५ ॥ जगतीमातरंदृष्ट्वा मुच्यन्तेपातकत्रयात् ॥ चक्रतीर्थेनरःस्नात्वा मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ २६ ॥ सयातिपरमंस्थानं दाहप्रलयवर्जितम् ॥ चक्रंप्रक्षालितंतत्र कृष्णेन स्वयमेव हि ॥ २७ ॥ तेनैव चक्रतीर्थं हि मुख्यं हि परमं हरेः ॥ भवन्ति यत्र पाषाणाश्चक्राङ्कामुक्तिदायकाः ॥ २८ ॥ यैःपूजितैःसमुद्धाव्यं कृष्णसान्निध्यतांव्रजेत् ॥ तत्रैव यदि लभ्येत चक्रैर्द्वादशभिःसह ॥ २९ ॥ द्वादशात्मासविज्ञेयो मोक्षदःपरिकी

वह दाह व प्रलय से रहित उत्तम स्थान को जाता है वहां आपही श्रीकृष्णजीने चक्र को धोया है ॥ २७ ॥ उसी से विष्णुजी का उत्तम चक्रतीर्थ मुख्य है जिसमें कि चक्रसे पाषाण मुक्तिदायक होते हैं ॥ २८ ॥ व जिनको पूजने से मनुष्य श्रीकृष्णजी के समीप जाता है यह संभावना करना चाहिये और यदि वहीं बारह चक्रों समेत पत्थर मिलजावै ॥ २९ ॥ तो वह द्वादशात्मा जाननेयोग्य है और मोक्षदायक कहागया है और एक चक्र से संयुत पाषाण द्वारकापुरी में उत्तम

है ॥ ३० ॥ पूजित होकर सुदर्शन नामक जो यह केवल मोक्ष फलको देनेवाला है और दो चक्रों से चिह्नित लक्ष्मीनारायण संज्ञक पाषाण भुक्ति व मुक्ति फल को देने वाले हैं ॥ ३१ ॥ और तीन चक्रों से चिह्नित अच्युत देव ऐन्द्रनामक स्थान को देनेवाला है और चार चक्रोंवाला जनार्दननामक लक्ष्मी का स्थान और शत्रुनाशक है ॥ ३२ ॥ व पाच चक्रों से चिह्नित वासुदेव नामक पाषाण जन्म, मृत्यु व वृद्धता का विनाशक है व छः चक्रोंसे संयुत यह पाषाण लक्ष्मी व सुन्दरता को देता है ॥ ३३ ॥ व सात चक्रों से संयुत बलदेवसंज्ञक पाषाण वंश व यशको बढ़ानेवाला है व आठ चक्रों से चिह्नित पुरुषोत्तमसंज्ञक पाषाण भक्ति से मनोरथ को देता है ॥ ३४ ॥ और

र्तितः ॥ एकचक्रेणपाषाणो द्वारवत्यांसुशोभनः ॥ ३० ॥ सुदर्शनाभिधेयोसौ मोक्षैकफलदोर्चितः ॥ लक्ष्मीनारायणौ द्वाभ्यां भुक्तिमुक्तिफलप्रदौ ॥ ३१ ॥ त्रिभिश्चैवाच्युतोदेवऐन्द्राख्यपददायकः ॥ श्रीपदोरिपुहन्ता च चतुश्चक्रोजनार्द्दनः ॥ ३२ ॥ पञ्चभिर्वासुदेवस्य जन्ममृत्युजरापहः ॥ प्रद्युम्नःषड्भिरेवासौ लक्ष्मींकान्तिददाति च ॥ ३३ ॥ सप्तभिर्बलदेवश्च गोत्रकीर्त्तिप्रवर्द्धनः ॥ वाञ्छितंचाष्टभिर्भक्त्या ददातिपुरुषोत्तमः ॥ ३४ ॥ सर्वंदद्यान्नवव्यूहो दुर्लभोयः सुरोत्तमैः ॥ राज्यप्रदोदशभिस्तु दशावतार एव च ॥ ३५ ॥ एकादशभिरैश्वर्यमनिरुद्धःप्रयच्छति ॥ निर्वाणं द्वादशात्मानुचक्रैर्द्वादशभिःस्मृतः ॥ ३६ ॥ अतऊर्द्ध्वमनन्तोसौ भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ येकेचित्तत्रपाषाणाः कृष्णचक्रेणमुद्रिताः ॥ ३७ ॥ तेषांस्पर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं मनोवाक्कायकर्मजम् ॥ ३८ ॥ तत्सर्वं

नवव्यूह पाषाण सब कुछ देता है जोकि उत्तम देवताओं को भी दुर्लभ है व दश पाषाणों से संयुत दशावतारनामक राज्यको देता है ॥ ३५ ॥ और गेरह चक्रों से संयुत अनिरुद्धनामक पाषाण ऐश्वर्य को देता है व बारह चक्रों से द्वादशात्मानामक पत्थर मोक्षको देता है ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त अनन्तनामक यह भुक्ति मुक्ति को देनेवाला है और वह श्रीकृष्णजी के चक्रसे चिह्नित जो कोई पत्थर हैं ॥ ३७ ॥ उनके स्पर्श करने से मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है और मन, वचन, कर्म व शरीर से उपजाहुआ ब्रह्महत्यादिक जो पाप है ॥ ३८ ॥ वह सब चक्रचिह्नित पाषाण के पूजने से नाश होजाता है और म्लेच्छदेश व उत्तम देश में भी यदि चक्रचिह्नित पाषाण

स्थित होवै ॥ ३९ ॥ तो बारह योजनतक वह पृथ्वी मेरा क्षेत्र है हे ब्राह्मणो! पहले कहीहुई विधि से उस पाषाण को पूजै ॥ ४० ॥ जो-कि मैंने मंत्र से गुप्त उत्तम विधि कही है एक वर्षतक उससे पूजन, दर्शन व स्पर्श जो मनुष्य करते हैं ॥ ४१ ॥ पाप आचरणवाले भी वे अव्यय विष्णुजी में प्रवेश करते हैं और मरणसमय प्राप्त होने पर जो चक्र से चिह्नित पापनाशक पाषाण को हृदयमें धारण करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है और चक्र से चिह्नित पाषाण के हृदय में स्थित होनेपर जो यमराज के दूत हैं ॥ ४२ । ४३ ॥ वे श्रीकृष्णजी के चक्र को देखकर डरजाते हैं व समीप नहीं आते हैं और वह विष्णुजी के लोक को प्राप्त होता है इसमें विचार

विलयंयाति चक्राङ्कस्य तु पूजनात् ॥ म्लेच्छदेशेशुभेवापि चक्राङ्कोयदितिष्ठति ॥ ३९ ॥ योजनानिदशद्वे च ममक्षेत्रंवसुन्धरा ॥ पूर्वोक्तेन विधानेन पूजयेत्तन्तु वै द्विजाः ॥ ४० ॥ विधानंपरमंप्रोक्तं यन्मयामन्त्रसंवृतम् ॥ संवत्सरं च तत्पूजां दर्शनंस्पर्शनंनराः ॥ ४१ ॥ अपिपापसमाचारा विशेयुर्विष्णुमव्ययम् ॥ मृत्युकालेपि सम्प्राप्ते हृदये यस्तु धारयेत् ॥ ४२ ॥ चक्राङ्कं पापशमनं सयाति परमांगतिम् ॥ हृदिस्थिते च चक्राङ्के दूता वैवस्वतस्य च ॥ ४३ ॥ नोपसर्पन्तितेभीता दृष्ट्वाकृष्णपरिग्रहम् ॥ वैष्णवंलोकमाप्नोति नात्रकार्याविचारणा ॥ ४४ ॥ अपि पापसमाचारः किंपुनर्ब्राह्मणःशुचिः ॥ गोमतीसङ्गमेस्नात्वा भृगुतुङ्गे तथैव च ॥ ४५ ॥ मुच्यतेपातकैर्घोरैर्मानवो नात्रसंशयः ॥ दृष्ट्वातंदेवदेवेशं भक्ततत्परमानसम् ॥ ४६ ॥ तत्सर्वंलयमभ्येति निम्नगोत्थंयथार्णवे ॥ दुर्लभाद्वारका विप्रा दुर्लभंगोमतीजलम् ॥ ४७ ॥ दुर्लभंजागरंरात्रौ दुर्लभंकृष्णदर्शनम् ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ द्वारकायास्तु

न करना चाहिये ॥ ४४ ॥ पाप आचरणवाला भी मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होता है फिर पवित्र ब्राह्मण को क्या कहना है और गोमती के संगम व भृगुतुंग में नहाकर ॥ ४५ ॥ मनुष्य भयंकर पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है भक्त में तत्पर मनवाले उन देवदेवेश श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ४६ ॥ वह सब पाप नाश होजाता है जैसे कि नदी से उठाहुआ जल समुद्र में लय होजाता है हे ब्राह्मणो! द्वारका दुर्लभ है व गोमती का जल दुर्लभ है ॥ ४७ ॥ व रात्रि में जागरण व

श्रीकृष्णजीका दर्शन दुर्लभहै श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे पौत्र ! मुझसे कहेहुए द्वारका के माहात्म्य को सुनिये ॥ ४८ ॥ और सुनते व कहतेहुए भी पुरुषकी निश्चयकर श्रीकृष्णजी में भक्ति होती है और सात पीछे व सात पहले की तथा सात स्त्रियों की पुश्तियां ॥ ४९ ॥ हे सत्पुत्र ! स्वर्ग को जाती हैं और वह अपना को भी तारता है पुत्र से मनुष्य लोकों को जीतता है व पुत्र से सुखको भोगता है ॥ ५० ॥ और पुत्र व पौत्र से मनुष्य स्वर्ग को जाता है और जिसका पुत्र पवित्र, प्रवीण और पहली अवस्था में धार्मिक होता है ॥ ५१ ॥ वह निश्चय कर कियेहुए दोष से पूर्वजों को तारता है हे पुत्र ! विद्वान्लोग जिसको धार्मिक व विष्णुभक्त कहते हैं ॥ ५२ ॥ हे महाभाग ! लक्ष्मी

माहात्म्यं शृणुपौत्रमयोदितम् ॥ ४८ ॥ शृण्वतोगदतश्चापि भक्तिःकृष्णेभवेद्ध्रुवम् ॥ सप्तापरास्सप्तपूर्वाः पत्नीनां चैव सप्त वै ॥ ४९ ॥ सत्पुत्रनाकंगच्छन्ति त्वात्मानंतारयेच्चसः ॥ पुत्रेणलोकान्नयति पुत्रेणसुखमश्नुते ॥ ५० ॥ अथ पुत्रेणपौत्रेण नाकमेवाधिरोहति ॥ यस्यपुत्रः शुचिर्दक्षः पूर्ववयसिधार्मिकः ॥ ५१ ॥ नियतःकृतदोषेण सतारयतिपूर्वजान् ॥ विष्णुभक्तं च यं पुत्रं धार्मिकं कवयो विदुः ॥ ५२ ॥ तंवैष्णवं महाभागा विधिज्ञन्तुश्रियान्वितम् ॥ ससमुद्राकरातेन सशैलवनकानना ॥ ५३ ॥ चतुस्समुद्रादत्ताभूर्योगतोद्वारकांकलौ ॥ माघ्यांमकरद्वादश्यां यत्फलंसङ्गमे स्मृतम् ॥ ५४ ॥ श्रावणेविष्णुपूजायां द्वारकास्मरणेलभेत् ॥ यत्किञ्चित्कुरुतेपापं पुरुषोलोभमोहितः ॥ ५५ ॥ निर्दहेत्पादमात्रेण द्वारकांगच्छते हि यः ॥ देहेभवन्तिरोमाणि यावन्तिपुरुषस्य हि ॥ ५६ ॥ तावद्युगानि वसते स्वर्गे

से संयुत व विधि से संयुत उसको वैष्णव कहते हैं और कलियुग में जो द्वारकापुरी को गया है उसने समुद्रों व खानियों समेत तथा पर्वत, वन व काननों सहित चारों समुद्रोंवाली पृथ्वी को दिया है और माघी में व मकरराशि में सूर्य के स्थित होनेपर द्वादशी तिथि में जो फल संगममें कहागया है ॥ ५३ । ५४ ॥ श्रावण में विष्णुजी के पूजन में द्वारका को स्मरण करने में उस फल को मनुष्य पाता है और लोभसे मोहित मनुष्य जो कुछ पाप करता है ॥ ५५ ॥ उसको पगभर से वह जलाता है जो कि द्वारका को जाता है व मनुष्य के शरीर में जितने रोम होते हैं ॥ ५६ ॥ उतने युगोंतक वह स्वर्ग में बसता है जो कि श्रीकृष्णजी की पुरी में बसता है सुवर्णशृंगी, रौप्यखुरी,

वस्त्रसमेत व कांस की दोहनी ॥ ५७ ॥ और बछड़ा समेत हज़ार कपिला गौवों को प्रतिदिन वेदपारगामी ब्राह्मण के लिये देकर मनुष्य जिस फलको पाता है ॥ ५८॥ आठदिन गोमती में नहानेही से मनुष्य उस फलको पाता है और होम के लिये जो अग्निहोत्रियों को दूधवाली गऊ को देता है ॥ ५९ ॥ गोमती में नहानेही से उससे लाखगुना फल होता है व हे दैत्यराजेन्द्र ! जो मनुष्य द्वारका में टिकेहुए एक यती को उत्तम भोजनों से भोजन कराता है तो कलियुग में लाखगुना फल होता है और श्रीकृष्णजी के समीप दुर्भिक्ष में कौपीनाच्छादनों समेत जो अन्न यतियों को देता है उसको कोटिगुना फल कहागया है और यज्ञों से प्रयोजन नहीं

कृष्णपुरीं वसेत् ॥ हेमशृङ्गं रूप्यखुरं सवस्त्रंकांस्यदोहनम् ॥ ५७ ॥ सवत्संकपिलानान्तु सहस्रन्तुदिनेदिने ॥ दत्त्वाय त्फलमाप्नोति ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ५८ ॥ तत्फलंस्नानमात्रेण गोमत्यामष्टभिर्दिनैः ॥ होमार्थमग्निहोतॄणां गांदद्या च्चपयस्विनीम् ॥ ५९ ॥ गोमत्यांस्नानमात्रेण फलंलक्षगुणंभवेत् ॥ यश्चैकंभोजयेद्भिक्षुं द्वारकायान्तुसंस्थितम् ॥६०॥ सुभक्ष्यैर्दैत्यराजेन्द्र फलंलक्षगुणंकलौ ॥ फलंकोटिगुणं प्रोक्तं दुर्भिक्षेकृष्णसन्निधौ ॥ ६१ ॥ अन्नदातायतीनान्तु कौपी नाच्छादनादिकैः ॥ प्रयोजनं न क्रतुभिर्नास्तितीर्थैःप्रयोजनम् ॥ ६२ ॥ यत्र वा तत्र वा कार्यं यतीनांप्रीणनं सदा ॥ यतयस्ते च विज्ञेयाः कलौभागवता हि ये॥ ६३ ॥ शूद्रादीनान्तुदातव्यं दानमात्महितैषिणा ॥ किं पुनर्ब्राह्मणाभक्ताः कलौकृष्णस्ययेरताः ॥ ६४॥ अपि वा दैत्य ते धन्या ये गता द्वारकांपुरीम् ॥ प्राप्तान्भागवतान्ये वै पितॄनुद्दिश्यभक्ति तः ॥ ६५॥ भक्तान्सम्पूजयिष्यन्ति वस्त्रैर्दानैस्सुभूरिभिः॥ गयापिण्डेन नास्माकं तृप्तिर्भवतितादृशी ॥ ६६ ॥ यादृशी

है व तीर्थों से प्रयोजन नहीं है ॥ ६०।६१।६२ ॥ परन्तु जहां तहां सदैव यतियों को तृप्त करना चाहिये जो कलियुग में भगवद्भक्त हैं वे यती जानने योग्य हैं ॥ ६३ ॥ अपना हित चाहनेवाले पुरुष को शूद्रादिकों को भी दान देना चाहिये फिर कलियुग में जो श्रीकृष्णजी के भक्त व परायण ब्राह्मण हैं उनको क्या कहना है ॥ ६४ ॥ व हे दैत्य ! वे भी धन्य हैं जोकि द्वारकापुरी को गये हैं और प्राप्त हुए भगवद्भक्तों को बहुत से वस्त्रों व दानों से पितरों को उद्देश कर जो भक्ति से पूजेंगे हमारी गयापिंड से वैसी तृप्ति नहीं होती है ॥ ६५ । ६६ ॥ जैसी प्रीति विष्णुजी के भक्तों के सत्कारों से मिलती है और वैशाख में श्रीकृष्णजी के समीप शुक्लपक्ष या

कृष्णपक्ष में रात्रिको जागरण से संयुत जो मनुष्य द्वादशी करैं वे गोमती में स्नान कर मुक्तिदायक श्राद्ध कर ॥ ६७।६८ ॥ श्रीकृष्णदेवजी को नहवाकर पश्चात् लेपन करैं और पूजनकर व वसनको पहनाकर जगद्गुरु श्रीकृष्णजीको धुपाकर ॥ ६९ ॥ दीप व नैवेद्य देवै उसके उपरान्त नीराजन करै और भक्ति से श्रीकृष्णजी के मस्तक पै जल समेत शङ्ख को घुमावै ॥ ७० ॥ पश्चात् हे दैत्येन्द्र ! स्तुति से पवित्र पुरुष प्रदक्षिणा करै व सहस्रनाम को पढ़ताहुआ मनुष्य दंडवत् नमस्कार करै ॥ ७१ ॥ पश्चात् श्रीकृष्णजी से क्षमापन करावै और रात्रि में जागरण करै व द्वारका से उपजेहुए उत्तम माहात्म्य को पढ़ना चाहिये ॥ ७२ ॥ और श्रीकृष्णजी के बालक्रीडादिक

विष्णुभक्तानां सत्कारैःप्रीतिराप्यते ॥ वैशाखेयेकरिष्यन्ति द्वादशींकृष्णसन्निधौ ॥ ६७ ॥ शुक्लपक्षे तथा कृष्णे रात्रौजागरणान्विताः ॥ कृत्वास्नानन्तु गोमत्यां श्राद्धंकृत्वा तु मुक्तिदम् ॥ ६८ ॥ देवस्यस्नपनं कृत्वा पश्चात्कुर्वन्तिलेपनम् ॥ कृत्वार्चनंपरीधानं धूपयित्वाजगद्गुरुम् ॥ ६९ ॥ दद्याद्दीपं च नैवेद्यं कुर्यान्नीराजनं ततः ॥ सजलं भ्रामयेच्छङ्खं भक्त्याकृष्णशिरस्यपि ॥ ७० ॥ पश्चात्कुर्यात्तु दैत्येन्द्रस्तुतिपूतःप्रदक्षिणाम् ॥ कुर्याद्दण्डनमस्कारं पठन्नामसहस्रकम् ॥ ७१ ॥ कृष्णंक्षमापयेत्पश्चाद्रात्रौकुर्यात्तुजागरम् ॥ माहात्म्यंपठनीयन्तु द्वारकासम्भवंशुभम् ॥ ७२ ॥ कृष्णस्यबालक्रीडादिलीलायाश्चरितानि च ॥ क्रीडनंगोकुलस्यापि क्रीडागोपीजनस्य च ॥ ७३ ॥ कृष्णावतारकर्माणि श्रोतव्यानि पुनः पुनः ॥ नृत्यं गीतं च कर्तव्यं सोत्कण्ठं च पुनः पुनः ॥ ७४ ॥ पद्मपत्रायताक्षस्य सुवीक्ष्यं वदनं हरेः ॥ रुक्मशृङ्गीं रूप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम् ॥ ७५ ॥ कांस्योपदोहनांधेनुं वस्त्रयुग्मैरलंकृताम् ॥ सवत्सांब्राह्मणेदत्त्वा होमार्थं चाहिताग्नये ॥ ७६ ॥ निमेषस्य शतांशेन फलंकृष्णस्यजागरे ॥

लीलाओं के चरित्र व गोकुल की क्रीडा तथा गोपीजन की क्रीडा ॥ ७३ ॥ और श्रीकृष्णावतारके कर्मों को बार २ सुनना चाहिये व उत्कंठा समेत बार २ नृत्य व गीत करनाचाहिये ॥ ७४ ॥ व कमलपत्र के समान चौंड़े नेत्रवाले विष्णुजी के मुख को देखनाचाहिये और स्वर्णशृंगी, रौप्यखुरी व मोतियों की पुच्छसे भूषित ॥ ७५ ॥ तथा दो वस्त्रों से भूषित और कांस्यकी दोहनीवाली तथा बछड़ा समेत गऊको अग्निहोत्री ब्राह्मण के लिये देकर जो फल होता है ॥ ७६ ॥ वही फल श्रीकृष्णजी के जागरणमें

निमेष के शतांश से होता है और करोड़ जन्म में मनुष्य जो कुछ पाप करताहै ॥ ७७ ॥ रात्रि में श्रीकृष्णजी के जागरण में उसको जलाताहै इसमें सन्देह नहीं है व श्रीकृष्णजी के समीप जो विष्णुजी के सहस्रनाम को पढ़ता है ॥ ७८ ॥ वह प्रत्येक अक्षर में गौवों के करोड़फल को देनेवाले पुण्य को पाताहै व श्रीकृष्णजी के दर्शन में जो गीता व सहस्रनाम को पढ़ताहै ॥ ७९ ॥ और कलियुग में विष्णु के दिनमें जो मनुष्य द्वारकापुरीमें रात्रि को जागरण करता है वह मनुष्य सौकरोड़ पुश्तियोंको विष्णुलोक में लेजाताहै ॥ ८० ॥ व रात्रि में जो मनुष्य विष्णुजी के प्रिय भागवत पुराणको पढ़ताहै वह उतने समयतक स्वर्ग में बसताहै जबतक कि सूर्य व देवता रहते हैं ॥ ८१ ॥

यत्किञ्चित्कुरुते पापं कोटिजन्मनिमानवः ॥ ७७ ॥ कृष्णस्य जागरे रात्रौ दहतेनात्रसंशयः ॥ विष्णोर्नामसहस्रन्तु यः पठेत्कृष्णसन्निधौ ॥ ७८ ॥ प्रत्यक्षरंलभेत्पुण्यं गवांकोटिफलप्रदम् ॥ गीतानामसहस्रे तु यः पठेत्कृष्णदर्शने ॥ ७९ ॥ द्वारकायां दिने विष्णो रात्रौजागरणंकलौ ॥ नयेत्सविष्णुलोकन्तु कुलकोटिशतन्नरः ॥ ८० ॥ यः पठेद्भागवतंरात्रौ पुराणंदयितंहरेः ॥ तावत्कालं वसेत्स्वर्गे यावत्सूर्योदिवौकसः ॥ ८१ ॥ येनद्वारावतींगत्वा कृतंकृष्णावलोकनम् ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं यत्र तत्र स्थितोपिसन् ॥ ८२ ॥ पठतेजागरेरात्रौ द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ सकलंफलमाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ८३ ॥ तस्माज्जागरणे रात्रौ पठनीयन्तुभक्तितः ॥ आस्फोटयन्ति पितरः प्रहर्षन्ति पितामहाः ॥ ८४ ॥ पठन्तंस्वसुतंदृष्ट्वा माहात्म्यं कृष्णसम्भवम् ॥ कृष्णाजिनं यः पुरुषो दधेद्वर्षशतंसदा ॥ ८५ ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं जागरेपठनेसमम् ॥ श्रावण्यां श्रवणयुक्तायां जलधेनुप्रदंफलम् ॥ ८६ ॥ तत्फ

और जिसने द्वारकापुरी को जाकर श्रीकृष्णजी को देखा है और जहां तहां भी स्थित होताहुआ भी जो मनुष्य रात्रि में द्वारका से उपजे हुए माहात्म्य को पढ़ता है वह चक्रपाणिजी की प्रसन्नता से समस्तफलको पाता है ॥ ८२ । ८३ ॥ इस कारण रात्रि में भक्तिसे जागरण में माहात्म्य को पढ़ना चाहिये व श्रीकृष्णजी से उपजेहुए माहात्म्य को पढ़तेहुए अपने पुत्र को देखकर पितर आनन्द होते हैं व पितामह लोग प्रसन्न होते हैं और सौ बरसतक जो मनुष्य रुदैव कृष्णाजिन को धारण करता है ॥ ८४ । ८५ ॥ और जागरण में जो द्वारका का माहात्म्य पढ़ता है उन दोनों को समान फल होता है और श्रवण से संयुत श्रावणी में जो जलधेनु को देनवाला फल है ॥ ८६ ॥ उस फल

को मनुष्य द्वारका में प्रतिदिन पाता है और बहुत दक्षिणाओंवाले बहुतसे सब यज्ञोंको करके जो फल मिलताहै ॥ ८७ ॥ उस फल को मनुष्य श्रीकृष्णजी के समीप आधे दिनमें पाताहै और यत्न से सांगोपाग समस्त वेदों को पढ़कर ॥ ८८ ॥ जिस फलको कृष्णजी में लगेहुए मनवाला मनुष्य भलीभांति पाता है उस फल के हज़ारवें भाग को भी अन्य किसी कर्म से नहीं पाता है ॥ ८९ ॥ और राग व द्वेष की अग्नि से जलेहुए अज्ञान विषयवाले पुरुषों को वैष्णव धर्म औषध है जैसे कि रोगार्तों को औषध होती है ॥ ९० ॥ और हेतुवादों की कुदृष्टियों से अज्ञानरूपी तिमिर से अन्धजनों को यह विष्णुशास्त्रदीपक सदैव विद्वानों से ध्यान करनेयोग्य है ॥ ९१ ॥ और ब्रह्मावर्त के

लं समवाप्नोति द्वारावत्यां दिनेदिने ॥ यज्ञान्सर्वांस्तथेष्ट्वा च बहुशो भूरिदक्षिणान् ॥ ८७ ॥ लभेत्फलंदिनार्द्धेन द्वारकाकृष्णसन्निधौ ॥ वेदान्सर्वांस्तथाधीत्य साङ्गोपाङ्गांश्च यत्नतः ॥ ८८ ॥ यत्फलंलभतेसम्यक् कृष्णस्यार्पितमानसः ॥ न तत्फलसहस्रांशं प्राप्नोत्यन्येन केनचित् ॥ ८९ ॥ रागद्वेषाग्निदग्धानामज्ञानविषयात्मनाम् ॥ चिकित्सा वैष्णवंधर्मं रोगार्तानामिवौषधम् ॥ ९० ॥ अज्ञानतिमिरान्धानां हेतुवादकुदृष्टिभिः ॥ विष्णुशास्त्रप्रदीपोयं ध्येयोनित्यं हि सूरिभिः ॥ ९१ ॥ ब्रह्मावर्तसमोदेश ऋषिदेशःसकथ्यते ॥ मध्यदेशःसविज्ञेयो यत्र जागरणं हरेः ॥ ९२ ॥ ब्रह्मावर्त्ताधिकोदेश आर्यदेशो विशेषतः ॥ ९३ ॥ मध्यदेशो महाभाग शालग्रामशिलायतः ॥ तंम्लेच्छसदृशं देशं पवित्रन्तु परित्यजेत् ॥ ९४ ॥ शालग्रामशिला नैव यत्र भागवतो न हि ॥ त्यजेत्तीर्थं महापुण्यं पुण्यं चायतनं त्यजेत् ॥ ९५ ॥ त्यजेत्पुण्यं तथारण्यं यत्र न द्वादशीव्रतम् ॥ सदेशोपिभवेन्निन्द्यो वैष्णवानोहरेर्व्रतम् ॥ ९६ ॥ कुदेशो

समान वह ऋषिदेश कहाजाता है और वह मध्यदेश जानने योग्यहै जहां कि विष्णुजीका जागरण होवै ॥ ९२ ॥ और विशेषकर ब्रह्मावर्त से अधिक वह आर्यदेश ॥ ९३ ॥ व बड़ा ऐश्वर्यवान् मध्यदेश है जहां कि शालग्रामशिला होवै और उस पवित्र देशको म्लेच्छदेश के समान छोड़देवै ॥ ९४ ॥ जहां कि शालग्रामशिला व वैष्णव न होवै और उस महापवित्र तीर्थ को छोड़देवै व पुण्यस्थान को छोड़देवै ॥ ९५ ॥ और उस पवित्र वन को छोड़देवै जहां कि द्वादशीव्रत न होवै और वह देश भी निन्दा करने योग्य है जहां कि वैष्णव व विष्णुजी का व्रत न होवै ॥ ९६ ॥ और वह कुदेश भी पवित्र होता है जहां कि कलियुग में वैष्णव होवैं और चैत वैशाख में जो मनुष्य

श्रीकृष्णजी को रथारूढ़ करते हैं ॥ ६७॥ करौड़सौ पुश्तियों से संयुत वे सब मुक्ति को प्राप्त होते हैं और जो मनुष्य देवकीनन्दनजी के लिये रथ को बनवाते हैं ॥ ६८॥ वे पितरों समेत कल्प पर्यन्त विष्णुलोक में बसते हैं और इस उत्तम मंत्र से रथवृक्ष की प्रार्थना करै ॥ ६६ ॥ कि तुम क्षीरक हो और तुम पुलिनहो व तुम उत्तम वनस्पति हो हे वृक्ष ! तुमको स्पर्श करने से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ १०० ॥ व अपने मार्ग में स्थित होवैं या पराये मार्ग में स्थित होवैं और साधु या असाधु होवैं कलियुग में जो द्वारकापुरी को जाता है वह पुण्यफल को पाता है ॥ १ ॥ और जो कलियुग में द्वारका का माहात्म्य सुनता है व मनुष्यों के मध्य में जो भाव

पि भवेत्पूतो यत्र भागवताःकलौ ॥ रथारूढं प्रकुर्वन्ति ये कृष्णं मधुमाधवे ॥ ६७ ॥ मुक्तिंप्रयान्तितेसर्वे कुलकोटि समन्विताः ॥ देवकीनन्दनस्यार्थे रथं ये कारयन्ति वै ॥ ६८ ॥ कल्पान्तं विष्णुलोके तु वसन्ति पितृभिस्सह ॥ अनेनोत्तममन्त्रेण रथवृक्षं च प्रार्थयेत् ॥ ६६ ॥ त्वंक्षीरकस्त्वं पुलिनस्त्वं वनस्पतिरुत्तमः ॥ वृक्ष्यतेस्पर्शमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १०० ॥ स्वमार्गस्थाविमार्गस्था साधवोवाप्यसाधवः ॥ पुण्यंफलमवाप्नोति योगतोद्वारकां कलौ ॥ १ ॥ द्वारकायाश्च माहात्म्यं यश्शृणोति कलौन्नृणाम् ॥ भावमुत्पादयेद्यो वै लभेत्क्रतुशतंफलम् ॥ २ ॥ योनार्चयति पापिष्ठो कृष्णमन्यत्रगच्छति ॥ कोटिजन्मार्जितं पुण्यं हरते रुक्मिणीपतिः ॥ ३ ॥ द्वारकामाहात्म्यमिदं दृष्ट्वा वै रुक्मिणीपतिम् ॥ दानंददातियस्तत्र पुनर्यज्ञायुतं फलम् ॥ ४ ॥ लभेत्सागरमध्यस्थं सपश्येच्छङ्खिनं कलौ ॥ महापापानि नश्यन्ति जन्मकोटिकृतानि तु ॥ ५ ॥ शङ्खोद्धारसमुद्भूतां नित्यं देहे बिभर्त्ति यः ॥ मृत्तिकांदैत्यराजेन्द्र

को उत्पन्न करता है वह सौ यज्ञों के फल को पाता है ॥ २ ॥ और जो पापी पुरुष श्रीकृष्णजी को नहीं पूजता है व अन्यत्र जाता है उसके करोड़जन्मों में इकट्ठा कियेहुए पुण्य को रुक्मिणीनाथ जी हरते हैं ॥ ३ ॥ और रुक्मिणीनाथजी को देखकर इस रुक्मिणीमाहात्म्य को जो दान देता है वह फिर दशहज़ार यज्ञों का फल ॥ ४ ॥ पाता है और वह मनुष्य समुद्र के मध्यमें स्थित शंखधारीजी को देखता है उसके करोड़ जन्मों में कियेहुए महापाप नाश होजाते हैं ॥ ५ ॥ व हे दैत्येन्द्र !

शंखोद्धार से उपजीहुई मृत्तिका को जो नित्य शरीर में धारण करता है उसका फल सुनिये मैं कहताहूं ॥ ६ ॥ कि नित्य सौभार सुवर्ण को जो यतियों को देता है और जो वैष्णवों को देता है उस पुण्य को मनुष्य पाता है ॥ ७ ॥ और जिसके घर में सदैव शंखोद्धार की मृत्तिका स्थित रहती है वह नित्य कियेहुए यज्ञ के कोटिगुने फल को पाता है ॥ ८ ॥ और करोड़ों पापों से संयुत भी उस पुरुष से यमदूत कांपते हैं और विष्णुजी के स्थान से उपजीहुई मृत्तिका जिसके घर में होती है ॥ ९ ॥ व जिसके मस्तक में गोपीचन्दन संज्ञक त्रिपुण्ड्र होता है ॥ १० ॥ हे बले! उसके घर को कभी विष्णुप्रिया लक्ष्मीजी नहीं छोड़ती हैं और उसको ग्रह पीडित नहीं करते

शृणुवक्ष्यामि तत्फलम् ॥ ६ ॥ यो ददाति यतीनां च वैष्णवानां प्रयच्छति ॥ स्वर्णभारशतं पुण्यं नित्यं प्राप्नोति मानवः ॥ ७ ॥ गृहेयस्य सदातिष्ठेच्छङ्खोद्धारस्यमृत्तिका ॥ नित्यं क्रतुकृतं पुण्यं लभेत्कोटिगुणंफलम् ॥ ८ ॥ पाप कोटियुतस्यापि धुवन्तियमकिङ्कराः ॥ विष्णुस्थानसमुद्भूता मृत्तिका यस्य मन्दिरे ॥ ९ ॥ यस्यपौण्ड्रं ललाटे तु गोपीचन्दनसंज्ञिकम् ॥ १० ॥ न जहाति गृहं तस्य लक्ष्मीःकृष्णप्रियाबले ॥ बाध्यन्ते न ग्रहास्तस्य न रोगा न च राक्षसाः ॥ ११ ॥ पिशाचा न च कूष्माण्डा न च प्रेता विजृम्भकाः ॥ नाग्निचौरभयं तस्य रिपूणां चैव शृङ्गिणाम्॥१२॥ शाकिनीनां न राज्ञां च न दैवं भौतिकं भयम् ॥ न रोगजं नाधिजं च न दरिद्रस्यसम्भवम् ॥ १३ ॥ विद्युदुल्काभयं नैव न चोत्पातसमुद्भवम् ॥ नारिष्टं नाप्यशकुनमनिमित्तादिकं च यत् ॥ १४ ॥ कृते जागरणे रात्रौ द्वादशीवञ्जु

हैं व रोग और राक्षस पीडा नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ और न पिशाच, न कूष्माण्ड, न प्रेत बाधा करते हैं और उसको अग्नि व चोर की भय नहीं होती है न शत्रुवों और न शृंगवाले प्राणियोंकी भय होती है ॥ १२ ॥ और शाकिनियों की व राजाओं की भय नहीं होती है और दैविक व भौतिक भय नहीं होती है तथा रोगसे उत्पन्न व मानसी व्याधि से उत्पन्न तथा दरिद्र से उपजाहुआ डर नहीं होता है ॥ १३ ॥ और बिजली व उल्का की भय तथा उत्पात से उपजाहुआ भय नहीं होना है और न अरिष्ट न अशकुन और जो अनिमित्तादिक है ॥ १४ ॥ वह डर वंजुली द्वादशी के दिन रात्रि में जागरण करने से व हे पौत्र! भागवत के श्लोकका एक चरण कीर्तन

करने से नहीं होता है ॥ १५ ॥ और विष्णुशास्त्र के पढ़ने व विष्णुप्रिय के दर्शन करने से व विष्णुजीका रथोत्सव करने से और नित्य पीपल का दर्शन करने से ॥१६॥ व हे पौत्र ! विष्णुभक्त का सत्कार करने से व शालग्रामशिला को पूजने से तथा नैवेद्य का भक्षण करने से भी उपरोक्त भय नहीं होती है ॥ १७ ॥ व विष्णुजी को तुलसी के पूजन से और विजया वासर करने से व दोनों पक्षों में व्रत करने से और हेमन्तऋतु में जल में स्थित होने से ॥ १८ ॥ वैसेही हे पौत्र ! ग्रीष्मसमय में त्रिस्पृशा का उपास व धात्रीव्रत और पीपल से उपजेहुए व्रत को करने से उपरोक्त भय नहीं होती है ॥ १९ ॥ जो उन्मीलिनी व पक्षवर्द्धिनी एकादशी करते हैं और

लीदिने ॥ पौत्रभागवतस्यापि श्लोकपादस्यकीर्तने ॥ १५ ॥ विष्णुशास्त्रस्यपठने दर्शनेभगवत्प्रिये ॥ रथोत्सवे कृते विष्णोर्नित्यं चाश्वत्थदर्शने ॥ १६ ॥ सत्कृते विष्णुभक्ते च शालग्रामशिलार्चने ॥ पीतेपादोदके पौत्र नैवेद्य स्यापि भक्षणे ॥ १७ ॥ तुलसीपूजने विष्णोर्विजयावासरेकृते ॥ पक्षद्वयव्रतैश्चीर्णैर्हेमन्तेजलसंस्थिते ॥ १८ ॥ ग्रीष्मकालेषु च तथा त्रिस्पृशासमुपोषणे ॥ कृतेधात्रीव्रतेपौत्र तथाश्वत्थसमुद्भवे ॥ १९ ॥ उन्मीलिनींप्रकुर्वन्ति तथा पक्षविवर्द्धनीम् ॥ जयन्तींश्रावणेमासि द्वादशींरोहिणीयुताम् ॥ २० ॥ प्रबोधिनींविशेषेण व्रतंरम्भासमुद्भवम् ॥ श्रावणेशृणुते वापि पठतेहरिसन्निधौ ॥ २१ ॥ शास्त्रंभागवतं नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ दशम्यांनक्तभोजीस्याद्वादश्यां च विशेषतः ॥ २२ ॥ त्यजेत्परान्नंशक्तःसन् द्वादशीव्रतकृन्नरः ॥ कुर्याज्जागरणं रात्रौ शक्त्याकुर्यात्तु दानकम् ॥ २३ ॥ विशेषपूजां देवस्य स्वशक्त्याकारयेद्बले ॥ २४ ॥ गीतवाद्यविनोदेन हास्यसन्तुष्टमानसैः ॥ कार्यं

श्रावण महीने में रोहिणी संयुत जयन्ती तथा द्वादशीव्रत को जो करते हैं ॥ २० ॥ और विशेषकर प्रबोधिनी तथा रंभा से उपजेहुए व्रत को जो करते हैं व विष्णुजी के समीप जो श्रद्धा व भक्तिसंयुत मनुष्य श्रावण महीने में भागवत शास्त्र को नित्य सुनता या पढ़ता है वह दशमी में रात्रि को भोजन करै व द्वादशी में विशेषकर नक्तभोजी होवै ॥ २१ । २२ ॥ और द्वादशीव्रत को करनेवाला समर्थ मनुष्य पराये अन्न को त्याग करै और रात्रि में जागरण करै व शक्ति के अनुसार दान करै ॥ २३ ॥ व हे बले ! अपनी शक्ति के अनुसार विष्णुदेवजी की विशेष पूजा करै ॥ २४ ॥ और हास्य से प्रसन्नमनवाले पुरुषों को गाने, बजाने के विनोद से और पुराण की

कथाओं से रात्रि में जागरण करना चाहिये ॥ २५ ॥ और जो उत्तम पुरुष द्वादशी तिथि में श्रीगंगाजी की मिट्टी से उपजेहुए व गोपीचन्दन संज्ञक तिलकों को करते हैं ॥ २६ ॥ हे पौत्र! उनको उत्तम केसर छोड़कर त्रिपुण्ड्र करना चाहिये और वैष्णव धर्मों से चतुर जो पुरुष भलीभाति वैष्णवों का प्रसाधन करता है वह पहले कहे हुए भयों से छूटजाता है और तीर्थ व्रत व यज्ञ को करके कोटिगुना फल होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ और वैष्णव मनुष्य अपनी करोड़सौ पुश्तियों को तारता है और कलियुग में एक दिनसे मनुष्य उत्तम फल को पाता है ॥ २९ ॥ हे पौत्र! पुरातन समय जो विष्णुदेवजी से कहागया है उसको मैं कहता हूं सुनिये कि जो देवदेव

जागरणं रात्रौ पौराणैश्च कथानकैः ॥ २५ ॥ द्वादश्यां ये च कुर्वन्ति तिलकानिमहाजनाः ॥ गोपीचन्दनसंज्ञानि गङ्गामृत्स्नोद्भवानि च ॥ २६ ॥ केसरं च वरं त्यक्त्वा कार्यं पौत्र च पुण्ड्रकम् ॥ विदग्धो वैष्णवैर्धर्मैर्वैष्णवानांप्रसाधनम् ॥ २७ ॥ सम्यक्प्रसाधयेद्यस्तु पूर्वोक्तैर्मुच्यतेभयैः ॥ तीर्थव्रतंमखं कृत्वा फलंकोटिगुणंभवेत् ॥ २८ ॥ स्वकुलानांकोटिशतं तारयेद्वैष्णवोनरः ॥ परंफलमवाप्नोति दिनैकेनकलौयुगे ॥ २९ ॥ पुरादेवेनकथितं शृणुपौत्रवदाम्यहम् ॥ यःस्यात्तु देवदेवस्य रुद्रादित्ययमस्य च ॥ ३० ॥ भक्तोभागवतश्रेष्ठं तमहंमानयेसदा ॥ प्रियाभागवतायेषां तेषांतुष्टोस्म्यहंसदा ॥ ३१ ॥ विहायकाशींमथुरामवन्तींसर्वपापहाम् ॥ मायांकाञ्चीमयोध्यां च सम्प्राप्ते तु कलौयुगे ॥ ३२ ॥ वसाम्यहं द्वारकायां सर्वदाप्रिययासह ॥ तीर्थव्रतैर्यज्ञदानैर्वेदपाठैस्तथैव च ॥ ३३ ॥ श्रद्धात्यागेनभक्तोमांयस्तोषयितुमिच्छति ॥ गत्वाद्वारवतींरम्यां द्रष्टव्योहंकलौयुगे ॥ ३४ ॥ न मखैर्नापि च ध्यानैर्न दानैर्व्रतसेवनैः ॥ मत्प्रीति

विष्णुजी का व रुद्र, आदित्य और यमराज का ॥ ३० ॥ भक्त होता है उस श्रेष्ठ वैष्णव को मैं सदैव मानताहूं व जिनको वैष्णव प्रिय हैं उनके ऊपर मैं सदैव प्रसन्न होता हूं ॥ ३१ ॥ और कलियुग प्राप्त होने पर सब पापों को नाशनेवाली काशी, मथुरा व अवन्ती, माया, कांची और अयोध्या को छोड़कर ॥ ३२ ॥ स्त्री समेत मैं सदैव द्वारका में वसता हूं और तीर्थ व्रतों से व यज्ञों तथा दानों से और वेदपाठों से ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य श्रद्धा के त्याग से मुझको प्रसन्न कराना चाहता है उसको कलियुग में सुन्दरी द्वारकापुरी को जाकर मुझको देखना चाहिये ॥ ३४ ॥ कलियुग में न यज्ञों से, न ध्यानों से, न दानों से और न व्रत सेवनों से मेरी

प्रीति को चाहनेवाले मनुष्य को गोमती में स्नान करना चाहिये ॥ ३५ ॥ त्रिलोक में मैंने जिन बहुत से तीर्थों को रचा है हे महासुर! वे गोमती में चक्रतीर्थ में प्रसिद्ध हैं ॥ ३६ ॥ और कलियुग में मनुष्य गोमती में चक्रतीर्थ में त्रिलोक से उपजे हुए तीर्थों से नहाया हुआ होता है ॥ ३७ ॥ और करोड़ पापों से छूटा हुआ वह मनुष्य मेरे साथ बसता है व हे बले! जो उत्तम मनुष्य मेरा दर्शन करेंगे ॥ ३८ ॥ करोड़ों पुश्तियों से संयुत वे मनुष्य मेरे लोक में बसैंगे और वे अपराधों से तथा किये हुए उग्र पापों से बाधित नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ और इस संसार में उसके घर से लक्ष्मी पृथक् नहीं होती है ॥ १४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

मिच्छताकार्यं गोमत्यांप्लवनंकलौ ॥ ३५ ॥ त्रैलोक्येयानितीर्थानि मयासृष्टानिभूरिशः ॥ विख्यातानि च गोमत्यां चक्रतीर्थेमहासुर ॥ ३६ ॥ वासरैकेन गोमत्यां चक्रतीर्थेकलौयुगे ॥ त्रैलोक्यसम्भवैस्तीर्थैःस्नातोभवतिमानवः॥३७॥ कोटिपापविनिर्मुक्तो मत्समं च वसेन्नरः ॥ बलेमद्दर्शनं ये वै करिष्यन्ति नरोत्तमाः ॥ ३८ ॥ ममलोकं वसिष्यन्ति कुलकोटिसमन्विताः ॥ नापराधैःप्रबाध्यन्ते पापैश्चैवोत्कटैःकृतैः ॥३९॥ तस्यजन्मायुतानीहलक्ष्मीर्नच्यवतेगृहात् ॥१४०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ॥ उन्मीलिनीवञ्जुली च त्रिस्पृशापक्षवर्द्धिनी ॥ १ ॥ येचाष्टौप्रकरिष्यन्ति कृष्णप्रीतिविवर्द्धनीः ॥ वासंपुण्यपुरीणां च तेलभन्तेदिनेदिने ॥ २ ॥ लुप्तंसौरकृतंमार्गं पापं चाप्यर्जितंतथा ॥ वैशाख्यां न कृतं येन व्रतंचाश्वत्थसञ्ज्ञितम् ॥ ३ ॥ शालग्रामशिलाग्रेतु ये प्रकुर्वन्तिजागर

दो० । यथा कृष्ण दर्शन किये मिलत अहै फलभूरि । चालिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखमूरि ॥ महादेवजी बोले कि जया, विजया व पापनाशिनी, जयन्ती, उन्मीलिनी, वंजुली, त्रिस्पृशा व पक्षवर्द्धिनी ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजीकी प्रीति को बढ़ानेवाली इन आठ तिथियों को जो करते हैं वे प्रतिदिन पवित्र पुरियों के निवास को पाते हैं ॥ २ ॥ और उसने सूर्य से किये हुए मार्ग को लुप्त किया व पाप को भी इकट्ठा किया है कि जिसने वैशाखी में अश्वत्थसंज्ञक व्रत को नहीं किया है ॥ ३ ॥ और

जो शालग्रामशिला के आगे जागरण करते है उनको प्रत्येक पहर में करोड़ यज्ञों से उपजा हुआ फल कहा गया है ॥ ४ ॥ और पद्मनाभ विष्णुजी के जागरण में जो घृतहीं से पकायेहुए तथा हविर्धान से उत्पन्न पकान्न को करते हैं ॥ ५ ॥ व विष्णुजी के जागरण में शालग्रामशिला के आगे दो बत्तियों से संयुत व घृत से संयुत दीप को जो करता है ॥ ६ ॥ व लोकों के अनुराग के लिये जो नित्य वाद्य करता है वह गांधर्वशास्त्र को पढ़ता है व वीणा और वेणु शब्द को पढ़ता है ॥ ७ ॥ व हे बले ! विशेष कर चक्र से चिह्नित विष्णुजी की प्रतिमा व शालग्राम से उपजीहुई शिला को पुष्पों से जो आच्छादित करता है ॥ ८ ॥ व कालागुरु से मिश्रित

म् ॥ यामेयामेफलंप्रोक्तं कोटियज्ञसमुद्भवम् ॥ ४ ॥ पकान्नं ये प्रकुर्वन्ति हविर्धानसमुद्भवम् ॥ जागरे पद्मनाभस्य घृतेनैव तु पाचितम् ॥ ५ ॥ वर्तिद्वयसमायुक्तं दीपंघृतसमन्वितम् ॥ यःकुर्याज्जागरेविष्णोः शालग्रामशिलाग्रतः ॥ ६ ॥ करोतिनित्यंवाद्यं च लोकानांरञ्जनाय च ॥ सगान्धर्वंपठेच्छास्त्रं वेणुवीणास्वनं तथा ॥ ७ ॥ संछादयति यः पुष्पैः शालग्रामोद्भवांशिलाम् ॥ चक्राङ्कितांविशेषेण प्रतिमांवैष्णवींबले ॥ ८ ॥ चन्दनन्तु सकर्पूरं कृष्णागुरुविमिश्रितम् ॥ ९ ॥ युक्तंमृगमदेनापि यः करोतिविलेपनम् ॥ द्वादश्यांदेवदेवस्य रात्रौजागरणे सदा ॥ १० ॥ अगुरुं तु सकर्पूरं कृष्णागुरुविमिश्रितम् ॥ पूजांभागवतानां च यः कुर्याज्जागरे सदा ॥ विधिना तेन यःकुर्याद्यत्र तत्र स्थितोपि सन् ॥ ११ ॥ बलेवित्तानुमानेन पद्मनाभस्यजागरे ॥ तस्यपुण्यंप्रवक्ष्यामि समासेन महासुर ॥ १२ ॥ यत्फलं कोटितीर्थेषु उज्जयिन्यां च हे बले ॥ १३ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे मथुरायां त्रिपुष्करे ॥ अयोध्यायां प्रभासे च श्री

तथा कस्तूरी से युक्त व कपूर समेत चन्दन को जो सदैव द्वादशी तिथि में रात्रि को जागरण में देवदेवजी के लेपन करता है ॥ ९ । १० ॥ व कालागुरु समेत तथा कपूर समेत व कस्तूरी से संयुत अगुरु को जो लेपन करता है और सदैव जागरण में जो वैष्णवों का पूजन करता है व जहां तहां भी स्थित जो मनुष्य उस विधि से ॥ ११ ॥ हे बले ! द्रव्य के अनुसार पद्मनाभ विष्णुजी के जागरण में करता है हे महासुर ! उसके पुण्य को मैं संक्षेप से कहता हूं ॥ १२ ॥ कि हे बले ! कोटि तीर्थों में व उज्जयिनी में जो फल होता है ॥ १३ ॥ और काशी, कुरुक्षेत्र, मथुरा, त्रिपुष्कर, अयोध्या व प्रभास में और श्रीरंगजी के दर्शन में भी जो फल होता

है ॥ १४ ॥ और गया, गोतीर्थ व गंगासागर के संगम में तथा शुक्लतीर्थ, भृगुक्षेत्र, श्रीस्थल व मुक्तिसंज्ञक तीर्थ में ॥ १५ ॥ व सब तीर्थों के निवास में और वनों व पर्वतों में तथा सब नदियों में और मुनियों के आश्रमों में ॥ १६ ॥ और सब पुण्य स्थानों में तथा सब देवस्थानों में वहां दश हज़ार यज्ञों के करने से और बहुत से व्रतों व दानों से ॥ १७ ॥ और सब वेदों के पढ़ने से व पुराणों का अवगाहन करने से जो पुण्य होता है और अनेकों व्रतों के करने से व संयमों के पालन करने से ॥ १८ ॥ व हे पौत्र ! भली भांति आश्रमों के पालित पवित्र तपों से मुनियों ने व वेदव्यास ने जो फल कहा है ॥ १९ ॥ और करोड़ कल्पों में उत्पन्न लक्षों पुण्यों

रङ्गस्यापि दर्शने ॥ १४ ॥ गयागोतीर्थके चैव गङ्गासागरसङ्गमे ॥ शुक्लतीर्थेभृगुक्षेत्रे श्रीस्थलेमुक्तिसञ्ज्ञिके ॥ १५ ॥ सर्वतीर्थसमावासे पर्वतेषु वनेषु च ॥ तथा नदीषु सर्वासु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ १६ ॥ पुण्यस्थानेषु सर्वेषु देवतायतनेषु च ॥ कृतैर्यज्ञायुतैस्तत्र व्रतदानैश्चपुष्कलैः ॥ १७ ॥ वेदैरधीतैर्यत्पुण्यं पुराणैश्चावगाहनैः ॥ व्रतैरनेकैश्चरितैःसंयमैश्चापिपालितैः ॥ १८ ॥ तपोभिश्चरितैःपुण्यैःसम्यगाश्रमपालितैः ॥ यत्फलं मुनिभिः प्रोक्तं वेदव्यासेन पौत्रक ॥ १९ ॥ कृतैः सुकृतलक्षैश्च कल्पकोटिसमुद्भवैः ॥ तत्फलंजागरेविष्णोः पक्षयोःशुक्लकृष्णयोः ॥ २० ॥ हेमवत्याः पुराप्रोक्तं कैलासे शूलपाणिना ॥ नारदस्यपुराप्रोक्तं ब्रह्मणामत्समीपतः ॥ २१ ॥ अहं चैव वशिष्ठेन कथितोमुनिनापुरा ॥ द्वादशी जागरस्योक्तं फलं पौत्र मया तव ॥ २२ ॥ ततस्त्वं कुरु भद्रन्ते जागरं कृष्णवासरे ॥ यत्फलं जागरे विष्णोः सम्यग्जागरणान्वितैः॥ २३ ॥ द्वारकायां तु लभते दिनैकेन कलौ नरः ॥ ये वसन्ति नरास्तत्र पक्षं मासं तु वत्सरम् ॥२४॥

के करने से जो फल होता है वह फल शुक्ल व कृष्णपक्ष में विष्णुजी के जागरण में होता है ॥ २० ॥ पुरातन समय कैलास पर्वत पै शिवजी ने पार्वतीजी से कहा है व पुरातन समय मेरे समीप ब्रह्मा ने नारदजी से कहा है ॥ २१ ॥ व पुरातन समय वशिष्ठ मुनि ने मुझ से कहा है व हे पौत्र ! मैंने तुम से द्वादशी जागरण के फल को कहा है ॥ २२ ॥ उस कारण विष्णुवासर में तुम जागरण करो और तुम्हारा कल्याण होवै विष्णुजी के जागरण में भलीभांति जागरण से संयुत मनुष्यों को जो फल होता है ॥ २३ ॥ उस फल को कलियुग में मनुष्य एक दिन में पाता है और वहा जो मनुष्य पक्षभर, महीने भर व वर्षभर बसते हैं ॥ २४ ॥

उसका फल योगी और शिवादिक देवता भी नहीं जानते हैं और द्वारका को मन से ध्यान करने से सौ वर्षों में इकट्ठा किया हुआ पाप ॥ २५ ॥ व कीर्तन करने से सात जन्मों में इकट्ठा किये हुए पाप को जलाता है इस में सन्देह नहीं है और पग भर चलतेहुए पुरुषों का हज़ार जन्मों में इकट्ठा किया हुआ पाप ॥ २६ ॥ निश्चय कर द्वारका हरती है और श्रीकृष्णजी के दर्शन से मुक्ति होती है और जब द्वारका में जाने के लिये मनुष्य समर्थ न होवे ॥ २७ ॥ तब घर में द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को पढ़ना चाहिये और वैष्णवों को देना चाहिये व भक्ति से भावित जनों को सुनना चाहिये ॥ २८ ॥ और द्वादशी को विशेषकर सदैव

योगिनोपि न जानन्ति फलं रुद्रादयःसुराः ॥ द्वारकां मनसा ध्यानात्पापं वर्षशतार्जितम् ॥ २५ ॥ कीर्तनात्सप्तज न्मोत्थं दहते नात्र संशयः ॥ पापं जन्मसहस्रोत्थं पदमात्रेणगच्छताम् ॥ २६ ॥ द्वारका हरते नूनं मुक्तिः कृष्णस्य दर्शनात् ॥ न शक्नोति पदा गन्तुं द्वारकायां तु मानवः ॥ २७ ॥ माहात्म्यं पठनीयं तु द्वारकासम्भवं गृहे ॥ दा तव्यं वैष्णवानान्तु श्रोतव्यं भक्तिभावितैः ॥ २८ ॥ द्वादशीं तु विशेषेण पठनीयं नृभिस्सदा ॥ द्वारकासम्भवं पुण्य माप्नोति गृहसंस्थितः ॥ २९ ॥ प्रसादाद्वासुदेवस्य सत्यं सत्यं च भाषितम् ॥ महेशं तिष्ठतेयस्या माहात्म्यं दैत्य नायक ॥ ३० ॥ द्वारकायाः समुद्भूतं सान्निध्यं केशवस्य च ॥ रुक्मिणीसहितः कृष्णो नित्यं हि वसते गृहे ॥ ३१ ॥ प्राप्नोति वाञ्छितान्कामान् परत्रेह च मानवः ॥ योगक्षेमन्तु कुरुते नित्यं तस्य जनार्दनः ॥ ३२ ॥ मरणं शो भते नैव भवेत्पापविवर्जितः ॥ कुले न नारकी तस्य प्रेतत्वं न च विद्यते ॥ ३३ ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं यः पठेत्

मनुष्यों को माहात्म्य पढ़ना चाहिये क्योंकि घर में टिका हुआ भी मनुष्य वासुदेवजी की प्रसन्नता से द्वारका से उपजे हुए पुण्य को पाता है यह सत्य सत्य वचन है व हे दैत्यनायक ! जिस द्वारका से उपजा हुआ माहात्म्य शिवजी के समीप स्थित है व विष्णुजी के समीप स्थित है रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी सदैव उसके घर में बसते हैं ॥ २९।३०।३१॥ और वह मनुष्य इस लोक व परलोकमें चाहे हुए मनोरथोंको पाता है और जनार्दनजी सदैव उसका योग क्षेम करते हैं ॥ ३२ ॥ और मरण नहीं शोभित होता है व पापरहित होता है तथा उसके वंश में नरकगामी नहीं होता है व प्रेतता नहीं होती है ॥ ३३ ॥ और श्रीकृष्णजी के समीप जो द्वारका का

माहात्म्य पढ़ता है व श्रीकृष्णजी के समीप जो द्वारका में जाकर पढ़ता है ॥ ३४ ॥ वह सात ब्रह्मादिनों तक फिर जन्म को नहीं पाता है और वंजुलीवासर में अधिक पुण्य होता है ॥ ३५ ॥ व हे महाभाग ! युगादिकों में यह फल होता है इस में सन्देह नहीं है और जिसके घर में लिखाहुआ द्वारकामाहात्म्य होता है ॥ ३६ ॥ उसके पितर प्रसन्न होते हुए विष्णुजी के समीप बसते हैं व हे पौत्र ! जो मनुष्य बारह पाठ करते हैं ॥ ३७ ॥ उनको तीर्थ, व्रत, मख व यज्ञों से प्रयोजन नहीं होता है व उसके घर में नित्य मथुरा, द्वारका व गया स्थित रहती है ॥ ३८ ॥ व अवन्ती, काशी, प्रयाग और कुरुजांगल, त्रिपुष्कर, नैमिष, हरद्वार व शूकर स्थित होता

कृष्णसन्निधौ ॥ द्वारकायां पठेद्यस्तु गत्वाकृष्णस्यसन्निधौ ॥ ३४ ॥ न पुनर्जन्मप्राप्नोति ब्रह्मवासरसप्तकान् ॥ वञ्जुलीवासरे चैव पुण्यं भवति चाधिकम् ॥ ३५ ॥ युगादिषु महाभाग फलमेतन्नसंशयः ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं लिखितं यस्य वेश्मनि ॥ ३६ ॥ निवसन्ति सुसन्तुष्टाः पितरो विष्णुसन्निधौ ॥ द्विषट्पाठं प्रकुर्वन्ति ये नराःपुत्रपुत्रक ॥ ३७ ॥ तीर्थैर्व्रतैर्मखैर्यज्ञैर्नास्ति तेषांप्रयोजनम् ॥ गृहेसन्तिष्ठते नित्यं मथुरा द्वारका गया ॥ ३८ ॥ अवन्ती च तथा काशी प्रयागं कुरुजाङ्गलम् ॥ त्रिपुष्करं नैमिषं च गङ्गाद्वारं च शूकरम् ॥ ३९ ॥ शुक्लतीर्थं प्रयागं च क्षेत्रं च भृगुसञ्ज्ञकम् ॥ चण्डीशं चैव केदारं तथा रुद्रं महालयम् ॥ ४० ॥ ॐकारं अङ्गधौतं च शूलभेदं तथाचलम् ॥ वस्त्रापथं महादेवं महाकालं तथैव च ॥ ४१ ॥ भूतेशं भस्मगात्रं च शोभनाथमुमापतिम् ॥ कोटिलिङ्गं त्रिनेत्रं च देवं भृगुवनेश्वरम् ॥ ४२ ॥ दशाश्वमेधं च शुभं भृगुपापप्रमोचनम् ॥ कणवीरं च देवेशमविमुक्तं विशालयम् ॥ ४३ ॥ दीपेश्वरं महानन्दं देवं चैवाचलेश्वरम् ॥ ब्रह्मादयः सुरगणा गृहेतिष्ठन्तिसर्वशः ॥ ४४ ॥ पितरोगणगन्धर्वा मुन

है ॥ ३९ ॥ और शुक्लतीर्थ, प्रयाग व भृगुसंज्ञक क्षेत्र तथा चंडीश, केदार व महालय रुद्र ॥ ४० ॥ तथा ॐकार, अंगधौत, शूलभेद अचल, वस्त्रापथ महादेव व महाकाल ॥ ४१ ॥ और भूतेश, भस्मगात्र व शोभनाथ महादेव, कोटिलिंग, त्रिनेत्र व भृगुवनेश्वर देव ॥ ४२ ॥ और उत्तम दशाश्वमेध, भृगुपापमोचन, कणवीर देवेश, अविमुक्त व विशालय ॥ ४३ ॥ व दीपेश्वर, महानन्द और अचलेश्वर देव तथा ब्रह्मादिक देवगण सब उसके घर में स्थित होते हैं ॥ ४४ ॥ और पितर व गण गंधर्व, मुनि,

[illegible] वासुकि ॥ ४५ ॥ और जो कोई तीर्थ हैं व अश्वमेधादिक यज्ञ यह सब बारह पाठ करनेवाले उस मनुष्य के
घर में स्थित होता है ॥ ४६ ॥ व हे पौत्र ! जो विशेष कर कृष्णजी की जन्माष्टमी को करता हैं और कलियुग में जो व्रत से संयुत व जागरण से युक्त द्वादशी को
विशेष कर करताहै वह मनुजरूपधारी विष्णु है और उसके दर्शन, कीर्तन व मन से स्मरण करने से ॥ ४७।४८ ॥ व संस्कार और स्पर्श करने से करोड़ तीर्थों के फल
को मनुष्य पाता है और उसके स्मरण से दश हज़ार जन्मों में किया हुआ पाप नाश होजाता है ॥ ४९ ॥ व उसी का स्मरण करने से जन्मार्जित पुण्य होता है

यः सिद्धचारणाः ॥ नागराजस्त्वनन्ताख्यः सर्पराजश्चवासुकिः ॥ ४५ ॥ तीर्थानियानिकानिस्युरश्वमेधादयोम
खाः ॥ एतत्सर्वं गृहे नित्यं तस्यद्विषट्कारिणः ॥ ४६ ॥ कृष्णजन्माष्टमीं पौत्र यः करोति विशेषतः ॥ कलौ यःप्र
करोत्येवं द्वादशीं जागरान्विताम् ॥ ४७ ॥ व्रतयुक्तां विशेषेण सविष्णुर्नररूपधृक् ॥ दर्शनेकीर्तने तस्य मनसासं
स्मृतेन च ॥ ४८ ॥ संस्कारे चैव संस्पर्शे तीर्थकोटिफलंलभेत् ॥ जन्मायुतकृतं पापं स्मरणे तस्य नश्यति ॥ ४९॥
स्मरणेचापि तस्यैव पुण्यं जन्मार्जितं भवेत् ॥ एतद्भागवतं शास्त्रं गृहे यस्य सदा भवेत् ॥ ५० ॥ न तस्य पुनरावृत्ति
र्यावद्ब्रह्मा स शूलधृक् ॥ यथा भागवतं शास्त्रं तथा भागवतो नरः ॥ ५१ ॥ उभयोरन्तरं नास्ति तथा वै केशवस्यच ॥
तुष्टेभागवते विष्णुःप्रीतोभवति दैत्यज ॥ ५२ ॥ तस्मात्केशवतुष्ट्यर्थं वैष्णवंपरितोषयेत् ॥ द्वारकागमने विष्णोरथवा
जन्मवासरे ॥ ५३ ॥ कृतेतुष्टिमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ नीलक्षेत्रंवापयति मूलकंभक्षयेत्तु यः ॥ ५४ ॥ नैवास्ति

व यह भागवत शास्त्र जिसके घर में सदैव होता है ॥ ५० ॥ तो शिवजी समेत ब्रह्माजी जब तक रहते हैं तब तक उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है और जैसा भाग-
वत शास्त्र होता है वैसाही भागवत मनुष्य होता है ॥ ५१ ॥ इन दोनों में भेद नहीं है वैसेही विष्णुजी का अन्तर नहीं है हे दैत्यज ! वैष्णव के प्रसन्न होने पर
विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५२ ॥ इस कारण विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये वैष्णव मनुष्य को प्रसन्न करै और द्वारका को जाने में व विष्णुजी के जन्मदिन में ॥ ५३ ॥
करने पर प्रलय पर्यन्त विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और जो क्षेत्र में नील बोता है व जो मूली को खाता है ॥ ५४ ॥ उसका करोड़ों सौ कल्पों से भी नरकोद्धार नहीं

होता है और लोभ से मोहित जो मनुष्य नीलीकर्म करता है ॥ ५५ ॥ और जो ब्राह्मण रसों को बेंचता है वह कुछ पुण्य को नहीं पाता है और जो रसों को बेंचने वाला व नीलक्षेत्र को बोनेवाला है ॥ ५६ ॥ उस ब्राह्मण को सैकड़ों यज्ञों के करने से भी पुण्य नहीं होता है और विष्णुजी का वासर प्राप्त होने पर जो जागरण नहीं करते हैं ॥ ५७ ॥ उनका पुण्य वैष्णवों की निन्दा से नाश होजाता है व जो अधम पुरुष वैष्णवों को दान नहीं देते हैं ॥ ५८ ॥ उसके ऊपर विष्णुजी दश मन्वन्तरों तक प्रसन्नता को नहीं प्राप्त होते हैं और वैष्णव का अपमान करनेपर पूजे हुए विश्वात्मा भगवान् विष्णुजी सैकड़ों जन्मान्तरों से भी नहीं प्रसन्न होते हैं व जो

नरकोत्तारः कल्पकोटिशतैरपि ॥ नीलीकर्म तु यः कुर्याद्ब्राह्मणोलोभमोहितः ॥ ५५ ॥ नाप्नोतिसुकृतंकिञ्चित्कुर्याद्वै रसविक्रयम् ॥ रसविक्रयकर्त्ता यो नीलीक्षेत्रस्य वापकः ॥ ५६ ॥ विप्रस्यसुकृतं नास्ति कृतैर्यज्ञशतैरपि ॥ सम्प्राप्ते वासरे विष्णोर्ये न कुर्वन्तिजागरम् ॥ ५७ ॥ नश्यतेसुकृतंतेषां वैष्णवानां तु निन्दया ॥ वैष्णवानां न यच्छन्ति दानं ये पुरुषाधमाः ॥ ५८ ॥ न विष्णुस्तोषमायाति दशमन्वन्तराणि वै ॥ पूजितोभगवान्विष्णुर्जन्मान्तरशतैरपि ॥ ५९ ॥ प्रसीदति न विश्वात्मा वैष्णवे चापमानिते ॥ अश्वत्थच्छेदनंयो वै वेदकार्यंविनानरः ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं तस्यैव परिकीर्तितम् ॥ छेदनायप्रयच्छेद्यः सूर्यवृक्षं नरोत्तम ॥ ६१ ॥ सप्तजन्मनि राजेन्द्र कुष्ठीभवतिपापकृत् ॥ अर्कवृक्षंनराये वै पापपङ्केह्यधिष्ठिताः ॥ ६२ ॥ छेदयन्तिमहाभाग शृणुपापं वदाम्यहम् ॥ कृतेकुठारघाते वै एकैकस्मिन्नृवेर्नगे ॥ ६३ ॥ मन्वन्तराणि तस्यैव रौरवेवसतिर्भवेत् ॥ अरिष्टवृक्षच्छेदं

मनुष्य वेदकार्य के विना पीपल को काटता है ॥ ५९ । ६० ॥ उसको ब्रह्महत्यादिक पाप कहागया है व हे नरोत्तम ! जो मनुष्य अर्कवृक्ष को काटने के लिये देता है ॥ ६१ ॥ हे नृपेन्द्र ! वह पापकारी पुरुष सात जन्मों तक कुष्ठी होता है व हे महाभाग ! पापपंक में स्थित जो मनुष्य मदार का वृक्ष काटते हैं उनके पाप को मैं कहता हूं तुम सुनो कि मदारवृक्ष में एक एक कुठार घात करने पर ॥ ६२ । ६३ ॥ उस का मन्वन्तरों तक रौरव में निवास होता है व हे दैत्येन्द्र ! जो कभी नीम के

वृक्ष को काटता है ॥ ६४ ॥ वह कुछ उत्तम कर्म नहीं करता है और निश्चयकर कुष्ठी होता है व हे दैत्यज ! प्रत्येक कल्प में सूर्यनारायणजी छेदन करनेवाले मनुष्य के पूजन, द्रव्यदान व व्रत को नहीं ग्रहण करते हैं और सौ जन्मों तक दरिद्रता, विजातित्व व सरोगता होती है ॥ ६५ । ६६ ॥ मदारवृक्ष के काटने पर सूर्यनारायण ने आपही ऐसा कहा है और जो विशेषकर अमावस में वनस्पतियों को काटते हैं ॥ ६७ ॥ उन मनुष्यों को द्वादशी से संयुत पुण्य का प्रकाश नहीं प्राप्त होता है और प्रत्येक पत्र, फल व पुष्प में वह ब्रह्महत्या का फल होता है ॥ ६८ ॥ और वह मनुष्य सात कल्पों तक यमपुर में निवास करता है और उसके कार्य उन्नति को नहीं प्राप्त

यो दैत्येन्द्रकुरुते क्वचित् ॥ ६४ ॥ शुभन्नकुरुते किञ्चित्कर्मकुष्ठीभवेद्ध्रुवम् ॥ न पूजां नार्थदानं न व्रतं गृह्णाति भास्करः ॥ ६५ ॥ नरस्यकल्पं कल्पन्तु छेदकस्य तु दैत्यज ॥ शतजन्मनिदारिद्र्यं विजातित्वंसरोगता ॥ ६६ ॥ छेदितेसूर्यवृक्षे तु सूर्येणोक्तंस्वयंपुरा ॥ शशिक्षयेविशेषेण ये हिंसन्तिवनस्पतीन् ॥ ६७ ॥ पुण्यप्रकाशोनाभ्येति द्वादशीसंयुतोन्नृणाम् ॥ पत्रेपत्रेफलेपुष्पे ब्रह्महत्याफलंभवेत् ॥ ६८ ॥ वसते सप्तकल्पानि पुरेवैवस्वतस्य च ॥ नोन्नतिंयान्ति कार्याणि न पुण्यंभवते क्वचित् ॥ ६९ ॥ सूर्यवृक्षस्य काष्ठेनासत्कृतं मन्दिरादिकम् ॥ रोपयेत्पालयेद्यो वै सूर्यवृक्षंनरोत्तमः ॥ ७० ॥ सप्तकल्पंवसेत्पौत्र समीपेभास्करस्य हि ॥ रोपितैर्देववृक्षैस्तु यत्फलं लक्षकोटिभिः ॥ ७१ ॥ बोधिवृक्षेण चैकेन तत्फलंरोपितेभवेत् ॥ धात्रीवृक्षेमधूके च फलंभवतिरोपिते ॥ ७२ ॥ तुलसीरोपणेप्येवमधिकं चापि सुव्रतम् ॥ प्रत्यहं पिण्डदानेन पितॄणान्तु गयाशिरे ॥ ७३ ॥ प्रीतिर्भवतिसानित्यं गोमत्यांप्लुवनेकलौ ॥

होते हैं व न कभी पुण्य होता है ॥ ६९ ॥ और सूर्य वृक्ष के काष्ठ से बनाया हुआ मंदिरादिक अशुभ होता है व जो उत्तम मनुष्य अर्कवृक्ष को लगाता व पालन करता है ॥ ७० ॥ हे पौत्र ! वह सात कल्पों तक सूर्यनारायण के समीप बसता है और लाखों व करोड़ों देववृक्षों के लगाने से जो फल होता है ॥ ७१ ॥ वह फल एक पीपल के वृक्ष के लगाने से होता है और आमला व महुवा का वृक्ष लगाने से ऐसाही फल होता है ॥ ७२ ॥ व ऐसाही और अधिक फल तुलसी के लगाने से होता है और प्रतिदिन गयाशिर में पिण्डदान से पितरों की जो ॥ ७३ ॥ प्रीति होती है वह प्रीति कलियुग में गोमती में नहाने से होती है और हज़ार चन्द्र-

नहीं मिलती है ॥ १५ ॥ और विष्णुजी के जागरण के विना उस मनुष्य का सत्य, शौच, तप, पठन, दान, पूजन व हवन यह सब नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! दया, दान से रहित व सत्य, शौच से वर्जित उस मनुष्य को जागरण से संयुत द्वादशी पवित्र करती है ॥ १७ ॥ और कलियुग प्राप्तहोने पर जो मनुष्य श्रीकृष्णजी से पालित पुरी को जाता है वह जो उत्तम से भी उत्तम स्थान है उस पद को पाता है ॥ १८ ॥ काशी को छोड़ो व गया, गंगा और सरस्वती को छोड़ो तथा नर्मदा, यमुना, मथुरा और देविका को छोड़ो ॥ १९ ॥ व अयोध्याको छोड़ो और तापी, चन्द्रभागा व गंडकी नदी को छोड़ो और कुरु के पवित्र क्षेत्रको छोड़ो व परमानन्द स्थान को छोड़ो ॥ २० ॥

लोके च शाश्वती ॥ यज्ञायुतैर्नलभ्येत द्वादशीजागरान्विता ॥ १५ ॥ सत्यंशौचंतपोधीतं दत्तमिष्टंहुतंतथा ॥ तस्यसर्वमिदंनष्टं विनाजागरणंहरेः ॥ १६ ॥ दयादानविहीनन्तु सत्यशौचविवर्जितम् ॥ पुनातितंमहाभाग द्वादशीजागरान्विता ॥ १७ ॥ तत्पदंसमवाप्नोति परादपि हि यत्परम् ॥ योगच्छतिकलौप्राप्ते द्वारकांकृष्णपालिताम् ॥ १८ ॥ त्यजकाशींत्यजगयां त्यजगङ्गांसरस्वतीम् ॥ त्यजरेवां च यमुनां मथुरांत्यजदेविकाम् ॥ १९ ॥ अयोध्यांत्यजतापीं च चन्द्रभागां च गण्डकीम् ॥ क्षेत्रंत्यजकुरोःपुण्यं परमानन्दमेव च ॥ २० ॥ प्रभासंत्यजकावेरीं त्यजगोदावरींनदीम् ॥ चन्द्रभागांपयोष्णीं च नदींचर्मण्वतीमुत ॥ २१ ॥ शतह्रदां च सरयूं त्यजशोणंमहानदम् ॥ पयोष्णींतुङ्गभद्रां च सिन्धुं चैव महानदीम् ॥ २२ ॥ शिप्रांवेत्रवतींतापीं प्रयागंत्यजपुष्करम् ॥ जाम्बूनदींकदम्बां च दुरितोष्णीं च कौशिकीम् ॥ २३ ॥ विपाशांस्वर्णरेखां च नैमिषंत्यजदण्डकम् ॥ त्यजार्बुदनगंपुण्यं धर्मारण्यंमहावनम् ॥ २४ ॥

और प्रभास व कावेरी नदी को तथा गोदावरी नदी को छोड़ो और चन्द्रभागा, पयोष्णी व चर्मण्वती नदी को छोड़ो ॥ २१ ॥ और शतह्रदा व सरयू और महानद शोण को छोड़ो और पयोष्णी, तुंगभद्रा व सिंधु महानदी को छोड़ो ॥ २२ ॥ और शिप्रा, वेत्रवती, तापी, प्रयाग व पुष्कर को छोड़ो और जांबूनदी, कदम्बा, दुरितोष्णी व कौशिकी को त्याग करो ॥ २३ ॥ और विपाशा, स्वर्णरेखा, नैमिष व दण्डक को छोड़ो और पवित्र अर्बुदपहाड़ व धर्मारण्य महावन को त्याग करो ॥ २४ ॥

विचार नहीं है और कलिकाल में प्रातःकाल उठकर द्वारका का कीर्तन करने से ॥ ५ ॥ सब पापों से छूटाहुआ मनुष्य निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है व जिसने रोहिणी से संयुत द्वादशी को उपास किया है ॥ ६ ॥ और जो दशमी के संग से दूषित एकादशी को करता है महापाप से संयुत वह कल्पान्त तक नरक को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ और मनुष्य ने जन्म से लगाकर जिस पाप को किया है वह सब द्वादशी में बिन जागरण के भस्म होजाता है ॥ ८ ॥ बिन सूर्य के कौन दिन है व बिन चन्द्रमा कौन रात है और बिन बैल के कौन गाइयां हैं व बिन द्वादशी के कौन व्रत है ॥ ९ ॥ और विष्णुजी के जागरण में वैष्णवों की सभा में जहां २

श्च कीर्तनात् ॥ ५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गंयाति न संशयः ॥ रोहिणीसंयुतायेन द्वादशीसमुपोषिता ॥ ६ ॥ महापातकसंयुक्तः कल्पान्तंनरकंव्रजेत् ॥ एकादशींप्रकुर्याद्यो दशमीसङ्गदूषिताम् ॥ ७ ॥ जन्मप्रभृतियच्चापि नरेणसुकृतंकृतम् ॥ भस्मीभवतितत्सर्वं द्वादश्यांजागरं विना ॥ ८ ॥ वासरः कोविनासूर्यं विनासोमेनकानिशा ॥ विनावृषेणकागावो द्वादशींकिंव्रतंविना ॥ ९ ॥ भातिसर्वत्रसाह्लादं यत्र यत्र प्रवर्तते ॥ जागरेपद्मनाभस्य वैष्णवानां च संसदि ॥ १० ॥ न च भागवतं यत्र पुराणंगीयतेकलौ ॥ अन्धकूपेषुक्षिप्यन्ते ज्वलिते च हुताशने ॥ ११ ॥ द्विषन्तियेभागवतं न कुर्वन्तिहरेर्दिनम् ॥ १२ ॥ यमदूतैश्च नीयन्ते यमभूमौपतन्ति वै ॥ पाठ्यमानं न शृण्वन्ति हरेश्चरितमुत्तमम् ॥ १३ ॥ करपत्रैश्च पीड्यन्ते सुतीव्रैर्यमशासनैः ॥ निन्दांकुर्वन्तियेपापा वैष्णवानांमहात्मनाम् ॥ १४ ॥ नैवार्थाःसम्पदःपुत्राः कीर्ति

वर्तमान होता है वहां वहां सबकहीं आनन्द समेत शोभित होता है ॥ १० ॥ और कलियुग में जहां भागवत पुराण नहीं होता है वहां अन्धकूपों में मनुष्य जलतीहुई अग्नि में डालेजाते हैं ॥ ११ ॥ और जो भागवत से वैर करते हैं व विष्णुजीका दिन नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ उनको यमदूत लेजाते हैं और वे यमराज की भूमि में गिरते हैं और पढ़ेजातेहुए विष्णुजी के उत्तम चरित्र को जो नहीं सुनते हैं ॥ १३ ॥ वे बड़े तीव्र यमशासनों से आरों के द्वारा पीड़ित कियेजाते हैं और जो पापी मनुष्य वैष्णव महात्माओं की निन्दा करते हैं ॥ १४ ॥ उनके अर्थ, संपदा, पुत्र व संसार में अविनाशी यश नहीं होताहै और दशहज़ार यज्ञों से भी जागरण से संयुत द्वादशी

हे महाभाग ! नहीं मिलती है ॥ १५ ॥ और विष्णुजी के जागरण के विना उस मनुष्य का सत्य, शौच, तप, पठन, दान, पूजन व हवन यह सब नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥ और कलियुग प्राप्तहोने पर जो मनुष्य श्रीकृष्णजी से पालित दया, दान से रहित व सत्य, शौच से वर्जित उस मनुष्य को जागरण से संयुत द्वादशी पवित्र करती है ॥ १७ ॥ काशी को छोड़ो व गया, गंगा और सरस्वती को छोड़ो तथा नर्मदा, यमुना, मथुरा पुरी को जाता है वह जो उत्तम से भी उत्तम स्थान है उस पद को पाता है ॥ १८ ॥ और कुरु के पवित्र क्षेत्रको छोड़ो व परमानन्द स्थान को छोड़ो ॥ २० ॥ और देविका को छोड़ो ॥ १९ ॥ व अयोध्याको छोड़ो और तापी; चन्द्रभागा व गंडकी नदी को छोड़ो

सत्यंशौचंतपोधीतं दत्तमिष्टंहुतंतथा ॥ तस्यस लोके च शाश्वती ॥ यज्ञायुतैर्नलभ्येत द्वादशीजागरान्विता ॥ १५ ॥ वमिदंनष्टं विनाजागरणंहरेः ॥ १६ ॥ दयादानविहीनन्तु सत्यशौचविवर्जितम् ॥ पुनातितंमहाभाग द्वादशीजागरा न्विता ॥ १७ ॥ योगच्छतिकलौप्राप्ते द्वादशींकृष्णपालिताम् ॥ १८ ॥ तत्पदंसमवाप्नोति परादपि हि यत्परम् ॥ त्यजकाशींत्यजगयां त्यजगङ्गांसरस्वतीम् ॥ त्यजरेवां च यमुनां मथुरांत्यजदेविकाम् ॥ १९ ॥ अयोध्यांत्यजतापीं च चन्द्रभागां च गण्डकीम् ॥ क्षेत्रंत्यजकुरोःपुण्यं परमानन्दमेव च ॥ २० ॥ प्रभासंत्यजकावेरीं त्यजगोदावरींन दीम् ॥ चन्द्रभागांपयोष्णीं च नदींचर्मण्वतीमुत ॥ २१ ॥ शतह्रदां च सरयूं त्यजशोणंमहानदम् ॥ पयोष्णींतुङ्गभ द्रां च सिन्धुं चैव महानदीम् ॥ २२ ॥ शिप्रांवेत्रवतींतापीं प्रयागंत्यजपुष्करम् ॥ जाम्बूनदींकदम्बां च दुरितोष्णीं च कौशिकीम् ॥ २३ ॥ विपाशांस्वर्णरेखां च नैमिषंत्यजदण्डकम् ॥ त्यजार्बुदनगंपुण्यं धर्मारण्यंमहावनम् ॥ २४ ॥

और प्रभास व कावेरी नदी को तथा गोदावरी नदी को छोड़ो और चन्द्रभागा, पयोष्णी व चर्मण्वती नदी को छोड़ो ॥ २१ ॥ और शतह्रदा व सरयू और महानद शोण को छोड़ो और पयोष्णी, तुंगभद्रा व सिंधु महानदी को छोड़ो ॥ २२ ॥ और शिप्रा, वेत्रवती, तापी, प्रयाग व पुष्कर को छोड़ो और जाबूनदी, कदम्बा, दुरितोष्णी व कौशिकी को त्याग करो ॥ २३ ॥ और विपाशा, स्वर्णरेखा, नैमिष व दण्डक को छोड़ो और पवित्र अर्बुदपहाड़ व धर्मारण्य महावन को त्याग करो ॥ २४ ॥

और सैन्धव व वृन्दावन नामक वन को त्यागकरो तथा उत्पलावर्त को छोड़ो और पवित्र बदरीआश्रम व अन्य आश्रम को त्यागकरो ॥ २५ ॥ व वशिष्ठाश्रम ऐसे प्रसिद्ध आश्रम तथा भारद्वाजाश्रम को त्यागकरो व हे पौत्र ! अर्कस्थल, श्रीस्थल और भृगुस्थली को छोड़ो ॥ २६ ॥ व विष्णुपद तीर्थ तथा गंगासागर से उपजेहुए तीर्थको छोड़ो और श्रेष्ठ तीर्थ गंगाद्वार व कुशावर्त और गयाशिर को त्याग करो ॥ २७ ॥ और पूर्वदग्ध, कपिल, बिल्वक व नीलपर्वत इत्यादिक तीर्थों को छोड़कर द्वारका को भजो ॥ २८ ॥ जहां कि रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी सदैव स्थित रहते हैं और सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी में जो तीर्थ हैं ॥ २९ ॥ वे सब द्वारका में कंसनाशक

सैन्धवंत्यजवृन्दाख्यमुत्पलावर्त्तकंत्यज ॥ बदर्याश्रमकंपुण्यमन्यत्पुण्याश्रमंत्यज ॥ २५ ॥ वशिष्ठाश्रमं च विख्यातं भारद्वाजाश्रमंत्यज ॥ अर्कस्थलंश्रीस्थलं च त्यजपौत्रभृगुस्थलीम् ॥ २६ ॥ त्यजविष्णुपदंतीर्थं गङ्गासागरसम्भवम् ॥ गङ्गाद्वारंतीर्थवरं कुशावर्त्तंगयाशिरम् ॥ २७ ॥ पूर्वदग्धन्तु कपिलं बिल्वकंनीलपर्वतम् ॥ एवमादीनितीर्थानि त्यक्त्वाद्वारावतींभज ॥ २८ ॥ रुक्मिणीसहितःकृष्णो यत्र तिष्ठतिसर्वदा ॥ सप्तद्वीपवतींक्षोण्यां सन्तितीर्थानियानि तु ॥ २९ ॥ द्वारकायान्तु तिष्ठन्ति सन्निधौकंसहाग्रतः ॥ कलौकृष्णपुरींगच्छ पुण्ययोगाच्च पौत्रक ॥ ३० ॥ सर्वतीर्थसमावाप्तिं निमिषार्द्धेनप्राप्स्यसि ॥ तावत्काशी च मथुरा ह्यवन्तीचोत्तमापुरी ॥ ३१ ॥ यावन्न पश्यतेपौत्र द्वारकांकृष्णसंयुताम् ॥ पुरीणांद्वारकाश्रेष्ठातीर्थानांश्रवणान्विता ॥ ३२ ॥ द्वादशीपुष्यसंयुक्ता जयन्तीपक्षवर्द्धिनी ॥ उन्मीलिनी वञ्जुली च व्रतानांत्रिस्पृशावरा ॥ ३३ ॥ भोगदामोक्षदाचैव दत्तात्रेयाभिधायिनी ॥ आश्रमाणान्तु संन्यासो वर्णानां

श्रीकृष्णजी के आगे स्थित रहते हैं हे पौत्र ! कलियुग में तुम पुण्य के योग से श्रीकृष्णजी की पुरी को जाओ ॥ ३० ॥ तो आधे निमेष से सब तीर्थों की प्राप्ति को पाओगे और तबतक काशी, मथुरा व पुरियों में उत्तम अवन्ती है ॥ ३१ ॥ जबतक कि हे पौत्र ! मनुष्य श्रीकृष्णजी से संयुत द्वारकाजी को नहीं देखता है और पुरियों व तीर्थों के मध्य में द्वारका श्रेष्ठ है और श्रवण से संयुत ॥ ३२ ॥ द्वादशी व पुष्य से संयुत जयन्ती श्रेष्ठ है तथा पक्षवर्द्धिनी, उन्मीलिनी, वंजुली श्रेष्ठ है व व्रतों के मध्य में त्रिस्पृशा उत्तम है ॥ ३३ ॥ और दत्तात्रेय नामक द्वादशी सुखदायिनी व मोक्षदायिनी है और आश्रमों के मध्य में संन्यास तथा वर्णों के मध्य में ब्राह्मण

श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ और पुरियों व सब तीर्थों के मध्यमें द्वारका कलियुग में श्रेष्ठ है जहां कि चक्र से चिह्नित मृत्तिका व चक्र से चिह्नित पाषाण ॥ ३५ ॥ कलियुग में विश्वास के लिये देखपड़ते हैं और शालग्रामशिला में करोड़ों दशहज़ार तीर्थ ॥ ३६ ॥ हे दैत्यराजेन्द्र ! वैष्णवों के घर में देखपड़ते हैं व तीनों लोकों में करोड़ों हज़ार तीर्थ हैं ॥ ३७ ॥ परन्तु कोई तीर्थ चक्रतीर्थ के समान व अधिक नहीं है और चक्र से चिह्नित शिला में तेरह भेद हैं ॥ ३८ ॥ उनके दर्शन व स्पर्श करने से मुक्ति व भुक्ति होती है और जहां जहां द्वारका में उपजीहुई शिला होवै ॥ ३९ ॥ वहां वहां कियाहुआ स्नान सब तीर्थों से अधिक होता है और जो मनुष्य महापवित्र गोपी-

ब्राह्मणोवरः ॥ ३४ ॥ पुरीणांसर्वतीर्थानां प्रवराद्वारकाकलौ ॥ यत्र चक्राङ्कितामृत्स्ना पाषाणाश्चक्रचिह्निताः ॥ ३५ ॥ प्रत्ययार्थं चात्र लोके कलौदृश्यन्त एव हि ॥ शालग्रामशिलायान्तु तीर्थकोट्ययुतानि च ॥ ३६ ॥ दृश्यन्तेदैत्यराजेन्द्र वैष्णवानांगृहेषु च ॥ सन्तिकोटिसहस्राणि तीर्थानि च जगत्त्रये ॥ ३७ ॥ न किञ्चिदधिकंतीर्थं चक्रतीर्थसमं न हि ॥ चक्राङ्कितशिलायान्तु मूर्तिभेदास्त्रयोदश ॥ ३८ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानान्मुक्तिर्भुक्तिःप्रजायते ॥ द्वारकायांसमुद्भूता यत्र यत्र शिलाभवेत् ॥ ३९ ॥ सर्वतीर्थाधिकंस्नानं तत्र तत्र कृतंभवेत् ॥ येपश्यन्तिमहापुण्यां गोपीचन्दनमृत्तिकाम् ॥ ४० ॥ विनापुण्ड्रेणगच्छन्ति लोकान्कामदुघान्नराः ॥ येप्रकुर्वन्तितिलकं गोपीचन्दनसञ्ज्ञकम् ॥ ४१ ॥ न तेषां पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकात्कथंचन ॥ येषांललाटेतिलकं गोपीचन्दनसञ्ज्ञकम् ॥ ४२ ॥ न तेषां चैव लोकास्ते पापकोटिशतैर्वृताः ॥ वैष्णवानांप्रयच्छन्ति गोपीचन्दनमृत्तिकाम् ॥ ४३ ॥ यत्पुण्यंपौण्ड्रकर्त्तॄणां तत्समंलभ्यतेफलम् ॥

चन्दन की मृत्तिका को देखते हैं ॥ ४० ॥ वे मनुष्य बिन त्रिपुंड्र के कामनाओं को देनेवाले लोकों को जाते हैं और गोपीचन्दन संज्ञक तिलक को जो करते हैं ॥ ४१ ॥ विष्णुलोक से उनकी किसीप्रकार पुनरावृत्ति नहीं होती है व जिनके मस्तक में गोपीचन्दन तिलक होता है ॥ ४२ ॥ उनको वे लोक नहीं होते हैं जोकि करोड़ों सौ पापों से घिरे हैं और जो मनुष्य वैष्णवों को गोपीचन्दन की मृत्तिका देते हैं ॥ ४३ ॥ तो त्रिपुंड्र करनेवालों को जो पुण्य होता है उसी के समान फल मिलता

है और जबतक शरीर में गोपीचन्दन का त्रिपुंड्र स्थित होता है ॥ ४४ ॥ तबतक प्रत्येक निमेष में दश गौत्रों के फल को देनेवाला पुण्य होता है और जिसका शरीर गोपीचन्दन की मिट्टी में छुगया है ॥ ४५ ॥ करोड़ों सौ पापों से संयुत वह मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है और गोपीचन्दन के त्रिपुंड्र से द्वादशी में जागरण करने पर ॥ ४६ ॥ और विष्णुजी के सहस्रनाम से पाठकरने पर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है और शास्त्रोक्त विधि से भक्तिपूर्वक पूजेहुए ॥ ४७ ॥ चक्र से चिह्नित श्रीकृष्णजी चतुर्वर्गफल की प्राप्ति को देते हैं और जो मनुष्य हे द्वारके ! हे द्वारके! ऐसा प्रातःकाल उठकर कहता है ॥ ४८ ॥ हे बले ! वह नित्य कीर्तन करने से

यावत्तिष्ठतिदेहे तु गोपीचन्दनपुण्ड्रकम् ॥ ४४ ॥ निमिषेनिमिषेपुण्यं दशधेनुफलप्रदम् ॥ गोपीचन्दनमृत्स्नायां स्पृष्टंयस्यकलेवरम् ॥ ४५ ॥ पापकोटिशतैर्युक्तो मुच्यते नात्र संशयः ॥ गोपीचन्दनपुण्ड्रेण द्वादश्यांजागरेकृते ॥ ४६ ॥ विष्णोर्नामसहस्रेण पठनेमुक्तिमाप्नुयात् ॥ भक्तिपूर्वविधानेन आगमोक्तेनपूजितः ॥ ४७ ॥ चतुर्वर्गफलावाप्तिं यच्छतेचक्रलाञ्छितः ॥ द्वारकेद्वारकेनित्यं प्रातरुत्थाययोनरः ॥ ४८ ॥ द्वारकासम्भवंनित्यं कीर्तनाल्लभतेबले ॥ येनित्यं प्रातरुत्थाय वैष्णवानां तु कीर्तनम् ॥ ४९ ॥ कुर्वन्तितेभागवताः कृष्णतुल्याःकलौबले ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे द्वारकामाहात्म्येएकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ श्रीनामाङ्कितपत्रैस्तु श्रीपतिंयोर्चयेत्तु वै ॥ सप्तलोकाननुप्राप्य सप्तद्वीपाधिपोभवेत् ॥ १ ॥ मालूर

द्वारका से उपजेहुए फल को पाता है और नित्य जो प्रातःकाल उठकर वैष्णवों को कीर्तन ॥ ४९ ॥ करते हैं हे बले ! कलियुग में वे वैष्णव श्रीकृष्णजी के समान हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ ॥

दो० । श्रीकृष्णहिं श्रीपत्रसन पूजि लहत फल जौन । बैयालिस अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ प्रह्लादजी बोले कि श्रीनाम से चिह्नित (बिल्व) पत्रों से जो श्रीपति विष्णुजी को पूजता है वह सातों लोकों को पाकर सातों द्वीपोंका स्वामी होताहै ॥ १ ॥ और बिल्ववृक्षके पत्रोंसे जो सदैव देवताओं को पूजते हैं वे सब कलियुग

में दशहज़ार अश्वमेध यज्ञों के पुण्य को पाते हैं ॥ २ ॥ और पीपलपत्र से छोड़े व मस्तक से गिरेहुए जलों से मुनि व ऋषिसमूह और देवता पवित्रता को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ और चतुरानन, शिव, सूर्य व इन्द्रादिक देवताओं को बिल्वपत्रों से पूजकर मनुष्य अविनाशी लोकों को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ और लक्ष्मी, सरस्वती देवी व सावित्री तथा चण्डिकाजी को श्रीवृक्ष नामक पत्रों से पूजकर मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं ॥ ५ ॥ व श्रीवृक्ष से उपजाहुआ पत्र तुलसीदल से अधिक कहागया है उस कारण नित्य बड़े यत्न से सदैव विष्णुजी को पूजना चाहिये ॥ ६ ॥ और रविवार द्वादशी में जो श्रीवृक्ष को पूजते हैं वे ब्रह्महत्या से कियेहुए सैकड़ों पापों से लिप्त

वृक्षपत्रैस्तु येऽर्चयन्तिसदासुरान् ॥ पुण्यंलभन्तेतेसर्वे वाजिमेधायुतंकलौ ॥ २ ॥ अश्वत्थदलनिर्मुक्तैः शिरसापतितैर्जलैः ॥ मुनयोऋषिसङ्घाश्च देवायान्तिपवित्रताम् ॥ ३ ॥ चतुर्वक्त्रंहरंसूर्यं वज्रहस्तादिकान्सुरान् ॥ श्रीवृक्षपत्रैःसम्पूज्य लोकानाप्नोतिचाक्षयान् ॥ ४ ॥ लक्ष्मींसरस्वतींदेवीं सावित्रींचण्डिकां तथा ॥ पूजयित्वादिवंयान्ति पत्रैःश्रीवृक्षसंज्ञकैः ॥ ५ ॥ तुलसीपत्राधिकंप्रोक्तं दलंश्रीवृक्षसम्भवम् ॥ तस्मान्नित्यंप्रयत्नेन पूजनीयःसदाच्युतः ॥ ६ ॥ द्वादश्यां रविवारेण श्रीवृक्षंयेऽर्चयन्ति वै ॥ ब्रह्महत्याकृतैःपापैर्न लिप्यन्तिशतैरपि ॥ ७ ॥ यथा हस्तिपदेन्यानि प्रविशन्ति पदानि तु ॥ तथा धर्माश्चदैत्येन्द्र नियमाहरिवासरे ॥ ८ ॥ यथा नीराणिसर्वाणि जलराशौविशन्ति वै ॥ तथा पुण्यानिसर्वाणि निमग्नानिहरेर्दिने ॥ ९ ॥ अध्रुवेणैव देहेन प्रतिक्षणविनाशिना ॥ कथं नोपासतेजन्तुर्द्वादश्यांजागरान्विते ॥ १० ॥ अतीतान्सप्तपुरुषान्भविष्यांश्च चतुर्दश ॥ नरस्तारयतेसर्वान्कलौकृष्णेतिकीर्तनात् ॥ ११ ॥ यागतिर्योगयुक्तस्य

नहीं होते हैं ॥ ७ ॥ जैसे हाथी के पांव में अन्य सब पांव प्रवेश करते हैं वैसेही हे दैत्येन्द्र ! धर्म व नियम विष्णुवासर (द्वादशी) में प्रवेश करते हैं ॥ ८ ॥ और जैसे सब जल समुद्र में प्रवेश करते हैं वैसेही सब पुण्य विष्णु के दिनमें मग्न हैं ॥ ९ ॥ प्रतिक्षण नाश होनेवाले विनाशी शरीरसे प्राणी कैसे जागरण से संयुत द्वादशीमें उपास नहीं करताहै ॥ १० ॥ कलियुग में कृष्ण ऐसा कीर्तन करने से मनुष्य सात बीतीहुई पुश्तियों को और चौदह भविष्य पुश्तियों को सब को तारताहै ॥ ११ ॥ और

योग से संयुत विद्वान् की जो गति होती है द्वारका को जातेहुए मनुष्य को एक पग से वह गति होती है ॥ १२ ॥ और जहां तहां टिकेहुए वे मनुष्य इस लोक में जीते नहीं हैं व तीनों लोकों में वे वंचित हैं जो कि द्वारका को नहीं प्राप्त हुए हैं ॥ १३ ॥ और जो द्वारका में संन्यासियों को भोजन कराते हैं वे मनुष्य प्रत्येक कवल में सौ यज्ञों के फल को पाते हैं ॥ १४ ॥ व जो मनुष्य द्वारका के मध्य में यतियों को कौपीनाच्छादन देते हैं व यथाशक्ति से भोजन देते हैं ॥ १५ ॥ हे दैत्यज ! उनके पुण्य को मैं संक्षेप से कहता हूं सुनिये और विस्तार से कहने के लिये ऋषि व देवताओं के गण असमर्थ हैं ॥ १६ ॥ हे दैत्यनायक ! पितृपक्ष में

भवेच्चैव मनीषिणः ॥ द्वारकांगच्छमानस्य पदेनैकेनसाभवेत् ॥ १२ ॥ न तेजीवन्तिलोकेस्मिन् यत्रतत्रस्थितानराः ॥ द्वारकां ये न सम्प्राप्तास्त्रिषुलोकेषुवञ्चिताः ॥ १३ ॥ द्वारकायांकारयन्ति यतीनांभोजनं च ये ॥ ग्रासेग्रासेमखशतं ते ल भन्तेफलंनराः ॥ १४ ॥ यतीनांयेप्रयच्छन्ति कौपीनाच्छादनादिकम् ॥ वसतांद्वारकामध्ये यथाशक्त्या तु भोजन म् ॥ १५ ॥ शृणुपुण्यं प्रवक्ष्यामि समासेन हि दैत्यज ॥ विस्तारादसमर्थाश्च ऋषयोदेवतागणाः ॥ १६ ॥ कोटिभिर्वेदविद्द्भिर्गयायांपितृपक्षतः ॥ भोजितैर्यदवाप्नोति तत्फलंदैत्यनायक ॥ १७ ॥ एकस्मिन्भोजितेपौत्र भिक्षुकेफलमीदृशम् ॥ दातव्यंभिक्षुकेचान्नं न कुर्याद्धान्यविक्रयम् ॥ १८ ॥ धन्यास्तेयतयःसर्वे ये वसन्तिकलौयुगे ॥ कृष्णमाश्रित्यदैत्येन्द्र द्वारकायांदिनेदिने ॥ १९ ॥ येधन्यास्तेद्विजेन्द्राश्च द्वारकायांकलौयुगे ॥ प्रातरुत्थायपश्यन्ति कृष्णस्यमुखपङ्कज म् ॥ २० ॥ पशवःकृमयःकीटा येचान्येपक्षियोनयः ॥ मुक्तिंयास्यन्तितेसर्वे सन्तियेद्वारकांपुरीम् ॥ २१ ॥ प्राणिनोयेगताः

गया में करोड़ वेदज्ञ ब्राह्मणों को भोजन कराने से जिस फल को मनुष्य पाता है उस फल को ॥ १७ ॥ हे पौत्र ! एक यती के भोजन कराने से मनुष्य पाता है ऐसा यती में फल है और संन्यासी के लिये अन्न देना चाहिये व अन्न का विक्रय न करै ॥ १८ ॥ हे दैत्येन्द्र ! वे सब यती धन्य हैं जोकि कलियुग में श्रीकृष्णजी के आश्रित होकर प्रतिदिन द्वारका में बसते हैं ॥ १९ ॥ और जो धन्य द्विजोत्तम हैं वे कलियुग में प्रातःकाल उठकर द्वारका में श्रीकृष्णजी के मुखकमल को देखते हैं ॥ २० ॥ पशु, कृमि, कीट व जो अन्य पशुयोनि हैं वे सब मुक्ति को प्राप्त होवैंगे जो कि द्वारकापुरी में हैं ॥ २१ ॥ और जो कोई प्राणी द्वारका को श्रीकृष्णजी के

समीप गये हैं वे पापी भी सूर्यमंडल को फोडकर उन श्रीकृष्णजी के स्थान को जाते हैं ॥ २२ ॥ और ब्रह्मा से लगाकर स्तम्ब (तृणगुच्छ) पर्यन्त यह सब संसार उनसे तृप्त होता है जोकि द्वारकापुरी को गये हैं ॥ २३ ॥ और जंगम व स्थावर जो कोई तीर्थ हैं वे गोमती व समुद्र के संगम में त्रिकाल स्नान करते हैं ॥ २४ ॥ और भुवन से लगाकर ब्रह्मातक देवता, ऋषि, पितर व मनुष्यों को गोमती में भक्ति से तर्पण कर मनुष्य विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ २५ ॥ और भोजनों से ब्राह्मणों को व विशेषकर चारों वर्णों को तृप्तकर श्रीकृष्णजी के समीप दीन, अन्ध व कृपणों को देना चाहिये॥ २६ ॥ और जो मनुष्य वैशाखमें द्वादशी के दिन स्नान,

केचिद्द्वारकांकृष्णसन्निधौ ॥ पापिनस्तत्पदंयान्ति भित्त्वातेसूर्यमण्डलम् ॥ २२ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगदेतच्चराचरम् ॥ प्रीणितंतैश्च सर्वन्तु येगताद्वारकांपुरीम् ॥ २३ ॥ यानिकानि च तीर्थानि चराणिस्थावराणि च ॥ स्नानं त्रिकालंकुर्वन्ति गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ २४ ॥ देवानृषीन्पितॄन्मर्त्यानाब्रह्मभुवनादिकम् ॥ तर्पयित्वा तु गोमत्यां भक्त्यायान्तिपदंहरेः ॥ २५ ॥ भोजनैर्ब्राह्मणांस्तर्प्य चातुर्वर्ण्यं विशेषतः ॥ दीनान्धकृपणानां च देयं वै कृष्णसन्निधौ ॥ २६ ॥ स्नानं च दानं च जपं तपश्च भुक्तिंयतीनांपितृपिण्डदानम् ॥ ये माधवेद्वादशिवासरे च कुर्वन्तिते यान्तिपदंमुरारेः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाकृष्णमुखंरम्यं कार्त्तिकेशुक्लपक्षतः ॥ कोटिजन्मार्जितैःपापैर्मुच्यन्तेसर्वजन्तवः ॥ २८ ॥ पापिनांपुण्यकर्तॄणां मुक्तिर्द्वारावतींपुरीम् ॥ तत्रपौत्रमृतानां च पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २९ ॥ द्वारकाचक्रतीर्थेये निवसन्तिनरोत्तमाः ॥ तेषांनिवारिताःसर्वे यमेन यमकिङ्कराः ॥ ३० ॥ स्नाताःपश्यन्तिगोमत्यां कृष्णंकलिमला

दान, जप, तप व यतियोंको भोजन और पितरों को पिंडदान करते हैं वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ २७ ॥ और कातिक में शुक्लपक्ष में श्रीकृष्णजीके सुन्दर मुख को देखकर सब प्राणी करोड़ जन्मों में इकट्ठा कियेहुए पातकों से छूटजाते हैं ॥ २८ ॥ और पापी व पुण्यकारी जनों की मुक्ति द्वारकापुरी में होती है व हे पौत्र ! वहां मरेहुए मनुष्यों का फिर जन्म नहीं होताहै ॥२९॥ और द्वारका के चक्रतीर्थ में जो उत्तम मनुष्य बसते हैं उनके लिये सब यमदूत यमराजसे मना कियेजाते हैं ॥ ३० ॥ और

नहायेहुए जो मनुष्य कलियुग के पाप को नाशनेवाले श्रीकृष्णजी को देखते हैं उनके पाप नहीं होता है और न उनके शत्रु होते हैं ॥ ३१ ॥ और कीट, पतंग व वृक्ष और जो उनके आश्रित होते हैं वे अच्युत व अव्यय संज्ञक श्रीकृष्णजी के स्थान को जाते हैं ॥ ३२ ॥ फिर अपने धर्म में स्थित ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्विजों को क्या कहना है और क्षत्रिय धर्म को जाननेवाले क्षत्रिय व मार्ग में चलनेवाले वैश्यों को क्या कहना है ॥ ३३ ॥ और तीनों वर्णों की पूजा से संयुत जो वहां रहनेवाले शूद्र हैं वे द्वारका के प्रभाव से विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ ३४ ॥ और जो महापातकों से संयुत व उपपातकों को करनेवाले हैं भक्ति से संयुत वे त्रिकाल

पहम् ॥ न तेषांविद्यतेपापं न तेषांसन्तिशत्रवः ॥ ३१ ॥ अपिकीटाःपतङ्गावा वृक्षा वा येतदाश्रिताः ॥ यान्तितेकृष्णसदनमच्युताव्ययसञ्ज्ञकम् ॥ ३२ ॥ किंपुनर्द्विजवर्याश्च स्वधर्मस्थाद्विजातयः ॥ क्षत्रियाःक्षत्रधर्मज्ञा वैश्यामार्गानुसारिणः ॥ ३३ ॥ त्रिवर्णपूजासंयुक्ताः शूद्रास्तत्रनिवासिनः ॥ द्वारकायाःप्रभावेण पदंविष्णोःप्रयान्तिते ॥ ३४ ॥ महापापान्वितायेवै उपपापकृतास्तथा ॥ पठेयुर्नामसहस्रं त्रिकालंभक्तिसंयुताः ॥ ३५ ॥ तथाभागवतस्योक्तं पुराणंश्लोकमुत्तमम् ॥ कृष्णस्यप्रीतिजननं यज्ञकोटिफलप्रदम् ॥ ३६ ॥ तेषांविलीयतेपापं कल्पकोटिशतैःकृतम् ॥ गीतांपठन्तिकृष्णाग्रे कार्त्तिकंसकलंद्विजाः ॥ ३७ ॥ एकभक्तेननक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ प्राजापत्येनकृच्छ्रेण तथा चान्द्रायणेन च ॥ ३८ ॥ सकलैस्तत्रकृच्छ्राद्यैः पक्षमासमुपोषणैः ॥ क्षपयन्ति च ये मासं कार्त्तिकंव्रतचारिणः ॥ ३९ ॥ स्नात्वा तु गोमतीतोये तथा वै रुक्मिणीह्रदे ॥ शङ्खचक्रगदाहस्ताः कृष्णवेषाभवन्तिते ॥ ४० ॥ उपोष्यैकादशींशुद्धां

सहस्रनाम को पढ़ें ॥ ३५ ॥ और भागवत के कहेहुए उत्तम व पुराण तथा श्रीकृष्णजी की प्रीति को पैदा करनेवाले व करोड़ों यज्ञों के फल को देनेवाले श्लोक को जो पढ़ते हैं ॥ ३६ ॥ उनका करोड़ों जन्मों में कियाहुआ पाप नाश होजाता है और श्रीकृष्णजी के आगे जो ब्राह्मण समस्त कातिक महीने भर गीता को पढ़ते हैं ॥ ३७ ॥ और एकभक्त, नक्त, अयाचित, प्राजापत्यकृच्छ्र व चान्द्रायण से ॥ ३८ ॥ और वहां सब कृच्छ्रादिकों से तथा पक्ष व महीनेभर उपास करने से जो व्रतको करनेवाले मनुष्य गोमती के जल में व रुक्मिणी के कुण्ड में नहाकर कातिक महीने को व्यतीत करते हैं शंख, चक्र व गदा को हाथ में लियेहुए वे कृष्णवेष होते हैं ॥ ३९ । ४० ॥ और

दशमी के संग से दूषित शुद्ध एकादशी को उपास कर जो मनुष्य द्वादशी तिथि में चक्रतीर्थ में निर्मल श्राद्ध को करते हैं ॥ ४१ ॥ और शहद, खीर व घी से ब्राह्मणों को भोजन कराकर व विशेष कर घृत से पूर्ण लड्डुवों और दूध से ॥ ४२ ॥ विधिपूर्वक भक्ति से तृप्तकर व शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, तांबूल व फलों को देवै ॥ ४३ ॥ और पनही, छतुरी, पुष्प व जलसे भरेहुए उत्तम घटोंको पक्वान्नसंयुत, सफल व दक्षिणा से संयुत देवे ॥ ४४ ॥ कातिक महीने में श्रीकृष्णजी को उद्देश कर विशेषकर पितरों की बड़ी भक्ति से भावित जो मनुष्य ऐसा करता है ॥ ४५ ॥ तो निश्चयकर पितरोंकी मार्कण्डेयके समान प्रीति होती है और देवताओं

दशमीसङ्गवर्जिताम् ॥ श्राद्धंकुर्वन्तिद्वादश्यां चक्रतीर्थेषुनिर्मलम् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु मधुपायसस पिंषा ॥ लड्डुकैर्घृतपूरैश्च पयसा च विशेषतः ॥ ४२ ॥ सन्तर्प्यविधिवद्भक्त्या शक्त्यादत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥ गोभूहिर ण्यवासांसि ताम्बूलं च फलानि च ॥ ४३ ॥ उपानच्छत्रकुसुमं जलपूर्णान्घटांस्तथा ॥ पक्वान्नसंयुताञ्छुभ्रान्सफ लान्दक्षिणान्वितान् ॥ ४४ ॥ एवंयःकुरुतेसम्यक् कृष्णमुद्दिश्यकार्त्तिके ॥ पितॄणान्तुविशेषेण गुरुभक्तिप्रभावि तः ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयसमाप्रीतिः पितॄणांजायतेध्रुवम् ॥ कृष्णस्यत्रिदशैःसार्द्धं तुष्टिर्भवतिचाक्षया ॥ ४६ ॥ आनी यसर्वतीर्थानि श्रीकृष्णेनमहात्मना ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानिस्थापितानिस्वकींपुरीम् ॥ ४७ ॥ ततःपुरीद्वारवती मुक्ति दाप्रोच्यतेबुधैः ॥ नमस्कारकृतेयस्याः सद्यस्तुष्यतिचक्रधृक् ॥ ४८ ॥ वसतिद्वारकायान्तु चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ वैष्णवानां तु संप्रीत्या भक्त्यादुर्वाससश्च हि ॥ ४९ ॥ अनुज्ञया तु देवानां भूभागेतारणाय वै ॥ वसतेद्वारकायां

समेत श्रीकृष्णजी की अक्षय प्रसन्नता होती है ॥ ४६ ॥ महात्मा श्रीकृष्णजी ने स्वर्ग, आकाश व पृथ्वी के सब तीर्थों को लाकर अपनी पुरी में स्थापित कियाहै ॥ ४७ ॥ उसीकारण द्वारकापुरी विद्वानों से मुक्तिदायिनी कहीजाती है कि जिसके नमस्कार करने से उसी क्षण चक्रधारी विष्णुजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ४८ ॥ गदाधारी व चक्रपाणि विष्णुजी वैष्णवों की प्रीति व दुर्वासाजी की भक्ति से द्वारका में बसते हैं ॥ ४९ ॥ और देवताओं की आज्ञा से पृथ्वी के विभाग में श्रीकृष्णजी तारने के लिये कलि-

काल में द्वारकापुरी में बसते हैं ॥ ५० ॥ कातिक महीने में व्रत व दान से संयुत जो पुण्यवान् मनुष्य द्वारकापुरी में टिकते हैं चक्रतीर्थ में किये पवित्र शरीरवाले वे मनुष्य पवित्र व विकाररहित स्थान को जाते हैं ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

दो० । जौन तीर्थ पितृदेवता बसत द्वारका बीच । तेंतालिसवें में सोई कह्यो चरित सुखसीच ॥ प्रह्लादजी बोले कि संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जो कि गोमती में तर्पणकर श्रीकृष्णजी को अपने तुलसीदलों से पूजते हैं ॥ १ ॥ और द्वारका में जो मनुष्य श्रीकृष्णजी को तुलसीदलों से पूजते हैं उनका इस भयंकर संसारगुहा

तु कलिकाले तु केशवः ॥ ५० ॥ ये कार्त्तिकेपुण्यमतोमनुष्यास्तिष्ठन्तिमासेव्रतदानयुक्ताः ॥ रथाङ्गतीर्थेकृतपूतगात्रास्ते यान्तिपुण्यंपदमव्ययं च ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ धन्यास्तु ननु ते लोके गोमत्यान्तु कृतोदकाः ॥ पूजयिष्यन्ति ये कृष्णं स्वकीयैस्तुलसीदलैः ॥ १ ॥ न तेषांसम्भवोस्तीह घोरसंसारगह्वरे ॥ द्वारकांयेर्चयिष्यन्ति कृष्णंतुलसिपत्रकैः ॥ २ ॥ ते भवन्तिनरोमुक्ता द्वारकायांवसन्ति ये ॥ तेषांजन्मपुनर्नास्ति अमरत्वं हि तेगताः ॥ ३ ॥ अन्यत्रैव यतीनां च कोटीनांयत्फलंलभेत् ॥ द्वारकायां तु चैकेन भोजितेन तु चाधिकम् ॥ ४ ॥ अतीतंवर्त्तमानं च भविष्यंयच्च पातकम् ॥ निर्दहेन्नास्तिसन्देहो द्वारकामनसास्मृता ॥ ५ ॥ द्वारकान्तु समासाद्य श्रीकृष्णमनुपश्यति ॥ कल्पकोटिसहस्रैस्तु नास्तितस्यपुनर्भवः ॥ ६ ॥ तीर्थाध्ययनयज्ञैश्च न मुञ्चन्तिनराभुवि ॥ द्वारकां ये च गच्छन्ति कृतार्थास्तेनरोत्तमाः ॥ ७ ॥ कामक्रोधेन लोभेन

में जन्म नहीं होता है ॥ २ ॥ और जो द्वारका में बसते हैं वे मनुष्य मुक्त होजाते हैं व फिर उनका जन्म नहीं होता है और वे अमरता को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ और अन्यत्र करोड़ संन्यासियों से मनुष्य जिस फलको पाता है द्वारका में एक यती को भोजन कराने से उससे अधिक फल होता है ॥ ४ ॥ और भूत, वर्तमान व भविष्य जो पाप होता है उसको मन से स्मरण कीहुई द्वारका नाश करती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ द्वारका को जाकर जो मनुष्य श्रीकृष्णजी को देखता है उसका करोड़ सौ कल्पोंसे भी फिर जन्म नहीं होता है ॥ ६ ॥ पृथ्वी में मनुष्य तीर्थ, पठन व यज्ञोंसे मुक्त नहीं होतेहैं और द्वारकामें जो बसते हैं वे उत्तम मनुष्य कृतार्थ होते हैं ॥ ७ ॥ और

काम, क्रोध व लोभ से जो मनुष्य पृथ्वी में प्राप्त हुए हैं वे कलियुग में श्रीकृष्णजी से पालित द्वारकापुरी को नहीं जानते हैं ॥ ८ ॥ और जो मनुष्य द्वारकावा
श्रीकृष्णजी की स्तुति करते हैं व पूजते हैं महापातकों से छूटेहुए वे अजर अमर होकर बसते हैं ॥ ९ ॥ और करोड़ कुलों से संयुत वे अक्षय व अमर होते हैं औ
बहुत आनन्दित होकर विष्णु जी की द्वारकापुरी में बसते हैं ॥ १० ॥ व अन्यत्र टिकेहुए मूढ़ मनुष्य द्वारकापुरी को क्यों नहीं सेवन करते हैं जहां कि मरेहुए प्राणि
की सदैव श्वेतद्वीप में स्थिति होती है ॥ ११ ॥ और अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप व सोमपादिक इकतिस वे पितरों के गण द्वारका में बसते हैं ॥ १२ ॥ औ

ये गतामानवाभुवि ॥ द्वारकांनाभिजानन्ति कलौकृष्णेनपालिताम् ॥ ८ ॥ द्वारकावासिनंकृष्णं येस्तुवन्त्यर्चयन्ति
च ॥ महापापैःप्रमुक्तास्तेन्यवसन्त्यजरामराः ॥ ९ ॥ अक्षयाश्चमराश्चैव कुलकोटिसमन्विताः ॥ वसन्ति च तथा वि
ष्णोर्द्वारकायांसुनिर्वृताः ॥ १० ॥ कथन्नसेव्यतेमूढैर्द्वारकान्यत्रसंस्थितैः ॥ मृतानांयत्रजन्तूनां श्वेतद्वीपेस्थितिःस
दा ॥ ११ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषद आज्यपाःसोमपादयः ॥ एकत्रिंशत्पितृगणा द्वारकां निवसन्ति ते ॥ १२ ॥ पुष्करा
दीनितीर्थानि गङ्गाद्याःसरितस्तथा ॥ कुरुक्षेत्रादिक्षेत्राणि काश्याद्याःसप्तपुर्यकाः ॥ १३ ॥ गयादिपितृतीर्थानि प्रभा
साद्यानियानि तु ॥ वनान्युपवनानीह ग्रामाणिनिवसन्ति वै ॥ १४ ॥ काश्यादिषट्पुरीनित्यं निवसन्तिकलौयुगे ॥
नित्यंकृष्णंप्रसेवन्ति पापिनांमुक्तिहेतुकम् ॥ १५ ॥ वैशाखेशुक्लद्वादश्यां प्रबोधिन्यांविशेषतः ॥ वैशाख्यांदैत्यशा
र्दूल कल्पादिषुयुगादिषु ॥ १६ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेषु मन्वादिषु न संशयः ॥ व्यतीपातेषुसंक्रान्तौ वैधृतौदैत्यनाय

पुष्करादिक तीर्थ व गंगादिक नदियां, कुरुक्षेत्रादिक क्षेत्र व काशी आदिक सात पुरी ॥ १३ ॥ व गयादिक पितरों के तीर्थ और जो प्रभासादिक तीर्थ हैं व वन और
उपवन इस द्वारकापुरी में बसते हैं ॥ १४ ॥ कलियुग में काशी आदिक छः पुरियां सदैव बसती हैं व पापियों की मुक्ति के कारणरूप श्रीकृष्णजी को नित्य सेवती
हैं ॥ १५ ॥ व हे दैत्यशार्दूल ! वैशाख में शुक्लपक्ष की द्वादशी में व विशेषकर प्रबोधिनी में और वैशाखी व कल्पादि तथा युगादि तिथियों में ॥ १६ ॥ व हे दैत्य-

नायक ! चन्द्रमा, सूर्य के ग्रहणों में, मन्वादिक तिथियों में और व्यतीपात योग में व संक्रान्ति तथा वैधृति में ॥ १७ ॥ जहां पिण्डदानपूर्वक मनुष्य श्राद्ध करते हैं वहां उन पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायात्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❀ ॥

दो० । यहि द्वारका महात्मकर अहै अमित परभाव । चवालिसें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ प्रह्लादजी बोले कि वैशाखी व कार्त्तिक महीने में जो मनुष्य द्वारका में वृषोत्सर्ग करते हैं उनके पितर पिशाचत्व को छोड़कर मुक्त होजाते हैं ॥ १ ॥ जबतक पुत्र या पौत्र द्वारकापुरी को नहीं जाता है तबतक पितरों की गति नहीं

क ॥ १७ ॥ यत्रश्राद्धंप्रकुर्वन्ति पिण्डदानपुरस्सरम् ॥ तेषांतत्राक्षयातृप्तिः पितॄणामुपजायते ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ वृषोत्सर्गप्रकुर्वन्ति वैशाख्यां चैव कार्त्तिके ॥ द्वारकायां पिशाचत्वं मुक्तामुक्ताःपितामहाः ॥ १ ॥ पिशाचत्वस्यस्थिरता पितॄणां न गतिर्भवेत् ॥ यावन्न गच्छतेपुत्रः पौत्रो वा द्वारकांपुरीम् ॥ २ ॥ वैशाख्यांपौर्णमास्यां च दृष्ट्वा वै रुक्मिणीपतिम् ॥ आजन्मसञ्चितैःपापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ३ ॥ रुक्मिण्याश्चह्रदेस्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ तर्पिताःपितरोदेवाः सप्तमन्वन्तराणि वै ॥ ४ ॥ पानीयंपिबतेयस्तु गोमत्यारुक्मिणीह्रदे ॥ न तस्यतिष्ठते पापं शरीरेपुनरेव हि ॥ ५ ॥ तीर्थानियानिदिविचान्तरिक्षे रसातलेदिक्षुविदिक्षुभूम्याम् ॥ इदं हि सर्वेषुवरं च तीर्थं ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिसुरैःप्रगीतम् ॥ ६ ॥ ये चैवजीवाण्डजउद्भिजाद्यादैत्येश येस्वेदजसम्भवाश्च ॥ जरायुजाश्चैव तथाप्रभूता मुच्य

होती है और पिशाचता की स्थिरता होती है ॥ २ ॥ और वैशाखी पौर्णमासी में रुक्मिणीपति श्रीकृष्णजी को देखकर जन्म से लगाकर इकट्ठा कियेहुए पापों से मनुष्य छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ और रुक्मिणीजीके कुण्ड में नहाकर जो मनुष्य पितरों व देवताओं को तर्पण करता है उसके पितर व देवता सात मन्वन्तरों तक तर्पित होते हैं ॥ ४ ॥ और जो मनुष्य गोमती के रुक्मिणीकुण्ड में जल पीता है उसके शरीर में फिर पाप नहीं स्थित होता है ॥ ५ ॥ और स्वर्ग, आकाश, रसातल, दिशाओं व विदिशाओं और भूमि में जो तीर्थ हैं उन सबों में यह तीर्थ श्रेष्ठ है ऐसा ब्रह्मा, इन्द्र व रुद्रादि देवताओं ने गाया है ॥ ६ ॥ व हे दैत्येश

अण्डज व उद्भिज आदिक जो जीव हैं और जो स्वेदज से उपजेहुए जीव हैं वे और जरायुज प्राणी श्रीकृष्णजी के समीप मुक्त होजाते हैं ॥ ७ ॥ व हे दैत्येश ! सब प्राणी जो कि रसातल में हैं व जो जल के आश्रय हैं और जो ब्रह्मतेज के आश्रित हैं वे श्रीकृष्णजी को प्राप्त होकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ सब दशा में प्राप्त जो मनुष्य द्वारका को नहीं छोड़ता है वह उस गति को पाता है जिसको कि मनुष्य करोड़ सौ यज्ञों से पाता है ॥ ९ ॥ ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी व गुरुस्त्रीगमन इन बड़ेभारी भी पापों को करके ॥ १० ॥ हे दैत्येन्द्र ! गोमती में स्नान से व श्रीकृष्णजी के दर्शन में करोड़ों सौ कल्प के पाप नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ और जो

न्तिकृष्णस्य च सन्निधाने ॥ ७ ॥ दैत्येशभूतानिसमस्तजीवा रसातलेये च जलाश्रयाश्च ॥ ब्राह्मयञ्च तेजोपिसमाश्रिताये कृष्णंसमासाद्यप्रयान्तिमुक्तिम् ॥ ८ ॥ सर्वावस्थोपियोमर्त्यो द्वारकां न जहाति च ॥ सताङ्गतिमवाप्नोति क्रतुकोटिशतैर्नरः ॥ ९ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमः ॥ पापान्येतानिकृत्वा तु महान्त्यपिगुरूण्यपि ॥ १० ॥ स्नानमात्रेणगोमत्यां श्रीकृष्णस्य तु दर्शने ॥ विलयंयान्तिदैत्येन्द्र कल्पकोटिशतान्यपि ॥ ११ ॥ रुक्मिणींयेप्रपश्यन्ति भक्तियुक्ताःकलौनराः ॥ न तेषांसंक्रमेत्पापं मन्वन्तरशतैःकृतम् ॥ १२ ॥ पुरींप्रदक्षिणींकृत्वा पठेन्नामसहस्रकम् ॥ प्रदक्षिणीकृतंसर्वं ब्रह्माण्डंनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ महद्भिःपातकैर्युक्ताः सन्तियेशास्त्रनिन्दकाः ॥ पापैःसर्वैःप्रमुच्यन्ते कृष्णदेवस्यदर्शनात् ॥ १४ ॥ सर्वेषां चैव पापानां भेषजंद्वारकाकलौ ॥ कृष्णःस्वायंभुवोदेवः प्रत्यक्षोयत्रतिष्ठति ॥ १५ ॥ महादानैस्तु चान्यत्र यत्फलंपरिकीर्तितम् ॥ द्वारकायान्तुकाकिण्यां दत्तायांजायतेक्षणात् ॥ १६ ॥ द्वारका

भक्तिसंयुत मनुष्य कलियुग में रुक्मिणीजी को देखते हैं सौ मन्वन्तरों में किया हुआ उनका पाप नहीं आक्रमण करता है ॥ १२ ॥ और जो पुरी की प्रदक्षिणाकर सहस्रनाम को पढ़ता है उसने सब ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा किया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य बड़े पातकों से संयुत व जो शास्त्रनिन्दक होते हैं वे श्रीकृष्णदेवजी के दर्शन से सब पापों से छूटजाते हैं ॥ १४ ॥ और कलियुग में द्वारका सब पापों की औषध है जहां कि स्वायंभुव श्रीकृष्णदेवजी प्रत्यक्ष स्थित हैं ॥ १५ ॥ अन्यत्र महादानों से जो फल कहागया है वह द्वारका में एक काकिणी देने से क्षणभर में होता है ॥ १६ ॥ एक ओर द्वारका कहीगई है व एक ओर सब

तीर्थ कहेगये हैं और द्वारका में प्राणों को छोड़ताहुआ मनुष्य अक्षय गति को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ और द्वादशी दिन प्राप्त होने पर जो द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को विष्णुजी के समीप पढ़ता है उसके फलको मैं कहता हूं तुम सुनो ॥ १८ ॥ कि वह मनुष्य घण्टियों के समूह से मालावाले सुवर्ण के विमान से सब लोकों में कामगामी होकर विराजता है ॥ १९ ॥ और वीणा व मुरज को बजानेवाले सुरराजगण समूह से संयुत तथा गर्वित अश्वों से युक्त कामगामी विमान के द्वारा वह सुखपूर्वक ॥ २० ॥ प्रलय पर्यन्त अप्सराओं के गणों समेत क्रीडा करता है और करोड़ों पुश्तियों से संयुत वह कृतार्थ होता है ॥ २१ ॥ और जैसे बिन इन्धन की

चैकतःप्रोक्ता सर्वतीर्थानिचैकतः ॥ द्वारकायांत्यजन्प्राणाल्लँभतेचाक्षयांगतिम् ॥ १७ ॥ द्वादशीवासरेप्राप्ते माहात्म्यं द्वारकोद्भवम् ॥ पठतेसन्निधौविष्णोः शृणुवक्ष्यामितत्फलम् ॥ १८ ॥ सर्वेषु चैव लोकेषु कामचारीविराजते ॥ ससुवर्णे नयानेन किङ्कणीजालमालिना ॥ १९ ॥ देवराजगणौघेन वीणामुरजवादिना ॥ दर्पिताश्वप्रयुक्तेन कामगेन यथासु खम् ॥ २० ॥ आभूतसम्प्लवंयावत् क्रीडतेप्सरसाङ्गणैः ॥ कृतकृत्यश्च भवति कुलकोटिसमन्वितः ॥ २१ ॥ यथाचा निन्धनाग्निस्तु सर्वकाष्ठेषुदृश्यते ॥ तथा च दृश्यतेधर्मो द्वादशीसेवकेनरे ॥ २२ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिपितृभिःपरिकी र्त्तितम् ॥ मघायांदैत्यशार्दूल काममद्भिःस्वकेपुरे ॥ २३ ॥ अप्यस्तिसकुलेस्माकं योनोदद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ तिलाक्षतै श्चसंयुक्तं द्वारकायांप्रदास्यति ॥ २४ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं गोमत्यांश्राद्धमाचरेत् ॥ पयोमूलफलैःपुष्पैस्तिलतोयैः प्रयत्नतः ॥ २५ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकंगोमत्युदधिसंगमे ॥ स्नात्वादास्यतियःपिण्डमस्माकंतरणाय वै ॥ २६ ॥ अपि

अग्नि सब काष्ठों में देख पड़ती है वैसेही द्वादशी सेवन करनेवाले मनुष्य में धर्म देखपड़ता है ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त हे दैत्यशार्दूल ! मैं पितरों से कहेहुए वचन को कहता हूं कि हमलोगों के कुल में वह पुत्र होवै जोकि मघा नक्षत्र में अपने पुरमें व द्वारकामें इच्छा के अनुकूल जलों से और तिलों तथा अक्षतों से संयुत जलांजलि को देवै ॥ २३ । २४ ॥ और हमारे वंश में वह पुरुष होवै जो कि बड़े यत्न से दूध, जड़, फल, पुष्प, तिल व जलों से गोमती के किनारे श्राद्ध करै ॥ २५ ॥ और वह पुरुष हमलोगों के वंश में होवै जो कि हमलोगों के तरने के लिये गोमती और समुद्र के संगम में नहाकर पिंड को देवै ॥ २६ ॥ और हमलोगों के वंश में वह

पुत्र होवै जो कि शक्ति के अनुसार इस द्वारकामाहात्म्य को पूजै ॥ २७ ॥ और हमलोगों के वंश में वह पुत्र या कन्या का पुत्र होवै जोकि द्वारका में जाकर योगियों को तृप्त करै ॥ २८ ॥ व हमलोगों के वंश में वह पुत्र होवै जोकि द्वारकापुरी को जाकर व शुद्ध द्वादशी को प्राप्त होकर जागरण करै ॥ २९ ॥ और हमलोगों के वंश में वह पुत्र या कन्या का पुत्र होवै स्तुति करताहुआ जोकि श्रीकृष्णजी के आगे विष्णुसहस्रनाम को पढ़ै ॥ ३० ॥ और हमलोगों के वंश में व्रत को ग्रहण कियेहुए जोकि गोपीचन्दन के दान से वैष्णवों को प्रसन्न करै ॥ ३१ ॥ और हमलोगों के वंश में वह पुत्र होवै जोकि द्वारका में माहात्म्य को लिखकर श्रीकृष्णजी की

स्यात्सकुलेस्माकं भविष्यत्यथवासुतः ॥ द्वारकामाहात्म्यमिदं पूजयिष्यतिशक्तितः ॥ २७ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं पुत्रो वा पुत्रिकासुतः ॥ योगत्वाद्द्वारकायान्तु योगिनःप्रीणयिष्यति ॥ २८ ॥ भविष्यतिकुलेस्माकं योगत्वाद्द्वारकांपुरीम् ॥ संप्राप्यद्वादशींशुद्धां यःकरिष्यतिजागरम् ॥ २९ ॥ भविष्यतिकुलेस्माकं पुत्रो वा दुहितुःसुतः ॥ स्तुवन्नामसहस्रन्तु कृष्णस्याग्रेपठिष्यति ॥ ३० ॥ अपिस्यात्तुकुलेस्माकं भविष्यतियतव्रतः ॥ गोपीचन्दनदानेन यः स्तोषयतिवैष्णवान् ॥ ३१ ॥ भविष्यतिकुलेस्माकं माहात्म्यंद्वारकासु च ॥ लिखित्वाकृष्णतुष्ट्यर्थं स्वगृहेधारयिष्यति ॥ ३२ ॥ स्वर्णदानं च गोदानं पृथ्वीदानं तथैव च ॥ यावज्जीवंभवेद्दत्तं येनेदंधारितंकलौ ॥ ३३ ॥ तप्तंकृच्छ्रंमहाकृच्छ्रं मासोपाससमंव्रतम् ॥ यावज्जीवंकृतंतेन येनेदंधारितंगृहे ॥ ३४ ॥ प्रायश्चित्तानिचीर्णानि पापानांनाशनाय वै ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं येनेदंलिखितंबले ॥ ३५ ॥ सर्वकामप्रदंत्वेतत्सर्वदानफलप्रदम् ॥ सर्वदुःखप्रशमनं सर्वरो

प्रसन्नता के लिये अपने घरमें धारण करै ॥ ३२ ॥ और कलियुग में जिसने जीवनपर्यन्त इसको धारण किया उसने सुवर्णदान, गोदान, भूमिदान को दिया ॥ ३३ ॥ और उसने कृच्छ्र व महाकृच्छ्र तप किया व जीवनपर्यन्त उसने मासोपवास के समान व्रत किया कि जिसने इसको घरमें धारण किया ॥ ३४ ॥ व हे बले! जिसने द्वारका के इस माहात्म्य को लिखा है उसने पातकों के नाश के लिये प्रायश्चित्तों को किया है ॥ ३५ ॥ यह माहात्म्य सब कामनाओं को देनेवाला तथा सब दानों के फल को

देनेवाला है और सब दुःखों का नाशक व सब रोगों का विनाशक है ॥ ३६ ॥ व महासम्पत्तियों को देनेवाला और दारिद्र का एकही नाशक व सदैव सम्पत्ति का कारण और सदैव धर्म को बढ़ानेवाला है ॥ ३७ ॥ और सब उत्पातों का नाशक व विष, शस्त्र तथा अग्नि का नाशक व सब विघ्नों का विनाशक और सब कार्योंका साधक है ॥ ३८ ॥ व नित्य चतुर्वर्गफल को देनेवाला तथा सदैव धर्म को बढ़ानेवाला है और उसके रोग नहीं होता है व यमराज का डर नहीं होता है ॥ ३९ ॥ जहां द्वारका से उपजाहुआ माहात्म्य पढ़ाजाता है व जिस घर में लिखाहुआ यह माहात्म्य सदैव स्थित होता है ॥ ४० ॥ वहां मनुष्य इस सबको पाता है जोकि

गविनाशनम् ॥ ३६ ॥ महासम्पत्प्रदंनित्यं दारिद्र्यस्यप्रभञ्जनम् ॥ सम्पत्तिकारणंनित्यं नित्यंधर्मविवर्द्धनम् ॥ ३७ ॥ सर्वोत्पातप्रशमनं विषशस्त्राग्निनाशनम् ॥ सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वकार्यप्रसाधनम् ॥ ३८ ॥ चतुर्वर्गप्रदंनित्यं नित्यं धर्मविवर्द्धनम् ॥ न व्याधिर्भवतेतस्य याम्यंतस्यभयन्नहि ॥ ३९ ॥ माहात्म्यंपठ्यते यत्र द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ लिखितंतिष्ठते नित्यं गृहेयस्मिन्दिनेदिने ॥ ४० ॥ सर्वमेतदवाप्नोति यदुक्तं पितृभिःस्वयम् ॥ बलेशृणुष्वमाहात्म्यं द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ ४१ ॥ विधिमन्त्रक्रियाहीनां पूजांगृह्णातिकेशवः ॥ माहात्म्यंतिष्ठते नित्यं लिखितंयस्यवेश्मनि ॥ ४२ ॥ नापराधसहस्रैस्तु कृतैर्लिप्यतिमानवः ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि माहात्म्यंद्वारकासु च ॥ ४३ ॥ द्वादशीनान्तु सर्वासां यथोक्तंलभतेफलम् ॥ द्वारकायाःसमुद्भूतं माहात्म्यंपठते तु यः ॥ ४४ ॥ त्रिदशैःपूज्यतेनित्यं वन्द्यतेसिद्धचारणैः ॥ माहात्म्यंपठतेयो वै द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ ४५ ॥ द्वारकावसतेतत्र विष्णुस्तत्रस्वयंव्रजेत् ॥ मा

आपही पितरों ने कहा है हे बले! द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को सुनिये ॥ ४१ ॥ कि लिखाहुआ यह माहात्म्य जिसके घरमें स्थित होता है उसके विधि, मंत्र व कर्म से हीन पूजन को विष्णुजी ग्रहण करते हैं ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य द्वारकामें माहात्म्य को पढ़ता या सुनता है वह कियेहुए हज़ार अपराधों से लिप्त नहीं होता है ॥ ४३ ॥ और द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को जो पढ़ता है वह सब द्वादशियों के यथोक्त फल को पाता है ॥ ४४ ॥ व द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को जो पढ़ता है वह सदैव देवताओं से पूजाजाता है और सिद्धों व चारणों से प्रणाम कियाजाता है ॥ ४५ ॥ और जहां द्वादशी से उपजाहुआ माहात्म्य स्थित होता है वहां सदैव

द्वारका बसती है और वहां आपही विष्णुजी जाते हैं ॥ ४६ ॥ और जहां द्वादशी का माहात्म्य व द्वारका का माहात्म्य तथा विष्णुजी का सहस्रनाम स्थित होता है ॥ ४७ ॥ वहां सब तीर्थ व इन्द्र समेत सब देवता और यज्ञ, वेद, ऋषि व चराचर समेत त्रिलोक स्थित होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा गोमती समुदकर संगम है सुखदाय। पैंतालिसवें में सोई चरित कह्यो सतिभाय ॥ नारदजी बोले कि हे पाण्डव ! मैं द्वारका से उपजेहुए फल को कहता

हात्म्यंतिष्ठतेयत्र द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ यत्रद्वादशिमाहात्म्यं द्वारकायास्तथैव च ॥ माहात्म्यंतिष्ठतेयत्र विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥ ४७ ॥ तत्रतीर्थानिसर्वाणि सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ यज्ञावेदाश्चऋषयस्त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

नारद उवाच ॥ शृणुपाण्डववक्ष्यामि द्वारकासम्भवंफलम् ॥ रुक्मिणीसहितोयत्र स्वयंनिवसतेहरिः ॥ १ ॥ नेदृशी मथुरामाया न गया न च पुष्करम् ॥ यादृशीकलिकाले तु द्वारकाकृष्णसेविता ॥ २ ॥ तावद्गङ्गा च रेवा च यमुना च सरस्वती ॥ यावन्न पश्यतेभूप पुरींद्वारावतींकलौ ॥ ३ ॥ सरयूर्देविका चैव शालग्रामश्चगण्डकी ॥ यावन्न पश्यतेभूप पुरीं कृष्णेनसेविताम् ॥ ४ ॥ शालग्रामंसम्भलं च कल्पग्रामंयुधिष्ठिर ॥ यावन्नपश्यतेजन्तुः पुण्यांकृष्णपुरींकलौ ॥ ५ ॥ सैन्धवं

हूं सुनिये जहां कि रुक्मिणी समेत विष्णुजी आपही बसते हैं ॥ १ ॥ ऐसी न मथुरा है न माया है और न गया है न पुष्कर है जैसी कलिकाल में श्रीकृष्णजी से सेवित द्वारकापुरी है ॥ २ ॥ तबतक गंगा, नर्मदा, यमुना व सरस्वती शोभित हैं जबतक कि हे भूप ! कलियुग में मनुष्य द्वारकापुरी को नहीं सेवता है ॥ ३ ॥ और तबतक सरयू, देविका, शालग्राम व गण्डकी शोभित हैं जबतक हे भूप ! मनुष्य श्रीकृष्णजी से सेवित द्वारकापुरी को नहीं देखता है ॥ ४ ॥ व हे युधिष्ठिर ! तबतक शालग्राम, संभल व कल्पग्राम शोभित हैं जबतक कि प्राणी कलियुग में पवित्र श्रीकृष्णजी की पुरी को नहीं देखता है ॥ ५ ॥ और तबतक सैंधव, दण्डकारण्य व वृंदावन

शोभित है जबतक कि प्राणी श्रीकृष्णजी से पालित द्वारकापुरी को नहीं देखता है ॥ ६ ॥ व हे नरनायक ! तबतक तीर्थों व व्रतों की महिमा है जबतक कि प्राणी पुण्यवर्द्धिनी द्वारका को नहीं देखता है ॥ ७ ॥ कलियुग में अग्निहोत्रों से और यज्ञों व अनेकभांति के दानों से क्या होता है हे राजन् ! द्वारकापुरी को जाइये व पापनाशिनी श्रीकृष्णजीकी पुरी को देखिये ॥ ८ ॥ तबतक समुद्र से लगाकर तड़ागपर्यन्त तीर्थ गरजते हैं जबतक कि श्रीकृष्णजी के चरणों से पैदाहुई गोमती नहीं देखीजाती है ॥ ९ ॥ प्रयाग में मरने से मुक्ति होती है वैसेही काशी में मुक्ति होती है और श्रीकृष्णजी की समीपता से द्वारका व नहाने से गोमती मुक्तिदायिनी

दण्डकारण्यं तावद्वृन्दावनं तथा ॥ यावन्न पश्यते जन्तुः पुरींकृष्णेनपालिताम् ॥ ६ ॥ तीर्थानांमहिमातावद्व्रतानांनरनायक ॥ यावन्न पश्यतेजन्तुर्द्वारकांपुण्यवर्द्धिनीम् ॥ ७ ॥ किमग्निहोत्रैःकिंयज्ञैर्दानैर्नानाविधैःकलौ ॥ गच्छभूपपुरींपश्य पुरींकृष्णस्यपापहाम् ॥ ८ ॥ तावद्गर्जन्तितीर्थानि ह्यासमुद्रसरांसि च ॥ यावत्कृष्णाङ्घ्रिसम्भूता दृश्यते न हि गोमती ॥ ९ ॥ प्रयागेमरणान्मुक्तिर्मुक्तिःकाश्यांतथैव च ॥ द्वारकाकृष्णसान्निध्यात्स्नानमात्रेण गोमती ॥ १० ॥ दत्तैस्तीर्थोदकैःपिण्डैः पितॄणांजायतेगतिः ॥ दृष्टे तु गोमतीनीरे प्रीतिंयान्तिपितामहाः ॥ ११ ॥ किंपुनर्येमहीपाल स्नात्वाकुर्वन्तितर्पणम् ॥ पिण्डदानं पितॄणान्तु गोमतीवारिणाकलौ ॥ १२ ॥ दृष्टे तु गोमतीनीरे प्रीतिंयान्तिपितामहाः ॥ गोमतीवारिणाभूप यथातृप्तिःप्रजायते ॥ १३ ॥ तथातीर्थे न लक्षे तु दत्तैःपिण्डशतैरपि ॥१४॥ किंजातैर्बहुभिःपुत्रैःसाग्निकैर्वेदपारगैः ॥ यैर्न दृष्टःकलौप्राप्ते गोमत्युदधिसङ्गमः ॥ १५ ॥ न सर्वत्रमहापुण्यः सङ्गमः

है ॥ १० ॥ और तीर्थोदकों व पिंडों के देने से पितरों की गति होती है और वृषराशि में सूर्य होनेपर गोमती के जलों से पितामहलोग प्रीति को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ हे भूपाल ! फिर उनको क्या कहना है जो कि नहाकर कलियुग में पितरों को पिण्डदान व गोमती के जल से तर्पण करते हैं ॥ १२ ॥ और गोमती का जल देखने से पितामह लोग प्रीति को प्राप्त होते हैं हे भूप ! जिसप्रकार गोमती के जल से तृप्ति होती है ॥ १३ ॥ उस प्रकार लाख तीर्थों में सौ पिंडों के देने से नहीं होती है ॥ १४ ॥ अग्निहोत्री व वेदोंके पारगामी उन पुत्रोंके पैदा होनेसे क्या है जिन्होंने कलियुग प्राप्त होनेपर गोमती व समुद्रके संगम को नहीं देखा है ॥ १५ ॥ गंगा-

संगम व गोमती के संगम को छोड़कर सब कहीं समुद्र का संगम महापवित्र नहीं है ॥ १६ ॥ प्रतिदिन समुद्र अपना को कृतार्थ मानता है कि श्रीकृष्णजी के समीप गोमती के जल के मेल से मैं पवित्र हूं ॥ १७ ॥ व मैं उस समय सभाग्य होगया जब कि श्रीकृष्णजीसे निर्मित मुक्तिदायिनी द्वारका को उन्होंने मेरे किनारे स्थापन किया ॥ १८ ॥ जो मनुष्य गोमती के जलसे संयुत मुझ को देखते हैं उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ऐसा समुद्र ने कहा है ॥ १९ ॥ व श्रीकृष्णजी के चरणों से पैदा हुई गोमती से मेरा अंग निर्मल करदियागया और देवनायक श्रीकृष्णजी को देखकर मैं पवित्र होगया मेरे समान अन्य कोई नहीं है ॥ २० ॥ और गोमती के जल

सरितांपतेः ॥ जाह्नवीसङ्गमंमुक्त्वा गोमतीसङ्गमंतथा ॥ १६ ॥ मेनेकृतार्थमात्मानं प्रत्यहंसरितांपतिः ॥ गोमतीनीर सम्पर्कात्पूतोहंकृष्णसन्निधौ ॥ १७ ॥ सभाग्योहंतदाजातो यदाकृष्णेननिर्मिता ॥ मत्तीरेस्थापितातेन द्वारकामुक्तिदायिनी ॥ १८ ॥ गोमतीनीरसंयुक्तं येमांपश्यन्तिमानवाः ॥ न तेषांपुनरावृत्तिरित्याहसरितांपतिः ॥ १९ ॥ कृष्णपाद प्रसूताया ममाङ्गन्निर्मलंकृतम् ॥ दृष्ट्वा तु देवनाथस्य पूतोहंनास्तिमत्समः ॥ २० ॥ गोमतीनीरसंपर्के मज्जलेस्नातियोनरः ॥ मुच्यतेब्रह्महत्याद्यैः स्तेयाद्यैःपापसम्भवैः ॥ २१ ॥ येपश्यन्तिकलौभक्त्या गोमत्युदधिसङ्गमम् ॥ रुक्मिणीसहितंकृष्णं धन्यास्तेसन्तिमानवाः ॥ २२ ॥ येषांभवतिभूपाल द्वारकागमनेमतिः ॥ न तेषांपातकंकिञ्चिद्यद्वै लिखतिलेखकः ॥ २३ ॥ गृहान्निर्गच्छमानस्य नरस्यद्वारकांप्रति ॥ पदेपदेभवेद्यज्ञफलं चैव तथैव च ॥ २४ ॥ द्वारकांगच्छमानस्य विपत्तिर्भवतेयदि ॥ न तस्यपुनरावृत्तिः पितृभिःसहतत्पदात् ॥ २५ ॥ गत्वायेकलिकाले तु

से मिलेहुए मेरे जल में जो मनुष्य नहाता है वह पाप से उपजेहुए ब्रह्महत्यादिक तथा चोरी आदिक दोषों से छूटजाता है ॥ २१ ॥ व कलियुगमें जो भक्तिसे गोमती व समुद्र के संगम को तथा रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी को देखते हैं वे मनुष्य धन्य हैं ॥ २२ ॥ व हे भूपाल ! द्वारका को जाने में जिनकी बुद्धि है उनके शरीर में कुछ पाप नहीं होता है कि जिसको लेखक (चित्रगुप्त) लिखते हैं ॥ २३ ॥ और घर से द्वारका को जातेहुए मनुष्य को पग २ पै यज्ञ का फल होता है ॥ २४ ॥ व द्वारका को जाते हुए मनुष्य की यदि मृत्यु होजावै तो पितरों समेत उसकी उस स्थान से निवृत्ति नहीं होती है ॥ २५ ॥ व हे भूपाल ! गोमती के जल के आश्रित

होकर जहां समुद्र गरजता है वहां कलिकाल में श्रीकृष्णजी के चरणकमलों के समीप जो द्वारका में गोमती के किनारे टिकते हैं उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है और गोमती व समुद्र के संगम में ॥ २६ । २७ ॥ हे भूपाल ! जो श्रवण से संयुत द्वादशी को करते हैं व हे पृथ्वीनाथ ! जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के समीप श्रावणमें शुक्लपक्ष में जयन्तीव्रत को करते हैं वे फिर जन्म को नहीं पाते हैं और कलिकाल में भी पापियों की पुनरावृत्ति निषिद्ध होती है ॥ २८ । २९ ॥ व हे राजन् ! जो मनुष्य द्वारका में रोहिणी से संयुत द्वादशी को करते हैं उनके पितामह मुक्त होजाते हैं इस में सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ और फागुन में पुष्यनक्षत्र के योगमें जो करते हैं वे

कृष्णपादाब्जसन्निधौ ॥ द्वारकायांमहीपाल गोमतीतटसंस्थिताः ॥ २६ ॥ गोमतीनीरमाश्रित्य यत्रगर्जतिसागरः ॥ न तेषांपुनरावृत्तिर्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ २७ ॥ येकुर्वन्तिमहीपाल द्वादशींश्रवणान्विताम् ॥ येकुर्वन्तिमहीनाथ जयन्तींकृष्णसन्निधौ ॥ २८ ॥ श्रावणेऽसितपक्षे तु न तेयान्तिपुनर्भवम् ॥ निषिद्धापुनरावृत्तिःकलिकालेपिपापिनाम् ॥ २९ ॥ द्वारकायांप्रकुर्वन्ति द्वादशींरोहिणीयुताम् ॥ तेषांपितामहाराजन्मुच्यन्तेनात्रसंशयः ॥ ३० ॥ फाल्गुने पुष्ययोगे तु न तेयान्तिपुनर्भवम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

नारद उवाच ॥ कैलासशिखरासीनं देवदेवंजगद्गुरुम् ॥ अपृच्छच्चारुवक्त्राङ्गी प्रहस्योत्फुल्ललोचना ॥ १ ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ पूज्यतेत्वत्पदोप्राप्तुं तैस्सर्वैःपरमंपदम् ॥ २ ॥ किमर्थंकलिकाले तु लोकैरा

फिर जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ❀ ॥

दो० । कह्यो उमासन शिव यथा श्रीद्वारका प्रभाव । छियालिसें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाव ॥ नारदजी बोले कि कैलास पर्वत के शिखर पै बैठेहुए देवदेव जगद्गुरु महादेवजी से प्रफुल्लित लोचनोंवाली तथा सुन्दर मुख व अंगोंवाली पार्वतीजी ने हँसकर पूंछा ॥ १ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस व किन्नर वे सब लोग परमपद को मिलने के लिये तुम्हारे चरणों को पूजते हैं ॥ २ ॥ और कलिकाल में मनुष्य विष्णुजी को क्यों आराधन करता है और गया

व नर्मदा के होनेपर तथा गंगासंगम के होनेपर हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे द्वारके ! ऐसा क्यों मनुष्य कहता है व हे देव ! गोमती के किनारे पिंडदान की क्यों प्रशंसा कीजाती है ॥ ३ । ४ ॥ व हे परमेश्वर, नाथ ! जलमात्र से कैसे पितरों की तृप्ति होती है इसको मुझसे प्रसन्नता से कहिये ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! द्वारका का माहात्म्य मैं कहता हूं सुनिये जोकि स्मरण करने से देवताओं व पितरोंकी तृप्ति करनेवाला है ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! वहां ब्रह्मघाती, मद्यपी व बाल, वृद्ध और गुरुद्रोहियों का पाप गोमती के दर्शन में नाश होजाता है ॥ ७ ॥ थोड़े या बहुत समय तक द्वारका में जो मनुष्य स्थित होता है वह पाप को वैसेही छोड़देता है जैसे कि

राध्यतेहरिः ॥ कृष्णकृष्णेतिकिंब्रूयाद्द्वारकेति च मानवः ॥ ३ ॥ गयानर्मदयोःसत्योः सतिजाह्नविसङ्गमे ॥ पिण्डदानन्तु गोमत्यां कथंदेवप्रशस्यते ॥ ४ ॥ पितॄणांवारिमात्रेण कथंतृप्तिःप्रजायते ॥ एतत्कथयमेनाथ प्रसादात्परमेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ माहात्म्यंद्वारकायाश्च शृणुदेविवदाम्यहम् ॥ स्मृतमात्रे तु देवानां पितॄणांतृप्तिकारकम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मघ्नस्यसुरापस्य बालवृद्धगुरुद्रुहाम् ॥ पापं हि नश्यते तत्र गोमतीदर्शनेप्रिये ॥ ७ ॥ स्वल्पं वा बहुकालं वा द्वारकायांस्थितोनरः ॥ पापंविमोचयत्येव जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ ८ ॥ अक्षयाल्ँलभतेलोकान्पितॄन्सर्वान्समुद्धरेत् ॥ तर्पयित्वातुगोमत्यां हव्यकव्यैर्विधानतः ॥ ९ ॥ वंशजोप्यथवान्यो वा गोमत्युदधिसंगमे ॥ यन्नाम्नापातयेत्पिण्डं तस्यतत्पदमव्ययम् ॥ १० ॥ गृहाच्चलितमात्रस्य द्वारकांप्रतिपार्वति ॥ पदेपदेमनुष्यस्य फलंचान्द्रायणोद्भवम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा गोघाती यश्च पातकी ॥ द्वारकायास्तु तेसर्वे मुच्यन्तेपदमात्रकैः ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्रंप्रयागं च प्रभासं

पुरानी खाल को सर्प छोड़देता है ॥ ८ ॥ और वह अक्षय लोकोंको पाता है व सब पितरोंको उधारता है और विधि से गोमती में तर्पण कर ॥ ९ ॥ वंश में उत्पन्न या अन्य पुरुष गोमती तथा समुद्र के संगम में जिसके नाम से पिंडको पातन करताहै उसको वह अव्यय स्थान होता है ॥ १० ॥ व हे पार्वति ! घर से द्वारका के सामने चलेहुए मनुष्य को पग २ पै चांद्रायण से उपजाहुआ फल होता है ॥ ११ ॥ व ब्रह्मघाती, कृतघ्न व जो गोघाती पातकी हैं वे सब द्वारका के पगभर से मुक्त होजाते हैं ॥ १२ ॥ और

कुरुक्षेत्र, प्रयाग, प्रभास व पुष्कर ये द्वारका को जातेहुऐ पुरुष के सोलहवें भाग के योग्य नहीं होते हैं ॥ १३ ॥ और प्रभासादिक तीर्थों में बहुत हज़ार वर्षोंतक बहुत कठिन तपस्या करके द्वारका के विना मुक्ति नहीं होती है ॥ १४ ॥ स्वर्ग, पाताल व पृथ्वी में द्वारका के समान पुरी नहीं है और गोमती के तुल्य नदी नहीं है व श्रीकृष्णजी के समान देवता नहीं है ॥ १५ ॥ और द्वारका के माहात्म्य को देवता स्वर्ग में पढ़ते हैं व मैंने प्रभास और श्रीकृष्णदेवजी को कैलास में सुना है ॥ १६ ॥ और द्वारका के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा जहां कि गोमती में बहुत से चक्र देखपड़ते हैं ॥ १७ ॥ अमावसतिथि में कुरुक्षेत्रमें करोड़ सूर्यग्रहणों से जो

पुष्करं तथा ॥ द्वारकांगच्छमानस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ १३ ॥ बहून्यब्दसहस्राणि तपस्तप्त्वासुदुष्करम् ॥ प्रभासादिषुतीर्थेषु न मुक्तिर्द्वारकांविना ॥ १४॥ दिविपातालभूपृष्ठे न पुरीद्वारकासमा ॥ न नदीगोमतीतुल्या कृष्णतुल्या न देवता ॥ १५ ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं स्वर्गेपठतिदेवता ॥ प्रभासःकृष्णदेवश्च कैलासेपि मयाश्रुतः ॥ १६ ॥ द्वारकायाःसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ यत्रचक्राणिदृश्यन्ते गोमत्यांसुबहून्यपि ॥ १७ ॥ अमावस्यांकुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहणकोटिभिः ॥ तत्फलंकलिकाले तु द्वारवत्यां दिनेदिने ॥ १८॥ अश्वमेधसहस्राणि कृत्वायत्फलमाप्नुयात् ॥ तत्फलंलभतेमर्त्यो द्वारवत्यांदिनेदिने ॥ १९ ॥ गवांकोटिसहस्राणि रत्नकोटिशतानि च ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलंकृष्णसन्निधौ ॥ २० ॥ संवत्सरं च षण्मासं मासंमासार्द्धमेव च ॥ द्वारकायान्तु योगच्छेद्विमुक्तो नात्र संशयः ॥ २१ ॥ विनाज्ञानाद्विनाध्यानाद्विनाचेन्द्रियनिग्रहात् ॥ द्वारकावासिनःसर्वे यास्यन्तिपरमांगतिम् ॥ २२ ॥ अहोक्षेत्रस्यमा

फल होता है वह फल कलिकाल में प्रतिदिन द्वारकापुरी में होता है ॥ १८ ॥ हज़ारों अश्वमेधयज्ञों को करके मनुष्य जिस फल को पाता है उस फल को मनुष्य प्रतिदिन द्वारकापुरी में पाता है ॥ १९ ॥ और करोड़ों हज़ार गौवों को व करोड़ों सौ रत्नों को देकर मनुष्य जिस फल को पाता है वह फल श्रीकृष्णजी के समीप होता है ॥ २० ॥ और वर्षभर या छः महीने व महीने भर या पंद्रहदिन जो मनुष्य द्वारका को जाता है वह मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ और बिन ज्ञान, बिन ध्यान व बिन इन्द्रियों के दमन से सब द्वारकावासीलोग उत्तम गति को पावैंगे ॥ २२ ॥ सब ओर पांच कोस क्षेत्र का माहात्म्य आश्चर्यरूप है जहां

कि स्वर्ग में स्थित मनुष्य सबहीं चतुर्भुजों को देखते हैं ॥ २३ ॥ और प्रयाग में शरीर को त्यागतेहुए मनुष्य को अन्नदान से जो फल होता है वह फल द्वादशी में आधे निमेष से श्रीकृष्णजी के दर्शन से होता है ॥ २४ ॥ और द्वादशी में श्रीकृष्णजीके दर्शन से करोड़ों हज़ार कुल व करोड़ों सौ कुल विष्णुजी के उस स्थान में बसते हैं ॥ २५ ॥ और अपने कर्म में स्थित व पराये कर्म में स्थित जो श्रीकृष्णदेवजी के मन्दिर में बसते हैं वे मनुष्य विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ और जो मनुष्य प्रतिदिन उत्तम भक्ति से हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है वह लीला से सौ अश्वमेधयज्ञों के फल को पाता है ॥ २७ ॥ और जो राजस या तामस

हात्म्यं समन्तात्क्रोशपञ्चकम् ॥ दिविस्थायत्रपश्यन्ति सर्वानेव चतुर्भुजान् ॥२३॥ अन्नदानेनयत्पुण्यं प्रयागेत्यजतस्त नुम् ॥ तत्पुण्यंनिमिषार्द्धेन द्वादश्यांकृष्णदर्शनात् ॥ २४ ॥ कुलकोटिसहस्राणि कुलकोटिशतानि च ॥ वसन्तितत्पदंविष्णोर्द्वादश्यांकृष्णदर्शनात् ॥ २५ ॥ स्वकर्मस्थाविकर्मस्थाः कृष्णदेवस्यमन्दिरे ॥ वसन्ति ते नरायान्ति तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ २६ ॥ कृष्णकृष्णेतियोब्रूयात्सद्भक्त्याप्रत्यहंनरः ॥ हेलयासोश्वमेधानां शतानांलभतेफलम् ॥ २७ ॥ राजसंतामसं वापि यत्कृतंगोमतीजले ॥ तद्भवेत्सात्त्विकंसर्वं द्वारकायाःप्रभावतः ॥ २८ ॥ यःपदंकुरुतेदेवि गोमतीनीरसम्मुखम् ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलंकोटिगुणंभवेत् ॥ २९ ॥ न कलौदेवतालोके तीर्थेतिष्ठन्तिसुन्दरि ॥ वसतेद्वारकायांयो नित्यंकृष्णस्यसन्निधौ ॥ ३० ॥ कलिकालेकृतैःपापैस्सनरो नैव लिप्यते ॥ अन्यतीर्थानितिष्ठन्ति प्रिये कृष्णस्यसन्निधौ ॥ ३१ ॥ दृष्टे तु वैष्णवेचक्रे दृष्टास्सर्वेदिवौकसः ॥ स्नातायेगोमतीनीरे सर्वतीर्थेषु वै शुभे ॥ ३२ ॥ दृष्टे

कर्म कियागया है वह सब द्वारका के प्रभाव से सात्त्विक होजाता है ॥ २८ ॥ व हे देवि ! गोमतीजी के जल के सामने जो पग करता है उसको पग २ पै अश्वमेधयज्ञ का कोटिगुना फल होता है ॥ २९ ॥ हे सुन्दरि ! संसार में कलियुग में देवता तीर्थ में नहीं स्थित होते हैं और जो श्रीकृष्णजी के समीप सदैव द्वारका में बसता है ॥ ३० ॥ वह मनुष्य कलिकाल में कियेहुए पापों से लिप्त नहीं होता है हे प्रिये ! श्रीकृष्णजी के समीप अन्य तीर्थ स्थित हैं ॥ ३१ ॥ और विष्णुजी का चक्र देखने पर सब देवता देखेहुए होते हैं व हे शुभे ! जिन्होंने गोमतीजी के जल में स्नान किया है वे सब तीर्थों में नहाचुके ॥ ३२ ॥ व हे देवि ! प्रभास, केदार व

कुरुजाङ्गल को देखने से मनुष्य जिस फल को पाता है उस फल को द्वारका में श्रीकृष्णजी के दर्शन से पाता है ॥ ३३ ॥ और मेरे लिंग को धारणकर यदि मनुष्य श्रीकृष्णजी को नहीं देखता है तो उसका वह निष्फल होजाता है और भयंकर रौरव नरक को जाता है ॥ ३४ ॥ और समुद्र में स्नान कियेहुए मैं धन्य हूं इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि गोमती के पवित्र जल से मेरा शरीर पवित्र कियागया है ॥ ३५ ॥ और सब कार्यों में गंगा में पिंडपात सुलभ है व गोमतीजी का जल दुर्लभ है जहां कि आपही विष्णुजी हैं ॥ ३६ ॥ जिसके मिलेहुए जल से मनुष्य कलियुग में मुक्त होजाता है उस गोमतीनामक नदी को मनुष्य क्यों नहीं देखताहै ॥ ३७ ॥ हे महा-

तु वै प्रभासे च केदारेकुरुजाङ्गले ॥ यत्फलंलभतेदेवि द्वारकांकृष्णदर्शने ॥ ३३ ॥ धारयित्वा तु मल्लिङ्गं कृष्णंयदि न पश्यति ॥ निष्फलंतद्भवेत्तस्य रौरवंयातिदारुणम् ॥ ३४ ॥ धन्योहंनास्तिसन्देहः कृतस्नानोमहोदधौ ॥ पवित्री कृतगात्रोस्मि गोमतीपुण्यवारिणा ॥ ३५ ॥ सुलभंसर्वकार्येषु गङ्गायांपिण्डपातनम् ॥ दुर्लभंगोमतीनीरं यत्र चास्ते स्वयंहरिः ॥ ३६ ॥ यस्याःसंपर्कतोयेन विमुक्तोजायतेकलौ ॥ तांनदींगोमतीं नाम किन्न पश्यतिमानवः ॥ ३७ ॥ किंक रिष्यतितीर्थेषु स्नात्वामर्त्यः पुनःपुनः ॥ स्नातोयदिमहादेवि गोमतीपुण्यवारिणा ॥ ३८ ॥ किंदृष्टैर्बहुभिः क्षेत्रैः किं ग्रामैः किन्तु काननैः ॥ दृष्टंयैर्गोमतीनीरं द्वारकांकृष्णसन्निधौ ॥ ३९ ॥ गङ्गास्नानेनकिंदेवि नर्मदायास्तथैव च ॥ यैः कलौद्वारकांगत्वा स्नातं वै गोमतीजले ॥ ४० ॥ न कृतागोमतीभक्तिः गत्वाकेदारसन्निधौ ॥ न गतोयदिदेवेशि पुरींद्वारवतींकलौ ॥ ४१ ॥ सप्तषष्टिषुतीर्थेषु स्नानात्किंहरवल्लभे ॥ सम्प्राप्ते तु कलौमर्त्यो द्वारकां न गतोयदि ॥ ४२ ॥

देवि ! यदि गोमती के पवित्र जल से मनुष्यने स्नान किया है तो अन्य तीर्थों में बार २ नहाकर क्या करैगा ॥ ३८ ॥ जिन्होंने द्वारका में श्रीकृष्णजी के समीप गोमती का जल देखा है उनको बहुत क्षेत्रों व ग्रामों और वनों के देखने से क्या है ॥ ३९ ॥ व हे देवि ! जिन्होंने कलियुग में द्वारका को जाकर गोमती के जल में स्नान किया है उनको गंगास्नान व नर्मदा के स्नान से क्या है ॥ ४० ॥ व हे देवेशि ! केदार के समीप जाकर यदि गोमती की भक्ति नहीं कीगई और कलियुग में यदि मनुष्य द्वारकापुरी को नहीं गया ॥ ४१ ॥ व हे हरप्रिये ! कलियुग प्राप्त होने पर यदि मनुष्य द्वारका को नहीं गया है तो सरसठि तीर्थों में स्नान से क्या होता है ॥ ४२ ॥

व हे पर्वतकुमारि, देवेशि ! जहां रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी अहर्निश टिकेरहते हैं वहां मुझको जानिये अन्यत्र नहीं जानिये ॥ ४३ ॥ व हे पार्वति ! कलियुग में द्वारका को जाकर जिसने गोमती को नहीं देखा उसके निश्चयकर नेत्र व पांव नहीं हैं ॥ ४४ ॥ व हे पार्वति ! कलियुग प्राप्त होने पर श्रीकृष्णजी को देखकर जो मुझ को देखते हैं उनकी मेरे लोक से किसी प्रकार पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ४५ ॥ व हे देवि ! जहां गोमती बहती है वहां चक्रतीर्थमें और द्वारका व श्रीकृष्णजी के समीप में प्रतिदिन सदैव बसता हूं ॥ ४६ ॥ व हे महादेवि, देवि ! यदि मनुष्य ने गोमतीजी के पवित्र जल में स्नान किया है तो भारद्वाजजी के आश्रम में जाकर नहायेहुए

रुक्मिणीसहितःकृष्णो यत्रातिष्ठत्यहर्निशम् ॥ तत्रमांविद्धिदेवेशि नान्यत्राचलनन्दिनि ॥ ४३ ॥ कलौद्वारवतींगत्वा न दृष्टा येनगोमती ॥ नूनं चक्षुर्न तस्यास्ति पादौतस्य न पार्वति ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वाकृष्णंकलौप्राप्ते येमांपश्यन्तिपार्वति ॥ न तेषांपुनरावृत्तिर्ममलोकात्कथञ्चन ॥ ४५ ॥ प्रत्यहंचक्रतीर्थे च द्वारकाकृष्णसन्निधौ ॥ वसाम्यहंसदादेवि वहते यत्र गोमती ॥ ४६ ॥ भारद्वाजाश्रमेदेवि गत्वास्नातस्यकिंफलम् ॥ स्नातोयदिमहादेवि गोमतीपुण्यवारिणि ॥ ४७ ॥ किं पुनःपिण्डदानन्तु पितॄणांस्नानपूर्वकम् ॥ कृत्वास्नानंविनिर्मुक्ता मुक्तिंयान्तिमहेश्वरि ॥ ४८ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ वसन्तितत्पदेदेवि द्वारकांकृष्णदर्शनात् ॥ ४९ ॥ कृत्वापापसहस्राणि कलौकोटिशतैरपि ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्तद्विष्णोःपदमाप्नुयात् ॥ ५० ॥ मद्दर्शनेनकिंपुण्यं किं वा देविमदर्चनात् ॥ केवलंगो

मनुष्य को क्या फल होता है ॥ ४७ ॥ फिर स्नानपूर्वक पितरोंके पिण्डदानको क्या कहना है व हे महेश्वरि ! स्नान करके मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ व हे देवि ! द्वारका में श्रीकृष्णजी के दर्शनसे मनुष्य करोड़ों हज़ार कल्पों तक व करोड़ों सौ कल्पों तक उसके स्थान में बसते हैं ॥ ४९ ॥ और कलियुगमें हज़ारों पापोंको करके मनुष्य करोड़ों सौ भी सब पापों से छूटजाता है और उस विष्णुजी के स्थान को पाता है ॥ ५० ॥ हे देवि ! मेरे दर्शन से व मेरे पूजनसे क्या पुण्य होता है केवल गोमतीमें नहाकर

व श्रीकृष्णजी को देखकर मनुष्य पुण्य को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांषट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

मर्तोस्नात्वा कृष्णंदृष्ट्वालभेन्नरः ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥

समाप्तमिदं द्वारकामाहात्म्यम् ॥

प्रथम बार

——*——

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा

सन् १९१२ ई०

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतार्बुदखण्डप्रारम्भः ॥

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतार्बुदमाहात्म्यस्य सूचीपत्रम् ॥

इत्यर्बुदमाहात्म्यस्य सूचीपत्र समाप्ति पकाणेति शम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणे प्रभासखण्डान्तर्गत

❀ अर्बुदमाहात्म्यं सटीकं प्रारभ्यते ❀

दो० । सिद्धि सदन गज वदन अरु श्री शारदहिं मनाय । यहि अर्बुद माहात्म्य कर कीजत तिलक सुहाय ॥ जिमि वसिष्ठकी नन्दिनी धेनु गिरी बिल माहिं । सोइ प्रथम अध्याय में कथा हर्षि उपजाहिं । सूक्ष्म अनन्तके लिये प्रणाम है व ज्ञानसे जाने योग्य ब्रह्मा के लिये नमस्कार है और शुद्ध व विश्वरूप देवदेव शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १ ॥ शौनकजी बोले कि आपने चन्द्रमा व सूर्य के वंश का विस्तार कहा व सब मन्वन्तर तथा भिन्न प्रकार की सृष्टि को कहा ॥ २ ॥ हे महा-

नमोनन्तायसूक्ष्माय ज्ञानगम्यायवेधसे ॥ शुद्धायविश्वरूपाय देवदेवायसम्भवे ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ कथितोवंशविस्तारो भवतासोमसूर्ययोः ॥ मन्वन्तराणिसर्वाणि सृष्टिश्चैवपृथग्विधा ॥ २ ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कानितीर्थानिपुण्यानि भूतलेस्मिन्महामते ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नानातीर्थानिलोकेस्मिन् येषांसङ्ख्यानविद्यते ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीच तेषांसङ्ख्यागतानवा ॥ ४ ॥ क्षेत्राणिसरितश्चैव पर्वताश्चद्विजोत्तमाः ॥ ऋषीणांतपसोवीर्यान्माहात्म्यंपरमंगताः ॥ ५ ॥ तेषांमध्येर्बुदोनाम सर्वपापहरोनघः ॥ अस्पृष्टःकलिदोषेण वसिष्ठस्यप्र

मते ! इस समय मैं उत्तम तीर्थों के माहात्म्य को सुनना चाहता हूं कि इस पृथ्वी में कौन पवित्र तीर्थ हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि इस लोक में अनेक प्रकार के तीर्थ हैं कि जिनकी गिनती नहीं है और साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ हैं अथवा उनकी संख्या नहीं प्राप्त है ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! क्षेत्र, नदियां व पर्वत ऋषियों की तपस्या के प्रभाव से बड़े माहात्म्य को प्राप्त हैं ॥ ५ ॥ उनके मध्य में अर्बुदनामक पर्वत सब पापों को हरनेवाला व पापरहित है और वसिष्ठजी के प्रभाव से कलियुग के

दोष से नहीं छुवा गया है ॥ ६ ॥ सब तीर्थ स्नान दानादिक कर्म से पवित्र करते हैं और अर्बुद दर्शनही से मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाला है ॥ ७ ॥ ऋषि लोग बोले कि अर्बुदनामक पर्वत किस प्रमाण भर है व किस देश में स्थित है व वसिष्ठजी के प्रभाव से पृथ्वी में कैसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ ८ ॥ और वहां कौन तीर्थ हैं व पर्वत पै कौन देवता हैं यह सब विस्तार से कहिये क्योंकि हमलोगों को बड़ा कौतुक है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैं तुमलोगों से पातकों को विनाशनेवाली अर्बुदकी कथाको कहूंगा और जैसा माहात्म्य सुनागया है उसको कहूंगा ॥ १० ॥ ब्रह्मा से उपजे हुये वसिष्ठनामक देवर्षि हुये हैं उन पवित्र मुनि

भावतः ॥ ६ ॥ पुनन्तिसर्वतीर्थानि स्नानदानादिकर्मणा ॥ अर्बुदोदर्शनादेव सर्वपापहरोनृणाम् ॥ ७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किंप्रमाणोर्बुदोनाम कस्मिन्देशेऽव्यवस्थितः ॥ कथंवसिष्ठमाहात्म्यात्प्रख्यातोधरणीतले ॥ ८ ॥ कानितीर्थानिव तत्र केदेवास्सन्तिपर्वते ॥ सर्वविस्तरतोब्रूहि परंकौतूहलंहिनः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ अहंवःसम्प्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ अर्बुदस्यद्विजश्रेष्ठा माहात्म्यंचयथाश्रुतम् ॥ १० ॥ वसिष्ठोनामदेवर्षिः पितामहसमुद्भवः ॥ सशुचिर्भूतलंप्राप्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ११ ॥ नियतोनियताहारः सर्वभूतहितेरतः ॥ वर्षास्वाकाशवासीच हेमन्तेसलिलाशयः ॥ १२ ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे जपहोमपरायणः ॥ केनचित्त्वथकालेन तस्यधेनुःपयस्विनी ॥ १३ ॥ नन्दिनीतिसुविख्याता साचकामदुघाशुभा ॥ साकदाचिद्नगपृष्ठे भ्रममाणातृणाशया ॥ १४ ॥ पतितादारुणेश्वभ्रे ह्यगाधेतिमिरावृते ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवांस्तीक्ष्णदीधितिः ॥ १५ ॥ अस्तङ्गतोनसम्प्राप्ता नन्दिनीमुनिसत्तमाः ॥ तस्याःक्षीरे

ने पृथ्वी को प्राप्त होकर कठिन तप किया है ॥ ११ ॥ नियत व नियतभोजी और सब प्राणियों के हित में लगे हुये वे मुनि वर्षा ऋतु में आकाशवासी व हेमन्त में जलाशयी हुये ॥ १२ ॥ और ग्रीष्मऋतुमें पचाग्निसाधक होकर जप व होम में परायण हुये इसके अनन्तर किसी समय उनकी दूधवाली गऊ ॥ १३ ॥ जो नन्दिनी ऐसी प्रसिद्ध थी वह उत्तम गऊ कामदुघा थी किसी समय तृण की आशा से पृथ्वी में घूमती हुई वह धेनु ॥ १४ ॥ अन्धकारसे घिरे व कठिन तथा गहरे गढे में गिरपड़ी इसी समय तीक्ष्ण किरणोंवाले भगवान् सूर्यनारायण ॥ १५ ॥ अस्त को प्राप्त हुये व हे मुनिश्रेष्ठो ! नन्दिनी न प्राप्त हुई उसके दूधसे नित्य सायकाल व

प्रातःकाल वे द्विज वसिष्ठ मुनि ॥ १६ ॥ व्रतको ग्रहण कर बढ़ी हुई अग्नि में हवन करते थे इसके अनन्तर उसके प्राणों के भयसे विप्र वसिष्ठजी निश्चय कर चिन्ता में तत्पर हुये ॥ १७ ॥ व उन मुनि ने उस वनमें सम व विषम स्थानों में देखा तदनन्तर जेठको प्राप्त होकर भंभा शब्द को सुना ॥ १८ ॥ व मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने उस गऊसे कहा कि हे शुभे ! तुम कैसे गिरपड़ी मैं होमके उद्वेग से तुमको देखने के लिये निकला हूं ॥ १९ ॥ उसने कहा कि हे ब्रह्मर्षे चरती हुई मैं तृणकी इच्छा से इसमें गिरपड़ी हे विभो ! इस दुस्सह क्लेश से मेरी रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ उसके उस वचन को सुनकर वे वसिष्ठ मुनि ध्यान में स्थितहुये और उन्हों

णनित्यंस सायंप्रातर्द्विजोमुनिः ॥ १६ ॥ करोतिहोममग्नौहि सुसमिद्धेयतव्रतः ॥ अथचिन्तापरोविप्रस्तस्याःप्राणभयाद्ध्रुवम् ॥ १७ ॥ वीक्षांचक्रेवनेतस्मिन्समेषुविषमेषुच ॥ ततःश्वभ्रमथासाद्य भंभारावमथाशृणोत् ॥१८॥ तांप्रोवाचमुनिश्रेष्ठः कथन्त्वंपतिताशुभे ॥ अहंहोमस्यचोद्वेगान्निस्सृतस्त्वामवेक्षितुम् ॥१९॥ साब्रवीद्भक्ष्यमाणाहं विप्रर्षेतृणवाञ्छया ॥ पतितात्रविभोत्राहि कृच्छ्रादस्मात्सुदुस्सहात् ॥२०॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा समुनिर्ध्यानमास्थितः ॥ सरस्वतींसमादध्यौ नदींत्रैलोक्यपावनीम् ॥२१॥ साध्यातामुनिनातेन तत्क्षणात्तत्रचागता ॥ श्वभ्रंतत्पूरयामास समन्ताद्विमलैर्जलैः ॥ २२ ॥ परिपूर्णेततःश्वभ्रे निष्क्रान्तानन्दिनीतदा ॥ सादृष्ट्वामुनिनासार्द्धं ययौस्वाश्रमसम्मुखम् ॥ २३ ॥ सदृष्ट्वाचाम्भसांस्थानं गम्भीरंचमहामुनिः ॥ चिन्तयामासमेधावी श्वभ्रस्यैवप्रपूरणे ॥ २४ ॥ तस्यचिन्तयतोविप्रेर्बुद्धिरेषाभ्यजायत ॥ आनीयपर्वतंमुक्त्वा श्वभ्रमेतत्प्रपूर्यते ॥ २५ ॥ धेनुरुवाच ॥ तस्माद्गच्छमुनेशीघ्रं हिमवन्तं

ने त्रिलोक को पवित्र करनेवाली सरस्वती नदी को ध्यान किया ॥ २१ ॥ और उन मुनि से ध्यान की हुई वे सरस्वतीजी उसीक्षण वहां आईं व उन्हों ने निर्मल जलों से उस गढ़ेको सब ओर से पूर्ण किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर गढ़ा पूर्ण होने पर वह नन्दिनी निकली और वह देखकर मुनिसमेत अपने आश्रम के सामने गई ॥ २३ ॥ और उन बुद्धिमान् वसिष्ठ महामुनि ने जलों के स्थान को गहरा देखकर गढ़ाको पूर्ण करने के लिये चिन्तवन किया ॥ २४ ॥ और ब्राह्मणोंसमेत चिन्तवन करते हुये उसके यह बुद्धि उत्पन्न हुई पर्वत को लेकर उसे छोड़कर यह गढ़ा पूर्ण किया जावै ॥ २५ ॥ धेनु बोली कि हे मुने ! इस लिये शीघ्रही

हिमाचल उत्तम पर्वत पै जावो क्योंकि वह पर्वत यहां किसी पर्वत को पठावैगा ॥ २६ ॥ कि जिससे इस महात्मा गढ़ेकी परिपूर्णता होगी तदनन्तर वे मुनि हिमवान्नामक उत्तम पर्वत पै गये ॥ २७ ॥ आते हुये वसिष्ठजीको देखकर हिमाचल प्रसन्नमन हुये व अर्घ्य, पाद्यादि सत्कारों से पूजकर यह वचन बोले ॥ २८ ॥ कि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ आज मेरा जीवन सफल होगया जो कि सब देवताओं के पूजने योग्य आप मेरे घरमें प्राप्त हुये ॥ २९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ। कार्य को कहिये मैं निश्चय कर अपने जीवन को भी तुम्हारे लिये दूंगा मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ३० ॥ वशिष्टजी बोले कि मेरे आश्रम के समीप बड़ा भयंकर व गहरा

नगोत्तमम् ॥ सचैवपर्वतंचात्र प्रेषयिष्यतिभूधरः ॥ २६ ॥ येनस्यात्परिपूर्णत्वं श्वभ्रस्यास्यमहात्मनः ॥ ततोजगाम समुनिर्हिमवन्तंनगोत्तमम् ॥ २७॥ दृष्ट्वावसिष्ठमायान्तं हिमवान्हृष्टमानसः ॥ अर्घ्यपाद्यादिसत्कारैःसम्पूज्यइदम ब्रवीत॥ २८ ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठ सफलंमेद्यजीवितम् ॥ यद्भवान्मेगृहेप्राप्तः पूज्यःसर्वदिवौकसाम् ॥ २९ ॥ ब्रूहि कार्यमुनिश्रेष्ठ अपिजीवितमात्मनः ॥ नूनंतुभ्यंप्रदास्यामि नियोगोदीयतांमम ॥ ३० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ममाश्रमस्य सान्निध्ये श्वभ्रमस्तिसुदारुणम् ॥ अगाधंनन्दिनीतत्र पतिताधेनुरुत्तमा ॥ ३१ ॥ कृच्छ्रादाकर्षितातस्मान्मयापतन जाद्भयात् ॥ तवान्तिकमनुप्राप्तो नान्योयोग्योमहीतले ॥ ३२ ॥ तस्मात्कंचिन्नगश्रेष्ठं तत्रप्रेषयभूधर॥ येनतत्पूर्यतेश्वभ्रं शृङ्गम्प्रेषयतादृशम् ॥ ३३ ॥ हिमवानुवाच ॥ किंप्रमाणंमुनेश्वभ्रं विस्तारायामनोवद ॥ तत्प्रमाणंनगंकञ्चित्प्रेषयामिविचिन्त्यते ॥ ३४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ द्विसहस्रन्तुदैर्घ्येणविस्तारेत्रिसहस्रकम् ॥ नसंख्याविद्यतेधस्तात्तस्यपर्व

गढ़ा है उसमें उत्तम नंदिनीगऊ गिरपड़ीथी ॥ ३१ ॥ मैंने उसको क्लेशसे खींचा है और गिरने से उपजे हुये डरसे मैं तुम्हारे समीप प्राप्त हुआ क्योंकि पृथ्वी में अन्य योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ इस लिये हे भूधर ! किसी उत्तम पर्वत को पठाइये कि जिससे वह गढ़ा पूर्ण होजावै वैसे शिखर को पठाइये ॥ ३३ ॥ हिमवान् बोले कि हेमुने ! किस प्रमाण भर गढ़ा है उसको लम्बाई व चौड़ाई से कहिये तो उसी प्रमाणवाले किसी पर्वत को पठाऊं यह विचार किया जाता है ॥ ३४ ॥

वसिष्ठजी बोले कि हे पर्वतोत्तम ! लम्बाई से दोहज़ार व चौड़ाई तीन हज़ार योजन है और उसके नीचे संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ३५ ॥ हिमवान् बोले कि उस प्रमाण से कैसे बड़ा भारी गढ़ा हुआ यह मुझको कौतुक हुआ उस कारण विस्तार से सबको कहिये ॥ ३६ ॥ इतिश्री स्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायामर्बुदखण्डेश्वभ्रसूचनंनामप्रथमोध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कुंडल लै उत्तंक मुनि गौतम तियको दीन । सो दूजे अध्याय में वर्णित चरित नवीन ॥ वसिष्ठजी बोले कि पुरातन समय गौतमनामक बड़े तपस्वी मुनि हुये

तमसत्तम ॥ ३५ ॥ हिमवानुवाच ॥ कथंतेनप्रमाणेन सञ्जातोविवरोमहान् ॥ अभूत्कौतूहलन्तेन सर्वंविस्तरतोवद ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेश्वभ्रसूचनन्नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ * ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ आसीत्पूर्वंमुनिर्नाम गौतमश्चमहातपाः ॥ अहल्यादयितातस्य धर्मपत्नीयशस्विनी ॥ १ ॥ शिष्यानध्यापयामास समुनिःशतशस्तदा ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्नान्विससर्जततोगृहान् ॥ २ ॥ तस्यान्योपिचयःशिष्यो गुरुभक्तिपरायणः ॥ उत्तङ्कोनाममेधावी न्यवसत्तस्यमन्दिरे ॥ ३ ॥ नतंविसर्जयामास जरयापिपरिप्लुतम् ॥ उत्तङ्कोपिसुशिष्यत्वान्नगतःपलिताश्शिरः ॥ ४ ॥ शान्तिकार्यसमायुक्तो विद्यापारंगतोपिसः ॥ केनचित्त्वथकालेन काष्ठार्थंसबहिर्ययौ ॥ ५ ॥ प्रभूतानिसमादाय काष्ठानित्वाश्रमंगतः ॥ अथासौन्यक्षिपत्तत्र भूतलेकाष्ठसञ्चयम् ॥ ६ ॥ काष्ठलग्नां

हैं ॥ उनकी अहल्यानामक यशस्विनी व प्यारी धर्मपत्नी थीं ॥ १ ॥ उन मुनि ने उस समय सैकड़ों मुनियों को पढ़ाया तदनन्तर शास्त्रों के पढ़ने से संपन्न शिष्यों को घरों को बिदा किया ॥ २ ॥ उनका अन्य भी जो शिष्य गुरु की भक्ति में परायण था उस उत्तंकनामक बुद्धिमान् ने उनकेघरमें निवास किया ॥ ३ ॥ और जरा से मस्तक के बाल श्वेत होगये परन्तु (वृद्धता) सेभी संयुत उन उत्तंक को गौतमजीने नहीं बिदा किया और उत्तम शिष्य होने के कारण उत्तंक भी नहीं गये ॥४॥ और शान्ति के कार्य में संयुक्त वे विद्याओं के पारगामी हुये इसके अनन्तर किसी समय वे लकड़ियों के लिये बाहर गये ॥ ५ ॥ व बहुत से काष्ठों को लेकर वे आश्रम को

गये इसके अनन्तर इन्हों ने यहा पृथ्वी में काष्ठ के समूह को फेंकदिया ॥ ६ ॥ तब उन उत्तंक ने काठ में लगी हुई एक जटाको देखा व देखकर उन्हों ने दुःख में प्राप्त होकर दीनतासमेत विचार किया ॥ ७ ॥ कि धिक्कार है धिक्कार है गुरु के कार्य में लगेहुये मेरा जीवन नष्ट होगया क्योंकि मुझ निर्बुद्धि ने स्त्री का संग्रह नहीं किया ॥ ८ ॥ मुझ दुर्बुद्धि की शिथिलता से कुलका नाश होगा उस समय दुःखित उत्तंक को गुरुकी स्त्रीने देखा ॥ ९ ॥ और उसने उसके दुःख को शीघ्रही गौतमजी से बतलाया तदनन्तर गौतमजी ने उत्तंक से कोमल वाणी से कहा ॥ १० ॥ कि हे वत्स ! तुम घरको जावो व स्त्रीसमेत तुम अग्निहोत्रादिक कार्योंको

तदाश्वेतां जटामेकांददर्शसः ॥ सदृष्ट्वादुःखमापन्नः कृपणंपर्यचिन्तयत् ॥ ७ ॥ धिग्धिङ्मेजीवितंनष्टं गुरुकार्यरतस्यच ॥ कलत्रसंग्रहन्नैव मयाकृतमबुद्धिना ॥ ८ ॥ भविष्यतिकुलच्छेदः शैथिल्यान्ममदुर्मतेः ॥ गुरुपत्न्याचसंदृष्ट उत्तङ्कोदुःखितस्तदा ॥ ९ ॥ तस्यदुःखंतयाक्षिप्रं गौतमायनिवेदितम् ॥ गौतमेनततोत्तुङ्को मृदुवाण्याव भाषितः ॥ १० ॥ वत्सगच्छगृहंत्वंच अग्निहोत्रादिकाःक्रियाः ॥ पालयस्वविधानेन पत्न्यासहनसंशयः ॥ ११ ॥ इत्युक्तोगुरुणासोपि प्रत्युवाचगुरुंप्रति ॥ दक्षिणांप्रार्थितस्स्वामिन्नहंदास्याम्यसंशयम् ॥ १२ ॥ गौतम उवाच ॥ सेवाकृतात्वयावत्स महतीममसर्वदा ॥ तेनैवपरिपूर्णत्वं जातंममनसंशयः ॥ १३ ॥ उत्तङ्क उवाच ॥ किंचिद्वाच्यंत्वयास्वामिन् सन्तोषोजायतेमम ॥ त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ विद्यापारंगतोस्म्यहम् ॥ १४ ॥ गौतम उवाच ॥ नग्राह्यंचमयापुत्र सन्तुष्टस्सेवयास्म्यहम् ॥ दृष्ट्वात्वंमातरञ्चैव पश्चाद्गच्छगृहम्प्रति ॥ १५ ॥ इत्युक्तोगुरुणासोपि मातरंचाभ्यभाषत ॥ किञ्चि

विधिसे निरसन्देह पालन करो ॥ ११ ॥ गुरु से ऐसा कहे हुये उन उत्तंक ने गुरु से कहा कि हे स्वामिन् ! प्रार्थना किया हुआ मैं दक्षिणा को निरसन्देह दूंगा ॥ १२ ॥ गौतमजी बोले कि हे वत्स ! तुमने सदैव मेरी बड़ी सेवा किया है उसी से निरसन्देह मेरी परिपूर्णता होगई ॥ १३ ॥ उत्तक बोले कि हे स्वामिन् ! तुमको कुछ कहना चाहिये कि जिससे मुझको सन्तोष होवै क्योंकि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं विद्याओं का पारगामी हुआ हूं ॥ १४ ॥ गौतमजी बोले कि हे पुत्र ! मुझको दक्षिणा नहीं करना चाहिये क्योंकि मैं सेवा से प्रसन्न हूं तुम माता (गुरुकी स्त्री) को देखकर पश्चात् घरको जावो ॥ १५ ॥ गुरु

से ऐसा कहे हुये उन उत्तंक ने माता से कहा कि हे माता ! मुझ से कुछ ग्रहण करना चाहिये और मुझको सन्तोष दीजिये ॥ १६ ॥ गुरु की स्त्री बोली कि हे पुत्र ! तुम सौदास के समीप जावो व शीघ्रही मेरी आज्ञा करो कि उन सौदासकी यशस्विनी व प्यारी मदयन्ती स्त्री है ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! मदयन्ती के कुडलों को शीघ्रही लाइये और यदि पांचवें दिन न आवोगे तो मैं शाप दूंगी ॥ १८ ॥ गुरुकी स्त्री से ऐसा कहे हुये वे शीघ्रही चले और उस समय सुदासके घर को गये और उन्हों ने व्याघ्ररूपी सौदास को देखा ॥ १६ ॥ उन्हों ने उत्तंक से कहा कि तुमको खाने के लिये मैं प्राप्त हुआ हूं हे विप्र ! मैं तुमको भक्षण करूंगा

दृग्राह्यंमयामातः सन्तोषोदीयतांमम ॥ १६ ॥ गुरुपत्न्युवाच ॥ सौदासंगच्छपुत्रत्वं ममाज्ञांकुरुसत्वरम् ॥ मदयन्ती प्रियातस्य धर्मपत्नीयशस्विनी ॥ १७ ॥ कुण्डलेत्वानयक्षिप्रं मदयन्त्याश्चपुत्रक ॥ नोचेत्शापंप्रदास्यामि पञ्चमे ह्निनचागतः ॥ १८ ॥ इत्युक्तोगुरुपत्न्यास प्रस्थितस्सत्वरंतदा ॥ सुदासस्यगृहंप्रायाद् व्याघ्ररूपंचदृष्टवान् ॥ १९ ॥ सउक्तवांस्तदाविप्रं भक्षितुंत्वामुपस्थितः ॥ भक्षयिष्याम्यहंविप्र त्वामहन्नात्रसंशयः ॥ २० ॥ उत्तङ्क उवाच ॥ अव श्यञ्चबुभुक्षाते एकंशृणुनराधिप ॥ देहिमेकुण्डलेतावद्दत्त्वाहंगुरवेपुनः ॥ २१ ॥ आगमिष्यामिभक्षस्व मांत्वंका र्यविवर्जितम् ॥ २२ ॥ सौदास उवाच ॥ गच्छत्वंमन्दिरेदुर्गे यत्रास्तेदयितामम ॥ मत्सान्निध्यंनमायाति जीवितस्य भयाद्द्विज ॥ २३ ॥ याच्यतांममवाक्येन मातेदास्यतिकुण्डले ॥ त्वयाचनान्यथाकार्यं यत्सत्यंद्विजसत्तम ॥ २४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ मदयन्त्यास्समीपन्तु गत्वोवाचद्विजोत्तमः ॥ देहिमेकुण्डलेदेवि सौदासस्त्वांसमादिशेत ॥ २५ ॥

इस में सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ उत्तंकजी बोले कि हे राजन् ! तुम्हारे क्षुधा अवश्य है परन्तु मेरे एक वचन को सुनो कि मुझको कुंडलों को दीजिये तबतक मैं उनको गुरुके लिये देकर फिर ॥ २१ ॥ आऊँगा और आप कार्य से रहित मुझको भक्षण कीजियेगा ॥ २२ ॥ सौदास बोले कि तुम दुर्ग मन्दिर में जावो जहां कि मेरी प्यारी है हे द्विज ! वह जीने के डरसे मेरे समीप नहीं आती है ॥ २३ ॥ मेरे वचन से मांगिये वह मेरे वचन से तुमको कुण्डलों को देवैगी और हे द्विजोत्तम ! तुमको अन्यथा न करना चाहिये जो कि सत्य है ॥ २४ ॥ वसिष्ठजी बोले कि द्विजोत्तम उत्तंकजी मदयन्ती के समीप जाकर बोले कि हे देवि ! मुझको कुण्डलों को

दीजिये सौदास तुमको आज्ञा देते हैं ॥ २५ ॥ मदयन्ती बोली कि हे द्विजोत्तम ! कुण्डल में मुझको अभी सन्देह है हे द्विज ! राजा के सकाश से तुम अभिज्ञान (चिह्न) को लावो ॥ २६ ॥ उसने शीघ्रही जाकर राजा से चिह्न को मांगा सौदास बोले कि जिनके विना सुगति नहीं होती है और जिस से प्राणी दुर्गति को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम ! जाकर उस पतिव्रता स्त्री से मेरा ऐसा वचन कहियेगा तदनन्तर वह निश्चय कर रत्नों से शोभित कुंडलों को देवैगी ॥ २८ ॥ वसिष्ठजी बोले कि चिह्न को लेकर उत्तंकजी ने जाकर उससे बतलाया तदनन्तर उसने भी उसके लिये कुंडलों को दिया कि मेरे कुंडलों को ग्रहण कीजिये ॥ २९ ॥

मदयन्त्युवाच ॥ सन्देहोद्यापिमेविप्र कुण्डलेद्विजसत्तम ॥ अभिज्ञानन्त्वमानीहि नृपस्यद्विजसर्वथा ॥ २६ ॥ सगत्वा त्वरितंभूपमभिज्ञानमयाचत ॥ सौदास उवाच ॥ यैर्विनासुगतिर्नास्ति दुर्गतिंयेनयान्तिवै ॥ २७ ॥ गत्वैवंब्रूहितांसाध्वीं ममवाक्यन्द्विजोत्तम ॥ प्रदास्यतिततोनूनं कुण्डलेरत्नमण्डिते ॥ २८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ प्रत्यभिज्ञानमादाय गत्वातस्यै न्यवेदयत् ॥ ततःसापिददौतस्मै गृहाणमेकुण्डलेद्विज ॥ २९ ॥ उवाचयत्नमास्थाय नीयतांद्विजसत्तम ॥ एतेचवाञ्छते नित्यं तक्षकोद्विजकुण्डले ॥ ३० ॥ सतथेतिसमादाय विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ कौतुकात्पुनरागत्य राजानंवाक्यमब्रवीत ॥ ३१ ॥ साभिज्ञानान्मया भूपसम्प्राप्तेरत्नकुण्डले ॥ वाक्यार्थस्तुनविज्ञातस्ततोहंपुनरागतः ॥ ३२ ॥ कौतुकाद्दमेराजन् स्वकार्येचयथास्थितिः ॥ कैर्विनासुगतिर्नास्तिदुर्गतिंकेनयान्तिच ॥ ३३ ॥ सौदास उवाच ॥ आराधिता द्विजाविप्र भवन्तिसुगतिप्रदाः ॥ असन्तुष्टादुर्गतिदाः सद्योममयथापुरा ॥ ३४ ॥ एतान्ममशापोयं वसिष्ठस्यमहा

व यह कहा कि हे द्विजोत्तम ! यत्न में स्थित होकर इसको लेजाइये क्योंकि हे द्विज ! इन कुंडलों की सदैव तक्षक इच्छा करता है ॥ ३० ॥ वैसाही होगा यह कहकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले वे उत्तंकजी कुंडलों को लेकर व कौतुकसे फिर आकर राजा से वचन बोले ॥ ३१ ॥ कि हे भूप ! मैंने साभिज्ञान (पहँचान) से रत्नके कुंडलों को पाया परन्तु वाक्य का अर्थ नहीं जाना गया उसी कारण मैं फिर आयाहूँ ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! कौतुक के कारण मुझसे कहिये कि जिस प्रकार अपने कार्य में स्थिति होवै कि जिनके विना सुगति नहीं होती है व किससे मनुष्य दुर्गति को प्राप्तहोते हैं ॥ ३३ ॥ सौदास बोले कि हे विप्रजी ! आराध न किये हुये

ब्राह्मण सुगतिदायक होते हैं और अप्रसन्न वे शीघ्रही दुर्गति को देते हैं जैसे कि पहले मुझको हुये हैं ॥ ३४ ॥ महात्मा वसिष्ठजीका इतनाही मुझको शाप है व उन्हों ने कहा था कि जब कोई तुमसे प्रसन्न को कहावैगा ॥ ३५ ॥ तब दोष से मुक्त होवोगे इसमें सन्देह नहीं है हे द्विजोत्तम ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं पाप से छूटगया ॥ ३६ ॥ व हे विप्रजी ! सात्त्विकभाव में प्राप्त हुये जाइये तुम्हारे लिये नमस्कार है वसिष्ठजी बोले कि उनसे बिदा किये हुये उत्तंकजी उस समय शीघ्रही चले ॥ ३७ ॥ और जाते हुये क्षुधासे संयुत उन उत्तंक ने बेल के फलों को देखा तदनन्तर कुंडलों को कृष्णाजिन में बाधकर पृथ्वी में धरकर ॥ ३८ ॥ क्षुधा से

त्मनः ॥ तेनोक्तंत्वांयदाकश्चित्प्रश्नविख्यापयिष्यति ॥ ३५ ॥ तदादोषविनिर्मुक्तो भविष्यसिनसंशयः ॥ त्वत्प्रसादाद्वि निर्मुक्तस्त्वहंपापाद्द्विजोत्तम ॥ ३६ ॥ सात्त्विकंभावमापन्नो गच्छविप्रनमोस्तुते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ उत्तङ्कस्तेननिर्मुक्तः सत्वरंप्रस्थितस्तदा ॥ ३७ ॥ गच्छंश्चातिक्षुधाविष्टो पश्यद्बिल्वफलानिच ॥ ततःकृष्णाजिनेबद्ध्वा कुण्डलेन्यस्यभूत ले ॥ ३८ ॥ आरुरोहफलाकाङ्क्षी समुनिःक्षुधयार्दितः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तक्षकःपन्नगोत्तमः ॥ ३९ ॥ गृहीत्वाकु ण्डलेतूर्णमगमद्दक्षिणामुखः ॥ अथोत्तङ्कःफलाहारी अवतीर्य्यधरातले ॥ ४० ॥ सर्वतोन्वेपयामास वेगेनमहतावृतः ॥ सदृष्ट्वासम्मुखप्राप्तमायान्तंपन्नगोत्तमः ॥ ४१ ॥ प्रविवेशबिलंरौद्रमन्धकारेणसंवृतम् ॥ उत्तङ्कोपिबिलंप्राप्तः प्रवि श्यतमसावृतम् ॥ ४२ ॥ कन्दकाष्ठंसमादाय कुपितोह्यखनत्तदा ॥ तंतथादुःखितंदृष्ट्वा शक्रश्चगुरुकार्यतः ॥ ४३ ॥ वज्रमारोपयामास दण्डान्तेतस्यचाग्रतः ॥ ततोविपाटयामास सशीघ्रंधरणीतलम् ॥ ४४ ॥ प्रविष्टश्चैवपातालं कुण्डला

विकल वे फलों को चाहनेवाले उत्तंक मुनि वृक्ष पै चढ़गये इसी समय सर्पों में उत्तम तक्षक ॥ ३९ ॥ कुंडलों को लेकर शीघ्रही दक्षिण मुख चला गया इस के अनन्तर फलों को भोजन करनेवाले उत्तंकजी ने पृथ्वी में उतर कर ॥ ४० ॥ बड़े वेग से संयुत होकर सब ओर ढूंढ़ा और वह पन्नगोत्तम तक्षक आते हुये व सामने प्राप्त उत्तंक को देखकर ॥ ४१ ॥ अन्धकार से घिरे हुए भयंकर बिल में पैठगया और अन्धकार से घिरे हुये बिलमें उत्तंक भी प्राप्त हुये व उसमें पैठकर ॥ ४२ ॥ उस समय क्रोधित होते हुये उत्तंक ने कन्द की लकड़ी को लेकर खोदा गुरु के कार्य से उन उत्तंक को वैसे दुःखित देखकर इन्द्र ने ॥ ४३ ॥ उनके दण्डके अन्त

में आगे से वज्रको आरोपण किया तदनन्तर उन्होंने शीघ्रही पृथ्वी को खोदडाला॥ ४४ ॥ व पाताल में प्रवेश किया और कुंडलों के लिये घूमते हुये उन्हों ने वहां गुणों से संयुत व सम्पूर्ण सफेद घोडे को देखा ॥ ४५ ॥ उसने इनसे कहा कि मुझ से गुप्त वचन सुनिये उससे कार्य होगा तदनन्तर उन्होंने क्रोध किया उससे धुंवा पैदा हुआ ॥ ४६ ॥ हे भूधर ! उस अग्नि से सब पाताल भरगया तदनन्तर सब सर्प व्याकुल हुये व दौड़े ॥ ४७ ॥ और कुंडलों से संयुत वे तक्षक को आगे कर प्राप्तहुये तदनन्तर उत्तंक के लिये कुंडलों को देकर प्रणाम कर घरको गये ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर घोड़े ने उन उत्तंकजीसे यह कहा कि हे द्विजोत्तम ! तुमने उपा-

र्थंपरिभ्रमन् ॥ सोपश्यद्वाजिनंतत्र सर्वश्वेतंगुणान्वितम् ॥ ४५ ॥ तेनोक्तःशृणुमेगुह्यं ततःकार्यंभविष्यति ॥ सचकारत तःक्रोधं ततोधूमोऽभ्यजायत ॥ ४६ ॥ पातालंतेनसर्वन्तु व्याप्तंभूधरअग्निना ॥ ततश्चव्याकुलास्सर्वे पन्नगास्समुपा द्रवन् ॥ ४७ ॥ तक्षकंपुरतःकृत्वा सम्प्राप्ताःकुण्डलान्विताः ॥ उत्तङ्कायततोदत्त्वा प्रणिपत्यययुर्गृहम् ॥ ४८ ॥ अथा श्वस्तमुवाचेदमहमग्निर्द्विजोत्तम ॥ यस्त्वयाराधितःपूर्वमुपाध्यायनिदेशतः ॥ ४९ ॥ ज्ञात्वात्वांदुःखितंचाहमिहप्रा प्तःकृपापरः ॥ सर्वथात्वंचमेपृष्ठं भगवञ्छीघ्रमारुह ॥ ५० ॥ गच्छापितंत्रयत्रास्ते गुरुःसर्वगुणालयः ॥ आरूढस्त स्यपृष्ठेस प्रतस्थेआश्रमंप्रति ॥ ५१ ॥ तत्क्षणात्समनुप्राप्तो गौतमस्यनिवेशनम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु अहल्याकृतम ण्डना ॥ ५२ ॥ स्नातावोचतभर्तारं साध्वीवाक्यमुवाचह ॥ उत्तङ्कोद्यनसम्प्राप्तः शापंदास्याम्यहंध्रुवम् ॥ ५३ ॥ शि थिलोगुरुकार्येषु सदृष्टोहिमुनिर्मया ॥ तस्यावाक्यावसानेतु उत्तङ्कःपर्यदृश्यत ॥ ५४ ॥ प्रसन्नवदनोदृष्टःकुण्डलाभ्यां

ध्यायकी आज्ञासे जिसको पहले आराधन किया है वही मैं अग्नि हूं ॥ ४९ ॥ तुमको दुःखित जानकर दया में तत्पर मैं यहां प्राप्त हुआ हे भगवन् ! तुम सर्वथा मेरी पीठ पै चढ़ो ॥ ५० ॥ और वहां चलो जहां कि सब गुणों के स्थान वे गुरु हैं उस घोड़ेकी पीठ पै चढ़े हुये वे आश्रम को चले ॥ ५१ ॥ और उसीक्षण वे गौतम के आश्रम में प्राप्त हुये इसी अवसर में आभूपणों को किये हुई अहल्याजी ॥ ५२ ॥ स्नान कर बोलीं उन पतिव्रता अहल्या ने पतिसे यह वचन कहा कि आज उत्तंक नहीं प्राप्त हुये मैं निश्चयकर शापदूंगी ॥ ५३ ॥ मैंने उन मुनिको गुरुकार्य में शिथिल देखा उनके वचन के अन्त में उत्तंकजी देख पड़े ॥ ५४ ॥ कुंडलों

से संयुत उन उत्तंकको अहल्या ने प्रसन्नमुख देखा और उन्हों ने भक्ति से उन
देखकर उसीक्षण कुंडलों को कानों में पहन लिया तदनन्तर शीघ्रही उत्तंक को
वह बिल हुआहै जिस लिये गऊके लिये मुझको गढ़े के पूर्ण करने में बड़ी चिन्ताहै ॥
समर्थ नहीं है मेरे कार्य को शीघ्रही निरसन्देह कीजिये॥ ५८ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे

समन्वितः ॥ प्रणिपत्यसतांभक्त्या कुण्डलेसंन्यवेदयत् ॥ ५५
स्वगृहायततस्तूर्णमुत्तङ्कंविससर्जह ॥ ५६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥
चिन्ता धेन्वर्थंश्वभ्रपूरणे ॥ ५७ ॥ तस्मात्त्वंपूरयाक्षिप्रं नान्य
यम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेविवरोत्पत्तिर्नामद्वि

सूत उवाच ॥ श्रुत्वाहिमाचलोवाक्यं वसिष्ठस्यमहात्मनः।
चार्यतमृषिमिदमाहनगोत्तमः ॥ कउपायोनगानांवै तत्रगन्तुं
तस्मात्त्वंहिमुनिश्रेष्ठ कार्यस्यपश्यनिश्चयम् ॥ ३ ॥ वसिष्ठ उ
नयस्तत्र विख्यातोनन्दिवर्द्धनः ॥ ४ ॥ तस्यार्बुदइतिख्यातो

दो॰। नन्दिवर्धनहिं डारिकै किय अर्बुद बिल पूर। सोइ तीजे अध्याय में कह्यो
हिमाचल ने बिलके पूर्ण करने में उस कार्य को चिन्तवन किया ॥ १ ॥ बहुत देर तक
के जाने के लिये कौन उपाय है उसको मुझसे कहिये ॥ २ ॥ पुरातन समय इन्द्र ने स
देखिये ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे अनघ ! मुझसे वहां पर्वतों को लेजाने के लिये

अर्बुद ऐसा नाग मित्र प्रसिद्ध है जो प्राणधारियों में श्रेष्ठ व आकाशगामी तथा पराक्रमी है ॥ ५ ॥ वह सब कार्यों में लीला से शीघ्रही बढ़ाता है व नाश करता है इसमें सन्देह नहीं है उसको जानकर मैं आया हूं ॥ ६ ॥ इसको आज्ञादीजिये तुम दुःख करने के लिये नहीं योग्य हो यदि अवश्य भक्त हो तो शीघ्रही पठाइये॥७॥ सूतजी बोले कि वसिष्ठजी के वचन को सुनकर पुत्रप्रिय हिमवान् पर्वत बड़े दुःख से संयुक्त हुआ व उसने चिन्तवन किया ॥ ८ ॥ कि हमारा मैनाक पुत्र डरसे समुद्र में पैठगया उस ज्येष्ठ व सर्वथा श्रेष्ठ पुत्रको वसिष्ठ लेने के लिये आये हैं ॥ ९ ॥ इस समय मुझको क्या करना चाहिये व किस प्रकार कल्याण होगा इधर

र्यवान् ॥ ५ ॥ सवर्द्धयतिहिक्षिप्रं क्षिणोत्येवनसंशयः ॥ लीलयासर्वकृत्येषु तंविदित्वाहमागतः ॥ ६ ॥ आदेशोदी यतामस्य दुःखंकर्त्तुंचनार्हसि ॥ अवश्यंयदिभक्तोसि तत्रप्रेषयसत्वरम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ वसिष्ठस्यवचःश्रुत्वा हिम वान्पुत्रवत्सलः ॥ दुःखेनमहताविष्टः चिन्तयामासभूधरः ॥ ८ ॥ मैनाकस्तनयोस्माकं प्रविष्टस्सागरेभयात् ॥ ज्येष्ठ न्तुसर्वथावर्यं वसिष्ठोनेतुमागतः ॥ ९ ॥ किंकृत्यमधुनास्माकं कथंश्रेयोभविष्यति ॥ इतःशापभयंतीव्रमितोदुः खंचपुत्रजम् ॥ १० ॥ वरंपुत्रवियोगोस्तु नशापोद्विजसम्भवः ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा नन्दिवर्धनमुक्तवान् ॥ ११॥ गच्छ त्वंपुत्रमेवाक्याद्वसिष्ठस्याश्रमंप्रति ॥ तत्रास्तिविवरोरौद्रस्तंप्रपूरयसत्वरम् ॥ १२ ॥ अर्बुदंनागमारुह्य मित्रंप्राणभृ तांवरम् ॥ नन्दिवर्द्धन उवाच ॥ पापीयान्सविभोदेशः फलमूलविवर्जितः ॥ १३ ॥ पलाशैःखदिरैराम्रैर्धवैःशाल्म लिभिस्तथा ॥ अनिष्टैर्नृपशुभिर्भिन्नश्चविविधैरपि ॥ १४ ॥ नद्योजलरुहैर्हीना दुष्टालोकाश्चवासिनः ॥ नार्हाेहंपर्वत

तीव्र शाप का भय है व इधर पुत्रसे उपजा हुआ दुःख है ॥ १० ॥ पुत्रका वियोग होवै तो श्रेष्ठ है परन्तु ब्राह्मण से उपजा हुआ शाप नहीं श्रेष्ठ है इस प्रकार उस हिमाचल ने निश्चय कर नंदिवर्धन से कहा ॥ ११ ॥ कि हे पुत्र ! तुम मेरे वचन से वसिष्ठ के आश्रम को जावो वहां भयंकर बिल है उसको शीघ्रही पूर्ण कीजिये ॥ १२ ॥ प्राणधारियों मे श्रेष्ठ अर्बुद नाग पै चढ़कर जावो नन्दिवर्धन बोले कि हे विभो ! फलों व मूल से रहित वह देश बडा पापी है ॥ १३ ॥ क्योंकि ढाक, खैर, आम, धव, सेमर और नम्र मनुष्यों व पशुओं तथा अनेक भांति के अन्य प्राणियों से भिन्न है ॥ १४ ॥ व नदियां कमलों से रहित हैं और दुष्टलोग वहां

बसते हैं हे पर्वतश्रेष्ठ ! मैं वहां जाने के लिये किसी प्रकार योग्य नहीं हूं ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर डरेहुये उन नन्दिवर्धन से वसिष्ठजीने कहा कि देश के दोष से तुमको वहा भय न करना चाहिये ॥ १६ ॥ क्योंकि वहां तुम्हारे मस्तक में मेरा सदैव निवास होगा और तीर्थ, नदियां, देवता व पवित्र देवमन्दिर ॥ १७ ॥ और अनेक भांति के आकारवाले पत्रों व पुष्पों तथा फलों से संयुत वृक्ष वहां सदैव होवैंगे और उत्तम मृग व पक्षी होवैंगे ॥ १८ ॥ और जब मैं ही तुम्हारे लिये महादेवजी को लाऊंगा तब वहा इन्द्रसमेत सब देवता टिकैंगे ॥ १९ ॥ सूतजी बोले कि वसिष्ठजी का वचन सुनकर नन्दिवर्धन प्रसन्न हुये और अर्बुद नाम के समीप

श्रेष्ठ तत्रगन्तुंकथंचन ॥ १५ ॥ अथोवाचवसिष्ठस्तं सन्त्रस्तंनन्दिवर्द्धनम् ॥ माभीःकार्यात्वयातत्र देशदोष्यात्कथ चन ॥ १६ ॥ तवमूर्ध्निसदावासो ममतत्रभविष्यति ॥ तीर्थानिसरितोदेवाः पुण्यान्यायतनानिच ॥ १७ ॥ वृक्षाश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलान्विताः ॥ सदातत्रभविष्यन्ति मृगाश्चविहगाःशुभाः ॥ १८ ॥ अहमेवानयिष्यामि तवार्थे चमहेश्वरम् ॥ तदास्थास्यन्तिवैतत्र सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ वसिष्ठस्यवचःश्रुत्वा सहृष्टोनन्दिवर्द्ध नः ॥ अर्बुदंनागमासाद्य वाक्यमेतदुवाचह ॥ २० ॥ तत्रमांनयभद्रन्ते वयस्यंविनयान्वितम् ॥ एतत्कार्यमहंमेने सां प्रतन्द्विजसम्भवम् ॥ २१ ॥ अर्बुद उवाच ॥ अहंतत्रनयिष्यामि स्नेहात्त्वांपर्वतात्मज ॥ तत्रैवचवसिष्यामि त्वयासार्द्धम संशयम् ॥ २२ ॥ किंत्वहंप्रणयाद्भ्रातर्वक्ष्यामियद्वचःशृणु ॥ प्रणयान्नान्यथाकार्यं यथाहन्तवसंमतः ॥ २३ ॥ मन्नाम्नाख्यातिमायातु नान्यत्किञ्चिद्ब्रवीम्यहम् ॥ ततःसोपिप्रतिज्ञाय आरूढस्तस्यचोपरि ॥ २४ ॥ प्रणम्यपितरौ

जाकर इस वचन को बोले कि ॥ २० ॥ तुम्हारा कल्याण होवै वहां विनय से संयुत मुझ मित्रको ले चलिये इस समय में ब्राह्मण से उपजे हुये इस कार्य को जानता हूं ॥ २१ ॥ अर्बुद बोला कि हे पर्वतात्मज ! मैं स्नेह से तुमको वहां ले चलूंगा और तुमसमेत मैं वहीं बसूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ किन्तु हे भ्रातः ! मैं स्नेह से जिस वचन को कहता हूं उसको सुनिये और जैसा कि मैं सम्मत हूं वैसेही स्नेह से अन्यथा न करना चाहिये ॥ २३ ॥ कि मेरे नाम से आप प्रसिद्धिको प्राप्त

होवो मैं और कुछ नहीं कहता हूं तदनन्तर वह नंदिवर्धन भी प्रतिज्ञा कर उसके ऊपर सवार हुआ ॥ २४ ॥ और माता, पिता को प्रणाम कर मुनिसमेत चला और उत्तम देववृक्षों से पूर्ण और मधुर पक्षियों से युक्त व सौम्यमृगों से संयुत नंदिवर्धन पर्वत को उसी बिल में अर्बुदने वसिष्ठ मुनिके वचन से छोड़दिया ॥ २५ । २६ ॥ व अर्बुद महात्मा से छोड़ा हुआ वह उत्तम पर्वत उस बिल में मग्न होगया और उसमें नासिका के अग्रभागतक गया ॥ २७ ॥ व महारौद्र बिलके पूर्ण होने पर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी प्रसन्न हुये और उन्हों ने अर्बुद नाग से कहा कि हे सुव्रत ! वरदान को मांगिये ॥ २८ ॥ हे भद्र, पन्नग ! इस कर्म से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न

चैव प्रतस्थेमुनिनासह ॥ देववृक्षैःशुभैःपूर्णोनन्दिवर्द्धनपर्वतः ॥ २५ ॥ मधुरैर्विहगैर्युक्तो मृगैस्सौम्यैःसमन्वितः ॥ मुक्तोर्बुदेनतत्रैव विवरेमुनिवाक्यतः ॥ २६ ॥ समग्नस्तत्रनासाग्रं गतोपर्वतसत्तमः ॥ विमुक्तोविवरेतस्मिन्नर्बुदेनमहात्मना ॥ २७ ॥ परिपूर्णेमहारौद्रे सन्तुष्टोमुनिपुङ्गवः ॥ अब्रवीत्सोर्बुदंनागं वरंवरयसुव्रत ॥ २८ ॥ परितुष्टोस्मितेभद्र कर्मणानेनपन्नग ॥ २९ ॥ अर्बुद उवाच ॥ अयमेववरोस्माकं यत्त्वंतुष्टोमहामुने ॥ अवश्यंयदिदातव्यं तच्छृणुष्वद्विजोत्तम ॥ ३० ॥ यच्चैतच्छिखरेह्यस्मिन्निर्भरन्निर्मलोदकम् ॥ नागतीर्थमितिख्यातिं भूतलेयातुसर्वतः ॥ ३१ ॥ अत्राहंनिवसिष्यामि मित्रस्नेहात्सदामुने ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्तु मानवास्त्वत्प्रसादतः ॥ ३२ ॥ अपिबन्ध्याचयानारी स्नानमात्रंसमाचरेत् ॥ सास्यात्पुत्रवतीविप्र सुखसौभाग्यसंयुता ॥ ३३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यावन्ध्यास्मिञ्जलेपूर्णे स्नानमात्रंकरिष्यति ॥ सापिपुत्रमवाप्नोति सर्वलक्षणलक्षिता ३४ ॥ नभस्यशुक्लपञ्चम्यां फलैःपूजांकरोतिया ॥ अपि

हूं ॥ २९ ॥ अर्बुद बोला कि हे महामुने ! यही मेरा वरदान है जो कि तुम प्रसन्न हो व हे द्विजोत्तम ! यदि अवश्य देने योग्य है तो सुनिये ॥ ३० ॥ कि इस शिखर में निर्मल जलवाला जो झरना है वह सब ओर पृथ्वी में नागतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ ३१ ॥ व हे मुने ! मित्रके स्नेह से मैं यहां सदैव बसूंगा उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य तुम्हारी प्रसन्नता से स्वर्गको प्राप्त होवैं ॥ ३२ ॥ व हे विप्रजी ! जो बांझ भी स्त्री स्नानमात्र करै वह पुत्रवती और सुख व सौभाग्य से संयुत होवै ॥ ३३ ॥ वसिष्ठजी बोले कि जो बाझ स्त्री इस पवित्र जलमें स्नानही करैगी सब लक्षणों से चिह्नित वह भी पुत्रको पावैगी ॥ ३४ ॥ और जो स्त्री भादौं

की शुक्ल पक्षवाली पंचमी में फलों से पूजन करैगी वह सौ वर्षकी भी स्त्री पुत्रवती होगी ॥ ३५ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से इस तीर्थ में स्नान करैंगे वे वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम स्थान को जावैंगे ॥ ३६ ॥ व सावधान होते हुये जो पुरुष भादौं महीने में पंचमी तिथिमें वहां श्राद्ध करैंगे उनको तीर्थ का फल होगा ॥ ३७॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उनको वरदान देकर भगवान् वसिष्ठ मुनि नंदिवर्धन के समीप आकर यह वचन बोले ॥ ३८ ॥ हे अनघ, वृक्ष! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं ॥ वरदान को मांगिये नम्रता व स्नेह से मैं जो बहुत दुर्लभ होगा उसको भी दूंगा ॥ ३९ ॥ नंदिवर्धन बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! पहले कहा हुआ तुम्हारा वचन

वर्षशतानारी साभविष्यतिपुत्रिणी ॥ ३५ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति ह्यस्मिंस्तीर्थेचभक्तितः॥ यास्यन्तितेपरंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ३६ ॥ श्राद्धंतत्रकरिष्यन्ति पञ्चम्यांयेसमाहिताः ॥ नभस्येमासितीर्थस्य फलंतेषांभविष्यति॥३७॥ सूत उवाच ॥ एवंदत्त्वावरंतस्य वसिष्ठो भगवान्मुनिः ॥ नन्दिवर्धनमभ्येत्य वाक्यमेतदुवाचह ॥ ३८ ॥ वरञ्चत्रियतांवत्स परितुष्टोस्मितेनघ ॥ विनयात्सौहृदात्सर्वं दास्यामियत्सुदुर्लभम् ॥ ३९ ॥ नन्दिवर्द्धन उवाच ॥ तवास्तुवचनं सत्यं पूर्वोक्तंमुनिसत्तम ॥ सान्निध्यंजायतामत्र अवश्यंतवसर्वदा ॥ ४० ॥ यथाहमर्बुदेत्येवं ख्यातिंगच्छामिभूतले ॥ प्रसादात्तेतथाभूयादेतन्मेमनसिस्थितम् ॥ ४१ ॥ सूत उवाच ॥ एवमस्त्वितितच्चोक्त्वा वसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ चक्रेस्वमाश्रमंतत्र तस्यवाक्येननोदितः ॥ ४२ ॥ पनसैश्चम्पकैराम्रैः प्रियङ्गुव्रातदाडिमैः ॥ नानापक्षिसमायुक्ते देवगन्धर्वसेविते ॥ ४३ ॥ तस्थौतत्रमुनिश्रेष्ठ अरुन्धत्यासमन्वितः ॥ गौतमीमानयामास तपसामुनिसत्तम ॥ ४४ ॥

सत्य होवै कि सदैव यहां तुम्हारी अवश्य सामीप्य होवै ॥ ४० ॥ जिस प्रकार मैं तुम्हारी प्रसन्नता से पृथ्वी में अर्बुद ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्नहोऊ वैसाही होवै यह मेरे मन में स्थित है ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले कि ऐसाही होवै यह उससे कहकर भगवान् वसिष्ठ मुनि ने वहां उसके वचन से प्रेरित होकर अपना आश्रम किया ॥ ४२ ॥ और कटहर, चंपक, आम, प्रियंगुसमूह व दाडिम (अनार) वृक्षों से संयुत तथा अनेक भांति के पक्षियों से संयुत तथा देवताओं व गंधर्वों से सेवित ॥ ४३ ॥ उस

पर्वत पै अरुंधतीसमेत वसिष्ठ मुनि टिके व उन मुनिश्रेष्ठ ने तपस्यासे गोमती को आना ॥ ४४ ॥ जिसमें नहाकर पापकारी भी मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं और विशेष कर माघ महीने में मकरराशि में सूर्य नारायण को स्थित होने पर ॥ ४५ ॥ जो इसमें स्नान करेंगे वे उत्तमगतिको प्राप्त होवेंगे व जो विशेषकर माघ महीने में तिलदान करता है ॥ ४६ ॥ वह मनुष्य तिलसंख्यक वर्षों तक स्वर्ग में टिकता है यहां बहुत कहने से क्या है जो मनुष्य स्नानमात्र करता है ॥ ४७ ॥ वह वसिष्ठ के मुख को देखकर फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है और पूजने योग्य अरुंधतीजीको पूजना चाहिये ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि

यस्यांस्नात्वादिवंयान्ति अपिपापकृतोनराः ॥ माघमासेविशेषेण मकरस्थेदिवाकरे ॥ ४५ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्तितेयास्यन्तिपरांगतिम् ॥ माघमासेविशेषेण तिलदानंकरोतियः ॥ ४६ ॥ तिलसङ्ख्यानिवर्षाणि स्वर्गेतिष्ठतिमानवः ॥ बहुनाकिमिहोक्तेन स्नानमात्रंसमाचरेत् ॥ ४७ ॥ वसिष्ठस्यमुखंदृष्ट्वा पुनर्जन्मनविद्यते ॥ अरुन्धतीपूजनीया पूजनीयाविशेषतः ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेविवरपूरणन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ सतुकृत्वाश्रमंतत्र वसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ तत्रशम्भोर्निवासाय तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ १ ॥ सबभूवमुनिःसम्यक् फलाहारसमन्वितः ॥ शीर्णपर्णाशनश्चैवद्विशतंसमतीत्यवै ॥ २ ॥ जलाहारःशतंपञ्च वर्षाणिसबभूवह॥ वर्षाणिवायुभक्षोभूत्ततोदशशतानिच ॥ ३ ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे हेमन्तेसलिलाशयः ॥ वर्षास्वाकाशवासीच स

तायांभाषाटीकायांविवरपूरणंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । जिमि पर्वत को फोरिकै भो अचलेश्वर नाम । सो चौथे अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ सूतजी बोले कि वहां उन भगवान् वसिष्ठमुनि ने आश्रम करके शिवजीके निवास के लिये वहां दारुण तप कियाहै ॥ १ ॥ वे मुनि भलीभांति फलाहारसंयुत हुये और गिरे हुये पत्तोंको भोजन करते हुये वे मुनि दोसौ वर्ष व्यतीत कर ॥ २ ॥ पांचसौ वर्ष तक जलाहारी हुये तदनन्तर दश सौ वर्ष तक वे पवनभोजी हुये ॥ ३ ॥ व ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्निसाधक तथा हेमन्त में जलाशय हुये

तदनन्तर हज़ार वर्ष तक वर्षाऋतु में आकाशवासी हुये ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन महात्मा वसिष्ठ ऋषिके ऊपर महादेवजी प्रसन्न हुये व उसी क्षण उस पर्वत को फोड़ कर उनके आगे लिंग उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ उन शिवजी को देखकर विस्मय से संयुत मुनिने स्तोत्र कहा कि सर्वव्यापी व अमृतशुद्ध शिवजीके लिये नमस्कार है ॥ ६ ॥ तुम कपर्दी के लिये नमस्कार है व उन त्रिमूर्ति के लिये प्रणाम है व स्थूल, सूक्ष्म और महात्मा भूतेश के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ तुम निषंग (तरकस) धारी के लिये नमस्कार है व त्रिलोचनजी के लिये प्रणामहै हे चन्द्रकृताधार ! नमस्कारहै और दिग्वसन (नग्न) के लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ हे अष्टमूर्ते ! आप

हस्रञ्चततोऽभवत् ॥ ४ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्यर्षेस्सुमहात्मनः ॥ भित्त्वातंपर्वतंसद्यः तत्पुरोलिङ्गमुत्थितम् ॥ ५ ॥ तंदृष्ट्वाविस्मयाविष्टो मुनिस्स्तोत्रमुदीरयत्॥नमश्शिवायशुद्धाय सर्वगायामृतायच ॥ ६ ॥ कपर्दिनेनमस्तुभ्यं नम स्तस्मैत्रिमूर्त्तये ॥ नमस्स्थूलायसूक्ष्माय भूतेशायमहात्मने ॥ ७ ॥ निषङ्गिणेनमस्तुभ्यं त्रिनेत्रायनमोनमः ॥ नमः चन्द्रकृताधार नमोदिग्वसनायच ॥ ८ ॥ पिनाकपाणयेतुभ्यमष्टमूर्तेनमोनमः ॥ नमस्तेज्ञानरूपाय ज्ञानगम्यायते नमः ॥ ९ ॥ नमस्तेज्ञानदेहाय सर्वज्ञानमयायच ॥ काशीपतेनमस्तुभ्यं गिरिशायनमोनमः ॥ १० ॥ जगत्कारणरू पाय महादेवायतेनमः ॥ गौरीकान्तनमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यंशिवात्मने ॥ ११ ॥ ब्रह्मविष्णुस्वरूपाय त्रिनेत्रायनमोन मः ॥ विश्वरूपायशुद्धाय नमस्तुभ्यंमहात्मने ॥ १२ ॥ नमोविश्वस्वरूपाय सर्वदेवमयायच॥एतस्मिन्नेवकालेतु वाग्

पिनाकपाणिके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै व ज्ञानरूपी आपके लिये प्रणामहै और ज्ञानसे जाने योग्य आपके लिये प्रणामहै ॥ ९ ॥ ज्ञान शरीरवाले आपके लिये प्रणाम है व ज्ञानमय के लिये नमस्कार है हे काशीपते ! तुम्हारे लिये प्रणाम हैव गिरिश के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १० ॥ व संसार के कारणरूप आप महादेवजी के लिये प्रणाम है हे गौरीपते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शिवात्मा आपके लिये प्रणाम है ॥ ११ ॥ और ब्रह्मा व विष्णुरूपी त्रिलोचनजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है व विश्वरूप आप शुद्ध महात्मा के लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ व संसारस्वरूप सब देवमय के लिये प्रणाम है इसी अवसर में आकाश-

वाणी बोली ॥ १३ ॥ कि हे सुव्रत ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान को मांगिये यह कहकर पर्वत को फोड़कर उनके आगे लिंग उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे शंकरजी ! इस लिंग में तुम्हारी सदैव समीपता होवै मैंने पहले प्रतिज्ञा किया है व महात्मा आपके लिये मैं प्रणाम करता हूं ॥ १५ ॥ हे शंकरजी ! यदि प्रसन्न हो तो तुम मेरे वचन को सत्य कीजिये भगवान् शिवजी बोले कि आजसे लगाकर इस लिंग में मेरी समीपता होगी ॥ १६ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ, मुनिसत्तम ! तुम्हारा सब वचन सत्य होगा व जो मनुष्य कुँवार महीने में कृष्णपक्ष में चौदसि तिथि में भक्तिसे इस स्तोत्र से स्तुति करैगा वह उत्तम गतिको प्राप्त होगा व हे

वाचाशरीरिणी ॥ १३ ॥ परितुष्टोस्मितेभद्र वरंवरयसुव्रत ॥ इत्युक्त्वापर्वतंभित्त्वा तत्पुरोलिङ्गमुत्थितम् ॥ १४॥ वसिष्ठ उवाच ॥ लिङ्गेस्मिंस्तवसान्निध्यं सदाभवतुशङ्कर ॥ मयापूर्वंप्रतिज्ञातं नमस्येहंमहात्मने ॥ १५ ॥ सत्यंकुरुवचोमेत्वं यदितुष्टोसिशङ्कर ॥ भगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृतिलिङ्गेस्मिन्सान्निध्यंमेभविष्यति ॥१६॥ त्वद्वाक्यंब्राह्मणश्रेष्ठ सर्वं सत्यंभविष्यति ॥ स्तोत्रेणानेनयोमर्त्यो मांस्तविष्यतिभक्तितः ॥ १७ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामाश्विनेमुनिसत्तम ॥ मत्प्रियार्थन्तुशक्रेण प्रेषितामुनिसत्तम ॥ १८ ॥ मन्दाकिनीतिविख्याता नदीत्रैलोक्यपावनी ॥ देवस्योत्तरदिग्भागे कुण्डन्तिष्ठतिनित्यशः ॥ १९ ॥ तस्यांस्नात्वामुनिश्रेष्ठ मल्लिङ्गंपश्यतेतुयः ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ २० ॥ अचलंभेदयित्वातु यस्मान्मेलिङ्गमुद्गतम् ॥ अचलेश्वरनाम्नैव लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ २१ ॥ अस्यलिङ्गस्यसाच्छाया नकदाचिच्चलिष्यति ॥ सर्वथामइदंलिङ्गं प्रलयान्तेनचाल्यते ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ एतावदुक्त्वावचनं

मुनिश्रेष्ठ ! मेरे प्रियके लिये इन्द्र ने त्रिलोक को पवित्र करनेवाली मंदाकिनी ऐसी प्रसिद्ध नदी को पठाया है और शिवदेवजी के उत्तर दिशा के भागमें सदैव कुण्ड स्थित रहता है ॥ १७ । १८ । १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसमें नहाकर जो मनुष्य मेरे लिंग को देखता है वह वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम स्थान को जाता है ॥ २० ॥ जिसलिये अचल (पर्वत) को फोड़कर मेरा लिंग उत्पन्न हुआ उसी कारण यह संसार में अचलेश्वर नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ और इस लिंगकी वह

छाया कभी नहीं चलैगी मेरा यह लिंग कल्पान्त में भी सब प्रकार से न चलाया जायगा ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि इतनाही वचन कहकर महादेवजी चुप होगये और प्रसन्न मनवाले मुनीश्वर वसिष्ठजी गौतमादिक मुनियों को लाये ॥ २३ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा वसिष्ठजी तपसे इन्द्रादिक देवताओं व तीर्थों और देवमन्दिरों को उत्तम पर्वत पै लाये ॥ २४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये सुरश्रेष्ठ (शिवजी) ने वहां निवास किया ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामचलेश्वरोत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

विरराममहेश्वरः ॥ वसिष्ठोपिसुहृष्टात्मा गौतमादीन्मुनीश्वरः ॥ २३ ॥ शक्रादींश्चततोदेवांस्तीर्थान्यायतनानिच ॥ आनयामासब्रह्मर्षिस्तपसापर्वतोत्तमे ॥ २४ ॥ ततस्तुष्टस्सुरश्रेष्ठस्तत्रवासमथाकरोत ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे र्बुदखण्डेचलेश्वरोत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ अर्बुदस्यचमाहात्म्यं विस्तरेणवदस्वनः ॥ कौतुकंसूतनोजातं कथयस्वयथाश्रुतम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ पुरासीचऋषिश्रेष्ठः पुलस्त्योभगवान्मुनिः ॥ ययातेश्चगृहंयातो नरपालनमस्कृतः ॥ २ ॥ ययातिरुवाच ॥ स्वागतंतेमुनिश्रेष्ठ सफलंमेद्यजीवितम् ॥ कथयस्वप्रसादेन कथामर्बुदसम्भवाम्॥ ३ ॥ अर्बुदाख्योनगोनाम विख्यातो योधरातले ॥ तस्ययात्राक्रमंब्रूहि तत्फलंद्विजसत्तम ॥ ४ ॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि तीर्थयात्रापरायणः ॥ तस्माद्वदमुनि

दो० । नागतीर्थमें न्हाय भइ, विधवा गर्भिणि नारि । सोइ पञ्चम अध्याय में कह्यो चरित सुखकारि ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! अर्बुद के माहात्म्य को हमलोगों से विस्तार से कहिये हमलोगों के कौतुक पैदा हुआ है इससे जैसा सुना गया हो वैसाही उसको कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय ऋषियों में श्रेष्ठ भगवान् पुलस्त्यमुनि हुये हैं वे ययाति के घर को गये नरपालक ययातिजी ने उनको प्रणाम किया ॥ २ ॥ ययाति बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ आज मेरा जीवन सफल होगया आप अर्बुद से उपजी हुई कथा को कहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! अर्बुदनामक जो पर्वत पृथ्वीमें प्रसिद्ध है उसकी यात्रा

का क्रम व उसके फल को कहिये ॥ ४ ॥ तीर्थों की यात्रामें परायण तुम सब को विस्तार से कहो हे मुनिश्रेष्ठ ! इसलिये विस्तार से कहिये कि जिमसे मैं यात्रा करूं ॥ ५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! अर्बुदनामक उत्तम पर्वत बहुत धर्ममय है वह विस्तारसे सौ वर्षों से भी नहीं कहा जासक्ता है ॥ ६ ॥ तथापि मैं तुमसे मुख्य तीर्थों को संक्षेप से कहूंगा वहीं मनुष्यों के सब कामनाओं को देनेवाला नागतीर्थ है ॥ ७ ॥ व विशेषकर स्त्रियों को पुत्र व सौभाग्य को देनेवाला है हे राजन् ! पहले के चरित्र को सुनिये जिस से उत्तम आश्चर्य होताहै ॥ ८ ॥ कि पतिव्रता व साध्वी गौतमीनामक ब्राह्मणी हुई है जो कि बाल्यावस्था में वैधव्यता को प्राप्त होकर

श्रेष्ठ येनयात्रांकरोम्यहम् ॥ ५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ बहुधर्ममयोराजन्नर्बुदःपर्वतोत्तमः ॥ अशक्तोविस्तराद्वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ६ ॥ संक्षेपात्कथयिष्यामि तीर्थमुख्यानितेतथा ॥ नागतीर्थन्तुतत्रास्ति सर्वकामप्रदन्नृणाम् ॥ ७ ॥ नारीणांचविशेषेण पुत्रसौभाग्यदायकम् ॥ शृणुराजन्पुरावृत्तं यतोप्याश्चर्यमुत्तमम् ॥ ८ ॥ गौतमीब्राह्मणीनाम सतीसाध्वीपतिव्रता ॥ बालवैधव्यसंप्राप्ता तीर्थयात्रापरायणा ॥ ९ ॥ अर्बुदंसाचसंप्राप्ता नागतीर्थेविवेशह ॥ तस्मिञ्जलेनिमग्नासा स्नातुमभ्याययौपरा ॥१०॥ नार्येकापुत्रसंयुक्ता तत्तीर्थंसमुपागता ॥ शुश्रूषांतनयस्तस्याश्चक्रेनानाविधान्नृप ॥ ११ ॥ सर्वोपकारणैर्दर्भैः सुमनोभिःपृथग्विधा ॥ अथसाचिन्तयामास गौतमीपुत्रदुःखिता ॥ १२ ॥ धन्योयंतनयोह्यस्याः शुश्रूषांकुरुतेसदा ॥ पुत्रयुक्ता त्वियंधन्या धिङ्मांपुत्रविवर्जिताम् ॥ १३ ॥ अहंभर्त्राविुयुक्ताच पुत्रहीनासुदुःखिता ॥ अथमानिर्गतातस्मात्सलिलान्नृपसत्तम ॥ १४ ॥ विनापिभर्तृसंयोगात्सद्योगर्भवतीह्यभूत् ॥ साग

तीर्थयात्रा में परायण हुई ॥ ९ ॥ और वह अर्बुद में प्राप्तहुई व नागतीर्थ में पैठी वह उस जलमें नहाती थी इतने में अन्य एक स्त्री नहानेके लिये आई व उस तीर्थ में प्राप्त हुई हे राजन् ! उसके पुत्रने अनेक प्रकार की सेवा किया ॥ १० । ११ ॥ और सब सामग्रियों से तथा कुशों व पुष्पों से अनेकभांति सेवा किया इसके अनन्तर पुत्रसे दुःखित गौतमी ने चिन्तवन किया ॥ १२ ॥ कि इसका यह पुत्र धन्यहै जो कि सदैव सेवा करता है पुत्र से संयुत यह धन्य है व पुत्र मे वर्जित मुझको धिक्कार है ॥ १३ ॥ और मैं पति से वियुक्त व पुत्रहीन और बहुतही दुःखित हूं इसके अनन्तर हे नृपोत्तम ! वह उस जल से निकली ॥ १४ ॥ और पतिसंयोग के विना भी

वह उसी क्षण गर्भिणी हुई और गर्भ के लक्षणों से युक्त व निजजनों की लज्जा से संयुत उस ने ॥ १५ ॥ मरने में बुद्धि किया व अग्नि को जलाया इसी समय में आकाशवाणी बोली ॥ १६ ॥ कि हे गौतमि ! तुम चिन्ता की अग्नि में प्रवेश करने के योग्य नहीं हो क्योंकि इस तीर्थ के प्रभाव से इस अर्थ में तुम्हारा दोष नहीं है ॥ १७ ॥ क्योंकि जलके मध्य में स्थित जो मनुष्य चित्त में जिस वस्तुको चाहता है या जो स्त्री जिस मनोरथ की इच्छा करती है वह उस चिंतित वस्तु को प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ तुमने उसके पुत्रको देखा और हृदय में पुत्र की इच्छा की गई निश्चय कर पुत्र तुम्हारे गर्भ में प्राप्त है और तुम्हारे पुत्र

र्भलक्षणैर्युक्ता स्वजनव्रीडयापिसा ॥ १५ ॥ चकारमरणेबुद्धिं ज्वालयामासपावकम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचा शरीरिणी ॥ १६ ॥ नोत्वंगौतमिचिन्ताग्नौ प्रवेशंकर्तुमर्हसि ॥ दोषोनास्तितवात्रार्थे तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥१७॥ यो यद्वाञ्छतिचित्तेच जलमध्येस्थितोनरः ॥ चिन्तितंचतदाप्नोति नारीवानात्रसंशयः ॥ १८ ॥ त्वयातस्याःसुतोदृष्टो पुत्रवाञ्छाकृताहृदि ॥ तवगर्भगतोनूनं पुत्रस्तवभविष्यति ॥ १९ ॥ तस्माद्विरमभद्रन्ते निर्दोषासिपतिव्रते ॥ विररामततःसाध्वी गौतमीमरणान्नृप ॥२०॥ श्रुत्वाकाशगतांवाणीं देवदूतेनभाषिताम् ॥ दृष्ट्वापतिंविनागर्भं वाक्यमेतदुवाचह ॥ २१ ॥ अहोतीर्थप्रभावोयमपूर्वःप्रतिभातिमे ॥ यत्रसंजायतेगर्भः स्त्रीणांशुक्ररजोविना ॥ २२ ॥ नाहंकुत्रापियास्यामि मुक्त्वेदंतीर्थमुत्तमम् ॥ एवमुक्त्वाततःसाध्वी तत्रैवन्यवसत्सदा ॥ २३ ॥ पुत्रंचजनयामास सर्वलक्षणलक्षितम् ॥ तत्रपार्थिवशार्दूल कृष्णपक्षेऽश्विनस्यच ॥ २४ ॥ यःपुमान्कुरुतेश्राद्धं तस्यवंशोननश्यति ॥ नप्रेतोजायतेराजन् वंशेतस्य

होगा ॥ १९ ॥ इसलिये चुप होरहो तुम्हारा कल्याण होवै हे पतिव्रते ! तुम दोषरहित हो तदनन्तर हे राजन् ! पतिव्रता गौतमी मरने से विराम को प्राप्त हुई ॥ २० ॥ व देवदूत से कही हुई आकाशगामिनी वाणी को सुनकर व पतिके विना गर्भ को देखकर यह वचन बोली ॥ २१ ॥ कि अहो (आश्चर्य) यह तीर्थ का प्रभाव अपूर्ण जान पड़ता है जहां कि वीर्य व रजके विना स्त्रियों के गर्भ होता है ॥ २२ ॥ मैं इस उत्तम तीर्थ को छोड़कर कहीं भी न जाऊंगी ऐसा कहकर तदनन्तर उत्तम आचरणवाली वह भी सदैव वहीं बसती भई ॥ २३ ॥ व उसने सब लक्षणों से चिह्नित पुत्रको पैदा किया हे नृपश्रेष्ठ ! कुँवार के कृष्णपक्ष में वहां ॥ २४ ॥ जो पुरुष

श्राद्ध करता है उसका वंश नहीं नाश होता है व हे राजन् ! उसके वंश में कभी प्रेत नहीं होता है ॥ २५ ॥ और कामनाओं से रहित जो पुरुष वहां स्नान करता है व हे नृपश्रेष्ठ ! जो वहां श्राद्ध करता है उसको अविनाशी लोक होते है ॥ २६ ॥ व जो स्त्री उस तीर्थ में पुष्पों व फलों को छोडती है वह पुत्रवती व धन्य होती है और सौभाग्य को प्राप्त होती है ॥ २७ ॥ और अकाम स्त्री देवताओं से भी दुर्लभ स्वर्ग को पाती है इस लिये सब उपाय से उस तीर्थ की यात्राकरै ॥ २८ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनागतीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

कदाचन ॥ २५ ॥ यःपुमान्कामरहितः स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ श्राद्धंचपार्थिवश्रेष्ठ तस्यलोकाःसनातनाः ॥ २६ ॥ यास्त्री पुष्पफलान्येव तीर्थेतस्मिन्विसर्जयेत् ॥ सास्यात्पुत्रवतीधन्या सौभाग्यंचप्रपद्यते ॥ २७ ॥ निष्कामास्वर्गमाप्नोति दुष्प्राप्यंत्रिदशैरपि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रांतस्यसमाचरेत् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेनागतीर्थमाहात्म्यं नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ वसिष्ठंतपसान्निधिम् ॥ यंदृष्ट्वामानवःसम्यक् परांसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ तत्रास्तिजलसम्पूर्णं कुण्डंपापहरंनृणाम् ॥ तस्मिन्कुण्डेनृपश्रेष्ठ वसिष्ठेनमहात्मना ॥ २ ॥ गोमतीचसमानीता तेनासौनृपसत्तम ॥ तत्रस्नातोनरःसम्यक् पातकैश्चप्रमुच्यते ॥ ३ ॥ ऋषिधान्येनयस्तत्र श्राद्धंनृपसमाचरेत् ॥ सपितॄंस्तारयेत्सर्वान् पक्षयोरुभयोरपि ॥ ४ ॥ अत्रगाथापुरागीता नारदेनमहात्मना ॥ स्नात्वापुण्योदकेतत्र दृष्ट्वातंमुनिसत्त

दो०। जिमि वसिष्ठ को देखिकै सकल मनोरथ होत। सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित्र उदोत ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर तपस्या के निधान वसिष्ठजीके समीप जावै जिनको भलीभांति देखकर मनुष्य उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वहां मनुष्यों के पापों को हरनेवाला जलसे भराहुआ कुण्ड है हे नृपश्रेष्ठ ! उस कुंडमें उन महात्मा वसिष्ठजीने ॥ २ ॥ इस गोमती को प्राप्त किया है हे नृपोत्तम ! उसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य पातकों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! वहां जो ऋषि धान्य (तिन्नी फसही) से श्राद्ध करता है वह दोनों पक्षों के भी सब पितरों को तारता है ॥ ४ ॥ इस विषय में महात्मा नारद

जीने पुरातन समय गाथा गाया है कि उस पवित्र जलवाले कुण्ड में नहाकर व उन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी को देखकर ॥ ५ ॥ गया श्राद्ध दान से क्या है व अन्य यज्ञों के विस्तार से क्या है वसिष्ठजी के आश्रम को प्राप्त होकर जो मनुष्य श्राद्ध करता है ॥ ६ ॥ हे नृपोत्तम ! वह अपना समेत सब पितरों को तारता है और वहीं पर वसिष्ठजी के समीप पतिव्रता अरुन्धतीजी ॥ ७ ॥ विशेष कर पूजने योग्य हैं जो कि मनुष्यों के सब कामनाओं को देनेवाली हैं बाल्यावस्था में जो पाप किया गया है व वृद्धता और युवावस्था में जो पाप किया गया है ॥ ८ ॥ वह मनुष्यों का पातक वसिष्ठजी के दर्शन से शीघ्रही नाश होता है व सावधान होता हुआ जो मनुष्य

त्तमम् ॥ ५ ॥ किंगयाश्राद्धदानेन किमन्यैर्मखविस्तरैः ॥ वसिष्ठस्याश्रमंप्राप्य यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ ६ ॥ सपितॄंस्तारयेत्सर्वानात्मनान्नृपसत्तम ॥ तत्रैवारुन्धतीसाध्वी वसिष्ठस्यसमीपतः ॥ ७ ॥ पूजनीयाविशेषेण सर्वकामप्रदान्नृणाम् ॥ बाल्येवयसियत्पापं वार्द्धकेयौवनेपिवा ॥ ८ ॥ वसिष्ठदर्शनात्सद्यो नराणांयातिसंक्षयम् ॥ दीपंप्रयच्छतेयस्तु वसिष्ठाग्रेसमाहितः ॥ ९ ॥ सुखसौभाग्यसंयुक्तस्तेजस्वीजायतेनरः ॥ उपवासपरोयस्तु तत्रैकांरजनींनयेत ॥ १० ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रसप्तर्षयोमलाः ॥ त्रिरात्रंकुरुतेयस्तु वसिष्ठाग्रेसमाहितः ॥ ११ ॥ सयातिचमहर्लोकं जरामरणवर्जितम् ॥ यस्तुमासोपवासंच वसिष्ठाग्रेकरोतिच ॥ १२ ॥ सोपिमुक्तिमवाप्नोति नयातिसभवार्णवम् ॥ श्रावणस्यासितेपक्षे पौर्णमास्यांसमाहितः ॥ १३ ॥ ऋषींस्तर्पयतेयस्तु ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ वसिष्ठस्याग्रतोयस्तु गायत्र्यष्टश

वसिष्ठजी के आगे दीप देता है ॥ ९ ॥ वह मनुष्य सुख व सौभाग्य से संयुत व तेजस्वी होता है व उपास में तत्पर जो मनुष्य वहा एक रात्रि व्यतीत करता है ॥ १० ॥ वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहा कि निर्मल सप्तर्षि हैं व सावधान होता हुआ जो वसिष्ठजी के आगे तीन रात्रि तक उपास करता है ॥ ११ ॥ वह वृद्धता व मृत्यु से रहित महर्लोक को जाता है और जो वसिष्ठजी के आगे मासोपवास करता है ॥ १२ ॥ वह भी मुक्ति को प्राप्त होता है और समारसागर को नहीं जाता है और श्रावण के शुक्लपक्ष में पौर्णमासी तिथि में सावधान होता हुआ ॥ १३ ॥ जो मनुष्य ऋषियों को तर्पण करता है वह ब्रह्मलोक को जाता है और वसिष्ठ

जीके आगे जो एक सौ आठ गायत्री को जपता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य जन्म से लगाकर मरण तक के पातक से छूटजाता है व श्रद्धासंयुत जो पुरुष वहां शिवजी को भजता है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! वह मनुष्य उसी क्षण अग्निष्टोमके फलको प्राप्त होता है इस लिये सब यत्न से पवित्र मनुष्यों से ये महामुनि वसिष्ठजी देखने योग्य हैं जिसलिये श्रद्धासयुत प्राणी परमपद को प्राप्त होते हैं इस लिये हे राजन् ! सब यत्न से वामदेवजीको पूजै ॥ १६ । १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांवसिष्ठाश्रममाहात्म्यंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

तंजपेत् ॥ १४ ॥ आजन्ममरणात्पापात्सद्यो मुच्येतमानवः ॥ वामदेवंचयस्तत्र भजेच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ १५ ॥ अग्निष्टोमफलंराजन् सद्यःप्राप्नोतिमानवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दृश्योसौचमहामुनिः ॥ १६ ॥ शुचिभिःश्रद्धयायुक्ता यास्यन्तिपरमंपदम् ॥ तस्मात्सर्वात्मनाराजन्वामदेवंचपूजयेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेवसिष्ठाश्रममाहात्म्यन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ सुपुण्यमचलेश्वरम् ॥ यंदृष्ट्वासिद्धिमाप्नोति नरःश्रद्धासमन्वितः ॥ १ ॥ तत्रकृष्णचतुर्दश्यां यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ आश्विनेफाल्गुनेवापि सयातिपरमांगतिम् ॥ २ ॥ यस्तुसम्पूजयेद्भक्त्या दक्षिणांदिशमास्थितः ॥ पुष्पैःपत्रैःफलैश्चैव सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ ३ ॥ पञ्चामृतेनयस्तत्र तर्पणंकुरुतेनरः ॥ सोपिदेवस्य सान्निध्यं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥ प्रदक्षिणार्द्धंयस्तस्य प्रणामंकुरुतेनरः ॥ नश्यन्तिसर्वपापानि प्रदक्षिणपदे

दो॰ । शुककरि शिवपरदक्षिणा भयो वेणु नरपाल । सो सप्तम अध्यायमें चरित विचित्र रसाल ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अतिपवित्र अचलेश्वरजीके समीप जावै जिनको देखकर श्रद्धासंयुत पुरुष सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वहां कुँवार व फागुन महीने में कृष्णपक्ष की चौदसि में जो मनुष्य श्राद्ध करताहै वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ व दक्षिण दिशा में स्थित जो मनुष्य, भक्ति से पुष्प, पत्र और फलों करके पूजता है वह अश्वमेधयज्ञ के फल को पाता है ॥ ३ ॥ और जो मनुष्य वहां पंचामृत से तर्पण करता है वह भी शिवजीकी समीपता व शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ व जो मनुष्य उन शिव

देवजी की आधी प्रदक्षिणा व प्रणाम करता है उसके सब पाप प्रदक्षिणा के पग २ में नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥ हे महामते ! वहां पहले जो आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये मैंने पहले स्वर्ग में इन्द्र के समीप नारद से सुना है ॥ ६ ॥ वहां पुरातन समय शुक पक्षी ने वृक्ष में घोंसला बनाया था वह घोंसला में जाने आने से प्रदक्षिणा करता था ॥ ७ ॥ हे महाराज ! पक्षी की योनि में उत्पन्न यह शुक भक्ति से किसीप्रकार प्रदक्षिणा नहीं करता था इसके अनन्तर यह शुक बहुत दिनों के बाद मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ व हे महाराज ! वह राजा के वश में जाति को स्मरण करनेवाला समस्त शत्रुवों को नाशनेवाला वेणु ऐसा कहाहुआ राजा हुआ है ॥ ९ ॥

पदे ॥ ५ ॥ तत्राश्चर्यमभूत्पूर्वं यत्त्वंशृणुमहामते ॥ मयापूर्वंश्रुतंस्वर्गे नारदाच्छक्रसन्निधौ ॥ ६ ॥ तत्रपूर्वंशुकोनीडंवृक्षे चैवाकरोद्द्विजः ॥ गदागतेननीडस्य कुरुतेसम्प्रदक्षिणाम् ॥ ७ ॥ नचभक्त्यामहाराज पक्षियोनिसमुद्भवः ॥ अथासौमृत्युमापन्नः कालेनमहताशुकः ॥ ८ ॥ सञ्जातःपार्थिवेवंशे राजावेणुरितिस्मृतः ॥ जातिस्मरोमहाराज सर्वशत्रुनिकृन्तनः ॥ ९ ॥ संस्मृत्वातंप्रभावंहि प्रदक्षिणसमुद्भवम् ॥ अचलेश्वरमासाद्य प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ १० ॥ नक्तंदिनं महाराज नान्यत्किञ्चित्करोतिसः ॥ नचस्नानेकृतोयत्नो ननैवेद्येकथंचन ॥ ११ ॥ नपुष्पेधूपदानेच प्रदक्षिणपरःसदा ॥ केनचित्त्वथकालेन मुनयोत्रसमागताः ॥ १२ ॥ नारदःशौनकश्चैव हारीतोदेवलस्तथा ॥ गालवःकपिलोनन्दः सुहोत्रःकश्यपोनृप ॥ १३ ॥ एतेचान्येचबहवो देवव्रतपरायणाः ॥ केचित्स्नानंकारयन्ति तस्यलिङ्गस्यभक्तितः ॥ १४ ॥ अन्येचविविधांपूजां जपमन्येसमाहिताः ॥ एकेनृत्यन्तिराजेन्द्र गायन्तिचतथापरे ॥ १५ ॥ बलिमन्येप्रयच्छन्ति स्तु

इसके अनन्तर प्रदक्षिणा से उपजे हुये उस प्रभाव को भलीभांति यादकर अचलेश्वर को प्राप्त होकर उसने प्रदक्षिणा किया ॥ १० ॥ हे महाराज ! वह रात दिन अन्य कुछ नहीं करता था और न स्नान में यत्न कियागया न किसीप्रकार नैवेद्य में यत्न कियागया ॥ ११ ॥ और न पुष्प न धूप, दान में यत्न कियागया केवल वह सदैव प्रदक्षिणा करने में लगाहुआ था इसके अनन्तर किसीसमय मुनिलोग इस तीर्थ में आये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! नारद, शौनक, हारीत, देवल, गालव, कपिल, नन्द, सुहोत्र व कश्यप ॥ १३ ॥ ये, और अन्य बहुत से देवव्रत में परायण पुरुष वहां आये कोई भक्ति से उस लिंग को स्नान करते थे ॥ १४ ॥ व अन्य लोग

अनेक प्रकार का पूजन व अन्य जप करते थे हे नृपेन्द्र! कोई नाचते थे व अन्य गाते थे ॥ १५ ॥ व अन्य बलि को देते थे और अपर लोग स्तुति करते थे इसके अनन्तर परम आश्चर्यरूप प्रदक्षिणा में तत्पर वेणु राजा को देखकर ॥ १६ ॥ वे बड़े कौतुक को प्राप्त हुये व हे नृपश्रेष्ठ ! प्रदक्षिणा से उपजे हुये कारण स इस वचन को बोले ॥ १७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तुम विशेषकर किस लिये सदैव इन शिवदेव की प्रदक्षिणा में तत्पर रहते हो हमलोगों से इस को सत्य कहने के योग्य हो ॥ १८ ॥ व बहुतही सुन्दर बहुत बलिको क्यों नहीं देते हो व पुष्प, धूपादिक और अनेकभाति के स्तोत्रों को क्यों नहीं पढ़ते हो ॥ १९ ॥

तिंकुर्वन्तिचापरे ॥ अथाश्चर्यपरं दृष्ट्वा प्रदक्षिणपरंनृपम् ॥१६॥ परंकौतुकमापन्ना वाक्यमेतदथाब्रुवन् ॥ प्रदक्षिणमभूतात्कारणान्नृपसत्तम ॥ १७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कस्मात्त्वंपार्थिवश्रेष्ठ प्रदक्षिणपरःसदा ॥ देवस्यास्यविशेषेण सत्यंनोवक्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ नददासिबलिंकस्मात्प्रभूतंसुमनोहरम् ॥ पुष्पधूपादिकंचाथ स्तोत्राणिविविधानिच ॥ १९ ॥ समर्थोसितथान्येषां दानानान्त्वंमहीपते ॥ एतन्नःकौतुकंसर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २० ॥ वेणुरुवाच ॥ यदहंसम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतांद्विजसत्तमाः ॥ पूर्वं देहान्तरेवृत्तं सर्वंसत्यंविशेषतः ॥ २१ ॥ प्रासादेस्मिन्पुरापक्षी शुकोहंस्थितवान्यदा ॥ देवंतत्रस्थितंकुर्वन्प्रदक्षिणमहर्निशम् ॥ २२ ॥ कृपयाचप्रभावाच्च जातोजातिस्मरोन्वहम् ॥ अधुनापरयाभक्त्या यत्करोमिप्रदक्षिणाम् ॥ २३ ॥ नजानेकिंफलंमेस्याद्देवस्यास्यप्रसादतः ॥ एतस्मात्कारणाच्चाद्धा नान्यत्किञ्चित्करो

हे राजन् ! वैसेही अन्य दानों के तुम समर्थ हो यह सब हमलोगों को कौतुक है इसको यथायोग्य कहने के योग्य हो ॥ २० ॥ वेणु बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पहले शरीर के मध्य में जो चरित्र हुआ है उसको मैं भलीभाति कहता हूं विशेष कर सुनिये जो सब कि सत्य है ॥ २१ ॥ पुरातन समय इस मन्दिर में मैं शुकपक्षी होकर जब स्थित था तब वहां स्थित शिवजीकी दिनरात प्रदक्षिणा करता हुआ मैं टिका ॥ २२ ॥ उन्हीं शिवदेवजीकी दया व प्रभाव से मैं जातिका स्मरण करनेवाला उत्पन्न हुआ व इस समय बड़ी भक्ति से संयुत मैं जो प्रदक्षिणा करता हूं ॥ २३ ॥ उसको मैं नहीं जानता हूं कि इन शिवदेवजीकी प्रसन्नता से मुझको क्या फल

होगा साक्षात् इसी कारण से मैं और कुछ नहीं करता हूं ॥ २४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि वेणु का वचन सुनकर तदनन्तर प्रशंसित नियमोंवाले मुनिलोग विस्मय से प्रफुल्लितलोचन होकर बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा बोले ॥ २५ ॥ तदनन्तर वहां सब महर्षि प्रदक्षिणा में तत्पर हुये व सब मुनि बड़ी श्रद्धा से संयुत हुये ॥ २६ ॥ और वह महाभाग राजा वेणु भी शिवजीकी प्रसन्नता से देवताओं से भी दुर्लभ अविनाशी स्थान को प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामचलेश्वरप्रभावोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❀ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

म्यहम् ॥ २४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ वेणुवाक्यंततःश्रुत्वा मुनयःशंसितव्रताः ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनाः साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥ २५ ॥ ततःप्रदक्षिणपराः सर्वेतत्रमहर्षयः ॥ बभूवुर्मुनयस्सर्वे श्रद्धयापरयायुताः ॥ २६ ॥ सोपिराजामहाभागो वेणुःशम्भोःप्रसादतः ॥ शाश्वतंस्थानमापन्नो दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेचलेश्वरप्रभावो नामसप्तमोऽध्यायः ॥७॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ भद्रकर्णमहाह्रदम् ॥ त्रिनेत्राभाःशिलायत्र दृश्यन्तेद्यापिभूरिशः ॥ १ ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे लिङ्गमस्तिपिनाकिनः ॥ यद्दृष्ट्वामानवस्तत्र त्रिनेत्रसदृशोभवेत् ॥ २ ॥ भद्रकर्णगणोनाम पुरासीच्छिववल्लभः ॥ तेनात्रस्थापितंलिङ्गं ह्रदश्चैवविनिर्मितः ॥ ३ ॥ केनचित्त्वथकालेन संग्रामेदानवैःसह ॥ युयुधेपुरतःशम्भोर्नानागणसमन्वितः ॥ ४ ॥ नष्टेस्कन्देहतेसैन्ये वीरभद्रेपराजिते ॥ गतास्तेभयसन्त्रस्ता महाकालेविनिर्जिते ॥ ५ ॥

दो० । भद्रकर्ण शिवगण यथा थप्यो लिंग निजनाम । सो अष्टम अध्याय में बर्णित चरित ललाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर भद्रकर्ण नामक महाकुण्ड के समीप जावै जहां कि आज भी त्रिनेत्र के समान बहुत सी शिलायें देख पड़ती हैं ॥ १ ॥ उसी के पश्चिम भागमें वहां पिनाकी शिवजीका लिंग है जिसको देखकर मनुष्य त्रिलोचन के समान होता है ॥ २ ॥ पुरातन समय शिवजीका प्यारा भद्रकर्णनामक गण हुआ है उसने यहां लिंग को थापा है व कुण्ड को निर्माण किया है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय समर में शिवजीके आगे नाना गणों से संयुत उसने दानवों के साथ युद्ध किया है ॥ ४ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेय

के मरने पर व वीरभद्र के हार जाने पर व महाकाल के पराजित होने पर भय से डरे हुये वे गण चलेगये ॥ ५ ॥ और तलवार व ढालको धारण किये बहुतही बलवान् नमुचिनामक बली दानव शीघ्रही शिवजीके सामने दौड़ा ॥ ६ ॥ और भद्रकर्ण उस दानव को देखकर तदनन्तर उसके सामने दौड़ा और खड़े हो खड़े हो ऐसा बोला ॥ ७ ॥ व क्रोध से संयुत उस भद्रकर्ण गण ने तलवार से उसकी तलवार को काटकर व ढालको भी काटकर उस दैत्य के स्तनों के मध्य में मारा ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर उससे मारा हुआ यह बड़े अन्धकार में पैठ कर पवन से टूटे हुये वृक्षकी नाईं पृथ्वी में गिरपड़ा ॥ ९ ॥ व वध को प्राप्त यह

बलवान्नमुचिर्नाम दानवोबलवत्तरः ॥ खड्गचर्मधरःशीघ्रं महेश्वरमुपाद्रवत् ॥ ६ ॥ भद्रकर्णस्तुतंदृष्ट्वा दानवंतदनन्तरम् ॥ अगमत्सम्मुखस्तस्य तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ ७ ॥ छित्त्वासिञ्चासिनातस्य चर्मचापिमहाबलः ॥ स्तनयोरन्तरेदैत्यं कोपाविष्टस्तमाहनत् ॥ ८ ॥ अथासौनिहतस्तेन प्रविश्यविपुलंतमः ॥ निपपातमहीपृष्ठे वायुभग्नइवद्रुमः ॥ ९ ॥ वधंप्राप्तस्तुदैत्योसौ सद्यःप्राणैर्वियोजितः ॥ सत्येस्थितंचतंदृष्ट्वा ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १० ॥ भगवानुवाच ॥ तववीर्येणसन्तुष्टो धर्मेणचविशेषतः ॥ वरंवरयभद्रन्ते नित्यंयोहृदयेस्थितः ॥ ११ ॥ भद्रकर्ण उवाच ॥ यन्मयास्थापितं लिङ्गमर्बुदेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ अत्रास्तुतवसान्निध्यं ह्रदेस्मिंश्चसदास्थितः ॥ १२ ॥ भगवानुवाच ॥ माघमासेचतुर्दश्यां कृष्णपक्षेसदामम ॥ सान्निध्यञ्चविशेषेण ह्यस्मिँल्लिङ्गेभविष्यति ॥ १३ ॥ भद्रकर्णह्रदेस्नात्वा त्रिनेत्रंतंसमाहितः ॥ द्रक्ष्यतेयस्तुमेस्थानं शाश्वतंयास्यतिध्रुवम् ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ पूजयित्वाचतल्लिङ्गंशि

दैत्य शीघ्रही प्राणों से अलग हुआ और उसको सत्यमें स्थित देखकर तदनन्तर महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ १० ॥ भगवान् शिवजी बोले कि तुम्हारे पराक्रम व धर्म से मैं विशेष कर प्रसन्न हुआ हूं तुम्हारा कल्याण होवै वरदान को मांगिये जो कि सदैव हृदय में स्थित होवै ॥ ११ ॥ भद्रकर्ण बोला कि मैंने अर्बुदेश्वरसंज्ञक जिस लिंगको थापा है इस में तुम्हारी समीपता होवै व इस कुंड में सदैव स्थित होवो ॥ १२ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि माघ महीने में कृष्णपक्ष की चौदसि में विशेष कर इस लिंग में मेरी सदैव समीपता होगी ॥ १३ ॥ व भद्रकर्णकुण्ड में नहाकर उन त्रिलोचनजी को जो सावधान मनुष्य देखैगा वह निश्चय कर मेरे

सनातन स्थान को जावैगा ॥ १४ ॥ इसलिये सब यत्न से जो वहा स्नान करता है वह उस लिंगको पूजकर शिवलोक को जाताहै ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुद
खण्डेदवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाभद्रकर्णत्रिनेत्रमाहात्म्यंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । केदारेश्वर पूजिकै शूद्र भयो नरपाल । सोइ नवम अध्याय में कह्यो चरित्र रसाल ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्यों के सब पातकों
को हरनेवाले त्रिलोक में प्रसिद्ध केदार ऐसे विख्यात तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ जहां पवित्र मंदाकिनी नदी सरस्वती से संगम को प्राप्त हुई है हे राजन् ! उसमें नहाया

वलोकंसगच्छति ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेभद्रकर्णत्रिनेत्रयोर्माहात्म्यन्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ केदारमितिविख्यातं सर्वपापहरन्नृणाम् ॥ १ ॥
यत्रमन्दाकिनीपुण्या सरस्वत्यासमागता ॥ तत्रस्नातोनरोराजन् मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ २ ॥ शृणुराजन्यथावृत्तमि
तिहासंपुरातनम् ॥ ऋषिभिर्बहुधागीतमर्बुदेपर्वतोत्तमे ॥ ३ ॥ अजपालोनृपःपूर्वं सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ सप्तद्वीपावतीपृ
थ्व्याः सपतिर्नात्रसंशयः ॥ ४ ॥ नहस्तिनोनयानानि नचाश्वास्तस्यभूपतेः ॥ नरथाश्चमहाराज नकोशाश्चतथावि
धाः ॥ ५ ॥ नगृह्णातिकरंराजन् प्रजाभ्योप्यधिकन्नृपः ॥ ईदृशोपिसराजावै सर्वलोकहितेरतः ॥ ६ ॥ जातोपराधोभू
पृष्ठेऽजापतेर्नकथञ्चन ॥ शत्रवोविग्रहन्तस्य चक्रुर्नैवकदाचन ॥ ७ ॥ एवमस्यनरेन्द्रस्य वर्तमानस्यभूतले ॥ सुखेन

हुआ मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार पुरातन समय वृत्तान्त हुआ है उस इतिहास को सुनिये जिसको पुरातन समय अर्बुद
नामक उत्तम पर्वत पै ऋषियों ने बहुत प्रकार से गाया है ॥ ३ ॥ पुरातन समय सूर्यवंश में उत्पन्न अजपालनामक राजा हुआहै वह सातोंद्वीपवाली पृथ्वी का
स्वामी था इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ हे महाराज ! उस राजा के न हाथी थे न घोड़े न रथ थे और न वैसे खज़ाना थे ॥ ५ ॥ व हे राजन् ! वह प्रजाओं से अधिक
दण्ड नहीं लेता था ऐसा भी वह राजा सब लोकों के हितमें तत्पर था ॥ ६ ॥ व अजापाल राजा का किसी प्रकार भूतल में अपराध नहीं हुआ और उसके शत्रुवों

ने कभी विग्रह नहीं किया ॥ ७ ॥ इस प्रकार वर्तमान इस राजा के नष्टकण्टक राज्यमें मनुष्य सुख से पृथ्वी में रमते थे ॥ ८ ॥ और उस राजा के विद्यमान होने पर मेघ इच्छा के अनुकूल बरसता था व अन्न रसवान् होते थे व गौवों के बहुत दूध होता था ॥ ९ ॥ इस के अनन्तर किसी समय भगवान् वसिष्ठ मुनि तीर्थयात्रा के प्रसंग से उसके घर को आये ॥ १० ॥ उन को देखकर राजा ने शास्त्र में देखी हुई विधि से पूजन किया और प्रत्युत्थान, प्रणाम व अर्घ, पाद्यादिकों से ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार उस राजा ने बड़ी भक्ति से उनका पूजन किया और मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी सहँता कर सुख से बैठ गये ॥ १२ ॥ वैसेही पुराने राजर्षियों व

रमतेलोको राज्येनिहतकण्टके ॥ ८॥ कामंवर्षतिपर्जन्यःसस्यानिरसवन्तिच ॥ गावःप्रभूतदुग्धाश्च विद्यमानेनराधिपे ॥ ९ ॥ केनचित्त्वथकालेन वसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तस्यगेहमुपागतः ॥ १० ॥ तंदृष्ट्वापूजयामास शास्त्रदृष्टेनवर्त्मना ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यामर्घपाद्यादिभिस्तथा ॥ ११ ॥ एवंसम्पूजितस्तेन भक्त्यापरमयानृप ॥ सुखोपविष्टोविश्रान्तो वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥१२॥ राजर्षीणांपुराणानां देवर्षीणांतथैवच ॥ तथाकथावसानेतु कस्मिंश्चिन्नृपसत्तमः ॥ १३ ॥ पप्रच्छविनयोपेतस्तंमुनिंशंसितव्रतम् ॥ १४ ॥ अजपाल उवाच ॥ अतीतानागतंविप्र वर्त्तमानन्तथैवच ॥त्वंवेत्सिसकलंब्रह्मन् कृपांकृत्वाममप्रभो ॥१५॥ कौतुकंहृदिमेजातं वर्त्ततेमुनिपुङ्गव ॥ प्रसादःक्रियतांमह्यं कथयस्वप्रसादतः ॥ १६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ब्रूहिपार्थिवशार्दूल यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ कथयिष्यामितत्सर्वं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ केनकर्मविपाकेन ममैतद्राज्यमुत्तमम् ॥ निष्कण्टकंसदाक्षेमं सर्वकामसमन्वितम् ॥१८॥

देवर्षियों के किसी प्रकार कथा के अन्तमें नृपोत्तम अजपाल ने ॥ १३ ॥ विनयसंयुत होकर उन प्रशंसित नियमोंवाले वसिष्ठजी से पूंछा ॥ १४ ॥ अजपाल बोले कि हे विप्रजी ! तुम भूत, भविष्य व वर्तमान सब जानते हो हे प्रभो, ब्रह्मन्, मुनिश्रेष्ठ ! मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ कौतुक वर्तमान है इस से मेरे ऊपर कृपा कर प्रसन्नता से कहिये व मेरे लिये प्रसन्नता की जावै ॥ १५ । १६ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तुम्हारे मन में जो वर्तमान हो उस को कहिये यद्यपि दुर्लभ भी होगा तौ भी उस सबको कहूंगा ॥ १७ ॥ राजा बोले कि किस कर्म के फल से सब कामनाओंसे संयुत व निष्कंटक सदैव कल्याणमय यह मेरा उत्तम राज्य है ॥ १८ ॥

जिस से सब प्रकार भोजन होवै तदनन्तर स्त्रीसमेत तुम बहुत से कमलों को लेकर ॥ २९ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! तुम वहा गये जहां कि बहुत से लोग थे परन्तु दुर्भिक्ष से पीड़ित कोई भी मनुष्य कमलों को नहीं लेता था ॥ ३० ॥ और तुम सब कहीं घूमे व थककर वैराग्य को प्राप्त हुये तदनन्तर दिनके अन्त में एक गुहा में आश्रित हुये ॥ ३१ ॥ और पृथ्वी में कमलों को धरकर भूंख से संयुत तुम सोगये इसी समय में वेद व पुराण को पढ़ते हुये मुख्य ब्राह्मणों की ध्वनि तुम्हारे कान में प्राप्त हुई ॥ ३२ ॥ उस शब्द को सुनकर अचानकही उठकर जागरण को प्राप्त होकर तदनन्तर ॥ ३३ ॥ कमलों को लेकर स्त्रीसमेत तुम वहीं

मिविक्रयंयेनाहारोभवतिसर्वथा ॥ ततःपद्मानिभूरीणि गृहीत्वाभार्यया सह ॥ २९ ॥ ततोयत्रजनोभूरिस्त्वंगतःपार्थिवोत्तम ॥ नकोपिप्रतिगृह्णाति लोकोदुर्भिक्षपीडितः ॥ ३० ॥ भ्रमितस्त्वंचसर्वत्र श्रान्तोवैराग्यतांगतः ॥ ततोदिनावसानेतु गुहामेकांसमाश्रितः ॥ ३१ ॥ भूमौपद्मानिनिक्षिप्य क्षुधाविष्टःप्रसुप्तवान् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु कर्णयोस्तेसमागतः ॥ ३२ ॥ पठतान्द्विजमुख्यानां ध्वनिर्वेदपुराणयोः ॥ तंश्रुत्वासहसोत्थाय गत्वाजागरणंततः ॥ ३३ ॥ पद्मान्यादायतत्रैव सभार्यःशिवमन्दिरे ॥ तत्रनागवतीवेश्या शिवरात्रिपरायणा ॥ ३४ ॥ केदारेपरयाभक्त्या करोतिनिशिजागरम् ॥ तस्याःपार्श्वेस्थितादासी त्वयापृष्टानरेश्वर ॥३५॥ देवस्यपुरतोबाले किमर्थंरात्रिजागरम् ॥ तयोक्तंशिवरात्र्यांवै वेश्येयंवरवर्णिनी ॥३६॥ कुरुतेनागवतीनाम रात्रौभक्त्याचजागरम् ॥ कोपिभक्तिसमायुक्तः कुरुतेरात्रिजागरम् ॥३७॥ पूजयित्वामहादेवं सयातिपरमंपदम् ॥ कृत्वोपवासंपद्मैर्यः पूजयेत्र्यम्बकंनरः ॥ ३८ ॥ सयातिरुद्रसालोक्यं सेव्यमानो

शिवमन्दिर में गये वहां नागवती वेश्या शिवरात्रि में परायण थी ॥ ३४ ॥ और वह केदार में बड़ी भक्तिसे रात्रिजागरण करती थी व हे नरेश्वर ! उसी वेश्या के समीप बैठी हुई दासी से तुमने पूंछा ॥ ३५ ॥ कि हे बाले ! शिवदेवजी के आगे किसलिये रात्रिजागरण किया जाता है उसने कहा कि शिवरात्रि में यह उत्तम वर्ण (रंग) वाली वेश्या ॥ ३६ ॥ नागवतीनामक रात्रिमें भक्ति से जागरण करती है और भक्तिसे संयुत कोई भी जो जागरण करता है ॥ ३७ ॥ महादेवजीको पूजकर वह परमपदको जाता है जो मनुष्य उपास कर त्रिलोचनजीको कमलों से पूजता है ॥ ३८ ॥ अप्सराओं के गणों से सेवित वह शिवजीकी सलोकता को प्राप्त

होता है और सकाम पुरुष देवताओं से भी दुर्लभ कामनाओं को पाता है ॥ ३९ ॥ सो तुम मुझको कमल दीजिये और तीन पल सुवर्ण इनका मूल्य लेकर प्राण धारण कीजिये ॥ ४० ॥ तदनन्तर सुवर्ण लेनेमें तुमसे स्त्रीने कहा कि हे नाथ ! तुमको किसी प्रकार इन कमलों का मूल्य न लेना चाहिये ॥ ४१ ॥ क्योंकि अन्नके न होने से दोनों का भी उपास बल से होगया और दोनों को भी इन कमलों से शिवजीको पूजना चाहिये आज यह निश्चय है ॥ ४२ ॥ आज तुमको यह करना चाहिये कि इसका सुवर्ण त्यागना चाहिये स्त्रीके वचन को सुनकर तुमने उन कमलों से शिवजीको पूजन किया ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! स्त्रीसमेत तुमने श्रद्धा से शिवजी

प्सरोगणैः ॥ सकामोलभतेकामान्देवैरपि सुदुर्ल्लभान् ॥ ३९ ॥ सत्वंपद्मानिमेदेहि काञ्चनंचपलत्रयम् ॥ एतेषांमूल्यमादाय प्राणधारंसमाचर ॥ ४० ॥ ततस्त्वंभार्ययाचोक्तो गृह्यमाणेचकाञ्चने ॥ नग्राह्यंमूल्यमेतेषां त्वयानाथकथञ्चन ॥ ४१ ॥ उपवासोबलाज्जाता ह्यन्नाभावाद्द्वयोरपि ॥ पद्मैरेभिर्हरःपूज्यो द्वाभ्यामेवाद्यनिश्चयम् ॥ ४२ ॥ इदन्त्वयाद्यकर्त्तव्यं त्याज्यमस्यास्तुकाञ्चनम् ॥ भार्यायावचनंश्रुत्वा तैःपद्मैःपूजितःशिवः ॥ ४३ ॥ श्रद्धयाचसभार्येण जागरंचशिवाग्रतः ॥ कृतन्त्वयामहाराज भार्ययाशिवमन्दिरे ॥ ४४ ॥ पुराणश्रवणंजातं तवपार्थिवसत्तम ॥ शिवरात्र्यां महाराज पद्मैस्तुपूजितःशिवः ॥ ४५ ॥ केदारस्याग्रतोभक्त्या रात्रौजागरणंतथा ॥ कृतन्त्वयामहाराज एकाग्रेणचचेतसा ॥ ४६ ॥ ततःप्रभातेसञ्जाते भिक्षां कृत्वाचपारणा ॥ कृतात्वयामहाराज शिवाग्रेसहभार्यया ॥ ४७ ॥ ततः कालान्तरेणैव कालधर्मंगतोभवान् ॥ भार्येयञ्चत्वयासार्धं सम्प्रविष्टाहुताशनम् ॥ ४८ ॥ ततोजातामहाराज दशार्णा

के मन्दिर में शिवजीके आगे जागरण किया व स्त्री ने किया ॥ ४४ ॥ व हे नृपोत्तम ! तुमको पुराण का श्रवण होगया व हे महाराज ! शिवरात्रि में तुमने कमलों से शिवजीको पूजा ॥ ४५ ॥ व हे महाराज ! केदारजीके आगे भक्ति से तुमने एकाग्रचित्त से रात्रि में जागरण किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर हे महाराज ! प्रभात होने पर तुम ने भिक्षा करके स्त्रीसमेत शिवजीके आगे पारण किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तरकाल के अन्तर में आप कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुये और यह स्त्री तुम्हारे साथ

अग्नि में पैठगई ॥ ४८ ॥ तदनन्तर हे महाराज ! वह दशार्णदेश की कन्या हुई और हे नृपोत्तम ! तुम वैदेह नगर में राजा हुये ॥ ४६ ॥ और पृथ्वी में नाम से अजपाल ऐसे कहे गये और नृपों में श्रेष्ठ तुम सब प्राणियों के प्यारे हुये ॥ ५० ॥ इसी कारण यह स्त्री प्राणों के समान हुई और फिर भी तुम्हारी स्त्री हुई तुम जो मुझसे पूंछते हो ॥ ५१ ॥ तो हे राजन् ! उन केदारदेवजीके माहात्म्य से तुम्हारा राज्य मनुष्यों को सुखदायक व निष्कंटक है ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! केदारजी की प्रसन्नता से तुमने राज्य को पाया जिससे कि सेनारहित भी तुम पृथ्वी की रक्षा करते हो ॥ ५३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसके उस वचन को सुनकर वह राजा

धिपतेस्सुता ॥ वैदेहेनगरेराजा जातस्त्वंपार्थिवोत्तम ॥ ४६ ॥ अजपालइतिख्यातो नाम्नाचधरणीतले ॥ सर्वेषांप्राणिनांत्वञ्च वल्लभोनृपसत्तमः ॥ ५० ॥ एतस्मात्कारणाज्जाता भार्येयंप्राणसम्मता ॥ भूयोपितवसञ्जाता यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ ५१ ॥ तस्यदेवस्यमाहात्म्यात्केदारस्यमहीपते ॥ राज्यन्तेसुखदंनृणां तथानिहतकण्टकम् ॥ ५२ ॥ प्राप्तं त्वयामहाराज केदारस्यप्रसादतः ॥ येनत्वंसैन्यहीनोपि पृथिवींपरिरक्षसि ॥ ५३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सराजाविस्मयान्वितः ॥ गमनायमतिंचक्रे केदारंप्रतिभूमिपः ॥ ५४ ॥ सगत्वापर्वतेरम्ये पूजयित्वाचतंविभुम् ॥ शिवरात्रिपरःसम्यग् वर्षेवर्षेबभूवह ॥ ५५ ॥ पुत्रंराज्येचसंस्थाप्य ततोर्बुदमथागमत् ॥ प्राप्तोमुक्तिंततोभूपः सभार्यस्तत्प्रभावतः ॥ ५६ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं केदारस्यमहीपते ॥ माहात्म्यंशुभदंनृणां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥ माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ शिवरात्रिरितिख्याता भूतलेस्मिन्महामते ॥ ५८ ॥ तस्यान्तुसर्वथा

विस्मयसंयुत हुआ और उस भूपति ने केदार को जाने के लिये बुद्धि किया ॥ ५४ ॥ वह सुन्दर पर्वत पै जाकर उन व्यापक शिवजीको पूजकर प्रति वर्ष अच्छीभांति शिवरात्रि में परायण हुआ ॥ ५५ ॥ और राज्य पै पुत्र को बिठाकर तदनन्तर वह अर्बुद को गया तदनन्तर स्त्रीसमेत वह राजा उसके प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ हे महीपते ! मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाला शुभदायक यह केदारजीका सब माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ५७ ॥ हे महामते ! माघ व फागुन

के मध्य में कृष्णपक्ष में चतुर्दशी इस पृथ्वी में शिवरात्रि ऐसी कही गई है॥ ५८॥ हे राजन् ! उस तिथि में सब प्रकार वहा यात्रा करै व हे नृप, महाराज ! केदारका पूजन करै॥ ५९ ॥ माघ महीने में कृष्णपक्षकी चौदसि में जो वहा जागरण करताहै हे राजन् ! उपास कियेहुये वह पुरुष शिवलोक को जाता है ॥ ६० ॥ व गंगा सरस्वती के संगम में नहाकर जो मनुष्य सब कामनाओं को देनेवाले केदारको देखते हैं वे उत्तम गतिको जाते हैं ॥ ६१ ॥ और केदारनामक कुण्ड में जो निर्मल जलको पीता है उसने सात पहलेवाले व सात पीछेवाले पितरों को तारदिया॥ ६२ ॥ व हे राजन् ! जो मनुष्य उत्तम भक्ति से इसको सदैव सुनता है वह केदार

राजन् यात्रांतत्रसमाचरेत्॥ केदारस्यमहाराज कुर्याच्चपूजनंनृप॥ ५९ ॥माघकृष्णचतुर्दश्यां यःकुर्यात्तत्रजागरम्॥ कृतोपवासोन्नृपते शिवलोकंसगच्छति ॥ ६० ॥ स्नात्वागङ्गासरस्वत्योः सङ्गमेसर्वकामदम्॥ येप्रपश्यन्तिकेदारं तेयास्यन्तिपरांगतिम् ॥ ६१ ॥ कुण्डेकेदारसंज्ञेयः प्रपिबेद्विमलंजलम् ॥ सप्तपूर्वाःसप्तपराः पूर्वजास्तेनतारिताः॥ ६२ ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्त्यापरमयान्नृप॥ सोपिपापैर्विमुच्येत केदारस्यप्रभावतः॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकेदारस्यमाहात्म्यन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ययातिरुवाच ॥ केदारःश्रूयतेब्रह्मन् पर्वतेचहिमाचले॥ गङ्गातस्माद्विनिष्क्रान्ता प्रविष्टापूर्वसागरम् ॥ १ ॥ तथा सरस्वतीदेवी भूतवृक्षाद्विनिर्गता॥ पश्चिमंसागरंप्राप्ता गृहीत्वावडवानलम्॥ २ ॥ कथंचात्रसमायातः केदारश्चात्रकौतुकम्॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि विचित्रंममभोमुने ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सत्यमेतन्महाराज यन्मेत्वंपरिपृच्छसि ॥

के प्रभाव से सब पापों से भी छूटजाता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकेदारस्यमाहात्म्यनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दो० । तीरथ अर्बुद शिखर पै गेकलि अवगुण देखि । सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित्र विशेखि ॥ ययातिजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! हिमाचल पर्वत पै केदार शिवजी सुने जाते हैं उससे गंगाजी निकली हैं व पूर्व समुद्र में पैठी हैं ॥ १ ॥ वैसेही सरस्वती देवी आमके वृक्ष से निकली हैं और वड़वानलको लेकर पश्चिम समुद्र को प्राप्त हुई हैं ॥ २ ॥ हे मुने ! यहा केदारजी किस प्रकार आये हैं इस विषय में सब विचित्र कौतुक को मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि

हे महाराज ! यह सत्य है और तुम जो मुझसे पूंछते हो उसको सावधान होकर सुनो जिस प्रकार कि वे केदारजी वहां हुये हैं ॥ ४ ॥ हे नृपोत्तम ! गंगादिक सब तीर्थ व केदारादिक देवता और इन्द्रादिक देवता पुरातन समय मेरे साथ ॥ ५ ॥ व हे नृपेन्द्र ! सब महर्षि ब्रह्माजी के समीप गये और सबों ने वहा अनेक भांति की पृथक् २ कथाओं को किया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! देवताओं के समूह में सब तीर्थ और वन व उपवन नहीं प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ तदनन्तर कथा के प्रसंगसे इन्द्र ने ब्रह्मा से कहा व हे नृपोत्तम ! कौतुक से संयुत उन्हों ने पूंछा ॥ ८ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे भगवन् ! इस समय मैं पवित्र माहात्म्य को व सतयुगादिकसब युगों का पृथक्

शृणुष्वावहितोभूत्वा यथाजातश्चतत्रवै ॥ ४ ॥ गङ्गाद्यास्सर्वतीर्थानि केदाराद्यादिवौकसः ॥ मयासहपुरादेवा शक्राद्यान्नृपसत्तम ॥ ५ ॥ ब्रह्माणंप्रतिराजेन्द्र गतास्सर्वेमहर्षयः ॥ सर्वेतत्रकथाश्चक्रुर्नानारूपाःपृथक्पृथक् ॥ ६ ॥ समुदायेचदेवानां सर्वतीर्थानिपार्थिव ॥ तत्रैवोपस्थितान्येव वनान्युपवनानिच ॥ ७ ॥ ततःकथाप्रसङ्गेन इन्द्रःप्राहचतुर्मुखम् ॥ कौतुकेनसमायुक्तः पप्रच्छनृपसत्तम ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ भगवन्पुण्यमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥ प्रमाणंचैवसर्वेषां कृतादीनांपृथग्विधम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लक्षाःसप्तदशप्रोक्ता युगमानंसुराधिप ॥ अष्टाविंशतिभिःसार्द्धंसहस्रैःकृतमुच्यते ॥ १० ॥ लक्षद्वादशभिःप्रोक्तं युगंत्रेताभिसञ्ज्ञितम् ॥ षण्णवत्यधिकैश्चैव सहस्रैःपरिमाणितम् ॥ ११ ॥ लक्षाश्चाष्टौचतुष्षष्टिसहस्रैःपरिकीर्त्तितम् ॥ ततोवैद्वापरंनाम युगंदेवेन्द्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥ लक्षाश्चत्वारिसंख्याता द्वात्रिंशत्कलिसञ्ज्ञया ॥ सहस्रैश्चसुरश्रेष्ठ युगंपरमदारुणम् ॥ १३ ॥ चतुष्पादकृतेधर्मः शुक्लवर्णोजनार्द्दनः ॥

भांति का प्रमाण सुना चाहता हूं ॥ ९ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे सुराधिप ! सतयुग का प्रमाण सत्रह लाख अट्ठाईस हज़ार वर्ष कहा जाता है ॥ १० ॥ और त्रेतासंज्ञक युग बारह लाख छानबे हज़ार वर्षों से प्रमाणित कहा गया है ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे सुरेन्द्र ! द्वापरनामक युग आठलाख चौंसठ हज़ार वर्ष कहा गया है ॥ १२ ॥ व हे सुरश्रेष्ठ ! कलिनामक बड़ा दारुण युग चारलाख बत्तीस हजार वर्ष कहा गया है ॥ १३ ॥ सतयुग में धर्म चार चरण से होता है और विष्णु शुक्ल वर्ण होते

है व उस युग में कहीं न दुर्भिक्ष होता है न व्याधि होती है ॥ १४ ॥ और सतयुग में धर्म किया जाता है व अकाल में मनुष्यों का मरण नहीं होता है व बिन हल से भी अन्न होता है और गौवों में बहुत दूध होता है ॥ १५ ॥ हे सहस्रलोचन ! उस युग में कभी काम, क्रोध, भय, लोभ, मत्सर, ईर्षा नहीं होती है ॥ १६ ॥ तदनन्तर त्रेतायुग होने पर धर्म तीन चरण होताहै उसमें मनुष्य चिरजीवी होते हैं व विष्णुजी अरुण वर्ण होते हैं ॥ १७ ॥ व प्राणियों के मनोरथों को देनेवाले यज्ञ उसमें वर्तमान होते हैं और उसमें मनुष्यों की कामादिकों में प्रवृत्ति नहीं होती है ॥ १८ ॥ और तपस्या, ब्रह्मचर्य, स्नान व अनेक प्रकार के दानोंसे यज्ञ व जप, होमों

नदुर्भिक्षोनचव्याधिस्तस्मिन्नभवतिकचित् ॥ १४ ॥ कृतेतुक्रियतेधर्मो नाकालेमरणंनृणाम् ॥ लाङ्गलेनविनासस्यं भूरिक्षीराश्चधेनवः ॥ १५ ॥ कामःक्रोधोभयंलोभो मत्सरश्चाभ्यसूयनम् ॥ तस्मिन्युगेसहस्राक्ष नभवन्तिकदाचन॥ १६॥ ततस्त्रेतायुगेजाते त्रिपादोधर्मएवच॥ चिरायुषोनरास्तस्मिन्रक्तवर्णोजनार्दनः ॥१७॥ तस्मिन्यज्ञाःप्रवर्तन्ते प्राणिनामिष्टदायिनः॥ नकामादिप्रवृत्तिश्च तस्मिन्सञ्जायतेनृणाम् ॥ १८ ॥ तपसाब्रह्मचर्येण स्नानैर्दानैःपृथग्विधैः॥तथा यज्ञैर्जपैर्होमैस्तत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ १९ ॥ ततस्तुद्वापरन्नाम तृतीयंयुगमुच्यते ॥ द्विपदोधर्मसञ्जातस्तस्मिंस्तुद्वापरेयुगे ॥ असत्यंजल्पतेलोको द्वापरेसुरसत्तम ॥ २० ॥ तत्रान्योन्यंमहीपाला युयुधुर्वसुधाकृते॥ शस्त्रपूतादिवंयान्ति यथायज्ञैश्चयज्विनः ॥ २१ ॥ ततःकलियुगंघोरं चतुर्थन्तुप्रवर्त्तते ॥ एकपादोभवेद्धर्मः सत्रन्तुनित्यपूजनम् ॥ २२ ॥ कृष्णवर्णोभवेद्विष्णुः पापाधिक्यंप्रवर्त्तते ॥ मायाचमत्सरश्चैव कामःक्रोधस्तथाभयम् ॥ २३ ॥ अर्थलुब्धायथाभूपा

से उसमें मनुष्यों की सिद्धि होती है ॥ १९ ॥ तदनन्तर द्वापर नामक तीसरा युग कहा जाता है और उस द्वापर युगमें धर्म के दो पाव होते हैं व हे सुरश्रेष्ठ ! द्वापर में मनुष्य झूंठ बोलते हैं ॥ २० ॥ और उस युगमें राजालोग पृथ्वी के लिये आपस में युद्ध करते हैं और जिस प्रकार यज्वी (यज्ञकर्ता) पुरुष यज्ञों से स्वर्ग को जाते हैं वैसेही शस्त्रों से पवित्र वे राजालोग स्वर्गको जाते हैं ॥ २१ ॥ तदनन्तर चौथा भयंकर कलियुग वर्तमान होता है उसमें एक चरण धर्म होता है व नित्य पूजन यज्ञ होता है ॥ २२ ॥ और विष्णु कृष्णवर्ण होते हैं और पाप की अधिकता होती है व माया, मत्सर, काम, क्रोध व भय ॥ २३ ॥ और जैसे राजा द्रव्य के

लोभी होते हैं व लोभ, मोहसे संयुक्त होते हैं वैसेही उस कलियुग में मनुष्य थोड़े आयुर्बलवाले होते हैं और पृथ्वी में थोडा अन्न होता है ॥ २४ ॥ और गौवों में थोड़ा दूध होता है व ब्राह्मण सत्य से हीन होते हैं और उस कलियुगमें मनुष्य मायावी होते हैं व पाखण्ड तथा द्रोह में तत्पर होते हैं ॥ २५ ॥ और सत्यहीन व पापी मनुष्य कलियुग में होते हैं व उस कलियुग में सोलहवें वर्ष में मनुष्यों के शिरके बाल पक जाते हैं ॥ २६ ॥ व बारहवें वर्ष में स्त्रिया गर्भिणी होवेंगी व हेसुराधिप ! इन स्त्रियों के कन्यापन में भी कामदेव होगा ॥ २७ ॥ और वर्ण व आश्रम एक आकार होवेंगे और यज्ञ व सनातन कुलधर्म नाशको प्राप्त होवेंगे ॥ २८॥

लोभमोहसमन्विताः ॥ अल्पायुषोनरास्तत्र अल्पसस्याचमेदिनी ॥ २४ ॥ अल्पक्षीरास्तथागावः सत्यहीनाद्विजातयः ॥ तत्रमायाविनोलोका दम्भद्रोहपरायणाः ॥ २५ ॥ सत्यहीनास्तथापापा भविष्यन्तिकलौयुगे॥तत्रषोडशमेवर्षे नराःपलितकन्धराः ॥ २६ ॥ नार्योद्वादशमेवर्षे भविष्यन्तितुगर्भिताः ॥ भविष्यतिस्मरोप्यासां कन्याभावेसुराधिप ॥ २७ ॥एकाकाराभविष्यन्ति वर्णाश्चैवाश्रमाश्चवै ॥ नाशंयास्यन्तियज्ञाश्च कुलधर्माःसनातनाः ॥ २८ ॥ व्यर्थानितत्र तीर्थानि म्लेच्छस्पृष्टानिसर्वशः ॥ भविष्यन्तिसुरश्रेष्ठ प्रभावरहितानिच ॥ २९ ॥ एतच्छ्रुत्वाततोवाक्यं ब्रह्मणोव्यक्तजन्मनः ॥ तत्रस्थितानितीर्थानि ब्रह्माणमिदमब्रुवन् ॥ ३० ॥ तीर्थान्यूचुः ॥ कथंवयंभविष्यामः सम्प्राप्तेदारुणेकलौ ॥ स्थानन्नोब्रूहिदेवेश स्थातव्यंचसदैवहि ॥ ३१ ॥ब्रह्मोवाच॥ अर्बुदःपर्वतश्रेष्ठः कलिस्तत्रनविद्यते॥ मयातत्रचगन्तव्यं तीर्थैरायतनैस्सह ॥ ३२ ॥ अपकृत्वामहत्पापमर्बुदंद्रक्ष्यतेतुयः ॥ कलिदोषविनिर्मुक्तः सयास्यतिपरांगतिम् ॥३३॥

हे सुरश्रेष्ठ ! उस कलियुग में म्लेच्छों से छुये हुये सब तीर्थ व्यर्थ व प्रभावरहित होवेंगे ॥ २९ ॥ अप्रकट जन्मवाले ब्रह्माके इस वचन को सुनकर तदनन्तर वहां स्थित तीर्थों ने ब्रह्मा से यह कहा ॥ ३० ॥ तीर्थ बोले कि हे देवेश ! भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर हमलोग कैसे होवेंगे हमलोगों से स्थानको कहिये क्योंकि सदैवही टिकना चाहिये ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा बोले कि पर्वतों में श्रेष्ठ अर्बुद पहाड़ है वहा कलियुग नहीं विद्यमान है वहीं पर तीर्थों व देवमन्दिरोंसमेत मुझको जाना

चाहिये ॥ ३२ ॥ बड़ाभारी भी पाप करके जो अर्बुद को देखता है वह कलियुग के दोष से छूटकर उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! ऐसा कहकर चतुरानन (ब्रह्मा) जी ब्रह्मलोक को गये तदनन्तर कलियुग में सब तीर्थ चलेगये ॥ ३४ ॥ व कलियुग के डरसे अर्बुद पर्वत के शिखर पै स्थित हुवे जहां गंगा व सरस्वती हैं और पुष्कर हैं ॥ ३५ ॥ व जहा कुरुक्षेत्र, प्रभास व ब्रह्मावर्त है और साढ़ेतीन करोड़ जो तीर्थ पृथ्वी में हैं ॥ ३६ ॥ अर्बुद नामक पर्वत पै उनका निवासहुआ इसप्रकार वहां गंगा व सरस्वती उत्पन्न हुईहैं ॥ ३७ ॥ उसमें भलीभाति नहाया हुआ मनुष्य उत्तम निर्वाण को पाताहै व हे महाराज !

पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रो ब्रह्मलोकंगतोनृप ॥ ततःसर्वाणितीर्थानि गतानिचकलौयुगे ॥ ३४ ॥ शिखरेर्बुद शैलस्य संस्थितानिकलेर्भयात ॥ गङ्गासरस्वतीयत्र यमुनापुष्कराणिच ॥ ३५ ॥ कुरुक्षेत्रंप्रभासश्च ब्रह्मावर्त्ततथैव च ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च यानितीर्थानिभूतले ॥ ३६ ॥ तेषांवासश्चसञ्जातः पर्वतेर्बुदसञ्ज्ञके ॥ एवंतत्रसमुत्पन्ना गङ्गाचैवसरस्वती ॥ ३७ ॥ तत्रस्नातोनरस्सम्यक्परंनिर्वाणमाप्नुयात ॥ श्राद्धंकृत्वामहाराज स्वर्गंयान्तिचपूर्वजाः ॥ ३८ ॥ शृणुतत्राभवत्पूर्वं यदाश्चर्यंमहामते ॥ ऋषिर्मङ्कणकोनाम सरस्वत्यास्तटेस्थितः ॥ ३९ ॥ तपस्तेपेसुधर्मात्मा कामक्रोधविवर्जितः ॥ तस्यैवंवर्त्तमानस्य जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ४० ॥ गृहकृत्यानिसन्त्यक्त्वा सर्वंविस्मय मागतम् ॥ सिद्धोहमितिविज्ञाय ततोनृत्यंचकारसः ॥ ४१ ॥ तस्यैवंनृत्यमानस्य सर्वेलोकानृपोत्तम ॥ ननृतुःपार्थिव श्रेष्ठ प्रभावात्तस्यसन्मुनेः ॥ ४२ ॥ ततोदेवगणास्सर्वेगत्वाकामनिषूदनम् ॥ यथायंनृत्यतेनैव तथाकुरुमहेश्वर ॥ ४३ ॥

श्राद्ध करके पूर्वज पितर स्वर्ग में जाते हैं ॥ ३८ ॥ हे महामते ! वहां पहले जो आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये कि मंकणकनामक ऋषि सरस्वती नदी के किनारे स्थित थे ॥ ३९ ॥ उत्तम धर्मात्मा व काम, क्रोधसे रहित उसने तपस्या किया है इस प्रकार उसके वर्तमान होने पर स्थावर जंगम समेत संसार ॥ ४० ॥ गृहके कार्यों को छोड़कर सब विस्मय को प्राप्त हुआ तदनन्तर मैं सिद्ध होगया यह जानकर उसने नृत्य किया ॥ ४१ ॥ हे नृपोत्तम ! हे पार्थिवश्रेष्ठ ! इस प्रकार उसके नाचने पर उस उत्तम मुनिके प्रभाव से सब लोगों ने नृत्य किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर सब देवगणों ने कामनाशक (शिव) जीके समीप जाकर कहा कि

हेमहेश्वरजी ! जिस प्रकार यह न नाचै वैसाही कीजिये ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मणके रूपसे शिवजीने द्विजोत्तम (मंकणक) से कहा कि हे ब्रह्मन् ! तुमने तपस्या किया और इस समय क्यों नृत्य किया जाता है ॥ ४४ ॥ मंकणक बोले कि हे ब्रह्मन् ! क्या तुम नहीं देखते हो कि रक्त व पित्त स्थित नहीं है और मैं सिद्धि को प्राप्त हुआहूं क्योंकि मेरा रक्त व पित्त जाता रहा ॥ ४५॥ इसी कारण हे द्विज! संसार नृत्य करताहै तदनन्तर इस प्रकार उस ब्राह्मण से कहेहुये देवदेव महेश्वरजी ने ॥ ४६ ॥ हे नृपोत्तम ! अपने अँगूठे को तर्जनी (अँगूठे के पासवाली उँगली) से ताड़न किया तदनन्तर पालाके समान श्वेत भस्म अँगूठासे निकली ॥ ४७ ॥

अथब्राह्मणरूपेण शम्भुनोक्तोद्विजोत्तमः ॥ त्वयाब्रह्मंस्तपस्तप्तमधुनानृत्यतेकथम् ॥ ४४ ॥ मङ्कणक उवाच ॥ किन्नपश्यसिहेब्रह्मन् रक्तंपित्तञ्चनस्थितम् ॥ सञ्जातःसिद्धिमापन्नो रक्तंपित्तंगतंमम ॥ ४५ ॥ एतस्मात्कारणाल्लोको द्विजनृत्यंकरोतिच ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन देवदेवोमहेश्वरः ॥ ४६ ॥ तर्जन्याताडयामास स्वाङ्गुष्ठन्नृपसत्तम ॥ ततोङ्गुष्ठाद्विनिष्क्रान्तंभस्मवैहिमपाण्डुरम् ॥ ४७ ॥ ततोमङ्कणकंप्राहपश्यविप्रकरान्मम ॥ शुभंभस्मविनिष्क्रान्तं पश्यमेद्विजकौतुकम् ॥ ४८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तद्दृष्ट्वाविस्मितोविप्रो ज्ञात्वातंवृषभध्वजम् ॥ जानुभ्यामवनिङ्गत्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ ४९ ॥ मङ्कणक उवाच ॥ नूनंभवान्महादेवः साक्षाद्दृष्टःप्रसीदमे ॥ निश्चितन्त्वंमयाज्ञात एतन्मेहृदिवर्त्तते ॥ ५० ॥ नान्यस्यायंप्रभावश्च त्वयामांसंप्रदर्शितः ॥ मांसमुद्धरदेवेश कृपांकृत्वामहेश्वर ॥ ५१ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ सम्यग्ज्ञातोस्मिविप्रेन्द्र त्वयाहन्नात्रसंशयः ॥ वरंवरयभद्रन्ते नृत्याधिक्यंकृतन्त्वया ॥ ५२ ॥

तदनन्तर शिवजी ने मंकणक से कहा कि हे विप्रजी ! देखिये मेरे हाथ से उत्तम भस्म निकली है हे द्विज ! मेरे कौतुक को देखिये ॥ ४८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस भस्म को देखकर ब्राह्मण विस्मय को प्राप्त हुआ और उनको शिवजी जानकर घुटनुवोंसे पृथ्वी में प्राप्त होकर यह वचन बोला ॥ ४९ ॥ मंकणक बोले कि निश्चय कर आप साक्षात् शिवजी देखेगये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो मैंने निश्चय कर तुमको जाना यह मेरे हृदय में वर्तमान है ॥ ५० ॥ तुमने अन्य देवता के इस प्रभाव को मुझको नहीं दिखाया है हे देवेश, महेश्वरजी ! दया करके मुझको उधारिये ॥ ५१ ॥ श्री महादेवजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! तुमने मुझको भलीभाति

संख्यक दाक्षिणात्य मुनिश्रेष्ठ वहां आये ॥ २ ॥ वे सब अन्योन्य स्पर्धा से हेला करके अर्बुद को आये कि मैं पहले मैं पहले अचलेश्वरजी को देखूंगा ॥ ३ ॥ और जो ब्राह्मण पीछे आवैगा वह बड़ा पापी व पंक्तिरहित होगा और श्रद्धाहीन होगा ॥ ४ ॥ इस प्रकार स्पर्धा करते हुये वे हेला से अर्बुद को आये तदनन्तर जो सब चित्त को रोंके हुये व भलीभाति व्रतमें परायण थे ॥ ५ ॥ और जो सब शान्त, तपस्वी व वेद विद्या में निपुण थे उनके मनोरथ को जानकर भलीभांति पापना-शक ॥ ६ ॥ महेश्वरजी भक्तिभाव से बड़ी दया से संयुत हुये व अपने लिंगोंको करोड़ करके उस स्थान में स्थित हुये ॥ ७ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ ! एकही समय में सब

यार्बुदमागताः ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वं प्रपश्याम्यचलेश्वरम् ॥ ३ ॥ आगमिष्यतियःपश्चाद्ब्राह्मणश्चभविष्यति ॥ पापीया न्पङ्क्तिरहितः श्रद्धाहीनोभविष्यति ॥ ४॥ इत्येवंस्पर्द्धमानास्ते हेलयार्बुदमागताः ॥ ततःसर्वेयतात्मानः सम्यग्व्रतप रायणाः ॥ ५ ॥ शान्तास्तपस्विनःसर्वे वेदविद्याविशारदाः ॥ तेषांसमीहितंज्ञात्वा सम्यक्पापनिषूदनः ॥ ६ ॥ कृपया परयाविष्टो भक्तिभावान्महेश्वरः ॥ कोटिंकृत्वात्मलिङ्गानां तस्मिन्स्थानेऽव्यवस्थितः ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नेवकालेतु सर्वैर्दृ ष्टोमहेश्वरः ॥ मुनिभिश्चनृपश्रेष्ठ कोटिसङ्ख्यैःपृथक्पृथक् ॥ ८ ॥ अथतेमुनयस्सर्वे समंदृष्ट्वामहेश्वरम् ॥ विस्मयो त्फुल्लनयनाः साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ ९ ॥ भक्तियुक्ताद्विजास्सर्वे वैदिकैस्तुष्टुवुस्स्तवैः ॥ तेषांतुष्टस्ततःशम्भुर्वाक्यमेत दुवाचह ॥१०॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ तुष्टोहंमुनयस्सर्वे श्रद्धयापरयाहिवः ॥ वरंचव्रियतांशीघ्रं सर्वैश्चैवपृथक्पृथक् ॥११॥ ऋषय ऊचुः ॥ एषएववरोस्माकं सर्वेषांहृदिवर्तितः ॥ युगपद्दर्शनादेव जायतांफलमुत्तमम् ॥ १२ ॥ श्रीमहादेव

कोटिसंख्यक मुनियों ने अलग २ महेश्वरजी को देखा ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले वे सब मुनिलोग एकही साथ महादेवजी को देख कर बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा बोले ॥ ९ ॥ व भक्ति से संयुत सब ब्राह्मणों ने वैदिक स्तोत्रों से स्तुति किया तदनन्तर उनके ऊपर प्रसन्न होते हुये शिवजी यह वचन बोले ॥ १० ॥ श्री महादेवजी बोले कि हे सब मुनियो ! बड़ी श्रद्धा से मैं तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हू और सब लोग अलग २ वरदानों को शीघ्रही मांगो ॥ ११ ॥ ऋषिलोग बोले कि यही वरदान हम सब लोगों के हृदय में वर्तमान हुआ है कि एकही साथ दर्शनही से उत्तम फल होवै ॥ १२ ॥ श्री महादेवजी बोले कि

मेरा दर्शन वृथा नहीं होता है और ब्राह्मण को विशेष कर मेरा दर्शन वृथा नहीं होता है और जो दर्शन करेंगे उनको तीर्थ से उपजा हुआ फल होगा ॥ १३ ॥ मुनि लोग बोले कि हे महेश्वरजी ! यदि हमलोगों को अवश्य वर देनेयोग्य है तो हे वृषभध्वज ! एक कोटिमय लिंग किया जावै ॥ १४ ॥ कि जिसके देखने पर मनुष्यों को कोटिसंख्या से फल होवे हे वृषध्वज ! इस प्रकार हमलोगों को यह वर दिया जावै ॥ १५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इस प्रकार उन शुद्ध चित्तवाले महर्षियों के प्रार्थना करते हुये श्रेष्ठ पर्वत को फोड़कर उत्तम लिंग निकला ॥ १६ ॥ व इसी समय हे वसुधाधिप ! उत्तम दयासे उन सब ऋषियों से आकाशवाणी

उवाच ॥ नवृथादर्शनंमेस्याद्विशेषाद्ब्राह्मणस्यच ॥ दर्शनंयेकरिष्यन्ति तेषांचतीर्थजंफलम् ॥ १३ ॥ मुनय ऊचुः ॥ अवश्यंयदिदातव्यो वरोस्माकंमहेश्वर ॥ एकंकोटिमयँल्लिङ्गं क्रियतांवृषभध्वज ॥ १४ ॥ यस्मिन्दृष्टेफलंनृणां जायतेकोटिसङ्ख्यया ॥ एवमेषवरोस्माकं दीयतांवृषभध्वज ॥ १५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवन्तुप्रार्थमानानां मुनीनांभावितात्मनाम् ॥ निर्भिद्यपर्वतश्रेष्ठं सहसालिङ्गमुत्तमम् ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ कृपयापरया सर्वांस्तानृषीन्वसुधाधिप ॥ १७ ॥ कोटीश्वराख्यंमेलिङ्गं लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां यश्चैनंपूजयिष्यति ॥ १८ ॥ सर्वंकोटिगुणन्तस्य फलंविप्राभविष्यति ॥ दक्षिणास्योनरोयस्तु श्राद्धंतत्रकरिष्यति ॥ १९ ॥ फलंकोटिगुणन्तस्य गयाश्राद्धसमंभवेत् ॥ तस्माद्विशेषतःपूज्यं ममलिङ्गंचमानवैः ॥ २० ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वातुसावाणी विरराममहीपते ॥ ततस्तेमुनयस्सर्वे गन्धधूपानुलेपनैः ॥ २१ ॥ तल्लिङ्गम्पूजयामासुः श्रद्धयापरया

बोली ॥ १७ ॥ कि कोटीश्वरनामक मेरा लिंग संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त होगा व माघ महीने में कृष्णपक्षकी चौदसि में जो इस लिंगको पूजैगा ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसको सब कोटिगुना फल होगा और वहां दक्षिणमुख बैठकर जो मनुष्य श्राद्ध करैगा ॥ १९ ॥ उसको श्राद्ध के समान कोटिगुना फल होगा इस लिये मनुष्यों को विशेष कर मेरा लिंग पूजना चाहिये ॥ २० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे महीपते ! ऐसा कहकर वह वाणी चुप होरही तदनन्तर उन सब मुनियों ने

चन्दन, धूप व अनुलेपनों से ॥ २१ ॥ हे राजन्! उत्तम श्रद्धा से उस लिंग का पूजन किया और पूजकर वे शिवलिंगकी प्रसन्नता से उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुये ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकोटीश्वरमाहात्म्यंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ● ॥ ● ॥ ●

दो०। रूपतीर्थ में न्हाय जिमि नारि लह्यो शुभ रूप। सो बारह अध्याय में कह्यो चरित्र अनूप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाले व रूप, सौभाग्य को देनेवाले अतिउत्तम रूपतीर्थ को जावे ॥ १ ॥ वहां पुरातनसमय संसार में प्रसिद्ध वपुनामक उत्तम अप्सरा सिद्धि को

नृप ॥ पूजयित्वागतासिद्धिं सर्वलिङ्गप्रसादतः ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेकोटीश्वरमाहात्म्यन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ रूपतीर्थमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरन्नृणां रूपसौभाग्यदायकम् ॥ १ ॥ तत्र पूर्ववपुर्नामा लोकेख्यातावराप्सरा ॥ सिद्धिंगतामहाराज यथाश्चर्यन्निगद्यते ॥ २ ॥ पुरासीत्काचिदाभीराविरूपाविकृताननना ॥ लम्बोदरीचकुग्रीवा स्थूलदन्तशिरोरुहा ॥ ३ ॥ एकदाफलमानेतुं भ्रममाणार्बुदाचले ॥ माघशुक्लतृतीयायां पतितागिरिनिर्भरे ॥ ४ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यैरागैःसमन्विता ॥ पद्मनेत्रासुकेशान्ता सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ५ ॥ सासञ्जातामहाराज तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु शक्रस्तत्रसमागतः ॥ ६ ॥ क्रीडार्थंपर्वतश्रेष्ठे तांददर्शशुभेक्षणाम् ॥ ततःकामशरैर्विद्धस्तामुवाचसुमध्यमाम् ॥ ७ ॥ इन्द्र उवाच॥ कात्वंवदवरारोहे किमर्थंचेहआगता॥

प्राप्त हुई है और जिस प्रकार आश्चर्य हुआ है वैसाही कहा जाता है ॥ २ ॥ पुरातनसमय विकृतमुखी व विरूपिणी कोई अहीरिनि हुई है जो कि लम्बे पेटवारी व कुत्सितग्रीवी तथा मोटे दंत व वालोंवाली थी ॥ ३ ॥ एक समय फल लाने के लिये अर्बुद पर्वत पै घूमती हुई वह माघ महीने में शुक्लपक्ष की तीज तिथिमें पर्वत के झरने में गिरपड़ी ॥ ४ ॥ और हे महाराज! इस तीर्थ के प्रभाव से वह दिव्य माला व वसनों को धारे तथा दिव्य अंगोंसे संयुत व कमलनयनी, सुन्दर केशान्तवाली व सब लक्षणों से लक्षित होगई इसी समय में वहां इन्द्रजी श्रेष्ठ पर्वत पै क्रीड़ा के लिये आये व उस सुनयनी को देखते भये तदनन्तर कामदेव के बाणों से

से ताड़ित इन्द्रजी उस सुमध्यमासे बोले ॥ ५।६।७ ॥ इन्द्रजीबोले कि हे वरारोहे ! तुम कौनहो यह कहिये और किसलिये तुम यहां आई हो क्या देवीहो या नाग कन्याहो अथवा सिद्धा या विद्याधरी हो ॥ ८ ॥ हे सुभ्रु ! कमलनेत्रोंवाली तुमनेमेरे मनको हरलिया हे चारुहासिनि ! सब देवताओं का स्वामी मैं इन्द्र हूं मुझको भजिये ॥ ९ ॥ स्त्री बोली कि हे सुराधीश ! मैं अहीरिनि व बहुत पतिवाली हूं फलों के लिये मैं आई थी और पर्वत के झरने में गिरपड़ी ॥ १० ॥ और स्नान कर मैंने अद्भुत व उत्तम इस रूपको पाया है जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है फिर मनुष्यों को क्या कहना है ॥ ११ ॥ सब देवता तुम्हारे वश में प्राप्त हैं मुझमें क्यों इच्छा

देवीवानागकन्यावा सिद्धाविद्याधरीनुवा ॥ ८ ॥ मनोमेपहृतंसुभ्रु त्वयाचपद्मनेत्रया ॥ शक्रोहंसर्वदेवेशो भजमां चारुहासिनि ॥ ९ ॥ नार्युवाच ॥ आभीरीत्रिदशाधीश तथाहंबहुभर्तृका ॥ फलार्थन्तुसमायाता पतितागिरिनिर्झरे ॥ १० ॥ स्नात्वाद्भुतमिदंप्राप्तं स्वरूपञ्चशुभंमया ॥ दुर्लभंत्वंहिदेवानां किंपुनर्मर्त्यजन्मनाम् ॥ ११ ॥ वशगास्तेसुरास्सर्वे मयिकिंक्रियतेस्पृहा ॥ भजमांत्रिदशाधीश यथाकामंसुराधिप ॥ १२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तस्तयाशक्रः कामयामासतांतदा ॥ निवृत्तमदनोभूत्वा तामुवाचसुमध्यमाम् ॥ १३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ वरंवरयकल्याणि यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ विनयात्तवतुष्टोहं दास्यामिवरमुत्तमम् ॥ १४ ॥ नार्युवाच ॥ माघशुक्लतृतीयायां नरोवावनितातथा ॥ स्नानंयःकुरुतेभक्त्या प्रीतास्स्युस्सर्वदेवताः ॥ १५ ॥ रूपंसञ्जायतेतेषां दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ मांनयत्वंसहस्राक्ष सुरावासंसहात्मना ॥ १६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्वितितामुक्त्वा गृहीत्वातांसुराधिपः ॥ विमानेनतयासार्द्धं जगाम

की जाती है हे त्रिदशाधीश, सुराधिप ! मुझको इच्छा के अनुकूल भजिये ॥ १२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उससे ऐसा कहे हुये इन्द्र ने उस समय उससे रति किया और कामदेवसे निवृत्त होकर वे उस सुमध्यमासे बोले ॥ १३ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे कल्याणि ! जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उस वरदान को मांगो तुम्हारी नम्रता से मैं प्रसन्न हूं इससे उत्तम वर को दूंगा ॥ १४ ॥ स्त्री बोली कि माघ महीने में शुक्ल पक्ष की तीज तिथि में पुरुष हो या स्त्री होवै जो भक्ति से उसमें स्नान करै उसके ऊपर सब देवता प्रसन्न होवैं ॥ १५ ॥ और उनका देवताओं से भी दुर्लभ रूप होवै हे सहस्राक्ष ! शरीरसमेत मुझको तुम देवस्थानको ले चलो ॥ १६ ॥ पुलस्त्यजी

बोले कि ऐसाही होवै यह उससे कहकर सुरेश इन्द्रजी उसको लेकर विमान के द्वारा उस समेत स्वर्ग को चले गये ॥ १७ ॥ हे नृपोत्तम ! जिस लिये उसने वपु (शरीर) को पाया है उसी कारण नामसे वपु ऐसी प्रसिद्ध वह उत्तम अप्सरा हुई ॥ १८ ॥ माघ शुक्लपक्ष में तीज तिथि में भक्तिसंयुत सब देवता प्रातःकाल उस में स्नान करते हैं ॥ १९ ॥ और उसमें अन्य देवकन्या व सिद्धों तथा यक्षों की कन्या स्नान करती हैं हे नराधिप ! उस समय जो वहा स्नान करता है ॥ २० ॥ वह वैसेही रूप को पाता है जैसा कि पुरातन समय उस स्त्री ने पाया है और वहां सब सिद्ध, विद्याधर व नाग होवैंगे ॥ २१ ॥ उसी के पूर्व दिशा के भाग में अति

त्रिदिवंप्रति ॥ १७ ॥ वपुःप्राप्तंतयायस्मात्तस्मात्पार्थिवसत्तम ॥ नाम्नावपुरितिख्याता साबभूववराप्सराः ॥ १८ ॥ माघशुक्लेतृतीयायां देवास्तस्मिञ्जलाशये ॥ स्नानंसर्वेप्रकुर्वन्ति प्रभातेभक्तिसंयुताः ॥ १९ ॥ तत्रान्यादेवकन्याश्च सिद्धयक्षाङ्गनास्तथा ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं तस्मिन्कालेनराधिप ॥ २० ॥ रूपञ्चलभतेतादृग् यादृग्लब्धंतयापुरा ॥ सर्वेतत्रभविष्यन्ति सिद्धविद्याधरोरगाः ॥ २१ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे बिलमस्तिसुशोभनम् ॥ यत्रागत्यप्रकुर्वन्ति स्नानंपातालकन्यकाः ॥ २२ ॥ तत्रस्नात्वागृहीत्वायो बिलेतस्मिन्व्रजन्तिताः ॥ तत्रैवयज्जलंचास्ति महत्पाषाणसम्भवम् ॥ २३ ॥ तेनोदकेनसंयुक्तो सिद्धोभवतिमानवः ॥ गृहीत्वातज्जलंयस्तु यत्रयत्राभिगच्छति ॥ २४ ॥ स्वर्गेवाभूतलेवापि नाकेचापिनरुद्धयते ॥ तत्रास्तिविवरद्वारेतिलकोनामपादपः ॥ २५ ॥ तस्यपुष्पैःफलैश्चैव सर्वकार्यंप्रसिद्ध्यति ॥ भक्षणाद्धारणाद्वापि सिद्धोभवतिमानवः ॥ २६ ॥ तस्मिन्बिलेतुपाषाणः समन्ताच्छङ्खसन्निभः ॥ तेनोदकेन

उत्तम बिल है जिसमें पाताल की कन्या आकर स्नान करती हैं ॥ २२ ॥ व उसमें नहाकर जलको लेकर वे उस बिल में जाती हैं और बड़े पत्थर से उपजा हुआ जो वहीं जल है ॥ २३ ॥ उसी जल से संयुक्त मनुष्य सिद्ध होता है और उस जलको लेकर जो जहां जहां जाता है ॥ २४ ॥ स्वर्ग में, पृथ्वी में और वैकुंठ में भी वह नहीं रोका जाता है उस बिलके द्वार पै तिलकनामक वृक्ष है ॥ २५ ॥ उसके पुष्पों व फलों से सब कार्य सिद्ध होता है और उसके भक्षण व धारण करने से

मनुष्य सिद्ध होता है ॥ २६ ॥ उस बिलमें चारों ओर शंख के समान पत्थर हैं और उस जल से छुये हुये वे सुवर्णमय होते हैं ॥ २७ ॥ और जो बांझस्त्री तिलक से संयुत उस जलको पीती है सौ वर्ष की भी वह उसी क्षण गर्भिणी होती है ॥ २८ ॥ और व्याधि से ग्रस्त भी जो मनुष्य उसमें स्नान करता है वह शीघ्रही नीरोगी होता है और ग्रहसे ग्रस्त पुरुष ग्रहसे छूट जाता है॥ २९ ॥ और भूत, प्रेत व पिशाचों का दोषसमूह नाश होजाता है उस जल के स्पर्श करने पर सब पाप नाश हो जाता है ॥ ३० ॥ और जो कीट, पतंग, पिशाच, व पक्षी व मृग हैं उस जल से छुये हुये वे शीघ्रही उत्तम गति को प्राप्त होवेंगे ॥ ३१ ॥ ययाति बोले कि हे ब्रह्मन्!

संसृष्टाभवन्तिचहिरण्मयाः ॥ २७ ॥ बन्ध्यानारीजलन्तच्च यापिबेत्तिलकान्वितम् ॥ अपिवर्षशतासाचसद्योगर्भवतीभवेत् ॥ २८ ॥ व्याधिग्रस्तोपियोमर्त्यः स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ नीरोगीजायतेसद्यो ग्रहग्रस्तोग्रहाच्युतः ॥ २९ ॥ भूतप्रेतपिशाचानां दोषःसद्यःप्रणश्यति ॥ तेनोदकेनसंस्पृष्टे सर्वन्नश्यतिदुष्कृतम् ॥ ३० ॥ अपिकीटपतङ्गाये पिशाचाः पक्षिणोमृगाः ॥ तेनोदकेनसंस्पृष्टास्सद्योयास्यन्तिसद्गतिम् ॥ ३१ ॥ ययातिरुवाच ॥ अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्माहात्म्यंभवतामम ॥ कथितंरूपतीर्थस्यनभूतंनभविष्यति ॥ ३२ ॥ किमत्रकारणंब्रह्मन्सर्वेभ्योप्यधिकंस्मृतम् ॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि परंकौतूहलंहिमे ॥ ३३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तत्रपूर्वंतपस्तप्तमदित्यान्नृपसत्तम ॥ इन्द्रेराज्यपरिभ्रष्टे बलौत्रैलोक्यनायके ॥ ३४ ॥ अवतीर्णश्चतुर्बाहुरदित्यांनृपसत्तम ॥ तस्याजातोमहाविष्णुर्दितेश्चैवासुरान्तकृत् ॥ ३५ ॥ गुप्ताया बिवरद्वारे भयाद्दानवसम्भवात् ॥ जातमात्रोहरिस्तस्मिन् स्थापितोनिर्झरेतया ॥ ३६ ॥ तस्मात्पवित्रतांप्राप्तं तीर्थं

आपने बहुतही अद्भुत इस रूप तीर्थ के माहात्म्य को कहा ऐसा न हुआ है न होवेगा ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन्! इस में क्या कारण है जो कि सब से अधिक कहा गया है सब विस्तार से कहिये मुझको बड़ा कौतुक है ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम! जब इन्द्र राज्य से छूटगये व बलि त्रिलोकनायक हुआ तब पुरातनसमय वहां अदिति ने तप किया है ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम! चतुर्भुज विष्णुजी ने अदिति में अवतार लिया है व दैत्यों को नाश करनेवाले महाविष्णुजी दानवों के भय से बिलके द्वार में गुप्त उस अदिति के पैदा हुये और उत्पन्नहुयेही विष्णुजीको उस अदिति ने उस झरने में स्थापित किया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसलिये मनुष्योंका अभीष्ट-

दायक तीर्थ पवित्रता को प्राप्त हुआ है हे राजन्! अन्य कारण नहीं है मैंने इसको सत्य कहा ॥ ३७ ॥ वहां माघकी शुक्लपक्षवाली तीज में त्रिविक्रम (वामन) जी उत्पन्न हुये हैं और सब वृक्षों के मध्य में तिलक पुत्रकी नाईं पालनकिया गयाहै ॥ ३८ ॥ और अदिति ने नित्य अपने हाथसे उत्तम जलों से सेवन किया है यह सब उत्तम तीर्थ का माहात्म्य तुमसे कहा गया ॥ ३९ ॥ इसलिये सब यत्न से वहां स्नान करै क्योंकि वह तीर्थ इस लोक व परलोक में सर्व कामनाओं का देनेवाला है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थरूपमाहात्म्यंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

नृणामभीष्टदम् ॥ नचान्यत्कारणंराजन्सप्तमेतन्मयोदितम् ॥ ३७ ॥ माघशुक्लतृतीयायां तत्रजातस्त्रिविक्रमः ॥ तिलकस्सर्ववृक्षाणां पुत्रवत्परिपालितः ॥ ३८ ॥ अदित्यासेवितोनित्यं स्वहस्तेनजलैःशुभैः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ सर्वकामप्रदन्नृणामिहलोकेपरत्रच ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेरूपतीर्थमाहात्म्यन्नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ अम्बरीषस्यराजर्षेराश्रमंपापनाशनम् ॥ १ ॥ यत्रस्वयंहृषीकेशः कालेचकलिसञ्ज्ञके ॥ तस्यवाक्यमृतंकर्तुं तीर्थेसपरितिष्ठति ॥ २ ॥ पुरासीत्पृथिवीपालो ह्यम्बरीषोयुगेकृते ॥ हरिमाराधयामास तपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ ३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुराजेन्द्र मितभक्तोजितेन्द्रियः ॥ सहस्रमेकवर्षाणां ततआसीत्फलाशनः ॥ ४ ॥ सहस्रेद्वेततोराजञ्जीर्णपर्णाशनोभवत् ॥ सहस्रेद्वेततोभूपो जलाहारोबभूवह ॥ ५ ॥

दो० । अंबरीष कर आश्रम अहै यथा परभाव । सो तेरहें अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर त्रिलोक में प्रसिद्ध तीर्थ को जावै राजर्षि अंबरीष का पापनाशक आश्रम है ॥ १ ॥ जहां पर आपही विष्णुजी कलिसंज्ञक समय में उन अंबरीष का वचन सत्य करने के लिये तीर्थ में स्थित हुये हैं ॥ २ ॥ पुरातनसमय सतयुग में अंबरीष भूपाल हुये हैं उन्होंने विष्णुजीको आराधन किया व कठिन तपस्या कियाहै ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे नृपेन्द्र ! मितभोजी व जितेन्द्रिय अम्बरीष एक हज़ार वर्षों तक फलाहारी हुये ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! दो हज़ार वर्ष तक गिरे हुये पत्तों को भोजन करते भये तदनन्तर फिर

दो हज़ार वर्ष तक जलाहारी हुये ॥ ५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! तीन हज़ार वर्ष तक सदैव विष्णुजीको चिन्तवन करते हुये श्रद्धासंयुत अम्बरीषजी पवनभोजी हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर दश हज़ार वर्ष के अन्त में राजा अम्बरीष के ऊपर विष्णुजी प्रसन्न हुये और इन भगवान् विष्णुजीने उनको दर्शन दिया ॥ ७ ॥ और सुरपति का रूप कर ऐरावत हाथी पै चढ़कर विष्णुजीने अम्बरीष राजा से कहा मैं इन्द्र हूं ॥ ८ ॥ इन्द्र बोले कि हे राजन् ! जो मन में प्रिय हो उस वरदान को मांगिये मैं तुमको भक्तिसे संयुत देखकर आया हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ अम्बरीष बोले कि हे वृत्रनाशक ! तुम मुक्तिको देने के लिये असमर्थ हो और हे देवेश ! तुम्हारी

सहस्रञ्चत्रयंराजन् वायुभक्षोबभूवह ॥ चिन्तयन्पुण्डरीकाक्षमनिशंश्रद्धयान्वितः ॥ ६ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते दशा नांचनृपोपरि ॥ तुतोषभगवान्विष्णुस्तस्यासौदर्शनंददौ ॥ ७ ॥ कृत्वादेवपतेरूपं आरुह्यैरावतंगजम् ॥ अब्रवीद्देव राजोस्मि अम्बरीषंनराधिपम् ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते राजन्यन्मनसीप्सितम् ॥ त्वांदृष्ट्वाभक्तिसंयुक्त मागतोहन्नसंशयः ॥ ९ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ मुक्तिंदातुमशक्तोसि त्वंचवृत्रनिषूदन ॥ तवप्रसादाद्देवेश त्रैलोक्यंमम वर्त्तते ॥ १० ॥ स्वागतंगच्छदेवेश नवरोरोचतेमम ॥ सर्वथादास्यतेमह्यं वरन्तुष्टश्चतुर्भुजः ॥ ११ ॥ तदाहंप्रग्रहीष्या मि गच्छदेवनमोस्तुते ॥ इन्द्र उवाच ॥ वरंवरयराजर्षे यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ १२ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानामहमीशो नृपोत्तम ॥ अन्येषांचैवदेवानां त्रैलोक्यस्याप्यहंविभुः ॥ १३ ॥ वरंवरयतस्मात्त्वं प्रसादान्मेसुदुर्लभम् ॥ प्रसन्नेमयि राजेन्द्र प्रसन्नास्सर्वदेवताः ॥ १४ ॥ कुरुमेवचनंराजन् गृह्यतांवरमुत्तमम् ॥ अम्बरीष उवाच ॥ राजात्वंसर्वदेवानां

प्रसन्नता से मेरे त्रिलोक वर्तमान है ॥ १० ॥ हे देवेश ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ जाइये मुझको वर नहीं रुचता है और जब चतुर्भुज विष्णुजी सब भांतिसे प्रसन्न होकर मेरे लिये वर देवैंगे ॥ ११ ॥ तब मैं उसको ग्रहण करूंगा हे देव ! जाइये तुम्हारे लिये नमस्कार होवै इन्द्रजी बोले कि हे राजर्षे ! तुम्हारे मनमें जो वर्तमान होवै उस वरदान को मांगिये ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! मैं ब्रह्मा, विष्णु व महेश का स्वामी हूं और अन्य देवताओं का व त्रिलोक का भी मैं स्वामी हूं ॥ १३ ॥ इसलिये मेरी प्रसन्नता से तुम बहुतही दुर्लभ वरदान को मांगो हे नृपेन्द्र ! मेरे प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ हे राजन् ! मेरा वचन कीजिये व उत्तम वर

को ग्रहण कीजिये अम्बरीष बोले कि तुम सब देवताओं के राजा हो व त्रिलोक के स्वामी हो ॥ १५ ॥ व हे वृत्रनिषूदन ! मैं सातों द्वीपवाली पृथ्वी का राजा हूं और विष्णुजी आकर निस्सन्देह वर देवैंगे ॥ १६ ॥ इन्द्र बोले कि हे भूपाल ! देते हुये मेरे वरको यदि नहीं चाहतेहो तो वधके लिये निश्चय करके मैं तुम्हारे समीप वज्र को पठाऊँगा ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर गलफड़ों को चाटतेहुये इन्द्रने दाहिने हाथमें वज्रको लेकर घुमाया ॥ १८ ॥ इस प्रकार उसके घुमातेहुये बड़े भारी उत्पात हुये तदनन्तर सब ओर से पर्वतोंके शिखर टूटगये ॥ १९ ॥ उस समय आकाश मेघों से आच्छादित होगया व बिजली से पृथ्वी घिरगई और वहां कुछ नहीं देख

त्रैलोक्यस्यतथेश्वरः ॥ १५ ॥ सप्तद्वीपवतीराजाअहंवृत्रनिषूदन ॥ आगत्यचहृषीकेशो वरंदास्यत्यसंशयम् ॥ १६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ ददतोममभूपाल नचेच्छसिवरंयदि ॥ वज्रंत्वांप्रेरयिष्यामि वधायकृतनिश्चयः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा सहस्राक्षः सृक्किणींपरिलेलिहन् ॥ कुलिशंभ्रामयामास गृहीत्वादक्षिणेकरे ॥ १८ ॥ तस्यैवंभ्राम्यमाणस्य महोत्पाताबभूविरे ॥ ततःपर्वतशृङ्गाणि विशीर्णानिसमन्ततः ॥ १९ ॥ आवृतंगगनंमेघैर्विद्युताचमहीतदा ॥ नकिञ्चिद्दृश्यतेतत्र सर्वतस्ससमावृतम् ॥ २० ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सराजाहरिवत्सलः ॥ उभेनिर्माल्यनयने समाधिस्थोबभूवह ॥ २१ ॥ ततस्तुष्टोजगन्नाथः साक्षात्प्रत्यक्षतांगतः ॥ ऐरावतस्तुगरुडस्तत्क्षणात्समजायत ॥ २२ ॥ तमुवाचहृषीकेशो मेघगम्भीरयागिरा ॥ सध्यानस्थमम्बरीषं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २३ ॥ भगवानुवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्सानयाभक्त्या जनेश्वर ॥ वरंवरयभद्रन्ते यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ २४ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ यदिप्रसन्नोभगवन्यदिदेयोवरोमम ॥

पड़ता था व सब ओर अन्धकार से घिरगया ॥ २० ॥ इसी समय में वे विष्णुप्रिय राजा दोनों नेत्रों को मूंदकर समाधि में स्थित हुये ॥ २१ ॥ तदनन्तर साक्षात् विष्णुजी प्रसन्न हुये व प्रत्यक्षता को प्राप्त हुये व उसीक्षण ऐरावत हाथी गरुड़ हो गया ॥ २२ ॥ और शंख चक्र व गदा को धारनेवाले विष्णुजीने उन अम्बरीष से मेघ के समान गंभीर वाणी से कहा ॥ २३ ॥ भगवान् बोले कि हे जनेश्वर ! मैं इस भक्ति से तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं तुम्हारा कल्याण होवै और यद्यपि दुर्लभ भी

होवै तथापि बरदान को मांगो ॥ २४ ॥ अम्बरीष बोले कि हे भगवन् ! यदि प्रसन्न हो और यदि मुझको वर देने योग्य है तो हे हरे ! संसारसमुद्र से तारने के लिये मुझसे उपाय कहिये ॥ २५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसके अनन्तर भगवान् विष्णु जीने अम्बरीष राजा से संसार को क्षय करनेवाले अतिविस्तारित ज्ञान योग को कहा ॥ २६ ॥ जिसके जानने पर हे राजन् ! मनुष्य भलीभांति संसार से छूटजाता है उन राजा अम्बरीष ने भलीभांति उसको सुनकर तदनन्तर विष्णुजीसे कहा ॥ २७ ॥ अम्बरीष बोले कि हे भगवन् ! तुमने मुझसे जो इस योगको विस्तार से कहा हे देव ! वह मनुष्यों के दुःख से जानने योग्य है और कलियुग में विशेषता

संसाराब्धेस्तारणाय वदोपायंहरेमम ॥ २५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथाहभगवान्विष्णुरम्बरीषंजनाधिपम् ॥ ज्ञानयोगंसुविस्तीर्णं संसारक्षयकारणम् ॥ २६ ॥ यस्मिञ्ज्ञातेनरःसम्यक् संसारान्मुच्यतेनृप ॥ श्रुत्वासनृपतिस्सम्यक् ततः प्रोवाचकेशवम् ॥ २७ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ भगवन्यस्त्वयाप्रोक्तो योगोयंममविस्तरात् ॥ सदुर्ज्ञेयोनृणांदेव विशेषाच्चकलौयुगे ॥ २८ ॥ अपिचेत्सुप्रसन्नस्त्वं क्रियायोगंब्रवीहिमाम् ॥ लोकानांतारणार्थाय शङ्खचक्रगदाधर ॥ २९ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ इत्युक्तोमाधवस्तेन चकारस्थितिमुत्तमाम् ॥ सनित्यंपूजयामास गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ ३० ॥ ततःकालेनमहता सराजाहरिमन्दिरे ॥ अकरोत्तस्यपूजांच सपुत्रःसहबान्धवैः ॥ ३१ ॥ अद्यापिभगवान्विष्णुस्तस्यवाक्येनभूपतेः ॥ सदासन्निहितोविष्णुस्तस्मिन्नेवाश्रमेशुभे ॥ ३२ ॥ तदारभ्यमहाराज क्रियायोगोधरातले ॥ प्रवृत्तःप्रतिमाकारः कालेचकलिसञ्ज्ञिके ॥ ३३ ॥ यस्तुसम्पूजयेद्भक्त्या हृषीकेशंनृपार्बुदे ॥ सयातिविष्णुसालोक्यं प्रसादाच्चहरेर्नृ

से दुर्ज्ञेय है ॥ २८ ॥ और यदि तुम प्रसन्न हो तो हे शंख चक्र गदाधर ! मनुष्यों को तारने के लिये मुझसे क्रिया योग को कहिये ॥ २९ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उन से ऐसा कहे हुये विष्णुजीने उत्तम स्थिति किया व उन्होंने नित्यही चन्दन, पुष्प व अनुलेपनों से पूजन किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर बहुत समय से पुत्रों समेत व बन्धुवों सहित उस राजा ने विष्णु मंदिर में उन विष्णु का पूजन किया ॥ ३१ ॥ और उस राजा के वचन से उसी उत्तम आश्रम में विष्णुजी सदैव स्थित हुये ॥ ३२ ॥ तबसे लगाकर हे महाराज ! कलियुगसंज्ञक कालमें प्रतिमाकार कर्मयोग पृथ्वी में वर्तमान हुआ ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! जो भक्ति से अर्बुद पर्वतपै विष्णुजी को भली॰

भाति पूजताहै वह हे राजन्! विष्णुजीकी प्रसन्नता से विष्णुजीकी सलोकता को प्राप्त होताहै ॥ ३४ ॥ हे महाराज, राजन्! एकादशी तिथि में विष्णुजी के आगे स्थित जो निराहार होकर रात्रि में जागरण करता है ॥ ३५ ॥ वह देवताओं से भी दुर्लभ उत्तम स्थान को जावैगा कार्त्तिकी में ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ में जो कपिलादान में फल होताहै ॥ ३६ ॥ उस फलको मनुष्य विष्णुजी के दर्शनसे प्राप्त होताहै और शुक्ल या कृष्णपक्षमें हरिवासर यानी एकादशी तिथि प्राप्त होनेपर ॥ ३७ ॥ जो हृषीकेशजी को देखता है वह अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है इस लिये सब यत्न से विधि से उन हृषीकेशजी को पूजै ॥ ३८ ॥ भली भांति व्रत में परायण जो वहां चार

प ॥ ३४ ॥ एकादश्यांमहाराज रात्रौजागरणंनृप ॥ करिष्यतिनिराहारो हृषीकेशाग्रतःस्थितः ॥ ३५ ॥ सयास्यति परंस्थानं दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ यत्फलंकपिलादाने कार्त्तिक्यांज्येष्ठपुष्करे ॥ ३६ ॥ तत्फलंलभतेमर्त्यो हृषीकेशस्यद र्शनात् ॥ शुक्लेवायदिवाकृष्णे सम्प्राप्तेहरिवासरे ॥ ३७ ॥ यःपश्यतिहृषीकेशमश्वमेधफलंलभेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेद्विधिनानरः ॥ ३८ ॥ यस्तत्रचतुरोमासान्सम्यग्व्रतपरायणः ॥ अभ्यर्चयेद्धृषीकेशं नसभूयोभिजायते ॥ ३९ ॥ एकः सर्वाणितीर्थानिकरोतिनृपसत्तम ॥ पश्यत्यन्योहृषीकेशं चातुर्मास्येसमाहितः ॥ ४० ॥ एकोदानानिसर्वाणि ब्रा ह्मणेभ्यःप्रयच्छति ॥ पश्यत्यन्योहृषीकेशंचातुर्मास्येसमाहितः ॥ ४१ ॥ एकःकन्यासहस्रन्तु प्रदद्याच्चयथाविधि ॥ पश्यत्यन्योहृषीकेशं चातुर्मास्येसमाहितः ॥ ४२ ॥ एकस्तुनिजदेहस्थं तंविष्णुंचप्रपश्यति ॥ पश्यत्यन्योहृषीके शं चातुर्मास्येसमाहितः ॥ ४३ ॥ सूर्यग्रहेकुरुक्षेत्रे दद्याद्गोदानमुत्तमम् ॥ पश्यत्यन्योहृषीकेशं चातुर्मास्येसमाहि

महीने तक हृषीकेशजी को पूजता है वह फिर नहीं उत्पन्न होता है ॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम! एक मनुष्य सब तीर्थ करता है अन्य सावधान होकर चातुर्मास्य में हृषीकेशजी को देखता है ॥ ४० ॥ व एक मनुष्य ब्राह्मणों के लिये सब दानों को देता है और अन्य सावधान होकर चातुर्मास्य में हृषीकेशजी को देखता है ॥ ४१ ॥ और एक मनुष्य विधिपूर्वक हजार कन्याओं को देता है अन्य चातुर्मास्य में सावधान होकर हृषीकेश जीको देखता है ॥ ४२ ॥ व एक पुरुष अपने शरीर में स्थित उन विष्णुजी को देखता है अन्य सावधान होकर चातुर्मास्य में हृषीकेश जीको देखता है ॥ ४३ ॥ और एक सूर्य नारायण के ग्रहण में कुरुक्षेत्र में गोदान देता है व अन्य

से सुनिये कि एक ओर सब वर्तमान है एक ओर विष्णुजीका दर्शन है ॥ ५४ ॥ इस लिये अम्बरीष राजर्षि के पापनाशक स्थान में सब यत्न से विष्णुजीके समीप स्थित होना चाहिये ॥ ५५ ॥ एक ओर हृषीकेश व एक ओर कर्णिकेश्वरजी हैं हे नृपोत्तम ! उन दोनोंके मध्य में जो मनुष्य मरते हैं ॥ ५६ ॥ वे बहुत पापकोंकरके भी विष्णुजीके समीप जाते हैं और हृषीकेशको देखकर मनुष्य शीघ्रही मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ व हे राजन् ! जो मनुष्य हृषीकेश के ऊपर एक पुष्प को धरता है वह इस लोक व परलोक में सौभाग्य से संयुत होता है ॥ ५८ ॥ और जो भक्ति से हृषीकेश के अनुलेपन करता है वह वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम

सर्व मेकतोहरिदर्शनम् ॥ ५४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्थातव्यंहरिसन्निधौ ॥ अम्बरीषस्यराजर्षेस्स्थानकेपापनाशने ॥ ५५ ॥ एकतस्तुहृषीकेश एकतःकर्णिकेश्वरः ॥ तयोर्मध्येमृतायेच मानवान्नृपसत्तम ॥ ५६ ॥ अपिकृत्वामहत्पापं गच्छन्तिहरिसन्निधौ ॥ हृषीकेशंसमालोक्य सद्योमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥ पुष्पमेकंहृषीकेशे यश्चारोपयतेनृप ॥ सचसौभाग्यसंयुक्त इहलोकेपरत्रच ॥ ५८ ॥ हृषीकेशस्ययोभक्त्या करिष्यत्यनुलेपनम् ॥ सयास्यतिपरंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ५९ ॥ संमार्जनंचतस्याग्रे यःकरोतिसमाहितः ॥ यावन्तोरेणवस्तत्र तावद्वर्षशतानिच ॥ ६० ॥ मोदतेविष्णुलोकस्थो नात्रकार्याविचारणा ॥ शुक्लपक्षेचकृष्णेच एकादश्यांनृपोत्तम ॥ ६१ ॥ ध्वजमारोपयेद्यश्च हृषीकेशेनृपोत्तम ॥ यथादण्डेप्रविशते पताकाचनृपोत्तम ॥ ६२ ॥ तथातथाव्रजेत्पापं तस्यकायादसंशयम् ॥ पञ्चामृतेनयःपूजां हृषीकेशेकरिष्यति ॥ ६३ ॥ दधिक्षीरेणवायस्तु नसभूयोत्रजायते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन हृषीकेशं

स्थान को जाता है ॥ ५९ ॥ और सावधान होता हुआ जो मनुष्य उन हृषीकेश के आगे संमार्जन (झाड़ बुहार) करताहै तो वहां जितने रेणु होते हैं उतने सौ वर्षों तक ॥ ६० ॥ वह विष्णुलोक में स्थित होकर प्रसन्न रहता है इसमें विचार न करना चाहिये हे नृपोत्तम ! शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष में एकादशी तिथिमें ॥ ६१ ॥ हे नृपोत्तम ! हृषीकेशके ऊपर जो ध्वजा को आरोपण करता है तो ज्योंही दंडमें पताका प्रवेश करता है ॥ ६२ ॥ त्यों त्यों उसके शरीर से निस्सन्देह पातक जाता है और जो हृषीकेश के ऊपर पंचामृत से पूजन करता है ॥ ६३ ॥ अथवा दही व दूध से जो पूजन करता है वह इस संसार में नहीं उत्पन्न होता है इस

लिये सब यत्न से जो हृषीकेशजीको पूजता है ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! वह मनुष्य संसार के बन्धन से मुक्ति को पाता है इसी कारण विशेष कर हृषीकेश में सदैव पूजन करना चाहिये ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेबुर्दखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाहृषीकेशमाहात्म्यंनामत्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ ● ॥

दो॰ । जिमि सिद्धेश्वरलिंग को थाप्यो है एक सिद्ध । सो चौदह अध्याय में वर्णित चरित प्रसिद्ध ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्य पुरातन समय सिद्ध से थापित व प्राणियों को सिद्धिदायक सिद्धेश्वर देवजीके समीप जावै ॥ १ ॥ वहां विश्वावसु नामक सिद्ध ने बड़ा तप किया है और बहुत वर्षों तक

समर्चयेत् ॥ ६४ ॥ संसारबन्धतोराजन् मुक्तिमाप्नोतिमानवः ॥ हृषीकेशेविशेषेण कर्त्तव्यंपूजनंसदा ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेहृषीकेशमाहात्म्यन्नामत्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ देवंसिद्धेश्वरन्नरः ॥ सिद्धिदंप्राणिनांसम्यक् सिद्धेनस्थापितंपुरा ॥ १ ॥ तत्रवि श्वावसुर्नाम सिद्धस्तेपेमहत्तपः ॥ बहुवर्षाणिसञ्जातः शिवभक्तिपरायणः ॥ २ ॥ जितक्रोधोजितमदो जितसर्वेन्द्रियक्रियः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते भगवान्वृषभध्वजः ॥ ३ ॥ तुतोषनृपतेस्तस्य स्वयंदर्शनमाययौ ॥ अब्रवीत्तंमहादेवो वरदोस्मीतिपार्थिव ॥ ४ ॥ महादेव उवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ दास्यामिचप्रसन्नोहं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ५ ॥ विश्वावसुरुवाच ॥ एतल्लिङ्गंसुरश्रेष्ठ ध्यात्वामनसियस्स्मरेत् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतु प्रसादात्तवशङ्कर ॥ ६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्वितितंप्रोक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ सिद्धेश्वरस्ततोमर्त्याः सिद्धियान्तिसहस्रशः ॥ ७ ॥

वह शिवजी की भक्ति में परायण हुआ ॥ २ ॥ और क्रोधको जीते व मदको जीते हुये वह सिद्ध सब इन्द्रियों के कार्य को जीतता भया तदनन्तर हज़ार वर्ष के अन्त में भगवान् वृषध्वज ॥ ३ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न हुये व हे राजन् ! आपही दर्शन को प्राप्त हुये व हे राजन् ! उससे महादेवजी यह बोले कि, मैं वरदायक हूं ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण होवै और तुम्हारे मनमें जो वर्तमान होवै उस वरदान को मांगो मैं प्रसन्न हूं इस से यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि उसको दूंगा ॥ ५ ॥ विश्वावसु बोले कि हे सुरश्रेष्ठ, शंकरजी ! इस लिंग को मन में ध्यान कर जो स्मरण करै वह तुम्हारी प्रसन्नता से सब कामनाओं को प्राप्त होवै ॥ ६ ॥

पुलस्त्यजी बोले कि ऐसाही होवै यह उस से कहकर सिद्धेश्वरजी वहीं अन्तर्द्धान होगये उसी कारण हजारों मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ व उन्हीं शिव-देव के प्रसाद से मनुष्य प्रिय कामनाओं को पाते हैं तदनन्तर पृथ्वी में सब धर्मकार्य नाशको प्राप्त हुये ॥ ८ ॥ कि न कोई यज्ञों से पूजता था न दान देता था क्योंकि सिद्धेश्वर के प्रसाद से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होते थे ॥ ९ ॥ हे नृपोत्तम ! यज्ञों व दानों के नष्ट होनेपर इन्द्रादिक सब देवता बड़े दुःख को प्राप्त हुये ॥ १० ॥ और यज्ञविधि को जानकर इन्द्र ने उस लिंगको वज्रसे वैसेही आच्छादन किया कि जिस प्रकार सिद्धि न होवै ॥ ११ ॥ तौभी हे नृपोत्तम ! उस सिद्धेश के स्पर्श

प्रभावात्तस्यलिङ्गस्य कामानिष्टाँल्लभन्तिच ॥ ततोधर्मक्रियास्सर्वागतानाशंधरातले ॥ ८ ॥ नकश्चिद्यजतेयज्ञैर्नदा नानिप्रयच्छति ॥ सिद्धेश्वरप्रसादेन सिद्धियान्तिनराभुवि ॥ ९ ॥ उच्छिन्नेषुचयज्ञेषु दानेषुनृपसत्तम ॥ इन्द्राद्यास्त्रि दशास्सर्वे परंदुःखमुपागताः ॥ १० ॥ ज्ञात्वायज्ञविधानं च तल्लिङ्गंपाकशासनः ॥ वज्रेणाच्छादयामास यथासिद्धिर्न जायते ॥ ११ ॥ तथापिस्पर्शनात्तस्य सिद्धेशस्यनृपोत्तम ॥ कर्मणोजायतेसिद्धिः पातकस्यपराजयः ॥ १२ ॥ यस्तु माघचतुर्दश्यां सोमवारेनृपोत्तम ॥ शुक्लायांचापिकृष्णायां स्पृष्ट्वासिद्धोभवेन्नरः ॥ १३ ॥ अद्यापिजायतेसिद्धिः सत्य मेतन्मयोदितम् ॥ तस्मात्सिद्धेश्वरंराजन्नत्वायास्यतिसद्गतिम् ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डे सिद्धेश्वरमाहात्म्य न्नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःशुक्रेश्वरंगच्छेच्छुक्रेणस्थापितंपुरा ॥ यंदृष्ट्वामानवःसद्यः सर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥ हता

से कर्म की सिद्धि होती है व पातक का नाश होता है ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य सोमवार के दिन माघ की चतुर्दशी तिथि में शुक्ला या कृष्णा में भी उसको स्पर्शकर मनुष्य सिद्ध होताहै ॥ १३ ॥ और आज भी सिद्धि होती है इसको मैंने सत्य कहा इस लिये हे राजन् ! सिद्धेश्वरजी को प्रणाम कर मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ ॥

दो० । जिमि शुक्रेश्वर लिंगको थप्यो शुक्र द्विजनाथ । सो पंद्रह अध्याय में कह्यो सुहावन गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर पुरातन समय शुक्र से थापे

हुये शुकेश्वरजी के समीप जावै जिनको देखकर मनुष्य शीघ्रही सब पापों से छूट जाता है ॥ १ ॥ हे नृपसत्तम ! पुरातनसमय देवताओं ने दैत्यों को मारा व उन्हों ने जीतलिया तब बुद्धिमान् शुक्र ब्राह्मण ने उसके लिये विचार किया ॥ २ ॥ कि देवताओं को किस प्रकार दैत्य जीतैंगे और किस प्रकार मेरा बड़ा भारी यश होगा त्रिलोचन शिवजीको आराधन कर मैं मनसे चाही हुई सिद्धिको पाऊंगा ॥ ३ ॥ ऐसा निश्चय कर वे शुक्रजी अर्बुदपर्वत को गये व एक झरना को प्राप्त होकर उन्हों ने भयंकरतप किया है ॥ ४ ॥ और शिवलिंग को थापकर उत्तम श्रद्धासे संयुत उन्हों ने धूप, गन्ध व अनुलेपनों से सदैव पूजन किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर हज़ारवर्ष

दैत्याःपुरादेवैस्तज्जितान्नृपसत्तम ॥ चिन्तयामासमेधावीभार्गवस्तत्कृतेद्विजः ॥ २ ॥ कथंदैत्यासुरान्जिग्युः कथंस्यान्मे महद्यशः ॥ आराध्यत्र्यम्बकंसिद्धिं प्राप्स्यामिमनसेप्सिताम् ॥ ३ ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा गतोर्बुदमथाचलम् ॥ एकं निर्झरमासाद्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ४ ॥ शिवलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य धूपगन्धानुलेपनैः ॥ अनिशंपूजयामास श्रद्धयापरयान्वितः ॥ ५ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते तुतोषभगवाञ्छिवः ॥ तस्यसंदर्शनंदत्त्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ ६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ परितुष्टोस्मितेब्रह्मन्भक्त्यातवद्विजोत्तम ॥ वरंवरयभद्रन्तेयद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ७ ॥ शुक्र उवाच ॥ यदितुष्टोमहादेव विद्यांदेहिमहेश्वर ॥ ययाजीवन्तिसम्प्राप्ता मृत्युंसर्वेपिजन्तवः ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ प्रदायवैशिवस्तस्मै तां विद्यांनृपसत्तम ॥ अब्रवीच्चपुनःशुक्रंवरमन्यंवृणीष्वमे ॥ ९ ॥ शुक्र उवाच ॥ एतत्कार्त्तिकमासस्य शुक्लाष्टम्यां नर स्पृशेत् ॥ त्वल्लिङ्गंपूजयेद्भक्त्या यःपुमाञ्छ्रद्धयान्वितः ॥ १० ॥ अल्पमृत्युभयंतस्य माभूत्तवप्रसादतः ॥ इष्टान्कामा

के अन्त में भगवान् शिवजी प्रसन्न हुये और उनको दर्शन देकर यह वचन बोले ॥ ६ ॥ श्री महादेवजी बोले कि हे द्विजोत्तम, ब्रह्मन् ! तुम्हारी भक्ति से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हू यद्यपि दुर्लभ भी होवै तथापि वरदान को मांगो तुम्हारा कल्याण होवै ॥ ७ ॥ शुक्र बोले कि हे महेश्वर, महादेव ! यदि प्रसन्न हो तो उस विद्या को दीजिये कि जिससे मृत्यु को प्राप्त सब भी प्राणी जीते हैं ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! उन शुक्र के लिये उस विद्या को देकर फिर शिवजी शुक्राचार्य से बोले कि तुम मुझसे अन्यवर को मांगो ॥ ९ ॥ शुक्रजी बोले कि कातिकमही ने की शुक्लपक्षवाली अष्टमी में जो मनुष्य तुम्हारे इस लिंगको छुवै और श्रद्धासंयुत

जो मनुष्य इसको भक्तिसे पूजै ॥ १० ॥ उसको तुम्हारी प्रसन्नता से अल्प मृत्यु का भय मत होवै और वह इसलोक व परलोक में प्यारे मनोरथों को पावै ॥ ११ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसाही होवै यह कहकर शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और युद्धमें देवताओं से मारे हुये उन अनेक दैत्यों को शुक्रमुनि ने विद्याके प्रभाव से जिलाया उसके आगे पाप नाशक निर्मल कुण्ड है ॥ १२ । १३ ॥ उसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य पातकों से छूट जाता है व हे नृपेन्द्र ! वहां मनुष्य सिद्ध होता है और जलही से तर्पण किये हुये पितामह लोग प्रसन्नता को प्राप्त होतेहैं फिर पिण्डदान से क्या कहना है इसलिये सबयत्न से वहां स्नान

नवाप्नोतुइहलोकेपरत्रच॥ ११ ॥पुलस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्वितिसम्प्रोक्त्वातत्रैवान्तरधीयत॥शुक्रोपिदानवान्सङ्ख्ये हतान्देवैरनेकशः ॥ १२ ॥ विद्यायाश्चप्रभावेन जीवयामासतान्मुनिः ॥ तस्याग्रेस्तिमहाकुण्डं निर्मलंपापनाशनम् ॥ १३ ॥ तत्रस्नातोनरस्सम्यग्पातकैश्चप्रमुच्यते ॥ तत्रसिद्ध्यतिराजेन्द्र तुष्टिंयान्तिपितामहाः ॥ १४॥ तर्पितास्सलिलेनैव किंपुनःपिण्डदानतः ॥ ततःसर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेशुक्रेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ मणिकर्णिकसञ्ज्ञन्तु सर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ यत्रसिद्धिंगताराजन्वालखिल्यामहर्षयः ॥ तैस्तत्रनिर्मितंकुण्डं सुरम्यंगिरिगह्वरे ॥ २ ॥ तेषांतत्रोपविष्टानां मुनीनांभावितात्मनाम्॥ महदाश्चर्यस्तत्राभूत्तन्मेशृणुनराधिप ॥ ३ ॥ किरातवनिताकाचिन्नाम्नाचमणिकर्णिका ॥ अति

रै ॥ १४ ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशुक्रेश्वरमाहात्म्यंनामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दो० । मणि कर्णिका किरातिनी तीरथ कियो स्वनाम । सो सोलह अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ पुलस्त्य जी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर सब लोकों में प्रसिद्ध मणि कर्णिक नामक पाप नाशक तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ जहां पर हे राजन् ! वालखिल्यामहर्षि सिद्ध हुये हैं और उन्हों ने वहां पर्वत की कन्दरा में बहुत मनोहर कुण्डको निर्माण किया है ॥ २ ॥ शुद्धचितवाले महर्षियोंके वहां बैठने पर इस कुण्ड में बड़ा आश्चर्य हुआहै उसको हे नराधिप ! मुझसे सुनिये ॥ ३ ॥ कि

नामसे मणि कर्णिका ऐसी कोई किरातकी स्त्री बहुत काली व विरूप लोचना व भयंकर तथा भयानक आकारवाली थी ॥ ४ ॥ प्यास से विकल वह सूर्य नारायण के मध्य दिन में होनेपर यहा प्राप्त हुई और राहुसे सूर्य नारायण के ग्रस्त होनेपर वह जल में पैठ गई ॥ ५ ॥ इसी समय में मुनियों के जपते हुये दिव्यरूप वाले शरीर को धारने वाली वह सुमध्यमा निकली ॥ ६ ॥ इसके बाद उस समय ढूढ़ने में तत्पर उसका पति प्राप्त हुआ व उस स्त्री से दुःखित उसने उस उत्तम कटिवाली स्त्री से पूंछा ॥ ७ ॥ कि हे सुमध्यमे ! मेरी स्त्री यहां प्राप्त हुई थी यदि तूने उसको देखा हो तो हे वरारोहे ! शीघ्रही कहिये और यह बालक उससे उत्पन्न हुआ

कृष्णाविरूपाक्षी करालाभीषणाकृतिः ॥ ४ ॥ तृषार्तातत्रसम्प्राप्ता मध्यंदिनगतेरवौ ॥ ग्रस्तेचराहुणासूर्ये प्रविष्टास लिलेतुसा ॥ ५ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु दिव्यरूपवपुर्धरा ॥ मुनीनांजपतांचैव विनिष्क्रान्तासुमध्यमा ॥ ६ ॥ अथत स्याःपतिःप्राप्तो अन्वेषणपरस्तदा ॥ पप्रच्छतांवरारोहां तयापत्न्यासुदुःखितः ॥ ७ ॥ ममभार्यात्रसम्प्राप्ता यदिदृष्टा सुमध्यमे ॥ शीघ्रंवदवरारोहे बालकोयंतदुद्भवः ॥ ८ ॥ तृषार्त्तश्चक्षुधाविष्टो रुदतेचमुहुर्मुहुः ॥ दृष्टाचेत्कथ्यतांसुभ्रु विना मात्रामरिष्यति ॥ ९ ॥ स्त्र्युवाच ॥ अहन्तेदयिताकान्त तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ दिव्यरूपमनुप्राप्ता देवैरपिसुदुर्ल भम् ॥ १० ॥ त्वंचापिसलिलेत्वस्मिन्कुरुस्नानंसुतान्वितः ॥ प्राप्स्यसित्वंपरंरूपं यथाप्राप्तंमयानघ ॥ ११ ॥ अथासौ सहपुत्रेण प्रविष्टस्तत्रनिर्झरे ॥ विमुक्तेभास्करेराजन् विरूपश्चाभवत्पुनः ॥ १२ ॥ दुःखेनमृत्युमापन्नस्तस्मिन्नेवजला शये ॥ अथसाभर्तृशोकार्ता विललापातिदुःखिता ॥ १३ ॥ चितिंकृत्वासमन्तेन ज्वालयामासपावकम् ॥ अथतेमुन

है ॥ ८ ॥ प्यास से विकल व भूख से संयुत यह बार २ रोता है हे सुभ्रु ! यदि तूने देखा हो तो कहिये नहीं तो विना माता के वह मर जावैगा ॥ ९ ॥ स्त्री बोली कि हे कान्त ! मैं तुम्हारी स्त्री हू और इस तीर्थ के प्रभाव से मैं देवताओं से भी दुर्लभ रूपको प्राप्त हुई हूं ॥ १० ॥ और पुत्र से संयुत तुमभी इस जलमें स्नान करो तो हे अनघ ! जैसे मैंने पाया है वैसेही तुम भी दिव्य रूपको पावोगे ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! सूर्य नारायण जब ग्रहण से मुक्त हुये तब पुत्र समेत यह उस झरने में पैठा और फिर विरूप हुआ ॥ १२ ॥ व बड़े दुःख से सयुत वह उसी जलाशय में मृत्युको प्राप्त हुआ इसके अनन्तर पति के शोक से विकल व बहुतही

दुःखित उसने विलाप किया ॥ १३ ॥ और चिता को बनाकर उस समेत बैठकर अग्नि जलादिया इसके अनन्तर उसको वैसी शील से शोभित देखकर वे मुनि लोग ॥ १४ ॥ बड़ी दया से संयुत हुये व हे नृपोत्तम! उसके साहस को देख कर विस्मय संयुत होते हुये उन सबों ने उससे कहा ॥ १५ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे भामिनि ! तूने देवताओं से भी दुर्लभ दिव्य रूप को पाया है तो किस कारण इस पापी के पीछे जाती हो ॥ १६ ॥ स्त्री बोली कि हे द्विजेन्द्रो ! सदैव पति में परायण मैं पतिव्रता हूं और देवतासे भी पति के विना मैं रूपसे क्या करूंगी ॥ १७॥ कुरूप, या सुरूप, दरिद्री या धनेश पति केवल स्त्रियों की गति है और अधिक

योदृष्ट्वा तांतथाशीलमण्डना ॥ १४ ॥ कृपयापरयाविष्टास्ता मूचुर्विस्मयान्विताः ॥ सर्वेतस्याश्चतेदृष्ट्वा साहसंचनृपोत्तम ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ दिव्यरूपन्त्वयाप्राप्तं देवैरपिसुदुर्लभम् ॥ कस्मादेनन्तुपाप्मान मनुगच्छसिभामिनि ॥ १६ ॥ स्त्री उवाच ॥ पतिव्रताहंविप्रेन्द्राः सदाभर्तृपरायणा ॥ किंरूपेणकरिष्यामि विनादेवतमेनच ॥ १७ ॥ विरूपोवासुरूपोवा दरिद्रोवाधनाधिपः ॥ स्त्रीणामेकोगतिर्भर्त्ता नान्यश्चाप्यधिकर्द्धिदः ॥ १८ ॥ बालकोयंमुनिश्रेष्ठा भवच्छरणमागतः ॥ अहंकान्तेनसंयुक्ता प्रविशामिहुताशनम् ॥ १९ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथतेमुनयस्सर्वे ज्ञात्वातस्यास्तुनिश्चयम् ॥ कृपयापरयाविष्टास्संमन्त्र्यचपरस्परम् ॥ २० ॥ ततस्तंजीवयामासुस्तपः शक्त्यामुनीश्वराः ॥ लावण्येनसमायुक्तं दिव्यलक्षणलक्षितम् ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु विमानंमनसेप्सितम् ॥ देवकन्यासमाकीर्णं सद्यस्तत्रसमागतम् ॥ २२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथतौदम्पतीदृष्ट्वा मुनीनांभावितात्मनाम् ॥ नमस्कृत्वाचतान्सर्वान्प्र

ऋद्धि देनेवाला भी अन्य नहीं है ॥ १८ ॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! यह बालक आपके शरण में आया है और पति से संयुत मैं अग्नि में पैठती हूं ॥ १९ ॥ पुलस्त्य जी बोले कि इसके अनन्तर वे सब मुनि उसके निश्चय को जानकर बड़ी दया से संयुत होकर परस्पर संमति कर ॥ २० ॥ तदनन्तर मुनीश्वरों ने तपस्या की शक्ति से सुन्दरता से संयुत व दिव्य लक्षणों से लक्षित उसको जिलाया ॥ २१ ॥ इसी समय में देव कन्याओंसे संयुत व मनसे चाहा हुआ विमान शीघ्रही वहां आगया ॥ २२ ॥

पुलस्त्यजी बोले कि इसके अनन्तर वे स्त्री पुरुष शुद्ध चित्तवाले मुनियोंके प्रभाव को देखकर उन सबों को प्रणाम कर स्वर्ग को चले ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर उन मुनियों ने उस मणिकर्णिका स्त्री से कहा कि हे कल्याणि ! हमसब पतिव्रत धर्म व सत्य से विशेष कर तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं वरदान को मागो क्यों कि यहां हम लोगों का दर्शन किसी प्रकार व्यर्थ नहीं होता है॥ २४ । २५ ॥ मणिकर्णिका बोली कि हे मुनियो ! प्रसन्न होते हुये आप लोग यदि मुझको प्रसन्नता से वर देतेहो तो यह तीर्थ व लिंग मेरे नाम से होवे ॥ २६ ॥ इससे मैं कृत कृत्य हू अन्य से मेरा प्रयोजन नहीं है और तुम सब लोगों की प्रसन्नता से मैं इस समय स्वर्ग को

स्थितौत्रिदिवंप्रति ॥ २३ ॥ अथतैर्मुनिभिःप्रोक्ता सानारीमणिकर्णिका ॥ वरंवरयकल्याणि सर्वेतुष्टावयंतव ॥ २४॥ पातिव्रत्येनसुश्रोणि सत्येनचविशेषतः ॥ नास्माकंदर्शनंव्यर्थं जायतेत्रकथंचन ॥ २५ ॥ मणिकर्णिका उवाच ॥ यदिमांमुनयस्तुष्टाः प्रयच्छन्तुवरंमुदा ॥ एतत्तीर्थंचलिङ्गंच मन्नाम्नासम्भविष्यति ॥ २६ ॥ एतेनकृतकृत्यास्मिनान्येनमेप्रयोजनम् ॥ सर्वेषांवःप्रसादेन स्वर्गंगच्छामिसाम्प्रतम् ॥ २७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एवंसंयास्यतेख्याति तीर्थंलिङ्गं वरानने ॥ तवनाम्नात्विदंलिङ्गं तीर्थंवैमणिकर्णिकम् ॥ २८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ भर्त्रासहादिवंप्राप्ता पुत्रेणचसमन्विता वालखिल्यास्तपोनिष्ठाविशेषात्तत्रसंस्थिताः ॥ २९ ॥ तत्रसूर्यग्रहेप्राप्ते स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ यःकरोतिफलं तस्य कुरुक्षेत्रसमंभवेत् ॥ ३० ॥ यंयंकाममभिध्याय स्नानंतत्रकरोतियः ॥ तंतंप्राप्नोतिराजेन्द्र सम्यग्ध्यानसमन्वि

जाऊँगी ॥ २७ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे वरानने ! इस प्रकार तीर्थ व लिंग प्रसिद्धता को प्राप्त होगा और तुम्हारे नाम से यह लिंग व तीर्थ मणि कर्णिक होगा ॥ २८ ॥ पुलस्त्य जी बोले कि पुत्र समेत व पति सहित वह स्त्री स्वर्ग को प्राप्त हुई और व ल खिल्या मुनि विशेषता से तपस्यामें निष्ठ होकर वहां स्थित हुये ॥ २९ ॥ वहां सूर्यग्रहण प्राप्त होने पर जो स्नान दानादिक कर्मों को करता है उसको कुरुक्षेत्र के समान फल होता है ॥ ३० ॥ हे नृपेन्द्र ! जिस जिस कामना को ध्यानकर

जो मनुष्य वहां स्नान करता है भली भांति ध्यान से संयुत वह उस उस मनोरथ को पाता है ॥ ३१ ॥ इसलिये सब यत्न से वहां स्नान करै और शक्तिमे ब्राह्मणों व देवताओं तथा पितरों को तृप्त करै ॥ ३२ ॥ इति श्री स्कंदपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामणिकर्णिकेश्वरमाहात्म्यंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दो॰ । यथा पंगु द्विज नाम से भयो तीर्थ विख्यात । सत्रह के अध्याय में सोई चरित सुहात ॥ पुलस्त्य जी बोले कि तदनन्तर समस्त पातकों को नाशने वाले पंगु तीर्थ को जावै जहां कि पुरातन समय पंगु ब्राह्मण ने तपस्या किया है ॥ १ ॥ पुरातन समय च्यवनके वंश में पंगु नामक ब्राह्मण हुआ है हे नृपोत्तम ! वह पंगुता

तः ॥ ३१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत ॥ तर्पयेद्ब्राह्मणाञ्छक्त्या देवांश्चैवपितॄंस्तथा ॥ ३२ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमणिकर्णिकेश्वरमाहात्म्यन्नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ पङ्गुतीर्थंततोगच्छेत सर्वपातकनाशनम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं पङ्गुनाब्राह्मणेनच ॥ १ ॥ पङ्गुनामा द्विजःपूर्वं च्यवनस्यान्वयेभवत ॥ अशक्तश्चलितुंभूमौ पङ्गुभावान्नृपोत्तम ॥ २ ॥ गृहकृत्येनियुक्तोसौएकदाबान्धवैर्नृप ॥ पङ्गुःकर्तुंनशक्नोतिपरंदुःखमवाप्तवान् ॥ ३ ॥ अथासौतैःपरित्यक्तो गतोर्बुदमथाचलम् ॥ एकंनिर्झरमासाद्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ४ ॥ लिङ्गंसंस्थाप्यतत्रैवपूजयामासतंविभुम् ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यैःसम्यच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ५ ॥ शिवभक्तिपरोजातु वायुभक्षोबभूवह ॥ जपहोमरतोनित्यं पङ्गुनामाद्विजोत्तमः ॥ ६ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवोब्राह्मणंनृपसत्तम॥

के कारण पृथ्वी में चलनेके लिये समर्थ न था ॥ २ ॥ हे नृप ! एक समय भाइयो ने इसको घरके कार्य में लगाया और वह पंगु नहीं कर सक्ता था इससे उसने बहुत दुःख को पाया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर उन भाइयो से छोड़ा हुआ यह अर्बुद पहाड़ पर गया व एक निर्झर (झरना) को प्राप्त होकर इसने बड़ा भयंकर तप किया ॥ ४ ॥ और वहीं लिंग को थापकर उन विभु शिवजीको भली भांति श्रद्धा संयुत उसने गंध, पुष्पादि व नैवेद्य से पूजन किया ॥ ५ ॥ व शिवजीकी भक्ति मे तत्पर वह कभी पवन भक्षी हुआ और पंगुनामक द्विजोत्तम सदैव जप व होम में परायण हुआ ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम, महाराज ! महादेव जी प्रसन्न हुये व

पार्वती समेत शिवजी उस ब्राह्मण से यह वचन बोले ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, पंगो ! मैं महादेव तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान मांगिये यद्यपि दुर्लभभी होगा तथापि मैं उसको दूंगा ॥ ८ ॥ पंगु बोला कि हे सुरेश्वर ! मेरे नाम से यह तीर्थ प्रसिद्ध होवै व हे शंकरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरी पंगुता यहां जाती रहै ॥ ९ ॥ और स्त्री समेत तुम्हारी यहा नित्य समीपता होवै ऐसा कहे हुये शिवजीने तदनन्तर उस ब्राह्मण से कहा ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे नाम से यह तीर्थ होगा व हे सत्तम ऋषे ! स्नान से तुम्हारी पंगुता जावैगी ॥ ११ ॥ और चैत में शुक्लपक्ष की तेरसि में मेरी समीपता होगी पुलस्त्यजी बोले कि यह

गौर्य्यासहमहाराज वाक्यमेतदुवाचह ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ पङ्गोतुष्टोमहादेवो वरंवरयसुव्रत ॥ तवदास्याम्यहं सर्वं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ पङ्गुरुवाच ॥ नाम्नामेख्यातिमायातु तीर्थमेतत्सुरेश्वर ॥ पङ्गुभावोत्रमेयातु प्रसादात्तवशङ्कर ॥ ९ ॥ तवास्तुनित्यमेवात्र सान्निध्यंसहभार्यया ॥ एवमुक्तस्ततःशम्भुस्तंविप्रंप्रत्यभाषत ॥ १० ॥ ईश्वर उवाच ॥ नाम्नातवद्विजश्रेष्ठ तीर्थमेतद्भविष्यति॥ स्नानेनपङ्गुभावस्ते ऋषेयास्यतिसत्तम ॥ ११ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां सानिध्यंमेभविष्यति ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ स्नानमात्रेणविप्रोसौ दिव्यरूपमवाप्तवान् ॥ १२ ॥ तुष्टेपङ्गौदेवदेवो गौर्यासहमहेश्वरः ॥ तस्मिन्दिनेनृपश्रेष्ठ स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपङ्गुतीर्थमाहात्म्यन्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ यमतीर्थमनुत्तमम् ॥ शुभञ्चनरकाख्यञ्च प्राणिनांपापनाशनम् ॥ १ ॥

ब्राह्मण स्नानही से दिव्य रूप को प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ और पंगुके प्रसन्न होने पर पार्वती समेत महादेवजी चले गये हे नृपश्रेष्ठ ! मनुष्य वहां उस दिन स्नान करै ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांपंगुतीर्थमाहात्म्यंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यम तीरथ में त्यागि तनु गयो स्वर्ग भूपाल । अट्ठारह अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अति उत्तम यम तीर्थ

को जावै व प्राणियों के पाप नाशक उत्तम नरकनामक तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ पुरातनसमय चित्रागद नामक राजा पाप में तत्पर हुआ है उसने हे नृपोत्तम ! कुछ पुण्य नहीं किया ॥ २ ॥ और अभिषेक किया हुआ क्षमा से रहित वह राजा देवता व ब्राह्मणादिकों को पीड़ा देता था व नित्यही पराईस्त्रियों में रत तथा पराये धन को हरता था ॥ ३ ॥ और वह सत्य तथा पवित्रता से हीन और माया व मत्सर से संयुक्त था किसी समय शिकारमें आसक्त वह अर्बुदपर्वत पै चढ़ा ॥ ४ ॥ व चलता हुआ यह बहुतही थक गया और भूंख व प्यास से विकल हुआ और उसने वहां निर्मल जल मे पूरित जलाशय को देखा ॥ ५ ॥ जो कि कमलिनियों से व्याप्त तथा

पुराचित्राङ्गदोनाम राजापापरतोभवत ॥ नतेनसुकृतंकिञ्चित्कृतंपार्थिवसत्तम ॥ २ ॥ अभिषिक्तोक्षमायुक्तो देवविप्रप्रपीडकः ॥ परदाररतोनित्यं परवित्तहरस्तथा ॥ ३ ॥ सत्यशौचविहीनस्तु मायामत्सरसंयुतः ॥ सकदाचिन्मृगयासक्तो ह्यारूढोर्बुदपर्वते ॥ ४ ॥ अटन्नसावतिश्रान्तः क्षुत्पिपासासमाकुलः ॥ तेनतत्रार्बुदेदृष्टो स्वच्छोदपरिपूरितः ॥ ५ ॥ पद्मिनीभिस्समाकीर्णो ग्राहनक्रझषाकुलः ॥ नानापक्षिसमायुक्तो मनोहारीसुविस्तरः ॥ ६ ॥ तृषार्तःसप्रविष्टःसंस्तस्मिन्नेकोजलाशये ॥ ग्राहेणतत्क्षणाद्ग्रस्तो भक्षितोनृपसत्तम ॥ ७ ॥ तस्यार्थेनरकारौद्रानिर्मिताश्चयमेनच ॥ यमदूतैस्तत्रक्षिप्तःसनित्यंपापकृत्तमः ॥ ८ ॥ तस्यसान्निध्यतस्सर्वे नरकस्थादिवंगताः ॥ दूतास्तुधर्मराजाय वृत्तान्तंनरकस्यच ॥ ९ ॥ आचख्युर्विस्मयाविष्टाः नरकस्यविमोक्षणम् ॥ ततोवैवस्वतःप्राह नमन्नर्बुदपर्वतम् ॥ १० ॥ ममास्त्यतिप्रियंतीर्थं यत्रतप्तंमयातपः ॥ तत्रासौमृत्युमापन्नो नान्यदस्तीहकारणम् ॥ ११ ॥ तैरुक्तंसत्यमेतद्धि

मकर व ग्राह से संयुत था और अनेक भांति के पक्षियों से युक्त तथा मनोहर व बहुत चौड़ा था ॥ ६ ॥ हे नृपोत्तम ! उस जलाशय में प्यास से विकल वह राजा पैठगया और उसी क्षण ग्राहने उसको पकड लिया व खालिया ॥ ७ ॥ यमराज ने उसके लिये भयंकर नरकों को बनाया था वहां उस नित्यही बड़े पापकारी को यमदूतों ने डाल दिया ॥ ८ ॥ और उसकी समीपता से नरक में टिके हुये सब प्राणी स्वर्ग को चले गये और दूतों ने विस्मय में युक्तहोकर धर्मराज से नरक के वृत्तान्त को व नरक के मोक्ष को कहा तदनन्तर अर्बुद पर्वत को प्रणाम करते हुये यमराज ने कहा ॥ ९ । १० ॥ कि मुझको वह तीर्थ बहुत प्रिय है जहां कि मैंने

तपस्या किया है वहां यह मृत्यु को प्राप्त हुआ है इसमें अन्य कारण नहीं है ॥ ११ ॥ उन्हों ने कहा कि यह सत्य है यह अर्बुदही पर्वत पै मरा है कुण्ड में इसको ग्राह ने ग्रस लिया और वहीं यह मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ यमराज बोले कि शीघ्रही छोड़िये यह राजा नरकों में योग्य नहीं है क्योंकि समस्त पातकों के नाशने वाले मेरेही तीर्थ में यह मरा है ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! यमराज के वचन से उन यमदूतों से छोड़ा हुआ वह अप्सराओं के गणों से सेवित होता हुआ स्वर्गको प्राप्त भया ॥ १४ ॥ फिर भक्तिसंयुत जो मनुष्य उसमें स्नान करै वह वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तमस्थान को जाताहै ॥ १५ ॥ इस लिये चैतके शुक्लपक्ष की तेरसि

मृतोसौर्बुदएवतु ॥ ह्रदेग्राहेनसंग्रस्तस्तत्रमृत्युञ्चप्राप्तवान् ॥ १२ ॥ यम उवाच ॥ मुच्यतामाशुनार्होयं नरकेषुमही पतिः ॥ मृतोममैवतीर्थेयत्सर्वपातकनाशने ॥ १३ ॥ ततस्तैःकिङ्करैर्मुक्तो यमवाक्यान्नृपोत्तम ॥ त्रिविष्टपमनुप्राप्तः सेव्यमानोप्सरोगणैः ॥ १४ ॥ यःपुनर्भक्तिसंयुक्तः स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥१५॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां यत्रसिद्धिंगतोयमः ॥ १६ ॥ तस्मिंदिनेनरस्सम्यक् श्राद्धंतत्रसमाचरेत् ॥ आकल्पंपितरस्तस्य स्वर्गेतिष्ठन्तिपार्थिव ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेयमतीर्थमा हात्म्यन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ वाराहस्यहरेरिष्टं सदावाससुखप्रदम् ॥ १ ॥ वारा हेनावतारेण पृथ्वीतत्रसमुद्धृता ॥ हरिणोक्ताधरातिष्ठ न भेत्तव्यंकदाचन ॥ २ ॥ अहंद्रुतंगमिष्यामि वैकुण्ठंचपुनः

में सब यत्न से उस तीर्थ में स्नान करै जहा कि यमराजजी सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १६ ॥ व हे राजन् ! उसदिन जो मनुष्य वहा भलीभांति श्राद्ध करै उसके पितर कल्पपर्यन्त स्वर्ग में टिकते हैं ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांयमतीर्थमाहात्म्यंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ● ॥

दो॰ । जिमि अर्बुद के निकटही तीरथ भयो वराह । सो उनीस अध्याय में वरन्यो सहित उछाह ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वाराह विष्णु जीको प्यारे व सदैव निवास के सुखको देनेवाले व पापनाशक तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ वहा वाराह अवतार से पृथ्वी उधारी गई है और विष्णुजीने पृथ्वी से कहा कि

तुम स्थित होवो व किसी प्रकार न डरना चाहिये ॥ २ ॥ हे शुभे, कल्याणि ! मैं शीघ्रही वैकुंठ को जाऊँगा जो प्रिय व दुर्लभ हो उस वरदान को मांगो ॥ ३ ॥ पृथ्वी बोली कि हे शंख चक्र गदाधर ! यदि मुझको वरदेने योग्य हो तो हे हरे! इस शरीर से तुम सदैव इस तीर्थ में टिको ॥ ४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे देवि ! लोकों के हित में तत्पर मैं तुम्हारे वचन से सदैव इस अर्बुद नामक पर्वत पै इस शरीर से टिकूंगा ॥ ५ ॥ और तुम्हारे आगे निर्मल जलसे संयुत पवित्रकुण्ड है माघ महीने के शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में सावधान होकर ॥ ६ ॥ मनुष्य भक्ति से उसमें नहाकर ब्रह्महत्या से छूट जाता है और श्रद्धा संयुत जो मनुष्य वहां श्राद्ध

शुभे ॥ वरंवरयकल्याणि यदभीष्टंसुदुर्लभम् ॥ ३ ॥ पृथिव्युवाच ॥ यदिदेयोवरोमह्यं शङ्खचक्रगदाधर ॥ अनेनवपुषा तिष्ठ अस्मिंस्तीर्थेसदाहरे ॥ ४ ॥ हरिरुवाच ॥ अनेनवपुषादेवि पर्वतेर्बुदसञ्ज्ञके ॥ इहस्थास्यामितेवाक्यात्सदालोक हितेरतः ॥ ५ ॥ तवाग्रेस्तिह्रदंपुण्यं सुनिर्मलजलान्वितम् ॥ माघमाससितेपक्षे एकादश्यांसमाहितः ॥ ६ ॥ तत्रस्ना त्वानरोभक्त्या मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ तत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति मनुष्याःश्रद्धयान्विताः ॥ ७ ॥ पितॄणांजायतेतृप्तिर्यावदा भूतसंप्लवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेराजन् गोविन्दोगरुड ध्वजः ॥ तस्मिन्दिनेनृपश्रेष्ठ स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ ९ ॥ तर्पणंपिण्डदानंच यःकुर्याद्भक्तितत्परः ॥ सयातिविष्णुसा लोक्यं पूर्वजैःसहपार्थिव ॥ १० ॥ तत्रदानंप्रशंसन्ति गवांब्राह्मणसत्तमाः ॥ अस्मिंस्तीर्थेनृपश्रेष्ठगोदानंचकरोतियः ॥ ११ ॥ रोमसङ्ख्यानिवर्षाणि स्वर्गेतिष्ठतिमानवः ॥ तस्मात्सर्वात्मनाराजन् गोदानंचसमाचरेत ॥ १२ ॥ एकादश्यां

करैंगे ॥ ७ ॥ उनके पितरों की कल्प पर्यन्त तृप्ति होगी इस लिये सब यत्न से वहां स्नान करै ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि यह कहकर गरुड़ध्वज विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये हे नृपश्रेष्ठ ! उस दिन उसकुंड में स्नान करै ॥ ९ ॥ व हे राजन् ! भक्ति में तत्पर जो मनुष्य तर्पण व पिंडदान करता है वह पूर्वज पितरोंसमेत विष्णुजीकी सलोकता को प्राप्त होता है ॥१०॥ और उत्तम ब्राह्मणलोग वहा गौवों के दान की प्रशंसा करते हैं व हे नृपश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में जो गोदान करता है॥ ११ ॥ वह मनुष्य उसके रोमों की गिनती भर वर्षों तक स्वर्ग में स्थित होता है इसलिये हे राजन् ! सब यत्न से वहां गोदान करै ॥ १२ ॥ व एकादशी तिथि में विशेष कर

यथा शक्ति उत्तमदान करना चाहिये और जो स्नान करता है वह उत्तमगति को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांवाराहतीर्थमाहात्म्यंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो॰। है अर्बुद पर्वतहि ढिग तीरथ चन्द्र प्रभास। कियो बीस अध्याय में सोई चरित प्रकास ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम! तदनन्तर चन्द्रप्रभासतीर्थ को जावै जहा पुरातन समय महात्मा चन्द्रमा ने प्रभा (प्रकाश) को पाया है ॥ १ ॥ हे राजन्! सत्ताईससंख्यक जो दक्ष की कन्या थीं अश्विनी आदिक उन सबों को

विशेषेण कर्त्तव्यंदानमुत्तमम् ॥ स्नानंकुर्याद्यथाशक्त्या सयातिपरमांगतिम् ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे वाराहतीर्थमाहात्म्यन्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततश्चन्द्रप्रभासंच गच्छेत्पार्थिवसत्तम ॥ प्रभायत्रपुराप्राप्ता चन्द्रेणसुमहात्मना ॥ १ ॥ दक्षस्य कन्यकाराजन् सप्तविंशतिसङ्ख्यया ॥ ऊढाश्चन्द्रेणताःसर्वा अश्विनीप्रमुखास्तदा ॥२॥ तासांमध्येरोहिणीतु नित्यं चन्द्रमसःप्रिया ॥ त्यक्तास्सर्वाश्चन्द्रेण दक्षकन्याःसुदुःखिताः ॥ ३ ॥ ततस्स्वपितरंदक्षं गत्वाप्रोचुस्तुकन्यकाः ॥ वय न्त्यक्ताःप्रजानाथ निर्दोषाःपतिनाततः ॥ सर्वाश्चत्वामनुप्राप्ता दुःखेनमहतान्विताः ॥ ४ ॥ गतिर्भवसुरश्रेष्ठ सर्वा सां त्वंहितंकुरु ॥ तस्माद्ब्रूहितत्रगत्वा चन्द्रंचरोहिणीरतम् ॥ ५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सतासांवचनंश्रुत्वा गतोयत्रनि शाकरः ॥ अब्रवीत्समतांपश्य सर्वासुतनयासुमे ॥ ६ ॥ अथव्रीडासमायुक्तश्चन्द्रस्तंप्रत्यभाषत ॥ तववाक्यंकरिष्या

उस समय चन्द्रमा ने ब्याहा है ॥ २ ॥ और उनके मध्यमें रोहिणी सदैव चन्द्रमा को प्यारी थी और सब दक्षकी कन्याओं को चन्द्रमा ने छोड़दिया और वे दुःखित हुई ॥ ३ ॥ तदनन्तर कन्याओं ने अपने पितादक्ष के समीप जाकर कहा कि हे प्रजानाथ! दोषरहित हम सबों को पति ने छोड दिया उसी कारण बड़े दुःख से संयुत हम सब तुम्हारे समीप प्राप्तहुई हैं ॥ ४ ॥ हे सुरश्रेष्ठ! तुम सबों की गति होवो और हित करो इस कारण तुम वहा जाकर रोहिणी में रत चन्द्रमा से कहो ॥५॥ पुलस्त्यजी बोले कि उनके वचन को सुनकर दक्ष जी वहां गये जहा कि चन्द्रमा थे और बोले कि हमारी सब कन्याओं में समता देखो ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर

लज्जा से संयुत चन्द्रमा ने उन दक्षजीसे कहा कि हे दक्षजी ! मैं तुम्हारे वचन को करूंगा जाइये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥७॥ दक्षजी के जानेपर तदनन्तर फिर चन्द्रमा रोहिणी में रतहुआ और प्रजापति दक्षजीसे उपजी हुई सबकन्याओं को त्याग किया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर फिर सब जाकर दुःखित होतीहुई दक्षजीसे बोलीं कि दुष्टात्मा चन्द्रमा ने तुम्हारा वचन नहीं किया ॥ ९ ॥ और दुर्भाग्य के दुःखसे संतप्त हम सब मरजावैंगी इसमें सन्देह नहीं है और इस जीवन से मरण उत्तम होगा ॥१०॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसके अनन्तर क्रोध से संयुत दक्षजीने जाकर चन्द्रमा से कहा कि हे पापचन्द्र ! जिसलिये तुमने मेरे वचनको नहीं किया ॥११॥

मि दक्षगच्छनमोस्तुते ॥ ७ ॥ गतेदक्षेततोभूयश्चन्द्रमारोहिणीरतः ॥ त्यक्ताश्चकन्यकास्सर्वाः प्रजापतिसमुद्भवाः ॥ ८ ॥ अथगत्वापुनःसर्वा दक्षमूचुःसुदुःखिताः ॥ नकृतंतववाक्यंच चन्द्रेणैवदुरात्मना ॥ ९ ॥ दौर्भाग्यदुःखसंतप्ता म रिष्यामोनसंशयः ॥ अनेनजीवितेनापि श्रेयोहिमरणंभवेत् ॥ १० ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथरोषसमायुक्तो दक्षोगत्वा निशाकरम् ॥ ममवाक्यन्त्वयाचन्द्र यस्मात्पापकृतंनहि ॥ ११ ॥ क्षयमेष्यसितस्मात्त्वं यक्ष्मणाव्यापितोभव ॥ एवं दत्त्वाततःशापं गतोदक्षःस्वमालयम् ॥१२॥ यक्ष्मणाव्यापितश्चन्द्रः क्षयंयातिदिनेदिने ॥ सक्षीणोद्युतिहीनस्तु चि न्तयामासचन्द्रमाः ॥१३॥ किंकर्त्तव्यंमयातत्र ह्यस्मिञ्छापेसुदारुणे ॥ अर्बुदेपूजयिष्यामि सर्वकामप्रदंशिवम् ॥१४॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा गतोर्बुदमथाचलम् ॥ तपस्तेपेजितक्रोधो जपहोमपरायणः ॥ १५ ॥ तस्मैतुष्टोमहादेवो वर्षाणा मयुतेगते ॥ अब्रवीद्वरदोस्मीति तमुक्त्वादर्शनंददौ ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ तव

इसलिये यक्ष्मा रोगसे व्यापित होवो व क्षयको प्राप्त होवोगे इसप्रकार शाप देकर तदनन्तर दक्ष अपने स्थान को चले गये ॥ १२ ॥ और यक्ष्मा से व्यापित चन्द्रमा दिन दिन क्षय होनेलगा व क्षीण तथा प्रकाशहीन उस चन्द्रमा ने विचार किया ॥ १३ ॥ कि इस भयंकर शाप में मुझको क्या करना चाहिये मैं उस अर्बुद पर्वत पै सब कामनाओं को देने वाले शिवजीको पूजूंगा ॥ १४ ॥ ऐसा निश्चयकर वह अर्बुद पर्वत पै गया और क्रोध को जीते व जप, होम में परायण उसने तपस्या किया ॥ १५ ॥ और दशहज़ारवर्ष बीतने पर महादेव जी उसके ऊपर प्रसन्न हुये व बोले कि मैं वरदायक हूं यह उस चन्द्रमा से कहकर दर्शन देते भये ॥ १६ ॥

महादेवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण होवै और तुम्हारे मनमें जो वर्तमान हो उस वरदान को मांगो हे चन्द्रमा ! यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि मैं तुमको दूंगा ॥ १७ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे सुरश्रेष्ठ, त्रिपुरांतक ! मेरे रोग का नाश कीजिये हे जगदीश ! मेरा यह शरीर यक्ष्मा से व्यापित है ॥ १८ ॥ महादेवजी बोले कि जिसलिये तुम्हारे शरीर में दक्षजीके शाप से रोग टिका है इसलिये मैं उन महात्मा दक्षजी के शाप को अन्यथा नहीं कर सक्ता हूं ॥ १९ ॥ इसकारण हे निशाकर ! उन दक्षकी सब कन्याओं को तुम मेरे वचन से समान देखो तो तुम्हारा रोग जावैगा ॥ २० ॥ हे सोम ! कृष्णपक्ष में क्षय व शुक्लपक्ष में वृद्धि होगी और जो तुमको अन्य दुर्लभ

दास्याम्यहंचन्द्रं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ १७ ॥ चन्द्र उवाच ॥ व्याधिक्षयंसुरश्रेष्ठ कुरुमेत्रिपुरान्तक ॥ यक्ष्मणा व्यापितोदेहो ममायंचजगत्पते ॥ १८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ दक्षशापेनव्याधिस्ते यस्मात्कायेव्यवस्थितः ॥ नशक्नोम्य न्यथाकर्त्तुं शापंतस्यमहात्मनः ॥ १९ ॥ तस्मात्त्वंतस्यताःसर्वाः कन्यकाममवाक्यतः ॥ निशाकरसमंपश्य तवव्याधिर्गमिष्यति ॥ २० ॥ पक्षेकृष्णेक्षयःसोमशुक्ले वृद्धिर्भविष्यति ॥ वरंवरयभद्रन्ते अन्यद्यत्तेसुदुर्लभम् ॥ २१ ॥ चन्द्र उवाच ॥ सोमग्रहेनरोयोत्र सोमवारेचशङ्कर ॥ भक्त्यास्नानंकरोत्येव सयातुपरमाङ्गतिम् ॥ २२ ॥ पिण्डदानेनदेवेश स्वर्गंगच्छन्तिपूर्वजाः ॥ प्रसादात्तवदेवेश तीर्थंभवतुमुक्तिदम् ॥ २३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ भविष्यन्तिनरोत्रैव निष्पापमां नोनिशाकर ॥ यस्मात्प्रभात्वयाप्राप्ता तीर्थेस्मिन्ममलोकदे ॥ २४ ॥ प्रभासन्नामतीर्थाग्र्यं तस्मादेतद्भविष्यति ॥ येत्र सोमग्रहेप्राप्ते सोमवारेविशेषतः ॥ २५ ॥ करिष्यन्तिनराःस्नानं तेयास्यन्तिपरांगतिम् ॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति

हो उस वरको मांगो तुम्हारा कल्याण होवै ॥ २१ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे शंकरजी ! चन्द्रग्रहण में व सोमवार में जो मनुष्य यहां भक्तिसे स्नान करै वह उत्तम गतिको प्राप्त होवै ॥ २२ ॥ व हे देवेश ! पिंडदान से पितर स्वर्ग को जावैं व तुम्हारी प्रसन्नता से तीर्थ मुक्तिदायक होवै ॥ २३ ॥ महादेवजी बोले कि हे निशाकर ! यहींपर मनुष्य पापहीन होवैंगे और जिसलिये मेरे लोक को देनेवाले इस तीर्थ में तुमने प्रभा पाया है ॥ २४ ॥ उसीकारण यह प्रभासनामक तीर्थों में श्रेष्ठ होगा।

और जो मनुष्य चन्द्रग्रहण प्राप्त होनेपर विशेषकर सोमवार में इस तीर्थ में स्नान करैंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवैंगे और जो मनुष्य यहां श्राद्ध व पिंडदान करैंगे ॥ २५ । २६ ॥ उनको हे चन्द्र ! गयाश्राद्धके समान फल होगा इस कारण मनुष्य तुम्हारे इस कुण्डमें स्नान करैंगे ॥ २७ ॥ पुलस्त्य जी बोले कि ऐसा कहकर विरूपलोचन शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और चन्द्रमाने भी दक्ष से उपजीहुई अपनी सब स्त्रियों को भोग किया ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाचन्द्रप्रभासतीर्थमाहात्म्यंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

पिण्डदानंतथानराः ॥२६॥ गयाश्राद्धसमंपुण्यंतेषांचन्द्रभविष्यति ॥ तस्मादत्रकरिष्यन्तिस्नानंलोकाहृदेतव ॥ २७॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वाविरूपाक्षस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ चन्द्रोपिबुभुजेसर्वाः पत्नीस्स्वादक्षसम्भवाः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेचन्द्रप्रभासतीर्थमाहात्म्यन्नामविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ पुण्ड्रोदकमनुत्तमम् ॥ तीर्थंयत्रतपस्तप्तं पुण्ड्रोदकंद्विजातिना ॥ १॥ पुरापुण्ड्रोदकोनाम ब्राह्मणोभून्महीपते ॥ मन्दप्रज्ञोल्पमेधावी सोपाध्यायेनताडितः ॥ २ ॥ अशक्तोऽध्ययनंकर्त्तुं जाड्यभावान्महीपते ॥ सवैराग्यपरोमर्तुं सम्प्राप्तोगिरिगह्वरे ॥३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तत्रैवचसरस्वती ॥ वीणाविनोदसंयुक्ताविविक्तेपथिचस्थिता ॥ ४॥ तंदृष्ट्वाब्राह्मणंमग्नंवैराग्येणसमन्वितम् ॥ कृपाविष्टासमुद्धृत्य वाक्यमेतदुवाचह॥५॥

दो० । पुंड्रोदक तीरथ कियो पुंड्रोदक द्विज नाम । सो इकीस अध्याय में कह्यो चरित्र ललाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अतिउत्तम पुंड्रोदक तीर्थ को जावै जिस तीर्थ में पुंड्रोदक ब्राह्मण ने तप किया है ॥ १ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय पुंड्रोदकनामक ब्राह्मण हुआ है मंदबुद्धि व अल्पबुद्धि वह उपध्याय (पाठक)से ताड़ित हुआ ॥ २ ॥ क्योंकि हे राजन् ! जड़ता से वह पढ़ने के लिये असमर्थ था वैराग्य में तत्पर वह मरने के लिये पर्वत की गुहा में प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ इसी अवसर में वहीं पर वीणा के विनोद (खेल) से संयुत सरस्वतीजी एकान्त मार्ग में स्थित हुईं ॥ ४ ॥ वहा वैराग्य से संयुत व मग्न ब्राह्मण को देखकर दयासे

संयुत सरस्वतीजी निकाल कर यह वचन बोलीं ॥ ५ ॥ सरस्वतीजी बोलीं कि हे श्रेष्ठ ! यहां सरस्वती की निन्दा करते हुये तुम क्यों मरते हो और क्यों मेरा दोष किया जाताहै व किसलिये तुम मृत्यु को चाहते हो ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! इसको शीघ्रही कहिये मैं तुम्हारे दुःखको नाशकरूंगी ॥ ७ ॥ पुंड्रोदक बोले कि उपाध्याय से तिरस्कृत मैं वैराग्य को प्राप्त हुआ हूं हे महाभागे ! बुद्धि से हीन मैं इस समय मृत्यु को चाहता हूं ॥ ८ ॥ क्योंकि हे वरानने ! सरस्वती देवी मेरी जिह्वाके अग्रभाग पै नहीं वर्तमान हैं अन्य कारण मेरी मृत्युका नहीं है ॥ ९ ॥ तुम कौनहो और किस कारण तुमने मुझको इस जल से निकाला है मूर्खता से मुझको मरना

सरस्वत्युवाच ॥ कस्मात्त्वंम्रियसेश्रेष्ठ गर्हयन्त्वाशारदामिह ॥ कस्मान्मेक्रियतेदोषः कस्मात्त्वंमृत्युमिच्छसि ॥ ६ ॥ वदशीघ्रंमहाभाग तवार्तिंनाशयाम्यहम् ॥ ७ ॥ पुण्ड्रोदक उवाच ॥ अहंवैराग्यमापन्न उपाध्यायतिरस्कृतः ॥ प्रज्ञाहीनोमहाभागे मृत्युंवाञ्छामिसाम्प्रतम् ॥ ८ ॥ नमेसरस्वतीदेवी जिह्वाग्रेपरिवर्त्तते ॥ कारणंनान्यदस्तीह मृत्योर्मे मवरानने ॥ ९ ॥ कात्वंकस्मात्त्वयाचाहं तोयादस्मात्समुद्धृता ॥ मरणंहिममश्रेयो मूर्खभावान्नजीवितम् ॥ १० ॥ सरस्वत्युवाच ॥ अहंसरस्वतीदेवी सदास्मिन्वरपर्वते ॥ निशिगानंत्रयोदश्यां करोमिद्विजवीणया ॥ ११ ॥ समान्त्वं प्रार्थयवरं यदभीष्टंसुदुर्लभम् ॥ पुण्ड्रोदक उवाच ॥ प्रसादात्तववैवाणीप्रवर्ततुशुचिस्मिते ॥ १२ ॥ एतत्तीर्थन्तुमन्नाम्ना ख्यातिंयातुशुचिस्मिते ॥ सरस्वत्युवाच ॥ अद्यप्रभृतिवाग्मीत्वमत्रलोकेभविष्यसि ॥ १३ ॥ नाम्नातवतथातीर्थ मेतत्ख्यातिंप्रयास्यति ॥ निशामुखेत्रयोदश्यां योत्रस्नानंकरिष्यति ॥ १४ ॥ भविष्यतिससर्वज्ञो यद्यपिस्यात्सुम

कल्याणदायक है जीना नहीं है ॥ १० ॥ सरस्वती जी बोलीं कि हे द्विज ! मैं सरस्वती देवी सदैव इस उत्तम पर्वत पै तेरसि में रात्रिको वीणा से गान करती हूं ॥ ११ ॥ सो तुम जो प्रिय व दुर्लभ वर हो उसको मांगो पुंड्रोदक बोले कि हे शुचिस्मिते ! तुम्हारी प्रसन्नता से वाणी वर्तमान होवै ॥ १२ ॥ व हे शुचिस्मिते ! मेरे नाम से यह तीर्थ प्रसिद्धिको प्राप्त होवै सरस्वतीजी बोलीं कि आजसे लगाकर तुम इस लोक में प्रशस्तवचन होगे ॥ १३ ॥ और तुम्हारे नाम से यह तीर्थ प्रसिद्धि को प्राप्त होगा और जो तेरसिमें निशामुख (संध्या) में इस तीर्थ में स्नान करैगा ॥ १४ ॥ वह यद्यपि मंदबुद्धि होगा तथापि सर्वज्ञ होगा व हे द्विजोत्तम ! जिसलिये

यहां मेरा सदैव निवास होगा इस कारण भलीभांति सावधान पुरुषों को सदैव इसमें स्नान करना चाहिये ऐसा कहकर तदनन्तर सरस्वती देवी वहीं अन्तर्द्धान हो-गईं ॥ १५ । १६ ॥ और पुंड्रोदक सर्वज्ञ होकर इसके बाद अपने घरको चलागया ॥ १७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांपुण्ड्रोदकतीर्थमाहात्म्यंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि श्रीमाता देवि कर अहै अतुल परभाव । सो बाइस अध्याय में वरन्यो चरित सुहाव ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वहां जावै जहां

न्दधीः ॥ अत्रमेसततंवासो भविष्यतिद्विजोत्तम ॥ १५ ॥ यस्मात्तस्मात्सदास्नानं कर्त्तव्यंसुसमाहितैः ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ १६ ॥ पुण्ड्रोदकोहिसर्वज्ञो भूत्वाथस्वगृहंययौ ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपुण्ड्रोदकतीर्थमाहात्म्यन्नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ श्रीमातादेववन्दिता ॥ सर्वकामप्रदानृणामिहलोकेपरत्रच ॥ १ ॥ यासासर्वमयीशक्तिर्ययाव्याप्तमिदंजगत् ॥ सास्मिन्नलगिरौसाक्षात्स्वयंवासमरोचयत् ॥ २ ॥ योयं काममभिध्याय तामर्चयति भूमिप ॥ तत्सर्वंसमवाप्नोति तत्प्रसादादसंशयम् ॥ ३ ॥ पुरादेवयुगेराजन् वाष्कलिर्नामदानवः ॥ तेनसर्वमिदंव्याप्तं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ४ ॥ इन्द्रःप्रच्यावितःस्वर्गात्तस्मात्त्रस्तोनराधिप ॥ ब्रह्मलोकमनुप्राप्तः सर्वदेवैःसमन्वितः ॥ ५ ॥

कि देवताओं से प्रणाम की हुई श्रीमाता हैं जो कि इसलोक व परलोक में मनुष्यों की सब कामनाओं को देती हैं ॥ १ ॥ और जो वह सर्वमयी शक्ति है व जिससे यह संसार व्याप्त है उसने इस नलपर्वत पै निवास की रुचि किया ॥ २ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य जिसकामना को विचारकर उस भगवती को पूजता है वह उसके प्रसाद से निरसन्देह उस सब मनोरथ को पाता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय देवयुग में वाष्कलिनामक दानव हुआ है उससे चराचरसमेत यह सब त्रिलोक व्याप्त होगया ॥ ४ ॥ हे नराधिप ! उसने इन्द्र को स्वर्ग से अलग कर दिया और उससे डरेहुये इन्द्र सब देवताओंसमेत ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये ॥ ५ ॥

और उसने मखसूदननामक दैत्य को सूर्य किया व विज्वरानामक दैत्य को चन्द्रमा किया और आपही इन्द्र हुआ ॥ ६ ॥ व हे नराधिप ! उसने सब दैत्योंको यथायोग्य मरुत्, साध्य, विश्वेदेवता व देवर्षि किया ॥ ७ ॥ और वे सब पृथ्वी में डालेहुये यज्ञभागको लेते थे तदनन्तर वह तपस्या के लिये अर्बुदपर्वत पै गया और वसु अर्बुद के मध्य में ॥ ८ ॥ आज भी फलको देनेवाला देवखात संसार में प्रसिद्ध है वहा सब व्रत में तत्पर हैं जहा कि मूल व फलों को खानेवाले ॥ ९ ॥ अव्यक्त व परम शक्तिको ध्यान करते हुये मुनिलोग वहीं स्थितहैं कोई पचाग्निसाधन करनेवाले व कोई आराधन में तत्पर हैं ॥ १० ॥ और अन्य पुरुष एकबार

तेनादित्यःकृतोनाम्ना दानवोमखसूदनः ॥ चन्द्रोपिविज्वरानाम स्वयमिन्द्रोबभूवह ॥ ६ ॥ वसवोमरुतःसाध्या विश्वेदेवाःसुरर्षयः ॥ तेनसर्वेकृतादैत्या यथायोग्यंनराधिप ॥ ७ ॥ यज्ञभागंचगृह्णन्ति तेसर्वेभुविपातितम् ॥ तपोर्थन्तु ततोगात्स पर्वतेर्बुदमध्यतः ॥ ८ ॥ अद्यापिदेवखातन्तु लोकख्यातंफलप्रदम् ॥ तत्रव्रतपरास्सर्वे पत्रमूलफलाशनाः ॥ ९ ॥ अव्यक्तांपरमांशक्तिं ध्यायन्तस्तत्रसंस्थिताः ॥ पञ्चाग्निसाधकाः केचिदाराधनपरायणाः ॥ १० ॥ एकाहारानिराहारा वायुभक्षास्तथापरे ॥ दन्तोलूखलिनश्चान्ये अश्मकुट्टास्तथापरे ॥ ११ ॥ अन्येमासोपवासाश्च चान्द्रायणपरायणाः ॥ कृच्छ्रसान्तपनाविष्टा महापाराकिनःपरे ॥ १२ ॥ अम्बुभक्षावायुभक्षाः फेनपाश्चोष्मपाःपरे ॥ जपहोमपराश्चान्ये ध्यानासक्तास्तथापरे ॥ १३ ॥ बलिनैवेद्यदानैश्च गन्धधूपैर्नराधिप ॥ पूजनीयापरादेवी नित्याऽव्यक्तस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ एवंतेषांव्रतस्थानां तपसाभावितात्मनाम् ॥ विमुक्तिरभवद्राजन् सर्वेषांकर्मबन्धनात् ॥ १५ ॥ ततःपूर्णे

भोजन करनेवाले व निराहार तथा पवनभक्षी हैं व अन्य लोग दंतरूपी ओखली से कूटकर खानेवाले तथा पत्थर से कूटकर भोजन करनेवाले हैं ॥ ११ ॥ अन्य महीने भर उपास करनेवाले व चांद्रायणव्रत में परायण तथा अन्य कृच्छ्र सातपन से संयुत व महापाराक व्रत को करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ व अपर लोग जल पीनेवाले, पवनभोजी, फेन पीनेवाले व ऊष्मा (गरमी) पीनेवाले हैं और अन्य लोग जप व होम में तत्पर तथा अन्य ध्यान में लगेहुये हैं ॥ १३ ॥ हे नराधिप ! नित्य व अव्यक्तरूपिणी उत्तम देवी बलि व नैवेद्य दान तथा चन्दन व धूपों से पूजने योग्य है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तपस्या से शुद्ध चित्तवाले व व्रतमें

स्थित उन सब मुनियों की कर्मबन्धन से मुक्ति हुई ॥ १५ ॥ हे नृपोत्तम! हज़ार वर्ष पूर्ण होने पर कन्या के रूपको धारण करनेवाली देवी आखों के सामने प्राप्त हुई ॥ १६ ॥ हे महाराज ! पहले नेत्रों को भयदायक धुंआ उत्पन्न हुआ तदनन्तर ज्वाला पैदा हुई उसके उपरान्त श्वेत वस्त्र व अनुलेपनोंवाली कन्या पैदा हुई ॥ १७ ॥ उसको देखकर तदनन्तर हाथों को जोड़े हुये देवताओं ने स्तुति किया ॥ १८ ॥ देवता बोले कि हे सर्वव्यापिनी, देवि ! तुम्हारेलिये प्रणाम है शिवपूजित ! तुम्हारेलिये नमस्कार है हे कामगे, अचिन्त्ये ! तुम्हारेलिये प्रणाम है हे देवाश्रये ! तुम्हारेलिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ हे परमे, देवि ! तुम्हारेलिये नमस्कार है

सहस्रान्ते वर्षाणांनृपसत्तम ॥ देवीप्रत्यक्षतांप्राप कन्यकारूपधारिणी ॥ १६ ॥ पूर्वंयज्ञेमहाराज धूममक्षिभयावहम्॥ ततोज्वालाततःकन्याशुक्लवस्त्रानुलेपना ॥ १७॥ तांदृष्ट्वातुष्टुवुर्देवाः कृताञ्जलिपुटास्ततः ॥ १८ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो स्तुसर्वगेदेवि नमस्तेशिवपूजिते॥नमस्तेकामगेचिन्त्ये नमस्तेत्रिदशाश्रये॥१९॥ नमस्तेपरमेदेवि ब्रह्मयोनेनमोनमः॥ आधात्रिपरमेदेवि तुभ्यमस्तुनमोनमः ॥ २० ॥ नमस्तेपद्मपत्राक्षि विश्वमातर्नमोस्तुते॥ नमस्तेवरदेकालि रजस्स त्त्वतमोधिके ॥ २१ ॥ त्वंपुष्टिस्त्वंस्थितिर्देवि त्वंचसंसारलक्षणम् ॥ त्वंबुद्धिस्त्वंधृतिःक्षान्तिस्त्वंस्वाहात्वंस्वधाक्षमा॥ २२ ॥ त्वंवृद्धिश्चगतिःकान्तिः शचीलक्ष्मीश्चपार्वती॥ सावित्रीत्वंचगायत्री अजेयापापनाशिनी ॥ २३ ॥ यच्चदृष्टंश्रुतं देवि त्रैलोक्येस्तीतिसञ्ज्ञके ॥ तद्वस्तुतावकंदेवि पुरुषेषुचसंस्थितम् ॥ २४ ॥ वह्निनातुयथाकाष्ठं तैलेनचयथातिलाः ॥

हे ब्रह्मयोने ! तुम्हारेलिये नमस्कार है नमस्कार है आधात्रि, परमे, देवि ! तुम्हारेलिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ २० ॥ हे कमलपत्रलोचनि ! तुम्हारेलिये प्रणाम है हे विश्वमातः ! तुम्हारेलिये प्रणाम है हे वरदायिनि, कालि, रजःसत्त्वतमोधिके ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे देवि ! तुम पुष्टिहो तुम स्थिति हो और तुम संसार का लक्षण हो तुम बुद्धि हो तुम धृति हो तुम क्षांति हो तुम स्वाहा हो तुम स्वधा हो तुम क्षमाहो ॥ २२ ॥ और तुम वृद्धि हो गतिहो कान्तिहो और इन्द्राणी, लक्ष्मी व पार्वती हो और तुम सावित्री व गायत्री हो तथा न जातने योग्य व पापविनाशिनी हो ॥ २३ ॥ हे देवि ! इस त्रिलोकसंज्ञक संसार में जो देखा व सुना

गया है हे देवि ! पुरुषों में स्थित वह वस्तु तुम्हारी है ॥ २४ ॥ जैसे अग्निमें काठ व तैल से तिल व्याप्त हैं वैसेही तुमसे संसार व्याप्त है और तुम गुप्त भाव से स्थितहो ॥ २५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसप्रकार स्तुति की हुई जगदंबिकाजी उनसुरोत्तमोंसे बोलीं कि हे सुरोत्तमो ! मुझसे शीघ्रही प्रिय वरदानको मांगो ॥ २६ ॥ और बिलमध्यमें प्राप्त तुमलोग यहां क्यों गुप्त भावसे टिकेहो चराचर त्रिलोकमें भी मेरे भक्तोंको डर नहीं होताहै ॥ २७॥ देवता बोले कि हे देवि ! वाष्कलि दैत्यसे निकालेहुये हमलोग विचरतेहैं और उससे चराचरसमेत यह सब त्रिलोक व्याप्तहै ॥ २८ ॥ हमलोगोंका यज्ञभाग नष्टहोगया और दैत्योंको दियागया उससे हम सब

तथात्वयाजगद्व्याप्तं गुप्तभावेनसंस्थिता ॥ २५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंस्तुताजगन्माता तानुवाचसुरोत्तमान् ॥ वरो मेयाच्यतांशीघ्रमभीष्टंसुरसत्तमाः ॥ २६ ॥ किमत्रगुप्तभावेन तिष्ठध्वंश्वभ्रमध्यगाः ॥ मद्भक्तानांभयंनास्ति त्रैलोक्येपिचराचरे ॥ २७ ॥ देवा ऊचुः ॥ वयंवाष्कलिनादेवि निरस्तास्सञ्चरेमहि ॥ तेनव्याप्तमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम्॥२८॥ यज्ञभागोहृतोस्माकं दैत्यानांसम्प्रकल्पितः॥ तेनखिन्नावयंसर्वेसन्देहंपरमङ्गताः॥२९॥ त्वत्प्रसादाद्यथाभूयः शक्रस्स्वपदमाप्नुयात्॥ तथाकुरुमहाभागे एषनोवरईप्सितः ॥ ३० ॥ देव्युवाच ॥ यथायूयंमयासृष्टास्तथातेविहिता मया॥ विशेषोनास्तिमेकश्चिदुभयोस्सुरसत्तमाः॥ ३१ ॥ तस्मात्तान्वारयिष्यामि दास्येशक्रंदिवंपुनः ॥ एवमुक्त्वावरारोहा प्रेषयामासपार्थिव ॥ ३२ ॥ दूतंवाष्कलिदैत्याय त्यजत्वाशुदिवंद्रुतम् ॥ वाष्कलिंपार्थिवश्रेष्ठ सामपूर्वमिदंवचः ॥ ३३ ॥ दूत उवाच ॥ यासासर्वगतादेवी शक्तिरूपासुविस्मिता ॥ श्रीमाताजगतांमाता अव्यक्ताव्यक्तिमागता॥ ३४ ॥

दुःखी हैं और बड़े सन्देह को प्राप्त हैं ॥ २९ ॥ हे महाभागे ! जिसप्रकार तुम्हारी प्रसन्नता से इन्द्र फिर अपने स्थान को प्राप्त होवैं वैसाही कीजिये यह हमलोगों का प्रियवर है ॥ ३० ॥ देविजी बोलीं कि मैंने जिसप्रकार तुमलोगों को रचा है वैसेही उनको मैंने बनाया है हे सुरोत्तमो ! दोनों में कोई भेद नहीं है ॥ ३१ ॥ इस लिये उनको मना करूंगी और इन्द्र को फिर स्वर्ग दूंगी हे राजन् ! वरारोहा श्रीमाता ने ऐसा कहकर बाष्कलि दैत्य के लिये दूतको पठाया व हे नृपश्रेष्ठ ! प्रिय वचनपूर्वक यह वाष्कलि से कहा कि स्वर्ग को शीघ्रही छोड़ देवै ॥ ३२ । ३३ ॥ दूत बोला कि जो शक्तिरूपिणी सर्वव्यापिनी व विस्मिता देवी है वह अव्यक्ता व

लोकों की माता श्रीमाता व्यक्ति को प्राप्त हुई है ॥ ३४ ॥ व सब देवताओं से आराधन कीहुई उसने प्रसन्न होकर तुमसे यह कहा है कि तुम शीघ्रही अपने स्थान को जावो और इन्द्र स्वर्गको जावैं ॥ ३५ ॥ हे दानवोत्तम! मेरे वचन से शीघ्रही जावो ऐसा उसने कहा है ॥ ३६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! दूतका वचन सुनकर मदसे गर्वित व महादेवजी से वरदान को पाये हुयेवह गर्वसमेत यह बोला ॥ ३७ ॥ वाष्कलि बोला कि कौन श्रीमाता है और कौन देवता हैं व किसकारण मैं स्वर्ग को छोड देऊँ देवता ब्रह्मलोक को गये हैं उसकारण ब्रह्माकी सभा को जाकर ॥ ३८ ॥ मैं उन सब देवताओंको निस्सन्देह पीडित करूंगी और बहुत भयं-

देवैराराधितासर्वैस्तुष्टात्वामिदमब्रवीत ॥ स्वस्थानंगच्छशीघ्रंत्वं शक्रोयातुत्रिविष्टपम् ॥ ३५ ॥ मद्वाक्याद्दानवश्रेष्ठ शीघ्रंगच्छेतिसाब्रवीत् ॥ ३६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सदूतोवचनंश्रुत्वा दानवोमदगर्वितः ॥ हरलब्धवरोभूप सगर्वमिदमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ वाष्कलिरुवाच ॥ काश्रीमाताहिकेदेवाः कस्मात्स्वर्गंत्यजाम्यहम् ॥ ब्रह्मलोकंगतादेवा गत्वाब्रह्मसदस्ततः ॥ ३८ ॥ बाधयिष्येचसर्वांस्तान्देवानहमसंशयम् ॥ दूतोवध्योनचभवेद्राज्ञावैरेसुदारुणे ॥ ३९ ॥ एतस्मात्कारणाद्दूत नत्वांप्राणैर्वियोजये ॥ श्रीमातरंचमेदूत दर्शयिष्यसिचेत्ततः ॥ ४० ॥ अभीष्टंसम्प्रदास्यामि सत्यमेवब्रवीम्यहम् ॥ अहन्त्वयासमंतत्र यास्येयत्रैवसास्थिता ॥ ४१ ॥ निग्रहंचकरिष्यामि वाक्पारुष्यस्यकारणात् ॥ ४२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वामदान्धोसौ दूतेनसहदानवः ॥ अर्बुदंप्रययौतूर्णं रोषेणमहतावृतः ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वावाष्कलिमायान्तं देवाःशक्रपुरोगमाः ॥ वार्यमाणास्तदादेव्या पलायनपरायणाः ॥ ४४ ॥ भयेनमहताविष्टा दिशोभेजुःसम

कर वैर भी होने पर दूत राजा से मारने योग्य नहीं होताहै ॥ ३९ ॥ इसकारण हे दूत! मैं तुमको प्राणोंसे अलग नहीं करताहूं और हे दूत! यदि मुझे श्रीमाता को दिखावोगे तो ॥ ४० ॥ मैं मनोरथ को दूंगा यह मैं सत्य कहता हूं और मैं वहां तुम्हारे साथ जाऊंगा जहां कि वह स्थित है ॥ ४१ ॥ और वचनों की कठोरता के कारण मैं निग्रह (दण्ड) करूंगा ॥ ४२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर मदसे अन्ध व बड़े क्रोधसे घिराहुआ यह दानव दूतके साथ शीघ्रही अर्बुदपर्वत पै गया ॥ ४३ ॥ आते हुये वाष्कलि को देखकर उससमय इन्द्रादिक देवता देवीजी से वारित हुये और भागने में तत्पर हुये ॥ ४४ ॥ व बड़े भयसे संयुत वे देवता

सब ओर दिशाओंको चले गये इसकेअनन्तर बड़ीसेना से घिराहुआ यह वाष्कलि वहां प्राप्त हुआ ॥ ४५ ॥ जहां कि अर्बुदसंज्ञक पर्वत पै श्रीमाता स्थित थीं हे नरा- धिप ! वाष्कलि ने उसी दूतको पठाया ॥ ४६ ॥ वाष्कलि बोला कि हे दूत ! सुन्दर हास्यवाली श्रीमाता के समीप जाइये व वरदान कहिये कि हे सुश्रोणि ! मेरी स्त्री होवो मैं सदैव तुम्हारे वश में प्राप्त हूं ॥ ४७ ॥ और मेरा सब राज्य तुम्हारे वश में प्राप्त होगा नहीं तो मैं सब सुरोत्तमोंसमेत धर्षणा करूंगा ॥ ४८ ॥ हे वरानने ! अल्पबलवाले इन्द्र से व अन्य देवताओं से क्या है क्योंकि वे देवता मेरे और तुम्हारे हज़ारवें अंश के बराबर नहीं हैं ॥ ४९ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे महीपते !

न्ततः ॥ अथासौवाष्कलिःप्राप्तः सैन्येनमहतावृतः ॥ ४५ ॥ श्रीमातातिष्ठतेयत्र पर्वतेर्बुदसञ्ज्ञके ॥ दूतंचप्रेषयामास तमे वचनराधिप ॥ ४६ ॥ वाष्कलिरुवाच ॥ गच्छदूतवरम्ब्रूहि श्रीमाताचारुहासिनी ॥ भार्यामेभवसुश्रोणि अहन्तेवशग स्सदा ॥ ४७ ॥ भविष्यतिहिमेराज्यं सर्ववशगतंतव ॥ अन्यथाधर्षयिष्यामि सर्वैःसार्द्धसुरोत्तमैः ॥ ४८ ॥ किमिन्द्रे णाल्पवीर्येण किमन्यैश्चवरानने ॥ सहस्रांशेनमेतुल्याःसर्वेनतववैबुधाः ॥ ४९ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वाततोग त्वा सदूतःसंन्यवेदयत् ॥ तस्यसर्वंयथावाक्यं तेनोक्तंचमहीपते ॥ ५० ॥ तच्छ्रुत्वासस्मितंकृत्वा चिन्तयामासभामिनी ॥ जरामरणहीनोयं दैत्येन्द्रःशम्भुनाकृतः ॥ ५१ ॥ कथमस्यमयाकार्यो निग्रहोदेवताकृते ॥ एतच्चिन्तयतेयावत सा देवीदानवंप्रति ॥ ५२ ॥ तावत्तत्रागतःशीघ्रं सकामेनपरिप्लुतः ॥ अथदृष्टिनिपातेन सादेवीदानवाधिपम् ॥ ५३ ॥ व्यालोकयदर्बुदस्था निश्चलःसबभूवह ॥ ततोजहाससादेवी शनकैर्नृपसत्तम ॥ ५४ ॥ मुखात्तस्यास्ततःसैन्यं निष्क्रान्त

इस वचन को सुनकर तदनन्तर उस दूतने उसका सब जैसा वचन उससे कहागया था उसको कहा ॥ ५० ॥ उस वचन को सुनकर भामिनि श्रीमाताने मुसक- राकर विचारकिया कि यह दैत्येन्द्र वाष्कलि शिवजी से वृद्धता व मृत्युसे रहित किया गया है ॥ ५१ ॥ देवताओं के लिये मुझको किसप्रकार इसका निग्रह (दण्ड) करना चाहिये जबतक वे देवीजी दानव के लिये इसको विचार करें ॥ ५२ ॥ तबतक कामदेव से मग्न वह दैत्य शीघ्रही वहां आया इसके अनन्तर अर्बुदपर्वत पै टिकीहुई उस देवी ने दृष्टिपातसे दानवेश (वाष्कलि) को देखा और वह निश्चल हुआ तदनन्तर हे राजन् ! वह देवी धीरे से हँसी ॥ ५३ । ५४ ॥ तदनन्तर उसके

मुखसे बहुत भयंकरसेना निकली हाथी व उत्तम घोड़े और अनेकभाति के पैंदल निकले ॥ ५५ ॥ और शस्त्रोंसे व्याप्त रथ और हज़ारों योधा निकले उनसे हे राजन्! दानवेश की सब सेना उस अचल दैत्य के देखतेहुये मारीगई उस सेना के नष्ट होनेपर इन्द्रादिक देवताओं ने ॥ ५६ । ५७ ॥ उस श्रीमातासे कहा कि हे देव-देवेशि, देवि ! यह दानव बहुत दुर्बुद्धि है इसके जीतेहुये हमलोगों का स्वर्ग में राज्य न होगा ॥ ५८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उनके उस वचन को सुनकर उस दैत्यको मृत्युरहित जानकर पर्वत के बड़ेभारी शिखर पै जाकर आपही उसके ऊपर ॥ ५९ ॥ इच्छा के अनुकूल रूप धरनेवाली वे जगदंबिका श्रीमाता बैठ गई

मतिभीषणम् ॥ हस्तिनोहयवर्याश्च पादाताश्चपृथग्विधाः ॥ ५५ ॥ रथाःशस्त्रसमाकीर्णा योधाश्चापिसहस्रशः ॥ तैः सैन्यंदानवेशस्य सर्वराजन्निपातितम् ॥ ५६ ॥ पश्यतस्तस्यदैत्यस्य निश्चलस्यासुरस्यच ॥ हतेसैन्यबलेतस्मिन्निन्द्राद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ ५७ ॥ तामूचुर्देवदेवेशि दानवोयंसुदुर्मतिः ॥ नास्मिञ्जीवतिनोराज्यं स्वर्गेदेविभविष्यति ॥ ५८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ श्रुत्वातद्वचनंतेषां ज्ञात्वातंमृत्युवर्जितम् ॥ पर्वतस्यमहच्छृङ्गं गत्वातस्योपरिस्वयम् ॥५९॥ निविष्टासाजगन्माता श्रीमाताकामरूपिणी ॥ हितायजगतांराजन्नद्यापिवरपर्वते ॥ ६० ॥ तत्रसावसतेसाक्षान्नृणां कामप्रदायिनी ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ ६१ ॥ तुष्टुवुस्तांमहाशक्तिं भयहन्त्रींप्रहर्षिताम् ॥ प्रसन्नाभूत्ततोदेवी तेषांतत्रनराधिप ॥ ६२ ॥ देव्युवाच ॥ स्वंस्वंस्थानंसुरास्सर्वे परियान्तुगतव्यथाः ॥ गत्वास्थानंस्वकंसर्वे परियान्तुगतव्यथाः ॥ ६३ ॥ तथान्यदपिदेवेन्द्र ब्रूहियत्तेमनोगतम् ॥ सर्वंचसम्प्रदास्यामि तुष्टाहंभक्तितस्तव ॥ ६४ ॥

हे राजन् ! लोकों के हितके लिये वे आज भी उत्तम पर्वत पै स्थित हैं ॥ ६० ॥ और मनुष्यों की कामनाओं को देनेवाली वे श्रीमाता वहां बसती हैं इसीसमय में इन्द्रसमेत सब देवता ॥ ६१ ॥ भयनाशिनी व प्रसन्ना उस महाशक्तिकी स्तुति करते भये तदनन्तर हे नराधिप ! उनके ऊपर वे देवीजी प्रसन्न हुईं ॥ ६२ ॥ देवीजी बोलीं कि पीड़ारहित सब देवता अपने अपने स्थान को जावैं और अपने स्थान को जाकर परिपालन करैं ॥ ६३ ॥ वैसेही हे देवेन्द्र ! जो अन्य

भी तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उसको कहिये तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न मैं सब कुछ तुमको दूंगी ॥ ६४ ॥ इन्द्र बोले कि हे देवि ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो हे शाश्वते, भक्तवत्सले ! जबतक मैं स्वर्ग में स्वामी रहूं तबतक तुम यहीं स्थित होवो ॥ ६५ ॥ हे सुरेश्वरि ! जिसलिये पहले महादेवजीने दैत्य को अजर व अमर किया है उसीसे निश्चल स्थिति होवै ॥ ६६ ॥ और तुम्हारी प्रसन्नता से तीनों लोक व्याधिरहित होवैं और हम सब आकर यहां तुमको पूजैंगे ॥ ६७ ॥ चैतम शुक्ल पक्षकी चौदसिमें तुमको देखकर मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होवैं पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर सब देवताओं से संयुत इन्द्रजी ॥ ६८ ॥ प्रसन्न होकर उन देवी

इन्द्र उवाच ॥ यदितुष्टासिमेदेवि शाश्वतेभक्तवत्सले ॥ अत्रैवस्थीयतांतावत्स्वर्गेयावदहंविभुः ॥ ६५ ॥ अजरश्चामरश्चैव यतोदैत्यस्सुरेश्वरि ॥ हरेणनिर्मितःपूर्वं तेनतिष्ठतुनिश्चलः ॥ ६६ ॥ प्रसादात्तवलोकाश्च त्रयःसन्तुनिरामयाः ॥ अत्रत्वांपूजयिष्यामो वयंसर्वेसमेत्यच ॥ ६७ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां दृष्ट्वात्वांयान्तुसद्गतिम् ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षः सर्वदेवैःसमन्वितः ॥ ६८ ॥ हृष्टस्त्रिविष्टपंप्राप्तो देव्यास्तस्याःप्रभावतः ॥ सापितत्रस्थितादेवी देवानांहितकाम्यया ॥ ६९ ॥ यस्तांपश्यतिचैत्रस्य चतुर्दश्यांसितेनृप ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ७० ॥ किंव्रतैर्नियमैर्वापि दानैर्दत्तैर्नराधिप ॥ सर्वेतद्दर्शनाद्राजन् कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ७१ ॥ तत्रैवपादुकेदिव्ये तयान्यस्तेनराधिप ॥ यस्तेपश्यतिभूयोमो संसारन्नहिपश्यति॥ ७२॥ सर्वान्कामानवाप्नोति इहलोकेपरत्रच ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्कालेद्विजश्रेष्ठ देव्यामुक्तेत्रपादुके ॥ ७३ ॥ कस्माच्चकारणाद्ब्रूहि सर्वंविस्तरतोमम ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तां

जीकी प्रसन्नता से स्वर्ग में प्राप्त हुये देवताओंके हितकी कामनासे वे देवी भी वहां स्थित हुईं ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य चैतके शुक्लपक्षमें चौदसि तिथि में उन श्रीमाता को देखताहै वह वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम स्थान कोप्राप्त होताहै ॥ ७० ॥ हे नराधिप ! व्रतों व नियमों और दानों के देने से क्याहै व हे राजन् ! उसके दर्शन से सब सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ ७१ ॥ हे नराधिप ! उस श्रीमाता ने वहीं दिव्य पादुकाओंको धरा है जो उनको देखताहै वह फिर संसारका नहीं देखता है ॥ ७२ ॥ और वह इसलोक व परलोक में सब कामनाओं को पाता है राजा बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ! देवीजीने यहां किससमय पादुकाओं को धरा है ॥ ७३ ॥

और किसकारण पादुकाओं को धरा है सबको विस्तारसे मुझसे कहिये पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! उन देवीजी को देखकर सब मनुष्य ॥ ७४ ॥ अनेक प्रकार के धर्मकारणों से उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोते थे इसीसमय में यज्ञ व दानादिक कर्म ॥ ७५ ॥ व हे राजन् ! तीर्थयात्रा तथा व्रतों से उपजे हुये कर्म पृथ्वी में नष्ट होगये और यमराज के जो नरक थे वे सब शून्य होगये ॥ ७६ ॥ और यज्ञभाग से हीन देवता बड़े कष्टको प्राप्तहुये इसके अनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! सब देवता वहां आये और उस अर्बुदपर्वत पै जाकर श्रीमती परमेश्वरी से बोले ॥ ७७ ॥ देवता बोले कि हे सुरेश्वरि ! मृत्युलोकमें सब अग्निष्टोमादिक कर्म नष्ट होगये उसी

देवींमानवास्सर्वे समीक्ष्यनृपसत्तम ॥ ७४ ॥ प्राप्नुवन्तिपरांसिद्धिं विविधैर्धर्मकारणैः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु यज्ञदानादिकाःक्रियाः ॥ ७५ ॥ प्रणष्टाभूतलेराजंस्तीर्थयात्राव्रतोद्भवाः ॥ शून्यास्तेनरकास्सर्वे सम्बभूवुर्यमस्यये ॥ ७६ ॥ यज्ञभागविहीनाश्च देवाःकष्टमुपागताः ॥ अथसर्वेनृपश्रेष्ठ देवास्तत्रसमागताः ॥ ऊचुर्गत्वार्बुदेतत्र श्रीमतींपरमेश्वरीम् ॥ ७७ ॥ देवा ऊचुः ॥ अग्निष्टोमादिकाःसर्वाः क्रियानष्टाःसुरेश्वरि ॥ मर्त्यलोकेवयंतेन कर्मणैवप्रपीडिताः ॥७८॥ दृष्ट्वात्वांदेविपाप्मानः सिद्धिंयान्तिसपूर्वजाः ॥ तस्माद्यथावयंपुष्टिं व्रजामस्तेप्रसादतः ॥ ७९ ॥ ननिष्क्रामतिदैत्यश्च वाष्कलिस्त्वंतथाकुरु ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा संचिन्त्यसुचिरन्तदा ॥ ८० ॥ मुमोचपादुकेतत्र कृत्वाचाश्मसमुद्भवे ॥ देवानुवाचराजेन्द्र सर्वतोतिमुपागतान् ॥ ८१ ॥ देव्युवाच ॥ युष्मद्वाक्यात्परित्यक्तो मयायंपर्वतोत्तमः ॥ विन्यस्तेपादुकेतस्य रक्षार्थेवाष्कलेस्सुराः ॥ ८२ ॥ मत्पादुकाभराक्रान्तो नसदैत्यःसुरोत्तमाः ॥ स्थानात्प्र

कर्म से हमलोग बड़े दुःखित हैं ॥ ७८ ॥ हे देवि ! तुमको देखकर पापी पुरुष पूर्वज पितरोंसमेत सिद्धिको प्राप्तहोते हैं इसलिये तुम्हारे प्रसाद से हमलोग जिसप्रकार पुष्टिको प्राप्त होवैं ॥ ७९ ॥ और वाष्कलि दैत्य न निकलै तुम वैसाही करो पुलस्त्यजी बोले कि उनके उस वचन को सुनकर उससमय बहुत देर तक विचार कर ॥ ८० ॥ देवी ने पत्थर से उपजीहुई खडाउवों को बनाकर वहां छोड़ दिया व हे नृपेन्द्र ! सब ओर से दुःख को प्राप्त देवताओंसेकहा ॥ ८१ ॥ देवीजी बोलीं कि हे देवताओ ! तुमलोगों के वचन स मैंने इस उत्तम पर्वत को छोड़ दिया व उस वाष्कलिकी रक्षा के लिये खडाउवों को धरदिया ॥ ८२ ॥ हे सुरोत्तमो ! मेरी

मेरी पादुकाओं के भार से दबाहुआ वह दैत्य स्थान से चलने के लिये समर्थ नहीं है व जैसा मेरा संमत है ॥ ८३ ॥ वैसेही खड़ाउवों के लिये मैंने इस समस्त शास्त्रको निर्माण कियाहै जो कि पृथ्वी में प्राणियों के हितके लिये अध्यात्मिक (आत्मविद्या) है ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे इस शास्त्रके मार्ग से मेरी खड़ाउवोंको पूजैगा उसको मेरेदर्शन से उपजीहुई सिद्धि होगी ॥ ८५ ॥ चैत में शुक्लपक्ष की चौदसि में इस अर्बुदपर्वत की कन्दरा में गुप्त होकर मैंसदैव दिन रात बसूंगी ॥ ८६ ॥ और यह पर्वत मुझको प्रिय है इससे छोड़ने के लिये मैं मन नहीं करती हूं तथापि तुमलोगों के हितकी कामना से छोड़ दिया गया ॥ ८७ ॥ पुलस्त्यजी

चलितुंशक्तःमम्मतःस्याद्यथामम ॥ ८३ ॥ एतच्छास्त्रंमयाकृत्स्नं पादुकार्थंविनिर्मितम् ॥ अध्यात्मिकंहितार्थाय प्राणिनांपृथिवीतले ॥ ८४ ॥ शास्त्रमार्गेणचानेन भक्त्यायःपादुकेमम ॥ पूजयिष्यतिसिद्धिस्स्यात्तस्यमद्दर्शनोद्भवा ॥ ८५ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यामहमत्रार्बुदेसदा ॥ अहोरात्रंवसिष्यामि सुगुप्तागिरिगह्वरे ॥ ८६ ॥ पर्वतोयंममाभीष्टो नचत्यक्तुंमनोदधे ॥ तथापिसम्परित्यक्तो युष्माकंहितकाम्यया ॥ ८७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वातुसादेवी समन्ताद्देवकिन्नरैः ॥ स्तूयमानाययौस्वर्गं मुक्त्वातेपादुकेस्वके ॥ ८८ ॥ अद्यापिसिद्धिमायान्ति योगिनोध्यानतत्पराः ॥ तन्निष्ठास्तद्धुतप्राया यथादेव्याःप्रदर्शनात् ॥ ८९ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ श्रीमातासम्भवंपुण्यंपादुकाभ्यांचभूपते ॥ ९० ॥ यस्त्वेतत्पठतेभक्त्या शृणुतेवाथयोनरः ॥ सोपिपापैर्महाराज मुच्यतेज्ञानतःकृतैः ॥ ९१ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेश्रीमातामाहात्म्यन्नामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥

बोले कि ऐसा कहकर वह देवी उन अपनी खड़ाउवों को छोड़कर सब ओर से देवताओं व किन्नरों से स्तुति कीजाती हुई स्वर्गको चलीगई ॥ ८८ ॥ ध्यान में तत्पर योगीलोग आजभी वैसेही सिद्धिको प्राप्त होते हैं जैसे कि उसमें निष्ठ व उसीका प्रायः हवन करनेवाले लोग देवीजीके दर्शन से सिद्ध होते हैं ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! जो तुमने मुझसे पूंछा पादुकाओंसमेत श्रीमाता से उपजेहुये इस सब पवित्र चरित्र को मैंने तुमसे कहा ॥ ९० ॥ हे महाराज ! जो मनुष्य भक्ति से इसको पढ़ता या सुनता है वह भी अज्ञान से कियेहुये पातकों से छूटजाता है ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेभाषाटीकायांश्रीमातामाहात्म्यंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दो० । शुक्लतीर्थ में नील जिमि वसन भये शुभरंग । तेइसवें अध्याय में सोई कथाप्रसंग ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर अति उत्तम शुक्लतीर्थ को जावै जो कि पुरातनसमय दास (केवट) वर्ग के सकाश से प्रकटता को प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ हे महीपते ! पुरातनसमय शमिलाक्षनामक धोबी हुआ है हे राजन्! उसने नील के मध्य में वस्त्रों को डाल दिया ॥ २ ॥ इसके अनन्तर वस्त्रों की विडम्बना (कुरूपता) को जानकर यह भयको प्राप्त हुआ और अपने कुटुंब से घिरा हुआ यह विदेश को चला ॥ ३ ॥ इसके बाद केवट की कन्याकी सखी जो इसकी उत्तम कन्या थी वह बड़े दुःख से संयुत होकर दासी (केवटकन्या) के समीप

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ शुक्लतीर्थमनुत्तमम् ॥ यद्व्यक्तिमगमत्पूर्वं सकाशाद्दासवर्गतः ॥ १ ॥ पुरासीद्रजकोनाम शमिलाक्षोमहीपते ॥ नीलमध्येतुवस्त्राणि प्रक्षिप्तानिमहीपते ॥ २ ॥ अथासौभयमापन्नो ज्ञात्वावस्त्रविडम्बनाम् ॥ देशान्तरंप्रस्थितोसौ स्वकुटुम्बसमावृतः ॥ ३ ॥ अथतस्यसुताराजन्दासकन्यासखीशुभा ॥ दुःखेनमहताविष्टा दास्यन्तिकमुपाद्रवत ॥ ४ ॥ तस्यैनिवेदयामास भयंवस्त्रसमुद्भवम् ॥ विदेशचलनंचैव बाष्पगद्गदयागिरा ॥ ५ ॥ दासकन्यापिदुःखेन तस्यादुःखसमन्विता ॥ अब्रवीद्बाष्पसंदिग्धं निश्वसतीमुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥ दासकन्योवाच ॥ अस्त्युपायोमहानत्र विदितोममशोभने ॥ नूनंतेनकृतेनैव निर्भयत्वंचतेपितुः ॥ ७ ॥ अत्रास्तिनिर्झरंशुभ्रमर्बुदेवरवर्णिनि ॥ तत्रमेभ्रातरश्चैव तथान्येमत्स्यजीविनः ॥ ८ ॥ यच्चान्यदपितत्रैव तातस्तवसुमध्यमे ॥ जलेक्षालयतुंक्षिप्रं प्रयास्यत्याशुशुक्लताम् ॥ ९ ॥ त्वयात्रनभयंकार्यं गत्वातातंनिवारय ॥ प्रस्थितंपरदेशाय नात्रकार्याविचारणा ॥ १० ॥

गई ॥ ४ ॥ और उसने वस्त्र से उपजेहुये भयको उससे बतलाया और आसुवों से गद्गद वाणी करके विदेश का गमन बतलाया ॥ ५ ॥ और केवट की कन्या भी दुःख के कारण उसके दुःख से संयुत हुई और बार २ श्वास लेती हुई वह आसुवों से संयुत वचन बोली ॥ ६ ॥ दासकन्या बोली कि हे शोभने ! इस विषय में बड़ा भारी उपाय मुझको मालूम है उसके करने से निश्चय कर तुम्हारे पिता को निडरता होगी ॥ ७ ॥ हे वरवर्णिनि ! इस अर्बुदपर्वत पै उत्तम निर्झर (झरना) है वहां मेरे भाई व अन्य मत्स्यजीवी हैं ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमे ! तुम्हारा पिता जल में जिस अन्य भी वस्तु को धोवैगा वह शीघ्रही श्वेतता को प्राप्त होगा ॥ ९ ॥ इस

विषय में तुमको भय न करना चाहिये जाकर विदेश के लिये चलेहुये पिता को मना करो इस विषय में विचार न करना चाहिये ॥ १० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसके वचन को सुनकर उसने जाकर,पिता से सब विस्तीर्ण वृत्तान्त को कहा तदनन्तर यह प्रसन्नता को प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ और प्रातःकाल उठकर वह शीघ्रही उस झरना के समीप गया व हे नृपेन्द्र ! उस धोबी से उस जल में डालेहुये वे वस्त्र बहुतही श्वेतताको प्राप्त हुये तदनन्तर उत्तम शोभा को प्राप्त हुये और वैसे वस्त्रोंको देखकर ॥ १२ । १३ ॥ इसके अनन्तर विस्मय से संयुत शीघ्रतासमेत इसने उन वस्त्रों को लेकर राजा को दिया व उससे उपजेहुये वृत्तान्त को कहा ॥१४॥

पुलस्त्य उवाच ॥ सातस्यवचनंश्रुत्वा गत्वासर्वंन्यवेदयत ॥ जनकायसुविस्तीर्णं ततोसौतुष्टिमाप्तवान् ॥ ११ ॥ प्रातस्तथा यतूर्णंच निर्झरंतमुपाद्रवत ॥ क्षिप्तमात्राणिराजेन्द्र तानिवस्त्राणितेनवै ॥ १२ ॥ तस्मिंस्तोयेतिशुक्लत्वं गतानिबहुलंततः ॥ कांन्तिमायुश्चपरमां तथादृष्ट्वाम्बराणिच ॥ १३ ॥ अथासौविस्मयाविष्टस्तानिचादायसत्वरः ॥ राज्ञेनिवेदयामास वृत्तान्तंचतदुद्भवम् ॥ १४ ॥ ततोविस्मयमापन्नः सराजातत्रनिर्झरे ॥ अन्यानिनीलरक्तानि वस्त्राणिचाक्षिपज्जले ॥ १५ ॥ सर्वाणिशुक्लतांयान्ति विशिष्टानिभवन्तिच ॥ ज्ञात्वाततःपरंतीर्थं स्नानंचक्रेयथाविधि ॥ १६ ॥ त्यक्त्वाराज्यंचतत्रैव तपस्तेपेमहीपतिः ॥ ततःसिद्धिंपरांप्राप्तस्तीर्थस्थास्यप्रभावतः॥१७॥एकादश्यांनरस्तत्र यःश्राद्धंकुरुतेनृप ॥ सकुलानिसमुद्धृत्य दशयातिदिवंततः ॥ १८ ॥ स्नानेनैवविपापोथ तत्क्षणादेवजायते ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे शुक्लतीर्थप्रभावोनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥

तदनन्तर वह राजा विस्मय को प्राप्त हुआ व उसने उस झरने में नील से रँगेहुये अन्य वस्त्रों को जलमें फेंक दिया ॥ १५ ॥ वे सब श्वेतताको प्राप्त होतेथे व उत्तम हो जाते थे उत्तम तीर्थ को जानकर तदनन्तर राजा ने विधिपूर्वक स्नान किया ॥ १६ ॥ व भूपति ने राज्य को छोड़कर वहीं तपस्या किया तदनन्तर इस तीर्थ के प्रभाव से वह राजा उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य एकादशी तिथि में वहां श्राद्ध करता है वह दश पुश्तियों को उधार करतदनन्तर स्वर्ग को जाता है ॥१८॥ न स्नानहीसे मनुष्य उसी क्षण पापरहित होता है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेशुक्लतीर्थप्रभावोनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दो० । शुंभ दैत्य को नाश किय जिमि कात्यायनि देवि । चौबिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखसेवि ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि शुंभ दैत्य को नाशनेवाली गुहामध्यनिवासिनी कात्यायनीजी हैं ॥ १ ॥ पुरातनसमय पृथ्वी में शुंभनामक महादैत्य हुआ है उसने समर के आंगन में देवताओं को जीतकर सब संसार को व्याप्त करलिया ॥ २ ॥ शिवजीके वरदानसे वह दैत्य देवता व दानव और राक्षसों के अवध्य हुआ व स्त्री को छोड़कर पृथ्वी में सब प्राणियों के अवध्य हुआ ॥ ३ ॥ उस कारण हे पृथ्वीपते ! सब देवताओं के गण अर्बुदपर्वत पै जाकर शुंभको मारने के लिये तपस्या करते भये ॥ ४ ॥ और

पुलस्त्य उवाच॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ गुहामध्यनिवासिनी ॥ देवीकात्यायनीयत्र शुम्भदानवनाशिनी ॥ १ ॥ शुम्भो नाममहादैत्यः पुरासीत्पृथिवीतले ॥ तेनसर्वंजगद्व्याप्तं जित्वादेवान्रणाजिरे ॥ २ ॥ सशङ्करवरादैत्यो देवदानवरक्षसाम्॥ ॥ अवध्योयोषितंमुक्त्वा सर्वेषांप्राणिनांभुवि॥३ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे गत्वार्बुदमथाचलम् ॥ तपस्तेपुर्वधार्थाय शुम्भस्यजगतीपते ॥ ४ ॥ देवीमाराधयामासुर्व्यक्तरूपांसुरेश्वरीम् ॥ अथतेषांप्रसन्नासा दृष्टिगोचरमागता ॥ ५ ॥ अब्रवीद्वरदास्मीति ब्रूतकिङ्करवाणिवः ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वन्नोपहृतंदेवि शुम्भेनतुदुरात्मना ॥ ६ ॥ तन्निषूदयकल्याणि सोवध्योस्तिसदारणे ॥ त्वयासंरक्षितादेवि पुरावाष्कलितोवयम् ॥ ७ ॥ नान्यास्माकंगतिर्मातस्त्वांमुक्त्वाचारुहासिनीम् ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तासुरैर्देवी गत्वाशुम्भनिकेतनम् ॥ ८ ॥ आजुहावरणेक्रुद्धा भर्त्सयित्वामुहुर्मुहुः ॥ स

प्रकटरूपवाली सरस्वती देवी का आराधन किया इसके अनन्तर उनके ऊपर प्रसन्न होती हुई वह भगवती दृष्टिगोचर को प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ और यह बोली कि मैं वरदायिनी हूं कहिये मैं तुमलोगों का क्या करूं देवता बोले कि हे देवि ! दुष्टात्मा शुंभने हमलोगों का सब हरलिया ॥ ६ ॥ हे कल्याणि ! उसको मारिये क्योंकि युद्ध में वह सदैव अवध्य है हे देवि ! पुरातनसमय तुमने वाष्कलि से हमलोगों की रक्षा किया है ॥ ७ ॥ हे मातः ! सुन्दर हास्यवाली तुमको छोड़कर हमलोगोंकी अन्य गति नहीं है पुलस्त्यजी बोले कि देवताओंसे ऐसा कहीहुई देवी ने शुंभके स्थान को जाकर ॥ ८ ॥ क्रोधित होतीहुई बार २ घुड़ककर युद्ध में उसको बुलाया

व हे राजन् ! युद्धके लिये उस देवी से याचना कियेहुये उस दैत्य ने उसको स्त्री जानकर ॥ ९ ॥ व अपमान कर हँसतेहुये शुंभ दैत्य ने दानवों को पठाया कि कठोर शब्दवाली यह दुष्टा जीतीहुई पकड़लीजावै ॥ १० ॥ और मेरे वचन से निस्सन्देह भयंकर दण्ड किया जावै तदनन्तर उस शुंभ की आज्ञा से उन दानवों ने शीघ्रही उसके समीप ॥ ११ ॥ जाकर व दशों दिशाओंको घेरकर निन्दा किया तदनन्तर देखनेही से वे दैत्य भस्म किये गये ॥ १२ ॥ तदनन्तर क्रोधित होता हुआ शुंभ आपही आया व भयंकर तलवार को उठाकर बोला कि खड़ी हो खड़ी हो ॥ १३ ॥ हे महाराज ! उस देवी ने उसको भी देखा और वह वैसेही भस्म

तयायाचितोयुद्धं ज्ञात्वातांयोषितन्नृप ॥ ९ ॥ अवज्ञायहसन्दैत्यः प्रेषयामासदानवान् ॥ जीवग्राहेणदुष्टेयं गृह्यतांपरुषस्वना ॥ १० ॥ क्रियतांदारुणोदण्डो ममवाक्यान्नसंशयः ॥ अथतस्यसमादेशाद्दानवास्तांततोद्रुतम् ॥ ११ ॥ गत्वानिर्भर्त्सयामासुर्वेष्टयित्वादिशोदश ॥ ततोवलोकनादेव दैत्यास्तेभस्मसात्कृताः ॥ १२ ॥ ततःशुम्भःप्रकुपितः स्वयमेवसमाययौ ॥ अब्रवीत्तिष्ठतिष्ठेति खड्गमुद्यम्यभीषणम् ॥ १३ ॥ सोपिदेव्यामहाराज तयाचैवावलोकितः ॥ अभवद्भस्मसाद्यद्वत्पतङ्गःप्राप्यपावकम् ॥ १४ ॥ हतेतस्मिंस्ततोदैत्याः शेषाःपार्थिवसत्तम ॥भित्त्वारसातलंजग्मुःपातालंभयसंयुताः ॥ १५ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे तुष्टुवुस्तांसुरेश्वरीम् ॥ अब्रवीच्चवरंब्रूहि यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ १६ ॥ देव्युवाच ॥ तत्रैवपर्वतेरम्ये अर्बुदेहंसुरोत्तमाः ॥ अभीष्टःपर्वतोस्माकं ससदार्बुदसञ्ज्ञितः ॥ १७ ॥ देवा ऊचुः ॥ तत्रस्थांत्वांसमालोक्य मर्त्यायान्तित्रिविष्टपम् ॥ विनायज्ञैस्तथादानैःस्वर्गःसंकीर्णताङ्गतः ॥ १८ ॥ नान्यत्कारणमस्तीह नःखेदस्य

होगया जैसे कि अग्नि को पाकर पतंग भस्म हो जाता है ॥ १४ ॥ हे नृपोत्तम उसके नष्ट होने पर तदनन्तर बचेहुये दैत्य डरसंयुत होकर रसातल को फोड़कर पातालको चले गये ॥ १५ ॥ तदनन्तर सब सुरगणों ने उन सुरेश्वरी देवी की स्तुति किया व देवीजी बोलीं कि तुम्हारे मनमें जो वर्तमान होवै उस वरदान को कहो ॥ १६ ॥ देवीजी बोलीं कि हे सुरोत्तमो ! उसी सुन्दर अर्बुद पर्वत पै मैं स्थित हूंगी और अर्बुदनामक वह पर्वत हमको सदैव प्रिय है ॥ १७ ॥ देवता बोले कि वहां टिकीहुई तुमको देखकर मनुष्य बिन यज्ञों व बिन दानों के स्वर्ग को जाते हैं इससे स्वर्ग भरगया ॥ १८ ॥ हे सुरेश्वरि ! हमलोगों के खेद का अन्य कारण

नहीं है देवीजी बोलीं कि हे सुरेश्वरो ! वहां मैं एकान्त व सुन्दर गुहा के मध्य में ॥ १६ ॥ टिकूंगी और पर्वत के दुर्गम के कारण प्राणियों के मध्य में कोई विरल मनुष्य मेरे दृष्टिगोचर मार्ग को प्राप्त होगा ॥ २० ॥ देवता बोले कि हे शुचिस्मिते, देवि ! यदि तुमको ऐसा प्रिय है तो ऐसाही कीजिये हमलोग वहां आषाढ़ में शुक्लपक्षकी अष्टमी में सदैव तुमको देखेंगे ॥ २१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर प्रसन्न होतेहुये सब देवता स्वर्ग को चलेगये और हे राजन् ! वह देवी भी उस अर्बुदपर्वत पै जाकर ॥ २२ ॥ वहा लोकों के हितके लिये देवताओं व मनुष्यों से दुर्लभ उस प्रसन्न देवी ने एकान्त में निवास किया ॥ २३ ॥ हे नृपेन्द्र !

सुरेश्वरि ॥ देव्युवाच ॥ तत्राहंविजनेरम्ये गुहामध्येसुरेश्वराः ॥१६॥ स्थास्यामिविरलःकश्चिद्यास्यतिप्राणिनांमम ॥ दृष्टिगोचरमार्गंहि दुर्गमात्पर्वतस्यहि ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ यद्येवंदेवितेभीष्टमेवंकुरुशुचिस्मिते ॥ वयन्त्वांतत्र द्रक्ष्यामः शुक्लाष्टम्यांसदाशुचौ ॥ २१॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वासुरास्सर्वे प्रहृष्टास्त्रिदिवंययुः ॥ सापिदेवीगिरौतत्र गत्वा चैवार्बुदेनृप ॥ २२ ॥ गुहामध्यंसमासाद्य तत्रलोकहितायवै ॥ विविक्तेन्यवसत्प्रीता दुर्लभासुरमानवैः ॥ २३ ॥ यस्तां पश्यतिराजेन्द्र शुक्लाष्टम्यांसमाहितः ॥ अभीष्टंससदाप्नोति यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकात्यायनीमाहात्म्यन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःपिण्डारकंगच्छेत्तीर्थंपापहरन्नृप ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं मङ्किनाब्राह्मणेनच ॥ १ ॥ सिद्धिंगतस्तथाराजंस्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ पुरामङ्किरभूद्विप्रो नाममात्रेणभूपते ॥ २ ॥ मूर्खोब्राह्मणकृत्यानामनभिज्ञस्सुम

शुक्लपक्षकी अष्टमी में सावधान होताहुआ जो मनुष्य उसको देखता है वह यद्यपि दुर्लभ होवै तथापि सदैव मनोरथको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकात्यायनीमाहात्म्यंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पिंडारक तीरथ कियो यथामंकि द्विजनाथ । सो पचीस अध्याय में कह्यो सुहावन गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृप ! तदनन्तर पापहारक पिंडारकतीर्थ को जावै जहां कि पुरातनसमय मङ्कि ब्राह्मण ने तपस्या किया है ॥ १ ॥ व हे राजन् ! इस तीर्थ के प्रभाव से वह सिद्धि को प्राप्त हुआ है हे राजन् ! पुरातनसमय

नाममात्र से मङ्कि ब्राह्मण हुआ है ॥ २ ॥ यह मूर्ख व ब्राह्मण के कर्मों को न जाननेवाला तथा बहुत मंदबुद्धि था इसके अनन्तर हे नृपोत्तम ! इस ब्राह्मण ने लोकों के मध्य में सुन्दर पर्वत पै ॥ ३ ॥ पिंडारकर्म में भैंसियों की रक्षा किया तदनन्तर कुछसमय के बाद उसने द्रव्य को इकट्ठा किया ॥ ४ ॥ उसके उपरान्त बड़े क्लेश से उसने थोड़ी पृथ्वी लिया व दो बैलों को लिया तदनन्तर हे राजन् ! उस ब्राह्मण ने दूत से उन बैलों को जुताया ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! भाग्यवश से उसके जोततेहुये ऊंट के मुखको प्राप्त होकर दोनों बैल हठ से ग्रीवा में स्थित हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे भूपते, राजन् ! ग्रीवा में दोनों बैलों के लटकतेहुये ऊंट

न्दधीः ॥ अथासौपर्वतेरम्ये लोकानांनृपसत्तम ॥ ३ ॥ महिषींरक्षयामास ततःपिण्डारकर्मणि ॥कस्यचित्त्वथकाल स्य तेनवित्तमुपार्जितम् ॥ ४ ॥ महत्कृच्छ्रेणभूस्तोकं जगृहेगोयुगंततः ॥ ततस्तद्दमयामास दूतेननृपसत्तम ॥ ५ ॥ अथदैववशाद्राजन् दमतस्तस्यगोयुगम् ॥ अथोष्ट्रमुखमासाद्य ग्रीवादेशेबलात्स्थितम् ॥ ६ ॥ अथोष्ट्रस्त्वरयाराज न्नुत्थितस्तुततःपरम् ॥ गोयुगेनहिग्रीवायां लम्बमानेनभूपते ॥ ७ ॥ तंदृष्ट्वासुमहाश्चर्यं विनाशंगोयुगस्यतु ॥ मङ्कि र्वैराग्यमापन्नस्त्यक्त्वाग्रामंवनंययौ ॥ ८ ॥ सगत्वानिर्झरंकञ्चिदर्बुदेनृपसत्तम ॥ त्रिकालंकुरुतेस्नानं गायत्रीजपमु त्तमम् ॥ ९ ॥ तेनासौगतपापोभूद्दिव्यदर्शीचभूमिप ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तेनमार्गेणशङ्करः ॥ १० ॥ सहगौर्याविनि ष्क्रान्तः क्रीडार्थंरम्यपर्वते ॥ सदृष्टःसहसातेन पिण्डारेणमहात्मना ॥ ११ ॥ प्रणनामशिवंराजंस्ततस्तंशङ्करोब्रवी त ॥ नवृथादर्शनंमेस्याद्वरोमेगृह्यतान्द्विज ॥ १२ ॥ यदभीष्टंमहाभाग यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ पिण्डारक उवाच ॥

शीघ्रता से उठ पड़ा ॥ ७ ॥ उस बड़े आश्चर्यवाले दोनों बैलोंके विनाश को देखकर मङ्कि वैराग्य को प्राप्त हुआ और ग्राम को छोड़कर वनको चलागया ॥ ८ ॥ व हे नृपोत्तम ! वह अर्बुदपर्वत पै किसी झरना के समीप जाकर त्रिकाल स्नान व उत्तम गायत्री जप करने लगा ॥ ९ ॥ उससे हे राजन् ! यह पापहीन व दिव्यदर्शी हुआ इसीसमय में पार्वतीसमेत शिवजी सुन्दर पर्वत पै क्रीड़ा करने के लिये उस मार्ग से निकले और उनको महात्मा पिंडारक ने अचानकही देखा ॥ १० । ११ ॥ व हे राजन् ! शिवजीको प्रणाम किया तदनन्तर शिवजी उससे बोले कि हे द्विज ! मेरा दर्शन वृथा नहीं होता है मुझसे वरदान को लेवो ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! यद्यपि

बहुत दुर्लभ और जो प्रियहो उसको मागो पिंडारक बोले कि हे त्रिपुरातक, देवेश, विभो ! मैं जिसप्रकार तुम्हारा गण होऊं वैसाही कीजिये और मेरे हृदय में नहीं वर्तमान है और मेरे नामसे यह पिंडारकतीर्थ प्रसिद्ध होवै॥ १३ । १४ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! देहात में तुम हमारे गण होगे और तुम्हारे नाम से यह पिंडारकतीर्थ होगा ॥ १५ ॥ हे महामते ! मैं यहां सदैव अष्टमी में बसूंगा और अष्टमी दिन प्राप्त होने पर जो इस तीर्थ में स्नान करैंगे ॥ १६ ॥ वे उत्तम स्थान को जावैंगे जहां कि मैं नित्य स्थित हूं पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ १७ ॥ और पिंडारक मङ्किने वहा दिनरात तपस्या

गणोहन्तवदेवेश भवामित्रिपुरान्तक ॥ १३ ॥ यथातथाकुरुविभो नान्यन्मेहृदिवर्त्तते ॥ एततपिण्डारकंतीर्थं ममनाम्नाप्रसिद्ध्यतु ॥ १४ ॥ भगवानुवाच ॥ भविष्यासिगणोस्माकं देहान्तेत्वंद्विजोत्तम ॥ एततपिण्डारकंतीर्थं तवनाम्नाभविष्यति ॥ १५ ॥ अहमत्रसदाष्टम्यां निवसामिमहामते ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति सम्प्राप्तेचाष्टमीदिने ॥ १६ ॥ तेयास्यन्ति परंस्थानं यत्राहन्नित्यमास्थितः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वामहादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ मङ्किःपिण्डारकस्तत्र तपस्तेपेदिवानिशं ॥ ततःकालेनमहता त्यक्त्वादेहंदिवङ्गतः ॥ १८ ॥ यत्रास्तेभगवान्रुद्रो गणस्तत्रबभूवह ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानमत्रसमाचरेत् ॥ १९ ॥ राजेन्द्र महिषीदानमष्टम्यांचविशेषतः ॥ यइच्छतिसदाभीष्टमिहलोकेपरत्रच ॥ २० ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपिण्डारकतीर्थप्रभाववर्णनन्नामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तस्मिन्कनखलन्नाम पर्वतेपापनाशने ॥ १ ॥

किया तदनन्तर बहुतसमय के बाद वह शरीर को छोड़कर स्वर्ग को चलागया ॥ १८ ॥ और जहां भगवान् शिवजी हैं वहां गण हुआ इसलिये हे नृपेन्द्र ! जो इस लोक व परलोक में सदैव मनोरथ को चाहता है वह सब यत्न से यहां स्नान करै व विशेषकर अष्टमी तिथि में भैंसी दान करै ॥ १९ । २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे र्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपिण्डारकतीर्थप्रभाववर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तीरथ कनखलको गयो यथा सुमति नरपाल । सो छव्बिस अध्याय में कह्यो चरित्र रसाल ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर उस पापनाशक

पर्वत पै त्रिलोक में प्रसिद्ध कनखलतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ हे महीपते ! वहां जो पहले आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये कि सुमतिनामक राजा अर्बुदपर्वत पै प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ तदनन्तर बहुतसमय के बाद वह कनखलतीर्थ को गया और वह ब्राह्मण के लिये उत्तम सुवर्ण को लाया ॥ ३ ॥ और उस राजाकी असावधानता से बहुत सुवर्ण जल में गिरपड़ा व हे राजन् ! ढूंढ़ने में तत्पर उस राजा ने सुवर्ण को नहीं पाया ॥ ४ ॥ तदनन्तर नहाकर घरको प्राप्त हुआ व पश्चात्ताप से संयुत हुआ तदनन्तर बहुतसमय के बाद वह राजा वहां आया ॥ ५ ॥ और सूर्यनारायण के ग्रहण में उसने स्नान के लिये उस स्थान को देखा व उस बुद्धिमान् ने

शृणुतत्राभवत्पूर्वं यदाश्चर्यंमहीपते ॥ पार्थिवस्सुमतिर्नाम सम्प्राप्तोर्बुदपर्वते ॥२॥ ततःकालेनमहता तीर्थं कनखलङ्गतः ॥ तेनविप्रार्थमानीतं सुवर्णंदिव्यमेवहि ॥ ३ ॥ प्रभूतंपतितंतोये प्रमादात्तस्यभूपतेः ॥ नलब्धन्तेनभूपाल अन्वेषणपरेण च ॥ ४ ॥ ततस्स्नात्वागृहम्प्राप्तः पश्चात्तापसमन्वितः ॥ ततःकालेनमहता सभूपस्तत्रचागतः ॥ ५ ॥ स्नानार्थंभास्करे ग्रस्ते तंचदेशमपश्यत ॥ चिन्तयामासमेधावी अस्मिन्देशेतदामम ॥ ६ ॥ सुवर्णंपतितंहस्तान्नचलब्धंकथञ्चन ॥ ७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सएवंचिन्तयामास वागुवाचाशरीरिणी ॥ नात्रनाशोस्तिराजेन्द्र इहलोकेपरत्रच ॥ ८ ॥ अत्रकोटि गुणंजातं सुवर्णंयत्पुरातनम् ॥ पश्चात्तापस्त्वयाभूरिः कृतोयद्द्रव्यनाशने ॥ ९ ॥ तस्मात्सङ्ख्यातुसञ्जाता तथैवाक ल्पितस्यच ॥ येत्रश्रद्धासमायुक्ताः सुवर्णंनृपसत्तम ॥ १० ॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति सुवर्णञ्चविशेषतः ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्र दास्यन्ति सङ्ख्यातस्यनविद्यते ॥ ११ ॥ अत्रान्वेषणदेशेत्वं प्राप्स्यसेनात्रसंशयः ॥ सश्रुत्वाभारतींतत्र आकाशाद्

विचार किया कि उससमय इस स्थान में मेरे हाथ से सुवर्ण गिरा था और किसीप्रकार नहीं मिला ॥ ६ । ७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसने इसप्रकार चिन्तवन किया और आकाशवाणी बोली कि हे नृपेन्द्र ! यहां नाश नहीं होता है व इसलोक व परलोक में ॥ ८ ॥ जो पुराना सुवर्ण था वह इसमें कोटिगुना होगया और जो तुम ने द्रव्य के नाश में बड़ा पश्चात्ताप किया ॥ ९ ॥ इसकारण कल्पित सुवर्ण की वैसेही संख्या होगई हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य यहां श्रद्धासंयुत सुवर्ण देते हैं ॥ १० ॥ और जो यहां श्राद्ध करेंगे व विशेषकर ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण देवैंगे उसकी संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ११ ॥ और यहां अन्वेषण (ढूंढ़ने) के स्थान में तुम

सुवर्ण को पावोगे इसमें सन्देह नहीं है हे राजन् ! वहा आकाश से उपजीहुई वाणी को सुनकर वहा उस सुमति ने ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उस स्थान में ढूंढ़तेहुये उस उत्तम सुवर्ण को कोटिगुना पाया तदनन्तर हे राजन् ! वह प्रसन्नता को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ और उस तीर्थ के प्रभाव को जानकर श्रद्धासंयुत उसने पितरों व देवताओं को उद्देशकर हज़ारों ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण दिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उस सुवर्णदान के प्रभाव से वह राजा धनका देनेवाला धनदनामक यक्ष हुआ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! सूर्य के ग्रहण में वहां जो श्राद्ध करता है भलीभांति तृप्त कियेहुये उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त होते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! स्नान से ऋषि,

स्थितान्नृप ॥ १२ ॥ अन्वेषमाणस्तंदेशं सुवर्णंतच्चलब्धवान् ॥ शुभ्रंकोटिगुणंराजंस्ततस्तुष्टिंसमागतः ॥ १३ ॥ ज्ञात्वातीर्थप्रभावन्तं ब्राह्मणेभ्यस्सहस्रशः ॥ प्रददौश्रद्धयायुक्त उद्दिश्यपितृदेवताः ॥ १४ ॥ ततस्तस्यप्रभावेण स्वर्ण दानस्यभूपते ॥ सञ्जातोधनदोनाम यक्षोनामधनप्रदः ॥ १५ ॥ तत्रयःकुरुतेश्राद्धं ग्रहेसूर्यस्यभूमिप ॥ आकल्पंपित रस्तस्य तृप्तिंयान्तिसुतर्पिताः ॥ १६ ॥ स्नानेनऋषयोदेवास्तुष्टिंयान्तिमहोरगाः ॥ नाशःसञ्जायतेसद्यः पापस्यपृथि वीपते ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ यथाशक्त्यातथादानं श्राद्धञ्चनृपसत्तम ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकनखलतीर्थमाहात्म्यन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रचक्रंपुरामुक्तं विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १ ॥ निह त्यदानवान्सङ्ख्ये कृत्वास्नानंसुनिर्भरे ॥ विष्णवङ्गक्षालनात्तोयं तत्रतन्मेध्यताङ्गतम् ॥ २ ॥ तत्रश्राद्धंतुयःकुर्याच्छ्रद्धय

देवता व महानाग प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं और उसीक्षण पाप का नाश होता है ॥ १७ ॥ इसलिये सब यत्न से वहां श्राद्ध करै व हे नृपोत्तम ! यथाशक्ति से दान व श्राद्ध करै ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकनखलतीर्थमाहात्म्यंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ⊛ ॥

दो० । भयो अर्बुदहिं शिखर पर चक्रतीर्थ असनाम । सत्ताइस अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अति उत्तम चक्र तीर्थ को जावै जहां कि पुरातनसमय समर्थवान् विष्णुजीने चक्र को छोड़ा है ॥ १ ॥ समर में दानवों को मारकर उत्तम झरने में स्नानकर वहां विष्णुजीके अंग

के धोने से वह पवित्रता को प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ हे नराधिप ! वहां विष्णुजी के शयन व बोधनसमयमें जो श्राद्ध करता है उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त होते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाञ्चक्रतीर्थप्रभाववर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥

दो० । मनुजसरोवर में प्रविशि भये मृगा नररूप । अट्ठाइसयें में कह्यो सोई चरित अनूप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ, नृप ! तदनन्तर अति पुण्यदायक मानुषकुण्डके समीप जावै जिसमें भलीभांति नहाआहुआ मनुष्य सदैव मनुष्य होता है ॥ १ ॥ और बहुत पापभी करके तिर्यक्ता को नहीं प्राप्त होता है

नेबोधनेहरेः ॥ आकल्पंपितरस्तस्यतृप्तिं यान्तिनराधिप ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेचक्रतीर्थप्रभाववर्णनन्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ सुपुण्यंमानुषंह्रदम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यग्मनुष्योजायतेसदा ॥ १ ॥ नतिर्यक्त्वमवाप्नोति कृत्वापिबहुपातकम् ॥ तत्राश्चर्यमभूत्पूर्वं यत्तच्छृणुनराधिप ॥ २ ॥ मृगयूथमनुप्राप्तं व्याधव्याप्तंसमन्ततः ॥ तेमृगाभयसन्त्रस्ताः प्रविष्टाजलमध्यतः ॥ ३ ॥ सद्योमनुष्यतांप्राप्ताः पूर्वजातिस्मरास्तथा ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु व्याधास्तेसमुपागताः ॥ ४ ॥ चापबाणधरास्सर्वे यथावैयमकिङ्कराः ॥ पप्रच्छुस्तान्मृगान्भूप मानुष्यत्वमुपागतान् ॥ ५ ॥ मृगयूथमनुप्राप्तमस्मिन्स्थानेजलाशये ॥ केनमार्गेणनिष्क्रान्तं वदध्वंसत्वरंह्यिनः ॥ ६ ॥ वयंसर्वे परिश्रान्ताः क्षुधाविष्टाविशेषतः ॥ ७ ॥ मनुष्या ऊचुः ॥ वयन्तेहरिणास्सर्वे मानुष्यंभावमाश्रिताः ॥ तीर्थस्यास्य

हे नराधिप ! वहां जो पहले आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये ॥ २ ॥ कि सबओर बहेलियों से व्याप्त मृगयूथ वहां प्राप्तहुआ और भयसे डरेहुये वे मृग जलके बीच में पैठगये ॥ ३ ॥ और उसीक्षण मनुजता को प्राप्तहुये व पूर्वजातिके स्मरण करनेवाले हुये इसीअवसर में वे बहेलिया प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ व हे भूप ! जैसे यमदूत होवैं वैसेही धनुषबाण को धारेहुये सब बहेलियों ने मनुजत्व को प्राप्त उन मृगों से पूछा ॥ ५ ॥ कि इस स्थान में जलाशय में मृगयूथ प्राप्तहुआ था वह किस रास्ते में निकलगया इसको हमलोगों से शीघ्रही कहिये ॥ ६ ॥ विशेषता से क्षुधा से संयुत हम सब थकगये हैं ॥ ७ ॥ मनुष्य बोले कि इस तीर्थ के प्रभाव से मनुजता

में आश्रित हम सब वे मृग हैं यह निस्सन्देह सत्य है ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! तदनन्तर वे सब केवट (व्याध) उस जलमें नहातेभये व हे नृप! उसीक्षण सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ९ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम, नृप! उस पापहारकतीर्थ को देखकर इन्द्रने सब कहीं धूलियों से पूर्ण करदिया ॥ १० ॥ हे नराधिप! आज भी जो मनुष्य उस तीर्थ में बुधवार अष्टमी में स्नान करते हैं वे पशुपक्षीकी योनि को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ और श्राद्ध के दान से मनुष्य सम्पूर्ण पितृमेधयज्ञ के फलको पाते हैं ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाम्भाषाटीकायांमनुष्यतीर्थप्रभावमाहात्म्यंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

प्रभावेण सत्यमेतदसंशयम् ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततस्तेशबरास्सर्वे त्यक्त्वाचापानिपार्थिव ॥ चक्रुस्स्नानंजले तस्मिन् सद्यःसिद्धिंगतान्नृप ॥ ९ ॥ तत शुक्रस्तुतद्दृष्ट्वा तीर्थंपापहरन्नृप ॥ पूरयामाससर्वत्र पांशुभिर्नृपसत्तम ॥ १० ॥ अद्यापिमनुजास्तत्र बुधाष्टम्यांनराधिप॥ स्नानंयेतुकरिष्यन्ति तिर्यक्त्वंनव्रजन्तिते ॥ ११ ॥ पितृमेधफलंकृत्स्नं श्राद्धदानादवाप्नुयुः ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेमनुष्यतीर्थप्रभावमाहात्म्यन्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यङ् मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ १ ॥ पुराभून्नृपतिर्नाम सुप्रभःपरवीरहा ॥ नित्यंचमृगयाशीलो मृगाणामहितेरतः ॥ २ ॥ नतथास्त्रीषुनोभोगेनाश्वयानेनवारणे ॥ तस्याभूदनुरागश्च यथामृगविमर्दने ॥ ३ ॥ सकदाचिन्नृपश्रेष्ठ मृगासक्तोऽर्बुदेगतः ॥ अपश्यत्सानुदेशेच मृगीं शिशुसमावृताम् ॥ ४ ॥ स्तनन्धयन्तींसुस्निग्धां शिशोःक्षीरानुरागिणः ॥ सांतेनविद्धाबाणेन सहसानतपर्वणा ॥ ५ ॥

दो॰। जिमि कपिलातीरथ भयो अर्बुदपर्वत तीर। उन्तिसवें अध्याय में सोई चरित गभीर ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर अतिउत्तम कपिलातीर्थ को जावै जिसमें भलीभांति नहायाहुआ पुरुष सब पातकों से छूटजाता है ॥ १ ॥ पुरातनसमय शत्रुवीरों का नाशनेवाला सुप्रभनामक राजा हुआ है शिकार के स्वभाववाला वह मृगों के अहित में तत्पर था ॥ २ ॥ उसप्रकार न स्त्रियों में न सुख में न अश्व की सवारी में न हाथी में उसका अनुराग हुआ जैसा कि मृगों के मारने में हुआ है ॥ ३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ! मृगों में लगाहुआ वह किसीसमय अर्बुदपर्वत पै गया और उसने उसके शिखरदेश में बच्चे से घिरीहुई मृगी को देखा ॥ ४ ॥ जो कि

दूध के अनुरागी बच्चेको, दूध पिलारही थी व भलीभांति स्निग्ध थी उसको उसने अचानकही झुकीहुई गांठिवाले धनुषसे उस मृगी को मारा ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर वह धनुष को लिये व निर्मल दूसरे बाणको प्रत्यंचासे जोड़तेहुये राजा को देखकर ॥ ६ ॥ तदनन्तर क्रोधसे संतप्त उसने राजा से कहा कि तुमने आज जिसको सेवन किया है यह क्षत्रिय का धर्म नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! सोते व मैथुनमें लगेहुये, दूधपीतेहुये और रोगसे पीड़ित मृगको मारना न चाहिये और बच्चे से घिरीहुई मृगी को न मारना चाहिये ॥ ८ ॥ हे सर्वनृपाधम ! तुम्हारे बाण को प्राप्त होकर मेरे विना मेरे पुत्रका अधर्म से मरण हुआ ॥ ९ ॥ हे भूपते ! जिसलिये तुमने मुझको

अथसापार्थिवंदृष्ट्वा प्रगृहीतशरासनम् ॥ द्वितीयंयोजमानंच मौर्व्याबाणंसुनिर्मलम् ॥ ६ ॥ ततःसाकोपसंतप्ता भूपालंप्रत्यभाषत ॥ नायंधर्म्मस्स्मृतःक्षात्रो यस्त्वयाद्यनिषेवितः ॥ ७ ॥ शयानोमैथुनासक्तस्तनयंव्याधिपीडितम् ॥ नहन्तव्योमृगोराजन् मृगीचशिशुनावृता ॥ ८ ॥ अधर्ममरणंजातं ममसर्वनृपाधम ॥ तवबाणंसमासाद्य पुत्रस्यचमयाविना ॥ ९ ॥ यस्मादहमधर्मेण हताभूमिपतेत्वया ॥ तस्मादत्रैवसानौत्वं रौद्रव्याघ्रोभविष्यसि ॥ १० ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तच्छ्रुत्वासुमहत्पापं सनृपोभयसङ्कुलः ॥ तांवैप्रसादयामास प्राणशेषांतदामृगीम् ॥ ११ ॥ अविवेकान्मया भद्रे हतात्वंनिर्घृणेनच ॥ कुरुशापविमोक्षान्तं तस्माद्दीनस्यसन्मृगि ॥ १२ ॥ मृग्युवाच ॥ यदातुकपिलांनामद्रक्ष्यसेत्वंपयस्विनीम् ॥ धेनुन्तयासमालापात्प्रकृतिंयास्यसेपुनः ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामृगीराजन्निष्टैःप्राणैर्वियुज्यते ॥ पीडिताशरघातेन पुत्रस्नेहाद्विशेषतः ॥ १४ ॥ अथासौपार्थिवःसद्यो रौद्रस्यसमजायत ॥ व्याघ्रोदंष्ट्राकरालश्च

अधर्म से मारा इसलिये इसी शिखर पै तुम भयकर व्याघ्र होगे ॥ १० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस बड़ेभारी पाप को सुनकर भयसे संयुत उस राजा ने उससमय बचे प्राणोंवाली उस मृगी को प्रसन्न कराया ॥ ११ ॥ कि हे भद्रे ! मुझ निर्दयी ने अज्ञान से तुमको मारा इसलिये हे सन्मृगि ! मुझ दीनके शापमोक्ष का अन्त कीजिये ॥ १२ ॥ मृगी बोली कि जब तुम कपिलानामक पयस्विनी गऊ को देखोगे तब उसके साथ संभाषण से फिर अपने स्वरूप को पावोगे ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर हे राजन् ! वह मृगी बाणकी चोट से पीड़ित व विशेषकर पुत्र के स्नेह के कारण प्रिय प्राणों से छूटगई ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर यह राजा शीघ्रही भयंकरमुख व

दाढ़ों से कराल और पैने दांतों व नखोंवाला व्याघ्र होगया ॥ १५ ॥ और क्रोध से मूर्च्छित उसने उस अपनी सेना को खालिया तदनन्तर हे राजन्! मारनेसे बचे हुये वे सेनावाले लोग बहुत दुःखी हुये ॥ १६ ॥ और डरेहुये वे अपने घरों को चलेगये और नगर में जैसा हाल था उमको उन्हों ने चौतरों व त्रिकों में कहा ॥ १७ ॥ और जिसप्रकार वह राजा अर्बुदपर्वत पै व्याघ्रता को प्राप्त हुआ उसको कहा उसको सुनकर उसके मंत्रियों ने बड़े पराक्रमी नाम से महौजस ऐसे प्रसिद्ध पुत्रको राज्य पै अभिषेक किया इसके अनन्तर हे नृपोत्तम! किसीसमय उस शिखर पै ॥ १८ । १९ ॥ प्यास की इच्छा से व तृणों की तृष्णासे गोप व गोपियोंसे संयुत

तीक्ष्णदन्तनखस्तथा॥१५॥ भक्षयामासतांसेनामात्मीयांक्रोधमूर्च्छितः॥ ततस्तेसैनिकाराजन् हतशेषास्सुदुःखिताः॥ १६॥ स्वगृहाणिययुस्त्रस्ता यथावृत्तंजनेपुरे॥ न्यवेदयंस्तेवृत्तान्तं चत्वरेषुत्रिकेषुच॥१७॥ यथावैव्याघ्रतांप्राप्तः सराजार्बुदपर्वते ॥ तच्छ्रुत्वासचिवास्तस्य पुत्रंभूरिपराक्रमम् ॥ १८ ॥ राज्येभिषेचयामासुर्नाम्ना ख्यातंमहौजसम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्मिन्सानौनृपोत्तम ॥ १९ ॥ तृषाशयातुसम्प्राप्ता गोपगोपीसमाकुले ॥ तत्रैकागौःपरिभ्रष्टास्वयूथात्तृणतृष्णया ॥ २० ॥ कपिलेतिचविख्याता स्वयूथस्याग्रगामिनी ॥ अच्छिन्नाग्रतृणान्सातुसदाभक्षयतेनृप॥२१॥ अथसागह्वरम्प्राप्ता गिरेःशून्यंभयङ्करम् ॥ तत्राससादतांव्याघ्रो दंष्ट्रोत्कटमुखावहः ॥२२॥ सातंदृष्टवतीपापं त्रासयन्तंमृगान्द्विपान् ॥ स्मरन्तीगोकुलेबद्धं स्वसुतंक्षीरपायिनम् ॥ २३ ॥ दुःखेनरुदतींतान्तु दृष्ट्वोवाचमृगाधिपः ॥ २४ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ किंवृथारुद्यतेधेनो माम्प्राप्यनहिजीवितम् ॥ विद्यतेकस्यचिन्मातस्स्मरेष्टान्देवतान्ततः ॥ २५ ॥

उस स्थान पै अपने यूथ से अलग हुई एक गऊ प्राप्त हुई ॥ २० ॥ अपने यूथके अग्रगामिनी वह कपिला ऐसी प्रसिद्ध थी व हे राजन्! वह बिन कटेहुये अग्र भागवाले तृणों को सदैव खाती थी ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर वह पर्वत के शून्य व भयंकर गह्वर (कंदरा) को प्राप्त हुई वहा दाढ़ों से भयंकर मुखको धारनेवाला व्याघ्र उस गऊके समीप प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ उस गऊ ने मृगों व व्याघ्रों को डरवातेहुये उस पापी मृगको देखा और गोकुल (गोंड़े) में बँधेहुये दूध पीनेवाले अपने पुत्रको वह स्मरण करनेलगी ॥ २३ ॥ व दुःख से रोती हुई मृगी को देखकर व्याघ्र बोला ॥ २४ ॥ व्याघ्र बोला कि हे धेनो, मातः! वृथा क्यों रोती हो

मुझको प्राप्त होकर किसी का जीवन नहीं रहता है इसलिये इष्टदेवता को स्मरण करो ॥ २५ ॥ धेनु बोली कि हे व्याघ्र ! मैं अपने जीवन के भयसे किसीप्रकार नहीं रोती हूं बरन दूध पीनेवाला मेरा बालक गोंड़े में परखता है ॥ २६ ॥ और अभी वह तृणों को नहीं खाता है उसीकारण मैं शोकसे विकल हूं व हे व्याघ्र ! मैं पुत्रके स्नेह से रोती हूं यह सत्य से अपनी सौगन्द करती हूं ॥ २७ ॥ हे विभो ! यदि तुम मानो तो छोटे बालक को दूध पिलाकर व अपने गोपीजनको देखकर फिर लौट आऊंगी ॥ २८ ॥ व्याघ्र बोला कि अपने पुत्रके समीप जाकर और अपने गोकुल को देखकर फिर जो तुम्हारा आगमन है उसको मैं विश्वास नहीं करता

धेनुरुवाच ॥ स्वजीवितभयाद्व्याघ्र नरोदिमिकथञ्चन ॥ पुत्रोमेबालकोगोष्ठे क्षीरपायीप्रतीक्षते ॥ २६ ॥ नाद्यापिसतृणान्यत्ति तेनाहंशोकविक्लवा ॥ रौमिव्याघ्रसुतस्नेहात्सत्येनात्मानमालभे ॥ २७ ॥ पाययित्वासुतंबालं दृष्ट्वागोपीजनंस्वकम् ॥ पुनःप्राप्तागमिष्यामि यदित्वंमन्यसेविभो ॥ २८ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ गत्वास्वसुतसान्निध्यं दृष्ट्वात्मीयंच गोकुलम् ॥ पुनरागमनंयत्ते नचतच्छ्रद्दधाम्यहम् ॥ २९ ॥ भयानामेवसर्वेषां नास्तिप्राणसमंभयम् ॥ तस्मात्प्राणभयान्नत्वमागमिष्यसिधेनुके ॥ ३० ॥ कपिलोवाच ॥ शपथैरागमिष्यामि सत्यमेतच्छृणुष्वमे ॥ प्रत्ययोयदितेभूयान्मांमुञ्चत्वंमृगाधिप ॥ ३१ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ ब्रूहिताञ्छपथान्भद्रे समागच्छसियैःपुनः ॥ ततोहंप्रत्ययंगत्वा मोचयिष्यामिधेनुके ॥ ३२ ॥ कपिलोवाच ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नंब्राह्मणंनिन्दयेत्तुयः ॥ तेनपापेनलिप्यामि यद्यहंनागमेपुनः ॥ ३३ ॥ गुरुद्रोहरतानाञ्च यत्पापंजायतेनृणाम् ॥ तेनपापेनलिप्यामि यद्यहंनागमेपुनः ॥ ३४ ॥ यत्पापंब्राह्मणंहत्वा

हूं ॥ २९ ॥ क्योंकि सब भयों के मध्य में प्राण के समान भय नहीं है इसलिये हे धेनुके ! तुम प्राणों के भयसे नहीं आवोगी ॥ ३० ॥ कपिला बोली कि मैं सौगन्दों के कारण आऊंगी इस सत्यको मुझसे सुनिये और यदि तुमको विश्वास होवै तो हे मृगाधिप ! तुम मुझको छोड़देवो ॥ ३१ ॥ व्याघ्र बोला कि हे भद्रे ! उन सौगन्दों को कहिये कि जिनसे तुम फिर आवोगी तो हे धेनुके ! विश्वास को प्राप्त होकर मैं छोड़दूंगा ॥ ३२ ॥ कपिला बोली कि जो वेदपाठ से संयुत ब्राह्मण की निन्दा करता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३३ ॥ और गुरुवों के वैर में लगेहुये मनुष्यों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि

फिर न आऊं ॥ ३४ ॥ और ब्राह्मण को मारकर व गऊको मारकर जो पाप होता है उस पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३५ ॥ व मित्रके द्रोह में जो पाप है व जो पाप गुरुके छलने में है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३६ ॥ और जो पैर से गऊ ब्राह्मण व अग्नि को छूता है उस पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३७ ॥ और जो नर कूप, बगीचा व तड़ागों का भंग करता है उस पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३८ ॥ और कृतघ्न को जो पाप होता है व जो पाप चुगुल को होता है उस पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३९ ॥ और मद्य व मांस में रत मनुष्यों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४० ॥ और राजाओं से चुगुली में स्नेही पुरुषों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४१ ॥ व

गांचहत्वाप्रजायते ॥ तेनपापेनलिप्यामि यद्यहंनागमेपुनः ॥ ३५ ॥ मित्रद्रोहेचयत्पापं यत्पापंगुरुवञ्चके ॥ तेनपा॰ ॥ ३६ ॥ योगांस्पृशतिपादेन ब्राह्मणंपावकंतथा ॥ तेनपा॰ ॥ ३७ ॥ कूपारामतडागानां योभङ्गंकुरुतेनरः ॥ तेनपा॰ ॥ ३८ ॥ कृतघ्नस्यचयत्पापं यत्पापंसूचकस्यच ॥ तेनपा॰ ॥ ३९ ॥ मद्यमांसरतानाञ्च यत्पापंजायतेनृणाम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४० ॥ राजपैशून्यरक्तानां यत्पापंजायतेनृणाम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४१ ॥ वेदविक्रयकर्तॄणां यत्पापंसमुदाहृतम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४२ ॥ दीयमानेद्विजातीनां निवारयतियोल्पधीः ॥ तेनपा॰ ॥ ४३ ॥ विश्वस्तघातकानाञ्च यत्पापंसमुदाहृतम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४४ ॥ द्विजदोषरतानांहि यत्पापंजायतेनृणाम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४५ ॥ परवादरतानाञ्च पापंयच्चदुरात्मनाम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४६ ॥ रात्रौयेपापकर्माणो भक्षन्तिदधिसक्तवः ॥ तेनपा॰ ॥ ४७ ॥ वृन्ताकंमूलकंश्वेतं रक्तंयेश्नन्तिगृञ्ज

वेद बेंचनेवालों को जो पाप कहागया है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४२ ॥ और ब्राह्मणों को देने पर जो अल्पबुद्धि मना करता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४३ ॥ और विश्वासघाती लोगों को जो पाप कहागया है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४४ ॥ और ब्राह्मणों के दोषों में लगेहुये लोगों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४५ ॥ और पराये वाद में लगेहुये दुष्टों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४६ ॥ और जो पापकर्मी मनुष्य रात्रि में दही व सत्तू को खाते हैं उस पाप से मै लिप्त होऊ यदि फिर न आऊं ॥ ४७ ॥

और भांटा व सफेद तथा लालमूली और गाजर को जो खाते हैं उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसकी सौगन्दों को सुनकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाला वह व्याघ्र उससमय विश्वास को प्राप्त होकर वचन बोला ॥ ४९ ॥ व्याघ्र बोला कि हे भद्रे ! तुम गोकुल को जावो व फिर आगमन करो और यह न जानना चाहिये कि मैंने इस व्याघ्र को छललिया ॥ ५० ॥ हे पुत्रवत्सले, कपिले ! तुम जावो व पुत्रको देखो और दूधको पिलाकर व मस्तक में चाटकर शीघ्रही आवो ॥ ५१ ॥ माता व भाई को देखकर और सखी, स्वजन व बन्धुवों को देखकर सत्यही को आगेकर अन्यथा करनेयोग्य नहीं

नम् ॥ तेनपा० ॥ ४८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सतस्याःशपथाञ्छ्रुत्वाविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ प्रत्ययंचतदागत्वा व्याघ्रोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ ४९ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ गच्छत्वंगोकुलेभद्रे पुनरागमनंकुरु ॥ नचैतदवगन्तव्यं व्याघ्रोयंवञ्चितोमया ॥ ५० ॥ कपिलेगच्छपश्यत्वं तनयंसुतवत्सले ॥ पाययित्वास्तनंतूर्णमेह्यालिह्यचमूर्द्धनि ॥ ५१ ॥ मातरंभ्रातरंदृष्ट्वा सखीस्वजनबान्धवान् ॥ सत्यमेवाग्रतःकृत्वा नान्यथाकर्तुमर्हसि ॥ ५२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सानुज्ञाता मृगेन्द्रेण कपिलापुत्रवत्सला ॥ अश्रुपूर्णमुखीदीना प्रस्थितागोकुलम्प्रति ॥ ५३ ॥ वेपमानाभयोद्विग्ना शोकसागरमध्यगा ॥ करिणीवहिरौद्रेण ग्राहेणातुबलीयसा ॥ ५४ ॥ ततःसागोकुलंप्राप्ता रम्भमाणामुहुर्मुहुः ॥ तस्याःशब्दंततःश्रुत्वा ज्ञात्वावत्सस्स्वमातरम् ॥ ५५ ॥ सम्मुखःप्रययौतूर्णमूर्द्धपुच्छःप्रहर्षितः ॥ अकालागमनंतस्या रौद्रंहम्भारवन्तथा ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वाश्रुत्वाचवत्सोसौ शङ्कितःपरिपृच्छति ॥ ५७ ॥ वत्स उवाच ॥ नतेपश्यामिसौम्यत्वं दुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥

हो ॥ ५२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि मृगेंद्र (व्याघ्र) से आज्ञा दीहुई पुत्रवत्सला कपिला आंसुवों से पूर्णमुखी व उदासीन होकर गोकुल को चली ॥ ५३ ॥ कांपतीहुई व डरसे विकल वह गऊ बलवान् व भयंकर ग्राहसे ग्रस्तहथिनी की नाईं शोकसमुद्र के मध्य में प्राप्त हुई ॥ ५४ ॥ तदनन्तर बार २ रांभती हुई वह गोकुल को प्राप्तहुई तदनन्तर उसका शब्द सुनकर बछड़ा अपनी माता को जानकर ॥ ५५ ॥ पूंछको ऊपर कर प्रसन्न होकर शीघ्रही सामने चला उसका बिनसमय में आगमन व भयंकर हुंभाशब्द को ॥ ५६ ॥ देख सुनकर शंकित होताहुआ वह बछड़ा पूछने लगा ॥ ५७ ॥ बछड़ा बोला कि मैं तुम्हारी सौम्यता को नहीं देखता हूं और तुम

उदासीनमी देख पड़ती हो व अन्य समयमें तुम किसलिये आई हो इसको मुझसे कहिये ॥ ५८ ॥ कपिला बोली कि हे पुत्र ! मेरे स्तन को पियो व कारण को भी मुझसे सुनो तुम्हारे स्नेह से मैं आईहूं इच्छा के अनुकूल तृप्ति कीजिये ॥ ५६ ॥ हे पुत्र ! विनअन्तवाला माता का दर्शन वृथा है हे पुत्र ! आज मुझको जाना चाहिये क्योंकि सौगन्दों से आई हू ॥ ६० ॥ व इच्छारूपी व्याघ्र को मुझको जीव देना चाहिये हे पुत्र तुम्हारे कारण उसने मुझको सौगन्दों से छोडा है ॥ ६१ ॥ हे पुत्र ! आज मुझको वहा व्याघ्र के समीप जानाचाहिये क्योंकि सौगन्दोंसे बँधी हुई मैं शरीर को दूंगी ॥६२॥ वछड़ा बोला कि जहां तुम जानेकी इच्छा करतीहो

किमर्थमन्यवेलायां समायातावदस्वमे ॥ ५८ ॥ कपिलोवाच ॥ पिवपुत्रस्तनंमह्यं कारणंचापिमेशृणु ॥ आगताहन्त वस्नेहात्कुरुतृप्तिंयथेप्सितम् ॥ ५९ ॥ अपश्चिममिदंपुत्र दुर्लभंमातृदर्शनम् ॥ मयाद्यपुत्रगन्तव्यं शपथैरागतायतः ॥ ६० ॥ व्याघ्रस्यकामरूपस्य दातव्यंजीवितंमया ॥ तेनाहंशपथैर्मुक्ता कारणात्तवपुत्रक ॥ ६१ ॥ मयाद्यतत्रगन्तव्यं मृगराजसमीपतः ॥ बद्धाचशपथैःपुत्र दास्यामिचकलेवरम् ॥ ६२ ॥ वत्स उवाच ॥ अहन्तत्रगमिष्यामि यत्रत्वं गन्तुमिच्छसि ॥ श्लाघ्यंहिमरणंमेच त्वयासहनसंशयः ॥ ६३ ॥ एकाकिनापिमर्तव्यं मयायस्मात्त्वयाविना ॥ यदि मांसहितंतत्र त्वयाव्याघ्रोवधिष्यति ॥ ६४ ॥ यागतिर्मातृभक्तानां ध्रुवंसामेभविष्यति ॥ तस्मादवश्यंयास्यामि त्वया सहनसंशयः ॥ ६५ ॥ अथवात्रैवतिष्ठत्वं शपथास्सन्तुमेतव ॥ तवस्थानेप्रयास्यामि मातस्त्वंयदिमन्यसे ॥ ६६ ॥ जनन्याविप्रयुक्तस्य जीवितंनहिमेप्रियम् ॥ नास्तिमातृसमःकश्चिद्बालानांक्षीरजीविनाम् ॥६७॥ नास्तिमातृसमोनाथो

वहां मैं जाऊँगा क्योंकि तुम्हारे साथ मेरा मरना प्रशमनीय है इसमें सन्देह नहीं है ॥६३॥ जिसलिये कि तुम्हारे बिना मुझको अकेले भी मरना होगा और यदि वहां व्याघ्र तुमसमेत मुझको मारैगा ॥ ६४ ॥ तो जो गति माताके भक्तों की होती है वह निश्चयकर मेरी होगी इसलिये मैं तुमसमेत अवश्य जाऊगा इस मे सन्देह नहीं है ॥ ६५ ॥ अथवा तुम यहीं स्थित होवो तुम्हारे शपथ मुझको होवैं हे मातः ! यदि तुम मानो तो मैं तुम्हारे स्थान में जाऊगा ॥ ६६ ॥ क्योंकि माता से बिछुड़े

हुये मुझको जीवन प्रिय नहीं है दूधमे जीनेवाले बालकों को माता के समान कुछ नहीं है ॥ ६७ ॥ माता के समान स्वामी नही है व माता के समान गति नहीं है जो पुत्र माता में निरत (स्नेही) हैं वे उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥ कपिला बोली कि हे पुत्र ! इससमय मेरीही मृत्यु विहित है तुम्हारी नहीं है क्योंकि अन्यकी मृत्युसे अन्य प्राणियों की यह मृत्यु नहीं होती है ॥ ६६ ॥ व हे पुत्र ! सावधान होकर तुम अन्तमें सुखदायक इस पिछले माता के उत्तम संदेश को सुनो ॥ ७० ॥ कि हे वत्स ! वन में चरतेहुये तुम सदैव सावधान में तत्पर होवो क्योंकि असावधानता से निस्सन्देह सब प्राणी नाश होजाते हैं ॥ ७१ ॥ व विषम (ऊंचे

नास्तिमातृसमागतिः ॥ येमातृनिरताःपुत्रास्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ६८ ॥ कपिलोवाच ॥ ममैवविहितोमृत्युर्नते पुत्रकसाम्प्रतम् ॥ नचायमन्यभूतानां मृत्युस्स्यादन्यमृत्युतः ॥ ६९ ॥ अपश्चिममिदम्पुत्र मातुःसन्देशमुत्तमम् ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वा परिणामसुखावहम् ॥ ७० ॥ वनेचरस्सदावत्स अप्रमादपरोभव ॥ प्रमादात्सर्वभूतानि विनश्यन्ति नसंशयः ॥ ७१ ॥ नचलोभस्तुकर्त्तव्यो विषमस्थेतृणेकचित ॥ लोभादिनाशोजन्तूनामिहलोकेपरत्रच ॥ ७२ ॥ समुद्रमटवींयुद्धं विशन्तेलोभमोहिताः ॥ लोभादकार्यमत्युग्रं कुर्वन्तित्याज्यएवतत् ॥ ७३ ॥ लोभात्प्रमादाद्विस्रम्भात्पुरुषोबाध्यतेत्रिभिः ॥ तस्माल्लोभोनकर्त्तव्यो नप्रमादोनविश्वसेत् ॥ ७४ ॥ आत्माचसततंपुत्र रक्षितव्यःप्रयत्नतः ॥ सर्वेभ्यश्चापदेभ्यश्च म्लेच्छेभ्यस्त्वसुरादितः ॥ ७५ ॥ तिर्यग्भ्यःपापयोनिभ्यः सदाचचरतावने ॥ नचशोकस्त्वया

नीचे) में स्थित तृणमें कभी लोभ न करना चाहिये क्योंकि लोभसे इसलोक व परलोक में प्राणियों का नाशहोता है ॥ ७२ ॥ और लोभसे मोहित मनुष्य समुद्र, जंगल व युद्धमें पैठजाते हैं व लोभ से मनुष्य अत्यन्त उग्र अकार्य को करते हैं इसकारण लोभ त्यागनेही योग्यहै ॥ ७३ ॥ मनुष्य लोभ, प्रमाद व विश्वास तीनों से बाधित होता है इसलिये लालच व प्रमाद (असावधानता) न करना चाहिये और न विश्वासकरै ॥ ७४ ॥ व हे पुत्र ! सब हिंसक जीवोंसे व म्लेच्छों तथा दैत्यादिकोंसे शरीरको बड़े यत्नसे सदैव रक्षा करनाचाहिये ॥ ७५ ॥ और वनमें चरतेहुये तुमको सदैव तिर्यक्योनिवाले व पापयोनिवाले प्राणियों से रक्षा करनाचाहिये और तुमको शोच न

करना चाहिये क्योंकि निश्चयकर सबका मरण है ॥ ७६ ॥ और हमसे शोक के नाशनेवाले वचन को सुनिये कि जैसे कोई छायाकी इच्छावाला पथिक वृक्ष के आश्रित हुआ ॥ ७७ ॥ और सहताकर वह फिर चलाजाता है वैसेही प्राणियों का समागम होता है ॥ ७८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस बछड़ासे ऐसा कहकर व मस्तक में चाटकर तदनन्तर अपनी माता व सखीगणको देखने के लिये आई ॥ ७९ ॥ तदनन्तर पुत्रके शोकसे दुःखित उसने, वचन कहा कि हे माताओ ! इस मेरे पिछले वचन को सुनिये ॥ ८० ॥ कि तुम सब अनाथ, निर्बल, दीन व दूधके फेनको पीनेवाले तथा माताके शोच से संतप्त मेरे पुत्रकी रक्षा कीजियेगा ॥ ८१ ॥ और

कार्यः सर्वस्यमरणंध्रवम् ॥ ७६ ॥ अस्माकंप्रतिवाचंच शृणुशोकविनाशनीम् ॥ यथाहिपथिकःकश्चिच्छायार्थीवृक्षमाश्रितः ॥ ७७ ॥ विश्रान्तश्चपुनर्याति तद्वद्भूतसमागमः ॥ ७८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंसम्भाष्यतंवत्समवलिह्यचमूर्द्धनि ॥ स्वांमातरंसखीवर्गं ततोद्रष्टुमुपागता ॥ ७९ ॥ अब्रवीच्चततोवाक्यं पुत्रशोकेनदुःखिता ॥ अम्बाःशृणवन्तुमेवाक्यमपश्चिममिदंस्फुटम् ॥ ८० ॥ अनाथमबलंदीनंफेनपंममपुत्रकम् ॥ मातृशोकाभिसन्तप्तं सर्वास्तंपालयिष्यथ ॥ ८१ ॥ भाविनीनामयापुत्रः साम्प्रतंचविशेषतः ॥ तयापाययितव्योसौ तुष्यःपाल्यस्स्वपुत्रवत् ॥ ८२ ॥ चरन्तंविषमेस्थाने चरन्तंपरगोकुले ॥ अकार्येषुप्रवर्त्तन्ते हेसख्योवारयिष्यथ ॥ ८३ ॥ क्षमध्वंचमहाभागायास्येहंसत्यसंश्रयात् ॥ यत्रासौ तिष्ठतेव्याघ्रो मुक्ताहंयेनसाम्प्रतम् ॥ ८४ ॥ सर्वास्तावचनंश्रुत्वा तस्याःशोकसमन्विताः ॥ विषादंपरमंगत्वा वाक्यमूचुःसुदुःखिताः ॥ ८५ ॥ कपिलेनैवगन्तव्यं नतेदोषोभविष्यति ॥ प्राणात्ययेनदोषोस्ति सम्परायेचदारुणे ॥ ८६ ॥ अत्र

जो भाविनीनामकहै उसको इससमय विशेषकर दूधपीनेवाले इस पुत्रको अपने पुत्रकी नाईं पिलाना चाहिये व प्रसन्न तथा पालन करनाचाहिये ॥ ८२ ॥ हे सखियो ! विषम स्थान में चरते व पराये गोकुल में चरतेहुये तथा अकार्यों में वर्तमान पुत्रको तुम सब मना कीजियेगा ॥ ८३ ॥ व हे महाभागाओ ! क्षमा कीजियेगा मैं सत्य के आश्रय से वहां जाती हूं जहां यह व्याघ्र टिका है कि जिसने इससमय मुझको छोड़ा है ॥ ८४ ॥ वे सब उसके वचन को सुनकर शोचसंयुत हुईं, और बड़े विषाद को प्राप्त होकर दुःखित होती हुई उन्हों ने कहा ॥ ८५ ॥ किहे कपिले ! तुमको न जानाचाहिये और तुमको दोष न होगा क्योंकि भयंकर मरण व प्राण

क्लेश में दोष नहीं होता है ॥ ८६ ॥ इस विषय में पुरातनसमय धर्मवादी मुनियों ने गाथा को गाया है कि प्राणान्त प्राप्त होनेपर सौगन्द में पाप नहीं होता है ॥ ८७ ॥ कपिला बोली कि अन्यप्राणियों की प्राणरक्षा के लिये मैं झूठ वचन कहती हूं और अपनेलिये थोड़ा भी झूठ कहने के लिये कभी उत्साह नहीं करती हूं ॥ ८८ ॥ क्योंकि हज़ार अश्वमेध व सत्य तराजू से धारण किया जावै तो हज़ार अश्वमेध से सत्यही विशेष (अधिक) होता है ॥ ८६ ॥ इसलिये जीने की आशा से मैं अपना को झूंठ न करूंगी मुझको श्रेष्ठ आपलोग आज्ञा देवो मैं वहा जाऊंगी जहा कि मृगाधिप (व्याघ्र) है ॥ ९० ॥ सखियां बोलीं कि

गाथापुरागीता मुनिभिर्धर्मवादिभिः ॥ प्राणात्ययेसमुत्पन्ने शपथेनास्तिपातकम् ॥ ८७ ॥ कपिलोवाच ॥ परेषांप्राणरक्षार्थं वदाम्येवानृतंवचः ॥ नात्मार्थमुत्सहेवक्तुं स्वल्पमप्यनृतंकचित् ॥ ८८ ॥ अश्वमेधसहस्रंवै सत्यंचतुलयाधृतम् ॥ अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवविशिष्यते ॥ ८९ ॥ तस्मान्नानृतमात्मानं करिष्येजीविताशया ॥ आज्ञापयन्तुमामार्या यास्येयत्रमृगाधिपः ॥९०॥ वयस्या ऊचुः ॥ कपिलेत्वंनमस्कार्या सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ यात्वंपद्मसत्त्वेन प्राणांस्त्यजसिदुस्त्यजान् ॥ ९१ ॥ अवश्यंनचतेभावी मृत्युस्सत्यात्कथञ्चन ॥ प्रमाणंयदिसत्यंहि व्रजपन्थाःशिवोस्तुते ॥ ९२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्ताचकपिला गतायत्रमृगाधिपः ॥ अथासौकपिलांदृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ९३ ॥ अब्रवीत्प्राश्रितंवाक्यं हर्षगद्गदयागिरा ॥ ९४ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ स्वागतंतवकल्याणि कपिलेसत्यवादिनि ॥ नहिसत्यवतांकिञ्चिदशुभंविद्यतेकचित् ॥ ९५ ॥ त्वयोक्तंकपिलेपूर्वं शपथैरागमोत्तमम् ॥ तेनमेकौतुकंजातं गत्वागच्छेःपुनः

हे कपिले ! तुम सबभी देवताओं व दैत्यों से नमस्कार करनेयोग्य हो जो तुम कि उत्तम सत्त्व से दुस्त्यज प्राणों को छोड़ती हो ॥ ९१ ॥ और सत्य से किसीप्रकार तुम्हारी मृत्यु न होगी यदि सत्य प्रमाण है तो जाइये तुम्हारा कल्याणमय मार्ग होवै ॥ ९२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहीहुई कपिला वहां गई जहां कि व्याघ्र था इसके अनन्तर यह व्याघ्र कपिला को देखकर विस्मय से प्रफुल्लितलोचन हुआ ॥ ९३ ॥ और हर्ष से गद्गदी वाणी करके उसने नम्रवचन को कहा ॥ ९४ ॥ व्याघ्र बोला कि हे सत्यवादिनि, कल्याणि, कपिले ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ और सत्यवाले प्राणियों को कहीं कुछ अशुभ नहीं होता है ॥ ९५ ॥ हे कपिले !

तुमने पहले सौगन्दों से उत्तम आगमन को कहा था उससे मुझको कौतुक हुआ कि जाकर तुम कैसे फिर आवोगी ॥ ९६ ॥ इसलिये मुझसे छोड़ी हुई तुम वहां जाओ जहां कि दूधपीनेवाला व बहुत दुःखित यह तुम्हारा पुत्र गोकुल में बँधा हुआ स्थित है ॥ ९७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसीसमय में वह राजा के स्वरूप को प्राप्त हुआ और मृगी के शाप से छूटाहुआ वह दिव्यरूपवाले शरीर को धारण करता भया ॥ ९८ ॥ तदनन्तर प्रसन्न चित्तवाले उसने सत्यवादिनी कपिला से कहा ॥ ९९ ॥ राजा बोले कि तुम्हारी प्रसन्नता से मैं इस बहुत भयंकर शाप से छूट गया हे धेनुके ! मैं इससमय तुम्हारा क्या प्रिय करूं शीघ्रही कहिये ॥ १०० ॥

कथम् ॥ ९६ ॥ तस्माद्गच्छमयामुक्ता यत्रासौतनयस्तव ॥ तिष्ठतेगोकुलेबद्धः क्षीरपायीसुदुःखितः ॥ ९७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सराजप्रकृतिंगतः ॥ मृगीशापेननिर्मुक्तो दिव्यरूपवपुर्धरः ॥ ९८ ॥ ततोब्रवीत्प्रहृष्टात्मा कपिलांसत्यवादिनीम् ॥ ९९ ॥ राजोवाच ॥ प्रसादात्तवमुक्तोहं शापादस्मात्सुदारुणात् ॥ किन्तेप्रियंकरोम्यद्य धेनुके ब्रूहिसत्वरम् ॥ १०० ॥ कपिलोवाच ॥ कृतकृत्यास्मिराजेन्द्र यत्त्वंमुक्तोसिकिल्बिषात् ॥ पिपासाबाधतेत्यर्थं साम्प्रतं जलमानय ॥ १ ॥ नोचेन्मृतांविजानीहि सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ २ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथासौपार्थिवोराजंश्चापमा दायसत्वरम् ॥ सज्यंकृत्वाशरंगृह्य जघानधरणीतलम् ॥ ३ ॥ ततःसलिलमुत्तस्थौ निर्मलंशीतलंशुभम् ॥ तत्रसाक पिलास्नाता वितृषासमपद्यत ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेधर्मः स्वयंतत्रसमागतः ॥ अब्रवीत्कपिलांहृष्टो वरंवरयशोभने ॥ ५ ॥ तवसत्येनतुष्टोहं नास्तितेसदृशीक्वचित् ॥ त्रैलोक्येसकलेधेनुर्नभविष्यतिवैशुभे ॥ ६ ॥ कपिलोवाच ॥ प्रसादात्त

कपिला बोली कि हे नृपेन्द्र ! जो तुम पापसे छूटगये इससे मैं कृतार्थ हूं और इससमय प्यास बहुत पीड़ा करती है इससे जल लावो ॥ १ ॥ नहीं तो मुझको मरीहुई जानिये यह मैंने सत्य कहा है ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! इसके अनन्तर इस राजाने शीघ्रही धनुषको लेकर व चढ़ाकर बाणको लगाकर पृथ्वीको मारा ॥ ३ ॥ तदनन्तर निर्मल व ठण्डा उत्तम जल निकला उसमें नहाईहुई वह कपिला प्यासरहित हुई ॥ ४ ॥ इसीअवसर में आपही धर्मराज वहां आये और कपिलासे प्रसन्न होकर बोले कि हे शोभने ! वरदानको मांगिये ॥ ५ ॥ हे शुभे ! तुम्हारे सत्यसे मैं प्रसन्न हूं और तुम्हारे समान सब त्रिलोकमें कहीं गऊ नहीं है न होवेगी ॥ ६ ॥

कपिला बोली कि तुम्हारी प्रसन्नता से मैं सुप्रभ राजासमेत जरामरण से रहित उत्तम गोकुल स्थान को जाऊं ॥ ७ ॥ और यह पवित्र जलाशय मेरे नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त होवै और मनुष्यों के सब पापों का हरनेवाला व सब कामनाओं का देनेवाला होवै ॥ ८ ॥ धर्मराज बोले कि जो मनुष्य विशेषकर चौदसि तिथिमें इस उत्तम व पवित्रजलमें स्नान करैंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवैंगे ॥ ९ ॥ और तुम्हारे नामसे यह बहुत पवित्र तीर्थ होगा और इसके दर्शन मे मनुष्य हज़ार गोओंमे उपजेहुये फलको पावैगा ॥ १० ॥ और स्नान से लाखगुना पुण्य व दानसे अक्षय पुण्य होगा और भलीभाति सावधान होतेहुये जो मनुष्य यहा श्राद्ध करैंग ॥ ११ ॥

वगच्छेयं सहराज्ञासुगोकुलम् ॥ सुप्रभेणपदंदिव्यं जरामरणवर्जितम् ॥ ७ ॥ मन्नाम्नाख्यातिमायातु पुण्यमेतज्जलाशयम् ॥ सर्वपापहरन्नृणां सर्वकामप्रदन्तथा ॥ ८ ॥ धर्म उवाच ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति सुपुण्येसलिलेशुभे ॥ चतुर्दश्यांविशेषेण तेयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥ ९ ॥ तवनाम्नासुपुण्यंहि तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ दर्शनादस्यमर्त्यस्तु प्राप्स्यतेगोसहस्रजम् ॥ १० ॥ स्नानाल्लक्षगुणंपुण्यं दानाच्चैवतथाक्षयम् ॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति मानवास्सुसमाहिताः ॥ ११ ॥ सर्वदानफलंतेषां भविष्यतिमहात्मनाम् ॥ अपिकीटपतङ्गाये तृषार्तास्सलिलेशुभे ॥ १२ ॥ मज्जयिष्यन्तियास्यन्ति तेपिस्थानंदिवौकसाम् ॥ किंपुनर्भक्तिसंयुक्तामानवाःसत्यवादिनः ॥ १३ ॥ मनस्विनोमहाभागाःश्रद्धावन्तोविचक्षणाः ॥ १४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु विमानानिसहस्रशः ॥ समायातानिराजेन्द्र कपिलायाःप्रभावतः ॥ १५ ॥ तान्यारुह्याथकपिला सगोपीगोपगोकुला ॥ सुप्रभेणसमायुक्ता तत्पदंपरमङ्गता ॥ १६ ॥

उन महात्माओं को सब दानों का फलहोगा और प्यास से विकल जो कीट व पतंग भी उत्तम जलमें ॥ १२ ॥ मज्जन करैंगे वे भी देवताओं के स्थानको जावैंगे फिर भक्ति से संयुत व सत्यवादी मनुष्यों को क्या कहना है ॥ १३ ॥ जो कि मनस्वी व महाभाग और श्रद्धावान् तथा चतुर हैं ॥ १४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! इसीसमय में कपिला के प्रभावसे हजारों विमान आये ॥ १५ ॥ व गोपी, गोप और गोकुलसमेत वह कपिला सुप्रभ राजा संयुत उन विमानों पै चढ़कर उस

उत्तम स्थान को चलीगई ॥ ३६ ॥ इसलिये हे नृपोत्तम ! उसमें सब उपाय से स्नान व श्राद्ध करै और अपनी शक्ति से दान करै ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे देवीदयालुभिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकपिलातीर्थमाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । है उत्तम माहात्म्ययुत अग्नितीर्थ इमि नाम । सोइ तीस अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर मनुष्यों को परमपवित्र-कारक अग्नितीर्थ को जावै वहां पुरातनममय अग्नि नष्ट होगई व देवताओंको मिली भी है ॥ १ ॥ ययातिजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पुरातनसमय भगवान्

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ श्राद्धञ्चैवात्मनःशक्त्या दानंपार्थिवसत्तम ॥११७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकपिलातीर्थप्रभावमाहात्म्यन्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ अग्नितीर्थन्ततोगच्छेत्पावनंपरमन्नृणाम् ॥ तत्रवह्निःपुरानष्टोलब्धश्चत्रिदशैरपि ॥ १ ॥ ययातिरुवाच ॥ किमर्थंभगवान्वह्निः पुरानष्टोद्विजोत्तम ॥ कथंतत्रैवलब्धस्तु कौतुकंमेमहामुने ॥ २ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ पुरावृष्टिनिरोधोभूद्यावद्द्वादशवत्सरान् ॥ संशयंपरमंप्राप्तः सर्वलोकःक्षुधार्दितः ॥ ३ ॥ प्रायोमर्त्योमृतप्रायः शेषोभूद्धरणीतले ॥ विनष्टारण्यजाग्राम्याः पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ ४ ॥ एवंकृच्छ्रमनुप्राप्ते मर्त्यलोकेनराधिप ॥ विश्वामित्रोमुनिवरः सन्देहंपरमङ्गतः ॥ ५ ॥ अन्नौषधिरसाभावादस्थिशेषोऽव्यजायत ॥ अन्यस्मिन्दिवसेप्राप्ते क्षुत्क्षामःपर्यटन्दिशः ॥ ६ ॥ चाण्डालनिलयेप्राप्तः क्षुत्तृष्णापीडितोभृशम् ॥ तत्रापश्यन्मृतंश्वानं शुष्कंपार्थिवसत्तम ॥ ७ ॥

अग्निजी किसलिये नष्ट होगये और हे महामुने ! किसप्रकार वहीं मिले हैं यह मुझको कौतुक है ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि पुरातनसमय बारह वर्ष तक वृष्टि का निरोध (अवर्षण) हुआ और क्षुधा से विकल सब संसार बड़े सन्देह को प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ और पृथ्वी में प्रायः मनुष्य मरगये व बचेहुये मृतप्राय होगये और जंगल में उपजेहुये व गांववाले पशु, पक्षी व मृग नाश होगये ॥ ४ ॥ हे नराधिप ! इसप्रकार मृत्युलोक को क्लेश में प्राप्त होनेपर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी बड़े सन्देह को प्राप्त हुये ॥ ५ ॥ और अन्न, औषधी व रसके अभाव से अस्थिमात्र शेष रहगये अन्यदिन प्राप्त होनेपर दिशाओं को पर्यटन करतेहुये क्षुधा से दुबले ॥ ६ ॥ व क्षुधा,

प्यास से बहुतही विकल विश्वामित्रजी चंडाल के घरमें प्राप्त हुये हे नृपोत्तम ! वहा उन्होंने मरेहुये सूखे कुत्ते को देखा ॥ ७ ॥ व उसको लेकर घरमें प्राप्त हुये तदनन्तर क्षुधा से दुबले विश्वामित्रजीने जलसे धोकर उसको पकाया व अग्नि में हवन किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर हे महामुने, नृप ! अग्निने अभक्ष्यका भक्षण जानकर अग्नि ने इन्द्र के ऊपर बहुतही क्रोध किया ॥ ९ ॥ कि नष्ट औषधी व रसोंवाले संसार में यह इससमय योग्य है कि जैसी हवि भोज्य होवै वैसी अग्नि के भक्षण में विशेषकर होवै ॥ १० ॥ और मैं अभक्ष्य को नहीं भक्षण करूंगा व पृथ्वीमंडल को छोड़दूगा कि जिससे इन्द्रादिक देवता बहुत क्लेश की दशा को प्राप्त

तमादायगृहम्प्राप्तः प्रक्षाल्यसलिलेनच ॥ क्षुत्क्षामःपाचयामास ततस्तंपावकेजुहोत् ॥ ८ ॥ अभक्ष्यभक्षणंज्ञात्वा हव्यवाहस्ततोनृप ॥ शक्रस्योपरिमन्युञ्च चक्रेतीवमहामुने ॥ ९ ॥ नष्टौषधरसेलोके युक्तमेतद्धिसाम्प्रतम् ॥ यादृग्भोज्यंहविस्तादृगग्निभक्षेविशिष्यते ॥ १० ॥ नाभक्ष्यंभक्षयिष्यामि त्यजिष्येक्षितिमण्डलम् ॥ येनशक्रादयोदेवा यान्तिकष्टतरांदशाम् ॥ ११ ॥ एवंसञ्चिन्त्यमनसा सकोपोहव्यवाहनः ॥ प्रणष्टःसकलंहित्वा मर्त्यलोकंचराचरम् ॥ १२ ॥ प्रणष्टेसहसावह्नावग्निष्टोमादिकाःक्रियाः ॥ प्रणष्टास्तुजनस्सर्वो वसिष्ठःसंशयङ्गतः ॥ १३ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे सन्देहंपरमङ्गताः ॥ यज्ञभागविहीनत्वान्मन्त्रंचक्रुस्ततोमिथः ॥ १४ ॥ त्यक्तस्तुवह्निनामर्त्यस्ततोनाशङ्गतानराः ॥ तेषांनाशाद्वयंसर्वे विनङ्क्ष्यामोनसंशयः ॥ १५ ॥ तस्मादन्वेष्यतांवह्निर्यत्रतिष्ठतिसाम्प्रतम् ॥ यथाचरति मर्त्येच तथानीतिर्विधीयताम् ॥ १६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंतेनिश्चयंकृत्वा सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ अन्वेषयंस्तथाग्नि

होवैं ॥ ११ ॥ ऐसा मनसे विचारकर क्रोधसमेत अग्निजी चराचर सब मृत्युलोक को छोड़कर नष्ट होगये ॥ १२ ॥ व अचानकही अग्नि के नष्ट होनेपर अग्निष्टोमादिक कर्म नाश होगये व सब मनुष्य और वसिष्ठजी सन्देहको प्राप्तहुये ॥ १३ ॥ तदनन्तर सब देवगण बड़े सन्देहको प्राप्त हुये उसके उपरान्त यज्ञ भागहीन होने के कारण उन्होंने परस्पर सलाह किया ॥ १४ ॥ कि अग्निने मृत्युलोक को छोड़ दिया उसकारण मनुष्य नाशको प्राप्तहुये और उनके नाशसे हमसब निरसंदेह नाश होजावैंगे ॥ १५ ॥ इसलिये इससमय जहा स्थित होवै वहा अग्नि ठंडी होजावै और जिसप्रकार मृत्युलोक में विचरै वैसीही नीति की जावै ॥ १६ ॥ पुलस्त्यजी

बोले कि इसप्रकार निश्चयकर इन्द्रसमेत उन सब देवताओं ने सब ओर पृथ्वीमंडल में अग्नि को ढूंढ़ा ॥ १७ ॥ और आगे सुवाको देखकर उन थकेहुये सब देवताओं ने श्रद्धा से पूंछा कि यदि अग्निको तुमने देखाहो तो कहिये ॥ १८ ॥ शुक बोला कि जो यह आगे बड़ाभारी बास अग्नि के संग से जलाया गया है इसमें छिपहुये महाप्रकाशमान अग्नि को मैंने देखा है ॥ १९ ॥ शुक से बतलायेहुये अग्नि ने उसको शापदिया कि मनुष्यों के आगे तुम्हारी वाणी गद्गदी होवै यह कहकर शीघ्रही चलेगये ॥ २० ॥ और शमीगर्भवाले उत्तम पीपल के वृक्ष में पैठगये और वहां स्थित उस अग्नि को गजराज ने देवताओं से कहा और

तु समन्तात्क्षितिमण्डले ॥ १७ ॥ शुकन्तेपुरतोदृष्ट्वा सर्वेश्रान्तादिवौकसः ॥ पप्रच्छुःश्रद्धयावह्निर्यदिदृष्टःप्रकथ्यताम् ॥ १८ ॥ शुक उवाच ॥ योयंवंशोमहानग्रे प्रदग्धोवह्निसङ्गतः ॥ प्रणष्टोहव्यवाहोत्र मयादृष्टोमहाद्युतिः ॥ १९ ॥ शुकेनवेदितोवह्निरशयन्मनुजाग्रतः ॥ गद्गदाभाविताबाणी प्रोक्त्वेदंप्रस्थितोद्भुतम् ॥ २० ॥ प्रविवेशशमीगर्भमश्वत्थंतरुसत्तमम् ॥ तत्रस्थोद्विपराज्ञास कथितोविबुधान्प्रति ॥ सतम्प्रोवाचतेजिह्वा विपरीताभविष्यति ॥ २१ ॥ ततोजलाशयंगत्वा पर्वतेऽर्बुदसञ्ज्ञके ॥ प्रविष्टोभगवान्वह्निर्यथादेवैर्नलक्ष्यते ॥ २२ ॥ तत्रस्थोदर्दुरेणैव तेषांप्रोक्तोहुताशनः॥ अत्रासौतिष्ठतेवह्निर्निर्झरेपर्वतस्यच ॥ २३ ॥ दग्धाश्चजलजास्सर्वे सुतप्तेनैववारिणा ॥ कृच्छ्रादहंविनिष्क्रान्तःतस्मान्मृत्युमुखात्सुराः ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वायत्नमास्थाय प्रविष्टोहव्यवाहनः ॥ भविष्यसिविजिह्वस्त्वं शप्त्वातंदर्दुरन्नृप ॥ २५ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे निष्क्रान्ताःसलिलाश्रयात् ॥ संवेष्टयतुष्टुवुस्सर्वेस्तवैर्वेदोद्भवैर्नृप ॥ २६ ॥ देवा ऊचुः ॥

उससे उन अग्निदेव ने कहा कि तुम्हारी जिह्वा उलटी होगी ॥ २१ ॥ तदनन्तर अर्बुदसंज्ञक पर्वतपै जाकर भगवान् अग्निजी जलाशय में वैसेही पैठगये कि जिस प्रकार देवता न देख पावैं ॥ २२ ॥ और वहां टिकेहुये अग्निको उन देवताओं से मेढक ने कहा कि यहां पर्वत के झरने में ये अग्निजी टिके हैं ॥ २३ ॥ और बहुत ही गरम जलमे सब जलमें उपजेहुये प्राणी जलगये व हे देवताओ ! मैं उस मृत्यु के मुखसे क्लेश से निकला हूं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उस वचन को सुनकर यत्न में स्थित होकर पैठेहुये अग्नि ने कहा कि तुम जिह्वा से रहित होगे इसप्रकार उस मेढक को शाप देकर स्थित हुये ॥ २५ ॥ तदनन्तर सब देवताओंके गण जलाशय

से निकले व हे राजन्! सबोंने घेरकर वेदसे उपजेहुये स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ २६ ॥ देवता बोले कि हे पावक, अग्ने! तुम सब प्राणियों के भीतर विचरते हो और तुमसे हीन सब संसार शीघ्रही नाश होजावैगा ॥ २७ ॥ तुम सब देवताओंका मुखहो और तुम में लोक स्थित हैं और तुमसे पृथ्वीलोक त्यागने पर इन्द्रसमेत हम सब ॥ २८ ॥ विनाशही को प्राप्त होवैंगे इसलिये तुम रक्षा करने योग्यहो तुम ब्रह्माहो तुम महादेव हो तुम विष्णुहो व तुम सूर्यनारायणहो ॥ २९ ॥ व तुम चन्द्रमा हो तुम कुबेरहो तुम वरुणहो तुम इन्द्रहो व हे हुताशन! इन्द्रादिक सब देवता तुम्हारे अधीन हैं ॥ ३० ॥ हे भगवन्! किसलिये मृत्युलोकको छोड़कर तुम यहां

त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिपावक ॥ त्वयाहीनंजगत्सर्वं नाशंयास्यतिसत्वरम् ॥ २७ ॥ त्वंमुखंसर्वदेवानां त्वयि लोकाःप्रतिष्ठिताः ॥ भूलोकेचत्वयात्यक्ते वयंसर्वेसवासवाः ॥ २८ ॥ विनाशमेवयास्यामः तस्मात्त्वंत्रातुमर्हसि ॥ त्वं ब्रह्मात्वंमहादेवः त्वंविष्णुस्त्वंदिवाकरः ॥ २९ ॥ त्वंचन्द्रस्त्वंचधनदो वरुणस्त्वंसुरेश्वरः ॥ इन्द्राद्याविबुधास्सर्वे त्वदायत्ताहुताशन ॥ ३० ॥ किमर्थंभगवन्मर्त्यं त्यक्त्वात्रत्वंचसंस्थितः ॥ किमर्थंभगवन्नस्मान्नागांस्त्यक्तुमिच्छसि ॥ ३१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ वेष्टितोभगवान्वह्निर्देवैःस्तुतिपरायणैः ॥ तस्यैवनिर्झरस्याथ तटस्थोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ वह्निरुवाच ॥ अभक्ष्यभक्षणेशक्रो मामिच्छतिनियोजितुम् ॥ तेनैवनकरोत्येष वृष्टिंमर्त्येसुरेश्वरः ॥ ३३ ॥ अतोहं भूतलंत्यक्त्वा प्रविष्टोनिर्झरेत्विह ॥ प्रणष्टान्नरसेलोके नचाहंस्थातुमुत्सहे ॥ ३४ ॥ शुक्र उवाच ॥ शृणुयस्मान्मयारोधः कृतोवृष्टेर्हुताशन ॥ देवापिर्नामधर्मज्ञः क्षत्रियाणांयशस्करः ॥ ३५ ॥ प्रतीपस्यसुतस्साधुः सर्वशीलवतांवरः ॥

स्थित हुये हो व हे भगवन्! अपराधहीन हमलोगों को तुम किसलिये त्यागना चाहतेहो ॥ ३१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि स्तुति में लगेहुये देवताओं से घिरेहुये व उसी झरना के किनारे बैठेहुये भगवान् अग्नि ने वचन कहा ॥ ३२ ॥ अग्नि बोले कि इन्द्रजी मुझको अभक्ष्य के भक्षण में नियुक्त करना चाहते हैं उसीसे ये इन्द्र मृत्युलोक में वर्षा नहीं करते हैं ॥ ३२ ॥ इसकारण मैं पृथ्वी को छोड़कर इस झरनेमें पैठगया क्योंकि नष्ट अन्न व रसोंवाले संसारमें मैं स्थित होनेके लिये उत्साह नहीं करता हूं ॥ ३४ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे हुताशन! जिसलिये मैंने वृष्टिका निरोध कियाहै उसको सुनिये कि क्षत्रियोंके यशको करनेवाला देवापिनामक धर्मज्ञ ॥ ३५ ॥

प्रतीप का पुत्र साधु व सब शीलवानों में श्रेष्ठ था जब देवापि वन को चलेगये तब पहले पैदाहुये जेठे भाईको ॥ ३६ ॥ छोड़कर उन प्रतीप के छोटे पुत्र शन्तनु ने राज्य को ग्रहण किया इसकारण से उनके राज्य में वृष्टि नहीं की गई ॥ ३७ ॥ व हे हुताशन ! लौटिये मैं तुम्हारी आज्ञा से वृष्टि करूंगा पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर इन्द्रजी ने पुष्करावर्तनामक मेघों को ॥ ३८ ॥ पृथ्वी में वृष्टि के लिये शीघ्रही आज्ञा दिया इसके अनन्तर इन्द्र से आज्ञादियेहुये चलतेहुये मेघ ॥ ३९ ॥ जो कि सब गंभीरशब्दवाले थे उन अतिउग्र व द्युतिमान् मेघों ने हे राजन् ! भूतल को बहुत जलों से पूर्ण करदिया ॥ ४० ॥ तदनन्तर भगवान् अग्निजी परम

देवापौचगतेरण्ये ज्येष्ठंभ्रातरमग्रजम् ॥ ३६ ॥ सत्यक्त्वाजगृहेराज्यं शन्तनुस्त्वत्सुतोवरः ॥ एतस्मात्कारणाद्रा ज्ये तस्यवृष्टिर्निराकृता ॥ ३७ ॥ तवादेशात्करिष्यामि निवर्तस्वहुताशन ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षः पुष्करावर्तकान्घनान् ॥ ३८ ॥ द्रुतमाज्ञापयामास वृष्ट्यर्थंजगतीतले ॥ अथशक्रसमादिष्टा विधुन्वन्तोवलाहकाः ॥ ३९ ॥ गम्भीररराविणस्सर्वे भूतलंप्रचुरैर्जलैः ॥ पूरयामासुरत्युग्रा द्युतिमन्तोमहीपते ॥ ४० ॥ ततोगमत्परान्तुष्टिं भग वान्हव्यवाहनः ॥ रोचयामासभूपृष्ठे वसतिंदेवकारणात् ॥ ४१ ॥ देवाऊचुः ॥ तवादेशात्कृतावृष्टिरन्यकार्यंहुताशन ॥ यत्तेप्रियंतदस्माकं सुशीघ्रंविनिवेदय ॥ ४२ ॥ अग्निरुवाच ॥ एतज्जलाशयंपुण्यं मन्नाम्नातीर्थमुत्तमम् ॥ ख्यातिं यातुधरापृष्ठे युष्माकंहिप्रसादतः ॥ ४३ ॥ देवा ऊचुः ॥ अग्नितीर्थमिदंलोके प्रत्याख्यातिंप्रयास्यति ॥ अत्रस्नातोन रःसम्यगग्निलोकंप्रयास्यति ॥ ४४ ॥ यस्तिलान्दास्यतिनरस्तीर्थेस्मिन्सुसमाहितः ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य फलं

प्रसन्नताको प्राप्तहुये व उन्होंने देवताओं के कारण पृथ्वी में निवासकी रुचि किया ॥ ४१ ॥ देवता बोले कि हे हुताशन ! तुम्हारी आज्ञासे वृष्टिकी गई और जो तुमको अन्यकार्य प्रिय होवै उसको शीघ्रही हमलोगों से कहिये ॥ ४२ ॥ अग्नि बोले कि यह पवित्र जलाशय तुमलोगों की प्रसन्नता से मेरे नाम से उत्तम तीर्थ पृथ्वी में प्रसिद्ध होवै ॥ ४३ ॥ देवता बोले कि संसार में यह अग्नितीर्थ प्रसिद्धि को प्राप्त होगा व इसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य अग्निलोक को जावैगा ॥ ४४॥

व सावधान होताहुआ जो मनुष्य इस तीर्थ में तिलोंको देवैगा उसको अग्निष्टोम यज्ञका फल होगा ॥ ४५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! ऐसा कहकर तदनन्तर सब देवता अपने २ स्थान को चलेगये और अग्नि भगवान् पहलेकी नाई वर्तमान हुये ॥ ४६ ॥ और जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर इस अग्नितीर्थ के उत्तम माहात्म्य को पढ़ता है वह सब पातकों से छूटजाता है ॥ ४७ ॥ और सुनताहुआ भी मनुष्य दिनरात्रि में कियेहुये पातक से छूटजाता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामग्नितीर्थप्रभाववर्णननामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥

तस्यभविष्यति ॥ ४५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वासुराःसर्वे स्वंस्वंस्थानंययुस्ततः ॥ वह्निश्चभगवान्राजन् यथापूर्वंन्यवर्त्तत ॥ ४६ ॥ यश्चैतत्पठतेनित्यं प्रातरुत्थायचोत्तमम् ॥ अग्नितीर्थस्यमाहात्म्यं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ४७ ॥ अहोरात्रिकृतात्पापाच्छृण्वन्नपिचमुच्यते ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेर्बुदमाहात्म्येग्नितीर्थप्रभाववर्णनन्नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ रक्षाबन्धंततोगच्छेत्तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यग्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ १ ॥ पुरामीत्पार्थिवोनाम इन्द्रसेनोमहीपतिः ॥ तस्यामीत्सुप्रियाभार्या सुनन्दानामभामिनी ॥ २ ॥ पतिव्रतापतिप्राणा सदापत्युःप्रियेस्थिता ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य सराजासपरिग्रहः ॥ ३ ॥ परदेशङ्गतोहन्तुं शत्रुसङ्घंदुरासदम् ॥ तन्निहत्यधनंभूरि गृहीत्वाप्रस्थितोगृहम् ॥ ४ ॥ ततोप्रेषयामास सद्दूतंकृत्रिमन्नृपः ॥ सुनन्दाब्रूहिगत्वात्वं इन्द्रसेनोहतोरणे ॥ ५ ॥

दो० । रक्तबंध इमि तीर्थ महं पापमुक्त भो भूप । इकतिसवें अध्यायमें सोई चरित अनूप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर त्रिलोक में प्रसिद्ध रक्षाबंधतीर्थ को जावै जिसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य ब्रह्महत्या से छूटजाता है ॥ १ ॥ पुरातनसमय इन्द्रसेननामक पृथ्वीपति राजाहुआ है उसकी सुनन्दानामक प्यारी सुन्दरी स्त्री हुई ॥ २ ॥ वह पतिव्रता व पतिप्राणा तथा सदैव पतिके प्रिय में स्थित थी इसके अनन्तर किसीसमय परिजनसमेत वह राजा ॥ ३ ॥ दुरासद शत्रुसमूह को नाशने के लिये विदेश को गया उसको मारकर व बहुत धनको लेकर घरको चला ॥ ४ ॥ तदनन्तर उस राजा ने आगे कृत्रिम (बनावटवाले) दूतको पठाया

कि जाकर तुम सुनन्दा से कहो कि इन्द्रसेन युद्ध में मारागया ॥ ५ ॥ तदनन्तर मेरी आज्ञा से पतिके ऊपर आकार देखने योग्य है यदि वह स्त्री निश्चयकर पतिके ऊपर मरने चलै ॥ ६ ॥ तो बड़े यत्नसे रक्षा करनेयोग्य है और मनसे उपजाहुआ हास्य कहने योग्य है हे नृपोत्तम ! ऐसा कहाहुआ दूत उसीक्षण गया ॥ ७ ॥ और उस राजाने जो कहा था उसको उससे बतलाया इसके अनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! उसके वचन के अन्त में सुन्दरहास्यवाली व पतिप्राण तथा महापतिव्रता उस सुनन्दा ने प्राणों को छोड़दिया जिससमय शील से शोभित वह सुनन्दा मरी ॥ ८ । ९ ॥ उससमय वह राजाभी उसपापसे संयुत हुआ इसके अनन्तर शरीर के

आकारस्तुततोलक्ष्यः पतिंप्रतिममाज्ञया ॥ यदिसानिश्चयंगच्छेन्मरणंप्रतिभामिनी ॥६॥ तदारक्ष्याप्रयत्नेनवाच्यंहास्य मनोद्भवम् ॥ एवमुक्तोगतोदूतस्तत्क्षणान्नृपसत्तम ॥ ७ ॥ तस्यैनिवेदयामास यदुक्तन्तेनभूभुजा ॥ अथतस्यवचोन्ते सा सुनन्दाचारुहासिनी ॥ ८ ॥ जहौप्राणान्नृपश्रेष्ठ पतिप्राणामहासती ॥ यस्मिन्कालेमृतासातु सुनन्दाशीलमण्ड ना ॥ ९ ॥ तस्मिन्कालेनृपस्सोपि तत्पापेनसमाश्रितः ॥ अथप्राप्ताद्वितीयासा छायागात्रस्यचोपरि ॥ १० ॥ तथागुरु तरंकायं सालस्यंसमपद्यत ॥ तेजोहीनंसुदुर्गन्धं विवर्णंनृपसत्तम ॥ ११ ॥ अथाप्राप्यगृहंराजा श्रुत्वाभार्यासमुद्भवम् । विनाशंदुःखशोकार्तः करुणंपर्यदेवयत ॥ १२ ॥ मज्ञात्वापापमात्मानं स्त्रीहत्यासुविदूषितम् ॥ ब्राह्मणानांसमादेशा त्तीर्थयात्रापरोभवत् ॥ १३ ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकन्तस्याल्पमात्रपरिग्रहः ॥ वाराणस्यांगतापूर्वं तत्रदानंददौबहु ॥ १४ ॥ कपालमोचनेतीर्थे सर्वपापप्रणाशने ॥ त्रिनेत्रोयत्रनिर्मुक्तः पुरावैब्रह्महत्यया ॥ १५ ॥ तस्यच्छायाद्वितीयासाननष्टातत्र

ऊपर वह दूसरी छाया प्राप्त हुई ॥ १० ॥ वैसेही आलस्यसमेत बहुत गरुवा शरीर होगया व हे नृपोत्तम ! तेज से हीन दुर्गंधियुक्त व उदासीन होगया ॥ ११ ॥ इस के अनन्तर घरको न प्राप्त होकर दुःख व शोकसे विकल उस राजाने स्त्री से उपजेहुये विनाश को सुनकर करुणा से रोदन किया ॥ १२ ॥ और स्त्रीहत्यासे दूषित व पापी अपना को जानकर वह राजा ब्राह्मणों की आज्ञा से तीर्थयात्रा में तत्पर हुआ ॥ १३ ॥ व उसके और्ध्वदैहिक (मरने के पीछेवाले) कार्य को करके थोड़ा परिजन लेकर वह राजा पहले काशी में गया और वहा उसने बहुत दान दिया ॥ १४ ॥ फिर वह समस्त पापों को नाशनेवाले कपालमोचनतीर्थ में गया जहा कि

पुरातनसमय त्रिलोचन शिवजी ब्रह्महत्या से छूटे हैं ॥ १५ ॥ हे भूपते ! वहां उसकी वह दूसरी छाया (स्त्रीहत्या) न नाशहुई तदनन्तर वह मनुष्योंको निधि देने-वाले व बहुत पवित्र कनखलतीर्थ को प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ तदनन्तर पुष्करारण्य उससे अमरकंटक को गया तदनन्तर हे राजन् ! यह नृपोत्तम कुरुक्षेत्र को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर प्रभास, सोमतीर्थ व किमिदंजलमें गया तदनन्तर हे राजन् ! एक हंस व उसके उपरान्त पवित्र पारिप्लवकोगया ॥ १८ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! रुद्रकोटि व विरूपाक्ष और पंचनद इत्यादिक तीर्थों व देवमन्दिरों को गया ॥ १९ ॥ व हे भूपाल ! घूमता हुआ वह राजा थँकगया तदनन्तर हज़ार वर्ष के अन्त

भूपते ॥ ततःकनखलम्प्राप्तः सुपुण्यंनिधिदन्नृणाम् ॥ १६ ॥ ततस्तुपुष्करारण्यं तस्मादमरकण्टकम् ॥ कुरुक्षेत्रंग तोराजन् प्राप्तोसौन्नृपसत्तम ॥ १७ ॥ प्रभासंसोमतीर्थंच ततस्तुकिमिदंजले ॥ एकहंसंततोराजन् पुण्यंपारिप्लवन्ततः ॥ १८ ॥ रुद्रकोटिंविरूपाक्षं ततःपञ्चनदन्नृप ॥ एवमादीनितीर्थानिपुण्यान्यायतनानिच ॥ १९ ॥ परिभ्रमन्महीपाल परिश्रान्तोनराधिपः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते सम्प्राप्तोर्बुदपर्वते ॥ २० ॥ तत्रापश्यन्नरपतिस्तीर्थान्यायतनानिच ॥ तपस्वि सङ्घान्विविधान् ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ २१ ॥ ददौदामानिबहुशो ब्राह्मणेभ्योयदृच्छया ॥ प्राप्तोरक्तानुबन्धञ्च तीर्थंतत्रैवपर्वते ॥ २२ ॥ तत्रस्नात्वाविनिष्क्रान्तो यावत्पश्यतिभूमिपः ॥ तावन्नदृश्यतेछाया द्वितीयास्त्रीवधोद्भवा ॥२३॥ लघुत्वंसर्वगात्राणि सम्प्राप्तानिमहीपते ॥ विगन्धताप्रणष्टाच तेजोवृद्धिःपराभवत ॥ २४ ॥ ततोहृष्टमनाभूत्वा दत्त्वा दानंविशेषतः ॥ स्तूयमानश्चतुर्दिक्षु वन्दिभिःप्रस्थितोगृहम् ॥ २५ ॥ ततोरक्तानुबन्धस्य सीमातिक्रमणंनृपः ॥ याव

में वह अर्बुदपर्वत पै प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ वहा राजाने तीर्थों व देवमन्दिरों को देखा और अनेकभांति के तपस्वीगणों को और वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को देखा ॥ २१ ॥ और स्वच्छन्दता से ब्राह्मणों के लिये बहुत दानों को दिया और उसी पर्वत पै वह राजा रक्तानुबंधतीर्थ को प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ उसमें नहाकर निकलकर जबतक राजा देखै तबतक स्त्रीके वधसे उपजीहुई दूसरी छाया नहीं देख पड़ी ॥ २३ ॥ हे राजन् ! सब अंग लघुताको प्राप्तहुये और दुर्गंधता नष्ट होगई व बहुत तेजकी वृद्धि हुई ॥ २४ ॥ तदनन्तर प्रसन्नमन होकर विशेषता से दान देकर चारों दिशाओं में बन्दियों से स्तुति किया जाता हुआ वह घरको चला ॥ २५ ॥

तदनन्तर हे नृपेन्द्र ! जबतक वह राजा रक्तानुबंधतीर्थकी सीमा (हद) को नांघै तबतक फिर इसके ॥ २६ ॥ देह में हे नृपोत्तम, नृप ! वह दूसरी छाया देख पड़ने लगी और अंगों में वही गन्ध व तेजकी हानि होगई ॥ २७ ॥ तदनन्तर दुःखकी अग्नि से संतप्त वह राजा उसीक्षण लौट पड़ा ॥ २८ ॥ और रक्तबंधतीर्थको प्राप्त हुआ फिर वह पापविहीन होगया और उस नृपोत्तम ने उत्तम तीर्थ माहात्म्य को जानकर ॥ २९ ॥ हे राजन् ! वहां लकड़ियों को लाकर तदनन्तर चिताको बनाकर वह राजा द्विजोत्तमों के लिये दान देकर अग्निमें पैठगया ॥ ३० ॥ उसके उपरान्त शरीर को छोड़ विमान पै चढ़कर दिव्य माला व वसनों को धारे हुये वह शिवलोक

त्करोतिराजेन्द्र तावदस्यपुनस्तथा ॥ २६ ॥ साच्छायादृश्यतेदेहे द्वितीयान्नृपसत्तम ॥ सएवगन्धोगात्रेषु तेजोहानिश्च सान्नृप ॥ २७ ॥ ततोदुःखाग्निसंतप्तो निवृत्तश्चैवतत्क्षणात् ॥ २८ ॥ रक्तबन्धमनुप्राप्तो विपाप्मासोभवत्पुनः ॥ सज्ञात्वातीर्थमाहात्म्यं परंपार्थिवसत्तमः ॥ २९ ॥ तत्रदारूणिचाहृत्य चितांकृत्वाततोन्नृप ॥ दानंदत्त्वाद्विजाग्र्येभ्यः प्रविष्टोहव्यवाहनम् ॥ ३० ॥ ततोविमानमारुह्य परित्यज्यकलेवरम् ॥ दिव्यमालाम्बरधरः शिवलोकमुपागमत् ॥ ३१ ॥ शिवलोकमनुप्राप्ते तस्मिन्पार्थिवसत्तमे ॥ देवर्षिनारदोवाक्यमिदमाहसुविस्मयात् ॥ ३२ ॥ तीर्थेभ्यश्चपरंतीर्थमिदंवैपावनंपरम् ॥ इन्द्रसेनोयतःपापात्तीर्थसङ्गादमुच्यत ॥ ३३ ॥ ततःप्रभृतितत्तीर्थं प्रख्यातंधरणीतले ॥ रक्तानाम्प्राणिनांयस्मादनुबन्धंकरोतितत् ॥ ३४ ॥ रक्तानुबन्धमित्येव तस्मात्तत्कीर्त्यतेक्षितौ ॥ तत्रसन्तर्प्यदेवान्वै यःश्राद्धंकुरुतेन्नृप ॥ ३५ ॥ तत्रसंक्रमणेभानोर्यःस्नानंकुरुतेन्नृप ॥ श्रद्धयापरयायुक्तो मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ३६ ॥ पितृक्षेत्रेगया

को प्राप्तहुआ ॥ ३१ ॥ उस उत्तम नृपति को शिवलोक में प्राप्त होने पर देवर्षि नारदजीने बड़े विस्मयसे इस वचन को कहा ॥ ३२ ॥ कि तीर्थोंसे यह उत्तम तीर्थ बहुतही पवित्रकारक है जबसे तीर्थ के संग से इन्द्रसेन पातक से छूटगया ॥ ३३ ॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ प्रसिद्ध में प्रसिद्धहुआ जिसलिये अनुरक्त प्राणियों का वह तीर्थ अनुबन्ध करता है ॥ ३४ ॥ इसलिये वह रक्तानुबन्ध ऐसाही कहाजाता है हे राजन् ! वहां देवताओं को भलीभांति तर्पणकर जो श्राद्ध करताहै ॥ ३५ ॥

व हे राजन्! वहां सूर्यकी संक्रान्ति में उत्तम श्रद्धासे संयुत जो स्नान करताहै वह ब्रह्महत्या से छूटजाता है ॥ ३६ ॥ व सावधान होताहुआ जो मनुष्य पितृक्षेत्र में गयाश्राद्ध करता है उसको महर्षियों ने गयाश्राद्ध के समान फल कहा है ॥ ३७ ॥ व हे नृपोत्तम ! चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में जो मनुष्य वहां गोदान करता है वह सात पुश्तियोंको तारताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरक्तानुबन्धतीर्थमाहात्म्यंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दो० । महाविनायक को रच्यो पारवती महरानि । बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखखानि ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर महाविनायक के

श्राद्धं यःकरोतिसमाहितः ॥ गयाश्राद्धसमंप्राहुः फलन्तस्यमहर्षयः ॥ ३७ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेवा गोदानंनृपसत्तम ॥ यः करोतिनरस्तत्र सकुलान्सप्ततारयेत ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कान्देर्बुदखण्डेरक्तानुबन्धमाहात्म्यन्नामैकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ महाविनायकंगच्छेत्ततःपार्थिवसत्तम ॥ यस्मिन्दृष्टेनृणांसद्यो निर्विघ्नत्वंप्रजायते ॥ १ ॥ ययातिरुवाच ॥ कथंमहत्त्वमगमत्पूर्वंतत्रविनायकः ॥ कस्मिन्कालेद्विजश्रेष्ठ सर्वंविस्तरतोवद ॥ २ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ पुरोद्वर्त्तनजंलेपं गृहीत्वानृपपार्वती ॥ विनोदार्थञ्चकाराथ बालकंसुकुमारकम् ॥ ३ ॥ लेपोद्भवंशिरोहीनंशेषावयवसंयुतम् ॥ यथोक्तंनिर्मायित्वातं स्कन्दंवाक्यमथाब्रवीत् ॥ ४ ॥ लेपमानयभद्रन्ते शिरोर्थंस्कन्दसत्वरम् ॥ येनायंपुत्रकोमेस्याद् भ्रातातेपरदुर्जयः ॥ ५ ॥ ततोगौरीसमादेशाल्लेपस्यालाभतोनृप ॥ मतङ्गजंवरंदृष्ट्वा शिरस्तस्यसमानयत् ॥ ६ ॥ तस्मि

समीप जावै जिनके देखनेपर उसीक्षण मनुष्यों की निर्विघ्नता होजाती है ॥ १ ॥ ययाति बोले कि वहां पुरातनसमय विनायकजी किससमय व कैसे महत्त्व को प्राप्त हुये हैं हे द्विजश्रेष्ठ ! इस सबको विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! पुरातनसमय पार्वतीजीने क्रीडाके लिये उबटन से उपजेहुये लेपको लेकर इसके उपरान्त सुकुमार बालक को बनाया ॥ ३ ॥ मस्तक से रहित व शेष अंगों से युक्त उस यथोक्त बालक को बनाकर पार्वतीजीने स्वामिकार्त्तिकेयजी से वचन कहा ॥ ४ ॥ कि हे स्कंद ! तुम्हारा कल्याण होवै मस्तक के लिये शीघ्रही लेपको लावो कि जिससे यह मेरा पुत्र व तुम्हारा भाई शत्रुवों से दुर्जय होवै ॥ ५ ॥ तद-

नन्तर हे राजन्! पार्वतीजीकी आज्ञा से लेपके न मिलने से उत्तम हाथी को देखकर स्वामिकार्त्तिकेयजी उसका मस्तक लेआये ॥ ६ ॥ और लेपसे उपजेहुये उस अंगमें उसको लगादिया व पार्वतीने कहा कि हे पुत्र! यह तो मस्तक बड़ाभारी होगा और तुम किसकारण इसको लाये ॥ ७ ॥ बार २ मामा ऐसा पार्वती को कहतेहुये उसके शरीर में शिर धरनेपर हे राजन्! दैवयोग से ॥ ८ ॥ अंगों से विशेषकर नायकता निकली और बालक के समान सुन्दर व सबलक्षणों से लक्षित ॥ ९ ॥ व हे राजन्! तीन जगह गंभीर व चारहाथोंवाले तथा सात स्थानोंपै अरुण व छः अंगों में उन्नत और पाष दीर्घ व पांच स्थानों में सूक्ष्म तथा सुन्दर ॥ १० ॥

न्नियोजयामास गात्रेलेपसमुद्भवे॥ महत्त्विदंशिरोभावि पुत्रकस्मात्त्वयाहृतम् ॥ ७ ॥ ब्रुवन्त्याश्चापिपार्वत्या मामेति चमुहुर्मुहुः ॥ न्यस्तेशिरसितद्गात्रे दैवयोगान्नराधिप॥ ८ ॥ विशेषान्नायकत्वंच गात्रेभ्यःसमजायत॥ बालकप्रतिमंकान्तं सर्वलक्षणलाञ्छितम् ॥ ९ ॥ त्रिगम्भीरंचतुर्हस्तं सप्तरक्तंमहीपते ॥ षडुन्नतंपञ्चदीर्घं पञ्चसूक्ष्मंसुसुन्दरम् ॥ १० ॥ त्रिविस्तीर्णमहाराज दृष्ट्वागौरीसुविस्मिता॥सजीवंकारयामास स्वशक्त्याशक्तिरूपिणी॥ ११ ॥ ससजीवःकृतोदेव्या समुत्तस्थौचतत्क्षणात ॥ आदेशंयाचयामास विनयानतकन्धरः ॥ १२ ॥ तंदृष्ट्वाचाद्भुताकारं प्रोक्त्वापुत्रंमुहुर्मुहुः ॥ शम्भोःसकाशमनयद्धृष्टेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥ ततोब्रवीत्सुतोदेव ममैवगात्रलेपजः ॥ देहिदेववरानस्य महत्त्वंयेनगच्छति ॥ १४ ॥ भगवानुवाच॥ शरीरस्थंशिरोमुख्यं यस्मात्पर्वतनन्दिनि ॥ महत्त्विदंशिरःप्रोक्तं त्वयास्कन्देनयोजि

व हे महाराज! तीन स्थानों में चौड़े बालक को देखकर पार्वतीजी विस्मित हुईं और शक्तिरूपिणी उन्हों ने अपनी शक्ति से उसको सजीव किया ॥ ११ ॥ और देवी पार्वतीजीसे सजीव कियेहुये वे विनायकजी उसीक्षण उठपड़े और विनय से झुके कन्धेवाले विनायक ने आज्ञा मागी ॥ १२ ॥ अद्भुत आकारवाले उस पुत्रको देखकर व बार २ कहकर पार्वतीजी प्रसन्न चित्त से शिवजीके समीप लेआईं ॥ १३ ॥ तदनन्तर बोलीं कि हे देव! मेरेही अंगों के लेपसे उपजाहुआ पुत्र है हे देव! इस को वरोंको दीजिये कि जिससे महत्त्वको प्राप्त होवै ॥ १४ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे पर्वतनन्दिनि! जिसलिये शरीर में स्थित शिर मुख्य है और तुमने कहा कि

यह शिर बड़ा भारी है और स्वामिकार्त्तिकेयजीने उसको लगादिया व जिसलिये इनके अंगमें विशेषता से नायकता स्थित है उसीकारण नाममें यह महाविनायक होगा ॥ १५।१६ ॥ और जिसलिये मुझसे इसको दीहुई सब गणोंकी स्वामिता होगी उसीकारण यह गणाधिप होवैगा ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य सब कार्योंमें पहले इन गणेशजीको स्मरण करैंगे उनके कार्यकी हानि न होगी ॥१८॥ तदनन्तर स्वामिकार्त्तिकेयजीने क्रीड़ाके लिये इसको कुठार दिया वही अस्त्र उसको सदैव प्रिय हुआ ॥ १९ ॥ उसके उपरान्त पार्वतीजी ने पुत्रके स्नेह से लड्डुवों से पूर्ण भोजनपात्रको दिया उससमय उसको पाकर उन्हों ने नृत्य किया ॥ २० ॥ और उस भक्ष्य

तम् ॥१५॥ विशेषान्नायकत्वंच गात्रेचास्ययतस्स्थितम् ॥ महाविनायकोह्येप तस्मान्नाम्नाभविष्यति॥१६॥गणानांचैव सर्वेषामाधिपत्यंप्रजायते॥ अस्यदत्तंमयायस्माद्भविष्यतिगणाधिपः ॥१७॥ सर्वकार्येषुयेमर्त्याः पूर्वमेनंगणाधिपम् ॥ स्मरिष्यन्तिनवैतेषां कार्यहानिर्भविष्यति॥ १८॥ ततोस्यप्रददौस्कन्दः प्रक्रीडार्थंकुठारकम् ॥ तदेवचायुधन्तस्य सुप्रियंहिसदाभवत् ॥ १९ ॥ ततोगौरीददौभोज्यपात्रंमोदकपूरितम् ॥ पुत्रस्नेहात्सतत्प्राप्य लास्यमेवतदाकरोत् ॥२०॥ तस्यभक्ष्यस्यगन्धेन निष्क्रान्तोमूषकोबिलात ॥ भक्षणाच्चामरोजातस्तस्यवाहोऽयजायत ॥ २१ ॥ पुलस्त्य उवाच॥ महाविनायकोह्येवं तत्रजातोमहीपते ॥ तस्मिन्दृष्टेचयत्पुण्यं तत्त्वमेकमनाःशृणु ॥ २२ ॥ बाल्येवयमियत्पापंवार्द्धकेयौवनेपियत् ॥ करोतिमानवोराजंस्तस्मात्सर्वात्प्रमुच्यते ॥ २३ ॥ माघमासेमितेपक्षे चतुर्थ्यांसमुपोषितः ॥ यस्तं पश्यतिवाग्मीस सर्वज्ञश्चप्रजायते ॥ २४ ॥ तस्याग्रेसुमहत्कुण्डं स्वच्छोदकसुपूरितम् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या यः

(भोजन) के गन्ध से मूस बिलसे निकला और वह उसका भक्षण करने से अमर होगया व उन गणेशका वह वाहनहुआ ॥ २१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! इसप्रकार वहा महाविनायकजी हुये हैं और उनके देखने पर जो पुण्य होता है उसको तुम सावधानमन होकर सुनो॥ २२ ॥ कि हे राजन्! बाल्यावस्था में जो पाप हुआ है और वृद्धावस्था व युवावस्था में जिस पापको मनुष्य करता है उस सबसे छूटजाता है ॥ २३ ॥ माघ महीने में शुक्लपक्ष में चौथि तिथिमें उपास किये हुये जो मनुष्य उन गणेशजीको देखता है वह प्रशस्तवचन और सर्वज्ञ होता है ॥ २४ ॥ और उनके आगे निर्मल कुण्ड से पूरित बड़ाभारी कुण्ड है उसमें नहाकर

जो भक्तिसे विनायकजीको देखता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! उसके वंश में भी सर्वज्ञ मनुष्य पैदा होते हैं और (गणानांत्वा) इस मंत्रसे तीन प्रदक्षिणा कर ॥ २६ ॥ हे नृपेन्द्र ! जो उन विनायकजीको देखता है वह पापको नहीं देखता है इसलिये जो इसलोक व परलोक में सब कामनाओं को चाहै वह उन विनायकजी को सब यत्न से देखै और कार्य प्राप्त होनेपर जो गृहस्थ भी भक्तिसे उनको स्मरण करता है ॥ २७ । २८ ॥ उसका वह सब कार्य निर्विघ्नतापूर्वक भलीभांति सिद्धि को प्राप्त होता है और प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य विनायक देवको स्मरण करै ॥ २९ ॥ उसके उस दिनमें उपजेहुये कार्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं व सावधान होता

पश्यतिविनायकम् ॥ २५ ॥ तस्यान्वयेपिसर्वज्ञा जायन्तेमानवान्नृप ॥ गणानान्त्वेतिमन्त्रेण कृत्वावैत्रिःप्रदक्षिणम् ॥ २६ ॥ यस्तंपश्यतिराजेन्द्र दुरितंनसपश्यति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तंप्रपश्येद्विनायकम् ॥ २७ ॥ यइच्छतेसर्वकामानिहलोकेपरत्रच ॥ गृहस्थोपिचयोभक्त्या स्मरेत्कार्यउपस्थिते ॥ २८ ॥ अविघ्नंतस्यतत्सर्वं संसिद्धिमुपगच्छति ॥ प्रातरुत्थाययोमर्त्यः स्मरेद्देवंविनायकम् ॥ २९ ॥ तस्यतद्दिनजातानि सिद्धिंकृत्यानियान्तिहि ॥ महाविनायकींशान्ति यःकरोतिसमाहितः ॥ ३० ॥ नतंप्रेताग्रहारोगाःपीडयन्तिविनायकाः ॥ विवाहेकलहेयुद्धे प्रस्थानेकृषिकर्मणि ॥ ३१ ॥ प्रवेशेचस्मरेद्यस्तु भक्तिपूर्वंविनायकम् ॥ तस्यतद्वाञ्छितंसर्वं प्रसादात्तस्यसिद्ध्यति ॥ ३२ ॥ ययातिरुवाच ॥ महाविनायकींशान्तिं वदमेमुनिसत्तम ॥ केमन्त्राःकिंविधानंच परंकौतूहलंहिमे ॥ ३३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शुक्लपक्षे शुभेवारे नक्षत्रेदोषवर्जिते ॥ श्रेष्ठचन्द्रबलेशान्तिं गणेशस्यसमाचरेत् ॥ ३४ ॥ पूर्वोत्तरेसमेदेशे कृत्वावेदींचमण्डपम् ॥

हुआ जो पुरुष महाविनायककी शांति करता है ॥ ३० ॥ उसको प्रेत, ग्रह, रोग व विनायक पीड़ित नहीं करते हैं और विवाह, बखेड़ा, युद्ध, प्रस्थान व खेती के कार्य में ॥ ३१ ॥ व प्रवेश में जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गणेशजीको स्मरण करताहै उसका वह सब वांछित उन विनायकजीकी प्रसन्नता से सिद्ध होता है ॥ ३२ ॥ ययाति बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझसे महाविनायककी शांति कहिये कि कौन मंत्र व कौन विधि है मुझको बड़ा कौतुक है ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि शुक्लपक्षमें दोषरहित

उत्तम दिन व नक्षत्र में और श्रेष्ठ चन्द्रमा के बलमें गणेशजीकी शांतिकरै ॥ ३४ ॥ पूर्व व उत्तर समान स्थान में वेदी व मंडप को बनाकर बीच में गृह्यसूत्र से अष्टदल कमलको प्रयुक्त करै ॥ ३५ ॥ व हे भूपते ! सब दिशाओंमें इन्द्रादिक लोकपालों को पूजै और गणेशपूर्वक मातृकाओं को विशेष कर ॥ ३६ ॥ चन्दन, पुष्प व उपहारों तथा यथोक्त बलि विस्तारों से पूजै और उसी के पूर्वदिशा के भागमें जलसे पूर्ण व दो सफेद वस्त्रोंसे आच्छादित सुवर्णसमेत व फलसंयुत कलश को पूजै और (गणानांत्वा) इस मन्त्रसे एकहज़ार आठ ॥ ३७ । ३८ ॥ वहां जपकरै व हे नृपोत्तम ! रुद्रपञ्चांगों को जपै और वहां हाथभर कुण्ड में विनायक चरु को

मध्येह्यष्टदलंपद्मं गृह्यसूत्रेणयोजयेत ॥ ३५ ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च दिक्षुसर्वासुभूपते ॥ गणेशपूर्वकाश्चापिमातृश्चविशेषतः ॥ ३६ ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च यथोक्तैर्बलिविस्तरैः ॥ श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं कलशंजलपूरितम् ॥ ३७ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे सहिरण्यंफलान्वितम् ॥ गणानान्त्वेतिमन्त्रेण सहस्रंचाष्टसंयुतम् ॥ ३८ ॥ जपेत्तत्रतथारुद्रान्पञ्चाङ्गान्नृपसत्तम ॥ विनायकचरुंतत्र श्रयेत्कुण्डेकरात्मके ॥ ३९ ॥ चतुरस्रेयोनियुते मेखलाभिर्विभूषिते ॥ मधुदूर्वाक्षतैर्होमो ग्रहहोमादनन्तरम् ॥ ४० ॥ गणानान्त्वेतिमन्त्रेण दशसाहस्रिकस्तथा ॥ होमोवैपार्थिवश्रेष्ठकार्यश्चोदङ्मुखैर्द्विजैः ॥ ४१ ॥ चतुर्भिश्चनुरैराजन् पीतवस्त्रानुलेपनैः ॥ पीताम्बरधरैश्चैव धृतहोमाङ्गुलीयकैः ॥ ४२ ॥ ततोहोमावसानेतु यजमानंनृपोत्तम ॥ मृगचर्मोपरिस्थंच मन्त्रैरेभिर्विधानतः ॥ ४३ ॥ स्नापयेत्प्राङ्मुखंशान्तं शुक्लवस्त्रावगुण्ठितम् ॥ इमंमेगङ्गेयमुने पञ्चनद्यःसुपुष्करे ॥ ४४ ॥ श्रीसूक्तसहितंविष्णोःपावमानंवृषाकपिम् ॥ सम्यगुच्चार्यविप्राणां ततोनाशं

हवन करै ॥ ३९ ॥ और चौकोन व योनिसंयुत तथा मेखलाओं से भूषित कुण्डमें शहद, दूर्वा व अक्षतों से होम करै और ग्रह होमके बाद ॥ ४० ॥ हे नृपोत्तम, राजन् ! (गणानांत्वा) इस मन्त्रसे उत्तरमुख बैठेहुये व पीत वसन तथा अनुलेपन किये व पीताम्बरधारे और सोने की अंगूठियों को पहनेहुये चार चतुर ब्राह्मणों को दशहज़ार हवन करना चाहिये ॥ ४१ । ४२ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! होमके अन्तमें मृगचर्म के ऊपर स्थित पूर्वमुख, शांत व श्वेत वसन को पहने हुये यजमान को इन मंत्रों से विधिपूर्वक स्नान करावै (इमं मे गङ्गे यमुने, पञ्चनद्यः सुपुष्करे) ॥ ४३ । ४४ ॥ और श्री सूक्तसमेत विष्णु के पावमान व वृषाकपि सूक्त को भलीभांति उच्चारण

कर तदनन्तर विघ्नों के नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥ और ग्रहसौम्यता को प्राप्त होते हैं व भूत उसीक्षण नाश होजाते हैं और आधिव्याधि व भयंकर दुष्टरोग तथा ज्वरादिक ॥ ४६ ॥ हवनसे सब नाश होजातेहैं व सब भयंकर उत्पात नाश होजातेहैं तुमने मुझसे जो पूछा यह सब तुमसे कहागया ॥ ४७ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य विनायकके इस बड़ेभारी माहात्म्य व शांतिको भलीभांति चौथिमें पढ़ता है ॥ ४८ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ ! जो इसको सुनता है उसको सदैव अविघ्न होता है और सावधान होताहुआ जिस जिस कामना को ध्यान करताहुआ जो सावधान मनुष्य इसप्रकार पूजता है ॥ ४९ ॥ उस उसको मनुष्य निश्चयकर गणनाथजीकी

प्रपद्यते ॥ ४५ ॥ ग्रहाःसौम्यत्वमायान्ति भूतानश्यन्तितत्क्षणात् ॥ आधयोव्याधयोरौद्रा दुष्टरोगाज्वरादयः ॥ ४६ ॥ प्रणश्यन्तिहुतात्सर्वे तथोत्पाताःसुदारुणाः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ ४७ ॥ विनायकस्य माहात्म्यं महत्त्वंशान्तिकंतथा ॥ यश्चैतत्कीर्तयेत्सम्यक् चतुर्थ्यांसुसमाहितः ॥ ४८ ॥ शृणोतिवानृपश्रेष्ठ तस्याविघ्नंसदाभवेत् ॥ यंयंकाममभिध्यायन् यजेच्चैवंसमाहितः ॥ ४९ ॥ तत्तदाप्नोतिनूनंच गणनाथप्रसादतः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमहाविनायकमाहात्म्यन्नामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःपार्थेश्वरंगच्छेद्देवंपातकनाशनम् ॥ यंदृष्ट्वामानवःसम्यङ्मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ १ ॥ पार्थानाम्नाभवत्साध्वी देवलस्यप्रियासती ॥ तयापूर्वंतपस्तप्तं तत्रस्थानेमहीपते ॥ २ ॥ सापूर्वमभवद्वन्ध्या ऋषिपत्नीयशस्विनी ॥ वैराग्यंपरमंगत्वा ततश्चैवार्बुदंगता ॥ ३ ॥ वायुभक्षानिराहारा समचित्तासमास्थिता ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते

प्रसन्नता से प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेबीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाविनायकमाहात्म्यंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दो॰ । पार्थेशहिं पूज्यो यथा पार्थानामक नारि । तेंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर पातकों को नाशनेवाले पार्थेश्वर देवजीके समीप जावै जिनको भलीभांति देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ १ ॥ हे महीपते ! देवलकी प्यारी व पतिव्रता पार्थानामक साध्वी स्त्री हुई है उसने पुरातनसमय उस स्थान में तप किया है ॥ २ ॥ वह ऋषिकी यशस्विनी स्त्री पहले वांझहुई उसीकारण बड़े वैराग्य को प्राप्त होकर अर्बुदपर्वत पै गई ॥ ३ ॥

और निराहार व पवनभोजिनी तथा समचित्तवाली वह स्थित हुई तदनन्तर हे राजन्! हज़ार वर्षके अन्तमें उसकी भक्तिसे ॥ ४ ॥ धरातलको फोड़कर अचानकही लिंग उत्पन्न हुआ इसीसमय में आकाशवाणी बोली ॥ ५ ॥ कि हे महाभागे! इस बहुत पवित्रकारक शिवलिंगको पूजो तुम्हारी भक्तिसे यह मनोरथों को देनेवाला बड़ाभारी लिंग पृथ्वी से निकला है ॥ ६ ॥ और अन्यभी जो मनुष्य जिस कामना को चिन्तवन कर इसको पूजेगा वह निरसन्देह उस मनोरथ को प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ और संसार में यह पार्थेश्वरनामक लिंग प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा ऐसा कहकर तदनन्तर हे राजन्! आकाशवाणी चुपहोगई ॥ ८ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुत उसने

भक्त्यातस्यामहीपते ॥ ४ ॥ उद्भिद्यधरणीपृष्ठं सहसालिङ्गमुत्थितम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥५॥ पूजयैनंमहाभागे शिवलिङ्गंसुपावनम् ॥ त्वद्भक्त्याधरणीपृष्ठान्निस्सृतंकामदंमहत् ॥ ६ ॥ योयंकामसभिध्याय पूजयिष्यतिमानवः ॥ अन्योपितदभिप्रेतं प्राप्स्यतेनात्रसंशयः ॥ ७ ॥ पार्थेश्वराख्यमेतद्धि लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ एवमुक्त्वाततोवाणी विरराममहीपते ॥ ८ ॥ ततःसाविस्मयाविष्टा पूजयामासतंतदा ॥ ततःपुत्रशतंप्राप्तं दिव्यंवंशधरन्तथा ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतितल्लिङ्गं विख्यातंधरणीतले ॥ तत्रास्तिनिर्मलंतोयं गिरिगह्वरनिस्सृतम् ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वानरस्सम्यग् यस्तंपश्यतिभावतः ॥ नसपश्यतिसंसारे दुःखंसन्तानसम्भवम् ॥ ११ ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यां जागरंतस्यचाग्रतः ॥ यःकरोतिनिराहारः सपुत्रंलभतेध्रुवम् ॥ १२ ॥ पिण्डनिर्वापणंतत्र यःकरोतिसमाहितः ॥ तस्यपुत्रत्वमायान्ति पितरस्तत्प्रसादतः ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपार्थेश्वरप्रभाववर्णनन्नामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

उससमय उन शिवजीको पूजा तदनन्तर वंशको धारनेवाले व उत्तम सौ पुत्रोंको पाया ॥ ९ ॥ तबसे लगाकर वह लिंग पृथ्वी में प्रसिद्ध हुआ वहा पर्वतकी कन्दरा से निकलाहुआ निर्मल जलहै ॥ १० ॥ उसमें भलीभाति नहाकर जो मनुष्य भक्तिसे उन शिवजीको देखताहै वह संसारमें सन्तानसे उपजेहुये दुःखको नहीं देखताहै ॥ ११ ॥ और शुक्लपक्षमें चौदसि तिथिमें निराहार जो उन शिवजीके आगे जागरण करताहै वह निश्चयकर पुत्रको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥ और वहां जो सावधान मनुष्य पिंडनिर्वापण करताहै उन शिवजीकी प्रसन्नतासे उसके पितर पुत्रताको प्राप्त होतेहैं ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपार्थेश्वरप्रभाववर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोध्यायः ॥ ३३ ॥

दो॰। भयो अर्बुदहिं अचल ढिग कृष्णतीर्थ इमिनाम। चौंतिसवें अध्याय में सोइ कथा अभिराम॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे भूपते! तदनन्तर कृष्ण को सदैव प्यारे कृष्णतीर्थको जावै जहा कि आपही विष्णुजी सदैव टिकेरहते हैं॥ १॥ ययातिजी बोले कि हे द्विजोत्तम! वहा किसप्रकार कृष्णतीर्थ हुआ है व किससमय हुआ है हे मुने! इस सबको मुझसे विस्तार से कहिये॥ २॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस भयंकर एकार्णव में जब स्थावर जंगम नाश होगया और चन्द्रमा, सूर्य व पवन नष्ट होगया व प्रकाश नाश होगया॥ ३॥ तब हज़ारयुगों के बाद ब्रह्माजी जगे और अकेले उन्होंने यह विचार किया कि किसप्रकार सृष्टि होगी॥ ४॥ और

पुलस्त्य उवाच॥ कृष्णतीर्थंततोगच्छेत्कृष्णस्यदयितंसदा॥ यत्रसन्निहितोनित्यं स्वयंविष्णुर्महीपते॥ १॥ ययातिरुवाच॥ कृष्णतीर्थंकथंतत्र जातंब्राह्मणसत्तम॥कस्मिन्कालेमुनेब्रूहि सर्वंविस्तरतोमम॥२॥ पुलस्त्य उवाच॥ तस्मिन्नेकार्णवेघोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे॥ चन्द्रार्कपवनेनष्टे ज्योतिषिप्रलयंगते॥ ३॥ ततोयुगसहस्रान्ते विबुद्धःकमलासनः॥ एकाकीचिन्तयामास कथंसृष्टिर्भवेदिति॥ ४॥ भ्रमंश्चापिचतुर्वक्त्रो यावत्पश्यत्यदूरतः॥ चतुर्भुजंविशालाक्षं पुरुषंपुरतःस्थितम्॥ ५॥ तंचोवाचचतुर्वक्त्रः कस्त्वंकेनविनिर्मितः॥ किमर्थमिहसंप्राप्तः सर्वंविस्तरतोवद॥ ६॥ तमुवाचाथगोविन्दः प्रहसञ्छ्लक्ष्णयागिरा॥ अहमाद्यःपुमानेको मयासृष्टोभवानपि॥ ७॥ स्रष्टुमिच्छामिभूयोपि भूतग्रामंचतुर्विधम्॥ पुलस्त्य उवाच॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाक्रुद्धोवेदपितामहः॥८॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं भर्त्सयंस्तंपुनःपुनः॥ सृष्टस्त्वंहिमयामूढ प्रथमोहमसंशयम्॥ ९॥ त्वादृशानांसहस्राणि करिष्येहमसंशयम्॥ एवंविवदमानौ

घूमतेहुये चतुराननजी जबतक देखैं तबतक उन्होंने समीपही आगे स्थित विशाललोचन व चतुर्भुज पुरुषको देखा॥ ५॥ और उनसे चतुराननजी बोले कि तुम किससे बनाये गयेहो और कौनहो व किसलिये यहां प्राप्त हुयेहो सबको विस्तार सेकहिये॥ ६॥ इसके अनन्तर हँसते हुये गोविन्दजीने नम्रवाणी से उन ब्रह्माजीसे कहा कि मैं एक आद्य पुरुष हूं और मुझसे आपभी रचे गयेहो॥ ७॥ और फिरभी मैं चारिभांतिके प्राणिसमूह को रचना चाहताहूं पुलस्त्यजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर वेदपितामह ब्रह्माजी क्रोधित हुये॥ ८॥ और उन विष्णुजीको बार २ घुड़कते हुये उन्होंने कठोर वचन कहा कि हे मूढ! मैंने निस्सन्देह तुमको

रचा है और मैं निरसन्देह प्रथमहूं ॥ ९ ॥ और तुम्हारे समान हज़ारों पुरुषों को मैं निस्सन्देह रचूंगा हे राजन् ! इसप्रकार परस्पर विवाद करतेहुये वे महाद्युतिमान् ॥ १० ॥ और स्पर्द्धा के कारण क्रोधसे लाल लोचनोंवाले विष्णु व ब्रह्माजी परस्पर युद्ध करनेलगे घूसोंसे व भुजाओं तथा दांतों व नखों से और खींचने से ॥ ११ ॥ इसप्रकार हज़ार वर्षतक उन दोनों का युद्ध वर्तमान हुआ तदनन्तर हज़ारवर्षके अन्तमें हे नृपोत्तम ! उन दोनोंके मध्यमें ॥ १२ ॥ दिव्य व तेजोमय उत्तम महा लिंग प्रगट हुआ इसीसमय में आकाशवाणी बोली ॥ १३ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! युद्धसे निवृत्त होवो व हे विष्णो ! तुमभी मेरी आज्ञासे निवृत्त होवो यह शिवजीका लिंग है

तौ मिथोराजन्महाद्युती ॥ १० ॥ स्पर्द्धयारोषताम्राक्षौ युयुधातेपरस्परम् ॥ मुष्टिभिर्बाहुभिश्चैव नखैर्दन्तैर्विकर्षणैः ॥ ११ ॥ एवंवर्षसहस्रन्तु तयोर्युद्धमवर्त्तत ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते तयोर्मध्येनृपोत्तम ॥ १२ ॥ प्रादुर्भूतंमहालिङ्गं दिव्यंतेजोमयंशुभम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वाग्उवाचाशरीरिणी ॥ १३ ॥ युद्धाद्ब्रह्मन्निवर्तस्व त्वंचविष्णोममाज्ञया ॥ एतन्माहेश्वरंलिङ्गं योस्यचोल्लङ्घयिष्यति ॥ १४ ॥ सज्येष्ठःसविभुःकर्ता युवयोर्नात्रसंशयः ॥ अधोभागंव्रजत्वेक एकश्चोर्द्ध्वममाज्ञया ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरोब्रह्मा व्योममार्गसमाश्रितः ॥ विदार्यवसुधांकृष्ण अधस्तात्सत्वरंगतः ॥ १६ ॥ सभित्त्वासप्तपातालानधोयावत्प्रयातिच ॥ तावत्कालाग्निरुद्रस्तु दृष्टस्तेनमहात्मना ॥ १७ ॥ गन्तुमिच्छंस्ततोधस्ताद्यावद्वेगंकरोतिसः ॥ तावत्तस्यार्चिभिर्दग्धः कृष्णत्वंसमपद्यत ॥ १८ ॥ ततोमूर्च्छाभिसन्तप्तो दह्यमानोद्भुताग्निना निवृत्तः

और जो इसको नाघैगा ॥ १४ ॥ तुम दोनोंके मध्य में वह ज्येष्ठ और वह स्वामी व रचनेवाला है इसमें सन्देह नहीं है एक मेरी आज्ञामे नीचेके भागको जावै और एक ऊपर को जावै ॥ १५ ॥ उस वचन को सुनकर शीघ्रता संयुक्तब्रह्मांजी आकाशमार्गके आश्रित हुये व कृष्णजी शीघ्रही पृथ्वीको फोड़कर नीचेगये ॥ १६ ॥ वे विष्णु जी सात पातालोंको फोड़कर जबतक नीचे जावैं तबतक उन महात्माने कालाग्नि रुद्रजीको देखा ॥ १७ ॥ और उससे नीचे जाने के लिये इच्छा करतेहुये जबतक वेगकरैं तबतक उस कालाग्निकी किरणोंसे जलेहुये विष्णुजी कृष्णताको प्राप्तहुये ॥ १८ ॥ तदनन्तर अद्भुत अग्निसे जलेहुये व मूर्च्छासे सतप्त विष्णुजी बड़ी विलक्ष-

णताको प्राप्तहुये और अचानकही लौटपड़े ॥ १९ ॥ व हे राजन् ! उनकालाग्नि रुद्रजीके लिंगको प्राप्त होकर भक्तिसे बड़े यत्नसे पूजकर कृष्णजीने उत्तम व सूक्ष्म वेदांगों से स्तुति किया ॥ २० ॥ और ब्रह्माभी हंसरूपी विमान के द्वारा आकाशमार्गसे गये और देवताओंके हज़ारवर्षतक उसके अन्तको न प्राप्तहुये ॥ २१ ॥ तदनन्तर हज़ारवर्षके बाद उन्होंने केतकीको देखा व आकाशमार्ग से आतीहुई उस केतकीने चतुर्मुख ब्रह्माजीसे पूंछा ॥ २२ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! अवलम्बरहित व शून्य महामार्ग में तुम कहा जातेहो उसको तुम मुझसे कहो क्योंकि मुझको बड़ा कौतुक है ॥ २३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे शोभने ! विष्णुके साथ मेरे स्पर्द्धा (ईर्षा) उत्पन्न

सहसाविष्णुर्वैलक्ष्यंपरमङ्गतः ॥ १९ ॥ तस्यलिङ्गंसमासाद्य भक्त्यापूज्यप्रयत्नतः ॥ वेदाङ्गैःपरमैःसूक्ष्मैः स्तुतिंचक्रेमहीपते ॥ २० ॥ ब्रह्मापिव्योममार्गेण गतोहंसविमानतः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु तस्यान्तंनाभ्यपद्यत ॥ २१ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते केतकींसोप्यपश्यत ॥ आयान्त्याव्योममार्गेण तयापृष्टश्चतुर्मुखः ॥ २२ ॥ कत्वयागम्यतेब्रह्मन्निरालम्बेमहापथि ॥ शून्येतत्त्वंसमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिमे ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ममस्पर्द्धासमुत्पन्ना विष्णुनासहशोभने ॥ लिङ्गस्यास्यहिपर्यन्तं योलभिष्यतिचावयोः ॥ २४ ॥ सज्यायानितरोहीन एतदुक्तंपिनाकिना ॥ प्रस्थितोहन्ततश्चोर्द्ध्वमधोमार्गगतोहरिः ॥ २५ ॥ लब्ध्वालिङ्गस्यपर्यन्तं यास्यामिक्षितिमण्डले ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा पुष्पमालाब्यभाषत ॥ २६ ॥ व्यर्थश्रमोसिलोकेश नान्तोलिङ्गस्यविद्यते ॥ चतुर्युगसहस्राणां कोटिरेकापितामह ॥ २७ ॥ लिङ्गमूर्द्ध्नःपतन्त्यामे कालोजातोमहाद्युते ॥ तथापिक्षितिपृष्ठन्तु नप्राप्तास्मिकथञ्चन ॥ २८ ॥ यावत्कालेनहंसस्ते योजनंसंप्रगच्छति ॥

हुई कि इसलिंगके अन्तको हम तुमदोनोंके मध्य में जो पावैगा ॥ २४ ॥ वह बड़ा है दूसरा हीन है यह शिवजीने कहा है तदनन्तर मैं ऊपर को चला और विष्णुजी नीचे के मार्गको चले ॥ २५ ॥ मैं लिंगके अन्तको पाकर पृथ्वीमंडल में जाऊंगा उसके उस वचनको सुनकर पुष्पमाला ने कहा ॥ २६ ॥ कि हे लोकेश ! व्यर्थ परिश्रम करतेहो क्योंकि लिंगका अन्त नहीं विद्यमानहै हे पितामह ! एक करोड़ हज़ार चतुर्युग ॥ २७ ॥ समय लिंगके मस्तक से गिरेहुये मुझको व्यतीत हुआ है तथापि हे पितामह ! मैं किसीप्रकार पृथ्वी को नहीं प्राप्त हुई हूं ॥ २८ ॥ जितने समयसे तुम्हारा हंस एक योजन (चारकोस) जाता है उतनेसमय से मैं

सौ योजन जाती हूं ॥ २९ ॥ उसकारण हे विभो ! मेरे वचन से तुमको लौटना योग्य है और मुझको विष्णुजीको दिखाकर तुम इससमय ज्येष्ठ होवो ॥ ३० ॥ तदनन्तर प्रसन्नमन होकर उस केतकी को लेकर चतुरानन ब्रह्माजी देवताओं के हजार वर्ष के अन्त में पृथ्वीको आये ॥ ३१ ॥ व ब्रह्माने उस केतकी को विष्णुजीको दिखलाया कि हे चतुर्भुज ! मैं इस उत्तम मालाको लिंगके मस्तक से लाया हूं और अन्त मिलगया ॥ ३२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुमने अन्त पाया या नहीं पाया मुझसे सत्य कहिये ॥ ३३ ॥ विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! अनन्त व प्रमाणरहित देवदेव त्रिशूली शिवजी के परमपार जाने के लिये मैं किसीप्रकार

तावत्कालेनगच्छामि योजनानामहंशतम् ॥ २९ ॥ तस्मान्निवर्तनंयुक्तं ममवाक्येनतेविभो ॥ दर्शयित्वाचमांविष्णो ज्येष्ठत्वंव्रजसाम्प्रतम् ॥३०॥ ततोहृष्टमनाभूत्वा गृहीत्वातांचतुर्मुखः ॥ दिव्यवर्षसहस्रान्ते भूमिपृष्ठमुपागतः ॥३१॥ दर्शयामासतांविष्णो रेखालिङ्गस्यमूर्धतः ॥ मयानीताशुभामाला लब्धश्चान्तश्चतुर्भुज ॥ ३२ ॥ त्वयालब्धोनवासत्यं वदमेपुरुषोत्तम ॥ ३३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ अनन्तस्याप्रमेयस्य देवदेवस्यशूलिनः ॥ नाहंशक्तःपरम्पारं गन्तुंब्रह्मन् कथञ्चन ॥ ३४ ॥ यदित्वयास्यपर्यन्तो लब्धोब्रह्मन्कथञ्चन ॥ तत्तेतुष्टिंगतोनूनं देवदेवोमहेश्वरः ॥ ३५ ॥ नान्यथाचास्यपर्यन्तो दृश्यतेकेनचित्कचित ॥ तस्माज्ज्येष्ठोभवाञ्श्रेष्ठः कनिष्ठोहमसंशयम् ॥ ३६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवान्वृषभध्वजः ॥ कोपंचक्रेमहाराज ब्रह्माणम्प्रतितत्क्षणात् ॥ ३७ ॥ अत्रचादर्शनंगत्वा धिग्धिग्व्याजप्रजल्पकम् ॥ मिथ्याप्रजल्पमानेन किमिदंसाहसंकृतम् ॥ ३८ ॥ यस्मात्त्वयामृषाप्रोक्तं ममपर्यन्त

समर्थ नहीं हूं ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि तुमने किसीप्रकार इसके अन्तको पाया है तो निश्चयकर तुम्हारे ऊपर देवदेव महेश्वरजी प्रसन्न हुये हैं ॥ ३५ ॥ अन्यथा इसका अन्त किसी ने कहीं नहीं देखा है इस से आप श्रेष्ठ होकर ज्येष्ठ हैं और मैं निस्सदेह कनिष्ठहूं ॥ ३६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे महाराज ! इसीसमय में वृषभध्वज भगवान् शिवजीने ब्रह्माके ऊपर उसीक्षण क्रोध किया ॥ ३७ ॥ कि यहां दर्शन को न प्राप्त होकर छलसे कहनेवाले तुमको धिक्कार है धिक्कार है झूंठ

कहतेहुये तुमने क्यों यह साहस किया ॥ ३८ ॥ जिसलिये तुमनेझूंठही मेरे अन्त दर्शनको कहा इस कारण तुम सब जातियों के पूजने योग्य न होगे ॥ ३९ ॥ और मोहसंयुत जो मनुष्य तुमको पूजैंगे वे सब बड़े क्लेशको पाकर नाशको प्राप्त होवैंगे ॥ ४० ॥ और जिसलिये बहुतही दुष्टा केतकीने वैसाही कहा उसी कारण इसके भलीभांति स्पर्श से मनुष्य चाण्डालता को प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥ इसप्रकार उन दोनों को शापों को देकर उससमय प्रसन्नमुख होकर प्रसन्न होते हुये शिवदेवजीने विष्णुजीसे कहा ॥ ४२ ॥ भगवान्शिवजी बोले कि हे महाबाहो, महामते, वासुदेव ! सत्य कहनेही से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं हे सुव्रत ! वरदानको

दर्शनम् ॥ तस्मात्त्वंसर्ववर्णानां पूजार्होनभविष्यसि ॥३९॥येचत्वांपूजयिष्यन्ति मानवामोहसंयुताः ॥ तेकृच्छ्रंपरमं प्राप्य नाशंयास्यन्तिकृत्स्नशः ॥ ४० ॥ केतक्याचतथाप्रोक्तं यस्मात्तस्मात्सुदुष्टया ॥ अस्यास्संस्पर्शनाल्लोकः श्वपाकत्वंप्रयास्यति ॥ ४१ ॥ एवंशापौतयोर्दत्त्वा देवःप्रोवाचकेशवम् ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा तदातुष्टोमहेश्वरः ॥ ४२ ॥ भगवानुवाच ॥ वासुदेवमहाबाहो तुष्टस्तेहंमहामते ॥ सत्यसंभाषणादेव वरंवरयसुव्रत ॥ ४३ ॥ वासुदेव उवाच ॥ एवमेषवरःश्लाघ्यो यत्त्वंतुष्टोमहेश्वर ॥ नचपुण्यवतांपुंसां त्वं तुष्टिमधिगच्छसि ॥ ४४ ॥ अवश्यंयदिमेदेयो वरो देवेश्वरत्वया ॥ लिङ्गमेतदनन्ताख्यं लघुतांनयमाचिरम् ॥ ४५ ॥ येनसृष्टिर्भवेल्लोके व्याप्तंविश्वमनेनतु ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततःसंक्षिप्यतल्लिङ्गं लघुकृत्वामहेश्वरः ॥ ४६ ॥ अब्रवीत्केशवंभूयः शृणुवाक्यमिदंहरे ॥ एतन्मेध्यतमेदेशे लिङ्गंस्थापयमेहरे ॥ ४७ ॥ पूजयस्वविधानेन परंश्रेयःप्रपत्स्यसि ॥ ममतेजोविनिर्दग्धः कृष्णत्वंहियतोगतः ॥४८॥

मांगिये ॥ ४३ ॥ वासुदेव बोले कि हे महेश्वरजी ! यह ऐसाही वर प्रशंसनीय है जो कि तुम प्रसन्न हुयेहो क्योंकि तुम पुण्यवान् पुरुषों के ऊपर भी प्रसन्नताको नहीं प्राप्त होतेहो ॥ ४४ ॥ हे देवेश्वर ! यदि मुझको अवश्य तुमसे वरदेने योग्य है तो इस अनन्तनामक लिंगको शीघ्रही लघुता को प्राप्त कीजिये ॥ ४५ ॥ कि जिससे संसारमें सृष्टि होवै इस लिंगसे संसार व्याप्त है पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर उस लिंगको संक्षिप्तकर लघुकरके महादेवजीने ॥ ४६ ॥ फिर विष्णुजीसे कहा कि हे हरे ! इस वचनको सुनिये व हे हरे ! इस मेरे लिंगको अतिपवित्र स्थान में थापन करो ॥ ४७ ॥ और विधिसे पूजन करो तो उत्तम कल्याण को प्राप्त होवोगे

और जिसलिये मेरे तेजसे जलेहुये तुम कृष्णत्वको प्राप्त हुयेहो ॥ ४८ ॥ उसकारण संसार में कृष्णाही नाम प्रसिद्धिको प्राप्त होगा ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य भक्तिसे कृष्ण कृष्ण ऐसा तुम्हारा नाम कहैगा वह उत्तम गतिको प्राप्त होगा पुलस्त्यजी बोलेकि ऐमा कहकर शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ४६ ।५० ॥ और वासुदेवने भी उस लिंगको लेकर अर्बुदपर्वत पै बहुतपवित्र व निर्मल जलवाले झरने में स्थापन किया ॥ ५१ ॥ उसीकारण पृथ्वी में नामसे कृष्णतीर्थ हुआ हे नृपोत्तम ! उसमें नहायेहुये मनुष्य को जो फल होता है उसको सुनिये ॥ ५२ ॥ कि पवित्र कृष्णकुण्ड में नहाकर जो उस लिंगको देखता है वह मनुष्य सब तीर्थों

कृष्णएवततोनाम लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ कृष्णकृष्णेतितेनाम प्रातरुत्थायमानवः ॥ ४९ ॥ कीर्तयिष्यतियोभक्त्यासयातिपरमाङ्गतिम्॥पुलस्त्य उवाच॥एवमुक्त्वातमीशानस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५० ॥ वासुदेवोपितल्लिङ्गं गृहीत्वार्बुदपर्वते ॥ निर्भरेस्थापयामास सुपुण्येविमलोदके ॥ ५१ ॥ कृष्णतीर्थंततोजातं नाम्नाहिधरणीतले ॥ शृणुपार्थिवशार्दूल तत्रस्नातस्ययत्फलम् ॥ ५२ ॥ स्नात्वाकृष्णह्रदेपुण्ये तल्लिङ्गंपश्यतेतुयः ॥ सर्वतीर्थोद्भवंश्रेयः समर्त्योलभतेखिलम् ॥ ५३ ॥ तथाचसर्वदानानां निष्कामस्स्याद्यदिप्रभो ॥ सकामोपिफलंचेष्टं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ५४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ यइच्छेच्छाश्वतंश्रेयो नात्रकार्याविचारणा ॥ ५५ ॥ एकादश्यांमहाराज निराहारोजितेन्द्रियः॥ यस्तत्रजागरंकुर्याल्लिङ्गस्याग्रेसुभक्तितः ॥ ५६ ॥ प्रभातेकुरुतेश्राद्धं यस्तुश्रद्धासमन्वितः ॥ पितॄन्सतारयेत्सर्वान्पूर्वजैःसहधर्मवित् ॥ ५७ ॥ तिलान्कृष्णान्नरस्तत्र ब्राह्मणेभ्योददातियः॥ब्रह्महत्यादिभिःपापैः समर्त्यो

से उपजेहुये सब पुण्य को पाता है ॥ ५३ ॥ व हे प्रभो ! यदि अकाम होवै तोभी सब दानों के पुण्यको प्राप्त होता है और सकाम भी जो प्रिय फल होता है उसको पाता है यद्यपि दुर्लभ भी होवै ॥ ५४ ॥ इसकारण जो सदैव कल्याण चाहै वह सब यत्न से उस तीर्थ में स्नान करै इसमें विचार न करनाचाहिये॥ ५५ ॥ हे महाराज ! एकादशी तिथिमें जो निराहार व जितेन्द्रिय मनुष्य वहां उत्तम भक्तिसे लिंगके आगे जागरण करता है ॥ ५६ ॥ और श्रद्धासंयुत जो प्रातःकाल श्राद्ध करता है यह धर्मज्ञ पुरुष पूर्वजोंसमेत सब पितरों को तारता है ॥ ५७ ॥ और वहां जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये काले तिलोंको देता है वह मनुष्य निश्चयकर ब्रह्महत्यादिक

पापों से छूटजाता है ॥ ५८ ॥ हे नृपेन्द्र ! कृष्णतीर्थके दर्शनही से मनुष्य सबपापों से छूटजाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकृष्णतीर्थप्रभाववर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । मामूह्रद तीरथ कियो जिमि मुद्गल मुनिनाथ । पैंतिसवें अध्याय में सोइ सुहावन गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर उस पर्वत के किनारे पै मामूह्रद ऐसे प्रसिद्ध पापनाशक तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ उसमें भलीभांति नहाया हुआ सावधान व श्रद्धावान् मनुष्य पूर्वजन्म में भी किये हुये भयंकर पातकों से

मुच्यतेध्रुवम् ॥ ५८ ॥ दर्शनादेवराजेन्द्र कृष्णतीर्थस्यमानवः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो नात्रकार्याविचारणा ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेर्बुदमाहात्म्येकृष्णतीर्थप्रभाववर्णनन्नामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ मामूह्रदमितिख्यातं तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥ १ ॥ तत्र स्नातोनरस्सम्यक् श्रद्धावान्सुसमाहितः ॥ मुच्यतेपातकैर्घोरैः पूर्वजन्मकृतैरपि ॥ २ ॥ तस्यपश्चिमदिग्भागे लिङ्गमस्तिमहीपते ॥ सर्वकामप्रदन्नृणां स्थापितंमुद्गलेनतु ॥ ३ ॥ स्नात्वामामूह्रदेपुण्ये यस्तुलिङ्गंचपश्यति ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यां फाल्गुनेमासिमानवः ॥ ४ ॥ सप्राप्नोतिपरंश्रेयः सर्वतीर्थेषुदुर्लभम् ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं दक्षिणांमूर्तिमाश्रितः ॥ ५ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ तत्रदानंप्रशंसन्ति नीवाराणांमहर्षयः ॥ ६ ॥ शाकमूलादिभिः श्राद्धं पितॄणान्तुष्टिदन्नृप ॥ ७ ॥ ययातिरुवाच ॥ मामूह्रदमितिविभो कथंनामाभवत्पुरा ॥ मुनेस्तस्याश्रमंब्रूहि मम

छूटजाता है ॥ २ ॥ हे भूपते ! उसके पश्चिमदिशाके भाग में मुद्गल से थापाहुआ मनुष्यों के सब मनोरथों को देनेवाला लिंग है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य फागुन महीने में शुक्लपक्ष में चौदसि तिथि में पवित्र मामूह्रद में नहाकर उस लिंगको देखता है ॥ ४ ॥ वह सब तीर्थों में दुर्लभ व उत्तम पुण्यको प्राप्त होता है व दक्षिणा मूर्ति के आश्रित जो मनुष्य वहां श्राद्ध करता है ॥ ५ ॥ उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त होते हैं वहां महर्षिलोग तिन्नी फसही के दानकी प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वहां शाक व मूलादिकों से श्राद्ध पितरों को तृप्तिदायक है ॥ ७ ॥ ययातिजी बोले कि हे विभो ! पुरातनसमय मामूह्रद ऐसा नाम कैसे हुआ और उन मुनि के

आश्रम व सब चरित्रको मुझसे विधान से कहिये ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! पुरातनसमय वहां टिके हुये महात्मा मुद्गल के लिये उत्तम विमान को लेकर देवदूत आया ॥ ९ ॥ और उसने कहा कि तुम्हारेलिये मैं देवदूत पठायागया हूं तुम इस विमान पै चढ़ो व स्वर्ग को चलो ॥ १० ॥ मुद्गल बोले कि हे दूत ! स्वर्गके जो गुण व दोष कहेगये हैं उनको मुझसे कहिये क्योंकि मैं उनको सुनकर जो योग्य होगा उसको करूंगा ॥ ११ ॥ हे दूत ! उन सबको मुझसे कहिये तदनन्तर मैं स्वर्गको जाऊंगा इस गर्व से कुछ नहीं है कि इन्द्रका कथन कीजिये ॥ १२ ॥ दूत बोला कि हे द्विजश्रेष्ठ, मुने ! अपने पुण्यों से मनुष्य स्वर्ग

सर्वंविधानतः ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तत्रस्थस्यपुराराजन् मुद्गलस्यमहात्मनः ॥ विमानंवरमादाय देवदूतस्समागमत् ॥ ९ ॥ सोब्रवीद्देवदूतोहं प्रेषितोमुनिसत्तम ॥ तवार्थायारुहैनंत्वं विमानंगम्यतांदिवि ॥ १० ॥ मुद्गल उवाच ॥ स्वर्गस्ययेगुणाद्दूत येचदोषाःप्रकीर्तिताः ॥ तान्मेवद करिष्येहं श्रुत्वावैयत्क्षमंभवेत् ॥ ११ ॥ ब्रूहितान्सकलान्दूत स्वर्गमिष्याम्यहन्ततः ॥ अलमेतेनदर्पेण क्रियतांशक्रजल्पितम् ॥ १२ ॥ दूत उवाच ॥ पुण्यैःस्वकैर्द्विजश्रेष्ठ नरोगच्छेद्दिवंमुने ॥ मुद्गल उवाच ॥ अश्रुतैस्तैर्नगच्छेहमेतन्मेहृदिनिश्चितम् ॥ १३ ॥ चरिष्येहंतपोभूरि पूजयिष्येमहेश्वरम् ॥ दूत उवाच ॥ नशक्तस्स्वर्गुणान्वक्तुमपिवर्षशतैरपि ॥ १४ ॥ संक्षेपात्कथयिष्यामि यदितेनिश्चयःपरः ॥ नन्दनादीनिरम्याणि तत्रदेववनानिच ॥ १५ ॥ अनन्यसदृशाभोगाः सदातृप्तिर्द्विजोत्तम ॥ बुभुक्षानैवतृष्णाच निद्रालस्येनच प्रभो ॥ १६ ॥ रम्भाद्यप्सरसोमुख्या गन्धर्वास्तुम्बुरादयः ॥ रमयन्तिनरंतत्र गीतैर्नृत्यैरनेकशः ॥ १७ ॥ एवंचवसते

को जाता है मुद्गलजी बोले कि उनके बिन सुने हुये मैं नहीं जाऊंगा यह मेरे हृदयमें निश्चय किया गया है ॥ १३ ॥ और मैं बहुत तप करूंगा व शिवजीको पूजूंगा दूत बोला कि सौ वर्षों से भी मैं स्वर्ग के गुणों को कहने के लिये समर्थ नहीं हूं ॥ १४ ॥ यदि तुमको उत्तम निश्चय है तो संक्षेप से कहताहूं कि उस स्वर्ग में नन्दनादिक सुन्दर देववन हैं ॥ १५ ॥ व हे द्विजोत्तम ! अन्य के समान भोग नहीं हैं याने अति उत्तम सुख हैं और सदैव तृप्ति रहती है व हे प्रभो ! न क्षुधा है न प्यास है न निद्रा है न आलस्य है ॥ १६ ॥ और रंभादिक-मुख्य अप्सरा और तुंबुरु आदिक गंधर्व वहां मनुष्यको अनेक गीतों व नृत्यों से रमण कराते हैं ॥ १७ ॥

हे तपोधन ! इसप्रकार उस स्वर्ग में मनुष्य तबतक बसता है जबतक कि पुण्यका क्षय होता है पश्चात् पातको प्राप्त होता है याने गिरजाता है॥ १८॥ हे मुने ! स्वर्ग में स्वर्गियोंको भयदायक वही पतननामक मुझको एकहीदोष जानपड़ता है ॥ १९ ॥ हे विप्र ! वहां किसीप्रकार पुण्य करने को नहीं मिलता है हे ब्रह्मन् ! कर्मभूमि यह है और भोगकी भूमि वह कहीगई है ॥ २० ॥ यहां जो शुभकर्म कियाजाता है वह वहा भोग कियाजाताहै वैसेही हे द्विजोत्तम ! बहुत तेज से संयुत व बहुत धर्मादिकों से युक्त मनुष्यों को विमानों पै स्थित देखकर उससमय थोड़े पुण्यवाला स्वर्ग में टिकाहुआ पुरुष पश्चात्तापसे उपजेहुये दुःखसे दुःखित होताहै ॥ २१ । २२ ॥

तत्र जनस्स्वर्गेतपोधन ॥ यावत्पुण्यक्षयस्तावत् पश्चात्पातमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥ एकएवमुनेदोषः स्वर्लोकेप्रतिभातिमे ॥ सएवपतनाख्यस्तु स्वर्गिणांचभयावहः ॥१९॥ नपुण्यंलभ्यतेतत्र कर्तुंविप्रकथञ्चन ॥ कर्मभूमिरियंब्रह्मन्भोगभूमिस्तुसास्मृता ॥ २० ॥ यदत्रक्रियतेकर्म शुभंतत्रोपभुज्यते॥ तथादृष्ट्वाविमानस्थान्भूरिधर्मादिसंयुतान्॥२१॥ बहुतेजोन्वितान्स्वर्गे अल्पपुण्योद्विजोत्तम ॥ पश्चात्तापजदुःखेन स्वर्गस्थोदुःखितस्तदा ॥ २२ ॥ नचयैःसुकृतंभूरिकृतंमर्त्ये कथञ्चन ॥ तथाचयतमानांश्च दृष्ट्वाचान्यान्सहस्रशः ॥ २३ ॥ आत्मनश्चमहद्दुःखं जायतेचतदद्भुतम् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं गुणदोषसमुद्भवम् ॥२४॥ स्वर्गसञ्चेष्टितंब्रह्मन्कुरुष्वयदभीप्सितम् ॥ मुद्गल उवाच ॥ पतनस्यभयंयत्रपुण्यहानिर्नवर्द्धनम् ॥ २५ ॥ तेनस्वर्गेणमेदूत नैवकार्यंकथञ्चन ॥ वाच्यस्त्वयाममादेशाद्देवराजःस्फुटंवचः ॥ २६ ॥ क्षम्यतामपराधोमे नस्वर्गीयास्पृहामम ॥ तत्कर्महिकरिष्यामि येननोपतनाद्भयम् ॥ २७ ॥ साधयिष्यामि

और जिन्होंने मृत्युलोक में किसीप्रकार बहुत पुण्य को नहीं किया है उनको और वैसेही अन्य हज़ारों पुरुषों को गिरतेहुये देखकर ॥ २३ ॥ अपनाको भी बड़ा दुःख होता है वह आश्चर्य है गुणों व दोषों से उपजाहुआ यह सब स्वर्ग का वृत्तान्त कहागया है ब्रह्मन् ! जो प्रिय हो उसको कीजिये मुद्गल बोले कि गिरने का भयहै व पुण्यकी हानि है बढ़ती नहीं है ॥ २४।२५ ॥ हे दूत ! उस स्वर्ग से मेरा किसीप्रकार कार्य नहीं है और मेरी आज्ञा से तुम इन्द्र से प्रगटवचन कहना ॥ २६ ॥ कि मेरा

अपराध क्षमा कियाजावै मुझको स्वर्ग की इच्छा नहीं है मैं उस कर्म को करूंगा कि जिससे गिरने से डर न होगा ॥ २७ ॥ और मैं उन लोकों को साधन करूंगा जो कि सदैव पात से रहित हैं पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर स्वर्ग की इच्छा से रहित मुद्गल ॥ २८ ॥ वहीं टिककर शिवजी के ध्यान में परायण हुये और इन्द्र के दूत ने भी सुनकर विस्तारसमेत उनके वचन को ॥ २९ ॥ कहा और इन्द्र ने फिर उस दूत से कहा कि हे देवदूत ! तुमने विमान को प्रमाण रहित किया ॥ ३० ॥ और पहले किसीने नहीं कियाहै व न कोई करेगा उसकारण वहां शीघ्रही जाकर बलसे उन मुनि को लेआवो ॥ ३१ ॥ तुम उन को लावो नहीं

ताल्लोँकान्येसदापातवर्जिताः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वानृपश्रेष्ठ मुद्गलस्स्वर्गनिस्पृहः ॥ २८ ॥ स्थितस्तत्रैवनिरतः शिवध्यानपरायणः ॥ श्रुत्वाद्दूतोपिशक्रस्य तस्यवाक्यंसविस्तरम् ॥ २९ ॥ कथयामासशक्रस्तु तंभूयःपर्यभाषत ॥ देवदूताप्रमाणंच विमानंहित्वयाकृतम् ॥ ३० ॥ नकृतंकेनचित्पूर्वं नकरिष्यतिकश्चन ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगत्वा बलादानयतंमुनिम् ॥ ३१ ॥ आनयस्वान्यथाशापं तवदास्याम्यसंशयम् ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शक्रस्यवचनंश्रुत्वा देवदूतोभयान्वितः ॥ ३२ ॥ प्रस्थितस्सत्वरंतत्र मुद्गलोयत्रतिष्ठति ॥ मुद्गलोपिविमानंस्वं पुनर्दृष्ट्वासमागतम् ॥ ३३ ॥ मामूहृदेप्रविश्याथ वारयामासतंतदा ॥ सतस्यवचनेनैवातिष्ठत्तल्लिखितोयथा ॥ ३४ ॥ चलितुंशक्यतेनैव प्रभावात्तस्यसन्मुनेः ॥ चिरकालगतंज्ञात्वा दूतन्तुत्रिदशाधिपः ॥ ३५ ॥ स्वयंतत्रययौकोपादारुह्यैरावणंगजम् ॥ अथदृष्ट्वातदादूतं स्तम्भितंमुद्गलेनतु ॥ ३६ ॥ वधार्थन्तुमनस्तस्य सवज्रंभ्रामयंस्तदा ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु उत्पातास्तत्रदारुणाः ॥ ३७ ॥

तो मैं तुमको शाप दूंगा इसमें सन्देह नहीं है पुलस्त्यजी बोले कि इन्द्रके वचनको सुनकर देवदूत डरसे संयुत हुआ ॥ ३२ ॥ और जहां मुद्गलजी टिके थे वहां शीघ्रही चला और मुद्गलने भी फिर आयेहुये अपने विमानको देखकर ॥ ३३ ॥ उससमय मामूहृदमें पैठकर उसको मना किया और उन मुनिके वचन से वह दूत लिखित (चित्र) कीनाईं खड़ा होगया ॥ ३४ ॥ और उन उत्तम मुनिके प्रभावसे चलनेके लिये न समर्थहुआ बहुत समय गयेहुये दूतको जानकर देवताओंके स्वामी इन्द्रजी ॥ ३५ ॥ ऐरावत हाथी पै सवार होकर क्रोधसे आपही वहां गये इसके अनन्तर मुद्गलसे स्तम्भित दूतको देखकर उससमय ॥ ३६ ॥ वज्र घुमातेहुये इन्द्रनेउन मुनि

के मारने के लिये मन किया तब इसीसमय में वहां मुद्गल के समीप इन्द्र के वज्र को हाथ में उवाने पर भयंकर उत्पात हुये कि रविमंडल को नाश कर बड़ीभारी उल्का गिरी ॥ ३७ । ३८ ॥ और अकाल वर्षा हुई व बहुतही भयंकर पवन चले और मृग, पशु व जो पक्षी थे उन्हों ने दक्षिण परिक्रमाकिया ॥ ३९ ॥ उनको देख-कर विस्मय से संयुत मुद्गल ने विचार किया इसके उपरान्त आकाश में प्राप्त व वज्र को हाथ में उवायेहुये इन्द्र को देखकर ॥ ४० ॥ मुद्गल ने शीघ्रही उन इन्द्र को दृष्टिपात से रोंक दिया व हे नृपोत्तम ! वहां नष्ट उत्साहवाले इन्द्र ने स्तुति किया ॥ ४१ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मुझ को छोड़ दीजिये मैं स्वर्ग को जाताहूं व

वज्रोद्यतकरेजाताः शक्रेमुद्गलसन्निधौ ॥ पपातमहतीचोल्का निहत्यरविमण्डलम् ॥ ३८ ॥ अकालवृष्टिरभवद्व वुर्वाताःसुदारुणाः ॥ अपसव्यंमृगाश्चक्रुःपशवःपक्षिणश्चये ॥ ३९ ॥ तान्दृष्ट्वाचिन्तयामास मुद्गलोविस्मयान्वितः ॥ अथदृष्ट्वाम्बरगतं वज्रोद्यतकरंहरिम् ॥ ४० ॥ स्तम्भयामासतंसद्यो दृष्टिपातेनमुद्गलः ॥ तत्रशक्रस्स्तुतिंचक्रे भग्नोत्साहोन्नृपोत्तम ॥ ४१ ॥ मुञ्चमांब्राह्मणश्रेष्ठ यास्यामित्रिदशालयम् ॥ स्वर्गेवायदिवामर्त्ये त्वंतिष्ठस्वेच्छयाद्विज ॥ ४२ ॥ मयाकृतःसमुद्योगो हितार्थंतेमुनेह्ययम् ॥ वरंवरयभद्रन्ते नित्यंयोमनसिस्थितः ॥ ४३ ॥ तत्तेसर्वंप्रदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ मुद्गल उवाच ॥ एवमेषवरःश्लाघ्यो यत्त्वंदृष्टःसुरेश्वर ॥ ४४ ॥ दर्शनन्तेसहस्राक्ष स्वप्नेष्वपिसुदुर्लभम् ॥ अवश्यंयदिमेदेयो वरोवृत्रनिषूदन ॥ ४५ ॥ त्वत्प्रसादेनमेमोक्षो जायतांशीघ्रमेवहि ॥ मामूहृदंसमागच्छदूतःप्रोक्तोमयायतः ॥ ४६ ॥ ततोमामूहृदमिति ख्यातिंयातुधरातले ॥ तीर्थमेतत्सहस्राक्षसर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४७ ॥

हे द्विज ! तुम अपनी इच्छा से स्वर्ग में या मृत्युलोक में स्थित होवो ॥ ४२ ॥ हे मुने ! मैंने तुम्हारे हित के लिये इस उद्योग को किया था तुम्हारा कल्याण होवै और जो सदैव मन में स्थित होवै उस वरदानको मांगो ॥ ४३ ॥ जो दुर्लभ भी होगा उस सबको भी मैं तुम्हैं दूंगा मुद्गलजी बोले कि हे सुरेश्वर ! यहींपर प्रशंमनीय है जो कि तुम देखे गये ॥ ४४ ॥ हे सहस्रलोचन ! स्वप्नों में भी तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है व हे वृत्रविनाशक ! यदि अवश्य मुझको वर देने योग्य है ॥ ४५ ॥ तो शीघ्रही तुम्हारी प्रसन्नतासे मुझको मोक्ष प्राप्त होवै जिसलिये मैंने दूतसे कहा कि कुण्डको मत आओ मतआओ ॥ ४६ ॥ उसकारण पृथ्वीमें मामूहृद ऐसीप्रसिद्धि

को प्राप्तहोवै व हे सहस्राक्ष ! यह तीर्थ सब पापों का नाशक होवै ॥ ४७ ॥ व हे सुरेश्वर ! इसमें नहाकर मनुष्य तुम्हारी प्रसन्नता से स्वर्गको प्राप्त होवैं और यहां पिंडदानसे पितर उत्तम शांतिको प्राप्तहोवैं ॥ ४८ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे द्विजोत्तम! मामूह्रद ऐसा प्रसिद्ध यह तीर्थ मेरी प्रसन्नता से श्रेष्ठ होगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४९ ॥ व हे मुने ! फागुन महीने में पौर्णमासी तिथिमें सावधान होते हुये जो मनुष्य इसमें स्नान करैंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवैंगे ॥ ५० ॥ और यहां पिंडदान से गया के समान फल मिलता है और द्विजोत्तम यहां पिण्डदानकी असंख्य प्रशंसा करते हैं ॥ ५१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर वज्रधारी इन्द्रजी दूतको लेकर

अत्रस्नात्वादिवंयान्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ पिण्डदानात्परांप्रीतिं लभन्तुपितरोत्रहि ॥ ४८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ मामूह्रदमितिख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ वरिष्ठंनात्रसन्देहो मत्प्रसादाद्द्विजोत्तम ॥ ४९ ॥ अत्रयेफाल्गुनेमासि पौर्णमास्यांसमाहिताः ॥ करिष्यन्तिमुनेस्नानन्तेयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥ ५० ॥ पिण्डदानाद्गयातुल्यं लभ्यतेफलमुत्तमम् ॥ पिण्डदानंप्रशंसन्ति संख्याहीनंद्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वाययौस्वर्गंदूतमादायवज्रभृत्॥ मुद्गलोपिपरंब्रह्म चिन्तयन्द्यानिशंततः ॥ ५२ ॥ शुक्लध्यानपरोभूत्वा मोक्षंप्राप्तस्ततोक्षयम् ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अत्र गाथापुरागीता नारदेनमहात्मना ॥ ५३ ॥ बहुविप्रसमाजेतु पर्वतेस्मिन्महीपते ॥ मामूह्रदेनरस्स्नात्वा पश्येत्तंमुद्गलेश्वरम् ॥ ५४ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् मामूह्रदमितिस्मृतम् ॥ तत्तीर्थंसर्वतीर्थानां प्रवरंलोकविश्रुतम् ॥५५॥ तस्मा

स्वर्गको चलेगये तदनन्तर दिनरात परब्रह्मको चिन्तवन करतेहुये मुद्गल भी ॥ ५२ ॥ शुक्ल (विष्णु) के ध्यानमें तत्पर होकर तदनन्तर अक्षय मोक्षको प्राप्तहुये पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! इस पर्वत पै बहुत ब्राह्मणों की सभामें इस विषय में पहले महात्मा नारदजीने गाथा गायाहै कि मामूह्रदमें नहाकर मनुष्य उन मुद्गलेश्वरजीको देखै ॥ ५३ । ५४ ॥ इसकारण हे राजन् ! मामूह्रद ऐसा कहा हुआ वह तीर्थ सबतीर्थों के मध्यमें श्रेष्ठ व संसार में प्रसिद्ध है ॥ ५५ ॥ इसकारण सब

यत्नसे उस तीर्थ में स्नान करै और जो परमपदको चाहै मोक्षकी कामनावाला वह विशेषकर इसमें स्नान करै ॥ ५६ ॥ और चंडिकाश्रमको प्राप्तहोकर क्यों मन परि-
संतप्त होता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमामूहृदोत्पत्तिर्नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥
दो० । अर्बुदहीं पर भयो जिमि चण्डिकाश्रमहुं नाम । तीर्थ छत्तिसें में सोई बरन्यो चरित ललाम ॥ ययाति बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! वहां चण्डिका का आश्रम किस
समय व कैसे हुआ है और उसके देखने से मनुष्यों को क्या फल होता है ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! पापोंको नाशनेवाली कथाको सुनिये मैं कहताहूं कि

त्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ मोक्षकामोविशेषेण यइच्छेत्परमंपदम् ॥ ५६ ॥ चण्डिकाश्रममासाद्य किंमनःप
रितप्यते ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमामूहृदोत्पत्तिर्नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥
ययातिरुवाच ॥ चण्डिकायाद्विजश्रेष्ठ कथंतत्राश्रमोभवत् ॥ कस्मिन्कालेफलन्तेन किंदृष्टेनभवेन्नृणाम् ॥ १ ॥
पुलस्त्य उवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशनीम् ॥ यांश्रुत्वामानवस्सम्यक्सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २ ॥ पुरा
देवयुगेराजन्महिषोनामदानवः ॥ पितामहवराद्दृप्तः आसीत्सर्वभयङ्करः ॥ ३ ॥ तेनशक्रादयोदेवा जिताःसङ्ख्येस
हस्रशः ॥ भयात्तस्यदिवंहित्वा गतास्तेवैदिशोदश ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यंसवशेकृत्वा स्वयमिन्द्रोबभूवह ॥ आदित्यावसवो
रुद्रा नासत्यौमरुताङ्गणाः ॥ ५ ॥ कृतास्तेनतथादैत्या यथार्हंबलवत्तराः ॥ वह्निर्भयसमापन्नांस्त्यक्त्वादेवगणांस्तदा ॥
६ ॥ दानवेभ्योहविर्भागं देवेभ्योनप्रयच्छति ॥ उद्द्योतंकुरुतेसूर्यो यादृक्तस्याभिसम्मतः ॥ ७ ॥ यज्ञभागंविनाप्येवं

जिसको भलीभांति सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय देवयुगमें महिषनामक दानव ब्रह्माके वरदानसे गर्वित होकर सबको
भयंकर हुआ ॥ ३ ॥ उसने युद्धमें हजारों इन्द्रादिक देवताओं को जीता और उसके डरसे स्वर्गको छोड़कर वे देवता दशों दिशाओंको चलेगये ॥ ४ ॥ और वह महिषासुर
त्रिलोक को वशमें कर आपही इन्द्र हुआ और आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार व पवनों के गण ॥ ५ ॥ उससे यथायोग्य बड़े बलवान् दैत्य किये गये और उस
समय अग्निजी भयको प्राप्त देवगणों को छोड़कर ॥ ६ ॥ दानवों के लिये हविष्य का भाग देते थे देवताओं के लिये नहीं देते थे और सूर्यनारायण वसाहा प्रकाश

करते थे जैसा कि उसको संमत था ॥ ७ ॥ व हे नृपोत्तम ! यज्ञभागके विना भी सब लोकपालोंने भयसे उसके कर्मको किया ॥ ८ ॥ व हे नृपोत्तम ! यज्ञभागके विना वे दासकी नाईं कियेगये इसके अनन्तर किसीसमय सब देवताओंने मिलकर ॥ ६ ॥ व विनयसंयुक्त होकर द्विजोत्तम बृहस्पतिजीसे पूछा कि हे भगवन् ! अवलम्ब रहित हमलोग क्या करैं व कहां जावैं ॥ १० ॥ उसकारण दुष्टात्मा महिष के नाशका उपाय कहो हे नृप ! देवताओं से ऐसा कहेहुये बृहस्पतिजीने बहुतसमय तक ध्यानकर ॥ ११ ॥ हे राजन् ! वहां बैठेहुये देवताओं को जिलाते हुये से कहा बृहस्पतिजी बोले कि ब्रह्मासे वरदानको पायेहुये यह दैत्य पराक्रम में स्थित है ॥ १२ ॥

भयात्पार्थिवसत्तम ॥ लोकपालास्तथासर्वे तस्यकर्मप्रचक्रिरे ॥ ८ ॥ दासवत्पार्थिवश्रेष्ठ यज्ञभागंविनाकृताः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य सर्वेदेवाःसमेत्यतु ॥ ६ ॥ पप्रच्छुर्विनयोपेता विप्रश्रेष्ठंबृहस्पतिम् ॥ भगवन्किंवयंकुर्मः कुत्रयामो निराश्रयाः ॥ १० ॥ तस्माद्ब्रूहिक्षयोपायं महिषस्यदुरात्मनः ॥ एवमुक्तोगुरुर्देवैर्ध्यात्वाकालंचिरन्नृप ॥ ११ ॥ तत्रस्थांस्त्रिदशान्प्राह जीवयन्निवभूमिप ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ब्रह्मलब्धवरोदैत्यः पौरुषेचव्यवस्थितः ॥ १२ ॥ अवध्यस्सर्वदेवानांमुक्त्वैकांयोषितंसुराः ॥ व्रजध्वंसहितास्तस्मादर्बुदंपर्वतोत्तमम् ॥ १३ ॥ तपोर्थंतत्रसंसिद्धिर्जायतामचिरादपि ॥ शक्तिरूपाम्परांदेवीं चण्डिकांकामरूपिणीम् ॥ १४ ॥ आराधयध्वमेकान्ते ययाव्याप्तमिदंजगत् ॥ सारुष्टावैवधार्थन्तु महिषस्यदुरात्मनः ॥ १५ ॥ करिष्यतिसमुद्योगमवतारसमुद्भवम् ॥ तस्याहस्तेनसोवश्यं वधंप्राप्स्यतिदुर्मतिः ॥ १६ ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामि शाक्तीयंमन्त्रमुत्तमम् ॥ पूजाविधानसंयुक्तं मुक्तिभुक्तिप्रदंशुभम् ॥ १७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥

हेसुरो ! एक स्त्रीको छोड़कर वह सब देवताओं के अवध्यहै इसकारण साथही मिलकर तुम सब अर्बुदनामक उत्तम पर्वत पर जावो ॥ १३ ॥ वहां तपस्या के लिये थोड़े ही दिनों में भी भलीभांति सिद्धि होगी शक्तिरूपिणी व कामरूपिणी उत्तम चण्डिका देवीको ॥ १४ ॥ एकान्त में आराधन करो जिससे कि यह संसार व्याप्तहै क्रोधित होती हुई वह, दुष्टमहिषासुरके वधके लिये ॥ १५ ॥ अवतारसे उपजेहुये उद्योगको करैगी और उसके हाथसे वह दुर्बुद्धि अवश्यकर वधको प्राप्त होगा ॥ १६ ॥

मैं तुमलोगों से भुक्ति व मुक्तिको देनेवाले व पूजाकी विधिसे संयुत शक्ति के उत्तम मंत्रको कहूंगा ॥ १७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! ऐसा कहेहुये सब देवता बड़े हर्षसे संयुत हुये और उन समेत वे अर्बुद पर्वतकोगये ॥ १८ ॥ व हे राजन् ! वहां बृहस्पति द्विजने नहायेहुये उन पवित्र सब देवताओंको शीघ्रही सिद्धि करनेवाले उत्तम मंत्रोंसे दीक्षित किया ॥ १९ ॥ और वहां साढ़े तीन पहरतक परिवारसे संयुत देवता बलि, पूजन, उपहार व गंध, माला और अनुलेपनों से ॥ २० ॥ व अनेकभाति के मंत्र तथा भक्तिसे पवित्र चरुसे नित्यही दीप ज्योतिकी प्रार्थना करतेहुये सावधान हुये ॥ २१ ॥ और ममतारहित व अहंकारहीन तथा गुरुकी भक्ति

एवमुक्तास्सुरास्सर्वे हर्षेणमहतान्विताः ॥ तेनैवसहिताराजन् गताःपर्वतमर्बुदम् ॥ १८ ॥ तत्रस्नाताञ्छुचीन्सर्वान्दीक्ष यामासतान्द्विजः ॥ शाक्तेयैःपरमैर्मन्त्रैः सद्यःसिद्धिकरैर्नृप ॥ १९ ॥ सार्धयामत्रयंतत्र परिवारसमन्विता ॥ बलिपूजो पहारैश्च गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ २० ॥ मन्त्रेणविविधेनैव चरुपूतेनभक्तितः ॥ प्रार्थयन्तस्तथानित्यं दीपज्योतिस्समा हिताः ॥ २१ ॥ निर्ममानिरहङ्कारा गुरुभक्तिपरायणाः ॥ अङ्गन्याससमायुक्ताः समदर्शित्वमागताः ॥ २२ ॥ एवंसन्ति ष्ठमानानां तेषांपार्थिवसत्तम ॥ मासद्वयंव्यतिक्रान्ते ततस्तुष्टासुरेश्वरी ॥ २३ ॥ दीपज्योतिस्समादेशात्तेषांगात्रेषु पार्थिव ॥ मन्त्रेणपरिपूतानां परन्तेजोऽभ्यवर्द्धत ॥ २४ ॥ द्वादशार्कप्रभाजाता षण्मासाभ्यन्तरेणवै ॥ अथतांस्तेज सायुक्ताञ्ज्ञात्वाजीवोमहीपते ॥ २५ ॥ मण्डलंरचयामास सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ उपवेश्यततस्सर्वान् समेतांस्त्रिद शालयम् ॥ २६ ॥ तेषांशरीरगन्तेजः शाक्तेयैर्मन्त्रसत्तमैः ॥ आकृष्यन्यासयामास मण्डलेतत्रपार्थिव ॥ २७ ॥ तत

में लगेहुये अंगन्यास से संयुत देवता समदर्शित्वको प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ हे नृपोत्तम ! इसप्रकार भलीभांति टिकेहुये उन देवताओंको दो महीने बीतगये तदनन्तर सुरेश्वरी भगवतीजी प्रसन्न हुईं ॥ २३ ॥ व हेराजन् ! दीपज्योतिकी आज्ञासे मंत्रसे पवित्र उन देवताओंके अंगमें उत्तम तेज बढ़ा ॥ २४ ॥ और छः महीने के अन्तर में बारह सूर्योंके समान प्रभा हुई इसके अनन्तर हेराजन् ! बृहस्पतिजीने उन देवताओंको तेजसे संयुक्त जानकर ॥ २५ ॥ सब सिद्धियोंको देनेवाले मंडलको बनाया तदनन्तर उन सबोंको साथहीं स्वर्ग से बिठाकर ॥ २६ ॥ हे राजन् ! उनके शरीरों में प्राप्त तेजको उत्तम शक्तिवाले मंत्रोंसे खींचकर उस मंडल में धरा ॥ २७ ॥

स्तेजोमयाकन्या तत्रजातासुरूपिणी ॥ शक्तिरूपामहाकाया दिव्यलक्षणलक्षिता ॥ २८ ॥ इन्द्रस्तस्याददौवज्रं स्वपाशञ्चजलेश्वरः ॥ शक्तिञ्चभगवानग्निः सिंहयानंतथानृप ॥ २९ ॥ अन्येदेवगणास्सर्वे निजशस्त्राणिहर्षिताः॥ तस्यैददुर्नृपश्रेष्ठ स्तुतिचक्रुस्समाहिताः॥ ३० ॥देवा ऊचुः॥ नमस्तेदेवदेवेशि नमस्तेकाञ्चनप्रभे ॥ नमस्तेपद्मपत्राक्षि नमस्तेविश्वमातृके ॥ ३१ ॥ नमस्तेविश्वरूपेच नमस्तेविश्वसंस्तुते ॥ त्वंमतिस्त्वंधृतिःकान्तिः त्वंमुग्धात्वंविभावरी॥३२॥ क्षमाऋद्धिःप्रभास्वाहा सावित्रीकमलासती ॥ त्वंगौरीत्वंमहामाया चामुण्डात्वंसरस्वती ॥३३॥ भैरवीभीषणाकारा चण्डमुण्डासिधारिणी ॥ भूतप्रियामहाकाया घण्टालीविक्रमोत्कटा ॥ ३४ ॥ मद्यमांसप्रियानित्यं भक्तत्राणपरायणा ॥ त्वयाव्याप्तमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंस्तुतासुरैस्सर्वैस्ततोदेवीप्रहर्षिता ॥ तानब्रवीद्वरंसर्वान्गृह्णन्तुममदेवताः॥ ३६ ॥ देवा ऊचुः ॥ महिषोदानवोनाम पितामहवरान्वितः ॥ अवध्यः

तदनन्तर वहां स्वरूपिणी तेजोमयीकन्या पैदाहुई जो कि शक्तिरूपिणी व बड़े शरीरवाली तथा दिव्य लक्षणोंसे लक्षित थी ॥ २८॥ हे राजन् ! उसको इन्द्रने वज्र दिया व वरुणने अपनी फसरी दिया और भगवान् अग्निने शक्ति व सिंह वाहनको दिया ॥ २९ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ ! प्रसन्न होतेहुये अन्य सब देवगणोंने अपने शस्त्रों को उस भगवतीके लिये दिया व सावधान होतेहुये उन्होंने स्तुति किया ॥ ३० ॥ देवता बोले कि हे देवदेवेशि ! तुम्हारेलिये नमस्कार है हे कांचनप्रभे ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे कमलपत्रलोचनि ! तुम्हारेलिये नमस्कार है हे विश्वमातृके ! तुम्हारेलिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ हे विश्वरूपे ! तुम्हारेलिये नमस्कार है हे विश्वसंस्तुते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है तुम बुद्धि हो तुम धृति हो तुम कांति हो तुम मुग्धा हो व तुम्हीं विभावरी हो ॥ ३२ ॥ और क्षमा, ऋद्धि, प्रभा, स्वाहा, सावित्री व कमला और सती तुम्हीं हो व तुम पार्वती हो तुम महामाया हो तुम्हीं चामुंडा हो और तुम्हीं सरस्वती हो ॥ ३३ ॥ और भयंकर आकारवाली भैरवी व चंडमुंड तथा तलवारको धारनेवाली तुम्हीं हो और भूतप्रिया, महाकाया व घटाली और विक्रमसे उग्र तुम्हीं हो ॥ ३४ ॥ और सदैव मद्यमांसप्रिया व भक्तकी रक्षामें परायणहो और चराचरसमेत यह सब त्रिलोक तुमसे व्याप्त है ॥ ३५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर इसप्रकार सब देवताओं से स्तुति कीहुई देवीजी प्रसन्न होकर सब देवताओंसे बोलीं कि हे देवताओ !

आपलोग मेरे वर को ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ देवता बोले कि ब्रह्माके वरदानसे संयुत महिषासुरनामक दानव एक स्त्री को छोड़कर सब प्राणियों व देवताओं के अवध्य कियागया है इसलिये हे देवि ! तुम उसको नाशकरो देवीजी बोलीं कि हे देवताओ ! प्रसन्न होतेहुये आप सब लोग अपने २ स्थानों को जावो ॥३७। ३८ ॥ मैं समय प्राप्त होनेपर उसको मारूंगी ऐसा कहेहुये सब देवता प्रसन्न होकर अपने स्थानों को गये ॥ ३९ ॥ और प्रसन्न होतीहुई देवीजी वहीं पर्वत के किनारे स्थित हुईं इसके अनन्तर किसीसमय तीर्थयात्रा में परायण भगवान् नारदमुनि वहां देवीको देखकर स्वर्गको प्राप्तहुये जहां कि महिषनामक दानव स्थित था ॥ ४० । ४१॥

सर्वभूतानां देवानाञ्चतथाकृतः ॥ ३७ ॥ मुक्त्वैकांयोषितंदेवि तस्मात्त्वंविनिपातय ॥ दे॰उवाच॥ गच्छन्तुत्रिदशाः सर्वे स्वानिस्थानानिनिर्वृताः ॥ ३८ ॥ अहन्तंसूदयिष्यामि समयेपर्युपस्थिते ॥ एवमुक्तागतास्सर्वे स्वानिस्थानानिहर्षिताः ॥ ३९ ॥ देवीतत्रैवसंहृष्टा स्थितापर्वतरोधसि ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नारदोभगवान्मुनिः ॥ ४० ॥ तत्रदेवींचसंदृष्ट्वा तीर्थयात्रापरायणः ॥ त्रिविष्टपमनुप्राप्तो महिषोयत्रतिष्ठति ॥ ४१ ॥ तंत्रदृष्ट्वामुनिंप्राप्तं प्रणम्यमहिषासुरः ॥ विनयेनसमायुक्तश्चाभ्युत्थानमथाकरोत ॥ ४२ ॥ ततस्तंपूजयामास मधुपर्कार्घविष्टरैः ॥ सुखासीनंसुविश्रान्तं ज्ञात्वावाक्यमुवाचह ॥ ४३ ॥ कुतोभवानिहप्राप्तः किमर्थंमुनिसत्तम ॥ अमीपुत्रास्तथाराज्यं कलत्राणिधनानिच ॥४४॥ अहंभृत्यसमायुक्तः किमन्येचद्विजोत्तम ॥ सर्वन्तेहंप्रदास्यामि ब्रूहियेनप्रयोजनम् ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ अभिनन्दामितेसर्वानितत्त्वय्युपपद्यते ॥ निस्पृहाहिवयंनित्यं मुनिधर्मसमाश्रिताः ॥ ४६ ॥ कौतूहलादिहप्राप्तो द्रष्टुंत्वां

वहां प्राप्त हुये मुनिको देखकर विनय से संयुत महिषासुर ने प्रणाम कर इसके बाद अगवानी किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उन नारदका मधुपर्क, अर्घ व विष्टर से पूजन किया और सुखसे बैठे व सहँतायेहुये जानकर वचन कहा ॥ ४३ ॥ कि हे मुनिश्रेष्ठ ! आप यहां कहां से व किसलिये प्राप्तहुयेहो ये पुत्र, राज्य, कलत्र व धन ॥ ४४ ॥ और हे द्विजोत्तम ! सेवकों से संयुत मैं व औरोंको क्या कहना है मैं तुमको सब दूंगा जिससे प्रयोजन होवै उसको कहिये ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले कि तुम्हारे इन सबोंको मैं ग्रहण करताहूं और यह तुममें योग्य है व मुनियों के धर्म में टिके हुये हम सदैव निस्पृह रहते हैं ॥ ४६ ॥ हे दैत्यपुंगव ! मैं तुमको देखने के लिये

यहां कौतुक से प्राप्तहुआ हूं और मृत्युलोक से हम आये हैं व ब्रह्मा के स्थानको जावैंगे ॥ ४७ ॥ महिषासुर बोला कि हे मुने, विभो ! पृथ्वी में तुमने कहीं देवता संबधी व मानुष या दानवों का संबन्धी ॥ ४८ ॥ कुछ आश्चर्य देखा है नारदजी बोले कि हे दानवेंद्र ! मैंने पृथ्वी में बड़ा आश्चर्य देखा है जो कि पहले चराचर समेत त्रिलोक में कहीं नहीं देखागया था ॥ ४९ ॥ पृथ्वी में सब ऋतुओं में फूले हुये वृक्षोंमे शोभित स्वर्ग के समान अर्बुद ऐसा प्रसिद्ध पर्वत है ॥ ५० ॥ जो कि मौलसिरी, चंपक, आम, अशोक, कर्णिकार, साखू, ताल, खजूर, बरगद, भेलावा व धवके वृक्षोंसे संयुतहै ॥ ५१ ॥ और देवदारु, कटहर, तेंदू, कनैर, मदार, पारिजात

दैत्यपुङ्गव ॥ मर्त्यलोकात्समायाता यास्यामोब्रह्मणःपदम् ॥४७॥ महिषासुर उवाच ॥ क्वचिद्दृष्टन्त्वयाकिञ्चिदाश्चर्यं भूतलेमुने ॥दैवंवामानुषंवापि दानवालम्भितंविभो ॥ ४८ ॥ नारद उवाच॥अत्याश्चर्यंमयादृष्टं दानवेन्द्रधरातले॥ यन्न दृष्टंकचित्पूर्वं त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ४९ ॥ अस्त्यर्बुदइतिख्यातः सर्वतोधरणीतले ॥ सर्वर्त्तुपुष्पितैर्वृक्षैः शोभितस्स्वर्गसन्निभः ॥ ५० ॥ बकुलैश्चम्पकैश्चूतैरशोकैःकर्णिकारकैः ॥शालैस्तालैश्चखर्जूरैर्वटैर्भल्लातकैर्धवैः ॥ ५१ ॥ सरलैःपनसैर्वृक्षैस्तिन्दुकैःकरवीरकैः ॥ मन्दारैःपारिजातैश्च मलयैश्चन्दनैस्तथा ॥ ५२ ॥ पुष्पजातिविशेषैश्च सुगन्धैरप्यनेककैः ॥ स्वाद्यैस्सर्वैस्तथालेह्यैश्चोष्यैःफलवरैर्वृतः ॥ ५३ ॥ नसवृक्षोनसावल्ली नौषधीसाधरातले ॥ नतत्रयासुरश्रेष्ठ पर्वतेवीक्षितामया ॥ ५४ ॥ पक्षिणोमधुरारावाश्चकोरशिखिचातकाः ॥ कोकिलाधार्तराष्ट्राश्च भ्रमराःशतपत्रकाः ॥ ५५ ॥ येषांशब्दंसमाकर्ण्य मुनयोपिसमाहिताः ॥ क्षोभंयान्तित्रिकालज्ञाः कन्दर्पशरपीडिताः ॥ ५६ ॥ निर्झराणि

व मलय चन्दनों से शोभित हैं ॥ ५२ ॥ और पुष्पजातिके भेदवाले वृक्षों तथा अनेकों सुगंधित वृक्षोंसे और सब स्वादिष्ठ चाटनेवाले व चूमनेवाले उत्तम फलों से घिरा है ॥ ५३ ॥ हे श्रेष्ठ दानव ! पृथ्वी में वह वृक्ष, वह वल्ली और वह औषधी नहीं है जिसको कि मैंने उस पर्वत पै नहीं देखा है ॥ ५४ ॥ और मधुर शब्दोंवाले चकोर, मयूर, चातक, कोकिल और नीली चोंच व पैरवाले हंस और कठफोरवा पक्षी वहांहैं ॥ ५५ ॥ जिनके शब्दको सुनकर तीनों कालोंको जाननेवाले सावधान भी

मुनिलोग कामदेवके बाणसे पीड़ित होकर क्षोभको प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ और वहां बहुतही सुन्दर झरने व निर्मलजलवाली नदियां हैं और कमलिनीसमूहसे संयुक्त सैकड़ों व हज़ारों कुण्ड हैं ॥ ५७ ॥ और कमलपत्रके समान चौड़े नेत्रोंवाले और दुर्बल कटिवाले तथा श्वेतहास्यवारे विवेकी मनुष्य वहा शास्त्रके व्रतसे संयुत हैं ॥ ५८ ॥ इस विषय में बहुत कहने से क्या है जो कुछ उसपर्वत पै है स्वेदज व अंडजसंज्ञक और उद्भेद व जरायुज ॥ ५९ ॥ सब लोकों से उत्तम उस उत्तम पर्वत पै देख पड़ता है और उस अर्बुद पहाड़की चौड़ाई दश योजन है ॥ ६० ॥ और उंचाई पांच योजन है वह श्रीमान् पर्वत मृत्युलोकमें स्वर्ग होगया वहा इधर

सुरम्याणि नद्यश्चविमलोदकाः ॥ पद्मिनीखण्डसंयुक्ताः ह्रदाःशतसहस्रशः ॥ ५७ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षा मध्यक्षा माःशुचिस्मिताः ॥ विवेकिनोनरास्तत्र शास्त्रव्रतसमन्विताः ॥ ५८ ॥ किञ्चात्रबहुनोक्तेन यत्किञ्चित्तत्रपर्वते ॥ स्वेद जाण्डजसञ्ज्ञेय उद्भेदश्चजरायुजः ॥ ५९ ॥ सर्वलोकोत्तरंतत्र दृश्यतेपर्वतोत्तमे ॥ दशयोजनविस्तारस्तस्यैवह्यर्बुद स्यच ॥ ६० ॥ उच्चैश्चपञ्चसश्रीमानमर्त्येस्वर्गोऽयजायत ॥ तत्राहंकौतुकाविष्ट इतश्चेतश्चवीक्षयन् ॥ ६१ ॥ सर्वाश्च र्यमयींनारीमपश्यंलोकसुन्दरीम् ॥ नादेवीनापिगन्धर्वीनासुरीनचमानुषी ॥ ६२ ॥ तादृग्यामयादृष्टा नश्रुताचव राङ्गना ॥ रतिःप्रीतिरुमालक्ष्मीः सावित्रीचसरस्वती ॥ ६३ ॥ तस्यारूपस्यलेशेन नैतास्तुल्यास्त्रियोखिलाः ॥ अहंदृ ष्ट्वातथारूपां नारींकामेनपीडितः ॥ ६४ ॥ तदादानवशार्दूल वैक्लव्यंपरमङ्गतः ॥ ततोधैर्यमवष्टभ्य मयामनसिचिन्ति तम् ॥ ६५ ॥ नकरिष्येसमालापमनयासहकर्हिचित् ॥ यस्यादर्शनमात्रेण कामोमेहृदिवर्धितः ॥ ६६ ॥ तस्याःसम्भा

उधर देखताहुआ कौतुक से संयुत मैंने ॥ ६१ ॥ सब आश्चर्यमयी व लोकों में सुन्दरी स्त्रीको देखा न देवी, न गंधर्विणी, न दैत्यपत्नी, न मानुषी स्त्रीको ॥ ६२ ॥ मैंने वैसी रूपवती वरांगना देखा है न सुनाहै रति,प्रीति,उमा,लक्ष्मी, सावित्री व सरस्वती ॥ ६३ ॥ ये सब स्त्रिया उसके रूपके लेशमे भी समान नहीं हैं वैसी रूपवती स्त्रीको देखकर मैं कामदेव से पीड़ित हुआ ॥ ६४ ॥ तब हे दानवश्रेष्ठ ! मैं बड़ी विकलताको प्राप्तहुआ तदनन्तर धैर्यको अवलम्बकर मैंने मनमें विचार किया ॥ ६५ ॥

कि मैं इसके साथ किसीप्रकार संभाषण न करूंगा कि जिसके दर्शन हीसे मेरे हृदय में काम बढ़गया ॥ ६६ ॥ उसके संभाषण से फिर मुझको क्या होगा मैंने ब्रह्मचर्य से बहुत दिनतक तपकियाहै ॥ ६७ ॥ विषयों से जीतेहुये मेरा वह सब नाश को प्राप्त होगा इसलिये मैं तबतक अन्यत्र जाऊं जबतक कि विकार न होवै ॥ ६८ ॥ पहले ब्रह्माने तपस्या का विघ्नरूप स्त्री को रचाहै जो कि स्वर्गके मार्ग की अर्गला (बेड़कन) व नरककी सीढ़ी है ॥ ६९ ॥ तबतक धैर्य, तप, सत्य व स्थिरता और बहुज्ञता होती है जबतक कि मनुष्य विशेषकर एकान्त में स्त्रीको नहीं देखताहै ॥ ७० ॥ इसको बहुतप्रकार से विचारकर तदनन्तर नेत्रोंको मूदकर मैं उस स्त्री से न

षणेनैव किंभविष्यतिमेपुनः ॥ चिरकालंतपस्तप्तं ब्रह्मचर्येणवैमया ॥ ६७ ॥ नाशंयास्यतितत्सर्वं विषयैर्निर्जितस्यच ॥ तस्माद्गच्छामिचान्यत्र यावन्नविकृतिर्भवेत् ॥ ६८ ॥ नारीनामतपोविघ्नं पूर्वंसृष्टास्वयम्भुवा ॥ अर्गलास्वर्गमार्गस्य सोपानंनरकस्यच ॥ ६९ ॥ तावद्धैर्यंतपस्सत्यं तावत्स्थैर्यंबहुज्ञता ॥ यावत्पश्यतिनोनारीमेकान्तेचविशेषतः ॥ ७० ॥ एतत्सञ्चिन्त्य बहुधा निमील्यनयनेततः ॥ अप्रजल्प्यवरारोहान्तामहंचात्रप्रस्थितः ॥ ७१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ नारदस्य वचःश्रुत्वा महिषःकामपीडितः ॥ श्रवणादपिराजेन्द्र पुनःप्रपच्छतंमुनिम् ॥ ७२ ॥ महिष उवाच ॥ कासौब्राह्मणशार्दूल तादृग्रूपावराङ्गना ॥ यस्याःसंदर्शनादेव भवानेवं स्मरान्वितः ॥ ७३ ॥ देवीवामानुषीवापि यक्षिणीपन्नगीमुने ॥ कुमारीवासकान्तावा ब्रूहिसर्वंसविस्तरम् ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ नसापृष्टामयाकिञ्चिन्नजानामितदन्वयम् ॥ एतन्मेवर्ततेचित्ते सा कुमारीयशस्विनी ॥ ७५ ॥ अक्षमालाधराबाला कमण्डलुसमन्विता ॥ तपस्तेपेगिरौतत्र हेतुनाकेनचि

बोलकर यहांको चला ॥ ७१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! नारदजी का वचन सुनकर महिषासुर कामदेव से पीड़ित हुआ फिर उसने सुनचुकनेपर भी उन नारदमुनि से पूंछा ॥ ७२ ॥ महिषासुर बोला कि हे द्विजोत्तम ! वैसी रूपवती यह उत्तम स्त्री कहां है कि जिसके देखनेही से आप ऐसे कामसंयुत हुये ॥ ७३ ॥ हे मुने ! देवी या मानुषी, यक्षिणी व नागिनी हो और कन्या हो या पतिसमेत हो सबको विस्तार से कहिये ॥ ७४ ॥ नारदजी बोले कि मैंने उससे कुछ नहीं पूंछा है और मैं उसके वंशको नहीं जानताहूं और यह मेरे चित्तमें वर्तमान है कि वह यशस्विनी कुँवारी है ॥ ७५ ॥ रुद्राक्षकी मालाको धारेहुये वह बाला कमंडलु से संयुत है उस उत्तम

स्त्री ने किसीकारण से उसपर्वत पै तपस्या किया है ॥ ७६ ॥ हे दैत्येश ! सो मैं सनातन ब्रह्मलोक को जाऊंगा और कामदेवके बाणसे पीड़ित मैं उसकी कथा करने का उत्साह नहीं करताहूं ॥ ७७ ॥ हे राजन् ! ऐसा कहकर तदनन्तर नारदमुनि ब्रह्मलोकको गये और कामदेवसे संयुत महिषासुर ने भी उसके समीप दूतको पठाया ॥ ७८ ॥ कि आप वहां शीघ्रही जाकर उस उत्तम स्त्रीको देखो कि वह किसलिये तपस्या करती है और उसका कौन परिग्रह है ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर इस दूतने महिषासुरकी आज्ञा से अर्बुदपहाड़पर जाकर उस कमलमध्य के समान आभावाली स्त्रीको देखकर सब कर्म जानकर ॥ ८० ॥ विस्मयसमेत महिषासुरसे बतलाया

च्छुभा ॥ ७६ ॥ सोहंयास्यामिदैत्येश ब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ नोत्सहेतत्कथांकर्तुं कामबाणप्रपीडितः ॥ ७७ ॥ एवमुक्त्वाततोराजन्ब्रह्मलोकंगतोमुनिः ॥ महिषोपिस्मराविष्टो दूतंतस्याःसमादिशत् ॥ ७८ ॥ गत्वाभवान्द्रुतंतत्र पश्यतांचवराङ्गनाम् ॥ किमर्थंसातपस्तेपे कोवैतस्याःपरिग्रहः ॥ ७९ ॥ अथासौमहिषादेशाद् दूतोगत्वार्बुदाचलम् ॥ दृष्ट्वातांपद्मगर्भाभां ज्ञात्वासर्वंविचेष्टितम् ॥ ८० ॥ तस्मैनिवेदयामास महिषायसविस्मयम् ॥ दृष्ट्वादेववरास्त्रीच सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ८१ ॥ देवतेजोद्भवाकन्या साद्यापिवरवर्णिनी ॥ उद्वाहार्थंतपस्तेपे कौमारंव्रतमाश्रिता ॥ ८२ ॥ एवंतत्रवदन्तिस्म पृष्टास्सर्वेतपस्विनः ॥ सत्यमेतन्महाभाग कुरुष्वयदनन्तरम् ॥ ८३ ॥ तस्यारूपंवयःकान्तिर्वर्णितुंनैवशक्यते ॥ नालापंकुरुतेबाला साकेनापिसमंविभो ॥८४॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तच्छ्रुत्वामहिषोवाक्यं भूयःकामनिपीडितः ॥ दूतंसम्प्रेषयामास दानवंचविचक्षणम् ॥ ८५ ॥ विचक्षणद्रुतंगत्वा मदर्थेतांतपस्विनीम् ॥ सामभेदप्रदानेन दण्डेनापि

कि हे देव ! मैंने सब लक्षणों से लक्षित उत्तम स्त्रीको देखा है ॥ ८१ ॥ देवताओं के तेजसे उपजीहुई वह उत्तम रंगवाली आजभी कन्या है और कुमारिणी के व्रत में स्थित वह विवाह के लिये तपस्या करती है ॥ ८२ ॥ यहां पूंछेहुयेसब तपस्वियों ने ऐसा कहा है हे महाभाग ! यह सत्य है जो योग्यहो उसको करिये ॥ ८३ ॥ उसका रूप, अवस्था व सुन्दरता नहीं कही जासक्ती है और हे विभो ! वह बाला किसी के भी साथ संभाषण नहीं करती है ॥ ८४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस वचन को सुनकर फिर कामदेवसे पीड़ित महिषासुरने भी विचक्षणनामक दानव दूतको पठाया ॥ ८५ ॥ कि हे विचक्षण, महामते ! शीघ्रही जाकर मेरेलिये उस तपस्विनी से

साम, भेद, दान, व दंड से भी कहो ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर प्रणामकर यह विचक्षण शीघ्रही श्रेष्ठ अर्बुद पर्वत पै गया जहां कि वह परमेश्वरी थी ॥ ८७ ॥ प्रणाम कर विनयसे संयुत उसने उन भगवती से यह वचन कहा कि त्रिलोक का स्वामी महिषनामक बलवान् दानव प्रसिद्ध है ॥ ८८ ॥ जो कि दानवों के वंश में उत्पन्न और अवस्था व रूपसे संयुत है हे कल्याणि ! वह अपने धर्म से तुमको धर्मपत्नी चाहता है ॥ ८९ ॥ इसलिये सब कामनाओं के देनेवाले पतिको स्वीकार करो तुम्हारा कल्याण होवै यदि यह तुम्हारा पतिहोवै और तुम उसकी प्यारी होवो ॥ ९० ॥ तो दोनोंही का यौवन कृतार्थ होगा इसमें सन्देह नहीं है तदनन्तर उससे ऐसा

महामते ॥ ८६ ॥ अथासौप्रययौशीघ्रं प्रणिपत्यविचक्षणः ॥ अर्बुदंपर्वतश्रेष्ठंयत्रसापरमेश्वरी ॥ ८७ ॥ प्रणम्यविनयोपेतोवाक्यमेतदुवाचताम् ॥ महिषोनामविख्यातस्त्रैलोकाधिपतिर्बली ॥ ८८ ॥ दनुवंशसमुद्भूतो वयोरूपसमन्वितः ॥ सत्वांवाञ्छतिकल्याणिधर्मपत्नींस्वधर्मतः ॥ ८९ ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते सर्वकामप्रदंपतिम् ॥ यदिस्यात्तवकान्तोसौ त्वंचतस्यतथाप्रिया ॥ ९० ॥ तत्कृतार्थंद्वयोरेव यौवनंनात्रसंशयः ॥ एवमुक्तातस्तेन देवीवचनमब्रवीत् ॥ ९१ ॥ किञ्चित्कोपसमायुक्ता मुहुःप्रस्फुरिताधरा ॥ देव्युवाच ॥ अवध्यःसर्वथादूतः सर्वासुपरिकीर्तितः ॥ ९२ ॥ अवस्थासुततोनत्वं सहसाभस्मसात्कृतः ॥ गत्वाब्रूहिदुराचारं महिषंदानवाधमम् ॥ ९३ ॥ नाहंशक्यात्वयापापलब्धुंनान्येनकेनचित् ॥ वधार्थन्तेसमुद्योग एषसर्गोमयाकृतः ॥ ९४ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा महिषंसपुनर्ययौ ॥ भयेनमहताविष्टस्तस्यारूपेण विस्मितः ॥ ९५ ॥ सर्वंनिवेदयामास महिषायविचेष्टितम् ॥ तस्याश्चैवतथालापान्स्पृहणीयंचकृत्स्नशः ॥ ९६ ॥

कहीहुई देवी ने वचन कहा ॥ ९१ ॥ और कुछ क्रोधसे संयुत हुई व उसके बार २ ओंठ फरकने लगे देवीजी बोलीं कि सब दशाओंमें दूत सर्वथा अवध्य कहा गयाहै उस कारण तुम सहसा भस्म नहीं कियेगये तुम जाकर दुष्ट आचरणवाले महिषनामक नीच दानवसे कहो ॥ ९२ । ९३ ॥ कि हे पाप ! तुम और अन्य कोई मुझको नहीं पासक्ताहै तुम्हारे मारनेकेलिये मैंने यह उद्योग निश्चय कियाहै ॥ ९४ ॥ उसके उसवचनको सुनकर वह फिर महिषासुरके समीपगया और बड़े भयसे संयुत व उसके रूपसे विस्मित उस दूतने ॥ ९५ ॥ महिषासुर से सब वृत्तान्त को बतलाया और उसके वैसे संभाषण व सब स्पृहा करने योग्य वस्तुको कहा ॥ ९६ ॥

हे राजन् ! उस वचनको सुनकर कामदेवके बाणसे पीड़ित महिषासुरने सेना पतिको बुलाकर यह वचन कहा ॥ ९७ ॥ कि अर्बुदपर्वत पै जाने के लिये हाथी, घोड़ों से रचित व रथों और पैदलोंसे संयुत दुर्धर्ष सेनाको कल्पित करो ॥ ९८ ॥ तदनन्तर इस सेनापतिने पताका व छत्रों से चित्रित तथा बाजनों के शब्दों से भूषित चतुरंगिणी सेनाको बनाया ॥ ९९ ॥ तदनन्तर पखनों समेत पर्वतोंकी नाईं इधर उधर दौड़तेहुये हाथी देख पड़तेथे कि जिनके ऊपर योधा सवार थे ॥ १०० ॥ वैसेही पवनके समान वेगवान् व उत्तम तेजस्वी तथा कवच से युक्त सैकड़ों व हज़ारों घोड़े देख पड़ते थे ॥ १ ॥ और घंटियों के समूह से शब्दित तथा पताकाओं

तच्छ्रुत्वामहिषोराजन्कामबाणप्रपीडितः ॥ सेनापतिंसमाहूय वाक्यमेतदुवाचह ॥ ९७ ॥ अर्बुदंपर्वतंसेनांकल्पयस्व सुदुर्धराम् ॥ हस्त्यश्वकल्पितांभीमां रथपत्तिसमाकुलाम् ॥ ९८ ॥ ततोसौकल्पयामास चतुरङ्गांवरूथिनीम् ॥ पताकाच्छत्रशबलां वादित्रारावभूषिताम् ॥ ९९ ॥ ततोद्वीपाश्चसन्नद्धा दृश्यन्तेधिष्ठिताभटैः ॥ इतश्चेतश्चधावन्तः सपक्षाः पर्वताइव ॥ १०० ॥ दृश्यन्तेचतथैवाश्वा वायुवेगाःसुवर्चसः ॥ अङ्गत्राणसमायुक्ताः शतशोथसहस्रशः ॥ १ ॥ विमानप्रतिमाकारा रथास्तेनप्रकल्पिताः ॥ किङ्किणीजालसंघुष्टाः पताकाभिरलंकृताः ॥ २ ॥ पत्तयश्चमहाकाया महेष्वासा महाबलाः ॥ असिचर्मधराश्चान्ये पाशपट्टिशपाणयः ॥ ३ ॥ लक्षमेकंमतङ्गानां रथानांत्रिगुणंततः ॥ अश्वादशगुणाराजन्नसङ्ख्याताःपदातयः ॥ ४ ॥ ततश्चार्बुदमासाद्य वेष्टयित्वासुदूरतः ॥ सम्मतैःसचिवैःसार्धं तदन्तिकमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ ध्यानस्थांवीक्षणंकृत्वाकन्दर्पशरपीडितः ॥ ततोब्रवीच्श्लथंवाक्यं विनयेनसमन्वितः ॥ ६ ॥ श्रुत्वातवेदृशं

से भूषित विमानों के समान आकारवाले रथोंको उसने तैयार किया ॥ २ ॥ और बड़ेभारी धनुषोंको लिये तथा तलवार व ढालको धारणकिये भाला और पट्टिश अस्त्रोंको हाथमें लिये बड़े बलवान् व बड़े शरीरवाले पैदलथे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! एकलाख हाथी व उससे तिगुने रथ और दशगुने घोडे व असंख्य पैदल थे ॥ ४ ॥ तदनन्तर अर्बुदपर्वत पै जाकर व दूरही से घेरकर सम्मत मंत्रियोंसमेत महिषासुर उन भगवतीके समीप दौड़गया ॥ ५ ॥ व ध्यानमें स्थित भगवतीको देखकर तद-

नन्तर कामदेवके बाणसे पीडित महिषासुरने नम्रतासंयुक्त होकर लरखराते हुये वचन कहा ॥ ६ ॥ कि हे वरानने ! तुम्हारे ऐसे रूपको सुनकर मैं प्राप्तहुआ हूं इसलिये गाधर्व विवाहसे मुझको शीघ्रही वरिये ॥ ७ ॥ हे शुचिस्मिते ! मेरे साठ हजार स्त्रिया हैं मुझको प्रियकान्त करके तुम सबोंकीस्वामिनीहोवो ॥ ८॥ हे बाले ! तपस्या तुझको योग्य नहीं है इससे त्रिलोककी स्वामिनी होकर मेरे साथ दिन रात यथेप्सित भोगोंको भोग करो ॥ ९॥ उससे ऐसा कहीहुई उसने उत्तर नहीं कहा तदनन्तर कामदेव से संयुत वह उन भगवती के समीपगया ॥ १० ॥ तदनन्तर उसको चंचल देखकर क्रोध संयुत उस देवीने सिंहवाहनको स्मरण किया व आये

रूपमहंप्राप्तोवरानने ॥ गान्धर्वेणविवाहेन तस्माद्वरयमांद्रुतम् ॥ ७ ॥ षष्टिर्भार्यासहस्राणि ममसन्तिशुचिस्मिते ॥ कृत्वामान्दयितंकान्तं सर्वासांस्वामिनीभव ॥ ८ ॥ अनर्हन्तेतपोबाले भुङ्क्ष्वभोगान्यथेप्सितान् ॥ त्रैलोक्यस्वामिनी भूत्वा मयासार्द्धमहर्निशम् ॥ ९ ॥ एवमुक्तापिसातेन नोत्तरंप्रत्यभाषत॥ ततःकामसमाविष्टस्तदन्तिकमुपाययौ॥१०॥ ततस्तंलोलुपंदृष्ट्वा सादेवीकोपसंयुता ॥ अस्मरद्वाहनंसिंहं समायान्तंसमारुहत् ॥११॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं गच्छगच्छे तिचासकृत ॥ नोचेत्त्वांचवधिष्यामि स्थानेस्मिन्दानवाधम ॥ १२ ॥ अथासौसचिवैस्सार्द्धं समन्तात्पर्यवेष्टयत् ॥ प्र ग्रहार्थन्तुतांदेवींकामबाणप्रपीडितः ॥ १३ ॥ ततोजहाससादेवी सशब्दंपरमेश्वरी ॥ तस्यामुखाद्विनिष्क्रान्ताःशतशः पुरुषाधमाः ॥ १४ ॥ सुसंनद्धास्सशस्त्राश्च रोपेणमहतान्विताः ॥ ततस्तानब्रवीद्देवी पापोयंवध्यतामिति ॥ १५ ॥ तत स्तेसहिताःसर्वे महिषंसमुपाद्रवन् ॥ तिष्ठतिष्ठेतिजल्पन्तो मुञ्चन्तोस्त्राणिभूरिशः ॥ १६ ॥ ततःसमभवद्युद्धं गणानां

हुये सिंहपै भगवती सवार हुई ॥ ११ ॥ और ऐसा वार २ उसने कठोर वचन कहा कि चलिये चलिये नहीं तो हे दानवाधम ! तुमको इस स्थान में मारूंगी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर कामदेवके बाणसे पीडित इस महिषासुरने मंत्रियोंसमेत पकड़नेके लिये उस देवीको सब ओरसे घेरालिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर वह परमेश्वरी शब्द समेत हँसी और उसके मुखसे सैकड़ों अधम पुरुष निकले ॥ १४ ॥ जो कि भलीभांति तैयार व शस्त्रोंसमेत और बड़े रोषसे संयुत थे तदनन्तर उनसे देवीजी यह बोलीं कि यह पापी माराजावै ॥ १५ ॥ तदनन्तर खड़ेहो २ ऐसा कहते व बहुतसे शस्त्रों को छोड़तेहुये वे सब साथही महिषासुरके सामने दौड़े ॥ १६ ॥ तदनन्तर दानवोंके

साथ गणोंका युद्ध हुआ जिससे कि वे सब मंत्री यमराज के घरको गये ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर मंत्रियों के मरने से यह महिषासुर क्रोधित हुआ और अपनी सेना को पर्वत के किनारे ले आया ॥ १८ ॥ और उत्तम रथपै सवार होकर सारथीसे बोला कि हे सारथे ! मुझको शीघ्रही वहां ले चलिये जहां कि यह स्त्री स्थितहै ॥ १९ ॥ इसको मारकर मैं आज क्रोधके दुस्तर पार को जाऊंगा तदनन्तर हे राजन् ! ऐसा कहे हुये सारथी ने उसी मार्गसे रथको चलाया जहां कि वह निश्चयकर टिकीथी इसी समय में वहां बड़े भयंकर उत्पात ॥ २० । २१ ॥ उस मार्गसे हुये जिससे कि हे राजन् ! यह चला था कँकड़ोंसमेत रूखा पवन सामने चलने लगा ॥ २२ ॥ और

दानवैःसह ॥ यतस्तेसचिवास्सर्वे वैवस्वतगृहंगता ॥ १७ ॥ अथासौमहिषोरुष्टः सचिवैर्विनिपातितैः ॥ स्वसैन्यमानयामास तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥ १८ ॥ रथप्रवरमारुह्य सारथिंसमभाषत ॥ नयमांसारथेतूर्णं यत्रैषास्त्रीव्यवस्थिता ॥ १९ ॥ हत्वैनामद्ययास्यामि पारंरोषस्यदुस्तरम् ॥ एवमुक्तस्ततोराजन् प्रेरयामाससारथिः ॥ २० ॥ रथन्तेनैवमार्गेण यत्रसातिष्ठतेध्रुवम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तत्रोत्पातास्सुदारुणाः ॥ २१ ॥ बभूवुस्तेनमार्गेण येनासौप्रस्थितोनृप ॥ सम्मुखःप्रववौवातो रूक्षःशर्करसंयुतः ॥ २२ ॥ पपातमहतीचोल्का निहत्यरविमण्डलम् ॥ अपसव्यंमृगाश्चक्रुस्तस्य मायाविनस्तथा ॥ २३ ॥ वाहारावंप्रकुर्वन्ति स्विन्नाश्चप्रतिमास्तथा ॥ रथध्वजेसमाविष्टो गृध्रःशब्दमथाकरोत् ॥ २४ ॥ सतान्सर्वाननादृत्यमहोत्पातान्सुदारुणान् ॥ प्रययौसम्मुखस्तस्या देव्याःकोपपरायणः ॥ २५ ॥ विमुञ्चन्सशरान्नादांस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ नकश्चिद्दृश्यतेतत्र तेषांमध्येनृपोत्तम ॥ २६ ॥ महिषंरोषसंयुक्तं योवारयतिसङ्गरे ॥

सूर्यमंडल को नाशकर बड़ीभारी उल्का गिरी और उस मायावी को मृगोंने दक्षिण परिक्रमा किया ॥ २३ ॥ और घोड़ा शब्द करनेलगे व मूर्तियों में पसीना बहनेलगा व रथके ध्वजा पै बैठेहुये गीधने शब्दकिया ॥ २४ ॥ और क्रोधमें परायण वह महिषासुर उन सब बड़े भयंकर महाउत्पातों को अनादर कर उस देवी के सामने चला ॥ २५ ॥ और बाणोंसमेत शब्दों को करतेहुये उसने खड़ीहो खड़ीहो ऐसा कहा हे नृपोत्तम ! वहां उनके मध्य में कोई नहीं देखपड़ता था ॥ २६ ॥ जो कि

समर में क्रोधसंयुत महिषासुरको मनाकरै उसने बहुत गणों को मारकर रक्त का कीचड़ किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! देवीजीके समीप आकर गर्व से कहा कि हे भीरो ! तुमको पृथ्वी में कभी युद्ध न करनाचाहिये ॥ २८ ॥ हे बालिशे ! मेरे न बल है न सौभाग्य है न धनहै उससे मेरे वचनको किसीप्रकार नहीं करती हो ॥ २९ ॥ हे भामिनि ! मैं निश्चयकर तत्त्वसे जानताहूं कि तुम गर्विणीहो आज भी मेरा वचन करो कि मेरी प्यारी स्त्री होवो ॥ ३० ॥ और पराक्रम में स्थित मैं तुम्हें स्त्रीको मारना नहीं चाहताहूं व मैंने देवताओंसमेत इन्द्रको बहुतबार जीता है ॥ ३१ ॥ हे बालिशे ! त्रिलोक में मेरे समान कोई पुरुष नहीं है तदनन्तर ऐसी कही

तेनहत्वाबहुगणान्कृतंरुधिरकर्द्दमम् ॥२७॥ ततोदेवीसमासाद्य प्रोक्तागर्वेणपार्थिव ॥ नत्वयासङ्गरोभीरोनूनंकर्त्तुंह्यितौक चित् ॥२८॥ नबालिशोस्तिमेवीर्यं नसौभाग्यंनवाधनम् ॥ नकरोषिहितेनत्वं ममवाक्यंकथञ्चन ॥ २९ ॥ नूनंतत्त्वेनजा नामि अवलिप्तासिभामिनि ॥ कुरुष्वाद्यापिमेवाक्यं भार्याभवममप्रिया ॥ ३० ॥ स्त्रियन्त्वांनोत्सहेहन्तुं पौरुषेचव्यव स्थितः ॥ असकृन्निर्जितःसङ्ख्येमयाशक्रःसुरैःसह॥ ३१ ॥ त्रैलोक्येनास्तिमेतुल्यः पुमान्कश्चिच्चबालिशे ॥ एवमुक्ता ततोदेवी कोपेनमहतान्विता ॥ ३२ ॥ प्रगृह्यसशरंचापं वाक्यमेतदुवाचह ॥ नालापोयुज्यतेपाप कर्त्तुंसहममत्वया ॥ ३३ ॥ कुमार्याकामयुक्तेन तथापिशृणुमेवचः ॥ नत्वयानिर्जितःशक्रः स्ववीर्येणरणाजिरे ॥ ३४॥ पितामहवरंदेवा मन्यन्तेदानवाधम ॥ गौरवात्तस्यतेनत्वमात्मानंमन्यसेधिकम् ॥ ३५ ॥ मुक्त्वैकांकामिनींपाप त्वंकृतःपद्मयोनि ना ॥ अवध्यःसर्वसत्त्वानां पुंसांचैवधरातले ॥ ३६ ॥ पितामहवरःसोत्र जयशीलोसिदानव ॥ यदितेपौरुषंचास्ति

हुई देवीजी क्रोध संयुत हुई ॥ ३२ ॥ और बाणसमेत धनुषको लेकर यह वचन बोलीं कि हे पाप ! काम युक्त तुम्हारे साथ मुझ कन्याको संभाषण योग्य नहीं है तथापि मेरा वचन सुनिये कि तुमने युद्धके आंगन में अपने पराक्रमसे इन्द्र को नहीं जीता है ॥ ३३ । ३४ ॥ हे दानवाधम ! पितामहके वरको देवता मानते हैं उस कारण उसके गौरव से तुम अपना को अधिक मानतेहो ॥ ३५ ॥ हे पाप ! एक स्त्री को छोड़कर ब्रह्माने तुमको पृथ्वी में सब प्राणियों के अवध्य किया है ॥ ३६ ॥

हे दानव ! यह ब्रह्माका वर इस विषय में है और तुम जयशीलहो व यदि तुम्हारे पराक्रमहै तो शीघ्रही दिखलाइये ॥ ३७ ॥ मैं तुमको शीघ्रही पैने बाणों से यमराज के मन्दिर को पठाऊंगी ऐसा कहकर तदनन्तर देवीजीने आठ बाणों को छोड़ा ॥ ३८ ॥ चार बाणों से चार घोड़ोंको यममन्दिर को पठाया और एक बाणसे सारथी के मस्तक को देह से गिरा दिया ॥ ३९ ॥ व एक से ध्वजा को काटडाला तदनन्तर अन्य बाणसे हृदयमें मारा और बहुतही वेधाहुआ व्यथित वह ध्वजा के दंड के आश्रित होगया ॥ ४० ॥ व हे राजन् कुछसमयतक उसने मूर्च्छा से नीचे मुख करलिया तदनन्तर सचेत होकर उसने पैने बाणोंको छोड़ा ॥ ४१ ॥ व सिंहसंयुत

तच्छीघ्रंसम्प्रदर्शय ॥ ३७ ॥ एषत्वामिषुभिस्तीक्ष्णैर्नयामियमसादनम् ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी शरानष्टौमुमोचह ॥ ३८ ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहाननयद्यमसादनम् ॥ सारथेश्चशिरःकायाच्छरेणैकेनचाक्षिपत् ॥ ३९ ॥ ध्वजंचिच्छेदचैकेन ततोन्येनहृदिक्षतः ॥ सगाढविद्धोव्यथितो ध्वजयष्टिंसमाश्रितः ॥ ४० ॥ मूर्च्छयासहितोराजन् किञ्चित्कालमधोमुखः ॥ ततःसचेतनोभूत्वा मुमोचनिशिताञ्छरान् ॥ ४१ ॥ देवींसिंहसमायुक्तां सर्वदेशेष्वताडयत् ॥ ततःक्षुरप्रबाणेन धनुस्तस्यद्विधाकरोत् ॥ ४२ ॥ छिन्नधन्वाततोदैत्यः चर्मखड्गसमन्वितः ॥ विद्राव्यसहसादेवीं तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ ४३ ॥ तस्यचर्मततस्तूर्णं खड्गंद्वाभ्यामकृन्तयत् ॥ शराभ्यामर्धचन्द्रेण प्रहसन्तीरथंततः ॥ ४४ ॥ विशस्त्रोविरथोराजन् सतदादानवाधमः ॥ ततोभवच्छरास्तूयः शस्त्राणिविविधानिच ॥ ४५ ॥ ब्रह्मास्त्रंमनसिध्यायन्दैत्यस्तस्यामुमोचसः ॥ मुक्तमात्रेततस्तस्मिन्धूमवर्तिर्व्यजायत ॥ ४६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सब्रह्मास्तेदिवौकसः ॥ परंभयमनुप्राप्ता

देवीजीको सब अंगों में मारा तदनन्तर क्षुरप्र बाणसे उसके धनुष के दो खंड किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर कटे धनुषवाला दैत्य महिषासुर ढाल व तलवारसे संयुत हुआ और अचानकही देवीजीको भगाकर उसने खड़ीहो खड़ीहो ऐसा कहा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर शीघ्रही भगवतीजीने उसकी ढाल व तलवारको दो बाणोंसे काटडाला तदनन्तर हँसतीहुई देवीजीने अर्धचन्द्र बाणसे रथको काटडाला ॥ ४४ ॥ हे राजन्! तदनन्तर वह अधम दानव शस्त्ररहित व रथ विहीन हुआ उसके उपरान्त फिर अनेकप्रकार के शस्त्र हुये ॥ ४५ ॥ और ब्रह्मास्त्रको मनमें ध्यान करतेहुये उसने उसके ऊपर छोड़ा तदनन्तर उसके छोड़तेही धूमकी पंक्ति हुई ॥ ४६ ॥ इसीसमय

में ब्रह्मासमेत वे देवता उसके पराक्रम को देखकर बड़े भयको प्राप्तहुये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! क्रोधित होतीहुई देवीजीने क्षणभर ध्यानकर उस अस्त्रको महिषासुर नीच दानव के समीप पठाया ॥ ४८ ॥ इसप्रकार उससमय उन देवीजी ने उससे छोड़े हुये अनेकप्रकार के हजारों अस्त्रोंको विफलही किया ॥ ४९ ॥ इस प्रकार क्षोभित अस्त्रोंवाले इस अधिकबली दानवने दिव्य अस्त्रोंसे भगवती के ऊपर उत्तम माया किया ॥ ५० ॥ कि लम्बे व पैने सींगोंसे संयुत अंजन के समान व पर्वतके आकार बड़े शरीरवाले भैंसेको आगे फेंकताहुआ खड़ाहुआ ॥ ५१ ॥ तदनन्तर वह देवी उस सिंहके कन्धेपै सवारहुई तदनन्तर देवीजीने पैनी तलवार से उसके

दृष्ट्वातस्यपराक्रमम् ॥ ४७ ॥ ततोदेवीक्षणंध्यात्वा तदस्त्रंपार्थिवोत्तम ॥ प्रेषयामाससंक्रुद्धा महिषंदानवाधमम् ॥ ४८ ॥ एवंनानाप्रकाराणि तेनमुक्तानिसातदा ॥ अस्त्राणिविफलान्येव चक्रेदेवीसहस्रशः ॥ ४९ ॥ एवंनिःक्षोभितास्त्रो सौ दानवोबलवत्तरः ॥ चकारपरमांमायां दिव्यैरस्त्रैस्सुरेश्वरीम् ॥ ५० ॥ अग्रेक्षिपन्महाकायं महिषंपर्वताकृतिम् ॥ दीर्घतीक्ष्णविषाणाभ्यां युक्तमञ्जनसन्निभम् ॥ ५१ ॥ सिंहस्कन्धञ्चसादेवी ततस्तमधिरोहत ॥ ततःखड्गेनतीक्ष्णेन शिरोदेवीन्यकृन्तयत् ॥ ५२ ॥ शूलेनभेदयामास पृष्ठदेशेसुरेश्वरी ॥ ततःकलेवरात्तस्य निश्चक्राममहापुमान् ॥ ५३ ॥ चर्मखड्गधरोरौद्रः तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ तमप्येवंगृहीत्वातु केशपक्षेसुरेश्वरी ॥ ५४ ॥ निस्त्रिंशेनाहनत्प्रोच्चैः सचप्राणैर्व्ययुज्यत ॥ दानवःपार्थिवश्रेष्ठ पार्श्वेसिंहविदारिते ॥ ५५ ॥ ततोजघानभूयोपि दानवान्सारुषान्विता ॥ हतशेषाश्चयेदैत्या निर्भिद्यधरणीतलम् ॥ ५६ ॥ प्रविष्टाभयसंत्रस्ताः पातालंजीवितैषिणः ॥ ततोदेवगणास्सर्वे वसवो

मस्तक को काटडाला ॥ ५२ ॥ व सुरेश्वरीजीने पीठ में त्रिशूल से भेदन किया तदनन्तर उसके शरीर से महापुरुष निकला ॥ ५३ ॥ ढाल व तलवार को धारण किये हुये उस भयकर पुरुषने खड़ाहो खड़ाहो ऐसा कहा उसको भी ऐसेही सुरेश्वरीने केशपक्षमें पकड़कर ॥ ५४ ॥ उच्चप्रकार से निस्त्रिंश से मारा और हे नृपोत्तम! जब पार्श्व (पाजर) सिंह से विदारण कियागया तब वह दानव प्राणोंसे वियुक्त हुआ ॥ ५५ ॥ तदनन्तर क्रोधसे संयुत उस भगवतीने फिरभी दानवों को मारा और जो दैत्य मारने से बचे पृथ्वीको फोड़कर ॥ ५६ ॥ भयसे डरे हुये जीनेकी इच्छावाले वे पाताल में पैठगये तदनन्तर सब देवताओंके गण और वसु व मरुत और अश्विनी-

कुमार ॥ ५७ ॥ व विश्वेदेवता, साध्य, रुद्र, गुह्यक व किन्नर और इन्द्रसंयुत आदित्य देवताओंने आकर उन परमेश्वरी देवी के ऊपर सब ओर से पुष्पों से वृष्टि किया व अनेकप्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते व प्रणाम करते हुये वे भक्तिमें तत्परहुये ॥ ५८।५९ ॥ व बोले कि हे महेशानि ! जो बड़ा पापी यह मारागया यह योग्य कियागया हे सुन्दरि ! इस पापीसे सब त्रिलोक ध्वस्त होगया ॥ ६० ॥ पुरातनसमय तुमने इन्द्रको स्वर्ग में राज्य दिया इसलिये तुम्हारा कल्याण होवै और जो मनमें प्रियहो उसवरदानको मांगो ॥ ६१ ॥ और प्रसन्न होतेहुये सब देवता तुमको वर देवैंगे इसमें सन्देह नहीं है देवीजी बोलीं कि हे देवताओ ! यदि तुमलोग

मरुतोऽश्विनौ ॥ ५७ ॥ विश्वेदेवास्तथासाध्या रुद्रागुह्यककिन्नराः ॥ आदित्याःशक्रसंयुक्ताः समेत्यपरमेश्वरीम् ॥ ५८ ॥ समन्ताद्दिव्यपुष्पैश्च तांदेवींसमवाकिरन् ॥ स्तुवन्तोविविधैःस्तोत्रैर्नमन्तोभक्तितत्पराः ॥ ५९ ॥ युक्तंकृतंमहेशानि युद्धतःपापकृत्तमः ॥ त्रैलोक्यंसकलंध्वस्तं पापेनानेनसुन्दरि ॥ ६० ॥ त्वयादत्तंपुराराज्यं वासवस्यत्रिविष्टपे ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते वरंयन्मनसीप्सितम् ॥ ६१ ॥ सर्वेदेवाःप्रसन्नास्ते प्रदास्यन्तिनसंशयः ॥ देव्युवाच ॥ यदिदेवाःप्रसन्नामे यदिदेयोवरोमम ॥ ६२ ॥ आश्रमोत्रैवमेपुण्यो जायतांख्यातिसंयुतः ॥ अस्मिंश्चाहंसदादेवास्स्थास्यामिवरपर्वते ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ रूपेणानेनदेवेशि येत्वांद्रक्ष्यन्तिमानवाः ॥ आश्रमेत्रमहापुण्ये तेयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥ ६४ ॥ ब्रह्मज्ञानसमायुक्तास्तेभविष्यन्तिमानवाः ॥ यस्माच्चण्डंकृतंकर्म त्वयादानवसूदनात् ॥ ६५ ॥ तस्मात्त्वंचण्डिकानाम्ना लोकेख्यातिंगमिष्यसि ॥ तवनाम्नातथाख्यात आश्रमोयंभविष्यति ॥ ६६ ॥ येत्रकृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेमासिशोभने ॥

मेरे ऊपर प्रसन्नहो और यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥६२॥ तो यहींपर प्रसिद्धिसंयुत मेरा पवित्र आश्रम होवै व हे देवताओ ! इस उत्तम पर्वत पै मैं सदैव टिकूंगी ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवेशि ! इस रूपसे जो मनुष्य इस महापवित्र आश्रम में तुमको देखैंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवैंगे ॥ ६४ ॥ और वे मनुष्य ब्रह्मज्ञान से संयुत होवैंगे जिसलिये तुमने दानवके मारने से चंडकर्म किया है ॥ ६५ ॥ उसकारण तुम नामसे चंडिका ऐसी संसारमें प्रसिद्धिको प्राप्त होगी वैसेही यह आश्रम

तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ६६ ॥ हे शोभने ! कुँवार महीनेमें कृष्णपक्षकी चौदसितिथिमें सावधान होतेहुये जो मनुष्य नहाकर पिंडदान करैंगे ॥ ६७ ॥ हे देवि ! उनको गयाश्राद्ध के समान सब फल होगा वैसेही तुम्हारे दर्शन से पापकी मुक्ति होगी ॥ ६८ ॥ कृष्णजी बोले कि श्रद्धासंयुत उपासमें तत्पर जो मनुष्य यहां एक रात बसैंगे उनका पाप नाशको प्राप्तहोगा ॥ ६९ ॥ और अपुत्र जो मनुष्य या सावधानहोतीहुई जो स्त्री उसमें मन लगाकर पिंडदान व स्नान करैगी ॥ ७० ॥ बिन-पुत्रवाला वह मनुष्य शीघ्रही पुत्रको पावैगा इसमें सन्देह नहीं है इन्द्र बोले कि छूटे राज्यवाला जो राजा यहां स्नान व दान करैगा ॥ ७१ ॥ उसके सब शत्रुवों का

पिण्डदानंकरिष्यन्ति स्नानंकृत्वासमाहिताः ॥ ६७ ॥ गयाश्राद्धफलंकृत्स्नं तेषांदेविभविष्यति ॥ त्वद्दर्शनात्तथामुक्तिः पातकस्यभविष्यति ॥ ६८ ॥ कृष्ण उवाच ॥ एकरात्रिंवसिष्यन्ति येत्रश्रद्धासमन्विताः ॥ उपवासपरास्तेषां पापंयास्यतिसंक्षयम् ॥ ६९ ॥ पुत्रहीनश्चयोमर्त्यो नारीवापिसमाहिता ॥ तन्मनाःपिण्डदानंवै तथास्नानंकरिष्यति ॥ ७० ॥ अपुत्रश्च लभेच्छीघ्रं सपुत्रंनात्रसंशयः ॥ इन्द्र उवाच ॥ भ्रष्टराज्योनृपोयोत्र स्नानंदानंकरिष्यति ॥७१॥ सर्वशत्रुक्षयस्तस्य राज्यावाप्तिर्भविष्यति ॥ अग्निरुवाच ॥ अत्रागत्यशुचिर्होमं यःकरिष्यतिमानवः ॥ ७२ ॥ आत्मवित्तानुसारेण सयज्ञस्यफलंलभेत् ॥ ७३ ॥ यम उवाच ॥ अत्रस्नात्वातिलान्यस्तु ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यति ॥ अल्पमृत्युभयंतस्य नकदाचिद्भविष्यति ॥ ७४ ॥ राक्षस उवाच ॥ पिण्डदानंनरोयोत्र करिष्यतितवाश्रमे ॥ प्रेतोत्थंनभयंतस्य देविकापिभविष्यति ॥ ७५ ॥ वरुण उवाच ॥ स्नानार्थंब्राह्मणेन्द्राणां योत्रतोयंप्रदास्यति ॥ विमलंससदाभावी इह

नाश व राज्यकी प्राप्ति होगी अग्निजी बोले कि यहां आकर जो पवित्र मनुष्य अपने धनके अनुसार होम करैगा वह यज्ञके फलको पावैगा ॥ ७२ । ७३ ॥ यमराज बोले कि यहां स्नानकर जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये तिलोंको देवैगा उसको कभी अल्पमृत्यु का भय न होगा ॥ ७४ ॥ निर्ऋति राक्षस बोले कि हे देवि ! जो मनुष्य तुम्हारे इस आश्रम में पिंडदान करैगा उसको प्रेतसे उपजा हुआ डर कभी नहोगा ॥ ७५ ॥ वरुणजी बोले कि द्विजेन्द्रों के स्नानके लिये जो मनुष्य यहां जल देवैगा

वह इसलोक व परलोकमें सदैव निर्मल होगा ॥ ७६ ॥ पवन बोले कि जो मनुष्य यहां विशेषकर सुगंधित व उत्तम विलेपनोंको ब्राह्मणोंके लिये देवैगा वह अपराध-हीन होगा ॥ ७७ ॥ कुबेरजी बोले कि जो मनुष्य यहां यथाशक्तिसे ब्राह्मणों के लिये धन देवैगा वह हे लोकेशि ! किसीप्रकार धनहीन न होगा ॥ ७८ ॥ महादेवजी बोले कि जो मनुष्य व्रतमें परायण होकर यहां चारमहीने बसैगा उनको इसलोक व परलोकमें सदैव सुख होगा ॥ ७९ ॥ वसु बोले कि जो मनुष्य तीनरात भलीभांति उपास करनेवाला होगा उसका जन्मसे लगाकर मरणतक पापनाश होगा ॥ ८० ॥ आदित्य बोले कि इस पवित्र आश्रम स्थानमें भक्तिसयुत जो मनुष्य छतुरी व

लोकेपरत्रच ॥ ७६ ॥ वायुरुवाच ॥ विलेपनानिशुभ्राणि सुगन्धानिविशेषतः॥ योत्रदास्यतिविप्रेभ्यो निरागास्सभविष्यति ॥ ७७ ॥ धनद उवाच ॥ योत्रवित्तंयथाशक्त्या ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यति ॥ नभविष्यतिलोकेशि वित्तहीनःकथञ्चन ॥ ७८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ योत्रव्रतपरोभूत्वा चातुर्मास्यंवसिष्यति ॥ इहलोकेपरेचैव तस्यभाविसदासुखम् ॥ ७९ ॥ वसव ऊचुः ॥ त्रिरात्रंयोनरस्सम्यगुपवासीभविष्यति ॥ आजन्ममरणात्पापनाशस्तस्यभविष्यति ॥ ८० ॥ आदित्या ऊचुः ॥ अत्राश्रमपदेपुण्ये येनराभक्तिसंयुताः ॥ छत्रोपानत्प्रदातारस्तेषांलोकाःसनातनाः ॥ ८१ ॥ आश्विनावूचतुः ॥ मिष्टान्नंश्रद्धयोपेतो ब्राह्मणायप्रदास्यति ॥ योत्रतस्यपराप्रीतिर्भविष्यत्यविनाशनी ॥ ८२ ॥ अद्यप्रभृतिसर्वेषां तीर्थानामिहसंस्थितिः ॥ भविष्यतिविशेषेण आश्रमेलोकविश्रुते ॥ ८३ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामाश्विनेमासिभक्तितः ॥ उपवासपरोभूत्वा योत्रस्नानंकरिष्यति ॥ ८४ ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां सफलंहिलभिष्यति ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥

पनहियों को देवैंगे उनको सनातन लोक होवैंगे ॥ ८१ ॥ अश्विनीकुमार बोले कि श्रद्धासंयुत जो मनुष्य यहां ब्राह्मण के लिये मिष्टान्नको देवैगा उसकी अविनाशिनी प्रीति बहुत होगी ॥ ८२ ॥ व आजसे लगाकर संसार में प्रसिद्ध इस आश्रम में विशेषकर सब तीर्थोंकी स्थिति होगी ॥ ८३ ॥ और कुँवार महीने में कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिमें भक्तिसंयुत जो मनुष्य उपासमें तत्पर होकर यहां स्नान करेगा ॥ ८४ ॥ वह सबही तीर्थोंके फलको पावैगा गंधर्व बोले कि जो मनुष्य यहा गीतों व

वाद्यादिकों को करैगा ॥ ८५ ॥ वह सातजन्मों के मध्यमें रूपवान् होगा ऋषिलोग बोले कि इसआश्रममें सावधान होताहुआ जो मनुष्य त्रिरात्रव्रत करैगा ॥ ८६ ॥ उसको हज़ार चान्द्रायण का फल होगा पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! इसप्रकार सब देवता उस देवी के लिये वरोंको देकर ॥ ८७ ॥ उनकी आज्ञा से स्वर्ग को गये और देवीजी वहीं स्थितहुई इसके अनन्तर मनुष्यलोग उसके आश्रम में देवीजीको देखकर स्वर्ग को गये ॥ ८८ ॥ तदनन्तर बिन परिश्रमही मनुष्योंसे स्वर्ग भरगया व पृथ्वी में अग्निष्टोमादिक सब कर्म नाश होगये ॥ ८९ ॥ व अन्य धर्मकार्यों को छोड़कर देवीजी का पूजन किया जाताथा तदनन्तर डरे हुये, इन्द्रने

गीतवाद्यानियश्चात्र प्रकरिष्यतिमानवः ॥ ८५ ॥ सप्तजन्मा न्तराण्येव रूपवान्सभविष्यति ॥ ऋषय ऊचुः ॥ आश्रमे स्मिंस्त्रिरात्रंयःकरिष्यतिसमाहितः ॥ ८६ ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य फलंतस्यभविष्यति ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंसर्वेवरा न्दत्त्वा देव्यैदेवान्नृपोत्तम ॥ ८७ ॥ तदाज्ञयादिवंजग्मुर्देवी तत्रैवसंस्थिता ॥ अथमर्त्यादिवंजग्मुर्दृष्ट्वा देवींतदाश्रमे ॥ ८८ ॥ अनायासेनसम्पूर्णस्ततोमर्त्यैस्त्रिविष्टपः ॥ अग्निष्टोमादिकाःसर्वाः क्रियानष्टाधरातले ॥ ८९ ॥ धर्मक्रिया स्तथाचान्या मुक्त्वादेव्याःप्रपूजनम् ॥ ततोभीतःसहस्राक्षः समन्त्र्यगुरुणासह ॥ ९० ॥ आह्वयामासवेगेन कामं क्रोधंभयंमदम् ॥ व्यामोहंगृहपुत्रोत्थं तृष्णामायासमन्वितम् ॥ ९१ ॥ गत्वापूर्वंद्रुतंमर्त्ये स्नातुकामान्नरान्स्त्रियः ॥ चण्डिकायाश्रमेपुण्ये सेवध्वंहिममाज्ञया ॥ ९२ ॥ विशेषेणाश्विनेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ एवमुक्तास्ततस्सर्वे कामाद्यास्तेद्रुतंययुः ॥ ९३ ॥ मर्त्यलोकंमहाराज रक्षांचक्रुश्चसर्वशः ॥ एवंज्ञात्वाद्रुतंगच्छ तत्रपार्थिवसत्तम ॥ ९४ ॥

बृहस्पति के साथ सलाहकर ॥ ९० ॥ वेग से काम, क्रोध, भय व मदको बुलाया और घर व पुत्रोंसे उपजेहुये तथा तृष्णा व मायासे संयुत मोहको बुलाया ॥ ९१ ॥ व कहा कि शीघ्रही मृत्युलोक में जाकर पहले चंडिकाजी के पवित्र आश्रममें नहानेकी कामनावाले पुरुषों व स्त्रियों को मेरी आज्ञा से सेवन करो ॥ ९२ ॥ और कुँवार महीने में कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिको विशेषकर सेवनकरो तदनन्तर ऐसा कहेहुये वे सब कामादिक मृत्युलोकको शीघ्रही गये व हे महाराज ! उन्होंने सब ओर से

रक्षा किया ऐसा जानकर हे नृपोत्तम ! वहां शीघ्रही जाइये ॥ ६३ । ६४ ॥ यदि इसलोक व परलोक में उत्तम कल्याण को चाहतेहो हे राजन् ! जो अर्बुदपर्वत पै चण्डिकाजी को देखने के लिये जाता है ॥ ६५ ॥ उसके पितर नाचते हैं व पितामह गर्जते हैं कि यह सुपुत्र चण्डिकाजीके इस आश्रममें सावधान होकर श्राद्ध देकर हम सबोंको तारैगा एकयात्रासे राज्य मिलताहै व दूसरी यात्रासे स्वर्ग मिलताहै ॥ ६६ । ६७ ॥ व हे राजन् ! वहां तीसरी यात्रासे मोक्ष होताहै इसकारण सब तीर्थमय उस श्रेष्ठ अर्बुदपर्वतपै सब यत्न से यात्रा करै पुरातनसमय उस विषयमें नारद महर्षि ने श्लोक गाया है ॥ ६८ । ६९ ॥ कि बहुत ब्राह्मणोंसे [illegible]

यदीच्छसिपरंश्रेय इहलोकेपरत्रच ॥ योयातिचण्डिकांद्रष्टुमर्बुदम्प्रतिपार्थिव ॥ ९५ ॥ नृत्यन्तिपितरस्तस्य गर्जन्ति चपितामहाः ॥ तारयिष्यतिनस्सर्वान्सुपुत्रोयमिहाश्रमे ॥ ९६ ॥ चण्डिकायाःप्रदत्त्वाथ कृत्वाश्राद्धंसमाहितः ॥ एक यालभ्यतेराज्यं स्वर्गञ्चैवद्वितीयया ॥ ९७ ॥ तृतीययाभवेन्मोक्षो यात्रयानत्रपार्थिव ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रांतत्र समाचरेत ॥ ९८ ॥ अर्बुदेपर्वतश्रेष्ठे सर्वतीर्थमयेशुभे ॥ तत्रश्लोकःपुरागीतो नारदेनमहर्षिणा ॥ ९९ ॥ स्नात्वातत्राश्र मेपुण्ये वहुविप्रसमागमे ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो वहुजन्मार्जितैरपि ॥ पुनन्त्येवान्यतीर्थानि स्नानदानैरसंशयम् ॥२००॥ अर्बुदालोकनादेव विपाप्मातत्रजायते ॥ यःशृणोतिसदाख्यानमेतच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ १ ॥ सप्राप्नोतिनरश्रेष्ठः कामान्मनसिवाञ्छितान् ॥ यस्यैतत्तिष्ठतेगेहे लिखितंपुस्तकंनृप ॥ २ ॥ तस्यापिवाञ्छिताःकामाःसम्पद्यन्तेदिनेदिने ॥

रूप पवित्र आश्रममें नहाकर बहुतजन्मों में इकट्ठा कियेहुये सब पापोंसे भी मनुष्य छूटजाताहै अन्यतीर्थस्नान व दानों से निस्संदेह पवित्र करते हैं ॥ २०० ॥ और वहां अर्बुद के देखनेही से मनुष्य पापरहित होता है व श्रद्धासंयुत जो मनुष्य सदैव इस कथा को सुनता है ॥ १ ॥ वह श्रेष्ठ मनुष्य मनमें चाहेहुये मनोरथों को पाता है हे राजन् ! जिसके घर मे यह लिखीहुई पुस्तक स्थित होती है ॥ २ ॥ उसकोभी प्रतिदिन चाहेहुये मनोरथ प्राप्त होतेहैं अथवा हे भूपते ! जो श्रद्धासंयुत मनुष्य

इसको पढ़ता है ॥ ३ ॥ वह भी उत्तम पुरुष हे राजन् ! यात्राके फलको प्राप्त होता है ॥ २०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचण्डिकाश्रमोत्पत्तिर्नामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ● ॥ ● ● ॥ ● ॥ ● ॥ ●

दो० । अति उत्तम तीरथ भयो नागकुण्ड इमि नाम । सैंतिसवें अध्याय में सोइचरित सुखधाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर पापनाशक नागकुण्ड को जावै जहां कि सुन्दरपर्वत के किनारे पै नागों ने तप कियाहै ॥ १ ॥ पुरातनसमय कद्रूके शाप को सुनकर डर से विकल सब नागों ने कंधे को झुकाकर नागों के राजा

पठतिश्रद्धयोतो योवाभूमिपतेनरः ॥ ३ ॥ सोपियात्राफलंराजल्लँभतेपुरुषोत्तमः ॥ २०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेर्बुदमाहात्म्येचण्डिकाश्रमोत्पत्तिर्नामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ नागह्रदंततोगच्छेत्तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ यत्रनागैस्तपस्तप्तं रम्येपर्वतरोधसि ॥ १ ॥ कद्रूशापं पुराश्रुत्वा नागास्सर्वेभयातुराः ॥ पप्रच्छुर्नागराजानं शेषंप्रणतकन्धराः ॥ २ ॥ मातृशापेनसन्तप्ता वयंपन्नगसत्तम ॥ किङ्कुर्मःकुत्रगच्छामः शापमोक्षोभवेत्कथम् ॥ ३ ॥ शेष उवाच ॥ विज्ञापितामयामाता शापमुक्तिकृतेपुरा ॥ तथोक्तंयेतपोयुक्ता धर्मात्मानःसुसंयताः ॥ ४ ॥ नदहिष्यतितान्वह्निर्यज्ञेपारीक्षितस्यहि ॥ तस्माद्गत्वार्बुदन्नाम पर्वतंधरणीतले ॥ ५ ॥ तत्रगत्वातपोयुक्ता भवध्वंसुसमाहिताः ॥ यत्रास्तेसास्वयंदेवी चण्डिकाकामरूपिणी ॥ ६ ॥ यस्याःसंकीर्तनेनापि नश्यन्तिविपदोध्रुवम् ॥ आराधयध्वमनिशं तां देवींममवाक्यतः ॥ ७ ॥ तस्याःप्रसादतःसर्वे भविष्यथ

शेषजी से पूंछा ॥ २ ॥ कि हे पन्नगोत्तम ! हम सब माताके शापसे संतप्त हैं इससे क्या करैं व कहां जावैं और किसप्रकार शाप का मोक्ष होवै ॥ ३ ॥ शेषजी बोले कि पुरातनसमय मैंने शाप की मुक्तिके लिये मातासे विनय किया और उसने कहा कि जो तपस्यासे युक्त व धर्मात्मा और संयममें प्राप्त हैं ॥ ४ ॥ उन सबों को परीक्षित के पुत्र जनमजय के यज्ञ में अग्नि नहीं जलावैगी इसलिये पृथ्वी में अर्बुदनामक पर्वत पै जाकर ॥ ५ ॥ तपस्यासे युक्त व सावधान होते हुये तुमलोग वहां जाकर तपस्या से युक्त होवो जहां कि वह कामरूपिणी आपही चण्डिका देवी है ॥ ६ ॥ जिसके संकीर्तन (नामलेने) से भी निश्चयकर विपत्तियां नाश होजाती हैं उस

देवीको मेरे वचनसे तुमलोग सदैव आराधनकरो ॥ ७ ॥ हे नागोत्तम ! उसकी प्रसन्नतासे सब ज्वररहित होवोगे इसविषयमें मैं इसी उपायको देखताहूं ॥ ८ ॥ देवता होवै या मनुष्य होवै अन्य मुक्तिकारक नहीं है पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! तदनन्तर नागराजसे ऐसा कहेहुये नाग ॥ ६ ॥ उन नागराजको प्रणामकर तदनन्तर अर्बुदपर्वतको गये कि वे नाग पृथ्वीको छोड़कर तदनन्तर पर्वत में ॥ १० ॥ बहुत चौड़े गढ़ेको बनाकर बिलके मार्ग से निकले तदनन्तर व्रतको धारण किये व देवीजीकी भक्तिमें परायण सब ॥ ११ ॥ भक्तिसे संयुत वे नाग चंडिकाजीके आराधनके लिये बसने लगे और उत्तम जप करतेहुये उन्होंने वहां सदैव हवन किया ॥ १२ ॥

गतज्वराः ॥ अमुमेवात्रपश्यामि उपायंनागसत्तमाः ॥ ८ ॥ देवोवामानुषोवापि नान्योवैमुक्तिकारकः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तास्ततोनागा नागराजेनपार्थिव ॥ ६ ॥ प्रणम्यतंततोजग्मुरर्बुदंपर्वतम्प्रति ॥ तेभित्त्वाधरणीपृष्ठं पर्वतेतदनन्तरम् ॥ १० ॥ निर्जग्मुर्बिलमार्गेण कृत्वाश्वभ्रंसुविस्तरम् ॥ ततोधृतव्रताःसर्वे देवीभक्तिपरायणाः ॥ ११ ॥ वसन्ति भक्तिसंयुक्ताश्चण्डिकाराधनायते ॥ चक्रुस्तत्रसदाहोमं कुर्वन्तोजाप्यमुत्तमम् ॥ १२ ॥ एकाहारानिराहारा वायुभक्षास्तथापरे ॥ दन्तोलूखलिनःकेचिदश्मकुट्टास्तथापरे ॥ १३ ॥ पञ्चाग्निसाधकाश्चान्ये सद्यःप्रक्षालकास्तथा ॥ गीतवाद्यंतथाचक्रुरन्येदेव्याःपुरस्तदा ॥ १४ ॥ अनन्यश्रद्धयोपेतांस्तान्दृष्ट्वापन्नगोत्तमान् ॥ ततोदेवीसुसन्तुष्टा वाक्यमेतदुवाचह ॥ १५ ॥ देव्युवाच ॥ परितुष्टास्मितेवत्स किमर्थंतप्यतेतपः ॥ वरयध्वंवरंमत्तो यःस्थितोभवतांहृदि ॥ १६ ॥ नागा ऊचुः ॥ मातृशापेनसन्तप्ता वयंदेविनिराश्रयाः ॥ नागराजसमादेशाच्छरणंतेसमागताः ॥ १७ ॥ सात्वं

कोई एकबार भोजन करनेवाले व अन्य पवनभक्षी तथा कोई दंतरूप ओखलीवाले व अन्य पत्थर से कूटकर भोजन करनेवाले हुये ॥ १३ ॥ व अन्य पंचाग्निको साधन करनेवाले तथा अन्य सद्य, प्रक्षालक याने केवल एक दिनके योग्य भोजन को संचय करनेवाले हुये व उससमय अन्य नागोंने देवीजी के आगे गीत वाद्य किया ॥ १४ ॥ उन नागोत्तमों को अनन्यश्रद्धासे संयुत देखकर तदनन्तर बहुतही प्रसन्न होतीहुई देवीजी इसवचनको बोलीं ॥ १५ ॥ देवीजी बोलीं कि हे वत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं किसलिये तपस्याकी जाती है तुमलोग मुझसे वरदान मांगो जो आपलोगोंके हृदयमें स्थित होवै ॥ १६ ॥ नाग बोले कि हे देवि ! हम

लोग आश्रयरहित होकर माताके शापसे संतप्त हुये और शेषजीकी आज्ञा से तुम्हारे शरणमें आये हैं ॥ १७ ॥ सो तुम शापरूप अग्निसे उपजेहुये उस भयसे रक्षाकरो पुरातनसमय किसीकारण के मध्य में माताने हमलोगों को शाप दियाहै ॥१८॥ कि परीक्षित के पुत्र जनमेजय के यज्ञ में तुमलोगों को अग्नि जलावैगी देवीजी बोलीं कि जबतक उनका यज्ञ होवै तबतक तुमलोग मेरे समीप ॥ १९ ॥ भयके विना स्थित होवो और बहुतसे भोगोंको भोगकरो और यज्ञ समाप्त होनेपर फिर अपने स्थानको जावो ॥ २० ॥ जिसलिये तुमलोगों ने इस पर्वतकी कन्दरा को तोड़ा है इसलिये यह पृथ्वी में नागह्रदतीर्थ प्रसिद्ध होगा॥ २१ ॥ श्रावण महीने

रक्षभयात्तस्माच्छापवह्निसमुद्भवात् ॥ वयंमात्रापुराशप्ताः कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ १८ ॥ पारिक्षितस्ययज्ञेवः पावकोधक्षयिष्यति ॥ देव्युवाच ॥ यावत्तस्यभवेद्यज्ञस्तावद्यूयंममान्तिके॥ १९ ॥ सन्तिष्ठतविनात्रासं भोगान्भोक्ष्यथपुष्कलान् ॥ समाप्तेचक्रतौभूयो गन्तारःस्वनिकेतनम् ॥ २० ॥ युष्माभिर्भेदितं यस्मादेतत्पर्वतकन्दरम्॥ नागह्रदन्तुतत्तीर्थमेतद्भाविधरातले ॥ २१ ॥ अत्रयःश्रावणेमासि पञ्चम्यांभक्तितत्परः ॥ करिष्यतिनरःस्नानं तस्यनाहिकृतंभयम् ॥ २२ ॥ करिष्यतिचयःश्राद्धान् सपितॄंस्तारयिष्यति ॥ येभोगाभूतलेख्याता येदिव्यायेचमानुषाः ॥ २३ ॥ तान्सर्वान्सनरोनित्यं लभिष्यतिनसंशयः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततोहृष्टाबभूवुस्ते मुक्त्वातुदारुणंभयम् ॥ २४ ॥ देव्याःशरणमापन्नास्तस्थुस्तत्रनगोत्तमे ॥ ततःकालेनमहता सत्रेपारिक्षितस्यच ॥ २५ ॥ निवृत्तेतेतदाजग्मुर्नागवृन्दारसातलम् ॥ देव्याचैवाभ्यनुज्ञाताः प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ कृच्छ्रात्पार्थिवशार्दूल तद्भक्त्यानिश्चलाःकृताः ॥ अद्यापिकृष्णपञ्च

में पंचमीतिथि में भक्ति से संयुत जो मनुष्य इस कुंड में स्नान करैगा उसको सर्प से कियाहुआ डर न होगा ॥ २२ ॥ और जो यहां श्राद्धों को करैगा वह पितरों को तारैगा और पृथ्वी में जो देवताओं व मनुष्योंवाले सुख प्रसिद्ध हैं॥ २३ ॥ उन सबों को वह मनुष्य निरसन्देह सदैव पावैगा पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर उस भयंकर भयको छोड़कर वे नाग प्रसन्नहुये ॥ २४ ॥ और देवीजीके शरण में प्राप्त वे उस उत्तमपर्वत पै टिके तदनन्तर बहुतसमय के बाद जनमेजय का यज्ञ ॥ २५ ॥ समाप्त होने पर उससमय वे नागगण रसातल को गये और देवीजीसे आज्ञा दिये हुये वे बार २ प्रणामकर ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! उनकी भक्तिके कारण वे क्लेश से

निश्चल कियेगये हे राजन् ! श्रावणमहीने में कृष्णपक्षकी पंचमीतिथि में आज भी ॥ २७ ॥ देवीके दर्शनकी इच्छावाले मनुष्य वहां समीपता करते हैं इसकारण सब यत्नसे मनुष्य वहां श्राद्ध करै ॥ २८ ॥ व हे नृपोत्तम ! जो अपना कल्याण चाहै वह उस तीर्थ में स्नान करै ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितार्थभाषाटीकायानागह्रदोत्पत्तिर्नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ● ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो॰ । गुप्त गंग इमि तीर्थ जिमि भूतल भयो प्रसिद्ध । अर्तिसवें अध्याय में सोइ कथा शुभ सिद्ध ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे भूपते ! तदनन्दर शिवलिंगनामक

म्यां श्रावणेमासिपार्थिव ॥ २७ ॥ सान्निध्यंतत्रकुर्वन्ति देवीदर्शनलालसाः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंतत्रसमाचरेत ॥ २८ ॥ स्नानंचपार्थिवश्रेष्ठयइच्छेच्छ्रेयआत्मनः ॥ २९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेनागह्रदोत्पत्तिर्नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ कुण्डन्तुशिवलिङ्गाख्यंततोगच्छेन्महीपते ॥ यत्रसाजाह्नवीगुप्ता दृश्यतेभूपसत्तम ॥ १ ॥ तस्यांस्नातोनरस्सम्यक्सर्वतीर्थफलंलभेत ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्त्वाजन्ममरणान्तिकात् ॥ ययातिरुवाच ॥ २ ॥ किमर्थंतत्रसागुप्ता जाह्नवीतिष्ठतेविभो ॥ कस्मिन्कालेसमायाता परंकौतूहलंहिमे ॥३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ यदाप्रसादितोदेवैर्भगवान्वृषभध्वजः ॥ अर्बुदेस्मिन्मदास्थेयमचलेतुत्वयाविभो ॥ ४ ॥ तत्रसंस्थापितेलिङ्गे स्वयंदेवेनशम्भुना ॥ तत्पातितंपुरालिङ्गं बालखिल्यैर्महर्षिभिः ॥ ५ ॥ अतिकोपसमायुक्तैः कस्मिंश्चित्कारणान्तरे॥ देवेनतुप्रतिज्ञातं सर्वेषां

कुण्ड के समीप जावै जहां कि हे नृपोत्तम ! वे गुप्तगंगाजी देखपड़ती हैं ॥ १ ॥ उन गंगाजी में भलीभांति नहायाहुआ पुरुष सब तीर्थों के फलको पाता है और जन्मसे लगाकर मरणसमीप तकके सब पापोंसे छूटजाता है ॥ २ ॥ ययातिजी बोले कि हे विभो ! वहां किसलिये गुप्त गंगाजी गुप्त स्थित हैं और किससमय आई हैं मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि जब देवताओंने भगवान् वृषभध्वजको प्रसन्न कराया कि हे विभो ! इस अर्बुदपर्वत पै तुमको सदैव टिकना चाहिये ॥ ४ ॥ वहां आपही शिवदेवजी से लिंगके स्थापित करने पर जब पुरातनसमय बड़े क्रोधसंयुत बालखिल्या महर्षियोंने किसीकारण के मध्य में उस लिंग को

पात किया है और शिवदेवजी ने सब देवताओं से प्रतिज्ञा किया ॥ ५ । ६ ॥ कि मुझको इसी पर्वत पै टिकना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है तदनन्तर बहुतसमय तक वहां बसते हुये उन ॥ ७ ॥ अचलेश्वररूप शिवजीके चित्तमें गंगाजी हुईं कि किसप्रकार उस गंगाके साथ सदैव समागम होगा ॥ ८ ॥ जिसप्रकार कि मानिनी परमेश्वरी पार्वतीजी न जानैं हे नृपोत्तम ! इसप्रकार उन शिवजी ने बहुत चिन्तवन किया ॥ ९ ॥ और गंगाजी के संगसे उपजेहुये बड़ेभारी उपायको ध्यान कर उन शिवजी ने नंदि व भृंगि आदिक सब गणोंको आज्ञा दिया ॥ १० ॥ कि जलाश्रय के व्रतसे उपजा हुआ अभिप्राय मेरे चित्त में है इससे इस पर्वतके किनारे

त्रिदिवौकसाम् ॥ ६ ॥ अचलेतुमयात्रैव स्थातव्यंनात्रसंशयः ॥ ततःकालेनमहता वसतस्तस्यतत्रच ॥ ७ ॥ अचलेश्वररूपस्य गङ्गाचित्तेऽभ्यजायत ॥ कथंनित्यंतयासार्धं भविष्यतिसमागमः ॥ ८ ॥ यथाजानातिनोगौरी मानिनीपरमेश्वरी ॥ सएवंचिन्तयामास बहुशोनृपसत्तम ॥ ९ ॥ उपायंसुमहद्ध्यात्वा जाह्नवीसङ्गसम्भवम् ॥ तेनोद्दिष्टागणास्सर्वे नन्दिभृङ्गिपुरस्सराः ॥१०॥ अभिप्रायोस्तिमेचित्ते जलाश्रयव्रतोद्भवः ॥ क्रियतामुत्तमंकुण्डमस्मिन्पर्वतरोधसि॥११॥ तत्राहंजलमध्यस्थः स्थास्यामिजपतत्परः ॥ तच्छ्रुत्वात्वरितंचक्रुर्गणाःकुण्डमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ स्वच्छोदकसमाकीर्णं सुतीर्थंसुसुखावहम् ॥ ततोगौरीमनुज्ञाप्य जाह्नवीसङ्गलालसः ॥ १३ ॥ व्रतव्याजेनदेवेशो विवेशतदनन्तरम् ॥ चिन्तयामासतत्रस्थो गङ्गांत्रैलोक्यपावनीम् ॥ १४ ॥ साध्यातातत्क्षणात्तत्र शिवेनसहसङ्गता ॥ एवंसभगवांस्तत्र जाह्नवींभजतेसदा ॥१५॥ व्रतव्याजेनराजेन्द्रनतद्गौरीव्यजानत ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नारदोभगवान्मुनिः ॥१६॥

पै उत्तम कुण्ड कियाजावै ॥ ११ ॥ उसमें जपमें परायण मैं जलके मध्य में स्थित हूंगा उस वचनको सुनकर गणोंने निर्मल जलसे भरेहुये व सुखदायक उत्तम तीर्थरूप अति उत्तम कुण्डको शीघ्रही किया तदनन्तर पार्वतीजीसे कहकर गंगाजीके संगकी लालसावाले देवेश शिवजीने व्रतके बहाने से उसमें प्रवेश किया तदनन्तर उसमें टिके हुये शिवजीने त्रिलोकको पवित्र करनेवाली गंगाजीको ध्यान किया ॥ १२ । १३ । १४ ॥ और ध्यान कीहुई वे गंगाजी उसीक्षण वहां शिवजी के साथ समागमको प्राप्त हुईं इसप्रकार वे भगवान् शिवजी वहां सदैव गंगाजीको व्रतके बहानेसे भजते थे उसको पार्वतीजीने नहीं जाना इसके अनन्तर किसीसमय मोक्षज्ञान

से संयुत भगवान् नारदमुनि घूमते हुये वहां आये और वे नारदमुनि जलमें स्थित व व्रतको धारनेवाले तथा कामसे उपजे हुये चेष्टितों से युक्त महादेवजीको देखकर वहा ये विस्मयसंयुक्त हुये कि इस व्रतधारी के क्या यह टेढ़े नेत्रका विकार है ॥ १५ । १६ । १७ । १८ ॥ यां ज्ञान से संयुत हैं उसीकारण यह मुनि ध्यान मे स्थितहै इसके अनन्तर नारदजी ने पार्वतीजी के भयसे बहानेसमेत ध्यान की दृष्टिसे गंगाजी में आसक्त महादेवजीको देखा तदनन्तर ये नारदजी विस्मयको प्राप्तहुये व उससमय उन नारदजीने महादेवजी की सब कर्तव्यता को कहा ॥ १९ । २० ॥ तदनन्तर क्रोधसे कुछ लाललोचनोंवाली व बार २ कांपतीहुई शीघ्रता

कैवल्यज्ञानसम्पन्नस्तत्रायातःपरिभ्रमन् ॥ सतुदृष्ट्वामहादेवं जलस्थंव्रतधारिणम् ॥ १७ ॥ कामजैरिङ्गितैर्युक्तं तत्रासौविस्मयान्वितः ॥ वक्रनेत्रविकारोयं किमस्यव्रतधारिणः ॥ १८ ॥ ईदृग्ज्ञानसमायुक्तस्ततोध्यानस्थितोमुनिः ॥ अथापश्यद्ध्यानदृष्ट्या गङ्गासक्तंमहेश्वरम् ॥ १९ ॥ गौर्याभयेनसव्याजं ततोविस्मयमागतः ॥ तदासकथयामास स वैहरविचेष्टितम् ॥ २० ॥ ततोदेवीत्वरायुक्ता ययौयत्रमहेश्वरः ॥ आताम्रनयनारोषाद्वेपमानामुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥ तांदृष्ट्वाकोपसंयुक्तां समायातांमहेश्वरम् ॥ उवाचजाह्नवीभीताज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ २२ ॥ आवयोःसङ्गमोदेव्यै नारदेन निवेदितः ॥ सेयंरुष्टासमायातिकुरुष्वयदनन्तरम् ॥ २३ ॥महादेव उवाच ॥ कर्त्तव्योजाह्नविश्रेयानुपायःसामसञ्ज्ञकः ॥ प्रसह्यमानिनीह्येषा साम्नाचवशवर्तिनी ॥ २४ ॥ तत्क्षणाज्जायतेसाध्वी तस्मात्सामपराभव ॥ नोचेच्छापंमयासार्द्धं तवदास्यत्यसंशयम् ॥ २५ ॥ एवमुक्ताचरुद्रेण जाह्नवीनृपसत्तम ॥ कुण्डान्निर्गत्यसागङ्गा सम्मुखंप्रययौतदा ॥ २६ ॥

संयुत देवीजी वहा गई जहां कि महादेवजी थे ॥ २१ ॥ आईहुई उन पार्वतीजीको क्रोधसंयुत देखकर डरीहुई गंगाजी ने दिव्यदृष्टि से देखकर महादेवजी से कहा ॥ २२ ॥ कि नारदजीने हमारे व तुम्हारे दोनों समागमको पार्वती देवीजीसे कहा है सो ये क्रोधित पार्वतीजी आती हैं जो इसके बाद कार्य होवै उसको कीजिये ॥ २३ ॥ महादेवजी बोले कि हे जाह्नवि ! सामसंज्ञक श्रेष्ठ उपाय करना चाहिये क्योंकि हठसे ये मानिनी व पतिव्रता पार्वतीजी प्रिय वचन से उसीक्षणवशवर्तिनी होवेंगी उसकारण साममें तत्पर होवो नहीं तो मुझसमेत तुमको निस्सन्देह शाप देवैंगी ॥ २४ । २५ ॥ हे नृपोत्तम ! उससमय शिवजीसे ऐसा कही हुई वे जाह्नवी

गंगाजी कुंडसे निकलकर सामने चलीं ॥ २६ लज्जासमेत व हाथों को जोड़े हुई वे गंगाजी आगेगईं और मस्तकसे पार्वतीजीको प्रणामकर तदनन्तर सुलक्षणा गंगाजीने कहा ॥ २७ ॥ कि हे देवि ! पुरातनसमय भगीरथनामक राजाके लिये आकाशसे गिरतीहुई मुझको तुम्हारे पतिने धारण किया यह तुमको भी प्रकटहै उसी कारण स्नेह बढ़ता भया और तुम्हारे डरसे हमारा व तुम्हारा कभी समागम नहीं हुआ ॥ २८ । २९ ॥ हे सुरेश्वरि, शुभे ! मैं नहीं जानतीहूं कि इससमय शिवजीने तुम्हारे वचनसे मुझको बुलाया है या अपनी इच्छा से बुलाया है ॥ ३० ॥ इस कारण त्रिलोक को पूर्ण करतीहुई मैं किसीप्रकार निकलकर वहांसे यहीं प्राप्त हुई

प्रत्युद्ययौसलज्जाच कृताञ्जलिपुरस्सरा ॥ प्रणम्यशिरसाचोमां ततःप्राहसुलक्षणा ॥ २७ ॥ पुराहन्तवकान्तेन निपतन्तीनभस्तलात ॥ धृतादेवितवाप्येतद्विदितंनृपतेःकृते ॥२८॥ भगीरथाभिधानस्य ततःस्नेहोऽभ्यवर्द्धत ॥ आवयोस्तवभीत्याच नस्यात्कापिसमागमः ॥ २९ ॥ अधुनातववाक्येन जानेहन्नसुरेश्वरि ॥ समाहूतास्मिरुद्रेण किंवास्वच्छन्दतःशुभे ॥ ३० ॥ त्रैलोक्यंपूरयन्त्यस्मान्निष्क्रम्यचकथञ्चन ॥ तस्मादत्रैवसम्प्राप्ता सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा ततोदेवीप्रहर्षिता ॥ प्रोवाचमधुरंवाक्यं सत्यमेतत्त्वयोदितम् ॥ ३२ ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते वरंमत्तोयथेप्सितम् ॥ कुरुत्वंपतिधर्मंत्वे ममकान्तंमहेश्वरम् ॥ ३३ ॥ गङ्गोवाच ॥ अपिदौर्भाग्ययुक्ताहं भार्याजातास्मिशूलिनः ॥ तस्मादेकंदिनंदेहि क्रीडांसार्धमनेनतु ॥ ३४ ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामहोरात्रंसुरेश्वरि ॥ शिवकुण्डंतथाप्येतन्मयायस्मात्समावृतम् ॥ ३५ ॥ शिवगङ्गाभिधानन्तु तस्मात्कुण्डंधरातले ॥ ख्यातिंयातुप्रसादेन तव

इसको मैंने सत्य कहा ॥ ३१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर तदनन्तर देवी पार्वतीजी प्रसन्न हुईं व मीठे वचन बोलीं कि इसको तुमने सत्य कहा ॥ ३२ ॥ उसकारण तुम्हारा कल्याण होवै और मुझसे जैसा प्रियहो वैसे वरको मांगो और पतिधर्म में मेरे पति महेश्वरजीको करो ॥ ३३ ॥ गंगाजी बोलीं कि दुर्भाग्यसे युक्तभी मैं त्रिशूलधारी शिवजीकी स्त्री हुई हूं इसलिये हे सुरेश्वरि ! चैतके शुक्लपक्षकी तेरसिमें दिनरात इनके साथएक दिन क्रीड़ाको दीजिये व जिसलिये

यह शिवकुण्ड मुझसे घिरा है ॥ ३४ । ३५ ॥ इसकारण हे पर्वतनंदिनि ! तुम्हारी प्रसन्नता से पृथ्वी में शिवगंगानामक कुण्ड प्रसिद्धिको प्राप्त होवै ॥ ३६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसाही होवै यह गंगा महानदी से कहकर तदनन्तर उन पार्वती देवीजीने बार २ लिपटाकर बिदाकिया ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर नीचे मुखकिये व लज्जित होकर जब गंगाजी चलीगईं तब शिवजीको घुड़कती हुई पार्वती देवी हाथको पकडकर घरको गईं ॥ ३८ ॥ हे नराधिप ! उस कुण्डमें पुरातनसमय यह ऐसा वृत्तान्त हुआ है इसलिये सावधान होता हुआ मनुष्य चैत महीने में शुक्लपक्ष की चौदसि में सब यत्न से उस कुण्ड में स्नान करै हे नृपोत्तम ! देव देव शिवजीकी

पर्वतनन्दिनि ॥ ३६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्वितिसादेवी प्रोक्त्वागङ्गांमहानदीम् ॥ ततोविसर्जयामास समालिङ्ग्य मुहुर्मुहुः ॥ ३७ ॥ गतायामथगङ्गायामधोवक्त्रंसुलज्जितम् ॥ पाणौगृह्ययथौरुद्रं भर्त्सयमानागृहम्प्रति ॥ ३८ ॥ एवमेत त्पुरावृत्तं तस्मिन्कुण्डेनराधिप ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चतुर्दश्यांसमाहितः ॥ ३९ ॥ शुक्लायांचैत्रमासेतु स्नानंतत्रसमा चरेत् ॥ सान्निध्याद्देवदेवस्य गङ्गायाश्चनृपोत्तम ॥ ४० ॥ यत्रसंक्षयमायाति सर्वजन्माशुभंकृतम् ॥ तत्रयोवृषभंद द्याद् ब्राह्मणायनृपोत्तम ॥ ४१ ॥ तद्रोमसङ्ख्ययास्वर्गे सपुमान्वसतिध्रुवम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेशि वगङ्गाकुण्डोत्पत्तिर्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ययातिरुवाच ॥ यत्त्वयाकीर्तितंब्रह्मन्पूर्वंदेवैःप्रसादितः ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास स्थिररूपोमहेश्वरः ॥ १ ॥ कस्मा

व गंगाजीकी समीपता से ॥ ३९ । ४० ॥ जहां सब जन्मों में कियाहुआ पाप नाशको प्राप्त होता है हे नृपोत्तम ! वहां जो ब्राह्मण के लिये बैलको देताहै ॥ ४१ ॥ वह मनुष्य उसके रोमोंकी संख्या से निश्चयकर स्वर्ग में बसता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशिवगङ्गाकुण्डोत्पत्तिर्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛

दो० । बालखिल्य जिमि शिवहुंकर लिंगपातही कीन । उन्तालिस अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ ययातिजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! पहले जो तुमने कहाहै कि

देवताओं से प्रसन्न कियेहुये स्थिर रूप शिवजीने लिंगको स्थापन किया है ॥ १ ॥ और महात्मा बालखिल्योंने किसकारण लिंगको पातित किया है व किस कारण वहा हठसे देव देव महेश्वरजी हुये हैं ॥ २ ॥ इस सब कौतुक को मुझसे यथायोग्यकहने के योग्यहो और उसके देखनेपर वहां मनुष्यों को क्या पुण्य होता है ॥ ३ ॥ पुलस्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! शिवजीके माहात्म्य को सुनिये इस विषय में मैं तुमसे पहले हुये कथान्तर को कहता हूं ॥ ४ ॥ कि हे सत्यपराक्रम ! जो यज्ञमें नहीं निमंत्रित हुई उसी दक्षके अपमान से जब सतीजी मृत्युको प्राप्तहुई ॥ ५ ॥ तब कामदेव पुष्पका धनुष लेकर शीघ्रही उन शिवजीके सामने आया और बाण

च्चपातितंलिङ्गं बालखिल्यैर्महात्मभिः ॥ कस्मात्तत्रबलाज्जातो देवदेवोमहेश्वरः ॥ २ ॥ एतन्मेकौतुकंसर्वं यथाव द्वक्तुमर्हसि ॥ तस्मिन्दृष्टेचकिंपुण्यं नराणांतत्रजायते ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ महेश्वरस्यमाहात्म्यं शृणुपार्थिवस त्तम ॥ अत्रतेकीर्तयिष्यामि पूर्ववृत्तकथान्तरम् ॥ ४ ॥ यदापञ्चत्वमापन्ना सतीसत्यपराक्रम ॥ अपमानेनदक्षस्य यज्ञेनेनिमन्त्रिता ॥ ५ ॥ तदाकामोद्रुतंगृह्य पुष्पचापन्तमभ्यगात् ॥ कन्दर्पंसहसादृष्ट्वा सन्धितेषुंसुदुर्जयम् ॥ ६ ॥ आयातस्यभयात्तस्य प्रणष्टस्त्रिपुरान्तकः ॥ सतदाभ्रममाणश्च इतश्चेतश्चपार्थिव ॥ ७ ॥ बालखिल्याश्रमंप्राप्तः पुण्यं सद्वृक्षशोभितम् ॥ सतत्रभगवांस्तेषां दारैर्दृष्टस्स्वरूपवान् ॥ ८ ॥ दिग्वासाःसुप्रियालापस्ततस्ताःकाममोहिताः ॥ त्यक्त्वापुत्रगृहाण्येव सर्वास्तत्पृष्ठसंस्थिताः ॥ ९ ॥ बभूवुश्चानिशंराजन् मांभजस्वेतिचाब्रुवन् ॥ चक्रुरालिङ्गनंकाश्चि च्चुम्बनञ्चतथापराः ॥ १० ॥ अन्यास्तस्यहिलिङ्गंतत्स्पृशन्तिचमुहुर्मुहुः ॥ सचापिभगवाञ्छम्भुस्तासांरतिपरा

को लगाये व बहुतही दुर्जय कामदेवको अचानकही देखकर ॥ ६ ॥ उस आयेहुये उस कामदेव के भयसे त्रिपुरान्तक शिवजी अदृश्य होगये तब हे राजन् ! इधर उधर घूमते हुये वे शिवजी ॥ ७ ॥ उत्तम वृक्षों से शोभित पवित्र बालखिल्यों के आश्रम को प्राप्तहुये और वहां उन स्वरूपवान् तथा नग्न उत्तम प्रिय वचनवाले भगवान् शिवजीको उनकी स्त्रियों ने देखा तदनन्तर वे स्त्रियां कामसे मोहितहुई और पुत्र व घरोंको छोड़कर सब उनके पीछे खड़ीहुई ॥ ८ । ९ ॥ व हे राजन् ! उन्होंने कहा कि सदैव मुझको भजिये व किसीने आलिंगन किया और अन्य स्त्रियोंने चुंबन किया ॥ १० ॥ और अन्य स्त्रियां बार२ उनके लिंगको स्पर्श करनेलगीं और वे भगवान्

शिवजी उन स्त्रियोंकी रतिसे विमुखहुये ॥ ११ ॥ और उसआश्रममें घूमतेहुये व उनकी स्त्रियोंको कामदेवसे पीड़ित करतेहुये वे प्राप्तभये इसकेअनन्तर स्त्रियोंसे उपजे हुये विकार को देखकर महादेवको न जानतेहुये वे महात्मा मुनिलोग उनके ऊपर क्रोधित हुये व हे परंतप ! स्त्रियोंके लिये संतप्त उन्होंने शाप दिया ॥ १२ । १३ ॥ कि हे अधिकपापकारी ! यह तुम्हारा लिंग गिरपड़ै गिरपड़ै क्योंकि इसके दर्शन से हमारी स्त्रियों की तुम सदैव विडंबना करतेहो ॥ १४ ॥ तदनन्तर उसीक्षण ब्राह्मणों के वचन से त्रिपुरशत्रु शिवजी का वह लिंग गिरपड़ा तदनन्तर पृथ्वी कांप उठी ॥ १५ ॥ उसके उपरान्त पर्वतों के शिखर टूटगये व समुद्र क्षोभित हुये

ङ्मुखः ॥ ११ ॥ भ्रमंस्तत्राश्रमेतेषां दारान्कामेनपीडयन् ॥ अथतेमुनयोदृष्ट्वा विकृतिंदारसम्भवाम् ॥ १२ ॥ अजानन्तोमहादेवं रुष्टास्तस्यमहात्मनः॥ददुःशापंसमातप्ताःकलत्रार्थेपरन्तप॥ १३ ॥ पततात्पततात्लिङ्गमेतत्तेपापकृत्तम॥ विडम्बयसिनोदारानजस्रंचास्यदर्शनात ॥ १४ ॥ ततःपपाततल्लिङ्गं तत्क्षणात्त्रिपुरद्विषः ॥ ब्रह्मवाक्येनराजर्षे चकम्पेवसुधाततः॥ १५ ॥ शीर्णानिगिरिश्टङ्गाणि चुक्षुभुर्मकरालयाः॥ततोदेवगणास्सर्वे भयत्रस्तानराधिप॥ १६ ॥ अकालेप्रलयंज्ञात्वा त्रैलोक्येपर्यवस्थितम् ॥ ततःपितामहंजग्मुस्तस्मै सर्वंन्यवेदयन् ॥ १७ ॥ प्रलयस्येवचिह्नानि दृश्यन्ते परमेश्वर ॥ किंनिमित्तंसुरश्रेष्ठ नजानीमोवयंप्रभो ॥ १८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा चिरंध्यात्वापितामह ॥ अब्रवीत्पतितंलिङ्गं बालिखिल्यैःपिनाकिनः ॥ १९ ॥ तेनैतेदारुणोत्पाताः सञ्जाताभयसूचकाः ॥ तस्मान्मयासमायुक्ताः सर्वेतत्रदिवौकसः ॥२० ॥ व्रजन्तुयेनतल्लिङ्गं स्थानेसंस्थापयेच्छिवः ॥ यावन्नोजायतेलोके प्रलयोकालसम्भवः ॥ २१ ॥ एवंसंम

तदनन्तर हे नराधिप ! सब देवताओं के गण भयसे डरगये ॥ १६ ॥ और बिन समय त्रिलोकमें प्रलयको प्राप्त देखकर तदनन्तर ब्रह्माके समीप गये व उन्होंने उनसे सब कहा ॥ १७ ॥ कि हे परमेश्वर, सुरश्रेष्ठ, प्रभो ! किसकारण प्रलय के ऐसे चिह्न देख पड़ते हैं इसको हमलोग नहीं जानते हैं ॥ १८ ॥ उनके उस वचनको सुनकर बहुत देरतक ध्यानकर ब्रह्माजीने कहा कि बालखिल्योंने शिवजीकेलिंगको गिराया है ॥ १९ ॥ उसकारण भयके सूचक ये भयंकर उत्पात हुये हैं इसलिये मुझसे संयुत स देवता वहां ॥ २० ॥ चलैं कि जिससे शिवजी उस लिंगको तबतक स्थानमें स्थापितकरैं जबतक कि अकालमें उपजाहुआ प्रलय संसारमें न होवै ॥ २१ ॥

इसप्रकार सलाह करके तदनन्तर वे सब अर्बुद पर्वत पे प्राप्तहुये जहांकि बालखिल्यों के आश्रम में वह लिंग गिरा था ॥ २२ ॥ और विनय से संयुत देवता-ओं ने अनेकभांति के वेदोक्तसूक्तों से स्तुति किया देवता बोले कि हे देव देवेश ! तुम भक्तोंको अभय करनेवाले हो तुम्हारेलिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ व सर्ववासी और सर्वयज्ञमय तुम्हारेलिये नमस्कार है व सर्वेश्वरदेव तथा परमज्योति के लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ और स्थूल व सूक्ष्म के लिये तथा ज्ञानमें जाने योग्य विधाता के लिये व त्रिलोचन तथा भीम व उत्तम पिनाकहाथवाले के लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ हे देवतोत्तम ! चराचर संसार में जो जो है वह सब सूत्रमें मणिगणों की

न्त्यतेसर्वे ततःप्राप्तार्बुदम्प्रति ॥ बालखिल्याश्रमेयत्र तल्लिङ्गंनिपपातह ॥ २२ ॥ तुष्टुवुर्विविधैःसूक्तैर्वेदोक्तैर्विन यान्विताः ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेश भक्तानामभयङ्करः ॥ २३ ॥ नमस्तेसर्ववासाय सर्वयज्ञमयायच ॥ सर्वेश्व रायदेवाय परमज्योतिषेनमः ॥ २४ ॥ नमस्थूलायसूक्ष्माय ज्ञानगम्यायवेधसे ॥ त्र्यम्बकायचभीमाय पिनाकवर पाणये ॥ २५ ॥ त्वयिसर्वमितिप्रोक्तं सूत्रेमणिगणा इव ॥संसारे विबुधश्रेष्ठ यद्यत्स्थावरजङ्गमे ॥ २६ ॥ नतदस्तित्रि लोकेस्मिन्ससूक्ष्ममपिशङ्कर ॥ यत्त्वयानप्रभोव्याप्तं सृष्टिसंहारकारिणा ॥ २७ ॥ पृथिव्यादीनिभूतानि त्वयासृष्टानि कामतः ॥ यास्यन्तितवभूयोपि तवकायेजगत्पते ॥ २८ ॥ प्रसीदभगवंस्तस्माल्लिङ्गमेतत्सुरेश्वर ॥ स्थानेस्थापयभद्र न्ते यावन्नस्यात्प्रजात्त्ययः ॥ २९ ॥ भगवानुवाच ॥ निर्विकारस्यमेलिङ्गं बालखिल्यैःप्रपातितम् ॥ कथंभूयःप्रगृह्णा मि यावच्छुद्धिर्नजायते ॥ ३० ॥ शक्तोहंवालखिल्यानां निग्रहंकर्तुमञ्जसा ॥ किन्तुमेब्राह्मणामान्याः पूज्याश्चसुरस

नाई तुम में कहागया है ॥ २६ ॥ हे शङ्करजी ! इस बहुतही सूक्ष्म त्रिलोकमें बहुत सूक्ष्म भी वह वस्तु नहीं है जो कि हे प्रभो ! सृष्टि के संहार करनेवाले आप से न व्याप्त होवै ॥ २७ ॥ हे जगत्पते ! पृथ्वी आदिक महाभूतों कोतुमने इच्छा से रचा है और फिरभी तुम्हारे शरीरमें प्राप्त होवैंगे ॥ २८ ॥ इसलिये हे सुरेश्वर, भगवन् ! प्रसन्न होवो तुम्हारा कल्याण होवै और जबतक प्रजाओं का नाश न होवै तब तक इस लिंगको स्थान में स्थापित करो ॥ २९ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि विकाररहित मेरे लिंगको बालखिल्यों ने गिराया है उसको फिर कैसे ग्रहण करूं जबतक कि शुद्धि न होवै ॥ ३० हे सुरोत्तमो ! मैं बालखिल्योंका निग्रह (दंड) करने के लिये

समर्थ हूं परन्तु ब्राह्मण मेरे मानने व पूजने योग्य हैं ॥ ३१ ॥ हे विभो! यह अचल लिंग नहीं उठाया जा सक्ता है इसविषय में एकही उपाय कहागया है अन्य उपाय नहीं है ॥ ३२ ॥ हे पितामह ! यदि तुम पहले मेरे लिंगको पूजोगे तदनन्तर सब देवताओं के गण व उसके उपरान्त अन्य ब्राह्मण पूजेंगे ॥ ३३ ॥ उसके उपरान्त चराचर संसार शांतिको प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर भगवान् शंकरजीसे ऐसा कहे हुये ब्रह्माजीने पहले उत्तम भक्ति से उस लिंग का पूजन किया ॥ ३५ ॥ और ब्रह्मा के बाद विष्णु तदनन्तर इन्द्र व उसके उपरान्त अन्य बालखिल्यादिक ब्राह्मणों ने शतरुद्रियमंत्रों से पूजन किया ॥ ३६ ॥

त्तमाः ॥ ३१ ॥ अचलंलिङ्गमेतद्धि नोद्धर्तुंशक्यतेविभो ॥ एकएवात्रनिर्दिष्ट उपायोनापरस्स्मृतः ॥ ३२ ॥ यदिमेत्वंपुरा लिङ्गं पूजयेथाःपितामह ॥ ततोदेवगणास्सर्वे ततोविप्रास्तथापरे ॥ ३३ ॥ ततोवैशान्तिमागच्छेज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तोभगवता शङ्करेणनृपोत्तम ॥ ततस्तत्पूजयामास ब्रह्मापूर्वंसुभक्तितः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणोनन्तरंविष्णुस्ततःशक्रस्ततोपरे ॥ बालखिल्यादयोविप्रा मन्त्रैश्चशतरुद्रियैः ॥ ३६ ॥ ततस्तेदारुणोत्पाता उपशान्ताश्चतत्क्षणात् ॥ अभवच्चसुखीलोको ववौगन्धवहोनिलः ॥ ३७ ॥ अथोवाचमहादेवः सर्वांस्तांस्त्रिदिवालयान् ॥ वरयध्वंवरंसर्वे मत्तोयद्मनसिस्थितम् ॥ ३८ ॥ देवा ऊचुः ॥ तवलिङ्गस्यसंस्पर्शादपिपापकृतोनरः ॥ स्वर्गंयास्यन्तिदेवेश नाशंयास्यतिकिल्बिषम् ॥ ३९ ॥ व्रतदानानिसर्वाणि तीर्थयात्रायुतानिच ॥ तस्माद्वज्रेणदेवेन्द्रस्त्वैतल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४० ॥ छादयिष्यतिसर्वत्र यदित्वंमन्यसेप्रभो ॥ ४१ ॥ भगवानुवाच ॥ अभिप्रायोममाप्येव वर्त्तते

तदनन्तर उसीक्षण भयंकर उत्पात शान्त होगये और संसार सुखी हुआ व सुगंधि को प्राप्त करनेवाला पवन चलने लगा ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर महादेवजीने उन सब देवताओं से कहा कि जो मनमें स्थितहो उस वरको मुझसे सब मांगो ॥ ३८ ॥ देवता बोले कि हे देवेश ! तुम्हारे लिंगके स्पर्श से पापको करनेवाले भी मनुष्य स्वर्गको जावैंगे व पातक नाशको प्राप्तहोगा ॥ ३९ ॥ और तीर्थ यात्रासे सयुत सब व्रत व दान होवैंगे इस कारण हे प्रभो ! यदि तुम मानो तो इन्द्रजी तुम्हारे इस

लिंगको सब कहीं वज्रसे आच्छादित करैं ॥ ४० । ४१ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरेभी हृदय में यह अभिप्राय वर्तमान है इससे सब धर्मोंकी वृद्धि के लिये इन्द्रजी ऐसाही करैं ॥ ४२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर देवताओं के स्वामी इन्द्रने वज्रसे उस लिंगको आच्छादित किया जिसप्रकार कि वह लिंग अब सब मनुष्यों के अदृश्य हुआ ॥ ४३ ॥ आजभी स्पर्श के अभाव से उसकी समीपता के गुणसे मनुष्य निश्चयकर जन्मसे लगाकर मरणतक के पातक से छूटजाता है ॥ ४४ ॥ जिसलिये शंकरजीने उस लिंगको महान् कहा है तदनन्तर वज्रसे खींच कर जब वह पृथ्वी में आया ॥ ४५ ॥ तबसे लगाकर मृत्युलोक में लिंगका पूजन

हृदिपद्मज ॥ एवंकरोतुदेवेन्द्रः सर्वधर्मविवृद्धये ॥ ४२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततःसंछादयामास वज्रेणत्रिदशाधिपः ॥ तल्लिङ्गंसर्वमर्त्यानां मयादृश्यंऽयजायत ॥ ४३ ॥ अद्यापिस्पर्शनाभावात्तत्सान्निध्यगुणेनच ॥ आजन्ममरणात्पापा न्मुच्यतेमानवोध्रुवम् ॥ ४४ ॥ महत्तुकीर्तितंयस्मात्तल्लिङ्गं शङ्करेणतु ॥ सुवज्रेणचसंकृष्य ततोगाद्यत्धरातले ॥ ४५ ॥ ततःप्रभृतिलिङ्गस्य मर्त्येपूजाऽयजायत ॥ पुरासीच्छङ्करःपूज्यो यथान्येत्रिदिवालयाः ॥ ४६ ॥ एवमेतत्पुरावृत्तम र्बुदेपर्वतोत्तमे ॥ लिङ्गस्यपतनात्पूजां यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ ४७ ॥ फाल्गुनस्यचतुर्दश्यां नैवेद्यंनूतनैर्यवैः ॥ योद दात्यचलेशाय सभूयोनेहजायते ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्यस्तु शक्त्यातस्मिन्नवैर्यवैः ॥ यवसंख्याप्रमाणानि युगा निदिविमोदते ॥ ४९ ॥ तत्रदानंप्रशंसन्ति सक्तूनांमुनिसत्तमाः ॥ यवदानंमहाराज यत्रप्रोक्तंपुरारिणा ॥ ५० ॥ किंदा नैर्विविधैर्दत्तैः किंवायज्ञैःसुविस्तरैः ॥ किंतीर्थैर्विविधैर्होमैस्तपोभिःकिंचकष्टदैः ॥ ५१ ॥ फाल्गुनेकृष्णभूतायां सुमहे

हुआ पुरातनसमय जैसे और सब देवता पूजेजाते थे वैसेही शंकरजी पूजनीय थे ॥ ४६ ॥ जो तुमने लिंगके गिरने से पूजनको पूंछा यह ऐसा वृत्तान्त पुरातनसमय उत्तम अर्बुदपर्वत पै हुआ है ॥ ४७ ॥ फागुनकी चौदसि में जो मनुष्य नये यवों से अचलेश्वर के लिये नैवेद्य देता है वह फिर इस संसार में नहीं होता है ॥ ४८ ॥ और जो शक्तिसे उस स्थान में नवीन यवों से ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह यवोंकी संख्याके प्रमाणभर युगोंतक स्वर्ग में आनन्द करता है ॥ ४९ ॥ वहां मुनि-श्रेष्ठ सत्तुवोंके दानकी प्रशंसा करते हैं जहां कि हे महाराज ! पुरारि शिवजी ने यवदानको कहा है ॥ ५० ॥ अनेकप्रकार के दिये हुये दानों से वह बहुत विस्तारित

यज्ञों से क्या है और अनेकप्रकारके होमों व तीर्थों से क्या है और कष्टदेनेवाले तपोंसे क्या है ॥ ५१ ॥ फागुन में कृष्णपक्षकी चौदसि में महादेवजीके समीप येसब धर्म सोलहवींकला के योग्य नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय जो यहां उत्तम आश्चर्य हुआहै उसको सुनिये कि कोई पाप आचरण व दुबले शरीरवाला कुष्ठी मनुष्य ॥ ५३ ॥ अन्य मनुष्यों से संयुत वहां भिक्षा के लिये आया और हे राजन् ! उसने वहा कुडवप्रमाण भर याने पक्के पावभरके लगभग सत्तुवों को भिक्षा से इकट्ठा किया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर रोगके क्लेशसे उसने भोजन नहीं किया और घाससे विकल व भक्तिरहित उसने उसजलमें स्नान किया ॥५५॥ और सत्तुवों

श्वरसन्निधौ ॥ धर्माण्येतानिसर्वाणि कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ५२ ॥ शृणुराजन्पुरावृत्तमत्राश्चर्ययदुत्तमम् ॥ कश्चित्पापसमाचारःकुष्ठक्षामतनुर्नरः ॥ ५३ ॥भिक्षार्थमागतस्तत्रलोकैरन्यैस्समन्वितः ॥ तेनभिक्षार्जितंतत्र सक्तूनांकुडवंनृप ॥ ५४ ॥ ततोरोगपरिक्लेशाद्भोजनंनचकारसः ॥ दाघार्दितोजलेतस्मिन्स्नातोभक्तिविवर्जितः ॥ ५५ ॥ सक्तून्कृत्वोपधानेतान्सचसुप्तोनिशागमे ॥ अथस्नानंयदाकृत्वा सचसुप्तोनिशागमे ॥ ५६ ॥ ततोनिद्राभिभूतस्य सारमेयोजहारच ॥ भक्षयामासयुक्तोन्यैः सारमेयैर्बुभुक्षितः ॥५७॥मन्मथाकारसदृशो दिव्यगन्धाम्बरस्रजम् ॥ अथासौविस्मयाद्राजन् पञ्चत्वंसमुपस्थितः ॥ ५८ ॥ ततोजातिस्मरोजातो विदर्भाधिपतेर्गृहे ॥ भीमोनामनृपश्रेष्ठ दमयन्तीपिताहिसः ॥ ५९ ॥ तत्प्रभावंहिविज्ञा यसक्तूनांतत्रपर्वते ॥ फाल्गुनस्यचतुर्दश्यां वर्षेवर्षेजगामसः ॥ ६० ॥ कृत्वाचैवोपवास

को मस्तक के नीचे धरकर वह रात्रिके आगमनमें सोगया इसके अनन्तर स्नान करके जब वह रात्रिके आगमन में सोगया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर निद्रा से तिरस्कृत उस कुष्ठी के सत्तुवों को कुत्तेने हरलिया और अन्य कुत्तों से संयुत उस भूंखे कुत्तेने उसको खालिया ॥ ५७ ॥ और कामदेव के आकार समान व दिव्य सुगंध व वस्त्र तथा मालाको धारण करता भया इसके अनन्तरहे राजन् ! यह विस्मय से मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ ५८ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ विदर्भदेशकेराजा के घरमें वह दमयंती का पिता भीमनामक जातिको स्मरण करनेवाला हुआ ॥ ५९ ॥ सत्तुवोंके उस प्रभावको जानकर वह फागुनकी चौदसि मे प्रतिवर्ष उस पर्वतपै गया ॥ ६० ॥ तदनन्तर

उसने अचलेश्वर के समीप उपवास व रात्रिमें जागरणकर सुवर्णसमेत बहुत सत्तुवों को द्विजेन्द्रोंको और पशु, पक्षी व मृगोंके लिये दिया इसके अनन्तर हे राजन् ! गालव इत्यादिक उन सब मुनियोंने ॥ ६१ । ६२ ॥ हे राजन् ! कौतुकसंयुत होकर सत्तुवोंके दानकेलिये पूंछा ऋषिलोग बोले कि हाथी, घोड़े व रथोंके दानोंकी तुम को अद्भुत शक्ति है ॥ ६३ ॥ और सत्तुवोंको छोड़कर तुम किसलिये अन्यवस्तुको देनेकी इच्छा नहीं करतेहो ॥ ६४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसके अनन्तर इस राजा ने पूर्वजन्म में उपजेहुये सत्तुवोंके दानके माहात्म्यको शुद्धचित्तवाले मुनियों से कहा ॥ ६५ ॥ कि हे द्विजोत्तमो ! पुरातनसमय भक्तिसे रहित कुत्तेने सत्तुवों को

न्तु रात्रौजागरणंतथा ॥ अचलेश्वरसान्निध्ये ददौसक्तूंस्ततोबहून् ॥ ६१ ॥ सहिरण्यान्द्विजेन्द्राणां पशुपक्षिमृगेषु च ॥ अथतेमुनयस्सर्वे गालवप्रमुखान्नृप ॥ ६२ ॥ पप्रच्छुःकौतुकाविष्टाः सक्तुदानकृतेनृप ॥ ऋषय ऊचुः ॥ हस्त्यश्वरथदानानां शक्तिरस्तितवाद्भुता ॥ ६३ ॥ कस्मात्सक्तून्प्रमुक्त्वात्वं नान्यन्दातुंत्वमिच्छसि ॥ ६४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथासौकथयामास पूर्वजन्मसमुद्भवम् ॥ सक्तुदानस्यमाहात्म्यं मुनीनांभावितात्मनाम् ॥ ६५ ॥ पूर्वंभक्त्या विहीनेन शुनावैसक्तवोहृताः ॥ तत्प्रभावादियंप्राप्तिर्ममजाताद्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥ साम्प्रतंभक्तिदत्तानां किंस्याज्जानामिनोफलम् ॥ एतस्मात्कारणाद्दानं सक्तूनांप्रकरोम्यहम् ॥ ६७ ॥ तीर्थेस्मिन्मुक्तिसंयुक्ते सत्येनात्मानमालभे ॥ ६८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततस्तेमुनयोहृष्टाः साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ चक्रुश्चैवात्मनःशक्त्या सक्तूनांदानमुत्तमम् ॥ ६९ ॥ एवंप्रभावोराजर्षे सक्तुदानस्यकीर्तितः ॥ महेश्वरस्यमाहात्म्यं सत्यंचापिप्रकीर्तितम् ॥ ७० ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भ

हरलिया उसके प्रभाव से मुझको यह प्राप्तिहुई ॥ ६६ ॥ व इससमय भक्तिसे दिये हुये सत्तुवोंका क्या फल होगा इसको मैं नहीं जानताहूं इसकारण मैं मुक्तिसे संयुत इस तीर्थ में सत्तुवों का दान करताहूं यह सत्यसे अपनी सौगन्द करताहूं ॥ ६७ । ६८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उन मुनियों ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा व अपनी शक्तिसे सत्तुवों का उत्तम दान किया ॥ ६९ ॥ हे राजर्षे ! सत्तुवोंके दानका ऐसा प्रभाव कहागया और महेश्वरजीका सत्य माहात्म्य

भी कहागया ॥ ७० ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो मनुष्य कहेजाते हुये इस माहात्म्यको भक्तिसे सुनता है वह दिनरात्रिमें कियेहुये पातक से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांशिवलिङ्गमाहात्म्यंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ● ॥ ●

दो० । कामदेव को भस्मकिय यथा उमापति नाथ । चालिसवें अध्यायमें सोई वर्णित गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर कामेश्वरजीके समीप जावै जो लिंग कि कामदेवजीसे थापित है और जिसके देखनेपर मनुष्य सदैव स्वरूपवान् व सुन्दर ऐश्वर्यवान् होता है ॥ १ ॥ ययातिजी बोले कि तुमने पहले कहा है कि शिवजी

त्स्या कथ्यमानंद्विजोत्तमाः ॥ अहोरात्रकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेऽर्बुद माहात्म्येशिवलिङ्गमाहात्म्यन्नामनवत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःकामेश्वरंगच्छेद्यच्चकामप्रतिष्ठितम् ॥ यस्मिन्दृष्टेसदामर्त्यः सुरूपस्सुभगोभवेत् ॥ १ ॥ यया तिरुवाच ॥ त्वयाप्रोक्तंपुराशम्भुः कामबाणभयात्किल ॥ बालखिल्याश्रमंप्राप्तो यत्रालिङ्गंपपातह ॥ २ ॥ सकथंपूजित स्तेन शम्भुर्मेकौतुकंमहत् ॥ वदसर्वंद्विजश्रेष्ठ कामेश्वरसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ मुक्तलिङ्गेपिदेवेशोनस्मर स्तंमुमोचह ॥ दर्शयन्नात्मनोबाणं तस्यासौपृष्ठतस्थितः ॥ ४ ॥ ततोवाराणसींप्राप्तस्तद्भीत्यात्रिपुरान्तकः ॥ तत्रापिच तथादृष्ट्वा धृतचापंमनोभवम् ॥ ५ ॥ ततःप्रयागमापन्नः केदारंचततःपरम् ॥ नैमिषंभद्रकर्णञ्च जम्बूमार्गंत्रिपुष्क रम् ॥ ६ ॥ गोकर्णंचप्रभासंच पुण्यंमारस्वतंतथा ॥ गङ्गाद्वारंगयाशीर्षं महाकालंवटेश्वरम् ॥ ७ ॥ किंवातेबहुनोक्तेन

कामदेवके बाणके भयसे बालखिल्यों के आश्रम में प्राप्तहुये जहां कि लिंग गिराहै ॥ २ ॥ उन शिवजीको उस कामदेव ने कैसे पूजाहै यह मुझको बड़ा कौतुक है हे द्विजोत्तम ! कामेश्वरसे उपजेहुये सब चरित्रको कहिये ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि लिंगको छोड़हुये भी देवेश शिवजीके ऊपर अपने उस बाणको दिखातेहुये कामदेव ने नहीं छोड़ा और यह कामदेव उन शिवजीके पीछे स्थितहुआ ॥ ४ ॥ तदनन्तर त्रिपुरविनाशक शिवजी उस कामदेव के डरसे काशीको प्राप्तहुये और वहाभी वैसे ही धनुषको धारणकिये कामदेवको देखकर ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रयागको प्राप्तहुये उसके उपरान्त केदार, नैमिष, भद्रकर्ण, जम्बूमार्ग, व त्रिपुष्करको गये ॥ ६ ॥ और

गोकर्ण, प्रभास व पवित्र सारस्वत क्षेत्र व हरद्वार, गयाशीर्ष, महाकाल व वटेश्वर को प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ अथवा तुमसे बहुत कहने से क्या है शिवदेवजी असंख्य तीर्थों व देव मन्दिरोंकोगये और उन्होंने वेमहीं कामदेवजीको देखा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उसकामदेवके डरसे महादेवजी जहां जहां जातेथे वहां वहां अस्त्रको धारेहुये कामदेवको फिर देखते थे ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय शिवजी फिर अर्बुद पै प्राप्त हुये वहां उन्होंने कानतक खींचेहुये अस्त्रवाले कामदेवको वैसेही देखा ॥ १० ॥ कि हे नृपोत्तम ! एक पावको कुञ्चित किये व दृष्टिको स्थिर किये है इसके अनन्तर वे भगवान् शिवजी थकगये व प्यारी पार्वतीजीके दुःख से संयुत हुये ॥ ११ ॥ व

तीर्थान्यायतनानिच ॥ असङ्ख्यानिगतोदेवः कामंचददृशेतथा ॥ ८ ॥ यत्रयत्रमहादेवस्तद्भयान्नृपगच्छति ॥ तत्रतत्र पुनःकामं प्रपश्यतिधृतायुधम् ॥ ६ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पुनःप्राप्तोर्बुदम्प्रति ॥ तत्रापश्यत्तथाकाममाकर्णाकर्षितायुधम् ॥ १० ॥ आकुञ्चितैकपादंच स्थिरदृष्टिंनृपोत्तम ॥ अथासौभगवाञ्छ्रान्तः प्रियादुःखसमन्वितः ॥ ११ ॥ क्रोधंचक्रेविशेषेण दृष्ट्वातंपुरतस्स्थितम् ॥ तस्यकोपाभिभूतस्य तृतीयान्नयनान्नृप ॥ १२ ॥ निश्चक्राममहाज्वाला यया सौभस्मसात्कृतः ॥ सचापःसशरोराजं स्तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥ १३ ॥ शङ्करोरोषपर्यन्तंगत्वासौख्यमवाप्तवान् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठं जगामसुरपूजितः ॥ १४ ॥ दग्धेमनोभवेभार्या रतिरस्यपतिव्रता ॥ व्यलपत्करुणंदीना पतिशोकपरिप्लुता ॥ १५ ॥ ततोदारूण्याहृत्य चितिंकृत्वानराधिप ॥ आरुरोहाग्निसंदीप्तां विनयात्सासुदुःखिता ॥ १६ ॥ ततश्चा

हे राजन् ! उस कामदेवको आगे खड़ेहुये देखकर शिवजीने विशेषतासे क्रोधकिया और क्रोधसे तिरस्कृत उन शिवजीके तीसरेनेत्रसे ॥ १२ ॥ बड़ीभारीज्वाला निकली कि जिससे हे राजन् ! धनुषसमेत व बाणसहित यह कामदेव उस पर्वतके किनारे पै भस्म करदिया गया ॥ १३ ॥ और क्रोध के अन्तको प्राप्तहोकर शंकरजी सुखको प्राप्तहुये व देवताओंसे पूजित वे श्रेष्ठ कैलास पर्वत पै गये ॥ १४ ॥ और कामदेव के जलनेपर पतिके शोकसे संयुत इसकी पतिव्रता रति स्त्रीने उदास होकर करुणा से विलाप किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! लकड़ियोंको लाकर चिता बनाकर वह बहुतही दुःखित रति नम्रतासे जलतीहुई अग्निवाली चिता पै चढ़ी ॥ १६ ॥

तदनन्तर यशस्विनी रतिने आकाशवाणीको सुना कि हे पुत्रि! मत साहस करो क्योंकि हे सुंदरि ! तुम तपस्यासे ॥ १७ ॥ प्रसन्न शिवजीसे फिर कामदेव पतिको पावोगी उस वाणीको सुनकर उससमय वह सुन्दर कटिवाली रति उठपड़ी ॥ १८ ॥ व रातदिन आलस्यरहित रतिने शिवदेवजीको व्रत, दान, जप, होम व अन्य उपासों से आराधन किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर हज़ारवर्षके अन्तमें उसके ऊपर शिवजी प्रसन्नहुये व बोले कि हे कल्याणि ! जो मनमें स्थितहो उस वरदानको कहो ॥ २० ॥ रति बोली कि हे लोकभावन, भगवन्, देव ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मेरा सुन्दर पति फिर अक्षत अंगोंवाला होवै ॥ २१ ॥ हे महाराज ! उस रतिसे ऐसा वचन

काशगांवाणीं सुश्रावचयशस्विनी ॥ मापुत्रिसाहसंकार्षीस्तपसात्वन्तुसुन्दरि ॥ १७ ॥ भूयःप्राप्स्यसिभर्तारं कामं तुष्टेनशम्भुना ॥ साश्रुत्वातांतदावाणींसमुत्तस्थौसुमध्यमा ॥१८॥ देवमाराधयामासदिवानक्तमतन्द्रिता ॥ व्रतैर्दानैर्जपैर्होमैरुपवासैस्तथापरैः ॥ १९ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते तुष्टस्तस्यांमहेश्वरः ॥ अब्रवीद्वदकल्याणि वरंयन्मसिस्थितम् ॥ २० ॥ रतिरुवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव भगवँल्लोकभावन ॥ अक्षताङ्गःपुनःकामःकान्तोमेजायतांपतिः ॥ २१ ॥ एवमुक्तेतयावाक्ये तत्क्षणात्समुपस्थितः ॥ यथासुप्तोमहाराजतादृग्रूपश्चतत्पतिः ॥ २२ ॥ इक्षुयष्टिमयंचापं पुष्पबाणसमन्वितम् ॥ भृङ्गश्रेणिमयीमौर्व्या शोभितंसुमनोहरम् ॥ २३ ॥ ततोरतिसमायुक्तः प्रणिपत्यमहेश्वरम् ॥ अनुज्ञातस्तुतेनैव स्वव्यापारेभ्यवर्तत ॥ २४ ॥ सदृष्ट्वाशिवमाहात्म्यं श्रद्धांकृत्वा नृपोत्तम ॥ शिवंसंस्थापयामास पर्वतेर्बुदसञ्ज्ञिते ॥ २५ ॥ यस्मिन्दृष्टेमहाराज नारीवायदिवानरः ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव नदौर्भाग्यमवाप्नुयात् ॥ २६ ॥ एवमेत

कहनेपर वह वैसे रूपवाला उसका पति कामदेव उसीक्षण स्थित हुआ जैसा कि सोताहुआ मनुष्य होवै ॥ २२ ॥ फूलोंके बाणमे संयुत ऊंखदण्डका धनुष भौंरों की पंक्तिमयी प्रत्यंचासे शोभित व मनोहर था ॥ २३ ॥ तदनन्तर महादेवजीको प्रणामकर उन्हीं शिवजीसे आज्ञाको पाये हुये रतिसे संयुत कामदेव अपने व्यापारमें वर्तमान हुआ ॥ २४ ॥ हे नृपोत्तम ! उस कामदेवने शिवजीके माहात्म्य को देखकर श्रद्धाकरके अर्बुदनामक पर्वत पै शिवजीको स्थापन किया ॥ २५ ॥ हे महाराज !

जिसके देखने पर स्त्री या पुरुष सात जन्मों के मध्यमें दुर्भाग्यता को नहीं प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ जो तुमने मुझसे पूंछा इस कामदेव के माहात्म्य व कामदेवके दाहको मैंने विस्तारसमेत तुमसे कहा ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकामेश्वरमाहात्म्यंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दो० । मार्कंडेय मुनीश जिमि आश्रम करि तप कीन । इकतालिसवें में सोई कह्यो चरित रसभीन ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर मार्कंडेयजीके आश्रम को जावै जहां कि पुरातनसमय महात्मा मार्कंड ने तपस्या किया है ॥ १ ॥ पुरातनसमय प्रशंसित नियमवाले मार्कंडनामक ब्राह्मण हुये हैं उसके अन्तावस्था में बड़ा

न्मयाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ कामेश्वरस्यमाहात्म्यं कामदाहंसविस्तरम् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेर्बुदमाहात्म्येकामेश्वरमाहात्म्यन्नामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ मार्कण्डेयस्यचाश्रमम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं मार्कण्डेनमहात्मना ॥ १ ॥ मार्कण्डोब्राह्मणोनामपुरासीच्छंसितव्रतः ॥ अन्तेवयसिसञ्जातस्तस्यपुत्रोतिसुन्दरः ॥ २ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णः शान्तःसूर्यसमप्रभः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्याश्रमपदेनृप ॥ ३ ॥ आगतोब्राह्मणोज्ञानी कश्चित्सामुद्रविच्छुभः ॥ ततोसौ क्रीडमानस्तुबालकःपञ्चवार्षिकः ॥ ४ ॥ आनखाग्रशिखाग्राभ्यां चिरंचैवावलोकितः ॥ ततोभूद्विस्मितोराजंस्तंमृकण्डः प्रलक्षयन् ॥ ५ ॥ अथाब्रवीच्चिरंदृष्टस्त्वयापुत्रोममद्विज ॥ ततोहसितवान्भूयःकिमिदंकारणंवद ॥ ६ ॥ असकृत्समृकण्डेन यावत्पृष्टोद्विजोत्तमः ॥ उपरोधवशात्तस्मै यथार्थंसन्यवेदयत ॥ ७ ॥ अस्यबालस्यचिह्नानि यानिकानिद्वि

सुन्दर पुत्र पैदाहुआ ॥ २ ॥ जो कि सब लक्षणोंसे पूर्ण व शान्त तथा सूर्य के समान प्रभावान् था इसके अनन्तर किसीसमय उसके आश्रम (स्थान) में ॥ ३ ॥ कोई सामुद्रिकशास्त्रका जाननेवाला उत्तम ज्ञानी ब्राह्मण आया तदनन्तर खेलते हुयेइस पाच वर्षके बालकको ॥ ४ ॥ नखोंके अग्रभागसे लगाकर शिखाके अग्रभाग तक उस ब्राह्मणने बहुतदेरतक देखा तदनन्तर हे राजन् ! उस ब्राह्मणको देखतेहुये मृकंडजी विस्मित हुये ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर बोले कि हे द्विज ! तुमने बहुत देरतक मेरे पुत्रको देखा तदनन्तर फिर तुम हँसे यह क्या कारण है इसको कहिये ॥ ६ ॥ जब मृकण्डजीने बार २ उस द्विजोत्तमसे पूंछा तब उसने हठके वशसे उनसे यथार्थ

बतलाया ॥ ७ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! इस बालकके जो कोई चिह्न देख पड़ते हैं उनसे मनुष्य अजर व अमर होता है ॥ ८ ॥ और छः महीने में निश्चयकर इस बालककी मृत्यु होगी हे द्विजोत्तम ! इसकारण मैंने हास्य किया ॥ ९ ॥ और स्वच्छंदतासे भी मैंने कभी पहले झूंठ नहीं कहा है ॥ १० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर वह ज्ञानी वहा रात्रिभर वसकर मृकंडजीसे आज्ञा को लेकर प्रिय देशको चलागया ॥ ११ ॥ तदनन्तर दुःखित मृकंडजी ने भी पुत्रको क्षीणआयुर्बल जान- कर पांचवर्षकी अवस्थावाले भी उसको यज्ञोपवीत से संयुत किया ॥ १२ ॥ व कहा कि हे पुत्र ! शास्त्रपाठ से संयुत जिस जिसको आगे देखना उसका सदैव तुमको

जोत्तम ॥ अजरश्चामरश्चैव तैर्भवेत्पुरुषः किल ॥ ८ ॥ षण्मासेनास्यबालस्य नूनंमृत्युर्भविष्यति ॥ एतस्मात्कारणाद्धास्यं मयाकारिद्विजोत्तम ॥ ९ ॥ अनृतंनोक्तपूर्वमस्वैरेष्वपिकदाचन ॥ १० ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वातुसज्ज्ञानी उषित्वातत्रशर्वरीम् ॥ मृकण्डेनाभ्यनुज्ञात इष्टदेशंजगामह ॥ ११ ॥ मृकण्डोपिसुतंज्ञात्वा ततःक्षीणायुपन्नृप ॥ पञ्चवार्षिकमप्यास्तंश्चकारोपनयान्वितम् ॥ १२ ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्नं यंयंपश्यसिचाग्रतः ॥ तस्याभिवादनंकार्यं त्वयापुत्रकनित्यशः ॥ १३ ॥ तच्चक्रेसब्रह्मचारी पितुर्वाक्यंविशेषतः ॥ बालंवृद्धंयुवानञ्च यंयंपश्यतिचक्षुषा ॥ १४ ॥ नमस्करोतितंसर्वं ब्राह्मणंविनयान्वितः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्याश्रमसमीपतः ॥ १५ ॥ सप्तर्षयःसमायातास्तीर्थयात्रापरायणाः ॥ अथतान्सत्वरङ्गत्वा वन्दयामासपार्थिव ॥ १६ ॥ बालःसविनयोपेतः सर्वांश्चैवयथाक्रमम् ॥ दीर्घायुर्भवतेत्युक्तः सबालस्तुष्टितत्परैः ॥ १७ ॥ प्रस्थिताश्चयथाभीष्टं देशंबालंविसर्ज्यतम् ॥ तेषांमध्येगिरानाम दिव्यज्ञान

प्रणाम करना चाहिये ॥ १३ ॥ उस ब्रह्मचारी बालक ने उस पिताके वचन को विशेषकर किया कि बाल, वृद्ध व ज्वान जिस जिसको यह दृष्टि से देखता था ॥ १४ ॥ उस सब ब्राह्मणको विनय से संयुत वह प्रणाम करता था इसके अनन्तर किसीसमय उसके आश्रम के समीप ॥ १५ ॥ तीर्थयात्रा में परायण सप्तर्षिलोग आये इसके अनन्तर हे राजन् ! उस विनयसंयुत बालकने शीघ्रही जाकर उन सबोंको क्रमसे प्रणाम किया और प्रसन्नता में तत्पर उन सप्तर्षियों ने उस बालकसे कहा कि दीर्घायु होवो ॥ १६ । १७ ॥ और उस बालक को बिदाकर सप्तर्षिलोग प्रियके अनुकूल देशको चले उन सप्तर्षियों के मध्य में दिव्यज्ञान से संयुत अंगिरानामक जो मुनि

थे ॥ १८ ॥ हे परंतप ! उन्होंने बालक को सूक्ष्म दृष्टिसे देखा इसके अनन्तर विस्मयसंयुत उन्होंने उन सब मुनियों से कुछ कहा ॥ १९ ॥ कि यह बालक दीर्घायु नहीं है और तुमलोगों से वह कहागया है बरन यह बालक पाचवें दिन मृत्युको प्राप्त होगा ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसविषय में हमलोगों का वचन असत्य योग्य नहीं है इससे जिसप्रकार यह दीर्घजीवी होवै वैसी नीति कीजावै ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! वे मुनि मिथ्या वचन को डरे और उससमय उसबालक को लेकर ब्रह्मलोक को गये ॥ २२ ॥ वहा चतुरानन जी (ब्रह्मा) को देखकर मुनीश्वरोंने प्रणाम किया उनके बाद उसबालक ने प्रणाम किया ॥ २३ ॥ और उन

समन्वितः ॥ १८ ॥ तेनावलोकितोबालः सूक्ष्मदृष्ट्यापरन्तप ॥ अथतानब्रवीत्सर्वान् मुनीन्किञ्चित्सविस्मयः ॥१९॥ दीर्घायुर्न्नहिबालोयं युष्माभिःसंप्रकीर्तितः ॥ गमिष्यतिकुमारोयं निधनंपञ्चमेदिने ॥ २० ॥ तत्रयुक्तंहिनोवाक्यमसत्यंद्विजसत्तमाः ॥ यथायंचिरंजीवीस्यात्तथानीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥ अथतेमुनयोभीता मिथ्यावाक्यस्यपार्थिव ॥ बालकंतंसमादाय ब्रह्मलोकंगतास्तदा ॥ २२ ॥ तत्रदृष्ट्वाचतुर्वक्त्रं नमश्चक्रुर्मुनीश्वराः ॥ तेषामनन्तरंतेन बालकेनाभिवादितः ॥ २३ ॥ दीर्घायुर्भवतेनापि ब्रह्मणोक्तःसबालकः ॥ ततःसप्तर्षयोहृष्टाः स्वचित्तेनृपसत्तम ॥ २४ ॥ सुखासीनान्सुविश्रान्तानप्येतान्मुनिपुङ्गवान् ॥ ब्रह्मापप्रच्छकिंकार्यं कुतोयूयमिहागताः ॥ २५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रममाणामहीतले ॥ अर्बुदंपर्वतंनाम तस्यतीर्थेषुवैगताः ॥ २६ ॥ अथागत्यद्रुतंदूराद् बालेनानेनवन्दिताः ॥ दीर्घायुर्भवसंदिष्टस्ततश्चायमनेकधा ॥ २७ ॥ पञ्चमेदिवसेस्यापि मृत्युर्देवभविष्यति ॥ यथावयंत्वयासार्द्धमसत्या

ब्रह्माने भी उसबालक से कहा कि दीर्घायु होवो तदनन्तर हे नृपोत्तम ! सप्तर्षिलोग अपने चित्तमें प्रसन्न हुये ॥ २४ ॥ और सुख से बैठे व सहँताये हुये इन मुनिश्रेष्ठों से ब्रह्माने पूंछा कि क्या कार्य है व तुमलोग किसकारण यहां आयेहो ॥ २५ ॥ ऋषिलोग बोले कि तीर्थयात्राके प्रसङ्ग से घूमतेहुये हमलोग पृथ्वी में जो अर्बुदनामक पर्वत है उसके तीर्थों में गये ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर दूरसे शीघ्रही आकर इस बालक ने हमलोगों को प्रणाम किया तदनन्तर हमलोगों ने इससे अनेक प्रकार से कहा कि दीर्घायु होवो ॥ २७ ॥ व हे देव ! इसकी पाचवें दिन मृत्यु होगी हे चतुर्मुख ! जिसप्रकार तुमसमेत हम असत्य न होवैं हे देव ! इसके लिये वैसाही

कुछ कियाजावै इसके अनन्तर प्रसन्नचित्त ब्रह्माने उस मुनिबालकको देखकर ॥ २८ । २९ ॥ कहा कि मेरी प्रसन्नता से यह बालक कल्पपर्यंत आयुर्बलवान् होगा तदनन्तर वे प्रसन्न मुनिलोग उसको लेकर ब्रह्माजी को प्रणामकर ब्रह्मलोक से घरको चले इसके अनन्तर वहा उसके पिता मुनिश्रेष्ठ मृकण्डजीने ॥ ३० । ३१ ॥ स्त्रीसमेत बहुत दुःखित होकर विलाप किया कि हे धर्मवत्सल, स्वभावही से करुण, हा पुत्र, पुत्र ! ॥ ३२ ॥ मुझसे न पूंछकर किसकारण दीर्घमार्ग में स्थित हुये और करनेयोग्य कार्यों को न करके किसकारण मृत्यु के वश में प्राप्तहुये हो ॥ ३३ ॥ हे पुत्र ! सो मैं तुम्हारे विना किसीप्रकार नहीं जिऊँगा हे नृपोत्तम ! इसभाति

नचतुर्मुख ॥ २८ ॥ भवामोस्यकृतेदेव तथाकिञ्चिद्विधीयताम् ॥ अथब्रह्माप्रहृष्टात्मा दृष्ट्वातंमुनिदारकम् ॥ २९ ॥ म त्प्रसादादयंबालो भावीकल्पायुरब्रवीत् ॥ ततस्तेमुनयोहृष्टास्तमादायगृहम्प्रति ॥ ३० ॥ प्रस्थिताब्रह्मलोकात्तु नमस्कृत्वाचतुर्मुखम् ॥ अथतस्यपितातत्र मृकण्डोमुनिसत्तमः ॥ ३१ ॥ ततोभार्यासमायुक्तो विललापसुदुःखितः ॥ हापुत्रपुत्रकरुणप्रकृत्याधर्मवत्सल ॥ ३२ ॥ अनामन्त्र्यचमांकस्माद्दीर्घपन्थानमाश्रितः ॥ अकृत्वापिक्रियाःकार्याः कथंमृत्युवशंगतः ॥ ३३ ॥ सोहंत्वयाविनापुत्र नजीवामिकथञ्चन ॥ एवंविलपतस्तस्य वहुधानृपसत्तम ॥ ३४ ॥ बालश्चाभ्यागतस्तत्र प्रदेशेपुरतःस्थितः ॥ यदासआययौबालः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३५ ॥ तन्दृष्ट्वासपितातस्य संप्रहृष्टोबभूवह ॥ पप्रच्छाङ्कंसमारोप्य चिरागमनकारणम् ॥ ३६ ॥ ततःसकथयामास सर्वंमुनिविचेष्टितम् ॥ दर्शनंब्रह्मलोकस्य पद्मयोनेर्वरंतथा ॥ ३७ ॥ बालक उवाच ॥ अजरश्चामरश्चाहं कृतोदेवेनशम्भुना ॥ तस्मादेवमदर्थेते व्येत्वसौमानसो

बहुतप्रकार से उसको विलाप करतेहुये ॥ ३४ ॥ उसस्थान में बालक आया व आगे स्थित हुआ जब वह बालक प्रसन्नचित्त से आया ॥ ३५ ॥ तब उसको देखकर उसका वह पिता बहुतप्रसन्न हुआ और गोदी में बिठाकर उसने बहुत देरमें आनेका कारण पूंछा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उस बालक ने सब मुनियों की कर्तव्यता को कहा व ब्रह्मलोक तथा पद्मयोनि के उत्तमदर्शन को कहा ॥ ३७ ॥ बालक बोला कि शिवदेवजी से मैं अजर व अमर कियागया उसीकारण मेरेलिये तुम्हारा यह

मानसीज्वर जाता रहे ॥ ३८ ॥ सो मैं उत्तम अर्बुदपर्वत पै सुन्दर आश्रमस्थान करके वैसेही चतुरानन ब्रह्माजी को आराधन करूंगा ॥ ३९ ॥ अमृत को टपकानेवाले पुत्रके उसवचन को सुनकर उन हर्षसंयुत मृकण्डजी ने बहुत अच्छा ऐसा उसबालक से कहा ॥ ४० ॥ और मार्कण्डजी ने भी शीघ्रही सुन्दर अर्बुदपर्वत पै जाकर ब्रह्मादेव को ध्यान करतेहुये उन्होंने बहुत विस्तारवाला तप किया ॥ ४१ ॥ हे राजन्! उनके पवित्र आश्रम में जो सावन महीने में विशेषकर पौर्णमासी तिथि में पितरों का तर्पण करता है ॥ ४२ ॥ उसको निस्सन्देह सब पितृमेध का फल होताहै और ऋषियों के योगसे जो वहां द्विजोत्तमों को तर्पण करता है ॥ ४३ ॥

ज्वरः ॥ ३८ ॥ सोहमाराधयिष्यामि तथैवचतुराननम् ॥ कृत्वाश्रमपदंरम्यमर्बुदेपर्वतोत्तमे ॥ ३९ ॥ अमृतस्त्रावितद्वाक्यं श्रुत्वापुत्रस्यसद्विजः ॥ मृकण्डोहर्षसंयुक्तो वाढमित्यब्रवीच्चतम् ॥ ४० ॥ मार्कण्डोपिद्रुतंगत्वा रम्यमर्बुदपर्वतम् ॥ तपस्तेपेसुविस्तीर्णं ध्यायन्देवंपितामहम् ॥ ४१ ॥ तस्याश्रमपदेपुण्ये श्रावणेमासिपार्थिव ॥ पौर्णमास्यांविशेषेण करोति पितृतर्पणम् ॥ ४२ ॥ पितृमेधफलंतस्य सकलंस्यादसंशयम् ॥ ऋषियोगेनयस्तत्र तर्पयेद्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मलोकेचिरंवासस्तस्यसंजायतेनृप ॥ यःस्नानंकुरुतेतत्र सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ४४ ॥ नाल्पमृत्युभयंतस्य कुलेकापिप्रजायते ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेर्बुदमाहात्म्येमार्कण्डेयोत्पत्तिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ लिङ्गंपापहरंपरम् ॥ उद्दालकेनमुनिना स्थापितंलोकविश्रुतम् ॥ १ ॥ नगपृष्ठेतत्रदृष्टे पूजितेचविशेषतः ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो गार्हस्थंप्राप्नुयान्नरः ॥ २ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकेमही

हे राजन्! उसका बहुत दिनतक ब्रह्मलोक में वास होताहै और भलीभांति श्रद्धासंयुत जो मनुष्य उसतीर्थ में स्नान करताहै ॥ ४४ ॥ उसके वंशमें भी कभी अल्पमृत्यु का डर नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांमार्कण्डेयोत्पत्तिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ❀ ॥

दो० । उद्दालक मुनिनाथ जिमि थाप्यो है शिवदेव । बैयालिस अध्याय में सोई वर्णितभेव ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर उद्दालकमुनिसे थापे हुये संसारमें प्रसिद्ध अन्य पापहारक लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ पर्वत के पृष्ठ पै उसके देखनेपर व विशेषकर पूजनेपर सब रोगों से छूटा हुआ मनुष्य गृहस्थाश्रम

को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और सब पापोंसे छूटा हुआ वह शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कान्देऽर्बुदखण्डेद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि सिद्धेश्वरलिंगको थाप्यो है सब सिद्ध । तैंतालिस अध्याय में सोई चरित प्रसिद्ध ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर पहले सिद्धों से थापे हुये सब पातकों को नाशनेवाले व सिद्धदायक लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ वहा निर्मल जल से सयुत उत्तम कुंड है उसमें भलीभाति नहाया हुआ मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाताहै ॥ २ ॥ हे राजन् ! जिस जिस कामनाको ध्यानकर मनुष्य उसमें नहाताहै उसको अवश्यकर पाताहै व प्राणान्त में उत्तम गतिको प्राप्त होता

यते ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदमाहात्म्यउद्दालकेश्वरमहिमवर्णनन्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ सिद्धलिङ्गंसुसिद्धिदम् ॥ सिद्धैस्तुस्थापितंपूर्वं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्रास्तिशोभनंकुण्डं सुनिर्मलजलान्वितम् ॥ तत्रस्नातोनरःसम्यङ्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ २ ॥ यंयंकाममभिध्याय तत्रस्नातिनरोनृप ॥ अवश्यंसमवाप्नोति निष्क्रमेचपराङ्गतिम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्येसिद्धेश्वरमहिमवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ हस्तिनांह्रदमुत्तमम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं दिग्गजैर्भावितात्मभिः ॥ १ ॥ भूभारधरणैश्चान्यैरैरावणमुखैर्नृप ॥ तत्रस्नातोनरःसम्यग् गजदानफलंलभेत् ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदतीर्थमाहात्म्येगजतीर्थप्रभाववर्णनन्नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरमहिमवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ⊛ ॥

दो० । दिशागजन जहँ तप कियो सो तीरथ गज नाम । चौवालिसवें में सोई कह्यो चरित अभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर हाथियों के उत्तमकुण्ड के समीप जावै जहां कि पुरातनसमय पृथ्वीका भार धरनेवाले शुद्ध चित्तवाले दिग्गजों व अन्य ऐरावत आदिक हाथियोंने तप कियाहै हे राजन् ! उसमें से भलीभाति नहायाहुआ मनुष्य गजदान के फलको पाताहै ॥ १ । २ ॥ इति श्रीस्कान्देऽर्बुदखण्डेचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ⊛ ॥

दो० । देवखात इमि तीर्थ जिमि तीरथ भयो उदार । पैंतालिसवें में सोई बरन्यो चरित सुखार ॥ पुलस्त्यजी बोले हे भूपते ! तदनन्तर अतिपवित्र व उत्तम देवखात तीर्थको जावै जो कि हे राजन् ! आपही सब देवताओं से खोदागया है ॥ १ ॥ हे राजन् ! कन्याराशिमें सूर्य प्राप्त होनेपर विशेषकर जो अमावस तिथिमें श्राद्ध करता है वह परमपद को पाताहै ॥ २ ॥ और वह दुर्गति को प्राप्त भी पितरोंको तारताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायादेवखातोत्पत्तिर्नामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ देवखातंततोगच्छेत सुपुण्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ यत्खातंविबुधैःसर्वैः स्वयमेवमहीपते ॥ १ ॥ तत्रयः कुरुतेश्राद्धममावस्यांविशेषतः ॥ कन्यागतेरवौराजन् सलभेत्परमंपदम् ॥ २ ॥ पितॄन्सतारयत्येव प्राप्तानपिसुदुर्गतिम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्रीदेवखातोत्पत्तिर्नामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोव्यासेश्वरंगच्छेद् व्यासेनस्थापितंहियत् ॥ तद्दृष्ट्वाजायतेमर्त्यो मेधावान्मतिमाञ्छुचिः ॥ १ ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव व्यासस्यवचनंयथा ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेव्यासतीर्थमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ सुपुण्यंगौतमाश्रमम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं गौतमेनमहात्मना ॥ १ ॥ पुरासीद्

दो० । जिमि व्यासेश्वर लिंगको थप्यो व्यास मुनिनाथ । छियालिसें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर व्यासेश्वरजी के समीप जावै जो लिंग कि व्यासजी से थापागया है उसको देखकर मनुष्य सातजन्मों के मध्य में बुद्धिमान् व मतिमान् और पवित्र होताहै जैसा कि व्यासजी का वचन है ॥ १ । २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाव्यासलिङ्गमाहात्म्यनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ❀ ॥

दो० । गौतममुनि को भयो जिमि आश्रम अतिसुखदाय । सैंतालिसवें में सोईकह्यो चारित्र सुहाय ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अतिपवित्र गौतम

जीके आश्रम को जावै जहां कि पुरातनसमय महात्मा गौतमजी ने तप किया है ॥ १ ॥ पुरातनसमय बड़े धर्मिष्ठ गौतमनामक मुनि हुये हैं उन्हों ने भक्तिसे देवदेव महेश्वरजी को आराधन किया है ॥ २ ॥ और आराधन करतेहुये गौतमजीकी भक्ति से बड़ाभारी उत्तम शैव लिंग पृथ्वीको फोड़कर उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ इसीसमय आकाशवाणी बोली कि भक्तिसे प्राप्त इस बड़ेभारी लिंगको तुम पूजो ॥ ४ ॥ व तुम्हारा कल्याण होवै और जो तुम्हारे मनमें वर्तमान होवै उस वरको मांगो गौतमजी बोले कि हे शम्भो,जगत्पते, देव ! इस आश्रम (स्थान) में ॥ ५ ॥ मेरे वचन से निस्सन्देह सदैव समीपता करना चाहिये शिवजी बोले कि तुम्हारे वचन से यहीं

गौतमोनाम मुनिःपरमधार्मिकः ॥ सभक्त्याराधयामास देवदेवंमहेश्वरम् ॥ २ ॥ भक्त्याराधयमानस्य निर्भिद्यधरणीतलम् ॥ समुत्तस्थौमहल्लिङ्गंपरंमाहेश्वरन्नृप ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी॥ पूजयैनंमहल्लिङ्गंत्वंभक्त्यासमुपस्थितम् ॥ ४ ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ गौतम उवाच ॥ अत्राश्रमपदेदेव त्वयाशम्भोजगत्पते ॥ ५ ॥ सदाकार्यंहिसान्निध्यं ममवाक्यादसंशयम् ॥ शिव उवाच ॥ अत्रैवममसान्निध्यं तववाक्याद्भविष्यति ॥ माघमासेचतुर्द्दश्यां योत्रमांवीक्षयिष्यति ॥ ६ ॥ कृष्णायांब्राह्मणश्रेष्ठ सयास्यतिपराङ्गतिम् ॥ एवमुक्त्वाततोवाणी विराममहीपते ॥ ७ ॥ यस्तंपश्यतिसद्भक्त्या ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ तत्रास्तिकुण्डमपरं पवित्रंजलपूरितम् ॥ ८ ॥ तत्रस्नातोनरस्सद्यः कुलन्तारयतेखिलम् ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं विशेषादिन्दुमंक्षये ॥ ९ ॥ गयाश्राद्धफलन्तेन सकलंलभतेनरः ॥ तत्रदानंप्रशंसन्ति तिलानांमुनिपुङ्गवाः ॥ १० ॥तिलसङ्ख्यानिवर्षाणि दानात्स्वर्गेवसेन्नृप ॥ अर्बुदेगौतमी

पर मेरी समीपता होगी और माघमहीने में कृष्णपक्षवाली चौदसि तिथिमें जो मनुष्य यहां मुझको देखैगा हे द्विजश्रेष्ठ ! वह उत्तम गतिको प्राप्तहोगा ऐसा कहकर तदनन्तर हे भूपते ! आकाशवाणी चुप होरही ॥ ६ । ७ ॥ जो मनुष्य उन शिवजी को उत्तमभक्ति से देखताहै वह ब्रह्मलोक को जाताहै और वहां जलसे पूरित अन्य पवित्र कुण्ड है ॥ ८ ॥ उसमें नहाया हुआ मनुष्य उसीक्षण सब वंशको तारता है और विशेषकर अमावस में जो वहां श्राद्ध करता है ॥ ९ ॥ उससे मनुष्य गयाश्राद्ध के सब फलको प्राप्त होताहै और वहां मुनिश्रेष्ठलोग तिलों के दानकी प्रशंसा करते हैं ॥ १० ॥ व हे राजन् ! तिलोंके दानसे मनुष्य तिलोंकी संख्याभर वर्षोंतक

स्वर्ग में बसता है और बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होनेपर अर्बुदपर्वत पै गौतमीयात्रा होती है ॥ ११ ॥ व सोमवार अमावस में जो गोदावरीनदी में फल होता है व साठ हज़ार वर्षतक गङ्गाजी के स्नानमें जो फल होता है ॥ १२ ॥ वह फल बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होनेपर एकवार गोदावरी के स्नानमें होता है ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगौतमाश्रममाहात्म्यंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । जिमि उत्तम तीरथ भयो कुलसंतारण नाम । अर्तालिसवें में सोई चरित कह्यो अभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि वहां अतिउत्तम कुलसंतारणतीर्थ को जावै

यात्रा सिंहस्थेचबृहस्पतौ ॥ ११ ॥ अमायांसोमवारेण यच्चगोदावरीफलम् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहने ॥ १२ ॥ सकृद्गोदावरीस्नाने सिंहस्थेचबृहस्पतौ ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेगौतमाश्रमोत्पत्तिर्नामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ कुलसन्तारणंगच्छेत्तत्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरःसम्यक् कुलंतारयतेखिलम् ॥ १ ॥ दशपूर्वान्भविष्यांश्च तथात्मानंनृपोत्तम ॥ उद्धरेच्छ्रद्धयायुक्तस्तत्रदानेनमानवः ॥ २ ॥ आसीदप्रस्तुतोनाम राजापूर्वंतुपापकृत ॥ नास्यदानंनचज्ञानं स्वाध्यायोनचसत्क्रिया ॥ ३ ॥ तस्मिञ्छासतिलोकानां नासीत्सौख्यंकदाचन ॥ परदाररुचिर्नित्यं महादण्डपरश्रमः ॥ ४ ॥ न्यायतोन्यायतोवापि करोतिधनसंग्रहम् ॥ नचार्जयतिलोकान्स निर्दोषान्पापकृत्तमः ॥ ५ ॥ ततोवार्धक्यमापन्नो दुष्टकर्मसमन्वितः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पितृभिःप्रतिबोधितः ॥ ६ ॥

जिसमें भलीभाति नहायाहुआ मनुष्य समस्त कुलको तारता है ॥ १ ॥ हे नृपोत्तम ! श्रद्धासे संयुत मनुष्य वहां दानसे दश पहलेवाले दश भविष्य और अपना का तारता है ॥ २ ॥ पुरातनसमय अप्रस्तुतनामक पापकारी राजा हुआहै इसके न दान न ज्ञान व वेदपाठ और न उत्तमकर्म था ॥ ३ ॥ उसके राज्य करनेपर कभी मनुष्योंको सुख नहीं हुआ वह सदैव पराई स्त्रीमें रुचिवाला मनुष्य बड़ेदण्डमें तत्पर था ॥ ४ ॥ और न्याय व अन्याय से भी धनको इकट्ठा करता था व बडा पापकारी वह मनुष्य दोषरहित लोकोंको नहीं संग्रह करता था ॥ ५ ॥ तदनन्तर दुष्टकर्म से संयुत वह वृद्धताको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर किसीसमय नरकवाले दुःखित पितरों ने सोतेहुये

राजाके समीप प्राप्त होकर उसको समझाया पितर बोले कि शुद्ध आचरणवाले हमलोग सदैव धर्ममें परायण थे ॥ ६।७ ॥ और दान,यज्ञ,व तपस्या करनेवाले और अपनी स्त्रियों में तत्पर थे हे कुलांगार ! अपने कर्मोंसे हमलोग यथायोग्य स्वर्गको प्राप्तहुये ॥ ८ ॥ और तुझ कुपुत्र को प्राप्त होकर हमलोग नरक को प्राप्तहुये इस कारण कुछ पुण्यको इकट्ठा करके हम सबोंको उधारिये ॥९॥ हे पापात्मन् ! तुम्हारे कर्मोंसे हमलोग नरकमें आश्रित हुयेहैं और दश भविष्य पितर नरक को जावेंगे और वैसेही आप नरकको प्राप्त होवेंगे ॥ १० ॥ ऐसा कहकर दुःखित होतेहुये उसके वे सब पितर फिर नरकको प्राप्त हुये और वह राजाभी जगपडा ॥ ११ ॥ तदन-

नृपंसुप्तंसमासाद्य नारकेयैःसुदुःखितैः॥ पितर ऊचुः॥ वयंशुद्धसमाचारा नित्यंधर्मपरायणाः॥ ७॥ दानयज्ञतपःशीलाः स्वदारनिरतास्तथा॥ स्वकर्मभिःकुलाङ्गार दिवंप्राप्तायथार्हतः॥ ८॥ कुपुत्रंत्वांसमासाद्य नरकंसमुपस्थितः॥ तस्मा दुद्धरनःसर्वान् कृत्वाकिञ्चिच्छुभार्जनम्॥ ९॥ कर्मभिस्तवपापात्मन् वयंनरकमाश्रिताः॥ नरकंदशयास्यन्ति भवि ष्याश्चतथाभवान्॥ १०॥ एवमुक्त्वातुतेसर्वे पितरस्तस्यदुःखिताः॥ प्राप्ताश्चनरकंभूयः प्रबुद्धःसोपिपार्थिव॥ ११॥ ततोदुःखमनुप्राप्तः पितृवाक्यानिसंस्मरन्॥ रुरोदप्रातरुत्थाय तंभार्याप्रत्यभाषत॥ १२॥ इन्दुमत्युवाच॥ किमर्थं राजशार्दूल त्वंरोदिषिमहास्वनम्॥ कथंतेकुशलंराज्ये शरीरेवापुरेथवा॥ १३॥ राजोवाच॥ मयादृष्टोद्यस्वप्नान्ते पि ताह्यथपितामहः॥ तथापिदुःखितान्देवि ताभ्यामप्यग्रजान्पितॄन्॥ १४॥ अवदंश्चैवतेसर्वैस्तवकर्मभिरीदृशैः॥ दा रुणंनरकंप्राप्ता अधर्मादिविचेष्टितैः॥ १५॥ अथान्येदशयास्यन्ति भविष्याश्चभवानपि॥ तस्मात्कृत्वाशुभंकर्म

न्तर पितरों के वचनों को स्मरण करता हुआ वह राजा दुःखको प्राप्तहुआ और प्रातःकाल उठकर रोनेलगा उससे स्त्री बोली ॥ १२ ॥ इन्दुमती बोली कि हे राज-शार्दूल ! तुम क्यों बड़े शब्द से रोतेहो और तुम्हारे राज्य, शरीर व नगरमें कुशल है ॥ १३ ॥ राजा बोले कि आज मैंने स्वप्नके अन्त में पिता व पितामह को देखा है वैसेही हे देवि ! उन दोनोंसे भी पहले उपजेहुये दुःखित पितरों को देखाहै ॥ १४॥ और उन्होंने कहा कि तुम्हारे ऐसे अधर्मादि चेष्टित समस्त कर्मों से हमलोग नरक

में प्राप्तहुये हैं ॥ १५ ॥ व दश अन्य भविष्य पितर जावेंगे व आपभी नरक को प्राप्तहोवेंगे इसलिये उत्तमकर्म करके हमलोगों को दुर्गति से उद्धार कीजिये ॥ १६ ॥ हे वरवर्णिनि ! पितरोंमे ऐसा कहाहुआ मैं जगउठा उसीकारण उसका वचन हृदय में स्मरण करताहुआ मैं दुःखको प्राप्तहुआ ॥ १७ ॥ इन्दुमती बोली कि हे महाराज ! पितामहों ने तुमसे जो कहा है यह सत्य है पुरातनसमय तुमसे कियेहुये पुण्यको मैं नहीं स्मरण करती हूं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जैसे उत्तमपुत्र को प्राप्त होकर पितर तरते हैं वैसेही कुपुत्र से मनुष्य नरक को प्राप्त होतेहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥१९॥ सो तुम धर्मशास्त्र में चतुर द्विजेन्द्रों को बुलाकर उनसे पूंछकर अपना समेत पितरों

दुर्गतेश्चोद्धरस्वनः ॥ १६ ॥ एवमुक्तःप्रबुद्धोहं पितृभिर्वरवर्णिनि ॥ तेनाहंदुःखमापन्नस्तद्वाक्यंहृदिसंस्मरन् ॥ १७ ॥ इन्दुमत्युवाच ॥ सत्यमेतन्महाराज यदुक्तोसिपितामहैः ॥ नत्वयासुकृतंकर्म संस्मरेहंकृतम्पुरा ॥ १८ ॥ यथासुपुत्रमासाद्य तरन्तिपितरोनृप ॥ कुपुत्रेणतथायान्ति नरकंनात्रसंशयः ॥ १९ ॥ सत्वमाहूयविप्रेन्द्रान् धर्मशास्त्रविचक्षणान् ॥ पृष्ट्वातानकुरुयच्छ्रेयः पितृणामात्मनासह ॥ २० ॥ आनयामासराजासौ ततोविप्राननेकशः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञान् धर्मशास्त्रविचक्षणान् ॥ २१ ॥ उवाचविनयोपेतस्ततस्तान्भार्ययासह ॥२२॥ राजोवाच ॥ कर्मणाकेनपितरो निरयस्थाद्विजोत्तमाः ॥ स्वर्गंयान्तिसुपुत्रेण तारिताःप्रोच्यतांस्फुटम् ॥ २३ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पितृमेधेनराजेन्द्र कृतेनविधिपूर्वकम् ॥ निरयस्थादिवंयान्ति यद्यपिस्युःसुपापिनः ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥ दीक्षयन्तुद्विजाःसर्वे तदर्थंमान्धृतव्रतम् ॥ यत्किञ्चिदत्रकर्त्तव्यं प्रोच्यतामखिलंहितत ॥ २५ ॥ तथोक्तास्तेनृपेन्द्रेण ब्राह्मणाःसत्यवादिनः ॥ समग्राःपार्थिवंप्रोचुर्यदुक्तं

का जो कल्याण होवै उसको कीजिये ॥ २० ॥ तदनन्तर इस राजाने वेद वेदांगोंके तत्त्वको जाननेवाले व धर्मशास्त्र में चतुर अनेक ब्राह्मणों को लिवा मँगाया ॥ २१ ॥ तदनन्तर स्त्रीसमेत विनयसंयुत उस राजाने कहा ॥ २२ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! नरक में टिकेहुये पितर किमकर्म से सुपुत्रसे तारित होकर स्वर्गको जाते हैं इसको प्रकट कहिये ॥ २३॥ ब्राह्मण बोले कि हे नृपेन्द्र ! विधिपूर्वक पितृमेध करने से यद्यपि बड़ेपापी होवैं तथापि नरक में स्थित पितर स्वर्गको जातेहैं ॥ २४ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो ! आप सबलोग व्रतको धारण कियेहुये मुझको दीक्षा दीजिये और इसविषय में जो कुछ करनेयोग्य हो उस सबको कहिये ॥ २५ ॥ नृपेन्द्र

से वैसा कहेहुये सब सत्यवादी ब्राह्मणों ने जो यज्ञकर्म में कहागया है उसको राजासे कहा ॥ २६ ॥ कि हे नृपश्रेष्ठ ! तुमको दीक्षा ग्रहण करना चाहिये और शरीर की शुद्धिके लिये पहले पुरश्चरण करके तदनन्तर दीक्षा कल्याणकारिणी होती है ॥ २७ ॥ हे राजन्! सो तुम शिशुतासे लगाकर पाप आचरण करते हो जिसलिये पातक असंख्य है उसकारण तीर्थयात्रा कीजिये ॥२८॥ हे नृपोत्तम ! जब तुम प्रायश्चित्तसे सब तीर्थोंसे अभिषिक्त होगे तदनन्तर यज्ञके योग्य होगे अन्यथा न होगे ॥२९॥ पृथ्वीमें जो प्रभासादिक तीर्थ हैं उन सबोंमें जाना चाहिये और सावधान होते हुये उन सबोंमें स्नान करो ॥ ३० ॥ अतिउत्तम दानको देतेहुये तुम मनसे कठिन तीर्थों

यज्ञकर्माणि ॥ २६ ॥ दीक्षाग्राह्यान्नृपश्रेष्ठ पुरश्चरणमादितः ॥ कृत्वाकायविशुद्ध्यर्थं ततःश्रेयस्करीभवेत् ॥ २७ ॥ सत्वंपापसमाचारो बाल्यात्प्रभृतिपार्थिव ॥ असंख्यंपातकंतस्मात्तीर्थयात्रांसमाचर ॥ २८ ॥ सर्वतीर्थाभिषिक्तस्त्वं यदामिनृपसत्तम ॥ प्रायश्चित्तेनयोग्योमि ततोयज्ञस्यनान्यथा ॥ २९ ॥ प्रभासादीनितीर्थानि यानिसन्तिधरातले ॥ गन्तव्यंतेषुसर्वेषु स्नानंकुरुसमाहितः ॥ ३० ॥ मनसागच्छदुर्गाणि ददद्दानमनुत्तमम् ॥ नतदस्त्यशुभंकिञ्चिदपिब्रह्मवधोद्भवम् ॥ ३१ ॥ यन्नयातिमहाराजतीर्थस्नानान्नृणांभुवि ॥ ३२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ विप्राणांवचनंश्रुत्वा सराजाश्रद्धयान्वितः ॥ तीर्थयात्रापरोभूत्वा परिबभ्राममेदिनीम् ॥ ३३ ॥ नियतोनियताहारो दददानानिभूरिशः ॥ राज्येपुत्रंप्रतिष्ठाप्य वसुंसत्यपराक्रमम् ॥ ३४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तीर्थयात्रानुषङ्गतः ॥ कुलसन्तारणंप्राप्त अर्बुदेनिर्मलोदकम् ॥३५॥ सस्नानमकरोत्तत्र श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ स्नातमात्रस्यतस्याथ तस्मिन्नेवजलाशये ॥ ३६ ॥ विमुक्ताःपितरो

को जावो क्योंकि ब्रह्मघात से उपजाहुआ वह कोई भी पाप नहीं है ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! पृथ्वीमें मनुष्यों का जो पापतीर्थों के स्नान से न जावै ॥ ३२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ब्राह्मणोंकेवचन को सुनकर श्रद्धासंयुत वह राजा तीर्थयात्रामें परायण होकर पृथ्वीमें घूमताभया ॥ ३३ ॥ सत्य पराक्रमवाले वसुपुत्र को राज्य पै बिठाकर बहुत से दानोंको देताहुआ नियत व नियतभोजी वह राजा पृथ्वी में घूमताभया ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर वह किसीसमय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे अर्बुदपर्वत पै निर्मलजलवाले कुल सतारणतीर्थ को प्राप्तहुआ ॥ ३५ ॥ और श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके उसने उस तीर्थमें स्नान किया और उसी जलाशय में नहायेहुये उस राजाके ॥ ३६ ॥

पितर प्रसन्न होकर भयङ्कर नरकसे छूटगये तदनन्तर दिव्य विमान व दिव्यमालाओं तथा वसनों से संयुत पितर ॥ ३७ ॥ उससे बोले कि हे पुत्र ! इससमय तुम से हम सब तारे गये व इसतीर्थ के प्रभाव से दश भविष्य पितर तरिगये ॥ ३८ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ ! इसतीर्थ में नहाकर जलके तर्पण से आत्मा भी तारागया हे पुत्र ! जिसलिये तुमने इसतीर्थमें कुलको तारा उसकारण ॥ ३९ ॥ यह तीर्थ कुलसंतारणनामक होगा इसलिये हे नृपेन्द्र ! इसशरीर से तुम भी हमसबोंसमेत इसतीर्थ के प्रभाव से स्वर्गको आइये ॥ ४० । ४१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उससमय ऐसा कहाहुआ वह दिव्य कातिसे संयुत शरीरवाला राजा विमान पै चढ़कर उन पितरों

रौद्रान् नरकात्सुप्रहर्षिताः ॥ ततोदिव्यविमानाश्च दिव्यमाल्याम्बरान्विताः ॥ ३७ ॥ तमूचुस्तारिताःसर्वे वयंपुत्रत्वयाधुना ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण भविष्याश्चतथादश ॥३८॥ आत्माचपार्थिवश्रेष्ठ स्नात्वात्रजलतर्पणात् ॥ यस्मात्कुलंत्वयापुत्र तीर्थेस्मिंस्तारितंततः ॥ ३९ ॥ कुलसन्तारणंनाम तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र सहास्माभिर्दिवम्प्रति ॥ ४० ॥ आगच्छानेनदेहेन तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ४१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तस्सराजेन्द्रो दिव्यकान्तिवपुस्तदा ॥ तंविमानमथारुह्य गतःस्वर्गंचतैःसह ॥ ४२ ॥ एषप्रभावोराजर्षे कुलसन्तारणस्यच ॥ मयातेवर्णितःसम्यग् भूयःकिंपरिपृच्छसि ॥ ४३ ॥ ययातिरुवाच ॥ सकःप्रभावोराजर्षिस्तथापापसमन्वितः ॥ स्वदेहेनगतःस्वर्गमेतन्मेकौतुकंमहत् ॥ ४४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एकार्गलेव्यतीपाते समकालेनृपोत्तमः ॥ सस्नातोयेनभूपाल तन्महच्छ्रेयसेभवत् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकुलसन्तारणमाहात्म्यंनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ * ॥

समेत स्वर्गको चलागया ॥ ४२ ॥ हे राजर्षे ! कुलसंतारण का यह प्रभाव मैंने भलीभांति तुमसे वर्णन किया और फिर क्या पूंछते हो ॥ ४३ ॥ ययातिजी बोले कि वह कौन प्रभाव है कि जिससे वैसा पापसंयुत राजर्षि अपने शरीर से स्वर्गको चलागया यह मुझको बड़ाभारी कौतुक है ॥ ४४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे भूपाल ! एकार्गलयोग व व्यतीपातयोगमें और समानसमय याने विषुवायन में जिससे उसराजाने उसमें स्नान किया उसीकारण बड़े कल्याण के लिये हुआहै ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुलसंतारणमाहात्म्यं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ * ॥

दो॰। अतिउत्तम तीरथ कियो जामदग्न्य जिमि राम। उंचसवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर ऋषियों से सेवित व पवित्र रामतीर्थ को जावै उसमें नहायेहुये मनुष्य का पाप नाश होताहै ॥ १ ॥ और प्रलयपर्यन्त पितरों की बड़ी प्रसन्नता है पुरातनसमय सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भृगुवंशी परशुरामजी हुयेहैं ॥ २ ॥ शत्रुवोंका नाश चाहनेवाले उन्होंने पुरातनसमय तप किया है तदनन्तर शिवजीने पाशुपतनामक अस्त्र उन परशुरामको दियाहै ॥ ३ ॥ जिसके स्मरणसे भी शत्रुवों का नाश होताहै और वृषभध्वज शिवजी ने हँसकर वचन कहा ॥ ४ ॥ कि हे महाबाहो, जामदग्न्य ! मेरे उत्तम वचन को सुनिये कि इस अस्त्र

पुलस्त्य उवाच ॥ रामतीर्थंततोगच्छेत् पुण्यंऋषिनिषेवितम् ॥ तत्रस्नातस्यमर्त्यस्य जायतेपापसंक्षयः ॥ १ ॥ पितृणांचपरातुष्टिर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ पुरासीद्भार्गवोरामः सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ २ ॥ तेनपूर्वंतपस्तप्तं शत्रूणामिच्छताक्षयम् ॥ ततःपाशुपतंनाम तस्यास्त्रंपरमंददौ ॥ ३ ॥ स्मरणेनापि शत्रूणां यस्यसंजायतेक्षयः ॥ अब्रवीद्वचनंचापि प्रहस्यवृषभध्वजः ॥ ४ ॥ जामदग्न्यमहाबाहो शृणुमेपरमंवचः ॥ अस्त्रेणानेनयुक्तस्त्वमजेयःसर्वदेहिनाम् ॥ ५ ॥ भविष्यसिनसन्देहो मत्प्रसादाद्भृगूद्वह ॥ एतज्जलाशयंपुण्यं त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ६ ॥ रामतीर्थमितिख्यातं मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ यत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति पौर्णमास्यांसमाहिताः ॥ ७ ॥ संप्राप्तेकार्त्तिकेमासि कृत्तिकायोगसंयुते ॥ पितृमेधफलंतेषामशेषंचभविष्यति ॥ ८ ॥ तथाशत्रुक्षयोराजन् वासःस्वर्गेपिचाक्षयः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वामहादेवस्ततश्चादर्शनंगतः ॥ ९ ॥ रामोपिसूदयञ्छत्रून् पितृदुःखेनदुःखितः ॥ त्रिःसप्ततर्पयामास पितृंस्तत्रप्रहर्षितः ॥ १० ॥

से संयुत तुम सब प्राणियोंके न जीतनेयोग्य ॥ ५ ॥ होवोगे इसमें सन्देह नहीं है व हे भृगूद्वह ! मेरी प्रसन्नता से यह जलाशय चराचरसमेत त्रिलोकमें पवित्र होगा ॥ ६ ॥ और मेरे प्रसादसे यह रामतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा और कातिक महीना प्राप्त होनेपर कृत्तिकानक्षत्रसे संयुत दिनमें पौर्णमासी तिथिमें सावधान होतेहुये जो मनुष्य यहां श्राद्ध करैंगे उनको सब पितृमेधका फल होगा ॥ ७ । ८ ॥ व हे राजन् ! शत्रुवोंका क्षय व स्वर्गमें अक्षय निवास होगा पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर तदनन्तर महादेवजी अन्तर्द्धान होगये ॥ ९ ॥ और पिताके दुःखसे दुःखित परशुरामजी ने शत्रुवोंको नाश करतेहुये वहां प्रसन्न होकर इक्कीस पुश्तवाले पितरोंका तर्पण किया ॥ १० ॥

हे मनुजाधिप ! जमदग्निजी के मरनेपर माताके अङ्गमें शस्त्रों से उपजेहुये इक्कीस घावोंको देखकर उन महात्मा परशुरामजी ने ब्राह्मणों का समाज प्राप्त होनेपर प्रतिज्ञा किया कि जिसलिये युद्ध न करतेहुये मेरे तपस्वी व ब्राह्मण पिताको क्षत्रियों ने मारडाला उसकारण इक्कीसबार पृथ्वीको क्षत्रियों से हीन करके पिताको जल दूंगा ॥ ११।१२।१३ ॥ हे नृप ! उन परशुरामजी का वह सब तीर्थके माहात्म्य से होगया इसलिये सब यत्नसे वहां श्राद्ध करै ॥ १४ ॥ और जो शत्रुका नाश चाहै वह क्षत्रिय विशेषकर वहां श्राद्धकरै ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायारामतीर्थमाहात्म्यनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

जमदग्नौमृतेतेन प्रतिज्ञातंमहात्मना ॥ दृष्ट्वामातुःक्षतान्यङ्गे त्रिःसप्तमनुजाधिप ॥ ११ ॥ शस्त्रजातानिविप्राणां समाजेसमुपस्थिते ॥ पितामेतिहतोयस्मात् क्षत्रियैस्तापसोद्विजः ॥ १२ ॥ अयुध्यमानएवाथ तस्मात्कृत्वात्रिसप्तवै ॥ क्षत्रहीनामहंपृथ्वीं प्रदास्येसलिलंपितुः ॥ १३ ॥ तत्सर्वंतस्यसंजातं तीर्थमाहात्म्यतोनृप ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं तत्रसमाचरेत् ॥ १४ ॥ क्षत्रियश्चविशेषेण यइच्छेच्छत्रुसंक्षयम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदमाहात्म्येरामतीर्थ माहात्म्यंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ कोटितीर्थंततोगच्छेत्सर्वपातकनाशनम् ॥ तीर्थानांयत्रसंजातः कोटिःपार्थिवहेलया ॥ १ ॥ यदा सीत्कलिकालस्तु रौद्रोराजन्महीतले ॥ म्लेच्छीभूतेजनेसर्वे तत्स्पर्शात्तीर्थविप्लवे ॥ २ ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीच तीर्थानांभूमिवासिनाम् ॥ तेषांकोटेःकृतोवासः पर्वतेऽर्बुदसंज्ञिते ॥ ३ ॥ पुष्करेचतथाकोटेः कुरुक्षेत्रेचपार्थिव ॥ वाराणस्या

दो० । गे अर्बुद पर्वतहिपर तीर्थश्राद्ध त्रैकोटि। पञ्चासवें अध्याय में सोइ चरित सुखमोटि ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! तदनन्तर समस्तपातकों के नाशनेवाले कोटितीर्थ को जावै जहां कि हेलासे करोड़ तीर्थ हुये हैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! जब पृथ्वीमें भयङ्कर कलिकाल हुआ तब सब मनुष्यों के म्लेच्छ होजानेपर और उन म्लेच्छों के स्पर्शसे तीर्थका विप्लव (गड़बड़) होनेपर ॥ २ ॥ जो पृथ्वीमें बसनेवाले साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ थे उनमें से एककोटिने अर्बुदनामक पहाड़ पै निवास किया ॥ ३ ॥ व एक करोड़ने पुष्करमें निवास किया और हे राजन् ! एक करोड़ने कुरुक्षेत्रमें निवास किया और अर्द्धकरोड़ तीर्थोंने काशीमें निवास किया तदनन्तर इन्द्रसमेत

देवताओं ने निवास किया ॥४॥ व हे राजन् ! इन्द्रसमेत सब देवता इनतीर्थोंकी रक्षा करते हैं और जब जब सबओर से तीर्थ म्लेच्छों के स्पर्शभे भयसे विकल होते थे तब तब ॥ ५ ॥ तीर्थ शीघ्रही इन उक्त स्थानों में स्थित होते थे इसप्रकार वहां सब पापों को हरनेवाले साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ पृथ्वीमें हुये इसलिये सब यत्नसे वहां स्नान करै ॥ ६।७ ॥ व विशेषकर भादौं महीने में कृष्णपक्ष की तेरसि में वहां सब स्नानादिक और जो जप होमादिक होताहै ॥८॥ हे राजन् ! वह सब उसके प्रसाद से कोटिगुना होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकोटितीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

मर्धकोटेस्ततोदेवैःसवासवैः ॥ ४ ॥ राजन्नेतानिरक्षन्ति सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ यदायदाभयार्तानि म्लेच्छस्पर्शात्समन्ततः ॥ ५ ॥ स्थानेष्वेतेषुतिष्ठन्ति तीर्थान्युक्तेपुसत्वरम् ॥ कोटितीर्थानित्रीण्येवं तत्रजातानिभूतले ॥ ६ ॥ अर्धकोटिसमेतानि सर्वपापहराणिच ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षेत्रयोदश्यां नभस्येचविशेषतः ॥ तत्रस्नानादिकंसर्वं जपहोमादिकंचयत् ॥ ८ ॥ सर्वंकोटिगुणंराजंस्तत्प्रसादादसंशयम् ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्येकोटितीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ चन्द्रभेदमनुत्तमम् ॥ तीर्थंपापहरंनृणां निशानाथेननिर्मितम् ॥ १ ॥ प्रतिज्ञातंयदाराजन् ग्रहणंचन्द्रसूर्ययोः ॥ राहुणाकृतवैरेण छिन्नेशिरसिविष्णुना ॥ २ ॥ तदाभयान्वितश्चन्द्रो मत्वादैत्यंदुरासदम् ॥ पीयूषभक्षणाज्जातं ततश्चार्बुदमभ्यगात् ॥ ३ ॥ तत्रभित्त्वागिरेःशृङ्गं कृत्वाविवरमुत्तमम् ॥ प्रविष्टस्तस्यमध्येतु

दो० । चन्द्रभेदतीरथ कियो यथा निशाके नाथ । इक्यावन अध्याय में सोइ सुहावन गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर चन्द्रमा से निर्मित मनुष्यों के पापोंको नाशनेवाले अतिउत्तम चन्द्रभेदनामक तीर्थको जावै ॥ १ ॥ हे राजन् ! जब विष्णुजी से मस्तक कटनेपर वैर कियेहुये राहुने चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणकी प्रतिज्ञा किया ॥२॥ तब अमृतके पीनेसे राहुदैत्य को दुरासद (उग्र) हुये मानकर तदनन्तर भयसे संयुत चन्द्रमा अर्बुदपर्वत को आया ॥ ३ ॥ और वहां

पर्वतके शिखर को तोड़कर उत्तम बिल करके उसके मध्यमें पैठेहुये चन्द्रमा ने बहुतकठिन तप किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर बहुतसमय के बाद महादेवजी उसके ऊपर प्रसन्न हुये व बोले कि तुम्हारा कल्याण होवै और जो तुम्हारे मनमें स्थितहो उसवरदानको मांगो ॥ ५ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! राहुने मेरे ग्रहणकी प्रतिज्ञाकी है व हे ईशान ! वह स्वभावही से सिंहिकापुत्र राहु बलवान् था ॥ ६ ॥ और इससमय हे सुरश्रेष्ठ ! उसने अमृतभक्षण किया है उसीकारण ग्रहोंके मध्यमें धारण कियाहुआ भी यह कठिन है ॥ ७ ॥ हे देव ! पहिले हारेहुये देवताओंसे अमृत पीनेपर देवताओं का रूप करके यह दानव आगया ॥ ८ ॥ और अमृत पियागया उस

तपस्तेपेसुदुश्चरम् ॥ ४ ॥ ततःकालेनमहता तुष्टस्तस्यमहेश्वरः ॥ अब्रवीद्वृणुभद्रन्ते वरंयत्तेमनःस्थितम् ॥ ५ ॥ चन्द्र उवाच ॥ प्रतिज्ञातंसुरश्रेष्ठ राहुणाग्रहणंमम ॥ बलवान्राहुरीशान प्रकृत्यासिंहिकासुतः ॥ ६ ॥ साम्प्रतंभक्षितंतेन पीयूषंसुरसत्तम ॥ ग्रहमध्येधृतश्चापि तेनैवासौदुरासदः ॥ ७ ॥ पीयमानेमृतेदेव देवैःपूर्वंपराजितैः ॥ दैवतंरूपमास्थाय दानवोसौसमागतः ॥ ८ ॥ अपिपीतंशरीरार्धन्तेनास्यमृत्युवर्जितम् ॥ सामृतंचाक्षयंजातं शिरोदेवभयप्रदम् ॥ ९ ॥ ततोदेवैःकृतंसाम ग्रहमध्येचतिष्ठति ॥ प्रतिज्ञातेग्रहेस्माकं ततोमेभयमाविशत् ॥ १० ॥ भयात्तस्यसुरश्रेष्ठ भित्त्वाशृङ्गं गिरेरिदम् ॥ कृतंश्वभ्रमगाधंच तपोर्थंसुरसत्तम ॥ ११ ॥ तस्मादत्रप्रसादंमे कुरुकामनिषूदन ॥ १२ ॥ भगवानुवाच ॥ अवध्यःसर्वदेवानामजेयःसमहाबलः ॥ करिष्यतिग्रहंनूनं राहुःकोपपरायणः ॥ १३ ॥ परंतवनिशानाथ करिष्येहंप्रति

कारण इसका आधा शरीर मृत्युसे रहित होगया व हे देव ! अमृतसमेत अक्षयमस्तक भयदायक हुआ ॥ ९ ॥ तदनन्तर देवताओं ने समझाया व ग्रहोंके मध्य में वह स्थित हुआ तदनन्तर मेरा ग्रहण प्रतिज्ञा करनेपर मेरे भय प्रवेश हुआ ॥ १० ॥ व हे सुरश्रेष्ठ ! उसके भयसे पर्वत के इसशिखर को फोड़कर हे सुरोत्तम ! तपस्या के लिये गहरा गढ़ा किया ॥ ११ ॥ इसकारण हे कामनिषूदन ! इसविषयमें मेरे ऊपर प्रसन्नता करो ॥ १२ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि वह बड़ा बलवान् राहु सब देवताओं के अवध्य व अजेय है और क्रोध में तत्पर राहु निश्चयकर ग्रहण करैगा ॥ १३ ॥ परन्तु हे निशानाथ ! मैं तुम्हारी प्रतिक्रिया (यत्न) करूंगा कि

तुम्हारे ग्रहणके, प्राप्त होनेपर स्नान दानादिक कर्मों को ॥ १४ ॥ भलीभांति श्रद्धासंयुत जो मनुष्य करैंगे उनसे इसप्रकार तुमको थोड़ाभी संताप न होगा ॥ १५ ॥ और तुम्हारे ग्रहण होने पर मेरे वचन से उनका कियाहुआ कर्मभी अक्षय होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ व तपस्या के लिये जिसकारण पर्वत का यह शिखर तुमसे तोड़ागया उसकारण संसारमें चन्द्रोद्भेद ऐसा तीर्थ प्रसिद्ध होगा ॥ १७ ॥ और तुम्हारा ग्रहण प्राप्त होनेपर जो मनुष्य इसतीर्थ में स्नान करैगा उसका इससंसार में फिर जन्म न होगा ॥ १८ ॥ तदनन्तर बहुत समय के बाद प्रसन्न होते हुये शिवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण होवै वरदान मांगिये और किसलिये

क्रियाम् ॥ ग्रहणेतवसंप्राप्ते स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥१४॥ करिष्यन्तिचयेलोके सम्यक्छ्रद्धासमन्विताः ॥ ताभिस्त वनसन्तापः स्वल्पोप्येवंभविष्यति ॥ १५ ॥ अक्षयंचकृतंतेषामपिकर्मभविष्यति ॥ ग्रहणेतवसंजाते ममवाक्यादसंश यम् ॥ १६ ॥ एतद्भिन्नंत्वयायस्मात् तपोर्थंशिखरंगिरेः ॥ चन्द्रोद्भेदमितिख्यातं तीर्थंलोकेभविष्यति ॥ १७ ॥ ग्रहणेत वसंप्राप्ते योत्रस्नानंकरिष्यति ॥ नतस्यपुनरेवात्र जन्मलोकेभविष्यति ॥ १८ ॥ ततःकालेनमहता परितुष्टःशिवोब्रवी त् ॥ वरंवरयभद्रन्ते किमर्थंक्रियतेतपः ॥ १९ ॥ योवासोमदिनेस्नानं दर्शनंतत्रसादरात् ॥ तवलोकेध्रुवंवासस्तस्यच न्द्रभविष्यति ॥ २० ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चान्तर्दधेहरः ॥ चन्द्रोपिप्रययौहृष्टः स्वस्थानंनृपसत्तम ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्येचन्द्रोद्भेदतीर्थंनामैकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ ईशानीशिखरंमहत् ॥ यत्रगौर्यातपस्तप्तं सुपुण्यंलोकविश्रुतम् ॥ १ ॥ यस्य

तपस्या कीजाती है ॥ १९ ॥ हे चन्द्र ! जो मनुष्य सोमवार दिनमें वहां आदरसमेत स्नान व दर्शन करताहै उसका निश्चयकर तुम्हारे लोकमें निवास होगा ॥ २० ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर वे भगवान् शिवजी अन्तर्द्धान होगये व हे नृपोत्तम ! प्रसन्न होकर चन्द्रमा भी अपने स्थानको चलागया ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदख ण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचन्द्रोद्भेदतीर्थमाहात्म्यंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा भवानीशिखर पै पार्वती तप कीन । बावनवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर संसारमें प्रसिद्ध व बहुत

पवित्र बड़े भारी गौरीशिखर को जावै जहा कि पार्वतीजीने तप किया है ॥ १ ॥ जिसके भलीभांति दर्शन से भी मनुष्य पाप से छूट जाताहै और सात जन्मों के मध्य में भी सौभाग्य को पाता है ॥ २ ॥ ययातिजी बोले कि हे मुनीश्वर ! वहां पार्वतीजीने किससमय व किसलिये तपस्या किया है यह बडा कौतुक है तुम इसको कहने के योग्य हो ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! संसार में प्रसिद्ध अद्भुत दिव्य कथा को सुनिये कि जिसके सुननेहीसे मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ ४ ॥ पुरातनसमय पार्वतीजी में आसक्त (रति में युक्त) महादेवजीको जानकर डरसंयुत इन्द्रसमेत सब देवताओंने एकान्त में बैठकर सलाह किया ॥ ५ ॥

सन्दर्शनेनापि नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ लभतेचाथसौभाग्यं सप्तजन्मान्तराणिच ॥ २ ॥ ययातिरुवाच ॥ कस्मिन्काले तपस्तप्तं देव्यातत्रमुनीश्वर ॥ किमर्थंचमहत्त्वेतत् कौतुकंवक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्या मद्भुतांलोकविश्रुताम् ॥ यस्याःसंश्रवणादेव मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ४ ॥ पुरागौर्यासमासक्तं ज्ञात्वादेवास्सवासवाः ॥ मन्त्रं चक्रुर्भयाविष्टाएकान्तेसमुपाश्रिताः ॥ ५ ॥ वीर्यंयदित्रिनेत्रस्य क्षेत्रेगौर्याःपतिष्यति ॥ अस्माकंपतनंनूनं जगतश्चभविष्यति ॥ ६ ॥ सन्ततेस्तुविनाशाय ततोगच्छामहेद्रुतम् ॥ एवंसंमन्त्र्यदेवास्ते कैलासंपर्वतंगताः ॥ ७ ॥ ततस्तुनन्दिना सर्वे निषिद्धाःसमयंविना ॥ ८ ॥ नन्द्युवाच ॥ एकान्तेभगवान्रुद्रः सहगौर्यावसंस्थितः ॥ तस्माद्देवगणाःसर्वे गच्छन्तुनिलयंस्वकम् ॥ ९ ॥ अथदेवगणाःसर्वे वञ्चयित्वाचतंगणम् ॥ प्रैषयंस्तत्रवायुञ्च गुप्तमूचुर्वचस्त्विदम् ॥ १० ॥ गत्वात्रायोभवंब्रूहि नकार्यासन्ततिस्त्वया ॥ एवंदेवगणादेव प्रार्थयन्तिभयातुराः ॥ ११ ॥ ततोवायुर्द्रुतंगत्वा स्थितोयत्र

कि यदि त्रिलोचन शिवजी का वीर्य पार्वतीजी के क्षेत्र में गिरेगा तो हमलोगों व संसार का निश्चय कर पतन होगा ॥ ६ ॥ उसकारण संतान के नाश के लिये हमलोग शीघ्रही चलैं ऐसी सम्मति करके वे देवता कैलासपर्वत को गये ॥ ७ ॥ तदनन्तर समय के विना नन्दीश्वर ने सबको मना किया ॥ ८ ॥ नन्दी बोले कि भगवान् शिवजी पार्वतीसमेत एकान्त में स्थित हैं इसलिये सब देवगण अपने स्थान को जावैं ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर सब देवगणों ने उस नन्दीगण को छल कर-वहां पवन को पठाया और यह गुप्त वचन कहा ॥ १० ॥ कि हे पवन ! जाकर शिवजीसे कहिये कि तुमको संतान न करना चाहिये हे देव ! भय से विकल

देवता यह प्रार्थना करते हैं ॥ ११ ॥ तदनन्तर पवन शीघ्रही जाकर वहां स्थित हुये जहां कि महादेवजी थे और जो देवताओंने कहा था उसवचनको उन्होंने उच्च स्वरसे कहा ॥ १२ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवजी बड़ी लज्जा से संयुत हुये और पार्वतीजी को छोडकर उठपड़े व बहुत अच्छा ऐसा बोले ॥ १३ ॥ तदनन्तर बहुत दुःख से विकल पार्वतीजीने देवताओंको शाप दिया पार्वतीजी बोलीं कि जिसलिये आयेहुये देवताओंसे मैं पुत्रहीन की गई ॥ १४ ॥ उसकारण वे देवता भी संतान से हीन होवैंगे व हे वायो ! जिसलिये मनुष्यों से रहित इसस्थान में तुम आयेहो ॥ १५ ॥ उसकारण तुम सदैव शरीर से रहित होवोगे ऐसा कहकर तदनन्तर पति

महेश्वरः ॥ उच्चैर्जगादवाक्यञ्च यदुक्तंत्रिदिवालये ॥ १२ ॥ ततस्तुभगवाञ्छम्भुर्व्रीडियापरयायुतः ॥ गौरींत्यक्त्वासमुत्तस्थौ बाढमित्येवचाब्रवीत् ॥ १३ ॥ ततोगौरीसुदुःखार्त्ता शशापत्रिदिवालयान् ॥ गौर्युवाच ॥ यस्मादहंकृतादेवैः पुत्रहीनासमागतैः ॥ १४ ॥ तस्मात्तेपिभविष्यन्ति सन्तानेनविवर्जिताः ॥ यस्माद्वायोसमायातः स्थानेस्मिञ्जनवर्जिते ॥ १५ ॥ तस्मात्कायविनिर्मुक्तस्त्वंभविष्यसिसर्वदा ॥ एवमुक्त्वाततोदीर्घं भर्तुःकोपपरायणा ॥ १६ ॥ त्यक्त्वापार्श्वंगताराजन्नर्बुदंनगसत्तमम् ॥ सुतार्थंसातपस्तेपे यतवाक्कायमानसा ॥ १७ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते देवदेवोमहेश्वरः ॥ इन्द्राद्यैर्विबुधैःसार्द्धं तदन्तिकमुपागमत् ॥ १८ ॥ अथशक्रोविनीतात्मा देवींताम्प्रत्यभाषत ॥ एषदेविशिवःप्राप्तस्तवपार्श्वंसुलज्जया ॥ १९ ॥ नाथस्तेतत्प्रसादोस्य क्रियतांसुमुखीभव ॥ देव्युवाच ॥ त्यक्ताहंतववाक्येन पतिनासमयंविना ॥ २० ॥ पुत्रंलब्ध्वाप्रयास्यामि तस्यपार्श्वेसुरेश्वर ॥ तस्यास्तंनिश्चयंज्ञात्वा स्वयंदेवःसमाययौ ॥ २१ ॥

के ऊपर बहुतही क्रोधसंयुत पार्वतीजी ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उनकी समीपता को छोड़कर अर्बुदनामक उत्तम पर्वत पर चलीगईं और वचन, शरीर व मनको रोककर उन पार्वतीजीने पुत्र के लिये तप किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर हज़ार वर्ष के अन्त में इन्द्रादिक देवताओंसमेत देवदेव शिवजी उन पार्वतीजी के समीप आये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर नम्रचित्तवाले इन्द्रजीने उन पार्वती देवी से कहा कि हे देवि ! ये शिवजी बड़ी लज्जा से तुम्हारे समीप प्राप्त हुये हैं ॥ १९ ॥ तुम्हारे स्वामी हैं इसलिये इनके ऊपर प्रसन्नता कीजावै व सुमुखी होवो देवीजी बोलीं कि समयके विना तुम्हारे वचन से पति ने मुझको छोड़दिया ॥ २० ॥ हे सुरेश्वर ! मैं पुत्र को पाकर

उनके समीप जाऊंगी उसके उस निश्चय को जानकर आपही शिवदेवजी आये ॥ २१ ॥ व हँसतेहुये शिवजी यह वचन बोले कि हे देवेशि, वरानने ! दृष्टिके दान मे संभाषण से प्रसन्नता कीजिये ॥ २२ ॥ हे पार्वति ! मुझको सब दशाओं में देवताओं का हित करना चाहिये उसकारण बिनसमय में तुम छोड़ी गई व रतिकी रोंक की गई ॥ २३ ॥ हे सुरेश्वरि ! जिसलिये पुत्र के लिय तुम्हारा आरम्भ हुआ उसकारण हे प्रिये ! मेरी प्रसन्नता से चौथेदिन अपने शरीर से उपजाहुआ तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र होगा इममें संदेह नहीं है हे सुरेश्वरि ! अपने अंगके मलको लेकर जैसे रूपको ॥ २४ । २५ ॥ करोगी निरसंदेह वैसाही होगा और बहुत रूपोंका धरनेवाला

अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं प्रमादः क्रियतामिति ॥ दृष्टिदानेनदेवेशि भाषणेनवरानने ॥ २२ ॥ मयादेवहितंकार्यं सर्वावस्थासुपार्वति ॥ अकालेतेनमुक्तासि निर्वृतिःसुरतेःकृता ॥ २३ ॥ पुत्रार्थंतेसमारम्भो यतश्चासीत्सुरेश्वरि ॥ तस्मात्तेभवितापुत्रो निजदेहभवोवरः ॥ २४ ॥ मत्प्रसादादसंदिग्धं चतुर्थेदिवसेप्रिये ॥ निजाङ्गमलमादाय यादृग्रूपंसुरेश्वरि ॥ २५ ॥ करिष्यसिनसन्देहस्तादृगेवभविष्यति ॥ सचदेवगणानाञ्च दैत्यानांचविशेषतः ॥ २६ ॥ तथावैसर्वमर्त्यानां सिद्धिदोबहुरूपधृक् ॥ एवमुक्तात्रिनेत्रेण परितुष्टासुरेश्वरी ॥ २७ ॥ आलापंपतिनाचक्रे सार्द्धंहर्षसमन्विता ॥ चतुर्थेदिवसेप्राप्ते ततःस्नाताःशिवानृप ॥ २८ ॥ ततोद्वर्तनजंलेपं गृहीत्वाकौतुकात्किल ॥ चतुर्भुजंचकाराथ हरवाक्याद्विनायकम् ॥ २९ ॥ ततःसजीवतांप्राप्य हरवाक्येनतंतदा ॥ विशेषेणमहाराज नायकोसौकृतःक्षितौ ॥ ३० ॥ सर्वेषांचैवमर्त्यानां ततःख्यातोबभूवह ॥ विनायकइतिश्रीमान् पूज्यस्त्रैलोक्यवासिनाम् ॥ ३१ ॥ सर्वेषांदेवमुख्यानां बभूवहिविना

वह सब देवगणों व विशेषकर दैत्यों को वैसेही सब मनुष्योंको सिद्धिदायक होगा त्रिनेत्र शिवजी से ऐसा कहीहुई सुरेश्वरी पार्वतीजी प्रसन्न हुईं ॥ २६ । २७ ॥ व हर्षसंयुत पार्वतीजी ने पति के साथ संभाषण किया तदनन्तर हे नृप ! चौथादिन प्राप्त होनेपर पार्वतीजी ने स्नान किया ॥ २८ ॥ उसके उपरान्त उबटन से उपजे हुये लेपको कौतुक मे लेकर शिवजी के वचनसे चार भुजाओंवाले गणेशको किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर हे महाराज ! उससमय शिवजी के वचन से उन गणेश को सजीवता को प्राप्तकर पृथ्वी में ये सबही मनुष्यों के नायक कियेगये तदनन्तर त्रिलोकवासियों के पूजने योग्य विनायक श्रीमान् हुये ॥ ३० । ३१ ॥ व सब मुख्य

देवताओं के विनायक हुये तदनन्तर देवी के प्रिय हित में परायण सब देवगणोंने ॥ ३२ ॥ उसके लिये दिव्य वरदानों को दिया व हे राजन् ! देवताओं ने कहा ॥ ३३ ॥ देवता बोले कि हे देवि ! तुम्हारा यह पुत्र हम सबोंका अग्रगामी होगा और पहले इसके पूजित होनेपर तदनन्तर देवताओं से पूजा ग्रहण करने योग्यहै ॥ ३४ ॥ हे शुभे ! तुम्हारे भलीभाति सेवन से यह पर्वत का मनोहर शिखर दर्शन से मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाला होगा ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य अतिपवित्र इस जलाश्रय में स्नान करेंगे वे वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम स्थान को जावैंगे ॥ ३६ ॥ हे सुरेश्वरि ! माघ महीनें में शुक्लपक्षवाली तीज में सावधान होते हुये जो मनुष्य स्नान

यकः ॥ ततोदेवगणाःसर्वे देवीप्रियहितेरताः ॥ ३२ ॥ तस्मैददुर्वरान्दिव्यान् प्रोचुर्देवाश्चपार्थिव ॥ ३३ ॥ देवा ऊचुः ॥ तवायंतनयोदेवि सर्वेषांनःपुरःसरः ॥ प्रथमंपूजितेचास्मिन्पूजाग्राह्याततःसुरैः ॥ ३४ ॥ एतच्छृङ्गंगिरेरम्यं तवसंसेवनाच्छुभे ॥ सर्वपापहरंनॄणां दर्शनाच्चभविष्यति ॥ ३५ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति सुपुण्येसलिलाश्रये ॥ तेयास्यन्तिपरंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ३६ ॥ माघमासेतृतीयायां शुक्लायांयेसमाहिताः ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यन्तेतेसुरेश्वरि ॥ ३७ ॥ एवमुक्त्वासुराःसर्वे स्वस्थानंचततोगताः ॥ देवोपिसहितोदेव्या कैलासंपर्वतंगतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईशानीशिखरमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेद्ब्रह्मपदं तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ यत्रपूर्वंपदंन्यस्तं ब्रह्मणालोककारिणा ॥ १ ॥ पुरा ब्रह्मादयोदेवास्तत्रसर्वेसमाहिताः ॥ अर्बुदेपर्वतेरम्ये ऋषयश्चसुनिर्मलाः ॥ २ ॥ अचलेश्वरयात्रायां सुभक्त्याभाविता

करेंगे वे सात जन्मोंमें कियेहुये पातकसे छूट जावैंगे ॥ ३७ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर सब देवता अपने स्थान को गये और पार्वतीदेवीसमेत शिवदेव भी कैलास पर्वत को गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामीशानीशिखरमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ❁ ॥

दो० । भयो अर्बुदहि अचल पर तीर्थ ब्रह्मपदनाम । तिरपनवें अध्यायमें सोइ चरितअभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर त्रिलोकमें प्रसिद्ध ब्रह्मपदतीर्थको जावै जहां कि पुरातनसमय लोकों को रचनेवाले ब्रह्मा ने चरण को धरा है ॥ १ ॥ पुरातनसमय उसमनोहर अर्बुदपर्वत पै सावधान होतेहुये ब्रह्मादिक सब देवता व अति

निर्मल ऋषिलोग गये ॥ २ ॥ हे राजन् ! अचलेश्वर की यात्रा में उत्तम भक्तिसे संयुत सब मुनियोंने पितामहदेवजीसे कहा ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे पितामह ! बहुत नियमों से और नित्यहवन, व्रत व स्नान और उपवासों से हम सब निर्वेदको प्राप्त हैं ॥ ४ ॥ इसलिये तुम यहां कुछ उत्तम उपदेश देने के योग्यहो जिससे हे देवेश ! हमलोग कठिन संसाररूपी समुद्र को उतरजावैं ॥ ५ ॥ और अयाचितव्रत व उपवास तथा कठिन जप, होम, मन्त्र, व्रत, व दानों से स्वर्गकी प्राप्तिको हम लोगों से कहिये ॥ ६ ॥ उनमुनियों के उसवचनको सुनकर दयासंयुत ब्रह्माजी ने इसअर्बुद पै कुछ हँसकर बहुत देरतक चिन्तवन किया ॥ ७ ॥ ब्रह्मा बोले कि

नृप ॥ अथतेमुनयःसर्वे प्रोचुर्देवंपितामहम् ॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ प्रभूतनियमैर्होमैर्व्रतैःस्नानैश्चनित्यशः ॥ उपवासैश्चनिर्विण्णा वयंसर्वेपितामह ॥ ४ ॥ तस्मात्सदुपदेशन्त्वं किञ्चिद्दातुमिहार्हसि ॥ तरामोयेनदेवेश दुर्गसंसारसागरम् ॥ ५ ॥ अयाचितोपवासैश्च जपहोमैःसुदुश्चरैः ॥ मन्त्रैर्व्रतैस्तथादानैः स्वर्गप्राप्तिंवदस्वनः ॥ ६ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा मुनीनांचकृपान्वितः ॥ चिन्तयामाससुचिरमिहकिञ्चित्प्रहस्यच ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ द्विजाःस्वर्गंविनादानैर्होमैःस्नानैरुपोषणैः ॥ नातःस्वकंपदंत्यक्त्वा रम्येपर्वतरोधसि ॥ ८ ॥ अथोवाचमुनीन्सर्वान् प्रहसञ्छ्लक्ष्णयागिरा ॥ एतन्ममपदंरम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ९ ॥ स्पृशन्तुऋषयःसर्वे ततोयास्यथसद्गतिम् ॥ विनास्नानेनदानेन व्रतहोमजपादिभिः ॥ १० ॥ हितार्थंसर्वलोकानां मयान्यस्तंपदंशुभम् ॥ अस्मिन्पदेमयान्यस्ते यान्तिलोकाःपदंमम ॥ ११ ॥ स्पृशन्तुऋषयःसर्वे देवाश्चापिपदंमम ॥ एतदुक्त्वापदंन्यस्य ऋषीनाहपुनस्तथा ॥ १२ ॥ हितार्थंसर्वलोकानां मयान्यस्तं

हे द्विजो ! दान, होम, स्नान व उपासों के विना स्वर्गको मनुष्य नहीं जाताहै इसकारण अपने स्थानको छोड़कर मैं सुन्दर पर्वत के किनारे आया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त हँसतेहुये ब्रह्माजी ने सब मुनियों से नम्रवाणी करके कहा कि यह सुन्दर मेरा स्थान सब पातकों का नाश करनेवाला है ॥ ९ ॥ हे ऋषियो ! आप सब इसको स्पर्श करो तदनन्तर उत्तम गतिको प्राप्त होगे स्नान, दान, व्रत,होम व जपादिकोंके विना ॥ १० ॥ सब लोकों के हितके लिये मने उत्तम पदको धारण कियाहै मेरे इस पद के धरने पर मनुष्य मेरे स्थानको प्राप्त होवैंगे ॥ ११॥ सब ऋषि व देवताभी मेरे पदको स्पर्शकर यह कहकर पगको धरकर फिर ब्रह्माजीने ऋषियों से कहा ॥१२॥

कि सब मनुष्यों के हित के लिये मैंने पर्वत पै पगको धराहै यहा एक अव्यभिचारिणी (पवित्र) श्रद्धाही करने योग्य है ॥ १३ ॥ व हे मुनीश्वरो ! कातिक में पौर्णमासी का दिन प्राप्त होनेपर अपनी शक्ति से ब्राह्मणों को मिष्टान्न से भोजनकराकर जो भलीभांति श्रद्धासंयुत मनुष्य जल व अनेकभांति के फलों से तथा चन्दन, माला व अनुलेपनों से इसपदको पूजेगा ॥ १४ । १५ ॥ वह अतिदुर्लभ मेरे लोकको जावैगा इसमें सन्देह नहींहै ॥ १६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर भलीभांति श्रद्धा से संयुत सब मुनिगण वहां साथही उसको पूजकर ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये ॥ १७ ॥ इसलिये हे नरोत्तम ! वहां स्वर्ग को देनेवाला पितामह का पद श्रद्धा से

पदंगिरौ ॥ एकैवात्रचकर्त्तव्या श्रद्धाचाव्यभिचारिणी ॥ १३ ॥ यश्चश्रद्धान्वितःसम्यक् पदमेतन्मुनीश्वराः ॥ पूजयिष्यतिसंप्राप्ते कार्त्तिकेपूर्णिमादिने ॥ १४ ॥ तोयैःफलैश्चविविधैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वातु मिष्टान्नेनस्वशक्तितः ॥ १५ ॥ सयास्यतिनसन्देहो ममलोकंसुदुर्लभम् ॥ १६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततोमुनिगणाःसर्वे सम्यक्श्रद्धासमन्विताः ॥ पूजयित्वासमन्तत्र ब्रह्मलोकंसमागताः ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रपूज्यंनरोत्तम ॥ पितामहपदंसम्यक् श्रद्धयास्वर्गदायकम् ॥ १८ ॥ अन्यत्कौतूहलंराजन् मयादृष्टंमहाद्भुतम् ॥ पदस्यतस्ययच्छ्रुत्वा जायतेविस्मयोमहान् ॥ १९ ॥ आयामविस्तरेणापि कृतेप्राप्तेयुगेनृप ॥ नसंख्याजायतेराजञ्छुक्लवर्णंचमानवैः ॥ २० ॥ ततस्त्रेतायुगेप्राप्ते रक्तवर्णंप्रदृश्यते ॥ सुव्यक्तंसंख्ययायुक्तं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ २१ ॥ द्वापरेकपिलंतच्च लघुमात्रंप्रदृश्यते ॥ कलौकृष्णंसुसूक्ष्मंच रम्येपर्वतरोधसि ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कान्देर्बुदखण्डेब्रह्मपदोत्पत्तिर्नामत्रिपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५३ ॥

सब यत्नकरके पूजने योग्य है ॥ १८ ॥ व हे राजन् ! मैंने उसपद के बडे अद्भुत अन्य कौतुक को देखा है जिसको सुनकर बडा विस्मय होता है ॥ १९ ॥ हे नृप ! सतयुग प्राप्त होनेपर लम्बाई व चौड़ाई से उसकी संख्या नहीं होतीहै व हे राजन्! मनुष्यों से वह शुक्लवर्ण देखा जाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर त्रेतायुग प्राप्त होनेपर सब मनुष्यों से प्रणाम कियाहुआ वह पद अतिप्रगट व संख्या से युक्त तथा अरुणारंग देखपड़ता है ॥ २१ ॥ व द्वापरमें वह कपिलवर्ण और छोटा देख पडता है व कलियुगमें मनोहर पर्वतके किनारे वह कृष्णवर्ण व बहुतही सूक्ष्म देख पड़ताहै॥२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेब्रह्मपदोत्पत्तिर्नामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

भयो अर्बुदहि शिखरपर तीर्थ त्रिपुष्करसंज्ञ । चौवनवें अध्याय में कह्यो सोइ सर्वज्ञ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर ब्रह्माके प्यारे उसत्रिपुष्करतीर्थ को जावै ब्रह्माजी अर्बुदमंज्ञक पर्वत पै उसको लाये हैं ॥ १ ॥ हे नराधिप ! पुरातनसमय वसिष्ठजी का यज्ञ वर्तमान होनेपर उसपर्वत पै ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठ आये ॥ २ ॥ व हे महाराज ! अप्रकटजन्मवाले ब्रह्मा ने प्रतिज्ञा किया कि जबतक मैं इसलोक में टिकूंगा तबतक संध्याकाल प्राप्त होनेपर सावधान होताहुआ मैं त्रिपुष्करमें संध्या-वन्दन करूंगा इसीसमय जबतक ब्रह्माजी संध्या के लिये त्रिपुष्कर को चले तबतक वसिष्ठजी बोले वसिष्ठजी बोले कि हे सुरोत्तम ! इसयज्ञ में कर्मकाल प्राप्तहुआ

पुलस्त्य उवाच ॥ ततस्त्रिपुष्करंगच्छेदभीष्टंपद्मजस्यतत् ॥ ब्रह्मणातत्समानीतं पर्वतेर्बुदसंज्ञके ॥ १ ॥ वसिष्ठस्य पुरामत्रे वर्तमानेनराधिप ॥ तस्मिन्नगेसमायाता ब्रह्माद्याःसुरसत्तमाः ॥ २ ॥ प्रतिज्ञातंमहाराज ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना ॥ यावत्स्थास्यामिलोकेस्मिंस्तावत्सन्ध्यांत्रिपुष्करे ॥ ३ ॥ वन्दयिष्यामिसंप्राप्ते सन्ध्याकालेसमाहितः ॥ एतस्मिन्नेवका लेतु प्रस्थितःपुष्करम्प्रति ॥ ४ ॥ सन्ध्यार्थंपद्मजोयावद्वसिष्ठस्तावदब्रवीत् ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ कर्मकालश्चसंप्राप्तो यज्ञेस्मिन्सुरसत्तम ॥ ५ ॥ सविनानत्वयासिद्धिं ब्रह्मन्यास्यतिकर्हिचित् ॥ तस्मादानयचात्रैव पद्मयोनेत्रिपुष्करम् ॥ ६॥ सन्ध्योपास्तिंततःकृत्वा तत्रभूयःसुरेश्वर ॥ ब्रह्मत्वंकुरुत्वंदेव देवयोनेदयान्वितः ॥ ७॥ एवमुक्तोवसिष्ठेन ब्रह्मालोक पितामहः॥ ध्यात्वातत्रानयामास ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकान् ॥ ८ ॥ पुष्करास्तिसमाजग्मुः सुपुण्येसलिलाशये ॥ ततःप्रभृ तिसंजातमर्बुदेस्मिंस्त्रिपुष्करम् ॥ ९ ॥ तत्रयःकार्त्तिकेमासि पौर्णमास्यांसमाहितः ॥ स्नानंकरोतिदानंच तस्यलोकाः

है ॥ ३ । ४ । ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे विना यह किसीप्रकार सिद्धि को न प्राप्त होगा इसलिये हे पद्मयोने ! त्रिपुष्कर को यहीं लावो ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे देवयोने, सुरेश्वर, देव ! यहां संध्योपासन कर दया से संयुत तुम फिर ब्रह्मत्व करो ॥ ७ ॥ वसिष्ठजी से ऐसा कहेहुये लोकों के पितामह ब्रह्माजी ध्यानकर यहां ज्येष्ठ, मध्य व छोटे पुष्कर को लाये ॥ ८ ॥ और अतिपवित्र जलाशय में पुष्कर को आये तब से लगाकर इसअर्बुद पै त्रिपुष्कर हुआ है ॥ ९ ॥ सावधान होताहुआ जो मनुष्य कातिक

महीने में पौर्णमासी तिथि में उसत्रिपुष्कर में स्नान व दान करता है उसको सनातनलोक होते हैं ॥ १० ॥ और उसके उत्तर दिशा के भाग में उत्तम सावित्रीकुंड है जिसमें स्नान दानादिक करताहुआ मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिपुष्करमाहात्म्यंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥ ॥ * ॥ * ॥

दो० । कियो यथा शिवदेवजी तीर्थ रुद्रहृद नाम । पचपन के अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर पवित्र व उत्तम

सनातनाः ॥ १० ॥ तस्यचोत्तरदिग्भागे सावित्रीकुण्डमुत्तमम् ॥ स्नानदानादिकंकुर्वन् यत्रयातिशुभांगतिम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेत्रिपुष्करमाहात्म्यंनामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ पुण्यंरुद्रहृदंशुभम् ॥ यत्रस्नातोनरोभक्त्या गणाधीशत्वमाप्नुयात् ॥ १ ॥ पुराहत्वान्धकंदैत्यं सगणोवृषभध्वजः ॥ ततःस्नातोहृदंकृत्वा ततोरुद्रहृदोभवत् ॥ २ ॥ चतुर्दश्यांमहाराज यस्तत्रकुरुतेनरः ॥ स्नानंसलभतेपुण्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेरुद्रहृदमाहात्म्यंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ गुहेश्वरमनुत्तमम् ॥ गुहामध्येगतंलिङ्गं सिद्धैःसम्पूजितम्पुरा ॥ १ ॥ यंयंका

रुद्रकुंड को जावै जिसमें भक्ति से नहाया हुआ मनुष्य गणेशताको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ पुरातनसमय गणोंसमेत वृषध्वज शिवजी ने अंधक दैत्यको मारकर तदनन्तर कुंड करके स्नान किया उसीकारण रुद्रहृद हुआ ॥ २ ॥ हे महाराज ! चौदसि तिथि में जो मनुष्य उसकुंड में स्नान करता है वह सब तीर्थोंसे उपजेहुये पुण्यको पाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायारुद्रहृदमाहात्म्यंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥

दो० । अहै गुहेश्वरदेवकर यथा चरित्र उदार । छप्पनवें अध्याय में सोई चरितसुखार ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर अति उत्तम गुहेश्वरजी के

समीप जावै पुरातनसमय गुहाके मध्य में प्राप्त लिंगको सिद्धोंने पूजा है ॥ १ ॥ हे राजन्! जिस जिस कामनाको चिन्तवनकर मनुष्य उसलिंगको पूजता है उस उसको प्राप्त होताहै और अकाम मनुष्य मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेभाषाटीकायागुहेश्वरमाहात्म्यंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

दो० । अहै अर्बुदाचलहिंपर वननामक अविमुक्त । सत्तावन अध्याय में सोइ कथा है उक्त ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम! तदनन्तर अविमुक्त वनको जावै जिसके देखनेपर मनुष्य कभी प्रियसे वियोगको नहीं प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ हे राजन्! पुरातनसमय जब नहुष ने महात्मा इन्द्र का राज्य हरलिया तब दुःखसंयुत

ममभिध्याय तत्पूजयतिमानवः ॥ तंतंचलभतेराजन् निष्कामोमोक्षमाप्नुयात् ॥२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्यं नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ अविमुक्तवनंगच्छेत्ततःपार्थिवसत्तम ॥ यस्मिन्दृष्टेह्यभीष्टेन वियुज्येत्तेनकर्हिचित् ॥ १ ॥ तत्र पूर्वंशचीराजन् प्रविष्टादुःखसंयुता ॥ नहुषेणहृतेराज्ये देवेन्द्रस्यमहात्मनः ॥ २ ॥ तत्प्रभावात्पुनःप्राप्तो वियुक्तोपिशतक्रतुः ॥ ततस्तस्यवरोदत्तो वनस्यहितयासह ॥ ३ ॥ नरोवायदिवानारी वियुक्तात्रवनेशुभे ॥ प्रियैर्भटितिचागत्य रात्रिमेकांवसिष्यति ॥ ४ ॥ सतेनप्राप्यतेसङ्गं भूयएवयथामया ॥ प्रियैःसलभतेवासमेकरात्रंवसन्नृप ॥ ५ ॥ फलदानंप्रशंसन्तितत्रब्राह्मणसत्तमाः ॥ वन्ध्याचैवविशेषेण ततःपुत्रफलंलभेत् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेविमुक्तमाहात्म्यं नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इन्द्राणी ने उसमें प्रवेश किया है ॥ २ ॥ और उसके प्रभाव से बिछुड़ेहुये भी इन्द्रजी फिर प्राप्त हुये तदनन्तर उन इन्द्राणीसमेत इन्द्र ने उसवन को वर दिया है ॥ ३ ॥ कि प्रियोंसे वियोगी स्त्री या पुरुष जो इस उत्तम वनमें शीघ्रही आकर एक रात्रि बसैगा ॥ ४ ॥ वह फिर भी मेरे नाईं उससे संगको पावैगा हे राजन्! एकरात्रि बसता हुआ वह प्रियों के साथ निवासको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ वहां द्विजोत्तमलोग फलदान की प्रशंसा करते हैं और बाझ स्त्री विशेषकर उससे पुत्ररूपी फलको पाती है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाम्भाषाटीकायामविमुक्तमाहात्म्यंनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ॥

दो० । तीर्थ भयो विख्यात जिमि उमामहेश्वर नाम । अट्ठावन अध्याय में सोईचरित ललाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! तदनन्तर अति पुण्यदायक उमामाहेश्वरजी के समीप जावै जोकि पुरातनसमय भक्तिसंयुत धुंधुमारसे थापे गये हैं ॥ १ ॥ हे मनुजाधिप! जो वहां भक्तिसे स्त्री पुरुषों को पूजता है वह सात जन्मोंके मध्यमें भी दुर्भाग्यताको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेभाषाटीकायामुमामाहेश्वरचरितवर्णनंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ● ॥

दो• । महौजसहिमें न्हाय जिमि इन्द्र भये बिन पाप । उंसाठिके अध्यायमें सोई चरित अलाप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! तदनन्तर समस्तपातकोंको नाश-

पुलस्त्य उवाच ॥ उमामाहेश्वरंगच्छेत्ततोराजन्सुपुण्यदम् ॥ स्थापितंभक्तियुक्तेन धुन्धुमारेणयत्पुरा ॥१॥ दम्पतीपूजयेद्भक्त्या यस्तत्रमनुजाधिप ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव नसदौर्भाग्यमाप्नुयात् ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डउमामाहेश्वरचरित्रवर्णनन्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोमहौजसंगच्छेत्तीर्थंपातकनाशनम् ॥ यस्मिन्स्नातोनरोराजंस्तेजसायुज्यतेध्रुवम् ॥ १ ॥ वृत्रंहत्वासुरंशक्रः पुरादैन्यंपरंगतः ॥ निश्रीकस्तेजसाहीनो दुर्गन्धेनसमन्वितः ॥ २ ॥ परित्यक्तःसुरैःसर्वैर्विषादंपरमङ्गतः ॥ ततःपप्रच्छदेवेन्द्रो द्विजश्रेष्ठंबृहस्पतिम् ॥ ३ ॥ भगवंस्तेजसोवृद्धिः कथंस्यान्मेयथापुरा ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ तीर्थयात्रासुरश्रेष्ठ कुरुष्वधरणीतले ॥ ४ ॥ तीर्थंविनाध्रुवंवृद्धिस्तेजसोनभविष्यति ॥ ततस्तीर्थान्यनेकानि भ्रान्तःशक्रोनराधिप ॥ ५ ॥ क्रमेणैवार्बुदंप्राप्तस्तत्रदृष्ट्वाजलाशयम् ॥ स्नानंचक्रेततःश्रान्तो महौजाःप्रत्यपद्यत ॥ ६ ॥

नेवाले महौजसतीर्थ को जावै जिसमें नहायाहुआ मनुष्य निश्चयकर तेजसे युक्त होता है ॥ १ ॥ पुरातनसमय वृत्रासुर को मारकर इन्द्र बड़ी उदासीनताको प्राप्त हुये और शोभारहित व तेजसे हीन और दुर्गंधसे संयुत हुये ॥ २ ॥ और सब देवताओंसे त्यागे हुये वे बड़े विषादको प्राप्त हुये तदनन्तर देवेन्द्रजीने द्विजोत्तम बृहस्पतिजी से पूछा ॥ ३ ॥ कि हे भगवन्! पहलेकी नाईं मेरे किसप्रकार तेजकी वृद्धि होगी बृहस्पतिजी बोले कि हे सुरश्रेष्ठ! पृथ्वीमें तीर्थयात्रा करो ॥ ४ ॥ क्योंकि विना तीर्थ के निश्चयकर तेजकी वृद्धि न होगी हे राजन्! तदनन्तर इन्द्रजी अनेकों तीर्थों में घूमते भये ॥ ५ ॥ व क्रमही से अर्बुदको प्राप्त हुये और वहां जलाशयको देख

कर तदनन्तर उन्हों ने स्नान किया व वे इन्द्रजी सहँताकर बड़े बलवान् हुये ॥ ६ ॥ और दुर्गंध से छूटगये तदनन्तर देवताओंने घेरलिया व हँसतेहुये उन्होंने वचन कहा कि हे देवताओ ! आयेहुये सब ॥ ७ ॥ जो मनुष्य इन्द्रोत्सव प्राप्त होने पर उससमय कुँआर में शुक्लपक्षके अन्तमें इसतीर्थ में स्नान करेंगे वे उत्तम गति को प्राप्त होवेंगे ॥ ८ ॥ और सदैव जन्म जन्म में लक्ष्मीसमेत होवेंगे ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहौजसप्रभाववर्णनंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दुर्गन्धेनविनिर्मुक्तस्ततोदेवैःसमावृतः ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यं सर्वेदेवाःसमागताः ॥ ७ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति प्राप्ते शक्रोत्सवेतदा ॥ आश्विनेशुक्लपक्षान्ते तेयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥८॥ सश्रीकाश्चभविष्यन्ति सदाजन्मनिजन्मनि ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमहौजसप्रभाववर्णनन्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ जम्बूतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रस्नातोनरःसम्यगिष्टंफलमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपसमस्तानां तीर्थानांनृपसत्तम ॥ आसीत्पुरानिमिर्नाम क्षत्रियःसूर्यवंशजः ॥ २ ॥ वयसःपरिणामेस पर्वतंचार्बुदंगतः ॥ प्रायोपवेशनंकृत्वा स्थितस्तत्रसमाहितः ॥ ३ ॥ अथाजग्मुर्मुनिगणास्तस्यपार्श्वेमहस्रशः ॥ चक्रुर्धर्मकथाःपुण्या राजर्षीणांमहात्मनाम् ॥ ४ ॥ देवर्षीणांपुराणानां तथान्येषांमहात्मनाम् ॥ ततःकश्चित्कथान्तेच लोमशो

दो० । भयो अर्बुदहि अचलपर जम्बूतीरथ नाम । कह्यो साठि अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अति उत्तम जम्बूतीर्थ को जावे हे नृपोत्तम ! उसमें भलीभांति नहायाहुआ मनुष्य जम्बूद्वीपके सब तीर्थों के प्रिय फलको पाताहै पुरातनसमय सूर्यवंश में उत्पन्न निमिनामक क्षत्रिय हुआ है ॥ १ । २ ॥ वह अवस्था के अन्त में अर्बुदपर्वत पै गया और अन्न जलको छोड़ मरनेपर उतारू होकर सावधान होताहुआ वह वहां स्थित हुआ ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर सैकड़ों मुनिगण उसके समीप आये और उन्हों ने महात्मा राजर्षियोंकी पवित्र धर्मकथाओं को कहा ॥ ४ ॥ और अन्य पुराने देवर्षिमहात्माओं की कथाओं को

कहा तदनन्तर कथा के अन्तमें लोमशनामक उत्तम मुनि ॥ ५ ॥ सब तीर्थों से उपजेहुये तीर्थ के माहात्म्य को कहते हुये वहां आये व हे राजन्! उसवचन को सुनकर निमिराजा बड़ा उदासीन हुआ ॥ ६ ॥ क्योंकि उसने पहले तीर्थस्नान नहीं किया था तदनन्तर उसने ब्राह्मणसे कहा कि हे द्विजोत्तम! कोई उपाय है किजिससे सब तीर्थों का फल मिलताहै लोमश बोले कि हे नृप! तुमको बहुत दुःखित देखकर मेरे दया उत्पन्न हुई है ॥ ७ । ८ ॥ इसलिये तीर्थयात्राके लिये तुम्हारा प्रिय करूंगा और हे नृपेन्द्र! मंत्र की शक्ति से जम्बूद्वीप में उपजेहुये सब तीर्थोंको यहां लाऊंगा इसमें संदेह नहीं है व हे महाराज! उनके एकीभूत याने एक स्थान

नामसन्मुनिः ॥ ५ ॥ कीर्तयंस्तीर्थमाहात्म्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् ॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवोराजन् निमिःपरमदुर्मनाः ॥ ६ ॥ तेनवैनकृतंपूर्वं यतस्तीर्थावगाहनम् ॥ ततःप्रोवाचविप्रंसह्यस्त्युपायोद्विजोत्तम ॥ ७ ॥ कश्चिद्येनचसर्वेषां तीर्थानांलभ्यतेफलम् ॥ लोमश उवाच ॥ दयामेनृपमंजाता त्वांदृष्ट्वादुःखितम्भृशम् ॥ ८ ॥ तीर्थयात्राकृतेतस्मात् करिष्येहंतवप्रियम् ॥ अत्रचैवानयिष्यामि जम्बूद्वीपोद्भवानिच ॥ ९ ॥ सर्वतीर्थानिराजेन्द्र मन्त्रशक्त्यानसंशयः ॥ स्नानंकुरुमहाराज एकीभूतेषुतेषुच ॥ १० ॥ अस्मिञ्जलाशयेपुण्ये सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ एवमुक्त्वासविप्रर्षिर्ध्यानंचक्रेसमाहितः ॥ ११ ॥ ततस्तीर्थानिसर्वाणि तत्रायातानितत्क्षणात् ॥ प्रत्ययार्थंचराजर्षे जम्बूवृक्षोऽप्यजायत ॥ १२ ॥ तत्रस्नानंनृपश्चक्रे सर्वतीर्थमयेध्रुवे ॥ सदेहश्चगतःस्वर्गं तीर्थस्नानादनन्तरम् ॥ १३ ॥ ततःप्रभृतितत्तीर्थं जम्बूतीर्थं

में होनेपर इस पवित्र जलाशय में स्नान करो यह मैं सत्य कहताहूं ऐसा कहकर सावधान होतेहुये उसब्रह्मर्षिने ध्यान किया ॥ ९ । १० । ११ ॥ तदनन्तर सब तीर्थ वहां उसीक्षण आगये व हे राजर्षे! विश्वासके लिये जम्बू (जामुन) का वृक्ष उत्पन्न होगया ॥ १२ ॥ और राजाने समस्ततीर्थमय व अचल उसतीर्थमें स्नान किया व तीर्थस्नान के बाद वह शरीरसमेत स्वर्गको चलागया ॥ १३ ॥ तब से लगाकर वह तीर्थ जम्बूतीर्थ ऐसा कहागया है सूर्यनारायण के कन्याराशि में प्राप्त होनेपर

जो मनुष्य वहां श्राद्ध करता है ॥ १४ ॥ उसको महर्षियों ने गयाशीर्ष के समान फल कहा है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांजम्बूतीर्थप्रभाववर्णनंनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥ ॐ ॥

दो० । गंगाधरतीरथ भयो जिमि अर्बुदहिं समीप । इकसठि में सोई चरित वर्णित सुखद महीप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! तदनन्तर निर्मल जलवाले अति पवित्र गंगाधरतीर्थको जावै कि जिसने आकाश से गिरतीहुई गंगाजीको धारण किया है ॥ १ ॥ और हे राजन् ! अचलेश्वररूपी देवदेव महादेवजीने हठसे उन

मितिस्मृतम् ॥ कन्यागतेरवौतत्र यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥१४॥ गयाशीर्षसमंतस्य पुण्यमाहुर्महर्षयः ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेजम्बूतीर्थप्रभावोनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ गङ्गाधरंततोगच्छेत्सुपुण्यंविमलोदकम् ॥ येनगङ्गाधृताराजन् निपतन्तीनभस्तलात् ॥ १ ॥ आहतादेवदेवेन अचलेश्वररूपिणा ॥ हरेणरभसाराजन् यत्पुराकथितंतव ॥ २ ॥ तत्रयःकुरुतेस्नानमष्टम्यांसुसमाहितः ॥ सगच्छेत्परमंस्थानं देवैरपिसुदुर्लभम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेगङ्गाधरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःकटेश्वरंगच्छेल्लिङ्गंगौरीविनिर्मितम् ॥ तथागङ्गेश्वरंचान्यद्गङ्गयानिर्मितंस्वयम् ॥ १ ॥ पुरासमभवद्युद्धमुमयासहगङ्गया ॥ सौभाग्यंप्रतिराजेन्द्र ततोगौरीत्यभाषत ॥ २ ॥ ययासम्पूजितःशम्भुः शीघ्रंया

को बुलाया है जो कि पुरातनसमय तुम से कहा गयाहै ॥ २ ॥ सावधान होकर जो मनुष्य अष्टमी तिथि में स्नान करता है वह देवताओं से भी दुर्लभ उत्तम स्थान को जाताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगङ्गाधरतीर्थमाहात्म्यंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॐ ॥

दो०।गंगा अरु गिरिजा यथा थाप्यो लिंगन दोइ। बासठिके अध्यायमें कह्यो चरित सब सोइ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर पार्वतीजी से निर्माण कियेहुये कटेश्वर लिंगके समीप जावै वैसेही आपही गंगाजी से निर्मित अन्य गंगेश्वरलिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे नृपेन्द्र ! पुरातनसमय पार्वती व गंगाजीसे सौभाग्यके लिये युद्ध

हुआ है तदनन्तर पार्वतीजीने यह कहा ॥ २ ॥ कि जिससे भलीभांति पूजेहुये शिवजी शीघ्रही दर्शनको प्राप्त होवैं वह निश्चयकर हम तुम दोनोंके मध्य में सौभाग्यवती है ॥ ३ ॥ इसप्रकार कहीहुई गंगाजी शीघ्रतासमेत उसअर्बुदपर्वत पै गईं और उन्होंने लिंगको ढूंढ़ा व बहुतसमय से पाया ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर हे महाराज! लिंगके आकारवाले पर्वत के सुन्दर कटक (नितम्ब) को पार्वतीजी ने देखा व उससमय भलीभांति श्रद्धासंयुत उन्होंने उसको पूजन किया तदनन्तर महादेवजी प्रसन्न हुये व उन्होंने दर्शन दिया व यह कहा कि मैं वरदायक हूं ॥ ५ । ६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि जिसलिये सपत्नीभावके कारण क्रोध से लिंग कल्पित कियागया

स्यतिदर्शनम् ॥ सासौभाग्यवतीनूनमावयोःसंभविष्यति ॥ ३ ॥ एवमुक्तागतागङ्गा सत्वरातत्रपर्वते ॥ लिङ्गमन्वेषयामास चिरकालादवापसा ॥ ४॥ दृष्टंगौर्याथकटकं पर्वतस्यमनोहरम् ॥ लिङ्गाकारंमहाराज पूजयामाससातदा ॥ ५ ॥ सम्यक्श्रद्धासमोपेता ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ प्रददौदर्शनंतस्यावरदोस्मीतिचाब्रवीत् ॥ ६ ॥ गौर्युवाच ॥ सापत्न्यभावकोपेन यतोलिङ्गंप्रकल्पितम् ॥ तस्मात्कटेश्वराख्याच लोकेचास्यभविष्यति ॥ ७॥ यानारीपतिनामुक्ता सपत्नीदुःखदुःखिता ॥ अस्यसन्दर्शनादेव साभविष्यतिविज्वरा ॥ ८ ॥ सुतसौभाग्यसम्पन्ना भर्त्तुःप्राणसमातथा ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ गङ्गयाराधितोदेव एवमेववरंददौ ॥ ९ ॥ तस्माल्लिङ्गद्वयंतच्च द्रष्टव्यंमनुजाधिप ॥ विशेषतश्चनारीभिः सपत्नीदोषशान्तये ॥ १० ॥ सुखसौभाग्यदंनित्यं तथाभीष्टप्रदंनृणाम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमिश्रतीर्थकथानकं नामद्विषष्टिमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उसलिये संसार में इसका कटेश्वरनाम होवै ॥ ७ ॥ और जो स्त्री पतिसे छोड़ी या सौतिके दुःखसे दुःखित होवै वह इसके भलीभांति दर्शनहीसे शोकरहित होवै ॥ ८ ॥ और पुत्र व सौभाग्यसे संयुत तथा पतिको प्राणों के समान प्यारी होवै पुलस्त्यजी बोले कि गंगाजी से आराधन कियेहुये शिवदेवजीने ऐसाही वर दिया ॥ ९ ॥ इसलिये हे मनुजाधिप ! उनदोनों लिंगोंको देखना चाहिये और सौतियों के दोष की शान्तिके लिये स्त्रियों को विशेषकर देखना चाहिये ॥ १० ॥ वह लिंग सदैव सुख व सौभाग्यको देनेवाला और मनुष्यों के मनोरथों का देनेवाला है ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेभाषाटीकायांमिश्रतीर्थकथनंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

दो०।अर्बुद के माहात्म्यको सुने होत फल जौन। तिरसठि के अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे महाराज ! तुमने जो मुझ से पूंछा इस सब अर्बुद के माहात्म्य को मैंने तुमसे संक्षेप से कहा ॥ १ ॥ क्योंकि विस्तार से सैकड़ों वर्षों से भी नहीं कहा जासक्ता है इस अर्बुदपर्वत पै असख्य तीर्थ व पवित्र देवमन्दिर॥ २ ॥पग २ पै महर्षियों मे निर्माण कियेगयेहैं हे महाराज, महीपते ! वहतीर्थ नहीं है और वह वल्ली नहीं है तथा वह वृक्ष नहीं है ॥ ३ ॥ और वहा वहनदी नहीं है कि जिसमें देवेश शिवजी न स्थित होवैं हे महाराज ! जो मनुष्य वहां मनोहर अर्बुदपर्वत पै बसते हैं ॥ ४ ॥ वे पुण्यकर्मा मनुष्य निश्चयकर स्वर्गमें बसते हैं

पुलस्त्य उवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ अर्बुदस्यमहाराज माहात्म्यंहिसमासतः ॥ १ ॥ विस्तरेणनशक्यःस्यादपिवर्षशतैरपि ॥ असंख्यानीहतीर्थानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ २ ॥ पदेपदेमहाराज निर्मितानिमहर्षिभिः ॥ नतत्तीर्थंनसावल्ली नसवृक्षोमहीपते॥ ३ ॥ नसानदीनदेवेशो यत्रतत्रास्तिसंस्थितः ॥ येवसन्तिमहाराज सुरम्येर्बुदपर्वते ॥४॥ नूनंतेपुण्यकर्माणो निवसन्तित्रिविष्टपे ॥ किंतस्यजीवितेनार्थः किंधनैःकिंजपैर्नृप ॥ ५ ॥ योनपश्यतिशुद्धात्मा समन्तादर्बुदाचलम् ॥ अपिकीटपतङ्गाये पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ ६ ॥ स्वेदजाश्चाण्डजाश्चापि उद्भिज्जाश्चजरायुजाः ॥ तस्मिन्मृतामहाराज निष्कामाःकामतोपिवा॥ ७ ॥ तेयान्तिशिवसायुज्यं जरामरणवर्जितम् ॥ यश्चेदंशृणुयान्नित्यं पुराणंश्रद्धयान्वितः ॥ ८ ॥ अर्बुदस्यमहाराज सयात्राफलमश्नुते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन या

हे राजन् ! उसके जीवन से क्या प्रयोजन है व उसके धनों से और जपों से क्या प्रयोजन है ॥ ५ ॥ जो कि शुद्धचित्त पुरुष सब ओर से अर्बुदपर्वतको नहीं देखता है और जो कीट व पतंग तथा पशु,पक्षी व मृगा ॥ ६ ॥ व हे महाराज ! स्वेदज (मच्छड़ आदिक) अंडज (पक्षी आदि) उद्भिज्ज (वृक्षादि) और जरायुज (मनुष्यादिक) उसपर्वत पै अकाम या कामना से भी मरते हैं ॥ ७ ॥ वे वृद्धता व मरण से रहित शिवजी के सायुज्य मोक्षको प्राप्त होतेहैं और श्रद्धासंयुत जो मनुष्य

होवेगी परन्तु दुःख न होगा इसप्रकार इन वरदानोंको देकर लोकोंके संमतवाली गायत्री ॥ २७ ॥ देवी सबोंके देखतेहुये उस समय अन्तर्द्धान होगई तब हे देवि ! सावित्रीजी प्रभासक्षेत्रको आई ॥ २८ ॥ और श्रीसोमेश्वरजीके पूर्वओर कृतस्मरपर्वत के शिखर पै दूसरे उत्तम द्वापरयुग में चाक्षुष मन्वन्तरमें ॥ २९ ॥ लोकोंके रचनेवाले ब्रह्मामे वहां यज्ञका प्रारम्भकरनेपर यज्ञमें देवता व महात्मा उत्तम सप्तर्षिलोग प्राप्तहुये हैं ॥ ३० ॥ उससमयसे लगाकर लोकोंकेऊपर दयाकरनेवाली जगत् की जननी सावित्रीजी स्थितहुई हैं जो मनुष्य भक्तिमे उनको एक पाखभर निरन्तर ब्रह्मा के पूजनकी विधि से पूजता है उसके निश्चयकर पुत्र होताहै जेठकी पौर्ण-

विष्यति ॥ इतिदत्त्वावरानेतान् गायत्रीलोकसम्मता ॥ २७ ॥ जगामादर्शनन्देवी सर्वेषांपश्यतांतदा ॥ सावित्रीतु तदादेवि प्रभासक्षेत्रमागता ॥ २८ ॥ कृतस्मरस्यशृङ्गेच श्रीसोमेश्वरपूर्वतः ॥ मन्वन्तरेचाक्षुषेच द्वितीयेद्वापरेशुभे ॥ २९ ॥ तत्रयज्ञेसमारब्धेब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ यज्ञेगतामहात्मानो देवास्सप्तर्षयोवराः ॥ ३० ॥ तस्मात्कालात्समारभ्य प्रभासक्षेत्रमाश्रिता ॥ ३१ ॥ सावित्रीलोकजननी लोकानुग्रहकारिणी ॥ यस्तांपूजयतेभक्त्या पक्षमेकंनिरन्तरम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मपूजाविधानेन तस्यपुत्रोध्रुवंभवेत् ॥ ज्येष्ठस्यपौर्णिमास्यांतु सावित्रीस्थलसन्निधौ ॥ ३३ ॥ पठेद्योब्रह्मसूक्तानि मुच्यतेह्यनुपातकैः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं सावित्र्यारोषकारणम् ॥ ३४ ॥ यश्चेदंशृणुयाद्भक्त्या सगच्छेत्परमं पदम् ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसावित्रीमाहात्म्यन्नामषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ॥

देव्युवाच ॥ प्रभासेसंस्थितायातु सावित्रीब्रह्मणःप्रिया ॥ तस्याश्चरित्रम्मेब्रूहि देवदेवजगत्पते ॥ १ ॥ व्रतंमाहात्म्य

मासी तिथि में सावित्रीस्थलके समीप ॥ ३१ । ३२ । ३३ ॥ जो ब्राह्मण सूक्तों को पढ़ता है वह पातकोंसे छूटजाता है यह सावित्रीजी के क्रोधका सब कारण तुमसे कहागया ॥ ३४ ॥ इसको जो भक्तिसे सुनताहै वह परमपदको प्राप्तहोताहै ॥ १३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसावित्रीमाहात्म्यंनामषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सावित्रीव्रत कर अहै अतिउत्तम सुविधान । इकसौ इकसठि में सोई कीन्हों कथा बखान ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देवदेव, जगदीशजी ! ब्रह्माकी

प्यारी जो सावित्रीजी प्रभासक्षेत्रमें स्थित हैं उसके चरित्रको मुझसे कहिये ॥ १ ॥ और स्त्रियों के पतिव्रत को करनेवाले व महाभाग्य तथा बड़े ऐश्वर्यवाले इतिहास से संयुत व माहात्म्य से संयुक्त व्रतको कहिये ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे महेश्वरि, महादेवि ! प्रभासक्षेत्रमें स्थित स्थलमें टिकीहुई सावित्रीजी के उत्तम चरित्र को कहताहूं ॥ ३ ॥ जिसप्रकार कि राजाकी कन्या सावित्रीने उत्तम व्रतको किया है मद्रदेशमें सब प्राणियोंके हितमें परायण व धर्मात्मा तथा सदैव पुरवासियों को प्यारा अश्वपतिनामक राजा हुआहै जोकि क्षमावान् व सन्तानहीन तथा सत्यवादी व जितेन्द्रिय था ॥ ४ । ५ ॥ वह राजा प्रभासक्षेत्रकी यात्रामें आया व विधिसे यात्रा

संयुक्तमितिहाससमन्वितम् ॥ पतिव्रतकरंस्त्रीणां महाभाग्यंमहोदयम् ॥ २ ॥ ईश्वरउवाच ॥ कथयामिमहादेविसावित्र्याश्चरितंशुभम् ॥ प्रभासक्षेत्रसंस्थायास्स्थलस्थायामहेश्वरि ॥ ३ ॥ यथाचीर्णंव्रतवरं सावित्र्याराजकन्यया ॥ आसीन्मद्रेषुधर्मात्मा सर्वभूतहितेरतः ॥ ४ ॥ पार्थिवोऽश्वपतिर्नामा पौराणाञ्चप्रियस्सदा ॥ क्षमावाननपत्यश्च सत्यवादीजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ प्रभासक्षेत्रयात्रायामाजगामसभूपतिः ॥ यात्राकुर्वन्विधानेन सावित्रीस्थलमागतः ॥ ६ ॥ ससभार्योव्रतमिदं तत्रचक्रेनृपस्स्वयम् ॥ सावित्रीतिप्रसिद्धंयत् सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७ ॥ तस्यतुष्टाभवद्देवी सावित्रीब्रह्मणःप्रिया ॥ भूर्भुवस्स्वरितीत्येषा साक्षान्मूर्त्तिमतीस्थिता ॥ ८ ॥ कमण्डलुधरादेवी प्रसन्नवदनेक्षणा ॥ उवाचत्वंवरंब्रूहि सवव्रेवरमात्मनः ॥ ९ ॥ उवाचदुहिताह्येका तवराजन्भविष्यति ॥ इत्येवमुक्त्वासादेवी जगामादर्शनम्पुनः ॥ १० ॥ कालेनवहुनाजाता दुहितादेवरूपिणी ॥ सावित्र्याप्रीतयादत्ता सावित्र्याःपूजयायतः ॥ ११ ॥ सावि

को करताहुआ वह सावित्रीजी के स्थलको आया ॥ ६ ॥ व स्त्रीसमेत उस राजाने वहां आपही इस व्रतको किया जोकि सब कामनाओं के फलोंको देनेवाला सावित्री ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ उसके ऊपर ब्रह्माकी प्यारी (स्त्री) सावित्री देवी प्रसन्नहुई जो ये सावित्रीजी भूर्भुवःस्वः इन लोकोंमें साक्षात् मूर्तिमती होकर स्थित हैं ॥ ८ ॥ कमण्डलुको धारण किये प्रसन्न मुख व नेत्रोंवाली सावित्री देवीजी बोलीं कि तुम वरदानको कहो उस राजाने अपने वरदानको मांगा ॥ ९ ॥ और सावित्रीजी बोलीं कि हे राजन् ! तुम्हारे एक कन्या होगी यही कहकर फिर वे सावित्री देवी अन्तर्धान होगईं ॥ १० ॥ और बहुत समय के बाद देवरूपिणी कन्या पैदाहुई जिसलिये

सावित्रीजीके पूजन से प्रसन्न होतीहुई सावित्रीजी ने उसको दिया ॥ ११ ॥ उसी कारण ब्राह्मणोंने उस समय उसका सावित्री ऐसा उत्तम नाम किया और वह राज-कन्या शरीरधारिणी लक्ष्मी की नाईं बढ़ती भई ॥ १२ ॥ कमल पत्रके समान चौड़ेनेत्रोंवाली वह सावित्री तेजसे जलती ऐसी थी और उस सावित्रीने उसव्रतको किया कि जिसको भृगुजी ने कहा ॥ १३ ॥ व सुकुमार अंगोंवाली सावित्रीजी यौवन में स्थितहुई और सुन्दरकटिवाली व सुन्दरमध्यभागवाली वह सोने की मूर्तिकी नाईं थी ॥ १४ ॥ प्राप्तहुई उस कन्याको देखकर लोगोंने यह माना कि यह साक्षात् देवकन्या है और कमल के समान नेत्रोंवाली तेजसे जलतीहुई उस ॥ १५ ॥ सावित्री

त्रीतिवरन्नाम चक्रुर्विप्रास्तदाततः ॥ साविग्रहवतीवश्रीः प्रावर्द्धतनृपात्मजा ॥ १२ ॥ सातुपद्मविशालाक्षी प्रज्वलन्तीवतेजसा ॥ चचारसाचसावित्री भृगुणायद्व्रतोदितम् ॥ १३ ॥ सावित्रीसुकुमाराङ्गी यौवनस्थाबभूवह ॥ सासुश्रोणी सुमध्याच प्रतिमाकाञ्चनीइव ॥ १४ ॥ प्राप्ताचदेवकन्येयं दृष्ट्वातांमेनिरेञ्जसा ॥ सातुपद्मविशालाक्षी प्रज्वलन्तीवतेजसा ॥ १५ ॥ व्रतंचकारसावित्री तत्तुयद्भृगुणोदितम् ॥ अथोपोष्यशिरस्स्नात्वा देवतामभिगम्यच ॥ १६ ॥ हुत्वाग्निंविधिवद्विप्रानर्चयद्वरवर्णिनी ॥ तेभ्यस्सुमनस्शेषां प्रतिगृह्यनृपात्मजा ॥ १७ ॥ सखीपरिवृताभ्येत्य देवीश्रीवस्वरूपिणी ॥ साभिवाद्यपितुःपादौ शेषांपूर्वंनिवेद्यच ॥ १८ ॥ कृताञ्जलिर्वरारोहा नृपतेःपार्श्वतःस्थिता ॥ तान्दृष्ट्वायौवनप्राप्तां भायुतान्देवरूपिणीम् ॥ १९ ॥ उवाचराजाआमन्त्र्य मन्त्रार्थंसहमन्त्रिभिः ॥ अश्वपतिरुवाच ॥ पुत्रिप्रदान

ने उस व्रतको किया कि जिसको भृगुजी ने कहा था इसके अनन्तर उपास कर शिरसे नहाकर व देवताके सामने जाकर ॥ १६ ॥ अग्निमें हवनकर उस उत्तम-वर्णवाली सावित्रीजी ने विधिपूर्वक ब्राह्मणों का पूजन किया और उनके लिये फूलोंकी मालाको पहिनाकर राजकन्या ॥ १७ ॥ जोकि लक्ष्मीकी नाईं स्वरूपवाली थी सखियोंमें घिरीहुई वे सावित्री देवी आकर पहले मालाको देकर पिताके चरणोंको प्रणामकर ॥ १८ ॥ हाथोंको जोड़कर उत्तमकटिवाली सावित्रीजी राजाके समीप स्थित हुईं यौवन में प्राप्त व शोभासे संयुत उस देवरूपिणी कन्याको देखकर ॥ १९ ॥ सलाहके लिये मन्त्रियोंको बुलाकर और मन्त्रियोंसे सम्मति करके राजा बोले

अश्वपति बोले कि हे पुत्रि ! तुम्हारे दानका समय है परन्तु कोई मुझसे नहीं मांगता है ॥ २० ॥ और विचार करताहुआ मैं इस संसारमें अपने तुल्य वरको नहीं देखताहूं जिसप्रकार मैं देवादिकों के निन्दनीय न होऊं वैसाही कीजिये ॥ २१ ॥ वैसेही हे पुत्रि ! धर्मशास्त्रोंमें पढ़ाजाताहुआ यह सुनागयाहै कि पिताके घरमें असंस्कृता (बिन व्याही हुई) जो कन्या रजको देखती है ॥ २२ ॥ उसके पिताको ब्रह्महत्या होती है और कन्या शूद्रिणी कहीगई है इसलिये हे पुत्रि ! मैं तुमको पठाताहूं स्वयंवर कीजिये॥२३॥वृद्ध मन्त्रियों समेत तुम निश्चय करनेके लिये शीघ्रही जावो ऐसाही होगा यह कहकर उस समय सावित्रीजी निकलीं ॥ २४ ॥ और वे

कालस्ते नहिकश्चिद्वृणोतिमाम् ॥ २० ॥ विचारयन्नपश्यामि वरंतुल्यमिहात्मनः ॥ देवादीनांयथावाच्यो नभवेयंतथाकुरु ॥ २१ ॥ पठ्यमानंतथापुत्रि धर्मशास्त्रेषुविश्रुतम् ॥ पितुर्गृहेतुयाकन्या रजःपश्यत्यसंस्कृता ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्यापितुस्तस्याः कन्यातुवृषलीस्थिता ॥ अतोहंप्रेषयामित्वां कुरुपुत्रिस्वयंवरम् ॥ २३ ॥वृद्धैरमात्यैस्सहिता शीघ्रंगच्छावधारितुम् ॥ एवमस्त्वितिसावित्री प्रोक्त्वातस्मिन्विनिर्ययौ ॥ २४ ॥ तपोवनानिरम्याणि राजर्षीणांजगाम सा ॥ मुनीनान्तत्रवृद्धानां कृत्वापादाभिवन्दनम् ॥ २५ ॥ ततोभिगम्यतीर्थानि सर्वाण्येवाश्रमाणिच ॥ आजगामपुनर्वेश्म सावित्रीसहमन्त्रिभिः ॥ २६ ॥ तत्रापश्यतदेवर्षिं नारदंपुरतःस्थितम् ॥ आसीनमासनेविप्रं प्रणम्यस्मितभाषिणी ॥ २७ ॥ कथयामासतत्कार्यं येनारण्यंगताभवत् ॥ २८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ आसीच्छाल्वेषुधर्मात्मा क्षत्रियःपृथिवीपतिः ॥ द्युमत्सेनइतिख्यातो दैवादन्धोबभूवसः ॥ २९ ॥ अन्धस्यराजपुत्रस्य नृपतेस्तस्यरुक्मिणा ॥ सामन्तेनहृ

सावित्रीजी राजर्षियों के सुन्दर तपोवनोंको गईं और वहां वृद्धमुनियों के चरणों को प्रणाम कर ॥ २५ ॥ तदनन्तर सब तीर्थों व आश्रमोंको जाकर फिर मन्त्रियों समेत सावित्रीजी घरको आईं ॥ २६ ॥ वहां आगे स्थित देवर्षि नारदजी को देखती भईं और आसन पै बैठेहुये विप्र नारदजी को प्रणामकर मुसक्यानपूर्वक बोलनेवाली सावित्रीजी ने ॥ २७ ॥ उस कार्यको कहा कि जिससे वनमें प्राप्तहुई थीं ॥ २८ ॥ सावित्रीजी बोलीं कि शाल्वदेशोंमें द्युमत्सेननामक धर्मात्मा क्षत्रिय हुआहै वह

भाग्यवशसे अन्धहोगया ॥ २९ ॥ उस राजपुत्र अन्धनृपति के राज्यको इस छिद्रमें पहले के वैरी रुक्मी राजाने हर लिया ॥ ३० ॥ और छोटे पुत्रवाली स्त्रीसमेत वह राजा वनको चलागया ॥ ३१ ॥ और वन में इस राजाके परमधर्मवान् सत्यवान् पुत्र पैदाहुआ वह मेरे अनुरूप पति मनसे चाहागया ॥ ३२ ॥ नारदजी बोले कि इसने शिशुतासे गुणवान् उस सत्यवान् को वरण कियाहै इसका पिता सत्यकहताहै व माता सत्य कहती है ॥ ३३ ॥ और यह सत्य कहता है इसलिये मुनियों ने सत्यवान् नाम किया अहो सावित्री ने राजाको बड़ाभारी कष्ट किया ॥ ३४ ॥ उसको सदैव अश्वप्यारे हैं और मिट्टी के अश्वोंको बनाता है व चित्रमें भी अश्वोंको लि-

तंराज्यं छिद्रेस्मिन्पूर्ववैरिणा ॥ ३० ॥ सबालवत्सयासार्द्धं भार्ययाप्रस्थितोवनम् ॥ ३१ ॥ बभूवास्यवनेराज्ञः पुत्रःपरमधार्मिकः ॥ सत्यवाननुरूपोमे भर्तेतिमनसेप्सितः ॥ ३२ ॥ नारदउवाच ॥ सबालभावादनया गुणवान्सत्यवान्वृतः ॥ सत्यंवदत्यस्यपिता सत्यंमाताप्रभाषते ॥ ३३ ॥ सत्यंवक्तीतिमुनिभिस्सत्यवान्नामवैकृतम् ॥ अहोवतमहत्कष्टं सावित्र्यानृपतेःकृतम् ॥ ३४ ॥ नित्यंचाश्वाःप्रियास्तस्य करोत्यश्वांश्चमृन्मयान् ॥ चित्रेप्यवलिखत्यश्वांश्चित्राश्व इतिचोच्यते ॥ ३५ ॥ सत्यवानितिदेवस्य शिक्षादानगुणैस्समः ॥ ब्रह्मण्यस्सत्यवादीच शिविरौशीनरोयथा ॥ ३६ ॥ ययातिरिवचोदारस्सोमवत्प्रियदर्शनः ॥ रूपेणान्यतमोश्विभ्यां द्युमत्सेनसुतोबली ॥ ३७ ॥ एकोदोषोस्तिनान्योस्य जन्मप्रभृतिपार्थिव ॥ संवत्सरेणक्षीणायुर्देहत्यागंकरिष्यति ॥ ३८ ॥ नारदस्यवचःश्रुत्वा कन्यांवैप्राहपार्थिवः ॥ पुत्रि सावित्रिगच्छत्वमन्यंवरयसत्पतिम् ॥ ३९ ॥ संवत्सरेणक्षीणायुर्देहत्यागंकरिष्यति ॥ ४० ॥ सावित्र्युवाच ॥ सकृ

खताहै इसकारण चित्राश्व ऐसा कहाजाता है ॥ ३५ ॥ और सत्यवान् ऐसा वह राजा शिक्षा, दान व गुणोंसे देवताके बराबरहै और जैसा कि उशीनर देशका राजा शिबि हुआ है वैसाही ब्रह्मण्य व सत्यवादी है ॥ ३६ ॥ और द्युमत्सेनका पुत्र ययाति की नाईं उदार है व चन्द्रमा की नाईं प्रियदर्शन है और रूपसे अश्विनीकुमार की नाईं है व बलवान् है ॥ ३७ ॥ हे राजन्! जन्मसे लगाकर इसके एक दोषहै अन्य नहीं है कि वर्षभरमें क्षीण आयुवाला यह शरीरको त्यागकरैगा ॥ ३८ ॥ नारद के वचन को सुनकर राजा कन्या से बोले कि हे सावित्रि, पुत्रि! जाइये अन्य उत्तम पतिको स्वीकार कीजिये ॥ ३९ ॥ क्योंकि क्षीण आयुर्बलवाला वह वर्षभरमें शरीर

वो त्याग करैगा ॥ ४० ॥ सावित्रीजी बोलीं कि राजालोग एकही बार कहते हैं व पण्डित एकही बार कहते हैं और कन्यायें एकही बार दीजाती हैं ये तीनों एकही एक बार होते हैं ॥ ४१ ॥ दीर्घायुहो अथवा अल्पायुहो सगुणहो या गुणहीन होवै मैंने एकबार पतिको स्वीकार किया है मैं दूसरेको नहीं वरणकरूंगी ॥ ४२ ॥ मनसे निश्चयकर तदनन्तर वचनसे कहाजाता है पश्चात् कर्मसे कियाजाता है उसीकारण मन प्रमाण है ॥ ४३ ॥ नारदजी बोले कि जो यह आपको प्याराहै तो शीघ्रही कीजिये और तुम्हारी कन्या सावित्री के देने में विघ्न न होवै ॥ ४४ ॥ ऐसा कहकर ऊपर कूदकर नारदजी स्वर्गको चलेगये और राजाने उत्तम मुहूर्तमें समीपही स्थित

कृज्जल्पन्तिराजानस्सकृज्जल्पन्तिपण्डिताः ॥ सकृत्कन्याःप्रदीयन्ते त्रीण्येतानिसकृत्सकृत् ॥ ४१ ॥ दीर्घायुरथवा ल्पायुस्सगुणोनिर्गुणोपिवा ॥ सकृद्वृत्तोमयाभर्त्ता नद्वितीयंवृणोम्यहम् ॥ ४२ ॥ मनसानिश्चयंकृत्वा ततोवाचाभिधीयते ॥ क्रियतेकर्मणापश्चात् प्रमाणंहिमनस्ततः ॥ ४३ ॥ नारदउवाच ॥ यदेतदिष्टंभवतश्शीघ्रमेवविधीयताम् ॥ अविघ्नमस्तुसावित्र्याः प्रदानेदुहितुस्तव ॥ ४४ ॥ एवमुक्त्वासमुत्पत्य नारदस्त्रिदिवङ्गतः ॥ राजातुदुहितुस्सर्वं वैवाहिकमथाकरोत् ॥ ४५ ॥ शुभेमुहूर्त्तेपार्श्वस्थैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ सावित्र्यपिचतंलब्ध्वा भर्त्तारंमनसेप्सितम् ॥ ४६ ॥ मुमुदेतीवसाबाला स्वर्गंप्राप्येवपुण्यकृत् ॥ एवंतत्राश्रमेतेषां सदानिवसतांसताम् ॥ ४७ ॥ कालस्तुपश्यतांकिञ्चिदतिक्रान्तोबभूवह ॥ सावित्र्याश्चिन्तमानायास्तिष्ठन्त्याश्चदिवानिशम् ॥ ४८ ॥ नारदेनयदुक्तंतद् वाक्यंमनसिवर्त्तते ॥ ततःकालेबहुतिथे व्यतिक्रान्तेकदाचन ॥ ४९ ॥ प्राप्तःकालःसमर्तव्यो यत्रसत्यवतःप्रिया ॥ ज्येष्ठेमासिसितेपक्षे द्वाद

वेदोंके पारगामी ब्राह्मणों के द्वारा कन्याके सब विवाह कार्यको किया और वे बालासावित्री भी मनसे चाहेहुये उस पतिको पाकर अत्यन्तही प्रसन्न हुईं जैसे कि पुण्यकारी पुरुष स्वर्गको पाकर प्रसन्न होताहै इसप्रकार सदैव निवास करते व भलीभांति देखतेहुये उन मुनियोंके उस आश्रम में कुछ समयव्यतीत हुआ और दिन रात चिन्ता करती टिकीहुई उस सावित्री के ॥ ४५ । ४६ । ४७ । ४८ ॥ मनमें वह वाक्य वर्तमान थीं कि जिसको नारदजी ने कहा था तदनन्तर बहुत ममय बीतने

पर किसीसमय ॥ ४९ ॥ वह मरनेका समय वहां प्राप्तहुआ जहां कि सत्यवान्‌की प्यारी सावित्रीथीं जेठ महीनेमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें सन्ध्याके समय ॥ ५० ॥ नारदजीसे कहेहुये वचनको हृदयमें गिनती हुई सावित्री को यह स्मरण हुआ कि चौथे दिन मरनाहै यह विचारकर सावित्रीजी ॥ ५१ ॥ त्रिरात्रव्रत को उद्देशकर दिनरात घरमें स्थितरहीं तदनन्तर त्रिरात्रव्रत को व्यतीत कर नहाकर व देवताओं को भलीभांति तृप्तकर ॥ ५२ ॥ सुन्दर हास्यवाली सावित्रीजीने सासु व श्वशुरके चरणोंको प्रणामकिया इसके बाद सत्यवान् फरसाको लेकर वनको चले ॥ ५३ ॥ और सावित्री भी जातेहुये पतिकेपीछे चलीं तदनन्तर फल,फुल, समिधा व कुशोंको

द्र्यांरजनीमुखे ॥ ५० ॥ गणयन्त्याश्चसावित्र्या नारदोक्तवचोहृदि ॥ चतुर्थेहनिमर्तव्यमितिसञ्चिन्त्यभामिनी ॥ ५१ ॥ व्रतंत्रिरात्रमुद्दिश्य दिवारात्रंस्थितालये ॥ ततस्त्रिरात्रंनिर्वर्त्य स्नात्वासन्तर्प्यदेवताः ॥ ५२ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववन्देचारुहासिनी ॥ अथप्रतस्थेपरशुं गृहीत्वासत्यवान्वनम् ॥ ५३ ॥ सावित्र्यपिचभर्त्तारं गच्छन्तंपृष्ठतोन्वगात् ॥ ततोगृहीत्वातरसा फलपुष्पसमित्कुशान् ॥ ५४ ॥ काष्ठानिशुष्कान्यादाय काष्ठभारमकल्पयत् ॥ ५५ ॥ अथवाहयतःकाष्ठं जाताशिरसिवेदना ॥ काष्ठभारंक्षणात्त्यक्त्वा वटशाखावलम्बितः ॥ ५६ ॥ सावित्रींप्राहशिरसो वेदनामांप्रबाधते ॥ तवोत्सङ्गेक्षणंतावत् स्वप्तुमिच्छामिसुन्दरि ॥ ५७ ॥ विश्रमत्वंमहाबाहो सावित्रीप्राहदुःखिता ॥ पश्चादपिगमिष्यामि आश्रमंश्रमनाशनम् ॥ ५८ ॥ यावदुत्सङ्गेकृत्वा शिरस्सुष्वापभूतले ॥ तावद्ददर्शसावित्री पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ॥ ५९ ॥ किरीटिनंपीतवस्त्रं साक्षात्सूर्यमिवोदितम् ॥ तमुवाचाथसावित्री प्रणम्यमधुराक्षरम् ॥ ६० ॥

शीघ्रतासे लेकर ॥ ५४ ॥ और सूखे काठोंको लेकर सत्यवान् ने लकड़ीका बोझबनाया ॥ ५५ ॥ इसके अनन्तर काष्ठको लिये जातेहुये सत्यवान् के मस्तकमें पीड़ा उत्पन्न हुई और क्षणभरमें लकड़ीके बोझको छोड़कर सत्यवान् बरगदकी शाखाके सहारे होगये ॥ ५६ ॥ व सावित्रीजीसे बोले कि मुझको मस्तककी पीड़ा दुःख देती है इसलिये हे सुन्दरि ! तबतक क्षणभर तुम्हारी गोदमें सोया चाहताहूं ॥ ५७ ॥ दुःखित होतीहुई सावित्रीजी बोलीं कि हे महाबाहो ! आप विश्राम कीजिये पश्चात् श्रमको नाशनेवाले आश्रमको चलूंगी ॥ ५८ ॥ जबतक शिरको गोदीमें करके सत्यवान् पृथ्वीमें सोरहे तबतक किरीट व पीले वसनको धारे साक्षात् उदयहुये सूर्य-

नारायणकी नाईं कृष्णपिंगल पुरुषको सावित्रीजी ने देखा इसके अनन्तर सावित्रीने उसको प्रणाम कर मीठे अक्षरों से कहा ॥ ५९ । ६० ॥ कि तुम कौन देवता या दैत्यहो जोकि मुझको धर्षण करने के लिये आये हो भक्तिके कारण मुझको कोई अपने धर्मसे अलग करने के लिये ॥ ६१ ॥ व हे पुरुषोत्तम ! जलतीहुई अग्नि की ज्वालाके समान स्पर्श करने के लिये समर्थ नहीं है ॥ ६२ ॥ यमराज बोले कि हे पतिव्रते ! सब लोकोंका भयंकर मैं दण्डदायक यमराजहूं तुम्हारे समीप क्षीण आयुवाला यह तुम्हारा पति ॥ ६३ ॥ यमदूतों से लेजाने के समर्थ नहीं है इसकारण मैं आपही आया ऐसा कहने पर सत्यवान् के शरीरसे फसरी से संयुत ॥ ६४ ॥

कस्त्वन्देवोथवादैत्यो योमान्धर्षितुमागतः ॥ नचाहंकेनचिद्भक्त्या स्वधर्मादवरोपितुम् ॥ ६१ ॥ स्प्रष्टुंवापुरुषश्रेष्ठ प्रदीप्ताग्निशिखामिव ॥ ६२ ॥ यमउवाच ॥ यमस्संयमिकश्चास्मि सर्वलोकभयङ्करः ॥ क्षीणायुरेवतेभर्त्ता सान्निध्ये तेपतिव्रते ॥ ६३ ॥ नशक्यःकिङ्करैर्नेतुमतोहंस्वयमागतः ॥ एवमुक्तेसत्यवतः शरीरात्पाशसंयुतम् ॥ ६४ ॥ अङ्गुष्ठमात्रंपुरुषं निष्क्रान्तञ्चददर्शसा॥अथप्रयातुमारेभे पन्थानंपितृस्वामिनः ॥६५॥ सावित्र्यपिवरारोहा पृष्ठतोनुजगामह ॥ पतिव्रतत्वाच्चाश्रान्तां तामुवाचयमस्तदा ॥ ६६ ॥निवर्तगच्छसावित्रि सुदूरंत्वमिहागता ॥ ६७ ॥ एषमार्गोविशालाक्षि नकेनाप्यनुगम्यते ॥ ६८ ॥ सावित्र्युवाच ॥ नश्रमोनचमेग्लानिः कदाचिदपिजायते ॥ भर्त्तारमेकमुत्सृज्य स्त्रीणांनान्यस्समाश्रयः ॥ ६९ ॥ एवमन्यैस्सुमधुरैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ॥ तुतोषसूर्यतनयः सावित्रींचेदमब्रवीत् ॥ ७० ॥ तुष्टोस्मितवभद्रन्ते वरंवरयतामिति ॥ साथवव्रेवरञ्चान्यद् विनयावनतात्मना ॥ ७१ ॥ चक्षुःप्राप्तिस्तथाराज्यं श्वशुरस्य

निकलेहुये अँगूठेभर पुरुषको उन सावित्रीजीने देखा इसके उपरान्त उसने पितरोंके स्वामी यमराजके मार्ग में चलने का प्रारंभ किया ॥ ६५ ॥ और उत्तम कटिवाली सावित्री भी पीछेसे चलीं तब पतिव्रत होनेसे न थकीहुई उस सावित्रीसे यमराज बोले ॥ ६६ ॥ कि हे सावित्रि ! लौटिये व जाइये तुम यहां बहुत दूरआईहो ॥६७ ॥ हे विशालाक्षि ! इस मार्गमें कोई भी नहीं चलताहै ॥ ६८ ॥ सावित्री बोलीं कि मेरे कभी श्रम व ग्लानि नहीं होतीहै एक पतिको छोड़कर स्त्रियोंको अन्य अवलंब नहीं होताहै ॥ ६९ ॥ इसप्रकार धर्मार्थ सहित अन्य मीठे वचनोंसे सूर्यनारायणके पुत्र यमराज प्रसन्नहुये और सावित्रीजीसे यह बोले ॥ ७० ॥ कि तुम्हारा कल्याण होवै मैं

तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं वरदानको मांगिये इसके अनन्तर विनय से नम्र आत्माकरके उस सावित्रीने पांच वरदानोंको मांगा ॥ ७१ ॥ कि महात्मा श्वशुरको नेत्र मिलैं व राज्य मिलै और पतिके जीवन व शाश्वती धर्मवृद्धिको मांगा ॥ ७२ ॥ और कहा कि पुत्ररहित मेरे पिताको विशेषकर पुत्रकी प्राप्तिहोवै धर्मराजने वरदान देकर तद-नन्तर उसको पठाया ॥ ७३ ॥ इसके अनन्तर पतिको पाकर प्रसन्नमनवाली सावित्रीजी आकुलता रहितहोकर पतिसमेत अपने आश्रम (स्थानको) चलीगई ॥ ७४ ॥ जेठकी पौर्णमासी में उसने इस व्रतको कियाहै मैंने इस राजाके सब माहात्म्यको कहा ॥ ७५ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे देव ! वह कैसा व्रत है कि जिसको सावित्री

महात्मनः ॥ जीवितञ्चतथाभर्तु धर्मवृद्धिञ्चशाश्वतीम् ॥ ७२ ॥ पितुर्ममसुतप्राप्तिरपुत्रस्यविशेषतः ॥ धर्मराजोवर न्दत्त्वा प्रेषयामासतान्ततः ॥ ७३ ॥ अथभर्त्तारमासाद्य सावित्रीहृष्टमानसा ॥ जगामस्वाश्रमपदं सहभर्त्तानिराकुला ॥ ७४ ॥ ज्येष्ठस्यपूर्णिमायान्तु तयाचीर्णंव्रतंत्विदम् ॥ माहात्म्यमस्यनृपतेः कथितंसकलम्मया ॥ ७५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कीदृशंतद्व्रतन्देव सावित्र्याचरितञ्चयत् ॥ तस्मिंस्तुज्येष्ठमासेतु विधानंतस्यकीदृशम् ॥ ७६ ॥ कादेवताव्रतेतस्मि न् केमन्त्राःकिंफलंविभो ॥ सविस्तरन्त्वन्देवेश ब्रूहिधर्मसनातनम् ॥ ७७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ श्रूयतान्देविदेवेशि सावि त्रीव्रतमादरात् ॥ कथयामियथाचीर्णं तयासत्यामहेश्वरि ॥ ७८ ॥ त्रयोदश्यान्तुज्येष्ठस्य दन्तधावनपूर्वकम् ॥ त्रि रात्रंनियमंकुर्यादुपवासस्यभामिनि ॥ ७९ ॥ अशक्तातुत्रयोदश्यां नक्तंकुर्याज्जितेन्द्रिया ॥ अयाचितंचतुर्दश्या मुपवासेनपूर्णिमा ॥ ८० ॥ नित्यंस्नात्वातडागेवा महानद्यांचनिर्झरे ॥ पाण्डुकूपेतुसुश्रोणि सर्वस्नानफलंलभेत् ॥ ८१ ॥

जीने कियाहै और उस जेठ महीने में उसकी कैसी विधि है ॥ ७६ ॥ हे विभो ! उस व्रतमें कौन देवता और कौन मन्त्र व कौन फलहै हे देवेश ! तुम विस्तारसमेत सनातनधर्मको कहो ॥ ७७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि, देवि ! सावित्री व्रतको आदरसे सुनिये हे महेश्वरि ! जिसप्रकार उन पतिव्रता सावित्री ने व्रत कियाहै उसको मैं कहताहूं ॥ ७८ ॥ कि हे भामिनि ! जेठकी तेरसि में दन्तधावनपूर्वक त्रिरात्र उपासका नियमकरै ॥ ७९ ॥ और असमर्थ स्त्री जितेन्द्रिय होकर तेरसि व्रत में नक्तव्रत करै और चौदसि तिथि मे अयाचित व्रत करै व पूर्णिमाको उपासकरै ॥ ८० ॥ हे सुश्रोणि ! नित्य तडाग या महानदी व झरना में नहाकर और पांडु-

कूपमें नहाकर स्त्री सब स्नानोंके फलको प्राप्त होती है ॥ ८१ ॥ पौर्णमासी तिथिमें सरसों, मिट्टी व जल से विशेषकर स्नानकरै हे महेश्वरि, महादेवि ! बालूको पात्रमें लेकर ॥ ८२ ॥ अथवा यव, धान और तिलादिक धान्यको लेकर तदनन्तर दो वस्त्रों से लपेटहुये बासके पात्रमें ॥ ८३ ॥ सब अंगों से शोभित सुवर्ण, चांदी व मिट्टी की भी सावित्री की मूर्तिको अपनी शक्तिके अनुसार बनाकर ॥ ८४ ॥ ब्रह्मा से संयुत सावित्रीको दो लाल वसन देवै इसप्रकार ब्रह्मा समेत सावित्री को शक्तिके अनुसार पूजन करै ॥ ८५ ॥ चन्दन व सुगन्धित फूल, धूप, दीप, नैवेद्य और परवर या लटजीराके फूलोंसे तथा कूष्माण्ड व ककरीके फलोंसे पूजै ॥ ८६ ॥ और खजूर

विशेषात्पूर्णमास्यान्तु स्नानंसर्षपमृज्जलैः ॥ गृहीत्वाबालुकांपात्रे महादेविमहेश्वरि ॥ ८२ ॥ अथवाधान्यमादाय यवशालितिलादिकम् ॥ ततोवंशमयेपात्रे वस्त्रयुग्मेनवेष्टिते ॥ ८३ ॥ सावित्रीप्रतिमांकृत्वा सर्वावयवशोभिताम् ॥ सौवर्णींराजतींवापि स्वशक्त्यामृन्मयीमपि ॥ ८४ ॥ रक्तवस्त्रयुगंदद्यात्सावित्रींब्रह्मणान्विताम् ॥ सावित्रींब्रह्मणासार्द्धमेवंशक्त्याप्रपूजयेत ॥ ८५ ॥ गन्धैस्सुगन्धपुष्पैश्च धूपनैवेद्यदीपकैः ॥ तथाकोशातकैःपुष्पैः कूष्माण्डैःकर्कटीफलैः॥ ८६ ॥ नालिकेरैस्सखर्जूरैः कपित्थैर्दाडिमैश्शुभैः ॥ जम्बूजम्बीरनारङ्गैः कङ्कोलैःपनसैस्तथा ॥ ८७ ॥ जीरकैश्चैवखण्डैश्च गुडेनलवणेनच ॥ चिर्भटैस्सप्तधान्यैश्च वंशपात्रप्रकल्पितैः ॥ ८८ ॥ रञ्जयेत्कण्ठसूत्रञ्च शुभैःकुङ्कुमकेशरैः ॥ अवतारंकरोत्येवं सावित्रीब्रह्मणःप्रिया ॥ ८९ ॥ तामर्चयेत्तुमन्त्रेण सावित्रींब्रह्मणासमम् ॥ इतरेषांपुराणानां मन्त्रोत्रसमुदाहृतः ॥ ९० ॥ ओङ्कारपूर्वकादेवी वीणापुस्तकधारिणी ॥ देव्यम्बिकेनमस्तेस्तु अवैधव्यंप्रयच्छमे ॥ ९१ ॥ एवंसम्पू

समेत नारियल, कैथा व उत्तम अनारोंसे पूजै और फरेंद, जंमीरी निम्बू, नारंगी कंकोल याने शीतलचीनी व कटहरों से पूजै ॥ ८७ ॥ और जीरक, खांड़, गुड़ व लोन और बासके पात्रमें धरेहुये चिर्भट व सप्तधान्यों से पूजै ॥ ८८ ॥ और उत्तम कुंकुम व केशरसे कण्ठसूत्रको रंगै इसप्रकार ब्रह्माकी प्यारी सावित्रीजी अवतार करती हैं ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा समेत उन सावित्रीजी को मन्त्रसे पूजै यहां अन्य पुराणों में कहाहुआ मन्त्र कहागया है ॥ ९० ॥ कि हे अम्बिके, देवि ! वीणा व पुस्तक को धारणकरने-

वाली ॐकारपूर्वक तुम देवीहो तुम्हारे लिये नमस्कार है मुझको अवैधव्य दीजिये ॥ ९१ ॥ इसप्रकार विधिपूर्वक भलीभांति पूजकर वहां स्त्री पुरुषोंके गणों समेत गाने बजाने के शब्दसे जागरण करै ॥ ९२ ॥ और वहां नाचते व हँसतेहुये शास्त्रकी कथाओं से रात्रिको बितावै और द्विजोत्तमों से सावित्री की कथाको बंचावै ॥ ९३ ॥ जबतक प्रातःकाल होवै तबतक गीतों के भाव व रसोंसमेत रात्रि व्यतीतकरै इसप्रकार ब्रह्माके साथ सावित्रीजी का व्याहकर ॥ ९४ ॥ सात स्त्री पुरुषोंको सपेद वस्त्रों को पहनाकर सब सामग्री समेत गृहदान देनाचाहिये ॥ ९५ ॥ इसके अनन्तर सावित्रीकल्पके जाननेवाले व सावित्रीकी कथाको बांचनेवाले वेदज्ञ ब्राह्मणके लिये

र्यविधिवज्जागरंतत्रकारयेत् ॥ गीतवादित्रशब्देन नरनारीकदम्बकैः ॥ ९२ ॥ नृत्यन्हसन्नयेद्रात्रिं तत्रशास्त्रक थानकैः ॥ सावित्र्याख्यानकेनापि वाचयीतद्विजोत्तमैः ॥ ९३ ॥ यावत्प्रभातसमयो गीतभावरसैस्सह ॥ विवाहमेवंकृ त्वातु सावित्र्याब्रह्मणासह ॥ ९४ ॥ परिधाप्यसितैर्वस्त्रैर्दम्पतीनान्तुसप्तकम् ॥ गृहदानन्तुदातव्यं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ९५ ॥ ब्राह्मणेवेदविदुषे सावित्रींविनिवेदयेत् ॥ अथसावित्रिकल्पज्ञे सावित्र्याख्यानवाचके ॥ ९६ ॥ दैवज्ञेकृच्छ्रवृत्ति स्थे दरिद्रेचाग्निहोत्रिणे ॥ एवंदत्त्वाविधानेन तस्यांरात्रौनिमन्त्रयेत् ॥ ९७ ॥ पौर्णमास्यांवटाधस्था दम्पतीनाञ्च तुर्दश ॥ ततःप्रभातसमये उषःकालेह्युपस्थिते ॥ ९८ ॥ भक्ष्यभोज्यादिकंसर्वं सावित्रीस्थलमानयेत् ॥ पाकंकृत्वा तुशुचिना रत्नांकृत्वाप्रयत्नतः ॥ ९९ ॥ ब्राह्मणान्गृहिणीयुक्तांस्ततआह्वानयेत्सुधीः ॥ सावित्र्याःपुरतोदेवि दम्पत्योर्भो जनंददेत् ॥ १०० ॥ तेनाहंभोजितस्तत्र भवामीहनसंशयः ॥ द्वितीयंभोजयेद्यस्तु भोजितस्तेनकेशवः ॥ १ ॥ लक्ष्म्या

सावित्रीजीको निवेदन करै ॥ ९६ ॥ व कृच्छ्रजीविका में स्थित विद्वान् तथा निर्धन अग्निहोत्री ब्राह्मणके निमित्त सावित्रीको देवै इसप्रकार विधिसे देकर उस रातमें निमन्त्रणकरै ॥ ९७ ॥ पौर्णमासी तिथिमें बरगदके नीचे बैठीहुई स्त्री चौदह स्त्री पुरुषोंको निमन्त्रणकरै तदनन्तर प्रातःकाल प्रभात समय प्राप्तहोने पर ॥९८॥ सब भक्ष्यभोज्यादिक को सावित्री के स्थलमें लावै और पवित्रतासे रसोई बनाकर बड़ेयत्नसे रखाकर ॥ ९९ ॥ तदनन्तर विद्वान् स्त्रियोंसमेत ब्राह्मणोंको बुलावै व हे दे॰! सावित्रीजीके आगे जो स्त्री पुरुषोंको भोजन देताहै ॥ १०० ॥ वहांपर उससे मैं निस्सन्देह भोजित होताहूं और जो दूसरे ब्राह्मणको भोजन कराताहै उसने विष्णुजी

को भोजन कराना ॥ १ ॥ और लक्ष्मीके सहायक श्रीविष्णुजी उसको वरदानों को देते हैं और तीसरा ब्राह्मण भोजन करानेपर सावित्री समेत ब्रह्माजी भोजित होते हैं ॥ २ ॥ वहां एक एक ब्राह्मणको भोजन कराना करोड़ ब्राह्मणों के भोजन के समान कहागया है अठारह प्रकार से भक्ष्यभोज्यों करके उत्तम भोजनको ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! जो वहां सावित्री स्थलके समीपदेताहै उसके वंशमें बन्ध्या व दुर्भगा कभी नहीं होतीहै ॥ ४ ॥ और वह कन्या और माता नहीं होतीहै कि जो पतिको प्यारी न होवै और स्त्रियोंके आठ दोष कभी नहीं होतेहैं ॥ ५ ॥ इसलिये हे देवि ! सावित्रीजी के आगे सदैव कडुवे व तैलसे रहित भोजनको बड़े यत्नसे देना चाहिये ॥ ६ ॥

स्सहायोवरदो वरांस्तस्यप्रयच्छति ॥ सावित्र्यासहितोब्रह्मा तृतीयेभोजितेभवेत् ॥ २ ॥ एकैकंभोजनंतत्र कोटिभोज समंस्मृतम् ॥ अष्टादशप्रकारेण भक्ष्यभोज्यैस्सुभोजनम् ॥ ३ ॥ दद्यात्तत्रमहादेवि सावित्रीस्थलसन्निधौ ॥ नस्यात्त स्यकुलेबन्ध्या नकदाचिच्चदुर्भगा ॥ ४ ॥ नकन्याजननीचापि भर्तुर्यानैववल्लभा ॥ अष्टौदोषास्तुनारीणां नभवन्ति कदाचन ॥ ५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सावित्र्याग्रेचभोजनम् ॥ दातव्यंसर्वदादेवि कटुतैलविवर्ज्जितम् ॥ ६ ॥ नचाम्लं नचवैक्षारं स्त्रीणांभोज्यंकदाचन ॥ पञ्चप्रकारंमधुरं हृद्यंसर्वंसुसंस्कृतम् ॥ ७ ॥ घृतपूर्णाःपूपकाश्च बहुक्षीरसमन्विताः ॥ चतुर्थश्चैवसंयावो गुडाज्याभ्यांसमन्वितः ॥ ८ ॥ पूपकास्तादृशाःकार्या द्वितीयाशोकवर्त्तिका ॥ आह्लादकारिणी पुंसां स्त्रीणांचातीववल्लभा ॥ ९ ॥ धनधान्यजनोपेता नरनारीसमाकुला ॥ पूर्यतेचकुलंतस्याः सदावैनात्रसं शयः ॥ १० ॥ नज्वरोनचसन्तापो दुःखंनचनियोगता ॥ अशोकवर्त्तिदानेन कुलानामेकविंशतिः ॥ ११ ॥ बन्धुभि

और कभी स्त्रियोंको खट्टा व क्षार भोजन न देना चाहिये बरन पांचप्रकारका मधुर और मनोहर व सब भलीभांति बनायाहुआ भोजन देना चाहिये ॥ ७ ॥ घीसे पूरित और बहुत दूधसे संयुत पुवा देना चाहिये और गुड़ व घीसे संयुत चौथा संयाव (गुझिया) देना चाहिये ॥ ८ ॥ वैसे पुवोंको बनवाना चाहिये और दूसरी अशो- कवर्तिका बनवाना चाहिये जोकि पुरुषों को आनन्दकारिणी व स्त्रियोंको बहुतही प्यारी होती है ॥ ९ ॥ जो स्त्री ऐसा करती है वह धन, धान्य व मनुष्यों से पूर्ण व स्त्री पुरुषों से संयुत होती है और उसका वंश सदैव पूर्ण रहता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १० ॥ और अशोकवर्त्तिकाके दानसे इक्कीस कुलतक न ज्वर होता है न

सन्ताप होताहै और न दुःख होताहै न वियोग होताहै ॥ ११ ॥ जो स्त्री पुत्रोंको देतीहै उसका वंश भाई,पुत्र व अमित दास,दासियोंसे पूर्ण होताहै ॥ १२ ॥ इसप्रकार बहुत समयतक पुत्र, पशु व बन्धुवों समेत रहती है और उसके वंशमें कभी वैधव्यता नहीं होती है ॥ १३ ॥ व मोदकोंके देने से सब वंश प्रसन्न रहता है व सब सिद्धियों से पूर्ण होताहै ऐमा ब्रह्माजी ने कहाहै ॥ १४ ॥ व हे देवि ! यह भोजन गौरीकन्याओंको उत्तम है हे देवि ! संयाव (गुझिया) के भोजनसे स्त्री प्रत्येक जन्म में सुभगा, पुत्रवती, पतिव्रता और धन व ऋद्धियोंसे संयुत होतीहै और सरसजल से खांड़ से बनाया हुआ उत्तम ॥ १५ । १६ ॥ पीने के योग्य पदार्थ सुभगा

श्वसुतैश्चैव दासीदासैरनन्तकैः ॥ पूरितश्च कुलंतस्याः पूपकान्याप्रयच्छति ॥ १२ ॥ एवन्तुसुचिरंकालं सपुत्रपशुबान्धवैः ॥ नवैधव्यंभवेत्तस्याः कदाचिदपिसन्ततौ ॥ १३ ॥ मोदतेचकुलंसर्वं सर्वसिद्धिप्रपूरितम् ॥ मोदकानांप्रदानेन एवमाहपितामहः ॥ १४ ॥ एतच्चगौरिकाणांतु भोजनंदेविशिष्यते ॥ सुभगापुत्रिणीसाध्वी धनऋद्धिसमन्विता ॥ १५ ॥ संयावभोजनाद्देवि भवेज्जन्मनिजन्मनि ॥ सरसेनतुतोयेन कृतंखण्डेनवैशुभम् ॥ १६ ॥ सुवासिनीनांपेयंवै दातव्यंच द्विजन्मनाम् ॥ इतरैरितराण्येव वर्णयोग्यानियानिच ॥ १७ ॥ सुस्निग्धानिचपानानि तासुयोग्यानिदापयेत् ॥ प्रतिपूज्य विधानेन वस्त्रदानैस्सकञ्चुकैः ॥ १८ ॥ कुङ्कुमेनानुलिप्ताङ्गाः स्रग्दामाभिरलंकृताः ॥ गन्धधूपैःकृतानन्दा नालिकेरान्प्रदापयेत् ॥ १९ ॥ अक्षिणीचाञ्जनंकृत्वा सिन्दूरंचैवमस्तके ॥ पूगीफलानिदेयानि वासितानिमृदूनिच ॥ २० ॥ हस्ते दत्त्वासुपात्राणि प्रणिप्रत्यविसर्ज्जयेत् ॥ स्वयन्तुभोजयेत्पश्चाद्बन्धुभिर्बालकैस्सह ॥ २१ ॥ अथवानैवसम्पद्येत्तीर्थेचे

स्त्रियों व ब्राह्मणों को देनाचाहिये और अन्य वस्तुवों से वर्णके योग्य जो अन्य ॥ १७ ॥ सुस्निग्ध (सरस) पान हैं उन योग्य पीनेके पदार्थोंको स्त्रियोंको देनाचाहिये और विधिसे कंचुकी (चोली) समेत वसन के दानों से पूजकर ॥ १८ ॥ और कुंकुमसे लिप्त चन्दनवाली तथा मालाओं से भूषित व चन्दन, धूप से कियेहुये आनन्दवाली स्त्रियोंको नारियल देवै ॥ १९ ॥ व आंखोंको आँजकर मस्तकमें सिन्दूर देकर वासित व कोमल सुपारियोंको देना चाहिये ॥ २० ॥ और हाथ में उत्तम पात्रों को देकर प्रणामकर बिदाकरै पश्चात् बन्धुवों व बालकों समेत आप भोजनकरै ॥ २१ ॥ अथवा तीर्थमें भोजन न सिद्ध होवै तो घरको जाकर देनाचाहिये कि जिसप्र-

कार देवी सावित्रीजी प्रसन्नहोवैं ॥ २२ ॥ इसीप्रकार अपने घरमें आकर पिंडदानपूर्वक विधिसे पितरोंका श्राद्धकरै ॥ २३ ॥ उसके पितर प्रसन्न होते हैं यह ब्रह्माने कहा है हे शुभे ! अपने घरमें भोजन देतेहुये पुरुषको तीर्थसे आठगुना पुण्य होताहै ॥ २४ ॥ और ब्राह्मणोंसे दियेहुये श्राद्धको नीच न देखैं क्योंकि एकान्त तथा गुप्तघरमें पितरों का श्राद्ध कियाजाता है ॥ २५ ॥ और नीचों से देखाहुआ वह श्राद्ध नष्ट होजाता है व पितरोंके समीप नहीं प्राप्तहोता हैं इसलिये सब यत्नसे गुप्त श्राद्ध करै ॥ २६ ॥ क्योंकि उसको आपही ब्रह्मा ने पितरोंकी तृप्तिदायक कहा है और जो गौरीभोजनादिक है वह भद्रा के संगम में कहागया है ॥ २७ ॥ हे देवि ! पश्चिमदिशा

वतुभोजनम् ॥ गृहेगत्वाप्रदातव्यं तुष्टादेवीयथाभवेत् ॥ २२ ॥ एवमेवपितॄणाञ्च आगत्यस्वेचमन्दिरे ॥ पिण्डप्रदानपूर्वंतु श्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ २३ ॥ पितरस्तस्यतुष्टाःस्युर्भवन्तिब्रह्मणोदितम् ॥ तीर्थादष्टगुणंपुण्यं स्वगृहेददतश्शुभे ॥ २४ ॥ नैवपश्यन्तिवैनीचाः श्राद्धंदत्तंद्विजातिभिः ॥ एकान्तेतुगृहेगुप्ते पितॄणांश्राद्धमिष्यते ॥ २५ ॥ नीचैर्दृष्टंहतन्तत्तु पितॄणांनोपतिष्ठति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंगुप्तञ्चकारयेत् ॥ २६ ॥ पितॄणांतृप्तिदंप्रोक्तं स्वयमेवस्वयंभुवा ॥ गौरीभोजादिकंयत्तु भद्रायास्सङ्गमेस्मृतम् ॥ २७ ॥ पश्चिमाशांसमासाद्य सङ्गमस्समुदाहृतः ॥ यत्पुण्यंलभतेदेवि पूर्वपश्चिमसङ्गमे ॥ २८ ॥ गङ्गासागरयोस्तत्र तद्भद्रासङ्गमेलभेत् ॥ १२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसावित्रीश्वरमाहात्म्यन्नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच ॥ भगवन्देवदेवेश संसारार्णवतारक ॥ पृच्छामित्वामहंभक्त्या किञ्चित्कौतूहलात्पुनः ॥ १ ॥ यत्त्वयाक

को प्राप्तहोकर संगम कहागया है जो पुण्य गंगा व समुद्रके पूर्व व पश्चिमके संगम में मिलताहै उसको मनुष्य वहां भद्राके संगममें प्राप्तहोताहै ॥ २८ । १२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसावित्रीश्वरमाहात्म्यंनामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६१ ॥ ॥

दो० । यथा अमित परभावयुत तलस्वामि माहात्म्य । इकसौ बासठि में सोई कह्यो चरित याथात्म्य ॥ देवी पार्वतीजी बोलीं कि हे संसाररूपीसमुद्र के उतारने-

वाले, देवदेवेश, भगवन्! मैं कौतुकके कारण फिर तुमसे भक्तिसे कुछ पूछती हूं ॥ १ ॥ हे देव! जो तुमने तलस्वामी के माहात्म्यको कहा हे देव! उसमें क्याकारण है कि जिससे तल मारागया ॥ २ ॥ यह तल कौन कहागया है और किसप्रभाव व किस पराक्रमवाला वह किस स्थानसे पैदाहुआ और किसभांति उत्पन्न हुआ इस को मुझसे कहिये ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि! सुनिये मैं पापनाशक चरित्रको कहताहूं जो किसी से नहीं कहागया है उसको संपूर्णतासे मैं तुमसे कहता हूं ॥ ४ ॥ कि जिस तलकी उत्पत्तिके कारणको देवता भी नहीं जानते हैं हे देवि! पहले सतयुगमें गोविन्द ऐसा नाम कहागयाहै ॥ ५ ॥ और त्रेतामें वामनस्वामी

थितन्देव तलस्वामिमहोदयम् ॥ किंतत्रकारणन्देव तलोयेननिपातितः ॥ २ ॥ कोसौतलस्समाख्यातः किंवीर्यःकिं पराक्रमः ॥ कस्मात्स्थानात्समुत्पन्नः कथंजातश्चमेवद ॥ ३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि रहस्यंपापनाशन म् ॥ यन्नकस्यचिदाख्यातं तत्तेवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ४ ॥ यद्देवापिनजानन्ति तलस्योत्पत्तिकारणम् ॥ पूर्वंकृतयुगेदेवि गोविन्देतिप्रकीर्त्तितम् ॥ ५ ॥ त्रेतायांवामनस्वामी स्तुतिस्वामीतृतीयके ॥ कलौयुगेमहादेवि तलस्वामीप्रकीर्तितः॥ ६ ॥ तथातप्तोदकस्वामी तस्यनामान्तरंप्रिये ॥ अधुनासम्प्रवक्ष्यामि तलोत्पत्तिंतवप्रिये ॥ ७ ॥ आसीन्महेन्द्रनामा च दानवोरौद्ररूपधृक् ॥ कोटिवर्षाणितेनैव तपस्तप्तंसुरप्रिये ॥ ८ ॥ सतपोबलमाविष्टो जिग्येदेवान्सवासवान् ॥ जित्वादेवांस्ततस्सर्वांस्ततःकालेसमागतः ॥ ९ ॥ युद्धंचप्रार्थयामास मयासार्द्धंसुभीषणम् ॥ ततोभवन्महायुद्धं ब्रह्माण्ड क्षयकारकम् ॥ १० ॥ ततःकोपान्महायुद्धे ममदेहाद्वरानने ॥ ज्वालातत्रसमुत्पन्ना तन्मध्येसतलोभवत् ॥ ११ ॥ तेनदृ

व तीसरे द्वापरयुग में स्तुतिस्वामी कहागया है व हे महादेवि! कलियुगमें तलस्वामी कहेगये हैं ॥ ६ ॥ वैसेही हे प्रिये! उनका तप्तोदकस्वामी दूसरा नाम है हे प्रिये! इस समय मैं तुमसे तलकी उत्पत्तिको कहताहूं ॥ ७ ॥ हे सुरप्रिये! भयंकररूपको धारनेवाला महेन्द्र नामक दानव हुआ है उसने करोड वर्षों तक तप किया है ॥ ८ ॥ और तपस्याके बल में प्राप्त उसने इन्द्र समेत देवताओं को जीतलिया तदनन्तर सब देवताओंको जीतकर उसके उपरान्त वह समय में प्राप्तहुआ ॥ ९ ॥ और मेरे साथ उसने भयंकर युद्धको मागा तदनन्तर ब्रह्माण्ड को क्षय करनेवाला बड़ाभारी युद्धहुआ ॥ १० ॥ तदनन्तर हे वरानने! महायुद्ध में क्रोधके कारण मेरे

शरीर से वहां ज्वाला पैदाहुई उसीके बीचमें वह तल हुआ ॥ ११ ॥ उसने पर्वत की कन्दरा में आश्रमवाले इस गर्जतेहुये इन्द्रको देखा व कहा कि हे मूढ़ ! क्यों गरजता है मेरे साथ युद्ध कीजिये ॥ १२ ॥ ऐसा कहने पर हे देवेशि ! वहां युद्धवर्तमान हुआ तदनन्तर उस समय तल व इन्द्रका युद्ध वर्तमान होने पर ॥ १३ ॥ शिवजी के पराक्रमसे संयुत उदारकर्मवाले बलवान् तलने मल्लयुद्ध (कुश्ती) से इन्द्रको गिरा दिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर उन इन्द्रको गिरेहुये जानकर वह तल विस्मयको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उससमय प्राणोंसे विहीन इन्द्रको जानकर उसने प्रसन्नतासे नृत्यकिया ॥ १५ ॥ हे वरारोहे ! उसके नाचनेपर उसके बलसे व

ष्टोमहेन्द्रोसौ गर्जद्गिरिगुहाश्रमः ॥ कथंगर्जसिरेमूढ कुरुयुद्धंमयासह ॥ १२ ॥ इत्युक्तेतनदेवेशि तत्रयुद्धंप्रवर्त्तत ॥ ततःप्रवर्त्तितेयुद्धे तलमाहेन्द्रयोस्तदा ॥ १३ ॥ रुद्रवीर्ययुतेनैव तलेनोदारकर्मणा ॥ मल्लयुद्धेनबलिना महेन्द्रोविनिपातितः ॥ १४ ॥ ततस्तंपतितन्दृष्ट्वा विस्मयंसतलोगतः ॥ गतप्राणंतदाज्ञात्वा हर्षनृत्यमथाकरोत ॥ १५ ॥ तस्मिन्सं नृत्यमानेतु सर्वस्थावरजङ्गमम् ॥ चकम्पेतुवरारोहे प्रभावात्तस्यवीर्यतः ॥ १६ ॥ ततोभारभराक्रान्ता पृथिवीचापिपीडिता ॥ अतीवभयसन्त्रस्ता सदेवासुरमानुषा ॥ १७ ॥ क्षुभितागिरयस्सर्वे विद्रुतोलवणार्णवः ॥ तरवोनिधनंजग्मुर्न द्यश्चक्षुभितास्तथा ॥१८॥ गतप्रभावाःसूर्याद्याज्योतींषिनांवरेजिरे ॥ त्रैलोक्यंव्याकुलीभूतं तलनृत्यप्रभावतः ॥ १९ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे शरणंरुद्रमाययुः ॥ वृत्तंयथावत्कथितं ततोरुद्रउवाचतान् ॥ २० ॥ अवध्योमेतलोदेवाः पुत्रत्वेहि प्रतिष्ठितः ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशं प्रभासक्षेत्रवासिनम् ॥ २१ ॥ स्तुतिस्वामीतिनामानं स्तुतंदुर्वाससापुरा ॥ प्रभासाक्षेत्र

प्रभावसे सब स्थावर जंगम कांपउठा ॥ १६ ॥ तदनन्तर भारके बोझसे घिरीहुई देवता, दैत्य व मानुषों समेत पृथ्वी भी बहुतही डरसे त्रस्तहोकर पीड़ित हुई ॥ १७ ॥ और सब पहाड़ क्षोभितहुये व लवणसमुद्र क्षोभित हुआ और वृक्ष नाशको प्राप्तहुये व नदियां क्षोभितहुईं ॥ १८ ॥ और सूर्यादिक प्रभावहीन होगये व नक्षत्र नहीं शोभित हुये और तलके नृत्यके प्रभावसे त्रिलोक व्याकुल होगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर सब देवगण शिवजी की शरणमें गये और जैसा हाल था उसको कहा तदनन्तर शिवजी उनसे बोले ॥ २० ॥ कि हे देवताओ ! पुत्रता में स्थापित तल मेरे अवध्यहै ऐसा कहकर यह कहा कि प्रभासक्षेत्रके निवासी हृषीकेशके समीप जावो ॥ २१ ॥

पुरातन समय दुर्वासाजी से स्तुति कियेहुये जो स्तुतिस्वामी ऐसे नामक जहां प्रभासक्षेत्रकी सीमाके पूर्वभाग में स्थित हैं ॥ २२ ॥ हे देवताओ ! तप्तकुण्डके समीप वहां जाइये प्रतिकल्पमें उन्हीं विष्णुजी से यह दानव माराजाता है ॥ २३ ॥ उस समय ऐसा कहेहुये देवता प्रभासक्षेत्रको आये और वे वहां गये जहां कि वह तप्तोदक था ॥ २४ ॥ वहां पर श्रद्धा से संयुत देवताओं ने नारायण देवको देखकर बड़ीभक्ति से उन नारायण देवकी स्तुति किया ॥ २५ ॥ तदनन्तर हे महादेवि, प्रिये ! विष्णुजीने तलको मारडाला वे सावित्री जननी कीर्तिको देनेवाली राजसी कहीगई हैं ॥ २६ ॥ अपने हितको चाहनेवाले पुरुषको सदैव यह दान देनाचाहिये

सीमायाः पूर्वभागेप्रतिष्ठितम् ॥ २२ ॥ तप्तकुण्डोदसामीप्ये तत्रगच्छतभोसुराः ॥ कल्पेकल्पेतुतेनैव वध्यतेसोहि दानवः ॥ २३ ॥ एवमुक्तास्तदादेवाः प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ तत्रतेविबुधाजग्मुर्यत्रतप्तोदकोहिसः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वानारायणन्देवं तत्रश्रद्धासमन्विताः ॥ तुष्टुवुःपरयाभक्त्या देवंनारायणंहरिम् ॥ २५ ॥ ततोविष्णुर्महादेवि तलंनिहतवान्प्रिये ॥ राजसीसासमाख्याता जननीकीर्त्तिदायिनी ॥ २६ ॥ इदंदानंसदादेयमात्मनोहितमिच्छता ॥ श्राद्धेचैव विशेषेण यदीच्छेत्सात्त्विकंफलम् ॥ २७ ॥ इदमुद्यापनन्देवि सावित्र्याश्चव्रतस्यतु ॥ सर्वपातकशुद्ध्यर्थं कार्यन्देविनरैस्सदा ॥ २८ ॥ अकामतःकामतोवा पापंनश्यतितत्क्षणात् ॥ इहलोकेचसौभाग्यं धनधान्यवरस्त्रियः ॥ २९ ॥ भवन्तिविविधास्तस्य यैर्यात्रास्तत्रसत्कृता ॥ इदंयात्राविधानंयः सावित्र्याःकुरुतेनरः ॥ ३० ॥ शृणोतिवासपापेभ्यस्सर्वैरेवप्रमुच्यते ॥ ज्येष्ठस्यपौर्णमास्यान्तु सावित्रीस्थलकंशुभे ॥ ३१ ॥ प्रदक्षिणांयःकुरुते फलदानैर्यथाविधि ॥ अ

यदि सात्त्विकफलको चाहै तो विशेषकर श्राद्ध में इसदान को देवै ॥ २७ ॥ हेदेवि ! सावित्री व्रतका यह उद्यापनहै हे देवि ! सब पातकोंकी शुद्धिके लिये मनुष्योंको सदैव यह करना चाहिये ॥ २८ ॥ जो मनुष्य कामना से या बिनकामना से इस को करता है उसका पाप उसीक्षण नाशहोजाता है और इस लोक में उसके सौभाग्य, धन और अन्न व अनेक प्रकारकी उत्तम स्त्रियांहोती हैं कि जिन्होंने वहां यात्राको भलीभांति कियाहै जो मनुष्य सावित्रीजीकी इसयात्राकी विधिको करताहै ॥ २९ । ३० ॥ अथवा जो सुनताहै वह सबही पातकों से छूटजाता है हे शुभे ! जेठ की पौर्णमासी में सावित्री स्थलकी ॥ ३१ ॥ जो विधिपूर्वक फलदानों से एकसौ आठ

प्रदक्षिणा करता है अथवा उसकी आधी या उसकी आधी प्रदक्षिणाओं को करताहै उसके सब पाप नष्टहोजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे देवि ! वहां जाकर जो मनुष्य प्रदक्षिणा करता है तो जिन मनुष्योंने ज्ञान से अगम्य स्त्री से प्रसंग किया है ॥ ३३ ॥ उन का वह पाप और अन्य पातक नाशहोजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है और सावित्री के स्थल में जाकर जो सन्ध्योपासन करते हैं ॥ ३४ ॥ और पैंतियों को हाथों में पहनकर जो पाण्डुकूपके जलसे सन्ध्योपासन करते हैं व हे भामिनि ! सोने की व मिट्टी की झारी से ॥ ३५ ॥ उस पवित्र जलको लाकर जो सन्ध्योपासन करता है हे देवि ! उसने बारह वर्षतक सन्ध्योपासन किया ॥ ३६ ॥ स्नान में अश्वमेध का

ष्टोत्तरशतेनापि तदर्द्धाश्चतदर्द्धकाः ॥ ३२ ॥ यःकरोतिनरोदेवि गत्वातत्रप्रदक्षिणाम् ॥ अगम्यागमनंयैस्तु कृतंज्ञानाच्चमानवैः ॥ ३३ ॥ अन्यानिपातकान्येव नश्यन्तेनात्रसंशयः ॥ येगत्वास्थलकेसन्ध्यां सावित्र्यास्समुपासते ॥ ३४ ॥ पवित्रीहस्तिनःकुर्युः पाण्डुकूपजलेनतु ॥ भृङ्गारकेनहैमेन मृन्मयेनाथभामिनि ॥ ३५ ॥ आनीयतज्जलंपुण्यं सन्ध्योपास्तिकरोतियः ॥ तेनद्वादशवर्षाणि देविसन्ध्याउपासिता ॥ ३६ ॥ अश्वमेधफलंस्नाने दानेदशगुणंतथा ॥ उपवासेत्वनन्तञ्च कथायाःश्रवणेतथा ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सावित्रीमाहात्म्यन्नामद्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रस्थांभूतमातृकाम् ॥ सावित्र्यावारुणेभागे शतधन्वन्तरेस्थिताम् ॥१॥ नवकोटिगणैर्युक्तां भूतप्रेतसमाकुलाम् ॥ देव्युवाच ॥ गायन्नृत्यन्हसल्ँलोके सर्वतःपरिधावति ॥ २ ॥ उन्मत्तवत्प्रलपति

फलहोता है और दानमें उससे दशगुना होताहै तथा उपवास में व कथा के सुनने में अमित फलहोता है ॥ ३७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायासावित्रीमाहात्म्यंनामद्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६२ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । अहै प्रभासक्षेत्रमें भूतमातृका देवि । एकसौ तिरसठिमें सोई चरितकह्यो सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहीं स्थित भूतमातृका के समीप जावै जो कि सावित्रीके पश्चिमभाग में सौ धनुष के अन्तरपै स्थितहैं ॥ १ ॥ और नौ करोड़ गणों से संयुक्त व भूतों तथा प्रेतों से युक्त हैं देवीजी बोलीं कि

संसार में गाते, नाचते व हँसतेहुये जो प्रेत सब कहीं दौड़ताहै ॥ २ ॥ और उन्मत्तकी नाईं बकताहै व मतवाले की नाईं पृथ्वी में गिरताहै तथा क्रोधितकी नाईं शत्रुओं के समीप दौड़ताहै और यहां मृत्युकी नाईं खींचताहै ॥ ३ ॥ और संसार में वातसे ग्रहणकियेहुये की नाईं यज्ञोंको भंग करता है और भूतकी नाईं भस्म, मूत्र, जल व कीचड़का अवगाहन करताहै ॥ ४ ॥ हे देव ! क्या यह शास्त्र में कहाहुआ मार्ग है या लौकिक मार्ग है मेरामन मोहित होता है उसको तुम यहां कहने के योग्यहो ॥ ५ ॥ प्रभासक्षेत्र के वासियों से वे किसप्रकार पूजने योग्य हैं और वहां देवी किसकारण आई हैं व किस समय आई हैं ॥ ६ ॥

क्षितौपततिमत्तवत् ॥ क्रुद्धवद्धावतिपरान् मृत्युवत्कर्षतेत्विह ॥ ३ ॥ मखभङ्गानिकुरुते लोकेवातगृहीतवत् ॥ भूतवद्भस्ममूत्राम्बुकर्दमान्यवगाहते ॥ ४ ॥ किमेषशास्त्रनिर्दिष्टो मार्गःकिमुतलौकिकः ॥ मुह्यतेमेमनोदेव तत्त्वंवक्तुमिहार्हसि ॥ ५ ॥ कथंसापुरुषैःपूज्या प्रभासक्षेत्रवासिभिः ॥ कस्मात्तत्रागतादेवी कस्मिन्कालेसमागता ॥ ६ ॥ कस्मिन्दिनेतुदेवेश तस्याःकार्योमहोत्सवः ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि यत्तेकिञ्चिन्मनोगतम् ॥ आस्तिकाःश्रद्दधानाश्च भवन्तीतिमतिर्मम ॥ ८ ॥ चाक्षुषस्यान्तरेदेवि प्राप्तेचैवकृतेप्रिये ॥ दक्षापमानात्त्वंजाता तदापर्वतपुत्रिका ॥ ९ ॥ द्वापरेतुद्वितीयेवै दत्तात्वंपर्वतेनवै ॥ विवाहेतवसंजाते सर्वदेवमनोहरे ॥ १० ॥ क्रीडन्नहंमुदायुक्तो दिव्यक्रीडनकैस्त्वया ॥ पीनोन्नतनितम्बान्त्वां भ्राजमानकुचद्वयाम् ॥ ११ ॥ सिताण्डवदनांहृष्टां दृष्ट्वाहन्त्वांमहाप्रभाम् ॥ दग्ध

व हे देवेश ! किस दिन उसका महोत्सव करना चाहिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! जो कुछ तुम्हारे मनमें प्राप्तहै उसको मैं कहताहूं सुनिये कि जिसके सुनने से पुरुष आस्तिक व श्रद्धावान् होते हैं यह मेरी बुद्धि है ॥ ८ ॥ हे प्रिये, देवि ! चाक्षुष मन्वन्तर में सतयुग प्राप्तहोनेपर उस समय दक्ष के अपमान से तुम पर्वत की कन्या पार्वती उत्पन्नहुई ॥ ९ ॥ और दूसरे द्वापर में तुम पर्वत हिमाचल से दीगई हो सब देवताओं को सुन्दर तुम्हारे विवाह होने पर ॥ १० ॥ दिव्यखेलों से तुम्हारे साथ खेलताहुआ मैं प्रसन्नता से संयुतहुआ और मोटे व ऊंचे नितंबवाली तथा शोभित दोनों स्तनोंवाली ॥ ११ ॥ व चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा महा-

प्रभावती व प्रसन्न तुमको मैं जलेहुये कामवृक्ष की जड़से कदली की नाईं निकलीहुई देखकर ॥ १२ ॥ उससमय बड़े मोलकी शय्या पै स्थित तुम्हारी, मैंने इच्छा, किया और वहां जब हमको व तुमको देवताओं के सौ बरस बीतगये ॥ १३ ॥ तब हे देवि ! निरोध (गुप्तस्थान) से उठकर तुम बाहर निकली और वहां कुण्डमें जल के मध्य से स्त्री निकली ॥ १४ ॥ जोकि कृष्णवर्णवाली तथा पीले नेत्रोंवाली और छूटे केशोंवालीथी और कपालोंकी मालाका आभूषण पहने तथा आधे मस्तक के केश पाशों को बांधे थी ॥ १५ ॥ और कपाल व खट्वांगको धारण किये तथा मुण्डोंकी मालाको हाथमें लिये शिवारूपिणीथी और व्याघ्र चर्मके वसनको धारण,

कामतरोस्कन्दात्कदलीमिवनिस्सृताम् ॥ १२ ॥ महार्हशयनस्थान्त्वां तदाकामितवानहम् ॥ तत्रावयोर्यदाजातं दिव्यं वर्षशतंयदा ॥ १३ ॥ तदादेविसमुत्थाय निरोधान्निर्गताबहिः ॥ तत्रोदकात्समुत्तस्थौ नारीनिर्द्धारिताह्रदात् ॥ १४ ॥ कृष्णाकरालवदना पिङ्गाक्षीमुक्तमूर्द्धजा ॥ कपालमालाभरणा बद्धमुण्डार्द्धपिण्डिका ॥ १५ ॥ कपालखट्वाङ्गधरा मुण्डमालाकराशिवा ॥द्वीपिचर्माम्बरधरा रणत्किङ्किणिमेखला ॥१६॥ डिमडुमरुकारावा फेत्कारापूरिताम्बरा ॥ तस्याश्चपार्श्वगाश्चान्यास्तासांनामानिमेशृणु ॥ १७ ॥ सख्योब्राह्मणराक्षस्यस्तासांचेतास्सुदारुणाः ॥ दशकोटिप्रभेदेन धरांव्याप्यसुसंस्थिताः ॥ १८ ॥ मुख्यास्तत्रचतस्रोवै महाबलपराक्रमाः ॥ रक्तकर्णीमहाजिह्वा क्षयावैपापकारिणी ॥ १९ ॥ एतासामन्वयेजाताःपृथिव्यांब्रह्मराक्षसाः ॥ श्लेष्मान्तकतरौह्येते प्रायशस्सुकृतालयाः॥२०॥ उत्तालाश्चपलाश्चैव नृत्यन्तिचहसन्तिच ॥ विज्ञेयाइहलोकेस्मिन् भूतानांभूतनायकाः॥ २१ ॥ येचान्वयेभवन्त्येषामाकाशान्तरचारि

किये तथा बाजतीहुई घण्टियोंवाली क्षुद्रघण्टिकाको पहनेथी ॥१६॥ और बाजतीहुई डमरू के समान शब्दवाली तथा फेत्कारशब्दसे आकाशको पूर्ण करनेवाली थी और उसके समीप जो अन्य स्त्रिया थीं उनके नामोंको मुझसे सुनिये ॥ १७ ॥ व उसकी जो सखियां ब्रह्मराक्षसी थीं उनके चित्त बड़ेभयंकर थे और दशकरोड के भेद से पृथ्वी में व्याप्तहोकर वे स्थित थीं ॥ १८ ॥ उनमें बहुत बल व पराक्रमवाली चार ब्रह्मराक्षसी मुख्यहैं जोकि रक्तकर्णी, महाजिह्वा, क्षया व पापकारिणी है ॥ १९ ॥ इनके वंशमें पैदाहुये ब्रह्मराक्षस पृथ्वी में हैं और प्रायःये लहसोरके वृक्ष में आलय (स्थान) किये हैं ॥ २० ॥ और उन्नत तालवाले व चंचल ये नाचते हैं

व हँसते हैं इसलोकमें वे भूतोंके भूतनायक जानने योग्य हैं ॥ २१ ॥ और आकाशमध्यचारी जो इनके वंश में होते हैं वे वृक्ष और आकाशमें विचरते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ वैसेही मेरे शौचसे उसी रूप आभूषणवाले दो पुरुष पैदाहुये जो कि कपाल व खट्वाङ्गको धारणकिये तथा चर्म को पहनेथे ॥ २३ ॥ और बहुतसे भयंकर भूतोंसे अनुगमनकिये जाते थे जो भूत कि सिंह व व्याघ्र मुखवाले तथा अनेकभांति के भयंकर शब्दवाले थे ॥ २४ ॥ हे देवि ! उससमय इसप्रकार पैदाहुये वे क्षुधा से संयुत होकर भूँखेहुये इसके अनन्तर उन दोनोंको भूँखे देखकर मैंने यह वरदान दिया ॥ २५ ॥ कि तुमदोनोंके एकबार हाथसे स्पर्श करनेसे सब विपत्तियों

णः ॥ वृक्षेचैवतथाकाशे तेचरन्तिनशंसयः ॥ २२ ॥ तथैवममशौचात्तु तद्रूपाभरणौनरौ ॥ कपालखट्वाङ्गधरौ जातौचर्मावगुण्ठितौ ॥ २३ ॥ अनुगम्यमानौबहुभिः भूतैरपिभयङ्करैः ॥ सिंहशार्दूलवदनैर्विविधैर्भीषणस्वरैः ॥ २४ ॥ एवंदेवितदाजातौ क्षुधाक्रान्तौबुभुक्षितौ ॥ अतोहंक्षुधितौदृष्ट्वा वरञ्चेदञ्चदत्तवान् ॥ २५ ॥ युवयोर्हस्तसंस्पर्शात्सकृदापत्सुसर्वशः ॥ असृग्मांसंवसाभूत्वा भक्ष्यंभूयाच्चकामतः ॥ २६ ॥ नक्ताहारविहारौच दिवास्वप्नावभाजिनौ ॥ नक्तंचैवबलायासौ दिवानातिबलावुभौ ॥ २७ ॥ पुत्रवद्रक्षतंलोकान्धर्मश्चैवानुपाल्यताम् ॥ इत्युक्तौतौमयातत्र भूतमातृगणौप्रिये ॥ २८ ॥ एकीभूतौक्षणेनैव भवानीभवनोद्भवौ ॥ दृष्ट्वाहृष्टमनाहंवै अवोचंत्वांशुचिस्मिते ॥ २९ ॥ कल्याणि पश्यपश्यैतौ मच्छौचेनसमुद्भवौ ॥ वीभत्साद्भुतशृङ्गारधारिणौहासकारिणौ ॥ ३० ॥ भ्रातृभाण्डौयथादेवि तद्वत्तौ

में इच्छा से रक्त, मांस व वसाहोकर भक्ष्यहोगा ॥ २६ ॥ व रात में आहार, विहार करनेवाले और दिनमें सोनेवाले होगे व रातही में बल तथा परिश्रम करनेवाले और दिनमें दोनों अत्यन्त बलवान् न होगे ॥ २७ ॥ और पुत्रकीनाईं लोकों की रक्षा कीजिये व धर्म पालनकीजिये हे प्रिये ! वहां मैंने उनभूत व मातृगणों से ऐसा कहा ॥ २८ ॥ हे शुचिस्मिते ! भवानी के भवन में पैदाहुये उनको क्षणभरमें एक में मिले देखकर प्रसन्न मनहोकर मैंने तुमसे कहा ॥ २९ ॥ कि हे कल्याणि ! मेरे शौच से पैदाहुये इन बीभत्स, अद्भुत व शृंगारको धारणकिये व हास्य करनेवाले गणोंको देखिये ॥ ३० ॥ हे देवि ! जैसे भ्रातृ व भाण्ड थे वैसेही वे मुझ

से मानेगये और तबतक इनदोनों का अन्तर समानता के कारण नहीं जानपड़ता था ॥ ३१ ॥ हे देवि ! भ्रातृभांडा, भूतमाता और उदकसेविता ये तीन संज्ञा संसार में प्रसिद्ध पौरुषवाली हैं ॥ ३२ ॥ फिर उससमय दोनोंहाथों को जोड़कर उन्हों ने मुझसे कहा कि हे भगवन् ! किस स्थान में हमदोनोंका निवासहोगा ॥ ३३ ॥ वहां इस प्रकारकहेहुये उनको मैंने वरदानसे इच्छा कराया कि सौराष्ट्रदेशमें भारतवर्ष में प्रभास ऐसा कहाहुआ उत्तमक्षेत्र है और वह क्षेत्र मुझको प्यारा है जो कि कूर्म के नैर्ऋत्यभागमें दक्षिण व पश्चिम में स्थितहै ॥ ३४ । ३५ ॥ जहां स्वाती, विशाखा व अनुराधा तीन नक्षत्र कहेगये हैं उस स्थान में मन्वन्तर की

चमतौमम ॥ नानयोरन्तरंतावत् सादृश्यात्प्रतिभासते ॥ ३१ ॥ भ्रातृभाण्डाभूतमाता तथैवोदकसेविता ॥ संज्ञात्रयंस्मृतन्देवि लोकेप्रख्यातपौरुषम् ॥ ३२ ॥ पुनःकृताञ्जलिपुटौ दृष्ट्वामामूचतुस्तदा ॥ आवयोर्भगवन्कुत्र स्थाने वासोभविष्यति ॥ ३३ ॥ इत्युक्तवन्तौतौतत्र वरेणच्छन्दितौमया ॥ अस्तिसौराष्ट्रविषये भारतेक्षेत्रमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ प्रभासेतिसमाख्यातं तच्चक्षेत्रंममप्रिये ॥ कूर्मस्यनैर्ऋतेभागे स्थितंवैदक्षिणेपरे ॥ ३५ ॥ स्वातीविशाखामैत्रञ्च यत्रऋक्षत्रयंस्मृतम् ॥ तस्मिन्स्थानेसदास्थेयं यावन्मन्वन्तरावधि ॥ ३६ ॥ अन्यंचवासंवैदद्मि नवभूतप्रियेधुना ॥ यत्रकण्टकिनोवृक्षा यत्रालेख्याचवल्लरी ॥ ३७ ॥ भार्यापुनर्भूर्वल्मीकस्तत्रतेवसतिश्चिरम् ॥ यस्मिन्गृहेनराःपञ्च स्त्रीत्रयं तावतीचगाः ॥ ३८ ॥ अन्धकारेधनंचैव तद्गृहेवसतिस्तव ॥ एकच्छागंद्विबालेयं त्रिगवंपञ्चमाहिषम् ॥ ३९ ॥ षडश्वंसप्तमातङ्गं तद्गृहेवसतिस्तव ॥ कुद्दालदातृपिटकं तद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ॥ ४० ॥ यत्रतत्रैवक्षिप्तानि तवदद्युः

अवधितक तुमको सदैव स्थितहोना चाहिये ॥ ३६ ॥ व हे भूतप्रिये ! इससमय में तुमको अन्य निवास देता हूं कि जहां कॉटावाले वृक्षहोवैं और जहां वल्लरी (मंजरी)की तसवीरहोवै ॥ ३७ ॥ और जहा उढ़री स्त्रीहोवै व बेंबौरिहोवै वहां तुम्हारा निवास बहुत समयतक होवै और जिस घरमें पांच पुरुष, तीन स्त्रियां व उतनीहीं गऊ होवैं ॥३८॥ और अन्धकारमें धनहोवै उसघरमें तुम्हारा निवास होवै और जिस घरमें एकबकरा दो गधा, तीन गौवैं और पांच भैंसीहोवैं ॥ ३९ ॥ और छः घोड़े व सात हाथीहोवैं उस घरमें तुम्हारा निवासहोवै और कुदार, हॅसिया व पिटार तथा थारी इत्यादिक पात्र ॥ ४० ॥ जिस घरमें जहां तहां फेंकेगयेहों वहां तुमको

वे निवास देवैंगे और मुसल व ओखलीमें तथा देहली पै स्त्रियों का बैठना ॥ ४१ ॥ और प्राणियोंका विष्ठा व मूत्र तुमको उपकारी होताहै व जिस घरमें पक्के व कच्चे अन्न नाघे जाते हैं ॥ ४२ ॥ वैसैही जहा शास्त्र उल्लंघन कियेजाते हैं वहां भूतों समेत तुम विचरोगी और जहां स्थाली के आच्छादन में अग्नि होवै व जो हाथ से अग्नि देताहै ॥ ४३ ॥ उस घरमें सब अरिष्टों का स्थान होवै और जिस घरमें दिन रात मनुष्यकी हड्डी स्थित होवै ॥ ४४ ॥ वहां तुम्हारा भूतगण इच्छापूर्वक विचरैगा और जो सबसे अधिक शिवजीको नहीं कहते हैं ॥ ४५ ॥ व जहां मनुष्य इन शिवजीको साधारण कहतेहैं हे भूत ! वहां तुम स्थित होवो ॥ ४६ ॥ और जिस घरमें सेवती

प्रतिश्रयम् ॥ मुसलोलूखलेस्त्रीणामास्यातद्वदुदुम्बरे ॥ ४१ ॥ अवस्कारश्चमूत्रञ्च भूतानामुपकृत्तव ॥ लङ्घयन्तेयत्रधान्यानि पक्कापक्कानिवेश्मनि ॥ ४२ ॥ तद्वच्छास्त्राणितत्रत्वं भूतैस्सहचरिष्यति॥ स्थालीपिधानेयत्राग्निर्दातादर्विफलेन च ॥ ४३ ॥ गृहेतत्रदुरिष्टानामशेषाणांसमाश्रयः ॥ मानुषास्थिगृहेयत्र अहोरात्रंव्यवस्थितम् ॥ ४४ ॥ तत्रतेभूतनिवहो यथेष्टंविचरिष्यति ॥ सर्वस्मादधिकंयेन प्रवदन्तिपिनाकिनम् ॥ ४५ ॥ साधारणंवदन्त्येनं तत्रभूतसमाविश ॥ ४६ ॥ कन्याचयत्रवैवल्ली रोहितश्चजटीगृहे ॥ अगस्त्यकादयोवृत्ता वन्धुजीवोगृहेषुच ॥ ४७ ॥ करवीरोविशेषेण नदिवृत्तस्तथापिवा ॥ मल्लिकाचगृहेयेषां भूतयोग्यंगृहंहितत् ॥ ४८ ॥ तालंतमालंभल्लान्तं तिन्तिणीखण्डमेववा ॥ बकुलःकदलीषण्डं कदम्बःखदिरोपिवा ॥ ४९ ॥ न्यग्रोधोहिगृहेयेषामश्वत्थश्चूतएववा ॥ ५० ॥ उदुम्बरश्चपनसस्सर्वं भूतगृहंहितत् ॥ यस्याशोकोगृहान्तेच आरामेवागृहेपिवा ॥ ५१ ॥ भिक्षुर्विद्रावितोयत्र गृहेदेविमहेश्वरि ॥ ओड्रवृत्तं

की लताहोवै व जिसघरमें रुहेड़ा व पकरियाजमीहोवै तथा अगस्त्यादिक वृक्ष होवैं और जिनघरोंमें दुपहरीका वृक्षहोवै ॥ ४७ ॥ और विशेषकर कनैर व स्थलपद्म होवै व जिनके घरमें बेला होवै वह घर भूतोंके योग्य है ॥ ४८ ॥ और ताल, तमाल, भेलावा व इमली का समूह तथा मौलसिरी, केलासमूह, कदम्ब और खैरकावृक्ष होवै ॥ ४९ ॥ और जिनके घरमें बरगद, पीपल व आम होवै ॥ ५० ॥ और गूलरि व कटहर जिस घरमें होवै वह घर सब भूतों के योग्य है और जिसके घरके समीप

व बगीचे तथा घरमें भी अशोक होवे ॥ ५१ ॥ व हे महेश्वरि, देवि ! जहां भिक्षुक भगायाजाताहो और जहां गोड़हरका वृक्ष स्थित होवै वहा-प्रेतोंका स्थान होताहै ॥ ५२ ॥ और जहा लिंगपूजन नहीं है व जहां जपादिक नहीं होताहै और जहा भक्ति हीन मनुष्य हैं उनको भूतोंके घर कहै ॥ ५३ ॥ और मलिन मुखवाले जो मनुष्य हैं और मलिन वसनों को जो धारे हैं और जो ग्रहस्थ मलदांतोंवाले हैं उनके घर में पैठिये ॥ ५४ ॥ और मैथुन में अधिक आदरवाले जो पुरुष अगम्यस्त्रियोंमें परायण हैं व जो सन्ध्या में मैथुन को प्राप्तहोते हैं उनके घरमें पैठिये ॥ ५५ ॥ बहुत कहने से क्या है जो नित्य कर्म से पृथक् कियेगये हैं और जो शिवजी की भक्तिसे

चयत्रस्थं तत्रभूतनिवेशनम् ॥ ५२ ॥ लिङ्गार्चनंयत्रनास्ति यत्रनास्तिजपादिकम् ॥ यत्रभक्तिविहीनावै भूतानांतान्गृहान्वदेत् ॥ ५३ ॥ मलिनास्यास्तुयेमर्त्या मलिनाम्बरधारिणः ॥ मलदन्तागृहस्थाये गृहेतेषांसमाविश ॥ ५४ ॥ अगम्यासुरतायेतु मैथुनेचाधिकादराः ॥ सन्ध्यायांमैथुनंयान्ति गृहेतेषांसमाविश ॥ ५५ ॥ बहुनाकिंप्रलापेन नित्यकर्मबहिष्कृताः ॥ रुद्रभक्तिविहीनाये गृहेतेषांसमाविश ॥ ५६ ॥ अदत्त्वेभुञ्जतेयेवै बन्धुपिण्डेतथोदके ॥ सपिण्डान्सोदकांश्चैव तत्कालंतान्नरान्भज ॥ ५७ ॥ यत्रभार्याचभर्त्ताच परस्परविरोधिनौ ॥ ५८ ॥ महाभूतगृहेतस्य विशेषाद्भयवर्ज्जिते ॥ वासुदेवेरतिर्नास्ति यत्रनास्तिसदाहरः ॥ ५९ ॥ जपहोमादिकंनास्ति भस्मनास्तिगृहेनृणाम् ॥ पर्वस्वप्यर्चनंनास्ति चतुर्दश्यांविशेषतः ॥ ६० ॥ कृष्णाष्टम्याञ्चतुर्दश्यां सन्ध्यायांभस्मवर्ज्जितम् ॥ पञ्चदश्यांमहादेवं नजपन्तिचयत्रवै ॥ ६१ ॥ पौरजानपदैर्यत्र प्राक्प्रसिद्धामहोत्सवाः ॥ क्रियन्तेपूर्ववन्नैव तद्गृहेवसतिस्तव ॥ ६२ ॥ वे

रहित हैं उनके घरमें पैठिये ॥ ५६ ॥ और बन्धुवोंको पिंड व जल न देने पर जो भोजन करते हैं उन सपिंड व सोदक मनुष्योंको उसी समय भजिये ॥ ५७ ॥ और जहां स्त्री व पुरुष परस्पर वैर करते हों ॥ ५८ ॥ हे महाभूत ! विशेषता से भयरहित उसके घरमें प्रवेश करिये जहा विष्णुजीमें स्नेह नहीं है और जहां सदाशिवजी नहींहैं ॥ ५९ ॥ और जहा मनुष्योंके घरमें जप, होमादिक नहीं है और जहां भस्म नहीं है और पर्वों व विशेषकर चौदसि तिथि में जहां पूजन नहीं होताहै ॥ ६० ॥ और कृष्णपक्ष की अष्टमी व चौदसि तिथि में सन्ध्या के समय जो गृह भस्म से रहितहो और पौर्णमासी तिथि में जहा मनुष्य महादेवजी को नहीं पूजते हैं ॥ ६१ ॥ और जहां पुर-

वासी लोग पहले के प्रसिद्ध महाउत्सवोंको पहलेकी नाईं नहीं करते हैं उनके घर में तुम्हारा निवास होवै ॥ ६२ ॥ जहा वेदका शब्द नही है और गुरु का पूजनादिक नहीं है और जो घर पितरों के कर्मोंसे हीन है वह घर भूतका कहागया है ॥ ६३ ॥ और जिसघरमें प्रत्येक रात्रिमें मनुष्योंका कलह (बखेडा) होताहै और जहां बालकों के देखतेहुयें भक्ष्यपदार्थों का भोजन करते हैं वहा प्रसन्नहोकर तुम भूतों समेत प्रवेशकरो हे शुभे ! उससमय इसप्रकार कहीहुई उसने फिर मुझसे कहा ॥ ६४।६५॥ भूतमातृका बोली कि हे महाभाग ! मैं क्या भोजन करूं और मुझको कौन बलि देवैगा व किस महीने में और किस दिन मे संसारमे पूजित हूंगी ॥ ६६ ॥ हे

दघोषोनयत्रास्ति गुरुपूजादिकन्नच ॥ पितृकर्मविहीनञ्च तद्भूतस्यगृहंस्मृतम् ॥ ६३ ॥ रात्रौरात्रौगृहेयस्मिन् कलहो जायतेनृणाम् ॥ बालानांप्रेक्षमाणानां यत्रवृद्धाह्यभक्षयन् ॥ ६४ ॥ भक्ष्याणितत्रवैहृष्टो भूतैःसहसमाविश ॥ इत्युक्ता सातदातत्र पुनःप्रोवाचमांशुभे ॥ ६५ ॥ भूतमातृकोवाच ॥ किमश्नामिमहाभाग कोमेदास्यतिवैबलिम् ॥ कस्मिन् मासेदिनेवापि भवेयंलोकपूजिता ॥ ६६ ॥ इत्युक्तोहंतदादेवि तामुवाचपुनःप्रिये ॥ अमायांमाधवेमासि तस्मिन्याच चतुर्दशी ॥ ६७ ॥ तस्यांमहोत्सवस्तत्रभवितातेचिरन्तनः ॥ याःस्त्रियस्त्वांचयक्ष्यन्ति तस्मिन्कालेमहोत्सवे ॥ ६८ ॥ बलिभिर्पुष्पधूपैश्च मासांत्वंचगृहेविश ॥ नारायणहृषीकेश पुण्डरीकाक्षमाधव ॥ ६९ ॥ अच्युतानन्तगोविन्द वासुदेव जनार्दन ॥ नृसिंहवामनाचिन्त्य केशवेतिचयेजनाः ॥ ७० ॥ रुद्ररुद्रेतिरुद्रेति शिवायचनमोनमः ॥ वक्ष्यन्तिसततंहृष्टास्तेषान्धनगृहादिषु ॥ ७१ ॥ आरामेचैवगोष्ठेच माविशत्वंकथञ्चन ॥ ७२ ॥ देशाचाराञ्ज्ञातिधर्मान्समानाञ्जा

प्रिये, देवि ! उस समय इसप्रकार कहेहुये मैंने फिर उससे कहा कि अमावस तिथिमें और उस वैशाख महीनेमें जो चौदसि तिथिहै ॥ ६७ ॥ उसतिथिमें वहां तुम्हारा प्राचीन उत्सव होगा उस बडेभारी उत्सववाले समयमें जो स्त्रियां तुमको बलियोंसे व पुष्पों तथा धूपोंसे पूजैंगी इनके घरमें तुम मत प्रवेशकरो और हे नारायण, हृषी- केश, पुण्डरीकाक्ष, माधव ! ॥ ६८ । ६९ ॥ हे अच्युत, अनन्त, गोविन्द, वासुदेव, जनार्दन, नृसिंह, वामन, अचिन्त्य, केशव ! ऐसा जो मनुष्य कहते हैं ॥ ७० ॥ व हे रुद्र ! हे रुद्र! हे रुद्र! ऐसा जो कहते हैं और शिवजी के लिये नमस्कारहै नमस्कार है ऐसा जो सदैव प्रसन्न होकर कहते हैं उनके धन व गृहादिकों में ॥ ७१ ॥

और बगीचे व गोशाले में तुम किसीप्रकार न पैठो ॥ ७२ ॥ और देशाचार व समान जातिधर्मों को तथा जप होम मङ्गल व देवताके अर्नको तथा भलीभांति शौच व लोक और वेद में विधिसे विवादों को करतेहुये पुरुषों में तुम्हारा संग मत होवै ॥ ७३ ॥ श्रीदेवी पार्वतीजी बोलीं कि हे देवदेवेश ! सदैव अर्थी पुरुषों को कब भूतमाता का पूजन करना चाहिये उसको तुम कहनेके योग्यहो ॥ ७४ ॥ महादेवजी बोले कि बालकों का हितकरनेवाली यह भगवती सब कहीं नामके भेदोंसे व कार्य भेदोंसे और समय के भेदोंसे पूजीजातीहै ॥ ७५ ॥ वैशाख महीनेमें परेवासे लगाकर पौर्णमासी तिथितक मारने योग्य पशुवोंके वधसे पूजन करना चाहिये ॥

प्यंहोमंमङ्गलन्दैवताध्यम् ॥ सम्यक्शौचंमंविधानेनलोके वेदेवादान्कुर्वतोमास्तुसङ्गः ॥ ७३ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कदापूजाप्रकर्तव्या भूतमातुस्सदार्थिभिः ॥ पुरुषैर्देवदेवेश तन्मेत्वंवक्तुमर्हसि ॥ ७४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सर्वत्रैषाभगवती बालानांहितकारिणी ॥ नामभेदैःक्रियाभेदैः कालभेदैश्चपूज्यते ॥ ७५ ॥ प्रतिपत्प्रभृतिवैशाखे यावत्पञ्चदशीतिथिः ॥ तावत्पूजाप्रकर्तव्या प्रोक्षणैःप्रोक्षणीयकैः ॥ ७६ ॥ भूमावपिगताञ्चैनां जलस्थलतलेस्थिताम् ॥ सिञ्चयिष्यतियोभक्त्या जलसम्पूर्णगडुकैः ॥ ७७ ॥ ग्रीवांतत्रतुसिन्दूरैः पुष्पैर्धूपैस्तथार्चयेत् ॥ नशाकिन्योगृहेतस्य नपिशाचानराक्षसाः ॥ ७८ ॥ पीडांकुर्वन्तिशिशवो यान्तिवृद्धिंनिरामयाः ॥ भोजयेत्क्षीरसंयावं कृसरैःपूपपायसैः ॥ ७९ ॥ यएवंकुरुतेदेवि पुरुषोभक्तिभावितः ॥ सपुत्रपशुवृद्धिञ्च शरीरारोग्यमाप्नुयात् ॥ ८० ॥ पञ्चम्यान्तुविशेषेण रात्रौकोलाहले शुभे ॥ जागरंतत्रकुर्वीत देवींपूज्यप्रयत्नतः ॥ विश्वास्यधनलोभेन स्वाध्यायीनिहतोयतः ॥ ८१ ॥ आरोप्यमानंशू

७६ ॥ भूमि में प्राप्त व जलस्थल में स्थित इन भगवती को जो भक्तिसे जलसे भरेहुये गडुवों से सींचताहै ॥ ७७ ॥ और वहां ग्रीवाको सिन्दूर, पुष्प व धूपोंसे जो पूजता है उसके घरमें न शाकिनी न पिशाच न राक्षस ॥ ७८ ॥ पीडा करते हैं और बालक रोगरहित होकर वृद्धिको प्राप्तहोते हैं और तिलोदन, पुवा व खीर समेत दूधकी गुझियाको भोजन करावै ॥ ७९ ॥ हे देवि ! भक्तिसे शुद्ध चित्तवाला जो पुरुष ऐसा करताहै वह पुत्रों व पशुवोंकी वृद्धि तथा शरीरकी नीरोगताको प्राप्तहोता है ॥ ८० ॥ और विशेषकर पंचमी तिथि में वहां रात्रिको उत्तम कोलाहल में देवीजी को बड़े यत्नसे पूजकर जागरण करै और सब लोगोंसे कहै कि धनके लोभसे वि-

श्वास कराकर जिसलिये स्वाध्यायी मारागया ॥ ८१ ॥ उसीकारण त्रिशूलके अग्रभाग में आरोपित इस चोरको देखिये आप लोगोंने बहुतही प्रसन्नपराई स्त्री से स्नेह करनेवाले पुरुषको देखा ॥ ८२ ॥ कि हाथोंको काटकर दुःखित होताहुआ यह गधे पर चढ़कर जाताहै और टूटेहुये सूपकी छतुरी समेत हड्डियों के गहनोंसे भूषित ॥ ८३ ॥ यह सुखपूर्वक आसनपै बैठाहुआ पुण्यवान् सुखपूर्वक जाता है हे लोगो ! बहुतही स्वामीसे द्रोह करनेवाले पुरुषको क्या नहीं देखते हो ॥ ८४ ॥ जोकि मुशलके मारने से रक्तके कारण उग्रता पूर्वक आरोंसे चीरा जाताहै प्रसिद्धमें सबको उद्वेग करनेवाला यह उत्तम चोर मिलगया ॥ ८५ ॥ जोकि दण्डप्रहार से ताडित

लाग्रे चौरमेनंप्रपश्यत ॥ दृष्टोभवद्भिस्संहृष्टः परदारावमर्शकः ॥ ८२ ॥ छित्त्वाहस्तौसदन्नेष खरारूढश्चगच्छति ॥ शीर्णसूर्पातपत्रेण अस्थ्याभरणभूषितः ॥ ८३ ॥ सुखासनसमारूढः सुकृतीयात्यसौसुखम् ॥ हेजनाःकिन्नपश्यध्वं स्वामिद्रोहकरम्परम् ॥ ८४ ॥ करपत्रैर्विदार्येत मुशलाच्छोणितोत्कटम् ॥ चौरःकिलासौसम्प्राप्तः सर्वोद्वेगकरःपरः ॥ ८५ ॥ दण्डप्रहाराभिहतो नीयतेदण्डपाणिकैः॥ प्रेक्षकैर्वेष्टितस्तेन आरटन्व्यथितैःस्वरैः ॥ ८६ ॥ संयम्यनीयतेहन्तुं मुखान्वींक्षितलक्षणः ॥ सितकेशंसितश्मश्रु शीर्णाम्बरधरंद्विजम् ॥ ८७ ॥ विटङ्कोट्याचचेटीनां हन्यमानंविपश्यत ॥ गृहान्निष्कास्यतांनारीं वृद्धिन्नीत्वातथोदरम् ॥ ८८ ॥ कस्मादसौनकुरुते मूढोभरणपोषणम् ॥ भैरवाभरणानेतान् मदाघूर्णितलोचनान् ॥ ८९ ॥ प्रवृत्तान्ताण्डवेमूढान्वाह्यमानान्नितस्ततः ॥ निर्वेदकोस्यहृदये धनक्षेत्रादिसम्भवः॥ ९० ॥ गृहीतंयदनेनाद्य बालेनापिमहाव्रतम् ॥ रक्ताक्षंकाककृष्णाङ्गां साम्बरांकिन्नपश्यसि ॥९१॥ तरुकोटिगतान्बद्धा

होकर दण्डपाणि पुरुषोंमे लायाजाताहै और देखनेवालोंसे घिराहै उसीकारण दुःखित शब्दोंसे रटताहुआ ॥ ८६ ॥ मुखसे देखेहुये लक्षणोंवाला यह दण्ड देकर मारने के लिये लायाजाताहै सपेद केश व श्वेत दाढ़ी मूछवाले तथा फटेहुये वसनों को धारनेवाले धूर्त ब्राह्मणको करोड दासियोंसे मारेजातेहुये देखिये उस स्त्रीको घरसे निकालकर पेटको बढ़ाकर ॥ ८७ । ८८ ॥ यह मूढ़ किसलिये भरण पोषण नहीं करताहै मदसे आघूर्णित नेत्रोंवाले तथा भयंकर गहनोंवाले इन ॥ ८९ ॥ इधर उधर लायेजातेहुये नृत्य में प्रवृत्त मूढ़ोंको देखिये इसके हृदयमें धन व क्षेत्रादि से उपजाहुआ निर्वेद है ॥ ९० ॥ जिसलिये इस बालकने भी इस समय महाव्रत को

ग्रहण कियाहै उसीकारण लाल लोचनोंवाले व कौवाके समान काले अंगवाले मृगको क्या नहीं देखतेहो ॥ ९१ ॥ वृक्षकी कोटि में प्रास व जंजीरसे बाधेहुये बहुत शिरसमूहों से खण्ड करके पृथक् कियेहुये अन्य पशुवों को देखिये ॥ ९२ ॥ और प्रहार करनेसे हिचकी व हुंकारको छोडेहुये पशुत्रोंको देखिये और अपनी कन्या के सन्तान को लिये व काले अर्धमुखवाली केशोंको छोड़े योगिनीकी नाई नाचतीहुई इसको देखिये और गंभीरता से प्रेरित खर्जूरकी ध्वनि से उद्धत नृत्यवाली ॥ ९३ । ९४ ॥ तथा उन्मत्त वेश व गहनोंवाली यह डिंभ (बाल) मण्डली जाती है कटितट पै पिटारीको धरे काले कम्बलको धारनेवाली ॥ ९५ ॥ छोटे अंगोंवाली स्त्री

न्याग्छृङ्खलयातथा ॥ शिरोघैःशकलीकृत्य बहुभिश्शकलीकृतान् ॥ ९२ ॥ विमुक्तहिकाहुङ्कारान् सप्रहारान्निरीक्ष त ॥ इमांकृष्णार्द्धवदनां गृहीतस्वदुहित्रिकाम् ॥ ९३ ॥ विमुक्तकेशांनृत्यन्तीं पश्यध्वंयोगिनीमिव ॥ गम्भीरनुन्नख जूरध्वनिनोद्धतताण्डवा ॥ ९४ ॥ उन्मत्तवेषाभरणा यात्येषाडिम्भमण्डली ॥ कटीतटस्थपिटका कालकम्बलधा रिणी ॥ ९५ ॥ अटतेनटतेतन्वी चक्षुषादहतेगृहम् ॥इत्येवमादिभिर्नित्यं प्रोक्षणैःप्रोक्षणीयकैः ॥ ९६ ॥ प्रेरयित्वाप्य हानीत्थं पुत्रभ्रातृसुहृद्वृतः ॥ एकादश्यांनवम्यांच प्रक्षाल्यकुड्यकन्तथा ॥९७॥ मुखबिम्बानितत्रैव लेपकारकृता नि वै ॥ विचित्राणिमहार्हाणि रौद्रशान्तानिकारयेत् ॥ ९८ ॥ मातृणांचण्डिकानाञ्च राक्षसीनांतथैवच ॥ भूतप्रेतपि शाचानां शाकिनीनांतथैवच ॥९९॥ मुखानिकारयेत्तत्र हावभावयुतानिच॥१००॥रक्षकैर्बहुभिर्गुप्तं तूर्य्यध्वनिपुरस्सरम्॥ अमावस्यांमहादेवि क्षिपेत्पूजाक्रमैर्नरः ॥ १ ॥ ततःप्रदोषसमये तत्रदेविजनैर्वृतः॥ तत्रगच्छेन्महारावैः फेत्काराकुल

घूमती व नाचती है और नेत्रसे घरको जलातीहै इत्यादिक मारने योग्य यज्ञ पशुके वधोंसे नित्य ॥ ९६ ॥ इसप्रकार दिनोंको व्यतीत करके पुत्र, भाई व मित्रोंसे घिरा हुआ मनुष्य एकादशी व नवमी तिथिमें दीवारको धुलाकर ॥९७॥ उसीमें लेपकारसे कियेहुये विचित्र तथा बड़े मोलवाले व रौद्र तथा शान्त मुखविम्बोंको बनवावै॥९८॥ मातृका, चण्डिका, राक्षसी और भूत, प्रेत, पिशाच, शाकिनियोंके ॥ ९९ ॥ हावभाव से संयुत मुखोंको वहां बनवाना चाहिये ॥ १०० ॥ हे महादेवि ! तुरुहीके शब्द-पूर्वक बहुत रक्षकों से गुप्तहोकर मनुष्य अमावस्याको पूजन के क्रमों से व्यतीत करै ॥ १ ॥ तदनन्तर प्रदोप समयमें वहां पर देवी जनोंसे घिराहुआ मनुष्य फेत्कार

से व्याप्त कीर्तनोंवाले महाशब्दोंकरके वहां जावै ॥ २ ॥ और वीरचर्याकी विधिसे रातमें नगरमें घुमवावै हे ममप्रिये ! वह दीप सब प्रयोजनोंका साधककहागयाहै ॥ ३॥ उसीकारण पौर्णमासी तिथितक दीपकको निकालै और पौर्णमासी तिथि में भूतमाताका महोत्सव करै ॥ ४ ॥ और स्थापन करै व पूजनकरै तथा मांस व भातकी नैवेद्य देवै और अपने जनोंसमेत प्रणामकर क्षमापन कराकर घरको जावै ॥ ५ ॥ हे देवि ! जो मनुष्य प्रतिवर्ष में इसप्रकार महोत्सव करताहै उसके घरमें वर्षभर तक विघ्न नहीं होताहै ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर कुछ समय व्यतीत होनेपर भूतमाता के शरीर से पसीने के बूंदों से पांच करोड़ पिशाच पैदाहुये ॥ ७ ॥ वे सब उदासीन मुख व

कीर्तनैः ॥ २ ॥ वीरचर्याविधानेन नगरेभ्रामयेन्निशि ॥ ममप्रियेसकथितो दीपस्सर्वार्थसाधकः ॥ ३ ॥ ततोनिष्क्रमयेद्दीपं यावत्पञ्चदशीतिथिः ॥ पञ्चदश्यांप्रकुर्वीत भूतमातुर्महोत्सवम् ॥ ४ ॥ स्थापयेत्पूजयेद्दद्यान्नैवेद्यंपलमोदनम् ॥ प्रणम्यस्वजनैस्सार्द्धं क्षमयित्वागृहंव्रजेत् ॥ ५ ॥ यएवंकुरुतेदेवि वर्षेवर्षेमहोत्सवम् ॥ तद्गृहेवत्सरंयावद्विघ्नं तस्यनजायते ॥६॥ अथकालान्तरेतीते भूतमातुश्शरीरतः ॥ जाताःप्रस्वेदबिन्दुभ्यः पिशाचाःपञ्चकोटयः ॥ ७ ॥ स वैतेदीनवदनाः शिरोहाराःकृशोदराः ॥ पाणिपात्राःपिशाचास्ते निसृष्टाबलिभोजनाः ॥८॥ धमनीसंतताःशुष्काःश्मश्रूलाश्चर्मवाससः ॥ उलूखलैराभरणैः शूर्पच्छत्राःखरस्वराः ॥ ९ ॥ नखज्वालितकेशाभ्यामङ्गारानुद्गिरन्तिवै ॥ अङ्गारकाःपिशाचास्ते गयामार्गानुसारिणः ॥ १० ॥ आकर्णदारितास्याश्च लम्बभ्रूस्थलनासिकाः ॥ पलादास्तेपिशाचावै सूतिकागृहवासिनः ॥ ११ ॥ पृष्ठतःपाणिपादाश्च पृष्ठगावातरंहसः ॥ विपादगाःपिशाचास्ते संग्रामेपिशिताश

मस्तकोंके हारोंको पहने तथा दुबले पेटवाले थे और बलिभोजनवाले तथा हाथहीरूपी पात्रोंवाले वे पिशाच पैदाहुये ॥ ८ ॥ जोकि धमनी (नसों) से संयुक्त व शुष्क तथा दाढ़ी मूछको धारण किये और चर्मरूपी वसनोंको पहनेथे वे ओखलीरूपी गहनोंसे युक्त तथा सूपकी छतुरी को लिये व तीक्ष्ण शब्दवालेथे ॥ ९ ॥ और नखों से जलायेहुये बालों करके अंगारोंको उगिलते थे वे अंगारक पिशाच गयामार्ग के अनुगामी हुये ॥ १० ॥ और कानों तक फटेहुये मुखवाले तथा लम्बी भौंह व नासिकावाले वे मांसभक्षी पिशाच सवरिके घर में रहनेवालेहुये ॥ ११ ॥ और पीछे हाथ पांववाले तथा पीछे से चलनेवाले पवनके वेगवान् व बिन पांवोंसे चलने

वाले पिशाच समरमें मांसको भोजन करनेवाले हुये ॥ १२ ॥ ऐसे पिशाचों को देखकर दोनोंके ऊपर दयासे उनके लिये कुछ करुणा से भीगेहुये चित्तकरके वरदान दिया ॥ १३ ॥ कि प्रजाओं के मध्य में अन्तर्द्धान व इच्छा के अनुकूल रूपधरना और दोनों सन्ध्याओं में स्थानोंको जाना व जीवन दिया ॥ १४ ॥ और जो टूटेहुये घर, स्थान और मन्दिर हैं व जो आचाररहित तथा विध्वस्त स्थान हैं उनको दिया ॥ १५ ॥ और राजमार्ग व गावके भीतरवाले मार्ग, चौराहों व चौतरों को दिया और द्वार, अँटारी व निकलने के द्वार तथा जाने के मार्गों को दिया ॥ १६ ॥ और हे प्रिये ! मार्ग, तीर्थ और मन्दिरके वृक्षोंको व बड़ेभारी मार्गोंको पिशाचोंके निवासके

नाः ॥ १२ ॥ एवंविधान्पिशाचांस्तु दृष्ट्वादीनानुकम्पया ॥ तेभ्योवरन्ददौकिञ्चित् कारुण्यादार्द्रचेतसा ॥ १३ ॥ अन्तर्द्धानंप्रजास्वेव कामरूपत्वमेवच ॥ उभयोस्सन्ध्ययोश्चारः स्थानानांजीवनंतथा ॥ १४ ॥ गृहाणियानिभग्नानि स्थानान्यायतनानिच ॥ विध्वस्तानिचयानिस्युरनाचाराणियानिच ॥ १५ ॥ राजमार्गोपरथ्याश्च शृङ्गाटश्चत्वराणि च ॥ द्वाराण्यट्टालिकांश्चैव निर्गमान्संक्रमांस्तथा ॥ १६ ॥ पन्थानश्चैवतीर्थानि चैत्यवृक्षान्महापथान् ॥ स्थानानितु पिशाचानां निवासायददौप्रिये ॥ १७ ॥ अधर्मिकाजनास्तेषामाजीवोविहितःपुरा ॥ वर्णाश्रमास्सङ्करजाः कारुशिल्पि जनास्तथा ॥ १८ ॥ अनृताःपापसन्तानाश्चौराविश्वासघातिनः ॥ एभिरन्यैश्चबहुभिरन्यायोपार्जितैर्धनैः ॥ १९ ॥ आरभ्यन्तेक्रियायास्तु पिशाचास्तत्रदेवताः ॥ मधुमान्सोदनैर्दध्ना तिलचूर्णसुरासवैः ॥ २० ॥ पूपैर्हारिद्रकृशरैस्ति लभक्तगुडोदनैः ॥ कृष्णानिचैववासांसि धूम्राःसुमनसस्तथा ॥ २१ ॥ एभिर्युक्ताःसुबलयस्तेषांवैपर्वसन्धिषु ॥ पिशाचाना

लिये दिया ॥ १७ ॥ और पुरातन समय अधर्मी मनुष्य उनकी जीविका कियेगये हैं व संकरवर्ण से उपजेहुये वर्ण व आश्रम और चित्रकार व थवई लोग ॥ १८ ॥ व झूंठे और पापी सन्तानवाले, चोर, विश्वासघाती इनसे व अन्य बहुतलोगों से अन्याय करके इकट्ठा कियेहुये धनोंसे ॥ १९ ॥ जो कर्म प्रारम्भ किये जाते हैं उन में पिशाच देवता होते हैं और मदिरा, मांस, भात, दही, तिलोंका चूर्ण और मदिरा तथा आसवों से ॥ २० ॥ और पुवोंसे व हरिद्रासंयुक्त तिलभात और गुड़, भात

से जो बलि दीजाती है व काले वसन तथा धूम्र रंगके जो फूलहैं ॥ २१ ॥ इनसे संयुक्त बलियां उन पिशाचोंको पर्वोंकी सन्धियों में आज्ञा देकर भूतमाताको हे देवि ! मैंने सब भूतों व पिशाचों की उत्तम अधिदेवता किया इसप्रकारकी सब भूतगणोंसे घिरकर॥ २२ । २३ ॥ हे देवि ! समुद्रसे उत्तरओर प्रभासक्षेत्रमें स्थितहै जो मनुष्य देवीजी की इस पापनाशिनी उत्पत्तिको जानता है ॥ २४ ॥ उसके कभी निन्दित सन्तान नहीं होती है और वह भूत, प्रेत व पिशाचोंके दोषों से तिरस्कृत नहीहोता है ॥ २५ ॥ और सब पातकों से छूटाहुआ वह सदैव सौभाग्यसे संयुत होता है व सब कामोंको प्राप्तहोताहै और स्त्रियोंकेहृदय को आनन्द करनेवाला होताहै ॥

मनुज्ञाय भूतमाताधिदेवता ॥ २२ ॥ सर्वभूतपिशाचानां कृतादेविमयाशुभा ॥ एवंविधाभूतमाता सर्वभूतगणैर्वृता ॥ २३ ॥ प्रभासेसंस्थितादेवि समुद्रादुत्तरेणतु ॥ यएतांवेदवैदेव्या उत्पत्तिंपापनाशिनीम् ॥ २४ ॥ कुत्सितासन्ततिस्तस्य नभवेच्चकदाचन ॥ भूतप्रेतपिशाचानांनदोषैःपरिभूयते ॥२५॥ सर्वपातकनिर्मुक्तस्सदासौभाग्यसंयुतः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति नारीहृदयनन्दनः ॥ २६ ॥ येमानयन्तिमनुजाःसकलैर्विलासैः संसेवयन्त्यभयदांभवभूतनाथाम् ॥ तेभ्रातृभृत्यसुतबन्धुजनैस्समेताः सर्वोपसर्गरहिताःसुखिनोभवन्ति ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे भूतमातृकामाहात्म्यकथनन्नामत्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवींशालकटङ्कटाम् ॥ सावित्र्यादक्षिणेभागे रेवन्तात्पूर्वतःस्थिताम् ॥ १ ॥ म

२६ ॥ जो मनुष्य संसारके प्राणियों की स्वामिनी व अभयदायिनी भूतमाताको सबविलासों से मानते हैं व भलीभांति सेवते हैं वे भाई, सेवक, पुत्र व बन्धुजनों से संयुत होकर सब उपद्रवोंसे रहित होतेहुये सुखी होतेहैं ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभूतमातृकामाहात्म्यकथनंनामत्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । शालकटंकट देवि कर अति उत्तम परभाव । इकसौ चौंसठि में सोई कह्यो चरित्र सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सावित्रीजी से

हापापौघशमनीं सर्वदुःखविनाशिनीम् ॥ पूजितांसिद्धगन्धर्वैः स्फुरद्दंष्ट्रोग्रभीषणाम् ॥ २ ॥ महाप्रचण्डदैत्यघ्नीं पौल स्त्येनप्रतिष्ठिताम् ॥ महिषघ्नींमहाकायां क्षेत्रप्राभासिकेस्थिताम् ॥ ३ ॥ माघेमासिचतुर्दश्यां यस्तामभ्यर्चयेन्नरः ॥ स भवेत्पशुमान्धीमाँल्लक्ष्मीवान्पुत्रवान्सुधीः ॥ ४ ॥ यस्तांपशुप्रदानेन सन्तर्पयतिभक्तितः ॥ वलिपूजोपहारैश्च सेवतेशत्रु वर्जितः ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशालकटंकटामाहात्म्यन्नामचतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि एकल्लान्देविवीरकाम् ॥ एकल्लवीरायाम्येतु नातिदूरेऽव्यवस्थिताम् ॥ १ ॥ पूर्वं दशरथोयोसौ सूर्यवंशविभूषणः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपश्चक्रेसुदुष्करम् ॥ २ ॥ लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठाप्य तोषयामासश ङ्करम् ॥ सदेवंप्रार्थयामास पुत्रानप्रतिमौजसः ॥ ३ ॥ ददौतस्यतदापुत्रं देवंत्रैलोक्यपूजितम् ॥ रामेतिनामयस्यासी

दक्षिणभाग में व रेवन्त से पूर्वओर में स्थित शालकटंकटा देवीजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि महापातकों के समूहको नाशनेवाली व सब दुःखोंको विनाशनेवाली और सिद्धों व गन्धर्वोंसे पूजित तथा फरकती हुई दाढ़ोंसे भयकरहै ॥ २ ॥ व पौलस्त्यजी से थापीहुई वे महाप्रचण्ड दैत्योंको नाशनेवाली तथा महिषासुरनाशिनी प्रभासक्षेत्र में स्थित हैं ॥ ३ ॥ माघ महीनेमें चौदसि तिथि में जो मनुष्य उन भगवती को पूजता है वह विद्वान् बुद्धिमान्, पशुमान्, लक्ष्मीवान् व पुत्रवान् होताहै ॥ ४ ॥ और जो भक्तिसे उनको पशुके दान से भलीभांति तृप्त करताहै और वलि, पूजन के उपहारों से सेवता है वह शत्रुवों से रहित होताहै ॥ ५ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशालकटंकटामाहात्म्यंनामचतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६४ ॥

दो० । दशरथेश्वरहिं लिंग जिमि थाप्यो दशरथ भूप । इकसौ पैंसठि में सोई कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर एकल्लवीरा के दक्षिणमें थोड़ेही दूर पै स्थित एकल्ला वीरकाके समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय सूर्यवंशके भूषणरूप जो ये दशरथ राजाहुये हैं उन्होंने प्रभासक्षेत्रमें आकर कठिन तप किया है ॥ २ ॥ और वहांपर लिंगको थापकर शिवदेवजीको प्रसन्न किया व उन्होंने अमित बलवाले पुत्रोंको मांगा ॥ ३॥ तब शिवजी ने उनको त्रैलोक्य

पूजित देवताको पुत्र दिया जिनका राम ऐसा नाम हुआ है और त्रिलोकमें यश प्रसिद्धहुआ है ॥ ४ ॥ और जिनके यशको आजभी भूर्भुवः स्वर्लोकके निवासी गाते हैं व देवता, दैत्य तथा सब राक्षस और बाल्मीकि आदिक महर्षि जिनके यशको गाते हैं ॥ ५ ॥ और उस लिंगके प्रभावसे राजाने बड़ेभारी यशको पायाहै कातिक महीने में कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो विधि से उन शिवजी को दीपक, पूजन व उपहारों से पूजता है वह यशस्वी होता है ॥ ६ । ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदशरथेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

त्रैलोक्येप्रथितंयशः ॥ ४ ॥ यस्याद्यापीहगायन्ति भूर्भुवःस्वर्निवेशिनः ॥ देवादैत्यासुरास्सर्वे बाल्मीक्याद्यामहर्षयः ॥ ५ ॥ तेनलिङ्गप्रभावेण प्राप्तंराज्ञामहद्यशः ॥ कार्त्तिक्यांकार्त्तिकेमासि विधिनायस्तमर्चयेत् ॥ ६ ॥ दीपपूजोपहारेण यशस्वीसोभिजायते ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे दशरथेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गतद्भरतेश्वरम् ॥ तस्मादुत्तरकोणस्थं नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ भरतोनामराजाभूद्विनिद्रःप्रथितःक्षितौ ॥ यस्येदंभारतंवर्षं नाम्नालोकेषुगीयते ॥ २ ॥ सचचक्रेतपोघोरं क्षेत्रेस्मिन्पर्वतेप्रिये ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ ३ ॥ पुत्रकामोनरःश्रेष्ठस्ततस्तुष्टोभवद्भवः ॥ अष्टौपुत्रान्ददौतस्य कन्यांचैकांयशस्विनीम् ॥ ४ ॥ सतुप्राप्याभिलाषितं कृतकृत्योनराधिपः ॥ भारतंनवधाकृत्वा पुत्रेभ्यः

दो० । जिमि भरतेश्वर लिंगको थप्यो भरत भूपाल । इकसौ छाछठि में सोई वर्णित चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे उत्तर-कोण में स्थित थोड़ेही दूर पै प्राप्त उस भरतेश्वर लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ विनिद्र (निरालसी) भरत नामक राजा पृथ्वी में प्रसिद्ध हुये हैं जिनके नामसे लोकों में वह भारतवर्ष गायाजाता है ॥ २ ॥ हे प्रिये ! पुत्रकी कामनावाले उस नरश्रेष्ठ ने महादेवजीको थापकर इस क्षेत्र में पर्वत पै देवताओं के हज़ार वर्षतक भयंकर तप किया उसके उपरान्त शिवजी प्रसन्नहुये और उन्होंने उसको आठ पुत्र व एक यशस्विनी कन्याको दिया ॥ ३ । ४ ॥ और मनोरथको प्राप्तहोकर वे कृतकृत्य

दो० । जिमि कुशकादिक लिंग कर अहै अमित परभाव । इकसौ सरसठिमें सोई बरणत चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सावित्रीजी के पश्चिम में वहां एक स्थान पै स्थित चार लिंगोंके समीप जावै ॥ १ ॥ दो लिंग पूर्वमें और दो पश्चिम में सामने स्थित हैं पहले कुशकेश्वरनामक ईश्वर कहेगये हैं ॥ २ ॥ और दूसरे गर्गेश्वर व तीसरे पौरुषेश्वर तथा चौथे मैत्रेयेश्वरनामक कहेगये हैं ॥ ३ ॥ जो जितेन्द्रिय मनुष्य भक्तिसे इन लिंगोंको देखताहै वह सब पातकोंसे छूटकर बड़ेभारी शिवलोकको जाता है ॥ ४ ॥ वैशाखमें विशेषकर शुक्लपक्ष की चौदसि में वहां स्नानकरके बडे यत्नसे ब्राह्मणोंको पूजै ॥ ५ ॥ और उनके लिये

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गानाञ्चचतुष्टयम् ॥ एकस्थानेस्थितानान्तु सावित्र्यास्तत्रपश्चिमे ॥ १ ॥ लिङ्गानांद्वितयेपूर्वे पश्चिमेसम्मुखेद्वयम् ॥ कुशकेश्वरनामानमीश्वरंप्रथमंस्मृतम् ॥ २ ॥ गर्गेश्वरंद्वितीयन्तु तृतीयं पौरुषेश्वरम् ॥ मैत्रेयेश्वरनामानं चतुर्थंसमुदाहृतम् ॥ ३ ॥ एतानियस्तुलिङ्गानि पश्येद्भक्त्याजितेन्द्रियः ॥ समुक्तः पातकैस्सर्वैर्गच्छेच्छिवपुरंमहत् ॥ ४ ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यां वैशाखेतुविशेषतः ॥ स्नानंकृत्वाप्रयत्नेन ब्राह्मणांस्तत्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ तेभ्योदद्याद्यथाशक्त्या काञ्चनंवसनानिच ॥ एवंतत्रभवेद्यात्रा परिपूर्णासुरेश्वरि ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कुशकादिलिङ्गमाहात्म्यन्नामसप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेविकुन्तीश्वरमनुत्तमम् ॥ सावित्र्यापूर्वभागस्थं खातमध्येऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ कुन्त्याप्रतिष्ठितंलिङ्गं क्षेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ पाण्डवास्तुयदापूर्वं प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ २ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कुन्त्याचै

यथाशक्ति से सुवर्ण व वसनों को देवै इसप्रकार हे सुरेश्वरि ! वहां यात्रा परिपूर्ण होती है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुशकादिलिङ्गमाहात्म्यनामसप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि कुन्तीश्वर लिंगको थाप्यो कुन्ती रानि । इकसौ अरसठिमें सोई कह्यो चरित्र बखानि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सावित्रीजी के पूर्वभाग में स्थित गढे के बीचमें प्राप्त अतिउत्तम कुन्तीश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ उत्तम प्रभासक्षेत्र में कुन्ती ने लिंगको थापा है जब पुरातन समय पाण्डवलोग

कुन्तीसमेत तीर्थयात्राके प्रसंग से प्रभासक्षेत्र को आये हैं उस समय हे महादेवि ! अतिउत्तम क्षेत्रको जानकर ॥ २ । ३ ॥ कुन्ती ने सब पापों के भयको दूर करने-
वाले लिंगको थापा है विशेषकर कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो मनुष्य उन शिवजीको पूजता है ॥ ४ ॥ वह सब कामनाओं से समृद्धात्मा होकर शिवलोक में पूजाजाता
है और वाचिक व मानस पाप तथा जो कर्म से इकट्ठा कियाहुआ पातक है ॥ ५ ॥ वह सब हे देवि ! उस लिंगके दर्शन से नाश होजाता है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा
णेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुन्तीश्वरमाहात्म्यंनामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

वसमन्विताः ॥ तस्मिन्कालेमहादेवि ज्ञात्वाक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ कुन्त्याप्रतिष्ठितंलिङ्गं सर्वपापभयापहम् ॥ का
र्त्तिक्यांचविशेषेण यस्तंपूजयतेनरः ॥ ४ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा रुद्रलोकेमहीयते ॥ वाचिकंमानसंपापं कर्मणायदु
पार्जितम् ॥ ५ ॥ तत्सर्वंनश्यतेदेवि तस्यलिङ्गस्यदर्शनात् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कुन्तीश्वरमाहा
त्म्यन्नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पुण्यमर्कस्थलंप्रिये ॥ तस्मादाग्नेयकोणस्थं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ त
न्दृष्ट्वामानुषोदेवि नशोच्यःसम्प्रजायते ॥ सप्तजन्मनिदेवेशि दारिद्र्यन्नैवजायते ॥ २ ॥ कुष्ठानिनाशमायान्ति तन्दृ
ष्ट्वाष्टदशप्रिये ॥ गोशतस्यप्रदानस्य कुरुक्षेत्रेषुयत्फलम् ॥ ३ ॥ तत्फलंसमवाप्नोति दृष्ट्वाचार्कस्थलंरविम् ॥ स्नात्वा
त्रिसङ्गमेतीर्थे सप्तम्यांसुकृतीनरः ॥ ४ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वाथ महिषींतत्रदापयेत् ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु स्वर्गलोके

दो० । अर्कस्थल को पूजिकै मिलत अहै फल जौन । इकसौ उनहत्तरे में कह्यो चरित सब तौन ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये, महादेवि ! तदनन्तर उससे आग्नेय
कोणमें स्थित समस्तपातकोंके नाशनेवाले व पुण्यरूप अर्कस्थलके समीपजावै ॥ १ ॥ हे देवि ! उसको देखकर मनुष्य शोचने योग्य नहीं होताहै व हे देवेशि ! सात
जन्मों तक दारिद्र नहीं होताहै ॥ २ ॥ व हे प्रिये ! उसको देखकर अठारह प्रकार के कुष्ठ नाशको प्राप्तहोते हैं और कुरुक्षेत्र में गोशत के दानका जो फलहोता है ॥
३ ॥ उस फलको मनुष्य अर्कस्थल सूर्यको देखकर प्राप्तहोताहै सप्तमी तिथि में पुण्यवान् मनुष्य त्रिसंगम तीर्थ में नहाकर ॥ ४ ॥ व ब्राह्मणोंको भोजन कराकर इस

के अनन्तर वहां भैंसी को देवै तो देवताओं के हजार वर्षोंतक वह मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजाजाता है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामर्कस्थलमाहात्म्यंनामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि सिद्धेश्वर लिंगकर अहै अमित माहात्म्य । इकसौ सत्तरि मे कह्यो सोइ चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अर्कस्थल से आग्नेयकोण में थोड़ेही दूर पै स्थित अतिउत्तम सिद्धेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ अट्ठासी हज़ार ऊर्द्धरेता ऋषिलोग उस लिंगमें प्रसिद्धहुये हैं इससे सिद्धे-

महीयते ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽर्कस्थलमाहात्म्यन्नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६९ ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सिद्धेश्वरमनुत्तमम् ॥ अर्कस्थलात्तथाग्नेय्यां नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ अष्टादशसहस्राणि ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ तस्मिँल्लिङ्गेप्रसिद्धानि सिद्धेश्वरमितिस्मृतम् ॥ २ ॥ स्नात्वार्चयेन्नरोभक्त्या चन्द्रवारेजितेन्द्रियः ॥ सम्पूज्यविधिवद्देवं दद्याद्विप्रेषुदक्षिणाम् ॥ ३ ॥ सर्वकामसमृद्धस्तु सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसिद्धेश्वरमाहात्म्यन्नामसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे लकुटेश्वरमूर्त्तिमान् ॥ स्वयन्तिष्ठतिदेवेशि कृत्वाघोरंतपःपुरा ॥ १ ॥ संस्थितः

श्वर ऐसा वह लिंग कहागया है ॥ २ ॥ हे देवि ! सोमवार में जितेन्द्रिय मनुष्य नहाकर और भलीभांति पूजकर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देताहै ॥ ३ ॥ वह सब कामनाओं से समृद्ध होकर उत्तम गतिको प्राप्तहोता है ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अहैं प्रभासक्षेत्रमें लकुटेश्वर शिवनाम । इकसौ इकहत्तरे महँ सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि ! पुरातन समय भयंकर तपस्याकर मूर्त्ति-

मान् लकुटेश्वरजी आपही उसी के पूर्वदिशाके भाग में स्थित हैं ॥ १ ॥ पापनाशक उस स्थानमें स्थलके ऊपर वे भलीभाति स्थितहैं कृत्तिका नक्षत्रके योगमें कार्त्तिकी पौर्णमासी में जो मनुष्य उनको पूजता है ॥ २ ॥ हे महादेवि ! वह सब सुरासुरों से भी पूजाजाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायालकुटेश्वरमाहात्म्यंनामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ❀ ॥ ❁ ॥ ० ॥

दो० । अहैं प्रभासक्षेत्र में भार्गवेश शिवनाम । इकसौ बहतरिमें सोई वर्णित चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके दक्षिणमें स्थित

पापशमने तत्रस्थानेस्थलोपरि ॥ कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगे यस्तंपूजयतेनरः ॥ २ ॥ सपूज्यतेमहादेवि सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे लकुटेश्वरमाहात्म्यन्नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७१ ॥ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्माद्दक्षिणतःस्थितम् ॥ भार्गवेश्वरनामानं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यस्तंपूजयतेदेवि दिव्यपुष्पोपहारकैः ॥ सभवेत्कृतकृत्यस्तु सर्वकामैस्समृद्धिमान् ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभार्गवेश्वरमाहात्म्यन्नाम द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ सिद्धेशाद्दक्षिणेभागे धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ १ ॥ माण्डव्येश्वरनामानं महापातकनाशनम् ॥ माघेमासिचतुर्दश्यां पूजांजागरणन्तथा ॥ २ ॥ कुर्याज्जितेन्द्रियोमर्त्यो न सम्भृत्योःपुरंव्रजेत ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेमाण्डव्येश्वरमाहात्म्यन्नामत्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥

सब पापोंके नाशनेवाले भार्गवेश्वरनामक शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! जो उनको दिव्यपुष्पों के उपहारों से पूजताहै वह सब कामोंसे समृद्धिमान् होकर कृतकृत्य होता है ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभार्गवेश्वरमाहात्म्यंनामद्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

दो० । माण्डव्येश्वर लिंगको माण्डव्यो मुनिनाथ । थाप्यो इकसौ तिहतरे माहिं कथित सो गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सिद्धेशजीसे दक्षिणभाग में तीन धनुष पै स्थित पातकोंके विनाशक माण्डव्येश्वर नामक लिंगके समीप जावै जोकि महापातकों का विनाशक है माघमहीने में चौदसि तिथिमें पूजन

व जागरण को ॥ १ । २ ॥ जो जितेन्द्रिय मनुष्य करता है वह मृत्युके पुरको नहीं जाताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांमाण्डव्येश्वरमाहात्म्यंनामत्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पुष्पदन्त ईश्वराहिं जिमि थाप्यो शिव गणपाल । इकसौ चौहत्तरे महँ सोई वर्णित हाल ॥ महादेवजी बोले कि हे शुभे ! वहीं पर स्थित पुष्पदन्तेश्वरनामक शिवजी को देखै पुष्पदन्तेश्वरनामक शिवजी के गणनायक थे ॥ १ ॥ उन्हों ने भयंकर तपकरके वहां लिंगको थापन किया है उनको देखकर प्राणी जन्मसंसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ २ ॥ और इसलोक व परलोकमें चाहेहुये कामोंको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा

ईश्वरउवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येत् पुष्पदन्तेश्वरंशुभे ॥ पुष्पदन्तेश्वरोनाम गणेशश्शङ्करस्यतु ॥ १ ॥ तेनतप्त्वातपोघोरं तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ तन्दृष्ट्वामुच्यतेजन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥ २ ॥ प्राप्नुयादीप्सितान्कामानिहलोकेपरत्रच ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपुष्पदन्तेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुस्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि क्षेत्रपेश्वरमुत्तमम् ॥ सिद्धेश्वरसमीपस्थं पूर्वस्मिन्नातिदूरतः ॥ १ ॥ तन्दृष्ट्वाशुक्लपञ्चम्यां नचनागैस्सदश्यते ॥ पूजयेत्तंविधानेन गन्धपुष्पादिभिःक्रमात् ॥ २ ॥ भोजयेद्ब्राह्मणाञ्छक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेक्षेत्रपालेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥

टीकायांपुष्पदन्तेश्वरमाहात्म्यंनामचतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । क्षेत्रपेश शिवलिंग जिमि भयो भूमिविख्यात । इकसौ पचहत्तरे महँ सोई चरित सुहात ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर थोड़ेही दूर पै पूर्वओर सिद्धेश्वरजी के समीपमें स्थित उत्तम क्षेत्रपेश्वरजीके समीप जावै ॥ १ ॥ शुक्लपक्षकी पंचमी में उनको देखकर उस मनुष्य को साँप नहीं काटते हैं उनको विधिपूर्वक क्रमसे गन्धपुष्पादिकों से पूजन करै ॥ २ ॥ और यथाशक्ति से अनेक भक्ष्यभोज्यों करके ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेत्रपालेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अर्कस्थलके निकट है सुनन्दादि समुदाय । इकसौ छिहत्तरिमें सोई कथा कह्यो समुदाय ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! तदनन्तर नियतचित्तवाला पुरुष नवमी तिथि में जो मातृगणों को देखै वह दुष्टचित्तवाला भी पुरुष समृद्धि को प्राप्तहोता है ॥ १ ॥ वहां दक्षिण में थोड़ेही दूर पै अर्कस्थलके समीप स्थित सुनन्दादिक नामसे मातृगणोंके समीप जावै ॥ २ ॥ कुँवारके शुक्लपक्षमें नवमी तिथिमें जो नियतचित्त तथा शुद्धचित्तवाला पुरुष उन मातृकाओं को विधिसे पूजता है ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! दुष्टचित्तवाला भी वह पुरुष समृद्धिको प्राप्तहोता है व हे प्रिये ! वहींपर भलीभाति स्थित श्रीमुखविवर के समीप जावै ॥ ४ ॥ उसीदिन सिद्धि

ईश्वरउवाच ॥ ततोमातृगणान्पश्येन्नवम्यांनियतात्मवान् ॥ ससमृद्धिमवाप्नोति दुरात्मापिनरःप्रिये ॥ १ ॥ तत्रमातृगणान्पश्येत् सुनन्दादिकनामतः ॥ अर्कस्थलसमीपस्थान् दक्षिणेनातिदूरतः ॥ २ ॥ अश्वयुक्शुक्लपक्षेतु नवम्यांनियतात्मवान् ॥ यस्ताःपूजयतेमातॄन् विधिनाभावितात्मवान् ॥ ३ ॥ ससमृद्धिमवाप्नोति दुरात्मापिनरःप्रिये ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येच्छ्रीमुखंविवरंप्रिये ॥ ४ ॥ तस्मिन्नेवदिनेपूज्यं सिद्धिकामैर्नरैस्सदा ॥ एतत्सर्वंमयाख्यातं सारं तीर्थमनुत्तमम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सुनन्दामाहात्म्यन्नामषट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः१७६॥
ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मिश्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ सरस्वतीहिरण्याच समुद्रश्चैवभामिनि ॥ त्रयाणांसङ्गमोयत्र दुष्प्राप्योदैवतैरपि ॥ १ ॥ सर्वेषांतत्रतोयानां प्राधान्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ सूर्यपर्वणिसम्प्राप्ते कुरुक्षेत्राद्विशिष्य

के कामनावाले पुरुषों, से वह सदैव पूजने योग्य है मैंने इस सब अतिउत्तम सारांशरूप तीर्थको कहा ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसुनन्दादिमातृगणमाहात्म्यंनामषट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अति उत्तम माहात्म्ययुत तीर्थ त्रिसंगम नाम । इकसौ सतहत्तरे महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! अतिउत्तम मिश्रतीर्थके समीप जावै हे भामिनि ! जहां सरस्वती, हिरण्या व समुद्रहै वहां तीनों का संगम देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ १ ॥ वहां सब जलोंके मध्यमें उत्तम व प्रधान तीर्थ है

शाके भागमें गौरीरूप में स्थित अविनाशिनी देवमाता के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! वे लोकों में देवमाता ऐसी गान की जाती हैं वहा जो सरस्वती देवी प्रभासक्षेत्रमें स्थित हैं ॥ २ ॥ वे वहां वड़वानल में शरीरको प्राप्तकर गौरीके रूपसे वड़वानलके डरसे देवताओं की माताकी नाई रक्षाकरती हैं ॥ ३ ॥ इसलिये इसलोकमें वे देवमाता ऐसी कीगई माघमहीने में तीज तिथि में जो मनुष्य उनको पूजता है ॥ ४ ॥ अथवा स्थिर चित्तवाली जो पतिव्रता स्त्री उनको पूजती है वह सब कामनाओं को प्राप्तहोती है और जो पुरुष शर्करादिक व खीरसे स्त्री पुरुषों को भोजन कराता है ॥ ५ ॥ वह दिये हुये हज़ार गौरीभोज के फलको प्राप्तहोताहै और

मातामहादेवि इतिलोकेषुगीयते ॥ प्रभासक्षेत्रसंस्थाच तत्रदेवीसरस्वती ॥ २ ॥ गौरीरूपेणसातत्र वडवाश्रितविग्रहा ॥ मातृवद्रक्षतेदेवान् वडवानलभीतितः ॥ ३ ॥ देवमातेतिलोकेस्मिंस्ततस्साविबुधैःकृता ॥ माघेमासितृतीयायां यस्तांपूजयतेनरः ॥ ४ ॥ नारीवासंयतासाध्वी सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ दम्पतीभोजयेद्यस्तु पायसैश्शर्करादिभिः ॥ ५ ॥ गौरीसहस्रभोजस्य दत्तस्यफलमाप्नुयात् ॥ सुवर्णपादुकादेया तत्रविप्रायशीलिने ॥ ६ ॥ रक्तवस्त्राणिदेयानि ताम्रकुम्भंतथैवच ॥ एवंतस्यभवेद्यात्रा परिपूर्णावरानने ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवमातृगौरीमाहात्म्यन्नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नागस्थानमनुत्तमम् ॥ मङ्कीशात्पश्चिमेभागे सङ्गमत्रितयंगतम् ॥ १ ॥ पापघ्नंसर्वजन्तूनां पातालविवरंमहत् ॥ बलभद्रःपुरादेवि श्रुत्वाकृष्णस्यपञ्चताम् ॥ २ ॥ भल्लतीर्थेनगत्वासौ ततःप्राभास

वहां शीलवान् ब्राह्मणके लिये सुवर्णकी खड़ाऊं देनाचाहिये ॥ ६ ॥ व हे वरानने ! लाल वसन व तांबे का घडा देनाचाहिये इसप्रकार उसकी यात्रा परिपूर्ण होती है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवमातृगौरीमाहात्म्यंनामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥ ⊛ ॥

दो० । है अत्यन्त माहात्म्ययुत तीरथ नाग स्थान । इकसौ अस्सी में कियो सोई चरित बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अतिउत्तम नाग स्थान के समीप जावै मंकीश से पश्चिमभागमें तीनों संगमों में प्राप्त ॥ १ ॥ बड़ाभारी पातालका गढ़ा सब जन्तुवोंके पातकों का विनाशक है हे देवि ! पुरातन स-

मय बलभद्रजी कृष्णजीका मरण सुनकर ॥ २ ॥ भल्लतीर्थसे जाकर तदनन्तर ये प्रभासक्षेत्रको आये और बड़े पवित्र क्षेत्रको सब प्रयोजनोंका सिद्धिदायक जानकर ॥ ३ ॥ यादवोंका क्षय देखकर तदनन्तर वैराग्यको प्राप्तहुये तदनन्तर नगरार्कके पूर्व ओर मित्रवन में स्थित होकर ॥ ४ ॥ योगवान् बलभद्रजी ने सात धनुष पै बैठकर प्राणोंको त्यागकिया और शरीर से शेषनाग के स्वरूप से निकलकर ॥५॥ उससमय चलते चलतेहुये उन्होंने त्रिसंगम नामक उत्तम तीर्थको पाया तब विवर रूपी पाताल के द्वारको देखकर ॥ ६ ॥ पैठकर शीघ्रही वहां गये जहां कि आपही अनन्तजी स्थित थे जिसलिये इस स्थान में नागस्वरूप से पैठे हैं ॥ ७ ॥ उसीका-

मागतः ॥ क्षेत्रंमहापुण्यतमं ज्ञात्वासर्वार्थसिद्धिदम् ॥ ३ ॥ यादवानांक्षयंदृष्ट्वा ततोवैराग्यमाप्तवान् ॥ ततोमित्रवने स्थित्वा नगरार्कस्यपूर्वतः ॥ ४ ॥ धनुषांसप्तकेस्थित्वा प्राणांस्तत्याजयोगवान् ॥ शेषनागस्वरूपेण निष्क्रम्यतुशरीरतः ॥ ५ ॥ गच्छन्गच्छंस्तदाप्राप तीर्थंत्रैसङ्गमंपरम् ॥ पातलस्यतदादृष्ट्वा द्वारंविवररूपिणम् ॥ ६ ॥ प्रविष्टोथजगामाशु यत्रानन्तस्स्वयंस्थितः ॥ यतोनागस्वरूपेण स्थानेस्मिंश्चसमाविशत ॥ ७ ॥ तत्प्रभृत्येवदेवेशि नागस्थानमितिश्रुतम् ॥ नगरादित्यपूर्वेण यत्रकायोविसर्जितः ॥८॥ तदद्यापिप्रसिद्धंहि शेषस्थानमितिश्रुतम्॥अथस्नात्वामहादेवि तत्रतीर्थेत्रिसङ्गमे ॥ ९ ॥ नागस्थानंसमभ्यर्च्य पञ्चम्यामव्रताशनः ॥ श्राद्धंकृत्वायथाशक्त्या दत्त्वाविप्रायदक्षिणाम् ॥ १० ॥ विमुक्तस्सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकंसगच्छति ॥ पायसंमधुसंमिश्रं भक्ष्यभोज्यैस्समन्वितम् ॥ ११ ॥ शेषनागं

रण हे देवेशि ! तबसे लगाकर वह नागस्थान ऐसा प्रसिद्धहुआ नगरादित्यके पूर्व ओर जहां बलभद्रजीने शरीरको छोड़ाहै ॥ ८ ॥ वह शेषस्थान ऐसा विख्यात आज भी प्रसिद्ध है इसके अनन्तर हे महादेवि ! उस त्रिसंगम तीर्थ में नहाकर ॥ ९ ॥ पंचमी तिथिमें विन भोजन कियेहुये पुरुष नागस्थानको भलीभांति पूजकर श्राद्ध करके यथाशक्ति ब्राह्मणके लिये दक्षिणादेकर ॥ १० ॥ सब पापोंसे छूटकर वह मनुष्य शिवलोकको जाताहै और शहदसे मिश्रित व भक्ष्यभोज्यसे संयुत खीरको ॥ ११ ॥

जो शेषनागको उद्देश कर वहां ब्राह्मणों को भोजन कराता है उसने कोटि भोजकिया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदया लुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनागस्थानमाहात्म्यंनामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्र में तीरथ आदि प्रभास । इकसौ इक्यासिवें महँ सोई चरित प्रकास ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहांपै स्थित पुण्यस्व-रूप व सब कामनाओं तथा शुभ को देनेवाले आदिप्रभासपंचक क्षेत्रको जावै ॥ १ ॥ उसी के पश्चिमभाग में प्रभासक्षेत्र कहा जाता है तदनन्तर उसके दक्षिण

समुद्दिश्य विप्रंयस्तत्रभोजयेत् ॥ कोटिभोजंकृतन्तेन भवत्यत्रनसंशयः ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे नागस्थानमाहात्म्यन्नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सर्वकामशुभप्रदम् ॥ प्रभासपञ्चकंपुण्यमाद्यंतत्रव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ तस्यैव पश्चिमेभागे प्रभासक्षेत्रउच्यते ॥ जलप्रभासस्तुततस्तस्यदक्षिणमास्थितः ॥ २ ॥ महाप्रभासश्चततो दक्षिणेचव रानने ॥ कृतस्मरःप्रभासश्च श्मशानंयत्रभैरवम् ॥ ३ ॥ एवंपञ्चप्रभासान्यः पश्येद्भक्त्यासमन्वितः ॥ सयातिप रमंस्थानं जरामरणवर्ज्जितम् ॥ ४ ॥ ननिवर्त्ततियत्प्राप्य दुष्प्राप्यंत्रिदशैरपि ॥ प्रभासंप्रथमंतीर्थं त्रिषुलोकेषुविश्रुत म् ॥ ५ ॥ देवानामपिदुष्प्राप्यं महापातकनाशनम् ॥ प्रभासेत्वेकरात्रेण अमावस्यांकृतव्रतः ॥ ६ ॥ मुच्यतेपातकैस्सर्वैः शिवलोकंचगच्छति ॥ सप्तजन्मकृतंपापं स्नात्वानश्यतिपुष्करे ॥ ७ ॥ सप्तजन्मकृतंपापं गङ्गासागरसङ्गमे ॥ जन्म

में जलप्रभास स्थित है ॥ २ ॥ हे वरानने ! उसके दक्षिण में महाप्रभास है और कृतस्मर, प्रभास व जहां श्मशान भैरव हैं ॥ ३ ॥ इसप्रकार भक्तिसे संयुत जो मनुष्य पांच प्रभासों को देखताहै वह वृद्धता व मृत्युसे रहित उत्तम स्थानको प्राप्त होता ॥ ४ ॥ और देवताओंको भी दुर्लभ जिस स्थानको प्राप्तहोकर नहीं लौटताहै आदि-प्रभास तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ और देवताओं को भी दुर्लभ वह महापातकों को नाशनेवाला है और प्रभासमे अमावस तिथि में एक रात्रिसे व्रत कर-नेवाला मनुष्य ॥ ६ ॥ सब पापोंसे छूटजाताहै और शिवलोकको जाता है व पुष्करमें नहाकर सात जन्मोंमें कियाहुआ पाप नाशहोजाताहै ॥ ७ ॥ और गंगा व सागर

के संगममें स्नान करने से सातजन्मों में कियाहुआ पाप नाश होजाताहै और हज़ार जन्मोंमें मनुष्य जिस पापको करता है ॥ ८ ॥ वह क्षारसमुद्र में स्नानहीसे नाश होजाताहै ॥ ९ ॥ और चौदसि, अमावस व विशेषकर पौर्णमासी तिथि में दिन रात उपासकर शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराकर ॥ १० ॥ शिवजी प्रसन्न होवैं इसलिये उनके लिये गऊ व सुवर्णको देकर हे महादेवि ! ऐसा करके सौ कुलोंको उधारता है ॥ ११ ॥ देवीजी बोलीं कि जो तुमने पाच प्रभासों को कहा वे यहां कैसे उत्पन्नहुये हैं यह मुझको बड़ाभारी कौतुक है ॥१२॥ हे देवेश ! मैंने तीर्थवासियों के एकही प्रभासको सुना है और जो तुमने पाच

नाब्दसहस्रेण यत्पापंकुरुतेनरः ॥ ८ ॥ स्नानमात्रेणनश्येतसागरेलवणाम्भसि ॥ ९ ॥ चतुर्दश्याममावास्यां पञ्चदश्यांविशेषतः ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा ब्राह्मणान्भोजयशक्तितः ॥ १० ॥ दत्त्वागांकाञ्चनंतेभ्यः शिवःप्रीतोभवत्विति ॥ एवंकृत्वामहादेवि कुलानांशतमुद्धरेत् ॥ ११ ॥ देव्युवाच ॥ प्रभासपञ्चकंह्येतद्यत्त्वयापरिकीर्त्तितम् ॥ कथमत्र समुद्भूतमेतन्मेकौतुकंमहत् ॥ १२ ॥ एकएवश्रुतोस्माभिः प्रभासस्तीर्थवासिनाम् ॥ प्रभासाःपञ्चदेवेश यत्त्वयापरिकीर्तिताः ॥ १३ ॥ एतन्मेसंशयंसर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ १४ ॥ पुरामहेश्वरोदेवि चचारवसुधामिमाम् ॥ दिव्यरूपधरःकान्तो दिग्वासाश्चयदृच्छया ॥ १५ ॥ सएवंचरमाणस्तु ऋषीणामाश्रमंमहत् ॥ जगामकौतुकाविष्टो भिक्षार्थंदारुकेवने ॥ १६ ॥ भ्रममाणस्यतस्याथ दृष्ट्वारूपमनुत्तमम् ॥ तानार्यःकामसन्तप्ता बभूवुर्व्यथितेन्द्रियाः ॥ १७ ॥ सानुरागास्ततस्सर्वा अनुगच्छन्तितास्तदा ॥ समालिङ्गति

प्रभासोंको कहा ॥ १३ ॥ इस मेरे सन्देहको तुम यथायोग्य कहनेके योग्यहो महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं पातकोंको नाशकरनेवाली कथाको कहताहूं ॥१४॥ हे देवि ! पुरातन समय दिव्यरूपको धारणकर नंगेहोकर सुन्दर महेश्वरजी इस पृथ्वी में अपनी इच्छा से घूमतेभये ॥ १५ ॥ और इसप्रकार घूमतेहुये वे विस्मय से संयुत होकर भिक्षाके लिये दारुकवनमें ऋषियोंके बड़ेभारी आश्रमको गये ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर घूमतेहुये उनके अतिउत्तमरूपको देखकर कामदेवसे संतप्तहोती

हुई वे स्त्रियां इन्द्रियों से व्याकुल हुई ॥ १७ ॥ तदनन्तर उस समय अनुरागसमेत वे सब पीछे चलीं और वहां कोई लिपटने लगी व कोई स्नेह से देखनेलगीं ॥ १८ ॥ वैसेही अन्य स्त्रियां अपने घरोंको छोड़कर प्रार्थना करनेलगीं इसप्रकार उनके स्वरूपको देखकर वे सब महर्षिलोग ॥ १९ ॥ कोपसे संयुत होकर उन शिव जी को शाप देतेभये कि जिसलिये तुम नग्नताको प्राप्तहोकर इस आश्रममें आये ॥ २० ॥ और हमलोगोंकी स्त्रियों को मोहित करतेहुये तुम लज्जा नहीं करते हो इसकारण कियेहुये अपराधवाले तुम्हारा लिंग शीघ्रही गिरपड़े ॥ २१ ॥ तदनन्तर उसी क्षण वह शिवजी का लिंग गिरपड़ा और पृथ्वीमें उस लिंगके गिरनेपर पृथ्वी

तत्रैका काश्चिद्दीचान्तिरागतः ॥ १८ ॥ प्रार्थयन्तितथैवान्याःपरित्यज्यगृहान्स्वकान् ॥ एवन्तासांस्वरूपन्ते दृष्ट्वासर्वे महर्षयः ॥ १९ ॥ कोपेनमहतायुक्ताः शेपुस्तंवृषभध्वजम् ॥ यस्मात्त्वन्नग्नतामेत्य आश्रमेस्मिन्समागतः ॥ २० ॥ मोहयंश्चस्त्रियोस्माकं लज्जान्नैवकरोषिच ॥ तस्मात्तेपतताल्लिङ्गं सद्यएवकृतागसः ॥ २१ ॥ ततस्तत्पतितंलिङ्गं तत्क्षणे शङ्करस्यच ॥ तस्मिन्प्रपतितेभूमौ कम्पिताचवसुन्धरा ॥ २२ ॥ क्षुभितास्सागरास्सर्वे मर्यादांविजहुस्तदा ॥ शीर्णानिगिरिश्रृङ्गाणि त्रस्तास्सर्वेदिवौकसः ॥ २३ ॥ ततोदेवास्सगन्धर्वास्सर्महोरगकिन्नराः ॥ जग्मुःपितामहंप्रोचुः किमेतत्कारणंविभो ॥ २४ ॥ सागराःक्षोभितायेन प्लावयन्तिवसुन्धराम् ॥ शीर्यन्तेगिरिश्रृङ्गाणि कम्पतेचवसुन्धरा ॥ २५ ॥ चिह्नानिलोकनाशाय दृश्यन्तेदारुणानिच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा ब्रह्मालोकपितामहः ॥ २६ ॥ ध्यात्वातुसुचिरंकालं

कांप उठी ॥ २२ ॥ व उस समय क्षोभित होतेहुये सब समुद्रोंने सीमाको छोडदिया और पर्वतोंके शिखर टूटगये व सब देवता डरगये।२३॥तदनन्तर नागों व किन्नरों समेत तथा गन्धर्वोंसहित देवता ब्रह्माके समीप गये और बोले कि हे विभो ! यह क्या कारण है ॥ २४ ॥ कि जिससे समुद्र क्षोभित होकर पृथ्वीको डुबाते हैं और पर्वतों के शिखर टूटते हैं व पृथ्वी कांपती है ॥ २५ ॥ और लोकोंके नाशके लिये भयंकर चिह्न देखपड़ते हैं उनके उस वचनको सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ॥ २६ ॥

बहुत समय तक ध्यानकर यह वचन बोले कि हे सुरोत्तमो ! भृगुवंशी मुख्य ऋषियों के शाप से पृथ्वी में शिवजी का लिंग गिराहै उसके गिरने पर चराचर समेत यह संसार ॥ २७ । २८ ॥ अस्वस्थता को प्राप्त है इसलिये हे देवताओ ! विष्णुसमेत तबतक वहीं जाइये कि जबतक प्रलय न होवै और शिवजीके लिंगको लेकर अपने स्थान में स्थापित कीजिये ॥ २९ । ३० ॥ तदनन्तर ब्रह्मादिक देवता क्षीरसमुद्रको गये जहां कि योगनिद्राके वशमें प्राप्त चतुर्भुज (विष्णु) जी सोरहे थे ॥ ३१ ॥ उनसे वे सब वृत्तान्तको कहतेभये उसके उपरान्त उन्हीं समेत वहा गये जहा कि लिंगसे रहित विभु महादेवजी थे ॥ ३२ ॥ सब देवताओं ने साथही

वाक्यमेतदुवाचह ॥ शिवलिङ्गंनिपतितं पृथिव्यांसुरसत्तमाः ॥ २७ ॥ शापाच्चऋषिमुख्यानां भार्गवाणांमहात्मना म् ॥ तस्मिन्निपतितेभूमौ त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ २८ ॥ एतदस्वस्थतांप्राप्तं तस्मात्तत्रैवगम्यताम् ॥ विष्णुनासहगीर्वाणा यावन्नप्रलयोभवेत् ॥ २९ ॥ तथादायहरंलिङ्गं स्थापयतस्थलेनिजे ॥ ३० ॥ ततःक्षीरोदधिंजग्मुर्ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ यत्रशेतेचतुर्बाहुर्योगनिद्रावशङ्गतः ॥ ३१ ॥ तस्यसर्वंसमाचख्युस्तेनैवसहितास्ततः ॥ जग्मुर्यत्रमहादेवो लिङ्गेनरहितोविभुः ॥ ३२ ॥ तमूचुस्सहितास्सर्वे प्रणिपत्यदिवौकसः ॥ लिङ्गंप्रक्षिप्यतामेतद्यतक्षितौपतितंविभो ॥ ३३ ॥ यतोमहार्णवास्सर्वे प्लावयन्तिवसुन्धराम् ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ऋषिभिःपातितंह्येतन्ममलिङ्गंसुरेश्वराः ॥ ३४ ॥ ननुशक्योमयाकर्तुंमोघस्तेषांमहात्मनाम् ॥ शापोहिभार्गवेन्द्राणां मतोमेश्रूयतांवचः ॥ ३५ ॥ पूजयन्तुसुरास्सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ ३६ ॥ लिङ्गमेतत्ततस्सर्वे सर्वंलप्स्यथसत्तमाः ॥ प्रयान्तिसागरास्सर्वे यास्यन्तिगिरयस्तथा ॥ ३७ ॥ ततश्चैवसुरास्सर्वेप्रभासक्षेत्रमागताः ॥ तत्रैवनिदधुर्लिङ्गं ततःपूजांप्रचक्रिरे ॥ ब्रह्मणापूजितंलिङ्गं विष्णुनाप्र

उनको प्रणाम कर कहा कि हे विभो ! इस लिंगको फेंक दीजिये जोकि पृथ्वी में गिरा है ॥ ३३ ॥ क्योंकि सब महासागर पृथ्वी को डुबाते हैं श्रीभगवान् शिवजी बोले कि हे सुरेश्वरो ! मेरे इसलिंगको ऋषियों ने गिराया है ॥ ३४ ॥ उन भार्गवेन्द्र महात्माओंका शाप मुझसे व्यर्थ नहीं कियाजासक्ता है इसलिये मेरे वचनको सुनिये ॥ ३५ ॥ कि ब्रह्मा व विष्णु आदिक सब देवता इस लिंगको पूजैं तदनन्तर हे सत्तमो ! तुम सब समस्त मनोरथको पावोगे और सब समुद्र व पर्वत प्रवृत्ति

(स्वस्थता) को प्राप्तहोवैंगे ॥३६।३७॥ तदनन्तर सब देवता प्रभासक्षेत्रको आये और वहीं उन्होंनें लिंगको स्थापन किया तदनन्तर पूजनकिया और ब्रह्मा तथा समर्थवान् विष्णुजीने लिंगको पूजा ॥३८॥ और इन्द्र, कुबेर, यमराज व वरुणजीने पूजा तदनन्तर लिंगको भक्तिसे पूजकर देवता बोले ॥३९॥ कि आजसे लगाकर शिवजी का लिंग पूजकर हमलोग निस्सन्देह पूजित होवैंगे और जो पितरगणहैं वे पूजित होवैंगे॥४०॥ और जो भक्तिसे संयुत मनुष्य इसलिंगको पूजैंगे वे उत्तम मनुष्य शरीर समेत देवताओंके स्थानको जावैंगे ॥४१॥ जिसलिये हमलोगोंने यहींपर प्रथम लिंगको थापन कियाहै इस कारण इसका भी प्रथमप्रभास ऐसा नाम होगा ॥४२॥ ऐसा

भविष्णुना ॥ ३८ ॥ शक्रेणाथकुबेरेण यमेनवरुणेनच ॥ ऊचुश्चैवन्ततोदेवा लिङ्गंसम्पूज्यभक्तितः ॥ ३९ ॥ अद्यप्रभृतिरुद्रस्य लिङ्गंपूज्यचपूजिताः ॥ भविष्यामोनसन्देहस्तथापितृगणाश्चये ॥ ४० ॥ यएतत्पूजयिष्यन्ति भक्तियुक्तास्तुमानवाः ॥ तेयास्यन्तिसुरावासं सशरीरन्नरोत्तमाः ॥ ४१ ॥ अत्रैवप्रथमंलिङ्गं यतोस्माभिःप्रतिष्ठितम् ॥ प्रथमं नामचास्यापि प्रभासेतिभविष्यति ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वागतास्सर्वे त्रिदिवंसुरसत्तमाः ॥ तद्दृष्ट्वात्रिदिवंयान्ति भूयांसःप्राणिनोभुवि ॥ ४३ ॥ ततस्त्रिविष्टपेव्याप्ते बहुभिःप्राणिभिःप्रिये ॥ तन्दृष्ट्वाप्रार्थयामास सहस्राक्षस्सुदुःखितः ॥४४॥ ज्ञात्वालिङ्गप्रभावञ्च ततश्चागत्यभूतलम् ॥ वज्रेणाच्छादयामास समंतात्तद्वरानने ॥ ४५ ॥ ततःप्रभृतिनोदेवि स्वर्गं गच्छन्तिमानवाः ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तं प्रभासस्यमहोदयम् ॥४६॥ श्रुतंपापौघशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥४७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे आदिप्रभासक्षेत्रमाहात्म्यन्नामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥ * ॥

कहकर सब देवता स्वर्गको चलेगये पृथ्वीमें उस लिंगको देखकर बहुतसे मनुष्य स्वर्गको जातेथे ॥४३॥ तदनन्तर हे प्रिये ! बहुतप्राणियोंसे स्वर्ग व्याप्त होनेपर उसको देखकर बहुत दुःखित होतेहुये इन्द्रजी ने प्रार्थना किया ॥ ४४ ॥ व हे वरानने ! लिंगके प्रभावको जानकर तदनन्तर पृथ्वी में आकर सबओर से उस लिंगको वज्रसे आच्छादन किया ॥ ४५ ॥ तबसे लगाकर हे देवि ! मनुष्य स्वर्गको नहीं जाते हैं यह प्रभासका माहात्म्य संक्षेप से कहागया ॥ ४६ ॥ सुनाहुआ जोकि पापसमूहों का नाशक व सब कामनाओंके फलको देनेवालाहै॥ ४७ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायामादिप्रभासक्षेत्रमाहात्म्यंनामैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८१॥

दो० । अहैं प्रभासक्षेत्र में रुद्रेश्वर शिवनाम । इकसौ बैयासिवेंमें सोई चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हेमहादेवि ! तदनन्तर उसीस्थानमें स्थित रुद्रेश्वर ऐसे नामक पृथ्वी में आपही से उपजेहुये शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ वह लिंग आदिप्रभासके आगे तीन धनुष पै स्थित है वहां शिवजी ने ध्यान में स्थितहोकर अपने तेजको युक्त किया है ॥ २ ॥ उसीकारण समस्तपातकों का नाशक रुद्रेश्वरनामक लिंग है उसको देखकर व पूजकर मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायारुद्रेश्वरमाहात्म्यंनामद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥ ❁ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रस्थानेतुसंस्थितम् ॥ रुद्रेश्वरेतिनामानं स्वयम्भूतंधरातले ॥ १ ॥ आदिप्रभासात्पुरतो धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ रुद्रेणध्यानमास्थाय स्वतेजस्तत्रयोजितम् ॥ २ ॥ ततोरुद्रेश्वरन्नाम सर्वपातकनाशनम् ॥ तन्दृष्ट्वापूजयित्वाच सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे रुद्रेश्वरमाहात्म्यन्नामद्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे नातिदूरेव्यवस्थिता ॥ चन्द्रिकाकर्णमोटीच योगिनीकोटिसंवृता ॥ १ ॥ अत्र पीठंमहादेवि आद्यंत्रैलोक्यवन्दितम् ॥ नवम्यांतत्रसम्पूज्य देवीपीठञ्चयोगिनीम् ॥ २ ॥ ससर्वान्प्राप्नुयातकामान् गच्छेत्स्वर्गमतःपरम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेचन्द्रिकाकर्णमोटीमाहात्म्यन्नामत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा चन्द्रिकाकर्ण अरु मोटिनाम इमि देवि । इकसौ तिरासिवें में सोइ चरित सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि उसीके पश्चिमभागमें थोड़ेही दूर पै करोड़ योगिनियों से घिरीहुई चन्द्रिकाकर्णमोटी है ॥ १ ॥ हे महादेवि ! यहांपर त्रिलोकसे प्रणाम कियाहुआ आदिपीठ है वहा नवमी तिथि में देवीपीठ व योगिनी जी को पूजकर ॥ २ ॥ वह मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्तहोताहै और उसके उपरान्त स्वर्गको जाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांचन्द्रिकाकर्णमोटीमाहात्म्यंनामत्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्रमें लिंग मुक्तिदातार । इकसौ चौरासिवें मह सोई चरित उदार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहांपर प्रभासक्षेत्रमें नैर्ऋत्य दिशाके भाग में थोड़ेही दूर पै स्थित मुक्तिदायक शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! विशेष कर माघमहीने में एकादशी तिथि में आहारको जीतेहुये जो पुरुष उन शिवजी को पूजताहै वह अग्निष्टोमयज्ञ के फलको पाताहै ॥ २ ॥ जो पुरुष वहां चान्द्रायणादिक अनशनव्रतको करताहै वह अन्यतीर्थ से कोटिगुने चाहे-हुये फलको पाताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमोक्षस्वामिमाहात्म्यंनामचतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रमुक्तिप्रदंहरम् ॥ प्रभासेनैर्ऋतेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ एकादश्यांजिताहारो यस्तंदेविप्रपूजयेत् ॥ माघेमासिविशेषेण सोग्निष्टोमफलंलभेत ॥ २ ॥ यस्तत्रानशनंकुर्याद् व्रतंचान्द्रायणादिकम् ॥ सोन्यतीर्थात्कोटिगुणं प्राप्नुतात्फलमीप्सितम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे मोक्षस्वामिमाहात्म्यन्नामचतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अजीगर्तेश्वरंहरम् ॥ चन्द्रवापीसमीपस्थं कर्णमोटीसमीपतः ॥ १ ॥ तस्यां स्नात्वामहादेवि यस्तल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ समुक्तःपातकैर्घोरैर्गच्छेद्देवपदंमहत् ॥ २॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽजीगर्तेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । अहै अमित परभावयुत अजीगर्त शिवदेव । इकसौ पचासिवें में सोइ चरित सुखसेव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर कर्णमोटी के समीप चन्द्रवापी के निकट स्थित अजीगर्तेश्वर शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ उस बावलीमें नहाकर जो मनुष्य उस लिंगको पूजता है वह घोर पातकोंसे छूटकर बडेभारी देवस्थान को जाताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायामजीगर्तेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८५ ॥ ❀ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विश्वकर्मप्रतिष्ठितम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि मोक्षस्वामिनउत्तरे ॥ १ ॥ धनुषां

दो० । विश्वकर्म ईश्वरहिं जिमि थाप्यो है सुरकारु । कह्यो एकसौ छियासिवें माहिं चरित सो चारु ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मोक्षस्वामी

के उत्तर में पांच धनुष पै स्थित विश्वकर्माजी से थापेहुये महाप्रभाववाले लिंग के समीप जावै हे देवि ! पातकों को नाशकरनेवाले उन शिवजीको देखकर मनुष्य भलीभांति यात्राके फलको पाताहै ॥ २ ॥ और उसके दर्शनसे वाचिक व मानसी पाप नष्ट होजाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविश्वकर्मेश्वरमाहात्म्यंनामषडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । थप्यो यमेश्वरलिंग जिमि यथा देव यमराज । इकसौ सत्तासिवें में सोइ चरित सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके दक्षिण-

पञ्चकेदेवि स्थितंपातकनाशनम् ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि यात्रायाःफलमाप्नुयात् ॥ २ ॥ वाचिकंमानसंपापं दर्शनात्तस्य नश्यति ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे विश्वकर्मेश्वरमाहात्म्यन्नामषडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८६ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यमेश्वरमनुत्तमम् ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ दर्शनात्पापशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेयमेश्वरमाहात्म्यन्नामसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंदेवैःप्रतिष्ठितम् ॥ ज्ञात्वाप्रभावंक्षेत्रस्य सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ ततःकृत्वातपश्चोग्रं लिङ्गंदेवैःप्रतिष्ठितम् ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि कृतकृत्यःप्रजायते ॥ २ ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु ब्राह्मणेवेदपारगे ॥

भाग में थोड़ेही दूर पै स्थित अतिउत्तम यमेश्वरलिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि दर्शनही से पातकोंका विनाशक व सब कामनाओं के फलोंको देनेवालाहै ॥२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांयमेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८७ ॥ ❀ ॥

दो० । थाप्यो सब देवन यथा लिंग सुरेश्वर नाम । इकसौ अट्ठासिवें महँ सोइचरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर देवताओंसे थापेहुये लिंगके समीप जावै समस्त पातकों को नाशनेवाले क्षेत्रके प्रभावको जानकर ॥ १॥ तदनन्तर उग्र तपस्या कर देवताओंने लिंगको थापा है हे देवि ! उन शिवजीको

देखकर मनुष्य कृतकृत्य होताहै ॥ २ ॥ वहां पर वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये गोदान देना चाहिये हे देवि ! जो ऐसा करता है वह यात्राके बढ़ेहुये फलको पाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसुरेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्रकर वृद्ध प्रभासक नाम । इकसौ नव्वासिवें में सोई चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर नियतचित्तवाला पुरुष वृद्धप्रभास को जावै आदि प्रभाससे दक्षिणमें थोड़ेही दूर पै स्थित ॥ १ ॥ चतुर्मुख महालिंग दर्शनसे पातकों की नाश करता है ॥ २ ॥ देवीजी बोलीं कि हे प्रभो ! उसका वृद्ध-

समम्यग्लभतेदेवि यात्रायाःफलमूर्जितम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सुरेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोवृद्धप्रभासन्तु गच्छेच्चनियतात्मवान् ॥ आदिप्रभासाद्दक्षिणतो नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ चतुर्मुखंमहालिङ्गं दर्शनात्पापनाशनम् ॥ २ ॥ देव्युवाच ॥ कथंवृद्धप्रभासेति नामतस्याभवत्प्रभो ॥ तस्मिन्दृष्टेफलं किंस्यात तस्मिन्सम्पूजितेतथा ॥ ३ ॥ एतत्कथयमेदेव संक्षेपान्नातिविस्तरात् ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ आदौस्वायंभुवे देवि पूर्वमन्वन्तरेपुरा ॥ त्रेतायुगेचतुर्थेतु प्रभासक्षेत्रउत्तमे ॥ ५ ॥ तस्मिन्कालेमहादेवि ऋषयस्तत्रसङ्गताः ॥ दर्शनार्थंप्रभासस्य उत्तरापथगामिनः ॥ ६ ॥ तन्दृष्ट्वाच्छादितंलिङ्गं वज्रेणतुमहेश्वरि ॥ विषादंपरमंजग्मुर्वाक्यंचेदमथाब्रुवन् ॥ ७ ॥ अदृष्ट्वाशाङ्करंलिङ्गं नयास्यामोवयंगृहम् ॥ स्वर्गार्थिनोवयंप्राप्ता महदध्वानमेवहि ॥ ८ ॥ तस्मादत्रैव

प्रभास ऐसा नाम कैसे हुआ और उसके देखने व उसके पूजनेपर क्या फल होताहै ॥ ३ ॥ हे देवेश ! इसको मुझसे संक्षेप से कहिये अतिविस्तारसे न कहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पुरातन समय पहले स्वायंभुवमन्वन्तर में चौथे त्रेतायुग में उत्तम प्रभासक्षेत्रमें ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! उससमय उत्तरापथगामी ऋषिलोग प्रभासक्षेत्रके दर्शनके लिये वहां आये ॥ ६ ॥ व हे महेश्वरि ! वज्रसे आच्छादित उस लिंगको देखकर बड़े विषादको प्राप्तहुये और यह वचन बोले ॥ ७ ॥ कि हम-लोग शिवजी के लिंगको न देखकर घरको न जावैंगे क्योंकि स्वर्गको चाहनेवाले हमलोग बड़ेमार्गको चलकर प्राप्तहुये हैं ॥ ८ ॥ इसलिये तबतक यहीं टिकैंगे कि

जबतक लिंगका दर्शन होगा इसप्रकार निश्चय कर वे उग्र तपस्यामें स्थितहुये ॥ ९ ॥ कि वर्षाऋतु में आकाशगामी होकर हेमन्त में जल के आश्रय रहे और नियत व ब्रह्मचारी होकर वे बहुत वर्षगणोंतक ग्रीष्म ऋतुमें पंचाग्निसाधक हुये तब वे ब्राह्मण वृद्धतासे ग्रस्तहुये हे वरवर्णिनि ! इसप्रकार जब वे वृद्धत्वको प्राप्तहुये ॥ १० । ११ ॥ तब महात्मा शंकरजी से वे वरदानों करके लोभित करायेगये और उन्हों ने लिंगका दर्शन छोड़कर अन्य वरदानको नहीं मांगा ॥ १२ ॥ उन सबोंके निश्चयको जानकर दयामें तत्पर होकर शिवजी ने उनको अपने लिंगको दिखाया ॥ १३ ॥ हे वरवर्णिनि ! इसीसमय में अचानकही पृथ्वीको फोड़कर वही लिंग

तिष्ठामो यावल्लिङ्गस्यदर्शनम् ॥ एवन्तेनिश्चयंकृत्वा उग्रेतपसिसंस्थिताः ॥ ९ ॥ वर्षास्वाकाशगाभूत्वा हेमन्तेसलिलाश्रयाः ॥ पञ्चाग्निसाधकाग्रीष्मे नियताब्रह्मचारिणः ॥ १० ॥ बहून्वर्षगणान्विप्रा जराग्रस्तास्तदाभवन् ॥ एवंवृद्धत्वमापन्ना यदातेवरवर्णिनि ॥ ११ ॥ लोभ्यमानांवरैस्तेतु शङ्करेणमहात्मना ॥ लिङ्गस्यदर्शनंमुक्त्वा नतेन्यंवव्रिरेवरम् ॥ १२ ॥ तेषान्तुनिश्चयंज्ञात्वा सर्वेषांवृषभध्वजः ॥ अनुकम्पापरोभूत्वा स्वलिङ्गंतानदर्शयत ॥ १३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भित्त्वाचैववसुन्धराम् ॥ उत्थितंसहसालिङ्गं तदेववरवर्णिनि ॥ १४ ॥ तल्लिङ्गमृषयोदृष्ट्वा सर्वेतेत्रिदिवंगताः ॥ अथतेषुप्रयातेषु शक्रस्तप्तमनाभवत् ॥ १५ ॥ तदद्यापिच्छादयामास वज्रेणशतपर्वणा ॥ वृद्धभावेनयत्तेषामृषीणान्दर्शनङ्गतः ॥ १६ ॥ अतोवृद्धप्रभासेति कीर्त्यतेवसुधातले ॥ तस्मिन्दृष्टेवरारोहे अद्यापिलभतेफलम् ॥ १७ ॥ राजसू

उत्पन्नहुआ ॥ १४ ॥ उस लिंगको देख करके वे सब ऋषिलोग स्वर्गको चलेगये इसके उपरान्त उनके चलेजाने पर इन्द्रजी सन्तप्तमनवाले हुये ॥ १५ ॥ और उन्होंने सौ गांठियोंवाले वज्रसे उस लिंगको भी आच्छादित किया जिसलिये शिवजी वृद्धतासे उन ऋषियोंके दर्शन को प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ इससे पृथ्वी में वृद्धप्रभास कहाजाता है हे वरारोहे ! उसके देखनेपर आज भी भक्तिसंयुत मनुष्य राजसूय व अश्वमेध यज्ञके फलको पाताहै इसप्रकार वहा उत्तम वृद्धप्रभासक्षेत्र उत्पन्न

हुआ है ॥ १७। १८ ॥ भलीभाति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको यहां ब्राह्मणके लिये अश्व देनाचाहिये ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवृद्धप्रभासमाहात्म्यंनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । भयो प्रभासक्षेत्रमें तीरथ जल परभास । इकसौ नव्वे में सोई चरित कह्यो सविलास ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वृद्धप्रभाससे दक्षिण में थोड़ी दूर पै स्थित जलसंज्ञक प्रभासके समीप जावै ॥ १ ॥ उन्हीं देवदेवके उत्तम माहात्म्यको सुनिये कि जब जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने क्षत्रियोंका वध

याश्वमेधानां नरोभक्तिसमन्वितः ॥ एवंतत्रसमुत्पन्नः प्रभासोवृद्धउत्तमः॥१८॥ अत्राश्वोब्राह्मणेदेयः सम्यग्यात्राफले प्सुभिः ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवृद्धप्रभासमाहात्म्यन्नामैकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८९॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि प्रभासंजलसंज्ञितम् ॥ जरत्प्रभासाद्दक्षिणतो नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ तस्यै वदेवदेवस्य शृणुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ जामदग्न्येनरामेण यदाक्षत्रवधःकृतः ॥ २ ॥ तदास्यपरमाजाता घृणामनसि भामिनि ॥ ततस्त्वाराधयामास महादेवंसुरेश्वरम् ॥ ३ ॥ उग्रंतपःसमास्थाय बहून्वर्षगणान्प्रिये ॥ ततस्तुष्टोमहादे वस्तस्यप्रत्यक्षताङ्गतः ॥ ४ ॥ अब्रवीद्वरदस्तेहं वरंवरयसुव्रत ॥ परशुरामउवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोम म ॥ ५ ॥ दर्शयस्वस्वकंलिङ्गं यत्तुवज्रेणछादितम् ॥ घृणामेमहतीजाता हत्वेमान्क्षत्रियान्बहून् ॥ ६ ॥ दर्शनेनैवलि ङ्गस्य येनमेनश्यतेघृणा ॥ तथावैपातकंसर्वं प्रसादात्तवशङ्कर ॥ ७ ॥ शङ्करउवाच ॥ ममलिङ्गंसहस्राक्ष उत्थितन्तुपु

किया ॥ २ ॥ तब हे भामिनि ! इनके मनमें बड़ी घृणा उत्पन्नहुई उसके उपरान्त हे प्रिये ! बहुत वर्षगणों तक उग्र तपस्या में स्थितहोकर उन्होंने सुरेश्वर महादेव जी को आराधन किया तदनन्तर उनके ऊपर प्रसन्न होतेहुये शिवजी प्रत्यक्षताको प्राप्तहुये ॥ ३ । ४ ॥ व बोले कि हे सुव्रत ! मैं तुमको वरदेनेवाला हूं वरदानको मागिये परशुरामजी बोले कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो और यदि मुझको वरदेने योग्य है ॥ ५ ॥ तो उस अपने लिगको दिखलाइये कि जो वज्रसे आच्छा- दित है इन बहुत क्षत्रियोंको मारकर मेरे बड़ी घृणा उत्पन्नहुई है ॥ ६ ॥ हे शंकरजी ! तुम्हारी प्रसन्नतासे जिस लिंगके दर्शनही से मेरी घृणा व समस्त पातक नाश

होजावै ॥ ७ ॥ शिवजी बोले कि बडे भयसे संयुत इन्द्रजी बार २ उत्पन्नहुये मेरे लिंगको वज्र से आच्छादन करते हैं ॥ ८ ॥ उसीकारण लिंगरूपी मैं कभी तुम्हारे दर्शनको न प्राप्त हूंगा और जो मुझमे कहतेहो कि मैं घृणासे व पातकसे घिराहूं ॥ ९ ॥ हे द्विजोत्तम ! तुम्हारे उस पातकको मैं स्पर्श मे नाश करूंगा हे महामते ! इस पवित्र जलाशय में जल के मध्यमें ॥ १० ॥ बड़ाभारी लिंग उठैगा कि जिसको तुम सदैव चाहतेहो और जलके मध्यमें स्थित उस लिंगको स्पर्शकर तदनन्तर तुम पातक से छूटोगे ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! जलके मध्यमें लिंग उत्पन्नहुआ उसीकारण पृथ्वी में इसका जलप्रभास नाम हुआ ॥ १२ ॥ हे देवि ! उसके मली-

नःपुनः ॥ वज्रेणच्छादयत्येव भयेनमहतावृतः ॥८॥ नतेनदर्शनंयास्ये लिङ्गरूपीकदाचन ॥ यन्मांवदसिघृणयावृतो हंपातकेनतु ॥ ९ ॥ तत्तेहंनाशयिष्यामि स्पर्शनाद्विजसत्तम ॥ अस्मिञ्जलाशयेपुण्ये जलमध्येमहामते ॥ १० ॥ उत्थास्यतिमहालिङ्गं यत्त्वंवाञ्छसिसर्वदा ॥ तत्स्पर्श्यजलमध्यस्थं ततोमोक्षसिपातकात् ॥ ११ ॥ ततस्समुत्थितंलिङ्गं जलमध्येवरानने ॥ जलप्रभासंनामास्य ततोजातंधरातले ॥ १२ ॥ तस्यसंस्पर्शनाद्देवि शिवलोकंव्रजेन्नरः ॥ एकं भोजयतेतत्र ब्राह्मणंशंसितव्रतम् ॥ १३ ॥ भोजितोहंभवेतेन सपत्नीकोनसंशयः ॥ एवंजलप्रभासस्य सम्भूतिस्ते मयोदिता ॥ १४ ॥ श्रुतापापौघशमनी सर्वकामफलप्रदा ॥१५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेजलप्रभासमाहात्म्यं न्नाम नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि जामदग्न्येश्वरंशिवम् ॥ वृद्धप्रभाससामीप्ये नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ स

भांति स्पर्श से मनुष्य शिवलोकको जाताहै वहां जो प्रशंसितव्रतवाले एक ब्राह्मण को भोजन कराताहै ॥ १३ ॥ उससे स्त्रीसमेत मैं भोजित होताहूं इसमें सन्देह नहीं है इसप्रकार मैंने तुमसे जलप्रभास की उत्पत्तिको कहा ॥ १४ ॥ सुनीहुई जो कि पापौघ को नाशनेवाली तथा सब कामनाओंके फलों को देनेवाली है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजलप्रभासमाहात्म्यंनामनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो०। जामदग्नि ईश्वरहिं जिमि थाप्यो है मुनिनाथ। इकसौ इक्यानवे महँ सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वृद्धप्रभास से

दक्षिण में थोड़ेही दूरपै स्थित जामदग्न्येश्वर शिवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जमदग्निजी ने समस्तपातकों के नाशनेवाले उन शिवजी को थापाहै हे देवि ! उनको देखकर मनुष्य तीन ऋणों से छूटजाताहै ॥ २ ॥ और वहां धरातीर्थ में नहाकर उनको भलीभांति पूजकर मनुष्य धनको पाताहै हे ममप्रिये ! उस स्थानमें पाण्डवोंने निधानको पायाहै ॥ ३ ॥ और उस निधानमें त्रिलोकसे प्रणाम कीहुई बावली उत्पन्नहुई हे महादेवि ! उसमें नहाकर दुर्भगा स्त्री सुभगा होती है ॥ ४ ॥ और चाहेहुये कामनाओंको पातीहै मैंने तुमसे यह वर्णन किया ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांजामदग्न्येश्वरमाहात्म्यंनामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

र्वपापोपशमनं स्थापितंजमदग्निना ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि मुच्यतेचऋणत्रयात् ॥ २ ॥ स्नात्वातत्रधरातीर्थे सम्पूज्यप्राप्नुयाद्धनम् ॥ निधानंपाण्डवैर्लब्धं तत्रस्थानेममप्रिये ॥ ३ ॥ निधानेतत्रसंजाता वापीत्रैलोक्यवन्दिता ॥ तस्यांस्नात्वामहादेवि दुर्भगासुभगाभवेत् ॥ ४ ॥ लभतेवाञ्छितान्कामानितिप्रोक्तंमयातव ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेजामदग्न्येश्वरमाहात्म्यन्नामैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९१ ॥

*

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि महाप्राभासमुत्तमम् ॥ जलप्रभासतोयाम्ये यममार्गविघातकम् ॥ १ ॥ शृणु तस्यैवमाहात्म्यं यथाजातंधरातले ॥ पूर्वंत्रेतायुगेदेवि स्पर्शलिङ्गन्तुतत्स्मृतम् ॥ २ ॥ दिव्यंतेजोमयंनृणांस्पर्शनान्मुक्तिदायकम् ॥ अथकालेतुकस्मिंश्चिद् वज्रेणाच्छादितंप्रिये ॥ ३ ॥ इन्द्रेणागत्यवसुधां भयाक्रान्तेनसुन्दरि ॥ तस्मात्तुभुवनाद्देवि निर्गतंलिङ्गमुच्छ्रितम् ॥ ४ ॥ दशकोटिप्रविस्तीर्णं ज्वालाग्निलिङ्गरूपधृक् ॥ प्रभासक्षेत्रमास्थाय

दो० । भयो भूमि विख्यात जिमि तीरथ महाप्रभास । इकसौ बनवे में सोई कह्यो चरित सुखरास ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर जलप्रभास से दक्षिण में यमराज के मार्ग को नष्टकरनेवाले उत्तम महाप्रभास के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! जिसप्रकार वह तीर्थ पृथ्वी में उत्पन्न हुआ है उस के माहात्म्य को सुनिये कि पुरातन समय त्रेतायुगमें वह स्पर्श लिंग कहा गया है ॥ २ ॥ दिव्य व तेजोमय वह लिंग स्पर्श करनेसे मुक्तिदायक है इसके अनन्तर हे सुन्दरि, प्रिये ! किसी समय डर से घिरेहुये इन्द्रजी ने पृथ्वी में आकर उसको वज्र से आच्छादन किया व हे देवि ! उस स्थान से उन्नत लिंग निकला ॥ ३ । ४ ॥ जो कि दशकरोड़

योजन चौड़ा था और अग्नि की ज्वाला के समान लिंगरूपधारी वह प्रभासक्षेत्र में पृथ्वी को फोड़कर प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ हे देवि ! पृथ्वी को फोड़कर वज्र से रोंकाहुआ वह लिंग भूतगणोंसमेत संसार को व्याप्त कर लिया ॥ ६ ॥ तदनन्तर समस्तसंसार ज्वालाओं से व्याकुल कियागया उस के उपरान्त समस्त सुरगणों में व वेदों के पारगामी ऋषियों ने ॥ ७ ॥ अनेकभांतिके वेदोक्तसूक्तों से चन्द्रभालजी की स्तुति किया कि हे सुरश्रेष्ठ ! अपने अनलात्मक तेज को संहार कीजिये ॥ ८ ॥ हे सुरेश्वर ! यह चराचर सब संसार व्याकुल होताहुआ जबतक नाश न होवै तबतक रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरेश्वरि ! देवताओंके

भित्त्वातुभुवमागतम् ॥५॥ वज्रेणारोधितन्देवि भित्त्वाचैववसुन्धराम् ॥ भूतसङ्घैस्समेतन्तु व्यापयाञ्चक्रिरेजगत् ॥ ६ ॥ ततस्त्रैलोक्यमखिलं ज्वालाभिर्व्याकुलीकृतम् ॥ ततस्सुरगणास्सर्वे ऋषयोवेदपारगाः ॥ ७ ॥ अस्तुवन्विविधैस्सूक्तै र्वेदोक्तैःशशिशेखरम् ॥ संहरस्वसुरश्रेष्ठ तेजस्स्वंदहनात्मकम् ॥ ८ ॥ त्रैलोक्यंव्याकुलीभूतमेतत्सर्वंचराचरम् ॥ नयावत्प्रलयंयाति तावद्रक्षसुरेश्वर ॥ ९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ एवमाभाषमाणेषु त्रिदशेषुसुरेश्वरि ॥ तत्तेजःपञ्चधाविष्टं व्याप्ताशेषजगत्त्रयम् ॥ १० ॥ पञ्चप्रभासरूपेण भित्त्वातत्रवसुन्धराम् ॥ येनमार्गेणनिष्क्रान्तमेतत्तेषुमहन्महः ॥ ११ ॥ तत्रतैःस्थापितंपूर्वं द्वारदेशेममप्रिये ॥ पिहितेतत्ररन्ध्रेस्मिन्धूमोनाशमुपेयिवान् ॥ १२ ॥ स्वस्थाश्चैवाभवँल्लोकास्तेजस्तत्रैवसंस्थितम् ॥ एवंमयाप्रेरितास्ते लिङ्गंतत्रसमादधुः ॥ १३ ॥ तन्महस्तत्रदेवेशि विश्राममकरोत्तदा ॥ ततोमहाप्रभासन्तु कीर्त्यतेदेवदानवैः ॥ १४ ॥ यस्तत्पूजयतेभक्त्या लिङ्गंपुष्पैःपृथग्विधैः ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्ज्जि

ऐसा कहनेपर समस्त तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाला वह तेज पांचप्रकार का होकर प्रविष्ट हुआ ॥ १० ॥ और वहा पांच प्रभासोंके रूपसे पृथ्वीको फोड़कर जिसमार्ग से उनमें यह बड़ाभारी तेज निकला ॥ ११ ॥ वहां पर हे ममप्रिये ! उन्होंने पहिले द्वारस्थान में उसको स्थापन किया और वहा इस छिद्र के आच्छादन करने पर धूमनाशको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ और लोक स्वस्थ हुये व तेज वहींपर स्थितहुआ इसप्रकार मुझसे प्रेरणा कियेहुये उन्होंने वहां लिङ्गको धारण किया ॥ १३ ॥ हे देवेशि ! उस समय वहां पर उस तेज ने विश्राम किया उसीकारण देवता व दानवों से महाप्रभास कहा जाता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे उस लिङ्ग को अनेकभांति के

पुण्योंसे पूजताहै वह वृद्धता व मरणसे रहित उत्तम स्थान को प्राप्त होताहै ॥ १५ ॥ व हे देवेशि ! इस लिङ्गको देखकर उसीकारण मनुष्य पातकोंसे छूट जाता है ॥१६॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामहाप्रभासमाहात्म्यवर्णनन्नामद्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ ❁ ॥

दो० । दत्तयज्ञ विध्वंस किय यथा सदाशिवनाथ । इकसौ तिरानिबे महँ सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां उसके दक्षिण में सरस्वतीजी के सुन्दरकिनारे पै टिकेहुये कृतस्मर देवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! जोकि आपहीसे उत्पन्न व सब पापोंको नाशनेवाले हैं जिसप्रकार पृथ्वीमें

तम् ॥ १५ ॥ दृष्ट्वैतत्तेनदेवेशि मुच्यतेपातकैर्नरः ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे महाप्रभासमाहात्म्यवर्णनन्नामद्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्यदक्षिणतःस्थितम् ॥ सरस्वत्यास्तटेरम्ये देवंतत्रकृतस्मरम् ॥ १ ॥ स्वयंभूतंमहादेवि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि यथाजातोमहीतले ॥ २ ॥ पुराकामोयदादग्धो मयातत्रवरानने ॥ तदारतिस्समागत्य विललापसुदुःखिता ॥ ३ ॥ तान्तुशोकातुरान्दृष्ट्वा तत्राहंकरुणान्वितः ॥ अवोचंमारुदस्वेति तवभर्त्तापुनश्शुभे ॥ ४ ॥ समुत्थास्यतिकालेन मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ देव्युवाच ॥ किमर्थंसपुरादग्धः कामदेवस्त्वयाविभो ॥ ५ ॥ कथमापपुनर्जन्म विस्तरात्कथयस्वमे ॥ ६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ दक्षःप्रजापतिःपूर्वं बभूवत्वत्पिताप्रिये ॥ तस्यकन्याशतंजज्ञे गौरीणांदीर्घचक्षुषाम् ॥ ७ ॥ ददौत्वांप्रथमांमह्यं सतीनाम्नेतिकीर्त्तिताम् ॥ ददौदशच

वे उत्पन्नहुयेहैं वैसेही मैं उनकी उत्पत्तिको कहताहूं ॥ २ ॥ हे वरानने ! पुरातनसमय मैंने जब वहां कामदेवजी को जलायाहै तब बहुत दुःखित होतीहुई रतिने आकर विलाप किया ॥ ३ ॥ और वहां शोकसे आतुर उस रतिको देखकर मैं दयासंयुत हुआ व मैंने यह कहा कि हे शुभे ! तुम मत रोवो क्योंकि मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारा पति समय से फिर उत्पन्न होवैगा इस में सन्देह नहीं है देवीजी बोलीं कि हे विभो ! पुरातनसमय तुमने उस कामदेवको क्यों जलाया है ॥ ४ । ५ ॥ और उसने फिर कैसे जन्म पाया है इसको मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! पुरातनसमय दक्षप्रजापतिजी तुम्हारे पिताहुये उनके सौ कन्या उत्पन्नहुई

और दीर्घलोचनोंवाली उन गौरीकन्याओंके मध्यमें ॥ ७ ॥ सती नामसे कहीहुई तुम जेठी कन्याको उसने मेरे लिये दिया और दश धर्मराजजी के लिये दिया श्रद्धा, मेधा, धृति, क्षमा ॥ ८ ॥ अनसूया, शुचि, लज्जा,स्मृति, शक्ति व श्रुति नामक थीं और रति व प्रीति दो स्त्रियों को कामदेवजी के लिये दिया ॥ ९ ॥ तदनन्तर एक स्वाहाको अग्नि को दिया और पितरों को स्वधा दिया तथा अश्विनी आदिक कहीहुई सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा के लिये दिया ॥ १० ॥ हे देवि ! उन में भी रेवती अन्ततक वे उत्तम कन्या विदित हैं और हे देवि ! उन्होंने कश्यपजी के लिये तेरह कन्याओं को दिया ॥ ११ ॥ अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, इरावती,

धर्माय श्रद्धामेधाधृतिःक्षमा ॥ ८ ॥ अनसूयाशुचिर्लज्जा स्मृतिश्शक्तिःश्रुतिस्तथा ॥ द्वेभार्येकामदेवाय रतिःप्रीतिस्तथैवच ॥ ९ ॥ एकांस्वाहांददौवह्नेः पितॄणांचस्वधान्ततः ॥ सप्तविंशतिसोमाय अश्विन्याद्याःप्रकीर्त्तिताः ॥ १० ॥ तत्रापिविदितादेवि रेवत्यन्तास्तुताश्शुभाः ॥ कश्यपायददौदेवि सतुकन्यास्त्रयोदश ॥ ११ ॥ अदितिश्चदितिश्चैव दनुः काष्ठाइरावती ॥ विनताचैवकद्रूच सिंहिकासुप्रभातथा ॥ १२ ॥ अनवद्यास्तुतास्सर्वा ईर्ष्याहिंसातथापरा ॥ माया निर्ऋतिसंख्याता दक्षःपूर्वमहाद्युतिः ॥ १३ ॥ गौरीचवल्समाचैव वार्त्तासाध्वीसुमालिका ॥ वरुणायददौपञ्च तदासौ पर्वतात्मजे ॥ १४ ॥ भद्राचमदिराचैव विद्याधन्याधनाशुभे ॥ दत्ताःपञ्चकुबेराय पत्न्यर्थेपर्वतात्मजे ॥ १५ ॥ जयाच विजयाचैव मधुच्छन्दाइरावती ॥ सप्रियाजनकाकान्ता सुभद्राधर्मलीशुभा ॥ १६ ॥ रुद्राणांप्रददौकन्या दशामांधर्मवित्तदा ॥ प्रभावतीसुभद्राच विमलानिर्मलावृता ॥ १७ ॥ तीव्रादक्षारुणाविद्या द्वारपालाचवर्वसा ॥ आदित्यानांद

विनता, कद्रू और सिंहिका व सुप्रभा ॥ १२ ॥ वे सब निर्दोष थीं और ईर्ष्या व अन्य हिंसा, माया और निर्ऋतिसंख्यक कन्याओं को पहले महाद्युतिमान् दक्षजी ने धर्मराजको दिया है ॥ १३ ॥ व हे पर्वतात्मजे ! उससमय इन दक्षजीने गौरी, वल्समा, वार्ता, साध्वी,सुमालिका इन पांच कन्याओं को वरुणजीके लिये दिया ॥ १४ ॥ व हे पर्वतात्मजे,शुभे ! भद्रा, मदिरा, विद्या, धन्या व धना इन पाच कन्याओंको कुबेरजी के लिये स्त्री के निमित्त दिया ॥ १५ ॥ और जया, विजया, मधुच्छन्दा, इरावती, सुप्रिया, जनका.कान्ता,सुभद्रा व धर्मली, शुभा ॥ १६ ॥ उनमेंसे इन दश कन्याओंको उस समय धर्मज्ञ दक्षजी ने रुद्रोंको दिया है और प्रभावती, सुभद्रा,

विमला, निर्मला, वृता ॥ १७ ॥ व हे प्रिये ! तीव्रा, दक्षा, अरुणा, विधा, द्वारपाला व वर्वसा इन बारह कन्याओं को दक्षजी ने आदित्यों को दिया है ॥ १८ ॥ और योगनिद्रा, विभूति, शिंशपा, शरमा, गुहा, माला, वंथा और ज्योत्स्ना इन कन्याओं को विश्वेदेवताओं के लिये दिया ॥ १९ ॥ और वैसेही सुवेषा व भूषणा दो कन्याओं को अश्विनीकुमारों के लिये दिया व एक कन्या पवन को दीगई ये कन्यायें कही गईं ॥ २० ॥ सावित्री को ब्रह्माजीके लिये दिया व लक्ष्मीको महात्मा विष्णुजी को दिया इसके अनन्तर किसी समय दक्षिणा संयुत उन दक्षजी ने ॥ २१ ॥ हे पर्वतसुते ! हिमवान् महापर्वत पै यज्ञसे पूजन किया और उनका यज्ञवाट सब काम-

दौदत्तः कन्याद्वादशकम्प्रिये ॥१८॥ योगनिन्द्राविभूतिश्च शिंशपाशरमागुहा॥ मालावन्थातथाज्योत्स्ना विश्वेदेवेभ्यएवच ॥ १९ ॥ अश्विभ्यांद्वेतथाकन्ये सुवेषाभूषणातथा ॥ एकाकन्यातथावायोर्दत्ताएताःप्रकीर्त्तिताः ॥ २० ॥ सावित्रींब्रह्मणेप्रादाल्लक्ष्मींविष्णोर्महात्मनः ॥ कदाचित्त्वथकालस्य सदत्तोदक्षिणायुतः ॥ २१ ॥ यज्ञेनपर्वतसुते हिमवन्तेमहागिरौ ॥ यज्ञवाटोह्यभूत्तस्य सर्वकामसमृद्धिमान् ॥ २२ ॥ तस्मिन्यज्ञेसमायाता आदित्यावसवस्तथा ॥ विश्वेदेवाश्चमरुतो लोकपालाश्चसर्वशः ॥ २३ ॥ ब्रह्माविष्णुस्सहस्राक्षो वरुणोयमएवच ॥ धनदस्सागरानद्यस्तडागाःपल्वलानिच ॥ २४ ॥ सुपर्णाराक्षसानागाः सर्वेमूर्त्तौव्यवस्थिताः ॥ दानवाप्सरसश्चैव यक्षाःकिन्नरगुह्यकाः ॥ २५ ॥ सानुगास्तेसभार्याश्च वेदवेदाङ्गपारगाः ॥ सप्तर्षयोमहाभागास्तथादेवर्षयःप्रिये ॥ २६ ॥ तेभार्यासहितास्तत्र समायातावरानने ॥ कपालमालाभरणश्चिताभस्मविभूषितः ॥२७॥ अपवित्रतयाशम्भुर्नाहूतस्तुतथाविधः ॥ यतस्ततस्समायाता कैला

नाओं से समृद्धिमान् हुआ ॥ २२ ॥ और उस यज्ञ में आदित्य व वसुदेवता आये तथा विश्वेदेवा और मरुत् व सब लोकपाल आये ॥ २३ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु, सहस्रलोचन (इन्द्र) वरुण और यमराज, कुबेर, समुद्र, नदियां तड़ाग और छोटे तड़ाग ॥ २४ ॥ व गरुड़, राक्षस व सब नाग शरीर में स्थित होकर आये और दानव, अप्सरा, यक्ष, किन्नर व गुह्यक आये ॥ २५ ॥ व हे प्रिये ! अनुगामियोंसमेत तथा स्त्रियोंसहित वेदवेदांगों के पारगामी वे महाऐश्वर्यवान् सप्तर्षि और देवर्षि आये ॥२६॥ हे वरानने ! स्त्रियोंसमेत वे वहां आये और कपालोंकी मालाका आभूषण किये और चिताकी भस्मसे भूषित ॥ २७ ॥ उसप्रकार के सदाशिवजी अशुद्धता

के कारण नहीं बुलायेगये और जहांतहांमे कैलास पर्वतोत्तम पै आईहुई ॥ २८॥ वे अश्विनी आदिक बहनैं सतीजीसे वचन बोलीं कि हे सुमध्यमे, व ल्याणि ! तुम क्यों क्रोधितसी टिकी हो ॥ २९ ॥ हम सब पतियोंसमेत पिता के यज्ञ में जाती हैं हे देवि ! सब आभूषणों से भूषित तुम क्यों श्याममुखी हो ॥ ३० ॥ तुम उठो और हमारे साथ अपने पिता के यज्ञ को चलो तदनन्तर हे वरारोहे ! सतीजी अपने पिता के घरको चलीं ॥ ३१ ॥ हे भामिनि ! मैंने स्त्री के स्नेह से सतीजी को मना किया और गणनाथों से सयुत आईहुई उन सतीजी को देखकर ॥ ३२ ॥ इस के अनन्तर इस दक्षने क्रोधसंयुत होकर उन गणों से कहा कि आपलोग यहांसे

सेपर्वतोत्तमे ॥ २८ ॥ अश्विन्याद्याभगिन्यस्तास्सतींवाक्यमथाब्रुवन् ॥ किंरुष्टाइवकल्याणि तिष्ठसित्वंसुमध्यमे ॥ २९ ॥ वयंचप्रथितास्सर्वाः पितुर्यज्ञेसभर्तृकाः ॥ किन्देविश्यामवदना सर्वाभरणभूषिता ॥ ३० ॥ उत्तिष्ठत्वंसहास्माभिर्याहियज्ञंस्वपैतृकम् ॥ ततस्सतीवरारोहे प्रस्थितास्वपितुर्गृहान् ॥ ३१ ॥ निवारितामयासाध्वी पत्नीस्नेहेनभामिनि ॥ तामागतांसमालोक्य गणनाथैस्समन्विताम् ॥ ३२ ॥ तानुवाचाथदक्षोसौ गणान्क्रोधसमन्वितः ॥ इतोगच्छन्तुवैतूर्णमस्पृश्योहिभवत्पतिः ॥ ३३ ॥ एतद्वाक्यमनादृत्य मातुरन्तिकमागता ॥ ३४ ॥ तयावमानितासाध्वी सतीव्रतधरासती ॥ ततःकोपवतीदेवी कालरात्रिरिवापरा ॥ ३५ ॥ अद्याहंवैद्रुतंयक्ष्ये जीवितंनात्रसंशयः ॥ ततोहरवियोगेन देहंकुण्डेसमाजुहोत् ॥ ३६ ॥ तांत्यक्तदेहामालोक्य गणायुद्धंप्रचक्रिरे ॥ तेपिदेवैःपराभूतास्सदस्यैर्बहुशोर्दिताः ॥ ३७ ॥ ऋत्विजांचैववाक्यैश्च पीडिताहरसन्निधौ ॥ समाचख्युर्यथावृत्तमागत्यगणनायकाः ॥ ३८ ॥ ततोदृष्ट्वाम

शीघ्रही चले जावो क्योंकि आपलोगोंका स्वामी छूनेयोग्य नहीं है ॥ ३३ ॥ इसवचनको अनादरकर सतीजी माताके समीप आई ॥ ३४ ॥ और व्रतको धारण कियेहुई उन पतिव्रता सतीजीका उस माताने अपमान किया उसके उपरान्त सती देवीजी दूसरी कालरात्रि की नाईं क्रोधित हुई ॥ ३५ ॥ व बोलीं कि आज शीघ्रही मैं जीवको त्यागकरूंगी इसमें सन्देह नहीं है तदनन्तर सतीजी ने शिवजीके वियोग से देहको कुण्ड में हवन किया ॥ ३६ ॥ और देहको त्याग किये उन सतीजीको देखकर गणोंने युद्धकिया व सभासद देवताओं से पराजित वे गण भी बहुत व्याकुल किये गये ॥ ३७ ॥ और ऋत्विजोंके वचनोंसे पीड़ित गणनाथोंने शिवजीके समीप

आकर जैसा वृत्तान्त था उसको कहा ॥ ३८ ॥ उसके उपरान्त रक्त से डूबेहुये उन गणों को देखकर वे सदाशिव महादेवजी बोले कि यह क्या अमंगल है ॥ ३९ ॥ उन्होंने भी शिवजी से कहा कि हे देव ! दक्ष के कोप से पीड़ित होती हुई कल्याणी सतीजीने अपने शरीर को अग्नि में हवन करदिया ॥ ४० ॥ इसके अनन्तर प्राणोंसे विहीन कीहुई सतीजी को सुनकर महादेवजी ने ॥ ४१ ॥ यज्ञविध्वंस करने के लिये गणोंको पठाया इसके उपरान्त विकृत व विकृत आकारवाले बडे बलवान् असंख्यक सैकड़ों व हज़ारों रौद्रगण उस यज्ञ को जाकर प्राप्त हुये ॥ ४२ । ४३ ॥ तदनन्तर धनुषों को हाथ में लियेहुये बड़े बलवान् सूर्योंसमेत विश्वेदेवता व साध्य देवता

हादेवो गणान्रुधिरसंप्लुतान् ॥ सभर्गस्तानुवाचाथ किंस्विदेतदमङ्गलम् ॥ ३९ ॥ तेचाप्यूचुर्महादेवं सतीचस्वतनुंशुभा ॥ अग्नौहुतवतीदेव दक्षकोपेनपीडिता ॥ ४० ॥ अथश्रुत्वामहादेवः सतींप्राणैर्विनाकृताम् ॥ ४१ ॥ गणान्सम्प्रेरयामास यज्ञविध्वंसनायच ॥ तङ्गत्वाथगणारौद्राश्शतशोथसहस्रशः ॥ ४२ ॥ विकृताविकृताकारा असङ्ख्यातामहाबलाः ॥ ४३ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे वासवस्सहभास्करैः ॥ विश्वेदेवाश्चसाध्याश्च धनुर्हस्तामहाबलाः ॥ ४४ ॥ युद्धायच विनिष्क्रान्ता मुञ्चन्तश्शायकांश्च तान् ॥ तेसमेत्यतथान्योन्यं प्रमथाविबुधैस्सह ॥ ४५ ॥ मुमुचुश्शरवर्षाणि वारिधारायथाघनाः ॥ तेषांमध्येगणोविद्धः शूलेनहृदिभामिनि ॥ ४६ ॥ सतुतेनप्रहारेण विसंज्ञोनिषसादह ॥ अथमुष्ट्याहनत्कुम्भे नागमैरावतंतदा ॥ ४७ ॥ रणेसमाहतस्तेन वरुणोभैरवेणतु ॥ विनदञ्जवमास्थाय यज्ञवाटमुपाद्रवत् ॥ ४८ ॥ विश्वेदेवानिरुच्छ्वासाः कृतारौद्रैर्महाशरैः ॥ चकर्षसधनूंष्येव वसुमान्बलवत्तरः ॥ ४९ ॥ निस्तेजसस्तदादेवाः कृता

तथा सब देवगण और इन्द्र ॥ ४४ ॥ उन बाणों को छोड़तेहुये युद्ध के लिये निकले और वे इकट्ठा होकर देवताओंसमेत रुद्रगण परस्पर ॥ ४५ ॥ बाणोंकी वृष्टि छोड़ने लगे जैसे कि मेघ जल की धाराओं को छोड़ते हैं हे भामिनि ! उनके मध्यमें एक गणके हृदयमें त्रिशूल वेधित हुआ ॥ ४६ ॥ और उस प्रहारसे वह मूर्च्छित होकर गिरपड़ा इसके उपरान्त उस समय उसने ऐरावत हाथी के शिर के मांस पिण्ड में घूंसा से मारा ॥ ४७ ॥ और समर मे उसने भैरवअस्त्र से वरुणको मारा व गर्जताहुआ वह वेगको प्राप्त होकर यज्ञवाट को दौड़ा ॥ ४८ ॥ और बड़े रौद्रबाणों से विश्वेदेवता निरुच्छ्वास (विकल) कियेगये व बड़े बलवान् वसुमान् गणने

धनुषों को खींचा ॥ ४९ ॥ उस समय रणके आंगन में वे देवता तेजरहित कियेगये इसी अवसर में हे देवि ! उसने देवों को विमुख करदिया ॥ ५० ॥ तदनन्तर वे देवता वहीं टिकेहुये विष्णुजी के शरण में गये उसके उपरान्त क्रोधसंयुत विष्णु जी ने इन्द्र समेत सब देवताओं को भगायेहुये देखकर शीघ्रही सुदर्शनचक्रको छोड़ा और वेगसे आतेहुये विष्णुजी के उस सुदर्शनचक्र को ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ उसने अचानकही मुख फैलाकर पेटमें स्थित किया हे पर्वतात्मजे ! उस समय उस अमोघ चक्रके ग्रस्त होनेपर ॥ ५३ ॥ उस समय लोकोंको उत्पन्न करनेवाले ये विष्णुजी क्रोधितहुये और उन्होंने पैने दश बाणोंसे नन्दीको व सौ बाणोंसे भृङ्गी को मारकर॥ ५४॥

स्तेतुरणाजिरे ॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवि कृतास्तेनपराङ्मुखाः ॥ ५० ॥ ततस्तेशरणंजग्मुर्विष्णुंतत्रैवसंस्थितम् ॥ ततःकोपसमाविष्टो विष्णुर्देवान्सवासवान् ॥ ५१ ॥ दृष्ट्वाविद्रावितान्सर्वान् मुमोचाशुसुदर्शनम् ॥ तमापतन्तंवेगेन चक्रं विष्णोस्सुदर्शनम् ॥ ५२ ॥ प्रसार्य्यवक्त्रंसहसा उदरस्थंचकारह ॥ तस्मिंश्चक्रेतदाग्रस्ते अमोघेपर्वतात्मजे ॥ ५३ ॥ चुकोपभगवान्विष्णुस्तदासौलोकभावनः ॥ सहत्वादशभिस्तीक्ष्णैर्नन्दिभृङ्गिशतेनच ॥ ५४ ॥ महाकालंसहस्रेण अयुतेनगणाधिपम् ॥ बाणानामयुतैर्भित्त्वा वीरभद्रमुपाद्रवत् ॥ ५५ ॥ तंहत्वागदयाविष्णुर्विह्वलंरुधिरोक्षितम् ॥ गृहीत्वापादयोर्भूमौ निजघानातिरोषितः ॥ ५६ ॥ हन्यमानस्यतस्याथ भूमौचक्रंसुदर्शनम् ॥ रुधिरोद्गारसंयुक्तं वक्त्रात्तस्माद्विनिर्गतम् ॥ ५७ ॥ रुद्रलब्धवरोदेवि वीरभद्रोगणोत्तम ॥ यन्नपञ्चत्वमापन्नो गदयापीडितोपिसः ॥ ५८ ॥ पतितंवीक्ष्यतेसर्वे विष्णुतेजोबलार्द्दिताः ॥ विद्रुतास्सर्वतोयाता यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ५९ ॥ तस्मैवृत्तंतथासर्वं समाचख्युःप

विष्णुजी महाकालको हज़ारबाणोंसे व दशहज़ारसे गणनायकको मारकर तथा दश हज़ार बाणोंसे वीरभद्रको भेदन कर दौड़े ॥ ५५ ॥ और रुधिरसे भीगेहुये व विह्वल उन वीरभद्रको गदासे मारकर विष्णुजीने बहुत क्रोधितहोकर चरणोंको पकड़ कर पृथ्वीमें पटकदिया ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर पृथ्वीमें मारे जातेहुये उसके उस मुखसे रुधिर प्रवाहसे संयुत सुदर्शन चक्र निकला ॥५७॥ हे देवि ! गदासे पीड़ित भी जो वह उत्तम गण वीरभद्र मृत्युको न प्राप्तहुआ उसका यह कारणहै कि उसने शिवजी से वरदानको पायाथा ॥५८॥ गिरेहुये वीरभद्रको देखकर विष्णुजीके तेजसे विकलहोकर वे सब गण सब ओरसे भगकर वहां गये जहां कि सदाशिवदेवजीथे ॥५९॥ और

उनगणोंने उन शिवजीसे सब वृत्तान्त व पराजय तथा वीरभद्रके पराक्रमको कहा तदनन्तर क्रोधित होतेहुये महादेवजी ॥६०॥ अचानकही त्रिशूलको लेकर तदनन्तर अपने गणों समेत पराजय होनेवाले दक्षजीके यज्ञको चले ॥ ६१ ॥ जहां कि वीरभद्रके साथ पराक्रमकर आपही विष्णुजी स्थित थे क्रोधसंयुत आतेहुये उन महादेवजीको देखकर ॥ ६२ ॥ समरमें पराजय मानकर विष्णुजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और वसुओं व किन्नरों समेत तथा पवनों समेत इन्द्र भी अन्तर्द्धान होगये ॥ ६३ ॥ उसके उपरान्त क्रोधसे घिरे चित्तवाले शिवजी अन्तर्द्धानको प्राप्तहुये हे भामिनि ! वहां केवल सभासद् ब्राह्मणलोग स्थित रहे ॥ ६४ ॥ और क्रोधसे लाललोचनोंवाले

राभवम् ॥ विक्रमंवीरभद्रस्य ततःक्रुद्धोमहेश्वरः ॥ ६० ॥ प्रगृह्यसहसाशूलं प्रस्थितस्स्वगणैस्सह ॥ यज्ञवाटन्तुदक्षस्य पराभवभवन्ततः ॥ ६१ ॥ विक्रम्यवीरभद्रेण यत्रविष्णुस्स्वयंस्थितः ॥ तमायान्तंसमालोक्य कोपयुक्तंमहेश्वरम् ॥ ६२ ॥ संग्रामेत्वजयंमत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ इन्द्रोपिमरुतैस्सार्द्धं वसुभिस्सहकिन्नरैः ॥ ६३ ॥ शिवक्रोधपरीतात्मा ततश्चादर्शनङ्गतः ॥ केवलंब्राह्मणास्तत्र स्थितास्सदसिभामिनि ॥ ६४ ॥ तेदृष्ट्वाशङ्करंप्राप्तं क्रोधसंरक्तलोचनम् ॥ होमंचक्रुस्ततोभीता रुद्रमन्त्रैस्समन्ततः ॥ ६५ ॥ अन्येत्राससमायुक्ताः पलायन्तोदिशोदश ॥ अथागत्यमहादेवो दृष्ट्वातान्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ ६६ ॥ अपश्यमानोविबुधांस्तत्रयज्ञंजघानसः ॥ ततोमृगवपुर्भूत्वा प्रणष्टोयंविहायसि ॥ ६७ ॥ पृष्ठतस्तुधनुष्पाणिर्जगामभगवाञ्छिवः ॥ अद्यापिदृश्यतेव्योम्नि तारारूपोनिशागमे ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे दक्षयज्ञविध्वंसोनामत्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ * ॥ * ॥

शिवजी को प्राप्तहुये देखकर तदनन्तर डरेहुये उन ब्राह्मणों ने सब ओरसे शिवजीके मन्त्रोंसे हवन किया ॥ ६५ ॥ और डरसे संयुत अन्य ब्राह्मणलोग दशो दिशाओं में भागने लगे इसके उपरान्त महादेवजी आकर उन द्विजोत्तमों को देखकर ॥ ६६ ॥ देवताओं को न देखतेहुये उन्होंने वहां यज्ञको नाश किया तदनन्तर मृगशरीरवाला यह यज्ञ आकाश में भगगया ॥ ६७ ॥ और पीछे से धनुषको हाथमें लियेहुये भगवान् शिवजी चले आज भी रात्रि आनेपर आकाश में नक्षत्ररूपी वह देखपड़ता है ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदक्षयज्ञविध्वंसोनामत्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥ ❀ ॥

दो० । कामदेवको भस्मकरि कीन्हो शिव बिन देह। इकसौ चौरानबे महँ सोइ कथा सुखगेह ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! इसप्रकार यज्ञविध्वंस होनेपर वे ब्राह्मण घरको गये और वहा जो अन्य लोग आये थे कामनाको न पायेहुये वे भी अपने घरों को गये ॥ १ ॥ और क्रोधरहित होकर महादेवभी कैलास पर्वतको गये इसी अवसरमें तारक नामक दानव ॥ २ ॥ उत्पन्नहुआ वह महाभुज देवताओं के बलके गर्वको नाश करनेवालाथा हे देवि ! महायुद्ध में वे सब इन्द्रादिक देवता भी जीत कर स्वर्ग से निकालेगये तदनन्तर हे पर्वतात्मजे ! वे ब्रह्मलोकको गये और दुःखसंयुत होतेहुये उन्होंने ब्रह्मासे कहा ॥ ३ । ४ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ! तारकासुरने हम

ईश्वरउवाच ॥ एवंविध्वंसितेयज्ञे गतास्तेब्राह्मणागृहम् ॥ अप्राप्तकामास्तेदेवि येचान्येतत्रचागताः ॥ १ ॥ हरोपि विगतामर्षः कैलासंपर्वतङ्गतः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तारकोनामदानवः ॥ २ ॥ उत्पन्नस्समहाबाहुर्देवानांबलदर्पहा ॥ ते चापीन्द्रादिकास्सर्वे सुराजित्वामहाहवे ॥ ३ ॥ स्वर्गान्निष्कासितादेवि ब्रह्मलोकंततोगताः ॥ ऊचुश्चदुःखसंयुक्ता ब्रह्माणं पर्वतात्मजे ॥ ४ ॥ तारकेणासुरश्रेष्ठ स्वर्गान्निष्कासितावयम् ॥ स्वयमिन्द्रस्समभवद्वसवोन्येतथाकृताः ॥ ५ ॥ रुद्राः साध्यास्तथाविश्वे अश्विनौमरुतस्तथा ॥ आदित्याश्चवधोपायं तस्मात्कुरुपितामह ॥ ६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अवध्यस्स तुसर्वेषां देवानामितिमेमतिः ॥ ऋतेनुशाङ्करन्तेजो नान्येनविनिपात्यते ॥ ७ ॥ तस्माद्गच्छतुभद्रंवो देवदेवंमहेश्वर म् ॥ तस्यभार्यामृतापूर्वं जाताहिमवतोगृहे ॥ ८ ॥ तस्याञ्जायतेपुत्रस्सहनिष्यतितारकम् ॥ तस्मात्प्रसादयध्वञ्च त

लोगों को स्वर्ग से निकाल दिया और आपही इन्द्र होगया व अन्य वसु देवता किये गये ॥ ५ ॥ और रुद्र, साध्यदेवता, विश्वेदेवता, अश्विनीकुमार, पवन व आदित्य और कियेगये हैं इसलिये हे पितामहजी ! उसके मारने का यत्न कीजिये ॥ ६ ॥ ब्रह्मा बोले कि वह सब देवताओं के अवध्य है ऐसी मेरी मति है कि शिवके तेजके विना अन्यसे वह नहीं माराजासक्ता है ॥ ७ ॥ इसलिये आपलोग देवदेव सदाशिवजी के समीप जाइये आपलोगों का कल्याण होवै उन सदाशिवजीकी स्त्री पहिले मरगई थी वही हिमाचलके घरमें पैदा हुई है ॥ ८ ॥ उसमें जो पुत्र पैदाहोगा वह तारकासुरको मारैगा इसलिये उस कार्य के लिये तुम लोग त्रिशूलपाणि (सदा-

शिव) जीको प्रसन्न करावो ॥ ९ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! मरीहुई स्त्रीवाले शिवजीके लिये देवताओंने कामदेवको आज्ञा दिया कि शिवजीके समीप जाकर बाणोंसे पीड़ित करो ॥ १० ॥ कि जिससे काम से संतप्त ये शिवजी स्त्रीके लिये यत्नवान् होवैं और यह तुम्हारा भाई मनोहर वसंत जाताहै ॥ ११ ॥ बहुत अच्छा ऐसी प्रतिज्ञा कर वह कैलास पर्वतको गया तदनन्तर हे देवि ! अस्त्रको धारेहुये वसन्त समेत कामदेवको देखकर अन्धकासुरको मारनेवाले रुद्र महादेवजी जबतक हरद्वारको प्राप्त होकर आगे देखैं तबतक अस्त्रको धारेहुये कामदेवको देखा फिर डरसे वे शिवजी भगे तदनन्तर काशी नैमिष व पुष्करक्षेत्रको जाकर ॥ १२ । १३ । १४ ॥ श्रीकण्ठ,

दर्थेशूलपाणिनम् ॥ ९ ॥ ततोदेवैस्समादिष्टः कामदेवोवरानने ॥ मृतभार्यहरस्यार्थं गत्वापीडयसायकैः ॥ १० ॥ येनासौकामसन्तप्तो भार्यार्थयत्नवान्भवेत ॥ अयंगच्छतितेभ्राता वसन्तस्सुमनोहरः ॥ ११ ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायाकैलासंपर्वतंगतः ॥ ततोदृष्ट्वामहादेवः कामदेवंधृतायुधम् ॥ १२ ॥ वसन्तसहितन्देवि रुद्रोन्धकनिषूदनः ॥ गङ्गाद्वारमनुप्राप्य पश्यतेयावदग्रतः ॥ १३ ॥ धृतायुधंकामदेवं दुद्रुवेसभयात्पुनः ॥ ततोवाराणसीङ्गत्वा नैमिषंपुष्करन्तथा ॥ १४ ॥ श्रीकण्ठंरुद्रकोटिञ्च कुरुक्षेत्रंगयांतथा ॥ ज्ञानमार्गंप्रयागञ्च विपाशामर्बुदंतथा ॥ १५ ॥ बहून्वर्षगणानेवं भ्रमन्सधरणीतले ॥ कामदेवभयाद्देवि देवदेवोमहेश्वरः ॥ १६ ॥ यत्रयत्रमहादेवस्तीर्थंगच्छतिभामिनि ॥ तत्रतत्रागतंकामं सपश्यतिधृतायुधम् ॥ १७ ॥ अथप्राप्तःप्रभासन्तु कदाचित्पर्वतात्मजे ॥ ततोपश्यत्कामदेवमग्रतश्चधृतायुधम् ॥ १८ ॥ सश्रमेणव्याकुलाङ्गस्ततःक्रुद्धोमहेश्वरः ॥ सोप्यवैक्षत्तदाकामं विस्फूर्य्यनयनंतथा ॥ १९ ॥ तृतीयन्देवदेवेशि देव

रुद्रकोटि, कुरुक्षेत्र व गयाको गये और ज्ञानमार्ग, प्रयाग तथा विपाशा व अर्बुदतीर्थको जाकर ॥ १५ ॥ हे देवि ! कामदेवके डरसे वे देवदेव महेश्वरजी इसप्रकार बहुत वर्षगणों तक पृथ्वी में घूमते रहे ॥ १६ ॥ हे भामिनि ! महादेवजी जहां जहां तीर्थ को जाते थे वहां वहां वे शिवजी अस्त्रको धारे आयेहुये कामदेवको देखते थे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर हे पर्वतात्मजे ! किसीसमय प्रभासक्षेत्रको प्राप्तहुये तदनन्तर उन्होंने अस्त्रको धारण किये कामदेवको आगे देखा ॥ १८ ॥ तदनन्तर श्रमसे विकल

अंगोंवाले वे शिवजी क्रोधित हुये तदनन्तर हे देवदेवेशि ! उन देवदेव त्रिलोचन जी ने तीसरे नेत्रको खोलकर कामदेवजी को देखा और उस कामदेवको देखतेहुये उस नेत्रसे अग्निकी ज्वालायें निकलीं ॥ १९ । २० ॥ और उन ज्वालाओंसे धनुषसमेत वह कामदेव भस्मता को प्राप्तहुआ व भगवान् शिवजी उसको जलाकर क्रोध के निर्णयको प्राप्तहोकर ॥ २१ ॥ उस उत्तम प्रभासक्षेत्रमें निवास करतेभये उस कामदेवके जलने पर शोकमें संयुत व पतिकी भक्तिमें परायण रति ने बहुत दुःख से विकल होतीहुई विलाप किया कि हा नाथ, हा नाथ ! हे स्वामिन् ! मुझ पतिव्रताको क्यों छोड़तेहो ॥ २२ । २३ ॥ हे प्रभो ! पतिव्रता व पतिमें प्राणोंवाली मुझ

देवस्त्रिलोचनः ॥ तस्यतंवीक्षमाणस्य संयाताःपावकार्चिषः ॥२०॥ ताभिस्सधनुषायुक्तोभस्मसात्समपद्यत ॥ तन्दग्ध्वा भगवाञ्छम्भुर्गत्वारोषस्यनिर्णयम् ॥ २१ ॥ निवासमकरोत्तत्र क्षेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ तस्मिन्दग्धेतदाकामे रतिश्शोकपरायणा ॥ २२ ॥ विललापसुदुःखार्त्ता पतिभक्तिपरायणा ॥ हानाथनाथभोःस्वामिन् किंजहासिपतिव्रताम् ॥ २३ ॥ पतिव्रतांपतिप्राणां कस्मान्मान्त्यजसिप्रभो ॥ २४ ॥ एवन्तुविलपन्तींतान्तु वागुवाचाशरीरिणी ॥ मात्वंरुदविशालाक्षि पुनरेवपतिस्तव ॥ २५ ॥ प्रसादाद्देवदेवस्य उत्थास्यतिशिवस्यतु ॥ एतांवाचंरतिःश्रुत्वा ततःस्वस्थाबभूवह ॥२६॥ ततोदेवाश्शिवंनत्वा प्रार्थयमानास्सुतंप्रति ॥ कलत्रसंग्रहन्देव कुरुकार्यार्थसिद्धये ॥ २७ ॥ एषकामस्त्वयादग्धः क्रुद्धेन सुरसत्तम ॥ विनातेनविभोनष्टा सृष्टिर्वैधरणीतले ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एषकामोमयादग्धः क्रोधेनमहतास्वयम् ॥ तस्मादनङ्गएवैष प्रजासुप्रचरिष्यति ॥ २९ ॥ तद्वीर्यस्तत्प्रभावश्च विनादेहंभविष्यति ॥ ३० ॥ देवाऊचुः ॥ भग

को क्यों त्याग करते हो ॥ २४ ॥ इस प्रकार विलाप करतीहुई उस रति से आकाशवाणी बोली कि हे विशाललोचनि ! तुम मत रोवो क्योंकि फिर तुम्हारा पति देवदेव शिवजी की प्रसन्नतासे उत्पन्न होगा इस वचनको सुनकर तदनन्तर रति स्वस्थहुई ॥ २५ । २६ ॥ तदनन्तर पुत्रके लिये प्रार्थना करतेहुये देवताओंने शिवजी को प्रणामकर कहा कि हे देव ! कार्यार्थ की सिद्धिके लिये स्त्री का संग्रह कीजिये ॥२७॥ हे सुरश्रेष्ठ ! तुमने इस कामदेवको जला दिया है विभो ! उसके विना पृथ्वीमें सृष्टि नष्ट होगई ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् शिवजी बोले कि मैंने बड़ेभारी क्रोधसे आपही इस कामदेवको जलायाहै इस कारण यह बिन शरीर होकर प्रजाओंमें विचरैगा ॥२९॥

और विना शरीर के यह उसी बल व उसी प्रभाववाला होगा ॥ ३० ॥ देवता बोले कि हे सुरेश्वर, भगवन् ! जिस प्रकार हमलोगोंको विश्वास होवै वैसेही सब लोकोंके हितके लिये पहले तुम कामदेवको रचो ॥ ३१ ॥ तदनन्तर आपही उन महेश्वर देवजी ने कामदेवको रचा उसके उपरान्त वह शाश्वत लिंग पृथ्वी में उत्पन्न हुआ ॥ ३२ ॥ फिर वहा वैसाही बलवान् अनंग कामदेव कियागया और उन्हीं महात्मा शंकरजी ने उन शैलकुमारी का व्याह कियाहै ॥ ३३ ॥ और वे सुरश्रेष्ठ स्वामिकार्त्तिकेयजी उत्पन्नहुये कि जिन्होंने तारकासुरको माराहै जिसलिये गिरेहुये लिंगसे स्मर (कामदेव) रचागया ॥ ३४ ॥ उसीकारण संसारमें कृतस्मर शिवजी कहे

वन्कुरुपूर्वंत्वं कामदेवंसुरेश्वर ॥ हितायसर्वलोकानांयथानःप्रत्ययोभवेत् ॥ ३१ ॥ ततस्ससृष्टवान्कामं स्वयन्देवोमहेश्वरः ॥ ततस्तच्छाश्वतंलिङ्गं समुत्तस्थौमहीतले ॥ ३२ ॥ कृतस्मरःपुनस्तत्र अनङ्गोबलवांस्तथा ॥ साप्यूढाशैलजा तेन शङ्करेणमहात्मना ॥ ३३ ॥ जातस्स्कन्दस्सुरश्रेष्ठस्तारकोयेनसूदितः ॥ पतितेनैवलिङ्गेन यस्माच्चैवकृतस्मरः ॥ ३४ ॥ तस्मात्कृतस्मरोलोके कीर्त्यतेतुमहीतले ॥ तन्दृष्ट्वानजडोनान्धो नासुखीनचदुर्भगः ॥ ३५ ॥ जायतेतुकदामर्त्यो नदरिद्रोनरोगवान् ॥ तस्मिन्दृष्टेमहादेवि जन्मप्रभृतिपातकम् ॥३६॥ नाशमायातितत्सर्वं ज्ञानादज्ञानतःकृतम् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मांत्वंपरिपृच्छसि ॥ ३७ ॥ दग्धोयथास्मरःपूर्वं पुनर्वीर्यान्वितःस्थितः ॥३८॥ ईश्वरउवाच ॥ तत्रैव संस्थितंकुण्डं दक्षिणेचकृतस्मरात् ॥ कामकुण्डेतिवैनाम यत्रोद्भूतःस्मरःपुनः ॥ ३९ ॥ अनङ्गरूपीदेवेशि तत्रस्थानेपुराभवत् ॥ तत्रैवचत्रयोदश्यां स्नात्वाकुण्डेनरोत्तमः ॥ ४० ॥ सप्तजन्मनिदेवेशि सुभगोरूपवान्भवेत् ॥ इक्षवस्तत्र

जाते हैं पृथ्वी में उन शिवजी को देखकर मनुष्य कभी न मूर्ख होताहै और न अन्ध न दुःखी न दुर्भग होताहै और न दरिद्र न रोगवान् होताहै व हे महादेवि ! उनके देखने पर जन्मसे लगाकर जो पातक ॥ ३५ । ३६ ॥ ज्ञान व अज्ञानसे कियागया है वह सब नाशको प्राप्त होताहै ॥ ३७ ॥ तुमने जो मुझसे पूंछा यह सब वृत्तान्त तुमसे कहागया कि जिसप्रकार पहले कामदेव जलायागया और फिर वह बलसंयुत स्थित हुआ ॥ ३८ ॥ महादेवजी बोले कि कृतस्मर से दक्षिणमें वही कुण्ड स्थित है कि जिसका कामकुण्ड ऐसा नाम है जहां कि कामदेव फिर पैदाहुआ है ॥ ३९ ॥ हे देवेशि ! पुरातन समय उस स्थान में अनंगरूपी काम हुआ है तरसि

तिथि में उत्तम मनुष्य उसी कुण्डमें नहाकर ॥ ४० ॥ हे देवेशि ! सात जन्मों में सुन्दर ऐश्वर्यवान् व रूपवान् होताहै वहां ऊंखोंको देनाचाहिये और सुवर्ण व गौवों को देना चाहिये ॥ ४१ ॥ और वेदोंके पारगामी ब्राह्मण के लिये विधिपूर्वक वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकामकुण्डमाहात्म्यंनामचतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । अहै प्रभासक्षेत्रमहँ भैरव काल स्थान । इकसौ पंचानबे महँ सोई कियो बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उस स्थान में कालभैरव श्मशान है

देयावै सुवर्णगास्तथैवच ॥ ४१ ॥ वस्त्राणिविधिवत्तत्र ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कामकुण्डमाहात्म्यन्नामचतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तस्मिन्स्थानेमहादेवि श्मशानंकालभैरवम् ॥ ब्रह्मकुण्डाद्वरारोहे यावद्देवःकृतस्मरः ॥ १ ॥ तत्रये प्राणिनोदग्धा मृताःकालविपर्ययात् ॥ तेसर्वेमुक्तिमायान्ति महापातकिनोपिवा ॥ २ ॥ कृतस्मरान्महादेवि यावन्मङ्कीश्वरःस्मृतः ॥ महाश्मशानंतद्देवि अपुनर्भवदायकम् ॥ ३ ॥ तस्मिन्स्थानेदहेद्देवि व्यसुंवैप्राणिनम्प्रिये ॥ तत्रौषधं स्मृतंक्षेत्रं तन्मेप्रियतरंसदा ॥ ४ ॥ कल्पान्तेपिनमुञ्चामि अविमुक्तात्प्रियंकृतम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकालभैरवमाहात्म्यन्नामपञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥ * ॥ * ॥

हे वरारोहे ! ब्रह्मकुण्डसे लगाकर जहां तक कृतस्मर देवजी हैं ॥ १ ॥ वहां काल के विलोमसे जो मरेहुये प्राणी जलाये जाते हैं महापापी भी वे सब मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ हे महादेवि ! कृतस्मर से लगाकर जहांतक मंकीश्वरजी कहेगये हैं हे देवि ! फिर जन्मको न देनेवाला वह महाश्मशान है ॥ ३ ॥ हे प्रिये,देवि ! उस स्थान में प्राणों से रहित प्राणीको जलावै वहां क्षेत्र औषध कहागया है वह मुझ को सदैव अत्यन्त प्रिय है ॥ ४ ॥ मैं उसको कल्पान्त में भी नहीं छोड़ताहूं और न मुक्त होने के कारण वह प्रिय कियागया है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांकालभैरवमाहात्म्यंनामपञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९५ ॥

दो० । थाप्योहै बलभद्र जिमि श्रीरामेश्वर नाथ । कह्यो एकसौ छानबे माहिं सुभग सो गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अतिउत्तम रामेश्वर
के समीप जावै मंकीशसे दक्षिण भाग में व कृतस्मरजी से आग्नेय में ॥ १ ॥ पुरातन समय सरस्वतीजी के किनारे बलभद्र से स्थापित महादेवजी हैं जहां पर हे
वे ! राम (बलभद्र) जी ब्रह्मघातसे उपजेहुये पातकसे छूटे हैं ॥ २ ॥ पातकोंके नाश होने के लिये सरस्वतीजीमें स्नान करै देवीजी बोलीं कि वे किसप्रकार पापसे
टे हैं और पुरातन समय कैसे पाप हुआहै ॥३॥ और किसप्रकार वह लिंग स्थापित हुआहै व किस प्रभाववालाहै इसको मुझसे कहिये ॥ ४॥ महादेवजी बोले कि हे देवि!

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि रामेश्वरमनुत्तमम् ॥ मङ्कीशाद्दक्षिणेभागे आग्नेयेतुकृतस्मरात् ॥ १ ॥ पूर्वंत
टेसरस्वत्या बलभद्रप्रतिष्ठितः ॥ यत्रमुक्तोभवद्देवि रामोब्रह्मवधोद्भवात् ॥ २ ॥ पातकप्रतिलोपाय अवगाहेत्सरस्वती
म् ॥ देव्युवाच ॥ कथंसपातकान्मुक्तः कथंपापमभूत्पुरा ॥ ३ ॥ कथंतत्स्थापितंलिङ्गं किम्प्रभावंवदस्वमे ॥ ४ ॥
ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ यांश्रुत्वामानवोदेवि मुक्तस्संसारसागरात् ॥ ५ ॥ ससर्वा
ल्लँभतेकामान्सन्ततंमनसाप्रियान् ॥ रामःपार्थेपरांप्रीतिं दृष्ट्वाकृष्णस्यलाङ्गली ॥ ६ ॥ चिन्तयामासबहुधा किंकृतंसु
कृतंभवेत् ॥ कृष्णेनहिविनानाहं यास्येदुर्योधनान्तिके ॥ ७ ॥ पाण्डवांश्चसमाश्रित्य कथंदुर्योधनंनृपम् ॥ तीर्थेष्वा
प्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना ॥ ८ ॥ कुरूणांपाण्डवानाञ्च यावदन्तोभविष्यति ॥ इत्यामन्त्र्यहृषीकेशं पार्थं
दुर्योधनंतथा ॥ ९ ॥ जगामद्वारकांसौरिः स्वसैन्यैःपरिवारितः ॥ गत्वाद्वारवतींरामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ १० ॥

सुनिये मैं पातकों को नाशकरनेवाली कथा को कहताहूं हे देवि ! जिसको सुनकर मनुष्य संसारसागर से छूटजाता है ॥ ५ ॥ और मनसे प्यारे सब कामनाओं को
सदैव पाताहै हलको धारनेवाले बलभद्रजी ने अर्जुन के ऊपर श्रीकृष्णजी की बड़ी प्रीतिको देखकर ॥ ६ ॥ बहुत भांति से चिन्तन किया कि कियाहुआ क्या कर्म
सुकृत होगा क्योंकि श्रीकृष्णजी के विना मैं दुर्योधनके समीप नहीं जाऊगा ॥ ७ ॥ और पाण्डवों के भलीभांति आश्रित होकर कैसे दुर्योधन नृपतिके पास जाऊगा
॥ ८ ॥ जबतक कि कौरवों व पाण्डवों का नाश होगा इस कारण श्रीकृष्ण, अर्जुन व दुर्योधन से पूछकर ॥९॥

अपनी सेनाओं से घिरेहुये बलभद्रजी द्वारकापुरीको गये व हृष्ट पुष्ट जनों से संयुत द्वारकापुरीको जाकर ॥ १० ॥ और जाने योग्य तीर्थों में हलायुध बलभद्र जी ने मदिरापान किया इसके अनन्तर पान पियेहुये बलभद्रजी समृद्धिमान् रैवतोद्यानको गये ॥ ११ ॥ और अप्सराओं से संयुत अपनी स्त्रीको हाथ में पकड़कर स्त्रीगणों के मध्य में स्थित बलभद्रजी लरखराते हुये उन्मत्त की नाईं चले ॥१२॥ और वीर बलभद्रजी ने अतिउत्तम व मनोहर तथा सब ऋतुवोंके वृक्षों व पुष्पों से संयुत व वानर गणों से युक्त वनको देखा ॥ १३ ॥ जोकि छोटे तड़ागों से युक्त महावन पुष्प, पत्र व फलों से संयुत था और वनमें उत्पन्न तथा मदके कारण मधुर

गन्तव्येषुचतीर्थेषु पपौपानंहलायुधः ॥ पीतपानोजगामाथरैवतोद्यानमृद्धिमत् ॥ ११ ॥ हस्तेगृहीत्वास्वांभार्यामप्सरोभिस्समन्विताम् ॥ स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययावुन्मत्तवत्स्खलन् ॥ १२ ॥ ददर्शचवनंवीरो रमणीयमनुत्तमम् ॥ सर्वर्त्तुतरुपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ॥ १३ ॥ पुष्पपत्रफलोपेतं सपल्लवमहावनम् ॥ सशृण्वन्प्रीतिजनकान् वन्यान्मदकलाञ्छुभान् ॥ १४ ॥ श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्छब्दान्खगमुखेरितान् ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यान् सर्वतःकुसुमोज्ज्वलान् ॥ १५ ॥ अपश्यत्पादपांश्चैव विहगैरनुमोदितान् ॥ आम्रानाम्रातकान्भव्यान् नालिकेरान्सतिन्दुकान् ॥ १६ ॥ आमलांश्चतथावृक्षान् दाडिमान्बीजपूरकान् ॥ पनसाल्लँकुचान्मोचान् नीपांश्चापिमनोहरान् ॥ १७ ॥ भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्चमहाफलान् ॥१८॥ इङ्गुदान्करमर्दांश्चहरीतकविभीतकान् ॥ एतानन्यांश्चसतरून् ददर्शयदुनन्दनः ॥ १९ ॥ तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलांस्तथा ॥ चम्पकान्सप्तपर्णांश्च कर्णिकारान्सुमालतीम् ॥ २० ॥ पारिजा

व अप्रकट उत्तम तथा प्रीतिको पैदा करनेवाले पक्षियों के मुखसे कहेहुये कानोंको रमणीय व मीठे शब्दों को सुनते हुये वे बलभद्रजी चले और उन बलभद्रजी ने सब ऋतुवों के फलों व पुष्पों से संयुत तथा सब ओर फूलों से श्वेत ॥ १४।१५ ॥ व पक्षियोंसे अनुमोदित वृक्षों को देखा उत्तम आम्र, अँवरा व तिंदुक समेत नारियल के वृक्षों को देखा ॥ १६ ॥ और आँवला, अनार, बिजौरा, कटहर, बड़हर, सहिंजन व सुन्दर कदम्बोंको देखा ॥ १७ ॥ और भेलावाँ, आमलक व बड़े फल वाले तिन्दुक वृक्षोंको देखा ॥ १८ ॥ और इंगुदी, करौंदा, हर्रा व बहेड़ा इन तथा अन्य वृक्षोंको उन यदुनन्दन बलभद्रजीने देखा ॥ १९ ॥ वैसेही अशोक, पुन्नाग,

केतकी, मौलसिरी, चम्पक, छतौंड़, कर्णिकार व चमेली के वृक्षको देखा ॥ २० ॥ और नींब, लालकचनार, मदार व नीले कमल तथा फूलेहुये सुन्दर पाड़र व देवदारु वृक्षोंको देखा ॥ २१ ॥ और सॉखू, ताल, तमाल, जलबेत व मौलसिरीके वृक्षों को देखा और बगुला, शतपत्र (कठफोरवा) और कानोंको मनोहर तथा मीठे शब्दों को बोलतेहुये अन्य पक्षियोंसे अधिष्ठित वृक्षोंको देखा व सुन्दर जलवाले कमलोंसमेत तडागोंको देखा ॥ २२ । २३ ॥ जोकि कुमुद, श्वेत कमल व अरुण कमल तथा कह्लार याने सन्ध्या में फूलनेवाले श्वेत कमल और सामान्य कमलों से सब ओर पूजित थे ॥ २४ ॥ व बतक, चकई चकवा और जलमुर्गा तथा पूर्वहंस, कछुवा

तान्कोविदारान् मन्दारेन्दीवरांस्तथा ॥ पाटलान्पुष्पितान्रम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा ॥ २१ ॥ शालांस्तालांस्तमालाश्च निचुलान्वञ्जुलांस्तथा॥ बकैश्चशतपत्रैश्च शुकैरन्यैर्विहङ्गमैः ॥ २२ ॥ श्रोत्ररम्यंसमधुरं कूजद्भिश्चावधिष्ठितान् ॥ सरांसिचसपद्मानि मनोज्ञसलिलानिवा ॥ २३ ॥ कुमुदैःपुण्डरीकैश्च तथारोचनकोत्पलैः ॥ कह्लारैःकमलैश्चापि अर्चितानिसमन्ततः ॥ २४ ॥ कदम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैवजलकुक्कुटैः ॥ कारण्डवैःपूर्वहंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेवच ॥ २५ ॥ एतैश्चान्यैःप्रकीर्णानि तथान्यैर्जलवासिभिः ॥ क्रमेणसञ्चरञ्छौरिः प्रेक्षमाणोमनोरमम् ॥२६॥ जगामानुगतस्स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥ सददर्शद्विजांस्तत्रवेदवेदाङ्गपारगान् ॥ २७॥ कौशिकान्भार्गवांश्चैव भरद्वाजान्सकौतुकात् ॥ विविधेषुचसम्भूतान् विविधान्द्विजसत्तमान् ॥२८॥ कथाश्रवणबद्धैक्यानुपविष्टान्सभासुच॥ कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कूर्चेषुचवृषीषुच ॥ २९ ॥ सूतञ्चतेषांमध्यस्थं कथमानंकथाश्शुभः ॥ पौराणिकंसुरर्षीणामाद्यानांचरितक्रियाः ॥ ३० ॥ दृष्ट्वा

और जलकौवा ॥ २५ ॥ इनसे व अन्य जलवासी पक्षियों से संयुत थे क्रमसे विचरते हुये व स्त्रियों से अनुगत बलभद्रजी सुन्दर व अतिउत्तम लतागृहको देखतेहुये चले व उन्होंने वहां वेद वेदांगों के पारगामी ब्राह्मणों को देखा ॥ २६ । २७ ॥ और उन्हों ने कौतुक से कौशिक, भार्गव, भरद्वाजवंशी और विविध वंशों में उत्पन्न अनेक प्रकारके द्विजोत्तमों को देखा ॥ २८ ॥ जोकि कथाके सुनने में एकताको बॉधे हुये व सभाओं में कृष्णाजिन दुपट्टा और कूर्च व आसनों पै बैठे थे ॥ २९ ॥ और उनके मध्य में स्थित पहले उपजे हुये देवर्षियों के चरित व कर्मों को तथा उत्तम कथाओं को कहतेहुये पौराणिक सूतजी को देखा ॥ ३० ॥ और मदिरा के पीने

से लाल लोचनोंवाले बलभद्रजी को देखकर यह मत्त है ऐसा मानतेहुये शीघ्रतासंयुत सब ब्राह्मण उठे ॥ ३१ ॥ और सूत वंशमें पैदाहुये उन सूतजी को छोड़कर हलधारी बलभद्रजी को पूजतेहुये प्राप्तभये तदनन्तर महाबलवान् व हलधारी बलभद्रजी ने क्रोध में प्राप्तहोकर सूतजी को ॥ ३२ ॥ मारा जो बलभद्रजी घूमतेहुये नेत्रोंवाले व समस्त दानवोंको क्षोभित किय थे ब्राह्मण के स्थान में बैठेहुये उन सूतके मारने पर ॥ ३३ ॥ कृष्णाजिनको बांधेहुये वे सब ब्राह्मण निकले और अपना को अवधूत (उन्मत्त) मानतेहुये हलायुध बलभद्रजी ने ॥ ३४ ॥ चिन्तन किया कि मैंने यह बड़ाभारी पाप किया जोकि ब्रह्मासन पै बैठेहुये इस सूत को मारा ॥ ३५ ॥

रामंद्विजास्सर्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥ मत्तोयमितिमन्वानास्समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ॥ ३१ ॥ पूजयन्तोहलधरं तमृतेसूतवंशजम् ॥ ततःक्रोधसमाविष्टो हलीसूतंमहाबलः ॥ ३२ ॥ निजघाननिवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः ॥ अन्वासितेपदेब्राह्मये तस्मिन्सूतेनिपातिते ॥ ३३ ॥ निष्क्रान्तास्तेद्विजास्सर्वे बद्धकृष्णाजिनाम्बराः ॥ अवधूतंतथात्मानं मन्यमानोहलायुधः ॥ ३४ ॥ चिन्तयामाससुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥ ब्रह्मासनगतोह्येष यत्सूतोविनिपातितः ॥ ३५ ॥ तथाह्येतेद्विजास्सर्वे मामावेक्ष्यविनिर्गताः ॥ शरीरस्यचमेगन्धो लोहस्येवासुखावहम् ॥ ३६ ॥ आत्मानंचावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिवकुत्सितम् ॥ धिग्ममार्थतयामाद्यं मद्यपानादकीर्त्तिदात् ॥ ३७ ॥ येनाविष्टेनसुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥ स्मृत्युक्तन्तुकरिष्यामि प्रायश्चित्तंयथाविधि ॥ ३८ ॥ उक्तमस्त्येवमनुना प्रायश्चित्तादिकंक्रमात् ॥ तपःप्रच्छिन्नपापानां मनस्सम्पूतमुच्यते ॥ ३९ ॥ पूतेनमनसाविद्याद्बुद्धिज्ञानविशोधनम् ॥ क्षेत्रज्ञेश्वरविज्ञानाद्विशुद्धिःपरमा

और ये सब ब्राह्मण मुझको देखकर निकले हैं और लोहकी नाईं दुःखदायी मेरे शरीर की गन्ध है ॥ ३६ ॥ मैं अपनाको ब्रह्मघातीकी नाईं निन्दित जानताहूं और अर्थतासे अयशदायक मद्यपान के कारण मेरी मत्तताको धिक्कार है ॥ ३७ ॥ कि जिसके प्रवेश होने से मैंने इस बड़े भारी पापको कियाहै और स्मृति में कहेहुये प्रायश्चित्तको मैं विधिपूर्वक करूंगा ॥ ३८ ॥ मनुजीने क्रमसे प्रायश्चित्तादिकको कहा है और तपस्या से नष्ट पातकोंवाले पुरुषोंका मन पवित्र कहाजाता है ॥ ३९ ॥

पवित्र मन से बुद्धि ज्ञानको विशोधन जानै और क्षेत्रज्ञेश्वर के ज्ञानसे परमात्माकी शुद्धि होती है ॥ ४० ॥ और अनेक भांतिके उन प्रायश्चित्तों से शरीर शुद्ध
है उस कारण मैं पातकोंके नाशक बारह वर्षवाले व्रतको करूंगा ॥ ४१ ॥ व अपने कर्मको प्रसिद्ध करताहुआ मैं अति उत्तम प्रायश्चित्तको करूंगा अकाम से
णको मारनेपर यह शुद्धि कहीगई है ॥ ४२ ॥ और काम से ब्राह्मण के मारने पर प्रायश्चित्त नहीं कियाजाता है जो मनुष्य किसी प्रकार कामनासे महापापको
। है ॥ ४३ ॥ अग्निमें गिरने के सिवा उसका कभी प्रायश्चित्त नहीं देखागया है अकाम से पाप करने पर विद्वानों ने प्रायश्चित्त कहा है ॥ ४४ ॥ और काम से

त्मनः ॥ ४० ॥ शरीरस्तैर्विशुद्धस्तु प्रायश्चित्तैःपृथग्विधैः ॥ ततोघघ्नंकरिष्यामि व्रतंद्वादशवार्षिकम् ॥ ४१ ॥ स्वकर्म
ख्यापनंकुर्वन् प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥ इयंविशुद्धिर्विहिता अकामान्निहतेद्विजे ॥ ४२ ॥ कामतोब्राह्मणवधेनिष्कृति
र्नविधीयते ॥ यःकामतोमहापापं नरःकुर्यात्कथञ्चन ॥ ४३ ॥ नतस्यनिष्कृतिर्दृष्टा जात्वग्निपतनादृते ॥ अकामतः
कृतेपापे प्रायश्चित्तंविदुर्बुधाः ॥ ४४ ॥ कामकारकृतेप्याहुरेकेश्रुतिनिदर्शनात् ॥ विधेःप्राथमिकादस्माद्द्वितीयेद्विगु
णञ्चरेत ॥ ४५ ॥ तृतीयेत्रिगुणंप्रोक्तं चतुर्थेनास्तिनिष्कृतिः ॥ औषधीधनमाहारं ददेद्गांब्राह्मणायवै ॥ ४६ ॥ दीयमा
नेनिष्कृतिस्स्यान्नसपापेनलिप्यते ॥ अकारणन्तुयःकश्चिद्द्विजःप्राणान्परित्यजेत ॥ ४७ ॥ तत्रैवतस्यदोषस्स्या
न्नन्वयंपरिकीर्त्तितः ॥ तिरस्कृतोयदाविप्रो हत्वात्मानंमृतोयदि ॥ ४८ ॥ मृतश्चसहसाक्रोधाद्गृहक्षेत्रादिकारणात् ॥
त्रिवार्षिकंव्रतंकुर्यात् प्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥ ४९ ॥ गच्छेद्वापिविशुद्ध्यर्थं ततश्शुध्यतिनिश्चितम् ॥ षण्ढन्तुब्राह्मणं

करने पर भी कितेक विद्वानों ने श्रुतिके देखने से प्रायश्चित्त को कहा है कि इस पहली विधि से दूसरे पाप में दुगुना प्रायश्चित्त करै ॥ ४५ ॥ व तीसरे में तिगुना
हागया है और चौथे में प्रायश्चित्त नहीं है ब्राह्मणके लिये औषधी, धन व भोजन और गऊको देवै ॥ ४६ ॥ क्योंकि देनेपर प्रायश्चित्त होताहै और वह पापसे
लप्त नहीं होताहै और जो कोई ब्राह्मण बिन कारण प्राणोंको छोड़ता है ॥ ४७ ॥ तो उसमें उसीको दोष होताहै यह कहागया है और जब अपमान कियाहुआ ब्राह्मण
जीवात्मा को मारकर यदि मरजावै ॥ ४८ ॥ और क्रोधसे अचानक ही गृह व क्षेत्रके कारण मरजावै तो त्रिवार्षिक व्रत करै व प्रतिलोमा सरस्वती के समीप पवित्रता

वहां यात्रा करता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाता है हे वरारोहे! वहां सरस्वती व समुद्र के सङ्गमम नहाकर
र्षों को वहां गोदान देना चाहिये हे देवि! रामेश्वर का माहात्म्य ऐसाही कहागयाहै ॥७१॥ जिसको सुनकर भलीभांति श्रद्धावान् पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होता
७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायारामेश्वरमाहात्म्यंनामषण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ❀ ॥
दो० । जिमि मंकीश्वर लिंगको थाप्यो मंकिमुनीश । इकसौ सत्तानबे महँ सोई चरित बरीश । महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर रामेशजीसे उत्तरभागमें

ब्धिसङ्गमे ॥ ७० ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ इत्येवंकथितंदेवि रामेश्वरमहोदयम् ॥ ७१ ॥ यच्छ्रु त्वामानवःसम्यक्श्रद्धावान्प्राप्नुयाद्दिवम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येरामेश्वरमाहात्म्यंनामषण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मङ्कीश्वरमहालयम् ॥ रामेशादुत्तरेभागे देवमातुःसमीपगम् ॥ १ ॥ अर्कस्थलात्ततोयाम्ये पूर्वतस्तुकृतस्मरात् ॥ तंदृष्ट्वामानवःसम्यगश्वमेधफलंलभेत् ॥ २ ॥ देव्युवाच ॥ कोसौमङ्कीमहादेव कथंलिङ्गम्प्रतिष्ठितम् ॥ कथंप्रभावन्तल्लिङ्गमेतन्मेविस्तराद्वद ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ मङ्कीनामाभवत्पूर्वं कुब्जकायो द्विजोत्तमः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपस्तेपेसउत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं शिवभक्तिपरायणः ॥ ततोदुःखंसमभवन्मङ्केस्तत्रवरानने ॥ ५ ॥ कस्मान्मेभगवांस्तुष्टिं नगच्छतिमहेश्वरः ॥ ततस्तीव्ररतिंचक्रे कृत्वामृत्युनिवर्त्तनम् ॥ ६ ॥

देवमाता के समीप प्राप्त मंकीश्वर महालय को जावै ॥ १ ॥ जोकि उस अर्कस्थल से दक्षिणमें व कृतस्मर से पूर्वमें स्थित है उसको देखकर मनुष्य भलीभांति अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्तहोता है ॥ २ ॥ देवीजी बोलीं कि हे महादेव! यह मंकी कौनहै और किस प्रकार लिंग थापागया है और किस प्रभाववाला वह लिंगहै इसको मुझमे विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि पुरातनसमय कुब्जशरीरवाला मंकीनामक द्विजोत्तम हुआहै शिवजीकी भक्तिमें परायण उसने प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर महादेवजी को थापकर उत्तम तप किया तदनन्तर हे वरानने! वहां मङ्कीके दुःख हुआ ॥ ४ । ५ ॥ कि भगवान् महेशजी मेरे ऊपर क्यों नहीं प्रसन्नता

प्रसिद्ध महाक्षेत्र को आये ॥ ६० ॥ व सरस्वती समुद्र के सङ्गमवाले मनोहर तीर्थ को देखकर उन्होंने हृदय में प्रतिलोमा के स्नान करने के निमित्त संकल्प किया ॥ ६१ ॥ व विभु बलभद्रजीने वहां क्षेत्रवासी ब्रह्मण्य ब्राह्मणोंको बुलाकर भलीभांति यात्रा की विधिसे वहां यात्रा किया ॥ ६२ ॥ और प्रभासक्षेत्र में बारह योजनमें स्थित जो अनेक भांति के तीर्थथे उनमें उन बलभद्रजी ने यात्रा किया ॥ ६३ ॥ और उनमें प्रत्येक तीर्थमें अनेक भांतिके दानोंको दिया वैसेही सरस्वती व समुद्रके सङ्गम में पूर्वभाग में यज्ञ विधिके कार्यको करके महालिंगको स्थापन किया हे महादेवि ! ऐसा करनेपर वे बलभद्रजी पातकों से मुक्त हुये ॥ ६४ । ६५ ॥ तदनन्तर हे देवि !

प्रभासमितिविश्रुतम् ॥ ६० ॥ दृष्ट्वामनोरमंतीर्थं सरस्वत्यब्धिसङ्गमम् ॥ चकारहृदिसङ्कल्पं प्रतिलोमावगाहने॥६१॥ आहूयब्राह्मणांस्तत्र ब्रह्मण्यान्क्षेत्रवासिनः ॥ सम्यग्यात्राविधानेन यात्रांतत्राकरोद्विभुः ॥ ६२ ॥ यानिप्राभासिके क्षेत्रे तीर्थानिविविधानितु ॥ रवियोजनसंस्थानि तेषुयात्रांचकारसः ॥ ६३ ॥ प्रत्येकञ्चददौतेषु दानानिविविधानिच ॥ तथाचस्थापयामास सरस्वत्यब्धिसङ्गमे ॥ ६४ ॥ पूर्वभागेमहालिङ्गं कृत्वायज्ञविधिक्रियाम् ॥ एवंकृतेमहादेवि समुक्तःपातकैरभूत ॥ ६५ ॥ निर्मलाङ्गस्ततोदेवि दिनानिदशसंस्थितः ॥ ततस्तस्माचसंस्थानात्प्रतिलोमांक्रमाद्ययौ ॥ ६६ ॥ लद्मावतरणंयावत्समुद्राचहिमाह्वयम् ॥ एवंसमुक्तःपापौवै रामोभूत्प्रथितःप्रिये ॥ ६७ ॥ तस्माचलिङ्गमाहात्म्यात्सरस्वत्याःप्रभावतः ॥ यस्तत्पूजयतेदेवि लिङ्गंपापभयापहम् ॥ ६८ ॥ रामेश्वरेतिप्रथितं सोपिमुच्येतपातकात् ॥ सोमाष्टम्यांविशेषेण ब्रह्मकूर्चविधानतः ॥ ६९ ॥ यस्तत्रकुरुतेदेवि मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ स्नात्वातत्रवरारोहे सरस्वत्य

निर्मल शरीरवाले बलभद्रजी दश दिनतक भलीभांति टिकेरहे तदनन्तर उस स्थानसे क्रमसे प्रतिलोमा सरस्वती को गये ॥ ६६ ॥ जहांतक कि समुद्र से हिमनामक लद्मावतरण स्थानहै इस प्रकार हे प्रिये ! पापसमूहों से छूटेहुये बलभद्रजी उस लिंगके माहात्म्य से व सरस्वतीजी के प्रभावसे प्रसिद्ध हुयेहैं हे देवि ! जो मनुष्य पाप के भयको दूर करनेवाले रामेश्वर ऐसे प्रसिद्ध उस लिङ्गको पूजताहै वह भी पातक से छूटजाताहै और विशेषकर सोमवार अष्टमी में ब्रह्मकूर्चकी विधिसे ॥ ६७।६८।६९॥

हे देवि! जो वहां यात्रा करता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाता है हे वरारोहे! वहां सरस्वती व समुद्र के सङ्गममें नहाकर ॥ ७० ॥ भलीभांति यात्राके फलको चाहने वाले पुरुषों को वहां गोदान देना चाहिये हे देवि! रामेश्वर का माहात्म्य ऐसाही कहागयाहै ॥७१॥ जिसको सुनकर भलीभाति श्रद्धावान् पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरामेश्वरमाहात्म्यंनामषएणवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ ❋ ॥

दो० । जिमि मंकीश्वर लिंगको थाप्यो मंकिमुनीश । इकसौ सत्तानबे महँ सोई चरित बरीश । महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर रामेशजीसे उत्तरभागमें

यच्छुद्धिमङ्गमे ॥ ७० ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ इत्येवंकथितंदेवि रामेश्वरमहोदयम् ॥ ७१ ॥ यच्छ्रुत्वामानवःसम्यक्श्रद्धावान्प्राप्नुयाद्दिवम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येरामेश्वरमाहात्म्यंनामषएणवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ *

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मङ्कीश्वरमहालयम् ॥ रामेशादुत्तरेभागे देवमातुःसमीपगम् ॥ १ ॥ अर्कस्थलात्ततोयाम्ये पूर्वतस्तुकृतस्मरात् ॥ तंदृष्ट्वामानवःसम्यगश्वमेधफलंलभेत् ॥ २ ॥ देव्युवाच ॥ कोसौमङ्कीमहादेव कथंलिङ्गम्प्रतिष्ठितम् ॥ कथंप्रभावन्तल्लिङ्गमेतन्मेविस्तराद्वद ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ मङ्कीनामाभवत्पूर्वं कुब्जकायो द्विजोत्तमः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपस्तेपेसउत्तमम् ॥ ४ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं शिवभक्तिपरायणः ॥ ततोदुःखंसमभवन्मङ्केस्तत्रवरानने ॥ ५ ॥ कस्मान्मेभगवांस्तुष्टिं नगच्छतिमहेश्वरः ॥ ततस्तीव्ररतिंचक्रे कृत्वामृत्युनिवर्त्तनम् ॥ ६ ॥

देवमाता के समीप प्राप्त मंकीश्वर महालय को जावै ॥ १ ॥ जोकि उस अर्कस्थल से दक्षिणमें व कृतस्मर से पूर्वमें स्थित है उसको देखकर मनुष्य भलीभांति अश्वमेधयज्ञ के फलको प्राप्तहोता है ॥ २ ॥ देवीजी बोलीं कि हे महादेव! यह मंकी कौनहै और किस प्रकार लिंग थापागया है और किस प्रभाववाला वह लिंगहै इस को मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि पुरातनसमय कुब्जशरीरवाला मंकीनामक द्विजोत्तम हुआहै शिवजीकी भक्तिमें परायण उसने प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर महादेवजी को थापकर उत्तम तप किया तदनन्तर हे वरानने! वहां मङ्कीके दुःख हुआ ॥ ४ । ५ ॥ कि भगवान् महेशजी मेरे ऊपर क्यों नहीं प्रसन्नता

को प्राप्तहोते हैं उसके उपरान्त उन्होंने मृत्युका निवर्तनकर तीव्र अनुराग किया ॥ ६ ॥ इस प्रकार जप व ध्यानमें परायण मंकी वृद्धताको प्राप्त हुये व अवस्था के अन्त में प्रसन्न होते हुये महादेवजी ने उसको वरदान दिया ॥ ७ ॥ कि तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्नहूं कहिये क्या करूं व तुम को क्या देऊं मंकि बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! इस समय मुझ वृद्धको वरदान से क्या कार्यहै ॥ ८ ॥ हे विभो ! यहां टिकेहुये मुझको एक बड़ाभारी दुःखहै कि हे शङ्करजी ! तुम्हारी प्रसन्नतासे बहुत मनुष्य सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ९ ॥ व हे देव, प्रभो ! वह क्या कारणहै कि जिससे मेरे ऊपर नहीं प्रसन्न होतेहो श्रीभगवान् शिवजी बोले कि उस कारणको सुनिये कि जिससे उन तपस्वियों

एवंवृद्धत्वमापन्नो जपध्यानपरायणः ॥ तस्यतुष्टोमहादेवो वयसोन्तेवरंददौ ॥ ७ ॥ परितुष्टोस्मितेब्रूहि किङ्करोमिददामि ते ॥ मङ्किरुवाच ॥ किंवरेणसुरश्रेष्ठ ममवृद्धस्यसांप्रतम् ॥ ८ ॥ एकंचपरमंदुःखं स्थितस्यात्रविभोमम ॥ प्रभूताःसिद्धिमापन्नाः प्रसादात्तवशङ्कर ॥ ९ ॥ किन्तुतत्कारणंदेवनतुष्टोसिममप्रभो ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणुतत्कारणंयेन तेषांतुष्टस्तपस्विनाम् ॥ १० ॥ व्रतचर्यापराविप्राः पूजयाभ्यधिकाहिते ॥ तेपुष्पाणिसमानीय नानावर्णानिसर्वशः ॥ ११ ॥ वृक्षाणामतिगन्धीनि तत्तेषांहर्षकारणम् ॥ त्वंपुनःकुब्जरूपेण यज्ञपूजापरायणः ॥ १२ ॥ नचप्राप्नोषिवृक्षाणां शाखाग्राण्यपियत्नवान् ॥ एकेनापिप्रदत्तेन पुष्पेणद्विजसत्तम ॥ १३ ॥ भक्त्याशिरसिलिङ्गस्य लभतेयज्ञजंफलम् ॥ लिङ्गस्यदक्षिणेब्रह्मा स्वयमेवव्यवस्थितः ॥ १४ ॥ मध्येचभगवान्विष्णुर्वामेहंविप्रतिष्ठितः ॥ त्रयोपिपूजितास्तेन येनलिङ्गम्प्रपूजितम् ॥ १५ ॥ बिल्वपत्रंशमीपत्रं करवीरञ्चमालती ॥ धत्तूरकंचम्पकञ्च सद्यःप्रीतिकरंभवेत् ॥ १६ ॥ उन्मत्ताशो

के ऊपर मैं प्रसन्न हुआ हूं ॥ १० ॥ वे ब्राह्मण व्रतचर्या में तत्पर होकर पूजासे अधिक हैं क्योंकि वे सब वृक्षों के अतिसुगन्धित व अनेक रंगके फूलों को लाकर पूजते थे वह उनके ऊपर हर्षका कारणहै और तुम कुब्जरूप से यज्ञ व पूजन में परायण थे ॥ ११ । १२ ॥ और यत्नवान् तुम वृक्षों के शाखाके अग्र भागोंको भी नहीं पातेथे हे द्विजोत्तम ! लिंगके मस्तकपै भक्तिसे एकभी पुष्प देने मे मनुष्य यज्ञसे उपजेहुये फलको पाता है लिंगके दाहिने आपही ब्रह्माजी स्थित हैं ॥ १३ । १४ ॥ व बीचमें भगवान् विष्णुजी और बायें ओर मैं स्थितहूं जिसने लिंगको पूजा उसने तीनों देवताओंका पूजन किया ॥ १५ ॥ बिल्वपत्र, शमीपत्र, कनैर, चमेली, धतूर,

व चम्पक शीघ्रही प्रीतिकारक है ॥ १६ ॥ धतूर, अशोक व कमलोंसे विधिपूर्वक पूजन करै हे द्विजोत्तम ! ये और जो अन्य सुगन्धित पुष्पहैं ॥ १७ ॥ नित्य इनसे पूजने पर तदनन्तर मैं शीघ्रही प्रसन्नताको प्राप्त होता हूं ब्राह्मण बोला कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो व यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥ १८ ॥ तो यहां आकर जो मनुष्य स्नानकर जलमेंभी इस लिंगको सींचै वह सब पूजनोंके फलको प्राप्तहोवै ॥ १९ ॥ व हे शङ्करजी! आजसे लगाकर जो वृक्ष दैविकहैं और जो पार्थिवहैं तुम्हारी प्रसन्नतासे उनकी यहां समीपता होवै ॥ २० ॥ श्रीभगवान् शिवजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! जो पुरुष इस लिंगमें जलसे भी पूजन करैगा उसको सब पूजन का फल

कह्लारैःपूजयेद्दैययथाविधि ॥ एतानिद्विजशार्दूल येचान्येचसुगन्धिनः ॥ १७ ॥ एतैर्हिपूजितेनित्यं शीघ्रन्तुष्टिंततोग तः ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव यदिदेयोवरोमम ॥ १८ ॥ इहागत्यनरःस्नात्वा योजलेनापिसिञ्चयेत् ॥ लिङ्गमेतद्धिसर्वासां पूजानांफलमाप्नुयात् ॥ १९ ॥ अद्यप्रभृतियेवृक्षा दैविकाःपार्थिवाश्चये ॥ तेषांसान्निध्यमत्रास्तु प्रसादात्तवशङ्कर ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सलिलेनापियःपूजामस्मिँल्लिङ्गेविधास्यति ॥ तस्यपूजाफलंसर्वं भविष्यतिद्विजोत्तम ॥ २१ ॥ वृक्षाणामत्रसान्निध्यं सर्वेषांचभविष्यति ॥ अद्यप्रभृतिनाम्नैतन्नागस्थानंभविष्यति ॥ २२ ॥ यतस्तु सर्वनागानांसान्निध्यमत्रसंस्थितम् ॥ त्वमपिद्विजशार्दूल प्रयास्यसिममान्तिकम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वातुभगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ मङ्किस्तुदेहमुत्सृज्य शिवलोकंततोगतः ॥ २४ ॥ इत्येवंकथितंदेवि मङ्कीशोद्भवमुत्तमम् ॥ श्रुतंहरति पापानि सम्यक्श्रद्धासमन्वितैः ॥ २५ ॥ इति श्रीमङ्कीश्वरमाहात्म्यंनामसप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥

होगा ॥ २१ ॥ व सब वृक्षोंकी यहां समीपता होगी व आजसे लगाकर नाम से यह नागस्थान होवैगा ॥ २२ ॥ क्योंकि यहां सब नागोंकी समीपता है व हे द्विजोत्तम ! तुमभी मेरे समीप प्राप्तहोवोगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये तदनन्तर मंकी शरीरको छोड़कर शिवलोकको प्राप्तहुये ॥ २४ ॥ हे देवि ! मंकीश से उपजाहुआ यह उत्तम माहात्म्य कहागया भलीभांति श्रद्धासंयुत पुरुषों से सुनाहुआ यह पातकों को हरता है ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमङ्कीश्वरमाहात्म्यनामसप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९७ ॥ ❂ ॥ ❂ ॥

दो० । सरस्वती अरु नीरनिधि संगमकर परभाव । इकसौ अट्ठानबे महँ सोई चरित सुहाव ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे संसारसमुद्र से पार उतारनेवाले, देवदेवेश, भगवन्! मुझ से सरस्वती के माहात्म्य को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ हे देवेश, शङ्करजी! जहां आयेहुये जितचित्तवाले पुरुषों को पूजाद्वारमें व स्नान, दानमें क्या फल होताहै ॥ २ ॥ और यहां स्नानसेभी क्या फल होताहै और श्राद्धकी क्या विधिहै व कौन मन्त्रहैं और उसमें कौन ब्राह्मण होते हैं ॥ ३ ॥ और श्राद्धकर्म में ब्राह्मणों को क्या ग्रहण करना चाहिये व क्या भोजन करना चाहिये और यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको कौन दान देना चाहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि! सुनिये

श्रीदेव्युवाच ॥ भगवन्देवदेवेश संसारार्णवतारक ॥ सरस्वत्याश्रमाहात्म्यं विस्तरात्कथयस्वमे ॥ १ ॥ यत्रागतानां देवेश पुरुषाणांजितात्मनाम्॥पूजाद्वारेतुकिम्पुण्यं स्नानेदानेतुशङ्कर ॥ २ ॥ अवगाहेनचाप्यत्र फलंकिन्तुप्रजायते ॥ श्राद्धस्यकिंविधानन्तु केमन्त्रास्तत्रकेद्विजाः ॥ ३ ॥ किंग्राह्यंकिंचभोक्तव्यं ब्राह्मणैःश्राद्धकर्मणि ॥ कानिदानानिदेयानि नृभिर्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि दानश्राद्धविधिक्रमम् ॥ सरस्वत्याश्रमाहात्म्यं कीर्त्यमानंनिबोधमे ॥ ५ ॥ पुण्यंसारस्वतंतोयं यत्रतत्रावगाह्यते ॥ सागरेणतुसंमिश्रं देवानामपिदुर्लभम् ॥ ६ ॥ सरस्वतीसर्वनदीषुपुण्या सरस्वतीलोकसुखावहासदा ॥ सारस्वतींप्राप्यदिवंगतानराः सदानशोचन्तिपरत्रचेहच ॥ ७ ॥ पुण्यंसारस्वतंतोयं पुण्यकृल्लभतेनरः ॥ दुर्लभंत्रिषुलोकेषु वैशाख्यांसोमपर्वणि ॥ ८ ॥ अमासोमेनसंयुक्ता यदितत्रैव लभ्यते ॥ तत्रकिंक्रियतेदेवि पर्वकोटिशतैरपि ॥ ९ ॥ चान्द्रायणानिकृच्छ्राणि महासान्तपनानिच ॥ प्रायश्चित्तानि

मैं दान व श्राद्धकी विधिके क्रमको कहताहूं और कहेजाते हुये सरस्वती के माहात्म्यको मुझसे सुनिये ॥ ५ ॥ कि सरस्वतीजीका पवित्र जल जहांतहां स्नान किया जाताहै और समुद्र मे मिलाहुआ जल देवताओंको भी दुर्लभहै ॥ ६ ॥ सब नदियों में सरस्वती पुण्यदायिनी है और सरस्वती सदैव लोकोंके सुखको देनेवाली है व सरस्वती को प्राप्तहोकर स्वर्गमें गयेहुये मनुष्य सदैव इस लोक व परलोक में नहीं शोचते हैं ॥ ७ ॥ सरस्वतीजी के पवित्र जल को पुण्यकारी मनुष्य पाता है और वैशाखी पौर्णमासीमें चन्द्रग्रहण होनेपर वह तीनोंलोको में दुर्लभ है ॥ ८ ॥ हे देवि! सोमवार से संयुत अमावस यदि वहीं मिले तो वहा करोड़ों सौपर्वों से क्या किया

जावै ॥ ६ ॥ क्योंकि कृच्छ्र चान्द्रायण व महासांतपन प्रायश्चित्त वहां दियेजाते हैं जहां सरस्वती नहीं है ॥ १० ॥ जबतक मनुष्य का अस्थि सरस्वतीजी के जलमें स्थित रहता है उतने हज़ार वर्षोंतक वह शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ११ ॥ वे जन्मान्ध व पंगु प्राणियोंके समान जानने योग्य हैं जो कि समर्थ होकर प्रभासमें स्थित सरस्वतीजी को नहीं देखते हैं ॥ १२ ॥ वे देश और वे तीर्थ तथा वे आश्रम और वे पर्वत हैं कि जिनके मध्यमें उत्तमनदी सरस्वती देवी जाती हैं ॥ १३ ॥ जो मनुष्य त्रिलोक को पवित्र करनेवाली व पुण्यरूपिणी सरस्वतीजी के भलीभांति आश्रित हैं वे फिर संसाररूपी कीचड़के सुगन्धको नहीं सूंघते हैं॥१४॥ शब्दविद्याकी नाईं विस्तीर्ण

दीयन्ते यत्रनास्तिसरस्वती ॥ १० ॥ यावदस्थिमनुष्यस्यतिष्ठेत्सारस्वतेजले ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोकेमहीयते ॥ ११ ॥ जन्मान्धैस्तेसमाज्ञेया भूतैःपङ्गुभिरेवच ॥ समर्थायेनपश्यन्ति प्रभासस्थांसरस्वतीम् ॥ १२ ॥ तेदेशास्तानितीर्थानि आश्रमास्तेचपर्वताः॥येषांसरस्वतीदेवी मध्येयातिसरिद्वरा ॥ १३ ॥ त्रैलोक्यपावनींपुण्यां संश्रितायेसरस्वतीम् ॥ संसारकर्दमामोदमाजिघ्रन्तिनतेपुनः ॥ १४ ॥ शब्दविद्येवविस्तीर्णा मातेवजगतःप्रिया ॥ सताम्मतिरिवस्वच्छा रमणीयासरस्वती ॥ १५ ॥ त्रैलोक्यशोभितांदेवीं दिव्यतोयांसुनिर्मलाम् ॥ सचेतनःपुमान्कोत्र नविन्देतसरस्वतीम् ॥ १६ ॥ स्वर्गनिःश्रेणिसम्भूता प्रभासेतुसरस्वती ॥ दर्शनेनसरस्वत्या राजसूयफलंलभेत् ॥ १७ ॥ प्रत्यूषस्याश्वमेधस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ मांसास्थिचर्मलोमानि नखकेशादिकानिच ॥ १८ ॥ बलैरपिहतान्येव स्थितिंसारस्वतेजले ॥ बध्नन्तियदिकालेते नकालवशगानराः ॥ १९ ॥ देविकिंबहुनोक्तेन वर्णितेनपुनःपुनः ॥ सरस्वत्याःपरंतीर्थं नभूतंनभ

व संसारकी माताकीनाईं प्यारी और सत्पुरुषोंकी बुद्धिकीनाईं निर्मल व रमणीय सरस्वती हैं ॥१५॥ त्रिलोकमें शोभित व दिव्यजलवाली निर्मल सरस्वतीजीको इस संसार में कौन सचेतन पुरुष नहीं प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ प्रभासक्षेत्र में सरस्वती स्वर्गकी सोपानभूत है सरस्वतीजी के दर्शनसे मनुष्य राजसूययज्ञके फलको पाता है ॥ १७ ॥ और प्रत्यूष अश्वमेधयज्ञके फलको, मनुष्य प्राप्तहोताहै और बालकोंसेभी नष्ट किये हुये मांस, अस्थि, चर्म, रोम, नख व केशादिक यदि सरस्वतीजी के जलमें स्थिति को बांधते हैं तो वे मनुष्य समयमें कालके वश नहीं प्राप्त होते हैं ॥ १८ । १९ ॥ हे देवि ! बहुत कहने व बारबार वर्णन करनेसे क्या है सरस्वती से उत्तमतीर्थ न हुआ

है न होवैगा ॥ २० ॥ जहां पर सागर का समागम हुआ है वहांही दुर्लभ स्थान है वहांपर स्नान व दान करने से मनुष्य करोड़ तीर्थों का फल पाता है ॥ २१ ॥ जहां सरस्वतीजी का जल समुद्र के मध्यकी लहरियों से संयुक्तहै उसमें जो मनुष्य स्नानकरैंगे वे युग युगमें ऐश्वर्यवान् होवैंगे ॥ २२ ॥ वे धन्य हैं और वे मुनि हैं व उनका बहुत अधिक यश होताहै कि जिन मनुष्योंका शरीर सरस्वतीजी के जलों से सींचागया है ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसरस्वतीसागरमाहात्म्यंनामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

विष्यति ॥ २० ॥ तत्रैवदुर्लभंस्थानं यत्रसागरसङ्गमः ॥ तत्रस्नानेनदानेन कोटितीर्थफलंलभेत् ॥ २१ ॥ यत्रसारस्वतं तोयं सागरान्तोर्मिसङ्कुलम् ॥ तत्रस्नास्यन्तियेमर्त्या भगवन्तोयुगेयुगे ॥ २२ ॥ तेधन्यास्तेचमुनयस्तेषांस्फीततरंयशः ॥ येषांकलेवरंनॄणां सिक्तंसारस्वतैर्जलैः ॥ २३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसरस्वतीसागरमाहात्म्यंनामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीदेव्युवाच ॥ भगवन्देवदेवेश संसारार्णवतारक ॥ ब्रूहिश्राद्धविधिंपुण्यं विस्तराज्जगतीतले ॥ १ ॥ कस्मिन्वासरभागेतु श्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत् ॥ अस्मिन्सरस्वतीतीर्थे प्रभासेक्षेत्रमुत्तमे ॥ २ ॥ तीर्थेषुकेषुचकृतं श्राद्धंबहुफलंभवेत् ॥ एतत्सर्वंचवृत्तान्तं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ ईश्वरउवाच ॥ प्रातःकालोमुहूर्तांस्त्रीन्सङ्गवस्तावदेवतु ॥ मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तःस्यादपराह्णस्ततःपरम् ॥ ४ ॥ सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तःस्याच्छ्राद्धंतत्रनकारयेत् ॥ राक्षसीनामसावेला गर्हितासर्वकर्म

दो० । पूछ्यो शिवसन उमा जिमि उत्तम श्राद्ध विधान । इकसौ निन्नानबे महँ सोई कीन बखान ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे संसारसमुद्र से पार उतारनेवाले, देव-भगवन् ! पृथ्वी में श्राद्धकी विधिको विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ कि दिनके किस भाग में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य श्राद्ध करै और इस सरस्वतीतीर्थ में व उत्तम ॥ २ ॥ और किन तीर्थों में कियाहुआ श्राद्ध बहुत फलदायक होताहै इस सब वृत्तान्तको तुम यथायोग्य कहनेकेयोग्यहो ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि तीन ल और उतनाही संगव होताहै और तीन मुहूर्त मध्याह्न व उसके उपरान्त अपराह्ण होता है ॥ ४ ॥ और तीन मुहूर्त सायाह्न होताहै उसमें श्राद्ध न करै

क्योंकि राक्षसी नामक वह वेला सब कार्योंमें निन्दित है ॥ ५ ॥ सदैव दिनके पन्द्रह मुहूर्त प्रसिद्धहैं उनमें जो आठवां मुहूर्त है वह कुतुपसमय कहागयाहै ॥ ६ ॥ जिस लिये सदैव मध्याह्न में सूर्यनारायण मन्द होते हैं इस कारण उसमें आरम्भ अनन्तफलदायक होताहै ॥ ७ ॥ हे प्रिये ! मध्याह्नसमय व गैंड़का पात्र व गऊका घृत, चांदी, कुश, तिल, गऊ और आठवां नाती कहागयाहै ॥ ८ ॥ विद्वान् लोग पापको कुत्सित ऐसा कहतेहैं और उसके सन्तापकारी आठही मानेगयेहैं इसलिये ये कुतुप ऐसे प्रसिद्धहैं ॥ ९ ॥ कुतुप मुहूर्तके उपरान्त जो चार मुहूर्तहैं ये पाच मुहूर्त्त स्वधाभवन कहेजाते हैं ॥ १० ॥ श्राद्धकी रक्षाके लिये विष्णुजीके शरीरसे कुश व काले

सु ॥ ५ ॥ अह्नोमुहूर्ताविख्याता दशपञ्चचसर्वदा ॥ तत्राष्टमोमुहूर्त्तोयः सकालःकुतुपःस्मृतः ॥ ६ ॥ मध्याह्नेसर्वदाय स्मान्मन्दीभवतिभास्करः॥ तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भोभविष्यति ॥७॥ मध्याह्नःखड्गपात्रन्तु तथागव्यंघृतम्प्रिये ॥ रौप्यंदर्भास्तिलागावो दौहित्रश्चाष्टमःस्मृतः ॥ ८ ॥ पापंकुत्सितमित्याहुस्तस्यसन्तापकारिणः॥ अष्टावेवमतास्तस्मात्कुतुपाइतिविश्रुताः ॥ ९ ॥ ऊर्ध्वंमुहूर्तात्कुतुपाद्यन्मुहूर्त्तचतुष्टयम् ॥ मुहूर्त्तपञ्चकञ्चैव स्वधाभवनमिष्यते ॥ १० ॥ विष्णोर्देहात्समुद्भूताः कुशाःकृष्णास्तिलास्तथा ॥ श्राद्धस्यरक्षणार्थाय एवंप्राहुर्दिवौकसः ॥ ११ ॥ तिलोदकाञ्जलिर्देया स्थलस्थैस्तीर्थवासिभिः ॥ सदर्भहस्तेनैकेन स्वधाभवनमिष्यते ॥ १२ ॥ त्रीणिश्राद्धेपवित्राणि दौहित्रंकुतुपस्तिलाः ॥ त्रीणिचात्रप्रशंसन्ति शुचिमक्रोधमत्वरम् ॥ १३ ॥ दौहित्रंखड्गमित्युक्तं ललाटेश्टृङ्गमस्तियत् ॥ तस्यश्टृङ्गस्य यत्पात्रं तद्दौहित्रमितिस्मृतम् ॥ १४ ॥ क्षीरिणीयासवत्सागौस्तत्क्षीराद्यद्घृतम्भवेत् ॥ तद्दौहित्रमितिप्रोक्तं देवेप

तिल पैदाहुयेहैं ऐसा देवताओंने कहाहै ॥ ११ ॥ स्थलमें टिकेहुये तीर्थवासियोंको कुशसमेत एक हाथसे तिलोदककी अञ्जली देनाचाहिये क्योंकि वह स्वधाभवन कहाजाताहै ॥ १२ ॥ श्राद्धमें दौहित्र (नाती) व कुतुप समय और तिलये तीन पवित्र हैं और पवित्रता, क्रोध न करना व शीघ्रता न करना इन तीनोंकी विद्वान् प्रशंसा करतेहैं ॥ १३ ॥ और दौहित्र खड्ग (गैंड़ा) ऐसा कहागयाहै उसके मस्तकमें जो सींग होताहै उस सींगका जो पात्रहै वह दौहित्र ऐसा कहागयाहै ॥ १४ ॥ और जो

बछड़ा समेत दूधवाली गऊ है उसके दूधसे जो घृत होवै वह देवकार्य व पितरकार्य में दौहित्र ऐसा कहागया है ॥ १५ ॥ कुशका अग्रभाग देव ऐसा कहागया है व तिल समेत अग्रभाग पैतृक कहागया है उसमें जो कुश लगे हैं वे कुश कुतुप कहेगये हैं ॥ १६ ॥ शरीर,द्रव्य,स्त्री,पृथ्वी,मन,मन्त्र व ब्राह्मण इन सातोंमें श्राद्धसमय में विशेषकर शुद्धि जानने योग्यहै ॥१७॥ और विद्वानोंमे सात प्रकारकी शरीरकी पवित्रता कहीगई है और धन सातप्रकारका श्वेत होताहै व इसका उपायभी वैसाही है ॥१८॥ कुसीद (सूद) कृषी व वाणिज्य शुक्लधन कहागयाहै और कियेहुये उपकारवाला दान कृष्ण कहागया है ॥ १९ ॥ और जो धन छलसे इकट्ठा कियागया

त्र्येचकर्मणि ॥ १५ ॥ दर्भाग्रंदैवमित्युक्तं सतिलाग्रंतुपैतृकम् ॥ तत्रावलम्बिनोयेतु तेकुशाःकुतुपाःस्मृताः ॥ १६ ॥ शरीरद्रव्यदाराभूमनोमन्त्रद्विजन्मसु ॥ शुद्धिःसप्तसुविज्ञेया श्राद्धकालेविशेषतः ॥ १७ ॥ सप्तधादेहशुद्धिस्तु विद्वद्भिःपरिकीर्तिता ॥ धनंसप्तविधंशुक्लमुपायोप्यस्यतादृशः ॥ १८ ॥ कुसीदंकृषिवाणिज्यं शुक्लंधनमुदाहृतम् ॥ कृतोपकारंदानञ्च शबलंसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥ व्याजेनोपार्जितंयच्च कृष्णंतत्समुदाहृतम् ॥ अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियतेनरैः ॥ २० ॥ तृप्यन्तितेनचाण्डालाः पुष्कसाद्यास्तुयोनिषु ॥ अन्नप्रकिरणंयत्तु मनुष्यैःक्रियतेभुवि ॥ २१ ॥ तेनतृप्तिमुपायान्ति येपिशाचत्वमागताः ॥ यदास्नानस्यवस्त्रेण भूमौपततियज्जलम् ॥ २२ ॥ नीचयोनिषुयेप्राप्तास्तेषांतृप्तिःप्रजायते ॥ यास्तुगन्धाम्बुकणिकाः पतन्तिधरणीतले ॥ २३ ॥ ताभिराप्यायनन्तेषां येदेवत्वमुपागताः ॥ उद्धृतेषुचपिण्डेषु येचान्नकणिकाभुवि ॥ २४ ॥ विपन्नास्तेनविकिराः सम्मार्जनजलाशनाः ॥ भुक्काचाचमनंयच्च तेन

है वह कृष्ण कहागया है व मनुष्य अन्यायसे इकट्ठा कियेहुये धनों से जिस श्राद्धको करते हैं ॥ २० ॥ उससे चाण्डाल व पुष्कसादिक योनियों में प्राप्त पितर तृप्त होते हैं और पृथ्वी में मनुष्य जो अन्न फेंकते हैं ॥ २१ ॥ उससे वे पितर तृप्तिको प्राप्तहोते हैं कि जो पिशाचत्वको प्राप्तहुये हैं और जब स्नान के वस्त्र से जो जल भूमि में गिरता है ॥ २२॥ उससे वे पितर तृप्तिको प्राप्त होते हैं कि जो नीचयोनियोंमें प्राप्त हुये हैं और जो सुगन्धित जलके बूंद पृथ्वी मे गिरते हैं ॥ २३ ॥ उनसे उनकी तृप्ति होती है जोकि देवत्वको प्राप्त हुये हैं और पिण्डोंके उठाने पर जो अन्नके किनुका पृथ्वी में ॥ २४ ॥ गिरते हैं उससे सम्मार्जनके जलको भोजन करने

वाले विकिर तृप्त होते हैं और भोजन करके जो आचमन कियाजाता है उससे पशुयोनियों में प्राप्त पितर तृप्त होते हैं ॥ २५ ॥ इसके उपरान्त श्राद्ध में जो उत्तम कहेगये हैं उन ब्राह्मणों को मैं कहता हूं कि श्रोत्रिय, योगी व वेदज्ञ और ज्येष्ठ सामको गानेवाला उत्तम होताहै ॥ २६ ॥ और त्रिणाचिकेत (अध्वर्यु वेदभागको जानने वाला) व पञ्चाग्नि (अग्निहोत्री) और त्रिसुपर्ण (बह्वृच वेदभागको जाननेवाला) तथा शिक्षादिक छह अंगोंको जाननेवाला और नाती, दामाद व भैने उत्तम है॥ २७ ॥ और पंचाग्निकर्म में निष्ठ व तपस्या में परायण तथा मातुल (मामूं) और मामाका पिता याने नाना और शिष्य, सम्बन्धी व बान्धव ॥ २८॥ व वेदार्थ को

वैपशुयोनिजाः ॥ २५ ॥ अथविप्रान्प्रवक्ष्यामि श्राद्धेयेह्युत्तमाःस्मृताः ॥ विशिष्टःश्रोत्रियोयोगी वेदविज्ज्येष्ठसाम गः ॥ २६ ॥ त्रिणाचिकेतःपञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णःषडङ्गवित् ॥ दौहित्रकश्चजामातास्वस्रीयश्चोत्तमंतथा ॥ २७ ॥ पञ्चाग्निकर्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठोथमातुलः ॥ मातुश्चपितरश्चैव शिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥ २८ ॥ वेदार्थवित्प्रवक्ताच ब्रह्मचारीसहस्रदः ॥ शतायुश्चैवविज्ञेया ब्राह्मणाःपङ्क्तिपावनाः॥२९ ॥ भागिनेयंविशेषेण तथाबन्धुगणानपि ॥ नातिक्रमेन्नरश्चैतान् मूर्खानपिवरानने ॥ ३० ॥ नब्राह्मणम्परीक्षेत देवकर्मण्युपस्थिते ॥ पैत्र्येकर्मणिसंप्राप्ते परीक्षेतप्रयत्नतः ॥ ३१ ॥ येस्तेनाःपतिताःक्लीबा येचनास्तिकवृत्तयः ॥ तान्हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥ ३२ ॥ जटिलंचानधीयानं दुर्बलंकितवंतथा ॥ याजयन्तिचयेशूद्रांस्तांश्चश्राद्धेनभोजयेत् ॥ ३३ ॥ चिकित्सकान्देवलकान् मांसविक्रयि

जाननेवाला व उसको कहनेवाला, ब्रह्मचारी और हज़ार गौवोंको देनेवाला और सौ वर्षकी अवस्थावाला ये ब्राह्मण पंक्तिपावन जानने योग्यहैं ॥ २९ ॥ हे वरानने ! विशेष कर भैने व बन्धुगण इन मूर्खोंको भी विद्वान् न उल्लंघन करै ॥३०॥ देवकर्म प्राप्तहोने पर ब्राह्मणको न परखै और पितर कार्य प्राप्तहोनेपर बड़े यत्नसे परखे ॥३१॥ जो ब्राह्मण चोर व धर्म से भ्रष्ट तथा नपुंसक हैं और जो नास्तिकोंका बर्ताव करतेहैं मनुजी ने उन ब्राह्मणों को हव्य कव्य के अयोग्य कहा है ॥३२॥ और जटाधारी वेदाध्ययनरहित, दुश्चर्मा, जुँवारी और जो शूद्रोंको यज्ञ कराते हैं उन ब्राह्मणों को श्राद्धमें भोजन न करावै ॥ ३३ ॥ और वैद्य व नौकरी से देवताकी प्रतिमाको पूजने

वाले तथा मांसको बेंचनेवाले और जो वाणिज्यसे जीविका करनेवालेहैं वे हव्य व कव्य में वर्जितहैं ॥ ३४ ॥ और ग्राम व राजाका आज्ञाकारी और कुत्सित नखवाला व श्यामदन्त तथा गुरुके प्रतिकूल आचरण करनेवाला और श्रौत स्मार्त अग्निको त्याग करनेवाला व व्याजखोर हव्य कव्यमें वर्जितहै ॥ ३५ ॥ और क्षयरोगी,पशु-पालक व परिवेत्ता और पांच महायज्ञों के अनुष्ठान से रहित और ब्राह्मणों का शत्रु तथा परिवित्ति व गणाभ्यन्तर याने मठआदिके धनसे जीविका करनेवाला ॥ ३६ ॥ और नाचने से जीविका करनेवाला व स्त्रीके संसर्ग से ब्रह्मचर्यको छोड़नेवाला तथा शूद्राका पति व उदरी स्त्रीका पुत्र और काना व जुँवारी और मदिरा पीनेवाला ॥३७॥

णस्तथा ॥ विपणैःपरिजीवन्ते वर्ज्याःस्युर्हव्यकव्ययोः ॥ ३४॥ प्रेष्योग्रामस्यराज्ञश्चकुनखीश्यावदन्तकः ॥ प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्द्धुषिस्तथा ॥ ३५ ॥ यक्ष्मीचपशुपालश्च परिवेत्तानिराकृतिः ॥ ब्रह्मद्विट्परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एवच ॥ ३६ ॥ कुशीलवोवकीर्णीच वृषलीपतिरेवच ॥ पौनर्भवश्चकाणश्च कितवोमद्यपस्तथा ॥ ३७ ॥ पापरोग्यभिश स्तश्च दाम्भिकोरसविक्रयी ॥ धनुःशराणांकर्त्ताच यश्चाग्रेदिधिषूपतिः ॥ ३८ ॥ मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्यस्तथैव च ॥ भ्रामरीगण्डमालीच श्वित्र्यथोपिशुनस्तथा ॥ ३९ ॥ उन्मत्तोन्धश्चवर्ज्याःस्युर्वेदनिन्दकएवच ॥ स्रोतसांभेदको यश्च तेषांचावरणेरतः ॥ ४० ॥ गृहेसंवेशकोदूतो वृक्षारोपकएवच ॥ श्वक्रीडीश्येनजीवीच कन्यादूषकएववा ॥ ४१ ॥

और कुष्ठी, कलंकित,पाखण्डी व रसोंको बेंचनेवाला और जो धनुष व बाणोंको बनानेवालाहै तथा जो अग्रेदिधिषूपति होवै याने जेठी कन्याका ब्याह न होने पर छोटी का ब्याह करनेवाला॥३८॥व मित्रद्रोही और जुँवामे जीविका करनेवाला और पुत्रसे पढ़ायाहुआ पिता व मिर्गीरोगवाला और गण्डमाला रोगवाला तथा श्वेतकुष्ठी और चुगुल ॥ ३९ ॥ व उन्मादी, अन्ध और वेदकी निन्दा करनेवाला ये ब्राह्मण वर्जित करने योग्य हैं व जो सोतोंको तोड़नेवाला और उनका आवरण करनेवाला याने तुमकी गतिको रोकनेवाला ॥ ४० ॥ तथा वास्तुविद्या से जीविका करनेवाला व दूत और नौकरीसे वृक्षोंको लगानेवाला तथा क्रीड़ाके लिये कुत्तोंको जो पालता है

श्लो० ॥ दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुतेयोग्रजेस्थिते ॥ परिवेत्तासविज्ञेयः परिवित्तिस्तुपूर्वजः ॥१॥ अर्थ ॥ जो बड़ेभाई के स्थित होनेपर स्त्री व अग्निहोत्र का संग्रह करता है वह परिवेत्ता जानने योग्य है और जठाभाई परिवित्ति है ॥ १ ॥

सयुत दिनमें श्राद्ध करनाचाहिये और वैशाखकी तीज तिथि में व कातिक की नवमीतिथि में ॥ ६० ॥ और माघकी पौर्णमासी व श्रावण की तेरसि तिथि में श्राद्ध करना चाहिये क्योंकि ये तिथिया युगादि कहीगई हैं और दियें को अक्षय करनेवाली हैं ॥ ६१ ॥ और मन्वन्तर के आदि में जिस माघ महीनेकी सप्तमी तिथिमें सूर्यनारायणजी ने रथको पायाहै वह रथसप्तमी होतीहै ॥ ६२॥ और वैशाख व फागुनके कृष्णपक्षकी तीज तिथि में श्राद्ध करना चाहिये और चैत्र महीने की पञ्चमी व उसीकी अमावस तिथि ॥ ६३ ॥ और माघमें शुक्लपक्षकी तेरसि व कातिककी सप्तमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी अष्टमी व आषाढी पौर्णमासी ॥ ६४॥ और कातिकी

यां नवम्यांकार्त्तिकस्यच ॥ ६० ॥ पञ्चदश्यान्तुमाघस्य नभस्येवत्रयोदशीम् ॥ युगादयःस्मृताह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ६१ ॥ यस्यमन्वन्तरस्यादौ रथमापदिवाकरः ॥ माघमासस्यसप्तम्यां सातुस्याद्रथसप्तमी ॥ ६२ ॥ वैशाखस्यतृतीयायां कृष्णायांफाल्गुनस्यच ॥ पञ्चमीचैत्रमासस्यतस्यैवान्यातथापरा ॥ ६३ ॥ शुक्लात्रयोदशीमाघे कार्त्तिकस्यचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ॥ ६४ ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठीपञ्चदशीतिच ॥ मन्वादयःस्मृताश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ६५ ॥ कार्यंमन्वन्तरस्यादौ द्वादशैववरानने ॥ नित्यंनैमित्तिकंकाम्यं वृद्धिश्राद्धंसपिण्डकम् ॥ ६६ ॥ पार्वणंचेतिविज्ञेयं गोष्ठशुद्ध्यर्थमुत्तमम् ॥ कर्माङ्गंनवमंप्रोक्तं दैविकंदशमंस्मृतम् ॥ ६७॥ एकादशंक्षयाहन्तु तुष्ट्यर्थंद्वादशंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवश्राद्धानांश्रेष्ठंसांवत्सरंस्मृतम् ॥ ६८ ॥ अहन्यहनियच्छ्राद्धं नित्यंतत्परिकीर्तितम् ॥ एकोद्दिष्टन्तुयच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ॥ ६९ ॥ येसमानाइतिद्वाभ्यामेतच्छ्राद्धंसपिण्डन

फागुनी, चैती और जेठी पौर्णमासी ये मन्वादिक तिथिया दियेहुये को अक्षय करनेवाली कहीगई हैं ॥ ६५ ॥ व हे वरानने ! मन्वन्तरकी आदितिथि में बारह श्राद्ध करनाचाहिये नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध व सपिण्डक श्राद्ध ॥ ६६ ॥ और पार्वण ऐसा श्राद्ध जानने योग्य है व उत्तम गोष्ठ श्राद्ध तथा शुद्धिके लिये श्राद्ध और नवाँ कर्मांग जानने योग्य है व दशम दैविक कहागयाहै ॥ ६७॥ और गेरहवा क्षयाह व बारहवां तुष्टि के लिये कहागया है सब श्राद्धोंके मध्य में सांवत्सर श्राद्ध श्रेष्ठ कहागया है ॥६८॥ जो प्रतिदिन श्राद्ध कियाजाता है वह नित्य श्राद्ध कहागया है और जो एकोद्दिष्ट श्राद्ध है वह नैमित्तिक कहाजाता है ॥ ६९ ॥ और ये समाना

वे कुलटा कहीगई हैं और बिन व्याही हुई जो कन्या पिताके घरमें रजको देखतीहै ॥ ५१ ॥ उसके पितर नरक में पड़ते हैं और वह कन्या वृषली होती है व जो पुरुष ज्ञानपूर्वक उस कन्या का व्याह करता है ॥ ५२ ॥ उसको श्राद्धके अयोग्य व अपांक्तेय वृषलीपति जानै गौरी कन्या मुख्य है और कन्या मध्यम मानी गई है ॥ ५३ ॥ व रोहिणी उसीके समान जानने योग्यहै और रजस्वला अधम कन्याहै और रजोधर्मको नहीं प्राप्त कन्या गौरी है व रज प्राप्तहोने पर रोहिणी है ॥ ५४ ॥ और अव्यञ्जनसे कीहुई याने स्त्रियोंके चिह्नसे रहित कन्या है व स्तनोंसे हीन नग्निका होतीहै और सात वर्षकी गौरी व दशवर्ष की नग्निका होती है ॥ ५५ ॥ और

त्यसंस्कृता ॥ ५१ ॥ पतन्तिपितरस्तस्याः कन्यासावृषलीभवेत् ॥ यस्तुतांवरयेत्कन्यां ब्राह्मणोज्ञानपूर्वतः ॥ ५२ ॥ अश्राद्धेयमपाङ्क्तेयं तंविद्याद्वृषलीपतिम् ॥ गौरीकन्याप्रधानावै मध्यमाकन्यकामता ॥ ५३ ॥ रोहिणीतत्समाज्ञेया अधमाचरजस्वला ॥ अप्राप्तरजसागौरी प्राप्तेरजसिरोहिणी ॥ ५४ ॥ अव्यञ्जनकृताकन्या कुचहीनातुनग्निका ॥ सप्तवर्षाभवेद्गौरी दशवर्षातुनग्निका ॥ ५५ ॥ द्वादशेतुभवेत्कन्या अतऊर्ध्वंरजस्वला ॥ उद्वाहयेद्रजोयुक्तां सभवेद्वृषलीपतिः ॥ ५६ ॥ अथकालान्प्रवक्ष्यामि कथ्यमानान्निबोधमे ॥ श्राद्धंकार्यममायांवै मासिमासीन्दुसंक्षये ॥ ५७ ॥ तथाष्टकासुविप्राद्यैः सूर्येन्दुग्रहणेतथा ॥ अयनेविषुवेचैव सामान्येचार्कसंक्रमे ॥ ५८ ॥ अमावस्याष्टकायाञ्च कृष्णपक्षेविशेषतः ॥ आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे ॥ ५९ ॥ गजच्छायाव्यतीपाते विष्टिवैधृतिवासरे ॥ वैशाखस्यतृतीया

बारह वर्ष में कन्या होतीहै व इसके उपरान्त रजस्वला होती है और रजोधर्म से संयुत कन्या को जो व्याहता है वह वृषलीपति होताहै ॥ ५६ ॥ इसके उपरान्त मैं श्राद्धके समयों को कहताहूं कहतेहुये उनको मुझसे सुनिये कि महीने महीने में चन्द्रक्षय होनेपर अमावस तिथि में श्राद्ध करना चाहिये ॥ ५७ ॥ और अष्टका तिथियोंमें व सूर्य, चन्द्रमा के ग्रहण में तथा विषुव अयन व सामान्य सूर्यकी संक्रांतिमें ब्राह्मणादिकों को श्राद्ध करना चाहिये ॥ ५८ ॥ और अमावस व अष्टका तिथि में तथा विशेषकर कृष्णपक्षमें और आर्द्रा, मघा, रोहिणी में व श्राद्धकी वस्तु व ब्राह्मणों के संयोग में ॥ ५९ ॥ व गजच्छाया तथा व्यतीपात व भद्रा और वैधृति

संयुत दिनमें श्राद्ध करनाचाहिये और वैशाखकी तीज तिथि में व कातिक की नवमीतिथि में ॥ ६० ॥ और माघकी पौर्णमासी व श्रावण की तेरसि तिथि में श्राद्ध करना चाहिये क्योंकि ये तिथियां युगादि कहीगई हैं और दिये को अक्षय करनेवाली हैं ॥ ६१ ॥ और मन्वन्तर के आदि में जिस माघ महीनेकी सप्तमी तिथिमें सूर्यनारायणजी ने रथको पायाहै वह रथसप्तमी होतीहै ॥ ६२॥ और वैशाख व फागुनके कृष्णपक्षकी तीज तिथि में श्राद्ध करना चाहिये और चैत्र महीने की पञ्चमी न उसीकी अमावस तिथि ॥ ६३ ॥ और माघमें शुक्लपक्षकी तेरसि व कातिककी सप्तमी और श्रावणके कृष्णपक्षकी अष्टमी व आषाढी पौर्णमासी ॥ ६४॥ और कातिकी

यां नवम्यांकार्त्तिकस्यच ॥ ६० ॥ पञ्चदश्यान्तुमाघस्य नभस्येवत्रयोदशीम् ॥ युगादयःस्मृताह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ६१ ॥ यस्यमन्वन्तरस्यादौ रथमापदिवाकरः ॥ माघमासस्यसप्तम्यां सातुस्याद्रथसप्तमी ॥ ६२ ॥ वैशाखस्यतृतीयायां कृष्णायांफाल्गुनस्यच ॥ पञ्चमीचैत्रमासस्यतस्यैवान्यातथापरा ॥ ६३ ॥ शुक्लात्रयोदशीमाघे कार्त्तिकस्यचसप्तमी ॥ श्रावणस्याष्टमीकृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ॥ ६४ ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैत्री ज्येष्ठीपञ्चदशीतिच ॥ मन्वादयःस्मृताश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ॥ ६५ ॥ कार्यमन्वन्तरस्यादौ द्वादशैववरानने ॥ नित्यंनैमित्तिकंकाम्यं वृद्धिश्राद्धंसपिण्डकम् ॥ ६६ ॥ पार्वणंचेतिविज्ञेयं गोष्ठशुद्ध्यर्थमुत्तमम् ॥ कर्माङ्गंनवमंप्रोक्तं दैविकंदशमंस्मृतम् ॥ ६७॥ एकादशंक्षयाहन्तु तुष्ट्यर्थंद्वादशंस्मृतम् ॥ सर्वेषामेवश्राद्धानांश्रेष्ठंसांवत्सरंस्मृतम् ॥ ६८ ॥ अहन्यहनियच्छ्राद्धं नित्यंतत्परिकीर्तितम् ॥ एकोद्दिष्टन्तुयच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते ॥ ६९ ॥ येसमानाइतिद्वाभ्यामेतच्छ्राद्धंसपिण्डन

फागुनी, चैती और जेठी पौर्णमासी ये मन्वादिक तिथियां दियेहुये को अक्षय करनेवाली कहीगई हैं ॥ ६५ ॥ व हे वरानने ! मन्वन्तरकी आदितिथि में बारह श्राद्ध करनाचाहिये नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिश्राद्ध व सपिण्डक श्राद्ध ॥ ६६ ॥ और पार्वण ऐसा श्राद्ध जानने योग्य है व उत्तम गोष्ठ श्राद्ध तथा शुद्धिके लिये श्राद्ध और नवाँ कर्मांग जानने योग्य है व दशम दैविक कहागयाहै ॥ ६७॥ और गेरहवां क्षयाह व बारहवां तुष्टि के लिये कहागया है सब श्राद्धोंके मध्य में सांवत्सर श्राद्ध श्रेष्ठ कहागया है ॥६८॥ जो प्रतिदिन श्राद्ध कियाजाता है वह नित्य श्राद्ध कहागया है और जो एकोद्दिष्ट श्राद्ध है वह नैमित्तिक कहाजाता है ॥ ६९ ॥ और ये समाना

इन दो ऋचाओंसे यह, सपिण्ड श्राद्ध कहाजाता है ॥ ७० ॥ और अमावस में जो श्राद्ध कियाजाता है वह पार्वण कहागया है और गोशाला मे जो श्राद्ध कियाजाता है वह गोष्ठश्राद्ध कहाजाता है ॥ ७१ ॥ और जो शुद्धिके लिये कियाजाता है वह शुद्धिश्राद्ध कहाजाताहै और निषेक समय याने गर्भाधान में व यज्ञमें तथा सीमंतोन्नयन कार्य में ॥ ७२ ॥ और पुंसवन में कर्मांग श्राद्ध कियाजाता है और जो श्राद्ध देवताको उद्देश कर कियाजाता है वह दैविकश्राद्ध कहाजाताहै ॥ ७३ ॥ और जो अन्य देशको जावै उसको घृत से श्राद्ध करना चाहिये इसको तुष्टिके लिये जानना चाहिये और बारहवा क्षयाहश्राद्ध कहागया है ॥ ७४ ॥ हे वरारोहे ! वर्षभरके

म् ॥७०॥ अमावस्यान्तुयच्छ्राद्धं तत्पार्वणमुदाहृतम् ॥ गोष्ठेयत्क्रियतेश्राद्धं तद्गोष्ठश्राद्धमुच्यते ॥७१॥ क्रियतेयच्चशुद्ध्यर्थं शुद्धिश्राद्धन्तदुच्यते ॥ निषेककालेयज्ञेच सीमन्तोन्नयनेतथा ॥ ७२ ॥ तथापुंसवनेचैव श्राद्धंकर्माङ्गमेवच ॥ देवमुद्दिश्यक्रियते यत्तद्दैविकमुच्यते ॥ ७३ ॥ गच्छेद्देशान्तरंयस्तु श्राद्धंकार्यन्तुसर्पिषा॥ तुष्ट्यर्थमेतद्विज्ञेयं क्षयाहंद्वादशंस्मृतम् ॥ ७४ ॥ मृतेहनिपितुर्यस्तु नकुर्याच्छ्राद्धमादरात् ॥ मातुश्चैववरारोहे वत्सरान्तेमृतेऽहनि ॥७५ ॥ नाहंतस्य महादेवि पूजांगृह्णामिनोहरिः ॥ मृताहंयोनजानाति मानवोयदिवाक्वचित् ॥ ७६ ॥ तेनकार्यममावस्यां श्राद्धंमाघेथ मार्गके ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेश्राद्धकल्पमाहात्म्यंनामनवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १९९ ॥

शिवउवाच ॥ श्राद्धस्यचविधिंवक्ष्ये पार्वणस्यविधानतः ॥ यथाक्रमंमहादेवि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ १ ॥ कृत्वाप

अन्तमें जो मनुष्य पिताके क्षयाहमें और माताके क्षयाहमें आदरसे श्राद्धको नहीं करता है ॥ ७५ ॥ हे महादेवि ! उसके पूजनको न मैं ग्रहण करताहूं और न विष्णुजी ग्रहण करते हैं और जो मनुष्य कहीं मृताह को न जानता होवै॥ ७६ ॥ उसकोमाघ व अगहनमें अमावसको श्राद्ध करना चाहिये ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कह्यो उमा सन शिव यथा श्राद्ध कथा करि हेत । दो सौ में सोई कह्यो अतिही हर्ष समेत ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! इसके अनन्तर मैं क्रमपू-

पूर्वक विधि से पार्वणश्राद्धकी विधिको कहताहूं हे प्रिये ! उसको सावधान मनवाली होकर सुनियें ॥ १ ॥ कि पहले पूर्वाह्णसमय में अपसव्य कर पितरोंका निमन्त्रण करै कि आप लोगोंको पितरोंका कार्य सिद्ध करना चाहिये और तुमलोग प्रसन्न होवो ॥ २ ॥ और अपनी जातिवाले विश्वस्त ब्राह्मणों को निमन्त्रणके लिये पठावै व न्योतेहुये क्षत्रियादिकों से ब्राह्मणका अन्न अभोज्य है ॥ ३ ॥ औरवैसेही न्योतेहुये शूद्रादिकों से ब्राह्मण का अन्न अभोज्य है ॥ ४ ॥ ये दोनों अभोजनीय अन्नवाले हैं व इनके अन्नको भोजनकर चान्द्रायण व्रतकरै और जो ब्राह्मण उपनिक्षेपके धर्मसे शूद्रके अन्नको पकावै ॥ ५ ॥ वह अन्न अभोज्य होताहै और वह ब्राह्मण पुरो-

सव्यंपूर्वेद्युः पितॄन्पूर्वंनिमन्त्रयेत ॥ भवद्भिःपितृकार्यन्तु सम्पाद्यञ्चप्रसीदत ॥ २ ॥ सवर्णान्प्रेषयेदाप्तान् द्विजानुपनिमन्त्रिणे ॥ अभोज्यंब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियाद्यैर्निमन्त्रितैः॥ ३ ॥ तथैवब्राह्मणस्यान्नं शूद्राद्यैश्चनिमन्त्रितैः ॥ ४ ॥ उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वाचान्द्रायणंचरेत ॥ उपनिक्षेपधर्मेण शूद्रान्नंयःपचेद्द्विजः ॥ ५ ॥ भोज्यंतद्भवेदन्नं सचविप्रःपुरोहितः ॥ शूद्रान्नंशूद्रसम्पर्कः शूद्रेणाचसहासनम् ॥ ६ ॥ शूद्रासनगतंचान्नं ज्वलन्तमपिपातयेत् ॥ शूद्रान्नोपहताविप्राविह्वलारतिलालसाः ॥ ७ ॥ कुपिताःकिङ्करिष्यन्ति निर्विषाइवपन्नगाः ॥ नग्नःस्यान्मलवद्वासा नग्नःकौपीनवस्त्रकः ॥ ८ ॥ नग्नःकषायवस्त्रःस्यान्नग्नश्चाविजयःस्मृतः ॥ अच्छिन्नाग्रन्तुयद्वस्त्रं मृदाप्रक्षालितंतुयत् ॥ ९ ॥ आहतंवसनंयच्च तत्पवित्रमितिस्मृतम् ॥ अग्रतोवसतेमूर्खोदूरेचास्यगुणान्वितः ॥ १० ॥ गुणान्वितेचदातव्यंनास्तिमूर्खेव्यतिक्रमः ॥

हित होताहै शूद्रका अन्न व शूद्रका मेल तथा शूद्रके साथ बैठना ॥ ६ ॥ और शूद्रके आसन पै प्राप्त अन्न जलते हुये भी ब्राह्मणको पातित करता है शूद्रके अन्नसे नष्ट व विह्वल तथा मैथुनकी बहुत इच्छावाले ब्राह्मण ॥ ७ ॥ क्रोधित होकर विषरहित सांपोंकी नाईं क्या करैंगे और मलिन वस्त्रोंको पहननेवाला नग्न होता है व कौपीन वस्त्रको पहनेहुये नग्न है ॥ ८ ॥ और गेरुहा वस्त्रको पहननेवाला नग्न होताहै व जप न करनेवाला पुरुष नग्नहै और जिसका अग्रभाग न कटा होवै व जो मिट्टी से धोया गया वस्त्र है ॥ ९ ॥ और जो बिन फटा वस्त्र है वह पवित्र कहागया है आगे मूर्ख बसताहो और गुणसंयुत इसके दूर होवै ॥ १० ॥ तो गुणसंयुत

ब्राह्मणके लिये श्राद्ध देना चाहिये क्योंकि मूर्खमें उल्लंघन नहीं होताहै और पतित के सिवाय समीपवाले ब्राह्मणको उल्लंघन कर ॥ ११ ॥ दूर में स्थित गुणवान् ब्राह्मणको जो मूर्ख पूजताहै वह नरकको जाताहै और वेदविद्या व व्रतमें अभ्यास करनेवाले वेदपात्रको गृहमें आनेपर ॥ १२ ॥ विधिसे पूजकर मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्तहोताहै और दोनों सन्ध्याओं के जपमें व भोजन, दन्तधावन ॥ १३ ॥ और पितरकार्य व देवकार्य तथा मल, मूत्र करने में और गुरुसमेत बैठनेमें व विशेषकर यज्ञमें ॥ १४ ॥ इन कार्योंमें मौनपूर्वक स्थितहोताहुआ मनुष्य स्वर्गको प्राप्त होताहै और यदि जपादिकोंमें किसीप्रकार मौनका लोप होवै ॥ १५ ॥ तो दान, स्नान, होम, भोजन व देव-

यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणंपतिताहते ॥ ११ ॥ दूरस्थम्पूजयेन्मूढो गुणाढ्यंनरकंव्रजेत् ॥ वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते ॥ १२ ॥ पूजयित्वाविधानेन पुमान्यातिपरांगतिम् ॥ सन्ध्ययोरुभयोर्जाप्ये भोजनेदन्तधावने ॥ १३ ॥ पितृकार्येचदैवेच तथामूत्रपुरीषयोः ॥ गुरुणासन्निधानेच यागेचैवविशेषतः ॥ १४ ॥ एतेषुमौनमातिष्ठन् स्वर्गंप्राप्नोति मानवः ॥ यदिवाग्यमलोपःस्याज्जपादिषुकथञ्चन ॥ १५ ॥ व्याहरेद्वैष्णवंमन्त्रं स्मरेद्वाविष्णुमव्ययम् ॥ दानेस्नानेचहोमेच भोजनेदेवतार्चने ॥ १६ ॥ देवानांऋजवोदर्भाः पितॄणांद्विगुणास्तथा ॥ उदङ्मुखस्तुदेवानां पितॄणांदक्षिणामुखः ॥ १७ ॥ अग्निनाभस्मनावापि यवेनाप्युदकेनवा ॥ द्वारसंक्रमणेनापि पङ्क्तिदोषोनविद्यते ॥ १८ ॥ इष्टःश्राद्धेक्रतुदक्षः सत्योनान्दीमुखोवसुः ॥ नैमित्तिकेकालकामौ काम्येचध्वनिरोचनौ ॥ १९ ॥ पुरूरवोमाद्रवश्च पार्वणेसमुदाहृतः ॥ पालाशेब्रह्मवर्चस्वमश्वत्थेराजमान्यकः ॥ सर्वभूताधिपत्यञ्च प्लक्षेनित्यमुदाहृतम् ॥ २० ॥ पुष्टिंप्रजांचन्यग्रोधे

पूजनमें विष्णुजीके मन्त्रका उच्चारणकरै व अविनाशी विष्णुजीको स्मरणकरै ॥ १६ ॥ देवताओंके कुश सीधे व पितरों के द्विगुण होते हैं और देवताओं का कार्य उत्तरमुख व पितरोंका कार्य दक्षिणमुख होकर करना चाहिये ॥ १७ ॥ और अग्नि, भस्म, यव व जलसे और द्वारके उल्लंघनसे भी पंक्तिका दोष नहीं होताहै ॥ १८ ॥ श्राद्धमें क्रतु व दक्ष विश्वेदेवा पूजित होते हैं और नांदीमुखमें सत्य, वसु व नैमित्तिक श्राद्धमें काल, काम और काम्य श्राद्धमें ध्वनि व रोचन ॥ १९ ॥ और पार्वणश्राद्धमें पुरूरव व माद्रवस कहेगये हैं व पलाश पात्रमें ब्रह्मतेज व पीपल में राजमान्य होताहै और पकरिया में सदैव सब प्राणियों की स्वामिता कहीगई है ॥ २० ॥ और बरगदमें

पुष्टि, सन्तान, वृद्धि, बुद्धि, धैर्य व स्मृति को जानै व खंभारिका पात्र राक्षसों का विनाशक व यशदायक कहाजाता है ॥ २१ ॥ और महुवाके पात्रमें उत्तम सौभाग्य संसार में कहागया है और कठूंबरिके पात्रको करताहुआ पुरुष सब कामनाओं को प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ और मदार के पात्रमें विशेष कर उत्तम शोभा व प्रकाशताको प्राप्तहोता है और बिल्वमें सदैव लक्ष्मी, तप, बुद्धि व आयुर्बल होता है ॥ २३ ॥ और बांसके पात्रोंमें श्राद्ध करतेहुये पुरुषके सब क्षेत्र, बगीचे और तड़ागों में मेघ सदैव बरसते हैं ॥२४॥ और सोने व चांदी के पात्रों से इनके फलको मनुष्य प्राप्त होता है और पलाश, कठूंबरि, बरगद, पकरिया, पीपर और स्रुवावृक्ष ॥ २५ ॥ और गूलरि,

वृद्धिंप्रज्ञांधृतिंस्मृतिम् ॥ रक्षोघ्नञ्चयशस्यञ्च काश्मर्याःपात्रमुच्यते ॥ २१॥ सौभाग्यमुत्तमंलोके मधूकेसमुदाहृतम् ॥ फल्गुःपात्रंप्रकुर्वाणः सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २२ ॥ परांद्युतिमथार्केतु प्राकाश्यञ्चविशेषतः ॥ बिल्वेलक्ष्मीस्तपोमेधानित्यमायुष्यमेवच ॥ २३ ॥ क्षेत्रारामतडागेषु तथासर्वेषुचैवहि ॥ वर्षत्यजस्रम्पर्जन्यो वेणुपात्रेषुकुर्वतः ॥ २४ ॥ एतेषांलभतेपुण्यं सुवर्णरजतैस्तथा ॥ पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः ॥ २५ ॥ उदुम्बरन्तथाबिल्वश्चन्दनंयज्ञपादपाः ॥ सरलोदेवदारुश्च सालोथखादिरस्तथा ॥ २६ ॥ समिधार्थंप्रशस्ताःस्युरेतेवृक्षाविशेषतः ॥ श्लेष्मान्तकोनक्तमालः कपित्थःशाल्मलीतथा ॥ २७ ॥ निम्बोविभीतकश्चैव श्राद्धकर्मणिगर्हिताः ॥ अनिष्टशब्दसंकीर्णां रूक्षांजन्तुमतीमपि ॥ २८ ॥ पूतिगन्धयुताम्भूमिं श्राद्धकर्मणिवर्जयेत ॥ अङ्गावङ्गाःकलिङ्गाश्च सिन्धोरुत्तरमेवच ॥ २९ ॥ प्रणष्टाश्रमवर्णाश्च वर्ज्यादेशाःप्रयत्नतः ॥ ब्राह्मणन्तुकृतंप्रोक्तं त्रेतातुक्षत्रियंस्मृतम् ॥ ३० ॥ वैश्यंद्वापर

बेल, चन्दन ये यज्ञके वृक्षहैं और सरल, देवदारु, साखू व खैर ॥२६॥ ये वृक्ष विशेषकर समिधाओं के लिये उत्तम हैं और लभेर, कञ्ज, कैथा, सेमर ॥ २७ ॥ नींब,बहेर ये दो श्राद्धकर्म में निन्दित हैं और अनिष्ट शब्दों से व्याप्त व रूखी और जन्तुमती ॥ २८ ॥ व दुर्गन्ध से संयुत भूमिको श्राद्ध कर्म में वर्जित करै और अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग व समुद्र का उत्तर भाग ॥ २९ ॥ तथा नष्ट आश्रम व वर्णवाले देश यत्न से वर्जित करने योग्य हैं ब्राह्मण सतयुग कहागया है और क्षत्रिय त्रेता कहागया

है ॥ ~ ॥ व वैश्यको द्वापर कहा है शूद्र कलियुग कहागया है और सतयुग में पितर पूजने योग्य हैं व त्रेतामें देवता ॥ ३१ ॥ और द्वापर में युद्ध व कलियुग में गदे पाखण्ड पूजेजाते हैं विद्वान् शुक्लपक्षके पूर्वाह्ण में श्राद्ध करै ॥ ३२ ॥ और कृष्णपक्षके पराह्ण में रौहिण समयको उल्लंघन न करै ॥ ३३ ॥ और मुठिया हाथ ~ के प्रमाणवाले कुश पितरोंके कार्य में कहेगये हैं और जडमें कटेहुये उत्तम कुश बिछौनाके लिये उत्तम होते हैं ॥ ३४ ॥ वैसेही साँवाँ, तिन्नी फसही व दूर्वा कहीगई है पुरातन समय यशस्वियोंमें श्रेष्ठ प्रजापतिजी बहुकेश हुये हैं ॥ ३५ ॥ उनके गिरेहुये केश पृथ्वी में कुशत्व को प्राप्त हुये हैं इस कारण सदैव पवित्र कुश

मित्याहुः शूद्रःकलियुगंस्मृतम् ॥ कृतेतुपितरःपूज्यास्त्रेतायाञ्चसुरास्तथा ॥ ३१ ॥ युद्धानिद्वापरेनित्यं पाखण्डाश्चक लौयुगे ॥ शुक्लपक्षस्यपूर्वाह्णे श्राद्धंकुर्याद्विचक्षणः ॥ ३२ ॥ कृष्णपक्षेपराह्णेतु रौहिणंनविलङ्घयेत् ॥ ३३ ॥ रत्निमात्र प्रमाणास्तु पितृकार्येकुशाःस्मृताः ॥ उपमूलेतथालूनाः प्रस्तरार्थेकुशोत्तमाः ॥ ३४ ॥ तथाश्यामाकनीवारा दूर्वाचस मुदाहृता ॥ पूर्वेकीर्त्तिमतांश्रेष्ठो बहुकेशःप्रजापतिः ॥ ३५ ॥ तस्यकेशानिपतिताभूमौ दर्भत्वमागताः ॥ तस्मान्मेध्याः सदादर्भाः श्राद्धकर्मणिपूजिताः ॥ ३६ ॥ पिण्डनिर्वापणन्तेषु कर्तव्यंभूतिमिच्छता ॥ उष्णमन्नन्द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ ३७ ॥ हस्तदत्तानिभोज्यानि लवणंव्यञ्जनानिच ॥ आयसेनचपात्रेण तद्वैरक्षांसिभुञ्जते ॥ ३८ ॥ द्वि जपात्रेषुदत्त्वान्नमुष्णंसङ्कल्पमाचरेत् ॥ ३९ ॥ यश्चशूकरवद्भुङ्क्ते यश्चपाणितलेद्विजः ॥ नतदश्नन्तिपितरो यःसवाचंस मश्नुते ॥ ४० ॥ द्विहायनस्यवत्सस्य ग्रासन्यासेयथासुखम् ॥ तथाकुर्यात्प्रमाणेन पिण्डानितिप्रभाषितम् ॥ ४१ ॥ नस्त्री

श्राद्धकर्म में पूजित हैं ॥ ३६ ॥ ऐश्वर्यके चाहनेवाले पुरुषको उन कुशों में पिण्ड धरना चाहिये और ब्राह्मणों के लिये श्रद्धा से उष्ण अन्नको निवेदन करै ॥ ३७ ॥ और हाथमें दियेहुये भोजन, लोन व व्यंजन तथा जो लोहे के पात्रसे दियाजाता है उसको राक्षस भोजन करते हैं ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणों के पात्रों में उष्ण अन्नको देकर संकल्पकरै ॥ ३९ ॥ जो ब्राह्मण शूकरकी नाईं भोजन करता है और जो हाथ में भोजन करता है व जो वचन समेत भोजन करताहै उसको पितर नहीं भोजन करते

हैं ॥४०॥ और जैसे दो वर्षके लड़के को कवल धरने में सुख होताहै वैसेही प्रमाणसे पिण्डोंको बनावै यह कहा है ॥४१॥ और स्त्री पात्रको न चलावै न अज्ञानी और न आच्छादित पुरुष पात्रको चलावै ॥ ४२ ॥ और भोजनों के स्थित होने पर जो ब्राह्मण स्वस्ति करते हैं वह अन्न असुरों से भोजन कियाजाता है व पितर निराश होकर चलेजाते हैं ॥ ४३ ॥ एक पिंडको जलमें डुबावै और एक स्त्री केलिये देवै व एक पिण्डको अग्नि में हवनकरै इन पिण्डोंकी तीन भांतिकी गति है॥४४॥ श्राद्ध में वेदपात्र ब्राह्मणको भोजन करावै और वैश्वदेव श्राद्धमें वैष्णव विप्रको जिमावै तथा पुष्टिकर्म में यजुर्वेदी व शातिकर्म में अथर्वणवेदीको भोजन करावै ॥४५॥

प्रचालयेत्पात्रं नैवाज्ञानीनचावृतः ॥ ४२ ॥ भोजनेषुचतिष्ठत्सु स्वस्तिकुर्वन्तियेद्विजाः ॥ तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरोगताः ॥ ४३ ॥ अप्स्वेकंप्लावयेत्पिण्डमेकंपत्न्यैनिवेदयेत् ॥ एकंवैजुहुयादग्नावेषातुत्रिविधागतिः ॥ ४४ ॥ छन्दोगंभोजयेच्छ्राद्धे वैश्वदेवेचवैष्णवम् ॥ पुष्टिकर्मण्यथाध्वर्युं शान्तिकर्मण्यथर्वणम् ॥ ४५ ॥ द्वौदैवेथर्वणौविप्रौ प्राङ्मुखौविनिवेशयेत् ॥ त्रींस्त्रीनुदङ्मुखान्कुर्यात्तत्रैवाध्वर्युसामगान् ॥ ४६ ॥ जातीचसर्वदादेया मल्लिकाश्वेतयूथिका ॥ जलोद्भवानिसर्वाणि कुसुमानिचचम्पकम् ॥ ४७ ॥ मधूकंरामठञ्चैव कर्पूरम्मरिचंगुडम् ॥ श्राद्धकर्मणिशस्तानि सैन्धवंरजतंतथा ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणःकम्बलोगावः सूर्योग्निरतिथिस्तथा ॥ तिलादर्भाश्चकालश्च नवैतेकुतुपाःस्मृताः ॥ ४९ ॥ आपद्यनग्नौतीर्थेच चन्द्रसूर्यग्रहेतथा ॥ नाचरेत्तुरवौचैव तथैवास्तमुपागतम् ॥ ५० ॥ संशुद्धास्याचतुर्थेह्नि स्ना

दैवकार्य में दो अथर्वणवेदी ब्राह्मणों को पूर्वमुख बैठावै और वहीं पर यजुर्वेदी व सामवेदी तीन तीन ब्राह्मणों को उत्तर मुख करै ॥ ४६ ॥ और चमेली व बेला और सफ़ेद जूही सदैव देनाचाहिये तथा जलमें उपजेहुये सब पुष्प व चम्पक चढ़ाना चाहिये ॥ ४७ ॥ और महुवा, हींग, कपूर, मिर्च व गुड, सैन्धव व चांदी ये वस्तुयें श्राद्धकर्म में शुभ हैं ॥ ४८ ॥ और ब्राह्मण, कंबल, गऊ, सूर्य, अग्नि व अतिथि, तिल, कुश व काल ये नव वस्तुयें कुतुप कहीगई हैं ॥ ४९ ॥ और विपत्ति में व बिन अग्नितीर्थ में और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण मे तथा सूर्यनारायण अस्त होनेपर श्राद्ध न करना चाहिये ॥ ५० ॥ और रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नानकर

शुद्ध होती है व दैव तथा पितरकार्य में पांचवें दिन शुद्ध होती है ॥ ५१ ॥ सांप व ब्राह्मणों से मारेहुये और दाढ़वाले तथा सींगवाले व बीछी आदिकों से मारेहुये और आत्मत्यागी याने आपही विष इत्यादिको खाकर मरेहुये इन प्राणियों का श्राद्ध न करै ॥ ५२ ॥ और चाण्डाल, पुष्कस, साप, ब्राह्मण, बिजली व व्याघ्रादिक और श्वपचों से पापकर्मी मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥ सबों से सम्मति कर जेठे भाई से व बिन बांटेहुये धनसे जो कियाजाता है वह सबो से किया होता है ॥ ५४ ॥ माता व पिताके क्षयाहमें जो प्रतिवर्ष, श्राद्ध कियाजाता है उसको मलमासमें न करना चाहिये जैसा कि व्यासजी का वचन है ॥ ५५ ॥ गर्भ व वार्षिक श्राद्ध तथा

तानारीरजस्वला ॥ दैवेकर्मणिपित्र्येच पञ्चमेहनिशुध्यति ॥ ५१ ॥ सर्पविप्रहतानाञ्च दंष्ट्रिशृङ्गिसरीसृपैः ॥ आत्मनस्त्यागिनाञ्चैव श्राद्धमेषांनकारयेत ॥ ५२ ॥ चाण्डालात्पुष्कसात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि ॥ दंष्ट्रिभ्यःश्वपचेभ्यश्च मरणम्पापकर्मिणाम् ॥ ५३ ॥ सर्वैरनुमतंकृत्वा ज्येष्ठेनैवचयत्कृतम् ॥ द्रव्येणचाविभक्तेन सर्वैरेवंकृतम्भवेत् ॥ ५४ ॥ वर्षेवर्षेतुयच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेहनि ॥ मलमासेनकर्त्तव्यंव्यासस्यवचनंयथा ॥ ५५ ॥ गर्भेवावार्षिकेप्रेते मृतेमासानुमासिके ॥ आब्दिकेचतथाश्राद्धे नाधिमासोविधीयते ॥ ५६ ॥ विवाहादौस्मृतःसौरो यज्ञादौसावनःस्मृतः ॥ आब्दिकेपितृकार्येतु चान्द्रोमासःप्रशस्यते ॥ ५७ ॥ यस्मिन्राशौगतेसूर्ये विपत्तिःस्याद्द्विजन्मनः ॥ तद्राशावेवकर्त्तव्यं पितृकार्यंमृतेहनि ॥ ५८ ॥ वषट्कारश्चहोमश्च पर्वचाग्रायणंतथा ॥ मलमासेपिकर्त्तव्याः काम्याइष्टीर्विवर्जयेत् ॥ ५९ ॥ अग्न्याधेयंप्रतिष्ठाञ्च यज्ञदानव्रतानिवै ॥ वेदव्रतवृषोत्सर्गं चूडाकरणमेववा ॥ ६० ॥ माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासेविव

मरेहुये प्रेतमें और मास के पश्चात् मासगणनामें व क्षयाह श्राद्ध में मलमास नहीं विधान कियाजाता है ॥ ५६ ॥ विवाहादिक कार्य में सौर व यज्ञादि में सावन मास और वार्षिक पितृकार्य में चान्द्रमास शुभ होता है ॥ ५७ ॥ जिस राशिमें सूर्य प्राप्तहोनेपर ब्राह्मण, क्षत्री व वैश्यकी मृत्युहोवै उसी राशि में क्षयाह में पिताका कार्य करना चाहिये ॥ ५८ ॥ और वषट्कार होम व नवान्नयज्ञ इनको मलमास में भी करना चाहिये और काम्ययज्ञोंको वर्जित करै ॥ ५९ ॥ व अग्न्याधान, प्रतिष्ठा, यज्ञ,

दान व व्रत, वेदव्रत, वृषोत्सर्ग और मुण्डन ॥६० ॥ व मंगल कार्य तथा अभिषेक मलमास में वर्जित करै और नित्य व नैमित्तिक कर्मको मलमास में यत्नसे करै ॥ ६१ ॥ और तीर्थ में श्राद्ध व गजच्छाया में प्रेतश्राद्ध मलमास में न करै जहां बन्धु व गोत्रवाले पुरुष जहां भोक्ता नहीं देखपडते हैं ॥ ६२ ॥ और अन्त्यजादिकों से घिरने पर राक्षसी श्राद्धका लक्षण है और श्राद्ध करके जो विह्वल पुरुष पराये श्राद्ध में भोजन करता है ॥ ६३ ॥ उसके लुप्तपिण्ड व जलक्रियावाले पितर नरक में पडते हैं ॥ ६४ ॥ और कटेहुये रोम व नखवाले ब्राह्मणों के लिये दूसरे दिन श्राद्धको देवै और न्यायपूर्वक हव्य, कव्य याने देवकार्य व पितरकार्य में जो ब्राह्मण

उर्जयेत् ॥ नित्यंनैमित्तिकंकुर्यात्कर्मयत्नान्मलिम्लुचे ॥ ६१ ॥ तीर्थेस्नानंगजच्छायाम्प्रेतश्राद्धंतथैवच ॥ नचयत्र प्रदृश्यन्ते भोक्तारोबन्धुगोत्रिणः ॥ ६२ ॥ अन्त्यजाद्यैश्चसंक्रान्ते रक्षःश्राद्धस्यलक्षणम् ॥ श्राद्धंकृत्वापरश्राद्धे यस्तु भुङ्क्तेसुविह्वलः ॥ ६३ ॥ पतन्तिपितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ६४ ॥ कृत्तरोमनखेभ्यश्च दद्याच्चैवापरेहनि ॥ निमन्त्रितायथान्यायं हव्यकव्येद्विजोत्तमाः ॥ ६५ ॥ कथञ्चिदप्यतिक्रामेद्यःसशूकरतांव्रजेत् ॥ दैवेपितॄणांश्राद्धे तु अशौचंजायतेयदा ॥ ६६ ॥ अशौचान्तेथवातत्र तेभ्यःश्राद्धंप्रदीयते ॥ अथश्राद्धावसानेतु आशिषस्तत्रदापये त् ॥ ६७ ॥ एवमेषांप्रमाणेन दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ अपांमध्येस्थितादेवाः सर्वमप्सुप्रतिष्ठितम् ॥ ब्राह्मणस्यक रेन्यस्ताः शिवाआपोभवन्तुनः ॥ ६९ ॥ लक्ष्मीर्वसतिपुष्पेषु लक्ष्मीर्वसतिपुष्करे ॥ लक्ष्मीर्वसतिवैसोमे सौमनस्यंसदा स्तुमे ॥ ७० ॥ अक्षतंचास्तुमेपुण्यं शान्तिःपुष्टिर्धृतिश्चमे ॥ यद्यच्छ्रेयस्करंलोके तत्तदस्तुसदामम ॥ ७१ ॥ दक्षिणा

निमन्त्रित होवैं ॥ ६५ ॥ उनमें जो किसीप्रकार अतिक्रमण करै वह शूकरता को प्राप्तहोता है और देवकार्य व पितरोंके श्राद्ध में जब अशौच होवै ॥ ६६ ॥ तो वहां अशौचके अन्त में उनके लिये श्राद्ध दियाजाता है इसके उपरान्त श्राद्धके अन्त में वहां आशीर्वादों को देवै ॥६७॥ इस प्रकार इनके प्रमाण से पुरुष दीर्घआयुर्बल को प्राप्तहोताहै ॥६८॥ जलोंके मध्यमें देवता स्थित हैं व जलों में सब प्रतिष्ठित हैं ब्राह्मणके हाथमें धरेहुये कल्याणदायक जल हमलोगों के लिये होवैं ॥ ६९ ॥ पुष्पोंमें लक्ष्मी बसती है और जलमें लक्ष्मी बसती है व लक्ष्मी चन्द्रमामें बसती है मेरे सदैव सौमनस्य होवै ॥ ७० ॥ और मेरे अक्षय पुण्य होवै व शांति, पुष्टि और धृति होवै व संसारमें जो

जो कल्याणकारक होवै वह वह सदैव मेरे होवै ॥ ७१ ॥ और दक्षिणमें सब कहीं हमारे बहुत देने योग्य होवै ऐसाही होगा इस प्रकार उस सब आशीर्वादको उसको मस्तक से ग्रहण करना चाहिये ॥७२॥ व सुखों को चाहनेवाला मनुष्य सदैव पिण्डको अग्नि में देवै व सन्तानके लिये मध्यम पिण्ड को मन्त्रपूर्वक देवै ॥ ७३ ॥ और जो उत्तम कान्ति को चाहै वह सदैव गौवों के लिये पिण्डको देवै और जो बुद्धि, यश व कीर्तिको चाहै वह सदैव जलमें पिण्डको डाले ॥ ७४ ॥ और दीर्घ आयुर्बलको चाहताहुआ मनुष्य कौवों के लिये देवै व स्वामिकार्त्तिकेय के लोकको चाहताहुआ पुरुष मुर्गों के लिये देवै ॥ ७५ ॥ अथवा आकाश में चलावै या दक्षिण मुख स्थित

यान्तुसर्वत्र बहुदेयंतथास्तुनः ॥ एवमस्त्वितितत्सर्वं मूर्द्धाग्राह्यञ्चतेनतत् ॥ ७२ ॥ पिण्डमग्नौसदादद्याद्भोगार्थी सततंनरः ॥ प्रजार्थंपत्न्यैवैदद्यान्मध्यमंमन्त्रपूर्वकम् ॥ ७३ ॥ उत्तमांद्युतिमन्विच्छेद्गोषुनित्यंप्रदापयेत् ॥ प्रज्ञामिच्छेद्यशःकीर्तिमप्सुनित्यञ्चप्रक्षिपेत् ॥ ७४ ॥ प्रार्थयन्दीर्घमायुश्चवायसेभ्यःप्रदापयेत् ॥ कुमारलोकमन्विच्छन् कुक्कुटेभ्यःप्रदापयेत् ॥ ७५ ॥ आकाशेगमयेद्वापि स्थितोवादक्षिणामुखः ॥ पितॄणांस्थानमाकाशं दक्षिणाचैवदिक्तथा ॥ ७६ ॥ नक्तन्तुवर्जयेच्छ्राद्धं राहोरन्यत्रदर्शनात् ॥ सर्वस्वेनापिकर्त्तव्यं क्षिप्रंवैराहुदर्शनात् ॥ ७७ ॥ अपरागेनकुर्याद्यः पङ्केगौरिवसीदति ॥ कुर्वाणस्तुतरेत्पापं यथानौरिवसागरम् ॥ ७८ ॥ कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाःस्युर्यवशालयः ॥ महायवाव्रीहियवास्तथैवाथमसूरिकाः ॥ ७९ ॥ कृष्णाःश्वेतास्तिलाग्राह्याः श्राद्धकर्मणिसर्वदा ॥ बिल्वामलकमृद्वीकं पनसाम्रंचदाडिमम् ॥ कदलीकालशाकञ्च मुद्गान्नञ्चसुवर्चलम् ॥ ८० ॥ मांसंशाकंदधिक्षीरं चोचंवेत्राङ्कुरंतथा ॥

होवै क्योंकि पितरों का स्थान आकाश व दक्षिण दिशा है और राहुके दर्शनसे अन्यत्र याने चन्द्रग्रहणके सिवाय रातमें श्राद्धको न करै व राहुके दर्शनसे सर्वस्वसे शीघ्रही श्राद्ध करना चाहिये ॥७६।७७॥ जो ग्रहणमें श्राद्ध नहीं करता है वह कीचड़ में गऊकी नाईं दुःखित होताहै और श्राद्धको करता हुआ मनुष्य पापको तरजाता है जैसे कि नाव समुद्रको उतरजाती है ॥ ७८ ॥ काले उडद व तिल और यव व धान श्रेष्ठ हैं महायव, व्रीहियव व मसूर ॥ ७९ ॥ और काले व सफेद तिल सदैव श्राद्धकर्म में ग्रहण करना चाहिये और बेल, आँवला, मुनक्का, कटहर, आम व अनार, केला, कालशाक, मुद्गान्न (मूँग) सुवर्चला (सोंचर नमक) ॥ ८० ॥

मास, दधि, दूध, शाक, दालचीनी व बेतका अंकुर, कपास, धतूर, मुनक्का, बड़हर, सहिंजन ॥ ८१ ॥ चिरौंजी, चमेली, तिंदुक, सौंफ, पीपरि, मिर्च, परवर, भटकटैया ॥ ८२ ॥ इत्यादिक और पुष्प श्राद्धकर्म में उत्तमहैं और मसूर, सौंफ व कुसुमके फूल सदैव वर्जितहैं ॥ ८३ ॥ और यव व रूस तथा कुरैया सदैव वर्जितकरने योग्य है व बांसका अंकुर (अखुवा) और रासन व भादा वर्जितहैं ॥ ८४ ॥ व नित्यही श्राद्धकर्ममें वर्जने योग्य वस्तुवोंको मैं कहताहूं ॥ ८५ ॥ लहसुन, पियाज, गाजर, पिंडमूल, मूर और बड़ी मूली, ॥ ८६ ॥ इन को देनेवाला पुरुष वृथा श्राद्ध को प्राप्त होता है और नरक को जाता है प्रातः कालसे लगाकर वे सब पंद्रह मुहूर्त हैं ॥ ८७ ॥

कर्पासंकनकंद्राक्षा लकुचंमोचमेवच ॥ ८१ ॥ प्रियालंमालतीचैव तिन्दुकंमधुराह्वयम् ॥ पिप्पलीमरिचंचैव पटोलीबृहतीफलम् ॥ ८२ ॥ एवमादीनिचान्यानि पुष्पाणिश्राद्धकर्मणि ॥ मसूराःशतपुष्पाच कुसुम्भकुसुमानिच ॥ ८३ ॥ वर्ज्याश्चापियवानित्यं तथावृषभवासवौ ॥ वंशाङ्कुरञ्चसुरसावर्ज्यानिभूस्तृणानिच ॥ ८४ ॥ वर्जनीयानिवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणिनित्यशः ॥ ८५ ॥ लशुनंगृञ्जनञ्चैव पलाण्डुंपिण्डमूलकम् ॥ मोरटञ्चात्रवैवर्ज्यं दीर्घमूलकमेवच ॥ ८६ ॥ वृथाश्राद्धमवाप्नोति दाताचनरकंव्रजेत् ॥ प्रातरारभ्यबाणेन्दुमुहूर्तास्सर्वएवते ॥ ८७ ॥ सङ्गवस्त्रिमुहूर्तोथ मध्याह्नस्तुस्मृतस्ततः ॥ ८८ ॥ ततस्त्रयोमुहूर्तावै अपराह्णोविधीयते ॥ पञ्चमोथदिनांशोयः सायाह्नइतिसंस्मृतः ॥ ८९ ॥ प्रातरारभ्यश्राद्धंवै कुर्यादारोहिणाद्बुधः ॥ विधिज्ञोविधिमास्थाय रोहिणन्तुनलङ्घयेत ॥ ९० ॥ अष्टमोयोमुहूर्तस्तुश्च कुतुपःसनिगद्यते ॥ नवमोरोहिणःप्रोक्त इतिश्राद्धविदोविदुः ॥ ९१ ॥ एकोद्दिष्टन्तुमध्याह्ने प्रातर्वैजातकर्मणि ॥ पित्र्य

तीन मुहूर्त संगव होताहै उसके उपरान्त मध्याह्न कहागयाहै ॥ ८८ ॥ उसके उपरान्त तीन मुहूर्त अपराह्न कहाजाताहै इसके उपरान्त जो पांचवा दिन का भागहै वह सायाह्न कहागया है ॥ ८९ ॥ प्रातःकाल से लगाकर रोहिण पर्यन्त विद्वान् श्राद्धको करै और विधिको जाननेवाला पुरुष विधि में स्थित होकर रोहिण मुहूर्तको न उल्लंघन करै ॥ ९० ॥ जो आठवां मुहूर्त है वह कुतुप कहाजाता है और नवां रोहिण कहागया है ऐसा श्राद्धके जाननेवालों ने कहा है ॥ ९१ ॥ मध्याह्न में एकोद्दिष्ट

करना चाहिये व जातकर्म में प्रातःकाल कहागया है पितरोंके लिये व वैश्वदेवके लिये श्राद्ध करै ॥ ९२ ॥ विश्वेदेव श्राद्ध पितरोंके लिये नहीं है और पितरोंका श्राद्ध विश्वेदेवताओं का नहीं होताहै हे महादेवि ! श्राद्ध करके व ब्राह्मणों को विदाकर ॥ ९३ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! विश्वेदेवादिक कर्म करै बहुत हव्य व ईंधनवाले तथा विशेष कर बहुत बढ़तेहुये अग्नि में ॥ ९४ ॥ और धूमरहित व जलती हुई अग्नि में कम कर्मों की सिद्धिके लिये होताहै और विन बढ़ेहुये व धुँवासमेत अग्निमें जो हवन करताहै ॥ ९५ ॥ वह यजमान पुत्रसमेत अन्धा होताहै यह निश्चितहै और दुर्गन्ध, कृष्ण व विशेषकर नील ॥ ९६ ॥ अग्नि जहां भूमिको प्राप्त होवै

र्थंनिर्वपेच्छ्राद्धं विश्वेदेवार्थमेवच ॥ ९२ ॥ वैश्वदैवन्नपित्र्यर्थं नपित्र्यंविश्वदैविकम् ॥ कृत्वाश्राद्धंमहादेवि ब्राह्मणांश्चविसर्ज्यच ॥ ९३ ॥ विश्वेदेवादिकंकर्म ततःकुर्याद्वरानने ॥ बहुहव्येधनेचाग्नौ सुसमिद्धेविशेषतः ॥ ९४ ॥ विधूमे लेलिहानेच कर्मस्यात्कर्मसिद्धये ॥ अप्रवृद्धेसधूमेच जुहुयाद्योहुताशने ॥ ९५ ॥ यजमानोभवेदन्धः सपुत्रइतिनिश्चितम् ॥ दुर्गन्धश्चैवकृष्णश्च नीलश्चैवविशेषतः ॥ ९६ ॥ भूमिन्तुगाहतेयत्र तत्रविद्यात्पराभवम् ॥ अर्चिष्मान्पिङ्गलशिखः सर्पिःकाञ्चनसन्निभः ॥ ९७ ॥ स्निग्धःप्रदक्षिणश्चैव वह्निःस्यात्कार्यसिद्धये ॥ चन्दनागुरुणीचोभौ तमालोशीरपद्मकाः ॥ ९८ ॥ धूपश्चगुग्गुलःश्रेष्ठस्तुरुष्कोधूपएववा ॥ शुक्लाःसुमनसःश्रेष्ठास्तथापद्मोत्पलानिच ॥ ९९ ॥ गन्धवन्तिच पुष्पाणि तथाचान्यानिकृत्स्नशः ॥ यवानिसुमनाभिण्टी रक्तकःसकुरण्टकः ॥ १०० ॥ पुष्पाणिवर्जनीयानि श्राद्धकर्मणिनित्यशः ॥ सौवर्णंराजतंताम्रं पितॄणांपात्रमुच्यते ॥ १ ॥ राजतस्यकथाकाचिद्दर्शनंपुण्यदायकम् ॥ राजत

वहां पराभव जानै और ज्वालावान् तथा पिंगलज्वालावाली और घृत व सुवर्ण के समान ॥ ९७ ॥ तथा सचिक्कण व दक्षिण अग्नि कार्यसिद्धि के लिये होती है और चन्दन व अगुरु ये दोनों और तमाल, खस, पद्माक ॥ ९८ ॥ और गुग्गुल धूप श्रेष्ठहै व लोबान धूप उत्तम होता है और सफेदफूल श्रेष्ठ हैं व कमल श्रेष्ठ होते हैं ॥ ९९ ॥ और सुगन्धवाले अन्य सब फूल उत्तम हैं व यव, चमेली, नीलपियाबाँसा, दुपहरी और पीतपियाबाँसा ॥ १०० ॥ ये फूल सदैव श्राद्धकर्म में वर्जित करने

योग्यहैं और सोने व चांदी तथा तांबेका पात्र पितरोंका कहाजाता है ॥ १ ॥ और चांदी के पात्रकी कोई कथा व दर्शन पुण्यदायकहै व चांदीकी समीपता तथा दर्शन व दान ॥ २ ॥ राक्षसों का विनाशक व यशदायक है तथा पितरों को तारताहै इस के उपरान्त ब्रह्मासे बनायेहुये अमृतमन्त्र को मैं कहताहूं ॥ ३ ॥ कि देवता, पितर व महायोगियों के लिये नमस्कार है और स्वधाके लिये प्रणाम है व स्वाहाके लिये नित्यही बार २ प्रणाम है ॥ ४ ॥ श्राद्धके आदि व अन्त में इस मन्त्रको तीनबार जपै ब्राह्मणों से सदैव पूजित यह अश्वमेध के फलको देनेवाला है ॥ ५ ॥ और सावधान होताहुआ पुरुष पिंड विसर्जन के समय में इसको जपै तो पितर प्रियको

स्यचसान्निध्यं दर्शनंदानमेववा ॥ २ ॥ रक्षोघ्नंचयशस्यंच पितॄंश्चतारयेत्तथा ॥ अथमन्त्रम्प्रवक्ष्यामि अमृतंब्रह्मनिर्मितम् ॥ ३ ॥ देवताभ्यःपितृभ्यश्च महायोगिभ्यएवच ॥ नमःस्वधायैस्वाहायै नित्यमेवनमोनमः ॥ ४ ॥ आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावर्त्तामिमंजपेत् ॥ अश्वमेधफलंह्येतद्विप्रैःसन्ततपूजितम् ॥ ५ ॥ पिण्डनिर्वपणेवापि जपेदेनंसमाहितः ॥ पितरःप्रियमायान्ति राक्षसाःप्रद्रवन्तिच ॥ ६ ॥ सप्तार्चिषम्प्रवक्ष्यामि सर्वकामशुभप्रदम् ॥ अमूर्त्तानाञ्चमूर्त्तानां पितॄणांदीप्ततेजसाम् ॥ ७ ॥ नमस्यामिसदातेषां व्यापिनांदिव्यचक्षुषाम् ॥ इन्द्रादीनांचनेतारो दक्षमारीचयोस्तथा ॥ ८ ॥ सप्तर्षीणांपितॄणांतान्नमस्यामिचकामदान् ॥ मन्वादीनाञ्चसर्वेषां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ ९ ॥ तान्नमस्यामि सर्वान्वै पितॄंश्चाहंकृताञ्जलिः ॥ नक्षत्राणांग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योश्चपितॄनपि ॥ १० ॥ द्यावापृथिव्योश्चसदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥ नमःपितृभ्यःसप्तभ्यो नमोलोकेषुसप्तसु ॥ ११ ॥ स्वयम्भुवेनमस्यामो ब्रह्मणेयोगचक्षुषे ॥ एतत्तदुक्तं

प्राप्त होतेहैं और राक्षस भगजाते हैं ॥ ६ ॥ सब कामनाओं को उत्तम देनेवाले सप्तार्चिषमन्त्र को कहताहूं कि प्रकाशिततेजवाले मूर्तिमान् व बिन मूर्त्तिवाले पितरों को ॥ ७ ॥ मैं सदैव प्रणाम करताहूं जोकि दिव्यदृष्टिवाले उन व्यापक इन्द्रादिक देवताओं व दक्ष तथा कश्यपके सदैव नेताहैं ॥ ८ ॥ और सप्तर्षियों व पितरों के कामदायक उन पितरों को मैं प्रणाम करताहूं और सब मनुआदिक व सूर्य, चन्द्रमा के ॥ ९ ॥ उन सब पितरों को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं और नक्षत्र, ग्रह व पवन तथा अग्निके पितरों को भी मैं प्रणाम करताहूं ॥ १० ॥ और हाथों को जोड़कर मैं सदैव आकाश व भूमि के पितरों को प्रणाम करताहूं

र सातोंलोकों में सातोंपितरों के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ११ ॥ और योगदृष्टिवाले स्वयम्भू ब्रह्माके लिये प्रणाम है ब्रह्मर्षिगणों से पूजित यह वह
.तार्चि है ॥ १२ ॥ यह श्रीमत् सप्तार्चि अत्यन्त पवित्र व राक्षसोंका विनाशक है इस विधिसे संयुत मनुष्य तीनबार जपै ॥ १३ ॥ बड़ीभक्तिसे संयुत श्रद्धावान्
जितेन्द्रिय जो पुरुष सावधान होकर नित्यही सप्तार्चिष् को जपता है ॥ १४ ॥ वह सातसमुद्रोंवाली पृथ्वीका चक्रवर्ती राजा होताहै जो पंक्तिपावन ब्राह्मण इस
ाद्धकल्पको नित्यही पढ़ता है ॥ १५ ॥ वह अठारह विद्याओंका पारगामी कहागयाहै और वे प्रसन्न होकर पितामहलोग मनुष्यों को बुद्धि, पुष्टि, स्मृति व धारणा-

पवित्रंपरमंह्येतच्छ्रीमद्रक्षोविनाशनम् ॥ अनेनविधिनायुक्तस्त्रीन्वारांस्तुजपेन्न
सप्तार्चिर्ब्रह्मर्षिगणपूजितम् ॥ १२ ॥ सप्तार्चिषंजपेद्यस्तु नित्यमेवसमाहितः ॥ १४ ॥ सचसप्तसमु
रः ॥ १३ ॥ भक्त्याचपरयायुक्तः श्रद्धधानोजितेन्द्रियः ॥ श्राद्धकल्पंपठेदेतन्नित्यंयःपङ्क्तिपावनः ॥ १५ ॥ अष्टादशानांविद्यानां सचैवपारगःस्मृ
द्रायाःपृथिव्याएकराड्भवेत् ॥ प्रीतास्तेचप्रयच्छन्ति मानुषाणांपितामहाः ॥ एवंप्राभासिकेक्षे
तः ॥ प्रज्ञांपुष्टिंस्मृतिंमेधां राज्यमारोग्यमेवच ॥ १६ ॥ कुर्याच्छ्राद्धंविधानेन प्रभासेचैवभामिनि ॥ ११८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेस
त्रे सरस्वत्यब्धिसङ्गमे ॥ १७ ॥ रस्वत्यब्धिसङ्गमेश्राद्धविधिवर्णनंनामद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥
ईश्वर उवाच ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामि श्राद्धदानान्यनुक्रमात् ॥ तारणार्थंचभूतानां सरस्वत्यब्धिसङ्गमे ॥ १ ॥ लो
केश्रेष्ठतमंसर्वमात्मनश्चापियत्प्रियम् ॥ सर्वंपितॄणांदातव्यं तदेवाक्षय्यमिच्छता ॥ २ ॥ जाम्बूनदमयंदिव्यं विमानं

वती बुद्धि तथा राज्य व नीरोगता को देते हैं हे भामिनि! इसप्रकार प्रभासक्षेत्रमें सरस्वती व समुद्रके सङ्गम में विधिसे श्राद्धकरै ॥ १६ । १७ । ११८ ॥ इति श्रीस्कन्द
पुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायासरस्वत्यब्धिसङ्गमेश्राद्धविधिवर्णनंनामद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०० ॥ ॥
दो० । यया श्राद्धमें विहित हैं विविध भांतिके दान । दोसौ यक अध्याय में कह्यो सोइ आख्यान ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त सरस्वती व समुद्र के
सङ्गम में प्राणियों के तारने के लिये क्रमसे श्राद्धके दानोंको कहताहूं ॥ १ ॥ संसारमें जो सब बहुत श्रेष्ठहो और जो अपनाको प्रियहो उस सब वस्तुको पितरों की

अक्षयता चाहनेवाले मनुष्यको देना चाहिये ॥ २ ॥ और अन्नको देनेवाला मनुष्य दिव्यअप्सराओं से संयुत व सूर्य के समान सुवर्णमय दिव्य व अक्षय विमान को पाताहै ॥ ३ ॥ और श्राद्धकर्ममें जो पुरुष नवीन आच्छादनको देताहै वह आयुर्बल, प्रकाश,ऐश्वर्य्य व रूपको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ और जो वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये कमण्डलु व शहदको देताहै उस दाताके पश्चात् दूध देनेवाली गऊ प्राप्तहोती है ॥५ ॥ और जीवन चाहनेवाले प्राणियोंको जो अभय देताहै वह पृथ्वीमें जो रत्न व सवारी और स्त्रियांहैं ॥६॥ उस सबको वह पितृभक्त मनुष्य शीघ्रही प्राप्तहोताहै क्योंकि हज़ारअश्वदान व सौ रथदान ॥ ७ ॥ और हज़ार गजदानसे अभय विशेषहै पर्व

सूर्यसन्निभम् ॥ दिव्याप्सरोभिःसंकीर्णमन्नदोलभतेक्षयम् ॥ ३ ॥ आच्छादनन्तुयोदद्यादाहतंश्राद्धकर्मणि ॥ आयुः प्रकाशमैश्वर्यं रूपन्तुलभतेतुसः ॥ ४ ॥ कमण्डलुञ्चयोदद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ मधुक्षीरस्रवाधेनुर्दातारमनुगच्छ ति ॥ ५ ॥ यःश्राद्धेअभयंदद्यात् प्राणिनांजीवितेच्छताम् ॥ यानिरत्नानिमेदिन्यां वाहनानिस्त्रियस्तथा ॥ ६ ॥ क्षिप्रंप्रा प्नोतितत्सर्वं पितृभक्तस्समानवः ॥ अश्वदानसहस्रेण रथदानशतेनच ॥ ७ ॥ दन्तिनांचसहस्रेण अभयंचविशिष्यते ॥ पितरःपर्वकालेषु तिथिकालेषुदेवताः ॥ ८ ॥ सर्वेपुरुषमायान्ति निपानमिवधेनवः ॥ मास्मतेप्रतिगच्छेयुः पर्वकालेह्य पूजिताः ॥ ९ ॥ मेघास्तस्यभवन्त्यर्थाः परत्रइहसर्वतः ॥ सरस्वत्यास्तुसान्निध्येयस्त्वेकम्भोजयेद्द्विजम् ॥१०॥ कोटिभो जफलन्तस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ अमावस्यान्नरोयस्तु परान्नमुपभुञ्जते ॥ ११ ॥ तस्यमासकृतंपुण्यमन्नदातुःप्र जायते ॥ वरान्नमयनेभुक्ते त्रिमासान्विषुवेस्मृतम् ॥ १२ ॥ वर्षैर्द्वादशभिश्चैव यत्पुण्यंसमुपार्जितम् ॥ तत्सर्वंविलयंया

समयों में पितर व तिथिकालों में देवता ॥ ८ ॥ सब पुरुषके समीप आतेहैं जैसे कि गौवें पौशालेको जातीहैं पर्व समयोंमें बिन पूजेहुये वे पितर मत लौटजावैं ॥ ९ ॥ क्योंकि इसलोक व परलोकमें सब कहीं उसके अर्थ व्यर्थ होजाते हैं और सरस्वती के समीप जो एक ब्राह्मणको भोजन कराता है ॥ १० ॥ उसको कोटिभोज के समान फलहोताहै इसमें सन्देह नहीं है और जो पुरुष अमावस तिथिमें पराये अन्नको भोजन करताहै ॥११॥ उसका महीनेभरमें कियाहुआ पुण्य अन्नदाताको होताहै और विषुवायन में पराया अन्न भोजन करनेपर तीन महीने का पुण्य उसको कहा गयाहै ॥ १२ ॥ और बारहवर्षों से जो पुण्य इकट्ठा कियागया है वह सब सूर्य व

चन्द्रमाके ग्रहणमें नाशको प्राप्तहोताहै ॥ १३॥ और सूर्यकी संक्रान्तिमें पराया अन्न भोजन करनेसे कुछ अधिक महीनेभरमें जो पुण्य इकट्ठा कियागयाहै वह नाशहो-
जाताहै और पहली श्राद्धमें तीनवर्ष और मासिकश्राद्धमें आठ वर्षका व छमाहीश्राद्ध में भोजन करनेसे आधेवर्षमें कियाहुआ पुण्य नाशको प्राप्तहोताहै ॥ १४ ॥ वैसे
ही सञ्चयनश्राद्ध में मनुष्यों का जन्मभर में कियाहुआ पाप नाश होजाताहै और मरे पुरुषकी शय्याका दान लेनेवाला और वेदसेवन को बेंचनेवाला ॥ १५ ॥ और
जो ब्राह्मण के धनको हरनेवाला है उसकी शुद्धि नहीं विद्यमान है और हज़ार तड़ाग खुदाने से व सौ अश्वमेध यज्ञ करने से ॥ १६ ॥ और करोड़ गौवोंके देनेसे

ति भुक्त्वासूर्येन्दुसंप्लवे ॥ १३ ॥ साग्रमासंरवेःक्रान्तावाद्यश्राद्धेत्रिवत्सरम् ॥ मासिकेप्यष्टवर्षस्यषण्मासेत्वर्द्धवत्सरे ॥
१४ ॥ तथासञ्चयनेश्राद्धे यातिजन्मकृतंनृणाम् ॥ मृतशय्याप्रतिग्राही वेदसेवनविक्रयी ॥ १५ ॥ ब्रह्मस्वहारीचनर
स्तस्यशुद्धिर्नविद्यते ॥ तडागानांसहस्रेण अश्वमेधशतेनच ॥ १६ ॥ गवांकोटिप्रदानेन भूमिहर्तानशुद्ध्यति ॥ सुवर्ण
माषंगामेकां भूमेरप्यर्द्धमङ्गुलम् ॥ १७ ॥ हरेन्नरकमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ब्रह्मस्वंब्रह्महत्याच दरिद्रस्यतुवर्द्धन
म् ॥ १८ ॥ गुरोर्मित्रहिरण्यञ्च स्वर्गस्थमपिपातयेत् ॥ सहस्रसम्मिताधेनुरनड्वान्दशधेनवः ॥ १९ ॥ दशानडुतस
मंयानंदशयानसमोहयः ॥ दशघोटसमाकन्या भूमिदानन्ततोधिकम् ॥ २० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विक्रयंनैवकार
येत् ॥ विशेषतोमहाक्षेत्रे सर्वपातकनाशने ॥ २१ ॥ चितिकाष्ठचयंस्पृष्ट्वा यज्ञयूपन्तथैवच ॥ वेदविक्रयकर्तारंस्पृष्ट्वा

भूमिको हरनेवाला शुद्ध नहीं होताहै व माशेभर सुवर्ण तथा एक गऊ और भूमि के आधे अंगुल को ॥ १७ ॥ जो हरता है वह तबतक नरकको प्राप्तहोता है कि ज-
बतक प्रलय होताहै ब्राह्मणका धन व ब्रह्महत्या और दरिद्रीका जो धनहै ॥ १८ ॥ व गुरु और मित्रका सुवर्ण स्वर्गमें टिकेहुये पुरुषको भी गिराताहै हजार रुपयोंके
बराबर गऊहोती है और दश गौवोंके समान बैल होताहै ॥ १९ ॥ और दश बैलोंके के समान एक रथ होताहै व दशरथों के तुल्य घोड़ा होताहै और दश घोड़ोंके
बराबर कन्या होती है व भूमिदान उससे अधिकहै ॥ २० ॥ इसलिये सबयत्नसे वेदका विक्रय न करै व समस्त पातकोंको नाशनेवाले महाक्षेत्रमें विशेषकर न करै ॥ २१ ॥

क्योंकि चिताके काठों के समूह को व यज्ञस्तम्भ को छूकर और वेदके विक्रय करनेवाले को स्पर्शकर स्नान करना चाहिये ॥ २२ ॥ और जो मनुष्य राजद्वार में आज्ञा को कहताहै हे देवि ! वह भी ऊषर में कांटेका वृक्षहोता है ॥ २३ ॥ राजाके द्वारमें टिकाहुआ पुरुष वेदका विक्रय न करै और ब्रह्महत्याके समान पातक न हुआ है न होवैगा ॥ २४ ॥ हे देवि ! वेदको बेंचनेवाला पुरुष उसको पाताहै इससे वेदका विक्रय न करै ॥ २५ ॥ प्रत्युत्तर व शपथ में तथा यज्ञके पहले दानलेना और यज्ञ कराने, पढ़ाने व विवाद में छःप्रकार का वेदविक्रय है ॥ २६ ॥ द्रव्यके कारण जितने वेदाक्षरों को नियोग करता है उतनी बालहत्याओं को वेदविक्रयको

स्नानंविधीयते ॥ २२ ॥ आदेशम्पठतेयस्तु राजद्वारेतुमानवः ॥ सोपिदेविभवेद्वृक्ष ऊषरेकण्टकारकः ॥ २३ ॥ स्थितोवैनृपतेर्द्वारि नकुर्याद्वेदविक्रयम् ॥ ब्रह्महत्यासमंपापं नभूतंनभविष्यति ॥ २४ ॥ तदाप्नोतिध्रुवंदेवि नकुर्याद्वेदविक्रयम् ॥ २५ ॥ प्रत्याख्यातेप्रत्ययेच यज्ञपूर्वम्प्रतिग्रहः ॥ याजनाध्ययनेवादे षड्विधोवेदविक्रयः ॥ २६ ॥ वेदाक्षराणि यावन्ति नियुक्तेह्यर्थकारणात् ॥ तावन्त्योभ्रूणहत्यावै प्राप्नुयाद्वेदविक्रयी ॥ २७ ॥ वेदान्तयोगाद्योदद्याद् ब्राह्मणायप्रतिग्रहम् ॥ सपूर्वंनरकंयाति ब्राह्मणस्तदनन्तरम् ॥ २८ ॥ वैश्वदेवेनयेहीना आवसथ्येनकर्मणा ॥ सर्वेतेवृषलाज्ञेया वेदयुक्ताअपिद्विजाः ॥ २९ ॥ येषामध्ययनंनास्ति येचकेचिदनग्नयः ॥ येस्वाचारविहीनावै तेसर्वेशूद्रजातयः ॥ ३० ॥ मृतेहनिपितुर्यस्तुनकुर्याच्छ्राद्धमादरात् ॥ मानुषश्चवरारोहे सद्विजःशूद्रसन्निभः ॥ ३१ ॥ मृतकेयस्तुभुञ्जीत गृहीतशशिभास्करे ॥ गजच्छायासूतकेच तंचशूद्रवदाचरेत् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मचारिणिसंज्ञेच यतौशिल्पिनिदीक्षिते ॥ यज्ञेविवाहेत्वे

प्राप्तहोता है ॥ २७ ॥ वेदके योगसे जो ब्राह्मण के लिये दान देता है वह पहले नरकको जाताहै और ब्राह्मण उसके उपरान्त जाताहै ॥ २८ ॥ और वैश्वदेवकर्म तथा आवसथ्यकर्म से जो हीनहैं वेदसे संयुतभी वे सब ब्राह्मण शूद्र जाननेयोग्य हैं ॥ २९ ॥ जिनके वेदपाठ नहीं है और जो कोई अग्निरहित ब्राह्मण हैं और जो अपने आचार से, रहित हैं वे सब शूद्र जाति हैं ॥ ३० ॥ और हे वरारोहे ! जो पुरुष पिताके व माताके क्षयाह में आदरसे श्राद्ध नहीं करता है, वह ब्राह्मण शूद्रके समान है ॥ ३१ ॥ और जो ब्राह्मण मृतक व चन्द्रमा, सूर्य के ग्रहण में भोजन करता है व गजच्छाया तथा सूतक में जो ब्राह्मण भोजन करता है उसको शूद्रकी

नाईं जानै ॥ ३२ ॥ और ब्रह्मचारीसंज्ञक तथा संन्यासी व शिल्पी, दीक्षित, यज्ञ व विवाह में और क्षेत्र में किसी प्रकार सूतक नहीं होता है ॥ ३३ ॥ और गोरक्षक, बनिया व शिल्पी और कथिक और दूत व अधिक व्याजलेनेवाले ब्राह्मणोंको शूद्र की नाईं जानै ॥ ३४ ॥ और निषिद्धकर्मोंमें जो ब्राह्मण वर्तमानहोवै और पाखण्डी दुष्कृत व पापी होवै वह ब्राह्मण शूद्रके समान कहागया है ॥ ३५ ॥ व विन नहाये भोजन करनेवाला विष्ठाको भोजन करता है और जप न करनेवाला मनुष्य पीब व रक्तको खाता है और हवन न करके कीटोंको खाता है और न देकर मदिरा को पीता है ॥ ३६ ॥ और पराये अन्नसे जो भोजन करता है उसके बाद मैथुन करता

त्रेच सूतकन्नकदाचन॥३३॥ गोरक्षकान्वणिजकांस्तथाकारुकुशीलवान्॥ प्रेष्यान्वार्द्धुषिकांश्चैव विप्राञ्छूद्रवदाचरेत्॥ ३४॥ ब्राह्मणश्चनिषिद्धेषु वर्त्तमानोवकर्मसु ॥ दाम्भिकोदुष्कृतःपापःसचशूद्रसमःस्मृतः ॥ ३५॥ अस्नाताशीमलंभुङ्क्ते अजपीपूयशोणितम् ॥ अहुत्वाचकृमीन्भुङ्क्ते अदत्त्वामद्यमेवच ॥ ३६ ॥ परान्नेनतुयोभुङ्क्ते मैथुनंचाधिगच्छति ॥ यस्यान्नन्तस्यतेपुत्रा अन्नाच्छुक्रंप्रवर्त्तते ॥ ३७ ॥ राजान्नंतेजआदत्ते शूद्रान्नंब्रह्मवर्चसम् ॥ आयुःसुवर्णकारान्नं यशश्च र्मावकर्त्तिनः ॥ ३८ ॥ कारुकान्नंप्रजाहन्ति बलंनिर्णेजकस्यच ॥ गणान्नंगणिकान्नंच लोकेभ्यःपरिकृन्तति ॥३९॥ पूयंचिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियम् ॥ विष्ठावार्द्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणोमलम् ॥ ४० ॥ गायत्रीसारमात्रोपि वरंविप्रःसुयन्त्रितः ॥ नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ ४१ ॥ सद्यःपततिमांसेन लाक्षयालवणेनच ॥

है तो जिसका अन्न होवै उसके वे पुत्रहैं क्योंकि अन्नसे वीर्य प्रवृत्त होता है ॥३७॥ राजाका अन्न तेजको लेता है और शूद्रका अन्न ब्रह्मतेजको लेताहै तथा सोनारका अन्न आयुर्बल व चमार का अन्न यशको लेताहै ॥ ३८ ॥ व शिल्पीका अन्न सन्तानको नाशकरता है और धोबी का अन्न बलको विनाशता है और ज्योतिषी व वेश्या का अन्न स्वर्गादिलोकों से काटताहै ॥ ३९ ॥ वैद्यका अन्न पीब व पुंश्चली का अन्न वीर्य और अधिक व्याज लेनेवाले का अन्न विष्ठा और शस्त्रोंको बेंचनेवालेका अन्न मल (विष्ठाको छोड़कर अन्य मल) है ॥ ४० ॥ और गायत्री सारांशवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ व सुयन्त्रित होताहै और चतुर्वेदी ब्राह्मण अयन्त्रितहोकर सब खानेवाला व

सब वस्तुको बेंचनेवाला श्रेष्ठ नहीं है ॥ ४१ ॥ ब्राह्मण मास लाख व नमक बेंचनेसे उसीक्षण पतित होजाताहै और दूध बेंचनेसे तीन दिनमें शूद्र होजाताहै ॥ ४२ ॥ और रसों (गुड़ादिकों) को रस (घृतादिकों) से बदलना चाहिये और नमकको रसोंसे न बदलना चाहिये और पकेहुये भोजनको बिन पके अन्नसे बदलै व धान्य से उसीके बराबर तिलों को बदलना चाहिये ॥ ४३ ॥ जो ब्राह्मण भोजन, उबटन व दान के सिवा तिलोंसे अन्य (विक्रयादि) कर्म करता है वह कुत्ताके विष्ठा में कीट होकर पितरोंसमेत डूबता है ॥ ४४ ॥ और पुवा, सोना, गऊ, घोड़ा, पृथ्वी व तिलोंका दान लेताहुआ मूर्ख काठकी नाईं भस्म होजाताहै ॥ ४५ ॥ सुवर्ण आ-

त्र्यहेणशूद्रोभवति ब्राह्मणःक्षीरविक्रयात् ॥ ४२ ॥ रसान्रसैर्निमातव्यो नत्वेवलवणंरसैः ॥ कृतान्नंचाकृतान्नेन तिला धान्येनतत्समाः ॥ ४३ ॥ भोजनाभ्यञ्जनाद्दानाद्यदन्यत्कुरुतेतिलैः ॥ कृमिभूतःश्वविष्ठायां पितृभिःसहमज्जति ॥ ४४ ॥ अपूपञ्चहिरण्यञ्च गामश्वंपृथिवींतिलान् ॥ अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवतिकाष्ठवत् ॥ ४५ ॥ हिरण्य मायुर्घ्नंहन्ति रत्नञ्चस्वतनुंतथा ॥ पुत्रंप्रपौत्रंदौहित्रमन्यंवातत्कुलोद्भवम् ॥ ४६ ॥ पञ्चयोजनमध्येतु श्रूयतेस्वगुरुर्य दा ॥ तदानातिक्रमेद्दानं दद्यात्पात्रेषुमानवः ॥ ४७ ॥ यतश्चेत्प्रार्थयेल्लोभाद्दीयमानंप्रतिग्रहम् ॥ नतस्यदेयंविद्वद्भिर्नलौ ल्यंशस्यतेयतः ॥ ४८ ॥ सौभाग्यमाप्नुयाल्लोकेनूनंवैरसवर्जनात् ॥ आयुष्मत्यःप्रजाःसर्वा भवन्त्यामिषवर्ज्जनात् ॥ ४९ ॥ चीरवल्कलधारेण वस्त्राण्याभरणानिच ॥ नागाधिपत्यमाप्नोति ह्युपवासेनमानवः ॥ ५० ॥ क्रीडतेसत्यवाक्ये

युर्बलको नाशता है व रत्नका दान अपने शरीरको नाशता है और पुत्र, प्रपौत्र, नाती व अन्य उस कुलमें उपजेहुये पुरुषको नाशता है ॥ ४६ ॥ जब पांच योजनके मध्यमें अपना गुरु सुन पड़ै तो उसको उल्लघन न करै वरन पात्रोंमें मनुष्य दान को देवै ॥ ४७ ॥ दिये जातेहुये दानको जो लोभसे प्रार्थनाकरै उसको विद्वानों करके न देना चाहिये क्योंकि सतृष्णता नहीं उत्तम है ॥ ४८ ॥ रस विक्रयके वर्जनसे ब्राह्मण संसार में निश्चयकर सौभाग्यको प्राप्तहोताहै और मांस विक्रयके वर्जन से सब प्रजा (सन्तान) आयुष्मान् होते हैं ॥ ४९ ॥ और चीर, वल्कल के धारण से ब्राह्मण वस्त्र व आभूषणों को पाता है व उपवास से मनुष्य नागोंकी स्वामिता को

दम्भके कारण दियागया है व क्रोधके वशसे तथा प्रयोजनके कारण जो दियागयाहै उसको बालकपन में भोगता है ॥ १३ ॥ और देश, काल व पात्रमें शुद्ध मनसे जो न्यायसे इकट्ठा कियेहुये धनको देता है उसको वह पुरुष यौवन में भोगता है ॥ १४ ॥ और अन्यायसे इकट्ठा किया हुआ जो धन अपात्र में दियाजाता है और जो क्लिष्ट व हीन दियागयाहै उसको मनुष्य वृद्धतामें भोगताहै ॥ १५ ॥ इसलिये हे शुभे ! शठतावर्जित पुरुष श्रद्धासे विधिपूर्वक उत्तमता से इकट्ठा कियाहुआ धन देश, काल व सुपात्रमें युक्तकरै॥ १६॥ वेदपाठसे संयुक्त व योगवान् तथा शान्त व पुराणको जाननेवाले तथा पापभयवाले और स्त्रियोंके ऊपर क्षमा करनेवाले, धर्मवान्

र्थस्यकारणात् ॥ १३ ॥ देशेकालेचपात्रेच शुद्धेनमनसातथा ॥ न्यायार्जितंचयोदद्याद् यौवनेसतदश्नुते ॥ १४ ॥ अन्यायेनार्जितंद्रव्यमपात्रेप्रतिपादितम् ॥ क्लिष्टञ्चहीनंयद्दत्तं वृद्धभावेतदश्नुते ॥ १५ ॥ तस्माद्देशेचकालेच सुपात्रे विधिनाशुभे ॥ शुभार्जितंप्रयुञ्जीत श्रद्धयाशाठ्यवर्जितः ॥ १६ ॥ स्वाध्यायाढ्यंयोगवन्तंप्रशान्तम्पौराणज्ञंपापभीतिंविहन्तम् ॥ स्त्रीषुक्षान्तंधार्मिकंगोशरण्यं वृत्ताक्रान्तंतादृशंपात्रमाहुः ॥ १७ ॥ सत्यंदमस्तपःशौचंसन्तोषोनैष्ठ्यमार्जवम् ॥१८॥ ज्ञानंशमोदयादानमेतत्पात्रस्यलक्षणम् ॥ एवंविधेतुयःपात्रेगामेकाञ्चप्रयच्छति॥ १९॥ समानवत्सांकपिलां धेनुंसर्वगुणान्विताम् ॥ रौप्यपादांस्वर्णशृङ्गीं रुद्रलोकेमहीयते ॥ २० ॥ एकादशगुणंदद्याद्दशदद्याच्चगोशतीम् ॥ शतंसहस्रगादद्यात्सात्वनल्पफलास्मृता ॥ २१ ॥ सुशीलारूपसम्पन्ना तरुणीचपयस्विनी ॥ सवत्सान्यायलब्धाच प्रदेया

और गऊकी रक्षा करनेवाले व उत्तम आचारसे संयुत वैसे पात्रको विद्वानोंने कहाहै ॥ १७ ॥ और सत्य, दम, तपस्या, शौच, सन्तोष, निष्ठता व कोमलता ॥१८॥ ज्ञान, शम, दया, और दान यह पात्रका लक्षण है ऐसे पात्रमें जो समान बछड़ावाली तथा सब गुणोंसे संयुत, चांदी के खुर व सोने के सींगवाली एक कपिला गऊको देता है वह शिवलोक में पूजाजाता है ॥१९।२०॥ एक गऊ दशगुने फलको देती है और दश सौ गौवोंके फलको देती हैं और सौ गऊ हज़ार गऊके फलको देती हैं क्योंकि वह गऊ बहुत फलदायिनी कहीगई है ॥ २१ ॥ उत्तम स्वाभाववाली व रूपसंयुक्त, युवानी और दूध देनेवाली, बछड़ासमेत व न्यायसे मिलीहुई गऊ ब्राह्मण

के लिये देना चाहिये ॥ २२ ॥ और बांझ व रोग से हीन अंगोंवाली, दुष्टा, वृद्धा व मरे बछड़ेवाली तथा अन्यायसे मिलीहुई व दूर टिकीहुई ऐसी गऊको न देवै ॥ २३ ॥ हे देवदेवेशि ! जो मनुष्य ऐसी पूर्वोक्त गऊको देता है वह प्रत्यक्षही उत्तम गतिको प्राप्तहोताहै और महादेवजी प्रसन्न होतेहैं ॥ २४ ॥ क्रोधवती, दुष्टा, दुर्बली, अरोगिणी और मूल्य न देनेसे जो लाईगई है वह न देना चाहिये और ब्राह्मणों के लिये जो क्लेश देती है उसके दाताके स्वर्गादिक लोक निष्फल होतेहैं ॥ २५ ॥ अतिथिप्रिय, शान्त, निर्धनी, अग्निहोत्री व वेदपात्र के लिये दीहुई एकभी गऊ बहुत गुणवती होती है ॥ २६ ॥ व हे देवि ! ज्ञानसे दुर्बल जो ब्राह्मण गऊको बेंचता है

ब्राह्मणायगौः ॥ २२ ॥ वन्ध्यासुरोगहीनाङ्गी दुष्टावृद्धामृतप्रजा ॥ अन्यायलब्धादूरस्थानेदृशीङ्गांप्रदापयेत् ॥ २३ ॥ यो हीदृशीङ्गांददाति देवदेवेशिमानवः ॥ सउत्तमांगतिंयाति हृष्यतेचमहेश्वरः ॥ २४ ॥ रुष्टादुष्टादुर्बलाव्याधिताच नोदातव्यायाचमूल्यैरदत्तैः ॥ क्लेशंविप्रेभ्यश्चयाःसंयुनक्ति तस्यादातुर्निष्फलाश्चैवलोकाः ॥ २५ ॥ अतिथिप्रियशान्ताय सीदतेचाहिताग्नये ॥ श्रोत्रियायतथैकापि दत्ताबहुगुणाभवेत् ॥ २६ ॥ विक्रीणातिचयोदेवि ब्राह्मणोज्ञानदुर्बलः ॥ नासौप्रशस्यतेप्राप्तुं ब्राह्मणोनैवसंस्मृतः ॥ २७ ॥ बहुभ्योनप्रदेयानि गांगृहंशरणंस्त्रियः ॥ प्रासादायत्रसौवर्णा रौप्यरत्नोज्ज्वलास्तथा ॥ २८ ॥ वराश्चाप्सरसोयत्र तत्रगच्छन्तिगोप्रदाः ॥ २९ ॥ नास्तिभूमिसमन्दानं नास्तिगङ्गासमासरित् ॥ नास्तिसत्यात्परोधर्मो नान्योदेवोमहेश्वरात् ॥ ३० ॥ उच्चापाषाणयुक्ताच नसन्दग्धानचोषरा ॥ ननदीकूलविकटा भूमिर्देयाकदाचन ॥ ३१ ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गेवसतिभूमिदः ॥ अदातानानुमन्ताच तानेवनरकेवसेत् ॥ ३२ ॥

वह गऊपाने के लिये प्रशस्त नहीं है और वह ब्राह्मण नहीं कहागया है ॥ २७ ॥ गऊ, घर, शरण व स्त्री बहुतों के लिये न देना चाहिये जहां चांदी व रत्नोंसे सफेद सोनेके मन्दिर हैं ॥ २८ ॥ और जहां उत्तम अप्सराहैं वहां गौवों के देनेवाले जातेहैं ॥ २९ ॥ पृथ्वीके बराबर दान नहीं है व गङ्गाके समान नदी नहीं है व सत्यसे परे धर्म नहीं है और महादेवजी से परे अन्य देवता नहीं है ॥ ३० ॥ न ऊंची न पत्थरसंयुक्त न जलीहुई और न ऊपरवाली और न नदीके कूलसे विकटभूमि कभी देना चाहिये ॥ ३१ ॥ भूमि देनेवाला पुरुष साठ हज़ार वर्षतक स्वर्गमें बसता है और न देनेवाला, न अनुमोदन करनेवाला उतनेही वर्षोंतक नरक में बसता है ॥ ३२ ॥

जिसके घरमें स्थित होताहै ॥ ५२ ॥ हे देवेशि! उसके घरमें तीर्थ व आपही शिवजी स्थित होतेहैं और यहां बहुत कहने से क्या है वह मोक्षका पात्र होताहै ॥५३॥ इसको दुर्जनके लिये न देना चाहिये और नास्तिक व पाखण्डी के लिये न देना चाहिये वरन इस शास्त्रको शान्त, दान्त व शैव ब्राह्मणके लिये देनाचाहिये ॥५४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाश्राद्धकल्पवर्णनन्नामद्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मार्कण्डेश्वरशिवहिं जिमि थाप्योहै मुनिनाथ । दोसौ तीजेमें सोई वर्णित है शुभगाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे उत्तर दिशाके भागमें

बहुनात्रकिमुक्तेन भवेन्मोक्षस्यभाजनम् ॥ ५३ ॥ नचैतत्पिशुनेदेयं नास्तिकेदाम्भिकेतथा ॥ इदंशान्तायदान्ताय देयं शैवद्विजन्मने ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेश्राद्धकल्पवर्णनंनामद्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०२॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मार्कण्डेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्माद्धुत्तरादिग्भागे मार्कण्डेयप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ सावित्र्याःपूर्वभागेतु नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ महर्षिरभवत्पूर्वं मार्कण्डेयइतिश्रुतः ॥ २ ॥ अजरश्चामरश्चैव प्रसादात्पद्मयोनिनः ॥ सगत्वातत्रविप्रेन्द्रो देवदेवस्यशूलिनः ॥ ३ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास ज्ञात्वातत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ सतम्पूज्यविधानेन स्थित्वादक्षिणतोमुनिः ॥ ४ ॥ पद्मासनपरोभूत्वा ध्यानावस्थस्तदाभवत् ॥ तस्यध्यानरतस्यैव अयुतान्यर्बुदानिवै ॥ ५ ॥ युगानांसमतीतानि नजागर्तिमुनीश्वरः ॥ अथवल्मीकःसमभवत्प्रासादाकारसंस्थितेः ॥ ६ ॥ कालेनमहता

मार्कण्डेयजी से थापेहुये उत्तम मार्कण्डेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि सावित्रीजी से - पूर्वदिशाके भागमें थोडेही दूरपै स्थितहैं पुरातन समय मार्कण्डेय ऐसे प्रसिद्ध महर्षि हुयेहैं ॥ २ ॥ जोकि ब्रह्माकी प्रसन्नता से अजर अमर हुये हैं उन द्विजेन्द्रने वहां जाकर उस क्षेत्रको उत्तम जानकर त्रिशूलधारी देवदेव शिवजीके लिंगको थापन किया और वे मुनि दक्षिणओर स्थित होकर उन शिवजीको विधिसे पूजकर॥ ३ । ४ ॥ पद्मासन में तत्पर होकर उस समय ध्यान में स्थितहुये आर ध्यान मे लगे उन मुनिके दशलाख अरब ॥ ५ ॥ युग व्यतीत होगये और मुनीश्वर मार्कण्डेयजी नहीं जगे इसके अनन्तर हे देवि ! बहुत समय से पवनसे उपजीहुई

धूलियोंसे मन्दिराकारकी स्थितिका लोपहोगया इसके उपरान्त किसीसमय मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी जगे ॥ ६ । ७ ॥ और उन्होंने धूलिसे व्याप्त उस सब शिवमन्दिरको देखा तदनन्तर खोदकर मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी उससे निकले ॥ ८ ॥ व हे भामिनि! उन्होंने उसके पूजनकेलिये बडा द्वार किया उसमें पैठकर जो भक्तिसे वृषभध्वज शिवजी को पूजताहै ॥ ९ ॥ वह उत्तमस्थान को प्राप्त होताहै जहां कि सदा शिवदेवजी हैं देवीजी बोलीं कि मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी कैसे अमरता को प्राप्तहुये हैं ॥ १० ॥ यह कौतुक हुआ है इसलिये तुम कहने के लिये योग्यहो जिसलिये हे शङ्करजी ! पृथ्वी में प्राणियों की अमरता नहीं है ॥ ११ ॥ और वे मार्कण्डेय

देवि पांशुभिर्मरुतोद्धवैः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य प्रबुद्धोमुनिसत्तमः ॥ ७ ॥ अपश्यद्रजसाव्याप्तं तत्सर्वंशिवमन्दिरम् ॥ ततस्तस्माद्विनिष्क्रान्तः खनित्वामुनिपुङ्गवः ॥ ८ ॥ अकरोत्समहाद्वारं पूजार्थंतस्यभामिनि ॥ प्रविश्यतत्रयोभक्त्या पूजयेद्वृषभध्वजम् ॥ ९ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ देव्युवाच ॥ अमरत्वंकथंप्राप्तो मार्कण्डोमुनिपुङ्गवः ॥ १० ॥ अभवत्कौतुकंह्येतत तस्मात्त्वंवक्तुमर्हसि ॥ अमरत्वंयतोनास्ति प्राणिनांभुविशङ्कर ॥ ११ ॥ देवानामपिकल्पान्तं सकथंनमृतोमुनिः ॥ ईश्वर उवाच ॥ तथैवाहम्प्रवक्ष्यामि यथासअमरोभवत् ॥ १२ ॥ आसीन्मुनिःपुराकल्पे मृकण्डइतिविश्रुतः ॥ भृगोःपुत्रोमहाभागः सभार्यस्तपसिस्थितः ॥ १३ ॥ तस्यपुत्रस्तदाजातो वसतस्तुवनान्तरे ॥ सपञ्चवार्षिकोभूत्वा बालएवगुणान्वितः ॥ १४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य ज्ञानीतत्रसमागतः ॥ तेनदृष्टस्तदाबालः प्राङ्गणेविचरन्प्रिये ॥ १५ ॥ स्थित्वासुचिरंकालं पुत्रार्थंप्रतिनोदितः ॥ तस्यपुत्रार्थमहसत्सामुद्रज्ञोविदुत्तमः ॥ १६ ॥ हा

मुनि देवताओं के भी कल्पान्ततक क्यों नहीं मरे महादेवजी बोले कि मैं वैसाहीं कहूंगा कि जिसप्रकार वे मार्कण्डेयजी अमरहुयेहैं ॥ १२ ॥ पुरातन समय कल्पमें भृगुके पुत्र मृकण्ड ऐसे प्रसिद्ध हुयेहैं वे महाभाग स्त्रीसमेत तपस्या में स्थितहुये ॥ १३ ॥ उससमय वनके मध्यमें बसते हुये उनके पुत्र पैदाहुआ वह पांचवर्ष का होकर बालकही गुणोंसे संयुतहुआ ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर किसी समय वहां ज्ञानी आया व हे प्रिये! उसने आगन में घूमतेहुये बालक को उससमय देखा ॥ १५ ॥ और बहुत समय स्थित होकर वह पुत्रके लिये प्रेरणा कियागया और सामुद्रिक को जाननेवाला उत्तम विद्वान् उसके पुत्रके लिये हँसता भया ॥ १६ ॥ औ विस्मय-

संयुतचित्तवाले उससे हास्यका कारण पूंछागया ॥ १७ ॥ कि हे विप्रजी ! तुमने मेरे पुत्रको देखकर क्यों हास्य किया हे ब्रह्मन् ! उस विषय में मुझसे यथायोग्य कारण को कहिये ॥ १८ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे द्विजोत्तम ! मैं मनुष्यों के लक्षणों का यथार्थ जाननेवाला हूं हे महामुने ! तुम्हारे पुत्रके तेंतीस सौ लक्षण देखपडते हैं कि जिनसे युक्त मनुष्य कहीं नहीं मरताहै और इसकी छः महीने में मृत्युहोगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९।२० ॥ इसको मैं शास्त्रके बलसे जानताहूं तुम शोचनेके योग्य नहीं हो ज्ञानी से कहेहुये इस भयङ्कर वचन को सुनकर ॥ २१ ॥ उससमय पिताने बालकका यज्ञोपवीत किया और आयेहुये ब्राह्मण को देखकर ऋषिने इस

स्यस्यकारणंपृष्टो विस्मयान्वितचेतनः ॥ १७ ॥ कस्मान्मेसुतमालोक्य स्मितंविप्रकृतन्त्वया ॥ तत्रमेकारणंब्रह्मन् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ अहंलक्षणतत्त्वज्ञो मनुष्याणांद्विजोत्तम ॥ त्रयस्त्रिंशच्छतान्यस्यलक्षणानिमहामुने ॥ १९ ॥ तवपुत्रस्यदृश्यन्ते यैर्युक्तोनम्रियेत्क्वचित् ॥ षण्मासान्मृत्युरेवास्य भविष्यतिनसंशयः ॥ २० ॥ एतच्छास्त्रबलाद्वेद्मि मात्वंशोचितुमर्हसि ॥ एतच्छ्रुत्वावचोरौद्रं ज्ञानिनासमुदाहृतम् ॥ २१ ॥ व्रतोपनयनंचक्रे बालकस्यपितातदा ॥ आहचैनमृषिःपुत्रंदृष्ट्वाब्राह्मणमागतम् ॥ २२ ॥ अभिवादयतपोवृद्धांस्ततःश्रेयोह्यवाप्स्यसि ॥ एवमुक्तस्तदापुत्रःकरोत्येवाभिवादनम् ॥ २३ ॥ नवर्णावरजंवेत्ति बालभावाद्वरानने ॥ पञ्चमासाह्यतिक्रान्ता दिवसाःपञ्चविंशति ॥ २४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु प्राप्ताःसप्तर्षयोऽमलाः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तेनमार्गेणभामिनि ॥ २५ ॥ बालेनतेनसर्वेच यथावदभिवन्दिताः ॥ आयुष्मान्भवतैरुक्तः सबालोदण्डमेखली ॥ २६ ॥ उक्तंतैस्तुपुनर्बालं वीक्ष्यतेक्षीणजीवितम् ॥

पुत्रसे कहा ॥ २२ ॥ कि तपस्या से वृद्ध मुनियोंको प्रणामकर तदनन्तर कल्याणको प्राप्तहोगे उससमय ऐसा कहाहुआ पुत्र प्रणाम करताथा ॥ २३ ॥ व हे वरानने ! शिशुता से वह शूद्रजाति से उपजे हुए मनुष्यको नहीं जानताथा जब पांच महीना और पचीस दिन बीतगये ॥ २४ ॥ इसी अवसर में हे भामिनि ! तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से उसी मार्गकरके निर्मल सप्तर्षिलोग प्राप्तहुये ॥ २५ ॥ और उस बालक ने सबोंको यथायोग्य प्रणाम किया और उन्होंने दण्ड व मेखलाको धारण कियेहुये

उस बालक से कहा कि आयुष्मान् होवो ॥ २६ ॥ और उन्होंने फिर क्षीण आयुवाले बालकको देखकर कहा कि तुम्हारा पांच दिन आयुर्बल है तदनन्तर ऐसा जानकर वे असत्य से डरगये ॥ २७ ॥ और वे सप्तर्षि ब्रह्मचारी को लेकर ब्रह्माके समीप गये व आगे बालकको स्थापित कर उन्होंने ब्रह्माको प्रणाम किया ॥ २८ ॥ तदनन्तर उस बालकने भी ब्रह्माको प्रणाम किया और ब्रह्माने सप्तर्षियों के समीप बालकसे कहा कि दीर्घजीवी होवो ॥ २९ ॥ तदनन्तर वे मुनि ब्रह्मासे वचनको सुनकर प्रसन्न हुये और ब्रह्माने उन विस्मित ऋषियोंको देखकर कहा ॥ ३० ॥ कि तुम किसकार्य से आये हो और किसने बालक को दिया है ॥ ३१ ॥ ऋषिलोग बोले

दिनानिपञ्चतेआयुर्ज्ञात्वाभीतानृतात्ततः ॥ २७ ॥ ब्रह्मचारिणमादाय गतास्तेब्रह्मणोन्तिकम् ॥ प्रतिष्ठाप्याग्रतोबालं प्रणेमुस्तेपितामहम् ॥ २८ ॥ ततस्तेनापिबालेन ब्रह्माचैवाभिवादितः ॥ चिरायुर्ब्रह्मणाबालः प्रोक्तःसप्तर्षिसंनिधौ ॥ २९ ॥ ततस्तेमुनयःप्रीताः श्रुत्वावाक्यंपितामहात् ॥ पितामहस्तुतान्दृष्ट्वा ऋषीन्प्रोवाचविस्मितान् ॥३०॥ केनकार्येणचायाताः केनबालोनिवेदितः ॥ ३१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ भृगोःपुत्रोमृकण्डस्तु क्षीणायुस्तस्यबालकः ॥ अकालेचापिसज्ञात्वा बबन्धास्यचमेखलाम् ॥ ३२ ॥ यज्ञोपवीतंचततः पुत्रस्तेनप्रबोधितः ॥ यंकञ्चिद्रक्ष्यसेलोके भ्रमन्तंभूतलेद्विजम् ॥ ३३ ॥ तस्याभिवादनंकार्यं नित्यमेवहिपुत्रक ॥ ततोवयमनेनैव दृष्टाबालेनसत्तम ॥ ३४ ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दैवयोगात्पितामह ॥ चिरायुरेषवैप्रोक्त अस्माभिस्त्वाभिवादितैः ॥ ३५ ॥ त्वत्सकाशंसमानीतस्त्वयाप्येवमुदाहृतः ॥ कथंनानृतिनोदेव वयञ्चभवतासह ॥ ३६ ॥ उवाचबालमुद्दिश्य प्रहस्यपद्मसम्भवः ॥ मत्समोह्यायुषाबालो

कि भृगु के पुत्र मृकण्डुजी हुये हैं उसका यह क्षीणआयुवाला बालक है उसने यह जानकर असमय में इसके मेखला को बांध दिया ॥ ३२ ॥ व यज्ञोपवीत किया उसके उपरान्त उसने पुत्रको प्रबोध किया कि पृथ्वीमें घूमतेहुये जिस ब्राह्मण को देखना ॥ ३३ ॥ हे पुत्रक ! उसका सदैव तुमको प्रणाम करना चाहिये तदनन्तर हे सत्तम, पितामहजी ! तीर्थयात्रा के प्रसंग से इस बालक ने दैवयोग से हमलोगोंको देखा और प्रणाम कियेहुये हमलोगों ने इससे कहा कि दीर्घजीवी होवो ॥ ३४ । ३५ ॥ और तुम्हारे समीप लाये हुये इसको तुमने भी ऐसाही कहा हे देव ! आपसमेत हमलोग कैसे असत्यवादी न होवैंगे ॥ ३६ ॥ कमल से उपजेहुये

ब्राह्मजी ने हँसकर बालक को उद्देश कर कहा कि मार्कंडेय बालक आयुर्बल से मेरे समान होगा ॥ ३७ ॥ और कल्प के आदि व अन्त में मेरा सहायक होगा तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये मुनियों ने मृकण्ड मुनि के पुत्र को लेकर ॥ ३८ ॥ उसी स्थान में उसको छोड़ दिया जहा से गये थे और ब्राह्मणलोग तीर्थ यात्रा को चले गये और मार्कंडेयजी घरको चले गये ॥ ३९ ॥ घर को जाकर इसके अनन्तर मुनिश्रेष्ठ मृकण्डजी से बोले कि हे पिताजी ! सात मुनिलोग मुझको ब्रह्मलोक को लेगये थे ॥ ४० ॥ और ब्रह्मा ने मुझको कहा कि यह बालक कल्प के आदि व अन्त में मेरा मित्र होगा और मेरे तुल्य आयुर्बलवाला होगा इसमें संदेह नहीं है

मार्कण्डेयोभविष्यति ॥ ३७॥ कल्पस्यादौतथाचान्ते सहायोनोभविष्यति ॥ ततस्तुमुनयःप्रीता गृहीत्वामुनिदारकम् ॥ ३८ ॥ तस्मिन्नेवप्रदेशेतं मुमुचुःप्रस्थितायतः ॥ तीर्थयात्रांगताविप्रा मार्कण्डेयोगृहंययौ ॥ ३९ ॥ गत्वागृहमथोवाच मृकण्डंमुनिसत्तमम् ॥ ब्रह्मलोकमहन्नीतो मुनिभिस्तातसप्तभिः ॥ ४० ॥ उक्तोहंब्रह्मणाकल्पस्यादौचान्तेचमेसखा ॥ भविष्यतिनसन्देहो मत्समायुश्चबालकः ॥ ४१ ॥ ततस्तैःपुनरानीतो मुक्तश्चैवाश्रमंप्रति ॥ ४२ ॥ मार्कण्डेयवचःश्रुत्वा मृकण्डोमुनिसत्तमः ॥ जगामपरमंहर्षं क्षणमेवामुनासह ॥ ४३ ॥ ततोधैर्यंसमास्थाय वाक्यमेतदुवाचह ॥ अद्यतेसफलंजन्म जीवितंचसुजीवितम् ॥ ४४ ॥ तत्समेहिद्विजश्रेष्ठ यातुतेमानसोज्वरः ॥ नत्वयामेसुपुत्रेण दृष्टोलोकेपितामहः ॥ ४५ ॥ वाजिमेधसहस्रेण राजसूयशतेनच ॥ यन्नपश्यन्तिविद्वांसः सत्वयालीलयास्तुतः ॥ ४६ ॥ दृष्टश्चिरायुरप्येवं ततस्तेनविकेतनः ॥ दिवारात्रमहन्तात महद्दुःखेनदुःखितः ॥ ४७ ॥ ननिद्रामनुगच्छामि तन्मेदुःखं

४१ ॥ तदनन्तर वे मुझको फिर लेआये और आश्रम में उन्होंने छोड़ दिया ॥ ४२ ॥ मार्कण्डेयजी का वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ मृकण्डजी इससमेत क्षणभर बड़े हर्ष को प्राप्त हुये ॥ ४३ ॥ तदनन्तर धैर्य में स्थित होकर यह वचन बोले कि आज तुम्हारा जन्म सफल हुआ और जीवन सुजीवित हुआ ॥ ४४ ॥ इसलिये हे द्विजो-त्तम ! आइये तुम्हारा मानसी ज्वर जावै तुझ उत्तम पुत्र से मैंने लोक में ब्रह्मा को नहीं देखा ॥ ४५ ॥ जिसको विद्वान्लोग हजार अश्वमेधों से सौ राजसूय यज्ञों से जिनको नहीं देखते हैं उसको तुमने लीला से स्तुति किया ॥ ४६ ॥ जिसलिये तुमको इसप्रकार मैंने दीर्घजीवी देखा इसकारण कार्यरहित हुआ याने कोई कार्य

शेष न रहा क्योंकि हे पुत्र ! मैं दिन रात बड़े दुःखसे दुःखित था ॥ ४७ ॥ और मैं निद्राको नहीं प्राप्त होता था वह मेरा बड़ाभारी दुःख जातारहा ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामार्कण्डेयेश्वरमाहात्म्यंनामत्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पुलस्त्येश्वरहि लिङ्गको थाप्यो अहै पुलस्ति । दोसौ चौथे में, सोई बरन्यों कथा प्रशस्ति ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मार्कण्डेश्वरजी के उत्तर दिशा के भाग में पांच धनुष पै स्थित उत्तम पुलस्त्येश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! उनको देखकर व विधि से पूजकर मनुष्य सात जन्मों में इकट्ठा

गतम्महत् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमार्कण्डेयेश्वरमाहात्म्यन्नामत्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २०३ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पुलस्त्येश्वरमुत्तमम् ॥ मार्कण्डेशोत्तरेभागे धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वामानवोदेवि पूजयित्वाविधानतः ॥ सप्तजन्मार्जितंपापं नाशयेन्नात्रसंशयः ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेपुलस्त्येश्वरमाहात्म्यंनामचतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नैर्ऋतेधनुषाष्टके ॥ क्रत्वीश्वरेतिनामानं तञ्चभक्त्याप्रपूजयेत् ॥ १ ॥ हिरण्यदानं दत्त्वाच सम्यग्यात्राफलंलभेत् ॥ २ ॥ क्रत्वीश्वरेतिनामानं मत्वाक्रतुफलप्रदम् ॥ तंदृष्ट्वामानवोदेवि पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ३ ॥ सप्तजन्मानिदारिद्र्यंनदुःखंतस्यजायते ॥ ४ ॥ इति क्रत्वीश्वरमाहात्म्येपञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः २०५ ॥

कियेहुये पापको नाशताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांपुलस्त्येश्वरमाहात्म्यंनामचतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०४ ॥

दो० । क्रत्वीश्वर शिवलिंगकर अहै जौन परभाव । दोसौ पंचम में सोई वर्णित है अतिचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर नैर्ऋत्यदिशा में उससे आठ धनुष पै स्थित क्रत्वीश्वर-ऐसे शिवजी के समीप जावै और उनको भक्ति से पूजै ॥ १ ॥ और सुवर्ण का दान देकर मनुष्य भलीभांति यात्राके फल को प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ हे देवि ! महायज्ञोंके फलको देनेवाले उन क्रत्वीश्वरनामक शिव जी को देखकर मनुष्य पुण्डरीक यज्ञ के फल को पाता है ॥ ३ ॥ और उसको सात जन्मोंतक दरिद्र व दुःख नहीं होता है ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांक्रत्वीश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०५ ॥ ❀ ॥

दो०। कृत्तीश्वर से पूर्व में कश्यपेश इमि नाम। लिंग अहै दोसौ छ में सोई चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि कृत्तीश्वर से पूर्वदिशा के भाग में सोलह धनुष के अन्तर पै महापातकों को नाश करनेवाला कश्यपेश्वरनामक लिंगहै ॥ १ ॥ हे देवि ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य धनवान् व पुत्रवान् होता है और सब पातकोंसे संयुत भी शुद्ध होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकश्यपेश्वरमाहात्म्यंनामषडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

ईश्वर उवाच ॥ कृत्तीशात्पूर्वदिग्भागे धनुषःषोडशान्तरे ॥ कश्यपेश्वरनामेति महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वामानवोदेवि धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥ सर्वपातकयुक्तोपिशुद्ध्यतेनात्रसंशयः ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कश्यपेश्वरमाहात्म्यंनामषडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०६ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ धनुषामष्टमेतस्मादीशानेकश्यपेश्वरात् ॥ कौशिकेश्वरनामेति महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ वशिष्ठतनयंहत्वा तत्रकौशिकसत्तमः ॥ स्थापयामासतल्लिङ्गं मुक्तःपापैर्यतोभवत् ॥ २ ॥ तंदृष्ट्वापूजयित्वातु लभतेवाञ्छितंफलम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकौशिकेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कुमारेश्वरमुत्तमम् ॥ मार्कण्डेश्वरतोदेवि दक्षिणेनातिदूरतः ॥ १ ॥ धनुर्विंशति

दो०। कश्यपेशसे ईशादिशि कौशिकेश शिवनाम। दोसौ सप्तममें सोई चरित अहै सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि उन कश्यपेश्वरजीसे आठ धनुषपै महापातकों को नाश करनेवाला कौशिकेश्वरनामक ऐसा लिंग है ॥ १ ॥ वहां उत्तम कौशिकजी ने वशिष्ठ के पुत्र को मारकर उस लिंग को स्थापन किया कि जिससे पातकों से छूटे हैं ॥ २ ॥ उन शिवजीको देखकर व पूजकर मनुष्य चाहेहुये फलको पाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकौशिकेश्वरमाहात्म्यंनामसप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०७ ॥ ⊛ ॥ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ⊛

दो०। थाप्यो है षण्मुख यथा कुमारेश शिवनाम। दोसौ अष्टम में सोई चरित कह्यो अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम कुमारेश्वरजी

के समीप जावै हे देवि ! मार्कण्डेश्वरजी से दक्षिण में थोड़ेही दूरपै ॥ १ ॥ बीस धनुष पै वहां कार्त्तिकेयजी से थापाहुआ वह लिंग स्थितहै हे भामिनि ! स्वामिकार्त्तिके-
यजी ने वहा भयङ्कर तपस्या कर ॥ २ ॥ परिवार के वध से उपजे हुये पातकों के नाश के लिये वहां लिंग को स्थापन किया तदनन्तर ने पातक से छूटे हैं ॥ ३ ॥
और वैराग्य से यौवन को छोड़कर फिर कुमार अवस्था में स्थित हुये पुरातन समय सुमाली ने पितरों को मारकर उनका आराधन किया है ॥ ४ ॥ व हे देवि ! पिता
के वध से उपजे हुये पातक से वह मुक्त हुआ है कुमारेश्वरनामक जो लिंग महासुरों से पूजित है ॥ ५ ॥ हे भामिनि ! उन कुमार के आगे कूप स्थित है उसमें नहा-

भिस्तत्र स्थितंस्वामिप्रतिष्ठितम् ॥ तत्रकृत्वातपोघोरंकार्त्तिकेयेनभामिनि ॥२॥ परिवारवधोत्थानां पापानांनाशहेतवे ॥
लिङ्गंस्थापितवांस्तत्र समुक्तःकिल्बिषात्ततः ॥ ३ ॥ वैराग्याद्यौवनंत्यक्त्वा कौमारंपुनरास्थितः ॥ पितॄन्हत्वासुमालीच
तमाराधितवान्पुरा ॥ ४ ॥ सोपिमुक्तोभवद्देवि पापात्पितृवधोद्भवात् ॥ कुमारेश्वरनामानं पूजितंयन्महासुरैः ॥ ५ ॥ त
स्याग्रतःकुमारस्य कूपस्तिष्ठतिभामिनि ॥ तत्रयःपूजयेत्स्नात्वा शूलिनंस्वामिपूजितम् ॥ ६ ॥ समुक्तःपातकैःसर्वैर्ग
च्छेत्स्वामिपुरंमहत् ॥ ७॥ शातकुम्भमयंयस्तु ताम्रचूडंद्विजातये ॥ दद्यात्स्वामिनमुद्दिश्य सतुयात्राफलंलभेत् ॥ ८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकुमारेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ * ॥
ईश्वरउवाच ॥ मार्कण्डेश्वरतोदेवि उत्तरेलिङ्गमुत्तमम् ॥ धनुषःपञ्चदशभिर्गौतमेश्वरनामकम् ॥ १ ॥ गुरुंह

[illegible] स्वामिकार्त्तिकेयजी से पूजेहुये त्रिशूलधारी शिवजी को पूजता है ॥ ६ ॥ वह सब पातकों से छूटकर बडे भारी स्वामिकार्त्तिकेयजी के लोक को जाता है जो
[illegible] स्वामिकार्त्तिकेयजी को वंदना कर सोने के मुर्गे को ब्राह्मण के लिये देता है वह यात्रा के फल को पाता है ७ । ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु
[illegible] कुमारेश्वरमाहात्म्यनामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥
[illegible] गौतम नाथ । दो सौ नववें में कह्यो सोई उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! मार्कण्डेश्वरसे उत्तर में पन्द्रह

धनुष पै गौतमेश्वरनामक उत्तम लिंग है ॥ १ ॥ हे देवि ! पुरातन समय पापसे दुःखित गौतमजी गुरु को मारकर वहां लिंगको थापकर वे पापों से छूटगये हैं ॥ २ ॥ वहा नदी में नहाकर जो विधि से कपिलागऊ को देता है वह विधिपूर्वक लिंग को पूजकर पांच पातकों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगौतमेश्वरमाहात्म्यंनामनवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥ ॥ ❀ ॥ ॥

दो० । देवराज लिंगहि यथा थाप्यो हैं सुरराज । दोसौदश में कह्यो है सोइ चरित सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! वहा गौतमेश्वरजी से पश्चिम भाग

त्वापुरादेवि गौतमःपापदुःखितः ॥ तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य सोपिपापैरमुच्यत ॥ २ ॥ यस्तत्रकपिलांदद्यात्स्नात्वानद्यां विधानतः ॥ सम्पूज्यविधिवल्लिङ्गं मुच्यतेपञ्चपातकैः ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगौतमेश्वरमाहात्म्यंनाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २०९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ गौतमेश्वरतस्तत्र देविपश्चिमभागतः ॥ धनुष्षोडशभिर्देवि देवराजेश्वरःस्थितः ॥ १ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास ततःपापैरमुच्यत ॥ यस्तंसमाहितमनाः पूजयिष्यतिमानवः ॥ २ ॥ सचमानुषसम्भूतैः पातकैःसम्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवराजेश्वरमाहात्म्यंनामदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ तत्रैवमानवंलिङ्गं मनुनासम्प्रतिष्ठितम् ॥ पूर्वंहत्वासुतन्देवि मनुःपापसमन्वितः ॥ १ ॥ त्वेत्रंपापहरं

में सोलह धनुष पै देवराजेश्वर स्थित हैं ॥ १ ॥ इन्द्र ने वहां लिंग को स्थापन किया तदनन्तर वे पातकों से छूटे हैं उन शिवजी को सावधान मनवाला जो मनुष्य पूजता है ॥ २ ॥ वह मनुष्ययोनि में उपजे हुये पातकों से छूट जाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवराजेश्वर माहात्म्यनामदेशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मानवेश लिंगहि यथा थाप्योहै मनुराज । दोसौ ग्यारह में सोई कह्यो चरित सुख साज ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! वहींपर मनुजी से थापित मानव

व सब पापसमूहों को नाशनेवाले वहीं पै स्थित रुक्मिणीजी से थापेहुये लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ और वहां महातीर्थ में नहाकर व यत्न से लिंग को पूजकर जो ब्राह्मणों के लिये अन्नको देता है वह सब पातकों से छूट जाताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायारुक्मिणीश्वरमाहात्म्यं नामपञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । तीरथ गात्रोत्सर्गकर प्रेतमोचनहु नाम । भो दोसौसोलहें में सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके दक्षिण में स्थित

स्नात्वामहातीर्थे लिङ्गंसम्पूज्ययत्नतः ॥ विप्रेभ्योदापयेदन्नं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे रुक्मिणीश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंत्रैलोक्यपूजितम् ॥ गात्रोत्सर्गमितिख्यातं तस्यदक्षिणतःस्थितम् ॥ १ ॥ यत्रगात्रंपरित्यक्तं बलभद्रेणधीमता ॥ अन्यैश्चैवमहाभागैर्यादवैस्तत्रसंयुगे ॥ २ ॥ यत्रतेयादवाःक्षीणा ब्रह्मशापबलार्दिताः ॥ तत्पुरुषोत्तमंक्षेत्रं समन्ताद्धनुषांशतम् ॥ ३ ॥ यत्रसाक्षात्स्वयंदेवि तिष्ठतेपुरुषोत्तमः ॥ तदेववैष्णवंक्षेत्रं कलौपातकनाशनम् ॥ ४ ॥ रहस्यंपरमंदेवि तीर्थानांप्रवरंहितत् ॥ पूर्वेकृतयुगेदेवि प्रेततीर्थञ्चसंस्मृतम् ॥ ५ ॥ कलौयुगेतु सम्प्राप्ते गात्रोत्सर्गंततोभवत् ॥ ऋणमोचनपार्श्वेतु मध्येतुपापमोचनात् ॥ ६ ॥ एतन्मध्यंसमाश्रित्य मृतःपापैर्विमु

त्रिलोक से पूजित गात्रोत्सर्ग ऐसे प्रसिद्ध तीर्थ के समीप जावै ॥ १ ॥ जहां कि बुद्धिमान् बलभद्रजी ने शरीर को त्यागकिया है और वहीं युद्धमें अन्य महाभाग यादवों ने शरीरको छोड़ाहै ॥ २ ॥ जहांपर ब्राह्मणके शापबल से विकल वे यादव क्षीणहुये हैं सब ओरसे सौ धनुप वह पुरुषोत्तम क्षेत्रहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! जहा साक्षात् पुरुषोत्तमजी आपही स्थितहैं वहीं वैष्णवक्षेत्र कलियुग में पातकों का विनाशकहै ॥ ४ ॥ हे देवि ! तीर्थोंमें श्रेष्ठ वह बहुतही गुप्तहै हे देवि ! पुरातन समय सतयुगमें प्रेततीर्थ कहागया है ॥ ५ ॥ तदनन्तर कलियुग प्राप्त होनेपर गात्रोत्सर्ग हुआ ऋणमोचन के समीप व पापमोचन के मध्यमें ॥ ६ ॥ इस मध्यको भलीभांति आश्रित

होकर मराहुआ मनुष्य पातकोंसे छूटजाता है हे देवि ! उसकी यात्रामें जो बड़ाभारी फल है वह क्या कहाजावै ॥ ७ ॥ कि जहां स्नानकर हजार अश्वमेधयज्ञों का फल मिलता है ॥ ८ ॥ हे भामिनि ! जहां पीपलवृक्ष को प्राप्त होकर समाधिमें मन को लगायेहुये श्रीकृष्णजी ने ब्रह्मद्वार से दुस्त्यज प्राणोंको छोड़ाहै ॥ ९ ॥ वहां साक्षात् नारायण, बलभद्र व रुक्मिणीजी को विधिसे पूजकर मनुष्य तीनों पातकों से छूटजाता है ॥ १० ॥ वहां स्नानकर जो मनुष्य भक्तिसे पितरों को भलीभांति तर्पण करता है उसके व श्राद्ध देनेवालों के पितर प्रेतत्व से छूटकर मुक्त होजाते हैं ॥ ११ ॥ गोघाती व मदिरापीनेवाला तथा दुर्बुद्धि व ब्रह्मघाती और गुरुकी

च्यते ॥ तस्यकिंवर्ण्यतेदेवि यात्रायांयत्फलंमहत् ॥ ७ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंस्नात्वाह्यवाप्यते ॥ ८ ॥ यत्राश्वत्थंसमासाद्य समाधिन्यस्तमानसः ॥ मुमोचदुस्त्यजान्प्राणान्ब्रह्मद्वारेणभामिनि ॥ ९ ॥ तत्रनारायणंसाक्षाद्बलभद्रञ्चरुक्मिणीम् ॥ पूजयित्वाविधानेन मुच्यतेपातकत्रयात् ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या यःसन्तर्पयतेपितॄन् ॥ प्रेतत्वात्पितरोमुक्ताभवन्तिश्राद्धदायिनाम् ॥ ११ ॥ गोघ्नःसुरापीदुर्मेधाब्रह्महागुरुतल्पगः ॥ तत्रस्नात्वानरःसद्यो विपापःसमपद्यते ॥ १२ ॥ बाल्येवयसियत्पापंवार्द्धकेयौवनेपिवा ॥ अज्ञानाज्ज्ञानतोवापि यःकरोतिनरःप्रिये ॥ १३ ॥ तत्रस्नात्वाप्रमुच्येत तीर्थेगात्रप्रमोचने ॥ तत्रपिण्डप्रदानेन पितॄणांजायतेपरा ॥ १४ ॥ तृप्तिर्वर्षशतंयावदेतदाहपुराहरिः ॥ यःपुनश्चान्नदानन्तु तत्रकुर्यात्समाहितः ॥ १५ ॥ तस्यान्वयेपिदेवेशि नप्रेतोजायतेनरः ॥ देव्युवाच ॥ प्रेततीर्थमितिप्रोक्तं पश्चाद्गात्रविमोचनम् ॥ १६ ॥ एतन्मेवददेवेश प्रेततीर्थस्यकारणम् ॥ १७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि प्रेत

शय्यापै जानेवाला पुरुष उस तीर्थमें नहाकर शीघ्रही पापरहित होताहै ॥ १२ ॥ हे प्रिये ! बाल्यावस्था में और वृद्धता व युवावस्थामें जो मनुष्य अज्ञान या ज्ञानसे जिस पापको करता है ॥ १३ ॥ गात्रमोचननामक तीर्थ में नहाकर उस पापसे छूटजाता है और वहा पिण्डदान से सौ वर्षतक पितरों की परमतृप्ति होतीहै इसको पुरातन समय विष्णुजी ने कहाहै और फिर सावधान होताहुआ जो मनुष्य वहां अन्नदान करताहै ॥ १४ । १५ ॥ हे देवेशि ! उसके वंशमें भी मनुष्य प्रेत नहीं होता है देवीजी बोलीं कि पहले प्रेततीर्थ ऐसा कहागया पश्चात् गात्रमोचन कहागया ॥ १६ ॥ हे देवेश ! प्रेततीर्थके इसकारणको मुझसे कहिये ॥ १७ ॥ महादेवजी बोले

किहे देवि ! सुनिये मैं प्रेततीर्थ के कारण को कहता हूं- जिस को भक्तिसे सुनकर मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाता है ॥ १८ ॥ पुरातन समय प्रशंसितव्रतवाले गौतम नामक महर्षि हुये हैं वे पुण्यदायक उत्तर अयन में श्रीसोमेशजी के देखनेकी इच्छासे भृगुकच्छस्थान से उत्तम प्रभासक्षेत्र में आये और सब तीर्थों में नहाकर सोमेश- देवजी को देखकर ॥ १९ । २० ॥ तदनन्तर तीर्थयात्रा में जातेहुये वे गात्रच्छेद तीर्थको गये इसके अनन्तर हे देवि ! यह ब्राह्मण जबतक सीमा (हद) को आया ॥ २१ ॥ तवतक इसने वहां विष्णुजी के प्यारे वैष्णव वनको देखा व सौ धनुष पुरुषोत्तमनामक क्षेत्रको देखा ॥ २२ ॥ और उस क्षेत्रमे उन्होंने बड़ेभारी वृक्षों पै चढ़े-

तीर्थस्यकारणम् ॥ यच्छ्रुत्वामानवोभक्त्या मुक्तःस्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥१८॥ पुरासीद्गौतमोनाम महर्षिःशंसितव्रतः ॥ भृगुकच्छात्समायातः क्षेत्रेप्राभासिकेशुभे ॥ १९॥ अयनेचोत्तरेपुण्ये श्रीसोमेशदिदृक्षया ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं स्नात्वा तीर्थेषुकृत्स्नशः ॥ २० ॥ गच्छन्सतीर्थयात्रायां गात्रच्छेदंततोगतः ॥ अथासौब्राह्मणोदेवि यावत्सीमामुपागतः ॥ २१॥ तावद्विष्णुप्रियंतत्र ददर्शवैष्णवंवनम् ॥ पुरुषोत्तमनामानं क्षेत्रञ्चधनुषांशतम् ॥ २२ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेसचापश्यत्पञ्चप्रे तान्सुदारुणान् ॥ महावृक्षसमारूढान्महाकायान्महोत्कटान् ॥ २३ ॥ ऊर्द्ध्वकेशाञ्शङ्कुकर्णान्स्नायुबद्धकलेवरान् ॥ २४ ॥ वमन्तोरुधिरोद्गारान् नग्नान्कृष्णकलेवरान् ॥ दृष्ट्वासौभयसन्त्रस्तोविनष्टोस्मीतिचिन्तयन् ॥ २५ ॥ ध्यात्वातु सुचिरंकालं धैर्यमास्थाययत्नतः ॥ केयूयंविकृताकारा दृष्टायूयंमयानच ॥ २६ ॥ नचकाचिद्व्यथायूयं किमर्थंक्षेत्रम ध्यतः ॥ धावमानाःसुदुःखार्ता एतन्मेकौतुकंमहत् ॥ २७ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ वयंप्रेतामहाभाग दूरादिहसमागताः ॥ श्रु

हुये बड़े शरीरवाले व बड़े उग्र तथा भयंकर पांच प्रेतोंको देखा ॥ २३ ॥ कि जिनके ऊपर उठेहुये केश व कीलोंके समान कान थे और नसोंसे जिनके शरीर बँधेथे ॥ २४ ॥ और कालेशरीरवाले तथा-नङ्गे व रुधिरप्रवाहों को वमन करतेहुये प्रेतोंको देखकर भयसे डरेहुये ये यह चिन्तवन करतेरहे कि मैं नष्टहुआ ॥ २५ ॥ और बहुत समयतक ध्यानकर यत्नसे धैर्यमें टिककर बोले कि बिगड़ेहुये आकारवाले तुमलोग कौनहो और मैंने तुमलोगोंको नहीं देखा ॥ २६ ॥ कि कोई दुःख नहींहै और तुम लोग क्षेत्रके मध्यमें बहुत दुःखित होतेहुये किसलिये दौड़तेहो यह मुझको बड़ाकौतुकहै ॥ २७ ॥ प्रेतबोले कि हेमहाभाग ! हमलोग प्रेतहैं और पवित्र व उत्तमतीर्थको

जानकर यहां दूरसे आयेहैं परन्तु प्रवेश नहीं मिलताहै ॥ २८ ॥ और अन्तर्द्धानमें प्राप्त दूतोंके प्रहारों से हमलोग जर्जर कियेगये हैं लेखक,रोहक,शीघ्रग व सूचक ॥ २९ ॥ और पांचवां पर्युषितनामक मैं बड़ा पापकारीहूं गौतमजी बोले कि प्रेतयोनिमें प्रवृत्त तुम सब लोगों के नाम क्यों कियेगये यह मुझको बडा कौतुकहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ प्रेत बोले कि यह मांगतेहुये ब्राह्मण को पृथ्वीमें लिखताथा और कुछ उत्तर नहीं देताथा इससे लेखक कहागयाहै॥ ३२ ॥ व हे विप्रजी ! दूसरा यह ब्राह्मणके भयसे मकानपर चढ़जाता था उससे यह रोहकनामक हुआ और तीसरेको सुनिये ॥ ३३ ॥ कि इसने धनसे संयुत बहुत से ब्राह्मणोंको राजासे सूचित किया इसलिये

त्वातीर्थवरंपुण्यं प्रवेशोनैवलभ्यते ॥ २८ ॥ अन्तर्द्धानगतैर्दूतैः प्रहारैर्जर्जरीकृताः ॥ लेखकोरोहकश्चैव शीघ्रगःसूचकस्तथा ॥ २९ ॥ अहंपर्युषितोनाम पञ्चमःपापकृत्तमः ॥ गौतम उवाच ॥ प्रेतयोनौप्रवृत्तानां किंनामानितुकृत्स्नशः ॥ ३० ॥युष्माकंनिर्मितान्येव एतन्मेकौतुकंमहत् ॥ ३१ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ याचमानस्यविप्रस्य लिखत्येषधरातले ॥ नोत्तरंयच्छतेकिञ्चित्तेनासौलेख्यकःस्मृतः ॥ ३२ ॥ द्वितीयोब्राह्मणभयात् प्रासादमधिरोहति ॥ ततोसौरोहकाख्योभूच्छृणुविप्रतृतीयकः ॥ ३३ ॥ सूचिताबहवोनेन ब्राह्मणावित्तसंयुताः ॥ राज्ञेपापेनतेनासौ सूचकोभुविविश्रुतः ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणैःप्रार्थ्यमानस्तुशीघ्रंधावतिनित्यशः ॥ नकस्मैचिद्ददातिस्मतेनासौशीघ्रगःस्मृतः ॥३५॥मयाकदन्नंदत्तञ्चपर्युषितन्द्विजोत्तम ॥ ब्राह्मणेभ्यःसदात्मानं मिष्टान्नैरप्यपोषयम् ॥ ३६ ॥ तस्मात्पर्युषितोनाम सञ्जातोहंन्धरातले ॥ ३७ ॥ गौतम उवाच ॥ नविनाभोजनेनैव वर्तन्तेप्राणिनोभुवि ॥ किमाहाराभवन्तोवै वदध्वंममकौतुकात् ॥३८॥ प्रेताऊचुः ॥

पृथ्वीमें यह सूचक प्रसिद्ध हुआ ॥ ३४ ॥ और ब्राह्मणों से याचना कियाजाताहुआ यह नित्यही शीघ्र दौड़ता था और इसने किसीके लिये नहीं दिया उससे यह शीघ्रगामी कहागया है ॥ ३५ ॥ व हे द्विजोत्तम ! मैंने ब्राह्मणों के लिये कदन्न व पर्युषित अन्न दिया और सदैव अपनाको मिष्टान्नोंसे पोषण किया ॥ ३६ ॥ उसकारण भूतलमें मैं पर्युषितनामक हुआ ॥ ३७ ॥ गौतमजी बोले कि बिन भोजनके प्राणी पृथ्वी में नहीं वर्तमान होते हैं इसलिये कौतुक के कारण मुझसे कहिये कि आप

लोगोंका क्या आहारहै ॥ ३८ ॥ प्रेत बोले कि हे द्विजोत्तम ! भोजनका समय प्राप्त होनेपर जहां युद्ध वर्तमान होताहै उस अन्नके रसको हम सब खातेहैं ॥ ३९ ॥ और जहां मनुष्य बिन लीपीहुई पृथ्वीमें खातेहैं और जहां शौचरहित ब्राह्मणहैं वहां हमलोगों का भोजन होता है ॥ ४० ॥ और जो बिन पांव धोयें व जो दक्षिणमुख होकर भोजन करता है व जो शिर लपेटकर भोजन करताहै उसके अन्नको सदैव प्रेत खातेहैं ॥ ४१ ॥ और जहां रजस्वला स्त्री श्राद्धको देखती है व चाण्डाल और शूकर जहां श्राद्धको देखताहै वह अन्न हमलोगोंका होताहै ॥ ४२ ॥ जिस घरमें सदैव उच्छिष्ट व बखेड़ा होवै और जो घर वैश्वदेवसे रहितहै वहांहमलोग भोजन करते

प्राप्तेभोजनकालेतु यत्रयुद्धंप्रवर्तते ॥ तस्यान्नस्यरसंसर्वे भुञ्जानाद्विजसत्तम ॥ ३९ ॥ नानुलिप्तेधरापृष्ठे यत्रभुञ्जाति मानवः ॥ भ्रष्टशौचाद्विजायत्र तत्रास्माकंचभोजनम् ॥४०॥ अप्रक्षालितपादस्तु योभुङ्क्तेदक्षिणामुखः ॥ योवेष्टितशिरा भुङ्क्ते प्रेताभुञ्जन्तिनित्यशः ॥ ४१ ॥ श्राद्धंसंपश्यतेयत्रनारीचैवरजस्वला ॥ अन्त्यजःशूकरश्चान्नतदस्माकंप्रजायते ॥ ४२ ॥ यस्मिन्गृहेसदोच्छिष्टं सदाचकलहोभवेत् ॥ वैश्वदेवविहीनन्तु तत्रभुञ्जामहेवयम् ॥ ४३ ॥ विप्र उवाच ॥ युष्माकंकीदृशेगेहे प्रवेशोनचविद्यते ॥ सत्यंवदस्वमेसत्यंसत्यंसाधुषुसाम्प्रतम् ॥ ४४ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ वैश्वदेवभवायत्र धूम्रवर्तिःप्रदृश्यते ॥ तस्मिन्गेहेनचास्माकं प्रवेशोविद्यतेद्विज ॥ ४५ ॥ यस्मिन्गेहेप्रभातेतुक्रियतेचोपलेपनम् ॥ विद्यते वेदनिर्घोषस्तत्रास्माकंनकिञ्चन ॥ ४६ ॥ गौतम उवाच ॥ केनकर्मविपाकेन प्रेतत्वंव्रजतेनरः ॥ एतन्मेविस्तरेणैव यथावद्वक्तुमर्हथ ॥ ४७ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ न्यासापहारिणोयेचयेचोच्छिष्टाव्रजन्तिच ॥ गोब्राह्मणानांहन्तारः प्रेतत्वन्तेव्र

हैं ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण बोले कि तुमलोगों का कैसे घरमें प्रवेश नहीं होताहै मुझसे यह सत्य सत्य कहिये क्योंकि साधुओंमें सत्य योग्यहै ॥ ४४ ॥ प्रेत बोले कि हे द्विज ! जहां वैश्वदेव से उपजीहुई धुंवाकी वर्ति देख पड़ती है उस घरमें हमलोगों का प्रवेश नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ और जिस घरमें प्रातःकाल लेप कियाजाता है व वेदशब्द होताहै वहां हमलोगों का कुछ नहीं है ॥ ४६ ॥ गौतमजी बोले कि किसकर्म के फल से मनुष्य प्रेतता को प्राप्तहोता है इसको मुझसे विस्तारही से यथायोग्य कहनेके

योग्यहो ॥ ४७ ॥ प्रेत बोले कि जो धरोहरिको हरलेते हैं जो जूंठे होकर चलते हैं व जो गऊ तथा ब्राह्मणोंको मारनेवाले हैं वे प्रेतत्वको प्राप्त होतेहैं ॥ ४८ ॥ और जो पिशुनता में लगे हैं व जो मनुष्य झूठी गवाही देनेमें तत्परहैं और जो न्यायके पक्ष में नहीं वर्तमान हैं वे मरकर प्रेत होतेहैं ॥ ४९ ॥ और कफ, मूत्र व मलको जो सूर्यनारायण के सामने फेंकते हैं वे मनुष्य प्रेतत्वको प्राप्त होकर बहुत दिनोंतक टिकते हैं ॥ ५० ॥ व हे विप्रजी ! गऊ, ब्राह्मण व रोगियोंके लिये देनेपर मत दीजिये जो ऐसा कहतेहैं वे निश्चय प्रेतहोते हैं ॥ ५१ ॥ और शूद्रका अन्न पेटमें स्थितहोने से यदि ब्राह्मण मरै तो यदि षडङ्ग का जाननेवाला होवै तौभी वह अत्यन्त प्रेतत्व

जन्तिहि ॥ ४८ ॥ पैशून्यनिरतायेच कूटसाक्षिरतानराः ॥ न्यायपक्षेनवर्तन्ते मृताःप्रेताभवन्तिते ॥ ४९ ॥ श्लेष्ममूत्रपुरीषाणि क्षिप्यन्तेभिमुखारवेः ॥ प्रेतत्वंतेसमासाद्य चिरन्तिष्ठन्तिमानवाः ॥ ५० ॥ दीयमानेतुयेविप्र गोषुविप्रातुरेषुच ॥ मादेहीतिप्रजल्पन्ति तेचप्रेताभवन्तिवै ॥ ५१ ॥ शूद्रान्नेनोदरस्थेन यदिविप्रोम्रियेतवै ॥ प्रेतत्वंयातिसोत्यन्तं यद्यपिस्यात्षडङ्गवित् ॥ ५२ ॥ यस्त्रीन्हलेबलीवर्दान् वाहयेत्सद्विजोत्तम ॥ अमावस्यांविशेषेण सप्रेतोजायतेनरः ॥ ५३ ॥ विश्वासघातकोयस्तु ब्राह्मणस्त्रीवधेरतः ॥ गोघ्नःगुरुघ्नःपितृहा सप्रेतोजायतेनरः ॥५४॥ यस्यनैवप्रदत्तानि एकोद्दिष्टानिषोडश ॥ मृतस्यनवृषोत्सर्गःसप्रेतोजायतेनरः ॥ ५५॥ एतद्विसर्वमाख्यातं यत्पृष्टोस्मिद्विजोत्तम ॥ भूयोब्रूहिद्विजश्रेष्ठ यद्यस्तितवसंशयः ॥ ५६ ॥ गौतमउवाच ॥ येनकर्मविपाकेन नप्रेतोजायतेनरः ॥ तन्मेवदाद्यनिःशेषं कौतुकंमेत्रविद्यते ॥ ५७ ॥ प्रेत उवाच ॥ तीर्थयात्रारतोयस्तु देवार्चनपरायणः ॥ ब्राह्मणेषुसदाभक्तो नप्रेतोजायतेनरः ॥ ५८ ॥

को प्राप्तहोताहै ॥ ५२ ॥ व हे द्विजोत्तम ! जो विशेषकर अमावस्यामें तीन बैलोंको हलमें जोतताहै वह मनुष्य प्रेत होताहै ॥ ५३ ॥ और जो विश्वासघाती व ब्राह्मणघाती और स्त्रीके मारनेमें तत्परहै और जो गोघाती, गुरुघाती, पितृघातीहै वह मनुष्य प्रेत होताहै ॥ ५४ ॥ और जिसको सोलह एकोद्दिष्ट नहीं दियेगयेहैं व जिस मरेहुये मनुष्य का वृषोत्सर्ग नहीं हुआहै वह मनुष्य प्रेत होताहै ॥ ५५ ॥ हे द्विजोत्तम ! मुझसे जो पूंछागया यह सब कहागया व हे द्विजोत्तम ! यदि तुम्हारे सन्देह होवै तो फिर कहिये ॥ ५६ ॥ गौतमजी बोले कि जिस कर्मके फलसे मनुष्य प्रेत नहीं होता है उस सबको मुझ से आज कहिये क्योंकि इस में मुझको कौतुक है ॥ ५७ ॥

प्रेत बोला कि जो तीर्थयात्री में रतहै और देवपूजन में लगाहुआ है व जो सदैव ब्राह्मणों में भक्तहै वह मनुष्य प्रेत नहीं होताहै ॥ ५८ ॥ जो नित्य शास्त्रोंको सुनता है व जो पण्डितों को सेवताहै तथा जो सदैव वृद्धोंसे पूंछता है वह प्रेत नहीं होताहै ॥ ५९ ॥ व हे विप्रेन्द्र, द्विज ! जो पवित्र गयाशिरक्षेत्रको जाकर श्राद्ध करताहै उसके वंशमें भी मनुष्य प्रेत नहीं होताहै ॥ ६० ॥ इसी कारणसे हमलोग शीघ्रही दूरसे प्राप्तहुये हैं और इस पवित्र व उत्तमक्षत्र में प्रवेशकरने के लिये समर्थ नहीं हैं ॥ ६१ ॥ और प्रेतरूप से हमलोग निर्वेदको प्राप्त हैं इसलिये हे महाभाग, द्विजोत्तम ! बड़ेयत्न से हमसबों की गतिहोवो ॥ ६२ ॥ गौतमजी बोले कि तुमलोगों

नित्यंशृणोतिशास्त्राणि नित्यंसेवतिपण्डितान् ॥ वृद्धांस्तुपृच्छतेनित्यं सप्रेतोनैवजायते ॥ ५९ ॥ गत्वागयाशिरःपुण्यं यःश्राद्धंकुरुतेद्विज ॥ तस्यान्वयेपिविप्रेन्द्र नप्रेतोजायतेनरः ॥ ६० ॥ एतस्मात्कारणात्प्राप्ता वयंतूर्णंसुदूरतः ॥ नशक्नुमःप्रवेष्टुञ्च पुण्येस्मिन्क्षेत्रउत्तमे ॥ ६१ ॥ निर्विण्णाःप्रेतरूपेण तस्मात्त्वंद्विजसत्तम ॥ गतिर्भवमहाभाग सर्वेषांनःप्रयत्नतः ॥ ६२ ॥ गौतम उवाच ॥ कथंवोजायतेमोक्षं वदध्वंकृत्स्नशोमम ॥ कृपयाविष्टचित्तोहं यतिष्येनात्रसंशयः॥ ६३ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ प्रभूतकालमस्माकं प्रेतत्वेतिष्ठतांविभो ॥ नत्वायातिपुमान्कश्चिदस्माकंयोगतिर्भवेत् ॥ ६४ ॥ तस्मात्त्वंदेहिनःश्राद्धं गत्वाक्षेत्रन्तुवैष्णवम् ॥ नामगोत्राणिचादाय मोक्षंयास्यामहेततः ॥ ६५ ॥ ईश्वर उवाच॥ ततोसौब्राह्मणोगत्वा दयाविष्टोहरेर्गृहम् ॥ श्राद्धञ्चप्रददौतेषामेकैकस्यपृथक्पृथक् ॥ ६६ ॥ यस्ययस्ययदाश्राद्धं करोतिद्विजसत्तमः ॥ सरात्रौस्वप्नतांयाति दर्शनंवाक्यमब्रवीत् ॥ ६७ ॥ प्रसादात्तवविप्रेन्द्र मुक्तोहंप्रेतयोनितः ॥ स्वस्तिते

का किसप्रकार मोक्ष होगा इसको मुझसे सम्पूर्णतासे कहिये तो दयासे संयुत चित्तवाला मैं यत्न करूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥ प्रेत बोले कि हे विभो ! प्रेततामें टिकेहुये हमलोगों को बहुत समय हुआ और कोई पुरुष नहीं आता,है जोकि हमलोगोंकी गति होवै ॥ ६४ ॥ इसलिये तुम वैष्णवक्षेत्र को जाकर नाम व गोत्रोंको लेकर हमलोगों को श्राद्ध दीजिये उससे हमलोग मोक्षको प्राप्तहोवैंगे ॥ ६५ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर दयासे संयुत इस ब्राह्मण ने विष्णुके क्षेत्रको जाकर उनको अलग २ एक एकको श्राद्ध दिया ॥ ६६ ॥ जब द्विजोत्तम गौतमजी जिस जिसका श्राद्धकरते थे वह रात्रिमें स्वप्नावस्था में दर्शन को प्राप्तहोता था व इस

वचनको कहताथा ॥ ६७ ॥ कि हे द्विजेन्द्र ! तुम्हारी प्रसन्नतासे मैं प्रेतयोनि से छूटगया तुम्हारा कल्याणहोवै मैं जाताहूं क्योंकि मेरे समीप विमान प्राप्त है ॥ ६८ ॥ इसप्रकार उन गौतमजी ने चार द्विजोत्तमों को तारदिया इसके उपरान्त पांचवां दिन प्राप्त होनेपर इस द्विजोत्तमने ॥ ६९ ॥ विधिपूर्वक पर्युषितनामक प्रेतको श्राद्ध दिया इसके अनन्तर उन गौतमजी ने रातको स्वप्नके मध्यमें प्राप्त दीनवचन से भीगे व बार २ श्वास लेतेहुये पर्युषित प्रेतको देखा पर्युषित बोला कि हे विप्रजी ! मुझ मन्दभाग्यवाले पापीकी गति नहीं हुई ॥ ७०।७१ ॥ मैंने यह पापकिया जोकि धनको इकट्ठाकिया गौतमजी बोले कि किसप्रकार मोक्ष होगा इसको सम्पूर्णतासे

स्तुगमिष्यामि विमानंमेह्युपस्थितम् ॥ ६८ ॥ एवंसन्तारितास्तेन चत्वारस्तेद्विजोत्तमाः ॥ अथासौब्राह्मणश्रेष्ठः संप्राप्तेपञ्चमेदिने ॥ ६९ ॥ प्रददौविधिनापूर्वं श्राद्धंपर्युषितस्यच ॥ अथापश्यत्सस्वप्नान्ते प्राप्तंपर्युषितंनिशि ॥ ७० ॥ दीनवाक्यपरिक्लिन्नं निश्वसन्तम्मुहुर्मुहुः ॥ पर्युषितउवाच ॥नमेजातागतिर्विप्र मन्दभाग्यस्यपापिनः ॥ ७१ ॥ अयाकृतंपापमेतद्यद्धनंप्रगुणीकृतम् ॥ गौतम उवाच ॥ कथंचजायतेमोक्षं वदशीघ्रमशेषतः ॥ ७२ ॥ करिष्येतन्नसन्देहो यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ पर्युषितउवाच ॥ मुक्तोहंत्वत्प्रसादेन प्रेतभावाद्द्विजोत्तम ॥ ७३ ॥ श्राद्धंत्वंदेहिमेनूनं भविष्यतिततोगतिः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तःसविप्रेन्द्रस्तेनप्रेतेनवैप्रिये ॥ ७४ ॥ अयनेचोत्तरेप्राप्ते गत्वातीर्थंहरिप्रियम् ॥ प्रददौचपुनःश्राद्धं ततःपर्युषितायच ॥ ७५ ॥ ततःपर्युषितोरात्रौ स्वप्नान्तेवाक्यमब्रवीत् ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा दिव्यमाल्यवपुर्धरः ॥ ७६ ॥ पर्युषितउवाच ॥ मुक्तोहंत्वत्प्रसादेनप्रेतभावाद्द्विजोत्तम ॥ स्वस्तितेस्तुगमिष्यामि विमानंमेह्यु

शीघ्र कहिये ॥७२॥ यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि मैं उसको निस्सन्देह करूंगा पर्युषित बोला कि हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हारी प्रसन्नतासे प्रेततासे छूटगया ॥ ७३ ॥ तुम मुझको श्राद्ध देवो उससे निश्चयकर गति होवैगी महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! उस प्रेतसे ऐसा कहेहुये उन द्विजेन्द्र गौतमजी ने ॥ ७४ ॥ उत्तर अयन प्राप्तहोने पर विष्णुप्रियतीर्थ को जाकर तदनन्तर पर्युषितके लिये फिर श्राद्धको दिया ॥ ७५ ॥ तदनन्तर रातमें दिव्य मालाओंवाले शरीरको धारणकिये पर्युषितने प्रसन्नमुख होकर स्वप्नके मध्यमें वचन कहा ॥ ७६ ॥ पर्युषितबोला कि हे द्विजोत्तम ! तुम्हारी प्रसन्नतासे मैं प्रेततासे छूटगया तुम्हारा कल्याण होवै मैं जाताहूं क्योंकि मेरे समीप

विमान प्राप्तहै ॥ ७७ ॥ हे द्विजोत्तम ! मुझको देवत्व मिलाहै और मैं वर देने के लिये समर्थ हूं इसलिये तुम मुझसे उत्तम वरदान को ग्रहण करो ॥ ७८ ॥ क्योंकि ब्रह्मघाती व मदिरा पीनेवाले तथा चोर व नष्टव्रतवाले पुरुष के लिये विद्वानों ने प्रायश्चित्त किया है परन्तु कृतघ्न पुरुष के लिये प्रायश्चित्त नहीं है ॥ ७९ ॥ गौतम जी बोले कि हे वरदायक ! यदि तुम समर्थहो व हमको वर देनेयोग्यहै तो जिसस्थानमें मैंने बहुत दुःखित तुम सब प्रेतोंको देखाहै ॥ ८० ॥ वहां मैं आश्रमकर उत्तम तपस्या करूंगा इसको बड़ाभारी तीर्थ जानकर मैं घरसे यहां आयाहूं ॥ ८१ ॥ वहां भक्तिसे जो मनुष्य स्नानकर व देवताओं का तर्पणकर पितरों को उद्देशकर

पस्थितम् ॥ ७७ ॥ देवत्वंचमयाप्राप्तं समर्थोहंद्विजोत्तम ॥वरंदातुंगृहाणत्वं तस्मान्मत्तोवरंशुभम् ॥७८ ॥ ब्रह्मघ्नेचसुरापे च चौरेभग्नव्रतेतथा॥ निष्कृतिर्विहितासाद्भिःकृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः ॥ ७९ ॥ गौतमउवाच॥ यदिदेयोवरोस्माकंसमर्थो सिवरप्रद ॥ यत्रस्थानेमयादृष्टा प्रेतायूयंसुदुःखिताः ॥८०॥ तत्राहंचाश्रमंकृत्वा तपिष्येचोत्तमंतपः ॥ आगतोस्मिगृहा दत्र ज्ञात्वातीर्थमिदंमहत् ॥ ८१ ॥ तत्रयोमानवोभक्त्यापितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ विधिवद्दास्यतिश्राद्धं स्नात्वासन्तर्प्य देवताः ॥ ८२ ॥ युष्मत्प्रसादात्प्रेतत्वन्नान्वयेपिकदाचन ॥ माभूयात्तस्यप्रेतत्वमपिपापान्वितस्यभो ॥ ८३ ॥ पर्युषित उवाच ॥ गच्छत्वंचाश्रमंतत्र कुरुब्राह्मणसत्तम ॥ गमिष्यसिपरांसिद्धिं लोकेख्यातिंगमिष्यसि ॥ ८४ ॥ तत्रयेमान वाभक्त्या श्राद्धंदास्यन्तिसत्तम ॥ पितृभिस्तेविमानस्थायास्यन्तित्रिदशालयम् ॥ ८५ ॥ नतेषांजायतेकश्चित्प्रेतत्वंच द्विजोत्तम ॥ प्राहुःसप्तपदंमित्रं पण्डिताःस्थिरबुद्धयः ॥८६॥मित्रतांहिपुरस्कृत्य किञ्चिद्वक्ष्यामितच्छृणु॥तवाश्रमपदंपु

भक्तिसे विधिपूर्वक श्राद्ध देवै ॥ ८२ ॥ तुम्हारी प्रसन्नता से उसके वंशमें भी कभी प्रेतत्व न होवै और पापसे संयुत भी उसकी प्रेतता न होवै ॥ ८३ ॥ पर्युषित बोला कि हे द्विजोत्तम ! तुम जावो और वहां श्राद्धकरो तो उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोगे व संसार में प्रसिद्धि को प्राप्तहोगे ॥ ८४ ॥ हे सत्तम ! वहां जो मनुष्य भक्तिसे श्राद्ध देवैंगे वे पितरोंसमेत विमान पै बैठकर स्वर्गको जावैंगे ॥ ८५ ॥ व हे द्विजोत्तम ! उनके मध्य में कोई प्रेतत्व को न प्राप्तहोगा स्थिरबुद्धिवाले पण्डितों ने मित्रको

साप्तपद कहाहै ॥ ८६ ॥ मैं मित्रता को अंगीकर कुछ कहताहूं उसको सुनिये कि पृथ्वी में तुम्हारा पवित्र आश्रमस्थान सब पापोंका विनाशक व सब दुःखोंका नाशक होगा और हे प्रभो ! मेरे नामसे वह प्रेततीर्थ ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्तहोवै ॥ ८७।८८ ॥ महादेवजी बोले कि वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर वे द्विजोत्तम गौतमजी चलेगये तदनन्तर उन्हों ने वेदोक्तमार्ग से सब कार्य किया ॥ ८९ ॥ व हे प्रिये ! वह पर्युषितप्रेत भी स्वर्गको प्राप्तहुआ पुरातन समय इस गात्रमोचन स्थानमें यह सब वृत्तात हुआहै ॥ ९० ॥ जिसको भलीभांति सुनकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है और शयन व उत्थापनयोग में जो पुरुषोत्तमजी को देखता है ॥ ९१ ॥ वह गात्रोत्सर्ग

एयं भविष्यतिमहीतले ॥ ८७ ॥ सर्वपापप्रशमनं सर्वदुःखविनाशनम् ॥ मन्नाम्नाख्यातिमायातु प्रेततीर्थमितिप्रभो ॥ ८८ ॥ ईश्वरउवाच ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गतस्तत्रद्विजोत्तमः ॥ ततोवेदोक्तमार्गेण सर्वकृत्यंचकारसः ॥ ८९ ॥ सोपि स्वर्गमनुप्राप्तः प्रेतःपर्युषितःप्रिये ॥ एतत्सर्वंपुरावृत्तं स्थानेस्मिन्गात्रमोचने ॥ ९० ॥ यच्छ्रुत्वामानवःसम्यक् सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ शयनोत्थापनेयोगे यःपश्येत्पुरुषोत्तमम् ॥ ९१ ॥ गात्रोत्सर्गेनरःस्नात्वा यज्ञायुतफलंलभेत् ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगात्रोत्सर्गतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामषोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गमिन्द्रप्रतिष्ठितम् ॥ पापमोचननामानन्दक्षिणेपुरुषोत्तमात् ॥ १ ॥ वृत्रं हत्वापुराशक्रो ब्रह्महत्यासमन्वितः ॥ अब्रवीत्सऋषीन्सर्वान् कथमेषागमिष्यति ॥ २ ॥ ब्रह्महत्याहिदुष्प्रेष्या विवर्णजननीमम ॥ दुर्गन्धचारिणीचैव सर्वतेजोविनाशिनी ॥ ३ ॥ अथोचुस्तंसुरगणा नारदाद्यामहर्षयः ॥ प्रभासंगच्छ

तीर्थमें नहाकर दश हजार यज्ञोंके फलको पाताहै ॥ ९२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांगात्रोत्सर्गतीर्थमाहात्म्यंनामषोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१६ ॥

दो० । इन्द्रलिङ्ग को पूजिकरि भये पापसे मुक्त । दोसौ सत्रहमें सोई अहै कथा सब उक्त ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पुरुषोत्तमजीसे दक्षिणमें इन्द्रसे थापेहुये पापमोचननामक लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय वृत्रासुरको मारकर इन्द्रजी ब्रह्महत्यासे संयुतहुये और उन्होंने सब ऋषियोंसे कहा कि यह कैसे जावैगी ॥ २ ॥ क्योंकि मेरे मलिनताको पैदाकरनेवाली ब्रह्महत्या दुःखसे पठानेयोग्य है व दुर्गन्धचारिणी तथा सब तेजोंको नाशकरनेवाली है ॥ ३ ॥ इसके

उपरान्त नारदादिक महर्षि व देवगणों ने उनसे कहा कि हे देवेश ! प्रभासक्षेत्रको जाइये क्योंकि वह पापहारक क्षेत्र है ॥ ४ ॥ वहां महादेवजी को आराधकर ब्रह्म-हत्यासे छूटोगे हे वरानने ! वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर इन्द्रजी वहां गये ॥ ५ ॥ और उन्होंने त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के लिङ्गको भलीभांति थापन किया और धूप, चन्दन, व अनुलेपनों से इन्द्रजी उस लिङ्ग के पूजनमें परायण हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर इन इन्द्रजी के शरीर की दुर्गन्धि शीघ्रही नाशको प्राप्तहुई तदनन्तर उन की सब मलिनता उत्तम होगई ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त प्रसन्नमन होकर इन्द्रजी इस वचन को बोले कि यहां आकर जो मनुष्य भक्तिसे इस लिङ्गको पूजैगा ॥ ८ ॥

देवेश क्षेत्रंपापहरंहितत ॥ ४ ॥ तत्राराध्यमहादेवं मुच्यसेब्रह्महत्यया ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय गतस्तत्रवरानने ॥ ५ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास देवदेवस्यशूलिनः ॥ तस्यपूजारतोनित्यं धूपगन्धानुलेपनैः ॥ ६ ॥ ततोऽस्यगात्रदौर्गन्ध्यं नाशमाशवभ्यगच्छत ॥ विवर्णत्वंततःसर्वं जातंतस्यतथोत्तमम् ॥ ७ ॥ अथहृष्टमनाभूत्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ अत्रागत्यनरोभक्त्या यश्चैतत्पूजयिष्यति ॥ ८ ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं नाशंतस्यप्रयास्यति ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षः प्रहृष्टस्त्रिदिवंययौ ॥ ९ ॥ ब्रह्महत्याविनिर्मुक्तः पूज्यमानोदिवौकसैः ॥ गोदानंतत्रदातव्यं ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ १० ॥ ब्रह्महत्यापनोदार्थं तत्रश्राद्धंसमाचरेत् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डइन्द्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवंचनरकेश्वरम् ॥ तस्माद्उत्तरदिग्भागे सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तन्माहा

उसका ब्रह्महत्यादिक पापनाश को प्राप्तहोगा ऐसा कहकर ब्रह्महत्या से छूटकर देवताओं से पूजेजातेहुये इन्द्रजी प्रसन्न होकर स्वर्गको चलेगये वहां वेदके पारगामी ब्राह्मणके लिये गोदान देना चाहिये ॥ ९ । १० ॥ और ब्रह्महत्या के नाशहोने के लिये वहां श्राद्धकरै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामिन्द्रेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामसप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नरकेश्वर माहात्म्य को कह्यो यथा यमराज । दोसौ अट्ठारहें में सोइ चरित सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे उत्तर दिशाके

भाग में समस्त पातकों को नाशनेवाले नरकेश्वरदेवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! उसके माहात्म्य को कहताहूं सावधान मन होकर सुनिये कि पृथ्वीतल में मथुरानामक नगरी प्रसिद्धहै ॥ २ ॥ पुरातन समय उसमें अगस्त्यवंश में देवशर्मा ऐसा कहाहुआ ब्राह्मण हुआहै वह विद्वान् दरिद्रतासे पीड़ित हुआ ॥ ३ ॥ व हे देवेशि ! वहांपर उसीरूप व अवस्था से संयुत उसी नाम व गोत्रवाला वैसाही अन्य वेदपारगामी ब्राह्मण हुआ ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर यमराजने ऊर्ध्वकेशोंवाले भयङ्करदूत से कहा कि हे दूत ! मथुरापुरी को शीघ्रही जाइये और देवशर्मा को लाइये ॥ ५ ॥ तब दोनोंके नामोंकी समानता से जो दरिद्रसे पीड़ित था उस देवशर्मा को

त्म्यंप्रवक्ष्यामि शृणुह्येकमनाःप्रिये ॥ मथुरानामविख्यातानगरीधरणीतले ॥ २ ॥ तत्रविप्रोभवत्पूर्वं देवशर्माइतिस्मृतः ॥ अगस्त्यगोत्रेविद्वान्वै सतुदारिद्र्यपीडितः ॥ ३ ॥ अथापरोभवत्तत्र तादृग्रूपवयोन्वितः ॥ तन्नामगोत्रोदेवेशि ब्राह्मणोवेदपारगः ॥ ४ ॥ अथप्राहयमोदूतं रौद्रमूर्द्धशिरोरुहम् ॥ गच्छभोमथुरांशीघ्रं देवशर्माणमानय ॥ ५ ॥ तेनदूतेनचानीतो देवशर्मापुरस्तदा ॥ उभयोर्नामसादृश्याद्योदरिद्रेणपीडितः ॥ ६ ॥ तन्दृष्ट्वाथयमःप्राह गच्छशीघ्रंद्विजोत्तम ॥ दूतेननामसादृश्यात्त्वमानीतोसिमाचिरम् ॥ ७ ॥ अथाब्रवीद्ब्राह्मणोयं नाहंयास्येगृहंविभो ॥ दरिद्रेणातिनिर्विण्णो यावज्जीवंसुरेश्वर ॥ ८ ॥ इहैवक्षपयिष्यामि शेषमायुस्तवान्तिकम् ॥ यमउवाच ॥ अकालेनात्रचायाति कश्चिद्ब्राह्मणसत्तम ॥ ९ ॥ मुहूर्त्तमपिनोजीवेत् पूर्णकालेनमेभुवि ॥ अतएवहिमेनाम धर्मराजेतिविश्रुतम् ॥ १० ॥ नमेसुहृन्नमेद्वेष्यः कश्चिदस्तिधरातले ॥ विद्धःशरशतेनापि नाकालेम्रियतेनरः ॥ ११ ॥ कुशाग्रेणापिविद्धःसन् कालेपूर्णे

वह दूत नगरसे लेआया ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर उसको देखकर यमराजने कहा कि हे द्विजोत्तम ! शीघ्रही जाइये नामकी समानता से दूत तुमको शीघ्रही लेआया ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर इस ब्राह्मण ने कहा कि हे विभो ! मैं घरको नहीं जाऊंगा क्योंकि हे सुरेश्वर ! जीवनपर्यन्त मैं दरिद्र से बहुतही पीडित रहा ॥ ८ ॥ इससे मैं शेष आयुर्बल को यहीं तुम्हारे समीप व्यतीत करूंगा यमराज बोले हे द्विजोत्तम ! बिन समयमें यहां कोई नहीं आताहै ॥ ९ ॥ और पूर्णसमयसे पृथ्वी में मुझसे मुहूर्त्तभर भी नहीं जीसक्ता है, इसीसे मेरा धर्मराज ऐसा नाम प्रसिद्ध है ॥ १० ॥ पृथ्वीमें मेरा न कोई मित्रहै और न कोई शत्रुहै सैकड़ों बाणोंसे माराहुआ भी मनुष्य

बिन कालमें नहीं मरताहै ॥ ११ ॥ और पूर्वसमय में कुशके अग्रभागसे भी वेधित नहीं जीताहै इसलिये हे द्विजोत्तम ! जबतक शरीर न जलायाजावै तबतक जाइ-ये ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त इस ब्राह्मण ने कहा कि हे प्रभो ! यदि मुझको पठाते हो तो मुझसे पूंछेहुये एक प्रश्नको यथायोग्य कहने के योग्यहो ॥ १३ ॥ हे देव ! साधुवोंका दर्शन कभी वृथा नहीं होताहै और तुम्हारा दर्शन विशेषकर वृथा नहीं होताहै उसीसे मैं कहताहूं ॥ १४ ॥ किजो येबड़े कठिन व भयङ्कर नरक देखपड़ते हैं हे यमराज ! किस कर्मसे मनुष्य किस नरकको जाताहै ॥ १५ ॥ और फिर उन नरकों की कितनी संख्यायेंहैं व कौन व्यक्ति है और क्या प्रमाण है हे सुरश्रेष्ठ ! इस

नजीवति ॥ तस्माद्गच्छद्विजश्रेष्ठ यावद्गात्रंनदह्यते ॥ १२ ॥ अथाब्रवीद्ब्राह्मणोसौ यदिप्रेषयसेंप्रभो ॥ प्रश्नमेकंमयापृष्टं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ नवृथाजायतेदेव साधूनांदर्शनंक्वचित् ॥ युष्माकञ्चविशेषेण तस्मादेवब्रवीम्यहम् ॥ १४ ॥ एतेयेनरकारौद्रा दृश्यन्तेचसुदारुणाः ॥ कर्मणाकेनकंगच्छेन्मानवोनरकंयम ॥ १५ ॥ कतिसंख्याःपुनस्तेषां काव्यक्तिःकिंप्रमाणतः ॥ एतत्सर्वंसुरश्रेष्ठ यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ यम उवाच ॥ १६ ॥ शृणुविप्रप्रवक्ष्यामि यावन्तोनरकास्थिताः ॥ कर्मणायेनगच्छन्ति मानवाद्विजसत्तम ॥ १७ ॥ एकविंशसमाख्याता नरकाममममन्दिरे ॥ यानेतान्प्रेक्षसेविप्र यन्त्रमध्येह्यवस्थितान् ॥ १८ ॥ पीड्यमानान्किङ्करैर्मे कृतघ्नान्पापसंयुतान् ॥ तुण्डेनवायसायेषां नेत्रोद्धारंप्रकुर्वते ॥ १९ ॥ एतैर्निरीक्षितान्येव कलत्राणिदुरात्मभिः ॥ परेषांद्विजशार्दूल सरागैर्नयनैःसदा ॥ २० ॥ कुम्भीपाकगतानेतान् यांस्त्वं पश्यसिपापिनः ॥ कूटसाक्षिरताह्येते उत्कोचनिरतास्तथा ॥ २१ ॥ एतेलोहमयान्स्तम्भान् सन्तप्तान्पावकप्रभान् ॥

सबको यथायोग्य कहनेकेयोग्य हो ॥ १६ ॥ यमराज बोले कि हे द्विजोत्तम, विप्र ! जितने नरक स्थितहैं उनको मैं कहताहूं सुनिये कि जिसकर्मसे मनुष्य जिस नरकको जातेहैं ॥ १७ ॥ हे विप्रजी ! मेरे मन्दिरमें इकीस नरक कहेगयेहैं मेरे दूतोंसे पीड़ित कियेजातेहुये कृतघ्न व पापसंयुत इन यन्त्रोंके मध्यमें स्थित हुये जिनमनुष्योंको तुम देखते हो किकौवे चोंचसे जिनके नेत्रोंको निकालते हैं ॥ १८ । १९ ॥ हे द्विजोत्तम ! इन दुष्टचित्तवाले पुरुषोंने सदैव स्नेहसमेत नेत्रोंसे पराई स्त्रियोंको देखा है ॥ २० ॥ और कुम्भीपाक नरकमें प्राप्त इन जिन पापियोंको तुम देखतेहो ये झूंठी गवाही देनेमें परायण तथा घूस लेनेमें तत्पररहे हैं ॥ २१ ॥ और अग्निके समान

तेजवाले व तचेहुये लोहेके खंभोंको जो ये लिपटते हैं ये वही हैं जोकि दुष्टचित्तवाले पुरुष पराई स्त्रियोंमें रतरहे हैं ॥ २२ ॥ हे द्विजोत्तम ! पीव व रक्तसे संयुत पृथ्वी के मध्यमें जो ये स्थितहैं वे सब विश्वासघाती हैं ॥ २३ ॥ व भयङ्कर असिपत्रवनमें जो खण्ड खण्ड काटेजाते हैं ये वही हैं जोकि समर प्राप्त होनेपर स्वामीको छोड़कर भगे हैं ॥ २४ ॥ व हे द्विजश्रेष्ठ ! जो नीच मनुष्य चिल्लाते हुये जलतीहुई अंगारराशियों को अवगाहन करते हैं वे पनहियों के दानसे रहितहुयेहैं ॥ २५ ॥ और वृक्षके अग्रभाग में जो नीचे मुखकर के अग्निके ऊपर बांधेगये हैं ये सब नीच मनुष्य ब्रह्महत्या से संयुत हैं ॥ २६ ॥ और जो मसा, खटमल व काकपक्षियों से

आलिङ्गन्तिदुरात्मानः परदाररतास्तुये ॥ २२ ॥ एतेवैधरणीमध्ये पूयशोणितसंकुले ॥ येतिष्ठन्तिद्विजश्रेष्ठ सर्वविश्वासघातकाः ॥ २३ ॥ असिपत्रवनेघोरे भिद्यन्तेयेतुखण्डशः ॥ येनष्टाःस्वामिनंत्यक्त्वा संग्रामेसमुपस्थिते ॥ २४ ॥ अङ्गारराशयोर्दीप्तायैर्गाह्यन्तेनराधमैः ॥ क्रन्दमानाद्विजश्रेष्ठ उपानद्दानवर्जिताः ॥ २५ ॥ अधोमुखानिबद्धाये वृक्षाग्रेपावकोपरि ॥ ब्रह्महत्यान्विताःसर्वे एतेचैवनराधमाः ॥ २६ ॥ मशकैर्मत्कुणैःकाकैर्येभक्ष्यन्तेविहङ्गमैः ॥ व्रतभङ्गरताह्येते व्रतिनाश्चैवहिंसकाः ॥ २७ ॥ कुठारकुट्टिताह्येते प्रहिंस्यन्तेतथाविधम् ॥ गोहन्तारोदुरात्मानो देवब्राह्मणनिन्दकाः ॥ २८ ॥ येभक्ष्यन्तेश्शृगालैश्च वृकैर्लोहमयैर्मुखैः ॥ आत्ममांसानियेपापा भक्षयन्तिबुभुक्षिताः ॥ २९ ॥ नदत्तमन्नमेतैस्तु कदाचिद्द्विजसत्तम ॥ ३० ॥ रुधिरंयेपिबन्त्येते वसापूयपरिप्लुतम् ॥ ब्राह्मणानांविनाशाय गवांचेतिसदास्थिताः ॥ ३१ ॥ कूटसाक्षिनिबद्धाश्च तीक्ष्णकण्टकपीडिताः ॥छिद्रान्वेषणसंयुक्ताः परेषांनित्यसंस्थिताः ॥ ३२ ॥ क्रकचे

भक्षण कियेजातेहैं ये व्रतभङ्गमें रतरहे हैं और व्रतीपुरुषों को मारनेवाले हैं ॥ २७ ॥ और फरसासे फूटेहुये ये वैसेही जो मारेजाते हैं वे दुष्टचित्तवाले पुरुष गोघाती व देवताओं तथा ब्राह्मणोंके निन्दकहैं ॥ २८ ॥ और जो सियार व भेड़ियोंसे लोहमयमुखोंसे खायेजाते हैं और जो पापी क्षुधित होकर अपने मांसोंको खाते हैं ॥ २९ ॥ हे द्विजोत्तम ! इन्होंने कभी अन्नको नहीं दियाहै ॥ ३० ॥ और चर्बी व पीबसेडूबेहुये रक्तको जो पीतेहैं वे सदैव ब्राह्मणोंके व गौवोंके नाराकेलिये स्थितहुये हैं ॥ ३१ ॥

व भूठीं गवाही में बँधेरहे हैं और पैने कॉटोंसे जो पीड़ित हैं वे दूसरों के छिद्र ढूंढ़ने में सदैव संयुत रहे हैं ॥ ३२ ॥ व हे द्विजोत्तम ! जो ये आरामे काटेजाते हैं ये अभक्ष्य भोजनमें तत्पर रहे हैं और अपने धर्मको दूषनेवाले हैं ॥ ३३ ॥ और कन्याओंको बेंचनेवाले व कन्याओंके यहां जो भोजन करनेवाले हैं कंडियों के मध्यमें प्राप्त जो ये मेरे दूतोंसे पचायेजाते हैं ॥ ३४ ॥ और भयङ्कर सङ्गसियों से जिनकी जिह्वा उखाड़ी जातीहै झूठी वार्तामें लगेहुये ये वाणीके दोषमें तत्पर रहे हैं ॥ ३५॥ और बार २ कांपते हुये जो शीतसे विकल कियेजाते हैं वे विशेष कर देवताओं व ब्राह्मणों के धनको हरनेवाले हैं ॥ ३६ ॥ और हे द्विजोत्तम! उनके मस्तक पै बड़ा

नतुछिद्यन्ते यएतेद्विजसत्तम ॥ अभक्ष्यनिरताह्येते स्वस्यधर्मस्यदूषकाः ॥ ३३ ॥ कन्याविक्रयकर्त्तारः कन्यानांचैव भुञ्जकाः ॥ करीषमध्यगाह्येते पच्यन्तेममकिङ्करैः ॥ ३४॥ सदंशैर्दारुणैर्येषां जिह्वाचोत्पाट्यतेपुनः ॥ वाग्दोषनिरता ह्येते मृषावादपरायणाः ॥ ३५ ॥ येशीतेनप्रबाध्यन्ते वेपमानामुहुर्मुहुः ॥ देवस्वानाञ्चहर्त्तारो ब्राह्मणानांविशेषतः ॥ ३६ ॥ तेषांशिरसिनिक्षिप्तो भूरिभारोद्विजोत्तम ॥ ब्राह्मणानांवित्तदाने येशिरःकम्पयन्तिवै ॥ ३७॥ यम उवाच ॥ एव मेतन्मयाख्यातं तवसर्वंद्विजोत्तम ॥ नरकाणांस्वरूपन्तु कर्मणावैयथाक्रमम् ॥ ३८॥ गच्छशीघ्रंमहाभाग यावत्का योनदह्यते ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ कथयत्वंसुरश्रेष्ठ ममसर्वंसमाहितः ॥ ३९ ॥ नगच्छेत्कर्मणायेन नरकंमानवःक्वचित् ॥ ४० ॥ सतांसप्तपदींमैत्रीमित्याहुर्बुद्धिकोविदाः ॥ मित्रतांचपुरस्कृत्य समासाद्वक्तुमर्हसि ॥ ४१ ॥ यम उवाच ॥ प्रभास क्षेत्रमासाद्य नरकेश्वरमुत्तमम् ॥ यःपश्येत्तंनरोभक्त्या नरकंसनपश्यति ॥ ४२ ॥ स्थापितंयन्मयालिङ्गं शिवभक्त्यायु

भारी बोझ डालागया है कि जो ब्राह्मणों को धन देने में शिर को कँपाते हैं ॥ ३७ ॥ यमराज बोले कि हे द्विजोत्तम ! मैंने तुमसे इस प्रकार इस चरित्र को कहा और क्रमपूर्वक कर्मसे नरकोंका स्वरूप कहा ॥ ३८ ॥ हे महाभाग ! तबतक शीघ्रही जाइये जबतक कि शरीर न जलायाजावै ब्राह्मण बोला कि हे सुरश्रेष्ठ ! सावधान होतेहुये तुम मुझसे सब चरित्र को कहो ॥ ३९ ॥ कि जिस कर्म से मनुष्य कभी नरकको न जावै ॥ ४० ॥ बुद्धिमें प्रवीण पुरुषोंने सज्जनों की मित्रता को सप्तपदी कहाहै इससे मित्रताको आगेकर तुम संक्षेपसे कहने के योग्यहो ॥ ४१ ॥ यमराजबोले कि प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर जो पुरुष उन उत्तम नरकेश्वरजी को देखता है

वह नरकको नहीं देखताहै ॥ ४२ ॥ जिस लिङ्गको शिवभक्तिसे संयुत मैंने थापाहै हे द्विजोत्तम ! मैंने तुम्हारी प्रीतिसे इस गुप्तचरित्रको कहा ॥ ४३ ॥ यह मेरे वचन से निस्सन्देह बड़े यत्नसे गुप्त करनेयोग्य है उस समय ऐसा कहाहुआ ब्राह्मण अपनेही घरको चलागया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर शरीर को पाकर वह बड़े विस्मय को प्राप्तहुआ और बुद्धिमान् धर्मराज के उस सब वचन को स्मरणकर ॥ ४५ ॥ उस ब्राह्मण ने वहां जाकर जीवनपर्यन्त नित्य उन प्रभुका पूजन किया तदनन्तर हे वरारोहे ! वह बड़ी सिद्धिको प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ इसलिये भक्तिसे उन शिवजीको बड़ेयत्नसे देखै जिससे कि पातकोंसे संयुत भी पुरुष नरकमें नहीं जाता

तेनच ॥ एतद्गुह्यंमयाप्रोक्तं तवप्रीत्याद्विजोत्तम ॥ ४३ ॥ गोपनीयंप्रयत्नेन ममवाक्यादसंशयम् ॥ एवमुक्तस्तदावि प्रः स्वमेवभवनंययौ ॥ ४४ ॥ लब्ध्वाकलेवरंसोथ विस्मयंपरमंगतः ॥ तत्स्मृत्वावचनंसर्वं धर्मराजस्यधीमतः ॥ ४५ ॥ गत्वातत्रसनित्यंवै पूजयामासतंप्रभुम् ॥ यावज्जीवंवरारोहेततःसिद्धिंपराङ्गतः ॥ ४६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भक्त्यातम वलोकयेत् ॥ अपिपातकयुक्तोपि नयातिनरकेयतः ॥ ४७॥ अश्वयुक्कृष्णपक्षेतु चतुर्दश्यांविधानतः ॥ यस्तत्रकुरुते श्राद्धं सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ ४८ ॥ कृष्णास्तिलास्तत्रदेया ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ यावत्तिलानांसंख्यावै तावत्स्वर्गेमही यते ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेनरकेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टादशाधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २१८ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि संवर्तेश्वरमुत्तमम्॥इन्द्रेश्वरात्पश्चिमतः पर्वतश्चार्कभास्वरात् ॥१॥ तन्दृष्ट्वातु

है ॥ ४७ ॥ कुँवारके कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिमें जो वहां विधि से श्राद्धको करता है वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाताहै ॥ ४८ ॥ वहां वेदों के पारगामी ब्राह्मणके लिये काले तिल देना चाहिये जितनी तिलोंकी संख्या होवै उतने दिनोंतक वह स्वर्गमें पूजाजाता है ॥ ४९ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनरकेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१८ ॥ ॥ ॥ ॥
दो० । संवर्तेश्वर लिंग अरु मेघेश्वर परभाव । दोसौ उन्नीसवें महँ सोई कथा सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! तदनन्तर इन्द्रेश्वरसे पश्चिम व अर्कभास्वर

से पूर्वमें उत्तम संवर्तेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! पुष्करिणी के जलमें नहाकर उन शिवजी को देखकर मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के फलको प्राप्तहोताहै ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि उसीके पूर्वदिशाके भागमें व पापमोचनसे नैर्ऋत्यमें ॥ ३ ॥ समस्त पातकों का नाशक मेघेश्वर ऐसा लिंग प्रसिद्धहै अनवर्षणका भय होनेपर वहींपर मुख्य ब्राह्मणोंसे वरुणकी शांतिकरावै व पृथ्वीको जलोंसे डुबावै मेघोंसे थापाहुआ लिङ्ग जहां नित्य पूजाजाताहै ॥ ४।५ ॥ हे देवि ! वहां अनावृष्टिका भय नहीं होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसंवर्तेश्वरमेघेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२१९॥

महादेवि स्नात्वापुष्करिणीजले॥ दशानामश्वमेधानां फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ २॥ ईश्वरउवाच॥ तस्यैवपूर्वभागेतु नैर्ऋतेपापमोचनात्॥मेघेश्वरेतिविख्यातं सर्वपातकनाशनम्॥३॥ अनावृष्टिभयेजाते शान्तिंतत्रैवकारयेत् ॥४॥ वारुणींविप्रमुख्यैस्तु प्लावयेदुदकैर्महीम् ॥ मेघैःप्रतिष्ठितंलिङ्गं यत्रानित्यंप्रपूज्यते ॥ ५ ॥ अनावृष्टिभयंतत्र नचदेविप्रजायते ॥ ६ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसंवर्त्तेश्वरमेघेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २१९ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि बलभद्रप्रतिष्ठितम् ॥ लिङ्गंमहापापहरं गात्रोत्सर्गतउत्तरे ॥ १ ॥ महालिङ्गंमहादेवि महासिद्धिफलप्रदम् ॥ बलभद्रेणविधिना स्थापितंपापशुद्धये ॥ २ ॥ यस्तत्पूजयतेभक्त्या गन्धपुष्पादिभिःक्रमात् ॥ तृतीयारेवतीयोगे सयोगीशपदंलभेत् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे बलभद्रेश्वरमाहात्म्यन्नामविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो॰ । बलभद्रेश्वर लिंगको थाप्यो है बलभद्र । दोसौ बिसवें में सोई वर्णित कथा सुभद्र ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गात्रोत्सर्ग से उत्तरमें बलभद्रजी से थापेहुये महापापहारी लिङ्गके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! बलभद्रजी ने पापों की शुद्धिके लिये महासिद्धियों के फलको देनेवाले महालिंग को विधिसे स्थापन कियाहै ॥ २ ॥ जो मनुष्य तीजतिथि व रेवती नक्षत्र के योगमें उस लिङ्गको भक्तिसे चन्दन पुष्पादिकों करके पूजता है वह योगीश के स्थानको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलभद्रेश्वरमाहात्म्यंनामविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२० ॥ ❀ ॥

दो० । अहै अमित माहात्म्य युत भैरवमातृस्थान । दोसौ इक्कीसवें महँ सोई कियो बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अतिउत्तम मातृस्थान के समीप जावै भैरवमातृ ऐसा प्रसिद्ध वह स्थान भय व रोगोंको नाश करनेवालाहै ॥ १ ॥ कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिमें चित्तको रोंकनेवाला जो पुरुष विधिसे उसको चन्दनव पुष्पोंसे तथा उत्तम बलिदानोंसे पूजताहै ॥ २ ॥ हे प्रिये ! उसको योगिनी पुत्रकी नाईं सदैव रक्षा करती हैं ॥३॥ इत्येकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

दो० लाये हैं श्रीविष्णुजी जिमि गंगा महरानि । दोसौ बाइस में सोई कह्यो चरित्र बखानि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर अलर्केश्वर से

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मातृस्थानमनुत्तमम् ॥ भैरवमात्रितिख्यातं भयरोगविनाशनम् ॥ १ ॥ चतुर्दश्यांविधानेन कृष्णपक्षेयतात्मवान् ॥ पूजयेद्गन्धपुष्पैश्च बलिदानैस्तथोत्तमैः ॥ २ ॥ तंपुत्रमिवयोगिन्यो रक्षन्तिसततंप्रिये ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभैरवमातृमाहात्म्यंनामैकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२१ ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गङ्गांत्रिपथगामिनीम् ॥ अलर्केश्वरतोदेवि ईशानदिशिसंस्थिताम् ॥ १ ॥ स्वयंभूताधरामध्यादानीताविष्णुनापुरा ॥ यादवानान्तुमुक्त्यर्थं सर्वपापौघशान्तये ॥ २ ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं कथंचित्पुण्यसंश्रयात् ॥ स्नानञ्चैवविधानेन सशोच्योनवरानने ॥ ३ ॥ ब्रह्माण्डंसकलंदत्त्वा यत्पुण्यफलमाप्नुयात् ॥ तत्पुण्यंप्राप्नुयाद्देवि कार्त्तिक्यांजाह्नवीजले ॥ ४ ॥ कलौयुगेतुसंप्राप्ते दुर्लभंतत्रदर्शनम् ॥ किंपुनःस्नानदानेन प्रभासेजाह्नवीजले ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगङ्गामाहत्म्यंनामद्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥ * ॥

ईशानदिशा में भलीभांति स्थित त्रिपथगामिनी गंगाजी के समीपजावै ॥ १ ॥ पुरातन समय विष्णुजी यादवों की मुक्तिके लिये व सब पापसमूहोंकी शान्तिके लिये पृथ्वीतल से आपही उपजीहुई उन गंगाजी को लाये हैं ॥ २ ॥ वहां जो पुरुष पुण्य के आश्रय से किसीप्रकार स्नान व श्राद्ध करता है हे वरानने ! वह शोचने योग्य नहीं होताहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! समस्त ब्रह्माण्ड को देकर मनुष्य जिस पुण्यफलको पाताहै उसी पुण्यको कार्त्तिकीमें गङ्गाजीके जलमें पाताहै ॥ ४ ॥ कलियुग प्राप्तहोने पर वहां दर्शन दुर्लभहै फिर प्रभासक्षेत्रमें गङ्गाजी के जलमें स्नानदानसे क्या कहना है ॥ ५ ॥ इतिद्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२२ ॥

दो• । श्रीगणपतिको पूजिकै विघ्नरहित जिमि होत। दोसौ तेइसमें सोई कह्यो चरित्र उदोत ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये, महादेवि ! तदनन्तर मुझसे वहां नियुक्त कियेहुये वहीं पै भलीभांति स्थित गणपतिदेवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! गङ्गाजी के दक्षिण में वे क्षेत्रकी रक्षामें तत्पर हैं माघमें कृष्णपक्ष की चौदसि में जो मनुष्य उनको उत्तम लड्डुवों की नैवेद्य से व पुष्प धूपादिकोंसे क्रमसे पूजताहै उस को तबतक विघ्न नहीं होताहै जबतक कि यह क्षेत्रमें बसता है ॥ २ । ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायागणपतिमाहात्म्यंनामत्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेविदेवंगणपतिम्प्रिये ॥तत्रैवसंस्थितंसम्यङ्मयातत्रनियोजितम् ॥ १ ॥ गङ्गायादक्षिणेदेवि क्षेत्ररक्षणतत्परः ॥ माघेकृष्णचतुर्द्दश्यां यस्तम्पूजयतेनरः ॥ २॥ दिव्यमोदकनैवेद्यैः पुष्पधूपादिभिःक्रमात् ॥ नतस्यजायतेविघ्नं यावत्क्षेत्रेवसत्यसौ ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे गणपतिमाहात्म्यंनामत्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यत्रजाम्बवतीनदी ॥ पुराजाम्बवतीनाम विष्णोश्चमहिषीप्रिया ॥ १ ॥ अपृच्छदर्जुनंसाध्वी वदवार्त्ताकुरूद्वह ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा अर्जुनोनिःश्वसन्मुहुः ॥ २ ॥ बाष्पगद्गदयावाचा इदंवचनमब्रवीत् ॥ परित्यक्तावयंभद्रे यादवैःपावकप्रभैः ॥ ३ ॥ बलदेवस्यवीरस्य सात्यकेश्चमहात्मनः ॥ अन्येषांयदुवीराणां निधनंचबभूवह ॥ ४ ॥ जिजीविषुरहंप्राप्तो वासुदेवनिराकृतः ॥ ५ ॥ साश्रुत्वाभर्तृनिधनमर्जुनाच्चमहासती ॥ समुत्सृज्य

दो० । यथा प्रभासक्षेत्रमें भयो पाण्डु अस कूप। दोसौ चौबिस में सोई कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि जाम्बवती नदी है पुरातन समय विष्णुजी की प्यारी स्त्री जाम्बवती नामक हुई है ॥ १ ॥ उस पतिव्रताने अर्जुनजी से पूछा कि हे कुरूद्वह ! वार्त्ताको कहिये उसके उस वचनको सुनकर बार २ श्वास लेतेहुये अर्जुनजी ॥२॥ आँसुवों से गद्गदवचन करके इस वचनको बोले कि हे भद्रे ! अग्निके समान प्रभावाले यादवों ने हमको त्याग कियाहै ॥ ३ ॥ बलभद्र वीर व महात्मा सात्यकी तथा अन्य यदुवीरों का विनाशहुआ ॥ ४ ॥ और श्रीकृष्णजी से निकालाहुआ जीनेकी इच्छावाला मैं यहां प्राप्त

हुआ ॥ ५ ॥ वे महासती जाम्बवतीजी अर्जुनजी से पतिकी मृत्युको सुनकर महाशरीरको छोडकर नदी होकर निकलीं ॥ ६ ॥ व हे देवि ! उससमय चितासे पति
की सब भस्मको लेकर वे उत्तम जाम्बवती सतीजी समुद्र में पैठगई ॥ ७ ॥ जो स्त्री उस नदीमें भक्तिसे स्नान करती है उसके वंशमें भी कोई स्त्री वैधव्यको नहीं प्राप्त
होतीहै ॥ ८ ॥ इसलिये सब यत्नसे वहां स्नानकरै पुरुष होवै या स्त्री उत्तमगतिको प्राप्तहोती है ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर महात्मा पाण्डवों
के उस तीर्थके पश्चिम में त्रिलोक में प्रसिद्ध कूप के समीप जावै ॥ १० ॥ हे महादेवि ! जब पाण्डव वनको प्राप्तहुये तब पृथ्वीमें घूमतेहुये वे प्रभासक्षेत्र को आये ॥

महाकायं नदीभूत्वाविनिर्ययौ ॥ ६ ॥ सागृहीत्वासतीभर्तुर्भस्मसर्वंचितेस्तथा ॥ प्रविष्टासागरंदेवि तदाजाम्ववतीशु
भा ॥ ७ ॥ यानारीतत्रनद्यांवै भक्त्यास्नानंसमाचरेत् ॥ तस्याःकुलेपिकाचित्स्त्री नवैधव्यमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ तस्मा
त्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ नरोवायदिवानारी प्राप्नोतिपरमाङ्गतिम् ॥ ९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि
कूपंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ पश्चिमेतस्यतीर्थस्य पाण्डवानांमहात्मनाम् ॥ १० ॥ यदारण्यमनुप्राप्ताः पाण्डवाःपृथिवीत
ले ॥ भ्रममाणामहादेवि प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ ११ ॥ ततस्तेन्यवसंस्तत्र किञ्चित्कालंसमाहिताः ॥ ज्ञात्वाक्षेत्रंमहापु
ण्यं ततःकृष्णाब्रवीदिदम् ॥ १२ ॥ ब्राह्मणानांसहस्राणि भुञ्जतेभवतांगृहे ॥ १३ ॥ तस्माज्जलाशयंकार्यमाश्रमस्य
समीपतः ॥ यत्रस्नानंकरिष्यामि युष्माकंसंप्रसादतः ॥ १४ ॥ ततस्तुपाण्डवाःसर्वे सहितानुवरानने ॥ अखनंस्तत्रकूपंवै
द्रौपदीवाक्यप्रेरिताः ॥ १५ ॥ अथाजगामतत्रैव भगवान्देवकीसुतः ॥ श्रुत्वासमागतान्पार्थान्द्वारवत्यास्सबान्धवः ॥ १६ ॥

११ ॥ तदनन्तर सावधान होतेहुये वे कुछ समय वहां बसतेभये तदनन्तर महापवित्र क्षेत्रको जानकर द्रौपदीजी यह बोलीं ॥ १२ ॥ कि आपलोगोंके घरमें हजारों ब्रा-
ह्मण भोजन करते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये आश्रम के समीप जलाशय करना चाहिये जिसमें मैं तुमलोगों की प्रसन्नता से स्नान करूं ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे वरानने !
द्रौपदीजी के वचन से प्रेरित सब पाण्डवोंने मिलकर वहा कूपको खोदा ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर आयेहुये पाण्डवों को सुनकर बांधवोंसमेत देवकीसुत श्रीकृष्णजी

द्वारकापुरी से वहां आये ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न,साम्ब,गद, निषद, युयुधान,बलराम व बुद्धिमान् श्रीकृष्णसमेत ॥ १७॥ तथा शूर व युद्धमें दुर्मद अन्य समस्तयादवों समेत वे यदुश्रेष्ठ न्यायपूर्वक आकर ॥ १८॥ तदनन्तर कथाके अन्तमें किसीकारणके अन्तमें श्रीकृष्णजी पाण्डुके पुत्र युधिष्ठिरजीसे यह वचन बोले ॥१६॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे महाबाहो, युधिष्ठिरजी ! मैं तुम्हारा क्या कार्य्य करूं राज्य, धान्य, धन अथवा शत्रुका नाश करूं ॥ २० ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे यादवश्रेष्ठ ! तुम तो अपने कर्मके वशमें स्थित हो हे जगदीश ! सब देवताओंसे प्रणाम कियेहुये तुम्हारे प्रसन्न होनेपर तीनों लोकोंमें वह वस्तु नहीं है जोकि न सिद्धहोवै व उस कूपमें नहाकर

प्रद्युम्नेनचसाम्बेन गदेननिषदेनच ॥ युयुधानेनरामेण तथाकृष्णेनधीमता ॥ १७ ॥ अन्यैश्चनिखिलैश्शूरैर्याद वैर्युद्धदुर्मदैः ॥ तेसमेत्ययथान्यायं समस्तायदुपुङ्गवाः ॥ १८ ॥ ततःकथावसानेच कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ वासुदे वःपाण्डुसुतमिदंवचनमब्रवीत ॥ १६ ॥ कृष्ण उवाच ॥ युधिष्ठिरमहाबाहो किन्तेकामंकरोम्यहम् ॥ राज्यंधान्यंधनं चापि अथवा रिपुनाशनम् ॥ २० ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ सतुत्वंयादवश्रेष्ठ स्वकर्मविवशस्थितः ॥ तन्नास्तित्रिषुलोकेषु यन्नसिद्ध्यतिभूतले ॥ २१ ॥ त्वयितुष्टेजगन्नाथ सर्वदेवनमस्कृते ॥ तस्मिन्श्राद्धंनरःकृत्वा वाजिमेधफलंलभेत ॥ २२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पाण्डुकूपमाहात्म्यंनामचतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवपूजयेद्देवि पञ्चलिङ्गानिभावितः ॥ प्रतिष्ठितानिदेवेशि पाण्डवैश्चमहात्मभिः ॥ १ ॥ यस्तुपूजय तेभक्त्यासमुक्तःपातकैर्भवेत् ॥२॥ इतिश्रीस्कान्देपाण्डवेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः २२५॥

मनुष्य अश्वमेधयज्ञके फलको पावैहै ॥ २१ । २२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायापाण्डवकूपमाहात्म्यं नाम चतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२४ ॥

दो० । पाण्डवेश लिंगहिं यथा थाप्यो पाण्डवपञ्च । दोसौ पच्चीसवें में सोई कथा प्रपञ्च ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि, देवि ! वहीं पर शुद्धचित्तवाला पुरुष महात्मा पाण्डवों से थापेहुये पांच लिङ्गोंके समीप जावै ॥ १ ॥ जो पुरुष भक्तिसे उनको पूजताहै वह पातकोंसे छूटजाताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायापाण्डवेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२५ ॥ ॥ ॥

दो० । किय दशाश्वमेघहिं यथा तीरथ भरतभुवाल । दोसौ छब्विस में सोई बरन्यो चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर महापातकोंको नाशकरनेवाले दशाश्वमेधिकनामक त्रिलोक में प्रसिद्धतीर्थ के समीप जावै ॥ १ ॥ हे भामिनि ! पुरातन समय भरतजीने अतिउत्तम पवित्र क्षेत्रको आकर दश अश्वमेधोंसे वहां यज्ञ किया है ॥ २ ॥ हे भामिनि ! वहां इन्द्रजी सोमपान से तृप्तहुये और कृपण उत्तम अन्न व पानोंसे तथा दक्षिणाओं से ब्राह्मणलोग तृप्तहुये ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न होतेहुये सब देवताओं ने भरत राजासे कहा कि हेमहाबाहो! तुम्हारे यज्ञोंसे भलीभांति तृप्त कियेहुये हमलोग प्रसन्नहैं ॥ ४ ॥ हे नृपेन्द्र ! तुम्हारे

ईश्वर उवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ दशाश्वमेधिकंनाम महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ वाजिमेधैः पुराचेष्टं दशभिस्तत्रभामिनि ॥ भरतेनसमागत्य पुण्यक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ २ ॥ तत्रतृप्तःसहस्राक्षः सोमपानेनभामिनि ॥ कृपणाःस्वान्नपानैश्च दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ ३ ॥ अथोचुस्त्रिदशाःसर्वे सुप्रीताभरतंनृपम् ॥ तुष्टास्तवमहाबाहो यज्ञैःसन्तर्पितावयम् ॥ ४ ॥ वरंवृणीष्वराजेन्द्र यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ५ ॥ राजोवाच ॥ अत्रागत्यनरोभक्त्या यःस्नानंकुरुतेसुराः ॥ दशानामश्वमेधानां श्रद्धयाफलमाप्स्यति ॥ ६ ॥ देवा ऊचुः ॥ दशाश्वमेधिकंनाम तीर्थमेतन्महीतले ॥ ख्यातिंयास्यतिराजेन्द्र नात्रकार्याविचारणा ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं प्रख्यातंधरणीतले ॥ दशाश्वमेधिकमिति सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ८ ॥ ऐन्द्रवारुणमारभ्य गोमुखादाश्वमेधिकम् ॥ अत्रान्तरेमहादेवि शिवक्षेत्रंविदुर्बुधाः॥ ९ ॥ सर्वपापहरंदिव्यं स्वर्गसोपानसन्निभम् ॥ सपादकोटितीर्थानां स्थानंतत्परिकीर्त्तितम् ॥ १० ॥ प्राणत्यागेकृतेत

मनमें जो वर्तमान होवै उस वरदानको मांगिये ॥ ५ ॥ राजा बोले कि हे देवताओ! यहां आकर जो मनुष्य भक्तिसे स्नानकरै वह श्रद्धासे दश अश्वमेधयज्ञों के फलको पावै ॥ ६ ॥ देवताबोले कि हे नृपेन्द्र ! यह तीर्थ पृथ्वीमें दशाश्वमेधिक नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त होगा इसमें विचार न करनाचाहिये ॥ ७ ॥ महादेवजीबोले कि तबसे लगाकर समस्त पातकों को नाश करनेवाला दशाश्वमेधिक ऐसा वह तीर्थ पृथ्वी में प्रसिद्धहुआ ॥ ८ ॥ इन्द्र व वरुणलिंग से लगाकर गोमुख से अश्वमेधिक तीर्थ तक हे महादेवि ! इस मध्यमें विद्वानों ने शिवक्षेत्र कहाहै ॥ ९ ॥ जोकि सब पापोंको हरनेवाला तथा स्वर्गकी सीढ़ीके समान है वह दिव्यतीर्थ सवाकरोड़ तीर्थोंका

स्थान कहागया है ॥ १० ॥ वहां प्राणत्याग करनेपर मनुष्य शिवलोक में प्रसन्न होताहै तिर्यक्योनि में प्राप्त जो पापी कीट, पक्षी व मृगादिक हैं ॥ ११ ॥ वे भी उत्तम स्थानको प्राप्त होतेहैं जहां कि महेश्वरदेवजी हैं और तिल व जलके देनेसे उसके मातृका व पितर तबतक प्रसन्न होते हैं जबतक कि प्रलय होताहै वहां पहले बड़े उत्तम व असंख्य ब्राह्मण पूजेगये हैं ॥ १२ । १३ ॥ वे हे प्रिये ! इन्द्रने वहां यज्ञकर देवराजत्व को पायाहै और पुरातन समय कार्त्तवीर्य ने वहीं सौ यज्ञोंको कियाहै ॥ १४ ॥ हे प्रिये ! क्षेत्रगर्भ के समीप इसप्रकार वह उत्तम स्थानहै वहां मरेहुये प्राणियों का वह स्थान फिर जन्मको नहीं देताहै ॥ १५ ॥ और शुद्धचित्तवाला

त्र शिवलोकेचमोदते॥ तिर्यग्योनिगताःपापाः कीटपक्षिमृगादयः ॥ ११ ॥ तेपियान्तिपरंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः॥ तिलोदकप्रदानेन मातृकाःपितरस्तथा ॥ १२॥ तावद्धैतस्यतृप्यन्तियावदाभूतसंप्लवम् ॥ तत्रेष्टाब्राह्मणाःपूर्वमसङ्ख्या तामहोत्तमाः॥ १३ ॥ शक्रश्चदेवराजत्वं तत्रेष्ट्वाप्राप्तवान्प्रिये ॥ कार्त्तवीर्य्येणतत्रैव कृतंयज्ञशतम्पुरा ॥ १४ ॥ एवंतत्प्र वरंस्थानं क्षेत्रगर्भान्तिकेप्रिये ॥ मृतानांतत्रजन्तूनामपुनर्भवदायकम् ॥ १५ ॥ वृषोत्सर्गन्तुयस्तत्र कुर्याद्वैभावितात्म वान् ॥ यावन्तिवृषरोमाणि तावत्स्वर्गेमहीयते ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदशाश्वमेधमाहात्म्यंनामषड् विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येल्लिङ्गत्रयमनुत्तमम् ॥ शतमेधंसहस्रमेधं कोटिमेधमितिक्रमात् ॥ १ ॥ दक्षिणे शतमेधन्तु शतयज्ञफलप्रदम् ॥ कार्त्तवीर्येणतत्रैव कृतंयज्ञशतम्पुरा ॥ २॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गं सर्वपातकनाशनम् ॥

जो पुरुष वहां वृषोत्सर्ग करताहै वह उतने दिनोंतक स्वर्गमें पूजाजाता है कि जितने वृषके रोम होतेहैं ॥ १६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदशाश्वमेधतीर्थमाहात्म्यंनामषड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२६ ॥ ● ॥ ● ॥ ●

दो० । शतमेधादिक लिङ्गकर कह्यो अतुल माहात्म्य । दोसौ सत्ताईस महँ सोइचरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि शतमेध, सहस्रमेध व कोटिमेध इस क्रमसे वहीं स्थित तीन लिङ्गोंको देखै ॥ १ ॥ दक्षिणमें सौयज्ञोंके फलको देनेवाला शतमेधनामक लिङ्गहै पुरातन समय वहीं कार्त्तवीर्य ने सब पातकों को नाशनेवाले महा-

लिङ्गको थापकर सौ यज्ञोंको कियाहै, और मध्यभाग में जो कोटिमेध ऐसा प्रसिद्ध लिङ्ग है ॥ २ । ३ ॥ पुरातन समय ब्रह्माने देवताओं के आदिदेवता महालिङ्ग को थापकर वहां कोटिसंख्यक महायज्ञोंको कियाहै ॥ ४ ॥ हे देवि ! जो पञ्चामृतरसके जलोंसे और चन्दन पुष्पादिकों की विधिसे पूजताहै वह लिङ्गोंके उपजे हुये फलको पाता है ॥ ५ ॥ वहां भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको गोदान देनाचाहिये हे भामिनि ! वहां दशलाख तीर्थ स्थितहैं ॥ ६ ॥ वैसेही मध्यमें समस्त पातकों को नाशनेवाले तीन लिङ्ग हैं ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांशतमेधादिलिङ्गत्रयमाहात्म्यंनामसप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥

मध्यभागेतुयल्लिङ्गं कोटिमेधेतिविश्रुतम् ॥ ३ ॥ तत्रेष्टाब्रह्मणापूर्वं कोटिसंख्यामखोत्तमाः ॥ संस्थाप्य चमहालिङ्गं देवानामादिदैवतम् ॥ ४ ॥ गन्धपुष्पादिविधिना पञ्चामृतरसोदकैः ॥ सप्राप्नुयात्फलंदेवि लिङ्गानामुद्भवंक्रमात् ॥ ५ ॥ गोदानंतत्रदेयंवै सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ दशलक्षाणितीर्थानां तत्रतिष्ठन्तिभामिनि ॥ ६ ॥ लिङ्गत्रयंतथामध्ये सर्वपातकनाशनम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे शतमेधादिलिङ्गत्रयमाहात्म्यंनाम सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि दुर्वासादित्यमुत्तमम् ॥ यत्रदुर्वाससातप्तं तपोवर्षसहस्रकम् ॥ १ ॥ निराहारो जिताहारः सूर्याराधनतत्परः ॥ एवंकालेनमहता दिव्यतेजाजनाधिपः ॥ २ ॥ प्रत्यक्षंदर्शनंकृत्वा प्राहसूर्योमहामुनिम् ॥ सूर्य उवाच ॥ माब्रह्मन्साहसंकार्षीर्वरंवरयसुव्रत ॥ ३ ॥ अप्राप्यमपिदास्यामियत्तेमनसिवर्त्तते ॥ दुर्वासा उवाच ॥

दो० । वज्रेश्वर लिङ्गहिं थप्यो यथा वज्रयदुनाथ । दोसौ अट्ठाईसमहँ सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम दुर्वासादित्य के समीप जावै जहांपर दुर्वासाजी ने हज़ार वर्षतक तपकिया है ॥ १ ॥ व निराहार तथा जिताहार होकर वे सूर्यनारायणके आराधन में तत्पर हुये इसप्रकार बहुत समय के बाद दिव्य तेजवाले जनाधिप ॥ २ ॥ सूर्यनारायणजी ने प्रत्यक्ष दर्शनकरके महामुनि दुर्वासाजी से कहा सूर्यनारायण बोले कि हे सुव्रत, ब्रह्मन् ! साहस मतकरो वर

दानको मागिये ॥ ३ ॥ जो तुम्हारे मनमें वर्तमान होवै उस दुर्लभ पदार्थको भी दूंगा दुर्वासाजी बोले कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो और यदि मैं वर देनेकेयोग्य हूं ॥ ४ ॥ तो जबतक पृथ्वी स्थितरहै तबतक तुमको इस स्थान में स्थित होना चाहिये और संसार में दुर्वासादित्य नाम करके प्रसिद्धि को प्राप्त होवो ॥ ५ ॥ व हे जगत्पते, देव ! मैंने जो तुम्हारी सुन्दरी मूर्त्तिको थापाहै उसमें तुम्हारी समीपता होवै ॥ ६ ॥ और यहां तुम्हारी कन्या यमुनाजी समीपता करैं और तुम्हारे पुत्र बड़े तेजस्वी व बड़े बलवान् धर्मराजजी यहां समीपता करैं ॥ ७ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे महामुने ! गङ्गादिक अन्य करोड़तीर्थ तुम्हारे स्थानको मेरे वचन से निश्चय

प्रसन्नोयदिमेदेव वराहोयदिवाप्यहम् ॥ ४ ॥ अत्रस्थानेत्वयास्थेयं यावत्तिष्ठतिमेदिनी ॥ दुर्वासादित्यनाम्नावै लोकेख्यातिञ्चगच्छसि ॥ ५ ॥ मयाप्रतिष्ठितायातु प्रतिमातवसुन्दरी ॥ तस्यांसान्निध्यमेवास्तु तवदेवजगत्पते ॥ ६ ॥ सान्निध्यंकुरुतांचात्र यमुनादुहितातव ॥ त्वत्पुत्रस्तुमहातेजा धर्मराजोमहाबलः ॥ सूर्य उवाच ॥ ७ ॥ तीर्थानां कोटिरन्याच गङ्गादीनांमहामुने ॥ आगमिष्यन्तितेस्थानं निश्चितंवचनान्मम ॥ ८ ॥ अत्रस्थानेमयाब्रह्मन्स्थातव्यंस हदैवतैः ॥ आदित्यानांप्रभावैस्तु ब्रह्माण्डोदरवासिनाम् ॥ ९ ॥ तेषांमाहात्म्यसंयुक्तः स्थास्येचात्रमहामुने॥सावित्रीणां सहस्रेण दृष्टेनैवतुयत्फलम् ॥१०॥ तत्फलंकोटिगुणितं दुर्वासादित्यदर्शनात् ॥११॥ लप्स्यन्तेप्राणिनःसर्वे यज्ञकोटिफलंतथा॥ एवमुक्त्वातदासूर्यःसस्मारतनयान्निजाम् ॥ १२॥ तथैवधर्मराजानं सर्वप्राणिनियामकम् ॥ स्मृतमात्रातत्रभित्त्वा पातालतलमाययौ ॥ १३ ॥ सानदीरूपिणीदेवी तीर्थकोटिसमन्विता ॥ यमश्चतत्रभगवान् कालदण्डधरस्त

कर आवैंगे ॥ ८ ॥ व हे ब्रह्मन् ! देवताओं समेत मैं इस स्थानमें स्थितहूंगा औरहे मुने ! सूर्योंके प्रभावों से ब्रह्माण्डके मध्य में बसनेवाले उनके माहात्म्यसे संयुत मैं यहां टिकूंगा और हज़ार सावित्रियों के देखने से जो फल होता है ॥ ९ । १० ॥ उससे कोटिगुना फल दुर्वासादित्यजी के दर्शन से होगा ॥ ११ ॥ और सब प्राणी करोडयज्ञों के फलको पावैंगे ऐसा कहकर उस समय सूर्यनारायणने अपनी कन्या को स्मरण किया ॥ १२ ॥ वैसेहीं सब प्राणियों को दण्ड देनेवाले धर्मराज को स्मरणकिया और स्मरण कीहुई वे नदीरूपवाली यमुना देवी करोड़ तीर्थोंसे संयुत होकर पातालतलको तोड़कर वहां प्राप्तहुई और उस समय कालदण्डधारी भग-

वान् यमराजजी वहां ॥ १३ । १४ ॥ हे महादेवि ! लोकसाक्षी सूर्यनारायण के समीप प्राप्तहुये सूर्यनारायण बोले कि इस क्षेत्रमें मेरे वचन से तुमको स्वरूप से स्थित होना चाहिये ॥ १५ ॥ और पापी प्राणियों की यहां बड़ेयत्न से रक्षा करना चाहिये और सूर्यनारायण के भक्त गृहस्थ ब्राह्मणों की सदैव रक्षा करना चाहिये ॥ १६ ॥ और करोड़ तीर्थों से संयुत यमुनाजी व तुम यहां बसो व दुर्वासाजी से उपजे हुये स्थानमें तुम बहुत प्रसन्न होवो ॥ १७ ॥ दुर्वासाजी के समीप यही कहकर देवेश सूर्यनारायण स्वामी सब देवताओं के देखतेहुये अन्तर्द्धान होगये ॥ १८ ॥ व उस समय प्रसन्न होतेहुये दुर्वासाजी जबतक अपने आश्रम को देखें तबतक पातालके

दा ॥ १४ ॥ उपस्थितोमहादेवि सूर्यम्भुवनसाक्षिणम् ॥ सूर्य उवाच ॥ अत्रक्षेत्रेस्वरूपेण स्थातव्यंवचनान्मम ॥ १५ ॥ पापिनांप्राणिनांचात्र रक्षाकार्याप्रयत्नतः ॥ सूर्यभक्ताःसदारक्ष्या ब्राह्मणागृहमेधिनः ॥ १६ ॥ त्वंचापियमुनाचात्र कोटितीर्थैनसंयुता ॥ वसतम्भवसुप्रीतः स्थानेदुर्वाससोद्भवे ॥ १७ ॥ इत्येवमुक्त्वादेवेशस्तत्रदुर्वाससोन्तिकम् ॥ पश्यतांसर्वदेवानामन्तर्द्धानमगात्प्रभुः ॥ १८ ॥ दुर्वासास्तुतदाहृष्टो यावत्पश्यतिस्वाश्रमम् ॥ तावत्पातालमार्गेण यमुनाप्रादुराभवत् ॥ १९ ॥ यमश्चदृष्टस्तत्रैव क्षेत्रमध्येस्वरूपधृक् ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्थंसमभवत्तत्र यमुनोद्भवमुत्तमम् ॥ २० ॥ कुण्डमादित्यतोयाम्ये दुन्दुभेस्तत्रपूर्वतः ॥ क्षेत्रपालोमहादेवि यतोदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे माधवेमासिमानवः ॥ पूजयेद्भक्तियोगेन रविङ्गगनभूषणम् ॥ २२ ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे यःसन्तर्पयतेपितॄन् ॥ दशवर्षाणितस्यैव तृप्तियान्तिपितामहाः ॥ २३ ॥ पिण्डदानेनपितॄणां शताष्टम्पुष्टिमावहेत ॥ नरकेतुस्थितानाञ्च मुक्तिर्भू

मार्गसे यमुनाजी प्रकट हुई ॥ १९ ॥ और वहींपर क्षेत्रके मध्यमें स्वरूपधारी यमराजजी को देखा महादेवजी बोले कि इस प्रकार वह उत्तम यमुनाजी से उपजा हुआ ॥ २० ॥ कुण्ड वहां दुन्दुभि के पूर्वओर व सूर्यनारायणजी से दक्षिणमें है व हे महादेवि ! जहां दुन्दुभि के समान शब्दवाले क्षेत्रपालहैं ॥ २१ ॥ वहां वैशाख महीने में महाकुण्ड में नहाकर मनुष्य भक्तिके योगसे आकाश के भूषणरूप सूर्यनारायणजी को पूजै ॥ २२ ॥ उस महाकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य पितरों को भलीभांति तर्पण करता है उसके पितामह दश वर्षोंतक तृप्त होतेहैं ॥ २३ ॥ और पिण्डदान से आठसौ पितर पुष्टिको प्राप्त होते हैं और नरकमें स्थित पितरों की

निरसन्देह मुक्ति होतीहै ॥ २४ ॥ और माघ महीने में शुक्लपक्ष में जो मनको रोकनेवाला पुरुष दुर्वासादित्य को पूजता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाताहै ॥ २५ ॥ और जो प्राणी दुर्वासादित्य के समीप सहस्रनामों को पढ़ता है वह मनुष्य यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि पापसे छूटजाता है ॥ २६ ॥ सब मङ्गलों के मध्यमें माङ्गल्य व सब पापोंको नाश करनेवाले दुर्वासादित्य नामक सूर्यनारायण को कौन नहीं पूजता है ॥ २७ ॥ और वह कोई भय नहीं है कि जो इससे न शान्त होवै निर्धनियोंको ऐश्वर्यदायक व कुष्ठियों को बड़ी उत्तम औषध ॥ २८ ॥ और सब बालकों के ग्रहों व राक्षसों को निवारण करनेवाला व महापापसमूहों को नाशनेवाला

यान्नसंशयः ॥ २४ ॥ माघेमासिसितेपक्षे सप्तम्यांयोयतात्मवान् ॥ दुर्वाससोर्कमभ्यर्चेन्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ २५ ॥ पठेत्सहस्रनाम्नान्तु दुर्वासादित्यसन्निधौ ॥ षण्मासान्मुच्यतेजन्तुर्यद्यपिब्रह्महानरः ॥ २६ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ दुर्वासादित्यनामानं सूर्यंकोनाभिपूजयेत् ॥ २७ ॥ नतदस्तिभयंकिञ्चिद्यदनेननशाम्यति ॥ भूतिप्रदंदरिद्राणां कुष्ठिनाम्परमौषधम् ॥ २८ ॥ बालानाञ्चैवसर्वेषां ग्रहरक्षोनिवारणम् ॥ महापापौघशमनं दुर्वासादित्यदर्शनम् ॥ २९ ॥ हेमंचतत्रदातव्यं सूर्यमुद्दिश्यभामिनि ॥ ब्राह्मणेवेदसंयुक्ते तेनदत्तामहीभवेत् ॥ ३० ॥ यस्तत्रपूजयेद्देवि क्षेत्रपालञ्चदुन्दुभिम् ॥ सपुत्रपशुमान्धीमाञ्छ्रीमान्भवतिमानवः ॥ ३१ ॥ नभयंजायतेतस्य त्रिविधंवरवर्णिनि ॥ अर्द्धगव्यूतिमात्रन्तु तत्रक्षेत्रंरवेःस्मृतम् ॥ ३२ ॥ नतत्रप्रविशेद्यस्तु सूर्यभक्तिविवर्ज्जितः ॥ इत्येतत्कथितंदेवि माहात्म्यंसूर्यदैवतम् ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यादवस्थलमुत्तमम् ॥ यादवायत्रनष्टावै षट्प

दुर्वासादित्यजी का दर्शन है ॥ २९ ॥ व हे भामिनि ! वहां सूर्यनारायण को उद्देश कर वेदसंयुक्त ब्राह्मण के लिये सुवर्ण देना चाहिये जो ऐसा करता है उसने मानो पृथ्वीको दिया ॥ ३० ॥ हे देवि ! वहांपर जो दुन्दुभि क्षेत्रपाल को पूजता है वह मनुष्य पुत्रवान् पशुमान् बुद्धिमान् व लक्ष्मीवान् होताहै ॥ ३१ ॥ व हे वरवर्णिनि ! उसको तीन प्रकारका भय नहीं होताहै वहां आधा गव्यूतिमात्र याने कोसभर सूर्यनारायणका क्षेत्र कहागयाहै ॥ ३२ ॥ जो सूर्यनारायणकी भक्तिसे रहित होवै वह उस क्षेत्रमें न पैठे हे देवि ! सूर्यदेवतावाला यह माहात्म्य कहागया ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम यादवस्थल के समीप जावै जहां छप्पन

वान् यमराजजी वहां ॥ १३ । १४ ॥ हे महादेवि ! लोकसाक्षी सूर्यनारायण के समीप प्राप्तहुये सूर्यनारायण बोले कि इस क्षेत्रमें मेरे वचन से तुमको स्वरूप से स्थित होना चाहिये ॥ १५ ॥ और पापी प्राणियों की यहा बड़ेयत्न से रक्षा करना चाहिये और सूर्यनारायण के भक्त गृहस्थ ब्राह्मणों की सदैव रक्षा करना चाहिये ॥ १६ ॥ और करोड़ तीर्थों से संयुत यमुनाजी व तुम यहां बसो व दुर्वासाजी से उपजे हुये स्थानमें तुम बहुत प्रसन्न होवो ॥ १७ ॥ दुर्वासाजी के समीप यही कहकर देवेश सूर्यनारायण स्वामी सब देवताओं के देखतेहुये अन्तर्द्धान होगये ॥ १८ ॥ व उस समय प्रसन्न होतेहुये दुर्वासाजी जबतक अपने आश्रम को देखें तबतक पातालके

दा ॥ १४ ॥ उपस्थितोमहादेवि सूर्यम्भुवनसाक्षिणम् ॥ सूर्य उवाच ॥ अत्रक्षेत्रेस्वरूपेण स्थातव्यंवचनान्मम ॥ १५ ॥ पापिनांप्राणिनांचात्र रक्षाकार्याप्रयत्नतः ॥ सूर्यभक्ताःसदारक्ष्या ब्राह्मणागृहमेधिनः ॥ १६ ॥ त्वंचापियमुनाचात्र कोटितीर्थैनसंयुता ॥ वसतम्भवसुप्रीतः स्थानेदुर्वाससोद्भवे ॥ १७ ॥ इत्येवमुक्त्वादेवेशस्तत्रदुर्वाससोन्तिकम् ॥ पश्यतांसर्वदेवानामन्तर्द्धानमगात्प्रभुः ॥ १८ ॥ दुर्वासास्तुतदाहृष्टो यावत्पश्यतिस्वाश्रमम् ॥ तावत्पातालमार्गेण यमुनाप्रादुराभवत् ॥ १९ ॥ यमश्चदृष्टस्तत्रैव क्षेत्रमध्येस्वरूपधृक् ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्थंसमभवत्तत्र यमुनोद्भवमुत्तमम् ॥ २० ॥ कुण्डमादित्यतोयाम्ये दुन्दुभेस्तत्रपूर्वतः ॥ क्षेत्रपालोमहादेवि यतोदुन्दुभिनिःस्वनः ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे माधवेमासिमानवः ॥ पूजयेद्भक्तियोगेन रविङ्गगनभूषणम् ॥ २२ ॥ तत्रस्नात्वामहाकुण्डे यःसन्तर्पयतेपितॄन् ॥ दशवर्षाणितस्यैव तृप्तियान्तिपितामहाः ॥ २३ ॥ पिण्डदानेनपितॄणां शताष्टम्पुष्टिमावहेत ॥ नरकेतुस्थितानाञ्च मुक्तिर्भू

मार्गसे यमुनाजी प्रकट हुई ॥ १९ ॥ और वहींपर क्षेत्रके मध्यमें स्वरूपधारी यमराजजी को देखा महादेवजी बोले कि इस प्रकार वह उत्तम यमुनाजी से उपजा हुआ ॥ २० ॥ कुण्ड वहां दुन्दुभि के पूर्वओर व सूर्यनारायणजी से दक्षिणमें है व हे महादेवि ! जहा दुन्दुभि के समान शब्दवाले क्षेत्रपालहैं ॥ २१ ॥ वहां वैशाख महीने में महाकुण्ड में नहाकर मनुष्य भक्तिके योगसे आकाश के भूषणरूप सूर्यनारायणजी को पूजै ॥ २२ ॥ उस महाकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य पितरों को भलीभांति तर्पण करता है उसके पितामह दश वर्षोंतक तृप्त होतेहैं ॥ २३ ॥ और पिण्डदान से आठसौ पितर पुष्टिको प्राप्त होते हैं और नरकमें स्थित पितरों की

निरसन्देह मुक्ति होतीहै ॥ २४ ॥ और माघ महीने में शुक्लपक्ष में जो मनको रोकनेवाला पुरुष दुर्वासादित्य को पूजता है वह ब्रह्महत्या से छूटजाताहै ॥ २५ ॥ और जो प्राणी दुर्वासादित्य के समीप सहस्रनामों को पढ़ता है वह मनुष्य यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि पापसे छूटजाता है ॥ २६ ॥ सब मङ्गलों के मध्यमें माङ्गल्य व सब पापोंको नाश करनेवाले दुर्वासादित्य नामक सूर्यनारायण को कौन नहीं पूजता है ॥ २७ ॥ और वह कोई भय नहीं है कि जो इससे न शान्त होवै निर्धनियोंको ऐश्वर्यदायक व कुष्ठियों को बड़ी उत्तम औषध ॥ २८ ॥ और सब बालकों के ग्रहों व राक्षसों को निवारण करनेवाला व महापापसमूहों को नाशनेवाला

यान्नसंशयः ॥ २४ ॥ माघेमासिसितेपक्षे सप्तम्यांयोयतात्मवान् ॥ दुर्वाससोर्कमभ्यर्चेन्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ २५ ॥ पठेत्सहस्रनाम्नान्तु दुर्वासादित्यसन्निधौ ॥ षण्मासान्मुच्यतेजन्तुर्यद्यपिब्रह्महानरः ॥ २६ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ दुर्वासादित्यनामानं सूर्यकोनाभिपूजयेत् ॥ २७ ॥ नतदस्तिभयंकिञ्चिद्यदनेननशाम्यति ॥ भूतिप्रदंदरिद्राणां कुष्ठिनाम्परमौषधम् ॥ २८ ॥ बालानाञ्चैवसर्वेषां ग्रहरक्षोनिवारणम् ॥ महापापौघशमनं दुर्वासादित्यदर्शनम् ॥ २९ ॥ हेमंचतत्रदातव्यं सूर्यमुद्दिश्यभामिनि ॥ ब्राह्मणेवेदसंयुक्ते तेनदत्तामहीभवेत् ॥ ३० ॥ यस्तत्रपूजयेद्देवि क्षेत्रपालञ्चदुन्दुभिम् ॥ सपुत्रपशुमान्धीमाञ्छ्रीमान्भवतिमानवः ॥ ३१ ॥ नभयंजायतेतस्य त्रिविधंवरवर्णिनि ॥ अर्द्धगव्यूतिमात्रन्तु तत्रक्षेत्रंरवेःस्मृतम् ॥ ३२ ॥ नतत्रप्रविशेद्यस्तु सूर्यभक्तिविवर्जितः ॥ इत्येतत्कथितंदेवि माहात्म्यंसूर्यदैवतम् ॥ ३३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यादवस्थलमुत्तमम् ॥ यादवायत्रनष्टावै षट्प

दुर्वासादित्यजी का दर्शन है ॥ २९ ॥ व हे भामिनि ! वहां सूर्यनारायण को उद्देश कर वेदसंयुक्त ब्राह्मण के लिये सुवर्ण देना चाहिये जो ऐसा करता है उसने मानो पृथ्वीको दिया ॥ ३० ॥ हे देवि ! वहांपर जो दुन्दुभि क्षेत्रपाल को पूजता है वह मनुष्य पुत्रवान् पशुमान् बुद्धिमान् व लक्ष्मीवान् होताहै ॥ ३१ ॥ व हे वरवर्णिनि ! उसको तीन प्रकारका भय नहीं होताहै वहां आधा गव्यूतिमात्र याने कोसभर सूर्यनारायणका क्षेत्र कहागयाहै ॥ ३२ ॥ जो सूर्यनारायणकी भक्तिसे रहित होवै वह उस क्षेत्रमें न पैठे हे देवि ! सूर्यदेवतावाला यह माहात्म्य कहागया ॥ ३३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम यादवस्थल के समीप जावै जहां छप्पन

करोड़ यादव नष्टहुये हैं ॥ ३४ ॥ वहां वज्रने सदैव वज्रेश्वरदेव को आराधन किया है जहां कि दिव्यदृष्टिवाले महर्षियों का आश्रम कुलहै ॥ ३५ ॥ देवीजी बोलीं कि हे भगवन् ! वृष्णियों समेत अन्धक किस प्रकारनष्ट हुये और श्रीकृष्णजीके देखतेहुये महारथी भोज किस प्रकार नष्ट हुयेहैं ॥ ३६ ॥ व हे महादेवजी ! किसने शापित वे वृष्णि व अन्धादिक तथा भोजवीर क्षयको प्राप्तहुये हैं इसको मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि छप्पन करोड यादवों का जब विनाश हुआहै तब कालसे प्रेरित उन्होंने आपसमें मुसलसे युद्ध कियाहै ॥ ३८ ॥ द्वारका के बसनेवाले सारणआदिक भोजोंने विश्वामित्र, कण्व और यशस्वी नारदजी को

ञ्चाशच्चकोटयः ॥ ३४ ॥ तत्रवज्रेश्वरोदेवो वज्रेणाराधितःसदा ॥ यत्रास्तिदिव्यदृष्टीनामृषीणामाश्रमंकुलम् ॥ ३५ ॥ देव्युवाच ॥ कथंविनष्टाभगवन्नन्धकावृष्णिभिःसह॥ पश्यतोवासुदेवस्य भोजाश्चैवमहारथाः॥३६॥ केनाभिशप्तास्तेवीराः क्षयंवृष्ण्यन्धकादयः ॥ भोजाश्चैवमहादेवविस्तरेणवदस्वमे ॥ ३७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ षट्पञ्चाशच्चकोटीनां वृष्णी नांचक्षयोभवत् ॥ अन्योन्यंमुसलेनैव युयुधुःकालचोदिताः ॥ ३८ ॥ विश्वामित्रञ्चकण्वञ्च नारदंचयशस्विनम् ॥ सारणप्रमुखाभोजा ददृशुर्द्वारकौकसः ॥ ३९ ॥ तेवैसाम्बंसमानिन्युर्भूषयित्वास्त्रियंयथा ॥ अब्रुवन्नुपसङ्गम्य दैवदण्ड निपीडिताः ॥ ४० ॥ इयंस्त्रीपुत्रकामाच गर्भिणीदृश्यतेतुया॥ऋषयःसाधुजानीत किमियंजनयिष्यति॥४१॥ इत्युक्तास्ते तदादेवि विप्रलम्भप्रधर्षिताः ॥ यत्प्रत्यूचुस्तुमुनयस्तच्छृणुध्वंयथातथम् ॥४२॥ ऋषय ऊचुः ॥ वृष्ण्यन्धकविनाशा य मुसलंघोरमायसम् ॥ वासुदेवस्यतनयःसाम्बोयंजनयिष्यति ॥४३॥ येनयूयंदुर्विनीतानृशंसाजातमन्यवः ॥ उच्छेत्ता

देखा ॥ ३९ ॥ और वे स्त्रीकी नाईं भूषितकर साम्बको लाये व दैवके दण्डसे पीड़ित उन्होंने समीप जाकर कहा ॥ ४० ॥ कि यह स्त्री पुत्रको चाहती है जोकि गर्भिणी देख पडती है हे ऋषियो ! भलीभांति जानिये कि यह क्या पैदा करैगी ॥ ४१ ॥ हे देवि ! छलसे धर्षित इस प्रकार कहेहुये उन मुनियोंने उस समय उनसे जो कहा उसको यथायोग्य सुनिये ॥ ४२ ॥ ऋषिलोग बोले कि वृष्णि व अन्धकोंके विनाशके लिये यह श्रीकृष्णका पुत्र साम्ब लोहेकेभयङ्कर मुसलको पैदा करैगा ॥ ४३ ॥

जिससे कि क्रूर व दुर्विनीत तुमलोग क्रोधित होकर बलभद्र व श्रीकृष्णजी को छोडकर सब कुलको नाश करोगे और तुमलोगोंको छोडकर श्रीमान् बलभद्र-देवजी आपही चलेजावैंगे ॥ ४४ ॥ और पृथ्वी में सोतेहुये महाभाग श्रीकृष्णजीको बहेलिया बेधैगा हे देवि ! दुष्टात्मा यादवों से छलेहुये उन मुनियों ने उस समय यह कहा ॥ ४५ ॥ और क्रोधमे लाल लोचनोंवाले मुनियोंने आपसमें देखकरवैसाही कहकर तदनन्तर मुनिलोग श्रीकृष्णजीके समीप आये ॥ ४६ ॥ इसके अनन्तर मधुसूदन श्रीकृष्णजीने ऐसा सुनकर उस समय यादवों से कहा कि हे महाभागो ! मत शोचिये वह वैसाही होनेयोग्य है ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी फिर घरमें

रःकुलंसर्वमृतेरामजनार्दनौ ॥ त्यक्त्वावोयास्यतिश्रीमान्स्वयंदेवोहलायुधः ॥ ४४ ॥ यदाकृष्णंमहाभागं शयानंभुविभे त्स्यति ॥ इत्यूचुस्तेतदादेवि प्रलब्धास्तेदुरात्मभिः ॥ ४५ ॥ मुनयःक्रोधरक्ताक्षाःसमीक्ष्याथपरस्परम् ॥ तथोक्त्वामुनय स्तेतु ततःकेशवमभ्ययुः ॥ ४६ ॥ अथाब्रवीत्तदावृष्णीञ्छ्रुत्वैवंमधुसूदनः ॥ माशोचतमहाभागा भवितव्यंतथेतितत्॥ ४७॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशः प्रविवेशपुनर्गृहान् ॥ कृतान्तमन्यथाकर्तुं नैच्छत्सजगतांप्रभुः ॥ ४८ ॥ श्वोभूतेथततःसाम्बो मुसलंतदसूयत ॥ येनवृष्ण्यन्धककुलेनराभस्मीकृताःकिल ॥ ४९॥ वृष्ण्यन्धकविनाशाय यत्कालप्रतिमंमहत् ॥ अ सूतशापजंघोरं तच्चराज्ञेन्यवेदयत ॥ ५० ॥ विषरूपमभूद्राजासूक्ष्मचूर्णमकारयत ॥ अक्षिपन्सागरेतत्र पुरुषाराजशास नात्॥ ५१ ॥ अघोषयत्स्वनगरेवचनादाहुकस्यच॥ जनार्दनस्यरामस्यबभ्रोश्चैवमहात्मनः ॥ ५२ ॥ अद्यप्रभृतिसर्वेषांवृ

पैठगये और लोकोंके स्वामी उन श्रीकृष्णजीने मृत्युको अन्यथा करनेको न इच्छा किया ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर प्रभात होनेपर साम्ब ने उस मुसल को पैदा किया कि जिससे वृष्णि व अन्धकों के वंशमें सब पुरुष भस्म करदियेगये ॥ ४९ ॥ वृष्णियों व अन्धकों के विनाशके लिये जो बड़ाभारी व कालके समान था शापसे उपजे हुये उस भयङ्कर मुसल को पैदा किया और उसको राजासे निवेदन किया ॥ ५० ॥ जो कि विषरूप हुआ था उसको राजाने सूक्ष्म चूर्ण कराया और राजाकी आज्ञा से पुरुषों ने उसको उस समुद्र में फेंकदिया ॥ ५१ ॥ व आहुक तथा श्रीकृष्ण व बलभद्र तथा महात्मा बभ्रुके वचन से राजाने अपने नगरमें डुग्गी पिटवाया ॥ ५२ ॥

कि आज से लगा कर सब यादवों व अन्धकों के घरों में सब देशवासियोंको मदिराका आसव न करना चाहिये ॥ ५३ ॥ और यदि ऐसा कोई मनुष्य कहीं प्रकट करैगा वह ऐसा करके बन्धुवों समेत जीता हुआ शूलीपर चढ़ैगा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर सहज कर्म वाले बलभद्र जी की आज्ञा को जानकर सब मनुष्यों ने राजाके भय से नियम किया ॥ ५५ ॥ इस प्रकार यत्न करते हुये अन्धकों समेत यादवों के सब घरों में कालने नित्यही परिक्रमा किया ॥ ५६ ॥ वह पुरुष कराल व विकट तथा मुण्डित व कृष्ण पिङ्गलवर्ण था तथा बढ़नीका महाकेतु किये और गुड़हर के फूलों का कर्णभूषण कियेथा ॥ ५७ ॥ और गिरदान, होरिल व कौवोंसे गहनों को किये

ष्ण्यन्धकगृहेषुच ॥ सुरासवोनकर्त्तव्यः सर्वैर्विषयवासिभिः ॥ ५३ ॥ यश्चवाविदितंकुर्यादेवंकश्चित्कचिन्नरः ॥ सजीवञ्छूलमारोहेदेवंकृत्वासबान्धवः ॥ ५४ ॥ ततोराजभयात्सर्वेनियमंतत्रचक्रिरे ॥ नराःशासनमाज्ञाय रामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ ५५ ॥ एवंप्रयतमानानां वृष्णीनामन्धकैःसह ॥ कालोगृहाणिसर्वाणि परिचक्रामनित्यशः ॥ ५६ ॥ करालोविकटोमुण्डः पुरुषःकृष्णपिङ्गलः ॥ संमार्ज्जनीमहाकेतुर्जपापुष्पावतंसकः ॥ ५७ ॥ कृकलासेनहारीतः काकैश्चकृतभूषणः ॥ गृहाण्यावेक्ष्यवृष्णीनां नादृश्यतपुनःक्वचित् ॥ ५८ ॥ तेसर्वेतुमहेष्वासाःशूरैःशतसहस्रशः ॥ नाशक्नुवंस्तदावेद्धुं सर्वभूतात्ययंसदा ॥ ५९ ॥ उत्पेदिरेमहोत्पाता दारुणाहिदिनेदिने ॥ वृष्ण्यन्धकविनाशाय वायवोलोमहर्षिणः ॥ ६० ॥ विष्वग्ववुस्तथारथ्यां विभिन्नमणिकास्तथा ॥ सुप्तानांददृशुःकेशान्नृणांयुवतयोनिशि ॥ ६१ ॥ चीचीकूचीति वासन्ती सारिकावृष्णिवेश्मसु ॥ अजाःशिवानांचरुतमनुकुर्वन्तिभामिनि ॥ ६२ ॥ पाण्डुरारक्तपादाश्च विहगाःकालप्रे

था वह यादवोंके घरोंको देखकर फिर कहीं नहीं देखपड़ा ॥ ५८ ॥ और बड़े धनुषोंवाले वे सब यादव उस समय सैकड़ो व हज़ारों बाणोंसे सदैव समस्त प्राणियों को नाशनेवाले उसको बेधनेके लिये न समर्थ हुये ॥ ५९ ॥ और यादवों व अन्धकों के विनाशके लिये प्रतिदिन बडेभारी उत्पात उत्पन्न हुये कि लोमोंको खड़े करनेवाले पवन ॥ ६० ॥ सबओरसे चलनेलगे व गांवके भीतरवाले मार्गोंकी मणियां टूटगईं और रातमे स्त्रियोंने सोतेहुये पुरुषों के केशोंको देखा ॥ ६१ ॥ व यादवों के घरोंमें सारिका (मैना) चीची कूची ऐसा शब्द करतीहै व हे भामिनि ! बकरी सियारियों के शब्दका अनुकार करती हैं ॥ ६२ ॥ और उस समय श्वेतवर्णवाले तथा लाले

पांववाले कबूतर पक्षी वृष्णियों व अन्धकों के घरोंमें विचरते भये ॥ ६३ ॥ और गौवों में गधा तथा ऊंटिनियोंमें बैल उत्पन्नहुये तथा कुतियोंमें बिलार व नेउलियों में मूस पैदाहुये ॥ ६४ ॥ वैसेही यादवलोग निर्लज्जता समेत पाप करनेलगे और ब्राह्मणों तथा पितरों व देवताओं से वैर करतेभये ॥ ६५ ॥ व गुरुवों का अपमान करते थे परन्तु बलभद्र व श्रीकृष्णजी नहीं करते थे और स्त्रियां पतियों को छलनेलगीं व पुरुष स्त्रियों की वञ्चना करनेलगे ॥ ६६ ॥ और नीली, लाली व मंजीठी रंगकी अपनी ज्वालाओं को अलग २ पैदा करती हुई जलती हुई अग्नि वामओर से घूमती थी ॥ ६७ ॥ और उदय व अस्त समय में सूर्यनारायणजी उलटे होजाते

रिताः ॥ वृष्ण्यन्धकगृहेष्वेवकपोताव्यचरंस्तदा ॥ ६३ ॥ व्यजायन्तखरागोषु वृषाश्चाश्वतरीषुच ॥ शुनीष्वपिबिडाला श्चमूषकानकुलीषुच ॥ ६४ ॥ तथात्रपंतुपापानि कुर्वतेवृष्णयस्तथा ॥ अद्विषन्ब्राह्मणांश्चापि पितृदेवांस्तथैवच ॥ ६५ ॥ गुरूंश्चाप्यवमन्यन्ते नतुरामजनार्द्दनौ ॥ भार्याःपतीन्वञ्चयन्ति पत्नीश्चपुरुषास्तथा ॥ ६६ ॥ विभावसुःप्रज्वलि तो वामंविपरिवर्त्तते ॥ नीललोहितमाञ्जिष्ठान् विसृजन्स्वार्चिषःपृथक् ॥ ६७ ॥ उदयास्तमनेनित्यं पर्यस्तःस्याद्दिवा करः ॥ व्यदृश्यतासकृत्पुम्भिः कबन्धःपरिवारितः ॥ ६८ ॥ महानसेषुसिद्धान्ने संस्कृतेतीवभामिनि ॥ उत्तीर्यमाणेकृम यो दृश्यन्तेचवरानने ॥ ६९ ॥ पुण्याहेवाच्यमानेच पठत्सुचमहात्मसु ॥ अभिधानानिश्रूयन्ते नचादृश्यतकश्चन ॥ ७० ॥ परस्परञ्चनक्षत्रं हन्यमानंपुनःपुनः ॥ ग्रहैरपश्यन्सर्वैस्तेनात्मानन्तुकथञ्चन ॥ ७१ ॥ नादत्तंपाकयज्ञञ्च वृ ष्ण्यन्धकपुरस्कृतम् ॥ समन्तात्प्रत्यवासन्त रासभारवनिःस्वनाः ॥ ७२ ॥ एवंपश्यन्हृषीकेशस्सम्प्राप्तान्कालपर्यया

थे और मस्तकरहित पुरुषों से घिरेहुये देखपड़ते थे ॥ ६८ ॥ व हे वरानने, भामिनि ! रसोइयों में सिद्धान्न बहुतही संस्कार करनेपर व उतारने पर कीट देख पड़ते थे ॥ ६९ ॥ और पुण्याह बांचेजाने पर व महात्माओं के पढ़नेपर नाम सुनेजाते थे और कोई नहीं देखपड़ताथा ॥ ७० ॥ और आपसमें सब ग्रहोंसे बार २ मारेजाते हुये नक्षत्रको यादव देखते थे और अपना को किसी प्रकार नहीं देखते थे ॥ ७१ ॥ व वृष्णियों तथा अन्धकों से पुरस्कृत पाकयज्ञ को देवताओ से नहीं ग्रहण किया

गया और कठोर शब्दवाले गधे सबओरसे बोलनेलगे ॥ ७२ ॥ इस प्रकार कालके दोषोंकी प्राप्त देखतेहुये श्रीकृष्णजी ने विचार किया व तेरहवीं उस अमावस को देखकर यह कहा ॥ ७३ ॥ कि यह तेरहवीं पौर्णमासी फिर राहु से ग्रस्त हुई और उस भारतयुद्ध में यह हमलोगों के नाशके लिये प्राप्तहुई थी ॥ ७४ ॥ उस कालको धिक्कारहै २ ऐसा विचारकर केशीदैत्यको मारनेवाले उन श्रीकृष्णजी ने छब्बीसवां वर्ष प्राप्त माना ॥ ७५ ॥ और नष्ट बन्धुवोंवाली गान्धारीजी जिससे पुत्रोंके शोकसे अत्यन्त संतप्तहै वही यह समीप प्राप्तहुआ ऐसा देखतेहुये श्रीकृष्णजीने ॥ ७६ ॥ उस समय अनेक घरोंमें बड़े कठिन उत्पातों को देखकर उन्होंने प्राप्तहुये

न् ॥ त्रयोदशींह्यमावस्यां तान्दृष्ट्वाप्राब्रवीदिदम् ॥ ७३ ॥ त्रयोदशीपञ्चदशी ग्रस्तेयंराहुणापुनः ॥ तदाचभारतेयुद्धे प्राप्ताचेयंक्षयायनः ॥ ७४ ॥ धिग्धिगित्येवकालन्तं परिचिन्त्यजनार्दनः ॥ मेनेप्राप्तंसषड्विंशं वर्षंकेशिनिषूदनः॥ ७५ ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्ता गान्धारीहतबान्धवा ॥ एवंपश्यन्हृषीकेशस्तदिदंसमुपस्थितम् ॥ ७६ ॥ इदञ्चसमनुप्राप्तमब्रवीच्चयुधिष्ठिरम् ॥ गृहेष्वनेकेषुतदा दृष्ट्वोत्पातान्सुदारुणान् ॥ ७७ ॥ पुण्यग्रन्थस्यश्रवणाच्छान्तिहोमाद्विशोधनात् ॥ पुण्यतीर्थाभिषेकाच्च नान्यच्छ्रेयोभवेदिति ॥ ७८ ॥ इत्युक्त्वावासुदेवस्तं चिकीर्षुःसत्यमेवच ॥ आज्ञापयामासतदा तीर्थयात्रामरिन्दमः ॥ ७९ ॥ अघोषयन्तपुरुषास्तत्रकेशवशासनात् ॥ तीर्थयात्राप्रभासेवै कार्येतिवरवर्णिनि ॥८०॥ अथारिष्टानिवक्ष्यामि पुरींद्वारावतीम्प्रति ॥ कालीस्त्रीपाण्डुरैर्दन्तैः प्रविश्यनगरींनिशि॥८१॥स्त्रियस्स्वप्नेषुमुष्णन्तिद्वारकाम्प्रतिधावति ॥ अग्निहोत्रनिकेतेषु सुमेध्येषुचवेश्मसु ॥८२॥दृष्ण्यन्धकानखादंश्चस्वप्नेदृष्टाभयान

युधिष्ठिरसे यह कहा ॥ ७७ ॥ कि पवित्र ग्रन्थोंके श्रवण व शान्ति होम तथा विशेषकर शोधन व पवित्र तीर्थोंके स्नानके सिवाय अन्य वस्तुसे कल्याण नहीं होगा ॥७८॥ उन युधिष्ठिरजी से यह कहकर और उसको सत्य करने के लिये चाहतेहुये शत्रुविनाशक श्रीकृष्णजी ने उस समय तीर्थयात्राकी आज्ञा दिया ॥ ७९ ॥ व हे वरवर्णिनि ! श्रीकृष्णजी की आज्ञासे वहां पुरुषों ने डुग्गी पिटाया कि प्रभासमें तीर्थयात्रा करना चाहिये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर द्वारकापुरी में अशुभों को कहताहूं कि सफ़ेद दांतोंसे उपलक्षित काली स्त्री रातको नगरी में पैठकर ॥ ८१ ॥ स्वप्नोंमें स्त्रियों को चुराती है व द्वारकाके सामने दौड़ती है और अग्निहोत्र स्थानोंमें व पवित्र घरों

म ॥८२॥ स्वप्न में देखेहुये भयङ्कर पुरुष यादवों व अन्धकोंको खातेहैं और युद्धमें मुर्गा भयङ्कर शब्द करते हैं ॥ ८३ ॥ और स्त्रियोंके घरोंमें भयङ्कर दो मस्तकोंवाले तथा चार भुजाओंवाले राक्षस व गुह्यक पैदाहुये ॥ ८४॥ और अलङ्कार,छत्र,ध्वजा व कवच भयानक राक्षसोंसे हरेजातेहुये देखपड़तेथे ॥८५॥ और श्रीकृष्णजीको जो लोहेका वज्र अस्त्र अग्निसे दियागयाथा वह और चक्र उस समय यादवों के देखते हुये आकाशको चलागया ॥ ८६ ॥ और दारुकसारथी के देखतेहुये सूर्यके समान दिव्यरथ चलागया व समुद्रके ऊपरतक वर्तमान होनेवाले बड़े वेगवान् तथा सोने के महाध्वजोंसे उपलक्षित चार मुख्य घोड़े आकाशको चलेगये ॥ ८७।८८ ॥ और

काः ॥ कुर्वन्तिभीषणंनादं कुकुटाश्चापिसंयुगे ॥ ८३ ॥ तथाहिद्विशिरारौद्राश्चतुर्बाहवएवच॥ स्त्रीणांगर्भेष्वजायन्तराक्षसागुह्यकास्तथा॥८४॥ अलङ्काराणिछत्राणिध्वजाश्चकवचानिच॥ ह्रियमाणानिदृश्यन्तेरक्षोभिश्चभयानकैः॥८५॥ यच्चाग्निदत्तंकृष्णस्य वज्रमस्त्रमयस्मयम् ॥ दिवमाचक्रमेचक्रं वृष्णीनामपश्यतांतदा॥८६ ॥ रथंचदिव्यमादित्यं पश्यतोदारुकस्यवै॥ सागरस्योपरिष्टाद्दावर्त्तमानामहाजवाः॥ ८७॥ चतुरोवाजिमुख्याश्च सौवर्णैश्चमहाध्वजैः॥८८॥ तालःसुपर्णश्चमहाध्वजौतौसुपूजितौरामजनार्दनाभ्याम् ॥ उच्चैर्गतावाशुतथादिवानिशंबभूवतुस्तौसुखिनावुभावपि ॥ ८९ ॥ गम्यतांतीर्थयात्रायै प्रोचतुस्तौततःपरम् ॥ ततोजिगमिषन्तस्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥९०॥ सान्तःपुरास्तीर्थयात्रां महान्तश्चनरर्षभाः ॥ ततोजग्मुःपुराद्दृष्ट्वा पेयंवेश्मसुवृष्णयः ॥९१॥ वस्तुनानाविधंचक्रुर्मांसानिविविधानिच ॥ तथायदुषुवृद्धाश्च निर्ययुर्नगराद्बहिः ॥ ९२ ॥ यानैर्हयैर्गजैश्चैव श्रीमन्तस्तिग्मतेजसः ॥ ततःप्रभासेन्यवसन् यथोद्दिष्टंयथागृ

ताल व गरुड़ वे दोनों महाध्वज बलभद्र व श्रीकृष्णजी से पूजित होकर शीघ्रही उच्चप्रकारसे चलेगये और वे दोनों भी दिन रात सुखी हुये ॥ ८९ ॥ तदनन्तर उन दोनोंने कहा कि तीर्थयात्राके लिये जाइये उसके उपरान्त जानेकी इच्छावाले वे यादव व अन्धक महारथी ॥ ९० ॥ महान् श्रेष्ठ पुरुष रनिवास समेत तीर्थयात्राको चले तदनन्तर पहले घरोंमें पीनेयोग्य वस्तुको देखकर यादवोंने ॥ ९१ ॥ अनेक प्रकार की वस्तु व अनेकभांति के मांसोंको किया और यादवोंमें जो वृद्धथे वे नगर से बाहर निकले ॥ ९२ ॥ और वे श्रीमान् तथा तीक्ष्ण तेजवाले यादवलोग घोड़े व हाथी की सवारियों से चले तदनन्तर बहुत भक्ष्य व पीनेयोग्य वस्तुवाले वे यादव

लोग उस समय स्त्रियों समेत घरकी नाईं जैसा बतलाया गयाथा वैसेही प्रभासक्षेत्र में बसतेभये इसके अनन्तर समुद्र के समीप टिकेहुये उन यादवों को सुनकर वे योगज्ञानी ॥ ९३ । ९४ ॥ तथा प्रयोजन में चतुर उद्धवजी उन वीरोंसे पूंछकर चले गये और जातेहुये उन महात्मा उद्धवजी को हाथ जोड़कर प्रणाम कर ॥ ९५ ॥ ब्राह्मण से नाशको जानतेहुये श्रीकृष्णजी ने मना करने की इच्छा न किया तदनन्तर कालसे प्रेरित उन वृष्णि व अन्धक महारथियों ने ॥ ९६ ॥ तेजसे पृथ्वी व आकाश को प्रकाशितकर जातेहुये उद्धवजी को देखा तदनन्तर सैकड़ों तुरुहियों से संयुत तथा नटनर्तकों से युक्त ॥ ९७ ॥ तीक्ष्ण तेजवाले यादवों का महापान

हम् ॥ ९३ ॥ प्रभूतभक्ष्यपेयास्ते सदारायादवास्तदा ॥ निर्विष्टांस्तान्निशम्याथ समुद्रान्तेसयोगवित् ॥ ९४ ॥ जगामामन्त्र्यतान्वीरानुद्धवोर्थविशारदः ॥ प्रस्थितंतम्महात्मानमभिवाद्यकृताञ्जलिः ॥ ९५ ॥ जानन्विप्राद्विनाशं वै नैच्छद्वारयितुंहरिः ॥ ततःकालप्रेरितास्ते वृष्ण्यन्धकमहारथाः ॥ ९६ ॥ अपश्यन्नुद्धवंयान्तं तेजसादीप्यरोदसी ॥ ततस्तूर्यशताकीर्णं नटनर्त्तकसङ्कुलम् ॥ ९७ ॥ प्रावर्त्ततमहापानं प्रभासेतिग्मतेजसाम् ॥ कृष्णस्यसन्निधौपीता सुराचकृतवर्मणा ॥ ९८ ॥ अपिबद्युयुधानश्च गदोबभ्रुस्तथैवच ॥ ततःपरिषदोमध्ये युयुधानोमदोत्कटः ॥ ९९ ॥ अब्रवीत्कृतवर्माणमाविहस्यावमन्यच ॥ कःक्षत्रियोमन्यमानःसुप्तान्हन्याच्छिशूनपि ॥ १०० ॥ इत्युक्तेयुयुधानेन पूजयामासतद्वचः ॥ १ ॥ प्रद्युम्नोरथिनांश्रेष्ठो हार्दिक्यमवमर्त्सयन् ॥ ततःपुनरपिक्रुद्धः कृतवर्मातमब्रवीत् ॥ २ ॥ निर्दिशन्निववज्रंसतदासव्येनपाणिना ॥ भूरिश्रवाश्छिन्नबाहुर्युद्धेप्रायोगतस्त्वया ॥ ३ ॥ व्याधेनेवनृशंसेन कथंवीरेणघा

प्रभासमें वर्तमानहुआ और श्रीकृष्णजी के समीपही कृतवर्माने मदिरा पिया ॥ ९८ ॥ और युयुधान, गद व बभ्रुने पिया तदनन्तर मदसे उग्र युयुधानने सभाके मध्यमें ॥ ९९ ॥ कृतवर्मासे हँसकर व अपमानकर कहा कि मानताहुआ कौन क्षत्रिय सोतेहुये बालकोंको भी मारैगा ॥ १०० ॥ युयुधानसे ऐसा कहनेपर रथियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्नजी ने उस वचन की प्रशंसा किया और हार्दिक्य (कृतवर्मा) की निन्दा किया तदनन्तर क्रोधित होतेहुये कृतवर्माने फिर उससे कहा ॥ १।२ ॥ उस समय बायें हाथसे वज्रको दिखाते हुयेसे उन्होंने कहा कि प्रायःयुद्धमें तुम कटी भुजावाले भूरिश्रवाके समीप गये ॥ ३ ॥ और वह क्रूर बहेलिया की नाईं तुमसे मारागया तो

वीर से कैसे मारागया है उसके इस वचनको सुनकर शत्रुवीरोंको मारनेवाले श्रीकृष्णजीने ॥ ४ ॥ क्रोधसमेत दृष्टिसे सबओर तिरछा देखा और सत्राजितकी जो वह बड़ीभारी स्यमन्तकमणि थी ॥ ५ ॥ मधुसूदन श्रीकृष्णजी से सात्यकि को उस कथाको याद कराया श्रीकृष्णजी के कहेहुये उस वचन को सुनकर रोतीहुई सत्यभामा जी क्रोधित होकर श्रीकृष्णजी को क्रोध करातीहुई आई तदनन्तर उठकर उन सात्यकि ने क्रोधसे वचन कहा ॥ ६ । ७ ॥ कि द्रौपदी के पाच पुत्र व धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डी की पदवी को यह कृतवर्मा जावैगा इसको सत्यकी सौगन्द से कहताहू ॥ ८ ॥ जिसने बाणोंसे सोतेहुये द्रौपदी के पुत्रोंको मारा उस दुष्टात्मा पापी कृत-

तितः ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा केशवःपरवीरहा ॥ ४ ॥ तिर्यक्सरोषयादृष्ट्या वीक्षांचक्रेसमन्ततः ॥ मणिःस्यमन्तकश्चैव यःससत्राजितोमहान् ॥ ५ ॥ तांकथांस्मारयामास सात्यकिम्मधुसूदनः ॥ तच्छ्रुत्वाकेशवस्योक्तमगमद्रुदतीसती ॥ ६ ॥ सत्यभामाप्रकुपिता कोपयन्तीजनार्द्दनम् ॥ ततउत्थायसक्रोधात्सात्यकिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥ पञ्चानांद्रौपदेयानां धृष्टद्युम्नशिखण्डिनोः ॥ गमिष्यत्येषपदवीं सत्येनैवशपेत्वहम् ॥ ८ ॥ सायकैर्निहतायेन सुप्तास्तेनदुरात्मना ॥ भवत्पितापिनिहतः पापेनकृतवर्मणा ॥ ९ ॥ अतस्तेपुरतःसद्यो हनिष्यामिसुमध्यमे ॥ इत्येवमुक्त्वाखड्गेन केशवस्यसमीपतः ॥ १० ॥ अभिहत्यशिरःक्रुद्धश्चिच्छेदकृतवर्मणः ॥ तथान्यानपिनिघ्नन्तं युयुधानंसमन्ततः ॥ ११ ॥ अन्वधावद्धृषीकेशस्तन्निवारयिषुस्तथा ॥ एकीभूतास्ततस्तत्र कालपर्ययप्रेरिताः ॥ १२ ॥ भोजान्धकामहाराज शैनेयंपर्यवारयन् ॥ तान्दृष्ट्वापततस्तूर्णमभिक्रुद्धोजनार्द्दनः ॥ १३ ॥ नचुक्रोधमहातेजापश्यन्कालस्यपर्ययम् ॥ तेचपानमदाविष्टाश्चो

वर्माने आपके पिताको भी मारा ॥ ९ ॥ इस लिये हे सुमध्यमे ! तुम्हारे आगे शीघ्र ही समर में इसको मारूंगा यही कहकर श्रीकृष्णजी के समीप क्रोधित होतेहुये सात्यकि ने तलवार मे मारकर कृतवर्मा के मस्तक को काटडाला वैसेही सबओर से अन्य यादवों को मारते हुये युयुधान को ॥ १० । ११ ॥ उसको मना करनेकी इच्छावाले श्रीकृष्णजी पीछे दौड़े तदनन्तर वहां काल के दोषसे प्रेरित इकट्ठा होते हुये ॥ १२ ॥ भोज व अन्धकों ने महाराज शिनिके पुत्रको घेर लिया और शीघ्रही आतेहुये उन क्रोधित यादवों को देखकर बड़े तेजस्वी श्रीकृष्णजी कालके दोषको देखतेहुये व क्रोधित भये और मदिरा पीनेके मदसे संयुत व क्रोधसे प्रेरणा कियेहुये

उन यादवों ने ॥ १३ । १४ ॥ उच्छिष्ट भोजनों से युयुधान को मारा और युयुधान के मारेजानेपर रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्नजी क्रोधित हुये ॥ १५ ॥ और उसीसमय शिनिके पुत्र युयुधानको छुडातेहुये वे सामने दौड़े और वे भोजोंके साथ संयुक्त हुये और सात्यकि अन्धकों के साथ संयुक्त हुये ॥ १६ ॥ और बहुतसे लोगोंको मारकर श्रीकृष्णजीके देखतेहुये वे दोनों वीर मारेगये और शैनेय (युयुधान) व पुत्रको मराहुआ देखकर यदुनन्दन ॥१७॥ श्रीकृष्णजी ने उससमय क्रोधसे एरक नामक तृण विशेषोंकी मुष्टीको लिया और वह वज्रके समान लोहेका भयङ्कर मुसल होगया ॥ १८ ॥ उससे श्रीकृष्णने भी उनको माराजोकि उनके सामने स्थितथे तदनन्तर उस

दिताश्चैवमन्युना ॥ १४ ॥ युयुधानमथाभ्यघ्नुरुच्छिष्टभोजनैस्तथा ॥ हन्यमानेतुशैनेये क्रुद्धोरुक्मिणिनन्दनः ॥ १५॥ तदन्तरमथाधावन्मोक्षयिष्यञ्छिनेःसुतम् ॥ सभोजैःसहसंयुक्तः सात्यकिश्चान्धकैःसह ॥ १६ ॥ बहून्हत्वाहतौ वीरावुभौकृष्णस्यपश्यतः ॥ हतंदृष्ट्वातुशैनेयं पुत्रञ्चयदुनन्दनः ॥ १७ ॥ एरकाणांतदामुष्टिं कोपाज्जग्राहकेशवः ॥ तदभून्मुसलंघोरं वज्रकल्पमयस्मयम् ॥ १८ ॥ जघानतेनकृष्णोपि येतस्यप्रमुखेस्थिताः ॥ ततोन्धकाश्चभोजाश्च शतशोवृष्णयस्तदा ॥ १९ ॥ निघ्नन्तोन्योन्यमाक्रन्दन्मुसलैःकालप्रेरिताः ॥ यस्तेषामेरकांकश्चिज्जग्राहहृषितोन रः ॥ २० ॥ वज्रभूताचसादेवि अदृश्यततदाप्रिये ॥ तृणञ्चमुसलीभूतं सर्वंतत्रत्वदृश्यत ॥ २१ ॥ ब्रह्मदण्डकृतंसर्वमि तितद्विद्धिभामिनि ॥ अमोघांदेवदेवेशि प्रहरन्तिस्मचैरकाम् ॥ २२ ॥ तद्वज्रभूतंमुसलमदृश्यततदादृढम् ॥ अ वधीत्पितरंपुत्रः पितापुत्रञ्चभामिनि ॥ २३ ॥ सर्वतःपर्यटन्तिस्म योधमानाःपरस्परम् ॥ पतङ्गाइवचाग्नौतु न्यपतन्यदू

समय अन्धक, भोज व सैकड़ों यादव ॥ १९ ॥ कालसे प्रेरित होकर मुसलों से आपसमें मारतेहुये चिल्लातेभये उनके मध्य में प्रसन्न होकर जो कोई एरका (तृणविशेष) को ग्रहण करताभया ॥ २० ॥ हे प्रिये, देवि ! उस समय वह एरका वज्रभूत देखीगई और सब तृण वहां मुसल होगया देखपड़ा ॥ २१ ॥ हे भामिनि ! वह सब ब्रह्मदण्डसे कियागया यह जानिये हे देवदेवेशि ! वे अमोघ एरका को चलाते थे ॥ २२ ॥ और उस समय वह पुष्ट तथा वज्रभूत मुसल देख पड़ता था व हे भामिनि ! पुत्रने पिताको मारा और पिताने पुत्रको मारा ॥ २३ ॥ और आपस में युद्ध करतेहुये वे सबओर घूमते थे व अग्नि में पांखियों की नाईं यदूत्तम गिरते भये ॥ २४ ॥

और मारेजाते हुये किसीकी बुद्धि भागनेमें न हुई और उस कालके दोषको देखते व जानते हुये महाभुज ॥ २५ ॥ वे मधुसूदन श्रीकृष्णजी मुसलको लेकर स्थित हुये साम्ब व चारुदेष्णा को माराहुआ देखकर माधव श्रीकृष्णजीने ॥ २६ ॥ हे भामिनि ! प्रद्युम्न व अनिरुद्धको देखकर तदनन्तर क्रोध किया और पुत्रोंका नाश देखकर वे बहुतही क्रोधसंयुत हुये ॥ २७ ॥ और शार्ङ्गधनुष, चक्र व गदाको धारनेवाले श्रीकृष्णजी ने उससमय निःशेष किया इस प्रकार हे महादेवि ! वहां यादवकुल विनाश हुआहै ॥ २८ ॥ हे देवि ! वह यादवोंकी चिता दोकोसतक कहीगई है और उनके कुलकेसमूह से वह पर्वतरूप होगया ॥ २९ ॥ व उससे भस्म के ढेरका आकार यादव

पुङ्गवाः ॥ २४ ॥ नासीत्पलायनेबुद्धिर्वध्यमानस्यकस्यचित् ॥ तन्तुपश्यन्महाबाहुर्जानन्कालस्यपर्ययम् ॥ २५ ॥ मुसलंसमवष्टभ्य तस्थौसमधुसूदनः ॥ साम्बंचनिहतंदृष्ट्वा चारुदेष्णञ्चमाधवः ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नमनिरुद्धंच ततश्चुक्रोधभामिनि ॥ क्षयंवीक्ष्यसुतानाञ्च भृशंकोपसमन्वितः ॥ २७ ॥ सनिश्शेषंतदाचक्रे शार्ङ्गचक्रगदाधरः ॥ एवंतत्रमहादेवि अभवद्यादवंकुलम् ॥ २८ ॥ गव्यूतिमात्रेतद्देवि यादवानांचितास्मृता ॥ तेषांकुलस्यनिचयाच्छैलरूपंबभूवतु ॥ २९ ॥ भस्मपुञ्जनिभाकारं तेनाभूद्यादवस्थलम् ॥ दिव्यरत्नसमायुक्तं मणिमाणिक्यपूरितम् ॥ ३० ॥ यादवानांकिरीटैश्च वेष्टितंगन्धपूरितम् ॥ तेषांरक्षानिमित्तंहि गङ्गागणपतिस्तथा ॥ ३१ ॥ यादवानान्तुसर्वेषां जीवितोवज्रएवहि ॥ वयसोन्तेततःसोपि प्रभासंक्षेत्रमागतः ॥ ३२ ॥ अभिषिच्यसुतंराज्ये नाम्नाख्यातंमहद्बलम् ॥ तेनापिस्थापितंलिङ्गं यादवेन्द्रेणधीमता ॥ ३३ ॥ वज्रेश्वरमितिख्यातं तत्स्मृतंयादवस्थले ॥ तत्रैवसुचिरंकालं तपस्तप्तंसुपुष्कलम् ॥ ३४ ॥ ना

स्थल होगया जोकि दिव्यरत्नों से संयुत व मणियों तथा माणिक्यों से पूरित था ॥ ३० ॥ और यादवों के किरीटों से घिराहुआ व गन्ध से पूरित था उनकी रक्षाके लिये श्रीगङ्गा व गणपति नियुक्त हुये ॥ ३१ ॥ और सब यादवों के मध्यमें वज्रही जीतेरहे तदनन्तर अवस्थाके अन्त में वे भी प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ३२ ॥ नामसे महद्बल ऐसे पुत्रको राज्य पै अभिषेक कर उन बुद्धिमान् यादवेन्द्र वज्रने भी लिंग को स्थापन किया ॥ ३३ ॥ वह यादवस्थल में वज्रेश्वर ऐसा प्रसिद्धहै उसी पाप-

नाशक प्रभासक्षेत्र में बहुत दिनोंतक उन यदूत्तम राजा वज्रने नारदजी के उपदेशसे बहुत तप किया व बडी सिद्धिको पायाहै ॥ ३४ । ३५ ॥ वहींपर जो मनुष्य जाम्बवती नदीके जलमें भलीभांति नहाकर व वज्रेश्वरजी को भलीभांति पूजकर वहां यादवस्थल के समीप ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह गोसहस्र के फलको पाताहै और वहांपर सुवर्णदानसमेत शय्या देना चाहिये ॥ ३६ । ३७ ॥ ऐसा करनेपर भलीभांति श्रद्धासंयुत पुरुष यात्राके फलको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवज्रेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

रदस्योपदेशेन प्रभासेपापनाशने ॥ प्राप्तवान्परमांसिद्धिं सराजायादवोत्तमः ॥ ३५ ॥ तत्रैवयोनरस्सम्यक् स्नात्वाजाम्बवतीजले ॥ वज्रेश्वरन्तुसम्पूज्य ब्राह्मणांस्तत्रभोजयेत् ॥ ३६ ॥ यादवस्थलसामीप्ये गोसहस्रफलंलभेत् ॥ शय्याचतत्रदातव्या स्वर्णदानसमन्विता ॥ ३७ ॥ यात्राफलमवाप्नोति सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवज्रेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२८ ॥ * ॥

शिवउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यांपापनाशिनीम् ॥ सर्वकामप्रदाम्पुण्यां दरिद्रस्यतुनाशिनीम् ॥ १ ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन कृत्वापिण्डोदकक्रियाम् ॥ प्राप्नुयादक्षयाँल्लोकान् पितॄनुद्धृत्यपापतः ॥ २ ॥ एकंयोभोजयेत्तत्र ब्राह्मणंशंसितव्रतम् ॥ तेनायुतंहिसंख्याकं भोजितंस्याद्द्विजन्मनाम् ॥ ३ ॥ तत्रहेमरथोदेयो ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ विधिनाशिवमुद्दिश्य यात्रायुतफलंलभेत् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे हिरण्यानदीमाहात्म्यन्नामैकोनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । यथा हिरण्या नदीकर अहै अतुल परभाव । दोसौ उन्तिसमें सोई कह्यो चरित्र सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पापनाशिनी व सब कामनाओं को देनेवाली तथा दरिद्र को विदारनेवाली पवित्र हिरण्यानदीके समीपजावै ॥ १ ॥ उसमें नहाकर व विधिसे पिण्डोदक कर्मकोकर मनुष्य पितरोंको पापसे उधार कर अक्षयलोकोंको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ वहांपर जो मनुष्य प्रशंसित नियमोंवाले एक ब्राह्मणको भोजन कराताहै उसने दशहज़ार संख्यक ब्राह्मणोंको भोजनकराया ॥ ३ ॥

वहां शिवजी को उद्देशकर वेदोंके पारगामी ब्राह्मण के लिये विधिसे सोने का रथ देना चाहिये ऐसा करनेपर मनुष्य दश हज़ार यात्राओं के फलको पाताहै ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहिरण्यानदीमाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २२९ ॥ ❁ ॥

दो॰। थप्यो नागरादित्य जिमि सत्राजित नरपाल। दोसौ तिसवेंमें सोई कह्यो चरित्र रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्या के समीप में स्थित सब रोगोंके नाशनेवाले नागरादित्य ऐसे कहेहुये देवके समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय द्वारकापुरी में सत्राजित राजा हुआ है महाव्रत को उपस्थानकर निघ्न के पुत्र इस बुद्धिमान् महात्माने सूर्यनारायण का आराधन किया तब उसके ऊपर प्रसन्न होतेहुये सूर्यनारायण ने स्यमन्तकमणिको दिया ॥ २ । ३ ॥ उस स्यमन्तक

ईश्वरउवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यापार्श्वतःस्थितम् ॥ नागरादित्यमित्युक्तंसर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १ ॥ पुरासत्राजितोराजा द्वारावत्यांबभूवह ॥ आराधितोभास्करेणदेवेनचमहात्मना॥ २ ॥ महाव्रतमुपस्थाय निघ्नपुत्रेणधीमता ॥ तस्यतुष्टस्तदाभानुः स्यमन्तकमणिंददौ ॥ ३ ॥ स्यमन्तकःससुस्राव भारानष्टौदिनेदिने ॥ सुवर्णस्यसुशुद्धस्य भक्त्याव्रततपोयुतः ॥ ४ ॥ भूयोपिभानुनाप्रोक्तो वरंब्रूहिवरानने ॥ सचाहदेवदेवेशं भास्करंवारितस्करम् ॥ ५ ॥ यदितुष्टोसिमेदेव वरदानंकरोषिच ॥ अत्रैवचाश्रमेपुण्येनित्यंसन्निहितोभव ॥ ६ ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा सूर्यस्सत्राजितंनृपम् ॥ अभिनन्द्यवरंतस्य तत्रैवादर्शनङ्गतः ॥ ७ ॥ तेनापिनिघ्नपुत्रेण देवदेवस्यभास्वतः ॥ स्थापिताप्रतिमाशुभ्रातत्रैववरवर्णिनि ॥ ८ ॥ शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्ब्रह्मघोषैश्चपुष्कलैः ॥ ततस्तुनगरात्सर्वान्समाहूयद्विजोत्तमान् ॥ ९ ॥ अ

मणिने आठभार शुद्ध सुवर्ण को प्रतिदिन उत्पन्न किया फिर हे वरानने ! भक्तिसमेत व्रत व तपस्या से संयुत सत्राजितसे सूर्यनारायण ने कहा कि वरदान को कहिये उस सत्राजित ने भी जलके तस्कररूप देवदेवेश सूर्यनारायणजीसेकहा ॥ ४ । ५ ॥ कि हे देव ! यदि मेरे ऊपर प्रसन्नहो और वरदान करतेहो तो इसी पवित्र आश्रम में सदैव स्थित होवो ॥ ६ ॥ ऐसाही होगा यह सत्राजित नृपति से कहकर व उसको वर देकर दिवाकरजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७ ॥ व हे वरवर्णिनि ! उस निघ्नके पुत्र सत्राजित ने भी वहींपर शङ्खों व नगारों के शब्दों से तथा बहुत वेदशब्दों से देवदेव सूर्यनारायण की शुभ्र प्रतिमा को स्थापित किया तदनन्तर नगर से सब

द्विजोत्तमों को बुलाकर ॥ ८ । ६ ॥ सत्राजित ने प्रणत होकर आतिउत्तम जीविका को देकर कहा कि तुमलोगोंके चरणों के प्रसादसे व सूर्यनारायणकी दयासे ॥ १० ॥ उग्र तपस्या साधनकर मैंने मूर्त्तिको स्थापन किया पुरातन समय दशानन (रावण) के पुत्र मेघनाद राक्षसने इन्द्रको जीतकर यहा मूर्त्तिको लायाथा व लङ्का में स्थापित किया उसको लक्ष्मण अनुगामीवाले श्रीरामचन्द्रजीने मारकर ॥ ११ । १२ ॥ उसको मित्रावरुण के पुत्र वसिष्ठजी के लिये दिया और प्रसन्न होकर उन वसिष्ठने भी द्वारकापुरी में मुझको दिया ॥ १३ ॥ और मैंने भी आतिउत्तमक्षेत्रको जानकर उसको यहां स्थापन किया इस विषयमें बहुत कहने से क्या है आपलोगों

ब्रवीत्प्रणतोभूत्वा दत्त्वावृत्तिमनुत्तमाम् ॥ युष्मत्पादप्रसादेन सूर्य्यस्यानुग्रहेणवै ॥ १० ॥ साधयित्वातपश्चोग्रं स्थापिताप्रतिमामया ॥ इन्द्रलोकादिहानीता जित्वाशक्रंसुरारिणा ॥ ११ ॥ दशाननस्यपुत्रेण लङ्कायांस्थापितापुरा ॥ तन्निहत्यतुरामेण लक्ष्मणानुगतेनवै ॥ १२ ॥ मित्रावरुणपुत्राय वसिष्ठायसमर्पिता ॥ तेनापिममतुष्टेन द्वारकायांनिवेदिता ॥ १३ ॥ मयापिस्थापिताचात्र ज्ञात्वाक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ किमत्रबहुनोक्तेन भवद्भिस्सर्वथैवहि ॥ १४ ॥ परिपाल्याप्रयत्नेन यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ यस्माद्युष्माकमादिष्टा प्रतिमेयंमयाशुभा ॥ १५ ॥ नागराणान्तुविप्राणां सोमेशपुरवासिनाम् ॥ तस्मान्नाममयादत्तं नागरादित्यमेवहि ॥ १६ ॥ ब्राह्मणाउवाच ॥ सर्वमेवकरिष्यामो देवस्यपरिपालनम् ॥ यावन्महीचचन्द्रार्कौ यावत्तिष्ठतिसागरः ॥ १७॥ तावत्तेचाक्षयाकीर्त्तिस्स्थानेचास्मिन्भविष्यति ॥ एवमुक्त्वातुतेसर्वे नागराद्विजपुङ्गवाः ॥ १८ ॥ राजाचतुष्टःप्रययौ तदाद्वारवतीम्पुरीम् ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि तस्मिन्दृ

को सबभांति से ॥ १४ ॥ इस प्रतिमा का बड़ेयत्न से तबतक परिपालन करना चाहिये जबतक कि चन्द्रमा, सूर्य व नक्षत्र रहैं जिसलिये सोमेशनगर के निवासी जो आपलोग नागर ब्राह्मण हैं उनको मैंने इस उत्तममूर्त्ति को आदेश किया इस कारण मैंने नागरादित्यही नाम दिया ॥ १५ । १६ ॥ ब्राह्मण बोले कि सबही सूर्य-देवजी का परिपालन करैंगे व जबतक पृथ्वी, चन्द्रमा व सूर्यहैं और जबतक समुद्र स्थितहै ॥ १७ ॥ तबतक इस स्थानमें तुम्हारा यश अक्षयहोगा ऐसा कहकर वे सब द्विजोत्तम नागर चुप होगये ॥ १८ ॥ और उस समय प्रसन्न होताहुआ सत्राजित राजा द्वारकापुरी को चलागया महादेवजी बोले कि हे देवि ! उसके देखनेपर जो

फल होताहै उसको मैं कहताहूं सुनिये ॥ १९ ॥ कि प्रयागतीर्थ में भलीभांति दिये हुये गोशत का जो फलहै नागरादित्यजीके दर्शनसे मनुष्य उस फलको प्राप्तहोता है ॥ २० ॥ पवित्रकारक प्रभासक्षेत्र में नागरादित्यजी को छोड़कर अन्य कौन निर्धनी व दुःख, शोकसे विकल मनुष्यों को उधारने के लिये समर्थ है ॥ २१ ॥ थोड़ी बुद्धिवाले जो पुरुष बन्ध व कुष्ठादिक दुःखको भजते हैं वे वहां नागरादित्य सूर्यनारायणको वैद्य नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ हिरण्यानदी के जलमें नहाकर जो पुरुष उन नागरादित्यजी को पूजता है वह करोड़ हज़ार कल्पोंतक सूर्यलोक में पूजाजाता है ॥ २३ ॥ शुक्लपक्ष में जब सप्तमी तिथिमें सूर्यनारायणकी संक्रान्ति होतीहै ॥ २४ ॥

ष्टेतुयत्फलम् ॥ १९ ॥ गोशतस्यप्रयागेषु सम्यग्दत्तस्ययत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोति नागरार्कस्यदर्शनात् ॥ २० ॥ दरिद्रान्दुःखशोकार्त्तान् कोन्योस्त्युद्धरणेक्षमः॥ प्रभासेपावनेक्षेत्रे मुक्त्वानागरभास्करम् ॥ २१ ॥ बन्धकुष्ठादिकं दुःखं येभजन्त्यल्पबुद्धयः॥तेनतत्रैवजानन्ति वैद्यंनागरभास्करम् ॥ २२ ॥ स्नात्वाहिरण्यातोयेन यस्तंपूजयतेनरः ॥ कल्पकोटिसहस्राणि सूर्यलोकेमहीयते ॥ २३ ॥ शुक्लपक्षेतुसप्तम्यां यदासंक्रमतेरविः ॥ २४ ॥ महाजयातदानाम सप्तमीभास्करप्रिया ॥ स्नानंदानंजपोहोमः पितृदेवाभिपूजनम् ॥ २५ ॥ सर्वंकोटिगुणंप्रोक्तं भास्करस्यवचोयथा ॥ एकंयोभोजयेत्तत्र ब्राह्मणंसूर्यसन्निधौ ॥ २६ ॥ कोटिभोजंकृतन्तेन इत्याहभगवान्हरिः ॥ एतन्मयातेकथितं पुराणोक्तं वरानने ॥२७॥ यःशृणोतिनरोभक्त्या सगच्छेन्भास्करंपदम् ॥ सूर्यस्यदेविनामानि रहस्यानिशृणुष्वमे ॥२८॥ आसीन्नामसहस्रेण पठस्वैनंशुभंस्तवम्॥ विकर्त्तनोविवस्वांश्च मार्त्तण्डोभास्करोरविः ॥ २९॥ लोकप्रकाशकःश्रीमाँल्लो

तब महाजया नामक सूर्यनारायण को प्यारी सप्तमी होतीहै उसमें स्नान, दान, जप, होम व पितरों तथा देवताओं का पूजन ॥ २५ ॥ सब कोटिगुना कहागया है जैसा कि सूर्यनारायण का वचन है वहां सूर्यनारायण के समीप जो एक ब्राह्मणको भोजन कराता है ॥ २६ ॥ उसने करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन कराया इसको भगवान् विष्णुजी ने कहाहै हे वरानने ! इस पुराणोक्त चरित्र को मैंने तुमसे कहा ॥ २७ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे इसको सुनता है वह सूर्यनारायण के स्थानको जाता है हे देवि ! सूर्यनारायण के गुप्तनामों को मुझ से सुनिये ॥ २८ ॥ जोकि सहस्रनाम के तुल्य हुआ है इस उत्तम स्तोत्रको पढ़िये विकर्तन, विवस्वान्, मार्तण्ड, भास्कर,

रवि ॥ २९ ॥ लोकप्रकाशक,श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्त्ता,हर्ता, अन्धकारनाशक ॥ ३० ॥ और तपन, तापन, शुचि,सप्ताश्ववाहन, किरणहस्त, ब्रह्मा व सर्वदेवनमस्कृत ॥ ३१ ॥ यह इक्कीस नामोंवाला नागरार्कजी का स्तोत्र कहागया है, स्तवराज ऐसा प्रसिद्ध यह शरीर की निरोगता व वृद्धिको देनेवालाहै ॥ ३२ ॥ हे महादेवि ! जो मनुष्य सूर्यास्त व सूर्योदय दोनों सन्ध्याओं में इस स्तोत्रसे नागरार्कजीकी स्तुति करताहै वह चाहेहुये फलको पाताहै ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येनागरार्कमाहात्म्यंनामत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥ ⊛ ॥

कचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥ लोकसाक्षीत्रिलोकेशः कर्त्ताहर्त्तातमिस्रहा ॥ ३० ॥ तपनस्तापनश्चैव शुचिःसप्ताश्ववाहनः ॥ गभस्तिहस्तोब्रह्माच सर्वदेवनमस्कृतः ॥ ३१ ॥ एकविंशकइत्येष नागरार्कस्तवःस्मृतः ॥ स्तवराजइतिख्यातः शरीरारोग्यवृद्धिदः ॥ ३२ ॥ यश्चानेनमहादेवि द्वेसन्ध्येस्तमनोदये ॥ नागरार्कंतुसंस्तौति सलभेद्वाञ्छितंफलम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्येनागरार्कमाहात्म्यन्नामत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३० ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि बलभद्रंसुरेश्वरम् ॥ सुभद्रांश्चतथाकृष्णं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ पूर्वकल्पेमहादेवि देहमत्रात्यजद्धरिः ॥ अस्मिन्कल्पेतचपुनर्गात्रच्छेदमितिस्मृतम् ॥ २ ॥ तत्रयेपूजयिष्यन्ति नागरादित्यसन्निधौ ॥ बलभद्रंसुभद्रांच कृष्णन्तेस्वर्गगामिनः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेबलभद्रसुभद्राश्रीकृष्णमाहात्म्यन्नामैकत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । बलभद्रादिक पूजि जिमि मिलत रुचिर फल जौन । दोसौ इकतिस मेंसुभग चरित कह्यो सब तौन ॥ महादेवजी बोलेकिहे महादेवि ! तदनन्तर सुरेश्वर बलभद्र, सुभद्रा व समस्त पातकों को नाशनेवाले श्रीकृष्णजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! पूर्वकल्प में यहां श्रीकृष्णजीने शरीर को त्याग कियाहै वही इस कल्पमें फिर गात्रोच्छेद ऐसा तीर्थ कहागया है ॥ २ ॥ वहा जो मनुष्य नागरादित्यके समीप बलभद्र, सुभद्रा व श्रीकृष्णजीको पूजैंगे वे स्वर्गगामी होवेंगे ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलभद्रसुभद्राश्रीकृष्णमाहात्म्यंनामैकत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३१ ॥ ⊛ ॥

दो० । अहैं प्रभासक्षेत्र में शेषरूप बलभद्र । दोसौ बत्तिसमें सोई कह्यो चरित्र सुभद्र ॥ महादेवजी बोले कि वहींपर स्थित सुरेश्वर बलभद्रजी को देखै जहां इन्द्रों ने शेषरूप से अपने शरीर को त्याग कियाहै ॥ १॥ वहां पातालमार्ग से ये त्रिसङ्गमतीर्थमें गयेहैं हे देवि ! दो गव्यूति याने चारकोस चौड़ इस मित्रवन में ॥ २ ॥ रेवतीसमेत महाप्रभावान् व लिंगाकार शरीर वहां स्थितहै जोकि शेषनाम ऐसा प्रसिद्धहै ॥३॥ हे देवि ! जहां पुरातनसमय जरानामक बड़ा वाममार्गी सिद्धहुआहै व विधि को नाशकरनेवाला वह इस स्थानमें भल्लतीर्थ में नाशको प्राप्तहुआहै ॥ ४ ॥ तबसे लगाकर यह कलियुग में शेष ऐसा प्रसिद्धहै चैत्रके शुक्लपक्षमें तेरसि तिथिमें जो पुरुष

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येद्बलभद्रंसुरेश्वरम् ॥ शेषरूपेणयत्रासौ प्रात्यजत्स्वंकलेवरम् ॥१॥ गतस्त्रैसङ्गमे तीर्थे तत्रपातालवर्त्मना ॥ अस्मिन्मित्रवनेदेवि गव्यूतिद्वयविस्तृते ॥ २ ॥ कलेवरंस्थितन्देवि लिङ्गाकारंमहाप्रभम् ॥ रेवत्यासहितंतत्र शेषनामेतिविश्रुतम् ॥ ३ ॥ यत्रसिद्धःपुरादेवि जरानामातिकौलिकः ॥ विधिहन्ताभल्लतीर्थे सोस्मिन् स्थानेलयङ्गतः ॥४॥ ततःप्रभृत्येवकलौ शेषइत्यभिविश्रुतः ॥ चैत्रेशुक्लेत्रयोदश्यां यस्तंपूजयतेनरः ॥५॥ सपुत्रपौत्रपशुमान् वर्षंक्षेमेणगच्छति ॥ मसूरकादिरोगेभ्यः शिशूनांनभयम्भवेत् ॥ ६ ॥ विस्फोटकादिरोगेभ्यो नभयंजायतेक्वचित् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेमहासिद्धे सिद्धयःस्वेच्छयास्मृताः ॥७॥ वर्णानांसान्तरालानां सर्वेषांचातिवल्लभः ॥ पशुपुष्पोपहारैश्चबलिदानैःपृथग्विधैः ॥ ८॥ सन्तुष्टिंशीघ्रमायाति शेषःशेषाघनाशनः ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशेषमाहात्म्यन्नामद्वात्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उनको पूजताहै ॥ ५ ॥ वह पुत्र, पौत्र व पशुमान् पुरुष वर्षभरतक क्षेमसे प्राप्तहोता है और मसूरिकादिक रोगों से बालकों को भय नहीं होताहै ॥ ६ ॥ व विस्फोटकादिकरोगों से कभी भय नहीं होताहै इस महासिद्धक्षेत्र में अपनी इच्छा से सिद्धियां कहीगई हैं ॥ ७ ॥ और वह मनुष्य अन्तरालसमेत सब जातियों को बहुत प्यारा होता है और पशुओं तथा पुष्पों के उपहारों से व अनेकभांतिके बलिदानोंसे ॥ ८ ॥ सब पापोंको नाशकरनेवाले शेषजी शीघ्रही प्रसन्नता को प्राप्त होतेहैं ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशेषमाहात्म्यंनाम द्वात्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३२ ॥ ॥

दो० । भई कुमारिका देवि जिमि रुरुदानव वधहेत । दो सौ तेतिसमें सोई बरन्यो हर्षसमेत ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि उसीके पूर्वदिशाके भागमें कुमारिका देवी रक्षाही के लिये स्थित हैं ॥ १ ॥ पुरातनसमय रथन्तर कल्पमें सब लोकोंको भय देनेवाला व बड़े शरीरवाला रुरुनामक महादानव उत्पन्न हुआहै ॥ २ ॥ उससे गन्धर्वोंसमेत देवता डरवायेगये तदनन्तर उसके भयसे डरेहुये सब स्वर्गसे ब्रह्मलोकमें स्थितहुये ॥३॥ तदनन्तर उस दुष्टात्मा रुरुने पृथ्वीमें ब्राह्मणों व तपस्वियों को मारा और जो अपने धर्ममें लगेहुये थे उनको मारा ॥ ४ ॥ उस समय पृथ्वी वेदपाठ व वषट्कार से रहित हुई और रुरु

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यत्रदेवीकुमारिका ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे स्थितारक्षार्थमेवहि ॥ १ ॥ पुरारथन्तरेकल्पे रुरुर्नाममहासुरः ॥ उत्पन्नस्सुमहाकायः सर्वलोकभयापहः ॥ २ ॥ तेनदेवास्सगन्धर्वास्त्रासितास्त्रिदशालयात् ॥ तस्यभीतास्ततस्सर्वे ब्रह्मलोकमधिष्ठिताः ॥ ३ ॥ तथाभूमितलेविप्राञ्जघानाथतपस्विनः ॥ निजघानसदुष्टात्मा येवैधर्मपरायणाः ॥ ४ ॥ निस्स्वाध्यायवषट्कारं तदासीद्धरणीतलम् ॥ नष्टयज्ञोत्सवंसर्वं रुरोर्भयनिपीडितम् ॥ ५ ॥ ततः प्रव्यथितादेवास्तथासर्वेमहर्षयः ॥ समेत्यामन्त्रयन्मन्त्रं वधार्थंतस्यदुर्मतेः ॥ ६ ॥ ततःकायोद्भवःस्वेदः सर्वेषांसमजायत ॥ तेषांचिन्तयतान्देवि निरोधाज्जगृहुश्चतम् ॥ ७ ॥ तत्रकन्यासमुत्पन्ना दिव्याकमललोचना ॥ व्यापयन्तीदिशः सर्वाः श्रुत्वातस्यास्तदागिरः ॥ ८ ॥ आचख्युर्दुःखितास्तस्यास्तेदेवारुरुचेष्टितम् ॥ श्रुत्वाजहाससादेवी देवानांकार्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तस्याहसन्त्यानिश्चेरुर्वराङ्ग्यःकन्यकाःपुनः ॥ पाशाङ्कुशधरास्सर्वाः पीनश्रोणिपयोधराः ॥ १० ॥ फेत्काररर

के डरसे पीड़ित सब पृथ्वीतल यज्ञोंके उत्साहों से रहित हुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर दुःखित होतेहुये देवता व सब महर्षियोंने इकट्ठा होकर उस दुर्बुद्धि के मारने के लिये सम्मति किया ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे देवि ! चिन्तवन करतेहुये उन सबोंके शरीर से पसीना उत्पन्न हुआ और उन्होंने उसको रोंकसे ग्रहण किया ॥ ७ ॥ उसमें सब दिशाओं को व्याप्त करतीहुई कमलसरीखे लोचनोंवाली दिव्यकन्या उत्पन्न हुई उस समय उसके वचनोंको सुनकर ॥ ८ ॥ दुःखित होतेहुये उन देवताओंने उससे रुरुके कर्मको कहा और देवताओं के उत्तमकार्यको सुनकर वह देवी हँसती भई ॥ ९ ॥ और हँसती हुई उसके मुखसे फिर कन्यायें निकलीं वे सब फसरी व अंकुशोंको

धारण कियेथीं और उनकी कटि व स्तन मोटे थे ॥ १० ॥ और जो भयङ्कर फेंकरने से चराचर को डरवा रहीथीं उनसमेत वे यशस्विनी देवीजी वहां गईं जहां कि वह रुरुथा ॥ ११ ॥ और उनसमेत सब भयङ्कर युद्ध हुवा दानवोंको नाशकरनेवाले शस्त्रों से वे देवी दिशाओं को प्रकाशित कररही थीं ॥ १२ ॥ व उन कन्याओं के प्रहारों से वे दानव जर्जर कियेगये और क्षणहीभर में वे सब विमुख होगये व कोई गिरादिये गये ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे गिरिजे ! सेनाको नष्ट देखकर रुरुने तामसी नामक मायाको रचा उससे वे शुभदायिनी देवीजी मोहित हुईं ॥ १४ ॥ तदनन्तर वहां अन्धकार होजाने पर उससमय देवीजी ने रुरु दैत्यके हृदयको शक्तिसे भेदन

चनैर्घोरैस्त्रासयन्त्यश्चराचरम् ॥ अन्वगात्सारुरुर्यत्र ताभिस्सार्द्धंयशस्विनी ॥ ११ ॥ अभूत्तुमुलंसर्वं युद्धंघोरंचतैस्सह ॥ शस्त्रैर्दिशोदीपयन्ती दानवानांक्षयङ्करैः ॥ १२ ॥ ताभिस्तेदनुजास्सर्वे प्रहारैर्जर्ज्जरीकृताः ॥ पराङ्मुखाःक्षणेनैव जाताःकेचिन्निपातिताः ॥ १३ ॥ ततोहतबलंदृष्ट्वा रुरुर्मायामथासृजत् ॥ तामसीन्नामगिरिजे तयामुह्यतसाशुभा ॥ १४ ॥ तमोभूतेततस्तत्र देवीदैत्यंतदारुरुम् ॥ शक्त्याबिभेदहृदयं ततोमूर्च्छांजगामह ॥ १५ ॥ मुहूर्त्ताल्लब्धसंज्ञोपि ज्ञात्वा तस्याःपराक्रमम् ॥ पलायनेकृतोत्साहः समुद्राभिमुखोययौ ॥ १६ ॥ साथदेवीजगामाथ पृष्ठतोस्यदुरात्मनः ॥ स्तूयमानासुरगणैः किन्नरैस्समहोरगैः ॥ १७ ॥ ततःप्रविश्यजलधिं तन्दृष्ट्वादानवंरुषा ॥ खड्गाग्रेणशिरश्छित्त्वा चर्ममुण्डधराततः ॥ १८ ॥ निश्चक्रामपुनस्तस्मात् प्रभासक्षेत्रमागता ॥ कन्यासैन्येनसंयुक्ता बहुरूपेणभास्वती ॥ १९ ॥ देवैस्तुविस्मितैर्दृष्टा चर्ममुण्डधरावरा ॥ देवा ऊचुः ॥ जयत्वन्देविचामुण्डे जयभूतार्त्तिहारिणि ॥ २० ॥ जयसर्वगते

किया तदनन्तर वह मूर्च्छाको प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ और थोड़ी देरमें चैतन्यता को पायेहुये वह दैत्य उसके पराक्रम को जानकर भागनेमें उत्साहकर समुद्र के सामने गया ॥ १६ ॥ इसके अनन्तर महानागों समेत किन्नरों व देवगणों से स्तुति कीजातीहुई वे देवीजी इस दुष्टात्माके पीछेसे गईं ॥ १७ ॥ तदनन्तर समुद्रमें पैठकर उस दानव को देखकर क्रोधसे तलवार के अग्रभाग से मस्तक को काटकर तदनन्तर चर्म व मुण्डको धारण किये देवीजी ॥ १८ ॥ फिर उस समुद्र से निकलीं व प्रभासक्षेत्र को आईं और बहुत भांतिकी कन्याओंवाली सेना से युक्त व प्रकाशवती ॥ १९ ॥ तथा चर्म व मुण्डको धारण किये उत्तम देवीजीको उन विस्मित देवता-

ओंने देखा देवता बोले कि हे प्राणियों के दुःखोंके हरनेवाली ! तुम्हारी जय हो हे चामुण्डे, देवि ! तुम्हारी जय हो ॥ २० ॥ हे सर्वव्यापिनि, देवि ! तुम्हारी जय हो हे कालरात्रि ! तुम्हारे लिये प्रणाम होवै हे भीमरूपे, शिवे, विद्ये ! हे महामाये, हे महोदये ! ॥ २१ ॥ हे महाभोगे, जये, जम्भे, भीमलोचनि ! हे भीमदर्शने ! हे महामाये, विचित्रांगे ! हे गानेयोग्य गीत व नृत्यप्रिये, शुभे ! तुम्हारी जय हो ॥ २२ ॥ हे विकरालि, महाकालि, कालिके, कालरूपिणि ! हे पाशहस्ते, दण्डहस्ते, भीमहस्ते, भयानने ! तुम्हारी जय हो ॥ २३ ॥ हे चामुण्डे, ज्वलमानानने, तीक्ष्णदंष्ट्रे, महाबले ! हे शिवयान स्थिते, प्रेतसमूहसेविते, देवि ! तुम्हारे लिये प्रणाम

देवि कालरात्रिनमोस्तुते ॥ भीमरूपेशिवेविद्ये महामायेमहोदये ॥ २१ ॥ महाभोगेजयेजम्भे भीमाक्षिभीमदर्शने ॥ महामायेविचित्राङ्गे गेयनृत्यप्रियेशुभे ॥ २२ ॥ विकरालिमहाकालि कालिकेकालरूपिणि ॥ पाशहस्तेदण्डहस्ते भीमहस्तेभयानने ॥ २३ ॥ चामुण्डेज्वलमानास्ये तीक्ष्णदंष्ट्रेमहाबले ॥ शिवयानस्थितेदेवि प्रेतसङ्घनिषेविते ॥ २४ ॥ एवंस्तुतातदादेवी सर्वैःशक्रपुरोगमैः ॥ प्रहृष्टवदनाभूत्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ २५ ॥ वरंवृणुध्वंभद्रंवो यद्वोमनसिसंस्थितम् ॥ अहंदास्यामितत्सर्वं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ २६ ॥ देवा ऊचुः ॥ कृतकृत्यास्त्वयाभद्रे दानवस्यनिषूदनात् ॥ स्तोत्रेणानेनयोदेवि त्वांवैस्तौतिवरानने ॥ २७ ॥ तस्यत्वंवरदादेवि भवसर्वगतासती ॥ यश्चेदंशृणुयाद्भक्त्या तवदेवि समुद्भवम् ॥ २८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तस्सयातुपरमाङ्गतिम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेत्वयादेवि स्थितिःकार्यासदाशुभे ॥ २९ ॥

है ॥ २४ ॥ उस समय इन्द्रादिक सब देवताओं से इसप्रकार स्तुति कीहुई देवीजी प्रसन्नमुखी होकर इस वचन को बोलीं ॥ २५ ॥ कि तुमलोगों का कल्याण होवै तुमलोग वरको मांगो जो तुम्हारे मनमें भलीभांति टिका है उस सबको मैं दूंगी यद्यपि दुर्लभ भी होवै ॥ २६ ॥ देवता बोले कि हे भद्रे ! दानव के मारनेसे हमलोग तुमसे कृतार्थ होगये हे वरानने, देवि ! जो मनुष्य इस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुतिकरै ॥ २७ ॥ हे देवि ! सर्वव्यापिनी होतीहुई तुम उसको वरदायिनी होवो हे देवि ! तुमसे उपजेहुये इस चरित्र को जो भक्तिसे सुनै ॥ २८ ॥ सब पापोंसे छूटा हुआ वह उत्तमगति को प्राप्तहोवे व हे शुभे, देवि ! तुमको इस क्षेत्रमें सदैव स्थिति

करना चाहिये ॥ २९ ॥ कुँवार महीने में शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें यहां सावधान होताहुआ जो मनुष्य तुमको पूजे उसका सदैव कल्याण करना चाहिये ॥ ३० ॥ ऐसा कहीहुई वह कुमारिका देवी वहीं स्थितहुई और नष्टशत्रुवोंवाले देवता प्रसन्न होकर स्वर्गको चलेगये ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्द महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! पुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुमारिकादेवीमाहात्म्यंनामत्रयस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्याय. ॥ २३३ ॥ ॥ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर आतोंकी मालासे

दो०। क्षेत्र रक्षणहिं कार्य जिमि क्षेत्रपाल इमि नाम । मे दोसौ चौंतीसमें सोइ चरित सुखधाम ॥

अत्रत्वांपूजयेद्यस्तु शुक्लपक्षेसमाहितः ॥ नवम्यामाश्विनेमासि तस्यकार्यंसदाशुभम् ॥ ३० ॥ एवमु क्तामहादेवि तत्रैवनिरताभवत् ॥ देवास्त्रिविष्टपंजग्मुः प्रहृष्टाहतशत्रवः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कुमारीमाहात्म्यन्नाम त्रयस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि क्षेत्रपालंमहाप्रभम् ॥ ईशानेचस्थितन्देवमन्त्रमालाविभूषितम् ॥ १ ॥ हिरण्यातटमाश्रित्य रक्षार्थंसमुपस्थितम् ॥ तत्रैवहीरकंक्षेत्रं तस्मिन्रक्षांकरोतिसः ॥ २ ॥ कृष्णपक्षेत्रयोदश्यां तत्रतंपूजयेन्नरः ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च तथाबलिनिवेदनैः ॥ ३ ॥ एवंसम्पूजितोदेवः सर्वकामप्रदोभवेत् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेक्षेत्रपालमाहात्म्यन्नाम चतुस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ भूषित ईशानकोण में स्थित महाप्रभावान् क्षेत्रपालदेवजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि हिरण्यानदी के तटमें आश्रित होकर रक्षाके लिये उपस्थित हैं वहीं पर जो हीरकक्षेत्र है उसमें वे रक्षा करते हैं ॥ २ ॥ वहां कृष्णपक्षमें तेरसि तिथिमें मनुष्य उन क्षेत्रपालजी को चन्दन व पुष्पों के उपहारों से तथा बलिदानों से पूजन करै ॥ ३ ॥ इसप्रकार भलीभांति पूजेहुये वे देव सब कामनाओं के दायक होते हैं ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांक्षेत्रपालमाहात्म्यंनामचतुस्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३४ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰ । चित्रेश्वर लिङ्गहिं यथा थाप्यो तप करि चित्र । दोसौ पैंतिस में सोई वर्णित कथा विचित्र ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्यानदी के किनारे स्थानवाले महापातकों के विनाशक अतिउत्तम चित्रेश्वरजीके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! यमराज के लेखक चित्रने वहां भयङ्कर तप करके लिङ्गको थापन कियाहै ॥ २ ॥ हे देवि ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य यमलोक को नहीं देखता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचित्रेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि चित्रेश्वरमनुत्तमम् ॥ हिरण्यातीरनिलयं महापातकनाशनम् ॥ १ ॥ चित्रेणचमहादेवि लेखकेनयमस्यच ॥ तपःकृत्वामहारौद्रं लिङ्गंतत्रप्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि यमलोकन्नपश्यति ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेचित्रेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३५ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रैवाग्रेचसंस्थिताम् ॥ सरस्वत्यास्तटेदेवि पिङ्गांपातकनाशिनीम् ॥ १ ॥ तस्यास्संस्पर्शनाद्देवि रूपवाञ्जायतेनरः ॥ पुरामहर्षयःप्राप्ताः सोमेश्वरदिदृक्षया ॥ २ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य नदीतीरेव्यवस्थिताः ॥ दाक्षिणात्यामहादेवि कृष्णरूपाविरूपकाः ॥ ३ ॥ तत्राश्रमवरेतेच पश्यन्तोरूपमात्मनः ॥ कामवत्सदृशंसर्वे विस्मयंपरमंगताः ॥४॥ ततस्तेसहितास्सर्वेविस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ अत्रस्नात्वावयंसर्वेयतःपिङ्गत्वमागताः ॥५॥

दो॰ । पिङ्गानदी नहाय जिमि भये मुनीश सुरूप । दोसौ छत्तिस माहिं सो कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर वहींपर आगे स्थित सरस्वतीनदीके किनारे पातकोंको नाशकरनेवाली पिङ्गानदीके समीप जावै ॥१॥ हे देवि ! उसके भलीभांति स्पर्श करनेसे मनुष्य रूपवान् होताहै पुरातन समय सोमेशजी के देखनेकी इच्छा से महर्षिलोग प्राप्तहुये ॥ २ ॥ व हे महादेवि ! काले रूपवाले वे दाक्षिणात्य विरूप मुनिलोग प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर नदीके किनारे टिकतेभये ॥ ३ ॥ और उसउत्तम आश्रममें कामदेवके समान अपने रूपको देखतेहुये वे सब बड़े विस्मयको प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ तदनन्तर विस्मयसे प्रफुल्लितलोचनों वाले

वे सब इकट्ठा होकर बोले कि जिसलिये इसमें नहाकर हम सब पिङ्गत्वको प्राप्तहुये ॥ ५ ॥ उसीकारण आजसे लगाकर इसका पिङ्गा नाम होगा और बड़ीभक्ति
से संयुत जो पुरुष इसमें स्नान करैंगे ॥ ६ ॥ उनके वंशमें कोई कुरूपवान् न होगा और इसके दर्शनसे मनुष्य पितृमेधयज्ञ के फलको पावैगा ॥ ७ ॥ और स्नान से
दूना व तर्पणसे चौगुना पुण्यहोगा व जो यहां श्राद्ध करैगा उसको असंख्य फल होगा ॥ ८ ॥ हे वरवर्णिनि ! ऐसा कहकर तदनन्तर उन सब ऋषियोंने नदीतटको
विभाग किया और उन सब मुनिश्रेष्ठों ने ॥ ९ ॥ यज्ञोपवीत के प्रमाणभर सब ओर तीर्थोंको किया ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां

अतःप्रभृतिनामास्यास्ततःपिङ्गाभविष्यति ॥ अत्रस्नानंकरिष्यन्ति येभक्त्यापरयायुताः ॥ ६ ॥ नतेषामन्वयेकश्चिद्भ
विष्यतिकुरूपवान् ॥ दर्शनात्पितृमेधस्य लप्स्यतेमानवःफलम् ॥ ७ ॥ स्नानेनद्विगुणंपुण्यं तर्पणेनचतुर्गुणम् ॥ अ
संख्यातंफलंतस्य योत्रश्राद्धंकरिष्यति ॥ ८ ॥ एवमुक्त्वाततस्सर्वे ऋषयोवरवर्णिनि ॥ विभेजुस्तेनदीतीरं सर्वेतेमुनि
सत्तमाः ॥ ९ ॥ यज्ञोपवीतमात्राणि चक्रुस्तीर्थानिसर्वशः ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पिङ्गानदी
माहात्म्यन्नामषट्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येत् सूर्यंपापप्रणाशनम् ॥ तथाचपिङ्गांदेवींवै पार्वतीरूपधारिणीम् ॥ १ ॥ तृतीया
यांविशेषेण ह्युपवासोविधीयते ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति धनवान्पुत्रवान्भवेत् ॥ २ ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येच्छुक्रेश्वर

भाषाटीकायांपिङ्गानदीमाहात्म्यंनामषट्त्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३६ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पिङ्गदेवी दर्शसे मिलत अहै फल जोइ । दोसौ छैंतिस माहिं है कह्यो चरित सब सोइ ॥ महादेवजी बोले कि वहाँ पै भलीभांति स्थित पापोंको नाशकरने-
वाले सूर्यनारायण को देखै और पार्वती के रूपको धारनेवाली पिङ्गादेवी को देखै ॥ १ ॥ और विशेषकर तीज तिथिमें उपास कियाजाताहै जो मनुष्य ऐसा करताहै

वह सब कामनाओंको पाताहै और धनवान् व पुत्रवान् होताहै ॥ २ ॥ व हे देवि ! वहीं भलीभांति स्थित शुक्रेश्वर ऐसे प्रसिद्ध शिवजीको देखै उनको देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाताहै ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपिङ्गादेवीमाहात्म्यंनामसप्तत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२३७॥

दो० । थाप्यो चतुरानन यथा लिंग नाम ब्रह्मेश । दोसौ अर्तिस माहिं सो कह्यो चरित्र उमेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पर्णादित्यके पश्चिममें सरस्वतीजी के किनारे स्थित ब्रह्मासे पूजित ब्रह्मेशजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! मैं उसकी उत्पत्तिको कहताहूं कि एकमन होकर सुनिये पुरातन समय चार

मितिश्रुतम् ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि मुक्तःस्यात्सर्वपातकैः ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे पिङ्गादेवीमाहात्म्यन्नामसप्तत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ब्रह्मेशंब्रह्मपूजितम् ॥ सरस्वत्यास्तटेसंस्थं पर्णादित्यस्यपश्चिमे ॥ १ ॥ तस्योत्पत्तिप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ सृजतोब्रह्मणःपूर्वं भूतग्रामंचतुर्विधम् ॥ २ ॥ उत्पन्नाभूत्सुरूपाढ्या नारीकमललोचना ॥ कम्बुग्रीवासुकेशान्ता बिम्बोष्ठीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥ गम्भीरनाभिस्सुश्रोणी पीनोन्नतपयोधरा ॥ पूर्णचन्द्रमुखीसातु गूढगुल्फाशुभानना ॥ ४ ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनचपन्नगी ॥ यावद्रूपावरारोहा तादृशीसाऽव्यजायत ॥ ५ ॥ तान्दृष्ट्वारूपसम्पन्नां ब्रह्माकामवशोऽभवत् ॥ अथतांप्रार्थयामास रत्यर्थंवरवर्णिनीम् ॥ ६ ॥ अथप्रार्थयतस्तस्य

प्रकार के भूतगण को रचतेहुये ब्रह्मासे ॥ २ ॥ कमलसरीखे लोचनोंवाली व शङ्खके समान ग्रीवा तथा सुन्दर केशोंवाली और बिम्बाफलके समान ओठोंवाली व सूक्ष्म कटिवाली स्वरूप से संयुत कन्या उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥ जोकि गहरी नाभिवाली व सुन्दर कटिवाली स्थूल व ऊंचे स्तनोंवाली और पूर्णचन्द्रमाके समानमुखवाली वह गुप्तगंठा (पांवकी गाठि) वाली और सुन्दरमुखी थी ॥ ४ ॥ जैसे रूपवाली वह वरारोहा उत्पन्न हुई वैसी न देवी न गन्धर्विणी न असुरपत्नी न नागिनी थी ॥ ५ ॥ रूपसे संयुत उस स्त्रीको देखकर ब्रह्माजी कामदेवके वश हुये इसके अनन्तर उस उत्तम अङ्गोंवाली स्त्रीसे ब्रह्माने रतिके लिये प्रार्थनाकिया ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त

हे महादेवि ! प्रार्थना करतेहुये उन ब्रह्माका उत्तमरूपवाला वह पाचवां मस्तक उस पापसे उसीक्षण गिरपड़ा ॥ ७ ॥ तदनन्तर कन्याके काम से उपजेहुये बड़े पापको जानकर बड़ी धृणासे संयुत ब्रह्माजी प्रभासक्षेत्र को आये ॥ ८ ॥ जिससे विना तीर्थस्नानके शरीरकी शुद्धि न होगी इसकारण हे वरानने ! सरस्वतीनदीके पवित्रजल में नहायेहुये उन ब्रह्माने ॥ ९ ॥ त्रिशूलधारी देवदेव शिवजी के लिङ्ग को थापन किया तदनन्तर पापरहित होकर फिर अपने घरको चलेगये ॥ १० ॥ सरस्वतीनदीके जलमें नहाकर जो पुरुष उस लिङ्गको देखताहै वह सब पापोंसे छूटकर ब्रह्मलोक में पूजाजाता है ॥ ११ ॥ चैत महीने में शुक्लपक्ष की तेरसि में जो

न्यपतत्पञ्चमंशिरः ॥ वररूपंमहादेवि तेनपापेनतत्क्षणात् ॥ ७ ॥ ततोज्ञात्वामहत्पापं दुहितुःकामसम्भवम् ॥ घृणयापरयायुक्तः प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ ८ ॥ नकायस्यततश्शुद्धिर्विनातीर्थावगाहनात् ॥ सस्नातस्सलिलेपुण्ये सरस्वत्या वरानने ॥ ९ ॥ लिङ्गंप्रस्थापयामास देवदेवस्यशूलिनः ॥ ततोविकल्मषोभूत्वा जगामस्वगृहंपुनः॥ १० ॥ स्नात्वासारस्वतेतोये यस्तल्लिङ्गंप्रपश्यति ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥११॥ चैत्रेशुक्लत्रयोदश्यांयस्तंपश्यतिमानवः ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे ब्रह्मेश्वरमाहात्म्यन्नामाष्टत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवंवैसङ्गमेश्वरम् ॥ गङ्गेश्वरमितिख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तस्यैव पश्चिमेभागे सर्वकामफलप्रदम् ॥ ऋषिरुद्दालकोनाम पुराह्यासीन्महातपाः ॥ २ ॥ सपुरासङ्गमंप्राप्य सर्वपापप्रणाश

मनुष्य उन शिवजी को देखता है वह उत्तम स्थानको प्राप्त होताहै जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांब्रह्मेश्वरमाहात्म्यंनामाष्टत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि गङ्गेश्वर लिङ्गको थप्यो गङ्गमहरानि । दोसौ उन्तालीस महँ सोई कह्यो बखानि ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सङ्गमेश्वरदेवजी के समीप जावै और गङ्गेश्वर ऐसा प्रसिद्ध समस्त पातकों का नाश करनेवाला ॥ १ ॥ लिङ्ग उसीके पश्चिम भागमें सब कामनाओं के फलको देनेवालाहै पुरातन समय

बड़े तपस्वी उद्दालकनामक ऋषि हुये हैं ॥ २ ॥ उन्होंने पुरातन समय समस्तपापोंके नाशक सरस्वती व पिङ्गाके सङ्गमको प्राप्त होकर पृथ्वीमें तपकिया ॥ ३ ॥ तदनन्तर उन महात्माके अत्यन्त भयङ्कर तप करतेहुये उन महात्माकी भक्तिसे आगे लिङ्ग उत्पन्नहुआ ॥ ४ ॥ इसीसमयमें आकाशवाणी बोलीकि हे महाबाहो,उद्दालक ! तुम मेरे इस वचनको सुनो ॥ ५ ॥ कि आजसे लगाकर यहां सदैव मेरा निवासहोगा जिसलिये सङ्गममें यह उत्तम लिङ्ग उत्पन्नहुआ ॥ ६ ॥ इसकारण इसका सङ्गमेश्वर ऐसा नाम होगा व संसार में प्रसिद्ध सङ्गममें स्नानकरके मनुष्य ॥ ७ ॥ सङ्गमेश्वरजीको देखकर तदनन्तर उत्तमगतिको प्राप्तहोगा महादेवजी बोले कि तदनन्तर उद्दालकजीने निरालस्य होकर दिन रात उन शिवजीको पूजाहै तदनन्तर शरीरके अन्तमें यहवहां गया जहां कि महेशजीहैं तदनन्तर हे महादेवि! सङ्गमेश्वरसे पश्चिम में त्रिलोकमें प्रसिद्ध गङ्गेश्वर ऐसे विख्यात लिंगके समीप जावैहे वरानने! जब समर्थवान् विष्णुजी ने अन्तसमय में अपने शरीर के अभिषेक (स्नान) के लिये श्रीगंगाजीको बुलायाहै तब ऋषियोंसे सेवित व पवित्र उस क्षेत्रको देखकर॥ ८ । ९ । १० । ११ ॥ व सब कहीं तपस्वियों के आश्रमों तथा लिंगोंसे व्यापित

नम् ॥ सरस्वत्याश्चपिङ्गायास्तपस्तेपेमहीतले ॥ ३ ॥ ततस्तपस्यतोत्यर्थं तपोरौद्रंमहात्मनः ॥ पुरतश्चोत्थितंलिङ्गं भक्त्यातस्यमहात्मनः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ उद्दालकमहाबाहो शृणुष्वैतद्वचोमम ॥ ५ ॥ अद्यप्रभृतिवासोत्र ममनित्यंभविष्यति ॥ यस्मादेतत्समुत्पन्नं सङ्गमेलिङ्गमुत्तमम् ॥ ६ ॥ सङ्गमेश्वरमित्येवंनामचास्यभविष्यति ॥ यत्रस्नानंनरःकृत्वा सङ्गमेलोकविश्रुते ॥ ७ ॥ सङ्गमेश्वरमालोक्य ततोयातिपराङ्गतिम् ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततस्तंपूजयामास दिवारात्रमतन्द्रितः ॥ ८ ॥ ततोदेहावसानेसौ गतोयत्रमहेश्वरः ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ९ ॥ गङ्गेश्वरेतिविख्यातं सङ्गमेश्वरपश्चिमे ॥ यदागङ्गासमाहूता विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १० ॥ अन्तकालेभिषेकार्थं स्वकायस्यवरानने ॥ तदादृष्ट्वातुतत्क्षेत्रं पुण्यंऋषिनिषेवितम् ॥ ११ ॥ सर्वत्रव्यापितंलिङ्गैराश्रमैश्चतपस्विनाम् ॥ ततोगङ्गासरिच्छ्रेष्ठा पूर्वसागरगामिनी ॥ १२ ॥ स्थापयामासतल्लिङ्गं शिवभक्तिपरायणा ॥ तन्दृष्ट्वा

देखकर तदनन्तर पूर्वसमुद्र में जानेवाली नदियों में उत्तम गंगाजी ने ॥ १२ ॥ शिवजीकी भक्तिमें परायण होकर उस लिंगको थापन किया हे वरारोहे ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य गंगास्नान के फलको प्राप्तहोताहै ॥ १३ ॥ और हज़ार अश्वमेधयज्ञोंके फलको मनुष्य पाताहै ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु मिश्रविरचितायाभाषाटीकायागङ्गेश्वरमाहात्म्यनामैकोनचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। थप्यो शङ्करादित्य को जिमि शकर सुरनाथ। दोसौ चालिस में सोई बरन्यो उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गंगेश्वरके पूर्वमें

तुवरारोहे गङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ १३ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगङ्गेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २३९ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि शङ्करादित्यमुत्तमम् ॥ गङ्गेश्वरस्यपूर्वेण शङ्करेणप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ षष्ठ्यांचैत्रस्यशुक्लायामेनंयःपूजयिष्यति ॥ गमिष्यतिपरंस्थानं यत्रदेवोदिवाकरः ॥ २ ॥ रक्तचन्दनमिश्रैश्च रक्तपुष्पैस्समाहितः ॥ ताम्रपात्रेसमाधाय अर्घ्यंदास्यतिमानवः ॥ ३ ॥ सयास्यतिपरांसिद्धिं नचयातिदरिद्रताम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्मिन्क्षेत्रेवरानने ॥ ४ ॥ पूजयेच्छङ्करादित्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे शङ्करादित्यमाहात्म्यन्नामचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥ * ॥ * ॥

शंकरजी से थापेहुये उत्तम शंकरादित्यजी के समीप जावै ॥ १ ॥ चैत महीने की उजेरी छठि तिथिमें जो इनको पूजैगा वह उस उत्तमस्थान को जावैगा जहां कि सूर्यनारायण देवजी हैं ॥ २ ॥ और सावधान होताहुआ मनुष्य लालचन्दन से मिलेहुये लालफूलों से तांबेके पात्रमें धरकर अर्घ्यको देवैगा ॥ ३ ॥ वह उत्तमसिद्धि को प्राप्तहोगा और दरिद्रताको न प्राप्त होगा इसलिये हे वरानने ! सब यत्नसे उस क्षेत्रमें ॥ ४ ॥ सब कामनाओंके फलोंको देनेवाले शङ्करादित्यजी को पूजै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशङ्करादित्यमाहात्म्यंनामचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥ ● ॥

दो० । थाप्यो शङ्करनाथ जिमि श्रीसूर्यहु दिननाथ । दोसौ इकतालीस मईं सोई वर्णित गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां त्रिलोक से पूजित शङ्करनाथ ऐसे प्रसिद्ध पापनाशक लिङ्गके समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! वहा बहुत तपकर सूर्यनारायणजीने उस लिंगको थापाहै उन महेश्वरदेवजीको उप-वास समेत पूजकर ॥ २ ॥ वहां जितेन्द्रिय पुरुष ब्राह्मणोंको भोजन करावै और श्राद्धकरै व सावधान होकर जो भक्तिसे ब्राह्मण के लिये सुवर्ण व वस्त्रोंको देवै ॥ ३ ॥ वह उत्तमस्थान को प्राप्तहोता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ४ ॥इति श्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशङ्करनाथमाहात्म्यंना

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंत्रैलोक्यपूजितम् ॥ तत्रशङ्करनाथेति प्रसिद्धंपापनाशनम् ॥ १ ॥ स्थापितंभानुनादेवि कृत्वातत्रमहातपः ॥ तमर्चयित्वादेवेशं सोपवासोमहेश्वरम् ॥ २ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्रश्राद्धंकुर्याज्जितेन्द्रियः ॥ भक्त्याहिरण्यवासांसिविप्रेदद्यात्समाहितः ॥ ३ ॥ सयातिपरमंस्थानं नात्रकार्याविचारणा ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशङ्करनाथमाहात्म्यन्नामैकचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४१ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे ऋषीणांपुण्यकर्मणाम् ॥ १ ॥ तस्मिंस्त्रिनेत्रामत्स्याश्च दृश्यन्तेद्यापिभामिनि ॥ अङ्गिरागौतमोगस्त्यः सुमतिस्सुमुखस्तथा ॥ २ ॥ विश्वामित्रस्स्थूलशिरास्संवर्त्तःप्रतिमर्द्दनः ॥ रैभ्योबृहस्पतिश्चैव च्यवनःकश्यपोभृगुः ॥ ३ ॥ दुर्वासाजमदग्निश्च मार्कण्डेयोथगालवः ॥

मैकचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४० ॥ ❀ ॥ ❀ ❀ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० । ऋषितीरथ माहात्म्य जिमि भयो अमित परमान । दोसौ बैयालीस मईं सोई कियो बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके पश्चिम भागमें त्रिलोक में प्रसिद्ध पुण्यकर्मवाले ऋषियों के तीर्थके समीप जावै ॥ १ ॥ हे भामिनि ! उसमें तीननेत्रोंवाली मछलियां आजभी देख पड़ती हैं अङ्गिरा, गौतम, अगस्त्य, सुमति व सुमुख ॥ २ ॥ विश्वामित्र, स्थूलशिरा, सवर्त व प्रतिमर्दन,रैभ्य, बृहस्पति, च्यवन, कश्यप व भृगु ॥ ३ ॥ दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय

व गालव, उशना, भरद्वाज व यवक्रीत ॥ ४ ॥ स्थूलाक्ष, सकलाक्ष, कण्व, मेधातिथि, कृत, नारद व पर्वत ये ऋषिलोग पुत्रों व शिष्योंसमेत ॥ ५ ॥ इस प्रभासक्षेत्र को प्राप्त होकर महात्मा मुनिश्रेष्ठों ने बड़े अद्भुत व अनेक भांति के तपको किया ॥ ६ ॥ इसप्रकार दमसे युक्त वे नियतचित्तवाले ऋषिलोग समाधि से सनातन ब्रह्मलोक को जीतने की इच्छा करते थे ॥ ७ ॥ इसके उपरान्त हे प्रिये ! किसी समय बड़ीभारी अनावृष्टि हुई उसमें क्षुधासे विकल सब संसार क्लेश में प्राप्तहुआ ॥ ८ ॥ तदनन्तर अन्नरहित इस संसार में उन्होंने अपने जीवकी रक्षा करना चाहा और उस समय क्लेशमें प्राप्त उन मुनियों ने मरे पुत्रको लेकर पकाया ॥ ९ ॥ इस

उशनाथभरद्वाजो यवक्रीतस्तथैवच ॥ ४ ॥ स्थूलाक्षःसकलाक्षश्च कण्वोमेधातिथिःकृतः ॥ नारदःपर्वतश्चैव पुत्रशिष्यैस्समन्वितः ॥ ५ ॥ एतत्क्षेत्रंसमासाद्य प्रभासंमुनिसत्तमाः ॥ तपस्तेपुर्महात्मानो विविधंपरमाद्भुतम् ॥ ६ ॥ एवन्तेनियतात्मानो दमयुक्तास्तपस्विनः ॥ समाधिनाजिगीषन्ति ब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ ७ ॥ अथाभवदनावृष्टिः कदाचिन्महतीप्रिये ॥ कृच्छ्रंप्राप्तोह्यभूत्तत्र सर्वलोकःक्षुधार्दितः ॥ ८ ॥ ततोनिरन्नेलोकेस्मिन्नात्मानन्तेपरीप्सवः ॥ मृतंकुमारमादाय कृच्छ्रेप्राप्तास्तदापचन् ॥ ९ ॥ अथोपरिचरंस्तत्र क्लिश्यमानान्हितानृषीन् ॥ दृष्ट्वाराजावृषादर्भिः प्रोवाचेदंवचस्तदा ॥ १० ॥ राजोवाच ॥ प्रतिग्रहोब्राह्मणानां दृष्टावृत्तिरनिन्दिता ॥ तस्मात्प्रतिग्रहंमत्तो गृह्णीध्वंमुनिपुङ्गवाः ॥ ११ ॥ मुद्गान्माषांश्चव्रीहींश्च तथारत्नानिकाञ्चनम् ॥ युष्माकंसम्प्रदास्यामि यच्चान्यदपिदुर्लभम् ॥ १२ ॥ निवर्त्तध्वमितस्सर्वे ऋषयःप्रोचुरञ्जसा ॥ तज्जानन्तःकथंराजन् गृह्णीमस्तेप्रतिग्रहम् ॥ १३ ॥ दशसूनासमश्चक्री दशच

के उपरान्त वहां घूमतेहुये वृषादर्भि राजा उन क्लेशित ऋषियों को देखकर उस समय यह वचनबोले ॥ १० ॥ राजा बोले कि दानलेना ब्राह्मणों की अनिन्दित जीविका देखीगई है इसलिये हे मुनिश्रेष्ठो ! मुझसे दान लीजिये ॥ ११ ॥ मैं तुमलोगों को मूंग, उड़द, धान, रत्न व सुवर्ण तथा जो कुछ दुर्लभ भी होगा उसको दूंगा ॥ १२ ॥ तुम सब यहांसे लौटो ऋषिलोग शीघ्रही बोले कि हे राजन् ! उसको जानतेहुये हमलोग कैसे तुम्हारे प्रतिग्रह को ग्रहणकरैं ॥ १३ ॥ क्योंकि दश वध-

स्थानोंके समान एक कुम्हार होताहै और दश कुम्हारोंके समान एकतेली होताहै ॥ १४ ॥ और दश तेलियोंके बराबर वेश्या होती है व दश वेश्याओंके बराबर राजा होताहै लोभसे मोहित जो ब्राह्मण राजाओं का दानलेता है ॥ १५ ॥ वह तामिस्र आदिक भयङ्कर नरकों में पचता है इसलिये हे राजन्! तुम्हारा कुशल होवै दान समेत जाइये ॥ १६ ॥ इसको अन्यलोगों को दीजिये यह कहकर वे वनको चलेगये इसके उपरान्त राजाकी आज्ञासे वहां मन्त्रीलोगों ने जाकर ॥ १७ ॥ सुवर्णगर्भवाले गूलरों को पृथ्वीमें फेंकदिया हे वरवर्णिनि! अन्य ऋषिलोग उनको ढूंढ़ते थे॥ १८ ॥ परन्तु बहुत गरुवे जानकर अङ्गिराजी बोले कि ये नहीं ग्रहण करनेयोग्य

क्रिसमोध्वजी ॥ १४ ॥ दशध्वजिसमावेश्या दशवेश्यासमोनृपः ॥ योराज्ञांप्रतिगृह्णाति ब्राह्मणोलोभमोहितः ॥ १५ ॥ तामिस्रादिषुघोरेषु नरकेषुसपच्यते ॥ तद्गच्छकुशलंतेस्तु सहदानेनपार्थिव ॥ १६ ॥ अन्येषांदीयतामेतदित्युक्त्वा तेवनंययुः ॥ अथराज्ञस्समादेशात्तत्रगत्वाचमन्त्रिणः ॥ १७ ॥ उदुम्बराण्यकिरन् हेमगर्भाणिभूतले ॥ अन्येतानि विचिन्वन्ति ऋषयोवरवर्णिनि ॥ १८॥ गुरूनतिविदित्वातु नग्राह्याण्यङ्गिराब्रवीत ॥ १९ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ नस्महेन स्महेमूढा वयमज्ञानबुद्धयः ॥ हेमानीमानिजानीमः प्रतिबुद्धाःस्मजागृमः ॥ २० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ धर्मार्थसञ्चयोय स्य द्रव्याणांसचशस्यते ॥ तपस्सञ्चयनाच्चैव विशिष्टोधनसञ्चयः ॥ २१ ॥ त्यजतस्सञ्चयान्सर्वान् दृश्यतेनह्युपद्रवः॥ नहिसञ्चयवान्कश्चिद् दृश्यतेनिरुपद्रवः ॥ २२ ॥ यथायथानगृह्णन्ति ब्राह्मणास्तत्प्रतिग्रहम् ॥ तथातथाप्रभावाच्च ब्रह्मतेजस्तुवर्द्धते ॥ २३ ॥ अकिञ्चनत्वंराज्यञ्च तुलयासहतोलने ॥ अकिञ्चनत्वमाधिकं राज्यादपिनसंशयः ॥ २४ ॥

हैं ॥ १९ ॥ अङ्गिराजी बोले कि हमलोग अज्ञानबुद्धिवाले नहींहैं व मूढ़ नहीं हैं इनसुवर्णके गूलरोंको हमलोग जानतेहैं क्योंकि प्रतिबुद्धहैं व जागतेहैं ॥ २० ॥ वसिष्ठजी बोले कि धर्मके लिये जिसके द्रव्योंका संचय है वह उत्तम है और तपस्याके संचयसे धनका संचय श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥ और सब संचयोंको त्याग करतेहुये पुरुषको उपद्रव नहीं देखपड़ताहै और संचयवान् कोई पुरुष उपद्रवरहित नहीं देखपड़ताहै ॥ २२ ॥ ज्यों ज्यों ब्राह्मणलोग उस प्रतिग्रहको नहीं ग्रहण करतेहैं त्यों त्यों प्रभाव

से ब्रह्मतेज बढ़ता है ॥ २३ ॥ अकिञ्चनता और राज्य तराजू से तोलने में राज्य से भी अकिञ्चनता अधिक होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ कश्यपजी बोले कि ब्राह्मण को जो बहुत द्रव्यका इकट्ठा करना है यह अनर्थ है क्योंकि द्रव्य के ऐश्वर्य्य से मोहित ब्राह्मण कल्याण से पृथक् होजाता है ॥ २५ ॥ धन मोह व बहुत शोक तथा अनर्थ के लिये होताहै इसलिये कल्याण को चाहनेवाला पुरुष धनको दूरसे त्याग करै ॥ २६ ॥ और जिसका धन धर्मही के लिये होवै उसको भी नहीं उत्तम होता है क्योंकि कीचड़के धोने से दूरही से देखना अच्छा है ॥ २७ ॥ भरद्वाज बोले कि वृद्ध पुरुष के केश बुढ़ाजाते हैं और वृद्ध मनुष्य के दांत

कश्यप उवाच ॥ अनर्थोब्राह्मणस्यैष यदर्थनिचयोमहान् ॥ अर्थैश्वर्यविमूढोपि श्रेयसोभ्रश्यतेद्विजः ॥ २५ ॥ अर्थोभवतिमोहाय बहुशोकायचैवहि ॥ तस्मादर्थमनर्थाय श्रेयोर्थीदूरतस्त्यजेत् ॥ २६ ॥ यस्यधर्मार्थमप्येव तस्यापिहिनशस्यते ॥ प्रक्षालनाद्धिपङ्कस्य सुदूराद्दर्शनंवरम् ॥ २७ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ जीर्यन्तिजीर्यतःकेशा दन्ताजीर्यन्तिजीर्यतः ॥ चक्षुःश्रोत्रेचजीर्येते तृष्णैकानिरुपद्रवा ॥ २८ ॥ सूचीसूच्यंयथावस्त्रं मार्जनान्नविवर्द्धते ॥ तथातृष्णाविरागाय वर्द्धमानानवर्द्धते ॥ २९ ॥ अनन्तपारातृष्णावै तृष्णादुःखप्रदासदा ॥ अधर्मबहुलाचैव तस्मात्तांपरिवर्ज्जयेत् ॥ ३० ॥ गौतम उवाच ॥ सन्तुष्टःकोनशक्नोति सुखेनापिहिवर्त्तितुम् ॥ सर्वोपिद्रव्यलोभेन सङ्कटान्यभिगाहते ॥ ३१ ॥ सर्वत्रसम्पदस्तस्य सन्तुष्टंयस्यमानसम् ॥ उपानद्गूढपादस्य ननुचर्मावृतैवभूः ॥ ३२ ॥ सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं

जीर्ण होजातेहैं और नेत्र व कान जीर्ण होजाते हैं परन्तु एक तृष्णा उपद्रवरहित रहती है ॥ २८ ॥ सूचीसे सीनेयोग्य वस्त्र जैसे धोनेसे नहीं बढ़ता है वैसेही बढ़ती हुई तृष्णा विराग के लिये नहीं बढ़ती है ॥ २९ ॥ और तृष्णाका पार अनन्तहै व तृष्णा सदैव दुःखदायिनी है और बहुत अधर्मोंवाली है इसलिये उस तृष्णा को वर्जित करै ॥ ३० ॥ गौतमजी बोले कि कौन सन्तुष्ट पुरुष सुखसे वर्तमान होने के लिये नहीं समर्थ है और सब पुरुष भी द्रव्यके लोभ से संकटों को भोगते हैं ॥ ३१ ॥ जिसका मन सन्तुष्ट है उसको सब कहीं सम्पदायें हैं क्योंकि पनहीं से छिपे पांववाले पुरुषको पृथ्वीचर्म से आच्छादितही है ॥ ३२ ॥ सन्तोषरूपी अमृत से

तृप्त, शान्तचित्तवाले पुरुषों को जो सुख होता है तृष्णा से उदासीन चित्तवाले धनके लोभी मनुष्योंको कहांसे होगा ॥ ३३ ॥ विश्वामित्रजी बोले कि कामनाको चाहते हुये पुरुषका यदि वह कार्य सिद्धि होजाताहै तो इसके उपरान्त इस पुरुषको और कार्य फिर बाणकी नाईं वेधताहै ॥ ३४ ॥ कामोंके भोगनेमें कभी काम शान्त नहीं होताहै वरन हव्यसे अग्निकी नाईं फिर भी बढ़ताहै ॥ ३५ ॥ लोभसे कामनाओंका अभिलाष करता हुआ पुरुष सुखको नहीं प्राप्तहोताहै क्योंकिवृक्षकी छायाको प्राप्तहोकर पुरुष सूर्यके तेजको स्पर्शकरताहै ॥३६॥ चारों समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वीको जो भोगताहै वह राजा कभी नहीं सन्तुष्ट होताहै और न कृतार्थहोताहै ॥ ३७ ॥

शान्तचेतसाम् ॥ कुतस्तद्धनलुब्धानां तृष्णयादीनचेतसाम् ॥ ३३ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ कामंकामयमानस्य यदि कामस्ससिद्ध्यति ॥ अथैनमपरःकामोभूयोवेधतिबाणवत् ॥ ३४ ॥ नजातुकामःकामानामुपभोगेनशाम्यति ॥ हविषाकृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्द्धते ॥ ३५ ॥ कामानभिलषँल्लोभान् ननरस्सुखमेधते ॥ समालभ्यतरुच्छायां सूर्यतेजःस्पृशेज्जनः ॥ ३६ ॥ चतुस्सागरपर्यन्तां योभुङ्क्तेपृथिवीमिमाम् ॥ कदापिनैवतुष्टःस्यात्सकृतार्थोनपार्थिवः ॥ ३७ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ प्रतिग्रहसमर्थोयस्तपोवर्द्धयतेमहान् ॥ नकरोतितपस्तस्य जायतेचसहस्रधा ॥ ३८ ॥ प्रतिग्रहसमर्थानां निवृत्तानांप्रतिग्रहात् ॥ यएवददतांलोकास्तएवाप्रतिगृह्णताम् ॥ ३९ ॥ अरुन्धत्युवाच ॥ विसतन्तुर्यथानित्यं समन्तान्नालसंस्थितः ॥ तृष्णाचैवंसमाधत्ते तथादेहाश्रितासदा ॥ ४० ॥ यादुस्त्यजादुर्मतिभिर्यानजीर्यतिजीर्यतः ॥ योसौप्राणान्तकोरोगस्तान्तृष्णांत्यजतस्सुखम् ॥ ४१ ॥ चन्द्रमा उवाच ॥ उग्राह्यर्थमयीतृष्णा बिभ्यतीहमहेश्व

जमदग्निजी बोले कि प्रतिग्रहमें समर्थ जो महान् पुरुष तपस्याको बढ़ाताहै और प्रतिग्रह नहीं करताहै उसका तप हज़ारगुना होताहै ॥ ३८ ॥ प्रतिग्रहमें समर्थ होकर प्रतिग्रह से निवृत्त याने प्रतिग्रह न लेनेवाले पुरुषों को वेही लोक होतेहैं जोकि देनेवालोंको होतेहैं ॥ ३९ ॥ अरुन्धतीजी बोलीं कि जैसे कमलकी भँसीड़ का ताग निरन्तर सबओर से कमलकी डांड़ीमें स्थित रहताहै वैसेही सदैव देहमें टिकीहुई तृष्णा स्थित रहती है ॥ ४० ॥ दुर्बुद्धियोंसे जो दुस्त्यजहै और वृद्ध होतेहुये पुरुषकी भी जो तृष्णा नहीं बुढ़ाती है और जो यह प्राणनाशक रोगहै उस तृष्णाको छोड़तेहुये पुरुष को सुखहोताहै ॥ ४१ ॥ चन्द्रमा बोले कि धनमयी तृष्णा उग्र होती है

इसलिये महादेवजी जैसे डरतेहैं वैसेही बड़े बलवान् से दुर्बल की नाईं मैं डरताहूं ॥ ४२ ॥ यवक्रीत बोले कि सदैव धर्ममें लगेहुये विद्वान्लोग जो आचरण करते हैं अपने हितको चाहनेवाले विद्वान् को वही करना चाहिये ॥ ४३ ॥ महादेवजी बोले कि ऐसा कहकर सुवर्णगर्भवाले उन फलों को त्यागकर दृढनियमवाले सब ही ऋषिलोग अन्यत्र चलेगये ॥ ४४ ॥ तदनन्तर हे वरवर्णिनि ! घूमतेहुये उन ऋषियोंने सबओर कमलिनियोंसे व्याप्तबड़ेभारी तड़ागको देखा ॥ ४५ ॥ उससमय उस तड़ाग के समीप इन्द्रदेवजी संन्यासियों के सामने आये और उन समेत सब महर्षियों ने उसमें स्नान किया ॥ ४६ ॥ और उसमें स्नानकर भँसीड़ों को ग्रहण

र: ॥ बलीयसोदुर्बलवत्तथाचैवबिभेम्यहम् ॥ ४२ ॥ यवक्रीत उवाच ॥ यदाचरन्तिविद्वांसः सदाधर्मपरायणाः ॥ तदेवविदुषाकार्यमात्मनोहितमिच्छता ॥ ४३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वाहेमगर्भाणि त्यक्त्वातानिफलानिच ॥ ऋषयोजग्मुरन्यत्र सर्वएवदृढव्रताः ॥ ४४ ॥ ततस्तेविचरन्तोवै ददृशुस्सुमहत्सरः ॥ पद्मिनीभिस्समाकीर्णं सर्वतोवरवर्णिनि ॥ ४५ ॥ तस्मिन्देवस्तदाप्राप्तःपरिव्राजान्तुसम्मुखम् ॥ तेनैवसहितास्तत्र स्नातास्सर्वेमहर्षयः ॥ ४६ ॥ तत्रावगाहनं कृत्वा गृहीतानिबिसानितु ॥ निचाय्यसरसश्चक्रुस्तत्पुण्यजलविक्रियाम् ॥ ४७ ॥ अथोत्तीर्यजलात्तस्मात्तेसमेताःपरस्परम् ॥ बिशानितान्यपश्यन्त इदंवचनमब्रुवन् ॥ ४८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ केनक्षुधाभितप्तानामस्माकंपापकर्मणा ॥ बिशानितानिसर्वाणिहृतानिचमुनीश्वराः ॥ ४९ ॥ तेशंकमानाश्चान्योन्यंपर्यपृच्छन्द्विजोत्तमाः ॥ चक्रुस्तेशपथान्सर्वे यथान्यायञ्चभामिनि ॥ ५० ॥ कश्यप उवाच ॥ सचापुण्यस्यभवनो न्यासलोपंकरोतुसः ॥ कूटसाक्षित्वमभ्येतु बिश

किया व इकट्ठाकर तड़ागकेउसपवित्रजलके विकारको किया याने जलक्रीड़ा किया ॥ ४७ ॥ उसके उपरान्त उसजलसे ऊपर निकलकर इकट्ठा होतेहुये वे महर्षिलोग उन कमलके भँसीड़ों को न देखतेहुये परस्पर यह वचन बोले ॥ ४८ ॥ ऋषिलोग बोले कि हेमुनीश्वरो ! क्षुधासे सन्तप्त हमलोगोंके उनसब बिसोंको किस पापकर्मी ने हरलिया ॥ ४९ ॥ और परस्पर शङ्का करतेहुये उन द्विजोत्तमों ने पूँछा और हे भामिनि ! न्यायपूर्वक उन सबोंने सौगन्द किया ॥ ५० ॥ कश्यपजी बोले कि वह

पापका घरहै और वह धरोहरको लोपकरै और कूटसाक्षिताको प्राप्त होवै कि जिसने विसों (कमलके भॅसीड़ों)की चोरी कियाहै ॥ ५१ ॥ वशिष्ठजी बोले कि वह बिन ऋतुसमय में मैथुन को प्राप्तहोवै और दिनको शयन सेवन करै व आपस में वह झूंठ कहै जोकि विसोंकी चोरी करताहै॥ ५२ ॥ भरद्वाजजी बोले कि वह क्रूरहोवै और ऐश्वर्य से अहंकारी होवै व ईर्षावान् तथा पिशुन (चुगुल) होवै जोकि भॅसीड़ों की चोरी करताहै ॥ ५३ ॥ जमदग्निजी बोले कि वह दुर्बुद्धि माता व पिता का अपमान करै और उसकी व्याजकी जीविका होवे जोकि विसोंकी चोरी करता है ॥ ५४ ॥ पशुसख बोला कि सदैव जन्म जन्म में वह अन्यकी प्रेष्यता को प्राप्त

स्तैन्यंकरोतियः ॥ ५१ ॥ वशिष्ठ उवाच ॥ अनृतौमैथुनंयातु दिवास्वप्नन्निषेवतु ॥ परस्परंकृतामिथ्या विशस्तैन्यं करोतियः ॥ ५२ ॥ भरद्वाज उवाच ॥ सनृशंसोभवतुवै समृद्ध्याचाप्यहंकृती ॥ मत्सरीपिशुनश्चैव विशस्तैन्यंकरोति यः ॥ ५३ ॥ जमदग्निरुवाच ॥ मातरंपितरञ्चैव सोवमन्यतुदुर्मतिः ॥ तस्यवार्द्धुषिवृत्तिःस्याद्विशस्तैन्यंकरोतियः ॥ ५४ ॥ पशुसख उवाच ॥ परस्यप्रेष्यतांयातु सदाजन्मनिजन्मनि ॥ सर्वक्रियाहींनभवेद् विशस्तैन्यंकरोतियः ॥ ५५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ इष्टमेतद्द्विजातीनां यस्त्वयाशपथःकृतः ॥ त्वयाकृतंविशस्तैन्यं सर्वेषान्नैवसंशयः ॥ ५६ ॥ पशुसख उवाच ॥ मयास्तेयंकृतंह्यासीद् विशानांचैववैद्विजाः ॥ धर्मंवैश्रोतुकामेन जानीध्वंमांपुरन्दरम् ॥ ५७ ॥ अलोभादक्ष यालोका जितावैमुनिसत्तमाः ॥ प्रार्थयध्वंवरंशुभ्रं सर्वएवह्यसंशयम् ॥ ५८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अत्रागत्यनरोयस्तु त्रि रात्रोपोषितश्शुचिः ॥ कृत्वास्नानंपितॄंस्तर्प्य श्राद्धंकुर्यात्समाहितः ॥ ५९ ॥ सर्वतीर्थोद्भवंपुण्यं तस्यभूयात्पुरन्दर ॥

होवै और सब कार्योंके योग्य न होवै जोकि विसोंकी चोरी करता है ॥ ५५ ॥ ऋषिलोग बोले कि जो तुमने सौगन्दकिया यह ब्राह्मणोंके प्रियहै इससे तुमने हमलोगोंके विसोंकी चोरी कियाहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ पशुसख बोला कि हे ब्राह्मणो ! धर्मके सुनने की इच्छावाले मैंने कमलके भॅसीड़ोंकी चोरी कियाहै मुझ को तुमलोग इन्द्र जानो ॥ ५७ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! तुमलोगों ने अलोभसे अविनाशी लोकोंको जीतलिया इससे तुम सबलोग निरसन्देह उत्तम वरदानको मागो ॥५८॥ ऋषिलोग बोले कि यहां आकर तीन रात्रियों में उपास कियेहुये जो पवित्र मनुष्य सावधान होकर स्नानकर व पितरोंको तर्पण करके श्राद्धकरै ॥ ५९ ॥ हे पुरन्दर !

उसको सब तीर्थोंसे उपजाहुआ पुण्य होवै और वह अधोगति को न प्राप्त होवै वरन देवताओं के साथ आनन्द करै ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येऋषितीर्थमाहात्म्यंनामद्विचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥ ॥

दो० । नन्दादित्यहिं थप्यो जिमि नन्दनाम भूपाल । दोसौ तेंतालीस महँ सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सावधान होताहुआ मनुष्य नन्दादित्यके समीप जावै पुरातन समय वहीं पर अमितबुद्धिवाले नन्दने उनको स्थापन कियाहै ॥ १ ॥ पुरातन समय सब लोकोंको सुख देनेवाला नन्दनामक राजा हुआहै उस धर्मात्माके राज्य करनेपर न दुर्भिक्ष था न व्याधि थी और न असमय में मनुष्यों की मृत्यु होतीथी और न अवर्षणसे कियाहुआ भय था इसके अनन्तर किसी समय पूर्वकर्मके अनुसार ॥ २ । ३ ॥ बड़े कुष्ठसे व्याप्त वह बडे वैराग्य को प्राप्तहुआ और रोगसे तिरस्कृत उस राजाने देवदेव सूर्यनारायणजीको ॥ ४ ॥ नदीके किनारे स्थापन किया और वह रोगसे छूटगया देवीजी बोलीं कि यहचक्रवर्त्ती नृपति क्यों रोगी हुआ ॥ ५ ॥ और धर्ममें तत्पर उस राजाके किसकारण रोगकी उत्पत्ति हुई महादेवजी बोले कि इसप्रकार धर्म व सदाचारवान् नन्दराजा प्रतापी था ॥ ६ ॥ और उत्तम विमान पै बैठाहुआ वह सब लोकोंमें विचरताथा

नाधोगतिमवाप्नोति विबुधैस्सहमोदते ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येऋषितीर्थमाहात्म्यन्नामद्विचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४२ ॥ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नन्दादित्यंसमाहितः ॥ नन्देनस्थापितंपूर्वं तत्रैवामितबुद्धिना ॥ १ ॥ नन्दोराजापुराह्यासीत्सर्वलोकसुखप्रदः ॥ नदुर्भिक्षंनवैव्याधिर्नाकालेमरणंनृणाम् ॥ २ ॥ तस्मिञ्छासतिधर्मज्ञे नचावृष्टिकृतंभयम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पूर्वकर्मानुसारतः ॥ ३ ॥ कुष्ठेनमहताव्याप्तो वैराग्यंपरमङ्गतः ॥ तेनरोगाभिभूतेन देवदेवोदिवाकरः ॥ ४ ॥ प्रतिष्ठितोनदीतीरे सचरोगादमुच्यत ॥ देव्युवाच ॥ किमसौरोगवान्राजा सार्वभौमोमहीपतिः ॥ ५ ॥ तस्यधर्मरतस्यापि कस्माद्रोगसमुद्भवः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंधर्मसदाचारो नन्दराजाप्रतापवान् ॥ ६ ॥ व्यचरन्सर्वलोकान्स विमानवरमास्थितः ॥ विमानंतस्यतुष्टेन दत्तंवैविष्णुनास्वयम् ॥ ७ ॥ काञ्चनंवरवर्णेन नित्यंबर्हिनि

उसको प्रसन्न होतेहुये विष्णुजीने आपही विमान दियाथा ॥ ७ ॥ जोकि सुवर्णमय व उत्तम रंगसे उपलक्षित व मयूरोंसे शब्दायमानथा किसी समय उसविमान पै बैठकर वह नृपोत्तम देवगणोंसे संयुक्त दिव्य मानसतड़ागको गया ॥ ८ ॥ वहां तड़ागके बीचमें प्राप्त सफेद महाकमलको उसने देखा और उस कमलमें भी रत्नजटित वस्त्रों से आच्छादित व द्विभुज तथा तीक्ष्णतेजवाले अँगूठेकी प्रमाणभर बैठेहुये उत्तम पुरुषको देखा और उसको देखकर सारथीसे कहा कि इस कमलको लाइये॥ ६।१० ॥ क्योंकि मस्तकसे इसको धारण करताहुआ मैं सबलोगोंके समीप प्रशंसनीय हूंगा इसलिये शीघ्रही लाइये ॥ ११ ॥ हे वरवर्णिनि ! तदनन्तर उस राजा से ऐसा कहा

नादितम् ॥ सकदाचिन्नृपश्रेष्ठो विमानेतत्रसंस्थितः ॥ गतवान्मानसंदिव्यं सरोदेवगणान्वितम् ॥ ८ ॥ तत्रापश्यद्महापद्मं सरोमध्यगतंसितम् ॥ तत्राप्यंगुष्ठमात्रन्तु स्थितम्पुरुषसत्तमम् ॥ ९ ॥ रत्नवासोभिराच्छन्नं द्विभुजंतिग्मतेजसम् ॥ तन्दृष्ट्वासारथिंप्राह पद्ममेतत्समाहर ॥ १० ॥ इदन्तुशिरसाबिभ्रन्सर्वलोकस्यसन्निधौ ॥ श्लाघनीयोभविष्यामि तस्मादाहरमाचिरम् ॥ ११ ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन सारथिःप्रविवेशह ॥ गृहीतुमुपचक्राम तत्पद्मंवरवर्णिनि ॥ १२ ॥ स्पृष्टमात्रेतदापद्मेन्धकारस्समपद्यत ॥ तेनस्पृष्टेनपद्मेन ममारसचसारथिः ॥ १३ ॥ कुष्ठीविगतवर्णश्च बलवीर्यविवर्जितः ॥ तथाभूतमथात्मानं दृष्ट्वासपुरुषर्षभः ॥ १४ ॥ तस्थौतत्रैवशोकार्त्तः किमेतदितिचिन्तयन् ॥ तस्यचिन्तयतोधीमानाजगाममहातपाः ॥ १५ ॥ वसिष्ठोब्रह्मपुत्रस्तु सतंपप्रच्छपार्थिवः ॥ एषमेभगवञ्जातो देहस्यास्यविपर्ययः ॥१६॥ कुष्ठरोगाभिभूतात्मा नाहंजीवितुमुत्सहे ॥ उपायंब्रूहिमेब्रह्मन् व्याधितस्यचिकित्सितम् ॥ १७ ॥ उताहोव्रत

हुआ सारथी तड़ागमें पैठगया और उस कमलको लेनेके लिये समीपगया ॥ १२ ॥ उस समय कमलके छूनेहीसे अन्धकार प्राप्तहोगया और उस कमलके स्पर्शकरने से वह सारथी मरगया ॥ १३ ॥ और वह राजा कुष्ठी व रंगहीन तथा बल व प्रभावसे रहित होगया अपना को वैसाहुआ देखकर वह पुरुषोत्तम ॥ १४ ॥ नन्द यह क्या हुआ ऐसा विचारता हुआ शोकसे विकल होकर वहीं स्थित हुआ व उसके चिन्तवन करतेहुये बड़े तपस्वी व बुद्धिमान् ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठजी आये व उनसे उसराजाने पूंछा कि हे भगवन् ! मेरे शरीर का यह विलोम होगया ॥ १५।१६ ॥ इसलिये कुष्ठरोगसे तिरस्कृत देहवाला मैं जीने के लिये उत्साह नहीं करताहूं हे ब्रह्मन् ! मुझ

रोगीके औषधिरूप यत्नको कहिये ॥ १७ ॥ व्रत व अन्य दान तथा यज्ञको कहिये वसिष्ठजी बोले कि यह ब्रह्मोद्भवनामक कमल तीनों लोकोंमें प्रसिद्धहै ॥ १८ ॥ इस के देखनेहीसे सब देवता देखेहुये होतेहैं हे राजन् ! यह कमल धन्यपुरुषों से देखाजाताहै ॥ १६ ॥ और इसके देखनेपर जो मनुष्य जलमें पैठताहै वह सब शोकोंसे छूटकर मोक्षपदको प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ हे नृपेन्द्र ! इसको देखकर तुम्हारेवचनसे तुम्हारा सारथी हरनेके लिये जलमें पैठगया इससे यह मरगया और आपरोगवान् हुये ॥ २१ ॥ मैंभी ब्रह्माका पुत्रहूं इससे प्रतिदिन आकर परमेश्वर को देखताहूं व फिर तुमने देखाहै ॥ २२ ॥ देवता सदैव इस मनोरथको हृदयमें चाहतेहैं कि

मन्यद्वा दानयज्ञमथापिवा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ एतद्ब्रह्मोद्भवन्नाम पद्मंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १८ ॥ दृष्टमात्रेणचानेन दृष्टास्स्युःसर्वदेवताः ॥ एतद्धिदृश्यतेधन्यैः पद्मकंचापिपार्थिव ॥ १९ ॥ एतस्मिन्दृष्टमात्रेतु योजलंविशतेनरः ॥ सर्वशोकविनिर्मुक्तः पदंनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ २० ॥ एतद्दृष्ट्वातुतेसूतोहर्तुन्तोयंप्रविष्टवान्॥ तववाक्येनराजेन्द्र मृतोसौ रोगवान्भवान् ॥ २१ ॥ ब्रह्मपुत्रोप्यहन्तेन पश्यामिपरमेश्वरम् ॥ अहन्यहनिचागत्य त्वंपुनर्दृष्टवानसि ॥ २२ ॥ वाञ्छन्तिदेवतानित्यमिमंहृदिमनोरथम् ॥ मानसेब्रह्मपद्मन्तु द्रक्ष्यामश्चकदावयम् ॥ २३ ॥ प्राप्स्यामःपरमंब्रह्म यद्गत्वानपुनर्भवेत ॥ इदञ्चकारणंभूयो द्वितीयंश्टणुपार्थिव ॥ २४ ॥ कुष्ठञ्चयत्त्वयाप्राप्तं हर्तुंकामेनपङ्कजम् ॥ प्रद्योतनस्तुगर्भेस्मिन्स्वयमेवव्यवस्थितः ॥ २५ ॥ तवैषाबुद्धिरभवद् दृष्ट्वैववरपङ्कजम् ॥ धारयामिशिरस्येनं लोकमध्येविभूषणम् ॥ २६ ॥ इदंचिन्तयतःपापमेवंदेवेनदर्शितम् ॥ ततस्सर्वप्रयत्नेन तमाराधयभास्करम् ॥ २७ ॥ प्रसादाद्देवदेव

हमलोग मानसतड़ाग में कब ब्रह्मकमल को देखेंगे ॥ २३ ॥ और परब्रह्मको प्राप्त होवेंगे कि जहां जाकर फिर जन्म नहीं होताहै व हे राजन् ! फिर इसदूसरे कारण को सुनिये ॥ २४ ॥ कि जिससे कमलको हरनेकी इच्छावाले तुमने कुष्ठको पायाहै इस गर्भमें सूर्यनारायणजी आपही टिकेहैं ॥ २५ ॥ और उत्तमकमलको देखहीकर तुम्हारे यह बुद्धि हुई कि संसार के मध्यमें मैं इस भूषण को मस्तक से धारणकरूं ॥ २६ ॥ इसको विचारतेहुये तुमको सूर्यदेवजी ने इसप्रकार पातक दिखलाया इस

कारण सब यत्नसे उन सूर्यनारायण को आराधन करिये ॥ २७ ॥ तो देवदेव सूर्य नारायणकी प्रसन्नतासे तुम कुष्ठसे छूटोगे इसमें सन्देह नहीं है हे नृपेन्द्र ! त्रिलो-
कमें प्रसिद्ध प्रभासक्षेत्र को जाइये ॥ २८ ॥ क्योंकि वहां पृथ्वीमें क्लेशित प्राणियों की शीघ्रही सिद्धि होती है महादेवजी बोले उन वासिष्ठ महात्मा के उस वचन को
सुनकर ॥ २९ ॥ प्रभासक्षेत्रको प्राप्त होकर माहेश्वरीनदी के उत्तम किनारे पै नन्दादित्यजी को थापकर चन्दन, धूप व अनुलेपनों से ॥ ३० ॥ व हे देवि ! छोटे बड़े
पुष्पों से उन शिवजीको पूजन किया व उसके ऊपर प्रसन्न होकर दिननायक बोले कि मैं वरदायकहूं ॥ ३१ ॥ राजा बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! बडे कुष्ठसे व्याप्त मुझको

स्य मोक्ष्यसेनात्रसंशयः ॥ प्रभासंगच्छराजेन्द्र तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ २८ ॥ तत्रसिद्धिर्भवेच्छीघ्रमार्त्तानांप्राणिनाम्भुवि ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा वासिष्ठस्यमहात्मनः ॥ २९ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य माहेश्वर्यास्तटेशुभे ॥ नन्दादित्यंप्रतिष्ठाप्य गन्धधूपानुलेपनैः ॥ ३० ॥ पूजयामासतन्देवि पुष्पैरुच्चावचैस्तथा ॥ तस्यतुष्टोदिवानाथो वरदोहमथाब्रवीत् ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ कुष्ठेनमहताव्याप्तं पश्यमांसुरसत्तम ॥ यथायंनाशमायाति तथाकुरुदिवाकर ॥ ३२ ॥ सान्निध्यंकुरुदेवेश स्थानेस्मिन्नित्यदाविभो ॥ सूर्य उवाच ॥ नीरोगस्त्वंमहाराज सद्यएवभविष्यसि ॥ ३३ ॥ अत्रयेमांसमागत्य द्रक्ष्यन्तिचनराभुवि ॥ सप्तम्यांरविवारेण यास्यन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ३४ ॥ अत्रमेरविवारेण सान्निध्यंसप्तमीदिने ॥ भविष्यतिनसन्देहो गमिष्येत्वंसुखीभव ॥ ३५ ॥ एवमुक्त्वासहस्रांशुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ नीरोगत्वमवाप्यासौकृत्वाराज्यमनुत्तमम् ॥ ३६ ॥ जगामपरमंस्थानं यत्रदेवोदिवाकरः ॥ तस्मिंस्तीर्थेनरस्स्नात्वाकृत्वाश्राद्धंप्रयत्नतः ॥ ३७ ॥

देखिये हे दिनकरजी ! जिसप्रकार यह नाशको प्राप्त होवै वैसाही कीजिये ॥ ३२ ॥ व हे देवेश विभो ! इस स्थान में सदैव समीपता कीजिये सूर्यनारायणजी
बोले कि हे महाराज ! तुम शीघ्रही नीरोगहोगे ॥ ३३ ॥ यहा आकर पृथ्वीमें जो मनुष्य रविवारसमेत सप्तमी तिथिमें मुझको देखैंगे वे उत्तमगतिको प्राप्त होवैंगे ॥
३४ ॥ यहां रविवार सप्तमी दिनमें मेरी समीपता होगी इसमें सन्देह नहीं है और मैं जाताहूं तुम सुखी होवो ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर सूर्यनारायणजी वहीं अन्तर्द्धान
होगये और यह राजा नीरोगता को प्राप्तहोकर व अतिउत्तम राज्यकर ॥ ३६ ॥ उत्तमस्थान को चलागया जहां कि सूर्यनारायणदेवजी हैं इस तीर्थमें नहाकर व बड़े

वसमें मनुष्य श्राद्धकर ॥ ३७ ॥ फिर नन्दादित्यजीको देखकर फिर मनुष्यताको नहीं प्राप्तहोता है वहां वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये कपिला गऊको देवै ॥ ३८ ॥ अथवा दिन रात निवासकर जो घृतका गऊको देताहै उसके पुण्यकी सख्या किसी से नहीं गिनीजासकी है ॥ ३९ ॥ हे सुश्रोणि ! ज्वलित किरणोंवाले देवदेव सूर्य-नारायणजीका यही समस्त पातकोंका नाशक माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनन्दादित्यमाहात्म्यंनामत्रिचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

नन्दादित्यंपुनर्दृष्ट्वा नपुनर्मर्त्यतांव्रजेत् ॥ प्रदद्यात्कपिलान्तत्र ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ३८ ॥ अहोरात्रोषितोभूत्वा घृतधेनुमथापिवा ॥ नतस्यगणितुंशक्या सङ्ख्यापुण्यस्यकेनचित् ॥ ३९ ॥ इत्येवंदेवदेवस्य माहात्म्यंदीप्तदीधितेः ॥ कथितंतवसुश्रोणि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे नन्दादित्यमाहात्म्यन्नामत्रिचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नृतकूपमितिस्मृतम् ॥ नन्दादित्यस्यपूर्वेण योजनद्वितयेनतु ॥ १ ॥ पुराबभूवविप्रेन्द्रः सौराष्ट्रविषयेसुधीः ॥ आत्रेयइतिविख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २ ॥ तस्यपुत्रत्रयंजज्ञे ऋतुकालाभिगामिनः ॥ एकोविद्वतमश्चैव नृतापश्चैवभामिनि ॥ ३ ॥ नृतस्तेषांकनिष्ठोवै वेदवेदाङ्गपारगः ॥ सर्वैरेवगुणैर्युक्तो मूर्खौज्येष्ठौबभूवतुः ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य आत्रेयोद्विजसत्तमः ॥ तपःकृत्वातुविपुलं कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ५ ॥ ततस्ते

दो॰ । यथा द्विजोत्तम नृत रच्यो नृत इमि नामककूप । दोसौ चौवालीस महँ सोई चरित अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर नन्दादित्यके पूर्वमें दो योजन पर नृतकूप ऐसे कहेहुये तीर्थके समीप जावै ॥ १ ॥ पुरातन समय सौराष्ट्र देशमें वेदों व वेदांगों का पारगामी आत्रेय ऐसा प्रसिद्ध बुद्धिमान् द्विजेन्द्र हुआहै ॥ २ ॥ हे भामिनि ! ऋतुसमयमें स्त्रीसङ्ग करनेवाले उस ब्राह्मणके तीन पुत्र पैदा हुये एक विद्वतम व अन्य नृतापनामक हुआ ॥ ३ ॥ और उनके मध्यमें वेदों व वेदाङ्गोंका जाननेवाला नृतनामक छोटाथा वह सबही गुणोंसे संयुतथा और दोनों बड़े मूर्ख हुयेहैं ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय द्विजोत्तम आत्रेय बहुत तपस्या

कर मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर उसका जो छोटा पुत्र था उनके मध्यमें बड़ा गुणवान् वही नृतनामक राजा हुआ और उसने राज्यकी धुरीको आकर्षण किया ॥ ६ ॥ व उसके यह बुद्धि उत्पन्नहुई कि मैं किसप्रकार यज्ञ करूं और उसने यज्ञकर्म में अधिष्ठित द्विजोत्तमोंको निमन्त्रण कर ॥ ७ ॥ व इन्द्रादिक सब देवताओं को विधिपूर्वक आवाहन कर वह ब्राह्मणोत्तमों की दक्षिणाके लिये परदेश को चला गया ॥ ८ ॥ दोनों बड़े भाइयों को लेकर नृत गौवों के लिये चला और जिस जिसके घरमें वह जाताथा उसके पीछे वे दोनों भाई जाते थे ॥ ९ ॥ और वहां २ उसने उत्तम पूजन व बहुतसी गाइयों को पाया इसप्रकार उस समय गो-

षांनृतोराजा बभूवगुणवत्तरः ॥ धुरमाकर्षयामास पुत्रस्तस्यचयोलघुः ॥ ६ ॥ तस्यबुद्धिस्समुत्पन्ना कथंयज्ञंकरोम्यहम् ॥ सनिमन्त्र्यद्विजश्रेष्ठान् यज्ञकर्मण्यधिष्ठितान् ॥ ७ ॥ इन्द्रादींश्चसुरान्सर्वानावाह्यविधिपूर्वकम् ॥ दक्षिणार्थंद्विजेन्द्राणां प्रवासंचजगामह ॥ ८ ॥ गृहीत्वाभ्रातरौज्येष्ठौ गवार्थंप्रस्थितोनृतः ॥ यस्ययस्यगृहेयाति पृष्ठतोभ्रातरौचतौ ॥ ९ ॥ तत्रतत्रपरांपूजां लेभेगावश्चपुष्कलाः ॥ एवंसगोधनंप्राप्य भ्रातृभ्यांसहितस्तदा ॥ १० ॥ गृहायप्रतिदेवेशि निवृत्तिपरमाङ्गतः ॥ नृतस्ताभ्यांपुरोयाति पृष्ठतोभ्रातरौचतौ ॥ ११ ॥ गोधनंचानयन्तस्ते प्रभासक्षेत्रमागताः ॥ अथ तंगोधनंदृष्ट्वा भूरिदानार्थमाहृतम् ॥ १२ ॥ ज्येष्ठयोस्त्रितयेचेति पापामतिरजायत ॥ परस्परमूचतुस्तौ भ्रातरौदुष्टचेसौ ॥ १३ ॥ नृतोयज्ञेषुकुशलो वेदेषुकुशलस्तथा ॥ मान्यःपूज्यश्चसर्वेषामावांमूर्खौनिरर्थकौ ॥ १४ ॥ एतद्धिगोधनंसर्वं नृतोदास्यतिसम्मुखे ॥ अस्माकंपितुरर्थेन यदाप्तन्तत्समम्भवेत् ॥ १५ ॥ तस्मादत्रैवयुक्तोस्य वधोवैनृत

धन को पाकर भाइयों समेत वह ॥ १० ॥ हे देवेशि ! घरके सामने उत्तम निवृत्तिको प्राप्तहुआ याने लौटा नृत उन दोनोंसे आगे जाताथा और पीछे से वे दोनों भाई जातेथे ॥ ११ ॥ और गोधनको लातेहुये वे प्रभासक्षेत्रको आये इसकेअनन्तर दानकेलिये लायेहुये उस बहुत गोधनको देखकर ॥१२॥ तीसरेमें दोनों जेठ भाइयोंकी यह पापबुद्धि हुई और दुष्टचित्तवाले वे भाई परस्पर बोले ॥ १३ ॥ कि नृत यज्ञोंमें प्रवीण व वेदों में चतुर है और सबोंके मध्यमें मानने योग्य व पूजनीय है व हम तुम दोनों मूर्ख व निरर्थक हैं ॥ १४ ॥ इस सब गोधन को नृत उत्तमयज्ञ में देवैगा और पिताके धनसे जो मिलाहै वह हमलोगों को तुल्य होगा ॥ १५ ॥

इसलिये यज्ञकरनेवाले नृतका यहीं वधयोग्य है इसप्रकार निश्चयकर वे दोनों भाई चले ॥ १६ ॥ और विकल्परहित व महाबुद्धिमान् नृत आगे जाताथा और आगे अत्यन्त भयङ्कर आकारवाला व्याघ्र उठताभया ॥ १७ ॥ हे देवि ! मुखको फैलाये व भयदायक वह अद्भुत शब्द करताथा उसके शब्दसे वे गाइयां डरकर दशोदिशाओं को चलीगईं ॥ १८ ॥ और उस स्थानमें बड़ा भयङ्कर अन्धकूप होगया एकओर कठोर व्याघ्र व अन्यत्र दारुण कूप था ॥ १९ ॥ इसको देखकरभयसे ऊबेहुये सब भाई भगगये इसके अनन्तर हे भामिनि ! कूपके विषमतटको प्राप्तहोकर ॥ २० ॥ वहां अद्भुत व्याघ्र खड़ा होगया तदनन्तर उनलोगों ने जानेके लिये मन

याजिनः ॥ एवन्तौनिश्चयंकृत्वा प्रस्थितौभ्रातरावुभौ ॥ १६ ॥नृतस्तुपुरतोयाति निर्विकल्पोमहासुधीः ॥अग्रतस्तुसमुत्तस्थौ व्याघ्रोरौद्रतराकृतिः ॥ १७ ॥व्यात्तास्योभयदोदेवि नदंस्तत्रैवचाद्भुतम् ॥ तस्यशब्देनतागावस्त्रस्ताजग्मुर्दिशोदश ॥ १८ ॥ अन्धकूपोमहांस्तत्र प्रदेशोदारुणोभवत् ॥ एकतोदारुणोव्याघ्रः कूपोन्यत्रसुदारुणः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वा तेभ्रातरस्सर्वे भयोद्विग्नाःप्रदुद्रुवुः ॥ अथतेविषमंप्राप्य तटंकूपस्यभामिनि ॥ २० ॥ स्थितस्तत्राद्भुतोव्याघ्रस्ततोगन्तुंमनोदधौ ॥ अथताभ्यांनृतोदेवि भ्रातृभ्यांद्विजसत्तमः ॥ २१ ॥ प्रक्षिप्तोदारुणेकूपे जीर्णेतोयविवर्जिते ॥ ततस्तु गोधनंगृह्य प्रस्थितौहृष्टमानसौ ॥ २२ ॥ ततस्तुपतितस्तत्र कूपेजलविवर्ज्जिते ॥ चिन्तयामासमेधावी नाहंशोचामि जीवितुम् ॥ २३ ॥ मयाहूताद्विजश्रेष्ठा यज्ञार्थेवेदपारगाः ॥ इन्द्राद्याश्चसुरास्सर्वे नकृतस्सतुमेक्रतुः ॥ २४ ॥ सएवंचिन्तयामास वेदवेदाङ्गपारगः ॥ मानसंयज्ञमारभ्य तत्रैववरवर्णिनि ॥ २५ ॥ स्वयमेवतुसूक्तानि प्रोक्त्वाप्रोक्त्वाद्विजोत्त

धारण किया इसके अनन्तर हे देवि ! उन भाइयों से वह नृत द्विजोत्तम ॥२१॥ जलरहित व दारुण तथा प्राचीन कूपमें डालागया तदनन्तर गोधन को ग्रहणकर वे प्रसन्नमन होकर चले ॥ २२ ॥ उसके उपरान्त जलसे रहित उस कूपमें गिरेहुयेबुद्धिमान् नृतने चिन्तवन किया कि मैं जीने के लिये नहीं शोचताहूं ॥ २३ ॥ क्योंकि मैंने यज्ञके लिये वेदोंके पारगामी द्विजोत्तमों को बुलाया है व सब इन्द्रादिक देवताओं को बुलाया परन्तु वह मेरा यज्ञ नहीं कियागया ॥ २४ ॥ वेदों व वेदांगों का पारगामी वह नृत इसप्रकार विचार करता भया और हे वरवर्णिनि ! वहीं मानसीयज्ञ को प्रारम्भ कर ॥ २५ ॥ आपही सूक्तोंको कह २ कर द्विजोत्तमने वालुका

का होम किया उससे देवता प्रसन्न होगये ॥ २६ ॥ और श्रद्धासे दान देतेहुये उसके ऊपर फिर देवता प्रसन्न हुये व कूपके बीचमें स्थित ब्राह्मण के समीप आकर बोले ॥ २७ ॥ देवता बोले कि अहो विप्रजी ! तुमने निश्चयकर हमसबों को मानसीयज्ञ से तृप्त किया इसलिये तुम मनोरथ को कहो ॥ २८ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे देवताओ ! यदि तुमलोग मेरे ऊपर प्रसन्नहो तो मेरा कूपसे निकलना होवै कि जिसप्रकार मैं अपने घरको जाकर देवयज्ञ करूं ॥ २९ ॥ महादेवजी बोले कि इसके अनन्तर देवताओं ने उस कूपमें सरस्वतीजी को आज्ञादिया और पृथ्वीको फोड़कर निकलीहुई उन्होंने कूपको जलसे पूर्णकिया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर यह ब्राह्मण

मः ॥ कृतवान्बालुकाहोमं तेनतुष्टास्तुदेवताः ॥ २६ ॥ श्रद्धयातस्यददतो भूयस्तृप्तास्तुदेवताः ॥ आगत्यब्राह्मणं प्रोचुः कूपमध्येऽयवस्थितम् ॥ २७ ॥ देवा ऊचुः ॥ भोभोविप्रत्वयानूनं सर्वेसन्तर्पितावयम् ॥ मानसेनतुयज्ञेन तस्मा द्ब्रूहित्वमीप्सितम् ॥ २८ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ यदिदेवाःप्रसन्नामे कूपान्निस्सरणम्भवेत् ॥ यथास्वमन्दिरंगत्वा देवय ज्ञंकरोम्यहम् ॥ २९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथदेवैस्समादिष्टा तस्मिन्कूपेरसरस्वती ॥ निर्गतावसुधांभित्त्वा पूरयामासवा रिणा ॥ ३० ॥ अथनिष्क्रम्यविप्रोसौ यातस्स्वभवनम्प्रति ॥ ततःप्रभृतिदेवेशि नृतकूपस्सउच्यते ॥ ३१ ॥ स्नात्वात त्रशुचिर्भूत्वा यस्सन्तर्पयतेपितॄन् ॥ अश्वमेधमवाप्नोति सर्वपापविवर्जितः ॥ ३२ ॥ तिलदानन्तुदेवेशि तत्रशस्तंसका ञ्चनम् ॥ पितॄणांवल्लभंतीर्थं नित्यमेवसुभामिनि ॥ ३३ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषद आज्यपाश्चइतिस्मृताः ॥ येदिव्याः पितरोदेवि तेषांसान्निध्यमत्रहि ॥ ३४ ॥ दर्शनादेवतीर्थस्य तस्यवैसुरसंस्तुते ॥ मुच्यन्तेप्राणिनःपापादाजन्ममरणा

निकलकर अपने घरको चलागया तबसे लगाकर हे देवेशि ! वह नृतकूप कहा जाताहै ॥ ३१ ॥ उसमें नहाकर व पवित्र होकर जो मनुष्य पितरों को तृप्त करता है सब पापों से रहित होकर वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ ३२ ॥ हे देवेशि । वहां सुवर्णसमेत तिलदान उत्तम होताहै हे सुभामिनि ! वह तीर्थ सदैवही पितरों को प्रियहै ॥ ३३ ॥ हे देवि ! अग्निष्वात्त,बर्हिषद व आज्यप ऐसे जो पितर कहेगये हैं व जो दिव्य पितरहैं उनकी यहां समीपताहै ॥ ३४ ॥ हे सुरसंस्तुते ! उस तीर्थके

दर्शनहीसे मनुष्य जन्मसे लगाकर मरण अन्ततकके पातकसे छूटजाते हैं ॥ ३५ ॥ इस लिये यदि अपना कल्याण चाहै तो प्रभासक्षेत्रको प्राप्तहोकर सब यत्नसे उस में स्नानकरै ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनृतकूपमाहात्म्यंनामचतुश्चत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥

दो॰ । जलसमेत चन्द्रमा जिमि कीन्हों है शशपान । दोसौ पैंतालीस में सोई कियो बखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके दक्षिणभाग में सब पापोंको नाशनेवाले शशोपान ऐसे कहेहुये तीर्थके समीप जावै ॥ १ ॥ जिसमें भलीभाँति नहाकर मनुष्य अपमृत्युके भयको नहीं भजताहै हेप्रिये ! उसकी उत्पत्ति

न्तकात् ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य यदीच्छेच्छ्रेयमात्मनः ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे नृतकूपमाहात्म्यन्नामचतुश्चत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४४ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि शशोपानमितिस्मृतम् ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ यस्मिन्स्नात्वानरस्सम्यङ् नापमृत्युभयंभजेत् ॥ शृणुयस्मात्तदुत्पत्तिं वदतोममवल्लभे ॥ २ ॥ मथित्वासागरन्देवा गृहीत्वामृतमुत्तमम् ॥ विविशुस्तत्रतेगत्वा पपुश्चैवयथेच्छया ॥ ३ ॥ पिबतांतत्रपीयूषं देवानांवरवर्णिनि ॥ बिन्दवःपतिताभूमौ शतशोथसहस्रशः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु शशकस्तत्रचागतः ॥ प्रविष्टस्सलिलेतत्र तृषार्त्तोवरवर्णिनि ॥ ५ ॥ अमरत्वमनुप्राप्तो वर्द्धतेसलिलाशये ॥ तन्दृष्ट्वात्रिदशास्सर्वे वर्द्धमानंमुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥ ज्ञात्वामृतान्वितन्तोयं चक्रुर्मन्त्रंभयान्विताः ॥ अत्रामृतंप्रपतितं भक्षयिष्यन्तिमानवाः ॥ ७ ॥ ततोमराभविष्यन्ति नात्रकार्याविचारणा ॥ तिर्य

को कहतेहुये मुझसे सुनिये कि जिससे उसकी उत्पत्ति हुई है ॥ २ ॥ समुद्रको मथकर व उत्तम अमृतको लेकर वे देवता वहीं जाकर बैठतेभये और उन्होंने इच्छाके अनुकूल उसको पिया ॥ ३ ॥ हे वरवर्णिनि ! वहां देवताओं के अमृत पीतेहुये सैकड़ों व हज़ारों बूंद पृथ्वीमें गिरे ॥ ४ ॥ इसी समय में वहां खरहा आया और प्याससे विकल वह उस जलमें पैठगया ॥ ५ ॥ और अमरताको प्राप्त होकर वह जलाशय में बढ़तारहा और बार २ बढ़ते हुये उस खरहा को देखकर ॥ ६ ॥ व अमृत से संयुत जलको जानकर डरसंयुत उन्होंने सलाह किया कि यहां गिरेहुये अमृत को मनुष्य पियैंगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर अमर होवैंगे इसमें विचार करनेयोग्य

नहीं है और तिर्यग्योनि में उत्पन्न यह बिचारा खरहा ॥ ८ ॥ जिसलिये हमलोगोंसे बढ़ायागयाहै उसीकारण भय प्राप्तहै इसके अनन्तर निशानायक चन्द्रमा प्राप्त हुआ और रोगसे विकल उस चन्द्रमाने ॥ ९ ॥ सब देवताओंसे कहा कि मुझको अमृत दीजिये क्योंकि बड़े क्लेशसे व्याप्त मैं चलने के लिये नहीं समर्थ हूं ॥१०॥ इसके अनन्तर सब देवता बोले कि हे निशानाथ ! हमलोगोंने सब भक्षण करालिया और तुम भूलगयेथे तुम क्यों नहीं यहां आयेथे ॥ ११ ॥ हे अन्धकारनाशक, चन्द्र! तुम हमलोगों का वचनकरो कि यहां हमलोगोंके पीतेहुये इस जलमें बहुत अमृत गिराहै ॥१२॥ हे निशानाथ ! इसलिये इस सब जलाशयको पीओ क्योंकि आधा

ग्योनिसमुत्पन्नः कृपणश्शशकोह्ययम् ॥ ८ ॥ अस्माभिर्वर्द्धितोयस्तु ततोभयमुपस्थितम् ॥ अथप्राप्तोनिशानाथो व्याधिनासपरिप्लुतः ॥ ९ ॥ अब्रवीत्त्रिदशान्सर्वानमृतम्मेप्रयच्छत ॥ कृच्छ्रेणमहताव्याप्तो नाहंशक्तोविसर्पितुम् ॥ १० ॥ अथोचुस्त्रिदशास्सर्वे अस्माभिस्सर्वभक्षितम् ॥ विस्मृतस्त्वंनिशानाथ त्वन्नकस्मादिहागतः ॥ ११ ॥ कुरुष्ववचनं चन्द्र अस्माकंतिमिरापह ॥ अस्मिञ्जलेमृतंभूरि पतितंपिबतामिह ॥ १२ ॥ तत्पिबस्वनिशानाथ सर्वमेतज्जलाश्रयम् ॥ अर्द्धंनिपतितंचात्र सत्यमेतन्निशामय ॥ १३ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा शीतरश्मिस्त्वरान्वितः ॥ तृषार्त्तश्चापिबत्तोयं शशकेनसमन्वितम् ॥ १४ ॥ अस्थिशेषंपुनस्तस्य कायंपीयूषभक्षणात् ॥ तत्क्षणात्तुष्टिमगमत् कान्त्यापरमयायुतः ॥ १५ ॥ अब्रुवन्खन्यतामेतद् यथाभूयोजलंभवेद् ॥ अस्माकंसङ्गमादेतच्छुष्कंशुद्धंजलाशयम् ॥ १६ ॥ तदयुक्तंकृतं कर्म नैतत्साधुविचेष्टितम् ॥ ततोखनंश्चतेसर्वे यावत्तोयंविनिर्गतम् ॥ १७ ॥ अथाब्रुवंस्ततस्सर्वे हर्षेणमहतान्विताः ॥

अमृत यहां गिराहै यह सत्य जानिये ॥ १३ ॥ उन देवताओंके उस वचनको सुनकर प्याससे विकल शीघ्रतासंयुत चन्द्रमाने खरहा समेत जलको पिया ॥ १४ ॥ फिर अमृतके भक्षणसे अस्थिमात्रशेष उसका शरीर उसीक्षण तुष्टिको प्राप्तहुआ और यह चन्द्रमा बड़ी सुन्दरतासे संयुत हुआ ॥१५॥ और देवता बोले कि यह जलाशय खोदाजावै, कि जिसप्रकार फिर जलहोवै हमलोगों के संगमसे यह शुद्ध जलाशय सूखगया है ॥ १६ ॥ वह कर्म अयोग्य कियागया यह कर्म अच्छा नहीं है तदनन्तर

जबतक जल निकला तबतक उन सबोंने खोदा ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर बड़े हर्षमे संयुत सब देवता बोले कि जिसलिये चन्द्रमानें शशसेसंयुत इस जलाशय को पियाहै इस कारण यह शशोपाननामक तीर्थ प्रसिद्ध होगा ॥ १८ । १९ ॥ यहा आकर जो मनुष्य भक्तिसें स्नान करैगा वह उत्तम स्थानको जावैगा जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ २० ॥ यहां सावधान होतेहुये जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये दान देवैंगे उनको सब यज्ञोंका फल होगा इसमें सन्देह नहींहै ॥ २१ ॥ व हे देवताओ ! इसके देखनेपर सब देवता देखेहुये होवैंगे ऐसा कहकर सब देवता स्वर्गको चले गये ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त बहुत समय के बाद वहां सरस्वतीजी प्राप्तहुई और

यस्माच्छशेनसंयुक्तं पीतमेतज्जलाशयम् ॥ १८ ॥ चन्द्रेणहिशशोपानं तस्मादेतद्भविष्यति ॥१९॥ अत्रागत्यनरस्स्नानं यःकरिष्यतिभक्तितः ॥ सयास्यतिपरंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ २० ॥ अत्रदानंप्रदास्यन्ति ब्राह्मणेभ्यस्समाहिताः ॥ सर्वयज्ञफलन्तेषां भविष्यतिनसंशयः ॥ २१ ॥ अस्मिन्दृष्टेसुरास्सर्वे दृष्टास्स्युस्सर्वदेवताः ॥ एवमुक्त्वासुरास्सर्वे जग्मुश्चैवसुरालयम् ॥ २२ ॥ अथकालेनमहता प्राप्तातत्रसरस्वती ॥ वडवाग्निसमादाय तथापिस्नपितम्पुनः ॥ २३ ॥ ततोमेध्यतमंयातं तीर्थञ्चवरवर्णिनि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशशोपानमाहात्म्यन्नामपञ्चचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि पर्णादित्यंसुरेश्वरम् ॥ प्राचीसरस्वतीकूले तस्यैवोत्तरतःस्थितम् ॥ १ ॥ पुरा त्रेतायुगेदेवि पर्णादोनामवैद्विजः ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ २ ॥ आराधयामासरविं भक्त्याचपरया

वड़वाग्नि को लेकर फिर उन्होंने भी स्नान किया ॥ २३ ॥ उस कारण हे वरवर्णिनि ! वह तीर्थ अत्यन्त पवित्र होगया इसलिये सब यत्नसे मनुष्य उसमें स्नानकरै ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां शशोपानतीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४५ ॥

दो० । पर्णादित्यहिं थप्यो जिमि पर्णनाम द्विजराज । दोसौ छियलिसमें कह्यो सो चरित्र सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर प्राची सरस्वतीके किनारे उसीके उत्तर में स्थित पर्णादित्य देवेशजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! पुरातन समय त्रेतायुगमें पर्णादनामक ब्राह्मणने प्रभासक्षेत्रको आकर बहुत दारुण

न्यंकुमती नदी है उन महादेवजी ने सीमाके लिये उसको यात्राके निमित्त प्राप्त किया है ॥ १ ॥ उसीके दक्षिणभाग में सब पापोंको नाश करनेवाली नदी है उसमें नहाकर पवित्र होकर जो मनुष्य भलीभांति श्राद्ध करता है ॥ २ ॥ वह सब नरकवाले पितरों को तारता है इसमें सन्देह नहीं है हे भामिनि ! वैशाख में शुक्लपक्षमें तीज तिथिको ॥ ३ ॥ जो उसमें नहाकर भलीभांति भक्तिसे तिल, कुश व जलसे तर्पण करता है हे प्रिये ! उसने गङ्गाजी के समीप श्राद्ध किया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां न्यङ्कुमतीमाहात्म्यंनामाष्टचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥ ❀ ॥

वदक्षिणेभागे सर्वपापप्रणाशिनी ॥ तस्यांस्नात्वाशुचिस्सम्यग् यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ २ ॥ सपितॄंस्तारयेत्सर्वान्नारकान्नात्रसंशयः ॥ वैशाखेशुक्लपक्षेतु तृतीयाञ्चैवभामिनि ॥ ३ ॥ स्नात्वातुतर्पयेद्भक्त्या तिलदर्भजलेनवै ॥ प्रियेश्राद्धं कृतन्तेन गङ्गायांनात्रसंशयः ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेन्यङ्कुमतीमाहात्म्यन्नामाष्टचत्वारिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि वाराहंतत्रसंस्थितम् ॥ सिद्धेशाद्दक्षिणेभागे स्थितंपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ एकादश्यांसितेपक्षे यस्तंपूजयतेनरः ॥ समुक्तःपातकैस्सर्वैर्गच्छेद्विष्णुपदंमहत् ॥ २ ॥ तत्रैवसंस्थितादेवि गुहापातकनाशिनी ॥ ऋषीणांसंस्थितिर्यत्र सिद्धानांपुण्यचेतसाम् ॥ ३ ॥ तत्रगत्वामहादेवि गुहांयःपश्यतेनरः ॥ समुक्तस्सर्वपापेभ्यश्चान्द्रायणफलंलभेत् ॥ ४ ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ईशान्यांदिशिसंस्थिताम् ॥ देवींकनकनन्दाख्यां सर्वकामफल

दो० । श्रहँ अतुलपरभाव युत यथा देव वाराह । दोसौ उञ्चासवें महँ कह्यो मो सहित उछाह ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां भलीभांति टिकेहुये वाराहजी के समीप जावै जोकि पापनाशक वाराहजी सिद्धेशाजी से दक्षिणभागमें स्थित हैं ॥ १ ॥ शुक्लपक्ष में एकादशी तिथिमें जो मनुष्य उनको पूजता है वह सब पातकों से छूटकर बड़ेभारी विष्णुपदको जाताहै ॥ २ ॥ हे देवि ! वहींपर पातकोंको नाशकरनेवाली गुहा स्थितहै जहां कि पवित्रचित्तवाले सिद्ध ऋषियों की स्थिति है ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! वहां जाकर जो मनुष्य गुहाको देखताहै वह सब पापोंसे छूटकर चान्द्रायणव्रतके फलको पाताहै ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तद-

नन्तर ईशान दिशामें टिकीहुई समस्त कामनाओंके फलको देनेवाली कनकनन्दानामक देवीजी के समीप जावै ॥ ५ ॥ वहां चैत महीने में शुक्लपक्ष की तीज तिथि में जो बुद्धिमान् पुरुष विधिसे यात्रा करै वह सब कामना को प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकनकनन्दामाहात्म्यंनामैकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥ ❀ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। गंगापथ तीरथ तथा चमसोद्भव असनाम। दोसौ पचासवें मह कह्यो सो चरित्र ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गङ्गापथ ऐसे स्थान

प्रदाम् ॥ ५ ॥ तत्रशुक्लतृतीयायां चैत्रेमासिविधानतः ॥ यात्रांकुर्याच्चमतिमान्सर्वकाममवाप्नुयात् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकनकनन्दामाहात्म्यन्नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ २४९ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि स्थानंगङ्गापथेतिच ॥ यत्रगङ्गामहास्रोता गङ्गेश्वरशिवस्तथा ॥ १ ॥ समुद्रगामिनींदेवी गङ्गापातकनाशिनी ॥ साततोभुविविख्याता नदीत्रैलोक्यभूषणा ॥ २ ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि गङ्गेशंयस्तु पूजयेत् ॥ मुक्तःस्यात्पातकैर्घोरैरश्वमेधायुतंलभेत् ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि चमसोद्भेदमुत्तमम् ॥ यत्र ब्रह्माकरोत्सत्रं वर्षाणामयुतम्प्रिये ॥ ४ ॥ चमसैःपीतवन्तस्ते सोमन्देवामहर्षयः ॥ चमसोद्भेदनामेतितेनख्यातन्धरातले ॥ ५ ॥ तत्रस्नात्वासरस्वत्यां पिण्डदानंददातियः ॥ गयाकोटिगुणंपुण्यं वैशाख्यांप्राप्नुयान्नरः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे चमसोद्भेदमाहात्म्यन्नामपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥ * ॥

के समीप जावै जहां महासोतवाली गङ्गाजी व गङ्गेश्वर शिवजी हैं ॥ १ ॥ जिस लिये पातकोंको नाशकरनेवाली समुद्रगामिनी गंगादेवी हैं उसीकारण पृथ्वीमें वह नदी त्रिलोकभूषणा प्रसिद्ध है ॥ २ ॥ हे महादेवि ! उसमें नहाकर जो गङ्गेश्वरजी को पूजता है वह भयङ्कर पातकों से छूटजाता है व दश हज़ार अश्वमेधों के फल को पाताहै ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम चमसोद्भेदतीर्थके समीप जावै जहां कि हे प्रिये ! ब्रह्माने दश हज़ार वर्षतक यज्ञ कियाहै ॥ ४ ॥ जिसलिये उन देवताओं व महर्षियों ने चमसों से सोमको पियाहै उसीकारण पृथ्वी में वह चमसोद्भेदनामक तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ ५ ॥ वहां वैशाखी पौर्णमासी में जो

मनुष्य सरस्वतीजी में नहाकर पिण्डदान को देता है वह पुरुष गयासे कोटिगुने पुण्यको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचमसोद्भेदतीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५० ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । विदुराश्रम इमि तीर्थकर अहै अतुल माहात्म्य । दोसौ इक्यावने महँ सोइ चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर विदुरजी के बड़े भारी आश्रम के समीप जावै जहांपर त्रिभुवनेश्वर महादेवजी के लिङ्गको थापकर धर्ममूर्त्तिवाले विदुरजीने भयङ्कर तप कियाहै ॥ १ । २ ॥ हे देवि ! गणों व गन्धर्वों से सेवित उस विदुराश्रमनामक तीर्थको देखकर मनुष्य सब कामनाओंको प्राप्त होताहै ॥ ३ ॥ विदुरस्थाननामक तीर्थ थोड़ी पुण्यवाले पुरुष को नहीं मिलता है

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विदुरस्याश्रमंमहत ॥ यत्राकरोत्तपोरौद्रं विदुरोधर्ममूर्त्तिमान् ॥ १ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं लिङ्गंत्रिभुवनेश्वरम् ॥ २ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेविसर्वान्कामानवाप्नुयात ॥ विदुराश्रमकंनाम गणगन्धर्वसेवितम् ॥ ३ ॥ वैदुरंस्थानकंतीर्थं नाल्पपुण्येनलभ्यते ॥ नावर्षणभयंतत्र कदाचिदापिवर्त्तते ॥ ४ ॥ लिङ्गानितत्रदिव्यानि पश्येत्पापोपशान्तये ॥ ५ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे विदुराश्रममाहात्म्यन्नामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि यत्रप्राचीसरस्वती ॥ तत्रस्थानेस्थितंलिङ्गं मङ्कीश्वरमितिश्रुतम् ॥ १ ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशिनीम् ॥ शृणुदेविमहाभागेआश्चर्यंयदभूत्पुरा ॥ २ ॥ ऋषिर्मंकनकोनाम सचतेपेम

और वहां कभी अवर्षणका भय नहीं वर्तमान होताहै ॥४॥ वहां पापोंकी शान्ति के लिये मनुष्य दिव्यलिंगोंको देखै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविदुराश्रममाहात्म्यंनामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५१ ॥ ॥

दो० । महिमा प्राची सरस्वति तथा लिंग मंकीश । दोसौ बावनमें सोई कह्यो चरित्र वरीश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि प्राची सरस्वती है उस स्थान में मंकीश्वर ऐसा प्रसिद्ध लिंग स्थित है ॥ १ ॥ सब पातकों को नाशनेवाली उसकी उत्पत्ति को मैं कहताहूं हे महाभागे, देवि ! पुरातन

समय जो आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये ॥ २ ॥ कि जा मेकनैकनामक ऋषि हुये हैं प्राचीन स्थान में नियतभोजी व नित्य वेदपाठ में तत्पर उन ऋषिने बड़ा तप किया है ॥ ३ ॥ हे भामिनि ! उसको बहुत हज़ारवर्ष बीतगये इसके अनन्तर हे वरानने ! किसी समय कुशके अग्रभाग से वेधित उस मुनिके हाथसे शाककारस उत्पन्नहुआ व ऐसा हमने सुनाहै कि उस बड़े आश्चर्य को देखकर वह बड़े विस्मयको प्राप्त हुआ ॥ ४ । ५ ॥ व उसने यह माना कि मैं बड़ी सिद्धिको प्राप्तहुआ इसके उपरान्त उसने हर्षसे नृत्य किया और उसके भलीभाति नाचने पर चराचर संसार ॥ ६ ॥ हे वरारोहे ! उस मुनिके प्रभावसे नाचताभया तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु

हत्तपः ॥ प्राचीनेनियताहारो नित्यस्वाध्यायतत्परः ॥ ३ ॥ बहुवर्षसहस्राणि तस्यातीतानिभामिनि ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य विद्धस्यचवरानने ॥ ४ ॥ कराच्छाकरसोजातः कुशाग्रेणेतिनःश्रुतम् ॥ सतन्दृष्ट्वामहाश्चर्यं विस्मयंपरमङ्गतः ॥ ५ ॥ मेनेसिद्धिम्पराम्प्राप्तो हर्षान्नृत्यमथाकरोत् ॥ तस्मिन्सन्नृत्यमानेच जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ६ ॥ अनर्त्तत्वरारोहे प्रभावात्तस्यवैमुनेः ॥ ततोदेवामहेन्द्राद्या ब्रह्मविष्णुपुरःसराः ॥ ७ ॥ ऊचुस्त्रिपुरहन्तारं नायंनृत्येत्तथाकुरु ॥ चलिताः पर्वतास्थानात् क्षुभितामकरालयाः ॥८॥ धरणीखण्डशोदेव वृक्षाश्चनिधनंगताः ॥ श्रान्ताश्चैवमहानद्यो ग्रहउन्मार्गसंस्थिताः ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यंव्याकुलीभूतं यावन्नोयातिसङ्क्षयम् ॥ तावन्निवारयस्वैनं नान्यःशक्तोनिवारणे ॥ १० ॥ स तथेतिप्रतिज्ञाय गत्वातस्यसमीपतः ॥ द्विजरूपंसमास्थाय ततोवाक्यंतमब्रवीत् ॥ ११ ॥ नमन्तिशुभकर्माणि कामराग विवर्जितः ॥ युवतीजनसन्तुष्टं किमर्थंनृत्यसेऋषे ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ किन्नपश्यसिमेब्रह्मन् कराच्छाकरसच्यु

अग्रगामीवाले महेन्द्रादिक देवता ॥ ७ ॥ त्रिपुरनाशक शिवजी से बोले कि यह जिस प्रकार न नाचै वैसाही कीजिये क्योंकि पर्वत स्थानसे चलगये व समुद्र क्षोभित होगये ॥ ८ ॥ व हे देव ! धरणी खण्ड २ होगई व वृक्ष नाशको प्राप्तहुये और महानदियां श्रान्त होगई और ग्रह उन्मार्ग में स्थितहुये ॥ ९ ॥ और व्याकुल हु अ संसार जबतक क्षयको न प्राप्तहोवै तबतक इसको मना करिये क्योंकि अन्य मनाकरने में समर्थ नहीं है ॥ १० ॥ वैसाही होगा ऐसी प्रतिज्ञाकरके महादेवजी ब्राह्मण के रूपमें स्थित होकर तदनन्तर उसके समीप जाकर उससे वचन बोले ॥ ११ ॥ कि हे ऋषे ! तुम्हारे उत्तम कर्म नहीं हैं और काम व स्नेह से रहित तुम जिसभाति

स्त्रीजन प्रसन्न होतीहैं उस प्रकार क्यों नाचतेहो ॥ १२ ॥ ऋषि बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरे हाथसे गिरेहुये शाकरस को क्या तुम नहीं देखतेहो इसी कारण मेरा नृत्य होरहा है मैं सिद्ध होगया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले कि हे भामिनि ! उसके उस वचन को सुनकर त्रिपुरान्तक भगवान् ने अंगुली के अग्रभाग से अँगूठे को ताड़न किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर उसीक्षण पालाकी नाईं श्वेत भस्म निकली इसके अनन्तर प्राणियों को पैदाकरनेवाले भगवान् शिवजी हँसकर इससे बोले ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! देखिये कि मेरे अंगूठे से बहुत भस्म निकली है तथापि हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं नहीं नाचता हूं और न मेरे हर्ष है ॥ १६ ॥ उस बड़ेभारी

तम् ॥ अतएवहिमेनृत्यं सिद्धोहंनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ अङ्गुष्ठंताडयामास अङ्गुल्यग्रेणभामिनि ॥ १४ ॥ ततोविनिर्गतंभस्म तत्क्षणाद्धिमपाण्डुरम् ॥ अथाब्रवीत्प्रहस्यैनं भगवान्भूतभावनः ॥ १५ ॥ पश्यमेङ्गुष्ठतोब्रह्मन् भूरिभस्मविनिर्गतम् ॥ ननृत्येहंनमेहर्षस्तथापिमुनिसत्तम ॥ १६ ॥ तद्दृष्ट्वासुमहाश्चर्यं विस्मयंपरमङ्गतः ॥ अब्रवीत्प्राञ्जलिर्भूत्वा हर्षगद्गदयागिरा ॥ १७ ॥ नान्यंदेवमहंमन्येत्वांमुक्त्वा वृषभध्वजम् ॥ नान्यस्यविद्यतेशक्तिरीदृशीधरणीतले ॥ १८ ॥ भगवानुवाच ॥ ज्ञातोस्मिमुनिशार्दूल त्वयावेदविदांवर ॥ वरंवरयभद्रन्ते नित्यंयन्मनसेप्सितम् ॥ १९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ प्रसादाद्देवदेवेश नृत्येनमहताविभो ॥ यथा नस्यात्तपोहानिस्तथानीतिर्विधीयताम् ॥ २० ॥ शम्भुरुवाच ॥ तपस्तेवर्द्धतांविप्र मत्प्रसादात्सहस्रधा ॥ प्राचीनेहन्तु

आश्चर्य को देखकर बड़े विस्मय को प्राप्त ब्राह्मण ने हाथोंको जोड़कर हर्षसे गद्गद वचन करके कहा ॥ १७ ॥ कि वृषध्वज शिवजी को छोड़कर तुमको मैं अन्य देव नहीं मानताहूं याने तुम शिव हो क्योंकि धरातलमें अन्यके ऐसी शक्ति नहीं विद्यमानहै ॥ १८ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे वेदविदांवर, मुनिश्रेष्ठजी ! तुमने मुझको जानलिया तुम्हारा कल्याण होवै और जो सदैव मनकोप्रिय होवै उस वरदानको मांगिये ॥ १९ ॥ ऋषि बोले कि हे देव देवेश, विभो ! बड़े नृत्यके कारण तुम्हारे प्रसादसे जिस प्रकार तपस्या की हानि न होवै वैसाही न्याय कियाजावै ॥ २० ॥ शिवजी बोले कि हे विप्रजी ! मेरे प्रसादसे तुम्हारा तप हज़ार प्रकारका होकर बढ़े

और तुम समेत मैं सदैव प्राचीन स्थानमें बसूंगा ॥ २१ ॥ इस क्षेत्रमें विशेषकर सरस्वती नदी महापवित्र है सरस्वतीजी के उत्तर किनारे पै प्राचीन स्थान पै जो अपने शरीर को त्याग करैगा हे मुनिश्रेष्ठ! वह फिर इस संसार में न आवैगा और इसमें नहायाहुआ पुरुष अश्वमेधयज्ञ के बड़ेभारी फलको पाताहै ॥ २२ । २३ ॥ और नियमों व उपवासों से अपने शरीर को सुखावै तथा भोजन को जीते व पवनभक्षी व पत्तोंको खानेवाले तपस्वी होवैं ॥ २४ ॥ और चौतरों में बैठना व जो अन्य पृथक् नियम हैं उन नियमों से संयुत जो पुरुष इस तीर्थमें स्नान करैंगे ॥ २५ ॥ वे ब्रह्माके परमपद को व उत्तम सिद्धिको जावैंगे इस तीर्थमें जो त्रुटिमात्र

वत्स्यामि त्वयासार्द्धमहंसदा ॥ २१ ॥ सरस्वतीमहापुण्या क्षेत्रेचास्मिन्विशेषतः ॥ सरस्वत्युत्तरेतीरे यस्त्यजेदात्मनस्तनूम् ॥ २२ ॥ प्राचीनेमुनिशार्दूल नैवेहागच्छतेपुनः ॥ आप्लुतोवाजिमेधस्य फलंप्राप्नोतिपुष्कलम् ॥ २३ ॥ नियमैश्चोपवासैश्च शोषयेद्देहमात्मनः ॥ जिताहारावायुभक्षाःपर्णाहाराश्चतापसाः ॥ २४ ॥ तथास्थण्डिलविन्यासा येचान्ये नियमाःपृथक् ॥ येस्नानमाचरिष्यन्ति तीर्थेस्मिन्नियमान्विताः ॥ २५ ॥ तेयान्तिपरमांसिद्धिं ब्रह्मणःपरमम्पदम् ॥ अस्मिस्तीर्थेतुयोदानं त्रुटिमात्रन्तुकाञ्चनम् ॥ २६ ॥ ददातिद्विजमुख्याय मेरुतुल्यंभवेत्फलम् ॥ अस्मिस्तीर्थेतुयेश्राद्धं करिष्यन्तीहमानवाः ॥ २७ ॥ एकविंशकुलोपेताः स्वर्गंयास्यन्तितेध्रुवम् ॥ पितॄणांवल्लभंतीर्थं पिण्डेनैकेनतर्पिताः ॥ २८ ॥ ब्रह्मलोकंगमिष्यन्ति सुपुत्रेणेहतारिताः ॥ भूयश्चान्नंप्रयच्छन्ति मोक्षमार्गंव्रजन्तिते ॥ २९ ॥ अत्रयेशुभकर्माणः प्रभासस्थांसरस्वतीम् ॥ पश्यन्तितेपियास्यन्ति स्वर्गलोकंद्विजोत्तमाः ॥ ३० ॥ येपुनस्तत्रभावेन नरःस्नानपरा

सुवर्ण को ॥ २६ ॥ मुख्य ब्राह्मणके लिये देताहै उसको सुमेरुके समान फल होताहै और इस तीर्थ में जो मनुष्य श्राद्ध करैंगे ॥ २७ ॥ इक्कीस पुश्तियों समेत वे निश्चयकर स्वर्गको जावैंगे यह तीर्थ पितरों को प्रियहै इससे एक पिण्डसे तृप्त किये हुये पितर ॥ २८ ॥ उत्तम पुत्रसे तारित होकर ब्रह्मलोकको जावैंगे और वे बहुत अन्नको देतेहैं तथा मोक्षमार्ग को जातेहैं ॥ २९ ॥ और यहां जो पुण्यकर्मी द्विजोत्तम प्रभास में सरस्वतीजी को देखते हैं वे भी स्वर्गलोक को जावैंगे ॥ ३० ॥ फिर

वहां जो मनुष्य भक्तिसे स्नान में तत्पर हैं वे सदैव ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर आनन्दकरैंगे॥ ३१ ॥ और जो यहां ब्राह्मणके लिये सुन्दर दहीको देताहै वह भी अग्निलोकको प्राप्त होकर उत्तमसुखों को भोगता है ॥ ३२ ॥ और जो भक्तिसे ब्राह्मणके लिये ऊनीवस्त्र को देताहै वह भी अन्य मनुष्यों से दुर्लभ उत्तम सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ और जो पुरुष मलके नाशके लिये यहां जलमें पैठेहैं उनको सुखसे गोदान के फलको कहै ॥ ३४ ॥ जो कोई मनुष्य भक्तिसे उसमें स्नान करता है वह सब पापों से छूटकर ब्रह्मलोकमें पूजाजाता है ॥ ३५ ॥ और तर्पण व पिण्डदानसे नरकों में भी टिकेहुये पितर यहां उत्तम पुरुष से तारित होकर स्वर्गको जाते

यणाः ॥ ब्रह्मलोकंसमासाद्य तेप्रहृष्यन्तिसर्वदा ॥ ३१ ॥ दधिप्रदद्याद्योपीह ब्राह्मणायमनोरमम् ॥ सोप्यग्निलोकमासाद्य भुङ्क्तेभोगान्सुशोभनान् ॥ ३२ ॥ ऊर्णप्रावरणंयोपि भक्त्यादद्याद्द्विजोत्तमे ॥ सोपियातिपरांसिद्धिं मर्त्यैरन्यैःसुदुर्लभाम् ॥ ३३ ॥ येचात्रमलनाशाय पुमांसोविविशुर्जलम् ॥ गोप्रदानफलंतेषां सुखेनफलमादिशेत् ॥ ३४ ॥ भावेनहिनरःकश्चित तत्रस्नानंसमाचरेत ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकेमहीयते ॥ ३५ ॥ तर्पणात्पिण्डदानेन नरकेष्वपिसंस्थिताः ॥ स्वर्गंप्रयान्तिपितरः सुपुत्रेणेहतारिताः ॥ ३६ ॥ भूयश्चान्नप्रदानेन सुपुत्रेणार्चितास्सदा ॥ तेलभन्तेक्षयाँल्लोकान् ब्रह्मविष्णवीशशब्दितान् ॥ ३७ ॥ स्वर्गनिश्रेणिसम्भूता प्रभासेतुसरस्वती ॥ नापुण्यवद्भिःसंप्राप्तुं पुंभिश्शक्या महानदी ॥ ३८ ॥ प्राचीसरस्वतीचैव अन्यत्रैवतुदुर्लभा ॥ विशेषेणकुरुक्षेत्रे प्रभासेपुष्करेतथा ॥ ३९ ॥ प्राचींसरस्वतीं प्राप्य योन्यतीर्थंहिमार्गते ॥ सकरस्थंसमुत्सृज्य कूपेवैवीक्षतेजलम् ॥ ४० ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां स्नानंचविहितंस

हैं ॥ ३६ ॥ और जो फिर अन्नदानसे उत्तमपुत्र करके सदैव पूजित होतेहैं वे ब्रह्मा, विष्णु व शिव ऐसे कहेहुये अक्षयलोकोंको पाते हैं ॥ ३७ ॥ प्रभासमें सरस्वती स्वर्ग की सीढ़ीहै और बिन पुण्यवाले पुरुषों को वह महानदी नहीं प्राप्त होसक्ती है ॥ ३८ ॥ प्राची सरस्वती अन्यत्रही दुर्लभ है और कुरुक्षेत्र, प्रभास व पुष्कर में विशेष कर दुर्लभ है ॥ ३९ ॥ प्राची सरस्वती को पाकर जो अन्य तीर्थको ढूँढताहै वह हाथमें स्थित जलको छोड़कर कूपमें जलको देखताहै ॥ ४० ॥ कृष्णपक्ष में चौदसि

तिथिमें वहां सदैव स्नान कियाजाता है और पीना व गुड़से जो वहां पिण्डको देताहै ॥ ४१ ॥ वह पितरों को अक्षयकर पितृलोक को जाताहै ॥ ४२ ॥ सरस्वती में निवासके समान आनन्द कहां है व सरस्वतीजी के समीप निवास के समान गुण कहांहैं और वे पुरुष सरस्वतीको प्राप्तहोकर स्वर्गको गयेहैं जोकि सरस्वती नदीको स्मरण करते हैं ॥ ४३ ॥ महादेवजी बोले कि इस प्रकार वे भगवान् शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और तब से लगाकर शिवजीने वहां समीपता किया ॥ ४४ ॥ हे भामिनि ! इस प्राचीनदी महातीर्थ के विषय में समर्थवान् विष्णुजी ने स्नेहसे गाथाको गायाहै ॥ ४५ ॥ कि शरपञ्जर में भीष्मजी ने धर्मपुत्र (युधिष्ठिर) जी

दा ॥ पिण्याकेर्गुडकेनापि पिण्डंतत्रददातियः ॥ ४१ ॥ पितॄणामक्षयंकृत्वा पितृलोकंसगच्छति ॥४२॥ सरस्वतीवाससमाकुतोरतिः सरस्वतीवाससमाःकुतोगुणाः ॥ सरस्वतींप्राप्यगतादिवंनरास्तेयेस्मरन्त्येवनदींसरस्वतीम् ॥ ४३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंसभगवान्देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सान्निध्यमकरोत्तत्र ततःप्रभृतिशङ्करः ॥ ४४ ॥ अत्रगाथापुरा गीता विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ प्राचीनदीमहातीर्थे सौहार्देणहिभामिनि ॥ ४५ ॥ धर्मपुत्रंप्रतिप्रोक्तं भीष्मेणशरपञ्जरे ॥ मागङ्गांव्रजकौन्तेय माप्रयागंचपुष्करम् ॥ ४६ ॥ तत्रगच्छकुरुश्रेष्ठ यत्रप्राचीसरस्वती ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ ४७ ॥ महिमानंसरस्वत्या भूयःकिंश्रोतुमिच्छसि ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये प्राचीसरस्वतीमाहात्म्येमङ्कीश्वरमाहात्म्यन्नामद्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसन्निकृष्टन्तु लिङ्गंज्वालेश्वरंस्मृतम् ॥ ॥ शिरःप्रपातितंयत्र ज्वलन्वैत्रिपुरारिणा ॥ १ ॥ पातितो

से कहा है कि हे कौन्तेय ! गङ्गाको मत जाइये और प्रयाग व पुष्कर को मत जाइये ॥ ४६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! वहां जाइये जहां कि प्राची सरस्वती है तुमने जो मुझसे पूंछा यह सब सरस्वतीजीकी महिमा कहीगई फिर क्या सुना चाहतीहो ॥ ४७ । ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येप्राचीसरस्वतीमाहात्म्येमङ्कीश्वरमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । श्रीज्वालेश्वर लिंग अरु वृषतीरथ माहात्म्य । दोसौ तिरपनमें सोई कह्यो चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि वहीं समीप में ज्वालेश्वर लिङ्ग कहागया है

जहांपर त्रिपुरारि शिवजी ने ज्वलते हुये शिरको गिराया है ॥ १ ॥ जिसलिये उस स्थानमें मस्तक गिरायागयाहै उसी कारण ज्वालेश्वर शिव कहेगयेहैं हे देवि ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे भामिनि ! प्राची सरस्वती देवीके समीप वहीं स्थित त्रिपुर महात्माओंके कहेहुये तीन लिंगों को देखै ॥ ३ ॥ जो विद्युन्माली, तारकनामक व कमलाक्ष दैत्य हुयेहैं उनसे थापेहुये लिंगको देखकर मनुष्य पापोंसे छूटजाताहै ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सब कामनाओं के फलको देनेवाले व सब पापोंको नाश करनेवाले अतिउत्तम वृषतीर्थ के समीप जावै ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! उसकी उत्पत्ति

यत्प्रदेशेतु ततोज्वालेश्वरःस्मृतः ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंप श्येत्प्राचीदेव्यास्तुभामिनि ॥ लिङ्गत्रयंसमाख्यातं त्रिपुराणांमहात्मनाम् ॥ ३ ॥ विद्युन्मालीतारकाख्यः कमलाक्ष स्तथैवच ॥ तैश्चप्रतिष्ठितंलिङ्गं दृष्ट्वापापैःप्रमुच्यते ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि वृषतीर्थमनुत्तमम् ॥ सर्वपापोपशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ५ ॥ तस्योत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ पुरायंपञ्चशिराआसीद्ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ६ ॥ शिरस्तस्यमयाच्छिन्नं कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ तत्रगन्धवतीजाता ब्रह्मणःस्रावशोणितैः ॥ ७ ॥ ततोद्भूतामहातालास्तेनतालवनंस्मृतम् ॥ अथोकरतलेलग्नं कपालंब्रह्मणोमम ॥ ८ ॥ शरीरंकृष्णतांयातं मम चैववृषस्यच ॥ अथतीर्थान्यनेकानि गतोहंपापशङ्कया ॥ ९ ॥ नकिञ्चिद्व्रजतेपापं ततःप्राभासमागतः ॥ क्षेत्रेतत्रम यादृष्टा प्राचीदेवीसरस्वती ॥ १० ॥ तत्रमेवृषभःस्नातुं प्रविष्टोजलमध्यतः ॥ तत्क्षणाच्छ्वेततांप्राप्तो मुक्तोहमपिह

को मैं कहता हूं एक मनवाली होकर सुनो कि पुरातन समय लोकोंके पितामह ब्रह्माजी पांच मस्तकोंवाले हुयेहैं ॥ ६ ॥ उनके एक मस्तकको मैंने किसी कारणके मध्यमें काटडालाहै वहां ब्रह्माके बहतेहुये रक्तसे गन्धवती नदी हुई ॥ ७ ॥ तदनन्तर महाताल उत्पन्न हुये उसीकारण तालवन कहागया है इसके उपरान्त ब्रह्माका कपाल मेरे हाथमें लगगया ॥ ८ ॥ और मेरा व बैलका शरीर कृष्णताको प्राप्तहुआ इसके उपरान्त मैं पापकी शङ्कासे अनेक तीर्थों को गया ॥ ९ ॥ परन्तु कुछ पाप नहीं जाताथा तदनन्तर मैं प्रभासक्षेत्रको आया और उस क्षेत्रमें मैंने प्राची सरस्वती देवी को देखा ॥ १० ॥ वहां जलके मध्यमें नहाने के लिये मेरा बैल पैठा और

वह उसीकारण श्वेतताको प्राप्तहुआ व मैंभी हत्यासे छूटगया ॥ ११ ॥ तब मेरे हाथके मध्यमें लगाहुआ कपाल गिरपड़ा और यह लिङ्गरूपी कपालमोचन स्थितहुआ ॥ १२ ॥ वहां भी जो प्राची सरस्वती देवी के समीप श्राद्धको देताहै उसका वह सौ मातृकुल व सौ पितृकुल तृप्त होता है ॥ १३ ॥ हे देवि ! कुँवार महीनेमें कृष्ण पक्षकी चौदसि में वहां दक्षिणामूर्त्ति में आश्रित जो पुरुष द्रव्यके अनुकूल उपचार से विधिपूर्वक सुपात्र में श्राद्ध देताहै उसके वे पितामह हज़ार युगोंतक तृप्त होते हैं ॥ १४ । १५ ॥ वहां सब पापोंसे शुद्धिके लिये अन्न, सुवर्णदान, दही व कम्बल विधिसे देना चाहिये ॥ १६ ॥ हे देवि ! जिसलिये कालेरूपवाला वृष श्वेतताको

त्वया ॥ ११ ॥ करमध्येममालग्नं कपालंपतितंतदा ॥ कपालमोचनश्चासौ लिङ्गरूपीस्थितोऽभवत् ॥ १२ ॥ तत्रापि योददेच्छ्राद्धं प्राचीदेव्यास्तुसन्निधौ ॥ तृप्तंकुलशतंमात्रं पैत्रंकुलशतंचतत् ॥ १३ ॥ मासेऽश्वयुजेदेवि कृष्णपक्षेच तुर्दशीम् ॥ तत्रदद्यात्तुयःश्राद्धं दक्षिणांमूर्तिमाश्रितः ॥ १४ ॥ यथावित्तोपचारेण सपात्रेचयथाविधि ॥ यावद्युगस हस्रन्तु तृप्तास्तेतुपितामहाः ॥ १५ ॥ अन्नंसुवर्णदानंच दधिकम्बलमेवच ॥ तत्रदेयंविधानेन सर्वपापोपशुद्धये ॥ १६ ॥ कृष्णरूपीवृषोदेवि यतःश्वेतत्वमागतः ॥ वृषतीर्थमितिख्यातं तेनत्रैलोक्यपूजितम् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेवृषतीर्थमाहात्म्यंनामत्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सूर्यप्राचीम्महाप्रभाम् ॥ सर्वपापोपशमनीं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वामहादेवि मुच्यतेपञ्चपातकैः ॥ तत्रगच्छेन्महादेवि देवंचैवत्रिलोचनम् ॥ २ ॥ ऋषितीर्थसमीपेतु सर्वपातकना

प्राप्तहुआ है उसी कारण त्रिलोक में पूजित वृषतीर्थ ऐसा कहागया है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवृपतीर्थमाहात्म्यंनामत्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो॰ । यथा त्रिलोचन देवकर अहै अतुल परभाव । दोसौ चौवनमें सोई चरित कह्यो चितचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सब कामनाओं के फलको देनेवाली व सब पापोंको नाशनेवाली महाप्रभावती सूर्यप्राची के समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! उसमें नहाकर मनुष्य पांच पातकों से छूटजाता है व हे

महादेवि ! वहां त्रिलोचन देवजी के समीप जावै ॥ २ ॥ ऋषितीर्थके समीप न्यंकुमती नदीके उत्तर किनारे पै पुरातन समय ऋषियों से पूजित वह समस्त पातकों को नाशनेवाला लिङ्गहै ॥ ३ ॥ जहां तीन नेत्रोंवाली मछली और बिल्लौर के समान जलहै हे देवि ! उसमें नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूटजाताहै ॥ ४ ॥ भादोंमहीनेमें कृष्णपक्ष की चौदसि में मनुष्य उपास करै व रात्रिमें जागरण करै ॥ ५ ॥ जो प्रातःकाल श्राद्धकरै और विधिपूर्वक शिवजीको पूजै वह हे देवि ! शिवलोकमें तीसहज़ार वर्षोंतक बसताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिनेत्रेश्वरमाहात्म्यंनामचतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५४ ॥

शनम् ॥ न्यङ्कुमत्युत्तरेकूले ऋषिभिःपूजितम्पुरा ॥ ३ ॥ त्रिनेत्रामत्स्यकायत्र जलंस्फटिकसन्निभम् ॥ तत्रस्नात्वा नरोदेवि मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ४ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां मासेभाद्रपदेतथा ॥ उपवासंप्रकुर्वीत रात्रौजागरणंतथा ॥ ५ ॥ प्रातःश्राद्धंप्रकुर्वीत विधिवत्पूजयेच्छिवम् ॥ रुद्रलोकेवसेद्देवि वर्षाणामयुतत्रयम् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेत्रिनेत्रेश्वरमाहात्म्यंनामचतुष्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ऋषितीर्थस्यसन्निधौ॥कामिकंहिपरंक्षेत्रं देविकानामनामतः ॥ १ ॥ महासिद्धवनंतत्र ऋषिसिद्धैःसमावृतम् ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं पर्वतैरुपशोभितम् ॥ २ ॥ चम्पकैर्बकुलैर्दिव्यैरशोकैःस्तबकैःपरैः ॥ पुन्नागैःकर्णिकारैश्च सुगन्धैर्नागकेशरैः ॥ ३ ॥ मल्लिकोत्पलपुष्पैश्च पाटलापारिजातकैः ॥ चूतजम्बूकपित्थैश्च श्रीफलैःपनसैस्तथा ॥ ४ ॥ खर्जूरैर्बदरैश्चान्यैर्मातुलुङ्गैःसदाडिमैः ॥ जम्बीरैश्चैवदिव्यैश्च नारङ्गैरुपशोभितम् ॥ ५ ॥

दो० । यथा देविकानदी अरु लिंग उमापति नाम । दोसौ पचपन में सोई वरण्यो चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर ऋषितीर्थ के समीप नामसे देविकानामक उत्तम कामदायक क्षेत्रके समीप जावै ॥ १ ॥ वहां सिद्ध ऋषियों से घिराहुआ महासिद्धवन अनेक भांतिके वृक्षों व लताओं से व्याप्त तथा पर्वतों से शोभित है ॥ २ ॥ व दिव्य चम्पक, मौलसिरी व उत्तम अशोक गुच्छों से तथा पुन्नाग, कर्णिकार व सुगन्धित नागकेसरों से शोभितहै ॥ ३ ॥ और बेला, कमलपुष्प, पाडर व पारिजात और आम, जामुन, कैथा, बेल व कटहरों से युक्तहै ॥ ४ ॥ और खजूर, बेर व अनार समेत अन्य मातुलिंग वृक्षोंसे तथा जँभीरी

निम्बू और दिव्य नारंगियों से शोभित है ॥ ५ ॥ और सुखदायक व गानेवाले मयूर तथा कोकिलाओं से व मृग, ऋक्ष, सूकर, सिंह व अन्य व्याघ्रों से संयुत है ॥ ६ ॥ और विविध आकारवाले हिंसक जीवोंसे तथा कन्दराओं व गुहाओं से शोभितहै और देवताओं व दैत्योंके गणोंसे तथा सिद्धोंसे व यक्ष, गन्धर्व और नागोंसे ॥ ७ ॥ और अप्सराओं से व बहुत से नागोंसे संयुत है कोई शिवजीकी स्तुति करते हैं और कोई आगे नाचते हैं ॥ ८ ॥ और कोई फूलोंकी वृष्टिको छोड़ते हैं व अन्य मुखको बजाते हैं व अन्य प्रसन्न होकर हँसते हैं तथा और गरजते हैं ॥ ९ ॥ व अन्य ऊर्ध्वबाहुहैं व कोई उसमें प्राप्त शिवजीको ध्यान करतेहैं उस स्थानमें हे महा-

शिखिभिःकोकिलैश्चैव गायमानैःसुखप्रदैः ॥ मृगैर्ऋक्षैर्वराहैश्च सिंहव्याघ्रैस्तथापरैः ॥ ६ ॥ श्वापदैर्विविधाकारैः कन्दरैर्गह्वरैस्तथा ॥ सुरासुरगणैःसिद्धैर्यक्षगन्धर्वपन्नगैः ॥ ७ ॥ अप्सरोभिश्चनागैश्च बहुभिस्तुसमाकुलम् ॥ केचित्स्तुवन्ति चेशानंकेचिन्नृत्यन्तिचाग्रतः ॥ ८ ॥ पुष्पवृष्टिन्तुमुञ्चन्ति मुखंवादन्तिचापरे ॥ हसन्तिचापरेहृष्टा गर्जन्तिचतथापरे ॥ ९ ॥ ऊर्द्ध्वहस्तास्तथान्येच केचिद्ध्यायन्तितद्गतम् ॥ तस्मिन्स्थानेमहादेवि देविकायास्तटेशुभे ॥ १० ॥ उमापतीश्वरोनाम तत्राहंसंस्थितःसदा ॥ सदायुगेयुगेपूर्णे कल्पेमन्वन्तरेतथा ॥ ११ ॥ नत्यजामिसदादेवि देविकायास्तटंशुभम् ॥ दुर्लभंसर्वलोकेस्मिन् पवित्रंसुप्रियंहिमे ॥ १२ ॥ त्वयासहस्थितश्चाहं तस्मिन्स्थानेवरानने ॥ उमयायुक्तदेहत्वात्ते नख्यातउमापतिः ॥ १३ ॥ पौषमासेह्यमावस्यां दद्याच्छ्राद्धंसमाहितः ॥ नपश्यामिक्षयंतस्य तस्मिन्दत्तस्यपार्वति ॥ १४ ॥ ब्रह्महत्यासहस्रन्तु तस्यदर्शनतोव्रजेत् ॥ गोभूहिरण्यवासांसि तत्रदद्याद्विचक्षणः ॥ १५ ॥ सएकःपरमःपुत्रो

देवि ! देविकाके उत्तम किनारेपर ॥ १० ॥ उमापति ईश्वर नामक मैं वहां सदैव स्थितरहताहूं और सदैव प्रत्येक युग व कल्प तथा मन्वन्तरके पूर्ण होनेपर ॥ ११ ॥ हे देवि ! मैं देविकाके उत्तम किनारेको सदैव नहीं छोडताहूं जोकि इस सब संसारमें दुर्लभ है व पवित्र तथा मुझको बहुत प्रियहै ॥ १२ ॥ हे वरानने ! उस स्थानमें तुम समेतमैं स्थितहूं व उमासे संयुत शरीर के कारणमैं उसी लिये उमापति प्रसिद्धहूं ॥ १३ ॥ पौष महीने में अमावस तिथिमें सावधान पुरुष श्राद्धको देवै क्योंकि हे पार्वति ! उसमें दियेहुये उस श्राद्धके नाशकोमैं नहीं देखताहूं ॥ १४ ॥ और उसके दर्शन से हज़ार ब्रह्महत्या जाती रहती हैं, वहां चतुर मनुष्य गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण व

वस्त्रोंको देवै ॥ १५ ॥ हे सुन्दरि ! वही एक उत्तम पुत्रहै कि जो वहां जाकर पितरोंको श्राद्ध देवै क्योंकि उसका अन्त नहीं विद्यमान है ॥ १६ ॥ सब देवताओं ने स्नान के लिये उस उत्तम नदीको बुलाया है इस कारण उस समय वह पापनाशिनी नदी देविका ऐसी कहीगई है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेविकायामुमापतिमाहात्म्यंनामपञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । भूधरनामकदेव जिमि भये भूमि विख्यात । दोसौ छप्पन में सोई चरित अहै प्रख्यात ॥ महादेवजी बोले कि वहीं पै स्थित नामसे भूधर ऐसे प्रसिद्धदेवको

योगत्वात्तत्रसुन्दरि ॥ ददेच्छ्राद्धंपितॄणाञ्च तस्यान्तोनैवविद्यते ॥ १६ ॥ देवैःसर्वैःसमाहूता स्नानार्थंसासरिद्वरा ॥ देविकेतितदाख्याता तेनसापापनाशिनी ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेविकायामुमापतिमाहात्म्यन्नामपञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तत्रैवसंस्थितंपश्येद् भूधरंनामनामतः ॥ उद्धृत्यपृथिवींयस्माद्दंष्ट्राग्रेणदधारसः ॥ १ ॥ भूधरस्तेनचाख्यातो देविकातटसंस्थितः ॥ वेदपादोयूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तःस्रुचोमुखः ॥ २ ॥ अग्निर्जिह्वोदर्भरोमा ब्रह्मशीर्षोमहातपाः ॥ अहोरात्रेक्षणोवेदवेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥३॥ प्राग्वंशकायोद्युतिमान्मात्रादीक्षाविराजितः ॥ दक्षिणाहृदयोयोगो महासत्रमयोमहान् ॥ ४ ॥ उपाकृतोष्ठरुचिकः प्राग्वंशव्रतभूषणः ॥ नानाछन्दोगतिपथो ब्रह्मोक्तक्रमविक्रमः ॥ ५ ॥ भू

देखै जिसलिये उन्हों ने पृथ्वी को उठाकर दाढ़के अग्रभाग से धारण कियाहै ॥ १ ॥ उसी कारण देविकाके तटपै टिकेहुये भूधर कहेगये हैं वे वेदचरण व यज्ञस्तम्भ दाढ़वाले तथा यज्ञरूपी दन्तवाले और स्रुचरूपी मुखवाले हैं ॥ २ ॥ और अग्निरूपी जिह्वावाले तथा कुशरूपी रोमोंवाले व वेदशीर्ष तथा बड़े तपस्वी हैं और दिन रात नयनवारे व वेद, वेदांग तथा श्रुतिभूषण हैं ॥ ३ ॥ और प्राग्वंश याने सभासद् गृह शरीरवाले तथा द्युतिमान् व मात्रारूपी दीक्षाओं से शोभित हैं और दक्षिणारूपी हृदयवाले योगी व महायज्ञमय महान् पुरुष हैं ॥ ४ ॥ और उपाकृतरूपी ओष्ठरुचिवाले तथा सभासद् गृह व व्रतरूपी भूषणवाले हैं व अनेक भांतिके छन्दरूपी

गतिमार्गवाले व वेदोक्त क्रम विक्रमवाले हैं ॥ ५ ॥ ये यज्ञरूपी वराह होकर उस स्थान में स्थित हुयेहैं कुँवार महीने में अमावस व एकादशी तिथिमें ॥ ६ ॥ कन्या राशिमें प्राप्त सूर्यनारायण को जानकर प्रदोषसमय प्राप्त होनेपर गुड़से संयुक्त खीर व गुड़से डूबीहुई हव्य ॥ ७ ॥ व नवीन घीको नमोवः पितरो रसाय इसमंत्रसे अभिमन्त्रित करै व तेजोसिशुक्र इस मन्त्रसे घीको व दधिकाव्णेन इस मन्त्रसे दधि को अभिमन्त्रित करै ॥ ८ ॥ और आप्याय इस मन्त्रसे दूधको अभिमन्त्रित करै और जो व्यञ्जन हैं उनको व सब भक्ष्यभोज्यों को महानिद्रेण इस मन्त्रसे देवै ॥ ९ ॥ और संवत्सर ऐसा जो मन्त्र जपागया है उससे ब्राह्मण जलको देवै इस

त्वायज्ञवराहोसौ तत्रस्थानेस्थितोभवत् ॥ इषमासेह्यमावस्यामेकादश्यामथापिवा ॥ ६ ॥ प्राप्तेप्रदोषकालेच ज्ञात्वा कन्यागतंरविम् ॥ पायसंगुडसंयुक्तंहविष्यंगुडसंप्लुतम् ॥ ७ ॥ नमोवःपितरोरसायनवाज्यमभिमन्त्रयेत् ॥ तेजोसिशुक्र मित्याज्यं दधिक्राव्णेनवैदधि ॥ ८ ॥ क्षीरमाप्यायमन्त्रेण व्यञ्जनानिचयानितु ॥ भक्ष्यभोज्यानिसर्वाणि महानिद्रे णदापयेत् ॥ ९ ॥ संवत्सरेतियोमन्त्रो जप्तोतेनोदकंद्विजः ॥ एवंसंभोज्यवैविप्रान् पिण्डदानन्तुदापयेत ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे भूधरमाहात्म्यन्नामषट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मूलस्थानमितिस्मृतम् ॥ देविकायास्तुसामीप्ये भास्करंवारितस्करम् ॥ १ ॥ यत्रतेपेतपोघोरं बाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः ॥ बाल्मीकिनामाविप्रर्षिर्यत्रसिद्धोमहामुनिः ॥ २ ॥ यत्रसप्तर्षयोमुष्टास्तेनैवमुनिना

प्रकार ब्राह्मणोंको भलीभांति भोजन कराकर पिण्डदानको देवै ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांभूधरमाहात्म्यंनामषट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५६ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो॰। तीरथ मूलस्थान में बाल्मीकि भे सिद्ध । दोसौ सत्तावने महँ सोई कथा प्रसिद्ध ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मूलस्थान ऐसे कहेहुये तीर्थ के समीपजावै व देविकानदीके समीप जलको चुरानेवाले सूर्यनारायण को देखै ॥ १ ॥ जहांपर मुनिश्रेष्ठ बाल्मीकिजीने भयङ्कर तप कियाहै व जहांपर बाल्मीकि

नामक विप्रर्षि सिद्ध हुये हैं ॥ २ ॥ व हे प्रिये ! उसीके पश्चिमभाग में जहां उन्हीं मुनिने मरीचि आदिक सप्तर्षि ब्राह्मणोंकी चोरी कियाहै ॥ ३ ॥ देवीजी बोलीं कि हे शङ्करजी ! बाल्मीकिजी कैसे सिद्ध हुये हैं और उन्होंने कैसे चोरीमें मन किया व किस प्रकार सप्तर्षि मुष्ट (चोरित) हुएहैं इसको मुझसे कहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! पुरातन समय नाम से समीमुख ऐसा प्रसिद्ध ब्राह्मण हुआहै गृहस्थधर्म में प्राप्त उस द्विजके पुत्र पैदा हुआ ॥ ५ ॥ व वैशाख ऐसा नामक यह भयङ्कर कर्म करनेवाला हुआ इस ब्राह्मणने एक माता, पिताकी सेवाको छोड़कर अन्य कुछ ॥ ६ ॥ उत्तम कर्मको सदैव जन्मसे लगाकर नहीं किया हे प्रिये ! इसके

प्रिये ॥ तस्यैवपश्चिमेभागेमरीचिप्रमुखाद्विजाः ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ कथंचसिद्धोबाल्मीकिःकथंचौर्येकरोन्मनः ॥ कथंसप्तर्ष योमुष्टा एतन्मेवदशङ्कर ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ आसीत्पूर्वंद्विजोदेवि नाम्नाख्यातःसमीमुखः ॥ गार्हस्थ्येवर्त्तमानस्य त स्यपुत्रोऽभ्यजायत ॥ ५ ॥ वैशाखइतिनाम्नासौ रौद्रकर्माऽभ्यजायत ॥ मुक्त्वैकांगुरुशुश्रूषां नान्यत्किञ्चिदसौद्विजः ॥ ६ ॥ अकरोच्छोभनंकर्म जन्मप्रभृतिनित्यशः ॥ अथकालेनमहता पितरौतस्यतौप्रिये ॥ ७ ॥ वार्द्धक्यभावमापन्नौ मर्त व्यौभृशविह्वलौ ॥ सनित्यमटवींगत्वा मुष्ट्वाद्रव्याणिशक्तितः ॥ ८ ॥ द्रव्यमादायपितरौ भार्यांश्चापिपुपोषच ॥ क स्यचित्त्वथकालस्य गच्छन्तस्तेनवैपथा ॥ ९ ॥ सप्तर्षयस्तदादृष्टास्तीर्थयात्रापरायणाः ॥ सततोयष्टिमुद्यम्य भर्त्सय न्परुषाक्षरैः ॥ १० ॥ वाक्यैरुवाचतान्सर्वांस्तिष्ठध्वमितिभूरिशः ॥ अथतेमुनयःशान्ताः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ११ ॥ समाःशत्रौचमित्रेच द्वेषरागविवर्जिताः ॥ अस्माभिर्दर्शनंचास्य संभाष्यमृषिभिःसह ॥ १२ ॥ संजातंविफलं

अनन्तर बहुत समय के बाद उसके वे माता पिता ॥ ७ ॥ वृद्धता में प्राप्तहुये व मरनेयोग्य वे अत्यन्तही विह्वल हुये और उसने नित्य वनको जाकर अपनी शक्ति से द्रव्योंको चुराकर ॥ ८ ॥ व द्रव्यको लेकर माता, पिता वस्त्रीको पोषण किया इसके उपरान्त किसी समय उसी मार्गसे जातेहुये ॥ ९ ॥ तीर्थयात्रामें परायण सप्त- र्षियों को उस समय उसने देखा तदनन्तर दण्डको उठाकर कठोरअक्षरोंवाले वचनों से घुड़कते हुये उसने उन सबोंसे बहुतही कहा कि खड़ेहूजिये इसके अनन्तर ढेला, पत्थर व सुवर्ण में समभाववाले वे शान्त मुनिलोग ॥ १० । ११ ॥ जोकि शत्रु व मित्रमें समान थे और शत्रुता व स्नेहसे रहित थे बोले कि हमलोगों ऋषियों

के साथ इसका दर्शन व संभाषण ॥ १२ ॥ हुआहै वह मत निष्फल होवै यह कहकर उससे बोले अङ्गिराजी बोले कि हे तस्कर ! अपने हितके लिये सत्यकहते हुये मेरे वचन को सावधान होकर हर्षसे सुनो कि तुम्हारे घरमें कौन गोत्रवर्ग स्थित है इसको मुझ से कहिये ॥ १३ । १४ ॥ तस्कर बोला कि हे मुने ! मेरे वृद्ध माता पिताहैं व सन्तानहीन एक स्त्री है व ऐसा मैं हूं पाचवां नहीं है ॥ १५ ॥ अङ्गिराजी बोले कि पापसे इकट्ठा कियेहुये धनोंसे पालेहुये उन सबोंसे पूछिये कि मैं पापोंको करता हूं और तुमलोग सब खानेवाले हो ॥ १६ ॥ वह पाप किसको होगा और वह मेरा पातक किस प्रकार शीघ्रही जावैगा ऐसा कहाहुआ वह उसी क्षण

मास्यादित्युक्त्वातमुवाचह ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ भोभोस्तस्करमेवाक्यं शृणुष्वावहितःक्षणात् ॥ १३ ॥ आत्मनस्तुहितार्थाय सत्यञ्चैवप्रजल्पतः ॥ तववेश्मनिकस्तिष्ठेद्गोत्रवर्गोवदस्वमे ॥ १४ ॥ तस्कर उवाच ॥ स्यातांमेपितरौवृद्धौ भार्यैकापत्यवर्जिता ॥ एतादृशोह्यहञ्चैव पञ्चमोनास्तिवैमुने ॥ १५ ॥ अङ्गिरा उवाच ॥ गत्वापृच्छस्वतान्सर्वान् पुष्टान् पापार्जितैर्धनैः ॥ अहङ्करोमिपापानि सर्वेयूयंतुभक्षकाः ॥ १६ ॥ तत्पापम्भविताकस्य कथंयातिचमेलघु ॥ इत्युक्तस्तत्क्षणादेव जगामस्वगृहंततः ॥ १७ ॥ ऋषीणांतत्रवाक्यानि पितरौपर्यपृच्छत ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा तौतुप्रत्यूचतुस्तदा ॥ १८ ॥ पितरावूचतुः ॥ एकःपापानिकुरुतेफलंभुङ्क्तेमहाजनः ॥ भोक्तारोविप्रमुच्यन्तेकर्त्तादोषेणलिप्यते ॥ १९ ॥ यःकरोत्यशुभंकर्म कुटुम्बार्थेतुमन्दधीः ॥ आत्मानवल्लभस्तस्य नूनंपुंसस्तुपापिनः ॥ २० ॥ ईश्वर उवाच ॥ तयोस्तुवचनंश्रुत्वा पुनर्भीतमनाभवत ॥ तयोस्तुसन्निधौगत्वापितरौप्रत्यभाषत ॥ २१ ॥ युवाभ्यांहितमेवाहं यत्करोम्यशु

अपने घरको गया तदनन्तर ॥ १७ ॥ उसने वहां ऋषियोंके वचनोंको माता, पितासे पूछा उसके उस वचनको सुनकर उस समय उन दोनोंने प्रत्युत्तरदिया ॥ १८ ॥ माता पिता बोले, कि एक पापोंको करता है व महाजन फलको भोगता है हे विप्र! भोगनेवाले छूटजाते हैं और कर्ता दोषसे लिप्त होताहै ॥ १९ ॥ जो मन्दबुद्धि पुरुष कुटुम्ब के लिये अशुभकर्म करताहै उस पापी पुरुष को निश्चयकर आत्मा नहीं प्रियहै ॥ २० ॥ महादेवजी बोले कि उन दोनोंके वचन को सुनकर फिर वह भीत-

मनवाला हुआ और उन दोनों के समीप जाकर वह माता पितासे बोला ॥ २१ ॥ कि तुम दोनों के हितके लिये मैं जो कहीं अशुभकर्म करताहूं उसका कुछ भाग तुमसे भोग कियाजाता है उसको कहिये ॥ २२ ॥ माता पिता बोले कि हे पुत्र ! पहली अवस्थामें तुम माता पितासे पालनेयोग्य हुयेहो व हे पुत्र ! पिछली अवस्था में फिर तुमसे हमलोग भलीभांति पालनेयोग्य हैं ॥ २३ ॥ यह अन्योन्यधर्म कमलयोनि (ब्रह्मा) से बतलायागया है हम दोनोंने तुम्हारे लिये जिस शुभाशुभ कर्मको कियाहै ॥ २४ ॥ उस सबको हमहीं भोग करैंगे इसमें सन्देह नहीं है व हे वत्स ! तुमभी जो शुभाशुभ कर्म्म को करोगे ॥ २५ ॥ उस कर्मके भोगनेवाले तुम

भंकचित ॥ तदंशोभुज्यतेकिञ्चिद्युवाभ्यांतन्निवेद्यताम् ॥ २२ ॥ पितरावूचतुः ॥ पूर्वेवयसिपुत्रत्वं पितृभ्यामपाल्य एवहि ॥ उत्तरेतुवयःपाल्याः सम्यक्पुत्रत्वयापुनः ॥ २३ ॥ इतरेतरधर्मोयं निर्दिष्टःपद्मयोनिना॥ आवाभ्यांयत्कृतंकर्म युष्मदर्थेशुभाशुभम्॥ २४॥ भोक्ष्यामोवयमेवेह तत्सर्वंनात्रसंशयः ॥ अथत्वमपियद्वत्स प्रकरोषिशुभाशुभम्॥ २५॥ कर्म्मणस्तस्यभोक्तात्वं भविष्यसिनसंशयः ॥ तस्मादेवप्रकर्त्तव्यं शुभंकर्मविपश्चिता ॥ २६ ॥ चौर्य्यंवाथकृषिर्वाथ कुसीदंवाथपुत्रक ॥ वाणिज्यमथवाप्रेष्यं कृत्वास्माकञ्चभोजनम् ॥ २७ ॥ अहर्निशंत्वयादेयं नदोषोस्मासुपुत्रक ॥ ताभ्यांतद्वचनंश्रुत्वा ततोभार्यामभाषत ॥ २८ ॥ तदेववाक्यमवदद् यत्प्रोक्तंगुरुभिःपुरा ॥ ततोवैराग्यमापन्नो वैशाखोमुनिसत्तमः ॥ २९ ॥ गर्हयन्नेवचात्मानं भूयोभूयस्सुदुःखितः ॥ धिङ्मांदुष्कृतकर्माणं पापकर्मरतंसदा ॥ ३० ॥ विवेकेन परित्यक्तः सत्सङ्गेनविवर्जितः ॥ सकरोतिनरःपापं नयस्सेवतिपण्डितम् ॥ ३१ ॥ नचात्मावल्लभस्तस्य एतन्मेवर्त्तते

होगे इसमें सन्देह नहीं है उसी कारण विद्वान् को उत्तम कर्म करना चाहिये ॥ २६ ॥ हे पुत्र ! चोरी या खेती अथवा व्याज व रोजगार और प्रेष्यता करके हमको भोजन ॥ २७ ॥ दिन रात तुमको देना चाहिये हे पुत्र ! हमलोगों में वह दोष नहीं है उन दोनोंसे उस वचन को सुनकर तदनन्तर उसने स्त्री से कहा ॥ २८ ॥ और पहले गुरुवों (श्वशुरों) से जो कहागया था उसी वचन को उसने भी कहा तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वैशाख वैराग्य को प्राप्त हुआ ॥ २९ ॥ व बार २ अपनी निन्दा करताहुआ वह अत्यन्त दुःखी हुआ कि सदैव पापकर्म में लगेहुये मुझ दुष्कृतकर्मवाले को धिक्कार है ॥ ३० ॥ जो पण्डितको नहीं सेवताहै वही विवेक से रहित

व सत्सङ्ग से वर्जित पुरुष पाप को करता है॥ ३१॥ और उसको आत्मा (जीवात्मा) नहीं प्रिय है यह मेरे हृदय में वर्तमान होता है इस प्रकार विकल्प से विद्ध होताहुआ वह ऋषियों के समीप जाकर ॥ ३२ ॥ नम्रवचन से आदरसमेत यह बोला कि जाइये व हे ऋषे! वैसेही इस कमण्डलुको लीजिये॥ ३३॥ और वल्कल व मृगचर्म के वसन तथा सब मृगचर्मों को लीजिये व हे मुनिश्रेष्ठो! सत्सङ्ग से छूटेहुये मुझ दीन मूर्ख व कृपण का अपराध क्षमा कीजिये आजसे लगाकर मैं इस निन्दित कर्मसे निवृत्त होगया ॥ ३४ । ३५ ॥ इसलिये भयङ्कर, क्रूर व साधुवों से निन्दित इस कर्मके प्रायश्चित्तको हमसे कहिये ॥ ३६ ॥ कि जिससे तुमलोगों की

हृदि ॥ एवंविकल्पविद्धस्सन् गत्वासऋषिसन्निधौ ॥३२॥ उवाचश्लक्ष्णयावाचा गम्यतामितिसादरम् ॥ ऋषेप्रगृह्यतामेष तथैवचकमण्डलुः ॥ ३३ ॥ वल्कलाजिनवासांसि मृगचर्माण्यशेषतः ॥ क्षम्यतामपराधोमे दीनस्यकृपणस्यच॥३४॥ सत्सङ्गेनविमुक्तस्य मूर्खस्यमुनिसत्तमाः ॥ अद्यप्रभृतिनिर्वृत्तः कर्मणोस्माद्विगर्हितात् ॥ ३५ ॥ रौद्रस्यतुनृशंसस्य साधुभिर्गर्हितस्यच ॥ तस्मात्कथयतास्माकं निष्कृतिंचास्यकर्मणः ॥ ३६ ॥ येनयुष्मत्प्रसादेन पापान्मोक्षमहंव्रजे ॥ उपवासोथमन्त्रोवा नियमोवाथसंयमः॥ ३७॥ ऋषयऊचुः ॥ साधुपृष्टंत्वयावत्स तत्त्वमेकमनाःशृणु ॥ सुगुह्यंकीर्तयिष्यामि त्वयाख्येयन्नकस्यचित् ॥ ३८ ॥ तेनस्तेयस्यपापात्त्वं मोक्षंप्राप्स्यसिनिश्चितम् ॥ उद्घोष्यचत्वयाकीर्त्यो मन्त्रोयंचतुरक्षरः ॥ ३९ ॥ सर्वपापहरोनृणां स्वर्गमोक्षफलप्रदः ॥ सतैश्चमुनिभिःप्रोक्तो वैशाखोमुनिसत्तमः॥ ४० ॥ तस्थौजाप्यपरोनित्यं गतास्तेमुनिपुङ्गवाः ॥ तस्यैवंजपतोदेवि देविकायास्तटेशुभे ॥ ४१ ॥ अनिशंगुरुभक्त

प्रसन्नता से मैं पातकसे मोक्षको प्राप्तहोऊं उपास, मंत्र, नियम या संयम हो उसको कहिये ॥ ३७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे वत्स! तुमने बहुत अच्छा पूंछा उसको एक मनवाले होकर सुनिये मैं अत्यन्त गुप्तभी उस चरित्रको कहूंगा और तुमको किसीसे न कहना चाहिये ॥ ३८ ॥ उससे तुम चोरीके पापसे निश्चयकर मोक्षको प्राप्तहोगे और तुमको इस चार अक्षरोंवाले मन्त्रको उच्चस्वरसे घोषणाकर कहना चाहिये॥ ३९॥ जोकि मनुष्योंके सब पापोंको हरनेवाला व स्वर्ग तथा मोक्षके फलको देनेवाला है उन मुनियों से कहेहुये वे मुनिश्रेष्ठ वैशाखजी ॥ ४० ॥ नित्यही जपमें परायण होकर स्थितहुये और वे मुनिश्रेष्ठ चलेगये हे देवि! देविका नदी के उत्तम किनारे पै

इसप्रकार जपतेहुये उन ॥ ४१ ॥ निरन्तर गुरुभक्त मुनिके समाधि प्राप्तहुई उससमय क्षुधा व प्यास नष्ट होगई और शरीर शुद्धिको प्राप्तहुआ ॥ ४२ ॥ मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, पण्डित, औषध व गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है वैसी सिद्धि होती है ॥ ४३ ॥ यह स्वभावसे निर्मल परमात्मा वैसाही है कि जिसप्रकार उपाधि सङ्गको प्राप्त होकर स्फटिकका विकार होताहै ॥ ४४ ॥ व जिसप्रकार बन्ध्या भ्रमरी अनन्यबुद्धि होकर जीवको ध्यान करती है ॥ ४५ ॥ और ध्यानसे संयुत भ्रमरी अपने स्थान में स्थापित जीवको ध्यान करती है और उसके ध्यान से संयुत जीव वैसाही निश्चयकर होजाता है ॥ ४६ ॥ और अन्यजाति से उत्पन्न व सज्जनों का

स्य समाधिस्समपद्यत ॥ क्षुत्पिपासातदानष्टा शुद्धिमापकलेवरः ४२ ॥ मन्त्रेतीर्थेद्विजेदेवे दैवज्ञेभेषजेगुरौ ॥ यादृशीभावनायस्य सिद्धिर्भवतितादृशी ॥ ४३ ॥ निर्मलोयं स्वभावेन परमात्मातथाविधः ॥ उपाधिसङ्गमासाद्य विकारस्स्फाटिकोयथा ॥ ४४ ॥ यथाचभ्रमरीवन्ध्या ध्यायेज्जीवमनन्यधीः ॥ ४५ ॥ स्वस्थानेस्थापितंध्यायेद् भ्रमरीध्यानसंयुता ॥ ननुतद्ध्यानसंयुक्तो जीवोभवतितादृशः ॥ ४६ ॥ अन्यजात्युद्भवंवापि तथानिर्दर्शनंसताम् ॥ आदिष्टोगुरुणायश्च विकल्पंयदिगच्छति ॥ ४७ ॥ नासौसिद्धिमवाप्नोति मन्दभाग्योयथाविधि ॥ एवंवर्षसहस्राणि समतीतानि भूरिशः ॥ ४८ ॥ तस्यजाप्यपरस्यैवममृतत्वंगतस्यच ॥ ततःकालक्रमेणैव वल्मीकेनसवेष्टितः ॥ ४९ ॥ तेनासौसर्वतोव्याप्तो वल्मीकस्तंरुरोधवै ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य मुनयस्तेसमागताः ॥ ५० ॥ तम्प्रदेशन्तुसम्प्रेक्ष्य सहास्यमितरेतरम् ॥ ऊचुःपरस्परंसर्वे हत्वाचैवकरैःकरम् ॥ ५१ ॥ ऋषयऊचुः ॥ अत्रासौतस्करःप्राप्तो वैशाखोदारुणाकृतिः ॥ येनस

आदेश तथा जो गुरुसे बतलाया गयाहै वह यदि विकल्पको प्राप्तहोवै ॥ ४७ ॥ तो वह मन्दभाग्य मनुष्य विधिपूर्वक सिद्धिको नहीं प्राप्त होताहै इसप्रकार जपमें परायण व अमृतत्व को प्राप्त उसके बहुत से हज़ारों वर्ष व्यतीत हुये तदनन्तर समय के क्रमसे वह बँबौरि से घिरगया ॥ ४८ । ४९ ॥ और उससे यह सबओर से व्याप्त होगया व उस बँबौरिने उस मुनिको आच्छादन करलिया ॥ ५० ॥ इसके अनन्तर किसी समय वे मुनिलोग आये व उस स्थानको देखकर आपस में हास्यसमेत

सब मुनियों ने हाथों से हाथ को मारकर परस्पर कहा ॥ ५१ ॥ ऋषिलोग बोले कि यहां भयङ्कर आकारवाला वह वैशाख चोर प्राप्तहुआथा कि जिसने इस स्थान में आये हुये हम सब लोगोंकी चोरी कियाथा ॥ ५२ ॥ इसप्रकार कहतेहुये उन्होंने बेंबौरि के बीचसे प्रकट उत्तम शब्दको सुना तदनन्तर कौतुक से संयुत उन ॥ ५३ ॥ ऋषियों ने वहां पर्वत के समान बेंबौरि को खोदा इसके अनन्तर उन मुनिश्रेष्ठोंने वहां वैशाख को देखा ॥ ५४ ॥ व बार २ उसी चतुरक्षरमन्त्रको पढ़तेहुये उसको योगसे सत्कार कियेहुये संयमों से समाधि में प्राप्त जानकर ॥ ५५ ॥ सबओर से ब्राह्मण प्रसन्न हुये और वह वहां प्रकट हुआ तदनन्तर सब ऋषियोंसे बोला कि किसलिये पृथ्वी

वैवयंमुष्टा अस्मिन्स्थानेसमागताः ॥ ५२ ॥ एवंसञ्जल्पमानास्ते शुश्रुवुश्शब्दमुत्तमम् ॥ वल्मीकमध्यतोऽव्यक्तं त तस्तेकौतुकान्विताः ॥ ५३ ॥ अखनंस्तत्रवल्मीकं ऋषयःपर्वतोपमम् ॥ अथतेददृशुस्तत्र वैशाखंमुनिसत्तमाः ॥ ५४ ॥ पठन्तमसकृन्मन्त्रं तमेवचतुरक्षरम् ॥ तंसमाधिगतंज्ञात्वा संयमैर्योगसत्कृतैः ॥ ५५ ॥ ननन्दुस्सर्वतोविप्रास्तत्रसप्रक टोभवत् ॥ ततोब्रवीदृषीन्सर्वान् किमर्थंखन्यतेमही ॥ ५६ ॥ गम्यतांतीर्थयात्रायां सर्वंत्यक्तंमयाद्विजाः ॥ ५७ ॥ वा च्योमेपितरौगत्वा तथाभार्याद्विजोत्तमाः ॥ सर्वसङ्गपरित्यक्तो वैशाखस्समपद्यत॥५८॥दर्शनंकाङ्क्षतेनैव भवद्भिस्तु यथापुरा ॥ ऋषय ऊचुः ॥ बहुवर्षाण्यतीतानि तवात्रवसतोमुने ॥ ५९ ॥ सर्वेतेनिधनंप्राप्ता येचान्येचकुटुम्बिनः ॥ वयं चिरात्समायाताः स्थानेस्मिन्मुनिसत्तम ॥ ६० ॥ सत्वंसिद्धिमनुप्राप्तो मन्त्रादस्मादसंशयम् ॥ यस्मात्त्वंमन्त्रमेका ग्रो ध्यायन्वल्मीकमाश्रितः ॥ ६१ ॥ तस्माद्वाल्मीकिनामात्वं भविष्यसिमहीतले ॥ स्वच्छन्दाभारतीदेवी जिह्वाग्रेच

खोदीजाती है ॥ ५६ ॥ हे ब्राह्मणो ! तीर्थयात्रा के लिये जाइये मैंने सब कर्मको छोड़ दिया ॥ ५७ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मेरे माता, पिता व स्त्री से कहियेगा कि सब संगोंको छोड़कर वैशाख प्राप्तहुआ है ॥ ५८ ॥ और पहले की नाईं वह आपलोगों के साथ दर्शन नहीं चाहता है ऋषिलोग बोले कि हे मुने ! यहां बसते हुये तुम को बहुत वर्ष बीतगये ॥ ५९ ॥ वे सब और जो अन्य कुटुम्बी थे वे नाशको प्राप्तहुये हे मुनिश्रेष्ठ ! हमलोग बहुत दिनोंसे इस स्थान में आये हैं ॥ ६० ॥ सो तुम इस मन्त्रसे निस्सन्देह सिद्धिको प्राप्त हुयेहो जिसलिये एकाग्र होकर मन्त्रको ध्यान करतेहुये तुम बल्मीक (बेंबौरि) में आश्रित हुये ॥ ६१ ॥ इसलिये तुम भूतल

में वाल्मीकिनामक होंगे और जिह्वा के अग्रभाग में स्वच्छन्द सरस्वती देवी होगी ॥ ६२ ॥ और रामायण काव्यकर तदनन्तर मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ ६३ ॥ वैशाख बोले कि हे द्विजोत्तमो ! अपनी गुरुदक्षिणा को ग्रहण कीजिये कि जिससे मैं उऋण होकर बड़ा तप करूं ॥ ६४ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे विप्रजी ! तुम्हारी यही गुरुदक्षिणा है कि जो तुम सिद्धिको प्राप्तहुये हो व हे मुने ! सब कामनाओं से समृद्धात्मा हुयेहो और हमलोग कृतार्थ होगये ॥ ६५ ॥ तुम फिर वरदान को मांगिये जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो वाल्मीकिजी बोले कि आपलोग यदि मेरे ऊपर प्रसन्न हो और यदि मुझको वर देनेयोग्य है ॥ ६६ ॥ तो मुझ से शीघ्रही कहिये कि

भविष्यति ॥ ६२ ॥ कृत्वारामायणंकाव्यं ततोमोक्षंगमिष्यति ॥ ६३ ॥ वैशाख उवाच ॥ गृह्यतांद्विजशार्दूल आत्मनो गुरुदक्षिणा ॥ येनाहमनृणोभूत्वा करोमिसुमहत्तपः ॥ ६४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एषातेदक्षिणाविप्र यत्त्वंसिद्धिमुपागतः ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा कृतकृत्यावयम्मुने ॥ ६५ ॥ वरंवरयभूयस्त्वं यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ भवन्तोय दितुष्टामे यदिदेयोवरोमम ॥ ६६ ॥ कथ्यतांतर्हिमेशीघ्रं कोदेवोह्यत्रसंस्थितः ॥ देविकायास्तटेरम्ये सर्वकामफलप्र दः ॥ ६७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ शृणुष्वैकमनाविप्र योदेवश्चात्रसंस्थितः ॥ पश्यवृक्षमिमंविप्र बहुशाखाप्रविस्तरम् ॥ ६८ ॥ अस्यमूलेस्थितस्सूर्यः कल्पादौब्रह्मणोंशजः ॥ तमाराधयतत्त्वेन अस्यस्थानस्यदैवतम् ॥ ६९ ॥ सूर्यक्षेत्रंसमाख्या तमिदंगव्यूतिमात्रकम् ॥ अत्रस्थानेस्थितायेपि तेषांस्वर्गोध्रुवंभवेत् ॥ ७० ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाराधयामासतंरविम् ॥ ततस्तुष्टोदिवानाथो वरंब्रूहितमब्रवीत् ॥ ७१ ॥ विप्र उवाच ॥ अद्यप्रभृतिदेवेश मूलस्थानमितिश्रुतम् ॥ स्थानंभवतुदे

यहां देविकानदी के सुन्दर तटपै सब कामनाओं के फलको देनेवाला कौन देवता स्थित है ॥ ६७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे विप्रजी ! एक मनवाले होकर सुनिये कि यहां जो देवता स्थितहै हे विप्रजी ! बहुत शाखाओं के विस्तारवाले इस वृक्षको देखिये ॥ ६८ ॥ कल्पके आदि से ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न सूर्यनारायणजी इसके मूल (जड़) में स्थित हैं इस स्थान के देवता उन सूर्यनारायण को यथार्थ आराधन कीजिये ॥ ६९ ॥ दो कोसभर यह स्थान सूर्यक्षेत्र कहागया है व इस स्थान में जो स्थित हैं उनको निश्चयकर स्वर्ग होताहै ॥ ७० ॥ उनके उस वचन को सुनकर उसने उन सूर्यनारायण को आराधन किया तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये सूर्य

नारायणने उससे कहा कि वरदानको मांगिये ॥ ७१ ॥ ब्राह्मण बोला कि हे देवेश! आजसे लगाकर मूलस्थान ऐसा प्रसिद्ध स्थान होवै व हे देवेश ! तुमको यहां स्थिति करना चाहिये ॥ ७२ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे द्विजेन्द्र ! आजसे लगाकर देविकानदी के तटपै स्थित यह तीर्थ पृथ्वी में उत्तम सिद्धिको प्राप्त होगा ॥ ७३ ॥ पहले ...में स्थित सूर्यनारायण जिसलिये प्रसन्न हुयेहैं उसी कारण संसारमें मूलस्थान ऐसा नाम प्रसिद्धि को प्राप्तहोगा ॥ ७४ ॥ जो मनुष्य व हे विप्रजी ! यहां भक्तिसे सूर्य के उत्तर सङ्गम में स्नान करैंगे वे स्वर्गको जावैंगे ॥ ७५ ॥ हे द्विजोत्तम ! तिलमिलेहुये जल से, तर्पण से पितरोंकी गयाश्राद्धके समान तुष्टि

...त्वा कार्याचात्रत्वयास्थितिः ॥ ७२ ॥ सूर्य उवाच ॥ अद्यप्रभृतिविप्रेन्द्र तीर्थमेतन्महीतले ॥ गमिष्यतिपरांख्यातिं देविकातटमाश्रितम् ॥ ७३ ॥ सूर्यस्तुष्टोयतोविप्र मूलस्थानेपुरास्थितः ॥ मूलस्थानेतिवैनाम लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ ७४ ॥ अत्रयेमानवाभक्त्या स्नानंसूर्यस्यसङ्गमे ॥ उत्तरेतुकरिष्यन्ति तेयास्यन्तित्रिविष्टपम् ॥ ७५ ॥ तर्पणात्तिलमिश्रेण जलेनाद्विजसत्तम ॥ गयाश्राद्धसमातुष्टिः पितॄणांचभविष्यति ॥ ७६ ॥ अत्रयेमानवाभक्त्या श्राद्धंदास्यन्ति सत्तमाः ॥ शाकमूलफलैर्वापि पिण्याकेनगुडेनवा ॥ ७७ ॥ तेयास्यन्तिपरंमोक्षं नात्रकार्याविचारणा ॥ अपिकीटपतङ्गाये पक्षिणःपशवोमृगाः ॥ ७८ ॥ तृषार्त्ताजलसंस्पर्शाद् यास्यन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ अहमेवसदात्रस्थः श्रावणेमासि सत्तम ॥ ७९ ॥ पौर्णमास्यांभविष्यामि तवस्नेहादसंशयम् ॥ तस्मिन्नहनियस्तोयैः पितॄन्सन्तर्पयिष्यति ॥ ८० ॥ तस्याष्टादशकुष्ठानि क्षयंयास्यन्तितत्क्षणात् ॥ कापालोदुम्बराख्येतु मण्डलाख्यंविचर्चिका ॥ ८१ ॥ ऋक्षजिह्वंकच्छु

होगी ॥ ७६ ॥ जो श्रेष्ठ विद्वान् मनुष्य यहां भक्तिसे शाक, मूल, फल, पीना व गुड़ से श्राद्धको देवैंगे ॥ ७७ ॥ वे उत्तममोक्ष को प्राप्तहोंगे इसमें विचार न करना चाहिये और जो कीट, पतङ्ग, पक्षी, पशु व मृगहैं ॥ ७८ ॥ वे प्यास से विकल जलके स्पर्शसे उत्तमगतिको प्राप्तहोवैंगे व हे सत्तम ! श्रावण महीने में पौर्णमासी तिथि में सदैव तुम्हारे स्नेहसे यहां स्थित हूंगा इसमें सन्देह नहीं है उस दिन जो मनुष्य जलोंसे पितरों को भलीभांति तर्पण करैगा ॥ ७९ । ८० ॥ उसके उसीक्षण अठा-

रह कुष्ठ नाशको प्राप्त होवैंगे कापाल, औदुम्बर, मण्डलनामक व विचर्चिका ॥ ८१ ॥ ऋक्षजिह्व, कृच्छु, किटिभ, सिध्म, अलस, विपादिका, दद्रु, शतारु, विस्फोटक, पुण्डरीक, काकण ॥ ८२ ॥ व पामा, चर्मदल और चर्म ये अठारह कुष्ठ जाते रहैंगे इसमें सन्देह नहीं है यह कहकर सूर्यनारायण अन्तर्द्धान होगये ॥ ८३ ॥ और ऋषिने सूर्यनारायण को आराधन किया तदनन्तर रामायण को बनाया इसलिये सब यज्ञों के फलको देनेवाले उन सूर्यदेव को देखै ॥ ८४ ॥ और समस्त पातकों को नाश करनेवाली इस कथाको सुनै ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांदेविकामाहात्म्येमूलस्थानमाहात्म्यंनामसप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥

किटिभे सिध्मालसविपादिकाः ॥ दद्रुश्शतारुर्विस्फोटं पुण्डरीकंचकाकणम् ॥ ८२ ॥ पामाचर्मदलंचर्म कुष्ठानष्टादशैवतु ॥ गमिष्यन्तिनसन्देह इत्युक्त्वान्तर्दधेरविः ॥ ८३ ॥ ऋषिराराधयामास चक्रेरामायणन्ततः ॥ तस्मात्पश्येच्चतन्देवं सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥ ८४ ॥ शृणुयाच्चकथांचैनांसर्वपातकनाशिनीम् ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देविकामाहात्म्येमूलस्थानमाहात्म्यन्नामसप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५७ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि च्यवनार्कमनुत्तमम् ॥ हिरण्यापूर्वभागस्थं च्यवनेनप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ सर्वकामप्रदंनृणां पूजितंविधिवन्नरैः ॥ सप्तम्याञ्चविधानेन यश्चस्तौतिरविंनरः ॥ २ ॥ अष्टोत्तरशतैर्नाम्नां सम्यक्छ्रद्धास ...नः ॥ शृणुतानिमहादेवि शुचिर्भूत्वासमाहिता ॥ ३ ॥ तवस्नेहादहन्देवि सर्ववक्ष्याम्यशेषतः ॥ ४ ॥ धौम्येनतु

दो॰। च्यवन... थाप्यो यथा च्यवन नाम मुनिनाथ। दोसौ अट्ठावने महँ सोई वर्णित गाथ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्या के पूर्वभागमें स्थित च्यवनजी से ... ने अति उत्तम च्यवनार्कजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि मनुष्यों से विधिपूर्वक पूजित व मनुष्यों के सब कामनाओंके फलको देनेवालेहैं सप्तमी तिथिमें जो मनुष्य ... ति श्रद्धासंयुत होकर एक सौ आठ नामोंसे सूर्यनारायण की स्तुति करताहै वह अपने मनोरथको प्राप्तहोताहै हे महादेवि ! पवित्र होकर सावधान होतीहुई तुम उन नामों को सुनो ॥ २ । ३ ॥ हे देवि ! तुम्हारे स्नेहसे मैं सम्पूर्णता से सब कहूंगा ॥ ४ ॥ हे महामते ! पुरातन समय जिस

प्रकार धौम्यऋषि ने महात्मा युधिष्ठिरजी से एक सौ आठ नामोंको कहाहै उसको सुनिये ॥ ५ ॥ सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता व प्रभाकर ॥ ६ ॥ पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, पवन, परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, मङ्गल ॥ ७ ॥ इन्द्र, विवस्वान्, दीप्तकिरण, शुचि, सौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, स्वामिकार्त्तिकेय, कुबेर, यमराज ॥ ८ ॥ विद्युत, जाठराग्नि, इन्धनाग्नि व तेजोंके स्वामी, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदाङ्ग, वेद-वाहन ॥ ९ ॥ सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, संवत्सरात्मक, कला, काष्ठा, मुहूर्त, पक्ष, मास, अहर्निश ॥ १० ॥ संवत्सरकारक, निर्मल, कालचक्र, विभावसु, पुरुष,

यथापूर्वं पार्थायसुमहात्मने ॥ नामाष्टशतमाख्यातं तच्छृणुष्वमहामते ॥ ५ ॥ ॐसूर्योर्यमाभगस्त्वष्टा पूषार्कस्सवितारविः ॥ गभस्तिमानजःकालो मृत्युर्धाताप्रभाकरः ॥ ६ ॥ पृथिव्यापश्चतेजश्च खंवायुश्चपरायणः ॥ सोमोबृहस्पतिःशुक्रो बुधोङ्गारकएवच ॥ ७ ॥ इन्द्रोविवस्वान्दीप्तांशुः शुचिस्सौरिश्शनैश्चरः ॥ ब्रह्मारुद्रश्चविष्णुश्च स्कन्दोवैश्रवणोयमः ॥ ८ ॥ विद्युतोजाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसाम्पतिः ॥ धर्मध्वजोवेदकर्त्ता वेदाङ्गोवेदवाहनः ॥ ९ ॥ कृतंत्रेताद्वापरश्च कलिःसंवत्सरात्मकः ॥ कलाकाष्ठामुहूर्ताश्च पक्षोमासस्त्वहर्निशम् ॥ १० ॥ संवत्सरकरःस्वच्छः कालचक्रोविभावसुः ॥ पुरुषश्शाश्वतोयोगी व्यक्ताव्यक्तस्सनातनः ॥ ११ ॥ लोकाध्यक्षःप्रजाध्यक्षो विश्वकर्मातमोनुदः ॥ वरुणस्सागरोगस्त्यो जीमूतोजीवनौषधम् ॥ १२ ॥ भूताश्रयोभूतपतिः सर्वभूतनिषेवितः ॥ श्रेष्ठस्संवर्तकोवह्निस्सर्वस्यादिकरोमलः ॥ १३ ॥ अनन्तःकपिलोभानुः कामदस्सर्वतोमुखः ॥ जयोनिषादोवरदः सर्वशत्रुनिषेवितः ॥ १४ ॥ समस्सुवर्णोभूतादिश्शीघ्रगःप्राणधारकः ॥ धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोदितेस्सुतः ॥ १५ ॥ द्वादशात्मारविन्दाक्षः पितामा

शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन ॥ ११ ॥ लोकाध्यक्ष, प्रजापति, विश्वकर्मा, अन्धकारनाशक, वरुण, सागर, अगस्त्य, जीमूत, जीवनौषध ॥ १२ ॥ भूताश्रय, भूतपति, समस्त प्राणियों से सेवित, श्रेष्ठ, संवर्तक, वह्नि, सबके आदिकारक व निर्मल ॥ १३ ॥ अनन्त, कपिल, भानु, कामदायक, सर्वतोमुख, जय, निषाद, वर-दायक व सब शत्रुवों से सेवित ॥ १४ ॥ सम, सुवर्ण, भूतादि, शीघ्रगामी, प्राणधारक, धन्वन्तरि, धूम्रकेतु, आदिदेव, अदिति के पुत्र ॥ १५ ॥ द्वादशात्मा, कमल-

तापितामहः ॥ स्वर्गद्वारंप्रजाद्वारं मोक्षद्वारंत्रिविष्टपः ॥ १६ ॥ देहकर्त्ताप्रशान्तात्मा विश्वात्माविश्वतोमुखः ॥ चराचरा
त्मासूक्ष्मात्मा मित्रेणवपुषान्वितः ॥ १७ ॥ एतद्वैकीर्त्तनीयस्य सूर्यस्यामिततेजसः ॥ नाम्नामष्टशतंप्रोक्तं शक्रेणसुम
हात्मना ॥ १८ ॥ शक्राच्चनारदःप्राप धौम्यस्तुतदनन्तरम् ॥ धौम्याद्युधिष्ठिरःप्राप्य सर्वान्कामानवाप्तवान् ॥ १९ ॥
सूर्योदयेयस्तुसमाहितःपठेत्सपुत्रलाभंधनरत्नसंचयान् ॥ लभेतजातिस्मरणंसदानरस्स्मृतिंचमेधाञ्चसविन्दतेपुमान् ॥
२० ॥ इदंस्तवन्देववरस्ययोनरः प्रकीर्त्तयेद्वैसुमनास्समाहितः ॥ समुच्यतेशोकदवाग्निरोगाल्लभेतकामान्मनसायथे
प्सितान् ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेच्यवनादित्यमाहात्म्यसूर्याष्टोत्तरशतनामवर्णनन्नामाष्टपञ्चाशद
धिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि च्यवनेश्वरमुत्तमम् ॥ तत्रैवसंस्थितंलिङ्गं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ यत्रश

नयन, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, स्वर्ग ॥ १६ ॥ शरीरकारक, प्रशान्तचित्त, जगदात्मा, सर्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा व मित्रशरीर से संयुत ॥ १७ ॥ कीर्तन करनेयोग्य व अतुल तेजवाले सूर्यनारायण के इन एकसौ आठ नामोंको महात्मा इन्द्रजी ने कहा है ॥ १८ ॥ और इन्द्रसे नारद जीने पायाहै तदनन्तर धौम्यने पाया और धौम्यसे युधिष्ठिरजीने प्राप्तहोकर सब कामनाओंको पायाहै ॥ १९ ॥ सूर्योदय में सावधान होताहुआ जो पुरुष इस स्तोत्रको पढ़ता है वह पुत्रलाभ व धन तथा रत्नोंके समूहों को प्राप्त होताहै और वह मनुष्य सदैव जातिके स्मरण व स्मृति व बुद्धिको पाताहै ॥ २० ॥ देवताओं में श्रेष्ठ सूर्यनारायण के इस स्तोत्रको जो सुन्दर मनवाला मनुष्य सावधान होकर पढ़ता है वह शोकरूपी दावाग्नि के रोगसे छूटजाता है और मनसे चाहेहुये मनोरथों को पाता है ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांच्यवनादित्यमाहात्म्यसूर्याष्टोत्तरशतनामवर्णनन्नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५८ ॥

दो० । यथा सुकन्या को लह्यो च्यवननाम मुनिनाथ । दोसौ उन्सठि में सोई बरण्यो उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम च्यवने-

श्वरजी के समीप जावै वहींपर समस्त पातकों का नाशक वह लिङ्ग स्थितहै ॥ १ ॥ जहांपर शर्यातिने उस सुकन्याको च्यवन महर्षि के लिये दियाहै और जहां उन की सेना स्तम्भित कीगई व उन च्यवन ने आनाहरोग से विकल किया ॥ २ ॥ हे देवि ! साक्षात् पातकों के विनाशक प्रभासक्षेत्र के मध्यमें यह शर्याति राजाके यज्ञ का देश (स्थान) प्रकाशितहै ॥ ३ ॥ उनके यज्ञमें कौशिकजी ने अश्विनीकुमारों समेत सोमको पियाहै और बड़े तपस्वी भार्गव (च्यवन) जीने इन्द्रकेलिये क्रोध किया ॥ ४ ॥ और उन च्यवन प्रभुने इन्द्रको स्तम्भित किया और उन्होंने सुकन्या राजकन्याको स्त्री पायाहै ॥ ५ ॥ देवीजी बोलीं कि उन च्यवनजीने भगवान् इन्द्रको

र्यातिनादत्ता सुकन्यासामहर्षये ॥ यत्रसंस्तम्भितंसैन्यमानाहार्तमथाकरोत् ॥ २ ॥ एषशर्यातियज्ञस्य देशोदेविप्र काशते ॥ प्रभासक्षेत्रमध्येतु साक्षात्पातकनाशने ॥ ३ ॥ तस्ययज्ञेपिबत्सोममश्विभ्यांसहकौशिकः ॥ चुकोपभार्ग वश्चैव महेन्द्रायमहातपाः ॥ ४ ॥ संस्तम्भयामासशक्रं सैषतुच्यवनःप्रभुः ॥ सुकन्यांचापिभार्यांस राजपुत्रीमवाप्तवा न् ॥ ५ ॥ देव्युवाच ॥ कथंविष्टम्भितस्तेन भगवान्पाकशासनः ॥ किमर्थंभार्गवश्चापि कोपंचक्रेमहातपाः ॥ ६ ॥ नास त्यौचकथन्देव कृतवान्सोमपौचतौ ॥ एतत्सर्वंयथावृत्तमाख्यातुभगवान्मम ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ भृगोर्महर्षेःपुत्रोभू च्च्यवनोनामनामतः ॥ सप्रभासंसमासाद्य तपस्तेपेमहामुनिः ॥ ८ ॥ स्थाणुभूतोमहातेजा वीरस्थानश्चभामिनि ॥ अतिष्ठत्सबहून्कालानेकदेशेवरानने ॥ ९ ॥ सवल्मीकोभवत्तत्र लताभिरभिसंवृतः ॥ कालेनमहतादेवि समाकीर्णः पिपीलिकैः ॥ १० ॥ सतथासंवृतोधीमान् मृत्पिण्डइवसर्वतः ॥ तपन्तिस्मतपोघोरं वल्मीकेनसमावृतः ॥ ११ ॥ अथ

किसलिये स्तम्भित कियाहै और किसकारण भगवान् च्यवन महातपस्वीने क्रोध किया है ॥ ६ ॥ व हे देव ! उन अश्विनीकुमारों को किसकारण सोमप किया इस सब यथायोग्य वृत्तान्त को आप मुझ से कहिये ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि महर्षि भृगुजी के च्यवन नामक पुत्र हुआहै उस मुनिने प्रभासक्षेत्र को जाकर तप किया है ॥ ८ ॥ हे भामिनि ! वे बड़े तेजस्वी मुनि वीरस्थान याने वीरासन पै स्थाणुभूत (खम्भाकी नाईं) होगये और हे वरानने ! एकही स्थान पै वे बहुत समय तक स्थित रहे ॥ ९ ॥ हे देवि ! वहां लताओं से घिरीहुई वह बँबौरि होगई और बहुत समय के बाद चींटियों से व्याप्त होगई ॥ १० ॥ सबओर से मिट्टी के पिण्ड

की नाईं आच्छादित वह बुद्धिमान् बँबौरि से घिरकर भयङ्कर तप करताभया ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर किसी समय शर्यातिनामक राजा तीर्थयात्रा के प्रसङ्गसे श्रीसोमेश जीके देखने की इच्छा से ॥ १२ ॥ पापनाशक प्रभास महाक्षेत्र को आया और उस राजा के चार हज़ार स्त्रिया थीं ॥ १३ ॥ और सुन्दरी भौंहोंवाली सुकन्यानामक एकही कन्याथी सब गहनों से भूषित व सखियों से घिरीहुई वह ॥ १४ ॥ विचरती हुई भार्गव (च्यवन) जी के आश्रमको प्राप्त हुई और सुन्दर दांतोंवाली तथा सखियों से घिरीहुई वह सुन्दर वनस्पतियों को देखती व ढूंढ़ती हुई विहार करती रही और रूप, अवस्था व मदिरा पीनेके मदमे ॥ १५ ॥ १६ ॥ उसने वनके वृक्षोंकी

कस्यापिकालस्य शर्यातिर्नामपार्थिवः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन श्रीसोमेशदिदृक्षया ॥ १२ ॥ आजगाममहाक्षेत्रं प्रभासं पापनाशनम् ॥ तस्यस्त्रीणांसहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः ॥ १३ ॥ एकैवतुसुतासुभ्रूः सुकन्यानामनामतः ॥ सासखीभिःपरिवृता सर्वाभरणभूषिता ॥ १४ ॥ चङ्क्रम्यमाणावल्मीकं भार्गवस्यसमासदत् ॥ साचैवसुदतीतत्र पश्यमानामनोरमान् ॥ १५ ॥ वनस्पतीन्विचिन्वन्ती विजहारसखीवृता ॥ रूपेणवयसाचैव सुरापानमदेनच ॥ १६ ॥ बभञ्जवनवृक्षाणां शाखाःपरमपुष्पिताः ॥ तांसखीसहितामेकामेकवस्त्रामलंकृताम् ॥ १७ ॥ ददर्शभार्गवोधीमांश्चरन्तीमिवविद्युतम् ॥ तांपश्यमानोविजने सरेमेपरमद्युतिः ॥ १८ ॥ क्षामकण्ठश्चब्रह्मर्षिस्तपोबलसमन्वितः ॥ तामभाषतकल्याणीं सावाचंन शृणोतिवै ॥ १९ ॥ ततस्सुकन्यावल्मीके दृष्ट्वाभार्गवचक्षुषी ॥ कौतूहलात्कण्टकेन बुद्धिमोहबलान्विता ॥ २० ॥ किन्नुखल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्यलोचने ॥ अक्रुध्यततथाविद्धे नेत्रेसपरमःपुमान् ॥ २१ ॥ ततश्शर्यातिसैन्य

बहुतही फूलीहुई डालोंको तोड़डाला सखियों समेत व एक वस्त्रोंवाली तथा भूषित उस एक सुकन्याको ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् भार्गवजी ने बिजली की नाईं चलती हुई देखा और निर्जनवनमें उसको देखतेहुये वे बड़े द्युतिमान् च्यवनजी रमण करतेरहे ॥ १८ ॥ और तपस्याके बलसे संयुत व दुर्बल कण्ठवाले वे ब्रह्मर्षि उस कल्याणी से बोलते थे और वह वचन को नहीं सुनती थी ॥ १९ ॥ तदनन्तर सुकन्या ने बँबौरि में भार्गव च्यवनजी के नेत्रोंको देखकर बुद्धिके मोहबल से संयुत होकर यह क्या है ऐसा कहकर कौतुकसे इनके नेत्रोंको कांटेसे फोड़डाला और उससे नेत्रोंके विद्ध होनेपर उन परमपुरुष च्यवनजीने क्रोधकिया ॥ २० । २१ ॥ तदनन्तर शर्याति

राजाकी सेनाके मूत्र व विष्ठाको रोंकदिया उसके उपरान्त विष्ठा व मूत्रके रुकनेपर इस राजाकी सेना बहुत दुःखित हुई ॥ २२ ॥ और तपस्या में निष्ठ व ब्राह्मण के क्रोधसे वैसी हुई सेनाको देखकर राजा विशेषकर दुःखी हुआ ॥ २३ ॥ यहा आज महात्मा भार्गव (च्यवन) जीका किसने अपकार कियाहै जानागया हो या न जानागया हो उसको तुमलोग शीघ्रही कहो ॥ २४ ॥ सब सेनावाले पुरुषोंने उस राजा से कहा कि हमलोग अपकारीको नहीं जानते हैं आप इच्छाके अनुकूल सब यत्नोंसे जानिये ॥ २५ ॥ तदनन्तर उस पृथ्वीपालने उग्र साम (समझाने) से मित्रवर्ग से आपही पूंछा कि मैंने नहीं जाना ॥ २६ ॥ तदनन्तर उस सेनाको

स्य शकृन्मूत्रेसमावृणोत् ॥ ततोरुद्धेशकृन्मूत्रे सैन्यमस्यसुदुःखितम् ॥२२॥ तथाभूतमभिप्रेक्ष्य पर्यतप्यतपार्थिवः॥ तपोनिष्ठस्यरोषेण ब्राह्मणस्यविशेषतः ॥ २३ ॥ केनापकृतमद्येह भार्गवस्यमहात्मनः ॥ ज्ञातंवायदिवाज्ञातं तदिदंब्रूत माचिरम् ॥ २४ ॥ तमूचुस्सैनिकास्सर्वे नविद्मोपकृतंवयम् ॥ सर्वोपायैर्यथाकामं भवान्समधिगच्छतु ॥ २५ ॥ ततस्स पृथिवीपालस्साम्नाचोग्रेणचस्वयम् ॥ पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं प्रतिज्ञातंनचैवमे ॥ २६ ॥ आनाहार्तंततोदृष्ट्वा तत्सैन्यमसुखार्दितम् ॥ पितरंदुःखितंचापि सुकन्यैनमथाब्रवीत् ॥ २७॥ मयाटन्त्येहवल्मीके दृष्टंसत्त्वमभिज्वलत् ॥ खद्योतवद विज्ञानान्मयाविद्धन्तुकौतुकात्॥ २८ ॥ एतच्छ्रुत्वातुशर्यातिर्वल्मीकंक्षिप्रमभ्यगात् ॥ तत्रापश्यत्तपोवृद्धं वयोवृद्धञ्च भार्गवम् ॥ २९ ॥ अथावदत्तुसैन्यार्थे प्राञ्जलिस्समहीपतिः ॥ अज्ञानाद्बालयायत्ते कृतंतत्क्षन्तुमर्हसि ॥ ३० ॥ ततो ब्रवीन्महीपालं च्यवनोभार्गवस्तदा ॥ रूपौदार्यसमायुक्तां लोभमोहसमन्विताम् ॥ ३१ ॥ तामेवप्रतिगृह्याहं राजन्दु

आनाई (विष्ठा मूत्रके रुकने) से विकल व दुःखसे व्याकुल देखकर और पिताको भी दुःखित देखकर सुकन्या इस शर्याति से बोली॥ २७ ॥ कि यहां घूमतीहुई मैंने बँबौरि में जुगुनू की नाई प्रकाशवान् जन्तुको देखा और अज्ञानसे मैंने कौतुक से वेधन किया ॥ २८ ॥ इस वचन को सुनकर शर्याति शीघ्रही बँबौरि के समीप आये वहा उन्होंने तपस्या से वृद्ध व अवस्था से वृद्ध च्यवनजी को देखा ॥ २९ ॥ इसके उपरान्त हाथोंको जोड़कर उस राजाने सेनाके लिये कहा कि अज्ञानसे कन्याने जो तुम्हारा अपकार कियाहै उसको तुम क्षमा करनेके योग्यहो ॥ ३० ॥ तदनन्तर उस समय भृगुके पुत्र च्यवनजीने भूपाल से कहा कि हे भूपाल,राजन् ! रूप व उदारता

से संयुत तथा लोभ व मोहसे युक्त तुम्हारी उसी कन्याको ग्रहणकर क्षमा करूंगा मैं इसको तुमसे सत्य कहताहूं ॥ ३१ । ३२ ॥ महादेवजी बोले कि ऋषिके वचनको जानकर न विचारतेहुये शर्यातिने उन महात्मा च्यवनजी के लिये कन्याको दिया ॥ ३३ ॥ और वे भगवान् च्यवनजी उस कन्याको पाकर प्रसन्नहुये व प्रसन्नता को प्राप्त होनेपर सेना समेत राजा नगर को आया ॥ ३४ ॥ और सुकन्या ने उन प्रशंसनीय व तपस्वी च्यवनजी को पाकर प्रीति से तपस्या व नियमसे नित्य सेवा किया ॥ ३५ ॥ शीघ्रही मुनियों व पाहुनों की सेवाकर वह सुन्दरमुखी सुकन्या उन च्यवनजीकी सेवा करती थीं ॥३६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमि

हितरन्तव ॥ क्षमिष्यामिमहीपाल सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥ ३२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ऋषेर्वचनमाज्ञाय शर्यातिरविचारय न् ॥ ददौदुहितरंतस्मै च्यवनायमहात्मने ॥ ३३ ॥ सप्रतिगृह्यतांकन्यां भगवान्प्रससादह ॥ प्राप्तेप्रसादेराजास स सैन्यपुरमाव्रजत् ॥ ३४ ॥ सुकन्यातम्पतिंलब्ध्वा तपस्विनमनिन्दितम् ॥ नित्यंपर्यचरत्प्रीत्या तपसानियमेनच ॥ ३५ ॥ मुनीनामतिथीनांहि शुश्रूषांचविधायवै ॥ आराधयतितंक्षिप्रं च्यवनंसाशुभानना ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुरा णेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रतीर्थयात्रायांच्यवनेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २५९ ॥

ईश्वर उवाच ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य त्रिदशावश्विनौप्रिये ॥ कृताभिषेकांसुदतीं सुकन्यांतावपश्यताम् ॥ १ ॥ तान्दृष्ट्वादर्शनीयाङ्गीं देवराजसुतामिव ॥ ऊचतुस्समभिप्रेत्य नासत्यावश्विनाविदम् ॥ २ ॥ कस्यत्वमसिवामोरु किंवनेस्मिंश्चिकीर्षसि ॥ इच्छावस्त्वामथज्ञातुंतत्त्वमाख्याहिशोभने ॥ ३ ॥ ततस्सुकन्यासम्प्रीता तावुवाचसुरोत्तमौ ॥

अविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रतीर्थयात्रायांच्यवनेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २५९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । महावृद्ध जिमि च्यवनमुनि भये मनोहर रूप । सो दोसौ अरु साठिमें कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! इसके अनन्तर किसी समय उन अश्विनीकुमार देवताओं ने स्नान कियेहुई सुन्दर दांतोंवाली उस सुकन्याको देखा ॥ १ ॥ और देखनेयोग्य अङ्गोंवाली उसको इन्द्रकी कन्याकी नाई देखकर अश्विनीकुमारोंने सामने जाकर यह कहा ॥ २ ॥ कि हे वामोरु ! तुम किसकी स्त्री हो व इस वनमें क्या करना चाहतीहो हे शोभने ! तुमको हम दोनों जाना चाहते हैं

उसको कहिये ॥ ३ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतीहुई सुकन्या उन सुरोत्तमों से बोली कि मुझको शर्याति की कन्या व च्यवनकी स्त्री जानिये ॥ ४ ॥ तदनन्तर अश्विनीकुमार इससे हँसकर फिर बोले कि पिताने जानकर कैसे तुमको इन क्षीणआयुर्बलवाले च्यवन के लिये दियाहै ॥ ५ ॥ और इस स्थानमें प्राप्त तुम सौदामिनी बिजली की नाईं शोभितहो हे भामिनि ! देवताओं में भी तुम्हारे समान नहीं देखताहूं ॥ ६ ॥ व सब आभूषणोंसे संयुत तथा उत्तम वस्त्रोंको धारनेवाली व निर्दोष अङ्गोंवाली तुम इन वृद्ध व अविवेकी च्यवन को छोड़ दीजिये ॥ ७ ॥ और हे कल्याणि ! इसप्रकार की होकर तुम पृथ्वीमें वृद्धता से जर्जरित तथा कामदेव के

शर्यातितनयांविद्धि भार्याञ्चच्यवनस्यमाम् ॥ ४ ॥ ततोश्विनौप्रहस्यैनामब्रूतांपुनरेवतु ॥ कथंचास्मैविदित्वातु पित्रादत्तागतायुषे ॥ ५ ॥ भ्राजसेत्रगतादेशे विद्युत्सौदामिनीयथा ॥ नदेवेष्वपितुल्यांहि त्वांपश्यामिचभामिनि ॥ ६ ॥ सर्वाभरणसम्पन्ना परमाम्बरधारिणी ॥ वृद्धंत्वमनवद्याङ्गी त्यजैनमविवेकिनम् ॥ ७ ॥ कस्मादेवंविधाभूत्वा जराजर्ज्जरितम्भुवि ॥ रमयस्यत्रकल्याणि कामभावबहिष्कृतम् ॥ ८ ॥ असमर्थंपरित्राणे पोषणेवाशुचिस्मिते ॥ सात्वंच्यवनमुत्सृज्य वरयस्वैकमावयोः ॥ ९ ॥ पत्यर्थन्देवगर्भाभे मावृथायौवनंकृथाः ॥ एवमुक्तासुकन्यासा सुरौताविदमब्रवीत ॥ १० ॥ रताहंच्यवनेपत्यौ मैवंवांपर्यशङ्कताम् ॥ तावब्रूतां पुनश्चैनामावान्देविभिषग्वरौ ॥ ११ ॥ युवानंरूपसम्पन्नं करिष्यामिपतिन्तव ॥ ततस्तस्यावयोश्चैव पतिमेकतमंवृणु ॥ १२ ॥ एतेनसमयेनावां समुन्नयसुमध्यमे ॥

भावसे बाहर कियेहुये इनको किसकारण इस संसार में रमणकराती हो ॥ ८ ॥ हे शुचिस्मिते ! रक्षा करनें व पालन करनें में असमर्थ च्यवनजी को छोड़कर सो तुम हम दोनोंके मध्यमें एकको पतिके लिये वरण करिये हे देवगर्भाभे ! यौवनको मत वृथा करिये इसप्रकार कहीहुई वह सुकन्या उन देवताओं से बोली ॥ ९।१० ॥ कि मैं च्यवन पतिमें आसक्तहूं और तुम दोनों ऐसी मत शङ्का करिये फिर वे दोनों इससे बोले कि हे देवि ! वैद्योंमें उत्तम हम दोनों ॥ ११ ॥ तुम्हारे पतिको रूप से युत व ज्वान करैंगे तदनन्तर उनको या हम दोनोंके मध्यमें एक पतिको वरण कीजियेगा ॥ १२ ॥ हे सुमध्यमे ! इस सिद्धान्त से हम दोनों को उन्नत कीजिये हे

देवि ! उन दोनों के वचनसे वह सुकन्या भार्गव (च्यवन) जी के समीप जाकर ॥ १३ ॥ जो वचन भृगुपुत्र च्यवनजी के निमित्त उन दोनों से कहागया था उस वाक्यको उसने कहा और च्यवन ने स्त्री से यह कहा कि वह वचन आदर कियाजावै ॥ १४ ॥ च्यवनजी से ऐसा कहीहुई वह सुकन्या दिव्यरूपवाले अश्विनीकुमारों से बोली कि हे देववैद्यो ! आप दोनोंने जो कहा वह शीघ्रही कियाजावै ॥ १५ ॥ वहां उस सुकन्या से इसप्रकार कहेहुये उन वैद्य अश्विनीकुमारों ने उस राजकन्या से कहा कि तुम्हारा पति तड़ाग में पैठे ॥ १६ ॥ तदनन्तर रूप को चाहनेवाले च्यवन भी शीघ्रही तड़ागमें पैठगये तदनन्तर हे देवि ! अश्विनी-

सातयोर्वचनाद्देवि उपसङ्गम्यभार्गवम् ॥ १३ ॥ उवाचवाक्यंयत्ताभ्यामुक्तंभृगुसुतम्प्रति ॥ तद्वाक्यंच्यवनोभार्यामुवाचाद्रियतामिति ॥ १४ ॥ इत्युक्ताच्यवनेनाथ दिव्यरूपावुवाचवै ॥ देववैद्योभवद्भ्यांयत् प्रोक्तंतत्क्रियतांलघु ॥ १५ ॥ इत्युक्तौभिषजौतौच तयातत्रसुकन्यया ॥ ऊचतूराजपुत्रींतां पतिस्तवविशेत्सरः ॥ १६ ॥ ततोपिच्यवनश्शीघ्रं रूपार्थीप्रविवेशह ॥ अश्विनावपितद्देवि ततोविविशतुर्जलम् ॥ १७ ॥ ततोमुहूर्त्तादुत्तीर्णास्सर्वेतेसरसस्ततः ॥ दिव्यरूपधराभूत्वा युवानोमृष्टकुण्डलाः ॥१८ ॥ दिव्यवेषधराश्चैव मनसःप्रीतिवर्द्धनाः ॥ तेब्रुवन्सहिताःसर्वे वृणीष्वैकतमंशुभे ॥ १९ ॥ अस्माकमीप्सितोभद्रे यस्तेस्तिवरवर्णिनि ॥ यत्रत्वंधृतकामासि तंवृणुष्वसुशोभने ॥ २० ॥ सासमीक्ष्यतुतान्सर्वांस्तुल्यरूपधरान्स्थितान् ॥ निश्चित्यमनसाबुद्ध्या चैकंवव्रेपतिंस्वकम् ॥ २१ ॥ लब्ध्वातुच्यवनोभार्यां वयोरूपसमन्विताम् ॥ हृष्टोब्रवीन्महातेजा तौनासत्याविदंवचः ॥ २२ ॥ यदहंरूपसम्पन्नो वयसाचसमन्वि

कुमारभी उस जलमें पैठे ॥ १७ ॥ तदनन्तर थोड़ी देरमें निर्मल कुण्डलोंवाले व ज्वान वे सब दिव्यरूपधारी होकर उस तड़ागसे ऊपर निकले ॥ १८ ॥ और मन की प्रीतिको बढ़ानेवाले व दिव्यरूपधारी वे सब साथही बोले कि हे शुभे ! एकको वरण कीजिये ॥ १९ ॥ हे वरवर्णिनि, भद्रे ! हम सबोंके मध्यमें जो तुमको प्रियहो और जिसमें तुम कामना को धारेहो हे सुशोभने ! उसको वरण कीजिये ॥२०॥ उसने तुल्यरूपधारी उन सबोंको स्थित देखकर व मनसे और बुद्धिसे निश्चयकर अपने एक पतिको वरणकिया ॥ २१ ॥ और अवस्था व रूपसे संयुत स्त्रीको पाकर प्रसन्न होतेहुये बड़े तेजवान् च्यवनजी उन अश्विनीकुमारोंसे यह वचन बोले ॥ २२॥

कि जिसलिये आप दोनों की कृपासे मैं रूप से संयुक्त व अवस्था से संयुत कियागया और मैंने अपनी स्त्री को पाया ॥ २३ ॥ इसलिये मैं आप दोनों को यज्ञों में भागभाजी करूंगा उस वचन को सुनकर प्रसन्नमनवाले अश्विनीकुमार चलेगये ॥ २४ ॥ और च्यवन व सुकन्या ने देवताओं की नाईं विहार किया ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवींदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांच्यवनेश्वरमाहात्म्यंनामषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥ ● ॥

दो० । शर्यातिहिं करवाय जिमि यज्ञ च्यवन मुनिनाथ । दोसौ इकसठि में सोई वर्णितहै शुभगाथ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर फिर अपने स्थानमें स्थित

तः ॥ कृतोभवद्भ्यांकृपया स्वाम्भार्यांप्राप्तवानिति ॥ २३ ॥ अतोभवन्तौयज्ञेषु करिष्येभागभाजिनौ ॥ तच्छ्रुत्वाहृष्टमनसावश्विनौप्रतिजग्मतुः ॥ २४ ॥ च्यवनोपिसुकन्याच सुराविवविजह्रतुः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे च्यवनेश्वरमाहात्म्यन्नामषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६० ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच॥ ततोभूपस्सशर्यातिस्तदास्वस्थानसंस्थितः ॥ वयस्थंच्यवनंश्रुत्वा आनन्दोद्धतमानसः ॥ १ ॥ प्रहृष्टस्सेनयासार्द्धमुपायाद्भार्गवाश्रमम् ॥ च्यवनंवसुकन्यांच दृष्ट्वादेवसुताविव ॥ २ ॥ रेमेमहीपश्शर्यातिः सत्कृतस्स महीपतिः ॥ ऋषिणासत्कृतस्तेन सभार्यःपृथिवीपतिः ॥ ३ ॥ ततोपविष्टःकल्याणि कथाञ्चक्रेमहामनाः ॥ अथैनंभार्गवोदेवि उवाचपरिसान्त्वयन् ॥ ४ ॥ याजयिष्यामिराजंस्त्वां सम्भाराननुकल्पय ॥ ततःपरमसंहृष्टश्शर्यातिःपृथिवीपतिः ॥ ५ ॥ च्यवनस्यमहादेवि तद्वाक्यंप्रत्यपूजयत् ॥ प्रशस्तेहनियज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमत ॥ ६ ॥ कारयामासश

वह शर्याति राजा उस समय अवस्था में स्थित च्यवनमुनिको सुनकर आनन्दसे उद्धतमन हुआ ॥ १ ॥ और बहुत प्रसन्न होतेहुये वे शर्याति च्यवनजी के आश्रमको आये और च्यवन व सुकन्याको देवताओं के पुत्रोंकी नाईं देखकर वे ॥ २ ॥ सत्कार कियेहुये भूपति शर्यातिजी प्रसन्नहुये और स्त्रीसमेत भूपतिका उन च्यवन ऋषिने सत्कार किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे कल्याणि ! समीप बैठकर उन उदारमनवाले च्यवनजी ने कथाको वर्णन किया इसके अनन्तर हे देवि ! समझातेहुये च्यवनजी इन शर्याति से बोले ॥ ४ ॥ कि हे राजन् ! मैं तुमको यज्ञ कराऊंगा सामग्रियोंको इकट्ठा कीजिये तदनन्तर बहुत प्रसन्न होतेहुये शर्याति भूपतिने ॥ ५ ॥ हे महादेवि ! च्य-

वनके उस वचन का पूजन किया और यज्ञवाले उत्तम दिनमें सब कामनाओं से संमृद्धिमान् ॥ ६ ॥ व उत्तम यज्ञमन्दिर को शर्याति ने बनवाया उसमें भार्गव (च्यवन) जीने इन शर्याति को यज्ञ कराया ॥ ७ ॥ उसमें जो अद्भुत वस्तुवें हुईहैं उनको मुझसे सुनिये कि उससमय च्यवन मुनिने अश्विनीकुमार देवताओं के निमित्त सोमको ग्रहण किया ॥ ८ ॥ और उनको इन्द्रने मनाकिया कि उनके निमित्त भागको मत ग्रहण कीजिये इन्द्रजी बोले कि ये दोनों अश्विनीकुमार सोम के योग्य नहींहैं यह मेरी बुद्धि है ॥ ९ ॥ देवताओं केवे वैद्यहैं उसकर्मसे निन्दित हैं ॥ १० ॥ च्यवनजी बोले कि रूपकी सम्पदा से तेजवान् उन महात्माओं का अप-

र्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम् ॥ तत्रैनंच्यवनोदेवि याजयामासभार्गवः ॥ ७ ॥ अद्भुतानिचतत्रासन् यानितानिनिबोधमे ॥ अगृह्णाच्च्यवनस्सोममश्विनोर्देवयोस्तदा ॥ ८ ॥ तमिन्द्रोवारयामास मागृहाणतयोर्ग्रहम् ॥ इन्द्र उवाच ॥ उभावेतौ नसोमार्हौ नासत्यावितिमेमतिः ॥ ९ ॥ भिषजौदेवतानांहि कर्मणातेनगर्हितौ ॥ १० ॥ च्यवन उवाच ॥ मावमंस्थाम हात्मानौ रूपद्रविणवर्चसौ ॥ तौचक्रतुर्मामधुना वृन्दारकमिवाजरम् ॥ ११ ॥ अश्विनावपिदेवेन्द्र देवौविद्धिपरन्तप ॥ १२ ॥ इन्द्र उवाच ॥ चिकित्सकौकर्मकरौ कामरूपसमन्वितौ ॥ लोकेचरन्तौमर्त्यानां कथंसोममिहार्हतः ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एतदेवतदावाक्यमुदाहरतिवासवे ॥ अनादृत्यततश्शक्रं ग्रहंजग्राहभार्गवः ॥ १४ ॥ गृह्णन्तन्तुततस्सोम मश्विनोस्सत्तमन्तदा ॥ समीक्ष्यबलभिद्देव इदंवचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ मामवज्ञायत्वंसोमं ग्रहीष्यसियदिस्वयम् ॥ व

मान न कीजिये क्योंकि उन्होंने मुझको इससमय देवता की नाईं अजर किया है ॥ ११ ॥ हे परन्तप ! अश्विनीकुमारों को भी देवेन्द्र के देवता जानो ॥ १२ ॥ इन्द्रजी बोले कि कामदेव के समान रूपसे संयुत व मूल्य लेकर काम करनेवाले वे वैद्यहैं और मनुष्यों के लोकमें घूमते हैं इसकारण वे यहां कैसे सोमके योग्य हैं ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले कि उससमय इन्द्र के उसी वचन के कहनेपर तदनन्तर च्यवनजी ने इन्द्रको अनादरकर भागको ग्रहण किया ॥ १४ ॥ तदनन्तर उससमय अश्विनीकुमार के सोम को ग्रहण करतेहुये उन सत्तम च्यवनजी को देखकर बलदैत्य के नाशक इन्द्रदेवजी यह वचन बोले ॥ १५ ॥ कि यदि मुझ

को अपमान कर तुम आपही सोम को ग्रहण करोगे तो घोररूपवाले अतिउत्तम वज्रकों मैं तुम्हारे मारूँगा ॥ १६ ॥ ऐसा कहनेपर आपही इन्द्रजी को देखकर उन च्यवनजी ने विधिपूर्वक अश्विनीकुमारों के लिये उत्तम भाग को ग्रहण किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर उन शचीपति इन्द्रजी ने शीघ्रही इन च्यवनके लिये वज्रका प्रहार किया व प्रहार करतेहुये उन इन्द्रकी भुजाको च्यवनने स्तम्भित करदिया ॥ १८ ॥ स्तम्भितकर इसके अनन्तर कृत्याको चाहनेवाले च्यवनजीने मन्त्रसे अग्निमें हवन किया और बड़े तेजवाले वे मुनि इन्द्रदेव को मारने के लिये उद्यत हुये ॥ १९ ॥ और उस यज्ञमें उन मुनिके तपोबल से महाशरीरवान् व बड़ापरा-

त्रन्तेप्रहरिष्यामि घोररूपमनुत्तमम् ॥ १६ ॥ एवमुक्तेस्वयंचेन्द्रमभिवीक्ष्यसभार्गवः ॥ जग्राहविधिवत्सोममश्विभ्यामुत्तमंग्रहम् ॥ १७ ॥ ततोस्मैप्राहरत्क्षिप्रं वज्रमिन्द्रश्शचीपतिः ॥ तस्यप्रहरतोबाहुं स्तम्भयामासभार्गवः ॥ १८ ॥ स्तम्भयित्वाथच्यवनो जुहुवेमन्त्रतोनलम् ॥ कृत्यार्थीसुमहातेजा देवंहिंसितुमुद्यतः ॥ १९ ॥ तत्रकृत्योद्भवोयज्ञे मुनेस्तस्यतपोबलात् ॥ मदोनाममहावीर्यो महाकायोमहासुरः ॥ २० ॥ शरीरंयस्यानिर्दिष्टमसह्यमसुरासुरैः ॥ तस्यप्रमाणंवपुषानतुल्यमिहविद्यते ॥ २१ ॥ तस्यास्यश्चाभवद्घोरं दंष्ट्रादुर्दर्शनंमहत् ॥ एकोऽधरःस्थितस्तस्य भूमावेकोदिवङ्गतः ॥ २२ ॥ चतस्रश्चायतादंष्ट्रा योजनानांशतंशतम् ॥ इतरेत्वस्यदशना बभूवुर्दशयोजनाः ॥ २३ ॥ प्राकारसदृशाकाराः शूलाग्रसमदर्शनाः ॥ बभुःपर्वतसंकाशाश्चायताबहुयोजनाः ॥ २४ ॥ नेत्रेरविशशिप्रख्ये वक्त्रमन्तकसन्निभम् ॥ लेलिहंजिह्वयावक्त्रं विद्युच्चलितलोलया ॥ २५ ॥ व्यात्ताननोघोरदृष्टिर्ग्रसन्निवजगद्बलात् ॥ सभक्षयिष्य

क्रमी मदनामक महादैत्य कृत्यासे उत्पन्न हुआ ॥ २० ॥ जिसका शरीर देवताओं व दैत्योंसे असह्य बतलायागया है और उसके शरीर के तुल्य प्रमाण इस संसार में नहीं विद्यमान है ॥ २१ ॥ व उसका मुख दाढ़ोंसे बड़ा दुर्दर्श व भयङ्कर हुआ और उसका एक ओंठ पृथ्वीमें स्थित था व एक आकाशमें प्राप्त था ॥ २२ ॥ और चार दाढ़ें सौ सौ योजन चौड़ी थीं और उसके अन्य दांत दशयोजन हुये हैं ॥ २३ ॥ और बहुत योजन चौड़े व चहारदिवालीके समान आकारवाले तथा त्रिशूलके अग्रभागके समान दर्शनवाले दांत पर्वतोंके समान शोभितहुये ॥ २४ ॥ और सूर्य व चन्द्रमाके समान नेत्र तथा कालके समान मुख था और बिजलीके समान चलायमान

चञ्चल जिह्वासे मुखको बार २ चाटता तथा ॥ २५ ॥ और भयङ्कर दृष्टिवाला तथा मुखको फैलायेहुये बलसे संसारको ग्रसताहुआ व भक्षण करताहुआ सा वह बहुत क्रोधित होकर बड़े भयङ्कर शब्दसे लोकोंको शब्दायमान करताहुआ इन्द्रके सामने दौड़ा ॥ २६ । २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांच्यवनेश्वरमाहात्म्यंनामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀

दो० जिमि अश्विनीकुमारको च्यवन दीन यज्ञांश । दोसौ बासठि में सोई कथा कही सारांश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! भक्षणकरलेनेवाले व आते

न्संक्रुद्धश्शतक्रतुमुपाद्रवत् ॥ २६ ॥ महताघोरनादेन लोकाञ्शब्देननादयन् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे च्यवनेश्वरमाहात्म्यन्नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६१ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तञ्चदृष्ट्वारिवदनं सर्वैदेवश्शतक्रतुः ॥ आयान्तंभक्षयिष्यन्तं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥१॥ भयात्संस्तम्भितमिव लेलिहानञ्चसृक्किणीम् ॥ प्रणतोब्रवीन्महादेवि च्यवनंभयपीडितः ॥ २ ॥ सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृतिभार्गव ॥ भविष्यतस्सर्वमेतद्वचस्सत्यंब्रवीमिते ॥ ३ ॥ मातेमिथ्यासमारम्भो भवत्वेषतपोधन ॥ जानामिचाहं विप्रर्षे नमिथ्यात्वंकरिष्यसि ॥ ४ ॥ सोमार्हावश्विनावेतौयथैवाद्यत्वयाकृतौ ॥ भूयएवतुतेवीर्यं प्रकाशेदितिभार्गव ॥ ५ ॥ सुकन्यायाःपितुश्चास्य लोकेकीर्त्तिर्भवेदिति ॥ यतोमयैतद्विहितं तद्वीर्यस्यप्रकाशनम् ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रसादंकुरुमे

हुये मुखको फैलाये तथा गलफरों को चाटतेहुये व भयसे स्तम्भित की माई उस दानव शत्रुके मुखको देखकर वे इन्द्रजी भयसे पीड़ित होकर च्यवनको प्रणाम कर बोले ॥ १ । २ ॥ कि हे भार्गव ! आजसे लगाकर ये अश्विनीकुमार सोमके योग्य होवैंगे इस सब वचन को मैं तुमसे सत्य कहताहूं ॥ ३ ॥ हे तपोधन ! तुम्हारा यह मिथ्या आरम्भ मत होवै हे विप्रर्षे ! मैं जानताहूं कि तुम मिथ्या नहीं करोगे ॥ ४ ॥ जिसप्रकार तुमने इन अश्विनीकुमारों को सोमके योग्य कियाहै वैसेही हे भार्गव ! फिर भी तुम्हारा बल या प्रभाव प्रकाशित होवै ॥ ५ ॥ और सुकन्याके पिता इन शर्यातिका यश संसार में होवै जिसकारण उसके वीर्यका प्रकाश करनेवाला

यह कर्म मुझसे कियागया ॥ ६ ॥ उस कारण मेरे ऊपर प्रसन्नता करो और यह जैसा चाहते हो वैसाही होवै इन्द्रके ऐसा कहने पर महात्मा च्यवनजी का ॥ ७ ॥ क्रोध शीघ्रही शान्त होगया और इन्द्रजी चलेगये और हे देवि ! मद मद्यपान व स्त्रियों में वीर्यवान् हुआ ॥८॥ और पांसों में व शिकार में वीर्यवान् हुआ उससमय च्यवन पहले रचेहुये मदको बार बार निक्षेपकर व इन्द्रको पूजकर ॥ ९ ॥ तथा अश्विनीकुमारोंसमेत सब देवताओं को पूजकर व उस राजा शर्याति को यज्ञ कराकर हे वरवर्णिनि ! सब लोकोंमें प्रभाव को प्रसिद्धकर ॥ १० ॥ उन च्यवनमुनि ने सुकन्यासमेत इस क्षेत्रवन में विहार किया हे महादेवि ! उन च्यवनमुनि का

भवत्वेतद्यथेच्छसि ॥ एवमुक्तेतुशक्रेण च्यवनस्यमहात्मनः ॥ ७ ॥ मन्युर्व्युपारमच्छीघ्रं यातश्चैवपुरन्दरः ॥ मदश्चै वामवद्देवि पानेस्त्रीषुचवीर्यवान् ॥ ८ ॥ अन्नेषुमृगयायाञ्च पूर्वंसृष्टम्पुनःपुनः ॥ तदामदंविनिःक्षिप्य शक्रमभ्यर्च्यभा र्गवः ॥ ९ ॥ अश्विभ्यांसहितान्सर्वान् याजयित्वाचतन्नृपम् ॥ विख्याप्यवीर्यंसर्वेषु लोकेषुवरवर्णिनि ॥ १० ॥ सुक न्ययासहारण्ये क्षेत्रेस्मिन्विजहारसः ॥ तस्यैतत्तुमहादेवि च्यवनेश्वरनामभृत ॥ ११ ॥ लिङ्गंमहापापहरं च्यवनेनप्र तिष्ठितम् ॥ पूजयेत्तंविधानेन सोश्वमेधफलंलभेत ॥ १२ ॥ एतच्चन्द्रमसस्तीर्थमृषयःपर्युपासते ॥ वैखानसाश्चऋषयो बालखिल्यास्तथैवच ॥ १३ ॥ अत्राश्विनेमासिनरः पौर्णमास्यांविशेषतः ॥ श्राद्धंकुर्याद्विधानेन ब्राह्मणान्भोजयेत्पृ थक् ॥ १४ ॥ कोटितीर्थफलंतस्य भवतेनात्रसंशयः ॥ यइमांशृणुयाद्देविकथांपातकनाशिनीम् ॥ १५ ॥ समस्तजन्म सम्भूतात् पापान्मुक्तोभवेन्नरः ॥ १६ ॥ इति च्यवनेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

यह च्यवनेश्वरनामधारी ॥ ११ ॥ महापातकों का विनाशक लिङ्ग च्यवनजी से थापागया है जो उन शिवदेव को विधिसे पूजता है वह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है ॥ १२ ॥ और चन्द्रमाके इस तीर्थकी वैखानस बालखिल्य महर्षिलोग उपासना करतेहैं ॥ १३ ॥ यहां कुंवार महीनेमें विशेषकर पौर्णमासी तिथिमें जो विधिसे श्राद्धकरै व ब्राह्मणों को पृथक् भोजन करावै ॥ १४ ॥ उसको कोटितीर्थ का फल होताहै इसमें सन्देह नहीं है हे देवि ! जो मनुष्य पातकों को नाश करनेवाली इस कथाको सुनता है ॥ १५ ॥ वह मनुष्य सब जन्मोंमें उपजे हुये पातकसे छूटजाता है ॥ १६ ॥ इति च्यवनेश्वरमाहात्म्यंनामद्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६२ ॥

दो० । यथा सुकन्यासर अहै अतुल प्रभाव समेत । दोसौ तिरसठिमें सोई कथा सुहर्षनिकेत ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम सुकन्यासर के समीपजावै जहां कि हे अम्बिके ! च्यवनसमेत वे अश्विनीकुमार स्नान करतेभये ॥ १ ॥ व जहांपर अश्विनीकुमार समेत च्यवनमुनि समानरूप हुयेहैं व हे वरवर्णिनि ! जहां सुकन्या ने तड़ाग के स्नानके प्रभावसे मनोरथको पायाहै उसीकारण कन्यासर कहागया है उसमें विशेषकर तीज तिथिमें स्नान कीहुई उत्तम स्त्री ॥ २ । ३ ॥ सात हज़ार जन्मोंतक गृहभङ्ग को नहीं प्राप्त होती है और उसका पुत्र दरिद्र, व्याकुल, दीन व अन्ध नहीं होताहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सुकन्यासरउत्तमम् ॥ यत्राश्विनौनिमग्नौतौ च्यवनेनसहाम्बिके ॥१॥ समानरूपोह्यभवदश्विभ्यांसहितोमुनिः ॥ यत्रप्राप्तवतीकामं सुकन्यावरवर्णिनि ॥ २ ॥ सरस्स्नानप्रभावेण तेनकन्यासरस्स्मृतम् ॥ तत्रस्नाताशुभानारी तृतीयायांविशेषतः ॥ ३ ॥ सप्तजन्मसहस्राणि गृहभङ्गन्नप्राप्नुयात ॥ दरिद्रोविकलोदीनो नान्धस्तस्याभवेत्सुतः ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे च्यवनेश्वरमाहात्म्ये कन्यासरोमाहात्म्यन्नामत्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ततोगच्छेन्महादेवि पुनर्न्यङ्कुमतीन्नदीम् ॥ तत्रकृत्वागयाश्राद्धं गोष्पदेतीर्थउत्तमे ॥ १ ॥ ततःपश्येद्वराहन्तु तस्माद्वारिगृहंव्रजेत् ॥ तत्रमातृसुतंपूज्य स्नात्वासागरसङ्गमे ॥ २ ॥ न्यङ्कुमत्यास्तटंगत्वा ततश्चैवमनुव्रजेत् ॥ अगस्तेराश्रमंदिव्यं क्षुधाहरमितिस्मृतम् ॥ ३ ॥ यत्रेल्वलश्चवातापिःसंहत्यभगवान्मुनिः ॥ मुक्त्वापद्भ्योब्राह्मणांश्च तेभ्य

मिश्रविरचितायांभाषाटीकायांच्यवनेश्वरमाहात्म्येकन्यासरोमाहात्म्यंनामत्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि अगस्तिकर आश्रम भयो क्षुधाहरनाम । दोसौ चौंसठि में सोई बरन्यो चरित ललाम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर फिर न्यंकुमती नदीके समीप जावै वहां उत्तम गोष्पदतीर्थ में गयाश्राद्धकर ॥ १ ॥ तदनन्तर वराहजी को, देखै और वहांसे वारिगृह को जावै और वहां सागर के सङ्गममें नहाकर मातृपुत्र को पूजकर ॥ २ ॥ न्यंकुमतीके किनारे जाकर तदनन्तर क्षुधाहर ऐसे कहेहुये अगस्तिजीके दिव्य आश्रमको जावै ॥ ३ ॥ जहां कि इल्वल व वातापि

को मारकर भगवान् अगस्तिमुनि ने ब्राह्मणों को विपत्तिसे छुड़ाकर तदनन्तर उनके लिये स्थान दियाहै ॥ ४ ॥ यह उत्तम अगस्तिजी का आश्रम समस्त पातकों के नाशक न्यंकुमती के सुन्दर किनारे पै अगस्ति को प्रिय है ॥ ५ ॥ देवीजी बोलीं कि अगस्तिजीने वातापि को किसलिये नाश कियाहै और इनका क्या प्रभावहै और वह दैत्य ब्राह्मणों का नाशक था ॥ ६ ॥ व उन महात्मा अगस्तिसे वह वातापि किसलिये मारागया ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि ! पुरातन समय मणिमतीपुरी में इल्वलनामक दैत्येन्द्र हुआहै और उसका छोटाभाई वातापि था ॥ ८ ॥ उस दैत्यपुत्र ने तपस्या से संयुत ब्राह्मण से कहा कि हे भगवन् ! मुझको

स्स्थानंततोददौ ॥ ४ ॥ अगस्त्याश्रममेतद्धि अगस्तिप्रियमुत्तमम् ॥ न्यङ्कुमत्यास्तटेरम्ये सर्वपातकनाशने ॥ ५ ॥ देव्युवाच ॥ अगस्तिनाहिवातापिः किमर्थमुपशामितः ॥ अस्यवाकःप्रभावश्च सदैत्योब्राह्मणान्तकः ॥ ६ ॥ किमर्थं वाहतस्तेन वातापिश्चमहात्मना ॥ ७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इल्वलोनामदैत्येन्द्र आसीद्देवरवर्णिनि ॥ मणिमत्यांपुरापुर्यां वातापिस्तस्यचानुजः ॥ ८ ॥ सब्राह्मणंतपोयुक्तमुक्तवान्दितिनन्दनः ॥ पुत्रम्मेभगवंश्चैकमिन्द्रतुल्यंप्रयच्छतु ॥ ९ ॥ तस्मैसब्राह्मणोनैच्छत् पुत्रंदातुंतथाविधम् ॥ चुक्रोधसोसुरस्तस्य ब्राह्मणस्यतपोभृतः ॥ १० ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य सदैत्यःपापबुद्धिमान् ॥ मेषरूपीचवातापिः कामरूपोभवत्क्षणात् ॥ ११ ॥ संस्कृत्यभोजयेत्तत्र विप्रान्सर्वाञ्जिघांसया ॥ समाह्वयतितंवाचा गतश्चैवततःक्षयम् ॥ १२ ॥ सपुनर्देहमास्थाय जीवन्संप्रत्यदृश्यत ॥ ततोवातापिमसुरं छागं कृत्वातुसंस्कृतम् ॥ १३ ॥ ब्राह्मणंभोजयित्वातु पुनरेवसमाह्वयत् ॥ सतस्यपार्श्वंनिर्भिद्य ब्राह्मणस्यमहात्मनः ॥ १४ ॥

इन्द्रके तुल्य एक पुत्रको दीजिये ॥ ९ ॥ उस ब्राह्मणने उस दैत्यके लिये वैसे पुत्रको देनेके लिये नहीं इच्छा किया और उस दैत्यने उस तपधारी ब्राह्मण के ऊपर क्रोध किया ॥ १० ॥ और पापबुद्धिवाला वह दैत्य प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर कामरूपी वातापि क्षणभर में मेष (भेंड़ा) रूप होगया ॥ ११ ॥ मारने की इच्छासे उसको पकाकर वहां ब्राह्मणों को भोजन कराताथा तदनन्तर क्षयको प्राप्त उस वातापि को वचन से पुकारता था ॥ १२ ॥ और वह फिर शरीर को प्राप्त होकर जीताहुआ देखपड़ताथा तदनन्तर छागरूपी पकायेहुये वातापि दैत्यको ॥ १३ ॥ ब्राह्मणको भोजन कराकर फिर बुलाया और हँसताहुआ वह वातापि उस महात्मा ब्राह्मण के

पार्श्व (बगल) को फाड़कर वहां ब्राह्मण के पेटसे निकल आया हे देवि ! इस प्रकार वह बार २ ब्राह्मणों को भोजन कराकर ॥ १४ । १५ ॥ उनके पेटको फाड़कर ऐसेही बहुत ब्राह्मणों को मारता था तदनन्तर भयभीत होकर सब ब्राह्मण भगगये ॥ १६ ॥ व अगस्तिजी के आश्रम को गये और उन्होंने उनके आगे कहा कि हे भगवन् ! हमलोगों के भयको प्राप्त करनेवाले वचन को सुनिये ॥ १७ ॥ कि हे प्रभो ! हम सबलोग इल्वल से न्योतेगये हैं और वह भोजन हम सबोंका मृत्युरूप है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ इसलिये हे भगवन् ! मेषरूपी वातापि महादैत्यको पकायाहुआ देखकर दीन व गतचित्तवाले हमलोगों की इससे रक्षा

वातापिःप्रहसंस्तत्र निश्चक्रामद्विजोदरात् ॥ एवंसब्राह्मणान्देवि भोजयित्वापुनःपुनः ॥ १५ ॥ विनिर्भिद्योदरन्तेषामेवंहन्तिद्विजान्बहून् ॥ ततोवैब्राह्मणास्सर्वे भयभीताःप्रदुद्रुवुः ॥ १६ ॥ अगस्तेराश्रमंजग्मुः कथयामासुरग्रतः ॥ भगवञ्छृणुवाक्यन्तु अस्माकन्तुभयावहम् ॥ १७ ॥ निमन्त्रिताःस्मसर्वेवै इल्वलेनवयम्प्रभो ॥ अस्माकंमृत्युरूपन्तद्भोजनन्नास्तिसंशयः ॥ १८ ॥ तदस्माद्रक्षभगवन् कृपणान्गतचेतसः ॥ वातापिंसंस्कृतंदृष्ट्वा मेषरूपंमहासुरम् ॥ १९ ॥ ततःप्रभासमासाद्य यत्रतौदैत्यपुङ्गवौ ॥ ब्रह्मघ्नौपापनिरतौ ददर्शसमहामुनिः ॥ २० ॥ उवाचदेहिमेभोज्यं बुभुक्षामेवर्त्तते ॥ इत्युक्तौस्वागतंतत्र चक्रातेमुनयेतदा ॥ २१ ॥ भगवन्भोजनंतुभ्यं दास्येहंबहुविस्तरम् ॥ कियन्मानस्तवाहारस्तावन्मानंपचाम्यहम् ॥ २२ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ अन्नंपचस्वदैत्येन्द्र येनतृप्तिर्भविष्यति ॥ एवमस्त्वितिदैत्येन्द्रः पक्वमस्तिमहामुने ॥ २३ ॥ आस्यतामासनमिदं भुज्यतांस्वेच्छयामुने ॥ इत्युक्तेघोरमन्त्रंस जनकल्पान्तका

करिये ॥ १९ ॥ तदनन्तर जहां वे श्रेष्ठदैत्यथे वहां प्रभासक्षेत्रको जाकर उन महामुनिने पापमें लगेहुये व ब्रह्मघाती उन दैत्योंको देखा ॥ २० ॥ व कहा कि मुझको भोजन दीजिये मेरे क्षुधा वर्तमान है ऐसा कहेहुये उन्होंने उस समय वहां मुनिके लिये स्वागत किया ॥ २१ ॥ व कहा कि हे भगवन् ! मैं तुम्हारे लिये बहुत विस्तारवाले भोजन को दूंगा कितनी प्रमाणभर तुम्हारा भोजन है उतनी प्रमाणभर मैं पकाऊं ॥२२॥ अगस्तिजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! अन्नको पकाइये जिससे तृप्ति होगी ऐसाही होगा यह कहकर दैत्येन्द्रने कहा कि हे महामुने ! अन्न पकायागयाहै ॥ २३ ॥ हे मुने ! इस आसनपै बैठिये और अपनी इच्छासे भोजन करिये ऐसा कहनेपर

जनोंके कल्पान्त को करनेवाले अघोरमन्त्र को जपकर थे ॥ २४ ॥ महामुनि अगस्तिजी ऋषियों के आसन को पाकर बैठगये और हँसतेहुये इल्वलने उनको परि-वेषण किया याने परोसा ॥ २५ ॥ और वह अन्नकी राशि सौ हाथके प्रमाणसे हुई तदनन्तर प्रसन्नमनवाले अगस्तिजी हँसतेहुये दो कौर खाकर ॥ २६ ॥ वहा बड़ा रूपकर उन्होंने समुद्र का शोषण किया तदनन्तर उस समस्त भोजन व वातापि को भोजन किया ॥ २७ ॥ और भोजन करने पर वहां इल्वल ने दैत्यका आह्वान किया तदनन्तर इसने महात्मा अगस्तिजीको अन्नदिया ॥ २८ ॥ और उन महामुनि अगस्तिजीने दानवसमेत उस सब अन्नको भस्मकिया और क्रोधकी दृष्टिसे इल्वल

रकम् ॥ २४ ॥ वृष्यासनमथासाद्य निषसादमहामुनिः ॥ तम्पर्यवेषद्दैत्येन्द्र इल्वलःप्रहसन्निव ॥ २५ ॥ शतहस्तप्र माणेन राशिरन्नस्यसोभवत् ॥ ततोहृष्टमनागस्तिःप्रहसन्कवलद्वयम् ॥ २६ ॥ रूपंकृत्वामहत्तत्र चक्रेसागरशोषणम् ॥ समस्तमेवतद्भोज्यं वातापिंबुभुजेततः ॥ २७ ॥ भुक्तवत्यसुराह्वानमकरोत्तत्रइल्वलः ॥ ततोसौदत्तवानन्नमगस्तेश्च महात्मनः ॥ २८ ॥ भस्मीचकारसर्वंस तदन्नञ्चसदानवम् ॥ इल्वलंक्रोधदृष्ट्याच भस्मीचक्रेमहामुनिः ॥ २९ ॥ ततोहाहारवंकृत्वा सर्वेदैत्याननाशिरे ॥ ततोगस्तिर्महातेजा आहूयद्विजपुङ्गवान् ॥ ३० ॥ तत्स्थानञ्चददौतेभ्यो दैत्यानांद्रव्यपूरितम् ॥ क्षुधाहृतायतोदेवि तत्रागस्तेश्चदानवैः ॥ ३१ ॥ तेनक्षुधाहरन्नाम स्थानमासीद्द्विजन्मनाम् ॥ तस्य पश्चिमभागेतु नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ ३२ ॥ गङ्गेश्वरमितिख्यातं गङ्गयाचप्रतिष्ठितम् ॥ वातापिभक्षणेपूर्वमगस्तेश्चमहात्मनः ॥ ३३ ॥ शरीरपापशुद्ध्यर्थं दैत्यसम्भक्षणोद्भवम् ॥ तत्रदेवीसमायाता गङ्गापातकनाशिनी ॥ ३४ ॥ शु

को भस्म किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर हाहाशब्द कर सब दैत्य भगगये उसके उपरान्त महातेजस्वी अगस्तिजीने द्विजोत्तमों को बुलाकर ॥ ३० ॥ उनके लिये दैत्यों के द्रव्यसे पूर्ण उस स्थान को दिया हे देवि ! जिसलिये वहां दानवों से अगस्तिजीकी क्षुधा हरीगई ॥ ३१ ॥ उस कारण वह ब्राह्मणों का स्थान क्षुधाहरनामक हुआ और उसके पश्चिमभाग में थोड़ेही दूरपै स्थित ॥ ३२ ॥ गङ्गाजी से थापाहुआ गङ्गेश्वर ऐसा प्रसिद्ध लिङ्गहै पुरातन समय वातापि के भक्षण करने में महात्मा अगस्ति के ॥ ३३ ॥ दैत्यभक्षण करने से उपजेहुये शरीर के पापकी शुद्धिके लिये वहां पातकों को नाश करनेवाली गङ्गादेवीजी आईहैं ॥ ३४ ॥ और उन्होंने उस

ऋषिकी शुद्धि किया व वे गङ्गाजी उस स्थान में स्थित हुईं मनुष्योंके पापविनाशक व मनोहर अगस्तिजी के आश्रम में ॥ ३५ ॥ वहां गङ्गेश्वरजी को देखकर मनुष्य स्नान, दान व जपादिक से अभक्ष्यसे उपजेहुये पातकसे छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांन्यङ्कुमतीमाहात्म्येऽगस्त्याश्रमगङ्गेश्वरमाहात्म्यंनामचतुष्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अजापाल ईश्वरहिं जिमि थाप्यो नृप अजपाल । दो सौ पैंसठि में सोई बरन्यो चरित रसाल । महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर पापनाशक

द्धिञ्चकारतस्यर्षेस्तत्रस्थानेस्थिताभवत् ॥ अगस्तेराश्रमेरम्ये नृणांपापभयापहे ॥ ३५ ॥ तत्रगङ्गेश्वरन्दृष्ट्वा अभक्ष्योद्भवपातकात् ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहः स्नानदानजपादिना ॥३६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे न्यङ्कुमतीमाहात्म्येऽगस्त्याश्रमगङ्गेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुष्षष्ट्यधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २६४ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि बालार्कंपापनाशनम् ॥ अगस्त्याश्रमतोदेवि उत्तरेनातिदूरतः ॥ १ ॥ बाल एवतुयत्रार्कस्तपस्तेपेपुराप्रिये ॥ तेनबालार्कइत्येतन्नामाख्यातंधरातले ॥ २ ॥ तंदृष्ट्वारविवारेण नकुष्ठीजायतेनरः ॥ बालानांरोगजापीडा नसम्भूयात्कदाचन ॥३॥ ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि अजापालेश्वरींशुभाम् ॥ अगस्त्यस्थानपूर्वेण नातिदूरेऽव्यवस्थिताम् ॥ ४ ॥ रघुवंशेसमुत्पन्नो ह्यजापालोनृपोत्तमः ॥ सतत्रदेवीमाराध्य पापरोगवशीकृतः ॥ ५ ॥ यस्त्वजारूपरोगान्वै चारयामासभूमिपः ॥ तत्रसंस्थापयामासस्वनाम्नापापनाशिनीम् ॥६॥ यस्तां

बालार्कजी के समीप जावै हे देवि ! अगस्तिजी के आश्रम से उत्तरमें थोड़ेही दूरपै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! जहां बालहीं सूर्यनारायणजीने पुरातन समय तप कियाहै उसी कारण पृथ्वी में बालार्क ऐसा यह नाम कहागया है ॥ २ ॥ उनको रविवार में देखकर मनुष्य कुष्ठी नहीं होताहै और बालकों के रोग से उपजी हुई पीडा कभी नहीं होती है ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अगस्त्यजी के स्थानसे पूर्व में थोड़ेही दूर पै स्थित उत्तम अजापालेश्वरीजीके समीप जावै ॥ ४ ॥ रघुवंश में अजापाल नामक वह उत्तम राजा उत्पन्न हुआ है पाप रोगसे वश किये हुये जिस राजा ने देवीजी को आराध कर बकरीरूपी रोगोंको चराया है उसी ने

वहां पापोंको नाशनेवाली देवीजी को अपने नाम से स्थापन किया है ॥ ५ । ६ ॥ जो पुरुष भक्ति से तीज तिथि में उन देवीजी को विधि से पूजताहै वह बल, बुद्धि, यश, विद्या व सौभाग्यको प्राप्तहोता है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामजापालेश्वरीमाहात्म्यंनामपञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥

दो० । थाप्यो विश्वामित्र जिमि बालादित्य सुरेश । दो सौ छाछठि में सोई कह्यो चरित्र उमेश ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अगस्त्यजीकेस्थान से पूर्व ओर दो गव्यूति याने चार कोसपै बालादित्य ऐसे प्रसिद्ध देव को समीप जावै ॥ १ ॥ उसके दक्षिण में वह रोगहृत्नामक स्थान कहागया है हे देवेशि !

पूजयतेभक्त्या तृतीयायांविधानतः ॥ बलंबुद्धियशोविद्यां सौभाग्यंप्राप्नुयान्नरः ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेअजापालेश्वरीमाहात्म्यन्नामपञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वरउवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि बालादित्यमितिश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्थानपूर्वेण गव्यूतिद्वितयेनतु ॥ १ ॥ स्थानंतद्रोगहृन्नाम तस्यदक्षिणतस्स्मृतम् ॥ गव्यूतिमात्रन्देवेशि बालार्कइतिविश्रुतः ॥ २ ॥ यत्रचाराधितविद्या विश्वामित्रेणधीमता ॥ संस्थाप्यलिङ्गत्रितयं प्रतिष्ठाप्यतथारविम् ॥ ३ ॥ विद्यायास्साधनंचक्रे सिद्धिंसूर्यादवाप्तवान् ॥ बालादित्येतितेनासौ ततःख्यातिमगात्प्रभुः ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि भास्करंपापतस्करम् ॥ नदारिद्र्यमवाप्नोति यावज्जीवतिमानवः ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेबालार्कमाहात्म्यन्नामषट्षष्ट्यधिकद्विशततमोध्यायः २६६॥

दो कोस तक बालार्क ऐसे प्रसिद्ध देव हैं ॥ २ ॥ जहां कि बुद्धिमान् विश्वामित्रजी ने विद्याको आराधन किया है तीन लिंग व सूर्यनारायणको थापकर ॥ ३ ॥ उन्हों ने विद्याका साधन किया व सूर्यसे सिद्धिको पायाहै उसीसे प्रभुजी बालादित्य ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ हे देवि ! पापों के चोररूपी उन सूर्यनारायण को देखकर मनुष्य जबतक जीता है तबतक दरिद्रता को नहीं पाता है ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबालादित्यमाहात्म्यंनामषट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६६ ॥

दो० । कुबेरेश्वरहिं पूजि जिमि भये कुबेरहुँ सिद्ध । दो सौ सरसठि में सोई वरन्यो चरित प्रसिद्ध ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! उसी के दक्षिण में उस से दो कोस पर पातकोंको नाश करनेवाली पातालगामिनी गंगाजी स्थित हैं ॥ १ ॥ हे वरवर्णिनि ! विश्वामित्रजी ने स्नान के लिये उनको बुलायाहै ॥ २ ॥ हे महादेवि ! उस में नहाकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है और वहां गंगेश्वर विश्वामित्रेश्वरजी को देखकर ॥ ३ ॥ व बालेश्वरजी को देखकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम कुबेरस्थान को जावै ॥ ४ ॥ जहां कि हे देवि ! पुरातन समय धनदायक कुबेरजी सिद्ध हुये हैं पुरातन समय चोररूप से

ईश्वर उवाच ॥ तस्यैवदक्षिणेदेवि तस्माद्गव्यूतिमात्रतः ॥ पातालगामिनीगङ्गा संस्थितापापनाशिनी ॥ १ ॥ विश्वामित्रेणचाहूता स्नानार्थंवरवर्णिनि ॥ २ ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ तत्रगङ्गेश्वरंदृष्ट्वा विश्वामित्रेश्वरंतथा ॥ ३ ॥ बालेश्वरंचसंप्रेक्ष्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कुबेरस्थानमुत्तमम् ॥ ४ ॥ यत्रसिद्धःपुरादेवि कुबेरोधनदोऽभवत् ॥ ब्राह्मणश्चौररूपेण तत्रस्थानेवसत्पुरा ॥ ५ ॥ सचमेभक्तियोगेन पुरावैधनदःकृतः ॥ पार्वत्युवाच ॥ कथंसब्राह्मणोभूत्वा चौररूपीनराधमः ॥ ६ ॥ तन्मेकथयदेवेश धनदःसयथाभवत् ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थेमहादेवि यद्वृत्तञ्चगतान्तरे ॥ ७ ॥ कथयिष्यामितत्सर्वं शिवमाहात्म्यसूचकम् ॥ कश्चिदासीद्द्विजोदेवि देवशर्मेतिविश्रुतः ॥ ८ ॥ प्रभासक्षेत्रनिलयो न्यङ्कुमत्यास्तटेवसन् ॥ पुत्रक्षेत्रकलत्रादिव्यापारैकरतःसदा ॥ ९ ॥ विहायाथसगार्हस्थ्यं धनार्थंलोभमोहितः ॥ प्रचचारमहीमेतां सग्रामनगरांतथा ॥ १० ॥ भार्यातस्यविलोला

ब्राह्मण उस स्थानमें बसता भया ॥ ५ ॥ वह पुरातन समय मेरी भक्तिके योगसे धनद कियागया पार्वतीजी बोलीं कि वह ब्राह्मण होकर कैसे चोररूप अधम पुरुषहुआ ॥ ६ ॥ हे देवेश ! उसको मुझसे कहिये कि जिसप्रकार वह धनद हुआ हे महादेवजी बोले; कि हे महादेवि ! उस तीर्थ में बीतेहुये मन्वन्तर में जो वृत्तान्त हुआ है ॥ ७ ॥ शिवजी के माहात्म्य को सूचित करनेवाले उस सब चरित्रको कहूंगा हे देवि ! देवशर्मा ऐसा प्रसिद्ध कोई ब्राह्मण हुआ है ॥ ८ ॥ न्यंकुमती नदीके किनारे बसता हुआ प्रभासक्षेत्रमें स्थानवाला वह ब्राह्मण सदैव पुत्र, क्षेत्र व स्त्री आदिकों के व्यापार में केवल स्थित था ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर गृहस्थी को छोड़कर लोभ

से मोहित वह धनके लिये ग्रामों व नगरोंसमेत इस पृथ्वी में घूमता भया ॥ १० ॥ और चञ्चल लोचनोंवाली उसकी स्त्री उसके घर से निकलगई जोकि नित्यही अपनी इच्छाके अनुकूल घूमनेवाली व सदैव कामदेवसे मोहित थी ॥ ११ ॥ विधिवशसे किसी समय शूद्रके सकाश से उसमें पुत्र पैदाहुआ जोकि नाम से दुःसह ऐसा प्रसिद्ध बहुतही दुष्टचित्त व मूर्ख था ॥ १२ ॥ बहुत समय के बाद नामके कर्म में वर्तमान होकर व्यसनों से नष्ट व पापी वही यह बन्धुजनों से त्याग किया गया ॥ १३ ॥ और सन्ध्या में पूजनकी सामग्री के द्रव्य से संयुत नरको किसी शिवालयमें देखकर तदनन्तर हरनेकी इच्छावाले उसने निवास किया ॥ १४ ॥ और

स्त्री तस्यगेहाद्विनिर्गता ॥ स्वच्छन्दचारिणीनित्यं नित्यंचानङ्गमोहिता ॥ ११ ॥ तस्यांकदाचित्पुत्रस्तु शूद्राज्जातो विधेर्वशात ॥ दुष्टात्मातीवमूर्खश्च नाम्नादुःसहइत्युत ॥ १२ ॥ सोयंकालेनमहता नामकर्मप्रवर्तितः ॥ व्यसनोपर तःपापस्त्यक्तोबन्धुजनैस्तथा ॥ १३ ॥ पूजोपकरणद्रव्यैः सकस्मिंश्चिच्छिवालये ॥ जनंदोषामुखेदृष्ट्वा हर्तुकामोवस त्ततः ॥ १४ ॥ यावद्दीपोगतप्रायो वर्तिच्छेदोभवत्किल ॥ तावत्तदन्तिकंप्राप द्रव्यान्वेषणकारणात ॥ १५ ॥ प्रबुद्ध श्चोत्थितस्तत्र देवपूजाकरोनरः ॥ कोयंकोयमितिप्रोच्चैर्व्याहरत्परिघायुधः ॥ १६ ॥ सचप्राणभयान्नष्टः शूद्रत्वाच्चापि मूढधीः ॥ विनिन्दन्नात्मनोजन्म कर्मचापिसुदुःखितः ॥ १७ ॥ पुरपालैर्हतोदेवि मृतःकालादभूच्चसः ॥ गान्धारविष येराजा ख्यातोनाम्नातुदुर्मुखः ॥ १८ ॥ गीतवाद्यरतस्तत्र वेश्यास्वस्यरुचिर्भृशम् ॥ प्रजोपद्रवकृन्मूर्खः सर्वधर्मबहि

जब दीप जातारहा व बत्ती नाशहोगई तब तक वह द्रव्य ढूंढ़नेके कारण उस मनुष्यके समीप प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ और वहां देवपूजनको करनेवाला मनुष्य जगा व उठपड़ा और परिघ अस्त्रवाला वह यह कौनहै यह कौनहै ऐसा उच्च प्रकारसे कहता भया ॥ १६ ॥ और मूढबुद्धिवाला वह शूद्रताके कारण प्राणों के भयसे भगगया तथा अपने जन्म व कर्मको निन्दताहुआ वह दुःखितहुआ ॥ १७ ॥ व हे देवि ! नगरके रक्षकोंसे माराहुआ वह कालसे मरगया और गान्धारदेशमें वह दुर्मुख नामक राजा प्रसिद्ध हुआ ॥ १८ ॥ वहां वह गाने व बजानेमें तत्पर हुआ और वेश्याओंमें इसकी बहुत रुचिहुई और प्रजाओं में उपद्रव करनेवाला व मूर्ख वह सब धर्मों से बाहर किया

गयाथा ॥ १९ ॥ किन्तु पूजन करता हुआ वही यह पुष्प, माला, धूप, नैवेद्य व गन्धादिकोंसे विन मन्त्रकी नाईं लिंग के आराधन में तत्परथा ॥ २० ॥ और वह सदैव यज्ञों में जाता था व देवमन्दिरों में वह बत्तीसे उज्ज्वल बहुत दीपोंको देताथा ॥ २१ ॥ किसी समय शिकार में लगाहुआ, वह पराक्रमी राजा घूमता भया और प्रभासक्षेत्रको आकर वह पहले के संस्कार से शुद्ध होगया ॥ २२ ॥ पहले भी वह युद्ध में न्यंकुमती के उत्तम किनारे पै मारागया था व शिवपूजन करने से इसके सब पाप नष्ट होगये ॥ २३ ॥ तदनन्तर जो यह विश्रवा का पुत्र पृथ्वी में प्रसिद्धहुआ है बड़ा तेजस्वी व बलवान् वह सब यक्षोंका स्वामी हुआ ॥ २४ ॥ शास्त्र व

ष्कृतः ॥ १९ ॥ किन्त्वर्चयन्सचैवासौ लिङ्गाराधनतत्परः ॥ पुष्पस्रग्धूपनैवेद्यगन्धादिभिरमन्त्रवत् ॥ २० ॥ मखेषुच सदायाति देवतायतनेषुच ॥ दद्यात्सबहुलान्दीपान् वर्त्तिनैवसमुज्ज्वलान् ॥ २१ ॥ कदाचिन्मृगयासक्तो बभ्रामसचवीर्यवान् ॥ प्रभासक्षेत्रमागत्य पूर्वसंस्कारभावितः ॥ २२ ॥ पूर्वंचाभिहतोयुद्धे न्यङ्कुमत्यास्तटेशुभे ॥ शिवपूजाविधानेन विध्वस्ताशेषपातकः ॥ २३ ॥ ततोविश्रवसश्चासौ पुत्रोभूद्भुविविश्रुतः ॥ यःसएवमहातेजाः सर्वयक्षाधिपोबली ॥ २४ ॥ कुवेरइतिधर्मात्मा श्रुतशीलसमन्वितः ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठयामास न्यङ्कुमत्याश्चपूर्वतः ॥ २५ ॥ कौवेरात्पश्चिमेभागे सोमनाथेतिविश्रुतम् ॥ सम्पूज्यचमहेशानं न्यङ्कुमत्यास्तटेशुभे ॥ २६ ॥ स्तोत्रेणानेनचास्तौषीद्भक्त्यातंसर्वकामदम् ॥२७॥ मूर्तिःकापिमहेश्वरस्यमहतीयज्ञस्यमूलोदया तुम्बीतुङ्गफलाकृतिश्चशतशोब्रह्माण्डकोटिस्थिता ॥ यन्मानंनपितामहो नचहरिर्ब्रह्माण्डमध्यस्थितो जानात्यन्यसुरेषुकात्रगणना सासन्ततंनोवतात् ॥ २८ ॥ नमाम्यहंदेवमजम्पुराणमुपे

शीलसे संयुत धर्मात्मा कुबेरजी ने न्यंकुमती के पूर्व और लिंग को थापन किया ॥ २५ ॥ और कुबेरेश्वर से पश्चिमभाग में न्यंकुमतीके उत्तम किनारेपै सोमनाथ ऐसे प्रसिद्ध शिवजी को पूजकर ॥ २६ ॥ भक्तिसे सब कामनाओंवाले उन शिवजी की इस स्तोत्र से स्तुति किया ॥ २७ ॥ कि शिवजी की कोई (अनिर्वाच्य) बड़ीभारी मूर्ति है जोकि यज्ञकी जड़ व ऐश्वर्यवती है और तुम्बी के ऊंचे फलके समान आकारवाली व सैकड़ों ब्रह्माण्डों के ऊपर स्थित है और ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित ब्रह्मा व विष्णुजी जिसकी प्रमाण को नहीं जानते हैं तो अन्य देवताओंकी इसमें क्या गिनती है वह मूर्ति सदैव हमारी रक्षा करै ॥ २८ ॥ न जन्म लेने-

वाले व प्राचीन तथा इन्द्रसे प्रणाम करनेयोग्य और उत्तम राजाओं से सेवित तथा चन्द्रमा, सूर्य व अग्नि के समान नेत्रोंवाले और वृषेन्द्र (नन्दी) से चिह्नित व प्रलय के आदिकारण शिवदेवजीको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २९ ॥ और सबके एकहीस्वामी व देवताओं के एकही बन्धु तथा योग से प्राप्त होनेयोग्य व संसार के अधिवासरूप उन विस्मय आधार व अमित शक्तिवाले तथा ज्ञान से उत्पन्न और धैर्यगुण से अधिक देवको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३० ॥ पिनाक, पाश, अंकुश व त्रिशूल को हाथ में लिये, जटाधारी व मेघ के समान शब्दवाले और काले कण्ठवाले तथा बिल्लौर के समान प्रकाशवाले सहस्रमूर्तिमान् विशिष्ट पुरुष को मैं प्रणाम

न्द्रवन्द्यंवरराजजुष्टम् ॥ शशाङ्कसूर्याग्निसमाननेत्रं वृषेन्द्रचिह्नंप्रलयादिहेतुम् ॥ २९ ॥ सर्वेश्वरैकन्त्रिदशैकबन्धुं योगाधिगम्यंजगतोधिवासम् ॥ तंविस्मयाधारमनन्तशक्तिं ज्ञानोद्भवंधैर्यगुणाधिकञ्च ॥ ३० ॥ पिनाकपाशाङ्कुशशूलहस्तं कपर्दिनंमेघसमानघोषम् ॥ सकालकण्ठंस्फटिकावभासं सहस्रमूर्तिंपुरुषंविशिष्टम् ॥ ३१ ॥ यदक्षरंनिर्गुणमप्रमेयं सज्योतिरेकंप्रवदन्तिसन्तः ॥ दूरङ्गमंवेद्यमनिन्द्यवेद्यं सर्वस्यहृत्स्थंपरमम्पवित्रम् ॥ ३२ ॥ तेजोनिभंबालमृगाङ्कमौलिं नमामिरुद्रंस्फुरदुग्रवक्त्रम् ॥ कालान्तकंकामदमस्तसङ्गं धर्मासनस्थंप्रकृतिद्वयस्थम् ॥ ३३ ॥ अतीन्द्रियंविश्वभुजंजितारिं गुणत्रयातीतमजंनिरीहम् ॥ तपोमयंवेदमयंमहेशं प्रजापतिंत्वांपुरुहूतमिन्द्रम् ॥ ३४ ॥ अनागतातीतविदंमहेशं ध्यायन्तियंयोगविदोमुनीन्द्राः ॥ संसारपाशच्छिदुरंविमुक्तं पुनःपुनस्तंप्रणमामिदेवम् ॥ ३५ ॥

करता हूं ॥ ३१ ॥ विद्वान्लोग जिसको अक्षर, निर्गुण, अप्रमेय, ज्योतिसंयुत व मुख्य, दूर जानेवाला, अनिन्द्य, वन्दनीय व सबके हृदय में स्थित और परमपवित्र कहते हैं ॥ ३२ ॥ व तेज के समान तथा बाल चन्द्रमा को माथे में धारण किये व फरकतेहुये उग्र मुखवाले कालनाशक, कामदायक, संगरहित, धर्मासन पै स्थित व दो प्रकृतियों में स्थित रुद्रजी को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३३ ॥ व इन्द्रियों के अगोचर, विश्वभुक्, शत्रुवों को जीतेहुये, तीनोंगुणोंसे परे, जन्मरहित, चेष्टावर्जित, तपोमय, वेदमय तथा पुरुहूत व इन्द्ररूपी तुम महेश को मैं प्रणाम करताहूं ॥ ३४ ॥ भविष्य व भूत को जाननेवाले जिन शिवजी को योग के जाननेवाले

मुनीन्द्रलोग ध्यान करते हैं संसाररूपी फसरी को काटनेवाले उन विमुक्त देव को मैं प्रणाम करता हूं ॥ ३५ ॥ जिस परम पुरुष का शरीर उपमारहित है व जिसका प्रभाव व स्वभाव ॥ ३६ ॥ विष्णु व ब्रह्मादिक देवताओं से नहीं जानाजाता है उन अचिन्तनीय शिवदेवजी को मैं प्रणाम करता हूं जिन उग्रमूर्तिवाले शिवजी का आराधनकर भगवान् अगस्त्यजी ने समुद्र को पीलिया ॥ ३७ ॥ और दिलीप ने भी सब कामनाओं को पाया है उन विश्वयोनि शिवजी की शरण में मैं प्राप्त होता हूं हे देवेन्द्र, वन्दनीय, शंभो ! मुझ अनाथ को उधारिये व कृपा करिये क्योंकि तुम कृपालु हो ॥ ३८ ॥ हे उमेश, भव ! दुःख के समुद्र में डूबे हुये मुझ दीन को

निरूपमस्यास्यवपुःप्रभावो नचस्वभावःपरमस्यपुंसः ॥ ३६ ॥ विज्ञायतेविष्णुपितामहाद्यैस्तंवामदेवंप्रणमाम्यचिन्त्यम् ॥ शिवंसमाराध्ययमुग्रमूर्त्तिं पपौसमुद्रंभगवानगस्त्यः॥३७॥ लेभेदिलीपोप्यखिलांश्च कामांस्तंविश्वयोनिंशरणंप्रपद्ये ॥ देवेन्द्रवन्द्योद्धरमामनाथं शम्भोकृपांकारुणिकःकिलत्वम् ॥ ३८ ॥ दुःखार्णवेमग्नमुमेशदीनं समुद्धरत्वम्भवशंकरोसि ॥ सम्पूजयन्तोदिविदेवसङ्घा ब्रह्मेन्द्रपूर्वाविहरन्तिकामम् ॥ ३९ ॥ त्वांस्तौमिनौमीहजपामिसर्वं वन्देभिवन्द्यंशरणंप्रपन्नः ॥ स्तुत्वैवमीशंविररामयावत्तावत्सरुद्रोपिसहस्रतेजाः ॥ ४० ॥ ददौसतस्मैवरदोन्धकारिर्वरत्रयंवैश्रवणायदेवः ॥ सख्यञ्चदिक्पालपदंतृतीयं धनाधिपत्यञ्चदिवौकसांहि ॥ ४१ ॥ यस्मादत्रत्वयासम्यङ् न्यङ्कुमत्यास्तटे शुभे ॥ आराधितोहंविधिवत् कृत्वामूर्तिंमहीमयीम् ॥ ४२ ॥ तस्मात्तवैवनाम्नैतत् स्थानंख्यातम्भविष्यति ॥ कुबेर

ऊपर निकालिये क्योंकि तुम कल्याणकारक हो और तुमको पूजतेहुये ब्रह्मा व इन्द्रादिक देवतागण स्वर्ग में इच्छापूर्वक विहार करते हैं ॥ ३९ ॥ शरण में प्राप्त मैं तुम सर्व को प्रणाम करता हूं व स्तुति करता हूं और जपता हूं व प्रणाम करनेयोग्य तुमको प्रणाम करता हूं इसप्रकार शिवजी की स्तुति कर जबतक वे चुपहुये तबतक हज़ारों तेजवाले व वरदायक उन अन्धकारि देवजीने उन कुबेरजी के लिये तीन वरदानों को दिया कि मित्रता व दिक्पालस्थान और देवताओं के मध्य में धनेशत्वरूप तीसरे वरदानको दिया ॥ ४०।४१ ॥ व यह कहा कि जिसलिये तुमने न्यंकुमती के उत्तम किनारे पै पृथ्वीमयी मूर्ति कर मुझको विधिपूर्वक आराधन किया ॥४२ ॥

इसलिये तुम्हारेही नामसे मेरी प्रीतिको देनेवाला कुबेरनगर ऐसा यह स्थान प्रसिद्ध होगा ॥ ४३ ॥ और तुमने इस स्थान से पश्चिम में उमानाथके लिंग को विधि-पूर्वक थापा है वह सोमनाथ ऐसा कहागया है ॥ ४४ ॥ जो मनुष्य श्रीपञ्चमी में उसको विधि से पूजैगा उसके सात पुश्तियों तक लक्ष्मी होगी ॥ ४५ ॥ इति श्री-स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांन्यंकुमतीमाहात्म्येकुबेरनगरोत्पत्तिकुबेरेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६७ ॥

दो० । यथा कुबेर स्थान ढिग भद्रकालि हैं देवि । दोसौ अरसठि मे सोई चरित कह्यो सुखसेवि ॥ महादेवजी बोले कि उस कुबेरसंज्ञक स्थान से उत्तर भाग में

नगरंचैवं ममप्रीतिप्रदायकम् ॥ ४३ ॥ त्वयाप्रतिष्ठितंलिङ्गमस्मात्स्थानाच्चपश्चिमे ॥ उमानाथस्यविधिवत्सोमनाथेति तत्स्मृतम् ॥४४॥ श्रीपञ्चम्यांविधानेन यस्तंवैपूजयिष्यति ॥ सप्तपुंसावधिर्यावत् तस्यलक्ष्मीर्भविष्यति ॥ ४५॥ इति श्री प्रभासखण्डेन्यङ्कुमतीमाहात्म्येकुबेरनगरोत्पत्तिकुबेरेश्वरमाहात्म्यंनामसप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोध्यायः ॥ २६७ ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्मादुत्तरभागेतु स्थानात्कौबेरसंज्ञिकात् ॥ भद्रकालीमहादेवी वाञ्छितार्थप्रदायिनी ॥ १ ॥ दक्षयज्ञस्यविध्वंसे वीरभद्रसमन्विता ॥ भद्रकालीमहादेवी दक्षयज्ञविनाशिनी ॥ २ ॥ चैत्रेमासितृतीयायांतांदेवींयस्तु पूजयेत् ॥ नवकोट्यस्तुचामुण्डा भविष्यन्तिचपूजिताः ॥ ३ ॥ सौभाग्यंविजयंचैव तस्यलक्ष्मीर्भविष्यति ॥ ४॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्मादुत्तरभागेतु स्थानात्कौबेरसंज्ञिकात् ॥ बालार्कस्तुमहादेवि स्थितोवैरोगनाशनः ॥ ५ ॥ रविवारेण सप्तम्यां गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ यस्तम्पूजयतेभक्त्या कोटियज्ञफलंलभेत् ॥ ६ ॥ मुच्यतेवातपित्तोत्थरोगैरन्यैश्चपुष्क

चाहे हुये प्रयोजन को देनेवाली भद्रकाली महादेवी हैं ॥ १ ॥ दक्षयज्ञ के विध्वंस में वीरभद्रसे संयुत भद्रकाली महादेवी दक्षजी के यज्ञको नाशनेवाली हुई हैं ॥ २ ॥ चैत महीने में तीज तिथि में जो उन देवीजी को पूजता है उससे नवकरोड़ चामुण्डा पूजित होती हैं ॥ ३ ॥ और उसके सौभाग्य, विजय व लक्ष्मी होवैगी ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उस कुबेरसंज्ञक स्थान से उत्तरभाग में रोगनाशक बालार्कजी स्थित हैं ॥ ५ ॥ रविवार सप्तमी तिथि में जो पुरुष भक्ति से गन्ध पुष्प व अनुलेपनों से उन बालार्कजी को पूजता है वह करोड़ यज्ञों के फल को पाता है ॥ ६ ॥ और वात व पित्त से उपजेहुये अन्य बहुत से रोगों से छूट

जाता है और वहींपर भलीभांति यात्रा के फल को चाहनेवाले पुरुषों को अश्व देनाचाहिये ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांभद्रकालीबालार्कमाहात्म्यंनामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । जाल टांगि ध्वजदण्डमें धीवर भो जिमि भूप । दो सौ उनहत्तरे महँ सोई चरित अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि ! उस वैश्रवण (कुबेर) स्थान से नैर्ऋत्यदिशामें सब दरिद्रोंके नाशनेवाले कुबेरजी आपही स्थित हैं ॥ १ ॥ अणिमादिक आठों निधियों से भूषित उनको जो पंचमी तिथिमें भक्तिसे गन्ध

लैः ॥ अश्वस्तत्रैवदातव्यः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभद्रकालीबालार्कमाहात्म्यंनामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्माद्वैश्रवणस्थानान्नैर्ऋत्यांवरवर्णिनि ॥ स्वयंस्थितःकुबेरस्तु सर्वदारिद्र्यनाशनः ॥१॥ अणिमादिनिधानैस्तु अष्टभिःपरिभूषितम् ॥ पञ्चम्यामपूजयेद्भक्त्यागन्धपुष्पानुलेपनैः॥२॥ निधानप्राप्तिरतुलानिर्विघ्नंतस्यजायते ॥ ३ ॥ कुबेरात्पूर्वदिग्भागे बालार्कम्पापनाशनम् ॥ तत्रकुण्डेनरःस्नात्वा ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ४ ॥ बालार्केश्वरनामेति पूर्वभागेव्यवस्थितम् ॥ उत्तरेचाम्बिकास्थानं गयाक्षेत्रेणसंयुतम् ॥५॥ तयोर्दर्शनमात्रेणवाजपेयफलंलभेत् ॥ तत्रैवशतशस्सन्तितीर्थलिङ्गानिभामिनि ॥ ६ ॥ तेषांदर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कौबेरात्पूर्वसंस्थितम् ॥ ७ ॥ गव्यूतिपञ्चकेदेवि पुष्करंनामनामतः ॥ तत्रसिद्धोमहादेवि कैवर्तोमत्स्यघातकः ॥ ८ ॥

पुष्पादिक व अनुलेपनों से पूजताहै ॥ २ ॥ उसको विघ्नरहित अतुल निधानकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥ और कुबेरसे पूर्व दिशा के भागमें पापनाशक बालार्कजी के समीप जावै वहा कुण्ड में नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्याको नाश करता है ॥ ४ ॥ और पूर्वभागमें स्थित बालार्केश्वर नामक लिंग व उत्तर में गयाक्षेत्रसे संयुत अम्बिका स्थान है ॥ ५ ॥ उन दोनों के दर्शनमात्र से मनुष्य वाजपेय यज्ञके फलको पाता है हे भामिनि ! वहीं पर सैकड़ों तीर्थ व लिंग हैं ॥ ६ ॥ उनके दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है महादेवजी बोले कि हे महादेवि, देवि ! तदनन्तर कुबेर स्थान से दश कोस पै स्थित पुष्कर नामक तीर्थ को जावै हे महादेवि !

वहां मछलियों को मारनेवाला केवट सिद्ध हुआ है ॥ ७ । ८ ॥ देवीजी बोलीं कि वह कैसे सिद्धि को प्राप्त हुआ है इसको मुझ से विस्तार समेत कहिये हे देवदेव, महेश्वरजी ! प्रसन्नतासे उसको कहिये ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! जो पुरातन समय स्वारोचिष मन्वन्तरमें वृत्तान्त हुआहै उसको सुनिये कि दुष्ट आचरणोंवाला कोई मछलियोंको मारनेवाला केवट हुआ ॥ १० ॥ पृथ्वीमें घूमता हुआ वह किसी समय पुष्करक्षेत्र में गया व उसने लताओं व वृक्षों से व्याप्त शिवजी के मन्दिर को देखा ॥ ११ ॥ और भीगेहुये जालसे संयुत व दुःखी वह माघमहीनेमें शीत से विकल होकर सूर्यनारायणके तापको ग्रहण करने की इच्छा से मन्दिर पै

देव्युवाच ॥ सविस्तरंममब्रूहि कथंसिद्धिमवापवै ॥ कथयस्वप्रसादेन देवदेवमहेश्वर ॥ ९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविपुरावृत्तं यत्तुस्वारोचिषेन्तरे ॥ आसीत्कश्चिद्दुराचारः कैवर्त्तोमत्स्यघातकः ॥ १० ॥ सकदाचिच्चरन्भूमौ पुष्करेतुजगामवै ॥ ददर्शशाङ्करंवेश्म लतापादपसङ्कुलम् ॥ ११ ॥ समाघमासेशीतार्तः क्लिन्नजालसमन्वितः ॥ प्रासादमारुरोहार्त्तः सूर्यतापजिघृक्षया ॥ १२ ॥ ततःसक्लिन्नजालंयच्छोषणायरवेःकरैः ॥ प्रासादध्वजदण्डाग्रे तज्जालंप्राक्षिपत्तदा ॥ १३ ॥ ततःप्रासादतोदेविभूमौसपतितःक्रमात ॥ समृतःसहसादेवि तस्मिन्क्षेत्रेशिवस्यच ॥ १४ ॥ जालंतस्यप्रभूतेन जीर्णकालेनयत्तदा ॥ ध्वजाबद्धंयतोधूतं प्रासादेशाङ्करेतदा ॥ १५ ॥ ततोसौध्वजमाहात्म्यात् सूतश्चैव नराधिपः ॥ क्रतुध्वजेतिविख्यातः सौराष्ट्रविषयेसुधीः॥१६॥सविस्फूर्यध्वजाग्रेण वित्रासितनरामरः ॥ कामभोगाभिभू

चढ़गया ॥ १२ ॥ तदनन्तर जो भीगा हुआ जाल था उस जालको सूर्यकी किरणों से सूखने के लिये उस समय मन्दिर के ध्वजा के दण्ड के अग्रभाग पै फेंक दिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे देवि ! वह क्रमसे मन्दिरसे गिरपडा व हे देवि ! अचानकही वह शिवजी के क्षेत्रमें मरगया ॥ १४ ॥ जिस लिये उस समय बहुत समय के बाद जालजीर्ण हुआ व जिसकारण उस समय शिवजी के मन्दिरमें ध्वजासे बँधा हुआ जाल कंपित हुआ ॥ १५ ॥ उसी कारण ध्वजा के माहात्म्यसे यह पैदा होकर सौराष्ट्र देशमें क्रतुध्वज ऐसा प्रसिद्ध बुद्धिमान् राजा हुआ ॥ १६ ॥ और स्फुरित ध्वजा के अग्रभाग से मनुष्यों व देवताओं को डरवानेवाले उस प्रतापी

व कामनाओं के भोग से तिरस्कृत चित्तवाले राजा ने राज्य किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर इस प्रभुने शिवजी के मन्दिर में शोभासे संयुत व शुभ्र तथा विचित्र ध्वजा को दिया और कुछ भी नहीं दिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर जातिको स्मरण करनेवाला राजा प्रभासक्षेत्रको आया व उसने पहले आराधन कियेहुये अजागन्ध देवके ध्वजा व जालसे संयुत मंदिरको देखा और उस लिंगके प्रभाव से उस महामनस्वीने दश हज़ार वर्षतक राज्य किया तदनन्तर मृत्यु से स्वर्ग को चलागया उसीकारण वहां बड़े यत्न से जाकर लिंगको पूजै ॥ १९ । २० । २१ ॥ और लिंगसे पश्चिम ओर पापों को चुरानेवाले कुण्ड के समीप जहां ब्रह्मा ने पहले बहुत दक्षिणाओंवाले यज्ञों

तात्मा राज्यंचक्रेप्रतापवान् ॥ १७ ॥ ततोसौभवनेशम्भोर्ददौशोभासमन्विताम् ॥ ध्वजांशुभ्रांविचित्रांच नान्यत्किञ्चिदपिप्रभुः ॥ १८ ॥ ततोजातिस्मरोराजा प्रभासंक्षेत्रमागतः ॥ ददर्शतत्रायतनं ध्वजाजालसमन्वितम् ॥ १९ ॥ अजागन्धस्यदेवस्य पूर्वमाराधितस्यच ॥ दशवर्षसहस्राणि राज्यंचक्रेमहामनाः ॥ २० ॥ तस्यलिङ्गप्रभावेण ततःकालाद्दिवङ्गतः ॥ तस्मात्तत्रप्रयत्नेनगत्वालिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ २१ ॥ लिङ्गात्पश्चिमतःकुण्डे पश्चिमेपापतस्करे ॥ यत्रब्रह्मायजत्पूर्वं यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः ॥ २२ ॥ समाहूयचतीर्थानि पुष्करादीनिपार्वति ॥ तस्मिन्कुण्डेतुविन्यस्य अजागन्धसमीपतः ॥ २३ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहात्मानमजागन्धेतिनामतः ॥ त्रिपुष्करेमहादेवि सर्वपातकनाशनम् ॥ २४ ॥ सौवर्णंकमलंतत्र दद्याद्ब्राह्मणपुङ्गवे ॥ एवंसम्पूज्यविधिवद्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ २५ ॥ मुच्यतेपातकैःसर्वैः सप्तजन्मार्जितैरपि ॥ [illegible]न्दपुराणेप्रभासखण्डेऽजागन्धेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

ति ! वहां पुष्करादिक तीर्थों को आह्वान कर अजागन्ध के समीप उस कुण्ड में विन्यास कर ॥ २३ ॥ हे महादेवि ! अजागन्ध ऐसे शक महात्मा शिवजी को त्रिपुष्कर में थापकर ॥ २४ ॥ वहां द्विजोत्तम के लिये सुवर्ण का कमल देवै इसप्रकार विधिपूर्वक चन्दन, पुष्प भांति पूजकर ॥ २५ ॥ सात जन्मों में इकट्ठा किये हुये भी समस्त पातकों से मनुष्य छूटजाता है ॥ २६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे अयामजागन्धेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २६९ ॥

॥ ॥ ॥

दो॰। जिमि ऋषितोया नदीकर अहै अमित माहात्म्य। दोसौ सत्तर में सोई कह्यो चरित याथात्म्य॥ महादेवजी बोले कि हे देवि! उससे आग्नेय दिशा के भाग में चौदह कोस पै देवकुल नामक स्थान है जहां कि देवताओं का सगम हुआ है॥ १॥ हे महादेवि! जिसलिये पुरातन समय लिंग गिरानेमें जहां ऋषियों व सिद्धों का संगम हुआ है उसीकारण वह स्थान देवकुल कहा गया है॥ २॥ उसके पश्चिम दिशा के भाग में ऋषितोया महानदी है हे देवि! वह समस्त पातकों को नाशनेवाली व ऋषियों को प्यारी है॥ ३॥ उसमें भलीभाति नहाकर जो मनुष्य पितरोंको तर्पण करताहै वह सत्तर हज़ार वर्षोंतक पितरोंकी तृप्ति करताहै॥ ४॥

ईश्वर उवाच॥ तस्मादाग्नेयदिग्भागे गव्यूतिसप्तकेनच॥ स्थानंदेवकुलंनाम देवानांयत्रसङ्गमः॥ १॥ ऋषीणां यत्रसिद्धानां पुरालिङ्गनिपातने॥ यस्माद्यातोमहादेवि तस्माद्देवकुलंस्मृतम्॥ २॥ तस्यपश्चिमदिग्भागे ऋषितोयामहानदी॥ ऋषीणांवल्लभादेवि सर्वपातकनाशिनी॥ ३॥ तत्रस्नात्वानरःसम्यक् पितॄन्निर्वर्तयेत्तुयः॥ सप्तवर्षायुतान्येव पितॄणांतृप्तिमावहेत॥ ४॥ सुवर्णंतत्रदेयन्तु अजिनंकम्बलंतथा॥ आषाढेचाप्यमायांवैयत्किञ्चिद्दीयतेध्रुवम्॥ ५॥ वर्द्धतेतद्दशगुणं यावदायातिपूर्णिमा॥ मुच्यतेपातकैःसर्वैः सप्तजन्मार्जितैरपि॥ ६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेऋषितोयामाहात्म्यंनामसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७०॥ * ॥ * ॥

देव्युवाच॥ देवदेवजगन्नाथ संसारार्णवतारक॥ सविस्तरन्त्वंमेब्रूहि ऋषितोयामहोदयम्॥ १॥ ऋषितोयेति

वहां सुवर्ण व मृगचर्म तथा कम्बल देना चाहिये व आषाढ़ में अमावस तिथिमें जो कुछ वहां दिया जाता है निश्चय कर॥ ५॥ वह तबतक दशगुना बढ़ता है जबतक कि पौर्णमासी आती है और वह सात जन्मों में भी इकट्ठा कियेहुये पातकोंसे छूटजाता है॥ ६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांऋषितोयामाहात्म्यंनामसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७०॥ ॥ ॥ ॥

दो॰। जो ऋषितोया नदी कर भयो यथाविधि नाम। दो सौ इकहत्तरे महँ सोई चरित ललाम॥ देवीजी बोलीं कि हे संसाररूपी समुद्रसे उतारनेवाले, देवदेव! तुम

ऋषितोया के माहात्म्य को विस्तार समेत मुझ से कहो ॥ १ ॥ और ऋषितोया ऐसा जो नाम है वह पृथ्वी में कैसे प्रसिद्धहुआ और वह नदी उत्तम देवदारुवन में फिर कैसे आई है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! मैं कहताहूं सावधान होतीहुई तुम मेरे वचन को सुनो और ऋषितोया के समस्त पातकों के नाशक माहात्म्य को सुनिये ॥ ३ ॥ हे वरारोहे ! पवित्र देवदारुवन में सैकड़ों व हज़ारों तपस्यासे संयुत ऋषिलोग बसते थे ॥ ४ ॥ और उस प्रभासक्षेत्र में वे सब द्विजोत्तम नित्य बावली, कुँवा व तड़ागादिकमें स्नान करतेथे ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! वहां उनको बसतेहुये बहुत समय व्यतीत हुआ और पुत्रों व पौत्रों से बढ़ेहुये वे देवदारुवनको व्याप्त

यन्नाम कथंख्यातंधरातले ॥ कथंसापुनरायाता देवदारुवनेशुभे ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि सावधाना वचोमम ॥ माहात्म्यमृषितोयायाः सर्वपातकनाशनम् ॥ ३ ॥ देवदारुवनेपुण्ये ऋषयस्तपसायुताः ॥ निवसन्तिवरारोहे शतशोथसहस्रशः ॥ ४ ॥ तस्मिन्प्राभासिकेक्षेत्रे सर्वेतेद्विजसत्तमाः ॥ वापीकूपतडागादौ स्नानंकुर्वन्तिनित्यशः॥ ५ ॥ तेषांनिवसतांतत्र बहुकालोगतःप्रिये ॥ पुत्रपौत्रैःप्रवृद्धास्ते दारुकंव्याप्यसंस्थिताः ॥ ६ ॥ तेसर्वेचिन्तयामासुः समेत्यचपरस्परम् ॥ सरस्वतीमहापुण्या शिरस्याधायवाडवम् ॥ ७ ॥ प्रभासंचिरकालेन क्षेत्रंचैवागमिष्यति ॥ वापीकूपतडागादौ मुक्त्वादेवींसमुद्रगाम् ॥ ८ ॥ नरुचिंकुरुतेचेतः स्नानहोमजपेषुच ॥ ब्रह्माणंप्रार्थयिष्यामो गत्वाब्रह्मनिकेतनम् ॥ ९ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंसंमन्त्र्यतेसर्वेऋषयश्चतपोधनाः ॥ गतास्तेब्रह्मलोकन्तु द्रष्टुंदेवंपितामहम् ॥१०॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैर्ब्रह्माणंकमलोद्भवम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नमःप्रणवरूपाय विश्वकर्त्रेनमोनमः ॥ ११ ॥ तथाविश्व

कर टिकते भये ॥ ६ ॥ और उन सबोंने इकट्ठा होकर परस्पर विचार किया कि महापुण्यवती सरस्वती बड़वानलको मस्तक पै धरकर ॥ ७ ॥ बहुत समयसे प्रभासक्षेत्रको आवैगी और समुद्रगामिनी सरस्वती देवी को छोडकर बावली, कूप व तड़ागादिकों में ॥ ८ ॥ चित्त स्नान, होम और जप में रुचि नहीं करता है इसकारण ब्रह्मस्थानको जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना करैंगे ॥ ९ ॥ महादेवजी बोले कि इस प्रकार सम्मति कर तपस्यारूपी धनवाले वे सब ऋषिलोग ब्रह्मा देवको देखने के लिये ब्रह्मलोक को गये ॥ १० ॥ और उन्होंने कमल से उपजे हुये ब्रह्माकी अनेक प्रकार के स्तोत्रोंसे स्तुति किया ऋषिलोग बोले कि ॐकाररूपी आपके लिये

प्रणाम है व संसार को रचनेवाले आपके लिये बार २ प्रणामहै ॥ ११ ॥ वैसेही संसार की रक्षा करनेवाले परमात्मा के लिये प्रणाम है व उसी का संहार करनेवाले ब्रह्मस्वरूपी आपके लिये प्रणामहै ॥ १२ ॥ हे पितामह ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै हे सुरज्येष्ठ ! तुम्हारे लिये प्रणामहै इसप्रकार स्तुति करतेहुये उन ऊर्द्ध्वरेता ऋषियों से ॥१३॥ बहुत प्रसन्न होकर लोकोंके पितामह ब्रह्माजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुम्हारा आना अच्छाहुआ और इस दिव्यस्तोत्रसे मैं तुम लोगोंके ऊपर प्रसन्न हुआहूं उत्तम वरदानको मांगिये ॥ १४।१५॥ ऋषिलोग बोले कि हम लोगोंके स्नानकेलिये पापोंको नाश करनेवाली नदीको दीजिये हे सुरश्रेष्ठ ! इसको देखकर हम लोगोंको

स्यरचित्रे नमोस्तुपरमात्मने ॥ तथातस्यैवसंहर्त्रे नमोब्रह्मस्वरूपिणे ॥ १२ ॥ पितामहनमस्तुभ्यं सुरज्येष्ठनमोस्तु ते ॥ एवंसंस्तुवतांतेषामृषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ १३ ॥ उवाच परमप्रीतो ब्रह्मालोकपितामहः ॥ स्वागतंवोद्विजश्रेष्ठा युष्मा कन्तुष्टवानहम् ॥ १४ ॥ स्तोत्रेणानेनदिव्येन वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अभिषेकायनोदेहि नदीं पापप्रणाशिनीम् ॥ विलोक्यैततसुरश्रेष्ठ देहिनोवरमुत्तमम् ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्तस्तैस्तदाब्रह्मा मुनिभिस्त पसोज्ज्वलैः ॥ वीक्षांचक्रेतदासर्वा मूर्तिमत्यश्चनिम्नगाः ॥ १७ ॥ गङ्गाचयमुनाचैवतथादेवीसरस्वती ॥ चन्द्रभागाचरे वाच सरयूगण्डकीतथा ॥ १८ ॥ तापीचैववरारोहेतथागोदावरीनदी ॥ कावेरीमाहेन्द्रपुत्री शिप्राचर्मण्वतीतथा ॥१९॥ सिन्धुश्चदेविकाचैव नदाःसर्वेवरानने ॥ मूर्तिमन्तःस्थिताःसर्वे पवित्राःपापनाशनाः ॥ २० ॥ दृष्ट्वापितामहःसर्वाः सत्व राधरणीम्प्रति ॥ देवदारुवनेरम्ये प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ २१ ॥ कमण्डलौकृताद्दृष्टिर्विविशुस्ताःकमण्डलुम् ॥ ब्रह्मो

उत्तम वर को दीजिये ॥ १६ ॥ महादेवजी बोले कि उस समय तपस्यासे उज्ज्वल उन मुनियोंसे ऐसा कहेहुये ब्रह्माजी ने तब मूर्तिमती नदियों को देखा ॥ १७ ॥ और गंगा, यमुना व सरस्वती देवी तथा चन्द्रभागा, नर्मदा, सरयू व गण्डकी ॥ १८॥ व हे वरारोहे ! तापी व गोदावरी नदी, कावेरी, महेन्द्रपुत्री, शिप्रा, चर्मण्वती॥ १९॥ व हे वरानने ! सिन्धु व देविका नदी और पातकोंके नाशक व पवित्र सब नद मूर्तिमान् होकर स्थित हुये ॥ २० ॥ व पितामहजी ने पृथ्वी में उत्तम प्रभासक्षेत्र में सु-न्दर देवदारु वनमें शीघ्रतासमेत सब नदियोंको देखकर ॥ २१ ॥ कमण्डलुमें दृष्टि किया और वे नदियां कमण्डलुमें पैठगईं ब्रह्माजी बोले कि महापवित्र ये सब न-

दियां ऋषियोंके ऊपर दयासे पृथ्वी में जानेके लिये ब्रह्मकमण्डलु में पैठी हैं हे ब्राह्मणो! यदि मैं एक नदीको पठाऊं तो अन्य क्रोधित होवैंगी ॥ २२ । २३ ॥ इस लिये कमण्डलु में स्थान किये हुई सब नदियों को छोड़ूंगा ॥ २४ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर उस कमण्डलु में स्थित महानदियों को छोड़दिया व उनको छोड़कर ब्रह्मा ने सब मुनियों से बार २ यह कहा ॥ २५ ॥ कि ऋषियों से प्रार्थना कियेहुये मैंने जिसलिये स्नान के निमित्त महावेगवती व जलमयी तथा शीघ्रतासमेत नदियों को छोड़ा है ॥ २६ ॥ इसकारण हे देवि! समस्त पातकों को नाशनेवाली व ऋषियोंको प्यारी वह ऋषितोयानामक नदी पृथ्वी में होगी ॥ २७ ॥

वाच ॥ एताःसर्वामहापुण्या नद्योब्रह्मकमण्डलुम् ॥ २२ ॥ प्रविष्टाःपृथिवींयातुमृषीणामनुकम्पया ॥ प्रहिणोमियदेका श्च अन्यारुष्यन्तिभोद्विजाः ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वाःप्रमोक्ष्यामि कमण्डलुकृतालयाः ॥ २४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोब्रह्मामुमोचाथ तत्रस्थाश्चमहापगाः ॥ मुक्त्वाब्रह्मामुनीन्सर्वान् प्रोवाचेदंपुनःपुनः ॥ २५ ॥ ऋषिभिःप्रार्थ्यमानेन नद्यो मुक्तामयायतः ॥ तोयरूपामहावेगा अभिषेकायसत्वराः ॥ २६ ॥ ऋषितोयेतिनामासा भविष्यतिधरातले ॥ ऋषीणां वल्लभादेवि सर्वपातकनाशिनी ॥ २७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंदेवीसमायाता देवदारुवनेनदी ॥ ऋषितोयेतिविख्याता पवित्राचवरानने ॥२८॥तूर्यदुन्दुभिनिर्घोषैर्वेदमङ्गलनिस्वनैः ॥ समुद्रंप्रापितादेविऋषिभिर्वेदपारगैः ॥२९॥ सर्वत्रसुलभा देवि त्रिषुस्थानेषुदुर्लभा ॥ महोदयेमहातीर्थे मूलचण्डीशसन्निधौ ॥ ३० ॥ समुद्रेणसमेतातु यत्रसापूर्ववाहिनी॥ यत्रर्षितोयालभ्येत तत्रकिंमृग्यतेपरम् ॥ ३१ ॥ मनुष्यास्तेसदाधन्यास्तत्तोयन्तुपिबन्तिये ॥ अस्थीनियत्रलीयन्ते षण्मा

महादेवजी बोले कि हे वरानने! इसप्रकार देवदारुवन में ऋषितोया ऐसी प्रसिद्ध देवी व पवित्र नदी आई है ॥ २८ ॥ हे देवि! वेदों के पारगामी ऋषियोंने तुरुही व नगारों के शब्दों से और वेदोंके मंगलशब्दों से वह नदी समुद्रको प्राप्तकराईगई है ॥ २९ ॥ हे देवि! वह सब कहीं सुलभ है और महोदय, महातीर्थ व मूलचण्डीशके समीप तीन स्थानोंमें दुर्लभहै ॥ ३० ॥ जहां समुद्रसमेत वह पूर्ववाहिनी नदी है व जहां ऋषितोया नदी मिलती है वहां अन्य क्या ढूंढ़ाजाताहै ॥ ३१ ॥

वे मनुष्य सदैव धन्य हैं जो कि उसके जलको पीते हैं और छः महीने के मध्य में जहां अस्थि लीन होजाते हैं ॥ ३२ ॥ प्रातःकाल में गंगा व संगव समय में यमुना नदी बहती है और हज़ारों नदियों से संयुत सरस्वतीजी मध्याह्न में बहती हैं ॥ ३३ ॥ व अपराह्न में नर्मदा तथा सायाह्न समयमें यमुनाजी बहती हैं एसा जानताहुआ जो विद्वान् पुरुष उसमें स्नान करता है ॥ ३४ ॥ व विधिसेजो श्राद्ध करता है वह उसके फलका भागी होता है इसप्रकार ऋषितोया का माहात्म्य संक्षेप से कहागया ॥ ३५ ॥ जोकि मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाला व सब कामनाओं के फलको देनेवाला है ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमि

साभ्यन्तरेणतु ॥ ३२ ॥ प्रातःकालेवहेद्गङ्गा सङ्गवेयमुनातथा ॥ नदीसहस्रसंयुक्ता मध्याह्नेतुसरस्वती ॥ ३३ ॥ अपराह्णेवहेद्रेवा सायाह्नेसूर्यपुत्रिका ॥ एवंजानन्नरोयस्तु तत्रस्नानंविचक्षणः ॥ ३४ ॥ आचरेद्विधिनाश्राद्धं सतस्याःफलभाग्भवेत् ॥ एवंसंक्षेपतःप्रोक्तमृषितोयामहोदयम् ॥ ३५ ॥ सर्वपापहरंनृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे ऋषितोयामाहात्म्यन्नामैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ऋषितोयापश्चिमेतु तत्रगव्यूतिमात्रतः ॥ शृगालेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ गुप्तस्तत्रप्रयागश्च देवोवैमाधवस्तथा ॥ जाह्नवीयमुनाचैव देवीतत्रसरस्वती ॥ २ ॥ अन्यानितत्रतीर्थानि बहूनिचवरानने ॥ स्नात्वास्पृष्ट्वापूजयित्वा मुक्तःस्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ ३ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कथयत्वंमहेशान सर्वदेवनमस्कृतः ॥ तीर्थरा

श्रविरचितायांभाषाटीकायामृषितोयामाहात्म्यंनामैकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७१ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । भयो अमित माहात्म्य युत तीरथ गुप्त प्रयाग । दो सौ बहतरि में सोई चरित कह्यो सुखपाग ॥ महादेवजी बोले कि वहां ऋषितोयाके पश्चिम में दो कोसके प्रमाण पर समस्त पातकों के नाशक शृगालेश्वरनामक शिवजी के समीपजावै ॥ १ ॥ वहां गुप्त प्रयाग व माधव देवहैं और वहीं परगंगा, यमुना व सरस्वती देवी हैं ॥ २ ॥ व हे वरानने ! वहीं पर अन्य बहुत से तीर्थ हैं उनमें नहाकर, स्पर्शकर व पूजकर सब पातकों से मनुष्य छूटजाता है ॥ ३ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि हे

महेशजी ! कहिये कि सब देवताओं से नमस्कार कियेहुये तीर्थराज प्रयाग व सनातन विष्णुजी किसप्रकार वहां आये हैं ॥ ४ ॥ व यमुनासमेत गंगाजी व सरस्वती देवी किसप्रकार आई हैं व हे वृषभध्वज ! अन्य भी बहुत से तीर्थ ॥ ५ ॥ वहीं शृगालेश्वर के समीप आये हैं और शृगालेश्वर नाम क्यों हुआ इस कौतुक को मुझसे कहिये ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि हे सुरसुन्दरि ! पुरातन समय लिंग के गिरने पर जब सब देवताओं का समागम हुआ तब साढ़ेतीन करोड़ मुख्य ॥ ७ ॥ तीर्थ व यह तीर्थराज प्रयाग प्राप्तहुवा व करोड़ों तीर्थोंसे घिरेहुये इसने अपनाको छिपाया ॥ ८ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवता वहां आये और उन्होंने दिव्य-

जःप्रयागश्च कथंविष्णुस्सनातनः ॥ ४ ॥ कथंगङ्गासयमुना तथादेवीसरस्वती ॥ अन्यान्यपिबहून्येव तीर्थानिवृषभ ज ॥ ५ ॥ समायातानितत्रैव शृगालेश्वरसन्निधौ ॥ शृगालेश्वरकिन्नाम एतन्मेवदकौतुकम् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ पुरा वैलिङ्गपतने सर्वदेवसमागमे ॥ सार्द्धत्रितयकोटीनि मुख्यानिसुरसुन्दरि ॥ ७ ॥ तीर्थानितीर्थराजोयं प्रयागस्समुपस्थि तः ॥ आत्मानङ्गोपयामास तीर्थकोटिभिरावृतम् ॥ ८ ॥ ततस्तत्रसमायाता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ विबुधास्तीर्थराजा नं ददृशुर्दिव्यचक्षुषः ॥ ९ ॥ तीर्थकोटिभिराकीर्णं पवित्रंपापनाशनम् ॥ लिङ्गस्यपतनंश्रुत्वा महादुःखेनसंयुताः ॥ १० ॥ स्थितास्सर्वेतदादेवि ब्रह्माद्यास्सुरसत्तमाः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु देवोरुद्रस्सनातनः ॥ ११ ॥ समायातस्तुतत्रैव वाक्य मेतदुवाचह ॥ शृणुध्ववंवचनंदेवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥ १२ ॥ ऋषिशापान्निपतितं ममलिङ्गमनुत्तमम् ॥ तस्माल्लि ङ्गंपूजयध्वं सर्वकामार्थसिद्धये ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामहादेवो देशेतस्मिन्स्थितःप्रिये ॥ ब्राह्मयञ्चवैष्णवंरौद्रं तत्रकुण्डत्र

दृष्टि से करोड़ों तीर्थों से व्याप्त व पापनाशक तथा पवित्र तीर्थराजको देखा लिंगका गिरना सुनकर बड़े दुःखसे संयुत ॥ ९ । १० ॥ सब ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठ हे देवि ! उससमय स्थितहुये इसीसमय में सनातन शिवदेवजी ॥ ११ ॥ आये व इस वचन को बोले कि हे ब्रह्मा, विष्णु आदिक देवताओ ! वचन को सुनय ॥ १२ ॥ कि ऋषियों के शाप से मेरा अति उत्तम लिंग गिरा है इसलिये सब कामनाओं की सिद्धिके लिये लिंगको पूजिये ॥ १३ ॥ हे प्रिये ! ऐसा कहकर महादेवजी उस

स्थान में स्थित हुये वहां ब्रह्मा, विष्णु व महादेवजी के तीन कुण्ड कहेगये हैं ॥ १४ ॥ और चौथा त्रिसंगमनामक कुण्ड है जहां कि नदियों का संगम हुआ है गंगा सरस्वती व यमुना का वह संगम है ॥ १५ ॥ ब्रह्मकुण्ड में एककरोड़ तीर्थ स्थितहैं वैसेही वैष्णवकुण्ड में एक करोड़ तीर्थ हैं ॥ १६ ॥ और डेढ़ करोड़ तीर्थ सुन्दर शिवकुण्ड में हैं पश्चिम में ब्रह्मकुण्ड है व पूर्व में वैष्णवकुण्ड कहागया है ॥ १७ ॥ और जो मध्यभाग में स्थितहै वह रुद्रकुण्ड कहागया है हे वरानने ! कुण्डके मध्यसे निकल कर जहां गंगाजी ॥ १८ ॥ सूर्य कन्या (यमुना जी) से मिली हैं वहां संगम कहाजाता है इन दोनोंके सूक्ष्म अन्तर में वहां गुप्त सरस्वतीजी हैं ॥

यंस्मृतम् ॥ १४ ॥ चतुर्थंत्रिस्सङ्गमाख्यं नदीनांयत्रसङ्गमः ॥ गङ्गायाश्चसरस्वत्यास्सूर्यपुत्र्यास्तथैवच ॥ १५ ॥ कोटिरेकाचतीर्थानां ब्रह्मकुण्डेऽयवस्थिता ॥ तथावैवैष्णवेकुण्डे कोटिरेकाचतीर्थतः ॥ १६ ॥ सार्द्धकोटिस्सुसंप्रोक्ता शिवकुण्डेमनोहरे ॥ पश्चिमेब्रह्मकुण्डश्च पूर्वेवैष्णवंस्मृतम् ॥ १७ ॥ मध्यभागेस्थितंयच्च रुद्रकुण्डंप्रकीर्त्तितम् ॥ कुण्डमध्याद्विनिर्गत्य यत्रगङ्गावरानने ॥ १८ ॥ सूर्यपुत्र्याचमिलिता तत्रसङ्गमउच्यते ॥ अनयोरन्तरेसूक्ष्मे तत्रगुह्यासरस्वती ॥ १९ ॥ आस्तेसन्निहितोनित्यं प्रयागस्तीर्थनायकः ॥ अत्रागत्यनरोयस्तु माघेमासिवरानने ॥ २० ॥ स्नायात्प्रभातसमये मकरस्थेरवौप्रिये ॥ किञ्चिदभ्युदितेसूर्ये शृणुतस्यचयत्फलम् ॥ २१ ॥ तत्रैकेनचस्नानेन पापंयन्मनसाकृतम् ॥ व्यपोहतिनरस्सम्यक्छ्रद्धायुक्तोजितेन्द्रियः ॥ २२ ॥ वाचिकन्तुद्वितीयेन तृतीयेनतुकायिकम् ॥ संसर्गञ्चचतुर्थेन रहस्यंपञ्चमेनतु ॥ २३ ॥ उपपातकानिषष्ठेन स्नानेनैवव्यपोहति ॥ अभिषेकेनकुण्डानां सप्तकृत्वोवरानने ॥ २४ ॥

१९ ॥ व इन नदियोंमें तीर्थराज प्रयागजी सदैव स्थित रहते हैं हे वरानने ! जो मनुष्य यहां आकर माघ महीने में ॥ २० ॥ हे प्रिये ! मकर राशि में सूर्यनारायणके स्थित होने पर प्रातःकाल कुछ सूर्योदय होने पर जो नहाता है उसको जो फल मिलता है उसे सुनिये ॥ २१ ॥ कि जो मनसे पाप कियागया है उसको एक स्नान से भलीभांति श्रद्धायुक्त व जितेन्द्रिय पुरुष नाशकरता है ॥ २२ ॥ और दूसरे स्नान से वाचिक पाप व तीसरे से शारीरक पापको नाश करताहै और चौथे स्नान से संसर्गिक पाप व पांचवें से गुप्त पापको नाशताहै ॥ २३ ॥ व छठे स्नान हीसे उपपातकोंको नाशता है और हे वरानने ! कुण्डोंका सातबार अभिषेक कर ॥ २४ ॥

मनुष्य सदैव बड़े पातकोंको नाशताहै और गुप्तसंज्ञक प्रयागमें जो सम्पूर्ण महीनेभर नहाताहै ॥ २५ ॥ उसका फल ब्रह्मादिक देवताओं से करोड़ों कल्पोंसे भी नहीं कहाजासक्ता है हे भामिनि ! प्रभास में जो कोई तीर्थ हैं ॥ २६ ॥ उनसे अत्यन्त प्रिय व समस्त पातकों को नाश करनेवाला यह तीर्थ है इनकी रक्षा के लिये मैंने वहां मातृकाओं को नियुक्त किया है ॥ २७ ॥ वे अनेकभांति के उत्तम नैवेद्यों से बड़े यत्नसे पूजने योग्यहैं कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिमें दृढ़व्रत व श्रद्धासंयुत पुरुष ॥ २८ ॥ हे देवि ! उन मातृकाओं के जो करोड़ों भूत, प्रेत अनुचर हैं उनके भय को नाशने के लिये उन मातृकाओं को पूजै ॥ २९ ॥ इस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य

महान्तिचैवपापानि नाशयेत्पुरुषस्सदा ॥ यस्स्नातिसकलंमासं प्रयागेगुप्तसंज्ञिके ॥ २५ ॥ ब्रह्मादिभिर्नतद्वक्तुं शक्यतेकल्पकोटिभिः ॥ यानिकानिचतीर्थानि प्रभासेसन्तिभामिनि ॥ २६ ॥ तेभ्योतिवल्लभंतीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ एषांसंरक्षणार्थाय मयावैतत्रमातरः ॥ २७ ॥ पूजनीयाःप्रयत्नेन नैवेद्यैर्विविधैश्शुभैः ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यां श्रद्धायुक्तोदृढव्रतः ॥ २८ ॥ तासामनुचरादेवि भूतप्रेताश्चकोटिशः ॥ तेषांभयविनाशाय तामातॄश्चप्रपूजयेत् ॥ २९ ॥ अस्मिंस्तीर्थेनरस्स्नात्वा ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ यःकश्चित्कुरुतेश्राद्धं पितॄनुद्दिश्यभक्तितः ॥ ३० ॥ उद्धरेच्चपितुर्वर्गं मातृवर्गंनरोत्तमः ॥ वृषभस्तत्रदातव्यः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ३१ ॥ एवंयःकुरुतेयात्रां भवेत्फलमनन्तकम् ॥ एवंगुप्तप्रयागस्य माहात्म्यंकथितन्तव ॥ ३२ ॥ श्रुत्वाभिनन्द्यपुरुषः प्राप्नुयाच्छङ्करालयम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेगुप्तप्रयागमाहात्म्यन्नामद्विसप्तत्याधिकाद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥ * ॥

ब्रह्महत्याको नाशता है और पितरोंको उद्देश कर जो कोई मनुष्य भक्तिसे वहां श्राद्ध करता है ॥ ३० ॥ वह उत्तम पुरुष पिता के वर्ग व माताके वर्ग को उधारता है वहां भलीभांति यात्रा के फलको चाहनेवाले पुरुषको वृष (बैल) देना चाहिये ॥ ३१ ॥ इसप्रकार जो मनुष्य यात्रा करता है उसको अमित फल होताहै इसप्रकार गुप्तप्रयागका माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ३२ ॥ इसको सुनकर व प्रशंसा कर मनुष्य शिवजी के स्थानको प्राप्तहोता है ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगुप्तप्रयागमाहात्म्यंनामद्विसप्तत्याधिकाद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । माधवजी को पूजि जिमि मिलत रुचिर फल जौन । दो सौ तिहतरिमें सोई कथा कही सब तौन ॥ महादेवजी बोले कि उसी के दक्षिणभाग में थोड़े ही दूर पै स्थित शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले माधवजी वहां भलीभांति टिकेहुये हैं ॥ १ ॥ शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में धोयेहुये वसनको पहने जो जितेन्द्रिय पुरुष उनको भक्ति से चन्दन, पुष्प व अनुलेपनों से पूजता है ॥ २ ॥ वह फिर जन्मको न देनेवाले उत्तमस्थान को प्राप्तहोता है इस विषय में पुरातनसमय लोकों को रचनेवाले ब्रह्माने गाथा को गाया है ॥ ३ ॥ कि विष्णुकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य माधवजी को पूजता है वह उस उत्तम स्थान को प्राप्तहोता है जहां कि आ-

ईश्वर उवाच ॥ तस्यैवदक्षिणेभागे नातिदूरेऽव्यवस्थितः ॥ शङ्खचक्रगदाधारी माधवस्तत्रसंस्थितः ॥ १ ॥ एकादश्यांसितेपक्षे धौतवासाजितेन्द्रियः ॥ यस्तंपूजयतेभक्त्या गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ २ ॥ सयातिपरमंस्थानमपुनर्भवदायकम् ॥ अत्रगाथापुरागीता ब्रह्मणालोककर्तृणा ॥ ३ ॥ विष्णुकुण्डेनरस्स्नात्वा योवैमाधवमर्चयेत् ॥ सयास्यतिपरंस्थानं यत्रदेवोहरिस्स्वयम् ॥ ४ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं माहात्म्यंविष्णुदैवतम् ॥ सर्वकामप्रदंनॄणां सर्वपातकनाशनम् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे माधवमाहात्म्यन्नामत्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

शिव उवाच ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे किञ्चिद्वायव्यदिक्स्थितम् ॥ शृगालेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्रब्रह्माचविष्णुश्च लिङ्गस्याराधनोद्यतौ ॥ शक्रश्चैवमहातेजा लिङ्गंपूजितवान्प्रिये ॥ २ ॥ वरुणोधनदश्चैव धर्मराजो

पही विष्णुजी हैं ॥ ४ ॥ मनुष्यों के समस्त पातकों को नाशनेवाला व सब कामनाओं को देनेवाला यह विष्णु देवताका सब माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येमाधवमाहात्म्यंनामत्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७३ ॥

दो० । शृगालेश्वरहिं लिंग जिमि थाप्यो सुर समुदाय । दो सौ चौहत्तरे महँ सोई चरित सुहाय ॥ महादेवजी बोले कि उसीके उत्तर दिशाके भाग में कुछ वायव्यमें स्थित समस्त पातकोंको नाशनेवाले शृगालेश्वरनामक शिवके समीप जावे ॥ १ ॥ वहां ब्रह्मा व विष्णु लिंगके आराधनमें तत्पर हुये हैं व हे प्रिये ! बड़े तेजस्वी इन्द्र-

जीने लिंगको पूजा है ॥ २ ॥ और वरुण, कुबेर, यमराज व अग्नि ने उस लिंगको पूजाहै व आदित्य, वसु और लोकपालों ने सब ओर से ॥ ३ ॥ शृगालेश्वर-नामधारी महालिंग को आराधन किया है व उन सबों ने पूजकर तथा उत्तम माहात्म्य को देखकर ॥ ४ ॥ हे देवि ! बड़े आनन्दसे संयुत उन्होंने अचानक ही कहा कि जिसलिये देवताओं के गणों ने आकर लिंगको थापन किया है ॥ ५ ॥ उसीकारण पृथ्वी में इसका शृगालेश्वर नाम होगा जो मनुष्य शृगालेश्वर-नामक शिवजीको पूजैंगे ॥ ६ ॥ उनके वंशमें कोई निर्धनी न पैदा होगा और कुरुक्षेत्रमें हज़ार गौवोंके देनेका जो फल है ॥ ७ ॥ उस फलको मनुष्य शृगालेश्वरजी

थपावकः ॥ आदित्यैर्वसुभिश्चैव लोकपालैस्समन्ततः ॥ ३ ॥ आराधितंमहालिङ्गं शृगालेश्वरनामभृत ॥ पूजयित्वातुतेसर्वे दृष्ट्वामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ ऊचुस्तेसहसादेवि परमानन्दसंयुताः ॥ देवानांनिवहैर्यस्मात्समागत्यप्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥ शृगालेश्वरनामास्य भविष्यतिधरातले ॥ शृगालेश्वरनामानं पूजयिष्यन्तिमानवाः ॥६॥ नतेषामन्वयेकश्चिन्निर्धनस्सम्भविष्यति ॥ गोसहस्रप्रदत्तस्य कुरुक्षेत्रेचयत्फलम् ॥ ७ ॥ तत्फलंसमवाप्नोति शृगालेश्वरदर्शनात् ॥ ८ ॥ अमावस्याञ्चसम्प्राप्य स्नानंकृत्वाविधानतः ॥ यःकरोतिनरःश्राद्धं पितॄणांरोषवर्जितः ॥ ९ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ अर्द्धक्रोशंचतत्क्षेत्रं समन्तात्परिमण्डलम् ॥ १० ॥ सर्वकामप्रदंनृणांसर्वपातकनाशनम् ॥ अस्मिन्क्षेत्रेमहादेवि, जीवाउत्तममध्यमाः ॥ ११ ॥ कालेननिधनंप्राप्तास्तेपियान्तिपराङ्गतिम् ॥ गृहीत्वानशनंयेतु प्राणांस्त्यक्ष्यन्तिमानवाः ॥ १२ ॥ निश्चयन्तेमहादेवि लीयन्तेपरमेश्वरे ॥ गवाहताद्विजहता येदंष्ट्रिपशु

के दर्शनसे प्राप्तहोता है ॥ ८ ॥ और अमावस तिथिको प्राप्तहोकर स्नानकर क्रोधवर्जित जो मनुष्य विधि से पितरोंका श्राद्ध करता है ॥ ९ ॥ उसके पितर प्रलयपर्यन्त तृप्त होते हैं सब ओर से मण्डलवाला वह क्षेत्र आध कोसहै ॥ १० ॥ जोकि मनुष्यों के सब कामनाओं को देनेवाला व समस्त पातकोंको नाशनेवाला है हे महादेवि ! इस क्षेत्रमें जो उत्तम मध्यम जीवहैं ॥ ११ ॥ कालसे मृत्युको प्राप्त हुये वे भी उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं और अनशन व्रतको ग्रहणकर जो मनुष्य प्राणोंको छोड़ते हैं ॥ १२ ॥ वे हे महादेवि ! निश्चयकर परमेश्वर में लीन होजाते हैं जो पशुसे मारेगये हैं व जो पक्षियों से मारेगये हैं और जो दाढ़वाले

पशुवोंसे मारेगये हैं ॥ १३ ॥ व जो आत्मघाती हैं और सांपसे काटेहुये जो मरे हैं और शौचसे वर्जित जिन मनुष्योंके शय्या में प्राण जाते रहे हैं ॥ १४ ॥ उनको फिर जन्मको न देनेवाले इस महापवित्र तीर्थ में सोलह श्राद्धों के देनेसे तदनन्तर फिर वृषोत्सर्ग करने पर ॥ १५ ॥ व विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराने से निःसन्देह मुक्ति होती है ऐसा कहकर सब देवता स्वर्गको चलेगये ॥ १६ ॥ यह शृगालेश्वर का माहात्म्य तुमसे संक्षेपसे कहागया सुनाहुआ जोकि पापोंको हरता है व दुःख और शोकको नाश करता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येशृगालेश्वरमाहात्म्यंनामचतुस्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥ ❁ ॥ ❁ ❁ ॥ ❁ ॥

भिर्हताः ॥ १३ ॥ आत्मनोघातकायेतु सर्पदष्टाश्चयेमृताः ॥ शय्यायाञ्चगतप्राणा येचशौचविवर्जिताः ॥ १४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेमहापुण्ये अपुनर्भवदायके ॥ दत्तैःषोडशभिःश्राद्धैर्वृषोत्सर्गेततःपुनः ॥ १५ ॥ विधिवद्भोजितैर्विप्रैर्भवेन्मुक्तिर्नसंशयः॥ एवमुक्त्वासुरास्सर्वे गतवन्तस्त्रिविष्टपम् ॥१६॥ शृगालेश्वरमाहात्म्यंसंक्षेपात्कथितन्तव॥ श्रुतंहरतिपापानि दुःखंशोकंतथैवच ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रमाहात्म्येशृगालेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुस्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि सिद्धेश्वरमनुत्तमम् ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे नातिदूरेव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ यदा सुरैस्समेत्याशु शिवलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ शृगालेश्वरनामेति सर्वपापहरंशुभम् ॥ २ ॥ तदासिद्धगणास्सर्वे आराध्य वृषभध्वजम् ॥ स्थापयाञ्चक्रिरेलिङ्गं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३ ॥ सिद्धेश्वरेतिनामानं महापातकनाशनम् ॥ तुष्टुवुर्वि

दो० । जिमि सिद्धेश्वर लिंगको थाप्यो है सब सिद्ध । दो सौ पचहत्तरे महँ सोई कथा प्रसिद्ध ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके पूर्वदिशा के भाग में थोड़ेही दूर पै स्थित अति उत्तम सिद्धेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जब देवताओं ने आकर शीघ्रही समस्त पातकों को नाश करनेवाले शृगालेश्वरनामक उत्तम शिवजी के लिंगको थापन किया ॥ २ ॥ तब सब सिद्धगणों ने वृषध्वजजीको आराधकर सब सिद्धियों को देनेवाले लिंगको थापन किया है ॥ ३ ॥

व हे प्रिये ! उस समय सिद्धगणोंने सिद्धेश्वर ऐसे नामक शिवजी को अनेकप्रकार के स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये महादेवजी बोले
कि उत्तम वरदानको मांगिये तदनन्तर प्रणाम कर सब देवताओं ने उन चन्द्रभालजी से कहा ॥ ५ ॥ कि यहां आकर जो मनुष्य विधिपूर्वक नहाकर सिद्धिनाथ-
जी को पूजै व शतरुद्रियको जपै ॥ ६ ॥ व जो शिवजी के अघोरमन्त्र और गायत्रीको जपै हे सुरप्रिये ! छः महीने के अन्तरमें वह मनुष्य ॥ ७ ॥ निश्चय कर
अणिमादिक ऐश्वर्य व समृद्धि को प्राप्तहोता है ॥ ८ ॥ ऐसाही होगा यह कहकर महादेवजी अन्तर्द्धान होगये कुँवार के कृष्णपक्षमें चौदसि महारात्रि में जो धैर्यका

विधैःस्तोत्रैस्तदासिद्धगणाःप्रिये ॥ ४ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवो याच्यतांवरमुत्तमम् ॥ नमस्कृत्यततस्सर्वे प्रोचुस्तंशशि
शेषरम् ॥ ५ ॥ इहागत्यनरोयस्तु स्नात्वाचविधिपूर्वकम् ॥ अर्चयेत्सिद्धिनाथञ्च जपेद्वाशतरुद्रियम् ॥ ६ ॥ अघोरंवा
जपेन्मन्त्रं गायत्रींवामहेश्वरम् ॥ षण्मासाभ्यन्तरेणैव सनरस्तुसुरप्रिये ॥ ७ ॥ अणिमादिकमैश्वर्यं समृद्धिंप्राप्नु
याद्ध्रुवम् ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा अन्तर्द्धानंगतोहरः ॥ सिद्धेश्वरन्तुसम्पूज्य अघोरंयोजपेन्न
रः ॥ ९ ॥ अश्वयुक्कृष्णपक्षेच चतुर्दश्यांमहानिशि ॥ धैर्यमालम्ब्यनिर्भीतस्ससिद्धिंप्राप्नुयान्नरः ॥ १० ॥ इत्येत
त्कथितन्देवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ सिद्धेश्वरस्यदेवस्यसर्वकामफलप्रदम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासख
ण्डे सिद्धेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गन्धर्वेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे धनुषांपञ्चकेस्थितम् ॥ १ ॥ त

अवलम्बन कर निर्भीत होकर सिद्धेश्वरजी को भलीभांति पूजकर अघोरमन्त्रको जपता है वह मनुष्य सिद्धिको प्राप्तहोता है ॥ ९ । १० ॥ हे देवि ! सिद्धेश्वर देवजी
का यह समस्त कामनाओं के फलको देनेवाला व पापनाशक माहात्म्य कहागया ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीका
यांसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । गन्धर्वेश्वर लिंग अरु नारदेश परभाव । दो सौ छिहतरिमें सोई बरन्यो कथा सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके उत्तर दिशाके भाग

में पांच धनुष पै स्थित गन्धर्वेश्वरसंज्ञक लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे महादेवि ! उन शिवजी को देखकर मनुष्य रूपवान् होता है गन्धर्वोंसे थापेहुये लिंगको जो नहाकर एक बार पूजन करै ॥ २ ॥ वह सब कामनाओं को प्राप्तहोता है और रक्तकण्ठ (अच्छेस्वरवाला) होता है महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम नारदादित्य के समीप जावै ॥ ३ ॥ वृद्धता से ग्रस्तशरीरवाले उन नारदजीने सब दरिद्रों को नाशनेवाली सूर्यनारायणकी मूर्तिको स्थापन किया है ॥ ४ ॥ और अनेक भांतिके स्तोत्रों से अन्धकारनाशक सूर्यनारायणकी स्तुति किया कि शुद्धरूपवाले तुम्हारे लिये प्रणाम है व सामों के धाम में प्राप्त आपके लिये नम-

न्दृष्ट्वाचमहादेवि रूपवाञ्जायतेनरः ॥ गन्धर्वैस्स्थापितंलिङ्गं स्नात्वाचपूजयेत्सकृत् ॥ २ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति रक्तकण्ठश्चजायते ॥ शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि नारदादित्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥ जरयाग्रस्तदेहस्स स्थापयामा सनारदः ॥ सूर्यस्यप्रतिमांरम्यां सर्वदारिद्रनाशिनीम् ॥ ४ ॥ तुष्टावविविधैःस्तोत्रैरादित्यंतिमिरापहम् ॥ नमस्तेशुद्ध रूपाय साम्नांधामगतेनमः ॥ ५ ॥ ज्ञानैकरूपदेहाय निर्धूततमसेनमः ॥ शुद्धज्योतिस्स्वरूपाय निर्मूर्तायामलात्म ने ॥ ६ ॥ वरिष्ठायवरेण्याय सर्वस्मैचपरात्मने ॥ नमोखिलजगद्व्यापिरूपायानन्तमूर्त्तये ॥ ७ ॥ सर्वकारणभूताय नि ष्ठायज्ञानचेतसाम् ॥ नमस्सर्वस्वरूपाय प्रकाशाल्लक्ष्यरूपिणे ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवन्तुब्रुवतस्तस्य पुरतस्तेज सांनिधिः ॥ प्रादुर्बभूवदेवेशि जगद्योनिस्सनातनः ॥ ९ ॥ उवाचपरमप्रीतो नारदंमुनिपुङ्गवम् ॥ सूर्य उवाच ॥ वरंव

स्कार है ॥ ५ ॥ व ज्ञानके एकही रूप व शरीरवाले व अन्धकारनाशक आपके लिये नमस्कार है और शुद्धज्योतिःस्वरूप व विनमूर्तिवाले अमलात्मा के लिये नमस्कार है ॥ ६ ॥ व वरिष्ठ, वरेण्य तथा सब, परमात्माके लिये प्रणाम है व समस्तसंसारमें व्यापितस्वरूपवाले अनन्तमूर्ति के लिये नमस्कार है ॥ ७ ॥ व सबों के कारणभूत तथा ज्ञान चित्तवालों में स्थित आपके लिये प्रणाम है व सर्वस्वरूप तथा प्रकाश से अलक्ष्य रूपवाले आपके लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि ! इसप्रकार स्तुति करतेहुये उन नारदजी के आगे तेजनिधान व संसारको उत्पन्नकरनेवाले सनातन सूर्यनारायणजी प्रकटहुये ॥ ९ ॥ व बहुत

प्रसन्न होकर वे मुनिश्रेष्ठ नारदजी से बोले सूर्यनारायण बोले कि हे विप्रर्षे! तुम्हारे मन में जो वर्तमान हो उस वरदान को मांगिये ॥ १० ॥ यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि मैं प्रसन्न होकर उसको तुम्हें दूंगा नारदजी बोले कि हे दिवाकर, देव! यदि तुम प्रसन्न हो तो वृद्धतासे ग्रस्त शरीर तुम्हारी प्रसन्नतासे कुमार अवस्था से युक्त होवै और रविवारसमेत सप्तमी तिथि में जो मनुष्य तुमको देखै ॥ ११ । १२ ॥ हे अन्धकारनाशक! उसके तुम्हारी प्रसन्नतासे रोगका भय मत होवै महादेवजी बोले कि ऐसाही होगा यह कहकर सूर्यनारायण अन्तर्द्धान होगये ॥ १३ ॥ हे देवि! मैंने नारदादित्य देवजीके इस समस्त पातकोंको नाशनेवाले सब माहात्म्य को

रयविप्रर्षे यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ १० ॥ तुष्टोहंतवदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ नारद उवाच ॥ कुमारवयसायुक्तो जराग्रस्तकलेवरः ॥ ११ ॥ प्रसादादस्तुतेदेव यदितुष्टोदिवाकर ॥ सप्तम्यांरविवारेण यस्त्वांपश्यतिमानवः ॥ १२ ॥ तस्यरोगभयंमास्तु प्रासादात्तिमिरापह ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा अन्तर्द्धानंगतोरविः ॥ १३ ॥ इत्येतत्कथितन्देवि माहात्म्यंसकलंतव ॥ नारदादित्यदेवस्य सर्वपातकनाशनम् ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेनारदादित्यमाहात्म्यन्नामषट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि साम्बादित्यमनुत्तमम् ॥ तस्मादुत्तरभागेतु सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ यत्र साम्बस्तपस्तप्त्वा आराध्यचदिवाकरम् ॥ प्राप्तवान्सुन्दरन्देहं सहस्रांशुप्रसादतः ॥ २ ॥ यदारोषेणसंशप्तः पित्राजाम्बवतीसुतः ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा विष्णुःप्रोवाचतम्प्रति ॥ ३ ॥ गच्छप्रभासिकेक्षेत्रे ब्राह्मयभागमनुत्तमम् ॥ ऋषितो

तुमसे कहा ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनारदादित्यमाहात्म्यंनामषट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७६ ॥

दो० । सांबादित्यहिं थप्यो है यथा साब यदुराय । दो सौ सतहत्तरे महँ कह्यो सो चरित बनाय ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर उससे उत्तर दिशा के भाग में समस्त पातकों को नाशनेवाले सांबादित्यजीके समीप जावै ॥ १ ॥ जहां पर साम्बजी ने तपस्या कर सूर्यनारायणजी को आराध कर सहस्रकिरणोंवाले सूर्य देवकी प्रसन्नतासे सुन्दर शरीरको पाया है ॥ २ ॥ जब जाम्बवती के पुत्र सांबजी को पिता श्रीकृष्णने क्रोधसे शाप दिया तब प्रसन्नमुख होकर विष्णुजी ने उन

से कहा ॥ ३ ॥ कि प्रभासक्षेत्र में ऋषितोया के सुन्दर किनारे पै ब्राह्मणों से शोभित अतिउत्तम ब्राह्मय भागको जाइये ॥ ४ ॥ वहांपर हे पुत्र! सूर्यरूप से मैं वरदान दूंगा उस समय समर्थवान् विष्णुजी से ऐसा कहेहुये साम्बजी ॥ ५ ॥ मनोहर व कल्याणदायक शिवपुर प्रभासक्षेत्र में गये ॥ ६ ॥ वहां जल के चोररूप सूर्यनारायण उत्तम देवको आराधकर उस समय अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उन्होंने प्रसन्न कराया ॥ ७ ॥ और सूर्यनारायण इन से बोले कि हे महामते ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं हे यदुश्रेष्ठ ! ऋषितोयाके उत्तम किनारे पै शीघ्रही जाइये ॥ ८ ॥ वहां समर्थवान् विष्णुजी से तुम्हारी शुद्धिकीजावैगी ऐसा कहेहुये वे साम्बजी उस समय

यातटेरम्ये ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥ ४ ॥ तत्राहंसूर्यरूपेणवरंदास्यामिपुत्रक ॥ इत्युक्तस्सतदासाम्बो विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ ५ ॥ गतःप्रभासिकेक्षेत्रे रम्येशिवपुरेशिवे ॥ ६ ॥ तत्राराध्यपरन्देवं भास्करंवारितस्करम् ॥ प्रसादयामासतदा स्तुत्वास्तोत्रैरनेकधा ॥ ७ ॥ प्रत्युवाचरविस्साम्बं प्रसन्नस्तेमहामते ॥ शीघ्रंगच्छयदुश्रेष्ठ ऋषितोयातटेशुभे ॥ ८ ॥ तत्रतेविहिताशुद्धिर्विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ इत्युक्तस्सतदागत्य ऋषितोयातटेशुभे ॥ ९ ॥ नारदोमुनिशार्दूलस्तपस्तप्यतियत्रवै ॥ तत्रगत्वाहरेस्सूनुस्तत्रस्थानेनिवासिनः ॥ १० ॥ आहूयब्राह्मणान्सर्वानिदंवचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ साम्बउवाच ॥ एषवैब्राह्मणोभागः प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ अत्रवैब्राह्मणायेतु तेवैश्रेष्ठास्स्मृताभुवि ॥ १२ ॥ भवतांवचनाद्विप्रास्सूर्यमाराधयाम्यहम् ॥ बाढमित्येवतेस्सर्वैरुक्तंचद्विजपुङ्गवैः ॥ सूर्यमाराधयामास साम्बोजाम्बवतीसुतः ॥ १३ ॥ तपोनिष्ठंचतन्दृष्ट्वा विष्णुःकारुणिकोमहान् ॥ इदंवैचिन्तयामास पुत्रवान्सत्यसंयुतः ॥ १४ ॥ शुद्धिकर्मयथातोयं मृत्तिकाभस्म

उत्तम ऋषितोया नदी के किनारे पै आकर ॥ ९ ॥ जहां मुनिश्रेष्ठ नारदजी तप करते थे वहां जाकर विष्णुजी के पुत्र साम्बजी उस स्थान में बसनेवाले ॥ १० ॥ सब ब्राह्मणों को बुलाकर इस वचन को बोले ॥ ११ ॥ साम्बजी बोले कि उत्तम प्रभासक्षेत्र में यह ब्राह्मणभाग है यहां जो ब्राह्मण हैं वे पृथ्वी में श्रेष्ठ कहेगये हैं ॥ १२ ॥ आपलोगोंके वचन से मैं सूर्यनारायणको आराधन करूंगा बहुत अच्छा ऐसा उन सब द्विजोत्तमोंने कहा और जाम्बवती के पुत्र साम्बजी ने सूर्यनारायण को आराधन किया ॥ १३ ॥ और तपस्या में स्थित उन साम्बजी को देखकर पुत्रवान् व सत्य से संयुक्त तथा दयावान् विष्णुजीने यह चिन्तन किया ॥ १४ ॥ कि

जैसे जल शुद्धि कर्म व मिट्टी भस्मसे संयुत होती है और जैसे दहनात्मक अग्नि व विघ्नकर्ता गणेशजी हैं ॥ १५ ॥ और जैसे ब्रह्मपुत्र मनुष्यों को सरस्वती दानमें स्वच्छन्द है वैसेही दिवाकर देवजीसे अन्य नीरोगता को देनेवाला नहीं है ॥ १६ ॥ अनेक भांति से आराधन किये हुये उन पवित्र सूर्यनारायणजी ने उन साम्बको मेरे शापहीके कारण वर नहीं दिया ॥ १७ ॥ इसप्रकार भलीभाति चिन्तन कर कमललोचनोंवाले भक्तदुःखनाशक भगवान् विष्णुजी सूर्यनारायण के रूपमें स्थित होकर उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १८ ॥ और जो अन्य नारायणनामक हैं उन्हीं के समीप स्थितहुये तदनन्तर सूर्यरूपी विष्णुजी प्रत्यक्षता को प्राप्तहुये ॥ १९ ॥ और

संयुता ॥ दहनात्मायथावह्निर्विघ्नकर्त्तागणेश्वरः ॥ १५ ॥ स्वच्छन्दाभारतीदाने यथाब्रह्मसुतान्नृणाम् ॥ तथारोग्यप्रदाता च नान्योदेवाद्दिवाकरात् ॥ १६ ॥ अनेकधाराधितोपि सदेवोभास्करश्शुचिः ॥ ददौवरंनतंसाम्बं मच्छापस्यैवकारणात् ॥ १७ ॥ एवंसञ्चिन्त्यभगवान् विष्णुःकमललोचनः ॥ सूर्यरूपंसमाश्रित्य तस्यतुष्टोजनार्दनः ॥ १८ ॥ योपरो नारायणाख्यस्तस्यैवसन्निधौस्थितः ॥ ततःप्रत्यक्षतांविष्णुस्सूर्यरूपीजगामवै ॥ १९ ॥ उवाचपरमप्रीतो वरदःपुण्यकर्मणः ॥ अलंक्लेशेनतेसाम्ब किमर्थंतप्यसेबहु ॥ २० ॥ प्रसन्नोहंहरेस्सूनो वरंवरयसुव्रत ॥ साम्ब उवाच ॥ निर्मलस्त्वत्प्रसादेन कुष्ठयुक्तःकलेवरः ॥ २१ ॥ भवेत्तुदेवदेवेश शीघ्रंगगनभूषण ॥ अस्मिन्स्थानेमहारण्ये नित्यंसन्निहितोभव ॥ २२ ॥ सूर्य उवाच ॥ अधुनानिर्मलोदेहस्साम्बस्तवभविष्यति ॥ इहागत्यनरोयस्तु सप्तम्यांरविवासरे ॥ २३ ॥ उपवासपरोभूत्वा रात्रौजागरणेस्थितः ॥ अष्टादशापिकुष्ठाश्च पापरोगास्तथैवच ॥ २४ ॥ कदाचिन्नभविष्यन्ति कु

बहुतही प्रसन्न होकर वे वरदायक विष्णुजी बोले कि हे साम्ब ! पुण्यकर्मवाले तुम्हारे क्लेशसे कुछ कार्य न होगा और किसलिये बहुत तप करते हो ॥ २० ॥ हे विष्णुजी के पुत्र, सुव्रत ! मैं प्रसन्न हूं तुम वरदानको मांगो साम्बजी बोले कि हे आकाशभूषण, देवदेवेश ! तुम्हारी प्रसन्नतासे कुष्ठसंयुत शरीर शीघ्र निर्मल होवै व इस महावन स्थान में सदैव स्थित होवो ॥ २१ । २२ ॥ सूर्यनारायण बोले कि हे साम्बजी ! इसी समय तुम्हारा शरीर निर्मल होगा और यहां आकर जो मनुष्य रवि-

वार सप्तमी तिथि में ॥ २३ ॥ उपास में तत्पर होकर रात्रि में जागरण में स्थित होवैगा उस महात्मा के वंश में अठारह कुष्ठ व पापरोग कभी न होवैंगे और भक्ति से संयुत जो जितेन्द्रिय मनुष्य स्नानकर ॥ २४ । २५ ॥ रविवार को महाप्रभावान् साम्बादित्यजी को पूजता है वह मनुष्य रोगहीन व धनवान् तथा पुत्रवान् होता है ॥ २६ ॥ और उसीके पूर्वदिशा के भागमें कुछ ईशानमें मनुष्यों के पापों को हरनेवाला व पवित्र तथा निर्मल जलसे पूरित कुण्ड स्थितहै ॥ २७ ॥ उसमें नहाकर जो चतुर पुरुष विधिपूर्वक श्राद्ध करै व ब्राह्मणों को भोजन करावै तथा साम्बादित्यको पूजै ॥ २८ ॥ वह सब कामनाओं से समृद्धात्मा होकर सूर्यलोक में पूजाजाता

लेतस्यमहात्मनः ॥ कृत्वास्नानंनरोयस्तु भक्तियुक्तोजितेन्द्रियः ॥ २५ ॥ पूजयेद्रविवारेण साम्बादित्यंमहाप्रभम् ॥ सरोगहीनोधनवान् पुत्रवाञ्जायतेनरः ॥ २६ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे किञ्चिदीशानमाश्रितम् ॥ कुण्डंपापहरंनृणां पुण्यस्वच्छोदपूरितम् ॥ २७ ॥ तत्रस्नात्वाचविधिवत् कुर्याच्छ्राद्धंविचक्षणः ॥ भोजयेद्ब्राह्मणान्यस्तु साम्बादित्यंप्रपूजयेत् ॥ २८ ॥ सर्वकामसमृद्धात्मा सूर्यलोकेमहीयते ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे साम्बादित्यमाहात्म्यन्नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवउवाच ॥ साम्बादित्याच्चपूर्वेण किञ्चिदाग्नेयसंस्थितः ॥ अन्यनारायणोनाम यस्मान्नास्तिपराभवः ॥ १ ॥ सतुसाम्बस्यदेवेशि सूर्योविष्णुस्वरूपवान् ॥ अपरांमूर्त्तिमास्थाय विष्णुरूपोवरन्ददौ ॥ २ ॥ तेनापरेतिनाम्नेति ख्यातोविष्णुःपुराभवत ॥ फाल्गुनामलपक्षेतु एकादश्यांविधानतः ॥ ३ ॥ पूजयेत्पुण्डरीकाक्षं तत्रविष्णुस्वरूपिणम् ॥

है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसाम्बादित्यमाहात्म्यंनामसप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७७ ॥ ॥

दो० । साम्बादित्य समीप हैं अपरनरायण देव । दोसौ अठहत्तरे महँ कह्यो सोइ सब भेव ॥ महादेवजी बोले कि साम्बादित्य से पूर्व में कुछ आग्नेय में अन्यनारायणनामक देव स्थित हैं जिनसे पराभव (तिरस्कार) नहीं होताहै ॥ १ ॥ हे देवेशि ! विष्णुस्वरूपवाले वे सूर्यजी हैं जिसलिये अन्य मूर्ति में स्थित होकर विष्णुरूपी उन्हों ने साम्बको वर दिया है ॥ २ ॥ उसी कारण पुरातन समय अपर विष्णु ऐसे नाम से प्रसिद्ध हुये हैं फागुनके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथि में विधिसे ॥ ३ ॥

जो वहां विष्णुस्वरूपवाले पुण्डरीकाक्षजी को पूजै वह पापों से छूटजाता है और सब कामनाओं से समृद्धवान् होता है ॥ ४ ॥ व उन नारायणजी से पूर्व में कुछ ईशान में स्थित मूलचण्डीश नामसे लिंग तीनों लोकों में प्रसिद्धहै ॥ ५ ॥ हे प्रिये, देवि ! जहां पर क्रोधसे लाल लोचनोंवाले ऋषियों ने पुरातन समय शिव जी के लिंगको गिराया है वह मूलचण्डीश नाम से ॥ ६ ॥ ऋषियों के क्रोध से गिरायाहुआ आद्य लिंग हुआ हे देवि ! वहां देवदारुवन में जो कोई ऋषिलोग स्थित थे ॥ ७ ॥ हे महादेवि ! अन्य समय में उनके जानने की इच्छा से मैं वहां प्राप्त हुआ तदनन्तर हे देवि ! वे ऋषिलोग क्रोधित हुये ॥ ८ ॥ तदनन्तर मैं शापित

मुक्तोभवतिपापेभ्यस्सर्वकामैस्समृद्ध्यते ॥ ४ ॥ तस्मान्नारायणात्पूर्वे किञ्चिदीशानसंस्थितम् ॥ मूलचण्डीशनाम्नातु विख्यातंभुवनत्रये ॥ ५ ॥ यत्रलिङ्गंपुराशैवं पातितंऋषिभिःप्रिये ॥ क्रोधरक्तेक्षणैर्देवि मूलचण्डीशनामतः ॥ ६ ॥ आद्यंलिङ्गमभूद्देवि ऋषिकोपान्निपातितम् ॥ येकेचिदृषयस्तत्र देवदारुवनेस्थिताः ॥ ७ ॥ कालान्तरेमहादेवि अहंतत्र समागतः ॥ तेषांजिज्ञासयादेवि ततस्तेरोषिताभवन् ॥ ८ ॥ शप्तस्ततोहंतेचापि चक्रुर्मेलिङ्गपातनम् ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऽपरनारायणमाहात्म्यन्नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि उरगेश्वरमुत्तमम् ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे धनुषांत्रितयेस्थितम् ॥ १ ॥ शेषाहिप्रमुखैर्नागैर्महतातपसायुतैः ॥ समाराध्यमहादेवं स्थापितंलिङ्गमुत्तमम् ॥ २ ॥ यस्समाराधयेद्देवं सर्पैराराधितम्पुरा ॥

हुआ और उन्हों ने मेरा लिंगपात किया है ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामपरनारायणमाहात्म्यंनामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । उरगेश्वरलिंगाहि यथा थाप्यो है सब नाग । दोसौ उन्नासिवें महँ सोइ चरित रसपाग ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसी के पश्चिम भाग में तीन धनुष पै स्थित उत्तम उरगेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ बड़ी तपस्या से संयुत शेष सर्पादिक नागोंने महादेवजीको आराधन कर उत्तम लिंगको थापा

है॥ २ ॥ हे प्रिये ! पुरातन समय सर्पों से आराधन किये हुये शिवदेवजी को जो पूजता है उसके शरीर में जन्मपर्यन्त विष नहीं व्यापता है ॥ ३ ॥ और उसके ऊपर सांप प्रसन्न होते हैं व कभी नहीं डसते हैं इस लिये सब यत्न से मनुष्य उस लिंगको पूजै ॥ ४ ॥ और ऋषियों से थापेहुये वहां अनेक लिंग हैं हे वरवर्णिनि ! महापवित्र गंगाजी के पश्चिम किनारे में ॥ ५ ॥ उन लिंगों को देखकर व पूजकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है व हज़ार अश्वमेध यज्ञोंके फल को पाताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामुरगेश्वरमाहात्म्यंनामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥ ❀ ॥

नविषंक्रमतेदेहे तस्यजन्मावधिप्रिये ॥ ३ ॥ सर्पास्तस्यप्रसीदन्ति नदंशन्तिकदाचन ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तल्लिङ्गंपूजयेन्नरः ॥ ४ ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानि ऋषिभिस्स्थापितानितु ॥ गङ्गातीरेमहापुण्ये पश्चिमेवरवर्णिनि ॥ ५ ॥ तानिदृष्ट्वापूजयित्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे उरगेश्वरमाहात्म्यन्नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २७९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गङ्गांत्रिपथगामिनीम् ॥ शृगालेश्वरईशान्यां धनुषांसप्तकेस्थिताम् ॥ १ ॥ तस्यांत्रिनेत्रामत्स्याःस्युर्नित्यमाम्भसिकाःप्रिये ॥ कलौयुगेपिदृश्यन्ते सत्यंसत्यंमयोदितम् ॥ २ ॥ तस्यांस्नात्वामहादेविमुच्यतेपञ्चपातकैः ॥ सूतउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा विस्मितागिरिजात्मजा ॥ ३ ॥ उवाचतंद्विजश्रेष्ठाःप्रचलच्चन्द्रशेखरम् ॥ पार्वत्युवाच ॥ कथंतत्रसमायाता गङ्गात्रिपथगामिनी ॥ ४ ॥ कथंत्रिनेत्राःसंजाता मत्स्याआम्भसिकाश्शि

दो० । मूलचण्डि प्रभु अरु कह्यो श्रीगंगा परभाव । दोसौ असीमें सोई वर्णित चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर शृगालेश्वरजीसे ईशान में सात धनुष पै त्रिपथगामिनी गङ्गाजी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! उसमें जलमें उत्पन्न होनेवाली मछलियां सदैव तीन नेत्रोंवाली कलियुग में भी देखपड़ती हैं मैंने इसको सत्य सत्य कहा ॥ २ ॥ हे महादेवि ! उसमें नहाकर मनुष्य पांच पातकों से छूटजाता है सूतजी बोले कि उन शिवजी के उस वचन को सुनकर विस्मित होतीहुई शैलकुमारी पार्वतीजी ने ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! चलायमानचन्द्रभालवाले उन शिवजी से कहा पार्वतीजी बोलीं कि हे शिवजी !

वहां त्रिपथगामिनी गङ्गाजी किसप्रकार आई हैं व जलमें पैदा होनेवाले मत्स्य कैसे तीन नेत्रोंसे युक्त हुये हे विभो ! यदि मैं तुमको प्यारी होउं तो इसको मुझ से विस्तारसे कहिये ॥ ४ । ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे शुभे ! यदि तुम मुझसे पूंछती हो तो मैं कहताहूं सुनिये और मेरी ऐसी मति है कि आस्तिक व श्रद्धावती होवो ॥ ६ ॥ जब अज्ञानरूपी अन्धकार से आच्छादित व क्रोधसंयुत ऋषियों ने किसी कारणके मध्य में महादेवजी को शाप दिया है ॥ ७ ॥ तब वे मुनिलोग महादेवजी को शापित जानकर व सब संसार तथा अपनाको आनन्दरहित देख कर ॥ ८ ॥ गजरूपको धारण किये महादेवजी को आराध कर व उन्नत स्थान पै

व ॥ एतद्विस्तरतोब्रूहि यद्यहन्तेप्रियाविभो ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि यदिपृच्छसिमांशुभे ॥ आस्तिकाश्रद्दधानाच भवत्वितिमतिर्मम ॥ ६ ॥ यदाशप्तोमहादेव अज्ञानतिमिरावृतैः ॥ ऋषिभिःकोपयुक्तैश्च कस्मिंश्चित कारणान्तरे ॥ ७॥ तदातेमुनयस्सर्वे शप्तंज्ञात्वामहेश्वरम् ॥ निरानन्दंजगत्सर्वं दृष्ट्वाचात्मानमेवहि ॥ ८॥ आराध्यपरमेशानं दधन्तंगजरूपकम् ॥ उन्नतंस्थानमानीय सानन्दंचक्रिरेद्विजाः ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतितेसर्वे शिवद्रोहकरंपरम् ॥ आत्मानंमेनिरेनित्यं प्रसन्नेपिमहेश्वरे ॥ १० ॥ ततःकालेनतेसर्वे महतामुनिसत्तमाः ॥ ध्यायन्तस्त्र्यम्बकंचैव अदृष्टेतु महेश्वरे ॥ ११ ॥ त्रिनेत्रत्वमनुप्राप्तास्तपोनिष्ठास्तपोधनाः ॥ महोदयान्महातीर्थान् ऋषयोभ्येत्यसत्वरम् ॥ १२ ॥ तपस्तेपुर्महाघोरं शृगालेश्वरसन्निधौ ॥ शृगालेश्वरनामानं सर्वेपूज्ययथाविधि ॥ १३ ॥ भृगुरत्रिस्तथामङ्किः कश्यपःकण्वएवच ॥ गौतमःकौशिकश्चैव कुशिकश्चमहातपाः ॥ १४ ॥ जातूकर्ण्योवसिष्ठश्च सावस्तिश्चपराशरः ॥ शाण्डि

लाकर द्विजों ने आनन्दसमेत किया ॥ ९ ॥ तबसे लगाकर महादेवजीके प्रसन्न भी होने पर उन सब मुनियों ने सदैव अपना को उत्तम शिवद्रोहीकारक माना ॥ १० ॥ तदनन्तर बहुत समय के बाद त्रिलोचन शिवजी को ध्यान करते हुये वे सब तपस्यारूपी धनवाले व तपस्या मे स्थित मुनिश्रेष्ठ शिवजी के न देखने पर त्रिलोचनता को प्राप्तहुये व शीघ्रही बड़े माहात्म्यवाले महातीर्थों में ऋषिलोग आकर ॥ ११ । १२ ॥ शृगालेश्वरजी के समीप बडा भयंकर तप करते भये व शृगालेश्वरनामक शिवजी को विधिपूर्वक सब ऋषिलोग पूजकर ॥ १३ ॥ भृगु, अत्रि, मङ्कि, कश्यप, कण्व, गौतम, कौशिक व बडे तपस्वी कुशिक ॥ १४ ॥ व

जातूकर्ण्य, वसिष्ठ, सावर्ति, पराशर, शाण्डिल्य, पुलस्त्य व बड़े तपस्वी वत्स ॥ १५ ॥ शूकर, भरद्वाज और बड़े तपस्वी भार्गव ये और अगस्त्य आदिक अन्य बहुत से महर्षिलोग ॥ १६ ॥ शृगालेश्वरजी को प्राप्तहोकर महादेवजीको थापकर सदैव तप करते रहे ॥ १७ ॥ तदनन्तर बहुत समय के उपरान्त महादेवजी के न देखनेपर वे सब मुनिश्रेष्ठ त्रिलोचन शिवजीके ध्यानसे ॥ १८ ॥ त्रिनेत्रताको प्राप्त हुये व तपस्या में निष्ठ तपस्यारूपी धनवाले वे सब आपस में देखतेहुये त्रिनेत्र की शंकासे ॥ १९ ॥ महादेवजी को मानते हुये अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करतेथे और शिवदेवजीके ध्यानसे त्रिनेत्रताको प्राप्त जानकर ॥ २० ॥ उन्होंने त्रिशूलधारी

ल्यश्चपुलस्त्यश्च वत्सश्चैवमहातपाः ॥ १५ ॥ शूकरोथभरद्वाजो भार्गवोपिमहातपाः ॥ एतेचान्येचबहवोऽगस्त्याद्या श्चमहर्षयः ॥ १६ ॥ शृगालेश्वरमासाद्य प्रभासेपापनाशने ॥ तपःकुर्वन्तिसततं प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ १७ ॥ ततः कालेनमहता तेसर्वेमुनिपुङ्गवाः ॥ ध्यानात्रिलोचनस्यैव अदृष्टेतुमहेश्वरे ॥ १८ ॥ त्रिनेत्रत्वमनुप्राप्तास्तपोनिष्ठास्त पोधनाः ॥ परस्परंवीक्षमाणास्त्रिनेत्रस्याभिशङ्कया ॥ १९ ॥ स्तुवन्तिविविधैस्स्तोत्रैर्मन्यमानामहेश्वरम् ॥ ज्ञात्वाध्या नेनदेवस्य त्रिनेत्रत्वमुपागतम् ॥ २० ॥ चक्रुरुग्रंतपस्तेतु पूजान्देवस्यशूलिनः ॥ तेषुवैतप्यमानेषु कृपाविष्टोमहेश्व रः ॥ २१ ॥ उवाचतान्मुनीन्सर्वान् वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ प्रसन्नोहंमुनिश्रेष्ठास्तपसापूजयापिच ॥ २२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यदिप्रसन्नोदेवेश वरन्नोदातुमर्हसि ॥ गङ्गामानयप्रागेव अभिषेकायनोहर ॥ २३ ॥ तस्यांकृताभिषेकास्तु तवद्रोहक रावयम् ॥ अज्ञानभावात्पूतत्वं यास्यामःपृथिवीतले ॥ २४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यूयंपवित्रकरणाः पावनानाञ्चपावनाः ॥

शिवदेवजी का उग्रतप व पूजन किया व उनके तप करनेपर महादेवजी दयासंयुक्त हुये ॥ २१ ॥ व उन सब मुनियों से बोले कि उत्तम वरदानको मांगिये हे मुनि-श्रेष्ठो ! मैं तपस्या व पूजनसे प्रसन्नहूं ॥ २२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे देवेश ! यदि तुम प्रसन्नहो और हमलोगोंको वरदेने योग्यहो तो हे शिवजी ! पहले हमलोगों के स्नानके लिये श्रीगङ्गाजी को लाइये ॥ २३ ॥ क्योंकि अज्ञानतासे शिवजीसे वैरकरनेवाले हमलोग उसमें नहाकर पृथ्वीमें पवित्रताको प्राप्तहोवैंगे ॥ २४ ॥ महादेव

जी बोले कि शुद्ध इन्द्रियोंवाले तुमलोग पवित्रकारकों को भी पवित्र करनेवाले हो और मैं तुमलोगों के चित्त की प्रसन्नता के लिये गङ्गाजी को लाऊंगा ॥ २५ ॥
हे ब्राह्मणो ! दर्शनसे तुमलोगों के त्रिनेत्रता प्राप्त हुई इसी प्रकार सब लोगों को दृष्टान्त दिखायागया ॥ २६ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे त्रिनेत्र ! इस कुंड में महादेव
जी को देखते हुये पुरुषों के सब युग युग में सदैव सन्तान होवै ॥ २७ ॥ व भली भांति आकर जो मनुष्य इस कुण्डमें स्नान करै और ब्राह्मण के लिये सुवर्ण, गऊ,
वस्त्र व तिलों को देवै ॥ २८ ॥ और जो मनुष्य विशेष कर अमावस में इन वस्तुओं को देवैं वे त्रिलोचन होवैं ऐसाही होगा यह कहकर शिवजी अन्तर्द्धान होगये ॥

गङ्गाञ्चैवानयिष्यामि युष्माकंचित्ततुष्टये ॥ २५ ॥ युष्माकंदर्शनाद्विप्रास्त्रिनेत्रत्वमुपागतम् ॥ एवंनिदर्शनंसर्वं लोका
नाञ्चप्रदर्शितम् ॥ २६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अस्मिन्कुण्डेमहादेवं पश्यतांसन्ततिस्सदा ॥ त्रिनेत्रत्वत्प्रसादेन भंयात्स
र्वयुगेयुगे ॥ २७ ॥ अस्मिन्कुण्डेसमागत्य नरस्स्नानंकरिष्यति ॥ ददातिहेमंविप्राय गाश्चवस्त्रंतथातिलान् ॥ २८ ॥
अमावास्यांविशेषेण त्रिनेत्रास्तेभवन्तुवै ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा अन्तर्द्धानंगतोहरः ॥ २९ ॥ ब्राह्मणास्तुष्टिसंयुक्ता
गतास्सर्वेमहोदयम् ॥ एतत्तेकथितन्देवि गङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३० ॥ श्रुतंपापप्रशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३१ ॥
ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्याःपूर्वेणसंस्थितम् ॥ नारदादित्यनामानंनरदारिद्र्यनाशनम् ॥ ३२ ॥ पश्चिमेमू
लचण्डीशाद्धनुषाञ्चशतत्रये ॥ आराध्यनारदोदेवि भास्करंवारितस्करम् ॥ जरानिर्मुक्तदेहस्तु तत्क्षणात्समपद्यत ॥
३३ ॥ देव्युवाच ॥ कथंजरामनुप्राप्तो नारदोमुनिपुङ्गवः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एकदानारदोयोगी द्वारकामगमद्यदा ॥ स

२९ ॥ और प्रसन्नतासमेत सब ब्राह्मणलोग बड़े माहात्म्यवाले लिंगके समीप गये हे देवि ! यह तुमसे उत्तम गंगाजी का माहात्म्य कहागया ॥ ३० ॥ सुना हुआ
जोकि पापोंको नाश करनेवाला व सब कामनाओं के फलोंको देनेवालाहै ॥ ३१ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसीके पूर्वमें स्थित मनुष्योंके दारिद्र्य
को विदारनेवाले नारदादित्यनामक देवके समीप जावै ॥ ३२ ॥ हे देवि ! मूलचण्डीशसे तीनसौ धनुष पश्चिम में वे नारदजी जलके तस्कररूपी सूर्यनारायण को
आराधकर उसी क्षण वृद्धतासे मुक्तशरीरवान् होगये ॥ ३३ ॥ देवीजीबोलीं कि मुनिश्रेष्ठ नारदजी किस प्रकार वृद्धताको प्राप्तहुये हैं महादेवजी बोले कि एक समय

जब नारद योगी द्वारकापुरी को गये तब उन्होंने उस समय विष्णुजीके महाबलवान् सब पुत्रोंको देखा ॥ ३४ ॥ उस राजकुलके मध्यमें आपसमें खेलतेहुये वे सब आतेहुये नारदजी को देखकर नम्रतासंयुत होकर ॥ ३५ ॥ सांबको छोड़कर शीघ्रतासंयुत होतेहुये सबोंने यथायोग्य प्रणाम किया और उन सांबको अविनीत देखकर नारदजी ने कहा ॥ ३६ ॥ कि हे श्रीकृष्णके पुत्र,सांब ! जिसलिये तुम शरीरकेमदसे मत्तहो इसकारण थोड़ेही समयमें कठिन शापको पावोगे ॥ ३७ ॥ सांब बोले कि चित्तको रोंकेहुये ऋषियोंको नमस्कारसे क्या कार्य है और आशीर्वादसे उनके तपकी हानि होती है ॥ ३८ ॥ हे नारदजी ! मुनियोंका जो स्वभाव होताहै उसका लेश भी

वैदृष्टास्तदातेन विष्णोःपुत्रामहाबलाः ॥ ३४ ॥ तद्राजकुलमध्येतु क्रीडमानाःपरस्परम् ॥ आयान्तंनारदंदृष्ट्वा स वैविनयसंयुताः ॥ ३५ ॥ नमश्चक्रुर्यथान्यायं विनासाम्बंत्वरान्विताः ॥ अविनीतंतुतन्दृष्ट्वा कथयामासनारदः ॥३६॥ शरीरमदमत्तोसि यस्मात्साम्बहरेःसुत ॥ अचिरेणैवकालेन शापंप्राप्स्यसिदारुणम् ॥ ३७॥ साम्ब उवाच॥ नमस्कारेणकिंकार्यमृषीणांचयतात्मनाम् ॥ आशीर्वादेनतेषांच तपोहानिःप्रजायते ॥ ३८ ॥ मुनीनांयःस्वभावोहि त्वयिलेशोननारद ॥ ३९ ॥ विद्यतेब्रह्मणःपुत्र उच्यतेकिमतःपरम् ॥ नकलत्रंनतेपुत्रा नचपौत्राःप्रपौत्रकाः ॥ ४० ॥ नगृहंचैवनद्वारं नहिगावोनवत्सकाः ॥ ब्रह्मणोमानसाःपुत्रा ब्रह्मचर्येऽव्यवस्थिताः ॥ ४१ ॥ अयुक्तंकुरुषेनित्यंकस्मात्प्रकृतिरीदृशी ॥ युद्धंविनानतेसौख्यं सौख्यंनकलहंविना ॥ ४२ ॥ यादृशस्तादृशोवापि वाग्वादोपिसदाप्रियः ॥ स्नानंसन्ध्यातपोहोमं तर्पणंपितृदेवयोः ॥ ४३ ॥ नारदत्वंकरोष्यन्यदन्यत्कुर्वन्तिब्राह्मणाः ॥ कौमारेणतुगर्विष्ठो

तुममें नहीं विद्यमानहै हेब्रह्माके पुत्र ! इससे अधिक और क्या कहाजावै तुम्हारे न स्त्रीहै न तुम्हारे पुत्रहैं और न पौत्र, प्रपौत्रहैं ॥ ३९ । ४० ॥ और न घरहै न द्वारहै न गाइयां हैं न बछड़ा हैं और ब्रह्माके मानसीपुत्र ब्रह्मचर्य में स्थित हैं ॥ ४१ ॥ और तुम सदैव अयोग्य कर्म करतेहो किसकारण तुम्हारा ऐसा स्वभावहै कि युद्धके विना तुमको सुख नहीं होताहै और न झगड़ा के विना तुमको सुख होताहै ॥ ४२ ॥ जैसा होवै वैसा होवै वचन विवाद तुमको सदैव प्रिय है स्नान, सन्ध्या, तप, होम व

पितरों तथा देवताओंका तर्पण ॥ ४३ ॥ हे नारदजी ! तुम अन्य करतेहो और ब्राह्मण अन्य करतेहैं जिसलिये कुमारअवस्थासे संयुत तुम मुझको शाप देतेहो ॥ ४४ ॥ इसलिये हे ब्रह्मर्षे ! तुम भी वृद्धतासे युक्त होवोगे हे देवि ! उस समय इसप्रकार शापित मुनिश्रेष्ठ नारदजी ॥ ४५ ॥ कांटा व हड्डियोंसे रहित निर्मल स्थानमें एकांत मृगचर्म से आच्छादित उत्तम आसन पै बैठगये और जय शब्दके बड़े शब्दसे व वेदोंके मंगल गीतोंसे ॥ ४६ ॥ उन्हों ने जहां फिर बडे ऐश्वर्यवाले लिंगको उत्पन्न किया वह तपस्या करनेवालोंका उन्नत ऐसा स्थान कहागयाहै ॥ ४७ ॥ वहां महाबलवान् शिवजी गजरूपधारी स्थित हुये और गणनाथके स्वरूपसे उन्नत शिवजी गज

यस्मान्मांशापयिष्यसि ॥ ४४ ॥ तस्मात्त्वमपिविप्रर्षे जरायुक्तोभविष्यसि ॥ एवंशप्तस्तदादेवि नारदोमुनिपुङ्गवः ॥ ४५ ॥ एकान्तेनिर्मलस्थाने कण्टकास्थिविवर्जिते ॥ कृष्णाजिनपरिच्छन्ने उपविष्टोवरानने ॥ जयशब्दप्रघोषेण वेदमङ्गलगीतकैः ॥ ४६ ॥ उन्नामितंपुनस्तेन लिङ्गंयत्रमहोदयम् ॥ तदुन्नतमितिप्रोक्तं स्थानंतुतपतांवरम् ॥ ४७ ॥ गजरूपधरस्तत्र स्थितःस्थानेमहाबलः ॥ गणनाथस्वरूपेणह्युन्नतोगजनिष्ठितः ॥ ४८ ॥ शुण्डिरूपधरोभूत्वा रुद्रःप्राह तपोधनान् ॥ यन्मयाभवतांकार्यं कर्तव्यंतदिहोच्यताम् ॥ ४९ ॥ एवमुक्तास्तुतेसर्वे प्रोचुर्ज्ञानक्रियापराः ॥ सानन्दाःप्राणिनःसन्तु त्वत्प्रसादाद्यथापुरा ॥५०॥ क्षन्तव्यंदेवदेवेश कृतंयन्ममानसैः ॥ त्वत्प्रसादात्सुरेशानसदासानुग्रहोभव ॥ ५१ ॥ एवमस्त्वितितेनोक्ता स्तेसर्वेविगतज्वराः ॥ तल्लिङ्गाकृतंलिङ्गमातिष्ठन्मुनयस्तदा ॥ ५२ ॥ चक्रुस्तेमुनयःसर्वे

में स्थित हुये ॥ ४८ ॥ व हाथीके रूपको धारण कर शिवजी तपस्यारूपी धनवाले मुनियोंसे कहा कि जो मुझसे आपलोगोंका कार्य करने योग्यहोवै वह इस समय कहा जावै ॥ ४९ ॥ इसप्रकार कहेहुये ज्ञानकी क्रियामें परायण उन सबों ने कहा कि तुम्हारी प्रसन्नतासे सब प्राणी जैसे पहले थे वैसेही आनन्दसमेत होवैं ॥ ५० ॥ व हे देवदेवेश ! जो मेरे मन से कियागया है वह तुम्हारी प्रसन्नता से क्षमा करने योग्य है व हे सुरेशान ! सदैव दयासमेत हूजिये ॥ ५१ ॥ ऐसाही होगा उन से इसप्रकार कहेहुये वे सब शोकरहित हुये और उस समय मुनिलोग उसी लिंगके आकारवाले लिंग के समीप स्थित हुये ॥ ५२ ॥ व ईर्षा से रहित उन सब मुनियों

ने स्तुति किया व कहा कि हे देवदेवेश ! क्षमा करिये व हमलोगों के ऊपर दया करिये ॥ ५३ ॥ और मूलचण्डीशनामक इस लिङ्गमें लयको प्राप्तहोवो व हे देव देवेश ! तुमको उसमें त्रिकाल कलाग्रहण करनाचाहिये ॥ ५४ ॥ महादेवजी बोले कि चण्डी देवी कहीजाती है और उसका ईश (स्वामी) मैं कहागया हूं व उसका मूल लिंग कहागया है वह जिस लिये यहां गिराहै ॥ ५५ ॥ इसकारण वह मूलचण्डीश ऐसी प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा बहुतसे बावली, कूप व तड़ागोंके खुदाने से ॥ ५६ ॥ व दश हज़ार यज्ञ किये पर जो पुण्य होता है वह पुण्य लिंगके दर्शन से होता है सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको देकर मनुष्य जिस पुण्यफल को पाता है ॥ ५७ ॥

स्तुतिंविगतमत्सराः ॥ क्षमस्वदेवदेवेश कुर्वस्माकमनुग्रहम् ॥ ५३ ॥ अस्मिँल्लिङ्गेलयंगच्छ मूलचण्डीशसंज्ञिके ॥ त्रिकालंदेवदेवेश ग्राह्यातत्रकलात्वया ॥ ५४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ चण्डीतुप्रोच्यतेदेवी तस्यईशस्त्वहंस्मृतः ॥ तस्यमूलं स्मृतंलिङ्गं तदत्रपतितंयतः ॥ ५५ ॥ तस्मात्तुमूलचण्डीश इतिख्यातिंगमिष्यति ॥ वापीकूपतडागानां खातैस्तुविपुलै रपि ॥ ५६ ॥ कृतेयज्ञायुतेपुण्यं तत्पुण्यंलिङ्गदर्शनात् ॥ ब्रह्माण्डंसकलंदत्त्वा यत्पुण्यफलमाप्नुयात् ॥५७॥ तत्पुण्यं लभतेदेवि मूलचण्डीशदर्शनात् ॥ तत्रदानानिदेयानि षोडशैवनरोत्तमैः ॥ ५८ ॥ एवंतद्भवितासर्वं यन्मयोक्तंद्विजो त्तमाः ॥ यातदारुवनंविप्राः सर्वेयूयंतपोधनाः ॥ ५९ ॥ मयासर्वेसमादिष्टा नूनंवैब्रह्मवित्तमाः ॥ ६० ॥ ततस्तुतेप्राप्यम हद्वचोमम सर्वेप्रहृष्टामुनयोमहोदयम् ॥ गत्वाचतेदारुवनंतपोधनाः पुनश्चचेरुःसुतपस्तपोधनाः ॥ ६१ ॥ एतस्मात् कारणाद्देवि मूलचण्डीशसंज्ञितम् ॥ लिङ्गंपापहरंनृणामर्द्धचन्द्रेणभूषितम् ॥ ६२ ॥ दोहनीदुग्धदानेन मुनीनांतृषि

हे देवि ! उस पुण्य को मनुष्य मूलचण्डीशजी के दर्शन से प्राप्तहोता है और वहां उत्तम मनुष्यों को सोलह ही दान चाहिये ॥ ५८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मैंने जो कहाहै वह सब होवैगा हे ब्राह्मणो ! तपस्यारूपी धनवाले तुम लोग दारुवनको जावो ॥ ५९ ॥ और मुझसे आज्ञा दियेहुये तुम सब बड़े ब्रह्मज्ञानी होवोगे ॥ ६० ॥ तदनन्तर बड़े ऐश्वर्यवाले मेरे बड़े भारी वचन को प्राप्तहोकर वे सब तपोधन मुनि प्रसन्न हुये और दारुवनको जाकर उन तपस्यारूपीधनवाले मुनियों ने फिर उत्तम तप किया ॥ ६१ ॥ हे देवि ! इसीकारण आधे चन्द्रमासे भूषित मूलचण्डीशनामक लिंग मनुष्यों के पापोंको हरनेवाला है ॥ ६२ ॥ हे देवि ! जिसलिये तुम

ने दोहनी, व दूधके दानसे तृषितचित्तवाले मुनियों का अतिउत्तम श्रमहरण किया ॥ ६३ ॥ उसीकारण हे वरानने ! वह तृप्तोदक नाम से कुण्ड हुआ है ऋषितोयाके जलमें नहाकर जो चण्डीशजी को पूजता है ॥ ६४ ॥ वह लोकों का प्रचण्ड स्वामी होता है हे देवि ! तुमसे मूलचण्डीश देवजी का यह माहात्म्य संक्षेपसे कहा गया सुना हुआ जोकि पातकों का विनाशक है ॥ ६५ । ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमूलचण्डीशोत्पत्तिकथनंनामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

तात्मनाम् ॥ श्रमापहारंयद्देवि त्वयाकृतमनुत्तमम् ॥ ६३ ॥ तत्तृप्तोदकनाम्नावै ह्यभूतकुण्डंवरानने ॥ ऋषितोयाजले स्नात्वा चण्डीशंयःप्रपूजयेत् ॥ ६४ ॥ सप्रचण्डोभवेद्भूमौ भुवनानामधीश्वरः ॥ एतत्संक्षेपतोदेवि माहात्म्यंकीर्तितंतव ॥ ६५ ॥ मूलंचण्डीशदेवस्य श्रुतंपातकनाशनम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमूलचण्डीशोत्पत्तिकथनंनामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विनायकमनुत्तमम् ॥ चतुर्मुखेतिविख्यातं चण्डीशादुत्तरेस्थितम् ॥ १ ॥ किञ्चिदीशानदिग्भागे धनुषांचचतुष्टये ॥ तंप्रयत्नात्सुसम्पूज्यसर्वविघ्नैःप्रमुच्यते ॥ २ ॥ गन्धपुष्पादिभिस्तत्र भक्ष्यैर्भोज्यैःसमोदकैः ॥ चतुर्मुखंचतुर्थ्यांतु सम्पूज्यसिद्धिभाग्भवेत् ॥ ३ ॥ तस्माद्वायव्यदिग्भागे धनुषांद्वितयेस्थितम् ॥ कलम्बेश्वरनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वासम्पूजयित्वाच मुक्तःस्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ सोमवारेत्वमावस्यां

दो० । यथा चतुर्मुख विघ्नपति कर है अतुल प्रभाव । दो सौ इक्यासिवें महँ सो चरित्र चितचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर चण्डीशजी से उत्तर में स्थित चतुर्मुख ऐसे प्रसिद्ध अति उत्तम विनायकजी के समीप जावै ॥ १ ॥ जोकि मूलचण्डीशजी से कुछ ईशानदिशाके भागमें चार धनुष पै स्थित हैं उनको बड़े यत्नसे पूजकर मनुष्य सब विघ्नों से छूटजाताहै ॥ २ ॥ वहा चौथि तिथि में चन्दन पुष्पादिकों से तथा लड्डुवोंमसेत भक्ष्य भोज्यों करके चतुर्मुखजी को पूजकर मनुष्य सिद्धियोंका भागी होताहै ॥ ३ ॥ व उससे वायव्य दिशाके भागमें दो धनुषपै स्थित समस्त पातकों को नाशकरनेवाले कलम्बेश्वरनामक देवके समीप

जावै ॥ ४ ॥ उनको देखकर व भलीभांति पूजकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाताहै और वहीं पर सोमवार को अमावस तिथि में वहुत पुण्यदायक ॥ ५ ॥ भोजन वहां पुण्यके फलको चाहनेवाले पुरुषोंको ब्रह्मणोंके लिये देना चाहिये ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकलम्बेश्वरमाहात्म्यंनामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। श्रीगोपाल स्वामी तथा बकुलस्वामि माहात्म्य। दो सौ बैयासिवें महँ सोइ चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर चण्डीशजीसे पूर्व

तत्रैवबहुपुण्यदम् ॥ ५ ॥ विप्राणाम्भोजनंदेयं तत्रपुण्यफलेप्सुभिः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकलम्बेश्वरमाहात्म्यंनामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गोपालस्वामिनंहरिम् ॥ चण्डीशात्पूर्वभागेतु धनुषांविंशतिस्थितम् ॥ १ ॥ सर्वपापौघशमनं दारिद्र्यौघविनाशनम् ॥ तन्दृष्ट्वापूजयित्वाच माघेमासिविशेषतः ॥ २ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा तत्रगच्छेत्परम्पदम् ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्मादुत्तरादिग्भागेधनुषामष्टभिःप्रिये ॥ बकुलस्वामिनंसूर्यं तम्पश्येद्दुःखनाशनम् ॥ ४ ॥ रविवारेणसप्तम्यां कुर्याज्जागरणंनरः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे बकुलस्वामिमाहात्म्यंनामद्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥ * ॥

भाग में बीस धनुष पै स्थित गोपालस्वामी विष्णुजीके समीप जावै ॥ १ ॥ सब पापसमूहोंको नाशनेवाले व दरिद्रगणको विनाशनेवाले उन गोपालस्वामीको विशेष कर माघ महीने में देखकर व पूजकर ॥ २ ॥ और वहां रात्रिमें जागरणकर मनुष्य परमपदको प्राप्तहोताहै ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये ! उससे उत्तरदिशाके भागमें आठ धनुषपै उन दुःखनाशक बकुलस्वामी सूर्यनारायणको देखै ॥ ४ ॥ और रविवारसप्तमीमें जो मनुष्य जागरण करताहै वह सब कामनाओंको पाताहै व स्वर्गलोकमें पूजाजाताहै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबकुलस्वामिमाहात्म्यंनामद्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८२ ॥

दो० । ऋषितोयासंगम तथा उत्तरार्क परभाव । दोसौ तिर्रासिवें में सो चरित्र सतिभाव ॥ महादेवजी बोले कि उसके वायव्य दिशा के भाग में सोलह धनुष पै शीघ्रही विश्वासकारक उत्तरार्क ऐसे नाम से सूर्यनारायण स्थित हैं वहां रथसप्तमी को उपास कर मनुष्य सब रोगों से छूटजाता है ॥ १ । २ ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त वहां देवकुल से आग्नेय दिशा में दो कोस पर समुद्र के सुन्दर किनारे पै अति उत्तम ऋषितीर्थ स्थितहै ॥ ३ ॥ हे देवि ! वहां सब पातकोंको नाशने- वाले पत्थर के आकार वहीं प्राप्त ऋषिलोग आज भी मनुष्यों से देखे जाते हैं ॥ ४ ॥ जहां पर जेठकी अमावस तिथिमें अधम मनुष्य नहीं प्राप्त होतेहैं वहां श्रद्धा-

शिव उवाच ॥ तस्माद्वायव्यदिग्भागे धनुःषोडशभिःस्थितः ॥ उत्तरार्केतिनाम्नावै सद्यःप्रत्ययकारकः ॥ १ ॥ मुच्यतेसर्वरोगैस्तु उपोष्यरथसप्तमीम् ॥ २॥ ईश्वर उवाच ॥ अथदेवकुलाग्नेय्यां गव्यूत्यातत्रसंस्थितम् ॥ समुद्रस्य तटेरम्ये ऋषितीर्थमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ पाषाणाकृतयस्तत्र ऋषयोद्यापितत्रगाः ॥ दृश्यन्तेमानुषैर्देवि सर्वपातकनाश नाः ॥ ४ ॥ यत्रज्येष्ठेत्वमावस्यांप्राप्यतेनाधमैर्नरैः ॥ पिण्डदानंविशेषेण स्नानंश्रद्धासमन्वितैः ॥ ५ ॥ ऋषितोयासङ्ग मेतु स्नानंश्राद्धंसुदुर्लभम् ॥ अश्वदानंप्रशंसन्ति तत्रतेमुनिपुङ्गवाः ॥ ६ ॥ भोजनंब्राह्मणानान्तु यथाशक्त्याप्रदापयेत् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेऋषितोयासङ्गमतीर्थमाहात्म्यंनामत्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मरुद्देवींमहाप्रभाम् ॥ तस्मात्पश्चिमदिग्भागे क्रोशार्द्धेनव्यवस्थिताम् ॥ १॥

संयुत पुरुषों को विशेषकर पिण्डदान व स्नान करना चाहिये ॥ ५ ॥ ऋषितोया के संगम में स्नान व श्राद्ध दुर्लभहै वहां वे मुनिश्रेष्ठ अश्वदान की प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥ और यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन देवै ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामृषितोयासङ्गमतीर्थमाहात्म्यंनामत्र्य शीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८३ ॥ ❀ ॥ ● ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मरुद्देवि माहात्म्य अरु क्षेमादित्य प्रभाव । दो सौ चौरासिवें में सोई चरित सुहाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उससे पश्चिम दिशा के

भाग में आध कोस पै स्थित महाप्रभावती मरुदेवी के समीप जावै ॥ १ ॥ महानवमी व सप्तमी तिथि में सब कामनाओं की सिद्धि के लिये मरुद्देवताओं से पूजी हुई सब कामनाओं के फलको देनेवाली देवी को मनुष्य यत्नसे चन्दन व पुष्पादिकी विधि से पूजन करै ॥ २।३ ॥ महादेवजी बोले कि इसके अनन्तर देवकुलसे पूर्व में दश कोसपर शबरस्थान के मध्य में क्षेमादित्य ऐसे प्रसिद्ध ॥ ४ ॥ उन सूर्यनारायण को देखकर हे देवि ! मनुष्य क्षेमार्थ सिद्धि का भागी होताहै और रविवार सप्तमी में पूजेहुये वे सब कामनाओं के दायक होते हैं ॥ ५ ॥ देवकुलस्थान में इसप्रकार तीर्थोंकी स्थिति कहीगई ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालु

मरुद्भिःपूजितांदेवीं सर्वकामफलप्रदाम् ॥ महानवम्यांयत्नेन सप्तम्याम्पूजयेन्नरः ॥ २ ॥ गन्धपुष्पादिविधिना सर्वकामप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथदेवकुलात्पूर्वे पञ्चगव्यूतिमात्रतः ॥ शबरस्थानमध्येतु क्षेमादित्येतिविश्रुतम् ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वामानवोदेवि भवेत्क्षेमार्थसिद्धिभाक् ॥ सप्तम्यांरविवारेण पूजितःसर्वकामदः ॥ ५ ॥ इतिदेवकुलस्थाने कथिता तीर्थसंस्थितिः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे क्षेमादित्यमाहात्म्यंनाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवींकण्टकशोधिनीम् ॥ उत्तरेणदेवकुण्डाद्दक्षिणेभास्करात्स्थिताम् ॥ १ ॥ तदुत्पत्तिंप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमनाःप्रिये ॥ उन्नतांदक्षिणेभागे यजन्तिद्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ भृगुरत्रिर्मरीचिस्तु भरद्वाजोथकश्यपः ॥ कण्वोमङ्किश्चसावर्णिर्जातूकर्ण्यस्तथैवच ॥ ३ ॥ वत्सश्चैववसिष्ठश्च पुलस्त्यःपुलहःक्रतुः ॥ मुनिश्चाप्य

मिश्रविरचितायांभाषाटीकायाक्षेमादित्यमाहात्म्यंनामचतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि कण्टकशोधिनी इमि भयो भगवती नाम । दो सौ पञ्चासिवें महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर देवकुण्डसे उत्तर व भास्कर से दक्षिण में स्थित कण्टकशोधिनी देवी के समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! उसकी उत्पत्तिको मैं कहताहूं एकमनवाली होकर सुनिये कि दक्षिणभागमें उन्नत उन देवीको द्विजोत्तमलोग पूजते हैं ॥ २ ॥ भृगु, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, कश्यप, कण्व, मङ्कि, सावर्णि व जातूकर्ण्य ॥ ३ ॥ वत्स व वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह व क्रतु

और अंगिरा मुनि व विष्णु, शातातप और पराशर ॥ ४ ॥ व शाण्डिल्य , कौशिक, ऋषिशृंग, विभाण्डक, विश्वामित्र,शतानन्द, जह्नु व विश्वावसु ॥५॥ ये और अन्य मुनिलोग ऋषितोयाके उत्तम किनारे पै यज्ञवाट को बनाकर अनेक भांति के यज्ञों से पूजन करते थे ॥ ६ ॥ देवताओं व गन्धर्वों के नृत्योंसे तथा वेणु व वीणा के शब्दोंसे और वेदध्वनि के शब्दसे तथा यज्ञ, होम व अग्निहोत्रसे उपजेहुये ॥७॥ धूपोंसे सब स्थान आच्छादित था व अष्टगन्धियों से पूजित था और चतुर्वेदी दिव्य द्विजोत्तमों से शोभित था ॥ ८ ॥ ऐसे स्थानको देखकर महाबलवान् दैत्य यज्ञ विध्वंस के लिये समुद्र के बीचसे आये ॥ ९ ॥ बड़े शरीरवाले, मायावी व श्याम-

ङ्गिराविष्णुः शातातपपराशरौ ॥ ४ ॥ शाण्डिल्यःकौशिकश्चैव ऋषिशृङ्गोविभाण्डकः ॥ विश्वामित्रःशतानन्दो जह्नु विश्वावसुस्तथा ॥ ५ ॥ एतेचान्येचमुनयो यजन्तिविविधैर्मखैः ॥ यज्ञवाटञ्चनिर्माय ऋषितोयातटेशुभे ॥ ६ ॥ देवगन्धर्वनृत्यैश्च वेणुवीणानिनादितैः ॥ वेदध्वनिनिनादेन यज्ञहोमाग्निहोत्रजैः ॥ ७ ॥ धूपैःसमावृतंसर्वमष्टगन्धिभिरर्चितम् ॥ शोभितंमुनिभिर्दिव्यैश्चातुर्वेद्यैर्द्विजोत्तमैः ॥ ८ ॥ एवंविधंप्रदेशन्तु दृष्ट्वादैत्यामहाबलाः ॥ समुद्रमध्यादायाता यज्ञविध्वंसहेतवे ॥ ९ ॥ मायाविनोमहाकायाः श्यामकर्णामहोदराः ॥ लम्बभ्रूश्मश्रुनासाग्रा रक्ताक्षारक्तमूर्द्धजाः ॥ १० ॥ यज्ञंसमागताःसर्वे दैत्यास्तत्रवरानने ॥ तान्दृष्ट्वामुनयःसर्वे रौद्ररूपान्भयङ्करान् ॥ ११ ॥ केचिन्निपतिताभूमावग्नौचकरसंवृताः ॥ पत्नीशालांसमाविष्टा हविर्द्धानंतथापरे ॥ १२ ॥ ऋत्विजस्तुसदोमध्ये स्थितावाचंयमास्तथा ॥ एवंदेवियदावृत्तं मुनीनांचमहात्मनाम् ॥ १३ ॥ तदाध्वर्य्युर्महातेजा धैर्यमालम्ब्यसादरम् ॥ अग्निहोत्रहविष्यश्च

कर्ण तथा बड़े पेटवाले और लम्बी भौंह व दाढ़ी, मूछ व नासिका के अग्रभागवाले, अरुणनयन व लाल बालोंवाले ॥ १० ॥ सब दैत्य हे वरानने ! वहां यज्ञमें आये सब मुनिलोग उन रौद्ररूपी भयंकर दैत्यों को देखकर ॥ ११ ॥ कोई पृथ्वी में गिर पड़े व हाथोंसे आच्छादित कोई अग्नि में गिरपड़े वैसेही अन्य मुनि पत्नीशाला में पैठगये व कोई हविर्धान (हव्यगृह) में पैठगये ॥ १२ ॥ और ऋत्विज् चुप होकर सभा के मध्य में स्थितरहे हे देवि ! जब महात्मा मुनिलोगोंका ऐसा वृत्तान्त

हुआ ॥ १३ ॥ तब बड़े तेजस्वी व मन्त्रज्ञानी यजुर्वेदी ने धैर्यको अवलम्बन कर आदरसमेत अग्निहोत्रकी हविष्य व हविको धरकर ॥ १४ ॥ राक्षसों के नाश के लिये बहुतही जलतीहुई अग्नि में हवन किया हे देवेशि ! हव्य हवन करने पर उसी क्षण शक्ति, त्रिशूल, तलवार, व ढालको हाथों में लिये बड़ी उज्ज्वल शक्ति उत्पन्न हुई व उसने यज्ञके विध्वंस करनेवाले उन दैत्यों को मारा ॥ १५ । १६ ॥ तदनन्तर उस समय मुनियों ने अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उन भगवतीकी स्तुति किया और वह देवी प्रसन्न हुई व उस समय उन ऋषियों से बोली ॥ १७ ॥ कि हे मुनिलोगो ! वरदान को मांगिये मैं उत्तम वर को दूंगी ॥ १८ ॥ मुनिलोग बोले

हविर्विन्यस्यमन्त्रवित् ॥१४॥ सुसमिद्धेजुहावाग्नौ रक्षसांनाशहेतवे ॥ हुतेहविषिदेवेशि तत्क्षणादेवचोत्थिता ॥ १५ ॥ शक्तिःशक्तित्रिशूलासिचर्महस्तामहोज्ज्वला ॥ तयातेनिहतादैत्या यज्ञविध्वंसकारिणः ॥ १६ ॥ ततस्तांविविधैस्स्तोत्रैर्मुनयस्तुष्टुवुस्तदा ॥ प्रसन्नासाभवद्देवी तानृषीन्प्रत्युवाचह ॥ १७॥ वरंवृणुध्वंमुनयो दास्यामिवरमुत्तमम् ॥ मुनय ऊचुः ॥ १८ ॥ कृतंवैसकलंकार्यं यज्ञानोरक्षितास्त्वया ॥ यदिदेयोवरोस्माकं त्वयासुरविमर्द्दिनि ॥ १९ ॥ अस्मिन्स्थानेसदातिष्ठ मुनीनांहितकाम्यया ॥ कण्टकाःशोधितादैत्यायेनकण्टकशोधिनी ॥ २० ॥ अद्यप्रभृतिनामास्तु तेनदेविसदात्विह ॥ २१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वासादेव्यन्तर्हितातदा ॥ अष्टम्यांवानवम्यांवा पूजयेद्यस्तुमानवः ॥२२॥ राक्षसेभ्यःपिशाचेभ्यो भयंतस्यनजायते॥ प्राप्नुयात्परमांसिद्धिं मानवोनात्रसंशयः ॥२३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकण्टकशोधिनीमाहात्म्यंनामपञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८५ ॥ * ॥

कि तुमने हमलोगों के यज्ञोंकी रक्षा किया इससे सब कार्य कियागया हे असुरमर्दिनि ! यदि तुम से हमलोगों को वर देने योग्य है ॥ १९ ॥ तो मुनियों के हितकी कामनासे तुम सदैव इस स्थान में स्थित होवो जिस लिये तुमसे कण्टकरूपी दैत्य शोधेगये उसीकारण हे देवि ! आजसे लगाकर यहां कण्टकशोधिनी नाम होवै ॥ २०।२१॥ महादेवजी बोले कि ऐसाही होगा यह कहकर वह देवी उस समय अन्तर्द्धान होगई जो मनुष्य अष्टमी व नवमी में उन भगवतीको पूजता है॥२२॥उसको राक्षसों से व पिशाचों से भय नहीं होताहै और वह मनुष्य बड़ी सिद्धिको प्राप्तहोताहै इसमें सन्देह नहीं है॥२३॥इति श्रीस्कान्देपञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८५॥

दो० । दियो द्विजनको नगर शिव त्वष्टा सन रचवाय । दो सौ छिप्यासिवें में सोई चरित सुहाय ॥ महादेवजी बोले कि उसके पूर्वदिशाके भागमें थोड़ीही दूर पै स्थितसमस्त पातकों को नाशनेवाले व महाप्रभाववाले ब्रह्मेश्वर ऐसे नामक ब्राह्मणों से थापेहुये इस लिङ्ग के समीप जावै ऋषितोयाके जलमें नहाकर जो उस लिंगको पूजता है ॥ १।२ ॥ वह ब्राह्मण जाड्यभाव से रहित होकर वेदवित् होता है ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम उन्नत स्थानके समीप जावै उसी के उत्तर दिशाके भागमें थोड़ीही दूरपै स्थित ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों से थापाहुआ ब्रह्मेश्वर ऐसा नामक समस्त पातकोंको नाशनेवाला व महाप्रभाववान् यह लिंग है ॥ ५ ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्याश्चपूर्वदिग्भागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ ब्रह्मेश्वरेतिनामेदं ब्राह्मणैश्चप्रतिष्ठितम् ॥ ऋषितोयाजलेस्नात्वा तल्लिङ्गंयःप्रपूजयेत् ॥ २ ॥ सभवेद्वेदविद्विप्रो जाड्यभावविवर्ज्जितः ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि उन्नतस्थानमुत्तमम् ॥ तस्यैवोत्तरदिग्भागे नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ ४ ॥ लिङ्गंमहाप्रभावंहि सर्वपातकनाशनम् ॥ ब्रह्मेश्वरेतिनामेदं ब्राह्मणैश्चप्रतिष्ठितम् ॥ ५ ॥ एतत्स्थानंमहादेवि विप्रेभ्यः प्रददौबलात ॥ सर्वसीमासमायुक्तं चण्डीगणसुरक्षितम् ॥ ६ ॥ देव्युवाच ॥ कथमुन्नतनामास्य बभूवसुरसत्तम ॥ कथं त्वयाबलाद्दत्तंकियत्सीमासमन्वितम् ॥ ७ ॥ एतत्सर्वंसमाचक्ष्वसंक्षेपान्नातिविस्तरात ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामि कथाम्पापप्रणाशिनीम् ॥ यांश्रुत्वामानवोदेवि मुच्यतेसर्वकिल्विषैः ॥ ९ ॥ एतत्सर्वंपुराप्रोक्तं स्थानसंकेतकारणम् ॥ तृतीयेब्रह्मणःखण्डे सृष्टिसंक्षेपसूचके ॥ १० ॥ तथापितेप्रवक्ष्यामि संक्षेपाच्छृणुपार्वति ॥ उन्नामितंपुनस्तत्र

हे महादेवि ! चण्डीजीके गणोंसे रक्षित व सब हद्दोंसे युक्त इस स्थानको मैंने हठसे ब्राह्मणोंके लिये दियाहै ॥ ६ ॥ देवीजीबोलीं कि हे सुरश्रेष्ठ ! इसका कैसे उन्नत नाम हुआहै और कितनी सीमासे संयुत इसको तुमने कैसे हठसे दियाहै ॥ ७ ॥ इस सब वृत्तान्तको संक्षेप से कहिये बड़े विस्तारसे न कहिये ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! सुनिये मैं पातकों को नाश करनेवाली कथाको कहताहूं हे देवि ! जिसको सुनकर मनुष्य सब पातकोंसे छूटजाताहै ॥ ९ ॥ पुरातन समय सृष्टिके संक्षेपको सूचित करनेवाले तीसरे ब्रह्मखण्ड मे यह सब स्थानके संकेत का कारण कहागया है ॥ १० ॥ तो भी हे पार्वति ! तुमसे उसको संक्षेप से कहूँगा। सुनिये फिर जहां बड़े

ऐश्वर्यवाला लिङ्ग उत्पन्न कियागयाहै ॥ ११ ॥ वह स्थानवालों में श्रेष्ठ उन्नत ऐसा स्थान कहागया है जहां कि लिङ्गपात करनेमें द्विजोत्तमों की शक्ति उन्नतहुई है ॥ १२ ॥ अथवा प्रभासक्षेत्र का पूर्वद्वार उन्नत है और मूलचण्डीशनामक देवकुलस्थान में ब्राह्मणलोग ॥ १३ ॥ महादेवजी को प्रसन्न कराकर फिर महोदयतीर्थ को प्राप्तहुये और बिन जन्म व मृत्युवाले परमात्मा शिवजी को ध्यान करतेहुये महर्षियोंने साठहज़ार वर्षतक तप किया व हे पार्वति ! कोटिसंख्यक उन मुनियों के तप करनेपर ॥ १४ । १५ ॥ हे भामिनि ! ऋषितोया के पवित्र व पापनाशक तथा सुन्दर किनारे पै मैं भिक्षुक होकर फिर वहीं गया ॥ १६ ॥ व हे वरानने ! उससमय

यत्रलिङ्गंमहोदयम् ॥ ११ ॥ तदुन्नतमितिप्रोक्तं स्थानंस्थानवतांवरम् ॥ यत्रोन्नताद्विजाग्र्याणां शक्तिर्लिङ्गनिपातने ॥ १२ ॥ अथवाचोन्नतंपूर्वद्वारंप्राभासिकस्यवै ॥ स्थानेदेवकुलेविप्रा मूलचण्डीशसंज्ञिके ॥ १३ ॥ प्रसाद्यचमहादेवं पुनःप्राप्तामहोदयम् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तेपुर्महर्षयः ॥ १४ ॥ ध्यायमानामहेशानमनादिनिधनंपरम् ॥ तेषुवै तप्यमानेषु कोटिसंख्येषुपार्वति ॥ १५ ॥ ऋषितोयातटेरम्ये पवित्रेपापनाशने ॥ भिक्षुर्भूत्वागतश्चाहं पुनस्तत्रैवभामिनि ॥ १६ ॥ त्रिकालदर्शिभिस्तत्र रागरोषविवर्जितैः ॥ तपस्विभिस्तदासर्वैर्लक्षितोहंवरानने ॥ १७ ॥ दृष्टमात्रस्तदाविप्रैर्विरराममहेश्वरः ॥ क्वयासिविदितोदेव इत्युक्त्वातेययुर्द्विजाः ॥ १८ ॥ यावदायान्तिमुनय ईशईशेतिभाषकाः ॥ धावमानाःस्वतपसा द्योतयन्तोदिशोदश ॥ १९ ॥ लिङ्गमेवप्रपश्यन्ति नपश्यन्तिमहेश्वरम् ॥ येयेचददृशुर्लिङ्गं मूलचण्डीशसंज्ञिकम् ॥ २० ॥ तदातेमुनयस्सर्वे शरीरैस्स्वर्गमाययुः ॥ तदात्रिविष्टपंव्याप्तं दृष्टन्देविमहाद्विजैः ॥ २१ ॥

क्रोध व स्नेहसे रहित त्रिकालदर्शी सब ऋषियोंने मुझको देखा ॥ १७ ॥ और उससमय ब्राह्मणोंसे देखेहुये महादेवजी चुप होरहे व हे देव ! कहां जावेहो यह कहकर वे ब्राह्मण चले ॥ १८ ॥ और हे ईश ! हे ईश ! ऐसा कहनेवाले व अपने तप से दशोंदिशाओं को प्रकाशित करते दौड़तेहुये वे मुनिलोग जबतक आये ॥ १९ ॥ तबतक उन्होंने लिङ्गही को देखा महादेवजी को नहीं देखा और जिन जिनने मूलचण्डीशसंज्ञक लिङ्गको देखा ॥ २० ॥ वे सब मुनिलोग उस समय शरीरोंसे स्वर्ग

को प्राप्तहुये तब हे देवि ! महाद्विजों से स्वर्गव्याप्त देखागया ॥ २१ ॥ और तपस्यासे उज्ज्वल अन्य मुनिलोग आते थे इस अवसरको पाकर पृथ्वीमें भलीभांति आ-
कर ॥ २२ ॥ इन्द्रजी ने वज्रहीसे लिङ्गको आच्छादित किया और अठारह हज़ार ऊर्द्ध्वरेता मुनियोंने ॥ २३ ॥ स्थित होकर इस अतिउत्तम लिङ्गको नहीं देखा और
अचानकही वज्रसे संयुत इन्द्रको देखा ॥ २४ ॥ व जबतक वे शापदेवें तबतक इन्द्रजी अदृश्य होगये और त्रिपुरविनाशक भगवान् शिवजी ने कोपसे संयुत मुनियों
को देखा ॥ २५ ॥ और भगवान् सदाशिवजी ने मीठीवाणी से मुनियों को समझाया कि हे द्विजोत्तमो ! सदैव शान्ति में परायण तुमलोग क्यों दुःखी हो ॥ २६ ॥

आयान्तिचतथैवान्ये मुनयस्तपसोज्ज्वलाः ॥ एतदन्तरमासाद्य समागत्यमहीतले ॥ २२ ॥ लिङ्गमाच्छादयामास व
ज्रेणैवशतक्रतुः ॥ अष्टादशसहस्राणि मुनीनामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ २३ ॥ स्थितानिनह्यपश्यन्वै लिङ्गमेतदनुत्तमम् ॥ शक्र
स्तुसहसादृष्टो वज्रेणैवसमन्वितः ॥ २४ ॥ यावद्दिशन्तिशापन्ते तावन्नष्टःपुरन्दरः ॥ दृष्टवान्कोपसंयुक्तान् भगवांस्त्रि
पुरान्तकः ॥ २५ ॥ भगवान्सान्त्वयामास वाचामधुरयामुनीन् ॥ कथंखिन्नाद्विजश्रेष्ठाः सदाशान्तिपरायणाः ॥ २६ ॥
प्रसन्नवदनाभूत्वा शृणुध्वंवचनंमम ॥ भवद्भिर्ज्ञानसंयुक्तैः स्वर्गःकिमन्यतेबहु ॥ २७ ॥ यत्राष्टौवसवःप्रोक्ता आदित्या
श्चतथापरे ॥ एतेषामधिपःकश्चिदेकइन्द्रःप्रकीर्त्तितः ॥ २८ ॥ स्वपुण्यस्यक्षयेप्राप्ते यस्माद्भ्रश्यतेनरः ॥ एवंदुःख
समायुक्तः स्वर्गोनैवेष्यतेबुधैः ॥ २९ ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः कुरुध्वंवचनंमम ॥ गृहीध्वंनगरंरम्यं निवासायमहाप्र
भम् ॥ ३० ॥ हूयन्तामग्निहोत्राणि देवतास्सर्वदाद्विजाः ॥ इज्यतांविविधैर्यज्ञैः क्रियताञ्चापिपूजनम् ॥ ३१ ॥ आति

प्रसन्नमुख होकर तुमलोग मेरे वचनको सुनो कि ज्ञानसे संयुत आपलोग स्वर्गको क्यों बहुत मानते हो ॥ २७ ॥ जहां आठ वसु व अन्य आदित्य कहेगयेहैं व इनका
अधिप स्वामी कोई एक इन्द्र कहागयाहै ॥ २८॥ जिसलिये अपने पुण्यका क्षयप्राप्त होनेपर मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्टहोताहै व इसप्रकार दुःखसंयुत होताहै इसीकारण विद्वान्
स्वर्गकी इच्छा नहीं करते हैं ॥ २९ ॥ इसकारण हे ब्राह्मणो ! तुमलोग मेरे वचनको कीजिये कि बसने के लिये महाप्रकाशवान् सुन्दर नगरको लीजिये ॥ ३० ॥ व हे

ब्राह्मणो ! सदैव अग्निहोत्र हवन कियेजावैं व अनेकभांतिके यज्ञोंसे देवता पूजेजावैं व पूजन भी कियाजाय ॥ ३१ ॥ व नित्य आतिथ्य (अतिथि का सत्कार) किया जाय व वेदाभ्यास कियाजावै हे द्विजेन्द्रो ! विद्या व ज्ञानके संचयों से इसप्रकार नित्य करतेहुये तुमलोगोंकी अन्तमें मेरी प्रसन्नतासे मुक्ति होगी ॥ ३२ । ३३ ॥ ऋषि लोगबोले कि आहारको जीतेहुये हमलोग तपस्वी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं और तुम्हारी भक्तिको चाहनेवाले हमलोग यहां नगरसे क्या करैंगे ॥ ३४ ॥ महादेवजी बोले कि तुमलोगों की परमेश्वरमें सदैव भक्ति होगी सुन्दर नगरको ग्रहण कीजियेव मेरे वचनको कीजिये ॥ ३५ ॥ ऐसा कहकर भगवान् शिवदेवजीने कुछ आंखोंको मूंद

थ्यंक्रियतान्नित्यं वेदाभ्यासस्तथापिच ॥ एवंवैकुर्वतांनित्यं विद्याज्ञानस्यसञ्चयैः ॥ ३२ ॥ प्रसादान्ममविप्रेन्द्रा अन्ते मुक्तिर्भविष्यति ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ असमर्थाःपरित्राणे जिताहारास्तपस्विनः ॥ नगरेणेहकिंकुर्मस्तवभक्तिमभीप्सवः ॥ ३४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ भविष्यतिसदाभक्तिर्युष्माकंपरमेश्वरे ॥ गृहीध्वंनगरंरम्यं कुरुध्वंवचनंमम ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्देव ईषन्मीलितलोचनः ॥ सस्मारविश्वकर्माणं सर्वशिल्पवतांवरम् ॥ ३६ ॥ स्मृतमात्रोविश्वकर्मा प्राञ्जलिश्चाग्रतःस्थितः ॥ ३७ ॥ आज्ञापयद्रुतन्देव वचनंकरवाणिते ॥ ईश्वर उवाच ॥ नगरंकुरुत्वंत्वष्टर्विप्रार्थंसुन्दरंशुभम् ॥ ३८ ॥ इत्युक्तोविश्वकर्मापि भूमिंवीक्ष्यसमन्ततः ॥ उवाचप्रणतोभूत्वा शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ ३९ ॥ परीक्षिता मयाभूमिर्नयुक्तंनगरंत्विह ॥ अत्रदेवकुलंसाक्षाल्लिङ्गस्यपतनंतथा ॥ ४० ॥ यतिभिश्चात्रवस्तव्यं नयुक्तंगृहमेधिनाम् ॥ त्रिरात्रंपञ्चरात्रंवा सप्तरात्रंमहेश्वर ॥ ४१ ॥ पक्षंमासमृतुंचापि अयनंगृहमेधिभिः ॥ पुत्रदारयुतैस्तीर्थे वस्तव्यं

कर सब शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्माका स्मरण किया ॥ ३६ ॥ और स्मरण कियेहुये विश्वकर्माजी हाथोंको जोड़कर आगे स्थितहुये ॥ ३७ ॥ व बोले कि हे देव ! शीघ्रही आज्ञा दीजिये मैं तुम्हारा वचन करूंगा महादेवजी बोले कि हे विश्वकर्मा ! ब्राह्मणोंके लिये तुम उत्तम व सुन्दर नगरको बनावो ॥ ३८ ॥ ऐसा कहेहुये विश्वकर्माने भी सब ओर पृथ्वीको देखकर व प्रणामकर लोकोंका कल्याण करनेवाले शङ्करजीसेकहा ॥ ३९ ॥ कि मैंने भूमिकी परीक्षा किया इससे यहां नगर योग्य नहींहै क्योंकि यहां साक्षात् देवकुलहै व लिङ्गका पतन हुआहै ॥ ४० ॥ यहां संन्यासियों को बसना चाहिये और गृहस्थोंके योग्य नहीं है हे महेश्वर ! तीनरात्रि व पांचरात्रि तथा

सातरात्रिपर्यन्त ॥ ४१ ॥ व हे परमेश्वर ! पक्ष, महीना, ऋतु व अयन (छः महीना) तक पुत्रों व स्त्रियोंसे संयुत गृहस्थों को तीर्थमें बसना चाहिये ॥ ४२ ॥ जब गृहाधिप (गृहस्थ) छः महीने के उपरान्त तीर्थमें बसता है तो उसका मन चञ्चलता के भावसे विकृत होताहै ॥ ४३ ॥ और तब गृहस्थके सब धर्म नाश होजाते हैं उससमय उन विश्वकर्माजी से इसप्रकार कहेहुये उन शङ्करदेवजी ने ॥ ४४ ॥ उन के वचन की प्रशंसाकर फिर उनसे कहा कि मुझको यहां गृहस्थ ब्राह्मणों का निवास रुचता है ॥ ४५ ॥ जहां ऋषितोया के उत्तम किनारे पै लिङ्ग उत्पन्न कियागया है वहांपर हे शिल्पियों में श्रेष्ठ, विश्वकर्माजी ! नगर को निर्माण कराइये ॥

परमेश्वर ॥ ४२ ॥ वसत्यूर्द्ध्वंतुषण्मासाद् यदातीर्थेगृहाधिपः ॥ विकृतंजायतेतस्य मनश्चाञ्चल्यभावतः ॥ ४३ ॥ तदाधर्माविनश्यन्ति सकलागृहमेधिनः ॥ इत्युक्तस्सतदादेवस्तेनवैविश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥ पुनःप्रोवाचतन्तस्य प्रशस्यवचनंशिवः ॥ रोचतेमेनिवासोत्र विप्राणांगृहमेधिनाम् ॥ ४५ ॥ यत्रचोन्नामितंलिङ्गमृषितोयातटेशुभे ॥ तत्रनिर्मापयत्वष्टर्नगरंशिल्पिनांवर ॥ ४६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा विश्वकर्माप्युवाचन ॥ गत्वाचकारनगरं शिल्पिकोटिभिरावृतः॥४७॥ उन्नतंनामयल्लोके विख्यातंसुरसुन्दरि ॥ ततोहृष्टमनाभूत्वा विलोक्यनगरंशिवः ॥ ४८ ॥ आहूयब्राह्मणान्सर्वानुवाचनतकन्धरः ॥ इदंस्थानवरंरम्यं निर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ४९ ॥ गृहाणाञ्चसहस्रन्तु प्रोक्तंसर्वासुदिक्षुच ॥ नगरात्सर्वतःपुण्यो देशोनाग्नहरस्स्मृतः ॥ ५० ॥ अष्टयोजनविस्तीर्ण आयामव्यासतस्तथा ॥ नग्नोभूत्वाहरोयत्र देशेभ्रान्तोयदृच्छया ॥ ५१ ॥ तन्नाग्नहरमित्याहुर्देशंपुण्यतमंजनाः ॥ पूर्वंतुशङ्कराचार्यः पश्चिमेन्यङ्कुमत्यपि ॥ ५२ ॥ उत्तरे

४६ ॥ उन शिवजी के उस वचन को सुनकर विश्वकर्मा भी न बोले और करोड़ों शिल्पियों से घिरेहुये विश्वकर्मा ने जाकर नगर को बनाया ॥ ४७ ॥ जोकि हे सुरसुन्दरि ! संसारमें उन्नत नाम प्रसिद्धहै तदनन्तर प्रसन्नमन होकर नगरको देखकर सदाशिवजी ने कन्धेको झुकाकर सब ब्राह्मणोंको बुलाकर कहा कि इस मनोहर व श्रेष्ठस्थान को विश्वकर्मा ने बनायाहै ॥ ४८।४९॥ जिसमें सब दिशाओं में हज़ार घर कहेगये हैं और नगरसे सबओर नाग्नहर पवित्रदेश कहागया है ॥५०॥ जोकि आठ योजन लम्बा, चौड़ा व ऊंचा है जिस स्थानमें नग्नहोकर सदाशिवजी अपनी इच्छा से घूमेहैं ॥ ५१ ॥ उसको मनुष्य नाग्नहर ऐसा अत्यन्त पवित्र देश कहते हैं पूर्वमें

शङ्कराचार्य व पश्चिम में न्यंकुमती ॥ ५२ ॥ और उत्तर में स्वर्णनन्दा है व दक्षिण में समुद्र हदहै इस अन्तर को प्राप्त होकर नाग्नहरदेश कहागया है ॥ ५३ ॥ मैंने उँचाईसमेत लम्बाईसे व चौड़ाईसे इससमस्त देशको आठयोजनके प्रमाणसे कहाहै ॥५४॥ हे द्विजोत्तमो ! श्रेष्ठनगरको ग्रहण कीजिये व प्रसन्नहूजिये यहा निस्सन्देह मुक्ति व मुक्तिहोगी ॥ ५५ ॥ उससमय इसप्रकार कहेहुये वे सब ब्राह्मण शिवजीसे बोले ब्राह्मणबोले कि हे ईश्वर ! हमलोग परमात्माकी आज्ञाको वृथा करनेके लिये नहीं समर्थहैं ॥ ५६ ॥ तपस्या व अग्निहोत्रमें लगेहुये तथा वेदपाठसे शोभित हमलोगोंका भयङ्कर कलिकालमें कौन रक्षकहै ॥ ५७ ॥ व कौनदाता कौन आरोग्यदायक

स्वर्णनन्दास्याद्दक्षिणेसागरावधिः ॥ एतदन्तरमासाद्य देशोनाग्नहरस्स्मृतः ॥ ५३ ॥ अष्टयोजनमानेन आयामव्या सतस्तथा ॥ प्रोक्तोयंसकलोदेश उन्नतेनसमम्मया ॥ ५४ ॥ गृह्यतान्नगरंश्रेष्ठं प्रसीदध्वंद्विजोत्तमाः ॥ अत्रभुक्तिश्चमुक्तिश्च भविष्यतिनसंशयः ॥ ५५ ॥ इत्युक्तास्तेतदासर्वे विप्राऊचुर्महेश्वरम् ॥ विप्रा ऊचुः ॥ ईश्वराज्ञांवृथाकर्तुं नशक्ताः परमात्मनः ॥ ५६ ॥ तपोग्निहोत्रनिष्ठानांवेदाध्ययनशालिनाम् ॥ अस्माकंरक्षिताकोस्तिकलिकालेचदारुणे ॥ ५७ ॥ कोदातारोग्यदःकश्च कोवैमुक्तिप्रदास्यति ॥ ५८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ महाकालस्यरूपेण स्थित्वातीर्थेमहोदधेः ॥ नाशयिष्यामिशत्रून्वस्सम्यगाराधितोह्यहम् ॥ ५९ ॥ उन्नतोविघ्नराजस्तु विघ्नच्छेत्ताभविष्यति ॥ गणनाथस्वरूपोयंनिधीनान्धनदःपतिः ॥ ६० ॥ युष्मभ्यन्दास्यतिद्रव्यंसम्यगाराधितोपिसः ॥ सम्यगाराधितोब्रह्मासर्वकार्येषुसर्वदा ॥ ६१ ॥ सर्वान्कामांश्चमुक्तिञ्च प्रदास्यतिनसंशयः ॥ विप्रा ऊचुः ॥ यादितीर्थानितिष्ठन्ति सर्वाणिसुरसत्तम ॥ ६२ ॥ शृगालेश्वर

और कौन मुक्तिको देवैगा ॥ ५८ ॥ महादेवजी बोले कि समुद्रके तीर्थमें महाकालस्वरूपसे स्थित होकर भलीभांति आराधन कियाहुआ मैं तुमलोगोंके शत्रुवोंको नाश करूंगा ॥ ५९ ॥ और गणनायकस्वरूपी ये उन्नत विघ्नराज विघ्नोंको विदारनेवाले होवैंगे और जो निधियोंके स्वामी धनद (कुबेर) हैं ॥ ६० ॥ भलीभांति आराधन कियेहुये वे भी तुमलोगों के लिये द्रव्यको देवैंगे और सदैव सब कार्योंमें भलीभांति आराधन कियेहुये ब्रह्माजी ॥ ६१ ॥ सब कामनाओंको व मुक्ति तथा मुक्तिको नि-

रसन्देह देवैंगे ब्राह्मणबोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! यदि शृगालेश्वरतीर्थमें व उत्तम देवकुलतीर्थमें हमलोगोंको पवित्र करनेकेलिये महाभयङ्कर कलियुगमें भी यदि सब तीर्थ स्थितहोवैं ॥ ६२।६३ ॥ तो हे महेश्वरजी ! हमलोग उस स्थानको ग्रहणकरैं अन्यथा नहीं ग्रहण करैंगे वैसाही होगा यह प्रतिज्ञाकर उन महादेवजीने सात ड्योढ़ियोंसे संयुत व चन्द्रशाला से युक्त मन्दिरोंसे सब ओर भूषित व अनेकप्रकारकी सवारियोंसे संयुत तथा सबओर हद्दमे युक्त नगरको उन ब्राह्मणोंके लिये दिया ॥ ६४।६५ ॥ सूतजी बोले कि इसप्रकार उन ब्राह्मणों के लिये नगरको देकर शिवदेवजीने हाथों को जोड़ेहुये आगे स्थित विश्वकर्मा को देखा ॥ ६६ ॥ विश्वकर्मा बोले कि हे महा-

तीर्थेच तथादेवकुलेशुभे ॥ कलावपिमहारौद्रे अस्माकंपावनायवै ॥ ६३ ॥ स्थानंतत्तर्हिगृह्णीमो नान्यथाचमहेश्वर ॥ सतथेतिप्रतिज्ञाय ददौतेभ्योमहेश्वरः ॥ ६४ ॥ सप्तभौमैश्शशाङ्काढ्यैः प्रासादैःपरिभूषितम् ॥ नानायानसमायुक्तं सर्वतस्सीमयान्वितम् ॥ ६५ ॥ सूत उवाच ॥ एवन्तेभ्योहिनगरं दत्त्वादेवोमहेश्वरः ॥ ददर्शविश्वकर्माणं प्राञ्जलिपुरतःस्थितम् ॥ ६६ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ विलोकयतांमहादेव नगरंनगरोत्तमम् ॥ सौवर्णस्थलमारुह्य निर्मितंत्वत्प्रसादतः ॥ ६७ ॥ विश्वकर्मवचश्श्रुत्वा भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ तमारुरोहस्थलकं सहसर्वैर्महर्षिभिः ॥ ६८ ॥ नगरंविलोकयामास रम्यंप्राकारमण्डितम् ॥ ऋषयस्तुष्टुवुस्सर्वे तत्रस्थंत्रिपुरान्तकम् ॥ ६९ ॥ तानुवाचमहादेवो वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यदितुष्टोमहादेव स्थलकेश्वरनामभृत् ॥ आलोकयंस्तन्नगरं सदातिष्ठस्थलेहर ॥ ७० ॥ तथेत्युक्त्वातदादेवः स्थलकेस्मिन्सदास्थितः ॥ कृतेरत्नमयन्देवि त्रेतायाञ्चहिरण्मयम् ॥ ७१ ॥ रौप्यंचद्वापरेप्रोक्तं स्थल

देवजी ! सुवर्ण की चट्टानपै चढ़कर तुम्हारी प्रसन्नता से बनायेहुये नगरों में उत्तम नगरको देखिये ॥ ६७ ॥ विश्वकर्मा के वचनको सुनकर त्रिपुरविनाशक भगवान् शिवजी सब महर्षियों समेत उस स्थल पै चढ़गये ॥ ६८ ॥ और छहरदिवालीसे शोभित तथा मनोहर नगरको उन्होंने देखा और वहांपै स्थित त्रिपुरविनाशकजीकी सब ऋषियों ने स्तुति किया ॥ ६९ ॥ और महादेवजी ने उनसे कहा कि उत्तम वरदानको मांगिये ऋषिलोग बोले कि हे हर, महादेवजी ! यदि प्रसन्नहो तो नगरको देखतेहुये स्थलकेश्वर नामधारी तुम सदैव स्थलमें स्थितहोवो ॥ ७० ॥ वैसाही होगा यह कहकर उससमय शिवदेवजी सदैव इस स्थलमें स्थितहुये हे देवि ! सतयुगमें रत्नमय

व त्रेतामें सुवर्णमय ॥ ७१ ॥ व द्वापरमें रजतमय और कलियुगमें वह स्थल पत्थरमय कहागया है इसप्रकार वहां स्थलकेश्वर नाम से शिवदेवजी स्थित हुये ॥ ७२ ॥ उन्नतस्थान में बसनेवाले जनोंको सदैव उन महादेवजी को पूजना चाहिये और माघ महीने में चौदसि तिथिमें वहां जागरण विशेष होताहै ॥ ७३ ॥ हे देवि ! इस प्रकार यह उन्नतस्थलका माहात्म्य कहागया सुनाहुआ जोकि मनुष्यों के पातकों को हरनेवाला व सब कामनाओं के फलोंको देनेवाला है ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांस्थलकेश्वरोत्पत्तिमाहात्म्यंनामषडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥ ● ॥

मश्ममयंकलौ ॥ एवंतत्रस्थितोदेवस्स्थलकेश्वरनामतः ॥ ७२ ॥ सदापूज्योमहादेव उन्नतस्थानवासिभिः ॥ माघेमासि चतुर्दश्यां विशेषस्तत्रजागरः ॥ ७३ ॥ इत्येतत्कथितन्देवि उन्नतस्यमहोदयम् ॥ श्रुतंपापहरंनृणां सर्वकामफलप्रदम् ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेस्थलकेश्वरोत्पत्तिमाहात्म्यन्नामषडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्मात्पूर्वस्यदिग्भागे किञ्चिदाग्नेयसंस्थितम् ॥ लिङ्गद्वयंमहापुण्यं विश्वकर्मप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ यदावैनगरंकर्तुं त्वष्टातत्रसमागतः ॥ प्रतिष्ठाप्यमहादेवं नगरंकृतवांस्ततः ॥ २ ॥ कृत्वाचनगरंरम्यं लिङ्गस्यास्यप्रभावतः ॥ पुनःप्रतिष्ठितंलिङ्गं तेनवैविश्वकर्मणा ॥ ३ ॥ कर्मादौकर्मणश्चान्ते यत्रोद्वाहगृहादिके ॥ लिङ्गद्वयंपूजयित्वा सिद्धिमाप्नोतितत्क्षणात् ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पञ्चामृतरसोदकैः ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्देवि लिङ्गयुग्मंप्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेलिङ्गद्वयमाहात्म्यन्नामसप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८७ ॥ * ॥

दो॰ । विश्वकर्म थाप्यो यथा लिंग रुचिर अतिदोइ । दो सौ सत्तासिवें महँ कह्यो चरित सब सोइ ॥ महादेवजी बोले कि उससे पूर्वदिशा के भागमें कुछ आग्नेय में स्थित विश्वकर्माजी से थापेहुये बड़े पुण्यदायक दो लिंग हैं ॥ १ ॥ जब नगर को बनाने के लिये वहा विश्वकर्माजी आये हैं तब उन्होंने महादेवजी को थापकर तदनन्तर नगर को बनाया है ॥ २ ॥ और इसलिंग के प्रभावसे मनोहर नगरको बनाकर फिर उन विश्वकर्माने लिंगको थापित कियाहै ॥ ३ ॥ जहां विवाह व गृहादिक कार्य में कर्मके आदि में व कर्मके अन्तमें दोनों लिङ्गोंको पूजकर मनुष्य उसीक्षण सिद्धिको पाताहै ॥ ४ ॥ इसलिये हेदेवि ! सब यत्नसे पञ्चामृत रस व जलसे

तथा अनेकभांतिके नैवेद्योंसे मनुष्य दोनों लिंगोंको पूजै ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांलिङ्गद्वयमाहात्म्यंनामसप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२८७॥

दो० । बालरूप ब्रह्मा यथा आये उन्नत थान । दो सौ अट्ठासिवें में सोई कीन् बखान ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त मैं तुमसे गुप्त व उत्तम स्थानको कहूंगा जोकि उन्नतस्थान में बसनेवाले मनुष्यों के सब पापोंको हरनेवाला है ॥ १ ॥ उन्नतस्थान में स्थित क्रीड़ा करनेवाले व अप्रकटजन्मवाले बालरूपी ब्रह्मादेव का माहात्म्य श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ जिनके दर्शनही से मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै देवीजी बोलीं कि जो बालरूपी ऐसे ब्रह्मा कहेगये हैं वे उन्नतस्थान में कैसे स्थितहुये ॥

ईश्वर उवाच ॥ अथतेकीर्त्तयिष्यामि रहस्यंस्थानमुत्तमम् ॥ सर्वपापहरंनृणामुन्नतस्थानवासिनाम् ॥ १ ॥ श्रेष्ठंदेवस्यमाहात्म्यं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ उन्नतस्थानसंस्थस्य देवस्यबालरूपिणः ॥ २ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ देव्युवाच ॥ बालरूपीतियःप्रोक्तउन्नतेसकथंचन ॥ ३ ॥ स्थानेष्वन्येषुसर्वत्र वृद्धरूपीपितामहः॥ कस्मिन्स्थानेस्थितस्तत्र किमर्थंतत्रचागतः ॥ ४ ॥ कथंसपूज्योविप्रेन्द्रैस्स्थितःकस्मात्क्रमाद्वद ॥ ईश्वर उवाच ॥ ऋषितोयापश्चिमेतु ईशान्यांस्थलकेश्वरात् ॥ ५ ॥ ब्रह्मणःपरमंस्थानं ब्रह्मलोकइवापरः ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च पूज्याःप्राभासिकेसदा ॥ ६ ॥ ब्रह्मभागेस्थितोब्रह्मा ऋषितोयातटेशुभे ॥ रुद्रभागेग्नितीर्थेच पूज्योरुद्रस्सनातनः ॥ ७ ॥ गिरौरैवतकेरम्ये पूज्योदामोदरोहरिः ॥ सोमेनप्रार्थितोदेवो बालरूपीपितामहः ॥ ८ ॥ आगतश्चाष्टवर्षस्तु उन्नतंस्थानमुत्तमम् ॥ ९

३ ॥ क्योंकि अन्यस्थानों में सब कहीं वृद्धरूपी पितामह हैं और वे वहां किस स्थानमें स्थितहैं तथा किसलिये वहां आये हैं ॥ ४ ॥ और वे किसप्रकार द्विजेन्द्रों से पूजने योग्य हैं व किसकारण स्थित हैं इसको क्रमसे कहिये महादेवजी बोले कि ऋषितोया के पश्चिम में स्थलकेश्वर मे ईशानदिशा में ॥ ५ ॥ अन्य ब्रह्मलोक की नाईं ब्रह्माका उत्तम स्थान है प्रभासमें ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी सदैव पूजनेयोग्य हैं ॥ ६ ॥ उत्तम ऋषितोया के किनारे पै ब्रह्मभाग में ब्रह्मा स्थित हैं और रुद्रभाग व अग्नितीर्थ में सनातन शिवजी पूजनेयोग्य हैं ॥ ७ ॥ और मनोहर रैवतक पर्वत पै दामोदर विष्णुजी पूजनेयोग्य हैं चन्द्रमा ने बालरूपी पितामह देवजी से प्रार्थना

किया है ॥ ८ ॥ और उत्तम उन्नतस्थानमें आठवर्षवाले ब्रह्मा आये हैं व द्विजोत्तमोंको देखकर व्यापक ब्रह्माजी उस स्थानमें स्थितहुये ॥ ९ ॥ ब्रह्मके समान देवता नहीं है व ब्रह्मके समान गुरु नहीं है और ब्रह्म के समान ज्ञान नहीं है व ब्रह्मके समान तप नहीं है ॥ १० ॥ दुःख, शोक व भयसे संयुत मनुष्य तबतक संसारमें भ्रमते हैं जबतक कि भक्तिसे सुरोत्तम ब्रह्माजी को नहीं भजतेहैं ॥ ११ ॥ जैसे प्राणीका चित्त विषय गोचरमें आसक्त होताहै वैसेही यदि यह चित्त ब्रह्ममें लगै तो कौन पुरुष बन्धन से न छूटजावै ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी परमायु कहेगये हैं उनका प्रथम परार्द्ध बीतगया व उन्नतस्थान में स्थित ब्रह्माका इससमय दूसरा परार्द्ध होगा ॥ १३ ॥

ष्ट्वाब्रह्माद्विजश्रेष्ठांस्तत्रस्थानेस्थितोविभुः ॥ ९ ॥ नास्तिब्रह्मसमोदेवो नास्तिब्रह्मसमोगुरुः ॥ नास्तिब्रह्मसमंज्ञानं नास्तिब्रह्मसमन्तपः ॥ १० ॥ तावद्भ्रमन्तिसंसारे दुःखशोकभयप्लुताः ॥ नभजन्तिसुरश्रेष्ठं यावद्भक्त्यापितामहम् ॥ ११ ॥ समासक्तंयथाचित्तं जन्तोर्विषयगोचरे ॥ यद्येतद्ब्रह्मणान्यस्तं कोनमुच्येतबन्धनात् ॥ १२ ॥ परमायुस्स्मृतो ब्रह्मा परार्द्धतस्यवैगतम् ॥ उन्नतस्थानसंस्थस्य द्वितीयोभविताधुना ॥ १३ ॥ यदासावुन्नतेस्थाने ब्रह्मालोकपितामहः ॥ आगतश्चाष्टवर्षस्तु तदाचब्रह्मणःप्रियम् ॥ १४ ॥ स्नात्वाचविधिवत्पूर्वं ब्रह्मकुण्डेनरोत्तमः ॥ पूजयेत्पुष्पधूपाद्यैर्ब्रह्माणंबालरूपिणम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे उन्नतस्थानेबालरूपिब्रह्ममाहात्म्यन्नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तस्यदक्षिणतःस्थितम् ॥ दुर्गादित्येतिनामानं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ यदा

जब लोकों के पितामह ये आठवर्षवाले ब्रह्माजी उन्नतस्थान में आये तब यह स्थान ब्रह्माको प्रिय हुआ ॥ १४ ॥ पहले ब्रह्मकुण्ड में नहाकर फिर उत्तम मनुष्य विधिपूर्वक पुष्पधूपादिकों से बालरूपी ब्रह्माको पूजै ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामुन्नतस्थानेबालरूपिब्रह्ममाहात्म्यं नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो• । भये प्रभासक्षेत्र महँ दुर्गादित्यक नाम । दोसौ उन्नासिवें में सोइ चरितअभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके दक्षिणमें स्थित समस्त

पातकोंको नाशनेवाले दुर्गादित्यनामक देवजीके समीप जावै ॥ १ ॥ जब दुःखोंके विनाशनेवाली दुर्गाजी दुःखको प्राप्तहुईहैं तब उन्होंने दुःखके नाशके लिये सूर्यनारायणको आराधन किया ॥ २ ॥ तदनन्तर बहुत समयके बाद सूर्यनारायणजी उन दुर्गाजीके ऊपर प्रसन्नहुये व महाप्रकाशवती दुर्गा देवीसे बोले ॥ ३ ॥ कि हे देवेशि ! वरदान को मांगिये मैं तपस्यासे प्रसन्नहुआहूं दुर्गाजी बोलीं कि हे दिननाथजी ! यदि प्रसन्नहो तो मेरे दुःखको नाशकरो ॥ ४ ॥ सूर्यनारायणजी बोले कि थोड़े ही समय में त्रिपुरविनाशक भगवान् सदाशिवजी उत्तम उन्नतस्थानमें उत्तमलिंग को प्राप्त होवैंगे ॥ ५ ॥ हे देवि ! यहां दुर्गादित्य ऐसा मेरा नाम होगा ऐसा कहकर

दुःखमनुप्राप्ता दुर्गादुःखविनाशिनी ॥ सूर्यमाराधयामास तदादुःखविपत्तये ॥ २ ॥ ततःकालेनवहुना तस्यास्तुष्टोदिवाकरः ॥ उवाचमधुरंवाक्यं दुर्गादेवींमहाप्रभाम् ॥ ३ ॥ वरंवरयदेवेशि तपसातुष्टवानहम् ॥ दुर्गोवाच ॥ यदितुष्टोदिवानाथ दुःखंममविनाशय ॥ ४ ॥ सूर्य उवाच ॥ अचिरेणैवकालेन भगवांस्त्रिपुरान्तकः ॥ सम्प्राप्स्यत्युत्तमंलिङ्गमुन्नतेस्थानउत्तमे ॥ ५ ॥ दुर्गादित्येतिमेनाम इहदेविभविष्यति ॥ एवमुक्त्वामहादेवि तदाचान्तर्हितोरविः ॥ ६ ॥ सप्तम्यांरविवारेण दुर्गादित्यंप्रपूजयेत् ॥ तस्यदुःखानिसर्वाणि कुष्ठानिविविधानिच ॥ ७ ॥ विलयंयान्तिदेवेशि दुर्गादित्यंप्रपूजनात् ॥ ८ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदुर्गादित्यमाहात्म्यन्नामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥ * ॥
शिव उवाच ॥ ततःपश्येन्महादेवि तस्यदक्षिणतस्स्थितम् ॥ सोमेश्वरेतिनामानं ऋषितोयातटेस्थितम् ॥ १ ॥

हे महादेवि ! उससमय सूर्यनारायण अन्तर्द्धान होगये ॥ ६ ॥ रविवार सप्तमी में जो दुर्गादित्य को पूजता है हे देवेशि ! उसके सब दुःख व अनेकप्रकार के कुष्ठ दुर्गादित्यजी के पूजनसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ७ । ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदुर्गादित्यमाहात्म्यंनामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि सोमेश्वरदेव अरु है गणनाथ प्रभाव । दोसौ नब्बेमें सोई कथा हर्ष सरसाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उसके दक्षिण में स्थित

व ऋषितोयाके किनारे पै टिकेहुये सोमेश्वर ऐसे नामक शिवदेवजीको देखै ॥ १ ॥ पहले इनका भूतेश्वर ऐसा नाम कहागयाहै व हे देवि ! कलियुगमें उनका सोमेश ऐसा नाम कहागया है ॥ २ ॥ उनको देखकर व पूजकर मनुष्य सब पातकोंसे छूट जाताहै ॥ ३ ॥ हे महादेवि ! उससे उत्तरदिशा के भागमें कुछ वायव्य में स्थित सब सिद्धियों को देनेवाले विनायकजी को देखै ॥ ४ ॥ मैंने जिन इन कुबेरदेवजी को कहाहै वे पुरातन समय मेरे मित्र हुये हैं और निधियों के पालक वे गणनाथ के स्वरूप से ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! इस स्थानमें लोकोंको सिद्धिदेने के लिये स्थित हैं मङ्गल दिनमें चौथि तिथिको लड्डुवोंसमेत भक्ष्य, भोज्यों से ॥ ६ ॥ जो उनको वि-

भूतेश्वरेतिनामास्य पूर्वैवेपरिकीर्त्तितम् ॥ सोमेशेतिकलौदेवि तस्यनामप्रकीर्त्तितम् ॥ २ ॥ तन्दृष्ट्वापूजयित्वा च मुक्तस्स्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ ३ ॥ तस्मादुत्तरदिग्भागे किञ्चिद्वायव्यमाश्रितम् ॥ विनायकंमहादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ४ ॥ योसौदेवोमयाख्यातस्सखामेधनदःपुरा ॥ गणनाथस्वरूपेण निधीनांपरिपालकः ॥ ५ ॥ लोकानांसिद्धिदानार्थमस्मिन्स्थानेस्थितःप्रिये ॥ चतुर्थ्यांभौमवारेण भक्ष्यभोज्यैस्समोदकैः ॥ ६ ॥ पूजयेद्विधिवद्देवि तस्यसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे गणनाथमाहात्म्यन्नामनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२९०॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि विनायकमनुत्तमम् ॥ ऋषितोयातटेरम्ये सर्वविघ्नविदारणम् ॥ १ ॥ योसौदेवोगणाध्यक्षः ससाक्षात्त्रिपुरान्तकः ॥ वाजरूपंसमाश्रित्य उन्नतेस्थानकेस्थितः ॥ २ ॥ प्रभासिकेमहाक्षेत्रे गणानांको

धिपूर्वक पूजता है हे देवि ! उसके निश्चयकर सिद्धि होती है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगणनाथमाहात्म्यंनामनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा विनायक देव अरु महाकाल कर हाल । दोसौ इक्यानबे महँ सोईचरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर सुन्दर ऋषितोया के किनारे पर सब विघ्नोंको विदारनेवाले अतिउत्तम विनायकजी के समीप जावै ॥ १ ॥ त्रिपुरविनाशक जो ये साक्षात् गणनायक देवजी हैं करोड़ों गणों से घिरेहुये

वे राजरूप में स्थित होकर प्रभास महाक्षेत्र में उन्नतस्थान पै स्थित हैं इसलिये सब यत्नसे यात्राके निर्विघ्नके लिये ॥ २ । ३ ॥ चन्दन व पुष्पादिकों से गणनाथ को आराधन करना चाहिये व हे महादेवि ! चौथि तिथिमें सब नगरवासियों को ॥ ४ ॥ योगक्षेमार्थ सिद्धिके लिये यात्राका महोत्सव करना चाहिये ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरारोहे ! तदनन्तर नगर में उसीके उत्तरओर स्थित सब से रक्षा करनेवाले महाकालेश्वरदेवजी के समीप जावै ॥ ६ ॥ रौद्ररूपधारी भैरवजी इस पुरके अधिष्ठाताहैं अमावस व पौर्णमासी तिथिमें इनका महापूजनकरै ॥ ७ ॥ जो मनुष्य महोदयतीर्थमें नहाकर महाकालजीको देखताहै वह संसारमें सात हज़ार

टिभिर्वृतः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रानिर्विघ्नहेतवे ॥ ३ ॥ आराध्योगणनाथश्च गन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥ चतुर्थ्याञ्च महादेवि सर्वैर्नगरवासिभिः ॥ ४ ॥ यात्रामहोत्सवःकार्यो योगक्षेमार्थसिद्धये ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेद्वरारोहे तस्यैवोत्तरतःस्थितम् ॥ महाकालेश्वरन्देवं सर्वरक्षाकरंपुरे ॥ ६ ॥ अधिष्ठातापुरस्यास्य भैरवोरौद्ररूपधृक् ॥ दर्शेच पौर्णमास्याञ्च महापूजांप्रकारयेत् ॥ ७ ॥ महोदयेनरस्स्नात्वा महाकालंप्रपश्यति ॥ धनाढ्योजायतेलोके सप्तजन्म सहस्रकम् ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमहाकालेश्वरमाहात्म्यन्नामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः २९१ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोमहोदयंगच्छेत्तस्मादीशानसंस्थितम् ॥ विधिनातत्रयस्स्नाति तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ १ ॥ प्रतिग्रहकृताद्दोषान् नभयंतस्यविद्यते ॥ महोदयंमहानन्ददायकञ्चद्विजन्मनाम् ॥ २ ॥ प्रतिग्रहेप्रसक्तानां विषयासक्तचेतसाम् ॥ तेषामपिददेन्मुक्तिं तेनख्यातंमहोदयम् ॥ ३ ॥ तस्यैवरक्षणार्थाय महाकालस्यचोत्तरे ॥ नियुक्ताश्चमयादेवि

जन्मतक धनाढ्य होताहै ॥ ८ ॥ इति स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाकालेश्वरमाहात्म्यंनामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९१ ॥

दो० । अहै महोदयतीर्थकर यथा अतुल माहात्म्य । दोसौ बनबेमें सोई कह्यो चरित याथात्म्य ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर उससे ईशानमें स्थित महोदयतीर्थ के समीप जावै जो उसमें विधिसे नहाता है व पितरों और देवताओं को तर्पण करता है ॥ १ ॥ उसको प्रतिग्रह (दानलेने) के दोषसे उपजाहुआ भय नहीं होता है और महोदयतीर्थ ब्राह्मणों के बड़े आनन्दका दायक है ॥ २ ॥ जिसलिये वह प्रतिग्रह में लगेहुये व विषयों में आसक्त चित्तवाले उन ब्राह्मणों को भी मुक्ति देताहै

...उत्तर में मुझसे नियुक्त कीहुई मातृका वहां स्थित हैं ॥ ४ ॥ पहले उम
...महोदयका बड़ाभारी ऐश्वर्य कहा ॥ ५ ॥ जोकि मनुष्यों के सब पापोंको हरनेवाला व स्नानसे
...॥ ६ ॥ इसका मध्यभाग महासारांशवान् व सदैव मुनियोंको प्रियहै ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि उससे वायव्य
...तकों का विनाशक लिंग स्थित है जहांपर मुनिलोग प्राप्त हैं ॥ ८ ॥ उसीके पूर्वदिशाके भागमें पापोंको विनाशनेवाली कुण्डिका

...रस्तत्रसंस्थिताः ॥ ४ ॥ तस्मिन्स्नात्वानरःपूर्वं मातृस्ताश्चप्रपूजयेत् ॥ एवन्देविमयाख्यातं महोदयमहोदयम् ॥ ५ ॥ सर्वपापहरंनृणामभिषेकाच्चमुक्तिदम् ॥ अर्द्धक्रोशञ्चतत्तीर्थं समन्तात्परिमण्डलम् ॥ ६ ॥ एतन्मध्यं महासारंसदैवमुनिवल्लभम् ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्माद्वायव्यदिग्भागेस्थितंपापप्रणाशनम् ॥ सङ्गमेश्वरनामेति मुनयोयत्रसङ्गताः ॥ ८ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे कुण्डिकापापनाशिनी ॥ वडवानलसंयुक्ता यत्रयातासरस्वती ॥ ९ ॥ कुण्डिकायांनरस्स्नात्वा सङ्गमेश्वरमर्चयेत ॥ तस्यजन्मसहस्राणि लक्ष्म्यापुत्रैःप्रियैस्सह ॥ १० ॥ असङ्गमोमहादेवि नकदाचित्प्रजायते ॥ मुच्यतेपातकैस्सर्वैराजन्ममरणान्तकैः॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसङ्गमेश्वरमाहात्म्यन्नामद्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ तस्मादेवोत्तमस्थानादुत्तरेयोजनत्रयम् ॥ तत्रतप्तोदकःस्वामी तल्लोयत्रहतःपुरा ॥ १ ॥ दैत्या

स्थित है जहां कि वड़वानल से संयुक्त सरस्वतीजी आई हैं ॥ ९ ॥ जो मनुष्य कुण्डिका में नहाकर सगमेश्वरजी को पूजताहै उसको हज़ार जन्मोंतक लक्ष्मी, पुत्र व प्रियों के साथ ॥ १० ॥ हे महादेवि! कभी वियोग नहीं होताहै और वह जन्म से लगाकर मरण अन्ततक के सब पापोंसे छूटजाता ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसङ्गमेश्वरमाहात्म्यंनामद्विनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । तलस्वामि माहात्म्य अरु कालमेघ असनाम । दो सौ तिरानबे महँ सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि उसी उत्तम स्थानसे उत्तर में तीनयोजन

(बारहकोस) पर वहां तप्तोदकस्वामी हैं जहां कि पुरातन समय हे देवि ! समर्थवान् विष्णुजीने सौ वर्ष युद्धकर दैत्योंके स्वामी तलको मारा है उसीकारण तलस्वामी हुये हैं ॥ १ । २ ॥ तप्तकुण्ड में नहाकर जो मनुष्य तलस्वामी को पूजता है वह पिण्डदानकर करोड़ यात्राओं के फलको पाता है ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे महादेवि ! उस से पूर्वदिशा के भागमें कालमेघ ऐसे प्रसिद्ध लिंगरूपी क्षेत्रपालके समीप जावै ॥ ४ ॥ अष्टमी व चौदसि तिथिमें ये बहुत विस्तारों से पूजनेयोग्य हैं भलीभांति चाहे हुये प्रयोजन को देनेवाले वे कलियुगमें कल्पवृक्षरूपहैं ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतलस्वामिकालमेघमाहात्म्यवर्णनन्नामत्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९३ ॥

नामभिपोदेवि विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ कृत्वावर्षशतंयुद्धं तलस्वामीततोभवत् ॥ २ ॥ तप्तकुण्डेनरस्स्नात्वा तलस्वामिनमर्चयेत् ॥ कृत्वापिण्डप्रदानन्तु कोटियात्राफलंलभेत् ॥ ३ ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कालमेघेतिविश्रुतम् ॥ तस्माच्चपूर्वदिग्भागे क्षेत्रपंलिङ्गरूपिणम् ॥ ४ ॥ अष्टम्यांवाचतुर्दश्यां पूज्योसौबहुविस्तरैः ॥ वाञ्छितार्थप्रदःसम्यक्सकलौ कल्पपादपः ॥ ५ ॥ इति श्रीप्रभासखण्डेतलस्वामिकालमेघमाहात्म्यन्नामत्रिनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९३॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्माद्दक्षिणदिग्भागे धनुषांपञ्चविंशतिः ॥ रुक्मिणीसंस्थितादेवी सर्वपातकनाशिनी॥ १॥ तत्रतप्तोदकेकुण्डे कोटिहत्याविनाशने ॥ स्नात्वासम्पूजयेद्देवि रुक्मिणींरुक्मदायिनीम् ॥ २ ॥ सप्तजन्मानिनारीणां गृहभङ्गोनजायते ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वलभद्राच्चपूर्वेण स्थिताचासीत्सरिद्वरा ॥ दुर्वासेश्वरनामेति यत्रलिङ्गंप्रति

दो० । तलहिं मारि जिमि विष्णुजी तलस्वामि भे ख्यात । दो सौ चौरानबे में सोइ चरित विख्यात ॥ महादेवजी बोले कि उससे दक्षिण दिशाके भागमें पचीस धनुष पै सब पातकों को नाश करनेवाली रुक्मिणी देवी स्थित हैं ॥ १ ॥ हे देवि ! वहां करोड़ों हत्याओं को नाश करनेवाले तप्तोदककुण्ड में नहाकर स्वर्णदायिनी रुक्मिणीजीको भलीभांति पूजै ॥ २ ॥ तो सात जन्मोंतक स्त्रियोंके गृहभङ्ग नहीं होताहै ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि वलभद्र से पूर्वओर उत्तम नदी स्थित हुई है जहां

कि दुर्वासेश्वरनामक ऐसा लिङ्गस्थापित हुआ है ॥ ४ ॥ सब पापोंको नाशकरनेवाला वह सब सुखोंको प्राप्त करनेवाला है उस नदीमें नहाकर अमावस तिथि में जो पिण्डदान देताहै ॥ ५ ॥ वह कुछ अधिक करोड़ सौ कल्पोंतक पितरों की तृप्तिको प्राप्त करताहै और वहां दुर्वासेश्वर नामक शिवजी को विधिसे पूजकर ॥ ६ ॥ मनुष्य करोड़यज्ञों के फलको पाकर सब कामनाओं को प्राप्त होताहै और वहां ऋषियोंसे थापेहुये अनेकों लिङ्गोंको ॥ ७ ॥ देखकर व स्पर्शकर और पूजकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है हे देवि! यह क्रमपूर्वक क्षेत्रका आदि अन्त कहागया ॥ ८ ॥ भद्राके पश्चिम से पूर्वतक क्रमपूर्वक पहले से सुनाहुआ यह चरित्र पापोंको

ष्ठितम् ॥ ४ ॥ सर्वपापोपशमनं तत्तुसर्वसुखावहम् ॥ स्नात्वातस्याममावास्यां पिण्डदानंददातियः ॥ ५ ॥ कल्पको टिशतंसाग्रं पितृणांतृप्तिमावहेत ॥ दुर्वासेश्वरनामानं तत्राभ्यर्च्यविधानतः ॥ ६ ॥ कोटियज्ञफलंप्राप्य सर्वान्कामानवाप्नुयात ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानि ऋषिभिस्स्थापितानितु ॥ ७ ॥ दृष्ट्वास्पृष्ट्वापूजयित्वा मुक्तस्स्यात्सर्वकिल्बिषैः ॥ इत्येतत्कथितन्देवि क्षेत्राद्यन्तंयथाक्रमम् ॥ ८ ॥ भद्रायाःपश्चिमात्पूर्वं यथानुक्रममादितः ॥ श्रुतंपापोपशमनं कोटियज्ञफलप्रदम् ॥ ९ ॥ यत्रक्षेत्रस्यपरिधिस्स्थानंमधुमतीतिच ॥ १० ॥ तत्रलिङ्गेश्वरोदेवः समुद्रतटसन्निधौ ॥ कूपानांसप्तकंतत्र पितृणांयत्रपाणयः ॥ ११ ॥ दृश्यन्तेद्यापिदेवेशि प्रतिपर्वणिपर्वणि ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वा गयाकोटिगुणंफलम् ॥ १२ ॥ लभतेनात्रसन्देहः सोमायांयदिजायते ॥ तत्रैवनातिदूरेणावदन्देवाजनार्दनम् ॥ १३ ॥ वैकुण्ठत्राहिनोदेवतलेनोद्घाटितावयम् ॥ माहेन्द्रक्रोधसम्भूतरुद्रतेजोद्भवेनवै ॥ १४ ॥ अस्माभीरुद्रसामीप्ये कार्यंसर्वंनिवे

नाश करनेवाला व कोटियज्ञों के फलको देनेवाला है ॥ ९ ॥ जहां मधुमती ऐसा स्थान क्षेत्र की परिधि है ॥ १० ॥ वहां समुद्र के किनारे लिङ्गेश्वर देव हैं और वहां सात कूप हैं जहां पितरों के हाथ ॥ ११ ॥ हे देवेशि! प्रतिपर्व पर्वमें आजभी देख पड़ते हैं वहां श्राद्धकर मनुष्य गयासे कोटिगुने फलको ॥ १२ ॥ प्राप्त होताहै इस में सन्देह नहीं है यदि सोमवार को अमावस होवै और वहींपर थोड़ीदूर पै देवताओं ने जनार्दन विष्णुजी से कहाहै ॥ १३ ॥ कि हे वैकुण्ठ, देव! इन्द्रके क्रोधसे उत्पन्न व शिवजी के तेजसे उपजेहुये तलदैत्य से हमलोग विकल कियेगये हैं हमलोगोंकी रक्षा कीजिये ॥ १४ ॥ हमसबों ने शिवजी के समीप सब कार्यको निवेदन

किया तदनन्तर हे महादेव ! शिवजी ने व ब्रह्माने हम सबोंको तुम्हारे समीप पठाया इसलिये हे देव ! तुम हमारी गति होवो उन देवताओंके इसप्रकार वचनको सुन कर देवदेव विष्णुजी ने ॥ १५ । १६ ॥ दानव को मारने के लिये व देवताओं की रक्षाके लिये यत्न किया व प्रभासक्षेत्र, प्रिय, महाभुज ॥ १७ ॥ विष्णुदेवजी ने तल्ल दैत्यको बुलाकर उससमय प्रभासक्षेत्र के मध्यमें संसार का प्रलयकारक युद्ध किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर अपनी सेनाओं से घिरेहुये सब देवताओं ने दैत्यके साथ रोमों को खड़ा करनेवाला बड़ायुद्ध किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर बड़े बलवान् पर्वत के समान दैत्यको देखकर चञ्चल नेत्रान्तवाले तथा गरुड़ को वाहन कियेहुये विष्णुजी

दितम् ॥ ततःप्रस्थापितास्सर्वे रुद्रेणपरमेष्ठिना ॥ १५ ॥ तवपार्श्वेमहादेव तत्त्वन्देवगतिर्भव ॥ इतिश्रुत्वावचस्तेषां देव देवोजनार्द्दनः ॥ १६ ॥ दानवस्यवधार्थाय देवानांरक्षणायच ॥ चक्रेयत्नंमहाबाहुः प्रभासक्षेत्रवल्लभः ॥ १७ ॥ समाहू यतल्लंदैत्यं प्रभासक्षेत्रमध्यतः ॥ युद्धंचक्रेतदादेवो विश्वप्रलयकारकम् ॥ १८ ॥ ततस्तुदेवास्सर्वेच स्वसैन्यैःपरिवारि ताः ॥ चक्रुर्युद्धञ्चदैत्येन तुमुलंलोमहर्षणम् ॥ १९ ॥ ततःपर्वतसङ्काशं दृष्ट्वादैत्यंमहाबलम् ॥ उवाचचपलापाङ्गगरु डीकृतवाहनः ॥ २० ॥ अहोदैत्यमहाबाहो मल्लयुद्धंददस्वमे ॥ त्वद्बाहुयुगलंदृष्ट्वा बाहुयुद्धेस्थितंमनः ॥ २१ ॥ नारा यणवचःश्रुत्वा करमुद्यम्यदानवः ॥ अन्वधावत्तदादैत्यः कालान्तकसमप्रभः ॥ २२ ॥ ततःप्रवर्त्तितंयुद्धमन्योन्यंज यकाङ्क्षिणोः ॥ जङ्घाभ्यांप्रसृताबन्धो बाहुभ्यांबाहुबन्धनम् ॥ २३ ॥ कण्ठेनाबन्धयत्कण्ठमुदरेणोदरंतथा ॥ एतस्मि न्नन्तरेदेवास्सभयास्सम्बभूविरे ॥ २४ ॥ तलेनैवसमाक्रान्तो विष्णुरप्यस्मरद्धरम् ॥ तत्क्षणादागतोरुद्रः किङ्करोमिम

बोले ॥ २० ॥ कि हे महाबाहो, दैत्य ! मुझको मल्लयुद्ध (कुश्ती) दीजिये तुम्हारी दोनों भुजाओं को देखकर मेरा मन बाहुयुद्ध में स्थित हुआ ॥ २१ ॥ विष्णुजी के बचनको सुनकर उस समय काल व यमराज के समान प्रभावान् वह दैत्य हाथको उठाकर दौड़ा ॥ २२ ॥ तदनन्तर आपस में जयको चाहतेहुये उन दोनोंका युद्ध वर्तमान हुआ जांघों से जांघें बँधगईं और भुजाओं से भुजाओं का बन्धन हुआ ॥ २३ ॥ व कण्ठसे कण्ठको बांधा वैसेही पेटसे पेटको बांधा इसी अवसर में देवता

सभयहुये ॥ २४ ॥ और तलसे आक्रान्त विष्णुजी ने भी शिवजी को स्मरण किया उसीक्षण शिवजी आगये और बोले कि हे महाबल ! मैं क्या करूं ॥ २५ ॥ विष्णु जी बोले कि हे देवदेवेश, शङ्करजी ! मैं मल्लयुद्ध से थकगया तुम इस समय परिश्रमके नाशके लिये यहां तप्तोदक करो ॥ २६ ॥ तदनन्तर हे भैरव ! मैं क्षणभर में तलको मारूंगा महादेवजी बोले कि हे कृष्ण ! पुरातन समय पहले सतयुग में पार्वतीजी ने ऋषियों के श्रम नाशके लिये जिसको किया वह वहां तप्तोदककुण्ड बनायागया ॥ २७ ॥ फिर उस दैत्यके पापके प्रभावसे फिर वह शीतताको प्राप्तहुआ और फिर वह उष्णताको प्राप्त किया गया तदनन्तर कल्पान्ततक स्थितरहा ॥

हाबल ॥ २५ ॥ विष्णुरुवाच ॥श्रान्तोहन्देवदेवेश मल्लयुद्धेनशङ्कर ॥ तप्तोदकंकुरुष्वेह श्रमनाशायसाम्प्रतम् ॥ २६ ॥ ततस्तलंहनिष्यामि क्षणमात्रेणभैरव ॥ ईश्वर उवाच ॥ आदौकृतयुगेकृष्ण उमयायत्कृतम्पुरा ॥ ऋषीणांश्रमनाशार्थं तप्तोदंतत्रनिर्मितम् ॥ २७ ॥ तद्दैत्यपापमाहात्म्यात्पुनस्तच्छीततांङ्गतम् ॥ पुनस्तदुष्णतान्नीतं ततःकल्पान्तसंस्थितम् ॥ २८ ॥ एवमुक्त्वातदादेवं वीक्षांचक्रेमहेश्वरः ॥ तृतीयलोचनेनैव ज्वालामालोपशोभिना ॥ २९ ॥ तेन ज्वालासमूहेन व्याप्तंकुण्डंचतुर्दिशम् ॥ तप्तोदकुण्डमभवत्तेनख्यातंधरातले ॥ ३० ॥ ततोनारायणेनेह क्षालितंगात्रमुत्तमम् ॥ क्षालनात्तस्यदेवस्य श्रमोनाशमुपागमत् ॥ ३१ ॥ ततस्तुष्टेनदेवेन तीर्थानांदशकोटयः ॥ संस्मृत्वाविधिवत्तत्र क्षिप्तास्तत्रवरानने ॥ ३२ ॥ ततश्चक्रेतदायुद्धं तलेनातिभयङ्करम् ॥ जघानसतलंदैत्यं मुष्टिपातेनमस्तके ॥ ३३ ॥ तस्मिन्प्रवृत्तेयुद्धेतु चकम्पेभुवनत्रयम् ॥ तथामहान्धकारेण मूर्च्छितञ्चजगत्त्रयम् ॥ ३४ ॥ देवा ऊचुः ॥ ध्रुवंसमिद्धो

२८ ॥ उस समय विष्णुदेवजी से ऐसा कहकर तदनन्तर महादेवजी ने ज्वाला मालासे शोभित तीसरे नेत्रसे देखा ॥ २९ ॥ व उस ज्वालासमूह से कुण्ड चारों दिशाओं में व्याप्त होगया उसीसे पृथ्वी में तप्तोदकुण्ड प्रसिद्धहुआ ॥ ३० ॥ तदनन्तर विष्णुजीने इस तप्तोदकुण्डमें उत्तम शरीर को धोया और धोनेसे उन विष्णु देवजीका श्रम नाशको प्राप्तहुआ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर हे वरानने ! प्रसन्न विष्णुदेवजीने वहां दश करोड़ तीर्थोंको भलीभांति स्मरणकर विधिपूर्वक उस कुण्डमें डाल दिया ॥ ३२ ॥ तदनन्तर उस समय उन्होंने तलसे बड़ा भयङ्कर युद्धकिया और तलदैत्य के मस्तक में मुष्टिपात (घूँसा) से मारा ॥ ३३ ॥ व उस युद्धके वर्तमान

होनेपर त्रिलोक काँप उठा वैसेही बड़ेभारी अन्धकार से त्रिलोक मूर्च्छित होगया ॥ ३४ ॥ देवतालोग बोले कि भलीभांति बढ़ेहुये ये विष्णुजी इस संसार की शान्ति करैं व पापरूपी दैत्यको नाशकरैं हे देवेश, महर्षिगणों की रक्षा कीजिये और प्राणी डरगये हैं इसलिये तुम तलकोमारो ॥ ३५ ॥ तदनन्तर मल्लयुद्ध (कुश्ती) से दानव पृथ्वीमें गिरायागया और पांवसे गलेको दबाकर विष्णुजी ने तलवारसे मारा ॥ ३६ ॥ इसके अनन्तर विष्णुजी से नष्टकन्धेवाले दैत्यने हास्य किया और कमललोचन विष्णुजी ने उससे कहा कि यह हँसने का क्या कारण है ॥ ३७ ॥ हे दैत्य ! मनुष्य वृद्धिमें हर्षको प्राप्त होताहै और क्षयमें दुःखी होताहै यही लोककी गाथाहै उससे

जगतोस्यशान्तिं करोत्वयंपापविनाशनंहरिः ॥ त्राहीतिदेवेशमहर्षिसङ्घान् भूतानिभीतानितलंजहित्वम् ॥ ३५ ॥ ततोवैमल्लयुद्धेन पातितोभुविदानवः ॥ कण्ठमाक्रम्यपादेन खड्गेनपरिपीडितः ॥ ३६ ॥ हास्यंचकारदैत्योथ विष्णुना हतकन्धरः ॥ तमाहपुण्डरीकाक्षः किमेतद्धास्यकारणम् ॥ ३७ ॥ वृद्धोहर्षमवाप्नोति क्षयेभवतिदुःखितः ॥ इत्येवलौकिकीगाथा ततोदैत्यविपर्ययः ॥ ३८ ॥ इत्युक्तस्सतदादैत्यः प्रत्युवाचजनार्दनम् ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्वेदाभ्यासैरनेकधा ॥ ३९ ॥ नित्योपवासनियमैः स्नानदानैर्जपादिभिः ॥ निर्मलैर्योगयुक्तैश्च प्राप्यतेयत्परम्पदम् ॥ ४० ॥ तन्मयादुष्टभावेन प्राप्तंविष्णोपरम्पदम् ॥ इत्युक्तेभगवान्विष्णुः परदानपरोभवत् ॥ ४१ ॥ उवाचपरमंवाक्यं तलंदैत्याधिनायकम् ॥ वरंवरयदैत्येन्द्र यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ ४२ ॥ इतिविष्णोर्वचःश्रुत्वा प्रार्थयामासदानवः ॥ ममाख्यावर्त्ततेलोके तथाकुरुमहाभुज ॥ ४३ ॥ मार्गमासेतुशुक्लेतु एकादश्यांसमाहितः ॥ यस्त्वांपश्यतिभावेन तस्यपापंविन

यह विपरीत है ॥ ३८ ॥ ऐसा कहेहुये उस दैत्यने उस समय विष्णुजीको प्रत्युत्तर दिया कि अग्निष्टोमादिक यज्ञों से व अनेकभांति के वेदाभ्यासों से ॥ ३९ ॥ तथा नित्योपवास व नियमों और स्नान, दान व जपादिकों से निर्मल व योगयुक्त प्राणियों को जो उत्तम स्थान मिलताहै ॥ ४० ॥ हे विष्णो ! उस परमपद को मैंने दुष्टतासे पाया ऐसा कहनेपर विष्णुजी वर देनेमें तत्पर हुये ॥ ४१ ॥ व दैत्योंके स्वामी तलसे उत्तम वचन को बोले कि हे दैत्येन्द्र ! तुम्हारे मनमें जो वर्तमान हो उस वरदान को मांगिये ॥ ४२ ॥ इस प्रकार विष्णुजी के वचन को सुनकर दानवने मांगा कि हे महाभुज ! जिस प्रकार संसार में मेरा नाम वर्तमान होवै वैसाही

कीजिये ॥४३॥ और अगहन महीने में शुक्लपक्ष में एकादशी तिथिमें सावधान होताहुआ जो पुरुष भक्तिसे तुमको देखै उसका पाप नाश होजावै ॥४४॥ ऐसाही होगा यह कहकर विष्णुदेवजी हर्षको प्राप्त हुये व हे महाभागे ! अनेक भांतिके नगारे बजे व विष्णुजीके मस्तक पै फूलोंकी वृष्टि झरी और लोक निर्मल हुये तदनन्तर प्रसन्नता से संयुत सब देवगण नाचते हैं ॥ ४५ । ४६ ॥ और नारायण में परायण वे हर्षसंयुक्त होकर कहते हैं कि यह तीर्थ महातीर्थ है और सब पापोंको नाशनेवाला है ॥ ४७ ॥ जोकि विष्णुजी के श्रमको दूर करनेवाला व ब्रह्महत्यादिकों का शोधन करनेवाला है वहां नारायणजी स्थित हैं व सदाशिवजी स्थित हैं ॥ ४८ ॥ जोकि

इयतु ॥४४॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वा देवोहर्षमुपागतः ॥ नानादुन्दुभयोनेदुः पुष्पवर्षंपपातह ॥ ४५ ॥ विष्णोर्मूर्द्धिमहाभागे लोकास्स्वच्छाबभूविरे ॥ ततोदेवगणास्सर्वे नृत्यन्तिचमुदान्विताः ॥ ४६ ॥ वदन्तिहर्षसंयुक्ता नारायणपरायणाः ॥ एतत्तीर्थंमहातीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४७ ॥ श्रमापनोदनंविष्णोर्ब्रह्महत्यादिशोधनम् ॥ स्थितोनारायणस्तत्र स्थितस्तत्रचशङ्करः ॥ ४८ ॥ क्षेत्रपालस्वरूपेणकालमेघेतिविश्रुतः ॥ तत्रयात्राविधिंवक्ष्ये गत्वातत्रशुचिर्नरः ॥ ४९ ॥ स्मरेद्विष्णुंमहादेवि तलस्वामीतिविश्रुतम् ॥ सहस्रशीर्षामन्त्रेण तर्पणादिप्रकारयेत् ॥ ५० ॥ एवंस्नात्वाविधानेन दत्त्वाचार्घंजनार्द्दनम् ॥ सम्पूज्यगन्धपुष्पैश्च वस्त्रैःपुण्यानुलेपनैः ॥ ५१ ॥ मधुनेक्षुरसेनैव कुङ्कुमेनविलेपयेत् ॥ कर्पूरोशीरमिश्रेण मृगनाभियुतेनच ॥ ५२ ॥ वस्त्रैःसंवेष्टयेत्पश्चाद्दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ॥ धर्मश्रवणसंयुक्तं कार्यंजागरणंततः ॥ ५३ ॥ वृषस्तत्रप्रदातव्यः सुवर्णंवस्त्रयुग्मकम् ॥ विप्रायवेदयुक्ताय श्रोत्रियायप्रदापयेत् ॥ ५४ ॥ उपवासंत

क्षेत्रपाल के स्वरूप से कालमेघ ऐसे प्रसिद्ध हैं उस तीर्थमें मैं यात्राकी विधिको कहताहूं कि वहां पवित्र मनुष्य जाकर ॥ ४९ ॥ हे महादेवि ! तलस्वामी ऐसे प्रसिद्ध विष्णुजी को स्मरणकरै और सहस्रशीर्षा मन्त्रसे तर्पण आदिक करै ॥ ५० ॥ इसप्रकार विधिसे स्नानकर व विष्णुजीको अर्घ देकर चन्दन व पुष्पोंसे पूजकर व पवित्र अनुलेपनों से ॥ ५१ ॥ तथा शहद व ऊंखके रससे और कपूर व खससे मिश्रित तथा कस्तूरी से संयुत कुंकुम से लेपन करै ॥ ५२ ॥ पश्चात् वस्त्रों से लपेटै और उत्तम नैवेद्य को देवै तदनन्तर धर्मश्रवणसंयुक्त जागरण करना चाहिये ॥ ५३ ॥ और वहां बैल देना चाहिये और वेदयुक्त व श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिये सुवर्ण व दो

वस्त्रोंको देवै ॥ ५४ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! उस दिन उपास करै और विष्णुजीको प्रणामकर रुक्मिणी को देखै ॥ ५५ ॥ ऐसा भक्तिसे करके मनुष्य जन्मके फल को पाताहै और सबही यज्ञों व दानोंके फलको पाताहै ॥ ५६ ॥ वैसेही सब तीर्थों व व्रतोंके फलको पाताहै और पिताके वर्ग व माताके वर्गको उधारता है ॥ ५७ ॥ और जन्मसे लगाकर कियेहुये पातकों का नाश होताहै व वेदपारगामी ब्राह्मणके निमित्त हज़ार अशर्फ़ियों के ॥ ५८ ॥ देनेसे जो फल होताहै हे देवि ! वह फल कुण्ड में स्नान से होताहै ॥ ५९ ॥ इसप्रकार पुरातन समय सिद्धों व महर्षिगणों से तलस्वामी का चरित्र सुनागयाहै श्रुतिदेव के समीप इस प्रभाव को सुनकर जो

तःकुर्यात्तस्मिन्नहनिभामिनि ॥ रुक्मिणीञ्चप्रपश्येत नमस्कृत्यजनार्दनम् ॥ ५५ ॥ एवंकृत्वानरोभक्त्या लभतेजन्मनःफलम् ॥ सर्वेषामेवयज्ञानां दानानांलभतेफलम् ॥ ५६ ॥ तथाचसर्वतीर्थानां व्रतानांलभतेफलम् ॥ उद्धारयेत्पितुर्वर्गंमातृवर्गंतथैवच ॥ ५७ ॥ जन्मप्रभृतिपापानां कृतानांनाशनंभवेत् ॥ सुवर्णानांसहस्रेण ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ५८ ॥ दत्तेनयत्फलन्देवि तत्कुण्डेस्नानतोभवेत् ॥ ५९ ॥ एवंतलस्वामिचरित्रमुत्तमं श्रुतम्पुरासिद्धमहर्षिसङ्घैः ॥ श्रुत्वाप्रभावंश्रुतिदेवसन्निधौ प्राप्नोतिसर्वंमनसायदीप्सितम् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे तलस्वामिमाहात्म्यन्नामचतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततःपश्चिमतोगच्छेन्न्यङ्कुमत्यास्तटेशुभे ॥ दक्षिणांदिशमाश्रित्य स्थितंतीर्थंमहाप्रभम् ॥ १ ॥ शङ्खावर्त्तमितिख्यातं यत्रचक्राङ्किताशिला ॥ स्वयंभूतामहादेवि रक्तगर्भासुशोभना ॥ २ ॥ त्वेत्रत्वयापितत्रैव रक्तवि

मनसे चाहागया है उस सबको मनुष्य पाता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतलस्वामिमाहात्म्यंनामचतुर्नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि शङ्खासुर मारिकै भयो तीर्थ शङ्खोद । दोसौ पञ्चानबे महँ सोई चरित सुखोद ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर पश्चिमओर न्यंकुमती के उत्तम किनारे पै जावै वहां दक्षिणदिशा में आश्रित होकर शङ्खावर्त ऐसा प्रसिद्ध महाप्रभावान् तीर्थ स्थितहै हे महादेवि ! जहांपर आपही से उपजीहुई अतिउत्तम रक्तगर्भा

शिलाचक्रसे चिह्नित है ॥ १ । २ ॥ उसी क्षेत्रमें आजभी रक्तका बूंद देखपड़ता है हे देवेशि ! पुरातन समय समर्थवान् विष्णुजी ने वेदोंको हरनेवाले शङ्खासुर को जहां माराहै वह विष्णुक्षेत्र कहागया है शङ्खाकार कियाहुआ शङ्खोदकतीर्थ देखपड़ता है ॥ ३ । ४ ॥ हे देवि ! उसमें नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूटजाता है व शूद्र के भी सात जन्मोंतक ब्राह्मणता होती है ॥ ५ ॥ पहले वहां जाकर तदनन्तर रुद्रगयाको जावै वहां भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषों को गोदान देना चाहिये ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशङ्खावर्ततीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥

न्दुःप्रदृश्यते ॥ विष्णुक्षेत्रंहितत्प्रोक्तं शङ्खोयत्रहतःपुरा ॥ ३ ॥ वेदापहारीदेवेशि विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ कृतंशङ्खोदकंतीर्थं शङ्खाकारन्तुदृश्यते ॥ ४ ॥ तत्रस्नात्वानरोदेवि मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ सप्तजन्मानिविप्रत्वं शूद्रस्यापिप्रजायते ॥ ५ ॥ पूर्वंतत्रैवगत्वाच ततोरुद्रगयांव्रजेत् ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेशङ्खावर्ततीर्थमाहात्म्यन्नामपञ्चनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९५ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गोष्पदन्तीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रश्राद्धंनरःकृत्वा गयासप्तगुणंफलम् ॥ १ ॥ लभतेनात्रसन्देहो यदिश्रद्धादृढाभवेत् ॥ यत्रश्राद्धंपृथुःकृत्वा पितरंपापयोनितः ॥ २ ॥ उद्दधारमहादेवि वैन्योनाममहाप्रभम् ॥ देव्युवाच ॥ कस्मिन्स्थानेस्थितंतीर्थमुत्पत्तिस्तस्यकीदृशी ॥ ३ ॥ कथंसवेनोराजावै उद्धृतःपापयोनितः ॥ गयासप्तगुणंपुण्यं कथंतत्रप्रजायते ॥ ४ ॥ श्राद्धस्यकिंविधानञ्च केमन्त्रास्तत्रकेद्विजाः ॥ एतन्मेकौतुकन्देव यथा

दो० । यथा वेनके पुत्र भे पृथुनामक महराज । दोसौ छनबे में सोई चरित कह्यो सुखसाज ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम गोष्पदतीर्थ के समीप जावै जहांपर श्राद्धकरके मनुष्य गयासे सतगुने फलको ॥ १ ॥ प्राप्तहोताहै यदि दृढ श्रद्धा होवै इसमें सन्देह नहीं है हे महादेवि ! जहां श्राद्धकर वेनके पुत्र पृथुनामक राजाने महाप्रभावान् पिताको पापयोनिसे छुड़ायाहै देवीजी बोलीं कि किस स्थानमें वह तीर्थ स्थितहै और उसकी कैसी उत्पत्ति है ॥ २ । ३ ॥ और वह वेनराजा कैसे पापयोनि से उधारागया है और वहां गयासे सतगुना पुण्य कैसे होताहै ॥ ४ ॥ और श्राद्धकी क्या विधिहै कौन मन्त्रहैं और उसमें कौन ब्राह्मण योग्य

हैं हे देव ! मुझको यह कौतुक है तुम यथायोग्य कहने के योग्यहो ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवेशि ! जो तुमसे पूंछाजाता है यह गुप्त करनेयोग्य है व हे प्रिये ! इस पापयुग में यह तीर्थ प्रकाश करनेयोग्य नहीं है ॥ ६ ॥ तौ भी हे सुरेश्वरि ! तुम्हारे स्नेहसे मैं भलीभांति कहूंगा इसको पापीसे व पापमें परायण पुरुष से न कहै ॥ ७ ॥ व हे देवेशि ! नास्तिक तथा सुवर्ण चुरानेवालेसे न कहै हे देवि! महासिद्ध व पवित्र न्यंकुमतीनदी है ॥ ८ ॥ हे महाप्रभे ! जोकि इस क्षेत्रकी हद्दके लिये लाईगई है वह पापोंको नाशनेवाली पर्णादित्यजीसे दक्षिणमें स्थितहै ॥ ९ ॥ और नारायण गृहसे उत्तरमें थोड़ेही दूरपै स्थितहै व हे महादेवि ! उसके बीचमें

वक्तुमर्हसि ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इदंरहस्यन्देवेशि यत्त्वयापरिपृच्छ्यते ॥ अप्रकाश्यमिदन्तीर्थमस्मिन्पापयुगेप्रिये ॥ ६ ॥ तथापिसम्प्रवक्ष्यामि तवस्नेहात्सुरेश्वरि ॥ इदंनपापिनेब्रूयान्नैवंपापरतायवै ॥ ७ ॥ ननास्तिकायदेवेशि नसुवर्णहरायवै ॥ अस्तिदेविमहासिद्धा पुण्यान्यङ्कुमतीनदी ॥ ८ ॥ मर्यादार्थसमानीता क्षेत्रस्यास्यमहाप्रभे ॥ संस्थितापापशमनी पर्णादित्याच्चदक्षिणे ॥ ९ ॥ नारायणगृहात्सौम्ये नातिदूरेऽव्यवस्थिता ॥ तस्यामध्येमहादेवि तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ १० ॥ गोष्पदन्नामविख्यातमस्तिपापापहंनृणाम् ॥ गोष्पदस्यसमीपेतु नातिदूरेऽव्यवस्थितः॥ ११ ॥ अनन्तोनामनागेन्द्रस्स्वयंभूतोधरातले ॥ तस्यतीर्थस्यरक्षार्थं विष्णुनासुनियोजितः ॥ १२॥ काङ्क्षन्तिपितरःपुत्रान् नरकादतिभीरवः ॥ गन्तायोगोष्पदेपुत्रस्सनस्त्राताभविष्यति ॥ १३ ॥ गोष्पदेचसुतंदृष्ट्वा पितॄणामुत्सवोभवेत् ॥ पद्भ्यामपिजलंस्पृष्ट्वा अस्मभ्यंकिन्नदास्यति ॥ १४ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं योदद्याच्चजलाञ्जलिम् ॥ प्र

मनुष्यों के पातकों को नाश करनेवाला त्रिलोक में प्रसिद्ध गोष्पदनामक तीर्थ विख्यात है और गोष्पदके समीप थोड़ेही दूरपै स्थित ॥ १० । ११ ॥ आपही से उपजेहुये नागराज अनन्त पृथ्वीमें उस तीर्थकी रक्षाके लिये भलीभांति नियुक्त कियेगये हैं ॥ १२ ॥ नरकसे बहुत डरनेवाले पितर पुत्रोंको चाहते हैं व कहते हैं कि जो गोष्पदतीर्थ में जावैगा वह हमलोगों का रक्षक होगा ॥ १३ ॥ और गोष्पदतीर्थमें पुत्रको देखकर पितरों को आनन्द होताहै कि चरणोंसे भी जलको स्पर्शकर

क्या वह हमलोगों के लिये नहीं देवैगा ॥ १४ ॥ हमलोगों के वंशमें वह भी पुत्र होवै जोकि प्रभासक्षेत्र को जाकर उत्तम गोष्पदतीर्थ में जलकी अञ्जलि को देवै ॥ १५ ॥ और वह भी हमारे कुलमें होवै जोकि बड़े यत्नसे गैंडाके मांससे एकबार श्राद्ध करै व फिर कालशाक से श्राद्धकरै ॥ १६ ॥ और वह भी हमारे वंश में होवै जोकि गोष्पदतीर्थ में दीपको देवै क्योंकि उससे कल्पसमय पर्यन्त हमलोगों को प्रकाश होवैगा ॥ १७ ॥ और गोष्पदतीर्थ में जो अन्नको देताहै उससे पितर पुत्रवान् होतेहैं क्योंकि पुत्र एक दिनभी वहां टिककर सात पुश्तियोंतक पवित्र करताहै ॥ १८ ॥ वहां पितादिकोंको व अपनाको भी आपही मनुष्य पीना व जलसे पिण्ड

भासक्षेत्रमासाद्य गोष्पदेतीर्थउत्तमे ॥ १५ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं खड्गमांसेनयस्सकृत् ॥ श्राद्धंकुर्य्यात्प्रयत्नेन कालशाकेनवैपुनः ॥ १६ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं गोष्पदेदत्तदीपकः ॥ आकल्पकालिकादीप्तिस्तेनास्माकंभविष्य ति ॥ १७ ॥ गोष्पदेचान्नदातायः पितरस्तेनपुत्रिणः ॥ दिनमेकमपिस्थित्वा पुनात्यासप्तमंकुलम् ॥ १८ ॥ पिण्डंद द्याच्चपित्रादेरात्मनोपिस्वयन्नरः ॥ पिण्याकमुदकेनापि तेनशोच्यावरानने ॥ १९ ॥ ब्रह्मज्ञानेनकिंयोगैर्गोगृहेमरणेन किम् ॥ किंकुरुक्षेत्रवासेन गोष्पदेयदिगच्छति ॥ २० ॥ सकृत्तीर्थाभिगमनं सकृत्पिण्डप्रपातनम् ॥ दुर्लभंकिम्पुन र्नित्यमस्मिंस्तीर्थेव्यवस्थितः ॥ २१ ॥ अर्द्धक्रोशन्तुतत्तीर्थं तदर्द्धार्द्धन्तुदुर्लभम् ॥ तन्मध्येश्राद्धकृत्पुण्यं गयाशत गुणंलभेत ॥ २२ ॥ श्राद्धकृद्गोप्रदानात्तु पितॄणामनृणोहिसः ॥ पदमध्येविशेषेण कुलानांशतमुद्धरेत् ॥ २३ ॥ गृहा च्चलितमात्रस्य गोष्पदागमनम्प्रति ॥ स्वर्गारोहणसोपानंपितॄणान्तुपदेपदे ॥ २४ ॥ पायसेनैवमधुना सक्तुनापिष्टकेन

देवै हे वरानने ! जो ऐसा करते हैं वे शोचनेयोग्य नहीं होते हैं ॥ १९ ॥ यदि गोष्पदतीर्थ में जावै तो ब्रह्मज्ञान से व योगोंसे तथा गऊके गृहमें मरने से और कुरुक्षेत्रमें निवाससे क्या प्रयोजनहै ॥ २० ॥ यदि एकबार उस तीर्थमें गमन होवै व एकबार पिंडपात होवै तो फिर क्या दुर्लभ है क्योंकि वह नित्यही इस तीर्थमें स्थित है ॥ २१ ॥ आधकोस वह तीर्थहै और उसके आधाका भी आधा दुर्लभहै क्योंकि उसके मध्यमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष गयासे सौगुने फलको प्राप्तहोता है ॥ २२ ॥ और पदमध्य में विशेषकर श्राद्ध करनेवाला वह मनुष्य पितरों से उऋण होताहै और सौ पुश्तियों को उधारता है ॥ २३ ॥ और गोष्पदतीर्थ में आनेके लिये घरसे

चलेही हुये पुरुषके पितरों को पगपग पै स्वर्गमें चढ़ने के लिये सोपान होताहै ॥ २४ ॥ खीर, शहद, सत्तू व आटा और तिलों व अक्षतादिकों से श्राद्धको देकर पुरुष पितरों को स्वर्ग में प्राप्त करता है ॥ २५ ॥ गोष्पदतीर्थ में पिंडदान से मनुष्य जिस फलको पाता है उसको मैं करोड़ों सौ कल्पों से भी नहीं कहसक्ता हूं ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त मैं वहां उत्तम श्राद्ध की विधिको व यात्राकी विधिको कहताहूं उसको भलीभांति श्रद्धासंयुत होतीहुई तुम सुनो ॥ २७ ॥ यदि मनुष्य तीर्थ में जावै व गयाश्राद्धको चाहै तो चतुर पुरुष शास्त्रकी विधिसे श्राद्ध करै ॥ २८ ॥ ब्रह्मचारी व पवित्र होकर हाथों व पावों में संस्कार कर तदनन्तर श्रद्धावान् व आस्तिक विद्वान्

च ॥ तिलैस्तुतण्डुलाद्यैर्वा दत्त्वास्वर्गंनयेतपितॄन् ॥ २५ ॥ गोष्पदेपिण्डदानेन यत्फलंलभतेनरः ॥ नतच्छक्यंमया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥ २६ ॥ अथातस्सम्प्रवक्ष्यामि तत्रश्राद्धविधिंशुभम् ॥ यात्राविधानञ्चतथा सम्यक्श्रद्धान्विताशृणु ॥ २७ ॥ यदितीर्थंनरोगच्छेद्गयाश्राद्धमभीप्सति ॥ तदाशास्त्रविधानेन यात्रांकुर्याद्विचक्षणः ॥ २८ ॥ ब्रह्मचारीशुचिर्भूत्वा हस्तपादेषुमंस्कृतः ॥ श्रद्धावानास्तिकोवापि गच्छेत्तीर्थंततस्सुधीः ॥ २९ ॥ ननास्तिकस्यसंसर्गं तस्मिंस्तीर्थेनरोत्तमः ॥ सर्वोपस्करसंयुक्तः श्रद्धावानास्तिकेनवा ॥ ३० ॥ गच्छेत्तीर्थंसगतवान् गयांमनसिभावयेत ॥ एवंयस्तुद्विजोगच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ॥ ३१ ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलंप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ तत्रस्नात्वान्यङ्कुमत्यां सिद्धयेपितृमुक्तये ॥ ३२ ॥ स्नात्वाथतर्पणंकुर्याद्देवादीनांयथाविधि ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ॥ ३३ ॥ तृप्यन्तुपितरस्सर्वे मातृमातामहादयः ॥ एवंसन्तर्प्यविधिना कृत्वाहोमादिकन्नरः ॥ ३४ ॥ श्राद्धंसपिण्डकंकु

तीर्थ में जावै ॥ २९ ॥ व उस तीर्थ में उत्तम पुरुष नास्तिक का संसर्ग न करै सब सामग्रियों से संयुत श्रद्धावान् पुरुष आस्तिक के साथ ॥ ३० ॥ तीर्थको जावै और गयाहुआ वह पुरुष मनमें गयाको भावना करै इसप्रकार प्रतिग्रह (दानलेने) से वर्जित जो ब्राह्मण जाता है ॥ ३१ ॥ वह पगपग पै अश्वमेधयज्ञके फलको पाता है इसमें सन्देह नहीं है और वहां न्यंकुमतीनदी में नहाकर मनुष्य सिद्धिके लिये व पितरोंकी मुक्ति के लिये होताहै ॥ ३२ ॥ नहाकर इसके उपरान्त विधिपूर्वक देवादिकों को तर्पण करै कि ब्रह्मा से लगाकर स्तम्ब (तृणसमूह) पर्यन्त देवता, ऋषि, मनुष्य ॥ ३३ ॥ व सब पितर व माता और मातामह (नाना) आदिक तृप्त होवैं इस

प्रकार विधि से भलीभांति तर्पण व होमादि करके मनुष्य ॥ ३४॥ उत्तमतन्त्रोक्त विधि से सपिण्डश्राद्धकोकरै और वहां शास्त्र को जाननेवाले व दोपसे रहित ब्राह्मणों को बुलाकरके ॥ ३५ ॥ इस प्रकार उपहार कियेहुये पुरुष इस मन्त्रको कहै कि कव्यवाड, नल, सोम, यम व अर्यमा ॥ ३६ ॥ और महाभाग्यवाले अग्निष्वात्त, बर्हिषद् व सोमपा पितर देवता तुमलोगों से रक्षित होकर यहां आवैं ॥ ३७ ॥ व हे पितामह ! वंशमें पैदाहुये जो मेरे सनाभि पितर हैं उनको पिण्ड देनेवाला मैं आयाहूं ॥ ३८॥ इसप्रकार कहकर हे महादेवि ! इस मन्त्रको कहै कि पिता, पितामह और प्रपितामह ॥ ३९ ॥ व माता, पितामही और प्रपितामही व

र्यात्सुतन्त्रोक्तविधानतः ॥ आमन्त्र्यब्राह्मणांस्तत्र शास्त्रज्ञान्दोषवर्जितान् ॥ ३५ ॥ एवंकृतोपहारस्तु अमुंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ कव्यवाडोनलस्सोमो यमश्चैवार्यमातथा ॥ ३६ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषदस्सोमपाःपितृदेवताः ॥ आगच्छन्तुमहाभागा युष्माभीरक्षितास्त्विह ॥ ३७ ॥ मदीयाःपितरोयेच कुलेजाताःसनाभयः ॥ तेषांपिण्डप्रदाताहि आगतोस्मि पितामह ॥ ३८ ॥ एवमुक्त्वामहादेवि अमुंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ पितापितामहश्चैव प्रपितामहएवतु ॥ ३९ ॥ मातापितामहीचैव तथैवप्रपितामही ॥ मातामहस्तत्पिताच प्रमातामहकादयः ॥ ४० ॥ तेषांपिण्डोमयादत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ॐनमोभगवतेभर्त्रे सोमभौमेज्यरूपिणे ॥४१॥ एवंनत्वार्चयित्वातु इमांस्तुतिमथोपठेत् ॥ तत्रगोष्पदसामीप्येवरुणासंस्कृतेनच ॥ ४२ ॥ पितॄणांसत्वनाथानांमन्त्रैःपिण्डांश्चनिर्वपेत् ॥ अस्मत्कुलेमृतायेच गतिर्येषांनविद्यते ॥ ४३ ॥ रौरवेचान्धतामिस्रे कालसूत्रेचयेगताः ॥ तेषामुद्धरणार्थायइदंपिण्डंददाम्यहम् ॥ ४४ ॥ अनन्तयातनासंस्थाः प्रेतलो

मातामह और उसका पिता व जो प्रमातामह आदिक हैं ॥ ४० ॥ मुझसे दियाहुआ पिण्ड अक्षयता से उनके समीप स्थित होवै और सोम, मङ्गल व बृहस्पति रूपी भगवान् स्वामी के लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ इसप्रकार प्रणामकर व पूजनकर इसके उपरान्त इस स्तुतिको पढ़ै और वहां गोष्पद तीर्थ के समीप संस्कार कियेहुये चरुसे ॥ ४२ ॥ अनाथ पितरों को मन्त्रों से पिण्डदेवै कि हमारे कुलमें जो मरेहैं और जिनकी गति नहीं विद्यमान है ॥ ४३ ॥ और रौरव अन्धतामिस्र व कालसूत्र नरकमें जो प्राप्तहैं उनके उधारने के लिये मैं इस पिण्डको देताहूं ॥ ४४ ॥ और जो अनन्त यातना (नरकपीड़ा) में स्थित हैं और जो प्रेतलोकों

में प्राप्तहैं व जो पशुवोंकी योनिमें प्राप्तहैं तथा जो पक्षी, कीट व सर्पादिक हैं ॥ ४५ ॥ अथवा जो वृक्षयोनि में स्थितहैं उनके लिये मैं पिण्डको देताहूं और जो बन्धु हैं जो अबन्धुहैं तथा जो अन्य जन्म में बान्धव हुयेहैं ॥ ४६ ॥ वे सब पिण्डदान से सदैव तृप्तिको प्राप्तहोवैं और जो कोई मेरे पितर प्रेतरूप से वर्तमान हैं ॥ ४७ ॥ वे सब पिण्डदानसे सदैव तृप्तिको प्राप्त होवैं और जो बान्धवादिक पितर स्वर्ग, आकाश व पृथ्वीमें स्थितहैं ॥ ४८ ॥ और बिन संस्कार किये जो मरेहैं उनकी मुक्ति के लिये पिण्डहोवै और जो पिताके वंशमें मरेहैं व जो माताके वंशमें मरेहैं ॥ ४९ ॥ और गुरु व श्वशुर तथा बन्धुवोंके जो अन्य बन्धुलोग कहेगये हैं ॥५०॥ और मेरे

केषुयेगताः ॥ पशुयोनिंगतायेच पक्षिकीटसरीसृपाः ॥ ४५ ॥ अथवावृक्षयोनिस्थास्तेभ्यःपिण्डंददाम्यहम् ॥ ये बान्धवाबान्धवावायेन्यजन्मनिबान्धवाः ॥ ४६ ॥ तेसर्वेतृप्तिमायान्तु पिण्डदानेनसर्वदा ॥ येकेचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरोमम ॥ ४७ ॥ तेसर्वेतृप्तिमायान्तु पिण्डदानेनसर्वदा॥ दिव्यन्तरिक्षभूमिस्थाः पितरोबान्धवादयः ॥ ४८ ॥ मृता असंस्कृतायेच तेषांपिण्डस्तुमुक्तये ॥ पितृवंशेमृतायेच मातृवंशेतथैवच ॥ ४९ ॥ गुरुश्वशुरबन्धूनां येचान्येबान्धवाः स्मृताः ॥ ५० ॥ येमेकुलेलुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्ज्जिताः ॥ क्रियालोपगतायेच जात्यन्धाःपङ्गवस्तथा ॥ ५१ ॥ विरूपाआमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताःकुलेमम ॥ तेषांपिण्डोमयादत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ ५२ ॥ प्रेतत्वात्पितरोमुक्ता भवन्तु ममशाश्वतम् ॥ यत्किञ्चिन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरंघृतपायसम् ॥ ५३ ॥ अक्षय्यमुदकंदद्यात्तस्मिंस्तीर्थेतुगोष्पदे ॥ स्वाध्यायंश्रावयेत्तत्र पुराणान्यखिलानिच ॥ ५४ ॥ ऐन्द्राणिसामसूक्तानि पावमानांश्चशक्तितः ॥ तथैवशान्तिका

वंशमें पुत्रों व स्त्रियोंसे रहित जो लुप्तपिण्डहैं और जो क्रियालोपको प्राप्तहुयेहैं व जो जन्मान्ध और पंगुहैं ॥५१ ॥ और जो विरूप व कच्चे गर्भवाले, ज्ञात व अज्ञात मेरेवंश में पैदाहुये हैं मुझसे दियाहुआ पिण्ड अक्षयता से उनके समीप स्थितहोवै ॥ ५२ ॥ और मेरे पितर सदैव प्रेतयोनि से मुक्त होवैं शहदसे मिलाहुआ जो कुछ गऊका दूध, घी व खीर ॥ ५३ ॥ और जलको उसगोष्पदतीर्थ में देवै वह सब अक्षय होताहै वहां निज वेदपाठ व सब पुराणोंको सुनावै ॥ ५४ ॥ और ऐन्द्र, सा-

मसूक्त व पावमाम सूक्तोंको शक्तिसे सुनावै और वैसेही शान्तिकाध्याय व मधुब्राह्मण को सुनावै ॥ ५५ ॥ फिर वहां ब्राह्मणोंको व अपनी प्रीतिकारक जो मण्डल ब्राह्मण है उस सबको कहै ॥ ५६ ॥ इस प्रकार न्यंकुमतीनदी में नहाकर उत्तम गोष्पदतीर्थ में विधिपूर्वक पिण्डोंको देकर फिर इस मन्त्रको पढ़ै ॥ ५७ ॥ कि ब्रह्मादिक देवता व ऋषिश्रेष्ठ मेरे साक्षी होवैं मैंने इस तीर्थको प्राप्त होकर पितरों की निष्कृति (प्रायश्चित्त) किया ॥ ५८ ॥ हे सुरोत्तमो ! मैं पितृकार्य में इस तीर्थ को आयाहूं आप सब साक्षी होवैं मैं तीनों ऋणोंसे छूटगया ॥ ५९ ॥ इस प्रकार उत्तम गोष्पदतीर्थकी प्रदक्षिणाकर ब्राह्मणोंके लिये दक्षिणाको देवै और पिण्डोंको नदीमें

ध्यायंमधुब्राह्मणमेवच ॥ ५५ ॥ मण्डलंब्राह्मणंतत्र प्रीतिकारिचयत्पुनः ॥ विप्राणामात्मनश्चैव तत्सर्वंसमुदीरयेत् ॥ ५६ ॥ एवंन्यङ्कुमतींस्नात्वा गोष्पदेतीर्थउत्तमे ॥ दत्त्वापिण्डांश्चविधिवत्पुनर्मन्त्रममुम्पठेत् ॥ ५७ ॥ साक्षिणः सन्तुमेदेवा ब्रह्माद्याऋषिपुङ्गवाः ॥ मयेदंतीर्थमासाद्य पितॄणांनिष्कृतिःकृता ॥ ५८ ॥ आगतोस्मिइदंतीर्थं पितृकार्येसुरोत्तमाः ॥ भवन्तुसाक्षिणःसर्वे मुक्तश्चाहंऋणत्रयात् ॥ ५९ ॥ एवंप्रदक्षिणीकृत्य गोष्पदंतीर्थमुत्तमम् ॥ विप्रेभ्योदक्षिणांदद्यान्नद्यांपिण्डान्विसर्जयेत् ॥ ६० ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु तद्वत्कृष्णाजिनम्प्रिये ॥ अष्टकासुचवृद्धौच गयायांमृतवासरे ॥ ६१ ॥ अत्रमातुःपृथक्श्राद्धमन्यत्रपतिनासह ॥ वृद्धश्राद्धेतुमात्रादि गयायांपितृपूर्वकम् ॥ ६२ ॥ दत्त्वा पुनर्गयायांतु श्राद्धंकार्यंनरोत्तमैः ॥ तस्माद्गुप्तगयाप्रोक्ताइयंसाविष्णुमास्वयम् ॥ ६३ ॥ गन्धदानेनगन्धाढ्यंसौभाग्यंपुष्पदानतः ॥ धूपदानेनराज्याप्तिर्दीप्त्याप्तिर्दीपदानतः ॥ ६४ ॥ ध्वजदानात्पापहानिर्यात्रयाब्रह्मलोकभाक् ॥ आ

विसर्जनकरै ॥ ६० ॥ व हे प्रिये ! वहां गोदान व कृष्णाजिन देना चाहिये अष्टकाओं में व वृद्धिश्राद्धमें व गयामें और क्षयाहमें ॥ ६१ ॥ इसमें माताका पृथक् श्राद्धकरना चाहिये और अन्यत्र पतिके साथ श्राद्ध करना चाहिये और वृद्धश्राद्धमें मात्रादि व गयामें पितृपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६२ ॥ और गयातीर्थ में श्राद्ध देकर फिर उत्तम मनुष्यों को श्राद्ध करना चाहिये इस कारण विष्णुजी से आपही यह वही गुप्तगया कहीगई है ॥ ६३ ॥ गन्धदान से गन्धसंयुत वस्तु मिलती है और पुष्पके दान से सौभाग्य होताहै और धूपदानसे राज्यकी प्राप्तिहोती है व दीपदानसे दीप्ति (प्रकाश) की प्राप्तिहोती है ॥ ६४ ॥ व ध्वजाके दानसे पापकी हानि होती है और

यात्रासे ब्रह्मलोकका भागी होताहै और श्राद्ध पिण्डको देनेवाला पुरुष पितरोंको विष्णुजी के लोकको लेजावैगा ॥ ६५ ॥ उस गोष्पद महातीर्थमें.प्रशंसित नियमवाले एक ब्राह्मण को जो भोजन कराता है उससे कोटि ब्राह्मण भोजित होतेहैं ॥ ६६ ॥ यह उस तीर्थमें तुमसे श्राद्धकी विधि संक्षेप से कहीगई इसके अनन्तर मैं वेन राजाका चरित्र व महात्मा पृथुका प्राचीन इतिहास तुमसे कहूंगा जिस प्रकार कि वहां उनकी चाण्डालयोनि से मुक्ति हुईहै ॥ ६७।६८ ॥ हे देवेशि ! भलीभांति श्रद्धा संयुत होतीहुई तुम उस सब चरित्रको सुनो कि न अपवित्रके लिये व न पापी तथा न अशिष्य और न शत्रुके लिये ॥६९॥ व न अव्रतकेलिये इसचरित्रको किसीप्रकार

द्धपिण्डप्रदोलोके विष्णोर्नेष्यतिवैपितॄन् ॥ ६५ ॥ एकंयोभोजयेत्तत्र ब्राह्मणंशंसितव्रतम् ॥ गोप्रचारेमहातीर्थे कोटिर्भवतिभोजिता ॥ ६६ ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तस्तत्रश्राद्धविधिस्तव ॥ अथतेकथयिष्यामि इतिहासंपुरातनम् ॥ ६७ ॥ वेनराज्ञश्चचरितं पृथोश्चैवमहात्मनः ॥ यथातत्राभवन्मुक्तिस्तस्यचाण्डालयोनितः ॥ ६८ ॥ तत्सर्वंशृणुदेवेशि सम्यक्श्रद्धासमन्विता ॥ नाशुचेर्नापिपापाय नाशिष्यायाहितायच ॥ ६९ ॥ कथनीयमिदंपुण्यं नाव्रतायकथञ्चन ॥ स्वर्ग्यंयशस्यमायुष्यं धन्यंवेदेनसम्मितम् ॥ ७० ॥ रहस्यंऋषिभिःप्रोक्तं शृणुयाद्योनसूयकः ॥ यश्चैनंश्रावयेन्मर्त्यः पृथोर्वैन्यस्यसम्भवम् ॥ ७१ ॥ ब्राह्मणेभ्योनमस्कृत्वा नसशोच्योवरानने ॥ गोप्ताधर्मस्यराजासौ बभौचात्रिसमःप्रभुः ॥ ७२ ॥ अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गोनामप्रजापतिः ॥ समातामहदोषेण येनकालात्मजात्मजः ॥ ७३ ॥ स्वधर्मंपृष्ठतःकृत्वा पापबुद्धिरजायत ॥ स्थितिमुत्थापयामास धर्मोपेतांसनातनीम् ॥ ७४ ॥ वेदशास्त्राण्यतिक्रम्य ह्यधर्मनिरतोभ

कहना चाहिये स्वर्गको देनेवाले व यशदायक तथा प्रशंसनीय व वेदसे सम्मित ॥७०॥ ऋषियोंसे कहेहुये इस गुप्तचरित्रको जो ईर्षारहित पुरुष सुनताहै और हे वरानने ! जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये प्रणामकर वेनके पुत्र पृथुजी के उपजेहुये इस चरित्रको सुनाता है वह शोचनेयोग्य नहीं होताहै यह पृथुराजा धर्मका रक्षक हुआहै और वह प्रभु अत्रिके समान शोभित हुआहै ॥ ७१।७२ ॥ अङ्गनामक प्रजापति अत्रिवंशमें उत्पन्नहुआ और वह वेन कालकन्याका पुत्र था उसी मातामह (नाना)के दोष से ॥ ७३ ॥ अपने धर्मको पीछेकर पापबुद्धिवालाहुआ व उसने धर्मसे संयुत सनातनी स्थितिको उठादिया॥ ७४ ॥ और वेदों व शास्त्रोंको उल्लङ्घनकर वह अधर्ममें तत्पर

हुआ उस राजा के राज्य करनेपर प्रजालोग निजवेदपाठरहित व वषट्कारहीन ॥ ७५ ॥ हुयेहैं और विनाश प्राप्त होनेपर यह बुद्धि हुई कि द्विजोत्तमों से सब यज्ञों में मैं स्तुति करनेयोग्य व पूजनेयोग्य हूं ॥ ७६ ॥ मुझमें यज्ञ करनेयोग्यहैं व मुझमें हवन करना चाहिये इसप्रकार धर्मको उल्लङ्घनकर वह प्रजाओंकी पीडामें तत्पर हुआ ॥ ७७ ॥ तब क्रोधित होतेहुये मरीचि आदिक महर्षिलोग बोले कि हे वेन ! तुम अधर्म मतकरो यह सनातन धर्म नहीं है ॥ ७८ ॥ अत्रिके वंशमें पैदा हुये तुम निस्सन्देह प्रजापति हो और पहले तुमने यह प्रतिज्ञा कियाथा कि मैं प्रजाओं को, पालन करूंगा ॥ ७९ ॥ उस समय उस प्रकार कहतेहुये उन सब महर्षियों से

वम् ॥ निःस्वाध्यायवषट्काराः प्रजास्तस्मिन्प्रशासति ॥ ७५ ॥ आसन्नियंमतिश्चेति विनाशेप्रत्युपस्थिते ॥ अहमी ड्यश्चपूज्यश्च सर्वयज्ञैर्द्विजोत्तमैः ॥ ७६ ॥ मयियज्ञाविधातव्या मयिहोतव्यमित्यपि ॥ इत्थंधर्ममतिक्रम्य प्रजापीडन तत्परः ॥ ७७ ॥ ऊचुर्महर्षयःक्रुद्धा मरीचिप्रमुखास्तदा ॥ माधर्मंकुरुत्वंवेन नैषधर्मःसनातनः ॥ ७८ ॥ अत्रेर्वंशेप्रसू तोसि प्रजापतिरसंशयः ॥ पालयिष्येप्रजाश्चेति पूर्वंतेसमयःकृतः ॥ ७९ ॥ तांस्तथावादिनःसर्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा ॥ वेनःप्रहस्यदुर्बुद्धिरिदंवचनकोविदः ॥ ८० ॥ स्रष्टाधर्मस्यकश्चान्यःश्रोतव्यंकस्यवैमया ॥ वीर्यश्रुततपस्सत्यैर्मयाको न्यःसमोभुवि ॥ ८१ ॥ माहात्म्येनचनूनंमां यूयंजानीथतंतथा ॥ प्रभवंसर्वलोकानां धर्माणांचविशेषतः ॥ ८२ ॥ इच्छ न्दहेयंपृथिवीं भावेनयजनेनच ॥ सृजेयञ्चग्रसेयञ्च नात्रकार्याविचारणा ॥ ८३ ॥ यदानाशक्नुवन्स्तम्भान्मानाच्चैव विमोहितम् ॥ अनुनेतुंनृपंवेनं तदाक्रुद्धामहर्षयः ॥ ८४ ॥ आथर्वणेनमन्त्रेण हत्वातंचमहाबलम् ॥ ततोस्यवामबाहुंते मम

वाक्योंमें चतुर व दुर्बुद्धि वेनने हँसकर इस वचनकोकहा ॥ ८० ॥ कि अन्य कौन धर्मको रचनेवालाहै व मुझ से किसका यश सुननेयोग्यहै और पृथ्वीमें बल, शास्त्र, तपस्या व सत्यसे मेरे बराबर कौनहै ॥ ८१ ॥ तुमलोग माहात्म्य से मुझको सब लोकों के उत्पत्तिकारक व विशेषकर धर्मका उत्पत्ति स्थान यथार्थ से जानो ॥ ८२ ॥ इच्छा करताहुआ मैं भक्तिसे यजन (यज्ञ) से पृथ्वीको जलासक्ताहूं और सृष्टि करसक्ताहूं व ग्रससक्ताहूं इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ८३ ॥ जब गर्वसे व मानसे मोहित वेन राजाको समझाने के लिये वे न समर्थहुये तब महर्षिलोग क्रोधितहुये ॥ ८४ ॥ और अथर्वणवेद के मंत्र से उस महाबलवान् वेनको मारकर तदनन्तर धर्म

को जाननेवाले उन्हों ने इसकी बाईं भुजाको मथा ॥ ८५ ॥ तदनन्तर हे प्रिये ! उससमय मथीजातीहुई उस बाईं भुजासे बहुतही छोटा व काला पुरुष पैदाहुआ ॥ ८६ ॥
व हे प्रिये ! सभीत वह हाथों को जोड़कर आगे खड़ाहुआ और उसको दुःखित व विकल देखकर मुनियों ने यह कहा कि निषीद यानी बैठ जाइये ॥ ८७ ॥
उस से बड़ा पराक्रमी वह निषादवंश का कर्ताहुआ और वेन के पापसे उपजेहुये अन्य धीवरों को उत्पन्न करतेहुये उसके ॥ ८८ ॥ जो अन्य निषादहुये वे विन्ध्य-
वासी व तुम्बर और खस हुये जिसलिये अधर्म का संचय था उसी कारण वेनके पापसें उपजेहुये उनको जानिये ॥ ८९ ॥ फिर उत्पन्न क्रोधवाले उन महर्षियों ने

न्थुर्धर्मकोविदाः ॥ ८५ ॥ तस्माच्चमथ्यमानाद्द्विजज्ञ्सव्यभुजात्ततः ॥ ह्रस्वोतिमात्रंपुरुषः कृष्णश्चापितदाप्रिये ॥ ८६ ॥
सभीतःप्राञ्जलिश्चैव तस्थिवानग्रतःप्रिये ॥ तमार्त्तविह्वलंदृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन्किल ॥ ८७ ॥ निषादवंशकर्त्तावै तेना
भूत्पृथुविक्रमः ॥ धीवरान्सृजतश्चापि वेनपापसमुद्भवान् ॥ ८८ ॥ येचान्येविन्ध्यनिलयास्तथावैतुम्बराःखसाः ॥ अ
धर्मसञ्चयोयस्माद्विद्धितान्वेनपापजान् ॥ ८९ ॥ पुनर्महर्षयस्तेथ पाणिंवेनस्यदक्षिणम् ॥ अरणीमिवसंरब्धं ममन्थु
र्जातमन्यवः ॥ ९० ॥ पृथुस्तस्मात्समुत्पन्नःसूर्यज्वलनसन्निभः ॥ पृथोःकरतलादेव यस्माज्जातस्ततःपृथुः ॥ ९१ ॥ दी
प्यमानश्चवपुषा साक्षादग्निरिवज्वलन् ॥ धनुराजगवंगृह्यशरांश्चाशीविषोपमान् ॥ ९२ ॥ खड्गञ्चरक्षणार्थञ्च कवचंच
महत्प्रभम् ॥ तस्मिञ्जातेथभूतानिसंप्रहृष्टानिसर्वशः ॥ ९३ ॥ संबभूवुर्महादेवि वेनश्चत्रिदिवङ्गतः ॥ ततोनद्यःसमुद्रा
श्च रत्नान्यादायसर्वशः ॥ ९४ ॥ अभिषेकायतेसर्वे राजानमुपतस्थिरे ॥ पितामहस्तुभगवान् ऋषिभिश्चसहामरैः ॥

क्रोध से वेन के दाहिने हाथको अरणी (अग्नि उत्पन्न होनेवाली लकड़ी) की नाईं मथा ॥ ९० ॥ उसमें से सूर्य व अग्नि के समान पृथुजी पैदाहुये जिसलिये
पृथु (मोटे) हाथ से पैदाहुये उसीकारण पृथुनामक हुये ॥ ९१ ॥ और साक्षात् अग्नि की नाईं जलतेहुये वे शरीर से प्रकाशमान हुये और अजगव धनुष व सर्पों
के समान बाणों को लेकर ॥ ९२ ॥ उन्होंने रक्षा के लिये बड़ी प्रकाशमान कवच व तलवार को लिया उन पृथुके पैदा होने पर सब प्राणी प्रसन्न ॥ ९३ ॥ हुये और
वेन स्वर्ग को चलागया तदनन्तर नदियां व समुद्र सब रत्नोंको लेकर ॥ ९४ ॥ वे सब अभिषेक के लिये राजा के समीप प्राप्तहुये और भगवान् ब्रह्माजी ऋषियों व

देवताओं समेत आगये ॥ ९५ ॥ और उस समय सब स्थावर व जंगम प्राणियोंने भलीभांति आकर पृथु राजाको अभिषेककिया ॥ ९६ ॥ अंगिरा के पुत्र देवताओंसे वे महाभाग वेनके पुत्र बड़े तेजस्वी व प्रतापवान् पृथुजी राज्य के अधिकार पै अभिषेक कियेगये ॥ ९७ ॥ पिता से न रंजित प्रजा वेन के पुत्र पृथु से अनुरक्त किये गये उसकारण स्नेह से इनका राजा ऐसा नाम हुआ ॥ ९८ ॥ और इसको समुद्र के सामने जाते हुये जल रुक गये और पर्वत भी टूट गये व ध्वजभंग भी नहीं हुआ ॥ ९९ ॥ और बिन जोती हुई पृथ्वी अन्नों को पैदा करती थी व अन्नचिन्ता (ध्यान) से सिद्ध होते थे ॥ १०० ॥ और गौवें सब कामनाओं को देती थीं व

९५ ॥ स्थावराणिचभूतानि जङ्गमानिचसर्वशः ॥ समागम्यतदावैन्यमभिषेचुर्नराधिपम् ॥ ९६ ॥ सोभिषिक्तोमहातेजा देवैरङ्गिरसस्सुतैः ॥ अधिराज्येमहाभागः पृथुर्वैन्यःप्रतापवान् ॥ ९७ ॥ पित्रानरञ्जिताश्चापि प्रजावैन्येनरञ्जिताः ॥ ततोराजेतिनामास्य अनुरागादजायत ॥ ९८ ॥ आपस्तस्तम्भिरेचास्य समुद्रमभियास्यतः ॥ पर्वताश्चाप्यशीर्यन्त ध्वजभङ्गोपिनाभवत् ॥ ९९ ॥ अकृष्टपच्यापृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानिचिन्तया ॥ १०० ॥ सर्वकामदुघागावः पुटकेपुटकेमधु ॥ तस्मिन्नेवतदाकाले पुनर्जज्ञेथमागधः ॥ १ ॥ सामगेषुचगायत्सु स्रुग्भाण्डंवैश्वदेविकम् ॥ सामगेषुसमुत्पन्नस्तस्मान्मागधउच्यते ॥ २ ॥ ऐन्द्रेणहविषाचापि हविस्तस्यबृहस्पतिः ॥ जुहावैन्द्रपदेनैव ततस्सूतोभ्यजायत ॥ ३ ॥ प्रमदस्तत्रसंजज्ञे प्रायश्चित्तेषुकर्मसु ॥ शेषहव्येनयष्टव्यमभ्यनन्दद्गुरोर्हविः ॥ ४ ॥ अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥ सूतस्तस्यांसमभवद्ब्राह्मण्यांक्षत्रयोगतः ॥ ५ ॥ ततस्सर्वेतुसाधर्म्या अल्पधर्माःप्रकीर्त्तिताः ॥ मध्यमा

प्रति पुटक में शहद होता था व उसीसमय मागध उत्पन्न हुआ है ॥ १ ॥ विश्वेदेववाले स्रुवापात्र प्रति सामगों के गानेपर जिसलिये सामगों के मध्य में पैदा हुआ उसकारण मागध कहा जाता है ॥ २ ॥ और इन्द्र सम्बन्धी हव्य से उनकी हव्य को बृहस्पति ने इन्द्र के पद से हवन किया उससे सूत उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ और प्रायश्चित्त कर्मों में वहां प्रमद पैदा हुआ उसने शेष हव्य से यज्ञ करने योग्य बृहस्पति के हव्य की प्रशंसा किया ॥ ४ ॥ नीच व उच्च के गमन से वह जातियों की विकृति उत्पन्न हुई याने उस ब्राह्मणी में क्षत्रिय के योग से सूत पैदा हुआ ॥ ५ ॥ उसकारण सब समान धर्म व थोड़े धर्मवाले कहे गये हैं और क्षत्रिय से

जीविका करनेवाले उस सूत का यह मध्यम धर्म है ॥ ६ ॥ और रथ हाथी व घोड़ों का चलाना व वैद्यकी अधम कर्म है वहां महर्षियों ने पृथुकी कथा के लिये उन सूत व मागध दोनों को बुलाया ॥ ७ ॥ और सब मुनियोंने उन दोनोंसे यह कहा कि राजा की स्तुति (प्रशंसा) कीजिये क्योंकि यह भूपति कर्मों से अनुरूप (समान) है ॥ ८ ॥ तब वे सूत मागध सब ऋषियों से बोले कि हम दोनों देवताओं व ऋषियों को अपने कर्मों से प्रसन्न करेंगे ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस राजा के कर्म, लक्षण व यशको हम लोग नहीं जानते हैं कि जिससे इस तेजस्वी राजा की स्तुति करें ॥ १० ॥ ऋषियों ने उन को आज्ञा दिया कि भविष्य (होनेवाले) कर्मों से

होषतत्तस्य धर्मःक्षेत्रोपजीविनः ॥ ६ ॥ रथनागाश्वचरितं जघन्यंचचिकित्सितम् ॥ पृथोःकथार्थंतौतत्र समाहूतौमहर्षिभिः ॥ ७ ॥ तावूचुर्मुनयस्सर्वे स्तूयतामितिपार्थिवः ॥ कर्मभिश्चानुरूपोहि यतोयंपृथिवीपतिः ॥ ८ ॥ तावूचतुस्तदासर्वान्नृषींश्चसूतमागधौ ॥ आवान्देवान्नृषींश्चैव प्रीणयावःस्वकर्मभिः ॥ ९ ॥ नचास्यविद्मोवैकर्म तथाचलक्षणंयशः ॥ स्तोत्रंयेनास्यसंकुर्वो राज्ञस्तेजस्विनोद्विजाः ॥ १० ॥ ऋषिभिस्तौनियुक्तौतु भविष्यैःस्तूयतामिति ॥ यानिकर्माणिकृतवान् पृथुःपश्चान्महाबलः ॥ ११ ॥ तानिगीतानिबद्धानि स्तुवद्भिस्सूतमागधैः ॥ ततस्तदर्थेसुप्रीतः पृथुःप्रादात्प्रजेश्वरः ॥ १२ ॥ अनूपदेशंसूताय मागधान्मागधायच ॥ तदादिपृथिवीपालास्स्तूयन्तेसूतमागधैः ॥ १३ ॥ आशीर्वादैःप्रसेव्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥ तन्दृष्ट्वापरमप्रीताः प्रजाऊचुर्महर्षयः ॥ १४ ॥ एषवोवृत्तिदोवैन्यो विहितोथनराधिपः ॥ ततोवैन्यंमहाभागं प्रजास्समभितुष्टुवुः ॥ १५ ॥ त्वन्नोवृत्तिविधातेति महर्षिवचनात्तथा ॥ सोभिष्टु

स्तुति कीजिये महाबलवान् पृथु राजा ने पश्चात् जिन कर्मों को किया ॥ ११ ॥ स्तुति करते हुये सूत मागधों ने उनको गीतों में बद्ध किया तदनन्तर उस अर्थमें प्रसन्न पृथु प्रजेश ने जलप्राय देशको सूतके लिये दिया व मागध के लिये मगध देशों को दिया तबसे लगाकर सूत मागध भूपालों की स्तुति करते हैं ॥ १२ । १३ ॥ और सूत, मागध व बन्दी लोग आशीर्वादोंसे सेवते हैं व उन पृथुको देखकर बहुत ही प्रसन्न महर्षियोंने प्रजाओंसे कहा ॥ १४ ॥ कि वेन का पुत्र यह पृथु तुमलोगों को वृत्ति (जीविका) दायक राजा कियागया तदनन्तर प्रजाओं ने बड़े ऐश्वर्यवान् पृथुकी स्तुति किया ॥ १५ ॥ कि महर्षियों के वचन से तुम हमलोगोंको वृत्तिदा-

यक हो प्रजाओं से स्तुति कियेहुये उन बलवान् पृथु ने प्रजाओं के हितको करनेकी इच्छा से धनुष व बाणोंको लेकर पृथ्वीको विकल किया तदनन्तर पृथु के डर से डरीहुई पृथ्वी गऊ होकर भगी ॥ १६।१७ ॥ और धनुषको लेकर पृथुजी भागतीहुई उस गऊके पीछे दौड़े तब वैन्य (पृथु) के डरसे उस समय ब्रह्मलोकादिक लोकों को जाकर उस पृथ्वीने ॥ १८ ॥ धनुषको हाथमें उठायेहुये पृथुको आगे देखा और जलतेहुये पैने बाणोंसे प्रकाशित तेजके समान छविवाले ॥ १९ ॥ तथा देवताओं से भी असह्य व महायोगी तथा महात्मा पृथुहीके समीप रक्षकको न पाती हुई वह पृथ्वी प्राप्तहुई ॥ २० ॥ और तीनों लोकोंसे सदैव पूजने योग्य पृथ्वी देवी हाथोंको

तःप्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया ॥ १६ ॥ धनुर्गृहीत्वाबाणांश्च वसुधामर्द्दयद्बली ॥ ततोवैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ॥ १७ ॥ तान्धनुःपृथुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ॥ सालोकान्ब्रह्मलोकादीन् गत्वावैन्यभयात्तदा ॥ १८ ॥ ददर्शत्वग्रतोवैन्यं कार्मुकोद्यतपाणिनम् ॥ ज्वलद्भिर्विशिखैस्तीक्ष्णैर्दीप्ततेजस्समद्युतिम् ॥ १९ ॥ महायोगंमहात्मानं दुर्द्धर्षममरैरपि ॥ अलभन्तीतुशरणं वैन्यमेवाभ्यपद्यत ॥ २० ॥ कृताञ्जलिपुटादेवी पूज्यालोकैस्त्रिभिस्सदा ॥ उवाचवैन्यंसाधर्मं स्त्रीवधंपरिपश्यसि ॥ २१ ॥ कथंधारयिताचासि प्रजाराजन्मयाविना ॥ मयिलोकाःस्थिताराजन् मयेदंधार्यतेजगत् ॥ २२ ॥ मामृतेतेविनश्येयुः प्रजाःपार्थिवविद्धितत् ॥ तन्मांनार्हसिहन्तुंवै श्रेयश्चेत्त्वंचिकीर्षसि ॥ २३ ॥ प्रजानांपृथिवीपाल शृणुचेदंवचोमम ॥ उपायास्तेसमारब्धास्सर्वेसिद्ध्यन्तुविक्रमाः ॥ २४ ॥ हत्वामान्त्वंनशक्तोसि प्रजाःपालयितुन्नृप ॥ अनुभूताभविष्यामि त्यजकोपंमहीपते ॥ २५ ॥ अवध्याश्चस्त्रियःप्राहुस्तिर्यग्योनिग

जोड़कर पृथुसे बोली कि स्त्रीके वधरूपी अधर्मको देखिये ॥ २१ ॥ व हे राजन् ! मेरे विना तुम प्रजाओंको कैसे धारण करोगे हे राजन् ! मुझमें लोक स्थितहैं व मुझ से यह संसार धारण कियाजाता है ॥ २२ ॥ व हे राजन् ! मेरे विना तुम्हारी प्रजा नाश होवैंगी उसको जानिये इसकारण तुम मुझको मारने के लिये नहीं योग्यहो व यदि तुम प्रजाओं का कल्याण करना चाहतेहो तो हे भूपाल ! मेरे इस वचनको सुनिये कि जानकर प्रारम्भ कियेहुये तुम्हारे सब उपाय सिद्ध होवैंगे ॥ २३। २४ ॥ हे राजन् ! मुझको मारकर तुम प्रजाओं को पालन करने के लिये नहीं समर्थ हो हे महीपते ! क्रोध को छोड़ दीजिये मैं अनुभूत याने तुम्हारी आज्ञा के अनुकूल

चलनेवाली हूंगी ॥ २५ ॥ विद्वान् लोग तिर्यग्योनि में भी प्राप्त स्त्रियों को अवध्य कहते हैं एक क्रूरकर्मी व पापिष्ठ के मृत्यु में प्राप्त होने पर ॥ २६ ॥ बहुतों का कल्याण होता है इसलिये उसका वध पुण्यदायक होता है ऐसा होने पर हे पृथ्वीपाल ! तुम धर्म को छोड़ने के लिये नहीं योग्यहो ॥ २७ ॥ इस प्रकारके उस वचन को सुनकर उदारमनवाले धर्मात्मा राजा ने क्रोध को रोककर पृथ्वी से यह कहा ॥ २८ ॥ कि अपने या पराये एक के हित प्रयोजन के लिये जो कामना से एक या बहुत प्राणियों को मारता है उसको पातक होता है ॥ २९ ॥ और एक को मृत्यु प्राप्त होनेपर यदि बहुत सुख को प्राप्त होते हैं तो उस प्राणी के मरने पर उसको

ताअपि ॥ एकस्मिन्निधनेप्राप्ते पापिष्ठेक्रूरकर्मणि ॥ २६ ॥ बहूनांभवतिक्षेमस्तस्यपुण्यप्रदोवधः ॥ सत्येवंपृथिवीपाल धर्मंमात्यक्तुमर्हसि ॥ २७ ॥ एवंविधन्तुतद्वाक्यं श्रुत्वाराजामहामनाः ॥ क्रोधन्निगृह्यधर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥ २८ ॥ एकस्यार्थेचयोहन्यादात्मनोवापरस्यवा ॥ एकंवापिबहून्वापि कामतश्चास्तिपातकम् ॥ २९ ॥ एकस्मिन्निधने प्राप्ते एधन्तेबहवस्सुखम् ॥ तस्मिन्हतेचभूतेवै पातकंनास्तितस्यवै ॥ ३० ॥ सोहंप्रजानिमित्तंत्वां हनिष्यामिवसुन्धरे ॥ यदिमेवचनेनाद्य करिष्यसिजगद्धितम् ॥ ३१ ॥ त्वांनिहत्याद्यबाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम् ॥ आत्मानंपृथुकृत्वेह प्रजाधारयितास्वयम् ॥ ३२ ॥ सात्वंवचनमास्थायममधर्मभृतांवरे ॥ सञ्जीवयप्रजानित्यं शक्ताह्यसिनसंशयः ॥ ३३ ॥ दुहितृत्वेहिमेगच्छ एवमेतन्महत्परम् ॥ अपृच्छंत्वद्वधार्थञ्च प्रयुक्तंघोरदर्शनम् ॥ ३४ ॥ प्रत्युवाचततोवैन्यमेवमुक्तामहासती ॥ सर्वमेतदहंराजन् विधास्यामिनसंशयः ॥ ३५ ॥ वत्संप्रकल्पयत्वम्मे त्वरेयंयेनवत्स

पातक नहीं होता है ॥ ३० ॥ हे वसुन्धरे ! यदि आज मेरे वचन से संसार का हित न करोगी तो मैं इसीक्षण प्रजाओंके कारण तुमको मारूंगा ॥ ३१ ॥ मेरी आज्ञा से विमुख होनेवाली तुम को मैं आज बाण से मारकर अपने शरीर को स्थूलकर मैं आपही प्रजाओं को धारण करूंगा ॥ ३२ ॥ हे धर्मभृतांवरे ! सो तुम मेरे वचन में स्थित होकर सदैव प्रजाओं को भलीभांति जिलाइये क्योंकि तुम समर्थवती हो इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३३ ॥ और मेरे कन्या के भाव में प्राप्त होवो इस प्रकार मैं ने इस बहुत उत्तम वचन को पूछा और तुम्हारे मारने के लिये भयंकर दर्शन नियुक्त किया गया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर इसप्रकार कही हुई महासती पृथ्वी ने पृथु से

कहा कि हे राजन्! मैं इस सब को करूंगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३५ ॥ तुम मेरे बछड़ा की कल्पना करो कि जिससे वत्सला (स्नेहवती) होकर मैं पन्हाऊं व हे धर्मभृतांवर! मुझको सब कहीं बराबर कीजिये ॥ ३६ ॥ कि जिसप्रकार प्रस्नावयुक्त होती हुई मैं सब कहीं दूधको प्रकट करूं ॥ ३७ ॥ महादेवजी बोले कि तदनन्तर पृथुजी ने धनुषकी कोटि से सब शिलासमूहों को उच्चाटन किया तदनन्तर उससे पर्वत तोड़ डालेगये ॥ ३८ ॥ अन्य मन्वन्तरों में पृथ्वी विषम (ऊंची नीची) थी और उसके सम व विषम स्थान स्वभावही से थे ॥ ३९ ॥ और पहली सृष्टि में ऊंचीनीची पृथ्वी में पुरों व ग्रामोंका विभाग नहीं विद्यमान था ॥ ४० ॥ और न

ला ॥ समाञ्चकुरुसर्वत्र मान्त्वन्धर्मभृतांवर ॥ ३६ ॥ यथावेस्यन्दमानाहि क्षीरंसर्वत्रभावये ॥ ३७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततउच्चाटयामास शिलाजालानिसर्वशः ॥ धनुःकोट्यातततोवैन्यस्तेनशैलाविपाटिताः ॥ ३८ ॥ मन्वन्तरेषुचान्येषु विषमासीद्वसुन्धरा ॥ स्वभावेनाभवंस्तस्याः समानिविषमाणिच ॥ ३९ ॥ नहिपूर्वविसर्गेवै विषमेपृथिवीतले ॥ प्रविभागःपुराणांवा ग्रामाणांवाथविद्यते ॥ ४० ॥ नसस्यानिनगोरक्षा नकृषिर्नवणिक्पथः ॥ चाक्षुषस्यान्तरेपूर्वमासीदेतत्पुराकिल ॥ ४१ ॥ वैवस्वतेन्तरेचास्मिन्सर्वस्यैतस्यसम्भवः ॥ सकल्पयित्वावत्सन्तु चाक्षुषंमनुमीश्वरम् ॥ ४२ ॥ पृथुर्दुदोहसस्यानि स्वहस्तेपृथुविक्रमः ॥ सस्यानितेनदुग्धावै वैन्येनेयंवसुन्धरा ॥ ४३ ॥ वत्सस्सोमस्ततस्तस्या दोग्धाचापिबृहस्पतिः ॥ पात्राण्यासंश्चछन्दांसि गायत्र्यादीनिसर्वशः ॥ ४४ ॥ क्षीरमासीत्तदातेषां तपोब्रह्मचशाश्वतम् ॥ पुनस्ततोदेवगणैः पुरन्दरपुरोगमैः ॥ ४५ ॥ सौवर्णपात्रमादाय दुग्धेयंश्रूयतेमही ॥ वत्सस्तुमघवाह्यासीद्दोग्धा

अन्न होते थे न गौवों की रक्षा न खेती न रोजगार होताथा पहले चाक्षुष मन्वन्तरमें यह हुआ है ॥ ४१ ॥ और इस वैवस्वत मन्वन्तरमें इस सबकी उत्पत्ति हुई है व स्वामी चाक्षुष मनुको बछड़ा कल्पितकर उन ॥ ४२ ॥ बड़े पराक्रमी पृथुजीने अपने हाथमें अन्नोंको दुहा वेनके पुत्र उन पृथुजीने इस पृथ्वीसे अन्नोंको दुहा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर उस पृथ्वीका चन्द्रमा बछड़ा हुआ व दुहनेवाले बृहस्पति हुये और सब गायत्री आदिक छन्द पात्र हुये ॥ ४४ ॥ तब उनका तप व सनातन ब्रह्म दुग्ध हुआ

तदनन्तर फिर इन्द्रादि सुरसमूहों से ॥ ४५ ॥ सोने के पात्रको लेकर यह पृथ्वी दुहीगई ऐसा सुनाजाता है और इन्द्र बछड़ा हुये व दुहनेवाले सूर्य हुये ॥ ४६ ॥ व अमृतमय दुग्ध कहागया है उससे देवता वर्तमान होते हैं फिर पितरों से भी पृथ्वी दुहीगई है ऐसा सुनाजाता है ॥ ४७ ॥ उन्होंने चांदी के पात्रको लेकर तृप्ति के लिये स्वधाको दुहाहै व उन पितरोंके बछड़ा सूर्य के पुत्र प्रतापी यमराज जी हुये हैं ॥ ४८ ॥ व पितरों के दुहनेवाले भगवान् कालजी हुये हैं फिर सुनाजाता है कि दैत्यों से भी पृथ्वी दुहीगई है ॥ ४९ ॥ लोहेके पात्रको लेकर व सब सेनाको लेकर प्रह्लाद के पुत्र प्रतापी विरोचनजी उनके बछड़ा हुये ॥ ५० ॥ और दैत्यों के

चसविताभवत् ॥ ४६ ॥ क्षीरंसुधामयंप्रोक्तं वर्त्तन्तेतेनदेवताः ॥ पितृभिःश्रूयतेचापि पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ ४७ ॥ राजतंपात्रमादायतथातृप्त्यैस्वधामपि ॥ वैवस्वतोयमश्चासीत्तेषांवत्सःप्रतापवान् ॥ ४८ ॥ अन्तकश्चाभवद्दोग्धा पितॄणांभगवान्प्रभुः ॥ असुरैःश्रूयतेचापि पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ ४९ ॥ आयसंपात्रमादाय बलमादायसर्वशः ॥ वैरोचनस्तु प्राह्लादिस्तेषांवत्सःप्रतापवान् ॥ ५० ॥ सम्यग्द्विमूर्द्धादैत्यानां दोग्धातुदितिनन्दनः ॥ तेनतेमाययाद्यापि सर्वेमायाविदोऽसुराः ॥ ५१ ॥ वर्त्तयन्तिमहावीर्यास्तयातेषांपरंबलम् ॥ नागैश्चश्रूयतेदुग्धावत्संकृत्वातुतक्षकम् ॥ ५२ ॥ अलाबूपात्रमादाय विषंक्षीरंतदामही ॥ तेषांवैवासुकिर्दोग्धा काद्रवेयोमहायशाः ॥ ५३ ॥ नागानांवैमहादेवि सर्पाणाञ्चैवसर्वशः ॥ तेनवैवर्त्तयन्त्युग्रा महाकायाविषोल्वणाः ॥ ५४ ॥ तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः ॥ आमपात्रेपुनर्दुग्धात्वन्तर्द्धानमयंमही ॥ ५५ ॥ वत्संवैश्रवणंकृत्वा यक्षपुण्यजनैस्तथा ॥ दोग्धारजतनागस्तु चिन्तामणिसुतस्तु

भलीभांति दुहनेवाले दितिपुत्र द्विमूर्धा हुये उस कारण मायासे वे दैत्य आज भी मायावी हैं ॥ ५१ ॥ और वे बड़े पराक्रमी उस मायासे वर्तमान होते हैं और वही उनका बड़ा बल है व तक्षक को बछड़ा बनाकर नागों से पृथ्वी दुहीगई है ऐसा सुनाजाता है ॥ ५२ ॥ उस समय तुम्बी पात्रको लेकर पृथ्वी से विषरूपी दुग्ध दुहागया हे महादेवि ! उन नागों व सब सांपों के बड़े यशस्वी काद्रवेय वासुकि दुहनेवाले हुये हैं और उससे वे बड़े उग्र व महाशरीरवान् उग्र सर्प विषसे तीक्ष्ण वर्तमान होते हैं ॥ ५३ । ५४ ॥ व उस आहारवाले तथा उसी आचारवाले व उस पराक्रमवाले और उसीके आश्रयहैं फिर कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे पात्रमें पुण्य-

जन यक्षों ने पृथ्वी से अन्तर्द्धानमय दुग्धको दुहा है और जो चिन्तामणि के पुत्र थे वे रजत नाग दुहनेवाले हुये ॥ ५५ । ५६ ॥ जोकि यक्षात्मक व बड़े तेजस्वी व सुन्दर, ज्ञानी और बड़े तपस्वी थे उसी कारण बढ़े हुये कर्मों से वे यक्ष वर्तमान होते हैं ॥ ५७ ॥ फिर राक्षसों व पिशाचों से पृथ्वी दुहीगई उनके ब्रह्म संयुक्त कुबेर जी दुहनेवाले हुये हैं ॥ ५८ ॥ और बलवान् सुमाली बछड़ा हुआ व दुग्ध रक्त हुआ और कपाल के पात्रमें राक्षसों ने अन्तर्द्धानरूपी दुग्ध को दुहा ॥ ५९ ॥ उस दूध से सब राक्षस वर्तमान होते हैं और गंधर्वों व अप्सराओं के गणोंने कमलपत्रों में पृथ्वी को दुहा है ॥ ६० ॥ उस समय चित्ररथको बछड़ा बनाकर पृथ्वी दुहीगई है

यः ॥५६॥ यक्षात्मकोमहातेजा वशीज्ञानीमहातपाः॥ तेनतेवर्त्तयन्तीति यक्षाःकर्मभिरूर्जितैः॥ ५७॥ राक्षसैश्चपिशाचैश्च पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ ब्रह्मोपेतस्तुदोग्धावै तेषामासीत्कुबेरकः ॥ ५८ ॥ वत्सस्सुमालीबलवान् क्षीरंरुधिरमेवच ॥ कपालपात्रेदुग्धंवै ह्यन्तर्द्धानन्तुराक्षसैः ॥ ५९ ॥ तेनक्षीरेणरक्षांसि वर्त्तयन्तीतिसर्वशः ॥ पद्मपात्रेषुवैदुग्धा गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥ ६० ॥ वत्संचित्ररथंकृत्वा श्रुतंदुग्धामहीतदा ॥ तेषांवत्सोरुचिस्त्वासीद्दोग्धापुत्रोमुनेश्शुभे ॥ ६१ ॥ शैलश्चश्रूयतेसर्वैः पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ तदौषधीर्मूर्त्तिमती रत्नानिविविधानिच ॥ ६२ ॥ वत्सस्तुहिमवांस्तेषां दोग्धा मेरुर्महागिरिः ॥ पात्रंशैलमयंत्वासीत्तेनशैलाःप्रतिष्ठिताः ॥ ६३ ॥ श्रूयतेवृक्षवीरुद्भिः पुनर्दुग्धावसुन्धरा ॥ पालाशं पात्रमादाय दुग्धंछिन्नप्ररोहणम् ॥ ६४ ॥ दोग्धातुपुष्पितस्सालः प्लक्षोवत्सोयशस्विनि ॥ सर्वकामदुघादुग्धा पृथिवीभूतभाविनी ॥ ६५ ॥ सैषाधात्रीविधात्रीच धरणीचवसुन्धरा ॥ दुग्धाहितार्थंलोकानां पृथुनाइतिनःश्रुतम् ॥ ६६ ॥

ऐसा सुनागया है हे शुभे ! उनके दुहनेवाले मुनिके पुत्र रुचि हुये हैं ॥ ६१ ॥ फिर सुनाजाता है कि सब पर्वतों से पृथ्वी दुही गई है उस समय उन्होंने मूर्तिमती ओषधी व अनेक भांति के रत्नों को दुहा है, ॥ ६२ ॥ उनके हिमवान् बछड़ा हुये व सुमेरु महाचल दुहनेवाला हुआ व पर्वत का पात्र हुआ उसी से पर्वत प्रतिष्ठित हुये ॥ ६३ ॥ फिर सुनाजाता है कि वृक्षों व लताओं से पृथ्वी दुहीगई है पलाश के पात्रको लेकर कटेहुये का फिर जमना दुहागया ॥ ६४ ॥ व हे यशस्विनि ! पुष्पित साखू दुहनेवाला हुआ और पकरिया बछड़ा हुआ और सब कामनाओं को देनेवाली व प्राणियों को पैदा करनेवाली पृथ्वी दुहीगई है ॥ ६५ ॥ वही यह धात्री, विधात्री,

धरणी व वसुन्धरा लोकोंके हितके लिये पृथुसे दुहीगई है ऐसा हमलोगोंने सुनाहै ॥६६॥ स्थावर जंगम समेत संसारके स्थापनके लिये यह समुद्र अन्त तक पृथ्वी जलोंसे घिरी थी ऐसी सुनी गईहै ॥६७॥ और पहले मधु व कैटभके रक्त व मांससे पृथ्वी डूबीथी व जिसलिये वसु (धन) को धारण करती है उसीसे वसुधा कही गई है ॥६८॥ जिसलिये वेन के पुत्र बुद्धिमान् पृथुराजा के समीप जाने से कन्यापन को प्राप्त हुई उसकारण पृथ्वी कही जाती है ॥ ६९ ॥ तदनन्तर पृथ्वी पृथु से बांटी गई व शोभित हुई और जो रत्नाकरमालिनी है वह रसवती पृथ्वी राजा से दुही गई ॥ ७० ॥ इस प्रभाववाला वह नृपोत्तम पृथु राजा हुआ है तदनन्तर उस राजा ने उस

चराचरस्यलोकस्य स्थापनायाद्भिरेवच ॥ आसीदियंसमुद्रान्ता मेदिनीतिपरिश्रुता ॥ ६७ ॥ मधुकैटभयोः पूर्वं रक्तमांसपरिप्लुता ॥ वसुधारयतेयस्माद्वसुधातेनकीर्तिता ॥ ६८ ॥ यतोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्यधीमतः ॥ दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यतेततः ॥ ६९ ॥ ततोविभक्ताप्टथुना शोभिताचवसुन्धरा ॥ दुग्धारसवतीराज्ञा यारत्नाकरमालिनी ॥ ७० ॥ एवंप्रभावोराजासीद्वैन्यस्सनृपसत्तमः ॥ ततस्सरञ्जयामास धर्मेणपृथिवीन्तदा ॥ ७१ ॥ ततोराजेतिशब्दोथ पृथिव्यांरञ्जनादभूत् ॥ सराज्यंप्राप्यवैन्यस्तु चिन्तयामासपार्थिवः ॥ ७२ ॥ पितामममह्यधर्मिष्ठो यज्ञाद्युच्छिन्नकारकः ॥ कस्मिन्स्थानेगतश्चासौ ज्ञेयंस्थानंकथम्मया ॥ ७३ ॥ कथंतस्यक्रियाकार्या हतस्यब्राह्मणैःकिल ॥ कथंगतिर्भवेत्तस्य यज्ञदानक्रियावताम् ॥ ७४ ॥ इत्येवंचिन्तयानस्य नारदोभ्याजगामह ॥ तस्यैवमासनंदत्त्वा प्रणिपत्याथपृष्टवान् ॥ ७५ ॥ भगवन्सर्वलोकस्य जानासित्वंशुभाशुभम् ॥ पितामहदुराचारो देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ ७६ ॥

समय धर्म से पृथ्वी को रंजन किया ॥ ७१ ॥ उसीकारण रंजन (अनुराग) से पृथ्वी में राजा ऐसा शब्द हुआ और वेन के पुत्र उस पृथु ने राज्य को पाकर चिन्तन किया ॥ ७२ ॥ कि मेरा अधर्मी पिता यज्ञादिकों को नष्ट करनेवाला था यह किस स्थान में गया है वह स्थान मुझसे किसप्रकार जानने योग्य है ॥ ७३ ॥ और ब्राह्मणों से मारे हुये उस पिता की क्रिया किसप्रकार करना चाहिये व उसकी यज्ञ दान कर्म वाले पुरुषों कीसी गति कैसे होवैगी ॥ ७४ ॥ इसीप्रकार उसको चिन्तन करते हुये नारदमुनि आगये उनको आसन देकर व प्रणाम कर पृथु ने पूंछा ॥ ७५ ॥ कि हे भगवन् ! तुम सब संसार के शुभ अशुभ को जानते हो मेरा दुराचारी

पिता देवताओं व ब्राह्मणों का निन्दक था ॥ ७६ ॥ व अपनेही कर्म से ब्राह्मणों करके माराहुआ वह परलोक को प्राप्त हुआ और शुभ या अशुभ किस स्थान में पिता गया है ॥ ७७ ॥ तदनन्तर नारदजी ने दिव्यदृष्टि से देखकर कहा कि हे महाभुज, राजन् ! सुनिये जहां कि तुम्हारा पिता स्थित है ॥ ७८ ॥ कि जहा जल व वृक्षों से रहित मरुनामक देश है उस भयंकर देश में मनुष्यों में उत्तम तुम्हारा पिता ॥ ७९ ॥ म्लेच्छों के मध्य में उत्पन्न होकर यक्ष्मा व कुष्ठ से संयुत है और म्लेच्छों का उच्छिष्टभोजी वह कीड़ों व व्रणों (घावों) से घिरा है ॥ ८० ॥ उन महात्मा नारदजी के उस वचन को सुनकर हाहाकार कर तदनन्तर मूर्च्छित होते हुये पृथु

स्वकर्मणाहतोविप्रैः परलोकमवाप्तवान् ॥ कस्मिन्स्थानेगतस्स्नातश्शुभेवाप्यशुभेपिवा ॥ ७७ ॥ ततोब्रवीन्नारदस्तु ज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ शृणुराजन्महाबाहो यत्रतिष्ठतितेपिता ॥ ७८ ॥ यत्रदेशोमरुर्नाम जलवृक्षविवर्जितः ॥ तत्रदेशेमहारौद्रे जनकस्तेनरोत्तमः ॥ ७९ ॥ म्लेच्छमध्येसमुत्पन्नोयक्ष्मकुष्ठसमन्वितः ॥ उच्छिष्टभोजीम्लेच्छानां कृमिभिस्संवृतोव्रणैः ॥ ८० ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य नारदस्यमहात्मनः ॥ हाहाकारंततःकृत्वा मूर्च्छितोनिपपातह ॥ ८१ ॥ चिन्तयामासदुःखार्तः कथंकार्यंमयाधुना ॥ इत्येवंचिन्तयानस्य मतिर्जातामहात्मनः ॥ ८२ ॥ पुत्रस्सकथ्यते लोके पितरंत्रायतेतुयः ॥ सकथन्तुमयाताताः पापान्मुक्तोभविष्यति ॥ ८३ ॥ एवंसञ्चिन्त्यसततो नारदंपृष्टवान्पुनः ॥ भगवन्कथितंसर्वं पितुर्ममविचेष्टितम् ॥ ८४ ॥ केनतस्यभवेन्मुक्तिः कर्मणाद्विजसत्तम ॥ व्रतैर्दानैस्तपोभिर्वा तीर्थानां यात्रयाथवा ॥ ८५ ॥ नारदउवाच ॥ गच्छराजन्प्रधानानितीर्थानिमनुजेश्वर ॥ पितातेषुसस्नानेयस्तस्माद्राजन्मरुस्थ

जी गिर पड़े ॥ ८१ ॥ व दुःख से विकल पृथु ने चिन्तन किया कि इससमय मुझको किसप्रकार करना चाहिये इसप्रकार विचारते हुये उन पृथु महात्मा के यह बुद्धि पैदा हुई ॥ ८२ ॥ कि संसार में वह पुत्र कहाजाता है जो कि पिता की रक्षा करता है और वह पिता मुझ से किसप्रकार पातक से मुक्त होगा ॥ ८३ ॥ इस प्रकार विचारकर तदनन्तर उन्हों ने फिर नारदजी से पूछा कि हे भगवन् ! मेरे पिता का सब कर्म कहा गया ॥ ८४ ॥ हे द्विजोत्तम ! व्रतों से या दानों से अथवा तपों से व तीर्थों की यात्रा से उसकी किस कर्म से मुक्ति होगी ॥ ८५ ॥ नारदजी बोले कि हे मनुजेश्वर, राजन् ! मुख्य तीर्थों को जाइये व हे राजन् ! उन तीर्थों

में उस मरुस्थल से पिता लाने योग्यहै ॥ ८६ ॥ हे प्रभो ! जहां प्रभाव समेत देवता व निर्मल तीर्थ हैं हे महाराज ! वहां जाते हुये तुम तीर्थयात्रा करो ॥ ८७ ॥ यादि इसप्रकार होवै तो किसीभांति तुम्हारे पिता का मोक्ष होगा महात्मा नारदजी के वचन को सुनकर तदनन्तर ॥ ८८ ॥ पृथुजी मंत्री के ऊपर अपने राज्य का भार धर कर चले गये और मरुभूमि को जाकर उन पृथु ने म्लेच्छों के बीच में बड़े कीटरोग से व राजरोग से घिरे हुये पिता को देखा वहींपर कोसभरतक स्थान शून्य व मनुष्यों से रहित था ॥ ८९ । ९० ॥ ऐसा देखकर वह राजा संतप्त होकर वचन बोला कि हे म्लेच्छ ! हे रोगयुक्त पुरुष ! मैं तुमको अपने घरको ले चलूं ॥ ९१ ॥

लात ॥ ८६ ॥ यत्रदेवास्सप्रभावास्तीर्थानिविमलानिच ॥ तत्रगच्छन्महाराज तीर्थयात्रांकुरुप्रभो ॥ ८७ ॥ एवंयदिकथं चिद्वा मोक्षस्तेभवितापितुः ॥ ततःश्रुत्वातुवचनं नारदस्यमहात्मनः ॥ ८८ ॥ सचिवेभारमाधायस्वराज्यस्यजगामह ॥ सगत्वामरुभूमिन्तुम्लेच्छमध्येददर्शह ॥ ८९ ॥ कृमिरोगेणमहता क्षयेणचसमावृतम् ॥ गव्यूतिमात्रंतत्रैव शून्यंमानुष वर्जितम् ॥ ९० ॥ एवंदृष्ट्वासराजातु संतप्तोवाक्यमब्रवीत् ॥ हेम्लेच्छरोगपुरुषस्वगृहंत्वान्नयाम्यहम् ॥ ९१ ॥ तत्राहंत्वांसु निरुजं करोमियदिमन्यसे ॥ ज्ञात्वेतिसर्वेतेम्लेच्छाः पुरुषन्तंदयापरम् ॥ ९२ ॥ ऊचुःप्रणतसर्वाङ्गाः शीघ्रन्नयजगत्पते ॥ अस्मद्भाग्यवशान्नाथ त्वमेवात्रसमागतः ॥ ९३ ॥ दुर्गन्धोपहतालोकास्त्वयानाथसुखीकृताः ॥ ततआनीयपुरुषाञ्छिबिका वाहनोचितान् ॥ ९४ ॥ दत्त्वाशुल्कञ्चद्विगुणं सतीर्थंनयतामिति ॥ ततःश्रुत्वातुवचनं तस्यराज्ञोदयायुतम् ॥ ९५ ॥ प्रापु स्तीर्थान्यनेकानि केदाराद्यानिकोटिशः ॥ यत्रयत्रावगच्छेच्च सराजावेनसंयुतः ॥ ९६ ॥ तत्रतत्रैवतीर्थानामाक्रन्दःश्रू

यदि मानो तो वहां मैं तुमको निरोग करूंगा उस पुरुष (पृथु जी) को दया में तत्पर जानकर उन सब म्लेच्छों ने ॥ ९२ ॥ सब अंगों को झुकाकर कहा कि हे जगदीश ! शीघ्रही लेजाइये हे नाथ ! हमलोगों के भाग्यवश से तुम यहां आये हो ॥ ९३ ॥ हे नाथ ! दुर्गन्धि से नष्ट मनुष्य तुमलोगों से सुखी किये गये तदनन्तर पालकी के लेजाने के योग्य पुरुषों को लाकर ॥ ९४ ॥ व दुगुना मूल्य देकर उन पृथुजी ने कहा कि तीर्थ में ले चलिये तदनन्तर उस राजा के दयासंयुत वचन को सुनकर ॥ ९५ ॥ वे केदारादिक करोड़ों तीर्थों में प्राप्त हुये जहां जहां वेन समेत वह राजा जाता था ॥ ९६ ॥ वहां वहां तीर्थों का बड़ा भारी शब्द सुन पड़ता था

कि हमलोगों के नाश के लिये यह कौन शत्रु आता है ॥ ९७ ॥ इससमय हमलोग कहां जावैं यह बार २ चिन्ता होती थी और उसके दर्शन से भी हाहाकार कर ॥ ९८ ॥ तीर्थ भगते थे व उसी क्षण देवता भग जाते थे इसप्रकार राजापृथु ने तीन वर्ष तक तीर्थयात्रा किया ॥ ९९ ॥ व उसकी मुक्ति न देखपड़ी तब राजा बड़े शोच को प्राप्त हुये तदनन्तर प्रेरणा किये हुये सेवक फिर कहते थे कि महाप्रभावान् कुरुक्षेत्र में पापकी मुक्ति होगी तदनन्तर हे प्रिये ! कन्धे पै पालकी को लेकर कुरुक्षेत्र में गये ॥ २०० । २०१ ॥ और वहां लेजाकर स्थाणुतीर्थ में उतारकर वे चले गये तदनन्तर दुपहर में वह राजा आदर से स्नान की इच्छा करता भया ॥ २ ॥

यतेमहान् ॥ कएषरिपुरायाति अस्माकंनाशहेतवे ॥ ९७ ॥ अधुनाक्वगमिष्याम इतिचिन्तापुनःपुनः ॥ दर्शनेनापित स्यैव हाहाकारंविधायवै ॥ ९८ ॥ पलायन्तेचतीर्थानि देवानश्यन्तितत्क्षणात् ॥ एवंवर्षत्रयंराजा तीर्थयात्राञ्चकारवै ॥ ९९ ॥ नतस्यमुक्तिर्ददृशे ततश्शोकमगात्परम् ॥ ततस्तुप्रेरिताभृत्याः कुरुक्षेत्रेमहाप्रभे ॥ २०० ॥ कथयन्तिपुनस्त त्र पापमुक्तिर्भवेत्ततः ॥ गृहीत्वाशिबिकांस्कन्धे कुरुक्षेत्रेगताःप्रिये ॥ १ ॥ तत्रनीत्वास्थाणुतीर्थे अवतार्यचतेगताः ॥ त तस्सराजामध्याह्ने चिकीर्षुस्स्नानमादरात् ॥ २ ॥ तस्यैवतुपितुस्तत्र तथादानानिषोडश ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तथादित्सुः श्रद्धावान्भावतत्परः ॥ ३ ॥ ततोवायुश्चान्तरिक्ष इदंवचनमब्रवीत् ॥ मातातसाहसंकुर्यास्तीर्थंरक्षप्रयत्नतः ॥ ४ ॥ अ यंशापेनघोरेण समन्तात्परिवेष्टितः ॥ वेदनिन्दासमाचारो ब्रह्महत्याशतैर्युतः ॥ ५ ॥ सोयंपापोदुराचारस्तीर्थंनाशन्न यिष्यति ॥ मातीर्थंन्नाशयविभो महदेनोभविष्यति ॥ ६ ॥ एतद्वायोर्वचःश्रुत्वा दुःखेनमहतार्दितः ॥ उवाचशोकसन्त

और उसने उसी पिता को स्नान कराने की इच्छा किया वैसेही श्रद्धावान् व भक्तिमें तत्पर उन पृथुजीने ब्राह्मणों के लिये सोलह दानों को देनेकी इच्छा किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर आकाश में पवन ने इस वचन को कहा कि हे तात ! साहस मत करो वरन बड़े यत्न से तीर्थ की रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥ यह भयङ्कर शाप से सब ओर घिरा है और वेदनिन्दा करनेवाला व सैकड़ों ब्रह्महत्याओं से संयुत है ॥ ५ ॥ सो यह दुष्ट आचरणवाला पापी तीर्थ को नाश करैगा हे विभो ! तीर्थ को मत नाश

करो क्योंकि बड़ाभारी पाप होगा ॥ ६ ॥ पवन के इस वचन को सुनकर बड़े दुःख से विकल व पिता के दुःख से दुःखित होकर शोक से संतप्त पृथु ने कहा ॥ ७ ॥ व भुजाओं को उठाकर बार २ हे महादेव ! ऐसा उच्चस्वर से कहा कि यह बहुतही घोर पातक से घिरा है ॥ ८ ॥ कि जो इस तीर्थ से भी शुद्धि नहीं कीजासक्ती है तो पिता के प्रयोजन में लगाहुआ मैं प्रायश्चित्त करूंगा ॥ ९ ॥ इसप्रकार उस राजा के वचन को सुनकर बडी भारी दयाकर फिर आकाशचारी प्राणियों ने आकाश से उपजी हुई वाणी को कहा ॥ १० ॥ हे नृपश्रेष्ठ, राजन् ! शोचको छोड़कर वचन को सुनिये कि जिससे तुम्हारे इस पिता का बड़ाभारी पातक नाश होगा ॥ ११ ॥

प्तः पितुर्दुःखेनदुःखितः ॥ ७ ॥ महादेवेतिचुक्रोश ऊर्द्ध्वबाहुःपुनःपुनः ॥ एषघोरेणपापेन अतीवपरिवेष्टितः ॥ ८ ॥ यद नेनापितीर्थेन शुद्धिःकर्तुन्नशक्यते ॥ प्रायश्चित्तंकरिष्येहं पितुरर्थेपरायणः ॥ ९ ॥ एवंतस्यवचःश्रुत्वा दयांकृत्वा महीयसीम् ॥ अन्तरिक्षभवांवाचं खेचराःपुनरब्रुवन् ॥ १० ॥ भोभोराजन्नृपश्रेष्ठ त्यक्त्वाशोकंवचःशृणु ॥ येनतेजन कस्यास्य भवेत्पापक्षयोमहान् ॥ ११ ॥ अस्तिक्षेत्रंमहासिद्धं प्रभासमितिविश्रुतम् ॥ सर्वपापप्रशमनं महापातकना शनम् ॥ १२ ॥ ब्रह्मतत्त्वंहरेस्तत्त्वं रुद्रतत्त्वंतृतीयकम् ॥ तस्मिन्नेवमहातीर्थे प्रभासेशङ्करप्रिये ॥ १३ ॥ शाक्तेयंयदिवा चान्द्रं सौरंसारस्वतंतथा ॥ आग्नेयंवारुणञ्चापि स्मृतंक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ १४ ॥ ब्रह्माण्डेयानितीर्थानि पुराक्षेत्राणिया नितु ॥ प्रभासमागमिष्यन्ति सम्प्राप्तेतुकलौयुगे ॥ १५ ॥ अष्टौकोटिसहस्राणि अष्टौकोटिशतानिच ॥ क्षेत्ररक्षन्तितत्र स्थाः प्रभासेशाङ्करागणाः ॥ १६ ॥ इयंसरस्वतीपुण्या सर्वदैवहिविद्यते ॥ पञ्चस्रोताप्रभासेतु दुष्प्राप्यात्रिदशैरपि ॥ १७ ॥

सब पापोंको नाश करनेवाला व महापातकों को विनाशनेवाला महासिद्ध प्रभास ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ १२ ॥ उसी शंकरजीको प्यारे प्रभास महातीर्थ में ब्रह्मतत्त्व, विष्णुतत्त्व व तीसरा शिवतत्त्व है ॥ १३ ॥ शक्ति का व चन्द्रमा का अथवा सूर्य का या सरस्वती जीका तथा अग्नि का वरुणका भी वह अतिउत्तमक्षेत्र कहागया है ॥ १४ ॥ पुरातन समय ब्रह्माण्ड में जो तीर्थ व जो क्षेत्र थे वे कलियुग प्राप्त होने पर प्रभास को आवैंगे ॥ १५ ॥ आठकरोड हज़ार व आठ सौ करोड शिवजी के गण वहां स्थित होकर प्रभासक्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥ १६ ॥ व देवताओं से भी दुर्लभ पांच सोतोंवाली यह पवित्र सरस्वती नदी सदैवही विद्यमान रहती है ॥ १७ ॥

उसका ... वत्र स्रोत व न्यंकुमतीके जो तटहैं उसके मध्यमें गोष्पद ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ स्थितहै ॥ १८ ॥ वहां प्रेतों को मुक्ति देनेवाले प्रेतशिला के मध्य में जहां कि पुरातन से अट्ठाईस करोड़ प्रेत मुक्त हुये हैं ॥ १९ ॥ जो पापियों को मुक्तिदायक तीर्थ है व जो आदिरुद्रगया कही गई है वही इस कलियुग में गोष्पद नामक तीर्थ में प्रसिद्ध हुआ ॥ २० ॥ जब क्षीरसमुद्र मथने से लोकमातृका निकली हैं तब वे देवताओंसमेत तीर्थ के समीप आईं ॥ २१ ॥ वहां नन्दा का चरण शिला पै डूबगया और खुरसे चिह्नित वैसेही घुटनूमे चिह्नित शिला को देखकर ॥ २२ ॥ विस्मित होते हुये सब देवताओं ने नन्दिनी गऊसे पूंछा कि

तस्यायं ... स्रोतो न्यङ्कुमत्यास्तटानिच ॥ तस्यमध्येस्थितंतीर्थं गोष्पदेतिचविश्रुतम् ॥ १८ ॥ तत्रप्रेतशिलामध्ये प्रेतानां मु...यके ॥ यत्रप्रेताःपुरामुक्ता अष्टाविंशतिकोटयः ॥ १९ ॥ पापिनांमुक्तिदंतीर्थमाद्यारुद्रगयास्मृता ॥ तदस्मिन् ग...न्नाम कलौख्यातंधरातले ॥ २० ॥ यदाक्षीरोदमथनान्निस्सृतालोकमातरः ॥ तदादेवैस्समन्तास्तु आगतास्ती...र्थे ॥ २१ ॥ पदंतत्रनिमग्नञ्च नन्दायाश्चशिलातले ॥ शिलांखुराङ्कितान्दृष्ट्वा जानुदेशाङ्कितान्त था ॥ २२ ॥ ...स्मितास्सर्वदेवाश्चे पप्रच्छुर्गाञ्चनन्दिनीम् ॥ किमेतद्दृश्यतेदेवि पदंप्रेतशिलातले ॥ २३ ॥ क थन्तुखेदस्सञ्...त्वस्माकंस्खलनंकथम् ॥ नन्दिन्युवाच ॥ इदंममपदन्देवाः शिलासंस्थंविराजते ॥ २४ ॥ गग नाङ्गणभूमिस्थं ...बिम्बमिवापरम् ॥ अद्यप्रभृतिभोदेवास्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ २५ ॥ गोष्पदन्नामविख्यातं लोकेख्या तिंगमिष्यति ॥ ...त्यनरोयस्तु स्नानंश्राद्धंकरिष्यति ॥ २६ ॥ गयासप्तगुणंतस्य फलन्देवाभविष्यति ॥ नवारोन

हे देवि ! प्रेतशिलातलपै यह ...यों देख पड़ता है ॥ २३ ॥ और कैसे खेद हुआ व हमलोगों का स्खलन (लरखराना) कैसे हुआ नन्दिनी बोली कि हे देवताओ ! शिला में स्थित यह ...द विराजित है ॥ २४ ॥ आकाश के आंगनकी भूमि में स्थित मानो दूसरा चन्द्रबिम्ब है हे देवताओ ! आजसे लगाकर चराचर समेत त्रिलोक में ॥ २५ ॥ गोष्पद ... प्रसिद्ध यह प्रसिद्धिको प्राप्त होगा और यहां आकर जो मनुष्य स्नान व श्राद्ध करैगा ॥ २६ ॥ हे देवताओ ! उसको गयासे

सतगुना फल होगा न दिन, न न [illegible] न समय वहां कारण है ॥ २७ ॥ वरन जबही तीर्थ देखाजावै तभी हज़ार पर्व होते हैं अथवा पर्व को चाहै तो हे पार्वति ! उन पर्वों को मुझसे सुनिये ॥ २ [illegible] दोनों विषुवायन (बराबर दिन रात्रिवाले समय) में और साधारण सूर्यकी संक्रांति में व अमावस, अष्टका तथा विशेषकर कृष्णपक्ष में ॥ २९ ॥ और आर्द्रा [illegible] रोहिणी व द्रव्य और ब्राह्मणों के समागम में और गजच्छाया व व्यतीपात तथा वैधृतियोग व चन्द्रवार में ॥ ३० ॥ और वैशाख की तीज व कातिक की [illegible] तथा माघकी पौर्णमासी में व भादों की तेरसि ॥ ३१ ॥ ये तिथियां युगादि कही गई हैं उससमय में और फिर मन्वन्तरादि

चनचत्रं नकालस्त [illegible] रणम् ॥ २७ ॥ यदैवदृश्यतेतीर्थं तदापर्वसहस्रकम् ॥ अथवापर्वमाकाङ्क्षेत्तानिमेशृणुपार्व ति ॥ २८ ॥ अय [illegible] वेयुग्मे सामान्येचार्कसंक्रमे ॥ अमावास्याष्टकायाञ्च कृष्णपक्षेविशेषतः ॥ २९ ॥ आर्द्रामघा रोहिणीद्रव्य [illegible] समे ॥ गजच्छायाव्यतीपाते वैधृतौचन्द्रवासरे ॥ ३० ॥ वैशाखस्यतृतीयायां नवम्यांकार्त्तिक स्यतु ॥ पञ्चद [illegible] न्तुमाघस्य नभस्येचत्रयोदशी ॥ ३१ ॥ युगादयस्स्मृताह्येतास्तस्मिन्कालेचवापुनः ॥ मन्वन्तरा दौवाश्वे तत्र [illegible] विजानता ॥ ३२ ॥ अश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशीकार्त्तिकीतथा ॥ तृतीयामाघमासस्य तथाभाद्रप दस्य ॥ ३ [illegible] फाल्गुनस्यत्वमावस्या पञ्चम्येकादशीतथा ॥ आषाढस्यापिदशमी माघमासस्यसप्तमी ॥ ३४ ॥ श्रावणस्य [illegible] कृष्णा तथाषाढीचपूर्णिमा ॥ कार्त्तिकीफाल्गुनीचैव ज्येष्ठपञ्चदशीतथा ॥ ३५ ॥ मन्वन्तरादयश्चैव द त्तस्याक्षय [illegible] काः ॥ वैशाखस्यतृतीयायां कृष्णायांफाल्गुनस्यच ॥ ३६ ॥ पञ्चमीचेषमासस्य तस्यैवसप्तमीतिथिः ॥

दिनमें वहां [illegible] र जानते हुये पुरुष को श्राद्ध करना चाहिये ॥ ३२ ॥ कुँवार के शुक्लपक्षकी नवमी, द्वादशी व कार्त्तिकी पौर्णमासी और माघ महीने की व भादों कीतीज ॥ [illegible] और फागुन की अमावस, पंचमी, एकादशी व आषाढ़की भी दशमी और माघ महीने की सप्तमी ॥ ३४ ॥ व श्रावण के कृष्णपक्षकी अष्टमी और आषाढ़ी पौर्णमासी व कार्त्तिकी, फाल्गुनी व जेठ की पौर्णमासी ॥ ३५ ॥ ये मन्वन्तरादि तिथियां दिये हुये को अक्षय करनेवाली हैं और वैशाख की तीज में व फागुन

के कृष्ण ५दौज में ॥ ३६ ॥ व कुँवार की पंचमी व उसी की सप्तमी तिथि तथा माघ में शुक्ल पक्ष की तेरसि व कातिककी सप्तमी ॥ ३७ ॥ व अगहन की नमी ये सदा ाां कल्पादि में प्राप्त हैं कल्पादि तिथिमें श्राद्ध करने पर कल्प की वृत्ति व स्वधा होती है ॥ ३८ ॥ ऐसाही देवताओं से कहकर वह आनन्दरूपिणी ननिनी शीघ्र न्तर्द्धान होगई जैसे कि पवन से ताड़ित दीपक बुझ जाताहै ॥ ३९ ॥ इस कौतुक को देखकर इन्द्रसमेत सब देवता और महर्षियों व देवर्षियों ने इस पुराणवाले क को गाया ॥ ४० ॥ कि तीर्थके माहात्म्य व नन्दा के तपस्या के बल को आश्चर्य है क्योंकि यहा एकवार श्राद्ध देने से गया श्राद्ध के समान

शुक्लात्रयोमाघे कार्त्तिकस्यतुसप्तमी ॥ ३७ ॥ नवमीमार्गशीर्षस्य सप्तैताःकल्पमादिगाः ॥ कल्पवृत्तिर्भवेच्छ्राद्धे कल्पा कृतेस्वधा ॥ ३८ ॥ इत्येवमुक्त्वासानन्दा देवानांप्रतिनन्दिनी ॥ अन्तर्द्धानंजगामाशु दीपोवाताहतोयथा ॥ ३९ न्तुकौतुकन्दृष्ट्वा सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ महर्षयोदेवर्षयः श्लोकंपौराणिकंजगुः ॥ ४० ॥ अहोतीर्थस्य माहात्म्यं यास्तपसोबलम् ॥ सकृच्छ्राद्धेनदत्तेन गयाश्राद्धसमंफलम् ॥ ४१ ॥ एवमुक्त्वाततोदेवाश्चक्रुःश्राद्धादिकाःक्रियाः यथोक्तंफलमापुस्ते नन्दिन्यापूर्वभाषितम् ॥ ४२ ॥ इत्थंत्वमपिराजेन्द्र गच्छशीघ्रन्तुगोष्पदम् ॥ तत्रश्राद्धादिकं लप्स्यसेफलमीप्सितम् ॥ ४३ ॥ अयन्तेजनकोराजन् पापिनांप्रवरःस्मृतः ॥ नान्यैस्तीर्थशतैश्शक्यः प्रोद्धर्तुंगो ेना ॥ ४४ ॥ तस्माद्व्रजमहाराज माकार्षीस्त्वंविलम्बकम् ॥ एवंश्रुत्वातदाराजा प्रभासक्षेत्रमागतः ॥ ४५ ॥ तत्रस्थितान्विप्रांस्तीर्थमाहात्म्यकोविदान् ॥ अग्रेकृत्वामहाराजो ययौन्यङ्कुमतीन्नदीम् ॥ ४६ ॥ तेरा

फल होता है ॥ ४१ ॥ ऐसा तदनन्तर देवताओं ने श्राद्धादिक कर्मोंको किया और उन्होंने नंदिनी से पहले कहेहुये यथोक्त फल को पाया ॥ ४२ ॥ हे नृपेन्द्र ! इसप्रकार तुम भी शीघ्रही उ गोष्पदतीर्थ को जाइये वहां श्राद्धादिक कर चाहेहुये फल को पावोगे ॥ ४३ ॥ हे राजन् ! यह तुम्हारा पिता पापियों में श्रेष्ठ कहागया है इस से विना गो न्य सैकड़ों तीर्थों से भी नहीं उधारा जासक्ता है ॥ ४४ ॥ इसलिये हे महाराज ! आप जाइये विलंब मत कीजिये ऐसा सुनकर उससमय पृथुराजा प्रभासक्षेत्र के ॥ ४५ ॥ और उस स्थान में टिकेहुये तीर्थ के माहात्म्य को जाननेवाले ब्राह्मणों को आगे कर महाराजा पृथु न्यंकुमती नदी

के समीप गये ॥ ४६ ॥ और उन ने प्रेतशिला में स्थित पदरूप तीर्थ को राजा को दिखाया व उस निर्मल तीर्थको देखकर विस्मय से प्रफुल्लितलोचनों-
वाले राजापृथु ने ॥ ४७ ॥ यज्ञ की के लिये कुण्डों व वेदियों को किया तदनन्तर बहुत दक्षिणावाला यज्ञ विधिपूर्वक प्रारम्भ हुआ ॥ ४८ ॥ और अग्नि के
समान प्रभाववाले उसके पितर प्र तदनन्तर श्राद्धवाले यज्ञों से बड़े ऐश्वर्यवाले श्राद्ध को ग्रहण कर ॥ ४९ ॥ उसके उपरान्त प्रसन्न होते हुये पितर नृपश्रेष्ठ
से वचन बोले कि हे राजन् ! ध व पुण्यरूप हो और हम तीनों धन्य हैं ॥ ५० ॥ और गोष्पद के तीर्थ श्राद्ध से हमलोग आप से उधारे गये ऐसा कहकर

ज्ञोदर्शितन्तीर्थं पद शलास्थितम् ॥ तद्दृष्ट्वाविमलंतीर्थं विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ४७ ॥ चकारकुण्डान्वेदीश्च
मण्डपान्यज्ञसिद्ध ततोयज्ञस्समारब्धो विधिवद्भूरिदक्षिणः ॥ ४८ ॥ प्रत्यक्षंपितरस्तस्य बभूवुर्ज्वलनप्रभाः ॥
ततःश्राद्धंसमादा द्धैर्यज्ञैर्महोदयम् ॥ ४९ ॥ ततोब्रुवन्वचस्तुष्टाः पितरोराजसत्तमम् ॥ धन्योसिराजन्पुण्योसि व
यंधन्यतरास्त्रय ० ॥ यदस्यतीर्थश्राद्धेन उद्धृताभवतावयम् ॥ एवमुक्त्वाततस्सर्वे वेनेनसहितास्तदा ॥ विमानवर
संस्थाश्च जग्मु स्त्रिदशालयम् ॥ ५१ ॥ गच्छन्नुवाचवेनस्तं राजानंपृथुवक्षसम् ॥ ५२ ॥ राजञ्जन्मानिचत्वारि अ
भवंश्चान्यजन् ॥ कुष्ठीपापोदुराचारश्चाण्डालोच्छिष्टभुक्तथा ॥ ५३ ॥ सोहंपापविनिर्मुक्तो गच्छामित्रिदशालय
म् ॥ क्ष्म च्छ हाभाग राज्यंभुङ्क्ष्वचिरायच ॥ ५४ ॥ कृतन्तेसफलंकार्यं पुत्रेणाक्रियतेचयत् ॥ एवंश्रुत्वातदाराजा मु
मु [illegible] ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणान्हर्षयामास दानैर्भूकाञ्चनादिभिः ॥ नतदस्तिजगत्यस्मिंस्तत्रयन्नददौनृपः ॥ ५६ ॥

हां [illegible] व पितर उससमय उत्तम विमान पै बैठकर स्वर्गको चले गये ॥ ५१ ॥ और जातेहुये वेन उन स्थूल वक्षःस्थलवाले पृथुराजासे बोले ॥ ५२ ॥ कि
तदन ॥ और [illegible] चार जन्महुये कि कुष्ठी, पापी व दुराचारी और उच्छिष्ट भोजन करनेवाला चाण्डाल हुआहूं ॥ ५३ ॥ वही मैं पापसे छूटकर स्वर्गको जाता हूं
हे [illegible] पो व कार्चि [illegible] ! तुम जावो व बहुत दिनोंतक राज्यको भोग करो ॥ ५४ ॥ जो पुत्र से कियाजाता है उस कार्य को तुमने सफल किया ऐसा सुनकर उस
प्रसन्न हुआ ॥ ५५ ॥ व उन्होंने पृथ्वी व सुवर्णादिक दानोंसे ब्राह्मणोंको प्रसन्न कराया इस संसारमें वह वस्तु नहीं है कि जिसको राजा

पू[illegible]कृष्ण[illegible]तीज में ॥ [illegible]य का प्रभाव व पितरों का प्रत्यक्ष दर्शन देखकर वह राजा ऐसा कर अपने स्थानको आया ॥ ५७ ॥ और सब पृथ्वी को भोगकर वे पृथुजी [illegible]नमी ये स[illegible]बां कल[illegible] ५८ ॥ ऐसे प्रभाववाला वह पापनाशक प्रभासक्षेत्र है जिसमें तीर्थ आते हैं व करोड़ों देवता स्थितहैं ॥ ५९ ॥ प्रभासक्षेत्रको प्राप्त होकर म[illegible]नी शीघ्र[illegible]तर्द्धा[illegible] वह हाथ में स्थित जलको छोड़कर कूप (घटखण्ड) की रेणु को चाटता है ॥ ६० ॥ व हे प्रिये ! पितरों ने पुराण की कथा को कहा कि जो[illegible] पु[illegible]राणवाले[illegible] [illegible]थी को जाने के लिये न समर्थ होवै ॥ ६१ ॥ तो यत्न से उत्तम गोष्पदतीर्थ को जाना चाहिये व कन्द, मूल, फल, पीना व जलसे ॥ ६२ ॥ यदि [illegible]

[illegible]र्थस्य प्रत्यक्षंपितृदर्शनम् ॥ एवंकृत्वासराजातु स्वकीयंस्थानमाययौ ॥ ५७॥ भुक्त्वाभूमिन्तुसकलां प्रे[illegible]वान् ॥ ५८ ॥ एवंप्रभावंतत्क्षेत्रं प्रभासंपापनाशनम् ॥ यस्मिन्नायान्तितीर्थानि देवास्तिष्ठन्तिकोटिशः ॥ ५९ ॥ सत्क्षेत्रमासाद्य योन्यतीर्थंहिमार्गते ॥ सकरस्थंसमुत्सृज्य कूपरेणुंसमुल्लिहेत ॥ ६० ॥ अब्रुवन्पितरश्चैव[illegible]कांप्रिये ॥ गयांगन्तुन्नशक्नोति यदिपुत्रःकथञ्चन ॥ ६१ ॥ तदायत्नेनगन्तव्यं गोष्पदन्तीर्थमुत्तमम् ॥ कन्दमूलै[illegible]र्वापि पिण्याकैरुदकैस्तथा ॥ ६२ ॥ अपिनस्सकुलेभूयाद्योत्रश्राद्धंप्रदास्यति ॥ तत्रस्नात्वाप्रयत्नेन ब्राह्मणान्[illegible]मान् ॥ ६३ ॥ आमन्त्र्यविधिवच्छ्राद्धे भोजयित्वाप्रयत्नतः ॥ पितुःश्राद्धञ्चकर्त्तव्यं पितॄणांतृप्तिमिच्छता ॥ ६४ ॥ नतिथिर्नचनक्षत्रं पर्वमासादिकन्नहि ॥ सर्वदातत्रगन्तव्यं श्रद्धायुक्तेनचेतसा ॥ ६५ ॥ नकालनियमस्तत्र प्रमाणंयतः ॥ तत्राक्षयतृतीयायां दुर्लभंगमनंप्रिये ॥ ६६ ॥ कार्त्तिकेमाघसप्तम्यां पद्मकेवाथपर्व

जो यहां श्राद्ध देवै वह हमलो[illegible] वंश में होवै वहां स्नानकर बड़े यत्न से वेदज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को ॥ ६३ ॥ बुलाकर विधिपूर्वक श्राद्ध में बड़े यत्न से भोजन कराकर पितरों की तृप्तिव[illegible]ा करते हुये पुरुषको पिता का श्राद्ध करना चाहिये ॥ ६४ ॥ न तिथि, न नक्षत्र और न पर्व, मासादिक होवै वरन सदैव वहां श्रद्धायुक्त चित्त करके जाना चाहिये ॥ वहां समय का नियम नहीं है क्योंकि दर्शन प्रमाणहै व हे प्रिये ! वहां अक्षय तीज में गमन दुर्लभ है ॥ ६६ ॥ व कातिक

दो॰। है उत्तम माहात्म्ययुत नारायणगृह नाम। दोसौ सत्तानबे महँ सोइ चरित अभिराम॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर गोष्पद से दक्षिण भाग में समुद्र के उत्तम किनारे पै उत्तम नारायणगृहके समीप जावै॥ १॥ समस्त पातकों को नाशनेवाले न्यङ्कुमती के समीपही स्थित उस स्थान में कल्पावधि तक टिकनेवाले विष्णुजी आपही स्थित हैं॥ २॥ हे देवि! वे विष्णुजी सतयुग व द्वापर संज्ञक युग में सुमेरुगिरि पर्वत सुवर्ण के प्रकाश से भूषित व सुवर्णमय हैं॥ ३॥ व हे महादेवि! त्रेता में रत्नसयुत वे चांदी से उत्पन्न वस्तु से निर्मित हैं और कलियुग में वे पत्थर पै स्थित शोभित हैं॥ ४॥

ईश्वर उवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि नारायणगृहंपरम्॥ गोष्पदाद्दक्षिणेभागे सागरस्यतटेशुभे॥ १॥ न्यङ्कुमत्याः समीपस्थे सर्वपातकनाशने॥ तत्रकल्पान्तरस्थायी स्वयंतिष्ठतिकेशवः॥ २॥ सुमेरुपर्वतेचैव स्वर्णभासाविभूषितः॥ ससुवर्णमयोदेवि कृतेद्वापरसंज्ञके॥ ३॥ निर्मितोरौप्यजातेन त्रेतायांरत्नसंयुतः॥ कलौयुगेमहादेवि पाषाणस्थोविराजते॥ ४॥ पश्चिमेतुसरस्वत्या गोपीनांजलपूरितम्॥ चक्रतीर्थञ्चतत्रैव विष्णुनानिर्मितंस्वयम्॥ ५॥ तत्रस्नात्वानरोदेवि ब्रह्महत्यांव्यपोहति॥ नृणामुद्धरणार्थाय अस्मिन्रौद्रेकलौयुगे॥ ६॥ यदादैत्यविनाशंस कुरुतेभगवान्हरिः॥ विश्रामार्थंतदातत्र गृहेतिष्ठतिनित्यशः॥ ७॥ नारायणगृहंतत्र विख्यातंजगतीतले॥ कृतेजनार्दनोनाम त्रेतायांमधुसूदनः॥ ८॥ द्वापरेपुण्डरीकाक्षः कलौनारायणःस्मृतः॥ एवंचतुर्युगेप्राप्ते पुनःपुनररिन्दमः॥ ९॥ कृत्वाधर्मव्यवस्थानं तत्स्थानंप्रतिपद्यते॥ एकादश्यांनिराहारो यस्तन्देवंप्रपश्यति॥ १०॥ सपश्यतिध्रुवंस्थानं प्रेत्यानन्दं

और वहींपर सरस्वती के पश्चिम में आपही विष्णुजी से गोपियों के जल से पूरित चक्रतीर्थ निर्माण किया गया है॥ ५॥ हे देवि! उसमें नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाश करता है मनुष्यों के उधारने के लिये इस भयङ्कर कलियुग में॥ ६॥ जब वे विष्णुभगवान् दैत्यों का विनाश करते हैं तब विश्राम (सहताने) के लिये सदैव उस घरमें स्थित होते हैं॥ ७॥ वह नारायणगृह उस पृथ्वी में प्रसिद्ध है सतयुग में जनार्दननामक व त्रेता में मधुसूदन॥ ८॥ तथा द्वापर में पुण्डरीकाक्ष व कलियुग में नारायण कहे गये हैं इसप्रकार चतुर्युग प्राप्त होने पर बार २ शत्रुनाशक विष्णुजी॥ ९॥ धर्म को थापकर उस स्थान में प्राप्त होते हैं एकादशी तिथि

में निराहार होकर जो मनुष्य उन विष्णुदेवजी को देखता है ॥ १० ॥ वह मरकर विष्णुजी के आनन्दमय स्थान को निश्चयकर देखताहै उस कारण द्विजोत्तम के लिये पीतवस्त्रों को देना चाहिये ॥ ११ ॥ व भलीभांति यात्राके फलको चाहनेवाले पुरुषों को स्नान व श्राद्ध करना चाहिये ॥ १२ ॥ विष्णुजी के संकेतस्थान से उपजा हुआ यह महाप्रभाववाला चरित्र तुम से कहागया जो विद्वान् पुरुष इसको सुनता या पढ़ताहै वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांन्यङ्कुमतीमाहात्म्येनारायणगृहमाहात्म्यंनामसप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९७ ॥ ❁ ॥

हरेःपदम् ॥ तेनपीतानिवस्त्राणि देयानिद्विजपुङ्गवे ॥ ११ ॥ स्नानंश्राद्धञ्चकर्तव्यं सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ १२ ॥ इतितेकथितंमहाप्रभावं हरिसङ्केतनिकेतनोद्भवम् ॥ शृणुतेप्रयतस्तुयस्सुधीरः पठतेवालभतेससद्गतिम् ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेन्यङ्कुमतीमाहात्म्येनारायणगृहमाहात्म्यन्नामसप्तनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९७ ॥

ईश्वर उवाच ॥ न्यङ्कुमत्यास्तटेरम्ये कुबेरनगरंवरम् ॥ चतुस्सीमासुपर्यन्तं पद्मरागविभूषितम् ॥ १ ॥ तस्मादाग्नेयदिग्भागे कोटीशंसर्वकामदम् ॥ ईशानेचमहादेवि सर्वपातकनाशनम् ॥ २ ॥ कुबेरात्पूर्वदिग्भागे बालार्कपापनाशनम् ॥ तत्रकुण्डेनरस्स्नात्वा ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ३ ॥ बालार्केश्वरनामेति पूर्वभागेव्यवस्थितम् ॥ उत्तरेचाम्बिकास्थानं गयाक्षेत्रेणसंयुतम् ॥ ४ ॥ तयोर्दर्शनमात्रेण वाजपेयफलंलभेत् ॥ कुबेरात्परितोदेवि तीर्थानांदशकोटयः ॥ ५ ॥

दो० । अहै कुबेरहु नगरकी महिमा अतिहि अपार । दोसौ अट्ठानबे में सोइ चरित विस्तार ॥ महादेवजी बोले कि न्यंकुमती के सुन्दर किनारे पै उत्तम कुबेर नगर है वह चारों सीमाओं पर्यन्त पद्मराग से भूषित है ॥ १ ॥ उससे आग्नेय दिशा के भाग में सब कामनाओं को देनेवाला कोटीशलिंग है व हे महादेवि ! ईशान में सब पातकों को नाशनेवाला लिंग है ॥ २ ॥ और कुबेर से पूर्व दिशा के भाग में पापनाशक बालार्केश्वरजी के समीप जावै वहां कुण्ड में नहाकर मनुष्य ब्रह्महत्या को नाशता है ॥ ३ ॥ पूर्व भाग में बालार्केश्वरनामक स्थित हैं व उत्तर में गयाक्षेत्र से संयुत अम्बिकास्थान है ॥ ४ ॥ उन दोनों के दर्शनही से मनुष्य वाजपेययज्ञ

के फल को पाता है हे देवि ! कुबेर से सब ओर दशकरोड़ तीर्थ हैं ॥ ५ ॥ व हे देवि ! नारायणगृह से पचीस धनुषपर महाबलवान् बालादित्यजी को देखै ॥ ६ ॥ व करंजाभिधसंज्ञक को देखै कि जिसने स्वर्ग को जीता है और वहां नव करोड़ देवियों से संयुत महादेवीजी स्थित हैं ॥ ७ ॥ और कुबेरनगर में जो सैकड़ों तीर्थ व लिंग स्थित हैं उन के दर्शनही से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकुबेरनगरमाहात्म्यंनामाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥ ● ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

नारायणगृहाद्देवि धनुषांपञ्चविंशतिम् ॥ उत्तरेसंस्थितंपश्येद्बालादित्यंमहाबलम् ॥ ६ ॥ करञ्जाभिधसंज्ञञ्च जितंयेनत्रिविष्टपम् ॥ तत्रस्थितामहादेवी संवृतानवकोटिभिः ॥ ७ ॥ कुबेरेसन्तिशतशस्तीर्थलिङ्गानियानिच ॥ तेषांदर्शनमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकुबेरनगरमाहात्म्यन्नामाष्टनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देविकातटसंस्थितम् ॥ जालेश्वरेतिविख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ १ ॥ मन्वन्तरेचाक्षुषेच सम्प्राप्तेद्वापरेयुगे ॥ नाम्नाजालेश्वरंलिङ्गं देविकातटसंस्थितम् ॥ २ ॥ पूज्यतेनागकन्याभिर्नतत्पश्यन्तिमानवाः ॥ महातेजोमणिमयंचन्द्रबिम्बसमप्रभम् ॥ ३ ॥ स्मरणात्तस्यदेवस्य ब्रह्महत्याप्रणश्यति ॥ ४ ॥ देव्युवाच ॥ कथंजालेश्वरन्नाम कस्मिन्कालेबभूवतत ॥ साधुभिस्सहसंवासात केगुणाःपरिकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥ केलोकाःका

दो॰ । जालेश्वर इमि लिंग जिमि भयो भूमि विख्यात । दोसौ निन्नानबेमहँ सोइ चरित प्रख्यात ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर देवताओं व दैत्यों से नमस्कार कियेहुये देविका नदी के किनारे स्थित जालेश्वर ऐसे प्रसिद्ध लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ चाक्षुष मन्वन्तर में द्वापर युग प्राप्त होने पर देविका के किनारे स्थित नाम से जालेश्वर लिंग ॥ २ ॥ नागकन्याओं से पूजा जाता है महातेजस्वी व मणिमय तथा चन्द्रबिम्ब के समान प्रभावाले उस लिंगको मनुष्य नहीं देखते हैं ॥ ३ ॥ उन शिवदेवजी के स्मरण से ब्रह्महत्या नाश होजाती है ॥ ४ ॥ देवीजी बोलीं कि कैसे जालेश्वर नाम हुआ व किस समय वह हुआहै और

साधुवोंके साथ बसनेसे कौन गुण कहेगये हैं ॥५॥ और कौन लोक व कौन पुण्य होतेहैं हे प्रभो! उस सबको मुझसे कहिये ॥६॥ महादेवजी बोले कि इसीविषयमें आपस्तम्ब तपस्वी व नाभाग के संवादरूपी प्राचीन इतिहास को विद्वान् कहते हैं॥ ७ ॥ पुरातन समय ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वबुद्धिमान् आपस्तम्ब महर्षि हुये हैं उनका जलवास प्रारम्भ हुआ व जलाशय में बसताहुआ वह॥ ८ ॥ हे प्रिये! शिवको भलीभांति जानकर सुन्दर प्रभासक्षेत्र में बसताभया उससमय वहां उत्तम ध्यान योग से स्थाणुभूत टिके व बसतेहुये उनका बहुत समय व्यतीत हुआ तदनन्तर किसीसमय मछलियों से जीविका करनेवाले (निषाद) उस स्थान को आकर ॥ ९ । १० ॥ बड़े

निपुण्यानि तत्सर्वंशंसमेप्रभो ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासंपुरातनम् ॥ नाभागस्यचसंवादमापस्तम्बतपोनिधेः ॥ ७ ॥ महर्षिरात्मवान्पूर्वमापस्तम्बोद्विजाग्रणीः ॥ उदवासस्तदारम्भो विवसन्सलिलाशये ॥ ८॥ क्षेत्रेप्राभासिकेरम्ये सम्यग्ज्ञात्वाशिवम्प्रिये ॥ तत्रास्यवसतःकालस्समतीतोमहांस्तदा ॥ ९ ॥ परेणध्यानयोगेन स्थाणुभूतस्यतिष्ठतः ॥ ततःकदाचिदागत्य तन्देशंमत्स्यजीविनः ॥ १० ॥ प्रसार्यसुमहज्जालं सर्ववाकर्षयन्बलात् ॥ अथतेतुमहात्मानं निषादाबलदर्पिताः ॥ ११ ॥ तस्मादुत्तारयामासुः सलिलाद्ब्रह्मनन्दनम् ॥ तन्दृष्ट्वातपसादीप्तं कैवर्त्ताभयविह्वलाः ॥ १२ ॥ शिरोभिःप्रणिपत्योच्चैरिदंवचनमब्रुवन् ॥ निषादाऊचुः ॥ अज्ञानकृतपापानामस्माकंक्षन्तुमर्हसि ॥ १३ ॥ किञ्चकार्यंप्रियंतेद्य तदाज्ञापयसुव्रत ॥ समुनिस्तन्महद्दृष्ट्वा अज्ञानात्कदनंकृतम् ॥ १४॥ क्षमयापरयाविष्टोदाशान्प्रोवाचदुःखितः ॥ किन्तुमेस्यादुपायोहिमोहात्स्वार्थवशंस्थितः ॥ १५ ॥ ज्ञानिनामपियच्चेतः केवला

भारी जालको फैलाकर सब को बल से खींच लिया इसके अनन्तर बलसे गर्वित निषादों ने महात्मा ॥ ११ ॥ व ब्रह्मपुत्र आपस्तंबको उस जलसे ऊपर निकाला और तपस्या से प्रकाशित उन आपस्तंब को देखकर भयसे विकल केवटों ने ॥ १२ ॥ मस्तकों से प्रणामकर उच्च प्रकार से यह वचन कहा निषाद बोले कि अज्ञान से किये पापवाले हमलोगों के ऊपर क्षमा करनेयोग्य हो ॥ १३ ॥ व हे सुव्रत! इससमय तुम्हारा क्या प्रिय करना चाहिये उसको आज्ञा दीजिये अज्ञानसे बड़ेभारी कियेहुये पीडनको देखकर वे मुनि ॥ १४ ॥ बड़ी क्षमासे युक्त व दुःखी होकर निषादों से बोले कि मोह से स्वार्थ के वशमें स्थित मेरा कौन उपावहै ॥ १५ ॥ यदि ज्ञानियोंका भी चित्त केवल

अपनेही लिये रत होवै और यदि ज्ञानीभी स्वार्थ में आश्रित होकर ध्यान में स्थित होवैं ॥ १६ ॥ तो इस संसारमें दुःख से विकल प्राणी कहां सुखको प्राप्त होवैंगे और जो पुरुष केवल दुःख भोगने के लिये चाहता है ॥ १७ ॥ उसको मोक्षके चाहनेवाले पुरुष पापी से भी अधिक पापी कहते हैं परन्तु मेरा यह उपायहै कि जिससे मैं दुःखित-चित्तवाले ॥ १८ ॥ प्राणियों के भीतर पैठकर सबों के दुःख का भागी होऊं मेरा जो कुछ कल्याण होवै वह दुःखियों के समीप प्राप्तहोवै ॥ १९ ॥ और उनसे जो पाप कियागयाहो वह सब मुझको प्राप्तहोवै अन्ध, कृपण, व्यंग अनाथ व रोगी पुरुषों को देखकर ॥ २० ॥ जिसके दया नहीं होती है वह राक्षसहै ऐसी मेरी बुद्धि

त्मकृतेरतम् ॥ ज्ञानिनोपियदास्वार्थमाश्रित्यध्यानमास्थिताः ॥ १६ ॥ दुःखार्तानीहसत्त्वानि कयास्यन्तिसुखन्ततः ॥
योभिवाञ्छतिभोक्तुंवै दुःखान्येकान्ततोजनः ॥ १७ ॥ पापात्पापतरंतंहि प्रवदन्तिमुमुक्षवः ॥ किन्तुमेस्यादुपायोहि
येनाहंदुःखितात्मनाम् ॥ १८ ॥ अन्तःप्रविष्टःसत्त्वानां भवेयंसर्वदुःखभाक् ॥ यन्ममास्तिशुभंकिञ्चित्तद्दीनानुपग
च्छतु ॥ १९ ॥ यत्कृतंदुष्कृतन्तैस्तु तदशेषमुपैतुमाम् ॥ दृष्ट्वान्धान्कृपणान्व्यङ्गाननाथान्रोगिणस्तथा ॥ २० ॥
दयानजायतेयस्य सरक्षइतिमेमतिः ॥ प्राणसंशयमापन्नान् प्राणिनोभयविह्वलान् ॥ २१ ॥ योनरक्षतिशक्तोपि सपा
पंसमुपाश्नुते ॥ आहुर्जनानामार्त्तानां सुखंयदुपजायते ॥ २२ ॥ तस्यस्वर्गोपवर्गोपि कलान्नार्हतिषोडशीम् ॥ तस्मा
देतानहन्दीनांस्त्यक्त्वाभीतान्सुदुःखितान् ॥ २३ ॥ पदमात्रंनयास्यामि किम्पुनस्त्रिदशालयम् ॥ ईश्वर उवाच ॥
निशम्यतदृषेर्वाक्यं दाशास्तेजातसम्भ्रमाः ॥ २४ ॥ यथावृत्तन्तुतत्सर्वं नाभागायन्यवेदयन् ॥ नाभागोपिचतच्छ्रुत्वा

है प्राण के संशय में प्राप्त व भय से विकल प्राणियों की ॥ २१ ॥ जो समर्थ भी रक्षा नहीं करता है वह पाप को भोगता है ऐसा विद्वान् कहते हैं कि दुःखी प्राणियोंको जो सुखहोता है ॥ २२ ॥ उसके सोलहवें अंश को भीस्वर्ग व मोक्ष नहीं योग्य होताहै इस लिये डरेहुये व दुःखित इन जन्तुओं को छोड़कर मैं ॥ २३ ॥ पगभर न जाऊंगा फिर स्वर्ग को क्या कहना है महादेवजी बोले कि ऋषि के उस वचन को सुनकर संभ्रमयुक्त होकर केवटों ने ॥ २४ ॥ जैसा वृत्तान्त था उस सब

को नाभाग से कहा और नाभाग भी उसको सुनकर उन ब्रह्मपुत्र को देखने के लिये ॥ २५ ॥ शीघ्रतासंयुत होकर मंत्रियोंसमेत व पुरोहितोंसमेत वहां गये और देवताओं के समान उन मुनिको भलीभांति पूजकर वे राजा ॥ २६ ॥ बोले कि हे भगवन् ! कहिये मैं तुम्हारी आज्ञा से क्या करूं आपस्तंब बोले कि बड़ेपरिश्रम से युक्त व दुःख से जीविका करनेवाले केवटों को ॥ २७ ॥ हे राजन् ! जो योग्य मानते हो उस परिश्रम के मूल्य को दीजिये नाभाग बोले कि मैं निषादों के लिये सौ हज़ार मूल्य दूंगा ॥ २८ ॥ आपस्तंब बोले कि हे राजन् ! सौ हजारों से मैं तुम से नहीं निग्रह करने योग्य हूं इसके समान मूल्य दीजिये और मंत्रियोंसमेत चिन्तवन

तन्द्रष्टुंब्रह्मनन्दनम् ॥ २५ ॥ त्वरितःप्रययौतत्र सामात्यस्सपुरोहितः ॥ ससम्यक्पूजयित्वातं देवकल्पंमुनिन्नृपः ॥ २६ ॥ प्रोवाचभगवान्ब्रूहि किङ्करोमितवाज्ञया ॥ आपस्तम्बउवाच ॥ श्रमेणमहताविष्टान् कैवर्त्तान्दुःखजीविनः ॥ २७ ॥ श्रममौल्यंप्रयच्छेति यद्योग्यंमन्यसेनृप ॥ नाभाग उवाच ॥ सहस्राणांशतंमूल्यं निषादेभ्योददाम्यहम् ॥ २८ ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ नाहंशतसहस्रेश्च नियम्यःपार्थिवत्वया ॥ सदृशन्दीयतांमौल्यममात्यैस्सहचिन्तय ॥ २९ ॥ नाभाग उवाच ॥ कोटिःप्रदीयतांमूल्यं निषादेभ्योद्विजोत्तम ॥ यद्येतदपिनोमूल्यं ततोभूयःप्रदीयते ॥ ३० ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ राजन्नार्हाम्यहंकोटिमधिकंवापिपार्थिव ॥ सदृशंदीयताम्मूल्यं ब्राह्मणैस्सहचिन्तय ॥ ३१ ॥ नाभाग उवाच ॥ अर्द्धराज्यंसमस्तञ्च निषादेभ्यःप्रदीयताम् ॥ एतन्मूल्यमहंमन्ये किन्चान्यन्मन्यसेद्विज ॥ ३२ ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ अर्द्धराज्यंसमस्तंवा नाहमर्हामिपार्थिव ॥ सदृशंदीयताम्मौल्यमृषिभिस्सहचिन्तय ॥ ३३ ॥ महर्षेस्तद्वचः

कीजिये ॥ २९ ॥ नाभाग बोले कि हे द्विजोत्तम ! निषादों के लिये कोटि मूल्य दिया जावै और यदि यह भी न मूल्य होवै तो फिर दियाजायगा ॥ ३० ॥ आपस्तंब बोले कि हे राजन् ! मैं करोड़ व अधिक के भी योग्य नहीं हूं किन्तु समान मूल्य दियाजावै इसको ब्राह्मणोंसमेत विचार कीजिये ॥ ३१ ॥ नाभाग बोले कि आधा राज्य व सब राज्य निषादों के लिये दियाजावे मैं इसको मूल्य मानता हूं व हे ब्राह्मण ! तुम क्या अन्य मानते हो ॥ ३२ ॥ आपस्तंब बोले कि हे राजन् ! मैं आधे राज्य व समस्त राज्य के नहीं योग्य हूं समान मूल्य दियाजावै इसको ऋषियोंसमेत विचार कीजिये ॥ ३३ ॥ महर्षि के उस वचन को सुनकर विषाद करतेहुये

नाभागने मंत्रियोंसमेत व पुरोहितसमेत दुःखसे विकल होकर चिन्तन किया ॥ ३४ ॥ तदनन्तर बड़े तपस्वी कोई लोमश ऋषिने वहां नाभाग से कहा कि मत डरिये मैं उनको प्रसन्न कराऊंगा ॥ ३५ ॥ नाभाग बोले कि हे महाभाग ! इस महात्माके मूल्यको कहिये और कुटुम्बी, कुल व बन्धुओंसमेत मुझको इससे रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ भगवान् शिवजी चराचरसमेत त्रिलोक को जलासक्ते हैं फिर अत्यन्त विषय चित्तवाले हीन मनुष्यको क्या कहनाहै ॥ ३७ ॥ लोमशजी बोले कि हे महाराज ! तुम स्तुति करनेयोग्यहो व द्विजोत्तम संसारसे पूजनेयोग्यहै और गौवैं दिव्य होती हैं इसकारण इनके लिये उत्तम गऊ मूल्य दियाजावै ॥ ३८ ॥ उस वचनको सुनकर

श्रुत्वा नाभागस्सविषादयन् ॥ चिन्तयामासदुःखार्तस्सामात्यस्सपुरोहितः ॥ ३४ ॥ ततःकश्चिदृषिस्तत्र लोमशस्तुम हातपाः ॥ नाभागमब्रवीन्माभैस्तोषयिष्याम्यहम्मुनिम् ॥ ॥ ३५ ॥ नाभाग उवाच ॥ ब्रूहिमूल्यंमहाभाग मुनेरस्यम हात्मनः ॥ परित्रायस्वमामस्मात्सज्ञातिकुलबान्धवम् ॥ ३६ ॥ निर्दहेद्भगवान्रुद्रस्त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ किम्पुनर्मानु षंहीनमत्यन्तविषयात्मकम् ॥ ३७ ॥ लोमश उवाच ॥ त्वमीड्योहिमहाराज जगत्पूज्योद्विजोत्तमः ॥ गावश्चदिव्यास्त स्माद्गौर्मूल्यमस्मैप्रदीयताम् ॥ ३८ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंराजासामात्यस्सपुरोहितः ॥ हर्षेणमहताविष्टः प्रोवाचेदंवचोमु निम् ॥ ३९ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभगवन् क्रीतएवनसंशयः ॥ एतद्योग्यतमंमूल्यं भवतोमुनिसत्तम ॥ ४० ॥ आपस्तम्ब उ वाच ॥ उत्तिष्ठाम्येषसुप्रीतस्सम्यक्क्रीतोस्मिपार्थिव ॥ गोभ्यांमूल्यन्नपश्यामि पवित्रंपरमंशुचि ॥ ४१ ॥ गावःप्रदक्षि णीकार्याः पूजनीयाश्चनित्यशः ॥ मङ्गलायतनंदिव्यास्सृष्टाह्येतास्स्वयम्भुवा ॥ ४२ ॥ स्थानागाराणिविप्राणां देवता

मंत्रियोंसमेत व पुरोहितसमेत राजा बड़े हर्षसे संयुत हुये और मुनिसे यह वचन बोले ॥ ३९ ॥ कि हे भगवन् उठिये उठिये मोललेलिये गये हो इसमें सन्देह नहीं है हे मुनिश्रेष्ठ ! यह मूल्य आपके बहुतही योग्य है ॥ ४० ॥ आपस्तम्ब बोले कि हे राजन् ! बहुतही प्रसन्न होकर मैं शीघ्रही उठताहूं और मैं भलीभांति मोल लिया गया क्योंकि गौवोंसे पवित्र परमशुचि मूल्यको मैं नहीं देखताहूं ॥ ४१ ॥ गौवोंकी नित्य प्रदक्षिणा करना चाहिये व पूजना चाहिये क्योंकि ये दिव्य गौवैं ब्रह्माजीसे

मङ्गलस्थान रचीगई हैं ॥ ४२ ॥ जिसके गोमय से ब्राह्मणों के घर व देवमन्दिर पवित्र होतेहैं उससे अधिक क्या हुआहै ॥ ४३ ॥ गोमूत्र, गोमय व गौवोंका दूध, दही व घी ये पांचो पवित्र वस्तुवें सब संसारको पवित्र करती हैं ॥ ४४ ॥ मेरे आगे सदैव गौवैं होवैं पीछे गौवैं होवैं और मेरे हृदयमें गौवैं स्थितहैं व गौवोंके मध्यमें मैं बसताहूं ॥ ४५ ॥ ऐसे पवित्रमन्त्रको जपताहुआ नियत व पवित्र पुरुष सब पापोंसे छूट जाताहै और वह स्वर्गलोकको जाताहै ॥ ४६ ॥ प्रति दिन गवाह्निक पर गौवैं करना चाहिये क्योंकि गौवोंको न देकर आपही भोजन करता हुआ पुरुष दुर्गतिको पाताहै ॥ ४७ ॥ उसने भलीभांति अग्नियोंमें हवन किया और पितरों को तृप्त किया व उसने देवताओं को पूजन किया कि जो गौवोंको भोजन देता है ॥ ४८ ॥ अब मन्त्र कहते हैं कि संसार के पूजनेयोग्य गऊ देवी विष्णुपद पै स्थित है यह सब मुझसे दियागया और मुझसे दियेहुये अन्नको गऊ ग्रहण करै ॥ ४९ ॥ मेरे पुत्रोंकी रक्षासे व गौवों के खुजलाने से और क्षीण व दुःखीकी रक्षा करने से मनुष्य स्वर्गलोक में पूजाजाताहै ॥ ५० ॥ पहले व बाहर और मध्य व अन्तमें गौवैं कही गईहैं और वे गौवैं देवताओं की सदा रक्षा करती हैं क्योंकि उनका दूध व घी अमृत है ॥ ५१ ॥ इसलिये सदैव गौवों को देना चाहिये व पूजना चाहिये क्योंकि स्वर्गके मिलनेके लिये ये गौवैं सीढ़ीकी नाईं बनाईगई हैं ॥ ५२ ॥ गौवों के इस उत्तम

यतनानिच ॥ यद्गोमयेनशुध्यन्ति किम्भूतमधिकन्ततः ॥ ४३ ॥ गोमूत्रंगोमयंक्षीरं दधिसर्पिस्तथैवच ॥ गवांपञ्च पवित्राणि पुनन्तिसकलंजगत् ॥ ४४ ॥ गावोममाग्रतोनित्यं गावःपृष्ठतएवच ॥ गावोमेहृदयेचैव गवांमध्येवसाम्य हम् ॥ ४५ ॥ एवंजपन्नरोमन्त्रं विशुद्धंनियतश्शुचिः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकंसगच्छति ॥ ४६ ॥ गवाह्निकप रागावः कर्त्तव्याभक्तितोन्वहम् ॥ अदत्त्वास्वयमाहारं कुर्वन्नाप्नोतिदुर्गतिम् ॥ ४७ ॥ तेनाग्नयोहुतास्सम्यक् पितरश्चा पितर्पिताः ॥ देवाश्चपूजितास्तेन योददातिगवाह्निकम् ॥ ४८ ॥ अथ मन्त्रः ॥ सौरभेयीजगत्पूज्या देवीविष्णुपदेस्थि ता ॥ सर्वमेतन्मयादत्तं मयादत्तंप्रतीच्छतु ॥ ४९ ॥ रक्षणान्ममपुत्राणांगवांकण्डूयनैस्तथा ॥ क्षीणार्त्तरक्षणाच्चैव नरः स्वर्गेमहीयते ॥ ५० ॥ आदौगावोबहिश्चापि मध्येचान्तेप्रकीर्त्तिताः ॥ रक्षन्तितास्तुदेवानां क्षीराज्यममृतंसदा ॥ ५१ ॥ तस्माद्गावःप्रदातव्याः पूजनीयाश्चनित्यशः ॥ स्वर्गस्यसङ्गमायैताः सोपानमिवनिर्मिताः ॥ ५२ ॥ एतच्छ्रुत्वा

माहात्म्यको सुनकर वे निषाद प्रणामकर इसके उपरान्त आपस्तम्ब महात्मासे बोले ॥ ५३॥ निषाद बोले कि साधुओं का सम्भाषण,दर्शन,स्पर्शन,कीर्तन व स्मरण ये पवित्र-कारक हैं ऐसा सुनागयाहै ॥ ५४ ॥ हमलोगों ने तुम्हारे साथ सम्भाषण व दर्शन किया इसलिये दया कीजिये व इस गऊको ग्रहण कीजिये ॥ ५५ ॥ आपस्तम्ब बोले कि हे निषादो ! मैं इसीसमय तुमलोगों की इस गऊको लेताहूं और पातकोंसे रहित तुमलोग जलसे निकालीहुई मछलियोंसमेत स्वर्गको जाओ ॥ ५६॥ यदि निन्दित भी कर्मसे प्राणियों की प्रीतिको उत्पन्नकर मैं नरकको प्राप्तहूंगा तो उसको स्वर्गही देखताहूं ॥ ५७ ॥ मैंने मन, वचन व शरीर के कर्मसे जिस किसी पुण्यको किया

निषादास्ते गवांमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ प्रणिपत्यमहात्मानमापस्तम्बमथाब्रुवन् ॥ ५३ ॥ निषादाऊचुः ॥ सम्भाषादर्शनंस्पर्शः कीर्त्तनंस्मरणंतथा ॥ पावनानिकिलैतानि साधूनामितिचश्रुतम् ॥ ५४ ॥ सम्भाषादर्शनंचैव सहास्माभिःकृतंत्वया ॥ कुरुष्वानुग्रहंतस्माद्गोरिसम्प्रतिगृह्यताम् ॥ ५५ ॥ आपस्तम्ब उवाच ॥ एषवःप्रतिगृह्णामि गामिमांमुक्तकिल्बिषाः ॥ निषादागच्छतस्वर्गं सहमत्स्यैर्जलोद्धृतैः ॥ ५६ ॥ प्राणिनांप्रीतिमुत्पाद्य निन्दितेनापिकर्मणा ॥ नरकंयदि प्राप्स्यामि पश्यामिस्वर्गमेवतत् ॥ ५७ ॥ यन्मयासुकृतंकिञ्चिन्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ कृतन्तेनैवदुःखार्तास्सर्वेयान्तु शुभांगतिम् ॥ ५८ ॥ ततस्तस्यप्रसादेन महर्षेर्भावितात्मनः ॥ निषादास्तेनवाक्येन सहमत्स्यैर्दिवङ्गताः ॥ ५९ ॥ तान्दृष्ट्वास्वर्गिणस्सर्वान् समत्स्यामत्स्यजीविनः ॥ सामात्यभृत्योनृपतिर्विस्मयादिदमब्रवीत् ॥ ६० ॥ सेव्याःश्रेयोर्थिभिस्सन्तः पुण्यतीर्थजलोपमाः ॥ क्षणोपासनमप्यत्र नयेषांनिष्फलंभवेत् ॥ ६१ ॥ सद्भिस्सहासनंकार्यं सद्भिःकुर्वीतसत्क

है उससे दुःख से विकल सब प्राणी उत्तमगति को प्राप्त होवैं ॥ ५८ ॥ तदनन्तर शुद्ध चित्तवाले उन महर्षि के प्रसाद से केवट उस वचन से मछलियोंसमेत स्वर्ग को चलेगये ॥ ५९ ॥ मछलियोंसमेत उन सब मत्स्यजीवी (केवटों) को स्वर्गी देखकर मन्त्रियों व नौकरोंसमेत राजाने आश्चर्य से यह कहा ॥ ६० ॥ कि पवित्र तीर्थजल की उपमावाले सन्त कल्याणको चाहनेवाले पुरुषों से सेवनेयोग्यहैं क्योंकि इस संसारमें जिनका क्षणभर भी उपासन निष्फल नहीं होताहै ॥ ६१ ॥ सन्तों

के साथ बैठना चाहिये व सन्तोंके साथ उत्तम कथाकरै और सज्जनकी सभामें वर्तमान होनेपर वर्तमान होवै व असज्जनोंके साथ कुछ न करैं॥ ६२ ॥ क्योंकि सज्जनों के समागमही से मछलियोंसमेत मत्स्यजीवी (निषाद) पुण्यकारी पुरुषों की नाईं स्वर्गको प्राप्तहुये ॥ ६३ ॥ वहा आपस्तम्ब मुनि व लोमश महामुनि ने उन राजा को अनेक प्रकारके प्रिय वरदानोंसे इच्छा कराया ॥६४॥ तदनन्तर उन्होंने अति दुर्लभ धर्मबुद्धिको किया व वैसाही होगा यह कहनेपर उन्होंने राजाकी प्रशंसा किया ॥ ६५ ॥ कि हे नृपेन्द्र ! धन्य हो जोकि तुम्हारी बुद्धि धर्म में लगी है क्योंकि पुरुषों को धर्म दुर्लभहै और राजाओं को विशेषकर दुर्लभ है ॥ ६६ ॥ यदि मदसे संयुत

थाम् ॥ सभांवृत्तेनवर्त्तेत नासद्भिःकिञ्चिदाचरेत् ॥ ६२ ॥ सतांसमागमादेव समत्स्यामत्स्यजीविनः ॥ त्रिविष्टपमनुप्राप्ता नराःपुण्यकृतोयथा ॥ ६३ ॥ आपस्तम्बोमुनिस्तत्र लोमशश्चमहामुनिः ॥ वरैस्तंविविधैरिष्टैश्छन्दयामासभूमिपम् ॥ ६४ ॥ ततस्सकारयामास धर्मबुद्धिंसुदुर्लभाम् ॥ तथेतिचोक्तेवैप्रीत्या तन्नृपंप्रशशंसतुः ॥ ६५ ॥ अहोधन्योसिराजेन्द्र यत्तेधर्मपरामतिः ॥ धर्मस्सुदुर्लभःपुंसां विशेषेणमहीक्षिताम् ॥ ६६ ॥ यदिराजामदाविष्टः स्वधर्मन्नपरित्यजेत् ॥ ततोजगतिकस्तस्मात्पुमान्योभ्यधिकोभवेत् ॥ ६७ ॥ ध्रुवंजन्मसदाराज्ञां मोहश्चापिसदाध्रुवः ॥ मोहाद्ध्रुवञ्चनरको राज्यंनिन्दन्तिधीयुताः ॥ ६८ ॥ राज्यंहिबहुमन्यन्ते नराविषयलोलुपाः ॥ मनीषिणस्तुपश्यन्ति तदेवनरकोपमम् ॥६९॥ तस्माल्लोकद्वयध्वंसो नकर्त्तव्योमदस्तथा ॥ यदीच्छसिमहाराज शाश्वतीङ्गतिमात्मनः ॥७०॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वातौमहात्मानौ जग्मतुस्स्वंस्वमाश्रमम् ॥ नाभागोपिवरंलब्ध्वा प्रहृष्टःप्राविशत्पुरम् ॥ ७१ ॥ एत

राजा अपने धर्मको न छोड़ै तो संसारमें कौन पुरुष है जोकि उससे अधिक होवै ॥ ६७ ॥ निश्चयकर सदैव राजाओं का जन्म होता है और मोह भी सदैव अचल होताहै और मोहसे निश्चयकर नरक होताहै इस कारण बुद्धिसंयुत पुरुष राज्यकी निन्दा करते हैं ॥ ६८ ॥ और विषयों के लोभी पुरुष राज्यको बहुत मानते हैं व विद्वान् उसीको नरकके समान देखते हैं ॥ ६९ ॥ इस कारण हे महाराज ! यदि अपनी सनातनी गतिको चाहते हो तो दोनों लोकों को नाश करनेवाला मद न करना चाहिये ॥ ७० ॥ महादेवजी बोले कि ऐसा कहकर वे महात्मा अपने अपने आश्रमको चलेगये और नाभागभी वरदानको पाकर प्रसन्न होकर नगरमें पैठे ॥ ७१ ॥

हे देवि ! देविकानदीसे उपजाहुआ यह माहात्म्य तुमसे कहागया ऋषिने भी जालेश्वर ऐसे लिङ्गको थापन किया ॥ ७२ ॥ जिसलिये मुनीश्वर आपस्तम्बजी जालमें गिरे हैं उसी कारण पृथ्वीमें जालेश्वर ऐसे नामक ये शिवजी प्रसिद्ध हुये ॥ ७३ ॥ हे महादेवि ! उसमें नहाकर जालेश्वर के पूजनसे आपस्तम्ब नाभाग व मछलियों से जीविका करनेवाले निषाद ॥ ७४ ॥ मछलियोंसमेत देविका के प्रभावसे स्वर्ग को चलेगये चैत महीने के शुक्लपक्ष में तेरसि तिथिको ॥ ७५ ॥ पितरों के लिये जो पिण्ड देवै उसका अन्त नहीं विद्यमानहै और वहां वेदों के पारगामी ब्राह्मण के लिये गोदान देना चाहिये ॥ ७६ ॥ और माहात्म्य सुनना चाहिये और जालकेश्वरको

तेकथितन्देवि प्रभावंदेविकोद्भवम् ॥ ऋषिणास्थापितञ्चापि लिङ्गंजालेश्वरेतिच ॥ ७२ ॥ जालेनिपतितोयस्मादाप स्तम्बोमुनीश्वरः ॥ जालेश्वरेतिनामासौ विख्यातःपृथिवीतले ॥ ७३ ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि जालेश्वरसमर्चनात् ॥ आपस्तम्बश्चनाभागो निषादामत्स्यजीविनः ॥ ७४ ॥ मत्स्यैस्सहगताःस्वर्गं देविकायाःप्रभावतः ॥ चैत्रस्यैवतुमासस्य शुक्लपक्षेत्रयोदशीम् ॥ ७५ ॥ दद्यात्पिण्डंपितृभ्योयत्तस्यान्तोनहिविद्यते ॥ गोदानंतत्रदेयन्तु ब्राह्मणेवेदपारगे ॥७६॥ श्रोतव्यञ्चैवमाहात्म्यं द्रष्टव्योजालकेश्वरः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे जालेश्वरमाहात्म्यन्नामनवन वत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कूपंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ देविकायास्तटेरम्ये हुङ्कारेणैवपूर्य्यत ॥ १ ॥ ततोध स्तात्पुनर्याति सलिलंतत्रभामिनि ॥ तुण्डीनामपुराप्रोक्तो देविकातटमाश्रितः ॥ २ ॥ तपस्तेपेमहादेवि शिवभक्तिपरा

देखना चाहिये ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजालेश्वरमाहात्म्यंनामनवनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २९९ ॥

दो० । जिमि मुनिके हुंकार से भयो पूर्ण यककूप । सोइ तीनसौ सर्गमें कह्यो चरित्र अनूप ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर त्रिलोकमें प्रसिद्ध कूपके समीप जावै देविका के सुन्दर किनारे पै वह हुङ्कारही से पूर्ण होताहै ॥ १ ॥ तदनन्तर हे भामिनि ! फिर वहां जल नीचे चलाजाता है पुरातन समय देविका के

किनारे टिकेहुये तुण्डीनामक महर्षि कहेगये हैं ॥ २ ॥ हे महादेवि ! शिवजीकी भक्तिमें परायण उन्होंने तप कियाहै हे वरानने ! उस स्थानमें उसको इस प्रकार तप करतेहुये ॥ ३ ॥ हे वरानने ! बँधाहुआ मृग उस स्थानको आया और वह जलसंयुत व गहरे बड़ेभारी गढ़ेमें गिरपडा ॥ ४ ॥ उसको देखकर तपस्या में स्थित मुनि दयासे संयुत हुये और हे भामिनि ! वे वहां बार २ हुङ्कार करनेलगे ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर उनके हुङ्कारशब्द से गढ़ापूर्ण होगया तदनन्तर उस समय वह मृग क्लेशसे जलसे निकला ॥ ६ ॥ और मनुष्य के रूपमें स्थित होकर उससे बड़े विस्मयको प्राप्त होकर उन ऋषिने पूंछा कि किस कर्म का यह फलहै ॥ ७ ॥ कि यहां

यणः ॥ तस्यैवंतप्यमानस्य तस्यदेशेवरानने ॥ ३ ॥ आजगाममृगोवद्धस्तन्देशञ्चवरानने ॥ सपपातमहागर्ते ह्यगाधे जलसंयुते ॥ ४ ॥ तन्दृष्ट्वाकृपयाविष्टः समुनिस्तपसिस्थितः ॥ हुङ्कारंकुरुतेतत्र भूयोभूयश्चभामिनि ॥ ५ ॥ अथहुङ्कारशब्देन तस्यगर्तःप्रपूरितः ॥ ततोमृगोविनिष्क्रान्तः कृच्छ्रेणसलिलात्तदा ॥ ६ ॥ मानुषंरूपमाश्रित्य तमृषिःपर्यपृच्छत ॥ विस्मयंपरमंगत्वा कस्येदंकर्मणःफलम् ॥ ७ ॥ मृगत्वेपतितश्चात्र नरोभूत्वाविनिर्गतः ॥ सोब्रवीत्तस्यमाहात्म्यं सलिलस्यद्विजोत्तमम् ॥ ८ ॥ अतोहंनरताम्प्राप्तो नान्यदस्तीहकारणम् ॥ ततस्तुसलिलंभूयः प्रविष्टंधरणीतले ॥ ९ ॥ ततोहुंकृतवान्भूयः सऋषिःकौतुकान्वितः ॥ आपूरितःपुनःकूपः सलिलेनपुरायथा ॥ १० ॥ ततस्सकृतवान्स्नानंतथा चपितृतर्पणम् ॥ ज्ञात्वातीर्थवरंतच्च ततःप्रापपराङ्गतिम् ॥ ११ ॥ अद्यापिहुंकृतेतस्मिन्सलिलौघःप्रवर्तते ॥ तत्रस्नात्वा

मृगत्व में गिरे और मनुष्य होकर तुम निकलेहो उसने उस जलके माहात्म्य को द्विजोत्तमसे कहा ॥ ८ ॥ कि इसीकारण मैं मनुजत्वको प्राप्तहुआ इसमें अन्य कारण नहीं है तदनन्तर फिर जल पृथ्वीमें पैठगया ॥ ९ ॥ उसके उपरान्त कौतुक से संयुत उन ऋषिने फिर हुङ्कार किया और फिर जैसा पहले था वैसेही कुँवा जलसे पूर्ण करादिया गया ॥ १० ॥ तदनन्तर उसको उत्तमतीर्थ जानकर उसने स्नान व पितरोंका तर्पण किया उसके उपरान्त उत्तमगतिको पाया ॥ ११ ॥ आजभी हुङ्कार

करनेपर उसमें जलका प्रवाह वर्तमान होताहै उसमें भक्तिसे नहाकर मनुष्य पितरों के लोकमें पूजाजाता है ॥ १२ ॥ और वह बीतेहुये व आनेवाले सातकुलों को तारता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांहुङ्कारकूपमाहात्म्यंनामत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥ ⊛ ॥

दो॰। जिमि चण्डीश्वर लिंग अरु आशापूर गणेश। सोइ तीनसौ एक महँ कह्यो चरित्र उमेश॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि! तदनन्तर उसी स्थान में स्थित समस्त पातकों को नाशनेवाले चण्डीश्वर महालिंगके समीप जावै॥ १॥ हे भामिनि! वहां कातिक महीने में शुक्लपक्षकी चौदसि तिथि में उपासमें तत्पर

नरोभक्त्या पितृलोकेमहीयते ॥ १२ ॥ कुलानितारयेत्सप्त अतीतान्यागतानिच ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे हुङ्कारकूपमाहात्म्यन्नामत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तत्रस्थानेतुसंस्थितम् ॥ चण्डीश्वरंमहालिङ्गं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्र शुक्लचतुर्दश्यां कार्त्तिकेमासिभामिनि ॥ उपवासपरोभूत्वा यःकरोतिप्रजागरम् ॥ २ ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोमहेश्वरः ॥ ३ ॥ आशापुरन्ततोगच्छेद्विघ्नराजमकल्मषम् ॥ शशिभूषणवायव्ये संस्थितंविघ्ननाशनम् ॥ ४ ॥ आशांपूर्यतेयस्मात्तेनैवाशापुरस्स्मृतः ॥ यत्ररामेणदेवेशि सीतयालक्ष्मणेनच ॥ ५ ॥ समाराध्यचविघ्नेशं प्राप्तंकाममभीप्सितम् ॥ यत्रचन्द्रमसादेवि समाराध्यगणाधिपम् ॥ ६ ॥ लब्धंतद्वाञ्छितंसर्वं सर्वकष्टविनाशनम् ॥ चतुर्थ्यांशुक्लपक्षे तु मासिभाद्रपदेशुभे॥ ७॥ तत्रसम्पूज्यदेवेशं मोदकैर्भोजयेद्द्विजान् ॥ वाञ्छितांलभतेसिद्धिं विघ्नराजप्रसादतः ॥ ८ ॥

होकर जो जागरण करता है ॥ २ ॥ वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहां कि महेश्वरदेवजी हैं ॥ ३ ॥ तदनन्तर चन्द्रभूषण के वायव्य में भलीभांति टिकेहुये पापविहीन व विघ्ननाशक आशापूर विघ्नराज के समीप जावै ॥ ४ ॥ जिसलिये आशाको पूर्ण करतेहैं उसीकारण वे आशापुर कहेगये हैं जहां कि हे देवेशि! श्रीरामचन्द्रजी ने व सीता और लक्ष्मणजी ने ॥ ५ ॥ विघ्नेशजीको भलीभांति आराध कर चाहेहुये मनोरथ को पाया है व जहां पर हे देवि! चन्द्रमा ने गणनायकजीको भलीभांति आराध कर ॥ ६ ॥ सब कष्टोंको नाशनेवाले उस समस्त मनोरथ को पाया है और उत्तम भादौं महीने में शुक्लपक्षकी चौथि मे ॥ ७ ॥ वहां देवेश

विघ्नराजको भलीभांति पूजकर जो लड्डुवों से ब्राह्मणों को भोजन करावै वह विघ्नराजके प्रसादसे चाहीहुई सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे महादेवि,देवेशि ! पुरातन समय इस क्षेत्रकी रक्षाके लिये पार्वतीजी ने पापियों के विघ्ननाशक उन गणेश जी को नियुक्त किया है ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामाशापुरविघ्नराजमाहात्म्यंनामैकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। कपिला सरिता कर यथा है माहात्म्य अपार। कह्यो तीनसौ दोइ महँ सोइ चरित विस्तार ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! उसके थोड़ीही दूर पै दक्षिण

क्षेत्रस्यास्यमहादेवि रक्षार्थमुमयापुरा ॥ सर्वैनियुक्तोदेवेशि पापिनांविघ्ननाशनः ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे आशापुरविघ्नराजमाहात्म्यन्नामैकाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०१ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

ईश्वर उवाच ॥ तस्यदक्षिणनैर्ऋत्ये नातिदूरेऽव्यवस्थितम् ॥ लिङ्गंपापहरन्देवि स्वयंसोमप्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥ तत्रैवामृतकुण्डन्तु कुलकुण्डञ्चतत्स्मृतम् ॥ तत्रस्नात्वातुचन्द्रेशं योनरःपूजयिष्यति ॥ २ ॥ सतुवर्षसहस्रस्य तपःफलमवाप्स्यति ॥ तत्रैवसंस्थितन्देवि तडागंचन्द्रनिर्मितम् ॥ ३ ॥ धनुःषोडशविस्तारं चन्द्रेशात्पूर्वपश्चिमे ॥ तत्पूर्वन्तुसमाख्यातं मुक्तिदानादिपूर्वकम् ॥ ४ ॥ ईश्वर उवाच॥ततोगच्छेन्महादेवि कपिलेश्वरमुत्तमम् ॥ शशिभूषणपूर्वेण कोटितीर्थाचपश्चिमे ॥ ५ ॥ जरद्गवाद्दक्षिणेच समुद्रोत्तरतस्तथा॥ एतद्वैकपिलंक्षेत्रं नापुण्यैःप्राप्यतेनरैः ॥ ६ ॥ कपिलेनपुरा

व नैर्ऋत्य में आपही चन्द्रमा से थापाहुआ पापहारक लिंग स्थित है ॥ १ ॥ वहीं पर अमृतकुण्ड और वह कुलकुण्ड कहागया है उसमें नहाकर जो मनुष्य चन्द्रेशजी को पूजैगा ॥ २ ॥ वह हज़ार वर्षके तपस्या के फलको पावैगा हे देवि ! वहीं पर चन्द्रेशजी से पूर्व पश्चिम सोलह धनुष चौड़ा चन्द्रमा से बनायाहुआ तड़ाग स्थित है वह पहले मुक्तिदानादिपूर्वक कहागया है ॥ ३ । ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर शशिभूषण के पूर्व व कोटितीर्थ से पश्चिम में उत्तम कपिलेश्वरजी के समीप जावै ॥ ५ ॥ जरद्गव से दक्षिण व समुद्र के उत्तरमें यह कपिलक्षेत्र पापी मनुष्यों को नहीं प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ हे देवि ! पुरातन समय

जहां कपिलजी ने महादेवजी को थापकर कुछ अधिक दश हज़ार वर्ष तक बड़ाभारी तप किया है ॥ ७ ॥ और वहां कपिलधारा महानदी देवी लाई गई है समुद्र के बीचमें आज भी वह पुण्यवृद्धिवाली नदी देखपड़ती है ॥ ८ ॥ हे महादेवि ! उस कपिलनदी में नहाकर वहां जो विशेषकर कपिला गऊको देताहै वह करोड़ गौवों के फलका भागी होताहै ॥ ९ ॥ और सबही पातकोंका यह प्रायश्चित्त कहागया है ॥ १० ॥ देवीजी बोलीं कि हे महेश्वर, देवेश ! मुझको आश्चर्य है इससे मैं कपिलाकी विधि को सुना चाहतीहूं व प्रमाणादिपूर्वक दानको सुना चाहती हूं ॥ ११ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! मनुष्यों के जीवन मध्य में यदि मनुष्यों को

देवि यत्रतप्तंतपोमहत् ॥ वर्षाणामयुतंसाग्रं प्रतिष्ठाप्यमहेश्वरम् ॥ ७ ॥ समाहृतातत्रदेवी कपिलधारामहानदी ॥ समुद्रमध्येसाद्यापि पुण्यवृद्धिश्चदृश्यते ॥ ८ ॥ तत्रस्नात्वामहादेवि कपिलायांविशेषतः ॥ कपिलान्दापयेत्तत्र गोकोटिफलभाग्भवेत् ॥ ९ ॥ सर्वेषाञ्चैवपापानां प्रायश्चित्तमिदंस्मृतम् ॥ १० ॥ देव्युवाच ॥ आश्चर्यंममदेवेश कपिलायामहेश्वर ॥ विधानंश्रोतुमिच्छामि दानंमात्रादिपूर्वकम् ॥ ११ ॥ ईश्वर उवाच ॥ जनजीवितमध्येतु यद्येकालभ्यतेनरैः ॥ संयोगयुक्तासाषष्ठी तत्किन्देविब्रवीम्यहम् ॥ १२ ॥ प्रौष्ठपद्यसितेपक्षेषष्ठ्यांभौमोभवेद्यदि ॥ व्यतीपातश्चरोहिण्यां साषष्ठीकपिलास्मृता ॥ १३ ॥ तत्रक्षेत्रेनरस्स्नात्वा अथचार्कस्थलेशुभे ॥ मृदाक्षतैस्तिलैश्चैव कपिलासङ्गमेशुभे ॥ १४ ॥ कृतस्नानजपःपश्चात् सूर्यार्घञ्चनिवेदयेत् ॥ रक्तचन्दनतोयेन करवीरयुतेनच ॥ १५ ॥ कृत्वार्घपात्रंशिरसि मन्त्रेणानेनदापयेत् ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय उद्भासितजगत्त्रय ॥ १६ ॥ तेजरश्मेनमस्तुभ्यं गृहाणार्घन्नमोस्तुते ॥ सूर्यप्रदक्षि

संयोग युक्त एक छठि तिथि मिलै तो मैं क्या कहूं ॥ १२ ॥ भादौं के कृष्णपक्ष में यदि छठि तिथि में मंगल दिन होवै और रोहिणी समेत व्यतीपात होवै तो वह कपिला षष्ठी कहीगई है ॥ १३ ॥ उस क्षेत्रमें नहाकर मनुष्य इसके उपरान्त उत्तम अर्कस्थल में मिट्टी अक्षत व तिलों से उत्तम कपिला के संगम में ॥ १४ ॥ स्नान व जपकर पश्चात् मनुष्य सूर्यनारायणको कनैर संयुत लाल चन्दन मिलेहुये जलसे अर्घ देवै ॥ १५ ॥ अर्घपात्रको मस्तक पै करके इस मन्त्रसे अर्घदेवै कि हे तीनों लोकों को प्रकाशित करनेवाले ! त्रिलोकके स्वामी आपके लिये प्रणामहै ॥ १६ ॥ हे तेजरश्मे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै अर्घको ग्रहण कीजिये आपके लिये प्रणाम

है सूर्यकी प्रदक्षिणा कर व कपिलेश्वरजी को पूजकर ॥ १७ ॥ लीपेहुये तथा पुष्पों व अक्षतों से भूषित बराबर स्थान में चन्दन व जलसे पूर्ण तथा बिन फूटेहुये घट को स्थापन करै ॥ १८ ॥ जोकि पंचरत्नों से संयुत व दूर्वा, पुष्प तथा अक्षतादिकों से युक्त और दो लाल वस्त्रों से आच्छादित व ताम्र पात्रसे संयुत होवै ॥ १९ ॥ इसके अनन्तर पलभर सुवर्णकी एक मूर्तिको बनाकर पलभर सुवर्णकी सूर्यनारायण की मूर्तिको बनावै ॥ २० ॥ और घटके ऊपर भलीभांति स्थापित कर चन्दन व पुष्पों से पूजै व कपिलेश्वरके समीप विधिसे संस्कार कियेहुये मण्डपमें ॥ २१ ॥ अपने यथायोग्य नामोंसे सूर्यदेवको पूजनकरै कि हे महाप्रभाकर ! तुम्हारे लिये नम-

णीकृत्य सम्पूज्यकपिलेश्वरम् ॥ १७ ॥ उपलिप्तेसमेदेशे पुष्पाक्षतविभूषितम् ॥ स्थापयेदव्रणंकुम्भं चन्दनोदकपूरितम् ॥ १८ ॥ पञ्चरत्नसमायुक्तं दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम् ॥ रक्तवस्त्रयुगच्छन्नं ताम्रपात्रेणसंयुतम् ॥ १९ ॥ अथोरुक्मपलस्यैव एकांमूर्त्तिंविरच्ययवै ॥ सौवर्णपलसंयुक्तां मूर्त्तिंसूर्यस्यकारयेत ॥ २० ॥ कुम्भस्योपरिसंस्थाप्य गन्धपुष्पैस्समर्चयेत् ॥ कपिलेश्वरसान्निध्ये मण्डपेविधिसंस्कृते ॥ २१ ॥ आदित्यंपूजयेद्देवं नामभिस्स्वैर्यथोचितैः ॥ प्रभाकरनमस्तुभ्यं संसारान्मांसमुद्धर ॥ २२ ॥भुक्तिमुक्तिप्रदोयस्मात्तस्माच्छान्तिप्रयच्छनः॥ २३॥ नमोनमस्तेदेवेशऋक्सामयजुषाम्पते ॥ नमोस्तुविश्वरूपाय विश्वधात्रेनमोस्तुते ॥ २४ ॥ अमृतन्देवितेक्षीरं पवित्रमिहपुष्टिदम् ॥त्वत्प्रसादात्प्रमुच्येत मनुजस्सर्वपातकैः ॥ २५ ॥ ब्रह्मणोत्पादितेदेवि सर्वतीर्थमयेशुभे ॥ दातारंपूजमानंसा ब्रह्मलोकेनयेत्स्वयम् ॥ इति पूजार्घमन्त्रः ॥ २६ ॥ एवंसम्पूज्यकपिलांकुम्भस्थञ्चदिवाकरम् ॥ विप्रायवेदविदुषे उभयम्प्रतिपादयेत ॥ २७ ॥

स्कार है मुझको संसारसे उधारिये ॥ २२ ॥ जिसलिये तुम भुक्ति व मुक्ति के देनेवाले हो इस कारण मुझको शांति दीजिये ॥ २३ ॥ हे देवेश ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है हे ऋक्सामयजुषांपते ! विश्वरूप आपके लिये प्रणाम है व संसारको धारण करनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है हे देवि ! तुम्हारा दूध अमृत व पवित्र तथा इस संसार में पुष्टिदायक है और तुम्हारी प्रसन्नतासे मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ २४ । २५ ॥ हे देवि ! ब्रह्मा से उत्पन्न कियेहुये समस्त तीर्थमय उत्तम तीर्थ में पूजतेहुये दाताको वह कपिला आपही ब्रह्मलोक में प्राप्त करती है यह पूजन के अर्घका मन्त्र है ॥ २६ ॥ इसप्रकार कपिला को व घट में

स्थित सूर्यनारायणको भलीभांति पूजकर वेदके जाननेवाले ब्राह्मण के निमित्त दोनों को देवै ॥ २७ ॥ कपिला समेत विश्वमूर्ति,विश्वनेत्र, द्वादशात्मा व दिवाकर देवजी मुझको मुक्ति देवैं ॥ २८ ॥ हे पुण्ये, कपिले ! जिसलिये तुम सब संसार को पवित्र करनेवाली हो उस कारण सूर्य समेत दीहुई तुम मुझको मुक्तिदायिनी होवो ॥ २९ ॥ और पलभर सुवर्ण से दक्षिणा करना चाहिये व फिर उसकी चौथाईमे दक्षिणा करना चाहिये और शक्तिके अनुसार दक्षिणाको देकर उसगऊको देवै ॥ ३० ॥ जो इस विधि से कपिलासञ्ज्ञक छठिको करता है वह मनुष्य हज़ार अश्वमेध यज्ञों के फलको पाता है ॥ ३१ ॥ सब तीर्थों में जो फल होता है व सब दानों

विश्वमूर्त्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मादिवाकरः ॥ कपिलासहितोदेवो ममसुक्तिंप्रयच्छतु ॥ २८ ॥ यस्मात्त्वंकपिलेपुण्ये सर्वलोकस्यपावनी ॥ प्रदत्तासहसूर्येण ममसुक्तिप्रदाभव ॥ २९ ॥ पलेनदक्षिणाकार्या तदर्द्धार्द्धेनवापुनः ॥ शक्तितोदक्षिणान्दत्त्वा तांधेनुंप्रतिपादयेत् ॥ ३० ॥ योनेनविधिनाकुर्यात्षष्ठींकपिलसंज्ञिताम् ॥ सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ३१ ॥ यत्फलंसर्वतीर्थेषु सर्वदानेषुयत्फलम् ॥ तत्फलंसमवाप्नोति यःषष्ठींकपिलाञ्चरेत् ॥ ३२ ॥ कपिलाकोटिसहस्राणि कपिलाकोटिशतानिच ॥ सूर्यपर्वणियद्दत्त्वा तत्फलंकोटिशोभवेत ॥ ३३ ॥ कोटिगोरोमसंख्यानि वर्षाणिवरवर्णिनि ॥ तावन्तिसंवसेत्स्वर्गे यःषष्ठींकपिलाञ्चरेत् ॥ ३४ ॥ ज्ञानतोज्ञानतोवापि यत्पापंपूर्वसञ्चितम् ॥ तत्सर्वंनाशमायाति इत्याहकपिलोमुनिः ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कपिलाषष्ठीमाहात्म्यन्नामद्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

में जो फल होताहै उस फलको वह मनुष्य पाताहै जोकि कपिला छठिको करता है ॥ ३२ ॥ सूर्यपर्व में कोटि हज़ार कपिला व करोड सौ कपिलाओं को देकर जो फल होता है कपिला के देने से वह कोटिगुना फल होताहै ॥ ३३ ॥ हे वरवर्णिनि ! करोड़ गोरोम संख्यक उतने वर्षोंतक वह पुरुष स्वर्ग में बसता है जोकि कपिला षष्ठीको करता है ॥ ३४ ॥ ज्ञान व अज्ञान से भी जो पहले का इकट्ठा कियाहुआ पाप है वह सब नाशको प्राप्त होता है ऐसा कपिलमुनि ने कहा है ॥ ३५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकपिलाषष्ठीमाहात्म्यंनामद्व्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । थप्यो जरद्गव मुनि यथा लिंग जरद्गव नाम । कह्यो तीनसौ तीन महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर कपिलेश्वर से ईशान व उत्तरमें स्थित पापविनाशक लिंगके समीपजावै ॥ १ ॥ जरद्गवसे थापाहुआ जरद्गवेश्वर नामक लिंग ब्रह्महत्यादि पातकोंका विनाशकहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २ ॥ व हे देवि ! वहींपर नदीरूपिणी अंशुमती देवी स्थित है उसमें नहाकर जो विधि से पिण्डदानको देता है ॥ ३ ॥ वह कुछ अधिक करोड़ सौ वर्षोंतक पितरों की तृप्ति करताहै और वहां वेदोंके पारगामी ब्राह्मणके लिये बैल देनाचाहिये ॥ ४ ॥ तदनन्तर चन्दन व पुष्पोंसे तथा पञ्चामृत रससे और गुग्गुलके धूपोंसे जरद्गव

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंपापप्रणाशनम् ॥ कपिलेश्वरईशान्यामुत्तरेचव्यवस्थितम् ॥ १ ॥ जरद्गवेश्वरन्नाम जरद्गवप्रतिष्ठितम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां नाशनन्नात्रसंशयः ॥ २ ॥ तत्रैवसंस्थितादेवि देवीह्यंशुमतीनदी ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन पिण्डदानन्तुदापयेत् ॥ ३ ॥ वर्षकोटिशतंसाग्रं पितृणांतृप्तिमावहेत् ॥ वृषभस्तत्रदातव्यो ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ४ ॥ ततस्तुपूजयेद्देवं गन्धपुष्पैर्जरद्गवम् ॥ पञ्चामृतरसेनैव तथागुग्गुलुधूपनैः ॥ ५ ॥ स्तुतिदण्डनमस्कारैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र भक्ष्यभोज्यैःपृथग्विधैः ॥ ६ ॥ एकेनभोजितेनैव कोटिर्भवतिभोजिता ॥ कृतेजिह्वोदकन्नाम तत्तीर्थंपरिकीर्त्तितम् ॥ ७ ॥ जरद्गवेश्वरन्तीर्थं कलौतुपरिकीर्त्यते ॥ ८ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे जरद्गवेश्वरमाहात्म्यन्नामत्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंवैहाटकेश्वरम् ॥ जरद्गवात्पूर्वभागे धनुषांषष्टिभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥ नाम्ना

देवजी को पूजै ॥ ५ ॥ व स्तुति और दण्डवत् प्रणामों से तथा बलिप्रदानों से दिनरात पूजै और वहां अनेक भांति के भक्ष्यभोज्यों से ब्राह्मणों को भोजन करावै ॥ ६ ॥ क्योंकि वहा एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मण भोजित होते हैं सतयुग में जिह्वोदक नामक वह तीर्थ कहागया है ॥ ७ ॥ और कलियुगमें जरद्गवेश्वर नामक तीर्थ कहाजाताहै ॥ ८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांजरद्गवेश्वरमाहात्म्यंनामत्र्यधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०३ ॥

दो० । अहैं जरद्गव पूर्व में जिमि कोटिक दिननाथ । कह्यो तीनसौ चार महँ सोई उत्तम गाथ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर जरद्गव से पूर्व

भाग में एकसौ अस्सी धनुष पै हाटकेश्वरलिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे देवि ! उस उत्तम क्षेत्रको जानकर दमयन्ती के पति नलने नाम से नलेश्वरलिंगको थापा है ॥ २ ॥ हे देवि ! उस लिंगको देखकर व विधि से पूजकर प्राणी बखेड़ों से छूटजाता है व युद्धमें विजयवान् होताहै ॥ ३ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! उससे आग्नेय दिशाके भाग में कोटिक सूर्यनारायण स्थित हैं पूर्वकल्पमें वे कर्कोटकनामक कहेगये हैं ॥ ४ ॥ उनके दर्शनहीसे सब देवता प्रसन्न होतेहैं रविवार सप्तमी में धूप, चन्दन व अनुलेपनों से ॥ ५ ॥ जो उनको विधि से पूजताहै वह सब पातकोंसे छूटजाताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमि

नलेश्वरेदेवि स्थापितश्चनलेनवै ॥ दमयन्तीधवेनैव ज्ञात्वातत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ २ ॥ तद्दृष्ट्वामानवोदेवि पूजयित्वाविधानतः ॥ कलिभिर्मुच्यतेजन्तू रणेचविजयीभवेत् ॥ ३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तस्मादाग्नेयदिग्भागे संस्थितःकोटिकोरविः ॥ पूर्वकल्पेमहादेवि स्मृतःकर्कोटकाभिधम् ॥ ४ ॥ तस्यदर्शनमात्रेण प्रीताःस्युस्सर्वदेवताः ॥ सप्तम्यांरविवारेण धूपगन्धानुलेपनैः ॥ ५ ॥ पूजयेद्योविधानेन मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे कोटिकमाहात्म्यन्नामचतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि लिङ्गंवैहाटकेश्वरम् ॥ नलेश्वरात्पूर्वभागे शतधन्वन्तरेप्रिये ॥ १ ॥ अगस्त्याश्रमकन्नाम तत्रस्थानेचसंस्थितम् ॥ २ ॥ चिन्तामणिस्तुपूर्वेण धनुषांत्रिंशतास्थितः ॥ पूर्वंतत्रतपस्तप्तं अगस्त्येनमहात्मना ॥ ३ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कस्मिन्कालेमहादेवि ह्यगस्तिरतपत्तपः ॥ प्रियाहंतवभूतेश सर्वंविस्तरतोवद ॥ ४ ॥

श्रविरचितायांभाषाटीकायांकोटिकमाहात्म्यंनामचतुरधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो॰ । जिमि अगस्ति जलनिधि पियो देवन कियो सुखार। कह्यो तीनसौ पांच महँ सोई चरित उदार ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर नलेश्वरसे पूर्वभाग में हाटकेश्वर लिंगके समीप जावै और हे प्रिये ! नलेश्वर से पूर्वभाग में सौ धनुषके अन्तर पै उसी स्थान में अगस्त्याश्रमनामक वन भलीभांति स्थित है ॥ १ । २ ॥ और पूर्व में तीस धनुष पै चिन्तामणिहैं पुरातन समय वहां महात्मा अगस्त्यजी ने तप कियाहै ॥ ३ ॥ पार्वती जी बोलीं कि हे महादेव ! अगस्त्यजी

ने किस समय तप किया है हे भूतेश ! मैं तुम्हारी प्यारी हूं इससे सबको विस्तारसे कहिये ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरवर्णिनि ! पुरातन समय त्रिलोक को नाश करनेवाले कालकेय ऐसे प्रसिद्ध भयंकर दैत्यगण हुये हैं ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर प्रभासक्षेत्रवासी दैत्यसूदननामक समर्थवान् विष्णुजी ने उन सबको मारा है ॥ ६ ॥ व्याघ्रका रूपकर चक्रमुखनामक उस रूपसे दैत्य मारेगये उसीकारण दैत्यसूदन हुये और मारने से बचेहुये भयसे विकल दैत्य समुद्र में पैठगये तदनन्तर उन्होंने सलाह किया कि देवता किसप्रकार पीड़ित कियेजावैं ॥ ७ । ८ ॥ हे प्रिये ! जहां धर्मवान् मारेजाते हैं व पृथ्वी में तपस्या व निजवेदपाठ में परायण

ईश्वर उवाच ॥ पुरादैत्यगणारौद्रा बभूवुर्वरवर्णिनि ॥ कालकेयाइतिख्यातास्त्रैलोक्योच्छेदकारकाः ॥ ५ ॥ अथतेनिहतास्सर्वे विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ दैत्यसूदननाम्नातु प्रभासक्षेत्रवासिना ॥ ६ ॥ कृत्वाव्याघ्रस्यरूपन्तु नाम्नाचक्रमुखेतिच ॥ हतावैतेनरूपेण ततोभूद्दैत्यसूदनः ॥ ७ ॥ हताश्शेषास्समुद्रन्ते प्रविष्टाभयविह्वलाः ॥ ततस्तेमन्त्रयामासुः पीड्यन्तेदेवताःकथम् ॥ ८ ॥ हन्यन्तेधर्मिणोयत्र वध्यन्तेधरणीतले ॥ तपस्स्वाध्यायनिरता यज्ञदानरताःप्रिये ॥ ९ ॥ अथतेसभयंकृत्वा रात्रौनिष्क्रम्यसागरात् ॥ निजघ्नुस्तापसांस्तत्र यज्ञदानरतान्प्रिये ॥ १० ॥ प्रभासेतुमहादेवि तत्र द्वादशयोजने ॥ वसिष्ठस्याश्रमेतत्र महर्षीणांमहात्मनाम् ॥ ११ ॥ भक्षितानिसहस्राणि पञ्चसप्तचपार्वति ॥ शतानि पञ्चरैभ्यस्य विश्वामित्रस्यषोडश ॥ १२ ॥ च्यवनस्यचसप्तैव जाबालेर्द्विशतंप्रिये ॥ बालखिल्याश्रमेपुण्ये षट्शतानिदुरात्मभिः ॥ १३ ॥ यत्रकचिद्भवेद्यज्ञस्तत्रगत्वानिशागमे ॥ यज्ञदानसमायुक्ता न्त्विजोभक्षयन्तिच ॥ १४ ॥

तथा यज्ञ व दानमें लगेहुये पुरुष मारेजाते हैं वहां देवता पीड़ित होते हैं ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर हे प्रिये ! उन्होंने प्रतिज्ञाकर रात में समुद्र से निकल कर वहां यज्ञ व दान में तत्पर तपस्वियों को मारा ॥ १० ॥ व हे महादेवि, पार्वति ! उस बारह योजन प्रभास में वहां वसिष्ठजीके आश्रममें बारहहज़ार महर्षि व महात्मा भक्षण किये गये और रैभ्य के आश्रम में पांच सौ व विश्वामित्रजी के आश्रम में सोलह सै तपस्वियोंको मारा ॥ ११ । १२ ॥ व हे प्रिये ! च्यवन के आश्रम में सात सौ व जाबालिके आश्रम में दो सौ मुनियों को मारा और बालखिल्या के पवित्र आश्रममें दुष्टोंसे छःसौ तपस्वी मारेगये ॥ १३ ॥ और जहां कहीं यज्ञ होता था वहां रात्रि

आने पर जाकर दैत्यलोग यज्ञ व दान में संयुत ऋत्विजों को भक्षण करते थे ॥ १४ ॥ तदनन्तर पृथ्वी में सब भयसे विकलहुये और कोई दैत्यों के कर्मको नहीं जानताथा ॥ १५ ॥ रात्रिमें मुनिलोग जिनको आसनों पै सुख से प्राप्त देखते थे प्रातःकाल यज्ञमें केवल उनके अस्थिसमूहों को देखते थे ॥ १६ ॥ तदनन्तर पृथ्वी में सब मनुष्यों ने धर्मके कार्योंको छोड़ दिया और पृथ्वी धर्महीन व वषट्कारहित होगई ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर रात्रिमें तपस्यासे संयुत व व्रतरूपी अस्त्रवाले अन्य तपस्वी नष्ट कियेगये इसके उपरान्त धर्म के नाश होनेपर पीड़ित होकर देवता ॥ १८ ॥ यह क्या है ऐसा कहतेहुये ब्रह्माकी शरण में गये व बोले कि हे भग-

रात्रौपश्यन्तिमुनयः सुखप्राप्तान्वृषीषुच ॥ प्रभातेत्वध्वरेतेषामस्थिसङ्घांश्चकेवलम् ॥ १६ ॥ ततोभयाकुलास्सर्वे बभूवुर्जगतीतले ॥ नतुकश्चिद्विजानाति दैत्यानांचविचेष्टितम् ॥ १५ ॥ ततोधर्मक्रियास्त्यक्त्वा भूतलेसर्वमानवैः ॥ निधर्मंनिर्वषट्कारं भूतलंसमपद्यत ॥ १७ ॥ अथान्येतपसारात्रौ संयुताश्चव्रतायुधाः ॥ अथोच्छेदङ्गतेधर्मे पीडितास्त्रिदिवौकसः ॥ १८ ॥ किमेतदितिजल्पन्तो ब्रह्माणंशरणङ्गताः ॥ भगवंस्तापसास्सर्वे तथायेज्ञानशालिनः ॥ १९ ॥ भक्ष्यन्तेकेनचिद्रात्रौ नतंजानीमहेवयम् ॥ नष्टधर्माःक्रियास्सर्वा भूतलेप्रपितामह ॥ २० ॥ योधर्ममाचरत्यह्नि सरात्रौमृत्युमेतिच ॥ नस्वाध्यायोवषट्कारः समस्तेभूतलेविभो ॥ २१ ॥ धर्माभावाद्वयंसर्वे संदेहंपरमङ्गताः ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाध्यात्वादेवपितामहः ॥ २२ ॥ अब्रवीत्त्रिदशान्सर्वान् सन्देहंपरमङ्गतान् ॥ कालेयाइतिविख्याता दानवारौद्रकारिणः ॥ २३ ॥ तेसमुद्रंसमासाद्य तापसान्भक्षयन्तिच ॥ युष्माकंचविनाशाय तेनशक्यानिषूदितुम् ॥ २४ ॥ यतध्वमेषांना

वन् ! सब तपस्वी व जो ज्ञानसे शोभित हैं ॥ १९ ॥ उनको कोई रातमें भक्षण करता है और उसको हमलोग नहीं जानते हैं हे प्रपितामह ! पृथ्वी में धर्मवाले कार्य नाश होगये ॥ २० ॥ दिनमें जो धर्मको करता है वह रात्रि में मृत्युको प्राप्तहोता है व हे विभो ! सब पृथ्वी में वेदपाठ व वषट्कार नहीं है ॥ २१ ॥ और धर्म के अभाव से हम सब लोग बड़े सन्देहको प्राप्त हैं उनके उस वचनको सुनकर ब्रह्मादेवजीने ध्यानकर ॥ २२ ॥ बड़े सन्देहको प्राप्त सब देवताओं से कहा कि भयंकर कर्म करनेवाले जो कालेय ऐसे दानव प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ वे समुद्रको प्राप्त होकर तपस्वियोंको भक्षण करते हैं और वे तुमलोगोंके नाशके लिये हैं व तुमलोगों

से वे नहीं मारेजासक्ते हैं ॥२४॥ इनके नाशके लिये यत्न कीजिये नहीं तो विनाश होगा जहाँ उत्तम प्रभासक्षेत्र में व्रतचर्या में तत्पर होकर अगस्त्यजी स्थितहैं वहां शीघ्रही पृथ्वी में जाइये क्योंकि मित्रावरुण से उपजे हुये वे अगस्त्यजी समुद्रको पीने के लिये समर्थ हैं ॥ २५ । २६ ॥ वे तुमलोगों से प्रसन्न कराने योग्यहैं क्योंकि वे मुनिनाथ समुद्रको पीवैंगे तदनन्तर उनके वैसा करने पर वे सब अधम दानव ॥ २७ ॥ हे देवताओ ! उस समय तुमलोगों से नाशको प्राप्तहोवैंगे महादेवजी बोले कि लोकोंके रचनेवाले ब्रह्माजीसे ऐसा कहेहुये सब देवता ॥ २८ ॥ प्रभासक्षेत्र को प्राप्तहोकर अगस्त्यजीकी शरण में गये ॥ २९ ॥ देवता बोले कि हे द्विजोत्तम!

शाय नोचेन्नाशोभविष्यति ॥ व्रजध्वंभूतलंशीघ्रमगस्त्योयत्रातिष्ठति ॥ २५ ॥ व्रतचर्यारतोभूत्वा प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ सशक्तःसागरंपातुं मित्रावरुणसम्भवः ॥ २६ ॥ प्रसाद्यस्सचयुष्माभिः पिबत्यब्धिमुनीश्वरः ॥ ततस्तथाकृते तेन तेसर्वेदानवाधमाः ॥ २७ ॥ युष्माभिर्नाशमेष्यन्ति तदाचत्रिदशेश्वराः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तास्सुरास्सर्वे ब्रह्मणालोककारिणा ॥ २८ ॥ प्रभासक्षेत्रमासाद्य अगस्त्यंशरणङ्गताः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ रक्षरक्षद्विजश्रेष्ठत्रैलोक्यंसंशयङ्गतम् ॥ कालकेयैःप्रतिध्वस्तं समुद्रंसमुपाश्रितैः ॥ ३० ॥ त्वंशोषयद्विजश्रेष्ठ हितार्थंत्रिदिवौकसाम् ॥ नान्यश्शक्तःपुमान्कश्चित्कर्तुमीदृक्क्रियांविभो ॥ ३१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तस्सुरगणैरगस्त्योमुनिपुङ्गवः ॥ जगामत्रिदशैस्सार्द्धं समुद्रंप्रतिहर्षितः ॥ ३२ ॥ गीयमानस्तुगन्धर्वैःस्तूयमानस्तुकिन्नरैः ॥ श्लाघ्यमानस्तुविबुधैर्वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३३ ॥ एषत्रैलोक्यरक्षार्थं शोषयामिमहार्णवम् ॥ पश्यध्वंकौतुकन्देवास्समीनमकरंमहत् ॥ ३४ ॥ एवमुक्त्वा

समुद्र में टिकेहुये कालकेय दानवों से विध्वंसित व सन्देह में प्राप्त त्रिलोककीरक्षा कीजिये ॥ ३० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! देवताओंके हितके लिये तुम उसको शोष लेवो हे विभो ! अन्य कोई पुरुष ऐसा कार्य करने के लिये नहीं समर्थ है ॥ ३१ ॥ महादेवजीबोले कि देवगणों से ऐसा कहेहुये मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी प्रसन्न होकर देवताओंसमेत समुद्र के समीप गये ॥ ३२ ॥ और गन्धर्वों से गाये जातेहुये व किन्नरों से स्तुति किये जाते हुये व देवताओं से प्रशंसा किये जाते हुये अगस्त्यजी इस वचन को बोले ॥ ३३ ॥ कि त्रिलोककी रक्षाके लिये इसी समय मछलियों व नाकोंसमेत बड़ेभारी समुद्रको मैं शोषताहूं हे देवताओ ! उस कौतुकको देखिये ॥ ३४॥

ऐसा कहकर द्विजश्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ने नदियों के पति सब समुद्रको गण्डूष (पान) किया ॥ ३५ ॥ महात्मा अगस्त्यजी से उस बड़ेभारी समुद्र के पीने पर भय में प्राप्त सब दानव इधर उधर घूमने लगे ॥ ३६ ॥ और वहां देवताओं से बड़े पैने बाणों करके मारे जातेहुये अन्य दानव भागने में तत्पर होकर वन को जाते थे ॥ ३७ ॥ और दैत्योंके नष्टभूत होनेपर रक्तसे डूबेहुये दानव पृथ्वीको फोड़कर शीघ्रही पातालमें पैठगये ॥ ३८ ॥ इसके अनन्तर प्रसन्न होतेहुये देवताओंने मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी से कहा कि हमलोगों का सब मनोरथ सिद्ध होगया समुद्र फिर पूर्ण कियाजाय ॥ ३९ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे देवताओ ! मुझ से

द्विजश्रेष्ठस्त्वगस्त्योभगवान्मुनिः ॥ गण्डूषमकरोत्सर्वं समुद्रंसरिताम्पतिम् ॥ ३५ ॥ पीतेतत्रमहत्यब्धावगस्त्येनमहात्मना ॥ दानवाभयसम्पन्ना इतश्चेतश्चबभ्रमुः ॥ ३६ ॥ वध्यमानास्सुरैस्तत्र शस्त्रैःसुनिशितैस्तथा ॥ कान्तारमन्येगच्छन्ति पलायनपरायणाः ॥ ३७ ॥ हतभूतेषुदैत्येषु विदार्यधरणीतलम् ॥ पातालंविविशुस्तूर्णं रुधिरेणपरिप्लुताः ॥ ३८ ॥ अथोचुस्त्रिदशाहृष्टा अगस्त्यंमुनिपुङ्गवम् ॥ सिद्धन्नोवाञ्छितंसर्वं पूर्यतांसागरःपुनः ॥ ३९ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ जीर्णन्तोयंमयादेवास्तथैवामेध्यताङ्गतम् ॥ अथोवाचसुरान्सर्वानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥ ४० ॥ उत्पत्स्यतिरघूणांहि कुलेनृपतिसत्तमः ॥ भगीरथेतिविख्यातस्सर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ ४१ ॥ सज्ञातिकारणादेव गङ्गांतत्रानयिष्यति ॥ ब्रह्मलोकात्सधर्मिष्ठस्तयापूर्णोभविष्यति ॥ ४२ ॥ एवमुक्त्वासुरैस्सार्द्धं स्वस्थानंचागमन्मुनिः ॥ ततस्स्वमाश्रमंप्राप्तंदेवावाक्यमथाब्रुवन् ॥ ४३ ॥ अनेनकर्मणाब्रह्मन् परितुष्टावयम्मुने ॥ किंकुर्मोब्रूहितेभीष्टं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ४४ ॥

पियाहुआ जल जीर्ण होगया याने पचगया वैसेही अपवित्रता में प्राप्त है इसके उपरान्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी सब देवताओं से बोले ॥ ४० ॥ कि रघुवों के वंशमें सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भगीरथ ऐसे प्रसिद्ध नृपोत्तम उत्पन्न होवैंगे ॥ ४१ ॥ वे धर्मिष्ठकुटुम्बियोंके कारण ब्रह्मलोकसे वहां गंगाजी को लावैंगे उनसे वह समुद्र पूर्ण होगा ॥ ४२ ॥ ऐसा कहकर देवताओंसमेत अगस्त्य मुनि अपने आश्रमको आये तदनन्तर अपने आश्रम में प्राप्त अगस्त्यजीसे देवताओंने वचन कहा ॥ ४३ ॥ कि

हेब्रह्मन्, मुने ! इस कर्मसे हमलोग बहुत प्रसन्नहुये हैं कहिये यद्यपि दुर्लभ भी होवै तथापि मैं तुम्हारे किस मनोरथको करूं ॥ ४४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि पच्चीस करोड़ हज़ार वर्षतक दक्षिण और आकाश के ऊपर मैं विमानयुक्त होऊं ॥ ४५ ॥ और मेरे इस उत्तम आश्रम स्थान में आकर जो हाटकेश्वरजी के समीप उत्तम प्रभासक्षेत्र में ॥ ४६ ॥ भलीभांति स्नान करै वह उत्तम गतिको प्राप्तहोवै और मुझसे तपस्याके प्रभावसे पाताल से अवतारित उन लिंगरूपी महादेवजी को जो शुद्धचित्त पुरुष पूजै मनुष्यों के मध्य में उसको प्रतिदिन हज़ार गोदानका फल होवै ॥ ४७ । ४८ ॥ सावधान होताहुआ जो पुरुष लोपामुद्राके सहायक मुझको पूजै व शरद्समय

अगस्त्य उवाच ॥ यावद्वर्षसहस्राणि पञ्चविंशतिकोटयः ॥ वैमानिकोभविष्यामि दक्षिणाम्बरमूर्द्धनि ॥ ४५ ॥ अत्रागत्यनरोयस्तु ममाश्रमपदेशुभे ॥ हाटकेश्वरसान्निध्ये प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ ४६ ॥ स्नानमाचरतेसम्यक् मया तुपरमाङ्गतिम् ॥ पातालादेवतीर्णन्तल्लिङ्गरूपंमहेश्वरम् ॥ ४७ ॥ मयातपःप्रभावेण भावितोयःप्रपूजयेत् ॥ दिनेदिने भवेत्तस्य गोसहस्रफलंनृणाम् ॥ ४८ ॥ लोपामुद्रासहायंमां योमर्त्यस्सम्प्रपूजयेत ॥ अर्घंदद्याद्विधानेन काशपुष्पैस्स माहितः ॥ ४९ ॥ प्राप्तेशरदिकालेतु मयातिपरमाङ्गतिम् ॥ लोपामुद्रासहायंमां हाटकेश्वरसंयुतम् ॥ ५० ॥ अयनेचो त्तरेपूज्य गोलक्षफलमाप्नुयात् ॥ यःश्राद्धंकुरुतेचात्र अयनेचोत्तरेद्विजः ॥ ५१ ॥ भूयात्तस्यफलंदेवा गयाश्राद्धस्य सत्तमाः ॥ ५२ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वाढमित्येवतेचोक्त्वा सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ स्वस्थानन्तुगतास्सर्वे सुहृष्टमनसस्त दा ॥ ५३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्राप्तेशरदिमानवः ॥ अगस्त्यस्याश्रमंगत्वा हाटकेशंप्रपूजयेत् ॥ ५४ ॥ अगस्त्येश्वर

प्राप्तहोने पर काशके फूलोंसे विधिपूर्वक अर्घ देवै वह उत्तम गतिको प्राप्तहोवै और हाटकेश्वरसंयुक्त लोपामुद्रा के सहायक मुझको ॥ ४९ । ५० ॥ उत्तरायण में पूजकर मनुष्य लक्ष गोदानके फलको पावै व हे सत्तमो, देवताओ ! उत्तरायण में जो ब्राह्मण यहां श्राद्ध करै उसको गयाश्राद्धका फल होवै ॥ ५१ । ५२ ॥ महादेव जी बोले कि उस समय बहुत अच्छा ऐसाही कहकर इन्द्रसमेत वे सब देवता अपने स्थानको गये व सब प्रसन्नमन हुये ॥ ५३ ॥ उसीकारण शरद् प्राप्तहोने पर

मनुष्य सब यत्नसे अगस्त्यजी के आश्रमको जाकर हाटकेश्वरलिंग को पूजै ॥ ५४ ॥ व अगस्त्येश्वरनामक सुरप्रिय कल्पलिंगको पूजै जो मनुष्य इसप्रकार भक्तिसे उन ऋषिके कर्मको सुनताहै ॥ ५५ ॥ वह उसीक्षण दिन रातमें कियेहुये पातकोंसे छूट जाताहै ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाप्रभासक्षेत्रयात्रायामगस्त्याश्रममाहात्म्यंनामपञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । सुपर्णेश्वरिहिं देवि जिमि थाप्यो अहै सुपर्ण । कह्यो तीनसौ छठे में सोइचरित सुवर्ण ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर भीमेश्वरके समीप पहले

नामेति कल्पलिङ्गंसुरप्रियम् ॥ यश्चैवंशृणुयाद्भक्त्या ऋषेस्तस्यविचेष्टितम् ॥ ५५ ॥ अहोरात्रकृतात्पापात् तत्क्षणादेवमुच्यते ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे प्रभासक्षेत्रयात्रायामगस्त्याश्रममाहात्म्यन्नामपञ्चाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवीमन्त्रविभूषणाम् ॥ भीमेश्वरस्यसान्निध्ये सोमेनाराधितामपुरा ॥ १ ॥ श्रावणेमासिविधिनायानारीताम्प्रपूजयेत ॥ तृतीयायांशुक्लपक्षे सादुःखैर्मुच्यतेखिलैः ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेविविघ्नेशंदुर्गकण्टकम् ॥ भल्लतीर्थस्यपूर्वेण योगिनीचक्रदक्षिणे ॥ ३ ॥ आराधितोसौभीमेनसर्वकामप्रदोभवत् ॥ फाल्गुनस्यचतुर्थ्यांतु शुक्लपक्षेविधानतः ॥ ४ ॥ यस्तंपूजयतेदेवं गन्धपुष्पैस्समोदकैः ॥ विघ्नन्नजायतेतस्य वर्षमेकन्नसंशयम् ॥ ५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कौबेरेशीम्प्रयत्नतः ॥ यस्यनाम्नाकुरुक्षेत्रं तेनसाराधितापुरा ॥ ६ ॥

चन्द्रमासे आराधन की हुई अन्त्रविभूषणा देवी के समीप जावै ॥ १ ॥ श्रावण महीने में शुक्ल पक्षकी तीज तिथिमें जो स्त्री विधिसे उन भगवतीजीको पूजती है वह सब दुःखोंसे छूट जाती है ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर भल्लतीर्थ के पूर्व व योगिनीचक्रसे दक्षिण में दुर्गकण्टक विघ्नेशजी के समीप जावै ॥ ३ ॥ भीम से आराधन कियेहुये ये सब कामनाओं के दायकहुये हैं फागुनके शुक्लपक्षमें चौथि तिथिमें विधिसे ॥ ४ ॥ जो पुरुष उन विघ्नेश देवजीको लड्डुवोंसमेत चन्दन व पुष्पों से पूजता है उसको एक वर्षतक विघ्न नहीं होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर बड़े यत्न से कौबेरेश्वरीजीके समीप

ावै जिनके नाम से कुरुक्षेत्र है उन कुरुक्षे पहले वे भगवती आराधन कीगई हैं ॥ ६ ॥ व क्षेत्रकी रक्षाकर भीमजी ने इनको आराधन किया है महानवमी में जो नुष्य यत्नसे उन भगवती को पूजता है ॥ ७ ॥ उसको वे कल्याणी पुत्र की नाई रक्षा करती हैं इसमें सन्देह नहीं हैं वहां मिष्टान्नसमेत भक्ष्यों व भोज्यों मे निरस- देह स्त्री पुरुषों को भोजन देनाचाहिये क्योंकि इस प्रकार वे भगवती प्रसन्न होतीहैं ॥ ८ । ६ ॥ तदनन्तर हे महादेवि दुर्गकूट से दक्षिण में पचास धनुष के अन्तर सुपर्णेशी भैरवी के समीपजावै ॥ १० ॥ हे देवि ! पुरातन समय गरुड़ने पातालसे अमृत को हरलिया व लेकर वहां नागोंके देखते हुये छोड़दिया ॥ ११ ॥ जिस

आराधितासौभीमेन कृत्वाक्षेत्रस्यरक्षणम् ॥ महानवम्यांयत्नेन यस्तांपूजयतेनरः ॥ ७ ॥ तंपुत्रमिवकल्याणी रक्ष तेनात्रसंशयः ॥ भोजनंतत्रदातव्यं दम्पतीनान्नसंशयः ॥ ८ ॥ भक्ष्यैर्भोज्यैःसमिष्टान्नैरेवंप्रीतातुसाभवत् ॥ ६ ॥ त तोगच्छेन्महादेवि सुपर्णेशीञ्चभैरवीम् ॥ दुर्गकूटाद्दक्षिणतो धनुःपश्चाशदन्तरे ॥ १० ॥ सुपर्णेनपुरादेवि पातालाद मृतंहृतम् ॥ गृहीत्वातत्रमुक्तन्तु नागानांपश्यतांकिल ॥ ११ ॥ यतोदेव्यातदादृष्ट्वा रक्षितंनागपार्श्वतः ॥ तस्मात्तु कथ्यतेसद्भिः सुपर्णेनप्रतिष्ठिता ॥ १२ ॥ सुपर्णेशीतिनाम्नावै ततःपातकनाशिनी ॥ सुपर्णकुण्डेतत्रैव स्नात्वातां पूजयेन्नरः ॥ १३ ॥ विप्रेभ्योभोजनंदत्त्वा नापद्भिर्म्रियतेनरः ॥ जीववत्साभवेन्नारी आत्मजैश्चाप्यलंकृता ॥१४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डे सुपर्णेशीमाहात्म्यन्नामषडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥ * ॥ * ॥

लिये उस समय देवीजी ने देखकर नागोंके समीप उनकी रक्षाकिया उसीकारण विद्वानोंसे सुपर्ण (गरुड़) जी से थापीहुई भगवती कहीजाती हैं ॥ १२ ॥ व उसी कारण सुपर्णेशी ऐसे नाम से वे पापविनाशिनी भगवती प्रसिद्ध हैं वहीं सुपर्णकुण्डमें नहाकर जो मनुष्य उनको पूजै ॥ १३ ॥ ब्राह्मणों के लिये भोजन देकर वह मनुष्य विपत्तियों से नहीं मरता है और स्त्री जीवपुत्रिणीहोती है और पुत्रों से शोभित होती है ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांसुपर्णेश्वरीमाहात्म्यंनामषडधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०६ ॥ ॥ ॥ ॥

दो०। अहै अमित माहात्म्ययुत भल्लतीर्थ असनाम। कह्यो तीनसौ सात महँ सोइ चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर अति उत्तम भल्लतीर्थ को जावै वहीं विष्णुजी की भलीभांति स्थिति है क्योंकि अन्यत्र रति (प्रीति) नहीं होती है ॥ १ ॥ विद्वान् उस वैष्णवक्षेत्रको क्षेत्रों के मध्य में आदिक्षेत्र कहते हैं हे भामिनि ! स्वर्ग, पृथ्वी व आकाश में जो साढ़े तीन करोड़ तीर्थों के मध्य में श्रेष्ठ तीर्थ हैं वे वहीं प्राप्तहैं और वहीं पर विष्णुजी को भलीभांति स्नान कराने के लिये व प्राणियों के हितके लिये मूर्तिमती गंगाजी आपही स्थित हैं और गंगा, गया, कुरुक्षेत्र, व निमिष और पुष्करोंको ॥ २ । ३ । ४ ॥ तथा द्वार-

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि भल्लतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रैवसंस्थितिर्विष्णोर्नान्यत्रचरतिर्भवेत् ॥ १ ॥ क्षेत्राणामादिक्षेत्रन्तु वैष्णवंतद्विदुर्बुधाः ॥ तिस्रःकोट्यर्द्धकोटीनां तीर्थानांप्रवराणिच ॥ २ ॥ दिविभुव्यन्तरिक्षेच तानितत्रैव भामिनि ॥ तत्रमूर्त्तिमतीगङ्गा स्वयमेवव्यवस्थिता ॥ ३ ॥ विष्णोःसंप्लावनार्थाय प्राणिनांचहितायवै ॥ गङ्गांगयांकुरुक्षेत्रं निमिषंपुष्कराणिच ॥ ४ ॥ पुरींद्वारावतींत्यक्त्वा अत्रैववसतेहरिः ॥ तस्यौर्ध्वदैहिकंदेवि प्रकरोमियुगेयुगे ॥ ५ ॥ नभस्येद्वादशीयोगे तत्रगत्वास्वयंप्रिये ॥ करोमितद्विधानेन तत्रब्राह्मणपुङ्गवैः ॥ ६ ॥ तत्रदत्त्वातुदानानि विधिवद्वेदपारगे ॥ तत्रैवद्वादशीयोगे स्नात्वातत्रविधानतः ॥ ७ ॥ सन्तर्प्यचपितॄन्भक्त्या मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ तत्रविष्णुंतु सम्पूज्य कृत्वाजागरणंनिशि ॥ ८ ॥ दीपदानादिकंकृत्वा कृतकृत्योभिजायते ॥ अथतस्यप्रवक्ष्यामि यथोक्तंभगवान् प्रभुः ॥ ९ ॥ संहृत्ययादवान्सर्वान् वासुदेवःप्रतापवान् ॥ दुर्वाससातुशप्तान्वै तपस्तेपेमहीतले ॥ १० ॥ यज्ञाङ्गभूतदेह

कापुरी को छोड़कर विष्णुजी यहीं बसते हैं हे देवि ! उनके और्ध्वदैहिक कर्मको मैं युगयुग में करता हूं ॥ ५ ॥ हे प्रिये ! भादों में द्वादशी के योगमें वहीं आपही जाकर मैं श्रेष्ठ ब्राह्मणों से वहां उसको विधि से करता हूं ॥ ६ ॥ और विधिपूर्वक वहां वेदपारगामी ब्राह्मण के लिये दानों को देकर व द्वादशी के योग में वहीं विधि से नहाकर ॥ ७ ॥ भक्तिसे पितरोंको भलीभांति तर्पणकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है और वहां विष्णुजी को भलीभांति पूजकर व रात में जागरण कर ॥ ८ ॥ दीपदानादिक करके मनुष्य कृतकृत्य होता है इसके अनन्तर मैं उसके यथोक्त फलको कहताहूं कि भगवान् प्रभु ॥ ९ ॥ प्रतापी वासुदेव (श्रीकृष्ण) जी ने दुर्वा-

सासे शापित सब यादवों को संहार कर पृथ्वी में तप किया है॥ १० ॥ यज्ञांगसे उत्पन्नशरीरवाले सर्वव्यापी जनार्दनजी समुद्र के किनारे जाकर सब इन्द्रियों को रोंककर व आत्मा (परमेश्वर) में आत्मा (चित्त) को लगाकर समाधिमें स्थितहुये इसी अवसर में बाणको हाथ में लिये जरनामक पुरुष प्राप्त हुआ ॥ ११।१२ ॥ जोकि बड़े काले शरीरवाला व मछलियों को मारनेवाला तथा पापकारी केवट का पुत्र था उसने निषादपुत्रोंसमेत दूरसे श्रीकृष्णजी को देखा तदनन्तर ॥ १३ ॥ उसने मृग जानकर उन विष्णुजी के ऊपर बाणको छोड़ा तदनन्तर उसके समीप जाकर जबतक यह देखै ॥ १४ ॥ तबतक उसने चतुर्भुज व महाशरीरवान् तथा

स्तु सर्वव्यापीजनार्द्दनः ॥ गत्वातीरंसमुद्रस्य समाधिस्थोबभूवह ॥ ११ ॥ सर्वस्रोतांसिसंयम्य निवेश्यात्मानमात्मनि ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तो बाणहस्तोजराभिधः ॥ १२ ॥ दासपुत्रेतिकृष्णाङ्गो मत्स्यघातीचपापकृत् ॥ तेनदृष्टस्ततोदूरा न्निषादात्मसमुद्भवैः ॥ १३ ॥ विष्णोःसतुमृगंमत्वा बाणंतस्यमुमोचह ॥ ततोसौपश्यतेयावद्गत्वातस्यतुसन्निधौ ॥ १४ ॥ चतुर्बाहुंमहाकायं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ पुरुषंनीलमेघाभं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥ १५ ॥ तंदृष्ट्वाभयभीतस्तु वेपमानःकृताञ्जलिः ॥ अब्रवीन्नमयाज्ञातस्त्वंविभोदिव्यरूपधृक् ॥ १६ ॥ अज्ञानात्त्वंमयाविद्धः स्वेपादाग्रेसुरोत्तम ॥ क्षन्तुमर्हसिमेनाथ नत्वन्द्रोग्धुमिहार्हसि ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शापस्यान्तोहिमेभद्र शरपातःकृतस्त्वया ॥ अस्मात्त्वंमेप्रसादेन स्वर्गंगच्छमहाद्युते ॥ १८ ॥ येचान्येमामिहागत्यद्रक्ष्यन्तिहिनरोत्तमाः ॥ तेयास्यन्तिपरंस्थानं यत्राहंनित्य

शङ्ख, चक्र व गदाको धारनेवाले और नीलमेघों के समान कमलसदृश लोचनोंवाले पुरुषको देखा ॥ १५ ॥ व उनको देखकर हाथोंको जोड़े व कांपतेहुये भयभीत निषाद ने कहा कि हे विभो ! मैंने दिव्यरूपधारी तुमको नहीं जाना ॥ १६ ॥ व हे सुरोत्तम ! मुझ से तुम अपने चरण के अग्रभाग में अज्ञान से वेधित हुये हो हे नाथ ! मेरे ऊपर तुम क्षमा करने के योग्य हो और यहां तुम द्रोह करने के योग्य नहीं हो ॥ १७ ॥ विष्णुजी बोले कि हे भद्र ! मेरे शापका अन्त हुआ है इसलिये तुमने बाण को मारा इस कारण हे महाद्युते ! तुममेरी प्रसन्नता से स्वर्ग को जावो ॥ १८ ॥ और जो अन्य उत्तम मनुष्य यहां आकर मुझको देखैंगे वे उत्तम स्थान

को प्रसन्नहोवैंगे जहां कि मैं सदैव स्थित रहताहूं ॥ १९ ॥ जिस लिये मैं उत्तम चरणतलमें तुम से भल्लबाण से वेधितहुआ उस कारण यह भल्लतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध हो गा ॥ २० ॥ पहले स्वायम्भुवमन्वन्तर में यह हरिक्षेत्र ऐसा कहागया है महादेवजी बोले कि यह कहकर विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये और बहेलिया भी स्वर्गको चलागया ॥ २१ ॥ बड़ी भक्तिसे संयुत जो मनुष्य वहां स्नान करैंगे वे मेरी प्रसन्नता व प्रीति से विष्णुलोकको जावैंगे ॥ २२ ॥ और पितरोंकी भक्तिमें परायण जो पुरुष वहां श्राद्ध करैंगे उसके पितर तर्पित होकर बड़ी तृप्तिको प्राप्त होवैंगे ॥ २३ ॥ इसलिये सब यत्नसे उस उत्तम क्षेत्रको प्राप्त होकर चतुर्भुज देवजीको देखकर भल्ल-

संस्थितः ॥ १९ ॥ भल्लेनाहंयतोविद्धस्त्वयापादतलेशुभे ॥ भल्लतीर्थमितिख्यातं ततोह्येतद्भविष्यति ॥ २० ॥ हरिक्षेत्र मितिप्रोक्तं पूर्वंस्वायम्भुवेन्तरे ॥ ईश्वर उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधौविष्णुर्लुब्धकोपिदिवङ्गतः ॥ २१ ॥ तत्रस्नानंकरिष्यन्ति भक्त्याचपरयायुताः ॥ विष्णुलोकंगमिष्यन्ति प्रीत्याममप्रसादतः ॥ २२ ॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति पितृभक्तिपरायणाः ॥ तृप्तिंपरांगमिष्यन्ति पितरस्तस्यतर्पिताः ॥ २३ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्राप्यतत्क्षेत्रमुत्तमम् ॥ दृष्ट्वादेवंचतुर्बाहुं स्नात्वातीर्थेतुभल्लके ॥ २४ ॥ मद्भक्तिबलदर्पिष्ठा मद्भक्तंप्रणमन्तिये ॥ मद्भक्तोपिहियोभूत्वा भुञ्जत्येकादशीदिने ॥ २५ ॥ मल्लिङ्गस्यार्चनंकार्यं नतेनपापबुद्धिना ॥ यातिथिर्दयिताविष्णोः सातिथिर्ममवल्लभा ॥ २६ ॥ नतामुपोषयेद्यस्तु सपापिष्ठतरोधिकः ॥ तद्वत्सद्वादशीयोगे भल्लतीर्थस्यसन्निधौ ॥ २७ ॥ यस्तुमाम्पूजयेद्भक्त्या नारीवापिनरोपिवा ॥ तस्यजन्मसहस्राणि गृहभङ्गोनजायते ॥ २८ ॥ इत्येतत्कथितंदेवि माहात्म्यंपापनाशनम् ॥ भल्लतीर्थस्यविष्णोश्च सर्वपात

तीर्थ में नहाकर ॥ २४ ॥ जो मेरे भक्तको प्रणाम करते हैं वे मेरी भक्तिके बल से गर्वितहोवैंगे और मेरा भक्त भी होकर जो एकादशी तिथि में भोजन करता है ॥ २५ ॥ उस पापबुद्धिको मेरे लिंगका पूजन न करना चाहिये क्योंकि जो विष्णुजीकी प्यारी तिथि है वह तिथि मुझको प्यारी है ॥ २६ ॥ उस तिथिको जो उपास नहीं करता है वह पापियों में अधिक है वैसेही द्वादशीसमेत योग में भल्लतीर्थ के समीप ॥ २७ ॥ स्त्री या जो पुरुष भी मुझको भक्तिसे पूजता है उसके हज़ार जन्मों

तक गृहभंग नहीं होता है ॥ २८ ॥ हे देवि ! विष्णुजी का व भल्लतीर्थका यह समस्त पातकों का नाशनेवाला पापविनाशक माहात्म्य कहागया ॥ २९ ॥ वहां विष्णुजी के समीप वायव्य मे भल्लतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध उत्तम कुण्डहै जहां पर श्रीकृष्णजी भल्लसे मारेगये हैं ॥ ३० ॥ वहां वस्त्रोंको देनाचाहिये व भलीभांति यात्रा के फलको चाहनेवाले मनुष्यों को उत्तम ब्राह्मणों के लिये विधि से सुवर्ण व गौवों को देनाचाहिये ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांभल्लतीर्थमाहात्म्यंनामसप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

कनाशनम् ॥२९॥ तत्रविष्णोस्तुसान्निध्ये वायव्येकुण्डमुत्तमम्॥ भल्लतीर्थमितिख्यातं यत्रभल्लहतोहरिः ॥ ३० ॥ तत्रदेयानिवासांसि स्वर्णंगावोविधानतः ॥ देयाश्चविप्रमुख्येभ्यः सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेभल्लतीर्थमाहात्म्यंनामसप्ताधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०७ ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कर्दमालयमुत्तमम् ॥ तीर्थंत्रैलोक्यविख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तस्मिन्नेकार्णवेघोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ चन्द्रार्कपवनेनष्टे ज्योतिषिप्रलयंगते ॥ २ ॥ रसातलगतामुर्वीं दृष्ट्वादेवोजनार्दनः ॥ वाराहंरूपमास्थाय दंष्ट्राग्रेणवरानने ॥ ३ ॥ उत्क्षिप्यधरणींमूर्ध्ना स्वस्थानेसंन्यवेशयत् ॥ उद्धृत्यधरणीं विष्णुर्वाक्यमेतदुवाचह ॥ ४ ॥ अत्रस्थानेस्थितेनैव मयात्वंदेविचोद्धृता ॥ ममात्रनियतंवासः सदैवात्रभविष्यति ॥ ५ ॥

दो० । कर्दमाल तीरथ भयो अति माहात्म्यसमेत । कह्यो तीनसौ आठ महँ सोई हर्षनिकेत ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उत्तम कर्दमालय को जावै समस्त पातकोंको नाशनेवाला वह तीर्थ त्रिलोक में प्रसिद्धहै ॥ १ ॥ उसभयंकर प्रलय में जब स्थावर जंगम नष्ट होगया तब चन्द्रमा, सूर्य व पवनके नष्ट होने पर व ज्योति नाश होने पर ॥ २ ॥ हे वरानने ! पृथ्वी को रसातल में प्राप्त देखकर विष्णुदेवजी ने वराहरूपमें स्थित होकर दाढ़के अग्रभाग से ॥ ३ ॥ पृथ्वी को मस्तक से ऊपर फेंककर अपने स्थान में धर दिया व पृथ्वीको ऊपर उठाकर विष्णुजी इस वचन को बोले ॥ ४ ॥ हे देवि ! इस स्थान में स्थित मुझ से तुम

उठाई गईहो यहांपर मेरा निश्चयकर सदैव निवास होगा ॥ ५ ॥ हे वरानने ! कर्दमालतीर्थ में जो मनुष्य पितरों को तर्पण करेंगे उससे कल्पपर्यन्त पितर तृप्त होवेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥ हे शुभे ! जो वहां शाक, मूल व फलसे श्राद्ध करेंगे उनसे सब तीर्थोंमें श्राद्ध कियाहुआ होगा ॥ ७ ॥ हे भामिनि ! इस तीर्थ में नहाकर जो मनुष्य मुझको देखता है वह महापातकको करके भी उससे छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८ ॥ जो कृमि, कीट व पक्षी और मनुष्य वहां मृत्युको प्राप्तहोते हैं मरेहुये वे प्राणी स्वर्गको जाते हैं जैसे कि ब्राह्मण पुण्यसे स्वर्गको प्राप्तहोते हैं ॥ ९ ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों में पैदा होते हैं व उत्तम वंशमें धनाढ्य होते हैं

येपितॄंस्तर्पयिष्यन्ति कर्द्दमालेवरानने ॥ आकल्पंतर्पितास्तेन भविष्यन्तिनसंशयः ॥ ६ ॥ तत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति शाकमूलफलेनवा ॥ भविष्यतिकृतंश्राद्धं सर्वतीर्थेषुतैःशुभे ॥ ७ ॥ अत्रतीर्थेनरःस्नात्वा योमांपश्यतिभामिनि ॥ अपिकृत्वामहापापं मुच्यतेनात्रसंशयः॥ ८ ॥ कृमिकीटपतङ्गाये निधनंयान्तिमानवाः ॥ तेमृतास्त्रिदिवंयान्ति सुकृतेनयथाद्विजाः ॥ ९ ॥ ततोविप्रेषुजायन्ते धनाढ्याश्चोत्तमेकुले ॥दंष्ट्राभेदेनयत्तोयं निर्गतंपृथिवीतले ॥१०॥ तत्रस्नात्वानरोदेवि तिर्य्यग्योनौनजायते ॥ ११ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेवियथापृष्टमाश्चर्य्यंतत्रवैपुरा ॥ मृगयूथंसुमन्त्रस्तं लुब्धकैःपरिपीडितम् ॥ १२ ॥ प्रविष्टंकर्द्दमालेत्र सद्योमानुषताङ्गतम् ॥ अथतेलुब्धकादृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ १३ ॥ अपृच्छन्तसुसंभ्रान्ता मर्त्यांस्तान्वरवर्णिनि ॥ मृगयूथमनुप्राप्तं केनमार्गेणनिर्गतम् ॥ १४ ॥ अथोचुस्तेवयंप्राप्ता मानु

जिस लिये पृथ्वी में दाढ़के भेदनसे जल निकला है ॥ १० ॥ इसकारण हे देवि ! उसमें नहाकर मनुष्य तिर्य्यग्योनिमें नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ११ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! जैसा पूंछागया है वैसेही सुनिये वहां जो पुरातन समय आश्चर्य हुआ है कि बहेलियों से पीड़ित मृगयूथ बहुतही डरकर ॥ १२ ॥ इस कर्दमाल तीर्थ में पैठा और उसी क्षण वह मनुष्यताको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर उसको देखकर विस्मय से प्रफुल्लितलोचनोंवाले उन बहेलियों ने ॥ १३ ॥ बहुतही संभ्रम में प्राप्तहोकर हे वरवर्णिनि ! उन मनुष्यों से पूंछा कि जो मृगयूथ प्राप्तहुआ था वह किस मार्ग से निकलगया ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर उन्होंने कहा कि इस तीर्थ के

प्रभावसे मृगरूपवाले हमलोग मनुष्यताको प्राप्तहुयेहैं और इस विषयमें हमलोग कारणको नहीं जानतेहैं ॥१५॥ तदनन्तर हे महाभाग ! वे बहेलिया धनुषों व बाणों को छोड़कर उसमें नहाकर वध से उपजेहुये पातकसे छूटगये ॥ १६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! कर्दमालसे उपजे हुये गुप्तचरित्र को सुनिये गुप्त व ब्रह्मर्षियों के सर्वस्वरूप इस चरित्रको जिसकिसी को न देना चाहिये ॥ १७ ॥ पहले भयंकर एकार्णवमें चराचर नष्ट होने पर व चन्द्रमा, सूर्य व पवनके नाश होने पर तथा प्रकाश नाश होने पर ॥ १८ ॥ ब्रह्मा ने इस समस्त संसार को एकार्णव देखा व हे वरानने ! वाराहजी ने सब पृथ्वी को दाढ़के अग्रभाग से ऊपर धर दिया ॥१९॥

ष्यंमृगरूपिणः ॥ एतत्तीर्थप्रभावेण नविद्मश्चात्रकारणम् ॥ १५ ॥ ततस्तेलुब्धकास्त्यक्त्वा धनूंषिचशराणिच ॥ तत्र स्नात्वामहाभागे मुक्ताःपापावधोद्भवात् ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणुदेविरहस्यन्तु कर्द्दमालसमुद्भवम् ॥ गूढंब्रह्मर्षि सर्वस्वं नदेयंयस्यकस्यचित ॥ १७ ॥ पूर्वमेकार्णवेघोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ चन्द्रार्कपवनेनष्टे ज्योतिषिप्रलयंगते ॥ १८ ॥ एकार्णवंजगदिदं ब्रह्मापश्यन्नशेषतः ॥ उद्दधारमहींकृत्स्नां दंष्ट्राग्रेणवरानने ॥ १९ ॥ वेदपादोयूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तःस्रुचोमुखः ॥ अग्निजिह्वोदर्भरोमा ब्रह्मशीर्षोमहातपाः ॥ २० ॥ अहोरात्रेक्षणपरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥ आज्यनासःस्रुवस्तुण्डः सामघोषस्वनोमहान् ॥ २१ ॥ प्राग्वंशकायोद्युतिमान् मात्रादीक्षाभिराजितः ॥ दक्षिणाहृदयोयोगी महासत्रमयोमहान् ॥ २२ ॥ उपाकृतोष्ठरुचिकः प्राग्वंशव्रतभूषणः ॥ नानाछन्दोगतिपथो ब्रह्मोक्तक्रमविक्रमः ॥२३॥ भूत्वायज्ञवराहोसौ उद्दधारमहींततः ॥ दंष्ट्रयानिहताप्रथ्वीबहिस्तस्मान्महार्णवात् ॥ २४ ॥ तस्मिन्प्राभासिकेक्षेत्रे क

जो वाराहजी वेद चरण, यज्ञस्तम्भ दाढ़ व यज्ञदन्त तथा स्रुवानन थे व अग्निजिह्व, कुशलोमा व वेदमस्तक तथा महातपस्वी थे ॥ २० ॥ व दिन रात नयन-वाले और वेदाङ्ग श्रुति आभरण तथा घृत नासिकावारे व स्रुवामुखवाले और सामवेदध्वनि शब्दवाले तथा महान् थे ॥ २१ ॥ व प्राग्वंश (सभासदगृह) शरीर-वाले, द्युतिमान् और मात्रारूपी दीक्षाओंसे विराजित थे और दक्षिणारूपी हृदयवाले,योगी व महायज्ञमय तथा महान् थे ॥ २२ ॥ और उपाकृत (यज्ञपशु) रूपी ओष्ठ रुचिवाले तथा सभासदगृह व व्रतरूपी भूषणोंवाले और अनेक भांतिके छन्दरूपी गतिमार्गवारे व वेदोक्त क्रम विक्रमवाले थे ॥ २३ ॥ यज्ञवराह होकर इन्होंने

पृथ्वीको ऊपर निकाला तदनन्तर दाढ़से पृथ्वी उस महासागर से बाहर धरीगई ॥ २४ ॥ हे देवि ! जिसलिये उस प्रभासक्षेत्र में उन वाराह की दाढ़के अग्रभाग पै कर्दम (कीचड़) से लेपहुआ उसी कारण कर्दमाल कहागया है ॥ २५ ॥ जहां पृथ्वी दाढ़ोंपै स्थितहुई है उन वाराहजी की दाढ़से ऊपर लायेहुये जलवाला वह दंष्ट्रोद्भेद महाकुण्ड करोड़गङ्गाके समान है ॥ २६ ॥ वहां दोकोसभर तक वह सनातन विष्णुक्षेत्र है जो विदेशमें गये हैं और जो पुण्यहीन मनुष्य मरते हैं ॥ २७ ॥ वे हज़ार कल्पोंतक विष्णुलोकको जातेहैं हे महादेवि ! कर्दमालतीर्थ में जो महादेवजी को देखताहै ॥ २८ ॥ करोड़ हत्याओंसे संयुत भी वह उत्तम गतिको पावैगा और

र्दमेनविलेपनम् ॥ तद्दंष्ट्राग्रेयतोदेवि कर्दमालंततःस्मृतम् ॥ २५ ॥ दंष्ट्रोद्भेदंमहाकुण्डं यत्रदंष्ट्रासुसंस्थिता ॥ तद्दंष्ट्रोद्धृततोयन्तुकोटिगङ्गासमंहितत् ॥२६॥ तत्रगव्यूतिमात्रन्तद्विष्णुक्षेत्रंसनातनम् ॥ देशान्तरगतायेचपुण्यहीनाम्रियन्ति ये ॥ २७ ॥ यावत्कल्पसहस्राणि विष्णुलोकंव्रजन्तिते ॥यस्तुपश्येन्महादेवि कर्दमालेतुशङ्करम् ॥ २८ ॥ कोटिहत्यायुतोवापिसम्प्राप्स्यतिपराङ्गतिम् ॥ दशजन्मकृतंपापंतस्यदर्शनतोनशेत् ॥ २९ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु यत्कृतंपापसञ्चयम् ॥ कर्दमालेवरारोहे दृष्ट्वातन्नाशमेष्यति ॥३०॥ हेमकोटिसहस्राणि गवांकोटिशतानिच ॥ दत्त्वायल्लभ्यतेपुण्यं तद्वाराहस्यदर्शनात् ॥ ३१ ॥ कलौयुगेमहारौद्रे प्राणिनांचभयावहे ॥ नान्यत्रजायतेमुक्तिर्मुक्त्वाक्षेत्रेहिशाङ्करम् ॥ ३२ ॥ एतत्सारमयन्देवि प्रोक्तमुद्देशतस्तव ॥ कर्दमालस्यमाहात्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेकर्दमालयमाहात्म्यंनामाष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०८ ॥ * ॥ * ॥

उन वाराहजी के दर्शन से दश जन्मों में कियाहुआ पाप नाश होजाता है ॥ २९ ॥ हे वरारोहे ! अन्यहज़ार जन्मों में जो पाप इकट्ठा कियागयाहै वह कर्दमालतीर्थ में वाराहजी को देखकर नाशको प्राप्तहोगा ॥ ३० ॥ करोड़ हज़ार अशर्फ़ी व करोड़सौ गौवोंको देकर जो पुण्य मिलताहै वह वाराहजी के दर्शन से प्राप्तहोता है ॥३१॥ प्राणियोंको भयदेनेवाले महाभयंकर कलियुगमें शिवजीके क्षेत्रको छोड़कर अन्यत्र मुक्ति नहीं होती है ॥३२॥ हे देवि ! तुम्हारे उद्देशसे यह सारांशमय समस्त पातकों का नाश करनेवाला कर्दमालतीर्थका माहात्म्य कहागया ॥३३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांकर्दमालयमाहात्म्यंनामाष्टाधिकत्रिशततमोऽध्यायः॥३०८॥

दो॰। थाप्यो है चन्द्रमा जिमि गुप्तेश्वर शिवनाम। कह्यो तीनसौ नवँ महँ सोइ चरित सुखधाम ॥ महादेवजी बोले कि हे प्रिये, महादेवि ! तदनन्तर वहां गुप्तसोमेश्वरजी के समीप जावै जहां कि पश्चिम व वायव्य में कुष्ठरोगके कारण लज्जासे नीचे मुख किये स्थित चन्द्रमाने गुप्त होकर देवताओंके हज़ारवर्षतक उत्तम प्रभासक्षेत्र में तप कियाहै ॥ १ । २ ॥ तदनन्तर सब देवताओं के स्वामी सदाशिवजी प्रत्यक्षता को प्राप्तहुये व प्रसन्न हुये और उन शिवजी ने चन्द्रमाके क्षयरोगको नाश किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर देवताओं व दैत्यों से नमस्कार कियेहुये महालिंगको थापकर मृगांक (चन्द्रमा) जी क्षयरोग से छूटगये ॥ ४ ॥ जिसलिये वहां गुप्त

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गुप्तसोमेश्वरम्प्रिये ॥ तत्रपश्चिमवायव्ये यत्रसोमोकरोत्तपः ॥ १ ॥ गुप्तोभूत्वाकुष्ठरोगाल्लज्जयाधोमुखःस्थितः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु प्रभासेक्षेत्रउत्तमे ॥ २ ॥ ततोप्रत्यक्षतांयातः सर्वदेवपतिःशिवः ॥ तुष्टोबभूवचन्द्रस्य क्षयनाशमथाकरोत् ॥ ३ ॥ क्षयरोगविनिर्मुक्तः ततोभून्मृगलाञ्छनः ॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ४ ॥ गुप्तंतत्रतपोयस्मात् तस्माद्गुप्तेश्वरःस्मृतः ॥ सर्वकुष्ठहरोदेवो दर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ५ ॥ सोमवारेविशेषेण यस्तल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ तस्यान्वयेपिदेवेशि कुष्ठीकश्चिन्नजायते ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच॥ ततोगच्छेन्महादेवि देवंबहुसुवर्णकम् ॥ हिरण्यापूर्वदिग्भागे स्थानेबहुसुवर्णके ॥ ७ ॥ धर्मपुत्रेणयत्रैव कृतोयज्ञःसुदुष्करः ॥ नाम्नाबहुसुवर्णेति स्थाप्यलिङ्गंमहाप्रभम् ॥ ८ ॥ सर्वक्रतूनांफलदं नाम्नासर्वेश्वरंविदुः ॥ तत्रैवसंस्थितंतीर्थं पूर्णंसारस्वतैर्जलैः ॥ ९ ॥ स्नात्वातत्रविधानेन पिण्डदानंददातियः ॥ कुलकोटिंसमुद्धृत्य रुद्रलोकेमहीयते ॥ १० ॥ यस्तम्पू

तप कियागया उसीकारण दर्शन व स्पर्शन करनेसे भी सब कुष्ठों को हरनेवाले गुप्तेश्वर देव कहे गये हैं ॥ ५ ॥ विशेषकर सोमवार में जो पुरुष उस लिंगको पूजै हे देवेशि ! उसके वंशमें भी कोई कुष्ठी नहीं होताहै ॥ ६ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर बहुसुवर्णक देवके समीप जावै हिरण्या के पूर्व दिशाके भाग में बहु सुवर्णकस्थान में ॥ ७ ॥ जहां धर्मपुत्र युधिष्ठिरजी ने बहु सुवर्णक ऐसे नाम से महाप्रभावान् लिंगको थापकर बहुत कठिन यज्ञ किया है ॥ ८ ॥ सब यज्ञों के फल को देनेवाले उनको विद्वान्लोग नाम से सर्वेश्वर कहते हैं और वहीं पर सरस्वतीजी के जलों से पूर्ण तीर्थ स्थित है ॥ ९ ॥ उस में नहाकर जो विधिसे

पिण्डदान देताहै वह करोड़ कुलोंको उधारकर शिवलोकमें पूजा जाताहै ॥१०॥ जो पुरुष उन शिवजीको विधिसे भक्तिपूर्वक चन्दन व पुष्पोंसे पूजताहै उसको कोटि पूजनका फलहोता है ऐसा सदाशिवजीने कहाहै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेभाषाटीकायासुवर्णेश्वरमाहात्म्यंनामनवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥

दो० । श्रृंगेश्वर कोटीश्वरहुं लिंग भये जिमि दोइ । कह्यो तीनसौ दशम महँ सुभग चरित सब सोइ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर शुक्रस्थान के समीप समस्त पातकों को नाश करनेवाले अति उत्तम श्रृंगेश्वरजी के समीप जावै ॥ १ ॥ वहीं विधिपूर्वक नहाकर जो मनुष्य श्रृंगेश्वरजी को पूजै वह समस्त

जयतेभक्त्या गन्धपुष्पैर्विधानतः ॥ कोटिपूजाफलंतस्य स्यादित्याहसदाशिवः ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेसुवर्णेश्वरमाहात्म्यंनामनवाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३०९ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि श्रृङ्गेश्वरमनुत्तमम् ॥ शुक्रस्थानस्यसांनिध्ये सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ स्नात्वातत्रैवविधिवच्छृङ्गेशम्पूजयेन्नरः ॥ मुक्तःस्यात्पातकैः सर्वैर्ऋष्यश्रृङ्गोन्यथापुरा ॥ २ ॥ तस्मादीशानदिग्भागे स्थितंयोजनमात्रके ॥ कोटीश्वरंमहालिङ्गं कोटियज्ञफलप्रदम् ॥ ३ ॥ स्नात्वातत्रविधानेन यस्तल्लिङ्गंप्रपूजयेत् ॥ समुक्तःपातकैःसर्वैः कोटियज्ञफलंलभेत् ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकोटीश्वरमाहात्म्यंनामदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव वाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि तीर्थंनारायणाभिधम् ॥ तस्यैवचेशदिग्भागे वापीशाण्डिल्यनिर्मिता ॥ १ ॥

पातकोंसे छूटजाता है जैसे कि ऋष्यश्रृंगजी पहले पापोंसे मुक्त हुयेहैं ॥ २ ॥ औरउससे ईशान दिशाके भागमें योजनभर पै कोटियज्ञोंके फलको देनेवाला कोटीश्वर महालिंग स्थित है ॥ ३ ॥ वहां स्नानकर जो मनुष्य विधि से उस लिंगको पूजता है वह सब पातकों से छूटजाता है और करोड़ यज्ञों के फलको पाताहै ॥ ४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकोटीश्वरमाहात्म्यंनामदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । जिमि शाण्डिल्यहुंतीर्थ कर अहै अमित परभाव । कह्यो तीनसौ गेरहे माहिं चरित चितचाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर नारा-

यणनामक तीर्थ के समीप जावै उसी के ईशानदिशा के भाग में शाण्डिलयजी से निर्माणकीहुई बावली है ॥ १ ॥ हे देवेशि ! विधिपूर्वक उसी में नहाकर जो पुरुष शाण्डिल्यजी को पूजै और पतिव्रता स्त्री विधि से ऋषिपंचमी तिथि में ॥ २ ॥ उन शाण्डिल्यजी को देखकर व स्पर्श कर निश्चय कर रजोदोषके दोषसे छूटजाती है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनारायणतीर्थेशाण्डिल्यतीर्थमाहात्म्यंनामैकादशाधिक त्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३११ ॥

दो॰ । श्रृंगारेश्वर पूजिकै होत दुःख सों मुक्त । सोइ तीनसौ बारहे माहिं चरित है उक्त ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर श्रृंगेश्वरनामक स्थान

स्नात्वातत्रैवदेवेशि शाण्डिल्यंयःप्रपूजयेत ॥ विधिनाऋषिपञ्चम्यां नारीचैवपतिव्रता॥२॥दृष्ट्वास्पृष्ट्वाविमुच्येत रजोदोषभयाद्ध्रुवम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कान्देनारायणतीर्थेशाण्डिल्यतीर्थमाहात्म्यंनामैकादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि स्थानंश्रृङ्गेश्वराभिधम् ॥ श्रृङ्गारेश्वरनामाच तत्रदेवःप्रतिष्ठितः ॥ १ ॥ श्रृङ्गारं विधिवच्चक्रे यत्रगोपीयुतोहरिः ॥ श्रृङ्गारेश्वरनामाच तेनपापौघनाशनः ॥ २ ॥ पूजयेद्योविधानेन तत्रस्थानेस्थितम्भवम् ॥ दरिद्रदुःखसंयुक्तो नसभूयाद्भवेकचित ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेश्रृङ्गारेश्वरमाहात्म्यंनामद्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यातटसंस्थितम् ॥ घटिकास्थानमितिच यत्रसिद्धःपुराऋषिः ॥ १ ॥

के समीप जावै और वहां श्रृंगारेश्वरनामक देव थापेगये हैं ॥ १ ॥ जहां कि गोपियों से संयुत श्रीकृष्णजी ने विधिपूर्वक श्रृंगार किया है उसीसे श्रृंगारेश्वरनामक देवजी पापौघको नाशनेवाले हैं ॥ २ ॥ उस स्थान में स्थित शिवजी को जो विधिसे पूजता है वह किसी जन्म में दरिद्र व दुःख से संयुत नहीं होताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रृङ्गारेश्वरमाहात्म्यंनामद्वादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । मण्डुकीश इमि लिंग जिमि भयो युक्त परभाव । सोइ तीनसौ तेरहे माहिं चरित सुखभाव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्यानदी

के किनारे स्थित घटिकास्थान के समीप जावै जहां कि हे वराननै ! पुरातन समय मृकण्ड ऋषि एक घड़ी में ध्यान के योगसे सिद्ध हुये हैं वहीं पर भलीभांति स्थित मार्कण्डेश्वरनामक लिंग ॥ १ । २ ॥ दर्शन व पूजन से भी सब पापसमूहोंको नाशनेवाला है ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे महादेवि ! मण्डुकीश्वर ऐसे लिंगके समीपजावै वहा मण्डुकीश्वरनामक लिंग थापागया है ॥ ४ ॥ व हे देवि ! वहां कोटिप्रद व कोटीश्वर देव कहेगये हैं और वहां कामनाओं के फलको देनेवाला मातृगण स्थित है ॥ ५ ॥ कोटिप्रदतीर्थमें नहाकर जो मनुष्य उस लिंगको पूजै वह वैसेही मातृकाओंको भलीभांति पूजकर दुःख व शोकसे छूटजाता है ॥ ६ ॥ हे देवेशि ! उस

नाड्यैकयामृकण्डस्तु ध्यानयोगाद्वरानने॥ तत्रैवसंस्थितंलिङ्गं मार्कण्डेश्वरनामतः ॥२॥ सर्वपापौघशमनं दर्शनात्पूजनादपि ॥ ३ ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मण्डुकीश्वरमित्यपि॥ मण्डुकीश्वरनामेति तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ ४॥ तत्रकोटिप्रदोदेवि तथाकोटीश्वरःस्मृतः ॥ तत्रमातृगणश्चैव स्थितःकामफलप्रदः ॥ ५ ॥ स्नात्वाकोटिप्रदेतीर्थे तल्लिङ्गंयःप्रपूजयेत् ॥ मातॄस्तथैवसम्पूज्य दुःखशोकाद्विमुच्यते ॥ ६ ॥ तस्मात्पूर्वेणदेवेशि योजनैकेननिर्मलम् ॥ अत्रिकूपेतिविख्यातं सर्वपातकनाशनम् ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेमण्डुकीश्वरमातृगणमाहात्म्यंनामत्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि गोष्पदस्योत्तरेस्थितम् ॥ गव्यूतिद्वितयेनैव बालार्कमितिविश्रुतम् ॥ १ ॥ तत्रैकादशरुद्राणां स्थानंलिङ्गान्यपिप्रिये ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्येसन्तीत्यादीनिनामतः ॥२॥ पूजयेत्तानिविधिवन्मुच्यते

से पूर्व दिशामें एक योजन पर समस्त पातकोंको नाशकरनेवाला निर्मल अत्रिकूप ऐसा प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमण्डुकीश्वरमातृगणमाहात्म्यंनामत्रयोदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । जिमि गेरह शिवलिंगकर अहै सुन्दर स्थान । कथा तीनसौ चौदहे माहिं सोइ आख्यान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर गोष्पद के उत्तर में चार कोस पै स्थित बालार्क ऐसे प्रसिद्ध देवके समीप जावै ॥ १ ॥ हे प्रिये ! वहा गेरह रुद्रोंका स्थानहै व अजैकपात् और अहिर्बुध्न्य इत्यादि नामोंसे लिंग हैं ॥२॥

उनको जो विधिपूर्वक पूजता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे महादेवि ! हिरण्यानदी के किनारे पै स्थित स्थान के समीप जावै जहा कि ये मुण्डेश्वरनामक सदाशिव हैं ॥ ४ ॥ वहां कोटेश्वरनामक शिवदेवजी हैं जहां कि मैंने जटाको बांधा है वहां नहाकर जो मनुष्य रुद्रेशजी को पूजता है ॥ ५ ॥ वह सब पापोंसे छूटजाता है व शिवजी की आज्ञाको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांहिरण्यायांकोटेश्वरमाहात्म्यं नामचतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥ ॥ ॥ ॥

सर्वपातकैः ॥ ३ ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यातटसंस्थितम् ॥ स्थानंमुण्डेश्वरोनाम यत्रासौचसदाशिवः ॥ ४ ॥ तत्रकोटेश्वरोनाम यत्रबद्धाजटामया ॥ तत्रस्नात्वानरःसम्यग्रुद्रेशंयःप्रपूजयेत ॥ ५ ॥ समुक्तःपातकैःसर्वैः प्राप्नुयाच्छिवशासनम् ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेहिरण्यायांकोटेश्वरमाहात्म्यंनाम चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि हिरण्यायाश्चउत्तरे ॥ सिद्धस्थानानिदिव्यानि यत्रसिद्धामहर्षयः ॥ १ ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानि शक्यन्तेकथितुन्नहि ॥ साग्रंशतम्पुनस्तत्र लिङ्गानांप्रवरंस्मृतम् ॥ २ ॥ शोणायास्तुतटेदेविलिङ्गान्येकोनविंशतिः ॥ न्यङ्कुमत्यास्तटेदेवि सहस्रंद्विशताधिकम् ॥ ३ ॥ प्राधान्येनवरारोहे पूर्वस्वायम्भुवेन्तरे ॥ कपिलायास्तटेदेवि लिङ्गानांषष्टिरुत्तमा ॥ ४ ॥ सरस्वत्यांपुनस्तत्र लिङ्गसंख्यानविद्यते ॥ एवंपञ्चमुखान्येव लिङ्गान्येको

दो० । यथा प्रभासक्षेत्र में लिंग अहैं बहुतेर । सोइ तीनसौ पन्द्रहे माहिं चरित सुखढेर ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर हिरण्यानदी के उत्तरमें दिव्य सिद्धस्थानों को जावै जहा कि महर्षिलोग सिद्धहुये हैं ॥ १ ॥ और वहां अनेक लिंग हैं जोकि कहे नहीं जासक्ते हैं फिर वहा कुछ अधिक सौ लिंग श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ २ ॥ हे देवि ! शोणा नदीके किनारे उन्नीस लिंग हैं व हे देवि ! न्यंकुमती के किनारे बारह सौ लिंग हैं ॥ ३ ॥ व हे वरारोहे, देवि ! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रधानतासे कपिला नदी के किनारे उत्तम साठ लिंग हैं ॥ ४ ॥ फिर सरस्वती नदीके समीप लिंगों की संख्या नहीं विद्यमान है इसीप्रकार पञ्चमुखवाले

उन्नीस लिंग हैं ॥ ५ ॥ व हे देवि ! प्रभासक्षेत्र में पांच सोतोंवाली सरस्वती कही गई है उसके प्रभावों से संभिन्न बारह योजन क्षेत्र है ॥ ६ ॥ वहां बावलियों में व कूपों में जहां तहां उपजाहुआ जो जल है उसको सरस्वतीजी का जल जानना चाहिये व जो उस जलको पीते हैं वे धन्य हैं ॥ ७ ॥ भलीभांति श्रद्धासंयुत मनुष्य जहा तहां स्नानकर सरस्वती के स्नानफलको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है॥ ८ ॥ श्रीसोमेश ऐसा प्रसिद्ध जो स्पर्शलिंग कहागया है प्रभासक्षेत्र के लिंगों के मध्यमें वह उन्हीं शिवजी की कला है ॥ ९ ॥ क्षेत्र के मध्य में प्राप्त जिस किसी लिंगको श्रीसोमेश ऐसा जानकर पूजन कर सोमेशजी पूजित होते हैं ॥ १० ॥

नविंशतिः ॥५॥ प्रभासेकथितादेवि पञ्चस्रोताःसरस्वती ॥ तस्याःप्रभावैःसंभिन्नं क्षेत्रंद्वादशयोजनम् ॥६॥ तत्रवापीषुकूपेषु यत्रतत्रोद्भवंजलम् ॥ सारस्वतन्तुतज्ज्ञेयं तेधन्यायेपिबन्तितत् ॥७॥ यत्रतत्रनरःस्नात्वा सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ सारस्वतंस्नानफलं लभतेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ यत्प्रोक्तंस्पर्शलिङ्गन्तु श्रीसोमेशेतिविश्रुतम् ॥ प्रभासक्षेत्रलिङ्गानां कलातस्यैवशाङ्करी ॥ ९ ॥ यद्वातद्वापूजयित्वा लिङ्गंक्षेत्रस्यमध्यगम् ॥ श्रीसोमेशमितिज्ञात्वा सोमेशःपूजितोभवेत् ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेलिङ्गानांमाहात्म्यवर्णनन्नामपञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि कौशिकस्याश्रमम्प्रति ॥ तपस्तप्त्वापुरादेवि सिद्धिंनारायणोगतः ॥ १ ॥ पश्चिमाभिमुखंलिङ्गं तत्रस्थापितवान्किल ॥ शिवयोगेतुसंप्राप्ते यस्तत्पूजयतेसुधीः ॥ २ ॥ सर्वसौख्यानिसंप्राप्य देहान्तेशिवमाप्नुते ॥ यत्राघमर्षणंकृत्वा सस्नौकौशिकसत्तमः ॥ ३ ॥ तत्रस्नात्वानरोदेवि मुच्यतेपातकैरिह ॥ भैरवंक्षेत्रपा

इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांलिङ्गानांवर्णनंनामपञ्चदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि कौशिक कर आश्रमहुं अहै अमित शुभदाइ । सोइ तीनसौ सोलहे माहिं चरित है गाइ ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर कौशिकजी के आश्रम को जावै जहां कि हे देवि ! पुरातन समय तपस्या कर नारायणजी सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १ ॥ व उन्होंने पश्चिमाभिमुख लिंगको थापित किया है शिव योग प्राप्तहोनेपर जो विद्वान् उस लिंगको पूजता है ॥ २ ॥ वह सब सुखोंको पाकर देहान्त में शिवजीको प्राप्तहोता है जहां पर श्रेष्ठ कौशिकजी ने अघमर्षण कर

स्नान किया है ॥ ३ ॥ हे देवि ! उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य यहां पातकों से छूटजाता है और वहां जो विद्वान् चौदसि व पञ्चमी तिथि में लाल फूलों व अनुलेपनों से भैरवक्षेत्रपालजी को पूजता है उसके लिये प्रसन्न होतेहुये वे भैरवजी चाहेहुये मनोरथों को देते हैं ॥ ४ । ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायांकौशिकाश्रममाहात्म्यंनामषोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा रैवतक अचल पै हैं दामोदर देव । कह्यो तीनसौ सत्रहे माहिं चरित सुखसेव ॥ महादेवजी बोले कि इसके उपरान्त मैं वस्त्रापथमाहात्म्यसमेत क्षेत्र-

लश्च तत्रयःपूजयेत्सुधीः ॥ ४ ॥ चतुर्दश्यांचपञ्चम्यां रक्तपुष्पानुलेपनैः ॥ तस्मैप्रीतोददात्येव वाञ्छितान्समनोरथान् ॥ ५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेकौशिकाश्रममाहात्म्यन्नामषोडशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१६ ॥

शिव उवाच ॥ अथातःसंप्रवक्ष्यामि क्षेत्रगर्भमहोदयम् ॥ सवस्त्रापथमाहात्म्यं यत्ररैवतकोगिरिः ॥ १ ॥ दामोदरंरैवतके भवंचस्नापयेत्तथा ॥ एतद्वस्त्रापथंक्षेत्रं प्रभासाच्चयवाधिकम् ॥ २ ॥ स्वर्णरेखाचयत्रैव महापातकनाशिनी ॥ इन्द्रेश्वरश्चयत्रैवमथोवैमृन्मयेश्वरः ॥ ३ ॥ तत्रपुष्करिणीतत्र तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ब्रह्मकुण्डंचतत्रैव रुद्रसौभाग्यमेवच ॥ ४ ॥ कुण्डंचरेवतीसंज्ञं वसिष्ठस्याश्रमस्तथा ॥ एतद्वस्त्रापथंक्षेत्रं कैलासान्ममवल्लभम् ॥ ५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ भगवन्विस्तराद्ब्रूहि दामोदरमहोदयम् ॥ क्षेत्रगर्भस्यमाहात्म्यं कर्णिकारूपसंस्थितम् ॥ ६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ शृणु

गर्भ के माहात्म्यको कहताहूं जहां कि रैवतक पर्वत है ॥ १ ॥ वहां रैवतक पर्वत पै दामोदर व शिवजी को स्नान करावै यह वस्त्रापथक्षेत्र प्रभाससे यवभर अधिक है जहां कि महापातकों को नाशनेवाली स्वर्णरेखा है व जहां पर इन्द्रेश्वर व मृन्मयेश्वर हैं ॥ २।३ ॥ वहां पुष्करिणी नदी है और वहीं त्रिलोकमें प्रसिद्ध तीर्थ है व वहीं परब्रह्मकुण्ड तथा रुद्रसौभाग्यतीर्थ है ॥ ४ ॥ व रेवतीसंज्ञक कुण्ड तथा वसिष्ठजी का आश्रम है यह वस्त्रापथक्षेत्र मुझको कैलास से प्रिय है श्रीदेवी पार्वती जी बोलीं कि हे भगवन् ! विस्तारसे दामोदर के माहात्म्यको कहिये व क्षेत्रगर्भ के माहात्म्यको कहिये जोकि कर्णिकारूप स्थित है ॥ ५।६ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि !

सुनिये पुरातन समय दामोदर विष्णुके विषयमें कल्पवासी ऋषियों से इतिहास कहागया है ॥ ७ ॥ देशों से संयुत, मनोहर व पवित्र तथा ऋषियों से सेवित व नित्यही स्वर्ग मार्गदायक तथा अचल गङ्गाजी के किनारे पै ॥ ८ ॥ जहां ज्ञानवेदी ब्राह्मण अनेक प्रकार के यज्ञोंसे पूजते हैं व ऋषिलोग सांख्ययोग से तथा अन्य मनुष्य दानही से पूजते हैं ॥ ९ ॥ व स्वर्गको चाहनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र देवताओं को भी दुर्लभ उस दिव्य जलको सेवतेहैं ॥ १० ॥ वहां सब मनुष्यों का स्वामी व बलवान् गजनामक राजा राज्यको छोड़कर गंगाजल में स्नान के लिये गया ॥ ११ ॥ और उसकी जो रूपसंयुत व पुत्रवती तथा उत्तम आचरणवाली

देविप्रवक्ष्यामि दामोदरहरिंप्रति ॥ इतिहासपुराख्यातं ऋषिभिःकल्पवासिभिः ॥ ७ ॥ गङ्गातीरेशुभेरम्ये पुण्येजनपदाकुले ॥ ऋषिभिःसेवितेनित्यं स्वर्गमार्गप्रदेध्रुवे ॥ ८ ॥ यत्रज्ञानविदोविप्रा यजन्तिविविधैर्मखैः ॥ ऋषयःसांख्ययोगेन दानेनैवेतरेजनाः ॥ ९ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शूद्राःस्वर्गमभीप्सवः ॥ सेवन्तेतज्जलंदिव्यं देवानामपिदुर्लभम् ॥ १० ॥ तत्रराजागजोनाम बलीसर्वजनाधिपः ॥ गङ्गाजलाभिषेकार्थं त्यक्त्वाराज्यंजगामह ॥ ११ ॥ भार्यातस्यसतीसाध्वी पुत्रिणीरूपसंयुता ॥ साप्यगातसहतेनैव भर्त्रावैभर्तृवत्सला ॥ १२ ॥ एवंविवसतातत्र वर्षाणामयुतंगतम् ॥ १३ ॥ आजगामऋषिस्तत्र भद्रोनाममहायशाः ॥ सहितोबहुभिर्विप्रैर्जपहोमपरायणैः ॥ १४ ॥ त्यक्त्वासंसारमार्गन्तु स्वर्गमार्गंजिगीषवः ॥ गङ्गांत्रिषवणंकृत्वा स्फोटयित्वाङ्गजंमलम् ॥ १५ ॥ जलंदत्त्वातुभूतेभ्यः पूजयित्वाजनार्दनम् ॥ येवसन्तिनदीतीरे ऋषयोभद्रकादयः ॥ १६ ॥ तावत्पश्यन्तिराजानं गजंवरगजोपमम् ॥ तेनैवदृष्टामुनयो राज्ञानिहतक

पतिव्रता स्त्री थी पतिप्रिया वह भी उसी पतिके साथ गई ॥ १२ ॥ इसप्रकार वहां बसतेहुये उसको दशहज़ार वर्ष बीतगये ॥ १३ ॥ तब वहां बड़े यशस्वी भद्रनामक ऋषि जप व हवन में परायण बहुत ब्राह्मणोंसमेत आये ॥ १४ ॥ और संसार के मार्गको छोड़कर स्वर्गमार्गको जानेकी इच्छावाले वे गंगाजी में त्रिकालस्नानकर अंग से उपजेहुये मलको छुड़ाकर ॥ १५ ॥ प्राणियों के लिये जल देकर व विष्णुजीको पूजकर जो नदी के किनारे भद्रकादिक ऋषि बसते थे ॥ १६ ॥ वे तबतक उत्तम

हाथी के समान गज राजाको देखने लगे व उन राजाने पातकोंसे रहित मुनियोंको देखा ॥ १७ ॥ जैसे कि बुद्धिमान् इन्द्रने स्वर्ग में सप्तर्षियों को देखाहै इसके अनन्तर पन्द्रह पग पर उन ऋषियोंको देखकर राजा बोले ॥ १८ ॥ कि यहां पूजन के योग्य आपलोग मेरे घरको आइये व सब लोग संगतानामक मेरी यशस्विनी स्त्री को देखिये ॥ १९ ॥ व हे महाभागो! उसके पूजन को ग्रहण कर जो मार्ग मनमें स्थितहो पवित्रमार्गको चाहनेवाले तुमलोग उस मार्गको जाइयेगा ॥ २० ॥ राजासे इसप्रकार कहेहुये वे ऋषिलोग विना कौतुक इन्द्रनगर के समान उत्तम मन्दिरको आये ॥ २१ ॥ उनको मनस्विनी संगता रानी विचित्र आसनों को देकर राजराज गजसमेत

त्मषाः ॥ १७ ॥ सप्तर्षयोयथास्वर्गे सुरराजेनधीमता ॥ तानृषीनथसंवीक्ष्य पदानिदशपञ्चच ॥ १८ ॥ आगच्छन्त्वत्र पूजार्हाभवन्तोममसन्दिरम् ॥ पश्यन्तुसङ्गतांसर्वे ममभार्यायशस्विनीम् ॥ १९ ॥ तस्याःपूजांसमादाय योमार्गोमनसिस्थितः ॥ तंगच्छध्वंमहाभागाः पुण्यंमार्गमभीप्सवः ॥ २० ॥ एवमुक्तास्तुतेराज्ञा ऋषयःकौतुकंविना ॥ आजग्मुर्मन्दिरंशुभ्रं पुरन्दरपुरोपमम् ॥ २१ ॥ आसनानिविचित्राणि दत्त्वातेषांमनस्विनी ॥ सङ्गताराजराजेन सार्धमग्रेऽव्यवस्थिता ॥ २२ ॥ कृत्वाकरपुटंराजा ऋषीणांपुण्यकर्मणाम् ॥ बभाषेवचनंराजा भद्रंभद्रैस्सुसङ्गतम् ॥ २३ ॥ वसुधावसुसम्पूर्णा मण्डितानगरीपुरी ॥ पर्वतैश्चसमुद्रैश्च सरिद्भिश्चसरोवरैः ॥ २४ ॥ ग्रामैश्चतुष्पदैर्घोरैर्गोकुलैराकुलीकृता ॥ नररत्नैश्चरत्नैश्च सागराकरसङ्कुला ॥ २५ ॥ दुस्त्यजाभोगभोक्तॄणां परंज्ञानमजानताम् ॥ संसारेसुमहाघोरे पुनरावृत्तिकारिणी ॥ २६ ॥ पतन्तिपुरुषाभद्र अत्रैवचपुनःपुनः ॥ कृतेनयेनविप्रेन्द्र स्वर्गंप्राप्नोतिनिर्मलम् ॥ २७ ॥ दानेनतपसा

आगे स्थितहुई ॥ २२ ॥ और राजा पुण्यकर्मी ऋषियों के आगे हाथोंको जोड़कर कल्याणकारी मुनियों के साथ आयेहुये भद्रमुनिसे वचन बोले ॥ २३ ॥ कि पृथ्वी धन से संपूर्ण है व नगरी तथा पुरी शोभित है और पर्वतों तथा समुद्रों व नदियों और तड़ागों से युक्त है ॥ २४ ॥ और ग्रामों से व भयंकर चतुष्पदोंसे व गोकुलों से व्याप्तकीगई है और श्रेष्ठ मनुष्यों से व रत्नों से और समुद्रों व खानियों से युक्त है ॥ २५ ॥ और उत्तम ज्ञानको न जानतेहुये सुखों को भोगनेवाले पुरुषों को दुस्त्यज है और महाभयंकर संसारमें पुनरावृत्तिको करनेवाली है ॥ २६ ॥ व हे भद्र ! बार २ पुरुष यहीं गिरते हैं हे द्विजेन्द्र ! जिस दान व तपस्याके करने से मनुष्य

निर्मल स्वर्ग को प्राप्त होवै हे सुव्रत ! उसको मुझ से कहिये ॥ २७ । २८ ॥ भद्र बोले कि तीर्थ जल से पूर्ण हैं व देवता पत्थर तथा मिट्टी के विकार से बनायेगये हैं इससे जो शरीर में स्थित ईश्वर को नहीं देखते हैं वे उस परम पुरुषको नहीं देखते हैं ॥ २९ ॥ अनेकों पवित्र तीर्थ व पवित्र देवमन्दिर हैं और पुण्यरूपी जल-वाले व पवित्र नदी व समुद्र हैं ॥ ३० ॥ व प्रत्येक स्थान में व पग पग पै पृथ्वी बहुत पुण्यको देनेवाली है हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ, नृपेन्द्र ! यदि ज्ञान होवै तो ॥ ३१ ॥ प्रभासमें कृष्ण, विष्णु, हृषीकेश, शङ्खधारी, गदाधारी, चतुर्भुज, महाबाहु व दैत्यसूदन ॥ ३२ ॥ वराह, वामन, नारसिंह, बल व अर्जुन, तथा रामचन्द्र, बलराम व

चैव तन्ममाचक्ष्वसुव्रत ॥ २८ ॥ भद्र उवाच ॥ तीर्थानितोयपूर्णानि देवाःपाषाणमृन्मयाः ॥ आत्मस्थंयेनपश्यन्ति तेनपश्यन्तितत्परम् ॥ २९ ॥ सन्तितीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ पुण्यतोयाःपवित्राश्च सरितःसागरास्तथा ॥ ३० ॥ बहुपुण्यप्रदापृथ्वी स्थानेस्थानेपदेपदे ॥ यद्यस्तितर्हिराजेन्द्र ज्ञानंज्ञानवतांवर ॥ ३१ ॥ कृष्णंविष्णुंहृषीकेशं शङ्खिनंगदिनंतथा ॥ चतुर्भुजंमहाबाहुं प्रभासेदैत्यसूदनम् ॥ ३२ ॥ वराहंवामनञ्चैव नारसिंहंबलार्जुनौ ॥ रामंरामंचरामंच पुरुषोत्तममेवच ॥ ३३ ॥ पुण्डरीकेक्षणञ्चैवगदापाणिन्तथैवच ॥ राघवंशत्रुदमनं गोविन्दंबहुपुण्यदम् ॥ ३४ ॥ जयञ्चभूधरंचैव देवदेवंजनार्द्दनम् ॥ सुरेशंश्रीधरंचैव हरिंयोगीश्वरंतथा ॥ ३५ ॥ कपिलेश्वरनाथञ्च श्वेतद्वीपपतिंहरिम् ॥ बदराश्रमवासौच नरनारायणौतथा ॥ ३६ ॥ पद्मनाभंसुनाभंच हयग्रीवंविशाम्पते ॥ द्विजनाथंधरानाथंशार्ङ्गपाणिनमेवच ॥ ३७ ॥ दामोदरंजगन्नाथं सर्वपापहरंहरिम् ॥ एतान्येवहि स्थानानि देवदेवस्यचक्रिणः ॥ ३८ ॥

परशुराम और पुरुषोत्तम स्थान ॥ ३३ ॥ व पुण्डरीकनयन, गदापाणि, राघव, शत्रुदमन, गोविन्द, बहुपुण्यदायक, ॥ ३४ ॥ जय, भूधर, देवदेव, जनार्दन, सुरेश, श्रीधर, हरि व योगीश्वर ॥ ३५ ॥ और कपिलेश्वर नाथ व श्वेतद्वीपपति, हरि और बदरिकाश्रम निवासी नरनारायण ॥ ३६ ॥ व हे विशांपते ! पद्मनाभ, सुनाभ हयग्रीव, द्विजनाथ, धरानाथ, व शार्ङ्गपाणि ॥ ३७ ॥ और दामोदर, जगन्नाथ व सब पापों के हरनेवाले हरिचक्रधारी देवदेवजी के इतनेही स्थान हैं ॥ ३८ ॥ इन

में से जहां तहां जावै तो सब पापों से मनुष्य छूटजाता है और गंगा, यमुना व गोदावरी नदी ॥ ३९ ॥ और शतद्रु तथा विन्ध्या, पयोधा व वरदा तथा चर्मण्वती, सरयू व प्रचण्ड पातकोंको नाशनेवाली गण्डकी ॥ ४० ॥ व चन्द्रभागा, विपाशा तथा शोणा व पुनपुना नदी ये और अन्य जो बहुत सी नदियांहैं व हिमवान् पर्वत भी ॥ ४१ ॥ इनके नाम के कहने से भी पातक रसातलको चलाजाताहै ॥ ४२ ॥ गज बोले कि हे भद्र ! अमृतके समान व कल्याणकारक चरित्र कहागया व हे सब धर्मोंको जाननेवाले ! मैं तुमसे कुछ पूंछताहूं ॥४३॥ कि जिस महीनेमें व जिसदिन जिस तीर्थमें मनुष्य जाने से अक्षय स्वर्ग को सेवता है उसको तुम मुझसे कहने

गच्छन्तेयत्रतत्रैव मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ गङ्गाचयमुनाचैव नदीगोदावरीतथा ॥ ३९ ॥ शतद्रुश्चतथाविन्ध्या पयोधाव रदातथा ॥ चर्मण्वतीचसरयू गण्डकीचण्डपापहा ॥ ४० ॥ चन्द्रभागाविपाशाच शोणाचैवपुनःपुनः ॥ एताश्चान्याश्च यावत्यस्सरितोहिमवानपि ॥ ४१ ॥ नामोच्चारेणयेषांहि पापंयातिरसातलम् ॥ ४२ ॥ गज उवाच ॥ भद्रंहिभाषितम्भ द्र आख्यानममृतोपमम् ॥ पृच्छामिसर्वधर्मज्ञ त्वामहंकिञ्चिदेवहि ॥ ४३ ॥ यस्मिन्मासेदिनेयस्मिंस्तीर्थेयस्मिन् क्रमान्नरः ॥ अक्षयंसेवतेस्वर्गं तन्मेगदितुमर्हसि ॥ ४४ ॥ भद्र उवाच ॥ श्रूयतांराजशार्दूल कथांकथयतोमम ॥ ऋ षीनकथयत्पूर्वं नारदोमुनिसत्तमः ॥ ४५ ॥ कथयामाससंहृष्टो मेघदुन्दुभिनिस्वनैः ॥ रम्येहिमवतःपृष्ठे तत्सर्वंचमया श्रुतम् ॥ ४६ ॥ तदहंतववक्ष्यामि शृणुकामंनरर्षभ ॥ तीर्थान्येवतुसर्वाणि पुष्करावर्त्तकानिच ॥ ४७ ॥ अक्षयाँल्ल भतेलोकांस्तत्तीर्थंकथयामिते ॥ मार्गशीर्षेकान्यकुब्जे उषित्वाऋषिसत्तम ॥ ४८ ॥ नशोचतिनरोनारी स्वर्गंयाति

के योग्य हो ॥ ४४ ॥ भद्र बोले कि हे नृपोत्तम ! कथाको कहते हुये मुझसे सुनिये जोकि पुरातन समय मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने ऋषियों से कहाहै ॥ ४५ ॥ सुन्दर हिमाचल के पृष्ठपै प्रसन्न होतेहुये नारदजी ने मेघ व दुन्दुभिके समान शब्दोंसे जो कहाहै उस सबको मैंने सुनाहै ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! मैं उसको तुमसे कहताहूं इच्छापूर्वक सुनिये और पुष्करावर्तकादिक सब तीर्थोंको सुनिये ॥ ४७ ॥ जिससे मनुष्य अक्षयलोकों को प्राप्तहोताहै उस तीर्थको मैं तुमसे कहताहूं हे मुनिनाथ ! अगहन

महीने में कान्यकुब्जतीर्थ में बसकर ॥ ४८ ॥ स्त्री या पुरुष नहीं शोचता है बरन उत्तम स्वर्गको जाताहै और जो पौषमास की पौर्णमासी है वह यदि अर्बुद पर्वतपर कीजाती है ॥ ४९ ॥ तो पितरोंसमेत मनुष्य अरब वर्षोंतक स्वर्ग में आनन्द करता है और यदि माघी पौर्णमासीमें मनुष्य गयाश्राद्ध को देताहै ॥ ५० ॥ तो वह उत्तम स्थानको प्राप्तहोता है जहां कि जनार्दनदेवजी हैं व फागुनी पौर्णमासी में जो मनुष्य हिमाचल के ऊपर एक रात बसता है ॥ ५१ ॥ और चैती पौर्णमासी में जो विद्वान् प्रभासक्षेत्रमें श्राद्ध करते हैं वे अतिउत्तम मनुष्यवंश में उपजेहुये मनुष्योंसमेत इस संसार में उत्पन्न नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥ व वैशाखी पौर्णमासी में जो मनुष्य

परावरम् ॥ पौषस्यपौर्णमासीया यदिसाक्रियतेर्बुदे ॥ ४९ ॥ वर्षाणामर्बुदंस्वर्गे मोदतेपितृभिःसह ॥ माघ्यांयदिगया श्राद्धं पितृणांयच्छतेनरः ॥ ५० ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रदेवोजनार्द्दनः ॥ फाल्गुन्यांहिमवत्पृष्ठे वसत्येकांनिशान्नरः ॥ ५१ ॥ चैत्र्यांश्राद्धंप्रभासेतु कुर्वन्तिचमनीषिणः ॥ नतेमर्त्याभवन्तीह कुलजैःसहसत्तमाः ॥ ५२ ॥ जलपानंचवैशाख्यां येकुर्वन्तिजलप्रिये ॥ तथावन्त्यांनरःकश्चित्सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ५३ ॥ ज्येष्ठ्यांचपौर्णमास्यांवै सुश्राद्धंचत्रिकूपके ॥ तिष्ठतेचनरःस्वर्गे वैकुण्ठमधिगच्छति ॥ ५४ ॥ श्रावणस्याप्यमावास्या पूर्णिमापूर्वसागरे ॥ स्नानंदानंजपंश्राद्धं नरःकुर्वन्नशोच्यते ॥ ५५ ॥ तथाभाद्रपदेक्षेत्रे प्रभासेशशिभूषणम् ॥ पूजयित्वानरोलिङ्गं देवलिङ्गोभवेत्ततः ॥ ५६ ॥ आश्विनेचन्द्रभागायाः श्राद्धंस्नानंकरोतियः ॥ स्नानंयुगसहस्राणां कृतंवासस्त्रिविष्टपे ॥ ५७ ॥ अष्टाक्षरैश्चतुर्बाहुं ध्या

जलप्रियतीर्थ में जलपान करते हैं वैसेही जो कोई अवन्तीपुरी में जाताहै वह उत्तमगति को प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥ और जेठी पौर्णमासी में जो मनुष्य त्रिकूप में उत्तम श्राद्धको करता है वह पुरुष स्वर्गमें टिकता है व वैकुण्ठ को जाताहै ॥ ५४ ॥ और श्रावण की जो अमावस व पौर्णमासीहै उसमें पूर्वसमुद्रमें स्नान, दान, जप व श्राद्ध करता हुआ पुरुष नहीं शोचाजाता है ॥ ५५ ॥ वैसेही भादौं महीनेमें प्रभासक्षेत्र में शशिभूषण लिंगको पूजकर तदनन्तर मनुष्य देवलिंग होताहै ॥ ५६ ॥ और कुँवार महीने में चन्द्रभागानदी के समीप जो श्राद्ध व स्नान करता है उसने हजारयुगों तक स्नान किया व स्वर्ग में निवास करता है ॥ ५७ ॥ व हे मुनिश्रेष्ठ !

अष्टाक्षर मन्त्रोंसे जो चतुर्भुजजी को ध्यान करते हैं वे उत्तमगति को प्राप्त होतेहैं व हे गजराज ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या है तुमसे कहताहूं कि ॥ ५८ ॥ दामोदर के समान तीर्थ न हुआहै न होवैगा और महीनों के मध्यमें कातिक श्रेष्ठहै व कातिक में भीष्मपञ्चक श्रेष्ठ है ॥ ५९ ॥ व हे राजन् ! उसमें भी दामोदरतीर्थ के जल में द्वादशी तिथि श्रेष्ठहै अन्य बहुत से तीर्थोंसे क्या है व क्षेत्रोंसे क्या है और महावनों से क्या है ॥ ६० ॥ दामोदरतीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापोंसे छूटजाता है राज बोले कि हे भद्र ! तुमने दूसरे रसायन की नाईं कल्याणकारक चरित्र को कहा ॥ ६१ ॥ मैं इस तीर्थके बड़ेभारी फलको फिर सुना चाहताहूं कि कौन देशहैं

यन्तिमुनिसत्तम ॥ बहुनात्रकिमुक्तेन गजराजवदामिते ॥ ५८ ॥ दामोदरसमंतीर्थं नभूतन्नभविष्यति ॥ मासानांकार्त्तिकश्रेष्ठं कार्त्तिकेभीष्मपञ्चकम् ॥ ५९ ॥ तत्रापिद्वादशीश्रेष्ठा राजन्दामोदरेजले॥ किमन्यैर्बहुभिस्तीर्थैः किंक्षेत्रैःकिंमहावनैः ॥ ६० ॥ दामोदरेनरःस्नात्वा सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ गज उवाच ॥ भद्रंभद्रत्वयाप्रोक्तं रसायनमिवापरम् ॥ ६१॥ भूयोहंश्रोतुमिच्छामि तीर्थस्यास्यमहाफलम् ॥ केदेशाःकिंप्रमाणन्तु कानद्यःकेचपर्वताः ॥ ६२ ॥ जनावसन्तिकेतत्र ऋषयःकेतपस्विनः ॥ भद्र उवाच ॥ पृथिवीवसुसम्पूर्णा सागरेणतुवेष्टिता ॥ ६३ ॥ मण्डितानगरैर्ग्रामैः पुरैःपरपुरंजय ॥ वाराणसीप्रभासश्च सङ्गमःसितकृष्णयोः ॥ ६४ ॥ एवंसाराणितीर्थानि तस्मान्मृत्युहराणिच ॥ दामोदरेतितीर्थेये मृतावैयत्रतत्रहि ॥ ६५ ॥ तेवसन्तिहरेर्देहे नसरन्तिकदाचन ॥ सोमनाथस्यसान्निध्ये उदयान्तोगिरिर्महान् ॥ ६६ ॥ तस्यपश्चिमभागेतु रैवतश्चइतिस्मृतः ॥ सावाहिनीवहेत्तत्र नदीकाञ्चनशेखरा ॥ ६७ ॥ धातवस्तत्रतेरक्ताः श्वेतानी

व क्या प्रमाण है और कौन नदियां हैं व कौन पर्वत हैं ॥ ६२ ॥ व कौन मनुष्य वहां बसते हैं और कौन ऋषि व कौन तपस्वीहैं भद्र बोले कि पृथ्वी धनोंसे सम्पूर्ण है व समुद्र से वेष्टित है ॥ ६३ ॥ व हे शत्रुपुरञ्जय ! नगरों से व ग्रामों से और पुरों से शोभितहै और काशी, प्रभास व श्वेत,कृष्णका संगम याने प्रयागतीर्थ ॥ ६४ ॥ इस प्रकार सारांशमय तीर्थ हैं व उसीकारण मृत्युको हरनेवाले हैं और दामोदर ऐसे तीर्थ में जो जहां तहां मरेहैं ॥ ६५ ॥ वे विष्णुजी के शरीरमें बसते हैं और कभी जन्मको नहीं प्राप्त होतेहैं व सोमनाथ के समीप बड़ाभारी उदयान्त पर्वत है ॥ ६६ ॥ उसके पश्चिमभाग में रैवत ऐसा कहाहुआ पर्वत है वहां कांचनशेखरा वह

वाहिनीनदी बहती है ॥६७॥ उसमें लाल सफेद,नील व श्याम वे धातुयें हैं और हाथीके आकार सोनेके समान पत्थरहैं ॥ ६८ ॥ और अन्य चनाके आकारहैं तथा अन्य गऊके खुरकेसमान हैं और वृक्ष,व वल्ली व गुल्म अनेक प्रकारके विस्तारितहैं ॥ ६९ ॥ और मूल,पुष्प,फल व पत्र वह सब सुवर्णमयहै उसको पापी पुरुष नहीं देखता है और जो पापसे मुक्तहोता है वह उसको देखता है ॥ ७० ॥ वह पर्वत धातुवाद में परायण पुरुषों से सदैव सेवन कियाजाता है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व शूद्रोंके अनुचर उसको सेवते हैं ॥ ७१ ॥ और वहांपर कल्याणकारिणी वाणीवाले बहुत से कल्याणमय पक्षी हैं व हंस, सारस, चक्रवाक,सुवा,कोकिल व मयूर हैं ॥

लाःसिताश्चवै॥पाषाणाःकुञ्जराकाराः सन्त्यन्येस्वर्णसन्निभाः ॥ ६८ ॥ चणकाकृतयश्चान्ये अन्येमोक्षुरकप्रभाः ॥ वृक्षावल्ल्यश्चगुल्माश्च सन्तानाःसन्त्यनेकशः ॥ ६९ ॥ सर्वंतत्काञ्चनमयं मूलंपुष्पदलंदलम् ॥ नहिपश्यतिपापा त्मा मुक्तःपापेनपश्यति ॥ ७० ॥ सेव्यतेसगिरिर्नित्यं धातुवादपरैर्नरैः ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैःशूद्रानुगैस्तथा ॥ ७१ ॥ पक्षिणस्तत्रबहवः शिवाःशिवगिरस्तथा ॥ हंससारसचक्राह्वाः शुककोकिलबर्हिणः ॥ ७२ ॥ मृगाश्चवानरेन्द्राश्च हंसव्याघ्रास्तथैवच ॥ तस्यतीर्थप्रभावेण दुष्टान्याचरन्तिते ॥ ७३ ॥ कालेनमृत्युमायान्ति पशुपक्षिसरीसृपाः ॥ सर्वेवि मानमारूढा गच्छन्तिहरिमन्दिरम् ॥ ७४॥ वायुनापतितंयच्च पत्रपुष्पफलादिकम् ॥ तस्यानद्याजलस्पृष्टं सर्वंवैमुक्तिमे यिवान् ॥ ७५ ॥ सानदीपृथिवींभित्त्वा पातालादागतानृप ॥ पूर्वंपन्नगराजस्तु तेनमार्गेणचागतः ॥ ७६ ॥ स्नातुंदामो दरतीर्थे जन्ममृत्युप्रहायिणि ॥ स्वर्गादागत्यचेन्द्रोपि यष्ट्वायज्ञैसुपुष्कलम् ॥ ७७॥ अनुत्तमंपदंगत्वा गतःस्वर्गान्निरा

७२ ॥ और मृग, वानरेन्द्र, हंस व व्याघ्रहैं व उस तीर्थ के प्रभाव से वे दुष्टकर्मों को नहीं करते हैं ॥ ७३ ॥ और जो पशु, पक्षी व सर्पकाल से मृत्युको प्राप्तहोते हैं वे सब उत्तम विमान पै चढ़कर विष्णुजी के मन्दिरको जातेहैं ॥ ७४ ॥ और जो पत्र, पुष्प व फलादिक पवनसे गिरताहै उस नदीके जलसे छुवाहुआ वह सब मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥ ७५ ॥ हे राजन् ! वह नदी पृथ्वीको फोड़कर पाताल से आई है पुरातन समय नागराज जन्म व मृत्युको हरनेवाले दामोदरतीर्थमें नहाने के

लिये उस मार्गसे आयेहैं और स्वर्गसे आकर इन्द्रभी बड़ेभारी यज्ञको करके ॥ ७६।७७॥ अतिउत्तम स्थानको जाकर व्याधिहीन स्वर्गको प्राप्तहुयेहैं व कार्तिकमें बलि जीने आकर दानोंको दियाहै ॥ ७८ ॥ और हरिश्चन्द्र, शिबि, नल व नहुष और नाभाग व अम्बरीषादिकों ने बहुत कठिन कर्म किया है ॥ ७९ ॥ व अनेक दानोंको देकर हाथी, गऊ, घोड़े और रथ दियेगये हैं व बैल, सुवर्ण, पृथ्वी व अनेक प्रकारके रत्न दियेगयेहैं ॥ ८० ॥ और मुख्य ब्राह्मणों के लिये छत्रदानों को देकर व बहुत से वस्त्रों के जोड़े तथा रसों से मिश्रित अन्नों को दामोदर के आगे देकर ॥ ८१ ॥ वे विष्णुभवन को चले गये और पृथ्वीपर नहीं आते हैं जो भक्तिसंयुत पुरुष उस

मयम् ॥ बलिनाचैवदानानि दत्तान्यागत्यकार्त्तिके ॥ ७८ ॥ हरिश्चन्द्रेणशिबिना नलेननहुषेणवा ॥ नाभागअम्बरीषाद्यैः कृतंकर्मसुदुष्करम् ॥ ७९ ॥ दत्त्वादानान्यनेकानि गजागावोहयास्तथा ॥ अनड्वान्काञ्चनंभूमी रत्नानिविविधानिच ॥ ८० ॥ छत्राणिविप्रमुख्येभ्यो दानानिबहुवाससी ॥ अन्नानिरसमिश्राणि दत्त्वादामोदराग्रतः ॥ ८१ ॥ गतास्तेविष्णुभवनं नागच्छन्तिमहीतले ॥ पत्रंपुष्पंफलंतोयं तस्मिंस्तीर्थेददातियः ॥ ८२ ॥ द्विजानांभक्तिसंयुक्तः सयातिजलशायिनम् ॥ प्रसृतिंचापियोदद्यान्मुष्टिंचापिक्षुधार्दिते ॥ ८३ ॥ विमानवरमारूढः ससोमंप्रतिगर्जति ॥ दामोदराग्रतःकृत्वा पर्वताननसम्भवान् ॥ ८४ ॥ पूजिताञ्जलपुष्पैश्च दीपंदद्यात्सवर्त्तिकम् ॥ अथवापुष्कलंस्थानं कुलानांतारयेच्छतम् ॥ ८५ ॥ चतुरङ्गुलमात्रेपि दत्तेदामोदराग्रतः ॥ दानेयुगसहस्राणि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ८६ ॥ मागच्छहिमवत्पृष्ठंमलयंमाचपर्वतम् ॥ गच्छरैवतकंशैलं यत्रदामोदरःस्थितः ॥ ८७ ॥ कृत्वामासोपवासन्तु द्विजोदामोदराग्रतः ॥

तीर्थमें पत्र, पुष्प, फल व जलको ब्राह्मणों को देताहै वह जलशायी विष्णुजी के समीप जाताहै व क्षुधासे व्याकुल मनुष्य के लिये जो पसर भर या मुट्ठीभर अन्नको देताहै ॥ ८२ । ८३ ॥ उत्तम विमान पै चढ़कर वह चन्द्रमा के सामने गर्जता है और अन्नसे उपजेहुये पर्वतों को दामोदर के आगे बनाकर ॥ ८४ ॥ जलसे व पुष्पोंसे पूजित उन पर्वतों को उत्तमबत्तीसमेत दीप देवै अथवा श्रेष्ठस्थान सौकुलोंको तारताहै ॥ ८५ ॥ और दामोदरजी के आगे चार अंगुलभी दान देनेपर हज़ारयुगों तक स्वर्गलोक में पूजाजाताहै ॥ ८६ ॥ हिमवान् के पृष्ठपै मत जाओ व मलयपर्वत पर मत जावो बरन रैवतपर्वत पर जावो जहां कि दामोदरजी स्थितहैं ॥ ८७ ॥ दामोदर

के आगे महीनेभर उपासकर ब्राह्मण कालसे दामोदरनगर को जाताहै और फिर नहीं लौटता है ॥ ८८ ॥ और जो फिर स्त्री या पुरुष वहां अनशन व्रत करताहै वह सब लोकोंको नांघकर विष्णुजी के शरीरको प्राप्त होताहै ॥ ८९ ॥ और जहां धर्म को विध्वंस करनेवाले पांचसौ विघ्न सदैव नाश होतेहैं वहां वह मनुष्य जाताहै ॥ ९० ॥ और प्रद्युम्न, बल, शैनेय, गद व चक्रादिक सौलक्ष प्रमाणवाले यादवों से वह बड़ाभारी पर्वत सेवन कियाजाता है ॥ ९१ ॥ व उनकी स्त्रियां नित्य दामोदरके आगे क्रीड़ा करती हैं और सुन्दर चन्द्रमा के समान मुखवाली व गौर वर्णवाली तथा श्यामा (सोलह वर्षवाली) और सूक्ष्म कटिवाली ॥ ९२ ॥ और वहां

ननिवर्त्ततकालेन दामोदरपुरंव्रजेत् ॥ ८८ ॥ करोत्यनशनंयश्चनरोनारीचवापुनः ॥ सर्वलोकानतिक्रम्य सहरेर्देहमाप्नुयात् ॥ ८९ ॥ विघ्नानियत्रनश्यन्तिनित्यंपञ्चशतानिच ॥ धर्मविध्वंसकारीणिनरस्तत्रसगच्छति ॥ ९० ॥ प्रद्युम्नबलशैनेय गदचक्रादिभिःसदा ॥ शतलक्षप्रमाणैस्तु सेव्यतेसगिरिर्महान् ॥ ९१ ॥ क्रीडन्तिनार्यस्तेषांहि नित्यंदामोदराग्रतः ॥ सुचन्द्रवदनागौर्यः श्यामाश्चतनुमध्यमाः ॥ ९२ ॥ नितम्बिन्यःसुकेश्यश्च सुनासायतलोचनाः ॥ सुगुल्फाःसुभ्रुवस्तत्र सुकुक्ष्यःसुपयोधराः ॥ ९३ ॥ शोभमानाःसुजङ्घाश्च सुपादाङ्घ्र्युदरास्तथा ॥ राजपुत्रौगिरौतस्मिन् हसन्तिचरमन्तिच ॥ ९४ ॥ कौसुम्भंपीतवसनं कुसुम्भापीतकञ्चुकान् ॥ ब्राह्मणीभ्योददातीह प्रार्थमानाचयापृथक् ॥ ९५ ॥ भक्ष्यंभोज्यंचपेयंच लेह्यंचोष्यंचपिच्छिलम् ॥ ताम्बूलंपुष्पयुक्तं कार्त्तिकेहरिवासरे ॥ ९६ ॥ दृष्ट्वातुरेवतीकुण्डं दद्यात्फलमनुत्तमम् ॥ पुत्रिणीऋद्धिसम्पन्ना सुभगाजायतेसती ॥ ९७ ॥ एवंकृत्वातुसारात्रिर्नीयतेनिद्रयाविना ॥ वेदघोषैश्चपुण्यैस्तु

नितम्बिनी, सुकेशी तथा सुन्दरनासिकावाली व दीर्घ नेत्रोंवाली और सुन्दर घुट्ठनूवाली, सुन्दर भौंह व सुन्दर कुक्षि तथा सुन्दर कुचोंवाली ॥ ९३ ॥ शोभमान, सुन्दर जङ्घावाली और सुन्दर पांव, चरण व पेटवाली राजकन्या उसपर्वतपै हँसती व क्रीड़ा करती हैं ॥ ९४ ॥ और प्रार्थना करतीहुई जो स्त्री पृथक् कुसुमसे रंगेहुये पीले वसन व कुसुम से रँगीहुई कञ्चुकी को ब्राह्मणियों के लिये देतीहै ॥ ९५ ॥ और भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य व पिच्छिल (दधि) तथा पुष्पसंयुक्त ताम्बूल को जो कातिक महीने में द्वादशी तिथिमें देतीहै ॥ ९६ ॥ और जो रेवतीकुण्डको देखकर अतिउत्तमफल को देतीहै वह पुत्रिणी व ऋद्धियों से संयुक्त तथा सुन्दर ऐश्वर्य-

वाली व पतिव्रता होतीहै ॥ ९७ ॥ ऐसा करके पवित्र वेदशब्दोंसे तथा भारतकथा के बांचनेसे वह रात्रि विना निद्राके व्यतीत कीजातीहै ॥ ९८ ॥ और हुङ्कार व ताल शब्दोंसे व बार २ गान व नृत्यसे रात्रि व्यतीत कीजातीहै व देशभाषाको बोलनेवाली स्त्रियां मण्डलके मध्यमें ॥ ९९ ॥ हास्य व नृत्यसे संयुक्त होवैं व हे राजन् ! जो महानृप दामोदर के आगे पांच पत्थरोंवाले मन्दिरको करता है ॥ १०० ॥ व जो स्त्री सुन्दर तथा उत्तम मन्दिर को करती है वह विष्णुजी के मन्दिर को जाती है और बहुतरूप से संयुत हज़ार मन्दिरों को बनाकर ॥ १ ॥ सब कामनाओं को उल्लङ्घनकर मनुष्य परब्रह्मको प्राप्त होताहै व जो दामोदर के मन्दिरके ऊपर पच-

भारताख्यानवाचनैः ॥ ९८ ॥ हुङ्कृतैस्तालशब्दैश्च गीतनृत्यैःपुनःपुनः ॥ देशभाषाविभाषिण्यो रामामण्डलमध्यतः ॥ ९९ ॥ हास्यनृत्यसमायुक्ता राजन्दामोदराग्रतः ॥ पञ्चपाषाणकंहर्म्यं यःकरोतिमहानृपः ॥ १०० ॥ मन्दिरंसुन्दरंशुभ्रं सायातिहरिमन्दिरम् ॥ कृत्वासाहस्रकंचैत्यं बहुरूपसमन्वितम् ॥ १ ॥ सर्वान्कामानतिक्रम्य परंब्रह्माधिगच्छति ॥ पञ्चवर्णध्वजंदद्याद् दामोदरगृहोपरि ॥ २ ॥ तन्तुप्रमाणवर्षाणि दिव्यानिसदिवंव्रजेत् ॥ तस्यगव्यूतिमात्रेण क्षेत्रंवस्त्रापथंशुभम् ॥ ३ ॥ यद्दृष्ट्वासर्वपापानि लीयन्तेसुबहूनिच ॥ राजंस्तत्पदमायाति यद्गत्वाननिवर्तते ॥ ४ ॥ पूजयित्वाभवन्देवं भवसम्भवनाशनम् ॥ नरोनारीनरश्रेष्ठ शिवलोकेमहीयते ॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य भद्रस्यचसुभाषितम् ॥ आगतःकार्त्तिकींकर्तुं देवेदामोदरेतथा ॥ ६ ॥ ऋग्यजुःसामसंयुक्तैर्ब्राह्मणैर्ब्रह्मवित्तमैः ॥ क्षत्रियैःक्षत्रधर्म

रंगे ध्वजाको देताहै ॥ २ ॥ वह तागोंके प्रमाणभर देवताओं के वर्षोंतक स्वर्गको प्राप्त होताहै और उसके दोकोस पर वस्त्रापथनामक उत्तमक्षेत्र है ॥ ३ ॥ जिसको देखकर बहुत से सब पातक नाश होजाते हैं; व हे राजन् ! उस स्थानको मनुष्य प्राप्त होताहै कि जिसको जाकर नहीं लौटताहै ॥ ४ ॥ व हे नरश्रेष्ठ ! स्त्री या पुरुष संसार में उत्पत्तिको नाश करनेवाले शिवदेवजी को पूजकर शिवलोक में पूजाजाताहै ॥ ५ ॥ उस भद्रके सुन्दर कहेहुये वचनको सुनकर वह राजा दामोदरदेव में कार्त्तिकी करने के लिये आया ॥ ६ ॥ ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ व ऋक्, यजु व सामवेदसे संयुक्त ब्राह्मणोंसमेत तथा क्षत्रिय के धर्मको जाननेवाले क्षत्रियोंसमेत व

दान में परायण वैश्योंसहित ॥ ७ ॥ और शूद्रोंसमेत गजराजा उस तीर्थ में आया और अनेक दानोंको देकर व अग्निमें हव्यको हवनकर ॥ ८ ॥ उस राजा ने अग्निष्टोमादिक व अश्वमेधादियज्ञों को किया व ऊपर चरण तथा नीचे मुख करके खड़े होकर धुवाँको पिया ॥ ६ ॥ और अन्यलोग सूखेपत्तोंको खानेवाले तथा अन्य फलोंको भोजन करनेवाले हुये व और लोग जड़ोंको खातेथे तथा अन्य ब्राह्मण पवनभोजी थे ॥ १० ॥ और अन्य फलोंको सेवनेवाले तथा अन्य जलशायी थे व अन्य पञ्चाग्निको साधन करनेवाले तथा पत्थरके चूर्णको खानेवाले थे ॥ ११ ॥ और अन्य पुरुष वेदमाता गायत्रीको जपते थे व अन्य पुरुष मनसे सावित्रीजी को

वैश्यैर्दानपरायणैः ॥ ७ ॥ सहशूद्रैःसमायातस्तस्मिंस्तीर्थेगजोनृपः ॥ दत्त्वादानान्यनेकानि हविर्हुत्वाहुताशने ॥ ८ ॥ अग्निष्टोमादयोयज्ञा हयमेधादिकाश्चवै ॥ ऊर्द्ध्वपादःस्थितोभूत्वापिबद्धूममधोमुखः ॥ ९ ॥ शुष्कपत्राशनाश्चान्ये अन्येवैफलभोजनाः ॥ मूलानिचान्येभक्षन्ति अन्येवाय्वशनाद्विजाः ॥ १० ॥ फलोपसेविनश्चान्ये अन्येवैजलशायिनः ॥ पञ्चाग्निसाधकाश्चान्ये शिलाचूर्णस्यभक्षकाः ॥ ११ ॥ जपन्तिचान्येमनुजा गायत्रींवेदमातरम् ॥ सावित्रीं मनसाचान्ये देवीमन्येसरस्वतीम् ॥ १२ ॥ सूक्तानिहिपवित्राणि ब्रह्मणानिर्मितानिच ॥ अन्येसर्वेतदातत्र द्वादशाक्षर चिन्तकाः ॥ १३ ॥ आलोक्यसर्वशास्त्राणि विचार्यचपुनःपुनः ॥ इदमेकन्तुनिष्पन्नं ध्येयोनारायणःसदा ॥ १४ ॥ आधिस्तमःसुदुष्पारं भवेद्भगवताविना ॥ तत्रनान्योमहादेवात्पतन्तंयोभिरक्षति ॥ १५ ॥ गतागतानिवर्त्तन्ते चन्द्रसूर्यादयोग्रहाः ॥ अद्यापिनानिवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ १६ ॥ येनराऋषयश्चान्ये देवलोकंजिगीषवः ॥ प्राप्नुवन्तिचत

व सरस्वतीदेवीजी को ध्यान करते थे ॥ १२ ॥ व अन्य ब्राह्मण ब्रह्मासे बनायेहुये पवित्र सूक्तोंको पढ़ते थे व उस समय अन्य सब वहां द्वादशाक्षर मन्त्रको ध्यान करनेवाले थे ॥ १३ ॥ व सब शास्त्रोंको देखकर तथा बार २ विचारकर यह एक सिद्ध होताथा कि सदैव नारायण ध्यान करनेयोग्य हैं ॥ १४ ॥ व विना भगवान् के मानसी व्यथा व दुष्पार अन्धकार होताहै उसमें महादेव से अन्य देवता नहींहै जो कि गिरतेहुये पुरुषकी रक्षा करता है ॥ १५ ॥ चन्द्रमा व सूर्यादिक ग्रह बार २ जाकर लौटआते हैं, परन्तु द्वादशाक्षरके ध्यान करनेवाले लोग आज भी नहीं लौटतेहैं ॥ १६ ॥ और देवलोक को जानेकी इच्छावाले जो मनुष्य व अन्य ऋषिलोगहैं

वे उस स्थानको प्राप्तहोतेहैं जैसे कि जलाहुआ बीज पृथ्वीमें प्राप्तहोताहै ॥ १७ ॥ जिसने हरि ऐसे दो अक्षरोंको कहाहै उसने मोक्षमें जानेके लिये फेंट बांधीहै ॥ १८ ॥ एक भक्त, नक्त, अयाचित व उपास इत्यादिक अन्य कर्मोंको दामोदर के आगेकरके ॥ १९ ॥ इस संसार में प्रलयपर्यन्त मनुष्य कृतकृत्य होते हैं ऋषियोंसमेत वह राजा जबतक वहा स्थित रहा ॥ २० ॥ तबतक वहां सैकड़ों व हज़ारों विमान चलेगये और वहां गन्धर्व्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण और किन्नर ॥ २१ ॥ सब सैकड़ों व हज़ारों पुरुष विमानपर चढ़गये और सब देशवासियोंसमेत व स्त्रीसहित वह राजा ॥ २२ ॥ विमान पै चढ़कर जो व्याधिहीन स्थानहै उसको चलागया जो मनुष्य

स्थानं दग्धबीजंयथावनौ ॥ १७ ॥ सकृदुच्चारितंयेन हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ बद्धःपरिकरस्तेन मोक्षोपगमनम्प्रति ॥ १८ ॥ एकभक्तंतथानक्तमयाचितमुपोषितम् ॥ एवमादीनिचान्यानि कृत्वादामोदराग्रतः ॥ १९ ॥ कृतकृत्याभवन्तीह यावदाभूतसंप्लवम् ॥ सराजाऋषिभिस्सार्द्धं यावत्तिष्ठतितत्रवै ॥ २० ॥ विमानानांसहस्राणि तावत्तत्रगतानिच ॥ गन्धर्वाप्सरसस्तत्र सिद्धचारणकिन्नराः ॥ २१ ॥ सर्वेविमानमारूढाः शतशोथसहस्रशः ॥ सर्वैर्जानपदैःसार्द्धं सराजा भार्ययासह ॥ २२ ॥ गतोविमानमारूढो यत्तत्पदमनामयम् ॥ यइदंपठतेनित्यं शृणुयाद्वापिमानवः ॥ २३ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सवैविष्णुपदंव्रजेत् ॥ परमंशृणुयाद्भक्त्या अनुमोद्यप्रशंसयेत् ॥ २४ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः परंब्रह्माधिगच्छति ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदामोदरमाहात्म्यंनामसप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१७ ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि ॥ क्षेत्रंवस्त्रापथंपुनः ॥ यत्प्रभासस्यसर्वस्य क्षेत्रेचातिप्रियंमम ॥ १ ॥ यत्रसा

इस चरित्र को नित्य पढ़ता है या सुनता है ॥ २३ ॥ वह सब पापों से छूटकर विष्णुपद को प्राप्तहोता है भक्तिसे जो इस उत्तम चरित्र को सुनै और अनुमोदनकर प्रशंसाकरै ॥ २४ ॥ तो सब पापोंसे छूटकर वह परब्रह्मको प्राप्तहोताहै ॥ १२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रेदामोदरमाहात्म्यंनामसप्तदशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । तीरथ वस्त्रापथ तथा भवसुर को परभाव । कह्यो तीनसौ अठरहे माहिं सोइ सुर राव ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर फिर वस्त्रापथक्षेत्रको

जावै जोकि सब प्रभासक्षेत्र के मध्यमें बहुत प्रियहै ॥ १ ॥ जहां कि सृष्टिको संहारकरनेवाले साक्षात् भवदेवजी हैं वे पृथ्वीपै स्थितहैं व वे प्रभु वहां प्रविष्टहुयेहैं ॥ २ ॥ उस प्रभासक्षेत्र में ऐश्वर्यको देनेवाले आपहीसे उपजेहुये शिवदेवजी हैं जिसलिये उनसे यह संसार उत्पन्न होताहै उसीकारण भव ऐसे कहेगये हैं ॥ ३ ॥ फिर वस्त्रापथक्षेत्र में जो एकबार यात्रा करता है वहां तीर्थोंको अवगाहन (स्नान) कर वह कृतकृत्य होताहै ॥ ४ ॥ और भवदेवजीको देखकर एकबार विधिसे पूजकर वह उत्तम मनुष्य केदारक्षेत्र की यात्राके फलका भागी होताहै ॥ ५ ॥ चैत महीने में भवजी को देखकर फिर संसारमें उत्पन्न नहीं होताहै अथवा वैशाखी पौर्णमासी में

स्वाद्भवोदेवः सृष्टिसंहारकारकः ॥ पृथिवींसत्वधिष्ठाता तथातत्राविशत्प्रभुः ॥ २ ॥ स्वयम्भूचस्थितस्तत्र प्रभासेभूतिदो भवः ॥ भवतीदंजगद्यस्मात्तस्माद्भवइतिस्मृतः ॥ ३ ॥ यःसकृत्कुरुतेयात्रां क्षेत्रेवस्त्रापथेपुनः ॥ विगाह्यतत्रतीर्थानिकृतकृत्यःप्रजायते ॥ ४ ॥ अथदृष्ट्वाभवन्देवं सकृत्पूज्यविधानतः ॥ केदारयात्राफलभाक् सभवेन्मनुजोत्तमः ॥ ५ ॥ चैत्रेमासिभवन्दृष्ट्वा नपुनर्जायतेभवे ॥ वैशाख्यामथवासम्यग् भवन्दृष्ट्वाविमुच्यते ॥ ६ ॥ वाराणस्यांकुरुक्षेत्रे नर्मदायांचयत्फलम् ॥ निमिषार्द्धेभवन्दृष्ट्वा दुर्लभंचदिनेदिने ॥ ७ ॥ प्रेतत्वंनैवतस्यास्ति नयातिनरकंतथा ॥ येषाम्भवालयेप्राणा गतावैवरवर्णिनि ॥ ८ ॥ धन्यानामपिधन्यास्ते देवानामपिदेवताः ॥ वस्त्रापथेमतिर्येषाम्भवेयेषांमतिःस्थिरा ॥ ९ ॥ गोदानंयत्रशंसन्ति ब्राह्मणानाञ्चभोजनम् ॥ पिण्डदानंचतत्रैव कल्पान्तंतृप्तिमावहेत् ॥ १० ॥ इतिसंक्षेप

भलीभांति भवजीको देखकर विमुक्त होजाताहै ॥ ६ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र व नर्मदामें जो फल होताहै वह फल आधे पलमें शिवजीको देखकर दिन दिनमें दुर्लभहै ॥ ७ ॥ हे वरवर्णिनि ! उसको प्रेतता नहीं होती है और वह नरक को नहीं जाताहै कि जिनके प्राण भवजी के मन्दिरमें गयेहैं ॥ ८ ॥ धन्य पुरुषोंके मध्यमें भी वे धन्यहैं और वे देवताओं के भी देवताहैं कि जिनकी बुद्धि वस्त्रापथमें है और जिनकी बुद्धि भवजी में स्थिरहै ॥ ९ ॥ जहां पर विद्वान् गोदान व ब्राह्मणों के भोजन की प्रशंसा करते हैं

और वहीं पर पिंडदान कल्पान्त तक तृप्तिको करताहै ॥ १० ॥ हे महादेवि ! भव से उपजा हुआ यह माहात्म्य संक्षेप से कहा गया सुनाहुआ जो कि पापसमूहों को नाशनेवाला व दश हज़ार यज्ञोंके फलको देनेवालाहै ॥ ११॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांवस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्यनामाष्टादशाधिकत्रिशततमोध्यायः॥३१८॥

दो० । है वस्त्रापथक्षेत्र महँ प्रवरतीर्थ जिमि नाम । सोइ त्रिशत उन्नीसवें माहिं चरित अभिराम ॥ महादेवजी बोले कि इसके अनन्तर वस्त्रापथक्षेत्र में करोड़ों तीर्थ हैं तथापि मैं सब तीर्थों के महाऐश्वर्यवाले साराशको तुमसे कहता हूं ॥ १ ॥ दामोदर तीर्थ में सुवर्ण की रेखा से संयुत यह नदी कही गई है वहीं ब्रह्मकुंड व ब्रह्मे-

तःप्रोक्तं महादेविभवोद्भवम् ॥ श्रुतम्पापौघशमनं यज्ञायुतफलप्रदम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्यंनामाष्टादशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ अथवस्त्रापथक्षेत्रे सन्तितीर्थानिकोटिशः ॥ तथापिसारन्तेवच्मि सर्वतीर्थमहोदयम् ॥ १ ॥ दामोदरेसरितप्रोक्ता सौवर्ण्यारेखयायुता ॥ ब्रह्मकुण्डंचतत्रैव तथाब्रह्मेश्वरःस्मृतः ॥ २ ॥ कालमेघश्चसंप्रोक्तो भवोदामोदरःस्मृतः ॥ गव्यूतिद्वितयेनैव कालिकातत्रकीर्त्तिता ॥ ३ ॥ इन्द्रेश्वरश्चतत्रैव तत्क्षेत्रंमहाप्रभम् ॥ कृतेसारिणकंप्रोक्तं त्रेतायांहेममारकम् ॥ ४ ॥ पञ्चगव्यूतिमात्रन्तु तत्क्षेत्रंसंप्रकीर्त्तितम् ॥ मृगीकुण्डंचतत्रैव सर्वपातकनाशनम् ॥ ५ ॥ एतद्वस्त्रापथेक्षेत्रं रत्नधातोस्तथोत्तमम् ॥ कथितंतवदेवेशि पुनःसंक्षेपतोमया ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवस्त्रापथक्षेत्रे प्रवरतीर्थानुकीर्त्तनंनामैकोनविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३१९ ॥ * ॥ * ॥

श्वरजी कहे गये हैं ॥ २ ॥ वहीं पर कालमेघ, व भव और दामोदरजी कहे गये हैं और वहा चार कोसपर कालिकाजी कही गई हैं ॥ ३ ॥ वहां इन्द्रेश्वरहैं व वहीं पर महाप्रभावान् क्षेत्र है सतयुग में सारिणक व त्रेता में हेममारक कहा गया है ॥ ४ ॥ वह क्षेत्र दश कोस कहा गया है और वहीं पर समस्त पातकों को नाशनेवाला मृगीकुण्ड है ॥ ५ ॥ वस्त्रापथ में यह उत्तम रत्न व धातुका क्षेत्रहै हे देवेशि ! तुमसे फिर यह तीर्थ संक्षेपसे कहा गया ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांवस्त्रापथक्षेत्रेप्रवरतीर्थानुकीर्तनन्नामैकोनविंशाधिकत्रिशततमोऽध्याय ॥ ३१९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो• । उन्न बिल्लनामक यथा भयो अनूपस्थान। सोइ तीनसौ बीसमहँ कियो चरित्रबखान ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर उन्नबिल्ल ऐसे प्रसिद्ध तीर्थके समीप जावै हे देवि ! वह मंगलतीर्थसे पश्चिम में योजनके अन्तर पै स्थित है ॥ १ ॥ वहीं पर महापातालके मार्गको जानेवाला दिव्य विवर है ॥ २ ॥ पुरातन समय पाताल के उत्तर संग्रहमें उसका कल्प कहागयाहै वहा अनेकों लिंग व सोलह सिद्धस्थान कहेगये हैं ॥ ३ ॥ हे प्रिये ! पुरातन समय वह स्थान सुवर्ण के समान हुआ है हे देवि ! ऐश्वर्य को चाहनेवाले पुरुषको सदैव उस स्थानमें जानाचाहिये ॥ ४ ॥ इतिश्री स्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटी

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि उन्नबिल्लेतिविश्रुतम् ॥ योजनस्यान्तरेदेवि पश्चिमेमङ्गलात्स्थितम् ॥ १ ॥ त
त्रैवविवरंदिव्यं महापातालमार्गगम् ॥ २ ॥ तस्यकल्पःपुराप्रोक्तःपातालोत्तरसंग्रहे ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानि सिद्धस्थाना
निषोडश ॥३॥ सुवर्णसान्निभंपूर्वं तत्स्थानमभवत्प्रिये ॥ तस्मिन्स्थानेसदादेवि गतव्यंभूतिमिच्छता ॥ ४ ॥ इति श्री
स्कन्दपुराणे प्रभासखण्डयुन्नगिरिस्थानमाहात्म्यंनामविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२० ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ ततोगच्छेन्महादेवि मङ्गलात्पश्चिमेस्थितम् ॥ गङ्गेश्वरंतथालिङ्गं सुरार्कंचविशेषतः ॥ १ ॥ गन्तव्यं
तत्रविधिवत्सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः ॥ स्नात्वाहिपिण्डदानंच कुर्यात्तत्रयथार्थतः ॥ २ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तथादेयमन्नम्भू
रिसदक्षिणम् ॥ इतितेकथितंमेद्य कलिपापौघनाशनम् ॥ ३ ॥ श्रोतव्यंविधिनातद्वद्भविष्योक्तविधानतः ॥ ईश्वर

॥ • ॥ • ॥ • ॥ • ॥

कायामुन्नतगिरिस्थानमाहात्म्यंनामविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२० ॥

दो• । जिमि मृगानना नारि सन पूछ्यो नृपति हवाल । कह्यो त्रिशत इक्कीसमहँ सोई चरित रसाल ॥ महादेवजी बोले कि हे महादेवि ! तदनन्तर मंगलसे पश्चिम में स्थित गंगेश्वरलिंग व सुरार्कजीके समीप विशेषकर जावै ॥ १ ॥ वहां भलीभांति यात्रा के फलको चाहनेवाले पुरुषों को विधिपूर्वक जाना चाहिये और वहां स्नान कर यथार्थ पिंडदानकरै ॥ २ ॥ वैसेही ब्राह्मणोंके लिये दक्षिणासमेत बहुत अन्न देना चाहिये कलियुग के पापसमूहको नाशनेवाले इस चरित्रको मैंने तुमसे कहा ॥ ३ ॥

भविष्योक्त विधि से इसको विधिपूर्वक सुनना चाहिये महादेवजी बोले कि देवताओंके पापनाशक इस चरित्रको दुर्बुद्धिको न देना चाहिये ॥ ४ ॥ इस समय मैं कहता हूं कि मङ्गल से पश्चिम में जावै और वहां सब सिद्धियों के देनेवाले सिद्धेश्वरजीको देखै ॥ ५ ॥ और वहीं पर करोड़ तीर्थोंके फलको देनेवाला चक्रतीर्थ है व आपही से उपजाहुआ लोकेश्वरलिङ्ग पहले इन्द्रेश्वरलिङ्ग था ॥ ६ ॥ हे देवि ! उसको विधिपूर्वक देखकर तदनन्तर यक्षेश्वरी के समीप जावै मङ्गल से पश्चिम भाग में जहां चाहे हुये अर्थको देनेवाली व महाऐश्वर्यवती यक्षेश्वरी देवी आपही स्थितहैं उनको विधि से भलीभांति पूजकर तदनन्तर फिर वस्त्रापथ को जावै और रैवतक पर्वत

उवाच ॥ इदंनदेयंदुर्बुद्धेः सुराणांपापनाशनम् ॥ ४ ॥ अधुनासंप्रवक्ष्यामि मङ्गलात्पश्चिमेव्रजेत् ॥ तत्रसिद्धेश्वरंपश्ये त्सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ५ ॥ तत्रैवचक्रतीर्थञ्च तीर्थकोटिफलप्रदम् ॥ लोकेश्वरंस्वयम्भूतं पूर्वमिन्द्रेश्वरेतिच ॥ ६ ॥ तद्दृष्ट्वाविधिवद्देवि ततोयक्षेश्वरींव्रजेत् ॥ मङ्गलात्पश्चिमेभागे यत्रदेवीस्वयंस्थिता ॥ यक्षेश्वरीमहाभागा वाञ्छितार्थप्रदायिनी ॥ ७ ॥ ताम्सम्पूज्यविधानेन ततोवस्त्रापथम्पुनः ॥ गिरिंरैवतकङ्गत्वा कुर्याद्यात्रांविधानतः ॥ मृगीकुण्डादितीर्थानि सन्तितत्रैवकोटिशः ॥ ८ ॥ यदुक्तंशिखरंदेवि सोमलिङ्गंहितत्स्मृतम् ॥ दशकोट्यस्तुतीर्थानां सन्तितत्र वरानने ॥ ९ ॥ यत्रवैयादवाःसिद्धाः कलौयेबुद्धरूपिणः ॥ शतंसहस्रमयुतं लिङ्गंतत्रैवतिष्ठति ॥ १० ॥ गजेन्द्रस्यपदंतत्र तत्रैवरसकूपिका ॥ शतकुण्डानितत्रैव रैवतेपर्वतोत्तमे ॥ ॥ ११ ॥ अम्बिकाचस्थितातत्र प्रद्युम्नःसाम्बएवच ॥ लिङ्गाकारेपर्वतेतु तत्रतीर्थानिकोटिशः ॥ १२ ॥ मृगीकुण्डञ्चतत्रैव कालमेघस्तथैवच ॥ क्षेत्रपालस्वरूपेण महादधिः

को जाकर विधि से यात्रा करै वहींपर मृगीकुण्डादिक करोड़ों तीर्थ हैं ॥ ७ । ८ ॥ हे देवि ! जो शिखर कहागया है, वह सोमलिंग कहागया है हे वरानने ! वहींपर दश करोड़ तीर्थ हैं ॥ ९ ॥ जहा कि यादव सिद्ध हुये हैं जोकि कलियुगमें बुद्धरूपीहैं और वहीं पर शत, सहस्र व अयुत (दश हजार) लिंग स्थितहैं ॥ १० ॥ और वहां गजेन्द्र का स्थान है वहींपर रसकूपिका है और उसी उत्तम रेवतपर्वत पै सौ कुण्डहैं ॥ ११ ॥ और वहींपर अम्बिका स्थितहैं व प्रद्युम्न तथा साम्बजी हैं व लिङ्ग

के आकार पर्वत पै वहां करोड़ों तीर्थ हैं ॥ १२ ॥ और वहींपर मृगीकुण्ड व काल मेघहै और क्षेत्रपाल के स्वरूपसे आपही महोदधि स्थितहै ॥ १३ ॥ वहींपर दामोदर व ब्रह्माण्डके स्वामी भवजी स्थितहैं पार्वतीजी बोलीं कि हे देवेश ! तुम्हारे मुखसे सब तीर्थ सुनेगये ॥ १४ ॥ गङ्गा व पुण्यदायिनी सरस्वती तथा यमुना महानदी व गोदावरी,गोमतीनदी और तापी व नर्मदा ॥ १५ ॥ और सरयू व पातकोंको नाशनेवाली वह स्वर्णरेखानदी और समुद्रके संयोगसे जो पवित्र नदियाहैं उन सबको मैंने सुना ॥ १६ ॥ तथा दिव्य मोक्षारण्य व जो दिव्य क्षेत्रहैं और जो मुक्तिदायिनी पुरी हैं वे तुम्हारी प्रसन्नतासे सुनीगईं ॥ १७ ॥ व ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक

स्वयंस्थितः ॥१३॥ दामोदरश्चतत्रैव भवोब्रह्माण्डनायकः ॥ पार्वत्युवाच ॥ श्रुतानिसर्वतीर्थानि देवेशवदनात्तव ॥१४॥ गङ्गासरस्वतीपुण्या यमुनाचमहानदी ॥ गोदावरीगोमतीच नदीतापीचनर्मदा ॥ १५ ॥ सरयूस्वर्णरेखाच तमसापापनाशिनी ॥ नद्यःसमुद्रसंयोगात्सर्वाःपुण्याःश्रुतामया ॥ १६ ॥ मोक्षारण्यानिदिव्यानि दिव्यक्षेत्राणियानिच ॥ नगर्योमुक्तिदायिन्यः ताःश्रुतास्त्वत्प्रसादतः ॥ १७ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां सूर्येन्दुवरुणस्यच ॥ देवतानामृषीणांच सन्तिस्थानान्यनेकशः ॥ परंदेवत्वयापुण्यं प्रभासंकथितंमम ॥ १८ ॥ तस्माच्चाप्यधिकंप्रोक्तं क्षेत्रंवस्त्रापथंत्वया ॥ शृण्वन्त्याचमयापूर्वं नपृष्टंचकारणंतदा ॥ इदानींचश्रुतंसर्वं स्वस्थाहंकारणंवद ॥ १९ ॥ प्रभावंप्रथमंब्रूहि क्षेत्रस्यच जलस्यच ॥ कस्मिन्देशेचतत्तीर्थं शिवःकेनात्रसंस्थितः ॥ २० ॥ स्वयम्भूभगवान्रुद्रः कथंतत्रस्थितःस्वयम् ॥ प्रभोमेमहदाश्चर्यं वर्ततेतद्वदस्वनः ॥ २१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्य प्रभावंप्रथमंशृणु ॥ पश्चाद्भवस्यमाहा

देवताओं के और सूर्य, चन्द्रमा व वरुण के तथा ऋषियों के अनेक स्थानहैं व हे देव ! तुमने मुझ से पवित्र व उत्तम प्रभासक्षेत्र को कहा ॥ १८ ॥ व उससे भी अधिक वस्त्रापथक्षेत्र को तुमने कहा पहले सुनतीहुई मैंने उस समय कारणको नहीं पूंछा व इस समय सब सुनागया और मैं स्वस्थहूं कारण को कहिये ॥ १९ ॥ पहले क्षेत्र व जलके प्रभावको कहिये और किस स्थानमें वह तीर्थहै व किसकारण सदाशिवजी यहां स्थितहैं ॥ २० ॥ और आपही से उपजेहुये भगवान् शिवजी वहां कैसे आपही स्थितहुये हे प्रभो ! मेरे बड़ाभारी आश्चर्य वर्तमान है उसको मुझ से कहिये ॥ २१ ॥ महादेवजी बोले कि हे वरानने ! पहले तुम वस्त्रापथक्षेत्रके

प्रभावको सुनो पश्चात् तुम भवजी के माहात्म्यको सुनो ॥ २२ ॥ हे देवि ! पुरातन समय कान्यकुब्ज महाक्षेत्र में भोज ऐसा राजा प्रसिद्ध हुआ जोकि पवित्रयुग में धर्मसे प्रजाओं को पालन करता था ॥ २३ ॥ वह विशालनयन, दीर्घभुज, विद्वान् प्रशस्त वचन व प्रियवक्ता था और सब लक्षणों से पूर्ण व बहुत आश्चर्य्य को देखनेवाला था ॥ २४ ॥ किसी समय वनपालकने वनसे आकर उससे यह कहा कि हे देव ! वनमें घूमतेहुये मैंने इससमय आश्चर्यको देखा ॥ २५ ॥ कि बहुत वृक्षों से संयुत पर्वत पै विषम भूमिभाग में मैंने मृगयूथ में प्राप्त उत्तम मुखवाली स्त्रीको देखाहै ॥ २६ ॥ वह स्त्री मृगीकी नाईं देखती है और सदैव वहीं देखपड़ती है ऐसे

तस्यं शृणुत्वंचवरानने ॥ २२ ॥ कान्यकुब्जेमहाक्षेत्रे राजाभोजेतिविश्रुतः ॥ पुरापुण्ययुगेदेवि प्रजाधर्मेणशासति ॥ २३ ॥ विशालाक्षोदीर्घबाहुर्विद्वान्वाग्मीप्रियंवदः ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णो बह्वाश्चर्यविलोककः ॥ २४ ॥ वनात्कदाचिदभ्येत्य वनपालोब्रवीदिदम् ॥ आश्चर्यंभ्रमतादेव मयादृष्टंवनेधुना ॥ २५ ॥ गिरौविषमभूभागे बहुवृक्षसमाकुले ॥ मृगयूथगतानारी मयादृष्टावरानना ॥ २६ ॥ मृगीवप्लवतेबाला सदातत्रैवदृश्यते ॥ इतिश्रुत्वावचोराजा तुष्टस्तस्मैधनंददौ ॥ २७ ॥ अन्नंचतुर्विधंदिव्यं वाससीस्वर्णभूषणम् ॥ ततस्तुभोजराजस्स सेनाध्यक्षमुवाचह ॥ २८ ॥ इदानीमेवयास्यामि सेनाध्यक्षत्वयासह ॥ अश्वानांदशसाहस्रं वागुराणांत्वनेकधा ॥ २९ ॥ पत्तयोयान्तुसर्वत्र वेष्टयन्तुगिरिंवरम् ॥ नहन्तव्योमृगःकश्चिद्रक्षणीयाहिसामृगी ॥ ३० ॥ स्त्रीवेषधारिणीनारी मृगीभवतिभूतले ॥ अश्वाधिरूढोबलवान् भोजराजोययौस्वयम् ॥ ३१ ॥ निःशब्दपदसंचारः संज्ञासङ्केतभाषणः ॥ गिरिंसंवेष्टयामास वागुराभिःस्वयंनृपः ॥ ३२ ॥

वचन को सुनकर प्रसन्न होतेहुये राजाने उसके लिये धन दिया ॥ २७ ॥ और चार प्रकार का दिव्य अन्न तथा दो वस्त्र व सुवर्ण के भूषण को दिया तदनन्तर वे भोजराज सेनापति से बोले ॥ २८ ॥ कि हे सेनाध्यक्ष ! इसी समय मैं तुमसमेत जाऊंगा दश हज़ार घोड़े व अनेक प्रकार के जालोंको लेकर ॥ २९ ॥ पैदल चलैं व सब कहीं उत्तम पर्वतको घेरलेवैं किसी मृगको न मारना चाहिये और वह मृगी रक्षा करनेयोग्यहै ॥ ३० ॥ क्योंकि स्त्रीके वेषको धारनेवाली मृगी स्त्री पृथ्वीमेंहै बलवान् भोजराजा आपही घोड़ेपै चढ़करगया ॥ ३१ ॥ और बिन शब्दके पगको चलानेवाले व संज्ञासे सङ्केतको कहनेवाले राजाने आपही जालोंसे पर्वतको घेरलिया ॥ ३२ ॥

व वनपालसमेत उस राजाने मृगोंके गणको देखा और मृगोंके मध्यमें स्थित वह मृगी स्त्री शरीरवाली व मुखमें मृगीकी नाईं उपलक्षित थी ॥ ३३ ॥ उस क्षणमें सब मृग क्षोभित व भ्रमित होकर दशो दिशाओंको चलेगये और जो मृगमुखी नारी थी वह कितेक मृगोंसमेत ॥ ३४ ॥ कूदतीहुई चैतन्यतारहित होकर जालमें गिरपड़ी और सेनापतिसमेत राजाने सैकड़ों मृगोंसमेत मृगीको पकड़लिया ॥ ३५ ॥ और जनोंसे घिरेहुये भोजराजाने बड़ेभारी आश्चर्यको देखा तदनन्तर बड़े आनन्द शब्द-वाला कोलाहल पैदाहुआ ॥ ३६ ॥ और मृगोंसमेत मृगीको राजा कान्यकुब्जदेश में लाया और दिव्यवस्त्रों से आच्छादित तथा दिव्यभूषणों से भूषित ॥ ३७ ॥ व

वनपालेनसहितोमृगयूथंददर्शसः ॥ सामृगीमृगमध्यस्था नारीदेहामुखेमृगी ॥ ३३ ॥ क्षुब्धाभ्रान्ताःक्षणेतस्मिन्सर्वेयान्तिदिशोदश ॥ मृगवक्त्रातुयानारी मृगैःकतिपयैःसह ॥ ३४ ॥ प्लवमानानिपतिता वागुरायांविचेतना ॥ बलाध्यक्षेणविधृता मृगैःसहशतैर्नृपः ॥ ३५ ॥ ददर्शमहदाश्चर्यं भोजराजोजनैर्वृतः ॥ ततःकोलाहलोजातः परमानन्दनिस्वनः ॥ ३६ ॥ मृगैःसहसमानिन्ये कान्यकुब्जेमृगींनृपः ॥ दिव्यवस्त्रसमाछन्ना दिव्याभरणभूषिता ॥ ३७ ॥ नरैर्यानस्थितानारी प्रविवेशमृगैर्वृता ॥ वादित्रैर्ब्रह्मघोषैश्च नीयतेनृपमन्दिरम् ॥ ३८ ॥ जनैर्जानपदैर्मार्गे दृश्यतेनृपमन्दिरे ॥ नीयमानानागरैश्च महदाश्चर्यभाषकैः ॥ ३९ ॥ पुण्येमुहूर्त्तेसंप्राप्ता सामृगीनृपमन्दिरे ॥ प्रतिहारेणराजेन्द्र वचसावारितोजनः ॥ ४० ॥ गतःसेनापतिःसैन्यं गृहीत्वास्वनिकेतनम् ॥ राजापिस्वगृहंप्राप्य स्नात्वासम्पूज्यदेवताः ॥ ४१ ॥ तांमृगींस्नापयामास दिव्यगन्धानुलेपनैः ॥ कुङ्कुमेनविलिप्ताङ्गींदिव्यवस्त्रावगुण्ठिताम् ॥ ४२ ॥ यथोचितंयथा

मृगोंसे घिरीहुई स्त्रीने पालकी पै बैठकर प्रवेश किया जोकि बाजनों से व वेदशब्दों से राजाके मन्दिर में लाईजाती थी ॥ ३८ ॥ व देशोंमें बसनेवाले मनुष्य उसको मार्गमें देखते थे व बड़े आश्चर्य को कहनेवाले नगरवासी उसको राजाके मन्दिर में लियेजाते थे ॥ ३९ ॥ और उत्तम मुहूर्त्त में वह मृगी राजाके मन्दिर में प्राप्त हुई व नृपेन्द्र के वचन से द्वारपालक ने मनुष्यों को मनाकिया ॥ ४० ॥ और सेनापति सेनाको लेकर अपने घरको गया और राजाने भी अपने घरको प्राप्त होकर स्नानकर व देवताओं को भलीभांति पूजकर ॥ ४१ ॥ दिव्य चन्दन व अनुलेपनों से उस मृगीको स्नान कराया व कुंकुम से लिप्तअङ्गोंवाली तथा दिव्य वस्त्रों को

पहनेहुई ॥ ४२॥ यथायोग्य व यथा स्थान दिव्य आभूषणोंसे भूषित सुन्दर नेत्रोंवाली उसमृगीसे राजाने निर्जन (एकान्त) में कहा ॥४३॥ कि तुम कौन हो व किस की कन्याहो और किसकारण मृगोंके साथ प्राप्तहुई व किस कारण तुम्हारा शरीर स्त्रियोंका हुआ व किसकारण मृगियोंकासा मुख हुआ ॥ ४४ ॥ इस सबको कहिये मुझको बड़ा कौतुकहै इसप्रकार कहीहुई भी उसने किसी प्रकार न कहा ॥ ४५॥ और सुन्दर लोचनोंवाली उस मृगीने गूंगेकी नाईं मौन धारण किया और वह भोजन नहीं करती थी और भूपाल भोजन नहीं करता था व राज्यको बहुत नहीं मानता था ॥ ४६ ॥ और कहताथा कि न स्त्रियोंसे मेरा कार्यहै न हाथियोंसे न रथोंसे

स्थानं दिव्याभरणभूषिताम् ॥ एकान्तेनिर्जनेराजा बभाषेचारुलोचनाम् ॥ ४३ ॥ कात्वंकस्यसुताकेन कारणेनमृगैः सह ॥ स्त्रीणांशरीरंतेकस्मान्मृगीणांवदनंकुतः ॥ ४४ ॥ इदंसर्वंसमाचक्ष्व परंकौतूहलंमम ॥ एवंसाप्रोच्यमानापि न बभाषेकथञ्चन ॥ ४५ ॥ मूकवन्मौनमाधात्सा नचभुङ्क्तेसुलोचना ॥ नभुङ्क्तेपृथिवीपालो नराज्यंबहुमन्यते ॥ ४६ ॥ नदारैर्विद्यतेकार्यं नाश्वैर्नेचगजैरथैः ॥ तदेवराज्यंदारास्ते तेगजास्तद्धनंवहु ॥ ४७ ॥ प्रमदामुदसंयुक्ता यत्रसंक्रीडते मम ॥ आचख्यौचप्रतीहारं तयासंमोहिताशयः ॥ ४८ ॥ पुरोधसःपुरातविप्रानाचार्यांश्छीघ्रमानय ॥ दैवज्ञानथम न्त्रज्ञान्भिषजस्तान्त्रिकांस्तथा ॥ ४९ ॥ इतिविज्ञापितोराज्ञा प्रतीहारोययौस्वयम् ॥ आजगामसवेगेन समानीयद्वि जोत्तमान् ॥ ५० ॥ राज्ञेविज्ञापयामास देवविप्राःसमागताः ॥ प्रवेशयगुरून्द्वाःस्थान् संप्राप्तान्मद्धितेरतान् ॥ ५१ ॥ अभ्यु

कार्य विद्यमानहै वही राज्यहै वही स्त्रियांहैं वही हाथीहैं और वही बहुत धनहै ॥ ४७॥ जहां कि प्रसन्नतासे संयुत मेरी स्त्री क्रीड़ा करती है व उस स्त्रीसे मोहित आशयवाले राजाने द्वारपालसे कहा ॥ ४८ ॥ कि नगर से पुरोहित ब्राह्मणों को व आचार्योंको शीघ्रही लाइये व ज्योतिषियों को तथा मन्त्रके जाननेवाले व वैद्योंको तथा तन्त्रके जाननेवाले विद्वानों को लाइये ॥ ४९ ॥ राजा से इस प्रकार कहाहुआ वह द्वारपाल आपही गया व उत्तम ब्राह्मणोंको लाकर वह वेगसे आया ॥ ५० ॥ व उसने राजा से निवेदन किया कि हे देव ! ब्राह्मणलोग आयेहैं और द्वारपै स्थित व मेरे हित में लगे हुये भलीभांति प्राप्त गुरुओं को प्रवेश कराइये ॥ ५१ ॥ कार्यमें तत्पर

राजाने पहले उठकर प्रणामकर व पूजनकर आसनोंपै बैठेहुये उन ब्राह्मणोंसे कहा ॥ ५२ ॥ कि यह एक आश्चर्य कैसे कहाजासक्ताहै तुमलोग आपही लोक व शास्त्रसे भी जानो ॥५३॥ कि यह मृगी कैसे उत्पन्नहुई और किस कर्मका यह फलहै व किसप्रकारसे इसका मनुष्यका वचन होगा ॥५४॥ व किस प्रकार यह आपही मनुजमुखी होगी सब सावधान ब्राह्मणों ने बड़ेयत्नसे भलीभांति चिन्तवनकर कहा ॥ ५५ ॥ कि हे देव ! कुरुक्षेत्रमें सारस्वतनामक उत्तम ब्राह्मण है उस जितेन्द्रिय व ऊर्ध्वरेता तपस्वी ने सरस्वती नदीके समीप तप किया है ॥ ५६ ॥ वह तुमसे सब कहैगा और उसने आपही मृगीको देखा है ऐसा सुनकर तदनन्तर राजा आपही सारस्वत

त्थायनृपःपूर्वं नमस्कृत्यप्रपूज्यच ॥ आसनेषूपविष्टांस्तान्बभाषेकार्यतत्परः ॥ ५२ ॥ इदमाश्चर्यमेवैकं कथंशक्यंनिवेदितुम् ॥ जानीतहिस्वयंसर्वे लोकतःशास्त्रतोपिवा ॥ ५३ ॥ कथमेषासमुत्पन्ना कस्येदंकर्मणःफलम् ॥ अस्याःकेनप्रकारेण वचनंमानुषंभवेत् ॥ ५४ ॥ स्वयंमनुष्यवदना कथमेषाभविष्यति ॥ सावधानैर्द्विजैरुक्तं सर्वैःसञ्चिन्त्ययत्नतः ॥ ५५ ॥ देवसारस्वतोनाम कुरुक्षेत्रेद्विजोत्तमः ॥ ऊर्ध्वरेताःसरस्वत्यां तपस्तेपेजितेन्द्रियः ॥ ५६ ॥ कथयिष्यतितेसर्वं तेनदृष्टामृगीस्वयम् ॥ इतिश्रुत्वाततोराजा ययौसारस्वतंद्विजम् ॥५७॥ सरस्वतीजलेस्नातं प्रभातेध्यानतत्परम् ॥ दृष्ट्वा प्रदक्षिणीकृत्य साष्टाङ्गंतम्प्रणम्यच ॥ ५८ ॥ उपविष्टोनृपोभूमौ प्राञ्जलिःसजितेन्द्रियः ॥ मनुष्यपदसञ्चारं श्रुत्वाज्ञात्वाचकारणम् ॥ ५९ ॥ सारस्वतोबभाषेथ तंनृपंभक्तितत्परम् ॥ भोजराजशुभंतेस्तु ज्ञातंतत्कारणंमया ॥ ६० ॥ मृगाननात्वयानारी समानीतावनात्किल ॥ महदाश्चर्यमेवैतत्तवचेतसिवर्त्तते ॥ ६१ ॥ आदिष्टातुमयाबाला सर्वंतेकथयि

ब्राह्मणके समीप गया ॥ ५७ ॥ प्रातःकाल व सरस्वतीजी के जलमें नहायेहुये तथा ध्यानमें तत्पर उस ब्राह्मण को देखकर प्रदक्षिणाकर व साष्टांग प्रणामकर ॥ ५८ ॥ हाथोंको जोड़ेहुये राजा भूमिमें बैठगया व उस जितेन्द्रिय सारस्वत ब्राह्मणने मनुष्य के चरण की चालको सुनकर व कारण को जानकर भक्तिमें तत्पर उस ब्राह्मणने कहा कि हे भोजराज ! तुम्हारा कल्याण होवै मैंने उस कारणको जानलिया ॥ ५९ । ६० ॥ कि तुम मृगमुखी स्त्रीको वनसे लायेहो तुम्हारे चित्तमें यह बड़ा भारी

आश्चर्य वर्तमान है ॥ ६१ ॥ मुझसे आज्ञा दीहुई वह स्त्री तुमसे सब वृत्तान्तको कहेगी हे महाराज ! जैसा जो चरित्र है उसको मैं जानताहूं ॥ ६२ ॥ और उससे कहाजाता हुआ आश्चर्य संसारमें होगा इस प्रकार आज्ञाको देकर तदनन्तर वेग से सूर्यके समान तेजवाले रथके द्वारा वह ब्राह्मण ॥ ६३ ॥ दोही दिन रातमें राजा के घरमें प्राप्तहुआ और जहां वह मृगनयनी थी वहां पैठकर मृगीको देखकर स्थित हुआ ॥ ६४ ॥ व उस मृगीने धर्मको जाननेवाले व सर्वज्ञ सारस्वत ब्राह्मणको जाना कि यह सब जानताहै जो जैसा कारणहै ॥ ६५ ॥ त्रिलोक में जो वर्तमान, भविष्य व भूत है उसको ये जानते हैं इन्होंने पूर्वजन्ममें मेरे मरणको जानाहै ॥ ६६ ॥

ष्यति ॥ जानाम्यहंमहाराज चरित्रंयच्चयादृशम् ॥ ६२ ॥ आश्चर्यंसम्भवेल्लोके कथ्यमानन्तयास्वयम् ॥ इत्यादिश्य ततोवेगाद्रथेनादित्यवर्चसा ॥ ६३ ॥ अहोरात्रद्वयेनैव संप्राप्तोनृपमन्दिरम् ॥ प्रविश्यचमृगीन्दृष्ट्वा यत्रास्तेमृगलोचना ॥ ६४ ॥ तयासारस्वतोज्ञातो धर्मज्ञःसर्वविद्द्विजः ॥ एषसर्वंहिजानाति कारणंयच्चयादृशम् ॥ ६५ ॥ वर्तमानम्भविष्यंच भूतंयद्भुवनत्रये ॥ अनेनमरणंज्ञातं मदीयंपूर्वजन्मनि ॥ ६६ ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे तपस्तप्तम्भवालये ॥ विधूयकलुषंसर्वं ज्ञानमुत्पाद्ययत्नतः ॥ ६७ ॥ जरामरणनिर्मुक्तः प्रत्यक्षंदृष्टवानयम् ॥ अस्यतुष्टोभवद्देवो ज्ञातंतीर्थस्यकारणम् ॥ ६८ ॥ आदिष्टयामयावाच्यं यद्भवेज्जन्मकारणम् ॥ इतिचिन्तापरायावत्तावद्विप्रःसमागतः ॥ ६९ ॥ तस्मैप्रणामम करोन्मूर्च्छितानिपपातसा ॥ अथसारस्वतोज्ञानाज्ज्ञातवान्कारणञ्चतत् ॥ ७० ॥ आनयन्तुद्विजावेगात् कलशं तोयसम्भृतम् ॥ सर्वौषधीःपल्लवांश्च दूर्वापुष्पाणिचाक्षतान् ॥ ७१ ॥ धूपंचचन्दनंचैव गोमयंमधुसर्पिषी ॥ इत्यादिष्टैर्द्वि

व इसने वस्त्रापथ महाक्षेत्र में शिवजी के मन्दिर में तप कियाहै व सब पापको नष्ट कर व यत्नसे ज्ञानको उत्पन्नकर ॥ ६७ ॥ वृद्धता व मृत्युसे रहित इसने प्रत्यक्षही देखा है व इसके ऊपर शिवदेवजी प्रसन्न हुये हैं इससे तीर्थका कारण जानागया ॥ ६८ ॥ और जो जन्मका कारण है उसको आज्ञा दीहुई मुझको कहना चाहिये इस प्रकार जबतक चिन्ता में परायण हुई तबतक वह ब्राह्मण आगया ॥ ६९ ॥ उसके लिये उसने प्रणाम किया और मूर्छित होतीहुई वह गिरपड़ी इसके अनन्तर सारस्वतने ज्ञानसे उस कारणको जाना ॥ ७० ॥ व कहा कि शीघ्रही जलसे भरेहुये कलशको ब्राह्मण लावैं और सब ओषधि, पंचपल्लव, दूब, पुष्प व अक्षतोंको लावैं ॥ ७१ ॥

और धूप, चन्दन, गोमय, शहद व घीको लावैं इस प्रकार आज्ञा दियेहुये ब्राह्मणलोग शीघ्रता से राजाकी आज्ञासे लेआये ॥ ७२ ॥ और पृथ्वीके भागको लीपकर व स्वस्तिककलशको थापकर पहले अग्निकार्य को करके उन्होंने देवताओंको घटमें थापकर ॥ ७३ ॥ व उसमें उन्होंने इन्द्रको थापकर क्रमपूर्वक दिक्पालों को थापकर चरु बनाकर अग्नि में हवनकर ग्रहपूजन कराया ॥ ७४ ॥ व जलको सुवर्ण के पात्रमें स्थितकर गुरुने आपही घटोंको थापकर तदनन्तर सब कामनाओंवाले मुहूर्तमें अभिषेक किया ॥ ७५ ॥ और उस जलसे अभिषेक कराईहुई व नहाईहुई वह पवित्रहुई और वह स्त्री चैतन्यतासमेत हुई व नेत्रसे सब देखनेलगी॥७६॥

जैर्वेगात् समानीतंनृपाज्ञया ॥ ७२ ॥ उपलिप्यचभूभागं स्वस्तिकंसन्निवेश्यच ॥ कृत्वाग्निकार्यंप्रथमं देवान्कुम्भेनि धायसः ॥ ७३ ॥ इन्द्रंतस्मिन्सविन्यस्य दिक्पालांश्चयथाक्रमम् ॥ हुत्वाग्निञ्चचरुंकृत्वा ग्रहपूजामकारयत् ॥ ७४ ॥ तोयंसुवर्णपात्रस्थं कृत्वाकुम्भान्स्वयंगुरुः ॥ अभिषेकंततश्चक्रे मुहूर्तेसर्वकामिके ॥ ७५ ॥ अभिषिक्तातुसातेन पूता स्नाताथवारिणा ॥ जातासचेतनाबाला सर्वंपश्यतिचक्षुषा ॥ ७६ ॥ शृणोतिसर्वंजानाति चरित्रंपूर्वजन्मनः ॥ बदरीफलमात्रन्तु पुरोडाशंददौगुरुः ॥ ७७ ॥ तयोपभुक्तंयत्नेन ततश्चक्रेसमार्जनम् ॥ मानुषंवचनंकर्णे ददौज्ञानंगुरुर्नृपः ॥ ७८ ॥ गुरवेदक्षिणांदत्त्वा उपविष्टोवरासने ॥ तामुवाचगुरुश्चैव वक्तव्यंवचनंत्वया ॥ ७९ ॥ भोजराजायसर्वेषां चरित्रं पूर्वजन्मनाम् ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य साप्युवाचनृपंतदा ॥ ८० ॥ नविषादस्त्वयाकार्यो राजञ्श्रुत्वामयोदितम् ॥ वक्तुं प्रचक्रमेबाला यद्वृत्तंपूर्वजन्मनि ॥ ८१ ॥ नमस्कृत्यगुरुंपूर्वं ब्राह्मणानृत्विजस्तथा ॥ इतस्त्वंसप्तमेस्थाने कलिङ्गाधि

और वह पूर्वजन्म के सब चरित्र को सुनती व जानती थी गुरुने बेरके फल भर पुरोडाश को दिया ॥ ७७ ॥ व उस स्त्रीने यत्न से भोजन किया तदनन्तर उस गुरुने मार्जन किया व कानमें गुरुने मनुष्यवचन से ज्ञानको दिया और राजा ॥ ७८ ॥ गुरुके लिये दक्षिणा को देकर उत्तम आसन पै बैठगये व गुरुने उस स्त्री से कहा कि तुमको वचन कहना चाहिये ॥ ७९ ॥ और भोजराजा से सबोंके पहले जन्मोंका चरित्र कहिये उस गुरुके ऐसे वचन को सुनकर उसने भी उस समय राजासे कहा ॥ ८० ॥ कि हे राजन् ! मेरे कहेहुये वचनको सुनकर तुमको विषाद न करना चाहिये पहले गुरुको व ब्राह्मणोंको तथा ऋत्विजोंको प्रणामकर उस स्त्री

ने पूर्वजन्म में जो हुआथा उसको कहने के लिये प्रारम्भ किया कि इससे सातवें स्थान याने जन्ममें तुम कलिंगदेशके स्वामी के पुत्र हुये हो॥ ८१। ८२ ॥ व पिता के मरनेपर तुम्हीं बालकको अपने मन्त्रियों ने अभिषेक किया और मैं भी वङ्गदेशके राजाकी कन्याहुई ॥ ८३ ॥ व हे नृप, देव! पितासे आपही दीहुई मैं तुमसे व्याही गई और जिसलिये स्त्रियोंमें मैं उत्तम थी उसी कारण तुमसे पटरानी कीगई॥ ८४॥ व क्रमसे तुम युवा हुये व हिंसक तथा क्रूरहुये और वेदशास्त्रमें प्रवीण न हुये तथा दया व धर्मसे रहितहुये ॥ ८५ ॥ और वह लोभी, मानी, महाक्रोधी व सत्य तथा आचार से पृथक् था व दुष्टआशयवाला वह न देवता न गुरु न ब्राह्मणों को

पतेःसुतः ॥ ८२ ॥ मृतेपितरिबालस्तु अभिषिक्तःस्वमन्त्रिभिः ॥ अहंहिवङ्गराजस्य सञ्जातादुहिताकिल ॥ ८३ ॥ परिणीतात्वयादेव पित्रादत्तास्वयंनृप॥ त्वयाहंपट्टमहिषी कृतायोषिद्वरायतः ॥ ८४॥ युवाजातःक्रमेणैव हिंस्रःक्रूरोबभूविथ ॥ नवेदशास्त्रकुशलो दयाधर्मविवर्जितः ॥ ८५ ॥ लुब्धोमानीमहाक्रोधी सत्याचारबहिष्कृतः ॥ नदेवंनगुरुंविप्रान् नजानातिदुराशयः ॥ ८६ ॥ विरक्ताहिप्रजास्तस्य ब्राह्मणोच्छेदकारिणः॥ समाचक्रेनृपैस्तस्य देशःसर्वोविलुम्पितः ॥ ८७॥ सैन्यंसर्वंसमादाय युद्धायोपजगामह ॥ सहैवाहंगतादेवयुद्ध्यताचनृपैस्सह॥ ८८॥ जितास्तुसैनिकास्तस्य गता नष्टादिशोदश ॥ ८९ ॥ त्यक्त्वाधर्मंनिजंराजा पलायनपरोभवत् ॥ गच्छमानस्तुनृपतिः शत्रुभिःपरिपीडितः ॥९०॥ असत्यवादीदुष्टात्मा हतोलोकविरोधकः ॥ देहन्तस्यगृहीत्वाग्नौ प्रविष्टाहंनृपोत्तम ॥ ९१॥ मृतस्यैवंगतिर्नास्ति न रकान्नविमुच्यते॥ मृतंकान्तंसमादाय भार्याग्नौप्रविशेद्यदि ॥ ९२ ॥ सातारयतिपापिष्ठं यावदाभूतसंप्लवम् ॥ इहपाप

जानताथा ॥ ८६ ॥ ब्राह्मणों को नाशकरनेवाले उसकी प्रजा विरक्त होगई और राजाओंने उसके सब देशको लूट लिया ॥ ८७ ॥ तब सब सेनाको लेकर वह युद्धके लिये गया व हे देव! राजाओं के साथ युद्ध करतेहुये तुम्हारे साथही मैं गई ॥ ८८॥ और हारेहुये उसकी सेनावाले मनुष्य भागकर दशो दिशाओंको चलेगये ॥ ८९ ॥ और राजा अपने धर्मको छोड़कर पलायन में परायण हुआ याने भगा और जाताहुआ वह राजा शत्रुओं से पीड़ितहुआ ॥ ९० ॥ व हे नृपोत्तम ! संसार का विरोधी तथा असत्यवादी व दुष्टात्मा वह राजा मारागया और उसके शरीर को लेकर मैं अग्नि में पैठ गई ॥ ९१ ॥ क्योंकि इस प्रकार मरेहुये की गति नहीं होती है और

वह नरक से नहीं छुटता है व यदि मरेहुये पतिको लेकर स्त्री अग्नि में पैठे ॥ ६१ ॥ तो वह स्त्री प्रलयपर्यंत पापी पतिको तारतीहै और इसलोक में पातक को नाश कर पश्चात् स्वर्ग में पूजीजाती है ॥ ६२ ॥ इसी कारण हे राजन् ! तुम मालवदेशमें ब्राह्मण हुये थे हे नृप ! वहां मैं ब्राह्मणी होकर उस की यानें तुम्हारी स्त्री प्र सहुई ॥ ६४ ॥ और वह धन, धान्यसे समृद्धहुआ तथा धान्य व धन से अधिक हुआ और पिता मरगया व माता मरगई तथा वह भाइयों से रहित हुआ ॥ ६५ ॥ और वह स्नान व सन्ध्या से विहीन था और मायावी वह मनुष्यों से याचना करताथा और मैं बड़ी भक्ति करती थी परन्तु वह मेरे ऊपर क्रोध करता था ॥ ६६ ॥

त्त्यंकृत्वा पश्चात्स्वर्गेमहीयते ॥ ९३ ॥ अतस्त्वंब्राह्मणोजातो देशेमालवकेनृप ॥ तस्यैवतत्रभार्याहं संप्राप्ताब्राह्मणी नृप ॥ ९४ ॥ धनधान्यसमृद्धोभूत तथाधान्यधनाधिकः ॥ मृतःपितामृतामाता सचभ्रातृविवर्ज्जितः ॥ ९५ ॥ स्नान सन्ध्याविहीनश्च मायावीयाचतेजनम् ॥ भक्तिंकरोमिपरमांसचकुप्यतिमाम्प्रति ॥ ९६ ॥ सन्तानंनैवतस्यास्ति धनर क्षापरोहिसः ॥ नददातिनचाश्नाति नजुहोतिनसरक्षति ॥ ९७ ॥ नतर्पणंतिलैर्विप्रो विदधात्यतिलोभतः ॥ मासेनभस्ये संप्राप्ते पक्षेकृष्णेनृपोत्तम ॥ ९८ ॥ नकरोतिगृहेश्राद्धं स्नानतर्पणवर्जितः ॥ नजानातिदिनंपित्र्यं पक्षमेवंनिरन्तर म् ॥ ९९ ॥ अन्यत्रभुङ्क्तेविप्रोसौ क्षयाहेपिसमागते ॥ मकरस्थेरवौचैव कृसरंनददातिसः ॥ १०० ॥ तिलान्सुवर्णरजतं व स्त्रंवाफलमेववा ॥ शाकपत्रंसुपात्रेच नददातितथाधनम् ॥ १ ॥ गवांगवाह्निकंनैव कथंमुक्तिर्भविष्यति ॥ नयातिविष्णु

और उसके सन्तान न थी तथा वह धनकी रक्षा में परायण हुआ न देताथा न भोजन करताथा और न हवन करताथा वरन वह धनकी रक्षा करताथा ॥ ६७ ॥ व हे नृपोत्तम ! वह ब्राह्मण बड़ेलोभके कारण तिलोंसे तर्पण नहीं करता था और भाद्रपद महीना प्राप्तहोनेपर कृष्णपक्षमें ॥ ६८ ॥ स्नान व तर्पणसे रहित वह घरमें श्राद्ध नहीं करताथा ऐसेही सदैव वह पितरोंके दिन व पक्षको नहीं जानताथा ॥ ६६ ॥ और क्षयाह भी प्राप्त होनेपर यह ब्राह्मण अन्यत्र भोजन करताथा व सूर्यनारायणके मकरराशि में स्थित होनेपर कृसर (तिल,चावल) नहीं देताथा ॥ १०० ॥ और तिल, सुवर्ण,चांदी,वस्त्र, फल,शाकपत्र व धनको वह सुपात्रमें नहीं देताथा ॥ १ ॥

और गौवोंको गवांह्निक नहीं देताथा तो किस भांति मुक्ति होवै और दक्षिणायन प्राप्त होनेपर यह विष्णुजी के शरणमें नहीं जाताथा ॥ २ ॥ व चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें ब्राह्मणके लिये गऊको नहीं देताथा क्योंकि वस्त्रसमेत घण्टा व आभूषण से युक्त तथा बछड़ासमेत एकभी जो गऊ पात्रमें दीगईहै वह मुक्तिको देतीहै व वंशकी भी वृद्धिको करती है ॥ ३ । ४ ॥ और उस गऊके जितने रोम होतेहैं उतने वर्षोंतक वह पूजाजाता है और सूर्यनारायण के समान तेजस्वी यह पुरुष सिद्धगणों से घिरकर ब्रह्मस्थान में स्थित होताहै ॥ ५ ॥ और यह ब्राह्मण न देवालय रचता है न बावली न कूप न तड़ाग और न कुण्ड को करता है व न

शरणं संप्राप्तेदक्षिणायने ॥२॥ धेनुंददातिनोविप्रे ग्रहणेसूर्यचन्द्रयोः ॥ ३ ॥ एकापिदत्तासुपयस्विनीसा सवस्त्रघण्टाभरणोपपन्ना ॥ वत्सेनयुक्ताहिददातिपात्रे मुक्तिंकुलस्यापिकरोतिवृद्धिम् ॥ ४ ॥ यावन्तिरोमाणिभवन्तितस्यास्तावन्तिवर्षाणिमहीयतेसः ॥ ब्रह्मालयेसिद्धगणैर्वृतोसौ सन्तिष्ठतेसूर्यसमानतेजाः ॥ ५ ॥ देवालयन्नोविदधातिवापीं कूपंतडागंनकरोतिकुण्डम् ॥ पुण्यंविवाहंस्वजनोपकारं नासौसतांवाद्विजमन्दिरंवा ॥ ६ ॥ धनंसदाभूमिगतंकरोति धनंनजानातिकुलंचतस्य ॥ अहंहितस्यैवगतिर्भवामि कथंचकान्तम्परिवञ्चयामि ॥ ७ ॥ एवंहिवर्त्तमानःस कालधर्ममुपेयिवान् ॥ धनलोभान्मयादेव मरणंपरिवर्ज्जितम् ॥ ८ ॥ पश्यन्त्यागोत्रिभिःसर्वं गृहीतंधनसञ्चयम् ॥ कालेनमहतादेव मृताहं द्विजमन्दिरे ॥ ९ ॥ श्वेतसर्पःसञ्भवद्देशेतस्मिन्नृपोत्तम ॥ तत्रैवाहंब्राह्मणस्य सञ्जातातनयानृप ॥ १० ॥ वर्षेष्टमेतुसं

पुण्य करता था न विवाह और न अपने जनोंका उपकार न सज्जनों का उपकार करताथा और न ब्राह्मण के मन्दिर को बनवाता था ॥ ६ ॥ बरन यह सदैव धन को भूमिमें प्राप्त करताथा और वंश उसके धनको नहीं जानता था व मैं उसीकी गति थी इससे किस प्रकार पतिको छलूं ॥ ७ ॥ इस प्रकार वर्तमान वह कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्तहुआ व हे देव ! धनके लोभसे मैंने मृत्यु नहीं की ॥ ८ ॥ और मेरे देखतेहुये सब धनके सञ्चयको कुटुम्बियों ने ले लिया व हे देव ! बहुत समय क बाद मैं ब्राह्मण के घर में मरगई ॥ ९ ॥ हे नृपोत्तम ! उस देश में वह सफेद सांप हुआ और हे राजन् ! वहींपर मैं ब्राह्मण की कन्या हुई ॥ १० ॥ और हे राजन् !

आठवां वर्ष प्राप्त होनेपर ब्राह्मण ने मेरा व्याह किया व उसी मेरे घर में सांप बसता था ॥ ११ ॥ मेरी स्त्रीहै इस कारण महासर्परूपी पतिने उसको काट खाया और वह मरगया व सब ब्राह्मणों ने उस सांप को दण्डों से मारडाला ॥ १२ ॥ मुझको विधवापन देकर ब्राह्मण व सांप दोनों मरगये और पिता, माताने बड़ाशोक करके मेरे शिरको मुण्डित किया ॥ १३ ॥ उस समय श्वेत वसनों को पहने व विष्णुजी की भक्तिमें परायण तथा महीनेभर के उपासमें तत्पर मैं जो अनेकों तीर्थ थे उनमें घूमने लगी ॥ १४ ॥ और सांप गोदावरी नदीका नाक हुआ और मैं शिवालयमें भीमेश्वरदेवको देखनेके लिये अपने जनोंसमेत गई ॥ १५ ॥ व हे राजन्!

प्राप्ते परिणीताद्विजन्मना ॥ तस्मिन्नेवगृहेसर्पो मदीयेचावसन्नृप ॥ ११ ॥ भार्यामेमेतिसंदष्टो रात्रौभर्त्रामहाहिना ॥ मृतोपिब्राह्मणैःसर्वैर्लकुटैर्विनिपातितः ॥ १२ ॥ वैधव्यंममदत्त्वातु द्विजसर्पौमृतावुभौ ॥ पित्रामात्रामहाशोकं कृत्वामे मुण्डितंशिरः ॥ १३ ॥ तदाहंश्वेतवस्त्राच विष्णुभक्तिपरायणा ॥ मासोपवासनिरता यानितीर्थान्यनेकशः ॥ १४ ॥ स पर्स्तुमकरोजातो गोदावर्याःशिवालये ॥ देवंभीमेश्वरंद्रष्टुंगताहंस्वजनैःसह ॥ १५ ॥ यावत्स्नातुंप्रविष्टाहं वृतासर्वजनै र्नृप ॥ मकरेणतदाकृष्टा भार्येयंममवल्लभा ॥ १६ ॥ गृहीतामकरेणाहंनेतुमन्तर्जलेनृप ॥ हाहाकारःसमभवज्जनाः क्षुब्धाःसमन्ततः ॥ १७ ॥ कुन्तघातेनकेनासौ मकरस्तुनिपातितः ॥ ऊर्द्ध्ववक्त्रास्थिताचाहं मृताकृष्टाजनैर्बहिः ॥ १८ ॥ अ ग्निंदत्त्वाजलेक्षिप्त्वा सर्वेलोकागृहंगताः ॥ स्त्रीवधाल्लुब्धकोजात ऋषितीर्थप्रभावतः ॥ १९ ॥ मानुषींयोनिमापन्ना तस्मिन्नेवमहावने ॥ अग्नेर्जलाच्चसर्पाच्च गजात्सिंहाद्भयादपि ॥ २० ॥ रोषाद्विस्फोटकान्मृत्युर्येषांतेनरकेगताः ॥

सब जनोंसे घिरीहुई मैं जबतक स्नान करने के लिये पैठी तबतक उस समय मकर ने खींचा कि यह मेरी प्यारी स्त्री है ॥ १६ ॥ हे राजन् ! जलके बीचमें लेजाने के लिये नाकने मुझको पकड़ लिया तब हाहाकार हुआ और सबओर मनुष्य क्षोभित होगये ॥ १७ ॥ और किसीने भालेके घातसे नाकको मारा और ऊपर मुखकरके मैं स्थितहुई व मरगई और मनुष्योंने बाहर खींचा ॥१८॥ व अग्निको देकर और जल में फेंककर सब मनुष्य घरको गये और स्त्रीको वध करने के कारण वह बहेलिया

हुआ व ऋषितीर्थ के प्रभावसे ॥ १९ ॥ उसी महावन में मैं मनुष्यकी योनिमें प्राप्त हुई अग्नि, जल, सांप, हाथी, सिंह व घोड़ेसे भी ॥ २० ॥ और क्रोध व विस्फोटक (चेचक) से भी जिनकी मृत्यु होतीहै वे नरक में प्राप्त होतेहैं और आत्मघाती, बालघाती, स्त्रीको मारनेवाले, ब्रह्मघाती व झूंठी गवाही देनेवाले ॥ २१ ॥ और कन्याको बेंचनेवाला व जो मिथ्याव्रत धारनेवालाहै और जो यज्ञको बेंचताहै व जो ब्राह्मण मदिरा पीताहै ॥ २२ ॥ और राजासे वैर करनेवाला, सोनाको चुरानेवाला तथा ब्राह्मण की जीविका को हरनेवाला और गोघाती व धरोहर हरनेवाला और जो गांवकी हद्दको हरनेवाला है ॥ २३ ॥ व जो स्त्री पतिको छलती है वे सब

आत्महाभ्रूणहास्त्रीहा ब्रह्मघ्नःकूटसाक्षिणः ॥ २१ ॥ कन्याविक्रयकर्त्ताच मिथ्याव्रतधरस्तुयः ॥ विक्रीणातिक्रतुंयस्तु मद्यंपातिद्विजस्तुयः ॥ २२ ॥ राजद्रोहीस्वर्णचौरो ब्रह्मवृत्तिविलोपकः ॥ गोघ्नस्तुनिक्षेपहरो ग्रामसीमाहरस्तुयः ॥ २३ ॥ सर्वेतेनरकंयान्ति याचस्त्रीपतिवञ्चका ॥ अहंमृत्युप्रभावेण जाताक्रौञ्चीवनेनृप ॥ २४ ॥ गोदावरीवनेव्याधो भ्रमतेमृगमार्गकः ॥वनेसक्रौञ्चःकामात्तु मयाक्रीडितुमुद्यतः ॥ २५ ॥ दृष्टाहंभ्रमतातेन व्याधेनाकृष्यकार्मुकम् ॥ हतः क्रौञ्चोमृतोराजन् नष्टास्थानादहन्ततः ॥ २६ ॥ गोदावरीवनेतस्मिन्व्याधरूपंददर्शतम् ॥ ऋषिर्व्याधंशशापाथ दृष्ट्वा कर्मविगर्हितम् ॥ २७ ॥ कामधर्मंप्रकुर्वाणं प्रियसम्भाषतत्परम् ॥ क्रौञ्चंत्वमवधीर्यस्मात्तस्मात्सिंहोभविष्यसि ॥ २८ ॥ ऋषिस्तेनविनीतेन स्थित्वासन्तोषितोनृप ॥ ऋषिर्वदतितस्याग्रे नमेमिथ्यावचोभवेत् ॥ २९ ॥ सिंहस्यस्यप्रसादन्ते करिष्येमुक्तिहेतवे ॥ सुराष्ट्रदेशेभविता सिंहोरैवतकेगिरौ ॥ ३० ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे मुक्तिस्तेभविताध्रुवम् ॥

नरकको जाते हैं हे राजन्! मृत्युके प्रभावसे मैं वनमें क्रौंची हुई ॥ २४ ॥ और मृगको ढूंढ़नेवाला बहेलिया गोदावरी के वनमें घूमताथा और वनमें वह क्रौञ्चपक्षी कामदेवके कारण मेरे साथ क्रीड़ा करने के लिये उद्यत हुआ ॥ २५ ॥ हे राजन् उस व्याधने मुझको देखा और धनुषको खींचकर क्रौंचको मारा वह मरगया तदनन्तर मैं स्थानसे भगगई ॥ २६ ॥ व उस गोदावरीके वनमें ऋषिने उस व्याधरूपी पुरुषको देखा इसके अनन्तर निन्दितकर्मको देखकर बहेलियाको शापदिया ॥ २७ ॥ कि प्रियसम्भाषण में लगे व कामधर्म को करतेहुये क्रौंचको तुमने जिसलिये माराहै उसी कारण सिंह होओगे ॥ २८ ॥ हे राजन्! उस विनीतने स्थित होकर ऋषि

को प्रसन्न कराया और ऋषि उसके आगे कहते थे कि मेरा वचन झूंठ न होगा ॥ २९ ॥ और सिंहयोनि में स्थित तुम्हारे ऊपर मैं मुक्तिके लिये प्रसन्नता करूंगा सुराष्ट्रदेश में रैवतक पर्वत पै आप सिंह होगे ॥ ३० ॥ और वस्त्रापथ महाक्षेत्र में तुम्हारी निश्चयकर मुक्तिहोगी ऐसा कहकर वे ऋषिजी भीमेश्वरदेवके समीपगये ॥ ३१ ॥ दुर्वचन के सुनने से व्याध क्रम से मृत्युको प्राप्तहुआ व क्रौंचके वियोगसे क्रौंची कहीं वनके मध्यमें गई ॥ ३२ ॥ और मरकर भाग्यके वशसे वह रैवतपर्वत पै मृगी हुई व मृगगण में प्राप्त तथा मदसे विकल वह नित्यही प्रसन्न रहतीथी॥ ३३॥ व इस पहाड़के महावनमें व्याध सिंह हुआ मृगसमूह में कामसे विकल मृगीको

इत्युक्त्वासऋषिर्देवं गतोभीमेश्वरम्प्रति ॥ ३१ ॥ दुर्वचःश्रवणाद्व्याधः क्रमात्पञ्चत्वमाययौ॥ क्रौञ्चीक्रौञ्चवियोगेन गताकुत्रवनान्तरे ॥ ३२ ॥ मृतादैववशाज्जाता मृगीरैवतकेगिरौ ॥ मृगयूथगतानित्यं मोदतेमदविह्वला ॥ ३३ ॥ व्याधःसिंहःसमभवद्गिरेस्त्वस्यमहावने ॥ कामार्तांभ्रमतीन्दृष्ट्वा मृगसङ्घेचयत्नतः ॥३४॥ यत्रसम्भजतेतत्र सिंहोपिप्रस्थितोवने ॥ सिंहोपिदैवयोगेन ममैवमितिमन्यते ॥ ३५ ॥ परंहिंस्रप्रभावेण मृगींहन्तुंप्रचक्रमे ॥ चलत्वंमृगजातीनां विहितंवेधसास्वयम् ॥ ३६ ॥ पुनर्गतामृगीयूथं क्रीडतेचारुलोचना ॥ भवस्यपश्चिमेभागे तत्ररैवतकेगिरौ ॥ ३७ ॥ अनुयातःशनैस्सोथ मृगेन्द्रोमृगयूथपः ॥ उत्पपातततःसिंहो मृगसङ्घस्यमूर्द्धनि ॥ ३८ ॥ सिंहस्यनमृगैःकार्यं हरिणींप्रतिपश्यतः ॥ यत्रसाहरिणीयाति ययौसिंहश्चतत्रताम् ॥ ३९ ॥ यदावेगंमृगीचक्रे सिंहःक्रुद्धस्तदावने ॥ सिंहोपिवेगवाञ्जा

घूमतीहुई यत्नसे देखकर ॥ ३४ ॥ जहां वह जातीथी वहां वनमें सिंह भी जाताथा व सिंह दैवयोगसे यह मानताथा कि यह मेरीहै ॥ ३५ ॥ परन्तु हिंसकके प्रभावसे मृगी को मारनेके लिये प्रारम्भ किया ब्रह्माने आपही मृग जातिवालोंको चलत्व कियाहै ॥ ३६ ॥ इस कारण भवके पश्चिमभागमें वहां रैवतक पर्वत पै सुन्दर लोचनोंवाली मृगी फिर यूथमें प्राप्तहोकर क्रीड़ा करनेलगी ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर मृगयूथका स्वामी वह मृगेन्द्र धीरे २ उसके पीछे गया तदनन्तर सिंह मृगसमूहके मस्तकपै कूद पड़ा ॥ ३८ ॥ और मृगीको देखते हुये सिंहका मृगोंसे कुछ कार्य न था जहां हरिणी जाती थी वहां उसके पीछे वह सिंह भी जाता था ॥ ३९ ॥ जब मृगी ने वेग

किया तब सिंह क्रोधित हुआ और सिंह भी वेगवान् हुआ व मृगी अधिकवेगवती हुई ॥ ४० ॥ जब सिंहने मृगीको घेर लिया तब सिंहके डर से वह मृगी भवजी के आगे नदी के जल में गिरपडी ॥ ४१ ॥ और उसका शिर आकाशमें लम्बित था याने किसी आधार में ऊपर लटक गया व शरीर जल के मध्यमें प्राप्त था और सिंह साथही गिरपड़ा व जल के मध्य में मरगया ॥ ४२ ॥ व मेरा वह शरीर वहां स्वर्णरेखा नदी के जल में टूटगया और मुख नहीं गिरा बरन त्वचा व मांस शिर में स्थित रहा ॥ ४३ ॥ यह सब जो चरित्र हुआ है उसको सारस्वतने देखा है व उस तीर्थ के प्रभाव से नृपता हुई है ॥ ४४ ॥ सब पापों को क्षय करनेवाला यह

तो मृगीवेगाधिकाभवत् ॥ ४० ॥ यदासिंहेनसंक्रान्ता मृगीसिंहभयात्ततः ॥ भवस्याग्रेनदीतोये पतिताजलमूर्द्धनि ॥ ४१ ॥ प्रलम्बतेशिरोऽव्योम शरीरंजलमध्यगम् ॥ सिंहःसहैवपतितो मृतःपयसिमध्यतः ॥ ४२ ॥ स्वर्णरेखाजलेतत्र विशीर्णममतद्वपुः ॥ नतुवक्त्रंनिपतितं त्वङ्मांसंशिरसिस्थितम् ॥ ४३ ॥ एतच्चरित्रंयत्सर्वं दृष्टंसारस्वतेनवै ॥ तस्यतीर्थप्रभावेण नृपत्वंसमजायत ॥ ४४ ॥ इदंहिसप्तमंजन्म सर्वपापक्षयावहम् ॥ कान्यकुब्जेमहादेशे राजाभोजेतिविश्रुतः ॥ ४५ ॥ अहंहिहरिणीगर्भे जातामानुषरूपिणी ॥ जातंवक्त्रंमृगीणांमे यस्मान्नपतितंजले ॥ १४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेस्वर्णरेखामाहात्म्यंनामैकविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२१ ॥ * ॥ * ॥

राजोवाच ॥ कथंत्वंहरिणीगर्भे जातामानुषरूपिणी ॥ केनसंवर्द्धिताबाल्ये कथंतेरूपमीदृशम् ॥ १ ॥ मृग्युवाच ॥ शृणुदेवप्रवक्ष्यामि यद्वृत्तंकन्यकेवने ॥ ऋषिरुद्दालकोनाम गङ्गातीरेमहातपाः ॥ २ ॥ प्रभातेमूत्रमुत्स्रष्टुं गतोदेवव

सातवां जन्म है जिसमें कान्यकुब्ज महादेशमें तुम राजा भोज ऐसे प्रसिद्धहो ॥ ४५ ॥ और मैं मृगी के गर्भमें मनुजरूपिणी हुई और जिसलिये शिर जलमें नहीं गिरा उसीकारण मेरा मुख मृगियोंका सा हुआ ॥ १४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेभाषाटीकायांस्वर्णरेखामाहात्म्यंनामैकविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२१ ॥

दो॰ । स्वर्णरेख परभाव सों भइ मृगानना नारि । कह्यो त्रिशत बाईसमें सोइ चरित सुखकारि ॥ राजा बोले कि हरिणी के गर्भ में तुम मनुजरूपिणी क्यों हुई और बचपनमें किसने तुमको बढ़ाया व किसप्रकार तुम्हारा ऐसा रूप हुआ ॥ १ ॥ मृगी बोली कि हे देव ! जो चरित कन्यकवनमें हुआहै उसको मैं कहती हूं सुनिये

कि गङ्गाजीके किनारे बड़े तपस्वी उद्दालकनामक ऋषिहुये हैं ॥ २ ॥ हे देव ! वे प्रातःकाल वन के मध्यमें मूत्रोत्सर्ग याने पेशाब करने के लिये गये और मूत्रके अन्त में उस ब्राह्मणका वीर्य पृथ्वी में गिरपड़ा ॥ ३ ॥ और जबतक शौच करके बड़े यत्नसे ब्राह्मण चला तबतक मृगी वीर्यको देखकर वनके बीचसे आगई ॥ ४ ॥ व चञ्चलतासे उसने वीर्यको खा लिया व आपही ब्रह्मर्षिने देखा व कहा कि जिसलिये मेरे वीर्यको तू खाती है उसीकारण गर्भ होगा ॥ ५ ॥ व मेरे समान रूपवती तथा तुम्हारे समान मुखवाली स्त्री गर्भमेंहोगी उस तुम्हारी कन्याको देवियां दिव्य रसोंसे बढ़ावैंगी ॥ ६ ॥ व किसी भी दैवयोगसे इसको ज्ञान होगा हे देव ! इसीप्रकार उद्दा-

नान्तरे ॥ मूत्रान्तेपतितंभूमौ वीर्यंतस्यद्विजन्मनः ॥ ३ ॥ यावत्सचलितोविप्रः शौचंकृत्वाप्रयत्नतः ॥ तावन्मृगीसमायाता दृष्ट्वावीर्यंवनान्तरात् ॥ ४ ॥ चापल्याद्भक्षितंवीर्यं दृष्टंब्रह्मर्षिणास्वयम् ॥ यस्माद्भक्षासिमेवीर्यं तस्माद्गर्भोभविष्यति ॥ ५ ॥ ममरूपाचत्वद्वक्त्रा नारीगर्भेभविष्यति ॥ वर्द्धयिष्यन्तिदेव्यस्तां रसैर्दिव्यैःसुतांतव ॥ ६ ॥ केनापिदैवयोगेन ज्ञानंतस्याभविष्यति ॥ एवमुद्दालकाद्देव सञ्जाताहंमृगानना ॥ ७ ॥ प्रविश्याग्नौमृतापूर्वं त्वयासार्द्धंनराधिप ॥ तस्माज्जातंसतीत्वंमे सप्तजन्मनिवैप्रभो ॥ ८ ॥ यत्त्वयाकुर्वताराज्यं पापंवैसमुपार्जितम् ॥ क्षत्रधर्मंपरित्यज्य पलायनपरोमृतः ॥ ९ ॥ तदेनोहिमयादग्धं चिताग्नौनृपसत्तम ॥ पतिंगृहीत्वायानारी मृतमग्नौविशेद्यदि ॥ १० ॥ सातारयतिभर्त्तारमात्मानंचकुलद्वयम् ॥ गोगृहेदेशभङ्गेच संग्रामेसम्मुखेनृपः ॥ ११ ॥ ससूर्यमण्डलंभित्त्वा ब्रह्मलोकेमहीयते ॥ १२ ॥ अभोजनंयोविदधातिमर्त्यो दिनेदिनेयज्ञसहस्रपुण्यम् ॥ सयातियानेनगणान्वितेन विधूयपापानि

लकसे मैं मृगमुखी पैदाहुई हूं ॥ ७ ॥ हे नराधिप,प्रभो ! जिसलिये अग्निमें पैठकर मैं तुम्हारे साथ मरगई उसीकारण सात जन्मों में मेरे पतिव्रतत्व हुआहै ॥ ८ ॥ व राज्य करतेहुये तुमने जो पाप इकट्ठा किया व क्षत्रियके धर्मको छोड़कर भागने में तत्परहोकर मरेहो ॥ ९ ॥ हे नृपोत्तम ! उस पापको मैंने चिताकी अग्निमें जलादिया क्योंकि यदि मरेहुये पतिको लेकर जो स्त्री अग्निमें पैठजावै ॥ १० ॥ वह पतिको व अपनाको तारतीहै व दोनों कुलोंको तारतीहै और गऊके घरमें व देशभंग होने पर युद्धमें जो राजा सामने मरताहै ॥ ११ ॥ वह सूर्यमण्डलको फोड़कर ब्रह्मलोकमें पूजाजाता है ॥ १२ ॥ और जो मनुष्य अनशन व्रत करताहै उसको प्रतिदिन हज़ार यज्ञोंका

पुण्य होताहै और वह पापोंको नाशकर गणोंसे संयुक्त विमानके द्वारा जाताहै और वह देवताओंसे पूजा जाताहै ॥ १३ ॥ जो गङ्गाजलमें प्रयागमें केदारक्षेत्रमें व पुष्कर में और वस्त्रापथ तथा प्रभासमें मरेहैं वे स्वर्गगामी होते हैं ॥ १४ ॥ और द्वारका व कुरुक्षेत्रमें जो योगाभ्यास से मरे हैं व हरि ऐसे अक्षरोंको जो जपते हैं वे स्वर्गगामी होते हैं ॥ १५ ॥ और जो विष्णुजी को पूजकर कुशों व तिलोंसमेत पृथ्वी पै जो मरेहैं और तिलोंको व लोहको देकर व दूधवाली गऊको देकर ॥ १६ ॥ हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य मरेहैं वे स्वर्गगामी होतेहैं और जो व्रत व उपासमें परायण हैं तथा जो सत्य व आचार में लगेहुए हैं ॥ १७ ॥ व जो अहिंसामें तत्पर हैं व

सुरैःसपूजनम् ॥ १३॥ गङ्गाजलेप्रयागेवा केदारेपुष्करेचये ॥ वस्त्रापथेप्रभासेच मृतास्तेस्वर्गगामिनः ॥ १४॥ द्वारावत्यां कुरुक्षेत्रे योगाभ्यासेनयेमृताः ॥ हरिरित्यक्षरंमत्वा जपन्तिस्वर्गगामिनः ॥ १५ ॥ पूजयित्वाहरिंयेतु भूमौदर्भतिलैः सह ॥ तिलानपिचलोहञ्च दत्त्वाधेनुंपयस्विनीम् ॥ १६ ॥येमृताराजशार्दूल तेनरःस्वर्गगामिनः ॥ व्रतोपवासनिरताः सत्याचारपरायणाः ॥ १७ ॥ अहिंसानिरताःशान्तास्तेनराःस्वर्गगामिनः ॥ सापवादीरणंत्यक्त्वा मृतोयस्मान्नराधिपः ॥ १८ ॥ सप्तयोनिषुतेजन्म तस्माज्जातम्मयासह ॥ त्वांविनामेपतिर्माभून्मरणेयाचितम्मया ॥ १९ ॥ तदान्तरिक्षेराजेन्द्र वागुवाचाशरीरिणी ॥ आदौपापफलम्भुक्त्वा पश्चात्स्वर्गंगमिष्यसि ॥ २० ॥ यदिवस्त्रापथेगत्वा शिरःकश्चिद्विमुञ्चति ॥ स्वर्णरेखाजलेराजन् मानुषंस्यान्मुखंमम ॥ २१ ॥ अहंमानुषवक्त्राच पापच्छायावृतंमुखम् ॥ दृश्यतेमृगवक्त्राभं तस्माच्छीघ्रंविमुञ्चय ॥ २२ ॥ इतिश्रुत्वावचोराजो सारस्वतमुदैक्षत ॥ ज्ञानीविहस्यसानन्दं सर्वंसत्यंमृगी

शान्तहैं वे मनुष्य स्वर्गगामी होतेहैं हे नराधिप ! युद्धको छोड़कर जिस लिये तुम कलङ्कसमेत मरेथे ॥ १८ ॥ उसी कारण सात योनियों में मेरे साथ तुम्हारा जन्म हुआ जब मैंने मरणमें यह मांगा कि तुम्हारे सिवा मेरा पति न होवै ॥ १९ ॥ तब हे नृपेन्द्र ! आकाशमें अशरीरवाली वाणी बोली कि पहले पापके फलको भोग कर पश्चात् स्वर्गको जावोगी ॥ २० ॥ यदि वस्त्रापथतीर्थ में जाकर कोई स्वर्णरेखा नदी के जलमें शिरको छोड़ देवै तो हे राजन् ! मेरा मनुष्य का मुख होजावै ॥ २१ ॥ और मैं मनुजमुखी होऊं जिस लिये पापकी छाया से घिराहुआ मुख मृगमुखके समान देख पड़ताहै इसकारण उसको शीघ्रही छोड़ दीजिये ॥ २२ ॥ ऐसे

वचनको सुनकर राजाने सारस्वतको देखा व उस ज्ञानी सारस्वतने बिहँसकर कहा कि मृगीका वचन सब सत्यहै ॥२३॥ व उस द्विजेन्द्रने यह कहा कि हे नृपोत्तम ! ऐसाही कीजिये व इसप्रकार राजासे आज्ञा दियाहुआ द्वारपाल वनको गया ॥ २४॥ व शीघ्रतासंयुत वह वस्त्रापथ महाक्षेत्रमें भवजीको देखनेकेलियेगया और स्वर्णरेखा नदीके जलके ऊपर बड़े बासके समूहमें ॥ २५ ॥ उसका शिर जिस महावन में बांसमें लटकाथा उसको सारस्वतके प्रवीण शिष्यने बतला दिया ॥ २६ ॥ वस्त्रापथ तीर्थ को जाकर भवजीके आगे जहां महानदी थी वहां जलमें शिरको देखने के लिये व उसको जलमें छोड़ने के लिये ॥ २७ ॥ द्वारपाल तीर्थ में नहाकर व

वचः ॥ २३ ॥ इत्युवाचद्विजेन्द्रस्य एवंकुरुनृपोत्तम ॥ एवंराज्ञासमादिष्टः प्रतीहारोययौवनम् ॥ २४ ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे भवन्द्रष्टुंत्वरान्वितः ॥ त्वक्सारजालेमहति स्वर्णरेखाजलोपरि ॥ २५ ॥ वर्त्ततेतच्छिरोयत्र वंशप्रोतंमहावने ॥ सारस्वतस्यशिष्येण कुशलेननिवेदितम् ॥ २६ ॥ तीर्थंवस्त्रापथंगत्वा भवस्याग्रेमहानदी ॥ जलेतत्रशिरोद्रष्टुं तच्चतोये विमोच्चितुम् ॥ २७ ॥ स्नात्वासम्पूज्यतीर्थेच प्रतीहारःसमभ्यगात् ॥ शिष्येणसहितोवेगाद्रथेनादित्यवर्चसा ॥ २८ ॥ यदागतःप्रतीहारस्तदासारस्वतेन च ॥ कृतञ्चान्द्रायणव्रतं मासमेकंनिरन्तरम् ॥ २९ ॥ सम्पूर्णेतुव्रतेतस्या दिव्यंवक्त्रं सुलोचनम् ॥ सुशोभनंदीर्घकेशं दीर्घकर्णंशुभद्विजम् ॥ ३० ॥ कम्बुग्रीवंपद्मगन्धं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ व्रतान्तेमूर्च्छिताबाला गतज्ञानाबभूवसा ॥ ३१ ॥ नदेवीनचगन्धर्वी नासुरीनचकिन्नरी ॥ यादृशीसातदाजाता तीर्थभावेनसुन्दरी ॥ ३२ ॥ परिणीतातुसातेन भोजराजेनसुन्दरी ॥ मृगाननेतिविख्याता देवीसाभुवनेश्वरी ॥ ३३ ॥ नजानातिपुनः

पूजकर सूर्य के समान तेजवाले रथके द्वारा शिष्यसमेत शीघ्रता से गया ॥ २८ ॥ और जब द्वारपाल चला गया तब सारस्वत ने महीनेभर निरन्तर चान्द्रायणव्रत किया ॥ २९ ॥ और व्रत सम्पूर्ण होनेपर उसका सुन्दर लोचनोंवाला मुख दिव्य होगया जो कि सुशोभन व लम्बे केशवाला तथा लम्बेकानोंवाला व उत्तम दातोंवाला ॥ ३० ॥ और शङ्ख के समान ग्रीवा तथा कमल के समान गन्धवान् व सब लक्षणोंसे संयुत था और व्रतके अन्तमें वह स्त्री मूर्छितहुई और ज्ञान जाता रहा ॥ ३१ ॥ व तीर्थ के प्रभावसे उस समय जैसी वह होगई वैसी न देवी, न गन्धर्वीणी न दैत्यपत्नी न किन्नरी है ॥ ३२ ॥ और उस सुन्दरी स्त्री को उन भोजराजने व्याह

। और वह भुवनेश्वरी देवी मृगानना ऐसी प्रसिद्ध हुई ॥ ३३ ॥ फिर जो कुछ राजमन्दिरमें किया गया उसको वह नहीं जानती थी और बुद्धिमान् भोजराजा ने
ो पटरानी किया ॥ ३४ ॥ महादेवजी बोले कि वह देशोंके मध्यमें श्रेष्ठ देश है व पर्वतोंमें उत्तम पर्वत है और क्षेत्रोंके मध्यमें उत्तम क्षेत्रहै व वनों के मध्यमें
म वनहै ॥ ३५ ॥ गङ्गा, सरस्वती व तापी नदी स्वर्णरेखाके जलमें स्थित है और ब्रह्मा, विष्णु व सूर्य तथा रुद्रादिक सब देवता स्थितहैं ॥ ३६ ॥ और नाग, यक्ष
न्धर्व इस क्षेत्र में स्थित हैं व चराचरसमेत ब्रह्माण्ड व त्रिलोक जिनसे रचा गया है ॥ ३७ ॥ व जिनसे ब्रह्मादिक देवता उत्पन्न हुये हैं वे भवजी यहां स्थित हैं

किञ्चिद्यत्कृतंराजमन्दिरे॥ कृतासौपट्टमहिषी भोजराजेनधीमता ॥ ३४ ॥ ईश्वर उवाच ॥ देशानांप्रवरोदेशो गिरीणां
प्रवरोगिरिः ॥ क्षेत्राणामुत्तमंक्षेत्रं वनानामुत्तमंवनम् ॥ ३५ ॥ गङ्गासरस्वतीतापी स्वर्णरेखाजलेस्थिता ॥ब्रह्माविष्णुश्च
सूर्यश्च सर्वेरुद्रादयःसुराः ॥ ३६ ॥ नागायक्षाश्चगन्धर्वा अस्मिन्क्षेत्रेऽव्यवस्थिताः ॥ ब्रह्माण्डंनिर्मितंयेन त्रैलोक्यंसच
राचरम् ॥ ३७॥ देवाब्रह्मादयोजाताःसभवोत्रऽव्यवस्थितः ॥ शिवोभवेतिविख्यातः स्वयंदेवस्त्रिलोचनः ॥ ३८ ॥ अवति
स्कन्दवचनाद् भवानीचात्रसंस्थिता ॥ अतोपिचाधिकंप्रोक्तं तत्तीर्थंयन्मयातव ॥ ३९ ॥ तस्मिन्यदिस्नानपरोनरस्तु
सन्ध्यांविधायानुकरोतितर्पणम् ॥ श्राद्धंपितॄणाञ्चददातिदक्षिणां भवोद्भवंपश्यतिमुच्यतेपुमान् ॥ ४० ॥ अथयदिभ
वपूजांदिव्यपुष्पैःकरोतितदनुशिवशिवेतिस्तोत्रपाठंचगीतम् ॥ सुरनरगणवृन्दैःस्तूयमानोविमानैर्नखशिखशिवरूपो

ौर आपही त्रिलोचन शिव देवजी भव ऐसे प्रसिद्ध हैं ॥ ३८ ॥ व स्वामिकार्त्तिकेयजी के वचन से यहां टिकीहुई भवानी रक्षा करती हैं इसी कारण वह अधिक तीर्थ
कि जिसको मैंने तुमसे कहा है ॥ ३९ ॥ और उस तीर्थमें स्नानकरनेवाला पुरुष यदि सन्ध्या करके पश्चात् तर्पण करताहै व जो दक्षिणासमेत श्राद्ध को पितरों को
ता है व संसार को उत्पन्नकरनेवाले शिवजीको देखता है वह पुरुष मुक्त होजाताहै ॥ ४० ॥ और यदि मनुष्य दिव्य पुष्पोंसे शिवजीका पूजन करता है उसके पश्चात्

हे शिव, हे शिव ! ऐसे स्तोत्रपाठके गीतको जो गान करता है नखसे शिखापर्यन्त शिवरूप वह उत्तम सुरगणों से स्तुति किया जाता हुआ मनुष्य विमानों के द्वारा वैकुण्ठ को जाता है ॥ ४१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्यंनामद्वाविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥३२२॥

दो० । यथा दक्षके यज्ञ महँ सती कीन तनु त्याग । कह्यो त्रिशत तेईसमें सोइ चरित सुखपाग ॥ भोज बोले कि हे सारस्वत, प्रभो ! वस्त्रापथक्षेत्र व रैवतक पर्वत के उत्तम माहात्म्यको मैंने सुना ॥ १ ॥ व विशेषकर स्वर्णरेखाके जलका माहात्म्य व भवजी के माहात्म्यको मैंने सुना इस समय तीर्थकी उत्पत्तिको सुना चाहता हूं

मानवोयातिनाकम् ॥ ४१ ॥ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे वस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्यं नामद्वाविंशाधिक त्रिशत तमोऽध्यायः ॥ ३२२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

भोज उवाच ॥ प्रभोसारस्वतमया श्रुतंमाहात्म्यमुत्तमम् वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्य गिरेरैवतकस्यच ॥ १ ॥ भवस्यचविशेषेण स्वर्णरेखाजलस्यच ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामि तीर्थोत्पत्तिंवदस्वमे ॥ २ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादीनां मध्येकोयंव्यवस्थितः ॥ कथंनदीस्वर्णरेखा सर्वपातकनाशिनी ॥ ३ ॥ कस्माद्ब्रह्मादयोदेवा अस्मिन्क्षेत्रेसमागताः ॥ कथंनारायणोदेवः स्वयमेवसमागतः ॥ ४ ॥ हिमालयंपरित्यज्य भवानीगिरिमूर्द्धनि ॥ संस्थितास्कन्दमादाय देवैरिन्द्रादिभिःसह ॥ ५ ॥ सारस्वत उवाच ॥ शृणुसर्वंमहाराज कथयिष्येसुविस्तरम् ॥ येनवैकथ्यमानेन सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ६ ॥ पुराब्रह्मदिनस्यान्ते जगदेतच्चराचरम् ॥ संहृत्यभगवान्रुद्रो ब्रह्मविष्णुपुरस्कृतः ॥ ७ ॥ तावतींसकलांरात्रिमेकमूर्तिभवास्त्र

उसको मुझ से कहिये ॥ २ ॥ ब्रह्मा, विष्णु व शिवादिकों के मध्य में यह कौन स्थित है व समस्त पातकों को नाशकरनेवाली यह स्वर्णरेखा नदी कौन है ॥ ३ ॥ व ब्रह्मादिक देवता किसकारण इस क्षेत्रमें आये हैं व आपही सनातन नारायणदेव किसप्रकार आये हैं ॥ ४ ॥ व हिमाचलको छोड़कर पार्वतीजी स्वामिकार्त्तिकेय को लेकर इन्द्रादिक देवताओंसमेत किसप्रकार पर्वत के ऊपर स्थितहुई ॥ ५ ॥ सारस्वत बोले कि हे महाराज ! सुनिये सब चरित्रको विस्तारसमेत कहता हूं कि जिसके कहनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ६ ॥ पुरातन समय ब्रह्माके दिनके अन्तमें इस चराचर संसारको ब्रह्मा व विष्णुसे पुरस्कृत भगवान् शिवजी संहारकर ॥ ७ ॥

उतनी ही सब रात्रि तक एकमूर्ति से उपजेहुये तीनों स्थित रहते हैं और रात्रिके अन्तमें वे फिर अलग होते हैं ॥ ८ ॥ और ब्रह्मा, विष्णु व शिव देवता रज, सत्त्व व तमोगुणी हैं भगवान् ब्रह्माजी सृष्टिको करते हैं व विष्णुजी पालन करते हैं ॥ ९ ॥ और शिवजी कालके प्रमाणमें सब संसार को संहार करते हैं उन ब्रह्माजी ने पहले दक्षनामक प्रजापति को रचाहै ॥ १० ॥ व चराचरसमेत सब संसारको संक्षेपसे रचकर तीनों देवता भिन्न होकर सत्यलोक में स्थित हुये ॥ ११ ॥ और कौतुकमे संयुत चित्तवाले देवताओं से घिरेहुये वे तीनों देवता पृथ्वीको आकर उत्तम कैलासपर्वत पै चढ़गये ॥१२॥ और मैं बड़ा हूं मैं बड़ा हूं यह ब्रह्मा व शिवजी का विवाद

यः ॥ तिष्ठन्तिरात्रिपर्यन्ते पुनर्भिन्नाभवन्तिते ॥ ८ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवादेवा रजःसत्त्वतमोमयाः ॥ सृष्टिंकरोतिभगवान् ब्रह्मापालयतेहरिः ॥ ९ ॥ सर्वंसंहरतेरुद्रो जगत्कालप्रमाणतः ॥ तेनादौभगवान्सृष्टो दक्षोनामप्रजापतिः ॥ १० ॥ स र्वंसंक्षेपतःकृत्वा ब्रह्माण्डंसचराचरम् ॥ भिन्नादेवास्त्रयोजाताः सत्यलोकेऽव्यवस्थिताः ॥ ११ ॥ त्रयोभुवंसमासाद्यकौ तुकाविष्टचेतसः ॥ कैलासंतेगिरिवरं समारूढाःसुरैर्वृताः १२ ॥ अहंज्येष्ठस्त्वहंज्येष्ठोवादोभूद्ब्रह्मरुद्रयोः ॥ तदाक्रुद्धोम हादेवो ब्रह्माणंहन्तुमुद्यतः ॥ १३ ॥ विष्णुनावारितोब्रह्मानतेवादस्तुयुज्यते ॥ नत्वंनाहंयदानेदं ब्रह्माण्डंसचराचरम् ॥ १४ ॥ एकएवतदादेवो जलेशेतेमहेश्वरः ॥ जागर्तिचयदादेवः स्वेच्छयाकौतुकात्ततः ॥ १५ ॥ अनेनत्वंकृतःपूर्वमहं पश्चात्त्वयाकृतः ॥ ब्रह्माण्डंकूर्मरूपेण धृतमस्यप्रसादतः ॥ १६ ॥ अनुप्रविश्यब्रह्माण्डं प्रसादाच्छंकरस्यच ॥ सृष्टिस्त्व याकृतासर्वा मयारक्षाव्यवस्थिता ॥ १७ ॥ उदासीनवदासीनः संसारासारमीक्षितुम् ॥ एकएवशिवोदेवः सर्वव्यापी

हुआ तब क्रोधित होकर महादेवजी ब्रह्माको मारने के लिये उद्यत हुये ॥ १३ ॥ तब विष्णुजी ने ब्रह्मा को मना किया कि तुम्हारा विवाद योग्य नहीं है क्योंकि जब न तुम थे और न मैं था और न स्थावर जङ्गमसमेत यह संसार ॥ १४ ॥ तब एकही महेश्वरदेवजी जलमें शयन करते थे और जब वे सदाशिवजी अपनी इच्छा से जागते हैं तदनन्तर कौतुक से ॥ १५ ॥ पहले इन्होंने तुमको रचा पश्चात् तुम ने मुझको किया व इन शिवजी की प्रसन्नता से ब्रह्माण्ड कूर्म (कच्छप) के रूप से धारण कियागया है ॥ १६ ॥ और शिवजी के प्रसाद से ब्रह्माण्ड में प्रवेशकर तुमने सृष्टि किया व सब रक्षा मुझमें स्थितहुई ॥ १७ ॥ और संसारके असार को

देखने के लिये एकही सर्वव्यापी महेश्वरदेवजी उदासीन की नाईं स्थितहैं ॥ १८ ॥ हे पितामह ! वे शिवदेवजी जब अपनी इच्छा से जागते हैं तब शिवजी की प्रसन्नतासे तुम सृष्टि करतेहो ॥ १९ ॥ विष्णुजी के वचनको सुनकर ब्रह्माने शिवजीको प्रसन्न कराया कि हे महाभुज ! तुम जन्म व मृत्युसे रहित तथा वेदशीर्षदेव हो ॥ २० ॥ इत्यादि देववचनों से महादेवजी प्रसन्नहुये तदनन्तर उन्होंने कहाकि हे पितामह! जो तुम्हारे मनमें प्रिय हो उस वरदानको मांगो ॥ २१ ॥ ब्रह्मा बोले कि यदि चराचरसमेत सब संसार मुझसे रचागयाहै तो इस मूर्त्तिको छोड़कर इस समय मुझसे रचितहोवो ॥ २२ ॥ व जिस प्रकार पितामहत्व होवै वैसाही शीघ्रही किया

महेश्वरः ॥ १८ ॥ जागर्तिवैयदादेवःस्वेच्छयाचपितामह ॥ त्वंकरोषितदासृष्टिं प्रसादाच्छङ्करस्यतु ॥ १९ ॥ प्रसादयामासहरं श्रुत्वाब्रह्मावचोहरेः ॥ अनादिनिधनोदेवो ब्रह्मशीर्षोमहाभुज ॥ २० ॥ इत्यादिदेववचनैस्ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ पितामहवरंयत्ते वृणीष्वमनसेप्सितम् ॥ २१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदिसृष्टंमयासर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ तदामूर्त्तिमिमान्त्यक्त्वा भवसृष्टोमयाधुना ॥ २२ ॥ यथापितामहत्वंस्यात तथाशीघ्रंविधीयताम् ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा विष्णुनासम्प्रणोदितः ॥ २३ ॥ महदाश्चर्यजनके सम्प्राप्तोगिरिमूर्द्धनि ॥ विष्णुरुवाच ॥ नविचारस्त्वयाकार्यःकर्त्तव्यंब्रह्मभाषितम् ॥ २४ ॥ तथेत्युक्त्वाशिवोदेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ब्रह्माययौमेरुशृङ्गं समेरोःशिरसिस्थितम् ॥ २५ ॥ तपस्तेपेप्रजानाथो वेदोद्धरणतत्परः ॥ अथर्ववेदोद्धरणंयावच्चक्रेपितामहः ॥ २६ ॥ मुखाद्रुद्रःसमभवद्रौद्ररूपोभयावहः ॥ अर्द्धनारीनरवपुः दुष्प्रेक्ष्योतिभयङ्करः ॥ २७ ॥ विभजात्मानमित्याह ब्रह्माचान्तर्दधेभयात ॥ तथोक्तोसौद्विधास्त्रीत्वं पुरुषत्वंतथाक

जावै ब्रह्माके वचनको सुनकर विष्णुजीसे प्रेरणा कियेहुये वे शिवजी ॥ २३ ॥ बड़ेआश्चर्यको पैदाकरनेवाले पहाड़के ऊपर प्राप्त हुये विष्णुजी बोले कि तुमको विचार न करना चाहिये और ब्रह्माका कहाहुआ करना चाहिये ॥ २४ ॥ वैसाही होगा यह कहकर शिवदेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और ब्रह्माजी सुमेरुगिरि के शिखरपै गये व सुमेरु पर्वतके मस्तकपै स्थितहुये ॥ २५ ॥ और वेदों के उद्धरणमें तत्पर ब्रह्माजी ने तप किया व ब्रह्माजी ने जबतक अथर्ववेद का उद्धरण किया ॥ २६ ॥ तबतक भयङ्कररूप व भयको देनेवाले शिवजी मुखसे उत्पन्न हुये जोकि आधा स्त्री व आधा पुरुषशरीर तथा दुःख से देखनेयोग्य व अतिभयङ्करथे ॥ २७ ॥ उन्होंने यह कहा

कि अपने शरीरको विभाग कीजिये और ब्रह्मा भयसे अन्तर्द्धान होगये उसप्रकार कहेहुये इन ब्रह्माने दो खण्ड स्त्रीत्व व पुरुषत्व ऐसे किये ॥ २८॥ और फिर पुरुषत्व को दश खण्ड व एक खण्ड विभेदकिया ये तीनोंलोकों के स्वामी गेरह रुद्र कहे गये ॥ २९ ॥ और सबोंके नामोंको करके वे देवकार्यमें नियुक्त कियेगये फिर व्यापक शङ्करजी से अपने शरीर को व ईशानी पार्वतीजी को विभागकर ॥ ३० ॥ महादेवकी आज्ञासे ब्रह्माजी प्राप्तहुये व भगवान् ब्रह्माने उन ईशानीसे कहा कि दक्षकी कन्याहोवो ॥ ३१ ॥ और वे भी उन ब्रह्माकी आज्ञा से प्रजापति दक्षजी से प्रकट हुईं व ब्रह्माकी आज्ञासे दक्षजीने उन सतीको शिवजी के लिये दिया ॥ ३२ ॥ और

रोत् ॥ २८ ॥ बिभेदपुरुषत्वंचदशधाचैकधापुनः ॥ एकादशैतेकथितारुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ २९ ॥ कृत्वानामानिसर्वेषां देवकार्येनियोजिताः ॥ विभज्यपुनरीशानीं स्वात्मानंशङ्कराद्विभोः ॥ ३० ॥ महादेवनियोगेन पितामहउपस्थितः ॥ तामाहभगवान्ब्रह्मा दक्षस्यदुहिताभव ॥ ३१ ॥ सापितस्यनियोगेन प्रादुरासीत्प्रजापतेः ॥ नियोगाद्ब्रह्मणोदक्षो ददौ रुद्रायतांसतीम् ॥ ३२ ॥ दक्षाद्रुद्रोपिजग्राह स्वकीयामेवशूलभृत् ॥ अथब्रह्माबभाषेतं सृष्टिंकुरुसतीपते ॥ ३३ ॥ रुद्र उवाच ॥ सृष्टिर्मयानकर्त्तव्या कर्त्तव्याभवतास्वयम् ॥ पालनंविष्णुनाकार्यं संहर्त्ताहंव्यवस्थितः ॥ ३४ ॥ स्थाणुवत्संस्थितोयस्मात्तस्मात्स्थाणुर्भवाम्यहम् ॥ रजोरूपाःसत्त्वरूपास्तमोरूपाश्चयेनराः ॥ ३५ ॥ सर्वेतेभवताकार्या गुणत्रयविभागतः ॥ यदातेतामसंकार्यं तदारौद्रोभवस्वयम् ॥ ३६ ॥ सात्त्विकंतेयदाकार्यं तदात्वंसात्त्विकोभव ॥

त्रिशूलधारी शिवजीने भी दक्षजीसे अपनीही स्त्री सतीजीको ग्रहणकिया इसके अनन्तर उन ब्रह्माने उन शिवजी से कहा कि हे सतीपते ! सृष्टिको करिये ॥ ३३॥ शिवजी बोले कि मुझको सृष्टि न करना चाहिये बरन आपहीको स्वयं करनाचाहिये व विष्णुको पालनकरना चाहिये और मैं संहार करनेवाला स्थितहूं ॥ ३४ ॥ जिस लिये मैं स्थाणु (स्तम्भ) की नाईं स्थितहूं उसीकारण मैं स्थाणुनामक हूगा और जो मनुष्य रजोगुणरूपी व सत्त्वगुणरूपी तथा तमोगुणरूपी हैं ॥ ३५ ॥ उन सबको तीनों गुणों के विभागसे आपको करना चाहिये जब तुम्हारा तामसी कार्य होवै तब तुम आपही रुद्र होवो ॥ ३६ ॥ और जब तुम्हारा सात्त्विककार्य होवै तब तुम सात्त्विक

होवो उन सतीजी को लेकर शिवजी कैलास के ऊपर स्थित हुये ॥ ३७ ॥ और बहुत समय के बाद दक्षजी शिवजी के स्थान को आये इसके उपरान्त शिवजी ने उठकर बड़ा गौरव किया ॥ ३८ ॥ और यथोचित पूजन कियागया उसको दक्षजी ने बहुत न माना व उससमय ब्रह्माके पुत्र दक्षजी अधिक तमोगुण से युक्तहुये ॥ ३९ ॥ और अर्घ्यरहित पूजनको न चाहतेहुये दक्षजी क्रोधित होकर घर को चलेगये किसीसमय घरमें प्राप्तहुई उन सतीजी को दुष्टमनवाले दक्षजी ने ॥ ४० ॥ पतिसमेत निन्दाकर क्रोधसे इनको भर्त्सन किया कि पञ्चानन व दश भुज तथा तीन नेत्रोंसे संयुत ये शिवजी ॥ ४१ ॥ जटाको धारे व चन्द्रमा के खण्डको

गृहीत्वातांसतींरुद्रः कैलासमधितस्थिवान् ॥ ३७ ॥ दक्षःकालेनमहताहरस्यालयमाययौ ॥ अथरुद्रःसमुत्थाय कृतवा न्गौरवंबहु ॥ ३८ ॥ कृतायथोचितापूजा नदक्षोबहुमन्यते ॥ तदावैतमसाविष्टः सोधिकंब्रह्मणःसुतः ॥ ३९ ॥ पूजामन र्घ्यामनिच्छन्स् जगामकुपितोगृहम् ॥ कदाचित्तांगृहप्राप्तांसतींदक्षःसुदुर्मनाः ॥ ४० ॥ भर्त्रासहविनिन्द्यैनाम्भर्त्सया मासवैरुषा ॥ पञ्चवक्त्रोदशभुजोमुखोनेत्रत्रयान्वितः ॥ ४१ ॥ कपर्दीखण्डचन्द्रोसौतथासौनीललोहितः ॥कपालीशूलह स्तोसौ गजचर्मावगुण्ठितः ॥ ४२ ॥ नास्यमातानचपिता नभ्रातानचबान्धवाः ॥ सर्पास्थिमण्डनग्रीवस्त्यक्त्वाहेमवि भूषणम् ॥ ४३ ॥ भिक्षयाभोजनंयस्य कथमन्नम्प्रदास्यति कदाचित्पूर्वतोयाति गच्छन्नयातिमपश्चिमे ॥ ४४ ॥ दक्षि णस्यांवृषोयाति स्वयंयातिसचोत्तरे ॥ तिर्यगूर्द्ध्वमधोयातिनातिष्ठतिकथञ्चन ॥ ४५ ॥ इतिचित्रंचरित्रंते भर्तुर्नान्यस्यदृ श्यते ॥ निर्गुणःसगुणातीतो निःस्नेहोमूकवत्स्थितः ॥४६ ॥ सर्वज्ञःसर्वगःसर्व उच्यतेभुवनत्रये ॥ कदाचिन्नैवजानाति

धारण किये हैं वैसेही ये शिव नीललोहित हैं व कपालको धारे तथा त्रिशूल को हाथमें लिये ये हाथी के चर्मको पहने हैं ॥ ४२ ॥ और न इनके माता है न पिता है न भाई है न बान्धव हैं व सुवर्ण के भूषणको छोड़कर सांप व अस्थिसे ग्रीवा भूषित है ॥ ४३ ॥ व जिसका भिक्षासे भोजन है वह कैसे अन्नको देवैगा कभी पूर्व जाता है व कभी चलताहुआ वह पश्चिम को जाताहै ॥ ४४ ॥ और बैल दक्षिणदिशामें जाताहै स्वयं वह उत्तरमें जाताहै तिरछा व ऊपर और नीचे ये शिवजी जातेहैं व किसी प्रकार स्थित नहीं होते हैं ॥ ४५ ॥ तुम्हारे पतिका ऐसा विचित्र चरित्रहै अन्यका ऐसा चरित्र नहीं देख पड़ता है वह निर्गुण व गुणोंसे अतीत, स्नेहसे रहित

व गूंगेकी नाई स्थितहै ॥ ४६ ॥ और त्रिलोक में वह सर्वज्ञ सर्वव्यापी व सर्व कहाजाताहै और कभी वह न जानताहै न सुनताहै न देखता है ॥ ४७॥ और जो दैत्यों, दानवों व राक्षसोंको वरदानादिक देताहै इसके न कोई बान्धवहै न कोई भाई है ॥ ४८ ॥ और बैलपै चढ़ाहुआ यह नग्न होकर अकेले पृथ्वीपरघूमता है न इसके घरहै न धनहै न कुटुम्बहै बरन यह जन्म व मृत्युसे रहित और विकाररहित है ॥४९॥ और इसकी बुद्धि स्थिर नहींहै और यह त्रिलोक में क्रीडा करता है किसीसमय यह सत्यलोकमें जाताहै व कभी पातालमें स्थितहोताहै ॥५०॥ और कभी पर्वतोंके शिखरोंपै व कभी पर्वतों पै स्थितहोताहै और अशिव (अमङ्गल) भी यह शिव कहागया

नशृणोतिनपश्यति ॥४७॥ दैत्यानांदानवानाञ्च राक्षसानांददातियः ॥ नचास्यबान्धवः कश्चिन्नवैभ्रातास्तिकश्चन ॥ ४८॥ एकएववृषारूढो नग्नोभ्रमतिभूतले ॥ नगृहंनधनंगोत्रमनादिनिधनोऽव्ययः ॥ ४९ ॥ स्थिराबुद्धिर्नचैवास्य क्रीडतेभुवनत्रये ॥ कदाचित्सत्यलोकेसौ पातालमधितिष्ठति ॥ ५० ॥ गिरिसानुषुशैलेषु अशिवोपिशिवःस्मृतः ॥ श्रीखण्डादीनिसन्त्यज्य सदाभस्मावगुण्ठितः ॥ ५१ ॥ सर्वदेतिवचःसत्यं किमन्यस्यप्रदास्यति ॥ धिक्त्वांजामातरंधिक्चययोःस्नेहःपरस्परम् ॥ ५२ ॥ तस्यत्वंवल्लभाभार्या सचप्राणाधिकस्तव ॥ नचपित्रास्तितेकार्यं नचमात्रासखीषुच ॥ ५३ ॥ केवलम्भर्तृभक्तात्वं तस्माद्गच्छगृहान्मम ॥ अन्येजामातरःश्रेष्ठा भर्त्तुस्तवपिनाकिनः ॥५४॥ त्वंममाद्याशुचास्माकं गृहाद्गच्छवरम्प्रति ॥ तस्यतद्वाक्यमाकर्ण्य सादेवीशङ्करप्रिया ॥ ५५ ॥ विनिन्द्यपितरंदक्षं ध्यात्वादेवंमहेश्व

है और चन्दनादिकों को छोड़कर यह सदैव भस्मको लगाता है ॥ ५१ ॥ और सर्वदायक ऐसा वचन झूंठहै क्योंकि अन्य पुरुषको यह क्या देवैगा तुमको धिक्कार है व दामाद (शिवजी) को धिक्कार है कि जिनका परस्पर स्नेहहै॥ ५२ ॥ और उन शिवकी तुम प्यारी स्त्री हो व वे शिवजी तुमको प्राणोंसे अधिकहैं और पिता व माता से तुम्हारा कार्य नहींहै और सखियोंके मध्यमें तुम्हारा कार्य नहीं है॥५३॥ केवल तुम पतिकी सेवा करनेवालीहो इसलिये तुम मेरे घरसे जावो क्योंकि अन्य दामाद पिनाकधारी तुम्हारे पतिसे श्रेष्ठहैं ॥ ५४॥ आज शीघ्रही तुम हमारे घरसे पति के समीप जावो उन दक्षजी के उस वचन को सुनकर शङ्करजीकी प्यारी वे पार्वतीदेवी

जी ॥ ५५ ॥ पिता दक्षजी को निन्दकर व महादेवजी को ध्यानकर सफेद वस्त्रको पहनकर जलमें नहाकर आत्मा से शरीरको जला दिया ॥ ५६ ॥ व उन सतीजी ने फिर अन्य जन्म में शिवजी को पति मांगा व कहा कि मेरे पिता हिमाचल होवैं और मैं मेना के गर्भमें होऊं ॥ ५७ ॥ इसी अवसरमें हिमवान् ने तपस्यासे शिवजी को प्रसन्न कराया शिवजी बोले कि यह जो तुम्हारी कन्या दीगई है उसको मैं ब्याहूंगा ॥ ५८ ॥ और देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये वह गिरिजा होगी अपनी मूर्त्तिमें स्थित उन पार्वतीजी को जानकर महेश्वरदेवजी ने ॥ ५९ ॥ क्रोधित होकर उनके घरको आकर दक्षजी को शाप दिया कि इस ब्राह्मणके शरीर को

रम् ॥ श्वेतवस्त्राजलेस्नात्वा ददाहात्मानमात्मना ॥ ५६ ॥ याचितस्तुशिवोभर्त्ता पुनर्जन्मान्तरेतया ॥ पितामेहिमवानस्तु मेनागर्भेभवाम्यहम् ॥ ५७ ॥ अत्रान्तरेहिमवता तपसातोषितोहरः ॥ शिव उवाच ॥ एषादत्तासुतायाते परिणेष्यामितामहम् ॥ ५८ ॥ देवानांकार्यसिद्ध्यर्थं गिरिजासाभविष्यति ॥ आत्ममूर्त्तौप्रतिष्ठान्तां ज्ञात्वादेवोमहेश्वरः ॥ ५९ ॥ शशापदक्षंकुपितः समागत्याथतद्गृहम् ॥ त्यक्त्वादेहमिमंब्राह्मयं क्षत्रियाणांकुलेभव ॥ ६० ॥ स्वायम्भुवत्वं सन्त्यज्य दक्षःप्राचेतसोभव ॥ ६१ ॥ एवंशप्त्वामहादेवो ययौकैलासपर्वतम् ॥ स्वायम्भुवोपिकालेन दक्षःप्राचेतसोभवत् ॥ ६२ ॥ भवानींस्वसुतांलब्ध्वा गिरिस्तुष्टोहिमालयः ॥ मेनापितांसुतांलब्ध्वा धन्यंमेनेगृहाश्रमम् ॥ ६३ ॥ तान्दृष्ट्वाजायमानान्तुस्वेच्छयैववराननाम् ॥ हितायसर्वभूतानांजातांसुतपसाशुभाम् ॥ ६४ ॥ सोपिदृष्ट्वामहादेवींतरुणादित्यवर्चसाम् ॥ कपर्दिनींचतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिसुन्दरीम् ॥ ६५ ॥ मेनाहिमवतःपार्श्वे प्राहेदंपर्वतेश्वरम् ॥ पश्यजाता

त्यागकर तुम क्षत्रियोंके वंशमें उत्पन्न होवो ॥ ६० ॥ और स्वयभूकी पुत्रताको छोड़कर प्रचेताओंके पुत्र दक्ष होवो ॥ ६१ ॥ इसप्रकार शापको देकर महादेवजी कैलासपर्वत पर चलेगये और ब्रह्माके पुत्र दक्षभी समयसे प्रचेताओं के पुत्र हुये ॥ ६२ ॥ व अपनी कन्या पार्वतीजीको पाकर हिमालय पर्वत प्रसन्न हुये और मेना ने भी उस कन्याको पाकर गृहाश्रम को धन्य माना ॥ ६३ ॥ और अपनी इच्छासे पैदा होतीहुई उस उत्तम मुखवाली कन्याको देखकर व सब प्राणियों के हितके लिये उत्तम तपसे कल्याणकारिणी उत्पन्नहुई ॥ ६४ ॥ तरुण सूर्यनारायणके समान तेजवाली व जटाधारिणी, चतुर्मुखी, त्रिलोचना व बहुत सुन्दरी महादेवीको देखकर उस

हिमाचलने भी गृहस्थाश्रम को धन्य माना ॥ ६५ ॥ और हिमाचलके समीपही मेनाने पर्वतेश्वर हिमालय से यह कहा कि हे राजन् ! कमलके समान मुखवाली इस उत्पन्नहुई कन्याको देखिये ॥ ६६ ॥ आठ हाथोंवाली, विशालनयनी तथा चन्द्रमाके समान अङ्ग भूषणोंवाली उस कन्याको पृथ्वीमें मस्तकसे प्रणामकर हिमाचल उसके तेज से विह्वलहुये ॥ ६७ ॥ व डरेहुये हिमाचलजी हाथोंको जोड़कर उन परमेश्वरी पार्वती जी से बोले हिमाचल बोले कि हे विशाललोचनि, देवि ! तुम कौन हो मेरे चित्तमें बड़ा सन्देह है ॥ ६८ ॥ देवीजी बोलीं कि महादेवमें आश्रयवाली मुझको उत्तम शक्ति जानिये तिसको मुक्त होनेकी इच्छावाले मनुष्य देखते

मिमांराजन् राजीवसदृशाननाम् ॥ ६६ ॥ अष्टहस्तांविशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम् ॥ प्रणम्यशिरसाभूमौ तेजसातुसविह्वलः ॥ ६७ ॥ भीतःकृताञ्जलिस्तान्तु प्रोवाचपरमेश्वरीम् ॥ हिमवानुवाच ॥ कात्वंदेविशालाक्षि चित्तेमेसंशयोमहान् ॥ ६८ ॥ देव्युवाच ॥ विद्धिमाम्परमांशक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम् ॥ पश्यमामव्ययामेकां यांपश्यन्तिमुमुक्षवः ॥ ६९ ॥ दिव्यंददामितेचक्षुः पश्यमेरूपमैश्वरम् ॥ एतावदुक्त्वाविज्ञानं ददौहिमवतश्चसा ॥ ७० ॥ सूर्यबिम्बप्रतीकाशं तेजोबिम्बंनिराकुलम् ॥ ज्वालामालासहस्राढ्यंकालानलशतोपमम् ॥ ७१ ॥ दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षं जटामण्डलमण्डितम् ॥ प्रशान्तंसौम्यवदनमनन्तैश्वर्यसंयुतम् ॥ ७२ ॥ चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम् ॥ किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम् ॥ ७३ ॥ दिव्यमालाम्बरधरंदिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ शङ्खचक्रधरंकान्तं त्रिनेत्रंकृत्तिवा

हैं उस एक व विकाररहित मुझको देखिये ॥ ६९ ॥ मैं तुमको दिव्यनेत्र देतीहूं मेरे ईश्वर सम्बन्धीरूप को देखिये इतनाही कहकर उसने हिमवान् को ज्ञान दिया ॥ ७० ॥ व सूर्यबिम्ब के समान तेज बिम्बवाले व आकुलतारहित तथा हज़ारों ज्वालामालाओं से युक्त व सैकड़ों कालाग्नियों के समान ॥ ७१ ॥ और भयङ्कर दाढ़ोंसे दुर्द्धर्ष, जटामण्डल से शोभित व शान्त तथा सौम्यमुख व अमित ऐश्वर्य से संयुक्त ॥ ७२ ॥ और चन्द्राङ्ग के चिह्नोंवाले व करोड़ चन्द्रमाओं के समान प्रभावान्, किरीटको धारे, गदाको हाथमें लिये व नूपुरों से शोभित ॥ ७३ ॥ और दिव्य मालाओं व वसनों को धारे तथा दिव्य गन्धोंको लेपन किये शङ्ख, चक्रको

तिलक से उज्ज्वल व सुन्दर सब अङ्गभूषण और भूषणों से अत्यन्त कोमल ॥ ८४ ॥ तथा सुवर्ण से बनाईहुई विशालमाला को धारण किये, कुछ सुमक्यानयुक्त व सुन्दरबिम्बाफल के समान ओठोंवाले और नूपुर के शब्द से शोभित ॥ ८५ ॥ व सुन्दरी भौंहोंकी महिमा के स्थानवाले, दिव्य व प्रसन्न मुखवाले उस ऐसे स्वरूप को देखकर पर्वतोत्तम हिमालयने ॥ ८६ ॥ भयको छोड़ प्रसन्नमन होकर परमेश्वरी पार्वतीजीसे कहा हिमवान् बोले कि आज मेरा जन्म सफल हुआ और आज मेरे कर्म सफल होगये ॥८७॥ जोकि अव्यक्त तुम प्रसन्न होतीहुई साक्षात् दृष्टिगोचरहुई हो हे परमेश्वरि! इस समय मुझको क्या करना चाहिये उसको मुझसे कहिये ॥८८॥

दधानेसुन्दरींमालां विशालांहेमनिर्मिताम् ॥ ईषत्स्मितंसुबिम्बोष्ठं नूपुरारावशोभितम् ॥ ८५ ॥ प्रसन्नवदनंदिव्यं चारुभ्रूमहिमास्पदम् ॥ तदीदृशंसमालोक्य स्वरूपंशैलसत्तमः ॥ ८६ ॥ भयंसन्त्यज्यहृष्टात्मा बभाषेपरमेश्वरीम् ॥ हिमवानुवाच ॥ अद्यमेसफलंजन्म अद्यमेसफलाःक्रियाः ॥ ८७ ॥ यन्मेसाक्षात्त्वमव्यक्ता प्रसन्नादृष्टिगोचरा ॥ किंमयाकार्यं तन्मेब्रूहिमहेश्वरि ॥ ८८ ॥ महेश्वर्युवाच ॥ शिवपूजात्वयाकार्या ध्यानेनतपसासदा ॥ अहंतस्मैप्रदातव्या केनकार्येणहेतुना ॥ ८९ ॥ यादृशस्तुत्वयादृष्टो ध्येयोवैतादृशस्त्वया ॥ एकएवशिवोदेवः सर्वाधारोधराधरः ॥ ९० ॥ तथेतिचोक्तवान्रुद्रं समाराध्यहिमाचलः ॥ तस्योमांपरमांशक्तिं चकारशिवसन्निधौ ॥ ९१ ॥ देवकार्येणकेनापि देवोविज्ञापितःप्रभुः ॥ उपायेमेहरोदेवीमुमांत्रिभुवनेश्वरीम् ॥ ९२ ॥ सशप्तःशम्भुनापूर्वं दक्षःप्राचेतसोभवत् ॥ विनिन्द्यपूर्ववैरेण गङ्गाद्वारेयजत्सवम् ॥ ९३ ॥ यज्ञंप्रवर्तयामास रुद्रभागविवर्जितम् ॥ देवाश्चयज्ञभागार्थमाहूताविष्णुना

महेश्वरी जी बोलीं कि ध्यान व तपस्यासे तुमको सदैव शिवपूजन करना चाहिये व किसी कार्यके कारण मैं उनके लिये देनेयोग्य हूं ॥ ८९ ॥ तुमने जैसे स्वरूपको देखाहै वैसाही रूप तुमको ध्यान करना चाहिये क्योंकि एकही शिवदेवजी सब के आधार व पृथ्वीको धारनेवाले हैं ॥ ९० ॥ वैसाही होगा ऐसा हिमाचल ने कहा व शिवजी को ध्यानकर उनकी उमानामक उत्तम शक्तिको शिवजी के समीप किया ॥ ९१ ॥ और किसी भी देवकार्य के कारण शिवदेव प्रभु प्रार्थना किये गये व महादेवजीने त्रिभुवनेश्वरी उमा देवीको ब्याहा ॥ ९२ ॥ और पहले शिवजी से शापित वे दक्ष प्रचेताओं के पुत्र हुये व उन्होंने पहले के वैर से ...

में यज्ञ किया ॥ ९३ ॥ और शिवभाग से रहित यज्ञको प्रवृत्त कराया विष्णुजी आपही यज्ञभाग के लिये देवताओं को लाये व सब मुनियोंसमेत मुनिश्रेष्ठलोग आये ॥ ९४ ॥ बिन शङ्करजी के सब देवगणको आयेहुये देखकर इसके अनन्तर दधीचिनामक ब्रह्मर्षिने प्राचेतस (दक्षजी) से कहा ॥ ९५ ॥ दधीचिजी बोले कि ब्रह्मा से लगाकर पिशाचपर्यन्त जिसकी आज्ञा के अनुकूल काम करते हैं वे शिवदेवजी इस समय विधिसे क्यों नहीं पूजेजाते हैं ॥ ९६ ॥ दक्षजी बोले कि सब यज्ञोंमें भी उनका भाग नहीं कहागया है और स्त्रीसमेत शिवजी का मन्त्र नहीं कहाजाताहै ॥ ९७ ॥ क्रोधित होतेहुये महामुनि दधीचिजी ने हँसकर सब देवताओं के सुनतेहुये

स्वयम् ॥ सहैवमुनिभिस्सर्वैरागतामुनिपुङ्गवाः ॥ ९४ ॥ दृष्ट्वादेवकुलंसर्वं शङ्करेणविनागतम् ॥ दधीचिर्नामविप्रर्षिः प्राचेतसमथाब्रवीत ॥ ९५ ॥ दधीचिरुवाच ॥ ब्रह्माद्याःसुपिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः ॥ सरुद्रःसाम्प्रतंदेवो विधिनाकिंनपूज्यते ॥ ९६ ॥ दक्ष उवाच ॥ सर्वेषुचापियज्ञेषु नभागःपरिकीर्त्तितः ॥ नमन्त्रोभार्ययासार्द्धं शङ्करस्यनिगद्यते ॥ ९७ ॥ विहस्यदक्षंकुपितो वच प्राहमहामुनिः ॥ शृण्वतांसर्वदेवानां सर्वज्ञानंमयाशुभम् ॥ ९८ ॥ यतःप्रवृत्तिर्विश्वस्य यश्चासौभुवनेश्वरः ॥ नत्वंपूजयसेरुद्रं देवैःसम्पूज्यतेहरः ॥ ९९ ॥ दक्ष उवाच ॥ अस्थिमालाधरोनग्नः संहर्त्ता तमसाहरः ॥ विषादःशूलहस्तोसौ कपालीनागवेष्टितः ॥ १०० ॥ दधीचिरुवाच ॥ ईश्वरोसौजगत्स्रष्टा प्रभुर्योसौसनातनः ॥ सत्त्वात्मकोसौभगवान्निज्यतेसर्वकर्मसु ॥ १ ॥ किंत्वयाभगवानेष सहस्रांशुर्नदृश्यते ॥ सर्वलोकैकसंहर्त्ता

सब ज्ञानमय व उत्तम वचनको दक्षजी से कहा ॥९८॥ कि जिस से संसार की प्रवृत्तिहोतीहै व जो ये शिवजी जगदीश्वर हैं औरजो शिवजी देवताओं से पूजेजाते हैं उन शिवजीको तुम नहीं पूजते हो ॥ ९९ ॥ दक्षजी बोले कि शिवजी अस्थियोंकी मालाको धारे व नग्न और तमोगुण से संहार करनेवालेहैं व ये विषको खानेवाले तथा त्रिशूल को हाथ में लिये और कपालको धारण किये व नागोंसे वेष्टित हैं ॥ १०० ॥ दधीचि बोले कि ये संसार को रचनेवाले ईश्वर हैं व जो ये सनातन प्रभु हैं वेही सत्त्वगुणात्मक ये भगवान् सब कामोंमें पूजेजाते हैं ॥ १ ॥ क्या हज़ार किरणोंवाले इन भगवान् को तुम नहीं देखते हो जो कि सब लोकोंके एकही संहार

करनेवाले व काल पुरुष की जीवात्मा और परमेश्वर हैं ॥ २ ॥ ये रुद्र, महादेव, जटाधारी और अग्रणी व भक्तदुःखनाशक हैं व आदित्य, भगवान्, सूर्य, नीलकण्ठ व विलोहित हैं ॥ ३ ॥ दक्षजी बोले कि इससमय यज्ञभागवाले जो बारह सूर्य आये हैं वे सब सूर्य ऐसे जानने योग्य हैं अन्य सूर्य नहीं विद्यमान हैं ॥ ४ ॥ ऐसा कहनेपर देखने की इच्छावाले मुनिलोग आये व उनकी सहायता करनेवाले वे बहुत अच्छा ऐसा दक्षजीसे कहा ॥ ५ ॥ और तमोगुणसे संयुत मनवाले वे वृषध्वज (शिव) जीको नहीं देखतेथे ॥ ६ ॥ और इन्द्रादिक सब देवता भागके लिये आये और दक्षने यज्ञमें नारायण विष्णुजी को व शिवदेवजी को नहीं देखा ॥ ७ ॥ और

कालात्मापरमेश्वरः ॥ २ ॥ एषरुद्रोमहादेवः कपर्दीचाग्रणीर्हरः ॥ आदित्योभगवान्सूर्यो नीलग्रीवोविलोहितः ॥ ३ ॥ दक्ष उवाच ॥ एषायेद्वादशादित्या आगतायज्ञभागिनः ॥ सर्वेसूर्याइतिज्ञेया नह्यन्योविद्यतेरविः ॥ ४ ॥ एवमुक्तेतुमुनयः समायातादिदृक्षवः ॥वाढमित्यब्रुवन्दक्षं तस्यसाहाय्यकारिणः ॥ ५ ॥ तमसाविष्टमनसो नपश्यन्तिवृषध्वजम् ॥ ६ ॥ देवाश्चसर्वेभागार्थमागतावासवादयः ॥ नापश्यद्देवमीशानं क्रतौनारायणंहरिम् ॥ ७ ॥ रक्षकंजगतान्देवं जगामशरणंस्वयम् ॥ प्रवर्त्तयामासतदा यज्ञंदक्षोपिनिर्भयः ॥ ८ ॥ रक्षकोभगवान्विष्णुः शरणागतरक्षकः ॥ पुनःप्राहचतंदक्षं दधीचिर्भगवान्नृपम् ॥ ९ ॥ निर्भयोमायजस्वत्वंयज्ञभङ्गोभविष्यति ॥ अपूज्यपूजनाद्दक्ष पूज्यस्यतुविसर्जनात् ॥ १० ॥ नरःपापमवाप्नोति महान्तंनात्रसंशयः ॥असताम्प्रग्रहोयत्र सताञ्चैवविमानता ॥ ११ ॥ दण्डोदैवकृतस्तत्र सद्यःपततिदारुणः ॥ एवमुक्त्वासविप्रर्षिः शशापेश्वरविद्विषः ॥ १२ ॥ यस्माद्वहिष्कृतोदेवो भवद्भिःपरमेश्व

आपही वह लोकों के रक्षक विष्णुदेवकी शरण में गया व उस दक्षने भी निडर होकर उस समय यज्ञको प्रवृत्त कराया ॥ ८ ॥ कि रक्षा करनेवाले भगवान् विष्णुजी शरणागत की रक्षा करनेवाले हैं फिर भगवान् दधीचिजीने उस दक्ष नृपतिसे कहा ॥ ९॥ कि निडर होकर तुम यज्ञको मत करो क्योंकि यज्ञका भंग होगा हे दक्षजी ! अपूजनीयके पूजनसे व पूजनीयके त्यागसे ॥ १० ॥ मनुष्य बड़े पापको प्राप्त होताहै इसमें सन्देह नहींहै और जहां असज्जनोंका प्रग्रह (सत्कार) व सज्जनोंका अनादर होताहै ॥ ११ ॥ वहां शीघ्रही दैवसे किया हुआ दण्ड पतित होताहै ऐसा कहकर उन ब्रह्मर्षिने ईश्वरके शत्रु दक्षादिकों को शाप दिया ॥ १२ ॥ कि जिस लिये

आपलोगों ने सदा शिवदेवको बाहर किया उस कारण भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर मिथ्या रीति व आचार तथा मिथ्या शास्त्रोंको कहनेवाले और कलिसे उपजेहुये दोषोंसे पीड़ित होवोगे व भयंकर तपोबल करके फिर नरकको जावोगे॥ १३।१४॥ और अपने अधीन भी तुमलोग विष्णुजी से विमुख होवोगे ऐसा कहकर वे तपस्या के निधान ब्रह्मर्षि दधीचिजी चुप होगये॥ १५॥ और मनके द्वारा सब यज्ञों को नाशनेवाले रुद्रजी के समीप गये इसी अवसर में हे देवि! महादेवी पार्वतीजी ने दक्षजीके यज्ञ को सुनकर व जानकर शिवजीसे विनय किया कि पूर्व जन्ममें मेरे पिता दक्षजी यज्ञसे पूजन करतेहैं॥ १६। १७॥ पहले उसने तुमको दूषित किया

रः॥ मिथ्यारीतिसमाचारा मिथ्याशास्त्रप्रभाषिणः॥ १३॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे कलिजैःकिल पीडिताः॥ कृत्वातपोबलं घोरं गच्छध्वंनरकंपुनः॥ १४॥ भविष्यथहृषीकेशात्स्वाधीनाश्चपराङ्मुखाः॥ एवमुक्त्वासविप्रर्षिर्विरराम तपोनिधिः॥ १५॥ जगाममनसारुद्रमशेषाध्वरनाशनम्॥ एतस्मिन्नन्तरेदेवि महादेवीमहेश्वरम्॥ १६॥ श्रुत्वाविज्ञापयामास ज्ञात्वादक्षमखंशिवा॥ दक्षोयज्ञेनयजते पितामेपूर्वजन्मनि॥ १७॥ तेनत्वंदूषितःपूर्वमहंचातीवदूषिता॥ विनाशयस्वतंयज्ञं वरमेनंवृणोम्यहम्॥ १८॥ एवंविज्ञापितोदेव्यादेवदेवोमहेश्वरः॥ ससर्जसहसारुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया॥ १९॥ सहस्रशिरसंक्रूरं सहस्राक्षंमहाभुजम्॥ सहस्रपाणिदुर्द्धर्षं युगान्तानलसन्निभम्॥ २०॥ दंष्ट्राकरालंदुष्प्रेक्ष्यं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ दण्डहस्तंमहानादं शार्ङ्गिणंभूतिभूषणम्॥ २१॥ वीरभद्रइतिख्यातो देवोदेवीसमन्वितम्॥

व मुझको भी बहुतही दूषित किया है इसलिये उस यज्ञको नाश कीजिये मैं इस वरदानको मांगती हूँ॥ १८॥ इसप्रकार देवी पार्वतीजी से विज्ञापित देवदेव महेश्वरजी ने दक्षजीके यज्ञ को नाश करनेकी इच्छासे अचानकही हज़ार मस्तकोंवाले व क्रूर तथा हज़ार लोचनोंवाले व महाभुज, हज़ार हाथोंवाले दुर्द्धर्ष और युगान्त की अग्निके समान रुद्र को उत्पन्न किया॥ १९। २०॥ जो कि दाढ़ों से कराल, दुर्निरीक्ष्य व शङ्ख, चक्र, गदा को धारण किये थे व दण्ड को हाथमें लिये तथा बड़ा भारी शब्दकरनेवाले और शार्ङ्ग धनुषको लिये व विभूतिको भूषण किये थे॥ २१॥ उत्पन्न होतेही वीरभद्र ऐसे कहेहुये वे देव हाथोंको जोड़कर देवीसे संयुत देवेशजी

के समीप स्थित हुये ॥ २२ ॥ उनसे शिवजीने कहा कि हे गणेश्वर! तुम्हारे लिये प्रणाम है दक्षजी के यज्ञको नाश कीजिये क्योंकि वह मेरी निन्दाकर हरद्वारमें यज्ञ करताहै ॥ २३ ॥ तदनन्तर लीलासे वीरभद्रने वधके लिये कियेहुये सिंहनादसे दक्षजी के महायज्ञको नाशके लिये ॥ २४ ॥ अन्य हज़ारों रुद्रोंको उत्पन्न किया व उन बुद्धिमान् वीरभद्रजी ने वहां सहायता करनेवाले रोमज ऐसे प्रसिद्ध रुद्रोंको उत्पन्न किया ॥ २५ ॥ व शूल, शक्ति तथा गदा को हाथमें लिये व दण्ड और पत्थरोंको हाथमें धारण किये कालाग्नि व रुद्रके समान तथा दशों दिशाओंको शब्दायमान करतेहुये ॥ २६ ॥ सब बैलों पै चढ़े व स्त्रियोंसमेत तथा अति भयंकर वे गणों में

सजातमात्रोदेवेशमुपतस्थेकृताञ्जलिः ॥ २२ ॥ तमाहदक्षस्यमखं विनाशयनमोस्तुते ॥ विनिन्द्यमांसयजते गङ्गाद्वारेगणेश्वर ॥ २३ ॥ ततोवधप्रमुक्तेन सिंहनादेनलीलया ॥ वीरभद्रेणदक्षस्य विनाशायमहाक्रतुम् ॥ २४ ॥ अन्ये सहस्रशोरुद्रानिसृष्टास्तेनधीमता ॥ रोमजाइतिविख्यातास्तत्रसाहाय्यकारिणः ॥ २५ ॥ शूलशक्तिगदाहस्तदण्डोपलकरास्तथा ॥ कालाग्निरुद्रसंकाशा नादयन्तोदिशोदश ॥ २६ ॥ सर्वेवृषभमारूढा सभार्याश्चातिभीषणाः ॥ समाश्रित्यगणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखम्प्रति ॥ २७ ॥ देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम् ॥ वीणावेणुनिनादाढ्यं वेदनादाभिवादितम् ॥ २८ ॥ दृष्ट्वादक्षंसमासीनं सहदेवैर्महर्षिभिः ॥ उवाचसवृषारूढो दक्षंवीरःस्मयन्निव ॥ २९ ॥ वयमनुचराःसर्वे शर्वस्यामिततेजसः ॥ भागार्थलिप्सयायातान्भागान्यच्छत्वमीप्सितान् ॥ ३० ॥ भागोभवद्भ्योदेयस्तु माभैःस्मइतिकथ्यताम् ॥ नप्तॄनाज्ञापयासिभो भोक्ष्यामोहिवयंततः ॥ ३१ ॥ एवमुक्तागणेशेन प्रजापतिपुरस्सराः ॥ देवा

श्रेष्ठ वीरभद्रजीके आश्रित होकर दक्षजीके यज्ञकोगये ॥ २७ ॥ जोकि हज़ारों देवांगनाओंसे युक्त तथा अप्सराओंके गीतों से शब्दित व वीणा और वेणुके शब्दोंसे संयुक्त व वेदशब्दों से प्रशंसित था ॥ २८ ॥ और देवताओं व महर्षियोंसमेत बैठेहुये दक्षजीको देखकर बैल पै चढ़ेहुये वे वीरभद्रजी मुसक्याते हुयेसे दक्षसे बोले ॥ २९ ॥ कि हम सब अतुलतेजवाले शिवजी के अनुचर (गण) हैं और भाग के पाने की इच्छा से आयेहुये हमलोगों को तुम चाहेहुये भागोंको देवो ॥ ३० ॥ आपलोगों को भाग देना चाहिये व मत डरिये ऐसा कहा जावै और हे दक्षजी! नप्ताओं को आज्ञा दीजिये तदनन्तर हमलोग भोजन करैंगे ॥ ३१ ॥ गणनायक वीरभद्रजी

से ऐसे कहेहुये दक्ष प्रजापति आदिक देवताओंने यह कहा देवता बोले किहे प्रभो! भागमें प्रमाण व मन्त्रको हमलोग नहीं जानते हैं ॥ ३२ ॥ मन्त्र बोले कि हे देवताओ! हमलोग नहीं जानते हैं कि जिससे तमोगुणमे नष्ट चित्तवाले यज्ञपुरुष के राजा महादेवजीको नहीं पूजतेहैं ॥३३॥ और सब प्राणियोंके स्वामी व सब देवताओं के शरीर शिवजी सब यज्ञोंमें पूजेजातेहैं उनको दक्षजी कैसे नहीं पूजतेहैं ॥ ३४ ॥ वीरभद्रजी बोले कि बलसे गर्वित तुमलोगोंने मन्त्रोंका प्रमाण नहीं किया और जिस लिये वह प्रमाण सत्य हैं उसीकारण आज गर्वित तुमलोगों को नाश करूंगा ॥ ३५ ॥ उन देवताओं से ऐसा कहकर गणों में श्रेष्ठ वीरभद्र व क्रोधित होकर गण

ऊचुः ॥ प्रमाणंनोविजानीमो भागेमन्त्राइतिप्रभो ॥ ३२ ॥ मन्त्रा ऊचुः ॥ सुरावयंनजानीमस्तमोपहतचेतसः ॥ येनाध्वरस्यराजानं पूजयेयुर्महेश्वरम् ॥ ३३ ॥ ईश्वरःसर्वभूतानां सर्वदेवतनुर्हरः ॥ पूज्यतेसर्वयज्ञेषु कथंदक्षोनपूजयेत् ॥ ३४ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ मन्त्राःप्रमाणंनकृता युष्माभिर्बलगर्वितैः ॥ यस्माच्चसत्यंतस्माद्वो नाशयाम्यद्यगर्वितान् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वायज्ञशालायां तान्देवान्गणपुङ्गवाः ॥ गणेश्वरास्तुसंक्रुद्धा यूपानुत्पाट्यचिक्षिपुः ॥३६॥ उद्गातारंसहोतारं अध्वर्युंश्चगणेश्वराः ॥ गृहीत्वाभीषणाःसर्वे गङ्गास्रोतसिचिक्षिपुः ॥ ३७ ॥ वीरभद्रोपिदीप्तात्मा वज्रयुक्तंकरंहरेः ॥ व्यष्टम्भयद्दीनात्मा तथान्येषांदिवौकसाम् ॥ ३८ ॥ भगनेत्रेंतथोत्पाट्य कराग्रेणचलीलया ॥ धर्षयामासबलवान् स्मयमानोगणेश्वरः ॥ ३९ ॥ वह्नेर्हस्तद्वयंछित्त्वा जिह्वामुत्पाट्यलीलया ॥ जघानमूर्ध्निपादेन मुनीनपिमुनीश्वरान् ॥ ४० ॥ तथाविष्णुंसगरुडंसमायान्तंमहाबलम् ॥ विव्याधनिशितैर्बाणैः स्तम्भयित्वासुदर्शनम् ॥ ४१ ॥ ततःसहस्रशोभद्रः

नायकों ने यज्ञ शाला में यज्ञस्तम्भों को उखाड़कर फेंक दिया ॥ ३६ ॥ और ऋग्वेदीसमेत सामवेदी व यजुर्वेदी को सब भयङ्कर गणनायकों ने लेकर गङ्गाजीके सोत में फेंक दिया ॥ ३७ ॥ और प्रसन्नचित्त तथा प्रकाशितशरीरवाले वीरभद्र ने वज्रसंयुत इन्द्रके हाथ को व अन्य देवताओं को स्तंभित करदिया ॥ ३८ ॥ और लीला से भग देवताके नेत्रों को हाथके अग्रभाग से उखाड़कर हँसते हुये उन बलवान् गणनायक वीरभद्र ने धर्षण किया ॥ ३९ ॥ और अग्निके दोनों हाथों को काटकर लीलासे जिह्वाको उखाड़कर मुनियों व मुनीश्वरोंके भी शिरमें चरणसे मारा ॥ ४० ॥ वैसेही सुदर्शन चक्र को स्तंभितकर आयेहुये महा बलवान् विष्णुजी को गरुडसमेत

पैने बाणोंसे मारा ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वीरभद्रने बहुतसे हज़ारों गरुड़ोंको पैदाकिया और वे गरुड़ वैनतेयसे भी अधिक दौड़े ॥ ४२ ॥ उनको देखकर बुद्धिमान् गरुड़ भागनेमें तत्पर हुये जैसे किवसन्तऋतु में वैशाख महीनेमें सिंहसे पीड़ित गऊ भागे ॥ ४३ ॥ और गरुड़ व विष्णुजीके अन्तर्द्धान होनेपर कमलसे उपजेहुये ब्रह्माजी ने आकर शिवजी के प्यारे वीरभद्रको मना किया ॥ ४४ ॥ वे रुद्रजी ने ब्रह्मा के गौरव से उन वीरभद्रको प्रसन्न कराया और देवताओं ने वहां आयेहुये ऐसे रुद्रको नहीं जानते थे ॥ ४५ ॥ और उन रुद्रदेवजी को विष्णु, ब्रह्मा व दधीचिजीने जाना और भगवान् ब्रह्मा, दक्ष, विष्णु व देवताओंने स्तुतिकिया ॥ ४६ ॥ और हाथोंको जोड़कर

ससर्जगरुडान्बहून् ॥ वैनतेयादप्यधिका गरुडास्तेप्रदुद्रुवुः ॥ ४२ ॥ तान्दृष्ट्वागरुडोधीमान् पलायनपरोभवत् ॥ वस न्तेमाधवेवेगाद्यथागौःसिंहपीडिता ॥ ४३ ॥ अन्तर्हितेवैनतेये विष्णौचपद्मसम्भवः ॥ आगत्यवारयामास वीरभद्रंशिव प्रियम् ॥ ४४ ॥ प्रसादयामासचतं गौरवात्परमेष्ठिनः ॥ ईदृशंनैवजानन्ति रुद्रंतत्रागतंसुराः ॥ ४५ ॥ सदेवोविष्णुना ज्ञातो ब्रह्मणाचदधीचिना ॥ तुष्टावभगवान्ब्रह्मा दक्षोविष्णुर्दिवौकसः ॥ ४६ ॥ विशेषात्पार्वतींदेवीमीश्वरार्द्धशरीरिणी म् ॥ स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्यचकृताञ्जलिः ॥ ४७ ॥ ततोभगवतीदेवी प्रहसन्तीमहेश्वरम् ॥ त्वमेवजगतःस्रष्टा संहर्ताचैवरक्षकः ॥ ४८ ॥ अनुग्राह्योभगवता दक्षश्चापिदिवौकसः ॥ ततःप्रहस्यभगवान् कपर्दीनीललोहितः ॥ ४९ ॥ उवाचप्रणतान्देवान् दक्षंप्राचेतसंहरः ॥ गच्छध्वंदेवताःसर्वाः प्रसन्नोभवतामहम् ॥ ५० ॥ सम्पूज्यःसर्वयज्ञेषु प्रथमं देवकर्मणि ॥ त्वंचापिशृणुमेदक्ष वचनंसर्वरक्षणम् ॥ ५१ ॥ त्यक्त्वालोकेघृणामेनां मद्भक्तोभवयत्नतः ॥ भविष्यसिगणे

प्रणाम करके दक्षजीने अनेकप्रकारके स्तोत्रों से शिवजी के अर्धशरीरवाली पार्वती देवी की विशेषकर स्तुति किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर हँसतीहुई भगवती पार्वतीदेवी ने महादेवजी से कहा कि तुम्हीं संसारके रचनेवाले व संहारकरनेवाले और रक्षा करनेवाले हो ॥ ४८ ॥ आप दक्ष व देवताओंके ऊपर दया कीजिये तदनन्तर विहँसकर जटाधारी व नीललोहित भगवान् ॥ ४९ ॥ शिवजीने प्रणाम कियेहुये देवताओं व प्रचेताओंके पुत्र दक्षजी से कहा कि हे देवताओ ! तुम सबलोग जावो मैं आपलोगोंके ऊपर प्रसन्नहूं ॥ ५० ॥ और सब यज्ञोंमें व देवकर्म में मैं पहले पूजने योग्यहूं व हे दक्ष ! तुम भी सबों की रक्षा करनेवाले मेरे वचन को सुनो ॥ ५१ ॥

कि संसारमें इस घृणाको छोड़कर बड़े यत्नसे तुम मेरे भक्त होवो और मेरी दया से तुम कल्पान्तमें मेरे गणनायक होगे ॥ ५२ ॥ तबतक मेरी आज्ञासे प्रसन्न होकर अपने अधिकारों में स्थित होवो यह कहकर शिवजी अमिततेजवाले दक्षके अदर्शनको प्राप्त हुये याने अन्तर्द्धान होगये ॥ ५३ ॥ और दधीचिजी ने शिवजीको देखा व शाप छुड़ाने के लिये कहा कि कैसे तुमने शाप दिया और वे ब्राह्मण कैसे तुम्हारी आज्ञासे तरेंगे ॥ ५४ ॥ शिवजी बोले कलियुग प्राप्त होनेपर ब्राह्मण वेदत्रयीसे बाहर होवैंगे और जो ब्राह्मण वेदोंको पढ़ैंगे वे स्वर्गगामी होवैंगे ॥ ५५ ॥ और जो ब्राह्मण विष्णुनिर्मित शास्त्रों को पढ़ैंगे वे भी मेरी प्रसन्नतासे स्वर्गको

शस्त्वं कल्पान्तेनुग्रहान्मम ॥५२॥ तावत्तिष्ठममादेशात्स्वाधिकारेषुनिर्वृतः ॥ इत्युक्त्वाऽदर्शनंप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः ॥ ५३ ॥ दधीचिनाशिवोदृष्टो विज्ञप्तःशापमोचने ॥ कथंशापंत्वयादत्तं तरिष्यन्तितवाज्ञया ॥ ५४ ॥ शिव उवाच ॥ भविष्यन्तित्रयीबाह्याः संप्राप्तेतुकलौयुगे ॥ पठिष्यन्तिचयेवेदांस्तेविप्राःस्वर्गगामिनः ॥ ५५ ॥ आगमाविष्णुरचिताः पठ्यन्तेयैर्द्विजातिभिः ॥ तेपिस्वर्गंप्रयास्यन्ति मत्प्रसादान्नसंशयः ॥ ५६ ॥ कलिकालप्रभावेण येषाम्पाठोनविद्यते ॥ गृहस्थधर्माचरणं कर्त्तव्यंममपूजनम् ॥ ५७ ॥ अवश्यंचमयाकार्यं तेषांपापमोचनम् ॥ भिक्षांभ्रमामिमध्याह्ने अतीते भस्मगुण्ठितः ॥ ५८ ॥ जटाजूटधरःशान्तो भिक्षापात्रकरोद्विजः ॥ योददातिचमेभिक्षां स्वर्गंयातिसमानवः ॥ ५९ ॥ उपानहौवाछत्रंवा कौपीनंवाकमण्डलुम् ॥ योददातितपस्विभ्यो नरोमुक्तःसपातकैः ॥ ६० ॥ दधीचेःसवरान्दत्त्वा बभाषेविष्णुनासह ॥ रुद्र उवाच ॥ यस्तेमित्रंसमेमित्रं यस्तेशत्रुःसमे रिपुः ॥ ६१ ॥ यस्त्वाम्पूजयतेविष्णो समाम्पूज

जावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५६ ॥ और कलिकालके प्रभावसे जिनके वेदपाठ नहीं विद्यमानहै उनको गृहस्थधर्म का आचरण व मेरा पूजन करनाचाहिये ॥ ५७ ॥ और मुझको अवश्य उनके पापका मोचन करना चाहिये दुपहर बीतजानेपर भस्म को लगायेहुये मैं भिक्षा के लिये घूमताहूं ॥ ५८ ॥ और जटाजूट को धारण करता हूँ व शान्त होताहूँ और भिक्षापात्रको हाथमें लेताहूं जो ब्राह्मण मुझको भिक्षादेता है वह मनुष्य स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥ ५९ ॥ और पनहीं या छत्र व कौपीन अथवा कमण्डलुको जो तपस्वियोंके लिये देताहै वह मनुष्य पातकोंसे छूटजाताहै ॥६०॥ दधीचिको वरदानोंको देकर उन शिवजीने विष्णुके साथ सम्भाषण किया रुद्रजी

बोले कि जो तुम्हारा मित्रहै वह मेरा मित्रहै और जो तुम्हारा शत्रुहै वह मेरा शत्रु है ॥ ६१ ॥ व हे विष्णो! जो तुमको पूजता है वह निश्चयकर मुझको पूजता है और जो तुम्हारी स्तुति करताहै वह मेरी स्तुति करता है व जो तुमको प्रिय है वह मुझको प्रिय है ॥ ६२ ॥ व जहां मैं हूं वहां तुम हो परस्पर भेद नहीं है विष्णुजी बोले कि हे देव! यह ऐसाही है परन्तु जो जो कहना चाहिये वह वैसाही है ॥ ६३ ॥ पुरातन समय जब मैंने आधा स्त्री व आधा पुरुष का स्वरूप देखा तब मैंने इस स्त्री को नहीं देखा बरन शंख चक्र व गदाको हाथमें लिये और वनमालासे शोभित व श्रीवत्स से चिह्नित और पीत वसन पहने व कौस्तुभमणि से अपने

यतेध्रुवम् ॥ यस्त्वांस्तौतिसमांस्तौति प्रियोयस्तेसमेप्रियः ॥ ६२ ॥ अहंयत्रचतत्रत्वं नास्तिभेदःपरस्परम् ॥ विष्णुरुवाच ॥ एवमेतत्परंदेव वक्तव्यंयत्तथैवतत ॥ ६३ ॥ अर्द्धनारीनरवपुर्यदादृष्टामयापुरा ॥ नेयंनारीमयादृष्टा दृष्टंरूपंकिमात्मनः ॥ ६४ ॥ शङ्खचक्रगदाहस्तं वनमालाविभूषितम् ॥ श्रीवत्साङ्कम्पीतवस्त्रं कौस्तुभेनविराजितम् ॥ ६५ ॥ द्वितायार्द्धंमयादृष्टं शूलहस्तंत्रिलोचनम् ॥ चन्द्रावयवसंयुक्तं जटाजूटकपालिनम् ॥ ६६ ॥ एकभावंप्रपन्नोहं यथापूर्वं तथाधुना ॥ नेमांगौरीम्प्रपश्यामि प्रपश्यामितथैवच ॥ ६७ ॥ आवयोरन्तरंनास्ति चैकरूपावुभावपि ॥ योजानातिसजानाति सत्यलोकंसगच्छति ॥ ६८ ॥ इत्युक्त्वासययौतत्र कैलासंपर्वतोत्तमम् ॥ कृष्णोपिमन्दिरंप्राप्तो देवकार्येणकेनचित् ॥ ६९ ॥ अत्रान्तरेदैत्यराजो महादेवप्रसादतः ॥ हिरण्यनेत्रतनयो बाधतेसौजगत्रयम् ॥ ७० ॥ अमरत्वंहरा

स्वरूपको देखा ॥ ६४ । ६५ ॥ व द्वितीय अर्द्धभागको मैंने त्रिशूलको हाथमें लिये व त्रिनयन, चन्द्रांगसे संयुत तथा जटाजूट व कपालको धारणकिये देखा ॥ ६६ ॥ जिसप्रकार पहले मैं एकताको प्राप्त था वैसेही इस समय हूं कि इस पार्वतीजी को नहीं देखताहूं बरन वैसाही देखताहूं ॥ ६७ ॥ हम तुम दोनोंका अन्तर नहीं है व हम तुम दोनों भी एक रूप हैं जो जानता है वह जानता है और वह सत्यलोक को जाता है ॥ ६८ ॥ यह कहकर वे वहां उत्तम कैलास पर्वतको चलेगये और श्री कृष्ण भी किसी देवकार्यसे मन्दराचलको प्राप्तहुये ॥ ६९ ॥ इसी समयमें हिरण्यनेत्रका पुत्र यह दैत्यराज महादेवजीकी प्रसन्नतासे तीनोंलोकोंको पीड़ा करताथा ॥ ७० ॥

व शिवजी से अमरताको पाकर कामदेव से अन्ध वह नहीं देखता था व महादेवजीके अङ्गमें रमणकरनेवाली दिव्यरूपिणी तथा सुनयना पार्वती देवीको ॥ ७१ ॥ वह यह जानता था कि मेरी है और शिवजीसे मांगताथा और कार्य के व्यसनी महादेव भी कैलास पर्वतको छोड़कर ॥ ७२ ॥ जनार्दनदेवजी को देखनेके लिये मन्दराचल को प्राप्तहुये व मन्दराचल पै देवी पार्वतीजी को छोड़कर परस्पर देखकर शिवजी चलेगये ॥ ७३ ॥ व देवगणों से घिरीहुई देवी नारायणगृह में स्थित हुई इसी अवसर में गौतमजी गोघात से मलिन कियेगये ॥ ७४ ॥ व उनके पवित्र करने के लिये भिक्षुकरूपधारी महादेवजी गौतमजी के घर में प्राप्तहुये व अन्ध-

लुब्ध्वा कामान्धोनैवपश्यति ॥ हराङ्गरमणीन्देवीं दिव्यरूपांसुलोचनाम् ॥ ७१ ॥ ममेतिचसजानाति याचतेचहरम्प्र ति ॥ हरोपिकार्यव्यसनस्त्यक्त्वाकैलासपर्वतम् ॥ ७२ ॥ मन्दरंसमनुप्राप्तो देवंद्रष्टुंजनार्दनम् ॥ परस्परंसमालोच्य मुक्त्वादेवींसमन्दरे ॥ ७३ ॥ नारायणगृहेदेवी स्थितादेवगणैर्वृता ॥ अत्रान्तरेगौतमस्तु गोवधान्मलिनीकृतः ॥ ७४ ॥ सावित्रीकरणार्थाय भिक्षुरूपधरोहरः ॥ गौतमस्यगृहंप्राप्तो मन्दरंचान्धकोगतः ॥ ७५ ॥ ययाचेपार्वतींविष्णुं युद्धंचक्रेसविष्णुना ॥ रक्षितांतुगणैःसर्वैर्देवींदैत्योनपश्यति ॥ ७६ ॥ स्त्रीरूपधारीकृष्णोसौ गौरींरक्षतिमन्दरे ॥ गौरीणाञ्चशतंचक्रे हरिस्तत्रसमाययौ ॥ ७७ ॥ विष्णोर्देहसमुद्भूता दिव्यरूपावरास्त्रियः ॥ अन्धकोनैवजानाति कैषागौरीतिपार्वती ॥ ७८ ॥ विलम्बस्तत्रसंजातो मोहितोविष्णुमायया ॥ तावच्छिवःसमायातः कृत्वागौतमपावनम् ॥ ७९ ॥ भिक्षामात्रेणचान्नेन गौतमोनिर्मलीकृतः ॥ अन्धकेनतदायुद्धं चक्रेरुद्रोतिकोपितः ॥ ८० ॥ अमरोसौहराज्जातः शू

कासुर मन्दराचल को गया ॥ ७५ ॥ व उसने पार्वतीजी को मांगा व विष्णुजी से युद्ध किया और सब गणों से रक्षित देवीको वह दैत्य नहीं देखताथा ॥ ७६ ॥ और स्त्रीके रूपको धारनेवाले ये कृष्णजी मन्दराचलपै गौरीकी रक्षा करतेथे और सौगौरियोंको उन्होंने बनाया व वे विष्णुजी वहां आये ॥ ७७ ॥ और विष्णुजीके शरीर से उपजीहुई जो दिव्यरूपिणी स्त्रियां थीं उनमेंसे अन्धक यह नहीं जानताथा कि गौरी ऐसी पार्वती यह कौनहै ॥ ७८ ॥ वहां विलम्ब हुआ और वह दैत्य विष्णुजी की मायासे मोहित होगया तबतक गौतमकी पवित्रताकर सदाशिवजी आगये ॥ ७९ ॥ और भिक्षामात्र अन्नसे गौतमजी निर्मल कियेगये व उस समय बड़े क्रोधित

शिवजी ने भी अन्धकासुरसे युद्ध किया ॥ ८० ॥ और यह शिवजी से अमर हुआ था इसकारण भयानक शूल में छेदागया व शूल में स्थित उसने स्तुति किया और उसके ऊपर शिवजी प्रसन्न हुये ॥ ८१ ॥ और प्रलयपर्यन्त उसके लिये शिवजी ने गणेशत्व दिया व श्रीकृष्णजी ने आपही उनके लिये धरोहररूपिणी पार्वती देवी को दिया ॥ ८२ ॥ और सभोंके नामों को करके गौरी रूपवाली वे अन्य स्त्रियां पृथ्वी में पठाई गईं व उनसे यह कहा कि तुम सब संसारमें पूजनीय होवोगी ॥ ८३ ॥ व यह कहा कि जो इनको पूजैंगे वे पार्वतीजी को पूजैंगे और जो पार्वतीजीको पूजैंगे वे विष्णु व शिवको पूजैंगे ॥ ८४ ॥ देवताओं से पूजित महादेवजी बैल

लेप्रोतस्तुदारुणे॥ शूलस्थःसस्तुतिंचक्रे तस्यतुष्टोमहेश्वरः॥८१॥ गणेशत्वंददौतस्मै यावदाभूतसंप्लवम् ॥ न्यासरूपा मुमान्देवीं कृष्णस्तस्मैददौस्वयम् ॥ ८२ ॥ गौरीरूपाःस्त्रियश्चान्या धरित्र्यान्तास्तुप्रेषिताः ॥ कृत्वानामानिसर्वासां लोकेपूजाभविष्यथ ॥ ८३ ॥ एतायेपूजयिष्यन्ति पूजयिष्यन्तितेशिवाम् ॥ शिवांयेपूजयिष्यन्ति तेर्चयन्तिहरिंहरम् ॥८४॥ उमांसमादाययर्योहरोगिरिं वृषंसमारुह्यशुभंसुरार्चितः ॥ हरःसुरेमेउमयासहान्धके हतेचदेवाःसुरराजमाययुः ॥ ८५ ॥ ब्रह्मेशनारायणपुण्यचेतसां शृण्वन्तिचित्रंचरितं महात्मनाम् ॥ मुच्यन्तिपापैःकलिकालसम्भवैर्यान्तिनाकंगणवृन्दवन्दिताः ॥ ८६ ॥ एवंकालेवर्त्तमानो हरःकैलासपर्वते ॥ रक्षोदानवदैतेयैर्गृह्यतेसौवरान्बहून् ॥ ८७ ॥ ब्रह्मदत्तवरोरौद्रस्तारकाख्योमहासुरः ॥ तेनसर्वंजगद्व्याप्तं तस्यनष्टाःसुरारणे ॥ ८८ ॥ महादेवस्तुतेनाजौ तद्वधाय

पै चढ़कर पार्वतीजी को लेकर उत्तम पर्वत पै चलेगये और शिवजी ने पार्वतीजीसमेत रमण किया व अन्धकासुरके मारने पर देवता सुरराज (इन्द्र) के समीप गये ॥ ८५ ॥ जो मनुष्य ब्रह्मा, शिव, विष्णु व पवित्र चित्तवाले महात्माओं के विचित्र चरित्र को सुनते हैं गणसमूहों से वन्दित वे पुरुष कलिकालमें उपजेहुये दोषों से छूटजाते हैं और वैकुण्ठको जावैंगे ॥ ८६ ॥ इसीप्रकार समय में शिवजी कैलास पर्वत पै वर्तमान हुये और राक्षस, दानव व दैत्य इन शिवजी को बहुत वरदानों के लिये ग्रहण करते थे ॥ ८७ ॥ और ब्रह्मा से दिये हुये वरदानवाला जो यह भयंकर तारकनामक महादैत्य था उससे सब संसार व्याप्त होगया और उसके

युद्धमें देवता भग गये ॥ ८८ ॥ उसीकारण महादेवजी ने युद्धमें उसके मारने के लिये रुद्रवीर्य से उपजे हुये उन उमापुत्र स्वामिकार्त्तिकेयजीको रचा ॥ ८९ ॥ और सब इन्द्रादिक देवताओं ने उनको सेनापति का अभिषेक किया और उन स्वामिकार्त्तिकेय ने भी दैवयोग से तारकनामक दैत्य को मारा ॥ १९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायादक्षयज्ञविध्वंसनंनामत्रयोविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पूंछ्यो है शिव सन यथा उमा तुष्टि कर हेत । कह्यो त्रिशत चौबीस में सोई हर्षसमेत ॥ महादेवजी बोले कि कैलास पर्वतके शिखरपै बैठेहुये जगद्गुरु

ससर्जतम् ॥ कार्त्तिकेयमुमापुत्रं रुद्रवीर्यसमुद्भवम् ॥ ८९ ॥ देवैरिन्द्रादिभिःसर्वैः सेनाध्यक्षोभिषेचितः ॥ तेनापिदैवयोगेन तारकाख्योनिपातितः ॥ १९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदक्षयज्ञविध्वंसनंनामत्रिविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिव उवाच ॥ कैलासशिखरासीनो देवदेवोजगद्गुरुः ॥ उमयासहसन्तुष्टो नन्दभद्रादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ स्कन्देन गजवक्त्रेण सेनाध्यक्षेणसंस्तुतः ॥ अथहासपरंदेवं शनैःप्रोवाचतंशिवा ॥ २ ॥ केनदेवप्रकारेण तुष्टिंयास्यसिशङ्कर ॥ मर्त्यानांकेनदानेन तपसानियमेनच ॥ ३ ॥ केनवाकर्मणादेव केनमन्त्रेणवापुनः ॥ स्नानेनकेनदेवेश केनहोमेनतुष्यसि ॥ ४ ॥ पुष्पेणकेनहेनाथ केनपात्रेणशङ्कर ॥ केनसन्तुष्यसेदेव साहसेनचकेनवै ॥ ५ ॥ नैवेद्येनचकेनत्वं केनहोमेनतुष्यसि ॥ केनकष्टेनवादेव केनार्घेणममप्रभो ॥ ६ ॥ षोडशैतान्मयापृष्टान् प्रश्नान्मेनिर्णयंवद ॥ रुद्र उवाच ॥

देवदेव शिवजी नन्द व भद्रादिक गणों से घिरेहुये पार्वतीसमेत सन्तुष्ट थे ॥ १ ॥ और सेना के पति स्वामिकार्त्तिकेय व गजाननजी उनकी स्तुति करते थे इसके उपरान्त हास्यमें तत्पर उन शिवजी से पार्वतीजी धीरेसे बोलीं ॥ २ ॥ कि हे देव,शंकरजी ! किस दान,तपस्या व नियम से मनुष्यों के ऊपर किसप्रकार तुम प्रसन्नता को प्राप्तहोते हो ॥ ३ ॥ व हे देव ! किस कर्म व किस मन्त्रसे और किस स्नान व किस होमसे तुम प्रसन्न होतेहो ॥ ४ ॥ व हे नाथ,शंकरजी ! किस पुष्प व किस पात्रसे प्रसन्नहोते हो और हे देव ! किसप्रकार किस साहससे प्रसन्न होते हो ॥ ५ ॥ और किस नैवेद्य व किस होमसे प्रसन्न होते हो तथा हे मम प्रभो, देव ! किस

कष्ट और किस अर्घ्यसे प्रसन्न होतेहो ॥ ६ ॥ मुझसे पूछेहुये इन सोलह प्रश्नोंको निश्चयकर कहिये शिवजी बोले कि हे ममप्रिये, देवि ! तुमने अच्छा पूछा और मैं कहताहूं ॥ ७ ॥ कि यह शिवजीके पूजनका प्रकार गुरुके वचनसे किया जाताहै व हे देवि ! सब जन्तुवोंको अभयदान मुझको प्रियहै ॥ ८ ॥ और सत्य तप कहा गयाहै व हेदेवि ! पराई स्त्रीसे रहित यह नियम प्रियहै और जो मनुष्योंके अनुराग करताहै वह कर्महै ॥ ९ ॥ व (ॐनमः शिवाय) ऐसा यह मन्त्र अङ्गीकार कियागया है व हे देवि ! सब पापोंसे जो विमुक्तहै वह मुझको प्रियहै ॥ १० ॥ और पापोंका क्षय स्नान होताहै और गुग्गुल धूप मुझको प्रिय है और धतूरका पुष्प मुझको प्रिय

साधुपृष्टंत्वयादेवि कथयिष्येममप्रिये ॥ ७ ॥ शिवपूजाप्रकारोयं क्रियतेवचसागुरोः ॥ अभयंसर्वजन्तूनां दानंदेविमम प्रियम् ॥ ८ ॥ सत्यंतपःसमाख्यातं परदारविवर्जितम् ॥ प्रियोयंनियमोदेवि कर्मयल्लोकरञ्जनम् ॥ ९ ॥ ॐनमःशिवायेति मन्त्रोयमुररीकृतः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः सदेविममवल्लभः ॥ १० ॥ पापक्षयोभवेत्स्नानं धूपोमेगुग्गुलःप्रियः ॥ धत्तूरकश्चपुष्पंमे बिल्वपत्रंममप्रियम् ॥ ११ ॥ स्तुतिःशिवशिवायेति साहसंरणकर्मणि ॥ नबिभेतिनरोयस्तु तस्याग्रेसम्भवाम्यहम् ॥ १२ ॥ अन्नदानंगवांयत्तु नैवेद्यंममवल्लभम् ॥ पूर्णाहुत्यापराप्रीतिर्जायतेममसुन्दरि ॥ १३ ॥ शुश्रूषावल्लभंकष्टं यतीनांचतपस्विनाम् ॥ सूर्योदयेमहादेवि मध्याह्नेस्तमनेतथा ॥ १४ ॥ अर्घोयोदीयतेसूर्ये वल्लभोसौममप्रिये ॥ किंदानैःकिंतपोभिर्वा किंयज्ञैर्भक्तिवर्जितैः ॥ १५ ॥ एवंयावत्कथयति प्रश्नान्सर्वान्यथाक्रमम् ॥ तावद्ब्रह्मादयोदेवा विष्णुस्तत्राययौस्वयम् ॥ १६ ॥ विष्णुरुवाच ॥ नाहंपालयितुंशक्तस्त्वंददासिवरान्बहून् ॥ दैत्यानांदान

हैं व बिल्वपत्र मुझको प्रियहै ॥ ११ ॥ व शिव शिवाय ऐसी स्तुतिहै और युद्धके कर्म में साहस प्रिय है और जो मनुष्य डरता नहीं है उसके आगे मैं प्रगट होताहूँ ॥ १२ ॥ व गौवोंको जो अन्नदानहै वह नैवेद्य मुझको प्रिय है व हे सुन्दरि ! पूर्णाहुतिसे मेरे बड़ी प्रीति होतीहै ॥ १३ ॥ और संन्यासियों व तपस्वियों की सेवारूप कष्ट मुझको प्रियहै व हे महादेव ! सूर्योदय मध्याह्न और सायंकाल में ॥ १४ ॥ जो अर्घ सूर्यनारायण के लिये दिया जाता है हे प्रिये ! यह मुझको प्रिय है और भक्तिसे वर्जित दानों व तपों व यज्ञोंसे क्या होताहै ॥ १५ ॥ इसप्रकार जबतक क्रमपूर्वक सब प्रश्नोंको शिवजी कहैं तबतक वहां ब्रह्मादिक देवता व आपही विष्णुजी

आये ॥ १६ ॥ विष्णुजी बोले कि मैं पालन करनेके नहीं समर्थहूं क्योंकि हे महेश्वर ! दैत्यों, दानवों व राक्षसोंको तुम बहुतसे वरोंको देते हो ॥ १७ ॥ और पश्चात् वे विकारको प्राप्त होतेहैं व मुझसे कष्टसे मारनेके योग्य होतेहैं और पत्र व पुष्पही से तथा ॐकार व हे शिव ! ऐसा कहनेसे ॥ १८ ॥ हे देव ! मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होतेहैं तो कौन तुम्हारी भक्ति करै और जो इन्द्रादिक देवताहैं वे यज्ञोंसे पूजते हैं ॥ १९ ॥ व जो ब्राह्मण नहीं पूजते हैं उनके ऊपर तुम भिक्षा दानसे प्रसन्न होतेहो रुद्रजी बोले कि इन्द्रादिकों से मेरा कार्य नहींहै एक ब्रह्मा सृष्टि करैंगे ॥ २० ॥ व जिस किसी भांतिसे तुमको इससमय प्रजापालन करना चाहिये और मेरी यह

वानाञ्च राक्षसानांमहेश्वर ॥ १७॥ विकृतिंयातिपश्चात्ते कष्टवद्ध्याभवन्तिमे ॥ पत्रेणपुष्पमात्रेण ॐकारेणशिवेतिच ॥ १८ ॥ मुक्तिंयान्तिनरादेव तवभक्तिंकरोतुकः ॥ इन्द्रादयोपियेदेवा यज्ञैरपियजन्तिते ॥ १९ ॥ नयजन्तिद्विजायेता न् भिक्षादानेनतुष्यसि ॥ रुद्र उवाच ॥ इन्द्रादिभिर्नमेकार्यंब्रह्माएकःकरिष्यति ॥ २० ॥ येनकेनप्रकारेण प्रजाःपाल्या स्त्वयाधुना ॥ मदीयाप्रकृतिर्ह्येषा तांकथंत्यक्तुमुत्सहे ॥ २१ ॥ त्वयाहंब्रह्मणादेवैर्वरकर्मणियोजितः ॥ इदानीमेवकिंन ष्टो मुक्त्वादेवींतवाग्रतः ॥ २२ ॥ मूलमूर्तिंपरित्यज्य एकाकीविचराम्यहम् ॥ इत्युक्त्वासशिवोदेवस्तत्रैवान्तरधीय त ॥ २३ ॥ गतेतस्मिञ्शिवेतत्र संक्षोभःसुमहानभूत् ॥ उमाप्रोवाचचेन्द्रादीन् ब्रह्मविष्णुसुरांस्तथा ॥ २४ ॥ इदानीं किंमयाकार्यं भवद्भिःशिववर्जितैः ॥ अत्रान्तरेचयेचान्ये देवास्तत्रसमागताः ॥ २५ ॥ ऋषयोमुनयश्चैव तथानारदपर्व तौ ॥ गङ्गासरस्वतीनद्यो नागायक्षाःसमागताः ॥ २६ ॥ ब्रह्मादिभिःसमालोच्य कथमेतद्भविष्यति ॥२७॥ विष्णुरुवाच ॥

प्रकृतिहै उसको त्याग करनेके लिये कैसे उत्साहकरूं ॥२१॥ व तुमसे ब्रह्मासे और देवताओंसे मैं वरदानके कर्ममें युक्त कियागयाहूँ क्या इसीसमय तुम्हारे आगे देवीजीको छोड़कर मैं भागजाऊं ॥ २२ ॥ व मूल मूर्तिको छोड़कर मैं अकेले घूमताहूं यह कहकर वे शिवदेवजी वहीं अंतर्धान होगये ॥ २३ ॥ व उन शिवजीके जानेपर वहां बड़ाभारी क्षोभ हुआ और पार्वतीजीने इन्द्रादिक व ब्रह्मा, विष्णु आदिक देवताओं से कहा ॥ २४ ॥ कि इससमय शिवजीके विना आपलोगोंसे मेरा क्या कार्यहै इसी अवसरमें जो अन्य देवता वहां आयेथे ॥ २५ ॥ और ऋषि, मुनि व नारद, पर्वत तथा गङ्गा सरस्वती आदिक नदियां व जो नाग, यक्ष आये थे ॥ २६ ॥ वे ब्रह्मादिक

देवताओंसमेत समालोचना कर यह बोले कि यह किस प्रकार होगा ॥ २७ ॥ विष्णुजी बोले कि जहां शिवदेवजी गयेहैं वहां साथही चलिये और शीघ्रही परमेश्वरसे वे सब देवता भूतलमें जावें ॥ २८ ॥ सदाशिवजी राक्षस,दानव व दैत्योंको वर देतेहैं और जो सदैव ईर्षासे संयुतहैं उनकी पीड़ा मुझको करना चाहिये ॥ २९ ॥ व शिवजी, के देखनेपर स्वर्गगामियों की व्यवस्था मुझको करना चाहिये और जो वेदत्रयी के धर्मको छोड़कर अन्य धर्मकी उपासना करते हैं ॥ ३० ॥ वे मनुष्य प्रलयपर्यन्त नरकको प्राप्त होते हैं जब शिवजी हश्य हुये तब वे शिव पर्वत के वन में पैठगये ॥ ३१ ॥ और पर्वतोंके बीच में बैठकर दिव्य वस्त्रों को त्यागकर व गजचर्म को

सहैवगम्यतांतत्र यत्रदेवोगतःशिवः ॥ स्वल्पायासेनतेसर्वे देवायान्तुधरातले ॥ २८ ॥ रक्षोदानवदैत्यानां वरान्दत्ते
तिशङ्करः ॥ तेषांवाधामयाकार्या येचस्पर्द्धायुतास्सदा ॥ २९ ॥ दृष्टेशिवेमयाकार्या व्यवस्थास्वर्गगामिनाम् ॥ त्रयी
धर्मंपरित्यज्य येन्यंधर्ममुपासते ॥ ३० ॥ तेनरानरकंयान्तियावदाभूतसंप्लवम् ॥ यदादृश्यःशिवोजातःप्रविवेशगिरेर्व
नम् ॥ ३१ ॥ गिरीणांमध्यमास्थाय त्यक्त्वादिव्येचवाससी ॥ गजाजिनम्परित्यज्य त्यक्त्वामूर्तिंमहेश्वरः ॥ ३२ ॥
भित्त्वाभूमितलंदेवः स्थाणुरूपोबभूवह ॥ यस्मात्स्वयंबभूवेति भवस्तस्मात्स्वयंहरः ॥ ३३ ॥ अत्रान्तरेसुरानैवपश्य
न्तिमहेश्वरम् ॥ ज्ञानातीतंकलातीतं दिव्यध्यानव्यवस्थितम् ॥ ३४ ॥ ततोदेवाःप्रचलिताः कृत्वागौरींपुरःसराम् ॥
नन्दिभद्रादयःसर्वे देवाइन्द्रादयस्तथा ॥ ३५ ॥ स्कन्देनसहितादेवी सिंहारूढाययौस्वयम् ॥ अभिरुह्यगरुत्मन्तं ययौ
विष्णुःसनातनः ॥ ३६ ॥ हंसाधिरूढोभगवान् ब्रह्मायातिसपृष्ठतः ॥ ऐरावणंसमारुह्य देवराजोगतःस्वयम् ॥ ३७ ॥

छोड़कर तदनन्तर मूर्तिको त्यागकर महेश्वर ॥ ३२ ॥ देवजी भूमितलको फोड़कर स्तम्भरूप हुये जिस लिये वे आपही हुये इसीकारण शिवजी आपही भव ऐसे नामक हुये ॥ ३३ ॥ इसीअवसरमें वे सब देवता ज्ञानसे परे व कलाओंसेपरे तथा दिव्य ध्यानसे बाहर स्थित महादेवजीको नहीं देखतेथे ॥ ३४ ॥ तदनन्तर गौरीजीको अग्रगामिनीकर देवता चले व नन्दिभद्रादिक सब गण और इन्द्रादिक सब देवता चले ॥ ३५ ॥ और स्वामिकार्तिकेयसमेत देवी पार्वतीजी आपही सिंहपै चढ़कर चलीं व गरुड़पै चढ़कर सनातन विष्णुजी गये ॥ ३६ ॥ और हंस पै चढ़कर वे भगवान् ब्रह्माजी पीछेसे चले व ऐरावतपै चढ़कर आपही सुरराजजी गये ॥ ३७ ॥ और ब्रह्मा

व सरस्वती देवी और यमुना तथा शारद्वती व देवता आये और सब नाग, यक्ष व किन्नर आये ॥ ३८ ॥ सब संक्षेपसे वहां गये जहां कि महेश्वर देवजी थे और पर्वतके शिखरपै चढ़कर अम्बादेवीजी स्थित हुईं ॥ ३९ ॥ जब ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओंने सब ओर से स्तुति किया तब उन भगवान् सदाशिवदेवजीको उन्होंने देखा ॥ ४० ॥ तदनन्तर सब देवता प्रसन्न हुये और अम्बाजी प्रसन्न हुईं व जो गण थे वे प्रसन्न हुये व पार्वतीदेवी उनसे बोलीं कि हे देव ! तुम कैलासपर्वतपर चलो ॥ ४१ ॥ महादेवजी बोले कि यदि सब देवता प्रसन्न होवैं व गङ्गादिक नदियां प्रसन्न होवैं तो रैवत पर्वतपै विष्णुजी स्थित होवैं व अम्बाजी यहीं स्थित होवैं ॥ ४२ ॥ और

गङ्गासरस्वतीदेवी यमुनाचशरद्वती ॥ देवताश्चागताःसर्वा नागायक्षाश्चकिन्नराः ॥ ३८ ॥ गताःसंक्षेपतःसर्वेयत्रदेवोमहेश्वरः ॥ अधिरुह्यगिरेःशृङ्गमम्बादेवीव्यवस्थिता ॥ ३९ ॥ ब्रह्माविष्णुर्यदादेवाः स्तुतिंचक्रुःसमन्ततः ॥ ददृशुस्तंतदादेवं भगवन्तंसदाशिवम् ॥ ४० ॥ ततोहृष्टाःसुराःसर्वे अम्बाहृष्टागणाश्चये ॥ गम्यतान्देवकैलासो देव्यावैसप्रणोदितः ॥ ४१ ॥ ईश्वर उवाच ॥ यदितुष्टाःसुराःसर्वे गङ्गाद्याःसरितस्तथा गिरौरैवतकेविष्णुरम्बाचात्रैवतिष्ठतु ॥ ४२ ॥ गङ्गासरस्वतीपुण्या यमुनात्रव्यवस्थिता ॥ स्वर्णरूपजलंयस्मात्स्वर्णरेखेतिसानदी ॥ ४३ ॥ वस्त्रापथमिदंक्षेत्रं भवोदेवोत्रतिष्ठतु ॥ तीर्थमेतन्मयाप्रोक्तं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ४४ ॥ तत्रस्नातोनरोनारी मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ इतिप्रोक्त्वाशिवोदेवः कलांन्यस्यभवेतदा ॥ ४५ ॥ पश्यतांसर्वदेवानां ययौकैलासपर्वतम् ॥ अम्बेतिस्कन्दवचनात् कलांन्यस्यगिरौतदा ॥ ४६ ॥ देवेनसहितादेवी वृषारूढाययौस्वयम् ॥ नारायणोगिरौरम्ये स्थितोरैवन्तकेस्वयम् ॥ ४७ ॥ कल्पादौच

गङ्गा, सरस्वती व पवित्र यमुनाजी यहीं स्थित होवैं जिस लिये स्वर्णरूपी जल है उसीकारण वह स्वर्णरेखा नदी है ॥ ४३ ॥ और जो यह वस्त्रापथक्षेत्रहै यहां भवदेवजी स्थित होवैं मैंने भुक्ति मुक्तिको देनेवाले इस क्षेत्रको कहा ॥ ४४ ॥ उसमें नहायाहुआ पुरुष व स्त्री सब पातकोंसे छूटजाती है ऐसा कहकर शिवदेवजी उस समय भवजी मे कलाको धरकर ॥ ४५ ॥ सब देवताओंके देखतेहुये कैलासपर्वत को चलेगये और अम्बा ऐसी भगवती स्वामिकार्त्तिकेयजी के वचन से उससमय पर्वत में कलाको न्यासकर ॥ ४६ ॥ शिवदेवसमेत देवीजी बैलपर चढ़कर आपही चलीगईं व आपही नारायणजी सुन्दर रैवन्तपर्वतपै स्थित हुये ॥ ४७ ॥ और कल्पादि

व युगादि में विष्णुजी सदैव पर्वत पै स्थित रहे व दैत्यों को नाशकर विष्णुजी पर्वत पै बहुत दिनोंतक स्थितरहे॥ ४८ ॥ और वे विष्णुदेवजी प्रलयपर्यन्त रैवन्त पर्वत पै रमण करते रहे व नारसिंहरूपसे हिरण्यकशिपु मारेगये ॥ ४९ ॥ व उसको मारकर उस समय नृसिंहजी यहां आये व उन्होंने नारसिंहरूपको छोड़ा और महावराह रूपसे उन्होंने हिरण्याक्षको मारा ॥ ५० ॥ व उसीरूपको छोड़कर देवेशजी रैवन्त पर्वतपै स्थित हुये और वे पृथुराजका शरीर कर देवकार्यके लिये ॥ ५१ ॥ सुरपूजित देवजी रैवन्तपर्वत पै बसतेभये व पुरातन समय पृथुजी ने यहां आकर देवपूजन किया ॥ ५२ ॥ तब पृथुजीने कण्ठ में जयमाला डाल दिया और देवेश पृथुजी ने

युगादौच स्थितोविष्णुःसदागिरौ ॥ बहुरात्रंस्थितोविष्णुः कृत्वादैत्यनिबर्हणम् ॥ ४८ ॥ रेमेरैवतकेदेवो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ नारसिंहेनरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ४९ ॥ हत्वातदागतश्चात्रनारसिंहंमुमोचह ॥ महावाराहरूपेण हिरण्याचोनिपातितः ॥ ५० ॥ तदेवमुक्त्वादेवेशः स्थितोरैवतकेगिरौ ॥ सपृथुःपार्थिवंकृत्वा देवकार्येणवैनृपः ॥ ५१ ॥ गिरौरैवतकेदेवउवाससुरपूजितः ॥ अत्रागत्यपृथुःपूर्वं चक्रेदेवप्रपूजनम् ॥ ५२ ॥ जयमालातदाकण्ठे पृथुनासंनिवेशिता ॥ दामोदरेतिदेवेशो नामचक्रेपृथुःस्वयम् ॥ ५३ ॥ वस्त्रापथेदेववरोभवस्थितो दामोदरोरैवतकेऽव्यवस्थितः ॥ अम्बेतिदेवीगिरिमूर्द्धिसंस्थिता देवाश्चसर्वेपरितःप्रविष्टाः ॥ ५४ ॥ क्षेत्राधिपास्तीर्थवरस्यरक्षकादेवेनमुक्ताभवसन्निधानतः ॥ पश्यन्ति येदेववरंभवंमुदा मोदन्तितेयान्तिदिवन्नराश्चते ॥ ५५ ॥ वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्यभवस्यचमयातव ॥ उत्पत्तिःकथितादेविकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ५६ ॥ शृणोतिपठतेयस्तु कथांचेमांसमाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकेमहीयते ॥ ५७ ॥

आपही दामोदर ऐसा नाम किया ॥ ५३ ॥ और देवताओं में श्रेष्ठ भवजी वस्त्रापथ क्षेत्रमें स्थित हुये व दामोदरजी रैवन्तपर्वतपै स्थित हुये व अम्बा ऐसी देवी पर्वत के शिखरपै स्थित हुई और सब देवता चारोंओर बैठगये ॥ ५४ ॥ और क्षेत्रके स्वामी जो उत्तम तीर्थके रक्षकथे वे भवजीके समीप शिवदेवसे मुक्त हुये और जो देवोत्तम भवजीको देखते हैं वे प्रसन्नता से हर्षको पाते हैं व वे मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ५५ ॥ हे देवि ! मैंने वस्त्रापथक्षेत्र व भवजी की उत्पत्ति को तुमसे कहा अन्य क्या सुना चाहती हो ॥ ५६ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य इस कथाको सुनता या पढ़ता है वह सब पापोंसे छूटकर स्वर्गलोक में पूजा जाता है ॥ ५७ ॥

और ब्रह्मघाती, मदिरा पीनेवाला, गर्भ या बालघाती व गुरुकी शय्या पै बैठनेवाला स्वर्णरेखानदी के जलमें नहाकर सब पापों से छूटजाता है ॥ ५८ ॥ और जो कीट पतङ्गादिक स्वर्णरेखा के जलमें मरते हैं वे भी सब पापोंसे छूटजाते हैं और स्वर्णरेखानदी के जलमें नहाकर जो पुरुष सन्ध्योपासन व श्राद्ध करता है ॥ ५९ ॥ वह वस्त्रापथतीर्थ में भवजी को पूजकर ब्रह्मलोक को जाताहै इस प्रकार पुरातन समय वस्त्रापथक्षेत्र में भवजी की उत्पत्ति हुई है ॥ ६० ॥ पार्वतीजी बोलीं कि तीर्थ का माहात्म्य व रैवतपर्वत का माहात्म्य आश्चर्यमय है और वैसेही भवदेव का व वस्त्रापथक्षेत्र का माहात्म्य आश्चर्यरूप है ॥ ६१ ॥ और गङ्गा, सरस्वती, गोमती व

ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्च भ्रूणहागुरुतल्पगः ॥ स्वर्णरेखाजलेस्नातो मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ५८ ॥ येचकीटपतङ्गाद्याः स्वर्णरेखाजलेस्मृताः ॥ स्वर्णरेखाजलेस्नात्वा सन्ध्यांश्राद्धंकरोतियः ॥ ५९ ॥ वस्त्रापथेभवम्पूज्य ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ इतिवस्त्रापथक्षेत्रे भवोत्पत्तिरभूत्पुरा ॥ ६० ॥ पार्वत्युवाच ॥ अहोतीर्थस्यमाहात्म्यं गिरेरैवतकस्यच ॥ भवस्यदेवदेवस्य तथावस्त्रापथस्यच ॥ ६१ ॥ गङ्गासरस्वतीचैव गोमतीनर्मदानदी ॥ स्वर्णरेखाजलेसर्वास्तथाब्रह्मादयःसुराः ॥ ६२ ॥ ब्रह्मेन्द्रविष्णुदेवानां देव्यानांनशङ्करस्यच ॥ वासोविरचितस्तत्र यावद्ब्रह्मदिनम्भवेत् ॥ ६३ ॥ क्षेत्रतीर्थप्रभावंच प्रसादात्तवनत्रयम् ॥ श्रुतंसविस्तरंसर्वमिदमत्यद्भुतम्मया ॥ ६४ ॥ महेश्वरप्रभोब्रूहि किञ्चकारजनेश्वरः ॥ भोजराजोमृगींप्राप्य सचसारस्वतोमुनिः ॥ ६५ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तासुसर्वासुनारीषु रूपौदार्यगुणाधिका ॥ नित्यंप्रमोदितासातु नित्यंमङ्गलकारिका ॥ ६६ ॥ माताचभगिनीपुत्रीस्त्रीषुसम्बन्धिनीतथा ॥ पिताभ्रातागुरुःपुत्रःपुरुषेषुतथाकृता ॥ ६७ ॥

नर्मदानदी ये सब स्वर्णरेखानदी के जलमें हैं वैसेही ब्रह्मादिक देवता स्वर्णरेखा नदी में स्थित हैं ॥ ६२ ॥ और जबतक ब्रह्माका दिन होताहै तबतक वहां ब्रह्मा, इन्द्र व विष्णुदेव का और देवियों का व शङ्करजी का निवास निर्मित कियागया है ॥ ६३ ॥ आपकी प्रसन्नता से मैंने विस्तारसमेत इस बड़े अद्भुत सब क्षेत्र व तीर्थ के प्रभाव को सुना व त्रिलोक को सुना ॥ ६४ ॥ हे प्रभो, महेश्वरजी ! भोजराज नरपाल ने मृगीको पाकर क्या किया है व सारस्वत मुनि ने क्या कियाहै इसको मुझ से कहिये ॥ ६५ ॥ महादेवजी बोले कि उन सब स्त्रियोंमें रूप व उदारता गुणमें अधिक वह स्त्री नित्यही प्रसन्न रहतीथी व नित्य मङ्गलकारिणीथी ॥ ६६ ॥ और

स्त्रियोंमें वह माता, बहन, पुत्री सम्बन्धिनी कीगई तथा पुरुषों में पिता, भाई, गुरु व पुत्र कीगई ॥ ६७ ॥ इस प्रकार गुणवती स्त्रीको पाकर मनुष्यों के स्वामी राजा भोज प्रसन्न हुये व सारस्वतमुनिकी प्रशंसाकर वचनबोले ॥ ६८ ॥ कि हे प्रभो ! तुमने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सूर्य, इन्द्र, अग्नि व पवनगणोंको ब्रह्मचर्य व तपस्या से प्रसन्न कियाहै ॥ ६९ ॥ तुम मेरे परम देवता हो और पिता, माता, गुरु व प्रभुहो कि जिन तुमने मुझसे अन्य जन्मके वृत्तान्तको प्रत्यक्ष कहा ॥ ७० ॥ सौराष्ट्र देशमें बड़ाभारी रैवतकपर्वत प्रसिद्धहै और वस्त्रापथक्षेत्र में स्वयंभू भगवान् प्रसिद्ध हैं ॥ ७१ ॥ और ऊर्जयन्त पर्वतके ऊपर गौरी, स्वामिकार्त्तिकेय व गणनायक हैं

एवंगुणवतींभार्याम्प्राप्यहृष्टोजनेश्वरः ॥ सारस्वतंमुनिंस्तुत्वा राजावचनमब्रवीत् ॥ ६८ ॥ ब्रह्माविष्णुर्हरःसूर्य इन्द्रोग्निर्मरुतांगणाः ॥ ब्रह्मचर्येणतपसा त्वयासन्तोषिताःप्रभो ॥ ६९ ॥ दैवतंपरमंमेत्वं पितामातागुरुःप्रभुः ॥ येनजन्मान्तरंसर्वं प्रत्यक्षंकथितंमम ॥ ७० ॥ सुराष्ट्रदेशेविख्यातो गिरिरैवतकोमहान् ॥ भवःस्वयम्भूर्भगवान् क्षेत्रेवस्त्रापथे श्रुतः ॥ ७१ ॥ ऊर्जयन्तगिरौमूर्ध्नि गौरीस्कन्दगणेश्वराः ॥ भवम्भावयतःसर्वे संस्थिताभववासरम् ॥ ७२ ॥ वामनोनगरम्प्राप्य ध्यात्वासिद्धेश्वरंशिवम् ॥ जित्वादैत्यंबलिंबद्ध्वास्वयंरैवतकेस्थितः ॥ ७३ ॥ त्यक्त्वाराज्यंप्रियान्पुत्रान् पत्त्यश्वरथकुञ्जरान् ॥ पुत्रेराज्यंप्रतिष्ठाप्य गन्तव्यंनिश्चितंमया ॥७४॥ त्वत्प्रसादाच्छ्रुतंसर्वं गम्यतेयदिदृश्यते ॥ सूर्यलोकेसोमलोक इन्द्रलोकेहरिःस्वयम् ॥ ७५ ॥ ब्रह्मलोकमतिक्रम्य यास्येहंशिवमन्दिरम् ॥ ७६ ॥ श्रुत्वाहिवाक्यंविविधंनरेन्द्रात्प्रहृष्टरोमासमुनिर्बभूव ॥ जिज्ञासमानोहिनृपस्यसर्वं निवारयामासमुनिर्नरेन्द्रम् ॥ ७७ ॥ गृहेपिदेवाहरविष्णु

भवजी को ध्यान करतेहुये वे सब शिवजीके दिनतक स्थित रहतेहैं ॥ ७२ ॥ और वामनजी नगरको प्राप्त होकर सिद्धेश्वर शिवजी को ध्यानकर बलि दैत्यको जीत कर व बाँधकर आपही रैवतकपर्वतपै स्थितहुये ॥ ७३ ॥ राज्य व प्यारे पुत्रोंको छोड़कर और पैदल, घोड़े, रथ व हाथियोंको त्यागकर राज्यको पुत्रमें थापकर मुझ को निश्चयकर जाना चाहिये ॥ ७४ ॥ तुम्हारी प्रसन्नतासे सब सुनागया और यदि गमन किया जाताहै व सूर्यलोक, चन्द्रलोक तथा इन्द्रलोक में यदि आपही विष्णु देखे जातेहैं ॥ ७५ ॥ तो मैं ब्रह्मलोकको नांघकर शिवमन्दिरको जाऊंगा ॥ ७६ ॥ नरेन्द्र से अनेक भांति के वचनको सुनकर वे मुनि प्रसन्न रोमोंवालेहुये

और राजाके सब वृत्तान्तको जाननेकी इच्छावाले उन मुनिने नरेन्द्र भोजराज को मना किया ॥ ७७ ॥ कि हे राजन् ! घरमें भी शिव व विष्णु आदिक देवताहैं और जल, कुश व तिल हैं इस लिये हे नृपते ! अनेक देशभेदोंके देखने के लिये तुमको भी मन रोकना चाहिये ॥ ७८ ॥ उन मुनिके इसप्रकार वचनको सुनकर नृपश्रेष्ठ भोज उदासीनमुख होकर मुनिके चरणों को पकड़कर बोले कि हे मुने ! तुमको ऐसा न कहना चाहिये क्योंकि मुझको निश्चयकर जाना चाहिये ॥ ७९ ॥ जहां नारायणजी स्थित हैं वहां कैसे जावै यह कहिये व क्या ग्रहण करना चाहिये क्या भोजन करना चाहिये क्या देना चाहिये व क्या नहीं दियाजाता है ॥ ८० ॥

मुख्या जलानिदर्भान्नृपतेतिलाश्च ॥ अनेकदेशान्तरदर्शनार्थं मनोनिवार्यंन्नृपतेत्वयापि ॥ ७८ ॥ इतिश्रुत्वावच स्तस्य मुनेर्नृपतिसत्तमः ॥ विवर्णवदनोभूत्वा प्रगृह्यचरणौमुनेः ॥ मुनेनैवंत्वयावाच्यं गन्तव्यंनिश्चितंमया ॥ ७९ ॥ नारायणःस्थितोयत्र कथयस्वकथंव्रजेत ॥ किंग्राह्यंकिंचभोक्तव्यं किंदेयंकिन्नदीयते ॥ ८० ॥ तीर्थोपवासःस्नानंच स न्ध्यास्नानविधिक्रमः ॥ पूजानिद्राजपोरात्रौ सर्वसंक्षेपतोवद ॥ ८१ ॥ सारस्वत उवाच ॥ सौराष्ट्रदेशेगन्तव्यं गिरौरै वतकेयदि ॥ नृपयात्राविधिंवक्ष्ये त्वमेकाग्रमनाःशृणु ॥ ८२ ॥ बृहस्पतिबलंगृह्य सूर्यसन्तर्प्यचोत्तमम् ॥ वामतःपृष्ठतः सर्वं कृत्वासंशोध्यवासरम् ॥ ८३ ॥ चन्द्रलग्नग्रहान्ज्ञात्वाबलिष्ठान्जन्मराशितः ॥ शकुनंचशुभंबुद्ध्वा प्रस्थातव्यंन्नृ पैर्नृप ॥ ८४ ॥ तीर्थेसदैवगन्तव्यं सर्वेमासाश्चशोभनाः ॥ तिथयश्चोत्तमाःसर्वाः स्नानदानार्चनादिषु ॥ ८५ ॥ अष्ट

और तीर्थोपवास, स्नान, सन्ध्या व स्नानकी विधिका क्रम और पूजन व रात्रिमें निद्रा का जीतना इस सबको संक्षेपसे कहिये ॥ ८१ ॥ सारस्वत बोले कि हे राजन्! सौराष्ट्रदेश में यदि रैवतक पर्वत पर तुमको जानाहै तो यात्राकी विधिको मैं कहताहूं तुम एकाग्रमन होकर सुनो ॥ ८२ ॥ कि बृहस्पति के बलको ग्रहणकर व उत्तम सूर्यनारायण को तर्पणकर अन्य सब वाम व पीठपर करके दिनको शोधकर ॥ ८३ ॥ हे राजन्! जन्मकी राशिसे चन्द्रमा, लग्न व ग्रहोंको बलिष्ठ जानकर व उत्तम शकुन जानकर राजाओं को प्रस्थान करना चाहिये ॥ ८४ ॥ व तीर्थमें सदैव जानना चाहिये और सब महीना उत्तम हैं व स्नान,दान व पूजनादिकों में सब

तिथियां उत्तम हैं ॥ ८५ ॥ और अष्टमी, चौदसि व मासान्त तथा पौर्णमासी दिनमें और संक्रान्ति व ग्रहणसमय में ये काल भवजी के पूजन में कहेहैं ॥ ८६ ॥ और कैलास पर्वत को छोड़कर व देवी पार्वतीजीको व आयेहुये देवताओं को त्यागकर वैशाख में पौर्णमासी तिथिमें पृथ्वीको फोड़कर भवजी हुयेहैं ॥ ८७ ॥ हे देवि! उसी दिन वासुकिने स्वर्णरेखानदीके जलसे सब पापोंको नाशनेवाले मार्गको पायाहै ॥ ८८ ॥ और ऐरावत के पैरसे दबेहुये ऊर्जयन्त महागिरिने गजपाद से टपजेहुये बहुत पवित्र जलको बहाया ॥ ८९ ॥ सब ब्रह्मादिक देवता व गङ्गादिक नदियां वस्त्रापथ महाक्षेत्र में भवजी के भाव से प्राप्तहुये ॥ ९० ॥ हे राजन्! वस्त्रापथक्षेत्रके

म्याञ्चचतुर्द्दश्यां मासान्तेपूर्णिमादिने ॥ संक्रान्तौग्रहणेकाला एतेप्रोक्ताभवार्चने ॥ ८६ ॥ कैलासंपर्वतंत्यक्त्वा देवींदेवांश्चसङ्गतान् ॥ वैशाखेपञ्चदश्यान्तु भूमिंभित्त्वाभवोऽभवत् ॥ ८७ ॥ तस्मिन्नेवदिनेदेवि स्वर्णरेखानदीजलात् ॥ पन्थानंवासुकिःप्राप सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ८८ ॥ ऐरावतपदाक्रान्त ऊर्जयन्तोमहागिरिः ॥ सुस्रावतोयंबहुधा गजपादोद्भवंशुचि ॥ ८९ ॥ देवाब्रह्मादयःसर्वे गङ्गाद्याःसरितस्तथा ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे भवभावेनसङ्गताः ॥ ९० ॥ वस्त्रापथस्यक्षेत्रस्य प्रमाणंशृणुभूपते ॥ हरस्यपततोभूमौ पतितंवस्त्रभूषणम् ॥ ९१ ॥ तावन्मात्रंस्मृतंक्षेत्रं देवैर्वस्त्रापथंततः ॥ उत्तरेणनदीभद्रा पूर्वस्यांयोजनद्वयम् ॥ ९२ ॥ दक्षिणेचबलेस्थानमूर्ज्जयन्तींनदीमनु ॥ अपरस्यांपरंनद्योःसङ्गमंवामनात्पुरः ॥ ९३ ॥ एतद्वस्त्रापथंक्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ क्षेत्रस्यविस्तरोज्ञेयो योजनानांचतुष्टयम् ॥ ९४ ॥ वैशाखेपञ्चदश्यान्तु भवम्भावेनपश्यति ॥ पूज्यतेशिवलोकेच स्थीयतेब्रह्मवासरम् ॥ ९५ ॥ अतोवसन्तेसम्प्राप्ते प्रयाणंकुरुभूपते ॥

प्रमाण को सुनिये कि पृथ्वीमें गिरतेहुये शिवजी का वस्त्ररूप भूषण गिरा ॥ ९१ ॥ उसी कारण उतने प्रमाणभर देवताओं से वस्त्रापथक्षेत्र कहागया है उत्तर व पूर्व दिशामें दो योजन पर भद्रा नदीहै ॥ ९२ ॥ और ऊर्जयन्तीनदी के पश्चात् दक्षिणमें बलिका स्थानहै व पश्चिममें वामनसे आगे नदियों का उत्तम सङ्गम है ॥ ९३ ॥ भुक्ति, मुक्तिको देनेवाला यह वस्त्रापथक्षेत्र है और क्षेत्रका विस्तार चार योजन जाननेयोग्य है ॥ ९४ ॥ वैशाखमें पौर्णमासी तिथिमें जो भक्तिसे भवजी को देखता है वह शिवलोक में पूजाजाता है व ब्रह्माके दिनतक स्थित होताहै ॥ ९५ ॥ इस कारण हे राजन्! वसन्त प्राप्त होनेपर यात्रा करो नियमों को ग्रहणकर पवित्र होकर

स्नानकर जितेन्द्रिय ॥ ९६ ॥ जो पुरुष हाथी, घोड़े व रथोंको त्यागकर पैदल जाताहै वह पुष्पकविमान के द्वारा शिवमन्दिर को जाताहै ॥ ९७ ॥ और एक भक्त, नक्त व्रत, अयाचित, भिक्षाहार, जल व फलाहार से ॥ ९८ ॥ तथा उपवास व चान्द्रायणादि कृच्छ्रव्रत से और शाकभोजन से जो जाताहै वह सुन्दरीगणों से वीज्यमान होकर गणों समेत स्वर्गको जाताहै ॥ ९९ ॥ और मार्गमें मलस्नान न करै तथा चरणोंमें उबटन न लगावै क्योंकि मलको धारण किये, पवित्र शरीर व दण्डको हाथ में लिये और जितेन्द्रिय ॥ १०० ॥ व शीत, घाम, जलसे विकल तथा शिवजी के स्मरणमें तत्पर मनुष्य यदि यात्रा करताहै तो वह सूर्यमण्डलको फोड़कर जाता

निगृह्यनियमान्भूत्वा शुचिःस्नातोजितेन्द्रियः ॥ ९६ ॥ गजवाजिरथांस्त्यक्त्वा पादाभ्यांयातियोनरः ॥ पुष्पकेनविमानेन सयातिशिवमन्दिरम् ॥ ९७ ॥ एकभक्तेननक्तेन तथैवायाचितेनच ॥ भिक्षाहारेणतोयेन फलाहारेणवा यदि ॥ ९८ ॥ उपवासेनकृच्छ्रेण शाकाहारेणयातियः ॥ सयातिसुन्दरीवृन्दवीज्यमानोगणैर्दिवि ॥ ९९ ॥ मलस्नानंविनामार्गे पादाभ्यङ्गविवर्जितः ॥ मलधारीशुचितनुर्यष्टिहस्तोजितेन्द्रियः ॥ १०० ॥ शीतातपजलक्लिष्टः शिवस्मरणतत्परः ॥ यदियातिनरोयाति सभित्त्वासूर्यमण्डलम् ॥ १ ॥ नरकादपिस्वपितॄन्मातृतःपितृतस्तथा ॥ अक्षय्यंसप्तसप्तैव नयेद्देवशिवालयम् ॥ २ ॥ लुण्ठन्भूमौयोयाति मृगचर्मावगुण्ठितः॥दण्डप्रमाणभूमेर्वासंख्यांकुर्वन्नरोयदि॥ ३॥ अरण्येनिर्जलेदेशे जलान्नपरिपीडितः ॥ शरणंशङ्करंगत्वा मनोनिश्चलमात्मनः ॥ ४ ॥ सप्तद्वीपवतींपृथ्वीं समुद्रवसनांनृप ॥ सलब्ध्वाबहुभिर्यज्ञैर्यजेद्दत्त्वाचमेदिनीम् ॥ ५ ॥ सप्तभौमविमानस्थो दिव्यदेहोहराकृतिः ॥ निरीक्ष्यमेदिनीं

है ॥ १ ॥ व हे नृपोत्तम ! वह मातृकुल व पितृकुलमे सात सात पुश्तिवाले अपने पितरोंको नरकसे अक्षय शिवालय में प्राप्तही करताहै ॥ २ ॥ और मृगचर्मको पहिने भूमि में लोटता हुआ जो पुरुष जाताहै व यदि दण्डके प्रमाणसे पृथ्वीकी संख्या करता हुआ मनुष्य ॥ ३ ॥ वन व निर्जलदेशमें जल तथा अन्नसे पीड़ित होकर शङ्करजीको शरणके योग्यकर और अपने मनको निश्चल कर यात्रा करता है ॥ ४ ॥ वह हे राजन् ! समुद्र वसनवाली सप्तद्वीपवती पृथ्वीको पाकर बहुत यज्ञोंसे पूजन

करताहै और पृथ्वीको देकर ॥ ५ ॥ सात भूमियोंवाले विमान पै बैठकर दिव्यदेह व शिवाकार वह पृथ्वीको देखकर धीरे धीरे मङ्गलरूप मण्डन (भूषण) को किये ॥६॥ मृग नयनी के भुजाओं के स्पर्शसमेत स्थूल स्तनों से लग्न होकर मनुष्य गीत व बाजनों के विनोद से सत्यलोक को जाता है ॥ ७ ॥ और भुजाओं का बन्धन कर चरणों को बाधकर जो मनुष्य धीरे २ मौनसे जाता है वह मायाको छोड़कर शिवजी के स्थानको पाता है ॥ ८ ॥ और ब्रह्मघाती या मदिरा पीनेवाला व चोर और गुरुकी शय्या पै जानेवाला व कृतघ्न पातकों से छूटजाता और मरकर वह मुक्ति को पाता है ॥ ९ ॥ व माता, पिता, देश, भाई, स्वजन व बान्धव, ग्राम और

मन्दं कृतमङ्गलमण्डनः ॥ ६ ॥ मृगनेत्राभुजस्पर्शलग्नपीनपयोधरः ॥ गीतवाद्यविनोदेन सत्यलोकंव्रजेन्नरः ॥ ७ ॥ विधायभुजबन्धंवा पादौबद्ध्वाशनैःशनैः ॥ मौनेनमानुषोमायां त्यक्त्वायातिशिवालयम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मघ्नोवासुरापोवा स्तेयीवागुरुतल्पगः ॥ कृतघ्नोमुच्यतेपापैर्मृतोमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ मातरंपितरंदेशं भ्रातृस्वजनबान्धवान् ॥ ग्रामंभूमिंगृहंत्यक्त्वा कृत्वाचेन्द्रियसंयमम् ॥ १० ॥ गृहीत्वाशिवसंस्कारं नरोभ्राम्यतिभूतले ॥ द्रष्टुंतीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ ११ ॥ कस्मिंस्तीर्थेशुभेस्थाने स्थित्वासंसारबन्धनम् ॥ अभयंदक्षिणान्दत्त्वा शिवशिवेतिप्रभाषकः ॥ १२ ॥ एकान्तेनिर्जनस्थाने शिवस्मरणतत्परः ॥ यदितिष्ठतितंयान्ति नमस्कर्तुंनराधिपाः ॥ १३ ॥ आयान्तिदेवताःसर्वाः चिह्नंतस्यनिरीक्षितुम् ॥ विमानवृन्दैर्नेतव्यः कदासौपुरुषोत्तमः ॥ १४ ॥ यदातुपञ्चत्वमुपैतिकाले कलेवरंस्कन्धकृतंनरैश्च ॥ निरीक्ष्यमाणःसुरसुन्दरीभिः सनीयमानोमदविह्वलाभिः ॥ १५ ॥ सुरेन्द्रसूर्याग्निधनेशच

भूमिको छोड़कर तथा इन्द्रियों का संयमकर ॥ १० ॥ शिवदीक्षा को लेकर मनुष्य अनेक तीर्थों व पवित्र देवमन्दिरों को देखने के लिये पृथ्वी में घूमता है ॥ ११ ॥ व किसी तीर्थ तथा उत्तम स्थान में स्थित होकर संसार के बन्धनको छोड़ अभय दक्षिणा को देकर हे शिव ! हे शिव ! ऐसा कहनेवाला पुरुष ॥ १२ ॥ यदि एकान्त व निर्जन स्थान में शिवजी के स्मरण में तत्पर होकर टिकता है तो उसको प्रणाम करने के लिये राजालोग जाते हैं ॥ १३ ॥ व सब देवता उसके चिह्नको देखने के लिये आते हैं कि कब यह उत्तम पुरुष विमानगणों से लेजाने योग्य होगा ॥ १४ ॥ और जब काल में उसका शरीर मृत्यु को प्राप्त होताहै व मनुष्यों से कन्धे पै किया

जाता है तब मदसे विकल सुरस्त्रियोंसे देखा जाताहुआ वह लायाजाताहै ॥ १५ ॥ और सुरेन्द्र, सूर्य, अग्नि, कुबेर व चन्द्रमा से भलीभांति पूजाजाता हुआ वह शिव रूपधारी शिवभक्त वेगसे सुरादिलोकों को छोडकर शिवजीके स्थानमें टिकता है ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्विंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जौन वस्तुके दानसों मिलत अहै फल जौन । कह्यो त्रिशत पच्चीस मेंकथा रुचिर सब तौन ॥ सारस्वतजी बोले कि गङ्गाजल, शहद घृत, कुङ्कुम, अगुरु,

न्द्रैः सम्पूज्यमानःशिवरूपधारी ॥ सुरादिलोकान्प्रविमुच्यवेगाच्छिवालयेतिष्ठतिरुद्रभक्तः ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेचतुर्विंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

सारस्वत उवाच ॥ गङ्गोदकंमधुघृतं कुङ्कुमागुरुचन्दनम् ॥ गुग्गुलंबिल्वपत्राणि बकपुष्पंचयोवहेत् ॥ १ ॥ पादचारीशुचितनुर्भारंस्कन्धेनिधायच ॥ तीर्थेस्नात्वाशिवंविष्णुं ब्रह्माणंशङ्करप्रियम् ॥ २ ॥ दृष्ट्वानिवेदयेद्यस्तु समुक्तःसर्वबन्धनैः ॥ सनरोगणतांयाति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३ ॥ कलत्रमित्रपुत्रैर्वा भ्रातृभिःसुजनैर्जनैः ॥ सहितोन्यनरैर्याति तीर्थेदेवंविचिन्त्यच ॥ ४ ॥ देवमूर्तिंशुभांकृत्वा रथस्थांसुप्रतिष्ठिताम् ॥ चन्दनागुरुकर्पूरैरर्चितांकुङ्कुमेनच ॥ ५ ॥ पूजयन्विविधैःपुष्पैर्धूपदीपादिकैर्नृप ॥ गीतनृत्यैःसवादित्रैर्हास्यैर्लास्यैरनेकधा॥६॥धरित्रींकाञ्चनंगाञ्चजलान्नवसनानिच॥

चन्दन, गुग्गुल, बिल्वपत्र और गूमा के फूलको लेजाता है ॥ १ ॥ और पैदल चलकर पवित्र शरीरवाला जो पुरुष भारको कन्धे पै धरकर तीर्थ में नहाकर शिव, विष्णु व शिवप्रिय ब्रह्माको देखकर निवेदन करता है वह सब बन्धनों से छूटजाता है और वह पुरुष प्रलयपर्यन्त गणत्व को प्राप्त होता है ॥ २ । ३ ॥ और तीर्थमें शिवदेवजी को ध्यानकर स्त्री, मित्र, पुत्र, भाई व स्वजनलोगोंसमेत तथा मनुष्य अन्य मनुष्योंसमेत स्वर्गको जाता है ॥ ४ ॥ और उत्तम देवमूर्त्ति को बनाकर भलीभांति प्रतिष्ठित व रथ पै स्थित चन्दन, अगुरु, कपूर से व कुङ्कुम से रचितमूर्त्ति को ॥ ५ ॥ हे राजन् ! अनेक भांति के पुष्पों से पूजताहुआ मनुष्य धूप,

दीपादिकों से तथा बाजनसमेत गीत, नृत्य, हास्य व अनेक प्रकार के नाट्योंसे पूजकर ॥ ६ ॥ सुवर्णसमेत पृथ्वी, गौ, जल, अन्न, वसन और तृण, इन्धन और प्यारी वाणीको देताहुआ पुरुष यदि जाताहै ॥ ७ ॥ तो देवाङ्गनाओं के हस्तग्राह में ग्रहण कियाहुआ पुरुष नन्दनवनमें प्राप्त होकर जबतक चन्द्रमा व नक्षत्र रहतेहैं तबतक उत्तम भोगोंको भोगता है ॥ ८ ॥ और तीर्थमें जाताहुआ जो पुरुष दैवतीर्थ को न देखकर रोगों से प्राणोंको छोडता है वह देखेहुये तीर्थ के फलको पाता है ॥ ९ ॥ और पुत्रों व मित्रों मे भी अनेक भांति के संसारके दोषों को विवेक कर जो बन्धन से छूटजाताहै वह मनुष्य बुद्धिसे परम प्रधानको जानकर सब तीर्थोंको करता

तृणेन्धनेप्रियांवाणीं यच्छन्यातिनरोयदि ॥ ७ ॥ देवाङ्गनाकरग्राहे गृहीतोनन्दनेवने ॥ प्राप्यभुङ्क्तेशुभान्भोगान् यावदाचन्द्रतारकम् ॥ ८ ॥ तीर्थंचसचरन्योवै रोगैःप्राणान्विमुञ्चति ॥ अदृष्ट्वादैवतंतीर्थं दृष्टंतीर्थफलंलभेत् ॥ ९ ॥ संसारदोषान्विविधान्विविच्य पुत्रेषुमित्रेष्वपिमुक्तबन्धः ॥ विज्ञायबुद्ध्यापुरुषंप्रधानं ससर्वतीर्थानिकरोतिदेही ॥ १० ॥ आजन्मजन्मान्तरसञ्चितानि दग्ध्वासपापानिनरोनरेन्द्र ॥ तेजोमयंसर्वगतंपुराणं भवोद्भवंपश्यतिमुच्यतेसः ॥ ११ ॥ तीर्थेविप्रवचोग्राह्यं स्नात्वासन्ध्यार्चनादिके ॥ दर्भांस्तिलान्हविष्यान्नं प्रयुञ्ज्याच्छ्रद्धयाततः ॥ १२ ॥ अगस्त्यंभृङ्गराजञ्च पुष्पंशतदलंशुभम् ॥ कर्पूरागुरुश्रीखण्डं कुङ्कुमंतुलसीदलम् ॥ १३ ॥ तीर्थेसङ्कल्पितंमर्त्यैस्तदनन्त्यंप्रजायते ॥ बिल्वप्रमाणपिण्डानि देयानितीर्थभूमिषु ॥ १४ ॥ ताम्बूलफलनैवेद्यतिलदर्भोदकेनच ॥ मासान्तरेशुक्लपक्षे क्षयाहे

है ॥ १० ॥ व हे नरेन्द्र ! वह मनुष्य जन्मसे लगाकर जन्मके मध्य में इकट्ठा किये हुये पापोंको जलाकर तेजोमय, सर्वव्यापी, संसार को उत्पन्न करनेवाले, पुराण पुरुष को देखताहै और वह मुक्त होजाता है ॥ ११ ॥ तीर्थ में स्नान व सन्ध्या पूजनादिक में ब्राह्मण का वचन ग्रहण करना चाहिये तदनन्तर कुश, तिल व हविष्यान्न को श्रद्धासे प्रयुक्तकरै ॥ १२ ॥ और अगस्त्य, भृंगराज व कमल पुष्प उत्तम है तथा कपूर, अगुरु, चन्दन, कुंकुम व तुलसीदल ॥ १३ ॥ जो तीर्थ में सकल्प कियाजाताहै वह अनन्तताको प्राप्त होताहै और तीर्थकी भूमियोंमे बिल्वके प्रमाणभर पिंडोंको देनाचाहिये ॥ १४ ॥ व तांबूल, फल, नैवेद्य, तिल, कुश व जल

से मासान्तर, कृष्ण व पिता, माताके क्षयाह में ॥ १५ ॥ और गजच्छाया तेरासि व द्रव्य और द्विजोत्तम प्राप्त होनेपर पितरों के ऋणकी मुक्ति के लिये घरमें श्राद्ध करनाचाहिये ॥ १६ ॥ और जो नदीसमुद्र में जाती है उस नदी के समीप घर से सौगुना फल होताहै व हे राजन् प्रभास, पुष्कर, गया व पिंडतारकतीर्थ में ॥ १७ ॥ व हे राजन् ! प्रयाग व गोमती नदी और भव व दामोदरके आगे तथा नर्मदादिक तीर्थों में यदि मनुष्य श्राद्धकरै ॥ १८ ॥ तो सब पातकों से छूटेहुये पितर उत्तम गतिको पातेहैं और वह उत्तम सन्तान को पाकर अति उत्तम भोगोंको भोग कर ॥ १९ ॥ अन्तमें दिव्य विमान पै चढ़कर स्वर्गको जाताहै तथा जातकर्मादिक

मातृपैतृके ॥ १५ ॥ गजच्छायांत्रयोदश्यांद्रव्येप्राप्तेद्विजोत्तमे ॥ गृहेश्राद्धंप्रकुर्वीत पितॄणामृणमुक्तये ॥ १६ ॥ गृहा च्छतगुणंनद्यां यानदीयातिसागरम् ॥ प्रभासेपुष्करेराजन्गयायांपिण्डतारके ॥ १७ ॥ प्रयागेनृपगोमत्यां भवदामो दराग्रतः ॥ नर्मदादिषुतीर्थेषु कुर्याच्छ्राद्धंनरोयदि ॥ १८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताः पितरोयान्तिसद्गतिम् ॥ सन्तानमुत्तमं लब्ध्वा भुक्त्वाभोगाननुत्तमान् ॥ १९ ॥ दिव्यंविमानमारुह्य चान्तेयातिसुरालयम् ॥ जातकर्मादियज्ञेषु विवाहेगृहक र्मणि ॥ २० ॥ देवप्रतिष्ठाप्रारम्भे कूपवाप्यादिकर्मणि ॥ तृप्यन्तिदेवताःसर्वा हृष्यन्तिपितरोनृणाम् ॥ २१ ॥ वृद्धिश्रा द्धेकृतेगेहे जायतेसर्वमङ्गलम् ॥ कामःक्रोधश्चलोभश्च मोहोमद्यंमदादयः ॥ २२ ॥ मायामात्सर्यपैशून्यमविवेकोविचा रणा ॥ अहङ्कारोयदृच्छाच चापल्यंलोल्यतानृप ॥ २३ ॥ अन्यायसाधनायासप्रमादोद्रोहसाहसम् ॥ आलस्यंदीर्घसूत्र त्वं परदारोपसेवनम् ॥ २४ ॥ अल्पाहारोनिराहारः शोकश्चौर्यंनृपोत्तम ॥ एतान्दोषान्गृहेनित्यं वर्जयन्परिवर्त्त

यज्ञों में, विवाह व गृहकर्म में ॥ २० ॥ व देवताओं की प्रतिष्ठा के प्रारम्भ में व कूप तथा बावली इत्यादि के कर्म में सब देवता तृप्त होतेहैं और मनुष्यों के पितर प्रसन्न होतेहैं ॥ २१ ॥ और वृद्धि श्राद्ध करनेपर घरमें सब मंगल होताहै व काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्य व मदादिक ॥ २२ ॥ व हे राजन् ! माया, मात्सर्य, पिशुनता, अविवेक, अविचार, अहङ्कार, स्वच्छन्दता, चपलता, चंचलता ॥ २३ ॥ अन्याय साधन, परिश्रम, प्रमाद, द्रोह, साहस, आलस्य, दीर्घसूत्रता व पराई

स्त्री का सेवन ॥ २४ ॥ व हे नृपोत्तम! अत्याहार, निराहार, शोक, चोरी इन दोषों को नित्यही वर्जित करताहुआ जो पुरुष घरमें वर्तमान होताहै ॥ २५ ॥ वह मनुष्य भूमिका व देश तथा नगरका भूषण होताहै और यह श्रीमान् विद्वान् व कुलीन होताहै तथा वही पुरुषोत्तम होताहै ॥ २६ ॥ और कोई घरमें कामादिक से दोषोंको छोड़ने के लिये नहीं समर्थ होताहै और स्नान, संध्या तथा पितरोंका जप, होम व पितरों तथा देवताओंका ॥ २७ ॥ श्राद्ध और देवताका पूजन दोषसे छूटेहुये पुरुष के होताहै प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सरस्वती व समुद्र ॥ २८ ॥ गया व रुद्रपद तथा नर नारायण के आश्रममें व प्रभास पुष्कर, कृष्णा, गोमती और पिंडतारकमें ॥ २९ ॥ व

ते ॥ २५ ॥ सनरोमण्डनम्भूमेर्देशस्यनगरस्यच ॥ श्रीमान्विद्वान्कुलीनोसौ सएवपुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥ कामादिनागृहेदोषान् कश्चित्त्यक्तुंनशक्यते ॥ स्नानंसन्ध्याजपोहोमः पितृणांपितृदैवतम् ॥ २७ ॥ श्राद्धंदेवस्यपूजाच त्यक्तदोषस्यजायते ॥ प्रयागेचकुरुक्षेत्रे सरस्वत्यांचसागरे ॥ २८ ॥ गयायांवारुद्रपदे नरनारायणाश्रमे ॥ प्रभासेपुष्करेकृष्णे गोमत्यांपिण्डतारके ॥ २९ ॥ वस्त्रापथेगिरौपुण्ये तथादामोदरेनृप ॥ भीमेश्वरेनर्मदायां स्कन्देरामेश्वरादिषु ॥ ३० ॥ उज्जयिन्यांमहाकाले वाराणस्यांचभूर्भुवे ॥ कालिङ्गेमथुरायाञ्च सकृद्यातिनरोयदि ॥ ३१ ॥ सदोषैर्मुच्यतेसर्वैर्ब्रह्महत्यादिभिःकृतैः ॥ अपिकीटःपतङ्गोवा पक्षीश्वाशूकरोपिवा ॥ ३२ ॥ खरोष्ट्रौकुञ्जरोश्वापि मृगसिंहसरीसृपाः ॥ ज्ञानतोज्ञानतोराजंस्तेषुस्थानेषुयेमृताः ॥ ३३ ॥ सर्वेतेपुण्यकर्माणः स्वर्गेभुक्त्वासुखंबहु ॥ चातुर्वर्ण्येषुतेसर्वे जायन्तेकर्मबन्धनात् ॥ ३४ ॥ कर्मबन्धंविधूयाशु मुक्तियान्तिनराःपुनः ॥ यदितेतीर्थमरणात्स्वर्गस्थानप्रभावतः ॥ ३५ ॥ संप्रा

हे राजन्! वस्त्रापथतीर्थ तथा पवित्र पर्वतमें और दामोदर, भीमेश्वर, नर्मदा, स्वामिकार्त्तिकेय व रामेश्वरादिक तीर्थों में ॥ ३० ॥ व उज्जयिनी में महाकाल में तथा काशीमें भूर्भुवमें और कालिंग व मथुरामें यदि मनुष्य एकबार जाताहै ॥ ३१ ॥ तो वह कियेहुये ब्रह्महत्यादिक सब दोषोंसे छूटजाताहै व कीट, पतंग, पक्षी, कुत्ता व शूकर भी ॥ ३२ ॥ और गधा, ऊंट, हाथी, घोड़ा, मृग, सिंह व सांप हे राजन्! जो ज्ञान व अज्ञानसे उन स्थानों में मरतेहैं ॥ ३३ ॥ वे सब पुण्यकर्मी मनुष्य स्वर्ग में बहुत सुखको भोगकर कर्म के बन्धनसे चारोंवर्णों में उत्पन्न होतेहैं ॥ ३४ ॥ और फिर कर्मबन्धनको नाशकर मनुष्य शीघ्रही मुक्तिको पातेहैं और यदि वे तीर्थके

मरने के प्रभावसे स्वर्गस्थानको प्राप्त होतेहैं ॥ ३५ ॥ तो वे भरतखण्डमें प्राप्तहोकर अनेकों आश्चर्य से संयुत और बहुत पर्वतोंसे शोभित कर्मभूमिके बड़ेभारी ऐश्वर्य को पाते हैं ॥ ३६ ॥ जहां कि गंगादिक सब नदियां समुद्रों के साथ मिली हैं और पग २ पै निधान (खज़ाना) हैं व अनेकों तीर्थ हैं ॥ ३७ ॥ जिनके स्मरणही से सब पापों का नाश होताहै और बहुतसे पाताल के मार्गहैं व स्वर्गका मार्ग देखपड़ताहै ॥ ३८ ॥ आकाशमें सूर्यनारायण देख पड़तेहैं व हृदयमें शिवजी देखपड़तेहैं और ध्यान से व ज्ञानके योग से, तपस्या से तथा गुरुके वचन से ॥ ३९ ॥ व सत्य से और साहससे त्रिलोक देखपड़ताहै वेद स्मृति व पुराणों से जो पृथ्वी को

प्यभारतेखण्डे कर्मभूमिमहोदयम् ॥ अनेकाश्चर्यसंयुक्तं बहुपर्वतमण्डितम् ॥ ३६ ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वाः समुद्रैस्सहसङ्गताः ॥ पदेपदेनिधानानि सन्तितीर्थान्यनेकशः ॥ ३७ ॥ येषांस्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ पातालमार्गाबहवः स्वर्गमार्गश्चदृश्यते ॥ ३८ ॥ गगनेदृश्यते सूर्योहृदयेदृश्यतेहरः ॥ ध्यानेनज्ञानयोगेन तपसावचसागुरोः ॥ ३९ ॥ सत्येनसाहसेनैव दृश्यतेभुवनत्रयम् ॥ वेदस्मृतिपुराणैश्च येनपश्यन्तिभूतलम् ॥ ४० ॥ पातालंस्वर्गलोकञ्च वञ्चितास्तेनराइह ॥ येचरन्तिनराःस्त्रीषु कामासक्ताविचेतसः ॥ ४१ ॥ देहोन्यश्चवरस्त्रीणामन्यथातैश्चचिन्तितम् ॥ जन्मभूमिषुयेरक्ता जन्मनेजन्तवःपुनः ॥ ४२ ॥ मुक्तिमार्गात्पुनर्भ्रष्टा जायन्तेपशुयोनिषु ॥ ४३ ॥ धनानिसंप्राप्यवरांश्चकामान् द्विजातिमुख्यायविधायपूजाम् ॥ यच्छन्तिनोनिर्मलचेतसोये नराधमादैवहतामृतास्ते ॥ ४४ ॥ देहंसुपुष्टंनिरुजंचयौवनंलब्ध्वा नगङ्गादिषुयान्तियेनरः ॥ जीवन्मृताज्ञानविवर्जिताः खलाःगत्वानपश्यन्तिहरंमहेश्वरम् ॥ ४५ ॥

नहीं देखते हैं ॥ ४० ॥ और जो पाताल व स्वर्गलोक को नहीं देखते हैं वे मनुष्य इस संसार में वंचित होगये और कामदेव में लगेहुये तथा जो मूढ़ पुरुष स्त्रियों में विचरतेहैं ॥ ४१ ॥ उन्होंने यह अन्यथा विचाराहै कि उत्तम स्त्रियोंका शरीर अन्यहै और जो प्राणी फिर जन्मके लिये जन्मभूमियों में स्नेह कियेहैं ॥ ४२ ॥ वे मुक्तिमार्ग से भ्रष्ट होकर फिर पशुयोनियों में उत्पन्न होतेहैं ॥ ४३ ॥ और उत्तम कामनाओं व धनोंको पाकर जो निर्मल चित्तवाले पुरुष उत्तम ब्राह्मण के लिये पूजन कर धनको नहीं देतेहैं दैवसे मारेहुये वे नीचनर मरेहैं ॥ ४४ ॥ और जो मनुष्य पुष्ट शरीर व नीरोग यौवन को पाकर गंगादिक तीर्थों में नहीं जाते हैं वे ज्ञानसे

हित दुष्ट पुरुष जीतेहुये मरेहैं जो कि जाकर महेश्वर सदाशिवजीको नहीं देखतेहैं ॥ ४५ ॥ शुभ व अशुभ कर्मको काटकर तदनन्तर कल्याणकारिणी मुक्तिको चाहै तो यदि यह उत्तम काम मनुष्यों से सदैव न कियाजासकै ॥ ४६ ॥ तो नित्य उठकर स्नान करनाचाहिये व आपही विष्णु तथा महादेवको पूजना चाहिये और सत्य कहना चाहिये व हित करनाचाहिये और अपनी शक्तिसे दान देनाचाहिये ॥ ४७ ॥ और पराये अपवाद(निन्दा) से डरनाचाहिये व पराई स्त्रियोंको वर्जित करै तथा सुवर्ण व पृथ्वी का हरना और ब्राह्मणके द्रव्यको वर्जित करनाचाहिये ॥ ४८ ॥ और ब्राह्मण, स्त्री, राजा, बालक, वृद्ध व तपस्वी तथा पिता, माता व गुरुवोंका अप्रिय

छित्त्वाशुभाशुभंकर्म मुक्तिमिच्छेच्छिवान्ततः ॥ इदन्नशक्यतेकर्तुंशुभंकार्यंसदानरैः ॥ ४६ ॥ उत्थायोत्थायस्नातव्यं पूज्यौहरिहरौस्वयम् ॥ सत्यंवाच्यंहितंकार्यं दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ ४७ ॥ परापवादभीरुत्वं परदारान्विवर्जयेत ॥ सुवर्णभूमिहरणंब्रह्मस्वस्यविवर्जनम् ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणस्त्रीनरेन्द्राणां बालवृद्धतपस्विनाम् ॥ पितृमातृगुरूणाञ्च नाप्रियं मनसावहेत ॥ ४९ ॥ देशकालपरिज्ञानं पात्रापात्रविवेचनम् ॥ छायातृणान्नवासांसि तक्राग्नीन्धनकाञ्जिकाः ॥ ५० ॥ औषधं शाकमर्थिभ्यो दातव्यंगृहमेधिभिः ॥ एकादशीपञ्चदशीचतुर्दश्याष्टमीषुच ॥ ५१ ॥ अमावस्याव्यतीपाते संक्रान्ते ग्रहणेषुच ॥ वैधृतौपितृमातॄणां क्षयाहेदिवसेषुच ॥ ५२ ॥ युगादिमन्वादिदिने गृहेकार्योमहोत्सवः ॥ तीर्थेवागमनंकार्यं गृहाच्छतगुणंयतः ॥ ५३ ॥ इन्द्रियाणांजयःकार्यो मद्यद्यूतविवर्जनम् ॥ विवादगमनंयुद्धं गृहीयत्नेनवर्जयेत् ॥ ५४ ॥

मन से न करै ॥ ४९ ॥ और देश व कालका परिज्ञान व पात्र, अपात्र का विवेक करनाचाहिये और छाया,तृण,अन्न,वसन,मठा,अग्नि,इन्धन,काजी (खटाई)॥ ५० ॥ और औषध व शाक गृहस्थों को अर्थियों के लिये देना चाहिये व एकादशी, पौर्णमासी, चौदसि और अष्टमी में ॥ ५१ ॥ व अमावस तथा व्यतीपात, संक्रान्ति और ग्रहण में तथा वैधृति व पिता, माताके क्षयाह दिनों में ॥ ५२ ॥ और युगादि व मन्वादि दिनमें घर में बड़ा भारी उत्सव करना चाहिये व तीर्थमें गमन करना चाहिये क्योंकि वहां घरसे सौ गुना पुण्यहोताहै ॥ ५३ ॥ और इन्द्रियोंका जय करना चाहिये व मदिरा और जुवाको वर्जित करनाचाहिये और गृहस्थ विवादसे गमन व युद्ध

को यत्न से वर्जित करै ॥ ५४ ॥ स्नान, दान, जप, होम, देवपूजन व ब्राह्मणपूजन जो कुछ विधि से इनमें कियागया है वह सब अक्षय होताहै ॥ ५५ ॥ और दूधको देनेवाली, बछड़ासमेत, जवानी और वस्त्र व अलङ्कार से भूषित एक भी कल्पित कीहुई गऊ मुख्य ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ५६ ॥ जो धन्य पुरुष गऊ को देताहै वह मनुष्य भरतखण्ड को भलीभांति प्राप्त होकर व उत्तम जन्मको पाकर सूर्यमण्डल को ॥ ५७ ॥ फोड़कर गवादिकोंसे गम्यमान होकर विमानके द्वारा जाता है और वह सात जन्मों में पापी और इसजन्ममें अधम (नीच) होताहै ॥ ५८ ॥ जो कि ब्राह्मण के लिये एक भी गऊको नहीं देताहै और जो एकगऊको देताहै वह

स्नानंदानंजपोहोमो देवपूजाद्विजार्चनम् ॥ अक्षयंजायतेसर्वं विधिनैतेषुयत्कृतम् ॥ ५५ ॥ एकापिगौःप्रदातव्या व स्त्रालङ्कारभूषिता ॥ दोग्धीसवत्सातरुणी द्विजमुख्यायकल्पिता ॥ ५६ ॥ संप्राप्यभारतंखण्डं मानुषंजन्मचोत्तमम् ॥ धन्योददातियोधेनुं सनरःसूर्यमण्डलम् ॥ ५७ ॥ भित्त्वायातिविमानेन गम्यमानोगवादिभिः ॥ सप्तजन्मनिपापिष्ठ इहजन्मनिचाधमः ॥ ५८ ॥ एकामपिचधेनुंयो विप्रायनददातिवै ॥ एकांददातियोधेनुं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ५९ ॥ यदासौनीयतेबद्धो यममार्गेणकिङ्करैः ॥ तदानन्दासमागत्यस्वंपुत्रमिवपश्यति ॥ ६० ॥ विजित्यहुंकृतेनैव तान्दूतान् दूरतःस्थिता ॥ गौर्दातारंसमादायसायातिशिवमन्दिरम् ॥ ६१ ॥ वृषोधर्मइतिप्रोक्तो येनयुक्तःसमुच्यते ॥ गोषुमध्येपि तान्सर्वान् हरमुद्दिश्यवाहरिम् ॥ ६२ ॥ सूर्यब्रह्मपुरेवासो जायतेब्रह्मवासरम् ॥ गजदानाद्गजेन्द्राणां नीयतेनन्दनंवनम् ॥ ६३ ॥ पृथिव्यांसागरान्तायां असौराजाभविष्यति ॥ गृहंसोपस्करंदत्त्वा विप्रायगृहमेधिने ॥ ६४ ॥ लभतेनन्दने

सब पातकों से छूट जाताहै ॥ ५९ ॥ जब यमदूत इस पुरुषको बांधकर यममार्गमें लेजाते हैं तब नन्दा आकर अपने पुत्रकी नाईं देखती है ॥ ६० ॥ और दूरही स्थित उन यमदूतों को हुङ्कारही से जीतकर वह गऊ दाताको लेकर शिवजीके मन्दिरको जाती है ॥ ६१ ॥ वृष धर्म ऐसा कहा गयाहै कि जिस से युक्त वह पुरुष मुक्त हो जाता है और गौवों के मध्य में सब पितरों को व शिव तथा विष्णुजी को उद्देश कर ॥ ६२ ॥ सूर्य व ब्रह्मपुर में ब्रह्मा के दिन तक याने एक कल्प तक निवास होता है और हाथी के दान से उत्तम हाथियों के नन्दनवन में वह प्राप्त किया जाताहै ॥ ६३ ॥ और समुद्र अन्तवाली पृथ्वी में यह पुरुष राजा होगा और सामग्रीसमेत

घर को गृहस्थ ब्राह्मण के लिये देकर ॥ ६४ ॥ नन्दनवन में सब कामनाओंवाले विमान को पाताहै ॥ ६५ ॥ पृथ्वीमें सुवर्ण उत्तम द्रव्यहै यदि वह दियाजाताहै तो देवता प्रसन्न होतेहैं और सूर्यनारायणभी उसके लिये तबतक सुन्दर विमानको देते हैं जबतक कि वह इसलोक में घूमताहै ॥ ६६ ॥ और चांदी पितरों को बहुत प्यारी है उसको देकर मनुष्य निर्मलता को प्राप्त होताहै और जबतक सप्तर्षि ध्रुव में बँधेहैं तबतक वह चन्द्रमा के लोक में बसताहै ॥ ६७ ॥ और लौंग व कपूर से संयुत ताम्बूलों व फलों को देकर तथा पुष्पों व वस्त्रोंको देकर देवगणोंसमेत वह सुखसे इन्द्र व चन्द्रमाके लोकको जाता है और स्वर्गको प्राप्त होताहै ॥ ६८ ॥

दिव्यं विमानंसार्वकामिकम् ॥ ६५ ॥ द्रव्यंपृथिव्यांपरमं सुवर्णं हृष्यन्तिदेवायदिदीयतेतत ॥ सूर्योपितस्मैरुचिरंविमानं ददातितावद्भ्रमतेत्रयावत ॥ ६६ ॥ रूप्यंपितॄणामतिवल्लभंतद्दत्त्वानरोनिर्मलतामुपैति ॥ सोमस्यलोकेवसतेसतावद्ध्रुवे निबद्धाऋषयोपियावत् ॥ ६७ ॥ लवङ्गकर्पूरसमाकुलानि ताम्बूलपर्णानिफलानिदत्त्वा ॥ पुष्पाणिवस्त्राणिसुखेनयाति साकंशशाङ्कंदिविदेववृन्दैः ॥ ६८ ॥ आत्माहाराच्चतुर्भागः सिद्धान्नंयदिदीयते ॥ तदासोपुरुषोराजन् ध्रुवंयातिध्रुवालये ॥ ६९ ॥ आत्माहारप्रमाणेनप्रत्यहङ्गोषुदीयते ॥ गवाह्निकंतासुदत्त्वानरोयातिशिवालयम् ॥ ७० ॥ खण्डनीपेषणीचुल्हीमार्ज्जनीभिश्चयत्कृतम् ॥ पापंगृहीचालयति ददद्भिक्षांदिनम्प्रति ॥ ७१ ॥ ग्रासमात्राभवेद्भिक्षा सानित्यंयत्रदीयते ॥ तद्गृहंगृहमन्यच्चश्मशानमिवदृश्यते ॥ ७२ ॥ कुम्भान्तोदकसिद्धान्नछत्रोपानतकमण्डलुम् ॥

यदि अपने भोजनसे चौथाई भाग सिद्धान्न दियाजाताहै तो हे राजन्! वह पुरुष निश्चयकर ध्रुवजी के स्थान में प्राप्त होताहै ॥ ६९ ॥ और यदि अपने भोजनके प्रमाण से प्रति दिन गौवों के लिये गवाह्निक दियाजाताहै तो उनके लिये भोजन देकर मनुष्य शिवजीके स्थान को प्राप्तहोताहै ॥ ७० ॥ खंडनी (ओखली आदि) पेषणी (चक्की) व चूल्हा और मार्ज्जनी (झाडू) से जो पाप कियागयाहै उसपापको प्रतिदिन भिक्षा देताहुआ पुरुष नाशकरताहै ॥ ७१ ॥ भिक्षा कवल भर होतीहै और जहां वह भिक्षा नित्य दीजाती है वह घर घरहै और अन्य घर श्मशान की नाईं देख पड़ताहै ॥ ७२ ॥ घट, अन्न, जल, सिद्धान्न, छतुरी, पनहीं,

कमण्डलु, मुंदरी व कपडों को देकर मनुष्य स्वर्गको जाताहै ॥ ७३ ॥ हे नरेन्द्र ! थकेहुये को जलपान व प्यासेको जलपान तथा क्षुधासे विकल पुरुष को अन्न देकर सुराङ्गनाओं से स्तुति कियाजाताहुआ वह पुरुष विमान केद्वारा जाताहै ॥ ७४ ॥ सदैव घीसे संयुत भोजन यथाशक्ति देनाचाहिये जिसलिये तन्मय याने अन्नमय प्राणहैं इसीकारण प्राणी उससे प्रसन्न होतेहैं ॥ ७५ ॥ संसार में क्षुधा की पीड़ा बड़ीभारी है व उसकी औषध अन्न कहागयाहै उससे वह शान्तिको प्राप्त होतीहै उसीकारण अन्नदान उत्तमहै ॥ ७६ ॥ व अन्न, वस्त्र, फल, जल, मट्ठा, शाक, घृत, शहद, पत्र, पुष्प, पनहीं, गुदड़ी, दंड, कमंडलु ॥ ७७ ॥ छत्र, पात्र, विद्या, पुस्तक,

अङ्गुलीयकवासांसिदत्त्वायातिनरोदिवि ॥ ७३ ॥ श्रान्तस्यपानंतृषितस्यपानमन्नंक्षुधार्त्तस्यनरोनरेन्द्र ॥ दत्त्वाविमाने
नसुराङ्गनाभिः संस्तूयमानस्त्रिदिवंसयाति ॥ ७४ ॥ भोजनंसततंदेयं यथाशक्त्याघृतप्लुतम् ॥ तन्मयाहियतःप्राणास्त
तस्तुष्यन्तिप्राणिनः ॥ ७५ ॥ क्षुत्पीडामहतीलोके तस्यान्नंभेषजंस्मृतम् ॥ तेनसाशान्तिमायाति अन्नदानंतदुत्तमम् ॥
७६ ॥ अन्नंवस्त्रंफलंतोयं तक्रंशाकंघृतंमधु ॥ पत्रंपुष्पंतथोपानत्कन्थायष्टिःकमण्डलुः ॥ ७७ ॥ छत्रंपात्रंतथाविद्या पु
स्तकंचसुरार्चनम् ॥ कन्याकुशोपवीतानि बीजौषधिगृहाणिच ॥ ७८ ॥ रत्नंक्षेत्रंयज्ञपात्रं योगपट्टञ्चपादुके ॥ कृष्णा
जिनंबुद्धिदानंधर्मदेशकथानकम् ॥ ७९ ॥ अनेनसततंदेयंतेनश्रेयोमहान्भवेत ॥ सर्वपापक्षयंकृत्वादातायातिशिवाल
यम् ॥ ८० ॥ श्राद्धेगृहस्थाभोक्तव्याः कुलीनावेदपारगाः ॥ अक्रोधनाःस्नानशीलाः सुदेशाचारतत्पराः ॥ ८१ ॥ आम
न्त्र्यपूर्वदिवसे निरीहाअपियेद्विजाः ॥ अलोलुपाव्याधिहीना नतुयेग्रामयाजिनः ॥ ८२ ॥ तेषांपुराप्रदातव्यं पिण्डदा

देवपूजन, कन्या, कुश, यज्ञोपवीत, बीज, ओषधि, गृह, ॥ ७८ ॥ रत्न, क्षेत्र, यज्ञपात्र, योगवस्त्र, खड़ाऊं, कृष्णाजिन, बुद्धिदान व धर्म और देशका कथानक ॥ ७९ ॥ सदैव याचक के लिये देनाचाहिये क्योंकि उससे बड़ाभारी कल्याण होताहै और दाता सब पापोंको नाश कर शिवजीके स्थानको प्राप्त होताहै ॥ ८० ॥ श्राद्ध में क्रोधरहित व स्नान करनेवाले तथा उत्तमदेश व आचारमें तत्पर और वेदों के पारगामी कुलीन गृहस्थों को भोजन कराना चाहिये ॥ ८१ ॥ और पहले दिन उन ब्राह्मणों को निमन्त्रण कर जोकि इच्छारहित ब्राह्मण होवैं और लोभी न होवैं व रोगोंसे हीन होवैं और जो ग्रामयाजी न होवैं ॥ ८२ ॥ उनके आगे विधि से पिंडदान

देना चाहिये व श्रद्धा से हीन पुरुष करके कियाहुआ श्राद्ध अन्य से कियाहोताहै ॥ ८३ ॥ इसलिये क्रोध से रहित व श्रद्धासंयुत पुरुषों को श्राद्ध करना चाहिये और वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, पथिक व तीर्थसेवक ॥ ८४ ॥ और अतिथि को विश्वदेव के अन्तमें श्राद्धकर्म में भलीभांति पूजना चाहिये और अपनी शक्तिसे सदैव गृहस्थों से संन्यासी पूजनेयोग्य हैं ॥ ८५ ॥ राजाने उस समस्त वृत्तान्त को सुनकर फिर उन सारस्वत से इस वचन को पूछा ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रभासक्षेत्रयात्रायांदानविधिवर्णनंनामपञ्चविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

नंविधानतः ॥ श्राद्धंश्रद्धाविहीनेन कृतमन्यकृतंभवेत् ॥ ८३ ॥ तस्माच्छ्रद्धान्वितैःश्राद्धं कर्त्तव्यंक्रोधवर्जितैः ॥ वानप्रस्थोब्रह्मचारी पथिकस्तीर्थसेवकः ॥ ८४ ॥ अतिथिर्विश्वदेवान्ते सम्पूज्यःश्राद्धकर्मणि ॥ सर्वदायतयःपूज्याः स्वशक्त्यागृहमेधिभिः ॥ ८५ ॥ तदेतत्सकलंश्रुत्वा नृपःपप्रच्छतंपुनः ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रयात्रायांदानविधिवर्णनंनाम पञ्चविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२५ ॥ * ॥ * ॥

सारस्वत उवाच ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे नगरेवामनेपुरा ॥ पुत्रशोकाभिसन्तप्तो वसिष्ठोभगवानृषिः ॥ १ ॥ आजगामतपस्तप्तुं स्वर्णरेखानदीतटे ॥ ईशानकोणेनगरात् स्वर्णरेखानदीजले ॥ २ ॥ स्नात्वाध्यात्वाशिवंदेवं प्रणनाममुनिर्यदा ॥ तदारुद्रःसमायातस्त्रिनेत्रोवृषभध्वजः ॥ ३ ॥ महर्षेतवतुष्टोहं किङ्करोमिवदस्वतत् ॥ द्विज उवाच ॥ यदितुष्टोमहादेव वरोदेयोममाधुना ॥ ४ ॥ तदात्रभवतास्थेयं यावदाचन्द्रतारकम् ॥ तत्रस्थानंकरिष्यन्ति येनराःपापकर्मि

दो० । जिमि वस्त्रापथ क्षेत्र महँ भे सोमेश्वर नाथ । कह्यो त्रिशत छब्बीस में सोई उत्तमगाथ ॥ सारस्वत मुनि बोले कि वस्त्रापथ महाक्षेत्र में पुरातन समय वामन नगरमें पुत्रशोकसे संतप्त भगवान् वसिष्ठ ऋषि ॥ १ ॥ स्वर्णरेखा नदी के किनारे तपस्या करने के लिये आये और नगर से ईशान कोण में स्वर्णरेखानदी के जलमें ॥ २ ॥ स्नानकर व शिवदेवजीको ध्यानकर जब उन मुनिने प्रणाम किया तब त्रिलोचन व वृषभध्वज शिवजी आगये ॥ ३ ॥ व बोले कि हे महर्षे ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं क्या करूं उसको कहिये ब्राह्मण बोले कि हे महादेव ! यदि आप प्रसन्न हो व यदि इस समय मुझको वर देने योग्य है ॥ ४ ॥ तो जबतक

चन्द्रमा व नक्षत्र रहैं तबतक आपको यहां टिकना चाहिये और वहां जो पापकर्मी मनुष्य स्थान करैंगे ॥ ५ ॥ हे देव ! आपको सदैव उनके पाप का नाश करना चाहिये व जो पापकर्मी मनुष्य त्रिलोचनजी को पूजते हैं ॥ ६ ॥ हे देवेश ! उनको तुम विमानों के द्वारा शिवमन्दिर को लावो वैसाही होगा यह कहकर शिवदेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ७ ॥ व हिरण्यकशिपुको मारकर महाबलवान् नृसिंहजी ने त्रिलोकको इन्द्रके लिये दिया और आपही कालरुद्रजी चलेगये ॥ ८ ॥ उसके वशमें बलि पैदा हुआ वह भी महाबलवान् था और अधिक बलवान् बलिने एक छत्र पृथ्वी किया ॥ ९ ॥ व बिन खोदी जोती हुई सब पृथ्वी में अन्न पैदा होता था

णः ॥ ५ ॥ तेषांपापक्षयोदेव कर्त्तव्योभवतासदा ॥ नरायेपापकर्माणः पूजयन्तित्रिलोचनम् ॥ ६ ॥ तानानयत्वंदेवेश विमानैःशिवमन्दिरम् ॥ तथेत्युक्त्वाहरोदेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७ ॥ हिरण्यकशिपुंहत्वा नारसिंहोमहाबलः ॥ त्रैलोक्यमिन्द्रायददौ कालरुद्रःस्वयंययौ ॥ ८ ॥ तदन्वयेबलिर्जातः सचातीवमहाबलः ॥ एकातपत्रांपृथिवीं बलिश्चक्रे बलाधिकः ॥ ९ ॥ अकृष्टपच्यासकला पृथिवीसस्यशालिनी ॥ गन्धवन्तिचपुष्पाणि रसवन्तिफलानिच ॥ १० ॥ आस्कन्धफलिनोवृक्षाः पुटकेपुटकेमधु ॥ चतुर्वेदाद्विजाःसर्वे क्षत्रियाःयुद्धकोविदाः ॥ ११ ॥ गोषुसेवापरावैश्याः शूद्राः शुश्रूषणेरताः ॥ कुङ्कुमागुरुलिप्ताङ्गाः सुवेषाःसाधुमण्डिताः ॥ १२ ॥ दारिद्र्यदुःखमरणैर्विमुक्ताश्चिरजीविनः ॥ दीपयोजितभूभागा रात्रावपियथादिवा ॥ १३ ॥ विचरन्तितथामर्त्या देवादेवालयेयथा ॥ पृथिव्यांस्वर्गरूपायां राज्यंचक्रे

व पृथ्वी अन्नोंसे शोभित थी और सुगन्धित पुष्प व रसीले फल होते थे ॥ १० ॥ और वृक्षोंमें मोटे ठसापर्यन्त फल लगते थे व प्रति पत्तेमें शहद होताथा व सब ब्राह्मण चारोंवेदों को पढ़ते थे और सब क्षत्रिय युद्धमें चतुर होतेथे ॥ ११ ॥ और वैश्यलोग गौवोंकी सेवा में तत्पर थे व शूद्र सेवा में लगे हुए थे तथा सब मनुष्य कुंकुम अगुरु को अंगों में लेपन किये व सुन्दर वेषवाले तथा भलीभांति शोभित ॥ १२ ॥ और दारिद्र, दुःख व मरण से मुक्त होकर बहुत दिनतक जीते थे और दीपोंसे योजित पृथ्वी के भाग रात्रिमें भी दिनके समान थे ॥ १३ ॥ व मनुष्य पृथ्वी में वैसेही विचरते थे जैसे कि स्वर्गमें देवता विचरते हैं व स्वर्गरूपिणी पृथ्वी में बलि

ने सुखपूर्वक राज्य किया ॥ १४ ॥ व नित्यही विवाह के बाजनों से शब्दित और यज्ञस्तम्भों से शोभित पृथ्वी को बलिदैत्यने वैसेही भोग किया कि जैसे सुरराज (इन्द्र) स्वर्ग को भोगते हैं ॥ १५ ॥ उस समय बलिने सदैव यज्ञोंसे देवेन्द्रको प्रसन्न किया और देवताओं व दानवों का परस्पर युद्ध नहीं होता था ॥ १६ ॥ और वह एकही राजा था व पृथ्वी में युद्ध नहीं होताथा और शत्रुवों का बखेड़ा नहीं होता था और सिंहों व हाथियों से युद्ध नहीं होताथा ॥ १७ ॥ और सदैव साप व नेउला युद्ध नहीं करते थे और बिलार व मूस युद्ध नहीं करते थे तथा स्थावर व जंगम सब संसार मित्रताको प्राप्त था ॥ १८ ॥ नारदजी त्रिलोकमें भ्रमणकर नन्दन

सुखंबलिः ॥ १४ ॥ नित्यंवैवाहवादित्रैर्नादितांयूपमण्डिताम् ॥ धरित्रीम्बुभुजेदैत्यो देवराजोयथादिवम् ॥ १५ ॥ देवेन्द्रोबलिनानित्यं यज्ञैःसन्तोषितस्तदा ॥ देवानांदानवानांच नास्तियुद्धंपरस्परम् ॥ १६ ॥ एकएवमहीपालो युद्धंनास्तिधरातले ॥ सापत्निकंकलिर्नास्ति युद्धंचहरिभिर्गजैः ॥ १७ ॥ नसर्पनकुलौनित्यं नबिडालश्चमूषकः ॥ मैत्रीभावंगतंसर्वंजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १८ ॥ त्रैलोक्यभ्रमणंकृत्वा नारदोनन्दनेवने ॥ गतोनपश्यतेयुद्धं त्रैलोक्येसचराचरे ॥ १९ ॥ तावत्तस्योदरेपीडा महतीसमजायत ॥ नमेस्नानादिनाकार्यं तर्पणैःकिंप्रयोजनम् ॥ २० ॥ जपहोमादिनासर्वमन्यथाममचेष्टितम् ॥ यत्स्नानंयत्रयुध्यन्ते गजोदन्तविघट्टनैः ॥ २१ ॥ सासन्ध्यायत्रनिहतैः कबन्धैर्भूर्विभूषिता ॥ कुन्तघातविनिर्भिन्ना गजकुम्भोद्भवापगा ॥ २२ ॥ तृप्यन्तियत्रक्रव्यादास्तर्पणंतन्ममप्रियम् ॥ पूजाद्यायत्रदृश्यन्ते निहताःक्षत्रियारणे ॥ २३ ॥ सहोमोयत्रहन्यन्ते नागाश्वनरपुङ्गवाः ॥ शस्त्राग्नौनारदस्यायं होमस्त्रैलोक्यविश्रु

वनमें गये और उन्होंने चराचरसमेत त्रिलोक में युद्ध को नहीं देखा ॥ १९ ॥ तब तक उन नारदजीके पेटमें बड़ी पीड़ा उत्पन्न हुई कि मेरा स्नानादिकसे कार्य नहीं है व तर्पणों से क्या प्रयोजन है ॥ २० ॥ व जप, होमादिक से क्या है क्योंकि मेरा सब व्यवहार अन्यथा है क्योंकि जहां हाथी दांतोंके घिसने से लड़ते हैं वह स्नानहै ॥ २१ ॥ और वह संध्याहै जहां कि मारेहुए कबन्धोंसे पृथ्वी भूषितहै और भालोंके मारनेसे कटेहुए हाथी के शिरोभाग से उपजीहुई नदी है ॥ २२ ॥ और जहां राक्षस तृप्त होते हैं वह तर्पण मुझको प्यारा है और जहां युद्ध में मरेहुए क्षत्रिय देख पड़ते हैं वह पूजाहै ॥ २३ ॥ और वह होम है जहा कि हाथी, घोड़े व

उत्तम मनुष्य मारेजाते हैं शस्त्ररूपी अग्नि में यह नारदका होम त्रिलोक में प्रसिद्धहै ॥ २४ ॥ और यदि लटकाये व कटेहुए पांव, शिर और हाथोंसे अन्तर न होवै बरन सब आच्छादित किया जावै तो वह भूमितल कहाजाताहै ॥ २५ ॥ स्वर्ग में देवताओं से मेरा क्या कार्यहै व पृथ्वी में मनुष्योंसे मेरा क्या प्रयोजन है और पातालमें नागों से मेरा क्या प्रयोजन है जो कि वे परस्पर युद्ध न करैं ॥ २६ ॥ मैं वैसाही करूंगा कि जिसप्रकार देवेन्द्र (इन्द्र) पृथ्वीसे स्वर्ग में जावें और बलि रसातलको जावै व मेरा वचन सत्य होवै ॥ २७ ॥ और जब बलि जीवन व राज्य से दामोदर विष्णुजीको उपायसे प्रसन्न करैगा तब यह इन्द्र होगा ॥ २८ ॥ और

तः ॥ २४ ॥ छिन्नपादशिरोहस्तैरन्तरन्नविलम्बितैः ॥ तदुच्यतेभूमितलं सकलंछाद्यतेयदि ॥ २५ ॥ किंदेवैर्दिविमेकार्यं किंमनुष्यैर्धरातले ॥ पन्नगैःकिन्नुपाताले नयुध्यन्तेपरस्परम् ॥ २६ ॥ तथाकरिष्येदेवेन्द्रो दिवियातुधरातलात् ॥ रसातलंबलिर्यातु सत्यमस्तुवचोमम ॥ २७ ॥ जीवितेनापिराजेन यदादामोदरंहरिम् ॥ तोषयिष्यतियत्नेन तदेन्द्रोसौ भविष्यति ॥ २८ ॥ देवेन्द्रोवृत्रहाभूत्वा भ्रष्टराज्योभविष्यति ॥ यदावस्त्रापथेगत्वा भवंभावेनपूजयेत ॥ २९ ॥ सुराधिपस्तदाभूयो ब्रह्महत्याविवर्जितः ॥ अनेनमन्त्रजाप्येन सशान्तोदरवेदनः ॥ ३० ॥ नारदोदेवराजस्य समीपंसहसाययौ ॥ सिंहासनंसमारूढो नन्दनेसंस्थितोहरिः ॥ ३१ ॥ आस्तेपरिवृतोदेवैर्देवराजोमहाबलः ॥ निरीक्ष्यमाणोपवने नृत्यन्तींसुरसुन्दरीम् ॥ ३२ ॥ ददर्शदेवआयान्तं नारदंविस्मयान्वितः ॥ अहोविरूपोभगवान् नारदोदृश्यतेमया ॥ ३३ ॥ नृत्यतेकिन्नवाभृत्यैर्गीयतेकिंनसाम्प्रतम् ॥ वाद्यतांतालमानैःकिं यावच्चिन्तापरोहरिः ॥ ३४ ॥ ऋषिःसमागत

देवेन्द्र वृत्रघाती होकर राज्य से भ्रष्ट होंगे व जब वे वस्त्रापथ तीर्थ में जाकर भवजी को भक्ति से पूजैंगे ॥ २९ ॥ तब फिर सुरनायक ब्रह्महत्या से रहित होवैंगे इस मंत्र जप याने सम्मतिसे शान्त पेटपीड़ावाले ॥ ३० ॥ वे नारदजी सहसा सुरराजके समीपगये और सिंहासन पै बैठेहुए इन्द्र नन्दनवनमें स्थितथे ॥ ३१ ॥ व उपवनमें नाचतीहुई सुरसुन्दरी को देखते हुये महाबलवान् इन्द्रजी देवों से घिरेहुए बैठेथे ॥ ३२ ॥ व इन्द्रदेवजी ने आतेहुए नारदको देखा व इन्द्रजी विस्मयसंयुक्त हुए कि अहो भगवान् नारदजी मुझको विरूप (उदास) देख पड़ते हैं ॥ ३३ ॥ इससमय सेवकलोग क्यों नहीं नाचते हैं व क्यों नहीं गाते हैं क्या तालके प्रमाणोंसे बजाया

स्तावज्जलाभ्युक्षणतत्परः ॥ सिंहासनंपरित्यज्य समुत्थायाग्रतःस्थितः ॥ ३५ ॥ स्वागतेनाभिवन्द्याथ बभाषेनारदंह
रिः ॥ महर्षेस्वागतंत्वद्य कुतोवागम्यतेत्वया ॥ ३६ ॥ स्नानेसन्ध्यार्चनेहोमे कुशलंतवविद्यते ॥ इतिप्रोक्तोविहस्याथ
बभाषेनारदोहरिम् ॥ ३७ ॥ यदेतज्जायतेमह्यं किमन्येनप्रयोजनम् ॥ प्रेक्षणीयश्चतेस्थानं नाहंपश्यामिसंयुगम् ॥ ३८ ॥
यावद्राज्यंबलेस्तावत्त्वयामेनप्रयोजनम् ॥ आदित्याद्याग्रहाःसर्वे कालमानेनयोजिताः ॥ ३९ ॥ आहुत्याप्लाविताभेघा
वर्षन्तेहत्रिषाभुवि ॥ रोगादिमरणंनास्ति यमोधर्मेणपीडितः ॥ ४० ॥ एकातपत्राम्बुभुजेनराधिपस्त्रैलोक्यनाथेतिमहा
नृपेति ॥ सङ्ग्रामविद्याकुशलेतिनित्यं त्रैलोक्यलक्ष्मीकुचकामुकेति ॥ ४१ ॥ संस्तूयतेचारणवृन्दपद्यैर्ब्रह्मेतिकृष्णेतिह
रेतिभूमौ ॥ इन्द्रेतिसूर्येतिधनाधिपेति देवारिनाथेतिसुराधिपेति ॥ ४२ ॥ सगीयतेपठ्यतेदैत्यवृन्दैर्युद्धंविनादैत्यगणा
हसन्ति ॥ मत्ताःप्रमत्ताःकरिणोनदन्ति रथादिरूढाःपुरुषाभवन्ति ॥ ४३ ॥ सेनाधिपाःस्त्रीषुगृहेरमन्तियज्ञाग्निधूमेननभो

जावै इस प्रकार इन्द्रजी जबतक चिन्तामें तत्पर हुए ॥ ३४ ॥ तबतक जलके अभिषेक में तत्पर ऋषि (नारदजी) आगये और इन्द्रजी सिंहासनको छोड़ उठकर आगे स्थित हुए ॥ ३५ ॥ और इन्द्रजी स्वागत से अभिवन्दन कर नारदसे बोले कि हे महर्षे ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ आज तुम कहां से आतेहो ॥ ३६ ॥ और स्नान, संध्या, पूजन व होममें तुम्हारा कुशलहै इसप्रकार कहेहुए नारदजी ने हँसकर इन्द्रजीसे कहा ॥ ३७ ॥ कि यदि यह होवै तो अन्य वस्तुसे मेरा क्या प्रयोजनहै तुम्हारा स्थान देखने योग्यहै और मैं युद्धको नहीं देखताहूं ॥ ३८ ॥ जब तक बलिका राज्यहै तबतक तुमसे मेरा प्रयोजन नहीं है सूर्यादिक सब ग्रह कालके प्रमाणसे योजितहैं ॥ ३९ ॥ हव्य की आहुति से तृप्त किये हुए मेघ पृथ्वी में बरसते हैं व रोगादिकों से मरण नहीं होताहै और यमराज धर्मसे पीड़ित होतेहैं ॥ ४० ॥ नराधिप (बलि) ने त्रिलोकको भोग किया व हे त्रिलोकनाथ, हे महाराज, हे संग्राम विद्यामें प्रवीण, हे त्रिलोककी लक्ष्मी के कुचोंके कामुक ! इस प्रकार ॥ ४१ ॥ चारणवृन्दके छन्दों से बलिकी स्तुति की जाती है व हे ब्रह्म, हेकृष्ण, हे हर, हे इन्द्र, हे सूर्य, हे धनाधिप, हे दैत्यनाथ, हे सुरनायक ! इसप्रकार पृथ्वी में ॥ ४२ ॥ वह बलि दैत्यगणोंसे गान कियाजाताहै व पढ़ाजाताहै और विना युद्ध के दैत्यों के गण हँसतेहैं व मतवाले तथा उन्मत्त हाथी गरजतेहैं व पुरुष रथादिकों पै सवार

होतेहैं ॥ ४३ ॥ और सेनापति घरमें स्त्रियों के मध्यमें रमण करतेहैं व यज्ञकी अग्नि के धुँआ से आकाश व्याप्त न हुआ व सुवर्णरूपिणी पृथ्वी शोभित है और बलिका स्थान दैत्यगणों से शोभितहै ॥ ४४ ॥ व बलि तुमको सुरनायक नहीं जानताहै और सब देवता बलिके यज्ञभोजी हुयेहैं तबतक तुम्हीं हृदय में आपही विचार करो कि मैंने तुमसे यह योग्य कहाहै ॥ ४५ ॥ रंभा स्वर्ग में नहीं सोहती है और मेनका तुमको नहीं मानतीहै व हे सुरेश्वर ! तिलोत्तमा बलिके राज्यमें प्राप्त हुई है ॥ ४६ ॥ और उर्वशी व जो उर्वराहै वह और सुकेशी तुमसे नहीं बोलती है और मंजुघोषा बलिके स्थानमें है व तुमको नहीं देखती है ॥ ४७ ॥ और पुलोमा बलिके विना

नजातम् ॥ सुवर्णरूपापृथिवीविराजतेधिष्ठानंबलेर्दैत्यगणैश्चशोभते ॥ ४४ ॥ बलिर्नजानातिसुराधिपन्त्वां सुराश्चस र्वेबलियज्ञभोजिनः ॥ त्वमेवतावद्धृदिचिन्तयस्वयं युक्तंतवेदंकथितंमयेति ॥ ४५ ॥ रम्भानराजतेस्वर्गे मेनकात्वांनम न्यते ॥ तिलोत्तमाकिलप्राप बलिराज्यंसुरेश्वर ॥ ४६ ॥ उर्वशीचोर्वरायातु सुकेशीत्वांनभाषते ॥ मञ्जुघोषाबलेः स्थाने नत्वांसानिरीक्षते ॥ ४७ ॥ पुलोमापुलकोद्भेदं नकरोतिबलिंविना ॥ पौलोमीपुरतोगत्वा बलिंस्तौतिवसुन्धरा ॥ ४८ ॥ नारदःपर्वतश्चैव हाहाहूहूश्चतुम्बुरुः ॥ बलिराज्यंप्रशंसन्ति तदेवंकथितंमया ॥ ४९ ॥ बृहस्पतिर्यदाचष्टे नतद्वा च्यंमयातव ॥ इन्द्राणीबलिनंमत्वा बलिंचित्रेषुपश्यति ॥ ५० ॥ अनेनवाक्येनसुराधिपस्तु चचालकोपात्त्वरितस्त दानीम् ॥ गजेतिवज्रेतिजगादसूतं समानयत्वंहिरथंचसारथे ॥ ५१ ॥ रथेनसूर्योमरुतोगजेन वृषेणरुद्रोमहिषेणसौरिः ॥ वाद्यन्तुवाद्यानिरणायमेद्य चण्डीगणेशास्त्वरिताःप्रयान्तु ॥ ५२ ॥ दृष्ट्वासुरेन्द्रंसंक्रुद्धं बृहस्पतिरुदारधीः ॥ ऋषिमध्ये

रोमांच नहीं करताहै और इन्द्राणी व पृथ्वी आगे जाकर बलिकी स्तुति करतीहै ॥ ४८ ॥ और नारद, पर्वत, हाहा, हूहू, व तुंबुरु बलिके राज्यकी प्रशंसा करतेहैं उसी को मैंने कहा ॥ ४९ ॥ व जो बृहस्पति ने कहाहै वह मुझसे तुमसे नहीं कहने योग्यहै ॥ और इन्द्राणी बलवान् मानकर बलिको चित्रों में देखती है ॥ ५० ॥ इस वचन से सुरनायक इन्द्रजी उससमय शीघ्रतासंयुत होकर क्रोधसे चले व सारथीसे यह बोले कि हे सारथे ! हाथी, वज्र व रथको तुमलाओ ॥ ५१ ॥ और सूर्यनारायण रथ से, पवन हाथीसे, शिवजी बैलसे और यमराज भैंसे के बाहन समेत चलैं और आज मेरे युद्धकेलिये बाजन बाजैं व चण्डीगणनायक शीघ्रता समेत चलैं ॥ ५२ ॥

को सुनकर व आपही चित्तसे विचारकर विष्णुजी ने वैसाही करूंगा ऐसा उन इन्द्रजी से यह कहकर मुनियों से कहा ॥ ७३ ॥ कि हे ऋषियो ! आपलोग वहां जाइये व महायज्ञको कराइये मैं वहां आऊंगा और उस बलिको साधन करूंगा ॥ ७४ ॥ इसप्रकार कहेहुये वे सब मुनि यज्ञमण्डपमें गये और सर्वस्व दक्षिणावाला बारह दिन का महायज्ञ प्रारम्भ हुआ ॥ ७५ ॥ और शुक्रजीने यज्ञ के कर्म में सब मुनियों को बुलाया व बहुतही प्रसन्न बलिने यज्ञ में अनेक भांति के दानों को दिया ॥ ७६ ॥ व सबोंके लिये सोनेके पात्रों में बहुत भोजन दियाजाताथा व अतिथि और विद्वान् ब्राह्मण सर्वस्व से भी पूजाजाता था ॥ ७७ ॥ क्योंकि

नः ॥ ७३ ॥ ऋषयस्तत्रगच्छन्तु कारयन्तुमहामखम्॥ अहंतत्रागमिष्यामि साधयिष्यामितंबलिम् ॥ ७४ ॥ इत्युक्ता मुनयःसर्वे गतास्तेयज्ञमण्डपे ॥ द्वादशाहोमहायज्ञः प्रारब्धःसर्वदक्षिणः ॥ ७५ ॥ शुक्रेणामन्त्रिताःसर्वे मुनयोयज्ञकर्मणि ॥ अतिहृष्टोबलिर्यज्ञे ददौदानान्यनेकधा॥ ७६ ॥ स्वर्णपात्रेषुसर्वेभ्यो दीयतेभोजनंबहु ॥ अतिथिर्ब्राह्मणोविद्वान्सर्वस्वेनापिपूज्यते ॥ ७७ ॥ दानाद्यज्ञोभवेत्पूर्णो दानहीनोवृथाभवेत ॥ सौराष्ट्रदेशेविख्यातं क्षेत्रंवस्त्रापथंनृप ॥ ७८ ॥ तस्यदक्षिणदिग्भागे बलेरस्तिमहामखः ॥ क्षेत्राद्बहिःसमारब्धो यज्ञःसर्वस्वदक्षिणः ॥ ७९ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु विष्णुर्वामनतांगतः ॥ मध्यदेशेचतुर्वेदी ब्राह्मणस्तीर्थयात्रया ॥ ८० ॥ महोदरोह्रस्वभुजः ह्रस्वपादोमहाशिराः ॥ महाहनुःस्थूलकण्ठः स्थूलजङ्घोतिलम्पटः ॥ ८१ ॥ श्वेतवस्त्रोबद्धशिखः छत्रोपानत्कमण्डलुः ॥द्रष्टुंतीर्थान्यनेकानि

दान से यज्ञ पूर्ण होता है व दानसे रहित यज्ञ वृथा होताहै, हे राजन् ! सौराष्ट्र देश में वस्त्रापथक्षेत्र प्रसिद्ध है ॥ ७८ ॥ उसके दक्षिण दिशा के भाग में बलि का महायज्ञ होताहै क्षेत्रसे बाहर सर्वस्व दक्षिणावाला यज्ञ प्रारम्भ हुआहै ॥ ७९ ॥ इसी अवसरमें विष्णुजी वामनरूप को प्राप्त हुये व चतुर्वेदी ब्राह्मण वामनजी तीर्थयात्रा से मध्यदेश में गये ॥ ८० ॥ और बड़े पेटवाले तथा छोटी भुजाओंवाले व छोटे चरण और बड़े भारी शिरवाले और बड़ी ठोढ़ी व मोटे कण्ठवाले तथा मोटी जङ्घावाले व बड़े लम्पट ॥ ८१ ॥ और सफेद वसनको पहने,शिखाको बाँधे व छतुरी, पनहीं और कमण्डलुको धारण किये वे वामनजी अनेकों तीर्थों को देखने

के लिये पृथ्वी में घूमते भये ॥ ८२ ॥ और वे ब्राह्मण वामनजी सौराष्ट्र देश में वस्त्रापथक्षेत्र में प्राप्तहुये व स्वर्णरेखा नदी के किनारे वामनजीने चिन्तवन किया ॥ ८३ ॥ कि पहले भवजी को देखकर क्या सोमेश्वर शिवजी के समीप जाऊं अथवा पहले सोमेश्वरजी को पूजकर पश्चात् भवनामक शिवजी के समीप जाऊं ॥ ८४ ॥ इसप्रकार चिन्तामें परायण होकर चित्तसे कार्य का भलीभांति चिन्तवनकर कहा कि यहां स्थित सोमनाथजीको मैं निश्चयकर पूजन करूंगा ॥ ८५ ॥ वस्त्रापथ महाक्षेत्र में जिसप्रकार भव व सोमेश्वरजीको सदैव मनुष्य पूजें मुझको निश्चयकर वैसाही करना चाहिये ॥ ८६ ॥ देशों के मध्य में उत्तम देश व पर्वतों के मध्यमें उत्तम पर्वत

बभ्रामसमहीतले ॥ ८२ ॥ सौराष्ट्रदेशेसंप्राप्तः क्षेत्रेवस्त्रापथेद्विजः ॥ स्वर्णरेखानदीतीरे चिन्तयामासवामनः ॥ ८३ ॥ प्रथमंकिंभवन्दृष्ट्वा यामिसोमेश्वरंशिवम् ॥ अथसोमेश्वरंपूज्य पश्चाद्यास्येभवंशिवम् ॥ ८४ ॥ इतिचिन्तापरोभूत्वा कृत्यंसञ्चिन्त्यचेतसा ॥ अत्रस्थितंसोमनाथं पूजयिष्यामिनिश्चितम् ॥ ८५ ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे भवंसोमेश्वरंयथा ॥ पूजयन्तिजनानित्यं तथाकार्यंमयाध्रुवम् ॥ ८६ ॥ देशानामुत्तमोदेशो गिरीणामुत्तमोगिरिः ॥ क्षेत्राणामुत्तमंक्षेत्रं नदीनामुत्तमासरित् ॥ ८७ ॥ दिव्यंवनंवनानान्तु देवानामुत्तमोत्तमः ॥ यदासोमेश्वरोदेवो भूमिंभित्त्वाभविष्यति ॥ ८८ ॥ तदाभूमण्डलेदिव्यं क्षेत्रमेतद्यवाधिकम् ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यामग्निसाधनतत्परः ॥ ८९ ॥ ऊर्द्ध्वबाहुःसूर्यकान्तो भवं यावत्सपश्यति ॥ मध्यंदिनेपरंयाते दिननाथेविलम्बिते ॥ ९० ॥ अग्नितापाङ्गसन्तप्तः तावत्पश्यतिशङ्करम् ॥ सोमनाथंशिवंशान्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ ९१ ॥ वर्षेणपुष्पमिश्रेण जलमिश्रेणभामिनि ॥ भूमिंभित्त्वामहादेवः स्वयंसो

है और क्षेत्रों के मध्यमें उत्तम क्षेत्र व नदियों के मध्य में उत्तम नदी है ॥ ८७ ॥ और वनों के मध्य में दिव्य वन व देवताओं के मध्य में उत्तमोत्तम देवता है जब भूमि को फोड़कर सोमेश्वर देवजी होवैंगे ॥ ८८ ॥ तब पृथ्वीमण्डल में यह यवाधिक दिव्य क्षेत्र होगा चैत महीने में शुक्ल पक्ष की चौदसि में अग्निसाधन में तत्पर ॥ ८९ ॥ व ऊपर भुजाओं को उठाकर सूर्यनारायण के समान सुन्दर वे वामनजी जबतक भवजी को देखैं तबतक सूर्यनारायण को दुपहरके इसपार प्राप्त होने पर व विलम्बित होनेपर ॥ ९० ॥ अग्नितापसे संतप्त अंगवाले वामनजीने सब देवताओंसे नमस्कार कियेहुये शान्त सोमनाथ शिवजीको देखा ॥ ९१ ॥ व हे भामिनि !

वैसेही वस्त्रापथ तीर्थ में भवजी के आगे महाबलवान् कालमेघ स्वर्णरेखा नदी के किनारे निरूपित हुआ ॥ ३१ ॥ पुरातन समय वामनजी ने आपही जाकर सब लोकों के उपकार केलिये तीर्थ में स्नान किया व क्षेत्रपालों को भलीभांति पूजन किया ॥ ३२ ॥ व हे नृपेन्द्र ! पुरातन समय युगादि में सब देवता आये व सुराष्ट्र देश में पवित्र रैवतकपर्वतपै भलीभांति प्राप्तहुये ॥ ३३ ॥ उस समय सब लोकोंकी रक्षा के लिये व सुरशत्रुवों के मारने के लिये सुरोत्तमों ने विष्णुजी के गले में जयमाला को छोड़दिया ॥ ३४ ॥ उसी कारण विष्णुजी का दामोदर ऐसा नाम प्रसिद्ध हुआ उस समय पहले कातिक के शुक्लपक्ष में विष्णुप्रिय दिन में ॥ ३५ ॥

स्वयंवस्त्रापथेचैव भवस्याग्रेनिरूपितः ॥ स्वर्णरेखानदीतीरे कालमेघोमहाबलः ॥ ३१ ॥ सर्वलोकोपकारार्थं तीर्थेसंस्नपितम्पुरा ॥ वामनेनस्वयंगत्वा क्षेत्रपालाःसुपूजिताः ॥ ३२ ॥ पुरायुगादौराजेन्द्र सर्वेदेवाःसमागताः ॥ सुराष्ट्रदेशेसंप्राप्ताः पुण्येरैवतकेगिरौ ॥ ३३ ॥ रक्षार्थंसर्वलोकानां वधार्थंदेववैरिणाम् ॥ विष्णोःकण्ठेतदामुक्ता जयमालासुरोत्तमैः ॥ ३४ ॥ दामोदरेतिविख्यातमभून्नामततोहरेः ॥ तदादौकार्त्तिकेशुक्ले वासरेविष्णुवल्लभे ॥ ३५ ॥ उपोषसहितैर्देवैस्त त्तीर्थंवैष्णवोत्तमम् ॥ सर्वतीर्थमयीपुण्या स्वर्णरेखानदीस्थिता ॥ ३६ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदापुण्या विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ क्षालनंसर्वपापानां रोगदारिद्र्यनाशनम् ॥ ३७ ॥ दामोदरेरैवतके परमानन्ददायकम् ॥ येपश्यन्तिविमानैस्ते नीयन्तेविष्णुमन्दिरे ॥ ३८ ॥ नगृहेकार्त्तिकःकार्यो विशेषाद्भीष्मपञ्चकम् ॥ ३९ ॥ पञ्चसुद्वादशीश्रेष्ठा ज्ञेयादामोदरे

देवताओं समेत विष्णुजीने उपास किया वह तीर्थ वैष्णवों को उत्तमहै और स्वर्णरेखा नदी समस्त तीर्थमयी तथा पवित्र स्थितहै ॥ ३६ ॥ और वह पवित्र नदी भुक्ति, मुक्ति को देनेवाली है और वह तीर्थ विष्णुलोक को देनेवाला तथा सब पापों को नाशनेवाला व रोग और दारिद्र को नाश करनेवाला है ॥ ३७ ॥ रैवतक पर्वत पै बड़े आनन्द को देनेवाले दामोदरजी को जो देखते हैं वे विमानोंके द्वारा विष्णु जीके मन्दिर में प्राप्त किये जातेहैं ॥ ३८ ॥ घरमें कात्तिक महीना न व्यतीत करना चाहिये व भीष्मपंचक को विशेषकर न व्यतीत करना चाहिये ॥ ३९ ॥ व पांचों तिथियों में द्वादशी तिथि श्रेष्ठ जानने योग्य है और कातिक महीना प्राप्त

होनेपर दामोदर तीर्थके जलमें मनुष्यों को प्रातःकाल स्नान करना चाहिये ॥ ४० ॥ और संन्यासी व ब्रह्मचारियों को महीने भर उपवास करना चाहिये और मुक्ति स्थानको चाहनेवाली सतियों व विधवाओंको मासोपवास करना चाहिये ॥ ४१ ॥ व एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास, कृच्छ्र व फिर शाकाहारसे ॥ ४२ ॥ दीपदान में परायण पुरुषोंको कातिकमें विष्णुजीको सेवन करना चाहिये यदि ब्रह्मचर्य में तत्पर पुरुष कातिक महीनेको व्यतीत करते हैं ॥ ४३ तो आपही विष्णुजी से ब्रह्मपुर में निवास किया जाता है और भीष्मपंचक प्राप्त होनेपर पंचोपचार करना चाहिये ॥ ४४ ॥ एकादशीको प्रारभ कर जबतक पौर्णमासी तिथि होती है वही

जले ॥ प्रातःस्नानंप्रकर्त्तव्यं संप्राप्तेकार्त्तिकेजनैः ॥ ४० ॥ मासोपवासःकर्त्तव्यो यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः ॥ सतीभिर्विधवाभिश्च मुक्तिस्थानमभीप्सुभिः ॥ ४१ ॥ एकभक्तेननक्तेन तथैवायाचितेनच ॥ उपवासेनकृच्छ्रेण शाकाहारेणवापुनः ॥ ४२ ॥ संसेव्यःकार्त्तिकेविष्णुर्दीपदानपरैर्नरैः ॥ ब्रह्मचर्यपरैर्मासो नीयतेयदिमानवैः ॥ ४३ ॥ तदाब्रह्मपुरेवासः क्रियतेविष्णुनास्वयम् ॥ पञ्चोपचारःकर्त्तव्यः संप्राप्तेभीष्मपञ्चके ॥ ४४ ॥ एकादशींसमारभ्य यावद्वैपूर्णिमातिथिः ॥ तदेतत्पञ्चकंप्रोक्तं सर्वपापहरंनृणाम् ॥ ४५ ॥ सर्वेषामपिमासानां पञ्चकात्कार्त्तिकादपि ॥ एकादशीकार्त्तिकस्य पुण्यदामोदरेव्रते ॥ ४६ ॥ मिष्टान्नंकार्त्तिकेदेयं हविष्यंसघृतप्लुतम् ॥ सुवर्णरजतंवस्त्रं तोयमन्नंफलानिच ॥ ४७ ॥ मासान्तेविविधंदेयं गास्तिलान्कुसुमानिच ॥ सर्वदानेषुयत्पुण्यं सर्वतीर्थेषुयत्फलम् ॥ ४८ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्गयायांपिण्डदानतः ॥ तत्फलंजायतेनृणां दृष्टेदामोदरेभुवि ॥ ४९ ॥ एकादश्यांकृतस्नाने देवपूजापरोभवेत् ॥ स्नाप्यप

यह पंचक मनुष्योंके समस्तपातकोंका नाशक कहागया है ॥ ४५ ॥ सब महीनोंके मध्य में व कातिकवाले पंचकसे भी दामोदर व्रतमें कातिककी एकादशी पुण्यदायिनी है ॥ ४६ ॥ कातिक में घृतसे संयुत हविष्य व मिष्टान्नको देना चाहिये व सुवर्ण, चादी, वस्त्र, जल, अन्न व फलोंको ॥ ४७ ॥ तथा अनेक प्रकारकी वस्तु व गऊ, तिल व पुष्पोंको मासान्त में देना चाहिये सब दानोंमें जो पुण्य है व सब तीर्थों में जो फल है ॥ ४८ ॥ व अश्वमेधादिक यज्ञों से तथा गयामें पिंडदान से जो फल होताहै वही फल मनुष्योंको पृथ्वी में दामोदर जीके देखने पर होताहै ॥ ४९ ॥ एकादशी में स्नानको कियेहुए मनुष्य देवपूजन में परायण होवै और तीर्थके जल

से नहाकर पंचामृत से नहलाकर ॥ ५० ॥ व कुंकुम, अगुरु, चन्दन व कपूरसे मिश्रित जलोंसे पूजकर तदनन्तर सुगन्धित कमल पुष्पों से ॥ ५१ ॥ व श्वेत चमेली के फूलोंसे और बहुत से तुलसीदलोंसे पूजकर वस्त्र व जनेऊ को चढ़ावै और धूप देवै ॥ ५२ ॥ और घीसे दीप देवै व घीके विना तैलसे भी दीप देवै व अनेक प्रकारकी नैवेद्य देना चाहिये॥ औरफल व तांबूल देनाचाहिये ॥ ५३ ॥ व हे राजन् ! ध्वजाके दानादिसे मन्दिर का पूजन करना चाहिये तदनन्तर संसाररूपी समुद्र को उतारनेवाली गऊ देना चाहिये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर गीत व बाजनोंके शब्दों से प्रदक्षिणाकर वेदपाठ व पुराणोंसे और दिव्य कथाओंसे व्याख्यान करना चाहि-

ञ्चामृतेनैवं स्नात्वातीर्थोदकेनच ॥ ५० ॥ कुङ्कुमागुरुश्रीखण्डकर्पूरोदकमिश्रितैः ॥ पूजयित्वाततःपुष्पैः शतपत्रैस्सुगन्धिभिः ॥ ५१ ॥ मालतीकुसुमैःशुभ्रैर्बहुभिस्तुलसीदलैः ॥ वस्त्रंयज्ञोपवीतंच धूपंचैवप्रधूपयेत् ॥ ५२ ॥ दीपंदद्याद्घृतेनैव तैलेनापिघृतंविना ॥ नैवेद्यंविविधंदेयं फलंताम्बूलमेववा ॥ ५३ ॥ प्रासादपूजाकर्त्तव्या ध्वजदानादिनानृप॥ गौःसवत्साततोदेया संसारार्णवतारिणी ॥ ५४॥ ततःप्रदक्षिणांकृत्वा गीतवादित्रनिस्वनैः ॥ वेदपाठपुराणैश्च व्याख्यादिव्यकथानकैः ॥ ५५ ॥ देवाग्रेजागरःकार्यो दीपद्योतितभूमिषु ॥ सप्तधान्यमयाःसप्त पर्वतादीपसंयुताः ॥ ५६ ॥ फलताम्बूलपक्वान्नपूजिताःपरिकल्पिताः ॥ विद्वद्भिःश्रोत्रियैःशान्तैर्ब्राह्मणैर्गृहमेधिभिः ॥ ५७ ॥ स्त्रीभिश्चनरशार्दूल श्रोतव्यावैष्णवीकथा ॥ एवंजागरणंकार्यं रागक्रोधविवर्जितैः ॥ ५८ ॥ कृत्वाजागरणंरात्रावुदितेसूर्यमण्डले ॥ पूर्वांसन्ध्यांकृतस्नानः कृत्वामध्याह्नमाचरेत् ॥ ५९ ॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च सन्तर्प्यविधिपूर्वकम् ॥ कृत्वास्नानंपितॄणान्तु

ये ॥ ५५ ॥ व दीपकों से प्रकाशित भूमियोंमें शिवदेवजीके आगे जागरण करना चाहिये और दीपकोंसे संयुक्त सप्तधान्यके सात पर्वतों को ॥ ५६ ॥ बनाकर फल, ताम्बूल व पक्वान्नसे पूजितकर श्रोत्रिय, विद्वान् व शान्त गृहस्थ ब्राह्मणोंको देना चाहिये ॥ ५७ ॥ व हे नरश्रेष्ठ ! स्त्रियों को विष्णुजीकी कथा सुनना चाहिये इस प्रकार स्नेह व क्रोधसे रहित पुरुषोंको जागरण करना चाहिये॥ ५८ ॥ रात्रिमें जागरणकर सूर्यमण्डल उदय होनेपर स्नान किये हुए मनुष्य पहली सन्ध्या करके मध्याह्न

कार्य करै ॥ ५९ ॥ व विधिपूर्वक देवताओं, पितरों व मनुष्यों को भलीभांति तर्पणकर और स्नानकर पितरोंको अपनी शक्तिसे दान देना चाहिये ॥ ६० ॥ फिर दामोदर देवजी को पुष्प धूपादिकसे पूजकर नरसिंहदेवको पूजकर गरुड़ खगनायक को पूजना चाहिये ॥ ६१ ॥ कंसको मारकर व चाणूर समेत महाबली दैत्योंको मारकर रेवती समेत बलरामजीने रैवतक पर्वत पै सब देवताओं समेत इन्द्र की नाईं यादवों समेत रमणकिया और यादवोंके गुरु गर्गाचार्यजी शिवदेव को देखने के लिये आये ॥ ६२ । ६३ ॥ उनको रेवतीजीने प्रणामकर सन्तानके कारणको पूंछा व यह पूंछा कि स्त्रियोंका अविधवापन किसप्रकार होगा ॥ ६४ ॥ और जिसप्रकार सब

देयंदानंस्वशक्तितः ॥ ६० ॥ देवंदामोदरंपूज्य पुष्पधूपादिनापुनः ॥ नरसिंहंसुरंपूज्य वैनतेयंखगोत्तमम् ॥ ६१ ॥ कंसंहत्वासचाणूरान् हत्वादैत्यान्महाबलान् ॥ रेवतीसहितोरामो रेमेरैवतकेगिरौ ॥ ६२ ॥ सहितोयादवैःसर्वैर्देवैरिवशतक्रतुः ॥ यादवानांगुरुर्गर्गो देवंद्रष्टुंसमागतः ॥ ६३ ॥ नमस्कृत्यसरेवत्या पृष्टःसन्तानकारणम् ॥ अवैधव्यंचनारीणां कथंवैप्रभविष्यति ॥ ६४ ॥ सौभाग्यंसर्वनारीणां यथाभवतितद्वद ॥ गर्ग उवाच ॥ साधुपृष्टंत्वयादेवि कथयामिशृणुष्वतत् ॥ ६५ ॥ देवाग्रेपरमंकुण्डं व्रतान्तेपूर्वकल्पितम् ॥ तत्रस्नात्वाभवेन्नारी बहुपुत्राधनान्विता ॥ ६६ ॥ नवैधव्यंभवेत्तस्याः सौभाग्यमतुलंभवेत् ॥ स्नात्वाफलानिदेयानि कुङ्कुमञ्चसकज्जलम् ॥ ६७ ॥ गौरीसूत्रंप्रदातव्यं पुष्पंताम्बूलमेवच ॥ पीतवस्त्रंप्रदातव्यं कञ्चुकंयष्टिसंयुतम् ॥ ६८ ॥ फलानिवंशपात्रेषु कृत्वाभक्ष्यान्नसंयुतान् ॥ स्त्रीणांदेयंयथाशक्त्या सतीनान्तुसदक्षिणम् ॥ ६९ ॥ एवंश्रुत्वाविधानेन रेवत्यातदनुष्ठितम् ॥ कुण्डेस्नानंकृतन्देव्या रेवत्याप्रथमं

स्त्रियोंको सौभाग्य होताहै उसको कहिये गर्गाचार्यबोले कि हे देवि! तुमने अच्छा प्रश्न किया मैं कहताहूं उसको सुनिये ॥ ६५ ॥ कि शिवदेवजीके आगे बहुत उत्तम कुण्ड व्रतके अन्तमें कल्पित कियागया है उसमें नहाकर स्त्री बहुत पुत्रोंवाली व धनसे संयुत होतीहै ॥ ६६ ॥ व उसके विधवापन नहीं होताहै और अतुलसौभाग्य होताहै स्नानकर फलोंको देना चाहिये व कज्जल समेत कुंकुम देनाचाहिये ॥ ६७ ॥ और गौरीसूत्र, पुष्प व ताम्बूल को देना चाहिये और पीतवसन तथा दण्ड समेत कंचुकी को देना चाहिये ॥ ६८ ॥ और बांसोंके पात्रोंमें फलोंको करके भक्ष्यान्न संयुक्त व दक्षिणासमेत पात्रको यथाशक्तिसे पतिव्रताओं को देना चाहिये ॥ ६९ ॥

ऐसा सुनकर विधिसे रेवतीने उसको अनुष्ठानकिया पहले कुण्डमें रेवती देवीने स्नान कियाहै उसी कारण ॥ ७० ॥ कुण्डका रेवतीनाम त्रिलोक में प्रसिद्ध हुआ उसमें पुत्रके लिये पतिव्रताओं को स्नान करना चाहिये ॥ ७१ ॥ वह कुण्ड स्त्रियों को अवैधव्यता देनेवाला और सौभाग्य व आरोग्य का दायकहै और स्नानही से पुरुषों के सब पातकों का नाश होताहै ॥ ७२ ॥ सारस्वत बोले कि रात्रिमें जागरणकर मधुसूदनजी को पूजकर द्वादशी तिथिके भोगको प्राप्त होकर मनुष्यों को पारण करना चाहिये ॥ ७३ ॥ और पुत्रों व बान्धवों समेत मनुष्य ब्राह्मणों को भोजन कराकर विकल, अन्ध व कृपणों को अपनी शक्ति के अनुसार अन्नदेना

ततः ॥ ७० ॥ कुण्डस्यरेवतीनाम विख्यातम्भुवनत्रये ॥ तत्रस्नानंप्रकर्त्तव्यं सतीभिःपुत्रकारणात् ॥ ७१ ॥ अवैधव्य प्रदंस्त्रीणां सौभाग्यारोग्यदायकम् ॥ सर्वपापक्षयंपुंसां स्नानमात्रेणजायते ॥ ७२ ॥ सारस्वत उवाच ॥ कृत्वाजागरणं रात्रावभ्यर्च्यमधुसूदनम् ॥ द्वादशींभुक्तिमामाद्य कार्यंपारणकन्नरैः ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वातु सहितःपुत्रबा न्धवैः ॥ विकलान्धकृपणानां देयमन्नंस्वशक्तितः ॥ ७४ ॥ दामोदरंरैवतके स्वर्णरेखानदीजले ॥ एवंयःकुरुतेयात्रां त स्यपुण्यफलंशृणु ॥ ७५ ॥ ब्रह्मघ्नश्चसुरापश्च ग्रामसीमाविलोपकः ॥ राजद्रोहीगुरुद्रोही मिथ्याव्रतधरःस्वयम् ॥७६॥ कूटसाक्षिप्रदोयश्च यश्चन्यासापहारकः ॥ बालस्त्रीघातकोविप्रः सन्ध्यास्नानविवर्जितः ॥ ७७ ॥ देवद्रव्यापहर्त्ताच वेद विक्रयकारकः ॥ परिणीतामृतुस्नातां स्त्रियंयोनाधिगच्छति ॥ ७८ ॥ कन्याविक्रयकर्त्ताच देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ वि

चाहिये ॥ ७४ ॥ और रैवतक पर्वत पै स्वर्णरेखा नदी के जल में नहाकर दामोदर जी को पूजै इस प्रकार जो मनुष्य यात्राको करता है उसके पुण्य के फल को सुनिये ॥ ७५ ॥ कि ब्रह्मघाती, मदिरा को पीनेवाला व गांवकी हदको नाश करनेवाला तथा राजशत्रु, गुरुद्रोही व आपही मिथ्याव्रतको धारनेवाला ॥ ७६ ॥ और झूंठी गवाही देनेवाला व जो धरोहरिको हरनेवाला है व बालघाती, स्त्रीघाती व संध्या, स्नान से रहित ब्राह्मण ॥ ७७ ॥ और देवताओंके धनको हरनेवाला व वेद बेंचने वाला तथा विवाहिता व ऋतुस्नाता स्त्री के समीप जो नहीं जाताहै ॥ ७८ ॥ व कन्याको बेचनेवाला और देवताओं व ब्राह्मणों की निन्दा करनेवाला, विश्वासघाती

व शूद्रके अन्नको भोजन करनेवाला ब्राह्मण और बहेलिया ॥ ७९ ॥ व पराई स्त्रियोंका पति तथा अपनी दीहुई वस्तु को हरनेवाला और पर्वों में मैथुन करनेवाला तथा सेतुवोंको तोड़नेवाला ॥ ८० ॥ और जो ब्राह्मणी व विधवाभी शास्त्रधारिणी न होवै ॥ ८१ ॥ हे राजन् ! वे और अन्य बहुतसे महापातकी पुरुष स्वर्णरेखा नदीके जलमें नहाकर दामोदर विष्णुजीको देखकर ॥ ८२ ॥ व रात्रिमें जागरणकर सब पातकों से छूटजाते हैं और जो पापकर्मी मनुष्य संसार सागरमें प्रजागर तीर्थ में नहीं आये हैं वे विष्णुलोकको नहीं जातेहैं ॥ ८३ । ८४ ॥ ज्यों २ मनुष्य प्रजागर तीर्थमें जाताहै त्यों त्यों विष्णुलोकके कारण विष्णुलोकमें देवताओं से मृदंग व

इवासघातकोविप्रः शूद्रान्नादोथलुब्धकः ॥ ७९ ॥ नायकःपरदाराणां स्वयंदत्तापहारकः ॥ पर्वमैथुनसेवीच तथावैसेतुभेदकः ॥ ८० ॥ ब्राह्मणीविधवाबाला नभवेच्छ्रुतधारिणी ॥ ८१ ॥ महापातकिनश्चैते तथान्येबहवोनृप ॥ स्वर्णरेखाजलेस्नात्वा दृष्ट्वादामोदरंहरिम् ॥ ८२ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा मुच्यन्तेसर्वपातकैः ॥ नतुयेपापकर्माणः समायाताःप्रजागरे ॥ ८३ ॥ संसारसागरेतीर्थे नगच्छन्तिहरेःपुरम् ॥ ८४ ॥ यथायथायातिनरःप्रजागरे तथातथाविष्णुपुरंविचिन्त्यते ॥ वासःसुरैर्वैष्णवलोकहेतवे मृदङ्गगीतध्वनिनादितेगृहे ॥ ८५ ॥ गदासिशङ्खादिधरश्चतुर्भुजो देवैर्वृतोवैहरिरूपधारी ॥ प्रगीयमानःसुरसुन्दरीभिः सयातिस्वःखेचरमात्रसङ्गी ॥ ८६ ॥ वाराहकल्पेप्रथमेयुगादौ दामोदरोरैवतकेप्रसिद्धः ॥ सैषानदीयासरितांवरिष्ठा सोयंहरिर्योभुवनस्यकर्त्ता ॥ ८७ ॥ इदंपुराणंपठतेशृणोति नरोविमानैर्मधुसूदनालये ॥ देवाङ्गनादत्तभुजश्चतुर्भुजः सनीयतेदेवगणैरभिष्टुतः ॥ ८८ ॥ इतिश्रीस्कान्देसप्तविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३२७

गीतकी ध्वनिसे शब्दायमान घर में निवास विचार कियाजाता है ॥ ८५ ॥ और गदा, तलवार व शंखादिको धारनेवाला चतुर्भुज व देवताओं से घिराहुआ विष्णुरूपधारी वह पुरुष सुरस्त्रियों से गाया जाता हुआ आकाशगामियों का संगीहोकर स्वर्गको जाताहै ॥ ८६ ॥ युगादिमें पहले वाराह कल्प में रैवतक पर्वत पै दामोदर प्रसिद्धहुये हैं वही यह नदी है जो कि नदियोंमें श्रेष्ठहै व ये विष्णुजी हैं जो कि संसारके रचनेवाले हैं ॥ ८७ ॥ जो मनुष्य इसपुराणको पढ़ता या सुनताहै वह चतुर्भुज मनुष्य देवांगनाओंसे भुजावलम्बनकर देवगणोंसे स्तुति कियाजाताहुआ विमानोंके द्वारा स्वर्गको प्राप्तहोताहै ॥ ८८ ॥ इतिसप्तविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः३२७

दो० । गये रैवतक शिखरपै जिमि वामन सुरनाथ । कह्यो त्रिशत अट्ठाइसे माहिं सोइ शुभ गाथ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि इसके अनन्तर वामन विप्रजी ने अकेले सघन वनमें पैठकर क्या किया है उस कौतुक को मुझसे कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि इसके अनन्तर ये वामन विप्र रैवतक पर्वत पै जाकर विधिपूर्वक स्वर्ण-रेखा नदीके जलमें नहाकर ॥ २ ॥ भक्तिसे सुगन्धित पुष्प,धूपादिकों से शिव देव जी को भलीभांति पूजकर हे राजन् ! निर्जन वनमें अकेले उनके आगे स्थित हुये ३ ॥ व सब प्राणियों से युक्त तथा सांपों से व्याप्त व अनेक स्वरों से घोषित तथा मयूर के शब्द से शब्दायमान ॥ ४ ॥ व कोकिलाओंके शब्द से मनोहर तथा मुर्गों

पार्वत्युवाच ॥ अथासौवामनोविप्रः प्रविष्टोगहनेवने ॥ एकाकीकिञ्चकाराथ कौतुकंतद्वदस्वमे ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ अथासौवामनोविप्रो गत्वारैवतकंगिरिम् ॥ स्वर्णरेखानदीतोये स्नात्वाहिविधिपूर्वकम् ॥ २ ॥ सुगन्धपुष्पधूपाद्यै र्देवंसम्पूज्यभक्तितः ॥ तस्थौतदग्रतोराजन्नेकाकीनिर्जनेवने ॥ ३ ॥ सर्वसत्त्वसमायुक्ते सरीसृपसमाकुले ॥ अनेक स्वरसंघुष्टे मयूरध्वनिनादिते ॥ ४ ॥ कोकिलारावरम्येच वनेकुक्कुटघोषिते ॥ खद्योतद्योतितेतस्मिन् वलीमुखविधूनि ते ॥ ५ ॥ क्वचिद्दावाग्निनाशेते क्वचित्पुष्पितपादपे ॥ गगनासक्तविटपे सूर्यतापविवर्जिते ॥ ६ ॥ लुब्धकप्राणसन्त्रस्त भ्रान्तशूकरसञ्चरे ॥ संहृष्टक्षत्रियत्रस्ते स्नानदानफलप्रदे ॥ ७ ॥ अनेकाश्चर्यसम्पन्ने सस्मारमनसाहरिम् ॥ तम्भीत मिवविज्ञाय नरसिंहःसमाययौ ॥ ८ ॥ रक्षार्थंतस्यविप्रस्य वभाषेपुरतःस्थितः ॥ नभेतव्यंत्वयाविप्र वदतेकिङ्करोम्यह म् ॥ ९ ॥ विप्र उवाच ॥ यदितुष्टोवरोदेयो नरसिंहत्वयामम ॥ सदात्ररक्षाकर्त्तव्या सर्वेषांतीर्थवासिनाम् ॥ १० ॥ देव

से शब्दित और जुगुनुवों से प्रकाशित व वानरों से कम्पित उस वनमें ॥ ५ ॥ कहीं दवाग्नि संयुत वनमें सोते हैं कहीं फूले हुये वृक्षके नीचे सोते हैं व कभी वामन जी सूर्य के तापसे रहित आकाश में लगेहुये वृक्षके नीचे सोते हैं ॥ ६ ॥ बहेलियों के कारण प्राणोंसे भीत व भ्रमित शूकरों के संचार तथा प्रसन्न क्षत्रियों से भीत व स्नान दान से फलदायक ॥ ७ ॥ और अनेकों आश्चर्य से संयुत वनमें वामनजी ने मनसे विष्णुजी को स्मरण किया व उन वामनजी को डरेहुये से जानकर नृसिंह जी आये ॥ ८ ॥ व उन वामन द्विजकी रक्षाके लिये आगे स्थित होकर वे बोले कि हे विप्रजी ! तुमको डरना न चाहिये कहिये मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं ॥ ९ ॥

विप्र बोले कि हे नरसिंहजी ! यदि तुम प्रसन्न हो तो तुमको मुझे वर देना चाहिये और सदैव सब तीर्थवासियों की यहां रक्षा करना चाहिये ॥ १० ॥ व जब तक चौदह इन्द्र रहैं तबतक तुमको देवताके आगे स्थित होना चाहिये ऐसाही होगा यह उन मे कहकर विष्णुजीने उस समय वैसाही किया ॥ ११ इसीकारण दामोदर जीके आगे नृसिंहजी पूजेजाते हैं उन्होंने वनको सौम्य किया और वे तीर्थकी रक्षा करतेहैं ॥ १२ ॥ व उस वनमें भूत प्रेतादिकों का निवास नहीं होताहै और नृसिंह जीकी प्रसन्नतासे सिंहादिक का डर नष्ट होगया ॥ १३ कातिकमें विष्णुजी के द्वादशी वासरमें पारण करनेपर दामोदरजी को प्रणामकर तदनन्तर भवजीको देखने के

स्याग्रेतदास्थेयंयावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ एवमस्त्विवतितंप्रोक्त्वातथाचक्रेहरिस्तदा ॥ ११ ॥ अतोदामोदरस्याग्रे नरसिंहःप्रपूज्यते ॥ वनंसौम्यंकृतंतेन तीर्थरक्षांकरोतिसः ॥ १२ ॥ भूतप्रेतादिसंवासो वनेतस्मिन्नजायते ॥ नरसिंहप्रसादेन नष्टं सिंहादिकंभयम् ॥ १३ ॥ कार्त्तिकेवासरेविष्णोर्द्वादश्यांपारणेकृते ॥ दामोदरंनमस्कृत्य भवंद्रष्टुंततोययौ ॥ १४ ॥ चतुर्दश्यांकृतस्नानो भवंसम्पूज्यभावतः ॥ भवभावभवंपापं भस्मीभूतम्भवार्चनात् ॥ १५ ॥ संक्षीणःपापनिचयो जातोदेवस्यदर्शनात् ॥ भवस्याग्रेस्थितंशान्तं तथावस्त्रापथस्यच ॥ १६ ॥ कालमेघंसमभ्यर्च्य ततोवस्त्रापथंययौ ॥ देवंसम्पूज्यमन्त्रैःस वेदोक्तैर्विधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥ धूपदीपादिनैवेद्यैः सर्वंचक्रेसवामनः ॥ प्रदक्षिणाशतंकृत्वा भवस्याग्रेव्यवस्थितः ॥ १८ ॥ यावन्निरीक्ष्यतेसर्वं तावत्पश्यतिपर्वतम् ॥ ऊर्ज्जयन्तंगिरिवरं मैनाकस्यसहोदरम् ॥ १९ ॥ सौराष्ट्रदेशेविख्यातं युगादौप्रथमंस्थितम् ॥ भूधरंभूधरश्रेष्ठं शिलापादपमण्डितम् ॥ २० ॥ तन्दृष्ट्वाचिन्तयामास

लिये गये ॥ १४ ॥ और चौदसिमें स्नानकर भवजी को भक्तिसे पूजकर भवजीके पूजनसे संसारमें उपजा हुआ पातक भस्म होगया ॥ १५ ॥ और भवदेवजीके दर्शनसे उनके पातकों के समूह नष्ट होगये व वस्त्रापथ तथा भवजी के आगे स्थित शान्त ॥ १६ ॥ कालमेघजी को पूजकर तदनन्तर वस्त्रापथ तीर्थको गये और भवदेवजी को उन्होंने विधिपूर्वक वेदोक्त मन्त्रों से पूजकर ॥ १७ ॥ धूप, दीपादिक नैवेद्य से सब कर्म किया व सौ प्रदक्षिणा करके वे वामनजी भवजी के आगे स्थित हुये ॥ १८ ॥ व जबतक शिवजीको देखैं तबतक उन्होंने मैनाक के छोटे भाई ऊर्ज्जयन्तनामक गिरिवर पहाड़को देखा ॥ १९ ॥ व सौराष्ट्रदेशमें प्रसिद्ध तथा पहले

युगादिमें स्थित शिला व वृक्षों से शोभित व पर्वतों में श्रेष्ठ उस पर्वत को देखकर सूक्ष्म शरीरवाले उन वामनजी ने चिन्तवन किया कि थोड़े परिश्रमवाले व पुत्रों और लक्ष्मी को देनेवाले बहुतसे ॥ २०।२१ ॥ देवताओं को देखते हुये पुरुषको यहां उत्तम धर्म होताहै और समुद्रगामिनी नदीमें नहाकर मनुष्य पातकों से छूट जाताहै ॥ २२ ॥ व गऊको छूकर और ब्राह्मणको प्रणामकर तथा गुरू व देवताओं को भलीभांति पूजकर तथा तपस्वी, पति, शान्त, वेदमात्र व ब्रह्मचारी ॥ २३ ॥ और पिता, माता, बहन व उसके पति को और कन्याके पति (दामाद) को व भैने, नाती, मित्र, सम्बन्धी व बान्धवों को ॥ २४ ॥ भलीभांति भोजन कराकर

सूक्ष्मवर्ष्मासवामनः ॥ अल्पायामान्सबहुलान् पुत्रलक्ष्मीप्रदायकान् ॥ २१ ॥ देवानुपश्यतश्चात्र सुधर्ममुपजायते ॥ दृष्ट्वानदींसागरगां स्नात्वापापैःप्रमुच्यते ॥ २२ ॥ गांस्पृष्ट्वाब्राह्मणंनत्वा सम्पूज्यगुरुदैवतान् ॥ तपस्विनंयतिंशान्तं श्रोत्रियंब्रह्मचारिणम् ॥ २३ ॥ पितरंमातरंभगिनीं तत्पतिंदुहितुःपतिम् ॥ भागनेयंचदौहित्रं मित्रसम्बन्धिबान्धवान् ॥ २४ ॥ सम्भोज्यपातकैःसर्वैर्मुच्यन्तेगृहमेधिनः ॥ राजागजाश्वनकुलसतीवृषमहीधराः ॥ आदर्शक्षीरवृक्षायेसततान्नप्रदास्तुये ॥ दृष्टमात्राःपुनन्त्येते येनित्यंसत्यवादिनः ॥ २६ ॥ वेदधर्मकथांश्रुत्वा दृष्ट्वामुक्तिपरान्नरान् ॥ स्मृत्वाहरिहरौ गङ्गांकृत्वातुरणमार्जनम् ॥ २७ ॥ गत्वाजागरणंविष्णोर्दत्त्वादानंस्वशक्तितः ॥ ताम्बूलंकुसुमंदीपं नैवेद्यंतुलसीदलम् ॥ २८ ॥ गीतंनृत्यंचवाद्यञ्च विधायसुरमन्दिरे ॥ एतेसूक्ष्माःस्मृताधर्माः क्रियमाणामहोदयाः ॥ २९ ॥ अतोगिरीन्द्रंपश्यामि सर्वदेवालयंशुभम् ॥ तेषांकरतलेस्वर्गं येयान्तिशिखरंनराः ॥ ३० ॥ इतिज्ञात्वा

गृहस्थ सब पातकोंसे छूट जाते हैं और राजा, हाथी, घोड़ा, नेउला, पतिव्रता, वृषभ व पर्वत ॥ २५ ॥ दर्पण व जो दूधवाले वृक्ष हैं और जो सदैव अन्न को देनेवाले हैं व जो सदैव सत्य बोलते हैं ये देखनेही से पवित्र करते हैं ॥ २६ ॥ और वेद व धर्म की कथा को सुनकर व मुक्ति में तत्पर पुरुषों को देखकर और विष्णु, शिव व गङ्गाको स्मरणकर तथा युद्ध का मार्जनकर ॥ २७ ॥ व विष्णुजी के जागरणक्षेत्रको जाकर तथा शक्तिसे दानको देकर व ताम्बूल, पुष्प, दीप, नैवेद्य व तुलसीदलको देकर ॥ २८ ॥ और देवमन्दिर में गीत, नृत्य व वाद्य करके मनुष्य पापों से छूट जाताहै क्योंकि बड़े ऐश्वर्यवाले कियेहुये ये सूक्ष्म धर्म कहेगयेहैं ॥ २९ ॥ इस लिये

सब देवताओंके स्थान उत्तम पर्वतेन्द्रको देखूं जो मनुष्य शिखरको जातेहैं उनके करतलमें स्वर्ग होताहै ॥ ३० ॥ ऐसा जानकर वे वामनजी स्वामिकार्त्तिकेयकीमाता भवानीको देखने के लिये पर्वत पै चढ़े और आकाशमें मिलेहुये शिखरपै गये ॥३१॥ ज्यों ज्यों मनुष्य उत्तम पर्वत पै चढ़तेहैं त्यों त्यों सब प्राणी पातकोंसे छूटजाते हैं ॥ ३२ ॥ ऐसी बुद्धि करके वामन द्विज पर्वतके शिखर पै गये व भवजीके भक्त उन वामनजीने स्वामिकार्त्तिकेयकी माताको देखा ॥ ३३ ॥ स्वामिकार्त्तिकेयजी उनको अम्बा ऐसा कहते हैं उसी कारण अन्य सब देवता अम्बा कहते हैं और पृथ्वी में सब मनुष्य व पाताल में सब नाग अम्बा कहते हैं ॥ ३४ ॥ उसी कारण

समारूढो भवानींस्कन्दमातरम् ॥ द्रष्टुंसवामनोयातः शिखरेगगनाश्रिते ॥ ३१ ॥ यथायथागिरिवरे समारोहन्तिमानवाः ॥ तथातथाविमुच्यन्ते पातकैःसर्वदेहिनः ॥ ३२ ॥ इतिकृत्वामतिंविप्रो जगामगिरिमूर्द्धनि ॥ भवभक्तोभवानींस ददर्शस्कन्दमातरम् ॥ ३३ ॥ अम्बेतिभाषतेस्कन्दस्ततोन्येसर्वदेवताः ॥ पृथिव्यांमानवाःसर्वे पातालेसर्वपन्नगाः ॥३४॥ ततोह्यम्बेतिविख्याता पूज्यतेगिरिमूर्द्धनि ॥ सम्पूज्यविविधैःपुष्पैः फलैर्नानाविधैर्द्विजः ॥ ३५ ॥ गगनासक्तशिखरे संस्थितःकौतुकान्वितः ॥ एकाकीशिखरेतस्मिन्नूर्द्ध्वबाहुर्व्यवस्थितः ॥ ३६ ॥ निरीक्ष्यमेदिनींसर्वा मपर्वतससागराम् ॥ आद्यंसनातनंदेवं भास्करंत्रिगुणात्मकम् ॥ ३७ ॥ सर्वतेजोमयंदेवं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥ भ्रममाणंनिराधारं कालमानप्रयोजकम् ॥ ३८ ॥ यावत्पश्यतितंविम्बं तावत्पश्यतिशङ्करम् ॥ दिगम्बरंहरंदेवं समन्ताद्भस्मगुण्ठितम् ॥ ३९ ॥

पर्वत के शिखर पै अम्बा ऐसी प्रसिद्ध भगवती पूजीजाती हैं अनेक भांतिके पुष्पों से व अनेक प्रकार के फलोंसे पूजकर वामन द्विज ॥ ३५ ॥ कौतुकसे सयुक्त होकर आकाश में लगेहुए शिखर पै स्थित हुए और ऊपर भुजाओं को उठाकर वामनजी अकेले उस शिखर पै स्थितहुए ॥ ३६ ॥ व पर्वतोंसमेत तथा समुद्रों समेत समस्त पृथ्वीको देखकर आदिभूत व त्रिगुणात्मक सनातन सूर्यदेव ॥ ३७ ॥ व सब देवताओंसे प्रणाम किये व घूमते हुए, निराधार तथा कालके प्रमाणके प्रयोजक समस्त तेजोमय देव ॥ ३८ ॥ उस सूर्यबिंबको जबतक देखैं तबतक उन्होंने दिगम्बर (नग्न) व सब ओरसे भस्मको लपेटेहुए शिव शंकरदेवजीको देखा॥ ३९ ॥

वे शिवदेवजी बुद्धि व रूपके आकार, सर्वज्ञ, गुणोंसे भूषित, भस्मको अंग में लगाये, जटाओंको धारे, सौम्य व आकाशमार्गमें स्थित थे ॥ ४० ॥ शिवजी बोले कि हे वामनजी ! सुनिये मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं व तुमको अनेक प्रकारके वरोंको दूंगा व त्रिलोकव्यापिनी वृद्धि होगी इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ और तुम वेदोंको कहोगे व जो गीत तथा नृत्यादिकहैं उसको जानोगे और तुम्हारे असाध्य वस्तुको साधन करनेवाली शक्ति होगी ॥ ४२ ॥ परन्तु वस्त्रापथ तीर्थमें जाकर तीर्थों का अवलोकन कीजिये ॥ ४३ ॥ वामनजी बोले कि हे महादेव,देव ! वस्त्रापथ तीर्थमें जो तीर्थ हैं उनको विशेषकर मुझसे कहिये यदि मेरे ऊपर दया होवै ॥ ४४ ॥

बुद्धिरूपाकृतिंदेवं सर्वज्ञंगुणभूषितम् ॥ भस्माङ्गंजटिलंसौम्यंव्योममार्गेव्यवस्थितम् ॥ ४० ॥ शिव उवाच ॥ शृणुवामनतुष्टोहं दास्येतेविविधान्वरान् ॥ त्रैलोक्यव्यापिनीवृद्धिर्भविष्यतिनसंशयः ॥ ४१ ॥ कथयिष्यसित्वंवेदं गीतन्नृत्यादिकंचयत् ॥ असाध्यसाधनाशक्तिर्भविष्यतितवस्थिता ॥ ४२ ॥ परंवस्त्रापथेगत्वा कुरुतीर्थावलोकनम् ॥ ४३ ॥ वामन उवाच ॥ वस्त्रापथेमहादेव यानितीर्थानितानिमे ॥ वददेवविशेषेण यद्यस्तिकरुणामयि ॥४४॥ रुद्र उवाच॥ वस्त्रापथस्यवायव्ये कोणेदिव्यंसरोवरम् ॥ तस्यपश्चिमदिग्भागे जालीगहनपल्लवम् ॥४५॥ बिल्ववृक्षमयीमध्येलिङ्गंतत्रास्तिमृन्मयम् ॥ ४६ ॥ तत्रासौलुब्धकःसिद्धो गतोममपुरेपुरा ॥ तस्यदर्शनमात्रेण ब्रह्महत्याविनश्यति ॥ ४७ ॥ इन्द्रोवैवृत्रहायस्मिन्विमुक्तोब्रह्महत्यया ॥ तस्मादुत्तरदिग्भागे धनदेनप्रतिष्ठितम् ॥ ४८ ॥ लिङ्गंत्रैलोक्यविख्यातं तत्रदेवीत्रिशूलिनी ॥ यस्यादर्शनमात्रेण पुत्रस्तुनलकूबरः ॥ ४९ ॥ शापानुग्रहशक्तोभूदेवंचक्रेत्रिशूलिनी ॥ भवस्यानिर्ऋतेकोणे

शिवजी बोले कि वस्त्रापथतीर्थ के वायव्यकोणमें दिव्य सरोवर है व उसके पश्चिमदिशाके भागमें सघनपत्तोंवाली बिल्ववृक्षमयी जाली है वहां उसके बीच में मिट्टीका लिंगहै ॥ ४५ । ४६ ॥ वहां यह बहेलिया सिद्ध होकर पुरातन समय मेरे नगरमें प्राप्तहुआ है उसकेदर्शनहीसे ब्रह्महत्या नाशहोजाती है ॥ ४७ ॥ जिसमें वृत्रासुरको विनाशनेवाले इन्द्रजी ब्रह्महत्यासे छूटगये हैं उससे उत्तर दिशाके भागमें (धनद) कुबेर से थापित ॥ ४८ ॥ लिंग त्रिलोक में प्रसिद्ध है वहां

त्रिशूलिनीदेवी हैं जिसके दर्शनहीसे नल कूबर पुत्र ॥ ४९ ॥ शाप व अनुग्रह में समर्थहुआ ऐसा त्रिशूलिनीने कियाहै और भवजीके निर्ऋति कोणमें हेरम्बसंज्ञक गण है ॥ ५० ॥ पहले लिंगको करतेहुये यमराजने उसको थापन कियाहै व विचित्र मयूरी चित्रहै चित्रगुप्तजी बहुत विस्मित होकर ॥ ५१ ॥ पुरातन समय उसको सुनकर उन मृन्मयदेवको देखने के लिये आये व हे द्विजोत्तम ! उन्होंने भी उसक्षेत्र में लिंगको निर्माण कियाहै ॥ ५२ ॥ जो कि चित्रगुप्तेश्वरनामक लिंग प्रसिद्ध है और पश्चिम ओर उदार बुद्धिवाले प्रजापतिजी ने उस समय रैवतक पर्वत पै स्थित केदारनामक देवको किया है और वहां आपही प्रजापतिजी पर्वतों के शिखरों पै

गणोहेरम्बसंज्ञितः ॥ ५० ॥ यमेनकुर्वतालिङ्गंप्रथमंसंप्रतिष्ठितम् ॥ विचित्रंबर्हिकाचित्रं चित्रगुप्तोतिविस्मितः ॥ ५१ ॥ श्रुत्वासमागतोद्रष्टुं देवंतन्मृन्मयंपुरा ॥ तेनापिनिर्मितंलिङ्गं तस्मिन्क्षेत्रेद्विजोत्तम ॥ ५२ ॥ चित्रगुप्तेश्वरंनाम विख्यातम्भुवनत्रये ॥ पश्चिमेनचकारोच्चैः प्रजापतिरुदारधीः ॥ ५३ ॥ केदाराख्यंतदादेवं गिरौरैवतकेस्थितम् ॥ प्रजापतिःस्वयंतस्थौ तत्रपर्वतसानुषु ॥ ५४ ॥ रुद्र उवाच ॥ इन्द्रेश्वरस्यमाहात्म्यं कथयिष्येशृणुष्वतत ॥ ईशानकोणेविख्यातं भवस्यविदितंमम ॥ ५५ ॥ वामन उवाच ॥ कस्मादिन्द्रःसमायातः कथंचक्रेहरिस्त्विह ॥ कथांसुविस्तरामेतां कथयस्वममप्रभो ॥ ५६ ॥ रुद्र उवाच ॥ लुब्धकस्तुपुरासिद्धः शिवरात्रिप्रजागरात् ॥ शिवलोकेतदाप्राप्तं विमानंगुणसंयुतम् ॥ ५७ ॥ सर्वत्रगंसुरचितं दिव्यस्त्रीगीतनादितम् ॥ तमारुह्यसमायातो द्रष्टुंतांनगरींहरेः ॥ ५८ ॥ यस्यांयुद्धंसमभवदिन्द्रेण

स्थित हुये हैं ॥ ५३ । ५४ ॥ रुद्रजी बोले कि इन्द्रेश्वर के माहात्म्यको कहताहूं उसको सुनिये जो लिंग कि भवजीके ईशानकोणमें प्रसिद्ध है व मुझको विदित है ॥ ५५ ॥ वामनजी बोले कि इन्द्रजी किस कारण आये हैं व यहां इन्द्रजीने किस कारण उसको कियाहै हे प्रभो ! बहुत विस्तारवाली इस कथाको मुझसे कहिये ॥ ५६ ॥ रुद्रजी बोले कि पुरातन समय शिवरात्रिमें जागरण से बहेलिया सिद्ध हुआहै तब शिवलोकमें गुणोंसे संयुत विमान प्राप्त हुआ है ॥ ५७ ॥ जो कि सब कहीं जानेवाला व उत्तम रचित तथा दिव्य स्त्रियों के गीतों से शब्दित था उसपै चढ़कर वह इन्द्रकी उस नगरीको देखने के लिये आया ॥ ५८ ॥ जिसमें

यमदूतोंसे व इन्द्रसे युद्ध हुआ है आते हुये उसको जानकर सुरराजने विचार किया ॥ ५६ ॥ कि यह चित्रगुप्त व यमादिकोंसे सबसे शिवजी की नाई पूजने योग्य है ॥ ६० ॥ इस कारण मैं हाथींपै चढ़कर व यमराज भैंसे पर सवार होकर तथा मेरी आज्ञासे चित्रगुप्त लेखनी (कलम) को कान पै धरकर चलैं ॥ ६१ ॥ बहेलिया को घर आनेपर अतिथिका पूजन करना चाहिये क्योंकि बिन पूजे हुये इसके जानेपर शिवजी मुझको शाप देवैंगे ॥ ६२ ॥ उसी कारण लोकों का कल्याण करनेवाले शिवजीको सब पूजैंगे स्वर्गको देखने के लिये आयेहुये दूरमें स्थित उसको उन्होंने देखा ॥ ६३ ॥ जोकि विमान पै स्थित व शिवजीके समान

यमकिङ्करैः ॥ आगच्छमानंतंज्ञात्वा देवराजेनचिन्तितम् ॥ ५९ ॥ पूज्योयंहरवत्सर्वैश्चित्रगुप्तयमादिभिः ॥ ६० ॥ अहंगजंसमारुह्य महिषेणयमोप्यतः ॥ विधायलेखनींकर्णे चित्रगुप्तोममाज्ञया ॥६१॥ आतिथ्यपूजाकर्त्तव्यालुब्धकेगृहमागते ॥ अपूजितेगतेह्यस्मिन् हरोमांशपयिष्यति ॥ ६२ ॥ तस्माच्चपूजयिष्यन्ति शङ्करंलोकशङ्करम् ॥ दिवंद्रष्टुंसमायातं ददृशुर्दूरतःस्थितम् ॥ ६३ ॥ विमानस्थंहराकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥ संस्तूयमानंमाहात्म्यैः शिवरात्रेःशिवस्यच ॥ ६४ ॥ माघेसोमेचतुर्द्दश्यां कृष्णायांजागरेकृते ॥ तदेतज्जायतेसर्वं सुरेश्वरधरातले ॥ ६५ ॥ एवंदिव्याङ्गना काचिदावेष्टन्तीपुरन्दरम् ॥ निवार्यहस्तमुद्यम्य गजेन्द्रंचारुलोचना ॥ ६६ ॥ किंदानैर्बहुभिर्दत्तैर्व्रतैःकिंकिंसुरार्चनैः ॥ किंयज्ञैःकिंतपोभिश्च ब्रह्मचर्यैःसुरेश्वर ॥ ६७ ॥ गयायांपिण्डदानेन प्रयागेमरणेनकिम् ॥ सोमेश्वरेसरस्वत्यां सोमपर्वणिकिंगतैः ॥ ६८ ॥ कुरुक्षेत्रेगतैःकिंस्याद् राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ तुलासुवर्णदानेन वेदपाठेनकिंभवेत् ॥ ६९ ॥ सर्वपाप

आकारवान् तथा करोड़ सूर्यों के समान प्रभावान् और शिवरात्रि व शिवजी के माहात्म्यों से स्तुति किया जाता था ॥ ६४ ॥ कि हे सुरेश्वर ! माघ महीने में कृष्ण पक्षवाली सोमवार चौदसि में जागरण करने पर वह सब फल पृथ्वी में होता है ॥ ६५ ॥ इसप्रकार सुन्दर नेत्रोंवाली कोई देवांगना हाथको उठाकर गजेन्द्रको रोक कर इन्द्रको घेरती थी व कहतीथी ॥ ६६ ॥ कि हे सुरेश्वर ! बहुत दियेहुये दानोंसे, व्रतोंसे व देवपूजन करनेसे क्याहै व यज्ञोंसे, तपोंसे और ब्रह्मचर्य्योंसे क्याहै ॥६७॥ गयामें पिंडदानसे व प्रयागमें मरने से क्याहै व चन्द्रमा के ग्रहणमें सोमेश्वर और सरस्वतीके समीप जाने से क्या है ॥ ६८ ॥ व राहुसे सूर्य नारायणके ग्रस्त होनेपर

कुरुक्षेत्रमें जानेसे क्याहै और तुलापै सुवर्णदानसे व वेदपाठसे क्या होताहै ॥ ६९ ॥ और जिससे सब पातकोंका नाश होता है उस वृषोत्सर्ग से क्याहै व गोदान क्या करता है और तिलदान क्या करता है ॥ ७० ॥ व विषुव अयन तथा संक्रान्तिमें कैसा फलहै जैसा कि माघ महीने में चौदसि तिथिमें जागरण करनेपर होताहै ॥ ७१ ॥ व भैंसेपर बैठेहुये बुद्धिमान् यमराज कहतेथे कि हे चित्रगुप्त ! शूद्रके माहात्म्य को देखिये व विचारिये ॥ ७२ ॥ यह वही बहेलियाहै जिसने पुरातन समय शिवजीको पूजा है सुराष्ट्र देशमें वस्त्रापथ तीर्थ प्रसिद्ध है उसको सुनिये ॥ ७३ ॥ कि वहां ऊर्जयन्त पर्वतहै व रैवतक पहाड़ है उन दोनोंके बीच में बड़ीभारी जाली है ऐसा मैंने

॥ गोदानंकिंकरोत्येव तिलदानंकरोतुकिम् ॥ ७० ॥ अयनेविषुवेचैव संक्रान्तौकीदृशं त्वयोयेन वृषोत्सर्गेणातेनकिम् ॥ यमःसम्भाषतेधीमान् महिषोपरिसंस्थितः ॥ पश्यशूद्रस्य फलम् ॥ माघेमासिचतुर्दश्यां यादृशंजागरेकृते ॥ ७१ ॥ सुराष्ट्रदेशेविख्यातं तीर्थवस्त्रापथंशृणु ॥ माहात्म्यं चित्रगुप्तविचारय ॥ ७२ ॥ अयंसलुब्धकोयेन हरःसम्पूजितःपुरा ॥ मृन्मयंवर्त्ततेलि ७३ ॥ ऊर्ज्जयन्तोगिरिस्तत्र तथारैवतकोगिरिः ॥ महतीवर्त्ततेजालिस्तयोर्मध्येमयाश्रुतम् ॥ ७४ ॥ तदस्माभिःकथंवाच्यं सर्वेजानन्तितेसु ङ्गं रात्रौचानेनपूजितम् ॥ रात्रौकृतंजागरणं येनकार्येणचागतः ॥ ७५ ॥ विरञ्चिनारायण राः ॥ वराङ्गनावरंद्रष्टुं वरयन्तिपरस्परम् ॥ ७६ ॥ इन्द्रावासात्समायाता नन्दनेवेगवत्तराः ॥ ७७ ॥ मृदङ्ग शङ्करैःसमो देहःसमागच्छतिकोपिपूरुषः ॥ पुरींसुरेशाधिपतेर्निरीक्षितुं भर्त्तामम्मायन्तवचास्तिकिंपतिः ॥ ७८ ॥ वीणापटहस्वरस्तुतिप्रबोधिताभिःसुरराजमन्दिरे ॥ देवोहरोयंननरोहराकृतिर्दृष्टोङ्गनाभिस्तवकिंकिमावयोः ॥ ७९ ॥

सुना है ॥ ७४ ॥ और वहां मिट्टीका लिंग है उसको रात्रि में इसने पूजन किया है व रात्रिमें जागरण किया है कि जिस कार्य से आया था ॥ ७५ ॥ यह हमलोगों से कैसे कहा जासक्ताहै वे सब देवता जानते हैं और इन्द्रके स्थान से बड़े वेगवाली उत्तम स्त्रियां वरको देखने के लिये नन्दनवनमें आईं और परस्पर पतिको वरण करती थीं ॥ ७६ । ७७ ॥ कि ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी के समान शरीरवाला कोई पुरुष इन्द्रकी पुरी को देखने के लिये आता है यह मेरा स्वामी है या तुम्हारा पति है ॥ ७८ ॥ मृदङ्ग, वीणा व नगारे के शब्दों की स्तुतिसे जगाईहुई देवांगनाओं ने इन्द्रमन्दिरमें इन शिव देवजी को देखाहै यह शिवजी के समान आकारवान् पुरुष

मनुष्य नहीं है और यह तुम्हारा पतिहै कि हम दोनोंमें से किसीका पतिहै ॥ ७९ ॥ कोई गाती हैं कोई हँसती है कोई नाचती हैं व कोई पढ़ती हैं व माता, पिताओंके समीप कोई जयशब्दसे संयुत अनेक वाक्यों से बोलती हैं ॥८०॥ कोई शिवजीकी स्तुति करती है व कोई स्त्री पार्वतीकी स्तुति करती है व कोई बिल्वपत्रोंसे पूजती है और उपासका क्या फलहै व जागरणमें जो फलहोवै उसको कहिये ॥ ८१ ॥ नन्दन वनमें उन देवांगनाओंके अनेकप्रकारके वचन सुनेजातेहैं ब्रह्मलोकसे अधिक वार्ता को करके तदनन्तर ॥ ८२ ॥ फिर कौतुकसे संयुक्त इन्द्रजी लुब्धक (बहेलिया) से बोले कि किस देशमें पर्वतमें जालीहै व जहां लिंगहोवै उसको दिखलाइये॥ ८३ ॥

गायन्तिकाश्चिद्धिहसन्तिकाश्चिन्नृत्यन्तिकाश्चित्प्रपठन्तिकाश्चित ॥ वदन्तिकाश्चिज्जयशब्दसंयुतैर्वाक्यैरनेकैर्गुरुसन्निधाने ॥ ८० ॥ काचिच्छिवंस्तौतिशिवांतथान्या काचित्समभ्यर्च्चयतिबिल्वपत्रैः ॥ किंचोपवासस्यफलंवदस्व निद्राक्षयेवायदनुष्ठितंतत ॥ ८१ ॥ तासांनानाविधावाचः श्रूयन्तेनन्दनेवने ॥ ब्रह्मलोकाधिकांवार्त्तां कृत्वाचतदनन्तरम् ॥ ८२ ॥ देवेन्द्रोलुब्धकंभूयो बभाषेकौतुकान्वितः ॥ कस्मिन्देशेगिरौजालिर्लिङ्गंयत्रास्तिदर्शय ॥ ८३ ॥ लुब्धक उवाच ॥ सुराष्ट्रदेशोविख्यातो यत्रदेवीसरस्वती ॥ वाडवंशिरसाधृत्वा प्रविष्टालवणाम्बुधौ ॥ ८४ ॥ यत्रसागोमतीयाति यत्रास्तेगन्धमादनम् ॥ ऊर्ज्जयन्तोगिरिवरो यत्ररैवतकोगिरिः ॥ ८५ ॥ तत्रवस्त्रापथंक्षेत्रं भवोदेवोऽव्यवस्थितः ॥ तत्रास्ते मृन्मयंलिङ्गं जालिमध्येसुरोत्तम ॥ ८६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ मयावैतत्रगन्तव्यं पूजयिष्येभवंस्वयम् ॥ जालिमध्येतथालिङ्गं दर्शयस्वचलुब्धक ॥ ८७ ॥ परदारादिजंपापं दैत्यानांचविकृन्तनम् ॥ वद्द्वधेद्वत्रसंजातं तत्सर्वंक्षालयाम्यहम् ॥ ८८ ॥

लुब्धक बोला कि सुराष्ट्र ऐसा देश प्रसिद्धहै जहां कि सरस्वती देवी मस्तकसे वड़वानलको धारणकर क्षारसमुद्रमें पैठी हैं ॥ ८४ ॥ और जहां वह गोमती जातीहै व जहां गन्धमादन पर्वतहै और जहां ऊर्जयन्तनामक उत्तम पर्वतहै व जहा रैवतक पहाड़है ॥ ८५ ॥ हे सुरोत्तम ! वहां वस्त्रापथ क्षेत्रहै व भवदेवजी स्थितहैं और वहां जालीके मध्यमें मिट्टीका लिंगहै ॥ ८६ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे लुब्धक ! मुझको वहां जाना चाहिये और भवजीको आपही पूजूंगा जालीके मध्यमें लिंगको दिखलाइये ॥ ८७ ॥

परांई स्त्रियोंसे उपजाहुआ पाप व दैत्योंका विनाश और वृत्रासुरसे उपजा हुआ जो पाप बढ़ाहै उस सबको मैं नाशकरूं ॥ ८८ ॥ ऐसा कहकर सब साथही पर्वत के शिखर पै प्राप्तहुये और जो देवता थे वे सवारियोंको छोड़कर पैदल स्थितहुये ॥ ८९॥ और ऊर्जयन्त पर्वतके शिखरपै गजराज (ऐरावत) आया व उसके आगे उस पर्वतके मस्तक पै उसने चरण दिया इस कारण ॥ ९०॥ उस हाथीसे दबेहुये उत्तम पर्वतने निर्मल जलको बहाया तब इन्द्रने लोकों के हितकी कामनासे यह कहा कि हाथी के पांवसे उपजाहुआ जल स्थिर होगा और जहां जाली स्थित थी वहा सब आये ॥ ९१ । ९२ ॥ व माघ महीने में चौदसि को अनेक भांतिके पुष्पोंसे शिवजी

इत्युक्त्वासहिताःसर्वे संप्राप्तागिरिमूर्द्धनि ॥ वाहनानिचतेत्यक्त्वा येस्थिताःपादचारिणः ॥ ८९ ॥ ऊर्जयन्तागिरेर्मूर्द्ध्नि गजराजःसमागतः ॥ तदग्रेचरणंतस्य ददौमूर्द्धिसकारणात ॥ ९० ॥ तेनाक्रान्तोगिरिवरस्तोयंसुस्रावनिर्मलम् ॥ गजपादोद्भवंवारि भविष्यतितदास्थिरम् ॥ ९१ ॥ इतिप्रोक्तंसुरेन्द्रेण लोकानांहितकाम्यया ॥ सर्वेसमागतास्तत्र यत्रजालिंऽर्यवस्थिता ॥ ९२ ॥ सम्पूज्यविविधैःपुष्पैर्माघेमासेचतुर्दशीम् ॥ तस्यांजागरणंकृत्वा संजातोनिर्मलोहरिः ॥९३॥ वस्त्रापथेभवम्पूज्य हरीरैवतकेगिरौ ॥ इन्द्रेश्वरंप्रतिष्ठाप्य सम्प्राप्तःस्वनिकेतनम् ॥ ९४ ॥ याहृग्रूपशिवोदृष्टः सूर्यविम्बादिगम्बरम् ॥ पद्मासनस्थितःसौम्यस्तथातन्तत्रसंस्मरन् ॥ ९५ ॥ प्रतिष्ठाप्यतथामूर्त्तिपूजयामासवत्सरम् ॥ मनोभीष्टार्थसिद्ध्यर्थं ततःसिद्धिमवाप्तवान् ॥ ९६ ॥ निमिनाथशिवेत्येवं नामचक्रेसवामनः ॥ भवस्यपश्चिमेभागे प्रत्यासन्नेधरातले ॥ ९७ ॥ वामनोवसतिंचक्रे तीर्थेवस्त्रापथेतदा ॥ अतोयवाधिकंप्रोक्तं तीर्थंदेवैःसवासवैः ॥ ९८ ॥ इन्द्रेणच

को पूजकर व उस रात्रिमें जागरण कर इन्द्रजी निर्मल हुये ॥ ९३ ॥ व वस्त्रापथ तीर्थ में भवजीको पूजकर इन्द्रजी रैवतक पर्वत पै इन्द्रेश्वर को थापकर अपने घरको प्राप्तहुये ॥ ९४ ॥ सूर्य नारायण के बिंबमें जैसे रूपवाले शिवजी देखपड़ेथे कमलासनसे बैठेहुये सौम्य वामनजीने वहां वैसेही उन दिगंबर शिवजीको स्मरण करतेहुये ॥ ९५ ॥ मूर्तिको थापकर मनोरथ की सिद्धिके लिये वर्ष भर तक पूजनकिया तदनन्तर सिद्धिको पाया ॥ ९६ ॥ व उन वामनजीने निमिनाथ शिव ऐसा नाम किया व भवजीके पश्चिम भागमें समीपही पृथ्वीपर ॥ ९७ ॥ उस समय वामनजीने वस्त्रापथ तीर्थ में निवास किया इसी कारण इन्द्रसमेत सब देवताओं

ने यवाधिक तीर्थको कहाहै ॥ ९८ ॥ हे देवि ! इन्द्रने भवजीके आगे आकर प्रभासक्षेत्रमें भवजीकी आज्ञासे इस यवाधिक तीर्थ को किया है ॥ ९९ ॥ शिवजी की आज्ञासे अन्य तीर्थोंमें छगुना वह तीर्थ होगा यह सब चरित्र कहा गया तुम अन्य क्या पूछती हो ॥ १०० ॥ देवीजी बोलीं कि शिवरात्रि का यह अतुल प्रभाव कहा गया पुरातन समय न जानतेहुये लुब्धक (बहेलिया) ने उस को किया है ऐसा सुना गया ॥ १ ॥ हे विभो ! इससमय कहिये कि अन्य मनुष्यों को किसप्रकार करना चाहिये व शिवरात्रिमें क्या ग्रहण करना चाहिये व क्या भोजन करना चाहिये उसको मुझ से कहिये ॥ २ ॥ महादेवजी बोले कि मनुष्य के

कृतंदेविसमागत्यभवाग्रतः ॥ यवाधिकंप्रभासेतु तीर्थमेतद्भवाज्ञया ॥ ९९ ॥ अन्येषांषड्गुणंतीर्थं भविष्यतिशिवाज्ञया ॥ इत्येतत्कथितंसर्वं किमन्यत्परिपृच्छसि ॥ १०० ॥ देव्युवाच ॥ शिवरात्रेःप्रभावोयमतुलःपरिकीर्तितः ॥ अजानता कृतंतेन लुब्धकेनपुराश्रुतम् ॥ १ ॥ इदानींवदकर्त्तव्यं कथमन्यैर्जनैर्विभो ॥ किंग्राह्यंकिंचभोक्तव्यं शिवरात्र्यांवदस्व मे ॥ २ ॥ ईश्वर उवाच ॥ सम्प्राप्यमानुषंजन्म ज्ञात्वादेवंमहेश्वरम् ॥ शिवरात्रिःसदाकार्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ॥ ३ ॥ यादृशंजायतेपुण्यं तत्सर्वंकथ्यतेनृप ॥ येकुर्वन्तिसदामर्त्यास्तेषांपुण्यमनन्तकम् ॥ ४ ॥ द्वादशाब्दंव्रतमिदं कर्त्तव्यंप्रतिवासरम् ॥ जीवितञ्चश्चलंनृणां यदिकर्त्तुंनशक्यते ॥ ५ ॥ तदाद्वादशभिर्मासैर्व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ मासेमासेचतुर्दश्यां प्रारम्भःक्रियतेनृप ॥ ६ ॥ प्रतिमासंततःकार्यं यद्येतन्नसमाप्यते ॥ विघ्नश्चजायतेमध्ये कथंवैदेवयोगतः ॥ ७ ॥ नभवेद्व्रतभङ्गश्चपुनःकार्यमनन्तरम् ॥ द्वादशैवप्रकर्त्तव्याकृत्वासंख्याविशेषतः ॥ ८ ॥ कृतेननश्यतेकर्म शुभंवायदि

जन्मको पाकर महेश्वरदेवजी को जानकर भुक्ति मुक्ति की देनेवाली शिवरात्रि सदैव करना चाहिये ॥ ३ ॥ हे राजन् ! जैसा पुण्य होताहै वह सब कहा जाताहै जो मनुष्य सदैव उसको करते हैं उनको अनन्त पुण्य होता है ॥ ४ ॥ प्रतिदिन बारह वर्षतक इस व्रतको करना चाहिये और मनुष्यों का जीवन चलायमानहै इस लिये यदि वह न किया जासकै ॥ ५ ॥ तो बारह महीनों से इस व्रतको करै हे राजन् प्रति महीनेमें चौदसि तिथिमें प्रारम्भ किया जाताहै ॥ ६ ॥ तदनन्तर प्रत्येक महीनेमें करना चाहिये और यदि यह न समाप्त होवै और बीचमें दैवयोग से किसीप्रकार विघ्न होजावै ॥ ७ ॥ तो व्रत भंग नहीं होताहै और इसके उपरान्त फिर

करना चाहिये और संख्या करके विशेषकर बारहही व्रत करना चाहिये ॥ ८ ॥ इस व्रतके करनेसे शुभ या अशुभ कर्म नष्ट होजाताहै कृष्णपक्षवाली चौदसिमें पूर्वदिन के कर्मको करके ॥ ९ ॥ व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये और नदीमें स्नान किया जाताहै उसके अभावमें अपनी शक्तिसे तड़ागादिमें स्नान करना चाहिये ॥ १० ॥ और तैलाभ्यंग न करना चाहिये व कहीं गमन न करना चाहिये व तीर्थसेवा करना चाहिये या उस तीर्थ में गमन उत्तम होताहै ॥ ११ ॥ व आपहीसे उपजे हुये लिंगके समीप मनुष्योंको सदैव शिवरात्रि करना चाहिये उसके अभावमें सौ वर्षसे अधिक लिंग महा पुण्यवान् होताहै ॥ १२ ॥ पर्वत, वन, समुद्रके मध्य में

वाशुभम् ॥ कृष्णायान्तुचतुर्दश्यां कृतपूर्वाह्निकक्रियः ॥ ९ ॥ व्रतस्यनियमोग्राह्योनद्यांस्नानंविधीयते ॥ तदभावेतडागादौ स्नानंकार्यंस्वशक्तितः ॥ १० ॥ तैलाभ्यङ्गोनकर्तव्यो नकार्यंगमनंक्वचित ॥ तीर्थसेवाप्रकर्त्तव्या तस्मिन्वागमनंशुभम् ॥ ११ ॥ शिवरात्रिःसदाकार्या लिङ्गेस्वायंभुवेनरैः ॥ तदभावेमहापुण्यं लिङ्गंवर्षशताधिकम् ॥ १२ ॥ गिरौवनेसमुद्रान्ते नद्यांयत्रशिवालये ॥ तद्वैस्वायंभुवंलिङ्गं स्वयंतत्रैवसंस्थितः ॥ १३ ॥ बाणलिङ्गादिकंलिङ्गं पूजितंफलदंस्मृतम् ॥ दिवासंपूजनीयंतत्पुष्पधूपादिनाततः ॥ १४ ॥ वर्जयेन्मदिरांद्यूतं नारींनखनिकृन्तनम् ॥ ब्रह्मचर्यपरैःशान्तैः कर्तव्यंसमुपोषणम् ॥ १५ ॥ रात्रौदेवाग्रतोगत्वा कर्त्तव्याःसप्तपर्वताः ॥ पक्वान्नफलताम्बूलपुष्पधूपादिचर्चिताः ॥ १६ ॥ घृतेनदीपःकर्त्तव्यः पापनाशनहेतवे ॥ यतोदीपस्यमाहात्म्यं विज्ञेयंमुक्तिदायकम् ॥ १७ ॥ दीपःसदैवकर्त्तव्यः गृहेदेवालयेनरैः ॥

व नदीमें जहां शिवालय में वह आपही से उपजा हुआ लिंग होवै वहां आपही स्थित होवै ॥ १३ ॥ पूजा किया हुआ बाणलिंगादिक लिंग फलदायक कहागयाहै उसी कारण दिनमें पुष्पधूपादिक से वह लिंग पूजने योग्यहै ॥ १४ ॥ और मदिरा जुँवा, स्त्री व नखच्छेदको वर्जित करै व ब्रह्मचर्यमें परायण तथा शान्त मनुष्योंको उपास करना चाहिये ॥ १५ ॥ रात्रिमें शिवदेवजी के आगे जाकर सात पर्वतों को बनाना चाहिये और पक्वान्न, फल, ताम्बूल व पुष्प धूपादिकों से उनका पूजन करै ॥ १६ ॥ और पाप नाशने के लिये घीसे दीप करना चाहिये क्योंकि दीपकका माहात्म्य मुक्तिदायक जानने योग्यहै ॥ १७ ॥ घरमें व देवस्थानमें मनुष्योंको सदैव

दीपक करना चाहिये दिन, रात्रि या संध्यामें अपनी शक्तिके अनुसार दीपक करना चाहिये ॥ १८ ॥ कुछ उद्योतनही से देवता पृथ्वीमें तृप्त होते हैं श्राद्धकर्म में पहले पितरोंका दीपक करना चाहिये ॥ १९ ॥ व जिस प्रकार निद्रा न होवै उसी भांति रात्रिमें जागरण करना चाहिये व शिवजीके समीप शिवरात्रिकेइस माहात्म्य को सुनना चाहिये ॥ २० ॥ व रात्रिमें बहुत विस्तारवाला शिवजीका चरित्र सुनना चाहिये और शिवजीके समीप गीत, नृत्य व बाजन बजाना चाहिये ॥ २१ ॥ इस प्रकार वह रात्रि व्यतीत की जाती है क्योंकि जागरण मुख्यहै व जागरण में अपनी शक्तिसे दानोंको देना चाहिये ॥ २२ ॥ फिर प्रातःकाल स्नान व शिवपूजन

दिवावानिशिसन्ध्यायांदीपःकार्यःस्वशक्तितः ॥ १८ ॥ किञ्चिदुद्योतमात्रेण देवास्तुष्यन्तिभूतले ॥ पितॄणांप्रथमं दीपः कर्त्तव्यःश्राद्धकर्मणि ॥ १९ ॥ रात्रौजागरणंकार्यं यथानिद्रानजायते ॥ शिवरात्रिप्रभावोयं श्रोतव्यःशिवसन्निधौ ॥ २० ॥ शिवस्यचरितंरात्रौश्रोतव्यंबहुविस्तरम् ॥ गीतन्नृत्यंतथावाद्यं कर्त्तव्यंशिवसन्निधौ ॥ २१ ॥ एवंसानीयते रात्रिर्मुख्यंजागरणंयतः ॥ रात्रौदेयानिदानानि स्वशक्त्यातानिजागरे ॥ २२ ॥ पुनःस्नानंप्रभातेतु कर्त्तव्यंशिवपूजनम् ॥ पूजनीयाश्चयतयो भोजनाच्छादनादिभिः ॥२३॥ तपस्विनांप्रदातव्यं भोजनंगृहमेधिभिः ॥ द्वादशाष्टौचतस्रःषड् भोक्तव्याएकएवच ॥२४॥ एकोपिब्रह्मचारीयो ब्रह्मविच्छिवपूजकः ॥ सहस्राणांसमोभक्त्या गृहेसम्पूजितोभवेत्॥२५॥ अक्षारलवणैश्चान्नैर्भोक्तव्यंवाग्यतैःस्वयम् ॥पुत्रमित्रकलत्राणां दातव्यंभोजनंपुरा ॥२६॥ अनेनविधिनाकार्या शिवरात्रिःसदानरैः ॥ २७ ॥ व्रतान्तेगौःप्रदातव्या कृष्णावत्सयुतादृढा ॥ सवस्त्रभरणादिव्या घण्टाभरणभूषिता ॥ २८ ॥

करना चाहिये और भोजन व आच्छादनादिकों से संन्यासियों को भोजन कराना चाहिये ॥ २३ ॥ और गृहस्थोंको तपस्वियों को भोजन देना चाहिये व बारह, आठ, चार व छः व एकही ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये ॥ २४ ॥ वेदको जाननेवाला जो एकभी शिवपूजक ब्रह्मचारी होवै घरमें भक्तिसे पूजन कियाहुआ वह हज़ार ब्राह्मणों के बराबर है ॥ २५ ॥ व अक्षार (बिन सांभर) लोनवाले अन्नों से आपही मौनी मनुष्योंको भोजन करना चाहिये और पहले पुत्र, मित्र व स्त्रियों को भोजन देना चाहिये ॥ २६ ॥ इस विधिसे मनुष्यों को सदैव शिवरात्रि करना चाहिये ॥ २७ ॥ व्रतके अन्तमें वस्त्रों व गहनोंसमेत तथा घण्टाके आभूषण से

अङ्गुलीयकवासांसि छत्रोपानत्कमण्डलुः ॥ गुरवेदक्षिणांदद्याद्ब्राह्मणेभ्यःस्वशक्तितः ॥ २९ ॥ एवंक्षमापयेद्देवं तपस्विभ्योथभोजनम् ॥ मिष्टान्नंविविधंदत्त्वा क्षमाप्यचविसर्जयेत् ॥ ३० ॥ एवंयःकुरुतेमर्त्यस्तस्यपापंनविद्यते ॥ सन्तानमुत्तमंलब्ध्वा भुक्त्वाभोगाननुत्तमान् ॥ ३१ ॥ दिव्यंविमानमारूढो दिव्यस्त्रीपरिवेष्टितः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्नीयतेशिवमन्दिरम् ॥ ३२ ॥ तदेतत्कथितंपुण्यंशिवरात्रिव्रतंमया ॥ श्रुतेनयेनमर्त्यानांसर्वपापक्षयोभवेत् ॥१३३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे प्रभासखण्डे वस्त्रापथक्षेत्रे शिवरात्रिमाहात्म्यंनामाष्टाविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२८ ॥

पार्वत्युवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यानं त्वत्प्रसादाच्छ्रुतंमया ॥ दृष्ट्वानारायणंशान्तंनारदोमन्दरेगिरौ ॥१॥ किञ्चकार मुनीन्द्रोथतन्मेविस्तरतोवद ॥ संसारसरणोद्भूतपापाचारप्रपीडितम् ॥ २ ॥ कथामृतजलौघेनवितृषांकुरुमांप्रभो ॥३॥

भूषित तथा बछड़ासे संयुक्त व पुष्टकृष्णा गऊको देना चाहिये ॥ २८ ॥ और मुंदरी वस्त्र, छतुरी, पनहीं, लोटा व दक्षिणाको गुरुके लिये देवै और ब्राह्मणों के लिये अपनी शक्तिसे दक्षिणा देवै ॥ २९ ॥ इसप्रकार शिवदेवजीसे क्षमापन करावै व तपस्वियोंके लिये अनेक प्रकारके मिष्टान्नको देकर व क्षमापन कराकर विदाकरै ॥ ३० ॥ जो मनुष्य इस प्रकार करताहै उसके पाप नहीं रहताहै और उत्तम सन्तान को पाकर अति उत्तम सुखोंको भोगकर ॥ ३१ ॥ दिव्य विमान पै चढ़कर दिव्य स्त्रियों से घिराहुआ वह गीत व बाजनों के शब्दों से शिवमन्दिरमें प्राप्त किया जाताहै ॥ ३२ ॥ इस कारण मैंने इस पुण्यदायक शिवरात्रिके व्रतको कहा कि जिसके सुनने से मनुष्योंके समस्त पातकोंका नाश होता है ॥ १३३ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवस्त्रापथक्षेत्रेशिवरात्रिमाहात्म्यंनामाष्टाविंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२८ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० अति उत्तम जिमि यज्ञको कियो दैत्य बलिराज। सोइत्रिशत उन्तीसमें कह्यो चरित सुखसाज॥ पार्वतीजी बोलीं कि तुम्हारी प्रसन्नतासे मैंने इस विचित्र कथाको सुना और नारदजी मन्दराचलपै शान्त नारायणजीको देखकर ॥ १ ॥ मुनिनायकने क्या कियाहै उसको मुझसे विस्तारसे कहिये व हे प्रभो ! संसारमें

भ्रमण से उपजे हुये पापके आचारसे पीड़ित मुझको कथारूपी अमृतजल के प्रवाह से प्यासरहित कीजिये ॥ २ । ३ ॥ महादेवजी बोले कि पहले भृगु ब्राह्मण से शापित देवको जानकर नारदजीने आराधनका विचार किया कि यह वैसाही होगा अन्यथा न होवैगा ॥ ४ ॥ और वह भविष्य होना है व वर्तमान को विचार कर पहले वामन होकर विष्णुजी उस पुरीको जावेंगे ॥ ५ ॥ पश्चात् वे वामनजी मुझको प्यारे बलिके बन्धन को करैंगे और महाउग्र वर्तमान युद्धके विना मुझको किसप्रकार टिकना चाहिये ॥ ६ ॥ और देवताओं व दानवों के युद्ध तथा दैत्य, गंधर्व व राक्षसों के और सर्पों व पक्षियों के सब युद्ध मना कियेगये ॥ ७ ॥ व मेरे

ईश्वर उवाच ॥ आराध्यनारदोदेवं ज्ञात्वाशप्तंद्विजन्मना ॥ भृगुणाचतथापूर्वं नान्यथैतद्भविष्यति ॥ ४ ॥ भविष्यं भविताह्येतद्वर्त्तमानंविचिन्त्यच ॥ प्रथमंवामनोभूत्वा विष्णुर्यास्यतितांपुरीम् ॥ ५ ॥ निग्रहंसबलेःपश्चात्करिष्यतिमम प्रियम् ॥ युद्धंविनाकथंस्थेयं वर्त्तमानंमहोल्बणम् ॥ ६ ॥ देवदानवयुद्धानि दैत्यगन्धर्वरक्षसाम् ॥ निवारितानिसर्वाणि सरीसृपपतत्रिणाम् ॥ ७ ॥ सापत्निककलिर्नास्ति ममभाग्यपरिक्षये ॥ देवेन्द्रोगुरुणापूर्वं वारितोकिंकरोम्यहम् ॥ ८ ॥ माननीयोगुरुर्यस्मादतस्तंनाशयाम्यहम् ॥ युद्धार्थंचकृतोयत्नोनासिद्ध्यतिकरोमिकिम् ॥ ९ ॥ केनापिदैवयोगेन पुरुषार्थोनसिद्ध्यति ॥ तथापियत्नःकर्त्तव्यः पुरुषार्थेविपश्चिता ॥ १० ॥ दैवंपुरुषकारेण कोनिवर्तितुमर्हति ॥ यदुक्तं तद्विबोधार्थं यतःसिद्धिर्हिदैविकी ॥ ११ ॥ बलिंगत्वाभणिष्यामि यथायुद्धंकरिष्यति ॥ वारयिष्यतिशुक्रश्चेन्निश्चितन्तंशपाम्यहम् ॥ १२ ॥ इत्युक्त्वासययौवेगान्नारदोबलिमन्दिरे ॥ निमिषान्तरमात्रेण शिष्याभ्यांगगनेस्थितः ॥ १३ ॥

भाग्य के क्षयमें शत्रुवोंका झगड़ा नहीं होता है और बृहस्पति ने पहलेही इन्द्रको मना किया मैं क्या करूं ॥ ८ ॥ जिस लिये गुरु मानने योग्य है इसकारण मैं उस को शाप नहीं देताहू और युद्ध के लिये उपाय कियागया परन्तु सिद्ध नहीं होता है मैं क्या करूं ॥ ९ ॥ व किसी दैवयोगसे भी पुरुषार्थ सिद्ध नहीं होताहै तथापि विद्वान् को पुरुषार्थ में यत्न करना चाहिये ॥ १० ॥ और पुरुषार्थसे दैव को निवृत्त करने के लिये कौन योग्य है और जो कहागयाहै वह बोधके लिये है क्योंकि दैवी सिद्धि होतीहै ॥ ११ ॥ मैं जाकर बलिसे कहूंगा कि जिसप्रकार वह युद्धको करैगा और जो शुक्राचार्यजी मनाकरैंगे तो मैं निश्चयकर उनको शापदूंगा ॥ १२ ॥ यह

और सात दर्जेवाले तथा बड़े उज्ज्वल व पर्वत के
कहकर वे नारदजी वेगसे बलिके मन्दिर में गये और पलभर में शिष्योंसमेत वे आकाशमें स्थित हुये ॥ १३ ॥
समान मन्दिर में प्राप्त हुए उसके ऊपर विश्वकर्माने दिव्य सभाको बनाया था ॥ १४ ॥ उस सभामें दिव्य सिंहासन था उसपै राजाबलि बैठेथे और जैसे देवताओं
से घिरेहुए इन्द्र होवैं वैसेही सब दैत्योंसे बलि घिरेथे ॥ १५ ॥ व दिव्य मन्दिरमें ऋषियोंसे और शान्त ब्राह्मणों से व आपही शुक्राचार्यसे और पुत्रों, मित्रों व कलत्रोंसे
घिरेथे ॥ १६ ॥ और देवांगनाओंके हाथों में ग्रहण कियेहुये चामरों से वीजित उस बलि नृपेन्द्रकी चारण स्तुति करते थे ॥ १७ ॥ वहांजो धनसे उन्मत्त थे वे आपस

प्रासादेशैलसंकाशे सप्तभौमेमहोज्ज्वले ॥ तस्योपरिसभादिव्यानिर्मिताविश्वकर्मणा ॥ १४ ॥ तस्यांसिंहासनेदिव्यं
तत्रासीनोबलिर्नृपः ॥ दैतेयैःसंवृतःसर्वैर्देवराजोयथामरैः ॥ १५ ॥ ऋषिभिर्ब्राह्मणैःशान्तैस्तथाचोशनसास्वयम् ॥ पुत्रमि
त्रकलत्रैश्च संवृतोदिव्यमन्दिरे ॥ १६ ॥ देवाङ्गनाकरग्राहगृहीतैर्दिव्यचामरैः ॥ संवीज्यमानोराजेन्द्रःस्तूयमानःस
चारणैः ॥ १७ ॥ येचतत्रधनोन्मत्ता मन्त्रयन्तिपरस्परम् ॥ दैत्यदानवमुख्याये तेसर्वेयुद्धकाङ्क्षिणः ॥ १८ ॥ उत्था
योत्थायभाषन्ते प्रगल्भास्तेसुरैस्सह ॥ अस्मदीयमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसाम्प्रतङ्गतम् ॥ १९ ॥ शुक्रबुद्ध्याविनायुद्धं प्रा
प्यतेकिंमहोदयम् ॥ दैत्येन्द्रोदेवराजेन स्नेहञ्चकुरुतेयदि ॥ २० ॥ ऐरावणंसदामत्तं कथन्नोयाचतेबलिः ॥ चतुरन्तुरगं
कस्मान्नायंयाचेद्दिवाकरम् ॥ २१ ॥ यावन्नाक्रम्यतेलुब्धो धनाढ्यश्चारणाजिरे ॥ तावन्नार्पयतेवित्तं पुरायत्सञ्चितंसु
रैः ॥ २२ ॥ नदर्शयतिरत्नानि जलराशीरसातलात् ॥ यावन्नमन्दरंक्षिप्त्वाविमथ्नीमोवयंप्रति ॥ २३ ॥ यथामृतकला

में सलाह करते थे और जो मुख्य दैत्य व दानव थे वे सब युद्धकी इच्छा करते थे ॥ १८ ॥ व देवताओंके साथ प्रगल्भ (ढीठ) वे दैत्य उठ उठ कर यह कहते थे कि
इस समय हमारा यह सब त्रिलोक जाता रहा ॥ १९ ॥ और यदि दैत्येन्द्र (बलि) इन्द्रसे स्नेह करैं तो विना शुक्राचार्यकी बुद्धिके क्या बड़े ऐश्वर्यवाला युद्ध प्राप्त
होगा ॥ २० ॥ और सदैव मतवाले ऐरावतको बलि क्यों नहीं मांगता है और सूर्य नारायणसे ये बलि चतुर घोड़ेको क्यों नहीं मांगतेहैं ॥ २१ ॥ जबतक लोभी
कुबेरजी युद्धके आंगनमें आक्रमण न किये जावैंगे तब तक पहले जो देवताओंसे इकट्ठा कियागयाहै उसधनको न देवैंगे ॥ २२ ॥ और जबतक हमलोग मन्दराचल

को डालकर न मथेंगे तबतक समुद्र रसातलसे रत्नोंको न दिखावैगा ॥ २३ ॥ व हे बले ! जिस प्रकार देवता क्रमसे चन्द्रमावाली अमृतकी कलाओंको भोगतेहैं ऐसेही जलात्मक (चन्द्रमा) किसकारण बलिको भाग नहीं देताहै ॥ २४ ॥ कमल की धूलिसे सुगन्धित गंगाजीका पवन जिस प्रकार धीरे २ स्वर्ग में चलता है उस भांति बलिके मन्दिरमें नहीं चलता है ॥ २५ ॥ और इन्द्रसे उत्पन्न कियेहुए मेघ पृथ्वीमें जलको छोड़तेहैं तदनन्तर फिर वे मेघ पृथ्वीसे स्वर्गको चले जाते हैं॥ २६ ॥ और मेरी पृथ्वीमें यमराज मनुष्योंको मारते हैं इस प्रकार स्वर्ग व पातालमें नहीं मारतेहैं हमलोग इसकार्यके कारण को देखते हैं॥ २७ ॥ और ये चित्रगुप्तजी

आन्द्र्योभुज्यन्तेक्रमशःसुरैः ॥ एवंभागंबलेःकस्मान्नददातिजलात्मकः ॥ २४ ॥ स्वर्धुनीशीतलोवातः पद्मकिञ्जल्कवासितः ॥ स्वर्गेयथाशनैर्वाति नतथाबलिमन्दिरे ॥ २५ ॥ इन्द्रेणोत्पादितामेघा जलंमुञ्चन्तिभूतले ॥ ततोजलधराःस्वर्गं पुनस्तेयान्तिभूतलात् ॥ २६ ॥ अस्मदीयेधरापृष्ठे यमोमारयतेजनम् ॥ नैवंस्वर्गेनपाताले यमःकार्यस्यकारणम् ॥ २७ ॥ आयुर्वित्तंसुतान्सौख्यमस्माकंलिखतिस्वयम् ॥ ललाटेचित्रगुप्तोसौ नदेवानान्तुतत्समम् ॥ २८ ॥ वर्षाशीतातपाःकाला वर्त्तन्तेभुविसाम्प्रतम् ॥ स्वर्गेनैवचपाताले भूताभूमौभ्रमन्तिहि ॥२६॥ एकवीर्योद्भवायूयं स्वस्रीयादेवदानवाः ॥ भूमौस्थितावयंकस्माद्देवाःकेनोपरिस्थिताः ॥ ३० ॥ समुद्रेमथ्यमानेतु दैत्येन्द्रोवञ्चितःसुरैः ॥ एकतःसर्वदेवाश्च बलिश्चैवैकतःकृतः ॥ ३१ ॥ उत्पन्नेषुचरत्नेषु वैषम्यंपश्ययादृशम् ॥ गजाश्वकल्पवृक्षांश्च चन्द्रंगांकौ

हमारे मस्तकमें आयुर्बल, द्रव्य, पुत्र व सुखको आपही लिखते हैं और उसके बराबर देवताओंके मस्तक में नहीं लिखते हैं ॥ २८ ॥ और वर्षा, जाड़ व घाम ये समय इस समय पृथ्वी में वर्तमान हैं और न स्वर्ग में हैं न पातालमें हैं व प्राणी पृथ्वी में घूमते हैं ॥ २६ ॥ व तुमलोग एकही (कश्यप) के वीर्य से उत्पन्न हो व देवता और दैत्य स्वस्रीय हैं याने एक बहन के देवता व एकके दैत्य हैं और किस कारण हमलोग भूमि में स्थित हैं व देवता किस कारण ऊपर स्थितहैं ॥ ३० ॥ और समुद्र मथे जानेपर दैत्येन्द्र (बलि) को देवताओंने छल लिया एकओर सब देवता कियेगये व एक ओर बलि कियागया ॥ ३१ ॥ व रत्नोंके उत्पन्न होने पर

जैसी विषमता हुई है उसको देखिये कि हाथी, घोड़ा, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, गऊ और कौस्तुभ मणिको ॥ ३२ ॥ व अमृतको लेकर देवताओंने हमलोगों को मध पानमें नियुक्त किया व इस मदिरा से घूर्णित (मतवाले) हमलोग बहुत गर्वित होकर नहीं जानते हैं ॥ ३३ ॥ और पीने से बचेहुए अमृतको देवताओंने सत्यलोक में धरदिया यह आश्चर्य है कि देवता बड़े कुटिल हैं क्योंकि शेष अमृत किस कारण नहीं दियाजाताहै ॥ ३४ ॥ स्वर्गमें अमृतहै ऐसा जानकर हमलोग अमृत से छलेगये और तिलमें तैलही देखागयाहै घी कहीं नहीं देखागयाहै ॥ ३५ ॥ और विष्णुजीके बहुत चरित्रोंकी गणना नहीं कीजासक्तीहै तथापि उन हृष्ट पुष्ट देवताओं

स्तुभंमणिम् ॥ ३२ ॥ गृहीत्वाह्यमृतंदेवैर्वयंपानेनयोजिताः ॥ एतयाघूर्णिताःसर्वे नजानीमेतिगर्विताः ॥ ३३ ॥ पीता वशेषंपीयूषं सत्यलोकेधृतंसुरैः ॥ अहोतिकुटिलादेवाः कस्माच्छेषंनदीयते ॥ ३४ ॥ स्वर्गेमृतमितिज्ञात्वा पीयूषाद्व ञ्चितावयम् ॥ तैलमेवतिलेदृष्टं नैवदृष्टंघृतंकचित ॥ ३५ ॥ विष्णोर्बहुचरित्राणां संख्याकर्तुन्नशक्यते ॥ तथापिकथ्य तेपुष्टैर्हृष्टैस्तैर्यदनुष्ठितम् ॥ ३६ ॥ गौराङ्गीसुन्दरीसुभ्रूः पीनोन्नतपयोधरा ॥ सुकेशीचन्द्रवदना कर्णासक्तविलोचना ॥ ३७ ॥ वलित्रयाङ्किताम‍ध्ये याचमुष्ट्याभिगृह्यते ॥ स्थलारविन्दचरणा लतेवभुजभूषिता ॥ ३८ ॥ सासर्वलक्षणोपेता सर्वाभरणभूषिता ॥ त्रैलोक्यसुन्दरीदेवी सञ्जातामृतमन्थने ॥ ३९ ॥ अमृतादुत्थितापूर्वं यस्यसातस्यतद्ध्रुवम् ॥ त्रै लोक्यंवशगन्तस्य यस्यसाचारुलोचना ॥ ४० ॥ तयासम्मोहिताः सर्वे देवदानवराक्षसाः ॥ विमुच्यमानन्तेसर्वे गृही

ने जो कियाहै वह कहा जाताहै ॥ ३६ ॥ कि गौरवर्ण अंगोंवाली, सुन्दरी तथा सुन्दरी भौहोंवाली और मोटे व ऊँचे कुचोंवारी, सुकेशी, चन्द्रमुखी व कानोंतक लगेहुये लोचनोंवाली ॥ ३७ ॥ त्रिवलीसे चिह्नित व कटिमें जो मुष्टिसे ग्रहण की जाती थी याने कृशोदरी, स्थल कमलके समान चरणोंवाली व भुजाओंसे भूषित जो लता की नाईथी ॥ ३८ ॥ वह सब लक्षणों से संयुक्त तथा सब आभूषणों से भूषित, त्रिलोक में सुंदरी देवी अमृतके मथने में उत्पन्नहुई ॥ ३९ ॥ अमृतसे पहले पैदाहुई वह जिसकी है उसका वह अमृत निश्चय करहै और त्रिलोक उसके वशमें है जिसकी वह चारुनेत्रा (लक्ष्मी) है ॥ ४० ॥ उससे देवता, दानव व राक्षस सब

मोहित होगये और वे सब गर्वको छोड़कर पकड़ने के लिये उद्यत हुए ॥ ४१ ॥ एक स्त्री और बहुतसे देवता, दानव, दैत्य व राक्षस थे इससे बड़ा विवाद हुआ कि इसमें कैसा होगा ॥ ४२ ॥ विष्णुजीने भुजाको पकड़कर सबको मना किया कि हे दैत्यो ! इसके लिये परस्पर क्यों बड़ा विवाद कियाजाताहै ॥ ४३ ॥ अमृतके लिये प्रारंभहुआहै और तुमलोग स्त्रीके लिये नाश होवोगे पहले संकेत करके आपही विष्णुजीने हम सबोंको छल लिया ॥ ४४ ॥ और दिव्य रूपको धारे, मालाको पहने व वनमालासे भूषित तथा कौस्तुभमणिसे प्रकाशित शरीरवाले, शंख, चक्र व गदा को धारण किये ॥ ४५ ॥ विष्णुजी उन लक्ष्मीजीके हाथमें उत्तम मालाको देकर

तुंवैसमुद्यताः ॥ ४१ ॥ एकास्त्रीबहवोदेवा दानवादैत्यराक्षसाः ॥ विवादःसुमहाञ्जातः कथमत्रभविष्यति ॥ ४२ ॥ आगत्यविष्णुनासर्वे भुजंधृत्वानिवारिताः ॥ अस्यार्थेकिंमहावादः क्रियतेभोपरस्परम् ॥ ४३ ॥ अमृतार्थेसमारम्भो महिलार्थेविनश्यथ ॥ सङ्केतंप्रथमंकृत्वा विष्णुनावञ्चिताःस्वयम् ॥ ४४ ॥ दिव्यरूपधरःस्रग्वी वनमालाविभूषितः ॥ कौस्तुभोद्द्योतिततनुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४५ ॥ तस्याहस्तेशुभांमालां दत्त्वाविष्णुःपुरस्थितः ॥ उद्धृत्यबाहुंसर्वेषां बभाषेवचनंहरिः ॥ ४६ ॥ कुर्वन्तुकुण्डलंसर्वे तिष्ठन्तुस्वयमासने ॥ विलोक्यस्वेच्छयालक्ष्मीर्वनमालाप्रयच्छतु ॥ ४७ ॥ स्वयंवरविभेदंयः कथयिष्यतिलम्पटः ॥ सवध्यःसहितैःसर्वैः परस्त्रीलुब्धकोयथा ॥ ४८ ॥ परदाराकृतंपापंस्त्री वधात्तस्यजायताम् ॥ अन्योपियःकरोत्येवमेवमस्तुतदुच्यताम् ॥ ४९ ॥ मध्येरणेहरिंज्ञात्वा तथेत्युक्तन्त्वयाकृतम् ॥ देवदानवदैत्यानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ ५० ॥ मध्येयोभिमतोभर्त्ता सत्यंसत्यंभवेदिति ॥ तेनासौमोहितापूर्वं

आगे स्थितहुये व भुजाको उठाकर विष्णुजीने सबोंसे वचन कहा ॥ ४६ ॥ कि सब कुंडलको धारण करैं व आपही सब आसन पै बैठें व लक्ष्मीजी देखकर अपनी इच्छासे वनमालाको देवैं ॥ ४७ ॥ और जो लंपट स्वयंवरके भेदको कहैगा वह सब दैत्योंसमेत मारने योग्य होगा जैसे कि परस्त्रीमें लुब्ध पुरुष वध्य होताहै ॥ ४८ ॥ व उसको स्त्रीके वधके कारण पराई स्त्रीसे कियाहुआ पाप होवै व अन्यभी जो ऐसा करै वह ऐसाही होवै वह कहा जावै ॥ ४९ ॥ और समरमध्यमें विष्णुजीको जान कर तुमसे कियाहुआ वैसाही होवै और देवता, दानव व दैत्योंके मध्यमें व गंधर्व, नाग व राक्षसोंके ॥ ५० ॥ मध्यमें जो पति ईप्सित होवै वह सत्य सत्य होवै पहले

ही दृष्टिके दानसे हर्षित यह लक्ष्मी उन विष्णुजीसे मोहितहुई ॥ ५१ ॥ पहले दृष्टिके देखनेसे उन्होंने स्त्रियोंको वश किया व ऐसाही करने पर कानमें हाथको देकर जो कहाजाता था ॥ ५२ ॥ तब यह स्त्री-हृदयमें कामदेवके बाणसे पीड़ित होती थी और कलह होने पर विष्णुजीने उस सबको मना किया ॥ ५३ ॥ और जब सबोंके बीचमें विष्णुजीको ग्रहण किया व विष्णुजीको वे लक्ष्मीजी नहीं छोड़ती थीं व उन लक्ष्मीने यह कहा कि तुम्हीं पति हो तब विष्णुजीने कहा कि मुझको छोड़ो दूर जावो ॥ ५४ ॥ तदनन्तर विष्णुजी छोड़कर दूर देवमण्डलमें बैठे तब सबोंने छोड़दिया व यथायोग्य स्थानों में बैठगये ॥ ५५ ॥ पहले लक्ष्मीजीने क्रमपूर्वक

दृष्टिदानेनहर्षिता ॥ ५१ ॥ आदौसंवननंस्त्रीणां चक्रेदृष्टिनिरीक्षया ॥ एवमेवकृतेकर्णे हस्तंदत्त्वायदुच्यते ॥ ५२ ॥ तदासौहृदयेनारी कामबाणप्रपीडिता ॥ सञ्जातेकलहेसर्वं हरिणातन्निवर्त्तितम् ॥ ५३ ॥ यदागृहीतःसर्वेषां हरिर्नैवविमुञ्चति ॥ त्वमेवभर्त्तासाचष्टे मुञ्चमांव्रजदूरतः ॥ ५४ ॥ मुक्त्वादूरन्ततोविष्णुः संविष्टःसुरमण्डले ॥ तदासर्वेव्यमुञ्चुर्यथास्थानेस्वयंगजाः ॥ ५५ ॥ आचष्टेविजयापूर्वं सर्वान्देवान्यथाक्रमम् ॥ सानिरीक्ष्यचतंविष्णुं विवाहार्थंनमुञ्चति ॥ ५६ ॥ उदासीनःशिवःशान्तो गौरीकान्तस्त्रिलोचनः ॥ नान्यंनिरीक्षतेनित्यं ध्यानासक्तस्त्रिलोचनः ॥ ५७ ॥ पितामहेनचेत्युक्तस्ततोयंमेनरोचते ॥ नमस्कृत्यगतातत्रकृतमौनानपश्यति ॥ ५८ ॥ आदित्यचन्द्रौमुक्त्वाच दहनंदहनात्मकम् ॥ वातोवातिगतोदूरे वरुणोमेपितायतः ॥ ५९ ॥ पौलोमीवदनासक्तो देवेन्द्रोनैवरोचते ॥ वधबन्धनकृच्छ्रे

सब देवताओंको देखा व विवाहके लिये उन विष्णुजीको देखकर वे लक्ष्मी उनको नहीं छोड़तीथीं ॥ ५६ ॥ क्योंकि पार्वतीजीके पति त्रिलोचन शिवजी शांत व उदासीनहैं और ध्यानमें लगेहुए त्रिलोचनजी सदैव अन्य पुरुषको नहीं देखते हैं ॥ ५७ ॥ व पितामह अज ऐसे कहेगयेहैं उस कारण मुझको नहीं रुचते हैं और उनको प्रणामकर वहां चलीगई व मौन होकर नहीं देखती थी ॥ ५८ ॥ और सूर्य व चन्द्रमा तथा दहनात्मक अग्निको छोड़कर लक्ष्मीने विचारकिया कि द्वारपै प्राप्तहोकर पवन चलताहै व जिसलियें वरुण मेरे पिताहैं उस कारण ग्रहण करने योग्य नहीं हैं ॥ ५९ ॥ और इन्द्राणी के मुखमें आसक्त इन्द्रजी नहीं रुचते हैं व वध, बन्धन

करनेवाले तथाछेद, भय, दंड व खींचको ॥ ६० ॥ सूर्यनारायण के पुत्र यमराज करतेहैं व सौम्यरूपको करतेहैं और देवता, दानव, गंधर्व, दैत्य, नाग, राक्षस ॥ ६१ ॥ देखेगये व इनको छोड़कर लक्ष्मीजी आगे चलीं व कानोंतक नेत्रोंवाले तथा शोभित टेढ़ी दृष्टिसे देखनेवाले इन पुरुषोत्तम विष्णुजीको उन्होंने देखा ॥ ६२ ॥ जोकि सौभाग्यकी अधिकतासे संयुक्त व मनोहर कामदेवकी नाईं सुन्दर तथा रोमाच होनेसे पसीने के जलकणोंसे चिह्नित थे ॥ ६३ ॥ और देवता, दानव व दैत्येन्द्रोंकी क्रोध दृष्टिसे देखीहुई लक्ष्मीजी ने मनोहर विष्णुजीको वर किया तदनन्तर आपही मालाको दिया ॥ ६४ ॥ और मलिनमुख शोभावाले सब दैत्य परस्पर बोले

दभयदण्डविकर्षणम् ॥ ६० ॥ करोतिकुरुतेसौम्यं रूपंवैवस्वतोयमः ॥ देवदानवगन्धर्वा दैत्यपन्नगराक्षसाः ॥ ६१ ॥ दृष्टास्त्यक्त्वाग्रतोयाति दृष्टोसौपुरुषोत्तमः ॥ कर्णान्तलोचनंभ्राजवक्रदृष्ट्यावलोकितम् ॥ ६२ ॥ सौभाग्यातिशयाकान्तरम्यःकाममनोहरम् ॥ सञ्जातपुलकोद्भेदस्वेदवारिकणाङ्कितम् ॥ ६३ ॥ देवदानवदैत्येन्द्रक्रोधदृष्ट्यानिरीक्षिता ॥ रम्यंरामावरंचक्रे ददौमालांस्वयंततः ॥ ६४ ॥ दैत्याःपरस्परंसर्वे प्रोचुर्म्लानमुखश्रियः ॥ विभागंपश्यदेवानां स्वर्गंसर्वेस्वयंगताः ॥ ६५ ॥ पातालस्यतलेयूयंमानवाधरणीतले ॥ देवास्त्रिभुवनेयान्ति नवयंस्वर्गगामिनः ॥ ६६ ॥ सा नवाःक्षत्रियाराज्यं कुर्वन्तुपृथिवीतले ॥ पातालन्तुपरित्यज्य धात्री यदितुरोचते ॥ ६७ ॥ देवदानवजः कश्चिद्राजा तत्रभवेत्किल ॥ अथकिम्बहुनोक्तेन राजात्रिभुवनेबलिः ॥ ६८ ॥ संविभज्याधिरत्नानि समंराज्यंविधीयताम् ॥ यावदेवंप्रजल्पन्ते, तावत्पश्यन्तिनारदम् ॥ ६९ ॥ गगनात्समुपायान्तं द्वितीयमिवभास्करम् ॥ ब्रह्मदण्डकरासक्तं शुद्ध

कि देवताओंके विभागको देखिये कि आप सब स्वर्गको गये हैं ॥ ६५ ॥ व तुमलोग पातालके नीचे हो और पृथ्वीमें मनुष्य हैं और देवता त्रिलोकमें जाते हैं व हमलोग स्वर्गगामी नहीं होते हैं ॥ ६६ ॥ व क्षत्रिय मनुष्य पृथ्वीमें राज्य करैं और पाताल को छोड़कर यदि पृथ्वी रुचै ॥ ६७ ॥ तो हे देव ! दानवोंसे उत्पन्न कोई वहां राजा होवै अथवा बहुत कहने से क्याहै त्रिलोकमें बलि राजा होवैं ॥ ६८ ॥ और रत्नों को बांटकर बराबर राज्य कियाजावै जबतक वे सब ऐसा कहते थे तबतक उन्होंने

आकाशसे आतेहुए दूसरे सूर्यकी नाईं नारदजी को देखा जोकि ब्रह्मदण्डको हाथमें लिये व शुद्ध पुस्तकको धारे थे ॥ ६९ । ७० ॥ और कृष्णाजिनको धारण किये व शान्त तथा दिव्य रुद्राक्ष से भूषित थे और बीतेहुए कल्पोंसे की हुई ग्रंथियोंकी सूत्रमालाको पहने थे ॥ ७१ ॥ व ब्रह्मा तथा शिवजीके संवादसे उपजेहुए जन्मके अहंकार से गर्वित व क्रोधित तथा कर्मसे चतुर व चिन्तामें लगे हुये मनवाले थे॥ ७२ ॥ और आतेहुये नारदजीको देखकर सब दैत्य विस्मित होकर स्थित हुये व बलि बोले कि हे प्रभो! प्रसन्नता कीजिये व मेरे घरमें आइये ॥ ७३ ॥ मैं धन्यहूं व पुण्य किये हूं कि जिस मेरे घरमें तुम आये बलिसे ऐसा कहे हुये नारद विप्रजी बलि

पुस्तकधारिणम् ॥ ७० ॥ कृष्णाजिनधरंशान्तं दिव्यरुद्राक्षभूषितम् ॥ गतकल्पकृतग्रन्थिसूत्रमालावलम्बितम् ॥७१॥ विरञ्चिहरसंवादोजन्माहङ्कारगर्वितः॥ संक्रुद्धःक्रिययादक्षो चिन्तातत्परमानसः ॥७२॥ आयान्तंनारदंदृष्ट्वाविस्मिताः समुपस्थिताः ॥ बलिरुवाच ॥ प्रभोप्रसादःक्रियतामागन्तव्यंगृहेमम ॥ ७३ ॥ धन्योहंकृतपुण्योहं यस्यमेत्वंगृहागतः ॥ इत्युक्तोबलिनाविप्रो विवेशसुरमन्दिरे ॥ ७४ ॥ आसनंपाद्यमर्घ्यञ्चदत्त्वासम्पूज्यतंद्विजम् ॥ प्रविश्यसहिताःसर्वे संविष्टादैत्यदानवाः ॥ ७५ ॥ शुक्रेणसहितोदैत्यो बभाषेनारदंबलिः ॥ इदंराज्यमिमेदाराइमेपुत्रास्त्वहंबलिः ॥ ७६ ॥ ब्रूयाद्येनात्रतेकार्यं दानंमेप्रथमंव्रतम् ॥ ७७ ॥ नारद उवाच ॥ भक्त्यातुष्यन्तियेविप्रास्तेविप्राभूमिदेवताः ॥ नतुयेपूजिता भक्त्या पुनर्याचन्तितेधमाः ॥ ७८ ॥ त्वयासम्पूजितोहृष्टोमेवित्तैर्नप्रयोजनम् ॥ हृष्टोहन्तवराज्येन यज्ञैर्दानैर्व्रतैस्तथा ॥ ७९ ॥ देवैःकृतंविप्रियन्तेकिञ्चित्पश्याम्यहंबले ॥ त्वयासम्पूजितस्सम्यग्देवराजोनतुष्यति ॥ ८० ॥ नक्षमन्तिसुराः

दैत्यके मन्दिर में पैठे ॥ ७४ ॥ और आसन,पाद्य व अर्घ्यको देकर उन नारद द्विज को प्रणामकर सब दैत्य व दानव साथही पैठकर वैठगये ॥ ७५ ॥ व शुक्रसमेत बलि दैत्य ने नारदसे कहा कि यह राज्य,ये स्त्रियां, ये पुत्र और मैं बलिहूं ॥ ७६ ॥ जिससे तुम्हारा कार्यहो उसको कहिये और दान मेरा पहला नियम है ॥ ७७ ॥ नारदजी बोले कि जो ब्राह्मण भक्तिसे प्रसन्न होते हैं वे द्विज पृथ्वी के देवता हैं व जो भक्तिसे नहीं पूजे जाते हैं वे नीच फिर याचना करते हैं ॥ ७८ ॥ और तुमसे पूजित मैं प्रसन्नहूं व द्रव्यों से मेरा प्रयोजन नहीं है तुम्हारे राज्यसे मैं प्रसन्नहूं ॥ और यज्ञोंसे, दानोंसे व व्रतोंसे प्रसन्नहूं ॥ ७९ ॥ और देवताओंसे किये हुए तुम्हारे कुछ

अप्रिय को मैं देखताहूं और तुमसे भलीभांति पूजित सुरराज (इन्द्र) प्रसन्न नहीं होते हैं ॥ ८० ॥ और सब देवता पृथ्वीमें तुम्हारे राज्यको नहीं सहते हैं और देवताओं के व तुम्हारे वैर में स्वर्ग पृथ्वीके समान होगया ॥ ८१ ॥ और जीतकी इच्छा करनेवाले सेनासमेत इन्द्राणी के पति सुरनायक इन्द्रजी तैयार होकर पहले जातेहैं व उसका राज्य बढ़ता है ॥ ८२ ॥ और तुम्हारे राज्यका नाश होगा ऐसा मैंने सुनाहै ऐसा सुनकर जैसा योग्य होवै वह शीघ्रही कियाजावै ॥ ८३ ॥ बलिबोले कि हे विभो! जिन गुणों से राजा राज्य को करताहै उनको मुझसे कहिये और दानको पात्र व अपात्रमें भी देना चाहिये उसको कहिये ॥ ८४ ॥ नारदजी बोले

सर्वे तवराज्यंधरातले ॥ स्वर्गोभूमिसमोजातो देवानांतवविग्रहे ॥ ८१ ॥ सन्नह्यप्रथमंयाति ससैन्यश्चशचीपतिः ॥ देवो योविजयाकाङ्क्षी तस्यराज्यञ्चवर्द्धते ॥८२॥ उच्छेदस्तवराज्यस्य भविष्यतिश्रुतंमया ॥ एवंश्रुत्वायथायुक्तं तच्छीघ्रं चविधीयताम् ॥ ८३ ॥ बलिरुवाच ॥ यैर्गुणैःकुरुतेराज्यं राजात्वंवदमेविभो ॥ दानंपात्रेप्रदातव्यमपात्रेचापितद्वद ॥ ८४॥ नारद उवाच ॥ षट्त्रिंशद्गुणसम्पन्नो राजाराज्यंकरोतिचेत् ॥ सराज्यफलमाप्नोति शृणुतत्कथयाम्यहम् ॥८५॥ चरन्धर्मानकलुषो सर्वान्स्नेहेनचास्तिकः ॥ अप्रकाशंचरेदर्थं त्यक्तकाममनुद्धतः ॥ ८६ ॥ प्रियंब्रूयादकृपणःशूरःस्याद विकत्थनः ॥ दातानापात्रवर्षीस्यात्प्रगल्भस्स्यादनिष्ठुरः ॥८७॥ सन्दधीतनचानार्यान्विरुद्ध्येन्नचबन्धुभिः ॥ नानार्यैश्चारयेच्चारैः कुर्यात्काममंनपीडया ॥ ८८ ॥ अर्थज्ञोयत्रआपत्सु गुणान्ब्रूयान्नवात्मनः ॥ विरुद्ध्येन्नचसाधुभ्यो नासत्पुरुष

कि यदि छत्तीस गुणसे संयुक्त राजा राज्यको करताहै तो वह राज्य के फलको पाता है मैं कहताहूं उसको सुनिये ॥ ८५ ॥ कि आस्तिक पुरुष सब धर्मोंको करताहुआ पापहीन होताहै व गर्वहीन मनुष्य प्रकाश न करताहुआ कामनाओंसे रहित अर्थको करै ॥ ८६ ॥ व कृपण न होकर प्रिय बोलै और अपनी प्रशंसा न करताहुआ शूर होवै व अपात्रमें न बरसनेवाला दाता होवै व निठुर न होकर ढीठ होवै ॥ ८७ ॥ और दुष्टोंसे मेल न करै व भाइयों से वैर न करै और दुष्ट चारोंसे भेदिहा दूतोंका कार्य न करावै व पीडासे कामको न करै ॥ ८८ ॥ और जहां अर्थका जाननेवाला होवै वहां आपत्तियों में अपने गुणोंको न कहै व साधुवों से विरोध न करै और

असत्य पुरुष के आश्रित न होवै ॥ ८९ ॥ और परीक्षा न करके दण्ड न देवै मंत्रको प्रकाशित न करै और लोभियोंके लिये दान न देवै व अपकारियों में विश्वास न करै ॥ ९० ॥ और स्त्रियोंको अत्यन्त गुप्तकरै व बलवान् राजा क्षमा करै व स्त्री का बहुत सेवन न करै व प्रिय भोजन करै अहित भोजन न करै ॥ ९१ ॥ और बिन चोर पुरुषको पूजै व बिन माया से गुरुकी सेवा करै तथा पाखण्ड से देवता का पूजन न करना चाहिये व बिन निन्दित लक्ष्मीकी इच्छा करै ॥ ९२ व याचना को छोड़कर सेवा करै और प्रवीण व समयका ज्ञाता होवै और बकताहुआ भोजन न करै व दया करता हुआ पुरुष निन्दा न करै ॥ ९३ ॥ और जानकर प्रहार करै

माश्रयेत् ॥ ८९ ॥ नापरीक्ष्यनयेद्दण्डं नचमन्त्रंप्रकाशयेत् ॥ विसृजेन्नचलुब्धेभ्यो विश्वसेन्नापकारिषु ॥ ९० ॥ अतीवगुप्तदारस्स्याद्बलीयान्क्षमतेनृपः ॥ स्त्रियंसेवेतनात्यर्थं चेष्टंभुञ्जीतनाहितम् ॥ ९१ ॥ अस्तेनंपूजयेन्मर्त्यं गुरुंसेवेदमायया ॥ अर्च्योदेवोनदम्भेन श्रियमिच्छेदकुत्सिताम् ॥ ९२ ॥ सेवेतप्रणयंहित्वादक्षस्स्यादथकालवित् ॥ जल्पन्नपिनभुञ्जीत अनुगृह्णन्नचाक्षिपेत् ॥ ९३ ॥ प्रहरेदेवविज्ञाय हत्वाशत्रून्नशेषयेत् ॥ क्रोधंकुर्यान्नचाकस्मान्मृदुःस्यादपकारिषु ॥ ९४ ॥ एवंचराज्यसंस्थेयं यदिश्रेयमिहेच्छसि ॥ तपःस्वाध्यायदानानि तीर्थयात्राश्रमाणिच ॥ ९५ ॥ योगेनात्मप्रबोधस्य कलान्नार्हन्तिषोडशीम् ॥ त्वयासंसारवैराग्यं कर्त्तव्यंविप्रपूजनम् ॥ ९६ ॥ यष्टव्यंविविधैर्यज्ञैर्ध्येयोनारायणोहरिः ॥ प्रसङ्गेनसमायातो यास्येरैवतकेगिरौ ॥ ९७ ॥ तत्रास्तेभगवान्विष्णुर्नदीत्रैलोक्यपावनी ॥ तत्रास्तेचशिवोवृक्षो बहुपुष्पफलान्वितः ॥ ९८ ॥ तत्रगत्वाकरिष्यामि व्रतंतद्विष्णुवल्लभम् ॥ बलिरुवाच ॥ शिववृक्षस्तुकः

व शत्रुवोंको मारकर शेष न करै व अचानक ही क्रोध न राखै और अपकारियों में कोमल होवै ॥ ९४ ॥ इस प्रकार यह राज्यकी संस्था है यदि तुम यहां कल्याणको चाहतेहो तो तपस्या, वेदपाठ, दान तीर्थयात्रा व आश्रम ॥ ९५ ॥ ये आत्मज्ञानी के योगसे सोलहवीं कलाके योग्य नहीं होते हैं और तुमको संसारसे वैराग्य व द्विजपूजन करना चाहिये ॥ ९६ ॥ व अनेक भांति के यज्ञोंसे पूजन करना चाहिये व नारायण विष्णुका ध्यान करना चाहिये मैं प्रसंगसे आया था अब रैवतक पर्वतपै जाऊँगा ॥ ९७ ॥ वहां भगवान् विष्णुजी हैं व त्रिलोकको पवित्र करनेवाली नदीहै और बहुत पुष्पों व फलोंसे संयुत वहां शिववृक्षहै ॥ ९८ ॥ वहां जाकर मैं उसविष्णु

प्रियव्रत को करूंगा बलि बोले कि शिवव्रत कौन है और वह कैसे हुआ उसको मुझसे कहिये ॥ ९९ ॥ नारदजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! पुरातन समय युगादिमें पर्वत पखनोंसमेत कियेगये फिर पश्चात् ब्रह्मासे विचारकर वे अचल किये गये ॥१०० ॥ औरबड़ेशरीरवाले वे पर्वत ऊपर उड़ते थे व अपनी इच्छासे गिरतेथे और मेरु,मन्दर कैलास ब्रह्मासे स्थिर होकर स्थित होकर स्थित हुये ॥ १ ॥ व जब मना कियेहुये अन्य पर्वत नहीं स्थितहुये तब इन्द्रसे स्थिर कियेगये सुमेरु गिरिके दक्षिण शिखर पै कुमुद नामक पर्वतहै ॥ २ ॥ पखनोंसमेत वह सुवर्णका दिव्यपर्वत दिव्य वृक्षों से घिराहै उसके ऊपर विष्णुजीने दिव्यवैष्णवी पुरीको निर्माण कियाहै ॥ ३ ॥ उसके मध्यमें दिव्य

प्रोक्तः कथंतत्कथयस्वमे ॥ ९९ ॥ नारद उवाच ॥ पुरायुगादौदैत्येन्द्र सपक्षाःपर्वताःकृताः ॥ सञ्चिन्त्यब्रह्मणापश्चाद बलास्तेकृताःपुनः ॥ १०० ॥ उत्पतन्तिमहाकाया निपतन्तियदृच्छया ॥ मेरुमन्दरकैलासावेधसासंस्थितास्थिराः ॥ १ ॥ वारितानस्थितायाता तदेन्द्रेणस्थिरीकृताः ॥ मेरोर्दक्षिणशृङ्गेतु कुमुदोनामपर्वतः ॥ २ ॥ दिव्यःसपक्षःसौवर्णो दिव्यवृक्षैःसमावृतः ॥ तस्योपरिपुरीदिव्या वैष्णवीविष्णुनाकृता ॥ ३ ॥ तस्यामध्येगृहंदिव्यं यस्मिँल्लक्ष्मीःसदास्थिरा ॥ मेरोःशृङ्गेपुरीरम्यागृहंतत्रमनोरमम् ॥ ४ ॥ तत्रास्तेभगवान्देवो भवानीयत्रसंस्थिता ॥ सभामाहेश्वरीरम्या सौवर्णा रत्नमण्डिता ॥ ५ ॥ तत्रास्तेभगवान्रुद्रो विष्णुब्रह्मादिभिर्वृतः ॥ ६ ॥ तस्यांविष्णुःसदायातिदेवंद्रष्टुंमहेश्वरम् ॥ सौवर्णैःकुमुदैर्यस्मादसौसर्वत्रमण्डितः ॥ ७ ॥ कुमुदेतिकृतन्नाम देवैस्तत्रसमागतैः ॥ एकदाभगवान्रुद्रो गिरौतस्मिन्समागतः ॥ ८ ॥ द्रष्टुन्तच्छिखरेरम्ये ताम्पुरींविष्णुपालिताम् ॥ गृहागतंहरंदृष्ट्वा हरिणासतुपूजितः ॥ ९ ॥ लक्ष्म्यासम्पूजितागौरी

मन्दिरहै जिसमें सदैव लक्ष्मीजी स्थित रहतीहैं व सुमेरु गिरिके शिखर पै सुन्दरी पुरी है उसमें मनोहर घरहै ॥ ४ ॥ वहां भगवान् शिवदेवजी हैं जहा कि पार्वतीजी स्थित हैं और शिवजीकी सुवर्ण की मनोहर सभा है जो कि रत्नोंसे शोभितहै ॥ ५ ॥ वहां ब्रह्मादिक देवताओं से घिरेहुये भगवान् शिवजीहैं ॥ ६ ॥ और उसपुरीमें महेश्वर देवजीको देखने के लिये विष्णुजी सदैव आते हैं जिसलिये सोनेके कमलों से यह सब कहीं शोभित है ॥ ७ ॥ उसीकारण वहा आये हुये देवताओंने कुमुद ऐसानाम कियाहै एक समय भगवान् शिवजी उस पर्वत पै आये व उसके सुन्दर शिखर पै विष्णुजीसे पालित उस पुरीको देखनेके लिये घर में आयेहुये शिवजीको देखकर

विष्णुजीने उनको पूजा ॥ ८।६ ॥ व लक्ष्मीसे पूजीहुई पार्वतीजी प्रसन्न होकर वहां स्थित हुईं व एक आसन पै बैठे हुये वे दोनों शिव व विष्णुजी परस्पर सलाह कर रहे थे ॥ १० ॥ और शिवजीने कारण जानकर उस सबको विष्णुजी से कहा कि उत्तम मन्दराचल पै तुमको इस नगरीको बनाना चाहिये ॥ ११ ॥ यदि अवश्य होवै तो कारण न पूछना चाहिये और महादेवही कारणको जानतेथे कुमुद भी नहीं जानताथा ॥ १२ ॥ वैसाही होगा ऐसा वे दोनों कहकर स्थित हुये और वह पर्वत भी स्थित हुआ और आये हुये शिवजीको देखकर वह कुमुद आपही आया ॥ १३ ॥ व उसने कहा कि मैं धन्यहूं व पुण्य कियेहू कि जिसके घरमें आप दोनों आयेहो

हर्षितातत्रसंस्थिता ॥ एकामनोपविष्टौतौ मन्त्रयन्तौपरस्परम् ॥ १० ॥ हरेणकारणंज्ञात्वा तत्सर्वंकथितंहरेः ॥ त्व येयंनगरीकार्या मन्दरेपर्वतोत्तमे ॥ ११ ॥ प्रष्टव्यंकारणंनैवमवश्यंचेद्भविष्यति ॥ हरएवविजानाति कारणंकुमुदो पिन ॥ १२ ॥ एवंतथेतितौप्रोक्त्वा संस्थितःपर्वतोपिसः ॥ सदृष्ट्वासङ्गतंरुद्रं कुमुदःस्वयमाययौ ॥१३॥ धन्योहंकृतपु ण्योहं यस्येमौगृहमागतौ ॥ द्वाभ्यामुक्तोगिरिवरो ददावःकिंवरन्तव ॥ १४ ॥ इत्युक्तःपर्वतस्ताभ्यांवरंचक्रेसमूढधीः ॥ भविष्यकार्यहेतुत्वाद् भविष्यतिचतद्ध्रुवम् ॥ १५ ॥ यत्राहंतत्रवस्तव्यं भवद्भ्यामस्तुमेवरः ॥ मत्सन्निधौसमागत्य स्था तव्यंब्रह्मवासरम् ॥ १६ ॥ तथेत्युक्त्वासपत्नीकौ गतौहरिहराबुभौ ॥ ईश्वर उवाच ॥ कथेयंदैत्यपुत्रस्यमयातेविनिवेदिता ॥ १७ ॥ सर्वपापोपशमनी संसारध्वान्तदीपिका ॥ कृष्णद्वैपायनोव्यासो विस्तरेणवदिष्यति ॥ १८ ॥ सूतपुत्रायदेवेशि

विष्णु व शिव दोनों ने पर्वतोत्तम कुमुदसे कहा कि हम दोनों तुमको क्या वरदान देवैं ॥ १४ ॥ उन दोनों से ऐसा कहे हुये उस मूढबुद्धिवाले कुमुद पर्वत ने वर-दान मांगा कि होनेवाले कार्यके कारण वह निश्चय कर होगा ॥ १५ ॥ जहां मैं हूं वहां आप दोनों को वसना चाहिये यह मेरा वरदान होवै और मेरे समीप आकर ब्रह्माके दिन तक टिकना चाहिये ॥ १६ ॥ वैसाही होगा यह कहकर स्त्रियोंसमेत विष्णु व महादेव दोनों चलेगये महादेवजी बोले कि दैत्यपुत्र बलिकी इस कथा को मैंने तुमसे कहा ॥ १७ ॥ जो कि समस्त पातकों को नाश करनेवाली व संसार के अन्धकार के लिये दीपिका (मसाल) है और हे देविशि ! कृष्ण द्वैपायन

व्यासजी अपने शिष्य महात्मा सूतपुत्रके लिये विस्तार से कहैंगे और वे नैमिष महारण्य में बारह वर्षका महायज्ञ ॥ १८ । १९ ॥ वर्तमान होनेपर उस सबको महर्षियोंसे कहैंगे हे पार्वति ! कृष्ण द्वैपायन व्यासजीको मेरे समान जानो ॥ २० ॥ जिनके मुखमे सरस्वतीजीके प्रभाव व मेरी सेवासे कथा उत्पन्नहुईहै व यथार्थ प्रकाशित किया गया है ॥ २१ ॥ उनको कर्णरूपी अंजलियोंसे पीकर मनुष्य मेरी कीर्ति करैगा व जिन व्यासजी की वचनमयी कीर्ति पृथ्वी में स्थिर होकर घूमती है ॥ २२ ॥ और पितरोंसमेत वे सनातन लोकों को प्राप्त हैं हे देवि ! जो पांचवें रैवतनामक मनु प्रसिद्ध हुए हैं ॥ २३ ॥ उन माहात्मा मनुके पुत्रके रेवती नक्षत्र

स्वशिष्यायमहात्मने ॥ सनैमिषेमहारण्ये सत्रेद्वादशवार्षिके ॥ १९ ॥ वर्त्तमानेमहर्षीणां तत्सर्वंकथयिष्यति ॥ कृष्णंद्वैपायनंव्यासं मत्समंविद्धिपार्वति ॥ २० ॥ सरस्वतीप्रभावेण ममशुश्रूषणेनच ॥ यस्यवक्त्रात्समुत्पन्ना यथार्थंकनकाश्रितम् ॥ २१ ॥ पीत्वाकर्णाञ्जलीभिश्च ममकीर्तिंकरिष्यति ॥ यस्येयंवाङ्मयीकीर्त्तिःस्थिराभ्रमतिभूतले ॥ २२ ॥ सपुनःशाश्वताल्लोँकान्प्राप्नोतिपितृभिस्सह ॥ पञ्चमोयोमनुर्देवि रैवतोनामविश्रुतः ॥ २३ ॥ तस्यपुत्रस्यपुत्रोभूद्रेवत्यान्तुमहात्मनः ॥ सतस्यविधिवच्चक्रे जातकर्मादिकांक्रियाम् ॥ २४ ॥ तथोपनयनादींश्च सचाशीलोभवन्नृपः ॥ यतःप्रभृतिजातोसौ ततःप्रभृत्यसावृषिः ॥ २५ ॥ दीर्घरोगपरामर्शमवाप्नोतीवदुर्गतिम् ॥ माताचास्यपराभूता कुष्ठरोगाभिपीडिता ॥ २६ ॥ जगामचिन्तांसऋषिः किमेतदितिदुःखितः ॥ मूर्खस्तुमन्दधीःपुत्रो दुःखंजनयतेपितुः ॥ २७ ॥ अमार्गगोविशेषेण दुःखाद्दुःखतरंहिनः ॥ अपुत्रतामनुष्याणां श्रेयसेनकुपुत्रता ॥ २८ ॥ सुहृदांनोपकाराय पितॄणांनो

में पुत्र हुआ और उन्होंने उसका जातकर्मादिक कर्म किया ॥ २४ ॥ व यज्ञोपवीतादिक कर्मोंको किया और वह राजा अशीलहुआ है जबमे लगाकर यह पैदा हुआ तबसे लगाकर ये ऋषि हुये हैं ॥ २५ ॥ और उसने बहुतही कठिन बड़े भारी रोग की विकलताको पाया व इसकी माता कुष्ठ रोगसे पीडित होकर दुःखित हुई ॥ २६ ॥ और वे ऋषि रैवतजी चिन्ताको प्राप्त हुये व यह क्या है इस कारण दुःखी हुये कि मूर्ख व मंदबुद्धि पुत्र पिताके दुःख को पैदा करता है ॥ २७ ॥ व कुमार्गगामी पुत्र विशेषकर दुःखको उत्पन्न करता है यह हमको दुःखमे भी अधिक दुःख है पुत्रका न होना मनुष्यों के कल्याण के लिये है और कुपुत्र होना कल्याण के

लिये नहीं है ॥ २८ ॥ क्योंकि कुपुत्र मित्रों के उपकार के लिये नहीं होता है व पितरोंकी तृप्ति के लिये नहीं होता है व सुपुत्र दिन दिन माता, पिताके हृदयको जानता है ॥ २९ ॥ व पुत्रसे दुःखी उस दुष्कृतकर्मों के जन्मको धिक्कारहै और वे पुत्र धन्य हैं कि जिनके सब लोक सम्मत हैं॥ ३० ॥ और जो पराया उपकार करने-वाले, शान्त व उत्तम कर्मों में अनुव्रत हैं और दुःखसंयुत, आनन्दरहित व दुःख, शोकसे रहित ॥ ३१ ॥ हमारा कुपुत्र से मलिन जन्म नरकके लिये है स्वर्गके लिये नहीं है और कुपुत्र हृदयमें उदासीनता व शत्रुवोंको आनन्द करता है ॥ ३२ ॥ और कुपुत्र पुत्र असमय में पिताकी वृद्धताको करताहै महादेवजी बोले कि इस

पतृप्तये ॥ सुपुत्रोहृदयंवेत्ति मातापित्रोर्दिनेदिने ॥ २९ ॥ पुत्राद्दुःखस्यधिग्जन्म तस्यदुष्कृतकर्मणः ॥ धन्यास्तेतन यायेषांसर्वलोकाभिसम्मताः ॥ ३० ॥ परोपकारिणःशान्ताःसाधुकर्मण्यनुव्रताः ॥ अनिर्वृतंनिरानन्दं दुःखशोकपरिप्लु तम् ॥ ३१ ॥ नरकाय न स्वर्गाय दुष्पुत्राविलजन्मनः ॥ करोतिहृदयंदैन्यमहितानांतथामुदम् ॥ ३२ ॥ अकालेतुजरां पुत्रः कुपुत्रःकुरुतेपितुः ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवंसोत्यन्तदुष्टस्य पुत्रस्यचरितेनच ॥ ३३ ॥ दह्यमानमनोवृत्तिर्वृद्धंगर्गम पृच्छत ॥ कृतवागुवाच ॥ सुव्रतेनपुरावेदा अधीताविधिनामया ॥ ३४ ॥ समाप्यविद्याविधिवत्ततोदारपरिग्रहः ॥ सदा रेणहिसाकार्य्या श्रौतस्मार्त्तक्रियाविभो ॥ ३५ ॥ परिणीताविधानेन कामंसमनुरुध्यता ॥ पुत्रार्थंजनितश्चायं पुत्रःप्राप्त श्च्युतोमुने ॥ ३६ ॥ सोयंकिमात्मदोषेण मातुर्दोषेण किम्मम ॥ अस्मद्दुःखावहोजातो दौश्शील्याद्बन्धुकोविदः ॥ ३७ ॥ गर्गउवाच ॥ रेवत्यन्तेमुनिश्रेष्ठ जातोयन्तनयस्तव ॥ तेनदुःखायतेदुष्टे कालेयस्मादजायत ॥ ३८ ॥ नचोपचारोनैवास्य

प्रकार अत्यन्त दुष्ट पुत्रके चरित्रसे उन ॥ ३३ ॥ जलती हुई मनोवृत्तिवाले मुनि ने वृद्ध गर्गाचार्यजीसे पूंछा कृतवाक् बोले कि पुरातन समय मुझ सुव्रतने विधिसे वेदों को पढ़ा ॥ ३४ ॥ और विधिसे विद्याओंको समाप्तकर तदनन्तर स्त्रीको ग्रहण किया क्योंकि हे विभो ! स्त्रीसमेत पुरुषको ब्रह्मश्रौत स्मार्त्त कार्यको करना चाहिये ॥ ३५ ॥ इसलिये कामको अनुरोध करते हुये मैंने विधिसे उसको ब्याहा व पुत्रके लिये यह पैदा किया गया व हे मुने ! पुत्र प्राप्तहुआ और छूटगया ॥ ३६ ॥ सो यह क्या अपने दोषसे या माताके दोषसे मुझको दुःखदायक हुआ और दुश्शीलता से वह बन्धुवोंमें चतुर है ॥ ३७ ॥ गर्गाचार्यजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! यह तुम्हारा

पुत्र रेवती नक्षत्र के अन्त में पैदा हुआ है उसीसे दुःखित करताहै जिसलिये कि दुष्ट समय में पैदा हुआ है ॥ ३८ ॥ इसका उपचार नहीं है और माता व कुलका भी दोष नहीं वरन दुश्शीलता का कारण होना अन्य है जो कि रेवती नक्षत्रका अन्त प्राप्त था ॥ ३९ ॥ क्योंकि रेवती व अश्विनी का मध्य व श्लेषा, मघा और ज्येष्ठा व मूलका मध्य व गण्डान्तभयदायक कहा गया है ॥ ४० ॥ इन तीन गण्डान्तों में जो स्त्री पुरुष व अश्व उत्पन्न होते हैं वे बहुत दिनों तक घरमें नहीं टिकतेहैं और टिकतेहुये भी वे भयंकर होते हैं ॥ ४१ ॥ गर्गाचार्यजी से ऐसा कहे हुये अत्यन्त क्रोधित उन्होंने बहुतही कोप किया कृतवाक् बोले कि जिसलिये मेरे

मातुर्नापिकुलस्यवा ॥ अन्यदौश्शील्यहेतुत्वं रेवत्यन्तमुपागतम् ॥ ३९ ॥ रेवत्यश्विनिमध्यंच आश्लेषामघयोस्त था ॥ ज्येष्ठामूलयोश्चप्रोक्तं गण्डान्तंतद्भयावहम् ॥ ४० ॥ गण्डत्रयेतुयेजाता नरनारीतुरङ्गमाः ॥ तिष्ठन्तिनचिर ङ्गेहे तिष्ठन्तोपिभयङ्कराः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोथगर्गेण चुक्रोधातीवकोपनः ॥ कृतवागुवाच ॥ यस्मान्ममैकपुत्रस्य रेवत्य न्तेसमुद्भवः ॥ ४२ ॥ रेवतीकिन्नजानाति मांविप्रःशापयिष्यति ॥ जाज्वल्यमानागगनात्तस्मात्पततुरेवती ॥ ४३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ तेनैवंव्याहृतेवाक्ये रेवत्यन्तंपपातह ॥ पश्यतःसर्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः ॥ ४४ ॥ ईश्वरेच्छा प्रभावेण पतितागिरिमूर्द्धनि ॥ रेवत्यन्तन्निपतितंकुमुदाद्रौसमन्ततः ॥ ४५ ॥ भासयामाससहसा वनकन्दरनिर्झरम् ॥ खमुत्पपातसगिरिर्दह्यमानःसमन्ततः ॥ ४६ ॥ सौराष्ट्रदेशेसम्प्राप्ते पतितोभूतलेशुभे ॥ हिमाचलस्यपुत्रोयमूर्ज्जयन्तो

एक पुत्र का रेवती के अन्तमें जन्म हुआ ॥ ४२ ॥ तो क्या रेवती नहीं जानती है कि मुझको वे विप्र शाप देवैंगे इस कारण जलतीहुई रेवती आकाश से गिरै ॥ ४३ ॥ महादेवजी बोले कि उनसे ऐसा वचन कहनेपर विस्मयसे संयुत चित्तवाले सब संसारके देखते हुये रेवती का अन्त गिरपड़ा ॥ ४४ ॥ ईश्वर की इच्छा के प्रभावसे रेवती पर्वत के शिखर पै गिरी और कुमुद पर्वत पै सब ओर गिरा हुआ रेवतीका अन्त ॥ ४५ ॥ अचानकही वन, कंदरा व झरनोंको प्रकाशित करताभया और सब ओर से जलता हुआ वह पर्वत आकाशको उड़ा ॥ ४६ ॥ व सौराष्ट्र देश प्राप्त होने पर उत्तम पृथ्वी पै गिरपड़ा यह हिमाचल का पुत्र ऊर्जयन्त बड़ा भारी

पर्वत है ॥ ४७ ॥ इसने कुमुदके साथ पहले परस्पर मैत्री किया है कि जहां तुम जावोगे वहां मैं भी निश्चय कर जाऊंगा ॥ ४८ ॥ ऐसा निश्चय कर वह पुण्यको इकट्ठा करने के लिये यमुनासमेत हरद्वार को पवित्र सारस्वत क्षेत्रको गया ॥ ४९ ॥ और प्रलयपर्यन्त वे दोनों परस्पर को स्थित हुये व उसके गिरने के कारण कुमुद पर्वत रैवत ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ ५० ॥ हेभूपते ! यह पर्वत बाहर रंग से कमल के समान हुआ व मध्य में वह सुवर्ण का उत्तम पर्वत सुमेरुगिरिके समान रंगवाला है ॥ ५१ ॥ उसके पश्चात् रैवतक पर्वत ने रेवती की शोभा के समान व रेवती के समान मुखवाली कन्या को पैदा किया ॥ ५२ ॥ तदनन्तर प्रमुचनामक राजर्षि

गिरिर्महान् ॥ ४७ ॥ कुमुदेनसमम्मैत्री कृतापूर्वंपरस्परम् ॥ यत्रत्वंयास्यसेस्थातुं तत्राहमपिनिश्चितम् ॥ ४८ ॥ इतिकृत्वागृहीत्वाथ गङ्गाद्वारंसयामुनम् ॥ सारस्वतंतथापुण्यं सञ्चेतुंससमागतः ॥ ४९ ॥ अभूतसंप्लवंयावत्संस्थितौतौपरस्परम् ॥ कुमुदाद्रिश्चतत्पातात् ख्यातोरैवतकोभवत् ॥५० ॥ पङ्कजाभस्सबाह्येन जातोवर्णेनभूपते ॥ मेरुवर्णःसमध्येतु सौवर्णःपर्वतोत्तमः ॥ ५१ ॥ ततश्चाजनयामास कन्यांरैवतकोगिरिः ॥ रेवतीकान्तिसदृशीं रेवतीसदृशाननाम् ॥ ५२ ॥ प्रमुचोनामराजर्षिस्ततोदृष्ट्वावराङ्गनाम् ॥ पितृवद्रेवतीनामाकरोत्तस्यान्नृपोत्तमः ॥ ५३ ॥ रेवतीतिचविख्याता सासर्वत्रवराङ्गना ॥ सर्वतेजोमयंस्थानं सर्वतीर्थजलाश्रयम् ॥ ५४ ॥ गङ्गाजलप्रवाहैश्च संयुक्तंयामुनैस्तथा ॥ स्थितंसारस्वतन्तोयं तत्रगर्तेषुतत्त्रयम् ॥ ५५ ॥ विख्यातंरेवतीकुण्डं यत्रराजतिरेवती ॥ स्मरणाद्दर्शनात्स्नानात्स्पर्शात्पापक्षयोभवेत् ॥५६ ॥ साबालावर्द्धितातेन प्रमुचेनमहात्मना ॥ यौवनन्तुतयाप्राप्तं तस्मिन्रैवतकेगिरौ ॥ ५७ ॥ तान्तुयौवनसम्प

ने उत्तम कन्याको देखकर उस नृपोत्तमने पिताकी नाईं उसका रेवती नाम किया ॥ ५३ ॥ वह उत्तम कन्या सब कहीं रेवती ऐसी प्रसिद्ध हुई और वह स्थान समस्त तेजोमय व समस्त तीर्थ जलके आश्रयवाला है ॥ ५४ ॥ और यमुना व गंगा जलके प्रवाहोंसे संयुक्तहै और सरस्वतीजीका जलहै, वहां गढ़ोंमें वे तीनों तीर्थहैं ॥ ५५ ॥ वहां रेवतीकुण्ड प्रसिद्ध है जहां कि रेवतीजी राजती हैं उसके स्मरण, दर्शन व स्नान व स्पर्शसे समस्त पातकोंका नाश होता है ॥ ५६ ॥ उन महात्मा प्रमुचजीने उस

न्त्रांदृष्ट्वाथप्रमुचोमुनिः॥ एकान्तेचिन्तयामास कोस्याभर्त्ताभविष्यति ॥ ५८॥ हुत्वाहुत्वासपप्रच्छ गुरुंवह्निंद्विजोत्तमः ॥ प्रसादंकुरुमेब्रूहि कोस्याभर्त्ताभविष्यति॥५९॥ अस्यास्तिसदृशःकोपि वरोनास्तिकरोमिकिम् ॥ वह्निकुण्डात्समुत्थाय मूर्तिमान्हव्यवाहनः ॥६०॥ शृणुमेवचनंविप्र योस्याभर्त्ताभविष्यति ॥ प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः ॥ ६१ ॥ पुत्रोविक्रमशीलस्य कालिन्दीजठरोद्भवः ॥ दुर्दमोनामभविता भर्त्ताह्यस्यामहीपतिः ॥ ६२ ॥ अत्रान्तरेसमायातो दुर्दमःसमहीपतिः ॥ गिरौमृगवधाकाङ्क्षी मुनिगेहमपश्यत ॥ ॥ ६३ ॥ दृष्ट्वाकन्यांदुर्दमस्स उवाचप्रिययागिरा ॥ प्रियेपितातेकगत एहिसत्यंब्रवीहिमे ॥ ६४ ॥ अग्निशालास्थितेनैव तच्छ्रुतंवचनंप्रियम् ॥ प्रियेत्यामन्त्रणंकोपि करोतिममवेश्मनि ॥ ६५ ॥ सददर्शमहात्मानं राजानंदुर्दमंमुनिः ॥ जहर्षदुर्दमंदृष्ट्वा मुनिःप्राहसगौतमम् ॥ ६६ ॥ शिष्यंविनयसम्पन्नं पाद्यमर्घ्यंसमानय ॥ एकस्तावदयंराजा चिरकालादुपागतः ॥ ६७ ॥ जामातासाम्प्रतंराजा जायास्यात्तु

कन्या को बढ़ाया व उसने उस रैवत पर्वत पै यौवन को पाया ॥ ५७ ॥ और यौवनसे संयुत उस कन्या को देखकर प्रमुच मुनिने एकान्त में चिन्तवन किया कि इसका कौन पति होगा ॥ ५८ ॥ उस द्विजोत्तम ने हवन कर गुरु व अग्नि से पूंछा कि मेरे उपर प्रसन्नता कीजिये और इसका कौन पति होगा ॥ ५९ ॥ इसके समान कोई वर नहीं है मैं क्या करूं तब अग्निकुंडसे उठकर मूर्तिमान् अग्निजी बोले ॥ ६० ॥ कि हे विप्रजी ! मेरे वचन को सुनिये कि जो इसका पति होगा प्रियव्रतके वंश में उत्पन्न बड़ा बलवान् व पराक्रमी ॥ ६१ ॥ कालिन्दी के पेट से पैदा हुआ विक्रमशीलका पुत्र दुर्दमनामक राजा इसका पति होगा ॥ ६२ ॥ इसी अवसर में वह मृगोंके मारने की इच्छावाला दुर्दमनामक राजा उस पर्वत पै आया व उसने मुनिके गृहको देखा ॥ ६३ ॥ व उसकन्याको देखकर उसदुर्दमने प्रिय वाणी से कहा कि हे प्रिये ! आइये मुझसे सत्य कहिये कि तुम्हारा पिता कहां गयाहै ॥ ६४ ॥ उस प्रिय वचन को अग्निशाला में स्थित मुनि ने सुना कि हे प्रिये ! ऐसा आमंत्रण कोई मेरे घरमें करता है ॥ ६५ ॥ उस मुनिने महात्मा दुर्दम राजा को देखा व दुर्दम को देखकर वे मुनि प्रसन्न हुए व विनय से संयुत गौतम शिष्य से बोले कि पाद्य व अर्घ्य को लाइये यह अकेला राजा बहुत दिनों से आया है ॥ ६६ । ६७ ॥ इस समय यह राजा दामाद होगा और मेरी कन्या इसकी स्त्री होगी

तदनन्तर दामाद के कारण को जानकर विचार किया ॥ ६८ ॥ और उन मुनिकी आज्ञासे उस दुर्दम नृपति ने मौन विधिसे उस अर्घ्य पाद्य को ग्रहण किया और आसन पै प्राप्त व अर्घको ग्रहण किये हुए उन दुर्दम से महामुनि विप्रजीने कहा कि हे ईश्वर, नृपेन्द्र, नृपते ! तुम्हारे पुर में कुशल है व खज़ाना, सेना, मित्र, सेवक व मंत्रियों में कुशल है ॥ ६९ । ७० ॥ वैसेही हे महाबाहो ! अपने शरीर में कुशल है कि जिसमें सब प्रतिष्ठित हैं और तुम्हारी स्त्री कुशलिनी है जो कि सदा आगे स्थित है ॥ ७१ ॥ और अन्य स्त्रियोंका कुशल कहिये जो कि तुम्हारे मन्दिरमें हैं राजा बोले कि तुम्हारी प्रसन्नता से मेरे राज्यमें कहीं अकुशल नहीं है ॥ ७२ ॥

सुताममं ॥ ततस्सञ्चिन्तयामास ज्ञात्वाजामातृकारणम् ॥६८॥ मौनेनविधिनाराजा जगृहेतंतदाज्ञया ॥ तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घ्यमहामुनिः ॥ ६९ ॥ दुर्दमम्प्राहराजेन्द्रनृपतेकुशलम्पुरे ॥ कोशेबलेचमित्रेच भृत्यामात्येषुचेश्वर ॥ ७० ॥ तथात्मनिमहाबाहो यत्रसर्वम्प्रतिष्ठितम् ॥ भार्याचतेकुशलिनी यापुरश्चात्रतिष्ठति ॥७१॥ अन्यासांकुशलंब्रूहि याःसन्तितवमन्दिरे ॥ राजोवाच ॥ त्वत्प्रसादादकुशलं नास्तिराज्येकचिन्मम ॥ ७२ ॥ जातकौतूहलश्चास्मि मम भार्यात्रकामुने ॥ प्रमुच उवाच ॥ रेवतीतेवराभार्य्या किंनास्तिचनृपोत्तम ॥ ७३ ॥ त्रैलोक्यसुन्दरीयातु कथंसाविस्मृतातव ॥ राजोवाच ॥ सुभद्रांशान्तपापांच कावेरीतनयांतथा ॥ ७४ ॥ सुरामांजानुजाताञ्च कन्दम्बांप्रवरप्रजाम् ॥ विपाठान्नन्दिनीञ्चैव वेद्मिभार्यागृहेमम ॥ ७५ ॥ तिष्ठन्तिनैवजानामि भार्यामेरेवतीकुतः ॥ ऋषिरुवाच ॥ प्रियेतिसाम्प्रतम्प्रोक्ता रेवतीसाप्रियातव ॥ ७६ ॥ तदन्यथानभविता वचनंनृपसत्तम ॥ ७७ ॥ राजोवाच ॥ नास्तिभावकृतोदोषः

व हे मुने ! मेरे यह कौतुक उत्पन्नहै कि यहां मेरी कौन स्त्री है प्रमुच बोले कि हेनृपोत्तम ! तुम्हारी रेवतीनामक उत्तम स्त्री है क्या उसको नहीं जानतेहो ॥ ७३ ॥ जो त्रिलोक में सुन्दरी है वह तुमको कैसे भूलगई राजा बोले कि सुभद्रा, शान्तपापा व कावेरीकी कन्या ॥ ७४ ॥ वसुरोमा, जानुजाता, कदबा और वरप्रजा, विपाठा व नन्दिनी स्त्रीको मैं जानता हूँ और मेरे घरमें अन्य जो स्त्रियां ॥ ७५ ॥ ये स्थितहैं उनको जानता हूँ और मेरी रेवती स्त्री कहा है उसको मैं नहीं जानताहूँ ऋषि बोले कि जो इस समय प्रिया ऐसी कही गईहै वह तुम्हारी स्त्री है ॥ ७६ ॥ हेनृपोत्तम ! यह वचन अन्यथा न होगा ॥ ७७ ॥ राजा बोले कि भावसे किया हुआ

दोष नहीं है मेरे वचन को क्षमा कीजिये हे द्विजोत्तम ! मुखसे वचन निकलगया उसको मैं नहीं जानता हूं ॥ ७८ ॥ ऋषि बोले कि भावसे किया हुआ दोष नहीं है मैं जानता हूं और उस श्रेष्ठ वचन को कीजिये ॥ ७९ ॥ क्योंकि आज अग्नि ने कहा है इससे तुम दामाद होगे इत्यादिक वचनोंसे राजा स्त्रीके लिये प्रतिपादित किये गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर ऋषि विधिपूर्वक विवाह करने के लिये उद्यत हुये और कन्या पितासे बोली कि हे पिताजी ! मेरे कुछ वचन को सुनिये ॥ ८१ ॥ कि हे पिताजी ! दुर्दम के साथ विवाह करने योग्य हो इसलिये रेवती नक्षत्र में प्रसन्नता से विवाह कीजिये ॥ ८२ ॥ ऋषि बोले कि हे भद्रे ! रेवती नक्षत्र चन्द्रमा

क्षम्यतांवचनंमम ॥ विनिर्गतंवचोवक्त्रान्नाहंजानेद्विजोत्तम ॥ ७८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ नास्तिभावकृतो दोषः परंवेद्मि कुरुष्वतत् ॥ ७९ ॥ वह्निनाकथितस्त्वंहि जामाताद्यभविष्यति ॥ इत्यादिवचनैराजा भार्यायैप्रतिपादितः ॥ ८० ॥ ऋषिस्तथोद्यतःकर्तुं विवाहंविधिपूर्वकम् ॥ उवाचकन्यापितरं किञ्चिन्मेश्रूयतांपितः ॥ ८१ ॥ दुर्दमेनसमंतात विवाहंकर्तुमर्हसि ॥ रैवत्यर्क्षेविवाहन्तु तत्करोतुप्रसादतः ॥ ८२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ रैवतर्क्षंनवैभद्रे चन्द्रयोगेदिविस्थिता ॥ ऋक्षाण्यन्यानिसन्त्येव शुद्धवैवाहिकानिच ॥ ८३ ॥ कन्योवाच ॥ तातेतेनविनाकालो विफलःप्रतिभातिमे ॥ विवाहो विफलस्तात मद्विधायाःकथंभवेत् ॥ ८४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ कृतवागितिविख्यातस्तपस्वीरेवतींप्रति ॥ चकारकोपंक्रुद्धेन तेनर्क्षंतन्निपातितम् ॥ ८५ ॥ मयाचास्मैप्रतिज्ञाता भार्येतिविदितंतव ॥ नचेच्छसिविवाहन्त्वं सङ्कटन्नुसमागतम् ॥ ८६ ॥ कन्योवाच ॥ कृतवागेवंसुमुनिःकिमेतत्तप्तवांस्तपः ॥ नत्वयाममतातेन ब्रह्माधमसुतास्मिकिम् ॥ ८७ ॥

के योग में आकाश में नहीं स्थित है व शुद्ध विवाहवाले अन्य नक्षत्र हैं ॥ ८३ ॥ कन्या बोली कि हे पिताजी ! उसके विना मुझको समय विफल जान पडता है और मेरे समान कन्या का विवाह कैसे विफल होगा ॥ ८४ ॥ ऋषि बोले कि कृतवाक् ऐसे प्रसिद्ध तपस्वीने रेवती के ऊपर कोप किया व उस क्रोधित तपस्वीने उस नक्षत्र को गिरादिया ॥ ८५ ॥ और मैंने इससे स्त्री की प्रतिज्ञा किया है वह तुमको प्रगट है और तुम विवाह को नहीं चाहती हो यह हमको संकट प्राप्त हुआ ॥ ८६ ॥ कन्या बोली कि क्या कृतवाक्ही मुनि ने इस तपस्या को किया है और मेरे पिता तुमने ऐसा तप नहीं किया है तो क्या मैं अधम ब्राह्मण की कन्या हूं ॥ ८७ ॥

ऋषि बोले कि तुम अधम ब्राह्मण की कन्या नहीं हो और मुझसे अधिक कोई तपस्वी नहीं है व तुम कन्या मुझसे देने योग्य हो व तप करने के लिये मैं उत्साह करता हूं ॥ ८८ ॥ हे भद्रे ! ऐसाही होवै व तुम्हारा कल्याण होवै और तुम प्रीतिमती होवो मैं तुम दोनोंके लिये रेवती नक्षत्र को चन्द्रमा के मार्ग में आरोपण करूंगा ॥ ८९ ॥ तदनन्तर महामुनि द्विजोत्तम ने तपस्या के प्रभाव से रेवती नक्षत्र को पहले की नाईं चन्द्रमा के योग में किया ॥ ९० ॥ व कन्या का विवाह करके दामादसे बोले कि हे भूपाल ! कहिये मैं तुमको क्या दहेज देऊं ॥ ९१ ॥ मैं दुर्लभ भी वस्तुको दूंगा क्योंकि मेरे तपस्या वर्तमान है राजा बोले कि हे मुने !

ऋषिरुवाच ॥ ब्रह्मबन्धोःसुतानत्वं तपस्वीनास्तिमेधिकः ॥ सुतात्वञ्चमयादेयातपःकर्त्तुंसमुत्सहे ॥ ८८ ॥ एवंभवतु भद्रन्ते भद्रेप्रीतिमतीभव ॥ आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यर्त्थंकृतेयुवाम् ॥ ८९ ॥ ततस्तपःप्रभावेण रेवत्यर्त्थंमहामुनिः ॥ यथापूर्वंतथाचक्रेसोमयोगंद्विजोत्तम ॥ ९० ॥ विवाहंदुहितुःकृत्वा जामातरमुवाचह ॥ उद्वाहिकंतेभूपाल कथ्यतांकिं ददाम्यहम् ॥ ९१ ॥ दुष्प्रायमपिदास्यामि विद्यतेमेमहत्तपः ॥ राजोवाच ॥ मनोःस्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नःसन्ततौमुने ॥ ९२ ॥ मन्वन्तराधिपंपुत्रंत्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम् ॥ ऋषिरुवाच ॥ भविष्यतिमहीपालोमहाबलपराक्रमः ॥ ९३ ॥ रेवतीरेवतीकुण्डेस्नात्वापुत्रंजनिष्यति ॥ एवंकृत्वाततोराजा साचपुत्रमजीजनत् ॥ ९४ ॥ रैवतेतिकृतंनाम बभूवसमनुर्नृपः ॥ अमुनाचतदाप्रोक्तमस्मिन्रैवतकेगिरौ ॥ ९५ ॥ स्त्रियःस्नानंकरिष्यन्ति दुःखदारिद्र्यवर्जिताः ॥ ९६ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ इत्युच्चैःपर्वतोराजन्दीर्घोभूत्वापपातसः ॥ एतौतौसंस्मृतौदेवौसभार्य्यौहरिशङ्करौ ॥ ९७ ॥ स्मृतमात्रौतदापा

मैं स्वायंभुव मनुके वंश में उत्पन्न हुआ हूं ॥ ९२ ॥ और तुम्हारी प्रसन्नता से मैं मन्वन्तरके स्वामी पुत्रको मांगता हू ऋषि बोले कि बड़ा बली व पराक्रमी राजा पुत्र होगा ॥ ९३ ॥ और रेवतीकुण्डमें नहाकर रेवतीजी पुत्रको पैदा करैंगी ऐसा कह करके तदनन्तर राजा व उस स्त्री ने पुत्रको पैदा किया ॥ ९४ ॥ और रैवत ऐसा नाम किया गया वही राजा मनु हुआ व उस समय इसने कहा कि इस पर्वतपै ॥ ९५ ॥ जो स्त्रियां स्नान करैंगी वे दुःख व दारिद्र्य से रहित होवैंगी ॥ ९६ ॥ वैशम्पायनजी बोले कि हे राजन् ! इसकारण वह पर्वत दीर्घ होकर उच्चप्रकारसे गिरपडा और ये विष्णु व शङ्कर दोनों स्त्रीसमेत देवता स्मरण कियेगये ॥ ९७ ॥

और उस समय स्मरण किये हुये वे दोनों देवता आये क्योंकि पहले वचनसे बँधे थे कि जहां मैं जाऊं वहां आप दोनों को निश्चयकर टिकना चाहिये ॥ ९८ ॥ इस कारण विष्णु व शिव देवता रैवतकनामक मनोहर व उत्तम पर्वत पै स्वर्णरेखा नदी के जल में भलीभांति स्थित हुये ॥ ९९ ॥ और रेवती ने विष्णु व शिवदेवजी को तपस्या से आराधन किया तब प्रसन्न होकर शिवजी ने रेवती से कहा कि ब्रह्मा की आज्ञा से आकाश में तुम्हारा चन्द्रमा के साथ योग होगा ॥ २०० ॥ और मैं प्रसन्न हूँ इससे मन में जो वरदान स्थितहो उसको मांगिये रेवतीजी बोलीं कि हे देव ! रैवतक पर्वत पै आप को सदैव टिकना चाहिये ॥ १ ॥ जहां मैंने स्नान किया

तौ वाचाबद्धौपुरायतः ॥ यत्राहंतत्रस्थातव्यं भवद्भ्यामितिनिश्चितम् ॥ ९८ ॥ अतोविष्णुहरौदेवौ संस्थितौपर्वतोत्तमे ॥ गिरौरैवतकेरम्ये स्वर्णरेखानदीजले ॥ ९९ ॥ आरराधहरिंदेवं रेवतीतपसाभवम् ॥ तदाप्रसन्नःसशिवोरेवतींप्रत्युवाचह ॥ भविताचन्द्रयोगस्ते गगनेब्रह्मणाज्ञया ॥ २०० ॥ अन्यद्वृणोहितुष्टोहं वरंमनसियत्स्थितम् ॥ रेवत्युवाच ॥ गिरौरैवतकेदेव स्थातव्यंभवतासदा ॥ १ ॥ मयास्नानंकृतंयत्र तत्रस्थास्यन्तियेजनाः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि विलीयन्तुचतत्क्षणात् ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वाः संस्थिताविष्णुनासह ॥ २ ॥ क्षीरोदेमथ्यमानेतु यदावृक्षःसमुत्थितः ॥ आमर्दैसर्वदेवानां तेनआमर्दकीस्मृता ॥ ३ ॥ अस्मिन्वृक्षेस्थितालक्ष्मीः सदापितृगृहेनृप ॥ लक्ष्मीर्वृक्षेस्थिताचैव सेव्यतेसुरसत्तमैः ॥४॥ देवैर्ब्रह्मादिभिःसर्वैर्वृक्षोसौवैष्णवःस्मृतः ॥ सर्वैःसञ्चिन्त्यमुक्तोसौ गिरौरैवतकेपुरा ॥ ५ ॥ अस्यवृक्षस्ययात्रांयेकरिष्यन्तिहरेर्दिने ॥ फाल्गुणेतुसितेपक्षे एकादश्यांनृपोत्तम ॥ ६ ॥ तेषांपुत्राश्चपौत्राश्च भविष्यन्तिगुणाधिकाः ॥ अ

है वहां जो मनुष्य स्नान करै उनके ब्रह्महत्यादिक पाप उसी क्षण नाश होजावैं क्योंकि वहां विष्णुसमेत सब नदियां स्थितहैं ॥ २ ॥ क्षीर सागर मथे जानेपर जिस लिये सब देवताओं का आमर्द होनेपर वृक्ष उत्पन्न हुआ है उसकारण आमर्दकी वृक्ष कहा गया है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! उस वृक्ष पै व पितृगेह में सदैव लक्ष्मी स्थित रहतीहै और वृक्ष पै स्थित लक्ष्मी सब ब्रह्मादिक उत्तम देवताओं से सेवनकीजाती है ॥ ४ ॥ और यह वृक्ष वैष्णव कहा गया है पुरातन समय सबोंने भलीभांति विचार कर इसको रैवतक पर्वत पै छोड़ा है ॥ ५ ॥ हे नृपोत्तम ! फागुन के शुक्लपक्ष में विष्णु के दिन एकादशी तिथि में जो मनुष्य इस वृक्षकी यात्रा करैंगे ॥ ६ ॥ उनके

अधिक गुणवान् पुत्र व पौत्र होवैंगे और अन्तमें विष्णुलोक में निवास होगा इस में सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि विष्णुजी को प्यारे इसवैष्णव व्रतको किसप्रकार करना चाहिये व किस विधि से रात्रिमें जागरण करना चाहिये उसको कहिये ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि फागुनके शुक्लपक्षमें एकादशी तिथिमें उपास करके नदी, तड़ाग, बावली, कुवां व घरमें भी नहाकर ॥ ९ ॥ और पर्वत व वनमें भी जहां वह कल्याणकारिणी एकादशी तिथि प्राप्त होवै वहां उत्तम पुष्पों से पूजना चाहिये और रात्रिमें मनुष्योंको जागरण करना चाहिये ॥ १० ॥ और एकसौ आठ फलों से उसकी प्रदक्षिणा करना चाहिये व प्रदक्षिणाकर तदनन्तर मनुष्योंको फल

न्तेविष्णुपुरेवासो जायतेनात्रसंशयः ॥ ७ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ कथमेतद्व्रतंकार्यं वैष्णवंविष्णुवल्लभम् ॥ रात्रौजागरणंकार्यं विधिनाकेनतद्वद ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ फाल्गुणस्यसितेपक्षे एकादश्यामुपोषितः ॥ स्नात्वानद्यांतडागेवा वाप्यां कूपेगृहेपिवा ॥ ९ ॥ गत्वागिरौवनेवापि यत्रसाप्राप्यतेशिवा॥पूज्यापुष्पैश्शुभैरात्रौ कार्यंजागरणंनरैः ॥ १० ॥ अष्टाधिकैः शतैःकार्याः फलैस्तस्याःप्रदक्षिणाः ॥ प्रदक्षिणीकृत्यततो भोक्तव्यंतुफलंनरैः ॥ ११ ॥ करकंजलसम्पूर्णं श्रीफलैश्चापिसंयुतम् ॥ हविष्यान्नन्तुकर्त्तव्यं दीपःकार्योयथाविधि ॥ १२ ॥ एवंजागरणंकार्यं कथाश्रवणतत्परैः ॥ मुच्यतेमनुजाःपापैः कठिनैःकार्यसम्भवैः ॥ १३ ॥ देहान्तेतेनराःसर्वे पूज्यन्तेहरिमन्दिरे ॥ इत्युक्त्वानारदोदैत्यं ययौरैवतकंगिरिम् ॥ १४ ॥ दैत्येन्द्रोमन्त्रयामास किंकार्यंसाम्प्रतंमया ॥ नरोचतेसुरैःसार्द्धं विग्रहोमेसुरोत्तमाः ॥ १५ ॥ मन्त्रिण ऊचुः ॥ नास्तिक्षमाभृतान्तेषां क्षत्रियाणांयतोजयः ॥ अस्मानशक्तान्मत्वाच स्वयमायान्तितेयतः ॥ १६ ॥ तस्मात्स्व

भोजन करना चाहिये ॥ ११ ॥ व श्रीफलोंसे संयुत और जलसे पूर्ण कुम्भ व हविष्यान्न करना चाहिये और विधिपूर्वक दीपक करना चाहिये ॥ १२ ॥ व कथाके सुननेमें लगेहुये पुरुषोंको जागरण करना चाहिये इसकारण मनुष्य शरीरसे उपजे हुये कठिन पातकों से छूटजाते हैं ॥ १३ ॥ और वे सब मनुष्य देहान्त में विष्णु-मन्दिरमें पूजेजाते हैं यह बलि दैत्यसे कहकर नारदजी रैवतक पर्वत पै चले गये ॥ १४ ॥ व दैत्येन्द्र (बलि) ने सलाह किया कि हे असुरोत्तमो ! इससमय मुझको क्या करना चाहिये क्योंकि देवताओंके साथ मुझको वैर नहीं रुचता है ॥ १५ ॥ मन्त्री बोले कि जिस लिये उन क्षमाधारी क्षत्रियों की जीत नहीं होती है और जिस

मरू, डामरू व पश्चात् हुंकारको करता था और विन समयमें मेघ कोपित होकर बहुत जलको छोडते थे ॥ ३७ ॥ और ओलों से पूर्ण मेघ बहुत गरजते थे और
त्वीकंप हुआ व दिग्दाह भी हुआ ॥ ३८ ॥ और रातको सब कुत्तोंका गण मुख ऊँचे कर घुघुवा के शब्दसे शब्दित नगर में नित्यही रोता था ॥ ३९ ॥ और बलि
राज्य का नाश हुआ व आकाश में रातको केतु का उदय हुआ व सूर्यमंडल कीलों से घिरा हुआ देख पड़ता था ॥ ४० ॥ और मस्तकरहित धड़ों से व्याप्त
ाकाश में चन्द्रमा नहीं प्रकाशित होता था और जो युगों के नाश में हुआ है वह रोहिणी का वेध हुआ ॥ ४१ ॥ और अधिक गुणी मनुष्य दिनमें नक्षत्रों को गिनते

पूरिताश्चैव गर्जन्तिजलदाबहु ॥ समजायतभूकम्पोदिग्दाहश्चाप्यजायत ॥ ३८ ॥ मिलित्वाश्वगणस्सर्वो मुखमुच्चैर्विधा
यच ॥ रौतिरात्रौपुरेनित्यं घूकशब्दविशब्दिते ॥ ३९ ॥ बलिराज्यक्षयोजातो दिविकेतूदयोनिशि ॥ आदित्यमण्डल
ञ्चैवकीलकैर्दृश्यतेवृतः ॥ ४० ॥ कबन्धसङ्कुलेव्योम्निचन्द्रमानप्रकाशते ॥ सञ्जातोरोहिणीवेधो योजातोयुगसंक्षये ॥
४१ ॥ नक्षत्राणिदिवालोकैर्गणयन्तेगुणोत्तरैः ॥ बीजानांव्यत्ययोजज्ञेभूमिस्त्रीगोमृगीषुच ॥ ४२ ॥ अश्वाह्रेषन्तिसहसा
मदंकुर्वन्तिनोगजाः ॥ मन्त्रिणोमन्त्रितामन्त्रे भिद्यन्तेराज्यसंक्षये॥४३॥घृतहुत्याहुतोवह्निर्ज्वलतेननदाद्विजैः ॥प्रचण्ड
पवनोवाति वात्यया घूर्णितद्रुमः ॥ ४४ ॥ ध्वजाज्वलन्तिसैन्येषु नभोभवतिधूसरम् ॥ एतेचान्येचबहव उत्पाताबलिनो
गृहे ॥ ४५ ॥ सञ्जातावामनेजातेनारदागमनादनु ॥ अन्यश्चजायतेरौद्रो विवादःस्वप्नदर्शनः॥४६॥यदासन्नह्यदैत्येन्द्रो

थे व पृथ्वी, स्त्री, गऊ व मृगियों में बीजों का उलट पुलट हुआ ॥ ४२ ॥ और सहसा घोड़े बोलने लगे व हाथी मद नहीं करते थे और सलाह के लिये बुलाये
हुये मंत्रीलोग राज्य के नाशमें भेदको प्राप्त होते थे ॥ ४३ ॥ व उस समय ब्राह्मणों से घीकी आहुति से हवन की हुई अग्नि नहीं जलती थी और आंधी से वृक्षों को
झिकोर कर प्रचण्ड पवन चलता था ॥ ४४ ॥ व सेनाओं में ध्वजा जलते थे और आकाश धूसर वर्ण होता था ये और अन्य बहुत से उत्पात बलिके घरमें ॥ ४५ ॥
वामनजी के उत्पन्न होनेपर नारद के आगमनसे पीछे हुये और अन्य भयंकरविवाद व स्वप्न दर्शन होता था ॥ ४६ ॥ जब सन्नद्ध होकर दैत्येन्द्र बलि चलता था तब

सेनासमेत इसको वे अशकुन होते थे कि जिनसे जानेवाला मनुष्य नहीं लौटताहै ॥ ४७ ॥ बलि सदैव घरमें टिका रहता है व राज्य करता है उसके शरीर में सुख नहीं होता है व अंगों का टूटना तथा शिर में पीड़ा होती है ॥ ४८ ॥ और ज्वर से संयुक्त यह बलि सुखसे न सोता है न खाता है न पीता है और मनुष्य रात में भोजन नहीं करते हैं व सब रोग से विकल किये गये ॥ ४९ ॥ संसार को विपरीत देखकर बलिका मन विकल हुआ और उसने ब्राह्मणों से सलाह किया कि यह क्या है और वह बलि दुःखी हुआ ॥ ५० ॥ और शुक्राचार्य गुरुको लाकर सभा में बिठाकर बड़ी भक्ति से संयुत बलि दैत्य ने कुशल पूंछा ॥ ५१ ॥ कि यह सब विप-

पातितानिभवन्तिच॥निमित्तानिससैन्यस्ययैर्गन्तानानिवर्तितः॥४७॥सदासन्तिष्ठतेगेहे राज्यंचकुरुतेबलिः॥शरीरेणसुखंतस्य गात्रभङ्गःशिरोऽव्यथा॥४८॥ ज्वरितोनसुखंशेते नभुङ्क्तेनपिबत्यसौ॥नक्तंनभुञ्जतेलोकाः सर्वेऽव्याध्याकुलीकृताः ॥४९॥ विपरीतंजगद्दृष्ट्वा बलिर्व्याकुलमानसः ॥ मन्त्रयामासकिमिदं ब्राह्मणैरासदुःखितः॥५०॥शुक्रंगुरुंसमानीय सभायांसन्निवेश्यच ॥ पप्रच्छकुशलंदैत्यो भक्त्याचपरयायुतः ॥ ५१ ॥ विपरीतमिदंसर्वं वर्त्ततेतद्वदस्वमे ॥ ५२॥ शुक्र उवाच ॥ उत्पातशान्तिकेकार्ये यज्ञस्सर्वस्वदक्षिणः ॥ ब्राह्मणैःक्षत्रियैस्सार्द्धं द्वादशाब्दोविधीयताम् ॥ ५३ ॥ ऋषयोब्राह्मणायेच मुनयोब्रह्मचारिणः ॥ आगच्छन्तुमहायज्ञे येचदूरेऽव्यवस्थिताः ॥ ५४ ॥ नगरात्पूर्वदिग्भागे कर्त्तव्यो यज्ञमण्डपः ॥ यस्ययस्याभिरुचितं दानंदेयन्त्वयानृप ॥ ५५ ॥ तथाकरिष्यइत्युक्त्वा यज्ञार्थंसत्वरोभवत् ॥ आनीय ब्राह्मणान्सर्वान् कुशलान्यज्ञकर्मणि॥५६॥ गृहीत्वायज्ञदीक्षांच दातव्यासर्वदक्षिणा ॥ ब्राह्मणायसदादेयं सर्वस्वमिहया

रीत वर्तमान है उसको मुझसे कहिये ॥ ५२ ॥ शुक्राचार्य बोले कि उत्पातोंकी शांति के कार्य में ब्राह्मणों व क्षत्रियों समेत बारह वर्षवाला सर्वस्वदक्षिण यज्ञ किया जावै ॥ ५३ ॥ और जो ऋषि, ब्राह्मण, मुनि, ब्रह्मचारी और जो दूर टिके हैं वे महायज्ञ में आवैं ॥ ५४ ॥ और नगर से पूर्व दिशा के भाग में यज्ञमंडप करना चाहिये व हे राजन् जिसको जिसको जो रुचि होवै उसको वह दान तुम्हें देना चाहिये ॥ ५५ ॥ वैसाही करूंगा यह कहकर बलि यज्ञके लिये शीघ्रतासंयुत हुये और यज्ञकर्म में प्रवीण सब ब्राह्मणों को लाकर बोले ॥ ५६ ॥ कि यज्ञदीक्षा को लेकर सर्वस्व दक्षिणा देना चाहिये और यहां याचना करते हुये ब्राह्मण के लिये सदैव सर्वस्व

देना चाहिये ॥ ५७ ॥ और याचना किया हुआ मैं शरीर, पुत्र, मित्र व स्त्रियों को दूंगा और यज्ञ में ब्राह्मणों के लिये मुझको सदैव दान देना चाहिये ॥ ५८ ॥ और मना किये हुये भी मुझको न स्थित होना चाहिये व मुझको निश्चय कर दानदेना चाहिये उसी कारण अपने यज्ञ में देने योग्य द्रव्य में याचना किया हुआ मैं दूंगा॥ ५९ ॥ और बहुत योजन विस्तारवाले दिव्य मंडप को बनाकर वहां भोजन, आच्छादन व दान दिये जावैं ॥ ६० ॥ आकाशसे पृथ्वी में सप्तर्षि आये व सब देवता और जो पृथ्वी में ब्राह्मण थे वे आये ॥ ६१ ॥ और क्षत्रिय, नट, नर्तक व याचक आये, व वेदध्वनि से मिला हुआ गाने बजाने का शब्द हुआ ॥ ६२ ॥ दीजिये

चिते ॥ ५७ ॥ शरीरंपुत्रंमित्राणि दारान्दास्यामियाचितः॥ दातव्यंसततंदानं ब्राह्मणेभ्योमयाध्वरे ॥ ५८ ॥ वारितेनापिनस्थेयं दातव्यंनिश्चितंमया ॥ याचितस्तेनदास्यामि दातव्येर्थेनिजेध्वरे ॥ ५९ ॥ विधायमण्डपंदिव्यं बहुयोजनविस्तरम् ॥ तत्रदानानिदीयन्तां भोजनाच्छादनानिच ॥ ६० ॥ सप्तर्षयःसमायाता गगनाद्धरणीतले ॥ देवाःसमागताः सर्वे ब्राह्मणाःसन्तियेभुवि ॥ ६१ ॥ क्षत्रियाश्चसमायाता नटनर्तकयाचकाः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषो वेदध्वनिविमिश्रितः ॥ ६२ ॥ त्रैलोक्यंबधिरीचक्रे देहिदेहीतियाचितम् ॥ मादेहीतिवचोनास्ति स्तोकंदेहीतिभाष्यते ॥ ६३ ॥ यद्यद्याचतेयत्र तत्तस्मैतत्रदीयते॥ ब्राह्मणोहिनसोप्यस्ति यस्तत्रबहुयाचते॥६४॥ भोजनाच्छादनार्थेच नगृह्णन्तिद्विजातयः॥ बलिराज्येनसन्तुष्टाः किंकुर्वन्तिधनेनते ॥ ६५ ॥ एवंप्रवर्त्ततेयज्ञो महान्सर्वस्वदक्षिणः ॥ ६६ ॥ नृत्यन्तिगायन्तिपठन्तिचान्ये स्तुवन्तियज्ञेबहुदानयुक्ते ॥ ब्रह्मेन्द्ररुद्रग्रहसूर्यचन्द्राःप्रसादिताआहुतिभिश्चमन्त्रैः ॥ ६७॥ बलिंप्रशंसन्ति

दीजिये ऐसी याचना ने त्रिलोक को बधिर किया और मत दीजिये यह वचन नहीं होता था व थोड़ाही दीजिये यह कहा जाता था ॥ ६३ ॥ और जो जहां पर जिस जिस वस्तु को मांगता था वहां उसके लिये वह दिया जाता था और वह ब्राह्मण नहीं था जो कि वहां बहुत याचना करै ॥ ६४ ॥ व भोजन, आच्छादन के लिये ब्राह्मण धनको नहीं ग्रहण करते थे क्योंकि बलिके राज्य से प्रसन्न वे धनसे क्या करैं ॥ ६५ ॥ इस प्रकार सर्वस्व दक्षिणावाला बड़ा यज्ञ वर्तमान था ॥ ६६ ॥ और बहुत दानसे संयुत यज्ञ में कोई नाचते थे कोई गाते थे कोई पढ़ते थे और अन्य प्रशंसा करते थे व ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र व सूर्य, चन्द्रादिक ग्रह आहुतियों से व

मंत्रों से प्रसन्न किये गये ॥ ६७ ॥ अन्य मनुष्य बलिकी प्रशंसा करते थे व कोई गुरुकी प्रशंसा करते थे और कोई ऋग्वेदी व कोई परिवार की प्रशंसा करते थे व ब्राह्मणलोग इस वचन को कहते थे कि यदि दैत्यों के स्वामी बलि का राज्य समाप्त होवै तो श्रेष्ठ ब्राह्मणों के लिये राज्य को देकर पुत्रों व मित्रों समेत यह निश्चय कर रसातल को जावैगा इसको दैत्य सुनते थे व यह क्या है ऐसा कहते थे ॥ ६८ । ६९ ॥ बलि के आगे मिलकर दैत्य यह कहते थे बलि प्रसन्न होकर मांगी हुई वस्तु को देताथा ॥ २७० ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलियज्ञवर्णनंनामैकोनत्रिंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३२९ ॥ ❀ ॥

गुरुंतथान्ये होतारमेकेपरिचारमेके ॥ वैरोचनेश्चाप्यसुराधिपस्य समाप्यतेचेदथयास्यतिध्रुवम् ॥ ६८ ॥ प्रदायराज्यं द्विजपुङ्गवेभ्यः सपुत्रमित्रैस्सहितोरसातलम् ॥ इतीतिवाच प्रवदन्तिवाडवा शृण्वन्तिदैत्याःकिमिदंवदन्तिच ॥ ६९ ॥ बलेःपुरस्तात्कथयन्तिसङ्गता बलिःप्रहृष्टःप्रददातियाचितम् ॥ २७० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेप्रभासक्षेत्रयात्रायांबलियज्ञवर्णनंनामैकोनत्रिंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ३२९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पार्वत्युवाच ॥ वस्त्रापथेमहाक्षेत्रे सम्प्राप्तोवामनोयदा ॥ तदाप्रभृतिकिंचक्रे तन्मेविस्तरतोवद ॥१॥ ईश्वर उवाच ॥ वामनोवसतिंचक्रे भवस्याग्रेसुरोत्तमः ॥ स्वर्णरेखाजलेस्नात्वा भवंसम्पूज्यभावतः ॥ २ ॥ एकान्तेनिर्मलेस्थाने कण्टकास्थिविवर्जिते ॥ कृष्णाजिनपरिच्छन्ने उपविष्टोवरासने ॥३॥ कृत्वापद्मासनंधीरो निश्चलोभूद्द्विजोत्तमः॥ विधायकन्धराबन्धमृजुनासावलोककः ॥ ४ ॥ गृहक्षेत्रकलत्राणांचिन्तांमुक्त्वाधनस्यच ॥ मायांचवैष्णवींत्यक्त्वा वामनोविजि

दो० । विष्णु वामनहुं रूप धरि गे बलियज्ञ मँझार । कह्यो तीनसौ तीसमहँ सोइ चरित-सुखसार ॥ पार्वतीजी बोलीं कि वस्त्रापथ महाक्षेत्र में जब वामनजी प्राप्त हुये तबसे लगाकर उन्होंने क्या किया उसको मुझसे विस्तारसे कहिये ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि देवताओं में उत्तम वामनजी ने महादेवजी के आगे निवास किया और स्वर्णरेखा नदी के जलमें नहाकर भवजी को भक्ति से पूजकर ॥ २ ॥ कांटों व अस्थियों से रहित एकान्त व निर्मल स्थानमें कृष्णाजिन बिछे हुये उत्तम आसन पै बैठ गये ॥ ३ ॥ और कमलासन करके कन्धरा बन्धनकर सीधे बैठकर नासिका के अग्रभाग को देखनेवाले द्विजोत्तम व विद्वान् वामनजी निश्चल हुये ॥४॥

और घर, क्षेत्र व स्त्रियों की चिन्ता को छोड़कर तथा धनकी चिन्ता व विष्णुजी की माया को छोड़कर जितेन्द्रिय वामनजी ॥ ५ ॥ निराहार क्रोधको जीत
कर संसारके बन्धनसे छूटगये व भुजाओं को कमलासन पै करके कुछ नेत्रों को मूंदे हुये ॥ ६ ॥ वामन द्विज ने मनको अति चञ्चल जानकर हृदयमें स्थित किया
और क्रमसे अभ्यासके योग करके उन्होंने प्राण, अपान, उदान व्यान व समान पांच पवनों को एक ओर से भिन्न किया इसप्रकार उनको हृदयमें करके सब संधि-
योंमें ग्रहणकर ॥ ७ । ८ ॥ ब्रह्मके स्थान में लाकर सबों को ब्रह्ममें युक्त करै और जब बाहरवाले पवनको लेकर शरीर को पूर्ण करै ॥ ९ ॥ तब वह पूरक जानने

तेन्द्रियः ॥ ५ ॥ निराहारोजितक्रोधो मुक्तसंसारबन्धनः ॥ भुजौपद्मासनेकृत्वा किंचिन्मीलितलोचनः ॥ ६ ॥ मनोति
चञ्चलंज्ञात्वा स्थिरंचक्रेहृदिद्विजः ॥ क्रमेणाभ्यासयोगेन भिन्नाश्चक्रेसचैकतः ॥ ७ ॥ प्राणापानोदानव्यानसमाना
न्पंचमारुतान् ॥ एवंतान्हृदयेकृत्वा गृहीत्वासर्वसन्धिषु ॥ ८ ॥ आनीयब्रह्मणःस्थाने सर्वान्ब्रह्मणियोजयेत् ॥ गृहीत्वा
पवनंबाह्यं यावदापूरयेत्तनुम् ॥ ९ ॥ तदासपूरकोज्ञेयो रेचकन्तुवदाम्यहम् ॥ १० ॥ यदाचाभ्यन्तरोवायुर्बाह्येयातिमहे
श्वरि ॥ तदासरेचकोज्ञेयस्तम्भनात्कुम्भकोभवेत् ॥ ११ ॥ पञ्चविंशतितत्त्वानि यदाजानन्तियोगिनः ॥ मुच्यन्ते
पातकैःसर्वैः सप्तजन्मकृतैरपि ॥ १२ ॥ पार्वत्युवाच ॥ कानितत्त्वानिकोदेही किंज्ञेयंयोगिनांवद ॥ उत्पन्नज्ञानसद्भावोयो
गयुक्तःकथंभवेत् ॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ प्रकृतिश्चततोबुद्धिरहङ्कारस्ततोऽभवत् ॥ तन्मात्रपञ्चकंतस्मादेषाप्रकृति
रष्टधा ॥ १४ ॥ बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणिच ॥ एकादशमनोबुद्धिर्महाभूतानिपञ्चच ॥ १५ ॥ गणःषोड

योग्यहै और मैं रेचकको कहताहूं ॥ १० ॥ कि हे महेश्वरी ! जब भीतरवाला पवन बाहर जाता है तब वह रेचक जानने योग्य है और रोंकने से कुम्भक होता
है ॥ ११ ॥ और जब योगी पचीस तत्त्वोंको जानते हैं तो वे सात जन्मों में भी किये हुये पातकों से छूट जाते हैं ॥ १२ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि तत्त्व कौन हैं और देही
कौनहै व योगियोंको क्या जानने योग्य है उसको कहिये और ज्ञानके उत्पन्न होने से उत्तम भाववाला पुरुष किसप्रकार योगयुक्त होवै ॥ १३ ॥ महादेवजी बोले कि
पहले प्रकृति हुई तदनन्तर बुद्धि हुई उससे अहङ्कार हुआ उससे पांच तन्मात्रा हुईं यह आठप्रकार की प्रकृति है ॥ १४ ॥ और पांच ज्ञान इन्द्रिय व पांच कर्म

इन्द्रिय तथा गेरहवां मन व बुद्धि और पांच महाभूत याने पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन व आकाश ॥ १५ ॥ यह षोडश गुण विस्तारसे कहा गया ये चौबीस तत्त्वहैं और पच्चीसवां पुरुष है ॥ १६ ॥ और जो शरीर में देही ऐसा कहा जाता है वह आत्मा को देखता है और विद्वान् लोग ज्ञानके उत्पन्न होने के कारण उत्तम भाववाले पुरुषों को योगी कहते हैं ॥ १७ ॥ पहले वृद्धता जीर्णता को प्राप्त होती है पश्चात् सब पापों का समूह क्षीण होने पर वह मृत्यु को प्राप्त होताहै ॥ १८ ॥ यदि आपही योग को जानता है वह मनुष्यलोक में नहीं होता है और तब द्वारों को रोंककर वह दश प्राणों को छोड़ता है ॥ १९ ॥ और सब पापों को नाशकर प्राणियों के प्राण

शकस्त्वेष विस्तरेणप्रकीर्त्तितः ॥ चतुर्विंशतितत्त्वानि पुरुषःपञ्चविंशति ॥ १६ ॥ देहीतिप्रोच्यतेदेहे सचात्मानञ्चप श्यति ॥ उत्पन्नज्ञानसद्भावा भण्यन्तियोगिनोबुधैः ॥१७॥ पूर्वंजराजरांयाति रोगानश्यन्तिदूरतः ॥ सर्वपापक्षयेक्षीणे पश्चान्मृत्युंसविन्दति ॥ १८ ॥ मर्त्यलोकेनरोनास्ति योगंजानातिचेत्स्वयम् ॥ तदाद्वाराणिसंरुध्य दशप्राणान्समुञ्च ति ॥ १९ ॥ सर्वपापक्षयंकृत्वा प्राणागच्छन्तिदेहिनाम् ॥ अणिमादिगुणैश्वर्यं प्राप्नुवन्तिशिवालये ॥ २० ॥ अनेनध नयोगेन भुवंपश्यतिमानवः ॥ मनसाचिन्तितंसर्वं सम्प्राप्तंभवदर्शनात् ॥ २१ ॥ एवंस्थितोयदाविष्णुर्वामनोभवसन्नि धौ ॥ गगनादवतीर्णंतं तदापश्यत्सनारदम् ॥ २२ ॥ वामन उवाच ॥ महर्षेःकुशलंतेच कस्मादागम्यतेत्वया ॥ प्रतिभा सिमहर्षेत्वं ब्रह्मैवात्रजगत्रये ॥ २३ ॥ नारद उवाच ॥ स्वर्गतोऽत्राप्यहंप्राप्तः कुशलंकस्यवर्त्तते ॥ यातेयातेदिनेशस्य पूर्यतेब्रह्मणोदिनम् ॥२४॥ दिनान्तेजायतेरात्री रात्रौनश्यन्तिदेवताः ॥ काकथामर्त्यलोकस्य येम्रियन्तेदिनेदिने॥२५॥

निकल जाते हैं और वे शिवजी के स्थान में अणिमादिक गुणों के ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २० ॥ इस धनके योग से मनुष्य शिवजीको देखता है और शिवजीके दर्शन से मनसे चिन्तवन किया हुआ सब प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ इस प्रकार जब वामन विष्णुजी भवजी के समीप स्थित हुये तब उन्होंने आकाश से उतरे हुये उन नारदजीको देखा ॥ २२ ॥ वामनजी बोले कि हे महर्षे ! तुम्हारा कुशल है व आज तुम किस स्थान से आतेहो और हे महर्षे ! तुम इस त्रिलोक में ब्रह्महीजान पड़तेहो ॥ २३ ॥ नारदजी बोले कि मैं स्वर्ग से यहां प्राप्त हुआ हूं और किसके कुशल वर्तमान् है क्योंकि सूर्य के प्रति दिन चलने पर ब्रह्मा का दिन पूर्ण होता

है ॥ २४ ॥ और दिनके अन्त में रात्रि होती है व रात्रि में देवता नाश होते हैं तो मृत्युलोक की कौन कथा है जो कि प्रति दिन मरते हैं ॥ २५ ॥ आकाश धुँवा से व्याप्त हुआ और देवता बलि के घरमें गये व सप्तर्षि ब्रह्मचारी ब्राह्मण वहां गये ॥ २६ ॥ और हाहा, हूहू, तुंबुरु व नारद, पर्वत गंधर्व वहा गये और अप्सराओं के गण तथा गंधर्व बलिके मन्दिर को गये ॥ २७ ॥ और बलि आपही उत्पात की शान्तिवाले यज्ञ को करता है वहां बलि के मन्दिर में मैं बलिके यज्ञको सुनने व देखने की इच्छा करता हूं ॥ २८ ॥ बलिने एक कम हज़ार यज्ञों को किया है और इसके पूर्ण होनेपर दैत्यों के सब लोक होवैंगे ॥ २९ ॥ और यज्ञकर्म में यह कोई

नभोधूमाकुलंजातं देवाबलिगृहेगताः ॥ सप्तर्षयोगतास्तत्र ब्राह्मणाब्रह्मचारिणः ॥ २६ ॥ हाहाहूहूःतुम्बुरुश्च गतौनारद पर्वतौ ॥ अप्सरोगणगन्धर्वाः सम्प्राप्ताबलिमन्दिरम् ॥ २७ ॥ उत्पातशान्तिकोयज्ञः क्रियतेबलिनास्वयम् ॥ तत्राहं श्रोतुमिच्छामि द्रष्टुंयज्ञंबलेर्गृहे ॥ २८॥ सहस्रमेकंयज्ञानामेकोनंविदधेबलिः ॥ दैत्यानांभुवनंपूर्णं सम्पूर्णेस्मिन्भविष्यति ॥ २९॥ असौचसमयःकोपि प्रारब्धोयज्ञकर्मणि ॥ द्विजातिभ्योमयादेयं यद्यद्यस्ययथेप्सितम् ॥ ३० ॥ वारिते नापिदेयस्स सत्यमस्तुवचोमम॥ आत्मानमपिदासांश्च राज्यंपुत्रान्प्रियानहम्॥ ३१ ॥ प्रार्थितश्चात्रदास्यामि व्यर्थो भवतुमाध्वरः ॥ अनेनवचसाजाता महतीमेशिरोव्यथा ॥ ३२॥ प्रतिज्ञायकथंयज्ञः सम्पूर्णोयंभविष्यति ॥ भङ्गोपायंन पश्यामि भ्रमामिभुवनत्रये ॥ ३३ ॥ विध्वंसकारणंज्ञात्वा भवन्तंपर्युपस्थितः ॥ यथानपूर्यतेयज्ञस्तथेदानींविधीयताम्॥ ३४ ॥ वामन उवाच ॥ महर्षेश्रृणुमेवाक्यं काशक्तिर्ममविद्यते ॥ कोहंकस्मात्करिष्यामियज्ञेदेवाःसमागताः ॥ ३५ ॥

प्रतिज्ञा प्रारंभ की गई है कि जिसका जो जो मनोरथ होवै ब्राह्मणों के लिये मुझको वह देना चाहिये॥ ३० ॥ और मना किये हुये मुझको देना चाहिये व मेरा वचन सत्य होवै और प्रार्थना किया हुआ मैं शरीर, सेवक, राज्य व प्यारे पुत्रों को यहां दूंगा क्योंकि यज्ञ व्यर्थ न होवै इस वचन से मेरे बड़ी मस्तकपीडा हुई॥ ३१।३२ ॥ कि प्रतिज्ञा करके यह यज्ञ कैसे पूर्ण होगा और यज्ञभंग होनेका उपाय मैं नहीं देखता हूं व त्रिलोक में घूमता हूं ॥ ३३ ॥ व विध्वंस का कारण जानकर मैं आपके समीप स्थित हुआ-जिस प्रकार यज्ञ न पूर्ण होवै इस समय वैसाही किया जावै ॥ ३४ ॥ वामनजी बोले कि हे महर्षे ! मेरे वचन को सुनिये कि मेरे

कौन शक्ति विद्यमान है मैं कौन हूं व किस कारण करूंगा क्योंकि यज्ञमें देवता आये हैं ॥ ३५ ॥ और ऋषि व सब ब्राह्मण आयेहैं तो वह यज्ञ कैसे व्यर्थ होगा हे महर्षे ! अन्य मेरे वचन को सुनिये कि तुम ब्राह्मण के ॥ ३६ ॥ न स्त्री है न पुत्र हैं तो किस लिये ऐसा स्वभाव है कि युद्ध के विना तुमको सुख नहीं होता है और न विना बखेड़ा के तुमको सुख होता है ॥ ३७ ॥ और जैसाहो वैसा हो वचनोंका विवाद भी तुमको सदैव प्रिय है और स्नान, संध्या, जप, होम व पितरों तथा देवताओं का तर्पण ॥ ३८ ॥ नारद अन्यही करते हैं और ब्राह्मण अन्य करते हैं हे महर्षे ! मुझको भी आश्चर्य हुआहै शीघ्रही कहिये ॥ ३९ ॥ नारदजीबोले कि ब्रह्मकल्प बीतनेपर

ऋषयोब्राह्मणास्सर्वे कथंव्यर्थोभविष्यति ॥ अपरंशृणुमेवाक्यं महर्षेब्राह्मणस्यते ॥ ३६ ॥ नकलत्रन्नतेपुत्राः कस्मात्प्रकृतिरीदृशी ॥ युद्धंविनानतेसौख्यं नसौख्यंकलहंविना ॥ ३७॥ यादृशस्तादृशोवापिवाग्वादोपिसदाप्रियः ॥ स्नानंसन्ध्याजपोहोमस्तर्पणंपितृदेवयोः ॥ ३८ ॥ नारदःकुरुतेचान्यदन्यत्कुर्वन्तिब्राह्मणाः ॥ ममापिकौतुकंजातं महर्षेवदसत्वरम् ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मकल्पेव्यतिक्रान्ते रात्र्यन्तेब्रह्मणस्तथा ॥ ब्रह्माण्डंवारिणाव्याप्तमन्यत्किञ्चिन्नविद्यते ॥ ४० ॥ अप्सुशेतेदेवदेवः सर्वेनारायणःस्मृतः ॥ सएवब्रह्माचैवास्ति भेदस्तेषांपरस्परम् ॥ ४१ ॥ यदाभवन्तितेभिन्नास्तदादेवास्त्रयश्चते॥ कल्पकेतुवराहेतु भिन्नाजातास्त्रयस्तदा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मविष्णुहरादेवा रजःसत्त्वतमोमयाः ॥ सृष्टिंब्रह्माकरोत्येवं तांचपालयतेहरिः ॥ ४३ ॥ हरःसंहरतेसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ एवंतेद्युतिमन्तोहि उपविष्टावरासने ॥ ४४॥ कैलासशिखरेरम्ये मन्त्रयन्तिपरस्परम् ॥४४॥ त्रयाणांकोवरोदेवः कोज्येष्ठःकोगुणाधिकः ॥४५॥

ब्रह्माकी रात्रिके अन्त में ब्रह्माण्ड जलसे व्याप्त होगया और कुछ नहीं रहा ॥४०॥ जो जलके मध्य में सोते हैं वे देवदेव नारायणजी कहे गये हैं और वही ब्रह्मा हैं उनका परस्पर भेद है ॥ ४१ ॥ कि जब वे भिन्न होते हैं तब वे तीन देवता होते हैं जब वाराह कल्प में तीनों देवता भिन्न हुये तब ॥ ४२ ॥ रजोगुणी, सत्त्वगुणी व तमोगुणी ब्रह्मा, विष्णु व शिव देवता हुये इस प्रकार ब्रह्मा सृष्टि करते हैं उसको विष्णुजी पालन करते हैं ॥ ४३ ॥ और महादेवजी स्थावर जंगम समेत त्रिलोक को सहार करते है इस प्रकार शोभावान् वे उत्तम आसन पै बैठे थे ॥ ४४ ॥ व सुंदर कैलासपर्वत के शिखर पै परस्पर सलाह करते थे कि तीनों देवताओं के मध्य में

कौन श्रेष्ठ देवता है व कौन बड़ा है और कौन गुणों में अधिक है ॥ ४५ ॥ चौथा नहीं है जो कि ज्येष्ठ, श्रेष्ठ व गुणों में अधिक देवता को जानता है उन से उत्पन्न हुई ज्योति जो मध्य में इकट्ठा हुई ॥ ४६ ॥ काल के प्रमाण में नियुक्त वह सूर्यमंडल में घूमती है मैं बड़ा हूं मैं बड़ा हूं ऐसा विष्णु व ब्रह्मा का विवाद हुआ ॥ ४७ ॥ और क्रोध के कारण दोनों के विवाद से प्रभु के मुखसे मैं पैदा हुआ व मैंने कहा कि हे देव ! जो उस समय ब्रह्मा ने कहा है उसको तुम क्यों नहीं जानते हो ॥ ४८ ॥ कि पहले तुम्हारे मत्स्य, कूर्मादिक दश अवतार हुये हैं शिवजीने जाकर उन दोनोंको मना किया कि तुमको कलह योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥ और विष्णुजी

चतुर्थोनास्तियोवेत्ति ज्येष्ठंश्रेष्ठंगुणाधिकम् ॥ तेभ्यःसमुत्थितंज्योतिरेकीभूतंयदन्तरे ॥ ४६ ॥ कालमानेनियुक्तं तद्भ्राम्यतेरविमण्डलम् ॥ अहंज्येष्ठस्त्वहंज्येष्ठ वादोभूद्धरिब्रह्मणोः ॥ ४७ ॥ द्वयोर्विवादतःक्रोधातसञ्जातोहंमुखात्प्रभो ॥ कथंदेवनजानासियदुक्तंब्रह्मणातदा ॥ ४८ ॥ दशावतारास्तेह्यासन् मत्स्यकूर्मादयःपुरा ॥ रुद्रेणवारितोगत्वा कलहंतेनयुज्यते ॥ ४९ ॥ तथैवकृतवान्विष्णुरवतारान्दशैवतान् ॥ कल्पादौब्रह्मणोवक्त्रात्सञ्जातोहंद्विजोत्तम ॥ ५० ॥ कलहाज्जन्ममेयस्मात्तस्मान्मेकलहःप्रियः ॥ कल्पादौसृजतापूर्वं ब्रह्मणाचिन्तितंस्वयम् ॥ ५१ ॥ वेदान्विनाकथं सृष्टिः कर्त्तव्याहोहरेवद ॥ नष्टान्वेदान्नजानामि किंस्थानेकिमधोगताः ॥ ५२ ॥ गन्तुन्नविद्यतेशक्तिर्जलमध्येममाधुना ॥ अवतारैस्त्वयाकार्यं दशभिस्सृष्टिरक्षणम् ॥ ५३ ॥ जलेजलचरोमत्स्यो महानद्यांभविष्यसि ॥ आदायवेदान्वे

ने वैसेही उन दश अवतारों को किया व हे द्विजोत्तम ! कल्प के आदि में मैं ब्रह्मा के मुख से पैदा हुआ ॥ ५० ॥ जिस लिये बखेड़ा से मेरा जन्म हुआ है उसी कारण मुझको कलह (झगड़ा) प्रिय है पुरातन समय कल्प के आदि में ब्रह्मा ने आपही विचार किया ॥ ५१ ॥ कि हे हरे ! कहिये वेदों के विना कैसे सृष्टि करने योग्य है और वेद नष्ट होगये हैं उनको मैं नहीं जानता हूं कि वे क्या स्थान में स्थित हैं या नीचे गये हैं ॥ ५२ ॥ इस समय जलके बीच में जाने के लिये मुझको शक्ति नहीं है और दश अवतारोंसे तुमको सृष्टि की रक्षा करना चाहिये ॥ ५३ ॥ महा नदी में तुम जलमें जलचारी मछली होगे और वेग से वेदों को लेकर तुम

मुझको देने योग्य हो ॥ ५४ ॥ विष्णुदेवजीने वैसाही किया कि जलमें वें विष्णुजी मछलीरूपधारी हुये वे पुरातन समय वेदों को लाये व उन्होंने ब्रह्मा के लिये दिया है ॥ ५५ ॥ फिर कछुवा का रूप करके तुम मन्दराचलको धारण करोगे और लक्ष्मीजी तुमको पति स्वीकार करैंगी ब्रह्माजी ने विष्णु से ऐसा कहा ॥ ५६ ॥ व यह कहा कि पुरातन समय समुद्र के मथने में मैंने तुम्हारे अद्भुत चरित्र को देखा है कि जब पृथ्वी रसातल में प्राप्तहुई व न देख पड़ी ॥ ५७ ॥ और ब्रह्माण्ड के लिये स्थान किया गया था परन्तु वह पृथ्वी वहां नहीं देख पड़ती थी तब ब्रह्मा ने विष्णुजीको आपही प्रेरणा किया कि वाराहजीका रूप कीजिये ॥ ५८ ॥ तब वे विष्णुजी

गेन ममत्वंदातुमर्हसि ॥ ५४ ॥ तथाचक्रतवान्देवो मत्स्यरूपीजलेऽभवत् ॥ वेदान्सआनयामास सददौब्रह्मणेपुरा ॥ ५५ ॥ कूर्मरूपंपुनःकृत्वा मन्दरंधारयिष्यति ॥ इत्युक्तोब्रह्मणाविष्णुर्लक्ष्मीस्त्वांवरयिष्यति ॥ ५६ ॥ पुराचित्रंच रित्रन्ते मन्थनेदृष्टवानहम् ॥ यदारसातलंप्राप्ता पृथिवीनैवदृश्यते ॥ ५७ ॥ ब्रह्माण्डार्थंकृतंस्थानं तत्रसानैवदृश्यते॥ वाराहंक्रियतांरूपम्ब्रह्मणाप्रेरितःस्वयम् ॥ ५८ ॥ महावराहरूपंस कृत्वाभूमेरधोगतः ॥ उद्धृत्यचतदाविष्णुर्दंष्ट्राग्रे णवसुन्धराम् ॥ ५९ ॥ सनिनाययथास्थानं मुमुचेधरणीतलम् ॥ अवतारस्तृतीयस्ते हरेश्चापिमनोहरः ॥ ६० ॥ येनसा पृथिवीपृथ्वी पर्वतैःसहिताधृता ॥ चतुर्थंनरसिंहन्ते कथयामिसुदारुणम् ॥ ६१ ॥ आदित्याआदितेःपुत्रा दितेःपुत्रौम हाबलौ ॥ हिरण्यकशिपुर्दैत्यो हिरण्याक्षोमहाबलः ॥ ६२ ॥ स्वर्गेदेवाःस्थिताःसर्वे पातालेदैत्यदानवाः ॥ हिरण्यकशि पुश्चक्रे दैत्योराज्यंरसातले ॥ ६३ ॥ मनोःपुत्राधरापृष्ठेस्थापितादेवदानवैः ॥ व्यवस्थांतामतिक्रम्य हिरण्यकशिपुर्हि

महावराह का रूप करके पृथ्वी के नीचे गये और दाढ़के अग्रभागसे पृथ्वी को उठा कर ॥ ५९ ॥ लाये और उन्होंने स्थान के अनुसार पृथ्वी को छोड़ दिया यह आप विष्णुजीका तीसरा मनोहर अवतार है ॥ ६० ॥ जिससे पर्वतोंसमेत वह पृथ्वी धारी गई है और तुम्हारे बहुतही भयंकर चौथे नृसिंह अवतार को मैं कहताहूं ॥ ६१ ॥ कि अदिति के पुत्र आदित्य हुये और दितिके हिरण्यकशिपु दैत्य व महाबलवान् हिरण्याक्ष ये दो बड़े बली पुत्र हुये ॥ ६२ ॥ स्वर्ग में सब देवता स्थित हुये व पाताल में दैत्य व दानव स्थित हुये और हिरण्यकशिपु दैत्य ने रसातल में राज्य किया ॥ ६३ ॥ और मनुके पुत्र देवताओं व दैत्यों से पृथ्वी में स्थापित किये गये

हे द्विज ! उम व्यवस्था को नांघकर उस हिरण्यकशिपु ने इन्द्रको जीतकर पृथ्वी में राज्य किया और अमरावतीसमेत सात द्वीपोंवाली पृथ्वी को ग्रहण कर ॥ ६४ ।
६५ ॥ कामनाओं को ग्रहण किये तथा पुत्रों व पौत्रों से घिरे हुये हिरण्यकशिपु दैत्य ने भोग किया और वह मन्दबुद्धि हिरण्यकशिपु प्रह्लाद आदिक पुत्रों को
पढ़ाता था ॥ ६६ ॥ और पढ़ते हुये पुत्रों के मध्य में प्रह्लाद ने भी उसको पढ़ा कि जिसके पढ़ने से उसके पीड़ा होती थी ॥ ६७ ॥ और दो लोकों की राज्य से दैत्य
व देवता प्रसन्न किये गये व तपस्या से प्रसन्न कराये हुये प्रभु ब्रह्माजीने उसकेलिये वर दिया ॥ ६८ ॥ और उस हिरण्यकशिपुने कहा कि हे सुरोत्तम ! अमरता को

ज ॥ ६४ ॥ राज्यंचक्रेधरापृष्ठे सुरेन्द्रंसविजित्यच ॥ सप्तद्वीपवतींपृथ्वीं गृहीत्वासोमरावतीम् ॥ ६५ ॥ गृहीतकामोबु
भुजेपुत्रपौत्रैर्वृतोसुरः ॥ प्रह्लादप्रमुखान्पुत्रान्सपाठयतिमन्दधीः ॥ ६६ ॥ पुत्रेषुपठ्यमानेषु प्रह्लादेनाप्यपाठितत ॥
येनवैपठ्यमानेन जायतेतस्यवेदना ॥ ६७ ॥ भुवनद्वयराज्येन दैत्यादेवाश्चतोषिताः ॥ तपसातोषितोब्रह्मा ददौतस्मै
वरंप्रभुः ॥६८॥ अमरत्वंसदेवेभ्यो मानुषेभ्यःसुरोत्तम ॥ कस्मादपिनमेभूयान्मरणंयदिचेद्भवेत् ॥६९॥ किञ्चित्सिंहो
नरःकिञ्चिद्योभवेद्धरणीधरः ॥ तस्मात्करतलैर्भिन्नो मरिष्येधरणीतले ॥ ७० ॥ एवंभविष्यतीत्युक्त्वागतोब्रह्माचदै
त्यपः ॥ कालेनगच्छतातस्य सञ्जातोविग्रहोमहान् ॥ ७१ ॥ देवाःकिंमेकरिष्यन्ति विष्णुनाकिम्प्रयोजनम् ॥ यष्टव्यो
हंसदायज्ञै रुद्रःकिंमेकरिष्यति ॥ ७२ ॥ एवंहिवर्त्तमानस्यप्रह्लादस्स्तौतितंहरिम् ॥ येनास्यजायतेमृत्युस्तमेवस्मरतेह
रिम् ॥ ७३ ॥ यदासपाठ्यमानोपि विरौतिचहरिंहरिम् ॥ ७४ ॥ चतुर्भुजंशङ्खगदासिधारिणं पीताम्बरंकौस्तुभभा

दीजिये व देवताओं और मनुष्यों से तथा किसी से भी मेरी मृत्यु न होवै और यदि मरण होवै ॥ ६९ ॥ तो जो पृथ्वी को धारनेवाला कुछ सिंह और कुछ मनुष्य
होवै उससे चँपेटों करके भिन्न मैं पृथ्वी में मरूं ॥ ७० ॥ ऐसाही होगा यह कहकर ब्रह्मा व दैत्यों का स्वामी हिरण्यकशिपु चलागया और समय व्यतीत होनेसे
उसके बड़ा भारी वैर पैदा हुआ ॥ ७१ ॥ कि देवता मेरा क्या करैंगे व विष्णुजी से मेरा क्या प्रयोजन है और यज्ञों से मैं सदैव पूजने योग्य हूं शिवजी मेरा क्या करैं
गे ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उसके वर्तमान होने पर प्रह्लाद उन विष्णुजीकी स्तुति करते थे जिससे इसकी मृत्यु होगी उन्हीं विष्णुजीको वे प्रह्लाद स्मरण करते थे ॥ ७३ ॥

और जब वह पढ़ाया जाता था तब विष्णुही विष्णुको कहता था ॥ ७४ ॥ कि चतुर्भुज व शंख, गदा, तलवार को धारनेवाले, पीताम्बर को पहने व सदैव कौस्तुभ मणि से प्रकाशित संसार के एकही स्वामी उन विष्णुजी को मैं स्मरण करता हूं स्मरण कियेही हुये जो कि मुक्ति को देते हैं ॥ ७५ ॥ इस वचन से क्रोधित हिरण्य काशपु दैत्य ने दैत्यों को आज्ञा दिया कि तुमलोग दुष्ट पुत्रको हाथी, सांप, जल व अग्नि से मारडालो ॥ ७६ ॥ प्रह्लाद बोले कि हाथी में भी विष्णु हैं, साप में भी विष्णु हैं, जलमें भी विष्णु हैं और थल में भी विष्णु हैं व हे दैत्य ! तुम में वे विष्णुजी स्थित हैं व मुझमें स्थितहैं और विष्णुजीके विना दैत्यों का गणभी नहीं है ॥ ७७ ॥ सदैव वध कराये जाते हुये भी वे प्रह्लाद कहीं मृत्यु को नहीं प्राप्त होते थे और हिरण्यकशिपु का वक्षस्थल क्रोधकी अग्नि से जलता था ॥ ७८ ॥ तब

सितंसदा ॥ स्मरामिविष्णुंजगदेकनाथंददातिमुक्तिंस्मृतमात्रएव ॥ ७५ ॥ अनेनवचसाक्रुद्धोदैत्योदैत्यान्दिदेशच ॥ मारयध्वंसुतंदुष्टंगजसर्पजलाग्निना ॥ ७६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ गजेपिविष्णुर्भुजगेपिविष्णुर्जलेपिविष्णुश्चस्थलेपिविष्णुः ॥ त्वयिस्थितोदैत्यमयिस्थितश्च विष्णुंविनादैत्यगणोपिनास्ति ॥ ७७ ॥ सदासमार्यमाणोपि मृत्युमाप्नोतिनकचित् ॥ हिरण्यकशिपोर्वक्षोदह्यतेक्रोधवह्निना ॥ ७८ ॥ तदाशिक्षयितुंपुत्रं मुखाग्रेसन्निवेश्यच ॥ वचोभिःकठिनैःपुत्रं स्वयंहन्तुंसमुद्यतः ॥ ७९ ॥ धिक्त्वांनारायणंस्तौषि ममारिंस्तौषियत्पुनः ॥ पुष्कलञ्चहरिष्यामि शिरस्तेहंवरासिना ॥ ८० ॥ अहंविष्णुरहंब्रह्मा रुद्रइन्द्रोवरप्रदः ॥ आत्मीयंपितरंमुक्त्वा किमन्यंस्तौषिबालक ॥ ८१ ॥ यदानबालःपठतिस्तौतिनोपितरंस्वकम् ॥ दण्डेनाहत्यगुरुणाप्रह्लादःपाठ्यतेपुनः ॥ ८२ ॥ यदेकंवचनंशिष्य देहिमेगुरुदक्षिणाम् ॥ प्रह्लाद

पुत्रको नाश करने के लिये तलवार को मुख के अग्रभाग में धरकर कठिन वचनों से आपही पुत्रको मारने के लिये तैयार हुआ ॥ ७९ ॥ व बोला कि तुमको धिक्कार है जो कि नारायण की स्तुति करते हो व फिर मेरे शत्रु विष्णुजीकी स्तुति करते हो मैं उत्तम तलवार से तुम्हारे बड़े भारी मस्तक को नाश करूंगा ॥ ८० ॥ हे बालक ! मैं विष्णु हूं और मैं ब्रह्मा हूं व वरको देनेवाला मैं शिव व इन्द्र हूं तो अपने पिताको छोड़कर तुम क्यों अन्य की स्तुति करते हो ॥ ८१ ॥ जब बालक प्रह्लाद जी नहीं पढ़ते थे और अपने पिता की स्तुति नहीं करते थे तब फिर गुरुजी दंड से मारकर प्रह्लाद को पढ़ाते थे ॥ ८२ ॥ कि हे शिष्य ! जो एक वचन है उसको

मुझे गुरुदक्षिणा दीजिये प्रह्लाद बोले कि मैं उनकी स्तुति करताहूं कि जिन विष्णुजीने चराचरसमेत त्रिलोक को ॥ ८३ ॥ रचा है व बढ़ाया है और शान्त किया है वे विष्णुजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवैं ब्रह्मा विष्णु हैं व शिव विष्णु हैं और इन्द्र, पवन, यमराज व अग्नि विष्णु हैं ॥ ८४ ॥ और प्रकृतिआदिक तत्त्व व पचीसवां पुरुष विष्णु हैं और वे पिताके शरीर में, गुरुके शरीर में और मेरे देह में भी स्थित हैं ॥ ८५ ॥ ऐसा जानता हुआ मरनेवाला मनुष्य कैसे नीच नरकी स्तुति करता है ॥ ८६ ॥ गुरुजी बोले कि हे शिष्य ! मनुष्यों में कौन अधम है प्रह्लादजी बोले कि जन्मादिक में व मरण में तथा शुभ में जिसके मुखमें हरि ऐसे दो अक्षर नहीं

उवाच ॥ स्तौम्यहंविष्णुनायेन त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ८३ ॥ कृतंसंवर्द्धितंशान्तं समेविष्णुःप्रसीदतु ॥ ब्रह्माविष्णुर्हरो विष्णुरिन्द्रोवायुर्यमोनलः ॥ ८४ ॥ प्रकृत्यादीनितत्त्वानिपुरुषःपञ्चविंशकः ॥ पितुर्देहेगुरोर्देहे ममदेहेपिसंस्थितः ॥ ८५ ॥ एवंजानन्कथंस्तौति म्रियमाणोनराधमम् ॥ ८६ ॥ गुरुरुवाच ॥ नरेपुकोधमःशिष्यजन्मादिमरणेशुभे ॥ हरि रित्यक्षरोनास्ति यन्मुखेसनराधमः ॥ ८७ ॥ भयेराजकुलेयुद्धे व्याधौस्त्रीसङ्गसेवने ॥ विपत्त्यांचप्रमाणेच मरणेभुविसं स्थिताः ॥ ८८ ॥ स्मरन्तिमातरंमूर्खाः पितरंचनराधमाः ॥ मातानास्तिपितानास्ति नास्तिमेस्वजनोजनः ॥ ८९ ॥ ह रिंविनानकोप्यस्ति यद्युक्तंतद्विधीयताम् ॥ इत्यादिवचनैः क्रुद्धोहन्तुंदैत्यःसमागतः ॥ ९० ॥ तदामातासमागत्यपुत्रस्यो परिसंस्थितः ॥ भ्रातरःस्वजनोभग्नी भाषतेमाहरिंवद ॥ ९१ ॥ अहंमातास्वसाचेयं भ्रातरःस्वजनाजनाः ॥ यतःसमन्य तेसर्वैः स्थीयतेबहुवासरम् ॥ ९२ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मातामेकामताभग्नी भ्रातरःकेपिताचकः ॥ स्वजनंशृणुमेमातः

हैं वह अधम मनुष्य है ॥ ८७ ॥ व भय, राजकुल, युद्ध, व्याधि, स्त्रीका संगम वन, विपत्ति व यात्रा और मरण में पृथ्वीमें स्थित ॥ ८८ ॥ नीच नर माता व पिताको स्मरण करते हैं मेरे न माता है न पिता है और न स्वजन जन हैं ॥ ८९ ॥ विना विष्णुजीके कोई नहीं है जो योग्य हो वह किया जावै इत्यादिकवचनोंसे क्रोधित हिरण्यकशिपु दैत्य मारने के लिये आया ॥ ९० ॥ तब माता आकर पुत्रके ऊपर स्थित हुई और भाई, स्वजन व बहन कहती है कि विष्णुजी को मत कहो ॥ ९१ ॥ मैं माता हूं यह बहनहै और भाई व जो स्वजनहैं वे सब जिसलिये उसको मानते हैं उसी कारण बहुत दिनों तक स्थित होते हैं ॥ ९२ ॥ प्रह्लाद बोले कि मेरी माता

कौन मानी गई है व कौन बहन है और कौन भाई व कौन पिता है हे माता ! मुझ से स्वजन को सुनिये मैं सब यथायोग्य जानताहूं ॥ ९३ ॥ कि प्रकृति हमारी माता है व बुद्धि भगिनी ऐसी कही जाती है उस से अहंकार पैदा हुआ है जो कि अहं ऐसा अनुमान किया जाता है ॥ ९४ ॥ और पांच तन्मात्रा सहोदर भाई हैं जो कि मेरे साथही जाते हैं और इनका जो उत्पन्न करनेवाला है वह पच्चीसवां पुरुष है ॥ ९५ ॥ इस शरीर में स्थित वह परमात्मा हरि मेरा पिता है ॥ ९६ ॥ यदि यह देह में माना जाता है व हृदय में विष्णु देख पडते हैं तो उसीके अणिमादिक गुणों से ऐश्वर्य स्थान होता है ॥ ९७ ॥ आप लोगों का राज्य सम्मत है वह मुझको

सर्वंवेद्मियथातथम् ॥ ९३ ॥ माताप्रकृतिरस्माकंबुद्धिर्भग्नीतिगद्यते ॥ अहङ्कारस्ततोजातो योहमित्यनुमीयते ॥ ९४॥ तन्मात्राःसोदराःपञ्च येगच्छन्तिसहैवमे ॥ एषामुत्पादकोयस्तु पुरुषःपञ्चविंशकः ॥ ९५ ॥ समेपिताशरीरेस्मिन् परमात्माहरिःस्थितः ॥ ९६ ॥ यद्यसौमन्यतेदेहे दृश्यतेहृदयेहरिः ॥ अणिमादिगुणैश्वर्यं यदन्तस्यैवजायते ॥९७॥ भवतांसम्मतंराज्यं तन्मेनित्यंतृणैःसमम् ॥ यत्रनोपूज्यतेविष्णुर्ब्रह्मारुद्रोनिलोनलः ॥ ९८ ॥ प्रत्यक्षोदृश्यतेयस्तु निरालम्बोभ्रमत्यसौ ॥ सएवभगवान्विष्णुर्यएतेगगनेस्थिताः ॥ ९९ ॥ ध्रुवेबद्धाग्रहाःसर्वे दृश्यन्तेभुविसंस्थिताः ॥ ते सर्वेविष्णुवचसा नपतन्तिधरातले ॥ १०० ॥ कालेविनाशःसर्वेषां तेनैवविहितःस्वयम् ॥ इतिसञ्चिन्त्यमेनास्ति भवद्भ्योमरणाद्भयम् ॥ १ ॥ इतितंवचनस्यान्ते यदाहत्वापिताब्रवीत् ॥ कुत्रासौहन्मितंपूर्वं पश्चात्त्वांहरिभाषिणम् ॥ २ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ पृथिव्यादीनिभूतानि तान्येवभगवान्हरिः ॥ स्थलेजलेकिंबहुना सर्वंविष्णुमयंजगत् ॥ ३ ॥ तृणे

सदैव तृणोंके बराबर है जिसमें कि विष्णु ब्रह्मा, शिव, पवन व अग्नि नहीं पूजे जाते हैं ॥ ९८ ॥ जो प्रत्यक्ष देख पडता है यही निरालंब होकर घूमता है नहीं भगवान् विष्णुजी हैं और जो ये आकाश में स्थित हैं ॥ ९९ ॥ व ध्रुवमें बँधे हुये जो सब ग्रह भूमि में देख पडते हैं वे सब विष्णुजीके वचन से पृथ्वी में नहीं गिरते हैं ॥ १०० ॥ उसीने आपही काल में सबका विनाश बनाया है ऐसा विचार कर मुझको आपलोगों से मरने से डर नहीं है ॥ १ ॥ इस वचन के अन्त में पिता हिरण्यकशिपु ने उसको पैर से मारकर कहा कि यह कहा है पहले उसको मारूं पश्चात् विष्णुको कहनेवाले तुमको मारूं ॥ २ ॥ प्रह्लादजी बोले कि जो पृथ्वी

आदिक भूत हैं वे भगवान् विष्णुही हैं और स्थल में व जलमें हैं बहुत कहने से क्या है सब संसार विष्णुमय है ॥ ३ ॥ तृण, काष्ठ, घर, खेत, द्रव्य व देहमें विष्णुजी स्थित हैं और ज्ञान के योग से वे जाने जाते हैं नेत्र से नहीं देख पड़ते हैं ॥ ४ ॥ और वृत्ति ब्रह्मालय में तथा रसातल व पृथ्वी में जाती है और ये विष्णुजी आपही सब लोकों में क्षणभर में घूमते हैं ॥ ५ ॥ और वे विष्णुजी सब सुनते हैं, जानतेहैं व सब करते हैं ऐसा कहा हुआ हिरण्यकशिपु सहसा सिंहासन को छोड़कर भूमि में स्थित हुआ ॥ ६ ॥ और पुष्ट फेंटा को बांधकर उजली तलवार को खींच कर उन प्रह्लाद को ढालके अग्रभागसे मारकर उसने दुस्सह वचन को कहा ॥ ७ ॥

काष्ठेगृहेक्षेत्रे द्रव्येदेहेस्थितोहरिः ॥ ज्ञायतेज्ञानयोगेन दृश्यतेनतुचक्षुषा ॥ ४ ॥ वृत्तिर्ब्रह्मालयेयाति रसातलधरातले ॥ असौक्षणेनाभ्रमति सर्वाँल्लोकान्हरिःस्वयम् ॥ ५ ॥ सर्वंशृणोतिजानाति सविष्णुर्विदधातिच ॥ इत्युक्तःसहसा भूमौ त्यक्त्वासिंहासनंस्थितः ॥ ६ ॥ दृढंपरिकरम्बद्ध्वा खड्गमाकृष्यचोज्ज्वलम् ॥ हत्वातंफलकाग्रेण बभाषेदुःसहंवचः ॥ ७ ॥ इदानींस्मरत्वंविष्णुं नोचेज्ज्वलितकुण्डलम् ॥ पातयिष्येशिरोभूमौ फलंपक्वंयथानगात् ॥ ८ ॥ नोचेद्दर्शयतंविष्णुमस्मात्स्तम्भाद्विनिस्सृतम् ॥ प्रह्लादस्तद्वयनन्त्यक्त्वा चक्रेपद्मासनंभुवि ॥ ९ ॥ विधायकन्धरानीचैरुच्चैःश्वासान्निरुध्यच ॥ हृदिध्यात्वाहरिंदेवं मरणाभिमुखःस्थितः ॥ १० ॥ प्रभोमयातदादृष्टमाश्चर्यंगगनाद्भुवि ॥ पुष्पमालास्थिताकण्ठे प्रह्लादस्यस्वयंविभो ॥ ११ ॥ गगनेस्थीयमानैश्च किमेवंकथितंजनैः ॥ झटितिह्युद्गतेस्तम्भाच्छब्देनक्षु

कि इस समय तुम विष्णुजीको स्मरण करो नहीं तो ज्वलित कुंडलोंवाले मस्तक को मैं भूमि में गिरा दूंगा जैसे कि पका फल वृक्षसे गिराया जाता है ॥ ८ ॥ नहीं तो इस खंभसे निकले हुये उन विष्णुजीको दिखलाइये प्रह्लादजी ने आसन को छोड़कर भूमि में कमलासन किया ॥ ९ ॥ और कंधे को झुकाकर श्वासों को ऊपर रोंककर प्रह्लादजी हृदय में विष्णु-देवजीको ध्यान कर मरण के सम्मुख स्थित हुये ॥ १० ॥ हे प्रभो ! उस समय मैंने आकाश पृथ्वी में आश्चर्य देखा कि हे विभो ! प्रह्लादजी के गले में फूलों की माला आपही स्थित हुई ॥ ११ ॥ और खंभ से शीघ्रही निकलने पर आकाश में स्थित लोगों ने ऐसा कहा कि क्या है और

शब्द से मनुष्य क्षोभित होगये ॥ १२ ॥ व मन में विचारने लगे कि पृथ्वी क्या पाताल को जाती है अथवा आकाश पृथ्वी में आवैगा या तलवारसे नाश किया हुआ शिर क्या पृथ्वी में गिरैगा ॥ १३ ॥ तब तक खंभ से भयंकर सिंह शब्द निकला और शब्द से मूर्छित सब दैत्य पृथ्वी में गिरपड़े ॥ १४ ॥ हिरण्यकशिपु के हाथ से तलवार व ढाल गिर पड़ी तदनन्तर हिरण्यकशिपु ने विचार किया कि यह क्या है ॥ १५ ॥ व उठकर जब तक देखै तब तक उसने उन विष्णुजीको देखा कि नीचे मनुष्य रूपहै व ऊपर भयंकर सिंहरूप स्थित है ॥ १६ ॥ व दाढ़ोंसे जिनका मुख भयकरहै मानो आकाशको ग्रस रहेहैं व शरीरसे जाज्वल्यमान और

मिताजनाः ॥ १२ ॥ धरणीयातिपातालं द्यौर्वाभूमिंसमेष्यति ॥ पतिष्यतिशिरोभूमौ खड्गपाताहतंनुकिम् ॥ १३ ॥ तावत्स्तम्भाद्विनिष्क्रान्तः सिंहनादोभयङ्करः ॥ भूमौनिपतिताःसर्वे दैत्याःशब्देनमूर्च्छिताः ॥ १४ हिरण्यकशिपोर्हस्तात् खड्गचर्मपपातह ॥ ततोहिरण्यकशिपुःकिमेतदित्यचिन्तयत् ॥ १५ ॥ उच्छ्रितोवीक्षतेयावत्तावत्पश्यतितंहरिम् ॥ अधोनरःस्थितंसिंहमुपरिष्टाद्विभीषणम् ॥ १६ ॥ दंष्ट्राकरालवदनं लेलिहानमिवाम्बरम् ॥ जाज्वल्यमानंवपुषंपुच्छाघोटितमस्तकम् ॥ १७ ॥ महाकटकटारावं सशब्दमिवतोयदम् ॥ समुच्छ्वसितकेशान्तंदुर्निरीक्ष्यंसुरासुरैः ॥ १८ ॥ नरसिंहमथोदृष्ट्वा निपपातपुनःक्षितौ ॥ १९ ॥ विधृत्यकेशपाशान्तं भ्रामयामासचाम्बरम् ॥ भ्रामयित्वाशतगुणंपृथिव्यांसमपोथयत् ॥ २० ॥ नममारयदादैत्यो ब्रह्मणोवरकारणात् ॥ गगनस्थैस्तदादेवैरुच्चैःसंस्मारितोहरिः ॥ २१ ॥ दैत्यंजानुसमानीय वक्षोदृष्ट्वानिरीक्ष्यच ॥ जयेतिवदतांतेषां सुराणांसव्यदारयत ॥ २२ ॥ शब्दंकर्णौभुजौचैव कृत्वास्वपदला

पूंछको मस्तकपैघुमा रहेहैं ॥ १७ ॥ और शब्दसमेत मेघकी नाईं महा कटकटा शब्दकरतेहैं और जिनके बाल ऊपर उठेहैं और देवता व दैत्य जिनको दुःखसे देखसक्ते हैं ॥ १८ ॥ ऐसे नृसिंहजीको देखकर वह हिरण्यकशिपु फिर पृथ्वी पै गिर पड़ा ॥ १९ ॥ व नृसिंहजीने केशपाश के अन्तको पकड़कर आकाशमें घुमाया और सौगुना घुमाकर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ २० ॥ जब ब्रह्माके वरदानके कारण वह दैत्य न मरा तब आकाशमें स्थित देवताओंने उच्च प्रकार से विष्णुजीको स्मरण कराया ॥ २१ ॥ और उन देवताओंके जय ऐसा शब्द कहते हुये उन नृसिंहजी ने हिरण्यकशिपु दैत्यको जंघों पै धरकर व वक्षस्थल को देखकर विदारण किया ॥ २२ ॥ और

कर्ण में शब्द करके व भुजाओं को अपने चरण से चिह्नित कर याने दबाकर नृसिंहजीने हिरण्यकशिपु दैत्य के वज्रपात से चिह्नित वक्षस्थल को फाड डाला ॥ २३ ॥ व कुन्द पुष्पदल के समान नखों से अस्थिसमूह को खींचा और वक्षस्थल विदीर्ण होने पर दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु मरगया व गिरपडा ॥ २४ ॥ तब सब संसार व चराचरसमेत तीनों लोक शान्त होगये व हे केशवजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरी भी तृप्ति होगई ॥ २५ ॥ जैसे कि त्रिपुर के जलने पर शिवजी की प्रसन्नता से मेरी तृप्ति हुई थी फिर हिरण्याक्ष उत्पन्न होने पर वह तुम्हीं से मारा गया है ॥ २६ ॥ इस समय मेरी तृप्ति नहीं है कहां जाऊ व क्या करूं पृथ्वी

ङ्घ्रितौ ॥ बिभेदवक्षोदैत्यस्य वज्रपातकणाङ्कितम् ॥ २३ ॥ नखैःकुन्ददलप्रख्यैरस्थिसङ्घस्तुकर्षितः ॥ भिन्नेवक्षसिदै त्येन्द्रो ममारचपपातच ॥ २४ ॥ तदाशान्तंजगत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ममापितृप्तिःसञ्जाता प्रसादात्तवकेश व ॥ २५ ॥ यथापुरत्रयेदग्धे प्रसादाच्छङ्करस्यमे ॥ हिरण्याक्षेपुनर्जातो सत्वयैवनिपातितः ॥ २६ ॥ इदानींनास्ति मेतृप्तिः कुत्रयामिकरोमिकिम् ॥ पृथिव्यांक्षत्रियाःसन्ति नयुध्यन्तिपरस्परम् ॥ २७ ॥ पञ्चमोयोवतारस्ते नजानेकिं करिष्यति ॥ बलिनिग्रहकालोयं तद्दर्शयजनार्दन ॥ २८ ॥ तदैतत्सकलंश्रुत्वा बभाषेवामनोमुनिम् ॥ शृणुनारदयद्वृ त्तं हिरण्यकशिपौहते ॥ २९ ॥ दैत्यराज्येकृतोराजा प्रह्लादोयत्रवैष्णवः ॥ तेनराज्यंधरापृष्ठे कृतंसंवत्सरान्बहून् ॥ ३० ॥ तस्यापिकुर्वतोराज्यं विग्रहोहिसुरैस्समम् ॥ नोपशाम्यतिदैत्यानां पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ३१ ॥ उत्पाद्यपुत्रान्सुबहून्

में जो क्षत्रिय हैं वे परस्पर नहीं युद्ध करते हैं ॥ २७ ॥ और जो तुम्हारा पांचवां अवतार है वह क्या करेगा इसको नहीं जानता हूं हे जनार्दनजी ! बलिके बाधने का यह समय है उसको दिखलाइये ॥ २८ ॥ इस वचन को सुन कर वामनजी उस समय नारद मुनि से बोले कि हे नारदजी ! हिरण्यकशिपु के मारने पर जो वृत्तान्त हुआहै उसको सुनिये ॥ २९ ॥ कि उस दैत्य के राज्यपै विष्णुभक्त प्रह्लादजी राजा किये गये उन्होंने बहुत वर्षों तक पृथ्वी में राज्य किया ॥ ३० ॥ और उस के भी राज्य करते हुये पहले के वैरको स्मरण करता हुआ दैत्यों का वैर नहीं शान्त होता था ॥ ३१ ॥ बहुत पुत्रों को पैदा कर व बड़ी भारी राज्य

को करके विरोचन से बलि हुए और जब इस प्रकार बलि हुए ॥ ३२ ॥ तब एकान्त में किसी योग से विष्णुजी को जानकर वे विरोचन राज्य पै प्यारे पुत्रों को छोड कर पर्वत के शिखरों पै चले गये ॥ ३३ ॥ विष्णुजी ने उसके शरीर को कल्पान्तस्थायी किया और राज्य के कारण बहुत से दैत्यों व दानवों का ॥ ३४ ॥ बड़ा भारी विवाद हुआ कि हमलोगों के मध्य में से कौन राजा होगा हिरण्याक्ष के जो पुत्र व पौत्र थे वे बड़े बली थे ॥ ३५ ॥ व विरोचन आदिक जो हैं वे भी बड़े बलवान् थे और बलवान् वृषपर्वा भी राज्यके लिये प्राप्तहुआ ॥ ३६ ॥ और इन्द्र, कुबेर, वरुण पवन, सूर्य, अग्नि व यमराज बल, रूप व क्षमादिकों से दैत्यों के सदृश नहीं

राज्यंकृत्वातुपुष्कलम् ॥ विरोचनाद्बलिर्जातो बलिरेवयदाभवत् ॥ ३२ ॥ एकान्तेसहरिंज्ञात्वा तदायोगेनकेनचित् ॥ मुक्त्वाराज्येप्रियान्पुत्रान् गतोसौगिरिसानुषु ॥ ३३ ॥ कल्पान्तस्थायिनंदेहं तस्यचक्रेजनार्दनः ॥ दैत्यानांदानवानांच बहूनांराज्यकारणात ॥ ३४ ॥ विवादोतीवसञ्जातो कोनोराजाभविष्यति ॥ हिरण्याक्षस्ययेपुत्राः पौत्राश्चबलवत्त राः ॥ ३५ ॥ विरोचनप्रभृतयः सन्तियेबलवत्तराः ॥ वृषपर्वापिबलवान् राज्यार्थंसमुपस्थितः ॥ ३६ ॥ इन्द्रवित्तेशवरुणा वायुःसूर्योनलोयमः ॥ दैत्यानांसदृशानस्युर्बलरूपक्षमादिभिः ॥ ३७ ॥ औदार्यादिगुणैःसर्वे सम्पत्त्याचासुराधिकाः ॥ शुक्रेणवार्यमाणास्ते युद्ध्यन्तेचपरस्परम् ॥ ३८ ॥ अमृतहरणेयुद्धं यदादैत्यास्स्मरन्तितत् ॥ पीतावशेषममृतं कस्मा च्छिन्दन्तिदेवताः ॥ ३९ ॥ नास्माकमितिसन्नह्य युद्ध्यन्तेचपरस्परम् ॥ कदाचिदपिनोयुद्धं विश्रान्तमुपगच्छति ॥ ४० ॥ एककार्योद्यतोयस्माद् बहवोदैत्यदानवाः ॥ पीत्वामृतंसुराजाताअमरास्तेजयन्तिच ॥ ४१ ॥ जनमेजय उवाच ॥

हैं ॥ ३७ ॥ और सब देवता उदारतादिक गुणों में व सम्पत्ति में अधिक हैं शुक्राचार्य जीसे मना किये हुये वे परस्पर युद्ध करते हैं ॥ ३८ ॥ जब दैत्य अमृत के हरने में उस युद्ध को स्मरण करते हैं कि पीने से बचे हुये अमृतको देवता क्यों नाश करते हैं ॥ ३९ ॥ और हमलोगों को नहीं देते हैं तब इस कारण कवचको पहनकर वे परस्पर युद्ध करते हैं और कभी युद्धविश्राम को नहीं प्राप्तहोता है ॥ ४० ॥ जिस लिये बहुत से दैत्य व दानव एक कार्य में उद्यत हुये उसी कारण अमृत को

पीकर देवता अमर होगये और वे देवता जीतते हैं ॥ ४१ ॥ जनमेजयजी बोले कि देवता, दानव, दैत्य गंधर्व, नाग व राक्षसों के मध्य में विष्णुजी युद्धमें अधिक बली हैं इस लिये इस कारण को कहिये ॥ ४२ ॥ वैशंपायनजी बोले कि जिसलिये विष्णुजी जन्म मृत्यु रहित कर्ता व हर्त्ता हैं व एक शिव देवजी हैं और वे भी ब्रह्मसंज्ञक हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप! जब संसार में एक का कार्य होता है तब उसके देह में भली भांति आश्रित होकर वे तीनों कार्य करते हैं ॥ ४४ ॥ हे पृथ्वीपते ! सब ब्रह्माण्ड विष्णुजीके हाथ में स्थित है उसी कारण विष्णु अधिक बलवान् हैं व उनका बहुत विस्तारवाला अन्य कर्म ॥ ४५ ॥ देवताओं से नहीं जाना

देवदानवदैत्यानां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ विष्णुर्बलाधिकोयुद्धे तदेतत्कारणंवद ॥ ४२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ अनादि निधनःकर्त्ता यतोहर्ताजनार्दनः ॥ एकएवशिवोदेवः सचापिब्रह्मसञ्ज्ञितः ॥ ४३ ॥ एकस्यतुयदाकार्यं जायतेभुवने नृप ॥ तस्यदेहंसमाश्रित्य कार्यंकुर्वन्तितेत्रयः ॥ ४४ ॥ ब्रह्माण्डंसकलंविष्णोः करस्थंजगतीपते ॥ तस्माद्बलाधि कोविष्णुस्तस्यान्यद्बहुविस्तरम् ॥ ४५ ॥ नशक्यतेसुरैर्ज्ञातुं किमन्येचर्मचक्षुषः ॥ इन्द्राद्याश्चसुराःसर्वे विष्णोर्व्यापार कारिणः ॥ ४६ ॥ सृष्टिंकृत्वाततोब्रह्मा कैलासेसंस्थितोहरः ॥ पालनायोद्यतोविष्णुर्भ्राम्यतेभुवनत्रये ॥ ४७ ॥ जग त्यस्मिन्यदाकश्चिद्विपरीतेनवर्त्तते ॥ तस्योच्छेदंसमागत्यकरोत्येवजनार्दनः ॥ ४८ ॥ जनमेजयमहाबाहो वामनो नारदायच ॥ सर्वपापक्षयांदिव्यां तांकथांकथयाम्यहम् ॥ ४९ ॥ वामन उवाच ॥ एवंविवदतान्तेषां दैत्यानांराज्यहेत वे ॥ प्रह्लादेनसमागत्य व्यवस्थाविहितास्वयम् ॥ ५० ॥ सर्वलक्षणसम्पन्नो दीर्घायुर्बलवत्तरः ॥ यज्ञशीलःसदानन्दो

जासक्ता है तो अन्य चर्म दृष्टिवाले पुरुष क्या जानैंगे और इन्द्रादिक सब देवता विष्णु के व्यापारकारी हैं ॥ ४६ ॥ उसी कारण ब्रह्माजी सृष्टि करके स्थित होते हैं और महादेवजी कैलास पर्वत पै टिके हैं और पालन के लिये उद्यत विष्णुजी त्रिलोक में घूमते हैं ॥ ४७ ॥ और इस संसार में जब कोई विपरीत कर्म से वर्तमान होताहै तब विष्णुजी भलीभांति आकर उसका नाश करतेही हैं ॥ ४८ ॥ हे महाबाहो, जनमेजय ! वामनजीने नारदजीसे जिस कथा को कहा है सब पापों को नाश करनेवाली उस दिव्य कथा को मैं कहता हूं ॥ ४९ ॥ वामनजी बोले कि राज्यके कारण इस प्रकार विवाद करते हुये उन दैत्यो के मध्य में प्रह्लादजीने आकर आपही

व्यवस्था किया ॥ ५० ॥ कि जो सब लक्षणों से संयुक्त, दीर्घायु, बड़ा, बलवान्, यज्ञशील, सदैव आनन्दयुक्त, बहुत पुत्रोंवाला व अत्यन्त दुर्जय होवै ॥ ५१ ॥ व जो देवताओं के साथ युद्ध न करै और जो विष्णुजीको दुर्जय जानता है ॥ ५२ ॥ और युद्धमें जिसकी मृत्यु नहीं है और जो सर्वस्व दक्षिणा देता है और जो किसी प्रकार अपने वचन को व्यर्थ नहीं करता है ॥ ५३ ॥ व सब पुत्रों के मध्य में जो लक्ष्मी से शोभित होवै, शुक्राचार्य से अभिषेक किया हुआ वह तुमलोगों के मध्य में राजा होगा ॥ ५४ ॥ और गुरु प्रमाण है यह कहकर फिर दैत्यों के स्वामी प्रह्लादजी चले गये और उन दैत्य व दानवों ने मिलकर वैसाही किया ॥ ५५ ॥

बहुपुत्रोतिदुर्जयः ॥५१॥ नयुद्ध्यतेसुरैःसाकंविष्णुंयोवेत्तिदुर्जयम् ॥५२॥ सङ्ग्रामेमरणंनास्ति यश्चसर्वस्वदक्षिणः ॥ आत्मनोवचनंव्यर्थं नकरोतिकथञ्चन ॥ ५३ ॥ सर्वेषामेवपुत्राणां मध्येयोराजतेश्रिया ॥ अभिषिक्तस्तुशुक्रेण सवोराजा भविष्यति ॥ ५४ ॥ गुरुःप्रमाणमित्युक्त्वा ययौदैत्याधिपःपुनः ॥ तथाचकृतवतस्तेवै सहितादैत्यदानवाः ॥ ५५ ॥ विरोचनप्रभृतयःपुत्राः पौत्राःस्वयङ्गताः ॥ प्रत्येकंवीक्ष्यतान्सर्वान् गुरुर्ज्ञानप्रपूर्वकम् ॥ ५६ ॥ प्रह्लादेयेगुणाःप्रोक्तानतेसन्तिविरोचने ॥ अन्येषामपिदैत्यानां दृष्टाःपूर्वाश्चनेदृशाः ॥ ५७ ॥ तथानिरीक्षिताःपौत्रा बलिप्रभृतयोमुने ॥ सर्वान्संवीक्ष्यशुक्रेण बलौदृष्टागुणास्तथा ॥ ५८ ॥ बलिदेहादिकंदृष्ट्वा तेभ्योदैत्योनिवेदितः ॥ बलिर्गुणाधिकोदैत्याः कथंकार्यंभवेन्मया ॥५९॥ केनापिदैवयोगेन बलिरिन्द्रोभविष्यति ॥ यादृशस्तुपितालोके तादृशश्चसुतोभवेत् ॥६०॥ पुत्रस्सु

और विरोचन आदिक पुत्र व पौत्र आपही प्राप्त हुये व गुरु शुक्राचार्यजी ने उन सबों को प्रत्येक देख कर कहा ॥ ५६ ॥ कि प्रह्लाद में जो गुण कहे गये हैं वे विरोचन में नहीं हैं व अन्य दैत्यों के भी ऐसे गुण नहीं देखे गये हैं ॥ ५७ ॥ हे मुने ! उन शुक्राचार्यजीने सब दैत्यों को देखकर वैसेही बलि आदिक पौत्रों को देखा व शुक्राचार्यजीने बलिमें वैसे गुणों को देखा ॥ ५८ ॥ व बलि के शरीरादिक को देखकर उन दैत्यों से बलि दैत्य को बतलाया कि हे दैत्यो ! बलि गुणों में अधिक हैं मुझको कैसा करना चाहिये ॥ ५९ ॥ व किसी भी दैवयोग से बलि इन्द्र होवैंगे संसार में जैसा पिता होता है वैसाही पुत्र होता है ॥ ६० ॥ और यदि पुत्र न होवै

तो उसका पौत्र निश्चय कर वैसाही होता है और विष्णुप्रिय व विष्णुभक्त प्रह्लाद जी बड़े योगी हैं ॥ ६१ ॥ उसी कारण हिरण्यकशिपु के कोई गुण विरोचन में हैं हे दैत्यो ! यदि ज्येष्ठ विरोचन राज्य पै किया जावै ॥ ६२ ॥ तो नृसिंहजी आकर निश्चय कर मना करेंगे व मृत्यु से डरनेवाले विरोचन ने भी राज्य को छोड़ दिया है ॥ ६३ ॥ और प्रह्लाद के सब गुण बलिके शरीर में स्थित हैं दैत्यों ने ऐसा सिद्धान्त या प्रतिज्ञा कर राज्य पै बलिको किया ॥ ६४ ॥ व इन्द्रजी किसी के भी वचनको सुनकर मेरे मन्दिर में आये व बालखिल्या महर्षियों से शापित मैं वामन किया गया ॥ ६५ ॥ और मैंने प्रसन्न कराकर उनसे कहा कि कब मेरे शापकी मुक्ति

निश्चितन्तस्य भवतीतिनचेत्सुतः ॥ प्रह्लादस्सुमहायोगी वैष्णवोविष्णुवल्लभः ॥ ६१ ॥ तस्माद्विरोचनेकेचि द्धिरण्यकशिपोर्गुणाः ॥ ज्येष्ठोविरोचनोराज्ये यदिचक्रियतेसुराः ॥ ६२ ॥ नरसिंहःसमागत्य निश्चितंवारयिष्यति ॥ त्यक्तंवैरोचनेनापि राज्यंमरणभीरुणा ॥ ६३ ॥ प्रह्लादस्यगुणाःसर्वे बलिदेहेऽव्यवस्थिताः ॥ एवंतुसमयंकृत्वा बलीरा ज्येकृतोसुरैः ॥ ६४ ॥ कस्यापिवचनंश्रुत्वा देवेन्द्रोमममन्दिरे ॥ समागतोबालखिल्यैः शप्तोहंवामनःकृतः ॥ ६५ ॥ प्रसाद्यतेमयाप्रोक्ता शापमुक्तिःकदामम ॥ भविष्यतिचतैरुक्तं बलिनिग्रहणादनु ॥ ६६ ॥ तथापिकौतुकंयुद्धे बलिर्य ज्ञंकरोतिच ॥ देवानांविग्रहोनास्ति सर्वेयज्ञेसमागताः ॥ ६७ ॥ समायजतियज्ञेन सर्वंभाव्यंकरोम्यहम् ॥ नारद उवाच प्रसादंकुरुदेवेश युद्धार्थंकौतुकंमम ॥ ६८ ॥ एकेनब्राह्मणेनाजौ हन्यन्तेक्षत्रियायदा ॥ तदादेवेशहर्षोमे जायतेसुम हान्प्रभो ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोसिभवाञ्जातः कदायुद्धंकरिष्यति ॥ विहस्यवामनोब्रूते सत्यंसत्यंभविष्यति ॥ ७० ॥ जम

होगी तब उन्हों ने कहा कि बलिनिग्रह के पश्चात् शापकी मुक्ति होगी ॥ ६६ ॥ और तुमको भी युद्ध में कौतुक है व बलि यज्ञको करता है और देवताओं का वैर नहीं है क्योंकि सब देवता यज्ञ में आये हैं ॥ ६७ ॥ बलि यज्ञसे भलीभांति पूजन करता है और मैं सब होने योग्य कार्य को करूंगा नारदजी बोले कि हे देवेश ! प्रसन्नता कीजिये मुझको युद्ध के लिये कौतुक है ॥ ६८ ॥ हे प्रभो, देवेश ! जब समर में एक ब्राह्मण क्षत्रियों को मारता है तब मुझको बहुतही आनन्द होता है ॥ ६९ ॥

तुम ब्राह्मण हो और पैदा होकर आप कब युद्ध को करैंगे वामनजी हँसकर कहने लगे कि सत्य सत्य होवैगा ॥ ७० ॥ कि मैं जमदग्नि का पुत्र होकर महादेवजीको गुरु करके बहुत क्षत्रियोंसमेत कार्तवीर्य को मारूंगा ॥ ७१ ॥ और स्यमंतपंचक क्षेत्र में रक्तों से पांच कुण्डों को करूंगा और वहां मैं पिता व पितामहों का तर्पण करूंगा ॥ ७२ ॥ जहां मैं पवित्र क्षेत्र करूंगा वहां आप आवैंगे व युद्ध में तुम को बहुत प्रिय कौतुक होगा ॥ ७३ ॥ और जब क्षत्रिय फिर ब्राह्मणों से राज्य को लेवैंगे तब मैं फिर वहा मनोहर उपवनों में उनको मारूंगा ॥ ७४ ॥ और बड़ा बलवान् रावण लंकापुरी में राज्य करैगा व जब यह त्रिलोककंटक नामको धारण

दग्निसुतोभूत्वा गुरुंकृत्वामहेश्वरम् ॥ कार्त्तवीर्यंवधिष्यामि बहुभिःक्षत्रियैःसह ॥ ७१ ॥ स्यमन्तपञ्चकेपञ्च करिष्ये रुधिरैर्ह्रदान् ॥ तत्राहंतर्पयिष्यामि पितॄनथपितामहान् ॥ ७२ ॥ पुण्यक्षेत्रंकरिष्यामि भवांस्तत्रागमिष्यति परञ्च कौतुकंयुद्धे भविष्यतितवप्रियम् ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणेभ्योग्रहीष्यन्ते यदातुक्षत्रियाःपुनः ॥ पुनस्तत्रहनिष्यामि रम्येषू पवनेषुच ॥ ७४ ॥ लङ्कायांरावणोराज्यं करिष्यतिमहाबलः ॥ त्रैलोक्यकण्टकंनाम यदासौधारयिष्यति ॥ ७५ ॥ तदादाशरथीरामःकौशल्यानन्दवर्द्धनः ॥ भविष्येभ्रातृभिःसार्द्धं गमिष्येयज्ञमण्डपे ॥ ७६ ॥ ताडकांताडयित्वादौसु बाहुंयममन्दिरे ॥ नीत्वायज्ञंगमिष्यामि सीतायाःसुस्वयंवरे ॥ ७७ ॥ परिणेष्यामितांसीतां भङ्क्त्वामाहेश्वरंधनुः ॥ त्यक्त्वाराज्यंगमिष्यामि वनेवर्षचतुर्दश ॥ ७८ ॥ सीताहरणजंदुःखं प्रथमंमेभविष्यति ॥ नासाकर्णविहीनान्ता क रिष्येराक्षसींवने ॥ ७९ ॥ चतुर्दशसहस्राणि त्रिशिरःखरदूषणान् ॥ हत्वाहनिष्येमारीचराक्षसंमृगरूपिणम् ॥ ८० ॥

करैगा ॥ ७५ ॥ तब कौशल्या के आनन्द को बढ़ानेवाला मैं दशरथ का पुत्र राम हूंगा और भाइयोंसमेत मैं यज्ञमंडप में जाऊंगा ॥ ७६ ॥ पहले ताड़का को मारकर व सुबाहु को यममंदिर में प्राप्त कर यज्ञ को जाऊंगा व सीताजीके स्वयंवर में ॥ ७७ ॥ शिवजीके धनुष को तोड़कर उन सीता को ब्याहूंगा व राज्य को छोड़कर चौदह वर्ष वनमें जाऊंगा ॥ ७८ ॥ पहले मुझको सीताहरण से उपजा हुआ दुःख होगा व वनमें मैं उस शूर्पणखा राक्षसी को नासिका व कानों से हीन करूंगा ॥ ७९ ॥

और चौदह हज़ार त्रिशिरा व खरदूषणादिक राक्षसों को मारकर उस मृगरूपी मारीच राक्षस को मारूंगा ॥ ८० ॥ व हरीहुई स्त्रीवाला मैं जाऊंगा और जटायु गीधको जलाकर सुग्रीव के साथ मित्रता कर बालिको मारकर ॥ ८१ ॥ नलादिक वानरोंसे समुद्र को बँधाऊंगा और लंका को घिराऊँगा ॥ ८२ ॥ और देवताओं से बनाई हुई उस लङ्कापुरी को विभीषण के लिये दूंगा फिर अयोध्यापुरी को आकर निष्कंटक राज्यकर ॥ ८३ ॥ काल व दुर्वासाजीके विचित्र चरित्र से मैं राज्य को पुत्रके लिये देकर भाइयोंसमेत अमरावती पुरीको जाऊंगा ॥ ८४ ॥ और द्वापर प्राप्त होने पर बहुत से क्षत्रियों से भार करके घिरीहुई

हृतदारोगमिष्यामि दग्ध्वागृध्रजटायुषम् ॥ सुग्रीवेणसमंमैत्रीं कृत्वाहत्वाथबालिनम् ॥ ८१ ॥ समुद्रम्बन्धयिष्यामि नलप्रमुखवानरैः ॥ लङ्कांसंवेष्टयिष्यामि मारयिष्यामिराक्षसान् ॥ ८२ ॥ विभीषणायदास्यामि लङ्कांतांदेवनिर्मिताम् ॥ अयोध्यांपुनरागत्य कृत्वाराज्यमकण्टकम् ॥ ८३ ॥ कालदुर्वाससोश्चित्रचारित्रेणामरावतीम् ॥ यास्येहंभ्रातृभिःसार्द्धं राज्यंपुत्रेनिवेद्यच ॥ ८४ ॥ द्वापरेसमनुप्राप्ते क्षत्रियैर्बहुभिर्महीम् ॥ भाराक्रान्तांनशक्नोमि पातालंगन्तुमुद्यताम् ॥ ८५ ॥ मथुरायांतदाकर्त्ता कंसोराज्यंमहासुरः ॥ शिशुपालंजयिष्यामि हत्वावैगजवाजिनः ॥ ८६ ॥ कलौस्वल्पोदकामेघा अल्पदुग्धाश्चधेनवः ॥ दुग्धेघृतंनचैवास्ति नास्तिसत्यंजनेषुच ॥ ८७ ॥ चौरैरुपद्रुतालोका व्याधिभिःपरिपीडिताः ॥ त्रातारंनाधिगच्छन्ति बुद्धावस्थाङ्गतेमयि ॥ ८८ ॥ क्षुद्राःपश्चिमवाहिन्यो नद्यश्शुष्यन्तिकार्त्तिके ॥ एकादशीव्रतंनास्ति कृष्णायाचचतुर्दशी ॥ ८९ ॥ नजानातिजनःकश्चिद्विक्रान्तमपिस्वग्रहे ॥ दरिद्रोपहतंसर्वं सन्ध्या

व पाताल को जाने के लिये उद्यत पृथ्वी को नहीं देख सक्ताहूं ॥ ८५ ॥ तब मथुरापुरी में महादैत्य कंस राज्य करैगा और मैं हाथी व घोड़ों को मारकर शिशुपाल को जीतूंगा ॥ ८६ ॥ कलियुग में मेघों में थोड़ा जल होता है व गौवों में थोड़ा दूध होता है व दूध में घी नहीं होता है और मनुष्यों में सत्य नहीं होता है ॥ ८७ ॥ व चोरों से मनुष्य विकलते हैं और रोगों से पीड़ित होते हैं मुझको बुद्धावस्था में प्राप्त होने पर वे रक्षक के समीप नही जाते हैं ॥ ८८ ॥ और पश्चिम ओर बहनेवाली क्षुद्र नदिया कातिक महीने में सूख जाती हैं व एकादशी व्रत नहीं होता है और जो कृष्णपक्ष की चौदसि है उसका व्रत नहीं होता है ॥ ८९ ॥ और कोई

को कँपाते थे व तालके प्रमाण से नाचते थे और बहुत सुन्दर गाते थे ॥ २०० ॥ व चतुर वामनजी ब्राह्मणों की सभा में चारों वेदों को पढ़ते थे व दैत्यों के सब बालक और ब्राह्मणों के पुत्र ॥ १ ॥ दिनरात मनोहर वामनजी की उपासना करते थे इसके अनन्तर वे बालक वामनजी को यज्ञमंडप में लेगये ॥ २ ॥ व उन्हों ने कहा कि मठिकास्थानको निश्चय कर तुमको बलिसे मांगना चाहिये क्योंकि जब नगर में विद्वान् ब्राह्मण अत्यन्त पूजा जाता है ॥ ३ ॥ तब हमलोगों का वा नगर का बड़ा भारी कल्याण देख पड़ता है उस समय इन वामन द्विज से सब मनुष्यों ने बतलाया ॥ ४ ॥ कि हे वामन ! दैत्येन्द्र बलिके नगर में तुमको सदैव बसना

नृत्यतेतालमानेन गायन्त्यतिमनोहरम्॥वेदानधीतेचतुरो वामनोद्विजसंसदि॥२००॥दैत्यानांतनुजाःसर्वे ब्राह्मणानांतथैवच ॥१॥ वामनंपर्युपासन्तेदिवारात्रंमनोरमम् ॥ कुमारास्तेरथोनीतोवामनोयज्ञमण्डपे ॥२॥ निश्चित्यमठिकास्थानं याचनीयोबलिस्त्वया ॥ विद्वानतीवविप्रेन्द्रः पूज्यतेनगरेसदा ॥ ३ ॥ तदास्माकंमहाञ्श्रेयो दृश्यतेनगरस्यच॥ विज्ञप्तोमानवैस्सर्वैस्तदासौवामनोद्विजः ॥४॥ त्वयावामनवस्तव्यं दैत्येन्द्रनगरेसदा ॥ प्रविवेशतथेत्युक्तो वामनोयज्ञमण्डपे ॥ ५ ॥ ततःकोलाहलोजातो द्वास्थैर्द्वारिगतोमहान् ॥ ब्राह्मणैर्बहुभिस्सार्द्धंवेदानुच्चारयन्स्थितः ॥ ६ ॥ ततोवेदध्वनिर्जाता महतीयज्ञमण्डपे ॥ प्रविष्टैःप्रथमंदैत्यैर्दैत्यायनिवेदितः ॥ ७ ॥ द्रष्टुंसमागतोदेव ब्राह्मणोवामनोध्वरे ॥ भवन्तंकौतुकात्तावद्द्वास्स्थंद्वारिसमादिश ॥ ८ ॥ एकएवमथायाति वामनस्तवसन्निधौ ॥ निरीहोवामनोदेव याचते नैवकिञ्चन ॥ ९ ॥ वेदानाञ्चध्वनिंश्रुत्वा चतुर्णामेकवक्त्रतः ॥ बलिर्हृष्टोब्रवीद्वाक्यंद्वास्थमेनंप्रवेशयथ ॥ १० ॥ पूजयि

चाहिये इस प्रकार कहे हुये वामनजी यज्ञमंडप में पैठे ॥ ५ ॥ तब द्वार पै टिके हुये लोगों से बड़ा कोलाहल द्वार पै प्राप्त हुआ और बहुत ब्राह्मणों के साथ वेदों को उच्चारण करते हुये वामनजी स्थित हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर यज्ञमण्डप में बड़ी भारी वेदध्वनि हुई और पहले पैठे हुये दैत्यों ने बलि दैत्य से वामनजीको बतलाया ॥ ७ ॥ कि हे देव ! वामन ब्राह्मण कौतुक से यज्ञ में आपको देखने के लिये आया है तब तक द्वार पै दरबानी को आज्ञा दीजिये ॥ ८ ॥ व एकही वामनजी तुम्हारे समीप आते हैं और हे देव ! वामनजी कुछ इच्छा नहीं करते हैं व कुछ नहीं मांगते हैं ॥ ९ ॥ चारों वेदों की ध्वनिको एक मुख से सुनकर प्रसन्न होते हुये

बलिने द्वारपालक से वचन कहा कि इन वामनजी को प्रवेश कराइये ॥ १० ॥ मैं द्विजेन्द्र को पूजूंगा और इसका जो मनोरथ होगा उसको दूंगा मैं उन वचनों को स्मरण करता हूं कि जिनको गुरुने मुझसे कहा है ॥ ११ ॥ कि कोई वेदमय पात्र होता है व कोई तपोमय पात्र होता है जो पात्र आवैगा वह पात्र तारैगा ॥ १२ ॥ और यज्ञ वर्तमान होने पर मुझको दक्षिणा देना चाहिये यह वामन विचारने योग्य नहीं है मेरा वचन सत्य होवै ॥ १३ ॥ यह सुनकर गुरु शुक्राचार्यजी ने उन बलिको मना किया कि सब ब्राह्मणों को व दीन, अन्ध और कृपण आदिकों को द्वार पै पूजना चाहिये ॥ १४ ॥ व बधिर, वामन, कुबरे और जो निठुर रोगी हैं

ष्यामिविप्रेन्द्रं दास्येचास्ययदीप्सितम् ॥ स्मरामितानिवाक्यानि यानिप्राहगुरुर्मम ॥११॥ किञ्चिद्वेदमयंपात्रं किञ्चित्पात्रंतपोमयम् ॥ आगमिष्यतियत्पात्रं तत्पात्रंतारयिष्यति ॥ १२ ॥ यज्ञेप्रवृत्तमानेतु दातव्यादक्षिणामया ॥ वामनोनविचार्यासौ सत्यमस्तुवचोमम ॥ १३ ॥ इतिश्रुत्वागुरुःशुक्रो वारयामासतंबलिम् ॥ द्वारिपूज्याद्विजास्सर्वे दीनान्धकृपणादयः ॥ १४ ॥ बधिरावामनाःकुब्जा रोगिणोयेतुनिष्ठुराः ॥ सुवर्णरजतैर्वस्त्रैर्वामनोद्वारिपूज्यताम् ॥१५॥ चतुर्णान्तुवृथाजन्म वृथादानानिषोडश ॥ अपुत्राणांवृथाजन्म येचधर्मबहिष्कृताः ॥ १६ ॥ परपाकञ्चयेश्नन्ति परदाररताश्चये ॥ अन्यायोपार्जितंवित्तं नदेयंश्रेयमिच्छता ॥ १७ ॥ व्यर्थमब्राह्मणेदानमनूढेपतितेतथा ॥ सन्ध्याहीने द्विजेनष्टे पतितेतस्करेतथा ॥ १८ ॥ गुरोश्चाप्रीतिजनके पितृमातृपराङ्मुखे ॥ ब्रह्मबन्धौचयद्दत्तं यद्दत्तंवृषलीपतौ ॥१९॥

वे द्वार पै पूजने योग्य हैं इस कारण सुवर्ण, चांदी व वस्त्रों से वामन को द्वार पै पूजिये ॥ १५ ॥ क्योंकि चार पुरुषों का जन्म वृथा है व सोलह दान वृथा हैं बिन पुत्रवाले मनुष्यों का जन्म व जो धर्म से बाहर किये गये हैं उनका जन्म वृथा है ॥ १६ ॥ और जो पराये पकाये हुये अन्न को खाते हैं और जो पराई स्त्रियों में रत हैं उनका जन्म वृथा है ॥ १७ ॥ कल्याण चाहनेवाले पुरुष को अन्याय से इकट्ठा कियाहुआ धन न देना चाहिये और जो ब्राह्मण नहीं है उसके लिये दान वृथा है व बिन ब्याहे हुये तथा पतित व संध्या से हीन नष्ट व पतित और चोर के लिये दान वृथा है ॥ १८ ॥ व गुरुकी प्रीतिको न उत्पन्न करनेवाले व पिता, माता

से विमुख तथा अधम ब्राह्मण के लिये जो दिया गया है व शूद्रापति के लिये जो दिया गया है वह वृथा है ॥ १९ ॥ और वेदों के बेंचनेवाले व कृतघ्न तथा ग्राम-याचक के लिये और स्त्रियों से जीते हुये पुरुषों के लिये व सांप पकडनेवाले के लिये जो दिया गया है ॥ २० ॥ और निन्दकों के लिये जो दिया गया है ये सोलह दान वृथा हैं इसी अवसर में बलि कहने लगा कि हे गुरो ! तुमको ऐसा न कहना चाहिये ॥ २१ ॥ क्यों कि जो कोई वेदों को पढ़ता है वह मुझको विष्णुसमान सम्मत है और वेदपात्र को घर आने पर देर न करना चाहिये ॥ २२ ॥ और अभ्युत्थान (आते देखकर उठना) व वचन और पादप्रक्षालन से गृहस्थ को

वेदविक्रयिणेचैव कृतघ्नेग्रामयाचके ॥ स्त्रीनिर्जितेषुयद्दत्तं व्यालग्राहेतथैवच ॥ २० ॥ परिवादिषुयद्दत्तं वृथादानानिषोडश ॥ अत्रान्तरेबलिर्ब्रूते नैवंवाच्यन्त्वयागुरो ॥२१॥ वेदानधीतेयःकश्चित्समेविष्णुःसमोमतः ॥ नविलम्बस्तु कर्त्तव्यः श्रोत्रियेगृहमागते ॥ २२ ॥ अभ्युत्थानेनवचसा पादप्रक्षालनेनच ॥ यथाशक्त्याप्रदातव्यंभोजनंगृहमेधिना ॥ २३ ॥ अपूजितोयदायाति वामनोयज्ञमण्डपात् ॥ तदायंव्यर्थतांयाति यज्ञस्सर्वस्वदक्षिणः ॥ २४ ॥ अत्रान्तरेसमानीतो वामनोबलिसन्निधौ ॥ आयान्तंतंद्विजंदैत्यो वामनोविष्णुरूपिणम् ॥२५॥ जाज्वल्यमानंवपुषा पिङ्गलंसूर्यसन्निभं ॥ उत्थायाभिमुखःप्राप्य नमस्कृत्याग्रतस्स्थितः ॥ २६ ॥ धन्योहंयस्यमेयज्ञे प्राप्तोविष्णुसमोद्विजः ॥ वेदीमध्येसमानीतो ददौतस्यासनंबलिः ॥ २७ ॥ पाद्यमाचमनीयञ्च तद्वदर्घंददौबलिः ॥ श्रीखण्डधूपगन्धाद्यैः पूजयित्वा

यथाशक्ति भोजन देना चाहिये ॥ २३ ॥ यदि विन पूजे हुये वामनजी यज्ञके मण्डप से चले जावैंगे तो यह सर्वस्वदक्षिण यज्ञ व्यर्थताको प्राप्त होवैगा ॥ २४ ॥ इसी अवसर में वामनजी बलिके समीप लाये गये और उन विष्णुरूपी वामन द्विजको आते हुये देखकर बलि दैत्य ॥ २५ ॥ उठकर व शरीर से ज्वलते हुये व सूर्य के समान पिंगलवर्ण वामनजीके सामने प्राप्त होकर प्रणाम कर आगे स्थित हुये ॥ २६ ॥ व बोले कि मैं धन्य हूं जिसके यज्ञ में विष्णु के समान ब्राह्मण प्राप्त हुआ वेदी के मध्य में विष्णुजी लाये गये और बलिने उन वामन को आसन दिया ॥ २७ ॥ वैसेही बलिने पाद्य, आचमनीय व अर्घको दिया व चन्दन और धूप, गन्धों

से पूजकर बलिजी आगे स्थित हुये ॥ २८ ॥ और उन बलिने उन वामनजी के लिये शीघ्रही मधुपर्क व गऊको दिया और वामनजी ने मधुपर्क को सूंघकर गऊको प्रणाम किया ॥ २९ ॥ बलिने स्वागत किया और वामन द्विजने स्वस्ति ऐसा कहा व यह कहा कि मैं अर्थी (याचक) आया हूं तब बलिने कहा कि हे प्रभो ! कहिये क्या दिया जावै ॥ ३० ॥ वामनजी ने कहा कि हे दैत्य ! पृथ्वीको दीजिये बलि ने कहा कि हे द्विजोत्तम ! कितनी पृथ्वी देऊ वामनजीने कहा कि हे दैत्येन्द्र ! मेरे निवास के लिये मेरे तीन पग पृथ्वी को दीजिये ॥ ३१ ॥ क्योंकि उत्तम कुटीको बनाकर मैं शिष्यों को पढ़ाऊंगा बलिने कहा कि मैंने तुम्हारे लिये तीन

ग्रतस्स्थितः॥ २८ ॥ मधुपर्कंचगान्तस्मै सत्वरंसन्यवेदयत् ॥ आघ्रायमधुपर्कंगौर्नामनेनेनमस्कृता ॥ २९ ॥ स्वागतं बलिनाप्रोक्तं स्वस्तीत्युक्तंद्विजन्मना ॥ अहमर्थीसमायातो दीयतांवदकिंप्रभो ॥ ३० ॥ मेदिनींदेहिमेदैत्य कियन्मात्रांद्विजोत्तम ॥ वासार्थंममदैत्येन्द्र दीयतांमेक्रमत्रयम् ॥ ३१ ॥ विधायकुटिकांदिव्यां शिष्यानध्यापयाम्यहम् ॥ दत्तंक्रमत्रयंतुभ्यं गृहीतंवामनोब्रवीत ॥ ३२ ॥ मादेहीत्यवदच्छुक्रो विष्णुरेषसनातनः ॥ ततोब्रवीद्बलिश्शुक्रं पात्रंस्यात्किमतःपरम् ॥ ३३ ॥ सव्यंकृत्वाबलिर्दर्भान्साक्षतांन्दक्षिणेकरे ॥ प्रयोगंनगुरुश्चक्रे नमुञ्चतिजलंकरे ॥३४॥ विस्मिताऋषयस्सर्वे होतारोयेसभासदः ॥ ब्राह्मणाबहवोदैत्या भार्यापुत्राश्चबान्धवाः ॥ ३५ ॥ दत्तंगृहीतमित्युक्ते कस्मात्तोयन्नमुञ्चति ॥ वामनायकरेतोयं विवेकायप्रदीयते ॥ ३६ ॥ यद्दानंवचसादत्तं कर्मणानोपपद्यते ॥ विधायपूर्वंन

पग पृथ्वी को दिया तब वामनजीने कहा कि मैंने ग्रहण किया ॥ ३२ ॥ शुक्राचार्यजीने कहा कि मत दीजिये ये सनातन विष्णुजी हैं तदनन्तर बलिने शुक्र से कहा कि इनसे अधिक कौन पात्र होगा ॥ ३३ ॥ बलि सव्य होकर अक्षतोंसमेत कुशों को दाहिने हाथ में किया और गुरु ने प्रयोग नहीं किया न हाथ में जल छोड़ा ॥ ३४ ॥ सब ऋषिलोग व होता और जो सभासद थे वे विस्मय को प्राप्त हुये और बहुत से ब्राह्मण, दैत्य, स्त्रियां, पुत्र व जो बन्धु लोग थे ॥ ३५ ॥ वे कहने लगे कि दिया गया व ग्रहण किया गया ऐसा कहने पर शुक्र किस लिये जलको नहीं छोड़ते हैं क्योंकि वामनजी के लिये हाथ में कल्याण के निमित्त जल दिया जाता

है ॥ ३६ ॥ जो दान वचन से दिया गया और कर्म से नहीं सिद्ध किया गया वह पहले यजमान को नरक में करके काटताहै ॥ ३७ ॥ शुक्राचार्यजीने दैत्येन्द्र बलि से कहा कि ये वामनजी विष्णु हैं किसी भी दैवयोग से तुमको देखने के लिये आये हैं ॥ ३८ ॥ अप्रिय या प्रिय नहीं जानता हूं कि यह क्या करेंगे शिष्य दैत्य जीने भार्गव (शुक्र) से कहा कि हे गुरो ! वचन को सुनिये ॥ ३९ ॥ कि मैं यह जानता हूं कि जब समय होगा तब ब्राह्मणों से यज्ञ पूर्ण होगा व मैं इन्द्र हूं और ब्राह्मण विष्णु हैं व द्रव्य सूर्य देवता हैं ॥ ४० ॥ तो विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस लिये मुझको विष्णुजी के लिये क्यों न देना चाहिये यह कहकर

रके यजमानंनिकृन्तति ॥ ३७ ॥ उशनाप्राहदैत्येन्द्रं वामनोहरिरित्ययम् ॥ केनापिदैवयोगेन त्वांद्रष्टुंसमुपागतः ॥ ३८ ॥ अप्रियंवाप्रियंवापि नजानेकिङ्करिष्यति ॥ बभाषेभार्गवंशिष्यश्श्रूयतांवचनंगुरो ॥ ३९ ॥ पूर्यतेचयदाकालं यज्ञोमेनेद्विजैरपि ॥ अहमिन्द्रोद्विजोविष्णुर्द्रव्यमादित्यदेवता ॥ ४० ॥ तत्कथंनमयादेयं विष्णवेप्रीयतामिति ॥ इत्युक्त्वासददौतोयं वामनायकरेबलिः ॥ ४१ ॥ ततःकिमिदमित्युक्त्वा संस्थितोमण्डपाद्बहिः ॥ मध्येपिवामनोविप्रो बलिमात्रोबभूवसः ॥ ४२ ॥ कृतहस्तेसुरेन्द्रेण गृहीतन्तुपदत्रयम् ॥ यजमानद्विजौदृष्टौ उभौयज्ञेसुरासुरैः ॥ ४३ ॥ ववृधेवामनोतीव कृत्वारूपञ्चतुर्भुजम् ॥ नारदोपितदायातो बभाषेकिंकृतंबले ॥ ४४ ॥ शिष्याभ्यांसहितोविप्रो दृष्टोनर्तन्पुनःस्थितः ॥ गृहाणदक्षिणांदेव सभार्योभाषतेबलिः ॥ ४५ ॥ अधिकन्नमयिप्राप्तं यद्गृह्णातिजनार्दनः ॥ सार्द्धक्र

उन बलि ने वामनजीके लिये हाथमें जलको दिया ॥ ४१ ॥ तदनन्तर यह क्या है ऐसा कहकर मंडप से बाहर स्थित हुये इसी मध्य में वे वामन द्विज भी बलि के बराबर होगये ॥ ४२ ॥ और दैत्येन्द्र बलिसे कृतहस्त होने पर वामनजी ने तीन पग पृथ्वी को ग्रहण किया यज्ञ में देवता व दैत्यों ने यजमान बलि व द्विजवामन जी दोनों को देखा ॥ ४३ ॥ और वामनजी चतुर्भुज रूप करके बहुतही बढ़े और उस समय नारद भी आये व बोले कि हे बले ! तुमने क्या किया ॥ ४४ शिष्यों समेत ब्राह्मण को देखा फिर नाचते हुये स्थित हुये व स्त्रीसमेत बलि कहने लगे कि हे देव ! दक्षिणा को ग्रहण कीजिये ॥ ४५ ॥ मैंने अधिक नहीं पाया कि जिसको

विष्णुजी ग्रहण करैं जो कि आपही साढ़े तीन पग करके मागते हैं ॥ ४६ ॥ हे मधुसूदन ! जो है उसी से सन्तोष करना चाहिये बढ़ते हुये विष्णुजी को देखकर ब्राह्मण, ऋषि व देवता ॥ ४७ ॥ आकाश में प्राप्त जनार्दन भगवान् की स्तुति करते भये कि हे देव ! आपकी जयहो हे अनन्त ! आपकी जयहो हे विष्णो ! जय होवै हे अच्युत ! आपकी जय हो ॥ ४८ ॥ हे मत्स्य ! आपकी जयहो तुम्हारे लिये नमस्कार है हे पृथ्वी को धारनेवाले, कूर्मजी ! आपकी जय हो नह, वाराहरूपधारी आपके लिये प्रणाम है और हे नृसिंह ! तुम्हारे लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ ४९ ॥ हे जामदग्न्य ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे लक्ष्मणसमेत, रामजी ! आप

मत्रयंकृत्वा धेरणींयाचसेस्वयम् ॥४६॥ यदस्तितेनकर्त्तव्यः सन्तोषोमधुसूदन॥ वर्द्धमानंहरिंदृष्ट्वा ब्राह्मणाऋषयःसु राः॥४७॥तुष्टुवुर्गगनेजातं भगवन्तंजनार्द्दनम् ॥ जयदेवजयानन्त जयविष्णोजयाच्युत ॥४८॥ जयमत्स्यनमस्तुभ्यं जयकूर्मधराधरम् ॥ वाराहनमस्तुभ्यं नरसिंहनमोनमः ॥ ४९ ॥ जामदग्न्यनमस्तुभ्यं जयरामसलक्ष्मण ॥ जय कृष्णजगन्नाथ जयदेवकिनन्दन ॥ ५० ॥ प्रणमामिबुधंकृष्णं कल्किनंप्रणमाम्यहम् ॥ नरोनारीतथास्तौति नारदोगगनंगतः ॥ ५१ ॥ योगिनःसनकाद्याये तेस्तुवन्तिजनार्द्दनम् ॥ गगनार्धंगतेकृष्णे वर्द्धमानेबलेःपुरः ॥ ५२ ॥ ऊर्द्ध्ववक्त्रास्थितास्सर्वे निरीक्षन्तेदिवाकरम् ॥ दृष्टच्छत्राकृतिस्तावत्पश्चाद्दूर्द्धङ्गतोहरिः ॥ ५३ ॥ चूडामणिरि वाभाति भास्करोहरिमस्तके ॥ दैत्यैर्निरीक्षितःसम्यग्ललाटेतिलकायते ॥ ५४ ॥ हरिःसंवर्द्धितोवेगात्कर्णेसोकुण्ड

की जय हो हे कृष्ण हे जगन्नाथ ! आपकी जयहो हे देवकिनन्दन ! आपकी जयहो ॥ ५० ॥ बुध व कृष्णजीको मैं प्रणाम करता हूं और कल्की को मैं प्रणाम करता हूं पुरुष व स्त्री स्तुति करती हैं और आकाश में प्राप्त नारदजी स्तुति करते हैं ॥ ५१ ॥ और जो सनकादिक योगी हैं वे विष्णुजीकी स्तुति करते हैं और बलि के आगे बढ़ते हुये श्री कृष्णजी जब आकाश के अर्धभाग को गये ॥ ५२ ॥ तब ऊपर मुख किये सब स्थित हुये और सूर्यनारायण को देखने लगे तबतक छतुरी के आकार वामनजी देखपड़े पश्चात् विष्णुजी ऊपर को गये ॥ ५३ ॥ और विष्णुजीके मस्तक में सूर्य नारायण चूड़ामणि की नाईं शोभित थे व दैत्यों से देखे हुये

वे मस्तक में तिलक की नाईं जान पड़ते थे ॥ ५४ ॥ और विष्णुजी जब वेग से बढ़े तो कान में ये सूर्य नारायण कुंडलकी नाईं देख पड़े व जब विष्णुजी उससे ऊँचे गये तो हृदय में कौस्तुभकी नाईं देख पडते थे ॥ ५५ ॥ उस समय इन्द्र ने गले में जयमाला को डाल दिया डरती हुई पृथ्वी कांपने लगी व आकाश में स्थित सूर्यमंडल कांपने लगा ॥ ५६ ॥ और क्या होगा यह विचार कर डरे हुये वे दैत्य सूर्य नारायण को देखते थे व विष्णु वामनजीके शरीर में सूर्य नारायण नाभि में कमल की नाईं जान पड़ते थे ॥ ५७ ॥ इस प्रकार विष्णुजी बढ़े व उन्हों ने दो पग पृथ्वी को ग्रहण किया और तीसरे पगका स्थान नहीं रहा क्योंकि सब ब्रह्माण्ड

लायते ॥ उच्चैर्गतिहरिस्सूर्यो हृदयेकौस्तुभायते ॥ ५५ ॥ वनमालातदाकण्ठे वासवेननिवेशिता ॥ पृथिवीकम्पतेभीता दिविस्थंसूर्यमण्डलम् ॥ ५६ ॥ किंभविष्यतिदैत्यास्ते भीताःपश्यन्तिभास्करम् ॥ नाभौपद्मायतेसूर्यो वामनस्यहरेस्तनौ ॥ ५७ ॥ एवंसंवर्द्धितोविष्णुर्जगृहेचपदद्वयम् ॥ स्थानंनास्तितृतीयस्य ब्रह्माण्डंसकलंकृतम् ॥ ५८ ॥ अङ्घ्रिदण्डोजगद्योनेर्ब्रह्मदण्डायतेतदा ॥ देवदानवगन्धर्वमनुष्योरगराक्षसैः ॥ ५९ ॥ पूज्यतेचरणोविष्णोस्स्तूयतेचानुमीयते ॥ धरानौक्रमदण्डोहि गन्धर्वैर्गीयतेगुणैः ॥ ६० ॥ ज्योतिश्चक्राक्षदण्डोहि हरिणानिर्मितस्स्वयम् ॥ जित्वेदंभुवनंगङ्गा ध्वजदण्डामरैःकृतः ॥ ६१ ॥ त्रिविक्रमाङ्घ्रिदण्डोयं कीर्तिदण्डायतेध्रुवम् ॥ वेगेनाक्षिप्यहरिणा नीतोब्रह्माण्डमस्तके ॥ ६२ ॥ प्राप्तेतन्मस्तकंभित्त्वा बहिर्यास्यतिवेगतः ॥ तावद्ब्रह्माण्डस्वर्गेयं विराडितिविस

किया गया याने दोही पगमे नाप लिया गया ॥ ५८ ॥ उस समय वामनजीका चरणदण्ड ब्रह्माके ब्रह्मदण्ड की नाईं जान पड़ता था और देवता, दानव, गंधर्व, मनुष्य नाग व राक्षस ॥ ५९ ॥ विष्णुजीके चरण को पूजते थे व स्तुति करते थे और गंधर्व गुणों से गाते थे व अनुमान करते थे कि पृथ्वीरूपी नाव के नापने का दण्ड है॥ ६० ॥ व विष्णुजीने ज्योतिश्चक्रके आंक का दण्ड आपही निर्माण किया है और इस लोक को जीतकर देवताओं ने गंगाजी के ध्वजदंडको बनाया है ॥ ६१ ॥ और यह वामनजीका दंड व यश निश्चय कर दंडकी नाईं है इसको विष्णुजी ने वेग से उठाकर ब्रह्माण्ड के मस्तक में प्राप्त किया है ॥ ६२ ॥ वहां प्राप्त होकर व

उस ब्रह्माण्ड के मस्तक को फोड़कर यह चरण वेगसे बाहर आवैगा तब तक ब्रह्माण्ड के स्वर्ग में यह विराट् ऐसा संज्ञक स्थित है ॥ ६३ ॥ जिस पुरुष ने बीज को रचा है वह परमात्मा ऐसा कहा जाता है और उससे यह सब पैदा हुआ है जो कि चरण के आगे स्थित है ॥ ६४ ॥ व चरण के संकोचनसे भी ब्रह्माण्ड जर्जर होगया व भिन्न होगया व उस त्रिलोक में जल बाहर आगया ॥ ६५ ॥ उस समय विष्णुजीके चरण से उपजी हुई श्री गंगाजी मस्तक से निकली हैं तीनों लोकों को पवित्र करनेवाली जिन गंगाजी देवी को आपही शिवजीने धारण कियाहै ॥६६॥ वे स्वर्ग में स्वर्धुनी ऐसी गंगा पूजी जाती हैं व पृथ्वी में प्राप्त होती हुई गंगा ऐसी

ञ्ज्ञितः ॥ ६३॥ ससर्जबीजंपुरुषः परमात्मेतिनिगद्यते॥ तेनेदंसकलंजातं पादस्याग्रेऽव्यवस्थितम् ॥६४॥ ब्रह्माण्डञ्जर्जरंजातं पादसंकोचनादपि ॥ भिन्नंतस्मिन्समायातं बाह्यंतोयंजगत्त्रये॥६५॥विष्णुपादोद्भवागङ्गा मस्तकान्निःसृतातदा॥ त्रैलोक्यपावनीदेवी यारुद्रेणस्वयंधृता ॥ ६६ ॥ स्वर्धुनीपूज्यतेस्वर्गे गङ्गेतिगाङ्गतासती ॥ पातालेसायदाप्राप्ता ख्याताऽत्रिपथगैवसा ॥ ६७ ॥ तस्यास्स्मरणमात्रेण सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ दर्शनादश्वमेधस्य सम्पूर्णस्यफलंलभेत् ॥६८॥ स्नानमात्रेणनश्येत सप्तजन्मकृतोह्यघः ॥ स्नात्वासम्पूजयेद्यस्तु देवींहरिहरौनरः ॥ ६९ ॥ इन्द्रलोकमतिक्रम्यविष्णोर्लोकेमहीयते ॥ विष्णुपादोदकंपीत्वा स्नात्वानत्वातिसंयमी ॥ ७० ॥ उपोष्यदिवसंविष्णोर्मुक्तिंगच्छन्तिदेहिनः ॥ शुद्धभावस्वभावस्था विरक्ताजनभूमिषु ॥ ७१ ॥ संसारबन्धनंछित्त्वा यान्तितेपरमांगतिम् ॥ २७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेवस्त्रापथक्षेत्रमाहात्म्येबलेर्निग्रहवर्णनंनामत्रिंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३० ॥ * ॥

पूजी जाती हैं और जब वे गंगाजी पाताल में प्राप्त हुईं तो वही त्रिपथगा ऐसी कही गई हैं ॥ ६७ ॥ उन गंगाजी के स्मरणही से सब पापों का नाश होता है व दर्शन से संपूर्ण अश्वमेध यज्ञ का फल होता है ॥ ६८ ॥ व स्नान से सात जन्मों में किया हुआ पाप नाश होता है और नहाकर जो मनुष्य देवी व विष्णु तथा शिवजीको पूजता है ॥ ६९ ॥ वह इन्द्रलोक को नांघकर विष्णुजीके लोक में पूजा जाता है और विष्णुजीके चरणोदक को पीकर, स्नानकर व प्रणाम कर बड़ा संयमी पुरुष विष्णुजीके लोक में पूजा जाता है ॥ ७० ॥ और विष्णुजीके दिनको उपास कर प्राणी मुक्तिको प्राप्त होते हैं और शुद्ध भावके स्वभाव में स्थित तथा मनुष्यों व

भूमियों में विरक्त व प्राणी संसारके बन्धन को काटकर उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ । २७२ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांबलेर्निग्रहवर्णनंनामत्रिंशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः ॥ ३३० ॥

॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁

दो० । वामन बलिको छलि यथा पठयो है पाताल । कह्यो त्रिशत इकतीस में सोई चरित रसाल ॥ पार्वतीजी बोलीं कि बलि दैत्य ने उस दक्षिणा को देकर और विष्णुजीने ग्रहण कर क्या किया है उसको मुझसे कहिये क्योंकि मुझको बड़ा कौतुक है ॥ १ ॥ महादेवजी बोले कि हे देवि ! देवताओंसे ऐसा कहेहुये विष्णुजी ने पृथ्वी को लेकर व उस बलिके राज्य को लेकर मनुके पुत्र में नियुक्त किया ॥ २ ॥ और विष्णुजीने उन दैत्यों को आपही अन्य द्वीप में पठाया और पाताल में जिनका स्थान था वे वहीं बसाये गये ॥ ३ ॥ और बलिके निग्रह में देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ और पुत्र, मित्र व स्त्रियों को छोड़कर विष्णु वामनजी हिमालय को गये ॥ ४ ॥ व उत्तम वेष करके उन्हों ने विष्णुदेवजीको ध्यान किया व परमात्मा तथा द्रष्टा आत्मा को अपने हृदय में स्थित देखकर ॥ ५ ॥ और बलिको उनके शरीर में स्थित जानकर सुरराज इन्द्र आये तदनन्तर सुरेश्वर इन्द्रजीने बलिको पातालस्थायी किया ॥ ६ ॥ व बलिके निग्रह में बलि दैत्य के नगर का विध्वंस हुआ और वामनजी ने वामनस्थली में बसने के लिये मन किया ॥७॥ पुरातन समय जहां वामनजीने पंचाग्नि का साधन किया था वहां टिके हुये गर्ग

पार्वत्युवाच ॥ दत्त्वातांदक्षिणांदैत्यो गृहीत्वाकिंजनार्द्दनः ॥ चकारतन्मयाचक्ष्व परंकौतूहलंहिमे ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच ॥ एवमुक्तःसुरैर्देवि गृहीत्वामेदिनींहरिः ॥ गृहीत्वातद्बलेराज्यं मनुपुत्रेनियोजितम् ॥ २ ॥ द्वीपान्तरेचतेदैत्या विष्णुनाप्रेरितास्स्वयम् ॥ पातालनिलयायेतु तेतत्रैवनिवासिताः ॥ ३ ॥ देवानांपरमोहर्षः सञ्जातोबलिनिग्रहे ॥ पुत्र मित्रकलत्राणि त्यक्त्वाविष्णुर्हिमालयम् ॥ ४ ॥ विधायपरमंवेषं दध्यौदेवंजनार्द्दनम् ॥ परमात्मानमात्मानं द्रष्टारंचहृदिस्थितम् ॥ ५ ॥ तद्देहस्थंबलिंज्ञात्वा देवराजःसमागतः ॥ बलिंपातालनिलयं ततश्चक्रेसुरेश्वरः ॥ ६ ॥ बलिदैत्यपुरभ्रंशःसञ्जातोबलिनिग्रहे ॥ निवासायमनश्चक्रे वामनोवामनस्थलीम् ॥ ७॥ वामनेनपुरायत्र कृतपञ्चाग्निसाधनम् ॥ तत्रस्थंब्राह्मणंगर्गं पप्रच्छभगवान्हरिः ॥ ८ ॥ कस्मिन्स्थानेमयाकार्यं वैष्णवंनगरंवद ॥ यत्रभुक्तिर्भवेन्नॄणामन्तेमुक्ति

दोहा । सिद्धि सदन गज बदन के चरण कमल युग ध्याय । कियो प्रभासहुं खण्ड कर टीका सुख समुदाय ॥ १ ॥ नैमिष से पूरब दिशा ग्राम अहै मनुकोस । दौनाभारी नाम अस राजत देव भरोस ॥ २ ॥ मिश्रवंस अवतंस तहँ भे द्विज चण्डिप्रसाद । तिनके देविदयालु सुत कीन्हों यह अनुवाद ॥ ३ ॥ भूल चूक जो होय कहुं ताको देखि बहोरि । शोधहिं मम अपराध क्षमि यही प्रार्थना मोरि ॥ ४ ॥ जो नर याको पढ़ैं अरु सुनैं सदा चितलाय । करहिं शिवा शिवदेवजी तिनकी सदा सहाय ॥ ५ ॥ शुभम् ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

इति प्रभासखण्डंसम्पूर्णम् ॥

प्रथमवार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेख़ाने में छपा

सन् १९१० ई०

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतद्वारकाखण्डप्रारम्भः ॥

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतद्वारकामाहात्म्यस्य सूचीपत्रम् ॥

इति श्रीद्वारकामाहात्म्यस्य सूचीपत्रं समाप्तिं पफाणेति शम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतद्वारकामाहात्म्यखण्डप्रारम्भः ॥

दो० । गे मुनि सब प्रह्लाद ढिग विष्णु जानिबे काज । सोइ प्रथम अध्याय में चरित अहै सुखसाज ॥ श्रीशौनकजी बोले कि हे सूतजी ! बहुत पाखंडों से व्याप्त इस कलि नामक भयंकर युग में हमलोग किस प्रकार मधुसूदन विष्णुजी को पावैंगे ॥ १ ॥ और सदैव धर्म के आचार में परायण तीनों युगों के भी बीतने पर व भयंकर कलियुग प्राप्तहोने पर विष्णुभगवान् कहां हैं ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि दशरथ के पुत्र महाराज श्रीरामचन्द्रजी जब स्वर्ग को चलेगये तब दुष्टराजाओं के भार से पृथ्वी पीड़ित हुई ॥ ३ ॥ और देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिये पृथ्वी के भार को उतारने के कारण वसुदेव के वंश में साक्षात् जनार्दन कृष्णजी प्रकट हुए ॥ ४ ॥ और नन्द के व्रज में श्रीकृष्णदेव के जाने पर उस समय पूतना नाशकीगई और तृणावर्त के मारने पर व शकट (गाड़ा) लौटने पर ॥ ५ ॥ कालिय नाग के दमन करने पर व प्रलंबासुर के मारने पर गोवर्धन पर्वत के धारण करने व गोकुल की रक्षा करने पर ॥ ६ ॥ देवत्व में अभिषेक करने पर व इन्द्र के मदविहीन करने पर जब श्रीकृष्णदेव रासकी क्रीडा में रत हुए व केशी दानव नाश कियागया ॥ ७ ॥ और अक्रूर के वचनही से जब श्रीकृष्णजी मथुरापुरी में गये व

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीशौनक उवाच ॥ कथंसूतयुगेह्यस्मिन्रौद्रेवैकलिसंज्ञके ॥ बहुपाखण्डसङ्कीर्णे प्राप्स्यामोमधुसूदनम् ॥ १ ॥ युगत्रयेप्यतिक्रान्ते धर्माचारपरेसदा ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे कविष्णुर्भगवानिति ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ दिवंयातेमहाराजे रामेदशरथात्मजे ॥ दुष्टराजन्यभारेण पीडितेधरणीतले ॥ ३ ॥ देवानांकार्यसिद्ध्यर्थं भुवोभारावतारणात् ॥ वसुदेवकुलेसाक्षादाविर्भूतोजनार्दनः ॥ ४ ॥ नन्दव्रजङ्गतेदेवे पूतनानाशितातदा ॥ ॥ घातितेचतृणावर्ते शकटेपरिवर्त्तिते ॥ ५ ॥ दमितेकालियेनागे प्रलम्बेचनिषूदिते ॥ धृतेगोवर्द्धनेशैले परित्रातेचगोकुले ॥ ६ ॥ सुरत्वेचाभिषिक्तेच इन्द्रेहिविमदेकृते ॥ रासक्रीडारतेदेवे दारितेकेशिदानवे ॥ ७ ॥ अक्रूरवचनादेव मधुपुर्यांगतेहरौ ॥ हतेकुवल

कुवलयापीड हाथी मारागया व मल्लराज (चाणूर) नाश कियागया ॥ ८ ॥ तब दैत्यों का राजा भोजराज कंस मारागया और मथुरापुरी में उग्रसेन राजा का अभिषेक कियागया ॥ ९ ॥ और जरासंध की असंख्य भयंकर सेना के नष्ट होनेपर पृथ्वी में उत्तम राजसूय यज्ञ में शिशुपाल के मारे जाने पर ॥ १० ॥ जब महाभारत युद्ध निवृत्त हुआ व पृथ्वी में भार नष्ट हुआ तब यात्रा में यादववंश प्रभास को लायागया ॥ ११ ॥ और मद्यपान में लगे हुए व परस्पर वध के लिये तैयार यादववंश जब महाभयंकर कलह (झगड़ा) रूपी अस्त्र में जलगया ॥ १२ ॥ तब वहीं अस्त्र को धर कर जनार्दन श्रीकृष्णजी पृथ्वी में गये और पीपल की जड़ के आश्रित

यापीडे मल्लराजेचघातिते ॥ ८ ॥ कंसेराजनिदैत्यानां भोजराजेनिपातिते ॥ मधुपुर्याचाभिषिक्ते ह्युग्रसेनेनराधिपे ॥९॥ जरासन्धेबलेरौद्रे त्वसंख्यातेहतेक्षितौ ॥ राजसूयेक्रतुवरे चैद्येचविनिपातिते ॥ १० ॥ निवृत्तेभारतेयुद्धे भारेचक्षयितेभुवि ॥ यात्रायान्तुसमानीते प्रभासंयादवेकुले ॥ ११ ॥ मद्यपानमसक्तेतु परस्परवधोद्यते ॥ कलहास्त्रेमहारौद्रे प्रदग्धे यादवेकुले ॥ १२ ॥ अस्त्रंसंन्यस्यतत्रैव गतेतुपृथिवीतले ॥ अश्वत्थमूलमाश्रित्य समासीनेजनार्द्दने ॥ १३ ॥ व्याधप्रहारभिन्नाङ्घ्रिपरित्यक्तकलेवरे ॥ स्वधाम्निसंस्थितेदेवे पार्थेचपुनरागते ॥ १४ ॥ प्लावितायांयदोःपुर्यां सागरेणसमन्ततः ॥ शक्रप्रस्थंगतेवज्रे कारयित्वाहरेर्गृहम् ॥ १५ ॥ द्वापरेचव्यतिक्रान्ते धर्माधर्मविमिश्रिते ॥ सम्प्राप्तेचमहारौद्रे युगेवैकलिसंज्ञके ॥ १६ ॥ क्षीयमाणेचसद्धर्मे वेदवादवहिःकृते ॥ एकपादस्थितेधर्मे वर्णाश्रमविवर्जिते ॥ १७ ॥ तस्मिन्युगेविलुलिते ऋषयोवनचारिणः ॥ सङ्गत्यामन्त्रयन्सर्वे गर्गच्यवनगालवाः ॥ १८ ॥ असितोदेवलोधौम्यो मुनिरुद्दा

होकर बैठगये ॥ १३ ॥ और बहेलिया के मारने से भिन्न चरण के कारण शरीर छोड़ने पर व श्रीकृष्णदेव के अपने धाम में स्थित होने व फिर अर्जुनजी के आने पर ॥ १४ ॥ जब समुद्र ने सब ओर से यदुपुरी को डुबालिया और विष्णुजी के मन्दिर को बनाकर वज्र दिल्ली को चलेगये ॥ १५ ॥ तब धर्म व अधर्म से मिले हुए द्वापर के बीतने पर व कलि नामक महाभयंकर युग के प्राप्त होने पर ॥ १६ ॥ उत्तम धर्म के क्षीणहोने व वेदवाद से बाहर करने पर वर्ण व आश्रमों से रहित धर्म के एकचरण से स्थित होनेपर ॥ १७ ॥ व उस युगके विलुलित होने पर वनमें घूमनेवाले सब ऋषिलोगों ने मिलकर सलाह किया याने गर्ग, च्यवन, गालव ॥ १८ ॥ असित, देवल, धौम्य व

उद्दालक मुनि इन और अन्य मुनियों ने परस्पर कहा ॥ १९ ॥ कि अहो आश्चर्य है कलियुग से व्याप्त दिगन्तरोंवाली उस पृथ्वी को देखिये कि सब ओर से दौड़ते हुए चोरों से प्रजा पीडित कीजाती है ॥ २० ॥ जो पुरुष कि अधर्म में तत्पर व सत्य और कोमलता से विहीन कियेगये हैं हे मुनिश्रेष्ठो ! भगवान् विष्णुजी को हम लोग कैसे पावेंगे ॥ २१ ॥ और संसाररूपी समुद्र में गिरे हुए व समागम को प्राप्त हमलोगों को कौन उतारैगा और तीनों युगों में जो विष्णुजी थे उन की उत्पत्ति कलियुग में नहीं है ॥ २२ ॥ व उन कमललोचन विष्णुजी के विना हमलोग कैसे कलियुग में होवैंगे उन दुःखित तपस्वियों के इस प्रकार चिन्तन करने

लकस्तथा ॥ एतेचान्येचमुनयः परस्परमवोचत ॥ १९ ॥ अहोपश्यध्वमुर्वीतां कलिव्याप्तदिगन्तराम् ॥ समन्तात्परि धावद्भिर्दस्युभिर्बाध्यतेप्रजा ॥ २० ॥ अधर्मपरमैःपुम्भिः सत्यार्जवविनाकृतैः ॥ भगवन्तंकथंविष्णुं प्राप्स्यामोमुनिस त्तमाः ॥ २१ ॥ कोवाभवाब्धौपतितांस्तारयिष्यतिसङ्गतान् ॥ नकलौसम्भवस्तस्य त्रियुगेमधुसूदनः ॥ २२ ॥ तंविना पुण्डरीकाक्षं कथंस्यामकलौयुगे ॥ तेषांचिन्तयतामेवं दुःखितानांतपस्विनाम् ॥ २३ ॥ उवाचवचनंतेभ्य ऋषिरुद्दा लकस्तथा ॥ उद्दालक उवाच ॥ यावन्नकलिदोषेण लिप्यामोमुनिसत्तमाः ॥ २४ ॥ अपापाब्रह्मसदनं तावद्द्रक्ष्याममा चिरम् ॥ पृच्छामलोकेधातारं स्थितिंविष्णोःकलौयुगे ॥ २५ ॥ यदिविष्णोःस्थितिर्नस्याद्ब्रह्मणोवचनेनहि ॥ विष्णुंवि नातदाविप्रास्त्यक्ष्यामःस्वंकलेवरम् ॥ २६ ॥ विनाभगवतोलोके कःस्थास्यतिकलौयुगे ॥ तच्छ्रुत्वाऋषयस्तस्य वचनं संशितव्रताः ॥२७॥ साधुसाध्वितिचप्रोक्ता प्रस्थिताब्रह्मणोन्तिकम् ॥ कथयन्तःकथांविष्णोः स्वरूपमनुवर्त्तनम् ॥२८॥

पर ॥२३॥ उन से उद्दालक ऋषि ने वचन कहा उद्दालकजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठो ! जब तक हमलोग कलियुग के दोष से न लिप्त होवैं ॥ २४ ॥ तबतक पापरहित हमलोग शीघ्रही ब्रह्ममन्दिर को देखैं व कलियुग में विष्णुजी की संसार में स्थिति को ब्रह्माजी से पूछैं ॥ २५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ब्रह्माजी के वचन से यदि विष्णुजी की स्थिति न होगी तो विष्णुजी के विना हमलोग शरीर को छोड़ देवैंगे ॥ २६ ॥ क्योंकि कलियुग में भगवान् के विना संसार में कौन स्थित होगा उसके उस वचन को सुनकर प्रशंसित व्रतोंवाले ऋषिलोग ॥ २७ ॥ बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहकर ब्रह्मा के समीप प्राप्तहुए और विष्णुजी की कथा व स्वरूपके अनुवर्तन को कहते हुए ॥ २८ ॥

सब प्रसन्न महर्षिलोग ब्रह्मा के समीप गये व उस समय उन्होंने उत्तम आसन पै बैठे हुए ब्रह्मादेवजी को देखा ॥ २९ ॥ तब मूर्तिमान् व बिन मूर्तिवाले भूतगणों से घिरे हुए चतुरानन ब्रह्मादेवजी को देखकर वे पृथ्वी में दंडा की नाई प्रणाम करते भये ॥ ३० ॥ और देवदेव ब्रह्माजी को प्रणाम कर उस समय उन्होंने स्तोत्र से स्तुति किया ऋषिलोग बोले कि हे कमलोत्पन्न, चतुर्मुख, अक्षत, अव्यय ! तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ व सृष्टि को करनेवाले आप के लिये नमस्कार होवै व हे पितामहजी ! आप के लिये नमस्कार होवै इस प्रकार मुनियों से स्तुति किये हुए ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ और पाद्य व अर्घ्य से पूजकर ब्रह्मा ने मुनि-

तपसाप्रययुस्सर्वे संहृष्टाब्रह्मणोन्तिकम् ॥ ददृशुस्तेतदादेवमासीनंपरमासने ॥ २९ ॥ पितामहंभूतगणैर्मूर्त्तामूर्त्तैर्वृतंतदा ॥ दृष्ट्वाचतुर्मुखंदेवं दण्डवत्प्रणताःक्षितौ ॥ ३० ॥ प्रणम्यदेवदेवन्तु स्तोत्रेणतुतुषुस्तदा ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नमस्तेपद्मसम्भूत चतुर्वक्त्राक्षताव्यय ॥ ३१ ॥ नमस्तेसृष्टिकर्त्रेस्तु पितामहनमोस्तुते ॥ एवंस्तुतःसमुनिभिः सुप्रीतःकमलोद्भवः ॥ ३२ ॥ पाद्येनार्घ्येणाभिनन्द्य पप्रच्छमुनिपुङ्गवान् ॥ किमागमनकृत्यंवो ब्रूततत्त्वेनपुत्रकाः ॥ ३३ ॥ कुशलंवोमहाभागाः पुत्रशिष्याग्निबन्धुषु ॥ ऋषय ऊचुः ॥ भगवत्प्रसादात्कुशलं सम्प्राप्तंतपसःफलम् ॥ ३४ ॥ यद्भवन्तम्प्रपश्यामः सर्वदेवगुरुम्प्रभो ॥ शृणुतत्कारणंसर्वं येनप्राप्तास्तवान्तिके ॥ ३५ ॥ युगत्रयेव्यतिक्रान्ते कृताद्येद्वापरान्तके ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे कविष्णुःपृथिवीतले ॥ ३६ ॥ यंदृष्ट्वापरमाम्मुक्तिं यास्यामोमुक्तबन्धनाः ॥ ३७ ॥

श्रेष्ठों से पूंछा कि हे पुत्रो ! तुमलोगों के आने का क्या कार्य है उसको यथार्थ कहिये ॥ ३३ ॥ हे महाभागो ! तुमलोगों के पुत्र, शिष्य व अग्नि और बन्धुवों में कुशल है ऋषिलोग बोले कि आप की प्रसन्नता से कुशल है और तपस्या का फल मिलगया ॥ ३४ ॥ जो कि हे प्रभो ! सब देवताओं के गुरु आप को हमलोग देखते हैं उस सब कारण को सुनिये कि जिस से हमलोग तुम्हारे समीप प्राप्त हुए हैं ॥ ३५ ॥ कि सतयुग से लगाकर द्वापर के अन्त तक तीनों युगों के व्यतीत होने पर व भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर पृथ्वीतल में विष्णुजी कहां हैं ॥ ३६ ॥ कि जिन को देखकर बन्धन से छूटे हुए हमलोग उत्तम मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ ३७ ॥

ब्रह्माजी बोले कि तुमलोग विषाद को मत प्राप्त होवो मैं तुमलोगों के हित को उपदेश करूंगा ॥ ३८ ॥ उस कारण तुमलोग पाताल को जावो जहां कि दैत्यों में उत्तम प्रह्लादजी हैं वहां जाकर दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लादजी से पूंछो ॥ ३९ ॥ वे विष्णुजी के स्थान को जानैंगे और तुमलोगों से सब कहैंगे परमात्मा ब्रह्माजी के उस वचन को सुनकर ॥ ४० ॥ देवेश ब्रह्माजी को प्रणाम कर वे तपस्यारूपी धनवाले महर्षिलोग चले व दैत्यों में उत्तम प्रह्लादजी की स्तुति करते हुए प्रसन्नमनवाले वे गये ॥ ४१ ॥ कि वह दैत्यों का राजा प्रह्लाद धन्य है जो कि विष्णुजी को जानता है इस प्रकार चिन्तन करते हुए वे पृथ्वीतल में प्राप्त हुए ॥ ४२ ॥ और दैत्य के

ब्रह्मोवाच ॥ माविषादंव्रजध्वंहि उपदेक्ष्यामिवोहितम् ॥ ३८ ॥ ततोव्रजध्वम्पातालं यत्रास्तेदैत्यसत्तमः ॥ तंगत्वापरिपृच्छध्वं प्रह्लादंदैत्यसत्तमम् ॥ ३९ ॥ सज्ञास्यतिहरेःस्थानं युष्मान्सर्ववदिष्यति ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य ब्रह्मणःपरमात्मनः ॥ ४० ॥ प्रणिपत्यचदेवेशं प्रस्थितास्तेतपोधनाः ॥ जग्मुःसंहृष्टमनसः स्तुवन्तोदैत्यसत्तमम् ॥ ४१ ॥ धन्यःस दैत्यराजोयं योजानातिजनार्द्दनम् ॥ इतिचिन्तयमानास्ते सम्प्राप्ताधरणीतलम् ॥ ४२ ॥ गत्वादैत्यस्यनगरं विविशुर्भुवनोत्तमम् ॥ दूरादेवसतान्दृष्ट्वा बलिर्वैरोचनिस्तथा ॥ ४३ ॥ प्रत्युत्थायार्हणांचक्रे प्रह्लादेनसमन्वितः ॥ मधुपर्कञ्च धेनुञ्च दत्त्वाचार्घन्तथैवच ॥ ४४ ॥ उवाचप्राञ्जलिर्भूत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ स्वागतंवोमहाभागाः सुप्रभारजनी मम ॥ ४५ ॥ यद्भवन्तोनुपश्यामि ब्रूतकिङ्करवाणिवः ॥ एवंहिदैत्यराजेन सत्कृताद्विजसत्तमाः ॥ ४६ ॥ ऊचुःसंहृष्टमनसो दानवेन्द्रसुतंतदा ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कार्यार्थिनस्तुसम्प्राप्ता प्रह्लादहरिवल्लभ ॥ ४७ ॥ तदस्माकंमहाबाहो त्राताभव

नगर को जाकर उत्तम मन्दिर में पैठे व विरोचन के पुत्र उस बलि ने उन ऋषियों को दूरही से देखकर ॥ ४३ ॥ प्रह्लाद समेत आगे उठकर पूजन किया और मधुपर्क, गऊ व अर्घ को देकर ॥ ४४ ॥ हाथों को जोड़कर प्रसन्न चित्त से कहा कि हे महाभागो ! आपलोगों का आना अच्छा हुआ मेरी रात्रि उत्तम प्रभातवाली थी ॥ ४५ ॥ जो कि मैं आपलोगों को देखता हूं कहिये कि मैं तुमलोगों का क्या कार्य करूं इस प्रकार दैत्योंके राजा से सत्कार कियेहुए द्विजोत्तमलोग ॥ ४६ ॥ उससमय प्रसन्नमन होकर दानवेन्द्र के पुत्र प्रह्लादजी से बोले ऋषिलोग बोले कि हे हरिप्रिय, प्रह्लादजी ! कार्य को चाहनेवाले हमलोग प्राप्त हुए हैं ॥ ४७ ॥ इसलिये हे महाबाहो ! संसार-

रूपी समुद्र से हमलोगों के रक्षक होवो हे दैत्य ! इस कलिसंज्ञक भयंकर युग में किस प्रकार ॥ ४८ ॥ हमलोग डरे हुए प्राणियों को अभय देनेवाले विष्णुजी के विना होवैंगे इस युग में अधर्म से सनातन धर्म जीत लियागया ॥ ४९ ॥ व झूंठ से सत्य जीतागया और शूद्रों से ब्राह्मण जीतेगये और राजारूपी म्लेच्छों से ब्राह्मण मारे जाते हैं ॥ ५० ॥ वर्णों व आश्रमों से रहित प्रायः इस युग के विचलित होनेपर व वेदमार्ग के लुप्त होनेपर विष्णुभगवान् कहां हैं ॥ ५१ ॥ विना ज्ञान, विना ध्यान व विना इन्द्रियों के रोंकने से भगवान् जहां प्राप्त हुए हों उस गुप्त स्थान को हमलोगों से कहिये ॥ ५२ ॥ हे दैत्यराज ! तुम हमलोगों के मित्रमार्ग को दि-

भवार्णवात् ॥ कथंदैत्ययुगेह्यस्मिन्रौद्रेवैकलिसंज्ञके ॥ ४८ ॥ भविष्यामोविनाविष्णुं भीतानामभयप्रदम् ॥ ह्यस्मिन् युगेह्यधर्मेण जितोधर्मःसनातनः ॥ ४९ ॥ अनृतेनजितंसत्यं विप्राश्चवृषलैर्जिताः ॥ ब्राह्मणाश्चापिवध्यन्ते म्लेच्छैराजन्यरूपिभिः ॥ ५० ॥ अस्मिन्विलुलितप्राये वर्णाश्रमविवर्जिते ॥ वेदमार्गेप्रलुप्तेच कविष्णुर्भगवानिति ॥ ५१ ॥ विनाज्ञानाद्विनाध्यानाद्विनाचेन्द्रियनिग्रहात् ॥ सम्प्राप्तोभगवान्यत्र तद्गुह्यंकथयस्वनः ॥ ५२ ॥ दैत्यराजत्वमस्माकं सुहृन्मार्गप्रदर्शकः ॥ कथयस्वमहाभाग यत्रातिष्ठतिकेशवः ॥ ५३ ॥ एवंसर्वैर्द्विजैर्मुख्यैः सम्पृष्टोदैत्यसत्तमः ॥ प्रणम्यब्राह्मणान्सर्वान् भक्त्यासंहृष्टमानसः ॥ ५४ ॥ नमस्कृत्यसदेवेभ्यो ब्रह्मणेपरमात्मने ॥ भगवद्भक्तिसंयुक्तो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ सर्वेषामपि देवानां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ भवन्तो वै पूज्यतमा देवानां च तथैव

खानेवाले हो हे महाभाग ! जहां विष्णुजी स्थित होवैं उसको कहिये ॥ ५३ ॥ इस प्रकार मुख्य ब्राह्मणों से भलीभांति पूंछे हुए वे दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लादजी सब ब्राह्मणों को भक्ति से प्रणाम कर प्रसन्नमन हुए ॥ ५४ ॥ और विष्णु की भक्ति से संयुत उन प्रह्लादजी ने देवताओं के लिये व परमात्मा ब्रह्मा के लिये प्रणाम कर कहने का प्रारंभ किया ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । दुर्वासा मुनिनाथ जिमि शाप रुक्मिणिहिं दीन । सो दूजे अध्याय में वर्णित चरित नवीन ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि सब देवताओं व दैत्य, दानव और राक्षसों

के आपलोग श्रेष्ठ पूजने योग्य हो वैसेही देवताओं के भी हो ॥ १ ॥ मैं पूजनीय आपलोगों की आज्ञा से व विष्णुजी की प्रसन्नता से भगवान् विष्णुजी के स्थान को कहता हूं सुनिये ॥ २ ॥ कि पश्चिम समुद्र के किनारे आश्रित होकर कुशस्थली स्थित है जो कि पहले कुश से बनाई गई है ॥ ३ ॥ जहा पर समुद्र से संगम को प्राप्त गोमती जी बहती हैं हे ब्राह्मणो ! वह द्वारावती व आनर्त ऐसी कही जाती है ॥ ४ ॥ उस में भुक्ति व मुक्ति को देनेवाले विश्वात्मा विष्णुजी बसते हैं जो कि सोलह कलाओं से संयुत व बारह मूर्तियों से युक्त हैं ॥ ५ ॥ वही उत्तम धाम है और वही उत्तम स्थान है और वह द्वारका धन्य है जहां कि मधुसूदन विष्णुजी

च ॥ १ ॥ अनुज्ञयातुपूज्यानां प्रसादात्केशवस्यहि ॥ अवस्थानंभगवतः कथयामिनिबोधत ॥ २ ॥ पश्चिमस्यसमुद्रस्य तीरमाश्रित्यतिष्ठति ॥ कुशस्थलीतुयापूर्वं कुशेननिर्मितापुरी ॥ ३ ॥ वहतेगोमतीयत्र सागरेणचसङ्गता ॥ द्वारावतीतुसा विप्रा आनर्तेतिप्रकीर्त्यते ॥ ४ ॥ तस्यांवसतिविश्वात्मा भुक्तिमुक्तिप्रदोहरिः ॥ कलाषोडशसंयुक्तो मूर्त्तिद्वादशभि र्युतः ॥ ५ ॥ तदेवपरमंधाम तदेवपरमम्पदम् ॥ द्वारकासाचवैधन्या यत्रास्तेमधुसूदनः ॥ ६ ॥ यत्रकृष्णश्चतुर्बाहुः शङ्खच क्रगदाधरः ॥ नरामुक्तिप्रयास्यन्तियत्रगत्वाकलौयुगे ॥ ७ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य प्रह्लादस्यमहात्मनः ॥ विस्मयाविष्टमन सस्तप्रूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ ८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ क्षयंयदुकुलेयाते भारेचापिहृतेभुवि ॥ प्रभासेयादवश्रेष्ठः स्वस्थानमगम द्धरिः ॥ ९ ॥ द्वारावत्यांप्लावितायां समन्तात्सागरेणहि ॥ कथंसभगवांस्तत्र कलौदैत्यप्रकीर्तितः ॥ १० ॥ कथंयातःस

हैं ॥ ६ ॥ व जहा पर शंख, चक्र व गदा को धारनेवाले चतुर्भुज कृष्णजी हैं और जहा जाकर कलियुग में मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ ७ ॥ उन महात्मा प्रह्लाद के उस वचन को सुनकर विस्मय से संयुक्त चित्तवाले द्विजोत्तमों ने उन प्रह्लादजी से कहा ॥ ८ ॥ ऋषि लोग बोले कि प्रभास में यदुवंश के नाश होने पर व पृथ्वी में भार के भी हरजाने पर विष्णु जी अपने स्थान को चले गये ॥ ९ ॥ और जब सब ओर से समुद्र ने द्वारकापुरी को डुबालिया तब हे दैत्य ! वे विष्णु भगवान् वहा कैसे कलियुग में कहे गये हैं ॥ १० ॥ कैसे इस यदुवंश को समाप्तकर गये हैं और कैसे विष्णुजी पृथ्वी में प्राप्त हुए आनर्त देश में स्थित विष्णुजी के इस चरित्र

को विस्तार से कहो ॥ ११ ॥ प्रह्लादजी बोले कि जब उग्रसेन राजा पृथ्वी का राज्य करने लगा तब इस यदुपुरी में सब ओर से श्रीकृष्णजी शोभित हुए ॥ १२ ॥ और रामाभिरमण रमानाथ विष्णुजी के रमण करने पर एक समय सभा में यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णजी के बैठने पर ॥ १३ ॥ कीजाती हुई अनेक विचित्र कथाओं से उद्धवजी ने यात्रा में प्राप्त अत्रिजी के पुत्र पापरहित व श्रेष्ठ दुर्वासाजी को कहा उस वचनको सुनकर अचानकही उठकर भगवान् श्रीकृष्णजी रुक्मिणीके घर को ॥ १४।१५ ॥ प्रसन्नमन से गये व विश्वशक्ति से पूजित श्रीकृष्णजी ने आकर प्राप्त हुए ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासाजी को रुक्मिणी जी से कहा ॥ १६ ॥ कि जिसलिये नष्टपापात्मा

माप्यैतत्कथंविष्णुर्महीतले ॥ स्थितस्यानर्तविषये चैतद्विस्तरतोवद ॥ ११ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ उग्रसेनेनरपतौ प्रशासतिवसुन्धराम् ॥ कृष्णेयदुपुरीमेतां शोभमानेसमन्ततः ॥ १२ ॥ रममाणेरमानाथे रामाभिरमणेहरौ ॥ एकदातुसमासीने सभायांयदुसत्तमे ॥ १३ ॥ कथाभिःक्रियमाणाभिर्विचित्राभिरनेकधा ॥ उद्धवःकथयामास प्रवरञ्चात्रिनन्दनम् ॥ १४ ॥ यात्रायामनुसम्प्राप्तं दुर्वाससमकिल्बिषम् ॥ तच्छ्रुत्वासहसोत्थाय भगवान्रुक्मिणीगृहम् ॥ १५ ॥ जगामहृष्टमनसा विश्वशक्तिपुरस्कृतः ॥ आगत्योवाचवैदर्भीं सम्प्राप्तंऋषिसत्तमम् ॥ १६ ॥ यतोनिर्धूतपापात्मा सोऽत्रिपुत्रोमहायशाः ॥ आतिथ्येनार्चितोविप्रः सदास्यतिमहोदयम् ॥ १७ ॥ गृहिणीनगृहेयस्य सत्पात्रगमनम्भवेत् ॥ तस्यदेवानगृह्णन्ति पितरश्चोदकंतथा ॥ १८ ॥ तदागच्छस्वगच्छामो निमन्त्रयत्वमत्रिजम् ॥ तथेत्युक्त्वाचसादेवी रथमारुरुहेसती ॥ १९ ॥ रथमारुह्यदेवेशो रुक्मिण्यासहितोहरिः ॥ जगामतत्रयत्रास्ते दुर्वासामुनिसत्तमः ॥ २० ॥ दृष्ट्वा

वाले वे अत्रि के पुत्र बड़े यशस्वी दुर्वासाजी हैं उस कारण आतिथ्य से पूजे हुए वे दुर्वासा ब्राह्मण बड़े ऐश्वर्य को देवैंगे ॥ १७ ॥ जिसके घर में स्त्री न होवै और उत्तम पात्र का गमन होवै तो उसके जल को देवता व पितर नहीं ग्रहण करते हैं॥ १८॥ इसलिये आइये चलैं तुम अत्रि के पुत्र दुर्वासाजी को निमंत्रण करो बहुत अच्छा यह कहकर वे पतिव्रता रुक्मिणी देवीजी रथ पै चढ़ीं ॥ १९ ॥ और रथ पै चढ़कर देवेश श्रीकृष्णजी रुक्मिणी समेत वहां गये जहां कि दुर्वासा मुनिश्रेष्ठजी थे ॥ २० ॥

कापालिन के आगे करवीरक्षेत्र में भली भांति नहाये व तपस्या से जलते हुए दुर्वासाजी को समुद्र के किनारे देखकर ॥ २१ ॥ व भक्ति से प्रणाम कर भगवान् श्री कृष्णजी ने कुशल पूंछा पश्चात् विदर्भ की कन्या रुक्मिणीजी ने भी प्रणाम किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर दर्शन के लिये प्राप्त उन रुक्मिणी व श्रीकृष्णजी को देख कर दुर्वासाजी ने उन दोनों को स्वागत से पूजकर वहां कुशल पूंछा ॥ २३ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे कृष्णजी ! सबकहीं कुशल है और इस समय तुम्हारा कहां निवास है व स्त्रियां और धन कितने हैं इसको विस्तार से कहिये ॥ २४ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! समुद्र ने मुझ को बारह योजन पृथ्वी दिया है

ज्वलन्तंतपसा कूलेनदनदीपतेः ॥ कापालिनस्यपुरतः सुस्नातंकरवीरके ॥ २१ ॥ प्रणम्यभगवान्भक्त्या पप्रच्छा नामयंतथा ॥ पश्चाद्विदर्भतनया रुक्मिण्यपिप्रणामकृत् ॥ २२ ॥ दुर्वासाश्चततोदृष्ट्वा दर्शनार्थमुपस्थितौ ॥ पप्रच्छकु शलंतत्र स्वागतेनाभिनन्द्यतौ ॥ २३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ कुशलंकृष्णसर्वत्र कुत्रवासस्तवाधुना ॥ कतिदाराधनान्येव मेतद्विस्तरतोवद ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ समुद्रेणप्रदत्तामे भूमिर्द्वादशयोजना ॥ तस्यांनिवेसिताब्रह्मन् पुरीहैम मयीमया ॥ २५ ॥ प्रासादास्तत्रसौवर्णा नवलक्षाणिसंख्यया ॥ तस्यांवसामिसंहृष्टस्त्वत्प्रसादात्सुनिर्भयः ॥ २६ ॥ त च्छ्रुत्वावचनंतस्य विस्मयाविष्टमानसः ॥ प्रत्युवाचसदुर्वासाः प्रहस्यमधुसूदनम् ॥ २७ ॥ वसन्तितावकायेच तेषांसंख्यां वदस्वमे ॥ यावत्यश्चमहिष्यःस्युः पुत्राःपरिजनास्तथा ॥ २८ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ ब्रह्मन्षोडशसाहस्रं भार्याचाष्टा धिकाममं ॥ तासांमध्येश्रेष्ठतमा विदर्भाधिपतेःसुता ॥ २९ ॥ एकैकस्यांदशसुताः कन्याचैकाममप्रजा ॥ षट्पञ्चा

उसमें मैंने सुवर्णमयी पुरी को बनाया है ॥ २५ ॥ उसमें गिनती से नव लाख सोने के मन्दिर हैं उसमें तुम्हारी प्रसन्नता से निडर होकर प्रसन्न होता हुआ मैं बसता हूं ॥ २६ ॥ उन विष्णुजी के उस वचन को सुनकर विस्मययुक्त चित्तवाले उन दुर्वासाजी ने हँसकर विष्णुजी से कहा ॥ २७ ॥ कि जो तुम्हारे वंशवाले बसते हैं उन की संख्या को मुझ से कहो और जितनी स्त्रियां व पुत्र तथा परिजन होवैं उन को कहिये ॥ २८ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! आठ अधिक सोलह हज़ार मेरे स्त्रियां हैं उन के मध्य में अधिक श्रेष्ठ विदर्भाधीश की कन्या रुक्मिणीजी हैं ॥ २९ ॥ और एक एक स्त्री में दश दश पुत्र और एक कन्या मेरे सन्तान है और

छप्पन करोड़ मेरे परिवार के लोग हैं ॥ ३० ॥ और जो शेष प्रजा हैं उन की संख्या नहीं है उस वचन को सुनकर चिन्तन किया कि यह क्या है और विस्मित हुए कि ॥ ३१ ॥ आश्चर्य है समुद्र के आश्रित होकर टिकते हुए अनंत पराक्रमवाले विष्णुजी की अनंत सृष्टि के करने में इस प्रवृत्ति को देखिये ॥ ३२ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे महाबाहो ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ कहिये मैं तुम्हारा क्या कार्य करूं तुम्हारे दर्शन से मेरा मन अधिक प्रसन्न है ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि यदि आप प्रसन्न हो तो मेरे घरको चलिये तुम्हारे चरणकमल को मस्तक से धारण कर तदनन्तर पवित्रता को प्राप्त होऊं ॥ ३४ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे माधव !

शच्चसंख्याकाः कोट्यःपरिजनाममम ॥ ३० ॥ शेषाःप्रकृतयोब्रह्मंस्तेषांसंख्यानविद्यते ॥ तच्छ्रुत्वाचिन्तयामास किमेतदितिविस्मितः ॥ ३१ ॥ अहोऽनन्तवीर्यस्य ह्यब्धिमाश्रित्यतिष्ठतः ॥ अनन्तसर्जकर्तृत्वे प्रवृत्तिर्दृश्यतामियम् ॥ ३२ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ स्वागतन्तेमहाबाहो ब्रूहिकिङ्करवाणिते ॥ दर्शनेनत्वदीयेन प्रहृष्टम्मेमनोधिकम् ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ यदिप्रसन्नोभगवांस्तदागच्छतुमेगृहे ॥ शिरसाधार्यपादाब्जं ततोयामिपवित्रताम् ॥ ३४ ॥ दुर्वासाउवाच ॥ अक्षमासारसर्वस्वं किंमांनयसिमाधव ॥ नयमांयदिमद्वाक्यं करोषिसहभार्यया ॥ ३५ ॥ एवमस्त्वितिचोक्त्वातम्प्रस्थितःस्वरथेनहि ॥ तंदृष्ट्वाप्रस्थितंकृष्णं प्रहस्योवाचरोषतः ॥ ३६ ॥ यदिमांनेतुकामोसि सभार्यस्त्वंरथंवह ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ यथायथादिशसिमां विप्रकर्त्तास्मितत्तथा ॥ त्वयाकृपालुनाब्रह्मन् पवित्रोहंसबान्धवः ॥ ३७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तदाचऋषिवर्योसौ युक्त्वादेवींस्वकेरथे ॥ तथैवपुण्डरीकाक्षं याहियाहीत्यभाषत ॥ ३८ ॥ तंदृष्ट्वादेवताः

अक्षमासार व सर्वस्ववाले मुझ को क्यों लिये जाते हो और यदि स्त्री समेत मेरे वचन को करिये तो मुझ को ले चलिये ॥ ३५ ॥ ऐसाही होवैगा यह उन से कह कर श्रीकृष्णजी अपने रथ के द्वारा चले और चले हुए उन श्रीकृष्णजीको देखकर दुर्वासाजी हँसकर क्रोध से बोले ॥ ३६ ॥ कि यदि तुम मुझको ले जाना चाहते हो तो समेत तुम रथ को ले चलो श्रीकृष्णजी बोले कि हे विप्रजी ! मुझ को जैसी जैसी आज्ञा दोगे उस को वैसाही करूंगा हे ब्रह्मन् ! तुम दयालु से बांधवों समेत मैं पवि- होगया ॥ ३७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि उससमय ऋषियों में श्रेष्ठ इन दुर्वासाजी ने रुक्मिणी देवी व पुण्डरीकाक्षको अपने रथमें लगाकर चलिये चलिये ऐसा कहा ॥ ३८ ॥

रथ को लिये जाते हुए उन श्रीकृष्णजी को देखकर बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहते हुए सब देवताओं ने परस्पर कहा॥ ३९ ॥ कि अहो ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णदेवजी की उत्तम भक्ति को देखिये जो कि स्त्री समेत रथ को कन्धे पै करके लिये जाते हैं ॥ ४० ॥ सुरगणों से फूलों करके वृष्टि किये हुए स्त्री समेत श्रीकृष्णजी रथ को लेकर द्वारका को ले चले ॥ ४१ ॥ और उस रथ के लेचलने पर रुक्मिणी जी प्यासी हुई और परिश्रम से विकल लोचनोंवाली रुक्मिणीजी ने कृष्णजी से कहा ॥ ४२ ॥ कि क्रोधित ब्राह्मण को ले चलती हुई मैं भार से दुःखित होकर थक गई हूं हे कांत ! जल को पिलाकर मुझे अपने मन्दिर को ले चलिये ॥ ४३ ॥ उसके उस वचन

सर्वे वहमानंहरिंरथे ॥ साधुसाध्विवितिभाषन्त ऊचुःसर्वेपरस्परम् ॥ ३९ ॥ अहोब्रह्मण्यदेवस्य परांभक्तिंप्रपश्यत ॥ स्कन्धेकृत्वातुयोयानं वहतेसहभार्यया ॥ ४० ॥ विकीर्यमाणःकुसुमैः सुरसङ्घैर्जनार्द्दनः॥ जगामरथमारुह्य सभार्यो द्वारकाम्प्रति ॥ ४१ ॥ उह्यमानेरथेतस्मिन्रुक्मिणीतृषिताभवत् ॥ उवाचकृष्णंवैदर्भी श्रमव्याकुललोचना ॥ ४२ ॥ श्रान्ताभारपरिक्लिष्टा वहन्तीकोपितंद्विजम् ॥ पाययित्वोदकंकान्त नयमांमन्दिरंस्वकम् ॥४३॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्याः पदाक्रान्त्याधरातले॥ तस्मिंस्तामानयामास गङ्गांत्रिपथगांशुभाम् ॥ ४४ ॥ तद्दृष्ट्वानिर्मलंशीतं सुगन्धंपावनंजलम् ॥ पपौपिपासितादेवी रुक्मिणीजाह्नवीजलम् ॥ ४५ ॥ पीतंतथाजलंदृष्ट्वा चुकोपऋषिसत्तमः ॥ प्रज्वलज्ज्वलनप्रख्यः शशापपरमेश्वरीम् ॥ ४६ ॥ मामपृष्ट्वाजलंयस्माद्भूमिपृष्ठेजलंत्वया ॥ पीतंतस्माच्चकृष्णेन वियुक्तात्वंभविष्यसि ॥ ४७ ॥ एतावदुक्त्वावचनं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ परित्यज्यरथंविप्रो भूमावेवाध्यतिष्ठत ॥ ४८ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥

को सुनकर चरण के आक्रमण से उस पृथ्वी में त्रिपथगामिनी उत्तम गंगाजी को प्राप्त किया ॥ ४४ ॥ उस निर्मल, शीत, सुगन्धित व पवित्रकारक जल को देखकर प्यासी रुक्मिणी देवी ने गंगाजल को पिया ॥ ४५ ॥ और वैसे पिये हुए जल को देखकर ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासाजी ने क्रोध किया और जलती हुई अग्नि के समान दुर्वासाजी ने परमेश्वरी रुक्मिणी को शाप दिया ॥ ४६ ॥ कि जिस लिये मुझ से न पूंछकर तुम ने पृथ्वी में जल पिया है उस कारण तुम कृष्ण जी से वियोगिनी होगी ॥ ४७ ॥ इतना वचन कहकर क्रोध से लाल लोचनोंवाले दुर्वासा ब्राह्मण रथ को छोड़कर पृथ्वी में स्थित हुए ॥ ४८ ॥ प्रह्लादजी बोले कि

उस समय इस प्रकार शापित व अत्यन्तही विकल रुक्मिणी देवी ने रोदन किया व करुणापूर्वक श्रीकृष्णजी से कहा कि तुम्हारे विना मैं कैसे जाऊंगी ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे देवि! मैं प्रतिदिन दो समय तुम्हारे मन्दिर को आऊंगा और द्वार पै स्थित मुझ को जो देखता है वह तुम को देखता है ॥ ५० ॥ और मुझ को देखकर जो मनुष्य भक्ति से तुम को नहीं देखता है उस को आधी यात्राका फल होगा इस में सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥ इसके अनन्तर विलाप कर ब्रह्मण्य यदुनन्दन जी गये तदनन्तर उन्होंने पापरहित दुर्वासाजी को प्रसन्न कराया ॥ ५२ ॥ व उस समय बाहर उपवन को जाकर उन को पूजन किया और आपही चरणों को धोकर

एवंशप्तातदादेवी रुरोदातीवविह्वला ॥ उवाचकरुणंकृष्णं कथंयास्येत्वयाविना ॥ ४९ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ आयास्ये प्रत्यहंदेवि द्विकालंभवनंतव ॥ योमांपश्यतिद्वारस्थं सत्वामेवप्रपश्यति ॥ ५० ॥ माञ्चदृष्ट्वानरोयस्तु त्वान्नपश्यति भक्तितः ॥ अर्द्धयात्राफलंतस्य भविष्यतिनसंशयः ॥ ५१ ॥ विलप्यप्रययौचाथ ब्रह्मण्योयदुनन्दनः ॥ ततःप्रसादयामासदुर्वाससमकल्मषम् ॥ ५२ ॥ बाह्योपवनमासाद्य पूजयामासतंतदा ॥ अवनिज्यस्वयंपादौ विप्रपादावनेजनम् ॥ ५३ ॥ शिरसाधारयामास जगतःपावनोहरिः ॥ दत्त्वार्घंगांचविप्राय मधुपर्कञ्चभक्तितः ॥ ५४ ॥ विधिवद्भोजयामास षड्रसेनद्विजोत्तमम् ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदुर्वासानयनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ अहोब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥ महिमायदयंनैव मृषाचक्रेमुनेर्वचः ॥ १ ॥ नैतच्चित्रमशे

ब्राह्मण के चरणावनेजन को ॥ ५३ ॥ संसार को पवित्र करनेवाले विष्णुजी ने मस्तक से धारण किया और ब्राह्मण के लिये अर्घ व गऊ को देकर और भक्ति से मधुपर्क को देकर ॥ ५४ ॥ विधिपूर्वक द्विजोत्तम दुर्वासाजी को छ रसवाले भोजन से जिंवाया ॥ ५५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायां दुर्वासानयनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा समुद अरु नारद दिय रुक्मिणि समुझाय। सो तीजे अध्याय में कह्यो चरित सुखदाय ॥ ऋषिलोग बोले कि अमिततेजवाले ब्रह्मण्यदेव श्रीकृष्णजी की महिमा को आश्चर्य है जो कि इन कृष्णजी ने मुनि के वचन को झूंठ नहीं किया ॥ १ ॥ सबों की मर्यादा के पालनेवाले विष्णुजी में यह आश्चर्य नहीं है

क्योंकि उन्होंने भृगु के चरण की चोट को हृदय में चिह्न धारण किया है ॥ २ ॥ व हे असुरेश्वर ! उन्होंने शाप से उन रुक्मिणी देवी को कैसे अलग किया है जो कि अकेले वहा स्थित हुई इस को कहिये ॥ ३ ॥ हम लोग प्रसन्नता से द्वारकापुरीको सुनने के लिये उत्कंठित हैं और चित्त के खेद को दूर करने के लिये पहले इस को जानना चाहते हैं ॥ ४ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे सब ऋषियो ! विस्तार से कहते हुए मुझ से तुमलोग सुनो कि जिस प्रकार हरिप्रिया रुक्मिणीजी ने शाप से उपजे हुए दुःख को छोड़ा है ॥ ५ ॥ उस समय इस प्रकार यकायक दुर्वासा के शाप को पाकर यादवेन्द्र की स्त्री उन रुक्मिणीजी ने बहुत विलाप किया ॥ ६ ॥

षाणां सेतुपालेजनार्दने ॥ भृगोर्यच्चरणाघातं दधारहृदिलाञ्छनम् ॥ २ ॥ सातुदेवीकथंतेन शापेनविप्रयोजिता ॥ एकाकिनीस्थितातत्र कथ्यतामसुरेश्वर ॥ ३ ॥ उत्कण्ठताइतिवयं श्रोतुंद्वारावतीम्मुदा ॥ इदमादौबुभुत्सामश्चित्तखेदापनुत्तये ॥ ४ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ श्रूयतामृषयःसर्वे वदतोममविस्तरात् ॥ यथाशापोद्भवंदुःखं मुमोचहरिवल्लभा ॥ ५ ॥ इति दुर्वाससःशापमवाप्यसहसातदा ॥ यादवेन्द्रस्यगृहिणी वहुसापर्यदेवयत् ॥ ६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ कल्याणीतववाणीयं लौकिकीसंविभाव्यते ॥ कुम्भस्यान्धोश्चनिर्माणात्प्राप्यतेनाधिकंजलम् ॥ ७ ॥ यन्नामाऽभूरिभाग्याहं प्राप्यनाथं जगत्पतिम् ॥ इयमेकाकिनीजाता पौरस्त्याद्देवहेलनात् ॥ ८ ॥ क्वमङ्गलायनःश्रीमाननवद्यगुणोहरिः ॥ अल्पपुण्याशुचांधाम कुमतिःक्वचमादृशी ॥ ९ ॥ अपिसन्तापयामास धातावचनकोविदः ॥ विधायचाशुभायामे वियोगंविषमव्ययम् ॥ १० ॥ अन्यथावर्णगुरवःस्नातास्त्रैविद्यकर्मणि ॥ कथंमांशप्तुमर्हन्ति रथखिन्नामनागसम् ॥ ११ ॥ ध्रुवमेतदयो

रुक्मिणीजी बोलीं कि तुम्हारी यह कल्याणकारिणी वाणी लौकिकी जान पड़ती है और कूप के बनाने से घड़े को अधिक जल नहीं मिलता है ॥ ७ ॥ क्योंकि थोडे भाग्यवाली यह मैं जगदीश (कृष्ण) जी को स्वामी पाकर पहलेके देवहेलन से अकेली होगई ॥ ८ ॥ कहां मंगलों के स्थान व निर्दोष गुणवाले श्रीमान् श्रीकृष्णजी और कहां कुबुद्धिनी व थोड़े पुण्यवाली और शोकों का स्थान मेरे समान स्त्री ॥ ९ ॥ वचन में चतुर विधाता ने विषरूपी अविनाशी वियोग को करके मुझ अमंगला को संतप्त किया ॥ १० ॥ नहीं तो वेदत्रयी के कर्म में अभ्यस्त व वर्णों के गुरु मुनिलोग रथ से क्लेशित व अपराधरहित मुझ को कैसे शाप देने के योग्यहैं ॥ ११ ॥

ब्रह्मा ने आपही इस मेरे हृदय को निश्चय कर लोहमय बनाया है क्योंकि वह हृदय मधुसूदन विष्णुजी के वियोग में सौ खण्ड नहीं होजाता है ॥ १२ ॥ निश्चय कर यह बड़ा भारी कठिन है व खेद की बात है कि ये यमराज विलोम आचरणवाले हैं कि जिसने इस अशुभ को चाहा और वह मेरी अशुभ मृत्यु को करता है ॥ १३ ॥ बहुत कठिन तपस्या कर पहले महापुरुष विष्णुजी को पाकर मैं विना पति के कीगई अहो (खेद है) कि पांच दिनों में मैं मृत्युको न प्राप्त हुई ॥ १४ ॥ इस बड़ी पीड़ा को पाकर मैं उस कारण लज्जा को प्राप्त हुई हूं जो कि मुनि से शापित यह शरीर शीघ्रही न नाश होगया ॥ १५ ॥ दुःख को नाश करनेवाला सुख

मयंविधिर्विदधेमेहृदयंस्वयंहितत् ॥ शतधानविदीर्यतेयतोविरहेदुर्विषहेमधुद्विषः ॥ १२ ॥ कठिनःखलुएषवैमहान्बत वामाचरितोयमन्तकः ॥ अभिवाञ्छितमित्यशोभनं मरणंमेविदधात्यशोभनम् ॥ १३ ॥ अधिकृत्यसुदुश्चरन्तपः प्रतिलभ्यप्रथमंमहाजनम् ॥ रमणेनविनाकृताप्यहोनमृतापञ्चसुवासरेष्वहम् ॥ १४ ॥ उपलभ्यसुदारुणाव्यथामथव्रीडाधिगतास्म्यहंततः ॥ यदिदंनिधनंगतंनवै मुनिनाशप्तकलेवरंद्रुतम् ॥ १५ ॥ परियातिहिदुःखहासुखं जगदीशोपिहियातिमित्रताम् ॥ निजवृत्तिजिघृक्षयायदिह्यधमर्णंधनिकोभिपालयेत् ॥ १६ ॥ इतिसाविलपन्त्यनारतं कुररीवाकुलितातपस्विनी ॥ व्यसनेनविदूषिताशया द्विजशापोपहतामुमूर्च्छहा ॥ १७ ॥ आधिनाधिष्ठिता साक्षाद्रुक्मिणीकृष्णवल्लभा ॥ मूर्च्छितामतदर्हांतामाजगामपयोनिधिः ॥ १८ ॥ सुधाशीकरगर्भेण करपङ्कजवायु

को प्राप्त होता है और जगदीश (विष्णु) भी मित्रता को प्राप्त होते हैं यदि धनी पुरुष अपनी वृत्ति के लेने की इच्छा से ऋण लेनेवाले मनुष्य को पालन करता है ॥ १६ ॥ इस प्रकार कुररी पक्षिणी की नाईं नित्य विलाप करती हुई तपस्विनी वे रुक्मिणी जी व्याकुल हुई और व्यसन (विपत्ति) से दूषित आशयवाली व ब्राह्मण के शाप से ताडित रुक्मिणीजी मूर्च्छित हुई ॥ १७ ॥ और श्रीकृष्ण की प्यारी साक्षात् रुक्मिणीजी मानसी व्यथा से संयुत हुई और उसके न योग्य व मूर्च्छित उन रुक्मिणीजी के समीप समुद्र आया ॥ १८ ॥ और समुद्र ने अमृतबिन्दु गर्भवाले करकमल के पवन से पूर्व जन्म की कन्या उन रुक्मिणीजी को भली भांति

आश्वासन किया याने समझाया ॥ १९ ॥ इसी अवसर में वहा वामन शरीरवाले नारद मुनि वीणा को बजाते हुए आकाशमार्ग से आगये ॥ २० ॥ और समुद्र से समझाई जाती हुई उन जगदम्बिकाजी को देखकर कथा को सुनेहुए उन भक्तिमान् नारदजी ने उतरकर समझाया ॥ २१ ॥ कि हे देवदेवेशि, दयिते ! खेद मत करो व हे कल्याणि ! विप्र दुर्वासाजी के शाप से प्रिय पति के दूर करने पर धीरज करिये ॥ २२ ॥ साक्षात् भगवती देवी ने व पुरुषोत्तम श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये अपनी इच्छा से अवतार लिया है ॥ २३ ॥ ये श्रीकृष्ण देव जी परब्रह्म, विकाररहित व निरंजन हैं और माया शक्तिके आश्रित होकर सृष्टि, पालन व संहार का

ना ॥ तांसमाश्वासयामास सिन्धुःपूर्वभवात्मजाम् ॥ १९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेतत्र व्योममार्गेणनारदः ॥ उपवीणन्नुपप्रागा त्रिविक्रमतनुर्मुनिः ॥ २० ॥ सदृष्ट्वासिन्धुनाश्वास्यमानांतांविश्वमातरम् ॥ अवतीर्य्यश्रुतकथो बोधयामासभक्तिमान् ॥ २१ ॥ माखिदोदेवदेवेशि दयितेदयितेपतौ ॥ दूरेकृतेविप्रशापात्कुरुकल्याणिधीरताम् ॥ २२ ॥ देवीभगवती साक्षात् कृष्णश्चपुरुषोत्तमः ॥ अवतीर्णौधराभारमपनेतुंयदृच्छया ॥ २३ ॥ देवोसौहिपरंब्रह्म निर्विकारोनिरञ्जनः ॥ मायाशक्तिंसमाश्रित्य सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥ २४ ॥ संहृत्यनिखिलंशेते यदासौकलयास्वराट् ॥ तदाभूतानिलीयन्ते देवदेवेजगत्पतौ ॥ २५ ॥ लीलावतारेष्वेतस्य त्वंसर्वेषुसहायिनी ॥ २६ ॥ सायोगमाययासृष्टिं करोत्येषत्वयासह ॥ विडम्बयतिभूतानामुपकारार्थमीश्वरः ॥ २७ ॥ आत्मनःकर्मणाशप्ता भूदेवैर्भूतिमीप्सुभिः ॥ शप्तुंयोग्याश्चनैवैते वन्द्येड्याहितपस्विनः ॥ २८ ॥ इत्येवंशिक्षयल्लोके वियोगन्तेकरोत्ययम् ॥ अनुशापादयंदेवि गूढःकपटमानुषः ॥ २९ ॥ अपि

कारण हैं ॥ २४ ॥ जब ये स्वराट् विष्णुजी सब को संहार कर सोते हैं तब प्राणी देवदेव जगदीशजी में लीन होजाते हैं ॥ २५ ॥ और तुम इनके सब लीलावतारों में सहायिनी होती हो ॥ २६ ॥ और वह परमेश्वर तुम्हें मायासे सृष्टि करता है व प्राणियों के उपकार के लिये विडम्बना करता है ॥ २७ ॥ और ऐश्वर्य को चाहने वाले ब्राह्मणों से तुम अपने कर्म से शापित हुई हो और वे तपस्वी शाप देने के योग्य नहीं हैं क्योंकि वे प्रणाम व पूजन करने योग्य हैं ॥ २८ ॥ इसीप्रकार शिक्षा करता हुआ यह शापसे तुम्हारा वियोग करता है जो कि हे देवि ! गूढ़ व कपट से मानुष रूप है ॥ २९ ॥ हे कल्याणि ! क्या स्मरण करती हो कि

जिस प्रकार लोकों के अनुग्रह की इच्छा करते हुए रघुवंशधारी इन रामचन्द्रजीने तुमको विदेशको पठाया था ॥ ३० ॥ मनुष्यों के स्नेह के कारण यह मनुष्य तुमको प्राणों से भी प्यारी जानता है इस कारण कृष्ण देवजी ने वैसा किया ॥ ३१ ॥ हे सुव्रते ! जिस विश्वात्मा से बाहर व भीतर यह सब संसार पूरित है उससे वियोग कैसे सिद्ध होता है ॥ ३२ ॥ यदि संगरहित विभु परमेश्वर का अन्य प्राणियों से संग होवै तो तुम से भी वियोगी है यह विद्वान् विश्वास करता है ॥ ३३ ॥ इसलिये बहुतही मानसी व्याधि को छोड़ देवो और तुम अपना को स्मरण करो हे मातः ! प्रसन्न होवो और अपनी बुद्धिसे धीरज धरो ॥ ३४ ॥ देवर्षि नारदजी के

स्मरसिकल्याणि रघुवंशधरोयथा ॥ लोकानुग्रहमन्विच्छंस्त्वांविवासितवानयम् ॥ ३० ॥ अवैतितवलोकोयंजनानामनुरञ्जनात् ॥ प्राणेभ्योपिगरीयस्या इतिदेवस्तथाव्यधात् ॥ ३१ ॥ येनेदंपूरितंविश्वं बहिरन्तश्चसुव्रते ॥ विश्वात्मनावियोगस्तु कथन्तेनोपपद्यते ॥ ३२ ॥ असङ्गस्यविभोःसङ्गो यदिस्यादितरैःसह ॥ त्वयापिविप्रयुक्तोस्मि इतिप्रत्येतिकोविदः ॥ ३३ ॥ तद्विमुञ्चाधिमत्यर्थमात्मानंत्वमनुस्मर ॥ प्रसीदमातःसन्धेहि धीरतांस्वमनीषया ॥ ३४ ॥ इतिब्रुवतिदेवर्षौ वचनेतुनदीपतिः ॥ प्रोवाचतांचसारज्ञो गिरामृदुलवर्णया ॥ ३५ ॥ समुद्रउवाच॥ यदाह देविदेवर्षिरेवमेवनचान्यथा ॥ गीयसेत्वंहिवेदेषु नित्यंविष्णोःसहायिनी ॥ ३६ ॥ एकःपुमान्योनिरहंकृतश्च जगद्विधत्तेपिदधातिभूयः ॥ विश्वंव्यवस्थापयितुंस्वरोचिषात्वयासहायेनविभर्तिमूर्त्तिम् ॥ ३७ ॥ तदेवंपरिखेदस्ते नमनागपियुज्यते ॥ वक्षस्थलस्थाचयतो नित्यंश्रीवत्सलक्ष्मणः ॥ ३८ ॥ इयंभागीरथीदेवी महादेशादुपागता ॥ विनोदयि

ऐसा वचन कहते हुए सारांश को जाननेवाले समुद्र ने उनसे कोमल अक्षरोंवाली वाणी से कहा ॥ ३५ ॥ समुद्र बोला कि हे देवि ! देवर्षि नारदजी ने जो कहा है वह वैसाही है अन्यथा नहीं है क्योंकि वेदों में तुम सदैव विष्णुजी की सहायिनी गाई जाती हो ॥ ३६ ॥ जो अहंकाररहित एक पुरुष है वह संसार को रचता है व फिर संहार करता है और संसार को भली भांति स्थापन करने के लिये तुम्हारी सहायता से अपने प्रकाश से मूर्ति को धारण करता है॥ ३७ ॥ उस कारण तुम को कुछ भी खेद योग्य नहीं है क्योंकि श्रीवत्स चिह्नवाले विष्णुजी के तुम सदैव वक्षस्थल में स्थित रहती हो ॥ ३८ ॥ मेरी आज्ञा से ये गंगा देवीजी आई हैं और ये

शरीरधारिणी गंगादेवी सदैव तुमको विनोद करावैंगी ॥ ३९ ॥ व इन गंगाजी में प्रवाह से शोभित जल स्वादिष्ठ होगा और यह स्थान सब के नेत्रों का आनन्द-दायक होगा ॥ ४० ॥ और अनेक प्रकार के पक्षियों व लताओं से व्याप्त तथा कुंजों से शोभित व मत्त मयूरों से सेवित तथा भ्रमरों से सुन्दर कूजित ॥ ४१ ॥ व नवीन पत्तों से शोभित गुच्छोंवाले उत्तम पुष्पों व अमृत के समान फलों से और मंजरी की पांतियों से ॥ ४२ ॥ व नन्दन (इन्द्रवन) की लक्ष्मी से शोभित तथा मन व नेत्रों को आनंद देनेवाला बहुतही मनोहर व सुन्दर वन शीघ्रही होगा ॥ ४३ ॥ हे मातः ! तुमसे हमलोग सदैव समझाने योग्य हैं और अशेषरूपिणी विद्या तुम

ष्यत्यनिशं त्वांहिदेवीशरीरिणी ॥ ३९ ॥ एतस्यांस्यान्मृदुस्वादुपयःपूरोपशोभितम् ॥ प्रदेशोयमशेषस्य भविता नयनोत्सवः ॥ ४० ॥ नानाद्रुमलताकीर्णं निकुञ्जैरुपशोभितम् ॥ मत्तबर्हिसमाजुष्टं मञ्जुगुञ्जन्मधुव्रतम् ॥ ४१ ॥ नवपल्लवराजद्भिःस्तबकैःकुसुमैःशुभैः ॥ फलैरमृतकल्पैश्च मञ्जरीराजिभिस्तथा ॥ ४२ ॥ नन्दनस्यश्रियाजुष्टं मनोनयननन्दनम् ॥ वनंरम्यतरंचारु अचिरेणभविष्यति ॥ ४३ ॥ त्वयासम्बोधनीयाःस्मो वयंमातःसदैवहि ॥ अशेषरूपा विद्यात्वमस्माभिर्बुध्यसेकथम् ॥ ४४ ॥ तदावामनुजानीहिप्रसीदपरमेश्वरि ॥ नमस्तेविश्वजननि भूयोपिचनमोनमः ॥ ४५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ एवमुक्त्वाजगद्धात्रीं जग्मतुस्तौयथातथम् ॥ आजगामाथतत्राशु देवीभागिरथीस्वयम् ॥ ४६ ॥ वनेसमभवत्तत्र दिव्यभूरुहभूषितम् ॥ दृश्यंसमस्तलोकानां फलपुष्पसमृद्धिमत् ॥ ४७ ॥ प्रवाहेणैवभूतानामशेषाघौघनाशिनी ॥ भूषयामासतंदेशं साचविष्णुपदीसरित् ॥ ४८ ॥ देवीचमुनिवाक्येन गङ्गायाश्चविनोद

हमलोगों से कैसे समझोगी ॥ ४४ ॥ इसलिये हे परमेश्वरि ! हम दोनों को आज्ञा दीजिये व प्रसन्न हूजिये हे जगन्मातः ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व बार २ प्रणाम है ॥ ४५ ॥ प्रह्लादजी बोले इस प्रकार जगत् को धारनेवाली रुक्मिणीजी से यथायोग्य कहकर वे चलेगये इसके अनन्तर वहां गंगा देवीजी आपही शीघ्र आगई ॥ ४६ ॥ और वहां दिव्य वृक्षों से शोभित वन होगया और फल व पुष्पकी समृद्धिवाला वह सबों के देखने योग्य हुआ ॥ ४७ ॥ और प्राणियों के सब पापसमूहों को नाशने वाली उन विष्णुपदी गंगा नदी ने प्रवाहही से उस स्थान को भूषित किया ॥ ४८ ॥ और मुनि के वचन व गंगाजी की क्रीड़ा तथा उस स्थान की सुन्दरता से उन

रुक्मिणी देवी जी ने कुछ स्वस्थता को पाया ॥ ४९ ॥ इसके अनन्तर विष्णुपदी गंगा देवी को समुद्र में प्राप्त सुनकर इधर उधर घूमते हुए तपस्वी लोग आये ॥ ५० ॥ व द्वारकावासी लोग वनकी शोभा से प्रसन्नचित्त होकर सदैव रुक्मिणीवनको आने लगे ॥ ५१ ॥ उस सब चरित्र को सुनकर शंभुजी की कला दुर्वासाजीने क्रोध किया और कोप करते हुए उन्होंने फिर यह कहा ॥ ५२ ॥ दुर्वासाजी बोले कि तीनों लोकों में मेरे वचन को अन्यथा करने के लिये कौन समर्थ है कि जिसको लोकों के पितामह व आद्य ब्रह्माजी नहीं करसके हैं ॥ ५३ ॥ क्या यह मनुष्य नहीं जानता है कि मेरे क्रोध से कषायित होनेपर उस समय इन्द्र त्रिभुवन से भ्रष्ट-

नात् ॥ सौन्दर्यात्तस्यदेशस्य किञ्चित्स्वास्थ्यमवापसा ॥ ४९ ॥ अथविष्णुपदींदेवीं श्रुत्वासागरसङ्गताम् ॥ इतस्ततः समाजग्मुरटमानास्तपस्विनः ॥ ५० ॥ द्वारकावासिनश्चैव जनाःकाननशोभया ॥ हृष्टचित्ताःसमाजग्मुरनिशंरुक्मिणी वनम् ॥ ५१ ॥ श्रुत्वातदखिलंवृत्तं दुर्वासाःशाम्भवीकला ॥ चुकोपकोपमानश्च भूयएतदभाषत ॥ ५२ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ कःप्रभुस्त्रिषुलोकेषु मद्वचनमन्यथा ॥ विधातुमपिदेवानामधोलोकपितामहः ॥ ५३ ॥ किंनजानातिलोको यं मयिरोपकषायिते ॥ शक्रःप्रतित्रिभुवनभ्रष्टश्रीकोह्यभूत्तदा ॥ ५४ ॥ ममशापमवज्ञाय नन्दनप्रतिमेवने ॥ कथन्तुरुक्मिणीतत्र रमतेजनसेविते ॥ ५५ ॥ तदेतेतरवःसर्वे सन्त्वभोगफलान्नृणाम् ॥ विभ्रष्टसर्वसौभाग्याः कुसुमस्तबकोज्झिताः ॥ ५६ ॥ इयन्तुसर्वपापघ्नी हरचूडामणिःसरित् ॥ शरीरिणीतथापीयं नैवेहस्थातुमर्हति ॥ ५७ ॥ प्रह्लादउवाच ॥ तदासर्वमभूत्तत्र यद्यदाहचवैमुनिः ॥ वाचिवीर्यंहिविप्राणांनिर्मितंविष्णुनास्वयम् ॥ ५८ ॥ सातुदेवीतथावृत्तम

लक्ष्मीवाले हुए हैं ॥ ५४ ॥ मेरे शाप को अपमान कर रुक्मिणीजी नन्दनवन के समान उस मनुष्यों से सेवित वन में कैसे क्रीड़ा करती हैं ॥ ५५ ॥ इसलिये ये सब वृक्ष मनुष्यों के अभोग फलवाले होवैं और सब सौभाग्यों से रहित व पुष्पों के गुच्छोंसे त्यागित होवैं ॥ ५६ ॥ और सब पापोंको नाश करनेवाली व शिवजी की चूड़ामणि यह गंगा नदी यद्यपि शरीरिणी है तथापि यहां स्थित होने के योग्य नहीं है ॥ ५७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि दुर्वासा मुनिने जो जो कहा वह सब वहां होगया क्योंकि ब्राह्मणों के वचन में आपही विष्णुजी ने बल या प्रभाव को रचा है ॥ ५८ ॥ और वे रुक्मिणी देवी वैसे वृत्तान्त को देखकर बहुत दुःखित हुईं व दुःख को प्राप्त

करनेवाले दैव को बार २ प्राप्त मानती भई ॥ ५९ ॥ तदनन्तर उन रुक्मिणीजी ने दुःख की औषध मरण जानकर उत्तम दुपट्टे से गले की फँसरी किया ॥ ६० ॥ व उन रुक्मिणीजी ने पति के संतापनाशक चरणकमल को सावधान मन से ध्यान किया व उस समय कुछ बाहर न जाना ॥ ६१ ॥ इसके अनन्तर सब प्राणियों के गुहा में आशयवाले विष्णुजी ने उस सब को जाना व शीघ्रता संयुत श्रीकृष्ण देवजी शीघ्रही गरुड़ से आगये ॥ ६२ ॥ व विभु श्रीकृष्णजी ने दूर से गले की फँसरी को हाथ में लिये हुए रुक्मिणी देवीजी को देखा कि वृक्ष की शाखा के नीचे नेत्रों को मूंदे हुई हैं ॥ ६३ ॥ उन पीत मुखवाली व चंचल एक वेणी से गिरेहुए भूषणगणों

वेक्ष्यससुदुःखिता ॥ मेनेदुखावहंदैवमापतन्तंपुनःपुनः ॥ ५९ ॥ ततस्तुसाविनिश्चित्य मरणंदुःखभेषजम् ॥ उत्तरीयवरेणैव कण्ठपाशञ्चकारसा ॥ ६० ॥ दध्यौसचरणाम्भोजं भर्त्तुःसन्तापनाशनम् ॥ तदैकहृदयेनैव बहिःकिञ्चिदबुध्यत ॥ ६१ ॥ अथाबुध्यततत्सर्वं सर्वभूतगुहाशयः ॥ देवःसत्वरमभ्यागात्सुपर्णेनत्वरान्वितः ॥ ६२ ॥ ददर्शदूरतोदेवीं कण्ठपाशकरांविभुः ॥ अधस्तात्तरुशाखाया विनिमीलितलोचनाम् ॥ ६३ ॥ तांवीक्ष्यपाण्डुवदनांतरलैकवेणिविभ्रष्टभूषणगणांकृशदेहवल्लीम् ॥ शुष्यन्मुखाम्बुजरुचंमरणप्रयुक्तां मेनेसचगृहवर्तींकरुणांकृपालुः ॥ ६४ ॥संश्रुत्यसापिपतिगाधिपतेःप्रडीनसम्भूतसम्भ्रमगतेश्चलपक्षजन्म ॥ सामान्यवत्त्रिकविवर्तितलोचनाभ्यां प्राप्तंददर्शदयितंनिजजीवनाथम् ॥ ६५ ॥ तर्ह्येवहर्षविवशात्परितःप्रणष्टकोपोपरागकलुषास्मृतविप्रलम्भा ॥ सारुक्मिणीस्वगुणवृन्दसुशोभमाना नानारसंबतदृशांविषयम्प्रपेदे ॥ ६६ ॥ तस्याद्रुतंह्यसुविसर्गचिकीर्षितायाः पाशंविपोह्यकरचारुसरोरुहाग्रा

वाली व दुबली शरीररूपी लता तथा सूखते हुए मुख कमल की शोभावाली और मरने में लगीहुई रुक्मिणी जी को देखकर उन दयालु श्रीकृष्णजी ने स्त्री के दुःख को माना ॥ ६४ ॥ और गरुड़ के उड़ने से उपजीहुई संभ्रम गति से चलतेहुए पंखों से उपजेहुए सामवेद को सुनकर अन्य की नाईं त्रिकके घुमाने से नेत्रों करके अपने जीवनाथ प्यारे श्रीकृष्णजी को प्राप्त देखा ॥ ६५ ॥ व उसी समय हर्ष के वश से सब ओर से नष्टक्रोधरूपी ग्रहण की मलीनतावाली तथा स्मरण किये वियोगवाली व निजगुणगणों से शोभित वे रुक्मिणीजी अनेक भांति के रस से नेत्रों के विषय को प्राप्तहुईं ॥ ६६ ॥ व शीघ्रही प्राणों को छोड़ने की इच्छा करतीहुई उन रुक्मिणीजी

की फँसरी को सुन्दर हाथरूपी कमल के अग्रभाग से छुड़ाकर व हाथ को पकड़कर अमृत के समान वचन से जिलातेहुए से कृष्ण ने इस उदार वचन को कहा ॥ ६७॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे भीरु ! बिन विचारेहुए इस साहस को क्यों करने की इच्छा करती हो व हे देवि ! तुम्हारे खेद का क्या कारण है उसको मुझ से निश्चय कर कहो ॥ ६८ ॥ तुम विद्या हो मैं परब्रह्महूं और तुम माया हो मैं ईश्वरहूं और तुम बुद्धिहो मैं जीव हूं तो हम तुम दोनों का कैसे वियोग है ॥ ६९ ॥ और माया से मोहित चित्तवाले ब्रह्मा व शिवादिक भ्रमते हैं सो तुम अपने तेजों के चिन्तन से कैसे मोहित होती हो ॥ ७० ॥ तुम से बँधेहुए ऋषिलोग इस संसार में कर्मों से

त् ॥ आदायपाणिममृतोपमयाचवाचा सञ्जीवयन्निदमुदारमुदाजहार ॥ ६७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ किमेतत्साहसंभीरु चिकीर्षस्यविचारितम् ॥ ननुदेविममाचक्ष्व किन्नुतेखेदकारणम् ॥ ६८ ॥ त्वंविद्याहम्परंब्रह्म त्वंमायाचेश्वरस्त्वहम् ॥ त्व ञ्चबुद्धिरहंजीवोवियोगःकथमावयोः ॥ ६९ ॥ मायाविमोहितात्मानो भ्राम्यन्त्यजभवादयः ॥ साकथम्मुह्यसित्वंतु स्व धाम्नामनुचिन्तनात् ॥ ७० ॥ त्वयाहिबद्धाऋषयः संसरन्तीहकर्मभिः ॥ तांत्वाकथमृषिःशप्तुं शक्नुयादथवासुरः ॥ ७१ ॥ रक्षार्थंत्विहलोकानामेवमेवंविचेष्टितम् ॥ मयात्वयासमाविष्टः कुरुतेविवशःपुमान् ॥ ७२ ॥ कस्मात्कोपपरीतात्मा दुर्वासायोऽभवत्तदा ॥ सोपैतिभक्तिनम्रोयमधुनामत्प्रकीर्तितः ॥ ७३ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ विभोर्मनोरथंज्ञात्वा पश्चा त्तापानुगाशयः ॥ किम्मयाकृतमित्यार्त्तो दुर्वासाःसमुपागतः ॥ ७४ ॥ अदूराद्विलुठन्भूमौ द्रुतमेत्याश्रुसंप्लुतः ॥ पित रौजगतोदेवौ क्षमयामासदीनवाक् ॥ ७५ ॥ तुष्टावसूक्तवाक्यैस्तु रहस्यैर्भक्तिसंयुतः ॥ आहचेदंजगन्नाथ यदिमय्य

भ्रमते हैं उन तुम को शाप देने के लिये ऋषि व देवता कैसे समर्थ हैं ॥ ७१ ॥ इस संसार में लोकों की रक्षा के लिये मुझ से व तुम से संयुत विवश पुरुष ऐसाही कर्म करता है ॥ ७२ ॥ व किसी कारण जो दुर्वासा जी उस समय क्रोध से संयुत चित्तहुए थे मुझ से कहेहुए वे इस समय भक्ति से नम्रचित्त होकर समीप आते हैं ॥ ७३॥ प्रह्लादजी बोले कि विभु श्रीकृष्णजी के मनोरथ को जानकर पश्चात्ताप से अनुगत आशयवाले दुर्वासाजी इस कारण दुःखित होकर आये कि मैंने क्या किया ॥ ७४ ॥ व समीपही से पृथ्वी में लोटतेहुए शीघ्रही आकर आंसुवों से संयुत दुर्वासाजी ने दीन वचन होकर संसारके माता पिता रुक्मिणी व श्रीकृष्णजी से क्षमा कराया ॥ ७५ ॥

और भक्ति संयुत दुर्वासाजी ने रहस्य व सूक्तवाक्यों से स्तुति किया व यह कहा कि हे जगदीशजी ! यदि मेरे ऊपर दया होवै ॥ ७६ ॥ तो हे देव ! पहले की नाई देवीजी से संयोग किया जावै इसके अनन्तर श्रीकृष्णजी ने हँसकर उन मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी से कहा ॥ ७७ ॥ कि तुम्हारा वचन कभी झूंठ होने के योग्य नहीं है क्योंकि वह वज्रकी नाई सफल है व मैंनेही इस मर्यादा को किया है ॥ ७८ ॥ तो लोक के पालक मैं कैसे अपने कियेहुए सेतु (मर्यादा) को भेदन करूं हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रतिदिन दो समयो में इसका संयोग होगा ॥ ७९ ॥ और कल्याणकारी हास्यवचनों से व मेरी कथाओं के कहने से भी उन्मत्तरूपी मैं व तुम इस से

स्त्यनुग्रहः ॥ ७६ ॥ तदापुरेवसंयोगो देवदेव्याविधीयताम् ॥ अथप्रहस्यगोविन्दस्तमाहमुनिपुङ्गवम् ॥ ७७ ॥ नहितेवचनंजातु मृषाभवितुमर्हति ॥ मयैवविहितःसेतुर्यदमोघमिवाशनिः ॥७८॥ तत्कथंस्वकृतंसेतुं भिन्द्यांलोकस्यपालकः ॥ दिनेदिनेद्विकालेस्याः संयोगोमुनिसत्तमः ॥ ७९ ॥ विनोदयिष्यतव्यौत्वं मुनिरुन्मत्तकोप्यहम् ॥ प्रहासवचनैर्भव्यैर्मत्कथाकथनैरपि ॥ ८० ॥ यतःपूज्याहिलोकस्य समस्तस्यभविष्यति ॥ यदाचमयिवैकुण्ठमधिरूढे महोमम ॥८१॥ प्रवेक्ष्यतिकलौगोपेत्रिविक्रमतनौहरौ ॥ तदातस्मिन्कलौविप्रसम्यक्साकलयासह ॥८२॥ तस्यामेवपुनर्मूर्त्तौ समवस्थितिमेष्यति ॥ इयंभागीरथीचापि सागरेणसमागता ॥८३॥ नृणामशेषदुःखानि तस्मादुपहरिष्यति ॥ अनुग्रहंविधायैवमृषिणासहकेशवः ॥८४॥ विवेशस्वपुरेतत्र विधायोन्मत्तकंवपुः ॥ सापिदेवीचसम्बुद्ध्वा तदातस्यविचेष्टितम् ॥ ८५ ॥ अनु

विनोद के योग्य होवैंगे ॥ ८० ॥ जिससे कि सब लोक के यह पूजने योग्य होगी और मेरे वैकुण्ठ जाने पर जब मेरा तेज ॥ ८१ ॥ कलियुग में वामन शरीरवाले गोप विष्णु (श्रीकृष्ण) जी में प्रवेश करैगा तब हे विप्रजी ! उस कलियुग में भली भांति कला समेत वह ॥ ८२ ॥ फिर उसी मूर्ति में स्थिति को प्राप्तहोगी और जिस लिये यह भागीरथी गङ्गा समुद्र से संगम हुई है ॥ ८३ ॥ उस कारण मनुष्यों के सब दुःखों को हरैगी इस प्रकार ऋषि समेत श्रीकृष्णजी अनुग्रह करके ॥ ८४ ॥ उन्मत्त शरीर धारण कर उस अपने नगर में पैठे और वे रुक्मिणी देवी उस समय उन श्रीकृष्णजी के चेष्टित को भलीभांति जानकर ॥ ८५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णजी की दया

से शोकरहित हुई इस कारण वहां विष्णुजी की प्यारी रुक्मिणी देवीजी दुःख से छूटगई ॥ ८६ ॥ उसी कारण वे भागीरथी गङ्गाजी दुःखमोचिनी कहीगई हैं और अमावस व पौर्णमासी तिथि में जो मनुष्य उसके उत्तम संगम में ॥ ८७ ॥ स्नान करता है वह मनुष्य सब दुःखों से छूटजाता है और अष्टमी, चौदसि व नवमी तिथि में देखीहुई ॥ ८८ ॥ रुक्मिणी देवीजी मनुष्यों के सब कामनाओं को देती हैं हे ऋषिलोगो! देवी रुक्मिणीजी का यह दुःखमोचन चरित्र कहागया ॥ ८९ ॥ और इन श्रीकृष्णदेवजी का अनुग्रह कहागया फिर क्या सुनना चाहते हो ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुक्मिणी

ग्रहाद्भगवतो बभूवविगतज्वरा ॥ अतश्चमुक्तादुःखेन तत्रदेवीहरिप्रिया ॥८६॥ ततोभागीरथीसातु गदितादुःख मोचिनी ॥ अमावास्यांचपूर्णायां यस्तस्याःसङ्गमेशुभे ॥ ८७ ॥ स्नायादशेषदुःखेभ्यः सनरःपरिमुच्यते ॥ अष्ट म्याञ्चचतुर्दश्यां नवम्यांचविलोकिता ॥ ८८ ॥ नराणांरुक्मिणीदेवी सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥ इत्येतत्कथितंदे व्या ऋषयोदुःखमोचनम् ॥ ८९ ॥ अनुग्रहोस्यदेवस्य किंभूयःश्रोतुमिच्छथ ॥ ९० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारका माहात्म्येरुक्मिणीदुःखमोक्षणंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ एवंसम्पूजितस्तेन हरिणाब्राह्मणोत्तमः ॥ उपचारैस्तुसन्तुष्टो वरम्ब्रूहीतिकेशवम् ॥ १ ॥ श्री कृष्ण उवाच ॥ यदितुष्टोसिभगवन् यदिदेयोवरोमम ॥ स्थातव्यमत्रभवता न त्यक्तव्यंकथञ्चन ॥ २ ॥ दुर्वासा उ

दुःखमोक्षणन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । दुर्वासा श्रीकृष्ण अरु जिमि द्वारका मँझार । टिके चौथ अध्याय में सोइ चरित सुखसार ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उन विष्णुजी से इस प्रकार उपचारों से भलीभांति पूजित व सन्तुष्ट द्विजोत्तम दुर्वासाजी ने श्रीकृष्णजी से यह कहा कि वरदान को मांगिये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे भगवन्! यदि तुम प्रसन्न हो और यदि मुझ को वर देने योग्य है तो आपको यहीं स्थित होना चाहिये और कभी न छोड़ना चाहिये ॥ २ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे कृष्णजी! यदि मैं स्थित होऊं तो सोलह कलावाले

तुम भी मेरे वचन से सदैव यहीं स्थित होवो ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे द्विजोत्तम! यहां जो मनुष्य भक्ति से तुमको व मुझको भी देखैंगे उनको तुम क्या दोगे हे भगवन्! उसको मुझ से कहिये ॥ ४ ॥ दुर्वासाजी बोले कि हे कृष्णजी! गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर जो मनुष्य तुमको व मुझको देखैगा वह सब पापों से छूटजावैगा ॥ ५ ॥ हे देवेश, कृष्णजी! मेरे दियेहुए के सोलह गुन अधिक की सम्भावना करतेहुए तुम भी इसी प्रकार जो देवो उसको कहो ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण जी बोले कि जो मनुष्य यहा तुमको पूजकर मुझको पूजैगा उसको मैं उस मुक्ति को दूंगा जोकि देवताओंको भी दुर्लभ है ॥ ७ ॥ प्रह्लादजी बोले कि परस्पर वरदान

वाच ॥ यदितिष्ठाम्यहंकृष्ण तदात्वमपिकेशव ॥ तिष्ठस्वषोडशकलो नित्यंमद्वचनेनहि ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णउवाच ॥ येत्रपश्यन्तिभक्त्यात्वां मांचापिद्विजसत्तम ॥ किंददासिचतेषांत्वं मत्तस्तद्भगवन्वद ॥ ४ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ यः स्नात्वासङ्गमेकृष्ण गोमत्याःसागरस्यच ॥ त्वांमांचैवाभिवीक्षेत्तु सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५ ॥ त्वमप्येवंविधंकृष्ण यत्प्रदास्यसितद्वद ॥ ममदत्तस्यदेवेश भावयन्षोडशोत्तरम् ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ योनरःपूजयित्वात्वां पूजयिष्यति मामिह ॥ तस्यमुक्तिंप्रदास्यामि यासुरैरपिदुर्लभा ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ परस्परंवरंदत्त्वा तस्मिन्स्थानेऽयतिष्ठत ॥ वरदानेतियत्प्रोक्तं तत्स्थानंसर्वकामदम् ॥ ८ ॥ तदाप्रभृतिदेवेशो द्वारकांहरिरीश्वरः ॥ दुर्वाससोगिराबद्धो नजहाति कदाचन ॥ ९ ॥ यत्रवैचित्रिकीमूर्तिर्वसतेयत्रगोमती ॥ नरामुक्तिंप्रयास्यन्ति चक्रतीर्थेनसङ्गता ॥ १० ॥ कलेवरम्परित्यक्तम्प्रभासेहरिणायदा ॥ कलयासहितस्तस्यां मूर्तौचाधिष्ठितोद्विजाः ॥ ११ ॥ तस्मात्कलियुगेविप्रा नान्यत्रप्राप्य

को देकर श्रीकृष्णजी उस स्थान में टिके और वरदान ऐसा जो कहागया है वह स्थान सब कामनाओं को देनेवाला है ॥ ८ ॥ तब से लगाकर दुर्वासाजी की वाणी से बँधेहुए देवेश विष्णु भगवान् द्वारका को कभी नहीं छोड़ते हैं ॥ ९ ॥ जहां पर चक्रतीर्थ से मिलीहुई विचित्र मूर्तिवाली गोमती बसती है वहां मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ १० ॥ हे ब्राह्मणो! जब विष्णुजी ने प्रभासक्षेत्र में शरीर को छोड़ा है तब कला समेत वे उस मूर्ति में स्थित हुए हैं ॥ ११ ॥ इस लिये हे ब्राह्मणो! कलियुग में

विष्णु जी अन्यत्र नहीं मिलते हैं यदि कृष्ण से कार्य होवै तो तुम शीघ्रही वहां जावो ॥ १२ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे उत्तममार्गदर्शक, भागवतोत्तम ! बहुत अच्छा इस समय तुमने उसको जाना है जोकि कोई नहीं जानता है ॥ १३ ॥ और उस द्वारकापुरी में जाने से क्या फल होता है व कृष्णजी के दर्शन में क्या फल है और वहां कौन तीर्थ व कौन देवता हैं उसको हमलोगों से कहिये ॥ १४ ॥ व हे दनुजर्षभ ! किस महीने व किस तिथि में और किस पर्व में मनुष्यों को वहां जाना चाहिये और कौन दानों को देना चाहिये ॥ १५ ॥ उस समय उन महर्षियों से इस प्रकार पूंछेहुए भगवद्भक्ति से संयुत उन महाभागवत प्रह्लादजी ने ब्राह्मणों से

तेहरिः ॥ यदिकार्यंहिकृष्णेन तत्रगच्छतमाचिरम् ॥ १२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ साधुभागवतश्रेष्ठ साधुमार्गप्रदर्शक ॥ तत्त्वयाद्यपरिज्ञातं यन्नजानातिकश्चन ॥ १३ ॥ किम्फलङ्गमनेतस्यां किम्फलंकृष्णदर्शने ॥ कानितीर्थानितत्रैव केदेवास्तद्वदस्वनः ॥ १४ ॥ कस्मिन्मासेतिथौकस्यां कस्मिन्पर्वणिमानवैः ॥ गन्तव्यंकानिदेयानि दानानिदनुजर्षभ ॥ १५ ॥ इतिपृष्टंतदातैस्तु महाभागवतोहिसः ॥ कथयामासविप्रेभ्यो भगवद्भक्तिसंयुतः ॥ १६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ भोभूमिदेवाःशृणुत परंगुह्यंसनातनम् ॥ यन्नकस्यसमाख्यातं तद्वदामिसुविस्तरात् ॥ १७ ॥ यदामतिञ्चकुरुते द्वारकागमनम्प्रति ॥ तदानरकनिर्मुक्ता गायन्तिपितरोदिवि ॥ १८ ॥ यावत्पदानिकृष्णस्य मार्गेगच्छतिमानवः ॥ पदेपदेश्वमेधस्य यज्ञस्यलभतेफलम् ॥ १९ ॥ यात्रार्थंकृष्णदेवस्य यःप्रेरयतिचापरान् ॥ मानवान्नात्रसन्देहो लभतेवैष्णवम्पदम् ॥ २० ॥ द्वारकांगच्छमानस्य योददातिप्रतिश्रियम् ॥ तथैवमथुरायाञ्च नन्दतेक्रीडितेहिसः ॥ २१ ॥ अध्वनिश्रान्त

कहा ॥ १६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! उस परमगुप्त व सनातन को सुनिये जो किसी से नहीं कहागया है उसको मैं विस्तार से कहताहूं ॥ १७ ॥ जब मनुष्य द्वारका को जाने के लिये बुद्धि करता है तब नरक से छूटेहुए पितर स्वर्ग में गाते हैं ॥ १८ ॥ व मनुष्य कृष्णजी के मार्ग में जितने पग चलता है उतने पग २ पै अश्वमेध यज्ञ के फलको पाता है ॥ १९ ॥ और श्रीकृष्णदेवजी की यात्राके लिये जो अन्य पुरुषों को प्रेरणा करता है वह विष्णुजी के स्थान को पाता है इस में सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ और द्वारका को जातेहुए पुरुष को जो धन देता है वैसेही मथुरा में जातेहुए पुरुष को जो धन देता है वह आनन्द व क्रीड़ा करता है ॥ २१ ॥ और

मार्ग में थके शरीरवाले पुरुष को जो सवारी देता है वह मनुष्य हंसोंसे संयुत विमानके द्वारा स्वर्ग को जाता है ॥ २२ ॥ और यात्रा में जातेहुए भूँखे पुरुष को जो भक्ति से अन्न को देता है वह जिस फलको पाता है उसको सुनिये ॥ २३ ॥ कि पृथ्वी में मनुष्य गयाश्राद्ध से जिस फलको पाता है उस पुण्य को अन्नदान से पाता है और पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ २४ ॥ और द्वारका को जानेवाले पुरुष को जो पनही देता है कृष्णजी की प्रसन्नता से वह पुरुष हाथी की पीठ पै सवार होकर जाता है ॥ २५ ॥ और द्वारका को जातेहुए पुरुष का जो विघ्न करता है वह मूढ़ कल्पभर तक रौरव नरक में डूबता है ॥ २६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! मार्ग में टिकेहुए

देहस्य वाहनंयःप्रयच्छति ॥ हंसयुक्तेनसनरो विमानेनदिवंव्रजेत् ॥ २२ ॥ यात्रायांगच्छमानस्य मध्याह्नेक्षुधितस्य च ॥ अन्नंददातियोभक्त्या शृणुयल्लभतेफलम् ॥ २३ ॥ गयाश्राद्धेनयत्पुण्यं लभतेमानवोभुवि ॥ अन्नदानेनतत्पुण्यं पितॄणांतृप्तिरक्षया ॥ २४ ॥ उपानहौचयोदद्याद्द्वारकाम्प्रतिगच्छतः ॥ कृष्णप्रसादात्सनरो गजपृष्ठेनगच्छति ॥ २५ ॥ विघ्नमाचरतेयस्तु द्वारकाम्प्रतिगच्छतः ॥ नरकेमज्जतेमूढः कल्पमात्रन्तुरौरवे ॥ २६ ॥ मार्गस्थितस्य योविप्राः प्रयच्छतिकमण्डलुम् ॥ प्रपादानसहस्रस्य फलमाप्नोतिमानवः ॥ २७ ॥ यात्रायांगच्छमानस्य पादाभ्यङ्गं ददातियः ॥ पादप्रक्षालनंवापि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २८ ॥ कथांशृणोतियोविष्णोर्गीतंवागच्छतःपथि ॥ दानं ददातिमनुजस्तस्माद्धन्यतरोनहि ॥ २९ ॥ कैलासशिखराकारं श्वेताभ्रमिवनिर्मलम् ॥ प्रासादंदेवदेवस्य यःपश्यति नरोत्तमः ॥ ३० ॥ दूराद्धेममयंदृष्ट्वा कलशंध्वजसंयुतम् ॥ वाहनंसम्परित्यज्य लुठतेधरणींगतः ॥ ३१ ॥ पञ्चसूना

पुरुष को जो कमण्डलु देता है वह मनुष्य हज़ार पौशाला देने के फलको पाता है ॥ २७ ॥ और यात्रा में जातेहुए पुरुष को जो पैरों का उबटन देता है या पैरों को धोता है वह सब कामनाओं को पाता है ॥ २८ ॥ और मार्ग में जातेहुए पुरुष से जो विष्णुजी की कथा व गीत को सुनता है व दान देता है उससे अधिक धन्य मनुष्य नहीं है ॥ २९ ॥ और जो उत्तम मनुष्य कैलास के शिखर के समान व निर्मल तथा श्वेत आकाश के समान देवदेव विष्णुजी के मन्दिर को देखता है ॥ ३० ॥ और कलश व ध्वजा से संयुत सुवर्णमय मन्दिर को दूर से देखकर सवारी को छोड़ पृथ्वी पै प्राप्त होकर जो लोटता है ॥ ३१ ॥ उसका पांच वधस्थानों से किया हुआ पाप व जो

उग्र पाप किया गया है और मार्ग में चलनेवाले से जो कृमि, कीट व पतंग मरे हैं ॥ ३२ ॥ और पराया अन्न व पराये जलके स्पर्श से जो पाप हुआ है वह सब विष्णुजी के क्षेत्र को देखने से नाश होजाता है ॥ ३३ ॥ और विष्णुसहस्रनाम व स्तवराज और गजेन्द्रमोक्ष को पढ़ताहुआ पुरुष मार्ग में धीरे २ चलै ॥ ३४ ॥ और विष्णुजी के प्रकटवाले अनेक गीतों को गाताहुआ हर्ष से संयुत पुरुष नित्य पवित्र व प्रसन्न मन होकर जावै ॥ ३५ ॥ पहले पैरों को न धोयेहुए पुरुष लक्ष्मीपति को प्रणाम करै तो वह सब विघ्नों के नाश को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३६ ॥ पहले जेठे भाई (बलभद्रजी) को प्रणाम कर नीलकमल के समान

कृतम्पापं तथाचोग्रंकृतञ्चयत् ॥ कृमिकीटपतङ्गाश्च निहताःपथिगच्छता ॥ ३२ ॥ परान्नपरपानीयस्यस्पर्शेनचसङ्गमम् ॥ तत्सर्वंनाशमायाति भगवत्क्षेत्रदर्शनात् ॥ ३३ ॥ पठन्नामसहस्रञ्च स्तवराजमथापिवा ॥ गजेन्द्रमोक्षणञ्चापि पथिगच्छेच्छनैःशनैः ॥ ३४ ॥ गायमानोभगवतः प्रादुर्भूतान्यनेकधा ॥ नित्यञ्चहर्षसंयुक्तो गच्छेद्धृष्टमनाःशुचिः ॥ ३५ ॥ अधौतपादःप्रथमं नमस्कुर्याद्रमेश्वरम् ॥ सर्वविघ्नविनाशंच लभतेनात्रसंशयः ॥ ३६ ॥ नीलोत्पलदलश्यामं कृष्णंदेवकिनन्दनम् ॥ दण्डवत्प्रणमेत्प्रीत्या प्रणिपत्याग्रजम्पुरा ॥ ३७ ॥ बाल्येचयत्कृतम्पापं कौमारेयौवने तथा ॥ दर्शनादेवकृष्णस्य तन्नष्टंनात्रसंशयः ॥ ३८ ॥ कर्मणामनसायच्च वाचायत्समुपार्जितम् ॥ पापंजन्मसहस्रेण तन्नष्टंनात्रसंशयः ॥ ३९ ॥ हेमभारसहस्रैस्तु दत्तैर्यत्फलमाप्यते ॥ तत्फलंकोटिगुणितं कृष्णवक्त्रावलोकने ॥ ४० ॥ नमस्कृत्यचदेवेशं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ॥ दुर्वाससंमहेशानं द्वारकापतिरक्षणम् ॥ ४१ ॥ प्रणम्य

श्याम देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी को प्रीति से दण्डा की नाईं प्रणाम करै ॥ ३७ ॥ बाल्यावस्था में और कुमार व युवावस्था में जो पाप कियागया है वह श्रीकृष्णजी के दर्शनही से नाश होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥ और हज़ार जन्मों में कर्म, मन व वचन से जो पाप इकट्ठा किया गया है वह नाश होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ व हज़ार सुवर्णभार के देने से जो फल मिलता है उससे कोटि गुना फल श्रीकृष्णजी के मुखको देखने से मिलता है ॥ ४० ॥ कमललोचन व अच्युत देवेशजी को प्रणाम कर और द्वारकानाथ की रक्षा करनेवाले दुर्वासा शिवजी को ॥ ४१ ॥ गरुड़ समेत बड़ी भक्ति

से प्रणाम कर फिर स्वर्गद्वारके समान उत्तम द्वार पै आकर ॥ ४२ ॥ आधा मुहूर्त सहँता कर मित्रों व बन्धुवों समेत मनुष्य वहां टिकेहुए मन्त्रों में चतुर ब्राह्मणों को बुला कर ॥ ४३ ॥ हव्य की द्रव्य को लाकर तदनन्तर तीर्थ को लावै ॥ ४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्ये देवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

दो० । यथा गोमती नदी अरु, चक्रतीर्थ दोउ आय । सो पंचम अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाय ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर कृष्णजी के आश्रय वाली गोमती को जावै कि जिसके दर्शन से मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ १ ॥ पापपुंज को नाश करनेवाले और अमंगल को नाशनेवाले तथा पुरुषों की सब

परयाभक्तया वैनतेयसमन्वितम् ॥ द्वारमागत्यचपुनः स्वर्गद्वारोपमेशुभे ॥ ४२ ॥ विश्रम्यचमुहूर्तार्द्धं सुहृद्भिर्बान्धवैःसह ॥ तत्रस्थितान्समाहूय ब्राह्मणान्मन्त्रकोविदान् ॥ ४३ ॥ हविर्द्रव्यंसमानीय ततस्तीर्थंसमानयेत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठा गोमतींकृष्णसंश्रयाम् ॥ यस्यादर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ १ ॥ दुरितौघक्षयकरममङ्गल्यविनाशनम् ॥ सर्वकामप्रदंपुंसां प्रणमेद्गोमतीजलम् ॥ २ ॥ महापापक्षयकरमगतीनांगतिप्रदम् ॥ सर्वपुण्यवशात्प्राप्तं सुशीतंगोमतीजलम् ॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ दैत्येन्द्रसंशयोस्माकं छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ इयंकागोमतीतत्र केनानीतामहामते ॥ ४ ॥ केनकार्यवशेनैव सम्प्राप्तावरुणालयम् ॥ सर्वंभागवतश्रेष्ठ ह्येतद्विस्तरतोवद ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ एकार्णवेपुराभूते नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ तदाब्रह्मासमभवद्विष्णोर्नाभिसरोरुहात् ॥ ६ ॥ आदि

कामनाओं को देनेवाले गोमती के जलको प्रणाम करै ॥ २ ॥ क्योंकि महापापों को क्षय करनेवाला तथा अगतियों की गति को देनेवाला और ठण्ढा गोमती का जल सब पुण्यों के वश से मिलता है ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे दैत्येन्द्र! हमलोगोंके जो सन्देह है उसको तुम सम्पूर्णता से काटने योग्य हो कि हे महामते! यह गोमती कौन है और वहा इसको कौन लाया है ॥ ४ ॥ व हे भागवतोत्तम ! किस कार्यवश से समुद्र को प्राप्तहुई है इस सब को विस्तार से कहिये ॥ ५ ॥ प्रह्लादजी बोले कि पुरातन समय जब चराचर नाश होगया तब एकार्णव (प्रलय) होने पर विष्णुजी की नाभि के कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥ ६ ॥ और प्रभु विष्णुजी ने ब्रह्मा को

आज्ञा दिया कि अनेक भांति के प्रजाओं को रचो विष्णुजी ने सृष्टि के कारण में इस प्रकार ब्रह्मा को आज्ञा दिया ॥ ७ ॥ बहुत अच्छा यह कहकर तदनन्तर उन ब्रह्मा ने सृष्टि में मन धारण किया और उसी क्षण मन से सनकादिक कुमारों को रचा ॥ ८ ॥ व ब्रह्मा ने उनसे कहा कि हे पुत्रो ! प्रजाओं को रचो ब्रह्मा का वचन सुनकर हाथों को जोड़ेहुए उन्होंने कहा ॥ ९ ॥ कि हे भगवन्, प्रजापते ! हमलोग विष्णुका स्वरूप देखा चाहते हैं और बन्धन में नहीं पड़ेंगे व कठिन सृष्टि को नहीं करैंगे यह कहकर वे सब सनकादिक कुमार चलेगये ॥ १० ॥ और पश्चिम दिशा में समुद्र के किनारे टिक कर महात्मा विष्णुजी के तेजोमय स्वरूप को देखने की इच्छा

ष्टः प्रभुणाब्रह्मा सृजस्वविविधाप्रजाः ॥ इतिब्रह्मासमादिष्टो हरिणासृष्टिकारणे ॥ ७ ॥ वाढमित्येवचोक्त्वास ततः सृष्टौमनोदधे ॥ ससर्जमानसात्सद्यः सनकाद्यान्कुमारकान् ॥ ८ ॥ उवाचवचनंब्रह्मा प्रजाःसृजतपुत्रकाः ॥ ब्रह्मणोवचनंश्रुत्वा कृताञ्जलिपुटाब्रुवन् ॥ ९ ॥ भगवन्भगवद्रूपं द्रष्टुकामाःप्रजापते ॥ नबन्धमनुवर्त्तामःसृष्टिं नचदुरासदाम् ॥ इत्युक्त्वातेययुःसर्वे सनकाद्याःकुमारकाः ॥ १० ॥ पश्चिमांदिशमास्थाय तीरेनदनदीपतेः ॥ तेजोमयस्वरूपस्य द्रष्टुकामामहात्मनः ॥ ११ ॥ तस्मिन्मनःसमाधाय तेपिरेपरमंतपः ॥ बहुवर्षसहस्रैस्तु प्रसन्नोधरणीधरः ॥ १२ ॥ भित्त्वाजलंसमुत्तस्थौ सूर्यरूपंदुरासदम् ॥ अनेकदैत्यदमनं बहुयन्त्रविदारणम् ॥ १३ ॥ सूर्यकोटिसमाभासं सहस्रारंसुदर्शनम् ॥ तंदृष्ट्वाविस्मिताःसर्वे ब्रह्मपुत्राःपरस्परम् ॥ १४ ॥ वीक्षमाणाभगवतः परमायुधमुत्तमम् ॥ तान्विस्मितांस्तदोवाच ब्राह्मणानशरीरिणी ॥ १५ ॥ भोब्रह्मपुत्राभगवाञ्शीघ्रमाविर्भविष्यति ॥ अर्हणार्थंभग

वाले उन्होंने ॥ ११ ॥ उन विष्णुजी में मन को लगाकर उत्तम तप किया और बहुत हज़ार वर्षों के बाद धरणीधर (विष्णुजी) प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥ और जलको फोड़ कर अनेकों दैत्यों को नाशनेवाला व बहुत से यन्त्रों को विदारनेवाला सूर्य के समान रूपवान् असह्य तेज उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥ करोड़ सूर्यों के समान प्रकाशमान व हज़ार धारोंवाले उस सुदर्शन चक्र को देखकर सब ब्रह्मा के पुत्र परस्पर विस्मित हुए ॥ १४ ॥ और विष्णुजी के उत्तम आयुध चक्र को देखते रहे तब उन विस्मित ब्राह्मणों से आकाशवाणी बोली ॥ १५ ॥ कि हे ब्रह्मपुत्रो ! भगवान् विष्णुजी शीघ्रही प्रकट होवैंगे और भगवान् की पूजा के लिये शीघ्रही

अर्घ देवो ॥ १६ ॥ व संसार के स्वामी विष्णुजी के अस्त्र को शीघ्रही अर्घ देवो उसके उस वचन को सुन कर उन्होंने सुदर्शन चक्र की स्तुति किया ॥ १७ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे ज्योतिर्मय ! तुम्हारे लिये नमस्कार है हे हरिप्रिय ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे सहस्रार, सुदर्शन ! अविनाशी आपके लिये प्रणाम है ॥ १८ ॥ सूर्यरूपी आपके लिये नमस्कार है व ब्रह्मरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है आप अमोघ के लिये नमस्कार है व चक्रके लिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ इन सनकादिकों ने फूलों व अक्षतों से पूजन किया और अनेक प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति कर विष्णुप्रिय चक्र को प्रणाम किया ॥ २० ॥ व चक्रको प्रसन्न कराकर स्वामी विष्णुजी के दर्शन

वतः शीघ्रमर्घम्प्रयच्छत ॥ १६ ॥ आयुधंलोकनाथस्य शीघ्रमर्घंप्रयच्छत ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यास्तुष्टुवुस्तेसुदर्शनम् ॥ १७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ज्योतिर्मयनमस्तेस्तु नमस्तेहरिवल्लभ ॥ सुदर्शननमस्तुभ्यं सहस्राराक्षयायच ॥ १८ ॥ नमस्तेसूर्यरूपाय ब्रह्मरूपायतेनमः ॥ अमोघायनमस्तुभ्यं रथाङ्गायनमोनमः ॥ १९ ॥ एतेसम्पूजयामासुः सुमनोभिस्तथाक्षतैः ॥ स्तवैर्नानाविधैःस्तुत्वा प्रणेमुर्हरिवल्लभम् ॥ २० ॥ तेप्रसाद्यसुनाभंतु प्रभुसंदर्शनोत्सुकाः ॥ स्मरन्तोमनसादेवं ब्रह्माणंपितरंस्वकम् ॥ २१ ॥ तेषांतुचिन्तितंज्ञात्वा ब्रह्मागङ्गांतदाब्रवीत् ॥ याहितीर्थसरिच्छ्रेष्ठे पृथिव्यांहरिकारणात् ॥ २२ ॥ गङ्गतस्त्वंमहाभागे यतोवहुमतासिमे ॥ उर्व्यान्तेगोमतीनाम सुप्रसिद्धंभविष्यति ॥ २३ ॥ वशिष्ठस्यानुगाभूत्वा याहिशीघ्रंधरातलम् ॥ पितेवपुत्रीतियथा वशिष्ठतनयाभव ॥ २४ ॥ वाढमित्येवतंदेवी प्रस्थितावरुणालयम् ॥ वशिष्ठश्चाग्रतोयाति गङ्गातंपृष्ठतोन्वगात् ॥ २५ ॥ तांदृष्ट्वामनुजाःसर्वे वशिष्ठेनसमन्विताम् ॥ नमश्चक्रुर्महा

में उत्कण्ठित वे सनकादिक मुनि मन से अपने पिता ब्रह्मादेव को स्मरण करनेलगे ॥ २१ ॥ और उनके चिन्तित को जानकर तब ब्रह्मा ने गङ्गा से कहा कि हे तीर्थों व नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी ! पृथ्वी में तुम विष्णुजी के लिये जावो ॥ २२ ॥ और जिसलिये हे महाभागे ! तुम गङ्गाजी से मेरे बहुत संमत हो उसी कारण पृथ्वी में तुम्हारा गोमती ऐसा नाम प्रसिद्ध होगा ॥ २३ ॥ व पिता और कन्या की नाईं वशिष्ठ के पीछे चलकर तुम शीघ्रही पृथ्वी को जावो और वशिष्ठ की कन्या होवो ॥ २४ ॥ उन ब्रह्मा से बहुत अच्छा ऐसा कहकर गङ्गा देवी समुद्र को चलीं वशिष्ठजी आगे चले और गङ्गाजी उनके पीछे चलीं ॥ २५ ॥ वशिष्ठ से संयुत

पश्चिम समुद्र को जातीहुई उन महाऐश्वर्य्यवती गङ्गाजी को देखकर सब मनुष्यों ने प्रणाम किया ॥ २६ ॥ और जहां वे मुनि स्थित थे वहां प्रकट हुई और विष्णुजी के रूप को देखने की इच्छावाली वे गङ्गाजी मुनि समेत चलीं ॥ २७ ॥ और महाभाग सब मुनियों ने दिव्य व सुगन्धित माला तथा चन्दन, धूप व अक्षतों से व फूलों से वृष्टि किया ॥ २८ ॥ व लक्ष्मी से संयुत तथा चतुर्भुज विष्णुजी के रूप को देखने की इच्छावाली तथा सब देहधारियों को पवित्र करनेवाली व महाऐश्वर्य्यवती गङ्गाजी की प्रशंसा किया ॥ २९ ॥ देवताओं को पवित्र करनेवाली वशिष्ठ की कन्या को आतीहुई देखकर प्रसन्नमनवाले सब ब्राह्मणों ने बहुत

भागां गच्छन्तींपश्चिमार्णवम् ॥ २६ ॥ आविर्बभूवतत्रैव यत्रतेमुनयःस्थिताः ॥ द्रष्टुकामाहरेरूपं प्रस्थितामुनिनासह ॥ २७ ॥ समाकिरन्महाभागाः सुमनोभिश्चसर्वशः ॥ दिव्यैर्माल्यैःसुगन्धैश्च गन्धैर्धूपैस्तथाक्षतैः ॥ २८ ॥ साधुसाधु महाभागां पावनींसर्वदेहिनाम् ॥ द्रष्टुकामांहरेरूपं श्रियाजुष्टंचतुर्भुजम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वावशिष्ठतनुजामायान्तींसुरपावनीम् ॥ संहृष्टमनसःसर्वे साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ ३० ॥ वशिष्ठंतत्रतेदृष्ट्वा साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ वशिष्ठंतत्रतेदृष्ट्वा उत्तस्थुःसर्वतोद्विजाः ॥ ३१ ॥ यस्मात्त्वयासमानीता ह्यस्मिन्स्थानेसरिद्वरा ॥ तस्माद्विगोमतीनाम ख्यातिंलोकेगमिष्यति ॥ ३२ ॥ अस्यादर्शनमात्रेण मुक्तिंयास्यन्तिमानवाः ॥ किम्पुनःस्नानदानादि कृत्वायान्तिपदंहरेः ॥ ३३ ॥ तामेवह्यर्घ्यंदत्त्वाते योगीन्द्राईडिरेहरिम् ॥ परंपुरुषसूक्तेन रमेशंशेषशायिनम् ॥ ३४ ॥ इतिसंस्तुवतां

अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा ॥ ३० ॥ और वहां वशिष्ठजी को देखकर उन्होंने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा और वहां वशिष्ठजी को देख कर वे ब्राह्मण सब ओर से उठपड़े ॥ ३१ ॥ व बोले कि जिसलिये इस स्थान में तुम उत्तम नदी को लाये हो उस कारण संसार में गोमती नाम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ ३२ ॥ और इसके दर्शनही से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होवेंगे फिर स्नान दानादिक करके विष्णुजी के स्थान को जावेंगे इसमें क्या कहना है ॥ ३३ ॥ उन योगीन्द्रों ने उन गोमती को अर्घ देकर पुरुषसूक्त से उन शेषशायी रमानाथ विष्णुजी की स्तुति किया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार उन मुनियों के स्तुति करतेहुए विष्णुजी

प्रकटहुए और पीत रेशमी वस्त्रको पहने व वनमाला से भूषित ॥ ३५ ॥ तथा दिव्य चन्दन को अंग में लगायेव दिव्य आभूषणोंसे भूषित, शेषासन पै प्राप्त और अनेकों दिव्य अस्त्रों को उठायेहुए देव ॥ ३६ ॥ और जलतेहुए किरीट, मुकुटवाले तथा चमकतेहुए मकराकृति कुण्डलवाले और सुन्दर व श्रीवत्स से चिह्नित, महाभुज ॥ ३७ ॥ व सदैव प्रसन्नमुख, मेघकी नाईं श्याम व चतुर्भुज और चरण चापने के आनन्द से लक्ष्मी के ऊपर प्रसन्न व सुन्दर विष्णुजी को ॥ ३८ ॥ देखकर उन सब मुनियों ने हर्ष से संयुत उन विष्णुजी की वेद से उपजे हुए स्तोत्रों से व विष्णुसूक्त से हर्ष से स्तुति किया ॥ ३९ ॥ व इस प्रकार उनके

तेषां हरिराविर्बभूवह ॥ पीतकौशेयवसनवनमालाविभूषितम् ॥ ३५ ॥ दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्याभरणभूषितम् ॥ शेषासनगतंदेवं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ ३६ ॥ ज्वलत्किरीटमुकुटं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ भक्ताभयप्रदंकान्तं श्रीवत्साङ्कंमहाभुजम् ॥ ३७ ॥ सदाप्रसन्नवदनं घनश्यामंचतुर्भुजम् ॥ पादसंवाहनमुदा लक्ष्म्यास्तुष्टंमनोहरम् ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वाचमुनयःसर्वे हर्षाद्धर्षसमन्वितम् ॥ विष्णुंतेविष्णुसूक्तेन तुष्टुवुर्वेदसम्भवैः ॥ ३९ ॥ एवंसंस्तुवतांतेषां विष्णुर्दीनानुकम्पनः ॥ उवाचसुप्रसन्नेन मनसाद्विजसत्तमान् ॥ ४० ॥ भोभोःकुमारास्तुष्टोहं प्रदास्यामियथेप्सितम् ॥ भविष्यथ ज्ञानयुता असृष्टाममामायया ॥ ४१ ॥ यस्मान्मोक्षार्थिभिर्विप्रा जलवासीप्रसादितः ॥ तस्मादिदंपरंतीर्थं मोक्षदंसर्वदा मम ॥ ४२ ॥ अनुग्रहायभवतां यस्माचक्रंसुदर्शनम् ॥ निःसृतम्प्रथमंविप्रा जलम्भित्त्वाममाग्रतः ॥ ४३ ॥ चक्रतीर्थमितिख्यातं चक्रनाम्नाभविष्यति ॥ ममापिनियतंवासो भविष्यतिमहार्णवे ॥ ४४ ॥ येत्रस्नानंप्रकुर्वन्ति प्रसङ्गेनापि

स्तुति करते हुए दीनों के ऊपर दया करनेवाले विष्णुजी प्रसन्नमन से द्विजोत्तमों से बोले ॥ ४० ॥ कि हे कुमारो ! मैं प्रसन्न हूं और जैसा प्रिय होगा वैसा वर दूंगा और ज्ञान से संयुत होगे व मेरी माया से रचित न होवोगे ॥ ४१ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसलिये मोक्ष को चाहनेवाले पुरुषों से जलवासी विष्णुजी प्रसन्न कराये गये उसी कारण यह मेरा उत्तम तीर्थ सदैव मोक्षदायक होगा ॥ ४२ ॥ हे ब्राह्मणो ! जिसलिये आपलोगों के ऊपर दया से मेरे आगे पहले जलको फोड़कर सुदर्शन चक्र निकला है ॥ ४३ ॥ इस कारण चक्र के नाम से चक्रतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा और मेरा भी महासागर में निश्चय कर निवास होगा ॥ ४४ ॥ व हे द्विजोत्तमो !

जो मनुष्य इस चक्रतीर्थ में प्रसंग से भी स्नान करते हैं उनके हाथ में मुक्ति स्थित होती है ॥ ४५ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! सब कामनाओं को देनेवाले आप लोग भी पवन होकर आकाश में स्थित होकर सदैव यहां बसो ॥ ४६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि इस वचन को सुनकर प्रसन्न मनवाले सनकादिकों ने अर्घ करके विष्णुजी के चरणों को धोकर सुख से पवित्र करनेवाली इन गंगाजी को मस्तक से धारण किया ॥ ४७ ॥ और चरणों को धोकर वह समुद्र में जानेवाली महापापहारिणी गोमती उस समुद्र में पैठगई ॥ ४८ ॥ यह कहकर भगवान् कृष्णजी अन्तर्द्धान होगये और सावधान होतेहुए सनकादिक ब्रह्मपुत्र वहां टिकते भये ॥ ४९ ॥ इस प्रकार

मानवाः ॥ चक्रतीर्थेद्विजश्रेष्ठास्तेषांमुक्तिःकरेस्थिता ॥ ४५ ॥ भवन्तोपिसदाह्यत्र निवसध्वंद्विजर्षभाः ॥ वायुभूतान्तरिक्षस्थाः सर्वकामप्रदायकाः ॥ ४६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वातुहृष्टमनसः कृत्वार्घंसुखपावनीम् ॥ अवनिज्यहरेःपादौ मूर्ध्नाचैनामधारयन् ॥ ४७ ॥ प्रक्षाल्यसातथापादौ प्रविष्टावरुणालये ॥ तस्मिन्महापापहरा गोमतीसागरङ्गमा ॥ ४८ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्कृष्णस्तथाचान्तरधीयत ॥ सनकाद्याब्रह्मसुतास्तस्थुस्तत्रसमाहिताः ॥ ४९ ॥ एवंसागोमतीतत्र संजातासागरङ्गमा ॥ सर्वपापहराप्रोक्ता पूर्वंगङ्गेतियाश्रुता ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्ये गोमतीचक्रतीर्थयोरुत्पत्तिर्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ साधुसाधुमहाभाग प्रह्लादासुरसत्तम ॥ येननःकलिमध्येतु दर्शितोभगवान्हरिः ॥ १ ॥ तिष्ठतेतत्रभ

वहां समुद्र में जानेवाली वह गंगा उत्पन्न हुई जो कि पहले समस्त पातकों को हरनेवाली गंगा ऐसी प्रसिद्ध हुई है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोमतीचक्रतीर्थयोरुत्पत्तिर्नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यथा गोमती जलधि के संगम में फल होत । सोइ छठे अध्याय में वरणब चरित उदोत ॥ ऋषिलोग बोले कि हे असुरोत्तम, महाभाग, प्रह्लादजी ! आप को साधुवाद है कि जिन आपने कलियुग के मध्य में हमलोगों को भगवान् विष्णुजी को दिखला दिया ॥ १ ॥ कि वहां सुन्दर तीर्थ में भगवान् विष्णुजी स्थित हैं तुम्हारे

मुखरूपी क्षीरसमुद्र से उपजी हुई अमृतात्मिका इस कथा को ॥ २ ॥ कानों से पीते हुए मुनियों की तृप्ति नहीं होती है हे महाबाहो! बहुत विस्तारवाली तीर्थयात्रा को कहिये ॥ ३ ॥ जहां गोमती नदी बहती है वहां हमलोगों को जाना चाहिये जहां कि चक्रतीर्थ को देखनेवाले भगवान् विष्णुजी स्थित हैं ॥ ४ ॥ हे महामते, तात! भवसागर में गिरेहुए हमलोगों को उधारिये ॥ ५ ॥ व हे महामते! कृष्णजीके पूजन की विधि को कहिये प्रह्लादजी बोले कि गोमती के किनारे जाकर व दण्डा की नाईं उन गोमतीजी को प्रणामकर ॥ ६ ॥ हाथों व पांवों को धोकर हाथों में कुशों को करके अक्षतों से संयुत उत्तम फल को लेकर ॥ ७ ॥ पूर्व मुख बैठकर

गवांश्चक्रतीर्थेमनोहरे ॥ त्वन्मुखक्षीरसिन्धूत्थाममृताढ्यांकथामिमाम् ॥ २ ॥ कर्णाभ्यांपिबतांतृप्तिर्नमुनीनांप्रजायते ॥ कथयस्वमहाबाहो तीर्थयात्रांसुविस्तराम् ॥ ३ ॥ अस्माभिस्तत्रगन्तव्यं वहतेयत्रगोमती ॥ तिष्ठतेयत्रभगवांश्चक्रतीर्थावलोककः ॥ ४ ॥ भवाब्धौपतितांस्तात उद्धरास्मान्महामते ॥ ५ ॥ कृष्णपूजाविधानञ्च कथयस्वमहामते ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ गत्वाचगोमतीतीरे प्रणम्यदण्डवद्धिताम् ॥ ६ ॥ प्रक्षाल्यपाणिपादौच धृत्वाचकरयोःकुशान् ॥ गृहीत्वाच फलंशुभ्रमक्षतैश्चसमन्वितम् ॥ ७ ॥ प्राङ्मुखःसंयतोभूत्वा दद्यादर्घंविधानतः ॥ ब्रह्मलोकात्समायाते वशिष्ठतनयेशुभे ॥ ८ ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थं ददाम्यर्घञ्चगोमति ॥ वशिष्ठदुहितेदेवि शक्तिज्येष्ठेयशस्विनि ॥ ९ ॥ त्रैलोक्यवन्दिते देवि पापम्मेहरगोमति ॥ इत्युच्चार्यद्विजश्रेष्ठो मृदमालभ्यपाणिना ॥ १० ॥ विष्णुंसंस्मृत्यमनसा मन्त्रमेनमुदीरयत् ॥ अश्वक्रान्तेरथक्रान्ते विष्णुक्रान्तेवसुन्धरे ॥ ११ ॥ उद्धृतासिवराहेण कृष्णेनशतबाहुना ॥ मृत्तिकेहरमेपापं

विधि से अर्घ को देवै कि हे ब्रह्मलोक से आईहुई, शुभे, वशिष्ठतनये! ॥ ८ ॥ हे गोमति! सब पापों से शुद्धि के लिये मैं अर्घ को देता हूं हे वशिष्ठकन्ये, शक्तिज्येष्ठे, यशस्विनि, देवि! ॥ ९ ॥ हे त्रैलोक्यवन्दिते, गोमति, देवि! मेरे पाप को हरिये यह कहकर द्विजोत्तम हाथ से मिट्टी को स्पर्श कर ॥ १० ॥ मन से विष्णुजी को स्मरणकर इस मन्त्र को कहै कि हे अश्वक्रान्ते, रथक्रान्ते, विष्णुकान्ते, वसुन्धरे! ॥ ११ ॥ सौ भुजाओंवाले वराहरूपी कृष्णजी से तुम ऊपर लाईगई हो हे मृत्तिके!

मैंने जो पहले इकट्ठा किया है उस पाप को हरिये ॥ १२ ॥ तुम से नष्ट कियेहुए पाप से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है इस प्रकार मिट्टी को छूकर विधिपूर्वक स्नानकरै ॥ १३ ॥ आपो अस्मान् इस मन्त्र से नहाकर मनुष्य जिस फल को पाताहै उसको सुनिये कि राहु से सूर्य के ग्रस्त होने पर कुरुक्षेत्र में जो पुण्य होता है ॥ १४ ॥ वह कृष्ण के समीप गोमती में नहाने से कहागया है और उत्तम भक्ति से उसमें नहाकर यथायोग्य कर्म को करै ॥ १५ ॥ व भक्ति से संयुत पुरुष देवता, पितर व मनुष्यों को तर्पणकरै जो रौरवनरक में टिके हैं व जो कीटत्व को प्राप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ वे गोमती नदी के नीरदान से निस्सन्देह मुक्ति को पाते हैं व अक्षत और कुशों

यन्मयापूर्वसञ्चितम् ॥ १२ ॥ त्वयाहतेनपापेन सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ इत्येवंमृदमालभ्य स्नानंकुर्याद्यथाविधि ॥ १३ ॥ आपोअस्मानितिस्नात्वा शृणुध्वंयत्फलंलभेत् ॥ कुरुक्षेत्रेचयत्पुण्यं राहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ १४ ॥ स्नानमात्रेणतत्प्रोक्तं गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ भक्त्यास्नात्वाचपरया कुर्यात्कर्मयथोचितम् ॥ १५ ॥ देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च तर्पयेद्भावसंयुतः ॥ येचरौरवसंस्थाहि येचकीटत्वमागताः ॥ १६ ॥ गोमतीनीरदानेन मुक्तिंयान्तिनसंशयः ॥ विनाप्यक्षतदर्भेण विनाभावनयातथा ॥ १७ ॥ वारिमात्रेणगोमत्या गयाश्राद्धफलंलभेत् ॥ ततश्चविप्रानाहूय वेदज्ञांस्तीर्थसंश्रयान् ॥ १८ ॥ विश्वेदेवादिसम्पूज्य पितॄणांश्राद्धमाचरेत् ॥ श्रद्धयापरयायुक्तः श्राद्धंकुर्याद्विधानतः ॥ १९ ॥ दक्षिणाञ्चततोदद्यात्सुवर्णंरजतंतथा ॥ सुवर्णशृङ्गसहितां खुरराजतभूषिताम् ॥ २० ॥ रत्नपुच्छींदुग्धयुतां ताम्रपृष्ठींसवत्सकाम् ॥ दद्याद्धेनुंसमभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ २१ ॥ सप्तधान्ययुतांदद्याद् विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ आसीमान्तेविसृज्यै

के विना तथा विना भावना से ॥ १७ ॥ गोमती के जलमात्र से मनुष्य गयाश्राद्ध के फलको पाता है तदनन्तर तीर्थ में टिकेहुए वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर ॥ १८ ॥ विश्वेदेवादिकों को पूजकर पितरों का श्राद्धकरै बड़ी श्रद्धा से संयुत मनुष्य विधि से श्राद्धकरै ॥ १९ ॥ तदनन्तर सुवर्ण या चांदी को दक्षिणा देवै और सुवर्ण के शृंगों समेत व चांदीके खुरों से भूषित ॥ २० ॥ तथा रत्नसंयुत पूंछवारी और दूधयुक्त व तांबे की पीठ से संयुत व बछड़ा समेत गऊको पूजकर वस्त्र, अलंकार व भूषणों से युक्त गऊको देवै ॥ २१ ॥

मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इसलिये नियत व पवित्र पुरुष सप्तधान्य से संयुत गऊ को देवै और सीमा (हद) पर्यन्त इन ब्राह्मणों को बिदाकर ॥ २२ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्ध व कृपणों को दान देना चाहिये गोमती व गोमय का स्नान और गोदान व गोपीचन्दन ॥ २३ ॥ और गोपीनाथ का दर्शन ये पांच गकार दुर्लभ हैं इस कारण मनुष्य को गोमती के किनारे गोदान करना चाहिये ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करने पर मनुष्य कृतकृत्य होता है और जो भयंकर नरक में प्राप्त हैं व जो प्रेतयोनि में प्राप्त हैं ॥ २५ ॥ और पूर्वकर्म के फल से जो स्थावरता (वृक्षादि) योनि में प्राप्त हैं और जो कोई पितृपक्ष में हैं व जो माता के वंश में

तान् ब्राह्मणान्नियतःशुचिः ॥ २२ ॥ दीनान्धकृपणानाञ्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ गोमतीगोमयस्नानं गोपादंगोपिचन्दनम् ॥ २३ ॥ दर्शनंगोपिनाथस्य गकाराःपञ्चदुर्लभाः ॥ तस्मान्नरेणकर्तव्यं गोदानंगोमतीतटे ॥ २४ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ येगतानरकेघोरे प्रेतयोनिगतास्तथा ॥ २५ ॥ पूर्वकर्मविपाकेन स्थावरत्वंगताश्चये ॥ पितृपक्षेचयेकेचिन्मातुश्चापिकुलोद्भवाः ॥ २६ ॥ तेसर्वेमुक्तिमायान्ति गोमतीदर्शनात्कलौ ॥ कृतेनतत्रश्राद्धेन गोमत्यां द्विजसत्तमाः ॥ २७ ॥ हयमेधस्ययज्ञस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ गङ्गास्नानेनयत्पुण्यं प्रयागेपरिकीर्तितम् ॥ २८ ॥ तत्फलंसमवाप्नोति गोमत्यांश्राद्धकृन्नरः ॥ विष्णुलोकंहिगच्छन्ति पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ २९ ॥ अनेकजन्मसाहस्रं पापंयातिनसंशयः ॥ वाचायच्चकृतंपापं यत्कृतंकर्मणातथा ॥ ३० ॥ तत्सर्वंविलयंयाति गोमतीदर्शनेनहि ॥ योन

उत्पन्न हैं ॥ २६ ॥ वे सब कलियुग में गोमतीजी के दर्शन से मुक्ति को प्राप्त होते हैं व हे द्विजोत्तमो ! उस गोमती नदी के समीप श्राद्ध करने से ॥ २७ ॥ निस्सन्देह अश्वमेधयज्ञ के फलको पाता है और प्रयाग में गंगाजी के स्नान से जो पुण्य कहागया है ॥ २८ ॥ उस फल को गोमती नदी के समीप श्राद्ध करनेवाला पुरुष पाता है और तीन कुलों में उपजे हुए पितर विष्णुलोक को जाते हैं ॥ २९ ॥ और अनेक हज़ार जन्मों में किया हुआ पाप निस्सन्देह नाश होजाता है और वचन से जो पाप किया गया है व कर्म से जो पाप किया गया है ॥ ३० ॥ वह सब पातक गोमती के दर्शन से नाश होजाता है व हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य कातिक में गोमती

में स्नान करता है ॥ ३१ ॥ उसके ऊपर लक्ष्मी समेत विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और सावधान मनुष्य प्रतिदिन अग्नि को तृप्तकरै ॥ ३२ ॥ और प्रतिदिन ब्राह्मण के लिये छः प्रकार का भोजन देना चाहिये ॥ ३३ ॥ और प्रतिदिन भक्ति में तत्पर मनुष्य कृष्णदेव को प्रणाम करै व हे द्विजेन्द्रो ! जिस किसी नियम से टिकना चाहिये ॥ ३४ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ब्राह्मण की आज्ञा से मनुष्य नियम को ग्रहणकरै और कातिक पूर्ण होने पर बुधदिन प्राप्त होनेपर ॥ ३५ ॥ तीर्थ के जल से देवेश विष्णुजी को पंचामृत से स्नान करावै और कस्तूरी से उत्पन्न व कुंकुम से मिलेहुए चन्दन को ॥ ३६ ॥ भक्ति से देवेश दामोदर विष्णुजी के लेपन करै और जल से उपजे

रःकार्त्तिकेस्नानं गोमत्यांकुरुतेद्विजाः ॥ ३१ ॥ प्रसन्नोभगवांस्तस्य लक्ष्म्यासहनसंशयः ॥ प्रत्यहंहुतभोक्तारं तर्पयेत्सुसमाहितः ॥ ३२ ॥ प्रत्यहंषड्विधंदेयं भोजनञ्चाद्विजातये ॥ ३३ ॥ प्रत्यहंकृष्णदेवञ्च प्रणमेद्भक्तितत्परः ॥ येनकेनच विप्रेन्द्राः स्थातव्यंनियमेनहि ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणानुज्ञयाविप्रा गृह्णीयान्नियमन्नरः ॥ सम्पूर्णेकार्त्तिकेमासे सम्प्राप्तेबुधवासरे ॥ ३५ ॥ पञ्चामृतेनदेवेशं स्नापयेत्तीर्थवारिणा ॥ श्रीखण्डंकुङ्कुमोन्मिश्रं मृगनाभिसमुद्भवम् ॥ ३६ ॥ विलेपयेच्च देवेशं भक्त्यादामोदरंहरिम् ॥ कुसुमैर्वारिसम्भूतैः फलैश्चफलपूरकैः ॥ ३७ ॥ तद्देशसम्भवैश्चान्यैः पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ नैवेद्यंरुचिरंदद्याद्विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ ३८ ॥ गीतवाद्यादिनृत्येन तथापुस्तकवाचनैः ॥ रात्रौजागरणंकार्यं स्तोत्रैर्नानाविधैरपि ॥ ३९ ॥ आहूयब्राह्मणान्भक्त्या भोजयेच्चस्वशक्तितः ॥ ततोरथस्थितंदेवं पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ ४० ॥ कार्त्तिकान्तेचविप्रेन्द्रा गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ स्नात्वापितॄंश्चसन्तर्प्य पूजयेच्चजनार्दनम् ॥ ४१ ॥ सुवस्त्रैर्भूषणैश्चापि सम

हुए पुष्पों तथा बिजौरा निम्बूफलों से ॥ ३७ ॥ और उस देश में उपजेहुए अन्य पुष्पों से विष्णुजी को पूजै और मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस मन्त्र से सुन्दर नैवेद्य को देवै ॥ ३८ ॥ और गान, बाजन व नृत्य से तथा पुस्तकों के बांचने से व अनेक भांति के स्तोत्रों से रात्रि में जागरण करना चाहिये ॥ ३९ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भक्ति से भोजन करावै तदनन्तर रथ पै बैठेहुए विष्णुदेवजी को पूजै ॥ ४० ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! कातिक के अन्त में गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर और पितरों को तर्पण कर विष्णुजी को पूजै ॥ ४१ ॥ और सुन्दर वस्त्रों व भूषणों से रमानाथ (विष्णु) जी को पूजकर ब्राह्मणों की आज्ञा से व्रतसम्पूर्णता को प्राप्त

होता है ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से गोमती में माघस्नान करता है उसके ऊपर स्त्री समेत गरुड़वाहन विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ४३ ॥ और उत्तम ब्राह्मण के लिये तिल, सुवर्ण व चांदी देना चाहिये और दक्षिणा से संयुत व गुड़ से मिले हुए लड्डुवों को प्रतिदिन उत्तम ब्राह्मण के लिये देना चाहिये ॥ ४४ ॥ व प्रतिदिन मनुष्यों को घी संयुत तिलों से हवन करना चाहिये और होम के लिये अग्नि को लावै जाड़े के लिये कभी न लावै ॥ ४५ ॥ और माधवव्रत करके जो मनुष्य भक्ति से गोमती में नहाता है व व्रत के समाप्त होने पर लाल वस्त्र और जामा व पगड़ी ॥ ४६ ॥ और पनही व कुंकुम को विशेष कर देवै और मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न

भ्यर्च्यरमापतिम् ॥ अनुज्ञयातुविप्राणां व्रतंसम्पूर्णतांव्रजेत् ॥ ४२ ॥ माघस्नानंनरोभक्त्या गोमत्यांकुरुतेतुयः ॥ वैनतेयोद्वहत्कायः सन्तुष्टःसहभार्यया ॥ ४३ ॥ तिलाहिरण्यंरजतं देयंब्राह्मणसत्तमे ॥ मोदकागुडसंमिश्राः प्रत्यहंदक्षिणान्विताः ॥ ४४ ॥ तिलैराज्ययुतैर्होमः कर्तव्यःप्रत्यहंनरैः ॥ होमार्थमानयेद्वह्निं नशीतार्थंकदाचन ॥ ४५ ॥ गोमत्यांस्नातियोभक्त्या विधायमाधवव्रतम् ॥ समाप्तौरक्तवस्त्राणि कञ्चुकोष्णीषमेवच ॥ ४६ ॥ दद्यादुपानहौचैव कुङ्कुमञ्चविशेषतः ॥ केवलंतैलपकञ्च विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ ४७ ॥ स्वामिकार्य्येमृतायेच संग्रामेरिपुसंकुले ॥ गवार्थेब्राह्मणार्थेच मृतानांयागतिःस्मृता ॥ ४८ ॥ माघस्नानेनसाप्रोक्ता गोमत्यांनात्रसंशयः ॥ सर्वदानफलंतस्य सर्वतीर्थफलंतथा ॥ ४९ ॥ माघस्नानान्नरोयाति विष्णुलोकंसनातनम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति समभ्यर्च्यजनार्दनम् ॥ ५० ॥ माघंसमापयेन्माघ्यां गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ब्राह्मणानुज्ञयाविप्राः सर्वंसम्पूर्णतांव्रजेत् ॥ ५१ ॥ पाणिनापिद्विजश्रेष्ठा ये

होवैं इसलिये केवल तैलपक अन्न को देवै ॥ ४७ ॥ और शत्रुवों से संयुत समर में जो स्वामी के कार्य के लिये मरे हैं और गऊ व ब्राह्मण के लिये मरेहुए पुरुषों की जो गति कहीगई है ॥ ४८ ॥ वह गोमती में माघस्नान से कहीगई है इसमें सन्देह नहीं है और उसको सब दानों का फल व सब तीर्थों का फल होता है ॥ ४९ ॥ व माघस्नान से मनुष्य सनातन विष्णुलोक को जाता है और विष्णुजी को पूजकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ५० ॥ और गोमती व समुद्र के संगम में माघी पौर्णमासी में माघ के व्रत को समाप्त करै हे ब्राह्मणो ! ब्राह्मण की आज्ञा से सब सम्पूर्णता को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जिन मनुष्यों ने

हाथ से गोमती के जल में नहाया है वे चक्रपाणिजी की प्रसन्नता से यज्ञकर्ताओं की गति को पाते हैं ॥ ५२ ॥ और ब्रह्मा व शिवजी के स्थान से ऊपर जो चक्रपाणि विष्णुजी का स्थान है वह कृष्णजी के समीप गोमती में नहाने से कहागया है ॥ ५३ ॥ और मित्रद्रोह में जो पाप होता है व गुरुघाती मनुष्य को जो पाप होता है उस पाप को वह पाता है जोकि यात्रा का विघ्न करता है ॥ ५४ ॥ ब्राह्मण के धन को हरनेवाले को जो पाप होते हैं व देवता के धन को हरनेवाले को जो पाप होते हैं वे गोमती में नहाने से शुद्ध होजाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५५ ॥ डरेहुए प्राणी को अभय देने से मनुष्य जिस पुण्य को पाता है उस पुण्य को गोमती के जलके संगम से

स्नातागोमतीजले ॥ यज्विनाञ्चगतिंयान्ति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मरुद्रपदादूर्द्ध्वं यत्पदञ्चक्रपाणिनः ॥ स्नानमात्रेणतत्प्रोक्तं गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ ५३ ॥ मित्रद्रोहेचयत्पापं यत्पापंगुरुघातिनः ॥ तत्पापंसमवाप्नोति यात्राविघ्नङ्करोतियः ॥ ५४ ॥ ब्रह्मस्वहारिणःपापास्तथादेवस्वहारिणः ॥ स्नानमात्रेणशुध्यन्ति गोमत्यान्नात्रसंशयः ॥ ५५ ॥ भीताभयप्रदानेन यत्पुण्यंलभतेनरः ॥ तत्प्राप्नोतिनसन्देहो गोमतीनीरसङ्गमात् ॥ ५६ ॥ कृतकृत्योभवेद्विप्रा ऋणान्मुच्येतपैतृकात् ॥ वाचाकृतञ्चमनसा कर्मणासमुपार्जितम् ॥ ५७ ॥ तत्सर्वंनश्यतेपापं गोमतीनीरसङ्गमात् ॥ कृतकृत्योभवेद्विप्रा ऋणान्मुच्येतपैतृकात् ॥ ५८ ॥ वनमालीचतुर्बाहुर्दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ यातिविष्णुलयंविप्रा अपुनर्भवलक्षणम् ॥ ५९ ॥ गोमतीस्नानमात्रेण शुद्ध्यतेत्रनसंशयः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येगोमतीमाहात्म्यंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

निस्सन्देह पाता है ॥ ५६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! कृतकृत्य होजाता है और पितरों के ऋण से छूट जाता है व वाणी से और मन से कियाहुआ व कर्म से इकट्ठा किया जो पाप है ॥ ५७ ॥ वह सब पातक गोमती के जल के संगम से नाश होजाता है व हे ब्राह्मणो ! कृतकृत्य होता है और पितरों के ऋण से छूट जाता है ॥ ५८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! वनमाली तथा चतुर्भुज व दिव्य सुगन्धों को लेपन किये हुए वह पुरुष अपुनर्जन्म लक्षणवाले विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ ५९ ॥ व गोमती में नहानेही से शुद्ध होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोमतीमाहात्म्यंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

दो०। चक्रतीर्थ में न्हाय जिमि नर पावत फलभूरि। सो सप्तम अध्याय में कह्यो चरित सुखमूरि॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर चक्रतीर्थ से संयुत समुद्र के समीप जावै जहां कि चक्र से संयुत व मुक्तिदायक पत्थर देख पड़ते हैं॥ १॥ कि जिनको गले में धारने से व सदैव यकटक नेत्रों से विष्णुजी को देखने से मनुष्य पूजित होकर जगदीश कृष्णजी को प्राप्त होता है॥ २॥ जहां साक्षात् कृष्णभगवान् दृष्टि से देखेगये हैं वहीं पर समस्त पातकों का विनाशक चक्रनामक विष्णुजी का उत्तमतीर्थ है॥ ३॥ और जो स्थावर जंगम समेत समस्त संसार में प्रसिद्ध है व जो प्रयाग से अधिक है और जो अस्थि डालने से मुक्तिदायक है॥ ४॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठा रथाङ्गाढ्यंमहोदधिम् ॥ चक्राङ्किताशिलायत्र दृश्यन्तमुक्तिदायिकाः॥ १॥ यैःपूजितोजगन्नाथं कृष्णंयातिगलेधृतैः ॥ सदानेत्रैरनिमिषैर्वीक्षितेचजनार्द्दने ॥ २ ॥ यत्रैवसाक्षाद्भगवान् कृष्णो दृष्ट्यावलोकितः॥ तत्रैवसर्वपापघ्नं चक्राख्यंपरमंहरेः॥ ३ ॥ यच्चप्रसिद्धंसकले त्रैलोक्येसचराचरे ॥ प्रयागादधिकं यच्च मुक्तिदंत्वस्थिपातने ॥ ४॥ सुरैरपिहिपूज्यन्ते यत्राङ्गानिमनीषिणाम् ॥ अङ्कितानांहिचक्रेण षण्मासैर्नात्रसंशयः॥ ५॥ यद्दृष्ट्वामुच्यतेपापात्प्रसङ्गेनापिमानवः॥ तत्तीर्थंसर्वतीर्थानां प्रवरंपावनंतथा॥ ६ ॥ तत्रगत्वाद्विजश्रेष्ठाः प्रक्षाल्यचरणौमुदा ॥ करावाचम्यचपुनःप्रणमेद्दण्डवत्ततः॥७॥ प्रणिपत्यगृहीत्वार्घं पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥ सपुष्पाक्षतगन्धैश्च फलहेमसचन्दनैः॥ ८॥ सम्पन्नमर्घमादाय मन्त्रमेनमुदीरयेत्॥ प्रत्युन्मुखःसनियमः सम्मुखोवामहोदधेः॥९॥

और जहां चक्र से चिह्नित विद्वानों के अंग छःमहीने में देवताओं से भी पूजे जातेहैं इसमें सन्देह नहीं है॥ ५॥ व प्रसंग से भी जिसको देखकर मनुष्य पाप से छूट जाता है वह तीर्थ सब तीर्थों के मध्य में श्रेष्ठ व पवित्रकारक है॥ ६॥ हे द्विजोत्तमो ! वहां जाकर हर्ष से चरणों व हाथों को धोकर आचमन कर फिर दंडवत् प्रणाम करै॥ ७॥ और प्रणाम करके पंचरत्नों से संयुत अर्घ को लेकर पुष्पों व अक्षतों तथा गंध समेत व फल, सुवर्ण और चन्दन से॥ ८॥ संयुत अर्घ को लेकर नियम संयुत मनुष्य समुद्र के पश्चात् या सन्मुख होकर इस मन्त्र को कहै॥ ९॥ कि हे अव्यय, विष्णुचक्रनामक ! विष्णुरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है मुझसे दिये हुए अर्घ्य को

ग्रहण कीजिये और सब कामनाओं के दायक होवो ॥ १० ॥ और अग्नि तुम्हारा उत्पत्तिस्थान है व यज्ञ शरीर है और विष्णु के जीव को तुम धारनेवाले हो और मोक्ष का साधन हो हे पाण्डव ! इस वाक्य को कहता हुआ पुरुष नदियों के पति समुद्र में स्नान करै ॥ ११ ॥ व हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! जल समेत मिट्टी को स्पर्श कर व उसको मस्तक से धारण कर ॐकारपूर्वक नहाकर ॥ १२ ॥ क्रमपूर्वक देवताओं, पितरों व मनुष्यों को तर्पणकर भक्ति से विष्णु व शिवजी को पूजकर ॥ १३ ॥ भलीभांति हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने से जो फल होता है हे द्विजोत्तमो ! चक्रतीर्थ में नहाने से वह कहागया है ॥ १४ ॥ तदनन्तर श्रद्धा संयुत मनुष्य पितरों का श्राद्ध

नमोस्तुविष्णुरूपाय विष्णुचक्राख्यमव्ययम् ॥ गृहाणार्घ्यंमयादत्तं सर्वकामप्रदोभव ॥ १० ॥ अग्निश्चतेयोनि रिडाचदेहो रेतोधाविष्णोरमृतस्यनाभिः ॥ एतद्ब्रुवन्पाण्डवसत्यवाक्यं ततोवगाहेतपतिंनदीनाम् ॥ ११ ॥ मृदमालभ्यसजलां विप्राविप्रवराश्चताम् ॥ धारयित्वाचशिरसा स्नात्वाप्रणवपूर्वकम् ॥ १२ ॥ तर्प्यदेवान्पितॄंस्तत्र म नुष्यांश्चयथाक्रमात् ॥ तर्पयित्वाहरिंरुद्रं प्रार्चयित्वाचभक्तितः ॥ १३ ॥ अश्वमेधसहस्रेण सम्यगिष्टेनयत्फलम् ॥ स्नानमात्रेणतत्प्रोक्तं चक्रतीर्थेद्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥ कारयेच्चततःश्राद्धं पितॄणांश्रद्धयान्वितः ॥ विश्वेदेवान्सुवर्णेन र जतेनतथापितॄन् ॥ १५ ॥ सन्तृप्तान्भोजनेनैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ दीनेभ्यःकृपणेभ्यश्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ १६ ॥ चक्रतीर्थेतीर्थवरे विशेषेणद्विजर्षभाः ॥ रथदानम्प्रकुर्वीत प्रीणनार्थंजगत्पतेः ॥ १७ ॥ अनडुद्भिर्युतांगन्त्रीं तथासोप स्करंहयम् ॥ भूषयित्वाचविप्राय दद्याद्दक्षिणयासह ॥ १८ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ मुक्तिंप्रयान्तिपि

करै और विश्वेदेवताओं को सुवर्ण से व चांदी से पितरों को पूजकर ॥ १५ ॥ भोजनसे तृप्त ब्राह्मणों को वस्त्र, अलंकार व भूषणों से पूजै और अपनी शक्ति के अनुसार दीनों व कृपणों के लिये दान देना चाहिये ॥ १६ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! जगदीश विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये तीर्थों में उत्तम चक्रतीर्थ में विशेषकर रथ दान करै ॥ १७ ॥ और बैलों से संयुत गाड़ी व सामग्री समेत घोड़े को भूषित कर दक्षिणा समेत ब्राह्मण के लिये देवै ॥ १८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करने पर मनुष्य कृतार्थ

होता है और उसके तीन पुश्तियों में उपजे हुए पितर मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ और जो प्रेतयोनि में प्राप्त हैं व जो कीटता को प्राप्त हैं और महारौरव नामक नरक में जो पचते हैं ॥ २० ॥ वे सब चक्रतीर्थ के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त होते हैं व हे द्विजोत्तमो! श्राद्ध करने पर गयाश्राद्ध का फल होता है ॥ २१ ॥ हे द्विजोत्तमो! मातृभक्तों की जो गति होती है व यज्ञ करनेवालों की जो गति होती है चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य उस गति को पाता है ॥ २२ ॥ हे द्विजेन्द्रो! चन्द्रक्षय (अमावस) प्राप्त होने पर श्राद्ध शुभ होता है और सूर्यग्रहण में विशेष कर कुरुक्षेत्र में अधिक कहागया है ॥ २३ ॥ और चन्द्रमा के ग्रहण में श्राद्ध, दान व देवताओं व पितरों

तरस्तस्यैवत्रिकुलोद्भवाः ॥ १९ ॥ प्रेतयोनिङ्गतायेच येचकीटत्वमागताः ॥ पच्यन्तेनरकेचैव महारौरवसंज्ञके ॥ २० ॥ तेसर्वेमुक्तिमायान्ति चक्रतीर्थप्रभावतः ॥ श्राद्धेकृतेद्विजश्रेष्ठा गयाश्राद्धफलम्भवेत् ॥ २१ ॥ यागतिर्मातृभक्तानां यज्विनांयागतिर्भवेत् ॥ चक्रतीर्थेद्विजश्रेष्ठास्तांस्नात्वालभतेनरः ॥ २२ ॥ श्राद्धंप्रशस्तंविप्रेन्द्राः सम्प्राप्तेचन्द्रसंक्षये ॥ सूर्यपर्वविशेषेण कुरुक्षेत्रेधिकंस्मृतम् ॥ २३ ॥ श्राद्धेदानेतथादेवपितॄणांतर्पणेकृते ॥ प्रभासेनसमम्प्रोक्तं सोमपर्वण्य संशयम् ॥ २४ ॥ सर्वदापावनंविप्राश्चक्रतीर्थंनसंशयः ॥ यस्तुश्राद्धम्प्रकुर्वीत यात्रायामागतोनरः ॥ २५ ॥ चक्राङ्किताश्चतत्रोत्थाः सम्पूज्यामानवैःसदा ॥ यैःपूजितैश्चविप्रेन्द्रा विष्णुसान्निध्यतांव्रजेत् ॥ २६ ॥ वाचाकृतञ्चमनसा कर्मणा समुपार्जितम् ॥ स्नानमात्रेणतत्सर्वं नश्यतेनात्रसंशयः ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येचक्रतीर्थमाहात्म्यंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

का तर्पण करने पर प्रभास के समान कहा गया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २४ ॥ हे ब्राह्मणो! चक्रतीर्थ सदैव पवित्रकारक है इसमें सन्देह नहीं है और यात्रा में आया हुआ जो मनुष्य श्राद्ध करता है वह उत्तम फल को पाता है ॥ २५ ॥ व हे द्विजेन्द्रो! वहां उपजे हुए चक्र से चिह्नित शिला सदैव मनुष्यों से पूजने योग्य हैं कि जिनके पूजने से मनुष्य विष्णुजी की समीपता को जाता है ॥ २६ ॥ और वचन व मनसे जो पाप कियागया है तथा जो कर्म से इकट्ठा किया गया है वह सब चक्रतीर्थ में नहाने से नाश होजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचक्रतीर्थमाहात्म्यंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

दो० । यथा गोमती अरु समुद कर है अतुल प्रभाव । सो अठवें अध्याय में बरन्यो चरित सुहाव ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तुमलोग गंगा, यमुना व सरस्वती को मत जावो किन्तु उस गोमती व समुद्र के संगम में जावो ॥ १ ॥ जहां कि खेलही से निस्सन्देह सब मनोरथ मिलते हैं व हे द्विजोत्तमो ! जहां समुद्र के साथ गोमती क्रीड़ा करती है ॥ २ ॥ जहां कहीं पापनाशक गोमती का किनारा मिलता है वहां समुद्र से मिला हुआ वह महापातकों का नाशक है ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! जहा गोमती समुद्र से मिली है वह कलिकाल में मुक्ति का द्वार कहागया है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ गंगा व समुद्र के संगम में मनुष्यों को जो फल

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ मागच्छतसुरनदीं कालिन्दींमासरस्वतीम् ॥ ततोयातद्विजश्रेष्ठा गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ १ ॥ प्राप्यन्तेहेलयायत्र सर्वेकामानसंशयः ॥ गोमतीक्रीडतेयत्र सागरेणद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ पापघ्नंगोमतीतीरं प्राप्यतेयत्रतत्र च ॥ सागरेणचसंमिश्रं महापातकनाशनम् ॥ ३ ॥ गोमतीसङ्गतायत्र सागरेणद्विजोत्तमाः ॥ मुक्तिद्वारंतुतत्प्रोक्तं कलिकालेनसंशयः ॥ ४ ॥ यत्पुण्यंलभ्यतेनॄणां गङ्गायाःसागरस्यच ॥ सङ्गमेनतदाप्नोति गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ५ ॥ यत्पुण्यं लभतेस्नात्वा सिन्धुसागरसङ्गमे ॥ गोमत्युदधियोगेच तत्फलंलभतेनरः ॥ ६ ॥ वचसामनसाचैव कर्मणायदुपार्जितम् ॥ पापंप्रणश्यतेसर्वं गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ७ ॥ नमस्कृत्यचतोयेशं गोमतींचसरिद्वराम् ॥ अर्घंदद्याद्विधानेन कृत्वाचकरयोःकुशान् ॥ ८ ॥ मन्त्रेणानेनविप्रेन्द्रा दद्यादर्घंविधानतः ॥ ब्राह्मणैःसहसङ्गत्य सदातत्तीर्थवासिभिः ॥ ९ ॥ भक्त्याचार्घम्प्रदास्यामि देवायपरमात्मने ॥ त्राहिमांनरकाद्घोरान्नमस्तेबुद्धिरूपिणे ॥ १० ॥ तीर्थराजनमस्तुभ्यं

मिलता है उस फल को मनुष्य गोमती व समुद्र के संगम में पाता है ॥ ५ ॥ और सिन्धुनदी व समुद्र के संगम में नहाकर मनुष्य जिस पुण्य को पाता है उस फल को मनुष्य गोमती व समुद्र के संगम में पाता है ॥ ६ ॥ और वचन, मन व कर्म से जो पाप इकट्ठा कियागया है वह सब पाप गोमती व समुद्र के संगम में नाश होजाता है ॥ ७ ॥ समुद्र व उत्तम नदी गोमती को प्रणाम कर दोनों हाथों में कुशों को करके विधि से अर्घ को देवै ॥ ८ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! सदैव उस तीर्थवासी ब्राह्मणों के साथ जाकर विधि से इस मन्त्र से अर्घ को देवै ॥ ९ ॥ कि परमात्मादेव के लिये मैं भक्ति से अर्घ को देता हूं घोरनरक से मेरी रक्षा कीजिये बुद्धिरूपी तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ १० ॥

हे महार्णव, रत्नाकर, तीर्थराज, देव ! तुम्हारे लिये नमस्कार है गोमती समेत तुम अर्घ को ग्रहण करो ॥ ११ ॥ और अर्घ देकर शिखा को बांधकर जलशायी विष्णुजी को स्मरण कर पूर्वमुख व पश्चिममुख होकर स्नान करै ॥ १२ ॥ व बड़ी भक्ति से नहाकर तदनन्तर पितरों को तर्पण करै और विश्वेदेवादिकों को पूजकर पितरों का श्राद्धकरै ॥ १३ ॥ और विष्णुर्मे प्रीयतां इस मन्त्र से यथोक्त दक्षिणा देवै व हे द्विजोत्तमो ! सुवर्ण को विशेषकर देवै ॥ १४ ॥ व स्त्री पुरुषों को वसन देवै और कंचुकी व पगड़ी को इस मन्त्र से देवै कि लक्ष्मी समेत जगदीश विष्णुजी मेरे ऊपर प्रसन्न होवैं ॥ १५ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! यदि अपना कल्याण चाहै तो

रत्नाकरमहार्णव ॥ गोमत्यासहितोदेव गृहाणार्घंनमोस्तुते ॥ ११ ॥ दत्त्वार्घञ्चशिखांबद्ध्वा संस्मृत्यजलशायिनम् ॥ कुर्यात्स्नानंप्राङ्मुखःसन् पुनःप्रत्यङ्मुखस्तथा ॥ १२ ॥ स्नात्वाचपरयाभक्त्या पितॄन्सन्तर्पयेत्ततः ॥ विश्वेदेवादिस म्पूज्य पितृश्राद्धंसमाचरेत् ॥ १३ ॥ यथोक्तंदक्षिणांदद्याद् विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ विशेषतश्चदद्याद्वै सुवर्णंद्विजसत्त माः ॥ १४ ॥ दम्पत्योर्वाससीचैव कञ्चुकोष्णीपमेवच ॥ लक्ष्म्यासहजगन्नाथो विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ १५ ॥ महादा नानिसर्वाणि गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ देयानिवैद्विजश्रेष्ठा यदीच्छेत्क्षेममात्मनः ॥ १६ ॥ यस्तुलापुरुषंदद्याद्गोमत्युदधि सङ्गमे ॥ सप्तद्वीपपतिर्भूत्वा विष्णुलोकेमहीयते ॥ १७ ॥ आत्मानन्तोलयेद्यस्तु सुवर्णरजतेनवा ॥ वस्त्रैर्वाकुङ्कुमैर्वा पि फलैर्वाचतथारसैः ॥ १८ ॥ भुक्त्वाभोगान्सुविपुलांस्तथाकामान्मनोहरान् ॥ सम्पूज्यमानस्त्रिदशैर्यातिविष्णुलयन्न रः ॥ १९ ॥ हिरण्यदानंकृत्वाच वाजपेयंतथैवच ॥ गोमतीसङ्गमेस्नात्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २० ॥ भूमिदानञ्च

गोमती व समुद्र के संगम में सब महादानों को देवै ॥ १६ ॥ और गोमती व समुद्र के संगम में जो तुलापुरुष को देता है वह सातो द्वीपों का स्वामी होकर विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ १७ ॥ और जो सुवर्ण व चांदी से अपना को तोलता है या वस्त्र, कुंकुम, फल व रसों से तोलता है ॥ १८ ॥ वह मनुष्य बहुत सुखों व सुन्दर कामों को भोग कर देवताओं से पूजित होता हुआ विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ १९ ॥ और सुवर्णदान व वाजपेय यज्ञ करके और गोमती के संगम में नहाकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ २० ॥ और गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर पवित्र होता हुआ जो भूमिदान देता है उससे अधिक धन्य

॰ पु॰
४३

नहीं है ॥ २१ ॥ और गोमती के संगम में नहाकर जो कन्यादान देताहै या विद्यादान देता है वह मनुष्य ब्रह्मस्थान को जाता है ॥ २२ ॥ और जो सुवर्ण की गऊ व घी की गऊ को देता है व ब्रह्माण्ड का दान देता है उसको अमित पुण्य होता है ॥ २३ ॥ अथवा तिलकी गऊ व जल की गऊ को जो गोमती व समुद्र के संगम में देता है वह उत्तम स्थान को पाता है ॥ २४ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! गोमती और समुद्र के संगम में सब युगादिक तिथियों में नहाकर उत्तम स्थान को जाता है और पंचका व अष्टका तिथियों में ॥ २५ ॥ और वैधृति, व्यतीपात व गजच्छाया, छठि, अमावस और एकादशी, अष्टमी व द्वादशी तिथियों में ॥ २६ ॥ गोमती के संगम में नहाकर

योदद्याद्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ सङ्गमेचशुचिःस्नात्वा तस्माद्धन्यतरोनहि ॥ २१ ॥ कन्यादानञ्चयोदद्याद्विद्यादानमथापिवा ॥ गोमत्याःसङ्गमेस्नात्वा यातिब्रह्मपदन्नरः ॥ २२ ॥ योदद्यात्स्वर्णधेनुंहि घृतधेनुमथापिवा ॥ ब्रह्माण्डदानमथ वा तस्यपुण्यमनन्तकम् ॥ २३ ॥ तथावैतिलधेनुञ्च नीरधेनुमथापिवा ॥ सयातिपरमंस्थानं गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ २४ ॥ युगादिषुचसर्वासु गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ पञ्चकासुद्विजश्रेष्ठास्तथाचैवाष्टकासुच ॥ २५ ॥ वैधृतौचव्यतीपाते छायायांकुञ्जरस्यच ॥ षष्ठ्याञ्चवैअमावस्यां रुद्राहिद्वादशीषुच ॥ २६ ॥ गोमत्याःसङ्गमेस्नात्वा दद्याद्दानंस्वशक्तितः ॥ निर्मलं लोकमाप्नोति यत्रगत्वानशोचति ॥ २७ ॥ श्राद्धपक्षेत्वमावस्यां गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ हेलयाप्राप्यतेपुण्यं गोमतीचक्रतीर्थयोः ॥ २८ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अमावस्यांद्विजोत्तमाः ॥ श्राद्धंहिपितृपक्षान्ते कार्यंगोमतिसङ्गमे ॥ २९ ॥ यद्यदश्रोत्रियंश्राद्धं यद्यदापहतंभवेत् ॥ पक्षश्राद्धकृतम्पुण्यं दिनैकेनलभेन्नरः ॥ ३० ॥ श्रद्धाहीनंमन्त्रहीनं पात्रहीनमथापि

मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार दान देवै तो वह निर्मल लोक को पाता है जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ २७ ॥ और श्राद्धपक्ष व अमावस में गोमती तथा समुद्र के संगम में नहाकर जो पुण्य मिलता है वह हेलाही से गोमती व चक्रतीर्थ में मिलता है ॥ २८ ॥ उस कारण हे द्विजोत्तमो ! पितृपक्ष के अन्त में अमावस तिथि में सब यत्न से गोमती व समुद्र के संगम में श्राद्धकरै ॥ २९ ॥ क्योंकि जो जो अश्रोत्रिय श्राद्ध होता है व जो जो अपहत श्राद्ध होता है उस सबको व पक्ष में श्राद्ध से किये हुए पुण्य को मनुष्य एकही दिन से पाता है ॥ ३० ॥ और श्रद्धाहीन, मन्त्रहीन व पात्रहीन तथा द्रव्यरहित, समयहीन व मन की स्वस्थता से रहित

जो श्राद्ध होवै ॥ ३१ ॥ वह सब श्राद्धपक्ष में अमावस तिथि में गोमती और समुद्र के संगम के समीप परिपूर्ण होता है और पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ ३२ ॥ और गोमती, कमला व चन्द्रभागा वे तीनों नदियां उस समुद्र में प्राप्त हैं ॥ ३३ ॥ गया में पिंडदान से व प्रयाग में अस्थि डालने से जो पुण्य होता है उस पुण्य को पक्षान्त में श्राद्ध करनेवाला पुरुष पाता है ॥ ३४ ॥ यदि सब तीर्थों में हेला से स्नान चाहै तो भक्ति से गोमती व समुद्र के संगम में स्नान करै ॥ ३५ ॥ व हे ब्राह्मणो ! पितृपक्ष में अमावस तिथि में श्राद्ध करने पर पितर तृप्त होते हैं इस कारण सब यत्न से वहीं श्राद्धकरै ॥ ३६ ॥ और जो बिन पुत्रवाली स्त्री होवै वह विधि से स्नान

वा ॥ द्रव्यहीनङ्कालहीनं मनसःस्वास्थ्यवर्जितम् ॥ ३१ ॥ श्राद्धपक्षेह्यमावस्यां गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ परिपूर्णम्भवेत्सर्वं पितॄणांतृप्तिरक्षया ॥ ३२ ॥ गोमतीकमलाचैव चन्द्रभागातथैवच ॥ तिस्रस्तावैगतानद्यस्तत्रैववरुणालयम् ॥ ३३ ॥ गयायांपिण्डदानेच प्रयागेह्यस्थिपातने ॥ तत्पुण्यंसमवाप्नोति पक्षान्तेश्राद्धकृन्नरः ॥ ३४ ॥ यदीच्छेत्सर्वतीर्थेषु हेलया चाभिषेचनम् ॥ स्नानंकुर्वीतभक्त्यावै गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ३५ ॥ श्राद्धेकृतेत्वमावस्यां पितृपक्षेचवैद्विजाः ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंतत्रैवकारयेत् ॥ ३६ ॥ अपुत्राचैवयानारी स्नानंकुर्याद्विधानतः ॥ मृतपुत्रातथाविप्राः काकवन्ध्यातु याभवेत् ॥ ३७ ॥ दोषैःप्रमुच्यतेसर्वैर्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ दर्शनादेवपापस्य क्षयोभवतिवैद्विजाः ॥ ३८ ॥ प्रयाणेनतु सन्तुष्टिर्मुक्तिश्चैवावगाहने ॥ श्राद्धेकृतेपितॄणान्तु तृप्तिर्भवतिशाश्वती ॥ ३९ ॥ दानेमनोरथावाप्तिर्भवतेनात्रसंशयः ॥ कृतकृत्यास्तुतेधन्या यैःकृतंपितृतर्पणम् ॥ ४० ॥ श्राद्धञ्चऋषिशार्दूला गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ पितृपक्षेतुयेकेचिद्येच

करै व हे ब्राह्मणो ! मृतपुत्रा व काकवन्ध्या जो स्त्री होवै ॥ ३७ ॥ वह गोमती और समुद्र के संगम में नहाकर सब दोषों से छूट जाती है व हे ब्राह्मणो ! उसके दर्शनही से पाप का नाश होता है ॥ ३८ ॥ यात्रा से प्रसन्नता व स्नान से मुक्ति और श्राद्ध करने पर पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ ३९ ॥ और दान से मनोरथ की प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है और जिन्हों ने पितरों का तर्पण किया है वे कृतकृत्य हैं ॥ ४० ॥ व हे ऋषिश्रेष्ठो ! जिन्हों ने गोमती व समुद्र के संगम में

श्राद्ध किया है उनके जो पितृपक्ष में हैं व जो माता के वंश में उत्पन्न हैं ॥ ४१ ॥ वैसेही जो श्वशुर के पक्ष में हैं और अन्य जो मित्र व बान्धव हैं ॥ ४२ ॥ व जो तिर्यग्योनि में प्राप्त हैं और जो कीटता को प्राप्त हैं वे सब नहाने ही से मुक्ति को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ फिर गोमती के संगम में श्राद्ध व दानों को क्या कहना है क्योंकि वहां श्राद्ध व दान करके मनुष्य मुक्ति को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ और श्रवण नक्षत्र व द्वादशी के योग में गोमती और समुद्र के संगम में नहाकर वामनजी को पूजकर मनुष्य उत्तम लोक को पाता है ॥ ४५ ॥ सब तीर्थों को छोड़कर गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर व श्राद्ध

मातृकुलोद्भवाः ॥ ४१ ॥ तथाश्वशुरपक्षेच तथान्येमित्रबान्धवाः ॥ ४२ ॥ तिर्यग्योनिगतायेच येचकीटत्वमागताः ॥ स्नानमात्रेणतेसर्वे मुक्तियान्तिनसंशयः ॥ ४३ ॥ किम्पुनःश्राद्धदानानि गोमतीसङ्गमेनच ॥ कृत्वामुक्तिमवाप्नोति मानवोनात्रसंशयः ॥ ४४ ॥ श्रावणद्वादशीयोगे गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ परमंलोकमाप्नोति समभ्यर्च्यतुवामनम् ॥ ४५ ॥ सन्त्यज्यसर्वतीर्थानि गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ स्नानंकृत्वातथाश्राद्धं कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ ४६ ॥ सम्यक्स्नात्वानरोयस्तु पूजयेद्गरुडध्वजम् ॥ पीताम्बरधरोभूत्वा दिव्याभरणभूषितः ॥ ४७ ॥ चतुर्भुजधरश्चैव वनमालाविभूषितः ॥ सेव्यमानःसुरस्त्रीभिर्विमानकृतकेतनः ॥ ४८ ॥ संस्तूयमानोऋषिभिर्यातिविष्णुलयन्नरः ॥ गोमतीसङ्गमेस्नात्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येसमुद्रगोमतीमाहात्म्यंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ * ॥

कर मनुष्य कृतकृत्य होता है ॥ ४६ ॥ व जो मनुष्य भलीभांति नहाकर विष्णुजी को पूजता है वह पीताम्बरधारी व दिव्य आभूषणों से भूषित होकर ॥ ४७ ॥ चतुर्भुजधारी व वनमाला से भूषित होकर देवाङ्गनाओं से सेवित व विमान पै बैठकर ॥ ४८ ॥ ऋषियों से भलीभांति स्तुति किया जाता हुआ मनुष्य विष्णुजी के स्थान को जाता है और गोमती के संगम में नहाकर मनुष्य कृतकृत्य होता है ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसमुद्रगोमतीमाहात्म्यंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । भयो रुक्मिणीकुण्ड अस तीरथ यथा ललाम । सोइ नवम अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! तदनन्तर बहुतही प्रसिद्ध सात कुण्डों को जावै जोकि सब पापों को नाश करनेवाले व ऋद्धि, वृद्धि को बढ़ानेवाले हैं ॥ १ ॥ और जब वे आराधन किये गये तब मुनियों से स्तुति किये जातेहुए जगदीश विष्णुजी लक्ष्मी समेत प्रकट हुए ॥ २ ॥ तब द्विजोत्तमों ने विष्णुजी के लिये पूजन किया और बाईं ओर बैठीहुई लक्ष्मीजी को नहवाने के लिये ये सनकादिक सातों ब्रह्मा के मानसी पुत्र द्विजलोग उद्यत हुए और समुद्र से उपजे अलग २ कुण्डों को करके उन्होंने स्नान कराया ॥ ३ । ४ ॥ उसी कारण हे सत्तमो ! देवीजी

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेत्सुविप्रेन्द्राः सप्तकुण्डान्सुविश्रुतान् ॥ सर्वपापप्रशमनान् ऋद्धिवृद्धिविवर्द्धनान् ॥ १ ॥ आराधितःसचयदा हरिराविर्बभूवह ॥ संस्तूयमानोमुनिभिर्लक्ष्म्यासहजगत्पतिः ॥ २ ॥ अर्हणाञ्चतदाचक्रुर्हरयेद्विज सत्तमाः ॥ वामपार्श्वेस्थितांपद्मामभिषेक्तुंसमुद्यताः ॥ ३ ॥ सनकाद्याब्रह्मसुताः सप्तैतेमानसाद्विजाः ॥ पृथक्पृथग्ह्रदान्कृत्वा सिषिचुःसागरोद्भवान् ॥ ४ ॥ ततोलक्ष्मीह्रदाप्रोक्तो देव्यानाम्नैवसत्तमाः ॥ प्राप्तेचद्वापरस्यान्ते रुक्मिणीसंश्रयेनच ॥ ५ ॥ रुक्मिणीह्रदमित्येतत् कलौख्यातम्भविष्यति ॥ भृगुणासेवितंयस्माद् भृगुतीर्थमितिस्मृतम् ॥ ६ ॥ तस्मिन्गत्वामहाभागाः प्रक्षाल्यचरणौमुदा ॥ आचम्यचकुशान्गृह्य प्राङ्मुखोनियतःशुचिः ॥ ७ ॥ सम्पूर्णंचार्घमादाय फलपुष्पाक्षतादिभिः ॥ रजतेनशिरःकृत्वा मन्त्रमेतन्मुदीरयेत् ॥ ८ ॥ भक्त्यात्वर्घंप्रदास्यामि ह्रदेरुक्मिणिसंज्ञिते ॥ सर्वपापप्रणाशाय रुक्मिणीप्रीणनायच ॥ ९ ॥ स्नानंकुर्यात्ततोविप्राः कृत्वाशिरसिमार्जनम् ॥ देवान्मनुष्यान्स

के नाम से लक्ष्मीह्रद ऐसे नाम से कहागया और द्वापर का अन्त प्राप्त होने पर रुक्मिणीजी के आश्रय से ॥ ५ ॥ कलियुग में रुक्मिणीह्रद ऐसा यह प्रसिद्ध होगा और जिस कारण भृगुजी से सेवित हुआ इसलिये भृगुतीर्थ ऐसा कहागया ॥ ६ ॥ हे महाभागो ! उस तीर्थ में जाकर प्रसन्नता से चरणों को धोकर आचमन कर कुशों को लेकर पूर्वमुख होकर नियत व पवित्र पुरुष ॥ ७ ॥ फल, फूल व अक्षतादिकों से और चांदी से पूर्ण अर्घ को लेकर मस्तक पै करके इस मन्त्र को कहै ॥ ८ ॥ कि सब पापों के नाश के लिये व रुक्मिणीजी की प्रसन्नता के लिये मैं रुक्मिणी नामक कुण्ड में भक्ति से अर्घ को देता हूं ॥ ९ ॥ तदनन्तर हे ब्राह्मणो ! मस्तक में

मार्जन करके स्नानकरै इसके उपरान्त देवता, मनुष्य व पितरों को विशेषता से तर्पणकर ॥ १० ॥ तदनन्तर ब्राह्मणों को बुलाकर भक्ति से श्राद्धकरै उसके उपरान्त चांदी या सुवर्ण को दक्षिणा देवै ॥ ११ ॥ व रसीले फलों को विशेषकर देना चाहिये व हे द्विजोत्तमो ! मिष्टान्न से स्त्री पुरुष को भोजन देवै ॥ १२ ॥ और रुक्मिणी प्रीयतां (रुक्मिणीजी प्रसन्न होवै) इस मन्त्र से पितृपंक्तियों को पूजकर व शक्ति से अन्यस्त्रियों को चोली व लाल वस्त्रों से पूजै ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करने पर मनुष्य कृतकृत्य होता है और सब कामनाओं को पाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ १४ ॥ और उसके घरमें सदैव निस्सन्देह लक्ष्मी बसती है व लक्ष्मी उसके

न्तर्प्य पितॄनथविशेषतः ॥ १० ॥ श्राद्धंततःप्रकुर्वीत विप्रानाहूयभक्तितः ॥ दक्षिणाञ्चततोदद्याद्रजतंरुक्ममेवच ॥ ११ ॥ विशेषतःप्रदेयानि फलानिरसवन्तिच ॥ दम्पत्योर्भोजनंदद्यान्मिष्टान्नेनाद्विजर्षभाः ॥ १२ ॥ पितृपङ्क्तीश्चसम्पूज्य स्त्रिय श्चान्याश्चशक्तितः ॥ कञ्चुकैरक्तवस्त्रैश्च रुक्मिणीप्रीयतामिति ॥ १३ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकञ्चगच्छति ॥ १४ ॥ वसतेचसदागेहे लक्ष्मीस्तस्यनसंशयः ॥ परमंसुखमाप्नोति लक्ष्मी स्तस्यप्रसीदति ॥ १५ ॥ हीनसत्त्वोनचभवेन्नभवेत्परयाचकः ॥ आद्योभवतिसर्वत्र यःस्नातिरुक्मिणीह्रदे ॥ १६ ॥ पु नरागमनंनस्यात्संसारभ्रमणंतथा ॥ दुःखशोकैर्विमुक्तः स्याद्यःस्नातिरुक्मिणीह्रदे ॥ १७ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो महाभय विवर्जितः ॥ सर्वकामसमायुक्तो यातिविष्णुपदन्नरः ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येरुक्मिणीह्रदवर्ण नन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऊपर प्रसन्न होती है और वह बहुत सुख को पाता है ॥ १५ ॥ और जो रुक्मिणीकुण्ड में नहाता है वह हीनबल व दूसरे से याचना करनेवाला नहीं होता है और सब कहीं श्रेष्ठ होता है ॥ १६ ॥ व फिर आगमन नहीं होता है और संसार में भ्रमण नहीं होता है और जो रुक्मिणीकुण्ड में नहाता है वह दुःख व शोकों से छूटजाता है ॥ १७ ॥ और सब पापों से छूटाहुआ व महाभय से रहित तथा सब कामनाओं से संयुत वह मनुष्य विष्णुजी के स्थान को जाता है ॥ १८ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरुक्मिणीह्रदवर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । यथा द्वारकापुरी ढिग भयो तीर्थ कृकलास । सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित सहुलास ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! तदनन्तर कृकलास ऐसे प्रसिद्ध अति उत्तम व पापविनाशक नृगतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ जहां कि गिरगट के शरीर को धारनेवाले उन नृग राजा ने कृष्णजी के साथ समागम कर उत्तम गति को पाया है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि यह नृग नामक राजा कौन है व कैसे कृष्णजी के साथ समागम को प्राप्त हुआ है और किस कर्म से गिरगट हुआ है उसको विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! नृग नामक राजा सब पृथ्वी में अधिक बलवान् था और बुद्धिमान्, लक्ष्मीवान्, चतुर, शोभावान् व

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेत्सुविप्रेन्द्रास्तीर्थम्पापप्रणाशनम् ॥ कृकलासमितिख्यातं नृगतीर्थमनुत्तमम् ॥ १ ॥ नृगोयत्रमहीपालः कृकलासवपुर्द्धरः ॥ कृष्णेनसहसङ्गत्य सम्प्रापपरमांगतिम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नृगोनामनृपः कोयं कथंकृष्णेनसङ्गतः ॥ कर्मणाकृकलासत्वं केनतद्वदविस्तरात् ॥ ३ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नृगोनामनृपोविप्राः सर्वभूमौबलाधिकः ॥ बुद्धिमानृद्धिमान्दक्षः श्रीमान्सर्वगुणान्वितः ॥ ४ ॥ अनेकशतसाहस्रा भूमिपालाश्चतद्वशे ॥ हस्त्यश्वरथसंयोधपत्तिभिर्बहुभिर्वृतम् ॥ ५ ॥ सैन्यञ्चतस्यनृपतेः कोशश्चैवाक्षयंतथा ॥ सनित्यंगुरुभक्तश्च देवताराधनेरतः ॥ ६ ॥ महादानानिविप्रेन्द्रा ददात्यनुदिनंनृपः ॥ शश्वत्सगोसहस्रन्तु प्रददौनृपसत्तमः ॥ ७ ॥ प्रक्षाल्यचरणौ भक्त्या उपवेश्यासनेशुभे ॥ परिधाप्यशुभेक्षौमे सुगन्धेनोपलिप्यच ॥ ८ ॥ पुष्पमालाभिरापूज्य धूपेनापिसुगन्धिना ॥ ददौदक्षिणयासार्द्धं प्रतिविप्रायगांतथा ॥ ९ ॥ ताम्बूलसहितांचात्र विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ एवंप्रदद

सब गुणों से संयुत था ॥ ४ ॥ और अनेकों सैकड़ों व हज़ार राजा उसके वश में थे और हाथी, घोड़ा, रथ व पैदल योधाओं से घिरी हुई ॥ ५ ॥ सेना उस राजा के थी व अक्षयकोष (खज़ाना) था और वह सदैव गुरुभक्त व देवताओं के आराधन में तत्पर था ॥ ६ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! वह राजा प्रतिदिन महादानों को देता था और सदैव उस श्रेष्ठ राजा ने हजार गौवों को दिया ॥ ७ ॥ भक्ति से चरणों को धोकर उत्तम आसन पै बिठाकर और उत्तम दो रेशमी वस्त्रों को पहनाकर व सुगन्ध लगाकर ॥ ८ ॥ फूलों की मालाओं से पूजकर व सुगन्धित धूप से पूजनकर प्रत्येक ब्राह्मण के लिये दक्षिणा समेत गऊ को वह देता था ॥ ९ ॥ व विष्णुजी मेरे ऊपर

प्रसन्नहोवैं इस मंत्र से ताम्बूल समेत गऊको देता था हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार देते व यज्ञों से पूजते तथा सुखों को भोगते हुए उस राजा का समय व्यतीतहुआ और एक समय तीक्ष्ण व्रतवाले द्विजोत्तम जैमुनि ॥ १० । ११ ॥ जोकि दानलेने से विमुख थे उनसे हाथोंको जोड़ेहुए स्थित राजाने श्रद्धा से यह वचन कहा ॥ १२॥ कि हे महाभाग, दयानिधे ! मुझको उधारिये व दया कीजिये व मेरे ऊपर दयाकर मुझ से दीहुई गऊको ग्रहण कीजिये ॥ १३ ॥ उस वचनको सुनकर उन राजाके गौरव से लज्जित ब्राह्मण ने यह कहा कि ऐसाही होवै ॥ १४ ॥ तदनन्तर राजा ने चरणों को धोकर मस्तक से धारण किया और सोने के सींगों समेत चांदी के रंगवाली

तस्तस्य यजतश्चतथामखैः ॥ १० ॥ ययौकालोद्विजश्रेष्ठा भोगांश्चैवानुभुञ्जतः ॥ एकदातुद्विजश्रेष्ठं जैमुनिंसंशि तव्रतम् ॥ ११ ॥ श्रद्धयातञ्चनृपतिः प्रतिग्रहपराङ्मुखम् ॥ उवाचवाक्यंनृपतिः कृताञ्जलिपुटस्थितः ॥ १२ ॥ मामुद्धरमहाभाग कृपांकुरुकृपानिधे ॥ गृहाणगांमयादत्तां दयांकृत्वाममोपरि ॥ १३ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य त्व निच्छन्नपिगौरवात् ॥ नृपस्यचाब्रवीद्विप्र एवमस्त्वितिलज्जितः ॥ १४ ॥ अवनिज्यततःपादौ शिरसाधारयन्नृपः ॥ सुवर्णशृङ्गसहितां रौप्यवर्णाञ्चविश्रुताम् ॥ १५ ॥ गांगृह्यस्वगृहम्प्राप्तो दामबद्धांसवत्सकाम् ॥ सतत्रयवसैःसार्द्धं ददौ ब्राह्मणसत्तमाः ॥ १६ ॥ सुतृप्तांयवसाचैव मध्याह्नेतृषितांतथा ॥ गृहीत्वानिर्ययौविप्रो दामबद्धांजलाशयम् ॥ १७ ॥ मार्गेराज्ञश्चसंबाधे त्रस्तासाचोष्ट्रदर्शनात्॥हस्तादाच्छिद्यसाधेनुर्ब्राह्मणस्यययौतदा ॥ १८ ॥ विचिन्वन्सकलामुर्वीं नतां प्रापद्विजर्षभः ॥ सायग्रौचततोधेनुः सुमहद्राजगोधनम् ॥ १९ ॥ द्वितीयेह्निपुनर्विप्रमाहूयन्नृपसत्तमः ॥ सम्पूज्यवि

प्रसिद्ध ॥ १५ ॥ व रस्सी में बँधीहुई बछड़ा समेत गऊको लेकर जैमुनि अपने घरमें प्राप्तहुए व हे द्विजोत्तमो ! वहां उस राजाने घास समेत गऊको दिया था ॥ १६ ॥ और मध्याह्न में घास से तृप्त व प्यासी, रस्सी में बँधीहुई गऊ को लेकर जैमुनि ब्राह्मण जलाशय को गये ॥ १७ ॥ और राजा के सघन मार्ग में वह ऊंटके देखने से डरगई और उस समय वह गऊ ब्राह्मण के हाथ से छुटाकर चलीगई ॥ १८ ॥ और सब पृथ्वी में ढूंढ़तेहुए द्विजोत्तम ने उस गऊको नहीं पाया तदनन्तर वह गऊ राजा के बड़ेभारी गोधन को चलीगई ॥ १९ ॥ फिर दूसरे दिन नृपोत्तम ने ब्राह्मण को बुलाकर व भक्ति से विधिपूर्वक वस्त्र, भूषण व भोजनों

से पूजकर ॥ २० ॥ उस राजा ने विधिपूर्वक उस गऊ को सोमशर्मा ब्राह्मण के लिये दिया और वह द्विजोत्तम ब्राह्मण गऊ को लेकर धर्मज्ञ राजाकी प्रशंसा करता हुआ राजमन्दिर से निकला प्रह्लादजी बोले कि वह ब्राह्मण सब कहीं गऊ को ढूंढ़ता हुआ दुःखित हुआ ॥ २१ । २२ ॥ व उसने सोमशर्मा ब्राह्मण के पीछे जातीहुई गऊ को मार्ग में देखा व कहा कि मेरी इस गऊ को हरकर चोर की नाईं कैसे जाते हो ॥ २३ ॥ उसके वचन को सुनकर वह चोर कहने से विस्मित हुआ व बोला कि मैंने इसको राजा से पाया है और गऊ को अपने घर लिये जाता हूं ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तम ! तुम मुझको गोहर्ता क्यों कहते हो ब्राह्मण बोला कि मैंने भी राजा से पाया था यह

धिवद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभोजनैः ॥ २० ॥ विधिवद्गांददौताञ्च सन्नृपःसोमशर्मणे ॥ गृहीत्वाराजभवनान्निर्ययौगांद्विज र्षभः ॥ २१ ॥ प्रशंसमानोराजानं धर्मज्ञमितिवैद्विजः ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ सचविप्रोविचिन्वानः सर्वतोगांसुदुःखितः ॥ २२ ॥ ददर्शपथिगच्छन्तीं पृष्ठतःसोमशर्मणः ॥ ममेमांचापहृत्वात्वं दस्युवद्यास्यसेकथम् ॥ २३ ॥ सतस्यवचनंश्रुत्वा विस्मितो दस्युकीर्त्तनात् ॥ राजतोथमयालब्धा गांनयामिस्वमन्दिरम् ॥ २४ ॥ गोहर्तेतिचमांकस्माद् ब्रवीषित्वंद्विजर्षभ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ मयापिराजतोलब्धा मदीयागौरसंशयम् ॥ २५ ॥ कथंनयसिविप्रत्वं मयिजीवतिमन्दिरे ॥ सोब्रवी दद्यलब्धेयं कथंमांवदसेमृषा ॥ २६ ॥ गतेह्निवैमयालब्धा बलान्नेतुंत्वमिच्छसि ॥ ममेयमितिसंक्रुद्धः सोमशर्माब्रवी द्वचः ॥ २७ ॥ प्रज्वलत्क्रोधरक्ताक्षो ममेयमितिचापरः ॥ विवदन्तौतथाविप्रौ राजद्वारमुपागतौ ॥ २८ ॥ कुर्वाणौकल हङ्घोरं त्यक्तुकामौस्वजीवितम् ॥ संक्रुद्धौब्राह्मणौदृष्ट्वा विवदन्तौपरस्परम् ॥ २९ ॥ राज्ञेनिवेदयामास द्वास्थःप्रणय

गऊ निरसन्देह मेरी है ॥ २५ ॥ व हे विप्र ! मेरे जीतेहुए तुम कैसे इसको घर लेजावोगे उसने कहा कि मैंने आज इसको पाया है तुम झूंठ क्यों कहते हो ॥ २६ ॥ बीतेहुए दिन में मैंने इसको पाया है और तुम बलसे लेजाना चाहते हो सोमशर्मा ब्राह्मण ने क्रोधित होकर यह वचन कहा कि यह गऊ मेरी है ॥ २७ ॥ और जलते हुए व क्रोध से लाल लोचनोंवाले दूसरे ब्राह्मण ने यह कहा कि यह मेरी है वैसेही झगड़ा करते हुए दोनों ब्राह्मण राजा के द्वार पै आये ॥ २८ ॥ और भयंकर झगड़ा करते हुए व अपने प्राणों को छोड़ने की इच्छावाले तथा परस्पर विवाद करते हुए क्रोधित ब्राह्मणों को देखकर ॥ २९ ॥ द्वारपालक ने विनयपूर्वक राजा से कहा कि क्रोध से

संयुत व विवाद करते हुए उन ब्राह्मणों को जानते हो ॥३०॥ क्रोध से विकल चित्तवाले जोकि तुम्हारे नगर में पैठे हैं इस प्रकार विवाद करते हुए उन तीन रात्रितक भूँखे॥३१॥ ब्राह्मणों का राजा ने अनादर किया और राजा के ऊपर क्रोध से उन क्रोधित व समर्थ ब्राह्मणों ने राजा से वचन कहा ॥ ३२ ॥ कि जिसलिये तुम हमलोगों का अपमान करते हो और घर से नहीं निकलते हो व आप प्रजाओं के पालक हो व उनको अन्याय से युक्त करते हो ॥ ३३ ॥ इस कारण आप गिरगट होगे इसमें सन्देह नहीं है इस प्रकार शाप देकर उस समय दोनों ब्राह्मणों ने अन्य के लिये गऊ को दे दिया ॥ ३४ ॥ और दुःखित व खेदसंयुत वे दोनों अपने घरको जाने के लिये तैयार

पूर्वकम् ॥ अपिजानासिविप्रौतौ विवदन्तौरुषान्वितौ ॥ ३० ॥ कोपव्याकुलचेतस्कौ पुरंविवशतुस्तव ॥ एवंविवदमानौ तौ त्रिरात्रंसमुपोषितौ ॥ ३१ ॥ अवज्ञातौनृपेणाथ राजानंप्रतिक्रोधतः ॥ ऊचतुःकुपितौवाक्यं समर्थौनृपतिं प्रति ॥ ३२ ॥ अवमन्यसेयदस्मात्त्वं ननिर्गच्छसिमन्दिरात् ॥ शास्ताभवान्प्रजाश्चैव ह्यन्यायेननियोक्ष्यसि ॥ ३३ ॥ भविष्यतिभवानस्मात्कृकलासोनसंशयः ॥ एवंशप्त्वातदाविप्रावन्यस्मैददतुश्चगाम्॥ ३४ ॥ दुःखितौखेदसंयुक्तौ स्वगृहंगन्तुमुद्यतौ ॥ प्रस्थितौतौनृगोद्वारमागत्यसमुपस्थितः ॥ ३५ ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याथ कृताञ्जलिरभाषत ॥ अमोघवचनायूयन्तत्तथानतदन्यथा ॥ ३६ ॥ ममोपरिकृपांकृत्वा शापान्तमुपदिश्यताम् ॥ ३७ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सोमशर्माप्युवाचह ॥ द्वापरस्ययुगस्यान्ते भगवान्देवकीसुतः ॥ ३८ ॥ वसुदेवगृहेराजन् हरिराविर्भविष्यति ॥ तस्य संस्पर्शनादेव पापमुक्तिर्भविष्यति ॥ ३९ ॥ इत्युक्तातौतदाविप्रौ जग्मतुःस्वन्निवेशनम् ॥ ४० ॥ राजाचविविधान्भो

हुए और जाते हुए उन दोनों के समीप नृगजी द्वार पै आकर प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥ इसके अनन्तर दंडा की नाई प्रणाम कर हाथों को जोड़कर बोले कि तुमलोग सफल वचन हो वह वैसाही है अन्यथा नहीं है॥ ३६ ॥ मेरे ऊपर दया करके शाप का अन्त कहिये ॥ ३७ ॥ उन राजा के उस वचन को सुनकर सोमशर्मा ने कहा कि द्वापर युग के अन्त में देवकीनन्दन भगवान् ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णजी वसुदेव के घरमें प्रकट होवैंगे हे राजन् ! उनके स्पर्शही करने से पाप की मुक्ति होगी ॥ ३९ ॥ यह कहकर उस समय वे दोनों ब्राह्मण अपने घर को चलेगये ॥ ४० ॥ और राजा भी अनेक प्रकार के बहुत से श्रेष्ठ सुखों को भोगकर व अनेक भांति के यज्ञों से पूजकर मृत्यु को

प्राप्तहुए ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वह राजा उत्तम धर्मराज के स्थान को गया और धर्मराजने उत्तम राजा का स्वागत से सत्कार किया ॥ ४२ ॥ व कहा कि हे विभो, राजन्! तुम पहले पुण्य या पाप जो भोगकरो हे राजन्! उसको आप शीघ्रही कहिये॥ ४३ ॥ यम से इस प्रकार कहेहुए नृगजी उस समय गिरगट होगये तदनन्तर हज़ार वर्षतक वह गिरगट रहा ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणो ! एक दिन सब यदुबालकों से खींचा हुआ वह गिरगट गरू होने के कारण उस समय नहीं चला ॥ ४५ ॥ जब वे सब खींचने के लिये समर्थ न हुए तब उन यदुकुमारों ने कृष्ण से कहा और उस समय मुसकराते हुए श्रीकृष्णजी नृग को जानकर वहां गये ॥ ४६ ॥ व जगदीश श्रीकृष्णजी ने

गान् भुक्त्वाश्रेष्ठांश्चभूरिशः ॥ इष्ट्वाचविविधैर्यज्ञैः कालधर्ममुपेयिवान् ॥ ४१ ॥ ततःसगतवान्दिव्यं धर्मराजनिवेशनम् ॥ सत्कृतोधर्मराजेन स्वागतेननृपोत्तमः ॥ ४२ ॥ प्रथमंसुकृतंराजन्नथवादुष्कृतंविभो ॥ यद्भोक्ष्यसेत्वंतद्ब्रूहि शीघ्रमेवम हीपते ॥ ४३ ॥ अनुज्ञातोयमेनैव कृकलासोभवत्तदा ॥ ततोवर्षसहस्राणि कृकलासत्वमाप्तवान् ॥ ४४ ॥ एकस्मिन्दिवसे विप्राः सर्वैर्यदुकुमारकैः ॥ आकृष्यमाणःसतदा गुरुत्वान्नचचालह ॥ ४५ ॥ यदानशक्नुस्तेसर्वे त्वाचख्युस्तेकुमारकाः ॥ तदाकृष्णोनृगंमत्वा ययौतत्रस्मयन्निव ॥ ४६ ॥ पस्पर्शवामहस्तेन लीलयैवजगत्पतिः ॥ संस्पृष्टःसभगवता निर्मुक्तः शापबन्धनात् ॥ ४७ ॥ त्यक्त्वाकलेवरंराजा दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ कृताञ्जलिरुवाचेदं भक्त्यापरमयायुतः ॥ ४८ ॥ नमस्तेजगदाधार सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ सहस्रशिरसेतुभ्यं ब्रह्मणेनन्तशक्तये ॥ ४९ ॥ एवंसंस्तुवतस्तस्य भगवान् देवकीसुतः ॥ तुष्टोहंतेवरम्ब्रूहि यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ५० ॥ याहिपुण्यकृतोलोकान् दर्शनात्स्पर्शनाच्चवै ॥ एवमुक्तःस

लीलाही से बायें हाथ से स्पर्श किया और भगवान् श्रीकृष्णजी से छुवा हुआ वह शाप के बन्धन से छूटगया ॥ ४७ ॥ और शरीर को छोड़कर दिव्य गंधों को अनुलेपन किये हुए बड़ीभक्ति से संयुत राजा ने हाथों को जोड़कर यह कहा ॥ ४८ ॥ कि हे संसार के आधार ! सृष्टि, पालन व संहार करनेवाले आप के लिये प्रणाम है व हज़ार मस्तकोंवाले तथा अनन्त शक्तिवाले आप परब्रह्म के लिये नमस्कार है ॥ ४९ ॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उससे देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्णजी बोले कि मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं जो तुम्हारे मनमें वर्त्तमान होवै उस वर को कहो ॥ ५० ॥ और दर्शन व स्पर्श करने से पुण्य से कियेहुए लोकों को जाइये श्रीकृष्णदेवजी से

इस प्रकार कहेहुए प्रसन्न रोमों वाले उस नृग राजा ने ॥ ५१ ॥ कहा कि यदि तुम प्रसन्न हो और यदि मुझ को वर देने योग्य है तो हे केशव ! यह बिल मेरे नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ ५२ ॥ व हे गोविन्दजी ! बड़ी भक्ति से इसमें नहाकर जो मनुष्य पितरों को तर्पण करै वह तुम्हारी प्रसन्नता से विष्णुलोक को जावै ॥ ५३ ॥ ऐसाही होगा यह कहकर श्रीकृष्णजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और दिव्य मालाओं को पहने व दिव्य चंदन को लगाये हुए वह राजा विमान के द्वारा ॥ ५४ ॥ देवताओं से पीछे प्रशंसित होकर विष्णुजी के मन्दिर को चलागया प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! तब से लगाकर वहां वह नृग के आश्रयवाला कूप हुआ ॥ ५५ ॥ हे

देवेन सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ५१ ॥ उवाचयदितुष्टोसि यदिदेयोवरोमम ॥ गर्तोयंममनाम्नातु ख्यातिंगच्छतुकेशव ॥ ५२ ॥ यःस्नात्वापरयाभक्त्या पितॄन्सन्तर्पयिष्यति ॥ त्वत्प्रसादेनगोविन्द विष्णुलोकंसगच्छतु ॥ ५३ ॥ एवम्भविष्यतीत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ सचराजाविमानेन दिव्यस्रगनुलेपनः ॥ ५४ ॥ जगामभवनंविष्णोर्विबुधैरनुसंस्तुतः ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तदाप्रभृतिविप्रेन्द्रास्तत्रकूपोनृगाश्रयः ॥ ५५ ॥ तत्रगत्वाद्विजश्रेष्ठा अर्घंदद्याद्विधानतः ॥ फलपुष्पाक्षतैर्युक्तं चन्दनेनचभूसुराः ॥ ५६ ॥ नमस्तेविश्वरूपाय विष्णवेपरमात्मने ॥ अर्घ्यंगृहाणदेवेश कूपेस्मिन्नृगसंज्ञके ॥ ५७ ॥ ततःस्नात्वाद्विजश्रेष्ठा मृदमालभ्यपूर्वतः ॥ सन्तर्पयेत्पितॄन्देवान् मनुष्यांश्चयथाक्रमम् ॥ ५८ ॥ ततःश्राद्धं प्रकुर्वीत पितॄणांश्रद्धयान्वितः ॥ विप्रेभ्योदक्षिणांदद्याद्विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ दीनान्धकृपणानाञ्च सदातीर्थनिवासिनाम् ॥ ५९ ॥ दद्याद्दानंस्वशक्त्याच वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ स्नानमात्रेणविप्रेन्द्रा लभेद्गोदानजम्फलम् ॥ ६० ॥

द्विजोत्तमो, ब्राह्मणो ! वहां जाकर फल, फूल, अक्षतों व चन्दन से संयुत अर्घ को देवै ॥ ५६ ॥ कि विश्वरूपी परमात्मा विष्णुजी के लिये प्रणाम है हे देवेश ! इस नृगसंज्ञक कूप में अर्घ्य को ग्रहण कीजिये ॥ ५७ ॥ तदनन्तर हे द्विजोत्तमो ! पहले मिट्टी को छूकर स्नान करके क्रम से पितर, देवता व मनुष्यों को तर्पण करै ॥ ५८ ॥ तदनन्तर श्रद्धा से संयुत मनुष्य पितरों का श्राद्धकरै व मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस मन्त्रसे ब्राह्मणोंके लिये दक्षिणा देवै और सदैव तीर्थमें बसनेवाले दीन, अन्ध व कृपणों को ॥ ५९ ॥ वित्तशाठ्य से रहित पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार दान देवै व हे द्विजेन्द्रो ! स्नानमात्र से मनुष्य गोदान से उपजे हुए फल को पाता है ॥ ६० ॥

और पितरों को श्राद्ध दान से मनुष्य अन्य योनि को नहीं जाता है जिन मनुष्यों ने कृकलासतीर्थ में श्राद्ध किया है व जिसने तर्पण किया है ॥ ६१ ॥ वह मनुष्य पितरों समेत विष्णुलोक को जाता है और मनोरथ की प्राप्ति होती है व यात्रा सफल होती है ॥ ६२ ॥ व सब तीर्थके फलकी प्राप्ति को पाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाकृकलासतीर्थमाहात्म्यंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥

दो० । विष्णुपदोद्भव तीर्थ कर है जिमि अतुल प्रभाव । सो गेरहें अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर विष्णुपद से

पितॄणांश्राद्धदानेन वियोनिंनचगच्छति ॥ कृकलासेकृतंश्राद्धं येनैरैस्तर्पणंकृतम् ॥६१॥ सगच्छेद्विष्णुलोकन्तु पितृभिः सहितोनरः ॥ तथामनोरथावाप्तिर्यात्रातुसफलाभवेत् ॥६२॥ सर्वतीर्थफलावाप्तिं लभतेनात्रसंशयः ॥६३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येकृकलासतीर्थमाहात्म्यन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठास्तीर्थेविष्णुपदोद्भवे ॥ यस्यदर्शनमात्रेण गङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ १ ॥ यस्योत्पत्तिर्मयापूर्वं कथिताद्विजसत्तमाः ॥ यस्यचस्मरणादेव कीर्त्तनात्पापनाशनम् ॥ २ ॥ हरिणायासमानीता रुक्मिण्यर्थेमहात्मना ॥ यस्यांगण्डूषमात्रेण हयमेधफलंलभेत् ॥३॥ विष्णोःपदेप्रसूताया वैष्णवीतिचविश्रुता ॥ तत्रगत्वामहाभागा गृहीत्वार्घंविधानतः ॥ ४ ॥ इत्युच्चार्यद्विजश्रेष्ठा मृदमालभ्यपाणिना ॥ प्राङ्मुखःसंयतोभूत्वा स्नानंकृत्वाजितेन्द्रियः ॥ ५ ॥ देवान्पितॄन्द्विजांश्चार्च्य तर्पयेदथतांस्ततः ॥ उपहृत्योपहारांश्च त्वाहूयब्राह्मणांस्तथा ॥ ६ ॥ नमस्येत्वां

उपजेहुए तीर्थ में जावै जिसके दर्शनही से मनुष्य गंगास्नान के फलको पाता है ॥ १ ॥ हे द्विजोत्तमो ! पहले मैंने जिस की उत्पत्ति कही है और जिसके स्मरण व कीर्तन करने से पाप का नाश होता है ॥ २ ॥ व जिन गंगाजी को रुक्मिणी के लिये विष्णुजी लाये हैं व जिसके आचमन करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के फल को पाता है ॥ ३ ॥ विष्णुजी के चरण में उपजी हुई जो वैष्णवी ऐसी प्रसिद्ध है हे महाभागो ! वहां जाकर विधि से अर्घ को लेकर ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! यह कहकर हाथ से मिट्टी को लेकर जितेन्द्रिय मनुष्य स्नान करके पूर्वमुख बैठकर ॥ ५ ॥ देवता, पितर व ब्राह्मणों को पूजकर तदनन्तर उपहारों को लाकर व ब्राह्मणों को बुलाकर उनको तर्पण करै ॥ ६ ॥

हे विष्णुजी के चरण से उपजीहुई, भगवति ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे गंगे, देवि ! विष्णु-समेत तुम इस अर्घ को ग्रहण करो ॥ ७ ॥ और चतुर पुरुष बड़ी श्रद्धा से संयुत होकर श्राद्धकरै और सुवर्ण व चांदी की यथोक्त दक्षिणा देवै ॥ ८ ॥ व अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्ध व कृपणों के लिये दान देना चाहिये व हे द्विजोत्तमो ! सुवर्ण को विशेष कर देना चाहिये ॥ ९ ॥ तदनन्तर पनही व जल के घट को ब्राह्मण के लिये देना चाहिये और लोन समेत व मिर्च और जीरा समेत दही भात देना चाहिये ॥ १० ॥ और लाल वसन व कंचुकी को रुक्मिणीजी को पहनावै और मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस मन्त्र से ब्राह्मणों की स्त्री व ब्राह्मणों को

भगवति विष्णुपादतलोद्भवे ॥ गृहाणार्घमिमंदेवि गङ्गेत्वंहरिणासह ॥ ७ ॥ श्रद्धयापरयायुक्तः श्राद्धंकुर्याद्विचक्षणः ॥ यथोक्तांदक्षिणांदद्यात्सुवर्णरजतंतथा ॥ ८ ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ विशेषतःप्रदातव्यं सुवर्णंद्विज सत्तमाः ॥ ९ ॥ उपानहौततोदेयो जलकुम्भोद्विजातये ॥ दध्योदनंसलवणं कोलजीरकसंयुतम् ॥ १० ॥ रक्तवस्त्रंकञ्चुकीं च रुक्मिणींपरिधापयेत् ॥ विप्रपत्नीश्चविप्रांश्च विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ ११ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ पितॄणांतुयथातृप्तिर्गयाश्राद्धेनवैतथा ॥ १२ ॥ वैष्णवंलोकमायान्ति पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ भवेच्चैवश्रियायुक्तः पुत्र पौत्रसमन्वितः ॥ १३ ॥ प्रीतःसदाभवेत्तस्य रुक्मिण्यासहकेशवः ॥ यच्छतेवाञ्छितान्कामानैहिकामुष्मिकान् प्रभुः ॥ १४ ॥ एतन्माहात्म्यमतुलं विष्णोःपादोदकस्यच ॥ यःशृणोतिनरोभक्त्या सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १५ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येविष्णुपादोदकंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥

पूजना चाहिये ॥ ११ ॥ हे द्विजोत्तमो ! ऐसा करनेपर मनुष्य कृतकृत्य होताहै और जिस प्रकार गयाश्राद्ध से पितरों की तृप्ति होती है वैसेही वहां होती है ॥ १२ ॥ और तीनों पुश्तियों में उपजेहुए पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं और लक्ष्मी से संयुत व पुत्र, पौत्र से युक्त होता है ॥ १३ ॥ और उसके ऊपर सदैव रुक्मिणी समेत विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और वे प्रभु इस लोक व परलोकवाले मनोरथों को देते हैं ॥ १४ ॥ विष्णुजी के चरणोदक के इस अतुल माहात्म्य को जो मनुष्य भक्ति से सुनता है वह सब पापों से छूटजाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविष्णुपादोदकमाहात्म्यंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ❀ ॥

दो० । गोपिचार इमि तीर्थ जिमि भयो भूमि विख्यात । सो बरहें अध्याय में कह्यो चरित प्रख्यात ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! तदनन्तर गोपिचार तीर्थ को जावै जिसमें भक्ति से नहाकर मनुष्य गोदान से उपजेहुए फल को पाता है ॥ १ ॥ और जिस तीर्थ में श्रावण महीने में देवताओं से घिरेहुए जगदीश विष्णुजी नहाते हैं हे द्विजोत्तमो ! द्वादशी तिथि में वहां हाथीका दान कहा गया है ॥ २ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे दैत्येन्द्र ! वहां गोपिसंज्ञक तीर्थ कैसे हुआ है उस को यथार्थ कहिये कि जिससे मनुष्य विष्णुजी को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ प्रह्लादजी बोले कि अमित तेजवाले महात्मा कृष्णजी ने जब भोजराज कंस को मारा और

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेद्द्विजश्रेष्ठा गोपिचारंततःपरम् ॥ यत्रस्नात्वानरोभक्तया लभेद्गोदानजंफलम् ॥ १ ॥ यत्रस्नातिजगन्नाथो नभस्यैदेवतैर्वृतः ॥ करिदानञ्चतत्रोक्तं द्वादश्यांद्विजसत्तमाः ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथन्तुतत्रदैत्येन्द्र ह्यभवद्गोपिसंज्ञकम् ॥ तीर्थंकथयतत्त्वेन येनायान्तिजनार्दनम् ॥ ३ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ हतेकंसेभोजराजे कृष्णेनामिततेजसा ॥ उग्रसेनेभिषिक्तेच मधुपुर्यांमहात्मना ॥ ४ ॥ उद्धवम्प्रेषयामास गोकुलंगोकुलप्रियम् ॥ सुहृदाम्प्रियकामार्थं गोपगोपीजनस्यच ॥ ५ ॥ सनमस्कृत्यगोविन्दं प्रययौनन्दगोकुलम् ॥ सतत्सादृश्यवेषेण वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥ ६ ॥ तंदृष्ट्वादिवसस्यान्ते गोविन्दानुचरंप्रियम् ॥ उद्धवम्पूजयामास वस्त्रालङ्कारकादिभिः ॥ ७ ॥ तम्भुक्तवन्तंविश्रान्तं यशोदापुत्रवत्सला ॥ नन्दश्चबाष्पपूर्णाक्षः पप्रच्छानामयंहरेः ॥ ८ ॥ कच्चिदास्तेसुखम्पुत्रो रामःकृष्णोयदू

उग्रसेन का मथुरा में अभिषेक किया ॥ ४ ॥ तब मित्रों के प्रिय के लिये गोपी व गोपजनों के प्यारे उद्धवजी को गोकुल को प्रिय गोकुलनगर को पठाया ॥ ५ ॥ और वे उद्धवजी श्रीकृष्णजी को प्रणामकर नन्द के गोकुल को गये और वे उद्धवजी उन श्रीकृष्णजी के समान वेष से व वस्त्र, अलंकार व भूषणों से उपलक्षित थे ॥ ६ ॥ दिन के अन्त में उन प्यारे गोविन्दके अनुचर उद्धवजी को देखकर नन्दजी ने वस्त्र व अलंकारादिकों से पूजन किया ॥ ७ ॥ और आँसुवों से पूर्ण लोचनोंवाले नन्द ने व पुत्रवत्सला यशोदाजी ने उन भोजन किये व सहँतायेहुए उद्धवजी से श्रीकृष्णजी के कुशलको पूंछा ॥ ८ ॥ कि यदूत्तम श्रीकृष्ण व बलभद्रजी क्या सुख से हैं व श्रीकृष्णजी

क्या समान अवस्था वाले गोपपुत्रों का स्मरण करते हैं ॥ ९ ॥ और प्यारे देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी क्या गोकुल को आवैंगे और हमारे पुत्र श्रीकृष्णजी गोकुल को क्या दुःख के समुद्र से तारैंगे ॥ १० ॥ यह कहकर आँसुवों से पूर्ण नयनों वाली यशोदा व नन्दजी उदासीन होकर बड़े उच्चस्वर से रोते हुए पुत्र के स्नेह के वश में प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ और उद्धवजी ने उनको स्नेह संयुत व मीठे कृष्ण के सन्देशों से जिलाया व कहा कि जेठे भाई समेत उन श्रीकृष्णजी ने आप के लिये प्रणाम किया है ॥ १२ ॥ और तुम दोनों की कुशल को पूंछा है व वे दोनों कुशल से स्थित हैं ॥ १३ ॥ और दाशार्ह श्रीकृष्णस्वामी बलभद्र समेत शीघ्रही आवैंगे और

त्तमः ॥ कच्चित्स्मरतिगोविन्दो वयस्यान्गोपबालकान् ॥ ९ ॥ कच्चिदेष्यतिगोष्ठंस देवकीनन्दनःप्रियः ॥ तारयिष्यतिनःपुत्रो गोकुलंवृजिनार्णवात् ॥ १० ॥ इत्युक्त्वाबाष्पपूर्णाक्षी यशोदानन्दएवच ॥ रुदतःसुस्वरंदीनौ पुत्रस्नेहवशंगतौ ॥ ११ ॥ मधुरैःकृष्णसन्देशैः स्नेहयुक्तैरजीवयत् ॥ नमस्करोतिभवते सकृष्णश्चसहाग्रजः ॥ १२ ॥ अनामयंपृच्छतिवां तौचक्षेमेणतिष्ठतः ॥ १३ ॥ द्रुतमेष्यतिदाशार्हो रामेणसहितःप्रभुः ॥ अत्रागत्यजगन्नाथो विधास्यतिसवोहितम् ॥ १४ ॥ इत्येवंकृष्णसन्देशैः समाश्वास्यतुह्युद्धवः ॥ सुखंसुष्वापशयने नन्दाद्यैरभिवन्दितः ॥ १५ ॥ गोप्यस्तदारथंदृष्ट्वा द्वारेनन्दस्यविस्मिताः ॥ कोयंकोयमितिप्राहुः कृष्णागमनशङ्कया ॥ १६ ॥ गोपालराजस्यगृहे रथेनादित्यवर्चसा ॥ समागतोमहाबाहुः कृष्णवेषोनुगःसदा ॥ १७ ॥ परस्परंसमागत्य सर्वास्ताव्रजयोषितः ॥ विविक्तेकृष्णसन्देशं पप्रच्छुःशोककर्षिताः ॥ १८ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ कस्मात्त्वमिहसम्प्राप्तः कथञ्चात्रत्वमागतः ॥ इत्येवमुक्ताता

यहां आकर वे जगदीश श्रीकृष्णजी तुम दोनों का हित करैंगे ॥ १४ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णजी के सन्देशों से समझाकर नन्दादिकों से प्रणाम कियेहुए उद्धवजी ने सुखपूर्वक शय्या में शयन किया ॥ १५ ॥ तब नन्द के द्वार पै रथ को देखकर गोपियां विस्मित हुईं और श्रीकृष्णजी के आने की शंका से यह बोलीं कि यह कौन है कौन है ॥ १६ ॥ सूर्यनारायणके समान तेजवान् रथ के द्वारा कृष्णवेषवाले व सदैव अनुचर महाबाहु उद्धवजी गोपालराज (नन्द) के घर में आये हैं ॥ १७ ॥ शोक से दुबली उन सब व्रजनागरियों ने परस्पर एकान्त में आकर श्रीकृष्णजी के संदेश को पूंछा ॥ १८ ॥ गोपियां बोलीं कि तुम किसलिये यहां प्राप्तहुए हो और तुम यहां कैसे,

आये हो यह कहकर वे शोक से विकल गोपियां मोहित हुईं ॥ १६ ॥ व कृष्णजी के भक्त उन उद्धवजी को देखतीहुईं वे गोपियां पृथ्वी में गिरपड़ीं व कृष्ण के स्नेह से वश कियेहुए उस स्त्रीजन को देखकर उद्धवजी ने ॥२०॥ उस समय कानों को सुख देनेवाले वचनों से समझाया ॥ २१ ॥ उद्धवजी बोले कि दशार्ह भगवान् श्रीकृष्ण भी कामदेव के बाण से पीड़ित होकर दिन रात तुम को चिन्तन करते हुए सदैव दुःखी रहते हैं ॥ २२ ॥ उसके उस वचन को सुनकर वह क्रोध से मूर्च्छित ताम्रलोचनोंवाली ललिता रोती हुई उद्धवजी से बोली ॥ २३ ॥ ललिता बोली कि श्रीकृष्णजी असत्य व मर्याद रहित तथा क्रूर व क्रूरजनों को प्यारे हैं तुम उन अकृतात्मा कृष्णजी

उद्धवस्तज्जनंदृष्ट्वा कृष्णस्नेहवशीकृ गोप्यो मुमुहुःशोकविह्वलाः ॥ १६ ॥ ईक्षन्त्यःकृष्णदासन्तं निपेतुर्धरणीतले ॥ तम् ॥ २० ॥ आश्वासयामासतदा वाक्यैःश्रोत्रसुखावहैः ॥ २१ ॥ उद्धव उवाच ॥ भगवानपिदाशार्हः कन्दर्पशरपीडि तः ॥ दुःखीभवत्यविरतं चिन्तयंस्त्वामहर्निशम् ॥ २२ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य ललिताक्रोधमूर्च्छिता ॥ उद्धवंताम्र नयना सोवाचरुदतीतथा ॥ २३ ॥ ललितोवाच ॥ असत्योभिन्नमर्यादः क्रूरःक्रूरजनप्रियः ॥ माकुथास्मत्पुरस्तस्य कथांत्वमकृतात्मनः ॥ २४ ॥ धिग्धिक्पापसमाचारं धिगमुंनिष्ठुराशयम् ॥ हित्वायःस्त्रीजनान्मूढो गतोद्वारवतीं हरिः ॥ २५ ॥ श्यामलोवाच ॥ किंतस्यमन्दभाग्यस्य स्वल्पपुण्यस्यदुर्मतेः ॥ माकुर्वन्तुकथाःसाध्व्यः कथाःकथयता परा ॥ २६ ॥ धन्योवाच ॥ केनायंहिसमानीतोदूतो दुष्टोरमापतेः ॥ हीनस्यपुरुषार्थेषु तेनसङ्गोनिरर्थकः ॥ २७ ॥ राधो वाच ॥ पूतनांघातयानस्य नासीत्पापकृतम्भयम् ॥ तस्यस्त्रीहननेसाध्व्यः शङ्काकापिनविद्यते ॥ २८ ॥ शैव्योवाच ॥

की कथा को हमारे आगे मत कहो ॥ २४ ॥ पाप आचरणवाले कृष्ण को धिक्कार है धिक्कार है व इन निष्ठुर आशयवाले कृष्ण को धिक्कार है जो मूढ़ कृष्णजी स्त्रीजनों को छोड़कर द्वारका को चले गये ॥ २५ ॥ श्यामला बोली कि हे उत्तम आचरणवाली गोपियो ! थोड़ी पुण्य वाले उस मन्दभाग्य कृष्णकी कथाओं को मत कहो अन्य कथाओं को कहिये ॥ २६ ॥ धन्या बोली कि पुरुषार्थ में हीन रमापति विष्णुजी के इस दुष्ट दूत को कौन लाया है उससे संग निरर्थक है ॥ २७ ॥ राधा बोलीं कि पूतना को मारते हुए इसको पाप से किया हुआ भय नहीं है हे साध्वियो ! स्त्री के मारने में उसको कोई भी शंका नहीं है ॥ २८ ॥ शैव्या बोली कि हे महाभागे ! सत्य कहिये

यदूत्तम श्रीकृष्णजी क्या करते हैं नागरियों से घिरेहुए ये श्रीकृष्णजी किस प्रकार क्याकरैं ॥ २६ ॥ पद्मा बोली कि ये महाबाहु कृष्णजी नागरियों को प्यारे हैं और कमल-पत्र के समान चौड़े नेत्रोंवाले दाशार्ह कृष्णजी यहां कैसे टिकैंगे ॥ ३० ॥ भद्रा बोली कि हे गोपोत्तम, कृष्ण ! हा गोपीजनप्रिय, महाबाहो ! गोपियों को संसाररूपी समुद्र से उधारिये ॥ ३१ ॥ प्रह्लादजी बोले कि इस प्रकार अनेक भांति के वचनों से विलाप करती व कृष्णजी के कर्म को स्मरण करती हुई वे गोपियां बड़े स्वर से रोने लगीं ॥ ३२ ॥ और उनका रोदन सुनकर उद्धवजी उत्तम भक्ति को प्राप्त हुए व बड़े विस्मय को प्राप्त होकर बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा बोले ॥ ३३ ॥ उद्धवजी बोले

सत्यम्ब्रूहिमहाभागे किङ्करोतियदूत्तमः ॥ संवृतोनागरस्त्रीभिः कथमेषकरोतिकिम् ॥ २६ ॥ पद्मोवाच ॥ कृष्णएष महाबाहुर्नागरीजनवल्लभः ॥ किंस्थास्यतीहदाशार्हः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥ ३० ॥ भद्रोवाच ॥ हाकृष्णगोपप्रवर हागोपीजनवल्लभ ॥ समुद्धरमहाबाहो गोपीःसंसारसागरात् ॥ ३१ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ इतिताविविधैर्वाक्यैर्विलपन्त्योव्रजस्त्रियः ॥ रुरुदुःसुस्वरैर्गोप्यः स्मरन्त्यःकृष्णचेष्टितम् ॥ ३२ ॥ तासान्तुरुदितंश्रुत्वा भक्तिंचश्रेयसींगतः ॥ विस्मयंपरमंगत्वा साधुसाध्वितिचाब्रवीत् ॥ ३३ ॥ उद्धव उवाच ॥ यन्नब्रह्मानचहरो नदेवानमहर्षयः ॥ स्वभावमनुगच्छन्ति सर्वाधन्याव्रजस्त्रियः ॥ ३४ ॥ सर्वासांसफलंजन्म जीवितंयौवनंधनम् ॥ यासामभूद्भगवति भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ ३५ ॥ गोप्युवाच ॥ साधुदर्शयगोविन्दं साधुदर्शयवल्लभम् ॥ नयास्मान्साधुतत्रैव यत्रतिष्ठतिसोच्युतः ॥३६॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तासांतद्भाषितंश्रुत्वा तथाविलपितंवहु ॥ बाढमित्येवमित्यूचे उद्धवःस्नेहविह्वलः ॥ ३७ ॥ उद्धवेनसमंसर्वास्ततस्ता

कि जिस स्वभाव को ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता व महर्षि नहीं प्राप्तहोते हैं उसको ये गोपियां प्राप्तहोती हैं इससे सब व्रजनारियां धन्य हैं ॥ ३४ ॥ सबों का जन्म, जीवन, यौवन व धन सफल है जिन की भगवान् श्रीकृष्णजी में अहैतुकी भक्ति है ॥ ३५ ॥ गोपी बोली कि श्रीकृष्णजी को भलीभांति दिखलाइये व प्यारे को दिखाइये और हम सबों को वहीं ले चलिये जहां कि वे अच्युत श्रीकृष्णजी टिके हैं ॥ ३६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि उनके उस वचन व बहुत विलाप को सुनकर स्नेह से विह्वल उद्धवजी बहुत अच्छा यह बोले ॥ ३७ ॥ तदनन्तर कृष्णजी के दर्शन की इच्छावाली वे प्रसन्नतासंयुत सब व्रजनारियां उद्धव

के साथ पीछे चलीं ॥ ३८ ॥ और उनके बालचरित्रोंवाले प्रिय गीतों को गातीहुई वे गोपियां धीरे २ उद्धवजी के साथ चलीं ॥ ३९ ॥ तदनन्तर यदुपुरी में बगीचों के वन की पांतियों को देखकर कहनेलगीं कि यहां हम सब नन्दनन्दन कमललोचन श्रीकृष्णदेवजी को देखेंगी ॥ ४० ॥ और द्वारका को जाने से उस समय लक्ष्मीपति श्रीकृष्णजी के ध्यान से सब पातकों को छोड़कर हम सब समस्त बन्धन से छूटजावेंगी ॥ ४१ ॥ तदनन्तर वे सब मयतड़ाग के किनारे प्राप्तहुईं और कृष्णदेवतावाली गोपियों को शीघ्रही प्रणामकर उद्धवजी बोले ॥ ४२ ॥ कि यहां तुम सब टिको क्योंकि महाभुज श्रीकृष्णजी से पूंछकर वहां जाना चाहिये और कमल सरीखे लोचनोंवाले वे

व्रजयोषितः ॥ अनुजग्मुर्मुदायुक्ताः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ ३८ ॥ गायन्त्यःप्रियगीतानि तद्बालचरितानिच ॥ जग्मुःसहैवशनकैरुद्धवेनव्रजाङ्गनाः ॥ ३९ ॥ यदुपुर्यान्ततोदृष्ट्वा उद्यानवनराजयः ॥ अत्रदेवम्प्रपश्यामः पद्माक्षंनन्दनन्दनम् ॥ ४० ॥ द्वारावत्यास्तुगमनाद् ध्यानाल्लक्ष्मीपतेस्तदा ॥ अशेषकिल्बिषान्मुक्ता विध्वस्ताशेषबन्धनाः ॥ ४१ ॥ सम्प्राप्तास्तास्ततःसर्वास्तीरेमयसरस्यच ॥ उद्धवःप्रणिपत्याशु गोपिकाःकृष्णदेवताः ॥ ४२ ॥ स्थीयतामत्रगन्तव्यंतत्रपृष्ट्वामहाभुजम् ॥ कृष्णःकमलपत्राक्षो विधास्यतिसवोहितम् ॥ ४३ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ कस्योद्धवइदञ्चात्र सरःसारसशोभितम् ॥ सम्फुल्लैःपङ्कजैश्चित्रं कह्लारकुमुदोत्पलैः ॥ ४४ ॥ उद्धव उवाच ॥ मयोनाममहादैत्यो मायावीलोकविश्रुतः ॥ कृतं तेनसरःशुभ्रं तस्यनाम्नाचविश्रुतम् ॥ ४५ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ शीघ्रमानयगोविन्दं साधुदर्शयचाच्युतम् ॥ नयनानन्दजननं तापत्रयविनाशनम् ॥ ४६ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतासां गोपिकानान्तदोद्धवः ॥ द्रुतंसमानयामास कृष्णं

श्रीकृष्णजी तुम सबों का हित करैंगे ॥ ४३ ॥ गोपियां बोलीं कि हे उद्धवजी ! यहां फूलेहुए सुर्ख कमल व कोकाबेली तथा श्वेत कमलों से विचित्र व सारसों से शोभित यह किसका तड़ाग है ॥ ४४ ॥ उद्धवजी बोले कि मयनामी मायावी जो महादैत्य संसार में प्रसिद्ध है उसने इस उत्तम तड़ाग को बनाया है और उसी के नाम से प्रसिद्ध है ॥ ४५ ॥ गोपियां बोलीं कि शीघ्रही श्रीकृष्णजी को लाइये और नयनों को आनन्द पैदा करनेवाले तथा तीनों तापों को विनाशनेवाले अच्युत श्रीकृष्णजी को भलीभांति दिखाइये ॥ ४६ ॥ उससमय उन गोपियों के उस वचन को सुनकर उद्धवजी अपने वचन के गुणों से शीघ्रही श्रीकृष्णजी

को ले आये ॥ ४७ ॥ और पालकी के द्वारा आयेहुए व अपने शरीर से शोभित तथा वनमाला से भूषित देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ४८ ॥ व जलते हुए किरीट, मुकुट व चमकते हुए मकराकृत कुण्डलोंवाले तथा श्रीवत्स से चिह्नित व महाभुज और पीले रेशमी वसनों को पहनेहुए ॥ ४९ ॥ और श्रेष्ठ यादवों से हज़ारों छत्रों करके घिरे व मुख्य वंदियों से गाने, बजाने के शब्दों करके प्रशंसित ॥ ५० ॥ और देश निवासी मनुष्यों से सब दिशाओं में घिरे व हंस के जोड़ों से व सारसों से शोभित तड़ाग को देखतेहुए श्रीकृष्णजी को गोपियों ने देखा ॥ ५१ ॥ और संसार में सुन्दर व मनोहर श्रीकृष्ण प्यारे को आतेहुए बहुत दिनों में देखकर वे प्यारी व्रजनारियां

शीघ्रंस्ववाग्गुणैः ॥ ४७॥ आयातंनरयानेन दृष्ट्वादेवकिनन्दनम् ॥ भ्राजमानंस्ववपुषा वनमालाविभूषितम् ॥ ४८॥ ज्वलत्किरीटमुकुटं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ श्रीवत्साङ्कंमहाबाहुं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४९ ॥ आतपत्रसहस्रैस्तु संवृतंवृष्णिपुङ्गवैः ॥ संस्तुतंवन्दिमुख्यैस्तु गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ५० ॥ पौरजानपदैर्लोकैः संवृतंसर्वतोदिशम् ॥ पश्यतंहंसमिथुनैः सरःसरसशोभितम् ॥ ५१ ॥ तंदृष्ट्वाच्युतमायान्तं लोककान्तंमनोहरम् ॥ प्रियम्प्रियाश्चिरंदृष्ट्वा मुमुहुस्ताव्रजाङ्गनाः ॥ ५२ ॥ चिरात्संज्ञामवापुस्ता विलापंचक्रुरञ्जसा ॥ हानाथकान्तहास्वामिन् हाव्रजेशमनोहर ॥ ५३ ॥ संवर्द्धितोसियैर्बाल्ये क्रीडितोवत्सपालकैः ॥ तेपित्वयापरित्यक्ताः कथंरुष्टोसिनिर्घृण ॥५४॥ नतेधर्मोनसौहार्दं सख्यंनोसत्यमेवच ॥ पितृमातृपरित्यागी कथंयास्यसिसद्गतिम् ॥ ५५ ॥ स्वामिन्भक्तपरित्यागः सर्वशास्त्रेषुगर्हितः॥ त्यजतास्मान्वनेवीर तथानावेक्षितंत्वया ॥ ५६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वातासांविलपितं गोपीनांनन्दनन्दनः ॥ अन

मोहित हुईं ॥ ५२ ॥ और बहुत देर में चैतन्यता को प्राप्त हुईं व उन्होंने विलाप किया कि हा नाथ, कांत ! हा स्वामिन् ! हा व्रजेश, मनोहर ! ॥ ५३ ॥ जिन वत्सपालों से बाल्यावस्था में तुम बढ़ायेगये हो व जिन के साथ तुम ने क्रीड़ा किया उनको भी छोड़ दिया हे निर्दय ! क्यों क्रोधित होगये हो ॥ ५४ ॥ तुम्हारे न धर्म है न मैत्री है न सत्य है और न मित्रता है व पिता, माता को छोड़नेवाले तुम कैसे उत्तम गति को पावोगे ॥ ५५ ॥ हे स्वामिन् ! भक्त को छोड़ना सब शास्त्रों में निन्दित है व हे वीर ! वन में हम सबों को छोड़ते हुए तुम ने उस त्याग को नहीं देखा ॥ ५६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि उन गोपियों का विलाप सुनकर

भाव के जाननेवाले व्यापक नन्दनन्दन भगवान् व्रजराजजी ने उन अनन्य शरणवाली सब गोपियों को समझाते हुए वेदान्त की शिक्षा से उन व्रजनारियों से योग को कहा व उन्होंने वार २ सीखा ॥ ५७।५८ ॥ भगवान् बोले कि मेरा व आप सबों का कभी वियोग नहीं है क्योंकि प्राणियों के हृदय में मैं विशेषतारहित सदैव बसता हूं ॥ ५६ ॥ मैं सब का उत्पत्तिस्थान हूं और मुझ से इन्द्र समेत देवता व आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेवता व पवनगण उत्पन्नहुए हैं ॥ ६० ॥ और ब्रह्मा, विष्णु, शिव व आदि शक्ति और महर्षि, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, सत्त्व, रज व तमोगुण ॥ ६१ ॥ और काम, क्रोध, लोभ, मद व अहंकार हे गोपियो ! यह सब संपूर्णता से मुझ से वर्त्तमान

न्यशरणाःसर्वा भावज्ञोभगवान्विभुः ॥ ५७ ॥ प्रोवाचसान्त्वयन्सर्वाः व्रजेशस्ताव्रजाङ्गनाः ॥ अध्यात्मशिक्षयायोगं मुहुस्ताअन्वशिक्षत ॥ ५८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनांवियोगोमे कदाचिदपिनैवहि ॥ वसामिहृदयेशश्वद्भूता नामविशेषतः ॥ ५६ ॥ अहंसर्वस्यप्रभवो मत्तोदेवाःसवासवाः ॥ आदित्यावसवोरुद्रा विश्वेदेवामरुद्गणाः ॥ ६० ॥ ब्रह्माविष्णुश्चरुद्रश्च शक्तिराद्यामहर्षयः ॥ इन्द्रियाणिमनोबुद्धिस्तथासत्त्वंरजस्तमः ॥ ६१ ॥ कामःक्रोधश्चलोभश्च मदोहङ्कारएवच ॥ एतत्सर्वमशेषेण मत्तोगोप्यःप्रवर्त्तते ॥ ६२ ॥ एतज्ज्ञात्वामहाभागा मास्मशोकेमनःकृथाः ॥ सर्वभूतेषु मांनित्यं चिन्तयध्वमकिल्बिषाः ॥ ६३ ॥ ताःकृष्णवचनंश्रुत्वा गोप्योविध्वस्तबन्धनाः ॥ विमुक्तसंशयक्लेशा दर्शनादेवसंप्लुताः ॥ ६४ ॥ ऊचुश्चगोपवध्वस्ताः कृष्णदर्शननिर्मलाः ॥ अद्यनःसफलंजन्म त्वद्यनःसफलादृशः ॥ ६५ ॥ यत्त्वांपश्यामिगोविन्द नागरीजनवल्लभम् ॥ पुण्यहीनानपश्यन्ति कृष्णाख्यम्पुरुषंस्त्रियः ॥ ६६ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ वाक्यैर्हेत्वर्थ

है ॥ ६२ ॥ हे महाभागियो ! इसको जानकर शोक में मन मत करो और पापरहित तुम मुझ को सदैव सब प्राणियों में चिन्तवन करो ॥ ६३ ॥ कृष्णजी का वचन सुनकर बन्धन रहित वे गोपियां संदेह व क्लेश से छूटगईं और दर्शनही से मुक्त होगईं ॥ ६४ ॥ और श्रीकृष्णजी के दर्शन से निर्मल उन गोपनारियों ने कहा कि आज हम सबों का जन्म सफल होगया और आज हमारे नेत्र सफल होगये ॥ ६५ ॥ जोकि हे गोविन्दजी ! नागरियों के प्यारे तुमको मैं देखती हूं और पुण्य से रहित स्त्रिया कृष्णनामक पुरुष को नहीं देखती हैं ॥ ६६ ॥ गोपियां बोलीं कि हे मधुसूदनजी ! यद्यपि हेतु व अर्थ से संयुत वचनों से तुमने हम सबों को समझाया तथापि मेरे हृदय में

दर्शन व कीर्तन तथा दिन रात तुम्हारे स्मरण करने से हम सब उत्तम गति को प्राप्त होवैं ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे साध्वी गोपियो ! मैं तुमलोगों का प्रिय करूंगा क्योंकि तुम सब मेरी स्त्रियां हो और सदैव मेरे दया करने योग्य हो व मैं सदैव भक्ति से ग्रहण करने योग्य हूं ॥ ६ ॥ प्रह्लादजी बोले कि श्रीकृष्णजी के इस वचन को सुनकर प्रसन्न मनवाली गोपियां उस मयतड़ाग में नहाकर सब बन्धनों से छूट गईं ॥ ७ ॥ और यह कहकर भगवान् श्रीकृष्णजी ने गोपियों के हित की इच्छा से उस तड़ाग के समीप अन्य तड़ाग को बनाया ॥ ८ ॥ और वह निर्मल जलवाला तड़ाग गहरा तथा कमलिनीदलों से शोभित व हंसों और सारसों के जोड़ों से व

परमांगतिम् ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ करिष्येवःप्रियंसाध्व्यो यूयंममपरिग्रहाः ॥ अनुग्राह्यामयानित्यं भक्तिग्राह्यो स्मिसर्वदा ॥ ६ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ इतिकृष्णवचःश्रुत्वा गोप्यःसंहृष्टमानसाः ॥ तस्मिन्मयसरेस्नात्वा विमुक्ताशेषबन्धनाः ॥ ७ ॥ इत्युक्त्वाभगवाञ्छौरिर्गोपीनांहितकाम्यया ॥ सन्निधौसरसस्तस्य सरस्त्वन्यच्चकारह ॥ ८ ॥ तदगाधं स्वच्छजलं नलिनीदलशोभितम् ॥ हंससारसयुग्मैश्च चक्रवाकैःसुशोभितम् ॥ ९ ॥ कुमुदोत्पलकह्लारैः पद्मिनीषण्डमण्डितम् ॥ सेवितंद्विजमुख्यैश्च सिद्धविद्याधरैस्तथा ॥ १० ॥ सेवितंयदुनारीभिस्तथायदुकुमारकैः ॥ दिवारात्रौसुसम्पूर्णं सर्वैर्जानपदैर्जनैः ॥ ११ ॥ तद्दृष्ट्वाजलकल्लोलैः सुसम्पूर्णञ्जलाशयम् ॥ हर्षाद्गोपिजनंकृष्ण उवाचवचनंतदा ॥ १२ ॥ पश्यध्वङ्गोपिकाःशुभ्रं सरोमयकृतान्तिके ॥ स्वच्छमृष्टजलाकीर्णं सज्जनानांयथामनः ॥ १३ ॥ कारणाद्भवतीनाञ्चमया

चकई, चकवा से शोभित हुआ ॥ ९ ॥ और कुमुद, उत्पल, सुर्ख कमल और कमलिनीगणों से शोभित तथा मुख्य ब्राह्मणों से व सिद्धों और विद्याधरों से सेवित हुआ ॥ १० ॥ और यदुवंश की स्त्रियों व यदुवंश के बालकों से सेवित और दिन रात सब देशवासी मनुष्यों से पूर्णहुआ ॥ ११ ॥ उस समय जलकी बड़ी भारी लहरियों से संपूर्ण तड़ाग को देखकर श्रीकृष्णजी ने हर्ष से गोपीजनों से वचन कहा ॥ १२ ॥ कि हे गोपियो ! मय दानव से रचेहुए तड़ाग के समीप सज्जनों के मन के समान निर्मल व शुद्ध जल से भरेहुए उत्तम तड़ाग को देखो ॥ १३ ॥ आप सबों के कारण मैंने इस तड़ाग को बनाया कि जिस भांति आप सबों के नाम से

यह प्रसिद्ध होवै ॥ १४ ॥ व गोशब्द वचन का वाचक है और आप सबों समेत मेरा यहां संभाषण हुआ इस कारण गोप्रचार ऐसा नाम संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥ १५ ॥ जिसलिये तुम सबों के प्रिय काम के लिये मैंने इस तड़ाग को बनाया है इस कारण गोपीसर ऐसी प्रसिद्धि को संसार में प्राप्तहोगा ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि मन में जो वर्त्तमानहो व जो प्रयोजन हो उसको मांगिये क्योंकि मेरी भक्ति से तुम सब आई हो उस कारण मुझको अदेय (न देने योग्य) नहीं है ॥ १७ ॥ गोपियां बोलीं कि यदि आप प्रसन्न हो व यदि मुझको वर देने योग्य है तो हे माधवजी ! तुम को प्रसन्नता से यहां बसना चाहिये ॥ १८ ॥ क्योंकि जहां तुम हो वहा दान,

कृतमिदंसरः ॥ भवतीनांतथानाम्ना ख्यातमेतद्भविष्यति ॥ १४ ॥ गोवचोवाचकःशब्दो भवतीभिर्मयासह ॥ गोप्रचारेतिवैनाम ख्यातिंलोकेगमिष्यति ॥ १५ ॥ युष्माकम्प्रियकामार्थं यस्मात्कृतमिदंसरः ॥ तस्माद्गोपीसरइति ख्यातिंलोकेगमिष्यति ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ प्रार्थ्यतांयदभिप्रेतं यद्वामनसिवर्त्तते ॥ भक्त्याममागतायूयं नास्त्यदेयंततोमया ॥ १७ ॥ गोप्युवाच ॥ यदितुष्टोसिभगवान् यदिदेयोवरोमम ॥ तस्मात्त्वयात्रवस्तव्यं प्रसादेनहिमाधव ॥ १८ ॥ यत्रत्वंतत्रदानानि व्रतानिनियमास्तथा ॥ ॐकारश्चवषट्कारः स्वाहाकारःस्वधातथा ॥ १९ ॥ भूर्भुवःस्वर्महर्लोको जनःसत्यंतपस्तथा ॥ त्वन्मयंहिजगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ २० ॥ तस्मात्त्वयिजगन्नाथ स्नातमात्रेजनार्दन ॥ स्नातमत्रत्रिभुवनं भविष्यतिनसंशयः ॥ २१ ॥ त्रैलोक्यपावनीगङ्गा तवपादजलंहियत् ॥ लक्ष्म्यावक्षस्थलेस्थानं मुखेदेवीसरस्वती ॥ २२ ॥ सर्वभूतमयेनात्र स्नातव्यंजगदीश्वर ॥ यंददासिमनुष्याणां भावितानांकलौयुगे ॥ २३ ॥ तद्ददस्वमहाबाहो दयांकृत्वा

व्रत व नियम हैं और वहीं ॐकार, वषट्कार, स्वाहाकार व स्वधाकार है ॥ १९ ॥ और भूर्लोक, भुवर्लोक, महर्लोक व स्वर्ग, जन, तप और सत्यलोक व देवता, दैत्य और मनुष्यों समेत सब संसार आपमय है ॥ २० ॥ इस कारण हे जगदीश, जनार्दनजी ! तुम्हारे नहानेपर यहां त्रिलोक नहाया हुआ होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ जो तुम्हारे चरण का जल है वही त्रिलोक को पवित्र करनेवाली गंगा हैं और तुम्हारे वक्षस्थल में लक्ष्मीजी का स्थान है व मुख में सरस्वती देवी हैं ॥ २२ ॥ और तुम समस्त प्राणीमय हो हे जगदीश्वर ! तुमको इसमें स्नान करना चाहिये व कलियुग में पवित्र चित्तवाले पुरुषों को तुम जो देते हो ॥ २३ ॥

हे महाबाहो, जगदीशजी ! मेरे ऊपर दया करके उसको कहिये यहां यात्रा में आयेहुए मनुष्य को जो फल होता है उसको हम सबों से कहिये ॥ २४ ॥ श्री कृष्णजी बोले कि हे गोपियो ! गोपीतीर्थ के जल में नहाये हुए मनुष्यों को जो फल होता है उसको मेरे प्रसन्न होने पर निस्सन्देह सुनिये ॥ २५ ॥ कि सामग्री समेत व बछड़ा सहित तथा वस्त्र व अलंकार से भूषित व यथोक्त दक्षिणा से संयुत गऊ को उत्तम आचार व शुद्ध तथा निर्धनी और उपकारी व कुटुम्बी ब्राह्मण के लिये देकर मनुष्य जिस फल को पाता है वह फल यहां नहानेही से होता है ॥ २६ । २७ ॥ श्रीकृष्णजी के साथ मनुष्य जितने पग चलता है उतनी पुश्तियां

जगत्पते ॥ यात्रायामागतस्येह यत्फलंतद्वदस्वनः ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ यत्फलंहिमनुष्याणां स्नातानाङ्गोपिका जले ॥ तच्छृणुध्वमसंदिग्धं प्रसन्नेमयिगोपिकाः ॥ २५ ॥ सोपस्करांसवत्साञ्च वस्त्रालङ्कारभूषिताम् ॥ यथोक्तदक्षिणोपे तां ब्राह्मणायकुटुम्बिने ॥ २६ ॥ सदाचारायशुद्धाय दरिद्रायोपकारिणे ॥ गांदत्त्वाफलमाप्नोति स्नानमात्रेणतत्फ लम् ॥ २७ ॥ यावत्पादानिमनुजः कृष्णेनसहगच्छति ॥ कुलानिदिवितावन्ति वसन्तिहरिमन्दिरम् ॥ २८ ॥ कृष्णेन सहगच्छन्ति गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ स्तुवन्तोविविधैःस्तोत्रैर्गोविन्दङ्गोपिकासरे ॥ २९ ॥ नमातुर्जठरेतेषां यातनाभ वतेनृणाम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति वैष्णवंलोकमाप्नुयात् ॥ ३० ॥ अर्घंदत्त्वाविधानेन स्नानंकुर्याद्विचक्षणः ॥ मन्त्रेणानेनवैसाध्व्यः श्रद्धयापरयायुतः ॥ ३१ ॥ नमस्तेगोपरूपाय विष्णवेपरमात्मने ॥ गोप्रचारजगन्नाथ गृहाणार्घंनमोस्तुते ॥ ३२ ॥ अर्घंदत्त्वाविधानेन मृदमालभ्यपाणिना ॥ स्नायाच्छ्रद्धासमायुक्तस्तर्पयेतपितृ

स्वर्ग में विष्णुजी के मन्दिर में वसती हैं ॥ २८ ॥ और अनेक भांति के स्तोत्रों से विष्णुजी की स्तुति करते हुए जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के साथ गाने, बजाने के शब्दों से गोपीतड़ाग में जाते हैं ॥ २९ ॥ उन मनुष्यों को माता के पेट में पीड़ा नहीं होती है और वह मनुष्य सब कामनाओं को पाता है व विष्णुजी के लोक को जाता है ॥ ३० ॥ हे साध्वी गोपियो ! बड़ी श्रद्धा से संयुत चतुर पुरुष इस मन्त्र से अर्घ देकर विधि से स्नानकरै ॥ ३१ ॥ कि गोपरूपी आप परमात्मा विष्णुजी के लिये प्रणाम है हे गोप्रचार, जगन्नाथजी ! अर्घ को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये प्रणाम है ॥ ३२ ॥ विधि से अर्घ को देकर व हाथ से मिट्टी को छूकर श्रद्धासंयुत

पुरुष स्नानकरै और पितरों व देवताओं को तर्पण करै ॥ ३३ ॥ तदनन्तर एकचित्त व सावधान होकर मनुष्य भक्ति से श्राद्धकरै व चांदी या सोना की यथोक्त दक्षिणा देवै ॥ ३४ ॥ और तांबूल व कज्जल को विशेषकर देना चाहिये और दुकूल व कुसुम के रंगे हुए वस्त्रों को देना चाहिये ॥ ३५ ॥ व स्त्री, पुरुषों के वसन और भूषणों को अपनी शक्ति के अनुसार देना चाहिये और धुरी को धारनेवाले बैल व गौवों को ब्राह्मणों के लिये देना चाहिये ॥ ३६ ॥ और दीन, अन्ध व कृपणों को अपनी शक्ति से दान देना चाहिये इस प्रकार भलीभांति करके मनुष्य उत्तम गति को पाता है ॥ ३७ ॥ और तीन पुश्तियों में उपजे हुए उसके पितर उत्तम लोक को

देवताः ॥ ३३ ॥ श्राद्धंकुर्यात्ततोभक्त्या एकचित्तःसमाहितः ॥ यथोक्तांदक्षिणांदद्याद्रजतंरुक्ममेवच ॥ ३४ ॥ विशेषतः प्रदातव्यं ताम्बूलंकज्जलंतथा ॥ दुकूलानिचदेयानि तथाकौसुम्भकानिच ॥ ३५ ॥ दम्पत्योर्वाससीचैव भूषणानिस्वशक्तितः ॥ गावोदेयाद्विजातिभ्यो वृषभाश्चधुरन्धराः ॥ ३६ ॥ दीनान्धकृपणानाञ्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ एवंकृत्वानरःसम्यग्उत्तमाङ्गतिमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥ प्रयान्तिपरमंलोकं पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ लभतेपुत्रकामस्तु पुत्रानिष्टान्मनोनुगान् ॥ ३८ ॥ यंयंकामयतेकामं स्वर्गमोक्षादिकंनरः ॥ तत्सर्वंसमवाप्नोति यःस्नातोगोपिकासरे ॥ ३९ ॥ यावल्लोकाभविष्यन्ति तावत्स्थास्यतिवैसरः ॥ यावत्सरस्ततःकीर्तिर्भवतीनांभविष्यति ॥ ४० ॥ यावत्कीर्तिर्मनुष्येषु तावत्स्वर्गेनसंशयः ॥ विमुक्तपापाःसकला यास्यन्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ४१ ॥ पुण्यञ्चोपीसरइदं जलपूर्णंसदैवहि ॥ अवगाह्यम्मयागोप्यो नभस्येनियमेनहि ॥ ४२ ॥ भवत्यःपतिभावेन ब्रह्मभावेनवापुनः ॥ चिन्तयन्त्यःपरंमांहि पराङ्गति

जाते हैं और पुत्र की इच्छावाला पुरुष मन के अनुगामी व प्यारे पुत्रों को पाता है ॥ ३८ ॥ और जो गोपीसर में नहाता है वह मनुष्य स्वर्ग व मोक्षादिक जिस जिस कामना की इच्छा करता है उस सबको पाता है ॥ ३९ ॥ और जबतक लोक रहैंगे तबतक वह तड़ाग स्थित रहैगा व जबतक तडाग रहैगा तबतक आप लोगों की कीर्ति होगी ॥ ४० ॥ व जबतक मनुष्यों में कीर्ति रहैगी तबतक निस्सन्देह स्वर्ग होगा व पापरहित होकर आप सब उत्तम गति को पावोगी ॥ ४१ ॥ और यह पवित्र गोपीसर सदैव जल से पूर्ण रहैगा व हे गोपियो ! श्रावण में मुझसे यह सदैव नियम से नहाने योग्य होगा ॥ ४२ ॥ और तुम सब पतिभाव व फिर

परब्रह्मभाव से मुझको चिन्तन करती हुई उत्तम गति को पावोगी ॥ ४३ ॥ प्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णजी से आज्ञा दीहुई वे सब गोपकुमारी श्रीकृष्णजी को प्रणामकर जिस प्रकार आई थीं वैसेही चलीगई ॥ ४४ ॥ तदनन्तर उद्धवजी समेत भगवान् श्रीकृष्णजी सब गोपियों को बिदाकर अपने घर को चलेगये ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रह्लादसंहितायांद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगोपीसरोमाहात्म्यंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो पंचनदतीर्थ जिमि पुरी द्वारका मध्य । चौदहवें अध्याय में सोइ चरित सुख सध्य ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि बहुत आश्चर्यों से संयुत अनेकों तीर्थ हैं वे

मवाप्स्यथ ॥ ४३ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ अनुज्ञाताभगवता ततस्तागोपकन्यकाः ॥ नमस्कृत्यचगोविन्दं ययुःसर्वायथागताः ॥ ४४ ॥ भगवानपिगोविन्द उद्धवेनसमन्वितः ॥ विसृज्यगोपिकाःकृष्णः स्वंधामचततोययौ ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रह्लादसंहितायांद्वारकामाहात्म्येगोपीसरोमाहात्म्यंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ सन्त्यनेकानितीर्थानि बह्वाश्चर्यान्वितानिच ॥ प्राप्तेकलियुगेघोरे तानिसन्तिचसागरे ॥ १ ॥ उद्देशतोमयाविप्राः कीर्त्यमानानिशृणुवथ ॥ संक्षेपतोविप्रवरा यथातेषाञ्चयाःक्रियाः ॥ २ ॥ संहृत्यचभुवोभारं साधून्संस्थाप्यसत्पथे ॥ द्वारवत्यामगात्कृष्णो वृष्णिवृद्धैःसमावृतः ॥ ३ ॥ दर्शनार्थंतदाविप्रा दैवतैःपरिवारितः ॥ पाशीन्द्रयमवित्तेशाः सूर्याचन्द्रमसौतदा ॥ ४ ॥ सङ्गत्यसहकृष्णेन कार्यंसंसाध्यचात्मनः ॥ वेधाश्चक्रेचतत्तीर्थं स्वनाम्नाकीर्तितम्भुवि ॥ ५ ॥ ब्रह्मकुण्डमितिख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ तत्तीरेस्थापयामास सहस्रकिरणम्प्र

कलियुग प्राप्त होने पर समुद्र में हैं ॥ १ ॥ हे ब्राह्मणो ! उद्देश से मुझसे कहे जाते हुए उनको संक्षेप से सुनिये व हे द्विजोत्तमो ! जिस प्रकार उनके जो कर्म हैं उनको सुनिये ॥ २ ॥ कि पृथ्वी का भारसंहार कर व साधुओं को उत्तम मार्ग में थापकर वृद्ध यादवों से घिरेहुए श्रीकृष्णजी द्वारकापुरी को गये ॥ ३ ॥ तब हे ब्राह्मणो ! उनके दर्शन के लिये देवताओं से घिरेहुए वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर, सूर्य व चन्द्रमा उस समय ॥ ४ ॥ श्रीकृष्णजी के साथ जाकर व अपने कार्य को साधन कर ब्रह्मा ने अपने नाम से पृथ्वी में कहेहुए उस तीर्थ को निर्माण किया ॥ ५ ॥ जो कि समस्त पातकों का नाशक ब्रह्मकुण्ड ऐसा प्रसिद्ध है व उसके किनारे उन्हों

ने हज़ार किरणोंवाले सूर्यनारायण स्वामी को स्थापित किया ॥ ६ ॥ लोकों के पितामह ब्रह्माजी देवताओं की मूल (जड़) हैं जिस लिये उनसे सूर्य स्थापित हुए हैं उस कारण मूलस्थान ऐसा कहागया है ॥ ७ ॥ और उस ब्रह्मतीर्थ को देखकर चन्द्रमा ने तड़ाग को रचा है उस कारण चन्द्रमा के नाम से प्रसिद्ध तड़ाग सब पापों का विनाशक है ॥ ८ ॥ तेज से संयुत उस तीर्थ को सुनकर सुरोत्तम प्रसन्न हुए व उन्हों ने संसार को रचनेवाले ब्रह्माजी से कहा कि हमलोगों के वचन को सुनिये ॥ ९ ॥ कि हे सुरश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में जो स्नान करैगा व पितरों को तर्पण करैगा और देवेश मूलस्थान को पूजैगा ॥ १० ॥ सब पापों से छूटा हुआ वह धन व

भुम् ॥ ६ ॥ मूलंसुराणांहिकिल ब्रह्मालोकपितामहः ॥ तेनसंस्थापितोयस्मान्मूलस्थानमितिस्मृतम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मतीर्थन्तुतद्दृष्ट्वा चन्द्रश्चक्रेसरस्ततः ॥ तडागंचन्द्रनाम्नावै सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वातेजसायुक्तं संहृष्टासुरसत्तमाः ॥ ऊचुस्तेलोकस्रष्टारं शृणुध्वंवचनानिनः ॥ ९ ॥ योत्रस्नानंप्रकुर्वीत पितॄन्सन्तर्पयिष्यति ॥ पूजयिष्यतिदेवेशं मूलस्थानंसुरर्षभ ॥ १० ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ॥ सप्तम्यांमाघमासस्य शुक्लपक्षेसुरर्षभ ॥ ११ ॥ योत्रस्नानंप्रकुरुते मानवोभक्तिसंयुतः ॥ मूलस्थानञ्चदेवेश सुगन्धेनविलिप्यच ॥ १२ ॥ पूजयिष्यतिवित्ताद्यैः स्वशक्त्याभूषणोत्तमैः ॥ पुष्पधूपादिभिश्चैव नैवेद्येनचमानवः ॥ १३ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोकञ्चगच्छति ॥ सावित्रीञ्चततोदृष्ट्वा ब्रह्मणास्थापितांरथे ॥ १४ ॥ कृत्वाचायतनम्पुण्यं स्वांमूर्तिंसन्निवेश्यच ॥ नामचक्रेस्वयंतस्या विधिंदेव्याःपितामहः ॥ १५ ॥ नचव्याधिभयंतस्य यःपश्यतिविधिंनरः ॥ गत्वासंस्नापयेद्देवीं कुङ्कुमेनकुसु

धान्य से संयुत होगा व हे सुरर्षभ ! माघ महीने के शुक्लपक्ष में सप्तमी तिथि में ॥ ११ ॥ भक्तिसंयुत जो मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करै व हे देवेश ! सुगन्ध से मूलस्थान को लेपन कर ॥ १२ ॥ अपनी शक्ति के अनुसार धनादिकों से व उत्तम भूषणों से पूजै व जो मनुष्य पुष्पों व धूपादिकों से तथा नैवेद्य से पूजन करै ॥ १३ ॥ वह सब कामनाओं को पाता है और ब्रह्मलोक को जाता है तदनन्तर ब्रह्माजी से रथ पै स्थापित कीहुई सावित्रीजी को देखकर ब्रह्मलोक को जाता है ॥ १४ ॥ व पवित्र मन्दिर को बनाकर व अपनी मूर्ति में प्रवेश कर पितामहजी ने आपही उस देवी का विधि नाम किया ॥ १५ ॥ जो मनुष्य विधि को देखता है

उसको रोग का भय नहीं होता है देवीजी के समीप जाकर मनुष्य कुंकुम व कुसुम से स्नान करावै ॥ १६ ॥ व रेशमी वस्त्रों तथा अनेक भांति के पुष्पों से पूजकर नैवेद्य, फल, तांबूल, ग्रीवासूत्र और दीपों से ॥ १७॥ भलीभाति पूजकर देवीजी को स्नान करावै तो यात्रा सफल होती है और विधवापन, दुर्भाग्यता, बंध्या व मृतवत्सा स्त्री उस वंश में नहीं होती है कि जिन मनुष्यों ने विधि को देखा है इस कारण हे द्विजोत्तमो, द्विजो ! सब यत्न से विधि को देखै ॥ १८ । १९ ॥ तो श्रीकृष्णजी प्रसन्न होते हैं और यात्रा सफल होती है प्रह्लादजी बोले कि हे ब्राह्मणो ! ब्रह्मा ने ब्रह्मलिंग को स्थापन किया है व तड़ाग को निर्माण किया है ॥ २० ॥ व महाभाग

म्भकैः ॥ १६ ॥ सूक्ष्मीयवस्त्रैःसम्पूज्य पुष्पैर्नानाविधैस्तथा ॥ नैवेद्यफलताम्बूलग्रीवासूत्रकदीपकैः ॥ १७॥ सम्पूज्यस्ना पयेद्देवीं यात्राचसफलाततः ॥ नवैधव्यंनदौर्भाग्यं नवन्ध्यानमृतप्रजा ॥ १८ ॥ विधिर्दृष्टामनुष्यैर्यैः कुलेह्यस्मिन्प्र जायते ॥ तस्मात्सर्वात्मनाविप्रा विधिंपश्येद्द्विजर्षभाः ॥ १९ ॥ परितुष्टोभवेत्कृष्णो यात्राचसफलाभवेत् ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मणास्थापितंविप्रा ब्रह्मलिङ्गंसरस्तथा ॥ २० ॥ इन्द्रश्चक्रेमहाभागः सरःपरमशोभनम् ॥ स्थापयामासदेवेश इन्द्रलिङ्गमितिश्रुतम् ॥ २१ ॥ तत्रस्नात्वाचलभते यस्मादिन्द्रपदन्नरः ॥ तस्मादिन्द्रपदंनाम प्रसिद्धञ्चधरातले ॥ २२ ॥ इन्द्रेणस्थापितंलिङ्गं यस्माद्भावनयासह ॥ प्रसिद्धमिन्द्रनाम्नावै इन्द्रेश्वरमितिश्रुतम् ॥ २३ ॥ यच्चप्रसिद्धमतुलं वृद्धि लिङ्गमितिद्विजाः ॥ यस्यदर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ २४ ॥ पितॄणामक्षयातृप्तिर्जायतेद्विजसत्तमाः ॥ अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां स्नात्वाचेन्द्रपदेनरः ॥ २५ ॥ इन्द्रेश्वरञ्चसम्पूज्य यातिमुक्तिपदंनरः ॥ विशेषतस्तुसम्पूज्यो मकरस्थे

इन्द्रजी ने बड़े उत्तम तड़ाग को निर्माण किया है व देवेश इन्द्रजी ने इन्द्रलिंग ऐसे प्रसिद्ध लिंग को थापा है ॥ २१ ॥ जिस लिये उसमें नहाकर मनुष्य इन्द्रपद को पाता है उस कारण वह पृथ्वी में इन्द्रपद नामक प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ जिसलिये भक्ति समेत इन्द्रजीने लिंग को थापा है उस कारण इन्द्र के नाम से इन्द्रेश्वर ऐसा प्रसिद्ध लिंग है ॥ २३ ॥ जोकि हे ब्राह्मणो ! अतुलवृद्धिलिंग ऐसा प्रसिद्ध है और जिसके दर्शनही से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ २४ ॥ व हे द्विजो- त्तमो ! पितरों की अक्षय तृप्ति होती है और अष्टमी व चौदसि तिथि में मनुष्य इन्द्रपदतीर्थ में नहाकर ॥ २५ ॥ व इन्द्रेश्वरजी को पूजकर मनुष्य मुक्तिपद को पाता

है और सूर्यनारायण के मकरराशि में स्थित होने पर इन्द्रेश्वरजी विशेषकर पूजने योग्य हैं ॥ २६ ॥ और उत्तरायण व संक्रान्ति में तथा विशेषकर शिवरात्रि में पार्वतीजी समेत इन्द्रेश्वरलिंग को पूजकर मनुष्य ॥ २७ ॥ रात्रि में जागरण करै तो उत्तम लोक को पाता है प्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर ब्रह्मतीर्थ व इन्द्रभव तड़ाग को देखकर ॥ २८ ॥ विष्णुजी समेत अपने एक रूप को दिखाते हुए उमापति भगवान् शिवजीने तड़ाग को निर्माण किया है ॥ २९ ॥ और पवित्र व निर्मल जलवाले तथा कमलिनीदलों से शोभित और हंस व कारंडव पक्षी से पूर्ण तथा चकई, चकवा से शोभित ॥ ३० ॥ व सब ओर कमलों से आच्छादित तथा सारसों

दिवाकरे ॥ २६ ॥ उत्तरायणेचसंक्रान्तौ लिङ्गमिन्द्रेश्वरंनरः ॥ शिवरात्र्यांविशेषेण सम्पूज्यचोमयासह ॥ २७ ॥ रात्रौ जागरणंकुर्यात् परमंलोकमाप्नुयात् ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मतीर्थंततोदृष्ट्वा तथाशक्रभवंसरः ॥ २८ ॥ दर्शयन्विष्णुनासार्द्धमेकरूपत्वमात्मनः ॥ सरश्चकारदेवेशो भगवान्पार्वतीपतिः ॥ २९ ॥ सुमृष्टनिर्मलजलं नलिनीदलशोभितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ३० ॥ उत्पलैःसर्वतश्छन्नं सरःसारसशोभितम् ॥ तदगाधजलंदृष्ट्वा स्वयमेवपिनाकधृक् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मणाविष्णुनासार्द्धं स्नातस्तत्रवृषध्वजः ॥ देवास्तत्रसरोदृष्ट्वा ब्रह्मविष्णुमुखाःसुराः ॥ ३२ ॥ ऊचुःसर्वेसुसंहृष्टाः वीक्षन्तःपार्वतीपतिम् ॥ यस्मात्कृतमिदंविप्रा ईश्वरेणमहत्सरः ॥ ३३ ॥ महादेवसरोनाम सुप्रसिद्धम्भविष्यति ॥ योत्रस्नानम्प्रकुरुते पितॄणांतर्पणंतथा ॥ ३४ ॥ श्राद्धम्पितॄणांभक्त्याच सगच्छेत्परमाङ्गतिम् ॥ सुप्रसन्नाभविष्यन्ति सर्वेदेवानसंशयः ॥ ३५ ॥ दर्शनात्पापनिर्मुक्तो महादेवसरस्यच ॥ महेशस्यचतद्दृष्ट्वा सरःपरम

से शोभित उस गहरे जलवाले तड़ाग को देखकर आपही पिनाकधारी शिवजीने ब्रह्मा व विष्णुजी समेत उसमें स्नान किया और वहां तड़ाग को देखकर ब्रह्मा व विष्णु आदिक देवताओं ने ॥ ३१ । ३२ ॥ उमापति शिवजी को देखते हुए सबों ने प्रसन्न होकर कहा कि हे ब्राह्मणो ! जिसलिये शिवजीने इस बड़े भारी तड़ाग को निर्माण किया है ॥ ३३ ॥ उस कारण यह महादेवसरनामक प्रसिद्ध होगा और जो इसमें स्नान व पितरों का तर्पण करैगा ॥ ३४ ॥ व भक्ति से जो पितरों का श्राद्ध करैगा वह उत्तमगति को पावैगा और सब देवता निस्सन्देह प्रसन्न होवैंगे ॥ ३५ ॥ और महादेवतड़ाग को देखने से मनुष्य पाप से छूट जाता है और शिवजी

के उस अति उत्तम तड़ाग को देखकर ॥ ३६ ॥ व भक्ति से उसमें नहाकर मनुष्य दुर्गति को नहीं प्राप्त होता है व हे द्विजोत्तमो ! स्त्री की दुर्भाग्य नहीं होती है व सन्तान की हीनता नहीं होती है ॥ ३७ ॥ व पवित्र गौरीसर में नहाकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है तदनन्तर पवित्र स्थानों को देखकर वरुणजी ने ॥ ३८ ॥ विष्णुजी की भक्ति से पुरस्कृत होकर उन्हों ने दिव्य तड़ाग को बनाया है जो मनुष्य नाम से वरुणतीर्थ को देखता है पृथ्वी में उसका पाप नाश होता है ॥ ३९ ॥ और भादौ की पौर्णमासी तिथि में पितरों तथा देवताओं को तर्पण कर श्रद्धासंयुत मनुष्य विधि से पितरों का श्राद्ध कर ॥ ४० ॥ उत्तम लोक को प्राप्त होता है जहां

शोभनम् ॥ ३६ ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या नदुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ नदौर्भाग्यंस्त्रियश्चैव नाप्रजस्त्वंद्विजर्षभाः ॥ ३७ ॥ स्नात्वागौरीसरेपुण्ये सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ वरुणश्चततोदृष्ट्वा पुण्यान्यायतनानिवै ॥ ३८ ॥ चकारससरोदिव्यं विष्णुभक्तिपुरस्कृतः ॥ नाम्नाचवारुणम्पश्येत् तस्यपापक्षयम्भुवि ॥ ३९ ॥ नभस्यपूर्णिमायांच सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ श्राद्धंकृत्वाविधानेन पितॄणांश्रद्धयान्वितः ॥ ४० ॥ उत्तमंलोकमाप्नोति यत्रगत्वानशोचति ॥ प्रदद्यादुदकुम्भांश्च दध्योदनसमन्वितान् ॥ ४१ ॥ गाश्चवासांसिरत्नानि विष्णुर्मेप्रीयतामिति ॥ सरोदृष्ट्वाजलेशस्य सरश्चक्रेधनाधिपः ॥ ४२ ॥ यक्षाधिपसरोनाम सुप्रसिद्धंधरातले ॥ स्नात्वातत्रनरोभक्त्या सम्पूज्यपितृदेवताः ॥ ४३ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति दद्याद्वस्त्रंद्विजातये ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ विष्णुंवरप्रदंश्रुत्वा भ्रातॄणांब्रह्मसूनुना ॥ ४४ ॥ मन्दाकिनीवशिष्ठेन समानीता धरातले ॥ आमरीच्यादयःसर्वे आजग्मुःकृष्णपालिताम् ॥ ४५ ॥ द्वारवतीञ्चतेदृष्ट्वा गोमतीसागरङ्गमाम् ॥ तीर्थानि

जाकर शोचता नहीं है और दही व भात से संयुत जल के घटों को देवै ॥ ४१ ॥ व मेरे ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होवैं इस मन्त्र से गऊ व वस्त्रों को देवै वरुणजी के तड़ाग को देखकर धनेश कुबेरजी ने तड़ाग को निर्माण किया है ॥ ४२ ॥ वह पृथ्वी में यक्षाधिप तड़ाग नामक प्रसिद्ध है उस में मनुष्य भक्ति से नहाकर व पितरों तथा देवताओं को पूजकर ॥ ४३ ॥ ब्राह्मण के लिये वस्त्र को देवै तो सब कामनाओं को पाता है प्रह्लादजी बोले कि भाइयों को वर देनेवाले विष्णुजी को सुनकर ब्रह्मा के पुत्र ॥ ४४ ॥ वशिष्ठजी पृथ्वी में मन्दाकिनी को लाये और मरीचिआदिक सब ऋषिलोग श्रीकृष्णजी से पालित द्वारकापुरी को आये ॥ ४५ ॥ और

उन्हों ने द्वारकापुरी व समुद्रगामिनी गोमती को देखकर और देवताओं के तीर्थ व पवित्र देवमन्दिरों को देखकर ॥ ४६ ॥ प्रजापतियों ने पंचनदतीर्थ को बनाया है और बुलाई हुई पाच नदियां शीघ्रतासंयुत होकर वहां आई ॥ ४७ ॥ मरीचि के लिये गोमती व अत्रि के लिये लक्ष्मणा और अंगिरा के लिये चन्द्रभागा तथा पुलह के लिये कुशावती आई ॥ ४८ ॥ व उस समय क्रतुजी को पवित्र करने के लिये जाम्बवती आई और उन नदियों में नहाकर यशस्वी ब्रह्मपुत्र ॥ ४९ ॥ तपस्वियों ने उस समय उस तीर्थ का पंचनद्य ऐसा नाम किया उस कारण पंचनदीतीर्थ सब पापों का विनाशक है ॥ ५० ॥ स्वर्ग व मोक्ष को चाहनेवाले मनुष्यों को उसमें

देवतानाञ्च पुण्यान्यायतनानिच ॥ ४६ ॥ तीर्थपञ्चनदंचक्रुः प्रजानांपतयस्तथा ॥ पञ्चनद्यःसमाहूतास्तत्राजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४७ ॥ मरीचयेगोमतीच लक्ष्मणाचात्रयेतथा ॥ चन्द्रभागाह्यङ्गिराय पुलहायकुशावती ॥ ४८ ॥ पावनार्थंजाम्बवती जगामक्रतवेतदा ॥ तासुस्नातामहाभागा ब्रह्मपुत्रायशस्विनः ॥ ४९ ॥ नामतस्यतदाचक्रुः पञ्चनद्येति तापसाः ॥ तस्मात्पञ्चनदीतीर्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५० ॥ स्नातव्यंतत्रमनुजैः स्वर्गमोक्षार्थिभिःसदा ॥ तत्रगत्वामुनियतो गृहीत्वार्घफलेनवै ॥ ५१ ॥ मन्त्रेणानेनवैविप्रा दद्यादर्घंविधानतः ॥ ब्रह्मपुत्रैःसमानीताः पञ्चैताःसरितोवराः ॥ ५२ ॥ गृह्णन्त्वर्घमिमंदेव्यः सर्वपापप्रशान्तये ॥ अर्घमन्त्रः ॥ स्नानंकृत्वाततोदेवान् पितॄन्सन्तर्पयेन्नरः ॥ ५३ ॥ श्राद्धंकुर्याद्विधानेन श्रद्धयापरयायुतः ॥ पञ्चरत्नंततोदेयं सप्तधान्यंद्विजातये ॥ ५४ ॥ दीनान्धकृपणानाञ्च दानंदेयंस्वशक्तितः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोकञ्चगच्छति ॥ ५५ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्तो परंसौख्यमवाप्नुयात् ॥

सदैव नहाना चाहिये वहां नियमसंयुत मनुष्य जाकर फल समेत अर्घ को लेकर ॥ ५१ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस मन्त्र से विधिपूर्वक अर्घ देवै कि ब्रह्मपुत्रों से लाई हुई ये उत्तम पांच नदी देवियां सब पापों की शांति के लिये इस अर्घ को ग्रहण करैं (यह अर्घ का मन्त्र है) उसके उपरान्त नहाकर मनुष्य देवताओं व पितरों को तर्पण करै ॥ ५२ । ५३ ॥ तदनन्तर उत्तम श्रद्धा से संयुत मनुष्य विधि से श्राद्ध करै व ब्राह्मण के लिये पचरत्न व सप्तधान्य देना चाहिये ॥ ५४ ॥ और अपनी शक्ति के अनुसार दीन, अन्ध व कृपणों को दान देना चाहिये क्योंकि ऐसा करने पर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ ५५ ॥ और पुत्रों

व पौत्रों से संयुत वह उत्तम सुख को पाता है और जो प्रेत की योनि में प्राप्त हैं व जो कीटता को प्राप्त हैं ॥ ५६ ॥ तीन पुश्तियों में उपजे हुए वे सब पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चनदमाहात्म्यंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ⊛ ॥

दो० । सिद्धेश्वर शिवलिंग को थप्यो योग से सिद्ध । सनकादिक सो पंद्रहे माहिं चरित्र प्रसिद्ध ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उन आयेहुए अपने पिता ब्रह्मा देवजी को सुनकर सब सनकादिक मुनिलोग ब्रह्माजी को प्रणाम करने के लिये गये ॥ १ ॥ और उन लोककर्ता (ब्रह्मा) जी को देखकर दंडा की नाईं उन्हों ने पृथ्वी में प्रणाम किया

प्रेतयोनिङ्गतायेच येचकीटत्वमागताः ॥ ५६ ॥ सर्वेतेतृप्तिमायान्ति पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे द्वारकामाहात्म्येपञ्चनदमाहात्म्यंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वातमागतंदेवं ब्रह्माणंपितरंस्वकम् ॥ सनकाद्यानमस्कर्तुं जग्मुःसर्वेपितामहम् ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वा लोककर्त्तारं दण्डवत्प्रणताःक्षितौ ॥ चिराद्दृष्ट्वास्वतनयान्संहृष्टःपरिषस्वजे ॥ २ ॥ पृष्ट्वाचानामयंतांस्तु दृष्ट्वातो नयनेनहि ॥ उवाचब्रह्मासंहृष्टः सनकाद्यान्स्वपुत्रकान् ॥ नज्ञातम्पुत्रकाःसम्यगज्ञानाद्बालबुद्धिभिः ॥ ३ ॥ येनार्चितोमहादेवस्तस्यतुष्यतिकेशवः ॥ अनर्चितेनीलकण्ठे नपूजांनयतेहरिः ॥ ४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यतां नीललोहितः ॥ येनसम्पूर्णतांयाति पूजाविष्णुकृतासदा ॥ ५ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्य ब्रह्मपुत्राययुस्तदा ॥ देवगोष्ठींतुते

और बहुत दिनों से अपने पुत्रों को देखकर प्रसन्न होते हुए उन्हों ने लिपटा लिया ॥ २ ॥ इसके उपरान्त उनसे कुशल को पूंछकर व लोचनों से देखकर प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा ने अपने सनकादिक पुत्रों से कहा कि हे पुत्रो ! अज्ञान के कारण बालबुद्धिवाले तुमने भलीभांति नहीं जाना है ॥ ३ ॥ कि जिसने महादेव को पूजा है उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और शिवजीके अपूजित होनेपर विष्णुजी पूजा को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ इस कारण सब यत्न से शिवजी को पूजो कि जिससे सदैव विष्णुजीकी कीहुई पूजा सम्पूर्णता को प्राप्त होवै ॥ ५ ॥ उनके उस वचन को सुनकर उस समय ब्रह्मा के पुत्र चलेगये और योग से सिद्ध उन महर्षियों ने

देवताओं की सभा को जाकर ॥ ६ ॥ शिवभक्ति को आगे करके लिंग को थापन किया व शिवजी के लिंग को थापकर तदनन्तर तीक्ष्णव्रतवाले उन सब मुनिश्रेष्ठ ऋषियों ने स्नान के लिये कूप को निर्माण किया व उस समय जलसे पूर्ण व निर्मल उस कूप को देखकर ॥ ७ । ८ ॥ प्रसन्न होते हुए सब ऋषियों ने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा और वहां थापेहुए लिंग को देखकर लोकों के पितामह पद्मज ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर पुत्रों से यह वचन कहा कि योग से सिद्ध आप लोगों ने जिस कारण शिवजी को थापन किया ॥ ९ । १० ॥ उसलिये इस का सिद्धेश्वर ऐसा नाम होगा और जिसलिये शिवजी के समीप यह कूप ऋषियों

गत्वा योगसिद्धामहर्षयः ॥ ६ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामासुः शिवभक्तिपुरस्कृताः ॥ संस्थाप्यशिवलिङ्गन्ते स्नानार्थंमुनिसत्तमाः ॥ ७ ॥ कूपञ्चक्रुस्ततःसर्वे ऋषयःसंशितव्रताः ॥ दृष्ट्वातदावुतंकूपं जलपूर्णंसुनिर्मलम् ॥ ८ ॥ संहृष्टाऋषयःसर्वे साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ स्थापितंतत्रलिङ्गन्तु दृष्ट्वालोकपितामहः ॥ ९ ॥ उवाचवचनम्ब्रह्मा प्रीतःपुत्रान्हिपद्मजः ॥ भवद्भिर्योगसंसिद्धैर्यस्मात्तुस्थापितःशिवः ॥ १० ॥ तस्मात्सिद्धेश्वरइति नामचास्यभविष्यति ॥ समीपेसितकण्ठस्य कूपोयमृषिभिःकृतः ॥ ११ ॥ ऋषितीर्थमितिख्यातंतस्माल्लोकेभविष्यति ॥ विनाश्राद्धेनविप्रेन्द्रा विनैवपितृतर्पणम् ॥ १२ ॥ भक्तितःस्नानमात्रेण ब्रह्मलोकमवाप्यते ॥ असत्यवादिनोयेच परनिन्दापरायणाः ॥ १३ ॥ स्नानमात्रेणशुद्धयन्ति ऋषितीर्थेनसंशयः ॥ वाचिकंमानसञ्चैव कर्मणासमुपार्जितम् ॥ १४ ॥ स्नातस्यऋषितीर्थेतु नश्यतेनात्र संशयः ॥ स्नानंप्रशस्तंविषुवे मन्वादिषुतथैवच ॥ १५ ॥ तथाकृष्णेयुगाद्यांहि माघस्यद्विजसत्तमाः ॥ शिवरात्र्यांव

से बनाया गया है ॥ ११ ॥ उस कारण ससार में ऋषितीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा हे द्विजेन्द्रो ! विना श्राद्ध व विना पितृतर्पण के ॥ १२ ॥ भक्ति से स्नान ही करने से ब्रह्मलोक मिलता है और जो झूंठ बोलनेवाले व पराई निन्दा में परायण हैं ॥ १३ ॥ वे ऋषितीर्थ में स्नानही करने से पवित्र होजाते हैं और वाचिक, मानस व कर्म से इकट्ठा किया हुआ पाप ॥ १४ ॥ ऋषितीर्थ में नहायेहुए पुरुष का नाश होजाता है इसमें सन्देह नहीं है और विषुवायन व मन्वादिक तीर्थों में स्नान उत्तम होता है ॥ १५ ॥ वैसेही हे द्विजोत्तमो ! माघ महीने के कृष्णपक्ष की युगादि तिथि में व शिवरात्रि में जो मनुष्य सिद्धेशसंज्ञक लिंग के समीप

बसता है ॥ १६ ॥ व हे ब्राह्मणो ! ऋषियों से कियेहुए तीर्थ में जिसने स्नान कियाहै उसको अन्य तीर्थ से क्या है हे महाभागो ! वहां जाकर उत्तमफल को लेकर ॥ १७ ॥ हाथों में कुशों को करके विधि से इस मन्त्र से अर्घ को देवै कि मुझसे भक्ति से दिये हुए अर्घ को सिद्धेशजी के समीप पापनाशक ऋषितीर्थ में योग से सिद्ध महर्षिलोग ग्रहणकरैं इस मन्त्र से अर्घ को देकर व मिट्टी को छूकर विधिपूर्वक स्नान करै ॥ १८ । १९ ॥ और क्रमपूर्वक पितरों, देवताओं व मनुष्यों को तर्पणकरै तदनन्तर श्रद्धासंयुत मनुष्य पितरों का श्राद्धकरै ॥ २० ॥ व वित्तशाठ्य से रहित पुरुष वहां दक्षिणा को देवै व रसीले फलों को विशेषकर देना चाहिये ॥ २१ ॥ और सांवा व तिन्नी फसही

सेयस्तु लिङ्गेसिद्धेशसंज्ञके ॥ १६ ॥ स्नातस्तीर्थेऋषिकृते किंतस्यान्येनवैद्विजाः ॥ गत्वातत्रमहाभागा गृहीत्वाफलमुत्तमम् ॥ १७ ॥ अर्घंदद्याद्विधानेन कृत्वाचकरयोःकुशान् ॥ गृह्णन्त्वर्घंमयाभक्त्या योगसिद्धामहर्षयः ॥ १८ ॥ ऋषितीर्थेचपापघ्ने सिद्धेशस्यसमीपतः ॥ दत्त्वार्घंमृदमालभ्य स्नानंकुर्याद्यथाविधि ॥ १९ ॥ तर्प्पयेच्चपितॄन्देवान् मनुष्यांश्चयथाक्रमम् ॥ ततःश्राद्धम्प्रकुर्वीत पितॄणांश्रद्धयान्वितः ॥ २० ॥ दद्याच्चदक्षिणांतत्र वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ दातव्यानिविशेषेण फलानिरसवन्तिच ॥ २१ ॥ देयौश्यामाकनीवारौ विद्रुमञ्चतिलानपि ॥ सप्तधान्यंशालयश्च सक्तवो द्रव्यसंयुताः ॥ २२ ॥ गन्धमाल्यानिताम्बूलं वस्त्राणिचतथापयः ॥ एवंकृत्वाखमग्रञ्च कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ २३ ॥ पूजयित्वामहादेवं सिद्धेश्वरमुमापतिम् ॥ सफलंजन्ममर्त्यस्य जीवितञ्चसुजीवितम् ॥ २४ ॥ यःस्नात्वाऋषितीर्थेषु पश्येत्सिद्धेश्वरंशिवम् ॥ अपुत्राःपुत्रिणःसन्ति तथासन्त्येवपौत्रिणः ॥ २५ ॥ निर्धनाधनवन्तश्च सिद्धेश्वरगतानराः ॥

और मूंगा व तिलों को देना चाहिये तथा सप्तधान्य, शाली व द्रव्य से संयुत सत्तुवों को देना चाहिये ॥ २२ ॥ और सुगंधितमाला, तांबूल, वस्त्र व दूध को देना चाहिये इस प्रकार सब करके मनुष्य कृतार्थ होता है ॥ २३ ॥ व उमापति सिद्धेश्वर महादेवजी को पूजकर मनुष्य का जन्म सफल होता है व जीवन सुजीवित होता है ॥ २४ ॥ और ऋषितीर्थों में नहाकर जो सिद्धेश्वरजी को देखता है तो पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् होते हैं और पौत्रवान् होते हैं ॥ २५ ॥ और सिद्धेश्वर को गयेहुए

निर्धनी मनुष्य धनवान् होते हैं और पाप नाश होजाता है व पुण्य बढ़ता है ॥ २६ ॥ व सिद्धेश्वरजी को प्रणाम करते हुए पुरुष को मनोरथ की प्राप्ति होती है व उसके पितर प्रसन्न होते हैं और पितामह नाचते हैं ॥ २७ ॥ और ऋषितीर्थ में नहाकर व सिद्धेशजी का पूजन करके शिवरात्रि तिथि में महात्मा मनुष्यों को विशेषकर पूजना चाहिये ॥ २८ ॥ और मनुष्य जिस जिस कामना की इच्छा करता है उस उसको चिन्तामणि के समान स्वामी सिद्धेश्वरजी देते हैं और उसके सदैव अक्षयनिधि होती है ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ⊛ ॥

दुष्कृतंयातिविलयं सुकृतञ्चापिवर्द्धते ॥ २६ ॥ भवेन्मनोरथावाप्तिर्नमतःसिद्धनायकम् ॥ पितरस्तस्यतुष्यन्ति नृत्यन्तिचपितामहाः ॥ २७ ॥ ऋषितीर्थेनरःस्नात्वा कृत्वासिद्धेशपूजनम् ॥ शिवरात्र्यांविशेषेण पूजनीयोमहात्मभिः ॥ २८ ॥ यंयंकामयतेकामं तंददातिनसंशयः ॥ चिन्तामणिसमःस्वामी सर्वदाचाक्षयोनिधिः ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येसिद्धेश्वरमाहात्म्यंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततोगच्छेत्सुविप्रेन्द्रा गदातीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नात्वानरःसम्यगग्निष्टोमफलंलभेत् ॥ १ ॥ नमस्कृत्यचदेवेशं विष्णुंवाराहरूपिणम् ॥ सम्पूज्यपरयाभक्त्या विष्णुलोकेमहीयते ॥ २ ॥ नागतीर्थंततोगच्छेन्नरःपरमशोभनम् ॥ यत्रस्नात्वानरःसम्यग्दिव्यलोकमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ चित्रासुरंततोगच्छेत्तीर्थंत्रिभुवनार्चितम् ॥ स्नानमात्रेणलभते तिलधेनुफलंनरः ॥ ४ ॥ यदाद्वारवतीविप्राः प्लावितासागरेणहि ॥ पुण्यानिबहुतीर्थानि छन्नानिजल

दो० । गदातीर्थ आदिक यथा बरने तीर्थ अनेक । सो सोलह अध्याय में कह्यो चरित शुभटेक ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजेन्द्रो ! तदनन्तर मनुष्य अतिउत्तम गदातीर्थ को जावै जिसमें भलीभांति नहाकर मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ के फल को पाता है ॥ १ ॥ वाराहरूपी देवेश विष्णुजी को प्रणामकर व उत्तम भक्ति से पूजकर मनुष्य विष्णुलोक में पूजा जाता है ॥ २ ॥ तदनन्तर मनुष्य बहुतही उत्तम नागतीर्थ को जावै जिसमें भलीभांति नहाकर मनुष्य दिव्यलोक को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ तदनन्तर त्रिलोक से पूजित चित्रासुरतीर्थ को जावै उसमें नहाने से मनुष्य तिलधेनु के समान फल को पाता है ॥ ४ ॥ हे ब्राह्मणो ! जब समुद्र ने द्वारकापुरी को डुबालिया

तब बहुत से पवित्र तीर्थ जल व धूलियों से आच्छादित होगये ॥ ५ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! कुछ तीर्थ देखपड़ते हैं व अन्य कितेक तीर्थ नहीं देखपड़ते हैं उन सबों को मैं संक्षेप से कहता हूं ॥ ६ ॥ कि तदनन्तर मनुष्य सब पापों को नाशनेवाली चन्द्रभागा नदी को जावै उसमें नहाकर मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को पाता है ॥ ७ ॥ और जहा पर यशोदा व नंद की कुमारी चन्द्रपूजित देवीजी हैं जोकि कुंवारी व शक्ति को हाथ में लिये तथा तलवार व खेटक अस्त्र को धारे हैं ॥ ८ ॥ कंसादि दैत्यों को संहारनेवाली उन बलराम व श्रीकृष्णजी की बहन देवीजी के समीप जावै कि जिसके दर्शनही से मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ९ ॥ तदनन्तर

पांशुभिः ॥ ५ ॥ दृश्यानिकतिचित्सन्ति ह्यदृश्यान्यपराणिच ॥ तानिसर्वाणिविप्रेन्द्राः कथयामिसमासतः ॥ ६ ॥ चन्द्रभागांततोगच्छेत् सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या वाजपेयफलंलभेत् ॥ ७ ॥ देवीचन्द्रार्चितायत्र यशोदानन्दनन्दिनी ॥ कुमारिकाशक्तिहस्ता खड्गखेटकधारिणी ॥ ८ ॥ कंसादिदैत्यदलिनीं स्वसारंरामकृष्णयोः ॥ यस्या दर्शनमात्रेण सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ ततोगच्छतविप्रेन्द्रास्तीर्थंनागेन्द्रसंज्ञितम् ॥ यस्यदर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १० ॥ मुक्तिद्वारंततोगच्छेत् तीर्थम्पापप्रणाशनम् ॥ वशिष्ठेनसमानीता मुनिनायत्रगोमती ॥ ११ ॥ स्नातो भवतिगङ्गायां यत्रस्नात्वाकलौयुगे ॥ गोमतीनिःसृतायस्मात् प्रविष्टावरुणालयम् ॥ १२ ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या अश्वमेधफलंलभेत् ॥ भृगुणाहितपस्तप्तं स्थापितायत्रचाम्बिका ॥ १३ ॥ भृग्वर्चिताततोदेवी प्रसिद्धाश्रूयतेक्षितौ ॥ संसिद्धिम्परमांयान्ति यस्याःसंस्मरणान्नरः ॥ १४ ॥ शिवलोकान्यनेकानि यत्रसन्तिमहीतले ॥ ततोगच्छतविप्रेन्द्राः

हे द्विजेन्द्रो ! नागेन्द्र नामक तीर्थ को जावो कि जिसके दर्शनही से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ १० ॥ तदनन्तर पापविनाशक मुक्तिद्वारतीर्थ को जावै जहां कि वशिष्ठमुनिजी गोमती नदी को लाये हैं ॥ ११ ॥ कलियुग में जिस तीर्थमें नहाकर मनुष्य गंगा में नहाया हुआ होता है जहां से गोमतीजी निकली हैं और जहां समुद्र में पैठी हैं ॥ १२ ॥ उसमें भक्ति से नहाकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञके फल को पाता है जहां भृगुजी ने तप किया है व अम्बिकाजी को थापा है ॥ १३ ॥ उसी कारण पृथ्वी में भृगुपूजित देवी प्रसिद्ध हैं जिनके स्मरण से मनुष्य उत्तम सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे द्विजेन्द्रो ! जहां पृथ्वी में अनेक

शिवलोक हैं वहां उत्तम यमुनाजी के किनारे जावै ॥ १५ ॥ यहां पर सूर्य की कन्या यमुनाजी व अति उत्तम तड़ाग है उसमें भक्ति से नहाकर मनुष्य दुर्गति को नहीं पाता है ॥ १६ ॥ तदनन्तर पातकों के विनाशक साम्बतीर्थ को जावै जिसमें भक्ति से नहाकर मनुष्य बहुत सुवर्ण को पाता है ॥ १७ ॥ तदनन्तर त्रिलोक में प्रसिद्ध नागसरतीर्थ को जावै उसमें विधिपूर्वक पितरों को तर्पणकर मनुष्य नागलोक को पाता है ॥ १८ ॥ तदनन्तर गोमती नदी से द्रोह करतीहुई लक्ष्मी नदी को जावै जिसके स्पर्श करने से मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ १९ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! वहां श्राद्ध करने से पितरों की तृप्ति को करता है और दान करने से मनोरथ की

कालिन्दीतटमुत्तमम्॥१५॥कालिन्दीसूर्यतनया सरश्चात्रत्वनुत्तमम्॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या नदुर्गतिमवाप्नुयात्॥१६॥ साम्बतीर्थंततोगच्छेत् तीर्थम्पापप्रणाशनम्॥ यत्रस्नात्वानरोभक्त्या लभेद्बहुसुवर्णकम्॥ १७ ॥ ततोनागसरोगच्छेत् तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम्॥ पितॄन्सन्तर्प्यविधिवन्नागलोकमवाप्नुयात्॥ १८ ॥ लक्ष्मीनदींततोगच्छेद्द्रुहतींगोमतीम्प्रति॥ यस्याःस्पर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वपातकैः॥ १९ ॥ श्राद्धेकृतेतुविप्रेन्द्राः पितॄणांतृप्तिमावहेत्॥ दानेमनोरथावाप्तिं लभतेनात्रसंशयः॥ २० ॥ कम्बूसरस्ततोगच्छेत्स्नात्वासन्तर्पयेत्पितॄन्॥ दानंदत्त्वायथाशक्त्या निर्मलंलोकमाप्नुयात्॥ २१ ॥ दुर्वाससायत्रशप्ताः कोपाद्यदुकुमारकाः॥ यत्रजालेश्वरोदेवः प्रादुर्भूतोह्युमापतिः॥ २२ ॥ जालेश्वरंनरोदृष्ट्वा सद्यःपापात्प्रमुच्यते॥ सम्पूजयित्वाभक्त्याच शिवलोकमवाप्नुयात्॥ २३ ॥ चक्रस्वामिसुतीर्थञ्च ततोगच्छेच्चमानवः॥ जरत्कारुकृतंतत्र तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम्॥ २४॥ स्नात्वातत्रद्विजश्रेष्ठा नदुर्गतिमवाप्नुयात्॥ आसीत्खञ्जन

प्राप्ति होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ तदनन्तर कम्बूसर को जावै जिसमें नहाकर पितरों को तर्पण करै और यथाशक्ति से दान देकर मनुष्य निर्मल लोक को पाता है ॥ २१ ॥ जहां दुर्वासाजी ने क्रोध से यदुकुमारों को शाप दिया है और जहां पार्वतीपति जालेश्वरदेवजी प्रकट हुए हैं ॥ २२ ॥ जालेश्वरजी को देखकर मनुष्य शीघ्रही पाप से छूट जाता है और उनको भक्ति से पूजकर मनुष्य शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥ तदनन्तर मनुष्य चक्रस्वामी के उत्तम तीर्थ को जावै वहा जरत्कारु से किया हुआ तीर्थ त्रिलोक में प्रसिद्ध है ॥ २४ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसमें नहाकर मनुष्य दुर्गति को नहीं पाता है बड़े बल से संयुत खंजनक

नामक दैत्य हुआ है ॥ २५ ॥ उसमें नहाकर मनुष्य सनातन शिवलोक को जाता है और वहां कलियुग में छिपे हुए अनेकों तीर्थ हैं ॥ २६ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! वहां वसुदेवजीके तीर्थ को जावै इसके उपरान्त उत्तम सूरतीर्थ को जाकर ॥ २७ ॥ गावलगनि अक्रूर महात्मा के तीर्थ को जावै और बलदेवजी के तीर्थ व अन्य उग्रसेनजी के तीर्थ को जावै ॥ २८ ॥ और अर्जुन के तीर्थ व सुभद्राजी के तीर्थ को जावै और पहला देवकीतीर्थ व उत्तम रोहिणीतीर्थ है ॥ २९ ॥ और कर्दमजी का तीर्थ व महात्मा कपिलजी का तीर्थ है और वहीं सोमतीर्थ व रोहिणीतीर्थ है ॥ ३० ॥ ये व अन्य तीर्थ मुझ करके तुमलोगों से संक्षेप से कहे गये

कोनाम दैत्यश्चातिबलान्वितः ॥ २५ ॥ तत्रस्नात्वानरोयाति शिवलोकंसनातनम् ॥ सन्तितीर्थान्यनेकानि सुगुप्तानि कलौयुगे ॥ २६ ॥ तत्रगच्छतविप्रेन्द्रास्तीर्थमानकदुन्दुभेः ॥ सूरतीर्थंपरमकं गत्वातीर्थमतःपरम् ॥ २७ ॥ गावल्गनेस्तुतीर्थन्तु ह्यक्रूरस्यमहात्मनः ॥ बलदेवस्यतीर्थञ्च ह्युग्रसेनस्यचापरम् ॥ २८ ॥ अर्जुनस्यचतीर्थञ्च सुभद्रातीर्थमेवच ॥ देवकीतीर्थमाद्यन्तु रोहिणीतीर्थमुत्तमम् ॥ २९ ॥ कर्दमस्यचतीर्थन्तु कपिलस्यमहात्मनः ॥ सोमतीर्थन्तुतत्रैव रोहिणीतीर्थमेवच ॥ ३० ॥ एतान्यन्यानिसंक्षेपान्मयावःकथितानिच ॥ सर्वपापहराणीह मोक्षदानिनसंशयः ॥ ३१ ॥ प्रवक्ष्यामिद्विजश्रेष्ठास्तीर्थानिकलिसङ्गमे ॥ प्लावितानिसमुद्रेण पांशुनाह्युदकेनच ॥ ३२ ॥ एतन्मयावःकथितं संक्षेपात्तीर्थविस्तरम् ॥ आत्मप्रज्ञानुमानेन किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ ॥ ३३ ॥ शृणुयुःपरयाभक्त्या तीर्थयात्रामिमांद्विजाः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता विष्णुलोकंव्रजन्तिते ॥३४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येतीर्थयात्राकथनंनामषोडशोऽध्यायः ॥१६॥

जोकि इस लोक में सब पापों को हरनेवाले व निस्सन्देह मोक्षदायक हैं ॥ ३१ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उन तीर्थों को मैं तुम से कहता हूं जो कि कलियुग प्राप्त होने पर समुद्र की बालू व जल से डुबाये गये हैं ॥ ३२ ॥ मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार तुमलोगों से इस तीर्थविस्तार को कहा अन्य क्या सुना चाहते हो ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मणो ! उत्तम भक्ति से जो मनुष्य इस तीर्थयात्रा को सुनते हैं सब पापों से छूटे हुए वे विष्णुलोक को जाते हैं ॥ ३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थयात्राकथनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

के स्वामी गणेशजी पूर्वद्वार पै रक्षा के लिये हैं ॥ १० ॥ और रक्षा के लिये सूर्य व सात मातृदेवी स्थित हैं और नग्न महादेवजी व नागराज तक्षक स्थित हैं ॥ ११ ॥ और सेनाध्यक्ष स्वामिकार्त्तिकेय व राजस महामुख स्थित हैं और वहां दीर्घनर नामक दानव स्थित है ॥ १२ ॥ और विश्वावसु गंधर्व व उत्तम अप्सरा मेनका स्थित है और सनत्कुमार समेत भगवान् वशिष्ठ ऋषि हैं ॥ १३ ॥ ये पूर्व और पूजने योग्य हैं और बरगद का बड़ाभारी वृक्ष है पूर्वद्वार पै स्थित इन सबों को पूजै व आग्नेय में मुझसे सुनिये ॥ १४ ॥ कि ज्वालामुख, रक्ताक्ष, श्मशाननिलय, कुश, मासाशी, रुधिराहार, कृष्ण व कृष्णजटाधर ॥ १५ ॥ व त्रासन और भंजन

विनायकः ॥ १० ॥ रक्षणार्थश्चवैसूर्यो देव्योवैसप्तमातरः ॥ ईश्वरश्चापिदिग्वासा नागराजश्चतक्षकः ॥ ११ ॥ सेनानीः कार्त्तिकेयश्च राजसश्चमहामुखः ॥ तत्रदीर्घनरोनाम दानवःसुप्रतिष्ठितः ॥ १२ ॥ विश्वावसुश्चगन्धर्वो मेनकाचव राप्सराः ॥ सनत्कुमारसहितो वशिष्ठोभगवानृषिः ॥ १३ ॥ एतेपूज्याःपूर्वतस्तु न्यग्रोधश्चमहावटः ॥ पूर्व द्वारिस्थितानेतानाग्नेय्यामथमेशृणु ॥ १४ ॥ ज्वालामुखोथरक्ताक्षः श्मशाननिलयःकुशः ॥ मांसाशीरुधिरा हारः कृष्णःकृष्णजटाधरः ॥ १५ ॥ त्रासनोभञ्जनश्चैव आग्नेय्यांदिशिसंस्थितः ॥ दिशंरक्षतितेनादौ दक्षिणाम थमेशृणु ॥ १६ ॥ दण्डपाणिर्महानादः पाशहस्तस्त्रिलोचनः ॥ अतिवर्त्तकोमारणश्च तथादुन्दुभिनिःस्वनः ॥ १७ ॥ खरस्वरोघर्घरवस्तथामौनप्रियःसदा ॥ मल्लिकश्चैवएतेस्युः प्रणेतृद्वारपालकाः ॥ १८ ॥ दक्षिणद्वाररक्षार्थं दुर्दर्शश्च विनायकः ॥ महिषीकश्चवैसूर्यो भूषणश्चतुरस्तथा ॥ १९ ॥ चित्राङ्गदःसुगन्धश्च उर्वशीचवराप्सराः ॥ गोरजोदानवश्चैव

आग्नेय दिशा में स्थित हैं व उसीसे दिशा की रक्षा करते हैं इसके उपरान्त दक्षिण दिशा में स्थित दैत्यों को सुनो ॥ १६ ॥ कि दंडपाणि, महानाद, पाशहस्त, त्रिलो-चन, अतिवर्तक, मारण व दुंदुभिनिःस्वन ॥ १७ ॥ और खरस्वर, घर्घरव व सदैव मौनप्रिय और मल्लिक ये प्रणेता (स्वामी) के द्वारपालक हैं॥ १८ ॥ और दक्षिणद्वार की रक्षा के लिये दुर्दर्श विनायक स्थित हैं और महिषीक सूर्य हैं व भूषण, चतुर ॥ १९ ॥ और चित्रांगद व सुगंध गन्धर्व हैं व उर्वशी नामक उत्तम अप्सरा है और

गोरज दानव व सांखू का बड़ाभारी वृक्ष है ॥ २० ॥ व बड़े तपस्वी तथा श्रेष्ठ अगस्त्य व सनातनऋषि हैं व सावधान होतेहुए ये दक्षिण दिशा में द्वार की रक्षा करते हैं ॥ २१ ॥ और गोमुख, मुंडक, नग्न, कंबली व रुदनप्रिय, हसन, ग्रीवलम्ब, भ्रविकार व द्विजंभक दैत्य हैं ॥ २२ ॥ और वहा मुशलीसूर्य व मेनका उत्तम अप्सरा है ये नैर्ऋत्य दिशा की रक्षा करते हैं और पश्चिम दिशा में अन्य को सुनिये ॥ २३ ॥ कि स्वस्तिक, शंखमूर्द्धा, नीलवासा व शुभानन और पादहस्त, मूलहस्त, एकपाद व एकलोचन ॥ २४ ॥ और स्थूलजंघ, स्थूलशिरा ये सुमुख के वश में स्थित हैं व शस्त्रों को हाथ में उठायेहुए ये पश्चिमदिशा में रक्षक हैं ॥ २५ ॥

शालश्चापिमहाद्रुमः ॥ २० ॥ सनातनऋषिश्रेष्ठो ह्यगस्त्यश्चमहातपाः ॥ एतेयाम्यदिशिद्वारं रक्षन्तिसुसमाहिताः ॥२१॥ गोमुखोमुण्डकोनग्नः कम्बलीरुदनप्रियः ॥ हसनोग्रीवलम्बश्च भ्रूविकारोद्विजम्भकः ॥ २२ ॥ मुशलीसूर्यकस्तत्र मेनकैववराप्सराः ॥ रक्षन्तिनैर्ऋतीमाशां पश्चिमांशृणुतापरान् ॥ २३ ॥ स्वस्तिकःशङ्खमूर्द्धाच नीलवासाःशुभाननः ॥ पादहस्तोमूलहस्त एकपादैकलोचनः ॥ २४ ॥ स्थूलजङ्घःस्थूलशिराः सुमुखस्यवशेस्थिताः ॥ एतेशस्त्रोद्यतकरा वारुण्यांदिशिपालकाः ॥ २५ ॥ पश्चिमायांदिशितथा पुष्पदन्तोविनायकः ॥ ऊर्ध्वबाहुश्चवैसूर्यः शिवःसत्राजितेश्वरः ॥२६॥ तुम्बुरुर्नामगन्धर्वो घृताचीतुवराप्सराः ॥ महोदरश्चनागेन्द्रो राक्षसश्चघटोत्कचः ॥२७॥ दैत्यःपञ्चजनोनाम ऋषिःकाश्यपएवच ॥ देवीकपालिनीनाम्नी अश्वत्थश्चमहाद्रुमः ॥ २८ ॥ कपिलःक्षेत्रपालश्च प्रतीचींपालयन्दिशम् ॥ नमस्कार्यस्तथापूज्यो वायव्यांशृणुतदिशि ॥ २९ ॥ भजतोभैरवश्चैव कालिकोथघटोदरः ॥ दण्डकोमर्दनःषङ्गो रुरुः

वैसेही पश्चिम दिशा में पुष्पदंत विनायक हैं और ऊर्ध्वबाहु नामक सूर्य व सत्राजितेश्वर शिव हैं ॥ २६ ॥ और तुम्बुरुनामक गंधर्व व घृताची उत्तम अप्सरा है और महोदर नागेन्द्र व घटोत्कच राक्षस है ॥ २७ ॥ व पंचजन नामक दैत्य और काश्यपऋषि व कपालिनी नामक देवी व पीपल का बड़ा भारी वृक्ष है ॥ २८ ॥ और पश्चिम दिशा की रक्षा करते हुए कपिलजी क्षेत्रपाल प्रणाम व पूजने के योग्य हैं इसके उपरान्त वायव्य दिशा में सुनिये ॥ २९ ॥ कि भंजन, भैरव, कालिक, घटोदर,

दण्डक, मर्दन, षंग, रुरु व सर्वभुज और घृणी है ॥ ३० ॥ व उत्तर दिशा की रक्षा करता हुआ सुपार्श्व इनका स्वामी है व मूलस्थान नामक सूर्य व इन्द्रेश शिव हैं ॥ ३१ ॥ व कंठेश्वरी देवी और खंजन क्षेत्रपाल व वासुकि नागराज और कूर्मपृष्ठ दानव है ॥ ३२ ॥ और सनक नामक उत्तम ऋषि व गोलक राक्षस है और नारद नामक गन्धर्व व रंभा नामक उत्तम अप्सरा है ॥ ३३ ॥ ये बड़े यत्न से पूजने योग्य हैं और पंकरिया का बड़ाभारी वृक्ष है कुबेर से सेवित (उत्तर) दिशा में ये यत्न से पूजने योग्य हैं ॥ ३४ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! ईशान दिशा में बड़ा बलवान् किलीक और दुर्धर, भैरवमुख, दीर्घास्य तथा मेघनिस्वन है ॥ ३५ ॥ और कराल, विकच,

सर्वभुजोघृणी ॥ ३० ॥ सुपार्श्वःप्रभुरेतेषामुदीचीम्पालयन्दिशम् ॥ मूलस्थानश्चवैसूर्य इन्द्रेशश्चमहेश्वरः ॥ ३१ ॥ देवी कण्ठेश्वरीनाम क्षेत्रपालश्चखञ्जनः ॥ वासुकिर्नागराजश्च कूर्मपृष्ठश्चदानवः ॥ ३२ ॥ सनकश्चऋषिश्रेष्ठो गोलकोराक्षसस्तथा ॥ नारदोनामगन्धर्वो रम्भाचैववराप्सराः ॥ ३३ ॥ एतेपूज्याःप्रयत्नेन प्लक्षोनाममहाद्रुमः ॥ यक्षेशसेवितामाशामेतेपूज्याःप्रयत्नतः ॥ ३४ ॥ ईशान्यांदिशिविप्रेन्द्राः किलीकोवैमहाबलः ॥ दुर्द्धरोभैरवमुखो दीर्घास्योमेघनिस्वनः ॥ ३५ ॥ करालोविकचोमूको बलिभुक्चबलिप्रियः ॥ मांसप्रियमुखाश्चैते ईशान्यांपालयन्तिवै ॥ ३६ ॥ एतेषांक्षेत्रपालानामसुराणांद्विजोत्तमाः ॥ नेताप्रभुश्चस्वामीच जयन्तःपालकस्तथा ॥ ३७ ॥ निगृह्णात्यनुगृह्णाति रक्षितापुरवासिनाम् ॥ जयन्तादेशमादाय विदुष्टंघातयन्तिच ॥ ३८ ॥ नागस्थलस्थितःस्वामी जयन्तःपालकस्तथा ॥ नागराजैः परिवृतः पूजनीयःप्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ सहस्रशिरसंतत्र शेषंनागस्थलस्थितम् ॥ अनन्तोवासुकिश्चैव तक्षकः

मूक, बलिभुक् व बलिप्रिय और मांसप्रिय आदिक ये ईशान दिशा में रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तमो ! इन क्षेत्रपालों व अप्सराओं के नायक, प्रभु, स्वामी व पालक जयन्त हैं ॥ ३७ ॥ और वे पुरवासियों को दण्ड देते हैं व अनुग्रह करते हैं और जयन्त की आज्ञा को लेकर क्षेत्रपाल दुष्ट प्राणी को मारते हैं ॥ ३८ ॥ नागस्थल में स्थित स्वामी व पालक जयन्त जोकि नागों से घिरे हैं वे यत्न से पूजने योग्य हैं ॥ ३९ ॥ और वहां नागस्थल में स्थित हज़ार मस्तकोंवाले शेषजी को पूजै

और अनंत, वासुकि, तक्षक व पद्म ॥ ४० ॥ और शंख, कंबलक व आतारतनाग और कर्कोटक आदिक वहां हज़ारों नाग हैं ॥ ४१ ॥ और वे चन्दन, पुष्प, बलि तथा पुष्पसमूहों से पूजने योग्य हैं और खीर, मांस व अन्नादिक तथा मदिरा से पूजने योग्य हैं ॥ ४२ ॥ वैसेही रक्षकों में उत्तम जयन्त देवेशजी को भलीभाति नहवाकर चन्दन, पुष्प व उपहारों से तथा धूप व वस्त्रादिक भूषणों से पूजै ॥ ४३ ॥ तदनन्तर देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी के समीप जावै वहां रुक्मिनामक गणेश पहले पूजने योग्य हैं ॥ ४४ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे दैत्येन्द्र ! रुक्मी ऐसा जो दुष्ट था वह कैसे गणेशता को प्राप्त हुआ जो कि भगवान् श्रीकृष्णजी के द्वार पै

पद्मएवच ॥ ४० ॥ शङ्खःकम्बलकश्चैव नागस्त्रातारतस्तथा ॥ कर्कोटकमुखानागास्तत्रसन्तिसहस्रशः ॥ ४१ ॥ तेपूज्या गन्धपुष्पैश्च बलिभिःपुष्पसञ्चयैः ॥ पायसेनचमांसेन त्वन्नाद्यैःसुरयातथा ॥ ४२ ॥ तथासंस्नाप्यदेवेशं जयन्तंरक्षिणां वरम् ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च धूपवस्त्रादिभूषणैः ॥ ४३ ॥ ततोगच्छेत्सुरश्रेष्ठं कृष्णंदेवकिनन्दनम् ॥ सम्पूज्यःप्रथमंतत्र गणेशोरुक्मिसंज्ञकः ॥ ४४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथंरुक्मीतिदैत्येन्द्र योदुष्टोगणताङ्गतः ॥ साक्षाद्भगवतोद्वारि प्रत्यहम्पूज्यते नृभिः ॥ ४५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ कृष्णायरुक्मिणींदातुं यदाराजाकृतक्षणः ॥ तद्वशात्क्रोधसंयुक्तो रुक्मीनैवान्वमन्यत ॥ ४६ ॥ यदाजहारभगवान् रुक्मिणींत्वम्बिकालयात् ॥ तंहत्वाविनिवर्त्तिष्येधुनाहंयादवंरणे ॥ ४७ ॥ एवमुक्त्वासु सन्नद्धो रथेनपरिधावितः ॥ सयुध्यमानःकृष्णेन भग्नमानोहतौजसः ॥ ४८ ॥ रामेणबन्धनान्मुक्तो मरणायमतिंदधे ॥ रुक्मिणीभ्रातरंदृष्ट्वा मरणेकृतनिश्चयम् ॥ ४९ ॥ उवाचकृष्णंवैदर्भी भ्रातरंत्वानयाशुमे ॥ ततस्तांप्रियमाकर्ण्य प्रि

प्रतिदिन मनुष्यों से पूजा जाता है ॥ ४५ ॥ प्रह्लादजी बोले कि जब राजा भीष्मक ने रुक्मिणीजी को श्रीकृष्णजी के देने के लिये उत्सव किया तब उसके वश से क्रोधसंयुत रुक्मी प्रसन्न न हुआ ॥ ४६ ॥ और जब भगवान् श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणीजी को भगवती के मन्दिर से हरलिया तब इस समय मैं उन यादव श्रीकृष्णजी को युद्ध में मारकर लौटूंगा ॥ ४७ ॥ ऐसा कहकर व तैयार होकर रुक्मी रथ के द्वारा दौड़ा और युद्ध करते हुए उसके मान व पराक्रम को श्रीकृष्णजी ने नाश कर दिया ॥ ४८ ॥ और बलरामजी से बन्धन से छुटाया हुआ वह मरने के लिये बुद्धि करता भया और विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणीजी ने मरने में

किये हुए निश्चयवाले भाई को देखकर श्रीकृष्णजी से कहा कि शीघ्रही मेरे भाई को लाइये तदनन्तर प्यारी रुक्मिणीजी के उस प्रिय वचन को सुनकर जनार्दन श्रीकृष्णजी ने ॥ ४९ । ५० ॥ उसको सभाओं के मध्य में श्रेष्ठ गणनायक किया हे ब्राह्मणो ! इसी कारण वे रुक्मी रुदैव पहले पूजे जाते हैं ॥ ५१ ॥ व उनको धूप, चन्दन, अक्षत, वस्त्र व लड्डुवों से तृप्त करै ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवयात्रायांपरिचारकथनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

दो० । वामन के ढिग गये जिमि दुर्वासा मुनिनाथ । अठरहवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ प्रह्लादजी बोले कि सुवर्ण से भूषित रुक्मी गणेश को पूजकर दुर्वासा

यावाक्यञ्जनार्द्दनः ॥५० ॥ चक्रेपरिषदाम्मध्ये प्रवरंविघ्ननाशनम् ॥ एतस्मात्कारणाद्विप्राः प्रथमम्पूज्यतेसदा ॥ ५१ ॥ धूपगन्धाक्षतैर्वस्त्रैर्मोदकैःपरितर्पयेत् ॥ ५२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवयात्रायांपरिचारकथनन्नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ सम्पूज्यगणनाथञ्च रुक्मिणंरुक्मभूषितम् ॥ दुर्वाससञ्चदेवंवै बलदेवञ्चभक्तितः ॥ १ ॥ यजत्येकोमहायज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलंतयोः ॥ २ ॥ प्राणायामादिसंयुक्तो ध्यानेज्ञानेपरायणः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलंतयोः ॥ ३ ॥ जाह्नव्यादिपुतीर्थेषु स्नायात्वेकःसमाहितः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलंतयोः ॥ ४ ॥ वापीकूपतडागादि करोत्येकःसमाहितः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलंतयोः ॥ ५ ॥ त्रिभिःपदक्रमैर्येन विक्रान्तंभुवनत्रयम् ॥ त्रिविक्रमञ्चतंदृष्ट्वा मुच्यतेपातक

देव व बलभद्रजी को भक्ति से पूजै ॥ १ ॥ एक मनुष्य सम्पूर्ण उत्तम दक्षिणाओंवाले यज्ञों से पूजता है व एक देवेश श्रीकृष्णजी को पूजता है उन दोनों को फल बराबर होता है ॥ २ ॥ और एक मनुष्य प्राणायामादिकों से संयुत होकर ध्यान व ज्ञान में लगाहोवै और एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखै उन दोनों को फल बराबर है ॥ ३ ॥ और सावधान होकर एक मनुष्य गङ्गादिक तीर्थों में नहावै और एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखै उन दोनों को फल बराबर होता है ॥ ४ ॥ और सावधान एक पुरुष बावली, कूप व तड़ागादिकों को बनवाता है और एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखता है उन दोनों को तुल्य फल होता है ॥ ५ ॥ जिन विष्णुजी ने

तीन पगसे त्रिलोक को नाप लिया उन वामनजी को देखकर मनुष्य तीनों पापों से छूट जाता है ॥ ६ ॥ ऋषिलोग बोले कि जो वामनजी की मूर्ति पृथ्वी में त्रिराजती है इसको दुर्वासा व कृष्णजी ने किस समय व कैसे पाया है ॥ ७ ॥ हे दैत्येन्द्र ! हमलोगों की इस सन्देह को तुम सम्पूर्णता से काटने के योग्य हो और दुर्वासा व कृष्णजी की उत्पत्ति को कहिये ॥ ८ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! उसको सुनिये कि जिसप्रकार दुर्वासा से संयुत त्रिविक्रमजी की मूर्ति पृथ्वी में उत्पन्न हुई है ॥ ९ ॥ कि पहले सतयुग के आदि में बलि ने इन्द्र को जीतलिया व स्थान से अलग करदिया उसीलिये मधुसूदन ॥ १० ॥ ये वामनजी उस समय कश्यपजी

त्रयात् ॥ ६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथंत्रैविक्रमीमूर्त्ती राजतेयाधरातले ॥ दुर्वाससाचकृष्णेन कदेयंप्राप्तिमागता ॥ ७ ॥ दैत्येन्द्रसंशयोस्माकं छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ दुर्वाससश्चकृष्णस्य सम्भवःकथ्यतामिति ॥ ८ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तच्छ्रूयतां द्विजश्रेष्ठा यथामूर्तिस्त्रिविक्रमी ॥ दुर्वाससासमायुक्ता सम्भूताधरणीतले ॥ ९ ॥ पूर्वेयुगेकृतादौच बलिनाचपुरन्दरः ॥ निर्जितश्च्यावितःस्थानात्तदर्थंमधुसूदनः ॥ १० ॥ कश्यपाददितेर्जातस्तदासौचत्रिविक्रमः ॥ त्रिभिःक्रमैरिमाँल्लोकानाक्रम्यमधुहाहरिः ॥ ११ ॥ बलिञ्चकारभगवान् पातालतलवासिनम् ॥ भक्तयात्वनन्ययाकृष्णः पूजितःपरितोषितः ॥ १२ ॥ स्वयञ्चैवावसत्तत्र भक्तयाकृतनिकेतनः ॥ अनुग्रहायभगवान् द्वारपालोनभूवह ॥ १३ ॥ दुर्वासाश्चापि भगवानात्रेयोमुनिसत्तमः ॥ अटंस्तीर्थानिभोविप्राश्चक्रतीर्थंचमुक्तिम ॥ १४ ॥ एवंसनिश्चयंकृत्वागमनायमतिं दधे ॥ सोतीत्यनगरंग्रामानुद्यानानिवनानिच ॥ १५ ॥ आनर्तविषयम्प्राप्तो दैत्यभूमिंविवेशह ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारां

से अदिति स्त्री के पैदा हुए हैं और इन लोकों को तीन पगसे मापकर मधुसूदन विष्णु ॥ ११ ॥ भगवान् ने बलि को पातालतलनिवासी किया और अनन्य भक्ति से श्रीकृष्णजी पूजेगये व प्रसन्न कियेगये ॥ १२ ॥ और भक्ति के कारण स्थान को कियेहुए वामनजी आप भी वहां बसे और दया करने के लिये भगवान् वामनजी द्वारपालक हुए ॥ १३ ॥ व हे ब्राह्मणो ! अत्रि के पुत्र मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा भगवान् भी तीर्थों को जातेहुए चक्रतीर्थ मुक्तिदायक है ॥ १४ ॥ ऐसा निश्चय कर उन्होंने जाने के लिये बुद्धि किया और वे दुर्वासाजी नगर, गांव, बगीचों व वनों को नांघ कर ॥ १५ ॥ आनर्त देश को प्राप्तहुए व दैत्यकी भूमि में प्रवेश करते भये जोकि वेदपाठ

व वषट्कार से रहित तथा वेदध्वनि से वर्जित ॥ १६ ॥ और कुशनामक दैत्यराज से सेवित व पालित थी और बहुत से म्लेच्छोंसे पूर्ण व अधर्म को इकट्ठा करनेवाले पुरुषों से संयुत थी ॥ १७ ॥ उस समय हे ब्राह्मणो ! प्रत्यासन्न ऐसे प्रसिद्ध चक्रतीर्थ में नहाकर दैत्यकी भूमि को छोड़कर मैं शीघ्रही चलाजाऊंगा ॥ १८ ॥ यही विचार करतेहुए वे दुर्वासाजी शीघ्रही गये और गोमती व समुद्र के पवित्र संगम को जाकर ॥ १९ ॥ वहां वसनों को धरकर गोमतीजी की मिट्टी को लेकर मस्तक में शिखा (चोटी) को बांधकर हाथों में कुशों को करके ॥ २० ॥ जब ये विप्र दुर्वासाजी नहाने लगे तब यह कौन है यह कौन है ऐसा कहतेहुए दुष्ट दैत्यों ने

वेदध्वनिविवर्जिताम् ॥१६॥ कुशेनदैत्यराजेन सेविताम्पालितांयथा ॥ बहुम्लेच्छसमाकीर्णामधर्मोपार्जितैर्नरैः ॥ १७ ॥ प्रत्यासन्नमितिख्याते चक्रतीर्थेतदाद्विजाः ॥ स्नात्वाशीघ्रन्तुयास्यामि दैत्यभूमिंविहायच ॥ १८ ॥ इत्येवंचिन्तयन्मार्गे शीघ्रमेवजगामसः ॥ गत्वातुसङ्गमम्पुण्यं गोमत्याःसागरस्यच ॥ १९ ॥ निधायवाससीतत्र मृदमाहृत्यगोमया ॥ शिखाञ्चबद्ध्वाशिरसि कृत्वाचकरयोःकुशान् ॥ २० ॥ यदास्नास्यतिविप्रोसौ दुष्टोदैत्यैर्दुरात्मभिः ॥ ब्रुवद्भिःकोयमित्येवंहन्यतांहन्यतामिति ॥२१॥ इतिब्रुवन्तोहन्युस्ते जानुभिर्मुष्टिभिस्तथा ॥ ब्राह्मणोहंनहन्तव्यस्तच्छ्रुत्वाचात्यताडयन् ॥ २२ ॥ तंदृष्ट्वाहन्यमानन्तु ब्राह्मणंतैर्दुरात्मभिः ॥ निवारयामासचतां रुरुर्नाममहासुरः ॥ २३ ॥ जगृहुस्तस्यवस्त्राणि कुशांस्तेचिक्षिपुर्जले ॥ चकृषुश्चरणौगृह्य शपन्तोदुष्टचेतसः ॥ २४ ॥ तदानिर्विषयञ्चक्रुः सीमान्तेरुचिरेतदा ॥ अत्रागतोयदिपुनर्हनिष्यामोनसंशयः ॥ २५ ॥ आनर्त्तविषयान्तेवै दृष्ट्वातत्रजलाशयम् ॥ प्राणसंशयमापन्न इति

उनको घेरलिया व इसको मारिये मारिये ॥ २१ ॥ ऐसा कहतेहुए उन्होंने जानुवों व घूंसों से मारा और मैं ब्राह्मण हूं मारनेयोग्य नहीं हूं उस वचन को सुनकर बहुत मारा ॥ २२ ॥ और उन दुष्टात्मा दानवोंसे मारे जातेहुए उस ब्राह्मण को देखकर रुरु नामक महादैत्य ने उनको मना किया ॥ २३ ॥ और उन दैत्यों ने उन दुर्वासा जी के वस्त्रों को ले लिया व कुशों को जल में फेंकदिया और निन्दा करतेहुए दुष्ट चित्तवाले दैत्यों ने चरणों को पकड़कर खींचा ॥ २४ ॥ और उस समय सुन्दरी हद के बाहर निकाल दिया व कहा कि यदि फिर यहां आवोगे तो मारेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ और आनर्त देश के अन्त में वहां जलाशय को देखकर प्राणों की

सन्देह को प्राप्त दुर्वासाजी इस चिन्ता में तत्परहुए ॥ २६ ॥ कि मैं यदि दैत्यों को शापदूं तो मुझ को जीवन कौन देवैगा और यहां मुझको कौन चक्रतीर्थ का स्नान करावैगा ॥ २७ ॥ और इन महादैत्यों को समर में जीतने के लिये कौन समर्थ है भक्तों को अभय देनेवाले उन कमललोचन विष्णुजी को ध्यानकर कहा ॥ २८ ॥ कि ब्रह्मादिकों के नायक व शरणागतपालक व चक्रको हाथ में लिये विष्णुजी के बिना कौन शरणदायक होगा ॥ २९ ॥ ऐसा ध्यानकर व विचारकर पाताल में टिकेहुए विष्णुजी को जानकर अत्रि के पुत्र दुर्वासाजी पृथ्वी में विष्णुजी की शरण में गये ॥ ३० ॥ और उपास से दुर्बल व दीन वे दुर्वासाजी पृथ्वी के नीचे पैठे और गन्धर्वों व अ-

चिन्तापरोऽभवत् ॥२६॥ शप्ताहंयदिदैतेयान् कोमेदास्यतिजीवितम् ॥ चक्रतीर्थञ्चकःस्नानं कारयिष्यतिमामिह॥२७॥ कोवादैत्यगणानेताञ्च्वक्तोजेतुंमहाहवे ॥ सञ्चिन्त्यपुण्डरीकाक्षं भक्तानामभयप्रदम् ॥ २८ ॥ ब्रह्मादीनाञ्चनेतारं शरणागतवत्सलम् ॥ चक्रहस्तंविनामेद्य कोन्यःशरणदोभवेत् ॥ २९ ॥ इतिध्यात्वाससञ्चिन्त्य ज्ञात्वापातालसंस्थितम् ॥ आत्रेयोविष्णुशरणं जगामधरणीतले ॥ ३० ॥ उपवासात्कृशोदीनो भूतलम्प्रविवेशह ॥ सदैत्यराजभवनं गन्धर्वाप्सरसावृतम् ॥ ३१ ॥ शोभितंसुरमुख्येन विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ दुर्वासाःप्रविवेशाथ प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३२ ॥ दुर्वाससमथायान्तं दृष्ट्वादैत्यपतिस्तथा ॥ प्रत्युत्थायार्हणाञ्चक्रे आसनेसन्न्यवेशयत् ॥३३॥ मधुपर्कञ्चगांदैत्यो दत्त्वार्घंपार्श्वतःस्थितः ॥ प्रोवाचप्रणतोब्रूहि ह्यत्रागमनकारणम् ॥ ३४ ॥ सुखोपविष्टःसऋषिस्तत्रापश्यत्त्रिविक्रमम् ॥ दैत्येन्द्रद्वारदेशेतु तिष्ठन्तमकुतोभयम् ॥ ३५ ॥ तंदृष्ट्वादेवदेवेशं श्रीवत्साङ्कंचतुर्भुजम् ॥ रुदन्नृषिवरस्सोथ

प्सराओं से घिरा दैत्यराज (बलि) का मन्दिर ॥ ३१ ॥ जोकि देवताओं में मुख्य समर्थवान् विष्णुजी से शोभित था दुर्वासाजी प्रसन्नचित्त से उसमें पैठगये ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त आतेहुए दुर्वासाजी को देखकर दैत्योंके स्वामी बलि ने उठकर पूजन किया व आसन पै बिठाया ॥ ३३ ॥ और मधुपर्क, गऊ व अर्घ को देकर बलि दैत्य समीप में स्थित हुआ व उसने प्रणाम कर कहा कि यहां के आने का कारण कहो ॥ ३४ ॥ सुखसे बैठेहुए उन दुर्वासा मुनि ने वहां दैत्यराज बलि के द्वार पै बैठेहुए सब कहीं से निडर वामनजी को देखा ॥ ३५ ॥ और श्रीवत्ससे चिह्नित उन चतुर्भुज देवदेवेश (विष्णु) जी को देखकर रोतेहुए उन श्रेष्ठ ऋषि दुर्वासाजी ने यह

कहा कि रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये ॥ ३६ ॥ हे जनार्दनजी ! संसार के डरसे डरे हुए व दुःखित तथा शत्रुवों से तिरस्कृत मनुष्यों के रक्षक आपही हो ॥ ३७ ॥ इस कारण हे ब्रह्मण्यदेव, केशव ! शत्रुवों से खींचेहुए तथा दुःख से सन्तप्त व तिरस्कृत और क्षुधा से पीड़ित व अपूर्ण नियमवाले और दानवों से खींचेहुए मुझ ब्राह्मण के रक्षक होवो ॥ ३८ । ३९ ॥ यह कहकर दुर्वासाजी ने दैत्यों से मारेहुए शरीर को दिखाया और उस ब्राह्मण के अपमान को देखकर विष्णुजी क्रोधित हुए ॥ ४० ॥ व बोले कि हे ब्रह्मन् ! धर्म के रक्षक मेरे स्थित होने पर किसने तुम्हारा अपमान किया व किसने नियम को खण्डन किया हे महाभाग ! उसको कहो ॥ ४१ ॥ दुर्वासाजी बोले कि

त्राहित्राहीत्यभाषत ॥ ३६ ॥ संसारभयभीतानां दुःखितानाञ्जनार्द्दन ॥ शत्रुभिःपरिभूतानां शरणंशरणार्थिनाम् ॥ ३७ ॥ ममदुःखाभितप्तस्य शत्रुभिःकर्षितस्यच ॥ पराभूतस्यदीनस्य क्षुधयापीडितस्यच ॥ ३८ ॥ अपूर्णनियमस्याथ कर्षितस्यचदानवैः ॥ ब्रह्मण्यदेवविप्रस्य शरणम्भवकेशव ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वादर्शयामास शरीरंदैत्यताडितम् ॥ तद्ब्राह्मणापमानन्तु दृष्ट्वाचुक्रोधमाधवः ॥ ४० ॥ केनापमानितोब्रह्मन् नियमःकेनखण्डितः ॥ कथयस्वमहाभाग धर्मगोप्तरिमयिस्थिते ॥ ४१ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ मुक्तितीर्थमिदंज्ञात्वा ज्ञानेनमधुसूदन ॥ चक्रतीर्थङ्गतःस्नातुं यात्रायां हर्षसंयुतः ॥ ४२ ॥ अकृतस्नानएवाहं कृष्टोदैत्यैर्दुरात्मभिः ॥ गलेगृहीतःकृष्णाहं मुष्टिभिस्ताडितस्तथा ॥ ४३ ॥ बलाद्गृहीत्वावासांसि कुशांश्चैवाक्षतैःसह ॥ हनिष्यामोयदिपुनरागतोसिनसंशयः ॥ ४४ ॥ स्नातोहञ्चक्रतीर्थेतु करिष्येभोजनम्प्रभो ॥ तस्मात्स्नापयगोविन्द नियमंसफलंकुरु ॥ ४५ ॥ तवप्रसादात्स्नात्वाच भुक्त्वाचप्रीतमान

हे मधुसूदन ! इस मुक्तितीर्थ को ज्ञान से जानकर हर्षसंयुत मैं यात्रा में चक्रतीर्थ को गया ॥ ४२ ॥ व हे श्रीकृष्णजी ! स्नान न कियेही हुए मुझ को दुष्ट दैत्यों ने खींचा व गले में पकड़लिया और घूंसों से मुझ को मारा ॥ ४३ ॥ और बल से वस्त्र व अक्षतों समेत कुशों को लेकर जल में फेंक दिया व कहा कि यदि फिर आवोगे तो तुम को मारेंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! चक्रतीर्थ में नहाकर मैं भोजन करूंगा इसलिये हे गोविन्दजी ! उसमें स्नान कराइये और नियम सफल कीजिये॥४५॥

तुम्हारी प्रसन्नतासे नहाकर व भोजन करके प्रसन्नमनवाला मैं प्रतिज्ञा को सफल कर इस पृथ्वी में विचरूंगा ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालु मिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चक्रतीर्थ में न्हाय जिमि दुर्वासा मुनिनाथ । उनइसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ प्रह्लादजी बोले कि उस वचन को सुनकर देवदेवेश वामनजी ने बार २ विचार कर वहां पापरहित दुर्वासाजी से वचन कहा ॥ १ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! मैं पराधीन हूं और भक्ति से प्रसन्न होता हूं अन्यथा नहीं होता

सः ॥ प्रतिज्ञांसफलांकृत्वा विचरिष्येमहीमिमाम् ॥ ४६ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः॥१८॥

प्रह्लाद उवाच ॥ तच्छ्रुत्वादेवदेवेशश्चिन्तयित्वापुनःपुनः॥ उवाचवचनंतत्र दुर्वाससमकिल्बिषम् ॥ १॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ पराधीनोस्मिविप्रेन्द्र भक्तिप्रीतोस्मिनान्यथा ॥ बलेरादेशकारीच दैत्येन्द्रवशगोह्यहम् ॥ २॥ तस्मात्प्रार्थयविप्रेन्द्र दैत्यंवैरोचनिंबलिम् ॥ अस्यादेशात्करिष्यामि यदभीष्टन्तवाधुना ॥ ३ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंविप्रो बलिंप्रोवाचसत्वरम् ॥ यज्विनांत्वंवरिष्ठश्च दातॄणान्त्वमतोधिकः ॥ ४ ॥ कृपापरश्चकृपिणान्दयांकुरुममोपरि ॥ प्रेषयस्वमहाभागं देवंदैत्येन्द्रनिग्रहे ॥ ५ ॥ सम्पूर्णनियमस्तात त्वत्प्रसादाद्भवाम्यहम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंदैत्यो नातिहृष्टमनास्तथा ॥ ६ ॥ दुर्वाससमुवाचेदं नैतदेवम्भविष्यति ॥ अन्यत्प्रार्थयविप्रेन्द्र यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ७ ॥ तद्दास्यामिनसन्दे

हूं और बलि का आज्ञाकारी हूं व दैत्यराज (बलि) के वश में मैं प्राप्तहूं ॥ २ ॥ इसलिये हे द्विजेन्द्र ! विरोचन के पुत्र बलिदैत्यसे प्रार्थना करिये क्योंकि इसकी आज्ञा से मैं उसको करूंगा जोकि इस समय तुम को प्रिय होगा ॥ ३ ॥ उस वचन को सुनकर दुर्वासा ब्राह्मण ने शीघ्रही बलि से कहा कि यज्ञ करनेवालों में तुम श्रेष्ठहो और इस कारण तुम दाताओं में अधिक हो ॥ ४ ॥ और दया करनेवालों में तुम दयावान् हो मेरे ऊपर दया करो और बड़े ऐश्वर्य्यवान् विष्णु देवजी को दैत्यों को दण्ड देने के लिये पठाइये ॥ ५ ॥ हे तात ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं सम्पूर्णनियम होऊं उस वचन को सुनकर बलि दैत्य का मन बहुत प्रसन्न न हुआ ॥ ६ ॥ और उसने दुर्वासाजी से यह कहा कि ऐसा न होगा हे द्विजेन्द्र ! और कुछ मांगिये जो तुम्हारे मन में वर्तमान हो ॥ ७ ॥ यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि

मैं उसको दूंगा इसमें सन्देह नहीं है दुर्वासाजी बोले कि मुझको बहुत लोभी न जानिये मैं तुम से और क्या मांगूं ॥ ८ ॥ हे दैत्य ! मेरे जीवकी रक्षा कीजिये कि विष्णुजी को पठाइये बलि बोले कि हे विप्र ! मारेहुए हिरण्याक्ष को तुम जानते हो ॥ ९ ॥ कि यज्ञवराह होकर इन विष्णुजी ने बल से उसको मारा है और देवताओं व मनुष्यों से अवध्य श्रेष्ठ दानव ॥ १० ॥ हिरण्यकशिपु को मारकर सर्वव्यापी नृसिंहजी हुए व विष्णुजी ने लङ्केश (रावण) के समान नमुचि दैत्य को मारकर सुरश्रेष्ठ विष्णुजी ने देवताओं के लिये माया से वृक दैत्य को मारा और पहले वामन होकर तीन पग मांगा ॥ ११ । १२ ॥ फिर त्रिविक्रम होकर लोकों को

हो यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ दुर्वासा उवाच ॥ नातिलुब्धंहिमांविद्धि किमन्यत्प्रार्थयामिते ॥ ८ ॥ रक्षमेजीवितंदैत्य प्रेषयस्वजनार्द्दनम् ॥ बलिरुवाच ॥ जानासित्वमिदंविप्र हिरण्याक्षन्निपातितम् ॥ ९ ॥ भूत्वायज्ञवराहस्तु जघानैवंबलादिव ॥ तथाचदैत्यप्रवरमवध्यंदेवमानुषैः ॥ १० ॥ हत्वाहिरण्यकशिपुं नृसिंहःसर्वगःप्रभुः ॥ तथाहत्वाचनमुचिं वृकं लङ्केशसन्निभम् ॥ ११ ॥ जघानमाययाविष्णुः सुरार्थंसुरसत्तमः ॥ प्रथमंवामनोभूत्वायाचयच्चपदत्रयम् ॥ १२ ॥ पुनस्त्रिविक्रमोभूत्वा भुवनानिजहारच ॥ मयापुण्यवशाद्विष्णुर्यदिप्राप्तःकथञ्चन ॥ १३ ॥ नाहम्मोक्ष्येजगन्नाथं मायावामनकम्प्रभुम् ॥ दुर्वासा उवाच ॥ नाहम्भोक्ष्येविनास्नानाद्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ १४ ॥ यदिनप्रेषयसिहरिं ततस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ बलिरुवाच ॥ यद्भाव्यंतद्भवतुते यज्जानासितथाकुरु ॥ १५ ॥ ब्रह्मरुद्रेन्द्रनमितं नाहन्त्यक्ष्येपदद्वयम् ॥ तथाविवदमानौतौ दृष्ट्वासजगदीश्वरः ॥ १६ ॥ ब्रह्मण्यदेवःकृपया ब्राह्मणंतमुवाचह ॥ स्वस्थोभवद्विजश्रेष्ठ स्नापयि

हरलिया यदि मैंने किसी प्रकार पुण्य के वश से विष्णुजी को पाया है ॥ १३ ॥ तो माया से वामन रूपवाले जगदीश विष्णु स्वामी को मैं नहीं छोडूंगा दुर्वासाजी बोले कि गोमती व समुद्र के संगम में स्नान के बिना मैं भोजन न करूंगा ॥ १४ ॥ और यदि विष्णुजी को न पठावोगे तो मैं शरीर को छोड़दूंगा बलि बोले कि तुम को जो होना होवै वह होवै और जो जानते हो उसको वैसा करो ॥ १५ ॥ मैं ब्रह्मा, शिव व इन्द्रजी से प्रणाम कियेहुए दोनों चरणों को नहीं छोडूंगा उसप्रकार विवाद करतेहुए उन दोनों को देखकर जगदीश्वर ॥ १६ ॥ व ब्रह्मण्यदेव विष्णुजी ने दया से उस ब्राह्मण (दुर्वासाजी) से कहा कि हे द्विजोत्तम ! स्वस्थ होवो मैं सब

दैत्यगणों को मारकर गोमती व समुद्र के संगम में तुम को नहवाऊंगा इसमें सन्देह नहीं है विष्णुजी का वचन सुनकर दैत्यराज बलि ने ब्राह्मण दुर्वासाजी के ॥ १७ । १८ ॥ चरणों में गिरकर उस समय चरणों को दृढ़ता से पकड़ लिया तदनन्तर वे स्वामी विष्णुजी बलि को चरणों को देकर वृद्धि को प्राप्तहुए ॥ १९ ॥ और शङ्ख, चक्र व गदा को हाथ में लेकर शार्ङ्गधनुष को धारेहुए वामन विष्णुजी चले और उनके आगे संकर्षणजी चले ॥ २० ॥ व उन दोनों के पीछे विप्र दुर्वासाजी चले और पृथ्वी से बाहर रसातल को फोड़कर शीघ्रता संयुत सब पृथ्वी से बाहर निकले ॥ २१ ॥ और वहीं गोमती व समुद्र के संगम में प्रकटहुए व पुष्ट धनुष को

ष्येनसंशयः ॥ १७॥ हत्वादैत्यगणान्सर्वान् गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वाभगवतोवाक्यं ब्राह्मणस्याथ दैत्यराट् ॥ १८ ॥ दृढञ्जग्राहचरणौ पतित्वापादयोस्तदा ॥ ततःसवृद्धिमगमत्पादौदत्त्वाबलेःप्रभोः ॥ १९ ॥ शङ्खचक्र गदापाणिः शार्ङ्गंबिभ्रत्प्रभुस्तदा ॥ मुशलीत्वग्रतस्तेषां ययौविष्णुस्त्रिविक्रमः ॥ २० ॥ तयोरन्वगमद्विप्रो दुर्वासाभूत लाद्बहिः॥ भित्त्वारसातलंसर्वे समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ॥ २१ ॥ आविर्बभूवुस्तत्रैव गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ तावुभौदृढधन्वानौ संकर्षणजनार्दनौ ॥ २२ ॥ ऊचतुस्तौतदाविप्रं कुरुस्नानंयदृच्छया ॥ तयोस्तुवचनंश्रुत्वा स्नानंचक्रेत्वरान्वितः ॥ २३ ॥ स्नात्वाचावश्यकंकर्म कर्तुमारभतद्विजः ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मघोषध्वनिंश्रुत्वा दानवोदुर्मुखस्तदा ॥ क्रोधसंरक्तनयनो दुर्वाससमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ हन्यमा

धारण किये बलभद्र व श्रीकृष्ण उन दोनों ने उस समय दुर्वासा ब्राह्मण से कहा कि अपनी इच्छा से स्नान करो उन दोनों के वचन को सुनकर शीघ्रता संयुत दुर्वासाजी ने स्नान किया ॥ २२ । २३ ॥ और स्नान करके दुर्वासा ब्राह्मण ने आवश्यक कर्म करने का प्रारम्भ किया ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । कुश दैत्यहिं जिमि मारि प्रभु लिङ्ग थापना कीन । सोइ बीसवें में कह्यो उत्तम चरित नवीन ॥ प्रह्लादजी बोले कि वेदध्वनि का शब्द सुनकर उस समय क्रोध से लाललोचनोंवाले दुर्मुख दानव ने दुर्वासाजी से कहा ॥ १ ॥ कि हे द्विज ! हमलोगों से मारेहुए तुम यदि छोड़ेगये तो बहुतही मन्दबुद्धिवाले तुम मरने के

लिये यहां फिर क्यों आये ॥ २ ॥ यह कहकर दुष्ट दानव ने घूंसा से मारने के लिये इच्छा किया और ब्राह्मण को मारने के लिये तैयार उस दानव को देखकर विष्णुजीने ॥ ३ ॥ पैनी धारवाले चक्र से मस्तक को लीला से काटडाला श्रीप्रह्लादजी बोले कि मरेहुए दुर्मुख को देखकर उस समय दुस्सह दानव ने ॥ ४ ॥ इस प्रकार दैत्यों को पुकारा कि शीघ्रही आइये और मरेहुए दुर्मुख को सुनकर सब दैत्यगण आये ॥ ५ ॥ और फिर वहां विष्णुजी से रक्षित दुर्वासाजी को देखकर कूर्मपृष्ठ, गोलक, क्रोधन व वेददूषक ॥ ६ ॥ यज्ञघ्न, यज्ञहंता, धर्मान्तक व तपस्विहा और अन्य बहुत से दानव अनेक प्रकार के अस्त्रों को हाथ में लिये हुए ॥ ७ ॥ व क्रोध से

नस्त्वमस्माभिर्यदिमुक्तोसिवैद्विज ॥ कस्मात्पुनरिहायातो मरणायसुमन्दधीः ॥ २ ॥ इत्युक्त्वामुष्टिनाहन्तुमियेषदुष्ट दानवः ॥ तंदृष्ट्वादानवंविष्णुर्ब्राह्मणंहन्तुमुद्यतम् ॥ ३ ॥ चक्रेणक्षुरधारेण शिरश्चिच्छेदलीलया ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ दुर्मुखंनिहतंदृष्ट्वा दानवोदुस्सहस्तदा ॥ ४ ॥ प्राक्रोशदुच्चैर्दितिजाञ्छीघ्रमागम्यतामिति ॥ श्रुत्वादैत्यगणाःसर्वे दुर्मुखंविनिपातितम् ॥ ५ ॥ दुर्वाससंपुनस्तत्र परित्रातंचविष्णुना ॥ कूर्मपृष्ठोगोलकश्च क्रोधनोवेददूषकः ॥ ६ ॥ यज्ञघ्नोयज्ञहन्ताच धर्मान्तश्चतपस्विहा ॥ एतेचान्येचबहवो विविधायुधपाणयः ॥ ७ ॥ क्रोधसंरक्तनयनाः क्रोशन्तोब्राह्मणंतथा ॥ परिक्षिप्यतदात्रेयं विष्णुंसंकर्षणंतदा ॥ ८ ॥ तोमरैर्भिन्दिपालैश्च मुशलैश्चभुशुण्डिभिः ॥ शस्त्रैर्नानाविधैश्चापि युयुधुः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ ९ ॥ दानवैःसंवृतोविष्णुः समन्ताद्घोरदर्शनैः ॥ संकर्षणश्चशुशुभे चन्द्रादित्यौघनैरिव ॥ १० ॥ निन्यतुर्धनुषीदिव्ये तथाववृषतुश्शरान् ॥ तेमार्गणगणादैत्यान् तयोर्मुक्तानिजघ्निरे ॥ ११ ॥ तेहन्यमानाःसमरे

लाललोचनोंवाले वे दैत्य अत्रि के पुत्र दुर्वासाजीकी निन्दा करतेहुए उस समय विष्णु व संकर्षणजीको तिरस्कारकर ॥ ८ ॥ क्रोध से मूर्च्छित दैत्यों ने तोमर, भिन्दिपाल, मुशल व बंदूकों से तथा अनेक भांति के अस्त्रों से युद्ध किया ॥ ९ ॥ भयंकर दर्शनोंवाले दानवों से सब ओर घिरे हुए विष्णु व संकर्षणजी वैसेही शोभित हुए जैसे कि मेघों से घिरे चन्द्रमा व सूर्य होवैं ॥ १० ॥ विष्णु व संकर्षणजी ने दिव्य धनुषों को लिया व बाणों की वर्षा किया व उनसे छोड़ेहुए उन बाणगणों ने दैत्यों को मारा॥११॥

व युद्ध में विष्णुजी से मारेहुए दैत्य दिशाओं को भगे और विष्णुजी से मारे व भगेहुए दैत्यों को देखकर ॥ १२ ॥ गोलक व कूर्मपृष्ठ शब्द को सुनकर लौटे व गोलक ने संकर्षण को तीन बाणों से मारा ॥ १३ ॥ और संकर्षणजी को व्यथित देखकर दुर्वासाजी बहुतही विकल हुए और उसने वेग से कूदकर दुर्वासाजी के मस्तक में मारा ॥ १४ ॥ और घूंसा से मारेहुए वे दुर्वासाजी चिल्ला उठे व पृथ्वी में गिरपड़े व घूंसा से मस्तक में मारेहुए व गिरे दुर्वासाजी को देखकर भगवान् संकर्षणजी क्रोधितहुए व खड़े हो खड़े हो ऐसा बोले और मुशल को लेकर वीर बलभद्रजी ने युद्ध में मारा ॥ १५ । १६ ॥ और मुशल से मस्तक में मारा हुआ

विष्णुनाविद्रुतादिशः ॥ दानवान्विद्रुतान्दृष्ट्वा विष्णुनानिहतांस्तथा ॥ १२ ॥ गोलकःकूर्मपृष्ठश्च शब्दंश्रुत्वान्यवर्त्तताम् ॥ संकर्षणंगोलकश्च निजघानशरैस्त्रिभिः ॥ १३ ॥ अनन्तंव्यथितंदृष्ट्वा त्वात्रेयोतीवविह्वलः ॥ उत्पत्यतरसामूर्ध्नि दुर्वाससमताडयत् ॥ १४ ॥ समुष्टिघाताभिहतः प्राक्रोशत्पतितःक्षितौ ॥ संकर्षणश्चपतितं मुष्टिनामूर्ध्निताडितम् ॥ १५ ॥ दृष्ट्वाचुकोपभगवांस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ संगृह्यमुशलंवीरो जघानसमरेरिपुम् ॥ १६ ॥ मुशलेनहतोमूर्ध्नि गोलको विकलेन्द्रियः ॥ सवैभिन्नास्थिमस्तिष्कः पपातचममारच ॥ १७ ॥ गोलकंपतितंदृष्ट्वा क्रदन्तंब्राह्मणंतदा ॥ कूर्मपृष्ठंचभगवान् विष्णुर्हन्तुंमनोदधे ॥ १८ ॥ नाराचेनसुतीक्ष्णेन हृदयेभ्यहनद्रिपुम् ॥ सविष्णुबाणाभिहतस्त्यक्तशस्त्रःपलायितः ॥ १९ ॥ तस्मिन्प्रभग्नेतिबले कूर्मपृष्ठेचदानवे ॥ अभज्यतबलंसर्वं विद्रुतंचदिशोदश ॥ २० ॥ तत्प्रभग्नंबलंसर्वं निहतंगोलकंतथा ॥ द्वाःस्थस्तुकथयामास दैत्यराजकुशायसः ॥ २१ ॥ गोलकंनिहतंदृष्ट्वा सर्वान्दैत्यान्सदैत्य

गोलक इन्द्रियों से विकल हुआ और टूटेहुए अस्थि व मस्तिष्कवाला वह गिरपड़ा व मरगया ॥ १७ ॥ और गिरेहुए गोलक को देखकर उस समय ब्राह्मण दुर्वासाजी को पुकारते हुए कूर्मपृष्ठ को मारने के लिये विष्णुजी ने मन किया ॥ १८ ॥ और पैने बाण से शत्रु के हृदय में मारा व विष्णुजी के बाण से माराहुआ वह शस्त्र को छोड़ कर भगगया ॥ १९ ॥ उस बड़े बलवान् कूर्मपृष्ठ दानव के नष्ट होनेपर सब सेना नष्ट होगई और दशो दिशाओं को भगगई ॥ २० ॥ और उस सब भगीहुई सेना व मरेहुए गोलक को उस द्वारपालक ने दैत्यों के राजा कुश से कहा ॥ २१ ॥ और मरेहुए गोलक व सब दैत्यों को भगेहुए देखकर उस दैत्यराज कुश ने तैयार सेना

को युद्ध करने की आज्ञा दिया ॥ २२ ॥ व कुशकी आज्ञा को धारणकर वे पञ्चजन आदिक सब दैत्य शीघ्रता से रथों व हाथियों के द्वारा निकले ॥ २३ ॥ और कूर्मपृष्ठ की दशहज़ार सेना निकली व बीसहज़ार रथ व दशहज़ार हाथी चले ॥ २४ ॥ और महामुख की सेना के एकलाख घोड़े चले और बहुत सेना से संयुत वक्रग दैत्य निकला ॥ २५ ॥ वैसेही अनीक संख्यक सेना से संयुत दीर्घनख दैत्य चला और दैत्यराज कुश का महामंत्री मंत्रियों के पुत्रों समेत चला ॥ २६ ॥ व निघस दैत्य और महाबली प्रसव, ऊर्ध्वबाहु, वक्रशिरा, कंचुक व शिलोन्मुख दैत्य चला ॥ २७ ॥ और ब्रह्मयज्ञघ्न व राहु और वर्वरक दैत्य निकला व बुद्धि में श्रेष्ठ सुनामा व वसुनामा

राट् ॥ योद्धुमाज्ञापयामास सन्नद्धस्यबलस्यच ॥ २२ ॥ आज्ञांकुशस्यतेधार्य दैत्याःपञ्चजनोन्मुखाः ॥ युद्धायत्वरया सर्वे रथैर्नागैश्चनिर्ययुः ॥ २३ ॥ अनीकंदशसाहस्रं कूर्मपृष्ठस्यनिर्ययौ ॥ अयुतेद्वेरथानान्तु नागानामयुतंतथा ॥ २४ ॥ दशायुतानिचाश्वानां महामुखपरिग्रहाः ॥ वक्रगोनिर्ययौदैत्यो बहुसैन्यसमन्वितः ॥ २५ ॥ तथादीर्घनखोदैत्यः सेनानीकेनसंवृतः ॥ मन्त्रिपुत्रैर्महामात्यो दैत्यराजकुशस्यच ॥ २६ ॥ निर्ययौनिघसोदैत्यः प्रसवश्चमहाबलः ॥ ऊर्द्ध्वबाहुर्वक्रशिराः कञ्चुकश्चशिलोन्मुखः ॥ २७ ॥ ब्रह्मयज्ञघ्नकश्चैव राहुर्वर्वरकस्तथा ॥ सुनामावसुनामाच मन्त्रिणौबुद्धिसत्तमौ ॥ २८ ॥ सेनापतिश्चोग्रदंष्ट्रा तस्यभ्रातामहाहनुः ॥ एतेचान्येचबहवो दैत्याःक्रोधसमन्विताः ॥ २९ ॥ महतारथघोषेण निर्ययुर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ स्नातःशुक्लाम्बरधरो शुक्लमालाविभूषितः ॥ ३० ॥ कुशःशम्भुंमहादेवं भवानीपतिमव्ययम् ॥ अर्चयामासभूतेशममरेशंसमाधिना ॥ ३१ ॥ गीतवादित्रशब्देश्च तथामङ्गलवाचकैः ॥ पूजयित्वामहादेवं

मंत्री चले ॥ २८ ॥ और सेनापति उग्रदंष्ट्रा व उसका भाई महाहनु चला ये और अन्य बहुतसे क्रोध संयुत दैत्य ॥ २९ ॥ युद्ध की इच्छाकरते हुए बड़े रथ के शब्द समेत निकले और स्नानकर सफेद वस्त्रों को धारणकर सफेद मालाओं से भूषित होकर ॥ ३० ॥ कुश दैत्य ने पार्वती के पति व देवेश अविनाशी, शिव महादेवजी को समाधि से पूजन किया ॥ ३१ ॥ और गाने व बजाने के शब्दों से तथा मंगल वचनों से महादेवजी को पूजकर व ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन

कराकर ॥ ३२ ॥ और पञ्चामृत से नहवाकर तथा गन्धों से लेपन कर दैत्यराज कुश ने अनेक पुष्पराशियों से महादेवजी को पूजा ॥ ३३ ॥ और मणियों व हीरा के गहनों से भूषित कर तथा जलतेहुए सूर्यनारायण के समान प्रकाशवाले व सूर्य के समान रंगवाले मुकुट से ॥ ३४ ॥ व अत्यन्तही शोभावाले हार से शोभित दैत्यराज कुश महाभुज ने तैयार होकर सारथी को देखा ॥ ३५ ॥ और सुनामा व वसु मंत्रियों से वचन कहा कि इस समय किसलिये युद्ध का उद्योग है इसको कहिये ॥ ३६ ॥ उसके उस वचन को सुनकर रुरुने वचन कहा कि दुर्वासा ब्राह्मण गोमती व समुद्र के सङ्गम में नहाने के लिये आया था ॥ ३७ ॥ व हे भूपते ! वहा दैत्यों से मना

ब्राह्मणान्स्वस्तिवाच्यच ॥ ३२ ॥ पञ्चामृतेनसंस्नाप्य तथागन्धैर्विलेप्यच ॥ अर्चयामासदैत्येन्द्रस्त्वनेककुसुमोत्करैः ॥ ३३ ॥ भूषयित्वाभूषणैश्च मणिवज्रविभूषणैः ॥ मुकुटेनार्कवर्णेन ज्वलद्भास्कररोचिषा ॥ ३४ ॥ शोभमानोदैत्यराजो हारेणातीवशोभिना ॥ संनह्यचमहाबाहुः सारथिंसमुदैक्षत ॥ ३५ ॥ सुनामानंवसुंचैव मन्त्रिणौवाक्यमब्रवीत् ॥ किमर्थंसमरोद्योगो जायतेत्वधुनावद ॥ ३६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा रुरुर्वचनमब्रवीत् ॥ आगतोब्राह्मणःस्नातुं गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ३७ ॥ गतोहिप्रतिषिद्धःस दैत्यैस्तत्रमहीपते ॥ तञ्चविष्णुःसमानिन्ये संकर्षणसमन्वितः ॥ ३८ ॥ कथंगोलकहन्तारं सुहनिष्यामिकेशवम् ॥ एतावदुक्त्वासरुरुर्ययौदैत्यपतिस्तदा ॥ ३९ ॥ राजन्वृथाविग्रहेण किंकार्यंकथयस्वनः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा कुशःक्रोधसमन्वितः ॥ ४० ॥ ततोवादित्रशब्दांश्च भेरीशङ्खसमन्वितान् ॥ ददर्शतत्रदेवेशं सहस्रशिरसंप्रभुम् ॥ ४१ ॥ चक्रपाणिंचविष्णुंवै दुर्वाससमकिल्बिषम् ॥ ईश्वरांशञ्चतंदृष्ट्वा नहन्तव्योयमीश्वरः ॥ ४२ ॥

कियेहुए वे दुर्वासाजी चलेगये और संकर्षणसमेत विष्णुजी उनको लेआये हैं ॥ ३८ ॥ और गोलक को मारनेवाले विष्णुजी को मैं कैसे मारूंगा यह कहकर वह दैत्यों का स्वामी रुरु उस समय चला व यह बोला ॥ ३९ ॥ कि हे राजन् ! वृथा वैरसे क्या कार्य है इसको हमसे कहिये उसके उस वचन को सुनकर कुश क्रोध से संयुत हुआ ॥ ४० ॥ तदनन्तर उसने नगारों व शङ्खों के शब्द से संयुत बाजनों के शब्दों को सुना और वहां हज़ार मस्तकोंवाले अनन्त देवेश स्वामी को देखा ॥ ४१ ॥ और चक्रपाणि विष्णु व शिवांश उन पापरहित दुर्वासाजी को देखकर कहा कि ये ईश्वर शिवजी मारनेयोग्य नहीं हैं ॥ ४२ ॥

और विष्णुजी को उद्देश कर उसने उन सब दानवों को पठाया और उन दैत्यों ने पर्वतों के समान हाथी व मेघों के समान शब्दवाले रथों से ॥ ४३ ॥ और बड़े वेगवान् घोड़ों के द्वारा जाकर सब ओर से घेर लिया तदनन्तर विष्णु व संकर्षणदेवजी का दानवों के साथ बड़ाभारी युद्ध हुआ ॥ ४४ ॥ और सब दैत्यनायकों से आच्छादित विष्णु व संकर्षणजी देखपड़े तदनन्तर बलवान् बलभद्रजी ने नंदन मुशल को लेकर ॥ ४५ ॥ काल, अन्तक व यमराज के समान श्रेष्ठ दैत्यों को मारा और बलशाली बलभद्रजी से मारेहुए वे दैत्य ॥ ४६ ॥ भग्नहोकर सब ओर भगे और कुश के समीप गये व बक, यज्ञकोप, यज्ञघ्न और वेददूषक ॥ ४७ ॥ व

विष्णुमुद्दिश्यतान्सर्वान्प्रेरयामासदानवान् ॥ नागैःपर्वतसंकाशै रथैर्जलदनिस्स्वनैः ॥ ४३ ॥ अश्वैर्महाजवैर्गत्वा परिवव्रुःसमन्ततः ॥ ततोयुद्धंसमभवद्देवयोर्दानवैःसह ॥ ४४ ॥ आच्छादितौचदृदृशातेऽखिलैर्दैत्यनायकैः ॥ ततोगृहीत्वामुशलं बलवान्नन्दनंहली ॥ ४५ ॥ जघानदैत्यप्रवरान् कालान्तकयमोपमान् ॥ तेहन्यमानादैतेया बलेनबलशालिना ॥ ४६ ॥ सर्वतोदुद्रुवुर्भग्ना जग्मुश्चकुशमेववै ॥ बकश्चयज्ञकोपश्च यज्ञघ्नोवेददूषकः ॥ ४७ ॥ महामुखःखञ्जनको राहुर्यज्ञशिरास्तथा ॥ एतेचान्येचबहवः प्रवरादानवोत्तमाः ॥ ४८ ॥ क्रोधसंरक्तनयना बिभिदुस्तेजनार्दनम् ॥ ततःकोपसमाविष्टौ संकर्षणजनार्दनौ ॥ ४९ ॥ चक्रलाङ्गलपातेन जघ्नतुर्दानवर्षभान् ॥ चक्रेणचशिरःकोपाच्चिच्छेदाशुबकस्य च ॥ ५० ॥ चूर्णयामासमुशली यज्ञहन्तारमेवच ॥ राहुंजघानचक्रेण तथान्यान्मुशलेनच ॥ ५१ ॥ तेदैत्याहन्यमानाश्च भग्नाजग्मुर्दिशोदश ॥ कुशःस्ववाहिनींदृष्ट्वा विह्वलांनिहतांतथा ॥ ५२ ॥ क्रोधसंरक्तनयनो याहियाहीति

महामुख, खंजनक, राहु और यज्ञशिरा ये और अन्य बहुत से जो श्रेष्ठ व उत्तम दानव थे ॥ ४८ ॥ क्रोध से लाललोचनोंवाले उन्हों ने जनार्दन श्रीकृष्णजी को मारा तदनन्तर क्रोधसे संयुत संकर्षण व विष्णुजी ने ॥ ४९ ॥ चक्र और हल के मारने से श्रेष्ठ दानवों को मारा और विष्णुजी ने क्रोध से शीघ्रही बक के मस्तक को चक्र से काटडाला ॥ ५० ॥ व मुशली बलभद्रजी ने यज्ञहंता नामक दैत्यको चूर्ण किया और राहु को विष्णुजी ने चक्र से मारा व अन्य दानवों को बलभद्रजी ने मुशल से मारा ॥५१॥ और मारेहुए वे भग्न दानव दशो दिशाओं को चलेगये और कुश ने मारीहुई व विकल अपनी सेना को देखकर ॥ ५२ ॥ क्रोधसे अरुणनयन होकर सारथी

से कहा कि चलिये चलिये और उस कुश ने उन दोनों के समीप जाकर व अपने नाम को सुनाकर ॥ ५३ ॥ कहा कि हे गदाधर ! तुम कौन हो जो कि इन दैत्यों को मारते हो ॥ ५४ ॥ श्रीवासुदेव कृष्णजी बोले कि जिसलिये मुक्तिदायक व पवित्र गोमती तथा समुद्र का सङ्गम दुष्टात्मा व पापियों से आच्छादित है उस कारण मैंने उनको मारा है ॥ ५५ ॥ कुश बोला कि यहां टिकेहुए मुझको जानते हो और जीते हुए तुम कैसे जावोगे स्थिर होकर तुम युद्ध करो तदनन्तर जीवन को छोड़ोगे ॥ ५६ ॥ यह कहकर उसने पचीस बाणों से विष्णुजी को मारा और आठ बाणों से संकर्षणजी को मारकर अत्रि के पुत्र दुर्वासाजी को

सारथिम् ॥ सतयोरन्तिकंगत्वा नामविश्राव्यचात्मनः ॥ ५३ ॥ उवाचकस्त्वंदैतेयानिमान्हंसिगदाधर ॥ ५४ ॥ श्रीवासुदेव उवाच ॥ यस्माद्विमुक्तिदंपुण्यं गोमत्युदधिसङ्गमम् ॥ रुद्धंदुरात्मभिःपापैस्तस्मात्तेनिहतामया ॥ ५५ ॥ कुश उवाच ॥ मांजानासिचह्यत्रस्थं कथंजीवन्प्रयास्यसि ॥ युध्यस्वत्वंस्थिरोभूत्वा ततस्त्यक्ष्यसिजीवितम् ॥ ५६ ॥ इत्युक्त्वापञ्चविंशत्या ताडयामासकेशवम् ॥ अनन्तंचाष्टभिर्बाणैर्हत्वात्रेयमवैक्षत ॥ ५७ ॥ ईश्वरांशंचतंदृष्ट्वा कोत्रत्वं गच्छमाचिरम् ॥ सबाणैर्भिन्नहृदयः शार्ङ्गंहिधनुषांवरम् ॥ ५८ ॥ विकृष्यघातयामास चतुर्भिश्चतुरोहयान् ॥ सारथेस्तु शिरःकोपादर्द्धचन्द्रेणचिच्छिदे ॥५९॥ धनुश्चिच्छेदचैकेन ध्वजमेकेनयन्त्रिणा ॥ ६० ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथो हताश्वोहतसारथिः ॥ प्रगृह्यचमहाखड्गमुवाचवचनंतदा ॥ ६१ ॥ यदित्वांपातयिष्यामि कीर्तिर्मेह्यतुलाभवेत् ॥ पातितोहन्त्वयावीर यास्यामिपरमांगतिम् ॥ ६२ ॥ तिष्ठतिष्ठहरेस्थानं माव्रजत्वमतःपरम् ॥ धावन्तमतिसंरब्धं खड्गहस्तंतथारि

देखा ॥ ५७ ॥ और उन शिवांश दुर्वासाजी को देखकर कहा कि यहां तुम कौन हो शीघ्रही चलेजावो और बाणों से कटेहुए वक्षस्थलवाले उन विष्णुजी ने धनुषों में उत्तम शार्ङ्गधनुष को ॥ ५८ ॥ खींचकर चार बाणों से चार घोड़ों को मारा और क्रोध से सारथी के शिरको तलवार से काटडाला ॥ ५९ ॥ और एक बाण से धनुष को व एक बाण से ध्वजा को काटडाला ॥ ६० ॥ उस समय कटे धनुष व नष्ट सारथी तथा नष्ट घोड़ोंवाले रथरहित उस दैत्य ने बड़ी तलवार को लेकर वचन कहा ॥ ६१ ॥ कि मैं यदि तुमको मारूंगा तो मेरा बड़ाभारी यश होगा व हे वीर ! तुमसे माराहुआ मैं उत्तम गति को प्राप्तहूंगा ॥ ६२ ॥ हे हरे ! स्थान में

खड़े रहो खड़े रहो इससे आगे न जाइयेगा बहुत क्रोधित व दौड़तेहुए तथा तलवार को हाथ में लियेहुए शत्रु के ॥ ६३ ॥ मस्तक को विष्णु ने लीला से सौ धारोंवाले चक्रसे काटडाला और पृथ्वी में गिरेहुए उस कटे मस्तकवाले दानव को देख कर ॥ ६४ ॥ इसके अनन्तर खञ्जनक समर में रथ से उसको लेचला व कुश दैत्य के चलेजाने पर वे विष्णु व संकर्षणजी ॥ ६५ ॥ दुर्वासा समेत बहुत प्रसन्न होकर लौटे और पड़ेहुए कुश दानव को शिवालय में धरकर खञ्जनक दैत्यने ॥ ६६ ॥ स्नान,चन्दन, नैवेद्य व गीतों और बाजनों से प्रसन्न किया व शंकरजी की प्रसन्नता से उसने उसी क्षण जीवनको पाया ॥ ६७ ॥ व उस समय हे शिव ! हे शिव ! ऐसा कहताहुआ

पुम् ॥ ६३ ॥ चक्रेणशतधारेण शिरश्चिच्छेदलीलया ॥ तंछिन्नशिरसंभूमौ पतितंवीक्ष्यदानवम् ॥ ६४ ॥ अथोवाहरथेनाजौ दैत्यःखञ्जनकस्तथा ॥ अथयातेकुशेदैत्ये विष्णुःसंकर्षणस्तथा ॥ ६५ ॥ दुर्वाससाचसहितः सन्यवर्ततहार्षितः ॥ शिवालयेतुपतितं कुशंनिक्षिप्यदानवम् ॥ ६६ ॥ स्नानैर्गन्धैश्चनैवेद्यैर्गीतवाद्यैरतोषयत् ॥ अवापजीवितंसद्यः प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ ६७॥ उत्थितःसतदादैत्यो ब्रुवञ्छिवशिवेतिच ॥ तंपुनर्जीवितंदृष्ट्वा दैत्यंदैत्यगणास्तदा ॥ ६८॥ सुनामोवाचवाक्यंवै वर्द्धस्वसुचिरंविभो ॥ स्नापयित्वायदिपुनर्ब्राह्मणंविनिवर्तत ॥ ६९ ॥ यथेष्टंगच्छतुतदा किंवृथाविग्रहेणते ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा कुशोवचनमब्रवीत् ॥७०॥ गत्वाप्रेषयतौशीघ्रं विप्रत्राणकरावुभौ ॥ सचराज्ञासमादिष्टः सुनामामन्त्रिसत्तमः ॥७१ ॥ उवाचविष्णुमानम्य नमस्कृत्यहलायुधम् ॥ कुशेनप्रेषितश्चास्मि तवपार्श्वेजनार्दन ॥ ७२ ॥

वह दैत्य उठपड़ा और उस समय फिर जियेहुए उस दैत्य को देखकर दैत्यों के गण प्रसन्न हुए ॥ ६८ ॥ व सुनामा ने यह वचन कहा कि हे विभो ! बहुत दिनों तक बढ़ो यदि ब्राह्मण दुर्वासाजी को नहवाकर वे श्रीकृष्णजी लौटजावैं ॥ ६९ ॥ तो इच्छाके अनुकूल वे चलेजावैं तुम्हारा वृथा विग्रह (वैर) से क्या प्रयोजन है उसके उस वचन को सुनकर कुश ने वचन कहा ॥ ७० ॥ कि तुम जाकर ब्राह्मण की रक्षा करनेवाले उन दोनों को पठावो राजा से आज्ञा दियेहुए उस उत्तम मंत्री सुनामा ने ॥ ७१ ॥ विष्णुजी को व हलायुध बलभद्रजी को प्रणामकर कहा कि हे जनार्दनजी ! कुशने मुझको तुम्हारे समीप पठाया है ॥ ७२ ॥

उस उपाय को करूंगा कि जिससे यह न होवै तदनन्तर शंकरजीकी प्रसन्नता से वह फिर जीवन को पाकर ॥ ९३ ॥ उस समय तलवार व ढाल को लेकर आया व उस ने खड़े हो खड़े हो ऐसा कहा शिवजी के परिग्रह उस कुश को फिर आतेहुए देख कर ॥ ९४ ॥ विष्णुजीने गरुई गदा से उस समय गदाको हाथ में लियेहुए कुश को मारा व टूटे मस्तकवाला वह गदा से माराहुआ कुश गिरपड़ा ॥ ९५ ॥ व भूमि में गिरेहुए उस कुश को विष्णुजी ने वेग से पकड़कर उसके शरीर को बिल में फेंक दिया और फिर पूर्ण करदिया ॥ ९६ ॥ व उसके ऊपर विष्णुजी ने लिंग को थापन किया और चैतन्यता को पाकर कुश दानव ने उस समय अपने शरीर के ऊपर स्थित

करिष्यामि येनायंनभवेदिति ॥ ततःसजीवितंप्राप्य प्रसादाच्छङ्करस्यच ॥ ९३ ॥ खड्गीचर्मीतदायातस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ तमायान्तंपुनर्दृष्ट्वा कुशंशिवपरिग्रहम् ॥ ९४ ॥ जघानगदयागुर्व्या गदाहस्तंतदाकुशम् ॥ सभिन्नमूर्द्धान्यपतद्गदयाताडितःकुशः ॥ ९५ ॥ तंभूमौपतितंवेगात्परिगृह्यकुशंहरिः ॥ गर्तेनिक्षिप्यतद्देहं पूरयामासवैपुनः ॥ ९६ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास तस्योपरिजनार्द्दनः ॥ सलब्धसंज्ञोदनुजः शिवलिङ्गमपश्यत ॥ ९७ ॥ आत्मोपरिस्थितंदेहे तदा चिन्तापरोभवत् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ शिवलिङ्गमलङ्घ्यंहि बुद्धिपूर्वंहतोह्यहम् ॥ उवाचकृष्णंदनुजस्तारितोहन्त्वयानघ ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच ॥ परितुष्टोस्मिदैत्येन्द्र शौर्येणशिवसंश्रयात् ॥ वरंवरयभद्रन्ते यदीच्छसिमहामते ॥ २ ॥ कुश उवाच ॥ यथा

शिवलिंग को देखा तब वह चिन्ता में परायण हुआ ॥ ९७ । ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दो० । टिके द्वारकामध्य जिमि दुर्वासा मुनिनाथ । इकइसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस दैत्यने श्रीकृष्णजी से कहा कि शिवलिंग नांघने योग्य नहीं है और मैं बुद्धिमत्तापूर्वक मारागया व तुमसे तारागया ॥ १ ॥ विष्णुजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! शिवजीके आश्रय से तुम्हारी शूरता से मैं प्रसन्न हूं हे महामते ! जो चाहते हो उस वर को मांगो तुम्हारा कल्याण होवै ॥ २ ॥ कुश बोला कि हे हरे ! जैसे शिवजी मेरे पूजनेयोग्य हैं वैसेही तुमहो और दोनों

को भी मारा ॥ ८३ ॥ विष्णुजीने इनको व अन्य बहुत से दानवों को मारा व मरेहुए दानवों को देखकर बड़े क्रोधित कुश ने ॥ ८४ ॥ युद्ध में क्रोधित होकर उत्तम अस्त्र से विष्णुजी को मारा व क्रोध संयुत भगवान् विष्णुजी ने चक्र से उसके शिर को गिरा दिया ॥ ८५ ॥ और कटेहुए मस्तकवाले उस कुश दैत्य को पृथ्वी में पड़ेहुए देखकर विष्णुजी ने उस समय पांव व हाथों को तिलभर खंड २ काटडाला ॥ ८६ ॥ उस समय विष्णुजी से खंड २ काटेहुए कुश को देखकर वे सब दैत्य फिर लेकर शिवालय को लेआये ॥ ८७ ॥ व त्रिशूलधारी उन शिवजी की प्रसन्नता से कुश दानव शीघ्रही जीवको प्राप्त होकर यकायक उठा व यह बोला कि विष्णुजी कहां

हरिः ॥ उल्मुकश्चापिनिहतो ब्रह्मघ्नश्चापिपातितः ॥ ८३ ॥ एतेचान्येचबहवो घातिताःकेशवेनहि ॥ दानवान्निहतान्दृष्ट्वा कुशःपरमकोपनः ॥ ८४ ॥ जघानयुधिसंरब्धः परमास्त्रेणकेशवम् ॥ भगवान्क्रोधसंयुक्तश्चक्रेणापातयच्छिरः ॥ ८५ ॥ तंछिन्नशिरसंभूमौ पतितंवीक्ष्यकेशवः ॥ चिच्छेदबाहुपादौच खण्डशस्तिलशस्तदा ॥ ८६ ॥ खण्डशोघातितंदृष्ट्वा केशवेनकुशंतदा ॥ संगृह्यतेपुनर्दैत्या निन्युःसर्वेशिवालयम् ॥ ८७ ॥ प्रसादाच्छूलिनस्तस्य जीवंसम्प्राप्यदानवः ॥ उत्थितःसहसाक्रुद्धः क्वविष्णुरितिचाब्रवीत् ॥ ८८ ॥ गदामुद्यम्यसंक्रुद्धो योद्धुमागाज्जनार्दनम् ॥ तमुद्यतगदंदृष्ट्वा निहतंजीवितंपुनः ॥ ८९ ॥ दुर्वाससमुवाचेदं विष्णुःकमललोचनः ॥ जीवत्यसौपुनःकस्मात्कारणंकथयस्वनः ॥ इत्युक्तश्चिन्तयामास ध्यानेनऋषिसत्तमः ॥ ९० ॥ ज्ञात्वातत्कारणंसर्वमुवाचमधुसूदनम् ॥ महादेवेनतुष्टेन कुशोयममरःकृतः ॥ ९१ ॥ खण्डशोपिकृतस्तस्मान्नचप्राणैर्वियुज्यते ॥ तच्छ्रुत्वाविस्मयाविष्टो हन्तव्योयंकथंमया ॥ ९२ ॥ उपायंतं

हैं ॥ ८८ ॥ और गदा को उठाकर क्रोधित होताहुआ वह युद्ध करने के लिये विष्णुजीके समीप आया और नष्ट होकर फिर जिये व गदा को उठायेहुए उस दानव को देखकर ॥ ८९ ॥ कमल सरीखे लोचनोंवाले विष्णुजी ने दुर्वासाजी से कहा कि फिर यह किस कारण जीता है उस कारण को हमसे कहिये ऐसा कहेहुए ऋषिश्रेष्ठ दुर्वासाजी ने ध्यान से चिन्तन किया ॥ ९० ॥ व उस सब कारण को जानकर विष्णुजी से कहा कि प्रसन्न होतेहुए महादेव ने इस कुश को अमर किया है ॥ ९१ ॥ उस कारण खंड २ कियाहुआ वह प्राणों से रहित नहीं होता है उस वचन को सुनकर विष्णुजी विस्मयसंयुत हुए कि मुझसे यह किस प्रकार मारने योग्य है ॥ ९२ ॥ मैं

उस उपाय को करूंगा कि जिससे यह न होवै तदनन्तर शंकरजीकी प्रसन्नता से वह फिर जीवन को पाकर॥ ९३ ॥ उस समय तलवार व ढाल को लेकर आया व उस ने खड़े हो खड़े हो ऐसा कहा शिवजी के परिग्रह उस कुश को फिर आतेहुए देख कर ॥ ९४ ॥ विष्णुजीने गरुई गदा से उस समय गदाको हाथ में लियेहुए कुश को मारा व टूटे मस्तकवाला वह गदा से माराहुआ कुश गिरपड़ा ॥ ९५ ॥ व भूमि में गिरेहुए उस कुश को विष्णुजी ने वेग से पकड़कर उसके शरीर को बिल में फेंक दिया और फिर पूर्ण करदिया ॥ ९६ ॥ व उसके ऊपर विष्णुजी ने लिंग को थापन किया और चैतन्यता को पाकर कुश दानव ने उस समय अपने शरीर के ऊपर स्थित

करिष्यामि येनायंनभवेदिति॥ ततःसजीवितंप्राप्य प्रसादाच्छङ्करस्यच॥ ९३ ॥ खड्गीचर्मीतदायातस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्र वीत् ॥ तमायान्तंपुनर्दृष्ट्वा कुशंशिवपरिग्रहम् ॥ ९४ ॥ जघानगदयागुर्व्या गदाहस्तंतदाकुशम् ॥ सभिन्नमूर्द्धान्यप तद्गदयाताडितःकुशः ॥ ९५ ॥ तंभूमौपतितंवेगात्परिगृह्यकुशंहरिः ॥ गर्तेनिक्षिप्यतद्देहं पूरयामासवैपुनः ॥ ९६ ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास तस्योपरिजनार्द्दनः ॥ सलब्धसंज्ञोदनुजः शिवलिङ्गमपश्यत ॥ ९७ ॥ आत्मोपरिस्थितंदेहे तदा चिन्तापरोभवत् ॥ ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ शिवलिङ्गमलङ्घ्यंहि बुद्धिपूर्वंहतोह्यहम् ॥ उवाचकृष्णंदनुजस्तारितोहन्त्वयानघ ॥ १ ॥ विष्णु रुवाच ॥ परितुष्टोस्मिदैत्येन्द्र शौर्येणशिवसंश्रयात् ॥ वरंवरयभद्रन्ते यदीच्छसिमहामते ॥ २ ॥ कुश उवाच ॥ यथा

शिवलिंग को देखा तब वह चिन्ता में परायण हुआ ॥ ९७ । ९८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

दो० । टिके द्वारकामध्य जिमि दुर्वासा मुनिनाथ । इकइसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस दैत्यने श्रीकृष्णजी से कहा कि शिवलिंग नांघने योग्य नहीं है और मैं बुद्धिमत्तापूर्वक मारागया व तुमसे तारागया ॥ १ ॥ विष्णुजी बोले कि हे दैत्येन्द्र ! शिवजीके आश्रय से तुम्हारी शूरता से मैं प्रसन्न हूं हे महामते ! जो चाहते हो उस वर को मांगो तुम्हारा कल्याण होवै ॥ २ ॥ कुश बोला कि हे हरे ! जैसे शिवजी मेरे पूजनेयोग्य हैं वैसेही तुमहो और दोनों

मूर्तियां एकही हैं इस कारण तुमसे मैं वर को मांगता हूं ॥ ३ ॥ कि हे नाथ ! तुमने मेरे ऊपर जिस शिवलिंगको थापा है वह मेरे नामसे कुशेश ऐसा प्रसिद्ध होवै ॥४॥ व यदि मैं तुमसे दयाकरने योग्य हूं तो यह मेरा यश होवै ऐसाही होवैगा इस प्रकार कहाहुआ वह दैत्य वहीं स्थित हुआ ॥ ५ ॥ तदनन्तर विष्णुजी ने अन्य सब दानवों को शोषलिया कुछ दानव रसातल को चलेगये और कितेक विष्णुजीके आश्रित हुए ॥ ६ ॥ और संकर्षणजी वहीं स्थितहुए तदनन्तर विष्णुजी स्थित हुए और मुक्तिदायक तीर्थको जानकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाजी वहीं स्थित हुए ॥ ७ ॥ गोमतीचक्रतीर्थ में भगवान् वामनजी स्थितहुए उसी से इसको

पूज्योमहादेवो ममत्वञ्चतथाहरे ॥ एकएवाद्वयीमूर्त्तिस्तस्मात्त्वांवरयाम्यहम् ॥ ३ ॥ शिवलिङ्गंत्वयानाथ स्थापितं यन्ममोपरि ॥ ममनाम्नाभवतुतत् कुशेशइतिविश्रुतम् ॥ ४ ॥ अनुग्राह्योयद्यहन्ते ममकीर्तिर्भवेदियम् ॥ एवंभविष्य तीत्युक्तस्तत्रैवावस्थितोऽसुरः ॥ ५ ॥ ततोन्यान्दानवान्सर्वाञ्शोषयामासमाधवः ॥ रसातलगताःकेचित्केचिद्विष्णुंस माश्रिताः ॥ ६ ॥ अनन्तश्चस्थितस्तत्र विष्णुश्चतदनन्तरम् ॥ ज्ञात्वाविमुक्तिदंतीर्थं दुर्वासामुनिसत्तमः ॥ ७ ॥ गोमतीच क्रतीर्थेच भगवांश्चत्रिविक्रमः ॥ तेनेदंमुक्तिदंमत्वा दुर्वासास्तत्रसंस्थितः ॥ ८ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ विशेषात्फलदःप्रोक्तः पूजितोमधुहाहरिः ॥ मधुसूदनंनरोगत्वा द्वारवत्यांप्रपूजयेत् ॥ ९ ॥ पूजयेत्कृष्णदेवञ्च विलिप्यचसुगन्धिना ॥ गन्धैश्च वसनैश्चैव तथापुष्पैरनेकधा ॥ १० ॥ नैवेद्यैर्भूषणैश्चैव ताम्बूलेनफलेनच ॥ आरार्तिकेणसम्पूज्य दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ ११ ॥ घृतेनदीपंदेयञ्च रात्रौजागरणंतथा ॥ कुर्याच्चगीतवादित्रे तथापुस्तकवाचनम् ॥ १२ ॥ कृत्वाजागरणंरात्रौ

मुक्तिदायक जानकर वहां दुर्वासाजी स्थितहुए ॥ ८ ॥ प्रह्लादजी बोले कि मधुसूदन विष्णुजी पूजित होकर विशेषता से फलदायक कहेगये हैं इस कारण द्वारकापुरी में जाकर मनुष्य मधुसूदनजी को पूजै ॥ ९ ॥ व सुगन्धि से लेपनकर कृष्णदेव को पूजै और चंदन, वसन व अनेक प्रकार के पुष्पों से ॥ १० ॥ तथा नैवेद्य, भूषण, तांबूल व फल से और आरती से पूजकर व दंडाकी नाईं प्रणामकर ॥ ११ ॥ घृत से दीपक देनाचाहिये व रात्रि में जागरण तथा गाना, बजाना करै व पुस्तक को पढ़ै ॥ १२ ॥

व रात्रि में जागरण कर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है और भादौं में अष्टमी व द्वादशी तिथि में विष्णुजी को पूजना चाहिये ॥ १३ ॥ कलियुग में मनुष्य गोमती व समुद्र के सङ्गम में श्रीकृष्णजी को पूजकर निर्मल लोक को पाता है कि जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दो० । यथा रुक्मिणीदेवि को पूजि लहत फल जौन । बाइसवें अध्याय में कही कथा सब तौन ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैं तुमलोगों से यथायोग्य

सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ तथानभस्येसम्पूज्यो ह्यष्टमीद्वादशीषुच ॥ १३ ॥ कलौकृष्णंपूजयित्वा गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ विमलंलोकमाप्नोति यत्रगत्वानशोचति ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येएकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ शृणुध्वंद्विजशार्दूला यथावत्कथयामिवः ॥ स्नापयित्वाजगन्नाथं तत्रगन्धैर्विलेप्यच ॥ १ ॥ तुलसींपूजयित्वातु भूषयित्वातुभूषणैः ॥ नैवेद्येनचसन्तर्प्य तथानीराजनादिभिः ॥ २ ॥ दुर्वाससंतथापूज्य पुण्डरीकाक्षमेवच ॥ गणेशंवैनतेयन्तु स्वशक्त्यापूज्यमानवः ॥ ३ ॥ रुक्मिणींचततोगच्छेद्विदर्भतनयांनरः ॥ उपहृत्योपहारांश्च बलिभिर्गन्धदीपकैः ॥ ४ ॥ पीडयन्तिग्रहास्तावद्व्याधयोभिभवन्तिच ॥ भक्त्यानपश्यतेयावत्कलौकृष्णप्रियांनरः ॥ ५ ॥ उपसर्गभवंतावच्छाकिनीभूतसम्भवम् ॥ भक्त्यानपश्यतेयावत्कलौकृष्णप्रियांनरः ॥ ६ ॥ तावन्मृत

कहता हूं उसको सुनिये कि जगदीशजी को नहवाकर वहां गंधों से लेपन कर ॥ १ ॥ व तुलसीजी को पूजकर तथा भूषणों से भूषितकर और नैवेद्य मे तृप्तकर व नीराजनादिकों से पूजकर ॥ २ ॥ वैसेहीं दुर्वासाजी को व कमललोचन विष्णुजी को पूजकर व गणेश और गरुड़जी को मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार पूजकर ॥ ३ ॥ तदनन्तर उपहारों को लेकर मनुष्य बलि, गंध व दीपों समेत विदर्भ की कन्या रुक्मिणीजीके समीप जावै ॥ ४ ॥ तबतक ग्रह पीड़ित करते हैं व रोग दुःखित करते हैं जबतक कि मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को भक्ति से नहीं देखता है ॥ ५ ॥ और शाकिनी से उत्पन्न व उपद्रवों से उपजाहुआ दोष तबतक होता है जबतक कि मनुष्य कलियुग में भक्ति से श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को नहीं देखता है ॥ ६ ॥ और तबतक स्त्री मृतवत्सा व दुर्भगा और दुःख

से संयुत होती है जबतक कि मनुष्य कलियुग में भक्ति से श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को नहीं देखता है ॥ ७ ॥ विधिपूर्वक श्रीकृष्णजी को पूजकर तदनन्तर रुक्मिणीजी के समीप जावै और दही, दूध, शहद व शक्कर से नहवावै ॥ ८ ॥ और घृत से व अनेक भाति के गंधों से नहवावै और पुष्पों से पूजनकरै तीर्थ के जल से भलीभांति नहवाकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है ॥ ९ ॥ जो मनुष्य इसप्रकार हरिप्रिया रुक्मिणी देवीजी को नहवाता है उसको इसलोक व परलोक में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ १० ॥ और जो चंदन कुंकुम व कस्तूरी से लेपन करता है वह अपुत्रता व निर्धनता को नहीं देखता है ॥ ११ ॥ और वह सदैव सुखी व रूप-

प्रजानारी दुर्भगादुःखसंयुता ॥ भक्त्यानपश्यतेयावत्कलौकृष्णप्रियांनरः ॥ ७ ॥ सम्पूज्यकृष्णंविधिवत्ततोगच्छेत्तुरुक्मिणीम् ॥ स्नापयेद्दधिदुग्धेन मधुशर्करयातथा ॥ ८ ॥ घृतेनविविधैर्गन्धैस्तथापुष्पैःप्रपूजयेत् ॥ तीर्थोदकेनसंस्नाप्य सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ९ ॥ एवंयःस्नापयेद्देवीं रुक्मिणींहरिवल्लभाम् ॥ नतस्यदुर्लभंकिञ्चिदिहलोकेपरत्र च ॥ १० ॥ श्रीखण्डकुङ्कुमेनैव तथामृगमदेनच ॥ विलेपयेदपुत्रत्वमधनत्वंनपश्यति ॥ ११ ॥ सदासभोगीभवति रूपवान्धनपूजितः ॥ पूजयेन्मालतीपुष्पैः शतपत्रैःसुगन्धिभिः ॥१२॥ करवीरैर्मल्लिकाभिस्तुलस्याराजचम्पकैः ॥ करवीरैर्वारिसम्भूतैः केतकीभिश्चपालकैः ॥ १३ ॥ धूपेनागुरुणाचैव धूपयेद्गुग्गुलेनच ॥ वस्त्रैःकौसुम्भकैःशुभ्रैर्नानादेशसमुद्भवैः ॥ १४ ॥ भक्त्यासंछाद्यवैदर्भीं रुक्मिणींकृष्णवल्लभाम् ॥ भूषणैर्भूषयेद्देवीं मणिरत्नैर्विभूषितैः ॥ १५ ॥ तस्मिन्कुलेनासुखीस्यान्नापुत्रोनिर्धनस्तथा ॥ पतितोनविकर्मस्थः कितवोनीचसेवकः ॥ १६ ॥ सम्पूज्यतांजगद्धात्रीं रुक्मिणीं

वान् और धन से पूजित होता है और चमेली के फूलों से व सुगन्धित कमलों से पूजै ॥ १२ ॥ व कनैर, बेला, तुलसी और राजचंपकों से पूजै तथा कनैर, कमल व केतकी और पालक पुष्पों से पूजै ॥ १३ ॥ और अगुरु धूप व गुग्गुल से धूप देवै और अनेक देशों में उपजेहुए कुसुम के रंगे उत्तम वसनों से ॥ १४ ॥ भीष्मक की कन्या रुक्मिणी विष्णुप्रियाजी को भक्तिसे आच्छादित कर मणियों व रत्नों से भूषित भूषणों से देवीजी को जो भूषित करै ॥ १५ ॥ उस वंश में कोई दुःखी, पुत्रहीन व निर्धन नहीं होता है और न पतित न पराये कर्म में स्थित होता है और न धूर्त न नीच का सेवक होता है ॥ १६ ॥ कलियुग में मनुष्य उन जगद्धात्री रुक्मिणीजी

को भलीभांति पूजकर व भक्ष्य, भोज्यादिक नैवेद्यों से पूजकर मेरेऊपर देवीजी प्रसन्न होवैं इस मंत्र से ॥ १७ ॥ कर्पूर समेत तांबूल को भक्ति से निवेदन करै और अक्षतों समेत उत्तम फलको लेकर ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस मंत्र से विधिपूर्वक अर्घ को देवै कि हे कृष्णप्रिये ! हे विदर्भदेशाधिपतिनन्दिनि ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे सर्वकामप्रदे, देवि ! अर्घ को ग्रहण कीजिये तुम्हारे लिये नमस्कार है तदनन्तर मनुष्य जलतेहुए दीपक समेत आरती करै ॥ २० ॥ व विशेषकर कपूर से नीराजन करना चाहिये व भावसंयुत मनुष्य शङ्ख में जल करके घुमावै ॥ २१ ॥ और घुमाकर पवित्रता के लिये मस्तकसे धारणकरै व हे कृष्णप्रिये ! तुम्हारे लिये प्रणाम

मानवःकलौ ॥ नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्याद्यैर्देवीमेप्रीयतामिति ॥ १७ ॥ ताम्बूलंचसकर्पूरं भावेनविनिवेदयेत् ॥ गृहीत्वाचफलं दिव्यमक्षतैश्चसमन्वितम् ॥ १८ ॥ मन्त्रेणानेनवैविप्रा अर्घंदद्याद्विधानतः ॥ कृष्णप्रियेनमस्तुभ्यं विदर्भाधिपनन्दिनि ॥ १९ ॥ सर्वकामप्रदेदेवि गृहाणार्घंनमोस्तुते ॥ आरार्तिकंततःकुर्याज्ज्वलद्दीपकसंयुतम् ॥ २० ॥ नीराजनंप्रकर्तव्यं कर्पूरेणविशेषतः ॥ शङ्खेकृत्वातुपानीयं भ्रामयेद्भावसंयुतः ॥ २१ ॥ भ्रामयित्वाचशिरसा धारयेच्चविशुद्धये ॥ दण्डवत्प्रणमेद्भूमौ नमःकृष्णप्रियेवदन् ॥ २२ ॥ विप्रपत्नीश्चविप्रांश्च पूजयेद्वित्तशक्तितः ॥ सिन्दूरैर्विविधैर्हारैर्वासोभिःकुङ्कुमैस्तथा ॥ २३ ॥ सुगन्धकुसुमैरर्च्य कुङ्कुमेनविलिप्यच ॥ कौसुम्भकैःकज्जलैश्च ताम्बूलेनचतोषयेत् ॥ २४ ॥ स्नापयित्वासुगन्धेन कुङ्कुमेनविलिप्यच ॥ धूपेनधूपयित्वातां पुष्पवर्यैःप्रपूजयेत् ॥ २५ ॥ नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यैश्च मांसेनसुरयातथा ॥ प्रभूतबलिभिश्चैव विधिपूर्वंप्रपूजयेत् ॥ २६ ॥ योगिनीश्चचतुष्षष्टिः पीठेतस्याःप्रपूजयेत् ॥ अर्चयेद्द्वारिसिद्धिश्च

है ऐसा कहताहुआ मनुष्य दंडवत् करै ॥ २२ ॥ और ब्राह्मणों की स्त्रियों व ब्राह्मणों को द्रव्य की शक्ति के अनुसार पूजै व सिंदूर तथा अनेक भांति के हारों से तथा वसनों व कुंकुमों से ॥ २३ ॥ और सुगन्धित फूलों से पूजकर व कुंकुम से लेपनकर कुसुंभी वसन, कज्जल व तांबूल से प्रसन्न करावै ॥ २४ ॥ और सुगन्ध से नहवाकर व कुंकुम से लेपन कर तथा धूप से धुपाकर उन रुक्मिणीजी को उत्तम पुष्पों से पूजै ॥२५॥ व भक्ष्य, भोज्य नैवेद्यों से और मांस व मदिरा तथा बहुतसी बलियों से विधिपूर्वक पूजै॥ २६॥ व उनके

पीठ पै चौंसठि योगिनियों को पूजै व हरिसिद्धि और क्षेत्रपालों को सब ओर पूजै ॥ २७ ॥ और वहां विरूपस्थायिनी व सात मातृकाओं को पूजै व उस पीठ में अष्टमूर्ति से स्थित लक्ष्मीजी को पूजै ॥ २८ ॥ और रुक्मिणी, सत्यभामा व जाम्बवती देवी को पूजै और मित्रविंदा, कालिंदी, भद्रा व अग्निजिती को पूजै ॥ २९ ॥ व वैष्णव मनुष्य उसी पीठ में कृष्णकी प्यारी लक्ष्मीजी को पूजकर विधिपूर्वक इनको भलीभांति पूजकर तथा खीर से तृप्तकर ॥ ३० ॥ गाने, बजाने के योगों से व दीप तथा जागरणादिकों से पूजकर मनुष्य सब कामनाओं को पाता है और उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ३१ ॥ व रोगों से छूटाहुआ ऋद्धि की वृद्धि से संयुत वह जीता है उसको बहुत

क्षेत्रपालांश्चसर्वतः ॥ २७ ॥ विरूपस्थायिनींतत्र तथावैसप्तमातरः ॥ अष्टमूर्तिस्थितांपद्मां पीठेतस्मिन्प्रपूजयेत् ॥ २८॥ रुक्मिणींसत्यभामांच देवींजाम्बवतींतथा ॥ मित्रविन्दांचकालिन्दीं भद्रामग्निजितींतथा ॥ २९ ॥ सम्पूज्यलक्ष्मींत त्रैव वैष्णवःकृष्णवल्लभाम् ॥ एताःसम्पूज्यविधिवत्संतर्प्यचैवपायसैः ॥ ३० ॥ गीतवादित्रयोगैश्च दीपैर्जागरणादि भिः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति तस्यविष्णुःप्रसीदति ॥ ३१ ॥ जीवतेव्याधिनिर्मुक्तो ऋद्धिवृद्धिसमन्वितः ॥ किंतस्यबहु भिर्दानैः किंव्रतैर्नियमैस्तथा ॥ ३२ ॥ येनदृष्टाजगन्माता रुक्मिणीकृष्णवल्लभा ॥ किंयज्ञैर्बहुभिश्चैव सम्पूर्णवरदक्षि णैः ॥ ३३ ॥ तेनदत्तंहुतंतेन जप्तंतेनसनातनम् ॥ हेलयातेनसंप्राप्ताः सिद्धयोष्टौनसंशयः ॥ ३४ ॥ गताद्वारवतीयेन दृ ष्टाकेशववल्लभा ॥ सफलंजीवितंतस्य जन्ममानुषमेवच ॥ ३५ ॥ कलौकृष्णपुरींगत्वा दृष्ट्वामाधववल्लभाम् ॥ सर्वान्का मानवाप्नोति परत्रेहचमानवः ॥ ३६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रुक्मिणीकृष्णवल्लभा ॥ स्नानगन्धादिवस्त्रैश्च प्रभूतबलि

दानों से व व्रतों और नियमों से क्या है ॥ ३२ ॥ कि जिसने कृष्णकी प्यारी रुक्मिणी जगदम्बिकाजी को देखा है व संपूर्ण उत्तम दक्षिणावाले यज्ञों से क्या है ॥ ३३ ॥ उसने दान दिया व उसने हवन किया और सनातन जप किया और उसने हेला से निस्सन्देह आठ सिद्धियों को पाया है ॥ ३४ ॥ जिसने कि द्वारकापुरी को जाकर विष्णुप्रिया रुक्मिणीजी को देखा है उसका जीवन व मनुष्य का जन्म सफल है ॥ ३५ ॥ कलियुग में श्रीकृष्णजी की पुरी द्वारकाजी को जाकर विष्णुप्रिया रुक्मिणीजी को देखकर मनुष्य इस लोक व परलोक में सब कामनाओं को पाताहै ॥ ३६ ॥ इस कारण सब यत्न से स्नान, चन्दनादिक व वस्त्रों से तथा बहुत सी

बलियों से और गाने, बजाने के शब्दों से तथा दीपों व जागरण से प्रसन्न कीहुई भीष्मक की कन्या रुक्मिणी कृष्णप्रियाजी सब कामनाओं को देती हैं ॥ ३७ । ३८ ॥ वैसेही उत्सव के दिन में व चतुर्दशी में सावधान होता हुआ मनुष्य रुक्मिणीजी को पूजकर इच्छा के अनुकूल चाहे हुए फल को पाता है ॥ ३९ ॥ और माघ महीने में शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि में जिन्हों ने चन्दन, पुष्प व अनेक भांति के उपहारों से कामदेव की माता रुक्मिणीजी को पूजा है ॥ ४० ॥ उसका जीवन सफल है और उसके मनोरथ सफल होते हैं और चैत महीने में द्वादशी तिथि में कृष्ण समेत रुक्मिणीजी को ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य देखते हैं व जो चैत और वैशाख में कृष्णजी समेत

भिस्तथा ॥ ३७ ॥ गीतवादित्रघोषैश्च दीपैर्जागरणेनच ॥ तोषिताभीष्मकसुता सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥ ३८ ॥ तथाचैवोत्सवदिने चतुर्दश्यांसमाहितः ॥ पूजयित्वायथाकामं वाञ्छितंलभतेफलम् ॥ ३९ ॥ माघेमासिसिताष्टम्यां कन्दर्पजननींबुधैः ॥ पूजितागन्धपुष्पैश्च ह्युपहारैरनेकधा ॥ ४० ॥ सफलंजीवितंतेषां सफलाश्चमनोरथाः ॥ द्वादश्यांचैत्रमासेतु कृष्णेनसहरुक्मिणीम् ॥ ४१ ॥ येपश्यन्तिनरादेवीं रुक्मिणींमधुमाधवे ॥ कृष्णेनसहगच्छन्ति तेधन्यामानवादिवि ॥ ४२ ॥ पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमन्विताः ॥ जीवन्तिव्याधिनिर्मुक्ताः पदंगच्छन्त्यनामयम् ॥ ४३ ॥ ज्येष्ठाष्टम्यांनरैर्यैस्तु पूजिताकृष्णवल्लभा ॥ तेषांमनोरथावाप्तिर्लभ्यतेनात्रसंशयः ॥ ४४ ॥ सदाभाद्रपदेमासि यैस्तु पूजाकृताबुधैः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्तिविष्णुपदन्नराः ॥ ४५ ॥ कार्त्तिकेशुक्लद्वादश्यां रुक्मिणींकृष्णसंयुताम् ॥ स

रुक्मिणी देवी को देखते हैं पृथ्वी में वे धन्य मनुष्य स्वर्ग को जातेहैं ॥ ४२ ॥ व पुत्रों और पौत्रों से संयुत तथा धन, धान्य से युक्त व रोगरहित होकर वे मनुष्य जीते हैं व उत्तम स्थान को प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥ व ज्येष्ठ की अष्टमी तिथि में जिन मनुष्यों ने कृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को पूजा है उन को मनोरथ की प्राप्ति मिलती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥ और सदैव भादों महीने में जिन विद्वानों ने उन का पूजन किया है सब पापों से छूटे हुए वे विष्णुजी के स्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ४५ ॥ और कातिक में शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि में जिसने कृष्ण से संयुत रुक्मिणीजी को देखा है उसका जीवन सफल होता है व पुत्रों की सन्तान

नाश नहीं होतीहै ॥ ४६ ॥ और एक ठिकाने स्थित कृष्ण से संयुत रुक्मिणी जी को जो देखता है उसका जीवन सफल होता है व पुत्र की सन्तान नाश नहीं होती है ॥ ४७ ॥ व बहुत धन धान्य होता है और कभी दरिद्रता नहीं होती है इस प्रकार जो मनुष्य रुक्मिणीजी को देखै व श्रीकृष्णजी को पूजै ॥ ४८ ॥ और जो सब तीर्थों में नहावै व शक्ति के अनुसार दान देवै हे ब्राह्मणो ! उसको कलियुग में जो जो पुण्य का फल होता है ॥ ४९ ॥ वह संपूर्णता से कहा गया और कलियुग में कृष्णजी की स्थिति कही गई हे ब्राह्मणो ! द्वारकापुरी को छोड़कर अन्यत्र कलियुग में मुक्ति नहीं मिलती है ॥ ५० ॥ इस पुराण की संहिता को बलि को बांधनेवाले

फलंजीवितंतस्य चाक्षयापुत्रसन्ततिः ॥ ४६ ॥ एकत्रसंस्थितांयश्च रुक्मिणींकृष्णसंयुताम् ॥ सफलंजीवितंतस्य चाक्षयापुत्रसन्ततिः ॥ ४७ ॥ पुष्कलंधनधान्यञ्च कदानैवदरिद्रता ॥ एवंयोरुक्मिणींपश्येत्पूजयेत्कृष्णमेवच ॥ ४८ ॥ स्नायाच्चसर्वतीर्थेषु दानंशक्त्याददातियः ॥ तस्यपुण्यफलंचैव कलौयद्यद्भवेद्द्विजाः ॥ ४९ ॥ कथितंतदशेषेण कलौकृष्णस्यसंस्थितिः ॥ मुक्त्वाद्वारावतींविप्रा मुक्तिर्नप्राप्यतेकलौ ॥ ५० ॥ पुराणसंस्थितामेतां कृतवान्बलिबन्धनः ॥ ददौसतुप्रसादेन प्रह्लादायमहात्मने ॥ ५१ ॥ ऋषिभ्यःकथयामास सपृष्टोदैत्यसत्तमः ॥ शृणुयाद्योनरोभक्त्या यःपठेद्भावसंयुतः ॥ ५२ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोकंसगच्छति ॥ ५३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येरुक्मिणीदर्शनमाहात्म्यंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यमिन्द्रद्युम्न निबोध मे ॥ कलौ निवसते यत्र रुक्मिणीपति

कृष्णजी ने किया व प्रसन्नता से उन्होंने प्रह्लाद महात्मा के लिये दिया ॥ ५१ ॥ और पूंछे हुए उन श्रेष्ठ दानव प्रह्लादजी ने ऋषियों से कहा भक्तिसंयुत जो मनुष्य इसको भक्ति से पढ़ता या सुनता है ॥ ५२ ॥ वह सब कामनाओं को पाता है व विष्णुलोक को जाता है ॥ ५३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां रुक्मिणीदर्शनमाहात्म्यंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यथा द्वारकापुरी कर अहै अतुल परभाव । सो तेइस अध्याय में कह्यो चरित चितचाव ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि हे इन्द्रद्युम्न ! मुझ से द्वारका का

माहात्म्य सुनिये जहां कि रुक्मिणी के पति विष्णुजी कलियुग में बसते हैं ॥ १ ॥ कलियुग में जो मनुष्य श्रीकृष्णजी का माहात्म्य सुनते व पढ़ते हैं उनका यमलोक में आठयुगों तक निवास नहीं होता है ॥ २ ॥ जिसको श्रीकृष्णजी की कथा सदैव प्राण से भी प्यारी है उसको इस लोक व परलोक में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ३ ॥ और हज़ार मन्वन्तरतक काशी में जो फल कहा गया है वह द्वारका में पांच दिन बसनेवालों को होता है ॥ ४ ॥ और कलियुग में यदि द्वारकापुरी में जो चाण्डाल बसता है वह यतियों की गति को पाता है ऐसा प्रजापति ने कहा है ॥ ५ ॥ व हे नरनायक ! प्रतिदिन द्वारका को जाता हुआ मनुष्य कुरुक्षेत्र से उपजे हुए फल को

केशवः ॥ १ ॥ कलौकृष्णस्यमाहात्म्यं येशृण्वन्तिपठन्तिच ॥ नतेषांभवतेवासो यमलोकेयुगाष्टकम् ॥ २ ॥ नित्यं कृष्णकथायस्य प्राणादपिगरीयसी ॥ नतस्यदुर्लभंकिञ्चिदिहलोकेपरत्रच ॥ ३ ॥ मन्वन्तरसहस्रन्तु काश्यांवैयत्फलं स्मृतम् ॥ तत्फलंद्वारवत्यांवै वसतांपञ्चभिर्दिनैः ॥ ४ ॥ कलौनिवसतेयस्तु श्वपचोद्वारकांयदि ॥ यतीनांगतिमाप्नोति प्राहचैवंप्रजापतिः ॥ ५ ॥ द्वारकांगच्छमानश्च प्रत्यहंनरनायक ॥ फलंप्राप्नोतिमनुजः कुरुक्षेत्रसमुद्भवम् ॥ ६ ॥ सोम ग्रहशतेनापि यत्फलंसोमनायके ॥ दृष्टेतत्फलमाप्नोति द्वारवत्यांदिनेदिने ॥ ७ ॥ पुष्करेकार्त्तिकंनीत्वा यत्फलंवर्षको टिभिः ॥ तत्फलंद्वारकावासे प्रत्यहंनरनायक ॥ ८ ॥ अवन्त्यांयत्फलंप्रोक्तं मन्वन्तरशतंनृप ॥ तत्फलंद्वारकांगत्वा दि नैकेनप्रजायते ॥ ९ ॥ द्वारावत्यांदिनैकेन दृष्टेदेवकिनन्दने ॥ यत्फलंकोटिगुणितं व्रतलक्षशतोद्भवम् ॥ १० ॥ कलौनि

पाता है ॥ ६ ॥ और सौ चन्द्रमा के ग्रहणों में सोमनायकजी के देखने पर जो फल मिलता है उसको मनुष्य द्वारकापुरी में प्रतिदिन पाता है ॥ ७ ॥ व हे नरनायक ! पुष्करतीर्थ में करोड़ों वर्षों तक कातिक महीने को व्यतीत कर जो फल होता है वह फल द्वारकापुरी के निवास में प्रतिदिन होता है ॥ ८ ॥ व हे राजन् ! सौ मन्वन्तरों तक अवन्तीपुरी में जो फल कहा गया है द्वारका को जाकर एक दिन में वह फल होता है ॥ ९ ॥ और द्वारकापुरी में एक दिन देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी के देखने पर वह कोटिगुना फल होता है जोकि सैकड़ों लक्ष व्रतों से उत्पन्न होता है ॥ १० ॥ हे राजन् ! कलियुग में बसते हुए उन मनुष्यों के मनोरथ धन्य हैं कि जिनकी

बुद्धि श्रीकृष्णजी के दर्शन व द्वारका के गमन में है ॥ ११ ॥ लोकों को पवित्र करनेवाले वे मनुष्य धन्य व कृतार्थ और प्रणाम करने योग्य हैं कि जिन्हों ने करोड़ों दश हज़ार पातकों को नाशनेवाले श्रीकृष्णजी के मुख को देखा है ॥ १२ ॥ हे नरोत्तम ! पृथ्वी में कृष्णजी के समीप जो द्वारकापुरी में एक द्वादशी को उपास करता है उसके फल को सुनिये ॥ १३ ॥ कि व्रत से संयुत कृष्णसंज्ञक दश सौ दिनों से मनुष्य जिस फलको पाता है वह द्वारका में एक द्वादशी तिथि से मिलता है ॥ १४ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के मस्तक पै दुग्धस्नान कराते हैं वे सौ अश्वमेधों से उपजे हुए पुण्य को पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ १५ ॥ व क्षीर से दश

वसतांभूप धन्यास्तेषांमनोरथाः ॥ कृष्णस्यदर्शनेयेषां द्वारकागमनेमतिः ॥ ११ ॥ धन्यास्तेकृतकृत्यास्ते वन्द्यास्ते लोकपावनाः ॥ दृष्टंकृष्णमुखंयैस्तु पापकोट्ययुतापहम् ॥ १२ ॥ एकान्तुद्वादशींलोके यःकरोतिनरोत्तम ॥ कृष्णस्य सन्निधौभूमौ द्वारकायांफलंशृणु ॥ १३ ॥ यत्फलंव्रतसंयुक्तैर्वासरैःकृष्णसंज्ञकैः ॥ शतैर्दशभिराप्नोति द्वारकायांतदे कया ॥ १४ ॥ क्षीरस्नानंकारयन्ति येनराःकृष्णमूर्द्धनि ॥ शताश्वमेधजंपुण्यं तेलभन्तिनसंशयः ॥ १५ ॥ क्षीराद्दशगुणं दर्भाद्घृतात्तस्माद्दशोत्तरम् ॥ घृताद्दशगुणंक्षौद्रं कम्बुनातद्दशोत्तरम् ॥ १६ ॥ पुष्पोदकंचदर्भोदं वर्द्धतेचदशोत्तरम् ॥ मन्त्रोदकंचगन्धोदं तथैवनृपसत्तम ॥ १७ ॥ स्नानमिक्षुरसेनैवं शतवाजिमखैःसमम् ॥ तथैवतीर्थनीरञ्च फलंयच्छति भूमिप ॥ १८ ॥ स्नपनंकृष्णदेवस्य यःकरोतिस्वशक्तितः ॥ फलमाप्नोतितत्प्रोक्तं निष्कामोमुक्तिमाप्नुयात् ॥ १९ ॥ कृष्णंस्नानार्द्रगात्रन्तु वस्त्रेणपरिमार्जति ॥ जन्मार्जितस्यपापस्य भवतेपापमार्जनम् ॥ २० ॥ स्नापयित्वाजगन्नाथं

गुना पुण्य कुश से व उससे दशगुना घृत से होता है तथा घृत से दशगुना शहद और शंख से उससे दशगुना पुण्य होता है ॥ १६ ॥ और पुष्पोदक व कुशोदक दशगुना बढ़ता है वैसेही हे नृपोत्तम ! मन्त्रोदक व गंधोदक होता है ॥ १७ ॥ व ऊंख के रससे स्नान कराना सौ अश्वमेधों के समान होता है वैसेही हे राजन् ! तीर्थ का जल फलको देताहै ॥ १८ ॥ जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार कृष्णदेवजी को स्नान कराता है वह कहेहुए फल को पाता है व अकाम मनुष्य मुक्ति को पाता है ॥ १९ ॥ व स्नान से भीगेहुए अंगोंवाले श्रीकृष्णजी को जो वस्त्र से मार्जन करता है उसके जन्म में इकट्ठा किये हुए पापका नाश होता है ॥ २० ॥ और जगदीश कृष्णजी को नहवा कर

जो फूलों की माला को चढ़ाता है उसको प्रत्येक पुष्प में सोने की हज़ार अशर्फ़ियों का फल होता है ॥ २१ ॥ और श्रीकृष्णजी के स्नान के समय में जो शंखादिकों को बजाता है व जो विष्णुदेवजी के हज़ार नामों को पढ़ता है वह प्रत्येक अक्षर में सौ कपिला गऊ के दान से उपजे हुए फल को पाता है ॥ २२ ॥ व हे भूपाल ! गीता के पढ़ने में यह फल होता है और गजेन्द्रमोक्ष व स्तवराज के कीर्तन करने पर यह फल होता है ॥२३॥ व हे नराधिप ! मुनियों से किये हुए अन्य स्तोत्रों के पढ़ने से यही फल होता है व देवेश विष्णुजी उनके समीप आते हैं व सब कामनाओं को देते हैं ॥ २४ ॥ फिर हे नरनायक ! जो स्नान के समय में वेदपाठ करता है उसको

पुष्पमालावरोहणम् ॥ कुरुतेप्रतिपुष्पन्तु स्वर्णनिष्कायुतंफलम् ॥ २१ ॥ स्नानकालेतुकृष्णस्य शङ्खादीनांसुवादनम् ॥ कुरुतेचैवदेवस्य पठेन्नामसहस्रकम् ॥ प्रत्यक्षरंलभेत्पुण्यं कपिलागोशतोद्भवम् ॥ २२ ॥ फलमेतन्महीपाल गीतायाः पठनेभवेत् ॥ गजेन्द्रमोक्षणेचापि स्तवराजेचकीर्तिते ॥ २३ ॥ स्तवैर्मुनिकृतैरन्यैः पठनैश्चनराधिप ॥ तेषामायातिदेवेशः सर्वान्कामान्प्रयच्छति ॥ २४ ॥ किंपुनर्वेदपाठन्तु स्नानकालेकरोतियः ॥ तस्ययद्भवतेपुण्यं न ज्ञातंनरनायक ॥ २५ ॥ स्नानकालेतुसम्प्राप्ते कृष्णस्याग्रे तु नर्तनम् ॥ गीतंचैव पुनर्मर्त्यः कुरुतेतस्यकाकथा ॥ २६ ॥ स्नानकालेतुकृष्णस्य जयशब्दंकरोतियः ॥ करताडनसंयुक्तं गीतंनृत्यंकरोतियः ॥ २७ ॥ उन्मत्तचेष्टांकुर्वाणो हसञ्जल्पन्यथेच्छया ॥ त्यक्तंतेनधराधीश योनियन्त्रस्यनिर्गमम् ॥ २८ ॥ नोत्तानशायीभवति मातुरङ्केनरेश्वर ॥ गुणान्वक्ष्यतिकृष्णस्य यःकलौममसंख्यया ॥ २९ ॥ कल्पान्तेमुच्यतेविष्णोर्वसतेपितृभिःसह ॥ निस्सन्देहंभवेदेवमिन्द्रद्युम्न नचा

जो पुण्य होता है वह नहीं जाना गया है ॥ २५ ॥ और श्रीकृष्णजी के स्नान का समय प्राप्त होने पर जो श्रीकृष्णजी के आगे नृत्य व गान करता है उसको क्या कहना है ॥ २६ ॥ और श्रीकृष्णजी के स्नान के समय में जो जय शब्द करता है और हस्तताड़न याने ताली समेत जो गीत व नृत्य करता है ॥ २७ ॥ और इच्छा के अनुकूल हँसता व बकता हुआ जो मतवाले की नाईं कर्म करता है हे पृथ्वीनाथ ! उसने योनिरूपी यन्त्र से निकलना छोड़दिया ॥ २८ ॥ व हे नरेश्वर ! वह मनुष्य माता की गोदी में उतान नहीं सोता है और जो मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्णजी के गुणों को कहता है वह मेरी गिनती से ॥ २९ ॥ कल्पान्त में मुक्त

होजाता है व पितरों समेत विष्णुजी के लोक में बसता है हे इन्द्रद्युम्न ! निस्सन्देह ऐसाही होता है अन्यथा नहीं होता है ॥ ३० ॥ और जो मनुष्य अनेक देशों में उपजे हुए कोमल वसनों से पूजकर उत्तम भक्ति से विष्णुजी को धूप देता है ॥ ३१ ॥ वह सौ मन्वन्तर की संख्या तक विष्णुजी के घर में बसता है व देवदेवेश विष्णुजी को जो मनुष्य अपनी भक्ति से सुवर्ण व रत्नों से उत्पन्न तथा मणियों से उपजे हुए सुन्दर भूषणों से भूषित करते हैं उनको जो फल होता है उसको न इन्द्र न शिव और न ब्रह्माजी ॥ ३२ । ३३ ॥ जानते हैं और विष्णुजी को छोड़कर मुनिलोग भी उसको नहीं जानते हैं और हे राजन् ! कलिमल को नाशनेवाले जगदीश श्रीकृष्णजी को

न्यथा ॥ ३० ॥ नानादेशसमुद्भूतैः सुवस्त्रैश्चसुकोमलैः ॥ पूजयित्वासुभक्त्या च प्रधूपयतिमाधवम् ॥ ३१ ॥ मन्वन्तराणिवसते शतसंख्यंहरेर्गृहे ॥ स्वभक्त्यादेवदेवेशं भूषणैर्भूषयन्तिये ॥ ३२ ॥ हेमजैरत्नजैःशुभ्रैर्मणिजैश्च सुशोभनैः ॥ तेषांयच्च फलंनेन्द्रो नरुद्रोब्रानवैविधिः ॥ ३३ ॥ जानन्तिमुनयोनैव वर्जयित्वा तु माधवम् ॥ येर्चयन्तिजगन्नाथं कृष्णं कलिमलापहम् ॥ ३४ ॥ केतकीतुलसीपत्रैः पुष्पैर्मालतिसम्भवैः ॥ स्वदेशसम्भवैश्चान्यैः कुसुमैर्भूरिभिर्नृप ॥ ३५ ॥ एकैकं नृपशार्दूल दीनारशतसम्मितम् ॥ येकुर्वन्तिनराःपूजां स्वशक्त्यारुक्मिणीपतेः ॥ ३६ ॥ क्रीडन्तिदेवतेलोके मन्वन्तरशतानि च ॥ यःपुनस्तुलसीपत्रैः कोमलैर्मञ्जरीयुतैः ॥ ३७ ॥ पूजयेच्छुद्धवस्त्रैश्च कृष्णंदेवकिनन्दनम् ॥ यागतिर्योगयुक्तानां यागतिर्यज्ञशीलिनाम् ॥ ३८ ॥ यागतिर्दानशीलानां यागतिस्तीर्थसेविनाम् ॥ यागतिर्मातृभक्तानां द्वादशीं

केतकी व तुलसीपत्र तथा चमेली से उपजे हुए व अपने देश में उत्पन्न अन्य बहुत से पुष्पों से जो पूजते हैं ॥ ३४ । ३५ ॥ हे नृपोत्तम ! उनका एकएक फूल सौ अशर्फियों के समान होता है और अपनी शक्ति के अनुसार जो मनुष्य रुक्मिणी के पति श्रीकृष्णजी का पूजन करते हैं ॥ ३६ ॥ वे सौ मन्वन्तरों तक देवताओं के लोक में क्रीड़ा करते हैं और जो मनुष्य फिर मंजरी से संयुत कोमल तुलसीदलों से ॥ ३७ ॥ और शुद्ध वस्त्रों से देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी को पूजता है उसकी वह गति होती है जोकि योग से संयुत यज्ञकर्ता ब्राह्मणों की होती है ॥ ३८ ॥ और दान करनेवालों की जो गति होती है व तीर्थसेवी लोगों की जो गति होती है

व मातृभक्तों की जो गति होती है और वेधवर्जित द्वादशी तिथि को॥ ३९ ॥ जागरण करते हुए व विष्णुजी के आगे नाचते व गाते हुए लोगों को व वेदवादी वैष्णव मनुष्यों को जो फल होता है ॥ ४० ॥ व वैष्णवशास्त्र को पढ़ते हुए विष्णुभक्तों को जो फल होताहै तुलसी की मालासे पूजे हुए रुक्मिणीके पति श्रीकृष्णजी ॥ ४१ ॥हे राजन् ! इस फल को देते हैं इसमें सन्देह नहीं है जिस प्रकार विष्णुजी को लक्ष्मीजी प्यारी हैं उससे अधिक तुलसीजी प्यारी हैं ॥ ४२ ॥ जहां जहां स्थित विष्णुजी तुलसीदल की माला से पूजे जाते हैं वहा २ कलियुग में द्वारका के समान सब पुण्य होता है ॥ ४३ ॥ और जो मनुष्य कलिमलनाशक श्रीकृष्णजीको केतकी के पुष्पों

वेधवर्जिताम् ॥ ३९ ॥ कुर्वतांजागरंविष्णोर्नृत्यतांगायतांफलम् ॥ वैष्णवानान्तु भक्तानां यत्फलंवेदवादिनाम् ॥ ४० ॥ पठतांवैष्णवंशास्त्रं वैष्णवानान्तु यत्फलम् ॥ तुलसीमालयाकृष्णः पूजितोरुक्मिणीपतिः ॥ ४१ ॥ फलमेतन्महीपाल यच्छतेनात्रसंशयः ॥ यथालक्ष्मीःप्रियाविष्णोस्तुलसी च ततोधिका ॥ ४२ ॥ यत्रयत्रस्थितोविष्णुस्तुलसीदलमालया ॥ पूज्यतेद्वारकापुण्यसमग्रंभवतेकलौ ॥ ४३ ॥ योर्चयेत्केतकीपुष्पैः कृष्णंकलिमलापहम् ॥ पुष्पेपुष्पेश्वमेधस्य फलंयच्छतिचाद्भुतम् ॥ ४४ ॥ योर्चयेन्मालतीपुष्पैः कृष्णंत्रिभुवनेश्वरम् ॥ तेनाप्तंनात्रसन्देहस्तत्पदंदुर्लभंहरेः ॥ ४५ ॥ ऋतुकालोद्भवैःपुष्पैर्योर्चयेद्रुक्मिणीपतिम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति स तु दिव्यांश्चमानुषान् ॥ ४६ ॥ अष्टाक्षरोयंमन्त्रोहि श्रीकृष्णःशरणंमम ॥ कृष्णागुरुणायेकृष्णं भूषयन्तिकलौनराः ॥ ४७॥ सकर्पूरेणराजेन्द्र कृष्णतुल्या भवन्ति च ॥ ४८ ॥ आज्येनगुग्गुलेनापि सुगन्धेनजनार्द्दनम् ॥ धूपयित्वानरोयाति पदंभूपसदाशिवम् ॥ ४९ ॥ योद

से पूजता है उसको विष्णुजी प्रत्येक पुष्प में अश्वमेध यज्ञ के अद्भुत फल को देतेहैं ॥ ४४ ॥ और चमेली के पुष्पों से त्रिलोकेश्वर कृष्णजी को जो पूजताहै वह विष्णुजीके उस दुर्लभ स्थानको पागया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४५ ॥ व ऋतु और समयमें उपजेहुए पुष्पों से जो रुक्मिणी के पति श्रीकृष्णजीको पूजताहै वह देवताओं व मनुष्यों की सब कामनाओं को पाता है ॥ ४६ ॥ और श्रीकृष्णः शरणंमम यह अष्टाक्षर मन्त्रहै कलियुग में जो मनुष्य कपूर समेत काले अगुरुसे श्रीकृष्णजी को भूषित करतेहैं हे नृपेन्द्र! वे श्रीकृष्णजी के समान होतेहैं ॥ ४७।४८ ॥ व हे राजन् ! घी, गुग्गुल वसुगंधि से विष्णुजी को धूप देकर मनुष्य सदैव कल्याणमय स्थान को जाताहै ॥ ४९ ॥ व हे

भूपाल ! जो मनुष्य श्रीकृष्णजी को अगुरु दीप देता है वह सब पातकको छोड़कर सदैव बड़े भारी रूप को पाता है ॥ ५० ॥ और श्रीकृष्णजी के द्वारपै जो नित्य दीपों की माला करता है वह सात द्वीपोंवाली पृथ्वी का राजा होता है और प्रत्येक दीपक में इस फल को पाता है ॥ ५१ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के आगे सुगंधित नैवेद्यों को निवेदन करता है उसके पितरों की कल्पान्त तक सनातनी तृप्ति होती है ॥ ५२ ॥ व हे नरनायक ! कपूर समेत व सुपारी समेत ताम्बूल को जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के लिये देता है उसको देवताओं का स्थान होताहै ॥ ५३ ॥ और जो मनुष्य करवा से संयुत जल समेत घट को श्रीकृष्णजी के आगे धरता है

दातिमहीपाल कृष्णस्यागुरुदीपकम् ॥ पातकंसर्वमुत्सृज्य सोतिरूपंलभेत्सदा ॥ ५० ॥ द्वारेकृष्णस्ययोनित्यं दीपमालांकरोतिहि ॥ सप्तद्वीपवतीराजा दीपेदीपेफलंलभेत् ॥५१॥ नैवेद्यानिसुगन्धानि कृष्णाग्रे तु निवेदयेत् ॥ पितृणांतस्य कल्पान्तं तृप्तिर्भवतिशाश्वती ॥ ५२ ॥ ताम्बूलं च सकर्पूरं सपूगंनरनायक ॥ कृष्णाययच्छतेयोवै पदंतस्यास्तिदैवतम् ॥ ५३ ॥ सनीरंकरकोपेतं कुम्भंकृष्णाग्रतोन्यसेत् ॥ कल्पान्तंनजलापेक्षां कुर्वन्ति च पितामहाः ॥ ५४ ॥ फलानि यच्छतेयो वै सुहृद्यानिनरेश्वर ॥ ५५ ॥ कल्पान्तंतस्यजायन्ते सफलाःसुमनोरथाः ॥ देवदेवस्यराजेन्द्र कुरुतेयःप्रदक्षिणाम् ॥ ५६ ॥ तत्कुलेयमलोके तु दण्डोनैवभवेत्किल ॥ वायुलोकान्महीपाल पुनर्नगमनंभवेत् ॥ ५७ ॥ कृष्णवेश्मनियःकुर्यात्सुरूपंपुष्पमण्डपम् ॥ सपुष्पकविमानैश्च क्रीडतेकोटिभिर्दिवि ॥ ५८ ॥ श्वेतचामरवातेन कृष्णंयस्तोषयेन्नरः ॥ तस्योत्तमाङ्गंदेवेशश्चुम्बतेस्वमुखेन वै ॥ ५९ ॥ यःकुर्यात्कृष्णभवनं कदलीस्तम्भशोभितम् ॥ कुरुतेचाप्स

उसके पितामह लोग कल्पान्त तक जल की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ५४ ॥ व हे नरेश्वर ! जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के लिये सुन्दर फलों को देता है ॥ ५५ ॥ उसके मनोरथ कल्पान्त तक सफल होते हैं व हे नृपेन्द्र ! जो मनुष्य देवदेव श्रीकृष्णजी की प्रदक्षिणा करता है ॥ ५६ ॥ उसके वंश में यमलोक में दंड नहीं होता है व हे भूपाल ! पवन के लोक से फिर गमन नहीं होता है ॥ ५७ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के मन्दिर में सुन्दर पुष्पमंडप करता है वह करोड़ों पुष्पक विमानों से स्वर्ग में क्रीड़ा करता है ॥ ५८ ॥ व जो मनुष्य सफेद चँवर के पवन से श्रीकृष्णजी को प्रसन्न करता है उसके मस्तक को श्रीकृष्णजी अपने मुख से चूमते हैं ॥ ५९ ॥ व जो मनुष्य

श्रीकृष्णजी के मन्दिर को केला के खंभों से शोभित करता है अप्सराओं से संयुत सुरराज (इन्द्र) जी उसका स्वागत करते हैं ॥ ६० ॥ और जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के स्थान को पताकाओं से शोभित करताहै हे राजन् ! वह सदैव सूर्यलोकमें बसता है ॥ ६१ ॥ और जो श्रीकृष्णजी के मन्दिर में धूप, चंदन व माला को रचता है वह देवकन्याओं से संयुत स्वर्ग में अप्सराओं के गणों से सेवित होता है ॥ ६२ ॥ व मन्दिर के ऊपर जो ध्वजा को आरोपण करता है उसका ब्रह्मस्थान में निवास होता है और वह ब्रह्मा के साथ क्रीड़ा करता है ॥ ६३ ॥ और देवकीनन्दन श्रीकृष्णजीको जो स्वस्तिकों से संयुत करता है वह देवदेव विष्णुजी के त्रिलोक में क्रीडा

रोयुक्तः स्वागतंतस्यदेवराट् ॥ ६० ॥ कृष्णालयंप्रकुरुते पताकाभिश्च शोभितम् ॥ सदैवसूर्यलोकेतु वसतेमनुजाधिप ॥ ६१ ॥ धूपचन्दनमालान्तु कुरुतेकृष्णसद्मनि ॥ देवकन्यावृतेस्वर्गे सेव्यतेप्सरसाङ्गणैः ॥ ६२ ॥ ध्वजमारोपयेद्यस्तु प्रासादोपरिभक्तितः ॥ तस्यब्रह्मपदेवासः क्रीडतेब्रह्मणासह ॥ ६३ ॥ कृष्णंदेवकिपुत्रं च स्वस्तिकैश्च समन्वितम् ॥ कुरुतेदेवदेवस्य क्रीडतेभुवनत्रये ॥ ६४ ॥ योदद्यात्पुष्पमालान्तु मण्डपेरुक्मिणीपतेः ॥ देवोद्यानेषुसर्वेषु स च क्रीडतिभूमिप ॥ ६५ ॥ प्रासादेकृष्णदेवस्य चित्रंकर्मकरोतियः ॥ वसतेरुद्रलोकेतु यावत्तिष्ठन्तिसागराः ॥ ६६ ॥ दद्याच्चन्द्रोदयंयस्तु कृष्णोपरिनरेश्वर ॥ वसतेसोमलोकेतु यावत्तिष्ठतिद्वारका ॥ ६७ ॥ छत्रंबहुशलाकन्तु रुचिरंवस्त्रगुण्ठितम् ॥ दिव्यरत्नैश्चसंयुक्तं हेमचन्द्रसमन्वितम् ॥ ६८ ॥ यःप्रयच्छतिकृष्णाय छत्रलक्षायुतैर्वृतः ॥ प्रावृतस्त्वमरैःसर्वैः क्रीडतेपितृ

करता है ॥ ६४ ॥ व हे भूपते ! रुक्मिणीपति विष्णुजी के मंडप में जो फूलों की माला को देता है वह सब देवबगीचों में क्रीड़ा करता है ॥ ६५ ॥ और श्रीकृष्णदेवजी के मन्दिर में जो चित्रकर्म करता है वह तबतक शिवलोक में बसता है जबतक कि समुद्र रहते हैं ॥ ६६ ॥ हे नरेश्वर ! श्रीकृष्णजी के ऊपर जो चन्द्रोदय को देता है वह तबतक चन्द्रमा के लोक में बसता है जबतक कि द्वारकापुरी रहेगी ॥ ६७ ॥ और वस्त्र से सिलेहुए व दिव्य रत्नों से संयुत और सुवर्ण के चन्द्रमा से संयुत बहुत शलाकों से युक्त सुन्दर छत्र को जो कृष्णजी के लिये देता है वह लाखों छत्रों से संयुत तथा सब देवताओं से घिरा हुआ पितरों समेत क्रीड़ा

करता है ॥ ६८।६९ ॥ व हे नरनायक ! जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के लिये विमान देताहै कुबेर से सत्कार किया हुआ वह ब्रह्मा के दिन तक बसताहै ॥ ७० ॥ व हे राजन् ! कृष्णके सब पूजनादिक व आरतीको जो करताहै वह मनुष्य सात कल्पों तक श्रीकृष्णजी के लोक में बसताहै ॥ ७१ ॥ और जो मनुष्य शंख में जलको करके कृष्णजी के ऊपर घुमाता है वह कल्पान्त तक क्षीरसागर में विष्णुजी के समीप बसता है ॥ ७२ ॥ विष्णुजी के हज़ार नाम व अन्य स्तोत्र को पढ़ता हुआ मनुष्य ऐसा करके जो प्रदक्षिणा करता है ॥ ७३ ॥ वह सातद्वीपोंवाली पृथ्वी के पुण्य को पग २ पै प्राप्त होता है और जो दंडवत् नमस्कार करता है वह दश हज़ार अश्वमेधों के समान

भिस्समम् ॥ ६९ ॥ दद्यान्नरोविमानंयः कृष्णायनरनायक ॥ सत्कृतोधनदेनैव वसतेब्रह्मवासरम् ॥ ७० ॥ कृष्णपूजा दिकंसर्वं करोत्यारार्तिकंनृप ॥ कृष्णस्यवसतेलोके सप्तकल्पानिमानवः ॥ ७१ ॥ शङ्खेकृत्वातुपानीयं भ्रामितंकेशवो परि ॥ सन्निधौवसतेविष्णोः कल्पान्तंक्षीरसागरे ॥ ७२ ॥ एवंकृत्वातुकृष्णस्य यःकरोतिप्रदक्षिणम् ॥ पठन्नामसहस्रा णि स्तवमन्यत्पठन्नपि ॥ ७३ ॥ सप्तद्वीपवतीपुण्यं सलभेत्तु पदेपदे ॥ कुर्याद्दण्डनमस्कारमश्वमेधायुतैःसमम् ॥७४॥ कृष्णंसन्तोषयेद्यस्तु सुगीतैर्मधुरस्वरैः ॥ सामवेदफलंतस्य जायतेनात्रसंशयः ॥ ७५ ॥ योनृत्यतिप्रहृष्टात्मा भावैर्बहु सुभक्तितः ॥ सनिर्दहतिपापानि मन्वन्तरशतान्यपि ॥ ७६ ॥ ॥ कृष्णागतोमहाभक्त्या कुर्यात्स्वस्तिकवाचनम् ॥ प्रत्यक्षरंलभेत्पुण्यं कपिलाशतदानजम् ॥ ७७ ॥ ऋग्यजुःसामगीर्भिर्वा कृष्णंसन्तोषयन्तिये ॥ कल्पान्तंब्रह्मलोकेतु वसन्तिद्विजसत्तमाः ॥ ७८ ॥ योगशास्त्राणिवेदान्तान् योगिनःकृष्णसन्निधौ ॥ पठन्तिरविबिम्बन्तु भित्त्वायान्ति

फल को पाता है ॥ ७४ ॥ और मीठे स्वरवाले उत्तम गीतों से जो श्रीकृष्णजी को प्रसन्न करता है उसको सामवेद का फल होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७५ ॥ और प्रसन्न मनवाला जो मनुष्य भक्ति से कृष्णजी के आगे बहुत नाचता है वह सौ मन्वन्तरों के भी पातकों को नाश करता है ॥ ७६ ॥ और श्रीकृष्णजी के समीप आकर जो मनुष्य बड़ी भक्ति से स्वस्तिवाचन करता है वह प्रत्येक अक्षर में सौ कपिलादान से उपजे हुए फल को पाता है ॥ ७७ ॥ और जो ऋग्वेद व यजुर्वेद और सामवेद के वचनों से कृष्णजी को प्रसन्न करते हैं वे द्विजोत्तम कल्पान्त तक ब्रह्मलोक में बसते हैं ॥ ७८ ॥ और जो योगी लोग योगशास्त्रों व वेदान्तों को पढ़ते

हैं वे सूर्यबिम्बको फोड़कर विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ ७९ ॥ और गीता व सहस्रनाम, स्तवराज तथा अनुस्मृति व गजेन्द्रमोक्ष श्रीकृष्णजी को बहुत दुर्लभ हैं ॥ ८० ॥ और श्रीकृष्णजी के समीप जो श्रीमद्भागवत शास्त्र को पढ़ता है करोड़सौ पुश्तियों से संयुत वह योगियों समेत क्रीड़ा करता है ॥ ८१ ॥ व हे भूपाल ! व्यासजी से कहे हुए महाभारत व रामचरित्र तथा पुराणों को जो पढ़ाता है वह मुक्ति को प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८२ ॥ और द्वादशी दिन प्राप्त होने पर जो मनुष्य ऐसा करते हैं उनको विष्णुजी एक लक्ष गीतों के समान फल देतेहैं ॥ ८३ ॥ व हे राजन् ! जागरण में कोटि गुना फल होता है व प्रतिदिन मनुष्य

लयंहरेः ॥ ७९ ॥ गीतानामसहस्रन्तु स्तवराजस्त्वनुस्मृतिः ॥ गजेन्द्रमोक्षणं चापि कृष्णस्यातीवदुर्लभम् ॥ ८० ॥ श्रीमद्भा गवतंशास्त्रं यःपठेत्कृष्णसन्निधौ ॥ कुलकोटिशतैर्युक्तः क्रीडतेयोगिभिस्सह ॥ ८१ ॥ यःपठेद्रामचरितं भारतंव्यासभा षितम् ॥ पुराणानिमहीपाल प्राप्नोमुक्तिनसंशयः ॥ ८२ ॥ द्वादशीवासरेप्राप्ते एवंकुर्वन्तियेनराः ॥ गीतकैःशतसाहस्रैः पुण्यंयच्छतिकेशवः ॥ ८३ ॥ जागरेकोटिगुणितं पुण्यंभवतिभूमिप ॥ वसतांद्वारकांपुण्यं प्रत्यहंलभतेनरः ॥ ८४ ॥ गोमतीनीरपूतानां कृष्णवक्त्रावलोकिनाम् ॥ दर्शनात्पातकंयाति तेषांवर्षशतार्जितम् ॥ ८५ ॥ धन्यास्तेमानुषालोके गोमत्युदधिसंगमे ॥ तर्पयन्तिपितॄन्देवान्गत्वाद्वारावतींकलौ ॥ ८६ ॥ गङ्गाद्वारेप्रयागे च गयायांकुरुजाङ्गले ॥ पुष्क रे च प्रभासे च श्रीस्थलेशुक्लतीर्थके ॥ ८७ ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य फलमाप्नोतियत्नतः ॥ ८८ ॥ धन्याद्वारवतीलोके वहते यत्रगोमती ॥ स्वयम्भूस्तिष्ठतेयत्र नित्यंरुक्मिणिवल्लभः ॥ ८९ ॥ न स्नातागोमतीनीरे कलौपापेनमोहिताः ॥ भविष्य

द्वारकामें बसते हुए लोगों के फलको प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥ और गोमतीजलको पूजनेवाले व श्रीकृष्ण के मुख को देखनेवाले उन मनुष्योंके दर्शनसे सौ वर्षों में इकट्ठा कियाहुआ पाप नाश होजाता है ॥ ८५ ॥ संसार में वे मनुष्य धन्यहैं जो कि कलियुगमें द्वारकापुरीको जाकर पितरों व देवताओंको तर्पणकरते हैं ॥ ८६ ॥ और हरिद्वार, प्रयाग, गया व कुरुजांगल, पुष्कर और प्रभास तथा श्रीस्थल व शुक्लतीर्थ में ॥ ८७ ॥ मनुष्य यत्नसे हज़ार चान्द्रायणके फलको पाता है ॥ ८८ ॥ और जहां गोमती नदी बहती है वह द्वारका संसारमें धन्य है जहां कि रुक्मिणीजी के प्यारे व आपही से उपजेहुए श्रीकृष्णजी सदैव स्थिर रहते हैं ॥ ८९ ॥ व कलियुगमें पापसे मोहित जिन

मनुष्यों ने गोमतीजी के जल में स्नान नहीं किया है उनके पापरूपी बंधन का कैसे नाश होगा ॥ ९० ॥ हे नरोत्तम ! कलियुग में श्रीकृष्णजीने मनुष्योंके मनकी प्रीति को पैदा करनेवाली गोमतीजी को स्वर्ग की सीढ़ी बनाया है ॥ ९१ ॥ और गोमती के समान ऐसी स्वर्ग की सीढ़ी नहीं देख पड़ती है जो कि ध्यान करनेवाले मनुष्यों को सुखदायक तथा स्नानही करने से मोक्षदायक है ॥ ९२ ॥ जहां कि गोमतीजल से मिलाहुआ समुद्र जागताहै हे नरव्याघ्र ! वहां जाइये जहां कि श्रीकृष्णजी स्थित हैं ॥ ९३ ॥ व जहां पूजेहुए गोमती व समुद्र से निकलेहुए चक्रचिह्नित शिला मोक्षको देते हैं उस पुरीको कौन सेवन न करै ॥ ९४ ॥ हे राजन् ! जहां कलियुग में

तिकथंतेषां पापबन्धस्यसंक्षयः ॥ ९० ॥ निर्मितास्वर्गनिश्रेणिः कलौकृष्णेनगोमती ॥ मनःसंप्रीतिजननी जनानां नरसत्तम ॥ ९१ ॥ नेदृशंस्वर्गसोपानं दृश्यतेगोमतीसमम् ॥ सुखदंध्यायिनांपुंसां स्नानमात्रेणमोक्षदम् ॥ ९२ ॥ गोमतीनीरसंपृक्तो यत्रजागर्तिसागरः ॥ तत्रगच्छनरव्याघ्र कृष्णस्तिष्ठतियत्र वै ॥ ९३ ॥ यत्रचक्राङ्किताःशैलाः गोमत्युदधिनिस्सृताः ॥ यच्छन्तिपूजितामोक्षं तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ९४ ॥ यत्रचक्राङ्कितामृत्स्ना तिष्ठतेनिर्मलान्नृप ॥ कलौपापविनाशाय तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ९५ ॥ द्वारकायापुरीलोके दैत्यदानवरक्षसाम् ॥ शरणंदेवतादीनां तांपुरीं को न सेवयेत् ॥ ९६ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ शृणुराजेन्द्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ श्रुत्वायांमुच्यते नूनं दुःखसंसारबन्धनैः ॥ ९७ ॥ त्यजतेयांकलौनैव कृष्णोदेवकिनन्दनः ॥ कर्मणामनसावाचा तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ९८ ॥ अवन्तीविषयेपूर्वं ब्राह्मणोवेदपारगः ॥ चन्द्रशर्मेतिविख्यातः शिवभक्तःसदान्नृप ॥ ९९ ॥ सदाचारोद्विजश्रेष्ठो कुरुते न

चक्र से चिह्नित निर्मल मिट्टी पापोंके नाशने के लिये स्थितहै उस पुरीको कौन सेवन न करै ॥ ९५ ॥ संसारमें जो द्वारकापुरी दैत्य, दानव व देवतादिकों की शरण है उस पुरी को कौन सेवन न करै ॥ ९६ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! सुनिये मैं पातकों को नाश करनेवाली कथाको कहताहूं जिसको सुनकर मनुष्य निश्चयकर दुःख व संसारके बन्धनोंसे छूट जाता है ॥ ९७ ॥ कलियुग में देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी जिसको कर्म, मन व वचन से नहीं छोड़ते हैं उसपुरी को कौन सेवन न करै ॥ ९८ ॥ हे राजन् ! पुरातन समय अवन्ती देशमें सदैव शिवजीका भक्त चन्द्रशर्मा ऐसा प्रसिद्ध वेदोंका पारगामी ब्राह्मण रहता था ॥ ९९ ॥ हे राजन् ! वह उत्तम आचरणवाला

द्विजोत्तम ! चतुर्दशी के सिवा अन्य देव से उत्पन्न व्रतको नहीं करता था और न विष्णुजी का व्रत करता था ॥१००॥ व शिवजीके सिवा मन, कर्म, वचनसे अन्य देवता को ध्यान नहीं करता था व हे राजन्! शिवपूजन को छोड़कर अन्य पूजन नहीं करताथा ॥ १ ॥ और हरिवासर द्वादशी तिथि में न उपास करता था न व्रत करता था व हे राजन् ! चतुर्दशी के सिवा अन्यदेव से उत्पन्नहुए व्रतको नहीं करता था ॥ २ ॥ व हे नृपेन्द्र ! जहा जहां शिवक्षेत्र व शंकरजीका क्षेत्र था वहां वह जाता था विष्णुजी के क्षेत्र को नहीं जाता था ॥ ३ ॥ और प्रतिवर्ष में वह सोमनाथजी का दर्शन करता था व हे नरेश्वर ! सोमग्रहणको विशेषकर नहीं छोड़ता था ॥ ४ ॥ हे नृपेन्द्र ! इस

व्रतंहरेः ॥ विनाचतुर्दशींराजन्नान्यदेवसमुद्भवम् ॥ १०० ॥ मनसाकर्मणावाचा नान्यंध्यायेद्विनाशिवम् ॥ शिवपूजा मृतेनान्यं न करोतिनराधिप ॥१॥ नोपवासंहरिदिने कुरुते न व्रतंहरेः ॥ विनाचतुर्दशींराजन्नान्यदेवसमुद्भवम् ॥२॥ यत्र यत्रशिवक्षेत्रं यत्रतीर्थन्तुशाङ्करम् ॥ तत्रगच्छतिराजेन्द्र वैष्णवंगच्छते नहि ॥ ३ ॥ प्रतिवर्षं च कुरुते सोमनाथस्यदर्शनम् ॥ न जहातिविशेषेण सोमपर्वनरेश्वर ॥ ४ ॥ एवं च कुर्वतस्तस्य नववर्षाणिसप्ततिः ॥ गतानितस्यराजेन्द्र शिवभक्तिप्रकुर्वतः ॥ ५ ॥ सकदाचित्सोमपर्वणि गतःसोममनामयम् ॥ नानादेशान्महीपाल त्वसंख्याताश्च मानवाः ॥ ६ ॥ गताःकृष्णपुरेसर्वे द्रष्टुंसोमेश्वरंप्रभुम् ॥ आप्लुतास्तेचन्द्रशर्मा न गतोद्वारकांपुरीम् ॥ ७ ॥ वैशाखेद्वादशीशुक्ला दुर्लभाकृष्णसन्निधौ ॥ सम्बोधितोपिस्वजनैर्न गतोद्वारकांपुरीम् ॥ ८ ॥ नान्यदेवस्यविज्ञानमीश्वराद्देवनायकात् ॥ विना वै चन्द्रशर्माणं गतान्येद्वारकांपुरीम् ॥ ९ ॥ अन्यस्मिन्दिवसेराजन्प्रास्वपत्स्वगृहंप्रति ॥ चक्रस्तेदर्शनंस्वप्ने चन्द्रशर्मापि

प्रकार शिवभक्ति करतेहुए उसके उन्नासी वर्ष व्यतीत हुए ॥ ५ ॥ किसी समय चन्द्रमाके ग्रहणमें वह व्याधिरहित सोमेश्वरजीके समीप गया व हे भूपाल ! अनेक देशों से असंख्य मनुष्य ॥ ६ ॥ सब सोमेश्वर स्वामी को देखने के लिये कृष्णपुर (द्वारकापुरी) को गये व उन्हों ने स्नान किया परन्तु चन्द्रशर्मा द्वारकापुरी को नहीं गया ॥ ७ ॥ वैशाख महीने में शुक्लपक्ष की द्वादशी श्रीकृष्णजी के समीप दुर्लभ है इस प्रकार स्वजनों से समझाया हुआ भी वह द्वारकापुरीको न गया ॥ ८ ॥ क्योंकि उसको देवताओं के स्वामी शिवजीके सिवा अन्य देवता का ज्ञान नहीं था चन्द्रशर्मा के सिवा अन्य लोग द्वारकापुरीको गये ॥ ९ ॥ अन्य दिन प्राप्त होनेपर वह अपने

घरमें सोगया और उन चन्द्रशर्मा के पितरोंने स्वप्नमें दर्शनकिया ॥१०॥ जो कि बड़े शरीरवाले, प्रेतरूप तथा क्षुधासे दुर्बल व अत्यन्त भयानक और बड़ेभयंकर थे उन पितरों को उसने स्वप्न में देखा व डराहुआ यह कांपने लगा ॥११॥ चन्द्रशर्मा बोला कि बिगड़े आकारवाले व जंतुवों के भयदायक तुम लोग कौनहो पृथ्वीमें उपजेहुए ऐसे जीवों को मैंने न देखा है न सुनाहै ॥ १२ ॥ प्रेत बोले कि हे द्विजेन्द्र! डर मतकरो तुम्हारे पहले के पितरलोग हम सब बड़े दुःखसे पीड़ित होकर तुम्हारे समीप आये हैं ॥१३॥ चन्द्रशर्मा बोले कि मेरे पितर आपलोगोंने यज्ञ, दान व तप कियाहै तो आप लोगों के प्रेत होनेमें क्या कारणहै यह मुझको विस्मयहै ॥१४॥ प्रेत बोले कि

तामहाः॥ १० ॥ प्रेतरूपामहाकायाः क्षुत्क्षामातीवभीषणाः॥ दृष्ट्वास्वप्नेमहारौद्रान्भीतोसौ च प्रकम्पितः ॥ ११ ॥ चन्द्रशर्मोवाच॥ केयूयंविकृताकारा जन्तूनांचभयावहाः॥ पृथ्वीसमुद्भवाजीवा न दृष्टा न श्रुतामया ॥१२॥ प्रेता ऊचुः॥ माभयंकुरुविप्रेन्द्र तवपूर्वपितामहाः॥ आयातास्त्वत्समीपे तु महद्दुःखप्रपीडिताः ॥ १३ ॥ चन्द्रशर्मोवाच ॥ इष्टंदत्तं तपस्तप्तं भवद्भिर्मेपितामहैः॥ प्रेतत्वेकारणंकिंस्याद्भवतांविस्मयोमम ॥ १४ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ शृणुपुत्रप्रवक्ष्यामि प्रेत योनेस्तु कारणम् ॥ वासरंवासुदेवस्य सदाविद्धंकृतंपुरा॥१५॥ प्रेतत्वंतेनसम्प्राप्तमस्माभिःशृणुपुत्रक॥ विशेषेणकृतंरात्रौ विद्धंजागरणंहरेः॥ १६॥ पितरोनरकेघोरे पतिष्यन्ति न संशयः॥ त्वयासह न सन्देहो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ १७॥ यतस्त्वं च विशेषेण शिवभक्तिबलाश्रितः ॥ नकृताकेशवेभक्तिर्नकृतंवासरंहरेः ॥ १८ ॥ चन्द्रशर्मोवाच ॥सन्तोषितो महादेवो भक्त्यात्रिपुरनाशनः॥प्रदास्यतिगतिंनूनं प्रेतत्वंनाशयिष्यति॥१९॥प्रेता ऊचुः॥ हरिभक्तिविहीनानां द्वादशी

हे पुत्र! प्रेतयोनि के कारणको मैं कहता हूं उसको सुनिये कि पुरातन समय मैंने सदैव वेधित हरिवासर द्वादशी तिथिका व्रत कियाहै ॥ १५ ॥ हे पुत्र! सुनिये उसी से हमलोगोंको प्रेतता मिली है व वेधित विष्णुके वासर द्वादशी तिथिमें मैंने विशेषकर जागरण कियाहै ॥ १६ ॥ उससे तुम समेत पितर लोग निस्सन्देह भयंकरनरक में प्रलय पर्यन्त पड़ैंगे ॥ १७ ॥ क्योंकि तुम विशेषकर शिवभक्ति के बल के आश्रित हो और विष्णुजी में भक्ति नहीं कीगई व विष्णु का वासर द्वादशी व्रत नहीं किया गया ॥ १८ ॥ चन्द्रशर्मा बोला कि मैंने त्रिपुरविनाशक महादेवजी को भक्तिसे प्रसन्न किया है वे निश्चयकर गतिको देवैंगे व प्रेतत्वको नाश करैंगे ॥ १९ ॥ प्रेत बोले

कि विष्णुजीकी भक्ति से रहित व द्वादशी व्रतसे वर्जित पुरुषों की प्रेतता पूजेहुए शिवादिकों से नहीं नाश होती है ॥२०॥ हे पुत्र! द्वादशी के वेधसे उपजेहुए प्रायश्चित्त के विना निश्चयकर पाप नहीं जाता है व प्रेतता नहीं जाती है ॥ २१ ॥ हे पुत्र! शिवजीके पूजने पर भी केशवजी की पूजा के विना प्रायश्चित्त होताहै व गोवध पाप होता है ॥ २२ ॥ पहले विष्णुजी पूजने योग्य हैं पश्चात् शिवदेवजी पूजने योग्य हैं व जो अन्य देवता हैं वे भी बड़ी भक्ति से पूजनीय हैं ॥ २३ ॥ हे पुत्र! जड़ से बहुत सी शाखा व प्रशाखा होती है और यह चराचर संसार विष्णुजी से पैदा हुआ है ॥ २४ ॥ इस कारण जड़ को छोड़कर विद्वान् शाखाओं को न पूजै और त्रिलोक

व्रतवर्जिनाम् ॥ नाशं न यातिप्रेतत्वं पूजितैःशङ्करादिभिः ॥ २० ॥ प्रायश्चित्तंविनापुत्र द्वादशीवेधजंकृतम् ॥ पापघ्न ग च्छतेनूनं प्रेतत्वं नैव गच्छति ॥ २१ ॥ प्रायश्चित्तंसदापुत्र पूज्यमानेपिशङ्करे ॥ विनाकेशवपूजायाः पापंभवतिगोव धम् ॥ २२ ॥ प्रथमंकेशवःपूज्यः पश्चाद्देवोमहेश्वरः ॥ पूजनीयामहाभक्त्या येचान्येसन्तिदेवताः ॥ २३ ॥ मूला च्छाखाःप्रशाखाश्च भवन्तिबहुशःसुत ॥ वासुदेवात्समुद्भूतं जगदेतच्चराचरम् ॥ २४ ॥ तस्मान्मूलंपरित्यज्य शाखांने वार्चयेद्बुधः ॥ विशेषेणजगन्नाथं त्रैलोक्याधिपतिंहरिम् ॥ २५ ॥ तद्दिनंये न कुर्वन्ति सम्यग्दैवज्ञशोधितम् ॥ निःशल्यं तेनसन्देहः प्रेतत्वंयान्तिपुत्रक ॥ २६ ॥ न पूजारक्षतेरौद्री भास्करी न पितामही ॥ प्रेतत्वंयेप्रकुर्वन्ति सशल्यंवासरं हरेः ॥ २७ ॥ पूर्णमासीद्वयेप्राप्ते याशैवतिथिवर्जिता ॥ विशेषेणसुवैशाखी शूद्रादीनांप्रशस्यते ॥ २८ ॥ वैशाखेतुतृती यायांवै पूर्वविद्धांकरोतियः ॥ हव्यंदेवा न गृह्णन्ति तथैव च पितामहाः ॥ २९ ॥ यत्रदेवा न गृह्णन्ति कथंतत्रपितामहाः ॥

के स्वामी विष्णु भगवान् को छोड़कर विशेषकर अन्य देवता को न पूजै ॥ २५ ॥ हे पुत्र! भलीभांति ज्योतिषी से शोधे हुए वेधरहित उन विष्णुजी के दिन द्वादशी व्रत को जो नहीं करते हैं वे निस्सन्देह प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ वेधसहित हरिवासर को जो मनुष्य करते हैं उनके प्रेतता की शिवपूजा व सूर्यनारायण की पूजा रक्षा नहीं करती है ॥ २७ ॥ और दो पौर्णमासी प्राप्त होने पर जो चतुर्दशी तिथि से रहित होवै वह वैशाखी विशेषकर शूद्रादिकों को उत्तम है ॥ २८ ॥ जिसमें देवता हव्य को नहीं ग्रहण करते हैं और वैशाख में जो मनुष्य पूर्वविद्धा तीज को करता है उसकी हव्य को देवता व पितर नहीं ग्रहण करते हैं ॥ २९ ॥

उसमें पितामह कैसे ग्रहण करेंगे इस कारण विद्वानों को पूर्वविद्धा तृतीया न करना चाहिये ॥ ३० ॥ व हे पुत्र ! यदि मोह से मनुष्य उसको करता है तो सदैव प्रेतता होती है और वह बहुत तीर्थ सेवन करने से भी नहीं जाती है ॥ ३१ ॥ और पूर्वविद्धा द्वादशी व पौर्णमासी और माता, पिता के सांवत्सर दिनको करता हुआ मनुष्य नरक को जाता है ॥ ३२ ॥ और फिर क्षयाह में तत्कालव्यापिनी तिथि कहीगई है उसी में श्राद्ध करना चाहिये ह्रास व वृद्धि का कारण नहीं है ॥ ३३ ॥ और अमावस व पौर्णमासी साग्निक पुरुषों से पूर्वसंयुत करने योग्य है व अग्निहीन पुरुषों से नहीं करने योग्य है ऐसा मनु प्रजापति ने कहा है ॥ ३४ ॥

तस्मात्तृतीयाकार्या न पूर्वविद्धाबुधैरपि ॥ ३० ॥ कुरुतेयदिमोहाद्वा प्रेतत्वंशाश्वतंसुत ॥ नोपयातिकृतैःपुण्यैर्बहुभि स्तीर्थसेवितैः ॥ ३१ ॥ द्वादशीपूर्णमासी च पित्रोःसांवत्सरंदिनम् ॥ पूर्वविद्धंप्रकुर्वाणो नरकंप्रतिपद्यते ॥ ३२ ॥ क्षयाहे तु पुनःप्रोक्ता तत्कालव्यापिनीतिथिः ॥ श्राद्धंतत्रप्रकर्तव्यं ह्रासवृद्धेरकारणम् ॥ ३३ ॥ दर्शश्च पौर्णमासी च साग्निकैः पूर्वसंयुता ॥ कर्त्तव्यानाग्निहीनैस्तु मनुराहप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ एतैःप्रकारैःप्रेतत्वं भवतिप्राणिनांभुवि ॥ निरीक्ष्य धर्मशास्त्राणि कार्या वै विहितात्मना ॥ ३५ ॥ यथोक्तंमनुनापुत्र वेदान्तैर्भाष्यकारकैः ॥ तत्प्रमाणंप्रकर्तव्यं प्रेतत्वमन्य थाभवेत् ॥ ३६ ॥ प्रणम्यसोमनाथन्तु यात्रांकृत्वा न गच्छति ॥ कृष्णस्यदर्शनार्थाय तस्यकिंलभतेफलम् ॥ ३७ ॥ कथ्यतेपरमामूर्तिर्हरेरीश्वरसंज्ञिता ॥ विभेदोनात्रकर्तव्यो नान्तरंदृश्यतेक्वचित् ॥ ३८ ॥ यात्राश्रीरामनाथस्य प्रपूर्णाकृष्णदर्शनात् ॥ तस्मादुभयतःपुत्र गन्तव्यंनात्रसंशयः ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं गन्तव्यंद्वारकांपुरीम् ॥

इन भेदों से पृथ्वी में प्राणियों को प्रेतता होती है इस से धर्मशास्त्रों को देखकर बुद्धिमान् मनुष्य को करना चाहिये ॥ ३५ ॥ हे पुत्र ! जैसा मनु ने व भाष्यकारक तथा वेदान्तों से कहा गया है उसका प्रमाण करना चाहिये अन्यथा प्रेतता होती है ॥ ३६ ॥ जो यात्रा करके सोमनाथजी को प्रणामकर श्रीकृष्णजी के दर्शन के लिये नहीं जाता है उसको क्या फल मिलता है ॥ ३७ ॥ विष्णुजी की शिवसंज्ञक उत्तम मूर्त्ति कही जाती है इसमें भेद न करना चाहिये और कुछ अन्तर नहीं देखपड़ता है ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णजी के दर्शन से रामनाथ की यात्रा पूर्णहोती है उस कारण हे पुत्र ! दोनों ठिकाने जाना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३९ ॥ और सोमेश्वर देवजी

को देखकर द्वारकापुरी को जाना चाहिये प्रभासक्षेत्र में सोमनाथजी का लिंग बीच में स्थित है ॥ ४० ॥ व आपही विष्णुजी टिके हैं व भाग को ग्रहण करते हैं जो मनुष्य सोमेश्वर देवजी को देखकर द्वारका को नहीं जाता है ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! पितरों समेत वह भयंकर नरक में गिरता है व हे वत्स ! तुम ने विशेष कर द्वादशीव्रत नहीं किया है ॥ ४२ ॥ और जो हमलोगों ने व्रत किया है उसको वेधसंयुत किया है इस कारण हमलोगों का यमलोक से निकलना नहीं देख पड़ता है ॥ ४३ ॥ चन्द्रशर्मा बोले कि हे तात ! यदि मैंने अज्ञान से द्वादशीव्रत नहीं किया तो आपलोगों ने क्यों वेध समेत द्वादशीव्रत को किया ॥ ४४ ॥

प्रभासेसोमनाथस्य लिङ्गंमध्येऽव्यवस्थितम् ॥ ४० ॥ स्वयंतिष्ठतिपुण्यात्मा भागंगृह्णातिकेशवः ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं द्वारकांनैव गच्छति ॥ ४१ ॥ पतेत्सनरकेघोरे पितृभिस्सहितोनृप ॥ विशेषेणत्वयावत्स नकृतंद्वादशीव्रतम् ॥ ४२ ॥ व्रतंकृतंयदस्माभिस्तत्कृतंवेधसंयुतम् ॥ निर्गमोयमलोकाच्च तदस्माकंनदृश्यते ॥ ४३ ॥ चन्द्रशर्मोवाच ॥ यदि तातमयाज्ञानान्न कृतंद्वादशीव्रतम् ॥ कस्मात्कृतंसशल्यं च भवद्भिर्द्वादशीव्रतम् ॥ ४४ ॥ प्रेता ऊचुः ॥ कुविप्रैस्तु कुदैवज्ञैर्विष्णुमायाविमोहितैः ॥ सशल्यव्रतकर्तारो प्रेतयोनिमिमाङ्गताः ॥ ४५ ॥ दत्तंतप्तंहुतंजप्तमस्माकंविफलंकृतम् ॥ सम्प्राप्ताःप्रेतयोनिं तु सशल्याद्द्वादशीव्रतात् ॥ ४६ ॥ सविद्धंयेप्रकुर्वन्ति वासरंकेशवप्रियम् ॥ तेषांपितामहाःसर्वे प्रेतत्वंयान्तिपुत्रक ॥ ४७ ॥ मागयांमाप्रयागन्तु पुष्करेकुरुजाङ्गले ॥ नाम्बाहके च नावन्त्यां मथुरायां न चार्बुदे ॥ ४८ ॥ न चान्यतीर्थलक्षे तु वर्जयित्वा तु गोमतीम् ॥ गङ्गासारस्वतंनीरं नार्बुदं नैव पुत्रक ॥ ४९ ॥ प्रेतत्वंनाशमायाति त्वपि

प्रेत बोले कि विष्णुजी की माया से मोहित निन्दित ब्राह्मणों व निन्दित ज्योतिषियों से वेध समेत व्रत के करनेवाले हमलोग इस प्रेतयोनि को प्राप्त हुए हैं ॥ ४५ ॥ हमलोगों का कियाहुआ तप, हवन और जप निष्फल करदिया गया और वेध समेत द्वादशीव्रत से प्रेतयोनि को प्राप्त हुए हैं ॥ ४६ ॥ जो मनुष्य वेधसंयुत विष्णुप्रिय दिन को करते हैं हे पुत्र ! उनके सब पितरलोग प्रेतत्व को प्राप्त होते हैं ॥ ४७ ॥ गया को मत जावो व प्रयाग को मत जावो और पुष्कर व कुरुजांगल तीर्थ में मत जावो और न अम्बाहक, न अवन्ती, न मथुरा और न अर्बुदतीर्थ में जावो ॥ ४८ ॥ क्योंकि हे पुत्र ! गोमती व गंगासागर के जल को छोड़कर अन्य लाखों

तीर्थों में और अर्बुदतीर्थ में भी कलियुग में तुम्हारे पितरों की प्रेतता नाश न होगी और प्रेतत्व से रहित मनुष्यों को गोमतीजल के दान से ॥ ४९ ।५० ॥ व विना पिंड-दान से सनातनी मुक्ति होती है हे पुत्र ! श्रीकृष्णजी का मुख देखनेपर दशमी के वेध से उपजा हुआ ॥ ५१ ॥ पाप नाश होजाता है यदि फिर न करै गोमती के जल के स्पर्श से व श्रीकृष्ण का मुख देखने से ॥ ५२ ॥ करोड़ों सौ जन्मों के भी पाप नाश को प्राप्त होते हैं संन्यासियो व वनवासियों का पुण्य वृथा है ॥ ५३ ॥ यदि हे पुत्र ! शुद्ध नामक विष्णु का दिन द्वादशीव्रत किया जावै इस कारण पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रकाशमान श्रीकृष्णजी के मुख को देखो ॥ ५४ ॥ क्योंकि श्रीकृष्णजी की द्वारकापुरी को

तृणांकलौयुगे ॥ प्रेतत्ववर्जितानान्तु गोमतीनीरदानतः ॥ ५० ॥ विनापिण्डप्रदानाद्वा मुक्तिर्भवतिशाश्वती ॥ दृष्टेकृष्णमुखेपुत्र दशमीवेधसम्भवम् ॥ ५१ ॥ पापंप्रणाशमभ्येति पुनर्न कुरुते यदि ॥ गोमतीनीरसंपर्कात् कृष्णवक्त्रावलोकनात् ॥ ५२ ॥ विलययान्तिपापानि जन्मकोटिशतान्यपि ॥ वृथासंन्यासिनांपुण्यं वृथा च वनवासिनाम् ॥५३॥ शुद्धाख्यंवासरंविष्णोः क्रियतेयदिपुत्रक ॥ तस्मात्कृष्णमुखंपश्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् ॥ ५४ ॥ कृष्णस्यद्वारकांगत्वा ह्यस्माकं च गतिर्भवेत् ॥ विफलंतवसंजातं सुकृतंयदुपार्जितम् ॥ ५५ ॥ न कृतंवासरंविष्णोर्न कृतंकेशवार्चनम् ॥ यत्त्वयासर्वतीर्थेषु गत्वापुण्यमुपार्जितम् ॥ ५६ ॥ तत्सर्वमफलंजातं विनाकेशववासरात् ॥ विनाकेशवपूजायाः शङ्करोयत्त्वयार्चितः ॥ ५७ ॥ तत्पुण्यंविफलंजातं प्रेतयोनिंगमिष्यसि ॥ सम्पूर्णंतवपुण्यन्तु द्वारकांकृष्णदर्शनात् ॥ ५८ ॥ भविष्यति न सन्देहो गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं कृष्णंयदि न पश्यति ॥ ५९ ॥ यात्राफलं न चाप्नोति वदत्ये

जाकर हम सबों की गति होगी जो पुण्य इकट्ठा कियागया था तुम्हारा वह सब विफल होगया ॥ ५५ ॥ क्योंकि विष्णु का दिन (द्वादशीव्रत) नहीं कियागया व विष्णुपूजन नहीं कियागया है सब तीर्थों में जाकर तुमने जो पुण्य इकट्ठा किया ॥ ५६ ॥ विन विष्णुजी के दिन के वह सब निष्फल होगया और विन विष्णु की पूजा के तुमने जो शिवजी को पूजा है ॥ ५७ ॥ वह पुण्य विफल होगया और प्रेतयोनि को जावोगे और द्वारका में गोमती व समुद्र के संगम में श्रीकृष्णजी के दर्शन से तुम्हारा पुण्य संपूर्ण होगा इस में सन्देह नहीं है यदि सोमेश्वर देवजी को देखकर जो श्रीकृष्णजी को नहीं देखता है ॥ ५८।५९ ॥ वह यात्रा के फल को नहीं पाता

है ऐसा आपही शिवजी कहते हैं कि जिन्हों ने श्रीकृष्णजी को देखा है उन्हों ने निस्सन्देह मुझको देखा है ॥ ६० ॥ और जो श्रीकृष्णजी को देखकर मुझको देखै तो यात्रा बहुतही फलवती होती है व कृष्णजी के दर्शन से पवित्र चित्तवाला जो मनुष्य मुझको देखता है ॥ ६१ ॥ उसकी ब्रह्मलोक व विष्णुलोक से पुनरावृत्ति नहीं होती है पुरातनसमय आपही देवदेवेश सोमेश शिवजी ने यह कहा है ॥ ६२ ॥ व हे सुत ! पुष्करक्षेत्र में ऐसा कहतेहुए ब्राह्मणों से हम सबों ने सुना है और पापों के नाश के लिये जो श्रीकृष्णजी का दर्शन करता है ॥ ६३ ॥ वह दश हजार जन्मों में कियेहुए पातकों से छूटजाता है और देवकीसुत श्रीकृष्ण देवदेवेश के पूजने

वंस्वयंशिवः ॥ दृष्टोहन्तैर्नसन्देहो यैःकृतंकृष्णदर्शनम् ॥ ६० ॥ दृष्ट्वाकृष्णन्तुमांपश्येद्यात्रातीवमहाफला ॥ कृष्णदर्शनपूतात्मा योमांपश्यतिमानवः ॥ ६१ ॥ न तस्यपुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकाच्च वैष्णवात् ॥ इत्याहदेवदेवेशः स्वयंसोमपतिःपुरा ॥ ६२ ॥ विप्राणांश्रुतमस्माभिर्वदतांपुष्करेसुत ॥ यश्च पापप्रणाशार्थं कुरुतेकृष्णदर्शनम् ॥ ६३ ॥ मुच्यतेनात्र सन्देहो पापैर्जन्मायुतैःकृतैः ॥ पूजितेदेवदेवेशे कृष्णेदेवकिनन्दने ॥ ६४ ॥ पूजिताश्चैव कुर्वन्ति पुष्टिंपुत्रपितामहाः ॥ ततोद्वारवतींगत्वा कुरुकृष्णस्यदर्शनम् ॥ ६५ ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ता यास्यामःपरमांगतिम् ॥ गोमतीनीरधौतानि यस्याङ्गानिकलौयुगे ॥ ६६ ॥ न पुनर्योनिमाप्नोति दृष्टंमुनिभिरेवतत् ॥ ताडिताःपादयुग्मेन गोमतीनीरविप्रुषः ॥ ६७ ॥ अगतीनांप्रकुर्वन्ति सुगतिंब्रह्मवासरम् ॥ यःपुनःकुरुतेश्राद्धं गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ६८ ॥ पितृणांजायतेतृप्तिर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ सागरे च गयायां च सर्वतीर्थेषुयत्फलम् ॥ ६९ ॥ वासरेकेनतत्पुण्यं द्वारकांकृष्णसन्निधौ ॥ यत्फलंत्रिदशे

पर ॥ ६४ ॥ हे पुत्र ! पूजेहुए पितरलोग पुष्टि करते हैं इस कारण द्वारकापुरी को जाकर श्रीकृष्णजी का दर्शन करो ॥ ६५ ॥ तो प्रेतयोनि से छूटेहुए हमलोग उत्तम गति को प्राप्त होवैंगे कलियुग में जिसके अंग गोमतीजी के जल से धोयेगये हैं ॥ ६६ ॥ वह फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है उसको मुनियों ने देखा है और दोनों चरणों से ताड़ित गोमतीजी के जलबिन्दु ॥ ६७ ॥ अगति मनुष्यों की ब्रह्मदिन तक सुगति करते हैं और जो फिर गोमती व समुद्र के संगम के समीप श्राद्ध करता है ॥ ६८ ॥ उसके पितरों की कल्पपर्यन्त तृप्ति होती है और समुद्र व गया तथा सब तीर्थों में जो फल होता है ॥ ६९ ॥ वह पुण्य द्वारका में श्रीकृष्णजी के समीप एक दिन में होता है

सर्वतीर्थों में उपजेहुए देवताओं के देखने से जो फल होता है ॥ ७० ॥ वह सब पुण्य द्वारका में प्रतिदिन मिलता है करोड़ों हज़ार तीर्थों में श्राद्ध करने से जो फल होता है ॥ ७१ ॥ गोमतीजी के जल से तर्पण करने से वह फल पितरों को कहागया है और जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के समीप संन्यासियों को भोजन देता है ॥ ७२ ॥ उसके पितरों की युगपर्यन्त तृप्ति होती है और कौपीनाच्छादन, छत्र, खड़ाऊं व कमंडलु को ॥ ७३ ॥ संन्यासियों को देकर मनुष्य सात कल्पोंतक उन विष्णुजी के स्थान को जाते हैं वे मनुष्य धन्य हैं जोकि चांडाल आदिक ॥ ७४ ॥ द्वारकापुरी में गति को प्राप्त होते हैं जहां कि योगीलोग बसते हैं और जो मनुष्य नित्य श्रीकृष्णजी के मुख को

दृष्टैः सर्वतीर्थसमुद्भवैः ॥ ७० ॥ तत्फलंलभ्यतेसर्वं द्वारकायांदिनेदिने ॥ तीर्थकोटिसहस्रैस्तु कृतैःश्राद्धैस्तु यत्फलम् ॥ ७१ ॥ पितृणांतत्फलंप्रोक्तं गोमतीनीरतर्पणात् ॥ यतीनांभोजनेयस्तु यच्छतेकृष्णसन्निधौ ॥ ७२ ॥ तस्यचैव भवेत्प्रीतिः पितृणांयुगसंज्ञिका ॥ कौपीनाच्छादनंछत्रं पादुकां च कमण्डलुम् ॥ ७३ ॥ दत्त्वासंन्यासिनांयान्ति सप्त कल्पानितत्पदम् ॥ धन्यास्तेमानवाःपुत्र वसन्तिश्वपचादयः ॥ ७४ ॥ द्वारकायांगतिंयान्ति वसन्ते यत्र योगिनः ॥ त्रिकालंयेप्रपश्यन्ति मुखंकृष्णस्यनित्यशः ॥ ७५ ॥ न तेषांपुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ यानारीविधवाभूत्वा कुरुते द्वारकाश्रयम् ॥ ७६ ॥ कलौयुगसहस्रञ्च सायातिपरमंपदम् ॥ पुत्रेणापीहकिंकार्यं न गतोद्वारकांपुरीम् ॥ ७७ ॥ नारीपुत्रशताच्चैका धन्याकृष्णपुरींवसेत् ॥ कृष्णंकृष्णपुरींगत्वा योर्चयेत्तुलसीदलैः ॥ ७८ ॥ प्राप्तंजन्मफलंतेन तारिताःप्रपितामहाः ॥ तुलसीदलमालान्तु कृष्णोत्तीर्णान्तुयोवहेत् ॥ ७९ ॥ पत्रेपत्रेश्वमेधानां दशानांलभतेफलम् ॥ तुलसीकाष्ठस

त्रिकाल देखते हैं ॥ ७५ ॥ उनकी करोड़ों सौ कल्पों से भी पुनरावृत्ति नहीं होती है और विधवा होकर जो स्त्री कलियुग में द्वारकानिवास करती है वह हज़ार युगों तक उत्तम पद को प्राप्त होती है व जो द्वारकापुरी को नहीं गया है उसको इस संसारमें पुत्र से भी क्या कार्य है ॥ ७६ । ७७ ॥ जो स्त्री श्रीकृष्णजी की द्वारकापुरी में बसती है वह एक स्त्री सौ पुत्रों से भी धन्य है व श्रीकृष्णजी की द्वारकापुरी को जाकर जो श्रीकृष्णजी को तुलसीदलों से पूजता है ॥ ७८ ॥ उसने जन्म का फल पाया व पितरों को तारदिया और जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के ऊपर से उतारीहुई तुलसीदल की मालाको धारण करता है ॥ ७९ ॥ वह प्रत्येक पत्ते में दश अश्वमेधयज्ञों के फलको पाता

है और तुलसीजीके काठ से उपजाहुआ बहुत भूषण जिसके मस्तक में होता है उसके शरीर में विष्णुजी सदैव स्थित रहते हैं और तुलसी के काठ की मालासे भूषित जो मनुष्य पुण्य करता है ॥ ८० । ८१ ॥ कलियुग में उसने पितरों व देवताओं का कोटिगुना कर्म किया और तुलसी के काठ की माला को देखकर यमराज के दूत दूरही से भगजाते हैं जैसे कि पवन से उड़ायाहुआ पत्ता भगजाता है और जिसके घर में तुलसी का काठ होता है व सूखा या हरा तुलसी का पत्ता होता है ॥ ८२ । ८३ ॥ उसके घर में किसी कारण से पाप का संक्रमण नहीं होता है ब्रह्मवादियों से कहेहुए पुराण को हमलोगों ने सुना है ॥ ८४ ॥ इस कारण तुलसी के काठ की

म्भूतं मस्तकेबहुभूषणम् ॥ ८० ॥ भवतेयस्यमर्त्यस्य तद्देहस्थःसदाहरिः ॥ तुलसीकाष्ठमालाया भूषितःपुण्यमाचरेत् ॥ ८१ ॥ पितॄणांदेवतानां च कृतंकोटिगुणंकलौ ॥ तुलसीकाष्ठमालान्तु यमराजस्यदूतकाः ॥ ८२ ॥ दृष्ट्वानश्यन्तिदूरेण वातोद्धूतंयथादलम् ॥ यद्गृहेतुलसीकाष्ठं पत्रंशुष्कमथार्द्रकम् ॥ ८३ ॥ भवतेतद्गृहे नैव पापसंक्रमणंकुतः ॥ श्रुतंपुराणमस्माभिः कथितंब्रह्मवादिभिः ॥ ८४ ॥ तस्मान्मालात्वयाधार्या तुलसीकाष्ठसम्भवा ॥ हरते नात्र सन्देहो ह्यैहिकामुष्मिकंभयम् ॥ ८५ ॥ भवतेयस्यहृदये भक्तिःकृष्णेसुनिश्चला ॥ तुलसीकाष्ठमालाया भूषितोभ्रमतोयदि ॥ ८६ ॥ दुःस्वप्नंदुर्निमित्तं च नभयंशात्रवंकचित् ॥ कृत्वा वै तीर्थसंन्यासं यतिर्वैश्योथवा स्त्रियः ॥ ८७ ॥ जीवन्मुक्तःकलौज्ञेयः कुलकोटिसमन्वितः ॥ धारयन्तिजनामालां न तु येपापमोहिताः ॥ ८८ ॥ नरकान्न निवर्तन्ते दग्धाःपापाग्निना हि ते ॥ उन्मीलिनी च शयनी त्रिःस्पृशापक्षवर्द्धिनी ॥ ८९ ॥ त्वयापुत्रप्रकर्त्तव्या जयन्तीविजयाजया ॥ पा

माला तुमको धारण करना चाहिये जिसके हृदय में श्रीकृष्णजी में अचल भक्ति होती है वह इस लोक व परलोक के भय को हरती है इसमें सन्देह नहीं है और तुलसी के काठ की माला से भूषित यदि मनुष्य भ्रमता है ॥ ८५ । ८६ ॥ तो दुःस्वप्न, दुःशकुन और शत्रुवों का भय कहीं नहीं होता है तीर्थसंन्यास करके स्त्री, संन्यासी व वैश्य भी ॥ ८७ ॥ कलियुग में करोड पुश्तियों से संयुत जीवन्मुक्त जानने योग्य है और पाप से मोहित जो मनुष्य तुलसी की माला को नहीं धारण करते हैं ॥ ८८ ॥ पाप की अग्नि से जलेहुए वे नरकसे नहीं निवृत्त होते हैं बोधिनी, शयनी, त्रिःस्पृशा व पक्षवर्द्धिनी एकादशी ॥ ८९ ॥ करना चाहिये व हे पुत्र ! जयन्ती, विजया और

जयानामक कृष्णजी को बहुतही प्यारी व पापनाशिनी अष्टमी तुमको करना चाहिये ॥ ९० ॥ हे पुत्र ! कलियुग में द्वारका पुत्रदायिनी कीगई है ॥ १९१ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायात्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥

दो० । तास्यो निजपितरन यथा चन्द्रशर्म द्विजनाथ । चौबिसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे राजन् ! प्रेतरूपी पितरों के वचन को सुन कर द्विजोत्तम चन्द्रशर्मा द्वारकापुरी को आया ॥ १ ॥ जहां प्रतिदिन रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी स्थित रहते हैं व जहां तीर्थ स्थित हैं वहां चन्द्रशर्मा द्विजोत्तम गया ॥ २ ॥

पद्मी चाष्टमीप्रोक्ता कृष्णस्यातीववल्लभा ॥ ९० ॥ कृताकलौयुगेपुत्र द्वारकापुत्रदायिनी ॥ १९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे द्वारकामाहात्म्येत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ पितॄणांप्रेतरूपाणां श्रुत्वावाक्यंमहीपते ॥ चन्द्रशर्माद्विजश्रेष्ठो द्वारकांसमुपागतः ॥ १ ॥ रुक्मिणीसहितःकृष्णो यत्रातिष्ठतिप्रत्यहम् ॥ यत्र तिष्ठन्तितीर्थानि तत्र यातोद्विजोत्तमः ॥ २ ॥ यत्र तिष्ठन्तियज्ञाश्च यत्र तिष्ठन्तिदेवताः ॥ यत्र तिष्ठन्तिऋषयो मुनयोयोगवित्तमाः ॥ ३ ॥ यापुरीसिद्धगन्धर्वैः सेव्यतेकिन्नरैःसदा ॥ अप्सरोगणगन्धर्वैर्द्वारकासर्वकामदा ॥ ४ ॥ स्वर्गारोहणनिःश्रेणी वहते यत्र गोमती ॥ सापुरीमोक्षदानृणां दृष्टाविप्रवरेणहि ॥ ५ ॥ यस्याःसीमाप्रविष्टस्य ब्रह्महत्यादिपातकाः ॥ नश्यन्तिदर्शनादेव तांपुरींको न सेवयेत् ॥ ६ ॥ गोमतीसहितोनित्यं क्रीडते यत्र सागरः ॥ चन्द्रशर्मागतस्तत्र कृष्णस्तिष्ठति यत्र वै ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाद्वारावतींपुण्यां मुदंप्राप्तोद्विजोत्तमः ॥

और जहां यज्ञ टिकते हैं व जहां देवता स्थित होते हैं व योग के जाननेवालों में श्रेष्ठ ऋषि व मुनिलोग जहां स्थित रहते हैं ॥ ३ ॥ व जिस पुरी को सदैव सिद्ध, गंधर्व व किन्नर सेवते हैं व जिसको अप्सराओं के गण तथा गंधर्व सेवन करते हैं वह द्वारकापुरी सब मनोरथों को देनेवाली है ॥ ४ ॥ और जहां गोमती बहती है वह स्वर्ग को चढ़ने की सीढ़ी है मनुष्यों को मोक्ष देनेवाली उस पुरी को द्विजोत्तम चन्द्रशर्मा ने देखा ॥ ५ ॥ और जिसकी हद में पैठेहुए पुरुष के ब्रह्महत्यादिक पाप दर्शनही से नाश होजाते हैं उस पुरी को कौन नहीं सेवता है ॥ ६ ॥ जहा गोमती समेत समुद्र सदैव क्रीड़ा करता है वहां चन्द्रशर्मा गया जहां कि श्रीकृष्णजी टिकेरहते हैं ॥ ७ ॥ और पवित्र

द्वारकापुरी को देखकर द्विजोत्तम चन्द्रशर्मा आनन्द को प्राप्तहुआ और श्रीकृष्णाजी की पुरी द्वारका, गोमती और समुद्र को प्रणामकर ॥ ८ ॥ उस ब्राह्मण ने अपना को और जीवन, यौवन व धन को कृतार्थ माना कि श्रीकृष्णाजी की सुन्दरीपुरी व कमल के समान मुख को देखकर ॥ ९ ॥ पृथ्वी में मैं धन्य व कृतार्थ और भाग्यवान् हूं मैंने श्रीकृष्णाजी के पवित्र मुख को व रुक्मिणी और द्वारकापुरी को देखा ॥ १० ॥ तो करोड़ों हज़ार तीर्थों के सेवन से क्या प्रयोजन है मैंने लाखों व हज़ारों पुण्यों से द्वारकापुरी को पाया ॥ ११ ॥ और वैशाख में करोड़ों पापोंको नाश करनेवाली शुक्लपक्ष की त्रिस्पृशा नामक मधुसूदनी द्वादशी को मैंने पाया ॥ १२ ॥

नत्वाकृष्णपुरीं चैव गोमतीं चैव सागरम् ॥ ८ ॥ मेनेकृतार्थमात्मानं जीवितंयौवनंधनम् ॥ दृष्ट्वाकृष्णपुरींरम्यां कृष्णस्यमुखपङ्कजम् ॥ ९ ॥ धन्योहंकृतकृत्योस्मि सभाग्योहंधरातले ॥ दृष्टंकृष्णमुखंपुण्यं रुक्मिणीद्वारकापुरी ॥ १० ॥ तीर्थकोटिसहस्त्रैस्तु सेवितैःकिंप्रयोजनम् ॥ पुण्यलक्षसहस्त्रैस्तु प्राप्ताद्वारावतीमया ॥ ११ ॥ शुक्लावैशाखमासे तु सम्प्राप्तामधुसूदनी ॥ द्वादशीत्रिस्पृशानाम पापकोटिक्षयावहा ॥ १२ ॥ धन्याःसर्वेमनुष्यास्ते वैशाखेमधुसूदनी ॥ सम्प्राप्तात्रिस्पृशायैस्तु बुधवारेणसंयुता ॥ १३ ॥ न यज्ञैर्दानलक्षैस्तु न वेदैस्तीर्थसेवनैः ॥ प्राप्यतेतत्फलं नैव यादृशोद्वारकांनृणाम् ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वाद्विजश्रेष्ठो गोमतीतटमाश्रितः ॥ अपःस्पृश्ययथान्यायं शास्त्रदृष्टेनकर्मणा ॥ १५ ॥ कृत्वास्नानंयथोक्तन्तु सन्तर्प्यपितृदेवताः ॥ चक्रतीर्थंसमासाद्य शिलाश्चक्राङ्किताःशुभाः ॥ १६ ॥ पूजिताःपुरुषसूक्तैर्यथोक्तविधिनाहरेः ॥ शिवपूजाकृतापश्चात्पितृवाक्यमनुस्मरन् ॥ १७ ॥ दत्त्वापिण्डोदकंसम्यक् पितॄणांविधिपूर्वकम् ॥

और वे सब मनुष्य धन्य हैं कि जिन्हों ने वैशाख में बुधवार से संयुत त्रिस्पृशानामक मधुसूदनी-द्वादशी को पाया है ॥ १३ ॥ मनुष्यों को द्वारका में जैसा फल मिलताहै वह यज्ञों से और लाखों दानों व वेदों व तीर्थसेवनों से नहीं मिलता है ॥ १४ ॥ ऐसा कहकर द्विजोत्तम चन्द्रशर्मा गोमती के किनारे आश्रित हुआ और विधिपूर्वक शास्त्र में देखेहुए कर्म से जल को स्पर्श कर ॥ १५ ॥ यथोक्त स्नानकर पितरों व देवताओं को भलीभाति तर्पणकर चक्रतीर्थ को जाकर चक्र से चिह्नित उत्तम शिला ॥ १६ ॥ यथोक्त विधि से विष्णुजी के पुरुषसूक्तों से पूजेगये और पश्चात् शिवजीका पूजन किया गया और पितरों का वचन स्मरण करते हुए उसने ॥ १७ ॥ भलीभाति विधि-

पूर्वक पितरों को पिंड व जल को देकर हे राजन् ! विधि से श्रीकृष्णजी को दुग्धादि स्नान कराकर ॥ १८ ॥ लेपन, वस्त्र, पूजन व धूप समेत दीप को देकर नवान्न, कन्द, मूल व फलों की नैवेद्य दिया ॥ १९ ॥ और तांबूल को देकर कपूर समेत नीराजनादिक कर वार २ स्तुतिपूर्वक प्रदक्षिणा व नमस्कार किया ॥ २० ॥ फिर देवेश विष्णुजी से क्षमापन कराकर जागरण किया और तीन पहर बीतने पर चन्द्रशर्मा ने कहा ॥ २१ ॥ कि हे कृष्णजी ! मुझ आतुर व दीन के वचन को सुनिये क्योंकि संसाररूपी समुद्र में मग्न पुरुषों के एक तुम्हीं रक्षक हो ॥ २२ ॥ और तुम्हारे चरणकमलों में स्नेह करनेवाले पापियों को भी दुःख नहीं होता है फिर

कृत्वाकृष्णस्यविधिना क्षीरादिस्नपनंनृप ॥ १८ ॥ विलेपनं च वस्त्राणि पूजांदीपंसधूपकम् ॥ नैवेद्यानिनवान्नानि कन्दमूलफलानि च ॥ १९ ॥ ताम्बूलञ्च सकर्पूरं कृत्वानीराजनादिकम् ॥ प्रदक्षिणानमस्कारं स्तुतिपूर्वंपुनःपुनः ॥ २० ॥ क्षमापयित्वादेवेशं चक्रेजागरणंपुनः ॥ यामत्रयेऽव्यतीते तु चन्द्रशर्माप्युवाच ह ॥ २१ ॥ आतुरस्य च दीनस्य शृणुकृष्णवचोमम ॥ संसारार्णवमग्नानां त्वमेकःशरणंनृणाम् ॥ २२ ॥ त्वत्पादाम्बुजरक्तानां न दुःखंपापिनामपि ॥ किंपुनःपापहीनानां द्वादशीसेविनांनृणाम् ॥ २३ ॥ दशमीवेधजंपापं तद्दिनेममपूर्वजैः ॥ यत्कृतंनाशमायाति त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ २४ ॥ संविद्धंतद्दिनंकृष्ण यत्कृतंजागरंप्रभो ॥ तत्पापंविलयंयाति लवणन्तु यथाम्भसि ॥ २५ ॥ संविद्धंवासरंयस्मात्कृतंममपितामहैः ॥ प्रेतत्वंतेनसम्प्राप्तं महादुःखप्रदायकम् ॥ २६ ॥ यथाप्रेतत्वनिर्मुक्ता ममपूर्वपितामहाः ॥ मुक्तिंप्रयान्तिदेवेश तथाकुरुजगत्पते ॥ २७ ॥ पुनरेवयदुश्रेष्ठ प्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ अविद्यामोहितेनापि न कृतंतवपूज

पाप से रहित द्वादशी को सेवनेवाले पुरुषों को क्या कहना है ॥ २३ ॥ और मेरे पितरों ने दशमीवेध से उपजेहुए जिस पाप को उस दिन किया हो हे जनार्दनजी ! वह तुम्हारी प्रसन्नता से नाश होजावै ॥ २४ ॥ हे प्रभो, श्रीकृष्णजी ! उस वेधित दिन में मेरे पितामहों ने जो पाप किया है वह पाप वैसेही नाशहोजावै जैसे कि जल में नमक नाश होजाता है ॥ २५ ॥ जिसलिये मेरे पितामहों ने वेधित दिन किया है उसी से महादुःखों को देनेवाला प्रेतत्व मिला है ॥ २६ ॥ हे देवेश ! जिस प्रकार प्रेतता से छूटेहुए मेरे पहले के पितामह लोग मुक्ति को प्राप्त होवैं हे जगदीशजी ! वैसाही कीजिये ॥ २७ ॥ हे यदूत्तम ! फिर भी तुम प्रसन्नता करने के योग्य हो

क्योंकि हे देवेश ! अज्ञान से मोहित मुझ पापी ने तुम्हारा पूजन नहीं किया बरन शिवभक्ति का आश्रय किया और तुम्हारी भक्ति नहीं किया व तुम्हारा वासर याने द्वादशीव्रत नहीं किया ॥ २८ । २९ ॥ हे कृष्णजी ! मैंने द्वारकापुरी को नहीं देखा व गोमती में नहीं नहाया है व मोक्ष को देनेवाले तुम्हारे चरणकमल को नहीं देखा ॥ ३० ॥ व सोमेश्वर स्वामीजी को देखकर द्वारका की यात्रा नहीं किया और मैंने जो इकट्ठा किया है वह कियाहुआ विफल होगया ॥ ३१ ॥ व हे सुरेश्वर ! मेरे पूर्वज पितरों ने जो इस सब को किया है हे सुरेश्वर ! तुम्हारी प्रसन्नता से वह पुण्य वृथा मत होवै ॥ ३२ ॥ हे देवकीपुत्र ! तुम्हारा मुख देखनेपर त्रिलोक में कुछ

नम् ॥ २८ ॥ मयापापेनदेवेश शिवभक्तिःसमाश्रिता ॥ तवभक्तिःकृता नैव न कृतंतववासरम् ॥ २९ ॥ न दृष्टाद्वारकाकृष्ण न स्नातागोमतीमया ॥ न दृष्टंपादपद्मञ्च त्वदीयंमोक्षदायकम् ॥ ३० ॥ न कृताद्वारकायात्रा दृष्ट्वासोमेश्वरंप्रभुम् ॥ विफलंतत्कृतंयातं यन्मयासमुपार्जितम् ॥ ३१ ॥ मत्पूर्वजैःकृतंयच्च सर्वमेतत्सुरेश्वर ॥ तत्पुण्यंमावृथायातु प्रसादात्तवकेशव ॥ ३२ ॥ दृष्टे तु तववक्त्रेतु दुर्लभंभुवनत्रये ॥ नैवास्तिदेवकीपुत्र पुराणेषुश्रुतंमया ॥ ३३ ॥ सापराधास्तु येकेचिच्छिशुपालादयःस्मृताः ॥ त्वत्करेणाहताःकोपान्मुक्तिंप्राप्तामहीधराः ॥ ३४ ॥ अद्यप्रभृतिकर्तव्यं प्रत्यहंपूजनंतव ॥ पलार्द्धेनापि विद्धंस्यात्त्यक्तव्यंवासरंतव ॥ ३५ ॥ त्वत्प्रियासौमयाकार्या द्वादशीरुद्रसंयुता ॥ भक्तिर्भागवतीकार्या प्राणैरपिधनैरपि ॥ ३६ ॥ नित्यंनामसहस्रन्तु पठनीयंतवप्रियम् ॥ पूजातुलसिपत्रैस्तु मयाकार्यासदैव हि ॥ ३७ ॥ तुलसीकाष्ठसम्भूतचन्दनेनविलेपनम् ॥ करिष्यामितवाग्रे तु गुणानांतवकीर्तनम् ॥ ३८ ॥ द्वारकायांप्रकर्त्तव्यं प्रत्य

दुर्लभ नहीं होता है यह मैंने पुराणों में सुना है ॥ ३३ ॥ और जो कोई शिशुपालादिक अपराध समेत कहेगये हैं क्रोध से तुम्हारे हाथ से मारेहुए वे राजा मुक्ति को प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ आज से लगाकर प्रतिदिन तुम्हारा पूजन करना चाहिये व आधे पल से भी वेधित तुम्हारे दिन को छोड़ना चाहिये ॥ ३५ ॥ व एकादशी से संयुत इस द्वादशी तिथि को मैं करूंगा व प्राणों और धनों से भी आप की भक्ति करना चाहिये ॥ ३६ ॥ और तुम्हारे प्यारे हज़ार नामों को नित्य पढ़ना चाहिये व सदैव मुझ को तुलसीदलों से पूजन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ और तुलसी के काष्ठ से उपजेहुए चंदन से मैं तुम्हारे लेपन करूंगा व तुम्हारे आगे तुम्हारे गुणों का कीर्तन करूंगा ॥ ३८ ॥

व प्रतिदिन मैं द्वारकापुरी में गमन करूंगा व तुम्हारी कथा को श्रवण करूंगा और नित्य पुस्तक पढूंगा ॥ ३९ ॥ व उत्तम भक्तिसे मैं सदैव मस्तक से तुम्हारे चरणोदक को धारण करूंगा व व्रतको ग्रहण कियेहुए मैं नैवेद्य को भक्षण करूंगा ॥ ४० ॥ व मैं तुम्हारे निर्माल्य को आदर समेत मस्तक से धारण करूंगा व जिस प्रकार तुम्हारी प्रसन्नता होगी वैसाही मैं करूंगा हे श्रीकृष्णजी ! मैंने तुम्हारे आगे यह सत्य कहा ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे महाभाग, द्विजोत्तम, चन्द्रशर्मन् ! बहुत अच्छा बहुत अच्छा मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं तुम्हारा मनोरथ होवैगा ॥४२॥ हे द्विजोत्तम ! नित्य तुम्हारे कहेहुए नियमों से मैं प्रसन्न हूं और तुम समेत पितामह

क्षंगमनंमया ॥ त्वत्कथाश्रवणंकार्यं नित्यंपुस्तकवाचनम् ॥ ३९ ॥ नित्यंपादोदकंमूर्द्ना मयाधार्यंसुभक्तितः ॥ नैवेद्यभक्षणंकार्य्यं करिष्यामियतव्रतः ॥ ४० ॥ निर्माल्यंशिरसाधार्यं त्वदीयंसादरंमया ॥ तथातथाप्रकर्तव्यं तवतुष्टिःप्रजायते ॥ सत्यमेतन्मयाकृष्ण तवाग्रेपरिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधुसाधुमहाभाग चन्द्रशर्मन्द्विजोत्तम ॥ तुष्टोहंतवभक्त्या च वाञ्छितंतेभविष्यति ॥ ४२ ॥ तवोक्तैर्नियमैर्नित्यं सन्तुष्टोहंद्विजोत्तम ॥ आगमिष्यन्तिमल्लोके त्वयासहपितामहाः ॥ ४३ ॥ पितामहा ऊचुः ॥ त्वत्प्रसादेनसत्पुत्र मुक्तिप्राप्तानसंशयः ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ताः कृष्णवक्त्रावलोकनात् ॥ ४४ ॥ गोमतीनीरदानेन पिण्डदानेनपुत्रक ॥ प्रेतयोनिविनिर्मुक्ता यास्यामःपरमांगतिम् ॥ ४५ ॥ तेधन्यामानुषालोके पुत्रपौत्रप्रपौत्रक ॥ दृष्ट्वाश्रीसोमनाथन्तु पश्येयुर्द्वारकांहरिम् ॥ ४६ ॥ धन्यासाविधवानारी कृष्णयात्रांकरोतिया ॥ विनाध्यानेनलोकेस्मिन् कुलानांतारयेच्छतम् ॥ ४७ ॥ श्वपचोपिकरोत्येवं

लोग मेरे लोक में आवैंगे ॥ ४३ ॥ पितामह लोग बोले कि हे सत्पुत्र ! तुम्हारी प्रसन्नता से हमलोग निस्सन्देह मुक्ति को प्राप्तहुए और श्रीकृष्णजी का मुख देखने से प्रेतयोनि से छूटगये ॥ ४४ ॥ व हे पुत्र ! गोमती का जल देने से व पिण्ड देने से प्रेतयोनि से छूटेहुए हमलोग उत्तम गति को प्राप्तहोंगे ॥ ४५ ॥ हे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र ! संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जोकि श्रीसोमनाथजी को देखकर द्वारका में श्रीकृष्णजी को देखते हैं ॥ ४६ ॥ और जो श्रीकृष्णजी की यात्रा करती है वह विधवा स्त्री धन्य है क्योंकि विना ध्यान के वह सौ पुश्तियों को तारती है ॥ ४७ ॥ इस प्रकार जो चाण्डाल भी विष्णु व शिवजी की यात्रा करता है पितरों से घिराहुआ वह उत्तम मुक्ति

को प्राप्त होता है ॥ ४८ ॥ फिर जो तीर्थयात्रा करके वहां टिकता है करोड़ों सौ कल्पोंतक उसकी विष्णुलोक में स्थिति होती है ॥ ४९ ॥ और जो सोमेश्वर स्वामी को नहीं देखते हैं वे वंचित होगये व जो सोमेश्वरजी को देखकर द्वारका में नहीं टिकता है वह वंचित है ॥ ५० ॥ व सोमेश्वर देवजी देखकर को जिन्होंने गोमती के जल में स्नान किया उनको करोड़ों तीर्थों से उपजेहुए बहुत पवित्र जलों से क्या है ॥ ५१ ॥ और सोमेश्वर स्वामी को देखकर जिन्होंने गोमती के जल में स्नान नहीं किया व सोमेश्वरजी को देखकर जो द्वारका में नहीं स्थित होता है ॥ ५२ ॥ उसके पापी पुत्र व कुल को धिक्कार है और पितर नरक में स्थित होते हैं व सोमेश्वर देवजी

योयात्रांहरिशाङ्करीम् ॥ सयातिपरमांमुक्तिं पितृभिःपरिवारितः ॥ ४८ ॥ यःपुनस्तीर्थयात्रां च कृत्वातिष्ठति तत्र वै ॥ विष्णुलोकेस्थितिस्तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४९ ॥ वञ्चितास्ते न पश्यन्ति ये वै सोमेश्वरंप्रभुम् ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरं यस्तु द्वारकां नैव तिष्ठति ॥ ५० ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं येस्नातागोमतीजले ॥ किंजलैर्बहुभिःपुण्यैस्तीर्थकोटिसमुद्भवैः ॥ ५१ ॥ न स्नातागोमतीनीरे दृष्ट्वासोमेश्वरंप्रभुम् ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंयस्तु द्वारकां नैव तिष्ठति ॥ ५२ ॥ धिक्सुतञ्च कुलंपापं पितरोनरकेस्थिताः ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं कृष्णंदृष्ट्वापुनःशिवम् ॥ यःपश्येत्कथितंपुण्यं यात्राशतसमुद्भवम् ॥ ५३ ॥ दृष्ट्वासोमेश्वरंदेवं यःकृष्णं चैव पश्यति ॥ प्रभासक्षेत्रसंज्ञे तु फलमाप्नोतिमानवः ॥ ५४ ॥ यस्मात्सर्वाणितीर्थानि सर्वेदेवास्तथामखाः ॥ द्वारकायांसमायान्ति त्रिकालंकृष्णसन्निधौ ॥ ५५ ॥ तीर्थैर्नानाविधैःपुत्र समायान्ति च तत्र हि ॥ फलंसमग्रतीर्थानां दृष्ट्वाद्वारावतींलभेत् ॥ ५६ ॥ हतेकंसेजरासन्धे नरके च निपातिते ॥ उत्ता

को देखकर फिर श्रीकृष्णजी को देखकर जो शिवजी को देखता है उसको सौ यात्राओं से उपजा हुआ पुण्य कहागया है ॥ ५३ ॥ और सोमेश्वर देवजी को देखकर जो श्रीकृष्णजी को देखता है वह मनुष्य प्रभासक्षेत्रसंज्ञक में फल को पाता है ॥ ५४ ॥ जिसलिये सब तीर्थ व सब देवता और यज्ञ श्रीकृष्णजी के समीप त्रिकाल द्वारकापुरी में आते हैं ॥ ५५ ॥ व हे पुत्र ! वे अनेक भाति के तीर्थों समेत वहा आते हैं इसलिये द्वारकापुरी को देखकर मनुष्य सब तीर्थों के फल को पाता है ॥ ५६ ॥ कंस व

जरासंध के मारनेपर व नरकासुर के मारनेपर जब देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी ने पृथ्वी का भार उतारा तब ॥ ५७ ॥ उन्हों ने समुद्र के समीप सुन्दरीपुरी को बनाया व स्त्रियों के सुख को चाहनेवाले प्रसन्नमनवाले श्रीकृष्णजी स्थितहुए ॥ ५८ ॥ और ब्रह्मा, शिव, सूर्य व इन्द्रादिक देवता और मनुष्य, ब्राह्मण, राजा व पातालसे नागराज ॥५९॥ और नदियां, नद, पर्वत, वन व उपवन, पुरी तथा सुन्दर गाव, समुद्र और तड़ाग ॥६०॥ व यक्ष, गण, गन्धर्व, सिद्ध और विद्याधर तथा रंभादिक अप्सरा व प्रह्लादादिक दिति के पुत्र ॥ ६१ ॥ और विभीषणादिक राक्षस व यक्षपति कुबेर, ऋषि, मुनि, सिद्ध और सनकादिक योगी ॥ ६२ ॥ तथा ग्रह, नक्षत्र, योग व उत्तम

रितेभुवोभारे कृष्णेदेवकिनन्दने ॥ ५७ ॥ चकारद्वारकांरम्यां सन्निधौसागरस्य च ॥ स्थितःप्रीतमनाःकृष्णो लिप्सितःकामिनीसुखम् ॥ ५८ ॥ ब्रह्माशिवश्च सूर्यश्च वासवाद्यादिवौकसः ॥ मर्त्याविप्राश्च राजानः पातालात्पन्नगेश्वराः॥५९॥ नद्योनदाश्च शैलाश्च वनान्युपवनानि च ॥ पुर्योग्रामाणिरम्याणि सागरांश्च सरांसि च ॥६०॥ यक्षाश्च गणगन्धर्वाः सिद्धा विद्याधरास्तथा ॥ रम्भाद्याप्सरसश्चैव प्रह्लादाद्यादितेःसुताः ॥ ६१ ॥ रक्षोविभीषणाद्यास्तु धनदोयक्षनायकः ॥ ऋषयोमुनयःसिद्धाः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ ६२ ॥ ग्रहान्नृक्षाणियोगाश्च ध्रुवःपरमवैष्णवः ॥ यत्किञ्चित्त्रिषुलोकेषु तिष्ठतेस्थाणुजङ्गमम् ॥ ६३ ॥ श्रीकृष्णसन्निधौनित्यं तिष्ठतेप्रत्यहंसदा ॥ न त्यजन्तिपुरींरम्यां द्वारकांकृष्णसेविताम् ॥ ६४ ॥ सात्वयासेवितापुत्र साम्प्रतंकृष्णदर्शनात् ॥ पिशाचयोनिनिर्मुक्ता यास्यामःपरमांगतिम् ॥ ६५ ॥ द्वादशीलोपसम्भूतं न त्वयापापमर्जितम् ॥ कृष्णस्यदर्शनेक्षीणं न जहिद्वादशीव्रतम् ॥ ६६ ॥ रक्ष चेदंप्रयत्नेन वेधंदशमिसम्भवम् ॥

वैष्णव ध्रुवजी तथा तीनोंलोकों में जो कुछ चराचर स्थित है ॥ ६३ ॥ वह सदैव प्रतिदिन श्रीकृष्णजी के समीप स्थित रहता है और कृष्णजी से सेवित सुन्दरीपुरी को ये नहीं छोड़ते हैं ॥ ६४ ॥ हे पुत्र ! इससमय तुमने श्रीकृष्णजी के दर्शन से उस पुरी को सेवन किया इससे पिशाचयोनि से छूटेहुए हमलोग उत्तम गति को प्राप्त होवेंगे ॥६५॥ व द्वादशी के लोप से उपजेहुए पाप को तुमने नहीं इकट्ठा किया है वश्रीकृष्णजी के दर्शन में क्षीण द्वादशीव्रतको न छोड़िये ॥ ६६ ॥ और दशमी से उपजेहुए

वेध की बड़े यत्न से रक्षा कीजिये नहीं तो हे पुत्र ! निस्सन्देह प्रेतयोनि का प्राप्तहोगे ॥ ६७ ॥ और जो मनुष्य वेधसमेत विष्णुसंज्ञक (द्वादशी) व्रत को करते ह उनको पृथ्वी में त्रिलोक से उपजा हुआ पाप होता है ॥ ६८ ॥ और जो मूढ़चित्त मनुष्य वेधसमेत विष्णुजी के दिन को करता है उसका प्रायश्चित्त सैकड़ों मन्वन्तर से भी नहीं होता है ॥६९॥ हे पुत्र ! प्रेतता दुःसह दुःसहाय और दुःखदायिनी होती है इस कारण हे पुत्र ! वेधसमेत द्वादशीव्रत न करना चाहिये ॥ ७० ॥ व जो मूर्ख मनुष्य झूंठी गवाही कराते हैं वे पितरों समेत प्रेतयोनि को प्राप्त होते हैं अन्यथा नहीं होताहै ॥ ७१ ॥ दशमी से वेधित द्वादशी धन व संतान को नाश करती है और पहले

नो चेत्पुत्र न सन्देहो प्रेतयोनिमवाप्स्यसि ॥ ६७ ॥ त्रैलोक्यसम्भवंपापं तेषांभवतिभूतले ॥ सशल्यंये च कुर्वन्ति वासरंकृष्णसंज्ञकम् ॥ ६८ ॥ प्रायश्चित्तं नतस्यास्ति सशल्यंवासरंहरेः ॥ यःकरोतिविमूढात्मा मन्वन्तरशतैरपि ॥ ६९ ॥ प्रेतत्वंदुःसहंपुत्र दुःसहाय च दुःखदम् ॥ तस्मात्पुत्र न कर्त्तव्यं सशल्यंद्वादशीव्रतम् ॥ ७० ॥ कारयन्ति च येत्वज्ञाः कूटसाक्षित्वमानुषाः ॥ प्रेतयोनिंप्रयास्यन्ति पितृभिःसह नान्यथा ॥ ७१ ॥ द्वादशीदशमीविद्धा धनसन्ताननाशिनी ॥ ध्वंसिनीपूर्वपुण्यानां कृष्णभक्तिप्रणाशिनी ॥ ७२ ॥ स्वस्तितेस्तु गमिष्यामः प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ प्राप्तंविष्णुपदंपुत्र त्वपुनर्भवसंज्ञितम् ॥ ७३ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ चन्द्रशर्मन्प्रसन्नोहं तवभक्त्याद्विजोत्तम ॥ शैवंभावंपरित्यज्य भवत्वमपिवैष्णवः ॥ ७४ ॥ नवसप्ततिवर्षाणि न कृतंवासरंमम ॥ सम्पूर्णमत्प्रसादेन तवजातन्न संशयः ॥ ७५ ॥ एकेनैवोपवासेन त्रिस्पृशासम्भवेन हि ॥ द्वादश्याश्च प्रभावेण सर्वसम्पूर्णतांव्रजेत् ॥ ७६ ॥ अविद्यामोहितेनेह शिवभक्त्या

के पुण्य को विध्वंस करती है तथा श्रीकृष्णजी की भक्ति को नाशती है ॥ ७२ ॥ तुम्हारा कल्याण होवै और हमलोग रुक्मिणीपति विष्णुजी की प्रसन्नता से जाते हैं हे पुत्र ! अपुनर्भवसंज्ञक विष्णुजी का स्थान मिलगया ॥ ७३ ॥ श्रीकृष्णजी बोले कि हे द्विजोत्तम, चन्द्रशर्मन् ! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूं और तुम भी शिवजी के भाव को छोड़कर वैष्णव होवो ॥ ७४ ॥ उन्नासी वर्षतक तुमने द्वादशीव्रत नहीं किया और मेरी प्रसन्नता से वह तुम्हारा व्रत पूर्ण होगया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७५ ॥ क्योंकि त्रिस्पृशा से उपजेहुए एकही उपास से व द्वादशी के प्रभाव से सब संपूर्ण होजाता है ॥ ७६ ॥ अज्ञान से मोहित तुमने इस लोक में मेरा पूजन नहीं किया वह

मेरी प्रसन्नता से पूर्ण होजावैगा ॥ ७७ ॥ हे द्विजोत्तम ! वैशाख महीने में जिन्होंने मुझको द्वारका में देखा है और त्रिस्पृशा के दिन व शयनी के दिन ॥ ७८ ॥ तथा उन्मीलिनीदिन प्राप्त होनेपर व पक्षवर्द्धिनी द्वादशी प्राप्त होनेपर यद्यपि ब्रह्मघाती भी होवै तथापि उसका अपराध नहीं होता है ॥ ७९ ॥ और मेरी पुरी के दर्शन से मनुष्य जन्म से लगाकर बिन कियेहुए भी बहुत से पुण्यका भागी होता है ॥ ८० ॥ सब तीर्थों को देखकर जो मेरी पुरी को नहीं देखता है उसका परिश्रम व्यर्थ होजाता है और वह समस्त फल को नहीं पाता है ॥ ८१ ॥ इस पृथ्वी में प्रभासादिक सब तीर्थोंको न देखकर मेरी पुरी को देखने से वे देखेगये इस फलको

ममार्चनम् ॥ न कृतंमत्प्रसादेन तत्सम्पूर्णंभविष्यति ॥ ७७ ॥ वैशाखेयैरहंदृष्टो द्वारकायांद्विजोत्तम ॥ त्रिस्पृशावासरे चैव शयनीवासरे तथा ॥७८॥ उन्मीलिनीदिनेप्राप्ते प्राप्ते वा पक्षवर्द्धिनि ॥ नैवतस्यापराधोस्ति यद्यपिब्रह्महाभवेत् ॥७९॥ जन्मप्रभृतिपुण्यस्य ह्यकृतस्यापि भूरिशः ॥ मत्पुरीदर्शनेनापि फलभागीभवेन्नरः ॥ ८० ॥ दृष्ट्वासमस्ततीर्थानि मत्पुरीं न हि पश्यति ॥ वृथापरिश्रमस्तस्य नो कृत्स्नंफलमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥ अदृष्ट्वासर्वतीर्थानि प्रभासादीनि भूतले ॥ मत्पुरीदर्शनेतानि दृष्टानीह फलंलभेत् ॥ ८२ ॥ न कलौफलदावेदा न दानानिमखा न च ॥ पुरींद्वारवतीं भुक्त्वा तथैव हरिवासरे ॥ ८३ ॥ ममाग्रेजागरंयस्तु गृहे वा यत्र वा पठेत् ॥ मत्पुरीवासजंपुण्यं लभतेमत्प्रसादतः ॥८४॥ मत्पुरीवसतांपुण्यं त्रिकालंममदर्शनात् ॥ तत्फलंसमवाप्नोति यस्त्विदंपठतेकलौ ॥ ८५ ॥ कलौकाशी च मथुरा ह्यवन्ती च द्विजोत्तम ॥ अयोध्या च तथा माया काञ्ची चैव च मत्पुरी ॥ ८६ ॥ शालग्रामभवं चैव बदरी च तथा गया ॥

मनुष्य पाता है ॥ ८२ ॥ कलियुग में द्वारकापुरी व हरिवासर द्वादशी तिथि को छोड़कर वेद फलदायक नहीं होते हैं और दान व यज्ञ फलदायी नहीं होते हैं ॥ ८३ ॥ जो मनुष्य मेरे आगे जागरण करता है व जिस घर में इसको पढ़ता है वहां मेरी प्रसन्नता से मेरी पुरी के निवास से उपजेहुए पुण्य को पाता है ॥ ८४ ॥ मेरी पुरी में बसते हुए मनुष्यों को त्रिकाल मेरे दर्शन से जो फल होता है उस फल को वह मनुष्य पाता है जोकि कलियुग में इसको पढ़ता है ॥ ८५ ॥ हे द्विजोत्तम ! कलियुग में काशी, मथुरा, अवन्ती, अयोध्या, माया व मेरी कांचीपुरी ॥ ८६ ॥ और शालग्रामभवक्षेत्र तथा बदरिकाश्रम, गया,

कुरुक्षेत्र, भृगुक्षेत्र व शुक्लसंज्ञक पुष्कर ॥ ८७ ॥ तथा प्रयाग, प्रभासक्षेत्र व हाटकेश्वर, हरिद्वार और सूकरक्षेत्र व गंगासागर का संगम ॥ ८८ ॥ व हे द्विज ! नैमिष, दंडकारण्य तथा वृंदावन, सैंधव और अर्बुदारण्य व सब स्थान ॥ ८९ ॥ और हे द्विजोत्तम ! मागधादिक वन व ऊषर तथा शैलराज आदिक पर्वत व हिमाचल आदिक स्थावर ॥ ९० ॥ व हे द्विजोत्तम ! पृथ्वी में जो गंगादिक नदियां हैं व जो तीनोंलोकों में तीर्थ हैं वे मेरी आज्ञा से ॥ ९१ ॥ कलियुग में द्वारकापुरी में गोमती के जल में स्थित है तीनोंलोकों में द्वारकापुरी के समान पुरी नहीं है ॥ ९२ ॥ व मेरी पुरी को छोड़कर कलियुग से सब स्थान व्याप्त है व मेरी पुरी को छोड़कर सब

कुरुक्षेत्रंभृगुक्षेत्रं पुष्करंशुक्लसंज्ञकम् ॥ ८७ ॥ प्रयागं च प्रभासं च क्षेत्रं वै हाटकेश्वरम् ॥ गङ्गाद्वारंसूकरं च गङ्गासागरसङ्गमम् ॥ ८८ ॥ नैमिषंदण्डकारण्यं तथावृन्दावनंद्विज ॥ सैन्धवंचार्बुदारण्यं सर्वाण्यायतनानि च ॥ ८९ ॥ वनानिमागधादीनि ऊषराणिद्विजोत्तम ॥ शैलराजादयःशैला हिमाद्रिस्थावराणि च ॥ ९० ॥ गङ्गादयस्तु सरितो भूतले यानिसन्ति वै ॥ तीर्थानित्रिषुलोकेषु द्विजवर्यममाज्ञया ॥ ९१ ॥ तिष्ठन्तिगोमतीनीरे द्वारकायांकलौयुगे ॥ नास्ति वै त्रिषुलोकेषु पुरीद्वारावतीसमा ॥ ९२ ॥ कलिनाकलितंसर्वं वर्जयित्वा तु मत्पुरीम् ॥ सर्वंकलिवशंयातं वर्जयित्वा तु मत्पुरीम् ॥ ९३ ॥ व्याप्तंपाखण्डिभिःसर्वं वर्जयित्वा तु मत्पुरीम् ॥ तस्मात्कलियुगेप्राप्ते सेवनीयामहापुरी ॥ ९४ ॥ विप्रवर्षशतेप्राप्ते मत्पुरींममदर्शने ॥ संन्यासग्रहणेमृत्युर्मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ९५ ॥ त्रिस्पृशावासरेप्राप्ते वैशाखेशुक्लपक्षतः ॥ संयोगेबुधवारस्य दिवाभूमौममाग्रतः ॥ ९६ ॥ दशमद्वारमासाद्य तवप्राणस्यनिर्गमम् ॥ भविष्यति न सन्देहो

कलियुग के वश में प्राप्त है ॥ ९३ ॥ और मेरी पुरी को छोड़कर पाखंडियों से सब संसार व्याप्त है इस कारण कलियुग प्राप्त होनेपर द्वारका महापुरी सेवने योग्य है ॥ ९४ ॥ हे विप्रजी ! सौ वर्ष प्राप्त होनेपर मेरी पुरी में मेरे दर्शन से मेरी प्रसन्नता से संन्यास के ग्रहण में मृत्यु होगी ॥ ९५ ॥ और वैशाख में शुक्लपक्ष में त्रिस्पृशा द्वादशी का दिन प्राप्त होनेपर बुधवार के संयोग में दिन में व पृथ्वी में मेरे आगे ॥ ९६ ॥ हे भूदेव ! मेरी प्रसन्नता से दशमद्वार को प्राप्त होकर निस्सन्देह तुम्हारे प्राण का

निकलना होगा ॥ ६७ ॥ हे द्विजेन्द्र ! अपने स्थान का जाइये तुम सब कामनाओं को पावोगे और मेरे भक्तों का युगान्त में भी नाश नहीं होता है ॥ ६८ ॥ व मेरी भक्ति को करते हुए मनुष्यों को इस लोक व परलोक में कुछ अशुभ नहीं होता है और वह करोड़ पुरितयों को स्वर्ग में लेजाता है ॥ ६६ ॥ और अन्य देवताओं के शरण में प्राप्त लोगों को जाने आने का परिश्रम व बहुत क्लेश को करनेवाला दुःख बार २ होता है ॥ १०० ॥ व मेरे दिन को उपास करनेवाले तथा मेरी भक्ति के भागी मनुष्यों को संसार में जाने आने का परिश्रम नहीं होता है ॥ १ ॥ और जो मनुष्य वेधसमेत मेरे मुक्तिदायक दिन को करते हैं उनका करोड़ों सौ कल्पों में इकट्ठा

मत्प्रसादेनभूसुर ॥ ६७ ॥ स्वस्थानंगच्छविप्रेन्द्र सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥ मद्भक्तानांयुगान्तेपि विनाशोनोपजायते ॥ ६८ ॥ मद्भक्तिंकुर्वतांपुंसामिहलोकेपरेपि वा ॥ नाशुभंविद्यतेकिञ्चित्कुलकोटीर्नयेद्दिवि ॥ ६६ ॥ अन्यदेवप्रपन्नानां गमागमपरिश्रमः ॥ बहुक्लेशकरंदुःखं जायते च पुनःपुनः ॥ १०० ॥ मद्भक्तिभागिनांलोके गमागमपरिश्रमः ॥ जायते नैव मर्त्यानां मद्दिनोपास्तिकुर्वताम् ॥ १ ॥ पुण्यंसुसञ्चितंयाति कल्पकोटिशतार्जितम् ॥ सशल्यंयेप्रकुर्वन्ति मुक्तिदंममवासरम् ॥ २ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुस्तूष्णींचक्रेततस्स च ॥ दृष्टःसर्वजनैःसर्वैर्भक्त्यानामितकन्धरैः ॥ ३ ॥ नमस्कृतोर्चितोध्यातः संस्तुतोगीतनृत्यकैः ॥ तोषितःपरयाभक्त्या देवकीनन्दनोहरिः ॥ ४ ॥ चन्द्रशर्मापि हृष्टोसौ प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ॥ स्तवैःसन्तोषयामास सहस्राख्यादिकैःशुभैः ॥ ५ ॥ स्वस्थानंप्राप्यविप्रर्षिः कृष्णस्याराधनंप्रति ॥ यत्नंप्रकुरुतेनित्यं द्वादशीव्रततत्परः ॥ ६ ॥ ततोवर्षशतेपूर्णे गत्वाद्वारावतींपुरीम् ॥ प्राणान्कृष्णो

किया हुआ पुण्य जाता रहता है ॥ २ ॥ यह कहकर भगवान् विष्णुजी चुप होरहे तदनन्तर भक्ति से झुकेहुए कंधेवाले सब मनुष्यों ने उन विष्णुजी को देखा ॥ ३ ॥ और बड़ी भक्ति से देवकीनन्दन विष्णुजी को गीतों व नृत्यों से प्रसन्न किया और प्रणाम, पूजन, ध्यान व स्तुति किया ॥ ४ ॥ और इस प्रसन्न चन्द्रशर्मा ने भी बार २ प्रणामकर सहस्रनामादिक उत्तम स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ ५ ॥ और द्वादशीव्रत में तत्पर चन्द्रशर्मा ब्रह्मर्षि अपने स्थान को प्राप्तहोकर नित्य श्रीकृष्णजी के आराधन के लिये यत्न करते रहे ॥ ६ ॥ तदनन्तर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर श्रीकृष्णजी के उपदेश से द्वारकापुरी को जाकर वह चन्द्रशर्मा प्राणों को

छोड़कर मोक्षको प्राप्तहुआ ॥ ७ ॥ हे इन्द्रद्युम्न ! तुम से द्वारका से उपजाहुआ माहात्म्य कहा गया और जो तुम्हारे मन में वर्तमान है उसको फिर भी कहूंगा ॥ ८ ॥ और श्रीकृष्णजी से जो कहागया है वह फल द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को सुनते व पढ़तेहुए मनुष्यों को मिलता है ॥ ९ ॥ और लिखाहुआ यह माहात्म्य संसार में जिसके घर में स्थित होता है उसको प्रतिदिन श्रीकृष्णजी से उपजा हुआ द्वारका का पुण्य मिलता है ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पदेशेन त्यक्त्वामोक्षंजगामह ॥ ७ ॥ इन्द्रद्युम्नतवाख्यातं माहात्म्यंद्वारकाभवम् ॥ पुनरेव प्रवक्ष्यामि यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ८ ॥ शृण्वतांपठतांचैव माहात्म्यंद्वारकाभवम् ॥ लभ्यते वै फलंसर्वं कृष्णेनकथितं च यत् ॥ ९ ॥ इदंस्थितं च लोकेस्मिँल्लिखितंयस्यवेश्मनि ॥ प्रत्यहंद्वारकापुण्यं प्राप्यतेकृष्णसम्भवम् ॥ ११० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येचतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ निहतेकौरवेसैन्ये सर्वयोधेक्षयंगते ॥ अर्जुनोभक्तियुक्तात्मा गतोसौकृष्णसन्निधौ ॥ १ ॥ प्रदक्षिणांततःकृत्वा प्रणम्यशिरसाहरिम् ॥ कृताञ्जलिपुटोभूत्वा इदंवचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ अद्यापिसंशयंकृष्ण हृदये ममवर्त्तते ॥ शङ्खोद्धारफलंब्रूहि अनुग्राह्योभवाम्यहम् ॥ ३ ॥ शङ्खस्यदर्शनादेव किन्तु पुण्यंसुरेश्वर ॥ रुक्मिणीकुण्डके चैव किंपुण्यंध्यानदर्शने ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधुसाधुमहाबाहो यन्मांत्वंपरिपृच्छसि ॥ अहन्तेकथयि

दो० । शंखोद्धारक तीर्थ कर अहै यथा परभाव । सो पचीस अध्याय में कह्यो चरित चितचाव ॥ मार्कंडेयजी बोले कि कौरवों की सेना नष्ट होनेपर जब सब योधा नष्ट होगये तब भक्ति से संयुत चित्तवाले ये अर्जुनजी श्रीकृष्णजी के समीप गये ॥ १ ॥ तदनन्तर प्रदक्षिणा कर व मस्तक से श्रीकृष्णजी को प्रणाम कर हाथों को जोड़ेहुए अर्जुनजी यह वचन बोले ॥ २ ॥ कि हे श्रीकृष्णजी ! मेरे हृदय में आज भी संदेह वर्तमान है तुम शंखोद्धार तीर्थ का फल कहो तो मैं दया करने योग्य होऊं ॥ ३ ॥ व हे सुरेश्वर ! शंख के दर्शन से क्या पुण्य होता है व रुक्मिणीकुंड के ध्यान व दर्शन में क्या पुण्य होता है ॥ ४ ॥ श्रीभगवान्जी बोले कि हे महा-

वाहो! बहुत अच्छा बहुत अच्छा तुम जो मुझ से पूंछते हो उसको मैं तुम से कहूंगा जोकि देवताओं को भी दुर्लभ है॥ ५॥ जिसके स्मरणही से सब पाप नाश होजाता है उस शंखोद्धार के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा॥ ६॥ प्रभासादिक तीर्थ व गंगादिक नदियां और समुद्र व पवित्र पर्वत और सब वानस्पत आदिक॥ ७॥ व अश्वमेधादिक यज्ञ और वेद वहा स्थित हैं इसमें सन्देह नहीं है व इन्द्रादिक सब देवता तथा भृगु आदिक ऋषि॥ ८॥ और तुंबुरु आदिक गंधर्व तथा कुबेरादिक धनेश्वर व विष्वक्सेन आदिक सब गण और ब्रह्मा, विष्णु व महेश्वरजी॥ ९॥ व हे धनंजय! सिद्ध व अप्सरा शंखोद्धार तीर्थ में स्थित हैं अथवा बहुत कहने से क्या है चराचर

ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम्॥५॥ यस्यस्मरणमात्रेण सर्वपापंव्यपोहति॥ शङ्खोद्धारसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति॥६॥ प्रभासाद्यानितीर्थानि गङ्गाद्याःसरितस्तथा॥ सागराःपर्वताः पुण्याः सर्ववानस्पतादयः॥७॥ अश्वमेधादयोयज्ञा वेदास्तत्र न संशयः॥ इन्द्रादिदेवताःसर्वे भृग्वाद्याऋषयस्तथा॥ ८॥ गन्धर्वास्तुम्बुराद्याश्च कुबेरादिधनेश्वराः॥ विष्वक्सेनादिकगणा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ९॥ सिद्धाश्चाप्सरसश्चैव शङ्खोद्धारेधनञ्जय॥ अथकिंबहुनोक्तेन त्रैलोक्यंसचराचरम्॥ १०॥ सरक्षोगणगन्धर्वा पुरीद्वारावतीतथा॥ तथा च सर्वतीर्थानि शङ्खोद्धारमिदंसरः॥ ११॥ येस्मरन्तित्विदंनित्यं शङ्खोद्धारंगृहेस्थिताः॥ न तेषांपुनरावृत्तिर्यावदाभूतसंप्लवम्॥ १२॥ येचिन्तयन्तिमनसि शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम्॥ कुलकोटिशतैर्युक्ता विष्णुलोकेवसन्तिते॥ १३॥ दिवमारोहयेद्यस्तु शङ्खोद्धारं च पश्यति॥ समयावन्दनीयस्तु यथादेवी नु शङ्करः॥ १४॥ क्षीयतेयदिमार्गस्थः शङ्खोद्धारन्न चेक्षते॥ वल्लभस्तुसमेपार्थ यथाश्री

समेत त्रिलोक वहां स्थित है॥ १०॥ व राक्षसगणों समेत व गन्धर्वों सहित यह द्वारकापुरी है वैसेही सब तीर्थ इस शंखोद्धार तड़ाग में हैं॥ ११॥ और घरमें स्थित जो मनुष्य सदैव इस शंखोद्धार तीर्थ को स्मरण करते हैं प्रलयपर्यन्त उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है॥ १२॥ और शंखोद्धार तीर्थ में जो मनुष्य मन में शंखधारी जी को स्मरण करते हैं करोड़ों सौ पुश्तियों से संयुत वे विष्णुलोक में बसते हैं॥ १३॥ व जो शंखोद्धार तीर्थ को देखता है वह स्वर्ग को जाता है और वह वैसेही मुझ से प्रणाम करने योग्य है जैसे कि पार्वती देवी व शंकरजी हैं॥ १४॥ और यदि मार्ग में नष्ट होजावै मुझको न देखै तो हे पार्थ! वह मुझको वैसेही प्रिय है जैसे कि

लक्ष्मीजी हैं॥ १५॥ और यदि मनुष्य विपत्ति में स्थित होवै तो जिस किसीप्रकार से भी जिसकी बुद्धि शंखोद्धारतीर्थ में होवै वह स्वर्ग में स्थित है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हे पार्थ ! कुरुक्षेत्र, काशी व नैमिष में नहीं वरन अपने घरमें शंखोद्धार तथा शंखी विष्णुजीको स्मरण करै ॥ १७ ॥ करोड़ों सूर्यग्रहणों में सरस्वतीतीर्थ में जो फल होता है वह फल आधे पलमें शंखोद्धार के दर्शन से होता है ॥ १८ ॥ व जो मनुष्य सौ बरसतक नित्य यतियों को भक्ति से भोजन कराता है वह शंखोद्धार तीर्थ में नहानेवाले पुरुष की सोलहवीं कला के योग्य नहीं होता है ॥ १९ ॥ व शंखोद्धार में नहाकर जो शंखधारी देव को देखता है उसके पुण्यकी संख्या को मैं

तथैव हि ॥ १५ ॥ येनकेनप्रकारेण चापदस्थोपि मानवः ॥ शङ्खोद्धारेमतिर्यस्य स्वर्गस्थोनात्रसंशयः ॥ १६ ॥ किन्तुनैव कुरुक्षेत्रे वाराणस्यान्तु नैमिषे ॥ स्वगृहेचिन्तयेत्पार्थ शङ्खोद्धारं हि शङ्खिनम् ॥ १७॥ यत्फलन्तु सरस्वत्यां सूर्यग्रहण कोटिभिः ॥ तत्फलंनिमिषार्द्धेन शङ्खोद्धारस्यदर्शनात् ॥ १८ ॥ योयतीन्भोजयेद्भक्त्या नित्यमब्दशतंनरः ॥ शङ्खो द्धारे च तुःस्नातुः कलांनार्हतिषोडशीम् ॥ १९ ॥ शङ्खोद्धारेनरःस्नात्वा दृष्टदेवं च शङ्खिनम् ॥ पुण्यसङ्ख्यां न जानामि यद्दानस्य च वैधृतौ ॥ २० ॥ तावद्भ्रमन्तिसंसारे नरकेपापसंकुले ॥ शङ्खोद्धारं न पश्यन्ति यावत्कलिम लापहम् ॥ २१ ॥ शङ्खोद्धारेनरःस्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ गर्भवासं न कुरुते प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ २२ ॥ यानि कानि च तीर्थानि निवसन्तिमहीतले ॥ शङ्खोद्धारसमंतीर्थं मोक्षदं न च दृश्यते ॥ २३ ॥ त्रीणिकोटीनिसार्द्धानि ती र्थानां च धनञ्जय ॥ शङ्खोद्धारे च सम्पूर्णं सर्वतीर्थात्मकंफलम् ॥ २४ ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि अगम्यागमनानि च ॥

नहीं जानता हूं व वैधृति में दानका जो फल है उसको मैं नहीं जानता हूं ॥ २० ॥ तबतक मनुष्य पापों से संयुत नरक व संसार में भ्रमते हैं जबतक कि कलिमल-नाशक शंखोद्धार तीर्थ को नहीं देखते हैं ॥ २१ ॥ शंखोद्धारतीर्थ में नहाकर मनुष्य फिर जन्मको नहीं पाता है और रुक्मिणीनाथ श्रीविष्णुजी की प्रसन्नता से गर्भवास नहीं करता है ॥ २२ ॥ व पृथ्वी में जो कोई तीर्थ बसते हैं उनमें शंखोद्धार के समान मोक्षदायक तीर्थ नहीं है ॥ २३ ॥ हे धनञ्जय ! साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं परन्तु शंखोद्धार में सब तीर्थों का समस्तफल होता है ॥ २४ ॥ और हज़ारों ब्रह्महत्या व अगम्यागमन पाप नाश होजाते हैं व जिसकी बुद्धि शंखोद्धार में होती

है व जो मन से स्मरण करता है ॥ २५ ॥ स्वर्ग में टिकेहुए उसके पितर आशीर्वाद देते हैं ॥ २६ ॥ और जिसका मन श्रीकृष्णजी में नहीं लगता है व जो शंखोद्धार को नहीं देखता है उसके पितर स्वर्ग में भी भयङ्कर शाप को देते हैं ॥ २७ ॥ शंखोद्धार में नहाकर मनुष्य निर्मल सुवर्णदान को देवै और तिल, गऊ, गृह, अन्न व पृथ्वी को देवै ॥ २८ ॥ जो एक गऊ को देता है वह करोड़ गौवों से उपजेहुए फल को पाता है व सुवर्ण से संयुत एक घरको जो ब्राह्मण के लिये देता है ॥ २९ ॥ हे पार्थ ! वह श्रीकृष्णजी की सुन्दरी पुरी को पाता है व जो देवताओं को भी दुर्लभ है उस सुवर्ण के घरमें पितरों से घिराहुआ वह निवास करता है ॥ ३० ॥ व

शङ्खोद्धारेमतिर्यस्य मनसायस्तु चिन्तयेत् ॥ २५ ॥ आशीर्वादंप्रयच्छन्ति पितरोदिविसंस्थिताः ॥ २६ ॥ यस्यनास्तिमनःकृष्णे शङ्खोद्धारन्नपश्यति ॥ तस्यस्वर्गेपि पितरः शापंदास्यन्तिदारुणम् ॥ २७ ॥ शङ्खोद्धारेनरःस्नात्वा दानं दद्याच्च निर्मलम् ॥ सुवर्णं च तिलान्गाश्च गृहमन्नं च मेदिनीम् ॥ २८ ॥ योददाति च गामेकां लभतेकोटिजंफलम् ॥ विप्रायगृहमेकन्तु योदद्यात्स्वर्णसंयुतम् ॥ २९ ॥ लभेत्कृष्णपुरींरम्यां यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥ काञ्चने च गृहे पार्थ पितृभिःसहवेष्टितः ॥ ३० ॥ अन्नदानंददेद्यस्तु शङ्खोद्धारेव्यवस्थितः ॥ तेनलब्धास्वयंमुक्तिः प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ ३१ ॥ अन्नदानसमंपार्थ न भूतो न भविष्यति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अन्नदानंसमाचरेत् ॥ ३२ ॥ तपसाकिंसुतप्तेन जपहोमादिकैर्व्रतैः ॥ कृष्णधर्मविहीनस्य सर्वंतस्यनिरर्थकम् ॥ ३३ ॥ प्रभासेयद्भवेत्पुण्यं राहुग्रस्तेनिशाकरे ॥ ततःकोटिगुणंपार्थ शङ्खोद्धारस्यदर्शनात् ॥ ३४ ॥ कन्यासहस्रंयोदद्यात्तीर्थेगत्वाहिमाचले ॥ तत्फलंपाण्डवश्रेष्ठ शङ्खोद्धारस्य

शंखोद्धार में टिकाहुआ जो मनुष्य अन्नदान को देता है वह रुक्मिणीपति की प्रसन्नता से आपही मुक्तिको पागया ॥ ३१ ॥ हे पार्थ ! अन्नदान के समान दान न हुआ है न होवैगा इस कारण सब यत्न से मनुष्य अन्नदान करै ॥ ३२ ॥ भलीभांति कियेहुए तपसे व जप होमादिक तथा व्रतों से क्या है क्योंकि कृष्णजी के धर्म से रहित उस पुरुष का सब व्यर्थ होता है ॥ ३३ ॥ राहु से चन्द्रमा के ग्रस्त होनेपर प्रभासक्षेत्र में जो पुण्य होता है हे पार्थ ! उससे कोटिगुना पुण्य शंखोद्धार के दर्शन से होता है ॥ ३४ ॥ व हे पाण्डवश्रेष्ठ ! हिमाचलतीर्थ में जाकर जो हज़ार कन्याओं को देता है वह फल शंखोद्धार के दर्शन से

होता है ॥ ३५ ॥ व कुरुक्षेत्र के निवास व गंगाजी के समीप मरने से तथा गोमती में स्नानमात्र से व शंखोद्धार के दर्शन से ॥ ३६ ॥ व शंखोद्धार में नहाकर वेदपात्र, चाडाल व जो अन्य सब प्राणी हैं वे तथा अन्य मनुष्य द्विज जातियों में उत्पन्न होतेहैं ॥ ३७ ॥ और गोघाती, कृतघ्न, ब्रह्मघाती तथा गुरुकी शय्या पै जानेवाला पुरुष शंखोद्धार के दर्शन से सब पापों से छूटजाता है ॥ ३८ ॥ हे पार्थ ! तुलसी से उपजेहुए पुष्पों से जो मुझको पूजता है उससे इन्द्रदेवजी डरते हैं व उनका आसन चलता है ॥ ३९ ॥ व जिस किसी विनोदसे भी श्रीकृष्णजी के दिनको उपासकर वे मनुष्य धन्य होते हैं व मरकर चतुर्भुज विष्णुजी को प्राप्त होते हैं ॥ ४० ॥ और समुद्र के

दर्शनात् ॥ ३५ ॥ कुरुक्षेत्रस्यवासेन जाह्नवीमरणेन तु ॥ गोमतीस्नानमात्रेण शङ्खोद्धारस्यदर्शनात् ॥ ३६ ॥ श्रोत्रियोप्यन्त्यजोवापि चान्ये वा सर्वजन्तवः ॥ शङ्खोद्धारेनरःस्नात्वा जायतेद्विजयोनिषु ॥ ३७ ॥ गोघ्नश्चैव कृतघ्नश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यः शङ्खोद्धारस्यदर्शनात् ॥ ३८ ॥ योमांपूजयतेपार्थ पत्रैस्तुलसिसम्भवैः ॥ तस्माद्धि शङ्कतेदेव इन्द्रश्च चलितासनः ॥ ३९ ॥ येनकेनविनोदेन कृत्वाकृष्णस्यवासरम् ॥ धन्यास्तेपुरुषालोके मृतायान्ति चतुर्भुजम् ॥ ४० ॥ जलमध्येसमुद्रस्य द्वारकापरिदुर्जया ॥ तत्र मध्येस्थितोदेवः शङ्खःपापप्रणाशनः ॥ ४१ ॥ शङ्खोद्धारे नरःस्नात्वा श्राद्धंकृत्वायथाविधि ॥ सयातिपरमंलोकं पितॄनुद्धृत्यपाण्डव ॥ ४२ ॥ शङ्खिनं च नमस्कृत्य पूजयित्वा विधानतः ॥ विमलंलोकमाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥ ४३ ॥ कृतकृत्योभवेन्मर्त्यो दृष्ट्वादेवन्तु शङ्खिनम् ॥ मुच्यतेपातकैर्घोरैर्बहुजन्मकृतैरपि ॥ ४४ ॥ यथाभिलषितान्कामाञ्छङ्खस्तस्यप्रयच्छति ॥ विधवा चैव दृष्ट्वातं लभतेलो

जलके बीच में द्वारका सबओर से दुर्जय है और उसके मध्य में पापनाशक शंखदेवजी स्थित हैं ॥ ४१ ॥ हे पांडव ! शंखोद्धार तीर्थ में नहाकर व विधिपूर्वक श्राद्धकर वह मनुष्य पितरों को उधारकर उत्तमलोक को प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ और शंखी को प्रणाम कर व विधि से पूजकर मनुष्य निर्मललोक को प्राप्तहोता है जहां जाकर शोचता नहीं है ॥ ४३ ॥ और शंखीदेवजीको देखकर मनुष्य कृतार्थ होता है व बहुत जन्मों में भी कियेहुए घोर पापों से छूटजाता है ॥ ४४ ॥ और उसको शंखजी इच्छा

के अनुकूल मनोरथों को देते हैं व विधवा स्त्री उन शंखजी को देखकर चाहे हुए लोक को पाती है ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायां शङ्खोद्धारमाहात्म्यंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । है पिंडारकतीर्थकर जिमि उत्तम माहात्म्य । छब्बिसवें अध्याय में सोइ चरित याथात्म्य ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर पापनाशक पिंडारकतीर्थ को जावै जहां कि आपही चतुर्भुजदेवजी स्थित हैं ॥ १ ॥ विधिसे उन जगदीश शंखजीको पूज व देखकर मनुष्य अनेकभांति के पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं

कमीप्सितम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येशङ्खोद्धारमाहात्म्यंनामपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ततःपिण्डारकंगच्छेत्तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ यत्रदेवश्चतुर्बाहुः स्वयमेवव्यवस्थितः ॥ १ ॥ विधिनापूजयित्वा तु तंदृष्ट्वा तु जगत्पतिम् ॥ मुच्यतेविविधैःपापैर्मानवोनात्रसंशयः ॥ २ ॥ कपालमोचनंनाम देवंलोकेषु विश्रुतम् ॥ तंदृष्ट्वादेवदेवेशं मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ३ ॥ पिण्डारकेमहातीर्थे यत्ररुक्मिवतीनदी ॥ श्राद्धेतृप्तास्तु पितरो गर्जमानास्तु सर्वशः ॥ ४ ॥ नृत्यमानाःसमायान्ति मानवस्यसमीपतः ॥ तस्मिन्कूपे तु गच्छन्ति नरंदृष्ट्वाकृतोद्यमम् ॥५॥ वैशाखस्य तु मासस्य शुक्लपक्षेद्विजोत्तमाः ॥ चतुर्दश्यांकृतस्नानः श्राद्धंकृत्वायथाविधि ॥ ६ ॥ कपालमोचनंदृष्ट्वा मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ अगस्त्यस्यऋषेस्तत्र तडागंलोकविश्रुतम् ॥ ७ ॥ तत्रस्नात्वाविधानेन श्राद्धंकृत्वायथा

है ॥ २ ॥ व लोकों में कपालमोचन नामक प्रसिद्ध उन देवदेवेश देवको देखकर मनुष्य ब्रह्महत्या से छूटजाता है ॥ ३ ॥ और जहां रुक्मिवती नदी है उस पिंडारक महातीर्थ में श्राद्ध में तृप्त सब पितर लोग गरजते हैं ॥ ४ ॥ व मनुष्य के समीप नाचतेहुए पितर आते हैं और उद्यम कियेहुए पुरुष को देखकर उस कूप में जाते हैं ॥ ५ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! वैशाखमहीने के शुक्लपक्ष में चौदसि तिथि को विधिपूर्वक श्राद्धकर ॥ ६ ॥ व कपालमोचनजी को देखकर मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है और वहां संसार में प्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि का तड़ाग है ॥ ७ ॥ उसमें विधि से नहाकर व विधिपूर्वक श्राद्धकर गयाश्राद्ध की नाईं

उसके पितर प्रसन्न होते हैं ॥ ८ ॥ और वहींपर यज्ञकुंड है जहां कि पहले प्रजापतिजी ने सब मनुष्यों के हित के लिये विधि से यज्ञ किया है ॥ ९ ॥ व जहांपर सामर्थ्यवान् विष्णु ने यज्ञ नाशने के लिये छलसे ब्राह्मणरूप से स्थित पुरुषों के भुजाओं को छेदन किया है ॥ १० ॥ उस यज्ञकुंड को देखकर मनुष्य तीन पापों से छूटजाता है और वहीं पर श्राद्धकरने पर मनुष्य कृतार्थ होता है ॥ ११ ॥ तदनन्तर जहां रुक्मिवती नदी है उस पिंडारकतीर्थ में सब पापों को नाशनेवाली जाम्बवती नदी है ॥ १२ ॥ और त्रिलोक में जो कोई तीर्थ हैं वे सब वैशाखी में उसी तीर्थमें आते हैं ॥ १३ ॥ और गंगा, कुरुक्षेत्र, नैमिष, पुष्कर, यज्ञ, वेद व देवता निस्सन्देह वहां आते हैं ॥ १४ ॥ पितर

विधि ॥ पितरस्तुष्टिमायान्ति गयाश्राद्धेन वै यथा ॥ ८ ॥ यज्ञावटो हि तत्रैव यत्र पूर्वप्रजापतिः ॥ चकारविधिनायज्ञं स र्वलोकहिताय च ॥ ९ ॥ भुजच्छेदःकृतो यत्र विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ छद्मनाद्विजरूपेण स्थितानांयज्ञनाशने ॥ १० ॥ यज्ञावटन्तु तंदृष्ट्वा मुच्यतेपातकत्रयात् ॥ कृतेश्राद्धे तु तत्रैव कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ ११ ॥ ततःपिण्डारकेतीर्थे यत्र रु क्मिवतीनदी ॥ नदीजाम्बवतीनाम सर्वपातकनाशिनी ॥ १२ ॥ यानिकानि च तीर्थानि त्रैलोक्येसम्भवन्ति हि ॥ वै शाख्यांतानिसर्वाणि तत्रैवायान्तितीर्थके ॥ १३ ॥ गङ्गा चैव कुरुक्षेत्रं नैमिषंपुष्कराणि च ॥ यज्ञावेदास्तथादेवाः समा यान्ति न संशयः ॥ १४ ॥ अपि नः सकुलेजातो यो वै पिण्डप्रदोभवेत् ॥ पिण्डारकंमहातीर्थे यास्यामःपरमांगति म् ॥ १५ ॥ वृक्षत्वं च गता ये च पिशाचत्वं च ये गताः ॥ भूतत्वं वै गता ये च ये च प्रेतत्वमागताः ॥ १६ ॥ ये च कीटत्वमापन्ना तिर्यग्योनिगताश्च ये ॥ नरकेयेनिमग्नाश्च गच्छन्तिपरमांगतिम् ॥ १७ ॥ गयातोप्यधिकंप्रोक्तं श्राद्धं

कहते हैं कि वही मेरे वंश में पैदा हुआ है जोकि मुझको पिंडारक महातीर्थ में पिंडदायक होवै क्योंकि उससे हम उत्तमगति को प्राप्त होवैंगे ॥ १५ ॥ और जो वृक्षत्व को प्राप्त हैं व जो पिशाचता को प्राप्त हैं और जो भूतत्वको प्राप्त हैं तथा जो प्रेतता में स्थित हैं ॥ १६ ॥ और जो कीटता को प्राप्त हैं तथा जो पशु, पक्षी की योनि में प्राप्त हैं व जो नरक में मग्न हैं वे उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तम ! वहां गया से भी अधिक श्राद्ध कहा गया है और वहां वैशाखी में श्राद्ध करनेवाला

मनुष्य कृतार्थ होता है ॥१८॥ और वहां वैशाख में श्राद्ध करने से मनुष्य तीन पातकोंसे छूटजाता है इस कारण पितरों की तृप्ति के लिये वहां श्राद्ध करना चाहिये ॥१६॥ पितरों की भक्ति से संयुत जो मनुष्य उत्तम पिंडारकतीर्थ में पिंडपात करते हैं उसी से पितर तृप्ति को प्राप्त होते हैं व निर्मल तथा विशेष लोकों को जाते हैं ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभापाटीकायापिण्डारकतीर्थमाहात्म्यंनामपड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अहै वर्द्धिनी द्वादशी कर जिमि अतुल प्रभाव । सत्ताइसवें में सोई कह्यो चरित प्रस्ताव ॥ इन्द्रद्युम्न बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझ से कुछ कौतुक को कहिये

तत्र द्विजोत्तमाः ॥ कृतकृत्योभवेन्मर्त्यो वैशाख्यांश्राद्धकृन्नरः ॥ १८ ॥ वैशाखे तु कृतेश्राद्धे मुच्यतेपातकत्रयात् ॥ कर्त्तव्यंपितृतृप्त्यर्थं तस्माच्छ्राद्धन्तु तत्र वै ॥ १६ ॥ पिण्डारकेतीर्थवरेमनुष्याः कुर्वन्तिपिण्डंपितृभक्तियुक्ताः ॥ तेनैवतृप्तिंपितरःप्रयान्ति गच्छन्तिलोकान्विमलान्विशेषान् ॥ २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येपिण्डारक तीर्थमाहात्म्यन्नामपड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इन्द्रद्युम्न उवाच ॥ कथयस्वमुनिश्रेष्ठ किञ्चित्कौतूहलंमम ॥ पुण्यंपवित्रंपापघ्नं तीर्थन्तुवदविस्तरात् ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ मथुराद्वारकायोध्या कलिकालेपुरीत्रयम् ॥ धर्मार्थकामदंभूप मोक्षदंहरिवल्लभम् ॥ २ ॥ मथुरायान्तु कालिन्दी गोमतीकृष्णसन्निधौ ॥ अयोध्यायान्तु सरयूर्मुक्तिदासेविता तु या ॥ ३ ॥ अयोध्यायांहरिंविष्णुं द्वारकां कृष्णमेव हि ॥ मथुरायांकेशवं च स्मृत्वामुक्तिरवाप्यते ॥ ४ ॥ धन्यासौमथुरालोके यत्र जातोहरिःस्वयम् ॥ द्वारका

और पुण्यदायक व पवित्र तथा पापनाशक तीर्थ को विस्तार से कहिये ॥ १ ॥ मार्कंडेयजी बोले कि हे भूप ! कलिकाल में मथुरा, द्वारका व अयोध्या ये तीनों पुरी धर्म, अर्थ व काम को देनेवाली तथा मोक्षदायिनी व विष्णुजी को प्यारी हैं ॥ २ ॥ मथुरा में यमुना व कृष्ण के समीप गोमती तथा अयोध्या में सरयू जोकि सेवित होकर मुक्तिदायिनी है ॥ ३ ॥ अयोध्या में हरि विष्णुजी को और द्वारका में कृष्ण को तथा मथुरा में केशवजी को स्मरणकर मुक्ति मिलती है ॥ ४ ॥ संसार में यह मथुरा

धन्य है जहां कि आपही विष्णुजी पैदाहुए है और संसार में द्वारका सफल है जहां कि विष्णुजी ने क्रीड़ा किया हैं ॥ ५ ॥ और सब कामनाओं को देनेवाली अयोध्या धन्यों के मध्य में भी धन्य है जिसको धर्म के जाननेवाले आपही श्रीरामदेवजी ने पालन किया है ॥ ६ ॥ कल्प की संज्ञा से सेवन कीहुई काशी जिस फल को देती है कलियुग में एक दिन से मथुरा उस फलको देती है ॥ ७ ॥ हज़ार मन्वन्तरों में मनुष्य प्रयाग में जिस फलको पाता है द्वारका में आधे पल से बसते हुए मनुष्यों को वही फल मिलता है ॥ ८ ॥ और प्रभास व कुरुक्षेत्र में सौ वर्षों से जो फल मिलता है आधेपल भर अयोध्या में बसते हुए पुरुषों को वही फल होता है ॥ ९ ॥ और

सफलालोके क्रीडितं यत्र विष्णुना ॥ ५ ॥ धन्यानामपि साधन्या अयोध्यासर्वकामदा ॥ यास्वयंरामदेवेन पालिता धर्मवेदिना ॥ ६ ॥ यद्ददातिफलंकाशी सेविताकल्पसंज्ञया ॥ कलौददातिमथुरा वासरेणापि तत्फलम् ॥ ७ ॥ मन्वन्तर सहस्रैस्तु प्रयागेयत्फलंलभेत् ॥ निमिषार्द्धेनवसतां द्वारकायान्तु तत्फलम् ॥ ८ ॥ प्रभासे च कुरुक्षेत्रे यत्फलंशतवत्सरैः ॥ वसतांनिमिषार्द्धेन अयोध्यायान्तु तद्भवेत् ॥ ९ ॥ अयोध्याधिपतिंरामं मथुरायान्तु केशवम् ॥ द्वारकावासिनं कृष्णं कीर्त्तयेदतिसुन्दरम् ॥ १० ॥ कीर्त्तनेनापि मथुरा स्मरणाद्द्वारकापुरी ॥ अयोध्यागमनेनापि त्रिभिःशुद्धम्पदम्भवेत् ॥ ११ ॥ कृष्णंस्वयम्भुवंविष्णुं द्वारकांत्रिदिवोपमाम् ॥ श्रुत्वा वाप्यथवा दृष्ट्वा कुरुतेजन्मसंक्षयम् ॥ १२ ॥ श्रुताभिलषितादृष्टा अयोध्यामथुरापुरी ॥ पापंहरतिकल्पोत्थं द्वारका च तृतीयका ॥ १३ ॥ कृष्णंविष्णुंहरिंदेवं यः स्मरेच्च कलौयुगे ॥ द्वादश्यांजागृयाद्रात्रौ वाजिमेधायुतम्फलम् ॥ १४ ॥ बालक्रीडनकंस्थानं येस्मरन्तिदिनेदिने ॥

अयोध्या के स्वामी श्रीरामजी व मथुरा में केशव तथा द्वारकावासी सुन्दर श्रीकृष्णजी को कीर्तन करै ॥ १० ॥ कीर्तन से मथुरा व स्मरण करने से द्वारकापुरी तथा अयोध्या गमन से और तीनों से भी पग शुद्ध होता है ॥ ११ ॥ कृष्ण व आपही से उपजेहुए विष्णु तथा स्वर्ग के समान द्वारका को सुनकर व देखकर मनुष्य जन्म को नाश करता है ॥ १२ ॥ और सुनी, चाही व देखी हुई अयोध्या, मथुरापुरी व तीसरी द्वारका कल्प से उपजेहुए पाप को हरती है ॥ १३ ॥ और कृष्ण, विष्णु व हरिदेव को जो कलियुग में स्मरण करता है व द्वादशी तिथिमें जो रात्रि को जागता है उसको दश हज़ार अश्वमेध का फल होता है ॥ १४ ॥ व हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य प्रतिदिन

बालखेत्त के स्थान को स्मरण करते हैं वे सुवर्ण पर्वत के देनेवाले पुण्य को पाते हैं ॥ १५ ॥ वे मनुष्य कलियुग में धन्य व सुरोत्तम हैं जिन्हों ने कि सरयू के जल में व गोमती में स्नान किया तथा यमुना में नहाया है ॥ १६ ॥ और हाथों को जोड़ कर जो मनुष्य पश्चिम दिशा के सामने नहाकर द्वारका को स्मरण करैंगे उनको कोटिगुना फल होगा ॥ १७ ॥ और कलियुग में जो मनुष्य मन से द्वारकापुरी को स्मरण करता है वह मनुष्य लीला से दशहज़ार कपिला गौवों के फल को पाता है ॥ १८ ॥ व हे मनुजाधिप ! कलियुग में द्वारकापुरी को जाकर मनुष्य गंगासागर से उपजेहुए व हरिद्वार से उत्पन्न फल को पाता है ॥ १९ ॥ व हे राजन् ! मैं मार्कण्डेय मुनीश्वर सात

स्वर्णशैलप्रदम्पुण्यं लभतेराजसत्तम ॥ १५ ॥ धन्यास्तेमानुषालोके कलिकालेसुरोत्तमाः ॥ प्लवनंसरयूतोये गोमत्यांयमुनाकृतम् ॥ १६ ॥ पश्चिमाशांनरःस्नात्वा कृत्वा वै करसम्पुटम् ॥ द्वारकांयेस्मरिष्यन्ति तेषांकोटिगुणम्फलम् ॥ १७ ॥ मनसाचिन्तयेद्यो वै कलौद्वारावतीम्पुरीम् ॥ कपिलायुतपुण्यञ्च लभतेहेलयानरः ॥ १८ ॥ गङ्गासागरजम्पुण्यं गङ्गाद्वारभवंतथा ॥ कलौद्वारावतीं गत्वा प्राप्नोतिमनुजाधिप ॥ १९ ॥ सप्तकल्पस्मरोभूप मार्कण्डेयोमुनीश्वरः ॥ समाना चाधिका नापि कलौद्वारावतीयथा ॥ २० ॥ दुर्वाससासमोधन्यो ह्यन्योनास्तिनृपोत्तम ॥ भारस्यवन्धनंकृत्वा द्वारकायांधृतोहरिः ॥ २१ ॥ मा काशीं मा कुरुक्षेत्रं प्रभासं मा च पुष्करम् ॥ द्वारकांव्रजराजर्षेपश्यकृष्णमुखंशुभम् ॥ २२ ॥ अश्वमेधसहस्रन्तु राजसूयशतंकलौ ॥ पदेपदे च लभते द्वारकांगच्छतेनरः ॥ २३ ॥ सफलंजीवितंतेषां कलौनृपवरोत्तम ॥ येषां न स्खलतेचित्तं द्वारकांपरिगच्छताम् ॥ २४ ॥ माता च पुत्रिणीतेन पुत्रवन्तःपिताम

कल्पों का स्मरण करनेवाला हूं जैसी कलियुग में द्वारकापुरी है उसके समान व उससे अधिक दूसरी पुरी नहीं है ॥ २० ॥ हे नृपोत्तम ! दुर्वासा के समान अन्य धन्य मनुष्य नहीं है कि जिन्होंने भार का बंधनकर द्वारका में विष्णुजी को धारण किया ॥ २१ ॥ हे राजर्षे ! काशी व कुरुक्षेत्र, प्रभास और पुष्कर को मत जावो बरन द्वारका को जावो और श्रीकृष्णजी के उत्तम मुख को देखो ॥ २२ ॥ कलियुग में जो मनुष्य द्वारका को जाता है वह पग २ पै हज़ार अश्वमेध व सौ राजसूय यज्ञों के फल को पाता है ॥ २३ ॥ हे नृपवरोत्तम ! कलियुग में उनका जीवन सफल है व द्वारका को जातेहुए जिन मनुष्यों का चित्त चंचल नहीं होता है ॥ २४ ॥ उससे माता

पुत्रिणी होती है व पितामह पुत्रवान् होते हैं कि जिसने कृष्ण के समीप गोमती के किनारे पिंडदान किया है ॥ २५ ॥ और गोपीचन्दन की मुद्रा करके जो पृथ्वी में घूमता है वह देश भी पवित्र होजाता है फिर जहां वह स्थित होवै वहां क्या कहना है ॥ २६ ॥ व जो मनुष्य द्वारका में उपजी हुई तथा कृष्ण से सेवित तुलसी को मस्तक से धारण करता है वह स्वर्ग का स्वामी होता है ॥ २७ ॥ दैत्यों के शत्रु विष्णुजी को भस्म अधिक प्यारी है व श्रीगंगाजी से उत्पन्न जल प्रिय है और सदैव काशीपुरी तथा तुलसी व आमला प्रिय है वैसेही व्यासरचित शास्त्र तथा रामायण प्रिय है और द्वारका व चँबेली से उपजा हुआ पुष्प व हरिवासर में किया

द्धाः ॥ पिण्डदानंकृतंयेन गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ २५ ॥ गोपीचन्दनमुद्रान्तु कृत्वाभ्रमतिभूतले ॥ सोपि देशोभवेत्पूतः किम्पुनर्यत्र संस्थितः ॥ २६ ॥ द्वारकायांसमुद्भूतां तुलसींकृष्णसेविताम् ॥ नित्यंबिभर्तिशिरसा सभवेत्रिदिवेश्वरः ॥ २७ ॥ दैत्यारेर्हि प्रियाविभूतिरधिका नीरञ्च गङ्गोद्भवं नित्यं काशिपुरी तथा च तुलसीधात्रीफलंवल्लभम् ॥ शास्त्रं व्यासकृतं तथा च दयितं रामायणंद्वारका पुष्पम्मालतिसम्भवञ्च दयितं गीतंकृतंवासरे ॥ २८ ॥ गृहेयस्य सदा तिष्ठेद्गोपीचन्दनमृत्तिका ॥ द्वारकातिष्ठते तत्र कृष्णेनसहिताकलौ ॥ २९ ॥ कृतघ्नोवापि गोघ्नोपि योनरःसर्वपापकृत् ॥ गोपीचन्दनसम्पर्कात्पूतोभवतितत्क्षणात् ॥ ३० ॥ गोपीचन्दनखण्डन्तु योददाति हि वैष्णवे ॥ कुलमेकोत्तरंतेन तारितं सशतंभवेत् ॥ ३१ ॥ द्वारकासम्भवाभूप तुलसीयस्यमन्दिरे ॥ तस्यवैवस्वतो नित्यं बिभेति सह किङ्करैः ॥ ३२ ॥ द्वारकासम्भवामृत्स्ना तुलसीकृष्णकीर्त्तनम् ॥ क्रतुकोटिशतंपुण्यं कथितंव्याससूनुना ॥ ३३ ॥ आलोड्य सर्वशास्त्राणि

हुआ गान प्रिय है ॥ २८ ॥ व जिसके घर में गोपीचंदन की मिट्टी सदैव स्थित रहती है वहां कलियुग में श्रीकृष्णसमेत द्वारका स्थित होती है ॥ २९ ॥ व जो मनुष्य कृतघ्न तथा गोघाती और सब पापों का करनेवाला है वह गोपीचंदन के स्पर्श से उसीक्षण पवित्र होजाता है ॥ ३० ॥ और जो वैष्णव के लिये गोपीचन्दन का खण्ड देता है उससे एक सौ एक पुश्तियां तारित होती हैं ॥ ३१ ॥ व हे राजन् ! जिसके मन्दिर में द्वारका में उपजी हुई तुलसी होवै उससे दूतों समेत यमराज डरते हैं ॥ ३२ ॥ व हे भूप ! द्वारका में उपजी हुई मिट्टी व तुलसी और श्रीकृष्ण का कीर्तन व्यास के पुत्र श्रीशुकदेवजी से करोड़ सौ यज्ञों के समान पुण्यवान् कहा गया है ॥ ३३ ॥ हे

भूपाल ! सब शास्त्रों व पुराणों को मैंने बार २ खोजकर देखा परन्तु द्वारका के समान पुरी नहीं देखीगई ॥ ३४ ॥ जिसने द्वारका गमन व श्रीकृष्णजी का कीर्तन किया उसने हज़ारों तीर्थों में स्नान किया व करोड़ों यज्ञों से पूजन किया ॥ ३५ ॥ यदि मनुष्य द्वारका को जावै तो इन्द्रियों का दमन व सांख्य का अभ्यास मनुष्यों का क्या करैगा ॥ ३६ ॥ जिन्होंने द्वारकापुरी को जाकर श्रीकृष्णजीका मुख नहीं देखा वे मनुष्य पंगु हैं और जन्मान्ध के समान हैं ॥ ३७ ॥ और भक्ति से बार २ नाचतेहुए जिन्होंने द्वारका में हरिवासर द्वादशी तिथि में जागरण किया वे कृतार्थ व धन्य हैं ॥ ३८ ॥ और श्रीकृष्णजी के स्थान को जाकर जो गोमती

पुराणानि पुनःपुनः ॥ मयादृष्टामहीपाल द्वारका न समापुरी ॥ ३४ ॥ द्वारकागमनंयेन कृतंकृष्णस्यकीर्त्तनम् ॥ स्नानं तीर्थसहस्रैस्तु तेनेष्टंक्रतुकोटिभिः ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणां तु दमनं किंकरिष्यतिदेहिनाम् ॥ सांख्यस्याभ्यसनं वापि द्वारकांगच्छते यदि ॥ ३६ ॥ पङ्गवस्ते न सन्देहो जन्मान्धेनसमाजनाः ॥ दृष्टंकृष्णमुखं नैव यैर्गत्वाद्वारकाम्पुरीम् ॥ ३७ ॥ कृतकृत्यास्तु तेधन्या द्वारकांवासरेहरेः ॥ कृतंजागरणंभक्त्या नृत्यमानैर्मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥ कृष्णालयन्तु योगत्वा गोमत्यांपिण्डपातनम् ॥ करोतिशक्त्यादानन्तु तृप्तास्तस्यपितामहाः ॥ ३९ ॥ पिशाचत्वं तु प्रेतत्वं न भवेत्तस्यदेहिनः ॥ शतजन्मनिराजेन्द्र योगतोद्वारकाम्पुरीम् ॥ ४० ॥ अन्नदानेनयत्पुण्यं प्रयागेत्यजतस्तनुम् ॥ द्वादश्यांनिमिषार्द्धे न तत्फलंकृष्णसन्निधौ ॥ ४१ ॥ सूर्यग्रहेगवांकोटिं दत्त्वायत्फलमाप्नुयात् ॥ तत्फलंकलिकाले तु द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ ४२ ॥ कोटिभारंसुवर्णस्य ग्रहणेचन्द्रसूर्य्ययोः ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलंकृष्णदर्शने ॥ ४३ ॥ दोलासंस्थञ्च येकृष्णं

नदी में पिंडपात करता है व शक्ति के अनुसार दान देता है उसके पितामह तृप्त होजाते हैं ॥ ३९ ॥ व हे नृपेन्द्र ! जो द्वारकापुरी को गया है उस मनुष्य को सौ जन्मों तक पिशाचत्व व प्रेतत्व नहीं होता है ॥ ४० ॥ और प्रयाग में शरीर को छोड़तेहुए पुरुष को अन्नदान से जो पुण्य होता है कृष्णजी के समीप द्वादशी में आधे पलसे वह फल होता है ॥ ४१ ॥ और सूर्यग्रहण में करोड़ गौवोंको देकर मनुष्य जिस फल को पाता है कलियुग में वह फल द्वारकापुरी में प्रतिदिन होता है ॥ ४२ ॥ और चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में कोटि भार सुवर्ण को देकर मनुष्य जिस फलको पाता है वह फल श्रीकृष्णजी के दर्शन में होता है ॥ ४३ ॥ और चैत व वैशाख महीने

में जो मनुष्य हिंडोला पै बैठे हुए श्रीकृष्णजी को देखते हैं उनके पुत्र, पौत्र, नाना व प्रपितामह ॥ ४४ ॥ व हे नृपोत्तम ! श्वशुर, दास, नौकर व पशु प्रलय पर्यन्त विष्णुजी के साथ क्रीड़ा करते हैं ॥ ४५ ॥ व श्रीकृष्णजी के समीप जो मनुष्य द्वादशी को उपवास करते हैं कलिकाल में मैं उनका श्रीकृष्णजी से कुछ अन्तर नहीं देखता हूं ॥ ४६ ॥ और श्रीकृष्णजी के समीप द्वादशी के समान दिन नहीं है व सदैव श्रीकृष्णजी के समीप सब तिथियां युगादितिथियों के समान होती हैं ॥ ४७ ॥ कलियुग में अधिक पुण्यवाले मनुष्यों को जाकर द्वारकापुरी को सेवन करना चाहिये हे राजन् ! कलियुग में छः पुरी सुलभ हैं और द्वारका दुर्लभ है ॥ ४८ ॥ जिसलिये कि

पश्यन्तिमधुमाधवे ॥ तेषाम्पुत्राश्च पौत्राश्च मातामहपितामहाः ॥ ४४ ॥ श्वशुरादासभृत्याश्च पशवश्च नृपोत्तम ॥ क्रीडन्तिविष्णुना सार्द्धं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ४५ ॥ द्वादश्याह्युपवासंये कुर्वतेकृष्णसन्निधौ ॥ पश्यामिनान्तरंकिञ्चित्कलिकाले च कृष्णतः ॥ ४६ ॥ कृष्णस्यसन्निधौ नैव वासरोद्वादशीसमः ॥ युगादयःसमाःसर्वा नित्यंकृष्णस्यसन्निधौ ॥ ४७ ॥ कलौद्वारावतीसेव्या गत्वापुण्याधिकैर्नरैः ॥ षट्पुरीसुलभाराजन् दुर्लभाद्वारकाकलौ ॥ ४८ ॥ स्मरणात् कीर्तनाद्यस्माद्भुक्तिमुक्तिप्रदानृणाम् ॥ दुर्वाससा तु ऋषिणा रक्षितातिष्ठतापुरी ॥ ४९ ॥ कलौ न शक्यतेगन्तुं विनाकृष्णप्रसादतः ॥ कृष्णस्यदर्शनंकर्तुं यान्तिरुद्रादयःसुराः ॥ ५० ॥ त्रिकालमवनीनाथ रुक्मिणीदर्शनाय च ॥ रुक्मिणीसहितंसर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ५१ ॥ कृष्णेनपालितंसर्वं सन्तिष्ठतियुगेयुगे ॥ सफलंजीवितंतस्य सफलंतस्यचेष्टितम् ॥ ५२ ॥ सफलाभारतीतस्य कृष्णकृष्णेतिवक्ष्यति ॥ द्वारकायांसुतंदृष्ट्वा गायन्तिदिविसंस्थिताः ॥ ५३ ॥

वह स्मरण व कीर्तन करने से मनुष्यों को भुक्ति, मुक्ति देनेवाली है उसी कारण टिकेहुए दुर्वासाजी से वह पुरी रक्षित है ॥ ४९ ॥ और कलियुग में श्रीकृष्णजी की प्रसन्नता के विना उस पुरी को कोई नहीं जासक्ता है और श्रीकृष्णजी का दर्शन करने के लिये शिवादिक देवता जाते हैं ॥ ५० ॥ व हे पृथ्वीनाथ ! त्रिकाल रुक्मिणीनाथ के दर्शन के लिये जाते हैं और रुक्मिणी समेत देवता, दैत्य व मनुष्यों समेत सब संसार ॥ ५१ ॥ श्रीकृष्णजी से पालित होकर युग २ में स्थित है उसका जीवन सफल है व उसका व्यवहार सफल है ॥ ५२ ॥ व उसकी वाणी सफल है जोकि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है और द्वारका में पुत्र को देखकर नरक से छूटेहुए पापी

पितरलोग स्वर्ग में स्थित होते हैं व गाते हैं व चलते हैं तथा हँसते हैं और जो मनुष्यों का गुप्त पाप होता है उसको गोमती स्मरण व कीर्तन करने से नाश करती है फिर स्तुति करने से क्या कहना है और रुक्मिणी सहित शंखी देव को शंखोद्धार में देखकर ॥ ५३।५४।५५ ॥ और पिंडारकतीर्थ में चतुर्भुजजी को देखकर मनुष्य अन्य कर्मों से क्या करैगा और रुक्मिणी व देवकीनन्दन तथा चक्रतीर्थ और गोमती ॥ ५६ ॥ व गोपीचन्दन संसार में दुर्लभ है और कलियुग में तुलसी दुर्लभ है और पितरों को तृप्तिदायक पुत्र तीनों लोकों में दुर्लभ हैं ॥ ५७ ॥ व पृथ्वी को भार देनेवाले वे पुत्र दुर्लभ जानने योग्य हैं जोकि गया में पिंडदान व द्वारकामें श्रीकृष्णजी का दर्शन

नरकात्पापिनोमुक्ताः प्रचलन्तिहसन्ति च॥ गोप्यंयत्पातकंपुंसां गोमतीतद्व्यपोहति ॥ ५४ ॥ स्मरणात्कीर्त्तनाद्वापि किम्पुनःस्तवनेकृते ॥ रुक्मिणीसहितंदेवं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम्॥ ५५ ॥ पिण्डारकेचतुर्बाहुं दृष्ट्वान्यैःकिंकरिष्यति ॥ रुक्मिणीदेवकीपुत्रश्चक्रतीर्थञ्च गोमती ॥ ५६ ॥ गोपीनांचन्दनंलोकेदुर्लभातुलसीकलौ ॥ दुर्लभास्त्रिषुलोकेषु पितॄणां तृप्तिदास्सुताः ॥ ५७ ॥ दुर्लभास्तेसुताज्ञेया धरणिभारदायकाः ॥ गयायांपिण्डदानञ्च द्वारकांकृष्णदर्शनम् ॥ ५८ ॥ करिष्यन्तिकलौप्राप्ते वर्द्धिनीसमुपोषणम्॥ समपुण्यफलाह्येषा द्वारकावर्द्धिनीगया ॥ ५९ ॥ न न्यूनाचाधिकावापि कथिताविष्णुनास्वयम् ॥ वर्द्धिनी चाधिका राजन्कृणुवक्ष्यामिकारणम् ॥ ६० ॥ द्वादश्यामुपवासेन द्वादश्याम्पारणे न तु ॥ प्राप्यतेहेलयायेन तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ ६१ ॥ गृहेपि वसतांतीर्थं गृहेपि वसतांतपः ॥ गृहेपि वसतां मोक्षं वर्द्धिनीसमुपोषणात् ॥ ६२ ॥ वर्द्धिनीद्वारकागङ्गा गयागोविन्ददर्शनम् ॥ गोमतीगोकुलंगीता दुर्लभङ्गेपि

करते हैं ॥ ५८ ॥ व कलियुग प्राप्त होने पर जो वर्द्धिनी एकादशी का व्रत करैंगे वे दुर्लभ होवैंगे और यह द्वारका व वर्द्धिनी एकादशी तथा गया समान पुण्यवाली है ॥ ५९ ॥ क्योंकि विष्णुजी से आपही न्यून व अधिक नहीं कहीगई है वरन हे राजन्! वर्द्धिनी अधिक है उस कारण को सुनिये मैं कहता हूं ॥ ६० ॥ कि जिससे द्वादशी में उपास करने से व द्वादशी में पारण करनेसे वह विष्णुजी का परमपद लीलाही से मिलता है ॥ ६१ ॥ और वर्द्धिनी के उपवास से घर में वसतेहुए लोगोंको भी तीर्थ होता है व घरमें वसतेहुए मनुष्यों को भी तप होता है और घरमें वसतेहुए लोगोंको भी मोक्ष होता है ॥ ६२ ॥ और वर्द्धिनी, द्वारका, गंगा, गया व गोविन्दजी का दर्शन तथा

गोमती, गोकुल, गीता और गोपीचन्दन दुर्लभ है ॥ ६३ ॥ हे राजन्! वर्द्धिनी के विना श्रीकृष्णजी हलासे नहीं मिलते हैं तुम इस संसारमें सैकड़ों व्रतोंको छोड़कर वर्द्धिनी का व्रत करो ॥ ६४ ॥ जो मनुष्य मनमें श्रीकृष्णजी को करके भक्ति से इस चरित्र को सुनता है वह हज़ार अश्वमेध यज्ञोंके फलको पाता है ॥ ६५ ॥ और केशवजी के माहात्म्य को जो जागरण में सुनैंगे सब पापों से छूटेहुए वे विष्णुजी के स्थान को जावैंगे ॥ ६६ ॥ व जो मनुष्य नित्य पढ़ैंगे व सुनैंगे वे तुला पुरुषके दानका फल पावैंगे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६७ ॥ व हे राजन्! श्रीकृष्णजी के वासर में जो थोड़ा भी दियाजाता है वह सब कोटिगुना जानने योग्य है ऐसा कवियों ने कहा है ॥ ६८ ॥

चन्दनम् ॥ ६३ ॥ वर्द्धिनीं न विनाकृष्णो हेलयालभ्यतेनृप ॥ हित्वाव्रतशतानीह कुरुत्वंवर्द्धिनीव्रतम् ॥ ६४ ॥ एतच्छृणोतिभक्त्यायः कृत्वामनसिकेशवम् ॥ अश्वमेधसहस्रस्य फलंप्राप्नोतिमानवः ॥६५॥ श्रोष्यन्तिजागरेये वै माहात्म्यं केशवस्य च ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताः पदंयास्यन्तिवैष्णवम् ॥ ६६ ॥ पठिष्यन्तिनरोनित्यं ये वै श्रोष्यन्तिभक्तितः ॥ तुलापुरुषदानस्य फलंप्राप्स्यन्त्यसंशयम् ॥६७॥ कृष्णस्यवासरे नूनं यत्स्वल्पमपि दीयते ॥ सर्वंकोटिगुणंज्ञेय मित्याहुःकवयोनृप ॥ ६८ ॥ मानकूटंतुलाकूटं कन्याकूटञ्च यद्भवेत् ॥ तत्सर्वंविलयंयान्ति एकादश्यान्तुजागरे ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ राज्यं येन पटान्तलग्नतृणवत् त्यक्तं गुरोराज्ञया पाथेयं परिगृह्य धर्ममतुलं घोरं वनं प्रस्थितः ॥ श्रुत्वाप्याऽऽत्मविवासनं च बलवान् यो नागतो विक्रियां पापाढ्यः स विभीषणार्तिहरणो रामाभिधानो

और मानकूट, तुलाकूट व जो कन्याकूट पाप होता है वह सब एकादशी के जागरण में नाश होजाता है ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । किये जागरण द्वादशी माहिं जौन फल होत । अट्ठाइस अध्यायमें सोइ चरित्र उदोत ॥ मार्कंडेयजी बोले कि जिन्होंने वस्त्र में लगेहुए तिनुका की नाईं राज्य को पिता की आज्ञा से छोड़दिया और अतुल धर्म को मार्गव्यय लेकर जो भयंकर वनको चलेगये व अपने वनगमन को भी सुनकर जो विकार को न प्राप्तहुए वे विभी-

पण के दुःख को हरनेवाले श्रीरामनामक विष्णुजी तुमलोगों की रक्षा करैं ॥ १ ॥ श्रीविष्णु रामजी के तत्त्व को जाननेवाले और वेदों व शास्त्रों के अर्थों के पारगामी व सब धर्मों को जाननेवाले तथा भगवद्भक्ति में तत्पर व सुख से बैठेहुए प्रह्लादजी से पूछने के लिये सब शास्त्रार्थों को जाननेवाले तथा अपने धर्मके पालक ऋषिलोग आये ॥ २ । ३ ॥ व बोले कि विना ज्ञान व विना ध्यान और विना इन्द्रियोंके दमन व विन परिश्रम जिससे यह विष्णुका परमपद मिलता है हे दनुजोत्तम ! देखे व न देखेहुए फल से उत्पन्न उस सब धर्म को संपूर्णता से संक्षेप से कहो ॥ ४ । ५ ॥ ऐसा कहेहुए सबलोकोंके हित में उद्यत व नारायणमें परायण इन महाभाग प्रह्लादजीने संक्षेप से

हरिः॥ १ ॥ प्रह्लादंसर्वधर्मज्ञं वेदशास्त्रार्थपारगम् ॥ विष्णोरामस्यतत्त्वज्ञं भगवद्भक्तितत्परम् ॥ २ ॥ सुखासीनोपविष्टन्तु ऋषयःप्रष्टुमागताः ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञाः स्वधर्मपरिपालकाः ॥ ३ ॥ विना ज्ञानाद्विना ध्यानाद्विना चेन्द्रियनिग्रहात् ॥ अनायासेनयेनैतत्प्राप्यतेपरमंपदम् ॥ ४ ॥ संक्षेपात्केशवस्येह दृष्टादृष्टफलोद्भवम् ॥ धर्मंदनुजशार्दूल ब्रूहिसर्वमशेषतः ॥ ५ ॥ इत्युक्तोसौमहाभागो नारायणपरायणः ॥ कथयामाससंक्षेपात्सर्वलोकहितोद्यतः ॥ ६ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ श्रूयतामभिधास्यामि गुह्याद्गुह्यतरंमहत् ॥ यस्यसंश्रवणादेव सर्वपापक्षयोभवेत् ॥ ७ ॥ अष्टादशपुराणानां सारात्सारतरं च यत् ॥ तदहंकथयाम्यद्य सर्वलोकहितायवः ॥ पृच्छतःषण्मुखस्याह यत्पुराभगवान्हरः ॥ ८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ चतुर्विधञ्च यत्पापं कोटिजन्मार्जितंकलौ ॥ जागरेवैष्णवंशास्त्रं वाचयित्वाप्रणश्यति ॥ ९ ॥ वैष्णवस्य तु शास्त्रस्य यो वक्ताहरिवासरे ॥ मद्भक्तंतंविजानीयान्नरकीत्वन्यथाभवेत् ॥ १० ॥ हरिजागरणेयस्य न निद्राजायते मुहुः ॥ मद्भक्तश्च वि

कहा ॥ ६ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि गुप्तसे भी बहुतही गुप्त चरित्रको मैं कहता हूं उसको सुनिये कि जिसके सुननेही से सब पापों का नाश होताहै ॥ ७ ॥ अठारह पुराणों के मध्य में जो साराश से भी अधिक सारांश है उसको मैं सब लोकों के हितके लिये इस समय तुमलोगों से कहता हूं जिसको पुरातन समय पूछतेहुए स्वामिकार्तिकेयजी से शिवजी ने कहा है ॥ ८ ॥ महादेवजी बोले कि कोटिजन्मों में इकट्ठा कियाहुआ जो चार प्रकार का पाप है वह कलियुग में जागरण में विष्णुजी के शास्त्र को पढ़कर नाश होजाता है ॥ ९ ॥ हरिवासर द्वादशी तिथिमें जो विष्णुजी के शास्त्र को पढ़ता है उसको मेरा भक्त जानै अन्यथा मनुष्य नरकगामी होता है ॥ १० ॥ व

विष्णुजी के जागरण में जिसको बार २ निद्रा नहीं आती है और जो नाचता व गाता है वह विशेषकर मेरा भक्त है ॥ ११ ॥ उसको मैं उत्तम ज्ञान को देता हूं व विष्णुजी मोक्ष को देते हैं इस कारण जानतेहुए मेरे भक्त को जागरण करना चाहिये ॥ १२ ॥ अन्यथा जो विष्णुजी से वैर करते हैं वे पाखण्डी जानने योग्य हैं और हरिवासर में जो जागरण करते हैं व जो गाते हैं ॥ १३ ॥ हे षण्मुख ! उनको आधे निमेष से अग्निष्टोम व अतिरात्र यज्ञ के समान फल होता है व रात्रिमें विष्णुजी के मुख को बार २ देखते हुए पुरुष को वही फल होता है ॥ १४ ॥ व विष्णुजी के जागरण में जिनके रोम रात्रि में प्रसन्न होते हैं उनके उतने वंश विष्णुजी के समीप

शेषेण नृत्यतेगायते च यः ॥ ११ ॥ प्रयच्छामिपरंज्ञानं मोक्षंविष्णुःप्रयच्छति ॥ तस्माज्जागरणंकार्यं मद्भक्तेनविजानता ॥ १२ ॥ अन्यथालिङ्गिनोज्ञेया येद्विषन्तिजनार्दनम् ॥ जागरंये तु कुर्वन्ति गायन्तिहरिवासरे ॥ १३ ॥ अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां निमिषार्द्धेनषण्मुख ॥ जागरेपश्यतोविष्णोर्मुखंरात्रौमुहुर्मुहुः ॥ १४ ॥ येषांहृष्यन्तिरोमाणि रात्रौजागरणे हरेः ॥ कुलानिदिवितावन्ति वसन्तिहरिसन्निधौ ॥ १५ ॥ यमस्यपाशनिर्मुक्ता नराःपापशतैर्वृताः ॥ द्वादश्यांयेप्रकुर्वन्ति जागरंपुरतोहरेः ॥ १६ ॥ कृतंयत्सुकृतंकिञ्चित् त्रिषुलोकेषुविद्यते ॥ गीतशास्त्रविनोदेन द्वादशीजागरान्वितैः ॥ १७ ॥ शुभान्वितानिशानित्यं कलौकृष्णार्पितंमनः ॥ प्राणात्यये न मुह्यन्ति द्वादश्यांजागरेहरेः ॥ १८ ॥ पुत्रिणस्तेनरालोके धन्यास्तेख्यातपौरुषाः ॥ येषांवंशोद्भवाःपुत्राः कुर्वन्तिहरिजागरम् ॥ १९ ॥ इष्टंमखैःकृतंदानं दत्तंपिण्डंगयासुतैः ॥

स्वर्ग में बसते हैं ॥ १५ ॥ और जो मनुष्य द्वादशी तिथि में विष्णुजी के आगे जागरण करते हैं सैकड़ों पापोंसे घिरेहुए वे यमराज की फँसरी से मुक्त होजाते हैं ॥१६॥ और त्रिलोक में जो कुछ पुण्य है वह पुण्य गीतशास्त्र की क्रीड़ा से द्वादशी के जागरण से संयुत मनुष्यों से किया जाता है ॥ १७ ॥ और विष्णुजी की द्वादशी तिथि में व जागरण में जिनका मन श्रीकृष्णजी में लगगया उनकी रात्रि सदैव शुभ से संयुत होती है और वे प्राणों के विनाश में मोहित नहीं होते हैं ॥ १८ ॥ प्रसिद्ध पौरुषवाले वे मनुष्य धन्य व पुत्रवान् होते हैं जिनके वंशमें उपजेहुए पुत्र विष्णुजी का जागरण करते हैं ॥ १९ ॥ व जिन्होंने विष्णुजी का जागरण किया उन्होंने

यज्ञों से पूजन किया व दान दिया तथा गया में पिंड दिया और प्रयाग में नित्य स्नान किया ॥ २० ॥ व जिन्होंने हरिवासर में जागरण किया वे संन्यासियों के पुण्य को पागये व नित्य आश्रम में बसनेवालों के पुण्य को पागये व उन्होंने सब इष्टापूर्त कर्म किया ॥ २१ ॥ व हे षडानन ! जिसलिये जागरण से संयुत विष्णुजी के वासर को करते हैं उस कारण विष्णुभक्त मुझको सदैव प्यारे हैं ॥ २२ ॥ व द्वादशी तिथिमें जो श्रद्धा से जागरण नहीं करता है मनुष्यों के बीच में उसका दुष्टकर्म प्रकटता को प्राप्त है ॥ २३ ॥ विष्णुजी के वासर को प्राप्त होकर जिन्होंने जागरण नहीं किया उनका सौ जन्मों में उपजा हुआ वह पुण्य व्यर्थ होगया ॥ २४ ॥ पितर

स्नानंनित्यंप्रयागे तु यैःकृतंहरिजागरम् ॥ २० ॥ प्राप्तंसंन्यासिनांपुण्यं नित्यमाश्रमवासिनाम् ॥ इष्टापूर्त्तं तु सकलं यैःकृतंहरिजागरम् ॥ २१ ॥ दयिताविष्णुभक्ताश्च नित्यंममषडानन ॥ कुर्वन्तिवासरंविष्णोर्यस्माज्जागरणान्वितम् ॥ २२ ॥ श्रद्धयासहद्वादश्यां जागरं न करोतियः ॥ प्राकट्यमस्ति वै तस्य जनानांदुर्विचेष्टितम् ॥ २३ ॥ सम्प्राप्यवासरंविष्णोर्न यैर्जागरणंकृतम् ॥ व्यर्थंगतञ्च तत्पुण्यं तेषांजन्मशतोद्भवम् ॥ २४ ॥ पुत्रो वाप्यथ पौत्रो वा दौहित्रोदुहिता तथा ॥ करिष्यतिकुलेस्माकं कलौजागरणंहरेः ॥ २५ ॥ प्राप्तंसन्यासिनांपुण्यं नित्यमाश्रमवासिनाम् ॥ पीड्यमानाःप्रजल्पन्ति पितरोयमकिङ्करैः ॥ २६ ॥ मुक्तिर्भविष्यत्यस्माकं नरकाज्जागराद्धरेः ॥ भवेन्न चान्यथास्माकं मुक्तिर्यज्ञशतैःकृतैः ॥ २७ ॥ विनाजागरणेनैव नरकाद्धिकथञ्चन ॥ तस्माज्जागरणंकार्यं पितॄणांहितमिच्छता ॥ २८ ॥ भक्तिर्भागवतानाञ्च गोविन्दस्यानुकीर्त्तनम् ॥ तदेहभ्रमणंतस्मात्पुनर्लोकाद्भविष्यति ॥ २९ ॥ यस्यजागरणंजातं वर्द्धिनीद्वा

लोग कहते हैं कि हमलोगों के वंशमें जो पुत्र, पौत्र, नाती या कन्या विष्णुजी के दिनमें जागरण करै ॥ २५ ॥ वह संन्यासियों तथा सदैव आश्रम में बसनेवालों के पुण्य को पागया और यमदूतों से पीड़ित किये जातेहुए पितर कहते हैं ॥ २६ ॥ कि विष्णुजी के जागरण से हमलोगों की नरक से मुक्ति होगी और विना जागरण सौ यज्ञों के करने से भी किसी प्रकार नरक से मुक्ति न होगी इस कारण पितरों का हित चाहते हुए पुरुष को जागरण करना चाहिये ॥ २७ । २८ ॥ और जब भगवद्भक्तों की भक्ति व गोविन्द का कीर्तन होगा तब यहां फिर उस लोक से भ्रमण होगा ॥ २९ ॥ और वर्द्धिनी द्वादशी के दिन जिसका जागरण हुआ है उसने

आपही फिर देह की उत्पत्ति को जलादिया ॥ ३० ॥ वैसेही त्रिस्पृशा के दिन जिसने जागरण किया है वह विष्णुजी के शरीर में लीन होजाता है ॥ ३१ ॥ व हे षण्मुख ! जिसने बोधिनी एकादशी को रात्रि में जागरण से संयुत किया है उसके स्थूल व सूक्ष्म पाप नाश होजाते हैं ॥ ३२ ॥ व विष्णुजी के द्वादशी दिन में फिर जो जागरण करता है व जो विष्णु के जागरण में ताल समेत व वाद्य से संयुत गीत को भक्ति से कराते हैं व हे स्कन्द ! द्वादशी में शक्ति के अनुसार दान संयुत दोला-दिक आगे धराहुआ विष्णुजी को प्रिय है ॥ ३३ । ३४ ॥ और उस महाभगवद्भक्त के पुण्य को मैं कहता हूं कि सुवर्ण समेत हज़ार प्रस्थ प्रमाण भर तिलों को ब्राह्मण के

दशीदिने ॥ पुनर्देहप्रजननं दग्धंतेनात्मनास्वयम् ॥ ३० ॥ त्रिस्पृशावासरेयेन कृतंजागरणं तथा ॥ केशवस्यशरीरे तु सलीनोभवतीति च ॥ ३१ ॥ उन्मीलिनीकृतायेन रात्रौजागरणान्विता ॥ नश्यन्तितस्यपापानि स्थूलसूक्ष्माणिषण्मुख ॥ ३२ ॥ द्वादश्यांजागरंविष्णोर्यःकरोतिपुनर्दिने ॥ सतालंवाच्यसंयुक्तं संगीतंजागरंहरेः ॥ ३३ ॥ कारयन्ति च येभक्त्या द्वादश्यांदानसंयुतम् ॥ प्रेंखादिकंहरेरिष्टं शक्त्यास्कन्दपुरोधृतम् ॥ ३४ ॥ तस्यपुण्यञ्च वक्ष्यामि महाभागवतस्य हि ॥ तिलप्रस्थसहस्रन्तु सहिरण्यंद्विजातये ॥ ३५ ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति अयनेरविसंक्रमे ॥ हेमभारशतं नित्यं सवत्सकपिलायुतम् ॥ ३६ ॥ प्रेंखायाश्च प्रदानेन तत्फलम्प्राप्नुयात्कलौ ॥ यःपुनर्वासरेविष्णोर्दिव्यैर्ऋषिकृतैःस्तवैः ॥ ३७ ॥ तोषयेत्पद्मनाभन्तु वैदिकैर्मन्त्रसंयुतैः ॥ ऋग्यजुःसामसम्भूतैर्वैष्णवैश्चैव पुत्रक ॥ ३८ ॥ संस्कृतैःप्राकृतैः स्तोत्रैर्गीतवाद्यैरनेकधा ॥ प्रीतिंकरोतिदेवेशो द्वादश्यांजागरेस्थितः ॥ ३९ ॥ शृणुपुण्यंसमासेन यत्कृतंतेनषण्मुख ॥

लिये ॥ ३५ ॥ देकर मनुष्य जिस फलको पाता है व सूर्य के अयन व संक्रान्ति में नित्य बछड़ा समेत कपिला से युक्त सुवर्ण के सौ भारको देकर मनुष्य जिस फलको पाता है ॥ ३६ ॥ कलियुग में दोला के देने से मनुष्य उस फल को पाता है फिर जो विष्णुजी के वासर में उत्तम ऋषियों से किये हुए स्तोत्रों से ॥ ३७ ॥ व मन्त्र समेत वैदिक स्तोत्रों से जो विष्णुजी को प्रसन्न करता है व हे पुत्र ! ऋक्, यजुः व सामवेद से उपजेहुए विष्णुजी के स्तोत्रों से जो स्तुति करता है ॥ ३८ ॥ व संस्कृत और प्राकृत स्तोत्रों से तथा अनेक प्रकार के गीतों व बाजनों से द्वादशी में जो विष्णुजी को प्रसन्न करता है जागरण में स्थित विष्णुजी उसकी प्रीति करते हैं ॥ ३९ ॥ हे

षडानन ! उसने जो पुण्य किया है उसको संक्षेप से सुनिये कि हे षण्मुख ! तिगुनी करके इक्कीस बार पृथ्वी को ॥ ४० ॥ देकर मनुष्य जिस फलको पाता है उस फल को वह मनुष्य पाता है व बछड़ा समेत लाख गौवों के देने से जो फल होता है ॥ ४१ ॥ उस फलको वह मनुष्य पाता है जो कि वैदिक स्तोत्रों से विष्णुजी की स्तुति करता है और एक पहर जागरण में दशगुनी प्रीति होती है ॥ ४२ ॥ इस प्रकार फल के अनुसार विष्णु का जागरण करना चाहिये फिर जो रात्रि में गीता व सहस्रनाम को वैष्णवों के समीप विष्णुजी के आगे पढ़ता है वह विष्णुजी के उत्तम स्थान को जाता है जहां कि आपही नारायणजी हैं और पवित्र

त्रिःसप्तकृत्वाधरणीं त्रिगुणीकृत्य षण्मुख ॥ ४० ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलम्प्राप्नुयान्नरः ॥ गवांशतसहस्रेण सवत्सेनापि यत्फम् ॥ ४१ ॥ तत्फलम्प्राप्नुयान्मर्त्यः स्तोत्रैर्यःस्तोष्यतेहरिम् ॥ वैदिकैर्दशगुणाप्रीतिर्यामेनैकेनजागरे ॥ ४२ ॥ एवम्फलानुसारेण कर्तव्यंजागरंहरेः ॥ यःपुनःपठतेरात्रौ गीतांनामसहस्रकम् ॥ ४३ ॥ द्वादश्याम्पुरतो विष्णोर्वैष्णवानांसमीपतः ॥ सगच्छेत्परमंस्थानं यत्रनारायणःस्वयम् ॥ पुण्यंभागवतंस्कन्दं पुराणंदयितं हरेः ॥ ४४ ॥ मथुराम्बालचरितं यत्प्रोक्तंवैष्णवंहरेः ॥ एतत्पठतियोरात्रौ पूजयित्वा तु केशवम् ॥ ४५ ॥ नो जानेहंफलंवत्स जातुजानातिकेशवः ॥ फलन्तु गीतनृत्याद्यैः स्तोत्रैर्नानाविधैश्च यत् ॥ ४६ ॥ फलंतद्वैदिकैर्जाप्यैर्जागरेचक्रपाणिनः ॥ कलौनामसहस्रेण गीतापाठेनपुत्रक ॥ ४७ ॥ पुण्यंसहस्रगुणितं तथाभागवतेन च ॥ दीपम्प्रज्वलयेद्रात्रौ यस्तु वै हरिजागरे ॥ ४८ ॥ न चास्तङ्गच्छतेतस्य पुण्यङ्कल्पशतैरपि ॥ मञ्जरीसहितैःपत्रैस्तुलसीसम्भवै

भागवत स्कन्दपुराण विष्णुजी को प्रिय है ॥ ४३ । ४४ ॥ मथुरा में श्रीकृष्णजी का जो बालचरित्र कहागया है इस वैष्णव चरित्र को जो रात्रि में विष्णुजी को पूजकर पढ़ता है ॥ ४५ ॥ उसके फल को मैं नहीं जानता हूं कदाचित् विष्णुजी जानते हों और गीत व नृत्यादिक तथा अनेक भांति के स्तोत्रों से जो फल होता है ॥ ४६ ॥ वह फल चक्रपाणिजी के जागरण में वैदिक स्तोत्रों के पढ़ने से होता है हे पुत्र ! कलियुग में सहस्रनाम व गीता के पाठ से ॥ ४७ ॥ तथा भागवत से हज़ार गुना पुण्य होता है और विष्णुजी के जागरण में जो रात्रि में दीपक जलाता है ॥ ४८ ॥ उसका पुण्य सौ कल्पों में भी नाश को नहीं प्राप्त होता है और मञ्जरी समेत तुलसी

से उत्पन्न दलों से जो विष्णुजी को ॥ ४९ ॥ जागरण में भक्ति से पूजना है उसका फिर जन्म नहीं होता है और स्नान, लेपन व धूप, दीप से उत्पन्न पूजन ॥ ५० ॥ और ताम्बूल समेत नैवेद्य जागरण में दिया हुआ अक्षय होता है व हे षण्मुख ! भक्ति में तत्पर जो मनुष्य मुझको ध्यान करना चाहै ॥ ५१ ॥ वह द्वादशी तिथि में बड़ी भक्ति से विष्णुजी का जागरण करै और विष्णु के दिन में इन्द्र समेत सब देवता ॥ ५२ ॥ उनके शरीर का आश्रय कर टिकते हैं जो कि जागरण करते हैं और वासुदेव के जागरण में महाभारत का कीर्तन ॥ ५३ ॥ जो करते हैं वे वहा जाते हैं जहां कि संन्यासी लोग जाते हैं व रामजी के चरित्र व रावण के वध को जो ॥ ५४ ॥

हरिम् ॥ ४९ ॥ जागरेपूजयेद्भक्त्या नास्तितस्यपुनर्भवः ॥ स्नानंविलेपनम्पूजा धूपदीपेनसम्भवा ॥ ५० ॥ नैवेद्यन्तु सताम्बूलं जागरेदत्तमक्षयम् ॥ ध्यातुमिच्छतिषड्वक्त्र योमांभक्तिपरायणः ॥ ५१ ॥ सकरोतुमहाभक्त्या द्वादश्यांजागरंहरेः ॥ वासरेवासुदेवस्य सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ ५२ ॥ देहमाश्रित्यतिष्ठन्ति येकुर्वन्तिप्रजागरम् ॥ जागरेवासुदेवस्य महाभारतकीर्तनम् ॥ ५३ ॥ येकुर्वन्ति च तेयान्ति यत्र संन्यासिनोजनाः ॥ चरितंरामदेवस्य येवधंरावणस्य च ॥ ५४ ॥ पठन्तिजागरेविष्णोर्यान्तियोगविदोजनाः ॥ अधीताश्चतुरोवेदा इष्टादेवामखादयः ॥ ५५ ॥ स्नानंतीर्थेषुसर्वेषु यैःकृतंजागरंहरेः ॥ हयानामयुतंदत्तं सहस्रवरवारणम् ॥ ५६ ॥ लक्षंमखवराणाञ्च यैः कृतंजागरंहरेः ॥ कन्याकोटिप्रदानञ्च स्वर्णभारशतं तथा ॥ ५७ ॥ दत्तंरत्नायुतशतं यैःकृतंजागरंहरेः ॥ अष्टादशपुराणैस्तु पठितैर्यत्फलंलभेत् ॥ ५८ ॥ तत्फलंशतसाहस्रं कृतेजागरणेहरेः ॥ संन्यासिनांसहस्रैस्तु यत्फलम्भोजितैः

योग के जाननेवाले लोग विष्णुजी के जागरण में पढ़ते हैं वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं और उन्होंने चारों वेदों को पढ़ा व देवता और यज्ञादिकों को पूजा ॥ ५५ ॥ तथा सब तीर्थों में उन्होंने स्नान किया जिन्होंने विष्णुजी का जागरण किया उन्होंने दश हज़ार घोड़ों व हज़ार उत्तम हाथियों को दिया ॥ ५६ ॥ व लाख उत्तम यज्ञों को उन्होंने किया कि जिन्होंने विष्णुजी का जागरण किया और उन्होंने करोड़ कन्यादान व सौभार सुवर्ण दिया ॥ ५७ ॥ व दश हज़ार सौ रत्नों को दिया कि जिन्होंने विष्णुजी का जागरण किया और अठारह पुराणों के पढ़ने से मनुष्य जिस फल को पाता है ॥ ५८ ॥ उससे सौ व हज़ार गुना फल विष्णुजी का

जागरण करने पर होता है और कलियुग में हज़ार संन्यासियों को भोजन कराने से जो फल होता है॥ ५९ ॥ व दुर्भिक्ष में अन्न को देनेवाले पुरुषों को जो फल होता है वह और अधिक फल विष्णु का जागरण करनेवाले पुरुषों को होता है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांद्वादशी माहात्म्यंनामाष्टाविंशतमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथाद्वादशीकर अहै अतिही अतुल प्रभाव । उन्तिसवें अध्याय में सोइ हर्ष उपजाव ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि जो मनुष्य यज्ञ के समान व दुःखनाशक तथा

कलौ ॥ ५९ ॥ दुर्भिक्षेचान्नदातॄणां पुंसाम्भवतियत्फलम् ॥ तत्फलञ्चाधिकम्प्रोक्तं कुर्वतांजागरंहरेः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येद्वादशीमाहात्म्यंनामाष्टाविंशतमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ * ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ स्थित्वायो हरिजागरे क्रतुसमे दुःखापहेपुण्यदे रम्यंजागरणंशृणोतिपठतां कृत्वाहरेःपूजनम् ॥ पुण्यंवाजिमखस्यकोटिगुणितं सम्प्राप्यकल्पद्वयं छित्त्वापापसमूलवृक्षनिचयं प्राप्नोतिकृष्णालयम् ॥ १ ॥ हित्वापापसमूलकोटिनिचयं गुर्वङ्गनाकोटिभिःस्तेयैर्लक्षशतैर्गुरोर्वधकृतैः संवेष्टितोयद्यपि ॥ अन्यैःपापसहस्रकैरपि च यः संवेष्टितोमानवो विष्णोर्जागरणेकृतेस हि परं गच्छेत्पदंशाश्वतम् ॥ २॥ एकादशीद्वादशिसम्प्रविष्टा कृतानभस्य श्रवणेनयुक्ता ॥ विशेषतःसोमसुतेनसङ्गात् करोतिमुक्तिम्प्रपितामहानाम् ॥ ३ ॥ यद्दीयतेद्वादशिवासरेशुभे विष्णुंसमुद्दि

पुण्यदायक विष्णुजी के जागरण में स्थित होकर विष्णुजी का पूजन कर पढ़तेहुए पुरुषों से सुन्दर जागरण को सुनता है वह अश्वमेध के कोटिगुने फल को पाकर दो कल्पों तक स्थित होकर जड़ समेत पापरूपी वृक्षों के समूह को काटकर श्रीकृष्णजी के स्थान को पाता है ॥ १ ॥ व पाप के जड़ समेत कोटिसमूह को छोड़कर यद्यपि करोड़ गुरुस्त्रीगमन व लाख सौ चोरी व गुरुवों के मारने से किये हुए पापों से घिरा होवै तथा अन्य भी हज़ारों पापों से जो मनुष्य संयुत होवै वह विष्णुजी का जागरण करने पर विष्णुजी के अविनाशी स्थान को जाता है ॥ २ ॥ और द्वादशी से संयुत तथा श्रवण नक्षत्र से युक्त कीहुई भादौं की एकादशी बुध के संयोग से विशेषकर प्रपितामहों की मुक्ति करती है ॥ ३ ॥ और विष्णु व पितरों को उद्देश कर उत्तमद्वादशी दिन में जो दियाजाता है वह पूर्ण यज्ञों व उत्तम तीर्थ दानों समेत भक्ति

से दिये हुए सुमेरु के समान होता है ॥ ४ ॥ और विष्णु के दिन में महानदी को प्राप्त होकर जो पितरों को जल की अञ्जली देता है उसने हज़ार गयाश्राद्ध किया और भलीभांति तृप्त पितर उसको मनोरथों को देते हैं ॥ ५ ॥ व शरण में प्राप्त मनुष्यों का पालन व जल की वृष्टि से रहित देश में अन्नदान और ब्राह्मणों व देवताओं के ऋण को जो देता है उनका फल विष्णुजी के जागरण से होता है ॥ ६ ॥ और उत्तम ब्राह्मण से सब आश्रमों का पालन करने से जो फल सुना जाता है व प्रभास क्षेत्र व पुष्कर में जो फल होता है उनका फल विष्णुजी के जागरण से होता है ॥ ७ ॥ व हे नरेश्वर ! क्षमा, दया व दान समेत सत्य, शौच तथा यम से जो फल

श्य तथा पितॄणाम् ॥ पर्याप्तमिष्टैश्च सुतीर्थदानैर्भक्त्याप्रदत्तञ्च सुमेरुतुल्यम् ॥ ४ ॥ महानदींप्राप्यदिने च विष्णोस्तोयाञ्जलिंयस्तु पितॄन्ददाति ॥ श्राद्धंकृतंतेनगयासहस्रं यच्छन्तिकामान्पितरःसुतृप्ताः ॥ ५ ॥ शरणङ्गतानाम्परिपालनं वै चान्नप्रदानंजलवृष्टिवर्जिते ॥ ऋणप्रदाताद्विजदेवतानां तेषाम्फलंजागरणेनविष्णोः ॥ ६ ॥ सर्वाश्रमाणाम्परिपालने न यच्छ्रूयतेविप्रवरेणपुण्यम् ॥ क्षेत्रेप्रभासस्य च पुष्करे च तेषाम्फलंजागरणेनविष्णोः ॥ ७ ॥ सत्येनशौचेनयमेन यत्फलं क्षमादयादानसमंनरेश्वर ॥ दशाश्वमेधैर्बहुदक्षिणैश्च तेषाम्फलंजागरणेनविष्णोः ॥ ८ ॥ यःस्वर्णधेनुंघृत नीरधेनुं कृष्णाजिनंरूप्यसुवर्णमेरुम् ॥ ब्रह्माण्डदानम्प्रददातिमाघे पुण्यंतदाप्नोतिहरेस्तु जागरे ॥ ९ ॥ यदस्थि पातेन प्रयागकेफलं यत्पिण्डदानेन तथा गयायाम् ॥ यद्दानपुण्यंकुरुजाङ्गले च तेषाम्फलंजागरणेनविष्णोः ॥ १० ॥ हत्यायुताभिर्यदिसञ्चितानि स्तेयानिरुक्मस्य न सन्तिसंख्या ॥ नश्यन्त्यनेकानिपुराकृतानि पापानिभद्रातिथिजाग

होता है व बहुत दक्षिणाओंवाले दश अश्वमेध यज्ञों से जो फल होता है उनका फल विष्णुजी के जागरण से होता है ॥ ८ ॥ और जो माघमहीने में सुवर्ण की गऊ व घी और जल की धेनु तथा मृगचर्म व चांदी तथा सुवर्ण के सुमेरु को व ब्रह्माण्डदान को करता है उस पुण्य को मनुष्य विष्णुजी के जागरण में पाता है ॥ ९ ॥ और प्रयाग में अस्थि डालने से व गया में पिण्डदान से जो फल होता है और कुरु व जाङ्गल में जो दान का पुण्य है उनका फल विष्णुजी के जागरण से होता है ॥ १० ॥ व यदि दश हज़ार हत्याओं से पाप संचित किये गये व सुवर्ण की चोरी की जिनकी गिनती नहीं है वे पहले किये हुए पातक भद्रा याने द्वादशी तिथि के जागरण से

नाश होजाते हैं ॥ ११ ॥ और यह मनुष्य यमपुरी को नहीं जाता है व अन्य जन्म में वे स्वप्न में भी खेचर व खड्गपत्र नरक को नहीं देखते हैं जिनकी द्वादशी जागरण से व्यतीत हुई है ॥ १२ ॥ व गेरुहा वस्त्रों से किये हुए भारों के विडम्बित से व पूर्ण अग्निहोत्र आदिक के पूजन से क्या होगा बरन धर्म, अर्थ, काम फल व मोक्ष को करनेवाली तथा कलियुगरूपी पर्वत को तोड़नेवाली एक भद्रा याने द्वादशी तिथि का सेवन करो ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! पुरातन समय कल्याण के प्रयोजन की बुद्धि से नारदमुनि ने यह कहा है कि कृष्ण से उत्तम और देवता नहीं है व उनके दिन से परे अन्य दिन नहीं है ॥१४॥ हे भूमिदेवो ! व हे द्विजेन्द्र, ऋषि, सिद्ध, मुनीन्द्रगणो !

रेण ॥ ११ ॥ नासौव्रजेत्सौरिपुरीं न चैव भवान्तरेखेचरखड्गपत्रम् ॥ स्वप्ने न पश्यन्ति च तेमनुष्या येषांगताजागरणेनभद्रा ॥ १२ ॥ काषायवस्त्रकृतभारविडम्बितैस्तु पूर्णाग्निहोत्रयजनादिभिरेव किं स्यात् ॥ धर्मार्थकामफलमोक्षकरीञ्च भद्रामेकाम्भजस्वकलिशैलविकर्त्तनीञ्च ॥ १३ ॥ इत्युक्तपूर्वंकिलनारदेन श्रेयोर्थबुद्ध्यामुनिना च भूसुराः ॥ कृष्णात्परश्चैव न देवतान्यद्वतन्तदह्नःपरमन्न किञ्चित् ॥ १४ ॥ भोभूसुराःशृणुतनारदभाषितंतद्भोभोद्विजेन्द्रऋषिसिद्धमुनीन्द्रसङ्घाः ॥ उत्क्षिप्यबाहुंहरिभक्तिपरेणचोक्तमेकादशीव्रतसमंव्रतमस्ति नान्यत् ॥ १५ ॥ विप्राश्च पापपुरुषा न हरिम्भजन्ति भक्तिश्च शास्त्रनिरता न कलौभविष्यति ॥ कुर्वन्तिमूढमनसोदशमीविमिश्रामेकादशींशुभकरीं न परित्यजन्ति ॥ १६ ॥ जातःसदाश्वपच एव सदासरोगी पापीसदा चैव सदासदुःखी ॥ सदाकृतघ्नोथसदासनारकी विद्धम्मुरारेर्दिनमाश्रितंयैः ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येएकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥

उस नारदजी के वचन को सुनिये कि भुजा को ऊपर उठाकर विष्णु की भक्तिमें तत्पर नारदजी ने कहा कि एकादशीव्रत के समान अन्य व्रत नहीं है ॥ १५ ॥ व कलियुग में ब्राह्मण व पापी पुरुष विष्णुजी को नहीं भजते हैं व शास्त्र में तत्पर भक्ति न होवैगी और मूढ़मनवाले लोग दशमी से संयुत एकादशी को नहीं करते हैं और कल्याणकारिणी एकादशी को नहीं छोड़ते हैं ॥१६॥ व जिन्हों ने विष्णुजी के वेधित दिन को किया है वह सदा चाण्डाल होता है और वह सदैव रोगी व पापी तथा सदैव वह दुःखी होता है और वह सदा कृतघ्न व सदैव नरकगामी होता है ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

दो० । किये द्वादशी जागरण होत अहै फल जौन । यहि तिसवें अध्याय में वर्णित है सब तौन ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि हे नरेश्वर ! यथायोग्य विष्णुजी का जागरण कर पितरों को जो पुण्य देता है उसका गया क्या करती है ॥ १ ॥ भुक्त हो या अभुक्त और क्लीव हो या अस्वस्थ होवै विष्णुजी के जागरण में अवश्य कर मनुष्यों की मुक्ति कहीगई है ॥ २ ॥ व नहाया हुआ जो मनुष्य जागरेशजी के समीप स्थित होता है वह सब तीर्थों में नहाया हुआ जानने योग्य है और भलीभांति स्पर्श किया हुआ वह स्वर्ग को जाता है ॥ ३ ॥ और चाण्डाल भी जागरण कर उत्तम मोक्ष को प्राप्त होता है तथा जागरण में उपवास समेत जो मनुष्य स्त्री के बाजनों समेत उस

मार्कण्डेय उवाच ॥ कृत्वाजागरणंविष्णोर्यथान्यायंनरेश्वर ॥ पितॄणांयच्छतेपुण्यं तस्य किं कुरुतेगया ॥ १ ॥ भुक्तो वा यदि वाभुक्तः क्लीवो वास्वस्थ एव वा ॥ विमुक्तिःकथितावश्यं हरिजागरणेनृणाम् ॥ २ ॥ स्नातो वा योनरोराजञ्जागरेशंव्यवस्थितः ॥ सर्वतीर्थप्लवीज्ञेयः संस्पृष्टोदिवमाव्रजेत् ॥ ३ ॥ श्वपचोजागरंकृत्वा परंनिर्वाणमागतः ॥ जागरेसोपवासस्तु सत्कथागीतनर्त्तनम् ॥ ४ ॥ युवतीवाद्यसंयुक्तं यथा निद्रा न जायते ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमम् ॥ ५ ॥ उत्फुल्लनयनःपापं शोधयेद्विष्णुजागरी ॥ विमुक्तिःकथितासद्यो नृत्यतांहरिजागरे ॥ ६ ॥ विमुक्तिःकामुकस्योक्ता किम्पुनर्वीक्षतेहरिम् ॥ ७ ॥ वाचिकम्मानसम्पापं कर्मणायदुपार्जितम् ॥ अन्यंनिमिषमात्रेण व्यपोहति न संशयः ॥ ८ ॥ यैः कृतोजागरोराजन् यैश्च सम्यङ्निरीक्षितः ॥ गोष्ठ्यांसमागतायेतु तेषाम्पापंकुतःस्मृतम् ॥ ९ ॥ मातृपूजागयाश्राद्धं

प्रकार उत्तम कथा, गीत व नृत्य करता है जिस प्रकार कि निद्रा न होवै तो ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी व गुरुस्त्रीगमन पाप को प्रफुल्लित लोचनोंवाला विष्णुजागरी पुरुष पाप को शोधन करता है और विष्णुजी के जागरण में नाचते हुए पुरुषों की शीघ्रही मुक्ति कहीगई है ॥ ४ । ६ ॥ और कामुक पुरुष की भी मुक्ति कहीगई है फिर जो विष्णुजी को देखता है उसको क्या कहना है ॥ ७ ॥ और वाचिक व मानसी पाप तथा कर्म से जो इकट्ठा किया गया है तथा अन्य पाप को भी पलक भर में नाशता है ॥ ८ ॥ हे राजन् ! जिन्होंने जागरण किया व जिन्होंने भलीभाति विष्णुजी को देखा है और जो सभा में आये उनको पाप कहा से कहा गया है ॥ ९ ॥

हे राजन् ! मातृपूजा, गयाश्राद्ध, उत्तम तीर्थ में मरण और जागरण इनको कवियों ने समान कहा है ॥ १० ॥ व हे नृपेन्द्र ! उसी नृत्य करतेहुए पुरुष के जो वस्त्र व जो आभूषण तथा जो उत्तम पुण्य होते हैं ॥ ११ ॥ व काठ और चर्म समेत बाजन जो विष्णुजी में युक्त हुए हैं वे उन मनुष्यों समेत व उस स्त्री समेत यहां जाते हैं ॥ १२ ॥ और विष्णुजी के जागरण में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों व शूद्रादिकों को और मनुष्यों को समान फल कहा गया है ॥ १३ ॥ और कन्यादान, गयाश्राद्ध व पीपल वृक्ष का आरोपण करना तथा द्वादशी तिथि में जागरण ये दश हज़ार अश्वमेधों के समान हैं ॥ १४ ॥ पुरातन समय

सुतीर्थेमरणं तथा ॥ जागरश्च नृणांराजन्समानिकवयोविदुः ॥ १० ॥ यानिवासांसिराजेन्द्र यानि चाभरणानि च ॥ पुण्यानियानितस्यैव नृत्यतःशोभनानि च ॥ ११ ॥ सकाष्ठचर्मयुक्तानि वाद्यानिमनुजैःसह ॥ तयासहव्रजन्तीह यानियुक्तानि माधवे ॥ १२ ॥ ब्राह्मणक्षत्रवैश्यानां शूद्रादीनाञ्च योषिताम् ॥ सममेव समादिष्टं हरिजागरणेनृणाम् ॥ १३ ॥ कन्यादानंगयाश्राद्धमश्वत्थारोपणं तथा ॥ जागरश्चापि द्वादश्यां वाजिमेधायुतैःसमम् ॥ १४ ॥ पूर्वंमयाशतैर्वर्षैः कुशाग्रेणोद्धृतंजलम् ॥ पिबन्पात्रेस्थितंसम्यक् तीर्थेपुष्करसंज्ञके ॥ १५ ॥ हरिजागरणस्यैव कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ कृत्वा काञ्चनसम्पूर्णां वसुधांवसुधाधिप ॥ १६ ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलंकृष्णजागरे ॥ विप्रायवसुधांदत्त्वा क्षेत्रेकौरवसंज्ञके ॥ १७ ॥ तथापिषोडशांशेन न समोहरिजागरः ॥ तस्य चैव हि मर्त्यस्य पाप्मानंनिखिलं तथा ॥ १८ ॥ व्यपोहयेन्न सन्देहो येनजागरणंहरेः ॥ संक्षेपतःप्रवक्ष्यामि पुनरेव महीपते ॥ १९ ॥ जागरेपद्मनाभस्य यांतुष्टिंकवयोविदुः ॥

सौ बरस तक कुश के अग्रभाग से उठाये हुए जलको पात्र में पीता हुआ मैं पुष्कर नामक तीर्थ में भलीभांति स्थित रहा ॥ १५ ॥ व विष्णुजी के जागरण की सोलहवीं कला के योग्य अन्य कर्म नहीं होते हैं हे पृथ्वीनाथ ! सुवर्ण से पूर्ण पृथ्वी को करके ॥ १६ ॥ व उसको देकर मनुष्य जिस फल को पाता है वह फल श्रीकृष्णजी के जागरण में होता है और कौरवसंज्ञक क्षेत्र में ब्राह्मण के लिये पृथ्वी को देकर ॥ १७ ॥ तथापि सोलहवें अंश के समान न हुआ और विष्णुजी का जागरण उस पुरुष के सब भी पाप को ॥ १८ ॥ निस्सन्देह नाश करता है कि जिसने विष्णुजी का जागरण किया है व हे राजन् ! फिर भी संक्षेप से मैं उसको कहता हूं ॥ १९ ॥ कि जिस

प्रसन्नता को कवियों ने पद्मनाभजी के जागरण में कहा है और वह इस स्वर्गबिंब को भेदन कर विष्णुजी के जागरण में जाता है ॥ २० ॥ और वह योग से गम्य उत्तम निरंजन स्थान को जाता है व हे राजन्! विषयों समेत वह परमपद को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ हे राजन्! दुःख समेत सांख्ययोगों से जो फल मिलता है वह सब फल क्रमसे श्रीविष्णुजी के जागरण में मिलता है ॥ २२ ॥ इस कारण जागरण में उन पापों को विष्णुजी निस्सन्देह नाश करते हैं और राज्य, धन, मोक्ष व अन्य वस्तु को मनुष्यों को ॥ २३ ॥ संगीतों से जागरणों में स्थित भगवान् कृष्णजी देते हैं व हे भूपते! पापी व चांडालों को भी जागरण

स्वर्गबिम्ब.मिमंभित्त्वा सयातिहरिजागरे ॥ २० ॥ सयातिपरमंस्थानं योगगम्यंनिरञ्जनम् ॥ विषयैःसहितोराजन् प्राप्नोतिपरमम्पदम् ॥ २१ ॥ सांख्ययोगैःसदुःखेन प्राप्यतेयत्फलंनृप ॥ तत्फलंलभ्यतेसर्वं जागरेश्रीहरेःक्रमात् ॥ २२ ॥ एवंजागरणेतानि व्यपोहति न संशयः ॥ राज्यमर्थं तथा मोक्षं तथान्यच्चापि वै नृणाम् ॥ २३ ॥ ददातिभगवान्कृष्णः सङ्गीतैर्जागरेस्थितः ॥ जागरेणैव पापानां श्वपचानांमहीपते ॥ २४ ॥ तत्पदंकविभिःप्रोक्तं किम्पुनः स्तुतियाचिनाम् ॥ ध्यानध्येयविहीनस्य सङ्गीतस्य च भूपते ॥ २५ ॥ कर्मभ्रष्टस्तु कथितो मोक्षस्तु हरिजागरे ॥ तन्नास्तित्रिषुलोकेषु पुण्यं पुण्यवतांनृणाम् ॥ २६ ॥ यन्न साधयतेभूप जागरेशंव्यवस्थितः ॥ त्वयापुनरिदंकार्यं स्मर्त्तव्योगरुडध्वजः ॥ २७ ॥ एकादश्यां न भोक्तव्यं कर्त्तव्योजागरःसदा ॥ जागरेवर्त्तमानस्य श्वपचस्यगतिर्भवेत् ॥ २८ ॥ किम्पुनर्वर्णजातानां

से ॥ २४ ॥ वह स्थान कवियों से कहागया है फिर स्तुति से याचना करनेवालों को क्या कहना है व हे राजन्! ध्यान तथा ध्येयसे रहित व संगीत का ॥ २५ ॥ विष्णुजी के जागरण में कर्म से भ्रष्ट मोक्ष कहागया है तीनों लोकों में पुण्यवान् मनुष्यों का वह पुण्य नहीं है ॥ २६ ॥ जिसको कि हे राजन्! जागरेश के समीप स्थित मनुष्य साधन नहीं करता है फिर तुमको यह करना चाहिये कि विष्णुजी को स्मरण करो ॥ २७ ॥ और एकादशी में भोजन न करना चाहिये व सदैव जागरण करना चाहिये क्योंकि जागरण में वर्तमान चाण्डाल की भी गति होती है ॥ २८ ॥ फिर हे भूपते! वर्णों में उत्पन्न वैष्णवों

को क्या कहना है और चाण्डाल धर्मवाले पापीलोग विष्णुजी का जागरण कर ॥ २९ ॥ शरीर से उपजे हुए रोग से छूटजाते हैं और उस परमपद को प्राप्त होते हैं व हे नृपश्रेष्ठ ! जिनको जागरण में निद्रा नहीं आती है ॥ ३० ॥ उनकी माता गर्भ के धारण से दुःख को नहीं प्राप्त होती है इस कारण माता के पेट को वर्जित करनेवाला जागरण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ और भीत व मोक्ष में तत्पर तथा मुख्य चेष्टा से अलग कियेहुए जिन कृष्णभक्ति से संयुत पुरुषोंने रात्रि को जागरण से व्यतीत किया है ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! उनको पल पल भर में अश्वमेध यज्ञ का फल होता है और शयन व बोधन से बराबर पुण्य कहागया है ॥ ३३ ॥

वैष्णवानांमहीपते ॥ चाण्डालधर्मिणःपापाः कृत्वाजागरणंहरेः ॥ २९ ॥ मुच्यन्तेदेहजाद्रोगात्प्रविष्टास्तत्परंपदम् ॥ येषां च जागरेनिद्रा नायातिनृपपुङ्गव ॥ ३० ॥ न तेषांजननीयाति खेदंगर्भावधारणात् ॥ तस्माज्जागरणंकार्यं मातुर्जठरवर्जनम् ॥ ३१ ॥ भीतैर्मोक्षपरैर्मर्त्यैर्मुख्यचेष्टाबहिःकृतैः ॥ यैस्तु जागरणैरात्रिः कृष्णभक्तिसमन्वितैः ॥ ३२ ॥ निमिषेनिमिषेराजन्नश्वमेधफलंभवेत् ॥ शयनोत्थापनाभ्यान्तु समंपुण्यमुदाहृतम् ॥ ३३ ॥ विशेषो नास्तिभूपाल विष्णुनाकथितम्पुरा ॥ भुक्त्वा चाप्यथवा भुक्त्वा जागरेशंव्यवस्थितः ॥ ३४ ॥ गोष्ठ्यांसमागतो वापि तेयान्तिपरमंपदम् ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शूद्राःस्थित्वास्यजागरे ॥ ३५ ॥ पक्षिणःकृमिकीटाश्च उद्भिन्नाजागरेस्थिताः ॥ राक्षसाबहुधा चैव जागरेचक्रपाणिनः ॥ ३६ ॥ तेगताःपरमंस्थानं योगगम्यंनिरञ्जनम् ॥ विना सांख्यैर्विना ज्ञानाद्विना चेन्द्रियनिग्रहात् ॥ ३७ ॥ विना ध्यानाद्विना योगात्प्रयान्तिपरमम्पदम् ॥ मेरुमन्दरमात्राश्च कृताःपापस्यराशयः ॥ ३८ ॥

हे भूपाल ! कुछ विशेष नहीं है पुरातन समय यह विष्णुजी ने कहा है और भोजन कर या न भोजन करके जागरेश के समीप स्थित ॥ ३४ ॥ व जो सभा में आया है वे परमपद को प्राप्त होते हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र इन विष्णुजी के जागरण में स्थित होकर ॥ ३५ ॥ और पक्षी, कृमि व कीट तथा वृक्षादिक जो जागरण में स्थित होते हैं व बहुत प्रकार के राक्षस चक्रपाणि विष्णुजी के जागरण में ॥ ३६ ॥ वे सब योग से जाने योग्य निरंजन व उत्तम स्थान को जाते हैं और वे विना सांख्य, विना ज्ञान व विना इन्द्रियों के निग्रह ॥ ३७ ॥ व विना ध्यान और विना योग से उत्तम स्थान को जाते हैं और सुमेरु व मन्दर के समान कियेहुए पापसमूह ॥ ३८ ॥

श्रीकृष्णके जागरण में रुई के ढेर की नाईं जलजाते हैं और ब्रह्महत्या के समान जो कोई पाप हैं ॥ ३९ ॥ वे विष्णुजी के जागरण में निस्सन्देह नाश होजाते हैं और एक ओर सब तीर्थों से संयुत सब यज्ञ हैं ॥ ४० ॥ व एक ओर कृष्णजी को प्रिय देवदेवजी का जागरण है और कृष्णजी के जागरण से अन्य समान व अधिक कवियों से नहीं कहागया है ॥ ४१ ॥ और कृष्णजी के प्यारे जागरण में सूर्य और इन्द्रादिक देवता तथा ब्रह्मा व रुद्रादिक गण सदैवही आते हैं ॥ ४२ ॥ और गङ्गा, सरस्वती, नर्मदा, यमुना, शतह्रदा, चन्द्रभागा व विपाशादिक सब नदिया वहां आती हैं ॥ ४३ ॥ व हे नृपोत्तम ! श्रीकृष्णजी के जाग-

कृष्णजागरणे चैव दह्यन्तेतूलराशिवत् ॥ यानिकानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ॥ ३९ ॥ विष्णोर्जागरणेतानि क्षयंयान्ति न संशयः ॥ एकतःक्रतवःसर्वे सर्वतीर्थसमन्विताः ॥ ४० ॥ एकतोदेवदेवस्य जागरः कृष्णवल्लभः ॥ न समः कविभिःप्रोक्तमधिकंकृष्णजागरात् ॥ ४१ ॥ सूर्यशक्रादयोदेवा ब्रह्मरुद्रादयोगणाः ॥ नित्यमेव समायान्ति जागरे कृष्णवल्लभे ॥ ४२ ॥ गङ्गासरस्वतीरेवा यमुना च शतह्रदा ॥ चन्द्रभागाविपाशाद्या नद्यःसर्वाश्च तत्र वै ॥ ४३ ॥ सरांसि च ह्रदश्चैव समुद्राःकृष्णजागरे ॥ एकादश्यांनृपश्रेष्ठ गच्छन्तिहरिजागरे ॥ ४४ ॥ स्पृहणीयास्तु देवस्य येनराःकृष्ण जागरे ॥ नृत्यंगीतंप्रकुर्वन्ति वीणावाद्यं तथैव च ॥ ४५ ॥ सूत उवाच ॥ कृत्वापापसहस्राणि शुचिर्भूत्वा च योनरः ॥ कुर्याज्जागरणंविष्णोर्मुच्यतेपापकोटिभिः ॥ ४६ ॥ यावत्पदानिस्वगृहात् केशवायतनम्प्रति ॥ अश्वमेधसमान्यस्य जागरार्थंप्रगच्छतः ॥ ४७ ॥ पादयोःपांशुकणिका धरण्यानिपतन्तिये ॥ तावद्वर्षसहस्राणि जागराद्वसतेदिवि ॥ ४८ ॥

रण में तड़ाग, कुण्ड व समुद्र एकादशी तिथि में विष्णुजी के जागरण में जाते हैं ॥ ४४ ॥ और जे मनुष्य विष्णुदेवजी को प्रिय होतेहैं जोकि श्रीकृष्णजी के जागरण में नृत्य, गीत व वीणावाद्य करते हैं ॥ ४५ ॥ सूतजी बोले कि हज़ारों पापों को करके जो मनुष्य पवित्र होकर श्रीविष्णुजी का जागरण करता है वह करोड़ों पापों से छूट जाता है ॥ ४६ ॥ व विष्णुजी के मन्दिर के सामने मनुष्य जितने पग चलता है इसके वे पग अश्वमेध के समान होते हैं और जागरण के लिये जाते हुए मनुष्य के ॥ ४७ ॥ चरणों में जो पृथ्वी के किनुका गिरते हैं उतने हज़ार वर्षों तक मनुष्य जागरण से स्वर्ग में बसता है ॥ ४८ ॥

उस कारण कलियुग में पातकों के विनाश के लिये प्रत्येक द्वादशी में मनुष्य को विष्णुजी के जागरण में घर से जाना चाहिये ॥ ४९ ॥ विष्णुजी का जागरण करके मनुष्य करोड़ों युगों में कियेहुए भी सुमेरु के समान बहुत से पातकों को जलाता है ॥ ५० ॥ व हे राजन्! कलियुग में बोधिनी एकादशी जिनसे व्रत संयुत कीगई उनके जागरण से संयुत फल को मैं कहताहूं उसको सुनिये ॥ ५१ ॥ कि सतयुग में हज़ार युगोंतक जो एक पैरसे स्थित रहता है उसके फल को कलियुग में बोधिनी एकादशी को प्राप्त होकर जागरण में मनुष्य पाता है ॥ ५२ ॥ और कलियुग में मनुष्य काशी में गंगाजी के किनारे जिस फल को पाता है और

तस्माद्गृहात्प्रगन्तव्यं जागरेमाधवस्य च ॥ कलौमलविनाशाय द्वादशीद्वादशीषु च ॥ ४९ ॥ बह्वन्यपि च पापानि कृत्वा जागरणंहरेः ॥ निर्दहेन्मेरुतुल्यानि युगकोटिकृतान्यपि ॥ ५० ॥ उन्मीलिनीमहीपाल यैःकृताव्रतसंयुता ॥ कलौ जागरणोपेतं फलंवक्ष्यामितच्छृणु ॥ ५१ ॥ कृतेयुगसहस्रन्तु पादेनैकेनतिष्ठति ॥ उन्मीलिनींसमासाद्य फलंजागरणे कलौ ॥ ५२ ॥ काश्यान्तु जाह्नवीतीरे यत्फलंलभतेनरः ॥ दुःप्राप्यंवैष्णवंस्थानं मखकोटिशतैःकृतम् ॥ ५३ ॥ हेलयाप्राप्यते नूनं द्वादश्यांजागरेकृते ॥ येकुर्वन्तिदिनं विष्णोर्जागरेणसमन्वितम् ॥ ५४ ॥ परस्वंपरदारञ्च हिंसांकुर्वन्तिदेहिनाम् ॥ विना दानैर्विना तीर्थैर्विना यज्ञैर्विना व्रतैः ॥ ५५ ॥ द्वादशीजागरोपेता कृताकल्मषनाशिनी ॥ एकेनैवोपवासेन भावहीनास्तु मानवाः ॥ ५६ ॥ निर्दग्ध्वास्वीयपापानि प्रयान्तिस्वर्गमुत्तमम् ॥ यत्र भागवतं शास्त्रं यत्र जागरणंहरेः ॥ ५७ ॥ शालग्रामशिला यत्र तत्र गच्छेद्धरिःस्वयम् ॥ न पुर्यःपावनाःसप्त कलौवेदाश्चये

करोड़ों सौ यज्ञों से जो विष्णुजी का स्थान दुर्लभ कियागयाहै ॥ ५३ ॥ उसको द्वादशी में जागरण करने पर मनुष्य हेला से निश्चय कर पाता है और जो मनुष्य विष्णुजी के दिन को जागरण से संयुत करते हैं ॥ ५४ ॥ व पराया धन और पराई स्त्री को जो हरते हैं व जो प्राणियों की हिंसा करते हैं उनके विना दान, विना तीर्थ, विना यज्ञों व विना व्रतों से ॥ ५५ ॥ जागरण संयुत द्वादशी पापनाशिनी कीगई है और एकही उपवास से भक्तिहीन मनुष्य ॥ ५६ ॥ अपने पापों को जलाकर उत्तमस्वर्ग को जाते हैं और जहां भागवतशास्त्र है व जहां विष्णुजी का जागरण है ॥ ५७ ॥ व जहां शालग्रामशिला होती है वहां आपही विष्णुजी जाते हैं और कलियुग

में सात पुरियां पवित्रकारक नहीं हैं और जो वेद हैं वे भी पवित्रकारक नहीं हैं ॥ ५८ ॥ जैसा कि मनुष्यों को विष्णु का दिन व जागरण पवित्र है विष्णुजी का दिन प्राप्तहोने पर जो जागरण नहीं करते हैं ॥ ५९ ॥ वे मनुष्य भयंकर नरक में पड़ते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाद्वादशीमाहात्म्यंनामत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । यथा द्वारका गमन हित किय तीरथ उद्योग । इकतिसवें अध्याय में सोई चरित सुयोग ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि इसके उपरान्त मैं गुप्त से भी अधिक गुप्त

नहि ॥ ५८ ॥ यादृशंवासरंविष्णोः पूतंजागरणंनृणाम् ॥ सम्प्राप्तेवासरेविष्णोर्ये नकुर्वन्तिजागरम् ॥ ५९ ॥ पतन्तिनरके घोरे तेनरा नात्र संशयः ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येद्वादशीमाहात्म्यन्नामत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरंशिवम् ॥ द्वारकायाःपरंपुण्यं माहात्म्यंह्युत्तमोत्तमम् ॥ १ ॥ इतिहासम्पुरावृत्तं कथयिष्येमनोहरम् ॥ तीर्थक्षेत्रादिदेवानामृषीणांसंशयापहम् ॥ २ ॥ सौभाग्यमतुलं दृष्ट्वा सिंहराशिगतेगुरौ ॥ गोदावर्यांमुनिःश्रेष्ठो नारदोभगवान्मुनिः ॥ ३ ॥ गौतमस्याश्रमंप्राप्तः त्रैलोक्यसम्भवानि वै ॥ तीर्थानिसरितःसर्वा विस्मयंपरमंगतः ॥ ४ ॥ यत्र काशीकुरुक्षेत्रमयोध्यामथुरापुरी ॥ मायाकाञ्चीअवन्ती च अरण्यान्याश्रमाणि च ॥ ५ ॥ हरिक्षेत्रंगयातिस्रः क्षेत्रञ्च पुरुषोत्तमम् ॥ प्रभासादीनिपुण्यानि मुक्तिक्षेत्राण्यशेषतः ॥ ६ ॥

तथा उत्तमोत्तम व कल्याणकारक द्वारकाजी के पवित्र माहात्म्य को कहताहूं ॥ १ ॥ और तीर्थ व क्षेत्रादिक तथा देवताओं व ऋषियों के पुरातन समय में हुए मनोहर तथा सन्देह नाशक इतिहास को कहताहूं ॥ २ ॥ कि सिंह राशि में बृहस्पति प्राप्त होनेपर गोदावरी के बड़े सौभाग्य को देखकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् नारद मुनि ॥ ३ ॥ गौतमजी के आश्रम में प्राप्तहुए और तीनों लोकों मे उपजेहुए तीर्थों व सब नदियों को देखकर बड़े विस्मय को प्राप्तहुए ॥ ४ ॥ जहां कि काशी, कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मथुरापुरी और माया, काची व अवन्ती तथा वन व आश्रम ॥ ५ ॥ और हरिक्षेत्र व तीनों गया और पुरुषोत्तमक्षेत्र तथा प्रभासादिक सब पवित्र मुक्तिक्षेत्र ॥ ६ ॥

और वहां गङ्गा व यमुना देवी तथा पवित्र सरस्वतीजी और सरयू, गंडकी, तापी व उत्तम नदी पयोष्णी ॥ ७ ॥ और कृष्णा, भीमरथी व नदियोंमें श्रेष्ठ पवित्र कावेरी नदी और स्वर्ग, मृत्युलोक व पाताल में जो उत्तम तीर्थ वर्तमान थे ॥ ८ ॥ वे सब सिंहराशि में बृहस्पति प्राप्त होनेपर गोदावरी के किनारे स्थि हुए व पुष्करादिक तीर्थों और नदियों व तडागों को देखकर ॥ ६ ॥ दर्शन से पापों को नाशनेवाले व पवित्र मर्यादापर्वत देखे गये व सब तीर्थों से संयुत तीर्थराज प्रयागजी को देखा ॥ १० ॥ व वेद, उपवेद, शास्त्र व सब पुराण तथा सिद्ध व सब मुनियों के गण और देवर्षि, पितर, देवता ॥ ११ ॥ व इन्द्रादिक सब सुरेश्वर सिंह राशि में बृहस्पति

जाह्नवीयमुनादेवी तत्र पुण्यासरस्वती ॥ सरयूगण्डकीतापी पयोष्णी च सरिद्वरा ॥ ७ ॥ कृष्णाभीमरथीपुण्या कावेरीसरितांवरा ॥ स्वर्गेमर्त्ये च पाताले वर्त्तमानाःसुतीर्थकाः ॥ ८ ॥ स्थितागोदावरीतीरे सिंहराशिगतेगुरौ ॥ दृष्ट्वा च पुष्करादीनि तथा सिन्धुसरांसि च ॥ ६ ॥ मर्यादापर्वताःपुण्या दर्शनात्पापनाशनाः ॥ तीर्थराजंप्रयागं च सर्व तीर्थसमन्वितम् ॥ १० ॥ वेदोपवेदशास्त्राणि पुराणानि च सर्वशः ॥ सिद्धामुनिगणाःसर्वे देवर्षिपितृदेवताः ॥ ११ ॥ इन्द्रादयःसुरश्रेष्ठाः सिंहे चैव बृहस्पतौ ॥ स्थितागोदावरीतीरे वर्षमेकंप्रहर्षिताः ॥ १२ ॥ यानिकानि च पुण्यानि तीर्थक्षेत्राणिसन्ति वै ॥ त्रैलोक्येतानिसर्वाणि गौतमोवीक्ष्य विस्मितः ॥ १३ ॥ देवर्षिर्नारदस्तत्र मुनिभिर्मुदितोऽवसत् ॥ सिंहे गते तु सर्वाणि स्वस्थानगमनाय वै ॥ १४ ॥ आमन्त्र्य गौतमींदेवीं स्थितानिपुरतस्तदा ॥ सर्वेषांशृण्वतां विप्रा गौतमीखिन्नमानसा ॥ १५ ॥ तप्तादुर्जनसम्पर्कान्नारदंदुःखिताब्रवीत् ॥ गोदावरीमहापुण्या यत्संसर्गोय

के स्थित होनेपर प्रसन्न होकर एक वर्षतक गोदावरी के किनारे स्थित रहे ॥ १२ ॥ और त्रिलोक में जो कोई पवित्र तीर्थ व क्षेत्र हैं उन सबों को देखकर गौतमजी विस्मित हुए ॥ १३ ॥ और वहां मुनियों समेत प्रसन्न होतेहुए देवर्षि नारदजी बसते भये व सिंहराशि व्यतीत होनेपर सब तीर्थ अपने स्थानों को जाने के लिये ॥ १४ ॥ गौतमी देवीजी से पूंछकर उस समय आगे स्थित हुए व हे ब्राह्मणो ! सबों के सुनतेहुए दुःखित मनवाली गौतमी ने ॥ १५ ॥ दुर्जन के संगम से संतप्त व दुःखित

मीदृशः ॥ १६ ॥ तीर्थानिपश्यैतानित्वं गङ्गाद्याःसरितोऽमलाः ॥ सागरागिरयःपुण्या गयात्रितयमेव च ॥ १७ ॥ क्षेत्राणि मोक्षदानीह त्रैलोक्येयानिनारद ॥ देवाश्च पितरःसिद्धा ऋषयोमानवादयः ॥ १८ ॥ तीर्थराजंप्रयागं च सर्वतीर्थसमन्वितम् ॥ एतेषामपि सर्वेषां मत्संसर्गोमहामुने ॥ १९ ॥ विशुद्धानांप्रकाशेन राजतेभुवनत्रये ॥ पुण्यप्रकाशदीप्तानां मुदितानामहर्निशम् ॥ २० ॥ सौभाग्यमधुनाप्राप्तं मत्संसर्गेणनारद ॥ प्रयान्त्येतानि चैते च स्वस्थानानिप्रहर्षिताः ॥ २१ ॥ अधुनाहंपरिश्रान्ता दग्धमाना त्वहर्निशम् ॥ दुर्जनानां तु सम्पर्काद् भृशम्पापाग्निनाप्रभो ॥ २२ ॥ एतानिमत्प्रसादेन पुण्यानिमुदितानि च ॥ कयामिभोमुनेऽत्यर्थं दुःखिताकिंकरोम्यहम् ॥ २३ ॥ क्षेत्रराजाधिराजानं सर्वतीर्थोत्तमं तथा ॥ सर्वतीर्थोत्तमंदेव कथ्यतांमेसुखावहम् ॥ २४ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ गोदावर्यावचःश्रुत्वा भगवान्नारदोब्रवीत् ॥ क्षणं ध्यात्वा तु दुःखार्त्तः प्राहसंशयमानसः ॥ २५ ॥ नारद उवाच ॥ अहोअत्यद्भुतंह्येतद्गौतम्याश्शासनंमहत् ॥ पश्यताम्

होतीहुई नारदजी से कहा कि गोदावरी महापुण्यवती है कि जिसका संसर्ग यह ऐसा है ॥ १६ ॥ तुम इन तीर्थों व गङ्गादिक निर्मल नदियों को देखो कि समुद्र व पवित्र पर्वत और तीनों गया ॥ १७ ॥ व हे नारद ! इस त्रिलोक में जो मोक्षदायक तीर्थ हैं व जो देवता, पितर, सिद्ध, ऋषि और मनुष्यादिक हैं ॥ १८ ॥ उनको व सब तीर्थों से संयुत तीर्थों के राजा प्रयाग को देखो व हे महामुने ! विशुद्ध इन सबों का मेरा संसर्ग प्रकाश से त्रिलोक में शोभित है व दिन रात पुण्य के प्रकाश से प्रकाशित इन प्रसन्न तीर्थों को ॥ १९ । २० ॥ हे नारदजी ! इस समय मेरे संसर्ग से सौभाग्य प्राप्तहुआ है और ये तीर्थ व प्रसन्न होतेहुए ये देवता अपने स्थानों को जाते हैं ॥ २१ ॥ हे प्रभो ! इस समय दिन रात दुर्जनों के संसर्ग से बहुतही पाप की अग्नि से जलेहुए मानवाली मैं थकगई हूं ॥ २२ ॥ और मेरी प्रसन्नता से ये पवित्र व प्रसन्न हैं हे मुने ! मैं कहा जाऊं और बहुतही दुःखित मैं क्या करूं ॥ २३ ॥ हे देव ! सब तीर्थों में उत्तम क्षेत्रराजों के राजा और सब तीर्थों में उत्तम तथा सुखदायक तीर्थ को मुझ से कहो ॥ २४ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि गोदावरीके वचन को सुनकर भगवान् नारदजी बोले और क्षण भर ध्यान कर दुःख से विकल तथा संशय मनवाले नारद ने कहा ॥ २५ ॥ नारदजी बोले कि अहो यह गौतमी का बड़ाभारी व बहुत अद्भुत शासन (कथन) है हे ऋषियो, देवताओ, तीर्थों,

क्षेत्रो व हे उत्तम नदियो ! देखिये ॥ २६ ॥ कि जिसके संसर्ग से तुमलोगों का जल बहुत पवित्र व कल्याणकारी हुआ है उसके पापरूपी अग्नि की शान्ति कैसे होगी इस को विचारिये ॥ २७ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस समय उन के अनिश्चित व अप्रिय वचन को चिन्तन करतेहुए भगवान् गौतम मुनीश्वरजी वहां आये ॥ २८ ॥ व उनको देखकर ऋषियों व देवताओं ने यथायोग्य पूजन किया और श्रीगङ्गा, यमुना व पवित्र नर्मदा व सरस्वती ॥ २९ ॥ और जो सब नदियां त्रिलोक के मध्य में वर्तमान थीं वे और आश्रमों समेत काशी व कुरुक्षेत्र आदिक ॥३०॥ हर्ष व शोक से संयुत प्रयागादिक सब तीर्थ साथही मुनि को पूजन कर बोले ॥३१॥ कि हे मुने ! तुम्हारी प्रसन्नता से

षयोदेवास्तीर्थक्षेत्राःसरिद्वराः ॥ २६ ॥ सुपुण्यं च शिवंयस्या युष्माकंसमभूज्जलम् ॥ तस्याःपापाग्निशमनं कथंस्यादितिचिन्त्यताम् ॥ २७ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ तदाचिन्तयतांतेषामनिर्द्धारितमप्रियम् ॥ गौतमोभगवांस्तत्र समायातोमुनीश्वरः ॥ २८ ॥ दृष्ट्वातमृषयोदेवा यथोचितमपूजयन् ॥ जाह्नवीयमुनापुण्या नर्मदा च सरस्वती ॥ २९ ॥ अन्याश्च सरितःसर्वास्त्रैलोक्यान्तरगाश्च याः ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रप्रमुखान्याश्रमैःसह ॥ ३० ॥ प्रयागादीनितीर्थानि हर्षशोकयुतानि च ॥ युगपत्तानिसर्वाणि सम्पूज्यमुनिमब्रुवन् ॥ ३१ ॥ त्वत्प्रसादेननोजाता सम्यक्सिद्धिर्महामुने ॥ यदानीतात्वया चेयं गौतमीभूतलंशुभम् ॥ ३२ ॥ कृतार्थामानवाःसर्वे सर्वपापविवर्जिताः ॥ किन्तु दुर्जनसम्पर्कात्सतप्तागौतमीभृशम् ॥ ३३ ॥ कथम्पापैर्विनिर्मुक्ता परमानन्दसम्प्लुता ॥ सुप्रभाजायतेदेवी तत्तुगौतमचिन्त्यताम् ॥ ३४ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ एवमुक्तोमुनिस्तैस्तु चिन्ताकुलितमानसः ॥ नारदस्यमुखंवीक्ष्य प्राहतान्गौतमस्तदा ॥ ३५ ॥ गौतम उवाच ॥

हमलोगों की भलीभांति सिद्धि होगई जोकि तुमसे गौतमीजी उत्तम पृथ्वी पै लाई गईं ॥३२॥ उमसे सब मनुष्य कृतार्थ होगये और सब पापसे रहित होगये परन्तु दुर्जनों के संसर्ग से वे गौतमीजी संतप्त हैं ॥ ३३ ॥ हे गौतमजी ! पापों से मुक्त होकर बड़े आनन्द संयुत गौतमीदेवी किस प्रकार उत्तम प्रकाशवती होवैंगी उसको चिन्तन कीजिये ॥ ३४ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस समय उनसे इस प्रकार कहेहुए चिंता से विकल मनवाले गौतमजी ने नारदजीका मुख देखकर उनसे कहा ॥३५॥ गौतमजी

बोले कि सब तीर्थों व क्षेत्रों के बड़े पापों को नाशनेवाली यह गौतमी बड़ी ऐश्वर्यवती है इस लिये इसका पाप कहां शुद्ध कियाजावै ॥ ३६ ॥ क्योंकि त्रिलोक में वह तीर्थ व क्षेत्र नहीं है जोकि सिंहराशिमें बृहस्पति के प्राप्त होनेपर विशुद्धि के लिये गौतमी में नहीं आताहै ॥ ३७ ॥ काशी व प्रयाग आदिक तीर्थ उसके प्रभाव से शोभित हैं और गोदावरी के दुष्ट संसर्ग के संतापको मैं कहा शुद्ध करूं ॥ ३८ ॥ मोहित होतेहुए देवता व सब मुनियों ने कुछ नहीं कहा और शुद्ध व योग्य अर्थ को विचार कर वे इस ज्ञान के संकट में प्राप्तहुए ॥३९॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि ऐसा कहेहुए सब मुनियों ने मोहित होकर कुछ नहीं कहा तदनन्तर ध्यान से गौतमीजी को जानकर गौतमजीने

सर्वेषांतीर्थक्षेत्राणां महाशुभविनाशिनी ॥ गौतमीयंमहाभागा अस्याःपापंकमाज्र्यते ॥ ३६ ॥ नास्तिलोकत्रयेतीर्थं स्नातुंसिंहगतेगुरौ ॥ यद्वि नायातिगौतम्यां क्षेत्रं वापि विशुद्धये ॥ ३७ ॥ काशीप्रयागमुख्यानि राजन्तेतत्प्रभावतः ॥ दुष्टसम्पर्कसन्तापं गोदावर्याःकमाज्र्म्यहम् ॥ ३८ ॥ देवास्तु मुनयःसर्वे नोचुःकिंचिद्विमोहिताः ॥ शुद्धंविचार्ययुक्तार्थं प्राप्तास्मिज्ञानसंकटे ॥ ३९ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ इत्युक्तामुनयःसर्वे नोचुःकिंचिद्विमोहिताः ॥ ततोध्यानेनविज्ञाय गौतमींगौतमोब्रवीत् ॥ ४० ॥ गौतम उवाच ॥ आनीतास्तिमहादेवी तपसाराध्यशङ्करम् ॥ गौतमीश्रद्धयाभक्त्या गङ्गामौलिमखण्डधीः ॥ ४१ ॥ तदाद्यंमहदाश्चर्यं शृण्वन्तुमुनयोमलाः ॥ जनकंपरमानन्दं सर्वेषांमूढचेतसाम् ॥ ४२ ॥ ध्यायमानेमहादेवे गौतमेनमहात्मना ॥ अकस्मादभवद्वाणी हर्षयन्तीजगत्त्रयम् ॥ ४३ ॥ नादयन्तीजगत्सर्वमाब्रह्म भुवनाद्विजाः ॥ अरूपाक्षणदाकारा विषादशमनीशुभा ॥ ४४ ॥ दिव्यवाण्युवाच ॥ अहोबतमहाश्चर्यं सर्वेषांशुभदे

कहा ॥४०॥ गौतमजी बोले कि गंगाजी जिनके मस्तक में हैं उन शिवजी को भक्तिसे तपसे आराधनकर श्रद्धासे अखण्ड बुद्धिवाली गौतमी महादेवी लाई गई हैं ॥४१॥ उस समय पहले के बड़े भारी आश्चर्य को निर्मल मुनिलोग सुनैं जोकि मूढ़चित्तवाले सबों के बड़े आनन्द को पैदा करनेवाला है ॥ ४२ ॥ महात्मा गौतमजी से महादेवजी के ध्यान करने पर हे द्विजो ! ब्रह्मभवन से लगाकर सब संसार को शब्दायमान करती व त्रिलोक को प्रसन्न करतीहुई आकाशवाणी अचानक हुई जोकि अरूपिणी व रात्रि के समान तथा विषादको नाश करनेवाली व उत्तम थी ॥४३॥४४॥ दिव्यवाणी बोली कि अहो बड़े खेदकी बात है कि हे बुधो ! संसार के दुःख

रूपी समुद्र में सबों के शुभदायक व उत्तम क्षेत्र के विद्यमान होनेपर भी ॥ ४५ ॥ अहो मूर्ख नष्टलोग अज्ञान के समुद्रमें डूबते हैं और ऋषिलोग भी सब पापोंको नाशनेवाले क्षेत्रको नहीं जानते हैं ॥ ४६ ॥ और मुनिलोगों ने भी सब कामनाओं को देनेवाले व सनातन तथा अचल क्षेत्र को नहीं जाना यह बड़े खेदकी बात है व हे गौतमादिक तथा नारदादिक ऋषियो ! ॥ ४७ ॥ क्षेत्रों व तीर्थों को सुनो मैं दया से कहताहूं कि पश्चिम समुद्र के किनारे को प्राप्तहोकर हमसे भी अन्य कल्याणदायक व अति उत्तम द्वारक्षेत्र वर्तमान है जहां कि समुद्र से संयुत पवित्र गोमती स्थित है ॥ ४८।४९ ॥ और जहां पश्चिमाभिमुख महाविष्णुजी सदैव स्थित

शुभे ॥ विद्यमानेमहाक्षेत्रे भवदुःखार्णवेबुधाः ॥ ४५ ॥ अहोमूर्खाविनष्टा वै मज्जन्त्यज्ञानसागरे ॥ ऋषयोपि न जानन्ति सर्वाशुभविनाशिनम् ॥ ४६ ॥ सर्वकामप्रदंनित्यं न विदुर्मुनयोध्रुवम् ॥ वताहोगौतमाद्याश्च ऋषयोनारदादयः ॥ ४७ ॥ शृण्वन्तुक्षेत्रतीर्थानि कृपयासंवदाम्यहम् ॥ पश्चिमस्यसमुद्रस्य तीरमाश्रित्यवर्त्तते ॥ ४८ ॥ अस्मादपि शिवं चान्यद् द्वारक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ यत्रास्तेगोमतीपुण्या सागरेणसमन्विता ॥ ४९ ॥ पश्चिमाभिमुखो यत्र महाविष्णुःसदास्थितः ॥ तत्सर्वपापराशीनामुग्राणामपि सर्वदा ॥ ५० ॥ दाहस्थानंसमाख्यातमिन्धनानांयथानलः ॥ देवोविश्वदुहो यत्र दाहस्थानकमद्भुतम् ॥ ५१ ॥ लोकत्रयवधाज्जातं विराजत्यर्कवत्सदा ॥ तद्गम्यतांमहाभागा गौतम्यास्तु विदाहकम् ॥ ५२ ॥ गोदावरीम्पुरस्कृत्य क्षेत्रतीर्थसमन्विताम् ॥ प्राप्याद्वारावतीपुण्या मत्प्रसादाद्द्विजोत्तमाः ॥ ५३ ॥ प्रभावो द्वारकायान्तः सत्यमाविर्भविष्यति ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ इत्युक्त्वोपरतेदेवे सर्वेतेहर्षमानसाः ॥ ५४ ॥ श्रुत्वासर्वोत्तरं

हैं वह सब उग्र भी पापराशियों का सदैव ॥ ५० ॥ दाहस्थान कहा गया है जैसा कि इन्धनों की अग्नि होती है और जहां विश्वदुह देव व अद्भुत दाह स्थान है ॥ ५१ ॥ व त्रिलोक के वध से उपजाहुआ वह सदैव सूर्यनारायण की नाईं प्रकाशित है हे महाभागो ! गौतमी के विदाहक उस क्षेत्रको जाइये ॥ ५२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! क्षेत्रों व तीर्थों से संयुत गोदावरी को आगे कर मेरी प्रसन्नता से पवित्र द्वारकापुरी प्राप्तहोने योग्य है ॥ ५३ ॥ और द्वारका का प्रभाव तुमलोगों को सत्य प्रकट होगा श्रीप्रह्लादजी बोले कि ऐसा कहकर देवके चुपहोजाने पर वे सब प्रसन्नमन हुए ॥ ५४ ॥ और सब से

व हे ब्राह्मणो ! गोमती का स्नान तथा रुक्मिणी का दर्शन दुर्लभ है और सुमेरु व मन्दराचल के समान जो पुण्यपुञ्ज किये गये हैं ॥ ६५ ॥ व तपस्या, यज्ञ, दान व जो कुछ बड़ाभारी सुकृत होवै तो हमलोगों को देवदेव श्रीकृष्णजी का दर्शन होवै ॥ ६६ ॥ व हमलोगों को पवित्र द्वारका का दर्शन होवैगा ॥६७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थक्षेत्रदर्शनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । गये क्षेत्र अरु तीर्थ जिमि पुरी द्वारका मध्य । बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखसध्य ॥ प्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर उस समय द्वारका के जाने में उन

दुर्लभंगोमतीस्नानं रुक्मिणीदर्शनंद्विजाः ॥ मेरुमन्दरतुल्या वै पुण्यपुञ्जाःकृताश्च ये ॥ ६५ ॥ तपांसियज्ञदानानि यत्किञ्चित्सुकृतंमहत् ॥ तर्हिस्याद्देवदेवस्य कृष्णस्यदर्शनं हि नः ॥ ६६ ॥ द्वारकादर्शनम्पुण्यमस्माकंसम्भविष्यति ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येतीर्थक्षेत्रदर्शनंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ ततस्तेषांसुतीर्थानामुद्योगंपरमं तदा ॥ द्वारकागमनेहृष्टौ दृष्ट्वानारदगौतमौ ॥ १ ॥ महोत्सवोमहानत्र भविष्यतिमनोरथः ॥ तीर्थानांकृष्णयात्रायां गन्तव्यमिति चोचतुः ॥ २ ॥ अथतेऋषयोदेवाः सर्वतीर्थसमन्विताः ॥ गौतमींताम्पुरस्कृत्य ययुर्द्वारवतींमुदा ॥ ३ ॥ तदा सर्वाणिक्षेत्राणि तथारण्यानिसर्वशः ॥ द्वारकागमनारम्भे सानन्दाऋषयःसुराः ॥ ४ ॥ श्रद्धयापरयाभक्त्या कृष्णदर्शनलालसाः ॥ वीणावादित्रसंयुक्तं नारदंचाथतेब्रवन् ॥५॥ क्षेत्रतीर्थऋषिदेवा ऊचुः ॥ द्वारकापुण्यपुञ्जानां स्थानं वै तपसस्तथा ॥ यज्ञदानव्रतानाञ्च तीर्थानांतपसामपि ॥ ६ ॥

उत्तम तीर्थों के परम उद्योग को देखकर नारद व गौतमजी प्रसन्न हुए ॥ १ ॥ कि यहां तीर्थों की कृष्णयात्रा में बड़ाभारी उत्सव होगा और मनोरथ होगा व यह बोले कि जाना चाहिये ॥ २ ॥ इसके अनन्तर सब तीर्थों से संयुत वे ऋषि व देवता उन गौतमीजी को आगे कर हर्ष से द्वारकापुरी को गये ॥ ३ ॥ तब सब क्षेत्र व सब वन और ऋषि व देवता द्वारका के गमन के प्रारम्भ में आनन्द समेत हुए ॥ ४ ॥ और बड़ी श्रद्धा व भक्ति से श्रीकृष्णजी के दर्शन की लालसावाले उन्होंने वीणा के बाजन से संयुत नारदजी से कहा ॥ ५ ॥ क्षेत्र, तीर्थ, ऋषि व देवता बोले कि द्वारका पुण्यपुंजों का व तपस्या का स्थान है और यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ व तपों का भी स्थान है॥६॥

और संसार में जो देश व समय और स्वभाव से उपजाहुआ जो कुछ पुण्य है वह प्राप्तहुआ और यह तुम्हारी प्रसन्नता है जोकि हमलोग द्वारका को देखेंगे ॥ ७ ॥ व इस समय योगियों के उत्तम गुरु तुम से हम पूछते हैं कि द्वारका की यात्रा की कौन विधि कहीगई है ॥ ८ ॥ व हे मुने ! इसमें कौन नियम करना चाहिये व क्या वर्जित करना चाहिये और मार्ग में सब मनुष्यों को क्या सुनना व क्या कहना चाहिये ॥ ९ ॥ व उसमें क्या जपने योग्य है और यात्रा में क्या उत्तम फल होता है और यहां द्वारका के उस मार्ग में कौन उत्सव कहेगये हैं ॥ १० ॥ हे गुरो, महाभाग, भक्तानन्दविवर्द्धन ! एक एक के इस सब चरित्र

यत्किञ्चित्सुकृतंलोके देशकालस्वभावजम् ॥ सम्प्राप्तंत्वत्प्रसादोयं यद्द्रक्ष्यामःकुशस्थलीम् ॥ ७ ॥ पृच्छामहेधुना त्वां वै योगिनांपरमंगुरुम् ॥ द्वारकायास्तु यात्रायाः कोविधिःसम्प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥ नियमाःकेत्र कर्तव्या वर्जनीयश्च किम्मुने ॥ श्रोतव्यंकीर्तितव्यश्च किंसर्वैर्मानवैःपथि ॥ ९ ॥ जप्यश्च तत्र किम्प्रोक्तं यात्रायाम्फलमुत्तमम् ॥ उत्सवाश्चात्र केप्रोक्ता द्वारकायास्तु तत्पथि ॥ १० ॥ एकैकस्यमहाभाग भक्तानन्दविवर्द्धन ॥ एतत्सर्वंगुरोऽस्माकं कृपयासम्प्रकीर्तय ॥ ११ ॥ नारद उवाच ॥ कृताभ्यङ्गस्तु पूर्वेद्युः सम्पूज्यश्रद्धयान्वितः ॥ भोजयेद्वैष्णवान्सर्वान् स्वशक्त्यातान्प्रहर्षितः ॥ १२ ॥ अनुज्ञातोमहाविष्णोः पक्वान्नमुपभुज्य वै ॥ शयीतभुविसुप्रीतो द्वारकाकृष्णमानसः ॥ १३ ॥ प्रभाते च शुचिःस्नात्वा सम्पूज्यजगदीश्वरम् ॥ प्रदक्षिणंनमस्कृत्वा महाविष्णोरनुज्ञया ॥ १४ ॥ सदृष्ट्वाकुलसंवृद्धान् ब्राह्मणान् वैष्णवान्प्रियान् ॥ अभ्यर्च्यगन्धताम्बूलैः कुर्यादग्रेमहोत्सवम् ॥ १५ ॥ ततस्तु तदनुज्ञातो गीतवादित्रसंस्तवैः ॥ या

को हम लोगों से दया से कहिये ॥ ११ ॥ नारदजी बोले कि पहले दिन श्रद्धा संयुत मनुष्य उबटन लगाकर सब वैष्णवों को भलीभांति पूजकर अपनी शक्ति के अनुसार उनको प्रसन्न होकर भोजन करावै ॥ १२ ॥ और महाविष्णुजी से आज्ञा को लेकर पक्वान्न को भोजन कर द्वारका व श्रीकृष्ण में मन को लगाकर प्रसन्न होकर पृथ्वी में शयन करै ॥ १३ ॥ और प्रातःकाल नहाकर पवित्र मनुष्य जगदीश्वर विष्णुजी को पूजकर प्रदक्षिणा व प्रणाम कर महाविष्णुजी की आज्ञा से ॥ १४ ॥ कुल में वृद्ध व प्यारे वैष्णव ब्राह्मणों को देखकर चन्दन व ताम्बूलोंसे पूजकर आगे बड़ाभारी उत्सव करै ॥ १५ ॥ तदनन्तर उन विष्णुजीसे आज्ञाको लेकर प्रसन्न पुरुष गाने, बजाने

सेव स्तोत्रोंसे द्वारका में यात्रा का आरम्भ करै ॥ १६ ॥ और द्वारका को जाताहुआ शान्त, दान्त व पवित्र मनुष्य इन्द्रियोंको रोंककर ब्रह्मचर्य व नीचे शयन करै ॥ १७ ॥ और मार्ग में सावधान होकर सहस्रनामादिक स्तोत्र व पुराणों का पठन तथा वैदिक सूक्तों को पढ़ताहुआ मनुष्य ॥ १८ ॥ गाने व बजाने के शब्दों से तथा नृत्य की ध्वनि से प्रसन्न होवै तथा जिस प्रकार प्रसन्न मनुष्यों का परिश्रम दूरहोवै उस प्रकार एकही साथ सबों को पूजताहुआ मनुष्य ॥ १६ ॥ नित्य प्रिय वचन कहै व सदैव सबों का सन्मान करै और श्रम को दूर करनेवाला भक्तों का पादसंवाहन करै याने चरणों को चापै ॥ २० ॥ व मार्ग में द्वारका को जातेहुए पुरुषों को जल और सुखपूर्वक

आरम्भंप्रकुर्वीत द्वारकायांप्रहर्षितः ॥ १६ ॥ द्वारकांगच्छमानस्तु शान्तोदान्तःशुचिस्तथा ॥ ब्रह्मचर्यमधःशय्यां कुर्वीतनियतेन्द्रियः ॥ १७ ॥ सहस्रनामादिस्तोत्राणि पुराणपठनानि च ॥ वैदिकानि च सूक्तानि पठन्पथिसमाहितः ॥ १८ ॥ गीतवाद्यप्रघोषेण नृत्यनादप्रहर्षितः ॥ अर्चयन्युगपत्सर्वान् मुदितानांश्रमापहम् ॥ १६ ॥ प्रियवाचंवदेन्नित्यं सर्वान्संमानयेत्सदा ॥ पादसंवाहनंकार्यं भक्तानाञ्च श्रमापहम् ॥ २० ॥ पानीयंसुखवासञ्च द्वारकाम्पथिगच्छताम् ॥ वृद्धानामक्षमाणाञ्च वाहनस्य च दापनम् ॥ २१ ॥ कर्त्तव्यंसकृपंचित्तं तेषांशुश्रूषणं तथा ॥ अन्नदानादिकंसर्वं विभवेसतिमानवः ॥ २२ ॥ कुर्याच्छ्रीकृष्णसम्प्रीत्यै महापुण्यंलभेद्ध्रुवम् ॥ अपिस्वल्पंस्वशक्त्या वै कृतंकोटिगुणं भवेत् ॥ २३ ॥ पथिकृष्णस्ययोभक्त्या ग्रासमेकम्प्रयच्छति ॥ सद्वीपातेनदत्ताभूः पुण्यस्यान्तो न विद्यते ॥ २४ ॥ किन्तु तद्वारकाक्षेत्रे श्रीकृष्णस्यसमीपतः ॥ एकस्मिन्भोजितेविप्रे राजसूयायुतंफलम् ॥ २५ ॥ गयाश्राद्धसहस्राणि

निवास को देवै तथा वृद्ध व असमर्थ लोगों को वाहन देवै ॥ २१ ॥ व दया समेत चित्त और उनकी सेवा करना चाहिये व ऐश्वर्य होने पर मनुष्य सब अन्नदानादिक ॥ २२ ॥ श्रीकृष्णजी की प्रीति के लिये करै तो निश्चय कर महापुण्य को पावै व अपनी शक्ति के अनुसार थोडा भी कियाहुआ कोटिगुना होता है ॥ २३ ॥ व जो मनुष्य मार्ग में श्रीकृष्णजी की भक्ति से एक कवल देता है उसने द्वीपों समेत पृथ्वी को दिया और उसके पुण्य का अन्त नहीं होता है ॥ २४ ॥ बरन उस द्वारका क्षेत्र में श्रीकृष्णजी के समीप एक ब्राह्मण भोजन कराने पर मनुष्य दश हज़ार राजसूय यज्ञों के फल को पाता है ॥ २५ ॥ और द्वारका के मार्ग में जानेवाले पुरुषों को

जिन्होंने अन्नदान किया उन्होंने सैकड़ों व हज़ारों गयाश्राद्धों को किया ॥ २६ ॥ और जूता, अन्न, जल, खड़ाऊं, छतुरी, कम्बल, वस्त्र और जल के पात्रों को ऐश्वर्य होने पर देवै ॥ २७ ॥ व जो कुछ दान देवै उसका अन्त नहीं होता है और महाविष्णुजी की प्रीति के लिये तथा सब मनोरथों की सिद्धि के लिये ॥ २८ ॥ मनस्वी पुरुषों को आदर से विष्णु का आराधन करना चाहिये और ऐश्वर्य से सब फलता है व उसके विना विफल होता है ॥ २९ ॥ और संकरवर्ण व वृथाजात मनुष्य को वर्जित करै और निन्दा वर्जित है जोकि शास्त्रों से निषिद्ध है ॥ ३० ॥ और जिसके हाथ, पाव व मन बंधा है उसका बड़ा यश होता है व निश्चय कर

कृतानिशतसंख्यया ॥ अन्नदानंकृतंयैस्तु द्वारकापथिगच्छताम् ॥ २६ ॥ उपानदन्नपानीयं पादुकेछत्रकम्बलान् ॥ वासांसितोयपात्राणि दद्याच विभवेसति ॥ २७ ॥ दद्याद्दानञ्च यत्किंचित्तस्यान्तो नहि विद्यते ॥ प्रीत्यर्थञ्च महाविष्णोः सर्ववाञ्छितसिद्धये ॥ २८ ॥ विष्णोराराधनंकार्यमादरेणमनस्विभिः ॥ सर्वंविभवेनफलति विफलंतद्विनाभवेत् ॥ २९ ॥ वर्जयेत्सङ्करंविद्वान् वृथाजातं तथैव च ॥ परिनिन्दानिषिद्धा च या तु शास्त्रैर्निषेधिता ॥ ३० ॥ यस्यहस्तौ च पादौ च मनो यस्यसुसंयतम् ॥ तस्य चैव पराकीर्तिर्भवेत्तीर्थफलंध्रुवम् ॥ ३१ ॥ परान्नम्परपाकं च सतिवित्तेत्यजेद्ध्रुवम् ॥ न दोषोसतिवित्तेस्य तावन्मात्रप्रतिग्रहे ॥ ३२ ॥ श्रोतव्यासत्कथाविष्णोर्नामसंकीर्त्तनम्मुदा ॥ द्वारकापथिगच्छद्भिरन्योन्यंभक्तिवर्द्धनम् ॥ ३३ ॥ जप्तव्यंवैदिकंजाप्यं स्तोत्रमागमिकं तथा ॥ पौराणिकं च यत्स्तोत्रं विष्णोःसुप्रीतिहेतवे ॥ ३४ ॥ यात्रायांयत्फलम्प्रोक्तं श्रीकृष्णस्य च वै कलौ ॥ न शक्यतेमयावक्तुं तच्च वै युगसंख्यया ॥ ३५ ॥ उत्सवोत्र प्रकर्त्तव्यः सा

तीर्थ का फल होता है ॥ ३१ ॥ व ऐश्वर्य होने पर पराये अन्न और पराये पाक को अवश्य कर त्याग करै और ऐश्वर्य न होने पर प्रयोजन भर ग्रहण करने पर दोष नहीं होता है ॥ ३२ ॥ और विष्णुजी की उत्तम कथा को सुनना चाहिये व द्वारका के मार्ग में चलनेवाले मनुष्यों को परस्पर भक्ति को बढ़ानेवाला विष्णु का नाम कीर्तन हर्ष से करना चाहिये ॥ ३३ ॥ व वैदिक जप और शास्त्र के स्तोत्र को जपना चाहिये व विष्णुजी की उत्तम प्रीति के लिये जो पुराण का स्तोत्र होवै उसको पढ़ना चाहिये ॥ ३४ ॥ व कलियुग में श्रीकृष्णजी की यात्रा में जो फल कहागया है वह मुझ से युग की गिनती से भी नहीं कहा जासक्ता है ॥ ३५ ॥ व हे द्विजोत्तमो !

यहां आनन्द समेत मनुष्यों को गाने, बजाने के शब्दों से तथा पताकाओं से उत्तम उत्सव करना चाहिये ॥ ३६ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठो ! तुमलोगों ने जो पूंछा यह सब कहा गया और मेरी भी व विष्णुजी की प्रीति के लिये उसको बड़े यत्न से करना चाहिये ॥ ३७ ॥ और एक एक व अन्यों को भी उद्देश कर इसको करना चाहिये और कोमलता से संयुत मनुष्य विष्णुजी की प्रीति को पावैंगे ॥ ३८ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि नारदजी से इस प्रकार कहेहुए उन प्रसन्नमनवाले सब मुनियों ने यकायक मार्ग में श्रीकृष्णदेवजी के उस कर्म को किया ॥ ३९ ॥ और कितेक मुनिलोग संसार में प्रसिद्ध उत्तम कथाओं को सुनने लगे कि जिनके सुननेही से भगवान् हृदय में

नन्दैर्द्विजसत्तमाः ॥ गीतवादित्रघोषेण पताकाभिःसुशोभनः ॥ ३६ ॥ इत्येतत्कथितंसर्वं यत्पृष्टमृषिपुङ्गवाः ॥ कर्तव्यं तत्प्रयत्नेन विष्णुप्रीत्यैममापि च ॥३७॥ एकैकेन तु कार्यं च अन्यैश्चापि तथा सह॥ उद्दिश्यभगवत्प्रीतिं लभिष्यन्त्यार्जवान्विताः ॥ ३८ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ एवंतेनारदेनोक्ता मुनयोहर्षमानसाः ॥ चक्रुस्तेसहसासर्वे कृष्णदेवस्यतत्पथि ॥ ३९ ॥ केपि शृण्वन्तिविष्णोश्च सत्कथालोकविश्रुताः ॥ यासांसंश्रवणादेव भगवान्वसतेहृदि ॥ ४० ॥ कीर्त्यमानानिनामानि महापुण्यप्रदानि वै ॥ पावनानिसदालोके कलौविप्राविशेषतः ॥ ४१ ॥ पुराणसंहितादिव्या मुनिभिः परिकीर्तिता ॥ प्रकाशयतियाविष्णोर्महिमानंसुमङ्गलम् ॥ ॥ ४२ ॥ सद्गुणाःकर्मवीर्याणि कृतानिविष्णुनापुरा ॥ लीलावताररूपैस्ते शृण्वन्तिपरयामुदा ॥ ४३ ॥ अपरेवासुदेवस्य चरितानिसुमङ्गलाः ॥ वदन्तिपरयाभक्त्या सानन्दाःसाश्रुलोचनाः ॥ ४४ ॥ कीर्तितानिपुरायानि मुनिभिश्चरितानि वै ॥ गायन्त्यन्यान्यकस्माच्च तानिसर्वाणि

बसते हैं ॥ ४० ॥ व हे ब्राह्मणो ! संसार में कहेजाते हुए विष्णुजी के नाम सदैव महापुण्यों को देनेवाले व पवित्रकारक हैं और कलियुग में विशेषता से हैं ॥ ४१ ॥ और मुनियों ने दिव्य पुराणसंहिता को कहा जोकि विष्णुजी की उत्तम मंगलरूपिणी महिमा को प्रकाशित करती है ॥ ४२ ॥ और पुरातन समय विष्णुजी ने लीलावतारों के रूपों से उत्तम गुण, कर्म व जिन वीर्यों को किया है उनको वे मुनिलोग बड़े हर्ष से सुनने लगे ॥ ४३ ॥ और आनन्द समेत व आँसुवों सहित लोचनोंवाले अन्य मंगलरूप मुनिलोग बड़ी भक्ति से श्रीकृष्णजी के चरित्रों को कहने लगे ॥ ४४ ॥ और पुरातन समय मुनियों ने जिन अन्य चरित्रों को कहा है उन

सबों को प्रसन्न होकर यकायक गाने लगे ॥ ४५ ॥ व अन्य मुनिलोग प्रसिद्ध रूपवाले तथा इच्छारूपी, अनादिनिधन व्यापक विष्णु देवेशजी को भक्ति से स्मरण करनेलगे ॥ ४६ ॥ व हर्ष समेत कितेक संयमी मुनिलोग वैदिक व पुराणों के विष्णुजी के स्तोत्रों को जपने लगे ॥ ४७ ॥ व अन्य मुनिलोग पुराणादिकों में ऋषियों से कहेहुए नारायण व विष्णुजी के पापहारक बहुत से नामों को कहने लगे ॥ ४८ ॥ और कोई मुनिलोग मार्ग में सौ नामों को जपते थे तथा अन्य सहस्रनाम व लक्षनाम को जपते थे ॥ ४९ ॥ और संसार को ज्ञान करनेवाले तथा महापुण्यवान् कितेक मुनिलोग प्रसन्न होकर लोक में गाये हुए विष्णुजी के नामों

हर्षिताः ॥४५॥ अन्येस्मरन्तिदेवेशमनादिनिधनंविभुम् ॥ स्वच्छन्दरूपिणम्भक्त्या विष्णुंविश्रुतरूपिणम् ॥ ४६ ॥ केचिज्जपन्तिमुनयः स्तोत्रादीनिमुदान्विताः ॥ वैदिकानिपुराणानि वैष्णवानिसुसंयताः ॥ ४७ ॥ अन्येऋषिप्रणीतानि पुराणादिषुभूरिशः ॥ नारायणस्यविष्णोर्वै नामान्यघहराणि च ॥ ४८ ॥ केचित्तु शतनामानि जपन्तिमुनयःपथि ॥ अन्येसहस्रनामानि लक्षनाम तथापरे ॥ ४९ ॥ केचिल्लौकिकगीतानि हरिनामानिहर्षिताः ॥ गायन्तिसुमहापुण्या जगतोबोधकारकाः ॥ ५० ॥ सुगीतंसरसाविष्टं विस्मृत्यदेहभावजम् ॥ पश्यन्तिरुचिराण्यस्य विष्णोरूपाणितेधुना ॥ ५१ ॥ यद्यत्पश्यन्तिशृण्वन्ति मुनयस्तीर्थकैःसह ॥ तत्तच्चतुर्भुजंविष्णुं यद्गीतंविष्णुमानसाः ॥ ५२ ॥ उत्सवैश्च व्रजन्त्यन्ये पताकाद्यैर्विभूषिताः ॥ गीतवादित्रघोषेण करतालस्वनेन च ॥ ५३ ॥ गायन्त्येके च नृत्यन्ति वादित्राणि परम्मुदा ॥ वादयन्तिमहात्मानो नृत्यतालैश्च केचन ॥ ५४ ॥ सर्वेगर्जन्तियुगपन्मिलिताहरिनामभिः ॥ परमानन्द

को गाने लगे ॥ ५० ॥ और शरीर के भावसे उपजे हुए सरस प्रविष्ट उत्तम गीत को भूलकर इस समय वे उन विष्णुजी के सुन्दर रूपों को देखने लगे ॥ ५१ ॥ और तीर्थों समेत मुनिलोग जो जो देखते व सुनते थे उस उसको वे विष्णुजी में मनवाले मुनिलोग चतुर्भुज विष्णु को देखते थे जोकि गायागया है ॥ ५२ ॥ व अन्य मुनिलोग पताकादिकों से भूषित होकर गाने, बजाने के शब्द से तथा हाथ की तालियों की ध्वनि से जाते थे ॥ ५३ ॥ व कितेक मुनि गाते थे और कितेक महात्मा बड़े हर्ष से नृत्यों व तालों से बाजनों को बजाते थे ॥ ५४ ॥ और सब लोग मिलकर विष्णुजी के नामों से गरजते थे व बड़े आनन्द में

मग्न होकर परस्पर हँसते थे ॥ ५५ ॥ और हर्ष से विष्णुजी का उत्सव तथा गीतादिक व नृत्य करते थे और सदैव केवल विष्णुजी में चित्त से विष्णुजी के मन्त्रों को जपते थे ॥ ५६ ॥ विष्णुजी की क्रीड़ा के लय में लगेहुए मनुष्य वैष्णवों को प्यारे होते हैं उनको देखकर ब्रह्मघाती मनुष्य शुद्ध होजाता है इसको मैंने सत्य कहा है ॥ ५७ ॥ तीनों लोकों में उससे अधिक धन्य कोई नहीं है कि जिसको अति उत्तम वैष्णवों का दर्शन हुआ है ॥ ५८ ॥ वैसेही पवित्र गङ्गा, यमुना व सरस्वती तथा नर्मदादिक सब नदियों ने गीत व नृत्य किया ॥ ५९ ॥ और प्रयागादिक तीर्थ, समुद्र व उत्तम पर्वत, काशी, कुरुक्षेत्र व अन्य सब बहुत से पवित्र ॥ ६० ॥

निर्मग्ना अन्योन्यंप्रहसन्तिहि ॥ ५५ ॥ विष्णूत्सवम्प्रकुर्वन्ति गीतादिनर्त्तनम्मुदा ॥ जपन्तिवैष्णवान्मन्त्रान्सदाविष्ण्वे कचेतसा ॥ ५६ ॥ विष्णुक्रीडालयेसक्ता जनावैष्णववल्लभाः ॥ तान्दृष्ट्वाब्रह्महाशुद्ध्येत्सत्यंसत्यम्मयोदितम् ॥ ५७ ॥ नास्तिधन्यतमस्तस्मात्रिषुलोकेषुकश्चन ॥ दर्शनंयस्यसञ्जातं वैष्णवानामनुत्तमम् ॥ ५८ ॥ तथैव जाह्नवीपुण्या यमुना च सरस्वती ॥ रेवाद्याःसरितःसर्वाः प्रचक्रुर्गीतनर्तनम् ॥ ५९ ॥ प्रयागादीनितीर्थानि सागराःपर्वतोत्तमाः ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रं पुण्यान्यन्यानिकृत्स्नशः ॥ ६० ॥ त्रैलोक्येयानितीर्थानि क्षेत्राणिदेवनायक ॥ सर्वैर्गीतं च नृत्यञ्च द्वारकायास्तु सत्पथि ॥ ६१ ॥ मुदितानान्तुसर्वेषां द्वारकापथिनृत्यताम् ॥ पुण्यंस्यादश्वमेधानां तत्पदेरजसंख्यया ॥ ६२ ॥ एकैकस्मिन्पदेदत्ते द्वारकापथिगच्छताम् ॥ पुण्यंक्रतुसहस्राणां तत्पादरजसंख्यया ॥ ६३ ॥ इत्येतत्कुर्वतांतेषां मुनीनांतीर्थकैःसह ॥ अन्वमन्यततत्सर्वं नारदोभगवत्प्रियः ॥ ६४ ॥ इति श्रीद्वारकामाहात्म्येदेवतीर्थयात्रानामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

जो तीर्थ व क्षेत्र त्रिलोक में हैं हे देवनायक ! उन सबों ने द्वारका के उत्तम मार्ग में गीत व नृत्य किया ॥ ६१ ॥ द्वारका के मार्ग में नाचते हुए सब मुदित मनुष्यों को उनके पग में धूलियों की संख्या से अश्वमेध यज्ञों का फल होता है ॥ ६२ ॥ और एक एक पग देने पर द्वारका के मार्ग में चलतेहुए मनुष्यों को उनके चरणों की धूलिकी संख्या से हज़ारों यज्ञों का फल होता है ॥ ६३ ॥ तीर्थों समेत इसको करतेहुए उन मुनियों के उस सब कर्म को भगवान् के प्यारे नारदजी ने अनुमोदन किया ॥ ६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांदेवतीर्थयात्रानामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दो॰ । गये सकल तीरथ यथा द्वारावती समीप । तेंतिसवें अध्याय में सोई चरित प्रदीप ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि द्वारका अपने प्रकाश से बाहरी बड़े अन्धकार को नाश करती है व भक्तों के भयनाशक बड़े आनन्द को उत्पन्न करती है ॥ १ ॥ और पुण्य को बढ़ानेवाली द्वारका पताकाओं व ध्वजों से दिव्य पुण्यों के प्रकाश से गिरिराज की नाईं शोभित है ॥ २ ॥ उस समय अस्त्रों से भूषित महाविष्णुजी के मन्दिर को देखकर मुनिलोग पादुकाओं व छत्रों को छोड़कर दण्डा की नाईं पृथ्वी में गिर पड़े ॥ ३ ॥ व हे द्विजोत्तमो ! पृथ्वी में लोटतेहुए उन तीर्थों व सब क्षेत्रों को बड़ा अद्भुत हुआ ॥ ४ ॥ और काशी, कुरुक्षेत्र, प्रयाग व उत्तम गङ्गाजी तथा यमुना व

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ द्वारकास्वभयागाढं तमोबाह्यंविनाशयेत् ॥ जनयेत्परमानन्दं भक्तानाञ्च भयापहम् ॥ १ ॥ पताकाभिर्ध्वजैश्चापि द्वारकापुण्यवर्द्धनी ॥ दिव्यपुण्यप्रकाशेन राजतेगिरिराडिव ॥ २ ॥ दृष्ट्वालयंमहाविष्णोस्त दायुधविभूषितम् ॥ विहायपादुकेछत्रं दण्डवत्पतिताभुवि ॥ ३ ॥ भुविस्वलुण्ठतांतेषां तीर्थानामद्भुतम्महत् ॥ अभवद्द्विप्रशार्दूलाः क्षेत्रादीनाञ्च सर्वशः ॥४॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रम्प्रयागंजाह्नवीशुभा ॥ यमुनानर्मदापुण्या पुण्याप्राची सरस्वती ॥ ५ ॥ गोदावरीमहापुण्या गयास्तिस्रःसुमङ्गलाः ॥ शालग्रामम्महाक्षेत्रं पुण्याचक्रनदीशुभा ॥ ६ ॥ पयोष्णीतापिनीकृष्णा कौबेर्याद्याःसरिद्वराः ॥ पुष्कराद्यानितीर्थानि सागराःपर्वतोत्तमाः ॥ ७ ॥ अयोध्यामथुरामाया अवन्त्याद्याश्च मुक्तिदाः ॥ स्यमन्तकञ्च श्रीरङ्गं प्रभासञ्च विशेषतः ॥ ८ ॥ पुरुषोत्तमंमहाक्षेत्रमरण्यान्याश्रमाः शुभाः ॥ त्रैलोक्येवर्त्तमानानि सर्वतीर्थानिसर्वशः॥ ९ ॥ दृष्ट्वाकृष्णालयंदिव्यं हर्षिताश्च मुहुर्मुहुः ॥ तेस्वभक्तिप्रकर्षेण

पवित्र नर्मदा और पवित्र प्राचीसरस्वती ॥ ५ ॥ तथा महापवित्र गोदावरी और उत्तम मंगलरूप तीनों गया व शालग्राम महाक्षेत्र और पवित्र तथा उत्तम चक्रनदी ॥ ६ ॥ व पयोष्णी, तापिनी, कृष्णा और कौबेरी आदिक उत्तम नदियां तथा पुष्करादिक तीर्थ, समुद्र और उत्तम पर्वत ॥ ७ ॥ अयोध्या, मथुरा, माया व अवन्ती आदिक मुक्तिदायक तीर्थ, स्यमन्तक, श्रीरंग व विशेषता से प्रभास ॥ ८ ॥ और पुरुषोत्तम महाक्षेत्र, वन व उत्तम आश्रम तथा त्रिलोकमें वर्तमान सब तीर्थ ॥ ९ ॥ उत्तम श्रीकृष्णजीके स्थान

की देखकर बार २ प्रसन्न हुए और वे अपनी भक्ति की अधिकता से बार-२ लोटनेलगे ॥ १० ॥ तदनन्तर जयशब्दों व नमस्कार के शब्दों से विष्णुजी के नामों से गरजतेहुए बड़े आनन्द में मग्न वे स्तुति करनेलगे ॥ ११ ॥ और आनन्द के आँसुवों को छोड़तेहुए सब ऋषिलोग और सब तीर्थादिक प्रेम से गद्गदी वाणी से स्तुति करनेलगे ॥ १२ ॥ व गङ्गा, गौतमी, समुद्र व पर्वतादिक तीर्थ नारद व गौतम ऋषि की प्रशंसा करनेलगे ॥ १३ ॥ इसके अनन्तर परस्पर स्तुति करतेहुए उन प्रसन्नचित्तवाले सब तीर्थों के मुखों को देखकर प्रसन्न होतेहुए नारदजी बोले ॥ १४ ॥ नारदजी बोले कि तुमलोगों ने हज़ारों

लुएठन्तिस्मपुनःपुनः ॥ १० ॥ जयशब्दैर्नमःशब्दैर्गर्जन्तोहरिनामभिः ॥ ततोन्ये च स्तुवन्तिस्म परमानन्दसम्पुताः ॥११॥ आनन्दाश्रुप्रमुञ्चन्तः प्रेम्णागद्गदयागिरा ॥ स्तुवन्तिऋषयःसर्वे तीर्थादीनि च सर्वशः ॥ १२ ॥ प्रशंसन्तिस्मतीर्थानि ऋषीनारदगौतमौ ॥ जाह्नवीगौतमीगङ्गा सागराःपर्वतादयः ॥ १३ ॥ अथ संस्तुवतांतेषामन्योन्यंमुदितात्मनाम् ॥ वीक्ष्यवक्त्राणिसर्वेषां हर्षितोनारदोब्रवीत् ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ राशयःपुण्यपुञ्जानां कृतावो हि सहस्रशः ॥ यज्जन्मनांसहस्रैस्तु यद्दृष्टंकृष्णमन्दिरम् ॥ १५ ॥ दर्शनंकृष्णदेवस्य द्वारकागमनेमतिः ॥ दृढाभक्तिर्महादेवे नाल्पस्यतपसःफलम् ॥ १६ ॥ धन्यास्तेपूर्वजायेषां वंशजाःकृष्णदर्शनम् ॥ सोत्सवंद्वारकांयान्ति पश्यन्ति च हरिंप्रियम् ॥ १७ ॥ यूयंसर्वाणितीर्थानि क्षेत्राण्यपि च कृत्स्नशः ॥ धन्यान्यत्र भवद्भिश्च दृष्टाकृष्णपुरीयतः ॥ १८ ॥ यज्जायते तु दानानां तपोव्रतसमाधिनाम् ॥ सम्प्राप्तम्फलमस्माभिस्तदद्यसर्वतीर्थकाः ॥ १९ ॥ पश्यपश्यमहाभागे गो

पुण्यपुंजों की राशियों को किया है जोकि हज़ारों जन्मों से श्रीकृष्णजी के मन्दिर को देखा ॥ १५ ॥ क्योंकि श्रीकृष्णदेव का दर्शन व द्वारकागमन में बुद्धि तथा महादेवजी में दृढ़ भक्ति यह थोड़ी तपस्या का फल नहीं है ॥ १६ ॥ और वे पूर्वजलोग धन्य होते हैं कि जिनके वंश में उपजेहुए पुरुष श्रीकृष्णजी का दर्शन करते हैं और उत्सव समेत द्वारका को जाते हैं तथा प्यारे विष्णुजी को देखते हैं ॥ १७ ॥ तुम सब तीर्थ व क्षेत्र धन्य हो क्योंकि आप लोगों ने यहां श्रीकृष्णजी की पुरी को देखा ॥ १८ ॥ हे सब तीर्थो ! दान, तपस्या, व्रत व समाधियों का जो फल होता है उस फल को हमलोगों ने आज पाया ॥ १९ ॥ हे महाभागे, गोदावरि ! हे जाह्नवि !

देखिये देखिये जोकि यह श्रीकृष्णजी से पालित द्वारका शोभित है ॥ २० ॥ इसको तुम सब तीर्थ व उत्तम नदियां देखो और सब तीर्थों समेत जो त्रिलोक में नदियां उत्पन्न हैं वे देखें ॥ २१ ॥ इस उत्तम व महापवित्र द्वारकापुरी को देखो हे महाबाहो, सुशोभने, वाराणसि ! देखिये देखिये ॥ २२ ॥ कि कुरुक्षेत्र श्रीकृष्णजी की प्यारी द्वारका को देखते हैं जो ज्ञाननाशिनी द्वारका महापुण्यों के प्रकाश से शोभित है ॥ २३ ॥ ऐसी मथुरा, काशी, माया व अयोध्यापुरी नहीं शोभित है जैसी कि यह पुण्यरूपिणी द्वारका सदैव पृथ्वी में शोभित है ॥ २४ ॥ अन्य सब तीर्थों का माहात्म्य पृथ्वी में कहा जाता है परन्तु सब तीर्थों में उत्तमोत्तम जो द्वारका है वह

दावर्य्यथजाह्नवि ॥ शोभतेयात्वियंपुण्या द्वारकाकृष्णपालिता ॥ २० ॥ इमाम्पश्यततीर्थानि यूयंसर्वाःसरिद्वराः ॥ त्रैलोक्यसम्भवायाश्च सर्वतीर्थसमन्विताः ॥ २१ ॥ पश्यतेमांमहापुण्यां द्वारकांशोभनाम्पुरीम् ॥ पश्यपश्यमहाबाहो वाराणसिसुशोभने ॥ २२ ॥ कुरुक्षेत्राणिपश्यन्ति द्वारकांकृष्णवल्लभाम् ॥ महापुण्यप्रकाशेन राजतेज्ञाननाशिनी ॥ २३ ॥ नेदृशीमथुराकाशी मायायोध्याविराजते ॥ यथेयंशोभतेपुण्या द्वारकासर्वदाभुवि ॥ २४ ॥ अन्येषांसर्वतीर्थानां माहात्म्यंकथ्यतेभुवि ॥ द्वारकायासदापुण्या सर्वतीर्थोत्तमोत्तमा ॥ २५ ॥ प्रभासंमाघमासेपि नेदृशं हि विराजते ॥ यथेयंशोभतेपुण्या द्वारकासुमनोहरा ॥ २६ ॥ पश्यन्तुमुनयःसर्वे सुपुण्यामृतसागराः ॥ द्वारकेयंसुरश्रेष्ठा विभातिभुवनत्रये ॥ २७ ॥ भुवःकीर्तिस्वरूपाभूद्द्वारकाकृष्णवल्लभा ॥ गोमतीकृष्णदेवश्च रुक्मिणी च हरिप्रिया ॥ २८ ॥ पुण्यध्वजपताकाभिर्मुक्तिर्यत्र चकासते ॥ स्वर्गादप्यधिकाभूमिर्यत्सम्बन्धाद्विराजते ॥ २९ ॥ सेयंद्वारवती

सदैव पवित्र है ॥ २५ ॥ माघमहीने में भी ऐसा प्रभासक्षेत्र नहीं शोभित होता है जैसी कि यह बहुत सुन्दरी व पवित्र द्वारकापुरी सोहती है ॥ २६ ॥ हे सुरोत्तमो ! उत्तम पुण्यरूपी अमृत के समुद्ररूप सब मुनिलोग देखें कि यह द्वारका तीनों लोकों में शोभित है ॥ २७ ॥ कृष्णप्रिया द्वारका, गोमती व कृष्णदेव और विष्णुप्रिया रुक्मिणीजी पृथ्वी की यशरूपिणी हुई हैं ॥ २८ ॥ जहां कि पवित्र ध्वजों व पताकाओं से मुक्ति शोभित है और जिसके सम्बन्ध से पृथ्वी स्वर्ग से भी अधिक शोभित है ॥ २९ ॥ वही यह

पवित्र द्वारकापुरी उत्तम तेज से शोभित है और त्रिलोक में असमान पुरी निश्चय कर पृथ्वी में वैकुण्ठ कहीगई है ॥ ३० ॥ और ग्रहों, नक्षत्रों व ताराओं के मध्य में जैसे सूर्य प्रकाशित हैं वैसेही क्षेत्रों समेत तीर्थराजों के मध्य में द्वारकारूपी सूर्य शोभित हैं ॥ ३१ ॥ तीनों लोकों में वे तीर्थ और क्षेत्र नहीं हैं जो कि द्वारका की समता को प्राप्त होवें जैसे कि सुमेरुगिरि के समान पर्वत नहीं हैं ॥ ३२ ॥ प्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! नारदजी से कहेहुए वचन को सुनकर वे प्रसन्न हुए और सब क्षेत्रतीर्थ व क्षेत्र गौतमी को आगेकर ॥ ३३ ॥ आये व सब ऋषि व देवताओं के गण द्वारका के माहात्म्य को देखकर कृष्णजी

पुण्या शोभतेदिव्यतेजसा ॥ भूवैकुण्ठमितिप्रोक्ता त्रैलोक्येप्रतिमाध्रुवम् ॥ ३० ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां यथासूर्य्यःप्रकाशते ॥ सक्षेत्रतीर्थराज्ञाञ्च द्वारकार्कोविराजते ॥ ३१ ॥ न सन्तितानितीर्थानि क्षेत्राणिभुवनत्रये ॥ द्वारकायास्तुलांयान्ति मेरुणागिरयोयथा ॥ ३२ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ निशम्यनारदेनोक्तं प्रहृष्टास्तेद्विजोत्तमाः ॥ क्षेत्राणिसर्वतीर्थानि पुरस्कृत्य च गौतमीम् ॥ ३३ ॥ समायातानिसर्वे वै ऋषयोदेवतागणाः ॥ माहात्म्यंद्वारकायास्तु दृष्ट्वा च कृष्णवल्लभाम् ॥ ३४ ॥ विहायगोमतींतत्र प्रययुश्चाग्रतस्ततः ॥ प्रहृष्टागोमतीतेन ऋषिभिस्त्वरिताययौ ॥ ३५ ॥ गीतवाद्यैश्च नृत्यैश्च पताकाभिःसमन्ततः ॥ प्रययुःस्तोत्रपाठैस्तु स्तुवन्तोद्वारकाप्रियम् ॥ ३६ ॥ श्रुत्वासङ्गर्जितंतेषाम्मुदाग्र्यैर्हरिनामभिः ॥ प्रहृष्टोनारदस्तत्र व्यूहञ्चक्रेमनोहरम् ॥ ३७ ॥ सतीर्थान्यग्रतःकृत्वा ततःकृत्वासुशोभनम् ॥ प्रयागंतीर्थराजानं प्रहृष्टंतीर्थदर्शनात् ॥ ३८ ॥ ततःपश्चात्सरित्स्थानं चकारऋषिसत्तमः ॥ जाह्नवीगोमतीगङ्गा यमुनाप्राक्सरस्व

की प्यारी ॥ ३४ ॥ गोमतीजी को वहां छोड़कर तदनन्तर आगे चले उससे प्रसन्न होतीहुई गोमती शीघ्रता समेत ऋषियों के साथ चलीं ॥ ३५ ॥ और सब ओर से गान, बाजन, नृत्य व पताकाओं से तथा स्तोत्रपाठों से द्वारका के प्यारे श्रीकृष्णजी की स्तुति करतेहुए चले ॥ ३६ ॥ और प्रसन्नता से श्रेष्ठ विष्णुजी के नामों से उन के गर्जित को सुनकर वहा प्रसन्न होते हुए नारदजी ने व्यूह (सेना की रचना) किया ॥ ३७ ॥ और उन नारदजी ने तीर्थों को आगे कर तदनन्तर तीर्थ के दर्शन से प्रसन्न व शोभन तीर्थराज प्रयाग को करके ॥ ३८ ॥ उन ऋषिश्रेष्ठ नारदजी ने उसके पीछे नदियों का स्थान किया जाह्नवी, गोमती, गङ्गा, यमुना व प्राच

सरस्वती ॥ ३९ ॥ और सरयू, गण्डकी, तापी व पयोष्णी महानदी और कृष्णा, भागीरथी, तुङ्गा तथा पापनाशिनी कावेरी ॥ ४० ॥ और महापवित्र मन्दाकिनी व पवित्र भागवती नदी तथा तीर्थों समेत स्वर्ग, मृत्युलोक व पाताल में वर्तमान ॥ ४१ ॥ सब नदिया द्वारकापुरी को देखती हुई एकही साथ चलीं उसके पीछे हे ब्राह्मणो ! उन देवर्षि नारद महामुनि ने नाचते व गातेहुए क्षेत्रों को शीघ्रही हर्ष से किया और काशी व कुरुक्षेत्र आदिक अन्य सब तीर्थ ॥ ४२ । ४३ ॥ जाते व परस्पर द्वारकापुरी को दिखाते थे तदनन्तर अपने अपने तीर्थों समेत सातों समुद्र चले ॥ ४४ ॥ उसके पीछे नारदजी ने आश्रमों व मुनियों समेत वनों को किया तदनन्तर पवित्र पर्वत

ती ॥ ३९ ॥ सरयूर्गण्डकीतापी पयोष्णी च महानदी ॥ कृष्णाभागीरथीतुङ्गा कावेरीचाघनाशिनी ॥ ४० ॥ मन्दाकिनीमहापुण्या पुण्याभागवतीनदी ॥ स्वर्गेमर्त्ये च पाताले वर्त्तमानाःसतीर्थकाः ॥ ४१ ॥ व्रजन्तियुगपत्सर्वाः पश्यन्त्यो द्वारकापुरीम् ॥ ततःपश्चाच्चकाराशु सक्षेत्राणाम्महामुनिः ॥ ४२ ॥ देवर्षिर्नारदोविप्रा नृत्यतांगायतांमुदा ॥ वाराणसी कुरुक्षेत्रमुखान्यन्यानिकृत्स्नशः ॥ ४३ ॥ व्रजन्तिदर्शयन्तिस्म अन्योन्यंद्वारकांपुरीम् ॥ ततस्तु सागराःसप्त स्वैःस्वैस्तीर्थैःसमन्विताः ॥ ४४ ॥ ततःपश्चादरण्यानामाश्रमैर्मुनिभिःसह ॥ ततस्तु पर्वताःपुण्याः सर्वानद्यःसुशोभनाः ॥४५॥ नृत्यन्तोगायमानाश्च सुवाद्यैःसुप्रहर्षिताः ॥ व्रजन्तोदर्शयन्तस्ते अन्योन्यंद्वारकाश्रियम् ॥ ४६ ॥ ततश्च ऋषयोदेवाः समन्तात्कृष्णमानसाः ॥ गायन्तोनृत्यमानाश्च गर्जन्तोहरिनामभिः ॥ ४७ ॥ वादित्रनिनदैरुच्चैर्जयशब्दैःप्रहर्षिताः ॥ प्राप्ताःश्रीगोमतीतीरे सर्वेहरिसमन्विताः ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वातेगोमतींदेवीं सर्वतीर्थादिसंयुताम् ॥ ववन्दिरेमहापुण्यां संहृष्टा

और सब उत्तम नदिया चलीं ॥ ४५ ॥ व उत्तम बाजनों से नाचते व गातेहुए वे प्रसन्न होकर द्वारकाकी शोभा को देखते हुए जाते व परस्पर दिखलाते थे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर श्रीकृष्णजी में मनवाले ऋषि और देवता सब ओर से नाचते व गातेहुए विष्णुजी के नामों से गरजते थे ॥ ४७ ॥ बाजनों के शब्दों से तथा उच्चप्रकार के जयशब्दों से प्रसन्न होतेहुए विष्णुजी समेत सब श्रीगोमतीजी के किनारे प्राप्तहुए ॥ ४८ ॥ और सब तीर्थों से संयुत गोमती देवी को देखकर उन्होंने बड़े पुण्यवाली

गोमती को प्रणाम किया तदनन्तर वे प्रसन्नहुए ॥ ४९ ॥ और गोमती की महिमा को देखकर प्रसन्न होतेहुए नारदजी बोले कि हे भागीरथि ! हे रेवे ! हे यमुने ! हे गौतमि ! सुनिये ॥ ५० ॥ कि वही यह श्रीगोमती देवी है जोकि तीनों लोकों में प्रसिद्ध है और एकबार जिसका जलस्नान ब्रह्मविद्या के साथ स्पर्द्धा करता है ॥५१॥ और जिसका केवल स्नान सदैव इस कारण स्पर्द्धा करता है कि पूर्वजों समेत सबों की मुक्ति मुझ में है तुम से क्या कार्य है ॥ ५२ ॥ यह तीर्थों में उत्तमोत्तम नदी ब्रह्मज्ञान के समान है क्योंकि मनुष्य ब्रह्मज्ञान व प्रयाग के मरण से मुक्त होते हैं ॥ ५३ ॥ अथवा श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में स्नानही करने से मनुष्य मुक्त हो-

आभवंस्ततः ॥४९॥ दृष्ट्वामहत्त्वंगोमत्याः प्रहृष्टोनारदोब्रवीत् ॥ भोभागीरथिभोरेवे यमुनेशृणुगौतमि ॥ ५० ॥ सेयं श्रीगोमतीदेवी विख्याताभुवनत्रये ॥ यस्याःसकृज्जलस्नानं स्पर्द्धतेब्रह्मविद्यया ॥ ५१ ॥ पूर्वजैःसहसर्वेषां मोक्षार्थंम यिकिंत्वया ॥ इतिसंस्पर्द्धतेनित्यं यस्याःस्नानन्तु केवलम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मज्ञानेनतुल्येयं सरित्तीर्थोत्तमोत्तमा ॥ ब्रह्मज्ञा नेनमुच्यन्ते प्रयागमरणेन वा ॥ ५३ ॥ अथवा स्नानमात्रेण गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ महिमानं च गोमत्या अनेकै र्युगसंख्यया ॥ ५४ ॥ वक्त्रैर्न शक्यतेवक्तुमीदृशीयंसरिद्वरा ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ निशम्यसर्वतीर्थानि सरितःसाग रादयः ॥ ५५ ॥ ददृशुर्द्वारकांरम्यामागताराजमण्डले ॥ स्थितांसिंहासनेदिव्ये काञ्चनेमणिभूषिते ॥ ५६ ॥ सुगात्रां शुक्लवर्णाञ्च चन्द्रादित्यसमप्रभाम् ॥ दिव्यवस्त्रांसुगन्धाढ्यां रत्नाभरणभूषिताम् ॥ ५७ ॥ किरीटैःकुण्डलैर्दिव्यैः शोभितांकङ्कणादिभिः ॥ वरदाभयहस्ताञ्च शङ्खचक्रवरायुधाम् ॥ ५८ ॥ सर्वाङ्गैश्चिह्नितांसुभ्रूं सुप्रसन्नमुखाम्बुजाम् ॥

जाते हैं और गोमती की महिमा युगों की संख्या से अनेकों मुखों से भी नहीं कही जासकी है ऐसी यह उत्तम नदी है श्रीप्रह्लादजी बोले कि यह सुनकर नदियां व समुद्र आदिक सब तीर्थ ॥ ५४ । ५५ ॥ राजमण्डल में आकर मणियों से भूषित सुवर्ण के दिव्य सिंहासन पै स्थित सुन्दरी द्वारकापुरी को देखा ॥ ५६ ॥ और उत्तम अंगोंवाली तथा गौररंग व चन्द्रमा तथा सूर्यनारायण के समान प्रभावाली और दिव्य वसनोंवारी व सुगन्ध से संयुत तथा रत्नों के आभूषणों से भूषित ॥ ५७ ॥ और किरीटों व दिव्य कुण्डलों से शोभित और वरदायिनी व अभय हाथवाली तथा शङ्ख चक्र व उत्तम अस्त्रोंवाली ॥ ५८ ॥ और सब अङ्गों से चिह्नित तथा सुन्दरी भौंहों

वाली और प्रसन्नमुखकमलवाली व श्वेत छत्रकी शोभा से संयुत और चामरों व व्यजनादिकों से शोभित ॥ ५६ ॥ और सब दिशाओं में भक्ति से सब तीर्थों करके भलीभांति सेवित तथा सब स्तोत्रों से स्तुति कीजातीहुई व गीतों, वाद्यादिकों से हर्षित ॥६०॥ बड़ेभारी सिंहासन पै बैठीहुई द्वारकापुरी को देखकर एकही बार सब ऋषि, देवता, तीर्थ, नदी व क्षेत्रों ने उत्तम भक्ति से प्रणाम किया ॥ ६१ ।६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

दो० । तीरथ अरु देवादिकन किय द्वारकाभिषेक । चौंतिसवें अध्याय में सोई चरित सुनेक ॥

श्वेतातपत्रशोभाढ्यां चामरव्यजनादिभिः ॥ ५६ ॥ भक्त्यासंसेवितांतीर्थप्रवरैःसर्वतोदिशम् ॥ सर्वैःस्तवैःस्तूयमानां गीतवाद्यादिहर्षिताम् ॥६०॥ महासिंहासनस्थाञ्च दृष्ट्वाद्वारावतीम्पुरीम् ॥ प्रणेमुर्युगपत्सर्वे सर्वाणि च सुभक्तितः॥६१॥ ऋषयोदेवतीर्थानि सरित्क्षेत्राण्यशेषतः ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ नारदस्त्वग्रतोगत्वा प्रणिपत्यहरिप्रियाम् ॥ उवाचललितांवाचं हर्षयन्द्वारकाम्प्रति ॥ १ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ पश्येदंपुरतःप्राप्तं प्रयागंतीर्थकैःसह ॥ द्वारकेतवपादाग्रे लुण्ठतिश्रद्धयाद्भुतम् ॥ २ ॥ इमानिपुष्करा एयेवं नमन्तिश्रद्धयाशुभे ॥ इयञ्च गौतमीपुण्या सर्वतीर्थसमाश्रया ॥ ३ ॥ सिंहस्थितेगुरौभद्रे सम्प्राप्तासौभगंमहत् ॥ किन्तुदुर्जनसंसर्गाद्दग्धापापाग्निनाभृशम् ॥ ४ ॥ तत्रोपायमभिज्ञातमृषीणांशृण्वतां तदा ॥ श्रुत्वाकाशान्महा शब्दं सम्प्राप्तेयन्तवान्तिके ॥ ५ ॥ सर्वक्षेत्राधिराजोयं तीर्थराजेश्वरस्तथा ॥ नमस्करोतितेपादौ द्वारकेगौतमी

श्रीप्रह्लादजी बोले कि नारदजी ने आगे जाकर व हरिप्रिया द्वारका जी को प्रणाम कर द्वारका को प्रसन्न करतेहुए सुन्दर वचन को कहा ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे द्वारके ! तीर्थों समेत आगे प्राप्त इस प्रयाग को देखो कि तुम्हारे चरणों के आगे यह श्रद्धा से आश्चर्यपूर्वक लोटता है ॥ २ ॥ व हे शुभे ! ये पुष्कर श्रद्धा से प्रणाम करते हैं और सब तीर्थों से आश्रित यह पवित्र गौतमी ॥ ३ ॥ हे भद्रे ! बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होने पर बड़े ऐश्वर्य को प्राप्तहुई परन्तु दुर्जनों के संसर्ग के कारण पापरूपी अग्निसे बहुतही दग्ध होगई है ॥ ४ ॥ वहां उस समय ऋषियों के सुनते हुए यत्न जाना गया और आकाश से बड़े शब्द को सुनकर यह तुम्हारे समीप प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ व हे द्वारके ! सब क्षेत्रों का राजा और

सब तीर्थों का राजा यह प्रयाग तुम्हारे चरणों को प्रणाम करता है और उत्तम गौतमी ॥ ६ ॥ दुष्टों के संसर्ग के दोष से कज्जलगिरि के समान होगई और शरदृऋतु के चन्द्रमा के समान प्रभावान् यह गौतमी तुम्हारे आगे है ॥ ७ ॥ और देखिये, देखिये बड़े पुण्यवाली यह उत्तम भागीरथी बार २ प्रसन्न होतीहुई तुम्हारे चरणों को प्रणाम करती है ॥ ८ ॥ और तुम्हारे चरणों को प्रणाम करतीहुई इस पवित्र नर्मदा को देखिये यह यमुना व चन्द्रभागा है और यह प्राची सरस्वती है ॥ ९ ॥ और सरयू, गण्डकी, क्षिप्रा व पूर्ववाहिनी गोमती, शोणा, सिन्धु, विपाशा व अन्य जो श्रेष्ठ नदियां हैं ॥ १० ॥ हे महाभागे ! इनको देखिये जोकि किसी किसी प्रकार

शुभा ॥ ६ ॥ कज्जलाचलसंकाशा दुष्टसम्पर्कदोषतः ॥ गौतमीयंतवाग्रेस्ति शरच्चन्द्रसमप्रभा ॥ ७ ॥ पश्यपश्य महापुण्या त्वियंभागीरथीशुभा ॥ नमस्करोतितेपादौ प्रहृष्टा च पुनःपुनः ॥ ८ ॥ पश्येमांनर्मदांपुण्यां प्रणतान्तवपादयोः ॥ यमुनाचन्द्रभागेयं त्वियंप्राचीसरस्वती ॥ ९ ॥ सरयूंगण्डकीक्षिप्रा गोमतीपूर्ववाहिनी ॥ शोणासिन्धुविपाशा वै अन्याश्च सरितांवराः ॥ १० ॥ पश्यपश्यमहाभागे लुण्ठन्त्येताःकथङ्कथम् ॥ पयोष्णीतापतीपुण्या नमतस्तेपदाम्बुजे ॥ ११ ॥ कृष्णाभीमारथीपुण्या कावेर्याद्याःसरिद्वराः ॥ शीता च चन्द्रभागा च नमन्तित्वत्पदाम्बुजे ॥ १२ ॥ द्वारके वै महापुण्ये सप्तद्वीपोद्भवापुरः ॥ मन्दाकिनीमहापुण्या भोगवत्यःसरिद्वराः ॥ १३ ॥ त्रैलोक्येवर्त्तमानानि सर्वतीर्थानियानि वै ॥ नमन्तिचरणाम्भोजं क्षेत्रतीर्थवरेश्वरि ॥ १४ ॥ पश्याश्चर्यमिदं शुभ्रे वाराणसीविमुक्तिदा ॥ सद्भक्त्यातेपदाम्भोजं शिरसाधायवर्तते ॥ १५ ॥ कुरुक्षेत्रमिदंपुण्यं नमतित्वाम्प्रहर्षितम् ॥

से लोटती हैं व पयोष्णी और पवित्र तापती तुम्हारे चरणकमलों में प्रणाम करती हैं ॥ ११ ॥ व पवित्र कृष्णा, भीमारथी तथा कावेरी आदिक श्रेष्ठ नदियां व शीता, चन्द्रभागा तुम्हारे चरणकमल में प्रणाम करती हैं ॥ १२ ॥ व हे महापुण्ये, द्वारके ! सातों द्वीपों में उत्पन्न महापवित्र मन्दाकिनी और शरीरवाली श्रेष्ठ नदियां तुम्हारे आगे वर्तमान हैं ॥ १३ ॥ व हे क्षेत्रतीर्थवरेश्वरि ! त्रिलोक में जो सब तीर्थ वर्तमान हैं वे तुम्हारे चरणकमल को प्रणाम करते हैं ॥ १४ ॥ व आश्चर्य को देखिये कि यह मुक्तिदायिनी काशी उत्तम भक्ति से तुम्हारे चरणकमल को मस्तक से धारण कर वर्तमान है ॥ १५ ॥ व यह पवित्र तथा प्रसन्न कुरुक्षेत्र तुमको प्रणाम

करता है व हे द्वारके! तुम्हारे चरणोंको प्रणाम करती हुई मथुरा को देखो ॥ १६ ॥ व अयोध्या, अवन्ती, माया तुम्हारे चरणकमल में प्रणाम करती है व कांची, गया, विशाल और विरज पृथ्वी में लोटता है ॥ १७ ॥ और शालग्राम महाक्षेत्र तुम्हारे चरणों में गिरता है और तीर्थों में उत्तम प्रभास व पुरुषोत्तम क्षेत्र तुम्हारे चरणों में गिरता है ॥ १८ ॥ व हे क्षेत्रराजवरेश्वरि! सब तीर्थों से संयुत तुम्हारे चरणों में पड़ेहुए इन सात समुद्रों को देखो ॥ १९ ॥ और सब वनों को देखिये जोकि तुम्हारे चरणों में पड़ते हैं और धेनुक, दशारण्य, दण्डकारण्य व अर्बुद को देखो ॥ २० ॥ व हे द्वारके! प्रणाम करतेहुए नारायणसर को देखो और तुम्हारे चरणों में पड़ेहुए

द्वारकेमथुराम्पश्य प्रणतान्तवपादयोः ॥ १६ ॥ अयोध्यावन्तिकामाया नमन्तेतेपदाम्बुजे ॥ काञ्चीगयाविशालञ्च विरजंलुण्ठतेभुवि ॥ १७ ॥ शालग्रामम्महाक्षेत्रं पततेतवपादयोः ॥ तीर्थोत्तमंप्रभासञ्च क्षेत्रञ्च पुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥ पश्येमान्सागरान्सप्त पतितांस्तवपादयोः ॥ सर्वतीर्थसमोपेतान् क्षेत्रराजवरेश्वरि ॥ १९ ॥ पश्यारण्यानि सर्वाणि पतन्तितवपादयोः ॥ धेनुकञ्च दशारण्यं दण्डकारण्यमर्बुदम् ॥ २० ॥ नारायणसरःपश्य द्वारकेप्रणतंतथा ॥ पश्यैतान् पर्वतान्पुण्यान्पतितांस्तवपादयोः ॥ २१ ॥ अयंमेरुश्च कैलासो मन्दराद्याःसहस्रशः ॥ हेमाद्रिविन्ध्यशैलाद्याः सर्वे शैलाःप्रहर्षिताः ॥ २२ ॥ भक्त्यानमन्तितेपादौ द्वारकेसर्वतोत्तमे ॥ एतेऋषिगणाःसर्वे नमन्तिस्मपुनःपुनः ॥ २३ ॥ देवतीर्थानिक्षेत्राणि भक्त्यात्वांप्रणमन्ति हि ॥ लोकत्रयेस्तियत्किञ्चित्पुण्यम्पापप्रणाशनम् ॥ २४ ॥ तत्सर्वंतवयात्रायां नृत्यमानंविराजते ॥ गीतवाद्यप्रघोषैश्च नृत्यमानानिहर्षिताः ॥ २५ ॥ द्वारकेपश्य चैतानि प्रयागादीनिकृत्स्न

इन पवित्र पर्वतों को देखिये ॥ २१ ॥ और यह सुमेरु, कैलास व मन्दरादिक हज़ारों पर्वत तथा हेमाद्रि, विन्ध्याचल आदिक सब पर्वत प्रसन्न होतेहुए ॥ २२ ॥ हे सर्वतोत्तमे, द्वारके! भक्ति से तुम्हारे चरणों को प्रणाम करते हैं और ये सब ऋषियों के गण बार २ प्रणाम करते हैं ॥ २३ ॥ और देवतीर्थ व क्षेत्र भक्ति से तुमको प्रणाम करते हैं और त्रिलोक में जो कुछ पापनाशक व पवित्र है ॥ २४ ॥ तुम्हारी यात्रा में नाचता हुआ वह सब शोभित है व हे द्वारके! गाने, बजाने के शब्दों से नाचते

हुए प्रसन्न इन सब प्रयागादिक तीर्थों को देखो और काशी व कुरुक्षेत्र आदिक तथा उत्तम नदियां ॥ २५ । २६ ॥ गङ्गादिक व समुद्र और पर्वत तुम्हारे आगे नाचते हैं व ऋषियों और देवताओं के गण सब विष्णुजी के नामों से गरजते हैं ॥ २७ ॥ और ये सब प्रशंसनीय तीर्थ तुम्हारे चरित्र का वर्णन करते हैं और ये मुक्त जनों को भी दुर्लभ सिद्धि को प्राप्तहुए हैं ॥ २८ ॥ और द्वारका में ये बड़े आनन्द में मग्न होकर नाचते हैं और वे धन्य व अधिक पुण्यवान् हैं जोकि देवता को प्रणाम करते हैं ॥ २९ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि इस प्रकार उन नारदजी के कहतेहुए प्रसन्नमनवाली द्वारका प्रसन्न व नाचतेहुए तीर्थों को देखकर सबों को बहुत मानदायिनी हुई॥३०॥

शः ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्रप्रमुखानिसरिद्वराः ॥ २६ ॥ गङ्गाद्याःसागराःशैला नृत्यन्तिपुरतस्तव ॥ ऋषिदेवगणाःसर्वे गर्ज्जन्तोहरिनामभिः ॥ २७ ॥ धन्यानीमानिसर्वाणि चरित्रंवर्णयन्तिते ॥ एतेप्राप्ता हि संसिद्धिं मुक्तानामपि दुर्लभाम् ॥ २८ ॥ नृत्यन्तिद्वारकाम्प्राप्ताः परमानन्दसंप्लुताः ॥ धन्याःपुण्यतमास्ते वै येनमन्तिदिवौकसम् ॥ २९ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ इत्येवंवदतस्तस्य द्वारकाहृष्टमानसा ॥ नृत्यन्तोमुदितान्वीक्ष्य सर्वेषामतिमानदा ॥ ३० ॥ तीर्थादिपर्वतानां च संलापालिङ्गनादिभिः ॥ उवाचललितांवाचं गौतमींस्पृश्यपाणिना ॥ ३१ ॥ भागीरथीं च यमुनां प्रयागादीनिसर्वशः ॥ द्वारकामधुरालापैः सर्वमानन्दयत्तदा ॥ ३२ ॥ अथाश्चर्यमभूत्तत्र सर्वानन्दविवर्द्धनम् ॥ प्रावर्त्ततदाकाशे गीतवाद्यजयस्वनः ॥ ३३ ॥ गर्जमानानिपुण्यानि दैवतानिपृथक्पृथक् ॥ अदृश्यन्ततदाकाशे ब्रह्माद्यादेवतागणाः ॥ ३४ ॥ महेशःस्वैर्गणैःसार्द्धं भवान्यासमदृश्यत ॥ इन्द्रश्च त्रिदशैःसार्द्धं यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ॥ ३५ ॥ मरुद्भि

और तीर्थादिक व पर्वतों को आलाप व आलिङ्गनादिकों से सत्कार कर गौतमीजी को हाथ से छूकर द्वारका ने सुन्दर वचन को कहा ॥ ३१ ॥ और उस समय भागीरथी-यमुना व प्रयागादिक सब तीर्थों को द्वारका ने मीठे आलापों से सबों को आनन्द किया ॥ ३२ ॥ इसके उपरान्त वहां सब के आश्चर्य को बढ़ानेवाला आश्चर्य हुआ कि उस समय आकाश में गाने, बजाने व जय का शब्द हुआ ॥ ३३ ॥ और उस समय अलग २ गरजतेहुए पुण्यरूप देवता देखपड़े और आकाश में ब्रह्मादिक देवगण देखपड़े ॥ ३४ ॥ व शिवजी अपने गणों समेत और पार्वतीजी समेत देखपड़े और यक्षों, गन्धर्वों व किन्नरों समेत तथा देवताओं समेत इन्द्रजी देखपड़े ॥ ३५ ॥ व पवनों

और नाचतेहुए व प्रसन्न भृगु आदिक तथा सनकादिक देखपड़े और ब्रह्मा को आगे कर सब देवता आकाश में स्थित हुए ॥ ३७ ॥ व उस समय द्वारका को देखकर ब्रह्मा व शिव आदिक बोले और हर्ष से विह्वलचित्तवाले व परस्पर देखकर विस्मित हुए ॥ ३८ ॥ देवता बोले कि वही यह द्वारका देवी है जहां कि गोमती बहती है व जहां भगवान् श्रीकृष्णजी रहते हैं वही यह पवित्र द्वारका विराजती है ॥ ३९ ॥ और सब क्षेत्रों में उत्तम व दिव्य तथा सब तीर्थों से उत्तमोत्तम यह द्वारका पृथ्वी में स्वर्ग से भी अधिक विराजती है ॥ ४० ॥ तथा लोकपालों समेत नाचतेहुए व प्रसन्न सब सिद्ध, विद्याधर और विश्वेदेवता, सूर्य व ग्रह देखपडे ॥ ३६ ॥

भृग्वाद्याःसनकाद्याश्च नृत्यमानास्तु हर्षिताः ॥ सिद्धाविद्याधराःसर्वे विश्वादित्याश्च वै ग्रहाः ॥ ३६ ॥ लोकपालैश्च नृत्यमानास्तु हर्षिताः ॥ ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य सर्वेस्वर्गास्थितासुराः ॥ ३७ ॥ ऊचुस्तेद्वारकांदृष्ट्वा ब्रह्मेशानादयस्तदा ॥ हर्षमानाःप्रहर्षिताः ॥ विह्वलितात्मानो वीक्ष्यान्योन्यं च विस्मिताः ॥ ३८ ॥ देवा ऊचुः ॥ सेयं वै द्वारकादेवी वहते यत्र गोमती ॥ यत्रास्ते भगवान्कृष्णः सेयम्पुण्याविराजते ॥ ३९ ॥ सर्वक्षेत्रोत्तमादिव्या सर्वतीर्थोत्तमोत्तमा ॥ स्वर्गादप्यधिकाभूमौ द्वारकेयम्प्रकाशते ॥ ४० ॥ एतद्वै चक्रतीर्थन्तु यच्छिलाचक्रचिह्नितम् ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मादीनागतान्दृष्ट्वा विस्मितानारदादयः ॥ ४१ ॥ क्षेत्राणितीर्थमुख्यानि विस्मितानिसरिद्वराः ॥ प्रणेमुर्युगपत्सर्वे सर्वतीर्थानिसर्वशः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मादीनां च तीर्थानां दृष्ट्वायात्रांमनोहराम् ॥ द्वारकाम्प्रतिविप्रेन्द्रा विस्मिताद्वारकौकसः ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वादेवगणाःसर्वे द्वारकां चववन्दिरे ॥ ४४ ॥ गीतवाद्यानिघोषैश्च नृत्यमानाःप्रहर्षिताः ॥ वदन्तोजयशब्दांश्च सेयंकृष्णमयेति च ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वाब्रह्म

नारदादिक विस्मित होगये ॥ ४१ ॥ व क्षेत्र और मुख्य तीर्थ विस्मित हुए तथा श्रेष्ठ नदियों ने व सब तीर्थों ने और सब मुनियों ने एकही बार प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! ब्रह्मादिक तथा तीर्थों की द्वारका में सुन्दरी यात्रा को देखकर द्वारकावासी विस्मित हुए ॥ ४३ ॥ व सब देवगणों ने द्वारका को देखकर प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ और गाने बजाने के शब्दों से नाचतेहुए व प्रसन्न वे देवगण इस कारण जयशब्दों को कहते थे कि वही यह कृष्णमयी द्वारकापुरी है ॥ ४५ ॥ और ब्रह्मा व शिवजी को देखकर प्रसन्नमनवाली

और यह चक्रतीर्थ है जोकि शिला के चक्रों से चिह्नित है श्रीप्रह्लादजी बोले कि ब्रह्मादिकों को आयेहुए देखकर

द्वारका सुन्दर सिंहासन को छोड़कर दण्डाकी नाईं पृथ्वी पै गिरपड़ी ॥ ४६ ॥ तदनन्तर प्रणाम कीहुई द्वारका को देखकर ब्रह्मा व शिवजी प्रसन्नहुए तदनन्तर पार्वतीजी द्वारका को देखकर प्रसन्नहुईं ॥ ४७ ॥ व उन्होंने कहा कि हे अम्ब! हमलोगों से व सबों से भी तुम श्रेष्ठ हो क्योंकि विकाररहित साक्षात् विष्णु भगवान् तुमको नहीं छोड़ते हैं॥ ४८ ॥ इस कारण कंस को विनाशनेवाले देवेश श्रीकृष्णजी को दिखलाइये कि जिनके भलीभांति दर्शन से हम सबों की भी सिद्धि होगी ॥४९॥ प्रह्लादजी बोले कि इस प्रकार कहीहुई क्षेत्रों व तीर्थादिकों से संयुत प्रसन्नमनवाली द्वारका देवीजी गीतों व बाजनों और पताकाओं समेत ब्रह्मा व शिवजी को आगे कर चलीं

महेशानौ द्वारकाप्रीतमानसा ॥ त्यक्त्वासिंहासनंरम्यं दण्डवत्पतिताभुवि ॥ ४६ ॥ ब्रह्मेशानौततोदृष्ट्वा द्वारकामभिवन्दिताम् ॥ भवानी च ततोदृष्ट्वा द्वारकाम्प्रतिहर्षितौ ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठात्वमम्बसर्वेभ्योऽस्मदादिभ्योपि सर्वशः ॥ यतस्त्वां न त्यजेत्साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः ॥ ४८ ॥ अतोदर्शयदेवेशं कृष्णंकंसविनाशनम् ॥ यद्दर्शनान्महासिद्धिः सर्वेषांनोभविष्यति ॥४९॥ प्रह्लाद उवाच ॥ इत्युक्ताप्रययौदेवी क्षेत्रतीर्थादिसंयुता ॥ ब्रह्मेशानौपुरस्कृत्य द्वारकाहृष्टमानसा ॥५०॥ गीतवाद्यपताकैश्च दिव्योपायनपाणिनः ॥ प्राप्योवाचतदादेवान् द्वारकाहर्षविह्वला ॥ ५१ ॥ पश्यतांपश्यतांदेवाः सोयं वै द्वारकेश्वरः ॥ यस्यसंदर्शनम्प्राप्य मुक्तानामपि सत्फलम् ॥ ५२ ॥ तदादेवगणाःसर्वे क्षेत्रतीर्थसमन्विताः ॥ पश्चिमाभिमुखंदृष्ट्वा कृष्णंक्लेशविनाशनम् ॥ ५३ ॥ प्रणेमुर्युगपत्सर्वे प्रहृष्टाश्चाभवंस्ततः ॥ गीतवाद्यप्रघोषैश्च नृत्यमानाःसमन्ततः ॥ ५४ ॥ जयशब्दैर्नमःशब्दैर्गर्ज्जन्तोहरिनामभिः ॥ ब्रह्माभवोभवानी च सेन्द्रादेवगणामुदा ॥ ५५ ॥

और प्राप्तहोकर उस समय हर्ष से विह्वल द्वारकाजी ने दिव्य उपायनों को हाथ में लियेहुए देवताओं से कहा ॥ ५० । ५१ ॥ कि हे देवताओ! देखिये देखिये वही ये द्वारकानाथजी हैं कि जिनके दर्शन को पाकर मुक्तों को भी उत्तम फल होता है ॥५२॥ उस समय क्षेत्रों व तीर्थों से संयुत सब देवताओं के गणों ने पश्चिम दिशा के सामने मुखवाले क्लेशनाशक श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ५३ ॥ एक साथही सबों ने प्रणाम किया तदनन्तर सब प्रसन्नहुए और गाने, बजाने के शब्दों से सब ओर नाचने लगे ॥५४॥ व जयशब्दों तथा नमस्कार के शब्दों से व विष्णुजी के नामों से गरजने लगे और ब्रह्मा, शिव, पार्वती तथा इन्द्र समेत देवताओं के गणों ने हर्ष से ॥ ५५ ॥

श्रीकृष्णजी को देखकर उन्हों ने बार २ भक्ति से उठकर प्रणाम किया और प्रयागादिक तीर्थों ने तथा गङ्गादिक निर्मल नदियों ने प्रणाम किया ॥ ५६ ॥ व काशी और कुरुक्षेत्र आदिक सब तीर्थों ने व पवित्र समुद्र तथा पर्वतों ने और आश्रमों समेत वनों ने ॥ ५७ ॥ और ऋषि, यक्ष, गन्धर्व तथा इन्द्रादिक व सनकादिकों ने और उन अन्य सबों ने हर्ष से बड़ी भक्ति से ॥ ५८ ॥ महाविष्णुजी का मुख देखकर बार २ प्रणाम किया और हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! तुम्हारी जय हो व हे कृष्ण ! ऐसा वे कहने लगे ॥ ५९ ॥ वैसे ही आनन्द से पूर्ण चित्तवाले उन सब सिद्धों की श्रीकृष्णजी के दर्शन में सिद्धि होगई ॥ ६० ॥

दृष्ट्वाकृष्णंप्रणेमुस्ते भक्त्योत्थायपुनःपुनः॥ प्रयागादीनितीर्थानि गङ्गाद्याःसरितोमलाः ॥ ५६ ॥ वाराणसीकुरुक्षेत्र मुखान्यन्यानिकृत्स्नशः ॥ सागराःपर्वताःपुण्या अरण्यान्याश्रमैःसह ॥ ५७ ॥ ऋषयोयक्षगन्धर्वाः शक्राद्याःसन कादयः ॥ तथाचान्ये च तेसर्वे भक्त्यापरमयामुदा ॥५८॥ वीक्ष्यवक्त्रम्महाविष्णोः प्रणेमुश्च पुनःपुनः ॥ कृष्णकृष्णेति कृष्णेति जयकृष्णेतिवादिनः ॥ ५९ ॥ तथा तेषान्तु सर्वेषां प्रमोदविभृतात्मनाम् ॥ अभूद्वै सर्वसिद्धानां संसिद्धिःकृष्ण दर्शने ॥६०॥ स्नात्वा तु गोमतीनीरे नीरे चैव महोदधेः ॥ चक्रतीर्थे तु तेसर्वे कृष्णदर्शनलालसाः ॥६१॥ दृष्ट्वाश्रीकृष्ण वक्त्राब्जं परमानन्दसम्प्लुताः ॥ मुमुचुःप्रेमबाष्पंते आत्मानंनापि तेविदुः ॥ ६२ ॥ अथ दिव्योपचारैस्तु श्रद्धाभक्तिसम न्विताः ॥ कमलासनस्थंदृष्ट्वाथो रामंकृष्णमपूजयन् ॥६३॥ सर्वे तु पयसास्नाप्य दिव्यैश्चामृतकैस्तथा ॥ त्रैलोक्यसम्भ वैस्तीर्थैर्ब्रह्माप्राप्तमनोरथः ॥ ६४ ॥ भवश्चाथ भवानी च पूजयामासतुस्तदा ॥ इन्द्रोदेवगणाःसर्वे योगिनःसनकाद

और श्रीकृष्णजी के दर्शन की इच्छावाले वे सब गोमती के जल में व समुद्र के जल में नहाकर तथा चक्रतीर्थ में स्नान कर ॥ ६१ ॥ श्रीकृष्णजी के मुखकमल को देख कर बड़े आनन्द में मग्न होगये और उन्हों ने प्रेम के आंसुवों को छोड़ा व अपना को भी नहीं जाना ॥ ६२ ॥ इसके अनन्तर श्रद्धा व भक्ति से संयुत उन्हों ने कमलासन पै बैठेहुए बलभद्र व श्रीकृष्णजी को देखकर उत्तम उपचारों से पूजन किया ॥ ६३ ॥ और सबों ने जलसे नहवाकर व दिव्य पञ्चामृतों से नहवाकर त्रिलोक में उत्पन्न तीर्थों से नहवाया और ब्रह्मा ने मनोरथ को पाया ॥ ६४ ॥ व उस समय शिव और पार्वतीजी ने पूजन किया व इन्द्र तथा सब देवगणों ने और सनकादिक योगियों

ने पूजन किया ॥ ६५ ॥ और नारदादिक ऋषियों ने व गङ्गादिक श्रेष्ठ नदियों ने पूजन किया व उस समय सब समुद्रों ने तथा उत्तम पर्वतों ने पूजन किया ॥ ६६ ॥ व क्षेत्र और मुख्यक्षेत्र तथा काशी है मुख्य जिन में ऐसे मुक्तिदायक तीर्थ और अरण्यादिक सब आश्रमों ने श्रीमान् श्रीकृष्णजी को पूजा ॥ ६७ ॥ और प्रसन्न होतेहुए सबों ने उत्तम श्रद्धा व भक्ति से पृथक् पृथक् अमूल्य दिव्य वसनों से व दिव्य गन्धों और अनुलेपनों से पूजन किया ॥ ६८ ॥ और महारत्नों से बनायेहुए दिव्य आभूषणों से तथा चन्दनादिकों से उपजेहुए अनेकों दिव्य मालाओं से पूजन किया ॥ ६९ ॥ व उन्हों ने प्यारी श्रीतुलसीजी से श्रीकृष्णजी को पूजा व पृथक् २ धूपों व

यः ॥ ६५ ॥ ऋषयोनारदाद्याश्च गङ्गाद्याश्च सरिद्वराः ॥ सर्वेसमुद्राश्च तदा तथा वै पर्वतोत्तमाः ॥ ६६ ॥ क्षेत्राणिक्षेत्रमुख्यानि काशीमुख्याश्च मुक्तिदाः ॥ अरण्याद्याश्रमाःसर्वे श्रीमतकृष्णमपूजयन् ॥ ६७ ॥ श्रद्धयापरयाभक्त्या सर्वेहृष्टाःपृथक्पृथक् ॥ अमूल्यैर्दिव्यवस्त्रैश्च दिव्यगन्धानुलेपनैः ॥ ६८ ॥ सुदिव्याभरणैर्भक्त्या महारत्नविनिर्मितैः ॥ दिव्यमाल्यैरनेकैश्च चन्दनादिसमुद्भवैः ॥ ६९ ॥ प्रिययाश्रीतुलस्या वै तेश्रीकृष्णमपूजयन् ॥ धूपैर्नीराजनैर्दिव्यैः कर्पूरैश्च पृथक्पृथक् ॥ ७० ॥ नैवेद्यैर्विविधैर्दिव्यैः पुण्यैःकर्पूरवासितैः ॥ सकर्पूरैश्च ताम्बूलैः प्रियैश्चोपायनैस्तथा ॥ ७१ ॥ महामाङ्गल्यकैःसर्वे सुदिव्यैर्मङ्गलात्मकैः ॥ संस्तवैर्वैष्णवैर्भक्त्या चामरव्यजनादिभिः ॥ ७२ ॥ सम्पूज्यैवं महाविष्णुं कृष्णंकंसविनाशनम् ॥ प्रहृष्टाननृतुःसर्वे गीतवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ७३ ॥ पुरतःकृष्णदेवस्य अप्सराभिःसमन्विताः ॥ ब्रह्माद्याब्रह्मपुत्राश्च ततःसेन्द्राश्च भक्तितः ॥ ७४ ॥ ब्रह्मादीन्नृत्यतोवीक्ष्य भगवान्कमलेक्षणः ॥ वारयामासहस्तेन प्री

नीराजनों से और दिव्य कपूरों से पूजा ॥ ७० ॥ व कपूर से अधिवासित तथा पवित्र व दिव्य अनेकों प्रकार के नैवेद्यों से पूजा तथा कपूर समेत ताम्बूलों और प्रिय उपायनों से पूजा ॥ ७१ ॥ व सबों ने भक्ति से महामांगल्यक और दिव्य व मंगलात्मक विष्णुजी के स्तोत्रों से और चँवर व व्यजन आदिकों से पूजन किया ॥ ७२ ॥ इस प्रकार कंसविनाशक श्रीकृष्णजी को भली भांति पूजकर गीतों व बाजनों से प्रसन्न होतेहुए अप्सराओं समेत सबों ने श्रीकृष्णदेवजी के आगे नृत्य किया तदनन्तर भक्ति से इन्द्र समेत ब्रह्मादिक और ब्रह्मपुत्रों ने नृत्य किया ॥ ७३ । ७४ ॥ और नाचतेहुए ब्रह्मादिकों को देखकर कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण स्वामीजी ने प्रसन्न

होकर देवताओं को हाथ से मना किया ॥ ७५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ब्रह्मन् ! हे शिव ! हे सुरेश्वरि, भवानि ! हे सब तीर्थ, क्षेत्र, नारद, सनकादिको ! ॥ ७६ ॥ मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं तुमलोगों का क्या मनोरथ है प्रह्लादजी बोले कि इस प्रकार श्रीकृष्णजी के वचन को सुनकर सब देवता हर्षसंयुत हुए ॥ ७७ ॥ व श्रीकृष्णजी को देखकर बडी भक्ति से प्रसन्न होतेहुए उन्होंने कहा ॥ ७८ ॥ श्रीब्रह्मा व शिवादिक बोले कि हे विभो ! आपकी दया से हमलोगों ने यथेच्छ वर को पाया और तुम्हारे चरणकमल में हमलोगों की अविनाशिनी भक्ति होवै ॥ ७९ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि वैसेही प्रसन्न होतेहुए तीर्थादिक व ब्रह्मा और शिवादिकों ने श्रीकृष्ण

तःप्राहसुरान्प्रभुः ॥ ७५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भोभोब्रह्मन्महेशान भवानि च सुरेश्वरि ॥ क्षेत्राणिसर्वतीर्थानि नारद सनकादयः ॥ ७६ ॥ प्रीतोहंभवतांसम्यगीप्सितंवोस्तिकिञ्चन ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ इत्थंकृष्णवचःश्रुत्वा देवाःसर्वेमुदान्विताः ॥ ७७ ॥ ऊचुस्तेपरयाभक्त्या कृष्णंदृष्ट्वाप्रहर्षिताः ॥ ७८ ॥ श्रीब्रह्ममहेश्वरादय ऊचुः ॥ प्राप्तःकामवरोस्माभिर्भवतःकृपयाविभो ॥ भूयात्तवपदाम्भोजे भक्तिर्नोह्यनपायिनी ॥७९॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ तथैव पूजयामासू रुक्मिणीं कृष्णवल्लभाम् ॥८०॥ ब्रह्मेशानादयःसर्वे तीर्थाद्याश्च प्रहर्षिताः ॥ अथ ब्रह्ममहेशानौ सर्वेषांशृण्वताम्मुदा ॥ ८१ ॥ श्रद्धयापरयाविष्टौ द्वारकाम्प्रत्यवोचतुः ॥ त्वंदेविसर्वतीर्थानां क्षेत्राणामुत्तमोत्तमा ॥ ८२ ॥ पर्वतानांयथामेरुःसिन्धूनांक्षीरसागरः ॥ प्राणो यथा शरीराणामिन्द्रियाणां च वै मनः ॥८३॥ तेजस्विनांयथावह्निस्सत्त्वानांमनुजोयथा ॥ चन्द्रोग्रहर्क्षताराणामिन्द्रियाणां च वै मनः ॥ ८४ ॥ एवंप्रकाशपुञ्जानां यथासूर्यःप्रकाशते ॥ तथा नःसर्वदेवानां महाविष्णुरयम्म

की प्यारी रुक्मिणीजी को पूजा इसके अनन्तर सबों के सुनतेहुए बड़ी श्रद्धा से संयुत ब्रह्मा व शिवजी ने हर्ष से द्वारकाजी से कहा कि हे देवि ! सब तीर्थों व क्षेत्रों के मध्य में तुम उत्तमोत्तम हो ॥ ८० । ८१ । ८२ ॥ जैसे पर्वतों के मध्य में सुमेरु और समुद्रों के मध्य में जैसे क्षीरसागर व शरीरों के मध्य में जैसे प्राण और इन्द्रियों के मध्य में जैसे मन श्रेष्ठ है ॥ ८३ ॥ व तेजवानों के मध्य में जैसे अग्नि और प्राणियों के मध्य में जैसे मनुष्य तथा ग्रह, नक्षत्र व ताराओं के मध्य में जैसे चन्द्रमा व इन्द्रियों के मध्य में जैसे मन श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥ ऐसेही जैसे प्रकाशपुंजों के मध्य में सूर्यनारायण विराजते हैं वैसेही हम सब देवताओं के मध्य में ये महान्

महाविष्णुजी हैं ॥ ८५ ॥ और वैसेही त्रिलोक में वर्तमान इन सब तीर्थों व सब क्षेत्रों के मध्य में उत्तमोत्तमा ॥ ८६ ॥ श्रीमती व पुण्यवती द्वारकापुरी पृथ्वी में सूर्य नारायण की नाई प्रकाशित है और जैसे हम सब देवताओं के ये विष्णु भगवान् पूजने योग्य हैं ॥ ८७ ॥ वैसेही यह द्वारका सदैव सबों के प्रणाम करने योग्य है श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे सत्तमो ! सब तीर्थों व क्षेत्रादिकों से यह कहकर ॥ ८८ ॥ स्वामिता में सुरेश्वर ब्रह्मा व शिवजीने द्वारका को अभिषेक किया और ब्रह्मा, शिव, देवता, प्रजापति व निर्मल ऋषियों ने ॥ ८९ ॥ उस समय तीर्थों व क्षेत्रराजों की स्वामिता में सब तीर्थों से उपजेहुए जलों से प्रसन्न होकर द्वारका का अभिषेक किया ॥ ९० ॥

हान् ॥ ८५ ॥ तथैव सर्वतीर्थानां क्षेत्राणां चैव सर्वशः ॥ त्रैलोक्येवर्त्तमानानामेतेषामुत्तमोत्तमा ॥ ८६ ॥ श्रीमद्द्वारवती पुण्या सूर्यवद्भासतेभुवि ॥ यथा नःसर्वदेवानां पूज्योयम्भगवान्हरिः ॥ ८७ ॥ तथा चैव हि सर्वेषां वन्द्येयंद्वारकासदा ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ इत्युक्त्वासर्वतीर्थानां क्षेत्रादीनाञ्च सत्तमाः ॥ ८८ ॥ आधिपत्येसुरेशानौ द्वारकामभिषेचतुः ॥ ब्रह्मेशानौ तथा देवाः प्रजेशाऋषयोमलाः ॥ ८९ ॥ तीर्थानांक्षेत्रराजानामाधिपत्येतदाजलैः ॥ चक्रुर्महाभिषेकन्तु द्वारकायाःप्रहर्षिताः ॥ ९० ॥ वादयन्तोविचित्राणि वादित्राणिमहोत्सवैः ॥ गव्यैःपञ्चामृतैस्तोयैः सर्वतीर्थसमुद्भवैः ॥ ९१ ॥ अथासीन्महदाश्चर्यं द्वारकायांद्विजोत्तमाः ॥ पुण्यैश्चाकाशगङ्गाया दिग्गजानांकरोद्धृतैः ॥ ९२ ॥ अथ वासांसिदिव्यानि दत्त्वासूक्ष्मादिकानि च ॥ अभ्यर्च्यचन्दनैर्दिव्यैर्दिव्याभरणभूषिताम् ॥ ९३ ॥ पूजयांचक्रिरेदिव्यैर्ऋतुकालसमुद्भवैः ॥ अथासीन्महदाश्चर्यं ब्रह्मादीनांमुदावहम् ॥ ९४ ॥ तदा यातामहादिव्याः पुरुषाःपार्षदाहरेः ॥ विश्वाकां

और विचित्र बाजनों को बजातेहुए उन्होंने बड़े उत्साहों से गव्यों पञ्चामृतों से व सब तीर्थों से उपजेहुए जलों से अभिषेक किया ॥ ९१ ॥ इसके अनन्तर हे द्विजोत्तमो ! द्वारका में बड़ाभारी आश्चर्य हुआ कि दिग्गजों के शुण्डों से ऊपर उठायेहुए पवित्र जलों से नहवाकर ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर रेशमी आदिक दिव्य वस्त्रों को देकर दिव्य चन्दनों से पूजकर दिव्य आभूषणों से भूषित द्वारकाजी को ॥ ९३ ॥ ऋतुओं व समयों में उपजेहुए दिव्य पुष्पों से पूजन किया इसके उपरान्त ब्रह्मादिकों को आनन्ददायक बड़ाभारी आश्चर्य हुआ ॥ ९४ ॥ कि उस समय दशो दिशाओं को प्रकाशित करतेहुए विश्वेदेवता, सूर्य व सनकादिक विष्णुजी के महा-

दिव्य पार्षद पुरुष आये ॥ ९५ ॥ और जय शब्द व नमस्कार के शब्द को कहतेहुए वे पुष्पों को बरसानेवाले प्रसन्न पार्षद गाने, बजाने के शब्द से नाचनेलगे ॥ ९६ ॥ और वहां श्याम वसन के नाईं प्रभावान् महाभागवत ऋषियों को देखकर ब्रह्मा, शिव, नारद व सनकादि कों ने प्रणाम किया ॥ ९७ ॥ और बहुत प्रसन्न उन्हों ने भी उस समय हर्ष समेत उनको प्रणाम किया और आलिङ्गनादिकों से प्रसन्न उन्होंने परस्पर प्रणाम किया ॥ ९८ ॥ और ऋषियों व देवताओं ने भी विष्णुजी के पार्षदों को प्रणाम किया और जेठे भाई (बलभद्र) समेत द्वारकानाथ श्रीमान् कृष्णजी को प्रणाम कर ॥ ९९ ॥ व श्रद्धा और भक्ति से निश्रेयस वन से उपजेहुए अनेक भांति के दिव्य पुष्पों से

स्सनकाद्याश्च द्योतयन्तोदिशोदश ॥ ९५ ॥ जयशब्दंनमःशब्दं वदन्तःपुष्पवर्षिणः ॥ गीतवादित्रघोषेण नृत्यमानाः प्रहर्षिताः ॥ ९६ ॥ श्यामवासप्रभांस्तत्र दृष्ट्वाब्रह्ममहेश्वरौ ॥ नारदःसनकाद्याश्च महाभागवतानृषीन् ॥९७॥ तेपितैरेव संहृष्टाः सहर्षनमितास्तदा ॥ ववन्दिरेपि तेन्योन्यं प्रहृष्टालिङ्गनादिभिः ॥ ९८ ॥ ऋषयोपि च देवाश्च प्रणेमुर्विष्णुपार्षदान् ॥ नत्वापि द्वारकानाथं श्रीमत्कृष्णं च साग्रजम् ॥ ९९ ॥ सम्पूज्यश्रद्धयाभक्त्या निश्रेयसवनोद्भवैः ॥ कुसुमैर्विविधैर्दिव्यैस्तुलस्याराजचम्पकैः ॥ १०० ॥ तदुत्पन्नैःफलैर्दिव्यैर्धूपनीराजनैःप्रभुम् ॥ विविधान्नैश्च ताम्बूलैर्नत्वाकृष्णमतोषयत् ॥ १ ॥ श्रीकृष्णानुगताःसर्वे द्वारकायाःप्रहर्षिताः ॥ पूजान्तेस्तवनंचक्रुर्निश्रेयसवनोद्भवैः ॥ २ ॥ दिव्यगन्धैः फलैःपुष्पैस्तुलस्याकृष्णप्रीतये ॥ एवंसम्पूजितातैस्तु ब्रह्मेशानादिभिःसुरैः ॥ ३ ॥ ऋषिभिःक्षेत्रतीर्थैश्च द्वारकाकृष्णपार्षदैः ॥ महासिंहासनस्थासा राजतेविष्णुवल्लभा ॥ ४ ॥ ततस्तेकुसुमैर्दिव्यैर्महानीराजनैस्तथा ॥ नैवेद्यैर्विविधै

व तुलसी और राजचम्पकों से पूजकर ॥ १०० ॥ और उससे उत्पन्न दिव्य फलों व धूप तथा नीराजनों से स्वामी श्रीकृष्णजी को पूजकर व विविध अन्नों तथा ताम्बूलों से श्रीकृष्णजी को पूज व प्रणाम कर प्रसन्न किया ॥ १ ॥ और प्रसन्न होतेहुए रुव श्रीकृष्णजी के पार्षदों ने निश्रेयस वन से उपजेहुए पुष्पों से पूजन के अन्त में स्तुति किया ॥ २ ॥ व श्रीकृष्णजी की प्रीतिके लिये दिव्य गन्धों, फलों व पुष्पों से और तुलसी से इस प्रकार उन ब्रह्मा व शिवादिक देवताओं ने द्वारका का पूजन किया ॥ ३ ॥ और ऋषियों व क्षेत्रों तथा तीर्थों से और श्रीकृष्णजी के पार्षदों से पूजीहुई महासिंहासन पै स्थित वह विष्णु की प्यारी द्वारका शोभितथी ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन्होंने दिव्य

पुष्पों व महानीराजनों से और अनेकभांति के दिव्य नैवेद्यों व ताम्बूलों से पूजन किया ॥ ५ ॥ व नीराजन में परायण उन्होंने पुष्पाञ्जलियों से कहा कि क्षेत्रतीर्थादिराजों की तुम महारानी व ईश्वरी हो ॥ ६ ॥ ब्रह्मा, शिव, देवता, ऋषि व विष्णुजी के पार्षद ऐसा कहतेहुए उन सबोंने द्वारका को प्रणाम किया ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसी अवसर में बड़े भारी देवदुन्दुभि शब्द सुनपड़े और पुष्पों की वृष्टिया हुई ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त हे ऋषिश्रेष्ठो ! बड़ाभारी आश्चर्य हुआ उसको सुनिये कि कुरुक्षेत्र व प्रयाग बायें व दाहिने हाथोंमें ॥ ९ ॥ उस समय द्वारका के सुन्दर सफ़ेद छत्र को धारण किया और उत्तम चँवर व व्यजन को बड़े आनन्द से वीजन किया ॥१०॥ और बड़ी भक्ति से

दिव्यैस्ताम्बूलैःसमपूजयन् ॥ ५ ॥ पुष्पाञ्जलिभिरूचुस्ते नीराजनपरायणाः ॥ क्षेत्रतीर्थादिराजानां महाराज्ञीत्वमीश्वरी ॥ ६ ॥ इतिसर्ववदन्तस्ते द्वारकामभिवन्दिरे ॥ ब्रह्मामहेश्वरोदेवा ऋषयोविष्णुपार्षदाः ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नन्तरेविप्रा देवदुन्दुभिनिस्वनाः ॥ अश्रूयन्तमहाशब्दा अभवन्पुष्पवृष्टयः ॥ ८ ॥ अथासीन्महदाश्चर्यं शृण्वन्तु ऋषिपुङ्गवाः ॥ कुरुक्षेत्रम्प्रयागश्च सव्यदक्षिणहस्तयोः ॥ ९ ॥ श्वेतच्छत्रंमनोहारि द्वारकायास्तदादधे ॥ चामरव्यजने शुभ्रे वीजिरेपरयामुदा ॥ १० ॥ अयोध्यापरयाभक्त्या वाराणसिजयस्वनैः ॥ स्तुवन्त्यस्यास्तथान्यानि सर्वक्षेत्राणिसर्वशः ॥ ११ ॥ तीर्थानिसरितस्सर्वा द्वारकायाःपदाम्बुजम् ॥ पश्यन्तःपरमानन्दं लेभिरेदेवमानवाः ॥ १२ ॥ अथाहुः पार्षदाविष्णोरन्यान्येतानिसर्वशः ॥ यैर्दृष्टाद्वारकापुण्या सर्वलोकैकमण्डना ॥ १३ ॥ नवेदैर्नैवयज्ञैश्च तपोयोगसमाधिभिः ॥ द्वारकागमनेनृणां मतिःस्यात्कृपयाहरेः ॥ १४ ॥ बहुयज्ञतपोयोगैः सम्यगाराधितोहरिः ॥ प्रसा

अयोध्या व काशी जयशब्दोंसे स्तुति करनेलगी और अन्य सब क्षेत्र इस द्वारकाकी स्तुति करनेलगे ॥ ११ ॥ व द्वारकाजीके चरणकमलको देखते हुए देवता, मनुष्य, तीर्थ व सब नदियोंने बड़े आनन्दको पाया ॥१२॥ इसके उपरान्त विष्णुजीके पार्षदोंने व इन अन्य सब तीर्थोंने कहा कि सब लोकोंकी एकही मण्डन (आभूषण) रूपी द्वारकाको जिन्होंने देखाहै ॥ १३ ॥ द्वारकाको जानेमें उन मनुष्योंकी बुद्धि विष्णुजीकी दयासे होती है और वेदों, यज्ञों व तपस्या, योग तथा समाधियोंसे नहीं होती है ॥१४॥ क्योंकि

बहुत यज्ञों व तपस्या के योगों से भलीभांति आराधन कियेहुए विष्णुजी द्वारका को जाने के लिये प्रसन्नता करते हैं ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांश्रीद्वारकाभिषेकोनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कह्यो द्वारका का विभव यथा उमापति नाथ । पैंतिसवें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि उस समय ब्रह्मा व शिवजी पार्षदों के वचन को सुनकर ईश्वर ने द्वारकाजी के माहात्म्य को वर्णन किया ॥ १ ॥ कि हे क्षेत्रो, तीर्थो, नदियो, समुद्रादिको ! हे प्रयागादिको, सब तीर्थो ! हे मुक्तिदायक काशी

दंकुरुतेयस्माद्वारकागमनम्प्रति ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येश्रीद्वारकाभिषेकोनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ श्रुत्वाब्रह्ममहेशानौ पार्षदानांवचस्तदा ॥ द्वारकायाश्च माहात्म्यं वर्णयामास चेश्वरः ॥ १ ॥ भोभोःक्षेत्राणितीर्थानि सरितःसागरादयः ॥ प्रयागादीनिसर्वाणि काश्याद्यामुक्तिदायकाः ॥ २ ॥ सर्वेषांतीर्थराजानां महाराज्ञीत्वियंशुभा ॥ द्वारकासेवनीयां वै स्थीयतांस्वेच्छयाबहिः ॥ ३ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ महेशवचनंश्रुत्वा सर्वेषामुत्सवोभवत् ॥ ततःप्रदक्षिणंकृत्वा द्वारकाम्प्रणिपत्य च ॥ ४ ॥ आवासञ्चक्रिरे तत्र क्षेत्रतीर्थादिहर्षिताः ॥ भागीरथीप्रयागं च यमुना च सरस्वती ॥ ५ ॥ सरयूर्गण्डकीपुण्या गोमतीपूर्ववाहिनी ॥ अन्याश्च सरितःसर्वाः सिन्धुशोणौनदौ तथा ॥ ६ ॥ स्थिताउत्तरदिग्भागे पञ्चाशत्कोटिभिस्सह ॥ लभन्तःकृष्णसेवां वै पश्यन्तोद्वारकांमुहुः ॥ ७ ॥

आदिको ! ॥ २ ॥ सब तीर्थराजों के मध्य में महारानी यह उत्तम द्वारकापुरी सेवने योग्य है तुमलोग अपनी इच्छा से बाहर स्थित होवो ॥ ३ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि शिवजी का वचन सुनकर सबों को आनन्द हुआ तदनन्तर प्रदक्षिणा कर व द्वारका को प्रणाम कर ॥ ४ ॥ प्रसन्न होतेहुए क्षेत्रों व तीर्थादिकों ने वहां निवास किया भागीरथी, प्रयाग, यमुना, सरस्वती ॥ ५ ॥ सरयू, गण्डकी व पूर्ववाहिनी पवित्र गोमती व अन्य सब नदियां और सिन्धु व शोण नद ॥ ६ ॥ पचास करोड़ तीर्थों समेत उत्तर दिशा के भाग में स्थितहुए श्रीकृष्णजी की सेवा को पातेहुए वे द्वारका को बार २ देखते थे ॥ ७ ॥

वैसेही पवित्र मन्दाकिनी नदी व जो भागीरथी नदी है और महानदी, नर्मदा, शिप्रा व प्राची सरस्वती ॥८॥ व चक्षुर्भद्रा और पापनाशिनी अन्य शीतानदी साठ करोड़ तीर्थों समेत पूर्वदिशा के भाग में वर्तमान है ॥ ६ ॥ और पयोष्णी, तापिनी व पवित्र तथा पापनाशिनी अन्य नदी निन्नानबे करोड़ अपने तीर्थों समेत भक्ति से ॥१०॥ द्वारका की सेवा में उत्कण्ठावाली नदियां दक्षिणदिशा के भाग में स्थितहुई और गोमती के किनारे व जल में तथा श्रीकृष्णजी के समीप क्रीड़ा करती हैं ॥११॥ और सातों द्वीपों में जो अन्य श्रेष्ठ नदियां हैं वे और सातों समुद्र पश्चिम दिशा में स्थित हुए ॥ १२ ॥ और वे चक्रतीर्थ में तथा सौ करोड़ तीर्थों समेत तीर्थ में क्रीड़ा करते हैं और सदैव

तथा मन्दाकिनीपुण्या नदीभागीरथी तु या ॥ महानदीनर्मदा च शिप्राप्राचीसरस्वती ॥८॥ चक्षुर्भद्रा तथा शीता तथा न्यापापनाशिनी ॥ वर्त्ततेपूर्वदिग्भागे तीर्थैःषष्टिककोटिभिः ॥ ६ ॥ पयोष्णीतापिनीपुण्या अन्या चैवाघनाशिनी ॥ स्वतीर्थैःसहिताभक्त्या नवनवतिकोटिभिः ॥ १० ॥ स्थितादक्षिणदिग्भागे द्वारकासेवनोत्सुकाः ॥ क्रीडन्तिगोमती तीरे नीरे वा कृष्णसन्निधौ ॥११॥ सप्तद्वीपे च याःसन्ति तथान्या वै सरिद्वराः ॥ सागराश्च तथा सप्त पश्चिमायांदिशिस्थिताः ॥ १२ ॥ क्रीडन्तिचक्रतीर्थे च तीर्थैश्च शतकोटिभिः ॥ पश्यन्ति च मुहुःकृष्णं पश्चिमाभिमुखंसदा ॥ १३ ॥ विदिशासु च सर्वासु तीर्थसंख्या न विद्यते ॥ पुष्करादीनितीर्थानि विशालंविरजंगया ॥ १४ ॥ शतैश्च कोटिभिस्तीर्थैर्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ वर्तन्तेकृष्णसेवायां सोत्सवानिद्विजोत्तमाः ॥ १५ ॥ वाराणसी च हीशाने अवन्तीपूर्वदिक्स्थिता ॥ आग्नेय्यांवर्ततेकाञ्ची दक्षिणेमथुरास्थिता ॥ १६ ॥ नैर्ऋत्यान्तुस्थितामाया अयोध्यापश्चिमेस्थिता ॥ वायव्याञ्च कुरुक्षेत्रं

पश्चिमाभिमुख श्रीकृष्णजी को बार २ देखते हैं ॥१३॥ और सब विदिशाओं में तीर्थों की संख्या नहीं विद्यमान है और पुष्करादिक तीर्थ व विशाल, विरज, गया ॥१४॥ हे द्विजोत्तमो ! सौकरोड़ तीर्थों समेत आनन्द सहित तीर्थ श्रीकृष्णजी की सेवा में गोमती व समुद्र के संगम में वर्तमान हैं ॥१५॥ और ईशान में काशी व अवन्ती पूर्वदिशा में स्थित है और आग्नेय में कांची वर्तमान है व दक्षिण में मथुरा स्थित है ॥१६॥ और नैर्ऋत्य में माया स्थित है व पश्चिम में अयोध्या स्थित है और वायव्य में

कुरुक्षेत्र व उत्तर में हरिक्षेत्र है ॥ १७ ॥ व ईशान में कुरुक्षेत्र, पूर्व में पुरुषोत्तम, आग्नेय में भृगुक्षेत्र और दक्षिण में प्रभास स्थित है ॥ १८ ॥ व नैर्ऋत्य दिशा के भाग में श्रीरंग तथा पश्चिम में लोहदण्ड स्थित है और वायव्य में नारसिंह व उत्तर में कोकामुख है ॥ १९ ॥ और कामाक्षी व रेणुकादिक तथा सब शाक्रेयादिक और क्षेत्र राजादिक सब क्षेत्र यथायोग्य स्थानों में बसते हैं ॥ २० ॥ और धेनुक, नैमिषारण्य, दण्डक, सैन्धव, दशारण्य, अर्बुद व नरनारायणाश्रम ॥ २१ ॥ ये द्वारका के सब ओर यथायोग्य दिशाओं में बसते हैं व द्वारका की सेवा में उत्कण्ठित सुमेरु आदिक पर्वत पूर्व में बसते हैं ॥ २२ ॥ और रामगिरि आदिक व महेन्द्र तथा ऋषभादिक

हरिक्षेत्रंतथोत्तरे ॥ १७ ॥ ईशाने च कुरुक्षेत्रं पूर्वस्यांपुरुषोत्तमम् ॥ आग्नेय्यां च भृगुक्षेत्रं प्रभासंदक्षिणेस्थितम् ॥ १८ ॥ श्रीरङ्गंराक्षसेभागे लोहदण्डन्तु पश्चिमे ॥ नारसिंहन्तु वायव्ये कोकामुखमथोत्तरे ॥ १९ ॥ कामाक्षीरेणुकादीनि शाक्रेयादीनि कृत्स्नशः ॥ क्षेत्रराजादिसर्वाणि यथास्थानेवसन्ति हि ॥ २० ॥ धेनुकंनैमिषारण्यं दण्डकंसैन्धवं तथा ॥ दशारण्यंचार्बुदं च नरनारायणाश्रमम् ॥ २१ ॥ यथादिशंवसन्तिस्म द्वारकायाःसमन्ततः ॥ मेर्वादिपर्वताःपूर्वे द्वारकासेवनोत्सुकाः ॥ २२ ॥ दक्षिणेरामगिर्याद्या महेन्द्रऋषभादयः ॥ अन्ये च पुण्यशैलाश्च सलोकालोकमानसाः ॥ २३ ॥ द्वारकाम्परितःसन्ति पर्युपासन्ततेन्वहम् ॥ पश्यन्तिकृष्णवक्त्राब्जं परमानन्दनिर्वृताः ॥ २४ ॥ द्वारकाभिमुखैरेतैः परितःसुरपङ्क्तिभिः ॥ विराजतेयथावत्तु दलैःसुकर्णिकाइव ॥ २५ ॥ तीर्थादिपर्वताश्चैव तथा सिंहासनस्थिता ॥ द्वारकाप्रभयाविष्णूराजतेपार्षदैर्यथा ॥ २६ ॥ तीर्थक्षेत्रादिभिस्तत्र परितःपरिपालिता ॥ प्रजेश्वरैर्द्वितीयंतु तृतीयंदेवनायकैः ॥ २७ ॥ चतुर्थमृषि

दक्षिण में बसते हैं और लोकालोक व मानसाचल समेत अन्य पवित्र पर्वत ॥ २३ ॥ द्वारका के सब ओर हैं और वे प्रतिदिन द्वारका की उपासना करते हैं व बड़े आनन्द में मग्न वे श्रीकृष्णजी के मुख कमल को देखते हैं ॥ २४ ॥ सब ओर द्वारका के सामने इन तीर्थों व देवपंक्तियों से द्वारका यथायोग्य शोभित हुई जैसे कि पत्तों से कमल की गुजरी शोभित होवै ॥ २५ ॥ और तीर्थादिक पर्वत व सिंहासन पै स्थित द्वारका प्रभा से वैसेही शोभित हुई जैसे कि पार्षदों से विष्णुजी शोभित होते हैं ॥ २६ ॥ वहां क्षेत्रों व तीर्थादिकों से वह द्वारका सब ओर पालित है और दूसरा आवरण प्रजेश्वरों से व तीसरा सुरनायकों से है ॥ २७ ॥ और चौथा आवरण ऋषि

सिद्धसमूहों से है व पांचवां आवरण गङ्गादिकों का है व छठा आवरण प्रयाग और पुष्करादिक तीर्थों से है ॥ २८ ॥ और काशी आदिक सातवीं आवृत्ति कहीगई है व विमल, विरज और गया आठवां आवरण है व हे द्विजोत्तमो ! मुख्य क्षेत्रों व वनों तथा आश्रमादिकों और समुद्रों से नवां आवरण है और सुमेरु आदिक उत्तम पर्वतों से दशवां आवरण कहागया है ॥ २९ । ३० ॥ इस प्रकार बड़े सिंहासन पै स्थित वह दिव्य द्वारका उत्तम व पुष्ट दश आवरणों से बाहर घिरी है ॥ ३१ ॥ जैसे सातों द्वीपों व समुद्रों से सुवर्ण का मेरुगिरि शोभित है वैसेही इन आवरणों से द्वारका सदैव शोभित है ॥ ३२ ॥ दश आवरणों से संयुत द्वारका को देवता भी

सिद्धौघैर्गङ्गादीनां च पञ्चमम् ॥ षष्ठं त्वावरणंतीर्थैः प्रयागैःपुष्करादिभिः ॥ २८ ॥ काश्याद्याःसप्तमीप्रोक्ता विमलं विरजंगया ॥ अष्टमंक्षेत्रमुख्याद्यैर्नवमावरणं तथा ॥ २९ ॥ अरण्यैश्चाश्रमाद्यैश्च सागरैश्च द्विजोत्तमाः ॥ दशमावरणम्प्रोक्तं मेर्वाद्यैःपर्वतोत्तमैः ॥ ३० ॥ एवंसाद्वारकादिव्या महासिंहासनेस्थिता ॥ शुभैरावरणैःपुष्टैर्दशभिर्बहिरावृता ॥ ३१ ॥ सप्तद्वीपैःसमुद्रैश्च मेरुर्वै काञ्चनोयथा ॥ तथैवावरणैरेतैर्द्वारकाशोभतेसदा ॥ ३२ ॥ विबुधा न प्रपश्यन्ति दशावरणसंयुताम् ॥ मानवाश्चापि कृष्णस्य कृपयैव हि केचन ॥ ३३ ॥ एतैरावरणैर्युक्तां द्वारकांयेस्मरन्ति हि ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता यान्तिविष्णोःपरम्पदम् ॥ ३४ ॥ एवम्ब्रह्मादयोदेवा ऋषयःसनकादयः ॥ क्षेत्रतीर्थादियुक्ताश्च ह्यन्यैःपुण्यतमैर्युताः ॥ ३५ ॥ द्वारकायांस्थिताःसर्वे कृष्णसेवनलम्पटाः ॥ सेवयापरयाभक्त्या कन्याराशिस्थितेगुरौ ॥ ३६ ॥ नन्दन्ते द्वारकाङ्गत्वा दृष्ट्वातांतदनुज्ञया ॥ गोमतींचक्रतीर्थन्तु गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ३७ ॥ द्वारावतीमशक्तानि त्यक्तुंतीर्थानि

नहीं देखते हैं और कोई मनुष्य भी श्रीकृष्णजी की दयाही से देखते हैं ॥ ३३ ॥ व इन आवरणों से संयुत द्वारका को जो स्मरण करते हैं वे सब पापों से छूटकर विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ इस प्रकार क्षेत्रों व तीर्थादिकों से संयुत व अन्य अत्यन्त पवित्र स्थानों से संयुत ब्रह्मादिक देवता व सनकादिक ऋषि ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णजी की सेवा में लम्पट सब द्वारका में स्थित हैं और कन्याराशि में बृहस्पति के स्थित होने पर उत्तम भक्ति व सेवा से ॥ ३६ ॥ द्वारका को जाकर व उसको देखकर उसकी अनुज्ञा से प्रसन्न होते हैं और गोमती व समुद्र के संगम में गोमती, चक्रतीर्थ ॥ ३७ ॥ और द्वारकापुरी को छोड़ने के लिये सब तीर्थ असमर्थ होते हैं

वैसेही अन्य क्षेत्रादिक देखकर व बार २ प्रणाम कर ॥ ३८ ॥ वे तीर्थ अपने अंशों समेत गये और जो गङ्गादिक नदियां हैं वे सब गईं और फिर ये सब सिंहराशि में बृहस्पति स्थित होने पर ॥ ३९ ॥ द्वारका को देखने के लिये आते हैं व प्रसन्न होते हुए ब्रह्मादिक देवता आते हैं हे मुनीश्वरो ! इस प्रकार द्वारका का अद्भुत माहात्म्य ॥४०॥ सब तीर्थों व क्षेत्रों के महापातकों का नाशक है और सब वर्णों व आश्रमों तथा पतितों के ॥४१॥ महापातकों का हारक व महापुण्य को बढ़ानेवाला कहा गया है और अत्यन्त उग्र पापराशियों का दाहस्थान कहागया है ॥ ४२ ॥ विद्वानों ने द्वारका के गमन को ऐसा कहा है फिर सदैव द्वारका को क्या कहना है व हे

कृत्स्नशः ॥ क्षेत्रादीनितथान्यानि दृष्ट्वानत्वापुनःपुनः ॥ ३८ ॥ स्वांशकैश्च ययुस्तानि गङ्गाद्यायाश्च कृत्स्नशः ॥ पुनश्चैतानिसर्वाणि सिंहराशिस्थितेगुरौ ॥ ३९ ॥ आयान्तिद्वारकांद्रष्टुं ब्रह्माद्याश्चैव हर्षिताः ॥ एवमद्भुतमाहात्म्यं द्वारकायामुनीश्वराः ॥ ४० ॥ सर्वेषांतीर्थक्षेत्राणां महापापविदारकम् ॥ वर्णानामाश्रमाणां च पतितानां च सर्वशः ॥ ४१ ॥ महापापहरम्प्रोक्तं महापुण्यविवर्द्धनम् ॥ अत्युग्रपापराशीनां दाहस्थानम्प्रकीर्त्तितम् ॥ ४२ ॥ द्वारकागमनम्प्राहुः किम्पुनर्द्वारकांसदा ॥ विशेषेण तु विप्रेन्द्राः सिंहराशिस्थितेगुरौ ॥ ४३ ॥ ब्रह्मादयोपि दृश्यन्ते यत्र तीर्थादिसंयुताः ॥ तन्माहात्म्यम्महालोके वक्तुंकेनात्र शक्यते ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ माहात्म्यंद्वारकायास्तु मदीयंयस्यमन्दिरे ॥ लिखितंतिष्ठतेनित्यं स चाप्नोतिफलंशुभम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

द्विजेन्द्रो ! विशेषकर बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होने पर ॥ ४३ ॥ जहां तीर्थादिकों से संयुत ब्रह्मादिक देवता भी देखपड़ते हैं वह माहात्म्य इस महालोक में किससे कहा जासक्ता है ॥ ४४ ॥ श्रीभगवान् बोले कि द्वारका का मेरा माहात्म्य लिखा हुआ जिसके घर में सदैव स्थित होता है वह उत्तम फल को पाता है ॥ ४५ ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । वज्रलेप पातक यथा भयो यती कर नाश । छत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखराश ॥ प्रह्लादजी बोले कि फिर ये पवित्र तीर्थ सिंहराशि में बृहस्पति स्थित होने पर द्वारका को देखने के लिये आते हैं व प्रसन्न होतेहुए ब्रह्मादिक देवता आते हैं ॥ १ ॥ व हे मुनीश्वरो ! द्वारका का ऐसा अद्भुत माहात्म्य सब तीर्थों व क्षेत्रों के महापापों को जलानेवाला है ॥ २ ॥ और वर्णों व आश्रमों तथा विशेष कर पतितों के महापापों को हरनेवाला व महापुण्य को बढ़ानेवाला कहागया है ॥ ३ ॥ और द्वारका गमन अत्यन्त उग्र पापराशियों का दाहस्थान कहागया है फिर हे ब्राह्मणो! सदैव द्वारका को क्या कहना है ॥ ४ ॥ व हे द्विजेन्द्रो ! सिंहराशि में बृहस्पति

प्रह्लाद उवाच ॥ पुनश्चैतानिपुण्यानि सिंहराशिस्थितेगुरौ ॥ आयान्तिद्वारकांद्रष्टुं ब्रह्माद्याश्चैव हर्षिताः ॥ १ ॥ एवमद्भुतमाहात्म्यं द्वारकायामुनीश्वराः ॥ सर्वेषांतीर्थक्षेत्राणां महापापविदाहकम् ॥ २ ॥ वर्णानामाश्रमाणां च पतितानां विशेषतः ॥ महापापहरम्प्रोक्तं महापुण्यविवर्द्धनम् ॥ ३ ॥ अत्युग्रपापराशीनां दाहस्थानम्प्रकीर्तितम् ॥ द्वारकागमनं विप्राः किम्पुनर्द्वारकांसदा ॥ ४ ॥ विशेषेण तु विप्रेन्द्राः सिंहराशिस्थितेगुरौ ॥ ब्रह्मादयोपि दृश्यन्ते यत्रतीर्थादिसंयुताः ॥ ५ ॥ प्रतिवर्षम्प्रकुर्वन्ति द्वारकागमनञ्च ये ॥ तेषाम्पादरजःस्पृष्ट्वा दिवंयान्त्येवपापिनः ॥ ६ ॥ सत्यंसत्यम्पुनः सत्यं सत्यंममसुभाषितम् ॥ दृष्ट्वादृष्ट्वापुनःसर्वे पुनन्तेपापिनो हि यत् ॥ ७ ॥ गोमतीनीरपूतानां कृष्णवक्त्रावलोकिनाम् ॥ दर्शनात्पातकंतेषां यातिजन्मशतार्जितम् ॥ ८ ॥ इतिहासं च पूर्वोक्तं श्रूयतांमुनिपुङ्गवाः ॥ दिलीपवशिष्ठसंवादे परमाश्चर्यवर्द्धनम् ॥ ९ ॥ काश्यान्न वज्रलेपं हि पापंकृत्वाव्यपोहति ॥ वशिष्ठादितिश्रुत्वा हि दिलीपोवाक्यम

स्थित होनेपर जहां तीर्थादिकों से संयुत ब्रह्मादिक देवता भी विशेषकर देखपड़ते हैं ॥ ५ ॥ और प्रतिवर्ष जो द्वारका को गमन करते हैं उनके चरणों की धूलि को छूकर पापी भी मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं ॥ ६ ॥ और मेरा उत्तम वचन सत्य है सत्य है व फिर सत्य है क्योंकि देख देखकर फिर सब पापी पवित्र होजाते हैं ॥ ७ ॥ और गोमती के जल से पवित्र व श्रीकृष्णजी के मुख को देखनेवाले उन मनुष्यों के दर्शन से सौ जन्मों में इकट्ठा किया हुआ पाप नाश होजाता है ॥ ८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! दिलीप व वशिष्ठजी के संवाद में बड़े आश्चर्य को बढ़ानेवाले पूर्वोक्त इतिहास को सुनिये ॥ ९ ॥ कि काशी में वज्रलेप पापको करके मनुष्य नष्ट नहीं करता है वशिष्ठजी

से ऐसा सुनकर दिलीप ने वचन कहा ॥ १० ॥ दिलीप बोले कि काशी का भयंकर वज्रलेप जहां नाश होजाता है और सम्पूर्ण महापुण्य जहां मिलता है उस को कहिये ॥ ११ ॥ व हे द्विजोत्तम ! जिस क्षेत्र में पाप नहीं जमते हैं उस पवित्र क्षेत्र को कहिये यदि त्रिलोक में वर्तमान होवै ॥ १२ ॥ वशिष्ठजी बोले कि काशी में मोक्षधर्म को जाननेवाला कोई त्रिदण्डी यती दशाश्वमेध पै गायत्री को जपता हुआ सावधान बैठा था ॥ १३ ॥ वहा कोई गजगामिनी स्त्री आई और किनारे वस्त्रों को धरकर गङ्गा में परिश्रम की शान्ति के लिये ॥ १४ ॥ क्रीड़ा करतीहुई उस स्त्री को देखकर यती कामदेव से पूर्ण होगया व दैव से मार्ग से भ्रष्ट होकर पुंश्चली के

ब्रवीत् ॥१०॥ दिलीप उवाच॥वज्रलेपस्तु काश्या वै सुघोरोयत्र नश्यति॥कृत्स्नशोथ महापुण्यं प्राप्यते यत्र तद्वद॥११॥ न प्ररोहन्तिपापानि यस्मिन्क्षेत्रेद्विजोत्तम ॥ क्षेत्रन्तु कथ्यतांपुण्यं त्रैलोक्येयदिवर्त्तते ॥ १२॥ वशिष्ठ उवाच ॥ वाराणस्यांयतिःकश्चित्त्रिदण्डीमोक्षधर्मवित् ॥ जपन्दशाश्वमेधे च गायत्रीं च समाहितः ॥ १३॥ तत्र काचित्समायाता युवतीगजगामिनी ॥ तीरेसंस्थाप्यवासांसि गङ्गायांश्रमशान्तये ॥ १४ ॥ क्रीडन्तींवीक्ष्यतांनारीं यतिर्मदनपूरितः ॥ दैवाद्विभ्रंशितोमार्गात् स्वैरिण्यङ्गविमोहितः ॥ १५ ॥ मनसाकामयामास सापि तंतरुणम्प्रति ॥ तयोश्च सङ्गतिस्तत्र सञ्जातापापकर्मणा ॥ १६ ॥ तयायतिर्मोहितःसंस्तामेवानुससारसः ॥ तत्प्रीत्यैयाचयामास न्यायतोऽन्यायतोधनम्॥ १७॥ वाराणस्यां हि गृह्णाति चण्डालस्यप्रतिग्रहम्॥ स्नानहीनोऽशुचिःपापो रात्रौचौर्येणवर्त्तते ॥ १८॥ कस्मिन्कालेदुराचारो मांसार्थी तु वनङ्गतः ॥ ददर्शप्रमदांतत्र मातङ्गींमदिरेक्षणाम् ॥ १९॥ तस्यास्त्वतीवसौन्दर्य्यं दृष्ट्वापूर्व

अंगों से मोहित होगया ॥१५॥ और उस स्त्री ने भी मन से उस युवा यती की इच्छा किया और पाप के कर्म से वहां उन दोनों का संगम होगया ॥१६॥ और उस स्त्री से मोहित होता हुआ वह यती भी उसके पीछे चलागया और उसकी प्रसन्नता के लिये उसने न्याय व अन्याय से धन को मांगा ॥ १७ ॥ और वह काशी में चाण्डाल के दान को लेता था व स्नान से हीन तथा अशुद्ध व पापी वह रात्रि में चोरी से वर्तमान होता था ॥ १८ ॥ किसी समय मांस की इच्छावाला वह दुराचारी पुरुष वन को गया और वहां उसने मदिरेक्षणा चाण्डाली स्त्री को देखा ॥ १९ ॥ और उसकी बहुतही सुन्दरता को देखकर पहले के पाप से उस निर्जन वन में भी वह यती

चाण्डाली के संग से प्रसन्न हुआ ॥ २० ॥ और पाप से मोहित उसने उसके साथ अन्नपानादिक किया व पाप से लम्पट वह मदिरा के साथ पकायेहुए गोमांस को खाता था ॥ २१ ॥ व उसके घर में मृत्यु को पाकर पापात्मा व सर्वभक्षी वह काशी के प्रभाव से उस समय नरक को न प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ किन्तु वहा वज्रलेप व भयंकर पाप किया गया इस कारण शूद्री के संसर्ग के पाप से यह क्रूर योनियों में पैदाहुआ ॥ २३ ॥ याने भेड़िया, व्याघ्र, सिंह, कुत्ता, सियार व शूकर हुआ और पाप से दुःख को प्राप्त हुआ व कल्याण के कुछ अंश को न पातेहुए ॥ २४ ॥ इस प्रकार हज़ार जन्मों में उस पापकर्मी मनुष्य का चाण्डाली के संग से पाप दश हज़ार

णपाप्मना ॥ वनेपि निर्जनेतस्मिन्मातङ्गीसङ्गहर्षितः ॥ २० ॥ तयासहान्नपानादि कृतवान्पापमोहितः ॥ अश्नातिसुरया पक्वं गोमांसम्पापलम्पटः ॥ २१ ॥ तद्गेहेनिधनम्प्राप्य पापात्मासर्वभक्षकः ॥ वाराणसीप्रभावेण न प्राप्तोनरकं तदा ॥ २२ ॥ किन्तु तत्र कृतम्पापं वज्रलेपंसुदारुणम् ॥ शूद्रीसंसर्गपापेन जातोसौक्रूरयोनिषु ॥ २३ ॥ वृकोव्याघ्रोहरिः श्वा च शृगालः शूकरोभवत् ॥ दुष्कृताद्यातनाम्प्राप्तः शर्मलेशंनविन्दतः ॥ २४ ॥ एवंजन्मसहस्रैस्तु तस्यतत्पापकर्मणः ॥ मातङ्ग्याःसङ्गतःपापं नानश्यतयुगायुतैः ॥ २५ ॥ ततोसौराक्षसोजातः पापात्मासर्वभक्षकः ॥ प्राणिनोभक्षयन् सर्वान्सम्प्राप्तोविन्ध्यपर्वते ॥ २६ ॥ अस्मादनन्तरम्भाव्यं कृकलासत्वमद्भुतम् ॥ शूद्रीसङ्गमपापेन भाव्योथ कृमियोनिना ॥ २७ ॥ अनन्तदुःखदंघोरं पुनःपुनरयंयतिः ॥ मातङ्गीसङ्गपापानाम्फलमत्तिजुगुप्सितम् ॥ २८ ॥ युगायुतसहस्रैस्तु भोक्ष्यमाणंसुदारुणम् ॥ अथाश्चर्यमभूत्तत्र दिलीपश्रूयतांमहत् ॥ २९ ॥ अलौकिकं च विन्ध्याद्रौ सर्वेषांवि

जन्मों में भी नाश न हुआ ॥ २५ ॥ तदनन्तर यह पापात्मा व सर्वभक्षी मनुष्य राक्षस हुआ और सब प्राणिओं को खाता हुआ यह विन्ध्याचल पै प्राप्त हुआ ॥ २६ ॥ इसके अन्तर अद्भुत गिरगटपन हुआ और इसके बाद शूद्री के संगम के पाप से कीटयोनि में हुआ ॥ २७ ॥ और बार २ यह यती अनन्त दुःखदायक व भयंकर चाण्डाली के संगवाले पापों के फल को भोगता था ॥ २८ ॥ और हजारों युगों से वह भयंकर पाप भोगनेवाला था। इसके अनन्तर हे दिलीप! वहां बड़ाभारी आश्चर्य हुआ उसको सुनिये ॥ २९ ॥ जोकि अलौकिक व सबों को विस्मय देनेवाला आश्चर्य विन्ध्याचल पै हुआ है कि कोई मनुष्य द्वारका व सुन्दर श्रीकृष्णजी के मुख

को देखकर ॥ ३० ॥ गोमती के जल से पवित्र वह पथिक विन्ध्याचल पै प्राप्त हुआ और श्रीकृष्णजी की प्रसन्नता से यात्रा व निवास करके वह प्रसन्न हुआ ॥ ३१ ॥ और जातेहुए उसने उस मार्ग में उस राक्षस के घर को देखा व खाने के लिये आयेहुए क्रूरकर्मी राक्षस को देखकर ॥ ३२ ॥ जो प्रिय था वह मिलगया यह कहकर श्रीकृष्णजी का पथिक न चला और उसके दर्शनही से उस चाण्डाली के दर्शन से उपजाहुआ बड़ा भयंकर वज्रलेप पाप क्षणभर में भस्म होगया और करोड़ों सौ जन्मों में भी दुःख के भोग से राक्षस का वह पापरूपी पर्वत श्रीकृष्णजी के यात्री के दर्शन से जलगया ॥ ३३ । ३४ ॥ व उसीक्षण मेघों से मुक्त जैसे चन्द्रमा

स्मयावहम् ॥ दृष्ट्वाद्वारवतींकश्चित् कृष्णवक्त्रंसुशोभनम् ॥ ३० ॥ गोमतीनीरपूतस्तु विंध्यम्प्राप्तःसपान्थिकः ॥ यात्रांकृष्णप्रसादेन वासंकृत्वाप्रहर्षितः ॥ ३१ ॥ गच्छंस्तस्यगृहंतत्र ददर्शपथिरक्षसः ॥ राक्षसंक्रूरकर्माणं दृष्ट्वाभक्षितु मागतम् ॥ ३२ ॥ यदिष्टम्प्राप्तमित्युक्त्वा नाकम्पत्कृष्णपान्थिकः ॥ तस्यदर्शनमात्रेण वज्रलेपःसुदारुणः ॥ ३३ ॥ तस्याःसङ्गसमुद्भूतो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ जन्मकोटिशतेनापि दुःखभोगेनरक्षसः ॥ तत्पापपर्वतोदग्धः कृष्णपान्थिकदर्शनात् ॥ ३४ ॥ सद्योथ क्रूरपापेन घनैर्मुक्तोयथाशशी ॥ रेजेपुण्यप्रकाशेन कृष्णपान्थिकदर्शनात् ॥ ३५ ॥ ततोभिमुखमभ्येत्य द्वारकापथिकम्मुदा ॥ ननामश्रद्धयाभूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ३६ ॥ नत्वाथ विस्मितःप्राह अहोमे तवदर्शनात् ॥ गतोघोरतमोभावः प्राप्तासंसिद्धिरुत्तमा ॥ ३७ ॥ कस्मात्त्वमागतोभद्र प्रभावःकिन्तवेदृशः ॥ वज्रलेपस्तु काश्या वै दग्धस्तेदर्शनादनु ॥ ३८ ॥ श्रीवशिष्ठ उवाच ॥ इत्येवंराक्षसेनोक्तं श्रुत्वाकृष्णस्यपान्थिकः ॥ वि

होवै वैसेही क्रूर पाप से छूटाहुआ वह श्रीकृष्णजी के यात्री के दर्शन से पुण्यरूपी प्रकाश से शोभित हुआ ॥ ३५ ॥ तदनन्तर सामने आकर उसके दर्शन से बड़े आनन्दवाले उसने हर्ष से द्वारकायात्री को श्रद्धा से भूमि में प्रणाम किया ॥ ३६ ॥ व प्रणाम कर विस्मित होतेहुए उसने कहा कि आश्चर्य है जोकि तुम्हारे दर्शन से मेरी भयंकरी राक्षसता जाती रही और उत्तम सिद्धि मिलगई ॥ ३७ ॥ हे भद्र ! तुम कहां से आये हो और ऐसा तुम्हारा क्यों प्रभाव है क्योंकि तुम्हारे दर्शन से पीछे काशी का वज्रलेप पाप जलगया ॥ ३८ ॥ श्रीवशिष्ठजी बोले कि राक्षस से कहेहुए इसी वचन को सुनकर बड़े विस्मय को प्राप्त उससे प्रसन्नमनवाले श्रीकृष्णजी

के यात्रीने कहा ॥ ३९ ॥ यात्री बोला कि हे राक्षस ! श्रीमती द्वारकापुरी को देखकर मैं यहां आयाहूं और श्रीकृष्णजी के दर्शनसे हमारा वज्रलेप को हरनेवाला प्रभाव है ॥ ४० ॥ ऐसा कहाहुआ प्रसन्न व शुद्धचित्त तथा भक्ति से संयुत राक्षस उसको प्रणाम व प्रदक्षिणा कर उस समय द्वारका को प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ और गोमती में अपने शरीरको छोड़कर यह विष्णुजीके स्थान को प्राप्त हुआ और सुरेश्वरों तथा गन्धर्वों से पुष्पवृष्टियों समेत स्तुति किया गया ॥ ४२ ॥ इस प्रकार द्वारकाका बड़ाभारी प्रभाव कहागया कि जिसके यात्री के दर्शन से पाप नहीं जमते हैं ॥ ४३ ॥ फिर द्वारकामें पातक नहीं जमते हैं इसको क्या कहनाहै और पृथ्वीमें विष्णुजीने पापों का

स्मयम्परमापन्नं प्राहतंहर्षमानसः ॥ ३९ ॥ पान्थिक उवाच ॥ श्रीमद्द्वारावतींदृष्ट्वा ह्यागतोस्म्यत्र राक्षस ॥ वज्रलेपह रोस्माकम्प्रभावःकृष्णदर्शनात् ॥ ४० ॥ इत्युक्तोराक्षसोहृष्टः शुद्धात्माभक्तिसंयुतः ॥ नत्वातंदक्षिणं कृत्वा सम्प्राप्तो द्वारकांतदा ॥ ४१ ॥ गोमत्यांस्वतनुंत्यक्त्वा प्राप्तोसौवैष्णवम्पदम् ॥ स्तूयमानःसुरेशानैर्गन्धर्वैःपुष्पवृष्टिभिः ॥ ४२ ॥ इत्थम्महाप्रभावो हि द्वारकायाःप्रकीर्त्तितः ॥ न प्रोहन्तिपापानि यस्याःपान्थिकदर्शनात् ॥ ४३ ॥ द्वारकायान्तु किं वाच्यं न प्ररोहन्तिपातकम् ॥ दाहदेशोपि पापानां विष्णुनास्थापितोभुवि ॥ ४४ ॥ इत्येतत्कथितंराजन् यत्पृष्टोहंत्व यानघ ॥ सर्वक्षेत्रोत्तमंक्षेत्रं वज्रलेपविनाशनम् ॥ ४५ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ वशिष्ठेनोदितंश्रुत्वा दिलीपोहृष्टमानसः ॥ द्वारकाक्षेत्रराजत्वं ज्ञात्वासविस्मयंययौ ॥ ४६ ॥ ययौद्वारावतींद्रष्टुं देवदेवस्यसादरात् ॥ कृष्णंदृष्ट्वापरांसिद्धिं सम्प्राप्तोदेवमन्दिरे ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येवज्रलेपपापहरोनामषट्त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दाहस्थान भी स्थापित किया है ॥ ४४ ॥ हे अनघ, राजन् ! तुमने जो मुझ से पूंछा यह वज्रलेप का नाशक व सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र कहागया ॥ ४५ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि वशिष्ठजी से कहेहुए वचन को सुनकर वे प्रसन्नमनवाले दिलीपजी द्वारका की क्षेत्रराजता को जानकर विस्मय को प्राप्तहुए ॥ ४६ ॥ व देवदेव श्रीकृष्णजी की द्वारकापुरी को देखने के लिये आदर समेत गये व देवमन्दिर में श्रीकृष्णजी को देखकर उत्तम सिद्धि को प्राप्तहुए ॥ ४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांवज्रलेपपापहरोनामषट्त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दो॰ । अहै यथा द्वारका अरु कृष्णदेव परभाव । सैंतिसवें अध्याय में कथा हर्ष उपजाव ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि सब ओर दशयोजन क्षेत्र के माहात्म्यको आश्चर्य है जहां स्वर्ग में स्थित प्राणी सबही चतुर्भुजों को देखते हैं ॥ १ ॥ अहो क्षेत्र का माहात्म्य सब शास्त्रों में प्रसिद्ध है जिसमें जहां कहीं भी छुयेहुए भी पाषाण मुक्तिदायक होते हैं ॥ २ ॥ अहो क्षेत्र के माहात्म्य को निर्मल ऋषिलोग सुनें कि जहां के रहनेवाले मनुष्य श्रीकृष्णजी की सेवा में सदैव उत्कण्ठित हैं ॥ ३ ॥ व क्षेत्र के माहात्म्य को आश्चर्य है जोकि नित्य चतुर्भुजजी को देखकर सब द्वारकावासी देवताओं को प्रणाम करते हैं ॥ ४ ॥ आश्चर्य है कि क्षेत्र का माहात्म्य तीनों लोकों के

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं समन्ताद्दशयोजनम् ॥ दिविस्था यत्र पश्यन्ति सर्वानेव चतुर्भुजान् ॥ १ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं सर्वशास्त्रेषुविश्रुतम् ॥ यत्र स्पृष्टाश्च पाषाणा यत्र कापि विमुक्तिदाः ॥ २ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं शृण्वन्तुऋषयोमलाः ॥ मुक्तिंनेच्छन्तियत्रत्याः कृष्णसेवासदोत्सवाः ॥ ३ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं दृष्ट्वानित्यं चतुर्भुजम् ॥ द्वारकावासिनःसर्वे नमस्यन्तिदिवौकसः ॥ ४ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं त्रैलोक्योपरिराजते ॥ यत्प्राप्य ऋषयोदेवा वर्त्तन्तेस्वर्गसंस्थिताः ॥ ५ ॥ सर्वदा चैव सर्वज्ञा द्वारकाममवर्णने ॥ ब्रह्मेशाद्यैश्च वन्द्याङ्घ्रिः कृष्णो यत्र सदास्थितः ॥ ६ ॥ अपि कीटपतङ्गाद्याः पशवोथ सरीसृपाः ॥ विमुक्ताःपापिनःसर्वे द्वारकायाःप्रभावतः ॥ ७ ॥ किं पुनर्मानवानित्यं द्वारकायांवसन्तिये ॥ सोत्सवादेवकृष्णस्य सेवायांविजितेन्द्रियाः ॥ ८ ॥ यागतिःसर्वजन्तूनां द्वारकापुरवासिनाम् ॥ सागतिर्दुर्लभालोके मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ९ ॥ क्षेत्रेभ्यःसर्वतीर्थेभ्यो द्वारकाह्युत्तमास्मृता ॥ सर्वेषु

ऊपर विराजता है जहां कि प्राप्तहोकर ऋषि व देवता स्वर्ग में स्थित होते हैं ॥ ५ ॥ और मेरे वर्णन में द्वारका सब कुछ देनेवाली व सर्वज्ञ है जहां कि ब्रह्मा व शिवादिकों से प्रणाम करने योग्य चरणवाले श्रीकृष्णजी सदैव स्थित रहते हैं ॥ ६ ॥ और द्वारका के प्रभाव से कीट, पतंगादिक, पशु व सांप और सब पापी मुक्त होजाते हैं ॥ ७ ॥ फिर उन मनुष्यों को क्या कहना है इन्द्रियों को जीतेहुए जोकि सदैव द्वारका में बसते हैं व श्रीकृष्णदेवजी की सेवा में आनन्द सहित होते हैं ॥ ८ ॥ और द्वारका नगर में बसनेवाले सब प्राणियोंकी जो गति होती है वह गति संसार में ऊर्ध्वरेता मुनियोंको दुर्लभ है ॥ ९ ॥ और सब तीर्थों व क्षेत्रों से द्वारका उत्तम कही

गई है क्योंकि सब तीर्थों व क्षेत्रों में जो करोड़ों वर्षों से फल होता है ॥ १० ॥ वह फल द्वारका में प्रतिदिन आधे निमेष से होता है और द्वारका में जो कियाहुआ हवन, जप, दान व तप होता है ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणो ! वह सब श्रीकृष्णजी के समीप कोटिगुना व अनन्त होता है और द्वारका में स्थित चतुर्भुज व पार्षदरूपी सब स्त्री व पुरुष सदैव श्रीकृष्णजी को देखकर देखने योग्य हैं व जो मनुष्य उत्तम पार्षदरूपी सब द्वारकावासियों को देखता है ॥ १२ । १३ ॥ हे द्विजोत्तमो ! वह सत्य सत्य श्रीकृष्णजी को बहुत प्रिय होता है मेरा कहा हुआ सत्य, सत्य व फिर सत्य है भूंठ नहीं है ॥ १४ ॥ कि द्वारकावासी सब स्त्री व पुरुष चतुर्भुज हैं और जो

तीर्थक्षेत्रेषु यत्फलंवर्षकोटिभिः ॥ १० ॥ तत्फलंनिमिषार्द्धेन द्वारकायांदिनेदिने ॥ द्वारकायांहुतंजप्तं दत्तंयच्चतपः कृतम् ॥ ११ ॥ सर्वकोटिगुणंविप्रा अनन्तंकृष्णसन्निधौ ॥ द्वारकायांस्थिताःसर्वे नरनार्यश्चतुर्भुजाः ॥१२॥ श्रीकृष्णस्य सदादृष्ट्वा द्रष्टव्याःपार्षदोत्तमाः ॥ द्वारकावासिनःसर्वान् यःपश्येत्पार्षदोत्तमान् ॥ १३ ॥ सत्यंसत्यंद्विजश्रेष्ठाः कृष्णस्यातिप्रियोभवेत् ॥ सत्यंसत्यम्पुनःसत्यं नानृतम्ममभाषितम् ॥ १४ ॥ द्वारकावासिनःसर्वे नरानार्यश्चतुर्भुजाः ॥ द्वारकावासिनःसर्वान् दोषबुद्धयाविपश्यति ॥ १५ ॥ सत्यंसत्यंद्विजश्रेष्ठाः कृष्णस्तेनविदूषितः ॥ द्वारकावासिनोयेवै निन्दन्तिपुरुषोत्तमान् ॥ १६ ॥ कृष्णकृपाविहीनास्ते पतन्तिदुःखसागरे ॥ जयन्तेनभृशंत्रस्ताः शूलाग्रारोपिताश्चिरम् ॥ १७॥ कर्षितास्ताडितास्ते वै मूर्च्छिताःपुनरुत्थिताः ॥ त्राहित्राहिजयन्तत्वं नोवदन्तोपि पातिताः ॥१८॥ स्मार्यन्ते च जयन्तेन पूर्वपापंसुदारुणम् ॥ श्रीजयन्त उवाच ॥ किंकृतंमन्दभाग्यैश्च तत्पापं च सुदारुणम् ॥ १९ ॥ सर्वपुण्य फलं लब्ध्वा

मनुष्य सब द्वारकावासियों को दोष की बुद्धिसे देखता है ॥ १५ ॥ हे द्विजोत्तमो ! उससे सत्यसत्य श्रीकृष्णजी दूषितहोते हैं और जो द्वारकावासी उत्तम जनोंकी निन्दा करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णजी की दयासे रहित वे मनुष्य दुःख के समुद्रमें पड़ते हैं और जयन्त बहुतही डरेहुए उनको शूलके अग्रभाग पै बहुत दिनतक आरोपण करते हैं ॥ १७ ॥ और खीचे व ताड़न कियेहुए वे मूर्च्छितहोकर फिर उठते हैं और हे जयन्त ! तुम हमारी रक्षा कीजिये ऐसा कहतेहुए भी वे गिरायेजाते हैं ॥ १८ ॥ और जयन्त उनको पहले के बड़े भयंकर पाप को स्मरण कराते हैं श्रीजयन्तजी कहते हैं कि मन्दभाग्यवाले तुमलोगोंने क्यों भयंकर पापकिया था ॥ १९ ॥ और सब पुण्यके

फल को पाकर उत्तम द्वारका निवास होता है व निश्चय कर द्वारकावासियों की निन्दा महापापों से भी अधिक होती है ॥ २० ॥ और अग्नि व विष्णुजी से उत्पन्न पाप निवृत्त नहीं होता है इस कारण मैं श्रीकृष्णजी की आज्ञा से तुम सबों को भी शुद्ध करता हूं ॥ २१ ॥ और वैष्णवों की निन्दा के भयानक पाप को भोग कर तदनन्तर तुमलोगों का द्वारका में पवित्र जन्म होगा ॥ २२ ॥ और श्रीकृष्णजी को प्रसन्न कराकर बहुत दुर्लभ सिद्धि होगी इस कारण वैष्णवों की निन्दा से उपजाहुआ वह पाप भोग कियाजावै ॥ २३ ॥ और वहां के रहनेवाले मनुष्यों के ब्रह्मा, इन्द्र व शिवजी स्वामी नहीं हैं इस कारण द्वारकापुरी को जाकर सब चतुर्भुज पुरुषों को

द्वारकावासउत्तमः ॥ द्वारकावासिनांनिन्दा महापापाधिकाध्रुवम् ॥ २० ॥ न निवर्तेततत्पापमाग्नेयम्परमेश्वरम् ॥ अतः कृष्णाज्ञयासर्वान् विशुद्धान्वःकरोम्यहम् ॥ २१ ॥ वैष्णवानान्तु निन्दायाः फलम्भुक्त्वासुदारुणम् ॥ ततस्तु द्वारकायां वः पुण्यञ्जन्मभविष्यति ॥ २२ ॥ कृष्णम्प्रतोष्यसंसिद्धिर्भविष्यतिसुदुर्लभा ॥ तस्मात्तद्भुज्यताम्पापं जातंवैष्णवनिन्दनात् ॥ २३ ॥ तत्रत्यानाम्प्रभुर्नैव ब्रह्माइन्द्रोमहेश्वरः ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ तस्माद्द्वारवतीङ्गत्वा पश्येत्सर्वांश्चतुर्भुजान् ॥ २४ ॥ संसेव्योभगवान्सर्वैः सर्वेषाम्प्रीतिदायकः ॥ अतोविप्राःसदापूज्या द्वारकावासिनोजनाः ॥ २५ ॥ दत्तमत्राणुमात्रत्वं तदक्षयफलम्भवेत् ॥ गोमतीतीरमाश्रित्य द्वारकायाम्प्रयच्छति ॥ २६ ॥ यत्किञ्चिच्च धनंविप्राः श्रूयतांतत्फलोदयम् ॥ हेमभारसहस्रैस्तु रविवारेरविग्रहे ॥ २७ ॥ कुरुक्षेत्रेयदाप्नोति गजाश्वरथदानतः ॥ सहस्रगुणितंतस्मात्सत्यंसत्यम्मयोदितम् ॥ २८ ॥ हेममाषार्द्धदानेन द्वारकायान्तु सर्वदा ॥ द्वारकायान्तु यःकुर्यादन्नदानंसदानरः ॥ २९ ॥

देखै ॥ २४ ॥ व सबों को प्रीति देनेवाले भगवान् विष्णुजी सबों से पूजने योग्य हैं इस कारण हे ब्राह्मणो ! द्वारकावासी लोग पूजने योग्य हैं ॥ २५ ॥ व यहां जो लवमात्र भी दियाजाता है वह अक्षय फलवाला होता है व हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य गोमती के किनारे आश्रित होकर जो कुछ धन द्वारका में देता है उसके फलोदय को सुनिये कि रविवार को सूर्यग्रहण में हज़ार सुवर्ण के भारों से ॥ २६ । २७ ॥ और हाथी, घोड़े व रथों के दानसे कुरुक्षेत्रमें मनुष्य जिस फल को पाता है उससे हज़ार गुना फल द्वारका में सदैव आधा माशा सुवर्ण के दानसे होता है यह सत्य, सत्य मैंने कहा है व जो मनुष्य द्वारका में सदैव अन्नदान करता है ॥ २८ । २९ ॥

उनने सब यज्ञों से पूजन किया व बालू के किनुकों की संख्या से पृथ्वी दिया और जो मनुष्य द्वारका में अन्नदान करता है उसके फल को ॥ ३० ॥ कहने के लिये ब्रह्मा, विष्णु व शिवजी समर्थ नहीं हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व चाण्डालादिक ॥ ३१ ॥ और जो स्त्री भक्ति से द्वारका में निवास करती है वह करोड़ों हजार पुश्तियों समेत विष्णुलोक में पूजी जाती है ॥ ३२ ॥ हे द्विजोत्तमो ! मेरा वचन सत्य, सत्य व सत्य है झूंठ नहीं है और द्वारकावासी को देखकर व विशेष कर छूकर ॥ ३३ ॥ बड़े पापों से छूटेहुए वे स्वर्गलोक में बसते हैं और द्वारका का माहात्म्य सब से श्रेष्ठ विराजता है ॥ ३४ ॥ जिसकी बहुत पवित्र धूलियां पापियों

तेनेष्टंक्रतुभिःसर्वैर्दत्ताभूस्सिकतसंख्यया ॥ अन्नदानन्तु यःकुर्याद्द्वारकायान्तु तत्फलम् ॥३०॥ न च वक्तुंभवेच्छक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शूद्राश्चाप्यन्त्यजादयः ॥ ३१ ॥ नारीवाद्वारकायांवै भक्त्यावासंकरोतिया ॥ कुलकोटिसहस्रैस्तु विष्णुलोकेमहीयते ॥३२॥ सत्यंसत्यंद्विजश्रेष्ठा नानृतंममभाषितम् ॥ द्वारकावासिनंदृष्ट्वा स्पृष्ट्वा चैव विशेषतः ॥ ३३ ॥ महापापविनिर्मुक्ताः स्वर्गलोकेवसन्तिते ॥ माहात्म्यंद्वारकाया वै सर्वश्रेष्ठंविराजते ॥ ३४ ॥ सुपुण्याः पांसवोयस्याः पापिनांमुक्तिदायकाः ॥ द्वारकायारजःपुण्यं वायुनासमुदीरितम् ॥ ३५ ॥ अपिपापसमाचारान् प्रापयेद्वैष्णवंपदम् ॥ पांसवोद्वारकाया वै वायुनासमुदीरिताः ॥ ३६ ॥ पापिनांमुक्तिदाःप्रोक्ताः किंपुनर्द्वारिकाभुवः ॥ पांशुनास्पर्शनेविप्रा द्वारकायाश्च मानुजः ॥ ३७ ॥ किंचासौदेहिनांकोपि मुक्तिदः सर्वपापिनाम् ॥ एवंभूतामहापुण्या द्वारकाराजतेभुवि ॥ ३८ ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ श्रूयतांद्विजशार्दूला मोहस्थानंविदाहकम् ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं

को मुक्तिदायिनी हैं और पवन से प्रेरित द्वारका की पवित्र धूलि ॥ ३५ ॥ पाप आचरणवाले पुरुषों को भी विष्णुजी के स्थान में प्राप्त करती है और पवन से प्रेरित द्वारका की धूलियां ॥ ३६ ॥ पापियों को मुक्तिदायिनी कहीगई हैं फिर द्वारका की पृथ्वियों को क्या कहना है व हे ब्राह्मणो ! द्वारका की धूलिसे स्पर्श करने पर यह मनुष्य सब पापी प्राणियों के मध्य में कोई मुक्तिदायक है ऐसी महापवित्र द्वारका पृथ्वी में विराजती ॥ ३७ । ३८ ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! गोमती व

कृष्णजी के समीप मोहस्थान को जलानेवाले द्वारका के माहात्म्य को सुनिये ॥ ३९ ॥ कि कुशावर्त से लगाकर जहांतक गोमती समुद्र से संयुत है वहां तक जिस तिथि में देवपुरोहित (बृहस्पति) जी सिंहराशि में आते हैं ॥ ४० ॥ उसमें गोमती का स्नान बासठि गोदावरी स्नान के फल के समान होता है और सिंह राशि के अन्त में एकबार गौतमी में बड़े यत्न से स्नान करने से वही फल होता है ॥ ४१ ॥ और एक वर्ष तक निरन्तर गोदावरी में जो पुण्य होता है उस पुण्य को मनुष्य कलियुग में गोमती के सेवन से पाता है ॥ ४२ ॥ व अन्यत्र वर्ष समूहों से जो फल होता है वह द्वारका में प्रतिदिन गोमती में नहाने व द्वारका में

गोमतीकृष्णसन्निधौ ॥ ३९॥ कुशावर्त्तात्समारभ्य यावद्वै सागरान्विता ॥ यस्यांतिथौयदायाति सिंहेदेवपुरोहितः॥४०॥ तस्यां हि गोमतीस्नानं द्विषड्गोदावरीफलम् ॥ अवगाहिताप्रयत्नेन सिंहान्तेगौतमीसकृत् ॥ ४१ ॥ गोदावर्यां तु यत्पुण्यं वर्षमेकंनिरन्तरम् ॥ तत्पुण्यंसमवाप्नोति गोमतीसेवनेकलौ ॥ ४२ ॥ अन्यत्रवर्षपूगैर्यद्द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ गोमत्यांश्रद्धयास्नानाद्द्वारावत्यांनिवासनात् ॥ ४३ ॥ अन्यं चैव समुत्सृज्य सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ गच्छगच्छमहाभाग द्वारकामितियोवदेत् ॥ ४४ ॥ तस्यावलोकनादेव मुच्यन्तेपातकैर्नराः ॥ द्वारकेति च योब्रूयाद्द्वारकाभिमुखोनरः ॥ ४५ ॥ कृपयाकृष्णदेवस्य मुक्तिभागीभवेद्ध्रुवम् ॥ द्वारकांगोमतीम्पुण्यां रुक्मिणींकृष्णमेव च ॥ ४६ ॥ स्मरन्तिप्रत्यहम्भक्त्या द्वारकाफलभागिनः ॥ सहस्रयोजनस्थस्य यस्य वै बुद्धिरीदृशी ॥ ४७ ॥ द्वारावतींगमिष्यामि पश्यामिद्वारकेश्वरम् ॥ वक्त्रावलोकनादेव महापातकिनोजनाः ॥ ४८ ॥ धन्यास्तेकृष्णभक्ताश्च सर्वलोकैकपावनाः ॥ नमस्याःसर्व

बसने से होता है ॥ ४३ ॥ और अन्य पुरुष को पठाकर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और हे महाभाग ! द्वारका को जाइये जाइये ऐसा जो कहता है ॥ ४४ ॥ उसके देखने ही से मनुष्य पातकों से छूटजाते हैं व द्वारका के सामने जो मनुष्य हे द्वारके ! ऐसा कहता है ॥ ४५ ॥ वह श्रीकृष्णदेवजी की दयासे निश्चय कर मुक्ति का भागी होता है और द्वारका व पवित्र गोमती, रुक्मिणी और श्रीकृष्णजीको ॥ ४६ ॥ जो प्रतिदिन भक्ति से स्मरण करते हैं वे द्वारका के फलके भागी होते हैं और हज़ार योजन पै टिकेहुए जिस मनुष्य की बुद्धि ऐसी होवै ॥ ४७ ॥ कि मैं द्वारका को जाऊंगा व द्वारकानाथको देखूंगा उसका मुख देखनेही से महापापी नर ॥४८॥ वे

श्रीकृष्णजी के भक्त धन्य हैं व सब लोकों के एकही पवित्रकारक हैं और सब पुण्यों के फल की इच्छा से वे सब मनुष्यों के प्रणाम करने योग्य हैं ॥ ४९ ॥ और श्रीकृष्णजी के दर्शन में पुण्य शेषसे भी सर्वज्ञ विद्वानों से भी नहीं कहा जासक्ता है क्योंकि फल का अन्त नहीं है ॥ ५० ॥ व हे द्विजोत्तमो ! जो मनुष्य यहां बड़े पापी हैं और मित्रद्रोही, भ्रातृघाती, गोघाती और पराई स्त्री में जो आसक्त है ॥ ५१ ॥ और मातृघाती, पितृघाती, गर्भघाती व गुरु की शय्या पै जानेवाला ये और अन्य महापातकों से संयुत जो पापी हैं ॥ ५२ ॥ वे श्रीकृष्णदेवजी के दर्शन से सब पापों से छूटजाते हैं व हे मुनिश्रेष्ठो ! बड़ाभारी भी पाप नाश होजाता है ॥ ५३ ॥

लोकानां सर्वपुण्यफलेच्छया ॥ ४९ ॥ कृष्णस्यदर्शनेपुण्यं न वक्तुंशक्यतेबुधैः ॥ अनन्तादपि सर्वज्ञैः फलस्यान्तो न विद्यते ॥ ५० ॥ महापातकिनोये च वर्तन्तेत्रद्विजोत्तमाः ॥ मित्रध्रुग्भ्रातृहागोघ्नः परदाररतश्च यः ॥ ५१ ॥ मातृहापि तृहाभ्रूणब्रह्महागुरुतल्पगः ॥ एतेचान्ये च पापिष्ठा महापापयुताश्च ये ॥ ५२ ॥ सर्वपापैःप्रमुच्यन्ते कृष्णदेवस्यदर्शनात् ॥ क्षिप्यते हि मुनिश्रेष्ठा ह्यत्यन्तमपि पातकम् ॥ ५३ ॥ कृष्णस्यदर्शनात्सर्वं विनश्यति च पातकम् ॥ न्यायहीने सभामध्ये न द्विजःशोभतेध्रुवम् ॥ ५४ ॥ यत्सान्निध्याज्जडन्तोयं स्पर्द्धतेब्रह्मविद्यया ॥ गोमत्याःस्नानमात्रेण महापापविदाहकम् ॥ ५५ ॥ यत्क्षेत्रस्थास्तु पाषाणाश्चक्रेणात्र विचिह्निताः ॥ मोक्षदाश्चापि सर्वेषां पूजिताःकीटकेष्वपि ॥ ५६ ॥ यत्क्षेत्रस्थंरजःपुण्यं वायुनीतंविमुक्तिदम् ॥ पापिनामपि सर्वेषां सवायुरपि मोक्षदः ॥ ५७ ॥ यत्क्षेत्रगमनेबुद्धिर्जाताहन्त्यत्र पातकम् ॥ नश्यतेदर्शनात्पापं किमेतत्स्तुतिवर्णनम् ॥ ५८ ॥ कृष्णस्यदर्शनात्पापं यत्र नश्यतिभाषणात् ॥

व श्रीकृष्णजी के दर्शन से सब पाप नाश होजाता है और न्याय से रहित सभा के मध्य में ब्राह्मण निश्चयकर नहीं शोभित होता है ॥ ५४ ॥ और जिसकी समीपता से जड़ जल ब्रह्मज्ञान से स्पर्द्धा करता है उस गोमती के नहानेही से महापापों का जलानेवाला होताहै ॥ ५५ ॥ और चक्रसे चिह्नित जिस क्षेत्रमें स्थित पत्थर सबों को मोक्षदायक व कीटों में भी पूजित हैं ॥ ५६ ॥ और जिस क्षेत्र में स्थित पवन से लाईहुई धूलि मुक्तिदायक है वह पवन भी सब पापियों को मोक्षदायक है ॥ ५७ ॥ और जिस क्षेत्र के जाने में उपजीहुई बुद्धि पाप को नाश करती है उसके दर्शन से पाप नाश होता है क्या यह स्तुति का वर्णन है ॥ ५८ ॥ और जहां श्रीकृष्णजी के

दर्शन व कथन से पाप नाश होता है वहां श्रीकृष्णजी के दर्शन में इतनी पुण्यकी संख्या नहीं होसक्ती है ॥ ५९ ॥ और वहां जाताहुआ जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के दर्शन के माहात्म्य को कहता है वह पुण्य शेष के समान विद्वानों से नहीं कहाजासक्ता है ॥ ६० ॥ और जहां यह कहने से पाप नाश होजाता है कि श्रीकृष्णजी के दर्शन से पातक विनाशहोता है वहां श्रीकृष्णजी के दर्शन में पुण्य की गणना कौन करैगा ॥ ६१ ॥ क्योंकि ब्रह्मा व शिवजी नहीं समर्थ हैं तो अन्य जनों को क्या कहना है व सदैव मनुष्य श्रीकृष्णजी के दर्शन से मुक्तहोजाते हैं ॥ ६२ ॥ और दर्शन व स्पर्श करने में पुण्य को कौन जानै व पूजन में कौन फल को जानै यह

एतावत्पुण्यसंख्यानां न शक्यंकृष्णदर्शने ॥ ५९ ॥ कृष्णदर्शनमाहात्म्यं तत्रगच्छंश्च योवदेत् ॥ अनन्तेनसमैःपुण्यं न तच्छक्यंमनीषिभिः ॥ ६० ॥ कृष्णस्यदर्शनात्पापं यत्र नश्यतिभाषणात् ॥ कृष्णस्यदर्शनेपुण्यं गणनांकःकरिष्यति ॥ ६१ ॥ अपि ब्रह्ममहेशानौ न शक्तौकिमुतापरे ॥ श्रीकृष्णस्मरणादेव विमुक्ताःसर्वदाजनाः ॥६२॥ दर्शनेस्पर्शनेपुण्यं कोजानात्यर्चनेफलम् ॥ सत्यंसत्यम्पुनःसत्यं नानृतम्ममभाषितम् ॥ ६३ ॥ श्रीकृष्णस्यमुखंदृष्ट्वा ह्यनन्तम्फलमाप्नुयात् ॥ सर्वज्ञोपि न सर्वज्ञो द्वारकानाथदर्शनात् ॥६४॥ वक्तुम्पुण्यफलंयच्च शेषोपि किमुतापरे ॥ सर्वज्ञा श्चाप्यसर्वज्ञाः कृष्णदेवस्यपूजने ॥६५॥ पुण्यम्फलानांवक्तुं च ब्रह्मेशानादयोपि हि ॥ तस्माच्छ्रीकृष्णदेवस्य दर्शनंसर्वसिद्धिदम् ॥६६॥ अनन्तफलदम्प्रोक्तं स्वर्गमोक्षादिकामदम् ॥ किंवेदैःश्रद्धयाधीतैर्व्याख्यानैरपि कृत्स्नशः ॥६७॥ धर्म

सत्य, सत्य व फिर सत्य है मेरा वचन झूंठ नहीं है ॥६३॥ व श्रीकृष्णजी का मुख देखकर मनुष्य अमित फल को पाता है और द्वारकानाथजी के दर्शन से जो पुण्य का फल होता है उसको कहने के लिये सर्वज्ञ शेष भी सर्वज्ञ नहीं होते हैं फिर अन्य जनों को क्या कहना है और श्रीकृष्णदेवजी के पूजन में फलों के पुण्य को कहने के लिये सर्वज्ञ ब्रह्मा व शिवादिक भी सर्वज्ञ नहीं हैं इसलिये श्रीकृष्णदेव का दर्शन सब सिद्धियों का दायक है ॥ ६४ । ६५ । ६६ ॥ व अनन्त फलदायक तथा स्वर्ग व मोक्षादि कामनाओं का दायक है और श्रद्धा से पढ़े हुए वेदों से व सब व्याख्यानों से क्या है ॥ ६७ ॥ और सब धर्मशास्त्रादिकों से तथा योगशास्त्रों से क्या होता है व

इतिहासों तथा पुराणों व व्रत, दान और जपादिकों से क्या होता है ॥ ६८ ॥ और सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी के दानसे व सब अन्य दानों से क्या होता है ॥ ६९ ॥ और सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र तीर्थ में हज़ार सुवर्ण भारों से क्या होता है व हाथी, घोड़े और रथों के दानों से तथा मन्दिर में देवस्थापनों से क्या है ॥ ७० ॥ व भलीभांति उन देवताओं के पूजनसे तथा इष्टापूर्तादिकों से क्या होता है और राजसूय तथा अश्वमेधादिक यज्ञों से व यहां सर्वज्ञों से क्या होता है ॥ ७१ ॥ और तीर्थों व क्षेत्रों के सेवन से तथा अनेक प्रकार के तपों से क्या होता है व कियेहुए अनेक प्रकार के धर्मों से तथा वर्णों व आश्रमों के सेवन से क्या होता है ॥ ७२ ॥ और मोक्ष को

शास्त्रादिभिःसर्वैर्योगशास्त्रैश्च किम्भवेत् ॥ इतिहासैःपुराणैः किं व्रतदानजपादिभिः ॥ ६८ ॥ सप्तद्वीपापि भूदानैरन्यै र्दानैश्च कृत्स्नशः ॥ ६९ ॥ हेमभारसहस्रैःकिं कुरुक्षेत्रेरविग्रहे ॥ गजाश्वरथदानैःकिं प्रतिष्ठाभिश्च मन्दिरे ॥ ७० ॥ किं तेषाम्पूजयासम्यगिष्टापूर्तादिभिस्तु किम् ॥ राजसूयाश्वमेधाद्यैः सर्वज्ञैश्चात्र किम्भवेत् ॥ ७१ ॥ सेवनैस्तीर्थक्षेत्राणां तपोभिर्विविधैश्च किम् ॥ किंकृतैर्विविधैर्धर्मैर्वर्णाश्रमनिषेवणैः ॥ ७२ ॥ किम्मोक्षसाधनैःक्लेशैर्ज्ञानयोगसमाधिभिः ॥ द्वारकेश्वरकृष्णस्य दर्शनंयद्भविष्यति ॥ ७३ ॥ एतेषामपि सर्वेषां संसिद्धिःकृष्णदर्शनम् ॥ विशेषेण तु वैशाख्यां जयन्त्यांविष्णुवासरे ॥ ७४ ॥ माघे तु फाल्गुने चैव चैत्रे चैव विशेषतः ॥ पौर्णमास्याममावास्यामेकादश्यान्तु सङ्गमे ॥ ७५ ॥ द्वादश्याम्प्रतिपक्षे तु रोहिणीश्रवणे तथा ॥ पुष्येपुनर्वसौ चैव व्यतीपातेदिनक्षये ॥ ७६ ॥ सपुष्येतिथिनक्षत्रे ग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः ॥ दर्शनंकृष्णदेवस्य द्वारकायामनुत्तमम् ॥ ७७ ॥ अनन्तफलदम्प्रोक्तं सर्वज्ञैःशङ्करादिभिः ॥

साधनेवाले क्लेशों से तथा ज्ञान, योग व समाधियों से क्या होता है यदि द्वारकानाथ श्रीकृष्णजी के दर्शन होवैं ॥ ७३ ॥ क्योंकि इन सबों की भी संसिद्धि श्रीकृष्णजीका दर्शन है और विशेष कर वैशाखी व जयन्ती तथा एकादशी तिथि में होता है ॥ ७४ ॥ और माघ, फागुन व चैत में विशेषकर होता है तथा पौर्णमासी, अमावस, एकादशी और संगम में विशेषकर होता है ॥ ७५ ॥ और प्रत्येक पक्ष में द्वादशी तथा रोहिणी व श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, व्यतीपात व दिनक्षय में ॥ ७६ ॥ और पुष्यसमेत तिथि, नक्षत्र में व चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण में द्वारका में श्रीकृष्णदेवजी का दर्शन अति उत्तम होता है ॥ ७७ ॥ व हे ब्राह्मणो ! शंकरादिक सर्वज्ञों ने

देवताओं को दुर्लभ श्रीकृष्णदेवजी का दर्शन अनन्त फलदायक कहा है ॥ ७८ ॥ संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जोकि प्रसन्न होकर श्रीकृष्णजी का दर्शन करते हैं और सर्वज्ञ मुनिलोग उसको नहीं जानते हैं ॥ ७९ ॥ फिर स्पर्श करने व दूध से स्नानादिकों व पूजनादिकों में क्या होता है और रात्रि में चौथे पहर में दुग्ध स्नान उत्तम होता है ॥ ८० ॥ व हे ब्राह्मणो ! पूजन, नीराजन, नैवेद्य, ताम्बूल, नमस्कार, गीत, वाद्य व नृत्य श्रीकृष्णजी को प्रिय होता है ॥ ८१ ॥ और उस विष्णुवासर (एकादशी) में जो मनुष्य श्रीकृष्ण देवजी के लिये नृत्य व गीत करते हैं वे नृत्य व गान से प्रसन्न होते हैं और जो मनुष्य वहां गीत व नृत्य करते हैं ॥८२॥८३॥ ब्रह्मा

देवानांदुर्लभंविप्राः कृष्णदेवस्यदर्शनम् ॥ ७८ ॥ धन्यास्तेमानवालोके येकुर्वन्तिप्रहर्षिताः ॥ मुनयस्तन्नजानन्तिसर्वज्ञाःकृष्णदर्शनम् ॥ ७९ ॥ किम्पुनःस्पर्शनैःक्षीरैःस्नानादिपूजनादिषु ॥ रात्रौचतुर्थयामेतु क्षीरस्नानंप्रशस्यते ॥ ८० ॥ पूजानीराजनंविप्रा नैवेद्यंकृष्णवल्लभम् ॥ ताम्बूलं च नमस्कारं गीतवाद्यं च नर्त्तनम् ॥ ८१ ॥ विष्णोश्च वासरेतस्मिन् गीतंनृत्यञ्च येजनाः ॥ ८२ ॥ कुर्वन्तिकृष्णदेवाय नृत्यगीतप्रहर्षिताः ॥ तत्र गीतं च नृत्यञ्च येकुर्वन्ति हि मानवाः ॥ ८३ ॥ ब्रह्मेशानादिभिस्तुल्या अद्यापिकृष्णवल्लभाः ॥ कृष्णंसम्पूजितंदृष्ट्वा महापुण्यमवाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ श्रीकृष्णस्यमहापूजां कर्तुःपुण्यमनन्तकम् ॥ धन्यास्तेमानवालोके कृष्णदेवस्यदर्शनम् ॥ ८५ ॥ स्पर्शनंपूजनं स्तोत्रं नमस्कुर्वन्तिसर्वदा ॥ धन्याधन्यतमास्तेवै धन्याधन्यतमोत्तमाः ॥ ८६ ॥ तत्पुण्यगणनांकर्तुं तेषान्नेशाःसुरेश्वराः ॥ इत्थंसभगवान्कृष्णो न जहातिप्रहर्षितः ॥ ८७ ॥ अद्यापिद्वारकाम्पुण्यां कलावपि विशेषतः ॥ ततःसाद्वारकादेवी

व शिवादिकों के समान वे आज भी श्रीकृष्णजी को प्यारे हैं और पूजेहुए श्रीकृष्णजीको देखकर मनुष्य महापुण्य को पाता है ॥ ८४ ॥ और श्रीकृष्णजी का महापूजन करनेवाले पुरुष को अनन्त पुण्य होता है व संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जोकि श्रीकृष्णदेवजी का दर्शन ॥ ८५ ॥ स्पर्श, पूजन व स्तोत्र और नमस्कार सदैव करते हैं और वे धन्य व अधिक धन्य हैं तथा धन्य व अधिक धन्यों में उत्तम होते हैं ॥ ८६ ॥ व उनकी उस पुण्यकी गिनती करने के लिये सुरेश्वर समर्थ नहीं हैं इस प्रकार आज भी कलियुग में विशेषकर प्रसन्न होतेहुए वे भगवान् श्रीकृष्णजी पवित्र द्वारका को नहीं छोड़ते हैं उसी कारण वह द्वारका देवी, श्रीकृष्णदेवजी से शोभित

है ॥८७।८८॥ और क्षेत्रों व तीर्थादिकों के मध्य में सब से उत्तमोत्तम हुई है तुमलोग सब से उत्तम फलोदय व उत्तम पुण्य को सुनो ॥ ८९ ॥ कि द्वारकाका यह प्रभाव त्रिलोक में प्रसिद्ध है जिसमें यज्ञ, पौशाला, मन्दिर व मठ बनाकर ॥ ९० ॥ और यतियों की रक्षाकर तीर्थ सेवन करै व बावली, कूप, तड़ाग और जीर्णोद्धार करके व विष्णुजीकी मूर्त्ति की प्रतिष्ठाकर व भोग साधनकर हे ब्राह्मणो ! उस फलको सुनिये मैं सबसे उत्तम उसको कहता हूं ॥ ९१ । ९२ ॥ कि चाहे हुए मनोरथों को पाकर श्रीकृष्ण जी की दया का पात्र वह तेजोमय लोकों में अति उत्तम सुखोंको भोगकर ॥ ९३ ॥ मनुष्य एक एक से विष्णुजी की समता को पाताहै और जो मनुष्य द्वारका में काष्ठ

कृष्णदेवेनराजते ॥ ८८ ॥ क्षेत्रतीर्थादिकानांसा जातासर्वोत्तमोत्तमा ॥ श्रूयताम्परमम्पुण्यं सर्वोत्तमफलोदयम् ॥८९॥ द्वारकायाःप्रभावोयं विख्यातोभुवनत्रये ॥ यस्यांसत्रम्प्रपांकृत्वा प्रासादम्मठमेव वा ॥ ९० ॥ यतीनांशरणं कृत्वा कुर्यात्तीर्थनिषेवणम् ॥ वापीकूपतडागञ्च जीर्णोद्धारमथापि वा ॥ ९१ ॥ मूर्तेर्विष्णोःप्रतिष्ठाञ्च दत्त्वा वा भोगसाधनम् ॥ श्रूयतांतत्फलंविप्राः सर्वोत्कर्षंवदाम्यहम् ॥ ९२ ॥ सम्प्राप्यवाञ्छितान्कामान् कृष्णानुग्रहभाजनः ॥ तेजोमयेषुलोकेषु भुक्त्वाभोगाननुत्तमान् ॥ ९३ ॥ प्राप्नुयाद्विष्णुनासाम्यमेकैकेनैवमानवः ॥ स्थापयेद्द्वारकायांयो मूर्त्तिं दारुशिलामयीम् ॥ ९४ ॥ त्रैलोक्यंस्थापितन्तेन विष्णोःसामान्यतामियात् ॥ सार्वभौमत्वमापन्नो भुवनत्रयमेव च ॥ ९५ ॥ एकैकेनब्रह्मलोकं श्रीविष्णोःसाम्यतान्तथा ॥ द्वारकायाःप्रभावेण श्रीकृष्णस्य च सन्निधौ ॥ ९६ ॥ स्वल्पेनापि हरिम्पूज्य ह्यनन्तफलमाप्नुयात् ॥ एवम्माहात्म्यमुक्तं च द्वारकायाःद्विजोत्तमाः ॥ ९७ ॥ विराजतेसुतीर्था

व पत्थर की प्रतिमा को स्थापित करताहै ॥ ९४ ॥ उसने त्रिलोकको स्थापन किया व विष्णुजीकी समानता को वह प्राप्त होताहै और त्रिलोकमें वह चक्रवर्त्तित्व को प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ और एक एक से वह ब्रह्मलोक व श्रीविष्णुजी की समता को पाताहै व द्वारका के प्रभाव से श्रीकृष्णजी के समीप ॥ ९६ ॥ थोडे उपचार से भी श्रीविष्णु जीको पूजकर अमित फलको पाताहै हे द्विजोत्तमो ! द्वारका का ऐसा माहात्म्य कहागया ॥ ९७ ॥ उत्तम तीर्थों के मध्य में दशपंक्तियों से संयुत द्वारका विराजती है जो

मनुष्य दश आवरणों से संयुत द्वारका को प्रतिदिन दोनों संध्याओं में स्मरण करते हैं उनके फलोदय को सुनो कि बड़ेभारी सुखों को भोगकर चाहेहुए मनोरथों को पाकर ॥ ९८ । ९९ ॥ देवताओं से पूजित होतेहुए वे मनुष्य विष्णुजीके परमपद को प्राप्त होते हैं फिर द्वारका में टिककर इन दश आवरणों से संयुत द्वारका को जो भाव संयुत मनुष्य ध्यान करते हैं उनको क्या कहना है बरन उनको देखकर मनुष्य पृथ्वी में सब पापों से छूट जाता है ॥ १०० । १ ॥ और सात पुश्तियों को उधारकर वे स्वर्गलोक में बसते हैं और यह अपनी एक सौ एक पुश्तियों को उधार कर ॥ २ ॥ व सब पापों को जलाकर स्वर्गलोक में पूजाजाता है और जो मनुष्य प्रति वर्ष द्वारका

नाम्पङ्क्तिभिर्दशभिर्युता ॥ स्मरन्तिद्वारकांये वै दशावरणसंयुताम् ॥ ९८ ॥ प्रत्यहंचोभयोःसन्ध्योः श्रूयतान्तत्फलोदयः ॥ भुक्त्वाभोगान्सुविपुलान् प्राप्यकामान्यथेप्सितान् ॥ ९९ ॥ सम्पूज्यमानास्त्रिदशैर्यान्तिविष्णोःपरम्पदम् ॥ किंपुनर्द्वारकांस्थित्वा एतैरावरणैर्युताम् ॥ १०० ॥ ध्यायन्तिद्वारकांये वै दशभिर्भावसंयुताः ॥ तान्दृष्ट्वासर्वपापैस्तु मुच्यतेमानवोभुवि ॥ १ ॥ उद्धृत्यसप्तगोत्राणि स्वर्गलोकेवसन्तिते ॥ उद्धृत्यसस्वगोत्राणि कुलमेकोत्तरंशतम् ॥ २ ॥ दग्ध्वा च सर्वपापानि स्वर्गलोकेमहीयते ॥ प्रतिवर्षम्प्रकुर्वन्ति द्वारकागमनन्नराः ॥ ३ ॥ तेषाम्पादरजःस्पृष्ट्वा दिवं यान्त्येवपापिनः ॥ द्वारकांसिन्धुसङ्गःस्यात् सेतौगच्छेच्छिवालयम् ॥ ४ ॥ गत्वाकुशस्थलीम्पुण्यां गङ्गाद्वारञ्चशङ्करम् ॥ आदितीर्थंजगन्नाथं तथा गोदावरींनदीम् ॥ ५ ॥ कुम्भेश्वरं च रेवायां गङ्गासागरसङ्गमे ॥ रजस्वलानितीर्थानि सिंहे चैव बृहस्पतौ ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥

गमन करते हैं ॥ ३ ॥ उनके चरणों की धूलि को छूकर पापी भी पुरुष स्वर्ग को जाते हैं और द्वारका में समुद्र का संगम है व सेतु पै श्रीशिवजी के स्थानको जावै ॥ ४ ॥ और पवित्र कुशस्थली (द्वारका) पुरी को जाकर कल्याणकारक हरिद्वार को जावै और आदितीर्थ जगन्नाथ व गोदावरी नदी को जावै ॥ ५ ॥ और नर्मदा नदी में कुम्भेश्वर तथा गंगासागरसगम में जावै और सिंहराशि में बृहस्पति स्थित होनेपर तीर्थ रजस्वल होते हैं ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । कथा द्वारकापुरी को गये मिलत फल भूरि । अतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखमूरि ॥ श्रीप्रह्लादजी बोले कि द्वारकापुरी के सामने एक एक पग देनेपर कलियुग में मनुष्यों को हज़ारों यज्ञों का पुण्य होता है ॥ १ ॥ व पृथ्वी में जो मनुष्य सुन्दरी कृष्णपुरी को जाते हैं करोड़ों सै पुश्तियों से संयुत वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ २ ॥ और जो मनुष्य मनकी वृत्ति से द्वारका को जाने की इच्छा करते हैं उनके दशहज़ार जन्मों में इकट्ठा कियाहुआ पाप नाश होजाता है ॥ ३ ॥ व जिस मनुष्य की बुद्धि श्रीकृष्णजी के दर्शनमें होती है उसका मुख देखने से पाप हज़ार खण्ड होजाता है ॥ ४ ॥ और जो द्वारका में मरे हैं व जो श्रीकृष्णजी के समीप मरे

श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ एकैकस्मिन्पदेदत्ते पुरींद्वारवतीम्प्रति ॥ पुण्यंक्रतुसहस्राणां कलौभवतिदेहिनाम् ॥ १ ॥ कलौ कृष्णपुरींरम्यां येगच्छन्तिनराभुवि ॥ कुलकोटिशतैर्युक्तास्तेगच्छन्तिहरेःपदम् ॥ २ ॥ येध्यायन्तिमनोवृत्त्या गमनं द्वारकाम्प्रति ॥ तेषांविधूयतेपापम्पूर्वजन्मायुतार्जितम् ॥ ३ ॥ कृष्णस्यदर्शनेबुद्धिर्जायतेयस्यदेहिनः ॥ वक्त्रावलोकनात्तस्य पापंयातिसहस्रधा ॥ ४ ॥ येमृताद्वारकायान्तु येमृताःकृष्णसन्निधौ ॥ नतेषाम्पुनरावृत्तिर्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५ ॥ दुर्लभामथुराकाशी अवन्ती च तथाकलौ ॥ अयोध्यादुर्लभालोके द्वारका च तथाकलौ ॥ ६ ॥ गत्वाकृष्णपुरींरम्यां गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ कृत्वापिण्डप्रदानन्तु पितॄणामुक्तिमावहेत् ॥ ७ ॥ वैशाखशुक्लद्वादश्यां कृत्वाकृष्णस्यजागरम् ॥ मुखावलोकनाच्छौरेर्मुच्यतेपितृभिःसह ॥ ८ ॥ कृष्णक्रीडाकरस्थानं मनसाकामयन्तिये ॥ तेषामस्थिगतम्पापं क्षालयेत्प्रेतनायकः ॥ ९ ॥ अत्युग्राण्यपिपापानि तावत्तिष्ठन्तिविग्रहे ॥ यावन्नपश्यतेजन्तुः कलौद्वारा

हैं प्रलय पर्यन्त उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ५ ॥ कलियुग में मथुरा, काशी व अवन्ती दुर्लभ है वैसेहीं कलियुग में अयोध्या व द्वारका संसारमें दुर्लभ है ॥ ६ ॥ सुन्दरी कृष्णपुरी को जाकर गोमती व समुद्र के संगम में पिंडदान करके मनुष्य पितरों को मुक्ति देता है ॥ ७ ॥ और वैशाख के शुक्लपक्ष की द्वादशी में श्रीकृष्णजी का जागरण कर श्रीकृष्णजी का मुख देखनेसे पितरों समेत मुक्त होजाता है ॥ ८ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के क्रीड़ा करनेवाले स्थान की मन से इच्छा करते हैं उनकी अस्थियों में प्राप्त पातक को प्रेतनाथ (यमराज) जी नाश करते हैं ॥ ९ ॥ तबतक शरीर में बड़े उग्र पाप रहते हैं जबतक कलियुग में प्राणीद्वारकापुरी को नहीं

देखता है ॥ १० ॥ पुरातन समय ब्रह्मा ने कलियुग में द्वारकापुरी को छोड़कर दान, पठन व यज्ञों का पुण्य तीर्थों के अनुसंख्यक किया है ॥ ११ ॥ व जो मनुष्य प्रसंग से भी चक्रतीर्थ को जाता है इक्कीस पुश्तियों समेत वह उस स्थान को जाता है ॥ १२ ॥ और लोभ, विरोध, दंभ व कपट से भी जो चक्रतीर्थ को जाता है वह फिर पृथ्वी में नहीं बसता है ॥ १३ ॥ हे द्विजेन्द्रो ! सब अवस्था में प्राप्त भी मनुष्य यदि श्रीकृष्णजी की पुरी को जावै तो भली भांति कियेहुए तप से व दान और पठन से क्या है याने कुछ नहीं ॥ १४ ॥ हे पुत्र ! यदि हीनवर्ण भी पापी मनुष्य कृष्णपुरी को जावै तो दान, पठन व पवित्रता कारण नहीं है ॥ १५ ॥ और भक्ति से श्रीकृष्ण-

वतीम्पुरीम् ॥ १० ॥ पुण्यंतीर्थानुसंख्यानं विहितंब्रह्मणापुरा ॥ दानाध्ययनयज्ञानां मुक्त्वाद्वारवतींकलौ ॥ ११ ॥ चक्रतीर्थन्तु योगच्छेत् प्रसङ्गेनापिमानवः ॥ कुलैकविंशसहितः सोपिगच्छतितत्पदम् ॥ १२ ॥ लोभेनाथविरोधेन दम्भेनकपटेनवा ॥ चक्रतीर्थन्तुयोगच्छेन्नपुनर्वसतेभुवि ॥ १३ ॥ तपसाकिंसुतप्तेन दानेनाध्ययनेनकिम् ॥ सर्वावस्थोपिविप्रेन्द्रा गतःकृष्णपुरीं यदि ॥ १४ ॥ दानाध्ययनशौचं च कारणं न हि पुत्रक ॥ हीनवर्णोपि पापात्मा गतः कृष्णपुरीं यदि ॥ १५ ॥ कलिकालकृतैर्दोषैरत्युग्रैरपि मानवः ॥ भक्त्याकृष्णमुखंदृष्ट्वा न लिप्यतिकदाचन ॥ १६ ॥ तावद्विराजते काशी अवन्तीमथुरापुरी ॥ यावन्न पश्यतेजन्तुः पुरींकृष्णेनपालिताम् ॥ १७ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे नर्मदायाञ्च यत्फलम् ॥ तत्फलन्निमिषार्द्धेन द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ १८ ॥ यस्यकस्यापि मासस्य द्वादशीम्प्राप्यमानवः ॥ कृष्णक्रीडापुरींदृष्ट्वा मुक्तोभवतिब्राह्मणाः ॥ १९ श्रवणद्वादशीयोगे गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ स्नात्वा

जीका मुख देखकर मनुष्य कलिकाल से कियेहुए बड़े उग्र भी दोषों से नहीं लिप्त होताहै ॥ १६ ॥ तबतक काशी, अवन्ती व मथुरापुरी विराजती है जबतक कि मनुष्य श्रीकृष्णजी से पालित पुरी को नहीं देखता है ॥ १७ ॥ काशी, कुरुक्षेत्र व नर्मदा में जो फल होता है वह फल द्वारकापुरी में प्रतिदिन आधे-निमेषसे होता है ॥ १८ ॥ व हे ब्राह्मणो ! जिस किसी भी महीने की द्वादशी तिथि को प्राप्त होकर कृष्णजी की क्रीड़ापुरी को देखकर मनुष्य मुक्त होजाता है ॥ १९ ॥ और श्रवणद्वादशी के

योग में मनुष्य गोमती व समुद्र के संगम में नहाकर व श्रीकृष्णजी का मुख देखकर मुक्ति को पाता है ॥ २० ॥ व जिस किसी भी महीने की द्वादशी तिथि को प्राप्त होकर मनुष्य श्रीकृष्णजी की क्रीड़ापुरी को देखकर संसार के बन्धन से छूटजाता है ॥ २१ ॥ व वैशाख महीने में जो द्वादशी तिथि में श्रीकृष्णजी के दर्शनमें रात्रि को जागरण करते हैं वे मनुष्य कलियुग में धन्य हैं ॥ २२ ॥ व हे दानवाधिप ! श्रीकृष्णजी के मन्दिर में जिनके प्राण जाते हैं करोड़ों सौ कल्पों से भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ २३ ॥ व हे दैत्येन्द्र ! जिसने कृष्णपुरी की यात्रा किया उसने माता की प्रसवपीड़ाओं को नष्ट करदिया ॥ २४ ॥ द्वारका का निवास दुर्लभहै व

कृष्णमुखंदृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोतिमानवः ॥ २० ॥ यस्यकस्यापिमासस्य द्वादशीम्प्राप्यमानवः ॥ कृष्णक्रीडापुरीं दृष्ट्वा मुक्तःसंसारबन्धनात् ॥ २१ ॥ कृष्णस्यंदर्शनेरात्रौ येकुर्वन्ति च जागरम् ॥ माधवेमासिधन्यास्ते द्वादश्या म्मानवाःकलौ ॥ २२ ॥ येषांकृष्णालयेप्राणा गतादानवनायक ॥ नतेषाम्पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ २३ ॥ नाशितास्तेनदैत्येन्द्र मातुःप्रसववेदनाः ॥ प्रयाणंकृतंयेन कलौकृष्णपुरीम्प्रति ॥ २४ ॥ दुर्लभोद्वारकावासो दुर्लभं कृष्णदर्शनम् ॥ दुर्लभंगोमतीस्नानं रुक्मिणीदर्शनंकलौ ॥ २५ ॥ नात्रदानम्प्रशंसन्ति न जपो न च भावना ॥ शस्यतेजागरंरात्रौ कृष्णवक्त्रावलोकनम् ॥ २६ ॥ वारिमात्रेणगोमत्यां पिण्डदानंविनाकलौ ॥ पितृणांजायते तृप्तिश्चक्रतीर्थप्रभावतः ॥ २७ ॥ प्रेतत्वं नैव गच्छेत्स नैवास्यनारकीव्यथा ॥ येनद्वारवतींगत्वा कृष्णवक्त्रावलोकनम् ॥ २८ ॥ नृत्यमानाःप्रकुर्वन्ति कृष्णस्याग्रे तु जागरम् ॥ न तेषाम्पुनरावृत्तिर्मयादृष्टारिसूदन ॥ २९ ॥ नित्यं

श्रीकृष्णजी का दर्शन दुर्लभ है और कलियुग में गोमती का स्नान व रुक्मिणीजी का दर्शन दुर्लभ है ॥ २५ ॥ यहां विद्वान् दान की प्रशंसा नहीं करते हैं और जप व भावना यहां नहीं प्रशंसित है बरन रात्रि में जागरण व श्रीकृष्णजी के मुख को देखना उत्तम है ॥ २६ ॥ व कलियुग में पिंडदान के विना गोमती में जलमात्र से चक्रतीर्थ के प्रभाव से पितरों की तृप्ति होती है ॥ २७ ॥ द्वारकापुरी को जाकर जिसने श्रीकृष्णजी का मुख देखा है वह प्रेतत्व को नहीं जाता है और न इसको नरक का दुःख होताहै ॥ २८ ॥ व हे शत्रुसूदन ! नाचतेहुए जो मनुष्य श्रीकृष्णजीके आगे जागरण करते हैं मैंने उनकी पुनरावृत्ति को नहीं देखा है ॥ २९ ॥ व घरमें बैठेहुए

जो मनुष्य नित्य सुन्दरी कृष्णपुरी को स्मरण करते है इस कलियुग में उनके कुछ पाप नहीं होता है ॥ ३० ॥ व घर में टिकेहुए जो मनुष्य द्वारकावासी देव को स्मरण करतेहैं उनके शरीर को आश्रय कर कुछ पाप नहीं टिकता है ॥ ३१ ॥ और जो कालागुरु समेत चन्दन से श्रीकृष्णजी को विलेपन करते हैं उनके सौ जन्मों का पाप जलजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३२ ॥ व हे महासुर ! जो मनुष्य द्वादशी तिथिमें पंचामृत से लोकनाथ को स्नान कराते हैं उनका फिर जन्म नहीं होता है ॥ ३३ ॥ और श्रीकृष्णजी को उद्देश कर जो मनुष्य पितरों को दान करते हैं वे विशेषकर परमपद को पाते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥ ब्रह्मज्ञान व प्रयाग में मरने से

कृष्णपुरींरम्यां ये स्मरन्तिगृहेस्थिताः ॥ न तेषाम्पातकंकिञ्चिद्वर्ततेऽस्मिन्कलौयुगे ॥ ३० ॥ द्वारकावासिनंदेवं ये स्मरन्तिगृहेस्थिताः ॥ न तेषाम्पातकंकिञ्चिद्देहमाश्रित्यतिष्ठति ॥ ३१ ॥ विलेपयन्तियेकृष्णं सकृष्णागुरुचन्दनैः ॥ तेषांजन्मशतम्पापं दह्यते नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ पञ्चामृतेनयेस्नानं कुर्वन्ति च महासुर ॥ द्वादश्यांलोकनाथस्य नास्तितेषाम्पुनर्भवः ॥ ३३ ॥ कृष्णमुद्दिश्ययेदानं पितॄणां च विशेषतः ॥ कुर्वन्तिते न सन्देहः प्राप्नुवन्तिपरम्पदम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मज्ञानेनमुच्यन्ते प्रयागमरणेन च ॥ मुच्यन्तेस्नानमात्रेण गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ ३५ ॥ पूर्णैर्वर्षसहस्रैस्तु वाराणस्यान्तु यत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेप्राज्ञो द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ ३६ ॥ चक्रतीर्थेनरःस्नात्वा गोमत्यांरुक्मिणीह्रदे ॥ दृष्ट्वाकृष्णमुखंरम्यं कुलानांतारयेच्छतम् ॥ ३७ ॥ स्कन्धेकृत्वा तु योध्वानं वहतेशैलनायकम् ॥ तेनोढन्तु भवेत्सर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३८ ॥ कृष्णं हि येद्वारवतीम्मनुष्याः स्मरन्तिनित्यंहरिभक्तियुक्ताः ॥ विधूयपापंकलिसम्भवन्ते ग

मनुष्य मुक्त होते हैं व श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में स्नानही करने से मुक्त होजाते हैं ॥ ३५ ॥ और पूर्ण हज़ार वर्षों से काशी में जो फल मिलता है उस फलको विद्वान् द्वारकापुरी में प्रतिदिन पाता है ॥ ३६ ॥ और गोमती में चक्रतीर्थ तथा रुक्मिणीकुण्ड में नहाकर श्रीकृष्णजी के सुन्दर मुखको देखकर मनुष्य सौ पुश्तियों को तारता है ॥ ३७ ॥ व कन्धेपर शैलनायक को करके जो मार्ग में लेचलता है वह चराचर समेत सब त्रिलोक को लेगया ॥ ३८ ॥ व विष्णुभक्ति से संयुत जो

मनुष्य सदैव द्वारकापुरी को स्मरण करते हैं वे कलियुग से उपजेहुए पातक को नाशकर विष्णुजी के उत्तम लोक को जाते हैं ॥ ३९ ॥ व हे भूपाल ! वैशाख महीने में जो भक्ति से श्रीकृष्णपुरी को जाकर मधुसूदनी एकादशी को करते हैं वे मनुष्य चतुर्भुज हैं ॥ ४० ॥ और जो मन से द्वारका को जाने की इच्छा करता है उसके पितरों की तृप्ति होती है जैसे अमृत को पाकर देवता तृप्त होजाते हैं ॥ ४१ ॥ व हे राजन् ! जिस के घरमें विष्णुपूजन नहीं होता है उसका अन्न खाना न चाहिये क्यों कि वह मद्यभक्षण के समान कहागया है ॥ ४२ ॥ व चन्द्रमा में उष्णता और अग्नि में शीतता नहीं होती है तथा एकादशी में उपास करनेवाले वैष्णवों के पाप

च्छन्तिलोकम्परमम्मुरारेः ॥ ३९ ॥ येकुर्वन्तिमहीपाल माधवेमधुसूदनीम् ॥ भक्त्याकृष्णपुरीङ्गत्वा तेमनुष्याश्चतुर्भुजाः ॥ ४० ॥ मनसाकामयेद्यस्तु गमनंद्वारकाम्प्रति ॥ पितॄणांजायतेतृप्तिः प्राप्यदेवायथामृतम् ॥ ४१ ॥ केशवार्चागृहेयस्य न तिष्ठतिमहीपते ॥ तस्यान्नं नैव भोक्तव्यं मद्यभक्ष्यसमंस्मृतम् ॥ ४२ ॥ नोष्णत्वंद्विजराजे तु नशीतत्वंहुताशने ॥ वैष्णवानां न पापत्वमेकादश्युपवासिनाम् ॥ ४३ ॥ नास्तिनास्तिमहाभाग कलिकालसमंयुगम् ॥ स्मरणात् कीर्तनाद्विष्णोः प्राप्यतेपरमम्पदम् ॥ ४४ ॥ कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति कलौवक्ष्यतिप्रत्यहम् ॥ नित्यंयज्ञायुतम्पुण्यं तीर्थकोटिसमुद्भवम् ॥ ४५ ॥ कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति नित्यंजपतियोजनः ॥ तस्यप्रीतिःकलौनित्यं कृष्णस्योपरिवर्द्धते ॥ ४६ ॥ कृष्णेननिर्मितंस्नानं दुर्लभंदैत्यसत्तम ॥ दुर्वाससोगिराबद्धो यत्र तिष्ठतिकंसहा ॥ ४७ ॥ सत्यभामापतिर्यत्र

नहीं होता है ॥ ४३ ॥ हे महाभाग ! कलिकाल के समान युग नहीं है नहीं है कि जिसमें विष्णुजी को स्मरण व कीर्तन करने से परमपद मिलता है ॥ ४४ ॥ कलियुग में जो प्रतिदिन हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है उसको नित्य दशहज़ार यज्ञों का पुण्य व करोड़ तीर्थों मे उपजा हुआ पुण्य होता है ॥ ४५ ॥ व जो मनुष्य नित्य हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा जपता है उसकी प्रीति सदैव श्रीकृष्णजी के ऊपर बढ़ती है ॥ ४६ ॥ हे दैत्यसत्तम ! श्रीकृष्णजी से निर्मित स्नान दुर्लभ है जहां कि कंसविनाशक श्रीकृष्णजी दुर्वासा की वाणी से बँधेहुए स्थित हैं ॥ ४७ ॥ जहां सत्यभामा के पति (श्रीकृष्णजी) हैं और जहां पवित्र गोमतीजी हैं वहा मनुष्य

कलियुग में जाकर मुक्ति को प्राप्त होवैंगे ॥ ४८ ॥ हज़ार सुवर्ण भारवाले यज्ञों से जिस फल को मनुष्य पाता है उससे कोटिगुने फल को श्रीकृष्णजी का मुख देखने से पाता है ॥ ४६ ॥ व पुष्पभारों से पूजित विष्णुजी नहीं प्रसन्न होते हैं और तुलसी के एक पत्ते से पूजित विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५० ॥ वैशाख में शुक्लपक्ष में जो मनुष्य द्वारकामें श्रीकृष्णजी के दर्शन को पाता है उससे अधिक धन्य नहीं है ॥ ५१ ॥ त्रिस्पृशा द्वादशी को पाकर जो मनुष्य श्रीकृष्णजी की पुरी को जाकर भक्ति से करता है वह अश्वमेध यज्ञ के फल को पाता है ॥ ५२ ॥ यदि पहले नंदा (एकादशी) व अन्त में जया (त्रयोदशी) होवै और मध्य में भद्रा याने द्वादशी होवै तो वह श्री

यत्र पुण्या च गोमती ॥ नरामुक्तिम्प्रयास्यन्ति तत्र गत्वाकलौयुगे ॥ ४८ ॥ हेमभारसहस्रैस्तु क्रतुभिर्यत्फलंलभेत् ॥ तत्फलङ्कोटिगुणितं कृष्णवक्त्रावलोकने ॥ ४६ ॥ न तुष्येद्भारपुष्पैस्तु अर्चितोमधुसूदनः ॥ तुलस्याएकपत्रेण तुष्यतेगरुडध्वजः ॥ ५० ॥ माधवेशुक्लपक्षे तु कृष्णवक्त्रावलोकनम् ॥ लभतेद्वारकायान्तु नास्तिधन्यतरस्ततः ॥ ५१ ॥ त्रिस्पृशांद्वादशीम्प्राप्य गत्वाकृष्णपुरीन्नरः ॥ यःकरोतिनरोभक्त्या अश्वमेधफलंलभेत् ॥ ५२ ॥ आदौनन्दाजयाचान्ते मध्येभद्राभवेद्यदि ॥ उपवासार्चनैर्गीतैर्दुर्लभाकृष्णसन्निधौ ॥ ५३ ॥ उदयेल्पैकादशीस्यादन्ते चैव त्रयोदशी ॥ सम्पूर्णाद्वादशीमध्ये त्रिस्पृशासाहरेःप्रिया ॥ ५४ ॥ एकेनैवोपवासेन उपवासायुतम्फलम् ॥ जागरेशतसाहस्रं नृत्येकोटिगुणंकलौ ॥ ५५ ॥ वञ्जुलीवासरे चैव रात्रौकुर्वन्तिजागरम् ॥ यज्ञकोटचयुतम्पुण्यं निमिषार्द्धेनतद्भवेत् ॥ ५६ ॥ उन्मीलिनीमनुप्राप्य ये कुर्वन्ति च जागरम् ॥ निमिषेनिमिषेपुण्यं गवांकोटिफलप्रदम् ॥ ५७ ॥ पक्षवृद्धिकरीम्प्राप्य येकरि

कृष्णजी के समीप उपास, पूजन व गीतों से दुर्लभ है ॥ ५३ ॥ व उदय में थोड़ी एकादशी होवै और अन्त में त्रयोदशी हो तथा मध्य में संपूर्ण द्वादशी होवै वह त्रिस्पृशा विष्णु को प्यारी है ॥ ५४ ॥ और उसके एकही उपवास से दशहज़ार उपवासों का फल होता है और जागरण में एक लक्ष का फल होता है व नृत्य में कोटिगुना होताहै ॥ ५५ ॥ और वंजुलीवासरमें जो रात्रि को जागरण करते हैं तो आधे निमेष से उनको करोड़ दशहज़ार यज्ञों का फल होता है ॥ ५६ ॥ और उन्मीलिनी (बोधिनी) एकादशी को प्राप्त होकर जो मनुष्य जागरण करते हैं उनको प्रत्येक निमेष में करोड़ गौवों के फल को देनेवाला पुण्य होता है ॥ ५७ ॥ और पक्षवृद्धिकरी एकादशी को

प्राप्त होकर जो जागरण करते हैं उनको चौथाई निमेष में करोड़गुना फल होता है ॥ ५८ ॥ और पक्षवृद्धिकारिणी एकादशी को पाकर जो जागरण करते हैं घर में भी करतेहुए उनको यह फल होता है फिर श्रीकृष्णजी के समीप क्या कहना है ॥ ५९ ॥ कलियुग में द्वारकापुरी में एकादशी को पाकर सब कोटिगुना फल होता है और त्रिस्पृशा द्वादशी को पाकर जो जागरण नहीं करता है ॥ ६० ॥ उसने अपने कल्याण को बहुतसी पापाग्नि से जलादिया व वचन, मन और शरीर से उपजेहुए दोषों से जो पापबुद्धि पुरुष नष्ट होते हैं ॥ ६१ ॥ वे द्वारकापुरी में श्रीकृष्णजी का उत्तम मुख देखकर मुक्त होजाते हैं व संसाररूपी अग्नि के संताप से विकल किये मन

ष्यन्तिजागरम् ॥ निमिषार्द्धार्द्धमात्रेण भवेत्कोटिगुणम्फलम् ॥ ५८ ॥ पक्षवृद्धिकरीम्प्राप्य येकरिष्यन्तिजागरम् ॥ गृहेपिकुर्वतामेतत् किम्पुनःकृष्णसन्निधौ ॥ ५९ ॥ द्वारावत्यांकलौप्राप्य सर्वंकोटिगुणम्फलम् ॥ त्रिस्पृशांद्वादशीम्प्राप्य कुरुते नैव जागरम् ॥ ६० ॥ तेनात्मनस्तु कल्याणं दग्धम्पापाग्निनाभृशम् ॥ वाङ्मनःकायजैर्दोषैर्हतायेपापबुद्धयः ॥ ६१ ॥ द्वारावत्यांविमुच्यन्ते दृष्ट्वाकृष्णमुखंशुभम् ॥ संसारानलसन्तापविह्वलीकृतमानसाः ॥ ६२ ॥ कृष्णदर्शनतोयेन शीतत्वंयान्तिमानवाः ॥ बुद्ध्याभक्त्यानुभावेन द्वारकांयान्तियेनराः ॥ ६३ ॥ दुष्कुलीनादुराचारास्तेयान्ति परमम्पदम् ॥ मायिनोमत्सरग्रस्ताः क्रूरालुब्धामदोद्धताः ॥ ६४ ॥ मुच्यन्तेपातकैःस्नात्वा गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ यदीच्छेच्छाश्वतंस्थानं सन्तानंचाक्षयंबलम् ॥ ६५ ॥ द्वारावत्यांकलौप्राप्ते मनःकृष्णेनिवेशयेत् ॥ न ददातिनरः श्राद्धं गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ ६६ ॥ क्षुत्पिपासापरीताङ्गाः पितरस्तस्यदुःखिताः ॥ अपिकीटाःपतङ्गाये पशवःकृमयो

वाले ॥ ६२ ॥ मनुष्य श्रीकृष्णजी के दर्शनरूपी जल से शीतलता को प्राप्त होते हैं और बुद्धि, भक्ति व भाव से जो मनुष्य द्वारका को जाते हैं ॥ ६३ ॥ दुष्कुलीन व दुराचारी भी वे मनुष्य परमपद को प्राप्त होते हैं और मायावी, मत्सरग्रस्त, क्रूर, लोभी व मद से उद्धत पुरुष ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में नहाकर पापों से छूटजाते हैं यदि सनातन स्थान को चाहै व अविनाशी संतान और बल को चाहै ॥ ६५ ॥ तो कलियुग प्राप्त होने पर द्वारकापुरी में मन को श्रीकृष्णजी में निवेशित करै और श्रीकृष्णजी के समीप गोमती के किनारे जो श्राद्ध नहीं देता है ॥ ६६ ॥ क्षुधा व प्यास से घिरे अंगोंवाले उसके पितर दुःखित होते हैं और जो कीट, पतग, पशु,

कृमि व मृग भी हैं ॥ ६७ ॥ व द्वारका में जो मरते हे वे सब द्वारका को प्राप्त होते हैं और प्रयाग व काशी में मरने से मुक्ति होती है ॥ ६८ ॥ वैसेही श्रीकृष्णजी की पुरी को पाकर पातक नहीं जमता है और उसको स्वर्ग, मृत्यु लोक व रसातल में कुछ दुर्लभ नहीं होता है ॥ ६९ ॥ कि जिसने द्वादशी तिथि में जागरण में श्रीकृष्णजी का कीर्तन किया है व हे दैत्येश्वर ! जो द्वारकापुरी में नहीं गये हैं वे प्रशंसनीय नहीं हैं ॥ ७० ॥ व जिन्होंने विष्णुभक्तों का पूजन नहीं किया वे विष्णुजी की भक्ति से रहित हैं और कलिकाल में जिसका अंग गोमतीजी के जल में डूबा है ॥ ७१ ॥ वह रुक्मिणीनाथजी की प्रसन्नता से फिर योनि को नहीं प्राप्त होता है

मृगाः ॥ ६७ ॥ मुक्तिम्प्रयान्ति ते सर्वे द्वारकायान्तु येमृताः ॥ प्रयागेमरणे चैव मुक्तिःकाश्यां तथैव च ॥ ६८ ॥ तथा कृष्णपुरिम्प्राप्य न प्ररोहतिपातकम् ॥ न किञ्चिद्दुर्लभंतस्य स्वर्गेमर्त्येरसातले ॥ ६९ ॥ द्वादश्यांजागरेयेन कृतंकृष्णस्यकीर्त्तनम् ॥ दैत्येश्वर न तेश्लाघ्या द्वारावत्यांगता न ये ॥ ७० ॥ नार्चिताविष्णुभक्ताश्च विष्णोर्भक्ति विवर्जिताः ॥ यस्याङ्गंकलिकाले तु गोमतीनीरसम्प्लुतम् ॥ ७१ ॥ न पुनर्योनिमाप्नोति प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ कलि काले तु येस्नाताश्चक्रतीर्थेनरोत्तमाः ॥ ७२ ॥ पद्मनाभपदंयान्ति पितृभिःपरिवारिताः ॥ चक्रतीर्थे तु यच्छ्राद्ध म्पितृणांकुरुतेनरः ॥ ७३ ॥ तदक्षयम्भवेत्पुत्र प्रसादाद्रुक्मिणीपतेः ॥ शतैश्चन्द्रोपरागैर्यत् प्रभासेपरिकीर्तितम् ॥ ७४ ॥ तत्फलंद्वारकांस्थित्वा दिनैकेनकलौभवेत् ॥ अमावस्यांकुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहणकोटिभिः ॥ ७५ ॥ तत्फलंकलिकाले तु द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ सुलभाःसर्वतीर्थाश्च सुलभाःपर्वतोत्तमाः ॥ ७६ ॥ दुर्लभावैष्णवालोके द्वारका च तथा

व कलिकाल में जिन उत्तम मनुष्यों ने चक्रतीर्थ में स्नान किया है ॥ ७२ ॥ पितरों से घिरेहुए वे पद्मनाभ विष्णुजी के स्थान को प्राप्त होते हैं व मनुष्य चक्रतीर्थ में पितरों के जिस श्राद्ध को करता है ॥ ७३ ॥ हे पुत्र ! रुक्मिणीपति की प्रसन्नता से वह अक्षय होता है और सौ चन्द्रग्रहणों से प्रभासक्षेत्र में जो फल कहा गया है ॥ ७४ ॥ द्वारका में एक दिन टिककर वह फल कलियुग में होता है और कुरुक्षेत्र में अमावस में करोड़ सूर्यग्रहणों से जो फल होता है ॥ ७५ ॥ कलिकाल में वह फल प्रतिदिन द्वारका में होता है सब तीर्थ सुलभ हैं व उत्तम पर्वत सुलभ हैं ॥ ७६ ॥ परन्तु संसारमें वैष्णव व द्वारका कलियुग में दुर्लभ है और हज़ार अश्वमेध यज्ञों

को करके जो फल मिलता है ॥ ७७ ॥ वह फल द्वारका में टिककर प्रतिदिन होता है व करोड़ हज़ार गौवों को और करोड़ सौ रत्नों को देकर मनुष्य जिस फल को पाता है उस फल को श्रीकृष्णजी के समीप पाता है ॥ ७८ ॥ और बिन ज्ञान, बिन ध्यान व बिन इन्द्रिय दमन के श्रीकृष्णजी की सुन्दरी पुरी को जाकर मनुष्य उत्तम फल को पाता है ॥ ७९ ॥ व जो मनुष्य श्रीकृष्णजी का मुख देखते हैं वे उत्तमगति को प्राप्त होते हैं अब स्नान का मंत्र कहा जाता है कि हे शक्तिज्येष्ठे, यशस्विनि, वशिष्ठदुहितः देवि ! ॥ ८० ॥ हे त्रिलोकवंदिते, गोमति, देवि ! मेरे पाप को हरिये ॥ ८१ ॥ हे असुरश्रेष्ठ ! जहां समुद्र गोमती के जल की बड़ी

कलौ ॥ अश्वमेधसहस्राणि कृत्वायत्फलमाप्यते ॥ ७७ ॥ तत्फलम्प्राप्यतेस्थित्वा द्वारावत्यांदिनेदिने ॥ गवांकोटिसहस्राणि रत्नकोटिशतानि च ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलंकृष्णसन्निधौ ॥ ७८ ॥ विनाज्ञानाद्विनाध्यानाद्विनाचेन्द्रियनिग्रहात् ॥ गत्वाकृष्णपुरींरम्यां लभतेफलमुत्तमम् ॥ ७९ ॥ श्रीकृष्णवक्त्रम्पश्यन्ति तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ अथ स्नानमन्त्रः ॥ वशिष्ठदुहितर्देवि शक्तिज्येष्ठेयशस्विनि ॥ ८० ॥ त्रैलोक्यवन्दितेदेवि पापम्मेहरगोमति ॥ ८१ ॥ गोमतीजलकल्लोलैः क्रीडतेयत्रसागरः ॥ तत्रस्नात्वासुरश्रेष्ठ सर्वतीर्थफलम्भवेत् ॥ ८२ ॥ अहोक्षेत्रस्यमाहात्म्यं समन्तात्क्रोशपञ्चकम् ॥ दिविस्थायत्रपश्यन्ति सर्वानेव चतुर्भुजान् ॥ ८३ ॥ यस्याःसीमाम्प्रविष्टस्य ब्रह्महत्यादिपातकम् ॥ नश्यतेदर्शनादेव ताम्पुरींको न सेवयेत् ॥ ८४ ॥ यत्र चक्राङ्किताः शैला गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ यच्छन्तिपूजितामोक्षं ताम्पुरींको न सेवयेत् ॥ ८५ ॥ यत्रचक्राङ्कितामृत्स्ना तिष्ठतेनिर्मलान्नृप ॥ कलौमलविनाशाय ताम्पुरींको न सेवयेत् ॥ ८६ ॥ सिंहस्थे

भारी लहरियों से क्रीड़ा करता है वहा नहाकर मनुष्य सब तीर्थों के फल को पाता है ॥ ८२ ॥ सब ओर पांच कोस क्षेत्र के माहात्म्य को आश्चर्य है जहां कि स्वर्ग में टिकेहुए प्राणी सबही चतुर्भुजों को देखते हैं ॥ ८३ ॥ व जिसकी सीमा में प्रविष्ट पुरुष का ब्रह्महत्यादिक पाप दर्शनही से नाश होजाता है उस पुरी को कौन नहीं सेवन करता है ॥ ८४ ॥ और गोमती व समुद्र के संगम में जहां पूजीहुई चक्रचिह्नित शिला मोक्ष को देती हैं उस पुरी को कौन नहीं सेवन करता है ॥ ८५ ॥ व हे राजन् ! जहां चक्र से चिह्नित निर्मल मिट्टी कलियुग में मलके विनाशने के लिये स्थित है उस पुरी को कौन सेवन नहीं करता है ॥ ८६ ॥ हे ब्राह्मणो ! बृहस्पति के सिंह

राशि में स्थित होनेपर गोदावरी में जो फल होता है वह फल श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में नहानेही से होता है ॥ ८७ ॥ व जो मनुष्य द्वारका में स्थित जल को छः महीने तक पीता है उसका शरीर चक्र से चिह्नित होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८८ ॥ ब्रह्मघाती या कृतघ्न तथा अगम्यागमन व सब पातक करनेवाला ब्राह्मण या चाण्डाल भी होवै ॥ ८९ ॥ या पुण्यवान् व पापी होवै कलियुग में जो इस पुरी में बसता है मैंने सब देवताओं के मध्य में उसको निश्चय कर मुक्ति दिया ॥ ९० ॥ कलियुग में जिसको देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी नहीं छोड़ते हैं उस पुरी को कर्म, मन व वचन से कौन नहीं सेवता है ॥ ९१ ॥ व जो द्वारका में बसते हैं वे कलि के

च गुरौविप्रा गोदावर्यां च यत्फलम् ॥ तत्फलंस्नानमात्रेण गोमत्यांकृष्णसन्निधौ ॥ ८७॥ द्वारकावस्थितंतोयं षण्मा सम्पिबतेनरः ॥ तस्यचक्राङ्कितोदेहो भवतेनात्रसंशयः ॥ ८८ ॥ ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा अगम्यागमनोपि वा ॥ सर्वपात ककर्त्ता वा विप्रो वा श्वपचोपि वा ॥ ८९ ॥ सुकृतीदुष्कृती वापि वसतीमाम्पुरींकलौ ॥ मुक्तिर्दत्तामयानूनं सर्वेषांत्रिदिवौ कसाम् ॥ ९० ॥ त्यजतेयांकलौ नैव कृष्णोदेवकिनन्दनः ॥ कर्मणामनसावाचा ताम्पुरींको न सेवयेत् ॥ ९१ ॥ न तेक लिवशंयान्ति द्वारकायांवसन्तिये ॥ व्याप्तम्पाखण्डिभिःसर्वं वर्जयित्वाहरेःपुरीम् ॥ ९२ ॥ तस्मात्कलियुगेप्राप्ते सेवनी याहरेःपुरी ॥ मन्वन्तरसहस्राणि काशीवासेनयत्फलम् ॥ ९३ ॥ तत्फलंद्वारकायान्तु वसताम्पञ्चभिर्दिनैः ॥ पीडय न्तिग्रहास्तावद् व्याधयोपि भवन्ति हि ॥ ९४ ॥ यावन्न पश्यतेभक्त्या कलौकृष्णपुरींनरः ॥ उपसर्गभयन्तावच्छाकि नीभूतसम्भवम् ॥ ९५ ॥ भक्त्या न पश्यतेयावत् कलौकृष्णप्रियान्नरः ॥ तावन्मृतप्रजानारी दुर्भगादैत्यपुङ्गव ॥ ९६ ॥

वश में नहीं प्राप्त होते हैं और विष्णुपुरी को छोड़कर सब स्थान पाखंडियों से व्याप्त है ॥ ९२ ॥ इस कारण कलियुग प्राप्त होनेपर विष्णुजी की पुरी सेवने योग्य है हज़ार मन्वन्तर तक काशीनिवास से जो फल होता है ॥ ९३ ॥ वह फल द्वारका में पांच दिनोंतक बसनेवालों को होता है तबतक ग्रह पीड़ित करते हैं व रोग भी होते हैं ॥ ९४ ॥ जबतक कि मनुष्य कलियुग में भक्ति से श्रीकृष्णजी की पुरी को नहीं देखता है तबतक शाकिनी और भूतों से उपजा हुआ उत्पात का भय होता है ॥ ९५ ॥ जबतक कि मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्णजी की प्यारी रुक्मिणीजी को नहीं देखता है हे दैत्यपुंगव ! तबतक स्त्री मृतवत्सा व दुर्भगा होती है ॥ ९६ ॥

जबतक कि मनुष्य कलियुग में भक्ति से श्रीकृष्णजी की प्यारी को नहीं देखता है रुक्मिणी, सत्यभामा देवी व जांबवती ॥ ९७ ॥ और मित्रविंदा, कालिन्दी, भद्रा व नाग्निजिती और लक्ष्मणा वहां ये विष्णुप्रिया वैष्णवी भलीभांति पूजने योग्य हैं ॥ ९८ ॥ नियमों व व्रतों से संयुत पुरुष विधिपूर्वक इनको गाने, बजाने के शब्दों से तथा दीपों व जागरण से भलीभाति पूजकर ॥ ९९ ॥ सब कामनाओं को पाता है और उसके ऊपर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं उसको बहुत दानों से क्या है और व्रतों व नियमों से क्या है ॥ १०० ॥ कि जिसने कृष्णप्रिया जगदम्बिका रुक्मिणीजी को देखा है और सब कामनाओं को देनेवाली रुक्मिणीजी मनुष्यों से

यावन्न पश्यतेभक्त्या कलौकृष्णप्रियान्नरः ॥ रुक्मिणीसत्यभामा च देवीजाम्बवती तथा ॥ ९७ ॥ मित्रविन्दा च कालिन्दी भद्रानाग्निजिती तथा ॥ सम्पूज्यालक्ष्मणा तत्र वैष्णव्याःकृष्णवल्लभाः ॥ ९८ ॥ एताःसम्पूज्यविधिवद्युक्तश्च नियमैर्व्रतैः ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्दीपैर्जागरणेन वा ॥ ९९ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति तस्यविष्णुःप्रसीदति ॥ किं तस्यबहुभिर्दानैः किंव्रतैर्नियमैश्च किम् ॥ १०० ॥ येनदृष्टाजगन्माता रुक्मिणीकृष्णवल्लभा ॥ सदार्चनीयामनुजैर्द्रष्टव्यासर्वकामदा ॥ १ ॥ तावद्भवभयम्पुंसां ग्रहभङ्गं भवेत्तथा ॥ यावन्न पश्यतेजन्तुः कलौकृष्णपुरीन्नरः ॥ २ ॥ तावद्गर्जन्तितीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ॥ यावत्कृष्णाङ्गसम्भूता दृश्यते न हि गोमती ॥ ३ ॥ प्रयागेमरणेमुक्तिर्मुक्तिःकाश्यां तथैव च ॥ द्वारकांहरिसान्निध्ये गोमत्यांस्नानमात्रतः ॥ ४ ॥ दत्तैस्तीर्थोदकैःपिण्डैः पितॄणांजायतेगतिः ॥ दृष्ट्वा तु गोमतीनीरम्प्रीतिंयान्तिपितामहाः ॥ ५ ॥ गोमत्यांयेमहीपाल स्नात्वाकुर्वन्तितर्पणम् ॥ पिण्डदानंपितॄणान्तु

सदैव पूजने योग्य व देखने योग्य हैं ॥ १ ॥ तबतक मनुष्यों को संसार का भय व ग्रहभंग होता है जबतक कि मनुष्य कलियुग में श्रीकृष्णजी की पुरी को नहीं देखता है ॥ २ ॥ और समुद्र व तड़ागों से लगाकर तीर्थ तबतक गरजते हैं जबतक कि श्रीकृष्णजी के अंग से उपजीहुई गोमती नहीं देखीजाती है ॥ ३ ॥ प्रयाग में मरने से मुक्ति होती है व काशी में मरने से मुक्ति होती है और द्वारका में श्रीकृष्णजी के समीप गोमती में स्नानही करने से मुक्ति होती है ॥ ४ ॥ तीर्थजल व पिंडों के देने से पितरों की गति होती है और गोमती का जल देखकर पितामह लोग प्रीति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ व हे भूपाल ! कलियुग में जो गोमती में नहाकर तर्पण करते हैं

उनके पितरों का पिंडदान गोमती के जल से होता है ॥ ६ ॥ व जिस प्रकार गोमती का जल देखने से तृप्ति होती है उस प्रकार लाखों तीर्थजलों से व सैकड़ों पिंडों के देने से नहीं होती है ॥ ७ ॥ वेदों के पारगामी व अग्निहोत्री सैकड़ों पैदा हुए पुत्रों से क्या है कि जिन्हों ने कलियुग प्राप्त होनेपर समुद्र के संगम में गोमती को नहीं देखा है ॥ ८ ॥ व समुद्र का संगम सर्वत्र महापवित्र है परन्तु गंगाजी के संगमसे मुक्ति होती है व गोमती के संगममें मुक्ति होती है ॥ ९ ॥ समुद्र प्रतिदिन अपना को कृतार्थ मानता है कि श्रीकृष्णजी के समीप मैं गोमती का जल मिलने से पवित्र हूं ॥ १० ॥ व गोमतीजी के जल से मिलेहुए मुझको जो नित्य देखते हैं उनकी पुनरावृत्ति

गोमतीवारिणाकलौ ॥ ६ ॥ दृष्टे तु गोमतीनीरे यथा तृप्तिःप्रजायते ॥ तथा तीर्थजलैर्लक्षैरेतैःपिण्डशतैरपि ॥ ७ ॥ किंजातैर्बहुभिःपुत्रैः साग्निकैर्वेदपारगैः ॥ यैर्न दृष्टाकलौप्राप्ते गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ ८ ॥ सर्वत्र च महापुण्यः सङ्गमः सरिताम्पतेः ॥ जाह्नवीसङ्गमान्मुक्तिर्गोमतीसङ्गमे तथा ॥ ९ ॥ मन्येत्कृतार्थमात्मानं प्रत्यहंसरिताम्पतिः ॥ गोमती नीरसंपर्कात्पूतोहंकृष्णसन्निधौ ॥ १० ॥ गोमतीनीरसंपृक्तं येमांपश्यन्तिनित्यशः ॥ न तेषांपुनरावृत्तिरित्याहस रिताम्पतिः ॥ ११ ॥ सभाग्योहंतदाजातो यदाकृष्णेनतेन वै ॥ मत्तीरेस्थापितायेन द्वारकामुक्तिदायिनी ॥ १२ ॥ कृष्णपादप्रसूताया सरिद्वैपूतकारिणी ॥ दृष्टातावेव नाथस्य पूतोहंनास्तिमत्समः ॥ १३ ॥ गोमतीनीरसंपर्के मज्जले स्नातियोनरः ॥ मुच्यतेब्रह्महत्याभिरन्यैःपातकसम्भवैः ॥ १४ ॥ द्वारकांगच्छमानस्य विपत्तिश्च भवेद्यदि ॥ न त स्यपुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ १५ ॥ यजत्येकोमहायज्ञैः सम्पूर्णैर्वरदक्षिणैः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यं

नहीं होती है ऐसा समुद्र ने कहा है ॥ ११ ॥ मैं उस समय उन श्रीकृष्णजी से सभाग्य हुआ जब कि मेरे किनारे जिन श्रीकृष्णजी ने मुक्तिदायिनी द्वारका को स्थापित किया ॥ १२ ॥ और श्रीकृष्णजी के चरणों से पैदा हुई जो नदी पवित्रकारिणी है स्वामी के उन चरणों को देखकर मैं पवित्र होगया और मेरे समान कोई नहीं है ॥ १३ ॥ और गोमती के जलसे मिश्रित मेरे जलमें जो मनुष्य नहाता है वह ब्रह्महत्याओं से तथा पातकों से उपजेहुए अन्य दोषों से छूटजाता है ॥ १४ ॥ और यदि द्वारका को जातेहुए पुरुष की मृत्यु होजावै तो करोड़ों सौ कल्पों से भी उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ १५ ॥ व एक मनुष्य उत्तम दक्षिणाओंवाले यज्ञों से पूजता है व

एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखता है वे दोनों समान फलवाले होते हैं ॥ १६ ॥ व सावधान होताहुआ एक मनुष्य बावली, कूप व तड़ागादिकों को करता है और एक देवेश श्रीकृष्णजी को देखता है वे दोनों तुल्य फलवाले होते हैं ॥ १७ ॥ व सावधान होताहुआ एक मनुष्य गङ्गादिक तीर्थों में नहाता है और प्राणायामादिकों से संयुत तथा ध्यान व ज्ञान में परायण होवै ॥ १८ ॥ व तीन पगों से जिन्हों ने त्रिलोक को नापलिया उन त्रिविक्रमजी को देखकर मनुष्य तीन पापों से छूटजाता है ॥ १९ ॥ और कलियुग में उस तीर्थ के समान व अधिक तीर्थ नहीं है और कलियुग प्राप्त होने पर समुद्र ने उस पुरी को डुबालिया ॥ २० ॥ और वहा श्रीकृष्णजी के मन्दिर

फलावुभौ ॥ १६ ॥ वापीकूपतडागानि करोत्येकःसमाहितः ॥ एकःपश्यतिदेवेशं कृष्णंतुल्यफलावुभौ ॥ १७ ॥ जाह्नव्यादिषुतीर्थेषु स्नायादेकःसमाहितः ॥ प्राणायामादिसंयुक्तो ध्यानज्ञानपरायणः ॥ १८ ॥ त्रिभिर्विक्रमणैर्येन विक्रान्तंभुवनत्रयम् ॥ त्रिविक्रमन्तु तंदृष्ट्वा मुच्यते पातकत्रयात् ॥ १९ ॥ तस्यतीर्थस्यतुल्यं हि नाधिकंविद्यते कलौ ॥ जलधिःप्लावयामास कलौप्राप्ते तु तांपुरीम् ॥ २० ॥ श्रीकृष्णमन्दिरंतत्र प्लावितुं नैव शक्यते ॥ प्रभासेसो मपर्वाणि द्वारकांमधुसूदनी ॥ प्रबोधनीरैवतके शयनीमाधवे तथा ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येऽष्ट त्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ कृष्णकृष्णेतिकृष्णेति नित्यंजाग्रन्स्वपंश्च यः ॥ कीर्त्तयेत्तु कलौ चैव कृष्णरूपीभवेद्धिसः ॥ १ ॥ नोष्णत्वं

को वह नहीं डुबासक्ता है प्रभास में चन्द्रग्रहण, द्वारकामें मधुसूदनी, रेवतक पर्वतपै प्रबोधिनी और माधव में शयनी एकादशी करना चाहिये ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामष्टत्रिंशतितमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । तीर्थ अनेकनकर कह्यो अति उत्तम परभाव । उन्तालिसवें में सोई कह्यो चरित्र सुहाव ॥ प्रह्लादजी बोले कि नित्य जागता या सोताहुआ जो मनुष्य हे कृष्ण, कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है वह कृष्णरूप होता है ॥ १ ॥ चन्द्रमा में गरमी व अग्नि में ठण्ढक नहीं होती है और एकादशी उपास करनेवाले वैष्णवों के पाप

नहीं होता है ॥ २ ॥ हे महाभाग ! कलिकाल के समान युग नहीं है नहीं है कि जिसमें विष्णुजी का स्मरण व कीर्तन करने से परमपद मिलता है ॥ ३ ॥ सम्पूर्ण एकादशी होकर यदि प्रतिदिन बढ़े तो उन्मीलिनी ऐसी प्रसिद्ध वह तिथियों के मध्य में उत्तम तिथि है ॥ ४ ॥ व व्यंजुली वासर में जो रात्रि में जागरण करते हैं उनको आधे मुहूर्त से दशहज़ार यज्ञों के समान पुण्य होता है ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठो ! सम्पूर्ण द्वादशी होकर दूसरे दिन त्रयोदशी तिथि में बढ़े तो वह व्यंजुली कलियुग में दुर्लभ है ॥ ६ ॥ और उन्मीलिनी को प्राप्त होकर जो जागरण करते हैं उनको आधे निमेष में करोड़ गौवों के फलको देनेवाला पुण्य होता है ॥ ७ ॥ व सम्पूर्ण

च न शीतत्वं द्विजराजेहुताशने ॥ वैष्णवानां न पापत्वमेकादश्युपवासिनाम् ॥ २ ॥ नास्ति नास्ति महाभाग कलिकालसमंयुगम् ॥ स्मरणात्कीर्तनाद्विष्णोः प्राप्यतेपरमंपदम् ॥ ३ ॥ सम्पूर्णैकादशीभूत्वा प्रत्यहंवर्द्धते यदि ॥ उन्मीलिनीतिविख्याता तिथीनामुत्तमातिथिः ॥ ४ ॥ व्यञ्जुलीवासरे ये वै रात्रौकुर्वन्तिजागरम् ॥ यज्ञा युतसमंपुण्यं मुहूर्तार्द्धेनजायते ॥ ५ ॥ सम्पूर्णाद्वादशीभूत्वा वर्द्धते चापरेदिने ॥ त्रयोदश्यांमुनिःश्रेष्ठा व्यञ्जुली दुर्लभा कलौ ॥ ६ ॥ उन्मीलिनीमनुप्राप्य ये कुर्वन्ति च जागरम् ॥ निमिषार्द्धेन तत्पुण्यं गवां कोटिफल प्रदम् ॥ ७ ॥ सम्पूर्णैकादशीभूत्वा प्रत्यहंवर्द्धतेयदि ॥ दर्शश्च पूर्णमासी च पक्षवृद्धिस्तदोच्यते ॥ ८ ॥ पक्षवृद्धिक रींप्राप्य ये करिष्यन्तिजागरम् ॥ निमिषार्द्धार्द्धमात्रेण भवेद्गोकोटिदंफलम् ॥ ९ ॥ गृहेपि कुर्वतामेतत् किंपुन र्विष्णुसन्निधौ ॥ द्वारावत्यांकलौप्राप्ते भवेत्कोटिगुणंफलम् ॥ १० ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ततःप्रभातसमये कृत्वास्नानं

एकादशी होकर यदि प्रतिदिन बढ़े और अमावस व पौर्णमासी बढ़े तो वह पक्षवृद्धि कहीजाती है ॥ ८ ॥ और पक्षवृद्धिकरी को प्राप्त होकर जो जागरण करते हैं उन को करोड़ गौवों को देनेवाला फल होता है ॥ ९ ॥ और घरमें भी करनेवालों को यह फल होता है फिर विष्णुजी के समीप क्या कहना है और कलियुग प्राप्त होने पर द्वारका में कोटिगुना फल होता है ॥ १० ॥ प्रह्लादजी बोले कि तदनन्तर प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान कर व विधिपूर्वक श्रीकृष्णजी को पूजकर तथा यथोदित

कर्म कर ॥ ११ ॥ वैष्णव ब्राह्मणों को अन्न पान से पूजै और अनेकभांति के वस्त्रों तथा गऊ, सुवर्ण से संयुत अन्नों से ॥ १२ ॥ विधिपूर्वक पूजकर वित्तशाठ्य न करै अथवा यथाशक्ति देकर वे बड़े यत्नसे प्रसन्न करने योग्य हैं ॥ १३ ॥ हे द्विजोत्तमो! ऐसा करनेपर वह कृतार्थ होता है और उसके तीन पुश्तियों में उपजेहुए पितर उत्तम स्थान को जाते हैं ॥ १४ ॥ और जो रौरव नरक में स्थित हैं व जो वृक्षत्व तथा कीटता को प्राप्त हैं वे वहांपर उसी चिह्न के रूप से शीघ्रही आकर स्थित होते हैं ॥ १५ ॥ और उनको देखकर मनुष्य विधाता से रचेहुए उत्तम मनोरथों को पाता है और पहले गंगा ऐसी प्रसिद्ध गोमती नदी वहीं पर है ॥ १६ ॥ उसको देख

यथाविधि ॥ सम्पूज्यकृष्णंविधिवत्कृत्वाकर्मयथोदितम् ॥ ११ ॥ विप्रान्भागवतांश्चैव पूजयेदन्नपानतः ॥ वस्त्रै र्बहुविधैरन्नैर्गोहिरण्यसमन्वितैः ॥ १२ ॥ सम्पूज्यविधिवत्तांस्तु वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ यथाशक्त्याथवा दत्त्वा तो षणीयाःप्रयत्नतः ॥ १३ ॥ एवंकृतेद्विजश्रेष्ठाः कृतकृत्योभवेद्धि सः ॥ गच्छन्तिपरमंस्थानं पितरस्त्रिकुलोद्भवाः ॥ १४ ॥ ये च रौरवसंस्थाश्च वृक्षकीटत्वमागताः ॥ तत्रैव लिङ्गरूपेण द्रुतमेत्यव्यवस्थिताः ॥ १५ ॥ तान्दृष्ट्वाप्राप्नुयात्कामा न्विधात्राविहिताञ्छुभान् ॥ नदीतुगोमतीतत्र पूर्वगङ्गेतिविश्रुता ॥ १६ ॥ तांदृष्ट्वापातकैर्घोरैर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ विधिस्तत्रैव द्रष्टव्यो ह्येषआत्महितेक्षणैः ॥ १७ ॥ कृष्णस्यवामपार्श्वे तु महापातकनाशिनी ॥ तत्रस्नात्वापितॄंस्तर्प्य न दुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥ तृप्यमानास्तु पितरो गच्छन्तिपरमांगतिम् ॥ कृकलासेतिविख्यातं तीर्थंकृष्णप्रद क्षिणे ॥ १९ ॥ स्नात्वातत्र पितॄंस्तर्प्य श्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ कृतकृत्योभवेत्सर्वादृणान्मुच्येतपैतृकात् ॥ २० ॥ दृष्टाऽ

कर भयंकर पातकों से मनुष्य छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है और वहां अपने हितको देखनेवाले पुरुषों को यह विधि देखना चाहिये ॥ १७ ॥ कि श्रीकृष्णजी के बायें ओर महापापविनाशिनी जो नदी है उसमें नहाकर व पितरों को तर्पण कर मनुष्य दुर्गति को नहीं पाता है ॥ १८ ॥ व तृप्त कियेहुए पितर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और श्रीकृष्णजी के दाहिने ओर कृकलास ऐसा प्रसिद्ध तीर्थ है ॥ १९ ॥ उसमें नहाकर व पितरों को तर्पणकर तथा विधिसे श्राद्धकर मनुष्य कृतार्थ होता है व पितरों के समस्त ऋणसे छूटजाता है ॥ २० ॥ और देखे व न देखेहुए भी पितर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं और वहां विष्णुपद नामक तीर्थ है उससे भी परमपद

होता है ॥ २१ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसमें स्नान व विधि से श्राद्ध करने पर उसके पितर उत्तम विष्णुजीके लोक को जाते हैं ॥ २२ ॥ और वह कृतार्थ होता है व यात्रा सफल होती है और वहींपर पापविनाशक गोप्रचारनामक तीर्थ है ॥ २३ ॥ उसको भलीभांति देखकर मनुष्य विष्णुजी के लोक को प्राप्त होता है क्योंकि जहां पुराण व पुरुषोत्तम देवेश श्रीकृष्णजी हैं ॥ २४ ॥ वहां वेद, यज्ञ, देवता और वहीं पर तीर्थ होते हैं और सदैव श्रीकृष्णजी को प्यारी रुक्मिणीजी वहां देखने योग्य हैं ॥ २५ ॥ उन जगदम्बिकाजी को देखकर मनुष्य तीनों पातकों से छूटजाते हैं और चक्रतीर्थ में नहाकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ २६ ॥ और

दृष्टाश्च पितरो गच्छन्तिपरमांगतिम् ॥ तत्रविष्णुपदंनाम तस्माच्चपरमंपदम् ॥ २१ ॥ तस्मिन्स्नानेकृतेविप्राः कृतेश्राद्धेविधानतः ॥ गच्छन्तिपितरस्तस्य वैष्णवंलोकमुत्तमम् ॥ २२ ॥ सभवेत्कृतकृत्यस्तु यात्रा च सफला भवेत् ॥ गोप्रचारन्तु तत्रैव तीर्थंपापविनाशनम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा च मानवःसम्यग् वैष्णवंलोकमाप्नुयात् ॥ यत्र कृष्णश्च देवेशः पुराणः पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥ तत्रवेदास्तथायज्ञादेवास्तीर्थानि तत्र वै ॥ रुक्मिणीतत्रद्रष्टव्या नित्यंकृष्णस्यवल्लभा ॥ २५ ॥ जगतीमातरंदृष्ट्वा मुच्यन्तेपातकत्रयात् ॥ चक्रतीर्थेनरःस्नात्वा मुच्यतेसर्वकिल्विषैः ॥ २६ ॥ सयातिपरमंस्थानं दाहप्रलयवर्जितम् ॥ चक्रंप्रक्षालितंतत्र कृष्णेन स्वयमेव हि ॥ २७ ॥ तेनैव चक्रतीर्थं हि मुख्यं हि परमं हरेः ॥ भवन्ति यत्र पाषाणाश्चक्राङ्कामुक्तिदायकाः ॥ २८ ॥ यैःपूजितैःसमुद्भाव्यं कृष्णसान्निध्यतांव्रजेत् ॥ तत्रैव यदि लभ्येत चक्रैर्द्वादशभिःसह ॥ २९ ॥ द्वादशात्मासविज्ञेयो मोक्षदःपरिकी

वह दाह व प्रलय से रहित उत्तम स्थान को जाता है वहां आपही श्रीकृष्णजीने चक्र को धोया है ॥ २७ ॥ उसी से विष्णुजी का उत्तम चक्रतीर्थ मुख्य है जिसमें कि चक्रसे पाषाण मुक्तिदायक होते हैं ॥ २८ ॥ व जिनको पूजने से मनुष्य श्रीकृष्णजी के समीप जाता है यह संभावना करना चाहिये और यदि वहीं बारह चक्रों समेत पत्थर मिलजावै ॥ २९ ॥ तो वह द्वादशात्मा जाननेयोग्य है और मोक्षदायक कहागया है और एक चक्र से संयुत पाषाण द्वारकापुरी में उत्तम

है ॥ ३० ॥ पूजित होकर सुदर्शन नामक जो यह केवल मोक्ष फलको देनेवाला है और दो चक्रों से चिह्नित लक्ष्मीनारायण संज्ञक पाषाण भुक्ति व मुक्ति फल को देने वाले हैं॥ ३१ ॥ और तीन चक्रों से चिह्नित अच्युत देव ऐन्द्रनामक स्थान को देनेवाला है और चार चक्रोंवाला जनार्दननामक लक्ष्मी का स्थान और शत्रुनाशक है ॥ ३२ ॥ व पाच चक्रों से चिह्नित वासुदेव नामक पाषाण जन्म, मृत्यु व वृद्धता का विनाशक है व छा चक्रोंसे संयुत यह पाषाण लक्ष्मी व सुन्दरता को देता है ॥ ३३ ॥ व सात चक्रों से संयुत बलदेवसंज्ञक पाषाण वंश व यशको बढ़ानेवाला है व आठ चक्रों से चिह्नित पुरुषोत्तमसंज्ञक पाषाण भक्ति से मनोरथ को देता है ॥ ३४ ॥ और

र्तितः ॥ एकचक्रेणपाषाणो द्वारवत्यांसुशोभनः ॥ ३० ॥ सुदर्शनाभिधेयोसौ मोक्षैकफलदोर्चितः॥ लक्ष्मीनारायणौ द्वाभ्यां भुक्तिमुक्तिफलप्रदौ ॥ ३१ ॥ त्रिभिश्चैवाच्युतोदेवऐन्द्राख्यपददायकः ॥ श्रीपदोरिपुहन्ता च चतुश्चक्रोजनार्दनः ॥ ३२ ॥ पञ्चभिर्वासुदेवस्य जन्ममृत्युजरापहः ॥ प्रद्युम्नःषड्भिरेवासौ लक्ष्मींकान्तिददाति च ॥ ३३ ॥ सप्तभिर्बलदेवश्च गोत्रकीर्त्तिप्रवर्द्धनः ॥ वाञ्छितंचाष्टभिर्भक्त्या ददातिपुरुषोत्तमः ॥ ३४ ॥ सर्वदद्यान्नवव्यूहो दुर्लभोयः सुरोत्तमैः ॥ राज्यप्रदोदशभिस्तु दशावतार एव च ॥ ३५ ॥ एकादशभिरैश्वर्यमनिरुद्धःप्रयच्छति ॥ निर्वाणं द्वादशात्मानुचक्रैर्द्वादशभिःस्मृतः ॥ ३६ ॥ अतऊर्द्ध्वमनन्तोसौ भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ येकेचित्तत्रपाषाणाः कृष्णचक्रेणमुद्रिताः ॥ ३७ ॥ तेषांस्पर्शनमात्रेण मुच्यतेसर्वकिल्विषैः ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं मनोवाक्कायकर्मजम् ॥ ३८ ॥ तत्सर्वं

नवव्यूह पाषाण सब कुछ देता है जोकि उत्तम देवताओं को भी दुर्लभ है व दश पाषाणों से संयुत दशावतारनामक राज्यको देता है ॥ ३५ ॥ और गेरह चक्रों से संयुत अनिरुद्धनामक पाषाण ऐश्वर्य को देता है व बारह चक्रों से द्वादशात्मानामक पत्थर मोक्षको देता है॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त अनन्तनामक यह भुक्ति मुक्ति को देनेवाला है और वह श्रीकृष्णजी के चक्रसे चिह्नित जो कोई पत्थर हैं॥ ३७॥ उनके स्पर्श करने से मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है और मन, वचन, कर्म व शरीर से उपजाहुआ ब्रह्महत्यादिक जो पाप है ॥ ३८ ॥ वह सब चक्रचिह्नित पाषाण के पूजने से नाश होजाता है और म्लेच्छदेश व उत्तम देश में भी यदि चक्रचिह्नित पाषाण

स्थित होवै ॥ ३९ ॥ तो बारह योजनतक वह पृथ्वी मेरा क्षेत्र है हे ब्राह्मणो ! पहले कहीहुई विधि से उस पाषाण को पूजै ॥ ४० ॥ जो कि मैंने मंत्र से गुप्त उत्तम विधि कही है एक वर्षतक उससे पूजन, दर्शन व स्पर्श जो मनुष्य करते हैं ॥ ४१ ॥ पाप आचरणवाले भी वे अव्यय विष्णुजी में प्रवेश करते हैं और मरणसमय प्राप्त होने पर जो चक्र से चिह्नित पापनाशक पाषाण को हृदयमें धारण करता है वह उत्तम गति को प्राप्त होता है और चक्र से चिह्नित पाषाण के हृदय में स्थित होनेपर जो यमराज के दूत हैं ॥ ४२ । ४३ ॥ वे श्रीकृष्णजी के चक्र को देखकर डरजाते हैं व समीप नहीं आते हैं और वह विष्णुजी के लोक को प्राप्त होता है इसमें विचार

विलयंयाति चक्राङ्कस्य तु पूजनात् ॥ म्लेच्छदेशेशुभेवापि चक्राङ्कोयदितिष्ठति ॥ ३९ ॥ योजनानिदशद्वे च ममक्षेत्रंवसुन्धरा ॥ पूर्वोक्तेन विधानेन पूजयेत्तन्तु वै द्विजाः ॥ ४० ॥ विधानंपरमंप्रोक्तं यन्मयामन्त्रसंवृतम् ॥ संवत्सरं च तत्पूजां दर्शनंस्पर्शनंनराः ॥ ४१ ॥ अपिपापसमाचारा विशेयुर्विष्णुमव्ययम् ॥ मृत्युकालेपि सम्प्राप्ते हृदये यस्तु धारयेत् ॥ ४२ ॥ चक्राङ्कं पापशमनं सयाति परमांगतिम् ॥ हृदिस्थिते च चक्राङ्के दूता वैवस्वतस्य च ॥ ४३ ॥ नोपसर्पन्तितेभीता दृष्ट्वाकृष्णपरिग्रहम् ॥ वैष्णवंलोकमाप्नोति नात्रकार्याविचारणा ॥ ४४ ॥ अपि पापसमाचारः किंपुनर्ब्राह्मणःशुचिः ॥ गोमतीसङ्गमेस्नात्वा भृगुतुङ्गे तथैव च ॥ ४५ ॥ मुच्यतेपातकैर्घोरैर्मानवो नात्रसंशयः ॥ दृष्ट्वातंदेवदेवेशं भक्ततत्परमानसम् ॥ ४६ ॥ तत्सर्वंलयमभ्येति निम्नगोत्थंयथार्णवे ॥ दुर्लभाद्वारका विप्रा दुर्लभंगोमतीजलम् ॥ ४७ ॥ दुर्लभंजागरंरात्रौ दुर्लभंकृष्णदर्शनम् ॥ श्रीप्रह्लाद उवाच ॥ द्वारकायास्तु

न करना चाहिये ॥ ४४ ॥ पाप आचरणवाला भी मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होता है फिर पवित्र ब्राह्मण को क्या कहना है और गोमती के संगम व भृगुतुंग में नहा कर ॥ ४५ ॥ मनुष्य भयंकर पापों से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है भक्ति में तत्पर मनवाले उन देवदेवेश श्रीकृष्णजी को देखकर ॥ ४६ ॥ वह सब पाप नाश होजाता है जैसे कि नदी से उठाहुआ जल समुद्र में लय होजाता है हे ब्राह्मणो ! द्वारका दुर्लभ है व गोमती का जल दुर्लभ है ॥ ४७ ॥ व रात्रि में जागरण व

श्रीकृष्णजीका दर्शन दुर्लभहै श्रीप्रह्लादजी बोले कि हे पौत्र ! मुझसे कहेहुए द्वारका के माहात्म्य को सुनिये ॥ ४८ ॥ और सुनते व कहतेहुए भी पुरुषकी निश्चयकर श्रीकृष्णजी में भक्ति होती है और सात पीछे व सात पहले की तथा सात स्त्रियों की पुश्तियां ॥ ४६ ॥ हे सत्पुत्र ! स्वर्ग को जाती हैं और वह अपना को भी तारता है पुत्र से मनुष्य लोकों को जीतता है व पुत्र से सुखको भोगता है ॥ ५० ॥ और पुत्र व पौत्र से मनुष्य स्वर्ग को जाता है और जिसका पुत्र पवित्र, प्रवीण और पहली अवस्था में धार्मिक होता है ॥ ५१ ॥ वह निश्चय कर कियेहुए दोष से पूर्वजों को तारता है हे पुत्र ! विद्वान्लोग जिसको धार्मिक व विष्णुभक्त कहते हैं ॥ ५२ ॥ हे महाभाग ! लक्ष्मी

माहात्म्यं शृणुपौत्रमयोदितम् ॥ ४८ ॥ शृण्वतोगदतश्चापि भक्तिःकृष्णेभवेद्ध्रुवम् ॥ सप्तापरास्सप्तपूर्वाः पत्नीनां चैव सप्त वै ॥ ४६ ॥ सत्पुत्रनाकंगच्छन्ति त्वात्मानंतारयेच्चसः ॥ पुत्रेणलोकान्नयति पुत्रेणसुखमश्नुते ॥ ५० ॥ अथ पुत्रेणपौत्रेण नाकमेवाधिरोहति ॥ यस्यपुत्रः शुचिर्दक्षः पूर्ववयसिधार्मिकः ॥ ५१ ॥ नियतःकृतदोषेण सतारयतिपूर्वजान् ॥ विष्णुभक्तं च यं पुत्रं धार्मिकं कवयो विदुः ॥ ५२ ॥ तंवैष्णवं महाभागा विधिज्ञन्तुश्रियान्वितम् ॥ ससमुद्राकरातेन सशैलवनकानना ॥ ५३ ॥ चतुस्समुद्रादत्ताभूर्योगतोद्वारकांकलौ ॥ माघ्यांमकरद्वादश्यां यत्फलंसङ्गमे स्मृतम् ॥ ५४ ॥ श्रावणेविष्णुपूजायां द्वारकास्मरणेलभेत् ॥ यत्किञ्चित्कुरुतेपापं पुरुषोलोभमोहितः ॥ ५५ ॥ निर्दहेत्पादमात्रेण द्वारकांगच्छते हि यः ॥ देहेभवन्तिरोमाणि यावन्तिपुरुषस्य हि ॥ ५६ ॥ तावद्युगानि वसते स्वर्गे

से संयुत व विधि से संयुत उसको वैष्णव कहते हैं और कलियुग में जो द्वारकापुरी को गया है उसने समुद्रों व खानियों समेत तथा पर्वत, वन व काननों सहित चारों समुद्रोंवाली पृथ्वी को दिया है और माघी में व मकरराशि में सूर्य के स्थित होनेपर द्वादशी तिथि में जो फल संगममें कहागया है ॥ ५३ । ५४ ॥ श्रावण में विष्णुजी के पूजन में द्वारका को स्मरण करने में उस फल को मनुष्य पाता है और लोभसे मोहित मनुष्य जो कुछ पाप करता है ॥ ५५ ॥ उसको पगभर से वह जलाता है जो कि द्वारका को जाता है व मनुष्य के शरीर में जितने रोम होते हैं ॥ ५६ ॥ उतने युगोंतक वह स्वर्ग में बसता है जो कि श्रीकृष्णजी की पुरी में बसता है सुवर्णशृंगी, रौप्यखुरी,

वस्त्रसमेत व कांस की दोहनी ॥ ५७ ॥ और बछड़ा समेत हज़ार कपिला गौवों को प्रतिदिन वेदपारगामी ब्राह्मण के लिये देकर मनुष्य जिस फलको पाता है ॥ ५८ ॥ आठदिन गोमती में नहानेही से मनुष्य उस फलको पाता है और होम के लिये जो अग्निहोत्रियों को दूधवाली गऊ को देता है ॥ ५९ ॥ गोमती में नहानेही से उससे लाखगुना फल होता है व हे दैत्यराजेन्द्र ! जो मनुष्य द्वारका में टिकेहुए एक यती को उत्तम भोजनों से भोजन कराता है तो कलियुग में लाखगुना फल होता है और श्रीकृष्णजी के समीप दुर्भिक्ष में कौपीनाच्छादनों समेत जो अन्न यतियों को देता है उसको कोटिगुना फल कहागया है और यज्ञों से प्रयोजन नहीं

कृष्णपुरीं वसेत् ॥ हेमशृङ्गं रूप्यखुरं सवस्त्रंकांस्यदोहनम् ॥ ५७ ॥ सवत्संकपिलानान्तु सहस्रन्तुदिनेदिने ॥ दत्त्वाय त्फलमाप्नोति ब्राह्मणेवेदपारगे ॥ ५८ ॥ तत्फलंस्नानमात्रेण गोमत्यामष्टभिर्दिनैः ॥ होमार्थमग्निहोतॄणां गांदद्या च्चपयस्विनीम् ॥ ५९ ॥ गोमत्यांस्नानमात्रेण फलंलक्षगुणंभवेत् ॥ यश्चैकंभोजयेद्भिक्षुं द्वारकायान्तुसंस्थितम् ॥६०॥ सुभक्ष्यैर्दैत्यराजेन्द्र फलंलक्षगुणंकलौ ॥ फलंकोटिगुणं प्रोक्तं दुर्भिक्षेकृष्णसन्निधौ ॥ ६१ ॥ अन्नदातायतीनान्तु कौपी नाच्छादनादिकैः ॥ प्रयोजनं न क्रतुभिर्नास्तितीर्थैःप्रयोजनम् ॥ ६२ ॥ यत्र वा तत्र वा कार्यं यतीनांप्रीणनं सदा ॥ यतयस्ते च विज्ञेयाः कलौभागवता हि ये ॥ ६३ ॥ शूद्रादीनान्तुदातव्यं दानमात्महितैषिणा ॥ किं पुनर्ब्राह्मणाभक्ताः कलौकृष्णस्ययेरताः ॥ ६४ ॥ अपि वा दैत्य ते धन्या ये गता द्वारकांपुरीम् ॥ प्राप्तान्भागवतान्ये वै पितॄनुद्दिश्यभक्ति तः ॥ ६५ ॥ भक्तान्सम्पूजयिष्यन्ति वस्त्रैर्दानैस्सुभूरिभिः ॥ गयापिण्डेन नास्माकं तृप्तिर्भवतितादृशी ॥ ६६ ॥ यादृशी

है व तीर्थों से प्रयोजन नहीं है ॥ ६०।६१।६२ ॥ परन्तु जहां तहां सदैव यतियों को तृप्त करना चाहिये जो कलियुग में भगवद्भक्त हैं वे यती जानने योग्य हैं ॥ ६३ ॥ अपना हित चाहनेवाले पुरुष को शूद्रादिकों को भी दान देना चाहिये फिर कलियुग में जो श्रीकृष्णजी के भक्त व परायण ब्राह्मण हैं उनको क्या कहना है ॥ ६४ ॥ व हे दैत्य ! वे भी धन्य हैं जोकि द्वारकापुरी को गये हैं और प्राप्त हुए भगवद्भक्तों को बहुत से वस्त्रों व दानों से पितरों को उद्देश कर जो भक्ति से पूजेंगे हमारी गयापिंड से वैसी तृप्ति नहीं होती है ॥ ६५ । ६६ ॥ जैसी प्रीति विष्णुजी के भक्तों के सत्कारों से मिलती है और वैशाख में श्रीकृष्णजी के समीप शुक्लपक्ष या

कृष्णपक्ष में रात्रिको जागरण से संयुत जो मनुष्य द्वादशी करैं वे गोमती में स्नान कर मुक्तिदायक श्राद्ध कर ॥ ६७ । ६८ ॥ श्रीकृष्णदेवजी को नहवाकर पश्चात् लेपन करैं और पूजनकर व वसनको पहनाकर जगद्गुरु श्रीकृष्णजीको धुपाकर ॥ ६९ ॥ दीप व नैवेद्य देवै उसके उपरान्त नीराजन करै और भक्ति से श्रीकृष्णजी के मस्तक पै जल समेत शङ्ख को घुमावै ॥ ७० ॥ पश्चात् हे दैत्येन्द्र ! स्तुति से पवित्र पुरुष प्रदक्षिणा करै व सहस्रनाम को पढ़ताहुआ मनुष्य दंडवत् नमस्कार करै ॥ ७१ ॥ पश्चात् श्रीकृष्णजी से क्षमापन करावै और रात्रि में जागरण करै व द्वारका से उपजेहुए उत्तम माहात्म्य को पढ़ना चाहिये ॥ ७२ ॥ और श्रीकृष्णजी के बालक्रीडादिक

विष्णुभक्तानां सत्कारैःप्रीतिराप्यते ॥ वैशाखेयेकरिष्यन्ति द्वादशींकृष्णसन्निधौ ॥ ६७ ॥ शुक्लपक्षे तथा कृष्णे रात्रौजागरणान्विताः ॥ कृत्वास्नानन्तु गोमत्यां श्राद्धंकृत्वा तु मुक्तिदम् ॥ ६८ ॥ देवस्यस्नपनं कृत्वा पश्चात्कुर्वन्तिलेपनम् ॥ कृत्वार्चनंपरीधानं धूपयित्वाजगद्गुरुम् ॥ ६९ ॥ दद्याद्दीपं च नैवेद्यं कुर्यान्नीराजनं ततः ॥ सजलं भ्रामयेच्छङ्खं भक्त्याकृष्णशिरस्यपि ॥ ७० ॥ पश्चात्कुर्यात्तु दैत्येन्द्रस्तुतिपूतःप्रदक्षिणाम् ॥ कुर्याद्दण्डनमस्कारं पठन्नामसहस्रकम् ॥ ७१ ॥ कृष्णंक्षमापयेत्पश्चाद्रात्रौकुर्यात्तुजागरम् ॥ माहात्म्यंपठनीयन्तु द्वारकासम्भवंशुभम् ॥ ७२ ॥ कृष्णस्यबालक्रीडादिलीलायाश्चरितानि च ॥ क्रीडनंगोकुलस्यापि क्रीडागोपीजनस्य च ॥ ७३ ॥ कृष्णावतारकर्माणि श्रोतव्यानि पुनः पुनः ॥ नृत्यं गीतं च कर्तव्यं सोत्कण्ठं च पुनः पुनः ॥ ७४ ॥ पद्मपत्रायताक्षस्य सुवीक्ष्यं वदनं हरेः ॥ रुक्मशृङ्गीं रूप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम् ॥ ७५ ॥ कांस्योपदोहनांधेनुं वस्त्रयुग्मैरलंकृताम् ॥ सवत्सांब्राह्मणेदत्त्वा होमार्थं चाहिताग्नये ॥ ७६ ॥ निमेषस्य शतांशेन फलंकृष्णस्यजागरे ॥

लीलाओं के चरित्र व गोकुल की क्रीडा तथा गोपीजन की क्रीडा ॥ ७३ ॥ और श्रीकृष्णावतारके कर्मों को बार २ सुनना चाहिये व उत्कंठा समेत बार २ नृत्य व गीत करनाचाहिये ॥ ७४ ॥ व कमलपत्र के समान चौड़े नेत्रवाले विष्णुजी के मुख को देखनाचाहिये और स्वर्णशृंगी, रौप्यखुरी व मोतियों की पुच्छसे भूषित ॥ ७५ ॥ तथा दो वस्त्रों से भूषित और कांस्यकी दोहनीवाली तथा बछड़ा समेत गऊको अग्निहोत्री ब्राह्मण के लिये देकर जो फल होता है ॥ ७६ ॥ वही फल श्रीकृष्णजी के जागरणमें

निमेष के शतांश से होता है और करोड़ जन्म में मनुष्य जो कुछ पाप करताहै ॥ ७७ ॥ रात्रि में श्रीकृष्णजी के जागरण में उसको जलाताहै इसमें सन्देह नहीं है व श्रीकृष्णजी के समीप जो विष्णुजी के सहस्रनाम को पढ़ता है ॥ ७८ ॥ वह प्रत्येक अक्षर में गौवों के करोड़फल को देनेवाले पुराय को पाताहै व श्रीकृष्णजी के दर्शन में जो गीता व सहस्रनाम को पढ़ताहै ॥ ७६ ॥ और कलियुग में विष्णु के दिनमें जो मनुष्य द्वारकापुरीमें रात्रि को जागरण करता है वह मनुष्य सौकरोड़ पुश्तियोंको विष्णुलोक में लेजाताहै ॥ ८० ॥ व रात्रि में जो मनुष्य विष्णुजी के प्रिय भागवत पुराणको पढ़ताहै वह उतने समयतक स्वर्ग में बसताहै जबतक कि सूर्य व देवता रहतेहैं ॥ ८१ ॥

यत्किञ्चित्कुरुते पापं कोटिजन्मनिमानवः ॥ ७७ ॥ कृष्णस्य जागरे रात्रौ दहतेनात्रसंशयः ॥ विष्णोर्नामसहस्रन्तु यः पठेत्कृष्णसन्निधौ ॥ ७८ ॥ प्रत्यक्षरंलभेत्पुण्यं गवांकोटिफलप्रदम् ॥ गीतानामसहस्रे तु यः पठेत्कृष्णदर्शने ॥ ७६ ॥ द्वारकायां दिने विष्णो रात्रौजागरणंकलौ ॥ नयेत्सविष्णुलोकन्तु कुलकोटिशतन्नरः ॥ ८० ॥ यः पठेद्भागवतंरात्रौ पुराणंदयितंहरेः ॥ तावत्कालं वसेत्स्वर्गे यावत्सूर्योदिवौकसः ॥ ८१ ॥ येनद्वारावतींगत्वा कृतंकृष्णावलोकनम् ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं यत्र तत्र स्थितोपिसन् ॥ ८२ ॥ पठतेजागरेरात्रौ द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ सकलंफलमाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ ८३ ॥ तस्माज्जागरणे रात्रौ पठनीयन्तुभक्तितः ॥ आस्फोटयन्ति पितरः प्रहर्षन्ति पितामहाः ॥ ८४ ॥ पठन्तंस्वसुतंदृष्ट्वा माहात्म्यं कृष्णसम्भवम् ॥ कृष्णाजिनं यः पुरुषो दधेद्वर्षशतं सदा ॥ ८५ ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं जागरेपठनेसमम् ॥ श्रावण्यां श्रवणयुक्तायां जलधेनुप्रदंफलम् ॥ ८६ ॥ तत्फ

मनुष्य रात्रि में द्वारका से उपजे हुए माहात्म्य को पढ़ता है वह और जिसने द्वारकापुरी को जाकर श्रीकृष्णजी को देखा है और जहां तहां भी स्थित होताहुआ भी जो चक्रपाणिजी की प्रसन्नता से समस्तफलको पाता है ॥ ८२ । ८३ ॥ इस कारण रात्रि में भक्तिसे जागरण में माहात्म्य को पढ़ना चाहिये व श्रीकृष्णजी से उपजेहुए माहात्म्य को पढ़तेहुए अपने पुत्र को देखकर पितर आनन्द होते हैं व पितामह लोग प्रसन्न होते हैं और सौ बरसतक जो मनुष्य रुदैव कृष्णाजिन को धारण करता है ॥ ८४ । ८५ ॥ और जागरण में जो द्वारका का माहात्म्य पढ़ता है उन दोनों को समान फल होता है और श्रवण से संयुत श्रावणी में जो जलधेनु को देनवाला फल है ॥ ८६ ॥ उस फल

को मनुष्य द्वारका में प्रतिदिन पाता है और बहुत दक्षिणाओंवाले बहुतसे सब यज्ञोंको करके जो फल मिलताहै ॥ ८७ ॥ उस फल को मनुष्य श्रीकृष्णजी के समीप आधे दिनमें पाताहै और यत्न से सांगोपाग समस्त वेदों को पढ़कर ॥ ८८ ॥ जिस फलको कृष्णजी में लगेहुए मनवाला मनुष्य भलीभांति पाता है उस फल के हज़ारवें भाग को भी अन्य किसी कर्म से नहीं पाता है ॥ ८९ ॥ और राग व द्वेष की अग्नि से जलेहुए अज्ञान विषयवाले पुरुषों को वैष्णव धर्म औषध है जैसे कि रोगार्तों को औषध होती है ॥ ९० ॥ और हेतुवादों की कुदृष्टियों से अज्ञानरूपी तिमिर से अन्धजनों को यह विष्णुशास्त्रदीपक सदैव विद्वानों से ध्यान करनेयोग्य है ॥ ९१ ॥ और ब्रह्मावर्त के

लं समवाप्नोति द्वारावत्यां दिनेदिने ॥ यज्ञान्सर्वास्तथेष्ट्वा च बहुशो भूरिदक्षिणान् ॥ ८७ ॥ लभेत्फलंदिनार्द्धेन द्वारकाकृष्णसन्निधौ ॥ वेदान्सर्वास्तथाधीत्य साङ्गोपाङ्गांश्च यत्नतः ॥ ८८ ॥ यत्फलंलभतेसम्यक् कृष्णस्यार्पितमानसः ॥ न तत्फलसहस्रांशं प्राप्नोत्यन्येन केनचित् ॥ ८९ ॥ रागद्वेषाग्निदग्धानामज्ञानविषयात्मनाम् ॥ चिकित्सा वैष्णवंधर्मं रोगार्तानामिवौषधम् ॥ ९० ॥ अज्ञानतिमिरान्धानां हेतुवादकुदृष्टिभिः ॥ विष्णुशास्त्रप्रदीपोयं ध्येयोनित्यं हि सूरिभिः ॥ ९१ ॥ ब्रह्मावर्तसमोदेश ऋषिदेशःसकथ्यते ॥ मध्यदेशःसविज्ञेयो यत्र जागरणं हरेः ॥ ९२ ॥ ब्रह्मावर्त्ताधिकोदेश आर्यदेशो विशेषतः ॥ ९३ ॥ मध्यदेशो महाभाग शालग्रामशिलायतः ॥ तंम्लेच्छसदृशं देशं पवित्रन्तु परित्यजेत् ॥ ९४ ॥ शालग्रामशिला नैव यत्र भागवतो न हि ॥ त्यजेत्तीर्थं महापुण्यं पुण्यं चायतनं त्यजेत् ॥ ९५ ॥ त्यजेत्पुण्यं तथारण्यं यत्र न द्वादशीव्रतम् ॥ सदेशोपिभवेन्निन्द्यो वैष्णवानोहरेर्व्रतम् ॥ ९६ ॥ कुदेशो

समान वह ऋषिदेश कहाजाता है और वह मध्यदेश जानने योग्यहै जहां कि विष्णुजीका जागरण होवै ॥ ९२ ॥ और विशेषकर ब्रह्मावर्त से अधिक वह आर्यदेश ॥ ९३ ॥ व बड़ा ऐश्वर्यवान् मध्यदेश है जहां कि शालग्रामशिला होवै और उस पवित्र देशको म्लेच्छदेश के समान छोड़देवै ॥ ९४ ॥ जहां कि शालग्रामशिला व वैष्णव न होवै और उस महापवित्र तीर्थ को छोड़देवै व पुण्यस्थान को छोड़देवै ॥ ९५ ॥ और उस पवित्र वन को छोड़देवै जहां कि द्वादशीव्रत न होवै और वह देश भी निन्दा करने योग्य है जहां कि वैष्णव व विष्णुजी का व्रत न होवै ॥ ९६ ॥ और वह कुदेश भी पवित्र होता है जहां कि कलियुग में वैष्णव होवैं और चैत वैशाख में जो मनुष्य

श्रीकृष्णजी को रथारूढ़ करते हैं ॥ ९७॥ करोड़सौ पुश्तियों से संयुत वे सब मुक्ति को प्राप्त होते हैं और जो मनुष्य देवकीनन्दनजी के लिये रथ को बनवाते हैं ॥ ९८॥ वे पितरों समेत कल्प पर्यन्त विष्णुलोक में बसते हैं और इस उत्तम मंत्र से रथवृक्ष की प्रार्थना करै ॥ ९९ ॥ कि तुम क्षीरक हो और तुम पुलिनहो व तुम उत्तम वनस्पति हो हे वृक्ष ! तुमको स्पर्श करने से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ १०० ॥ व अपने मार्ग में स्थित होवैं या पराये मार्ग में स्थित होवैं और साधु या असाधु होवैं कलियुग में जो द्वारकापुरी को जाता है वह पुण्यफल को पाता है ॥ १ ॥ और जो कलियुग में द्वारका का माहात्म्य सुनता है व मनुष्यों के मध्य में जो भाव

पि भवेत्पूतो यत्र भागवताःकलौ ॥ रथारूढं प्रकुर्वन्ति ये कृष्णं मधुमाधवे ॥ ९७ ॥ मुक्तिंप्रयान्तितेसर्वे कुलकोटि समन्विताः ॥ देवकीनन्दनस्यार्थे रथं ये कारयन्ति वै ॥ ९८ ॥ कल्पान्तं विष्णुलोके तु वसन्ति पितृभिस्सह ॥ अनेनोत्तममन्त्रेण रथवृक्षं च प्रार्थयेत् ॥ ९९ ॥ त्वंक्षीरकस्त्वं पुलिनस्त्वं वनस्पतिरुत्तमः ॥ वृक्ष्यतेस्पर्शमात्रेण सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १०० ॥ स्वमार्गस्थाविमार्गस्था साधवोवाप्यसाधवः ॥ पुण्यंफलमवाप्नोति योगतोद्वारकां कलौ ॥ १ ॥ द्वारकायाश्च माहात्म्यं यश्शृणोति कलौनृणाम् ॥ भावमुत्पादयेद्यो वै लभेत्क्रतुशतंफलम् ॥ २ ॥ योनार्चयति पापिष्ठो कृष्णमन्यत्रगच्छति ॥ कोटिजन्मार्जितं पुण्यं हरते रुक्मिणीपतिः ॥ ३ ॥ द्वारकामाहात्म्यमिदं दृष्ट्वा वै रुक्मिणीपतिम् ॥ दानंददातियस्तत्र पुनर्यज्ञायुतं फलम् ॥ ४ ॥ लभेत्सागरमध्यस्थं सपश्येच्छङ्खिनं कलौ ॥ महापापानि नश्यन्ति जन्मकोटिकृतानि तु ॥ ५ ॥ शङ्खोद्धारसमुद्भूतां नित्यं देहे बिभर्त्ति यः ॥ मृत्तिकांदैत्यराजेन्द्र

को उत्पन्न करता है वह सौ यज्ञों के फल को पाता है ॥ २ ॥ और जो पापी पुरुष श्रीकृष्णजी को नहीं पूजता है व अन्यत्र जाता है उसके करोड़जन्मों में इकट्ठा कियेहुए पुण्य को रुक्मिणीनाथ जी हरते हैं ॥ ३ ॥ और रुक्मिणीनाथजी को देखकर इस रुक्मिणीमाहात्म्य को जो दान देता है वह फिर दशहज़ार यज्ञों का फल ॥ ४ ॥ पाता है और वह मनुष्य समुद्र के मध्यमें स्थित शंखधारीजी को देखता है उसके करोड़ जन्मों में कियेहुए महापाप नाश होजाते हैं ॥ ५ ॥ व हे दैत्येन्द्र !

शंखोद्धार से उपजीहुई मृत्तिका को जो नित्य शरीर में धारण करता है उसका फल सुनिये मैं कहताहूं ॥ ६ ॥ कि नित्य सौभार सुवर्ण को जो यतियों को देता है और जो वैष्णवों को देता है उस पुण्य को मनुष्य पाता है ॥ ७ ॥ और जिसके घर में सदैव शंखोद्धार की मृत्तिका स्थित रहती है वह नित्य कियेहुए यज्ञ के कोटिगुने फल को पाता है ॥ ८ ॥ और करोड़ों पापों से संयुत भी उस पुरुष से यमदूत कांपते हैं और विष्णुजी के स्थान से उपजीहुई मृत्तिका जिसके घर में होती है ॥ ९ ॥ व जिसके मस्तक में गोपीचन्दन संज्ञक त्रिपुण्ड्र होता है ॥ १० ॥ हे बले ! उसके घर को कभी विष्णुप्रिया लक्ष्मीजी नहीं छोड़ती हैं और उसको ग्रह पीडित नहीं करते

शृणुवक्ष्यामि तत्फलम् ॥ ६ ॥ यो ददाति यतीनां च वैष्णवानां प्रयच्छति ॥ स्वर्णभारशतं पुण्यं नित्यं प्राप्नोति मानवः ॥ ७ ॥ गृहेयस्य सदातिष्ठेच्छङ्खोद्धारस्यमृत्तिका ॥ नित्यं क्रतुकृतं पुण्यं लभेत्कोटिगुणंफलम् ॥ ८ ॥ पाप कोटियुतस्यापि धुवन्तियमकिङ्कराः ॥ विष्णुस्थानसमुद्भूता मृत्तिका यस्य मन्दिरे ॥ ९ ॥ यस्यपौण्ड्रं ललाटे तु गोपीचन्दनसंज्ञिकम् ॥ १० ॥ न जहाति गृहं तस्य लक्ष्मीःकृष्णप्रियाबले ॥ बाध्यन्ते न ग्रहास्तस्य न रोगा न च राक्षसाः ॥ ११ ॥ पिशाचा न च कूष्माण्डा न च प्रेता विजृम्भकाः ॥ नाग्निचौरभयं तस्य रिपूणां चैव शृङ्गिणाम्॥१२॥ शाकिनीनां न राज्ञां च न दैवं भौतिकं भयम् ॥ न रोगजं नाधिजं च न दरिद्रस्यसम्भवम् ॥ १३ ॥ विद्युदुल्काभयं नैव न चोत्पातसमुद्भवम् ॥ नारिष्टं नाप्यशकुनमनिमित्तादिकं च यत् ॥ १४ ॥ कृते जागरणे रात्रौ द्वादशीवञ्जु

हैं व रोग और राक्षस पीडा नहीं करते हैं ॥ ११ ॥ और न पिशाच, न कूष्माण्ड, न प्रेत बाधा करते हैं और उसको अग्नि व चोर की भय नहीं होती है न शत्रुवों और न शृंगवाले प्राणियोंकी भय होती है ॥ १२ ॥ और शाकिनियों की व राजाओं की भय नहीं होती है और दैविक व भौतिक भय नहीं होती है तथा रोगसे उत्पन्न व मानसी व्याधि से उत्पन्न तथा दरिद्र से उपजाहुआ डर नहीं होता है ॥ १३ ॥ और बिजली व उल्का की भय तथा उत्पात से उपजाहुआ भय नहीं होता है और न अरिष्ट न अशकुन और जो अनिमित्तादिक है ॥ १४ ॥ वह डर वंजुली द्वादशी के दिन रात्रि में जागरण करने से व हे पौत्र ! भागवत के श्लोकका एक चरण कीर्तन

करने से नहीं होता है ॥ १५ ॥ और विष्णुशास्त्र के पढ़ने व विष्णुप्रिय के दर्शन करने से व विष्णुजीका रथोत्सव करने से और नित्य पीपल का दर्शन करने से ॥१६॥ व हे पौत्र ! विष्णुभक्त का सत्कार करने से व शालग्रामशिला को पूजने से तथा नैवेद्य का भक्षण करने से भी उपरोक्त भय नहीं होती है ॥ १७ ॥ व विष्णुजी को तुलसी के पूजन से और विजया वासर करने से व दोनों पक्षों में व्रत करने से और हेमन्तऋतु में जल में स्थित होने से ॥ १८ ॥ वैसेही हे पौत्र ! ग्रीष्मसमय में त्रिस्पृशा का उपास व धात्रीव्रत और पीपल से उपजेहुए व्रत को करने से उपरोक्त भय नहीं होती है ॥ १९ ॥ जो उन्मीलिनी व पक्षवर्द्धिनी एकादशी करते हैं और

लीदिने ॥ पौत्रभागवतस्यापि श्लोकपादस्यकीर्तने ॥ १५ ॥ विष्णुशास्त्रस्यपठने दर्शनेभगवत्प्रिये ॥ रथोत्सवे कृते विष्णोर्नित्यं चाश्वत्थदर्शने ॥ १६ ॥ सत्कृते विष्णुभक्ते च शालग्रामशिलार्चने ॥ पीतेपादोदके पौत्र नैवेद्य स्यापि भक्षणे ॥ १७ ॥ तुलसीपूजने विष्णोर्विजयावासरेकृते ॥ पक्षद्वयव्रतैश्चीर्णैर्हेमन्तेजलसंस्थिते ॥ १८ ॥ ग्री ष्मकालेषु च तथा त्रिस्पृशासमुपोषणे ॥ कृतेधात्रीव्रतेपौत्र तथाश्वत्थसमुद्भवे ॥ १९ ॥ उन्मीलिनींप्रकुर्वन्ति तथा पक्षविवर्द्धनीम् ॥ जयन्तींश्रावणेमासि द्वादशींरोहिणीयुताम् ॥ २० ॥ प्रबोधिनींविशेषेण व्रतंरम्भासमुद्भवम् ॥ श्राव णेश्रृणुते वापि पठतेहरिसन्निधौ ॥ २१ ॥ शास्त्रंभागवतं नित्यं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥ दशम्यांनक्तभोजीस्याद्द्वाद श्यां च विशेषतः ॥ २२ ॥ त्यजेत्परान्नंशक्तःसन् द्वादशीव्रतकृन्नरः ॥ कुर्याज्जागरणं रात्रौ शक्त्याकुर्यात्तु दानक म् ॥ २३ ॥ विशेषपूजां देवस्य स्वशक्त्याकारयेद्बले ॥ २४ ॥ गीतवाद्यविनोदेन हास्यसन्तुष्टमानसैः ॥ कार्यं

श्रावण महीने में रोहिणी संयुत जयन्ती तथा द्वादशीव्रत को जो करते हैं ॥ २० ॥ और विशेषकर प्रबोधिनी तथा रंभा से उपजेहुए व्रत को जो करते हैं व विष्णुजी के समीप जो श्रद्धा व भक्तिसंयुत मनुष्य श्रावण महीने में भागवत शास्त्र को नित्य सुनता या पढ़ता है वह दशमी में रात्रि को भोजन करै व द्वादशी में विशेषकर नक्त-भोजी होवै ॥ २१ । २२ ॥ और द्वादशीव्रत को करनेवाला समर्थ मनुष्य पराये अन्न को त्याग करै और रात्रि में जागरण करै व शक्ति के अनुसार दान करै ॥ २३ ॥ व हे बले ! अपनी शक्ति के अनुसार विष्णुदेवजी की विशेष पूजा करै ॥ २४ ॥ और हास्य से प्रसन्नमनवाले पुरुषों को गाने, बजाने के विनोद से और पुराण की

कथाओं से रात्रि में जागरण करना चाहिये ॥ २५ ॥ और जो उत्तम पुरुष द्वादशी तिथि में श्रीगंगाजी की मिट्टी से उपजेहुए व गोपीचन्दन संज्ञक तिलकों को करते हैं ॥ २६ ॥ हे पौत्र! उनको उत्तम केसर छोड़कर त्रिपुण्ड्र करना चाहिये और वैष्णव धर्मों से चतुर जो पुरुष भलीभाति वैष्णवों का प्रसाधन करता है वह पहले कहे हुए भयों से छूटजाता है और तीर्थ व्रत व यज्ञ को करके कोटिगुना फल होता है ॥ २७ । २८ ॥ और वैष्णव मनुष्य अपनी करोड़सौ पुश्तियों को तारता है और कलियुग में एक दिनसे मनुष्य उत्तम फल को पाता है ॥ २९ ॥ हे पौत्र! पुरातन समय जो विष्णुदेवजी से कहागया है उसको मैं कहता हूं सुनिये कि जो देवदेव

जागरणं रात्रौ पौराणैश्च कथानकैः ॥ २५ ॥ द्वादश्यां ये च कुर्वन्ति तिलकानिमहाजनाः ॥ गोपीचन्दनसंज्ञानि गङ्गामृत्स्नोद्भवानि च ॥ २६ ॥ केसरं च वरं त्यक्त्वा कार्यं पौत्र च पुण्ड्रकम् ॥ विदग्धो वैष्णवैर्धर्मैर्वैष्णवानांप्रसाधनम् ॥ २७ ॥ सम्यक्प्रसाधयेद्यस्तु पूर्वोक्तैर्मुच्यतेभयैः ॥ तीर्थव्रतंमखं कृत्वा फलंकोटिगुणंभवेत् ॥ २८ ॥ स्वकुलानांकोटिशतं तारयेद्वैष्णवोनरः ॥ परंफलमवाप्नोति दिनैकेनकलौयुगे ॥ २९ ॥ पुरादेवेनकथितं शृणुपौत्रवदाम्यहम् ॥ यःस्यात्तु देवदेवस्य रुद्रादित्ययमस्य च ॥ ३० ॥ भक्तोभागवतश्रेष्ठं तमहंमानयेसदा ॥ प्रियाभागवतायेषां तेषांतुष्टोस्म्यहंसदा ॥ ३१ ॥ विहायकाशींमथुरामवन्तींसर्वपापहाम् ॥ मायांकाञ्चीमयोध्यां च सम्प्राप्ते तु कलौयुगे ॥ ३२ ॥ वसाम्यहं द्वारकायां सर्वदाप्रिययासह ॥ तीर्थव्रतैर्यज्ञदानैर्वेदपाठैस्तथैव च ॥ ३३ ॥ श्रद्धात्यागेनभक्तोमांयस्तोषयितुमिच्छति ॥ गत्वाद्वारवतींरम्यां द्रष्टव्योहंकलौयुगे ॥ ३४ ॥ न मखैर्नापि च ध्यानैर्न दानैर्व्रतसेवनैः ॥ मत्प्रीति

विष्णुजी का व रुद्र, आदित्य और यमराज का ॥ ३० ॥ भक्त होता है उस श्रेष्ठ वैष्णव को मैं सदैव मानताहूं व जिनको वैष्णव प्रिय हैं उनके ऊपर मैं सदैव प्रसन्न होता हूं ॥ ३१ ॥ और कलियुग प्राप्त होने पर सब पापों को नाशनेवाली काशी, मथुरा व अवन्ती, माया, कांची और अयोध्या को छोड़कर ॥ ३२ ॥ स्त्री समेत मैं सदैव द्वारका में वसता हूं और तीर्थ व्रतों से व यज्ञों तथा दानों से और वेदपाठों से ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य श्रद्धा के त्याग से मुझको प्रसन्न कराना चाहता है उसको कलियुग में सुन्दरी द्वारकापुरी को जाकर मुझको देखना चाहिये ॥ ३४ ॥ कलियुग में न यज्ञों से, न ध्यानों से, न दानों से और न व्रत सेवनों से मेरी

प्रीति को चाहनेवाले मनुष्य को गोमती में स्नान करना चाहिये ॥ ३५ ॥ त्रिलोक में मैंने जिन बहुत से तीर्थों को रचा है हे महासुर ! वे गोमती में चक्रतीर्थ में प्रसिद्ध हैं ॥ ३६ ॥ और कलियुग में मनुष्य गोमती में चक्रतीर्थ में त्रिलोक से उपजे हुए तीर्थों से नहाया हुआ होता है ॥ ३७ ॥ और करोड़ पापों से छूटा हुआ वह मनुष्य मेरे साथ बसता है व हे बले ! जो उत्तम मनुष्य मेरा दर्शन करेंगे ॥ ३८ ॥ करोड़ों पुश्तियों से संयुत वे मनुष्य मेरे लोक में बसैंगे और वे अपराधों से तथा किये हुए उग्र पापों से बाधित नहीं होते हैं ॥ ३९ ॥ और इस संसार में उसके घर से लक्ष्मी पृथक् नहीं होती है ॥ १४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मिच्छताकार्यं गोमत्यांप्लवनंकलौ ॥ ३५ ॥ त्रैलोक्येयानितीर्थानि मयासृष्टानिभूरिशः ॥ विख्यातानि च गोमत्यां चक्रतीर्थेमहासुर ॥ ३६ ॥ वासरैकेन गोमत्यां चक्रतीर्थेकलौयुगे ॥ त्रैलोक्यसम्भवैस्तीर्थैःस्नातोभवतिमानवः॥३७॥ कोटिपापविनिर्मुक्तो मत्समं च वसेन्नरः ॥ बलेमद्दर्शनं ये वै करिष्यन्ति नरोत्तमाः ॥ ३८ ॥ ममलोकं वसिष्यन्ति कुलकोटिसमन्विताः ॥ नापराधैःप्रबाध्यन्ते पापैश्चैवोत्कटैःकृतैः ॥३९॥ तस्यजन्मायुतानीहलक्ष्मीर्नच्यवतेगृहात् ॥१४०॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येएकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥

ईश्वर उवाच ॥ जया च विजया चैव जयन्ती पापनाशिनी ॥ उन्मीलिनीवञ्जुली च त्रिस्पृशापक्षवर्द्धिनी ॥ १ ॥ येचाष्टौप्रकरिष्यन्ति कृष्णप्रीतिविवर्द्धनीः ॥ वासंपुण्यपुरीणां च तेलभन्तेदिनेदिने ॥ २ ॥ लुप्तंसौरकृतंमार्गं पापं चाप्यर्जितंतथा ॥ वैशाख्यां न कृतं येन व्रतंचाश्वत्थसञ्ज्ञितम् ॥ ३ ॥ शालग्रामशिलाग्रेतु ये प्रकुर्वन्तिजागर

दो० । यथा कृष्ण दर्शन किये मिलत अहै फलभूरि । चालिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखमूरि ॥ महादेवजी बोले कि जया, विजया व पापनाशिनी, जयन्ती, उन्मीलिनी, वंजुली, त्रिस्पृशा व पक्षवर्द्धिनी ॥ १ ॥ श्रीकृष्णजीकी प्रीति को बढ़ानेवाली इन आठ तिथियों को जो करते हैं वे प्रतिदिन पवित्र पुरियों के निवास को पाते हैं ॥ २ ॥ और उसने सूर्य से किये हुए मार्ग को लुप्त किया व पाप को भी इकट्ठा किया है कि जिसने वैशाखी में अश्वत्थसंज्ञक व्रत को नहीं किया है ॥ ३ ॥ और

जो शालग्रामशिला के आगे जागरण करते हैं उनको प्रत्येक पहर में करोड़ यज्ञों से उपजा हुआ फल कहा गया है ॥ ४ ॥ और पद्मनाभ विष्णुजी के जागरण में जो घृतहीं से पकायेहुए तथा हविर्धान से उत्पन्न पकान्न को करते हैं ॥ ५ ॥ व विष्णुजी के जागरण में शालग्रामशिला के आगे दो बत्तियों से संयुत व घृत से संयुत दीप को जो करता है ॥ ६ ॥ व लोकों के अनुराग के लिये जो नित्य वाद्य करता है वह गांधर्वशास्त्र को पढ़ता है व वीणा और वेणु शब्द को पढ़ता है ॥ ७ ॥ व हे बले ! विशेष कर चक्र से चिह्नित विष्णुजी की प्रतिमा व शालग्राम से उपजीहुई शिला को पुष्पों से जो आच्छादित करता है ॥ ८ ॥ व कालागुरु से मिश्रित

म् ॥ यामेयामेफलंप्रोक्तं कोटियज्ञसमुद्भवम् ॥ ४ ॥ पक्वान्नं ये प्रकुर्वन्ति हविर्धानसमुद्भवम् ॥ जागरे पद्मनाभस्य घृतेनैव तु पाचितम् ॥ ५ ॥ वर्तिद्वयसमायुक्तं दीपंघृतसमन्वितम् ॥ यःकुर्याज्जागरेविष्णोः शालग्रामशिलाग्रतः ॥ ६ ॥ करोतिनित्यंवाद्यं च लोकानांरञ्जनाय च ॥ सगान्धर्वंपठेच्छास्त्रं वेणुवीणास्वनं तथा ॥ ७ ॥ संछादयति यः पुष्पैः शालग्रामोद्भवांशिलाम् ॥ चक्राङ्कितांविशेषेण प्रतिमांवैष्णवींबले ॥ ८ ॥ चन्दनन्तु सकर्पूरं कृष्णागुरुविमिश्रितम् ॥ ९ ॥ युक्तंमृगमदेनापि यः करोतिविलेपनम् ॥ द्वादश्यांदेवदेवस्य रात्रौजागरणे सदा ॥ १० ॥ अगुरुं तु सकर्पूरं कृष्णागुरुविमिश्रितम् ॥ पूजांभागवतानां च यः कुर्याज्जागरे सदा ॥ विधिना तेन यःकुर्याद्यत्र तत्र स्थितोपि सन् ॥ ११ ॥ बलेवित्तानुमानेन पद्मनाभस्यजागरे ॥ तस्यपुण्यंप्रवक्ष्यामि समासेन महासुर ॥ १२ ॥ यत्फलं कोटितीर्थेषु उज्जयिन्यां च हे बले ॥ १३ ॥ वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे मथुरायां त्रिपुष्करे ॥ अयोध्यायां प्रभासे च श्री

तथा कस्तूरी से युक्त व कपूर समेत चन्दन को जो सदैव द्वादशी तिथि में रात्रि को जागरण में देवदेवजी के लेपन करता है ॥ ९ । १० ॥ व कालागुरु समेत तथा कपूर समेत व कस्तूरी से संयुत अगुरु को जो लेपन करता है और सदैव जागरण में जो वैष्णवों का पूजन करता है व जहां तहां भी स्थित जो मनुष्य उस विधि से ॥ ११ ॥ हे बले ! द्रव्य के अनुसार पद्मनाभ विष्णुजी के जागरण में करता है हे महासुर ! उसके पुण्य को मैं संक्षेप से कहता हूं ॥ १२ ॥ कि हे बले ! कोटि तीर्थों में व उज्जयिनी में जो फल होता है ॥ १३ ॥ और काशी, कुरुक्षेत्र, मथुरा, त्रिपुष्कर, अयोध्या व प्रभास में और श्रीरंगजी के दर्शन में भी जो फल होता

है ॥ १४ ॥ और गया, गोतीर्थ व गंगासागर के संगम में तथा शुक्लतीर्थ, भृगुक्षेत्र, श्रीस्थल व मुक्तिसंज्ञक तीर्थ में ॥ १५ ॥ व सब तीर्थों के निवास में और वनों व पर्वतों में तथा सब नदियों में और मुनियों के आश्रमों में ॥ १६ ॥ और सब पुण्य स्थानों में तथा सब देवस्थानों में वहां दश हज़ार यज्ञों के करने से और बहुत से व्रतों व दानों से ॥ १७ ॥ और सब वेदों के पढ़ने से व पुराणों का अवगाहन करने से जो पुण्य होता है और अनेकों व्रतों के करने से व संयमों के पालन करने से ॥ १८ ॥ व हे पौत्र ! भली भाति आश्रमों के पालित पवित्र तपों से मुनियों ने व वेदव्यास ने जो फल कहा है ॥ १९ ॥ और करोड़ कल्पों में उत्पन्न लक्षों पुण्यों

रङ्गस्यापि दर्शने ॥ १४ ॥ गयागोतीर्थके चैव गङ्गासागरसङ्गमे ॥ शुक्लतीर्थेभृगुक्षेत्रे श्रीस्थलेमुक्तिसञ्ज्ञिके ॥ १५ ॥ सर्वतीर्थसमावासे पर्वतेषु वनेषु च ॥ तथा नदीषु सर्वासु मुनीनामाश्रमेषु च ॥ १६ ॥ पुण्यस्थानेषु सर्वेषु देवतायतनेषु च ॥ कृतैर्यज्ञायुतैस्तत्र व्रतदानैश्चपुष्कलैः ॥ १७ ॥ वेदैरधीतैर्यत्पुण्यं पुराणैश्चावगाहनैः ॥ व्रतैरनेकैश्चरितैःसंयमैश्चापिपालितैः ॥ १८ ॥ तपोभिश्चरितैःपुण्यैःसम्यगाश्रमपालितैः ॥ यत्फलं मुनिभिः प्रोक्तं वेदव्यासेन पौत्रक ॥ १९ ॥ कृतैः सुकृतलक्षैश्च कल्पकोटिसमुद्भवैः ॥ तत्फलंजागरेविष्णोः पक्षयोःशुक्लकृष्णयोः ॥ २० ॥ हेमवत्याः पुराप्रोक्तं कैलासे शूलपाणिना ॥ नारदस्यपुराप्रोक्तं ब्रह्मणामत्समीपतः ॥ २१ ॥ अहं चैव वशिष्ठेन कथितोमुनिनापुरा ॥ द्वादशी जागरस्योक्तं फलं पौत्र मया तव ॥ २२ ॥ ततस्त्वं कुरु भद्रन्ते जागरं कृष्णवासरे ॥ यत्फलं जागरे विष्णोः सम्यग्जागरणान्वितैः॥ २३ ॥ द्वारकायां तु लभते दिनैकेन कलौ नरः॥ ये वसन्ति नरास्तत्र पक्षं मासं तु वत्सरम् ॥२४॥

के करने से जो फल होता है वह फल शुक्ल व कृष्णपक्ष में विष्णुजी के जागरण में होता है ॥ २० ॥ पुरातन समय कैलास पर्वत पै शिवजी ने पार्वतीजी से कहा है व पुरातन समय मेरे समीप ब्रह्मा ने नारदजी से कहा है ॥ २१ ॥ व पुरातन समय वशिष्ठ मुनि ने मुझ से कहा है व हे पौत्र ! मैंने तुम से द्वादशी जागरण के फल को कहा है ॥ २२ ॥ उस कारण विष्णुवासर में तुम जागरण करो और तुम्हारा कल्याण होवै विष्णुजी के जागरण में भलीभांति जागरण से संयुत मनुष्यों को जो फल होता है ॥ २३ ॥ उस फल को कलियुग में मनुष्य एक दिन में पाता है और वहा जो मनुष्य पक्षभर, महीने भर व वर्षभर बसते हैं ॥ २४ ॥

उसका फल योगी और शिवादिक देवता भी नहीं जानते हैं और द्वारका को मन से ध्यान करने से सौ वर्षों में इकट्ठा किया हुआ पाप ॥ २५ ॥ व कीर्तन करने से सात जन्मों में इकट्ठा किये हुए पाप को जलाता है इस में सन्देह नहीं है और पग भर चलतेहुए पुरुषों का हज़ार जन्मों में इकट्ठा किया हुआ पाप ॥ २६ ॥ निश्चय कर द्वारका हरती है और श्रीकृष्णजी के दर्शन से मुक्ति होती है और जब द्वारका में जाने के लिये मनुष्य समर्थ न होवे ॥ २७ ॥ तब घर में द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को पढ़ना चाहिये और वैष्णवों को देना चाहिये व भक्ति से भावित जनों को सुनना चाहिये ॥ २८ ॥ और द्वादशी को विशेषकर सदैव

योगिनोपि न जानन्ति फलं रुद्रादयःसुराः ॥ द्वारकां मनसा ध्यानात्पापं वर्षशतार्जितम् ॥ २५ ॥ कीर्तनात्सप्तजन्मोत्थं दहते नात्र संशयः ॥ पापं जन्मसहस्रोत्थं पदमात्रेणगच्छताम् ॥ २६ ॥ द्वारका हरते नूनं मुक्तिः कृष्णस्य दर्शनात् ॥ न शक्नोति पदा गन्तुं द्वारकायां तु मानवः ॥ २७ ॥ माहात्म्यं पठनीयं तु द्वारकासम्भवं गृहे ॥ दातव्यं वैष्णवानान्तु श्रोतव्यं भक्तिभावितैः ॥ २८ ॥ द्वादशीं तु विशेषेण पठनीयं नृभिस्सदा ॥ द्वारकासम्भवं पुण्यमाप्नोति गृहसंस्थितः ॥ २९ ॥ प्रसादाद्वासुदेवस्य सत्यं सत्यं च भाषितम् ॥ महेशं तिष्ठतेयस्या माहात्म्यं दैत्यनायक ॥ ३० ॥ द्वारकायाः समुद्भूतं सान्निध्यं केशवस्य च ॥ रुक्मिणीसहितः कृष्णो नित्यं हि वसते गृहे ॥ ३१ ॥ प्राप्नोति वाञ्छितान्कामान् परत्रेह च मानवः ॥ योगक्षेमन्तु कुरुते नित्यं तस्य जनार्दनः ॥ ३२ ॥ मरणं शोभते नैव भवेत्पापविवर्जितः ॥ कुले न नारकी तस्य प्रेतत्वं न च विद्यते ॥ ३३ ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं यः पठेत्

मनुष्यों को माहात्म्य पढ़ना चाहिये क्योंकि घर में टिका हुआ भी मनुष्य वासुदेवजी की प्रसन्नता से द्वारका से उपजे हुए पुण्य को पाता है यह सत्य सत्य वचन है व हे दैत्यनायक ! जिस द्वारका से उपजा हुआ माहात्म्य शिवजी के समीप स्थित है व विष्णुजी के समीप स्थित है रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी सदैव उसके घर में बसते हैं ॥ २९।३०।३१॥ और वह मनुष्य इस लोक व परलोकमें चाहे हुए मनोरथोंको पाता है और जनार्दनजी सदैव उसका योग क्षेम करते हैं ॥ ३२ ॥ और मरण नहीं शोभित होता है व पापरहित होता है तथा उसके वंश में नरकगामी नहीं होता है व प्रेतता नहीं होती है ॥ ३३ ॥ और श्रीकृष्णजी के समीप जो द्वारका का

माहात्म्य पढ़ता है व श्रीकृष्णजी के समीप जो द्वारका में जाकर पढ़ता है ॥ ३४ ॥ वह सात ब्रह्मदिनों तक फिर जन्म को नहीं पाता है और वंजुलीवासर में अधिक पुण्य होता है ॥ ३५ ॥ व हे महाभाग ! युगादिकों में यह फल होता है इस में सन्देह नहीं है और जिसके घर में लिखाहुआ द्वारकामाहात्म्य होता है ॥ ३६ ॥ उसके पितर प्रसन्न होते हुए विष्णुजी के समीप बसते हैं व हे पौत्र ! जो मनुष्य बारह पाठ करते हैं ॥ ३७ ॥ उनको तीर्थ, व्रत, मख व यज्ञों से प्रयोजन नहीं होता है व उसके घर में नित्य मथुरा, द्वारका व गया स्थित रहती है ॥ ३८ ॥ व अवन्ती, काशी, प्रयाग और कुरुजांगल, त्रिपुष्कर, नैमिष, हरद्वार व शूकर स्थित होता

कृष्णसन्निधौ ॥ द्वारकायां पठेद्यस्तु गत्वाकृष्णस्यसन्निधौ ॥ ३४ ॥ न पुनर्जन्मप्राप्नोति ब्रह्मवासरसप्तकान् ॥ वञ्जुलीवासरे चैव पुण्यं भवति चाधिकम् ॥ ३५ ॥ युगादिषु महाभाग फलमेतन्नसंशयः ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं लिखितं यस्य वेश्मनि ॥ ३६ ॥ निवसन्ति सुसन्तुष्टाः पितरो विष्णुसन्निधौ ॥ द्विषट्पाठं प्रकुर्वन्ति ये नराःपुत्रपुत्रक ॥ ३७ ॥ तीर्थैर्व्रतैर्मखैर्यज्ञैर्नास्ति तेषांप्रयोजनम् ॥ गृहेसन्तिष्ठते नित्यं मथुरा द्वारका गया ॥ ३८ ॥ अवन्ती च तथा काशी प्रयागं कुरुजाङ्गलम् ॥ त्रिपुष्करं नैमिषं च गङ्गाद्वारं च शूकरम् ॥ ३९ ॥ शुक्लतीर्थं प्रयागं च क्षेत्रं च भृगुसञ्ज्ञकम् ॥ चण्डीशं चैव केदारं तथा रुद्रं महालयम् ॥ ४० ॥ ॐकारं अङ्गधौतं च शूलभेदं तथाचलम् ॥ वस्त्रापथं महादेवं महाकालं तथैव च ॥ ४१ ॥ भूतेशं भस्मगात्रं च शोभनाथमुमापतिम् ॥ कोटिलिङ्गं त्रिनेत्रं च देवं भृगुवनेश्वरम् ॥ ४२ ॥ दशाश्वमेधं च शुभं भृगुपापप्रमोचनम् ॥ कणवीरं च देवेशमविमुक्तं विशालयम् ॥ ४३ ॥ दीपेश्वरं महानन्दं देवं चैवाचलेश्वरम् ॥ ब्रह्मादयः सुरगणा गृहेतिष्ठन्तिसर्वशः ॥ ४४ ॥ पितरोगणगन्धर्वा मुन

है ॥ ३९ ॥ और शुक्लतीर्थ, प्रयाग व भृगुसंज्ञक क्षेत्र तथा चंडीश, केदार व महालय रुद्र ॥ ४० ॥ तथा ॐकार, अंगधौत, शूलभेद अचल, वस्त्रापथ महादेव व महाकाल ॥ ४१ ॥ और भूतेश, भस्मगात्र व शोभनाथ महादेव, कोटिलिंग, त्रिनेत्र व भृगुवनेश्वर देव ॥ ४२ ॥ और उत्तम दशाश्वमेध, भृगुपापमोचन, कणवीर देवेश, अविमुक्त व विशालय ॥ ४३ ॥ व दीपेश्वर, महानन्द और अचलेश्वर देव तथा ब्रह्मादिक देवगण सब उसके घर में स्थित होते हैं ॥ ४४ ॥ और पितर व गण गंधर्व, मुनि,

...वासुकि ॥ ४५ ॥ और जो कोई तीर्थ हैं व अश्वमेधादिक यज्ञ यह सब बारह पाठ करनेवाले उस मनुष्य के घर में स्थित होता है ॥ ४६ ॥ व हे पौत्र ! जो विशेष कर कृष्णजी की जन्माष्टमी को करता हैं और कलियुग में जो व्रत से संयुत व जागरण से युक्त द्वादशी को विशेष कर करताहै वह मनुजरूपधारी विष्णु है और उसके दर्शन, कीर्तन व मन से स्मरण करने से ॥ ४७।४८ ॥ व संस्कार और स्पर्श करने से करोड़ तीर्थों के फल को मनुष्य पाता है और उसके स्मरण से दश हज़ार जन्मों में किया हुआ पाप नाश होजाता है ॥ ४९ ॥ व उसी का स्मरण करने से जन्मार्जित पुण्य होता है

यः सिद्धचारणाः ॥ नागराजस्त्वनन्ताख्यः सर्पराजश्चवासुकिः ॥ ४५ ॥ तीर्थानियानिकानिस्युरश्वमेधादयोम खाः ॥ एतत्सर्वं गृहे नित्यं तस्यद्विषट्कारिणः ॥ ४६ ॥ कृष्णजन्माष्टमीं पौत्र यः करोति विशेषतः ॥ कलौ यःप्र करोत्येवं द्वादशीं जागरान्विताम् ॥ ४७ ॥ व्रतयुक्तां विशेषेण सविष्णुर्नररूपधृक् ॥ दर्शनेकीर्तने तस्य मनसासं स्मतेन च ॥ ४८ ॥ संस्कारे चैव संस्पर्शे तीर्थकोटिफलंलभेत् ॥ जन्मायुतकृतं पापं स्मरणे तस्य नश्यति ॥ ४९॥ स्मरणेचापि तस्यैव पुण्यं जन्मार्जितं भवेत् ॥ एतद्भागवतं शास्त्रं गृहे यस्य सदा भवेत् ॥ ५० ॥ न तस्य पुनरावृत्ति र्यावद्ब्रह्मा स शूलधृक् ॥ यथा भागवतं शास्त्रं तथा भागवतो नरः ॥ ५१ ॥ उभयोरन्तरं नास्ति तथा वै केशवस्यच ॥ तुष्टेभागवते विष्णुःप्रीतोभवति दैत्यज ॥ ५२ ॥ तस्मात्केशवतुष्ट्यर्थं वैष्णवंपरितोषयेत् ॥ द्वारकागमने विष्णोरथवा जन्मवासरे ॥ ५३ ॥ कृतेतुष्टिमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ नीलक्षेत्रंवापयति मूलकंभक्षयेत्तु यः ॥ ५४ ॥ नैवास्ति

व यह भागवत शास्त्र जिसके घर में सदैव होता है ॥ ५० ॥ तो शिवजी समेत ब्रह्माजी जब तक रहते हैं तब तक उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है और जैसा भागवत शास्त्र होता है वैसाही भागवत मनुष्य होता है ॥ ५१ ॥ इन दोनों में भेद नहीं है वैसेही विष्णुजी का अन्तर नहीं है हे दैत्यज ! वैष्णव के प्रसन्न होने पर विष्णुजी प्रसन्न होते हैं ॥ ५२ ॥ इस कारण विष्णुजी की प्रसन्नता के लिये वैष्णव मनुष्य को प्रसन्न करै और द्वारका को जाने में व विष्णुजी के जन्मदिन में ॥ ५३ ॥ करने पर प्रलय पर्यन्त विष्णुजी प्रसन्न होते हैं और जो क्षेत्र में नील बोता है व जो मूली को खाता है ॥ ५४ ॥ उसका करोड़ों सौ कल्पों से भी नरकोद्धार नहीं

होता है और लोभ से मोहित जो मनुष्य नीलीकर्म करता है ॥ ५५ ॥ और जो ब्राह्मण रसों को बेंचता है वह कुछ पुण्य को नहीं पाता है और जो रसों को बेंचने वाला व नीलक्षेत्र को बोनेवाला है ॥ ५६ ॥ उस ब्राह्मण को सैकड़ों यज्ञों के करने से भी पुण्य नहीं होता है और विष्णुजी का वासर प्राप्त होने पर जो जागरण नहीं करते हैं ॥ ५७ ॥ उनका पुण्य वैष्णवों की निन्दा से नाश होजाता है व जो अधम पुरुष वैष्णवों को दान नहीं देते हैं ॥ ५८ ॥ उसके ऊपर विष्णुजी दश मन्वन्तरों तक प्रसन्नता को नहीं प्राप्त होते हैं और वैष्णव का अपमान करनेपर पूजे हुए विश्वात्मा भगवान् विष्णुजी सैकड़ों जन्मान्तरों से भी नहीं प्रसन्न होते हैं व जो

नरकोत्तारः कल्पकोटिशतैरपि ॥ नीलीकर्म तु यः कुर्याद्ब्राह्मणोलोभमोहितः ॥ ५५ ॥ नाप्नोतिसुकृतंकिञ्चित्कुर्याद्वै रसविक्रयम् ॥ रसविक्रयकर्त्ता यो नीलीक्षेत्रस्य वापकः ॥ ५६ ॥ विप्रस्यसुकृतं नास्ति कृतैर्यज्ञशतैरपि ॥ सम्प्राप्ते वासरे विष्णोर्ये न कुर्वन्तिजागरम् ॥ ५७ ॥ नश्यतेसुकृतंतेषां वैष्णवानां तु निन्दया ॥ वैष्णवानां न यच्छन्ति दानं ये पुरुषाधमाः ॥ ५८ ॥ न विष्णुस्तोषमायाति दशमन्वन्तराणि वै ॥ पूजितोभगवान्विष्णुर्जन्मान्तरशतैरपि ॥ ५९ ॥ प्रसीदति न विश्वात्मा वैष्णवे चापमानिते ॥ अश्वत्थच्छेदनंयो वै वेदकार्यंविनानरः ॥ ६० ॥ ब्रह्महत्यादिकंपापं तस्यैव परिकीर्तितम् ॥ छेदनायप्रयच्छेद्यः सूर्यवृक्षं नरोत्तम ॥ ६१ ॥ सप्तजन्मनि राजेन्द्र कुष्ठीभवतिपापकृत् ॥ अर्कवृक्षंनराये वै पापपङ्केह्यधिष्ठिताः ॥ ६२ ॥ छेदयन्तिमहाभाग शृणुपापं वदाम्यहम् ॥ कृतेकुठारघाते वै एकैकस्मिन्नृवेर्नगे ॥ ६३ ॥ मन्वन्तराणि तस्यैव रौरवेवसतिर्भवेत् ॥ अरिष्टवृक्षच्छेदं

मनुष्य वेदकार्य के विना पीपल को काटता है ॥ ५९ । ६० ॥ उसको ब्रह्महत्यादिक पाप कहागया है व हे नरोत्तम ! जो मनुष्य अर्कवृक्ष को काटने के लिये देता है ॥ ६१ ॥ हे नृपेन्द्र ! वह पापकारी पुरुष सात जन्मों तक कुष्ठी होता है व हे महाभाग ! पापपंक में स्थित जो मनुष्य मदार का वृक्ष काटते हैं उनके पाप को मैं कहता हूं तुम सुनो कि मदारवृक्ष में एक एक कुठार घात करने पर ॥ ६२ । ६३ ॥ उस का मन्वन्तरों तक रौरव में निवास होता है व हे दैत्येन्द्र ! जो कभी नीम के

वृक्ष को काटता है ॥ ६४ ॥ वह कुछ उत्तम कर्म नहीं करता है और निश्चयकर कुष्ठी होता है व हे दैत्यज ! प्रत्येक कल्प में सूर्यनारायणजी छेदन करनेवाले मनुष्य के पूजन, द्रव्यदान व व्रत को नहीं ग्रहण करते हैं और सौ जन्मों तक दरिद्रता, विजातित्व व सरोगता होती है ॥ ६५ । ६६ ॥ मदारवृक्ष के काटने पर सूर्यनारायण ने आपही ऐसा कहा है और जो विशेषकर अमावस में वनस्पतियों को काटते हैं ॥ ६७ ॥ उन मनुष्यों को द्वादशी से संयुत पुण्य का प्रकाश नहीं प्राप्त होता है और प्रत्येक पत्र, फल व पुष्प में वह ब्रह्महत्या का फल होता है ॥ ६८ ॥ और वह मनुष्य सात कल्पों तक यमपुर में निवास करता है और उसके कार्य उन्नति को नहीं प्राप्त

यो दैत्येन्द्रकुरुते क्वचित् ॥ ६४ ॥ शुभन्नकुरुते किञ्चित्कर्मकुष्ठीभवेद्ध्रुवम् ॥ न पूजां नार्थदानं न व्रतं गृह्णाति भास्करः ॥ ६५ ॥ नरस्यकल्पं कल्पन्तु छेदकस्य तु दैत्यज ॥ शतजन्मनिदारिद्र्यं विजातित्वंसरोगता ॥ ६६ ॥ छेदितेसूर्यवृक्षे तु सूर्येणोक्तंस्वयंपुरा ॥ शशिक्षयेविशेषेण ये हिंसन्तिवनस्पतीन् ॥ ६७ ॥ पुण्यप्रकाशोनाभ्येति द्वादशीसंयुतोनृणाम् ॥ पत्रेपत्रेफलेपुष्पे ब्रह्महत्याफलंभवेत् ॥ ६८ ॥ वसते सप्तकल्पानि पुरेवैवस्वतस्य च ॥ नोन्नतिंयान्ति कार्याणि न पुण्यंभवते क्वचित् ॥ ६९ ॥ सूर्यवृक्षस्य काष्ठेनासत्कृतं मन्दिरादिकम् ॥ रोपयेत्पालयेद्यो वै सूर्यवृक्षंनरोत्तमः ॥ ७० ॥ सप्तकल्पंवसेत्पौत्र समीपेभास्करस्य हि ॥ रोपितैर्देववृक्षैस्तु यत्फलं लक्षकोटिभिः ॥ ७१ ॥ बोधिवृक्षेण चैकेन तत्फलंरोपितेभवेत् ॥ धात्रीवृक्षेमधूके च फलंभवतिरोपिते ॥ ७२ ॥ तुलसीरोपणेप्येवमधिकं चापि सुव्रतम् ॥ प्रत्यहं पिण्डदानेन पितॄणान्तु गयाशिरे ॥ ७३ ॥ प्रीतिर्भवतिसानित्यं गोमत्यांप्लवनेकलौ ॥

होते हैं व न कभी पुण्य होता है ॥ ६९ ॥ और सूर्य वृक्ष के काष्ठ से बनाया हुआ मंदिरादिक अशुभ होता है व जो उत्तम मनुष्य अर्कवृक्ष को लगाता व पालन करता है ॥ ७० ॥ हे पौत्र ! वह सात कल्पों तक सूर्यनारायण के समीप बसता है और लाखों व करोड़ों देववृक्षों के लगाने से जो फल होता है ॥ ७१ ॥ वह फल एक पीपल के वृक्ष के लगाने से होता है और आमला व महुवा का वृक्ष लगाने से ऐसाही फल होता है ॥ ७२ ॥ व ऐसाही और अधिक फल तुलसी के लगाने से होता है और प्रतिदिन गयाशिर में पिण्डदान से पितरों की जो ॥ ७३ ॥ प्रीति होती है वह प्रीति कलियुग में गोमती में नहाने से होती है और हज़ार चन्द्र-

नहीं मिलती है ॥ १५ ॥ और विष्णुजी के जागरण के विना उस मनुष्य का सत्य, शौच, तप, पठन, दान, पूजन व हवन यह सब नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! दया, दान से रहित व सत्य, शौच से वर्जित उस मनुष्य को जागरण से संयुत द्वादशी पवित्र करती है ॥ १७ ॥ और कलियुग प्राप्तहोने पर जो मनुष्य श्रीकृष्णजी से पालित पुरी को जाता है वह जो उत्तम से भी उत्तम स्थान है उस पद को पाता है ॥ १८ ॥ काशी को छोड़ो व गया, गंगा और सरस्वती को छोड़ो तथा नर्मदा, यमुना, मथुरा और देविका को छोड़ो ॥ १९ ॥ व अयोध्याको छोड़ो और तापी, चन्द्रभागा व गंडकी नदी को छोड़ो और कुरु के पवित्र क्षेत्रको छोड़ो व परमानन्द स्थान को छोड़ो ॥ २० ॥

लोके च शाश्वती ॥ यज्ञायुतैर्नलभ्येत द्वादशीजागरान्विता ॥ १५ ॥ सत्यंशौचंतपोधीतं दत्तमिष्टंहुतंतथा ॥ तस्यसर्वमिदंनष्टं विनाजागरणंहरेः ॥ १६ ॥ दयादानविहीनन्तु सत्यशौचविवर्जितम् ॥ पुनातितंमहाभाग द्वादशीजागरान्विता ॥ १७ ॥ तत्पदंसमवाप्नोति परादपि हि यत्परम् ॥ योगच्छतिकलौप्राप्ते द्वारकींकृष्णपालिताम् ॥ १८ ॥ त्यजकाशींत्यजगयां त्यजगङ्गांसरस्वतीम् ॥ त्यजरेवां च यमुनां मथुरांत्यजदेविकाम् ॥ १९ ॥ अयोध्यांत्यजतापीं च चन्द्रभागां च गण्डकीम् ॥ क्षेत्रंत्यजकुरोःपुण्यं परमानन्दमेव च ॥ २० ॥ प्रभासंत्यजकावेरीं त्यजगोदावरींनदीम् ॥ चन्द्रभागांपयोष्णीं च नदींचर्मण्वतीमुत ॥ २१ ॥ शतह्रदां च सरयूं त्यजशोणंमहानदम् ॥ पयोष्णींतुङ्गभद्रां च सिन्धुं चैव महानदीम् ॥ २२ ॥ शिप्रांवेत्रवतींतापीं प्रयागंत्यजपुष्करम् ॥ जाम्बूनदींकदम्बां च दुरितोष्णीं च कौशिकीम् ॥ २३ ॥ विपाशांस्वर्णरेखां च नैमिषंत्यजदण्डकम् ॥ त्यजार्बुदनगंपुण्यं धर्मारण्यंमहावनम् ॥ २४ ॥

और प्रभास व कावेरी नदी को तथा गोदावरी नदी को छोड़ो और चन्द्रभागा, पयोष्णी व चर्मण्वती नदी को छोड़ो ॥ २१ ॥ और शतह्रदा व सरयू और महानद शोण को छोड़ो और पयोष्णी, तुंगभद्रा व सिंधु महानदी को छोड़ो ॥ २२ ॥ और शिप्रा, वेत्रवती, तापी, प्रयाग व पुष्कर को छोड़ो और जांबूनदी, कदम्बा, दुरितोष्णी व कौशिकी को त्याग करो ॥ २३ ॥ और विपाशा, स्वर्णरेखा, नैमिष व दण्डकको छोड़ो और पवित्र अर्बुदपहाड़ व धर्मारण्य महावन को त्याग करो ॥ २४ ॥

विचार नहीं है और कलिकाल में प्रातःकाल उठकर द्वारका का कीर्तन करने से ॥ ५ ॥ सब पापों से छूटाहुआ मनुष्य निस्सन्देह स्वर्ग को जाता है व जिसने रोहिणी से संयुत द्वादशी को उपास किया है ॥ ६ ॥ और जो दशमी के संग से दूषित एकादशी को करता है महापाप से संयुत वह कल्पान्त तक नरक को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ और मनुष्य ने जन्म से लगाकर जिस पाप को किया है वह सब द्वादशी में बिन जागरण के भस्म होजाता है ॥ ८ ॥ बिन सूर्य के कौन दिन है व बिन चन्द्रमा कौन रात है और बिन बैल के कौन गाइयां हैं व बिन द्वादशी के कौन व्रत है ॥ ९ ॥ और विष्णुजी के जागरण में वैष्णवों की सभा में जहां २

श्च कीर्तनात् ॥ ५ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गंयाति न संशयः ॥ रोहिणीसंयुतायेन द्वादशीसमुपोषिता ॥ ६ ॥ महापातकसंयुक्तः कल्पान्तंनरकंव्रजेत् ॥ एकादशींप्रकुर्याद्यो दशमीसङ्गदूषिताम् ॥ ७ ॥ जन्मप्रभृतियच्चापि नरेणसुकृतंकृतम् ॥ भस्मीभवतितत्सर्वं द्वादश्यांजागरं विना ॥ ८ ॥ वासरः कोविनासूर्यं विनासोमेनकानिशा ॥ विनावृषेणकागावो द्वादशींकिंव्रतंविना ॥ ९ ॥ भातिसर्वत्रसाह्लादं यत्र यत्र प्रवर्तते ॥ जागरेपद्मनाभस्य वैष्णवानां च संसदि ॥ १० ॥ न च भागवतं यत्र पुराणंगीयतेकलौ ॥ अन्धकूपेषुक्षिप्यन्ते ज्वलिते च हुताशने ॥ ११ ॥ द्विषन्तियेभागवतं न कुर्वन्तिहरेर्दिनम् ॥ १२ ॥ यमदूतैश्च नीयन्ते यमभूमौपतन्ति वै ॥ पाठ्यमानं न शृण्वन्ति हरेश्चरितमुत्तमम् ॥ १३ ॥ करपत्रैश्च पीड्यन्ते सुतीव्रैर्यमशासनैः ॥ निन्दांकुर्वन्तियेपापा वैष्णवानांमहात्मनाम् ॥ १४ ॥ नैवार्थाःसम्पदःपुत्राः कीर्ति

वर्तमान होता है वहां वहां सबकहीं आनन्द समेत शोभित होता है ॥ १० ॥ और कलियुग में जहां भागवत पुराण नहीं होता है वहां अन्धकूपों में मनुष्य जलतीहुई अग्नि में डालेजाते हैं ॥ ११ ॥ और जो भागवत से वैर करते हैं व विष्णुजीका दिन नहीं करते हैं ॥ १२ ॥ उनको यमदूत लेजाते हैं और वे यमराज की भूमि में गिरते हैं और पढ़ेजातेहुए विष्णुजी के उत्तम चरित्र को जो नहीं सुनते हैं ॥ १३ ॥ वे बड़े तीव्र यमशासनों से आरों के द्वारा पीड़ित कियेजाते हैं और जो पापी मनुष्य वैष्णव महात्माओं की निन्दा करते हैं ॥ १४ ॥ उनके अर्थ, संपदा, पुत्र व संसार में अविनाशी यश नहीं होताहै और दशहज़ार यज्ञों से भी जागरण से संयुत द्वादशी

नहीं मिलती है ॥ १५ ॥ और विष्णुजी के जागरण के विना उस मनुष्य का सत्य, शौच, तप, पठन, दान, पूजन व हवन यह सब नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥ हे महाभाग ! दया, दान से रहित व सत्य, शौच से वर्जित उस मनुष्य को जागरण से संयुत द्वादशी पवित्र करती है ॥ १७ ॥ और कलियुग प्राप्त होने पर जो मनुष्य श्रीकृष्णजी से पालित पुरी को जाता है वह जो उत्तम से भी उत्तम स्थान है उस पद को पाता है ॥ १८ ॥ काशी को छोड़ो व गया, गंगा और सरस्वती को छोड़ो तथा नर्मदा, यमुना, मथुरा और देविका को छोड़ो ॥ १९ ॥ व अयोध्याको छोड़ो और तापी; चन्द्रभागा व गंडकी नदी को छोड़ो और कुरु के पवित्र क्षेत्रको छोड़ो व परमानन्द स्थान को छोड़ो ॥ २० ॥

सत्यंशौचंतपोधीतं दत्तमिष्टंहुतंतथा ॥ तस्यस र्वमिदंनष्टं विनाजागरणंहरेः ॥ १६ ॥ दयादानविहीनन्तु सत्यशौचविवर्जितम् ॥ पुनातितंमहाभाग द्वादशीजागरा न्विता ॥ १७ ॥ योगच्छतिकलौप्राप्ते द्वादशींकृष्णपालिताम् ॥ तत्पदंसमवाप्नोति परादपि हि यत्परम् ॥ १८ ॥ त्य जकाशींत्यजगयां त्यजगङ्गांसरस्वतीम् ॥ त्यजरेवां च यमुनां मथुरांत्यजदेविकाम् ॥ १९ ॥ अयोध्यांत्यजतापीं च चन्द्रभागां च गण्डकीम् ॥ क्षेत्रंत्यजकुरोःपुण्यं परमानन्दमेव च ॥ २० ॥ प्रभासंत्यजकावेरीं त्यजगोदावरींन दीम् ॥ चन्द्रभागांपयोष्णीं च नदींचर्मण्वतीमुत ॥ २१ ॥ शतह्रदां च सरयूं त्यजशोणंमहानदम् ॥ पयोष्णींतुङ्गभ द्रां च सिन्धुं चैव महानदीम् ॥ २२ ॥ शिप्रांवेत्रवतींतापीं प्रयागंत्यजपुष्करम् ॥ जाम्बूनदींकदम्बां च दुरितोष्णीं च कौशिकीम् ॥ २३ ॥ विपाशांस्वर्णरेखां च नैमिषंत्यजदण्डकम् ॥ त्यजार्बुदनगंपुण्यं धर्मारण्यंमहावनम् ॥ २४ ॥

और प्रभास व कावेरी नदी को तथा गोदावरी नदी को छोड़ो और चन्द्रभागा, पयोष्णी व चर्मण्वती नदी को छोड़ो ॥ २१ ॥ और शतह्रदा व सरयू और महानद शोण को छोड़ो और पयोष्णी, तुंगभद्रा व सिंधु महानदी को छोड़ो ॥ २२ ॥ और शिप्रा, वेत्रवती, तापी, प्रयाग व पुष्कर को छोड़ो और जावूनदी, कदम्बा, दुरितोष्णी व कौशिकी को त्याग करो ॥ २३ ॥ और विपाशा, स्वर्णरेखा, नैमिष व दण्डक को छोड़ो और पवित्र अर्बुदपहाड़ व धर्मारण्य महावन को त्याग करो ॥ २४ ॥

और सैन्धव व वृन्दावन नामक वन को त्यागकरो तथा उत्पलावर्त को छोड़ो और पवित्र बदरीआश्रम व अन्य आश्रम को त्यागकरो ॥ २५ ॥ व वशिष्ठाश्रम ऐसे प्रसिद्ध आश्रम तथा भारद्वाजाश्रम को त्यागकरो व हे पौत्र ! अर्कस्थल, श्रीस्थल और भृगुस्थली को छोड़ो ॥ २६ ॥ व विष्णुपद तीर्थ तथा गंगासागर से उपजेहुए तीर्थको छोड़ो और श्रेष्ठ तीर्थ गंगाद्वार व कुशावर्त और गयाशिर को त्याग करो ॥ २७ ॥ और पूर्वदग्ध, कपिल, बिल्वक व नीलपर्वत इत्यादिक तीर्थों को छोड़कर द्वारका को भजो ॥ २८ ॥ जहां कि रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी सदैव स्थित रहते हैं और सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी में जो तीर्थ हैं ॥ २९ ॥ वे सब द्वारका में कंसनाशक

सैन्धवंत्यजवृन्दाख्यमुत्पलावर्त्तकंत्यज ॥ बदर्याश्रमकंपुण्यमन्यत्पुण्याश्रमंत्यज ॥ २५ ॥ वशिष्ठाश्रमं च विख्यातं भारद्वाजाश्रमंत्यज ॥ अर्कस्थलंश्रीस्थलं च त्यजपौत्रभृगुस्थलीम् ॥ २६ ॥ त्यजविष्णुपदंतीर्थं गङ्गासागरसम्भवम् ॥ गङ्गाद्वारंतीर्थवरं कुशावर्त्तंगयाशिरम् ॥ २७ ॥ पूर्वदग्धन्तु कपिलं बिल्वकंनीलपर्वतम् ॥ एवमादीनितीर्थानि त्यक्त्वाद्वारावतींभज ॥ २८ ॥ रुक्मिणीसहितःकृष्णो यत्र तिष्ठतिसर्वदा ॥ सप्तद्वीपवतींक्षोण्यां सन्तितीर्थानियानि तु ॥ २९ ॥ द्वारकायान्तु तिष्ठन्ति सन्निधौकंसहाग्रतः ॥ कलौकृष्णपुरींगच्छ पुण्ययोगाच्च पौत्रक ॥ ३० ॥ सर्वतीर्थसमावाप्तिं निमिषार्द्धेनप्राप्स्यसि ॥ तावत्काशी च मथुरा ह्यवन्तीचोत्तमापुरी ॥ ३१ ॥ यावन्न पश्यतेपौत्र द्वारकांकृष्णसंयुताम् ॥ पुरीणांद्वारकाश्रेष्ठातीर्थानांश्रवणान्विता ॥ ३२ ॥ द्वादशीपुष्यसंयुक्ता जयन्तीपक्षवर्द्धिनी ॥ उन्मीलिनी वञ्जुली च व्रतानांत्रिस्पृशावरा ॥ ३३ ॥ भोगदामोक्षदाचैव दत्तात्रेयाभिधायिनी ॥ आश्रमाणान्तु संन्यासो वर्णानां

श्रीकृष्णजी के आगे स्थित रहते हैं हे पौत्र ! कलियुग में तुम पुण्य के योग से श्रीकृष्णजी की पुरी को जावो ॥ ३० ॥ तो आधे निमेष से सब तीर्थों की प्राप्ति को पावोगे और तबतक काशी, मथुरा व पुरियों में उत्तम अवन्ती है ॥ ३१ ॥ जबतक कि हे पौत्र ! मनुष्य श्रीकृष्णजी से संयुत द्वारकाजी को नहीं देखता है और पुरियों व तीर्थों के मध्य में द्वारका श्रेष्ठ है और श्रवण से संयुत ॥ ३२ ॥ द्वादशी व पुष्य से संयुत जयन्ती श्रेष्ठ है तथा पक्षवर्द्धिनी, उन्मीलिनी, वंजुली श्रेष्ठ है व व्रतों के मध्य में त्रिस्पृशा उत्तम है ॥ ३३ ॥ और दत्तात्रेय नामक द्वादशी सुखदायिनी व मोक्षदायिनी है और आश्रमों के मध्य में संन्यास तथा वर्णों के मध्य में ब्राह्मण

श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ और पुरियों व सब तीर्थों के मध्यमें द्वारका कलियुग में श्रेष्ठ है जहां कि चक्र से चिह्नित मृत्तिका व चक्र से चिह्नित पाषाण ॥ ३५ ॥ कलियुग में विश्वास के लिये देखपड़ते हैं और शालग्रामशिला में करोड़ों दशहज़ार तीर्थ ॥ ३६ ॥ हे दैत्यराजेन्द्र ! वैष्णवों के घर में देखपड़ते हैं व तीनों लोकों में करोड़ों हज़ार तीर्थ हैं ॥ ३७ ॥ परन्तु कोई तीर्थ चक्रतीर्थ के समान व अधिक नही है और चक्र से चिह्नित शिला में तेरह भेद हैं ॥ ३८ ॥ उनके दर्शन व स्पर्श करने से मुक्ति व भुक्ति होती है और जहां जहां द्वारका में उपजीहुई शिला होवै ॥ ३९ ॥ वहां वहां कियाहुआ स्नान सब तीर्थों से अधिक होता है और जो मनुष्य महापवित्र गोपी-

ब्राह्मणोवरः ॥ ३४ ॥ पुरीणांसर्वतीर्थानां प्रवराद्वारकाकलौ ॥ यत्र चक्राङ्किताामृत्स्ना पाषाणाश्चक्रचिह्निताः ॥ ३५ ॥ प्रत्ययार्थं चात्र लोके कलौदृश्यन्त एव हि ॥ शालग्रामशिलायान्तु तीर्थकोट्ययुतानि च ॥ ३६ ॥ दृश्यन्तेदैत्यराजेन्द्र वैष्णवानांगृहेषु च ॥ सन्तिकोटिसहस्राणि तीर्थानि च जगत्त्रये ॥ ३७ ॥ न किञ्चिदधिकंतीर्थं चक्रतीर्थसमं न हि ॥ चक्राङ्कितशिलायान्तु मूर्तिभेदास्त्रयोदश ॥ ३८ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानान्मुक्तिर्मुक्तिःप्रजायते ॥ द्वारकायांसमुद्भूता यत्र यत्र शिलाभवेत् ॥ ३९ ॥ सर्वतीर्थाधिकंस्नानं तत्र तत्र कृतंभवेत् ॥ येपश्यन्तिमहापुण्यां गोपीचन्दनमृत्तिकाम् ॥ ४० ॥ विनापुण्ड्रेणगच्छन्ति लोकान्कामदुघान्नराः ॥ येप्रकुर्वन्तितिलकं गोपीचन्दनसञ्ज्ञकम् ॥ ४१ ॥ न तेषां पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकात्कथंचन ॥ येषांललाटेतिलकं गोपीचन्दनसञ्ज्ञकम् ॥ ४२ ॥ न तेषां चैव लोकास्ते पापकोटि शतैर्वृताः ॥ वैष्णवानांप्रयच्छन्ति गोपीचन्दनमृत्तिकाम् ॥ ४३ ॥ यत्पुण्यंपौण्ड्रकर्त्तॄणां तत्समंलभ्यतेफलम् ॥

चन्दन की मृत्तिका को देखते हैं ॥ ४० ॥ वे मनुष्य बिन त्रिपुंड्र के कामनाओं को देनेवाले लोकों को जाते हैं और गोपीचन्दन संज्ञक तिलक को जो करते हैं ॥ ४१ ॥ विष्णुलोक से उनकी किसीप्रकार पुनरावृत्ति नहीं होती है व जिनके मस्तक में गोपीचन्दन तिलक होता है ॥ ४२ ॥ उनको वे लोक नहीं होते हैं जोकि करोड़ों सौ पापों से घिरे हैं और जो मनुष्य वैष्णवों को गोपीचन्दन की मृत्तिका देते हैं ॥ ४३ ॥ तो त्रिपुंड्र करनेवालों को जो पुण्य होता है उसी के समान फल मिलता

है और जबतक शरीर में गोपीचन्दन का त्रिपुंड्र स्थित होता है ॥ ४४ ॥ तबतक प्रत्येक निमेष में दश गौओं के फल को देनेवाला पुण्य होता है और जिसका शरीर गोपीचन्दन की मिट्टी में छुगया है ॥ ४५ ॥ करोड़ों सौ पापों से संयुत वह मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है और गोपीचन्दन के त्रिपुंड्र से द्वादशी में जागरण करने पर ॥ ४६ ॥ और विष्णुजी के सहस्रनाम से पाठकरने पर मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है और शास्त्रोक्त विधि से भक्तिपूर्वक पूजेहुए ॥ ४७ ॥ चक्र से चिह्नित श्रीकृष्णजी चतुर्वर्गफल की प्राप्ति को देते हैं और जो मनुष्य हे द्वारके ! हे द्वारके! ऐसा प्रातःकाल उठकर कहता है ॥ ४८ ॥ हे बले ! वह नित्य कीर्तन करने से

यावत्तिष्ठतिदेहे तु गोपीचन्दनपुण्ड्रकम् ॥ ४४ ॥ निमिषेनिमिषेपुण्यं दशधेनुफलप्रदम् ॥ गोपीचन्दनमृत्स्नायां स्पृष्टंयस्यकलेवरम् ॥ ४५ ॥ पापकोटिशतैर्युक्तो मुच्यते नात्र संशयः ॥ गोपीचन्दनपुण्ड्रेण द्वादश्यांजागरेकृते ॥४६॥ विष्णोर्नामसहस्रेण पठनेमुक्तिमाप्नुयात् ॥ भक्तिपूर्वविधानेन आगमोक्तेनपूजितः ॥ ४७ ॥ चतुर्वर्गफलावाप्तिं यच्छतेचक्रलाञ्छितः ॥ द्वारकेद्वारकेनित्यं प्रातरुत्थाययोनरः ॥ ४८ ॥ द्वारकासम्भवंनित्यं कीर्तनाल्लभतेबले ॥ येनित्यं प्रातरुत्थाय वैष्णवानां तु कीर्तनम् ॥ ४९ ॥ कुर्वन्तितेभागवताः कृष्णतुल्याःकलौबले ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे द्वारकामाहात्म्येएकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ श्रीनामाङ्कितपत्रैस्तु श्रीपतिंयोर्चयेत्तु वै ॥ सप्तलोकाननुप्राप्य सप्तद्वीपाधिपोभवेत् ॥ १ ॥ मालूर

द्वारका से उपजेहुए फल को पाता है और नित्य जो प्रातःकाल उठकर वैष्णवों को कीर्तन ॥ ४९ ॥ करते हैं हे बले ! कलियुग में वे वैष्णव श्रीकृष्णजी के समान हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदत्तीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । श्रीकृष्णहिं श्रीपत्रसन पूजि लहत फल जौन । बैयालिस अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ प्रह्लादजी बोले कि श्रीनाम से चिह्नित (बिल्व) पत्रों से जो श्रीपति विष्णुजी को पूजता है वह सातों लोकों को पाकर सातों द्वीपोंका स्वामी होताहै ॥ १ ॥ और बिल्ववृक्षके पत्रोंसे जो सदैव देवताओं को पूजते हैं वे सब कलियुग

में दशहज़ार अश्वमेध यज्ञों के पुण्य को पाते हैं ॥ २ ॥ और पीपलपत्र से छोड़े व मस्तक से गिरेहुए जलों से मुनि व ऋषिसमूह और देवता पवित्रता को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ और चतुरानन, शिव, सूर्य व इन्द्रादिक देवताओं को बिल्वपत्रों से पूजकर मनुष्य अविनाशी लोकों को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ और लक्ष्मी, सरस्वती देवी व सावित्री तथा चण्डिकाजी को श्रीवृक्ष नामक पत्रों से पूजकर मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं ॥ ५ ॥ व श्रीवृक्ष से उपजाहुआ पत्र तुलसीदल से अधिक कहागया है उस कारण नित्य बड़े यत्न से सदैव विष्णुजी को पूजना चाहिये ॥ ६ ॥ और रविवार द्वादशी में जो श्रीवृक्ष को पूजते हैं वे ब्रह्महत्या से कियेहुए सैकड़ों पापों से लिप्त

वृक्षपत्रैस्तु येऽर्चयन्तिसदासुरान् ॥ पुण्यंलभन्तेतेसर्वे वाजिमेधायुतंकलौ ॥ २ ॥ अश्वत्थदलनिर्मुक्तैः शिरसापतितैर्जलैः ॥ मुनयोऋषिसङ्घाश्च देवायान्तिपवित्रताम् ॥ ३ ॥ चतुर्वक्त्रंहरंसूर्यं वज्रहस्तादिकान्सुरान् ॥ श्रीवृक्षपत्रैःसम्पूज्य लोकानाप्नोतिचाक्षयान् ॥ ४ ॥ लक्ष्मींसरस्वतींदेवीं सावित्रींचण्डिकां तथा ॥ पूजयित्वादिवंयान्ति पत्रैःश्रीवृक्षसंज्ञकैः ॥ ५ ॥ तुलसीपत्राधिकंप्रोक्तं दलंश्रीवृक्षसम्भवम् ॥ तस्मान्नित्यंप्रयत्नेन पूजनीयःसदाच्युतः ॥ ६ ॥ द्वादश्यां रविवारेण श्रीवृक्षंयेऽर्चयन्ति वै ॥ ब्रह्महत्याकृतैःपापैर्न लिप्यन्तिशतैरपि ॥ ७ ॥ यथा हस्तिपदेन्यानि प्रविशन्ति पदानि तु ॥ तथा धर्माश्चदैत्येन्द्र नियमाहरिवासरे ॥ ८ ॥ यथा नीराणिसर्वाणि जलराशौविशन्ति वै ॥ तथा पुण्यानिसर्वाणि निमग्नानिहरेर्दिने ॥ ९ ॥ अध्रुवेणैव देहेन प्रतिक्षणविनाशिना ॥ कथं नोपासतेजन्तुर्द्वादश्यांजागरान्विते ॥१०॥ अतीतान्सप्तपुरुषान्भविष्यांश्च चतुर्दश ॥ नरस्तारयतेसर्वान्कलौकृष्णेतिकीर्तनात् ॥ ११ ॥ यागतियोंगयुक्तस्य

नहीं होते हैं ॥ ७ ॥ जैसे हाथी के पांव में अन्य सब पांव प्रवेश करते हैं वैसेही हे दैत्येन्द्र ! धर्म व नियम विष्णुवासर (द्वादशी) में प्रवेश करते हैं ॥ ८ ॥ और जैसे सब जल समुद्र में प्रवेश करते हैं वैसेही सब पुण्य विष्णु के दिनमें मग्न हैं ॥ ९ ॥ प्रतिक्षण नाश होनेवाले विनाशी शरीरसे प्राणी कैसे जागरण से संयुत द्वादशीमें उपास नहीं करताहै ॥ १० ॥ कलियुग में कृष्ण ऐसा कीर्तन करने से मनुष्य सात बीतीहुई पुश्तियों को और चौदह भविष्य पुश्तियों को सब को तारताहै ॥११॥ और

योग से संयुत विद्वान् की जो गति होती है द्वारका को जातेहुए मनुष्य को एक पग से वह गति होती है ॥ १२ ॥ और जहां तहां टिकेहुए वे मनुष्य इस लोक में जीते नहीं हैं व तीनों लोकों में वे वंचित हैं जो कि द्वारका को नहीं प्राप्त हुए हैं ॥ १३ ॥ और जो द्वारका में संन्यासियों को भोजन कराते हैं वे मनुष्य प्रत्येक कवल में सौ यज्ञों के फल को पाते हैं ॥ १४ ॥ व जो मनुष्य द्वारका के मध्य में यतियों को कौपीनाच्छादन देते हैं व यथाशक्ति से भोजन देते हैं ॥ १५ ॥ हे दैत्यज ! उनके पुण्य को मैं संक्षेप से कहता हूं सुनिये और विस्तार से कहने के लिये ऋषि व देवताओं के गण असमर्थ हैं ॥ १६ ॥ हे दैत्यनायक ! पितृपक्ष में

भवेच्चैव मनीषिणः ॥ द्वारकांगच्छमानस्य पदेनैकेनसाभवेत् ॥ १२ ॥ न तेजीवन्तिलोकेस्मिन् यत्रतत्रस्थितानराः ॥ द्वारकां ये न सम्प्राप्तास्त्रिषुलोकेषुवञ्चिताः ॥ १३ ॥ द्वारकायांकारयन्ति यतीनांभोजनं च ये ॥ ग्रासेग्रासेमखशतं ते ल भन्तेफलंनराः ॥ १४ ॥ यतीनांयेप्रयच्छन्ति कौपीनाच्छादनादिकम् ॥ वसतांद्वारकामध्ये यथाशक्त्या तु भोजन म् ॥ १५ ॥ शृणुपुण्यं प्रवक्ष्यामि समासेन हि दैत्यज ॥ विस्तारादसमर्थाश्च ऋषयोदेवतागणाः ॥ १६ ॥ कोटिभिर्वेदविद्द्विर्गयायांपितृपक्षतः ॥ भोजितैर्यदवाप्नोति तत्फलंदैत्यनायक ॥ १७ ॥ एकस्मिन्भोजितेपौत्र भिक्षुकेफलमीदृशम् ॥ दातव्यंभिक्षुकेचान्नं न कुर्याद्धान्यविक्रयम् ॥ १८ ॥ धन्यास्तेयतयःसर्वे ये वसन्तिकलौयुगे ॥ कृष्णमाश्रित्यदैत्येन्द्र द्वारकायांदिनेदिने ॥ १९ ॥ येधन्यास्तेद्विजेन्द्राश्च द्वारकायांकलौयुगे ॥ प्रातरुत्थायपश्यन्ति कृष्णस्यमुखपङ्कज म् ॥ २० ॥ पशवःकृमयःकीटा येचान्येपक्षियोनयः ॥ मुक्तिंयास्यन्तितेसर्वे सन्तियेद्वारकांपुरीम् ॥ २१ ॥ प्राणिनोयेगताः

गया में करोड़ वेदज्ञ ब्राह्मणों को भोजन कराने से जिस फल को मनुष्य पाता है उस फल को ॥ १७ ॥ हे पौत्र ! एक यती के भोजन कराने से मनुष्य पाता है ऐसा यती में फल है और संन्यासी के लिये अन्न देना चाहिये व अन्न का विक्रय न करै ॥ १८ ॥ हे दैत्येन्द्र ! वे सब यती धन्य हैं जोकि कलियुग में श्रीकृष्णजी के आश्रित होकर प्रतिदिन द्वारका में बसते हैं ॥ १९ ॥ और जो धन्य द्विजोत्तम हैं वे कलियुग में प्रातःकाल उठकर द्वारका में श्रीकृष्णजी के मुखकमल को देखते हैं ॥ २० ॥ पशु, कृमि, कीट व जो अन्य पशुयोनि हैं वे सब मुक्ति को प्राप्त होवैंगे जो कि द्वारकापुरी में हैं ॥ २१ ॥ और जो कोई प्राणी द्वारका को श्रीकृष्णजी के

समीप गये हैं वे पापी भी सूर्यमंडल को फोड़कर उन श्रीकृष्णजी के स्थान को जाते हैं॥ २२ ॥ और ब्रह्मा से लगाकर स्तम्ब (तृणगुच्छ) पर्यन्त यह सब संसार उनसे तृप्त होता है जोकि द्वारकापुरी को गये हैं ॥ २३ ॥ और जंगम व स्थावर जो कोई तीर्थ हैं वे गोमती व समुद्र के संगम में त्रिकाल स्नान करते हैं ॥ २४ ॥ और भुवन से लगाकर ब्रह्मातक देवता, ऋषि, पितर व मनुष्यों को गोमती में भक्ति से तर्पण कर मनुष्य विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ २५ ॥ और भोजनों से ब्राह्मणों को व विशेषकर चारों वर्णों को तृप्तकर श्रीकृष्णजी के समीप दीन, अन्ध व कृपणों को देना चाहिये॥ २६ ॥ और जो मनुष्य वैशाखमें द्वादशी के दिन स्नान,

केचिद्द्वारकांकृष्णसन्निधौ ॥ पापिनस्तत्पदंयान्ति भित्त्वातेसूर्यमण्डलम् ॥ २२ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगदेतचरा चरम् ॥ प्रीणितंतैश्च सर्वन्तु येगताद्वारकांपुरीम् ॥ २३ ॥ यानिकानि च तीर्थानि चराणिस्थावराणि च ॥ स्नानं त्रिकालंकुर्वन्ति गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ २४ ॥ देवानृषीन्पितॄन्मर्त्यानाब्रह्मभुवनादिकम् ॥ तर्पयित्वा तु गोमत्यां भक्त्यायान्तिपदंहरेः ॥ २५ ॥ भोजनैर्ब्राह्मणांस्तर्प्य चातुर्वर्ण्यं विशेषतः ॥ दीनान्धकृपणानां च देयं वै कृष्णस न्निधौ ॥ २६ ॥ स्नानं च दानं च जपं तपश्च भुक्तिंयतीनांपितृपिण्डदानम् ॥ ये माधवेद्वादशिवासरे च कुर्वन्तिते यान्तिपदंमुरारेः ॥ २७ ॥ दृष्ट्वाकृष्णमुखंरम्यं कार्त्तिकेशुक्लपक्षतः ॥ कोटिजन्मार्जितैःपापैर्मुच्यन्तेसर्वजन्तवः ॥ २८ ॥ पापिनांपुण्यकर्तॄणां मुक्तिर्द्वारावतींपुरीम् ॥ तत्रपौत्रमृतानां च पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २९ ॥ द्वारकाचक्रतीर्थेये निवसन्तिनरोत्तमाः ॥ तेषांनिवारिताःसर्वे यमेन यमकिङ्कराः ॥ ३० ॥ स्नाताःपश्यन्तिगोमत्यां कृष्णंकलिमला

दान, जप, तप व यतियोंको भोजन और पितरों को पिंडदान करते हैं वे विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ २७ ॥ और कातिक में शुक्लपक्ष में श्रीकृष्णजीके सुन्दर मुख को देखकर सब प्राणी करोड़ जन्मों में इकट्ठा कियेहुए पातकों से छूटजाते हैं ॥ २८ ॥ और पापी व पुण्यकारी जनों की मुक्ति द्वारकापुरी में होती है व हे पौत्र ! वहां मरेहुए मनुष्यों का फिर जन्म नहीं होताहै ॥२९॥ और द्वारका के चक्रतीर्थ में जो उत्तम मनुष्य बसते हैं उनके लिये सब यमदूत यमराजसे मना कियेजाते हैं ॥ ३० ॥ और

नहायेहुए जो मनुष्य कलियुग के पाप को नाशनेवाले श्रीकृष्णजी को देखते हैं उनके पाप नहीं होता है और न उनके शत्रु होते हैं ॥ ३१ ॥ और कीट, पतंग व वृक्ष और जो उनके आश्रित होते हैं वे अच्युत व अव्यय संज्ञक श्रीकृष्णजी के स्थान को जाते हैं ॥ ३२ ॥ फिर अपने धर्म में स्थित ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्विजों को क्या कहना है और क्षत्रिय धर्म को जाननेवाले क्षत्रिय व मार्ग में चलनेवाले वैश्यों को क्या कहना है ॥ ३३ ॥ और तीनों वर्णों की पूजा से संयुत जो वहां रहनेवाले शूद्र हैं वे द्वारका के प्रभाव से विष्णुजी के स्थान को जाते हैं ॥ ३४ ॥ और जो महापातकों से संयुत व उपपातकों को करनेवाले हैं भक्ति से संयुत वे त्रिकाल

पहम् ॥ न तेषांविद्यतेपापं न तेषांसन्तिशत्रवः ॥ ३१ ॥ अपिकीटाःपतङ्गावा वृक्षा वा येतदाश्रिताः ॥ यान्तितेकृष्ण सदनमच्युताव्ययसञ्ज्ञकम् ॥ ३२ ॥ किंपुनर्द्विजवर्याश्च स्वधर्मस्थाद्विजातयः ॥ क्षत्रियाःक्षत्रधर्मज्ञा वैश्यामार्गानुसारिणः ॥ ३३ ॥ त्रिवर्णपूजासंयुक्ताः शूद्रास्तत्रनिवासिनः ॥ द्वारकायाःप्रभावेण पदंविष्णोःप्रयान्तिते ॥ ३४ ॥ महापापान्विताये वै उपपापकृतास्तथा ॥ पठेयुर्नामसहस्रं त्रिकालंभक्तिसंयुताः ॥ ३५ ॥ तथाभागवतस्योक्तं पुराणंश्लोकमुत्तमम् ॥ कृष्णस्यप्रीतिजननं यज्ञकोटिफलप्रदम् ॥ ३६ ॥ तेषांविलीयतेपापं कल्पकोटिशतैःकृतम् ॥ गीतांपठन्तिकृष्णाग्रे कार्त्तिकंसकलंद्विजाः ॥ ३७ ॥ एकभक्तेननक्तेन तथैवायाचितेन च ॥ प्राजापत्येनकृच्छ्रेण तथा चान्द्रायणेन च ॥ ३८ ॥ सकलैस्तत्रकृच्छ्राद्यैः पक्षंमासमुपोषणैः ॥ क्षपयन्ति च ये मासं कार्त्तिकंव्रतचारिणः ॥ ३९ ॥ स्नात्वा तु गोमतीतोये तथा वै रुक्मिणीह्रदे ॥ शङ्खचक्रगदाहस्ताः कृष्णवेषाभवन्तिते ॥ ४० ॥ उपोष्यैकादशींशुद्धां

सहस्रनाम को पढ़ें ॥ ३५ ॥ और भागवत के कहेहुए उत्तम व पुराण तथा श्रीकृष्णजी की प्रीति को पैदा करनेवाले व करोड़ों यज्ञों के फल को देनेवाले श्लोक को जो पढ़ते हैं ॥ ३६ ॥ उनका करोड़ों जन्मों में कियाहुआ पाप नाश होजाता है और श्रीकृष्णजी के आगे जो ब्राह्मण समस्त कातिक महीने भर गीता को पढ़ते हैं ॥ ३७ ॥ और एकभक्त, नक्त,अयाचित,प्राजापत्यकृच्छ्र व चान्द्रायण से ॥ ३८ ॥ और वहां सब कृच्छ्रादिकों से तथा पक्ष व महीनेभर उपास करने से जो व्रतको करनेवाले मनुष्य गोमती के जल में व रुक्मिणी के कुण्ड में नहाकर कातिक महीने को व्यतीत करते हैं शंख, चक्र व गदा को हाथ में लियेहुए वे कृष्णवेष होते हैं ॥ ३९ । ४० ॥ और

दशमी के संग से दूषित शुद्ध एकादशी को उपास कर जो मनुष्य द्वादशी तिथि में चक्रतीर्थ में निर्मल श्राद्ध को करते हैं ॥ ४१ ॥ और शहद, खीर व घी से ब्राह्मणों को भोजन कराकर व विशेष कर घृत से पूर्ण लड्डुवों और दूध से ॥ ४२ ॥ विधिपूर्वक भक्ति से तृप्तकर व शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर गऊ, पृथ्वी, सुवर्ण, ताबूल व फलों को देवै ॥ ४३ ॥ और पनही, छतुरी, पुष्प व जलसे भरेहुए उत्तम घटोंको पक्वान्नसंयुत, सफल व दक्षिणा से संयुत देवे ॥ ४४ ॥ कातिक महीने में श्रीकृष्णजी को उद्देश कर विशेषकर पितरों की बड़ी भक्ति से भावित जो मनुष्य ऐसा करता है ॥ ४५ ॥ तो निश्चयकर पितरोंकी मार्कण्डेयके समान प्रीति होती है और देवताओं

दशमीसङ्गवर्जिताम् ॥ श्राद्धंकुर्वन्तिद्वादश्यां चक्रतीर्थेषुनिर्मलम् ॥ ४१ ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु मधुपायसस पिंषा ॥ लड्डुकैर्घृतपूरैश्च पयसा च विशेषतः ॥ ४२ ॥ सन्तर्प्यविधिवद्भक्त्या शक्त्यादत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥ गोभूहिर एयवासांसि ताम्बूलं च फलानि च ॥ ४३ ॥ उपानच्छत्रकुसुमं जलपूर्णान्घटांस्तथा ॥ पक्वान्नसंयुताञ्छुभ्रान्सफ लान्दक्षिणान्वितान् ॥ ४४ ॥ एवंयःकुरुतेसम्यक् कृष्णमुद्दिश्यकार्त्तिके ॥ पितॄणान्तुविशेषेण गुरुभक्तिप्रभावि तः ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयसमाप्रीतिः पितॄणांजायतेध्रुवम् ॥ कृष्णस्यत्रिदशैःसार्द्धं तुष्टिर्भवतिचाक्षया ॥ ४६ ॥ आनी यसर्वतीर्थानि श्रीकृष्णेनमहात्मना ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानिस्थापितानिस्वकींपुरीम् ॥ ४७ ॥ ततःपुरीद्वारवती मुक्ति दाप्रोच्यतेबुधैः ॥ नमस्कारकृतेयस्याः सद्यस्तुष्यतिचक्रधृक् ॥ ४८ ॥ वसतिद्वारकायान्तु चक्रपाणिर्गदाधरः ॥ वैष्णवानां तु संप्रीत्या भक्त्यादुर्वाससश्च हि ॥ ४९ ॥ अनुज्ञया तु देवानां भूभागेतारणाय वै ॥ वसतेद्वारकायां

समेत श्रीकृष्णजी की अक्षय प्रसन्नता होती है ॥ ४६ ॥ महात्मा श्रीकृष्णजी ने स्वर्ग, आकाश व पृथ्वी के सब तीर्थों को लाकर अपनी पुरी में स्थापित कियाहै ॥ ४७ ॥ उसीकारण द्वारकापुरी विद्वानों से मुक्तिदायिनी कहीजाती है कि जिसके नमस्कार करने से उसी क्षण चक्रधारी विष्णुजी प्रसन्न होतेहैं ॥ ४८ ॥ गदाधारी व चक्रपाणि विष्णुजी वैष्णवों की प्रीति व दुर्वासाजी की भक्ति से द्वारका में बसते हैं ॥ ४९ ॥ और देवताओं की आज्ञा से पृथ्वी के विभाग में श्रीकृष्णजी तारने के लिये कलि-

काल में द्वारकापुरी में बसते हैं ॥ ५० ॥ कातिक महीने में व्रत व दान से संयुत जो पुण्यवान् मनुष्य द्वारकापुरी में टिकते हैं चक्रतीर्थ में किये पवित्र शरीरवाले वे मनुष्य पवित्र व विकाररहित स्थान को जाते हैं ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥
दो० । जौन तीर्थ पितृदेवता बसत द्वारका बीच । तेंतालिसवें में सोई कह्यो चरित सुखसीच ॥ प्रह्लादजी बोले कि संसार में वे मनुष्य धन्य हैं जो कि गोमती में तर्पणकर श्रीकृष्णजी को अपने तुलसीदलों से पूजते हैं ॥ १ ॥ और द्वारका में जो मनुष्य श्रीकृष्णजी को तुलसीदलों से पूजते हैं उनका इस भयंकर संसारगुहा

तु कलिकाले तु केशवः ॥ ५० ॥ ये कार्त्तिकेपुण्यमतोमनुष्यास्तिष्ठन्तिमासेव्रतदानयुक्ताः ॥ रथाङ्गतीर्थेकृतपूतगात्रास्ते यान्तिपुण्यंपदमव्ययं च ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥
प्रह्लाद उवाच ॥ धन्यास्तु ननु ते लोके गोमत्यान्तु कृतोदकाः ॥ पूजयिष्यन्ति ये कृष्णं स्वकीयैस्तुलसीदलैः ॥ १ ॥ न तेषांसम्भवोस्तीह घोरसंसारगह्वरे ॥ द्वारकांयेर्चयिष्यन्ति कृष्णंतुलसिपत्रकैः ॥ २ ॥ ते भवन्तिनरोमुक्ता द्वारकायांवसन्ति ये ॥ तेषांजन्मपुनर्नास्ति अमरत्वं हि तेगताः ॥ ३ ॥ अन्यत्रैव यतीनां च कोटीनांयत्फलंलभेत् ॥ द्वारकायां तु चैकेन भोजितेन तु चाधिकम् ॥ ४ ॥ अतीतंवर्त्तमानं च भविष्यंयच्च पातकम् ॥ निर्दहेन्नास्तिसन्देहो द्वारका मनसास्मृता ॥ ५ ॥ द्वारकान्तु समासाद्य श्रीकृष्णमनुपश्यति ॥ कल्पकोटिसहस्रैस्तु नास्तितस्यपुनर्भवः ॥ ६ ॥ तीर्थाध्ययनयज्ञैश्च न मुञ्चन्तिनराभुवि ॥ द्वारकां ये च गच्छन्ति कृतार्थास्तेनरोत्तमाः ॥ ७ ॥ कामक्रोधेन लोभेन

में जन्म नहीं होता है ॥ २ ॥ और जो द्वारका में बसते हैं वे मनुष्य मुक्त होजाते हैं व फिर उनका जन्म नहीं होता है और वे अमरता को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ और अन्यत्र करोड़ संन्यासियों से मनुष्य जिस फलको पाता है द्वारका में एक यती को भोजन कराने से उससे अधिक फल होता है ॥ ४ ॥ और भूत, वर्तमान व भविष्य जो पाप होता है उसको मन से स्मरण कीहुई द्वारका नाश करती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ द्वारका को जाकर जो मनुष्य श्रीकृष्णजी को देखता है उसका करोड़ सौ कल्पोंसे भी फिर जन्म नहीं होता है ॥ ६ ॥ पृथ्वी में मनुष्य तीर्थ, पठन व यज्ञोंसे मुक्त नहीं होतेहैं और द्वारकामें जो बसते हैं वे उत्तम मनुष्य कृतार्थ होते हैं ॥ ७ ॥ और

काम, क्रोध व लोभ से जो मनुष्य पृथ्वी में प्राप्त हुए हैं वे कलियुग में श्रीकृष्णजी से पालित द्वारकापुरी को नहीं जानते हैं ॥ ८ ॥ और जो मनुष्य द्वारकावा
श्रीकृष्णजी की स्तुति करते हैं व पूजते हैं महापातकों से छूटेहुए वे अजर अमर होकर बसते हैं ॥ ९ ॥ और करोड़ कुलों से संयुत वे अक्षय व अमर होते हैं औ
बहुत आनन्दित होकर विष्णु जी की द्वारकापुरी में बसते हैं ॥ १० ॥ व अन्यत्र टिकेहुए मूढ़ मनुष्य द्वारकापुरी को क्यों नहीं सेवन करते हैं जहां कि मरेहुए प्राणि
की सदैव श्वेतद्वीप में स्थिति होती है ॥ ११ ॥ और अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, आज्यप व सोमपादिक इकतिस वे पितरों के गण द्वारका में बसते हैं ॥ १२ ॥ औ

ये गतामानवाभुवि ॥ द्वारकांनाभिजानन्ति कलौकृष्णेनपालिताम् ॥ ८ ॥ द्वारकावासिनंकृष्णं येस्तुवन्त्यर्चयन्ति च ॥ महापापैःप्रमुक्तास्तेन्यवसन्त्यजरामराः ॥ ९ ॥ अक्षयाश्चामराश्चैव कुलकोटिसमन्विताः ॥ वसन्ति च तथा विष्णोर्द्वारकायांसुनिर्वृताः ॥ १० ॥ कथन्नसेव्यतेमूढैर्द्वारकान्यत्रसंस्थितैः ॥ मृतानांयत्रजन्तूनां श्वेतद्वीपेस्थितिःसदा ॥ ११ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषद आज्यपाःसोमपादयः ॥ एकत्रिंशत्पितृगणा द्वारकां निवसन्ति ते ॥ १२ ॥ पुष्करादीनितीर्थानि गङ्गाद्याःसरितस्तथा ॥ कुरुक्षेत्रादिक्षेत्राणि काश्याद्याःसप्तपुर्यकाः ॥ १३ ॥ गयादिपितृतीर्थानि प्रभासाद्यानियानि तु ॥ वनान्युपवनानीह ग्रामाणिनिवसन्ति वै ॥ १४ ॥ काश्यादिषट्पुरीनित्यं निवसन्तिकलौयुगे ॥ नित्यंकृष्णंप्रसेवन्ति पापिनांमुक्तिहेतुकम् ॥ १५ ॥ वैशाखेशुक्लद्वादश्यां प्रबोधिन्यांविशेषतः ॥ वैशाख्यांदैत्यशार्दूल कल्पादिषुयुगादिषु ॥ १६ ॥ चन्द्रसूर्योपरागेषु मन्वादिषु न संशयः ॥ व्यतीपातेषुसंक्रान्तौ वैधृतौदैत्यनाय

पुष्करादिक तीर्थ व गंगादिक नदियां, कुरुक्षेत्रादिक क्षेत्र व काशी आदिक सात पुरी ॥ १३ ॥ व गयादिक पितरों के तीर्थ और जो प्रभासादिक तीर्थ हैं व वन और
उपवन इस द्वारकापुरी में बसते हैं ॥ १४ ॥ कलियुग में काशी आदिक छः पुरियां सदैव बसती हैं व पापियों की मुक्ति के कारणरूप श्रीकृष्णजी को नित्य सेवती
हैं ॥ १५ ॥ व हे दैत्यशार्दूल ! वैशाख में शुक्लपक्ष की द्वादशी में व विशेषकर प्रबोधिनी में और वैशाखी व कल्पादि तथा युगादि तिथियों में ॥ १६ ॥ व हे दैत्य-

नायक ! चन्द्रमा, सूर्य के ग्रहणों में, मन्वादिक तिथियों में और व्यतीपात योग में व संक्रान्ति तथा वैधृति में ॥ १७ ॥ जहां पिण्डदानपूर्वक मनुष्य श्राद्ध करते हैं वहां उन पितरों की अक्षय तृप्ति होती है ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❋ ॥

दो० । यहि द्वारका महात्मकर अहै अमित परभाव । चवालिसें अध्याय में सोई चरित सुहाव ॥ प्रह्लादजी बोले कि वैशाखी व कार्त्तिक महीने में जो मनुष्य द्वारका में वृषोत्सर्ग करते हैं उनके पितर पिशाचत्व को छोड़कर मुक्त होजाते हैं ॥ १ ॥ जबतक पुत्र या पौत्र द्वारकापुरी को नहीं जाता है तबतक पितरों की गति नहीं

क ॥ १७ ॥ यत्रश्राद्धंप्रकुर्वन्ति पिण्डदानपुरस्सरम् ॥ तेषांतत्राक्षयातृप्तिः पितॄणामुपजायते ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

प्रह्लाद उवाच ॥ वृषोत्सर्गंप्रकुर्वन्ति वैशाख्यां चैव कार्त्तिके ॥ द्वारकायां पिशाचत्वं मुक्तामुक्ताःपितामहाः ॥ १ ॥ पिशाचत्वस्यस्थिरता पितॄणां न गतिर्भवेत् ॥ यावन्न गच्छतेपुत्रः पौत्रो वा द्वारकांपुरीम् ॥ २ ॥ वैशाख्यांपौर्णमास्यां च दृष्ट्वा वै रुक्मिणीपतिम् ॥ आजन्मसञ्चितैःपापैर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ३ ॥ रुक्मिण्याश्चह्रदेस्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥ तर्पिताःपितरोदेवाः सप्तमन्वन्तराणि वै ॥ ४ ॥ पानीयंपिबतेयस्तु गोमत्यारुक्मिणीह्रदे ॥ न तस्यतिष्ठते पापं शरीरेपुनरेव हि ॥ ५ ॥ तीर्थानियानिदिविचान्तरिक्षे रसातलेदिक्षुविदिक्षुभूम्याम् ॥ इदं हि सर्वेषुवरं च तीर्थं ब्रह्मेन्द्ररुद्रादिसुरैःप्रगीतम् ॥ ६ ॥ ये चैवजीवाण्डजउद्भिजाद्यादैत्येश येस्वेदजसम्भवाश्च ॥ जरायुजाश्चैव तथाप्रभूता मुच्य

होती है और पिशाचता की स्थिरता होती है ॥ २ ॥ और वैशाखी पौर्णमासी में रुक्मिणीपति श्रीकृष्णजी को देखकर जन्म से लगाकर इकट्ठा कियेहुए पापों से मनुष्य छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३ ॥ और रुक्मिणीजीके कुण्ड में नहाकर जो मनुष्य पितरों व देवताओं को तर्पण करता है उसके पितर व देवता सात मन्वन्तरों तक तर्पित होते हैं ॥ ४ ॥ और जो मनुष्य गोमती के रुक्मिणीकुण्ड में जल पीता है उसके शरीर में फिर पाप नहीं स्थित होता है ॥ ५ ॥ और स्वर्ग, आकाश, रसातल, दिशाओं व विदिशाओं और भूमि में जो तीर्थ हैं उन सबों में यह तीर्थ श्रेष्ठ है ऐसा ब्रह्मा, इन्द्र व रुद्रादि देवताओं ने गाया है ॥ ६ ॥ व हे दैत्येश

अण्डज व उद्भिज आदिक जो जीव हैं और जो स्वेदज से उपजेहुए जीव हैं वे और जरायुज प्राणी श्रीकृष्णजी के समीप मुक्त होजाते हैं ॥ ७ ॥ व हे दैत्येश ! सब प्राणी जो कि रसातल में हैं व जो जल के आश्रय हैं और जो ब्रह्मतेज के आश्रित हैं वे श्रीकृष्णजी को प्राप्त होकर मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ सब दशा में प्राप्त जो मनुष्य द्वारका को नहीं छोड़ता है वह उस गति को पाता है जिसको कि मनुष्य करोड़ सौ यज्ञों से पाता है ॥ ९ ॥ ब्रह्महत्या, मद्यपान, चोरी व गुरुस्त्रीगमन इन बड़ेभारी भी पापों को करके ॥ १० ॥ हे दैत्येन्द्र ! गोमती में स्नान से व श्रीकृष्णजी के दर्शन में करोड़ों सौ कल्प के पाप नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ और जो

न्तिकृष्णस्य च सन्निधाने ॥ ७ ॥ दैत्येशभूतानिसमस्तजीवा रसातलेये च जलाश्रयाश्च ॥ ब्राह्मयश्च तेजोपिसमाश्रिताये कृष्णंसमासाद्यप्रयान्तिमुक्तिम् ॥ ८ ॥ सर्वावस्थोपियोमर्त्यो द्वारकां न जहाति च ॥ सताङ्गतिमवाप्नोति क्रतुकोटिशतैर्नरः ॥ ९ ॥ ब्रह्महत्यासुरापानं स्तेयंगुर्वङ्गनागमः ॥ पापान्येतानिकृत्वा तु महान्त्यपिगुरूण्यपि ॥ १० ॥ स्नानमात्रेणगोमत्यां श्रीकृष्णस्य तु दर्शने ॥ विलयंयान्तिदैत्येन्द्र कल्पकोटिशतान्यपि ॥ ११ ॥ रुक्मिणींयेप्रपश्यन्ति भक्तियुक्ताःकलौनराः ॥ न तेषांसंक्रमेत्पापं मन्वन्तरशतैःकृतम् ॥ १२ ॥ पुरींप्रदक्षिणींकृत्वा पठेन्नामसहस्रकम् ॥ प्रदक्षिणीकृतंसर्वं ब्रह्माण्डंनात्रसंशयः ॥ १३ ॥ महद्भिःपातकैर्युक्ताः सन्तियेशास्त्रनिन्दकाः ॥ पापैःसर्वैःप्रमुच्यन्ते कृष्णदेवस्यदर्शनात् ॥ १४ ॥ सर्वेषां चैव पापानां भेषजंद्वारकाकलौ ॥ कृष्णःस्वायंभुवोदेवः प्रत्यक्षोयत्रतिष्ठति ॥ १५ ॥ महादानैस्तु चान्यत्र यत्फलंपरिकीर्तितम् ॥ द्वारकायान्तुकाकिण्यां दत्तायांजायतेक्षणात् ॥ १६ ॥ द्वारका

भक्तिसंयुत मनुष्य कलियुग में रुक्मिणीजी को देखते हैं सौ मन्वन्तरों में किया हुआ उनका पाप नहीं आक्रमण करता है ॥ १२ ॥ और जो पुरी की प्रदक्षिणाकर सहस्रनाम को पढ़ता है उसने सब ब्रह्माण्ड की प्रदक्षिणा किया इसमें सन्देह नहीं है ॥ १३ ॥ और जो मनुष्य बड़े पातकों से संयुत व जो शास्त्रनिन्दक होते हैं वे श्रीकृष्णदेवजी के दर्शन से सब पापों से छूटजाते हैं ॥ १४ ॥ और कलियुग में द्वारका सब पापों की औषध है जहां कि स्वायंभुव श्रीकृष्णदेवजी प्रत्यक्ष स्थित हैं ॥ १५ ॥ अन्यत्र महादानों से जो फल कहागया है वह द्वारका में एक काकिणी देने से क्षणभर में होता है ॥ १६ ॥ एक ओर द्वारका कहीगई है व एक ओर सब

तीर्थ कहेगये हैं और द्वारका में प्राणों को छोड़ताहुआ मनुष्य अक्षय गति को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ और द्वादशी दिन प्राप्त होने पर जो द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को विष्णुजी के समीप पढ़ता है उसके फलको मैं कहता हूं तुम सुनो ॥ १८ ॥ कि वह मनुष्य घण्टियों के समूह से मालावाले सुवर्ण के विमान से सब लोकों में कामगामी होकर विराजता है ॥ १९ ॥ और वीणा व मुरज को बजानेवाले सुरराजगण समूह से संयुत तथा गर्वित अश्वों से युक्त कामगामी विमान के द्वारा वह सुखपूर्वक ॥ २० ॥ प्रलय पर्यन्त अप्सराओं के गणों समेत क्रीडा करता है और करोड़ों पुश्तियों से संयुत वह कृतार्थ होता है ॥ २१ ॥ और जैसे बिन इन्धन की

चैकतःप्रोक्ता सर्वतीर्थानिचैकतः ॥ द्वारकायांत्यजन्प्राणाँल्लभतेचाक्षयांगतिम् ॥ १७ ॥ द्वादशीवासरेप्राप्ते माहात्म्यं द्वारकोद्भवम् ॥ पठतेसन्निधौविष्णोः श्रृणुवक्ष्यामितत्फलम् ॥ १८ ॥ सर्वेषु चैव लोकेषु कामचारीविराजते ॥ ससुवर्णे नयानेन किङ्किणीजालमालिना ॥ १९ ॥ देवराजगणौघेन वीणामुरजवादिना ॥ दर्पिताश्वप्रयुक्तेन कामगेन यथासुखम् ॥ २० ॥ आभूतसम्प्लवंयावत् क्रीडतेप्सरसाङ्गणैः ॥ कृतकृत्यश्च भवति कुलकोटिसमन्वितः ॥ २१ ॥ यथाचानिन्धनाग्निस्तु सर्वकाष्ठेषुदृश्यते ॥ तथा च दृश्यतेधर्मो द्वादशीसेवकेनरे ॥ २२ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिपितृभिःपरिकीर्त्तितम् ॥ मघायांदैत्यशार्दूल काममद्भिःस्वकेपुरे ॥ २३ ॥ अप्यस्तिसकुलेस्माकं योनोदद्याज्जलाञ्जलिम् ॥ तिलाक्षतैश्चसंयुक्तं द्वारकायांप्रदास्यति ॥ २४ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं गोमत्यांश्राद्धमाचरेत् ॥ पयोमूलफलैःपुष्पैस्तिलतोयैः प्रयत्नतः ॥ २५ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकंगोमत्युदधिसंगमे ॥ स्नात्वादास्यतियःपिण्डमस्माकंतरणाय वै ॥ २६ ॥ अपि

अग्नि सब काष्ठों में देख पड़ती है वैसेही द्वादशी सेवन करनेवाले मनुष्य में धर्म देखपड़ता है ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त हे दैत्यशार्दूल ! मैं पितरों से कहेहुए वचन को कहता हूं कि हमलोगों के कुल में वह पुत्र होवै जोकि मघा नक्षत्र में अपने पुरमें व द्वारकामें इच्छा के अनुकूल जलों से और तिलों तथा अक्षतों से संयुत जलांजलि को देवै ॥ २३ । २४ ॥ और हमारे वंश में वह पुरुष होवै जो कि बड़े यत्न से दूध, जड़, फल, पुष्प, तिल व जलों से गोमती के किनारे श्राद्ध करै ॥ २५ ॥ और वह पुरुष हमलोगों के वंश में होवै जो कि हमलोगों के तरने के लिये गोमती और समुद्र के संगम में नहाकर पिंड को देवै ॥ २६ ॥ और हमलोगों के वंश में वह

पुत्र होवै जो कि शक्ति के अनुसार इस द्वारकामाहात्म्य को पूजै ॥ २७ ॥ और हमलोगों के वंश में वह पुत्र या कन्या का पुत्र होवै जोकि द्वारका में जाकर योगियों को तृप्त करै ॥ २८ ॥ व हमलोगों के वंश में वह पुत्र होवै जोकि द्वारकापुरी को जाकर व शुद्ध द्वादशी को प्राप्त होकर जागरण करै ॥ २९ ॥ और हमलोगों के वंश में वह पुत्र या कन्या का पुत्र होवै स्तुति करताहुआ जोकि श्रीकृष्णजी के आगे विष्णुसहस्रनाम को पढ़ै ॥ ३० ॥ और हमलोगों के वंश में व्रत को ग्रहण कियेहुए जोकि गोपीचन्दन के दान से वैष्णवों को प्रसन्न करै ॥ ३१ ॥ और हमलोगों के वंश में वह पुत्र होवै जोकि द्वारका में माहात्म्य को लिखकर श्रीकृष्णजी की

स्यात्सकुलेस्माकं भविष्यत्यथवासुतः ॥ द्वारकामाहात्म्यमिदं पूजयिष्यतिशक्तितः ॥ २७ ॥ अपिस्यात्सकुलेस्माकं पुत्रो वा पुत्रिकासुतः ॥ योगत्वाद्वारकायान्तु योगिनःप्रीणयिष्यति ॥ २८ ॥ भविष्यतिकुलेस्माकं योगत्वाद्वारकां पुरीम् ॥ संप्राप्यद्वादशींशुद्धां यःकरिष्यतिजागरम् ॥ २९ ॥ भविष्यतिकुलेस्माकं पुत्रो वा दुहितुःसुतः ॥ स्तुवन्नामसहस्रन्तु कृष्णस्याग्रेपठिष्यति ॥ ३० ॥ अपिस्यात्तुकुलेस्माकं भविष्यतियतव्रतः ॥ गोपीचन्दनदानेन यः स्तोषयतिवैष्णवान् ॥ ३१ ॥ भविष्यतिकुलेस्माकं माहात्म्यंद्वारकासु च ॥ लिखित्वाकृष्णतुष्ट्यर्थं स्वगृहेधारयिष्यति ॥ ३२ ॥ स्वर्णदानं च गोदानं पृथ्वीदानं तथैव च ॥ यावज्जीवंभवेद्दत्तं येनेदंधारितंकलौ ॥ ३३ ॥ तप्तंकृच्छ्रंमहाकृच्छ्रं मासोपाससमंव्रतम् ॥ यावज्जीवंकृतंतेन येनेदंधारितंगृहे ॥ ३४ ॥ प्रायश्चित्तानिचीर्णानि पापानांनाशनाय वै ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं येनेदंलिखितंबले ॥ ३५ ॥ सर्वकामप्रदंत्वेतत्सर्वदानफलप्रदम् ॥ सर्वदुःखप्रशमनं सर्वरो

प्रसन्नता के लिये अपने घरमें धारण करै ॥ ३२ ॥ और कलियुग में जिसने जीवनपर्यन्त इसको धारण किया उसने सुवर्णदान, गोदान, भूमिदान को दिया ॥ ३३ ॥ और उसने कृच्छ्र व महाकृच्छ्र तप किया व जीवनपर्यन्त उसने मासोपवास के समान व्रत किया कि जिसने इसको घरमें धारण किया ॥ ३४ ॥ व हे बले! जिसने द्वारका के इस माहात्म्य को लिखा है उसने पातकों के नाश के लिये प्रायश्चित्तों को किया है ॥ ३५ ॥ यह माहात्म्य सब कामनाओं को देनेवाला तथा सब दानों के फल को

देनेवाला है और सब दुःखों का नाशक व सब रोगों का विनाशक है ॥ ३६ ॥ व महासम्पत्तियों को देनेवाला और दारिद्र का एकही नाशक व सदैव सम्पत्ति का कारण और सदैव धर्म को बढ़ानेवाला है ॥ ३७ ॥ और सब उत्पातों का नाशक व विष, शस्त्र तथा अग्नि का नाशक व सब विघ्नों का विनाशक और सब कार्योंका साधक है ॥ ३८ ॥ व नित्य चतुर्वर्गफल को देनेवाला तथा सदैव धर्म को बढ़ानेवाला है और उसके रोग नहीं होता है व यमराज का डर नहीं होता है ॥ ३९ ॥ जहां द्वारका से उपजाहुआ माहात्म्य पढ़ाजाता है व जिस घर में लिखाहुआ यह माहात्म्य सदैव स्थित होता है ॥ ४० ॥ वहां मनुष्य इस सबको पाता है जोकि

गविनाशनम् ॥ ३६ ॥ महासम्पत्प्रदंनित्यं दारिद्र्यस्यप्रभञ्जनम् ॥ सम्पत्तिकारणंनित्यं नित्यंधर्मविवर्द्धनम् ॥ ३७ ॥ सर्वोत्पातप्रशमनं विषशस्त्राग्निनाशनम् ॥ सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वकार्यप्रसाधनम् ॥ ३८ ॥ चतुर्वर्गप्रदंनित्यं नित्यं धर्मविवर्द्धनम् ॥ न व्याधिर्भवतेतस्य याम्यंतस्यभयन्नहि ॥ ३९ ॥ माहात्म्यंपठ्यते यत्र द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ लिखितंतिष्ठते नित्यं गृहेयस्मिन्दिनेदिने ॥ ४० ॥ सर्वमेतदवाप्नोति यदुक्तं पितृभिःस्वयम् ॥ बलेशृणुष्वमाहात्म्यं द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ ४१ ॥ विधिमन्त्रक्रियाहीनां पूजांगृह्णातिकेशवः ॥ माहात्म्यंतिष्ठते नित्यं लिखितंयस्यवे श्मनि ॥ ४२ ॥ नापराधसहस्रैस्तु कृतैर्लिप्यतिमानवः ॥ यः पठेच्छृणुयाद्वापि माहात्म्यंद्वारकासु च ॥ ४३ ॥ द्वाद शीनान्तु सर्वासां यथोक्तंलभतेफलम् ॥ द्वारकायाःसमुद्भूतं माहात्म्यंपठते तु यः ॥ ४४ ॥ त्रिदशैःपूज्यतेनित्यं वन्द्य तेसिद्धचारणैः ॥ माहात्म्यंपठतेयो वै द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ ४५ ॥ द्वारकावसतेतत्र विष्णुस्तत्रस्वयंव्रजेत् ॥ मा

आपही पितरों ने कहा है हे बले ! द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को सुनिये ॥ ४१ ॥ कि लिखाहुआ यह माहात्म्य जिसके घरमें स्थित होता है उसके विधि, मंत्र व कर्म से हीन पूजन को विष्णुजी ग्रहण करते हैं ॥ ४२ ॥ और जो मनुष्य द्वारकामें माहात्म्य को पढ़ता या सुनता है वह कियेहुए हज़ार अपराधों से लिप्त नहीं होतो है ॥ ४३ ॥ और द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को जो पढ़ता है वह सब द्वादशियों के यथोक्त फल को पाता है ॥ ४४ ॥ व द्वारका से उपजेहुए माहात्म्य को जो पढ़ता है वह सदैव देवताओं से पूजाजाता है और सिद्धों व चारणों से प्रणाम कियाजाता है ॥ ४५ ॥ और जहां द्वादशी से उपजाहुआ माहात्म्य स्थित होता है वहां सदैव

द्वारका बसती है और वहां आपही विष्णुजी जाते हैं ॥ ४६ ॥ और जहां द्वादशी का माहात्म्य व द्वारका का माहात्म्य तथा विष्णुजी का सहस्रनाम स्थित होता है ॥ ४७ ॥ वहां सब तीर्थ व इन्द्र समेत सब देवता और यज्ञ, वेद, ऋषि व चराचर समेत त्रिलोक स्थित होता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यथा गोमती समुदकर संगम है सुखदाय। पैंतालिसवें में सोई चरित कह्यो सतिभाय ॥ नारदजी बोले कि हे पाण्डव ! मैं द्वारका से उपजेहुए फल को कहता

हात्म्यंतिष्ठतेयत्र द्वारकायाःसमुद्भवम् ॥ ४६ ॥ यत्रद्वादशिमाहात्म्यं द्वारकायास्तथैव च ॥ माहात्म्यंतिष्ठतेयत्र विष्णोर्नामसहस्रकम् ॥ ४७ ॥ तत्रतीर्थानिसर्वाणि सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ यज्ञावेदाश्चऋषयस्त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥ ❋ ॥

नारद उवाच ॥ शृणुपाण्डववक्ष्यामि द्वारकासम्भवंफलम् ॥ रुक्मिणीसहितोयत्र स्वयंनिवसतेहरिः॥ १ ॥ नेदृशी मथुरामाया न गया न च पुष्करम् ॥ यादृशीकलिकाले तु द्वारकाकृष्णसेविता ॥ २ ॥ तावद्गङ्गा च रेवा च यमुना च सरस्वती ॥ यावन्न पश्यतेभूप पुरींद्वारावतींकलौ ॥ ३ ॥ सरयूर्देविका चैव शालग्रामश्चगण्डकी ॥ यावन्न पश्यतेभूप पुरीं कृष्णेनसेविताम् ॥ ४ ॥शालग्रामंसम्भलं च कल्पग्रामंयुधिष्ठिर ॥ यावन्नपश्यतेजन्तुः पुण्यांकृष्णपुरींकलौ॥५॥ सैन्धवं

हूं सुनिये जहां कि रुक्मिणी समेत विष्णुजी आपही बसते हैं॥ १ ॥ ऐसी न मथुरा है न माया है और न गया है न पुष्कर है जैसी कलिकाल में श्रीकृष्णजी से सेवित द्वारकापुरी है ॥ २ ॥ तबतक गंगा, नर्मदा, यमुना व सरस्वती शोभित हैं जबतक कि हे भूप ! कलियुग में मनुष्य द्वारकापुरी को नहीं सेवता है ॥ ३ ॥ और तबतक सरयू, देविका, शालग्राम व गण्डकी शोभित हैं जबतक हे भूप ! मनुष्य श्रीकृष्णजी से सेवित द्वारकापुरी को नहीं देखता है ॥ ४ ॥ व हे युधिष्ठिर ! तबतक शालग्राम, संभल व कल्पग्राम शोभित हैं जबतक कि प्राणी कलियुग में पवित्र श्रीकृष्णजी की पुरी को नहीं देखता है ॥ ५ ॥ और तबतक सैंधव, दण्डकारण्य व वृंदावन

शोभित है जबतक कि प्राणी श्रीकृष्णजी से पालित द्वारकापुरी को नहीं देखता है ॥ ६ ॥ व हे नरनायक ! तबतक तीर्थों व व्रतों की महिमा है जबतक कि प्राणी पुण्यवर्द्धिनी द्वारका को नहीं देखता है ॥ ७ ॥ कलियुग में अग्निहोत्रों से और यज्ञों व अनेकभांति के दानों से क्या होता है हे राजन् ! द्वारकापुरी को जाइये व पापनाशिनी श्रीकृष्णजीकी पुरी को देखिये ॥ ८ ॥ तबतक समुद्र से लगाकर तड़ागपर्यन्त तीर्थ गरजते हैं जबतक कि श्रीकृष्णजी के चरणों से पैदाहुई गोमती नहीं देखीजाती है ॥ ९ ॥ प्रयाग में मरने से मुक्ति होती है वैसेही काशी में मुक्ति होती है और श्रीकृष्णजी की समीपता से द्वारका व नहाने से गोमती मुक्तिदायिनी

दण्डकारण्यं तावद्वृन्दावनं तथा ॥ यावन्न पश्यते जन्तुः पुरींकृष्णेनपालिताम् ॥ ६ ॥ तीर्थानांमहिमातावद्व्रतानांनरनायक ॥ यावन्न पश्यतेजन्तुर्द्वारकांपुण्यवर्द्धिनीम् ॥ ७ ॥ किमग्निहोत्रैःकिंयज्ञैर्दानैर्नानाविधैःकलौ ॥ गच्छभूपपुरींपश्य पुरींकृष्णस्यपापहाम् ॥ ८ ॥ तावद्गर्जन्तितीर्थानि ह्यासमुद्रसरांसि च ॥ यावत्कृष्णाङ्घ्रिसम्भूता दृश्यते न हि गोमती ॥ ९ ॥ प्रयागेमरणान्मुक्तिर्मुक्तिःकाश्यांतथैव च ॥ द्वारकाकृष्णसान्निध्यात्स्नानमात्रेण गोमती ॥ १० ॥ दत्तैस्तीर्थोदकैःपिण्डैः पितृणांजायतेगतिः ॥ दृष्टे तु गोमतीनीरे प्रीतिंयान्तिपितामहाः ॥ ११ ॥ किंपुनर्येमहीपाल स्नात्वाकुर्वन्तितर्प्पणम् ॥ पिण्डदानं पितृणान्तु गोमतीवारिणाकलौ ॥ १२ ॥ दृष्टे तु गोमतीनीरे प्रीतिंयान्तिपितामहाः ॥ गोमतीवारिणाभूप यथातृप्तिःप्रजायते ॥ १३ ॥ तथातीर्थे न लक्षे तु दत्तैःपिण्डशतैरपि ॥१४॥ किंजातैर्बहुभिःपुत्रैःसाग्निकैर्वेदपारगैः ॥ यैर्न दृष्टःकलौप्राप्ते गोमत्युदधिसङ्गमः ॥ १५ ॥ न सर्वत्रमहापुण्यः सङ्गमः

है ॥ १० ॥ और तीर्थोदकों व पिंडों के देने से पितरों की गति होती है और वृषराशि में सूर्य होनेपर गोमती के जलों से पितामहलोग प्रीति को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ हे भूपाल ! फिर उनको क्या कहना है जो कि नहाकर कलियुग में पितरों को पिण्डदान व गोमती के जल से तर्पण करते हैं ॥ १२ ॥ और गोमती का जल देखने से पितामह लोग प्रीति को प्राप्त होते हैं हे भूप ! जिसप्रकार गोमती के जल से तृप्ति होती है ॥ १३ ॥ उस प्रकार लाख तीर्थों में सौ पिंडों के देने से नहीं होती है ॥ १४ ॥ अग्निहोत्री व वेदोंके पारगामी उन पुत्रोंके पैदा होनेसे क्या है जिन्होंने कलियुग प्राप्त होनेपर गोमती व समुद्रके संगम को नहीं देखा है॥ १५॥ गंगा-

संगम व गोमती के संगम को छोड़कर सब कहीं समुद्र का संगम महापवित्र नहीं है ॥ १६ ॥ प्रतिदिन समुद्र अपना को कृतार्थ मानता है कि श्रीकृष्णजी के समीप गोमती के जल के मेल से मैं पवित्र हूं ॥ १७ ॥ व मैं उस समय सभाग्य होगया जब कि श्रीकृष्णजीसे निर्मित मुक्तिदायिनी द्वारका को उन्होंने मेरे किनारे स्थापन किया ॥ १८ ॥ जो मनुष्य गोमती के जलसे संयुत मुझ को देखते हैं उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है ऐसा समुद्र ने कहा है ॥ १९ ॥ व श्रीकृष्णजी के चरणों से पैदा हुई गोमती से मेरा अंग निर्मल करदियागया और देवनायक श्रीकृष्णजी को देखकर मैं पवित्र होगया मेरे समान अन्य कोई नहीं है ॥ २० ॥ और गोमती के जल

सरितांपतेः ॥ जाह्नवीसङ्गमंमुक्त्वा गोमतीसङ्गमंतथा ॥ १६ ॥ मेनेकृतार्थमात्मानं प्रत्यहंसरितांपतिः ॥ गोमतीनीर सम्पर्कात्पूतोहंकृष्णसन्निधौ ॥ १७ ॥ सभाग्योहंतदाजातो यदाकृष्णेननिर्मिता ॥ मत्तीरेस्थापितातेन द्वारकामुक्तिदा यिनी ॥ १८ ॥ गोमतीनीरसंयुक्तं येमांपश्यन्तिमानवाः ॥ न तेषांपुनरावृत्तिरित्याहसरितांपतिः ॥ १९ ॥ कृष्णपाद प्रसूताया ममाङ्गन्निर्मलंकृतम् ॥ दृष्ट्वा तु देवनाथस्य पूतोहंनास्तिमत्समः ॥ २० ॥ गोमतीनीरसंपर्के मज्जलेस्ना तियोनरः ॥ मुच्यतेब्रह्महत्याद्यैः स्तेयाद्यैःपापसम्भवैः ॥ २१ ॥ येपश्यन्तिकलौभक्त्या गोमत्युदधिसङ्गमम् ॥ रु क्मिणीसहितंकृष्णं धन्यास्तेसन्तिमानवाः ॥ २२ ॥ येषांभवतिभूपाल द्वारकागमनेमतिः ॥ न तेषांपातकंकिञ्चिद्य द्दे लिखतिलेखकः ॥ २३ ॥ गृहान्निर्गच्छमानस्य नरस्यद्वारकांप्रति ॥ पदेपदेभवेद्यज्ञफलं चैव तथैव च ॥ २४ ॥ द्वारकांगच्छमानस्य विपत्तिर्भवतेयदि ॥ न तस्यपुनरावृत्तिः पितृभिःसहतत्पदात् ॥ २५ ॥ गत्वायेकलिकाले तु

से मिलेहुए मेरे जल में जो मनुष्य नहाता है वह पाप से उपजेहुए ब्रह्महत्यादिक तथा चोरी आदिक दोषों से छूटजाता है ॥ २१ ॥ व कलियुगमें जो भक्तिसे गोमती व समुद्र के संगम को तथा रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी को देखते हैं वे मनुष्य धन्य हैं ॥ २२ ॥ व हे भूपाल ! द्वारका को जाने में जिनकी बुद्धि है उनके शरीर में कुछ पाप नहीं होता है कि जिसको लेखक (चित्रगुप्त) लिखते हैं ॥ २३ ॥ और घर से द्वारका को जातेहुए मनुष्य को पग २ पै यज्ञ का फल होता है ॥ २४ ॥ व द्वारका को जाते हुए मनुष्य की यदि मृत्यु होजावै तो पितरों समेत उसकी उस स्थान से निवृत्ति नहीं होती है ॥ २५ ॥ व हे भूपाल ! गोमती के जल के आश्रित

होकर जहां समुद्र गरजता है वहां कलिकाल में श्रीकृष्णजी के चरणकमलों के समीप जो द्वारका में गोमती के किनारे टिकते हैं उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है और गोमती व समुद्र के संगम में ॥ २६ । २७ ॥ हे भूपाल ! जो श्रवण से संयुत द्वादशी को करते हैं व हे पृथ्वीनाथ ! जो मनुष्य श्रीकृष्णजी के समीप श्रावणमें शुक्लपक्ष में जयन्तीव्रत को करते हैं वे फिर जन्म को नहीं पाते हैं और कलिकाल में भी पापियों की पुनरावृत्ति निषिद्ध होती है ॥ २८ । २९ ॥ व हे राजन् ! जो मनुष्य द्वारका में रोहिणी से संयुत द्वादशी को करते हैं उनके पितामह मुक्त होजाते हैं इस में सन्देह नहीं है ॥ ३० ॥ और फागुन में पुष्यनक्षत्र के योगमें जो करते हैं वे

कृष्णपादाब्जसन्निधौ ॥ द्वारकायांमहीपाल गोमतीतटसंस्थिताः ॥ २६ ॥ गोमतीनीरमाश्रित्य यत्रगर्जतिसागरः ॥ न तेषांपुनरावृत्तिर्गोमत्युदधिसङ्गमे ॥ २७ ॥ येकुर्वन्तिमहीपाल द्वादशींश्रवणान्विताम् ॥ येकुर्वन्तिमहीनाथ जयन्तींकृष्णसन्निधौ ॥ २८ ॥ श्रावणेऽसितपक्षे तु न तेयान्तिपुनर्भवम् ॥ निषिद्धापुनरावृत्तिःकलिकालेपिपापिनाम् ॥ २९ ॥ द्वारकायांप्रकुर्वन्ति द्वादशींरोहिणीयुताम् ॥ तेषांपितामहाराजन्मुच्यन्तेनात्रसंशयः ॥ ३० ॥ फाल्गुने पुष्ययोगे तु न तेयान्तिपुनर्भवम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

नारद उवाच ॥ कैलासशिखरासीनं देवदेवंजगद्गुरुम् ॥ अपृच्छच्चारुवक्राङ्गी प्रहस्योत्फुल्ललोचना ॥ १ ॥ पार्वत्युवाच ॥ देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसकिन्नरैः ॥ पूज्येतेत्वत्पदौप्राप्तुं तैस्सर्वैःपरमंपदम् ॥ २ ॥ किमर्थंकलिकाले तु लोकैरा

फिर जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ❀ ॥

दो० । कह्यो उमासन शिव यथा श्रीद्वारका प्रभाव । छियालिसें अध्याय में सोइ चरित्र सुहाव ॥ नारदजी बोले कि कैलास पर्वत के शिखर पै बैठेहुए देवदेव जगद्गुरु महादेवजी से प्रफुल्लित लोचनोंवाली तथा सुन्दर मुख व अंगोंवाली पार्वतीजी ने हँसकर पूंछा ॥ १ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस व किन्नर वे सब लोग परमपद को मिलने के लिये तुम्हारे चरणों को पूजते हैं ॥ २ ॥ और कलिकाल में मनुष्य विष्णुजी को क्यों आराधन करता है और गया

व नर्मदा के होनेपर तथा गंगासंगम के होनेपर हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे द्वारके ! ऐसा क्यों मनुष्य कहता है व हे देव ! गोमती के किनारे पिंडदान की क्यों प्रशंसा कीजाती है ॥ ३ । ४ ॥ व हे परमेश्वर, नाथ ! जलमात्र से कैसे पितरों की तृप्ति होती है इसको मुझसे प्रसन्नता से कहिये ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! द्वारका का माहात्म्य मैं कहता हूं सुनिये जोकि स्मरण करने से देवताओं व पितरोंकी तृप्ति करनेवाला है ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! वहां ब्रह्मघाती, मद्यपी व बाल, वृद्ध और गुरुद्रोहियों का पाप गोमती के दर्शन में नाश होजाता है ॥ ७ ॥ थोड़े या बहुत समय तक द्वारका में जो मनुष्य स्थित होता है वह पाप को वैसेही छोड़देता है जैसे कि

राध्यतेहरिः ॥ कृष्णकृष्णेतिकिंब्रूयाद्वारकेति च मानवः ॥ ३ ॥ गयानर्मदयोःसत्योः सतिजाह्नविसङ्गमे ॥ पिण्डदानन्तु गोमत्यां कथंदेवप्रशस्यते ॥ ४ ॥ पितॄणांवारिमात्रेण कथंतृप्तिःप्रजायते ॥ एतत्कथयमेनाथ प्रसादात्परमेश्वर ॥ ५ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ माहात्म्यंद्वारकायाश्च शृणुदेविवदाम्यहम् ॥ स्मृतमात्रे तु देवानां पितॄणांतृप्तिकारकम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मघ्नस्यसुरापस्य बालवृद्धगुरुद्रुहाम् ॥ पापं हि नश्यते तत्र गोमतीदर्शनेप्रिये ॥ ७ ॥ स्वल्पं वा बहुकालं वा द्वारकायांस्थितोनरः ॥ पापंविमोचयत्येव जीर्णां त्वचमिवोरगः ॥ ८ ॥ अक्षयाल्लँभतेलोकान्पितॄन्सर्वान्समुद्धरेत् ॥ तर्पयित्वातुगोमत्यां हव्यकव्यैर्विधानतः ॥ ९ ॥ वंशजोप्यथवान्यो वा गोमत्युदधिसंगमे ॥ यन्नाम्नापातयेत्पिण्डं तस्यतत्पदमव्ययम् ॥ १० ॥ गृहाच्चलितमात्रस्य द्वारकांप्रतिपार्वति ॥ पदेपदेमनुष्यस्य फलंचान्द्रायणोद्भवम् ॥ ११ ॥ ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा गोघाती यश्च पातकी ॥ द्वारकायास्तु तेसर्वे मुच्यन्तेपदमात्रकैः ॥ १२ ॥ कुरुक्षेत्रंप्रयागं च प्रभासं

पुरानी खाल को सर्प छोड़देता है ॥ ८ ॥ और वह अक्षय लोकोंको पाता है व सब पितरोंको उधारता है और विधि से गोमती में तर्पण कर ॥ ९ ॥ वंश में उत्पन्न या अन्य पुरुष गोमती तथा समुद्र के संगम में जिसके नाम से पिंडको पातन करताहै उसको वह अव्यय स्थान होता है ॥ १० ॥ व हे पार्वति ! घर से द्वारका के सामने चलेहुए मनुष्य को पग २ पै चांद्रायण से उपजाहुआ फल होता है ॥ ११ ॥ व ब्रह्मघाती, कृतघ्न व जो गोघाती पातकी हैं वे सब द्वारका के पगभर से मुक्त होजाते हैं ॥ १२ ॥ और

कुरुक्षेत्र, प्रयाग, प्रभास व पुष्कर ये द्वारका को जातेहुऐ पुरुष के सोलहवें भाग के योग्य नहीं होते हैं ॥ १३ ॥ और प्रभासादिक तीर्थों में बहुत हज़ार वर्षोंतक बहुत कठिन तपस्या करके द्वारका के विना मुक्ति नहीं होती है ॥ १४ ॥ स्वर्ग, पाताल व पृथ्वी में द्वारका के समान पुरी नहीं है और गोमती के तुल्य नदी नहीं है व श्रीकृष्णजी के समान देवता नहीं है ॥ १५ ॥ और द्वारका के माहात्म्य को देवता स्वर्ग में पढ़ते हैं व मैंने प्रभास और श्रीकृष्णदेवजी को कैलास में सुना है ॥ १६ ॥ और द्वारका के समान तीर्थ न हुआ है न होवैगा जहां कि गोमती में बहुत से चक्र देखपड़ते हैं ॥ १७ ॥ अमावसतिथि में कुरुक्षेत्रमें करोड़ सूर्यग्रहणों से जो

पुष्करं तथा ॥ द्वारकांगच्छमानस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ १३ ॥ बहून्यब्दसहस्राणि तपस्तप्त्वासुदुष्करम् ॥ प्रभासादिषुतीर्थेषु न मुक्तिर्द्वारकांविना ॥ १४॥ दिविपातालभूपृष्ठे न पुरीद्वारकासमा ॥ न नदीगोमतीतुल्या कृष्णतुल्या न देवता ॥ १५ ॥ द्वारकायास्तु माहात्म्यं स्वर्गेपठतिदेवता ॥ प्रभासःकृष्णदेवश्च कैलासेपि मयाश्रुतः ॥ १६ ॥ द्वारकायाःसमंतीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ यत्रचक्राणिदृश्यन्ते गोमत्यांसुबहून्यपि ॥ १७ ॥ अमावस्यांकुरुक्षेत्रे सूर्यग्रहणकोटिभिः ॥ तत्फलंकलिकाले तु द्वारवत्यां दिनेदिने ॥१८॥ अश्वमेधसहस्राणि कृत्वायत्फलमाप्नुयात् ॥ तत्फलंलभतेमर्त्यो द्वारवत्यांदिनेदिने ॥ १९ ॥ गवांकोटिसहस्राणि रत्नकोटिशतानि च ॥ दत्त्वायत्फलमाप्नोति तत्फलंकृष्णसन्निधौ ॥ २० ॥ संवत्सरं च षण्मासं मासंमासार्द्धमेव च ॥ द्वारकायान्तु योगच्छेद्विमुक्तो नात्र संशयः ॥ २१ ॥ विनाज्ञानाद्विनाध्यानाद्विनाचेन्द्रियनिग्रहात् ॥ द्वारकावासिनःसर्वे यास्यन्तिपरमांगतिम् ॥ २२ ॥ अहोक्षेत्रस्यमा

फल होता है वह फल कलिकाल में प्रतिदिन द्वारकापुरी में होता है ॥ १८ ॥ हज़ारों अश्वमेधयज्ञों को करके मनुष्य जिस फल को पाता है उस फल को मनुष्य प्रतिदिन द्वारकापुरी में पाता है ॥ १९ ॥ और करोड़ों हज़ार गौवों को व करोड़ों सौ रत्नों को देकर मनुष्य जिस फल को पाता है वह फल श्रीकृष्णजी के समीप होता है ॥ २० ॥ और वर्षभर या छ्यः महीने व महीने भर या पंद्रहदिन जो मनुष्य द्वारका को जाता है वह मुक्त होजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ २१ ॥ और बिन ज्ञान, बिन ध्यान व बिन इन्द्रियों के दमन से सब द्वारकावासीलोग उत्तम गति को पावैंगे ॥ २२ ॥ सब ओर पांच कोस क्षेत्र का माहात्म्य आश्चर्यरूप है जहां

कि स्वर्ग में स्थित मनुष्य सबहीं चतुर्भुजों को देखते हैं ॥ २३ ॥ और प्रयाग में शरीर को त्यागतेहुए मनुष्य को अन्नदान से जो फल होता है वह फल द्वादशी में आधे निमेष से श्रीकृष्णजी के दर्शन से होता है ॥ २४ ॥ और द्वादशी में श्रीकृष्णजीके दर्शन से करोड़ों हज़ार कुल व करोड़ों सौ कुल विष्णुजी के उस स्थान में बसते हैं ॥ २५ ॥ और अपने कर्म में स्थित व पराये कर्म में स्थित जो श्रीकृष्णदेवजी के मन्दिर में बसते हैं वे मनुष्य विष्णुजी के परमपद को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥ और जो मनुष्य प्रतिदिन उत्तम भक्ति से हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! ऐसा कहता है वह लीला से सौ अश्वमेधयज्ञों के फल को पाता है ॥ २७ ॥ और जो राजस या तामस

हात्म्यं समन्तात्क्रोशपञ्चकम् ॥ दिविस्थायत्रपश्यन्ति सर्वानेव चतुर्भुजान् ॥२३॥ अन्नदानेनयत्पुण्यं प्रयागेत्यजतस्त नुम् ॥ तत्पुण्यंनिमिषार्द्धेन द्वादश्यांकृष्णदर्शनात् ॥ २४ ॥ कुलकोटिसहस्राणि कुलकोटिशतानि च ॥ वसन्तितत्प दंविष्णोर्द्वादश्यांकृष्णदर्शनात् ॥ २५ ॥ स्वकर्मस्थाविकर्मस्थाः कृष्णदेवस्यमन्दिरे ॥ वसन्ति ते नरायान्ति तद्विष्णोः परमंपदम् ॥ २६ ॥ कृष्णकृष्णेतियोब्रूयात्सद्भक्त्याप्रत्यहंनरः ॥ हेलयासोश्वमेधानां शतानांलभतेफलम् ॥ २७ ॥ राजसंतामसं वापि यत्कृतंगोमतीजले ॥ तद्भवेत्सात्त्विकंसर्वं द्वारकायाःप्रभावतः ॥ २८ ॥ यःपदंकुरुतेदेवि गोमती नीरसम्मुखम् ॥ पदेपदेश्वमेधस्य फलंकोटिगुणंभवेत् ॥ २९ ॥ न कलौदेवतालोके तीर्थेतिष्ठन्तिसुन्दरि ॥ वसतेद्वार कायांयो नित्यंकृष्णस्यसन्निधौ ॥ ३० ॥ कलिकालेकृतैःपापैस्सनरो नैव लिप्यते ॥ अन्यतीर्थानितिष्ठन्ति प्रिये कृष्णस्यसन्निधौ ॥ ३१ ॥ दृष्टे तु वैष्णवेचक्रे दृष्टास्सर्वेदिवौकसः ॥ स्नातायेगोमतीनीरे सर्वतीर्थेषु वै शुभे ॥ ३२ ॥ दृष्टे

कर्म कियागया है वह सब द्वारका के प्रभाव से सात्त्विक होजाता है ॥ २८ ॥ व हे देवि ! गोमतीजी के जल के सामने जो पग करता है उसको पग २ पै अश्व मेधयज्ञ का कोटिगुना फल होता है ॥ २९ ॥ हे सुन्दरि ! संसार में कलियुग में देवता तीर्थ में नहीं स्थित होते हैं और जो श्रीकृष्णजी के समीप सदैव द्वारका में बसता है ॥ ३० ॥ वह मनुष्य कलिकाल में कियेहुए पापों से लिप्त नहीं होता है हे प्रिये ! श्रीकृष्णजी के समीप अन्य तीर्थ स्थित हैं ॥ ३१ ॥ और विष्णुजी का चक्र देखने पर सब देवता देखेहुए होते हैं व हे शुभे ! जिन्होंने गोमतीजी के जल में स्नान किया है वे सब तीर्थों में नहाचुके ॥ ३२ ॥ व हे देवि ! प्रभास, केदार व

कुरुजाङ्गल को देखने से मनुष्य जिस फल को पाता है उस फल को द्वारका में श्रीकृष्णजी के दर्शन से पाता है ॥ ३३ ॥ और मेरे लिंग को धारणकर यदि मनुष्य
श्रीकृष्णजी को नहीं देखता है तो उसका वह निष्फल होजाता है और भयंकर रौरव नरक को जाता है ॥ ३४ ॥ और समुद्र में स्नान कियेहुए मैं धन्य हूं इसमें सन्देह
नहीं है क्योंकि गोमती के पवित्र जल से मेरा शरीर पवित्र कियागया है ॥ ३५ ॥ और सब कार्यों में गंगा में पिंडपात सुलभ है व गोमतीजी का जल दुर्लभ है जहां
कि आपही विष्णुजी हैं ॥ ३६ ॥ जिसके मिलेहुए जल से मनुष्य कलियुग में मुक्त होजाता है उस गोमतीनामक नदी को मनुष्य क्यों नहीं देखताहै ॥ ३७ ॥ हे महा-

तु वै प्रभासे च केदारेकुरुजाङ्गले ॥ यत्फलंलभतेदेवि द्वारकांकृष्णदर्शने ॥ ३३ ॥ धारयित्वा तु मल्लिङ्गं कृष्णंयदि न पश्यति ॥ निष्फलंतद्भवेत्तस्य रौरवंयातिदारुणम् ॥ ३४ ॥ धन्योहंनास्तिसन्देहः कृतस्नानोमहोदधौ ॥ पवित्री कृतगात्रोस्मि गोमतीपुण्यवारिणा ॥ ३५ ॥ सुलभंसर्वकार्येषु गङ्गायांपिण्डपातनम् ॥ दुर्लभंगोमतीनीरं यत्र चास्ते स्वयंहरिः ॥ ३६ ॥ यस्याःसंपर्कतोयेन विमुक्तोजायतेकलौ ॥ तांनदींगोमतीं नाम किन्न पश्यतिमानवः ॥ ३७ ॥ किंक रिष्यतितीर्थेषु स्नात्वामर्त्यः पुनःपुनः ॥ स्नातोयदिमहादेवि गोमतीपुण्यवारिणा ॥ ३८ ॥ किंदृष्टैर्बहुभिः क्षेत्रैः किं ग्रामैः किन्नु काननैः ॥ दृष्टंयैर्गोमतीनीरं द्वारकांकृष्णसन्निधौ ॥ ३९ ॥ गङ्गास्नानेनकिंदेवि नर्मदायास्तथैव च ॥ यैः कलौद्वारकांगत्वा स्नातं वै गोमतीजले ॥ ४० ॥ न कृतागोमतीभक्तिः गत्वाकेदारसन्निधौ ॥ न गतोयदिदेवेशि पुरींद्वारवतींकलौ ॥ ४१ ॥ सप्तषष्टिषुतीर्थेषु स्नानात्किंहरवल्लभे ॥ सम्प्राप्ते तु कलौमर्त्यो द्वारकां न गतोयदि ॥ ४२ ॥

देवि ! यदि गोमती के पवित्र जल से मनुष्यने स्नान किया है तो अन्य तीर्थों में बार २ नहाकर क्या करैगा ॥ ३८ ॥ जिन्होंने द्वारका में श्रीकृष्णजी के समीप गोमती
का जल देखा है उनको बहुत क्षेत्रों व ग्रामों और वनों के देखने से क्या है ॥ ३९ ॥ व हे देवि ! जिन्होंने कलियुग में द्वारका को जाकर गोमती के जल में स्नान किया
है उनको गंगास्नान व नर्मदा के स्नान से क्या है ॥ ४० ॥ व हे देवेशि ! केदार के समीप जाकर यदि गोमती की भक्ति नहीं कीगई और कलियुग में यदि मनुष्य
द्वारकापुरी को नहीं गया ॥ ४१ ॥ व हे हरप्रिये ! कलियुग प्राप्त होने पर यदि मनुष्य द्वारका को नहीं गया है तो सरसठि तीर्थों में स्नान से क्या होता है ॥ ४२ ॥

व हे पर्वतकुमारि, देवेशि ! जहां रुक्मिणी समेत श्रीकृष्णजी अहर्निश टिकेरहते हैं वहां मुझको जानिये अन्यत्र नहीं जानिये ॥ ४३ ॥ व हे पार्वति ! कलियुग में द्वारका को जाकर जिसने गोमती को नहीं देखा उसके निश्चयकर नेत्र व पांव नहीं हैं ॥ ४४ ॥ व हे पार्वति ! कलियुग प्राप्त होने पर श्रीकृष्णजी को देखकर जो मुझ को देखते हैं उनकी मेरे लोक से किसी प्रकार पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ ४५ ॥ व हे देवि ! जहां गोमती बहती है वहां चक्रतीर्थमें और द्वारका व श्रीकृष्णजी के समीप में प्रतिदिन सदैव बसता हूं ॥ ४६ ॥ व हे महादेवि, देवि ! यदि मनुष्य ने गोमतीजी के पवित्र जल में स्नान किया है तो भारद्वाजजी के आश्रम में जाकर नहायेहुए

रुक्मिणीसहितःकृष्णो यत्रातिष्ठत्यहर्निशम् ॥ तत्रमांविद्धिदेवेशि नान्यत्राचलनन्दिनि ॥ ४३ ॥ कलौद्वारवतींगत्वा न दृष्टा येनगोमती ॥ नूनं चक्षुर्न तस्यास्ति पादौतस्य न पार्वति ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वाकृष्णंकलौप्राप्ते येमांपश्यन्तिपार्वति ॥ न तेषांपुनरावृत्तिर्ममलोकात्कथञ्चन ॥ ४५ ॥ प्रत्यहंचक्रतीर्थे च द्वारकाकृष्णसन्निधौ ॥ वसाम्यहंसदादेवि वहते यत्र गोमती ॥ ४६ ॥ भारद्वाजाश्रमेदेवि गत्वास्नातस्यकिंफलम् ॥ स्नातोयदिमहादेवि गोमतीपुण्यवारिणि ॥ ४७ ॥ किं पुनःपिण्डदानन्तु पितॄणांस्नानपूर्वकम् ॥ कृत्वास्नानंविनिर्मुक्ता मुक्तिंयान्तिमहेश्वरि ॥ ४८ ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ वसन्तितत्पदेदेवि द्वारकांकृष्णदर्शनात् ॥ ४९ ॥ कृत्वापापसहस्राणि कलौकोटिशतैरपि ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्तद्विष्णोःपदमाप्नुयात् ॥ ५० ॥ मद्दर्शनेनकिंपुण्यं किं वा देविमदर्चनात् ॥ केवलंगो

मनुष्य को क्या फल होता है ॥ ४७ ॥ फिर स्नानपूर्वक पितरोंके पिण्डदानको क्या कहना है व हे महेश्वरि ! स्नान करके मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ व हे देवि ! द्वारका में श्रीकृष्णजी के दर्शनसे मनुष्य करोड़ों हज़ार कल्पों तक व करोड़ों सौ कल्पों तक उसके स्थान में बसते हैं ॥ ४९ ॥ और कलियुगमें हज़ारों पापोंको करके मनुष्य करोड़ों सौ भी सब पापों से छूटजाता है और उस विष्णुजी के स्थान को पाता है ॥ ५० ॥ हे देवि ! मेरे दर्शन से व मेरे पूजनसे क्या पुण्य होता है केवल गोमतीमें नहाकर

व श्रीकृष्णजी को देखकर मनुष्य पुण्य को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांषट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

मर्तींस्नात्वा कृष्णंदृष्ट्वालभेन्नरः ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेद्वारकामाहात्म्येषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥

समाप्तमिदं द्वारकामाहात्म्यम् ॥

प्रथम बार

———*———

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव बी. ए., के प्रबन्ध से

मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा

सन् १९१३ ई०

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतार्बुदखण्डप्रारम्भः ॥

अथ स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतार्बुदमाहात्म्यस्य सूचीपत्रम् ॥

इत्यर्बुदमाहात्म्यस्य सूचीपत्रं समाप्तिं पकाणेति शम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराणे प्रभासखण्डान्तर्गत

❋ अर्बुदमाहात्म्यं सटीकं प्रारभ्यते ❋

दो० । सिद्धि सदन गज बदन अरु श्री शारदहिं मनाय । यहि अर्बुद माहात्म्य कर कीजत तिलक सुहाय ॥ जिमि वसिष्ठकी नन्दिनी धेनु गिरी बिल माहिं । सोइ प्रथम अध्याय में कथा हर्षि उपजाहिं । सूक्ष्म अनन्तके लिये प्रणाम है व ज्ञानसे जाने योग्य ब्रह्मा के लिये नमस्कार है और शुद्ध व विश्वरूप देवदेव शिवजी के लिये प्रणाम है ॥ १ ॥ शौनकजी बोले कि आपने चन्द्रमा व सूर्य के वंश का विस्तार कहा व सब मन्वन्तर तथा भिन्न प्रकार की सृष्टि को कहा ॥ २ ॥ हे महा-

नमोनन्तायसूक्ष्माय ज्ञानगम्यायवेधसे ॥ शुद्धायविश्वरूपाय देवदेवायसम्भवे ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ कथितोवंशविस्तारो भवतासोमसूर्ययोः ॥ मन्वन्तराणिसर्वाणि सृष्टिश्चैवपृथग्विधा ॥ २ ॥ अधुनाश्रोतुमिच्छामि तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ कानितीर्थानिपुण्यानि भूतलेस्मिन्महामते ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ नानातीर्थानिलोकेस्मिन् येषांसङ्ख्यानविद्यते ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीच तेषांसङ्ख्यागतानवा ॥ ४ ॥ क्षेत्राणिसरितश्चैव पर्वताश्चद्विजोत्तमाः ॥ ऋषीणांतपसोवीर्यान्माहात्म्यंपरमंगताः ॥ ५ ॥ तेषांमध्येर्बुदोनाम सर्वपापहरोनघः ॥ अस्पृष्टःकलिदोषेण वसिष्ठस्यप्र

मते ! इस समय मैं उत्तम तीर्थों के माहात्म्य को सुनना चाहता हूं कि इस पृथ्वी में कौन पवित्र तीर्थ हैं ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि इस लोक में अनेक प्रकार के तीर्थ हैं कि जिनकी गिनती नहीं है और साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ हैं अथवा उनकी संख्या नहीं प्राप्त है ॥ ४ ॥ हे द्विजोत्तम ! क्षेत्र, नदियां व पर्वत ऋषियों की तपस्या के प्रभाव से बड़े माहात्म्य को प्राप्त हैं ॥ ५ ॥ उनके मध्य में अर्बुदनामक पर्वत सब पापों को हरनेवाला व पापरहित है और वसिष्ठजी के प्रभाव से कलियुग के

दोष से नहीं छुवा गया है ॥ ६ ॥ सब तीर्थ स्नान दानादिक कर्म से पवित्र करते हैं और अर्बुद दर्शनहीं से मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाला है ॥ ७ ॥ ऋषि लोग बोले कि अर्बुदनामक पर्वत किस प्रमाण भर है व किस देश में स्थित है व वसिष्ठजी के प्रभाव से पृथ्वी में कैसे प्रसिद्ध हुआ है ॥ ८ ॥ और वहां कौन तीर्थ हैं व पर्वत पै कौन देवता हैं यह सब विस्तार से कहिये क्योंकि हमलोगों को बड़ा कौतुक है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि हे द्विजोत्तमो ! मैं तुमलोगों से पातकों को विनाशनेवाली अर्बुदकी कथाको कहूंगा और जैसा माहात्म्य सुनागया है उसको कहूंगा ॥ १० ॥ ब्रह्मा से उपजे हुये वसिष्ठनामक देवर्षि हुये हैं उन पवित्र मुनि

भावतः ॥ ६ ॥ पुनन्तिसर्वतीर्थानि स्नानदानादिकर्मणा ॥ अर्बुदोदर्शनादेव सर्वपापहरोनृणाम् ॥ ७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ किंप्रमाणोर्बुदोनाम कस्मिन्देशेव्यवस्थितः ॥ कथंवसिष्ठमाहात्म्यात्प्रख्यातोधरणीतले ॥ ८ ॥ कानितीर्थानिवातत्र केदेवास्सन्तिपर्वते ॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि परंकौतूहलंहिनः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ अहंवःसम्प्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशिनीम् ॥ अर्बुदस्यद्विजश्रेष्ठा माहात्म्यंचयथाश्रुतम् ॥ १० ॥ वसिष्ठोनामदेवर्षिः पितामहसमुद्भवः ॥ सशुचिर्भूतलंप्राप्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ११ ॥ नियतोनियताहारः सर्वभूतहितेरतः ॥ वर्षास्वाकाशवासीच हेमन्तेसलिलाशयः ॥ १२ ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे जपहोमपरायणः ॥ केनचित्त्वथकालेन तस्यधेनुःपयस्विनी ॥ १३ ॥ नन्दिनीतिसुविख्याता साचकामदुघाशुभा ॥ साकदाचिद्नगपृष्ठे भ्रममाणातृणाशया ॥ १४ ॥ पतितादारुणेश्वभ्रे ह्यगाधेतिमिरावृते ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवांस्तीक्ष्णदीधितिः ॥ १५ ॥ अस्तङ्गतोनसम्प्राप्ता नन्दिनीमुनिसत्तमाः ॥ तस्याःक्षीरे

ने पृथ्वी को प्राप्त होकर कठिन तप किया है ॥ ११ ॥ नियत व नियतभोजी और सब प्राणियों के हित में लगे हुये वे मुनि वर्षा ऋतु में आकाशवासी व हेमन्त में जलाशयी हुये ॥ १२ ॥ और ग्रीष्मऋतुमें पचाग्निसाधक होकर जप व होम में परायण हुये इसके अनन्तर किसी समय उनकी दूधवाली गऊ ॥ १३ ॥ जो नन्दिनी ऐसी प्रसिद्ध थी वह उत्तम गऊ कामदुघा थी किसी समय तृण की आशा से पृथ्वी में घूमती हुई वह धेनु ॥ १४ ॥ अन्धकारसे घिरे व कठिन तथा गहरे गढे में गिरपड़ी इसी समय तीक्ष्ण किरणोंवाले भगवान् सूर्यनारायण ॥ १५ ॥ अस्त को प्राप्त हुये व हे मुनिश्रेष्ठो ! नन्दिनी न प्राप्त हुई उसके दूधसे नित्य सायंकाल व

प्रातःकाल वे द्विज वसिष्ठ मुनि ॥ १६ ॥ व्रतको ग्रहण कर बढ़ी हुई अग्नि में हवन करते थे इसके अनन्तर उसके प्राणों के भयसे विप्र वसिष्ठजी निश्चय कर चिन्ता में तत्पर हुये ॥ १७ ॥ व उन मुनि ने उस वनमें सम व विषम स्थानों में देखा तदनन्तर जेठको प्राप्त होकर भंभा शब्द को सुना ॥ १८ ॥ व मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीने उस गऊसे कहा कि हे शुभे ! तुम कैसे गिरपड़ी मैं होमके उद्वेग से तुमको देखने के लिये निकला हूं ॥ १९ ॥ उसने कहा कि हे ब्रह्मर्षे चरती हुई मैं तृणकी इच्छा से इसमें गिरपड़ी हे विभो ! इस दुस्सह क्लेश से मेरी रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ उसके उस वचन को सुनकर वे वसिष्ठ मुनि ध्यान में स्थितहुये और उन्हों

णनित्यंस सायंप्रातर्द्विजोमुनिः ॥ १६ ॥ करोतिहोममग्नौहि सुसमिद्धेयतव्रतः ॥ अथचिन्तापरोविप्रस्तस्याःप्राणभयाद्ध्रुवम् ॥ १७ ॥ वीक्षांचक्रेवनेतस्मिन्समेषुविषमेषुच ॥ ततःश्वभ्रमथासाद्य भंभारावमथाशृणोत् ॥१८॥ तांप्रोवाचमुनिश्रेष्ठः कथन्त्वंपतिताशुभे ॥ अहंहोमस्यचोद्वेगान्निस्सृतस्त्वामवेक्षितुम् ॥१९॥ साब्रवीद्भक्ष्यमाणाहं विप्रर्षेतृणवाञ्छया ॥ पतितात्रविभोत्राहि कृच्छ्रादस्मात्सुदुस्सहात् ॥२०॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा समुनिर्ध्यानमास्थितः ॥ सरस्वतींसमाद्ध्यौ नदींत्रैलोक्यपावनीम् ॥२१॥ साध्यातामुनिनातेन तत्क्षणात्तत्रचागता ॥ श्वभ्रंतत्पूरयामास समन्ताद्विमलैर्जलैः ॥ २२ ॥ परिपूर्णेततःश्वभ्रे निष्क्रान्तानन्दिनीतदा ॥ सादृष्ट्वामुनिनासार्द्धं ययौस्वाश्रमसम्मुखम् ॥ २३ ॥ सदृष्ट्वाचाम्भसांस्थानं गम्भीरंचमहामुनिः ॥ चिन्तयामाससमेधावी श्वभ्रस्यैवप्रपूरणे ॥ २४ ॥ तस्यचिन्तयतोविप्रैर्बुद्धिरेषाभ्यजायत ॥ आनीयपर्वतंमुक्त्वा श्वभ्रमेतत्प्रपूर्यते ॥ २५ ॥ धेनुरुवाच ॥ तस्माद्गच्छमुनेशीघ्रं हिमवन्तं

ने त्रिलोक को पवित्र करनेवाली सरस्वती नदी को ध्यान किया ॥ २१ ॥ और उन मुनि से ध्यान की हुई वे सरस्वतीजी उसीक्षण वहां आईं व उन्हों ने निर्मल जलों से उस गढ़ेको सब ओर से पूर्ण किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर गढ़ा पूर्ण होने पर वह नन्दिनी निकली और वह देखकर मुनिसमेत अपने आश्रम के सामने गई ॥ २३ ॥ और उन बुद्धिमान् वसिष्ठ महामुनि ने जलों के स्थान को गहरा देखकर गढ़ाको पूर्ण करने के लिये चिन्तवन किया ॥ २४ ॥ और ब्राह्मणोंसमेत चिन्तवन करते हुये उसके यह बुद्धि उत्पन्न हुई पर्वत को लेकर उसे छोड़कर यह गढ़ा पूर्ण किया जावै ॥ २५ ॥ धेनु बोली कि हे मुने ! इस लिये शीघ्रही

हिमाचल उत्तम पर्वत पै जावो क्योंकि वह पर्वत यहां किसी पर्वत को पठावैगा ॥ २६ ॥ कि जिससे इस महात्मा गढ़ेकी परिपूर्णता होगी तदनन्तर वे मुनि हिमवान्नामक उत्तम पर्वत पै गये ॥ २७ ॥ आते हुये वसिष्ठजीको देखकर हिमाचल प्रसन्नमन हुये व अर्घ्य, पाद्यादि सत्कारों से पूजकर यह वचन बोले ॥ २८ ॥ कि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ आज मेरा जीवन सफल होगया जो कि सब देवताओं के पूजने योग्य आप मेरे घरमें प्राप्त हुये ॥ २९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! कार्य को कहिये मैं निश्चय कर अपने जीवन को भी तुम्हारे लिये दूंगा मुझको आज्ञा दीजिये ॥ ३० ॥ वशिष्टजी बोले कि मेरे आश्रम के समीप बड़ा भयंकर व गहरा

नगोत्तमम् ॥ सचैवपर्वतंचात्र प्रेषयिष्यतिभूधरः ॥ २६ ॥ येनस्यात्परिपूर्णत्वं श्वभ्रस्यास्यमहात्मनः ॥ ततोजगाम समुनिर्हिमवन्तंनगोत्तमम् ॥ २७ ॥ दृष्ट्वावसिष्ठमायान्तं हिमवान्हृष्टमानसः ॥ अर्घ्यपाद्यादिसत्कारैःसम्पूज्यइदमब्रवीत ॥ २८ ॥ स्वागतन्तेमुनिश्रेष्ठ सफलंमेद्यजीवितम् ॥ यद्भवान्मेगृहेप्राप्तः पूज्यःसर्वदिवौकसाम् ॥ २९ ॥ ब्रूहि कार्यंमुनिश्रेष्ठ अपिजीवितमात्मनः ॥ नूनंतुभ्यंप्रदास्यामि नियोगोदीयतांमम ॥ ३० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ममाश्रमस्य सान्निध्ये श्वभ्रमस्तिसुदारुणम् ॥ अगाधंनन्दिनीतत्र पतिताधेनुरुत्तमा ॥ ३१ ॥ कृच्छ्रादाकर्षितातस्मान्मयापतनजाद्भयात् ॥ तवान्तिकमनुप्राप्तो नान्योयोग्योमहीतले ॥ ३२ ॥ तस्मात्कंचिन्नगश्रेष्ठं तत्रप्रेषयभूधर ॥ येनतत्पूर्यतेश्वभ्रं शृङ्गम्प्रेषयतादृशम् ॥ ३३ ॥ हिमवानुवाच ॥ किंप्रमाणंमुनेश्वभ्रं विस्तारायामनोवद ॥ तत्प्रमाणंनगंकञ्चित्प्रेषयामिविचिन्त्यते ॥ ३४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ द्विसहस्रन्तुदैर्घ्येणविस्तारेत्रिसहस्रकम् ॥ नसंख्याविद्यतेधस्तात्तस्यपर्व

गढ़ा है उसमें उत्तम नंदिनीगऊ गिरपड़ीथी ॥ ३१ ॥ मैंने उसको क्लेशसे खींचा है और गिरने से उपजे हुये डरसे मैं तुम्हारे समीप प्राप्त हुआ क्योंकि पृथ्वी में अन्य योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ इस लिये हे भूधर ! किसी उत्तम पर्वत को पठाइये कि जिससे वह गढ़ा पूर्ण होजावै वैसे शिखर को पठाइये ॥ ३३ ॥ हिमवान् बोले कि हेमुने ! किस प्रमाण भर गढ़ा है उसको लम्बाई व चौड़ाई से कहिये तो उसी प्रमाणवाले किसी पर्वत को पठाऊं यह विचार किया जाता है ॥ ३४ ॥

वसिष्ठजी बोले कि हे पर्वतोत्तम ! लम्बाई से दोहज़ार व चौड़ाई तीन हज़ार योजन है और उसके नीचे संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ३५ ॥ हिमवान् बोले कि उस प्रमाण से कैसे बड़ा भारी गढ़ा हुआ यह मुझको कौतुक हुआ उस कारण विस्तार से सबको कहिये ॥ ३६ ॥ इतिश्री स्कन्दपुराणे प्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायामर्बुदखण्डेश्वभ्रसूचनंनामप्रथमोध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कुंडल लै उत्तंक मुनि गौतम तियको दीन । सो दूजे अध्याय में वर्णित चरित नवीन ॥ वसिष्ठजी बोले कि पुरातन समय गौतमनामक बड़े तपस्वी मुनि हुये

तसत्तम ॥ ३५ ॥ हिमवानुवाच ॥ कथंतेनप्रमाणेन सञ्जातोविवरोमहान् ॥ अभूत्कौतूहलन्तेन सर्वंविस्तरतोवद ॥ ३६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेश्वभ्रसूचनन्नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ * ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ आसीत्पूर्वंमुनिर्नाम गौतमश्चमहातपाः ॥ अहल्यादयितातस्य धर्मपत्नीयशस्विनी ॥ १ ॥ शिष्यानध्यापयामास समुनिःशतशस्तदा ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्नान्विससर्जततोगृहान् ॥ २ ॥ तस्यान्योपिचयःशिष्यो गुरुभक्तिपरायणः ॥ उत्तङ्कोनाममेधावी न्यवसत्तस्यमन्दिरे ॥ ३ ॥ नतंविसर्जयामास जरयापिपरिप्लुतम् ॥ उत्तङ्कोपिसुशिष्यत्वान्नगतःपलिताश्शिरः ॥ ४ ॥ शान्तिकार्यसमायुक्तो विद्यापारंगतोपिसः ॥ केनचित्त्वथकालेन काष्ठार्थंसबहिर्ययौ ॥ ५ ॥ प्रभूतानिसमादाय काष्ठानित्वाश्रमंगतः ॥ अथासौन्यक्षिपत्तत्र भूतलेकाष्ठसञ्चयम् ॥ ६ ॥ काष्ठलग्नां

हैं ॥ उनकी अहल्यानामक यशस्विनी व प्यारी धर्मपत्नी थीं ॥ १ ॥ उन मुनि ने उस समय सैकड़ों मुनियों को पढ़ाया तदनन्तर शास्त्रों के पढ़ने से संपन्न शिष्यों को घरों को बिदा किया ॥ २ ॥ उनका अन्य भी जो शिष्य गुरु की भक्ति में परायण था उस उत्तंकनामक बुद्धिमान् ने उनकेघरमें निवास किया ॥ ३ ॥ और जरा से मस्तक के बाल श्वेत होगये परन्तु (वृद्धता) सेभी संयुत उन उत्तंक को गौतमजीने नहीं बिदा किया और उत्तम शिष्य होने के कारण उत्तंक भी नहीं गये ॥ ४ ॥ और शान्ति के कार्य में संयुक्त वे विद्याओं के पारगामी हुये इसके अनन्तर किसी समय वे लकड़ियों के लिये बाहर गये ॥ ५ ॥ व बहुत से काष्ठों को लेकर वे आश्रम को

गये इसके अनन्तर इन्हों ने यहा पृथ्वी में काष्ठ के समूह को फेंकदिया ॥ ६ ॥ तब उन उत्तंक ने काठ में लगी हुई एक जटाको देखा व देखकर उन्हों ने दुःख में प्राप्त होकर दीनतासमेत विचार किया ॥ ७ ॥ कि धिक्कार है धिक्कार है गुरु के कार्य में लगेहुये मेरा जीवन नष्ट होगया क्योंकि मुझ निर्बुद्धि ने स्त्री का संग्रह नहीं किया ॥ ८ ॥ मुझ दुर्बुद्धि की शिथिलता से कुलका नाश होगा उस समय दुःखित उत्तंक को गुरुकी स्त्रीने देखा ॥ ९ ॥ और उसने उसके दुःख को शीघ्रही गौतमजी से बतलाया तदनन्तर गौतमजी ने उत्तंक से कोमल वाणी से कहा ॥ १० ॥ कि हे वत्स ! तुम घरको जावो व स्त्रीसमेत तुम अग्निहोत्रादिक कार्योंको

तदाश्वेतां जटामेकांददर्शसः ॥ सदृष्ट्वादुःखमापन्नः कृपणंपर्यचिन्तयत् ॥ ७ ॥ धिग्धिङ्मेजीवितंनष्टं गुरुकार्यरतस्यच ॥ कलत्रसंग्रहन्नैव मयाकृतमबुद्धिना ॥ ८ ॥ भविष्यतिकुलच्छेदः शैथिल्यान्ममदुर्मतेः ॥ गुरुपत्न्याचसंदृष्ट उत्तङ्कोदुःखितस्तदा ॥ ९ ॥ तस्यदुःखंतयाक्षिप्रं गौतमायनिवेदितम् ॥ गौतमेनततोत्तुङ्को मृदुवाण्याबभाषितः ॥ १० ॥ वत्सगच्छगृहंत्वंच अग्निहोत्रादिकाःक्रियाः ॥ पालयस्वविधानेन पत्न्यासहनसंशयः ॥ ११ ॥ इत्युक्तोगुरुणासोपि प्रत्युवाचगुरुंप्रति ॥ दक्षिणांप्रार्थितस्स्वामिन्नहंदास्याम्यसंशयम् ॥ १२ ॥ गौतम उवाच ॥ सेवाकृतात्वयावत्स महतीममसर्वदा ॥ तेनैवपरिपूर्णत्वं जातंममनसंशयः ॥ १३ ॥ उत्तङ्क उवाच ॥ किंचिद्वाच्यंत्वयास्वामिन् सन्तोषो जायतेमम ॥ त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ विद्यापारंगतोस्म्यहम् ॥ १४ ॥ गौतम उवाच ॥ नग्राह्यंचमयापुत्र सन्तुष्टस्सेवयास्म्यहम् ॥ दृष्ट्वात्वंमातरञ्चैव पश्चाद्गच्छगृहम्प्रति ॥ १५ ॥ इत्युक्तोगुरुणासोपि मातरंचाभ्यभाषत ॥ किञ्चि

विधिसे निरसन्देह पालन करो ॥ ११ ॥ गुरु से ऐसा कहे हुये उन उत्तंक ने गुरु से कहा कि हे स्वामिन् ! प्रार्थना किया हुआ मैं दक्षिणा को निरसन्देह दूंगा ॥ १२ ॥ गौतमजी बोले कि हे वत्स ! तुमने सदैव मेरी बड़ी सेवा किया है उसी से निरसन्देह मेरी परिपूर्णता होगई ॥ १३ ॥ उत्तक बोले कि हे स्वामिन् ! तुमको कुछ कहना चाहिये कि जिससे मुझको सन्तोष होवै क्योंकि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं विद्याओं का पारगामी हुआ हूं ॥ १४ ॥ गौतमजी बोले कि हे पुत्र ! मुझको दक्षिणा नहीं करना चाहिये क्योंकि मैं सेवा से प्रसन्न हूं तुम माता (गुरुकी स्त्री) को देखकर पश्चात् घरको जावो ॥ १५ ॥ गुरु

से ऐसा कहे हुये उन उत्तंक ने माता से कहा कि हे माता ! मुझ से कुछ ग्रहण करना चाहिये और मुझको सन्तोष दीजिये ॥ १६ ॥ गुरु की स्त्री बोली कि हे पुत्र ! तुम सौदास के समीप जावो व शीघ्रही मेरी आज्ञा करो कि उन सौदासकी यशस्विनी व प्यारी मदयन्ती स्त्री है ॥ १७ ॥ हे पुत्र ! मदयन्ती के कुडलों को शीघ्रही लाइये और यदि पांचवें दिन न आवोगे तो मैं शाप दूंगी ॥ १८ ॥ गुरुकी स्त्री से ऐसा कहे हुये वे शीघ्रही चले और उस समय सुदासके घर को गये और उन्हों ने व्याघ्ररूपी सौदास को देखा ॥ १९ ॥ उन्हों ने उत्तंक से कहा कि तुमको खाने के लिये मैं प्राप्त हुआ हूं हे विप्र ! मैं तुमको भक्षण करूंगा

दृग्राह्यंमयामातः सन्तोषोदीयतांमम ॥ १६ ॥ गुरुपत्न्युवाच ॥ सौदासंगच्छपुत्रत्वं ममाज्ञांकुरुसत्वरम् ॥ मदयन्ती प्रियातस्य धर्मपत्नीयशस्विनी ॥ १७ ॥ कुण्डलेत्वानयक्षिप्रं मदयन्त्याश्चपुत्रक ॥ नोचेत्शापंप्रदास्यामि पञ्चमे ह्निचागतः ॥ १८ ॥ इत्युक्तोगुरुपत्न्यास प्रस्थितस्सत्वरंतदा ॥ सुदासस्यगृहंप्रायाद् व्याघ्ररूपंचदृष्टवान् ॥ १९ ॥ सउक्तवांस्तदाविप्रं भक्षितुंत्वामुपस्थितः ॥ भक्षयिष्याम्यहंविप्र त्वामहन्नात्रसंशयः ॥ २० ॥ उत्तङ्क उवाच ॥ अव श्यञ्चबुभुक्षाते एकंशृणुनराधिप ॥ देहिमेकुण्डलेतावद्दत्त्वाहंगुरवेपुनः ॥ २१ ॥ आगमिष्यामिभक्षस्व मांत्वंका र्यविवर्जितम् ॥ २२ ॥ सौदास उवाच ॥ गच्छत्वंमन्दिरेदुर्गे यत्रास्तेदयितामम ॥ मत्सान्निध्यंनमायाति जीवितस्य भयाद्द्विज ॥ २३ ॥ याचयतांममवाक्येन मातेदास्यतिकुण्डले ॥ त्वयाचनान्यथाकार्यं यत्सत्यंद्विजसत्तम ॥ २४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ मदयन्त्यास्समीपन्तु गत्वोवाचद्विजोत्तमः ॥ देहिमेकुण्डलेदेवि सौदासस्त्वांसमादिशेत ॥ २५ ॥

इस में सन्देह नहीं है ॥ २० ॥ उत्तंकजी बोले कि हे राजन् ! तुम्हारे क्षुधा अवश्य है परन्तु मेरे एक वचन को सुनो कि मुझको कुंडलों को दीजिये तबतक मैं उनको गुरुके लिये देकर फिर ॥ २१ ॥ आऊँगा और आप कार्य से रहित मुझको भक्षण कीजियेगा ॥ २२ ॥ सौदास बोले कि तुम दुर्ग मन्दिर में जावो जहां कि मेरी प्यारी है हे द्विज ! वह जीने के डरसे मेरे समीप नहीं आती है ॥ २३ ॥ मेरे वचन से मांगिये वह मेरे वचन से तुमको कुण्डलों को देवैगी और हे द्विजोत्तम ! तुमको अन्यथा न करना चाहिये जो कि सत्य है ॥ २४ ॥ वसिष्ठजी बोले कि द्विजोत्तम उत्तंकजी मदयन्ती के समीप जाकर बोले कि हे देवि ! मुझको कुण्डलों को

दीजिये सौदास तुमको आज्ञा देते हैं ॥ २५ ॥ मदयन्ती बोली कि हे द्विजोत्तम ! कुण्डल में मुझको अभी सन्देह है हे द्विज ! राजा के सकाश से तुम अभिज्ञान (चिह्न) को लावो ॥ २६ ॥ उसने शीघ्रही जाकर राजा से चिह्न को मांगा सौदास बोले कि जिनके विना सुगति नहीं होती है और जिस से प्राणी दुर्गति को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥ हे द्विजोत्तम ! जाकर उस पतिव्रता स्त्री से मेरा ऐसा वचन कहियेगा तदनन्तर वह निश्चय कर रत्नों से शोभित कुंडलों को देवैगी ॥ २८ ॥ वसिष्ठजी बोले कि चिह्न को लेकर उत्तंकजी ने जाकर उससे बतलाया तदनन्तर उसने भी उसके लिये कुंडलों को दिया कि मेरे कुडलों को ग्रहण कीजिये ॥ २९ ॥

मदयन्त्युवाच ॥ सन्देहोद्यापिमेविप्र कुण्डलेद्विजसत्तम ॥ अभिज्ञानन्त्वमानीहि नृपस्यद्विजसर्वथा ॥ २६ ॥ सगत्वा त्वरितंभूपमभिज्ञानमयाचत ॥ सौदास उवाच ॥ यैर्विनासुगतिर्नास्ति दुर्गतिंयेनयान्तिवै ॥ २७ ॥ गत्वैवंब्रूहितांसाध्वीं ममवाक्यन्द्विजोत्तम ॥ प्रदास्यतिततोनूनं कुण्डलेरत्नमण्डिते ॥ २८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ प्रत्यभिज्ञानमादाय गत्वातस्यै न्यवेदयत् ॥ ततःसापिददौतस्मै गृहाणमेकुण्डलेद्विज ॥ २९ ॥ उवाचयत्नमास्थाय नीयतांद्विजसत्तम ॥ एतेचवाञ्छते नित्यं तक्षकोद्विजकुण्डले ॥ ३० ॥ सतथेतिसमादाय विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ कौतुकात्पुनरागत्य राजानंवाक्यम ब्रवीत् ॥ ३१ ॥ साभिज्ञानान्मया भूपसम्प्राप्तेरत्नकुण्डले ॥ वाक्यार्थस्तुनविज्ञातस्ततोहंपुनरागतः ॥ ३२ ॥ कौतुका द्वदमेराजन् स्वकार्येचयथास्थितिः ॥ कैर्विनासुगतिर्नास्तिदुर्गतिंकेनयान्तिच ॥ ३३ ॥ सौदास उवाच ॥ आराधिता द्विजाविप्र भवन्तिसुगतिप्रदाः ॥ असन्तुष्टादुर्गतिदाः सद्योममयथापुरा ॥ ३४ ॥ एतान्नममशापोयं वसिष्ठस्यमहा

व यह कहा कि हे द्विजोत्तम ! यत्न में स्थित होकर इसको लेजाइये क्योंकि हे द्विज ! इन कुंडलों की सदैव तक्षक इच्छा करता है ॥ ३० ॥ वैसाही होगा यह कहकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले वे उत्तंकजी कुंडलों को लेकर व कौतुकसे फिर आकर राजा से वचन बोले ॥ ३१ ॥ कि हेभूप ! मैंने साभिज्ञान (पहँचा-न) से रत्नके कुंडलों को पाया परन्तु वाक्य का अर्थ नहीं जाना गया उसी कारण मैं फिर आयाहूँ ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! कौतुक के कारण मुझसे कहिये कि जिस प्रकार अपने कार्य में स्थिति होवै कि जिनके विना सुगति नहीं होती है व किससे मनुष्य दुर्गति को प्राप्तहोते हैं ॥ ३३ ॥ सौदास बोले कि हे विप्रजी ! आराध न किये हुये

ब्राह्मण सुगतिदायक होते हैं और अप्रसन्न वे शीघ्रही दुर्गति को देते हैं जैसे कि पहले मुझको हुये हैं ॥ ३४ ॥ महात्मा वसिष्ठजीका इतनाही मुझको शाप है व उन्हों ने कहा था कि जब कोई तुमसे प्रसन्न को कहावैगा ॥ ३५ ॥ तब दोष से मुक्त होवोगे इसमें सन्देह नहीं है हे द्विजोत्तम ! तुम्हारी प्रसन्नता से मैं पाप से छूटगया ॥ ३६ ॥ व हे विप्रजी ! सात्त्विकभाव में प्राप्त हुये जाइये तुम्हारे लिये नमस्कार है वसिष्ठजी बोले कि उनसे बिदा किये हुये उत्तंकजी उस समय शीघ्रही चले ॥ ३७ ॥ और जाते हुये क्षुधासे संयुत उन उत्तंक ने बेल के फलों को देखा तदनन्तर कुंडलों को कृष्णाजिन में बाधकर पृथ्वी में धरकर ॥ ३८ ॥ क्षुधा से

त्मनः ॥ तेनोक्तंत्वांयदाकश्चित्प्रश्नविख्यापयिष्यति ॥ ३५ ॥ तदादोषविनिर्मुक्तो भविष्यसिनसंशयः ॥ त्वत्प्रसादाद्वि निर्मुक्तस्त्वहंपापाद्विजोत्तम ॥ ३६ ॥ सात्त्विकंभावमापन्नो गच्छविप्रनमोस्तुते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ उत्तङ्कस्तेननिर्मुक्तः सत्वरंप्रस्थितस्तदा ॥ ३७ ॥ गच्छंश्चातिक्षुधाविष्टो पश्यद्बिल्वफलानिच ॥ ततःकृष्णाजिनेबद्ध्वा कुण्डलेन्यस्यभूतले ॥ ३८ ॥ आरुरोहफलाकाङ्क्षी समुनिःक्षुधयार्दितः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तक्षकःपन्नगोत्तमः ॥ ३९ ॥ गृहीत्वाकुण्डलेतूर्णमगमद्दक्षिणामुखः ॥ अथोत्तङ्कःफलाहारी अवतीर्य्यधरातले ॥ ४० ॥ सर्वतोन्वेपयामास वेगेनमहतावृतः ॥ सदृष्ट्वासम्मुखप्राप्तमायान्तंपन्नगोत्तमः ॥ ४१ ॥ प्रविवेशबिलंरौद्रमन्धकारेणसंवृतम् ॥ उत्तङ्कोपिबिलंप्राप्तः प्रविश्यतमसावृतम् ॥ ४२ ॥ कन्दकाष्ठंसमादाय कुपितोह्यखनत्तदा ॥ तंतथादुःखितंदृष्ट्वा शक्रश्चगुरुकार्यतः ॥ ४३ ॥ वज्रमारोपयामास दण्डान्तेतस्यचाग्रतः ॥ ततोविपाटयामास सशीघ्रंधरणीतलम् ॥ ४४ ॥ प्रविष्टश्चैवपातालं कुण्डला

विकल वे फलों को चाहनेवाले उत्तंक मुनि वृक्ष पै चढ़गये इसी समय सर्पों में उत्तम तक्षक ॥ ३९ ॥ कुंडलों को लेकर शीघ्रही दक्षिण मुख चला गया इस के अनन्तर फलों को भोजन करनेवाले उत्तंकजी ने पृथ्वी में उतर कर ॥ ४० ॥ बड़े वेग से संयुत होकर सब ओर ढूंढा और वह पन्नगोत्तम तक्षक आते हुये व सामने प्राप्त उत्तंक को देखकर ॥ ४१ ॥ अन्धकार से घिरे हुए भयंकर बिल में पैठगया और अन्धकार से घिरे हुये बिलमें उत्तंक भी प्राप्त हुये व उसमें पैठकर ॥ ४२ ॥ उस समय क्रोधित होते हुये उत्तंक ने कन्द की लकड़ी को लेकर खोदा गुरु के कार्य से उन उत्तंक को वैसे दुःखित देखकर इन्द्र ने ॥ ४३ ॥ उनके दण्डके अन्त

में आगे से वज्रको आरोपण किया तदनन्तर उन्हों ने शीघ्रही पृथ्वी को खोदडाला॥ ४४ ॥ व पाताल में प्रवेश किया और कुंडलों के लिये घूमते हुये उन्हों ने वहां गुणों से संयुत व सम्पूर्ण सफेद घोडे को देखा ॥ ४५ ॥ उसने इनसे कहा कि मुझ से गुप्त वचन सुनिये उससे कार्य होगा तदनन्तर उन्होंने क्रोध किया उससे धुंवा पैदा हुआ ॥ ४६ ॥ हे भूधर ! उस अग्नि से सब पाताल भरगया तदनन्तर सब सर्प व्याकुल हुये व दौड़े ॥ ४७ ॥ और कुंडलों से संयुत वे तक्षक को आगे कर आसहुये तदनन्तर उत्तक के लिये कुंडलों को देकर प्रणाम कर घरको गये ॥ ४८ ॥ इसके अनन्तर घोड़े ने उन उत्तंकजीसे यह कहा कि हे द्विजोत्तम ! तुमने उपा-

र्थंपरिभ्रमन् ॥ सोपश्यद्वाजिनंतत्र सर्वश्वेतंगुणान्वितम् ॥ ४५ ॥ तेनोक्तःशृणुमेगुह्यं ततःकार्यंभविष्यति ॥ सचकारत तःक्रोधं ततोधूमोऽभ्यजायत ॥ ४६ ॥ पातालंतेनसर्वन्तु व्याप्तंभूधरअग्निना ॥ ततश्चव्याकुलास्सर्वे पन्नगास्समुपा द्रवन् ॥ ४७ ॥ तक्षकंपुरतःकृत्वा सम्प्राप्ताःकुण्डलान्विताः ॥ उत्तङ्कायततोदत्त्वा प्रणिपत्यययुर्गृहम् ॥ ४८ ॥ अथा श्वस्तमुवाचेदमहमग्निर्द्विजोत्तम ॥ यस्त्वयाराधितःपूर्वमुपाध्यायनिदेशतः ॥ ४९ ॥ ज्ञात्वात्वांदुःखितंचाहमिहप्रा प्तःकृपापरः ॥ सर्वथात्वंचमेपृष्ठं भगवञ्छीघ्रमारुह ॥ ५० ॥ गच्छापितंत्रयत्रास्ते गुरुःसर्वगुणालयः ॥ आरूढस्त स्यपृष्ठेस प्रतस्थेआश्रमंप्रति ॥ ५१ ॥ तत्क्षणात्समनुप्राप्तो गौतमस्यनिवेशनम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु अहल्याकृतम ण्डना ॥ ५२ ॥ स्नातावोचतभर्तारं साध्वीवाक्यमुवाचह ॥ उत्तङ्कोद्यनसम्प्राप्तः शापंदास्याम्यहंध्रुवम् ॥ ५३ ॥ शि थिलोगुरुकार्येषु सदृष्टोहिमुनिर्मया ॥ तस्यावाक्यावसानेतु उत्तङ्कःपर्यदृश्यत ॥ ५४ ॥ प्रसन्नवदनोदृष्टःकुण्डलाभ्यां

ध्यायकी आज्ञासे जिसको पहले आराधन किया है वही मैं अग्नि हूं ॥ ४९ ॥ तुमको दुःखित जानकर दया में तत्पर मैं यहां प्राप्त हुआ हे भगवन् ! तुम सर्वथा मेरी पीठ पै चढ़ो ॥ ५० ॥ और वहां चलो जहां कि सब गुणों के स्थान वे गुरु हैं उस घोड़ेकी पीठ पै चढ़े हुये वे आश्रम को चले ॥ ५१ ॥ और उसीक्षण वे गौतम के आश्रम में प्राप्त हुये इसी अवसर में आभूषणों को किये हुई अहल्याजी ॥ ५२ ॥ स्नान कर बोलीं उन पतिव्रता अहल्या ने पतिसे यह वचन कहा कि आज उत्तंक नहीं प्राप्त हुये मैं निश्चयकर शापदूंगी ॥ ५३ ॥ मैंने उन मुनिको गुरुकार्य में शिथिल देखा उनके वचन के अन्त में उत्तंकजी देख पड़े ॥ ५४ ॥ कुंडलों

से संयुत उन उत्तंकको अहल्या ने प्रसन्नमुख देखा और उन्हों ने भक्ति से
देखकर उसीक्षण कुंडलों को कानों में पहन लिया तदनन्तर शीघ्रही उत्तंक को
वह बिल हुआ है जिस लिये गऊके लिये मुझको गढ़े के पूर्ण करने में बड़ी चिन्ता है ॥
समर्थ नहीं है मेरे कार्य को शीघ्रही निस्सन्देह कीजिये ॥ ५८ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डे

समन्वितः ॥ प्रणिपत्यसतांभक्त्या कुण्डलेसंन्यवेदयत् ॥ ५
स्वगृहायततस्तूर्णमुत्तङ्कंविससर्जह ॥ ५६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥
चिन्ता धेन्वर्थंश्वभ्रपूरणे ॥ ५७ ॥ तस्मात्त्वंपूरयाक्षिप्रं नान्य
यम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेविवरोत्पत्तिर्नामद्वि

सूत उवाच ॥ श्रुत्वाहिमाचलोवाक्यं वसिष्ठस्यमहात्मनः
चार्यतमृषिमिदमाहनगोत्तमः ॥ कउपायोनगानांवै तत्रगन्तुं
तस्मात्त्वंहिमुनिश्रेष्ठ कार्यस्यपश्यनिश्चयम् ॥ ३ ॥ वसिष्ठ उ
नयस्तत्र विख्यातोनन्दिवर्द्धनः ॥ ४ ॥ तस्यार्बुदइतिख्यातो

दो० । नन्दिवर्धनहिं डारिकै किय अर्बुद बिल पूर । सोइ तीजे अध्याय में कह्यो
हिमाचल ने बिलके पूर्ण करने में उस कार्य को चिन्तवन किया ॥ १ ॥ बहुत देर तक
के जाने के लिये कौन उपाय है उसको मुझसे कहिये ॥ २ ॥ पुरातन समय इन्द्र ने स
देखिये ॥ ३ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे अनघ ! मुझसे वहां पर्वतों को लेजाने के लिये

अर्बुद ऐसा नाग मित्र प्रसिद्ध है जो प्राणधारियों में श्रेष्ठ व आकाशगामी तथा पराक्रमी है ॥ ५ ॥ वह सब कार्यों में लीला से शीघ्रही बढ़ाता है व नाश करता है इसमें सन्देह नहीं है उसको जानकर मैं आया हूं ॥ ६ ॥ इसको आज्ञादीजिये तुम दुःख करने के लिये नहीं योग्य हो यदि अवश्य भक्त हो तो शीघ्रही पठाइये ॥७॥ सूतजी बोले कि वसिष्ठजी के वचन को सुनकर पुत्रप्रिय हिमवान् पर्वत बड़े दुःख से संयुक्त हुआ व उसने चिन्तवन किया ॥ ८ ॥ कि हमारा मैनाक पुत्र डरसे समुद्र में पैठगया उस ज्येष्ठ व सर्वथा श्रेष्ठ पुत्रको वसिष्ठ लेने के लिये आये हैं ॥ ९ ॥ इस समय मुझको क्या करना चाहिये व किस प्रकार कल्याण होगा इधर

यवान् ॥ ५ ॥ सवर्द्धयतिहिक्षिप्रं क्षिणोत्येवनसंशयः ॥ लीलयासर्वकृत्येषु तंविदित्वाहमागतः ॥ ६ ॥ आदेशोदी यतामस्य दुःखंकर्त्तुंचनार्हसि ॥ अवश्यंयदिभक्तोसि तत्रप्रेषयसत्वरम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ वसिष्ठस्यवचःश्रुत्वा हिमवान्पुत्रवत्सलः ॥ दुःखेनमहताविष्टः चिन्तयामासभूधरः ॥ ८ ॥ मैनाकस्तनयोस्माकं प्रविष्टस्सागरेभयात् ॥ ज्येष्ठन्तुसर्वथावर्यं वसिष्ठोनेतुमागतः ॥ ९ ॥ किंकृत्यमधुनास्माकं कथंश्रेयोभविष्यति ॥ इतःशापभयंतीव्रमितोदुःखंचपुत्रजम् ॥ १० ॥ वरंपुत्रवियोगोस्तु नशापोद्विजसम्भवः ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा नन्दिवर्धनमुक्तवान् ॥ ११ ॥ गच्छत्वंपुत्रमेवाक्याद्वसिष्ठस्याश्रमंप्रति ॥ तत्रास्तिविवरोरौद्रस्तंप्रपूरयसत्वरम् ॥ १२ ॥ अर्बुदंनागमारुह्य मित्रंप्राणभृतांवरम् ॥ नन्दिवर्द्धन उवाच ॥ पापीयान्सविभोदेशः फलमूलविवर्जितः ॥ १३ ॥ पलाशैःखदिरैराम्रैर्धवैःशाल्मलिभिस्तथा ॥ अनिष्टैर्नृपशुभिर्भिन्नश्चविविधैरपि ॥ १४ ॥ नद्योजलरुहैर्हीना दुष्टालोकाश्चवासिनः ॥ नार्होहंपर्वत

तीव्र शाप का भय है व इधर पुत्रसे उपजा हुआ दुःख है ॥ १० ॥ पुत्रका वियोग होवै तो श्रेष्ठ है परन्तु ब्राह्मण से उपजा हुआ शाप नहीं श्रेष्ठ है इस प्रकार उस हिमाचल ने निश्चय कर नंदिवर्धन से कहा ॥ ११ ॥ कि हे पुत्र ! तुम मेरे वचन से वसिष्ठ के आश्रम को जावो वहां भयंकर बिल है उसको शीघ्रही पूर्ण कीजिये ॥ १२ ॥ प्राणधारियों मे श्रेष्ठ अर्बुद नाग पै चढ़कर जावो नन्दिवर्धन बोले कि हे विभो ! फलों व मूल से रहित वह देश बडा पापी है ॥ १३ ॥ क्योंकि ढाक, खैर, आम, धव, सेमर और नम्र मनुष्यों व पशुओं तथा अनेक भाति के अन्य प्राणियों से भिन्न है ॥ १४ ॥ व नदियां कमलों से रहित हैं और दुष्टलोग वहां

बसते हैं हे पर्वतश्रेष्ठ ! मैं वहां जाने के लिये किसी प्रकार योग्य नहीं हूं ॥ १५ ॥ इसके अनन्तर डरेहुये उन नन्दिवर्धन से वसिष्ठजीने कहा कि देश के दोष से तुमको वहा भय न करना चाहिये ॥ १६ ॥ क्योंकि वहां तुम्हारे मस्तक में मेरा सदैव निवास होगा और तीर्थ, नदियां, देवता व पवित्र देवमन्दिर ॥ १७ ॥ और अनेक भांति के आकारवाले पत्रों व पुष्पों तथा फलों से संयुत वृक्ष वहां सदैव होवेंगे और उत्तम मृग व पक्षी होवेंगे ॥ १८ ॥ और जब मैं ही तुम्हारे लिये महादेवजी को लाऊंगा तब वहा इन्द्रसमेत सब देवता टिकेंगे ॥ १९ ॥ सूतजी बोले कि वसिष्ठजी का वचन सुनकर नन्दिवर्धन प्रसन्न हुये और अर्बुद नाम के समीप

श्रेष्ठ तत्रगन्तुंकथंचन ॥ १५ ॥ अथोवाचवसिष्ठस्तं सन्त्रस्तंनन्दिवर्द्धनम् ॥ माभीःकार्यात्वयातत्र देशदोष्यात्कथ चन ॥ १६ ॥ तवमूर्ध्निसदावासो ममतत्रभविष्यति ॥ तीर्थानिसरितोदेवाः पुण्यान्यायतनानिच ॥ १७ ॥ वृक्षाश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलान्विताः ॥ सदातत्रभविष्यन्ति मृगाश्चविहगाःशुभाः ॥ १८ ॥ अहमेवानयिष्यामि तवार्थे चमहेश्वरम् ॥ तदास्थास्यन्तिवैतत्र सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ १९ ॥ सूत उवाच ॥ वसिष्ठस्यवचःश्रुत्वा संहृष्टोनन्दिवर्द्ध नः ॥ अर्बुदंनागमासाद्य वाक्यमेतदुवाचह ॥ २० ॥ तत्रमांनयभद्रन्ते वयस्यंविनयान्वितम् ॥ एतत्कार्यमहंमेने सां प्रतन्द्विजसम्भवम् ॥ २१ ॥ अर्बुद उवाच ॥ अहंतत्रनयिष्यामि स्नेहात्त्वांपर्वतात्मज ॥ तत्रैवचवसिष्यामि त्वयासार्द्धम संशयम् ॥ २२ ॥ किंत्वहंप्रणयाद्भ्रातर्वक्ष्यामियद्वचःशृणु ॥ प्रणयान्नान्यथाकार्यं यथाहन्तवसंमतः ॥ २३ ॥ मन्नाम्नाख्यातिमायातु नान्यत्किञ्चिद्ब्रवीम्यहम् ॥ ततःसोपिप्रतिज्ञाय आरूढस्तस्यचोपरि ॥ २४ ॥ प्रणम्यपितरौ

जाकर इस वचन को बोले कि ॥ २० ॥ तुम्हारा कल्याण होवै वहां विनय से संयुत मुझ मित्रको ले चलिये इस समय में ब्राह्मण से उपजे हुये इस कार्य को जानता हू ॥ २१ ॥ अर्बुद बोला कि हे पर्वतात्मज ! मैं स्नेह से तुमको वहां ले चलूगा और तुमसमेत मैं वहीं बसूंगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ २२ ॥ किन्तु हे भ्रातः ! मैं स्नेह से जिस वचन को कहता हूं उसको सुनिये और जैसा कि मैं सम्मत हूं वैसेही स्नेह से अन्यथा न करना चाहिये ॥ २३ ॥ कि मेरे नाम से आप प्रसिद्धिको प्राप्त

होवो मैं और कुछ नहीं कहता हूं तदनन्तर वह नंदिवर्धन भी प्रतिज्ञा कर उसके ऊपर सवार हुआ ॥ २४ ॥ और माता, पिता को प्रणाम कर मुनिसमेत चला और उत्तम देववृक्षों से पूर्ण और मधुर पक्षियों से युक्त व सौम्यमृगों से संयुत नंदिवर्धन पर्वत को उसी बिल में अर्बुदने वसिष्ठ मुनिके वचन से छोड़दिया ॥ २५ । २६ ॥ व अर्बुद महात्मा से छोड़ा हुआ वह उत्तम पर्वत उस बिल में मग्न होगया और उसमें नासिका के अग्रभागतक गया ॥ २७ ॥ व महारौद्र बिलके पूर्ण होने पर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी प्रसन्न हुये और उन्हों ने अर्बुद नाग से कहा कि हे सुव्रत ! वरदान को मांगिये ॥ २८ ॥ हे भद्र, पन्नग ! इस कर्म से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न

चैव प्रतस्थेमुनिनासह ॥ देववृक्षैःशुभैःपूर्णोनन्दिवर्द्धनपर्वतः ॥ २५ ॥ मधुरैर्विहगैर्युक्तो मृगैस्सौम्यैःसमन्वितः ॥ मुक्तोर्बुदेनतत्रैव विवरेमुनिवाक्यतः ॥ २६ ॥ समग्नस्तत्रनासाग्रं गतोपर्वतसत्तमः ॥ विमुक्तोविवरेतस्मिन्नर्बुदेनमहात्मना ॥ २७ ॥ परिपूर्णेमहारौद्रे सन्तुष्टोमुनिपुङ्गवः ॥ अब्रवीत्सोर्बुदंनागं वरंवरयसुव्रत ॥ २८ ॥ परितुष्टोस्मितेभद्र कर्मणानेनपन्नग ॥ २९ ॥ अर्बुद उवाच ॥ अयमेववरोस्माकं यत्त्वंतुष्टोमहामुने ॥ अवश्यंयदिदातव्यं तच्छृणुष्वद्विजोत्तम ॥ ३० ॥ यच्चैतच्छिखरेह्यस्मिन्निर्झरन्निर्मलोदकम् ॥ नागतीर्थमितिख्यातिं भूतलेयातुसर्वतः ॥ ३१ ॥ अत्राहं निवसिष्यामि मित्रस्नेहात्सदामुने ॥ तत्रस्नात्वादिवंयान्तु मानवास्त्वत्प्रसादतः ॥ ३२ ॥ अपिबन्ध्याचयानारी स्नानमात्रंसमाचरेत् ॥ सास्यात्पुत्रवतीविप्र सुखसौभाग्यसंयुता ॥ ३३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ यावन्ध्यास्मिञ्जलेपूर्णे स्नानमात्रंकरिष्यति ॥ सापिपुत्रमवाप्नोति सर्वलक्षणलक्षिता ३४॥ नभस्यशुक्लपञ्चम्यां फलैःपूजांकरोतिया ॥ अपि

हूं ॥ २९ ॥ अर्बुद बोला कि हे महामुने ! यही मेरा वरदान है जो कि तुम प्रसन्न हो व हे द्विजोत्तम ! यदि अवश्य देने योग्य है तो सुनिये ॥ ३० ॥ कि इस शिखर में निर्मल जलवाला जो झरना है वह सब ओर पृथ्वी में नागतीर्थ ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्त होवै ॥ ३१ ॥ व हे मुने ! मित्रके स्नेह से मैं यहां सदैव बसूंगा उस तीर्थ में नहाकर मनुष्य तुम्हारी प्रसन्नता से स्वर्गको प्राप्त होवैं ॥ ३२ ॥ व हे विप्रजी ! जो बांझ भी स्त्री स्नानमात्र करै वह पुत्रवती और सुख व सौभाग्य से संयुत होवै ॥ ३३ ॥ वसिष्ठजी बोले कि जो बाझ स्त्री इस पवित्र जलमें स्नानही करैगी सब लक्षणों से चिह्नित वह भी पुत्रको पावैगी ॥ ३४ ॥ और जो स्त्री भादौं

की शुक्ल पक्षवाली पंचमी में फलों से पूजन करैगी वह सौ वर्षकी भी स्त्री पुत्रवती होगी ॥ ३५ ॥ और जो मनुष्य भक्ति से इस तीर्थ में स्नान करैंगे वे वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम स्थान को जावैंगे ॥ ३६ ॥ व सावधान होते हुये जो पुरुष भादौं महीने में पंचमी तिथिमें वहां श्राद्ध करैंगे उनको तीर्थ का फल होगा ॥ ३७॥ सूतजी बोले कि इस प्रकार उनको वरदान देकर भगवान् वसिष्ठ मुनि नंदिवर्धन के समीप आकर यह वचन बोले ॥ ३८ ॥ हे अनघ, वृक्ष! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं ॥ वरदान को मांगिये नम्रता व स्नेह से मैं जो बहुत दुर्लभ होगा उसको भी दूंगा ॥ ३९ ॥ नंदिवर्धन बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! पहले कहा हुआ तुम्हारा वचन

वर्षशतानारी साभविष्यतिपुत्रिणी ॥ ३५ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति ह्यस्मिंस्तीर्थेचभक्तितः॥ यास्यन्तितेपरंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ३६ ॥ श्राद्धंतत्रकरिष्यन्ति पञ्चम्यांयेसमाहिताः ॥ नभस्येमासितीर्थस्य फलंतेषांभविष्यति॥३७॥ सूत उवाच ॥ एवंदत्त्वावरंतस्य वसिष्ठो भगवान्मुनिः ॥ नन्दिवर्धनमभ्येत्य वाक्यमेतदुवाचह ॥ ३८ ॥ वरञ्चव्रियतांवत्स परितुष्टोस्मितेनघ ॥ विनयात्सौहृदात्सर्वं दास्यामियत्सुदुर्लभम् ॥ ३९ ॥ नन्दिवर्द्धन उवाच ॥ तवास्तुवचनं सत्यं पूर्वोक्तंमुनिसत्तम ॥ सान्निध्यंजायतामत्र अवश्यंतवसर्वदा ॥ ४० ॥ यथाहमर्बुदेत्येवं ख्यातिंगच्छामिभूतले ॥ प्रसादात्तेतथाभूयादेतन्मेमनसिस्थितम् ॥ ४१ ॥ सूत उवाच ॥ एवमस्त्वितितच्चोक्त्वा वसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ चक्रेस्वमाश्रमंतत्र तस्यवाक्येननोदितः ॥ ४२ ॥ पनसैश्चम्पकैराम्रैः प्रियङ्गुव्रातदाडिमैः ॥ नानापक्षिसमायुक्ते देवगन्धर्वसेविते ॥ ४३ ॥ तस्थौतत्रमुनिश्रेष्ठ अरुन्धत्यासमन्वितः ॥ गौतमीमानयामास तपसामुनिसत्तम ॥ ४४ ॥

सत्य होवै कि सदैव यहा तुम्हारी अवश्य सामीप्य होवै ॥ ४० ॥ जिस प्रकार मैं तुम्हारी प्रसन्नता से पृथ्वी में अर्बुद ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्नहोऊ वैसाही होवै यह मेरे मन में स्थित है ॥ ४१ ॥ सूतजी बोले कि ऐसाही होवै यह उससे कहकर भगवान् वसिष्ठ मुनि ने वहां उसके वचन से प्रेरित होकर अपना आश्रम किया ॥ ४२॥ और कटहर, चंपक, आम, प्रियंगुसमूह व दाडिम (अनार) वृक्षों से संयुत तथा अनेक भांति के पक्षियों से संयुत तथा देवताओं व गंधर्वों से सेवित ॥ ४३ ॥ उस

पर्वत पै अरुंधतीसमेत वसिष्ठ मुनि टिके व उन मुनिश्रेष्ठ ने तपस्यासे गोमती को आना ॥ ४४ ॥ जिसमें नहाकर पापकारी भी मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं और विशेष कर माघ महीने में मकरराशि में सूर्य नारायण को स्थित होने पर ॥ ४५ ॥ जो इसमें स्नान करैंगे वे उत्तमगतिको प्राप्त होवैंगे व जो विशेषकर माघ महीने में तिलदान करता है ॥ ४६ ॥ वह मनुष्य तिलसंख्यक वर्षों तक स्वर्ग में टिकता है यहां बहुत कहने से क्या है जो मनुष्य स्नानमात्र करता है ॥ ४७ ॥ वह वसिष्ठ के मुख को देखकर फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है और पूजने योग्य अरुंधतीजीको पूजना चाहिये ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचि

यस्यांस्नात्वादिवंयान्ति अपिपापकृतोनराः ॥ माघमासेविशेषेण मकरस्थेदिवाकरे ॥ ४५ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्तिते यास्यन्तिपरांगतिम् ॥ माघमासेविशेषेण तिलदानंकरोतियः ॥ ४६ ॥ तिलसङ्ख्यानिवर्षाणि स्वर्गेतिष्ठतिमानवः ॥ बहुनाकिमिहोक्तेन स्नानमात्रंसमाचरेत् ॥ ४७ ॥ वसिष्ठस्यमुखंदृष्ट्वा पुनर्जन्मनविद्यते ॥ अरुन्धतीपूजनीया पूजनीयाविशेषतः ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेविवरपूरणन्नामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥

सूत उवाच ॥ सतुकृत्वाश्रमंतत्र वसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ तत्रशम्भोर्निवासाय तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ १ ॥ सबभूवमुनिःसम्यक् फलाहारसमन्वितः ॥ शीर्णपर्णाशनश्चैवद्विशतंसमतीत्यवै ॥ २ ॥ जलाहारःशतंपञ्च वर्षाणिसबभूवह ॥ वर्षाणिवायुभक्षोभूत्ततोदशशतानिच ॥ ३ ॥ पञ्चाग्निसाधकोग्रीष्मे हेमन्तेसलिलाशयः ॥ वर्षास्वाकाशवासीच स

तायांभाषाटीकायांविवरपूरणंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि पर्वत को फोरिकै भो अचलेश्वर नाम । सो चौथे अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ सूतजी बोले कि वहां उन भगवान् वसिष्ठमुनि ने आश्रम करके शिवजीके निवास के लिये वहां दारुण तप कियाहै ॥ १ ॥ वे मुनि भलीभांति फलाहारसंयुत हुये और गिरे हुये पत्तोंको भोजन करते हुये वे मुनि दोसौ वर्ष व्यतीत कर ॥ २ ॥ पांचसौ वर्ष तक जलाहारी हुये तदनन्तर दश सौ वर्ष तक वे पवनभोजी हुये ॥ ३ ॥ व ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्निसाधक तथा हेमन्त में जलाशय हुये

तदनन्तर हज़ार वर्ष तक वर्षाऋतु में आकाशवासी हुये ॥ ४ ॥ तदनन्तर उन महात्मा वसिष्ठ ऋषिके ऊपर महादेवजी प्रसन्न हुये व उसी क्षण उस पर्वत को फोड़ कर उनके आगे लिंग उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ उन शिवजी को देखकर विस्मय से संयुत मुनिने स्तोत्र कहा कि सर्वव्यापी व अमृतशुद्ध शिवजीके लिये नमस्कार है ॥ ६ ॥ तुम कपर्दी के लिये नमस्कार है व उन त्रिमूर्ति के लिये प्रणाम है व स्थूल, सूक्ष्म और महात्मा भूतेश के लिये प्रणाम है ॥ ७ ॥ तुम निषंग (तरकस) धारी के लिये नमस्कार है व त्रिलोचनजी के लिये प्रणामहै हे चन्द्रकृताधार ! नमस्कारहै और दिग्वसन (नग्न) के लिये प्रणाम है ॥ ८ ॥ हे अष्टमूर्ते ! आप

हस्रञ्चततोऽभवत् ॥ ४ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवस्तस्यर्षेस्सुमहात्मनः ॥ भित्त्वातंपर्वतंसद्यः तत्पुरोलिङ्गमुत्थितम् ॥ ५ ॥ तंदृष्ट्वाविस्मयाविष्टो मुनिस्स्तोत्रमुदीरयत्॥नमश्शिवायशुद्धाय सर्वगायामृतायच ॥ ६ ॥ कपर्दिनेनमस्तुभ्यं नमस्तस्मैत्रिमूर्त्तये ॥ नमस्स्थूलायसूक्ष्माय भूतेशायमहात्मने ॥ ७ ॥ निषङ्गिणेनमस्तुभ्यं त्रिनेत्रायनमोनमः ॥ नमः चन्द्रकृताधार नमोदिग्वसनायच ॥ ८ ॥ पिनाकपाणयेतुभ्यमष्टमूर्तेनमोनमः ॥ नमस्तेज्ञानरूपाय ज्ञानगम्यायते नमः ॥ ९ ॥ नमस्तेज्ञानदेहाय सर्वज्ञानमयायच ॥ काशीपतेनमस्तुभ्यं गिरिशायनमोनमः ॥ १० ॥ जगत्कारणरूपाय महादेवायतेनमः ॥ गौरीकान्तनमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यंशिवात्मने ॥ ११ ॥ ब्रह्मविष्णुस्वरूपाय त्रिनेत्रायनमोनमः ॥ विश्वरूपायशुद्धाय नमस्तुभ्यंमहात्मने ॥ १२ ॥ नमोविश्वस्वरूपाय सर्वदेवमयायच॥एतस्मिन्नेवकालेतु वाग्

पिनाकपाणिके लिये नमस्कारहै नमस्कारहै व ज्ञानरूपी आपके लिये प्रणामहै और ज्ञानसे जाने योग्य आपके लिये प्रणामहै ॥ ९ ॥ ज्ञान शरीरवाले आपके लिये प्रणाम है व ज्ञानमय के लिये नमस्कार है हे काशीपते ! तुम्हारे लिये प्रणाम है व गिरिश के लिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ १० ॥ व संसार के कारणरूप आप महादेवजी के लिये प्रणाम है हे गौरीपते ! तुम्हारे लिये नमस्कार है व शिवात्मा आपके लिये प्रणाम है ॥ ११ ॥ और ब्रह्मा व विष्णुरूपी त्रिलोचनजी के लिये नमस्कार है नमस्कार है व विष्णुरूप आप शुद्ध महात्मा के लिये नमस्कार है ॥ १२ ॥ व संसारस्वरूप सब देवमय के लिये प्रणाम है इसी अवसर में आकाश-

वाणी बोली ॥ १३ ॥ कि हे सुव्रत ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान को मांगिये यह कहकर पर्वत को फोड़कर उनके आगे लिंग उत्पन्न हुआ ॥ १४ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे शंकरजी ! इस लिंग में तुम्हारी सदैव समीपता होवै मैंने पहले प्रतिज्ञा किया है व महात्मा आपके लिये मैं प्रणाम करता हूं ॥ १५ ॥ हे शंकरजी ! यदि प्रसन्न हो तो तुम मेरे वचन को सत्य कीजिये भगवान् शिवजी बोले कि आजसे लगाकर इस लिंग में मेरी समीपता होगी ॥ १६ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ, मुनिसत्तम ! तुम्हारा सब वचन सत्य होगा व जो मनुष्य कुँवार महीने में कृष्णपक्ष में चौदसि तिथि में भक्तिसे इस स्तोत्र से स्तुति करैगा वह उत्तम गतिको प्राप्त होगा व हे

वाचाशरीरिणी ॥ १३ ॥ परितुष्टोस्मितेभद्र वरंवरयसुव्रत ॥ इत्युक्त्वापर्वतंभित्त्वा तत्पुरोलिङ्गमुत्थितम् ॥ १४॥ वसिष्ठ उवाच ॥ लिङ्गेस्मिंस्तवसान्निध्यं सदाभवतुशङ्कर ॥ मयापूर्वंप्रतिज्ञातं नमस्येहंमहात्मने ॥ १५ ॥ सत्यंकुरुवचोमेत्वं यदितुष्टोसिशङ्कर ॥ भगवानुवाच ॥ अद्यप्रभृतिलिङ्गेस्मिन्सान्निध्यंमेभविष्यति ॥१६॥ त्वद्वाक्यंब्राह्मणश्रेष्ठ सर्वं सत्यंभविष्यति ॥ स्तोत्रेणानेनयोमर्त्यो मांस्तविष्यतिभक्तितः ॥ १७ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामाश्विनेमुनिसत्तम ॥ मत्प्रियार्थन्तुशक्रेण प्रेषितामुनिसत्तम ॥ १८ ॥ मन्दाकिनीतिविख्याता नदीत्रैलोक्यपावनी ॥ देवस्योत्तरदिग्भागे कुण्डन्तिष्ठतिनित्यशः ॥ १९ ॥ तस्यांस्नात्वामुनिश्रेष्ठ मल्लिङ्गंपश्यतेतुयः ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ २० ॥ अचलंभेदयित्वातु यस्मान्मेलिङ्गमुद्गतम् ॥ अचलेश्वरनाम्नैव लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ २१ ॥ अस्यलिङ्गस्यसाच्छाया नकदाचिच्चलिष्यति ॥ सर्वथामइदंलिङ्गं प्रलयान्तेनचाल्यते ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ एतावदुक्त्वावचनं

मुनिश्रेष्ठ ! मेरे प्रियके लिये इन्द्र ने त्रिलोक को पवित्र करनेवाली मंदाकिनी ऐसी प्रसिद्ध नदी को पठाया है और शिवदेवजी के उत्तर दिशा के भागमें सदैव कुण्ड स्थित रहता है ॥ १७ । १८ । १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसमें नहाकर जो मनुष्य मेरे लिंग को देखता है वह वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम स्थान को जाता है ॥ २० ॥ जिसलिये अचल (पर्वत) को फोड़कर मेरा लिंग उत्पन्न हुआ उसी कारण यह संसार में अचलेश्वर नाम से प्रसिद्धिको प्राप्त होगा ॥ २१ ॥ और इस लिंगकी वह

छाया कभी नहीं चलैगी मेरा यह लिंग कल्पान्त में भी सब प्रकार से न चलाया जायगा ॥ २२ ॥ सूतजी बोले कि इतनाही वचन कहकर महादेवजी चुप होगये और प्रसन्न मनवाले मुनीश्वर वसिष्ठजी गौतमादिक मुनियों को लाये ॥ २३ ॥ तदनन्तर ब्रह्मा वसिष्ठजी तपसे इन्द्रादिक देवताओं व तीर्थों और देवमन्दिरों को उत्तम पर्वत पै लाये ॥ २४ ॥ तदनन्तर प्रसन्न होते हुये सुरश्रेष्ठ (शिवजी) ने वहां निवास किया ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामचलेश्वरोत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

विररामममहेश्वरः ॥ वसिष्ठोपिसुहृष्टात्मा गौतमादीन्मुनीश्वरः ॥ २३ ॥ शक्रादींश्चततोदेवांस्तीर्थान्यायतनानिच ॥ आनयामासब्रह्मर्षिस्तपसापर्वतोत्तमे ॥ २४ ॥ ततस्तुष्टस्सुरश्रेष्ठस्तत्रवासमथाकरोत् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेचलेश्वरोत्पत्तिर्नामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ऋषय ऊचुः ॥ अर्बुदस्यचमाहात्म्यं विस्तरेणवदस्वनः ॥ कौतुकंसूतनोजातं कथयस्वयथाश्रुतम् ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ पुरासीचऋषिश्रेष्ठः पुलस्त्योभगवान्मुनिः ॥ ययातेश्चगृहंयातो नरपालनमस्कृतः ॥ २ ॥ ययातिरुवाच ॥ स्वागतंतेमुनिश्रेष्ठ सफलंमेद्यजीवितम् ॥ कथयस्वप्रसादेन कथामर्बुदसम्भवाम् ॥ ३ ॥ अर्बुदाख्योनगोनाम विख्यातो योधरातले ॥ तस्ययात्राक्रमंब्रूहि तत्फलंद्विजसत्तम ॥ ४ ॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि तीर्थयात्रापरायणः ॥ तस्मादृदमुनि

दो॰ । नागतीर्थमें न्हाय भइ, विधवा गर्भिणि नारि । सोइ पञ्चम अध्याय में कह्यो चरित सुखकारि ॥ ऋषिलोग बोले कि हे सूतजी ! अर्बुद के माहात्म्य को हमलोगों से विस्तार से कहिये हमलोगों के कौतुक पैदा हुआ है इससे जैसा सुना गया हो वैसाही उसको कहिये ॥ १ ॥ सूतजी बोले कि पुरातन समय ऋषियों में श्रेष्ठ भगवान् पुलस्त्यमुनि हुये हैं वे ययाति के घर को गये नरपालक ययातिजी ने उनको प्रणाम किया ॥ २ ॥ ययाति बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ आज मेरा जीवन सफल होगया आप अर्बुद से उपजी हुई कथा को कहिये ॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम ! अर्बुदनामक जो पर्वत पृथ्वीमें प्रसिद्ध है उसकी यात्रा

का क्रम व उसके फल को कहिये ॥ ४ ॥ तीर्थों की यात्रामें परायण तुम सब को विस्तार से कहो हे मुनिश्रेष्ठ ! इसलिये विस्तार से कहिये कि जिससे मैं यात्रा करूं ॥ ५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! अर्बुदनामक उत्तम पर्वत बहुत धर्ममय है वह विस्तारसे सौ वर्षों से भी नहीं कहा जासक्ता है ॥ ६ ॥ तथापि मैं तुमसे मुख्य तीर्थों को संक्षेप से कहूंगा वहीं मनुष्यों के सब कामनाओं को देनेवाला नागतीर्थ है ॥ ७ ॥ व विशेषकर स्त्रियों को पुत्र व सौभाग्य को देनेवाला है हे राजन् ! पहले के चरित्र को सुनिये जिस से उत्तम आश्चर्य होताहै ॥ ८ ॥ कि पतिव्रता व साध्वी गौतमीनामक ब्राह्मणी हुई है जो कि बाल्यावस्था में वैधव्यता को प्राप्त होकर

श्रेष्ठ येनयात्रांकरोम्यहम् ॥ ५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ बहुधर्ममयोराजन्नर्बुदःपर्वतोत्तमः ॥ अशक्तोविस्तराद्वक्तुमपि वर्षशतैरपि ॥ ६ ॥ संक्षेपात्कथयिष्यामि तीर्थमुख्यानितेतथा ॥ नागतीर्थन्तुतत्रास्ति सर्वकामप्रदन्नृणाम् ॥ ७ ॥ नारीणांचविशेषेण पुत्रसौभाग्यदायकम् ॥ शृणुराजन्पुरावृत्तं यतोप्याश्चर्यमुत्तमम् ॥ ८ ॥ गौतमीब्राह्मणीनाम सतीसाध्वीपतिव्रता ॥ बालवैधव्यसंप्राप्ता तीर्थयात्रापरायणा ॥ ९ ॥ अर्बुदंसाचसंप्राप्ता नागतीर्थविवेशह ॥ तस्मिञ्जलेनिमग्नासा स्नातुमभ्याययौपरा ॥ १० ॥ नार्येकापुत्रसंयुक्ता तत्तीर्थसमुपागता ॥ शुश्रूषांतनयस्तस्याश्चक्रेनानाविधान्नृप ॥ ११ ॥ सर्वोपकारणैर्दर्भैः सुमनोभिःपृथग्विधा ॥ अथसाचिन्तयामास गौतमीपुत्रदुःखिता ॥ १२ ॥ धन्येयंतनयोह्यस्याः शुश्रूषांकुरुतेसदा ॥ पुत्रयुक्ता त्वियंधन्या धिङ्मांपुत्रविवर्जिताम् ॥ १३ ॥ अहंभर्त्रावियुक्ताच पुत्रहीनासुदुःखिता ॥ अथमानिर्गतातस्मात्सलिलान्नृपसत्तम ॥ १४ ॥ विनापिभर्तृसंयोगात्सद्योगर्भवतीह्यभूत् ॥ साग

तीर्थयात्रा में परायण हुई ॥ ९ ॥ और वह अर्बुद में प्राप्तहुई व नागतीर्थ में पैठी वह उस जलमें नहाती थी इतने में अन्य एक स्त्री नहानेके लिये आई व उस तीर्थ में प्राप्त हुई हे राजन् ! उसके पुत्रने अनेक प्रकार की सेवा किया ॥ १० । ११ ॥ और सब सामग्रियों से तथा कुशों व पुष्पों सेअनेकभांति सेवा किया इसके अनन्तर पुत्रसे दुःखित गौतमी ने चिन्तवन किया ॥ १२ ॥ कि इसका यह पुत्र धन्यहै जो कि सदैव सेवा करता है पुत्र से संयुत यह धन्य है व पुत्रसे वर्जित मुझको धिक्कार है ॥ १३ ॥ और मैं पति से वियुक्त व पुत्रहीन और बहुतही दुःखित हूं इसके अनन्तर हे नृपोत्तम ! वह उस जल से निकली ॥ १४ ॥ और पतिसंयोग के बिना भी

वह उसी क्षण गर्भिणी हुई और गर्भ के लक्षणों से युक्त व निजजनों की लज्जा से संयुत उस ने ॥ १५ ॥ मरने में बुद्धि किया व अग्नि को जलाया इसी समय में आकाशवाणी बोली ॥ १६ ॥ कि हे गौतमि ! तुम चिन्ता की अग्नि में प्रवेश करने के योग्य नहीं हो क्योंकि इस तीर्थ के प्रभाव से इस अर्थ में तुम्हारा दोष नहीं है ॥ १७ ॥ क्योंकि जलके मध्य में स्थित जो मनुष्य चित्त में जिस बस्तुको चाहता है या जो स्त्री जिस मनोरथ की इच्छा करती है वह उस चिंतित वस्तु को प्राप्त होती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥ तुमने उसके पुत्रको देखा और हृदय में पुत्र की इच्छा की गई निश्चय कर पुत्र तुम्हारे गर्भ में प्राप्त है और तुम्हारे पुत्र

र्भलक्षणैर्युक्ता स्वजनव्रीडयापिसा ॥ १५ ॥ चकारमरणेबुद्धिं ज्वालयामासपावकम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचा शरीरिणी ॥ १६ ॥ नोत्वंगौतमिचिन्ताग्नौ प्रवेशंकर्तुमर्हसि ॥ दोषोनास्तितवात्रार्थे तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥१७॥ यो यद्वाञ्छतिचित्तेच जलमध्येस्थितोनरः ॥ चिन्तितंचतदाप्नोति नारीवानात्रसंशयः ॥ १८ ॥ त्वयातस्याःसुतोदृष्टो पु त्रवाञ्छाकृताहृदि ॥ तवगर्भगतोनूनं पुत्रस्तवभविष्यति ॥ १९ ॥ तस्माद्विरमभद्रन्ते निर्दोषासिपतिव्रते ॥ विररामत तःसाध्वी गौतमीमरणान्नृप ॥२०॥ श्रुत्वाकाशगतांवाणीं देवदूतेनभाषिताम् ॥ दृष्ट्वापतिंविनागर्भं वाक्यमेतदुवाचह ॥ २१ ॥ अहोतीर्थप्रभावोयमपूर्वःप्रतिभातिमे ॥ यत्रसंजायतेगर्भः स्त्रीणांशुक्ररजोविना ॥२२॥ नाहंकुत्रापियास्यामि मु क्त्वेदंतीर्थमुत्तमम् ॥ एवमुक्त्वाततःसाध्वी तत्रैवन्यवसत्सदा ॥ २३ ॥ पुत्रंचजनयामास सर्वलक्षणलाञ्छितम् ॥ तत्रपा र्थिवशार्दूल कृष्णपक्षेऽश्विनस्यच ॥ २४ ॥ यःपुमान्कुरुतेश्राद्धं तस्यवंशोननश्यति ॥ नप्रेतोजायतेराजन् वंशेतस्य

होगा ॥ १९ ॥ इसलिये चुप होरहो तुम्हारा कल्याण होवै हे पतिव्रते ! तुम दोषरहित हो तदनन्तर हे राजन् ! पतिव्रता गौतमी मरने से विराम को प्राप्त हुई ॥ २० ॥ व देवदूत से कही हुई आकाशगामिनी वाणी को सुनकर व पतिके विना गर्भ को देखकर यह वचन बोली ॥ २१ ॥ कि अहो (आश्चर्य) यह तीर्थ का प्रभाव अपूर्व जान पड़ता है जहां कि वीर्य व रजके विना स्त्रियों के गर्भ होता है ॥ २२ ॥ मैं इस उत्तम तीर्थ को छोड़कर कहीं भी न जाऊंगी ऐसा कहकर तदनन्तर उत्तम आचरणवाली वह भी सदैव वहीं बसती भई ॥ २३ ॥ व उसने सब लक्षणों से चिह्नित पुत्रको पैदा किया हे नृपश्रेष्ठ ! कुँवार के कृष्णपक्ष में वहां ॥ २४ ॥ जो पुरुष

कदाचन ॥ २५ ॥ यःपुमान्कामरहितः स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ श्राद्धंचपार्थिवश्रेष्ठ तस्यलोकाःसनातनाः ॥ २६ ॥ यास्त्री पुष्पफलान्येव तीर्थेतस्मिन्विसर्जयेत् ॥ सास्यात्पुत्रवतीधन्या सौभाग्यंचप्रपद्यते ॥ २७ ॥ निष्कामास्वर्गमाप्नोति दुष्प्राप्यंत्रिदशैरपि ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रांतस्यसमाचरेत् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेनागतीर्थमाहात्म्यं नामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

श्राद्ध करता है उसका वंश नहीं नाश होता है व हे राजन् ! उसके वंश में कभी प्रेत नहीं होता है ॥ २५ ॥ और कामनाओं से रहित जो पुरुष वहां स्नान करता है व हे नृपश्रेष्ठ ! जो वहां श्राद्ध करता है उसको अविनाशी लोक होते है ॥ २६ ॥ व जो स्त्री उस तीर्थ में पुष्पों व फलों को छोडती है वह पुत्रवती व धन्य होती है और सौभाग्य को प्राप्त होती है ॥ २७ ॥ और अकाम स्त्री देवताओं से भी दुर्लभ स्वर्ग को पाती है इस लिये सब उपाय से उस तीर्थ की यात्राकरै ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांनागतीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ वसिष्ठंतपसान्निधिम् ॥ यंदृष्ट्वामानवःसम्यक् परांसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ तत्रास्तिजलसम्पूर्णं कुण्डंपापहरंनृणाम् ॥ तस्मिन्कुण्डेनृपश्रेष्ठ वसिष्ठेनमहात्मना ॥ २ ॥ गोमतीचसमानीता तेनासौनृपसत्तम ॥ तत्रस्नातोनरःसम्यक् पातकैश्चप्रमुच्यते ॥ ३ ॥ ऋषिधान्येनयस्तत्र श्राद्धंनृपसमाचरेत् ॥ सपितॄस्तारयेत्सर्वान् पक्षयोरुभयोरपि ॥ ४ ॥ अत्रगाथापुरागीता नारदेनमहात्मना ॥ स्नात्वापुण्योदकेतत्र दृष्ट्वातंमुनिस

दो०। जिमि वसिष्ठ को देखिकै सकल मनोरथ होत। सोइ छठें अध्याय में कह्यो चरित्र उदोत ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर तपस्या के निधान वसिष्ठजीके समीप जावै जिनको भलीभांति देखकर मनुष्य उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वहां मनुष्यों के पापों को हरनेवाला जलसे भराहुआ कुण्ड है हे नृपश्रेष्ठ ! उस कुंडमें उन महात्मा वसिष्ठजीने ॥ २ ॥ इस गोमती को प्राप्त किया है हे नृपोत्तम ! उसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य पातकों से छूटजाता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! वहां जो ऋषि धान्य (तिन्नी फसही) से श्राद्ध करता है वह दोनों पक्षों के भी सब पितरों को तारता है ॥ ४ ॥ इस विषय में महात्मा नारद

जीने पुरातन समय गाथा गाया है कि उस पवित्र जलवाले कुण्ड में नहाकर व उन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी को देखकर ॥ ५ ॥ गया श्राद्ध दान से क्या है व अन्य यज्ञों के विस्तार से क्या है वसिष्ठजी के आश्रम को प्राप्त होकर जो मनुष्य श्राद्ध करता है ॥ ६ ॥ हे नृपोत्तम ! वह अपना समेत सब पितरों को तारता है और वहीं पर वसिष्ठजी के समीप पतिव्रता अरुन्धतीजी ॥ ७ ॥ विशेष कर पूजने योग्य हैं जो कि मनुष्यों के सब कामनाओं को देनेवाली हैं बाल्यावस्था में जो पाप किया गया है व वृद्धता और युवावस्था में जो पाप किया गया है ॥ ८ ॥ वह मनुष्यों का पातक वसिष्ठजी के दर्शन से शीघ्रही नाश होता है व सावधान होता हुआ जो मनुष्य

त्तमम् ॥ ५ ॥ किंगयाश्राद्धदानेन किमन्यैर्मखविस्तरैः ॥ वसिष्ठस्याश्रमंप्राप्य यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ ६ ॥ सपितॄंस्तारयेत्सर्वानात्मनानृपसत्तम ॥ तत्रैवारुन्धतीसाध्वी वसिष्ठस्यसमीपतः ॥ ७ ॥ पूजनीयाविशेषेण सर्वकामप्रदानृणाम् ॥ बाल्येवयसियत्पापं वार्द्धकेयौवनेपिवा ॥ ८ ॥ वसिष्ठदर्शनात्सद्यो नराणांयातिसंक्षयम् ॥ दीपंप्रयच्छतेयस्तु वसिष्ठाग्रेसमाहितः ॥ ९ ॥ सुखसौभाग्यसंयुक्तस्तेजस्वीजायतेनरः ॥ उपवासपरोयस्तु तत्रैकांरजनींनयेत ॥ १० ॥ सयातिपरमंस्थानं यत्रसप्तर्षयोमलाः ॥ त्रिरात्रंकुरुतेयस्तु वसिष्ठाग्रेसमाहितः ॥ ११ ॥ सयातिचमहर्लोकं जरामरणवर्जितम् ॥ यस्तुमासोपवासंच वसिष्ठाग्रेकरोतिच ॥ १२ ॥ सोपिमुक्तिमवाप्नोति नयातिसभवार्णवम् ॥ श्रावणस्यासितेपक्षे पौर्णमास्यांसमाहितः ॥ १३ ॥ ऋषींस्तर्पयतेयस्तु ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ वसिष्ठस्याग्रतोयस्तु गायत्र्यष्टश

वसिष्ठजी के आगे दीप देता है ॥ ९ ॥ वह मनुष्य सुख व सौभाग्य से संयुत व तेजस्वी होता है व उपास में तत्पर जो मनुष्य वहां एक रात्रि व्यतीत करता है ॥ १० ॥ वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है जहां कि निर्मल सप्तर्षि हैं व सावधान होता हुआ जो वसिष्ठजी के आगे तीन रात्रि तक उपास करता है ॥ ११ ॥ वह वृद्धता व मृत्यु से रहित महर्लोक को जाता है और जो वसिष्ठजी के आगे मासोपवास करता है ॥ १२ ॥ वह भी मुक्ति को प्राप्त होता है और संसारसागर को नहीं जाता है और श्रावण के शुक्लपक्ष में पौर्णमासी तिथि में सावधान होता हुआ ॥ १३ ॥ जो मनुष्य ऋषियों को तर्पण करता है वह ब्रह्मलोक को जाता है और वसिष्ठ

जीके आगे जो एक सौ आठ गायत्री को जपता है ॥ १४ ॥ वह मनुष्य जन्म से लगाकर मरण तक के पातक से छूटजाता है व श्रद्धासंयुत जो पुरुष वहां शिवजी को भजता है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! वह मनुष्य उसी क्षण अग्निष्टोमके फलको प्राप्त होता है इस लिये सब यत्न से पवित्र मनुष्यों से ये महामुनि वसिष्ठजी देखने योग्य हैं जिसलिये श्रद्धासयुत प्राणी परमपद को प्राप्त होते हैं इस लिये हे राजन् ! सब यत्न से वामदेवजीको पूजै ॥ १६ । १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायावसिष्ठाश्रममाहात्म्यंनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

तंजपेत् ॥ १४ ॥ आजन्ममरणात्पापात्सद्यो मुच्येतमानवः ॥ वामदेवंचयस्तत्र भजेच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ १५ ॥ अग्निष्टोमफलंराजन् सद्यःप्राप्नोतिमानवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दृश्योसौचमहामुनिः ॥ १६ ॥ शुचिभिःश्रद्धयायुक्ता यास्यन्तिपरमंपदम् ॥ तस्मात्सर्वात्मनाराजन्वामदेवंचपूजयेत् ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेवसिष्ठाश्रममाहात्म्यन्नामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ सुपुण्यमचलेश्वरम् ॥ यंदृष्ट्वासिद्धिमाप्नोति नरःश्रद्धासमन्वितः ॥ १ ॥ तत्रकृष्णचतुर्दश्यां यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥ आश्विनेफाल्गुनेवापि सयातिपरमांगतिम् ॥ २ ॥ यस्तुसम्पूजयेद्भक्त्या दक्षिणांदिशमास्थितः ॥ पुष्पैःपत्रैःफलैश्चैव सोश्वमेधफलंलभेत् ॥ ३ ॥ पञ्चामृतेनयस्तत्र तर्पणंकुरुतेनरः ॥ सोपिदेवस्य सान्निध्यं शिवलोकमवाप्नुयात् ॥ ४ ॥ प्रदक्षिणार्द्धंयस्तस्य प्रणामंकुरुतेनरः ॥ नश्यन्तिसर्वपापानि प्रदक्षिणपदे

दो॰ । शुककरि शिवपरदक्षिणा भयो वेणु नरपाल । सो सप्तम अध्यायमें चरित विचित्र रसाल ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अतिपवित्र अचलेश्वरजीके समीप जावै जिनको देखकर श्रद्धासंयुत पुरुष सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वहां कुँवार व फागुन महीने में कृष्णपक्ष की चौदसि में जो मनुष्य श्राद्ध करताहै वह उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ व दक्षिण दिशा में स्थित जो मनुष्य, भक्ति से पुष्प, पत्र और फलों करके पूजता है वह अश्वमेधयज्ञ के फल को पाता है ॥ ३ ॥ और जो मनुष्य वहां पंचामृत से तर्पण करता है वह भी शिवजीकी समीपता व शिवलोक को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ व जो मनुष्य उन शिव

देवजी की आधी प्रदक्षिणा व प्रणाम करता है उसके सब पाप प्रदक्षिणा के पग २ में नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥ हे महामते ! वहां पहले जो आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये मैंने पहले स्वर्ग में इन्द्र के समीप नारद से सुना है ॥ ६ ॥ वहां पुरातन समय शुक पक्षी ने वृक्ष में घोंसला बनाया था वह घोंसला में जाने आने से प्रदक्षिणा करता था ॥ ७ ॥ हे महाराज ! पक्षी की योनि में उत्पन्न यह शुक भक्ति से किसीप्रकार प्रदक्षिणा नहीं करता था इसके अनन्तर यह शुक बहुत दिनों के बाद मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ ८ ॥ व हे महाराज ! वह राजा के वंश में जाति को स्मरण करनेवाला समस्त शत्रुवों को नाशनेवाला वेणु ऐसा कहाहुआ राजा हुआ है ॥ ९ ॥

पदे ॥ ५ ॥ तत्राश्चर्यमभूत्पूर्वं यत्त्वंशृणुमहामते ॥ मयापूर्वंश्रुतंस्वर्गे नारदाच्छक्रसन्निधौ ॥ ६ ॥ तत्रपूर्वंशुकोनीडंवृक्षे चैवाकरोद्द्विजः ॥ गदागतेननीडस्य कुरुतेसम्प्रदक्षिणाम् ॥ ७ ॥ नचभक्त्यामहाराज पक्षियोनिसमुद्भवः ॥ अथासोमृत्युमापन्नः कालेनमहताशुकः ॥ ८ ॥ सञ्जातःपार्थिववंशे राजावेणुरितिस्मृतः ॥ जातिस्मरोमहाराज सर्वशत्रुनिकृन्तनः ॥ ९ ॥ संस्मृत्वातंप्रभावंहि प्रदक्षिणसमुद्भवम् ॥ अचलेश्वरमासाद्य प्रदक्षिणमथाकरोत् ॥ १० ॥ नक्तंदिनं महाराज नान्यत्किञ्चित्करोतिसः ॥ नचस्नानेकृतोयत्नो ननैवेद्येकथंचन ॥ ११ ॥ नपुष्पेधूपदानेच प्रदक्षिणपरःसदा ॥ केनचित्त्वथकालेन मुनयोत्रसमागताः ॥ १२ ॥ नारदःशौनकश्चैव हारीतोदेवलस्तथा ॥ गालवःकपिलोनन्दः सुहोत्रःकश्यपोनृप ॥ १३ ॥ एतेचान्येचबहवो देवव्रतपरायणाः ॥ केचित्स्नानंकारयन्ति तस्यलिङ्गस्यभक्तितः ॥ १४ ॥ अन्येचविविधांपूजां जपमन्येसमाहिताः ॥ एकेनृत्यन्तिराजेन्द्र गायन्तिचतथापरे ॥ १५ ॥ बलिमन्येप्रयच्छन्ति स्तु

इसके अनन्तर प्रदक्षिणा से उपजे हुये उस प्रभाव को भलीभांति यादकर अचलेश्वर को प्राप्त होकर उसने प्रदक्षिणा किया ॥ १० ॥ हे महाराज ! वह रात दिन अन्य कुछ नहीं करता था और न स्नान में यत्न कियागया न किसीप्रकार नैवेद्य में यत्न कियागया ॥ ११ ॥ और न पुष्प न धूप, दान में यत्न कियागया केवल वह सदैव प्रदक्षिणा करने में लगाहुआ था इसके अनन्तर किसीसमय मुनिलोग इस तीर्थ में आये ॥ १२ ॥ हे राजन् ! नारद, शौनक, हारीत, देवल, गालव, कपिल, नन्द, सुहोत्र व कश्यप ॥ १३ ॥ ये, और अन्य बहुत से देवव्रत में परायण पुरुष वहां आये कोई भक्ति से उस लिंग को स्नान करते थे ॥ १४ ॥ व अन्य लोग

अनेक प्रकार का पूजन व अन्य जप करते थे हे नृपेन्द्र! कोई नाचते थे व अन्य गाते थे ॥ १५ ॥ व अन्य बलि को देते थे और अपर लोग स्तुति करते थे इसके अनन्तर परम आश्चर्यरूप प्रदक्षिणा में तत्पर वेणु राजा को देखकर ॥ १६ ॥ वे बड़े कौतुक को प्राप्त हुये व हे नृपश्रेष्ठ ! प्रदक्षिणा से उपजे हुये कारण स इस वचन को बोले ॥ १७ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तुम विशेषकर किस लिये सदैव इन शिवदेव की प्रदक्षिणा में तत्पर रहते हो हमलोगों से इस को सत्य कहने के योग्य हो ॥ १८ ॥ व बहुतही सुन्दर बहुत बलिको क्यों नहीं देते हो व पुष्प, धूपादिक और अनेकभाति के स्तोत्रों को क्यों नहीं पढ़ते हो ॥ १९ ॥

तिंकुर्वन्तिचापरे ॥ अथाश्चर्यपरं दृष्ट्वा प्रदक्षिणपरंनृपम् ॥१६॥ परंकौतुकमापन्ना वाक्यमेतदथाब्रुवन् ॥ प्रदक्षिणसमुद्भूतात्कारणान्नृपसत्तम ॥ १७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कस्मात्त्वंपार्थिवश्रेष्ठ प्रदक्षिणपरःसदा ॥ देवस्यास्यविशेषेण सत्यं नोवक्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ नददासिबलिंकस्मात्प्रभूतंसुमनोहरम् ॥ पुष्पधूपादिकंचाथ स्तोत्राणिविविधानिच ॥ १९ ॥ समर्थोसितथान्येषां दानानान्त्वंमहीपते ॥ एतन्नःकौतुकंसर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ २० ॥ वेणुरुवाच ॥ यदहंसम्प्रवक्ष्यामि श्रूयतांद्विजसत्तमाः ॥ पूर्वं देहान्तरेवृत्तं सर्वंसत्यंविशेषतः ॥ २१ ॥ प्रासादेस्मिन्पुरापक्षी शुकोहंस्थितवान्यदा ॥ देवंतत्रस्थितंकुर्वन्प्रदक्षिणमहर्निशम् ॥ २२ ॥ कृपयाचप्रभावाच्च जातोजातिस्मरोन्वहम् ॥ अधुनापरयाभक्त्या यत्करोमिप्रदक्षिणाम् ॥ २३ ॥ नजानेकिंफलंमेस्याद्देवस्यास्यप्रसादतः ॥ एतस्मात्कारणाच्चाद्धा नान्यत्किञ्चित्करो

हे राजन् ! वैसेही अन्य दानों के तुम समर्थ हो यह सब हमलोगों को कौतुक है इसको यथायोग्य कहने के योग्य हो ॥ २० ॥ वेणु बोले कि हे द्विजोत्तमो ! पहले शरीर के मध्य में जो चरित्र हुआ है उसको मैं भलीभाति कहता हूं विशेष कर सुनिये जो सब कि सत्य है ॥ २१ ॥ पुरातन समय इस मन्दिर में मैं शुकपक्षी होकर जब स्थित था तब वहा स्थित शिवजीकी दिनरात प्रदक्षिणा करता हुआ मैं टिका ॥ २२ ॥ उन्हीं शिवदेवजीकी दया व प्रभाव से मैं जातिका स्मरण करनेवाला उत्पन्न हुआ व इस समय बड़ी भक्ति से संयुत मे जो प्रदक्षिणा करता हू ॥ २३ ॥ उसको मैं नहीं जानता हूं कि इन शिवदेवजीकी प्रसन्नता से मुझको क्या फल

होगा साक्षात् इसी कारण से मैं और कुछ नहीं करता हूं ॥ २४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि वेणु का वचन सुनकर तदनन्तर प्रशंसित नियमोंवाले मुनिलोग विस्मय से प्रफुल्लितलोचन होकर बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा बोले ॥ २५ ॥ तदनन्तर वहां सब महर्षि प्रदक्षिणा में तत्पर हुये व सब मुनि बडी श्रद्धा से संयुत हुये ॥ २६ ॥ और वह महाभाग राजा वेणु भी शिवजीकी प्रसन्नता से देवताओं से भी दुर्लभ अविनाशी स्थान को प्राप्त हुआ ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामचलेश्वरप्रभावोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❁ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

म्यहम् ॥ २४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ वेणुवाक्यंततःश्रुत्वा मुनयःशंसितव्रताः ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनाः साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ २५ ॥ ततःप्रदक्षिणपराः सर्वेतत्रमहर्षयः ॥ बभूवुर्मुनयस्सर्वे श्रद्धयापरयायुताः ॥ २६ ॥ सोपिराजामहाभागो वेणुःशम्भोःप्रसादतः ॥ शाश्वतंस्थानमापन्नो दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेचलेश्वरप्रभावो नामसप्तमोऽध्यायः ॥७॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ भद्रकर्णमहाह्रदम् ॥ त्रिनेत्राभाःशिलायत्र दृश्यन्तेद्यापिभूरिशः ॥ १ ॥ तस्यैवपश्चिमेभागे लिङ्गमस्तिपिनाकिनः ॥ यद्दृष्ट्वामानवस्तत्र त्रिनेत्रसदृशोभवेत् ॥२॥ भद्रकर्णगणोनाम पुरासीच्छिववल्लभः ॥ तेनात्रस्थापितंलिङ्गं ह्रदश्चैवविनिर्मितः ॥ ३ ॥ केनचित्त्वथकालेन संग्रामेदानवैःसह ॥ युयुधेपुरतःशम्भोर्नानागणसमन्वितः ॥ ४ ॥ नष्टेस्कन्देहतेसैन्ये वीरभद्रेपराजिते ॥ गतास्तेभयसन्त्रस्ता महाकालेविनिर्जिते ॥ ५ ॥

दो० । भद्रकर्ण शिवगण यथा थप्यो लिंग निजनाम । सो अष्टम अध्याय में बर्णित चरित ललाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर भद्रकर्ण नामक महाकुण्ड के समीप जावै जहां कि आज भी त्रिनेत्र के समान बहुत सी शिलायें देख पडती हैं ॥ १ ॥ उसी के पश्चिम भागमें वहा पिनाकी शिवजीका लिंग है जिसको देखकर मनुष्य त्रिलोचन के समान होता है ॥ २ ॥ पुरातन समय शिवजीका प्यारा भद्रकर्णनामक गण हुआ है उसने यहा लिंग को थापा है व कुण्ड को निर्माण किया है ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर किसी समय समर में शिवजीके आगे नाना गणों से संयुत उसने दानवों के साथ युद्ध किया है ॥ ४ ॥ और स्वामिकार्त्तिकेय

के मरने पर व वीरभद्र के हार जाने पर व महाकाल के पराजित होने पर भय से डरे हुये वे गण चलेगये ॥ ५ ॥ और तलवार व ढालको धारण किये बहुतही बलवान् नमुचिनामक बली दानव शीघ्रही शिवजीके सामने दौड़ा ॥ ६ ॥ और भद्रकर्ण उस दानव को देखकर तदनन्तर उसके सामने दौड़ा और खड़े हो खड़े हो ऐसा बोला ॥ ७ ॥ व क्रोध से संयुत उस भद्रकर्ण गण ने तलवार से उसकी तलवार को काटकर व ढालको भी काटकर उस दैत्य के स्तनों के मध्य में मारा ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर उससे मारा हुआ यह बड़े अन्धकार में पैठ कर पवन से टूटे हुये वृक्षकी नाईं पृथ्वी में गिरपड़ा ॥ ९ ॥ व वध को प्राप्त यह

बलवान्नमुचिर्नाम दानवोबलवत्तरः ॥ खड्गचर्मधरःशीघ्रं महेश्वरमुपाद्रवत् ॥ ६ ॥ भद्रकर्णस्तुतंदृष्ट्वा दानवंतदनन्तरम् ॥ अगमत्सम्मुखस्तस्य तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ ७ ॥ छित्त्वासिञ्चासिनातस्य चर्मचापिमहाबलः ॥ स्तनयोरन्तरेदैत्यं कोपाविष्टस्तमाहनत् ॥ ८ ॥ अथासौनिहतस्तेन प्रविश्यविपुलंतमः ॥ निपपातमहीपृष्ठे वायुभग्नइवद्रुमः ॥ ९ ॥ वधंप्राप्तस्तुदैत्योसौ सद्यःप्राणैर्वियोजितः ॥ सत्येस्थितंचतंदृष्ट्वा ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १० ॥ भगवानुवाच ॥ तववीर्येणसन्तुष्टो धर्मेणचविशेषतः ॥ वरंवरयभद्रन्ते नित्यंयोहृदयेस्थितः ॥ ११ ॥ भद्रकर्ण उवाच ॥ यन्मयास्थापितं लिङ्गमर्बुदेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ अत्रास्तुतवसान्निध्यं ह्रदेस्मिंश्चसदास्थितः ॥ १२ ॥ भगवानुवाच ॥ माघमासेचतुर्दश्यां कृष्णपक्षेसदामम ॥ सान्निध्यञ्चविशेषेण ह्यस्मिँल्लिङ्गेभविष्यति ॥ १३ ॥ भद्रकर्णह्रदेस्नात्वा त्रिनेत्रंतंसमाहितः ॥ द्रक्ष्यतेयस्तुमेस्थानं शाश्वतंयास्यतिध्रुवम् ॥ १४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ पूजयित्वाचतल्लिङ्गंशि

दैत्य शीघ्रही प्राणों से अलग हुआ और उसको सत्यमें स्थित देखकर तदनन्तर महादेवजी प्रसन्न हुये ॥ १० ॥ भगवान् शिवजी बोले कि तुम्हारे पराक्रम व धर्म से मैं विशेष कर प्रसन्न हुआ हूं तुम्हारा कल्याण होवै वरदान को मांगिये जो कि सदैव हृदय में स्थित होवै ॥ ११ ॥ भद्रकर्ण बोला कि मैंने अर्बुदेश्वरसंज्ञक जिस लिंगको थापा है इस में तुम्हारी समीपता होवै व इस कुंड में सदैव स्थित होवो ॥ १२ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि माघ महीने में कृष्णपक्ष की चौदसि में विशेष कर इस लिंग में मेरी सदैव समीपता होगी ॥ १३ ॥ व भद्रकर्णकुण्ड में नहाकर उन त्रिलोचनजी को जो सावधान मनुष्य देखैगा वह निश्चय कर मेरे

सनातन स्थान को जावैगा ॥ १४ ॥ इसलिये सब यत्न से जो वहां स्नान करता है वह उस लिंगको पूजकर शिवलोक को जाता है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुद खण्डेदत्तीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाभद्रकर्णत्रिनेत्रमाहात्म्यंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । केदारेश्वर पूजिकै शूद्र भयो नरपाल । सोइ नवम अध्याय में कह्यो चरित्र रसाल ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्यों के सब पातकों को हरनेवाले त्रिलोक में प्रसिद्ध केदार ऐसे विख्यात तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ जहां पवित्र मंदाकिनी नदी सरस्वती से संगम को प्राप्त हुई है हे राजन् ! उसमें नहाया

वलोकंसगच्छति ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेभद्रकर्णत्रिनेत्रयोर्माहात्म्यन्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ केदारमितिविख्यातं सर्वपापहरन्नृणाम् ॥ १ ॥ यत्रमन्दाकिनीपुण्या सरस्वत्यासमागता ॥ तत्रस्नातोनरोराजन् मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ २ ॥ शृणुराजन्यथावृत्तमितिहासंपुरातनम् ॥ ऋषिभिर्बहुधागीतमर्बुदेपर्वतोत्तमे ॥ ३ ॥ अजपालोनृपःपूर्वं सूर्यवंशसमुद्भवः ॥ सप्तद्वीपावतीपृथ्व्याः सपतिर्नात्रसंशयः ॥ ४ ॥ नहस्तिनोनयानानि नचाश्वास्तस्यभूपतेः ॥ नरथाश्चमहाराज नकोशाश्चतथाविधाः ॥ ५ ॥ नगृह्णातिकरंराजन् प्रजाभ्योप्यधिकन्नृपः ॥ ईदृशोपिसराजावै सर्वलोकहितेरतः ॥ ६ ॥ जातोपराधोभूपृष्ठेऽज्ञापतेर्नकथञ्चन ॥ शत्रवोविग्रहन्तस्य चक्रुर्नैवकदाचन ॥ ७ ॥ एवमस्यनरेन्द्रस्य वर्तमानस्यभूतले ॥ सुखेन

हुआ मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार पुरातन समय वृत्तान्त हुआ है उस इतिहास को सुनिये जिसको पुरातन समय अर्बुद नामक उत्तम पर्वत पै ऋषियों ने बहुत प्रकार से गाया है ॥ ३ ॥ पुरातन समय सूर्यवंश में उत्पन्न अजपालनामक राजा हुआहै वह सातोंद्वीपवाली पृथ्वी का स्वामी था इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ हे महाराज ! उस राजा के न हाथी थे न घोड़े न रथ थे और न वैसे खज़ाना थे ॥ ५ ॥ व हे राजन् ! वह प्रजाओं से अधिक दण्ड नहीं लेता था ऐसा भी वह राजा सब लोकों के हितमें तत्पर था ॥ ६ ॥ व अजापाल राजा का किसी प्रकार भूतल में अपराध नहीं हुआ और उसके शत्रुवों

ने कभी विग्रह नहीं किया ॥ ७ ॥ इस प्रकार वर्तमान इस राजा के नष्टकण्टक राज्यमें मनुष्य सुख से पृथ्वी में रमते थे ॥ ८ ॥ और उस राजा के विद्यमान होने पर मेघ इच्छा के अनुकूल बरसता था व अन्न रसवान् होते थे व गौवों के बहुत दूध होता था ॥ ९ ॥ इस के अनन्तर किसी समय भगवान् वसिष्ठ मुनि तीर्थयात्रा के प्रसंग से उसके घर को आये ॥ १० ॥ उन को देखकर राजा ने शास्त्र में देखी हुई विधि से पूजन किया और प्रत्युत्थान, प्रणाम व अर्घ, पाद्यादिकों से ॥ ११ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार उस राजा ने बड़ी भक्ति से उनका पूजन किया और मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी सहंता कर सुख से बैठ गये ॥ १२ ॥ वैसेही पुराने राजर्षियों व

रमतेलोको राज्येनिहतकण्टके ॥ ८॥ कामंवर्षतिपर्जन्यःसस्यानिरसवन्तिच ॥ गावःप्रभूतदुग्धाश्च विद्यमानेनराधिपे ॥ ९ ॥ केनचित्त्वथकालेन वसिष्ठोभगवान्मुनिः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन तस्यगेहमुपागतः ॥ १० ॥ तंदृष्ट्वापूजयामास शास्त्रदृष्टेनवर्त्मना ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यामर्घपाद्यादिभिस्तथा ॥ ११ ॥ एवंसम्पूजितस्तेन भक्त्यापरमयानृप ॥ सुखोपविष्टोविश्रान्तो वसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥१२॥ राजर्षीणांपुराणानां देवर्षीणांतथैवच ॥ तथाकथावसानेतु कस्मिंश्चिन्नृपसत्तमः ॥ १३ ॥ पप्रच्छविनयोपेतस्तंमुनिंशंसितव्रतम् ॥ १४ ॥ अजपाल उवाच ॥ अतीतानागतंविप्र वर्त्तमानन्तथैवच ॥त्वंवेत्सिसकलंब्रह्मन् कृपांकृत्वाममप्रभो ॥१५॥ कौतुकंहृदिमेजातं वर्त्ततेमुनिपुङ्गव ॥ प्रसादःक्रियतांमह्यं कथयस्वप्रसादतः ॥ १६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ ब्रूहिपार्थिवशार्दूल यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ कथयिष्यामितत्सर्वं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ केनकर्मविपाकेन ममैतद्राज्यमुत्तमम् ॥ निष्कण्टकंसदाक्षेमं सर्वकामसमन्वितम् ॥१८॥

देवर्षियों के किसी प्रकार कथा के अन्तमें नृपोत्तम अजपाल ने ॥ १३ ॥ विनयसंयुत होकर उन प्रशंसित नियमोंवाले वसिष्ठजी से पूंछा ॥ १४ ॥ अजपाल बोले कि हे विप्रजी ! तुम भूत, भविष्य व वर्तमान सब जानते हो हे प्रभो, ब्रह्मन्, मुनिश्रेष्ठ ! मेरे हृदयमें उत्पन्न हुआ कौतुक वर्तमान है इस से मेरे ऊपर कृपा कर प्रसन्नता से कहिये व मेरे लिये प्रसन्नता की जावै ॥ १५ । १६ ॥ वसिष्ठजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तुम्हारे मन में जो वर्तमान हो उस को कहिये यद्यपि दुर्लभ भी होगा तौ भी उस सबको कहूंगा ॥ १७ ॥ राजा बोले कि किस कर्म के फल से सब कामनाओंसे संयुत व निष्कंटक सदैव कल्याणमय यह मेरा उत्तम राज्य है ॥ १८ ॥

जिस से सब प्रकार भोजन होवै तदनन्तर स्त्रीसमेत तुम बहुत से कमलों को लेकर ॥ २९ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! तुम वहा गये जहां कि बहुत से लोग थे परन्तु दुर्भिक्ष से पीड़ित कोई भी मनुष्य कमलों को नहीं लेता था ॥ ३० ॥ और तुम सब कहीं घूमे व थककर वैराग्य को प्राप्त हुये तदनन्तर दिनके अन्त में एक गुहा में आश्रित हुये ॥ ३१ ॥ और पृथ्वी में कमलों को धरकर भूंख से संयुत तुम सोगये इसी समय में वेद व पुराण को पढ़ते हुये मुख्य ब्राह्मणों की ध्वनि तुम्हारे कान में प्राप्त हुई ॥ ३२ ॥ उस शब्द को सुनकर अचानकही उठकर जागरण को प्राप्त होकर तदनन्तर ॥ ३३ ॥ कमलों को लेकर स्त्रीसमेत तुम वहीं

मिविक्रयंयेनाहारोभवतिसर्वथा ॥ ततःपद्मानिभूरीणि गृहीत्वाभार्ययासह ॥ २९ ॥ ततोयत्रजनोभूरिस्त्वंगतःपार्थिवोत्तम ॥ नकोपिप्रतिगृह्णाति लोकोदुर्भिक्षपीडितः ॥ ३० ॥ भ्रमितस्त्वंचसर्वत्र श्रान्तोवैराग्यतांगतः ॥ ततोदिनावसानेतु गुहामेकांसमाश्रितः ॥ ३१ ॥ भूमौपद्मानिनिक्षिप्य क्षुधाविष्टःप्रसुप्तवान् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु कर्णयोस्तेसमागतः ॥ ३२ ॥ पठतान्द्विजमुख्यानां ध्वनिर्वेदपुराणयोः ॥ तंश्रुत्वासहसोत्थाय गत्वाजागरणंततः ॥ ३३ ॥ पद्मान्यादायतत्रैव सभार्यःशिवमन्दिरे ॥ तत्रनागवतीवेश्या शिवरात्रिपरायणा ॥ ३४ ॥ केदारेपरयाभक्त्या करोतिनिशिजागरम् ॥ तस्याःपार्श्वेस्थितादासी त्वयापृष्टानरेश्वर ॥३५ ॥ देवस्यपुरतोबाले किमर्थंरात्रिजागरम् ॥ तयोक्तंशिवरात्र्यांवै वेश्येयंवरवर्णिनी ॥३६॥ कुरुतेनागवतीनाम रात्रौभक्त्याचजागरम् ॥ कोपिभक्तिसमायुक्तः कुरुतेरात्रिजागरम् ॥३७॥ पूजयित्वामहादेवं सयातिपरमंपदम् ॥ कृत्वोपवासंपद्मैर्यः पूजयेत्र्यम्बकंनरः ॥ ३८ ॥ सयातिरुद्रसालोक्यं सेव्यमानो

शिवमन्दिर में गये वहां नागवती वेश्या शिवरात्रि में परायण थी ॥ ३४ ॥ और वह केदार में बड़ी भक्तिसे रात्रिजागरण करती थी व हे नरेश्वर ! उसी वेश्या के समीप बैठी हुई दासी से तुमने पूंछा ॥ ३५ ॥ कि हे बाले ! शिवदेवजी के आगे किसलिये रात्रिजागरण किया जाता है उसने कहा कि शिवरात्रि में यह उत्तम वर्ण (रंग) वाली वेश्या ॥ ३६ ॥ नागवतीनामक रात्रिमें भक्ति से जागरण करती है और भक्तिसे संयुत कोई भी जो जागरण करता है ॥ ३७ ॥ महादेवजीको पूजकर वह परमपदको जाता है जो मनुष्य उपास कर त्रिलोचनजीको कमलों से पूजता है ॥ ३८ ॥ अप्सराओं के गणों से सेवित वह शिवजीकी सलोकता को प्राप्त

होता है और सकाम पुरुष देवताओं से भी दुर्लभ कामनाओं को पाता है ॥ ३९ ॥ सो तुम मुझको कमल दीजिये और तीन पल सुवर्ण इनका मूल्य लेकर प्राण धारण कीजिये ॥ ४० ॥ तदनन्तर सुवर्ण लेनेमें तुमसे स्त्रीने कहा कि हे नाथ ! तुमको किसी प्रकार इन कमलों का मूल्य न लेना चाहिये ॥ ४१ ॥ क्योंकि अन्नके न होने से दोनों का भी उपास बल से होगया और दोनों को भी इन कमलों से शिवजीको पूजना चाहिये आज यह निश्चय है ॥ ४२ ॥ आज तुमको यह करना चाहिये कि इसका सुवर्ण त्यागना चाहिये स्त्रीके वचन को सुनकर तुमने उन कमलों से शिवजीको पूजन किया ॥ ४३ ॥ हे महाराज ! स्त्रीसमेत तुमने श्रद्धा से शिवजी

प्सरोगणैः ॥ सकामोलभतेकामान्देवैरपि सुदुर्लभान् ॥ ३९ ॥ सत्वंपद्मानिमेदेहि काञ्चनंचपलत्रयम् ॥ एतेषांमूल्यमादाय प्राणधारंसमाचर ॥ ४० ॥ ततस्त्वंभार्ययाचोक्तो गृह्यमाणेचकाञ्चने ॥ नग्राह्यंमूल्यमेतेषां त्वयानाथकथञ्चन ॥ ४१ ॥ उपवासोबलाज्जाता ह्यन्नाभावाद्द्वयोरपि ॥ पद्मैरेभिर्हरःपूज्यो द्वाभ्यामेवाद्यनिश्चयम् ॥ ४२ ॥ इदन्त्वयाद्यकर्त्तव्यं त्याज्यमस्यास्तुकाञ्चनम् ॥ भार्यायावचनंश्रुत्वा तैःपद्मैःपूजितःशिवः ॥ ४३ ॥ श्रद्धयाचसभार्येण जागरंचशिवाग्रतः ॥ कृतन्त्वयामहाराज भार्ययाशिवमन्दिरे ॥ ४४ ॥ पुराणश्रवणंजातं तवपार्थिवसत्तम ॥ शिवरात्र्यां महाराज पद्मैस्तुपूजितःशिवः ॥ ४५ ॥ केदारस्याग्रतोभक्त्या रात्रौजागरणंतथा ॥ कृतन्त्वयामहाराज एकाग्रेणचचेतसा ॥ ४६ ॥ ततःप्रभातेसञ्जाते भिक्षां कृत्वाचपारणा ॥ कृतात्वयामहाराज शिवाग्रेसहभार्यया ॥ ४७ ॥ ततःकालान्तरेणैव कालधर्मंगतोभवान् ॥ भार्येयञ्चत्वयासार्धं सम्प्रविष्टाहुताशनम् ॥ ४८ ॥ ततोजातामहाराज दशार्णा

के मन्दिर में शिवजीके आगे जागरण किया व स्त्री ने किया ॥ ४४ ॥ व हे नृपोत्तम ! तुमको पुराण का श्रवण होगया व हे महाराज ! शिवरात्रि में तुमने कमलों से शिवजीको पूजा ॥ ४५ ॥ व हे महाराज ! केदारजीके आगे भक्ति से तुमने एकाग्रचित्त से रात्रि में जागरण किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर हे महाराज ! प्रभात होने पर तुम ने भिक्षा करके स्त्रीसमेत शिवजीके आगे पारण किया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर काल के अन्तर में आप कालधर्म (मृत्यु) को प्राप्त हुये और यह स्त्री तुम्हारे साथ

अग्नि में पैठगई ॥ ४८ ॥ तदनन्तर हे महाराज ! वह दशार्णदेश की कन्या हुई और हे नृपोत्तम ! तुम वैदेह नगर में राजा हुये ॥ ४६ ॥ और पृथ्वी में नाम से अजपाल ऐसे कहे गये और नृपों में श्रेष्ठ तुम सब प्राणियों के प्यारे हुये ॥ ५० ॥ इसी कारण यह स्त्री प्राणों के समान हुई और फिर भी तुम्हारी स्त्री हुई तुम जो मुझसे पूंछते हो ॥ ५१ ॥ तो हे राजन् ! उन केदारदेवजीके माहात्म्य से तुम्हारा राज्य मनुष्यों को सुखदायक व निष्कंटक है ॥ ५२ ॥ हे महाराज ! केदारजी की प्रसन्नता से तुमने राज्य को पाया जिससे कि सेनारहित भी तुम पृथ्वी की रक्षा करते हो ॥ ५३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसके उस वचन को सुनकर वह राजा

धिपतेस्सुता ॥ वैदेहेनगरेराजा जातस्त्वंपार्थिवोत्तम ॥ ४६ ॥ अजपालइतिख्यातो नाम्नाचधरणीतले ॥ सर्वेषांप्राणिनांत्वञ्च वल्लभोनृपसत्तमः ॥ ५० ॥ एतस्मात्कारणाज्जाता भार्येयंप्राणसम्मता ॥ भूयोपितवसञ्जाता यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ ५१ ॥ तस्यदेवस्यमाहात्म्यात्केदारस्यमहीपते ॥ राज्यन्तेसुखदंनृणां तथानिहतकण्टकम् ॥ ५२ ॥ प्राप्तंत्वयामहाराज केदारस्यप्रसादतः ॥ येनत्वंसैन्यहीनोपि पृथिवींपरिरक्षसि ॥ ५३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा सराजाविस्मयान्वितः ॥ गमनायमतिंचक्रे केदारंप्रतिभूमिपः ॥ ५४ ॥ सगत्वापर्वतेरम्ये पूजयित्वाचतंविभुम् ॥ शिवरात्रिपरःसम्यग् वर्षेवर्षेबभूवह ॥ ५५ ॥ पुत्रंराज्येचसंस्थाप्य ततोर्बुदमथागमत् ॥ प्राप्तोमुक्तिंततोभूपः सभार्यस्तत्प्रभावतः ॥ ५६ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं केदारस्यमहीपते ॥ माहात्म्यंशुभदंनृणां सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ५७ ॥ माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णपक्षेचतुर्दशी ॥ शिवरात्रिरितिख्याता भूतलेस्मिन्महामते ॥ ५८ ॥ तस्यान्तुसर्वथा

विस्मयसयुत हुआ और उस भूपति ने केदार को जाने के लिये बुद्धि किया ॥ ५४ ॥ वह सुन्दर पर्वत पै जाकर उन व्यापक शिवजीको पूजकर प्रति वर्ष अच्छीभांति शिवरात्रि में परायण हुआ ॥ ५५ ॥ और राज्य पै पुत्र को बिठाकर तदनन्तर वह अर्बुद को गया तदनन्तर स्त्रीसमेत वह राजा उसके प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ हे महीपते ! मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाला शुभदायक यह केदारजीका सब माहात्म्य तुमसे कहागया ॥ ५७ ॥ हे महामते ! माघ व फागुन

के मध्य में कृष्णपक्ष में चतुर्दशी इस पृथ्वी में शिवरात्रि ऐसी कही गई है॥ ५८॥ हे राजन्! उस तिथि में सब प्रकार वहा यात्रा करै व हे नृप, महाराज! केदारका पूजन करै॥ ५९ ॥ माघ महीने में कृष्णपक्षकी चौदसि में जो वहा जागरण करताहै हे राजन्! उपास कियेहुये वह पुरुष शिवलोक को जाता है ॥ ६०॥ व गंगा सरस्वती के संगम में नहाकर जो मनुष्य सब कामनाओं को देनेवाले केदारको देखते हैं वे उत्तम गतिको जाते हैं ॥ ६१ ॥ और केदारनामक कुण्ड में जो निर्मल जलको पीता है उसने सात पहलेवाले व सात पीछेवाले पितरों को तारदिया॥ ६२ ॥ व हे राजन्! जो मनुष्य उत्तम भक्ति से इसको सदैव सुनता है वह केदार

राजन् यात्रांतत्रसमाचरेत्॥ केदारस्यमहाराज कुर्याच्चपूजनंनृप॥ ५९ ॥माघकृष्णचतुर्दश्यां यःकुर्यात्तत्रजागरम्॥ कृतोपवासोनृपते शिवलोकंसगच्छति ॥ ६० ॥ स्नात्वागङ्गासरस्वत्योः सङ्गमेसर्वकामदम्॥ येप्रपश्यन्तिकेदारं तेयास्यन्तिपरांगतिम् ॥ ६१॥ कुण्डेकेदारसंज्ञेयः प्रपिबेद्विमलंजलम्॥ सप्तपूर्वाःसप्तपराः पूर्वजास्तेनतारिताः॥ ६२ ॥ यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्त्यापरमयानृप॥ सोपिपापैर्विमुच्येत केदारस्यप्रभावतः॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकेदारस्यमाहात्म्यन्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ययातिरुवाच ॥ केदारःश्रूयतेब्रह्मन् पर्वतेचहिमाचले॥ गङ्गातस्माद्विनिष्क्रान्ता प्रविष्टापूर्वसागरम् ॥ १ ॥ तथा सरस्वतीदेवी भूतवृक्षाद्विनिर्गता॥पश्चिमंसागरंप्राप्ता गृहीत्वावडवानलम्॥ २॥ कथंचात्रसमायातः केदारश्चात्रकौतुकम्॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि विचित्रंममभोमुने ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सत्यमेतन्महाराज यन्मेत्वंपरिपृच्छसि ॥

के प्रभाव से सब पापों से भी छूटजाता है ॥ ६३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकेदारस्यमाहात्म्यनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दो०। तीरथ अर्बुद शिखर पै गेकलि अवगुण देखि। सोइ दशम अध्याय में कह्यो चरित्र विशेखि॥ ययातिजी बोले कि हे ब्रह्मन्! हिमाचल पर्वत पै केदार शिवजी सुने जाते हैं उससे गंगाजी निकली हैं व पूर्व समुद्र में पैठी हैं ॥ १ ॥ वैसेही सरस्वती देवी आमके वृक्ष से निकली हैं और वड़वानलको लेकर पश्चिम समुद्र को प्राप्त हुई हैं ॥ २ ॥ हे मुने! यहा केदारजी किस प्रकार आये हैं इस विषय में सब विचित्र कौतुक को मुझसे विस्तार से कहिये ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि

हे महाराज ! यह सत्य है और तुम जो मुझसे पूंछते हो उसको सावधान होकर सुनो जिस प्रकार कि वे केदारजी वहां हुये हैं ॥ ४ ॥ हे नृपोत्तम ! गंगादिक सब तीर्थ व केदारादिक देवता और इन्द्रादिक देवता पुरातन समय मेरे साथ ॥ ५ ॥ व हे नृपेन्द्र ! सब महर्षि ब्रह्माजी के समीप गये और सबों ने वहां अनेक भांति की पृथक् २ कथाओं को किया ॥ ६ ॥ हे राजन् ! देवताओं के समूह में सब तीर्थ और वन व उपवन नहीं प्राप्त हुये ॥ ७ ॥ तदनन्तर कथा के प्रसंगसे इन्द्र ने ब्रह्मा से कहा व हे नृपोत्तम ! कौतुक से संयुत उन्हों ने पूंछा ॥ ८ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे भगवन् ! इस समय मैं पवित्र माहात्म्य को व सतयुगादिक सब युगों का पृथक्

शृणुष्वावहितोभूत्वा यथाजातश्चतत्रवै ॥ ४ ॥ गङ्गाद्यास्सर्वतीर्थानि केदाराद्यादिवौकसः ॥ मयासहपुरादेवा शक्राद्यान्नृपसत्तम ॥ ५ ॥ ब्रह्माणंप्रतिराजेन्द्र गतास्सर्वेमहर्षयः ॥ सर्वेतत्रकथाश्चक्रुर्नानारूपाःपृथक्पृथक् ॥ ६ ॥ समुदायेचदेवानां सर्वतीर्थानिपार्थिव ॥ तत्रैवोपस्थितान्येव वनान्युपवनानिच ॥ ७ ॥ ततःकथाप्रसङ्गेन इन्द्रःप्राहचतुर्मुखम् ॥ कौतुकेनसमायुक्तः पप्रच्छनृपसत्तम ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ भगवन्पुण्यमाहात्म्यं श्रोतुमिच्छामिसाम्प्रतम् ॥ प्रमाणंचैवसर्वेषां कृतादीनांपृथग्विधम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ लक्षाःसप्तदशप्रोक्ता युगमानंसुराधिप ॥ अष्टाविंशतिभिःसार्द्धं सहस्रैःकृतमुच्यते ॥ १० ॥ लक्षद्वादशभिःप्रोक्तं युगंत्रेताभिसञ्ज्ञितम् ॥ षण्णवत्यधिकैश्चैव सहस्रैःपरिमाणितम् ॥ ११ ॥ लक्षाश्चाष्टौचतुष्षष्टिसहस्रैःपरिकीर्त्तितम् ॥ ततोवैद्वापरंनाम युगंदेवेन्द्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥ लक्षाश्चत्वारिंसंख्याता द्वात्रिंशत्कलिसञ्ज्ञया ॥ सहस्रैश्चसुरश्रेष्ठ युगंपरमदारुणम् ॥ १३ ॥ चतुष्पादकृतेधर्मः शुक्लवर्णोजनार्द्दनः ॥

भांति का प्रमाण सुना चाहता हूं ॥ ९ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे सुराधिप ! सतयुग का प्रमाण सत्रह लाख अट्ठाईस हज़ार वर्ष कहा जाता है ॥ १० ॥ और त्रेतासंज्ञक युग बारह लाख छानबे हज़ार वर्षों से प्रमाणित कहा गया है ॥ ११ ॥ तदनन्तर हे सुरेन्द्र ! द्वापरनामक युग आठलाख चौंसठ हज़ार वर्ष कहा गया है ॥ १२ ॥ व हे सुरश्रेष्ठ ! कलिनामक बड़ा दारुण युग चारलाख बत्तीस हजार वर्ष कहा गया है ॥ १३ ॥ सतयुग में धर्म चार चरण से होता है और विष्णु शुक्ल वर्ण होते

है व उस युग में कहीं न दुर्भिक्ष होता है न व्याधि होती है ॥ १४ ॥ और सतयुग में धर्म किया जाता है व अकाल में मनुष्यों का मरण नहीं होता है व बिन हल से भी अन्न होता है और गौवों में बहुत दूध होता है ॥ १५ ॥ हे सहस्रलोचन ! उस युग में कभी काम, क्रोध, भय, लोभ, मत्सर, ईर्षा नहीं होती है ॥ १६ ॥ तदनन्तर त्रेतायुग होने पर धर्म तीन चरण होताहै उसमें मनुष्य चिरजीवी होते हैं व विष्णुजी अरुण वर्ण होते हैं ॥ १७ ॥ व प्राणियों के मनोरथों को देनेवाले यज्ञ उसमें वर्तमान होते हैं और उसमें मनुष्यों की कामादिकों में प्रवृत्ति नहीं होती है ॥ १८ ॥ और तपस्या, ब्रह्मचर्य, स्नान व अनेक प्रकार के दानोंसे यज्ञ व जप, होमों

नदुर्भिक्षोनचव्याधिस्तस्मिन्नभवतिकंचित् ॥ १४ ॥ कृतेतुक्रियतेधर्मो नाकालेमरणंनृणाम् ॥ लाङ्गलेनविनासस्यं भूरिक्षीराश्चधेनवः ॥ १५ ॥ कामःक्रोधोभयंलोभो मत्सरश्चाभ्यसूयनम् ॥ तस्मिन्युगेसहस्राक्ष नभवन्तिकदाचन॥ १६॥ ततस्त्रेतायुगेजाते त्रिपादोधर्मएवच॥ चिरायुषोनरास्तस्मिन्रक्तवर्णोजनार्दनः ॥१७॥ तस्मिन्यज्ञाःप्रवर्तन्ते प्राणिनामिष्टदायिनः॥ नकामादिप्रवृत्तिश्च तस्मिन्सञ्जायतेनृणाम् ॥ १८ ॥ तपसाब्रह्मचर्येण स्नानैर्दानैःपृथग्विधैः॥ तथा यज्ञैर्जपैर्होमैस्तत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥ १९ ॥ ततस्तुद्वापरन्नाम तृतीयंयुगमुच्यते ॥ द्विपदोधर्मसञ्जातस्तस्मिंस्तुद्वापरेयुगे ॥ असत्यंजल्पतेलोको द्वापरेसुरसत्तम ॥ २० ॥ तत्रान्योन्यंमहीपाला युयुधुर्वसुधाकृते॥ शस्त्रपूतादिवंयान्ति यथायज्ञैश्चयज्विनः ॥ २१ ॥ ततःकलियुगंघोरं चतुर्थन्तुप्रवर्त्तते ॥ एकपादोभवेद्धर्मः सत्रन्तुनित्यपूजनम् ॥ २२ ॥ कृष्णवर्णोभवेद्विष्णुः पापाधिक्यंप्रवर्त्तते ॥ मायाचमत्सरश्चैव कामःक्रोधस्तथाभयम् ॥ २३ ॥ अर्थलुब्धायथाभूपा

से उसमें मनुष्यों की सिद्धि होती है ॥ १९ ॥ तदनन्तर द्वापर नामक तीसरा युग कहा जाता है और उस द्वापर युगमें धर्म के दो पाव होते हैं व हे सुरश्रेष्ठ ! द्वापर में मनुष्य झूंठ बोलते हैं ॥ २० ॥ और उस युगमें राजालोग पृथ्वी के लिये आपस में युद्ध करते हैं और जिस प्रकार यज्वी (यज्ञकर्ता) पुरुष यज्ञों से स्वर्ग को जाते हैं वैसेही शस्त्रों से पवित्र वे राजालोग स्वर्गको जाते हैं ॥ २१ ॥ तदनन्तर चौथा भयंकर कलियुग वर्तमान होता है उसमें एक चरण धर्म होता है व नित्य पूजन यज्ञ होता है ॥ २२ ॥ और विष्णु कृष्णवर्ण होते हैं और पाप की अधिकता होती है व माया, मत्सर, काम, क्रोध व भय ॥ २३ ॥ और जैसे राजा द्रव्य के

लोभी होते हैं व लोभ, मोहसे संयुक्त होते हैं वैसेही उस कलियुग में मनुष्य थोड़े आयुर्बलवाले होते हैं और पृथ्वी में थोडा अन्न होता है ॥ २४ ॥ और गौवों में थोड़ा दूध होता है व ब्राह्मण सत्य से हीन होते हैं और उस कलियुगमें मनुष्य मायावी होते हैं व पाखण्ड तथा द्रोह में तत्पर होते हैं ॥ २५ ॥ और सत्यहीन व पापी मनुष्य कलियुग में होते हैं व उस कलियुग में सोलहवें वर्ष में मनुष्यों के शिरके बाल पक जाते हैं ॥ २६ ॥ व बारहवें वर्ष में स्त्रिया गर्भिणी होवैंगी व हेसुराधिप ! इन स्त्रियों के कन्यापन में भी कामदेव होगा ॥ २७ ॥ और वर्ण व आश्रम एक आकार होवैंगे और यज्ञ व सनातन कुलधर्म नाशको प्राप्त होवैंगे ॥ २८॥

लोभमोहसमन्विताः ॥ अल्पायुषोनरास्तत्र अल्पसस्याचमेदिनी ॥ २४ ॥ अल्पक्षीरास्तथागावः सत्यहीनाद्विजातयः ॥ तत्रमायाविनोलोका दम्भद्रोहपरायणाः ॥ २५ ॥ सत्यहीनास्तथापापा भविष्यन्तिकलौयुगे॥ तत्रषोडशमेवर्षे नराःपलितकन्धराः ॥ २६ ॥ नार्योद्वादशमेवर्षे भविष्यन्तितुगर्भिताः ॥ भविष्यतिस्मरोप्यासां कन्याभावेसुराधिप ॥ २७ ॥ एकाकाराभविष्यन्ति वर्णाश्चैवाश्रमाश्चवै ॥ नाशंयास्यन्तियज्ञाश्च कुलधर्माःसनातनाः ॥ २८ ॥ व्यर्थानितत्र तीर्थानि म्लेच्छस्पृष्टानिसर्वशः ॥ भविष्यन्तिसुरश्रेष्ठ प्रभावरहितानिच ॥ २९ ॥ एतच्छ्रुत्वाततोवाक्यं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ तत्रस्थितानितीर्थानि ब्रह्माणमिदमब्रुवन् ॥ ३० ॥ तीर्थान्यूचुः ॥ कथंवयंभविष्यामः सम्प्राप्तेदारुणेकलौ ॥ स्थानन्नोब्रूहिदेवेश स्थातव्यंचसदैवहि ॥ ३१ ॥ब्रह्मोवाच॥ अर्बुदःपर्वतश्रेष्ठः कलिस्तत्रनविद्यते॥ मयातत्रचगन्तव्यं तीर्थैरायतनैस्सह ॥ ३२ ॥ अपकृत्वामहत्पापमर्बुदंद्रक्ष्यतेतुयः ॥ कलिदोषविनिर्मुक्तः सयास्यतिपरांगतिम् ॥३३॥

हे सुरश्रेष्ठ ! उस कलियुग में म्लेच्छों से छुवे हुये सब तीर्थ व्यर्थ व प्रभावरहित होवैंगे ॥ २९ ॥ अप्रकट जन्मवाले ब्रह्माके इस वचन को सुनकर तदनन्तर वहां स्थित तीर्थों ने ब्रह्मा से यह कहा ॥ ३० ॥ तीर्थ बोले कि हे देवेश ! भयंकर कलियुग प्राप्त होने पर हमलोग कैसे होवैंगे हमलोगों से स्थानको कहिये क्योंकि सदैवही टिकना चाहिये ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा बोले कि पर्वतों में श्रेष्ठ अर्बुद पहाड़ है वहां कलियुग नहीं विद्यमान है वहीं पर तीर्थों व देवमन्दिरोंसमेत मुझको जाना

चाहिये ॥ ३२ ॥ बड़ाभारी भी पाप करके जो अर्बुद को देखता है वह कलियुग के दोष से छूटकर उत्तम गति को प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! ऐसा कहकर चतुरानन (ब्रह्मा) जी ब्रह्मलोक को गये तदनन्तर कलियुग में सब तीर्थ चलेगये ॥ ३४ ॥ व कलियुग के डरसे अर्बुद पर्वत के शिखर पै स्थित हुये जहां गंगा व सरस्वती हैं और पुष्कर हैं ॥ ३५ ॥ व जहां कुरुक्षेत्र, प्रभास व ब्रह्मावर्त है और साढ़ेतीन करोड़ जो तीर्थ पृथ्वी में हैं ॥ ३६ ॥ अर्बुद नामक पर्वत पै उनका निवासहुआ इसप्रकार वहां गंगा व सरस्वती उत्पन्न हुईहैं ॥ ३७ ॥ उसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य उत्तम निर्वाण को पाताहै व हे महाराज !

पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वाचतुर्वक्त्रो ब्रह्मलोकंगतोनृप ॥ ततःसर्वाणितीर्थानि गतानिचकलौयुगे ॥ ३४ ॥ शिखरेर्बुद शैलस्य संस्थितानिकलेर्भयात ॥ गङ्गासरस्वतीयत्र यमुनापुष्कराणिच ॥ ३५ ॥ कुरुक्षेत्रंप्रभासश्च ब्रह्मावर्त्ततथैव च ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च यानितीर्थानिभूतले ॥ ३६ ॥ तेषांवासश्चसञ्जातः पर्वतेर्बुदसञ्ज्ञके ॥ एवंतत्रसमुत्पन्ना गङ्गाचैवसरस्वती ॥ ३७ ॥ तत्रस्नातोनरस्सम्यक्परंनिर्वाणमाप्नुयात ॥ श्राद्धंकृत्वामहाराज स्वर्गंयान्तिचपूर्वजाः ॥ ३८ ॥ शृणुतत्राभवत्पूर्वं यदाश्चर्यंमहामते ॥ ऋषिर्मङ्कणकोनाम सरस्वत्यास्तटेस्थितः ॥ ३९ ॥ तपस्तेपेसुधर्मात्मा कामक्रोधविवर्जितः ॥ तस्यैवंवर्त्तमानस्य जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ४० ॥ गृहकृत्यानिसन्त्यक्त्वा सर्वंविस्मयमागतम् ॥ सिद्धोहमितिविज्ञाय ततोनृत्यंचकारसः ॥ ४१ ॥ तस्यैवंनृत्यमानस्य सर्वेलोकान्नृपोत्तम ॥ ननृतुःपार्थिवश्रेष्ठ प्रभावात्तस्यसन्मुनेः ॥ ४२ ॥ ततोदेवगणास्सर्वेगत्वाकामनिषूदनम् ॥ यथायंनृत्यतेनैव तथाकुरुमहेश्वर ॥ ४३ ॥

श्राद्ध करके पूर्वज पितर स्वर्ग में जाते हैं ॥ ३८ ॥ हे महामते ! वहां पहले जो आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये कि मंकणकनामक ऋषि सरस्वती नदी के किनारे स्थित थे ॥ ३९ ॥ उत्तम धर्मात्मा व काम, क्रोधसे रहित उसने तपस्या किया है इस प्रकार उसके वर्तमान होने पर स्थावर जंगम समेत संसार ॥ ४० ॥ गृहके कार्यों को छोड़कर सब विस्मय को प्राप्त हुआ तदनन्तर मैं सिद्ध होगया यह जानकर उसने नृत्य किया ॥ ४१ ॥ हे नृपोत्तम ! हे पार्थिवश्रेष्ठ ! इस प्रकार उसके नाचने पर उस उत्तम मुनिके प्रभाव से सब लोगों ने नृत्य किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर सब देवगणों ने कामनाशक (शिव) जीके समीप जाकर कहा कि

हेमहेश्वरजी ! जिस प्रकार यह न नाचै वैसाही कीजिये ॥ ४३ ॥ इसके अनन्तर ब्राह्मणके रूपसे शिवजीने द्विजोत्तम (मंकणक) से कहा कि हे ब्रह्मन् ! तुमने तपस्या किया और इस समय क्यों नृत्य किया जाता है ॥ ४४ ॥ मंकणक बोले कि हे ब्रह्मन् ! क्या तुम नहीं देखते हो कि रक्त व पित्त स्थित नहीं है और मैं सिद्धि को प्राप्त हुआहूं क्योंकि मेरा रक्त व पित्त जाता रहा ॥ ४५ ॥ इसी कारण हे द्विज ! संसार नृत्य करताहै तदनन्तर इस प्रकार उस ब्राह्मण से कहेहुये देवदेव महेश्वरजी ने ॥ ४६ ॥ हे नृपोत्तम ! अपने अँगूठे को तर्जनी (अँगूठे के पासवाली उँगली) से ताड़न किया तदनन्तर पालाके समान श्वेत भस्म अँगूठासे निकली ॥ ४७ ॥

अथब्राह्मणरूपेण शम्भुनोक्तोद्विजोत्तमः ॥ त्वयाब्रह्मंस्तपस्तप्तमधुनानृत्यतेकथम् ॥ ४४ ॥ मङ्कणक उवाच ॥ किन्नपश्यसिहेब्रह्मन् रक्तंपित्तञ्चनस्थितम् ॥ सञ्जातःसिद्धिमापन्नो रक्तंपित्तंगतंमम ॥ ४५ ॥ एतस्मात्कारणाल्लोको द्विजनृत्यंकरोतिच ॥ एवमुक्तस्ततस्तेन देवदेवोमहेश्वरः ॥ ४६ ॥ तर्जन्याताडयामास स्वाङ्गुष्ठन्नृपसत्तम ॥ ततोङ्गुष्ठाद्विनिष्क्रान्तंभस्मवैहिमपाण्डुरम् ॥ ४७ ॥ ततोमङ्कणकंप्राहपश्यविप्रकरान्मम ॥ शुभंभस्मविनिष्क्रान्तं पश्यमेद्विजकौतुकम् ॥ ४८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तद्दृष्ट्वाविस्मितोविप्रो ज्ञात्वातंवृषभध्वजम् ॥ जानुभ्यामवनिङ्गत्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ ४९ ॥ मङ्कणक उवाच ॥ नूनंभवान्महादेवः साक्षाद्दृष्टःप्रसीदमे ॥ निश्चितन्त्वंमयाज्ञात एतन्मेहृदिवर्त्तते ॥ ५० ॥ नान्यस्यायंप्रभावश्च त्वयामांसंप्रदर्शितः ॥ मांसमुद्धरदेवेश कृपांकृत्वामहेश्वर ॥ ५१ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ सम्यग्ज्ञातोस्मिविप्रेन्द्र त्वयाहन्नात्रसंशयः ॥ वरंवरयभद्रन्ते नृत्याधिक्यंकृतन्त्वया ॥ ५२ ॥

तदनन्तर शिवजी ने मंकणक से कहा कि हे विप्रजी ! देखिये मेरे हाथ से उत्तम भस्म निकली है हे द्विज ! मेरे कौतुक को देखिये ॥ ४८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस भस्म को देखकर ब्राह्मण विस्मय को प्राप्त हुआ और उनको शिवजी जानकर घुटनुवोंसे पृथ्वी में प्राप्त होकर यह वचन बोला ॥ ४९ ॥ मंकणक बोले कि निश्चय कर आप साक्षात् शिवजी देखेगये मेरे ऊपर प्रसन्न होवो मैंने निश्चय कर तुमको जाना यह मेरे हृदय में वर्तमान है ॥ ५० ॥ तुमने अन्य देवता के इस प्रभाव को मुझको नहीं दिखाया है हे देवेश, महेश्वरजी ! दया करके मुझको उधारिये ॥ ५१ ॥ श्री महादेवजी बोले कि हे द्विजेन्द्र ! तुमने मुझको भलीभांति

संख्यक दाक्षिणात्य मुनिश्रेष्ठ वहां आये ॥ २ ॥ वे सब अन्योन्य स्पर्धा से हेला करके अर्बुद को आये कि मैं पहले मैं पहले अचलेश्वरजी को देखूंगा ॥ ३ ॥ और जो ब्राह्मण पीछे आवैगा वह बड़ा पापी व पंक्तिरहित होगा और श्रद्धाहीन होगा ॥ ४ ॥ इस प्रकार स्पर्धा करते हुये वे हेला से अर्बुद को आये तदनन्तर जो सब चित्त को रोंके हुये व भलीभाति व्रतमें परायण थे ॥ ५ ॥ और जो सब शान्त, तपस्वी व वेद विद्या में निपुण थे उनके मनोरथ को जानकर भलीभांति पापना-शक ॥ ६ ॥ महेश्वरजी भक्तिभाव से बड़ी दया से संयुत हुये व अपने लिंगोंको करोड़ करके उस स्थान में स्थित हुये ॥ ७ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ ! एकही समय में सब

यार्बुदमागताः ॥ अहंपूर्वमहंपूर्वं प्रपश्याम्यचलेश्वरम् ॥ ३ ॥ आगमिष्यतियःपश्चाद्ब्राह्मणश्चभविष्यति ॥ पापीया न्पङ्क्तिरहितः श्रद्धाहीनोभविष्यति ॥ ४॥ इत्येवंस्पर्द्धमानास्ते हेलयार्बुदमागताः ॥ ततःसर्वेयतात्मानः सम्यग्व्रतप रायणाः ॥ ५ ॥ शान्तास्तपस्विनःसर्वे वेदविद्याविशारदाः ॥ तेषांसमीहितंज्ञात्वा सम्यक्पापनिषूदनः ॥ ६ ॥ कृपया परयाविष्टो भक्तिभावान्महेश्वरः ॥ कोटिंकृत्वात्मलिङ्गानां तस्मिन्स्थानेऽव्यवस्थितः ॥ ७ ॥ एकस्मिन्नेवकालेतु सर्वैर्दृ ष्टोमहेश्वरः ॥ मुनिभिश्चनृपश्रेष्ठ कोटिसङ्ख्यैःपृथक्पृथक् ॥ ८ ॥ अथतेमुनयस्सर्वे समंदृष्ट्वामहेश्वरम् ॥ विस्मयो त्फुल्लनयनाः साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ ९ ॥भक्तियुक्ताद्विजास्सर्वे वैदिकैस्तुष्टुवुस्स्तवैः ॥ तेषांतुष्टस्ततःशम्भुर्वाक्यमेत दुवाचह ॥१०॥श्रीमहादेव उवाच ॥ तुष्टोहंमुनयस्सर्वे श्रद्धयापरयाद्विजाः ॥ वरंचव्रियतांशीघ्रं सर्वैश्चैवपृथक्पृथक् ॥११॥ ऋषय ऊचुः ॥ एषएववरोस्माकं सर्वेषांहृदिवर्तितः ॥ युगपद्दर्शनादेव जायतांफलमुत्तमम् ॥ १२ ॥ श्रीमहादेव

कोटिसंख्यक मुनियों ने अलग २ महेश्वरजी को देखा ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाले वे सब मुनिलोग एकही साथ महादेवजी को देख कर बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा बोले ॥ ९ ॥ व भक्ति से संयुत सब ब्राह्मणों ने वैदिक स्तोत्रों से स्तुति किया तदनन्तर उनके ऊपर प्रसन्न होते हुये शिवजी यह वचन बोले ॥ १० ॥ श्री महादेवजी बोले कि हे सब मुनियो ! बड़ी श्रद्धा से मैं तुमलोगों के ऊपर प्रसन्न हू और सब लोग अलग २ वरदानों को शीघ्रही मांगो ॥ ११ ॥ ऋषिलोग बोले कि यही वरदान हम सब लोगों के हृदय में वर्तमान हुआ है कि एकही साथ दर्शनही से उत्तम फल होवै ॥ १२ ॥ श्री महादेवजी बोले कि

मेरा दर्शन वृथा नहीं होता है और ब्राह्मण को विशेष कर मेरा दर्शन वृथा नहीं होता है और जो दर्शन करेंगे उनको तीर्थ से उपजा हुआ फल होगा ॥ १३ ॥ मुनि लोग बोले कि हे महेश्वरजी ! यदि हमलोगों को अवश्य वर देनेयोग्य है तो हे वृषभध्वज ! एक कोटिमय लिंग किया जावै ॥ १४ ॥ कि जिसके देखने पर मनुष्यों को कोटिसंख्या से फल होवे हे वृषध्वज ! इस प्रकार हमलोगों को यह वर दिया जावै ॥ १५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इस प्रकार उन शुद्ध चित्तवाले महर्षियों के प्रार्थना करते हुये श्रेष्ठ पर्वत को फोड़कर उत्तम लिंग निकला ॥ १६ ॥ व इसी समय हे वसुधाधिप ! उत्तम दयासे उन सब ऋषियों से आकाशवाणी

उवाच ॥ नवृथादर्शनंमेस्याद्विशेषाद्ब्राह्मणस्यच ॥ दर्शनंयेकरिष्यन्ति तेषांचतीर्थजंफलम् ॥ १३ ॥ मुनय ऊचुः ॥ अवश्यंयदिदातव्यो वरोस्माकंमहेश्वर ॥ एकंकोटिमयँल्लिङ्गं क्रियतांवृषभध्वज ॥ १४ ॥ यस्मिन्दृष्टेफलंनृणां जायतेकोटिसङ्ख्यया ॥ एवमेषवरोस्माकं दीयतांवृषभध्वज ॥ १५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवन्तुप्रार्थमानानां मुनीनांभावितात्मनाम् ॥ निर्भिद्यपर्वतश्रेष्ठं सहसालिङ्गमुत्तमम् ॥ १६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ कृपयापरया सर्वांस्तानृषीन्वसुधाधिप ॥ १७ ॥ कोटीश्वराख्यंमेलिङ्गं लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यां यश्चैनंपूजयिष्यति ॥ १८ ॥ सर्वंकोटिगुणन्तस्य फलंविप्राभविष्यति ॥ दक्षिणास्योनरोयस्तु श्राद्धंतत्रकरिष्यति ॥ १९ ॥ फलंकोटिगुणन्तस्य गयाश्राद्धसमंभवेत् ॥ तस्माद्विशेषतःपूज्यं ममलिङ्गंचमानवैः ॥ २० ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वातुसावाणी विरराममहीपते ॥ ततस्तेमुनयस्सर्वे गन्धधूपानुलेपनैः ॥ २१ ॥ तल्लिङ्गम्पूजयामासुः श्रद्धयापरया

बोली ॥ १७ ॥ कि कोटीश्वरनामक मेरा लिंग संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त होगा व माघ महीने में कृष्णपक्षकी चौदसि में जो इस लिंगको पूजैगा ॥ १८ ॥ हे ब्राह्मणो ! उसको सब कोटिगुना फल होगा और वहां दक्षिणमुख बैठकर जो मनुष्य श्राद्ध करैगा ॥ १९ ॥ उसको श्राद्ध के समान कोटिगुना फल होगा इस लिये मनुष्यों को विशेष कर मेरा लिंग पूजना चाहिये ॥ २० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे महीपते ! ऐसा कहकर वह वाणी चुप होरही तदनन्तर उन सब मुनियों ने

चन्दन, धूप व अनुलेपनों से ॥ २१ ॥ हे राजन् ! उत्तम श्रद्धा से उस लिंग का पूजन किया और पूजकर वे शिवलिंगकी प्रसन्नता से उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुये ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकोटीश्वरमाहात्म्यंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ● ॥ ● ॥ ●

दो० । रूपतीर्थ में न्हाय जिमि नारि लह्यो शुभ रूप । सो बारह अध्याय में कह्यो चरित्र अनूप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाले व रूप, सौभाग्य को देनेवाले अतिउत्तम रूपतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ वहां पुरातनसमय संसार में प्रसिद्ध वपुनामक उत्तम अप्सरा सिद्धि को

नृप ॥ पूजयित्वागतास्सिद्धिं सर्वलिङ्गप्रसादतः ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकोटीश्वरमाहात्म्यन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ रूपतीर्थमनुत्तमम् ॥ सर्वपापहरन्नॄणां रूपसौभाग्यदायकम् ॥ १ ॥ तत्र पूर्ववपुर्नामा लोकेख्यातावराप्सरा ॥ सिद्धिंगतामहाराज यथाश्चर्यन्निगद्यते ॥ २ ॥ पुरासीत्काचिदाभीराविरूपाविकृताननना ॥ लम्बोदरीचकुग्रीवा स्थूलदन्तशिरोरुहा ॥ ३ ॥ एकदाफलमानेतुं भ्रममाणार्बुदाचले ॥ माघशुक्लतृतीयायां पतितागिरिनिर्भरे ॥ ४ ॥ दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यैरागैःसमन्विता ॥ पद्मनेत्रासुकेशान्ता सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ५ ॥ सासञ्जातामहाराज तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु शक्रस्तत्रसमागतः ॥ ६ ॥ क्रीडार्थंपर्वतश्रेष्ठे तांददर्शशुभेक्षणाम् ॥ ततःकामशरैर्विद्धस्तामुवाचसुमध्यमाम् ॥ ७ ॥ इन्द्र उवाच ॥ कात्वंवदवरारोहे किमर्थंचेहआगता ॥

प्राप्त हुई है और जिस प्रकार आश्चर्य हुआ है वैसाही कहा जाता है ॥ २ ॥ पुरातनसमय विकृतमुखी व विरूपिणी कोई अहीरिनि हुई है जो कि लम्बे पेटवारी व कुत्सितग्रीवी तथा मोटे दंत व वालोंवाली थी ॥ ३ ॥ एक समय फल लाने के लिये अर्बुद पर्वत पै घूमती हुई वह माघ महीने में शुक्लपक्ष की तीज तिथिमें पर्वत के झरने में गिरपड़ी ॥ ४ ॥ और हे महाराज ! इस तीर्थ के प्रभाव से वह दिव्य माला व वसनों को धारे तथा दिव्य अंगोंसे संयुत व कमलनयनी, सुन्दर केशान्तवाली व सब लक्षणों से लक्षित होगई इसी समय में वहां इन्द्रजी श्रेष्ठ पर्वत पै क्रीड़ा के लिये आये व उस सुनयनी को देखते भये तदनन्तर कामदेव के बाणों से

से ताड़ित इन्द्रजी उस सुमध्यमासे बोले ॥ ५। ६। ७ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे वरारोहे ! तुम कौनहो यह कहिये और किसलिये तुम यहां आई हो क्या देवीहो या नाग कन्याहो अथवा सिद्धा या विद्याधरी हो ॥ ८ ॥ हे सुभ्रु ! कमलनेत्रोंवाली तुमनेमेरे मनको हरलिया हे चारुहासिनि ! सब देवताओं का स्वामी मैं इन्द्र हूं मुझको भजिये ॥ ९ ॥ स्त्री बोली कि हे सुराधीश ! मैं अहीरिनि व बहुत पतिवाली हूं फलों के लिये मैं आई थी और पर्वत के झरने में गिरपड़ी ॥ १० ॥ और स्नान कर मैंने अद्भुत व उत्तम इस रूपको पाया है जो कि देवताओं को भी दुर्लभ है फिर मनुष्यों को क्या कहना है ॥ ११ ॥ सब देवता तुम्हारे वश में प्राप्त हैं मुझमें क्यों इच्छा

देवीवानागकन्यावा सिद्धाविद्याधरीनुवा ॥ ८ ॥ मनोमेपहृतंसुभ्रु त्वयाचपद्मनेत्रया ॥ शक्रोहंसर्वदेवेशो भजमां चारुहासिनि ॥ ९ ॥ नार्युवाच ॥ आभीरीत्रिदशाधीश तथाहंबहुभर्तृका ॥ फलार्थन्तुसमायाता पतितागिरिनिर्झरे ॥ १० ॥ स्नात्वाद्भुतमिदंप्राप्तं स्वरूपञ्चशुभंमया ॥ दुर्लभंत्वंहिदेवानां किंपुनर्मर्त्यजन्मनाम् ॥ ११ ॥ वशगास्तेसुरास्सर्वे मयिकिंक्रियतेस्पृहा ॥ भजमांत्रिदशाधीश यथाकामंसुराधिप ॥ १२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तस्तयाशक्रः कामयामासतांतदा ॥ निवृत्तमदनोभूत्वा तामुवाचसुमध्यमाम् ॥ १३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ वरंवरयकल्याणि यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ विनयात्तवतुष्टोहं दास्यामिवरमुत्तमम् ॥ १४ ॥ नार्युवाच ॥ माघशुक्लतृतीयायां नरोवावनितातथा ॥ स्नानंयःकुरुतेभक्त्या प्रीतास्स्युस्सर्वदेवताः ॥ १५ ॥ रूपंसञ्जायतेतेषां दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ मांनयत्वंसहस्राक्ष सुरावासंसहात्मना ॥ १६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्वितितामुक्त्वा गृहीत्वातांसुराधिपः ॥ विमानेनतयासार्द्धं जगाम

की जाती है हे त्रिदशाधीश, सुराधिप ! मुझको इच्छा के अनुकूल भजिये ॥ १२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उससे ऐसा कहे हुये इन्द्र ने उस समय उससे रति किया और कामदेवसे निवृत्त होकर वे उस सुमध्यमासे बोले ॥ १३ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे कल्याणि ! जो तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उस वरदान को मांगो तुम्हारी नम्रता से मैं प्रसन्न हूं इससे उत्तम वर को दूंगा ॥ १४ ॥ स्त्री बोली कि माघ महीने में शुक्ल पक्ष की तीज तिथि में पुरुष हो या स्त्री होवै जो भक्ति से उसमें स्नान करै उसके ऊपर सब देवता प्रसन्न होवैं ॥ १५ ॥ और उनका देवताओं से भी दुर्लभ रूप होवै हे सहस्राक्ष ! शरीरसमेत मुझको तुम देवस्थानको ले चलो ॥ १६ ॥ पुलस्त्यजी

बोले कि ऐसाही होवै यह उससे कहकर सुरेश इन्द्रजी उसको लेकर विमान के द्वारा उस समेत स्वर्ग को चले गये ॥ १७ ॥ हे नृपोत्तम ! जिस लिये उसने वपु (शरीर) को पाया है उसी कारण नामसे वपु ऐसी प्रसिद्ध वह उत्तम अप्सरा हुई ॥ १८ ॥ माघ शुक्लपक्ष में तीज तिथि में भक्तिसंयुत सब देवता प्रातःकाल उस में स्नान करते हैं ॥ १९ ॥ और उसमें अन्य देवकन्या व सिद्धों तथा यक्षों की कन्या स्नान करती हैं हे नराधिप ! उस समय जो वहां स्नान करता है ॥ २० ॥ वह वैसेही रूप को पाता है जैसा कि पुरातन समय उस स्त्री ने पाया है और वहां सब सिद्ध, विद्याधर व नाग होवैंगे ॥ २१ ॥ उसी के पूर्व दिशा के भाग में अति

त्रिदिवंप्रति ॥ १७ ॥ वपुःप्राप्तंतयायस्मात्तस्मात्पार्थिवसत्तम ॥ नाम्नावपुरितिख्याता साबभूववराप्सराः ॥ १८ ॥ माघशुक्लेतृतीयायां देवास्तस्मिञ्जलाशये ॥ स्नानंसर्वेप्रकुर्वन्ति प्रभातेभक्तिसंयुताः ॥ १९ ॥ तत्रान्यादेवकन्याश्च सिद्धयक्षाङ्गनास्तथा ॥ यस्तत्रकुरुतेस्नानं तस्मिन्कालेनराधिप ॥ २० ॥ रूपञ्चलभतेतादृग् यादृग्लब्धंतयापुरा ॥ सर्वेतत्रभविष्यन्ति सिद्धविद्याधरोरगाः ॥ २१ ॥ तस्यैवपूर्वदिग्भागे बिलमस्तिसुशोभनम् ॥ यत्रागत्यप्रकुर्वन्ति स्नानंपातालकन्यकाः ॥ २२ ॥ तत्रस्नात्वागृहीत्वायो बिलेतस्मिन्व्रजन्तिताः ॥ तत्रैवयज्जलंचास्ति महत्पाषाणसम्भवम् ॥ २३ ॥ तेनोदकेनसंयुक्तो सिद्धोभवतिमानवः ॥ गृहीत्वातज्जलंयस्तु यत्रयत्राभिगच्छति ॥ २४ ॥ स्वर्गेवाभूतलेवापि नाकेचापिनरुद्ध्यते ॥ तत्रास्तिविवरद्वारेतिलकोनामपादपः ॥ २५ ॥ तस्यपुष्पैःफलैश्चैव सर्वकार्यप्रसिद्ध्यति ॥ भक्षणाद्धारणाद्वापि सिद्धोभवतिमानवः ॥ २६ ॥ तस्मिन्बिलेतुपाषाणः समन्ताच्छङ्खसन्निभः ॥ तेनोदकेन

उत्तम बिल है जिसमें पाताल की कन्या आकर स्नान करती हैं ॥ २२ ॥ व उसमें नहाकर जलको लेकर वे उस बिल में जाती हैं और बड़े पत्थर से उपजा हुआ जो वहीं जल है ॥ २३ ॥ उसी जल से संयुक्त मनुष्य सिद्ध होता है और उस जलको लेकर जो जहां जहां जाता है ॥ २४ ॥ स्वर्ग में, पृथ्वी में और वैकुंठ में भी वह नहीं रोका जाता है उस बिलके द्वार पै तिलकनामक वृक्ष है ॥ २५ ॥ उसके पुष्पों व फलों से सब कार्य सिद्ध होता है और उसके भक्षण व धारण करने से

मनुष्य सिद्ध होता है ॥ २६ ॥ उस बिलमें चारों ओर शंख के समान पत्थर हैं और उस जल से छुये हुये वे सुवर्णमय होते हैं ॥ २७ ॥ और जो बांझस्त्री तिलक से संयुत उस जलको पीती है सौ वर्ष की भी वह उसी क्षण गर्भिणी होती है ॥ २८ ॥ और व्याधि से ग्रस्त भी जो मनुष्य उसमें स्नान करता है वह शीघ्रही नीरोगी होता है और ग्रहसे ग्रस्त पुरुष ग्रहसे छूट जाता है॥ २९ ॥ और भूत, प्रेत व पिशाचों का दोषसमूह नाश होजाता है उस जल के स्पर्श करने पर सब पाप नाश हो जाता है ॥ ३० ॥ और जो कीट, पतंग, पिशाच, व पक्षी व मृग हैं उस जल से छुये हुये वे शीघ्रही उत्तम गति को प्राप्त होवेंगे ॥ ३१ ॥ ययाति बोले कि हे ब्रह्मन्!

संस्पृष्टाभवन्तिचहिरण्मयाः ॥ २७ ॥ बन्ध्यानारीजलन्तच्च यापिबेत्तिलकान्वितम् ॥ अपिवर्षशतासाचसद्योगर्भवतीभवेत् ॥ २८ ॥ व्याधिग्रस्तोपियोमर्त्यः स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ नीरोगीजायतेसद्यो ग्रहग्रस्तोग्रहाच्युतः ॥ २९ ॥ भूतप्रेतपिशाचानां दोषःसद्यःप्रणश्यति ॥ तेनोदकेनसंस्पृष्टे सर्वन्नश्यतिदुष्कृतम् ॥ ३० ॥ अपिकीटपतङ्गाये पिशाचाः पक्षिणोमृगाः ॥ तेनोदकेनसंस्पृष्टास्सद्योयास्यन्तिसद्गतिम् ॥ ३१ ॥ ययातिरुवाच ॥ अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्माहात्म्यंभवतामम ॥ कथितंरूपतीर्थस्यनभूतंनभविष्यति ॥ ३२ ॥ किमत्रकारणंब्रह्मन्सर्वेभ्योप्यधिकंस्मृतम् ॥ सर्वंविस्तरतोब्रूहि परंकौतूहलंहिमे ॥ ३३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तत्रपूर्वंतपस्तप्तमदित्यान्नृपसत्तम ॥ इन्द्रेराज्यपरिभ्रष्टे बलौत्रैलोक्यनायके ॥ ३४ ॥ अवतीर्णश्चतुर्बाहुरदित्यांनृपसत्तम ॥ तस्याजातोमहाविष्णुर्दितेश्चैवासुरान्तकृत् ॥ ३५ ॥ गुप्तायाबिवरद्वारे भयाद्दानवसम्भवात् ॥ जातमात्रोहरिस्तस्मिन् स्थापितोनिर्झरेतया ॥ ३६ ॥ तस्मात्पवित्रतांप्राप्तं तीर्थं

आपने बहुतही अद्भुत इस रूप तीर्थ के माहात्म्य को कहा ऐसा न हुआ है न होवेगा ॥ ३२ ॥ हे ब्रह्मन्! इस में क्या कारण है जो कि सब से अधिक कहा गया है सब विस्तार से कहिये मुझको बड़ा कौतुक है ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम! जब इन्द्र राज्य से छूटगये व बलि त्रिलोकनायक हुआ तब पुरातनसमय वहां अदिति ने तप किया है ॥ ३४ ॥ हे नृपोत्तम! चतुर्भुज विष्णुजी ने अदिति में अवतार लिया है व दैत्यों को नाश करनेवाले महाविष्णुजी दानवों के भय से बिलके द्वार में गुप्त उस अदिति के पैदा हुये और उत्पन्न हुयेही विष्णुजीको उस अदिति ने उस झरने में स्थापित किया ॥ ३५ । ३६ ॥ इसलिये मनुष्योंका अभीष्ट-

दायक तीर्थ पवित्रता को प्राप्त हुआ है हे राजन् ! अन्य कारण नहीं है मैंने इसको सत्य कहा ॥ ३७ ॥ वहां माघकी शुक्लपक्षवाली तीज में त्रिविक्रम (वामन)
जी उत्पन्न हुये हैं और सब वृक्षों के मध्य में तिलक पुत्रकी नाईं पालनकिया गयाहै ॥ ३८ ॥ और अदिति ने नित्य अपने हाथसे उत्तम जलों से सेवन किया है
यह सब उत्तम तीर्थ का माहात्म्य तुमसे कहा गया ॥ ३९ ॥ इसलिये सब यत्न से वहां स्नान करै क्योंकि वह तीर्थ इस लोक व परलोक में सर्व कामनाओं का
देनेवाला है ॥ ४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांतीर्थरूपमाहात्म्यंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

नृणामभीष्टदम् ॥ नचान्यत्कारणंराजन्सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३७ ॥ माघशुक्लतृतीयायां तत्रजातस्त्रिविक्रमः ॥ ति
लकस्सर्ववृक्षाणां पुत्रवत्परिपालितः ॥ ३८ ॥ अदित्यासेवितोनित्यं स्वहस्तेनजलैःशुभैः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं तीर्थ
माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ सर्वकामप्रदन्नृणामिहलोकेपरत्रच ॥ ४० ॥
इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेरूपतीर्थमाहात्म्यन्नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ अम्बरीषस्यराजर्षेराश्रमंपापनाशनम् ॥ १ ॥ य
त्रस्वयंहृषीकेशः कालेचकलिसञ्ज्ञके ॥ तस्यवाक्यमृतंकर्तुं तीर्थेसपरितिष्ठति ॥ २ ॥ पुरासीत्पृथिवीपालो ह्यम्बरी
षोयुगेकृते ॥ हरिमाराधयामास तपस्तेपेसुदुष्करम् ॥ ३ ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुराजेन्द्र मितभक्तोजितेन्द्रियः ॥ सहस्रमेकव
र्षाणां ततआसीत्फलाशनः ॥ ४ ॥ सहस्रेद्वेततोराजञ्जीर्णपर्णाशनोभवत् ॥ सहस्रेद्वेततोभूपो जलाहारोबभूवह ॥५॥

दो० । अंबरीष कर आश्रम अहै यथा परभाव । सो तेरहें अध्याय में कह्यो चरित्र सुहाव ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर त्रिलोक में प्रसिद्ध
तीर्थ को जावै राजर्षि अंबरीष का पापनाशक आश्रम है ॥ १ ॥ जहां पर आपही विष्णुजी कलिसंज्ञक समय में उन अंबरीष का वचन सत्य करने के लिये तीर्थ में
स्थित हुये हैं ॥ २ ॥ पुरातनसमय सतयुग में अंबरीप भूपाल हुये हैं उन्होंने विष्णुजीको आराधन किया व कठिन तपस्या कियाहै ॥ ३ ॥ तदनन्तर हे नृपेन्द्र ! मित-
भोजी व जितेन्द्रिय अम्बरीष एक हज़ार वर्षों तक फलाहारी हुये ॥ ४ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! दो हज़ार वर्ष तक गिरे हुये पत्तों को भोजन करते भये तदनन्तर फिर

दो हज़ार वर्ष तक जलाहारी हुये ॥ ५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! तीन हज़ार वर्ष तक सदैव विष्णुजीको चिन्तवन करते हुये श्रद्धासंयुत अम्बरीषजी पवनभोजी हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर दश हज़ार वर्ष के अन्त में राजा अम्बरीष के ऊपर विष्णुजी प्रसन्न हुये और इन भगवान् विष्णुजीने उनको दर्शन दिया ॥ ७ ॥ और सुरपति का रूप कर ऐरावत हाथी पै चढ़कर विष्णुजीने अम्बरीष राजा से कहा मैं इन्द्र हूं ॥ ८ ॥ इन्द्र बोले कि हे राजन् ! जो मन में प्रिय हो उस वरदान को मांगिये मैं तुमको भक्तिसे संयुत देखकर आया हूं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ अम्बरीष बोले कि हे वृत्रनाशक ! तुम मुक्तिको देने के लिये असमर्थ हो और हे देवेश ! तुम्हारी

सहस्रञ्चत्रयंराजन् वायुभक्षोबभूवह ॥ चिन्तयन्पुण्डरीकाक्षमनिशंश्रद्धयान्वितः ॥ ६ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते दशानांचनृपोपरि ॥ तुतोषभगवान्विष्णुस्तस्यासौदर्शनंददौ ॥ ७ ॥ कृत्वादेवपतेरूपं आरुह्यैरावतंगजम् ॥ अब्रवीद्देवराजोस्मि अम्बरीषंनराधिपम् ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते राजन्यन्मनसीप्सितम् ॥ त्वांदृष्ट्वाभक्तिसंयुक्तमागतोहन्नसंशयः ॥ ९ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ मुक्तिंदातुमशक्तोसि त्वंचवृत्रनिषूदन ॥ तवप्रसादाद्देवेश त्रैलोक्यंमम वर्त्तते ॥ १० ॥ स्वागतंगच्छदेवेश नवरोरोचतेमम ॥ सर्वथादास्यतेमह्यं वरन्तुष्टश्चतुर्भुजः ॥ ११ ॥ तदाहंप्रग्रहीष्यामि गच्छदेवनमोस्तुते ॥ इन्द्र उवाच ॥ वरंवरयराजर्षे यस्तेमनसिवर्त्तते ॥ १२ ॥ ब्रह्माविष्णुमहेशानामहमीशो नृपोत्तम ॥ अन्येषांचैवदेवानां त्रैलोक्यस्याप्यहंविभुः ॥ १३ ॥ वरंवरयतस्मात्त्वं प्रसादान्मेसुदुर्लभम् ॥ प्रसन्नेमयि राजेन्द्र प्रसन्नास्सर्वदेवताः ॥ १४ ॥ कुरुमेवचनंराजन् गृह्यतांवरमुत्तमम् ॥ अम्बरीष उवाच ॥ राजात्वंसर्वदेवानां

प्रसन्नता से मेरे त्रिलोक वर्तमान है ॥ १० ॥ हे देवेश ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ जाइये मुझको वर नहीं रुचता है और जब चतुर्भुज विष्णुजी सब भांतिसे प्रसन्न होकर मेरे लिये वर देवैंगे ॥ ११ ॥ तब मैं उसको ग्रहण करूंगा हे देव ! जाइये तुम्हारे लिये नमस्कार होवै इन्द्रजी बोले कि हे राजर्षे ! तुम्हारे मनमें जो वर्तमान होवै उस वरदान को मांगिये ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! मैं ब्रह्मा, विष्णु व महेश का स्वामी हूं और अन्य देवताओं का व त्रिलोक का भी मैं स्वामी हूं ॥ १३ ॥ इसलिये मेरी प्रसन्नता से तुम बहुतही दुर्लभ वरदान को मांगो हे नृपेन्द्र ! मेरे प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १४ ॥ हे राजन् ! मेरा वचन कीजिये व उत्तम वर

को ग्रहण कीजिये अम्बरीष बोले कि तुम सब देवताओं के राजा हो व त्रिलोक के स्वामी हो ॥ १५ ॥ व हे वृत्रनिषूदन ! मैं सातों द्वीपवाली पृथ्वी का राजा हूं और विष्णुजी आकर निस्सन्देह वर देवेंगे ॥ १६ ॥ इन्द्र बोले कि हे भूपाल ! देते हुये मेरे वरको यदि नहीं चाहतेहो तो वधके लिये निश्चय करके मैं तुम्हारे समीप वज्र को पठाऊँगा ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर गलफड़ों को चाटतेहुये इन्द्रने दाहिने हाथमें वज्रको लेकर घुमाया ॥ १८ ॥ इस प्रकार उसके घुमातेहुये बड़े भारी उत्पात हुये तदनन्तर सब ओर से पर्वतोंके शिखर टूटगये ॥ १९ ॥ उस समय आकाश मेघों से आच्छादित होगया व बिजली से पृथ्वी घिरगई और वहां कुछ नहीं देख

त्रैलोक्यस्यतथेश्वरः ॥ १५ ॥ सप्तद्वीपवतीराजाअहंवृत्रनिषूदन ॥ आगत्यचहृषीकेशो वरंदास्यत्यसंशयम् ॥ १६ ॥ इन्द्र उवाच ॥ ददतोममभूपाल नचेच्छसिवरंयदि ॥ वज्रंत्वांप्रेरयिष्यामि वधायकृतनिश्चयः ॥ १७ ॥ एवमुक्त्वा सहस्राक्षः सृक्किणींपरिलेलिहन् ॥ कुलिशंभ्रामयामास गृहीत्वादक्षिणेकरे ॥ १८ ॥ तस्यैवंभ्राम्यमाणस्य महोत्पाताबभूविरे ॥ ततःपर्वतशृङ्गाणि विशीर्णानिसमन्ततः ॥ १९ ॥ आवृतंगगनंमेघैर्विद्युताचमहीतदा ॥ नकिञ्चिद्दृश्यतेतत्र सर्वतस्ससमावृतम् ॥ २० ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सराजाहरिवत्सलः ॥ उभेनिर्माल्यनयने समाधिस्थोबभूवह ॥ २१ ॥ ततस्तुष्टोजगन्नाथः साक्षात्प्रत्यक्षतांगतः ॥ ऐरावतस्तुगरुडस्तत्क्षणात्समजायत ॥ २२ ॥ तमुवाचहृषीकेशो मेघगम्भीरयागिरा ॥ सध्यानस्थमम्बरीषं शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २३ ॥ भगवानुवाच ॥ परितुष्टोस्मितेवत्सानयाभक्त्या जनेश्वर ॥ वरंवरयभद्रन्ते यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ २४ ॥ अम्बरीष उवाच ॥ यदिप्रसन्नोभगवन्यदिदेयोवरोमम ॥

पड़ता था व सब ओर अन्धकार से घिरगया ॥ २० ॥ इसी समय में वे विष्णुप्रिय राजा दोनों नेत्रों को मूंदकर समाधि में स्थित हुये ॥ २१ ॥ तदनन्तर साक्षात् विष्णुजी प्रसन्न हुये व प्रत्यक्षता को प्राप्त हुये व उसीक्षण ऐरावत हाथी गरुड़ हो गया ॥ २२ ॥ और शंख चक्र व गदा को धारनेवाले विष्णुजीने उन अम्बरीष से मेघ के समान गंभीर वाणी से कहा ॥ २३ ॥ भगवान् बोले कि हे जनेश्वर ! मैं इस भक्ति से तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं तुम्हारा कल्याण होवै और यद्यपि दुर्लभ भी

होवे तथापि वरदान को मांगो ॥ २४॥ अम्बरीष बोले कि हे भगवन् ! यदि प्रसन्न हो और यदि मुझको वर देने योग्य है तो हे हरे ! संसारसमुद्र से तारने के लिये मुझसे उपाय कहिये ॥ २५॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसके अनन्तर भगवान् विष्णु जीने अम्बरीष राजा से संसार को क्षय करनेवाले अतिविस्तारित ज्ञान योग को कहा ॥ २६॥ जिसके जानने पर हे राजन् ! मनुष्य भलीभांति संसार से छूटजाता है उन राजा अम्बरीष ने भलीभांति उसको सुनकर तदनन्तर विष्णुजीसे कहा ॥ २७॥ अम्बरीष बोले कि हे भगवन् ! तुमने मुझसे जो इस योगको विस्तार से कहा हे देव ! वह मनुष्यों के दुःख से जानने योग्य है और कलियुग में विशेषता

संसाराब्धेस्तारणाय वदोपायंहरेमम ॥ २५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथाहभगवान्विष्णुरम्बरीषंजनाधिपम् ॥ ज्ञानयोगंसुविस्तीर्णं संसारक्षयकारणम् ॥ २६ ॥ यस्मिञ्ज्ञातेनरःसम्यक् संसारान्मुच्यतेनृप ॥ श्रुत्वासनृपतिस्सम्यक् ततः प्रोवाचकेशवम् ॥२७॥ अम्बरीष उवाच ॥ भगवन्यस्त्वयाप्रोक्तो योगोयंममविस्तरात् ॥ सदुर्ज्ञेयोनृणांदेव विशेषाच्चकलौयुगे ॥ २८ ॥ अपिचेत्सुप्रसन्नस्त्वं क्रियायोगंब्रवीहिमाम् ॥ लोकानांतारणार्थाय शङ्खचक्रगदाधर ॥ २९ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ इत्युक्तोमाधवस्तेन चकारस्थितिमुत्तमाम् ॥ सनित्यंपूजयामास गन्धपुष्पानुलेपनैः ॥ ३० ॥ ततःकालेनमहता सराजाहरिमन्दिरे ॥ अकरोत्तस्यपूजांच सपुत्रःसहबान्धवैः ॥३१॥ अद्यापिभगवान्विष्णुस्तस्यवाक्येनभूपतेः ॥ सदासन्निहितोविष्णुस्तस्मिन्नेवाश्रमेशुभे ॥ ३२ ॥ तदारभ्यमहाराज क्रियायोगोधरातले ॥ प्रवृत्तःप्रतिमाकारः कालेचकलिसञ्ज्ञिके ॥ ३३ ॥ यस्तुसम्पूजयेद्भक्त्या हृषीकेशंनृपार्बुदे ॥ सयातिविष्णुसालोक्यं प्रसादाच्चहरेर्मृ

से दुर्ज्ञेय है ॥ २८ ॥ और यदि तुम प्रसन्न हो तो हे शंख चक्र गदाधर ! मनुष्यों को तारने के लिये मुझसे क्रिया योग को कहिये ॥ २९॥ पुलस्त्यजी बोले कि उन से ऐसा कहे हुये विष्णुजीने उत्तम स्थिति किया व उन्होंने नित्यही चन्दन, पुष्प व अनुलेपनों से पूजन किया ॥ ३० ॥ तदनन्तर बहुत समय से पुत्रों समेत व बन्धुवों सहित उस राजा ने विष्णु मंदिर में उन विष्णु का पूजन किया ॥ ३१ ॥ और उस राजा के वचन से उसी उत्तम आश्रम में विष्णुजी सदैव स्थित हुये ॥ ३२ ॥ तबसे लगाकर हे महाराज ! कलियुगसंज्ञक कालमें प्रतिमाकार कर्मयोग पृथ्वी में वर्तमान हुआ ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! जो भक्ति से अर्बुद पर्वतपै विष्णुजी को भली॰

भाति पूजताहै वह हे राजन्! विष्णुजीकी प्रसन्नता से विष्णुजीकी सलोकता को प्राप्त होताहै॥ ३४ ॥ हे महाराज,राजन्! एकादशी तिथि में विष्णुजी के आगे स्थित जो निराहार होकर रात्रि में जागरण करता है ॥ ३५ ॥ वह देवताओं से भी दुर्लभ उत्तम स्थान को जावैगा कार्त्तिकी में ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ में जो कपिलादान में फल होताहै ॥ ३६ ॥ उस फलको मनुष्य विष्णुजी के दर्शनसे प्राप्त होताहै और शुक्ल या कृष्णपक्षमें हरिवासर याने एकादशी तिथि प्राप्त होनेपर ॥ ३७ ॥ जो हृषीकेशजी को देखता है वह अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है इस लिये सब यत्न से विधि से उन हृषीकेशजी को पूजै॥ ३८ ॥ भली भांति व्रत में परायण जो वहां चार

प ॥ ३४ ॥ एकादश्यांमहाराज रात्रौजागरणंनृप ॥ करिष्यतिनिराहारो हृषीकेशाग्रतःस्थितः ॥ ३५ ॥ सयास्यति परंस्थानं दुर्लभंत्रिदशैरपि ॥ यत्फलंकपिलादाने कार्त्तिक्यांज्येष्ठपुष्करे ॥ ३६ ॥ तत्फलंलभतेमर्त्यो हृषीकेशस्यद र्शनात् ॥ शुक्लेवायदिवाकृष्णे सम्प्राप्तेहरिवासरे ॥ ३७ ॥ यःपश्यतिहृषीकेशमश्वमेधफलंलभेत् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजयेद्विधिनानरः ॥ ३८ ॥ यस्तत्रचतुरोमासान्सम्यग्व्रतपरायणः ॥ अभ्यर्चयेद्धृषीकेशं नसभूयोभिजायते ॥३९॥एकः सर्वाणितीर्थानिकरोतिनृपसत्तम ॥ पश्यत्यन्योहृषीकेशं चातुर्मास्येसमाहितः ॥ ४० ॥ एकोदानानिसर्वाणि ब्रा ह्मणेभ्यःप्रयच्छति ॥ पश्यत्यन्योहृषीकेशंचातुर्मास्येसमाहितः ॥ ४१ ॥ एकःकन्यासहस्रन्तु प्रदद्याच्चयथाविधि ॥ पश्यत्यन्योहृषीकेशं चातुर्मास्येसमाहितः ॥ ४२ ॥ एकस्तुनिजदेहस्थं तंविष्णुंचप्रपश्यति ॥ पश्यत्यन्योहृषीके शं चातुर्मास्येसमाहितः ॥ ४३ ॥ सूर्यग्रहेकुरुक्षेत्रे दद्याद्गोदानमुत्तमम् ॥ पश्यत्यन्योहृषीकेशं चातुर्मास्येसमाहि

महीने तक हृषीकेशजी को पूजता है, वह फिर नहीं उत्पन्न होता है॥ ३९ ॥ हे नृपोत्तम ! एक मनुष्य सब तीर्थ करता है अन्य सावधान होकर चातुर्मास्य में हृषी-केशजी को देखता है ॥ ४० ॥ व एक मनुष्य ब्राह्मणों के लिये सब दानों को देता है और अन्य सावधान होकर चातुर्मास्य में हृषीकेशजी को देखता है ॥ ४१ ॥ और एक मनुष्य विधिपूर्वक हज़ार कन्याओं को देता है अन्य चातुर्मास्य में सावधान होकर हृषीकेश जीको देखता है ॥ ४२ ॥ व एक पुरुष अपने शरीर में स्थित उन विष्णुजी को देखता है अन्य सावधान होकर चातुर्मास्य में हृषीकेश जीको देखता है ॥ ४३ ॥ और एक सूर्य नारायण के ग्रहण में कुरुक्षेत्र में गोदान देता है व अन्य

से सुनिये कि एक ओर सब वर्तमान है एक ओर विष्णुजीका दर्शन है ॥ ५४ ॥ इस लिये अम्बरीष राजर्षि के पापनाशक स्थान में सब यत्न से विष्णुजीके समीप स्थित होना चाहिये ॥ ५५ ॥ एक ओर हृषीकेश व एक ओर कर्णिकेश्वरजी हैं हे नृपोत्तम ! उन दोनोंके मध्य में जो मनुष्य मरते हैं ॥ ५६ ॥ वे बहुत पापकोंकरके भी विष्णुजीके समीप जाते हैं और हृषीकेशको देखकर मनुष्य शीघ्रही मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ५७ ॥ व हे राजन् ! जो मनुष्य हृषीकेश के ऊपर एक पुष्प को धरता है वह इस लोक व परलोक में सौभाग्य से संयुत होता है ॥ ५८ ॥ और जो भक्ति से हृषीकेश के अनुलेपन करता है वह वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम

सर्व मेकतोहरिदर्शनम् ॥ ५४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्थातव्यंहरिसन्निधौ ॥ अम्बरीषस्यराजर्षेस्स्थानकेपापनाशने ॥ ५५ ॥ एकतस्तुहृषीकेश एकतःकर्णिकेश्वरः ॥ तयोर्मध्येमृतायेच मानवान्नृपसत्तम ॥ ५६ ॥ अपिकृत्वामहत्पापं गच्छन्तिहरिसन्निधौ ॥ हृषीकेशंसमालोक्य सद्योमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ५७ ॥ पुष्पमेकंहृषीकेशे यश्चारोपयतेन्नृप ॥ सचसौभाग्यसंयुक्त इहलोकेपरत्रच ॥ ५८ ॥ हृषीकेशस्ययोभक्त्या करिष्यत्यनुलेपनम् ॥ सयास्यतिपरंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ५९ ॥ संमार्जनंचतस्याग्रे यःकरोतिसमाहितः ॥ यावन्तोरेणवस्तत्र तावद्वर्षशतानिच ॥ ६० ॥ मोदतेविष्णुलोकस्थो नात्रकार्याविचारणा ॥ शुक्लपक्षेचकृष्णेच एकादश्यांनृपोत्तम ॥ ६१ ॥ ध्वजमारोपयेद्यश्च हृषीकेशेनृपोत्तम ॥ यथादण्डेप्रविशते पताकाचनृपोत्तम ॥ ६२ ॥ तथातथाव्रजेत्पापं तस्यकायादसंशयम् ॥ पञ्चामृतेनयःपूजां हृषीकेशेकरिष्यति ॥ ६३ ॥ दधिक्षीरेणवायस्तु नसभूयोत्रजायते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन हृषीकेशं

स्थान को जाता है ॥ ५९ ॥ और सावधान होता हुआ जो मनुष्य उन हृषीकेश के आगे संमार्जन (झाड़ बुहार) करताहै तो वहां जितने रेणु होते हैं उतने सौ वर्षों तक ॥ ६० ॥ वह विष्णुलोक में स्थित होकर प्रसन्न रहता है इसमें विचार न करना चाहिये हे नृपोत्तम ! शुक्लपक्ष व कृष्णपक्ष में एकादशी तिथिमें ॥ ६१ ॥ हे नृपोत्तम ! हृषीकेशके ऊपर जो ध्वजा को आरोपण करता है तो ज्योंही दंडमें पताका प्रवेश करता है ॥ ६२ ॥ त्यों त्यों उसके शरीर से निरसन्देह पातक जाता है और जो हृषीकेश के ऊपर पंचामृत से पूजन करता है ॥ ६३ ॥ अथवा दही व दूध से जो पूजन करता है वह इस संसार में नहीं उत्पन्न होता है इस

लिये सब यत्न से जो हृषीकेशजीको पूजता है ॥ ६४ ॥ हे राजन् ! वह मनुष्य संसार के बन्धन से मुक्ति को पाता है इसी कारण विशेष कर हृषीकेश में सदैव पूजन करना चाहिये ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेबुर्दखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाहृषीकेशमाहात्म्यंनामत्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ ● ॥

दो० । जिमि सिद्धेश्वरलिंग को थाप्यो है एक सिद्ध । सो चौदह अध्याय में वर्णित चरित प्रसिद्ध ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर मनुष्य पुरातन समय सिद्ध से थापित व प्राणियों को सिद्धिदायक सिद्धेश्वर देवजीके समीप जावै ॥ १ ॥ वहां विश्वावसु नामक सिद्ध ने बड़ा तप किया है और बहुत वर्षों तक

समर्चयेत् ॥ ६४ ॥ संसारबन्धतोराजन् मुक्तिमाप्नोतिमानवः ॥ हृषीकेशेविशेषेण कर्त्तव्यंपूजनंसदा ॥ ६५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेहृषीकेशमाहात्म्यन्नामत्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ देवंसिद्धेश्वरन्नरः ॥ सिद्धिदंप्राणिनांसम्यक् सिद्धेनस्थापितंपुरा ॥ १ ॥ तत्रवि श्वावसुर्नाम सिद्धस्तेपेमहत्तपः ॥ बहुवर्षाणिसञ्जातः शिवभक्तिपरायणः ॥ २ ॥ जितक्रोधोजितमदो जितसर्वेन्द्रियक्रियः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते भगवान्वृषभध्वजः ॥ ३ ॥ तुतोषनृपतेस्तस्य स्वयंदर्शनमाययौ ॥ अब्रवीत्तंमहादेवो वरदोस्मीतिपार्थिव ॥ ४ ॥ महादेव उवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ दास्यामिचप्रसन्नोहं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ५ ॥ विश्वावसुरुवाच ॥ एतल्लिङ्गंसुरश्रेष्ठ ध्यात्वामनसियस्स्मरेत् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतु प्रसादात्तवशङ्कर ॥ ६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्वितितंप्रोक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ सिद्धेश्वरस्ततोमर्त्याः सिद्धियान्तिसहस्रशः ॥ ७ ॥

वह शिवजी की भक्ति में परायण हुआ ॥ २ ॥ और क्रोधको जीते व मदको जीते हुये वह सिद्ध सब इन्द्रियों के कार्य को जीतता भया तदनन्तर हज़ार वर्ष के अन्त में भगवान् वृषध्वज ॥ ३ ॥ उसके ऊपर प्रसन्न हुये व हे राजन् ! आपही दर्शन को प्राप्त हुये व हे राजन् ! उससे महादेवजी यह बोले कि मैं वरदायक हूं ॥ ४ ॥ महादेवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण होवै और तुम्हारे मनमें जो वर्तमान होवै उस वरदान को मांगो मैं प्रसन्न हूं इस से यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि उसको दूंगा ॥ ५ ॥ विश्वावसु बोले कि हे सुरश्रेष्ठ, शंकरजी ! इस लिंग को मन में ध्यान कर जो स्मरण करै वह तुम्हारी प्रसन्नता से सब कामनाओं को प्राप्त होवै ॥ ६ ॥

पुलस्त्यजी बोले कि ऐसाही होवै, यह उस से कहकर सिद्धेश्वरजी वहीं अन्तर्धान होगये उसी कारण हजारों मनुष्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ व उन्हीं शिव-देव के प्रसाद से मनुष्य प्रिय कामनाओं को पाते हैं तदनन्तर पृथ्वी में सब धर्मकार्य नाशको प्राप्त हुये ॥ ८ ॥ कि न कोई यज्ञों से पूजता था न दान देता था क्योंकि सिद्धेश्वर के प्रसाद से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त होते थे ॥ ९ ॥ हे नृपोत्तम ! यज्ञों व दानों के नष्ट होनेपर इन्द्रादिक सब देवता बड़े दुःख को प्राप्त हुये ॥ १० ॥ और यज्ञविधि को जानकर इन्द्र ने उस लिंगको वज्रसे वैसेही आच्छादन किया कि जिस प्रकार सिद्धि न होवै ॥ ११ ॥ तौभी हे नृपोत्तम ! उस सिद्धेश के स्पर्श

प्रभावात्तस्यलिङ्गस्य कामानिष्टान्लभन्तिच ॥ ततोधर्मक्रियास्सर्वागतानाशंधरातले ॥ ८ ॥ नकश्चिद्यजतेयज्ञैर्नदानानिप्रयच्छति ॥ सिद्धेश्वरप्रसादेन सिद्धियान्तिनराभुवि ॥ ९ ॥ उच्छिन्नेषुचयज्ञेषु दानेषुनृपसत्तम ॥ इन्द्राद्यास्त्रिदशास्सर्वे परंदुःखमुपागताः ॥ १० ॥ ज्ञात्वायज्ञविधानं च तल्लिङ्गंपाकशासनः ॥ वज्रेणाच्छादयामास यथासिद्धिर्नजायते ॥ ११ ॥ तथापिस्पर्शनात्तस्य सिद्धेशस्यनृपोत्तम ॥ कर्मणोजायतेसिद्धिः पातकस्यपराजयः ॥ १२ ॥ यस्तु माघचतुर्दश्यां सोमवारेनृपोत्तम ॥ शुक्लायांचापिकृष्णायां स्पृष्ट्वासिद्धोभवेन्नरः ॥ १३ ॥ अद्यापिजायतेसिद्धिः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ तस्मात्सिद्धेश्वरंराजन्नत्वायास्यतिसद्गतिम् ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेसिद्धेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःशुक्रेश्वरंगच्छेच्छुक्रेणस्थापितंपुरा ॥ यंदृष्ट्वामानवःसद्यः सर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ १ ॥ हृता

से कर्म की सिद्धि होती है व पातक का नाश होता है ॥ १२ ॥ हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य सोमवार के दिन माघ की चतुर्दशी तिथि में शुक्ला या कृष्णा में भी उसको स्पर्शकर मनुष्य सिद्ध होताहै ॥ १३ ॥ और आज भी सिद्धि होती है इसको मैंने सत्य कहा इस लिये हे राजन् ! सिद्धेश्वरजी को प्रणाम कर मनुष्य उत्तम गति को प्राप्त होगा ॥ १४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाम्भाषाटीकायांसिद्धेश्वरमाहात्म्यन्नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰। जिमि शुक्रेश्वर लिंगको थप्यो शुक्र द्विजनाथ। सो पंद्रह अध्याय में कह्यो सुहावन गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर पुरातन समय शुक्र से थापे

हुये शुकेश्वरजी के समीप जावै जिनको देखकर मनुष्य शीघ्रही सब पापों से छूट जाता है ॥ १ ॥ हे नृपसत्तम ! पुरातनसमय देवताओं ने दैत्यों को मारा व उन्हों ने जीतलिया तब बुद्धिमान् शुक्र ब्राह्मण ने उसके लिये विचार किया ॥ २ ॥ कि देवताओं को किस प्रकार दैत्य जीतैंगे और किस प्रकार मेरा बड़ा भारी यश होगा त्रिलोचन शिवजीको आराधन कर मैं मनसे चाही हुई सिद्धिको पाऊंगा ॥ ३ ॥ ऐसा निश्चय कर वे शुक्रजी अर्बुदपर्वत को गये व एक झरना को प्राप्त होकर उन्हों ने भयंकरतप किया है ॥ ४ ॥ और शिवलिंग को थापकर उत्तम श्रद्धासे संयुत उन्हों ने धूप, गन्ध व अनुलेपनों से सदैव पूजन किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर हज़ारवर्ष

दैत्याःपुरादेवैस्तज्जितान्नृपसत्तम ॥ चिन्तयामासमेधावीभार्गवस्तत्कृतेद्विजः ॥ २ ॥ कथंदैत्यासुरान्जिग्युः कथंस्यान्मे महद्यशः ॥ आराध्यत्र्यम्बकंसिद्धिं प्राप्स्यामिमनसेप्सिताम् ॥ ३ ॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा गतोर्बुदमथाचलम् ॥ एकं निर्झरमासाद्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ४ ॥ शिवलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य धूपगन्धानुलेपनैः ॥ अनिशंपूजयामास श्रद्धयापरयान्वितः ॥ ५ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते तुतोषभगवाञ्छिवः ॥ तस्यसंदर्शनंदत्त्वा वाक्यमेतदुवाचह ॥ ६ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ परितुष्टोस्मितेब्रह्मन्भक्त्यातवद्विजोत्तम ॥ वरंवरयभद्रन्तेयद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ७ ॥ शुक्र उवाच ॥ यदितुष्टोमहादेव विद्यांदेहिमहेश्वर ॥ ययाजीवन्तिसम्प्राप्ता मृत्युंसर्वेपिजन्तवः ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ प्रदायवैशिवस्तस्मै तां विद्यांनृपसत्तम ॥ अब्रवीच्चपुनःशुक्रंवरमन्यंवृणीष्वमे ॥ ९ ॥ शुक्र उवाच ॥ एतत्कार्त्तिकमासस्य शुक्लाष्टम्यां नर स्पृशेत् ॥ त्वल्लिङ्गंपूजयेद्भक्त्या यःपुमाञ्छ्रद्धयान्वितः ॥ १० ॥ अल्पमृत्युभयंतस्य माभूत्तवप्रसादतः ॥ इष्टान्कामा

के अन्त में भगवान् शिवजी प्रसन्न हुये और उनको दर्शन देकर यह वचन बोले ॥ ६ ॥ श्री महादेवजी बोले कि हे द्विजोत्तम, ब्रह्मन् ! तुम्हारी भक्ति से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं यद्यपि दुर्लभ भी होवै तथापि वरदान को मांगो तुम्हारा कल्याण होवै ॥ ७ ॥ शुक्र बोले कि हे महेश्वर, महादेव ! यदि प्रसन्न हो तो उस विद्या को दीजिये कि जिससे मृत्यु को प्राप्त सब भी प्राणी जीते हैं ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! उन शुक्र के लिये उस विद्या को देकर फिर शिवजी शुक्राचार्य से बोले कि तुम मुझसे अन्यवर को मांगो ॥ ९ ॥ शुक्रजी बोले कि कातिकमहीने की शुक्लपक्षवाली अष्टमी में जो मनुष्य तुम्हारे इस लिंगको छुवै और श्रद्धासंयुत

जो मनुष्य इसको भक्तिसे पूजै ॥ १० ॥ उसको तुम्हारी प्रसन्नता से अल्प मृत्यु का भय मत होवै और वह इस लोक व परलोक में प्यारे मनोरथों को पावै ॥ ११॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसाही होवै यह कहकर शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और युद्धमें देवताओं से मारे हुये उन अनेक दैत्यों को शुक्रमुनि ने विद्याके प्रभाव से जिलाया उसके आगे पाप नाशक निर्मल कुण्ड है ॥ १२ । १३ ॥ उसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य पातकों से छूट जाता है व हे नृपेन्द्र ! वहां मनुष्य सिद्ध होता है और जलही से तर्पण किये हुये पितामह लोग प्रसन्नता को प्राप्त होतेहैं फिर पिण्डदान से क्या कहना है इसलिये सबयत्न से वहां स्नान

नवाप्नोतुइहलोकेपरत्रच॥ ११ ॥पुलस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्वितिसम्प्रोक्त्वातत्रैवान्तरधीयत॥शुक्रोपिदानवान्सङ्ख्ये हतान्देवैरनेकशः ॥ १२ ॥ विद्यायाश्चप्रभावेन जीवयामासतान्मुनिः ॥ तस्याग्रेस्तिमहाकुण्डं निर्मलंपापनाशनम् ॥ १३ ॥ तत्रस्नातोनरस्सम्यग्पातकैश्चप्रमुच्यते ॥ तत्रसिद्ध्यतिराजेन्द्र तुष्टिंयान्तिपितामहाः ॥ १४॥ तर्पितास्सलिलेनैव किंपुनःपिण्डदानतः ॥ ततःसर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेशुक्रेश्वरमाहात्म्यन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ मणिकर्णिकसञ्ज्ञन्तु सर्वलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ यत्रसिद्धिंगताराजन्वालखिल्यामहर्षयः ॥ तैस्तत्रनिर्मितंकुण्डं सुरम्यंगिरिगह्वरे ॥ २ ॥ तेषांतत्रोपविष्टानां मुनीनांभावितात्मनाम् ॥ महदाश्चर्यस्तत्राभूत्तन्मेश्शृणुनराधिप ॥ ३ ॥ किरातवनिताकाचिन्नाम्नाचमणिकर्णिका ॥ अति

रै ॥ १४ ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाशुक्रेश्वरमाहात्म्यंनामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

दो० । मणि कर्णिका किरातिनी तीरथ कियो स्वनाम । सो सोलह अध्याय में कह्यो चरित अभिराम ॥ पुलस्त्य जी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर सब लोकों में प्रसिद्ध मणि कर्णिक नामक पाप नाशक तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ जहां पर हे राजन् ! वालखिल्यामहर्षि सिद्ध हुये हैं और उन्हों ने वहां पर्वत की कन्दरा में बहुत मनोहर कुण्डको निर्माण किया है ॥ २ ॥ शुद्धचितवाले महर्षियोंके वहां बैठने पर इस कुण्ड में बड़ा आश्चर्य हुआहै उसको हे नराधिप ! मुझसे सुनिये ॥ ३ ॥ कि

नामसे मणि कर्णिका ऐसी कोई किरातकी स्त्री बहुत काली व विरूप लोचना व भयंकर तथा भयानक आकारवाली थी ॥ ४ ॥ प्यास से विकल वह सूर्य नारायण के मध्य दिन में होनेपर यहा प्राप्त हुई और राहुसे सूर्य नारायण के ग्रस्त होनेपर वह जल में पैठ गई ॥ ५ ॥ इसी समय में मुनियों के जपते हुये दिव्यरूप वाले शरीर को धारने वाली वह सुमध्यमा निकली ॥ ६ ॥ इसके बाद उस समय ढूढ़ने में तत्पर उसका पति प्राप्त हुआ व उस स्त्री से दुःखित उसने उस उत्तम कटिवाली स्त्री से पूंछा ॥ ७ ॥ कि हे सुमध्यमे ! मेरी स्त्री यहां प्राप्त हुई थी यदि तूने उसको देखा हो तो हे वरारोहे ! शीघ्रही कहिये और यह बालक उससे उत्पन्न हुआ

कृष्णाविरूपाक्षी करालाभीषणाकृतिः ॥ ४ ॥ तृषार्तातत्रसम्प्राप्ता मध्यंदिनगतेरवौ ॥ ग्रस्तेचराहुणासूर्ये प्रविष्टास लिलेतुसा ॥ ५ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु दिव्यरूपवपुर्धरा ॥ मुनीनांजपतांचैव विनिष्क्रान्तासुमध्यमा ॥ ६ ॥ अथत स्याःपतिःप्राप्तो अन्वेषणपरस्तदा ॥ पप्रच्छतांवरारोहां तयापत्न्यासुदुःखितः ॥ ७ ॥ ममभार्यात्रसम्प्राप्ता यदिदृष्टा सुमध्यमे ॥ शीघ्रंवदवरारोहे बालकोयंतदुद्भवः ॥ ८ ॥ तृषार्त्तश्चक्षुधाविष्टो रुदतेचमुहुर्मुहुः ॥ दृष्टाचेत्कथ्यतांसुभ्रु बिना मात्रामरिष्यति ॥ ९ ॥ स्त्र्युवाच ॥ अहन्तेदयिताकान्त तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ दिव्यरूपमनुप्राप्ता देवैरपिसुदुर्ल भम् ॥ १० ॥ त्वंचापिसलिलेत्वस्मिन्कुरुस्नानंसुतान्वितः ॥ प्राप्स्यसित्वंपरंरूपं यथाप्राप्तंमयानघ ॥ ११ ॥ अथासौ सहपुत्रेण प्रविष्टस्तत्रनिर्झरे ॥ विमुक्तेभास्करेराजन् विरूपश्चाभवत्पुनः ॥ १२ ॥ दुःखेनमृत्युमापन्नस्तस्मिन्नेवजला शये ॥ अथसाभर्तृशोकार्ता विललापातिदुःखिता ॥ १३ ॥ चितिंकृत्वासमन्तेन ज्वालयामासपावकम् ॥ अथतेमुन

है ॥ ८ ॥ प्यास से विकल व भूंख से संयुत यह बार २ रोता है हे सुभ्रु ! यदि तूने देखा हो तो कहिये नहीं तो विना माता के वह मर जावेगा ॥ ९ ॥ स्त्री बोली कि हे कान्त ! मैं तुम्हारी स्त्री हू और इस तीर्थ के प्रभाव से मैं देवताओं से भी दुर्लभ रूपको प्राप्त हुई हूं ॥ १० ॥ और पुत्र से संयुत तुमभी इस जलमें स्नान करो तो हे अनघ ! जैसे मैंने पाया है वैसेही तुम भी दिव्य रूपको पावोगे ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! सूर्य नारायण जब ग्रहण से मुक्त हुये तब पुत्र समेत यह उस झरने में पैठा और फिर विरूप हुआ ॥ १२ ॥ व बड़े दुःख से सयुत वह उसी जलाशय में मृत्युको प्राप्त हुआ इसके अनन्तर पति के शोक से विकल व बहुतही

दुःखित उसने विलाप किया ॥ १३ ॥ और चिता को बनाकर उस समेत बैठकर अग्नि जलादिया इसके अनन्तर उसको वैसी शील से शोभित देखकर वे मुनि लोग ॥ १४ ॥ बड़ी दया से संयुत हुये व हे नृपोत्तम! उसके साहस को देख कर विस्मय संयुत होते हुये उन सबों ने उससे कहा ॥ १५ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे भामिनि ! तूने देवताओं से भी दुर्लभ दिव्य रूप को पाया है तो किस कारण इस पापी के पीछे जाती हो ॥ १६ ॥ स्त्री बोली कि हे द्विजेन्द्रो ! सदैव पति में परायण मैं पतिव्रता हूं और देवतासे भी पति के विना मैं रूपसे क्या करूंगी ॥ १७॥ कुरूप, या सुरूप, दरिद्री या धनेश पति केवल स्त्रियों की गति है और अधिक

योदृष्ट्वा तांतथाशीलमण्डना ॥ १४ ॥ कृपयापरयाविष्टास्ता मूचुर्विस्मयान्विताः ॥ सर्वेतस्याश्चतेदृष्ट्वा साहसंचनृपोत्तम ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ दिव्यरूपन्त्वयाप्राप्तं देवैरपिसुदुर्लभम् ॥ कस्मादेनन्तुपाप्मान मनुगच्छसिभामिनि ॥ १६ ॥ स्त्री उवाच ॥ पतिव्रताहंविप्रेन्द्राः सदाभर्तृपरायणा ॥ किंरूपेणकरिष्यामि बिनादेवतमेनच ॥ १७ ॥ विरूपोवासुरूपोवा दरिद्रोवाधनाधिपः ॥ स्त्रीणामेकोगतिर्भर्त्ता नान्यश्चाप्यधिकर्द्धिदः ॥ १८ ॥ बालकोयंमुनिश्रेष्ठा भवच्छरणमागतः ॥ अहंकान्तेनसंयुक्ता प्रविशामिहुताशनम् ॥ १९ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथतेमुनयस्सर्वे ज्ञात्वातस्यास्तुनिश्चयम् ॥ कृपयापरयाविष्टास्संमन्त्र्यचपरस्परम् ॥ २० ॥ ततस्तंजीवयामासुस्तपः शक्त्यामुनीश्वराः ॥ लावण्येनसमायुक्तं दिव्यलक्षणलक्षितम् ॥ २१ ॥ एतास्मिन्नेवकालेतु विमानंमनसेप्सितम् ॥ देवकन्यासमाकीर्णं सद्यस्तत्रसमागतम् ॥ २२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथतौदम्पतीदृष्ट्वा मुनीनांभावितात्मनाम् ॥ नमस्कृत्वाचतान्सर्वान्प्र

ऋद्धि देनेवाला भी अन्य नहीं है ॥ १८ ॥ हे मुनि श्रेष्ठो ! यह बालक आपके शरण में आया है और पति से संयुत मैं अग्नि में पैठती हूं ॥ १९ ॥ पुलस्त्य जी बोले कि इसके अनन्तर वे सब मुनि उसके निश्चय को जानकर बड़ी दया से संयुत होकर परस्पर संमति कर ॥ २० ॥ तदनन्तर मुनीश्वरों ने तपस्या की शक्ति से सुन्दरता से संयुत व दिव्य लक्षणों से लक्षित उसको जिलाया ॥ २१ ॥ इसी समय में देव कन्याओंसे संयुत व मनसे चाहा हुआ विमान शीघ्रही वहां आगया ॥ २२ ॥

पुलस्त्यजी बोले कि इसके अनन्तर वे स्त्री पुरुष शुद्ध चित्तवाले मुनियोंके प्रभाव को देखकर उन सबों को प्रणाम कर स्वर्ग को चले ॥ २३ ॥ इसके अनन्तर उन मुनियों ने उस मणिकर्णिका स्त्री से कहा कि हे कल्याणि ! हम सब पतिव्रत धर्म व सत्य से विशेष कर तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं वरदान को मांगो क्यों कि यहां हम लोगों का दर्शन किसी प्रकार व्यर्थ नहीं होता है॥ २४ । २५ ॥ मणिकर्णिका बोली कि हे मुनियो ! प्रसन्न होते हुये आप लोग यदि मुझको प्रसन्नता से वर देतेहो तो यह तीर्थ व लिंग मेरे नाम से होवे ॥ २६ ॥ इससे मैं कृत कृत्य हू अन्य से मेरा प्रयोजन नहीं है और तुम सब लोगों की प्रसन्नता से मैं इस समय स्वर्ग को

स्थितौत्रिदिवंप्रति ॥ २३ ॥ अथतैर्मुनिभिःप्रोक्ता सानारीमणिकर्णिका ॥ वरंवरयकल्याणि सर्वेतुष्टावयंतव ॥ २४ ॥ पातिव्रत्येनसुश्रोणि सत्येनचविशेषतः ॥ नास्माकंदर्शनंव्यर्थं जायतेत्रकथंचन ॥ २५ ॥ मणिकर्णिका उवाच ॥ यदिमांमुनयस्तुष्टाः प्रयच्छन्तुवरंमुदा ॥ एतत्तीर्थंचलिङ्गंच मन्नाम्नासम्भविष्यति ॥ २६ ॥ एतेनकृतकृत्यास्मिनान्येनमेप्रयोजनम् ॥ सर्वेषांवःप्रसादेन स्वर्गंगच्छामिसाम्प्रतम् ॥ २७ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एवंसंयास्यतेख्याति तीर्थंलिङ्गं वरानने ॥ तवनाम्नात्विदंलिङ्गं तीर्थंवैमणिकर्णिकम् ॥ २८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ भर्त्रासहादिवंप्राप्ता पुत्रेणचसमन्विता वालखिल्यास्तपोनिष्ठाविशेषात्तत्रसंस्थिताः ॥ २९ ॥ तत्रसूर्यग्रहेप्राप्ते स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ यःकरोतिफलं तस्य कुरुक्षेत्रसमंभवेत् ॥ ३० ॥ यंयंकाममभिध्याय स्नानंतत्रकरोतियः ॥ तंतंप्राप्नोतिराजेन्द्र सम्यग्ध्यानसमन्वि

जाऊँगी ॥ २७ ॥ ऋषि लोग बोले कि हे वरानने ! इस प्रकार तीर्थ व लिंग प्रसिद्धता को प्राप्त होगा और तुम्हारे नाम से यह लिंग व तीर्थ मणि कर्णिक होगा ॥ २८ ॥ पुलस्त्य जी बोले कि पुत्र समेत व पति सहित वह स्त्री स्वर्ग को प्राप्त हुई और व ल खिल्या मुनि विशेषता से तपस्यामें निष्ठ होकर वहां स्थित हुये ॥ २९ ॥ वहां सूर्यग्रहण प्राप्त होने पर जो स्नान दानादिक कर्मों को करता है उसको कुरुक्षेत्र के समान फल होता है ॥ ३० ॥ हे नृपेन्द्र ! जिस जिस कामना को ध्यानकर

जो मनुष्य वहां स्नान करता है भली भांति ध्यान से संयुत वह उस उस मनोरथ को पाता है ॥ ३१ ॥ इसलिये सब यत्न से वहां स्नान करै और शक्तिमे ब्राह्मणों व देवताओं तथा पितरों को तृप्त करै ॥ ३२ ॥ इति श्री स्कंदपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामणिकर्णिकेश्वरमाहात्म्यंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

दो॰ । यथा पंगु द्विज नाम से भयो तीर्थ विख्यात । सत्रह के अध्याय में सोई चरित सुहात ॥ पुलस्त्य जी बोले कि तदनन्तर समस्त पातकों को नाशने वाले पंगु तीर्थ को जावै जहां कि पुरातन समय पंगु ब्राह्मण ने तपस्या किया है ॥ १ ॥ पुरातन समय च्यवनके वंश में पंगु नामक ब्राह्मण हुआहै हे नृपोत्तम ! वह पंगुता

तः ॥ ३१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत ॥ तर्पयेद्ब्राह्मणाञ्छक्त्या देवांश्चैवपितॄंस्तथा ॥ ३२ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमणिकर्णिकेश्वरमाहात्म्यन्नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ पङ्गुतीर्थंततोगच्छेत सर्वपातकनाशनम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं पङ्गुनाब्राह्मणेनच ॥ १ ॥ पङ्गुनामा द्विजःपूर्वं च्यवनस्यान्वयेभवत ॥ अशक्तश्चलितुंभूमौ पङ्गुभावान्नृपोत्तम् ॥ २ ॥ गृहकृत्येनियुक्तोसौएकदाबान्धवैर्नृप ॥ पङ्गुःकर्त्तुंनशक्नोतिपरंदुःखमवाप्तवान् ॥ ३ ॥ अथासौतैःपरित्यक्तो गतोर्बुदमथाचलम् ॥ एकंनिर्भरमासाद्य तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ ४ ॥ लिङ्गंसंस्थाप्यतत्रैवपूजयामासतंविभुम् ॥ गन्धपुष्पादिनैवेद्यैःसम्यच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ५ ॥ शिवभक्तिपरोजातु वायुभक्षोबभूवह ॥ जपहोमरतोनित्यं पङ्गुनामाद्विजोत्तमः ॥ ६ ॥ ततस्तुष्टोमहादेवोब्राह्मणंनृपसत्तम ॥

के कारण पृथ्वी में चलनेके लिये समर्थ न था ॥ २ ॥ हे नृप ! एक समय भाइयो ने इसको घरके कार्य में लगाया और वह पंगु नहीं कर सक्ता था इससे उसने बहुत दुःख को पाया ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर उन भाइयो से छोड़ा हुआ यह अर्बुद पहाड़ पर गया व एक निर्भर (झरना) को प्राप्त होकर इसने बड़ा भयंकर तप किया ॥ ४ ॥ और वहीं लिंग को थापकर उन विभु शिवजीको भली भांति श्रद्धा संयुत उसने गंध, पुष्पादि व नैवेद्य मे पूजन किया ॥ ५ ॥ व शिवजीकी भक्ति मे तत्पर वह कभी पवन भक्षी हुआ और पंगुनामक द्विजोत्तम सदैव जप व होम में परायण हुआ ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम, महाराज ! महादेव जी प्रसन्न हुये व

पार्वती समेत शिवजी उस ब्राह्मण से यह वचन बोले ॥ ७ ॥ महादेवजी बोले कि हे सुव्रत, पंगो ! मैं महादेव तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं वरदान मांगिये यद्यपि दुर्लभभी होगा तथापि मैं उसको दूंगा ॥ ८ ॥ पंगु बोला कि हे सुरेश्वर ! मेरे नाम से यह तीर्थ प्रसिद्ध होवै व हे शंकरजी ! तुम्हारी प्रसन्नता से मेरी पंगुता यहां जाती रहै ॥ ९ ॥ और स्त्री समेत तुम्हारी यहा नित्य समीपता होवै ऐसा कहे हुये शिवजीने तदनन्तर उस ब्राह्मण से कहा ॥ १० ॥ महादेवजी बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे नाम से यह तीर्थ होगा व हे सत्तम ऋषे ! स्नान से तुम्हारी पंगुता जावैगी ॥ ११ ॥ और चैत में शुक्लपक्ष की तेरसि में मेरी समीपता होगी पुलस्त्यजी बोले कि यह

गौर्य्यासहमहाराज वाक्यमेतदुवाचह ॥ ७ ॥ ईश्वर उवाच ॥ पङ्गोतुष्टोमहादेवो वरंवरयसुव्रत ॥ तवदास्याम्यहं सर्वं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ पङ्गुरुवाच ॥ नाम्नामेख्यातिमायातु तीर्थमेतत्सुरेश्वर ॥ पङ्गुभावोत्रमेयातु प्रसादा त्तवशङ्कर ॥ ९ ॥ तवास्तुनित्यमेवात्र सान्निध्यंसहभार्यया ॥ एवमुक्तस्ततःशम्भुस्तंविप्रंप्रत्यभाषत ॥ १० ॥ ईश्वर उवाच ॥ नाम्नातवद्विजश्रेष्ठ तीर्थमेतद्भविष्यति॥स्नानेनपङ्गुभावस्ते ऋषेयास्यतिसत्तम ॥ ११ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां सानिध्यंमेभविष्यति ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ स्नानमात्रेणविप्रोसौ दिव्यरूपमवाप्तवान् ॥ १२ ॥ तुष्टेपङ्गौदेवदेवो गौर्यासहमहेश्वरः ॥ तस्मिन्दिनेनृपश्रेष्ठ स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपङ्गुतीर्थमाहात्म्य न्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ यमतीर्थमनुत्तमम् ॥ शुभञ्चनरकाख्यञ्च प्राणिनांपापनाशनम् ॥ १ ॥

ब्राह्मण स्नानही से दिव्य रूप को प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ और पंगुके प्रसन्न होने पर पार्वती समेत महादेवजी चले गये हे नृपश्रेष्ठ ! मनुष्य वहां उस दिन स्नान करै ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपंगुतीर्थमाहात्म्यंन्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । यम तीरथ में त्यागि तनु गयो स्वर्ग भूपाल । अट्ठारह अध्याय में सोई चरित रसाल ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अति उत्तम यम तीर्थ

को जावै व प्राणियों के पाप नाशक उत्तम नरकनामक तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ पुरातनसमय चित्रागद नामक राजा पाप में तत्पर हुआ है उसने हे नृपोत्तम ! कुछ पुण्य नहीं किया ॥ २ ॥ और अभिषेक किया हुआ क्षमा से रहित वह राजा देवता व ब्रह्मणादिकों को पीड़ा देता था व नित्यही पराईस्त्रियों में रत तथा पराये धन को हरता था ॥ ३ ॥ और वह सत्य तथा पवित्रता से हीन और माया व मत्सर से संयुक्त था किसी समय शिकारमें आसक्त वह अर्बुदपर्वत पै चढ़ा ॥ ४ ॥ व चलता हुआ यह बहुतही थक गया और भूंख व प्यास से विकल हुआ और उसने वहां निर्मल जल मे पूरित जलाशय को देखा ॥ ५ ॥ जो कि कमलिनियों से व्याप्त तथा

पुराचित्राङ्गदोनाम राजापापरतोभवत ॥ नतेनसुकृतंकिञ्चित्कृतंपार्थिवसत्तम ॥ २ ॥ अभिषिक्तोक्षमायुक्तो देवविप्रप्रपीडकः ॥ परदाररतोनित्यं परवित्तहरस्तथा ॥ ३ ॥ सत्यशौचविहीनस्तु मायामत्सरसंयुतः ॥ सकदाचिन्मृगयासक्तो ह्यारूढोर्बुदपर्वते ॥ ४ ॥ अटन्नसावतिश्रान्तः क्षुत्पिपासासमाकुलः ॥ तेनतत्रार्बुदेदृष्टो स्वच्छोदपरिपूरितः ॥ ५ ॥ पद्मिनीभिस्समाकीर्णो ग्राहनक्रझषाकुलः ॥ नानापक्षिसमायुक्तो मनोहारीसुविस्तरः ॥ ६ ॥ तृषार्तःसप्रविष्टःसंस्तस्मिन्नेकोजलाशये ॥ ग्राहेणतत्क्षणाद्ग्रस्तो भक्षितोनृपसत्तम ॥ ७ ॥ तस्यार्थेनरकारौद्रानिर्मिताश्चयमेनच ॥ यमदूतैस्तत्रक्षिप्तःसनित्यंपापकृत्तमः ॥ ८ ॥ तस्यसान्निध्यतस्सर्वे नरकस्थादिवंगताः ॥ दूतास्तुधर्मराजाय वृत्तान्तंनरकस्यच ॥ ९ ॥ आचख्युर्विस्मयाविष्टाः नरकस्यविमोक्षणम् ॥ ततोवैवस्वतःप्राह नमन्नर्बुदपर्वतम् ॥ १० ॥ ममास्त्यतिप्रियंतीर्थं यत्रतप्तंमयातपः ॥ तत्रासौमृत्युमापन्नो नान्यदस्तीहकारणम् ॥ ११ ॥ तैरुक्तंसत्यमेतद्धि

मकर व ग्राह से संयुत था और अनेक भांति के पक्षियों से युक्त तथा मनोहर व बहुत चौड़ा था ॥ ६ ॥ हे नृपोत्तम ! उस जलाशय में प्यास से विकल वह राजा पैठगया और उसी क्षण ग्राहने उसको पकड लिया व खालिया ॥ ७ ॥ यमराज ने उसके लिये भयंकर नरकों को बनाया था वहा उस नित्यही बड़े पापकारी को यमदूतों ने डाल दिया ॥ ८ ॥ और उसकी समीपता से नरक में टिके हुये सब प्राणी स्वर्ग को चले गये और दूतों ने विस्मय में युक्तहोकर धर्मराज से नरक के वृत्तान्त को व नरक के मोक्ष को कहा तदनन्तर अर्बुद पर्वत को प्रणाम करते हुये यमराज ने कहा ॥ ९ । १० ॥ कि मुझको वह तीर्थ बहुत प्रिय है जहा कि मैंने

तपस्या किया है वहां यह मृत्यु को प्राप्त हुआ है इसमें अन्य कारण नहीं है ॥ ११॥ उन्हों ने कहा कि यह सत्य है यह अर्बुदही पर्वत पै मरा है कुण्ड में इसको ग्राह ने ग्रस लिया और वहीं यह मृत्यु को प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ यमराज बोले कि शीघ्रही छोड़िये यह राजा नरकों में योग्य नहीं है क्योंकि समस्त पातकों के नाशने वाले मेरेही तीर्थ में यह मरा है ॥ १३ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम । यमराज के वचन से उन यमदूतों से छोड़ा हुआ वह अप्सराओं के गणों मे सेवित होता हुआ स्वर्गको प्राप्त भया ॥ १४ ॥ फिर भक्तिसंयुत जो मनुष्य उसमें स्नान करै वह वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तमस्थान को जाताहै ॥ १५ ॥ इस लिये चैतके शुक्लपक्ष की तेरसि

मृतोसौर्बुदएवतु ॥ ह्रदेग्राहेनसंग्रस्तस्तत्रमृत्युञ्चप्राप्तवान् ॥ १२ ॥ यम उवाच ॥ मुच्यतामाशुनार्होयं नरकेषुमही पतिः ॥ मृतोममैवतीर्थेयत्सर्वपातकनाशने ॥ १३ ॥ ततस्तैःकिङ्करैर्मुक्तो यमवाक्यान्नृपोत्तम ॥ त्रिविष्टपमनुप्राप्तः सेव्यमानोप्सरोगणैः ॥ १४ ॥ यःपुनर्भक्तिसंयुक्तः स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥१५॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां यत्रसिद्धिंगतोयमः ॥ १६ ॥ तस्मिंदिनेनरस्सम्यक् श्राद्धंतत्रसमाचरेत ॥ आकल्पंपितरस्तस्य स्वर्गेतिष्ठन्तिपार्थिव ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेयमतीर्थमाहात्म्यन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ वाराहस्यहरेरिष्टं सदावाससुखप्रदम् ॥ १ ॥ वाराहेनावतारेण पृथ्वीतत्रसमुद्धृता ॥ हरिणोक्ताधरातिष्ठ न भेत्तव्यंकदाचन ॥ २ ॥ अहंद्रुतंगमिष्यामि वैकुण्ठंचपुनः

में सब यत्न से उस तीर्थ में स्नान करै जहा कि यमराजजी सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १६ ॥ व हे राजन् ! उसदिन जो मनुष्य वहा भलीभांति श्राद्ध करै उसके पितर कल्पपर्यन्त स्वर्ग में टिकते हैं ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्र विरचितायांभाषाटीकायांयमतीर्थमाहात्म्यंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ● ॥

दो॰ । जिमि अर्बुद के निकटही तीरथ भयो वराह । सो उनीस अध्याय में वरन्यो सहित उछाह ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वाराह विष्णु जीको प्यारे व सदैव निवास के सुखको देनेवाले व पापनाशक तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ वहा वाराह अवतार से पृथ्वी उधारी गई है और विष्णुजीने पृथ्वी से कहा कि

तुम स्थित होवो व किसी प्रकार न डरना चाहिये ॥ २ ॥ हे शुभे, कल्याणि ! मैं शीघ्रही वैकुंठ को जाऊँगा जो प्रिय व दुर्लभ हो उस वरदान को मांगो ॥ ३ ॥ पृथ्वी बोली कि हे शंख चक्र गदाधर ! यदि मुझको वरदेने योग्य हो तो हे हरे! इस शरीर से तुम सदैव इस तीर्थ में टिको ॥ ४ ॥ विष्णुजी बोले कि हे देवि ! लोकों के हित में तत्पर मैं तुम्हारे वचन से सदैव इस अर्बुद नामक पर्वत पै इस शरीर से टिकूंगा ॥ ५ ॥ और तुम्हारे आगे निर्मल जलसे संयुत पवित्रकुण्ड है माघ महीने के शुक्लपक्ष में एकादशी तिथि में सावधान होकर ॥ ६ ॥ मनुष्य भक्ति से उसमें नहाकर ब्रह्महत्या से छूट जाता है और श्रद्धा संयुत जो मनुष्य वहां श्राद्ध

शुभे ॥ वरंवरयकल्याणि यदभीष्टंसुदुर्लभम् ॥ ३ ॥ पृथिव्युवाच ॥ यदिदेयोवरोमह्यं शङ्खचक्रगदाधर ॥ अनेनवपुषा तिष्ठ अस्मिंस्तीर्थेसदाहरे ॥ ४ ॥ हरिरुवाच ॥ अनेनवपुषादेवि पर्वतेर्बुदसञ्ज्ञके ॥ इहस्थास्यामितेवाक्यात्सदालोक हितेरतः ॥ ५ ॥ तवाग्रेस्तिहृदंपुण्यं सुनिर्मलजलान्वितम् ॥ माघमाससितेपक्षे एकादश्यांसमाहितः ॥ ६ ॥ तत्रस्ना त्वानरोभक्त्या मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ तत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति मनुष्याःश्रद्धयान्विताः ॥ ७ ॥ पितॄणांजायतेतृप्तिर्यावदा भूतसंप्लवम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेराजन् गोविन्दोगरुड ध्वजः ॥ तस्मिन्दिनेनृपश्रेष्ठ स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ ९ ॥ तर्पणंपिण्डदानंच यःकुर्याद्भक्तितत्परः ॥ सयातिविष्णुसा लोक्यं पूर्वजैःसहपार्थिव ॥ १० ॥ तत्रदानंप्रशंसन्ति गवांब्राह्मणसत्तमाः ॥ अस्मिंस्तीर्थेनृपश्रेष्ठ गोदानंचकरोतियः ॥ ११ ॥ रोमसङ्ख्यानिवर्षाणि स्वर्गेतिष्ठतिमानवः ॥ तस्मात्सर्वात्मनाराजन् गोदानंचसमाचरेत ॥ १२ ॥ एकादश्यां

करैंगे ॥ ७ ॥ उनके पितरों की कल्प पर्यन्त तृप्ति होगी इस लिये सब यत्न से वहां स्नान करै ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि यह कहकर गरुड़ध्वज विष्णुजी अन्तर्द्धान होगये हे नृपश्रेष्ठ ! उस दिन उसकुंड में स्नान करै ॥ ९ ॥ व हे राजन् ! भक्ति में तत्पर जो मनुष्य तर्पण व पिंडदान करता है वह पूर्वज पितरोंसमेत विष्णुजीकी सलोकता को प्राप्त होता है ॥१०॥ और उत्तम ब्राह्मणलोग वहा गौवों के दान की प्रशंसा करते हैं व हे नृपश्रेष्ठ ! इस तीर्थ में जो गोदान करता है॥ ११ ॥ वह मनुष्य उसके रोमों की गिनती भर वर्षों तक स्वर्ग में स्थित होता है इसलिये हे राजन् ! सब यत्न से वहां गोदान करै ॥ १२ ॥ व एकादशी तिथि में विशेष कर

यथा शक्ति उत्तमदान करना चाहिये और जो स्नान करता है वह उत्तमगति को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषा टीकायांवाराहतीर्थमाहात्म्यंनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰। है अर्बुद पर्वतहि ढिग तीरथ चन्द्र प्रभास। कियो बीस अध्याय में सोई चरित प्रकास ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम! तदनन्तर चन्द्रप्रभासतीर्थ को जावै जहां पुरातन समय महात्मा चन्द्रमा ने प्रभा (प्रकाश) को पाया है ॥ १ ॥ हे राजन्! सत्ताईससंख्यक जो दक्ष की कन्या थीं अश्विनी आदिक उन सबों को

विशेषेण कर्त्तव्यंदानमुत्तमम् ॥ स्नानंकुर्याद्यथाशक्त्या सयातिपरमांगतिम् ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे वाराहतीर्थमाहात्म्यन्नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततश्चन्द्रप्रभासंच गच्छेत्पार्थिवसत्तम ॥ प्रभायत्रपुराप्राप्ता चन्द्रेणसुमहात्मना ॥ १ ॥ दक्षस्य कन्यकाराजन् सप्तविंशतिसङ्ख्यया ॥ ऊढाश्चन्द्रेणताःसर्वा अश्विनीप्रमुखास्तदा ॥२॥ तासांमध्येरोहिणीतु नित्यं चन्द्रमसःप्रिया ॥ त्यक्तास्सर्वाश्चन्द्रेण दक्षकन्याःसुदुःखिताः ॥ ३ ॥ ततस्स्वपितरंदक्षं गत्वाप्रोचुस्तुकन्यकाः ॥ वय न्त्यक्ताःप्रजानाथ निर्दोषाःपतिनाततः ॥ सर्वाश्चत्वामनुप्राप्ता दुःखेनमहतान्विताः ॥ ४ ॥ गतिर्भवसुरश्रेष्ठ सर्वा सां त्वंहितंकुरु ॥ तस्माद्ब्रूहितत्रगत्वा चन्द्रंचरोहिणीरतम् ॥ ५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सतासांवचनंश्रुत्वा गतोयत्रनि शाकरः ॥ अब्रवीत्समतांपश्य सर्वासुतनयासुमे ॥ ६ ॥ अथव्रीडासमायुक्तश्चन्द्रस्तंप्रत्यभाषत ॥ तववाक्यंकरिष्या

उस समय चन्द्रमा ने ब्याहा है ॥ २ ॥ और उनके मध्य में रोहिणी सदैव चन्द्रमा को प्यारी थी और सब दक्षकी कन्याओं को चन्द्रमा ने छोड़दिया और वे दुःखित हुईं ॥ ३ ॥ तदनन्तर कन्याओं ने अपने पितादक्ष के समीप जाकर कहा कि हे प्रजानाथ! दोषरहित हम सबों को पति ने छोड़ दिया उसी कारण बड़े दुःख से संयुत हम सब तुम्हारे समीप प्राप्तहुई हैं ॥ ४ ॥ हे सुरश्रेष्ठ! तुम सबों की गति होवो और हित करो इस कारण तुम वहां जाकर रोहिणी में रत चन्द्रमा से कहो ॥ ५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उनके वचन को सुनकर दक्ष जी वहां गये जहां कि चन्द्रमा थे और बोले कि हमारी सब कन्याओं में समता देखो ॥ ६ ॥ इसके अनन्तर

लज्जा से संयुत चन्द्रमा ने उन दक्षजीसे कहा कि हे दक्षजी ! मैं तुम्हारे वचन को करूंगा जाइये तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥७॥ दक्षजी के जानेपर तदनन्तर फिर चन्द्रमा रोहिणी में रतहुआ और प्रजापति दक्षजीसे उपजी हुई सबकन्याओं को त्याग किया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर फिर सब जाकर दुःखित होतीहुई दक्षजीसे बोलीं कि दुष्टात्मा चन्द्रमा ने तुम्हारा वचन नहीं किया ॥ ९ ॥ और दुर्भाग्य के दुःखसे संतप्त हम सब मरजावैंगी इसमें सन्देह नहीं है और इस जीवन से मरण उत्तम होगा ॥१०॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसके अनन्तर क्रोध से संयुत दक्षजीने जाकर चन्द्रमा से कहा कि हे पापचन्द्र ! जिसलिये तुमने मेरे वचनको नहीं किया ॥११॥

मि दक्षगच्छनमोस्तुते ॥ ७ ॥ गतेदक्षेततोभूयश्चन्द्रमारोहिणीरतः ॥ त्यक्ताश्चकन्यकास्सर्वाः प्रजापतिसमुद्भवाः ॥ ८ ॥ अथगत्वापुनःसर्वा दक्षमूचुःसुदुःखिताः ॥ नकृतंतववाक्यंच चन्द्रेणैवदुरात्मना ॥ ९ ॥ दौर्भाग्यदुःखसंतप्ता म रिष्यामोनसंशयः ॥ अनेनजीवितेनापि श्रेयोहिमरणंभवेत् ॥ १० ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथरोषसमायुक्तो दक्षोगत्वा निशाकरम् ॥ ममवाक्यन्त्वयाचन्द्र यस्मात्पापकृतंनहि ॥ ११ ॥ क्षयमेष्यसितस्मात्त्वं यक्ष्मणाव्यापितोभव ॥ एवं दत्त्वाततःशापं गतोदक्षःस्वमालयम् ॥१२ ॥ यक्ष्मणाव्यापितश्चन्द्रः क्षयंयातिदिनेदिने ॥ सक्षीणोद्युतिहीनस्तु चि न्तयामासचन्द्रमाः ॥१३॥ किंकर्त्तव्यंमयातत्र ह्यस्मिञ्छापेसुदारुणे ॥ अर्बुदेपूजयिष्यामि सर्वकामप्रदंशिवम् ॥१४॥ सएवंनिश्चयंकृत्वा गतोर्बुदमथाचलम् ॥ तपस्तेपेजितक्रोधो जपहोमपरायणः ॥ १५ ॥ तस्मैतुष्टोमहादेवो वर्षाणा मयुतेगते ॥ अब्रवीद्वरदोस्मीति तमुक्त्वादर्शनंददौ ॥ १६ ॥ ईश्वर उवाच ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ तव

इसलिये यक्ष्मा रोगसे व्यापित होवो व क्षयको प्राप्त होवोगे इसप्रकार शाप देकर तदनन्तर दक्ष अपने स्थान को चले गये ॥ १२ ॥ और यक्ष्मा से व्यापित चन्द्रमा दिन दिन क्षय होनेलगा व क्षीण तथा प्रकाशहीन उस चन्द्रमा ने विचार किया ॥ १३ ॥ कि इस भयंकर शाप में मुझको क्या करना चाहिये मैं उस अर्बुद पर्वत पै सब कामनाओं को देने वाले शिवजीको पूजूंगा ॥ १४ ॥ ऐसा निश्चयकर वह अर्बुद पर्वत पै गया और क्रोध को जीते व जप, होम में परायण उसने तपस्या किया ॥ १५ ॥ और दशहज़ारवर्ष बीतने पर महादेव जी उसके ऊपर प्रसन्न हुये व बोले कि मैं वरदायक हूं यह उस चन्द्रमा से कहकर दर्शन देते भये ॥ १६ ॥

महादेवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण होवै और तुम्हारे मनमें जो वर्तमान हो उस वरदान को मागो हे चन्द्रमा ! यद्यपि दुर्लभ भी होगा तथापि मैं तुमको दूंगा ॥ १७ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे सुरश्रेष्ठ, त्रिपुरातक ! मेरे रोग का नाश कीजिये हे जगदीश ! मेरा यह शरीर यक्ष्मा से व्यापित है ॥ १८ ॥ महादेवजी बोले कि जिसलिये तुम्हारे शरीर में दक्षजीके शाप से रोग टिका है इसलिये मैं उन महात्मा दक्षजी के शाप को अन्यथा नहीं कर सक्ता हूं ॥ १९ ॥ इसकारण हे निशाकर ! उन दक्षकी सब कन्याओं को तुम मेरे वचन से समान देखो तो तुम्हारा रोग जावैगा ॥ २० ॥ हे सोम ! कृष्णपक्ष में क्षय व शुक्लपक्ष में वृद्धि होगी और जो तुमको अन्य दुर्लभ

दास्याम्यहंचन्द्रं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ १७ ॥ चन्द्र उवाच ॥ व्याधिक्षयंसुरश्रेष्ठ कुरुमेत्रिपुरान्तक ॥ यक्ष्मणा व्यापितोदेहो ममायंचजगत्पते ॥ १८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ दक्षशापेनव्याधिस्ते यस्मात्कायेव्यवस्थितः ॥ नशक्तोम्य न्यथाकर्त्तुं शापंतस्यमहात्मनः ॥ १९ ॥ तस्मात्त्वंतस्यताःसर्वाः कन्यकाममवाक्यतः ॥ निशाकरसमंपश्य तवव्या धिर्गमिष्यति ॥ २० ॥ पक्षेकृष्णेक्षयःसोमशुक्ले वृद्धिर्भविष्यति ॥ वरंवरयभद्रन्ते अन्यद्यत्तेसुदुर्लभम् ॥ २१ ॥ चन्द्र उवाच ॥ सोमग्रहेनरोयोत्र सोमवारेचशङ्कर ॥ भक्त्यास्नानंकरोत्येव सयातुपरमाङ्गतिम् ॥ २२ ॥ पिण्डदानेनदेवेश स्वर्गंगच्छन्तिपूर्वजाः ॥ प्रसादात्तवदेवेश तीर्थंभवतुमुक्तिदम् ॥ २३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ भविष्यन्तिनरोत्रैव निष्पापमां नोनिशाकर ॥ यस्मात्प्रभात्वयाप्राप्ता तीर्थेस्मिन्ममलोकदे ॥ २४ ॥ प्रभासन्नामतीर्थाग्र्यं तस्मादेतद्भविष्यति ॥ येत्र सोमग्रहेप्राप्ते सोमवारेविशेषतः ॥ २५ ॥ करिष्यन्तिनराःस्नानं तेयास्यन्तिपरांगतिम् ॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति

हो उस वरको मागो तुम्हारा कल्याण होवै ॥ २१ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे शंकरजी ! चन्द्रग्रहण में व सोमवार में जो मनुष्य यहां भक्तिसे स्नान करै वह उत्तम गतिको प्राप्त होवै ॥ २२ ॥ व हे देवेश ! पिंडदान से पितर स्वर्ग को जावैं व तुम्हारी प्रसन्नता से तीर्थ मुक्तिदायक होवै ॥ २३ ॥ महादेवजी बोले कि हे निशाकर ! यहांपर मनुष्य पापहीन होवैंगे और जिसलिये मेरे लोक को देनेवाले इस तीर्थ में तुमने प्रभा पाया है ॥ २४ ॥ उसीकारण यह प्रभासनामक तीर्थों में श्रेष्ठ होगा।

और जो मनुष्य चन्द्रग्रहण प्राप्त होनेपर विशेषकर सोमवार में इस तीर्थ में स्नान करैंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवैंगे और जो मनुष्य यहां श्राद्ध व पिंडदान करैंगे ॥ २५ । २६ ॥ उनको हे चन्द्र ! गयाश्राद्धके समान फल होगा इस कारण मनुष्य तुम्हारे इस कुण्डमें स्नान करैंगे ॥ २७ ॥ पुलस्त्य जी बोले कि ऐसा कहकर विरूपलोचन शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये और चन्द्रमाने भी दक्ष से उपजीहुई अपनी सब स्त्रियों को भोग किया ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाचन्द्रप्रभासतीर्थमाहात्म्यंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

पिण्डदानंतथानराः ॥२६॥ गयाश्राद्धसमंपुण्यंतेषांचन्द्रभविष्यति ॥ तस्मादत्रकरिष्यन्तिस्नानंलोकाह्रदेतव ॥ २७॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वाविरूपाक्षस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ चन्द्रोपिबुभुजेसर्वाः पत्नीस्स्वादक्षसम्भवाः ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेचन्द्रप्रभासतीर्थमाहात्म्यन्नामविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ पुण्ड्रोदकमनुत्तमम् ॥ तीर्थंयत्रतपस्तप्तं पुण्ड्रोदकंद्विजातिना ॥ १॥ पुरापुण्ड्रोदकोनाम ब्राह्मणोभून्महीपते ॥ मन्दप्रज्ञोल्पमेधावी सोपाध्यायेनताडितः ॥ २ ॥ अशक्तोऽध्ययनंकर्त्तुं जाड्यभावान्महीपते ॥ सवैराग्यपरोमर्तुं सम्प्राप्तोगिरिगह्वरे ॥३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तत्रैवचसरस्वती ॥ वीणाविनोदसंयुक्ताविविक्तेपथिचस्थिता ॥४॥ तंदृष्ट्वाब्राह्मणंमग्नंवैराग्येणसमन्वितम् ॥ कृपाविष्टासमुद्धृत्य वाक्यमेतदुवाचह॥५॥

दो० । पुंड्रोदक तीरथ कियो पुंड्रोदक द्विज नाम । सो इकीस अध्याय में कह्यो चरित्र ललाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अतिउत्तम पुंड्रोदक तीर्थ को जावै जिस तीर्थ में पुंड्रोदक ब्राह्मण ने तप किया है ॥ १ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय पुंड्रोदकनामक ब्राह्मण हुआ है मंदबुद्धि व अल्पबुद्धि वह उपाध्याय (पाठक) से ताड़ित हुआ ॥ २ ॥ क्योंकि हे राजन् ! जड़ता से वह पढ़ने के लिये असमर्थ था वैराग्य में तत्पर वह मरने के लिये पर्वत की गुहा में प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ इसी अवसर में वहीं पर वीणा के विनोद (खेल) से संयुत सरस्वतीजी एकान्त मार्ग में स्थित हुईं ॥ ४ ॥ वहां वैराग्य से संयुत व मग्न ब्राह्मण को देखकर दयासे

संयुत सरस्वतीजी निकाल कर यह वचन बोलीं ॥ ५ ॥ सरस्वतीजी बोलीं कि हे श्रेष्ठ ! यहां सरस्वती की निन्दा करते हुये तुम क्यों मरते हो और क्यों मेरा दोष किया जाताहै व किसलिये तुम मृत्यु को चाहते हो ॥ ६ ॥ हे महाभाग ! इसको शीघ्रही कहिये मैं तुम्हारे दुःखको नाशकरूंगी ॥ ७ ॥ पुंड्रोदक बोले कि उपाध्याय से तिरस्कृत मैं वैराग्य को प्राप्त हुआ हूं हे महाभागे ! बुद्धि से हीन मैं इस समय मृत्यु को चाहता हूं ॥ ८ ॥ क्योंकि हे वरानने ! सरस्वती देवी मेरी जिह्वाके अग्र-भाग पै नहीं वर्तमान हैं अन्य कारण मेरी मृत्युका नहीं है ॥ ९ ॥ तुम कौनहो और किस कारण तुमने मुझको इस जल से निकाला है मूर्खता से मुझको मरना

सरस्वत्युवाच ॥ कस्मात्त्वंम्रियसेश्रेष्ठ गर्हयन्त्वांशारदामिह ॥ कस्मान्मेक्रियतेदोषः कस्मात्त्वंमृत्युमिच्छसि ॥ ६ ॥ वदशीघ्रंमहाभाग तवार्तिंनाशयाम्यहम् ॥ ७ ॥ पुण्ड्रोदक उवाच ॥ अहंवैराग्यमापन्न उपाध्यायतिरस्कृतः ॥ प्रज्ञाहीनोमहाभागे मृत्युंवाञ्छामिसाम्प्रतम् ॥ ८ ॥ नमेसरस्वतीदेवी जिह्वाग्रेपरिवर्त्तते ॥ कारणंनान्यदस्तीह मृत्योर्मेवरानने ॥ ९ ॥ कात्वंकस्मात्त्वयाचाहं तोयादस्मात्समुद्धृता ॥ मरणंहिममश्रेयो मूर्खभावान्नजीवितम् ॥ १० ॥ सरस्वत्युवाच ॥ अहंसरस्वतीदेवी सदास्मिन्वरपर्वते ॥ निशिगानंत्रयोदश्यां करोमिद्विजवीणया ॥ ११ ॥ समान्त्वं प्रार्थयवरं यदभीष्टंसुदुर्लभम् ॥ पुण्ड्रोदक उवाच ॥ प्रसादात्तववैवाणीप्रवर्ततुशुचिस्मिते ॥ १२ ॥ एतत्तीर्थन्तुमन्नाम्ना ख्यातिंयातुशुचिस्मिते ॥ सरस्वत्युवाच ॥ अद्यप्रभृतिवाग्मीत्वमत्रलोकेभविष्यसि ॥ १३ ॥ नाम्नातवतथातीर्थमेतत्ख्यातिंप्रयास्यति ॥ निशामुखेत्रयोदश्यां योत्रस्नानंकरिष्यति ॥ १४ ॥ भविष्यतिससर्वज्ञो यद्यपिस्यात्सुम

कल्याणदायक है जीना नहीं है ॥ १० ॥ सरस्वती जी बोलीं कि हे द्विज ! मैं सरस्वती देवी सदैव इस उत्तम पर्वत पै तेरसि में रात्रिको वीणा से गान करती हूं ॥ ११ ॥ सो तुम जो प्रिय व दुर्लभ वर हो उसको मागो पुंड्रोदक बोले कि हे शुचिस्मिते ! तुम्हारी प्रसन्नता से वाणी वर्तमान होवै ॥ १२ ॥ व हे शुचिस्मिते ! मेरे नाम से यह तीर्थ प्रसिद्धिको प्राप्त होवै सरस्वतीजी बोलीं कि आजसे लगाकर तुम इस लोक में प्रशस्तवचन होगे ॥ १३ ॥ और तुम्हारे नाम से यह तीर्थ प्रसिद्धिको प्राप्त होगा और जो तेरसिमें निशामुख (संध्या) में इस तीर्थ में स्नान करैगा ॥ १४ ॥ वह यद्यपि मंदबुद्धि होगा तथापि सर्वज्ञ होगा व हे द्विजोत्तम ! जिसलिये

यहां मेरा सदैव निवास होगा इस कारण भलीभांति सावधान पुरुषों को सदैव इसमें स्नान करना चाहिये ऐसा कहकर तदनन्तर सरस्वती देवी वहीं अन्तर्द्धान होगई ॥ १५ । १६ ॥ और पुंड्रोदक सर्वज्ञ होकर इसके बाद अपने घरको चलागया ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांपुण्ड्रोदकतीर्थमाहात्म्यंनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । जिमि श्रीमाता देवि कर अहै अतुल परभाव । सो बाइस अध्याय में वरन्यो चरित सुहाव ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वहां जावै जहां

न्दधीः ॥ अत्रमेसततंवासो भविष्यतिद्विजोत्तम ॥ १५ ॥ यस्मात्तस्मात्सदास्नानं कर्त्तव्यंसुसमाहितैः ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी तत्रैवान्तरधीयत ॥ १६ ॥ पुण्ड्रोदकोहिसर्वज्ञो भूत्वाथस्वगृहंययौ ॥ १७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेपुण्ड्रोदकतीर्थमाहात्म्यन्नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ श्रीमातादेववन्दिता ॥ सर्वकामप्रदानॄणामिहलोकेपरत्रच ॥ १ ॥ यासासर्वमयीशक्तिर्ययाव्याप्तमिदंजगत् ॥ सास्मिन्नलगिरौसाक्षात्स्वयंवासमरोचयत् ॥ २ ॥ योयं काममभिध्याय तामर्चयति भूमिप ॥ तत्सर्वंसमवाप्नोति तत्प्रसादादसंशयम् ॥ ३ ॥ पुरादेवयुगेराजन् वाष्कलिर्नामदानवः ॥ तेनसर्वमिदंव्याप्तं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ४ ॥ इन्द्रःप्रच्यावितःस्वर्गात्तस्मात्रस्तोनराधिप ॥ ब्रह्मलोकमनुप्राप्तः सर्वदेवैःसमन्वितः ॥ ५ ॥

कि देवताओं से प्रणाम की हुई श्रीमाता हैं जो कि इसलोक व परलोक में मनुष्यों की सब कामनाओं को देती हैं ॥ १ ॥ और जो वह सर्वमयी शक्ति है व जिससे यह संसार व्याप्त है उसने इस नलपर्वत पै निवास की रुचि किया ॥ २ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य जिसकामना को विचारकर उस भगवती को पूजता है वह उसके प्रसाद से निस्सन्देह उस सब मनोरथ को पाता है ॥ ३ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय देवयुग में वाष्कलिनामक दानव हुआ है उससे चराचरसमेत यह सब त्रिलोक व्याप्त होगया ॥ ४ ॥ हे नराधिप ! उसने इन्द्र को स्वर्ग से अलग कर दिया और उससे डरेहुये इन्द्र सब देवताओंसमेत ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये ॥ ५ ॥

और उसने मखसूदननामक दैत्य को सूर्य किया व विज्वरानामक दैत्य को चन्द्रमा किया और आपही इन्द्र हुआ॥ ६ ॥ व हे नराधिप ! उसने सब दैत्योंको यथा-योग्य मरुत्, साध्य, विश्वेदेवता व देवर्षि किया ॥ ७ ॥ और वे सब पृथ्वी में डालेहुये यज्ञभागको लेते थे तदनन्तर वह तपस्या के लिये अर्बुदपर्वत पै गया और वसु अर्बुद के मध्य में ॥ ८ ॥ आज भी फलको देनेवाला देवखात ससार में प्रसिद्ध है वहा सब व्रत में तत्पर हैं जहा कि मूल व फलों को खानेवाले ॥ ९ ॥ अव्यक्त व परम शक्तिको ध्यान करते हुये मुनिलोग वहीं स्थितहैं कोई पचाग्निसाधन करनेवाले व कोई आराधन में तत्पर हैं ॥ १० ॥ और अन्य पुरुष एकबार

तेनादित्यःकृतोनाम्ना दानवोमखसूदनः ॥ चन्द्रोपिविज्वरानाम स्वयमिन्द्रोबभूवह ॥ ६ ॥ वसवोमरुतःसाध्या विश्वेदेवाःसुरर्षयः ॥ तेनसर्वेकृतादैत्या यथायोग्यंनराधिप ॥ ७ ॥ यज्ञभागंचगृह्णन्ति तेसर्वेभुविपातितम् ॥ तपोर्थन्तु ततोगात्स पर्वतेर्बुदमध्यतः ॥ ८ ॥ अद्यापिदेवखातन्तु लोकख्यातंफलप्रदम् ॥ तत्रव्रतपरास्सर्वे पत्रमूलफलाशनाः ॥ ९ ॥ अव्यक्तांपरमांशक्तिं ध्यायन्तस्तत्रसंस्थिताः ॥ पञ्चाग्निसाधकाः केचिदाराधनपरायणाः ॥ १० ॥ एकाहारानिराहारा वायुभक्षास्तथापरे ॥ दन्तोलूखलिनश्चान्ये अश्मकुट्टास्तथापरे ॥ ११ ॥ अन्येमासोपवासाश्च चान्द्रायणपरायणाः ॥ कृच्छ्रसान्तपनाविष्टा महापाराकिनःपरे ॥ १२ ॥ अम्बुभक्षावायुभक्षाः फेनपाश्चोष्मपाःपरे ॥ जपहोमपराश्चान्ये ध्यानासक्तास्तथापरे ॥ १३ ॥ बलिनैवेद्यदानैश्च गन्धधूपैर्नराधिप ॥ पूजनीयापरादेवी नित्याव्यक्तस्वरूपिणी ॥ १४ ॥ एवंतेषांव्रतस्थानां तपसाभावितात्मनाम् ॥ विमुक्तिरभवद्राजन् सर्वेषांकर्मबन्धनात् ॥ १५ ॥ ततःपूर्णे

भोजन करनेवाले व निराहार तथा पवनभक्षी हैं व अन्य लोग दंतरूपी ओखली से कूटकर खानेवाले तथा पत्थर से कूटकर भोजन करनेवाले हैं ॥ ११ ॥ अन्य महीने भर उपास करनेवाले व चांद्रायणव्रत में परायण तथा अन्य कृच्छ्र सातपन से संयुत व महापाराक व्रत को करनेवाले हैं ॥ १२ ॥ व अपर लोग जल पीनेवाले, पवनभोजी, फेन पीनेवाले व ऊष्मा (गरमी) पीनेवाले हैं और अन्य लोग जप व होम में तत्पर तथा अन्य ध्यान में लगेहुये हैं ॥ १३ ॥ हे नराधिप ! नित्य व अव्यक्तरूपिणी उत्तम देवी बलि व नैवेद्य दान तथा चन्दन व धूपों से पूजने योग्य है ॥ १४ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार तपस्या से शुद्ध चित्तवाले व व्रतमें

स्थित उन सब मुनियों की कर्मबन्धन से मुक्ति हुई ॥ १५ ॥ हे नृपोत्तम! हज़ार वर्ष पूर्ण होने पर कन्या के रूपको धारण करनेवाली देवी आखों के सामने प्राप्त हुई ॥ १६ ॥ हे महाराज ! पहले नेत्रों को भयदायक धुंआ उत्पन्न हुआ तदनन्तर ज्वाला पैदा हुई उसके उपरान्त श्वेत वस्त्र व अनुलेपनोंवाली कन्या पैदा हुई ॥ १७ ॥ उसको देखकर तदनन्तर हाथों को जोड़े हुये देवताओं ने स्तुति किया ॥ १८ ॥ देवता बोले कि हे सर्वव्यापिनी, देवि ! तुम्हारेलिये प्रणाम है शिवपूजित ! तुम्हारेलिये नमस्कार है हे कामगे, अचिन्त्ये ! तुम्हारेलिये प्रणाम है हे देवाश्रये ! तुम्हारेलिये प्रणाम है ॥ १९ ॥ हे परमे, देवि ! तुम्हारेलिये नमस्कार है

सहस्रान्ते वर्षाणांनृपसत्तम ॥ देवीप्रत्यक्षतांप्राप कन्यकारूपधारिणी ॥ १६ ॥ पूर्वंयज्ञेमहाराज धूममक्षिभयावहम्॥ ततोज्वालाततःकन्याशुक्लवस्त्रानुलेपना ॥ १७॥ तांदृष्ट्वातुष्टुवुर्देवाः कृताञ्जलिपुटास्ततः ॥ १८ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमोस्तुसर्वगेदेवि नमस्तेशिवपूजिते॥नमस्तेकामगेचिन्त्ये नमस्तेत्रिदशाश्रये॥१९॥ नमस्तेपरमेदेवि ब्रह्मयोनेनमोनमः॥ आधात्रिपरमेदेवि तुभ्यमस्तुनमोनमः ॥ २० ॥ नमस्तेपद्मपत्राक्षि विश्वमातर्नमोस्तुते॥ नमस्तेवरदेकालि रजस्सत्त्वतमोधिके ॥ २१ ॥ त्वंपुष्टिस्त्वंस्थितिर्देवि त्वंचसंसारलक्षणम् ॥ त्वंबुद्धिस्त्वंधृतिःक्षान्तिस्त्वंस्वाहात्वंस्वधाक्षमा॥ २२ ॥ त्वंवृद्धिश्चगतिःकान्तिः शचीलक्ष्मीश्चपार्वती॥ सावित्रीत्वंचगायत्री अजेयापापनाशिनी ॥ २३ ॥ यच्चदृष्टंश्रुतंदेवि त्रैलोक्येस्तीतिसञ्ज्ञके॥ तद्वस्तुतावकंदेवि पुरुषेषुचसंस्थितम् ॥ २४ ॥ वह्निनातुयथाकाष्ठं तैलेनचयथातिलाः॥

हे ब्रह्मयोने ! तुम्हारेलिये नमस्कार है नमस्कार है आधात्रि, परमे, देवि ! तुम्हारेलिये नमस्कार है नमस्कार है ॥ २० ॥ हे कमलपत्रलोचनि ! तुम्हारेलिये प्रणाम है हे विश्वमातः ! तुम्हारेलिये प्रणाम है हे वरदायिनि, कालि, रजःसत्त्वतमोधिके ! तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ २१ ॥ हे देवि ! तुम पुष्टिहो तुम स्थिति हो और तुम संसार का लक्षण हो तुम बुद्धि हो तुम धृति हो तुम क्षांति हो तुम स्वाहा हो तुम स्वधा हो तुम क्षमाहो ॥ २२ ॥ और तुम वृद्धि हो गतिहो कान्तिहो और इन्द्राणी, लक्ष्मी व पार्वती हो और तुम सावित्री व गायत्री हो तथा न जीतने योग्य व पापविनाशिनी हो ॥ २३ ॥ हे देवि ! इस त्रिलोकसंज्ञक संसार में जो देखा व सुना

गया है हे देवि ! पुरुषों में स्थित वह वस्तु तुम्हारी है ॥ २४ ॥ जैसे अग्निमें काठ व तैल से तिल व्याप्त हैं वैसेही तुमसे संसार व्याप्त है और तुम गुप्त भाव से स्थितहो ॥ २५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसप्रकार स्तुति की हुई जगदंबिकाजी उनसुरोत्तमोंसे बोलीं कि हे सुरोत्तमो ! मुझसे शीघ्रही प्रिय वरदानको मांगो ॥ २६ ॥ और बिलमध्यमें प्राप्त तुमलोग यहां क्यों गुप्त भावसे टिकेहो चराचर त्रिलोकमें भी मेरे भक्तोंको डर नहीं होताहै ॥ २७॥ देवता बोले कि हे देवि ! वाष्कलि दैत्यसे निकालेहुये हमलोग विचरतेहैं और उससे चराचरसमेत यह सब त्रिलोक व्याप्तहै ॥ २८ ॥ हमलोगोंका यज्ञभाग नष्टहोगया और दैत्योंको दियागया उससे हम सब

तथात्वयाजगद्व्याप्तं गुप्तभावेनसंस्थिता ॥ २५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंस्तुताजगन्माता तानुवाचसुरोत्तमान् ॥ वरो मेयाच्यतांशीघ्रमभीष्टंसुरसत्तमाः ॥ २६ ॥ किमत्रगुप्तभावेन तिष्ठध्वंश्वभ्रमध्यगाः ॥ मद्भक्तानांभयंनास्ति त्रैलोक्येपिचराचरे ॥ २७ ॥ देवा ऊचुः ॥ वयंवाष्कलिनादेवि निरस्तास्सञ्चरेमहि ॥ तेनव्याप्तमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥२८॥ यज्ञभागोहृतोस्माकं दैत्यानांसम्प्रकल्पितः ॥ तेनखिन्नावयंसर्वेसन्देहंपरमङ्गताः ॥२९॥ त्वत्प्रसादाद्यथाभूयः शक्रस्स्वपदमाप्नुयात् ॥ तथाकुरुमहाभागे एषनोवरईप्सितः ॥ ३० ॥ देव्युवाच ॥ यथायूयंमयासृष्टास्तथातेविहिता मया ॥ विशेषोनास्तिमेकश्चिदुभयोस्सुरसत्तमाः ॥ ३१ ॥ तस्मात्तान्वारयिष्यामि दास्येशक्रंदिवंपुनः ॥ एवमुक्त्वावरारोहा प्रेषयामासपार्थिव ॥ ३२ ॥ दूतंवाष्कलिदैत्याय त्यजत्वाशुदिवंद्रुतम् ॥ वाष्कलिंपार्थिवश्रेष्ठ सामपूर्वमिदंवचः ॥ ३३ ॥ दूत उवाच ॥ यासासर्वगतादेवी शक्तिरूपासुविस्मिता ॥ श्रीमाताजगतांमाता अव्यक्ताव्यक्तिमागता ॥ ३४ ॥

दुःखी हैं और बड़े सन्देह को प्राप्त हैं ॥ २९ ॥ हे महाभागे ! जिसप्रकार तुम्हारी प्रसन्नता से इन्द्र फिर अपने स्थान को प्राप्त होवैं वैसाही कीजिये यह हमलोगों का प्रियवर है ॥ ३० ॥ देविजी बोलीं कि मैंने जिसप्रकार तुमलोगों को रचा है वैसेही उनको मैंने बनाया है हे सुरोत्तमो ! दोनों में कोई भेद नहीं है ॥ ३१ ॥ इस लिये उनको मना करूंगी और इन्द्र को फिर स्वर्ग दूंगी हे राजन् ! वरारोहा श्रीमाता ने ऐसा कहकर बाष्कलि दैत्य के लिये दूतको पठाया व हे नृपश्रेष्ठ ! प्रिय वचनपूर्वक यह वाष्कलि से कहा कि स्वर्ग को शीघ्रही छोड़ देवै ॥ ३२ । ३३ ॥ दूत बोला कि जो शक्तिरूपिणी सर्वव्यापिनी व विस्मिता देवी है वह अव्यक्ता व

लोकों की माता श्रीमाता व्यक्ति को प्राप्त हुई है ॥ ३४ ॥ व सब देवताओं से आराधन कीहुई उसने प्रसन्न होकर तुमसे यह कहा है कि तुम शीघ्रही अपने स्थान को जावो और इन्द्र स्वर्गको जावैं ॥ ३५ ॥ हे दानवोत्तम ! मेरे वचन से शीघ्रही जावो ऐसा उसने कहा है ॥ ३६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! दूतका वचन सुनकर मदसे गर्वित व महादेवजी से वरदान को पाये हुयेवह गर्वसमेत यह बोला ॥ ३७ ॥ वाष्कलि बोला कि कौन श्रीमाता है और कौन देवता हैं व किसकारण मैं स्वर्ग को छोड देऊँ देवता ब्रह्मलोक को गये हैं उसकारण ब्रह्माकी सभा को जाकर ॥ ३८ ॥ मैं उन सब देवताओंको निस्सन्देह पीडित करूंगी और बहुत भयं-

देवैराराधितासर्वैस्तुष्टात्वामिदमब्रवीत ॥ स्वस्थानंगच्छशीघ्रंत्वं शक्रोयातुत्रिविष्टपम् ॥ ३५ ॥ मद्वाक्याद्दानवश्रेष्ठ शीघ्रंगच्छेतिसाब्रवीत् ॥ ३६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सदूतोवचनंश्रुत्वा दानवोमदगर्वितः ॥ हरलब्धवरोभूप सगर्वमिदमब्रवीत् ॥ ३७ ॥ वाष्कलिरुवाच ॥ काश्रीमाताहिकेदेवाः कस्मात्स्वर्गंत्यजाम्यहम् ॥ ब्रह्मलोकंगतादेवा गत्वाब्रह्मसदस्ततः ॥ ३८ ॥ बाधयिष्येचसर्वांस्तान्देवानहमसंशयम् ॥ दूतोवध्योनचभवेद्राज्ञावैरेसुदारुणे ॥ ३९ ॥ एतस्मात्कारणाद्दूत नत्वांप्राणैर्वियोजये ॥ श्रीमातरंचमेदूत दर्शयिष्यसिचेत्ततः ॥ ४० ॥ अभीष्टंसम्प्रदास्यामि सत्यमेवब्रवीम्यहम् ॥ अहन्त्वयासमंतत्र यास्येयत्रैवसास्थिता ॥ ४१ ॥ निग्रहंचकरिष्यामि वाक्पारुष्यस्यकारणात् ॥ ४२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वामदान्धोसौ दूतेनसहदानवः ॥ अर्बुदंप्रययौतूर्णं रोषेणमहतावृतः ॥ ४३ ॥ दृष्ट्वावाष्कलिमायान्तं देवाःशक्रपुरोगमाः ॥ वार्यमाणास्तदादेव्या पलायनपरायणाः ॥ ४४ ॥ भयेनमहताविष्टा दिशोभेजुःसम

कर वैर भी होने पर दूत राजा से मारने योग्य नहीं होताहै ॥ ३९ ॥ इसकारण हे दूत ! मैं तुमको प्राणोंसे अलग नहीं करताहूं और हे दूत ! यदि मुझे श्रीमाता को दिखावोगे तो ॥ ४० ॥ मैं मनोरथ को दूगा यह मैं सत्य कहता हूं और मैं वहां तुम्हारे साथ जाऊंगा जहां कि वह स्थित है ॥ ४१ ॥ और वचनों की कठोरता के कारण मैं निग्रह (दण्ड) करूंगा ॥ ४२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर मदसे अन्ध व बड़े क्रोधसे घिराहुआ यह दानव दूतके साथ शीघ्रही अर्बुदपर्वत पै गया ॥ ४३ ॥ आते हुये वाष्कलि को देखकर उससमय इन्द्रादिक देवता देवीजी से वारित हुये और भागने में तत्पर हुये ॥ ४४ ॥ व बड़े भयसे संयुत वे देवता

सब ओर दिशाओंको चले गये इसकेअनन्तर बड़ीसेना से घिराहुआ यह वाष्कलि वहां प्राप्त हुआ ॥ ४५ ॥ जहां कि अर्बुदसंज्ञक पर्वत पै श्रीमाता स्थित थीं हे नरा-धिप ! वाष्कलि ने उसी दूतको पठाया ॥ ४६ ॥ वाष्कलि बोला कि हे दूत ! सुन्दर हास्यवाली श्रीमाता के समीप जाइये व वरदान कहिये कि हे सुश्रोणि ! मेरी स्त्री होवो मैं सदैव तुम्हारे वश में प्राप्त हूं ॥ ४७ ॥ और मेरा सब राज्य तुम्हारे वश में प्राप्त होगा नहीं तो मैं सब सुरोत्तमोंसमेत धर्षणा करूंगा ॥ ४८ ॥ हे वरानने ! अल्पबलवाले इन्द्र से व अन्य देवताओं से क्या है क्योंकि वे देवता मेरे और तुम्हारे हज़ारवें अंश के बराबर नहीं हैं ॥ ४९ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे महीपते !

न्ततः ॥ अथासौवाष्कलिःप्राप्तः सैन्येनमहतावृतः ॥ ४५ ॥ श्रीमातातिष्ठतेयत्र पर्वतेर्बुदसञ्ज्ञके ॥ दूतंचप्रेषयामास तमे वचनराधिप ॥ ४६ ॥ वाष्कलिरुवाच ॥ गच्छदूतवरम्ब्रूहि श्रीमाताचारुहासिनी ॥ भार्यामेभवसुश्रोणि अहन्तेवशग स्सदा ॥ ४७ ॥ भविष्यतिहिमेराज्यं सर्ववशगतंतव ॥ अन्यथाधर्षयिष्यामि सर्वैःसार्द्धंसुरोत्तमैः ॥ ४८ ॥ किमिन्द्रे णाल्पवीर्येण किमन्यैश्चवरानने ॥ सहस्रांशेनमेतुल्याःसर्वेनतववैबुधाः ॥ ४९ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वाततोग त्वा सद्दूतःसंन्यवेदयत् ॥ तस्यसर्वंयथावाक्यं तेनोक्तंचमहीपते ॥ ५० ॥ तच्छ्रुत्वासस्मितंकृत्वा चिन्तयामासभामिनी ॥ जरामरणहीनोयं दैत्येन्द्रःशम्भुनाकृतः ॥ ५१ ॥ कथमस्यमयाकार्यो निग्रहोदेवताकृते ॥ एतच्चिन्तयतेयावत् सा देवीदानवंप्रति ॥ ५२ ॥ तावत्तत्रागतःशीघ्रं सकामेनपरिप्लुतः ॥ अथदृष्टिनिपातेन सादेवीदानवाधिपम् ॥ ५३ ॥ व्यालोकयदर्बुदस्था निश्चलःसबभूवह ॥ ततोजहाससादेवी शनकैर्नृपसत्तम ॥ ५४ ॥ मुखात्तस्यास्ततःसैन्यं निष्क्रान्त

इस वचन को सुनकर तदनन्तर उस दूतने उसका सब जैसा वचन उससे कहागया था उसको कहा ॥ ५० ॥ उस वचन को सुनकर भामिनि श्रीमाताने मुसक-राकर विचारकिया कि यह दैत्येन्द्र वाष्कलि शिवजी से वृद्धता व मृत्युसे रहित किया गया है ॥ ५१ ॥ देवताओं के लिये मुझको किसप्रकार इसका निग्रह (दण्ड) करना चाहिये जबतक वे देवीजी दानव के लिये इसको विचार करें ॥ ५२ ॥ तबतक कामदेव से मग्न वह दैत्य शीघ्रही वहां आया इसके अनन्तर अर्बुदपर्वत पै टिकीहुई उस देवी ने दृष्टिपातसे दानवेश (वाष्कलि) को देखा और वह निश्चल हुआ तदनन्तर हे राजन् ! वह देवी धीरे से हँसी ॥ ५३ । ५४ ॥ तदनन्तर उसके

मुखसे बहुत भयंकरसेना निकली हाथी व उत्तम घोड़े और अनेकभाति के पैंदल निकले ॥ ५५ ॥ और शस्त्रोंसे व्याप्त रथ और हज़ारों योधा निकले उनसे हे राजन्! दानवेश की सब सेना उस अचल दैत्य के देखतेहुये मारीगई उस सेना के नष्ट होनेपर इन्द्रादिक देवताओं ने ॥ ५६ । ५७ ॥ उस श्रीमातासे कहा कि हे देव-देवेशि, देवि ! यह दानव बहुत दुर्बुद्धि है इसके जीतेहुये हमलोगों का स्वर्ग में राज्य न होगा ॥ ५८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उनके उस वचन को सुनकर उस दैत्यको मृत्युरहित जानकर पर्वत के बड़ेभारी शिखर पै जाकर आपही उसके ऊपर ॥ ५९ ॥ इच्छा के अनुकूल रूप धरनेवाली वे जगदंबिका श्रीमाता बैठ गईं

मतिभीषणम् ॥ हस्तिनोहयवर्याश्च पादाताश्चपृथग्विधाः ॥ ५५ ॥ रथाःशस्त्रसमाकीर्णा योधाश्चापिसहस्रशः ॥ तैः सैन्यंदानवेशस्य सर्वंराजन्निपातितम् ॥ ५६ ॥ पश्यतस्तस्यदैत्यस्य निश्चलस्यासुरस्यच ॥ हतेसैन्यबलेतस्मिन्निन्द्राद्यास्त्रिदिवौकसः ॥ ५७ ॥ तामूचुर्देवदेवेशि दानवोयंसुदुर्मतिः ॥ नास्मिञ्जीवतिनोराज्यं स्वर्गेदेविभविष्यति ॥ ५८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ श्रुत्वातद्वचनंतेषां ज्ञात्वातंमृत्युवर्जितम् ॥ पर्वतस्यमहच्छृङ्गं गत्वातस्योपरिस्वयम् ॥५९॥ निविष्टासाजगन्माता श्रीमाताकामरूपिणी ॥ हितायजगतांराजन्नद्यापिवरपर्वते ॥ ६० ॥ तत्रसावसतेसाक्षान्नृणां कामप्रदायिनी ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सर्वेदेवास्सवासवाः ॥ ६१ ॥ तुष्टुवुस्तांमहाशक्तिं भयहन्त्रींप्रहर्षिताम् ॥ प्रसन्ना भूत्ततोदेवी तेषांतत्रनराधिप ॥ ६२ ॥ देव्युवाच ॥ स्वंस्वंस्थानंसुरास्सर्वे परियान्तुगतव्यथाः ॥ गत्वास्थानंस्वकंसर्वे परियान्तुगतव्यथाः ॥ ६३ ॥ तथान्यदपिदेवेन्द्र ब्रूहियत्तेमनोगतम् ॥ सर्वंचसम्प्रदास्यामि तुष्टाहंभक्तितस्तव ॥ ६४ ॥

हे राजन् ! लोकों के हितके लिये वे आज भी उत्तम पर्वत पै स्थित हैं ॥ ६० ॥ और मनुष्यों की कामनाओं को देनेवाली वे श्रीमाता वहां बसती हैं इसीसमय सें इन्द्रसमेत सब देवता ॥ ६१ ॥ भयनाशिनी व प्रसन्ना उस महाशक्तिकी स्तुति करते भये तदनन्तर हे नराधिप ! उनके ऊपर वे देवीजी प्रसन्न हुईं ॥ ६२ ॥ देवीजी बोलीं कि पीड़ारहित सब देवता अपने अपने स्थान को जावैं और अपने स्थान को जाकर परिपालन करैं ॥ ६३ ॥ वैसेही हे देवेन्द्र ! जो अन्य

भी तुम्हारे मनमें वर्तमान हो उसको कहिये तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न मैं सब कुछ तुमको दूंगी ॥ ६४ ॥ इन्द्र बोले कि हे देवि ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो हे शाश्वते, भक्तवत्सले ! जबतक मैं स्वर्ग में स्वामी रहूं तबतक तुम यहीं स्थित होवो ॥ ६५ ॥ हे सुरेश्वरि ! जिसलिये पहले महादेवजीने दैत्य को अजर व अमर किया है उसीसे निश्चल स्थिति होवै ॥ ६६ ॥ और तुम्हारी प्रसन्नता से तीनों लोक व्याधिरहित होवैं और हम सब आकर यहां तुमको पूजेंगे ॥ ६७ ॥ चैतम शुक्ल पक्षकी चौदसिमें तुमको देखकर मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होवैं पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर सब देवताओं से संयुत इन्द्रजी ॥ ६८ ॥ प्रसन्न होकर उन देवी

इन्द्र उवाच ॥ यदितुष्टासिमेदेवि शाश्वतेभक्तवत्सले ॥ अत्रैवस्थीयतांतावत्स्वर्गेयावदहंविभुः ॥ ६५ ॥ अजरश्चामरश्चैव यतोदैत्यस्सुरेश्वरि ॥ हरेणनिर्मितःपूर्वं तेनतिष्ठतुनिश्चलः ॥ ६६ ॥ प्रसादात्तवलोकाश्च त्रयःसन्तुनिरामयाः ॥ अत्रत्वांपूजयिष्यामो वयंसर्वेसमेत्यच ॥ ६७ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां दृष्ट्वात्वांयान्तुसद्गतिम् ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षः सर्वदेवैःसमन्वितः ॥ ६८ ॥ हृष्टस्त्रिविष्टपंप्राप्तो देव्यास्तस्याःप्रभावतः ॥ सापितत्रस्थितादेवी देवानांहितकाम्यया ॥ ६९ ॥ यस्तांपश्यतिचैत्रस्य चतुर्दश्यांसितेनृप ॥ सयातिपरमंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ७० ॥ किंव्रतैर्नियमैर्वापि दानैर्दत्तैर्नराधिप ॥ सर्वेतद्दर्शनाद्राजन् कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ७१ ॥ तत्रैवपादुकेदिव्ये तयान्यस्तेनराधिप ॥ यस्तेपश्यतिभूयोसौ संसारन्नहिपश्यति॥ ७२॥ सर्वान्कामानवाप्नोति इहलोकेपरत्रच ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्कालेद्विजश्रेष्ठ देव्यामुक्तेत्रपादुके ॥ ७३ ॥ कस्माच्चकारणाद्ब्रूहि सर्वंविस्तरतोमम ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तां

जीकी प्रसन्नता से स्वर्ग में प्राप्त हुये देवताओंके हितकी कामनासे वे देवी भी वहां स्थित हुई ॥ ६९ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य चैतके शुक्लपक्षमें चौदसि तिथि में उन श्रीमाता को देखताहै वह वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम स्थान कोप्राप्त होताहै ॥ ७० ॥ हे नराधिप ! व्रतों व नियमों और दानों के देने से क्याहै च हे राजन् ! उसके दर्शन से सब सोलहवीं कला के योग्य नहीं होते हैं ॥ ७१ ॥ हे नराधिप ! उस श्रीमाता ने वहीं दिव्य पादुकाओंको धरा है जो उनको देखताहै वह फिर संसारका नहीं देखता है ॥ ७२ ॥ और वह इसलोक व परलोक में सब कामनाओं को पाता है राजा बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! देवीजीने यहां किससमय पादुकाओं को धरा है ॥ ७३ ॥

और किसकारण पादुकाओं को धरा है सबको विस्तारसे मुझसे कहिये पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! उन देवीजी को देखकर सब मनुष्य ॥ ७४ ॥ अनेक प्रकार के धर्मकारणों से उत्तम सिद्धिको प्राप्तहोते थे इसीसमय में यज्ञ व दानादिक कर्म ॥ ७५ ॥ व हे राजन् ! तीर्थयात्रा तथा व्रतों से उपजे हुये कर्म पृथ्वी में नष्ट होगये और यमराज के जो नरक थे वे सब शून्य होगये ॥ ७६ ॥ और यज्ञभाग से हीन देवता बड़े कष्टको प्राप्तहुये इसके अनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! सब देवता वहां आये और उस अर्बुदपर्वत पै जाकर श्रीमती परमेश्वरी से बोले ॥ ७७ ॥ देवता बोले कि हे सुरेश्वरि ! मृत्युलोकमें सब अग्निष्टोमादिक कर्म नष्ट होगये उसी

देवींमानवास्सर्वे समीक्ष्यनृपसत्तम ॥ ७४ ॥ प्राप्नुवन्तिपरांसिद्धिं विविधैर्धर्मकारणैः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु यज्ञदानादिकाःक्रियाः ॥ ७५ ॥ प्रणष्टाभूतलेराजंस्तीर्थयात्राव्रतोद्भवाः ॥ शून्यास्तेनरकास्सर्वे सम्बभूवुर्यमस्यये ॥ ७६ ॥ यज्ञभागविहीनाश्च देवाःकष्टमुपागताः ॥ अथसर्वेनृपश्रेष्ठ देवास्तत्रसमागताः ॥ ऊचुर्गत्वार्बुदेतत्र श्रीमतींपरमेश्वरीम् ॥ ७७ ॥ देवा ऊचुः ॥ अग्निष्टोमादिकाःसर्वाः क्रियानष्टाःसुरेश्वरि ॥ मर्त्यलोकेवयंतेन कर्मणैवप्रपीडिताः ॥७८॥ दृष्ट्वात्वांदेविपाप्मानः सिद्धिंयान्तिसपूर्वजाः ॥ तस्माद्यथावयंपुष्टिं व्रजामस्तेप्रसादतः ॥ ७९ ॥ ननिष्क्रामतिदैत्यश्च वाष्कलिस्त्वंतथाकुरु ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा संचिन्त्यसुचिरन्तदा ॥ ८० ॥ मुमोचपादुकेतत्र कृत्वाचाश्मसमुद्भवे ॥ देवानुवाचराजेन्द्र सर्वतोर्तिमुपागतान् ॥ ८१ ॥ देव्युवाच ॥ युष्मद्वाक्यात्परित्यक्तो मयायंपर्वतोत्तमः ॥ विन्यस्तेपादुकेतस्य रक्षार्थंवाष्कलेस्सुराः ॥ ८२ ॥ मत्पादुकाभराक्रान्तो नसदैत्यःसुरोत्तमाः ॥ स्थानात्प्र

कर्म से हमलोग बड़े दुःखित हैं ॥ ७८ ॥ हे देवि ! तुमको देखकर पापी पुरुष पूर्वज पितरोंसमेत सिद्धिको प्राप्तहोते हैं इसलिये तुम्हारे प्रसाद से हमलोग जिस-प्रकार पुष्टिको प्राप्त होवैं ॥ ७९ ॥ और वाष्कलि दैत्य न निकलै तुम वैसाही करो पुलस्त्यजी बोले कि उनके उस वचन को सुनकर उससमय बहुत देर तक विचार कर ॥ ८० ॥ देवी ने पत्थर से उपजीहुई खडाउवों को बनाकर वहां छोड़ दिया व हे नृपेन्द्र ! सब ओर से दुःख को प्राप्त देवताओंसे कहा ॥ ८१ ॥ देवीजी बोलीं कि हे देवताओ ! तुमलोगों के वचन से मैंने इस उत्तम पर्वत को छोड़ दिया व उस वाष्कलिकी रक्षा के लिये खडाउवों को धरदिया ॥ ८२ ॥ हे सुरोत्तमो ! मेरी

मेरी पादुकाओं के भार से दबाहुआ वह दैत्य स्थान से चलने के लिये समर्थ नहीं है व जैसा मेरा संमत है ॥ ८३ ॥ वैसेही खड़ाउवों के लिये मैंने इस समस्त शास्त्रको निर्माण कियाहै जो कि पृथ्वी में प्राणियों के हितके लिये अध्यात्मिक (आत्मविद्या) है ॥ ८४ ॥ जो मनुष्य भक्तिसे इस शास्त्रके मार्ग से मेरी खड़ाउवोंको पूजैगा उसको मेरेदर्शन से उपजीहुई सिद्धि होगी ॥ ८५ ॥ चैत में शुक्लपक्ष की चौदसि में इस अर्बुदपर्वत की कन्दरा में गुप्त होकर मैंसदैव दिन रात बसूंगी ॥ ८६ ॥ और यह पर्वत मुझको प्रिय है इससे छोड़ने के लिये मैं मन नहीं करती हूं तथापि तुमलोगों के हितकी कामना से छोड़ दिया गया ॥ ८७ ॥ पुलस्त्यजी

चलितुंशक्तःमम्मतःस्याद्यथामम ॥ ८३ ॥ एतच्छास्त्रंमयाकृत्स्नं पादुकार्थंविनिर्मितम् ॥ अध्यात्मिकंहितार्थाय प्राणिनांपृथिवीतले ॥ ८४ ॥ शास्त्रमार्गेणचानेन भक्त्यायःपादुकेमम ॥ पूजयिष्यतिसिद्धिस्स्यात्तस्यमद्दर्शनोद्भवा ॥ ८५ ॥ चैत्रशुक्लचतुर्दश्यामहमत्रार्बुदेसदा ॥ अहोरात्रंवसिष्यामि सुगुप्तागिरिगह्वरे ॥ ८६ ॥ पर्वतोयंममाभीष्टो नचत्यक्तुंमनोदधे ॥ तथापिसम्परित्यक्तो युष्माकंहितकाम्यया ॥ ८७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वातुसादेवी समन्ताद्देवकिन्नरैः ॥ स्तूयमानाययौस्वर्गं मुक्त्वातेपादुकेस्वके ॥ ८८ ॥ अद्यापिसिद्धिमायान्ति योगिनोध्यानतत्पराः ॥ तन्निष्ठास्तद्धुतप्राया यथादेव्याःप्रदर्शनात् ॥ ८९ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ श्रीमातासम्भवंपुण्यंपादुकाभ्यांचभूपते ॥ ९० ॥ यस्त्वेतत्पठतेभक्त्या शृणुतेवाथयोनरः ॥ सोपिपापैर्महाराज मुच्यतेज्ञानतःकृतैः ॥ ९१ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेश्रीमातामाहात्म्यन्नामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥

बोले कि ऐसा कहकर वह देवी उन अपनी खड़ाउवों को छोड़कर सब ओर से देवताओं व किन्नरों से स्तुति कीजाती हुई स्वर्गको चलीगई ॥ ८८ ॥ ध्यान में तत्पर योगीलोग आजभी वैसेही सिद्धिको प्राप्त होते हैं जैसे कि उसमें निष्ठ व उसीका प्रायः हवन करनेवाले लोग देवीजीके दर्शन से सिद्ध होते हैं ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! जो तुमने मुझसे पूंछा पादुकाओंसमेत श्रीमाता से उपजेहुये इस सब पवित्र चरित्र को मैंने तुमसे कहा ॥ ९० ॥ हे महाराज ! जो मनुष्य भक्ति से इसको पढ़ता या सुनता है वह भी अज्ञान से कियेहुये पातकों से छूटजाता है ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेभाषाटीकायांश्रीमातामाहात्म्यंनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दो० । शुक्लतीर्थ में नील जिमि वसन भये शुभरंग । तेइसवें अध्याय में सोई कथाप्रसंग ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अति उत्तम शुक्लतीर्थ को जावै जो कि पुरातनसमय दास (केवट) वर्ग के सकाश से प्रकटता को प्राप्त हुआ है ॥ १ ॥ हे महीपते ! पुरातनसमय शमिलाक्षनामक धोबी हुआ है हे राजन् ! उसने नील के मध्य में वस्त्रों को डाल दिया ॥ २ ॥ इसके अनन्तर वस्त्रों की विडम्बना (कुरूपता) को जानकर यह भयको प्राप्त हुआ और अपने कुटुंब से घिरा-हुआ यह विदेश को चला ॥ ३ ॥ इसके बाद केवट की कन्याकी सखी जो इसकी उत्तम कन्या थी वह बड़े दुःख से संयुत होकर दासी (केवटकन्या) के समीप

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ शुक्लतीर्थमनुत्तमम् ॥ यद्व्यक्तिमगमत्पूर्वं सकाशाद्दासवर्गतः ॥ १ ॥ पुरासीद्रजकोनाम शमिलाक्षोमहीपते ॥ नीलमध्येतुवस्त्राणि प्रक्षिप्तानिमहीपते ॥ २ ॥ अथासौभयमापन्नो ज्ञात्वावस्त्रविडम्बनाम् ॥ देशान्तरंप्रस्थितोसौ स्वकुटुम्बसमावृतः ॥ ३ ॥ अथतस्यसुताराजन्दासकन्यासखीशुभा ॥ दुःखेनमहताविष्टा दास्यन्तिकमुपाद्रवत ॥ ४ ॥ तस्यैनिवेदयामास भयंवस्त्रसमुद्भवम् ॥ विदेशचलनंचैव बाष्पगद्गदयागिरा ॥ ५ ॥ दासकन्यापिदुःखेन तस्यादुःखसमन्विता ॥ अब्रवीद्बाष्पसंदिग्धं निश्वसतीमुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥ दासकन्योवाच ॥ अस्त्युपायोमहानत्र विदितोममशोभने ॥ नूनंतेनकृतेनैव निर्भयत्वंचतेपितुः ॥ ७ ॥ अत्रास्तिनिर्झरंशुभ्रमर्बुदेवरवर्णिनि ॥ तत्रमेभ्रातरश्चैव तथान्येमत्स्यजीविनः ॥ ८ ॥ यच्चान्यदपितत्रैव तातस्तवसुमध्यमे ॥ जलेक्षालयतुंक्षिप्रं प्रयास्यत्याशुशुक्लताम् ॥ ९ ॥ त्वयात्रनभयंकार्यं गत्वातातंनिवारय ॥ प्रस्थितंपरदेशाय नात्रकार्याविचारणा ॥ १० ॥

गई ॥ ४ ॥ और उसने वस्त्र से उपजेहुये भयको उससे बतलाया और आसुवों से गद्गद वाणी करके विदेश का गमन बतलाया ॥ ५ ॥ और केवट की कन्या भी दुःख के कारण उसके दुःख से संयुत हुई और बार २ श्वास लेती हुई वह आसुवों से संयुत वचन बोली ॥ ६ ॥ दासकन्या बोली कि हे शोभने ! इस विषय में बड़ा भारी उपाय मुझको मालूम है उसके करने से निश्चय कर तुम्हारे पिता को निडरता होगी ॥ ७ ॥ हे वरवर्णिनि ! इस अर्बुदपर्वत पे उत्तम निर्झर (झरना) है वहां मेरे भाई व अन्य मत्स्यजीवी हैं ॥ ८ ॥ हे सुमध्यमे ! तुम्हारा पिता जल में जिस अन्य भी वस्तु को धोवैगा वह शीघ्रही श्वेतता को प्राप्त होगा ॥ ९ ॥ इस

विषय में तुमको भय न करना चाहिये जाकर विदेश के लिये चलेहुये पिता को मना करो इस विषय में विचार न करना चाहिये ॥ १० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसके वचन को सुनकर उसने जाकर पिता से सब विस्तीर्ण वृत्तान्त को कहा तदनन्तर यह प्रसन्नता को प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ और प्रातःकाल उठकर वह शीघ्रही उस झरना के समीप गया व हे नृपेन्द्र ! उस धोबी से उस जल में डालेहुये वे वस्त्र बहुतही श्वेतताको प्राप्त हुये तदनन्तर उत्तम शोभा को प्राप्त हुये और वैसे वस्त्रोंको देखकर ॥ १२ । १३ ॥ इसके अनन्तर विस्मय से संयुत शीघ्रतासमेत इसने उन वस्त्रों को लेकर राजा को दिया व उससे उपजेहुये वृत्तान्त को कहा ॥१४॥

पुलस्त्य उवाच ॥ सातस्यवचनंश्रुत्वा गत्वासर्वंन्यवेदयत ॥ जनकायसुविस्तीर्णं ततोसौतुष्टिमाप्तवान् ॥ ११ ॥ प्रातरुत्थायतूर्णंच निर्झरंतमुपाद्रवत ॥ क्षिप्तमात्राणिराजेन्द्र तानिवस्त्राणितेनवै ॥ १२ ॥ तस्मिंस्तोयेतिशुक्लत्वं गतानिबहुलंततः ॥ कान्तिमायुश्चपरमां तथादृष्ट्वाम्बराणिच ॥ १३ ॥ अथासौविस्मयाविष्टस्तानिचादायसत्वरः ॥ राज्ञेनिवेदयामास वृत्तान्तंचतदुद्भवम् ॥ १४ ॥ ततोविस्मयमापन्नः सराजातत्रनिर्झरे ॥ अन्यानिनीलरक्तानि वस्त्राणिचाक्षिपज्जले ॥ १५ ॥ सर्वाणिशुक्लतांयान्ति विशिष्टानिभवन्तिच ॥ ज्ञात्वाततःपरंतीर्थं स्नानंचक्रेयथाविधि ॥ १६ ॥ त्यक्त्वाराज्यंचतत्रैव तपस्तेपेमहीपतिः ॥ ततःसिद्धिंपरांप्राप्तस्तीर्थस्थास्यप्रभावतः॥१७॥एकादश्यांनरस्तत्र यःश्राद्धं कुरुतेनृप ॥ सकुलानिसमुद्धृत्य दशयातिदिवंततः ॥ १८ ॥ स्नानेनैवविपापोथ तत्क्षणादेवजायते ॥ १९ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे शुक्लतीर्थप्रभावोनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ * ॥ * ॥

तदनन्तर वह राजा विस्मय को प्राप्त हुआ व उसने उस झरने में नील से रँगेहुये अन्य वस्त्रों को जलमें फेंक दिया ॥ १५ ॥ वे सब श्वेतताको प्राप्त होतेथे व उत्तम हो जाते थे उत्तम तीर्थ को जानकर तदनन्तर राजा ने विधिपूर्वक स्नान किया ॥ १६ ॥ व भूपति ने राज्य को छोड़कर वहीं तपस्या किया तदनन्तर इस तीर्थ के प्रभाव से वह राजा उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ हे राजन् ! जो मनुष्य एकादशी तिथि में वहां श्राद्ध करता है वह दश पुश्तियों को उधार करतदनन्तर स्वर्ग को जाता है ॥१८॥ स्नानहीसे मनुष्य उसी क्षण पापरहित होता है ॥ १९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेशुक्लतीर्थप्रभावोनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

दो० । शुंभ दैत्य को नाश किय जिमि कात्यायनि देवि । चौबिसवें अध्यायमें सोइ चरित सुखसेवि ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर वहां जावै जहां कि शुंभ दैत्य को नाशनेवाली गुहामध्यनिवासिनी कात्यायनीजी हैं ॥ १ ॥ पुरातनसमय पृथ्वी में शुंभनामक महादैत्य हुआ है उसने समर के आंगन में देवताओं को जीतकर सब संसार को व्याप्त करलिया ॥ २ ॥ शिवजीके वरदानसे वह दैत्य देवता व दानव और राक्षसों के अवध्य हुआ व स्त्री को छोड़कर पृथ्वी में सब प्राणियों के अवध्य हुआ ॥ ३ ॥ उस कारण हे पृथ्वीपते ! सब देवताओं के गण अर्बुदपर्वत पै जाकर शुंभको मारने के लिये तपस्या करते भये ॥ ४ ॥ और

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ गुहामध्यनिवासिनी ॥ देवीकात्यायनीयत्र शुम्भदानवनाशिनी ॥ १ ॥ शुम्भो नाममहादैत्यः पुरासीत्पृथिवीतले ॥ तेनसर्वंजगद्व्याप्तं जित्वादेवान्रणाजिरे ॥ २ ॥ सशङ्करवराद्दैत्यो देवदानवरक्षसाम् ॥ ॥ अवध्योयोषितंमुक्त्वा सर्वेषांप्राणिनांभुवि ॥ ३ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे गत्वार्बुदमथाचलम् ॥ तपस्तेपुर्वधार्थाय शुम्भस्यजगतीपते ॥ ४ ॥ देवीमाराधयामासुर्व्यक्तरूपांसुरेश्वरीम् ॥ अथतेषांप्रसन्नासा दृष्टिगोचरमागता ॥ ५ ॥ अब्रवीद्वरदास्मीति ब्रूतकिङ्करवाणिवः ॥ देवा ऊचुः ॥ सर्वन्नोपहृतंदेवि शुम्भेनतुदुरात्मना ॥ ६ ॥ सोवध्योस्तिसदारणे ॥ त्वयासंरक्षितादेवि पुरावाष्कलितोवयम् ॥ ७ ॥ नान्यास्माकंगतिर्मातस्त्वांमुक्त्वाचारुहासिनीम् ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तासुरैर्देवी गत्वाशुम्भनिकेतनम् ॥ ८ ॥ आजुहावरणेक्रुद्धा भर्त्सयित्वामुहुर्मुहुः ॥ स

प्रकटरूपवाली सरस्वती देवी का आराधन किया इसके अनन्तर उनके ऊपर प्रसन्न होती हुई वह भगवती दृष्टिगोचर को प्राप्त हुई ॥ ५ ॥ और यह बोली कि मैं वरदायिनी हूं कहिये मैं तुमलोगों का क्या करूं देवता बोले कि हे देवि ! दुष्टात्मा शुंभने हमलोगों का सब हरलिया ॥ ६ ॥ हे कल्याणि ! उसको मारिये क्योंकि युद्ध में वह सदैव अवध्य है हे देवि ! पुरातनसमय तुमने वाष्कलि से हमलोगों की रक्षा किया है ॥ ७ ॥ हे मातः ! सुन्दर हास्यवाली तुमको छोड़कर हमलोगोंकी अन्य गति नहीं है पुलस्त्यजी बोले कि देवताओंसे ऐसा कहीहुई देवी ने शुंभके स्थान को जाकर ॥ ८ ॥ क्रोधित होतीहुई बार २ घुड़ककर युद्ध में उसको बुलाया

व हे राजन्! युद्धके लिये उस देवी से याचना कियेहुये उस दैत्य ने उसको स्त्री जानकर ॥ ९ ॥ व अपमान कर हँसतेहुये शुंभ दैत्य ने दानवों को पठाया कि कठोर शब्दवाली यह दुष्टा जीतीहुई पकड़लीजावै ॥ १० ॥ और मेरे वचन से निस्सन्देह भयंकर दण्ड किया जावै तदनन्तर उस शुभ की आज्ञा से उन दानवों ने शीघ्रही उसके समीप ॥ ११ ॥ जाकर व दशो दिशाओंको घेरकर निन्दा किया तदनन्तर देखनेही से वे दैत्य भस्म किये गये ॥ १२ ॥ तदनन्तर क्रोधित होता हुआ शुंभ आपही आया व भयंकर तलवार को उवाकर बोला कि खड़ी हो खड़ी हो ॥ १३ ॥ हे महाराज! उस देवी ने उसको भी देखा और वह वैसेही भस्म

तयायाचितोयुद्धं ज्ञात्वातांयोषितन्नृप ॥ ९ ॥ अवज्ञायहसन्दैत्यः प्रेषयामासदानवान् ॥ जीवग्राहेणदुष्टेयं गृह्यतांपरुषस्वना ॥ १० ॥ क्रियतांदारुणोदण्डो ममवाक्यान्नसंशयः ॥ अथतस्यसमादेशाद्दानवास्तांततोद्रुतम् ॥ ११ ॥ गत्वानिर्भर्त्सयामासुर्वेष्टयित्वादिशोदश ॥ ततोवलोकनादेव दैत्यास्तेभस्मसात्कृताः ॥ १२ ॥ ततःशुम्भःप्रकुपितः स्वयमेवसमाययौ ॥ अब्रवीत्तिष्ठतिष्ठेति खड्गमुद्यम्यभीषणम् ॥ १३ ॥ सोपिदेव्यामहाराज तयाचैवावलोकितः ॥ अभवद्भस्मसाद्यद्वत्पतङ्गःप्राप्यपावकम् ॥ १४ ॥ हतेतस्मिंस्ततोदैत्याः शेषाःपार्थिवसत्तम ॥भित्त्वारसातलंजग्मुःपातालंभयसंयुताः ॥ १५ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे तुष्टुवुस्तांसुरेश्वरीम् ॥ अब्रवीच्चवरंब्रूहि यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ १६ ॥ देव्युवाच ॥ तत्रैवपर्वतेरम्ये अर्बुदेहंसुरोत्तमाः ॥ अभीष्टःपर्वतोस्माकं ससदार्बुदसञ्ज्ञितः ॥ १७ ॥ देवा ऊचुः ॥ तत्रस्थांत्वांसमालोक्य मर्त्यायान्तित्रिविष्टपम् ॥ विनायज्ञैस्तथादानैःस्वर्गःसंकीर्णताङ्गतः ॥ १८ ॥ नान्यत्कारणमस्तीह नःखेदस्य

होगया जैसे कि अग्नि को पाकर पतंग भस्म हो जाता है ॥ १४ ॥ हे नृपोत्तम उसके नष्ट होने पर तदनन्तर बचेहुये दैत्य डरसंयुत होकर रसातल को फोड़कर पातालको चले गये ॥ १५ ॥ तदनन्तर सब सुरगणों ने उन सुरेश्वरी देवी की स्तुति किया व देवीजी बोलीं कि तुम्हारे मनमें जो वर्तमान होवै उस वरदान को कहो ॥ १६ ॥ देवीजी बोलीं कि हे सुरोत्तमो! उसी सुन्दर अर्बुद पर्वत पै मैं स्थित हूंगी और अर्बुदनामक वह पर्वत हमको सदैव प्रिय है ॥ १७ ॥ देवता बोले कि वहां टिकीहुई तुमको देखकर मनुष्य बिन यज्ञों व बिन दानों के स्वर्ग को जाते हैं इससे स्वर्ग भरगया ॥ १८ ॥ हे सुरेश्वरि! हमलोगों के खेद का अन्य कारण

नहीं है देवीजी बोलीं कि हे सुरेश्वरो ! वहां मैं एकान्त व सुन्दर गुहा के मध्य में ॥ १६ ॥ टिकूंगी और पर्वत के दुर्गम के कारण प्राणियों के मध्य में कोई विरल मनुष्य मेरे दृष्टिगोचर मार्ग को प्राप्त होगा ॥ २० ॥ देवता बोले कि हे शुचिस्मिते, देवि ! यदि तुमको ऐसा प्रिय है तो ऐसाही कीजिये हमलोग वहां आषाढ़ में शुक्लपक्षकी अष्टमी में सदैव तुमको देखेंगे ॥ २१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर प्रसन्न होतेहुये सब देवता स्वर्ग को चलेगये और हे राजन् ! वह देवी भी उस अर्बुदपर्वत पै जाकर ॥ २२ ॥ वहा लोकों के हितके लिये देवताओं व मनुष्यों से दुर्लभ उस प्रसन्न देवी ने एकान्त में निवास किया ॥ २३ ॥ हे नृपेन्द्र !

सुरेश्वरि ॥ देव्युवाच ॥ तत्राहंविजनेरम्ये गुहामध्येसुरेश्वराः ॥१६॥ स्थास्यामिविरलःकश्चिद्यास्यतिप्राणिनांमम ॥ दृष्टिगोचरमार्गंहि दुर्गमात्पर्वतस्यहि ॥ २० ॥ देवा ऊचुः ॥ यद्येवंदेवितेभीष्टमेवंकुरुशुचिस्मिते ॥ वयन्त्वांतत्र द्रक्ष्यामः शुक्लाष्टम्यांसदाशुचौ ॥ २१॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वासुरास्सर्वे प्रहृष्टास्त्रिदिवंययुः ॥ सापिदेवीगिरौतत्र गत्वा चैवार्बुदेनृप ॥ २२ ॥ गुहामध्यंसमासाद्य तत्रलोकहितायवै ॥ विविक्तेन्यवसत्प्रीता दुर्लभासुरमानवैः ॥ २३ ॥ यस्तां पश्यतिराजेन्द्र शुक्लाष्टम्यांसमाहितः ॥ अभीष्टंससदाप्नोति यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकात्यायनीमाहात्म्यन्नामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःपिण्डारकंगच्छेत्तीर्थंपापहरन्नृप ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं मङ्किनाब्राह्मणेनच ॥ १ ॥ सिद्धिंगतस्तथाराजंस्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ पुरामङ्किरभूद्विप्रो नाममात्रेणभूपते ॥ २ ॥ मूर्खोब्राह्मणकृत्यानामनभिज्ञस्सुम

शुक्लपक्षकी अष्टमी में सावधान होताहुआ जो मनुष्य उसको देखता है वह यद्यपि दुर्लभ होवै तथापि सदैव मनोरथको प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकात्यायनीमाहात्म्यंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो॰ । पिंडारक तीरथ कियो यथामंकि द्विजनाथ । सो पंचीस अध्याय में कह्यो सुहावन गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृप ! तदनन्तर पापहारक पिंडारकतीर्थ को जावै जहां कि पुरातनसमय मङ्कि ब्राह्मण ने तपस्या किया है ॥ १ ॥ व हे राजन् ! इस तीर्थ के प्रभाव से वह सिद्धि को प्राप्त हुआ है हे राजन् ! पुरातनसमय

नाममात्र से मङ्कि ब्राह्मण हुआ है ॥ २ ॥ वह मूर्ख व ब्राह्मण के कर्मों को न जाननेवाला तथा बहुत मंदबुद्धि था इसके अनन्तर हे नृपोत्तम ! इस ब्राह्मण ने लोकों के मध्य में सुन्दर पर्वत पै ॥ ३ ॥ पिंडारकर्म में भैंसियों की रक्षा किया तदनन्तर कुछसमय के बाद उसने द्रव्य को इकट्ठा किया ॥ ४ ॥ उसके उपरान्त बड़े क्लेश से उसने थोड़ी पृथ्वी लिया व दो बैलों को लिया तदनन्तर हे राजन् ! उस ब्राह्मण ने दूत से उन बैलों को जुताया ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! भाग्यवश से उसके जोततेहुये ऊंट के मुखको प्राप्त होकर दोनों बैल हठ से ग्रीवा में स्थित हुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे भूपते, राजन् ! ग्रीवा में दोनों बैलों के लटकतेहुये ऊंट

न्दधीः ॥ अथासौपर्वतेरम्ये लोकानांनृपसत्तम ॥ ३ ॥ महिषीरक्षयामास ततःपिण्डारकर्मणि ॥कस्यचित्त्वथकाल स्य तेनवित्तमुपार्जितम् ॥ ४ ॥ महत्कृच्छ्रेणभूस्तोकं जगृहेगोयुगंततः ॥ ततस्तद्दमयामास दूतेननृपसत्तम ॥ ५ ॥ अथदैववशाद्राजन् दमतस्तस्यगोयुगम् ॥ अथोष्ट्रमुखमासाद्य ग्रीवादेशेबलात्स्थितम् ॥ ६ ॥ अथोष्ट्रस्त्वरयाराज न्नुत्थितस्तुततःपरम् ॥ गोयुगेनहिग्रीवायां लम्बमानेनभूपते ॥ ७ ॥ तंदृष्ट्वासुमहाश्चर्यं विनाशंगोयुगस्यतु ॥ मङ्कि र्वैराग्यमापन्नस्त्यक्त्वाग्रामंवनंययौ ॥ ८ ॥ सगत्वानिर्झरंकञ्चिदर्बुदेनृपसत्तम ॥ त्रिकालंकुरुतेस्नानं गायत्रीजपमु त्तमम् ॥ ९ ॥ तेनासौगतपापोभूद्दिव्यदर्शीचभूमिप ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तेनमार्गेणशङ्करः ॥ १० ॥ सहगौर्याविनि ष्क्रान्तः क्रीडार्थंरम्यपर्वते ॥ सदृष्टःसहसातेन पिण्डारेणमहात्मना ॥ ११ ॥ प्रणनामशिवंराजंस्ततस्तंशङ्करोब्रवी त ॥ नवृथादर्शनंमेस्याद्वरोमेगृह्यतान्द्विज ॥ १२ ॥ यदभीष्टंमहाभाग यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ पिण्डारक उवाच ॥

शीघ्रता से उठ पड़ा ॥ ७ ॥ उस बड़े आश्चर्यवाले दोनों बैलोंके विनाश को देखकर मङ्कि वैराग्य को प्राप्त हुआ और ग्राम को छोड़कर वनको चलागया ॥ ८ ॥ व हे नृपोत्तम ! वह अर्बुदपर्वत पै किसी झरना के समीप जाकर त्रिकाल स्नान व उत्तम गायत्री जप करने लगा ॥ ९ ॥ उससे हे राजन् ! यह पापहीन व दिव्यदर्शी हुआ इसीसमय में पार्वतीसमेत शिवजी सुन्दर पर्वत पै क्रीड़ा करने के लिये उस मार्ग से निकले और उनको महात्मा पिंडारक ने अचानकही देखा ॥ १० । ११ ॥ व हे राजन् ! शिवजीको प्रणाम किया तदनन्तर शिवजी उससे बोले कि हे द्विज ! मेरा दर्शन वृथा नहीं होता है मुझसे वरदान को लेवो ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! यद्यपि

बहुत दुर्लभ और जो प्रियहो उसको मागो पिंडारक बोले कि हे त्रिपुरातक, देवेश, विभो ! मैं जिसप्रकार तुम्हारा गण होऊं वैसाही कीजिये और मेरे हृदय में नहीं वर्तमान है और मेरे नामसे यह पिंडारकतीर्थ प्रसिद्ध होवै॥ १३ । १४ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! देहात में तुम हमारे गण होगे और तुम्हारे नाम से यह पिंडारकतीर्थ होगा ॥ १५ ॥ हे महामते ! मैं यहां सदैव अष्टमी में बसूंगा और अष्टमी दिन प्राप्त होने पर जो इस तीर्थ में स्नान करैंगे ॥ १६ ॥ वे उत्तम स्थान को जावैंगे जहां कि मैं नित्य स्थित हूं पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर महादेवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये॥ १७ ॥ और पिंडारक मङ्किने वहा दिनरात तपस्या

गणोहन्तवदेवेश भवामित्रिपुरान्तक ॥ १३ ॥ यथातथाकुरुविभो नान्यन्मेहृदिवर्त्तते ॥ एतत्पिण्डारकंतीर्थं ममनाम्नाप्रसिद्ध्यतु ॥ १४ ॥ भगवानुवाच ॥ भविष्यसिगणोस्माकं देहान्तेत्वंद्विजोत्तम ॥ एतत्पिण्डारकंतीर्थं तवनाम्नाभविष्यति ॥ १५ ॥ अहमत्रसदाष्टम्यां निवसामिमहामते ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति सम्प्राप्तेचाष्टमीदिने ॥ १६ ॥ तेयास्यन्ति परंस्थानं यत्राहन्नित्यमास्थितः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वामहादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ १७ ॥ मङ्किःपिण्डारकस्तत्र तपस्तेपेदिवानिशं ॥ ततःकालेनमहता त्यक्त्वादेहंदिवङ्गतः ॥ १८ ॥ यत्रास्तेभगवान्रुद्रो गणस्तत्रबभूवह ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानमत्रसमाचरेत् ॥ १९ ॥ राजेन्द्र महिषीदानमष्टम्यांचविशेषतः ॥ यइच्छतिसदाभीष्टमिहलोकेपरत्रच ॥ २० ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपिण्डारकतीर्थप्रभाववर्णनन्नामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तस्मिन्कनखलन्नाम पर्वतेपापनाशने ॥ १ ॥

किया तदनन्तर बहुतसमय के बाद वह शरीर को छोड़कर स्वर्ग को चलागया ॥ १८ ॥ और जहां भगवान् शिवजी हैं वहां गण हुआ इसलिये हे नृपेन्द्र ! जो इस लोक व परलोक में सदैव मनोरथ को चाहता है वह सब यत्न से यहां स्नान करै व विशेषकर अष्टमी तिथि में भैंसी दान करै ॥ १९ । २० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे र्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांपिण्डारकतीर्थप्रभाववर्णनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ● ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । तीरथ कनखलको गयो यथा सुमति नरपाल । सो छब्बिस अध्याय में कह्यो चरित्र रसाल ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर उस पापनाशक

पर्वत पै त्रिलोक में प्रसिद्ध कनखलतीर्थ को जावै ॥ १ ॥ हे महीपते ! वहां जो पहले आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये कि सुमतिनामक राजा अर्बुदपर्वत पै प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ तदनन्तर बहुतसमय के बाद वह कनखलतीर्थ को गया और वह ब्राह्मण के लिये उत्तम सुवर्ण को लाया ॥ ३ ॥ और उस राजाकी असावधानता से बहुत सुवर्ण जल में गिरपड़ा व हे राजन् ! ढूंढ़ने में तत्पर उस राजा ने सुवर्ण को नहीं पाया ॥ ४ ॥ तदनन्तर नहाकर घरको प्राप्त हुआ व पश्चात्ताप से संयुत हुआ तदनन्तर बहुतसमय के बाद वह राजा वहा आया ॥ ५ ॥ और सूर्यनारायण के ग्रहण में उसने स्नान के लिये उस स्थान को देखा व उस बुद्धिमान् ने

शृणुतत्राभवत्पूर्वं यदाश्चर्यंमहीपते ॥ पार्थिवस्सुमतिर्नाम सम्प्राप्तोर्बुदपर्वते ॥२॥ ततःकालेनमहता तीर्थं कनखलङ्गतः ॥ तेनविप्रार्थमानीतं सुवर्णंदिव्यमेवहि ॥ ३ ॥ प्रभूतंपतितंतोये प्रमादात्तस्यभूपतेः ॥ नलब्धन्तेनभूपाल अन्वेषणपरेण च ॥ ४ ॥ ततस्स्नात्वागृहम्प्राप्तः पश्चात्तापसमन्वितः ॥ ततःकालेनमहता सभूपस्तत्रचागतः ॥ ५ ॥ स्नानार्थंभास्करे ग्रस्ते तंचदेशमपश्यत ॥ चिन्तयामासमेधावी अस्मिन्देशेतदामम ॥ ६ ॥ सुवर्णंपतितंहस्तान्नचलब्धंकथञ्चन ॥ ७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सएवंचिन्तयामास वागुवाचाशरीरिणी ॥ नात्रनाशोस्तिराजेन्द्र इहलोकेपरत्रच ॥ ८ ॥ अत्रकोटिगुणंजातं सुवर्णंयत्पुरातनम् ॥ पश्चात्तापस्त्वयाभूरिः कृतोयद्द्रव्यनाशने ॥ ९ ॥ तस्मात्सङ्ख्यातुसञ्जाता तथैवाकल्पितस्यच ॥ येत्रश्रद्धासमायुक्ताः सुवर्णंनृपसत्तम ॥ १० ॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति सुवर्णञ्चविशेषतः ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यन्ति सङ्ख्यातस्यनविद्यते ॥ ११ ॥ अत्रान्वेषणदेशेत्वं प्राप्स्यसेनात्रसंशयः ॥ सश्रुत्वाभारतींतत्र आकाशादु

विचार किया कि उससमय इस स्थान में मेरे हाथ से सुवर्ण गिरा था और किसीप्रकार नहीं मिला ॥ ६ । ७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसने इसप्रकार चिन्तवन किया और आकाशवाणी बोली कि हे नृपेन्द्र ! यहां नाश नहीं होता है व इसलोक व परलोक में ॥ ८ ॥ जो पुराना सुवर्ण था वह इसमें कोटिगुना होगया और जो तुम ने द्रव्य के नाश में बड़ा पश्चात्ताप किया ॥ ९ ॥ इसकारण कल्पित सुवर्ण की वैसेही संख्या होगई हे नृपोत्तम ! जो मनुष्य यहा श्रद्धासंयुत सुवर्ण देते हैं ॥ १० ॥ और जो यहा श्राद्ध करैंगे व विशेषकर ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण देवैंगे उसकी संख्या नहीं विद्यमान है ॥ ११ ॥ और यहा अन्वेषण (ढूढ़ने) के स्थान में तुम

सुवर्ण को पावोगे इसमें सन्देह नहीं है हे राजन् ! वहा आकाश से उपजीहुई वाणी को सुनकर वहा उस सुमति ने ॥ १२ ॥ हे राजन् ! उस स्थान में ढूंढतेहुये उस उत्तम सुवर्ण को कोटिगुना पाया तदनन्तर हे राजन् ! वह प्रसन्नता को प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ और उस तीर्थ के प्रभाव को जानकर श्रद्धासंयुत उसने पितरों व देवताओं को उद्देशकर हज़ारों ब्राह्मणों के लिये सुवर्ण दिया ॥ १४ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! उस सुवर्णदान के प्रभाव से वह राजा धनका देनेवाला धनदनामक यक्ष हुआ ॥ १५ ॥ हे राजन् ! सूर्य के ग्रहण में वहां जो श्राद्ध करता है भलीभांति तृप्त कियेहुये उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त होते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! स्नान से ऋषि,

स्थितान्नृप ॥ १२ ॥ अन्वेषमाणस्तंदेशं सुवर्णंतत्रलब्धवान् ॥ शुभ्रंकोटिगुणंराजंस्ततस्तुष्टिंसमागतः ॥ १३ ॥ ज्ञात्वातीर्थप्रभावन्तं ब्राह्मणेभ्यस्सहस्रशः ॥ प्रददौश्रद्धयायुक्त उद्दिश्यपितृदेवताः ॥ १४ ॥ ततस्तस्यप्रभावेण स्वर्णदानस्यभूपते ॥ सञ्जातोधनदोनाम यक्षोनामधनप्रदः ॥ १५ ॥ तत्रयःकुरुतेश्राद्धं ग्रहेसूर्यस्यभूमिप ॥ आकल्पंपितरस्तस्य तृप्तिंयान्तिसुतर्पिताः ॥ १६ ॥ स्नानेनऋषयोदेवास्तुष्टिंयान्तिमहोरगाः ॥ नाशःसञ्जायतेसद्यः पापस्यपृथिवीपते ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ यथाशक्त्यातथादानं श्राद्धञ्चनृपसत्तम ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकनखलतीर्थमाहात्म्यन्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रचक्रंपुरामुक्तं विष्णुनाप्रभविष्णुना ॥ १ ॥ निहत्यदानवान्मध्ये कृत्वास्नानंसुनिर्झरे ॥ विष्णवङ्गक्षालनात्तोयं तत्रतन्मेध्यताङ्गतम् ॥ २ ॥ तत्रश्राद्धंतुयःकुर्याच्छ्रद्धय

देवता व महानाग प्रसन्नता को प्राप्त होते हैं और उसीक्षण पाप का नाश होता है ॥ १७ ॥ इसलिये सब यत्न से वहां श्राद्ध करै व हे नृपोत्तम ! यथाशक्ति से दान व श्राद्ध करै ॥ १८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकनखलतीर्थमाहात्म्यंनामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❀ ॥

दो० । भयो अर्बुदहिं शिखर पर चक्रतीर्थ असनाम । सत्ताइस अध्याय में सोई चरित ललाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अति उत्तम चक्रतीर्थ को जावै जहां कि पुरातनसमय समर्थवान् विष्णुजीने चक्र को छोड़ा है ॥ १ ॥ समर में दानवों को मारकर उत्तम झरने में स्नानकर वहां विष्णुजीके अंग

के धोने से वह पवित्रता को प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥ हे नराधिप ! वहां विष्णुजी के शयन व बोधनसमय में जो श्राद्ध करता है उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त होते हैं ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायाञ्चक्रतीर्थप्रभाववर्णनंनामसप्तविंशोऽध्यायः॥ २७ ॥ * ॥ * ॥

दो० । मनुजसरोवर में प्रविशि भये मृगा नररूप । अट्ठाइसवें में कह्यो सोई चरित अनूप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ, नृप ! तदनन्तर अति पुण्यदायक मानुषकुण्डके समीप जावै जिसमें भलीभांति नहाआहुआ मनुष्य सदैव मनुष्य होता है ॥ १ ॥ और बहुत पापभी करके तिर्यक्ता को नहीं प्राप्त होता है

नेबोधनेहरेः ॥ आकल्पंपितरस्तस्यतृप्तिं यान्तिनराधिप ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेचक्रतीर्थप्रभाववर्णनन्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ सुपुण्यंमानुषंह्रदम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यग्मनुष्योजायतेसदा ॥ १ ॥ नतिर्यक्त्वमवाप्नोति कृत्वापिबहुपातकम् ॥ तत्राश्चर्यमभूत्पूर्वं यत्तच्छृणुनराधिप ॥ २ ॥ मृगयूथमनुप्राप्तं व्याधव्याप्तमनन्ततः ॥ तेमृगाभयसन्त्रस्ताः प्रविष्टाजलमध्यतः ॥ ३ ॥ सद्योमनुष्यताम्प्राप्ताः पूर्वजातिस्मरास्तथा ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु व्याधास्तेसमुपागताः ॥ ४ ॥ चापबाणधरास्सर्वे यथावैयमकिङ्कराः ॥ पप्रच्छुस्तान्मृगान्भूप मानुष्यत्वमुपागतान् ॥ ५ ॥ मृगयूथमनुप्राप्तमस्मिन्स्थानेजलाशये ॥ केनमार्गेणनिष्क्रान्तं वदध्वंसत्वरंहिनः ॥ ६ ॥ वयंसर्वे परिश्रान्ताः क्षुधाविष्टाविशेषतः ॥ ७ ॥ मनुष्या ऊचुः ॥ वयन्तेहरिणास्सर्वे मानुष्यंभावमाश्रिताः ॥ तीर्थस्यास्य

हे नराधिप ! वहां जो पहले आश्चर्य हुआ है उसको सुनिये ॥ २ ॥ कि सबओर बहेलियों से व्याप्त मृगयूथ वहां प्राप्तहुआ और भयसे डरेहुये वे मृग जलके बीच में पैठगये ॥ ३ ॥ और उसीक्षण मनुजता को प्राप्तहुये व पूर्वजातिके स्मरण करनेवाले हुये इसीअवसर में वे बहेलिया प्राप्तहुये ॥ ४ ॥ व हे भूप ! जैसे यमदूत होवैं वैसेही धनुषबाण को धारेहुये सब बहेलियों ने मनुजता को प्राप्त उन मृगों से पूछा ॥ ५ ॥ कि इस स्थान में जलाशय में मृगयूथ प्राप्तहुआ था वह किस रास्ते मे निकलगया इसको हमलोगों से शीघ्रही कहिये ॥ ६ ॥ विशेषता से क्षुधा से संयुत हम सब थकगये हैं ॥ ७ ॥ मनुष्य बोले कि इस तीर्थ के प्रभाव से मनुजता

में आश्रित हम सब वे मृग हैं यह निस्सन्देह सत्य है ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! तदनन्तर वे सब केवट (व्याध) उस जलमें नहातेभये व हे नृप ! उसीक्षण सिद्धिको प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम, नृप ! उस पापहारकतीर्थ को देखकर इन्द्रने सब कहीं धूलियों से पूर्ण करदिया ॥ १० ॥ हे नराधिप ! आज भी जो मनुष्य उस तीर्थ में बुधवार अष्टमी में स्नान करते हैं वे पशुपक्षीकी योनि को नहीं प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥ और श्राद्ध के दान से मनुष्य सम्पूर्ण पितृमेधयज्ञ के फलको पाते हैं ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाम्भाषाटीकायांमनुष्यतीर्थप्रभावमाहात्म्यंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

प्रभावेण सत्यमेतदसंशयम् ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततस्तेशबरास्सर्वे त्यक्त्वाचापानिपार्थिव ॥ चक्रुस्स्नानंजले तस्मिन् सद्यःसिद्धिंगतान्नृप ॥ ९ ॥ तत शुक्रस्तुतद्दृष्ट्वा तीर्थंपापहरन्नृप ॥ पूरयामाससर्वत्र पांशुभिर्नृपसत्तम ॥ १० ॥ अद्यापिमनुजास्तत्र बुधाष्टम्यांनराधिप॥ स्नानंयेतुकरिष्यन्ति तिर्यक्त्वंनव्रजन्तिते ॥ ११ ॥ पितृमेधफलंकृत्स्नं श्राद्धदानादवाप्नुयुः ॥ १२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमनुष्यतीर्थप्रभावमाहात्म्यन्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ कपिलातीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यङ् मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ १ ॥ पुराभून्नृपतिर्नाम सुप्रभःपरवीरहा ॥ नित्यंचमृगयाशीलो मृगाणामहितेरतः ॥ २ ॥ नतथास्त्रीषुनोभोगेनाश्वयानेनवारणे ॥ तस्याभूदनुरागश्च यथामृगविमर्द्दने ॥ ३ ॥ सकदाचिन्नृपश्रेष्ठ मृगासक्तोर्बुदेगतः ॥ अपश्यत्सानुदेशेच मृगीं शिशुसमावृताम् ॥ ४ ॥ स्तनन्धयन्तींसुस्निग्धां शिशोःक्षीरानुरागिणः ॥ सांतेनविद्धाबाणेन सहसानतपर्वणा ॥ ५ ॥

दो॰ । जिमि कपिलातीरथ भयो अर्बुदपर्वत तीर । उन्तिसवें अध्याय में सोई चरित गभीर ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर अतिउत्तम कपिलातीर्थ को जावै जिसमें भलीभांति नहायाहुआ पुरुष सब पातकों से छूटजाता है ॥ १ ॥ पुरातनसमय शत्रुवीरों का नाशनेवाला सुप्रभनामक राजा हुआ है शिकार के स्वभाववाला वह मृगों के अहित में तत्पर था ॥ २ ॥ उसप्रकार न स्त्रियों में न सुख में न अश्व की सवारी में न हाथी में उसका अनुराग हुआ जैसा कि मृगों के मारने में हुआ है ॥ ३ ॥ हे नृपश्रेष्ठ ! मृगों में लगाहुआ वह किसीसमय अर्बुदपर्वत पै गया और उसने उसके शिखरदेश में बच्चे से घिरीहुई मृगी को देखा ॥ ४ ॥ जो कि

दूध के अनुरागी बच्चेको, दूध पिलारही थी व भलीभांति स्निग्ध थी उसको उसने अचानकही झुकीहुई गांठिवाले धनुषसे उस मृगी को मारा ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर वह धनुष को लिये व निर्मल दूसरे बाणको प्रत्यंचासे जोड़तेहुये राजा को देखकर ॥ ६ ॥ तदनन्तर क्रोधसे संतप्त उसने राजा से कहा कि तुमने आज जिसको सेवन किया है यह क्षत्रिय का धर्म नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन् ! सोते व मैथुन में लगेहुये, दूधपीतेहुये और रोगसे पीड़ित मृगको मारना न चाहिये और बच्चे से घिरीहुई मृगी को न मारना चाहिये ॥ ८ ॥ हे सर्वनृपाधम ! तुम्हारे बाण को प्राप्त होकर मेरे विना मेरे पुत्रका अधर्म से मरण हुआ ॥ ९ ॥ हे भूपते ! जिसलिये तुमने मुझको

अथसापार्थिवंदृष्ट्वा प्रगृहीतशरासनम् ॥ द्वितीयंयोजमानंच मौर्व्यांबाणंसुनिर्मलम् ॥ ६ ॥ ततःसाकोपसंतप्ता भूपालंप्रत्यभाषत ॥ नायंधर्म्मस्स्मृतःक्षात्रो यस्त्वयाद्यनिषेवितः ॥ ७ ॥ शयानोमैथुनासक्तस्तनयंव्याधिपीडितम् ॥ नहन्तव्योमृगोराजन् मृगीचशिशुनावृता ॥ ८ ॥ अधर्ममरणंजातं ममसर्वनृपाधम ॥ तवबाणंसमासाद्य पुत्रस्यचमयाविना ॥ ९ ॥ यस्मादहमधर्मेण हताभूमिपतेत्वया ॥ तस्मादत्रैवसानौत्वं रौद्रव्याघ्रोभविष्यसि ॥ १० ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तच्छ्रुत्वासुमहत्पापं सनृपोभयसङ्कुलः ॥ तांवैप्रसादयामास प्राणशेषांतदामृगीम् ॥ ११ ॥ अविवेकान्मया भद्रे हतात्वंनिर्घृणेनच ॥ कुरुशापविमोक्षान्तं तस्माद्दीनस्यसन्मृगि ॥ १२ ॥ मृग्युवाच ॥ यदातुकपिलांनामद्रक्ष्यसेत्वंपयस्विनीम् ॥ धेनुन्तयासमालापात्प्रकृतिंयास्यसेपुनः ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामृगीराजन्निष्टैःप्राणैर्वियुज्यते ॥ पीडिताशरघातेन पुत्रस्नेहाद्विशेषतः ॥ १४ ॥ अथासौपार्थिवःसद्यो रौद्रस्यसमजायत ॥ व्याघ्रोदंष्ट्राकरालश्च

अधर्म से मारा इसलिये इसी शिखर पै तुम भयकर व्याघ्र होगे ॥ १० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस बड़ेभारी पाप को सुनकर भयसे संयुत उस राजा ने उससमय बचे प्राणोंवाली उस मृगी को प्रसन्न कराया ॥ ११ ॥ कि हे भद्रे ! मुझ निर्दयी ने अज्ञान से तुमको मारा इसलिये हे सन्मृगि ! मुझ दीनके शापमोक्ष का अन्त कीजिये ॥ १२ ॥ मृगी बोली कि जब तुम कपिलानामक पयस्विनी गऊ को देखोगे तब उसके साथ संभाषण से फिर अपने स्वरूप को पावोगे ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर हे राजन् ! वह मृगी बाणकी चोट से पीड़ित व विशेषकर पुत्र के स्नेह के कारण प्रिय प्राणों से छुटगई ॥ १४ ॥ इसके अनन्तर यह राजा शीघ्रही भयं करमुख व

दाढ़ों से कराल और पैने दांतों व नखोंवाला व्याघ्र होगया ॥ १५ ॥ और क्रोध से मूर्च्छित उसने उस अपनी सेना को खालिया तदनन्तर हे राजन्! मारनेसे बचे हुये वे सेनावाले लोग बहुत दुःखी हुये ॥ १६ ॥ और डरेहुये वे अपने घरों को चलेगये और नगर में जैसा हाल था उसको उन्हों ने चौतरों व त्रिकों में कहा ॥ १७ ॥ और जिसप्रकार वह राजा अर्बुदपर्वत पै व्याघ्रता को प्राप्त हुआ उसको कहा उसको सुनकर उसके मंत्रियों ने बड़े पराक्रमी नाम से महौजस ऐसे प्रसिद्ध पुत्रको राज्य पै अभिषेक किया इसके अनन्तर हे नृपोत्तम! किसीसमय उस शिखर पै ॥ १८ । १९ ॥ प्यास की इच्छा से व तृणों की तृष्णासे गोप व गोपियोंसे संयुत

तीक्ष्णदन्तनखस्तथा॥१५॥ भक्षयामासतांसेनामात्मीयांक्रोधमूर्च्छितः॥ ततस्तेसैनिकाराजन् हतशेषास्सुदुःखिताः॥ १६॥ स्वगृहाणिययुस्त्रस्ता यथावृत्तंजनेपुरे॥ न्यवेदयंस्तेवृत्तान्तं चत्वरेषुत्रिकेषुच॥१७॥ यथावैव्याघ्रतांप्राप्तःसराजार्बुदपर्वते ॥ तच्छ्रुत्वासचिवास्तस्य पुत्रंभूरिपराक्रमम् ॥ १८ ॥ राज्येभिषेचयामासुर्नाम्ना ख्यातंमहौजसम् ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्मिन्सानौनृपोत्तम ॥ १९ ॥ तृषाशयातुसम्प्राप्ता गोपगोपीसमाकुले ॥ तत्रैकागौःपरिभ्रष्टास्वयूथात्तृणतृष्णया ॥ २० ॥ कपिलेतिचविख्याता स्वयूथस्याग्रगामिनी ॥अच्छिन्नाग्रतृणान्सातुसदाभक्षयतेनृप॥२१॥ अथसागह्वरम्प्राप्ता गिरेःशून्यंभयङ्करम् ॥ तत्राससादतांव्याघ्रो दंष्ट्रोत्कटमुखावहः ॥२२॥ सातंदृष्टवतीपापं त्रासयन्तंमृगान्द्विपान् ॥ स्मरन्तीगोकुलेबद्धं स्वसुतंक्षीरपायिनम् ॥ २३ ॥ दुःखेनरुदतींतान्तु दृष्ट्वोवाचमृगाधिपः ॥ २४ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ किंवृथारुद्यतेधेनो माम्प्राप्यनहिजीवितम् ॥ विद्यतेकस्यचिन्मातस्स्मरेष्टान्देवतान्ततः ॥ २५ ॥

उस स्थान पै अपने यूथ से अलग हुई एक गऊ प्राप्त हुई ॥ २० ॥ अपने यूथके अग्रगामिनी वह कपिला ऐसी प्रसिद्ध थी व हे राजन्! वह बिन कटेहुये अग्र भागवाले तृणों को सदैव खाती थी ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर वह पर्वत के शून्य व भयंकर गह्वर (कंदरा) को प्राप्त हुई वहा दाढ़ों से भयंकर मुखको धारनेवाला व्याघ्र उस गऊके समीप प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ उस गऊ ने मृगों व व्याघ्रों को डरवातेहुये उस पापी मृगको देखा और गोकुल (गोंड़े) में बँधेहुये दूध पीनेवाले अपने पुत्रको वह स्मरण करनेलगी ॥ २३ ॥ व दुःख से रोती हुई मृगी को देखकर व्याघ्र बोला ॥ २४ ॥ व्याघ्र बोला कि हे धेनो, मातः! वृथा क्यों रोती हो

मुझको प्राप्त होकर किसी का जीवन नहीं रहता है इसलिये इष्टदेवता को स्मरण करो ॥ २५ ॥ धेनु बोली कि हे व्याघ्र ! मैं अपने जीवन के भयसे किसीप्रकार नहीं रोती हूं बरन दूध पीनेवाला मेरा बालक गोंड़े में परखता है ॥ २६ ॥ और अभी वह तृणों को नहीं खाता है उसीकारण मैं शोकसे विकल हूं व हे व्याघ्र ! मैं पुत्रके स्नेह से रोती हूं यह सत्य से अपनी सौगन्द करती हूं ॥ २७ ॥ हे विभो ! यदि तुम मानो तो छोटे बालक को दूध पिलाकर व अपने गोपीजनको देखकर फिर लौट आऊंगी ॥ २८ ॥ व्याघ्र बोला कि अपने पुत्रके समीप जाकर और अपने गोकुल को देखकर फिर जो तुम्हारा आगमन है उसको मैं विश्वास नहीं करता

धेनुरुवाच ॥ स्वजीवितभयाद्व्याघ्र नरोदिमिकथञ्चन ॥ पुत्रोमेबालकोगोष्ठे क्षीरपायीप्रतीक्षते ॥ २६ ॥ नाद्यापिसतृणान्यत्ति तेनाहंशोकविक्लवा ॥ रौमिव्याघ्रसुतस्नेहात्सत्येनात्मानमालभे ॥ २७ ॥ पाययित्वासुतंबालं दृष्ट्वागोपीजनंस्वकम् ॥ पुनःप्राप्तागमिष्यामि यदित्वंमन्यसेविभो ॥ २८ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ गत्वास्वसुतसान्निध्यं दृष्ट्वात्मीयंच गोकुलम् ॥ पुनरागमनंयत्ते नचतच्छ्रद्दधाम्यहम् ॥ २९ ॥ भयानामेवसर्वेषां नास्तिप्राणसमंभयम् ॥ तस्मात्प्राणभयान्नत्वमागमिष्यसिधेनुके ॥ ३० ॥ कपिलोवाच ॥ शपथैरागमिष्यामि सत्यमेतच्छृणुष्वमे ॥ प्रत्ययोयदितेभूयान्मांमुञ्चत्वंमृगाधिप ॥ ३१ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ ब्रूहितान्छपथान्भद्रे समागच्छसियैःपुनः ॥ ततोहंप्रत्ययंगत्वा मोचयिष्यामिधेनुके ॥ ३२ ॥ कपिलोवाच ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नंब्राह्मणंनिन्दयेत्तुयः ॥ तेनपापेनलिप्यामि यद्यहंनागमेपुनः ॥ ३३ ॥ गुरुद्रोहरतानाञ्च यत्पापंजायतेनृणाम् ॥ तेनपापेनलिप्यामि यद्यहंनागमेपुनः ॥ ३४ ॥ यत्पापंब्राह्मणंहत्वा

हूं ॥ २९ ॥ क्योंकि सब भयों के मध्य में प्राण के समान भय नहीं है इसलिये हे धेनुके ! तुम प्राणों के भयसे नहीं आवोगी ॥ ३० ॥ कपिला बोली कि मैं सौगन्दों के कारण आऊंगी इस सत्यको मुझसे सुनिये और यदि तुमको विश्वास होवै तो हे मृगाधिप ! तुम मुझको छोड़देवो ॥ ३१ ॥ व्याघ्र बोला कि हे भद्रे ! उन सौगन्दों को कहिये कि जिनसे तुम फिर आवोगी तो हे धेनुके ! विश्वास को प्राप्त होकर मैं छोड़दूंगा ॥ ३२ ॥ कपिला बोली कि जो वेदपाठ से संयुत ब्राह्मण की निन्दा करता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३३ ॥ और गुरुवों के वैर में लगेहुये मनुष्यों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि

फिर न आऊं ॥ ३४ ॥ और ब्राह्मण को मारकर व गऊको मारकर जो पाप होता है उस पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३५ ॥ व मित्रके द्रोह में जो पाप है व जो पाप गुरुके छलने में है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३६ ॥ और जो पैर से गऊ ब्राह्मण व अग्नि को छूता है उस पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३७ ॥ और जो नर कूप, बगीचा व तड़ागों का भंग करता है उस पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३८ ॥ और कृतघ्न को जो पाप होता है व जो पाप चुगुल को होता है उस पापसे मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ३९ ॥ और मद्य व मांस में रत मनुष्यों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४० ॥ और राजाओं से चुगुली में स्नेही पुरुषों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४१ ॥ व

गांचहत्वाप्रजायते ॥ तेनपापेनलिप्यामि यद्यहंनागमेपुनः ॥ ३५ ॥ मित्रद्रोहेचयत्पापं यत्पापंगुरुवञ्चके ॥ तेनपा॰ ॥ ३६ ॥ योगांस्पृशतिपादेन ब्राह्मणंपावकंतथा ॥ तेनपा॰ ॥ ३७ ॥ कूपारामतडागानां योभङ्गंकुरुतेनरः ॥ तेनपा॰ ॥ ३८ ॥ कृतघ्नस्यचयत्पापं यत्पापंसूचकस्यच ॥ तेनपा॰ ॥ ३९ ॥ मद्यमांसरतानाञ्च यत्पापंजायतेनृणाम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४० ॥ राजपैशून्यरक्तानां यत्पापंजायतेनृणाम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४१ ॥ वेदविक्रयकर्तृणां यत्पापंसमुदाहृतम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४२ ॥ दीयमानेद्विजातीनां निवारयतियोल्पधीः ॥ तेनपा॰ ॥ ४३ ॥ विश्वस्तघातकानाञ्च यत्पापंसमुदाहृतम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४४ ॥ द्विजदोषरतानांहि यत्पापंजायतेनृणाम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४५ ॥ परवादरतानाञ्च पापंयच्चदुरात्मनाम् ॥ तेनपा॰ ॥ ४६ ॥ रात्रौयेपापकर्माणो भक्षन्तिदधिसक्तवः ॥ तेनपा॰ ॥ ४७ ॥ वृन्ताकंमूलकंश्वेतं रक्तंयेश्नन्तिगृञ्ज

वेद बेंचनेवालों को जो पाप कहागया है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४२ ॥ और ब्राह्मणों को देने पर जो अल्पबुद्धि मना करता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४३ ॥ और विश्वासघाती लोगों को जो पाप कहागया है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४४ ॥ और ब्राह्मणों के दोषों में लगेहुये लोगों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४५ ॥ और पराये वाद में लगेहुये दुष्टों को जो पाप होता है उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४६ ॥ और जो पापकर्मी मनुष्य रात्रि में दही व सत्तू को खाते हैं उस पाप से मै लिप्त होऊ यदि फिर न आऊं ॥ ४७ ॥

और भांटा व सफेद तथा लालमूली और गाजर को जो खाते हैं उस पाप से मैं लिप्त होऊं यदि फिर न आऊं ॥ ४८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसकी सौगन्दों को सुनकर विस्मय से प्रफुल्लित लोचनोंवाला वह व्याघ्र उससमय विश्वास को प्राप्त होकर वचन बोला ॥ ४९ ॥ व्याघ्र बोला कि हे भद्रे ! तुम गोकुल को जावो व फिर आगमन करो और यह न जानना चाहिये कि मैंने इस व्याघ्र को छललिया ॥ ५० ॥ हे पुत्रवत्सले, कपिले ! तुम जावो व पुत्रको देखो और दूधको पिलाकर व मस्तक में चाटकर शीघ्रही आवो ॥ ५१ ॥ माता व भाई को देखकर और सखी, स्वजन व बन्धुवों को देखकर सत्यही को आगेकर अन्यथा करनेयोग्य नहीं

नम् ॥ तेनपा० ॥ ४८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सतस्याःशपथाञ्छुत्वाविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ प्रत्ययंचतदागत्वा व्याघ्रोवाक्यमथाब्रवीत् ॥ ४९ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ गच्छत्वंगोकुलेभद्रे पुनरागमनंकुरु ॥ नचैतदवगन्तव्यं व्याघ्रोयंवञ्चितोमया ॥ ५० ॥ कपिलेगच्छपश्यत्वं तनयंसुतवत्सले ॥ पाययित्वास्तनंतूर्णमेह्यालिह्यचमूर्द्धनि ॥ ५१ ॥ मातरं भ्रातरंदृष्ट्वा सखीस्वजनबान्धवान् ॥ सत्यमेवाग्रतःकृत्वा नान्यथाकर्तुमर्हसि ॥ ५२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ सानुज्ञाता मृगेन्द्रेण कपिलापुत्रवत्सला ॥ अश्रुपूर्णमुखीदीना प्रस्थितागोकुलम्प्रति ॥ ५३ ॥ वेपमानाभयोद्विग्ना शोकसागरमध्यगा ॥ करिणीवहिरौद्रेण ग्राहेणतुबलीयसा ॥ ५४ ॥ ततःसागोकुलंप्राप्ता रम्भमाणामुहुर्मुहुः ॥ तस्याःशब्दंततःश्रुत्वा ज्ञात्वावत्सस्स्वमातरम् ॥ ५५ ॥ सम्मुखःप्रययौतूर्णमूर्द्ध्वपुच्छःप्रहर्षितः ॥ अकालागमनंतस्या रौद्रंहम्भारवन्तथा ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वाश्रुत्वाचवत्सोसौ शङ्कितःपरिपृच्छति ॥ ५७ ॥ वत्स उवाच ॥ नतेपश्यामिसौम्यत्वं दुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥

हो ॥ ५२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि मृगेंद्र (व्याघ्र) से आज्ञा दीहुई पुत्रवत्सला कपिला आसुवों से पूर्णमुखी व उदासीन होकर गोकुल को चली ॥ ५३ ॥ कांपतीहुई व डरसे विकल वह गऊ बलवान् व भयंकर ग्राहसे ग्रस्तहथिनी की नाई शोकसमुद्र के मध्य में प्राप्त हुई ॥ ५४ ॥ तदनन्तर बार २ राभती हुई वह गोकुल को प्राप्तहुई तदनन्तर उसका शब्द सुनकर बछड़ा अपनी माता को जानकर ॥ ५५ ॥ पूछको ऊपर कर प्रसन्न होकर शीघ्रही सामने चला उसका बिनसमय में आगमन व भयंकर हंभाशब्द को ॥ ५६ ॥ देख सुनकर शंकित होताहुआ यह बछड़ा पूछने लगा ॥ ५७ ॥ बछड़ा बोला कि मैं तुम्हारी सौम्यता को नहीं देखता हू और तुम

उदासीनमी देख पड़ती हो व अन्य समयमें तुम किसलिये आई हो इसको मुझसे कहिये ॥ ५८ ॥ कपिला बोली कि हे पुत्र ! मेरे स्तन को पियो व कारण को भी मुझसे सुनो तुम्हारे स्नेह से मैं आईहूं इच्छा के अनुकूल तृप्ति कीजिये ॥ ५९ ॥ हे पुत्र ! विनअन्तवाला माता का दर्शन वृथा है हे पुत्र ! आज मुझको जाना चाहिये क्योंकि सौगन्दों से आई हू ॥ ६० ॥ व इच्छारूपी व्याघ्र को मुझको जीव देना चाहिये हे पुत्र तुम्हारे कारण उसने मुझको सौगन्दों से छोडा हैं ॥ ६१ ॥ हे पुत्र ! आज मुझको वहा व्याघ्र के समीप जानाचाहिये क्योंकि सौगन्दोंसे बँधी हुई मैं शरीर को दूंगी ॥६२॥ बछड़ा बोला कि जहां तुम जानेकी इच्छा करतीहो

किमर्थमन्यवेलायां समायातावदस्वमे ॥ ५८ ॥ कपिलोवाच ॥ पिबपुत्रस्तनंमह्यं कारणंचापिमेशृणु ॥ आगताहन्त वस्नेहात्कुरुतृप्तिंयथेप्सितम् ॥ ५९ ॥ अपश्चिममिदंपुत्र दुर्लभंमातृदर्शनम् ॥ मयाद्यपुत्रगन्तव्यं शपथैरागतायतः ॥ ६० ॥ व्याघ्रस्यकामरूपस्य दातव्यंजीवितंमया ॥ तेनाहंशपथैर्मुक्ता कारणात्तवपुत्रक ॥ ६१ ॥ मयाद्यतत्रगन्तव्यं मृगराजसमीपतः ॥ बद्धाचशपथैःपुत्र दास्यामिचकलेवरम् ॥ ६२ ॥ वत्स उवाच ॥ अहन्तत्रगमिष्यामि यत्रत्वं गन्तुमिच्छसि ॥ श्लाघ्यंहिमरणंमेच त्वयासहनसंशयः ॥ ६३ ॥ एकाकिनापिमर्तव्यं मयायस्मात्त्वयाविना ॥ यदि मांसहितंतत्र त्वयाव्याघ्रोवधिष्यति ॥ ६४ ॥ यागतिर्मातृभक्तानां ध्रुवंसामेभविष्यति ॥ तस्मादवश्यंयास्यामि त्वया सहनसंशयः ॥ ६५ ॥ अथवात्रैवतिष्ठत्वं शपथास्सन्तुमेतव ॥ तवस्थानेप्रयास्यामि मातस्त्वंयदिमन्यसे ॥ ६६ ॥ जनन्याविप्रयुक्तस्य जीवितंनहिमेप्रियम् ॥ नास्तिमातृसमःकश्चिद्बालानांक्षीरजीविनाम् ॥६७॥ नास्तिमातृसमोनाथो

वहा मैं जाऊँगा क्योंकि तुम्हारे साथ मेरा मरना प्रशमनीय है इसमें सन्देह नहीं है ॥६३॥ जिसलिये कि तुम्हारे बिना मुझको अकेले भी मरना होगा और यदि वहां व्याघ्र तुमसमेत मुझको मारेगा ॥ ६४ ॥ तो जो गति माताके भक्तों की होती है वह निश्चयकर मेरी होगी इसलिये मैं तुमसमेत अवश्य जाऊगा इस मे सन्देह नहीं हैं ॥ ६५ ॥ अथवा तुम यहीं स्थित होवो तुम्हारे शपथ मुझको होवैं हे मातः ! यदि तुम मानो तो मैं तुम्हारे स्थान में जाऊगा ॥ ६६ ॥ क्योंकि माता से बिछुड़े

हुये मुझको जीवन प्रिय नहीं है दूधमे जीनेवाले बालकों को माता के समान कुछ नहीं है ॥ ६७ ॥ माता के समान स्वामी नही है व माता के समान गति नहीं है जो पुत्र माता में निरत (स्नेही) हैं वे उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥ कपिला बोली कि हे पुत्र ! इससमय मेरीही मृत्यु विहित है तुम्हारी नहीं है क्योंकि अन्यकी मृत्युसे अन्य प्राणियों की यह मृत्यु नहीं होती है ॥ ६९ ॥ व हे पुत्र ! सावधान होकर तुम अन्तमें सुखदायक इस पिछले माता के उत्तम संदेश को सुनो ॥ ७० ॥ कि हे वत्स ! वन में चरतेहुये तुम सदैव सावधान में तत्पर होवो क्योंकि असावधानता से निस्सन्देह सब प्राणी नाश होजाते हैं ॥ ७१ ॥ व विषम (ऊंचे

नास्तिमातृसमागतिः ॥ येमातृनिरताःपुत्रास्तेयान्तिपरमाङ्गतिम् ॥ ६८ ॥ कपिलोवाच ॥ ममैवविहितोमृत्युर्नते पुत्रकसाम्प्रतम् ॥ नचायमन्यभूतानां मृत्युस्स्यादन्यमृत्युतः ॥ ६९ ॥ अपश्चिममिदम्पुत्र मातुःसन्देशमुत्तमम् ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वा परिणामसुखावहम् ॥ ७० ॥ वनेचरस्सदावत्स अप्रमादपरोभव ॥ प्रमादात्सर्वभूतानि विनश्यन्ति नसंशयः ॥ ७१ ॥ नचलोभस्तुकर्त्तव्यो विषमस्थेतृणेकचित ॥ लोभादिनाशोजन्तूनामिहलोकेपरत्रच ॥ ७२ ॥ समुद्रमटवींयुद्धं विशन्तेलोभमोहिताः ॥ लोभादकार्यमत्युग्रं कुर्वन्तित्याज्यएवतत् ॥ ७३ ॥ लोभात्प्रमादाद्विस्रम्भात्पुरुषोबाध्यतेत्रिभिः ॥ तस्माल्लोभोनकर्त्तव्यो नप्रमादोनविश्वसेत ॥ ७४ ॥ आत्माचसततंपुत्र रक्षितव्यःप्रयत्नतः ॥ सर्वेभ्यश्चापदेभ्यश्च म्लेच्छेभ्यस्त्वसुरादितः ॥ ७५ ॥ तिर्यग्भ्यःपापयोनिभ्यः सदाचचरतावने ॥ नचशोकस्त्वया

नीचे) में स्थित तृणमें कभी लोभ न करना चाहिये क्योंकि लोभसे इसलोक व परलोक में प्राणियों का नाशहोता है ॥ ७२ ॥ और लोभसे मोहित मनुष्य समुद्र, जंगल व युद्धमें पैठजाते हैं व लोभ से मनुष्य अत्यन्त उग्र अकार्य को करते हैं इसकारण लोभ त्यागनेही योग्यहै ॥ ७३ ॥ मनुष्य लोभ, प्रमाद व विश्वास तीनों से बाधित होता है इसलिये लालच व प्रमाद (असावधानता) न करना चाहिये और न विश्वासकरै ॥ ७४ ॥ व हे पुत्र ! सब हिंसक जीवोंसे व म्लेच्छों तथा दैत्यादिकोंसे शरीरको बड़े यत्नसे सदैव रक्षा करनाचाहिये ॥ ७५ ॥ और वनमें चरतेहुये तुमको सदैव तिर्यक्योनिवाले व पापयोनिवाले प्राणियों से रक्षा करनाचाहिये और तुमको शोच न

करना चाहिये क्योंकि निश्चयकर सबका मरण है ॥ ७६ ॥ और हमसे शोक के नाशनेवाले वचन को सुनिये कि जैसे कोई छायाकी इच्छावाला पथिक वृक्ष के आश्रित हुआ ॥ ७७ ॥ और सहताकर वह फिर चलाजाता है वैसेही प्राणियों का समागम होता है ॥ ७८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस बछड़ासे ऐसा कहकर व मस्तक में चाटकर तदनन्तर अपनी माता व सखीगणको देखने के लिये आई ॥ ७९ ॥ तदनन्तर पुत्रके शोकसे दुःखित उसने, वचन कहा कि हे माताओ ! इस मेरे पिछले वचन को सुनिये ॥ ८० ॥ कि तुम सब अनाथ, निर्बल, दीन व दूधके फेनको पीनेवाले तथा माताके शोच से संतप्त मेरे पुत्रकी रक्षा कीजियेगा ॥ ८१ ॥ और

कार्यः सर्वस्यमरणंध्रवम् ॥७६॥ अस्माकंप्रतिवाचंच शृणुशोकविनाशनीम् ॥ यथाहिपथिकःकश्चिच्छायार्थीवृक्षमाश्रितः ॥ ७७ ॥ विश्रान्तश्चपुनर्याति तद्वद्भूतसमागमः ॥ ७८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंसम्भाष्यतंवत्समवलिह्यचमूर्द्धनि ॥ स्वांमातरंसखीवर्गं ततोद्रष्टुमुपागता ॥ ७९ ॥ अब्रवीच्चेत्ततोवाक्यं पुत्रशोकेनदुःखिता ॥ अम्बाशृण्वन्तुमेवाक्यमपश्चिममिदंस्फुटम् ॥ ८० ॥ अनाथमबलंदीनंफेनपंममपुत्रकम् ॥ मातृशोकाभिसन्तप्तं सर्वास्तंपालयिष्यथ ॥ ८१ ॥ भाविनीनामयापुत्रः साम्प्रतंचविशेषतः ॥ तयापाययितव्योसौ तुष्यःपाल्यस्स्वपुत्रवत् ॥ ८२ ॥ चरन्तंविषमेस्थाने चरन्तंपरगोकुले ॥ अकार्येषुप्रवर्त्तन्ते हेसख्योवारयिष्यथ ॥ ८३ ॥ क्षमध्वंचमहाभागायास्येहंसत्यसंश्रयात् ॥ यत्रासौ तिष्ठतेव्याघ्रो मुक्ताहंयेनसाम्प्रतम् ॥ ८४ ॥ सर्वास्तावचनंश्रुत्वा तस्याःशोकसमन्विताः ॥ विषादंपरमंगत्वा वाक्यमूचुःसुदुःखिताः ॥ ८५ ॥ कपिलेनैवगन्तव्यं नतेदोषोभविष्यति ॥ प्राणात्ययेनदोषोस्ति सम्परायेचदारुणे ॥ ८६ ॥ अत्र

जो भाविनीनामकहै उसको इससमय विशेषकर दूधपीनेवाले इस पुत्रको अपने पुत्रकी नाईं पिलाना चाहिये व प्रसन्न तथा पालन करनाचाहिये ॥ ८२ ॥ हे सखियो ! विषम स्थान में चरते व पराये गोकुल में चरतेहुये तथा अकार्यों में वर्तमान पुत्रको तुम सब मना कीजियेगा ॥ ८३ ॥ व हे महाभागाओ ! क्षमा कीजियेगा मैं सत्य के आश्रय से वहां जाती हूं जहां यह व्याघ्र टिका है कि जिसने इससमय मुझको छोड़ा है ॥ ८४ ॥ वे सब उसके वचन को सुनकर शोचसंयुत हुईं और बड़े विषाद को प्राप्त होकर दुःखित होती हुई उन्हों ने कहा ॥ ८५ ॥ किहे कपिले ! तुमको न जानाचाहिये और तुमको दोष न होगा क्योंकि भयंकर मरण व प्राण

क्लेश में दोष नहीं होता है ॥ ८६ ॥ इस विषय में पुरातनसमय धर्मवादी मुनियों ने गाथा को गाया है कि प्राणान्त प्राप्त होनेपर सौगन्द में पाप नहीं होता है ॥ ८७ ॥ कपिला बोली कि अन्यप्राणियों की प्राणरक्षा के लिये मैं झूठ वचन कहती हूं और अपनेलिये थोड़ा भी झूठ कहने के लिये कभी उत्साह नहीं करती हूं ॥ ८८ ॥ क्योंकि हज़ार अश्वमेध व सत्य तराजू से धारण किया जावै तो हज़ार अश्वमेध से सत्यही विशेष (अधिक) होता है ॥ ८९ ॥ इसलिये जीने की आशा से मैं अपना को झूंठ न करूंगी मुझको श्रेष्ठ आपलोग आज्ञा देवो मैं वहां जाऊंगी जहां कि मृगाधिप (व्याघ्र) है ॥ ९० ॥ सखियां बोलीं कि

गाथापुरागीता मुनिभिर्धर्मवादिभिः ॥ प्राणात्ययेसमुत्पन्ने शपथेनास्तिपातकम् ॥ ८७ ॥ कपिलोवाच ॥ परेषांप्राणरक्षार्थं वदाम्येवानृतंवचः ॥ नात्मार्थमुत्सहेवक्तुं स्वल्पमप्यनृतंकचित् ॥ ८८ ॥ अश्वमेधसहस्रंवै सत्यंचतुलयाधृतम् ॥ अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेवविशिष्यते ॥ ८९ ॥ तस्मान्नानृतमात्मानं करिष्येजीविताशया ॥ आज्ञापयन्तुमामार्या यास्येयत्रमृगाधिपः ॥ ९० ॥ वयस्या ऊचुः ॥ कपिलेत्वंनमस्कार्या सर्वैरपिसुरासुरैः ॥ यात्वंपद्मसत्त्वेन प्राणांस्त्यजसिदुस्त्यजान् ॥ ९१ ॥ अवश्यंनचतेभावी मृत्युस्सत्यात्कथञ्चन ॥ प्रमाणंयदिसत्यंहि व्रजपन्थाःशिवोस्तुते ॥ ९२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वाचकपिला गतायत्रमृगाधिपः ॥ अथासौकपिलांदृष्ट्वा विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ९३ ॥ अब्रवीत्प्राश्रितंवाक्यं हर्षगद्गदयागिरा ॥ ९४ ॥ व्याघ्र उवाच ॥ स्वागतंतवकल्याणि कपिलेसत्यवादिनि ॥ नहिसत्यवतांकिञ्चिदशुभंविद्यतेकचित् ॥ ९५ ॥ त्वयोक्तंकपिलेपूर्वं शपथैरागमोत्तमम् ॥ तेनमेकौतुकंजातं गत्वागच्छेःपुनः

हे कपिले ! तुम सबभी देवताओं व दैत्यों से नमस्कार करनेयोग्य हो जो तुम कि उत्तम सत्त्व से दुस्त्यज प्राणों को छोड़ती हो ॥ ९१ ॥ और सत्य से किसीप्रकार तुम्हारी मृत्यु न होगी यदि सत्य प्रमाण है तो जाइये तुम्हारा कल्याणमय मार्ग होवै ॥ ९२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहीहुई कपिला वहां गई जहां कि व्याघ्र था इसके अनन्तर यह व्याघ्र कपिला को देखकर विस्मय से प्रफुल्लितलोचन हुआ ॥ ९३ ॥ और हर्ष से गद्गदी वाणी करके उसने नम्रवचन को कहा ॥ ९४ ॥ व्याघ्र बोला कि हे सत्यवादिनि, कल्याणि, कपिले ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ और सत्यवाले प्राणियों को कहीं कुछ अशुभ नहीं होता है ॥ ९५ ॥ हे कपिले !

तुमने पहले सौगन्दों से उत्तम आगमन को कहा था उससे मुझको कौतुक हुआ कि जाकर तुम कैसे फिर आवोगी ॥ ९६ ॥ इसलिये मुझसे छोड़ी हुई तुम वहां जावो जहां कि दूधपीनेवाला व बहुत दुःखित यह तुम्हारा पुत्र गोकुल में बँधा हुआ स्थित है ॥ ९७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसीसमय में वह राजा के स्वरूप को प्राप्त हुआ और मृगी के शाप से छूटाहुआ वह दिव्यरूपवाले शरीर को धारण करता भया ॥ ९८ ॥ तदनन्तर प्रसन्न चित्तवाले उसने सत्यवादिनी कपिला से कहा ॥ ९९ ॥ राजा बोले कि तुम्हारी प्रसन्नता से मैं इस बहुत भयंकर शाप से छूट गया हे धेनुके ! मैं इससमय तुम्हारा क्या प्रिय करूं शीघ्रही कहिये ॥ १०० ॥

कथम् ॥ ९६ ॥ तस्माद्गच्छमयामुक्ता यत्रासौतनयस्तव ॥ तिष्ठतेगोकुलेबद्धः क्षीरपायीसुदुःखितः ॥ ९७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सराजप्रकृतिंगतः ॥ मृगीशापेननिर्मुक्तो दिव्यरूपवपुर्धरः ॥ ९८ ॥ ततोऽब्रवीत्प्रहृष्टात्मा कपिलांसत्यवादिनीम् ॥ ९९ ॥ राजोवाच ॥ प्रसादात्तवमुक्तोहं शापादस्मात्सुदारुणात् ॥ किन्तेप्रियंकरोम्यद्य धेनुके ब्रूहिसत्वरम् ॥ १०० ॥ कपिलोवाच ॥ कृतकृत्यास्मिराजेन्द्र यत्त्वंमुक्तोसिकिल्बिषात् ॥ पिपासाबाधतेत्यर्थं साम्प्रतं जलमानय ॥ १ ॥ नोचेन्मृतांविजानीहि सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ २ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अथासौपार्थिवोराजंश्चापमा दायसत्वरम् ॥ सज्यंकृत्वाशरंगृह्य जघानधरणीतलम् ॥ ३ ॥ ततःसलिलमुत्तस्थौ निर्मलंशीतलंशुभम् ॥ तत्रसाक पिलास्नाता वितृषासमपद्यत ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नन्तरेधर्मः स्वयंतत्रसमागतः ॥ अब्रवीत्कपिलांहृष्टो वरंवरयशोभने ॥ ५ ॥ तवसत्येनतुष्टोहं नास्तितेसदृशीक्वचित् ॥ त्रैलोक्येसकलेधेनुर्नभविष्यतिवैशुभे ॥ ६ ॥ कपिलोवाच ॥ प्रसादात्त

कपिला बोली कि हे नृपेन्द्र ! जो तुम पापसे छूटगये इससे मैं कृतार्थ हूं और इससमय प्यास बहुत पीड़ा करती है इससे जल लावो ॥ १ ॥ नहीं तो मुझको मरीहुई जानिये यह मैंने सत्य कहा है ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! इसके अनन्तर इस राजाने शीघ्रही धनुषको लेकर व चढ़ाकर बाणको लगाकर पृथ्वीको मारा ॥ ३ ॥ तदनन्तर निर्मल व ठण्ढा उत्तम जल निकला उसमें नहाईहुई वह कपिला प्यासरहित हुई ॥ ४ ॥ इसीअवसर में आपही धर्मराज वहां आये और कपिलासे प्रसन्न होकर बोले कि हे शोभने! वरदानको मांगिये ॥ ५ ॥ हे शुभे ! तुम्हारे सत्यसे मैं प्रसन्न हूं और तुम्हारे समान सब त्रिलोकमें कहीं गऊ नहीं है न होवेगी ॥ ६ ॥

कपिला बोली कि तुम्हारी प्रसन्नता से मैं सुप्रभ राजासमेत जरामरण से रहित उत्तम गोकुल स्थान को जाऊं ॥ ७ ॥ और यह पवित्र जलाशय मेरे नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त होवै और मनुष्यों के सब पापों का हरनेवाला व सब कामनाओं का देनेवाला होवै ॥ ८ ॥ धर्मराज बोले कि जो मनुष्य विशेषकर चौदसि तिथिमें इस उत्तम व पवित्रजलमें स्नान करेंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवेंगे॥ ९॥ और तुम्हारे नामसे यह बहुत पवित्र तीर्थ होगा और इसके दर्शन मे मनुष्य हज़ार गोओंमे उपजेहुये फलको पावैगा ॥ १० ॥ और स्नान से लाखगुना पुण्य व दानसे अक्षय पुण्य होगा और भलीभाँति सावधान होतेहुये जो मनुष्य यहां श्राद्ध करैंगे ॥ ११ ॥

वगच्छेयं सहराज्ञासुगोकुलम् ॥ सुप्रभेणपदंदिव्यं जरामरणवर्जितम् ॥ ७ ॥ मन्नाम्नाख्यातिमायातु पुण्यमेतज्जलाशयम् ॥ सर्वपापहरन्नृणां सर्वकामप्रदन्तथा ॥ ८ ॥ धर्म उवाच ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति सुपुण्येसलिलेशुभे ॥ चतुर्द्दश्यांविशेषेण तेयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥ ९ ॥ तवनाम्नासुपुण्यंहि तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ दर्शनादस्यमर्त्यस्तु प्राप्स्यतेगोसहस्रजम् ॥ १० ॥ स्नानाल्लक्षगुणंपुण्यं दानाच्चैवतथाक्षयम् ॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति मानवास्सुसमाहिताः ॥ ११ ॥ सर्वदानफलंतेषां भविष्यतिमहात्मनाम् ॥ अपिकीटपतङ्गाये तृषार्तास्सलिलेशुभे ॥ १२ ॥ मज्जयिष्यन्तियास्यन्ति तेपिस्थानंदिवौकसाम् ॥ किंपुनर्भक्तिसंयुक्तामानवाःसत्यवादिनः ॥ १३ ॥ मनस्विनोमहाभागाःश्रद्धावन्तोविचक्षणाः ॥ १४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु विमानानिसहस्रशः ॥ समायातानिराजेन्द्र कपिलायाःप्रभावतः ॥ १५ ॥ तान्यारुह्याथकपिला सगोपीगोपगोकुला ॥ सुप्रभेणसमायुक्ता तत्पदंपरमङ्गता ॥ १६ ॥

उन महात्माओं को सब दानों का फलहोगा और प्यास से विकल जो कीट व पतंग भी उत्तम जलमें ॥ १२ ॥ मज्जन करैंगे वे भी देवताओं के स्थानको जावैंगे फिर भक्ति से संयुत व सत्यवादी मनुष्यों को क्या कहना है ॥ १३ ॥ जो कि मनस्वी व महाभाग और श्रद्धावान् तथा चतुर हैं ॥ १४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! इसीसमय में कपिला के प्रभावसे हजारों विमान आये ॥ १५ ॥ व गोपी, गोप और गोकुलसमेत वह कपिला सुप्रभ राजा संयुत उन विमानों पै चढ़कर उस

उत्तम स्थान को चलीगई॥ ३६ ॥इसलिये हेनृपोत्तम ! उसमें सब उपाय से स्नान व श्राद्ध करै और अपनी शक्ति से दान करै॥ ११७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे देवीदयालुभिश्रविरचितायाभाषाटीकायांकपिलातीर्थमाहात्म्यंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। है उत्तम माहात्म्ययुत अग्नितीर्थ इमि नाम। सोइ तीस अध्याय में कह्यो चरित अभिराम॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर मनुष्यों को परमपवित्र-कारक अग्नितीर्थ को जावै वहां पुरातनसमय अग्नि नष्ट होगई व देवताओंको मिली भी है ॥ १ ॥ ययातिजी बोले कि हे द्विजोत्तम ! पुरातनसमय भगवान्

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रस्नानंसमाचरेत् ॥ श्राद्धञ्चैवात्मनःशक्त्या दानंपार्थिवसत्तम ॥११७॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकपिलातीर्थप्रभावमाहात्म्यन्नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ अग्नितीर्थन्ततोगच्छेत्पावनंपरमन्नृणाम् ॥ तत्रवह्निःपुरानष्टोलब्धश्चत्रिदशैरपि ॥ १ ॥ ययातिरुवाच ॥ किमर्थंभगवान्वह्निः पुरानष्टोद्विजोत्तम ॥ कथंतत्रैवलब्धस्तु कौतुकंमेमहामुने ॥ २॥ पुलस्त्य उवाच॥ पुरावृष्टिनिरोधोभूद्यावद्द्वादशवत्सरान् ॥ संशयंपरमंप्राप्तः सर्वलोकःक्षुधार्दितः ॥ ३ ॥ प्रायोमर्त्योमृतप्रायः शेषोभूद्धरणीतले ॥ विनष्टारण्यजाग्राम्याः पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ ४ ॥ एवंकृच्छ्रमनुप्राप्ते मर्त्यलोकेनराधिप ॥ विश्वामित्रोमुनिवरः सन्देहंपरमङ्गतः ॥ ५ ॥ अन्नौषधिरसाभावादस्थिशेषोऽभ्यजायत ॥ अन्यस्मिन्दिवसेप्राप्ते क्षुत्क्षामःपर्यटन्दिशः ॥ ६ ॥ चाण्डालनिलयेप्राप्तः क्षुत्तृष्णापीडितोभृशम् ॥ तत्रापश्यन्मृतंश्वानं शुष्कंपार्थिवसत्तम ॥ ७ ॥

अग्निजी किसलिये नष्ट होगये और हे महामुने ! किसप्रकार वहीं मिले हैं यह मुझको कौतुक है ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि पुरातनसमय बारह वर्ष तक वृष्टि का निरोध (अवर्षण) हुआ और क्षुधा से विकल सब संसार बड़े सन्देह को प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ और पृथ्वी में प्रायः मनुष्य मरगये व बचेहुये मृतप्राय होगये और जंगल में उपजेहुये व गांववाले पशु, पक्षी व मृग नाश होगये ॥ ४ ॥ हे नराधिप ! इसप्रकार मृत्युलोक को क्लेश में प्राप्त होनेपर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी बड़े सन्देह को प्राप्त हुये ॥ ५ ॥ और अन्न, औषधी व रसके अभाव से अस्थिमात्र शेष रहगये अन्यदिन प्राप्त होनेपर दिशाओं को पर्यटन करतेहुये क्षुधा से दुबले ॥ ६ ॥ व क्षुधा,

प्यास से बहुतही विकल विश्वामित्रजी चंडाल के घरमें प्राप्त हुये हे नृपोत्तम ! वहा उन्होंने मरेहुये सूखे कुत्ते को देखा ॥ ७ ॥ व उसको लेकर घरमें प्राप्त हुये तदनन्तर क्षुधा से दुबले विश्वामित्रजीने जलसे धोकर उसको पकाया व अग्नि में हवन किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर हे महामुने, नृप ! अग्निने अभक्ष्यका भक्षण जानकर अग्नि ने इन्द्र के ऊपर बहुतही क्रोध किया ॥ ९ ॥ कि नष्ट औषधी व रसोंवाले संसार में यह इससमय योग्य है कि जैसी हवि भोज्य होवै वैसी अग्नि के भक्षण में विशेषकर होवै ॥ १० ॥ और मैं अभक्ष्य को नहीं भक्षण करूंगा व पृथ्वीमंडल को छोड़दूगा कि जिससे इन्द्रादिक देवता बहुत क्लेश की दशा को प्राप्त

तमादायगृहम्प्राप्तः प्रक्षाल्यसलिलेनच ॥ क्षुत्क्षामःपाचयामास ततस्तंपावकेजुहोत् ॥ ८ ॥ अभक्ष्यभक्षणंज्ञात्वा हव्यवाहस्ततोनृप ॥ शक्रस्योपरिमन्युञ्च चक्रेतीवमहामुने ॥ ९ ॥ नष्टौषधरसेलोके युक्तमेतद्धिसाम्प्रतम् ॥ यादृग्भोज्यंहविस्तादृगग्निभक्षेविशिष्यते ॥ १० ॥ नाभक्ष्यंभक्षयिष्यामि त्यजिष्येक्षितिमण्डलम् ॥ येनशक्रादयोदेवा यान्तिकष्टतरांदशाम् ॥ ११ ॥ एवंसञ्चिन्त्यमनसा सकोपोहव्यवाहनः ॥ प्रणष्टःसकलंहित्वा मर्त्यलोकंचराचरम् ॥ १२ ॥ प्रणष्टेसहसावह्नावग्निष्टोमादिकाःक्रियाः ॥ प्रणष्टास्तुजनस्सर्वो वसिष्ठःसंशयङ्गतः ॥ १३ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे सन्देहंपरमङ्गताः ॥ यज्ञभागविहीनत्वान्मन्त्रंचक्रुस्ततोमिथः ॥ १४ ॥ त्यक्तस्तुवह्निनामर्त्यस्ततोनाशङ्गतानराः ॥ तेषांनाशाद्वयंसर्वे विनङ्क्ष्यामोनसंशयः ॥ १५ ॥ तस्मादन्वेष्यतांवह्निर्यत्रतिष्ठतिसाम्प्रतम् ॥ यथाचरति मर्त्येच तथानीतिर्विधीयताम् ॥ १६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंतेनिश्चयंकृत्वा सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ अन्वेषयंस्तथाग्निं

होवैं ॥ ११ ॥ ऐसा मनसे विचारकर क्रोधसमेत अग्निजी चराचर सब मृत्युलोक को छोड़कर नष्ट होगये ॥ १२ ॥ व अचानकही अग्नि के नष्ट होनेपर अग्निष्टोमादिक कर्म नाश होगये व सब मनुष्य और वसिष्ठजी सन्देहको प्राप्तहुये ॥ १३ ॥ तदनन्तर सब देवगण बड़े सन्देहको प्राप्त हुये उसके उपरान्त यज्ञ भागहीन होने के कारण उन्होंने परस्पर सलाह किया ॥ १४ ॥ कि अग्निने मृत्युलोक को छोड़ दिया उसकारण मनुष्य नाशको प्राप्तहुये और उनके नाशसे हमसब निस्संदेह नाश होजावैंगे ॥ १५ ॥ इसलिये इससमय जहा स्थित होवै वहा अग्नि ढूंढी होजावै और जिसप्रकार मृत्युलोक में विचरै वैसीही नीति की जावै ॥ १६ ॥ पुलस्त्यजी

बोले कि इसप्रकार निश्चयकर इन्द्रसमेत उन सब देवताओं ने सब ओर पृथ्वीमंडल में अग्नि को ढूंढ़ा ॥ १७ ॥ और आगे सुवाको देखकर उन थकेहुये सब देवताओं ने श्रद्धा से पूंछा कि यदि अग्निको तुमने देखाहो तो कहिये ॥ १८ ॥ शुक बोला कि जो यह आगे बड़ाभारी बास अग्नि के संग से जलाया गया है इसमें छिपहुये महाप्रकाशमान अग्नि को मैंने देखा है ॥ १९ ॥ शुक से बतलायेहुये अग्नि ने उसको शापदिया कि मनुष्यों के आगे तुम्हारी वाणी गद्गदी होवै यह कहकर शीघ्रही चलेगये ॥ २० ॥ और शमीगर्भवाले उत्तम पीपल के वृक्ष में पैठगये और वहां स्थित उस अग्नि को गजराज ने देवताओं से कहा और

तु समन्तात्क्षितिमण्डले ॥ १७ ॥ शुकन्तेपुरतोदृष्ट्वा सर्वेश्रान्तादिवौकसः ॥ पप्रच्छुःश्रद्धयावह्निर्यदिदृष्टःप्रकथ्यताम् ॥ १८ ॥ शुक उवाच ॥ योयंवंशोमहानग्रे प्रदग्धोवह्निसङ्गतः ॥ प्रणष्टोहव्यवाहोत्र मयादृष्टोमहाद्युतिः ॥ १९ ॥ शुकेनवेदितोवह्निरशयन्मनुजाग्रतः ॥ गद्गदाभाविताबाणी प्रोक्त्वेदंप्रस्थितोद्रुतम् ॥ २० ॥ प्रविवेशशमीगर्भमश्वत्थंतरुसत्तमम् ॥ तत्रस्थोद्विपराज्ञास कथितोविबुधान्प्रति ॥ सतस्प्रोवाचतेजिह्वा विपरीताभविष्यति ॥ २१ ॥ ततोजलाशयंगत्वा पर्वतेऽर्बुदसञ्ज्ञके ॥ प्रविष्टोभगवान्वह्निर्यथादेवैर्नलक्ष्यते ॥ २२ ॥ तत्रस्थोदर्दुरेणैव तेषांप्रोक्तोहुताशनः ॥ अत्रासौतिष्ठतेवह्निर्निर्झरेपर्वतस्यच ॥ २३ ॥ दग्धाश्चजलजास्सर्वे सुतप्तेनैववारिणा ॥ कृच्छ्रादहंविनिष्क्रान्तःतस्मान्मृत्युमुखात्सुराः ॥ २४ ॥ तच्छ्रुत्वायत्नमास्थाय प्रविष्टोहव्यवाहनः ॥ भविष्यसिविजिह्वस्त्वं शप्त्वातंदर्दुरन्नृप ॥ २५ ॥ ततोदेवगणास्सर्वे निष्क्रान्ताःसलिलाश्रयात् ॥ संवेष्ट्यतुष्टुवुस्सर्वेस्तवैर्वेदोद्भवैर्नृप ॥ २६ ॥ देवा ऊचुः ॥

उससे उन अग्निदेव ने कहा कि तुम्हारी जिह्वा उलटी होगी ॥ २१ ॥ तदनन्तर अर्बुदसंज्ञक पर्वतपै जाकर भगवान् अग्निजी जलाशय में वैसेही पैठगये कि जिस प्रकार देवता न देख पावैं ॥ २२ ॥ और वहां टिकेहुये अग्निको उन देवताओं से मेढक ने कहा कि यहां पर्वत के झरने में ये अग्निजी टिके हैं ॥ २३ ॥ और बहुत ही गरम जलमे सब जलमें उपजेहुये प्राणी जलगये व हे देवताओ ! मैं उस मृत्यु के मुखसे क्लेश से निकला हूं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! उस वचन को सुनकर यत्न में स्थित होकर पैठेहुये अग्नि ने कहा कि तुम जिह्वा से रहित होगे इसप्रकार उस मेढक को शाप देकर स्थित हुये ॥ २५ ॥ तदनन्तर सब देवताओंके गण जलाशय

से निकले व हे राजन्! सबोंने घेरकर वेदसे उपजेहुये स्तोत्रों से स्तुति किया ॥ २६ ॥ देवता बोले कि हे पावक, अग्ने! तुम सब प्राणियों के भीतर विचरते हो और तुमसे हीन सब संसार शीघ्रही नाश होजावैगा ॥ २७ ॥ तुम सब देवताओंका मुखहो और तुम में लोक स्थित हैं और तुमसे पृथ्वीलोक त्यागने पर इन्द्रसमेत हम सब ॥ २८ ॥ विनाशही को प्राप्त होवैंगे इसलिये तुम रक्षा करने योग्यहो तुम ब्रह्माहो तुममहादेव हो तुम विष्णुहो व तुम सूर्यनारायणहो ॥ २९ ॥ व तुम चन्द्रमा हो तुम कुबेरहो तुम वरुणहो तुम इन्द्रहो व हे हुताशन! इन्द्रादिक सब देवता तुम्हारे अधीन हैं ॥ ३० ॥ हे भगवन्! किसलिये मृत्युलोकको छोड़कर तुमयहा

त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिपावक ॥ त्वयाहीनंजगत्सर्वं नाशंयास्यतिसत्वरम् ॥ २७ ॥ त्वंमुखंसर्वदेवानां त्वयि लोकाःप्रतिष्ठिताः ॥ भूलोकेचत्वयात्यक्ते वयंसर्वेसवासवाः ॥ २८ ॥ विनाशमेवयास्यामः तस्मात्त्वंत्रातुमर्हसि ॥ त्वं ब्रह्मात्वंमहादेवः त्वंविष्णुस्त्वंदिवाकरः ॥ २९ ॥ त्वंचन्द्रस्त्वंचधनदो वरुणस्त्वंसुरेश्वरः ॥ इन्द्राद्याविबुधास्सर्वे त्वदा यत्ताहुताशन ॥ ३० ॥ किमर्थंभगवन्मर्त्यं त्यक्त्वात्रत्वंचसंस्थितः ॥ किमर्थंभगवन्नस्मान्नागांस्त्यक्तुमिच्छसि ॥ ३१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ वेष्टितोभगवान्वह्निर्देवैःस्तुतिपरायणैः ॥ तस्यैवनिर्झरस्याथ तटस्थोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ वह्निरुवाच ॥ अभक्ष्यभक्षणेशक्रो मामिच्छतिनियोजितुम् ॥ तेनैवनकरोत्येष वृष्टिंमर्त्येसुरेश्वरः ॥ ३३ ॥ अतोहं भूतलंत्यक्त्वा प्रविष्टोनिर्झरेत्विह ॥ प्रणष्टान्नरसेलोके नचाहंस्थातुमुत्सहे ॥ ३४ ॥ शुक्र उवाच ॥ शृणुयस्मान्मयारो धः कृतोवृष्टेर्हुताशन ॥ देवापिर्नामधर्मज्ञः क्षत्रियाणांयशस्करः ॥ ३५ ॥ प्रतीपस्यसुतस्साधुः सर्वशीलवतांवरः ॥

स्थित हुये हो व हे भगवन्! अपराधहीन हमलोगों को तुम किसलिये त्यागना चाहतेहो ॥ ३१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि स्तुति में लगेहुये देवताओं से घिरेहुये व उसी झरना के किनारे बैठेहुये भगवान् अग्नि ने वचन कहा॥ ३२ ॥ अग्नि बोले कि इन्द्रजी मुझको अभक्ष्य के भक्षण में नियुक्त करना चाहते हैं उसीसे ये इन्द्र मृत्युलोक में वर्षा नहीं करते हैं ॥ ३३ ॥ इसकारण मैं पृथ्वी को छोड़कर इस झरनेमें पैठगया क्योंकि नष्ट अन्न व रसोंवाले संसारमें मैं स्थित होनेके लिये उत्साह नहीं करता हूं ॥ ३४ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे हुताशन! जिसलिये मैंने वृष्टिका निरोध कियाहै उसको सुनिये कि क्षत्रियोंके यशको करनेवाला देवापिनामक धर्मज्ञ ॥ ३५ ॥

प्रतीप का पुत्र साधु व सब शीलवानों में श्रेष्ठ था जब देवापि वन को चलेगये तब पहले पैदाहुये जेठे भाईको ॥ ३६ ॥ छोड़कर उन प्रतीप के छोटे पुत्र शन्तनु ने राज्य को ग्रहण किया इसकारण से उनके राज्य में वृष्टि नहीं की गई ॥ ३७ ॥ व हे हुताशन ! लौटिये मैं तुम्हारी आज्ञा से वृष्टि करूंगा पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर इन्द्रजी ने पुष्करावर्तनामक मेघों को ॥ ३८ ॥ पृथ्वी में वृष्टि के लिये शीघ्रही आज्ञा दिया इसके अनन्तर इन्द्र से आज्ञादियेहुये चलतेहुये मेघ ॥ ३९ ॥ जो कि सब गंभीरशब्दवाले थे उन अतिउग्र व द्युतिमान् मेघों ने हे राजन् ! भूतल को बहुत जलों से पूर्ण करदिया ॥ ४० ॥ तदनन्तर भगवान् अग्निजी परम

देवापौचगतेरण्ये ज्येष्ठंभ्रातरमग्रजम् ॥ ३६ ॥ सत्यक्त्वाजगृहेराज्यं शन्तनुस्तत्सुतोवरः ॥ एतस्मात्कारणाद्रा ज्ये तस्यवृष्टिर्निराकृता ॥ ३७ ॥ तवादेशात्करिष्यामि निवर्तस्वहुताशन ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वासहस्राक्षः पुष्करावर्तकान्घनान् ॥ ३८ ॥ द्रुतमाज्ञापयामास वृष्ट्यर्थंजगतीतले ॥ अथशक्रसमादिष्टा विधुन्वन्तोवलाहकाः ॥ ३९ ॥ गम्भीररराविणस्सर्वे भूतलंप्रचुरैर्जलैः ॥ पूरयामासुरत्युग्रा द्युतिमन्तोमहीपते ॥ ४० ॥ ततोगमत्परान्तुष्टिं भग वान्हव्यवाहनः ॥ रोचयामासभूपृष्ठे वसतिंदेवकारणात् ॥ ४१ ॥ देवाऊचुः ॥ तवादेशात्कृतावृष्टिरन्यकार्यंहुताशन ॥ यत्तेप्रियंतदस्माकं सुशीघ्रंविनिवेदय ॥ ४२ ॥ अग्निरुवाच ॥ एतज्जलाशयंपुण्यं मन्नाम्नातीर्थमुत्तमम् ॥ ख्यातिं यातुधरापृष्ठे युष्माकंहिप्रसादतः ॥ ४३ ॥ देवा ऊचुः ॥ अग्नितीर्थमिदंलोके प्रत्याख्यातिंप्रयास्यति ॥ अत्रस्नातोन रःसम्यगग्निलोकंप्रयास्यति ॥ ४४ ॥ यस्तिलान्दास्यतिनरस्तीर्थेस्मिन्सुसमाहितः ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य फलं

प्रसन्नताको प्राप्तहुये व उन्होंने देवताओं के कारण पृथ्वी में निवासकी रुचि किया ॥ ४१ ॥ देवता बोले कि हे हुताशन ! तुम्हारी आज्ञासे वृष्टिकी गई और जो तुमको अन्यकार्य प्रिय होवै उसको शीघ्रही हमलोगों से कहिये ॥ ४२ ॥ अग्नि बोले कि यह पवित्र जलाशय तुमलोगों की प्रसन्नता से मेरे नाम से उत्तम तीर्थ पृथ्वी में प्रसिद्ध होवै ॥ ४३ ॥ देवता बोले कि संसार में यह अग्नितीर्थ प्रसिद्धि को प्राप्त होगा व इसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य अग्निलोक को जावैगा ॥ ४४ ॥

व सावधान होताहुआ जो मनुष्य इस तीर्थ में तिलोंको देवैगा उसको अग्निष्टोम यज्ञका फल होगा ॥ ४५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! ऐसा कहकर तदनन्तर सब देवता अपने २ स्थान को चलेगये और अग्नि भगवान् पहलेकी नाईं वर्तमान हुये ॥ ४६ ॥ और जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठकर इस अग्नितीर्थ के उत्तम माहात्म्य को पढ़ता है वह सब पातकों से छूटजाता है ॥ ४७ ॥ और सुनताहुआ भी मनुष्य दिनरात्रि में कियेहुये पातक से छूटजाता है ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायामग्नितीर्थप्रभाववर्णनंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तस्यभविष्यति ॥ ४५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वासुराःसर्वे स्वंस्वंस्थानंययुस्ततः ॥ वह्निश्चभगवान्राजन् यथापूर्वंन्यवर्त्तत ॥ ४६ ॥ यश्चैतत्पठतेनित्यं प्रातरुत्थायचोत्तमम् ॥ अग्नितीर्थस्यमाहात्म्यं मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ४७ ॥ अहोरात्रिकृतात्पापाच्छृण्वन्नपिचमुच्यते ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेर्बुदमाहात्म्येग्नितीर्थप्रभाववर्णनन्नामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ रक्तानुबन्धंततोगच्छेत्तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ यत्रस्नातोनरस्सम्यग्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ १ ॥ पुरासीत्पार्थिवोनाम इन्द्रसेनोमहीपतिः ॥ तस्यासीत्सुप्रियाभार्या सुनन्दानामभामिनी ॥ २ ॥ पतिव्रतापतिप्राणा सदापत्युःप्रियेस्थिता ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य सराजासपरिग्रहः ॥ ३ ॥ परदेशङ्गतोहन्तुं शत्रुसङ्घंदुरासदम् ॥ तन्निहत्यधनंभूरि गृहीत्वाप्रस्थितोगृहम् ॥ ४ ॥ ततोग्रेप्रेषयामास सदूतंकृत्रिमन्नृपः ॥ सुनन्दाब्रूहिगत्वात्वं इन्द्रसेनोहतोरणे ॥ ५ ॥

दो० । रक्तबंध इमि तीर्थ महँ पापमुक्त भो भूप । इकतिसवें अध्यायमें सोई चरित अनूप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर त्रिलोक में प्रसिद्ध रक्ताबंधतीर्थ को जावै जिसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य ब्रह्महत्या से छूटजाता है ॥ १ ॥ पुरातनसमय इन्द्रसेननामक पृथ्वीपति राजाहुआ है उसकी सुनन्दानामक प्यारी सुन्दरी स्त्री हुई ॥ २ ॥ वह पतिव्रता व पतिप्राणा तथा सदैव पतिके प्रिय में स्थित थी इसके अनन्तर किसीसमय परिजनसमेत वह राजा ॥ ३ ॥ दुरासद शत्रुसमूह को नाशने के लिये विदेश को गया उसको मारकर व बहुत धनको लेकर घरको चला ॥ ४ ॥ तदनन्तर उस राजा ने आगे कृत्रिम (बनावटवाले) दूतको पठाया

कि जाकर तुम सुनन्दा से कहो कि इन्द्रसेन युद्ध में मारागया ॥ ५ ॥ तदनन्तर मेरी आज्ञा से पतिके ऊपर आकार देखने योग्य है यदि वह स्त्री निश्चयकर पतिके ऊपर मरने चलै ॥ ६ ॥ तो बड़े यत्नसे रक्षा करनेयोग्य है और मनसे उपजाहुआ हास्य कहने योग्य है हे नृपोत्तम ! ऐसा कहाहुआ दूत उसीक्षण गया ॥ ७ ॥ और उस राजाने जो कहा था उसको उससे बतलाया इसके अनन्तर हे नृपश्रेष्ठ ! उसके वचन के अन्त में सुन्दरहास्यवाली व पतिप्राण तथा महापतिव्रता उस सुनन्दा ने प्राणों को छोड़दिया जिससमय शील से शोभित वह सुनन्दा मरी ॥ ८ । ९ ॥ उससमय वह राजाभी उसपापसे संयुत हुआ इसके अनन्तर शरीर के

आकारस्तुततोलक्ष्यः पतिंप्रतिममाज्ञया ॥ यदिसानिश्चयंगच्छेन्मरणंप्रतिभामिनी ॥६॥ तदारक्ष्याप्रयत्नेनवाच्यंहास्य मनोद्भवम् ॥ एवमुक्तोगतोदूतस्तत्क्षणान्नृपसत्तम ॥ ७ ॥ तस्यैनिवेदयामास यदुक्तन्तेनभूभुजा ॥ अथतस्यवचोन्ते सा सुनन्दाचारुहासिनी ॥ ८ ॥ जहौप्राणान्नृपश्रेष्ठ पतिप्राणामहासती ॥ यस्मिन्कालेमृतासातु सुनन्दाशीलमण्ड ना ॥ ९ ॥ तस्मिन्कालेनृपस्सोपि तत्पापेनसमाश्रितः ॥ अथप्राप्ताद्वितीयासा छायागात्रस्यचोपरि ॥ १० ॥ तथागुरु तरंकायं सालस्यंसमपद्यत ॥ तेजोहीनंसुदुर्गन्धं विवर्णंनृपसत्तम ॥ ११ ॥ अथाप्राप्यगृहंराजा श्रुत्वाभार्यासमुद्भवम् । विनाशंदुःखशोकार्तः करुणंपर्यदेवयत ॥ १२ ॥ मत्वात्मानंपापमात्मानं स्त्रीहत्यासुविदूषितम् ॥ ब्राह्मणानांसमादेशा त्तीर्थयात्रापरोभवत् ॥ १३ ॥ कृत्वौर्ध्वदैहिकन्तस्यालघुमात्रपरिग्रहः ॥ वाराणस्यांगतापूर्वं तत्रदानंददौबहु ॥ १४ ॥ कपालमोचनेतीर्थे सर्वपापप्रणाशने ॥ त्रिनेत्रोयत्रनिर्मुक्तः पुरावैब्रह्महत्यया ॥ १५ ॥ तस्यच्छायाद्वितीयासाननष्टातत्र

ऊपर वह दूसरी छाया प्राप्त हुई ॥ १० ॥ वैसेही आलस्यसमेत बहुत गरुवा शरीर होगया व हे नृपोत्तम ! तेज से हीन दुर्गंधियुक्त व उदासीन होगया ॥ ११ ॥ इस के अनन्तर घरको न प्राप्त होकर दुःख व शोकसे विकल उस राजाने स्त्री से उपजेहुये विनाश को सुनकर करुणा से रोदन किया ॥ १२ ॥ और स्त्रीहत्यासे दूषित व पापी अपना को जानकर वह राजा ब्राह्मणों की आज्ञा से तीर्थयात्रा में तत्पर हुआ ॥ १३ ॥ व उसके और्ध्वदैहिक (मरने के पीछेवाले) कार्य को करके थोड़ा परिजन लेकर वह राजा पहले काशी में गया और वहां उसने बहुत दान दिया ॥ १४ ॥ फिर वह समस्त पापों को नाशनेवाले कपालमोचनतीर्थ में गया जहां कि

पुरातनसमय त्रिलोचन शिवजी ब्रह्महत्या से छूटे हैं ॥ १५ ॥ हे भूपते ! वहां उसकी वह दूसरी छाया (स्त्रीहत्या) न नाशहुई तदनन्तर वह मनुष्योंको निधि देने-वाले व बहुत पवित्र कनखलतीर्थ को प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥ तदनन्तर पुष्करारण्य उससे अमरकंटक को गया तदनन्तर हे राजन् ! यह नृपोत्तम कुरुक्षेत्र को प्राप्त हुआ ॥ १७ ॥ तदनन्तर प्रभास, सोमतीर्थ व किमिदंजलमें गया तदनन्तर हे राजन् ! एक हंस व उसके उपरान्त पवित्र पारिप्लवकोगया ॥ १८ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! रुद्रकोटि व विरूपाक्ष और पंचनद इत्यादिक तीर्थों व देवमन्दिरों को गया ॥ १९ ॥ व हे भूपाल ! घूमता हुआ वह राजा थकगया तदनन्तर हज़ार वर्ष के अन्त

भूपते ॥ ततः कनखलम्प्राप्तः सुपुण्यंनिधिदन्नृणाम् ॥ १६ ॥ ततस्तुपुष्कराररण्यं तस्मादमरकण्टकम् ॥ कुरुक्षेत्रंग तोराजन् प्राप्तोसौनृपसत्तम ॥ १७ ॥ प्रभासंसोमतीर्थंच ततस्तुकिमिदंजले ॥ एकहंसंततोराजन् पुण्यंपारिप्लवन्ततः ॥ १८ ॥ रुद्रकोटिंविरूपाक्षं ततःपञ्चनदन्नृप ॥ एवमादीनितीर्थानिपुण्यान्यायतनानिच ॥ १९ ॥ परिभ्रमन्महीपाल परिश्रान्तोनराधिपः ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते सम्प्राप्तोर्बुदपर्वते ॥ २० ॥ तत्रापश्यन्नरपतिस्तीर्थान्यायतनानिच ॥ तपस्वि सङ्घान्विविधान् ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ २१ ॥ ददौदामानिबहुशो ब्राह्मणेभ्योयदृच्छया ॥ प्राप्तोरक्तानुबन्धञ्च तीर्थंतत्रैवपर्वते ॥ २२ ॥ तत्रस्नात्वाविनिष्क्रान्तो यावत्पश्यतिभूमिपः ॥ तावन्नदृश्यतेछाया द्वितीयास्त्रीवधोद्भवा ॥२३॥ लघुत्वंसर्वगात्राणि सम्प्राप्तानिमहीपते ॥ विगन्धताप्रणष्टाच तेजोवृद्धिःपराभवत् ॥ २४ ॥ ततोहृष्टमनाभूत्वा दत्त्वा दानंविशेषतः ॥ स्तूयमानश्चतुर्दिक्षु वन्दिभिःप्रस्थितोगृहम् ॥ २५ ॥ ततोरक्तानुबन्धस्य सीमातिक्रमणंनृपः ॥ याव

में वह अर्बुदपर्वत पै प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ वहा राजाने तीर्थों व देवमन्दिरों को देखा और अनेकभांति के तपस्वीगणों को और वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को देखा ॥ २१ ॥ और स्वच्छन्दता से ब्राह्मणों के लिये बहुत दानों को दिया और उसी पर्वत पै वह राजा रक्तानुबंधतीर्थ को प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ उसमें नहाकर निकलकर जबतक राजा देखै तबतक स्त्रीके वधसे उपजीहुई दूसरी छाया नहीं देख पड़ी ॥ २३ ॥ हे राजन् ! सब अंग लघुताको प्राप्तहुये और दुर्गंधता नष्ट होगई व बहुत तेजकी वृद्धि हुई ॥ २४ ॥तदनन्तर प्रसन्नमन होकर विशेषता से दान देकर चारों दिशाओं में बन्दियों से स्तुति किया जाता हुआ वह घरको चला ॥ २५ ॥

तदनन्तर हे नृपेन्द्र! जबतक वह राजा रक्तानुबंधतीर्थकी सीमा (हद) को नांघै तबतक फिर इसके ॥ २६ ॥ देह में हे नृपोत्तम, नृप! वह दूसरी छाया देख पड़ने लगी और अंगों में वही गन्ध व तेजकी हानि होगई ॥ २७ ॥ तदनन्तर दुःखकी अग्नि से संतप्त वह राजा उसीक्षण लौट पड़ा ॥ २८ ॥ और रक्तबंधतीर्थको प्राप्त हुआ फिर वह पापविहीन होगया और उस नृपोत्तम ने उत्तम तीर्थ माहात्म्य को जानकर ॥ २९ ॥ हे राजन्! वहां लकड़ियों को लाकर तदनन्तर चिताको बनाकर वह राजा द्विजोत्तमों के लिये दान देकर अग्निमें पैठगया ॥ ३० ॥ उसके उपरान्त शरीर को छोड़ विमान पै चढ़कर दिव्य माला व वसनों को धारे हुये वह शिवलोक

त्करोतिराजेन्द्र तावदस्यपुनस्तथा ॥ २६ ॥ साच्छायादृश्यतेदेहे द्वितीयान्नृपसत्तम ॥ सएवगन्धोगात्रेषु तेजोहानिश्च सान्नृप ॥ २७ ॥ ततोदुःखाग्निसंतप्तो निवृत्तश्चैवतत्क्षणात् ॥ २८ ॥ रक्तबन्धमनुप्राप्तो विपाप्मासोभवत्पुनः ॥ सज्ञात्वातीर्थमाहात्म्यं परंपार्थिवसत्तमः ॥ २९ ॥ तत्रदारूणिचाहृत्य चितांकृत्वाततोन्नृप ॥ दानंदत्त्वाद्विजाग्र्येभ्यः प्रविष्टोहव्यवाहनम् ॥ ३० ॥ ततोविमानमारुह्य परित्यज्यकलेवरम् ॥ दिव्यमालाम्बरधरः शिवलोकमुपागमत् ॥ ३१ ॥ शिवलोकमनुप्राप्ते तस्मिन्पार्थिवसत्तमे ॥ देवर्षिनारदोवाक्यमिदमाहसुविस्मयात् ॥ ३२ ॥ तीर्थेभ्यश्चपरंतीर्थमिदंवैपावनंपरम् ॥ इन्द्रसेनोयतःपापात्तीर्थसङ्गादमुच्यत ॥ ३३ ॥ ततःप्रभृतितत्तीर्थं प्रख्यातंधरणीतले ॥ रक्तानाम्प्राणिनांयस्मादनुबन्धंकरोतितत् ॥ ३४ ॥ रक्तानुबन्धमित्येव तस्मात्तत्कीर्त्यतेक्षितौ ॥ तत्रसन्तर्प्यदेवान्वै यःश्राद्धंकुरुतेन्नृप ॥ ३५ ॥ तत्रसंक्रमणेभानोर्यःस्नानंकुरुतेन्नृप ॥ श्रद्धयापरयायुक्तो मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ३६ ॥ पितृक्षेत्रेगया

को प्राप्तहुआ ॥ ३१ ॥ उस उत्तम नृपति को शिवलोक में प्राप्त होने पर देवर्षि नारदजीने बड़े विस्मयसे इस वचन को कहा ॥ ३२ ॥ कि तीर्थोंसे यह उत्तम तीर्थ बहुतही पवित्रकारक है जबसे तीर्थ के संग से इन्द्रसेन पातक से छूटगया ॥ ३३ ॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ प्रसिद्ध में प्रसिद्धहुआ जिसलिये अनुरक्त प्राणियों का वह तीर्थ अनुबन्ध करता है ॥ ३४ ॥ इसलिये वह रक्तानुबन्ध ऐसाही कहाजाता है हे राजन्! वहां देवताओं को भलीभांति तर्पणकर जो श्राद्ध करताहै ॥ ३५ ॥

व हे राजन्! वहां सूर्यकी संक्रान्ति में उत्तम श्रद्धासे संयुत जो स्नान करताहै वह ब्रह्महत्या से छूटजाता है ॥ ३६ ॥ व सावधान होताहुआ जो मनुष्य पितृक्षेत्र में गयाश्राद्ध करता है उसको महर्षियों ने गयाश्राद्ध के समान फल कहा है ॥ ३७ ॥ व हे नृपोत्तम ! चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहण में जो मनुष्य वहां गोदान करता है वह सात पुश्तियोंको तारताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांरक्तानुबन्धतीर्थमाहात्म्यंनामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

दो० । महाविनायक को रच्यो पारवती महरानि । बत्तिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखखानि ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर महाविनायक के

श्राद्धं यःकरोतिसमाहितः ॥ गयाश्राद्धसमंप्राहुः फलन्तस्यमहर्षयः ॥ ३७॥ चन्द्रसूर्योपरागेवा गोदानंनृपसत्तम ॥ यः करोतिनरस्तत्र सकुलान्सप्ततारयेत ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कान्देर्बुदखण्डेरक्तानुबन्धमाहात्म्यन्नामैकत्रिंशोध्यायः ॥३१॥

पुलस्त्य उवाच ॥ महाविनायकंगच्छेत्ततःपार्थिवसत्तम ॥ यस्मिन्दृष्टेनृणांसद्यो निर्विघ्नत्वंप्रजायते ॥ १ ॥ ययातिरुवाच ॥ कथंमहत्त्वमगमत्पूर्वंतत्रविनायकः ॥ कस्मिन्कालेद्विजश्रेष्ठ सर्वंविस्तरतोवद ॥ २ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ पुरोद्वर्त्तनजंलेपं गृहीत्वानृपपार्वती ॥ विनोदार्थंचकाराथ बालकंसुकुमारकम् ॥ ३ ॥ लेपोद्भवंशिरोहीनंशेषावयवसंयुतम् ॥ यथोक्तंनिर्मायित्वातं स्कन्दंवाक्यमथाब्रवीत् ॥४॥ लेपमानयभद्रन्ते शिरोर्थंस्कन्दसत्वरम् ॥ येनायंपुत्रकोमेस्याद् भ्रातातेपरदुर्जयः ॥ ५ ॥ ततोगौरीसमादेशाल्लेपस्यालाभतोनृप ॥ मतङ्गजंवरंदृष्ट्वा शिरस्तस्यसमानयत् ॥ ६ ॥ तस्मि

समीप जावै जिनके देखनेपर उसीक्षण मनुष्यों की निर्विघ्नता होजाती है ॥ १ ॥ ययाति बोले कि वहां पुरातनसमय विनायकजी किससमय व कैसे महत्त्व को प्राप्त हुये हैं हे द्विजश्रेष्ठ ! इस सबको विस्तार से कहिये ॥ २ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! पुरातनसमय पार्वतीजीने क्रीडाके लिये उबटन से उपजेहुये लेपको लेकर इसके उपरान्त सुकुमार बालक को बनाया ॥ ३ ॥ मस्तक से रहित व शेष अंगों से युक्त उस यथोक्त बालक को बनाकर पार्वतीजीने स्वामिकार्त्तिकेयजी से वचन कहा ॥ ४ ॥ कि हे स्कंद ! तुम्हारा कल्याण होवै मस्तक के लिये शीघ्रही लेपको लावो कि जिससे यह मेरा पुत्र व तुम्हारा भाई शत्रुवों से दुर्जय होवै ॥ ५ ॥ तद-

नन्तर हे राजन् ! पार्वतीजीकी आज्ञा से लेपके न मिलने से उत्तम हाथी को देखकर स्वामिकार्त्तिकेयजी उसका मस्तक लेआये ॥ ६ ॥ और लेपसे उपजेहुये उस अंगमें उसको लगादिया व पार्वतीने कहा कि हे पुत्र ! यह तो मस्तक बड़ाभारी होगा और तुम किसकारण इसको लाये ॥ ७ ॥ बार २ ग़ामा ऐसा पार्वती को कहतेहुये उसके शरीर में शिर धरनेपर हे राजन् ! दैवयोग से ॥ ८ ॥ अंगों से विशेषकर नायकता निकली और बालक के समान सुन्दर व सबलक्षणों से लक्षित ॥ ९ ॥ व हे राजन् ! तीन जगह गंभीर व चारहाथोंवाले तथा सात स्थानोंपै अरुण व छः अंगों में उन्नत और पांच दीर्घ व पांच स्थानों में सूक्ष्म तथा सुन्दर ॥ १० ॥

न्नियोजयामास गात्रेलेपसमुद्भवे ॥ महत्त्विदंशिरोभावि पुत्रकस्मात्त्वयाहृतम् ॥ ७ ॥ ब्रुवन्त्याश्चापिपार्वत्या मामेति चमुहुर्मुहुः ॥ न्यस्तेशिरसितद्गात्रे दैवयोगान्नराधिप ॥ ८ ॥ विशेषान्नायकत्वंच गात्रेभ्यःसमजायत॥ बालकप्रतिमंकान्तं सर्वलक्षणलाञ्छितम् ॥ ९ ॥ त्रिगम्भीरंचतुर्हस्तं सप्तरक्तंमहीपते ॥ षडुन्नतंपञ्चदीर्घं पञ्चसूक्ष्मंसुसुन्दरम् ॥ १० ॥ त्रिविस्तीर्णमहाराज दृष्ट्वागौरीसुविस्मिता॥ सजीवंकारयामास स्वशक्त्याशक्तिरूपिणी ॥ ११ ॥ ससजीवःकृतोदेव्या समुत्तस्थौचतत्क्षणात ॥ आदेशंयाचयामास विनयानतकन्धरः ॥ १२ ॥ तंदृष्ट्वाचाद्भुताकारं प्रोक्त्वापुत्रंमुहुर्मुहुः ॥ शम्भोःसकाशमनयद्धृष्टेनान्तरात्मना ॥ १३ ॥ ततोब्रवीत्सुतोदेव ममैवगात्रलेपजः ॥ देहिदेववरानस्य महत्त्वंयेनगच्छति ॥ १४ ॥ भगवानुवाच॥ शरीरस्थंशिरोमुख्यं यस्मात्पर्वतनन्दिनि ॥ महत्त्विदंशिरःप्रोक्तं त्वयास्कन्देनयोजि

व हे महाराज ! तीन स्थानों में चौड़े बालक को देखकर पार्वतीजी विस्मित हुई और शक्तिरूपिणी उन्हों ने अपनी शक्ति से उसको सजीव किया ॥ ११ ॥ और देवी पार्वतीजीसे सजीव कियेहुये वे विनायकजी उसीक्षण उठपड़े और विनय से झुके कन्धेवाले विनायक ने आज्ञा मांगी ॥ १२ ॥ अद्भुत आकारवाले उस पुत्रको देखकर व बार २ कहकर पार्वतीजी प्रसन्न चित्त से शिवजीके समीप लेआईं ॥ १३ ॥ तदनन्तर बोलीं कि हे देव ! मेरेही अंगों के लेपसे उपजाहुआ पुत्र है हे देव ! इस को वरोंको दीजिये कि जिससे महत्त्वको प्राप्त होवै ॥ १४ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे पर्वतनन्दिनि ! जिसलिये शरीर में स्थित शिर मुख्य है और तुमने कहा कि

यह शिर बड़ा भारी है और स्वामिकार्त्तिकेयजीने उसको लगादिया व जिसलिये इनके अंगमें विशेषता से नायकता स्थित है उसीकारण नाममें यह महाविनायक होगा ॥ १५।१६ ॥ और जिसलिये मुझसे इसको दीहुई सब गणोंकी स्वामिता होगी उसीकारण यह गणाधिप होवैगा ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य सब कार्योंमें पहले इन गणेशजीको स्मरण करैंगे उनके कार्यकी हानि न होगी ॥१८॥ तदनन्तर स्वामिकार्त्तिकेयजीने क्रीड़ाके लिये इसको कुठार दिया वही अस्त्र उसको सदैव प्रिय हुआ ॥ १९ ॥ उसके उपरान्त पार्वतीजी ने पुत्रके स्नेह से लड्डुवों से पूर्ण भोजनपात्रको दिया उससमय उसको पाकर उन्हों ने नृत्य किया ॥ २० ॥ और उस भक्ष्य

तम् ॥१५॥ विशेषान्नायकत्वंच गात्रेचास्ययतस्स्थितम् ॥ महाविनायकोह्येप तस्मान्नाम्नाभविष्यति ॥१६॥ गणानांचैव सर्वेषामाधिपत्यंप्रजायते ॥ अस्यदत्तंमयायस्माद्भविष्यतिगणाधिपः ॥१७॥ सर्वकार्येषुयेमर्त्याः पूर्वमेनंगणाधिपम् ॥ स्मरिष्यन्तिनवैतेषां कार्यहानिर्भविष्यति ॥ १८ ॥ ततोस्यप्रददौस्कन्दः प्रक्रीडार्थंकुठारकम् ॥ तदेवचायुधन्तस्य सुप्रियंहिसदाभवत् ॥ १९ ॥ ततोगौरीददौभोज्यपात्रंमोदकपूरितम् ॥ पुत्रस्नेहात्सतत्प्राप्य लास्यमेवतदाकरोत् ॥२०॥ तस्यभक्ष्यस्यगन्धेन निष्क्रान्तोमूषकोबिलात ॥ भक्षणाच्चामरोजातस्तस्यवाहोऽप्यजायत ॥ २१ ॥ पुलस्त्य उवाच॥ महाविनायकोह्येवं तत्रजातोमहीपते ॥ तस्मिन्दृष्टेचयत्पुण्यं तत्त्वमेकमनाःशृणु ॥ २२ ॥ बाल्येवयमियत्पापंवार्द्धकेयौवनेपियत् ॥ करोतिमानवोराजंस्तस्मात्सर्वात्प्रमुच्यते ॥ २३ ॥ माघमासेसितेपक्षे चतुर्थ्यांसमुपोषितः ॥ यस्तंपश्यतिवाग्मीस सर्वज्ञश्चप्रजायते ॥ २४ ॥ तस्याग्रेसुमहत्कुण्डं स्वच्छोदकसुपूरितम् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्या यः

(भोजन) के गन्ध से मूस बिलसे निकला और वह उसका भक्षण करने से अमर होगया व उन गणेशका वह वाहनहुआ ॥ २१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! इसप्रकार वहा महाविनायकजी हुये हैं और उनके देखने पर जो पुण्य होता है उसको तुम सावधानमन होकर सुनो ॥ २२ ॥ कि हे राजन्! बाल्यावस्था में जो पाप हुआ है और वृद्धावस्था व युवावस्था में जिस पापको मनुष्य करता है उस सबसे छूटजाता है ॥ २३ ॥ माघ महीने में शुक्लपक्ष में चौथि तिथिमें उपास किये हुये जो मनुष्य उन गणेशजीको देखता है वह प्रशस्तवचन और सर्वज्ञ होता है ॥ २४ ॥ और उनके आगे निर्मल कुण्ड से पूरित बड़ाभारी कुण्ड है उसमें नहाकर

जो भक्तिसे विनायकजीको देखता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! उसके वंश में भी सर्वज्ञ मनुष्य पैदा होते हैं और (गणानांत्वा) इस मंत्रसे तीन प्रदक्षिणा कर ॥ २६ ॥ हे नृपेन्द्र ! जो उन विनायकजीको देखता है वह पापको नहीं देखता है इसलिये जो इसलोक व परलोक में सब कामनाओं को चाहै वह उन विनायकजी को सब यत्न से देखै और कार्य प्राप्त होनेपर जो गृहस्थ भी भक्तिसे उनको स्मरण करता है ॥ २७ । २८ ॥ उसका वह सब कार्य निर्विघ्नतापूर्वक भलीभांति सिद्धि को प्राप्त होता है और प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य विनायक देवको स्मरण करै ॥ २९ ॥ उसके उस दिनमें उपजेहुये कार्य सिद्धिको प्राप्त होते हैं व सावधान होता

पश्यतिविनायकम् ॥ २५ ॥ तस्यान्वयेपिसर्वज्ञा जायन्तेमानवान्नृप ॥ गणानान्त्वेतिमन्त्रेण कृत्वावैत्रिष्प्रदक्षिणम् ॥ २६ ॥ यस्तंपश्यतिराजेन्द्र दुरितंनसपश्यति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तंप्रपश्येद्विनायकम् ॥ २७ ॥ यइच्छतेसर्वकामा निहलोकेपरत्रच ॥ गृहस्थोपिचयोभक्त्या स्मरेत्कार्यउपस्थिते ॥ २८ ॥ अविघ्नंतस्यतत्सर्वं संसिद्धिमुपगच्छति ॥ प्रातरुत्थाययोमर्त्यः स्मरेद्देवंविनायकम् ॥ २९ ॥ तस्यतद्दिनजातानि सिद्धिंकृत्यानियान्तिहि ॥ महाविनायकींशान्ति यःकरोतिसमाहितः ॥ ३० ॥ नतंप्रेताग्रहारोगाःपीडयन्तिविनायकाः ॥ विवाहेकलहेयुद्धे प्रस्थानेकृषिकर्मणि ॥ ३१ ॥ प्रवेशेचस्मरेद्यस्तु भक्तिपूर्वंविनायकम् ॥ तस्यतद्वाञ्छितंसर्वं प्रसादात्तस्यसिद्ध्यति ॥ ३२ ॥ ययातिरुवाच ॥ महाविनायकींशान्तिं वदमेमुनिसत्तम ॥ केमन्त्राःकिंविधानंच परंकौतूहलंहिमे ॥ ३३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शुक्लपक्षे शुभेवारे नक्षत्रेदोषवर्जिते ॥ श्रेष्ठचन्द्रबलेशान्ति गणेशस्यसमाचरेत् ॥ ३४ ॥ पूर्वोत्तरेसमेदेशे कृत्वावेदींचमण्डपम् ॥

हुआ जो पुरुष महाविनायककी शांति करता है ॥ ३० ॥ उसको प्रेत, ग्रह, रोग व विनायक पीड़ित नहीं करते हैं और विवाह, बखेड़ा, युद्ध, प्रस्थान व खेती के कार्य में ॥ ३१ ॥ व प्रवेश में जो मनुष्य भक्तिपूर्वक गणेशजीको स्मरण करताहै उसका वह सब वांछित उन विनायकजीकी प्रसन्नता से सिद्ध होता है ॥ ३२ ॥ ययाति बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मुझसे महाविनायककी शांति कहिये कि कौन मंत्र व कौन विधि है मुझको बड़ा कौतुक है ॥ ३३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि शुक्लपक्षमें दोषरहित

उत्तम दिन व नक्षत्र में और श्रेष्ठ चन्द्रमा के बलमें गणेशजीकी शांतिकरै ॥ ३४ ॥ पूर्व व उत्तर समान स्थान में वेदी व मंडप को बनाकर बीच में गृह्यसूत्र से अष्टदल कमलको प्रयुक्त करै ॥ ३५ ॥ व हे भूपते ! सब दिशाओंमें इन्द्रादिक लोकपालों को पूजै और गणेशपूर्वक मातृकाओं को विशेष कर ॥ ३६ ॥ चन्दन, पुष्प व उपहारों तथा यथोक्त बलि विस्तारों से पूजै और उसी के पूर्वदिशा के भागमें जलसे पूर्ण व दो सफेद वस्त्रोंसे आच्छादित सुवर्णसमेत व फलसंयुत कलश को पूजै और (गणानांत्वा) इस मन्त्रसे एकहज़ार आठ ॥ ३७ । ३८ ॥ वहा जपकरै व हे नृपोत्तम ! रुद्रपञ्चांगों को जपै और वहा हाथभर कुण्ड में विनायक चरु को

मध्येह्यष्टदलंपद्मं गृह्यसूत्रेणयोजयेत ॥ ३५ ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च दिक्षुसर्वासुभूपते ॥ गणेशपूर्वकाश्चापिमात रश्चविशेषतः ॥ ३६ ॥ गन्धपुष्पोपहारैश्च यथोक्तैर्बलिविस्तरैः ॥ श्वेतवस्त्रयुगच्छन्नं कलशंजलपूरितम् ॥ ३७ ॥ त स्यैवपूर्वदिग्भागे सहिरण्यंफलान्वितम् ॥ गणानान्त्वेतिमन्त्रेण सहस्रंचाष्टसंयुतम् ॥ ३८ ॥ जपेत्तत्रतथारुद्रान्प ञ्चाङ्गान्नृपसत्तम ॥ विनायकचरुंतत्र श्रयेत्कुण्डेकरात्मके ॥ ३९ ॥ चतुरस्रेयोनियुते मेखलाभिर्विभूषिते ॥ मधुदू र्वाक्षतैर्होमो ग्रहहोमादनन्तरम्॥४०॥ गणानान्त्वेतिमन्त्रेण दशसाहस्रिकस्तथा ॥ होमोवैपार्थिवश्रेष्ठकार्यश्चोदङ्मुखै र्द्विजैः ॥ ४१ ॥ चतुर्भिश्चनुरैराजन् पीतवस्त्रानुलेपनैः ॥ पीताम्बरधरैश्चैव धृतहोमाङ्गुलीयकैः ॥ ४२ ॥ ततोहोमावसानेतु यजमानंनृपोत्तम ॥ मृगचर्मोपरिस्थंच मन्त्रैरेभिर्विधानतः ॥ ४३ ॥ स्नापयेत्प्राङ्मुखंशान्तं शुक्लवस्त्रावगुण्ठितम् ॥ इमंमेगङ्गेयमुने पञ्चनद्यःसुपुष्करे ॥ ४४ ॥ श्रीसूक्तसहितंविष्णोःपावमानंवृषाकपिम् ॥ सम्यगुच्चार्यविप्रानां ततोनाशं

हवन करै ॥ ३९ ॥ और चौकोन व योनिसंयुत तथा मेखलाओं से भूषित कुण्डमें शहद, दूर्वा व अक्षतों से होम करै और ग्रह होमके बाद ॥ ४० ॥ हे नृपोत्तम, राजन् ! (गणानांत्वा) इस मन्त्रसे उत्तरमुख बैठेहुये व पीत वसन तथा अनुलेपन किये व पीताम्बरधारे और सोने की अंगूठियों को पहनेहुये चार चतुर ब्राह्मणों को दशहज़ार हवन करना चाहिये ॥ ४१ । ४२ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! होमके अन्तमें मृगचर्म के ऊपर स्थित पूर्वमुख, शांत व श्वेत वसन को पहने हुये यजमान को इन मंत्रों से विधिपूर्वक स्नान करावै (इमं मे गङ्गे यमुने, पञ्चनद्यः सुपुष्करे) ॥ ४३ । ४४ ॥ और श्री सूक्तसमेत विष्णु के पावमान व वृषाकपि सूक्त को भलीभांति उच्चारण

कर तदनन्तर विघ्नों के नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४५ ॥ और ग्रहसौम्यता को प्राप्त होते हैं व भूत उसीक्षण नाश होजाते हैं और आधिव्याधि व भयंकर दुष्टरोग तथा ज्वरादिक ॥ ४६ ॥ हवनसे सब नाश होजातेहैं व सब भयंकर उत्पात नाश होजातेहैं तुमने मुझसे जो पूछा यह सब तुमसे कहागया ॥ ४७ ॥ सावधान होता हुआ जो मनुष्य विनायकके इस बड़ेभारी माहात्म्य व शांतिको भलीभांति चौथिमें पढ़ता है ॥ ४८ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ ! जो इसको सुनता है उसको सदैव अविघ्न होता है और सावधान होताहुआ जिस जिस कामना को ध्यान करताहुआ जो सावधान मनुष्य इसप्रकार पूजता है ॥ ४९ ॥ उस उसको मनुष्य निश्चयकर गणनाथजीकी

प्रपद्यते ॥ ४५ ॥ ग्रहाःसौम्यत्वमायान्ति भूतानश्यन्तितत्क्षणात् ॥ आधयोव्याधयोरौद्रा दुष्टरोगाज्वरादयः ॥ ४६ ॥ प्रणश्यन्तिहुतात्सर्वे तथोत्पाताःसुदारुणाः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ ४७ ॥ विनायकस्य माहात्म्यं महत्त्वंशान्तिकंतथा ॥ यश्चैतत्कीर्तयेत्सम्यक् चतुर्थ्यांसुसमाहितः ॥ ४८ ॥ शृणोतिवान्नृपश्रेष्ठ तस्याविघ्नंसदाभवेत् ॥ यंयंकाममभिध्यायन् यजेच्चैवंसमाहितः ॥ ४९ ॥ तत्तदाप्नोतिनूनंच गणनाथप्रसादतः ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमहाविनायकमाहात्म्यन्नामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःपार्थेश्वरंगच्छेद्देवंपातकनाशनम् ॥ यंदृष्ट्वामानवःसम्यङ्मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ १ ॥ पार्थानाम्नाभवत्साध्वी देवलस्यप्रियासती ॥ तयापूर्वंतपस्तप्तं तत्रस्थानेमहीपते ॥ २ ॥ सापूर्वमभवद्वन्ध्या ऋषिपत्नीयशस्विनी ॥ वैराग्यंपरमंगत्वा ततश्चैवार्बुदंगता ॥ ३ ॥ वायुभक्षानिराहारा समचित्तासमास्थिता ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते

प्रसन्नता से प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमहाविनायकमाहात्म्यंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

दो० । पार्थेशहिं पूज्यो यथा पार्थानामक नारि । तेंतिसवें अध्याय में सोइ चरित सुखकारि ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर पातकों को नाशनेवाले पार्थेश्वर देवजीके समीप जावै जिनको भलीभांति देखकर मनुष्य सब पातकों से छूटजाता है ॥ १ ॥ हे महीपते ! देवलकी प्यारी व पतिव्रता पार्थानामक साध्वी स्त्री हुई है उसने पुरातनसमय उस स्थान में तप किया है ॥ २ ॥ वह ऋषिकी यशस्विनी स्त्री पहले वांझहुई उसीकारण बड़े वैराग्य को प्राप्त होकर अर्बुदपर्वत पै गई ॥ ३ ॥

और निराहार व पवनभोजिनी तथा समचित्तवाली वह स्थित हुई तदनन्तर हे राजन् ! हज़ार वर्षके अन्तमें उसकी भक्तिसे ॥ ४ ॥ धरातलको फोड़कर अचानकही लिंग उत्पन्न हुआ इसीसमय में आकाशवाणी बोली ॥ ५ ॥ कि हे महाभागे! इस बहुत पवित्रकारक शिवलिंगको पूजो तुम्हारी भक्तिसे यह मनोरथों को देनेवाला बड़ाभारी लिंग पृथ्वी से निकला है ॥ ६ ॥ और अन्यभी जो मनुष्य जिस कामना को चिन्तवन कर इसको पूजैगा वह निरसन्देह उस मनोरथ को प्राप्त होगा ॥ ७ ॥ और संसार में यह पार्थेश्वरनामक लिंग प्रसिद्धिको प्राप्तहोगा ऐसा कहकर तदनन्तर हे राजन् ! आकाशवाणी चुपहोगई ॥ ८ ॥ तदनन्तर विस्मय से संयुत उसने

भक्त्यातस्यामहीपते ॥ ४ ॥ उद्भिद्यधरणीपृष्ठं सहसालिङ्गमुत्थितम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥५॥ पूजयैनंमहाभागे शिवलिङ्गंसुपावनम् ॥ त्वद्भक्त्याधरणीपृष्ठान्निस्सृतंकामदंमहत् ॥६॥ योयंकाममभिध्याय पूजयिष्यतिमानवः ॥ अन्योपितदभिप्रेतं प्राप्स्यतेनात्रसंशयः ॥ ७ ॥ पार्थेश्वराख्यमेतद्धि लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ एवमुक्त्वाततोवाणी विरराममहीपते ॥ ८ ॥ ततःसाविस्मयाविष्टा पूजयामासतंतदा ॥ ततःपुत्रशतंप्राप्तं दिव्यंवंशधरन्तथा ॥ ९ ॥ ततःप्रभृतितल्लिङ्गं विख्यातंधरणीतले ॥ तत्रास्तिनिर्मलंतोयं गिरिगह्वरनिस्सृतम् ॥ १० ॥ तत्रस्नात्वानरस्सम्यग् यस्तंपश्यतिभावतः ॥ नसपश्यतिसंसारे दुःखंसन्तानसम्भवम् ॥ ११ ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यां जागरंतस्यचाग्रतः ॥ यःकरोतिनिराहारः सपुत्रंलभतेध्रुवम् ॥१२॥ पिण्डनिर्वापणंतत्र यःकरोतिसमाहितः ॥ तस्यपुत्रत्वमायान्ति पितरस्तत्प्रसादतः ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपार्थेश्वरप्रभाववर्णनन्नामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

उससमय उन शिवजीको पूजा तदनन्तर वंशको धारनेवाले व उत्तम सौ पुत्रोंको पाया ॥ ९ ॥ तबसे लगाकर वह लिंग पृथ्वी में प्रसिद्ध हुआ वहा पर्वतकी कन्दरा से निकलाहुआ निर्मल जलहै ॥ १० ॥ उसमें भलीभाति नहाकर जो मनुष्य भक्तिसे उन शिवजीको देखताहै वह संसारमें सन्तानसे उपजेहुये दुःखको नहीं देखताहै ॥ ११ ॥ और शुक्लपक्षमें चौदसि तिथिमें निराहार जो उन शिवजीके आगे जागरण करताहै वह निश्चयकर पुत्रको प्राप्त होताहै ॥ १२ ॥ और वहां जो सावधान मनुष्य पिंडनिर्वापण करताहै उन शिवजीकी प्रसन्नतासे उसके पितर पुत्रताको प्राप्त होतेहैं ॥१३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेपार्थेश्वरप्रभाववर्णनंनामत्रयस्त्रिंशोध्यायः॥३३॥

दो॰। भयो अर्बुदहिं अचल ढिग कृष्णतीर्थ इमिनाम। चौंतिसवें अध्याय में सोइ कथा अभिराम॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे भूपते! तदनन्तर कृष्ण को सदैव प्यारे कृष्णतीर्थको जावै जहा कि आपही विष्णुजी सदैव टिकेरहते हैं॥ १॥ ययातिजी बोले कि हे द्विजोत्तम! वहा किसप्रकार कृष्णतीर्थ हुआ है व किससमय हुआ है हे मुने! इस सबको मुझसे विस्तार से कहिये॥ २॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस भयंकर एकार्णव में जब स्थावर जंगम नाश होगया और चन्द्रमा, सूर्य व पवन नष्ट होगया व प्रकाश नाश होगया॥ ३॥ तब हज़ारयुगों के बाद ब्रह्माजी जगे और अकेले उन्होंने यह विचार किया कि किसप्रकार सृष्टि होगी॥ ४॥ और

पुलस्त्य उवाच॥ कृष्णतीर्थंततोगच्छेत्कृष्णस्यदयितंसदा॥ यत्रसन्निहितोनित्यं स्वयंविष्णुर्महीपते॥ १॥ ययातिरुवाच॥ कृष्णतीर्थंकथंतत्र जातंब्राह्मणसत्तम॥ कस्मिन्कालेमुनेब्रूहि सर्वंविस्तरतोमम॥२॥ पुलस्त्य उवाच॥ तस्मिन्नेकार्णवेघोरे नष्टेस्थावरजङ्गमे॥ चन्द्रार्कपवनेनष्टे ज्योतिषिप्रलयंगते॥ ३॥ ततोयुगसहस्रान्ते विबुद्धःकमलासनः॥ एकाकीचिन्तयामास कथंसृष्टिर्भवेदिति॥ ४॥ भ्रमंश्चापिचतुर्वक्त्रो यावत्पश्यत्यदूरतः॥ चतुर्भुजंविशालाक्षं पुरुषंपुरतःस्थितम्॥ ५॥ तंचोवाचचतुर्वक्त्रः कस्त्वंकेनविनिर्मितः॥ किमर्थमिहसंप्राप्तः सर्वंविस्तरतोवद॥ ६॥ तमुवाचाथगोविन्दः प्रहसञ्छ्लक्ष्णयागिरा॥ अहमाद्यःपुमानेको मयासृष्टोभवानपि॥ ७॥ स्रष्टुमिच्छामिभूयोपि भूतग्रामंचतुर्विधम्॥ पुलस्त्य उवाच॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाक्रुद्धोवेदपितामहः॥८॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं भर्त्सयंस्तंपुनःपुनः॥ सृष्टस्त्वंहिमयामूढ प्रथमोहमसंशयम्॥ ९॥ त्वादृशानांसहस्राणि करिष्येहमसंशयम्॥ एवंविवदमानौ

घूमतेहुये चतुराननजी जबतक देखैं तबतक उन्होंने समीपही आगे स्थित विशाललोचन व चतुर्भुज पुरुषको देखा॥ ५॥ और उनसे चतुराननजी बोले कि तुम किससे बनाये गयेहो और कौनहो व किसलिये यहां प्राप्त हुयेहो सबको विस्तार सेकहिये॥ ६॥ इसके अनन्तर हँसते हुये गोविन्दजीने नम्रवाणी से उन ब्रह्माजीसे कहा कि मैं एक आद्य पुरुष हूं और मुझसे आपभी रचे गयेहो॥ ७॥ और फिरभी मैं चारिभांतिके प्राणीसमूह को रचना चाहताहूं पुलस्त्यजी बोले कि उसके उस वचनको सुनकर वेदपितामह ब्रह्माजी क्रोधित हुये॥ ८॥ और उन विष्णुजीको बार २ घुड़कते हुये उन्होंने कठोर वचन कहा कि हे मूढ़! मैंने निस्सन्देह तुमको

रचा है और मैं निरसन्देह प्रथमहूं ॥ ६ ॥ और तुम्हारे समान हज़ारों पुरुषों को मैं निस्सन्देह रचूंगा हे राजन्! इसप्रकार परस्पर विवाद करतेहुये वे महाद्युतिमान् ॥ १० ॥ और स्पर्द्धा के कारण क्रोधसे लाल लोचनोंवाले विष्णु व ब्रह्माजी परस्पर युद्ध करनेलगे घूसोंसे व भुजाओं तथा दंतों व नखों से और खींचने से ॥ ११ ॥ इसप्रकार हज़ार वर्षतक उन दोनों का युद्ध वर्तमान हुआ तदनन्तर हज़ारवर्षके अन्तमें हे नृपोत्तम! उन दोनोंके मध्यमें ॥ १२ ॥ दिव्य व तेजोमय उत्तम महालिंग प्रगट हुआ इसीसमय में आकाशवाणी बोली ॥ १३ ॥ कि हे ब्रह्मन्! युद्धसे निवृत्त होवो व हे विष्णो! तुमभी मेरी आज्ञासे निवृत्त होवो यह शिवजीका लिंग है

तौ मिथोराजन्महाद्युती ॥ १० ॥ स्पर्द्धयारोषताम्राक्षौ युयुधातेपरस्परम् ॥ मुष्टिभिर्बाहुभिश्चैव नखैर्दन्तैर्विकर्षणैः ॥ ११ ॥ एवंवर्षसहस्रन्तु तयोर्युद्धमवर्त्तत ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते तयोर्मध्येनृपोत्तम ॥ १२ ॥ प्रादुर्भूतंमहालिङ्गं दिव्यंतेजोमयंशुभम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी ॥ १३ ॥ युद्धाद्ब्रह्मन्निवर्तस्व त्वंचविष्णोममाज्ञया ॥ एतन्माहेश्वरंलिङ्गं योस्यचोल्लङ्घयिष्यति ॥ १४ ॥ सज्येष्ठःसविभुःकर्ता युवयोर्नात्रसंशयः ॥ अधोभागंव्रजत्वेक एकश्चोर्द्ध्वममाज्ञया ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वासत्वरोब्रह्मा व्योममार्गसमाश्रितः ॥ विदार्यवसुधांकृष्ण अधस्तात्सत्वरंगतः ॥ १६ ॥ सभित्त्वासप्तपातालानधोयावत्प्रयातिच ॥ तावत्कालाग्निरुद्रस्तु दृष्टस्तेनमहात्मना ॥ १७ ॥ गन्तुमिच्छंस्ततोधस्ताद्यावद्वेगंकरोतिसः ॥ तावत्तस्यार्चिभिर्दग्धः कृष्णत्वंसमपद्यत ॥ १८ ॥ ततोमूर्च्छाभिसन्तप्तो दह्यमानोद्भुताग्निना निवृत्तः

और जो इसको नाघैगा ॥ १४ ॥ तुम दोनोंके मध्य में वह ज्येष्ठ और वह स्वामी व रचनेवाला है इसमें सन्देह नहीं है एक मेरी आज्ञामे नीचेके भागको जावै और एक ऊपर को जावै ॥ १५ ॥ उस वचन को सुनकर शीघ्रता संयुक्तब्रह्माजी आकाशमार्गके आश्रित हुये व कृष्णजी शीघ्रही पृथ्वीको फोड़कर नीचेगये ॥ १६ ॥ वे विष्णुजी सात पातालोंको फोड़कर जबतक नीचे जावैं तबतक उन महात्माने कालाग्नि रुद्रजीको देखा ॥ १७ ॥ और उससे नीचे जाने के लिये इच्छा करतेहुये जबतक वेगकरैं तबतक उस कालाग्निकी किरणोंसे जलेहुये विष्णुजी कृष्णताको प्राप्तहुये ॥ १८ ॥ तदनन्तर अद्भुत अग्निसे जलेहुये व मूर्च्छासे सतप्त विष्णुजी बड़ी विलक्ष-

णताको प्राप्तहुये और अचानकही लौटपड़े ॥ १६ ॥ व हे राजन् ! उनकालाग्नि रुद्रजीके लिंगको प्राप्त होकर भक्तिसे बड़े यत्नसे पूजकर कृष्णजीने उत्तम व सूक्ष्म वेदांगों से स्तुति किया ॥ २० ॥ और ब्रह्माभी हंसरूपी विमान के द्वारा आकाशमार्गसे गये और देवताओंके हज़ारवर्षतक उसके अन्तको न प्राप्तहुये ॥ २१ ॥ तदनन्तर हज़ारवर्षके बाद उन्होंने केतकीको देखा व आकाशमार्ग से आतीहुई उस केतकीने चतुर्मुख ब्रह्माजीसे पूंछा ॥ २२ ॥ कि हे ब्रह्मन् ! अवलम्बरहित व शून्य महामार्ग में तुम कहां जातेहो उसको तुम मुझसे कहो क्योंकि मुझको बड़ा कौतुक है ॥ २३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे शोभने ! विष्णुके साथ मेरे स्पर्द्धा (ईर्षा) उत्पन्न

सहसाविष्णुर्वैलक्ष्यंपरमङ्गतः ॥ १९ ॥ तस्यलिङ्गंसमासाद्य भक्त्यापूज्यप्रयत्नतः ॥ वेदाङ्गैःपरमैःसूक्ष्मैः स्तुतिंचक्रेमहीपते ॥ २० ॥ ब्रह्मापिव्योममार्गेण गतोहंसविमानतः ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु तस्यान्तंनाभ्यपद्यत ॥ २१ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते केतकींसोप्यपश्यत ॥ आयान्त्याव्योममार्गेण तयापृष्टश्चतुर्मुखः ॥ २२ ॥ क्वत्वयागम्यतेब्रह्मन्निरालम्बेमहापथि ॥ शून्येतत्त्वंसमाचक्ष्व परंकौतूहलंहिमे ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ममस्पर्द्धासमुत्पन्ना विष्णुनासहशोभने ॥ लिङ्गस्यास्यहिपर्यन्तं योलभिष्यतिचावयोः ॥ २४ ॥ सज्यायानितरोहीन एतदुक्तंपिनाकिना ॥ प्रस्थितोहन्ततश्चोर्द्धमधोमार्गगतोहरिः ॥ २५ ॥ लब्ध्वालिङ्गस्यपर्यन्तं यास्यामिक्षितिमण्डले ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा पुष्पमालाभ्यभाषत ॥ २६ ॥ व्यर्थश्रमोसिलोकेश नान्तोलिङ्गस्यविद्यते ॥ चतुर्युगसहस्राणां कोटिरेकापितामह ॥ २७ ॥ लिङ्गमूर्द्धःपतन्त्यामे कालोजातोमहाद्युते ॥ तथापिक्षितिपृष्ठन्तु नप्राप्तास्मिकथञ्चन ॥ २८ ॥ यावत्कालेनहंसस्ते योजनंसंप्रगच्छति ॥

हुई कि इसलिंगके अन्तको हम तुमदोनोंके मध्य में जो पावैगा ॥ २४ ॥ वह बड़ा है दूसरा हीन है यह शिवजीने कहा है तदनन्तर मैं ऊपर को चला और विष्णुजी नीचे के मार्गको चले ॥ २५ ॥ मैं लिंगके अन्तको पाकर पृथ्वीमंडल में जाऊंगा उसके उस वचनको सुनकर पुष्पमाला ने कहा ॥ २६ ॥ कि हे लोकेश ! व्यर्थ परिश्रम करतेहो क्योंकि लिंगका अन्त नहीं विद्यमानहै हे पितामह ! एक करोड़ हज़ार चतुर्युग ॥ २७ ॥ समय लिंगके मस्तक से गिरेहुये मुझको व्यतीत हुआ है तथापि हे पितामह ! मैं किसीप्रकार पृथ्वी को नहीं प्राप्त हुई हूं ॥ २८ ॥ जितने समयसे तुम्हारा हंस एक योजन (चारकोस) जाता है उतनेसमय से मैं

सौ योजन जाती हूं ॥ २९ ॥ उसकारण हे विभो ! मेरे वचन से तुमको लौटना योग्य है और मुझको विष्णुजीको दिखाकर तुम इससमय ज्येष्ठ होवो ॥ ३० ॥ तदनन्तर प्रसन्नमन होकर उस केतकी को लेकर चतुरानन ब्रह्माजी देवताओं के हजार वर्ष के अन्त में पृथ्वीको आये ॥ ३१ ॥ व ब्रह्माने उस केतकी को विष्णुजीको दिखलाया कि हे चतुर्भुज ! मैं इस उत्तम मालाको लिंगके मस्तक से लाया हूं और अन्त मिलगया ॥ ३२ ॥ हे पुरुषोत्तम ! तुमने अन्त पाया या नहीं पाया मुझसे सत्य कहिये ॥ ३३ ॥ विष्णुजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! अनन्त व प्रमाणरहित देवदेव त्रिशूली शिवजी के परमपार जाने के लिये मैं किसीप्रकार

तावत्कालेनगच्छामि योजनानामहंशतम् ॥ २९ ॥ तस्मान्निवर्तनंयुक्तं ममवाक्येनतेविभो ॥ दर्शयित्वाचमांविष्णो ज्येष्ठत्वंव्रजसाम्प्रतम् ॥३०॥ ततोहृष्टमनाभूत्वा गृहीत्वातांचतुर्मुखः ॥ दिव्यवर्षसहस्रान्ते भूमिपृष्ठमुपागतः ॥३१॥ दर्शयामासतांविष्णो रेखालिङ्गस्यमूर्धतः ॥ मयानीताशुभामाला लब्धश्चान्तश्चतुर्भुज ॥ ३२ ॥ त्वयालब्धोनवासत्यं वदमेपुरुषोत्तम ॥ ३३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ अनन्तस्याप्रमेयस्य देवदेवस्यशूलिनः ॥ नाहंशक्तःपरम्पारं गन्तुंब्रह्मन् कथञ्चन ॥ ३४ ॥ यदित्वयास्यपर्यन्तो लब्धोब्रह्मन्कथञ्चन ॥ तत्तेतुष्टिंगतोनूनं देवदेवोमहेश्वरः ॥ ३५ ॥ नान्यथाचास्यपर्यन्तो दृश्यतेकेनचित्कचित ॥ तस्माज्ज्येष्ठोभवाञ्श्रेष्ठः कनिष्ठोहमसंशयम् ॥ ३६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु भगवान्वृषभध्वजः ॥ कोपंचक्रेमहाराज ब्रह्माणम्प्रतितत्क्षणात ॥ ३७ ॥ अत्रचादर्शनंगत्वा धिग्धिग्व्याजप्रजल्पकम् ॥ मिथ्याप्रजल्पमानेन किमिदंसाहसंकृतम् ॥ ३८ ॥ यस्मात्त्वयामृषाप्रोक्तं ममपर्यन्त

समर्थ नहीं हूं ॥ ३४ ॥ हे ब्रह्मन् ! यदि तुमने किसीप्रकार इसके अन्तको पाया है तो निश्चयकर तुम्हारे ऊपर देवदेव महेश्वरजी प्रसन्न हुये हैं ॥ ३५ ॥ अन्यथा इसका अन्त किसी ने कहीं नहीं देखाहै इस से आप श्रेष्ठ होकर ज्येष्ठ हैं और मैं निस्सदेह कनिष्ठहूं ॥ ३६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे महाराज ! इसीसमय में वृषभध्वज भगवान् शिवजीने ब्रह्माके ऊपर उसीक्षण क्रोध किया ॥ ३७ ॥ कि यहां दर्शन को न प्राप्त होकर छलसे कहनेवाले तुमको धिक्कार है धिक्कार है झूंठ

कहतेहुये तुमने क्यों यह साहस किया ॥ ३८ ॥ जिसलिये तुमनेझूंठही मेरे अन्त दर्शनको कहा इस कारण तुम सब जातियों के पूजने योग्य न होगे ॥ ३९ ॥ और मोहसंयुत जो मनुष्य तुमको पूजेंगे वे सब बड़े क्लेशको पाकर नाशको प्राप्त होवैंगे ॥ ४० ॥ और जिसलिये बहुतही दुष्टा केतकीने वैसाही कहा उसी कारण इसके भलीभांति स्पर्श से मनुष्य चाण्डालता को प्राप्त होगा ॥ ४१ ॥ इसप्रकार उन दोनों को शापों को देकर उससमय प्रसन्नमुख होकर प्रसन्न होते हुये शिवदेवजीने विष्णुजीसे कहा ॥ ४२ ॥ भगवान्‌शिवजी बोले कि हे महाबाहो, महामते, वासुदेव ! सत्य कहनेही से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं हे सुव्रत ! वरदानको

दर्शनम् ॥ तस्मात्त्वंसर्ववर्णानां पूजार्होनभविष्यसि ॥३९॥येचत्वांपूजयिष्यन्ति मानवामोहसंयुताः ॥ तेकृच्छ्रंपरमं प्राप्य नाशंयास्यन्तिकृत्स्नशः ॥ ४० ॥ केतक्याचतथाप्रोक्तं यस्मात्तस्मात्सुदुष्टया ॥ अस्यास्संस्पर्शनाल्लोकः श्वपाकत्वंप्रयास्यति ॥ ४१ ॥ एवंशापौतयोर्दत्त्वा देवःप्रोवाचकेशवम् ॥ प्रसन्नवदनोभूत्वा तदातुष्टोमहेश्वरः ॥ ४२ ॥ भगवानुवाच ॥ वासुदेवमहाबाहो तुष्टस्तेहंमहामते ॥ सत्यसंभाषणादेव वरंवरयसुव्रत ॥ ४३ ॥ वासुदेव उवाच ॥ एवमेषवरःश्लाघ्यो यत्त्वंतुष्टोमहेश्वर ॥ नचपुण्यवतांपुंसां त्वं तुष्टिमधिगच्छसि ॥ ४४ ॥ अवश्यंयदिमेदेयो वरो देवेश्वरत्वया ॥ लिङ्गमेतदनन्ताख्यं लघुतांनयमाचिरम् ॥ ४५ ॥ येनसृष्टिर्भवेल्लोके व्याप्तंविश्वमनेनतु ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततःसंक्षिप्यतल्लिङ्गं लघुकृत्वामहेश्वरः ॥ ४६ ॥ अब्रवीत्केशवंभूयः शृणुवाक्यमिदंहरे ॥ एतन्मेध्यतमेदेशे लिङ्गंस्थापयमेहरे ॥ ४७ ॥ पूजयस्वविधानेन परंश्रेयःप्रपत्स्यसि ॥ ममतेजोविनिर्दग्धः कृष्णत्वंहियतोगतः ॥४८॥

मांगिये ॥ ४३ ॥ वासुदेव बोले कि हे महेश्वरजी ! यह ऐसाही वर प्रशंसनीय है जो कि तुम प्रसन्न हुयेहो क्योंकि तुम पुण्यवान् पुरुषों के ऊपर भी प्रसन्नताको नहीं प्राप्त होतेहो ॥ ४४ ॥ हे देवेश्वर ! यदि मुझको अवश्य तुमसे वरदेने योग्य है तो इस अनन्तनामक लिंगको शीघ्रही लघुता को प्राप्त कीजिये ॥ ४५ ॥ कि जिससे संसारमें सृष्टि होवै इस लिंगसे संसार व्याप्त है पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर उस लिंगको संक्षिप्तकर लघुकरके महादेवजीने ॥ ४६ ॥ फिर विष्णुजीसे कहा कि हे हरे ! इस वचनको सुनिये व हे हरे ! इस मेरे लिंगको अतिपवित्र स्थान में थापन करो ॥ ४७ ॥ और विधिसे पूजन करो तो उत्तम कल्याण को प्राप्त होवोगे

कृष्णएवततोनाम लोकेख्यातिंगमिष्यति ॥ कृष्णकृष्णेतितेनाम प्रातरुत्थायमानवः ॥ ४९ ॥ कीर्तयिष्यतियोभ क्त्यासयातिपरमाङ्गतिम्॥पुलस्त्य उवाच॥एवमुक्त्वातमीशानस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ५० ॥ वासुदेवोपितल्लिङ्गं गृही त्वार्बुदपर्वते ॥ निर्झरेस्थापयामास सुपुण्येविमलोदके ॥ ५१ ॥ कृष्णतीर्थंततोजातं नाम्नाहिधरणीतले ॥ शृणुपार्थि वशार्दूल तत्रस्नातस्ययत्फलम् ॥ ५२ ॥ स्नात्वाकृष्णह्रदेपुण्ये तल्लिङ्गंपश्यतेतुयः ॥ सर्वतीर्थोद्भवंश्रेयः समर्त्योल भतेखिलम् ॥ ५३ ॥ तथाचसर्वदानानां निष्कामस्स्याद्यदिप्रभो ॥ सकामोपिफलंचेष्टं यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ ५४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ यइच्छेच्छाश्वतंश्रेयो नात्रकार्याविचारणा ॥ ५५ ॥ एकादश्यांमहाराज निराहारोजितेन्द्रियः॥ यस्तत्रजागरंकुर्याल्लिङ्गस्याग्रेसुभक्तितः ॥ ५६ ॥ प्रभातेकुरुतेश्राद्धं यस्तुश्रद्धासमन्वितः ॥ पि तॄन्सतारयेत्सर्वान्पूर्वजैःसहधर्मवित् ॥ ५७ ॥ तिलान्कृष्णान्नरस्तत्र ब्राह्मणेभ्योददातियः॥ब्रह्महत्यादिभिःपापैः समर्त्यो

और जिसलिये मेरे तेजसे जलेहुये तुम कृष्णत्वको प्राप्त हुयेहो ॥ ४८ ॥ उसकारण संसार में कृष्णही नाम प्रसिद्धिको प्राप्त होगा ॥ प्रातःकाल उठकर जो मनुष्य भक्तिसे कृष्ण कृष्ण ऐसा तुम्हारा नाम कहैगा वह उत्तम गतिको प्राप्त होगा पुलस्त्यजी बोलेकि ऐसा कहकर शिवजी वहीं अन्तर्द्धान होगये ॥ ४९ । ५० ॥ और वासुदेवने भी उस लिंगको लेकर अर्बुदपर्वत पै बहुतपवित्र व निर्मल जलवाले झरने में स्थापन किया ॥ ५१ ॥ उसीकारण पृथ्वी में नामसे कृष्णतीर्थ हुआ हे नृपोत्तम ! उसमें नहायेहुये मनुष्य को जो फल होता है उसको सुनिये ॥ ५२ ॥ कि पवित्र कृष्णकुण्ड में नहाकर जो उस लिंगको देखता है वह मनुष्य सब तीर्थों से उपजेहुये सब पुण्य को पाता है ॥ ५३ ॥ व हे प्रभो ! यदि अकाम होवै तोभी सब दानों के पुण्यको प्राप्त होता है और सकाम भी जो प्रिय फल होता है उसको पाता है यद्यपि दुर्लभ भी होवै ॥ ५४ ॥ इसकारण जो सदैव कल्याण चाहै वह सब यत्न से उस तीर्थ में स्नान करै इसमें विचार न करनाचाहिये॥ ५५ ॥ हे महा-राज ! एकादशी तिथिमें जो निराहार व जितेन्द्रिय मनुष्य वहां उत्तम भक्तिसे लिंगके आगे जागरण करता है ॥ ५६ ॥ और श्रद्धासंयुत जो प्रातःकाल श्राद्ध करता है वह धर्मज्ञ पुरुष पूर्वजोंसमेत सब पितरों को तारता है ॥ ५७ ॥ और वहां जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये काले तिलोंको देता है वह मनुष्य निश्चयकर ब्रह्महत्यादिक

पापों से छूटजाता है ॥ ५८ ॥ हे नृपेन्द्र ! कृष्णतीर्थके दर्शनही से मनुष्य सबपापों से छूटजाता है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डे देवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकृष्णतीर्थप्रभाववर्णनंनामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । मामूहद तीरथ कियो जिमि मुद्गल मुनिनाथ । पैंतिसवें अध्याय में सोइ सुहावन गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर उस पर्वत के किनारे पै मामूहद ऐसे प्रसिद्ध पापनाशक तीर्थ को जावै ॥ १ ॥ उसमें भलीभांति नहाया हुआ सावधान व श्रद्धावान् मनुष्य पूर्वजन्म में भी किये हुये भयंकर पातकों से

मुच्यतेध्रुवम् ॥ ५८ ॥ दर्शनादेवराजेन्द्र कृष्णतीर्थस्यमानवः ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो नात्रकार्याविचारणा ॥ ५९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेर्बुदमाहात्म्येकृष्णतीर्थप्रभाववर्णनन्नामचतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ मामूहदमितिख्यातं तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥ १ ॥ तत्र स्नातोनरस्सम्यक् श्रद्धावान्सुसमाहितः ॥ मुच्यतेपातकैर्घोरैः पूर्वजन्मकृतैरपि ॥ २ ॥ तस्यपश्चिमदिग्भागे लिङ्गमस्तिमहीपते ॥ सर्वकामप्रदन्नृणां स्थापितंमुद्गलेनतु ॥ ३ ॥ स्नात्वामामूहदेपुण्ये यस्तुलिङ्गंचपश्यति ॥ शुक्लपक्षेचतुर्दश्यां फाल्गुनेमासिमानवः ॥ ४ ॥ सप्राप्नोतिपरंश्रेयः सर्वतीर्थेषुदुर्लभम् ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं दक्षिणांमूर्तिमाश्रितः ॥ ५ ॥ पितरस्तस्यतृप्यन्ति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ तत्रदानंप्रशंसन्ति नीवाराणांमहर्षयः ॥ ६ ॥ शाकमूलादिभिः श्राद्धं पितॄणान्तुष्टिदन्नृप ॥ ७ ॥ ययातिरुवाच ॥ मामूहदमितिविभो कथंनामाभवत्पुरा ॥ मुनेस्तस्याश्रमंब्रूहि मम

छूटजाता है ॥ २ ॥ हे भूपते ! उसके पश्चिमदिशाके भाग में मुद्गल से थापाहुआ मनुष्यों के सब मनोरथों को देनेवाला लिंग है ॥ ३ ॥ जो मनुष्य फागुन महीने में शुक्लपक्ष में चौदसि तिथि में पवित्र मामूहद में नहाकर उस लिंगको देखता है ॥ ४ ॥ वह सब तीर्थों में दुर्लभ व उत्तम पुण्यको प्राप्त होता है व दक्षिणा मूर्ति के आश्रित जो मनुष्य वहां श्राद्ध करता है ॥ ५ ॥ उसके पितर कल्पपर्यन्त तृप्त होते हैं वहां महर्षिलोग तिन्नी फसही के दानकी प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥ हे राजन् ! वहां शाक व मूलादिकों से श्राद्ध पितरों को तृप्तिदायक है ॥ ७ ॥ ययातिजी बोले कि हे विभो ! पुरातनसमय मामूहद ऐसा नाम कैसे हुआ और उन मुनि के

आश्रम व सब चरित्रको मुझसे विधान से कहिये ॥ ८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! पुरातनसमय वहां टिके हुये महात्मा मुद्गल के लिये उत्तम विमान को लेकर देवदूत आया ॥ ९ ॥ और उसने कहा कि तुम्हारेलिये मैं देवदूत पठायागया हूं तुम इस विमान पै चढ़ो व स्वर्ग को चलो ॥ १० ॥ मुद्गल बोले कि हे दूत ! स्वर्गके जो गुण व दोष कहेगये हैं उनको मुझसे कहिये क्योंकि मैं उनको सुनकर जो योग्य होगा उसको करूंगा ॥ ११ ॥ हे दूत ! उन सबको मुझसे कहिये तदनन्तर मैं स्वर्गको जाऊंगा इस गर्व से कुछ नहीं है कि इन्द्रका कथन कीजिये ॥ १२ ॥ दूत बोला कि हे द्विजश्रेष्ठ, मुने ! अपने पुण्यों से मनुष्य स्वर्ग

सर्वंविधानतः ॥ ८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तत्रस्थस्यपुराराजन् मुद्गलस्यमहात्मनः ॥ विमानंवरमादाय देवदूतस्समागमत् ॥ ९ ॥ सोब्रवीद्देवदूतोहं प्रेषितोमुनिसत्तम ॥ तवार्थायारुहैनंत्वं विमानंगम्यतांदिवि ॥ १० ॥ मुद्गल उवाच ॥ स्वर्गस्ययेगुणादूत येचदोषाःप्रकीर्तिताः ॥ तान्मेवदकरिष्येहं श्रुत्वावैयत्क्षमंभवेत् ॥ ११ ॥ ब्रूहितान्सकलान्दूत स्वर्गमिष्याम्यहन्ततः ॥ अलमेतेनदर्पेण क्रियतांशक्रजल्पितम् ॥ १२ ॥ दूत उवाच ॥ पुण्यैःस्वकैर्द्विजश्रेष्ठ नरोगच्छेद्दिवंमुने ॥ मुद्गल उवाच ॥ अश्रुतैस्तैर्नगच्छेहमेतन्मेहृदिनिश्चितम् ॥ १३ ॥ चरिष्येहंतपोभूरि पूजयिष्येमहेश्वरम् ॥ दूत उवाच ॥ नशक्तस्स्वर्गुणान्वक्तुमपिवर्षशतैरपि ॥ १४ ॥ संक्षेपात्कथयिष्यामि यदितेनिश्चयःपरः ॥ नन्दनादीनिरम्याणि तत्रदेववनानिच ॥ १५ ॥ अनन्यसदृशाभोगाः सदातृप्तिर्द्विजोत्तम ॥ बुभुक्षानैवतृष्णाच निद्रालस्यंनच प्रभो ॥ १६ ॥ रम्भाद्यप्सरसोमुख्या गन्धर्वास्तुम्बुरादयः ॥ रमयन्तिनरंतत्र गीतैर्नृत्यैरनेकशः ॥ १७ ॥ एवंचवसते

को जाता है मुद्गलजी बोले कि उनके बिन सुने हुये मैं नहीं जाऊंगा यह मेरे हृदयमें निश्चय किया गया है ॥ १३ ॥ और मैं बहुत तप करूंगा व शिवजीको पूजूंगा दूत बोला कि सौ वर्षों से भी मैं स्वर्ग के गुणों को कहने के लिये समर्थ नहीं हूं ॥ १४ ॥ यदि तुमको उत्तम निश्चय है तो संक्षेप से कहताहू कि उस स्वर्ग में नन्दनादिक सुन्दर देववन हैं ॥ १५ ॥ व हे द्विजोत्तम ! अन्य के समान भोग नहीं हैं याने अति उत्तम सुख हैं और सदैव तृप्ति रहती है व हे प्रभो ! न क्षुधा है न प्यास है न निद्रा है न आलस्य है ॥ १६ ॥ और रंभादिक-मुख्य अप्सरा और तुंबुरु आदिक गंधर्व वहां मनुष्यको अनेक गीतों व नृत्यों से रमण कराते हैं ॥ १७ ॥

हे तपोधन ! इसप्रकार उस स्वर्ग में मनुष्य तबतक बसता है जबतक कि पुण्यका क्षय होता है पश्चात् पातको प्राप्त होता है याने गिरजाता है॥ १८॥ हे मुने ! स्वर्ग में स्वर्गियोंको भयदायक वही पतननामक मुझको एकहीदोष जानपड़ताहै॥ १९ ॥ हे विप्र ! वहां किसीप्रकार पुण्य करने को नहीं मिलता है हे ब्रह्मन् ! कर्मभूमि यह है और भोगकी भूमि वह कहीगई है ॥ २० ॥ यहां जो शुभकर्म कियाजाता है वह वहा भोग कियाजाताहै वैसेही हे द्विजोत्तम ! बहुत तेज से संयुत व बहुत धर्मादिकों से युक्त मनुष्यों को विमानों पै स्थित देखकर उससमय थोड़े पुण्यवाला स्वर्ग में टिकाहुआ पुरुष पश्चात्तापसे उपजेहुये दुःखसे दुःखित होताहै ॥ २१ । २२ ॥

तत्र जनस्स्वर्गेतपोधन ॥ यावत्पुण्यक्षयस्तावत् पश्चात्पातमवाप्नुयात् ॥ १८ ॥ एकएवमुनेदोषः स्वर्लोकेप्रतिभातिमे ॥ सएवपतनाख्यस्तु स्वर्गिणांचभयावहः ॥१९॥ नपुण्यंलभ्यतेतत्र कर्तुंविप्रकथञ्चन ॥ कर्मभूमिरियंब्रह्मन्भोगभूमिस्तुसास्मृता ॥ २० ॥ यदत्रक्रियतेकर्म शुभंतत्रोपभुज्यते ॥ तथादृष्ट्वाविमानस्थान्भूरिधर्मादिसंयुतान् ॥२१॥ बहुतेजोन्वितान्स्वर्गे अल्पपुण्योद्विजोत्तम ॥ पश्चात्तापजदुःखेन स्वर्गस्थोदुःखितस्तदा ॥ २२ ॥ नचयैःसुकृतंभूरिकृतंमर्त्ये कथञ्चन ॥ तथाचयतमानांश्च दृष्ट्वाचान्यान्सहस्रशः ॥ २३ ॥ आत्मनश्चमहद्दुःखं जायतेचतदद्भुतम् ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं गुणदोषसमुद्भवम् ॥२४॥ स्वर्गसञ्चेष्टितंब्रह्मन्कुरुष्वयदभीप्सितम् ॥ मुद्गल उवाच ॥ पतनस्यभयंयत्रपुण्यहानिर्नवर्द्धनम् ॥ २५ ॥ तेनस्वर्गेणमेदूत नैवकार्यंकथञ्चन ॥ वाच्यस्त्वयाममादेशाद्देवराजःस्फुटंवचः ॥ २६ ॥ क्षम्यतामपराधोमे नस्वर्गीयास्पृहामम ॥ तत्कर्महिकरिष्यामि येननोपतनाद्भयम् ॥ २७ ॥ साधयिष्यामि

और जिन्होंने मृत्युलोक में किसीप्रकार बहुत पुण्य को नहीं किया है उनको और वैसेही अन्य हज़ारों पुरुषों को गिरतेहुये देखकर ॥ २३ ॥ अपनाको भी बड़ा दुःख होता है वह आश्चर्य है गुणों व दोषों से उपजाहुआ यह सब स्वर्ग का वृत्तान्त कहागया हे ब्रह्मन् ! जो प्रिय हो उसको कीजिये मुद्गल बोले कि गिरने का भयहै व पुण्यकी हानि है बढ़ती नहीं है ॥ २४।२५ ॥ हे दूत ! उस स्वर्ग से मेरा किसीप्रकार कार्य नहीं है और मेरी आज्ञा से तुम इन्द्र से प्रगटवचन कहना ॥ २६ ॥ कि मेरा

अपराध क्षमा कियाजावै मुझको स्वर्ग की इच्छा नहीं है मैं उस कर्म को करूंगा कि जिससे गिरने से डर न होगा ॥ २७ ॥ और मैं उन लोकों को साधन करूंगा जो कि सदैव पात से रहित हैं पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर स्वर्ग की इच्छा से रहित मुद्गल ॥ २८ ॥ वहीं टिककर शिवजी के ध्यान में परायण हुये और इन्द्र के दूत ने भी सुनकर विस्तारसमेत उनके वचन को ॥ २९ ॥ कहा और इन्द्र ने फिर उस दूत से कहा कि हे देवदूत ! तुमने विमान को प्रमाण रहित किया ॥ ३० ॥ और पहले किसीने नहीं कियाहै व न कोई करेगा उसकारण वहां शीघ्रही जाकर बलसे उन मुनि को लेआओ ॥ ३१ ॥ तुम उन को लाओ नहीं

ताल्लोँकान्येसदापातवर्जिताः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वानृपश्रेष्ठ मुद्गलस्स्वर्गनिस्पृहः ॥ २८ ॥ स्थितस्तत्रैवनिरतः शिवध्यानपरायणः ॥ श्रुत्वादूतोपिशक्रस्य तस्यवाक्यंसविस्तरम् ॥ २९ ॥ कथयामासशक्रस्तु तंभूयःपर्यभाषत ॥ देवदूताप्रमाणंच विमानंहित्वयाकृतम् ॥ ३० ॥ नकृतंकेनचित्पूर्वं नकरिष्यतिकश्चन ॥ तस्मात्तत्रद्रुतंगत्वा बलादानयतंमुनिम् ॥ ३१ ॥ आनयस्वान्यथाशापं तवदास्याम्यसंशयम् ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शक्रस्यवचनंश्रुत्वा देवदूतोभयान्वितः ॥ ३२ ॥ प्रस्थितस्सत्वरंतत्र मुद्गलोयत्रतिष्ठति ॥ मुद्गलोपिविमानंस्वं पुनर्दृष्ट्वासमागतम् ॥ ३३ ॥ मामूहृदेप्रविश्याथ वारयामासतंतदा ॥ सतस्यवचनेनैवातिष्ठत्तुलिखितोयथा ॥ ३४ ॥ चलितुंशक्यतेनैव प्रभावात्तस्यसन्मुनेः ॥ चिरकालगतंज्ञात्वा दूतन्तुत्रिदशाधिपः ॥ ३५ ॥ स्वयंतत्रययौकोपादारुह्यैरावणंगजम् ॥ अथदृष्ट्वातदादूतं स्तम्भितंमुद्गलेनतु ॥ ३६ ॥ वधार्थन्तुमनस्तस्य सवज्रंभ्रामयंस्तदा ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु उत्पातास्तत्रदारुणाः ॥ ३७ ॥

तो मैं तुमको शाप दूंगा इसमें सन्देह नहीं है पुलस्त्यजी बोले कि इन्द्रके वचनको सुनकर देवदूत डरसे संयुत हुआ ॥ ३२ ॥ और जहां मुद्गलजी टिके थे वहां शीघ्रही चला और मुद्गलने भी फिर आयेहुये अपने विमानको देखकर ॥ ३३ ॥ उससमय मामूहृदमें पैठकर उसको मना किया और उन मुनिके वचन से वह दूत लिखित (चित्र) कीनाई खड़ा होगया ॥ ३४ ॥ और उन उत्तम मुनिके प्रभावसे चलनेके लिये न समर्थ हुआ बहुत समय गयेहुये दूतको जानकर देवताओंके स्वामी इन्द्रजी ॥ ३५ ॥ ऐरावत हाथी पै सवार होकर क्रोधसे आपही वहां गये इसके अनन्तर मुद्गलसे स्तम्भित दूत को देखकर उससमय ॥ ३६ ॥ वज्र घुमातेहुये इन्द्रने उन मुनि

के मारने के लिये मन किया तब इसीसमय में वहां मुद्गल के समीप इन्द्र के वज्र को हाथ में उठाने पर भयंकर उत्पात हुये कि रविमंडल को नाश कर बड़ीभारी उल्का गिरी ॥ ३७ । ३८ ॥ और अकाल वर्षा हुई व बहुतही भयंकर पवन चले और मृग, पशु व जो पक्षी थे उन्हों ने दक्षिण परिक्रमाकिया ॥ ३९ ॥ उनको देख-कर विस्मय से संयुत मुद्गल ने विचार किया इसके उपरान्त आकाश में प्राप्त व वज्र को हाथ में उठायेहुये इन्द्र को देखकर ॥ ४० ॥ मुद्गल ने शीघ्रही उन इन्द्र को दृष्टिपात से रोक दिया व हे नृपोत्तम ! वहां नष्ट उत्साहवाले इन्द्र ने स्तुति किया ॥ ४१ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! मुझ को छोड़ दीजिये मैं स्वर्ग को जाताहूं व

वज्रोद्यतकरेजाताः शक्रेमुद्गलसन्निधौ ॥ पपातमहतीचोल्का निहत्यरविमण्डलम् ॥ ३८ ॥ अकालवृष्टिरभवद्व वुर्वाताःसुदारुणाः ॥ अपसव्यंमृगाश्चक्रुःपशवःपक्षिणश्चये ॥ ३९ ॥ तान्दृष्ट्वाचिन्तयामास मुद्गलोविस्मयान्वितः ॥ अथदृष्ट्वाम्बरगतं वज्रोद्यतकरंहरिम् ॥ ४० ॥ स्तम्भयामासतंसद्यो दृष्टिपातेनमुद्गलः ॥ तत्रशक्रस्स्तुतिंचक्रे भग्नोत्साहोन्नृपोत्तम ॥ ४१ ॥ मुञ्चमांब्राह्मणश्रेष्ठ यास्यामित्रिदशालयम् ॥ स्वर्गेवायदिवामर्त्ये त्वंतिष्ठस्वेच्छयाद्विज ॥ ४२ ॥ मयाकृतःसमुद्योगो हितार्थंतेमुनेह्ययम् ॥ वरंवरयभद्रन्ते नित्यंयोमनसिस्थितः ॥ ४३ ॥ तत्तेसर्वंप्रदास्यामि यद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ मुद्गल उवाच ॥ एवमेषवरःश्लाघ्यो यत्त्वंदृष्टःसुरेश्वर ॥ ४४ ॥ दर्शनन्तेसहस्राक्ष स्वप्नेष्वपिसुदुर्लभम् ॥ अवश्यंयदिमेदेयो वरोवृत्रनिषूदन ॥ ४५ ॥ त्वत्प्रसादेनमेमोक्षो जायतांशीघ्रमेवहि ॥ मामूहृदंसमागच्छ दूतःप्रोक्तोमयायतः ॥ ४६ ॥ ततोमामूहृदमिति ख्यातिंयातुधरातले ॥ तीर्थमेतत्सहस्राक्षसर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४७ ॥

हे द्विज ! तुम अपनी इच्छा से स्वर्ग में या मृत्युलोक में स्थित होवो ॥ ४२ ॥ हे मुने ! मैंने तुम्हारे हित के लिये इस उद्योग को किया था तुम्हारा कल्याण होवै और जो सदैव मन में स्थित होवै उस वरदानको मांगो ॥ ४३ ॥ जो दुर्लभ भी होगा उस सबको भी मैं तुम्हें दूंगा मुद्गलजी बोले कि हे सुरेश्वर ! यहींपर प्रशंस-नीय है जो कि तुम देखे गये ॥ ४४ ॥ हे सहस्रलोचन ! स्वप्नों में भी तुम्हारा दर्शन दुर्लभ है व हे वृत्रविनाशक ! यदि अवश्य मुझको वर देने योग्य है ॥ ४५ ॥ तो शीघ्रही तुम्हारी प्रसन्नतासे मुझको मोक्ष प्राप्त होवै जिसलिये मैंने दूतसे कहा कि कुण्डको मत आओ मतआओ ॥ ४६ ॥ उसकारण पृथ्वीमें मामूहृद ऐसीप्रसिद्धि

को प्राप्तहोवै व हे सहस्राक्ष ! यह तीर्थ सब पापों का नाशक होवै ॥ ४७ ॥ व हे सुरेश्वर ! इसमें नहाकर मनुष्य तुम्हारी प्रसन्नता से स्वर्गको प्राप्त होवैं और यहां पिंडदानसे पितर उत्तम शांतिको प्राप्तहोवैं ॥ ४८ ॥ इन्द्रजी बोले कि हे द्विजोत्तम! मामूह्रद ऐसा प्रसिद्ध यह तीर्थ मेरी प्रसन्नता से श्रेष्ठ होगा। इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४९ ॥ व हे मुने ! फागुन महीने में पौर्णमासी तिथिमें सावधान होते हुये जो मनुष्य इसमें स्नान करैंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवैंगे ॥ ५० ॥ और यहां पिंडदान से गया के समान फल मिलता है और द्विजोत्तम यहां पिण्डदानकी असंख्य प्रशंसा करते हैं ॥ ५१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर वज्रधारी इन्द्रजी दूतको लेकर

अत्रस्नात्वादिवंयान्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥ पिण्डदानात्परांप्रीतिं लभन्तुपितरोत्रहि ॥ ४८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ मामूह्रदमितिख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ वरिष्ठंनात्रसन्देहो मत्प्रसादाद्द्विजोत्तम ॥ ४९ ॥ अत्रयेफाल्गुनेमासि पौर्णमास्यांसमाहिताः ॥ करिष्यन्तिमुनेस्नानन्तेयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥ ५० ॥ पिण्डदानाद्गयातुल्यं लभ्यतेफलमुत्तमम् ॥ पिण्डदानंप्रशंसन्ति संख्याहीनंद्विजोत्तमाः ॥ ५१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वाययौस्वर्गंदूतमादायवज्रभृत्॥ मुद्गलोपिपरंब्रह्म चिन्तयन्द्यानिशंततः ॥ ५२ ॥ शुक्लध्यानपरोभूत्वा मोक्षंप्राप्तस्ततोक्षयम् ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ अत्र गाथापुरागीता नारदेनमहात्मना ॥ ५३ ॥ बहुविप्रसमाजेतु पर्वतेस्मिन्महीपते ॥ मामूह्रदेनरस्स्नात्वा पश्येत्तंमुद्गलेश्वरम् ॥ ५४ ॥ एतस्मात्कारणाद्राजन् मामूह्रदमितिस्मृतम् ॥ तत्तीर्थंसर्वतीर्थानां प्रवरंलोकविश्रुतम् ॥५५॥ तस्मा

स्वर्गको चलेगये तदनन्तर दिनरात परब्रह्मको चिन्तवन करतेहुये मुद्गल भी ॥ ५२ ॥ शुक्ल (विष्णु) के ध्यानमें तत्पर होकर तदनन्तर अक्षय मोक्षको प्राप्तहुये पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! इस पर्वत पै बहुत ब्राह्मणों की सभामें इस विषय में पहले महात्मा नारदजीने गाथा गायाहै कि मामूह्रदमें नहाकर मनुष्य उन मुद्गलेश्वरजीको देखै ॥ ५३ । ५४ ॥ इसकारण हे राजन् ! मामूह्रद ऐसा कहा हुआ वह तीर्थ सबतीर्थों के मध्यमें श्रेष्ठ व संसार में प्रसिद्ध है ॥ ५५ ॥ इसकारण सब

यत्नसे उस तीर्थ में स्नान करै और जो परमपदको चाहै मोक्षकी कामनावाला वह विशेषकर इसमें स्नान करै ॥ ५६ ॥ और चंडिकाश्रमको प्राप्तहोकर क्यों मन परि-
संतप्त होता है ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमामूह्रदोत्पत्तिर्नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥
दो० । अर्बुदहीं पर भयो जिमि चण्डिकाश्रमहुं नाम । तीर्थ छत्तिसें में सोई बरन्यो चरित ललाम ॥ ययाति बोले कि हे द्विजश्रेष्ठ ! वहां चण्डिका का आश्रम किस
समय व कैसे हुआ है और उसके देखने से मनुष्यों को क्या फल होता है ॥ १ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! पापोंको नाशनेवाली कथाको सुनिये मैं कहताहूं कि

त्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत् ॥ मोक्षकामोविशेषेण यइच्छेत्परमंपदम् ॥ ५६ ॥ चण्डिकाश्रममासाद्य किंमनःप
रितप्यते ॥ ५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमामूह्रदोत्पत्तिर्नामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ * ॥
ययातिरुवाच ॥ चण्डिकायाद्विजश्रेष्ठ कथंतत्राश्रमोभवत् ॥ कस्मिन्कालेफलन्तेन किंदृष्टेनभवेन्नृणाम् ॥ १ ॥
पुलस्त्य उवाच ॥ शृणुराजन्प्रवक्ष्यामि कथांपापप्रणाशनीम् ॥ यांश्रुत्वामानवस्सम्यक्सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ २ ॥ पुरा
देवयुगेराजन्महिषोनामदानवः ॥ पितामहवराद्दृप्तः आसीत्सर्वभयङ्करः ॥ ३ ॥ तेनशक्रादयोदेवा जिताःसङ्ख्येस
हस्रशः ॥ भयात्तस्यदिवंहित्वा गतास्तेवैदिशोदश ॥ ४ ॥ त्रैलोक्यंसवशेकृत्वा स्वयमिन्द्रोबभूवह ॥ आदित्यावसवो
रुद्रा नासत्यौमरुतांगणाः ॥ ५ ॥ कृतास्तेनतथादैत्या यथार्हंबलवत्तराः ॥ वह्निर्भयसमापन्नांस्त्यक्त्वादेवगणांस्तदा ॥
६ ॥ दानवेभ्योहविर्भागं देवेभ्योनप्रयच्छति ॥ उद्द्योतंकुरुतेसूर्यो यादृक्तस्याभिसम्मतः ॥ ७ ॥ यज्ञभागंविनाप्येवं

जिसको भलीभांति सुनकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ २ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय देवयुगमें महिषनामक दानव ब्रह्माके वरदानसे गर्वित होकर सबको
भयंकर हुआ ॥ ३ ॥ उसने युद्धमें हज़ारों इन्द्रादिक देवताओं को जीता और उसके डरसे स्वर्गको छोड़कर वे देवता दशो दिशाओंको चलेगये ॥ ४ ॥ और वह महिषासुर
त्रिलोक को वशमें कर आपही इन्द्र हुआ और आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार व पवनों के गण ॥ ५ ॥ उससे यथायोग्य बड़े बलवान् दैत्य किये गये और उस
समय अग्निजी भयको प्राप्त देवगणों को छोड़कर ॥ ६ ॥ दानवों के लिये हविष्य का भाग देते थे देवताओं के लिये नहीं देते थे और सूर्यनारायण वसाही प्रकाश

करते थे जैसा कि उसको संमत था ॥ ७ ॥ व हे नृपोत्तम ! यज्ञभागके विना भी सब लोकपालोंने भयसे उसके कर्मको किया ॥ ८ ॥ व हे नृपोत्तम ! यज्ञभागके विना वे दासकी नाईं कियेगये इसके अनन्तर किसीसमय सब देवताओंने मिलकर ॥ ६ ॥ व विनयसंयुक्त होकर द्विजोत्तम बृहस्पतिजीसे पूछा कि हे भगवन् ! अवलम्ब रहित हमलोग क्या करैं व कहां जावैं ॥ १० ॥ उसकारण दुष्टात्मा महिष के नाशका उपाय कहो हे नृप ! देवताओं से ऐसा कहेहुये बृहस्पतिजीने बहुतसमय तक ध्यानकर ॥ ११ ॥ हे राजन् ! वहां बैठेहुये देवताओं को जिलाते हुये से कहा बृहस्पतिजी बोले कि ब्रह्मासे वरदानको पायेहुये यह दैत्य पराक्रम में स्थित है ॥ १२ ॥

भयात्पार्थिवसत्तम ॥ लोकपालास्तथासर्वे तस्यकर्मप्रचक्रिरे ॥ ८ ॥ दासवत्पार्थिवश्रेष्ठ यज्ञभागंविनाकृताः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य सर्वेदेवाःसमेत्यतु ॥ ६ ॥ पप्रच्छुर्विनयोपेता विप्रश्रेष्ठंबृहस्पतिम् ॥ भगवन्किंवयंकुर्मः कुत्रयामो निराश्रयाः ॥ १० ॥ तस्माद्ब्रूहिक्षयोपायं महिषस्यदुरात्मनः ॥ एवमुक्तोगुरुर्देवैर्ध्यात्वाकालंचिरन्नृप ॥ ११ ॥ तत्रस्थांस्त्रिदशान्प्राह जीवयन्निवभूमिप ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ब्रह्मलब्धवरोदैत्यः पौरुषेचव्यवस्थितः ॥ १२ ॥ अवध्यस्सर्वदेवानांमुक्त्वैकांयोषितंसुराः ॥ व्रजध्वंसहितास्तस्मादर्बुदंपर्वतोत्तमम् ॥ १३ ॥ तपोर्थंतत्रसंसिद्धिर्जायतामचिरादपि ॥ शक्तिरूपाम्परांदेवीं चण्डिकांकामरूपिणीम् ॥ १४ ॥ आराधयध्वमेकान्ते ययाव्याप्तमिदंजगत् ॥ सारुष्टावैवधार्थन्तु महिषस्यदुरात्मनः ॥ १५ ॥ करिष्यतिसमुद्योगमवतारसमुद्भवम् ॥ तस्याहस्तेनसोवश्यं वधंप्राप्स्यतिदुर्मतिः ॥ १६ ॥ अहंवःकीर्तयिष्यामि शाक्तीयंमन्त्रमुत्तमम् ॥ पूजाविधानसंयुक्तं मुक्तिभुक्तिप्रदंशुभम् ॥ १७ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥

हेसुरो ! एक स्त्रीको छोड़कर वह सब देवताओं के अवध्यहै इसकारण साथही मिलकर तुम सब अर्बुदनामक उत्तम पर्वत पर जावो ॥ १३ ॥ वहां तपस्या के लिये थोड़े ही दिनों में भी भलीभांति सिद्धि होगी शक्तिरूपिणी व कामरूपिणी उत्तम चण्डिका देवीको ॥ १४ ॥ एकान्त में आराधन करो जिससे कि यह संसार व्याप्तहै क्रोधित होती हुई वह, दुष्टमहिषासुरके वधके लिये ॥ १५ ॥ अवतारसे उपजेहुये उद्योगको करैगी और उसके हाथसे वह दुर्बुद्धि अवश्यकर वधको प्राप्तहोगा ॥ १६ ॥

मैं तुमलोगों से भुक्ति व मुक्तिको देनेवाले व पूजाकी विधिसे संयुत शक्ति के उत्तम मंत्रको कहूंगा ॥ १७ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! ऐसा कहेहुये सब देवता बड़े हर्षसे संयुत हुये और उन समेत वे अर्बुद पर्वतकोगये ॥ १८ ॥ व हे राजन्! वहां बृहस्पति द्विजने नहायेहुये उन पवित्र सब देवताओंको शीघ्रही सिद्धि करनेवाले उत्तम मंत्रोंसे दीक्षित किया ॥ १९ ॥ और वहा साढ़े तीन पहरतक परिवारसे संयुत देवता बलि, पूजन, उपहार व गंध, माला और अनुलेपनों से ॥ २० ॥ व अनेकभाति के मंत्र तथा भक्तिसे पवित्र चरुसे नित्यही दीपज्योतिकी प्रार्थना करतेहुये सावधान हुये ॥ २१ ॥ और ममतारहित व अहंकारहीन तथा गुरुकी भक्ति

एवमुक्तास्सुरास्सर्वे हर्षेणमहतान्विताः ॥ तेनैवसहिताराजन् गताःपर्वतमर्बुदम् ॥ १८ ॥ तत्रस्नाताञ्छुचीन्सर्वान्दीक्षयामासतान्द्विजः ॥ शाक्तेयैःपरमैर्मन्त्रैः सद्यःसिद्धिकरैर्नृप ॥ १९ ॥ सार्धयामत्रयंतत्र परिवारसमन्विता ॥ बलिपूजोपहारैश्च गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ २० ॥ मन्त्रेणविविधेनैव चरुपूतेनभक्तितः ॥ प्रार्थयन्तस्तथानित्यं दीपज्योतिस्समाहिताः ॥ २१ ॥ निर्ममानिरहङ्कारा गुरुभक्तिपरायणाः ॥ अङ्गन्याससमायुक्ताः समदर्शित्वमागताः ॥ २२ ॥ एवंसन्तिष्ठमानानां तेषांपार्थिवसत्तम ॥ मासद्वयंव्यतिक्रान्तं ततस्तुष्टासुरेश्वरी ॥ २३ ॥ दीपज्योतिस्समादेशात्तेषांगात्रेषु पार्थिव ॥ मन्त्रेणपरिपूतानां परन्तेजोऽभ्यवर्द्धत ॥ २४ ॥ द्वादशार्कप्रभाजाता षण्मासाभ्यन्तरेणवै ॥ अथतांस्तेजसायुक्ताञ्ज्ञात्वाजीवोमहीपते ॥ २५ ॥ मण्डलंरचयामास सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ उपवेश्यततस्सर्वान् समेतांस्त्रिदशालयम् ॥ २६ ॥ तेषांशरीरगन्तेजः शाक्तेयैर्मन्त्रसत्तमैः ॥ आकृष्यन्यासयामास मण्डलेतत्रपार्थिव ॥ २७ ॥ तत

में लगेहुये अंगन्यास से संयुत देवता समदर्शित्वको प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ हे नृपोत्तम! इसप्रकार भलीभांति टिकेहुये उन देवताओंको दो महीने बीतगये तदनन्तर सुरेश्वरी भगवतीजी प्रसन्न हुई ॥ २३ ॥ व हेराजन्! दीपज्योतिकी आज्ञासे मंत्रसे पवित्र उन देवताओंके अगमें उत्तम तेज बढ़ा ॥ २४ ॥ और छः महीने के अन्तर में बारह सूर्योंके समान प्रभा हुई इसके अनन्तर हेराजन्! बृहस्पतिजीने उन देवताओंको तेजसे सयुक्त जानकर ॥ २५ ॥ सब सिद्धियोंको देनेवाले मंडलको बनाया तदनन्तर उन सबोंको साथही स्वर्ग से बिठाकर ॥ २६ ॥ हे राजन्! उनके शरीरों में प्राप्त तेजको उत्तम शक्तिवाले मंत्रोंसे खींचकर उस मंडल में धरा ॥ २७ ॥

तदनन्तर वहा स्वरूपिणी तेजोमयीकन्या पैदाहुई जो कि शक्तिरूपिणी व बड़े शरीरवाली तथा दिव्य लक्षणोंसे लक्षित थी ॥ २८॥ हे राजन् ! उसको इन्द्रने वज्र दिया व वरुणने अपनी फसरी दिया और भगवान् अग्निने शक्ति व सिंह वाहनको दिया ॥ २९ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ ! प्रसन्न होतेहुये अन्य सब देवगणोंने अपने शस्त्रों को उस भगवतीके लिये दिया व सावधान होतेहुये उन्होंने स्तुति किया ॥ ३० ॥ देवता बोले कि हे देवदेवेशि ! तुम्हारेलिये नमस्कार है हे कांचनप्रभे ! तुम्हारे लिये प्रणाम है हे कमलपत्रलोचनि ! तुम्हारेलिये नमस्कार है हे विश्वमातृके ! तुम्हारेलिये प्रणाम है ॥ ३१ ॥ हे विश्वरूपे ! तुम्हारेलिये नमस्कार है हे विश्वसंस्तुते ! तुम्हारे

स्तेजोमयाकन्या तत्रजातासुरूपिणी ॥ शक्तिरूपामहाकाया दिव्यलक्षणलक्षिता ॥ २८ ॥ इन्द्रस्तस्याददौवज्रं स्वपाशञ्चजलेश्वरः ॥ शक्तिञ्चभगवानग्निः सिंहयानंतथानृप ॥ २९ ॥ अन्येदेवगणास्सर्वे निजशस्त्राणिहर्षिताः॥ तस्यैददुर्नृपश्रेष्ठ स्तुतिचक्रुस्समाहिताः ॥ ३० ॥देवा ऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेशि नमस्तेकाञ्चनप्रभे ॥ नमस्तेपद्मपत्राक्षि नमस्तेविश्वमातृके ॥ ३१ ॥ नमस्तेविश्वरूपेच नमस्तेविश्वसंस्तुते ॥ त्वंमतिस्त्वंधृतिःकान्तिः त्वंमुग्धात्वंविभावरी ॥३२॥ क्षमाऋद्धिःप्रभास्वाहा सावित्रीकमलासती ॥ त्वंगौरीत्वंमहामाया चामुण्डात्वंसरस्वती ॥३३॥ भैरवी भीषणाकारा चण्डमुण्डासिधारिणी ॥ भूतप्रियामहाकाया घण्टालीविक्रमोत्कटा ॥ ३४ ॥ मद्यमांसप्रियानित्यं भक्तत्राणपरायणा ॥ त्वयाव्याप्तमिदंसर्वं त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३५ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंस्तुतासुरैस्सर्वैस्ततोदेवीप्रहर्षिता ॥ तानब्रवीद्वरंसर्वान्गृह्णन्तुममदेवताः ॥ ३६ ॥ देवा ऊचुः ॥ महिषोदानवोनाम पितामहवरान्वितः ॥ अवध्यः

लिये नमस्कार है तुम बुद्धि हो तुम धृति हो तुम कांति हो तुम मुग्धा हो व तुम्हीं विभावरी हो ॥ ३२ ॥ और क्षमा, ऋद्धि, प्रभा, स्वाहा, सावित्री व कमला और स्त्री तुम्हीं हो व तुम पार्वती हो तुम महामाया हो तुम्हीं चामुंडा हो और तुम्हीं सरस्वती हो ॥ ३३ ॥ और भयंकर आकारवाली भैरवी व चंडमुंड तथा तलवारको धारनेवाली तुम्हीं हो और भूतप्रिया, महाकाया व घटाली और विक्रमसे उग्र तुम्हीं हो ॥ ३४ ॥ और सदैव मद्यमांसप्रिया व भक्तकी रक्षामें परायणहो और चराचरसमेत यह सब त्रिलोक तुमसे व्याप्त है ॥ ३५ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर इसप्रकार सब देवताओं से स्तुति कीहुई देवीजी प्रसन्न होकर सब देवताओंसे बोलीं कि हे देवताओ !

आपलोग मेरे वर को ग्रहण करो ॥ ३६ ॥ देवता बोले कि ब्रह्माके वरदानसे संयुत महिषासुरनामक दानव एक स्त्री को छोड़कर सब प्राणियों व देवताओं के अवध्य कियागया है इसलिये हे देवि! तुम उसको नाशकरो देवीजी बोलीं कि हे देवताओ! प्रसन्न होतेहुये आप सब लोग अपने २ स्थानों को जाओ ॥ ३७ । ३८ ॥ मैं समय प्राप्त होनेपर उसको मारूंगी ऐसा कहेहुये सब देवता प्रसन्न होकर अपने स्थानों को गये ॥ ३९ ॥ और प्रसन्न होतीहुई देवीजी वहीं पर्वत के किनारे स्थित हुईं इसके अनन्तर किसीसमय तीर्थयात्रा में परायण भगवान् नारदमुनि वहां देवीको देखकर स्वर्गको प्राप्तहुये जहा कि महिषनामक दानव स्थित था ॥ ४० । ४१ ॥

सर्वभूतानां देवानाञ्चतथाकृतः ॥ ३७ ॥ मुक्त्वैकांयोषितंदेवि तस्मात्त्वंविनिपातय ॥ देव्युवाच ॥ गच्छन्तुत्रिदशाः सर्वे स्वानिस्थानानिनिर्वृताः ॥ ३८ ॥ अहन्तंसूदयिष्यामि समयेपर्युपस्थिते ॥ एवमुक्तागतास्सर्वे स्वानिस्थानानिहर्षिताः ॥ ३९ ॥ देवीतत्रैवसंहृष्टा स्थितापर्वतरोधसि ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नारदोभगवान्मुनिः ॥ ४० ॥ तत्रदेवींचसंदृष्ट्वा तीर्थयात्रापरायणः ॥ त्रिविष्टपमनुप्राप्तो महिषोयत्रतिष्ठति ॥ ४१ ॥ तंत्रदृष्ट्वामुनिंप्राप्तं प्रणम्यमहिषासुरः ॥ विनयेनसमायुक्तश्चाभ्युत्थानमथाकरोत ॥ ४२ ॥ ततस्तंपूजयामास मधुपर्कार्घविष्टरैः ॥ सुखासीनंसुविश्रान्तं ज्ञात्वावाक्यमुवाचह ॥ ४३ ॥ कुतोभवानिहप्राप्तः किमर्थंमुनिसत्तम ॥ अमीपुत्रास्तथाराज्यं कलत्राणिधनानिच ॥ ४४ ॥ अहंभृत्यसमायुक्तः किमन्येचद्विजोत्तम ॥ सर्वन्तेहंप्रदास्यामि ब्रूहियेनप्रयोजनम् ॥ ४५ ॥ नारद उवाच ॥ अभिनन्दामितेसर्वानेतत्त्वय्युपपद्यते ॥ निस्पृहाहिवयंनित्यं मुनिधर्मसमाश्रिताः ॥ ४६ ॥ कौतूहलादिहप्राप्तो द्रष्टुंत्वां

वहां प्राप्त हुये मुनिको देखकर विनय से संयुत महिषासुर ने प्रणाम कर इसके बाद अगवानी किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर उन नारदका मधुपर्क, अर्घ व विष्टर से पूजन किया और सुखसे बैठे व सहँतायेहुये जानकर वचन कहा ॥ ४३ ॥ कि हे मुनिश्रेष्ठ ! आप यहां कहां से व किसलिये प्राप्तहुयेहो ये पुत्र, राज्य, कलत्र व धन ॥ ४४ ॥ और हे द्विजोत्तम ! सेवकों से संयुत मैं व औरोंको क्या कहना है मैं तुमको सब दूंगा जिससे प्रयोजन होवै उसको कहिये ॥ ४५ ॥ नारदजी बोले कि तुम्हारे इन सबोंको मैं ग्रहण करताहूं और यह तुममें योग्य है व मुनियों के धर्म में टिके हुये हम सदैव निस्पृह रहते हैं ॥ ४६ ॥ हे दैत्यपुंगव ! मैं तुमको देखने के लिये

यहां कौतुक से प्राप्तहुआ हूं और मृत्युलोक से हम आये हैं व ब्रह्मा के स्थानको जावेंगे ॥ ४७ ॥ महिषासुर बोला कि हे मुने, विभो ! पृथ्वी में तुमने कहीं देवता संबधी व मानुष या दानवों का संबन्धी ॥ ४८ ॥ कुछ आश्चर्य देखा है नारदजी बोले कि हे दानवेंद्र ! मैंने पृथ्वी में बड़ा आश्चर्य देखा है जो कि पहले चराचर समेत त्रिलोक में कहीं नहीं देखागया था ॥ ४९ ॥ पृथ्वी में सब ऋतुवों में फूले हुये वृक्षोंमे शोभित स्वर्ग के समान अर्बुद ऐसा प्रसिद्ध पर्वत है ॥ ५० ॥ जो कि मौलसिरी, चंपक, आम, अशोक, कर्णिकार, साखू, ताल, खजूर, बरगद, भेलावा व धवके वृक्षोंसे संयुतहै ॥ ५१ ॥ और देवदारु, कटहर, तेंदू, कनैर, मदार, पारिजात

दैत्यपुङ्गव ॥ मर्त्यलोकात्समायाता यास्यामोब्रह्मणः पदम् ॥४७॥ महिषासुर उवाच ॥ क्वचिद्दृष्टन्त्वयाकिञ्चिदाश्चर्यं भूतलेमुने ॥ दैवंवामानुषंवापि दानवालम्भितंविभो ॥ ४८ ॥ नारद उवाच॥ अत्याश्चर्यंमयादृष्टं दानवेन्द्रधरातले ॥ यन्न दृष्टंक्वचित्पूर्वं त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ४९ ॥ अस्त्यर्बुदइतिख्यातः सर्वतोधरणीतले ॥ सर्वर्त्तुपुष्पितैर्वृक्षैः शोभितस्स्वर्गसन्निभः ॥ ५० ॥ बकुलैश्चम्पकैश्चूतैरशोकैःकर्णिकारकैः ॥ शालैस्तालैश्चखर्जूरैर्वटैर्भल्लातकैर्धवैः ॥ ५१ ॥ सरलैःपनसैर्वृक्षैस्तिन्दुकैःकरवीरकैः ॥ मन्दारैःपारिजातैश्च मलयैश्चन्दनैस्तथा ॥ ५२ ॥ पुष्पजातिविशेषैश्च सुगन्धैरप्यनेककैः ॥ स्वाद्यैस्सर्वैस्तथालेह्यैश्चोष्यैःफलवरैर्वृतः ॥ ५३ ॥ नसवृक्षोनसावल्ली नौषधीसाधरातले ॥ नतत्रयासुरश्रेष्ठ पर्वतेवीक्षितामया ॥ ५४ ॥ पक्षिणोमधुरारावाश्चकोरशिखिचातकाः ॥ कोकिलाधार्तराष्ट्राश्च भ्रमराःशतपत्रकाः ॥ ५५ ॥ येषांशब्दंसमाकर्ण्य मुनयोपिसमाहिताः ॥ क्षोभंयान्तित्रिकालज्ञाः कन्दर्पशरपीडिताः ॥ ५६ ॥ निर्झराणि

व मलय चन्दनों से शोभित हैं ॥ ५२ ॥ और पुष्पजातिके भेदवाले वृक्षों तथा अनेकों सुगंधित वृक्षोंसे और सब स्वादिष्ठ चाटनेवाले व चूसनेवाले उत्तम फलों से घिरा है ॥ ५३ ॥ हे श्रेष्ठ दानव ! पृथ्वी में वह वृक्ष, वह वल्ली और वह औषधी नहीं है जिसको कि मैंने उस पर्वत पै नहीं देखा है ॥ ५४ ॥ और मधुर शब्दोंवाले चकोर, मयूर, चातक, कोकिल और नीली चोंच व पैरवाले हंस और कठफोरवा पक्षी वहांहैं ॥ ५५ ॥ जिनके शब्दको सुनकर तीनों कालोंको जाननेवाले सावधान भी

मुनिलोग कामदेवके बाणसे पीड़ित होकर क्षोभको प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥ और वहां बहुतही सुन्दर झरने व निर्मलजलवाली नदियां हैं और कमलिनीसमूहसे संयुक्त सैकड़ों व हज़ारों कुण्ड हैं ॥ ५७ ॥ और कमलपत्रके समान चौड़े नेत्रोंवाले और दुर्बल कटिवाले तथा श्वेतहास्यवारे विवेकी मनुष्य वहा शास्त्रके व्रतसे संयुत हैं ॥ ५८ ॥ इस विषय में बहुत कहने से क्या है जो कुछ उसपर्वत पै है स्वेदज व अंडजसंज्ञक और उद्भेद व जरायुज ॥ ५९ ॥ सब लोकों से उत्तम उस उत्तम पर्वत पै देख पड़ता है और उस अर्बुद पहाड़की चौड़ाई दश योजन है ॥ ६० ॥ और उंचाई पांच योजन है वह श्रीमान् पर्वत मृत्युलोकमें स्वर्ग होगया वहा इधर

सुरम्याणि नद्यश्चविमलोदकाः ॥ पद्मिनीखण्डसंयुक्ताः ह्रदाःशतसहस्रशः ॥ ५७ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षा मध्यक्षा माःशुचिस्मिताः ॥ विवेकिनोनरास्तत्र शास्त्रव्रतसमन्विताः ॥ ५८ ॥ किञ्चात्रबहुनोक्तेन यत्किञ्चित्तत्रपर्वते ॥ स्वेद जाण्डजसञ्ज्ञेय उद्भेदश्चजरायुजः ॥ ५९ ॥ सर्वलोकोत्तरंतत्र दृश्यतेपर्वतोत्तमे ॥ दशयोजनविस्तारस्तस्यैवह्यर्बुद स्यच ॥ ६० ॥ उच्चैश्चपञ्चसश्रीमान्मर्त्येस्वर्गोऽयजायत ॥ तत्राहंकौतुकाविष्ट इतश्चेतश्चवीक्षयन् ॥ ६१ ॥ सर्वाश्च र्यमयींनारीमपश्यंलोकसुन्दरीम् ॥ नादेवीनापिगन्धर्वीनासुरीनचमानुषी ॥ ६२ ॥ तादृग्यामयादृष्टा नश्रुताचव राङ्गना ॥ रतिःप्रीतिरुमालक्ष्मीः सावित्रीचसरस्वती ॥ ६३ ॥ तस्यारूपस्यलेशेन नैतास्तुल्यास्त्रियोखिलाः ॥ अहंदृ ष्ट्वातथारूपां नारींकामेनपीडितः ॥ ६४ ॥ तदादानवशार्दूल वैक्लव्यंपरमङ्गतः ॥ ततोधैर्यमवष्टभ्य मयामनसिचिन्ति तम् ॥ ६५ ॥ नकरिष्येसमालापमनयासहकर्हिचित् ॥ यस्यादर्शनमात्रेण कामोमेहृदिवर्धितः ॥ ६६ ॥ तस्याःसम्भा

उधर देखताहुआ कौतुक से संयुन मैंने ॥ ६१ ॥ सब आश्चर्यमयी व लोकों में सुन्दरी स्त्रीको देखा न देवी, न गंधर्विणी, न दैत्यपत्नी, न मानुषी स्त्रीको ॥ ६२ ॥ मैंने वैसी रूपवती वरांगना देखा है न सुनाहै रति,प्रीति,उमा,लक्ष्मी, सावित्री व सरस्वती ॥ ६३ ॥ ये सब स्त्रिया उसके रूपके लेशमे भी समान नहीं हैं वैसी रूपवती स्त्रीको देखकर मैं कामदेव से पीड़ित हुआ ॥ ६४ ॥ तब हे दानवश्रेष्ठ! मैं बड़ी विकलताको प्राप्तहुआ तदनन्तर धैर्यको अवलम्बकर मैंने मनमें विचार किया ॥ ६५ ॥

कि मैं इसके साथ किसीप्रकार संभाषण न करूंगा कि जिसके दर्शन हीसे मेरे हृदय में काम बढ़गया ॥ ६६ ॥ उसके संभाषण से फिर मुझको क्या होगा मैंने ब्रह्मचर्य से बहुत दिनतक तपकियाहै ॥ ६७ ॥ विषयों से जीतेहुये मेरा वह सब नाश को प्राप्त होगा इसलिये मैं तबतक अन्यत्र जाऊं जबतक कि विकार न होवै ॥ ६८ ॥ पहले ब्रह्माने तपस्या का विघ्नरूप स्त्री को रचाहै जो कि स्वर्गके मार्ग की अर्गला (बेड़कन) व नरककी सीढ़ी है ॥ ६९ ॥ तबतक धैर्य, तप, सत्य व स्थिरता और बहुज्ञता होती है जबतक कि मनुष्य विशेषकर एकान्त में स्त्रीको नहीं देखताहै ॥ ७० ॥ इसको बहुतप्रकार से विचारकर तदनन्तर नेत्रोंको मूदकर मैं उस स्त्री से न

षणेनैव किंभविष्यतिमेपुनः ॥ चिरकालंतपस्तप्तं ब्रह्मचर्येणवैमया ॥ ६७ ॥ नाशंयास्यतितत्सर्वं विषयैर्निर्जितस्यच ॥ तस्माद्गच्छामिचान्यत्र यावन्नविकृतिर्भवेत् ॥ ६८ ॥ नारीनामतपोविघ्नं पूर्वंसृष्टास्वयम्भुवा ॥ अर्गलास्वर्गमार्गस्य सोपानंनरकस्यच ॥ ६९ ॥ तावद्धैर्यंतपस्सत्यं तावत्स्थैर्यंबहुज्ञता ॥ यावत्पश्यतिनोनारीमेकान्तेचविशेषतः ॥ ७० ॥ एतत्सञ्चिन्त्य बहुधा निमील्यनयनेततः ॥ अप्रजल्प्यवरारोहान्तामहंचात्रप्रस्थितः ॥ ७१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ नारदस्य वचःश्रुत्वा महिषःकामपीडितः ॥ श्रवणादपिराजेन्द्र पुनःप्रपच्छतंमुनिम् ॥ ७२ ॥ महिष उवाच ॥ कासौब्राह्मणशार्दूल तादृग्रूपावराङ्गना ॥ यस्याःसंदर्शनादेव भवानेवं स्मरान्वितः ॥ ७३ ॥ देवीवामानुषीवापि यक्षिणीपन्नगीमुने ॥ कुमारीवासकान्तावा ब्रूहिसर्वंसविस्तरम् ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ नसापृष्टामयाकिञ्चिन्नजानामितदन्वयम् ॥ एतन्मेवर्ततेचित्ते सा कुमारीयशस्विनी ॥ ७५ ॥ अक्षमालाधराबाला कमण्डलुसमन्विता ॥ तपस्तेपेगिरौतत्र हेतुनाकेनचि

बोलकर यहांको चला ॥ ७१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपेन्द्र ! नारदजी का वचन सुनकर महिषासुर कामदेव से पीड़ित हुआ फिर उसने सुनचुकनेपर भी उन नारदमुनि से पूंछा ॥ ७२ ॥ महिषासुर बोला कि हे द्विजोत्तम ! वैसी रूपवती यह उत्तम स्त्री कहां है कि जिसके देखनेही से आप ऐसे कामसंयुत हुये ॥ ७३ ॥ हे मुने ! देवी या मानुषी, यक्षिणी व नागिनी हो और कन्या हो या पतिसमेत हो सबको विस्तार से कहिये ॥ ७४ ॥ नारदजी बोले कि मैंने उससे कुछ नहीं पूंछा है और मैं उसके वंशको नहीं जानताहूं और यह मेरे चित्तमें वर्तमान है कि वह यशस्विनी कुँवारी है ॥ ७५ ॥ रुद्राक्षकी मालाको धारेहुये वह बाला कमंडलु से संयुत है उस उत्तम

स्त्री ने किसीकारण से उसपर्वत पै तपस्या किया है ॥ ७६ ॥ हे दैत्येश ! सो मैं सनातन ब्रह्मलोक को जाऊंगा और कामदेवके बाणसे पीड़ित मैं उसकी कथा करने का उत्साह नहीं करताहूं ॥ ७७ ॥ हे राजन्! ऐसा कहकर तदनन्तर नारदमुनि ब्रह्मलोकको गये और कामदेवसे संयुत महिषासुर ने भी उसके समीप दूतको पठाया ॥ ७८ ॥ कि आप वहां शीघ्रही जाकर उस उत्तम स्त्रीको देखो कि वह किसलिये तपस्या करती है और उसका कौन परिग्रह है ॥ ७९ ॥ इसके अनन्तर इस दूतने महिषासुरकी आज्ञा से अर्बुदपहाड़पर जाकर उस कमलमध्य के समान आभावाली स्त्रीको देखकर सब कर्म जानकर ॥ ८० ॥ विस्मयसमेत महिषासुरसे बतलाया

च्छुभा ॥ ७६ ॥ सोहंयास्यामिदैत्येश ब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ नोत्सहेतत्कथांकर्तुं कामबाणप्रपीडितः ॥ ७७ ॥ एवमुक्त्वाततोराजन्ब्रह्मलोकंगतोमुनिः ॥ महिषोपिस्मराविष्टो दूतंतस्याससमादिशत् ॥ ७८ ॥ गत्वाभवान्द्रुतंतत्र पश्यतांचवराङ्गनाम् ॥ किमर्थंसातपस्तेपे कोवैतस्याःपरिग्रहः ॥ ७९ ॥ अथासौमहिषादेशाद् दूतोगत्वार्बुदाचलम् ॥ दृष्ट्वातांपद्मगर्भाभां ज्ञात्वासर्वंविचेष्टितम् ॥ ८० ॥ तस्मैनिवेदयामास महिषायसविस्मयम् ॥ दृष्ट्वादेववरास्त्रीच सर्वलक्षणलक्षिता ॥ ८१ ॥ देवतेजोद्भवाकन्या साद्यापिवरवर्णिनी ॥ उद्वाहार्थंतपस्तेपे कौमारंव्रतमाश्रिता ॥ ८२ ॥ एवंतत्रवदन्तिस्म पृष्टास्सर्वेतपस्विनः ॥ सत्यमेतन्महाभाग कुरुष्वयदनन्तरम् ॥ ८३ ॥ तस्यारूपंवयःकान्तिर्वर्णितुंनैवशक्यते ॥ नालापंकुरुतेबाला साकेनापिसमंविभो ॥८४॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तच्छ्रुत्वामहिषोवाक्यं भूयःकामनिपीडितः ॥ दूतंसम्प्रेषयामास दानवंचविचक्षणम् ॥ ८५ ॥ विचक्षणद्रुतंगत्वा मदर्थेतांतपस्विनीम् ॥ सामभेदप्रदानेन दण्डेनापि

कि हे देव ! मैंने सब लक्षणों से लक्षित उत्तम स्त्रीको देखा है ॥ ८१ ॥ देवताओं के तेजसे उपजीहुई वह उत्तम रंगवाली आजभी कन्या है और कुमारिणी के व्रत में स्थित वह विवाह के लिये तपस्या करती है ॥ ८२ ॥ यहां पूंछेहुयेसब तपस्वियों ने ऐसा कहा है हे महाभाग ! यह सत्य है जो योग्यहो उसको करिये ॥ ८३ ॥ उस का रूप, अवस्था व सुन्दरता नहीं कही जासक्ती है और हे विभो ! वह बाला किसी के भी साथ संभाषण नहीं करती है ॥ ८४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उस वचन को सुनकर फिर कामदेवसे पीड़ित महिषासुरने भी विचक्षणनामक दानव दूतको पठाया ॥ ८५ ॥ कि हे विचक्षण, महामते ! शीघ्रही जाकर मेरेलिये उस तपस्विनी से

सास, भेद, दान, व दंड से भी कहो ॥ ८६ ॥ इसके अनन्तर प्रणामकर यह विचक्षण शीघ्रही श्रेष्ठ अर्बुद पर्वत पै गया जहां कि वह परमेश्वरी थी ॥ ८७ ॥ प्रणाम कर विनयसे संयुत उसने उन भगवती से यह वचन कहा कि त्रिलोक का स्वामी महिषनामक बलवान् दानव प्रसिद्ध है ॥ ८८ ॥ जो कि दानवों के वंश में उत्पन्न और अवस्था व रूपसे संयुत है हे कल्याणि ! वह अपने धर्म से तुमको धर्मपत्नी चाहता है ॥ ८९ ॥ इसलिये सब कामनाओं को देनेवाले पतिको स्वीकार करो तुम्हारा कल्याण होवै यदि यह तुम्हारा पतिहोवै और तुम उसकी प्यारी होवो ॥ ९० ॥ तो दोनोंही का यौवन कृतार्थ होगा इसमें सन्देह नहीं है तदनन्तर उससे ऐसा

महामते ॥ ८६ ॥ अथासौप्रययौशीघ्रं प्रणिपत्यविचक्षणः ॥ अर्बुदंपर्वतश्रेष्ठंयत्रसापरमेश्वरी ॥ ८७ ॥ प्रणम्यविनयोपेतोवाक्यमेतदुवाचताम् ॥ महिषोनामविख्यातस्त्रैलोकाधिपतिर्बली ॥ ८८ ॥ दनुवंशसमुद्भूतो वयोरूपसमन्वितः ॥ सत्वांवाञ्छतिकल्याणिधर्मपत्नींस्वधर्मतः ॥ ८९ ॥ तस्माद्दरयभद्रन्ते सर्वकामप्रदंपतिम् ॥ यदिस्यात्तवकान्तोसौ त्वंचतस्यतथाप्रिया ॥ ९० ॥ तत्कृतार्थंद्वयोरेव यौवनंनात्रसंशयः ॥ एवमुक्तातस्तेन देवीवचनमब्रवीत् ॥ ९१ ॥ किञ्चित्कोपसमायुक्ता मुहुःप्रस्फुरिताधरा ॥ देव्युवाच ॥ अवध्यःसर्वथादूतः सर्वासुपरिकीर्तितः ॥ ९२ ॥ अवस्थासुततोनत्वं सहसाभस्मसात्कृतः ॥ गत्वाब्रूहिदुराचारं महिषंदानवाधमम् ॥ ९३ ॥ नाहंशक्यात्वयापापलब्धुंनान्येनकेनचित ॥ वधार्थन्तेसमुद्योग एषसर्गोमयाकृतः ॥ ९४ ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा महिषंसपुनर्ययौ ॥ भयेनमहताविष्टस्तस्यारूपेण विस्मितः ॥ ९५ ॥ सर्वंनिवेदयामास महिषायविचेष्टितम् ॥ तस्याश्चैवतथालापान्स्पृहणीयंचकृत्स्नशः ॥ ९६ ॥

कहीहुई देवी ने वचन कहा ॥ ९१ ॥ और कुछ क्रोधसे संयुत हुई व उसके बार २ ओंठ फरकने लगे देवीजी बोलीं कि सब दशाओंमें दूत सर्वथा अवध्य कहा गयाहै उस कारण तुम सहसा भस्म नहीं कियेगये तुम जाकर दुष्ट आचरणवाले महिषनामक नीच दानवसे कहो ॥ ९२ । ९३ ॥ कि हे पाप ! तुम और अन्य कोई मुझको नहीं पासक्ताहै तुम्हारे मारनेकेलिये मैंने यह उद्योग निश्चय कियाहै ॥ ९४ ॥ उसके उसवचनको सुनकर वह फिर महिषासुरके समीपगया और बड़े भयसे संयुत व उसके रूपसे विस्मित उस दूतने ॥ ९५ ॥ महिषासुर से सब वृत्तान्त को बतलाया और उसके वैसे संभाषण व सब स्पृहा करने योग्य वस्तुको कहा ॥ ९६ ॥

हे राजन् ! उस वचनको सुनकर कामदेवके बाणसे पीड़ित महिषासुरने सेना पतिको बुलाकर यह वचन कहा ॥ ९७ ॥ कि अर्बुदपर्वत पै जाने के लिये हाथी, घोड़ों से रचित व रथों और पैदलोंसे संयुत दुर्धर्ष सेनाको कल्पित करो ॥ ९८ ॥ तदनन्तर इस सेनापतिने पताका व छत्रों से चित्रित तथा वाजनों के शब्दों से भूषित चतुरंगिणी सेनाको बनाया ॥ ९९ ॥ तदनन्तर पखनों समेत पर्वतोंकी नाईं इधर उधर दौड़तेहुये हाथी देख पड़तेथे कि जिनके ऊपर योधा सवार थे ॥ १०० ॥ वैसेही पवनके समान वेगवान् व उत्तम तेजस्वी तथा कवच से युक्त सैकड़ों व हज़ारों घोड़े देख पड़ते थे ॥ १ ॥ और घंटियों के समूह से शब्दित तथा पताकाओं

तच्छ्रुत्वामहिषोराजन्कामबाणप्रपीडितः ॥ सेनापतिंसमाहूय वाक्यमेतदुवाचह ॥ ९७ ॥ अर्बुदंपर्वतंसेनांकल्पयस्व सुदुर्धराम् ॥ हस्त्यश्वकल्पितांभीमां रथपत्तिसमाकुलाम् ॥ ९८ ॥ ततोसौकल्पयामास चतुरङ्गांवरूथिनीम् ॥ पताकाच्छत्रशबलां वादित्रारावभूषिताम् ॥ ९९ ॥ ततोद्वीपाश्चसन्नद्धा दृश्यन्तेधिष्ठिताभटैः ॥ इतश्चेतश्चधावन्तः सपक्षाः पर्वताइव ॥ १०० ॥ दृश्यन्तेचतथैवाश्वा वायुवेगाःसुवर्चसः ॥ अङ्गत्राणसमायुक्ताः शतशोथसहस्रशः ॥ १ ॥ विमानप्रतिमाकारा रथास्तेनप्रकल्पिताः ॥ किङ्किणीजालसंघुष्टाः पताकाभिरलंकृताः ॥ २ ॥ पत्तयश्चमहाकाया महेष्वासा महाबलाः ॥ असिचर्मधराश्चान्ये पाशपट्टिशपाणयः ॥ ३ ॥ लक्षमेकंमतङ्गानां रथानांत्रिगुणंततः ॥ अश्वादशगुणाराजन्नसङ्ख्याताःपदातयः ॥ ४ ॥ ततश्चार्बुदमासाद्य वेष्टयित्वासुदूरतः ॥ सम्मतैःसचिवैःसार्धं तदन्तिकमुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ ध्यानस्थांवीक्षणंकृत्वाकन्दर्पशरपीडितः ॥ ततोब्रवीच्छ्लक्ष्णंवाक्यं विनयेनसमन्वितः ॥ ६ ॥ श्रुत्वातवेदृशं

से भूषित विमानों के समान आकारवाले रथोंको उसने तैयार किया ॥ २ ॥ और बड़ेभारी धनुषोंको लिये तथा तलवार व ढालको धारणकिये भाला और पट्टिश अस्त्रोंको हाथमें लिये बड़े बलवान् व बड़े शरीरवाले पैदलथे ॥ ३ ॥ हे राजन् ! एकलाख हाथी व उससे तिगुने रथ और दशगुने घोडे व असंख्य पैदल थे ॥ ४ ॥ तदनन्तर अर्बुदपर्वत पै जाकर व दूरही से घेरकर सम्मत मंत्रियोंसमेत महिषासुर उन भगवतीके समीप दौड़गया ॥ ५ ॥ व ध्यानमें स्थित भगवतीको देखकर तद-

नन्तर कामदेवके बाणसे पीडित महिषासुरने नम्रतासंयुक्त होकर लरखराते हुये वचन कहा ॥ ६ ॥ कि हे वरानने ! तुम्हारे ऐसे रूपको सुनकर मैं प्राप्तहुआ हूं इसलिये गाधर्व विवाहसे मुझको शीघ्रही वरिये ॥ ७ ॥ हे शुचिस्मिते ! मेरे साठ हजार स्त्रिया हैं मुझको प्रियकान्त करके तुम सबोंकीस्वामिनीहोवो ॥ ८॥ हे बाले ! तपस्या तुझको योग्य नहीं है इससे त्रिलोककी स्वामिनी होकर मेरे साथ दिन रात यथेप्सित भोगोंको भोग करो ॥ ९॥ उससे ऐसा कहीहुई उसने उत्तर नहीं कहा तदनन्तर कामदेव से संयुत वह उन भगवती के समीपगया ॥ १० ॥ तदनन्तर उसको चंचल देखकर क्रोध संयुत उस देवीने सिंहवाहनको स्मरण किया व आये

रूपमहंप्राप्तोवरानने ॥ गान्धर्वेणविवाहेन तस्माद्वरयमांद्रुतम् ॥ ७ ॥ षष्टिर्भार्यासहस्राणि ममसन्तिशुचिस्मिते ॥ कृत्वामान्दयितंकान्तं सर्वासांस्वामिनीभव ॥ ८ ॥ अनर्हन्तेतपोबाले भुङ्क्ष्वभोगान्यथेप्सितान् ॥ त्रैलोक्यस्वामिनी भूत्वा मयासार्द्धमहर्निशम् ॥ ९ ॥ एवमुक्तापिसातेन नोत्तरंप्रत्यभाषत॥ ततःकामसमाविष्टस्तदन्तिकमुपाययौ॥१०॥ ततस्तंलोलुपंदृष्ट्वा सादेवीकोपसंयुता ॥ अस्मरद्वाहनंसिंहं समायान्तंसमारुहत् ॥११॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यं गच्छगच्छे तिचासकृत ॥ नोचेत्त्वांचवधिष्यामि स्थानेस्मिन्दानवाधम ॥ १२ ॥ अथासौसचिवैस्सार्द्धं समन्तात्पर्यवेष्टयत् ॥ प्र ग्रहार्थन्तुतांदेवींकामबाणप्रपीडितः॥ १३ ॥ ततोजहाससादेवी सशब्दंपरमेश्वरी ॥ तस्यामुखाद्विनिष्क्रान्ताःशतशः पुरुषाधमाः ॥ १४ ॥ सुसंनद्धास्सशस्त्राश्च रोपेणमहतान्विताः ॥ ततस्तानब्रवीद्देवी पापोयंवध्यतामिति ॥ १५ ॥ तत स्तेसहिताःसर्वे महिषंसमुपाद्रवन् ॥ तिष्ठतिष्ठेतिजल्पन्तो मुञ्चन्तोस्त्राणिभूरिशः ॥ १६ ॥ ततःसमभवद्युद्धं गणानां

हुये सिंहपै भगवती सवार हुई ॥ ११ ॥ और ऐसा वार २ उसनें कठोर वचन कहा कि चलिये चलिये नहीं तो हे दानवाधम ! तुमको इस स्थान में मारूंगी ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर कामदेवके बाणसे पीडित इस महिपासुरने मंत्रियोंसमेत पकड़नेके लिये उस देवीको सब ओरसे घेरलिया ॥ १३ ॥ तदनन्तर वह परमेश्वरी शब्द समे त हँसी और उसके मुखसे सैकड़ों अधम पुरुप निकले ॥ १४ ॥ जो कि भलीभांति तैयार व शस्त्रोंसमेत और बड़े रोपसे संयुत थे तदनन्तर उनसे देवीजी यह बोलीं कि यह पापी माराजावै ॥ १५ ॥ तदनन्तर खड़ेहो २ ऐसा कहते व बहुतसे शस्त्रों को छोड़तेहुये वे सब साथही महिषासुरके सामने दौड़े ॥ १६ ॥ तदनन्तर दानवोंके

साथ गणोंका युद्ध हुआ जिससे कि वे सब मंत्री यमराज के घरको गये ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर मंत्रियों के मरने से यह महिषासुर क्रोधित हुआ और अपनी सेना को पर्वत के किनारे ले आया ॥ १८ ॥ और उत्तम रथपै सवार होकर सारथीसे बोला कि हे सारथे ! मुझको शीघ्रही वहां ले चलिये जहां कि यह स्त्री स्थितहै ॥ १९ ॥ इसको मारकर मैं आज क्रोधके दुस्तर पार को जाऊंगा तदनन्तर हे राजन् ! ऐसा कहे हुये सारथी ने उसी मार्गसे रथको चलाया जहां कि वह निश्चयकर टिकीथी इसी समय में वहां बड़े भयंकर उत्पात ॥ २० । २१ ॥ उस मार्गसे हुये जिससे कि हे राजन् ! यह चला था कँकड़ोंसमेत रूखा पवन सामने चलने लगा ॥ २२ ॥ और

दानवैःसह ॥ यतस्तेसचिवास्सर्वे वैवस्वतगृहंगता ॥ १७ ॥ अथासौमहिषोरुष्टः सचिवैर्विनिपातितैः ॥ स्वसैन्यमान यामास तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥ १८ ॥ रथप्रवरमारुह्य सारथिंसमभाषत ॥ नयमांसारथेतूर्णं यत्रैषास्त्रीव्यवस्थिता ॥ १९ ॥ हत्वैनामद्ययास्यामि पारंरोषस्यदुस्तरम् ॥ एवमुक्तस्ततोराजन् प्रेरयामाससारथिः ॥ २० ॥ रथन्तेनैवमार्गेण यत्रसातिष्ठतेध्रुवम् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु तत्रोत्पातास्सुदारुणाः ॥ २१ ॥ बभूवुस्तेनमार्गेण येनासौप्रस्थितोनृप ॥ सम्मुखःप्रववौवातो रूक्षःशर्करसंयुतः ॥ २२ ॥ पपातमहतीचोल्का निहत्यरविमण्डलम् ॥ अपसव्यंमृगाश्चक्रुस्तस्य मायाविनस्तथा ॥ २३ ॥ वाहारावंप्रकुर्वन्ति स्विन्नाश्चप्रतिमास्तथा ॥ रथध्वजेसमाविष्टो गृध्रःशब्दमथाकरोत् ॥ २४ ॥ सतान्सर्वाननादृत्यमहोत्पातान्सुदारुणान् ॥ प्रययौसम्मुखस्तस्या देव्याःकोपपरायणः ॥ २५ ॥ विमुञ्चन्सश रान्नादांस्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ नकश्चिद्दृश्यतेतत्र तेषांमध्येनृपोत्तम ॥ २६ ॥ महिषंरोषसंयुक्तं योवारयतिसङ्गरे ॥

सूर्यमंडल को नाशकर बड़ीभारी उल्का गिरी और उस मायावी को मृगोंने दक्षिण परिक्रमा किया ॥ २३ ॥ और घोड़ा शब्द करनेलगे व मूर्तियों में पसीना बहनेलगा व रथके ध्वजा पै बैठेहुये गीधने शब्दकिया ॥ २४ ॥ और क्रोधमें परायण वह महिषासुर उन सब बड़े भयंकर महाउत्पातों को अनादर कर उस देवी के सामने चला ॥ २५ ॥ और बाणोंसमेत शब्दों को करतेहुये उसने खड़ीहो खड़ीहो ऐसा कहा हे नृपोत्तम ! वहां उनके मध्य में कोई नहीं देखपड़ता था ॥ २६ ॥ जो कि

समर में क्रोधसंयुत महिषासुरको मनाकरै उसने बहुत गणों को मारकर रक्त का कीचड़ किया ॥ २७ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! देवीजीके समीप आकर गर्व से कहा कि हे भीरो ! तुमको पृथ्वी में कभी युद्ध न करनाचाहिये ॥ २८ ॥ हे बालिशे ! मेरे न बल है न सौभाग्य है न धनहै उससे मेरे वचनको किसीप्रकार नहीं करती हो ॥ २९ ॥ हे भामिनि ! मैं निश्चयकर तत्त्वसे जानताहूं कि तुम गर्विणीहो आज भी मेरा वचन करो कि मेरी प्यारी स्त्री होवो ॥ ३० ॥ और पराक्रममें स्थित मैं तुम्भ स्त्रीको मारना नहीं चाहताहूं व मैंने देवताओंसमेत इन्द्रको बहुतबार जीता है ॥ ३१ ॥ हे बालिशे ! त्रिलोक में मेरे समान कोई पुरुष नहीं है तदनन्तर ऐसी कही

तेनहत्वाबहुगणान्कृतंरुधिरकर्द्दमम् ॥२७॥ ततोदेवीसमासाद्य प्रोक्तागर्वेणपार्थिव ॥ नत्वयासङ्गरोभीरोनूनंकर्त्तुंक्वचितौक चित् ॥२८॥ नबालिशोस्तिमेवीर्यं नसौभाग्यंनवाधनम् ॥ नकरोषिहितेनत्वं ममवाक्यंकथञ्चन ॥ २९ ॥ नूनंतत्त्वेनजा नामि अवलिप्तासिभामिनि ॥ कुरुष्वाद्यापिमेवाक्यं भार्याभवममप्रिया ॥ ३० ॥ स्त्रियन्त्वांनोत्सहेहन्तुं पौरुषेचव्यव स्थितः ॥ असकृन्निर्जितःसङ्ख्येमयाशक्रःसुरैःसह॥ ३१ ॥ त्रैलोक्येनास्तिमेतुल्यः पुमान्कश्चिच्चबालिशे ॥ एवमुक्ता ततोदेवी कोपेनमहतान्विता ॥ ३२ ॥ प्रगृह्यसशरंचापं वाक्यमेतदुवाचह ॥ नालापोयुज्यतेपाप कर्त्तुंसहममत्वया ॥ ३३ ॥ कुमार्याकामयुक्तेन तथापिशृणुमेवचः ॥ नत्वयानिर्जितःशक्रः स्ववीर्येणरणाजिरे ॥ ३४॥ पितामहवरंदेवा मन्यन्तेदानवाधम ॥ गौरवात्तस्यतेनत्वमात्मानंमन्यसेधिकम् ॥ ३५ ॥ मुक्त्वैकांकामिनींपाप त्वंकृतःपद्मयोनि ना ॥ अवध्यःसर्वसत्त्वानां पुंसांचैवधरातले ॥ ३६ ॥ पितामहवरःसोत्र जयशीलोसिदानव ॥ यदितेपौरुषंचास्ति

हुई देवीजी क्रोध संयुत हुई ॥ ३२ ॥ और बाणसमेत धनुषको लेकर यह वचन बोलीं कि हे पाप ! काम युक्त तुम्हारे साथ मुझ कन्याको संभाषण योग्य नहीं है तथापि मेरा वचन सुनिये कि तुमने युद्धके आंगन में अपने पराक्रमसे इन्द्र को नहीं जीता है ॥ ३३ । ३४ ॥ हे दानवाधम ! पितामहके वरको देवता मानते हैं उस कारण उसके गौरव से तुम अपना को अधिक मानतेहो ॥ ३५ ॥ हे पाप ! एक स्त्री को छोड़कर ब्रह्माने तुमको पृथ्वी में सब प्राणियों के अवध्य किया है ॥ ३६ ॥

हे दानव ! वह ब्रह्माका वर इस विषय में है और तुम जयशीलहो व यदि तुम्हारे पराक्रमहै तो शीघ्रही दिखलाइये ॥ ३७ ॥ मैं तुमको शीघ्रही पैने बाणों से यमराज के मन्दिर को पठाऊंगी ऐसा कहकर तदनन्तर देवीजीने आठ बाणों को छोड़ा ॥ ३८ ॥ चार बाणों से चार घोडोंको यममन्दिर को पठाया और एक बाणसे सारथी के मस्तक को देह से गिरा दिया ॥ ३९ ॥ व एक से ध्वजा को काटडाला तदनन्तर अन्य बाणसे हृदयमें मारा और बहुतही वेधाहुआ व्यथित वह ध्वजा के दंड के आश्रित होगया ॥ ४० ॥ व हे राजन् कुछसमयतक उसने मूर्च्छा से नीचे मुख करलिया तदनन्तर सचेत होकर उसने पैने बाणोंको छोड़ा ॥ ४१ ॥ व सिंहसंयुत

तच्छीघ्रंसम्प्रदर्शय ॥ ३७ ॥ एषत्वामिषुभिस्तीक्ष्णैर्नयामियमसादनम् ॥ एवमुक्त्वाततोदेवी शरानष्टौमुमोचह ॥ ३८ ॥ चतुर्भिश्चतुरोवाहाननयद्यमसादनम् ॥ सारथेश्चशिरःकायाच्छरेणैकेनचाक्षिपत् ॥ ३९ ॥ ध्वजंचिच्छेदचैकेन ततोन्येनहृदिक्षतः ॥ सगाढविद्धोव्यथितो ध्वजयष्टिंसमाश्रितः ॥ ४० ॥ मूर्च्छयासहितोराजन् किञ्चित्कालमधोमुखः ॥ ततःसचेतनोभूत्वा मुमोचनिशिताञ्छरान् ॥ ४१ ॥ देवींसिंहसमायुक्तां सर्वदेशेष्वताडयत् ॥ ततःक्षुरप्रबाणेन धनुस्तस्यद्विधाकरोत् ॥ ४२ ॥ छिन्नधन्वाततोदैत्यः चर्मखड्गसमन्वितः ॥ विद्राव्यसहसादेवीं तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ ४३ ॥ तस्यचर्मततस्तूर्णं खड्गंद्वाभ्यामकृन्तयत् ॥ शराभ्यामर्धचन्द्रेण प्रहसन्तीरथंततः ॥ ४४ ॥ विशस्त्रोविरथोराजन् सतदादानवाधमः ॥ ततोभवच्छराभूयः शस्त्राणिविविधानिच ॥ ४५ ॥ ब्रह्मास्त्रंमनसिध्यायन्दैत्यस्तस्यामुमोचसः ॥ मुक्तमात्रेततस्तस्मिन्धूमवर्तिर्व्यजायत ॥ ४६ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु सब्रह्मास्तेदिवौकसः ॥ परंभयमनुप्राप्ता

देवीजीको सब अंगों में मारा तदनन्तर क्षुरप्र बाणसे उसके धनुष के दो खंड किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर कटे धनुषवाला दैत्य महिषासुर ढाल व तलवारसे संयुत हुआ और अचानकही देवीजीको भगाकर उसने खड़ीहो खड़ीहो ऐसा कहा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर शीघ्रही भगवतीजीने उसकी ढाल व तलवारको दो बाणोंसे काटडाला तदनन्तर हँसतीहुई देवीजीने अर्धचन्द्र बाणसे रथको काटडाला ॥ ४४ ॥ हे राजन्! तदनन्तर वह अधम दानव शस्त्ररहित व रथ विहीन हुआ उसके उपरान्त फिर अनेकप्रकार के शस्त्र हुये ॥ ४५ ॥ और ब्रह्मास्त्रको मनमें ध्यान करतेहुये उसने उसके ऊपर छोड़ा तदनन्तर उसके छोड़तेही धूमकी पंक्ति हुई ॥ ४६ ॥ इसीसमय

में ब्रह्मासमेत वे देवता उसके पराक्रम को देखकर बड़े भयको प्राप्तहुये ॥ ४७ ॥ तदनन्तर हे नृपोत्तम ! क्रोधित होतीहुई देवीजीने क्षणभर ध्यानकर उस अस्त्रको महिषासुर नीच दानव के समीप पठाया ॥ ४८ ॥ इसप्रकार उससमय उन देवीजी ने उससे छोड़े हुये अनेकप्रकार के हज़ारों अस्त्रोंको विफलही किया ॥ ४९ ॥ इस प्रकार क्षोभित अस्त्रोंवाले इस अधिकबली दानवने दिव्य अस्त्रोंसे भगवती के ऊपर उत्तम माया किया ॥ ५० ॥ कि लम्बे व पैने सींगोंसे संयुत अंजन के समान व पर्वतके आकार बड़े शरीरवाले भैंसेको आगे फेंकताहुआ खड़ाहुआ ॥ ५१ ॥ तदनन्तर वह देवी उस सिंहके कन्धेपै सवारहुई तदनन्तर देवीजीने पैनी तलवार से उसके

दृष्ट्वातस्यपराक्रमम् ॥ ४७ ॥ ततोदेवीक्षणंध्यात्वा तदस्त्रंपार्थिवोत्तम ॥ प्रेषयामाससंक्रुद्धा महिषंदानवाधमम् ॥ ४८ ॥ एवंनानाप्रकाराणि तेनमुक्तानिसातदा ॥ अस्त्राणिविफलान्येव चक्रेदेवीसहस्रशः ॥ ४९ ॥ एवंनिःक्षोभितास्त्रो सौ दानवोबलवत्तरः ॥ चकारपरमांमायां दिव्यैरस्त्रैस्सुरेश्वरीम् ॥ ५० ॥ अग्रेक्षिपन्महाकायं महिषंपर्वताकृतिम् ॥ दीर्घतीक्ष्णविषाणाभ्यां युक्तमञ्जनसन्निभम् ॥ ५१ ॥ सिंहस्कन्धञ्चसादेवी ततस्तमधिरोहत ॥ ततःखड्गेनतीक्ष्णेन शिरोदेवीन्यकृन्तयत् ॥ ५२ ॥ शूलेनभेदयामास पृष्ठदेशेसुरेश्वरी ॥ ततःकलेवरात्तस्य निश्चक्राममहापुमान् ॥ ५३ ॥ चर्मखड्गधरोरौद्रः तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ तमप्येवंगृहीत्वातु केशपक्षेसुरेश्वरी ॥ ५४ ॥ निस्त्रिंशेनाहनत्प्रोच्चैः सचप्राणैर्व्ययुज्यत ॥ दानवःपार्थिवश्रेष्ठ पार्श्वेसिंहविदारिते ॥ ५५ ॥ ततोजघानभूयोपि दानवान्सारुषान्विता ॥ हतशेषाश्चयेदैत्या निर्भिद्यधरणीतलम् ॥ ५६ ॥ प्रविष्टाभयसंत्रस्ताः पातालंजीवितैषिणः ॥ ततोदेवगणास्सर्वे वसवो

मस्तक को काटडाला ॥ ५२ ॥ व सुरेश्वरीजीने पीठ में त्रिशूल से भेदन किया तदनन्तर उसके शरीर से महापुरुष निकला ॥ ५३ ॥ ढाल व तलवार को धारण किये हुये उस भयकर पुरुषने खड़ीहो खड़ीहो ऐसा कहा उसको भी ऐसेही सुरेश्वरीने केशपक्षमें पकड़कर ॥ ५४ ॥ उच्चप्रकार से निस्त्रिश से मारा और हे नृपोत्तम! जब पार्श्व (पाजर) सिंह से विदारण कियागया तब वह दानव प्राणोंसे वियुक्त हुआ ॥ ५५ ॥ तदनन्तर क्रोधसे संयुत उस भगवतीने फिरभी दानवों को मारा और जो दैत्य मारने से बचे पृथ्वीको फोड़कर ॥ ५६ ॥ भयसे डरे हुये जीनेकी इच्छावाले वे पाताल में पैठगये तदनन्तर सब देवताओंके गण और वसु व मरुत और अश्विनी-

कुमार ॥ ५७ ॥ व विश्वेदेवता, साध्य, रुद्र, गुह्यक व किन्नर और इन्द्रसंयुत आदित्य देवताओंने आकर उन परमेश्वरी देवी के ऊपर सब ओर से पुष्पों से वृष्टि किया व अनेकप्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते व प्रणाम करते हुये वे भक्तिमें तत्परहुये ॥ ५८।५९ ॥ व बोले कि हे महेशानि ! जो बड़ा पापी यह मारागया यह योग्य कियागया हे सुन्दरि ! इस पापीसे सब त्रिलोक ध्वस्त होगया ॥ ६० ॥ पुरातनसमय तुमने इन्द्रको स्वर्ग में राज्य दिया इसलिये तुम्हारा कल्याण होवै और जो मनमें प्रियहो उसवरदानको मांगो ॥ ६१ ॥ और प्रसन्न होतेहुये सब देवता तुमको वर देवैंगे इसमें सन्देह नहीं है देवीजी बोलीं कि हे देवताओ ! यदि तुमलोग

मरुतोऽश्विनौ ॥ ५७ ॥ विश्वेदेवास्तथासाध्या रुद्रागुह्यककिन्नराः ॥ आदित्याःशक्रसंयुक्ताः समेत्यपरमेश्वरीम् ॥ ५८ ॥ समन्ताद्दिव्यपुष्पैश्च तांदेवींसमवाकिरन् ॥ स्तुवन्तोविविधैः स्तोत्रैर्नमन्तोभक्तितत्पराः ॥ ५९ ॥ युक्तंकृतंमहेशानि युद्धतःपापकृत्तमः ॥ त्रैलोक्यंसकलंध्वस्तं पापेनानेनसुन्दरि ॥ ६० ॥ त्वयादत्तंपुराराज्यं वासवस्यत्रिविष्टपे ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते वरंयन्मनसीप्सितम् ॥ ६१ ॥ सर्वेदेवाःप्रसन्नास्ते प्रदास्यन्तिनसंशयः ॥ देव्युवाच ॥ यदिदेवाःप्रसन्नामे यदिदेयोवरोमम ॥ ६२ ॥ आश्रमोत्रैवमेपुण्यो जायतांख्यातिसंयुतः ॥ अस्मिंश्चाहंसदादेवास्स्थास्यामिवरपर्वते ॥ ६३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ रूपेणानेनदेवेशि येत्वांद्रक्ष्यन्तिमानवाः ॥ आश्रमेत्रमहापुण्ये तेयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥ ६४ ॥ ब्रह्मज्ञानसमायुक्तास्तेभविष्यन्तिमानवाः ॥ यस्माच्चण्डंकृतंकर्म त्वयादानवसूदनात् ॥ ६५ ॥ तस्मात्त्वंचण्डिकानाम्ना लोकेख्यातिंगमिष्यसि ॥ तवनाम्नातथाख्यात आश्रमोयंभविष्यति ॥ ६६ ॥ येत्रकृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेमासिशोभने ॥

मेरे ऊपर प्रसन्नहो और यदि मुझको वर देने योग्यहै ॥६२॥ तो यहींपर प्रसिद्धिसंयुत मेरा पवित्र आश्रम होवै व हे देवताओ ! इस उत्तम पर्वत पै मैं सदैव टिकूंगी ॥ ६३ ॥ ब्रह्मा बोले कि हे देवेशि ! इस रूपसे जो मनुष्य इस महापवित्र आश्रम में तुमको देखैंगे वे उत्तम गतिको प्राप्त होवैंगे ॥ ६४ ॥ और वे मनुष्य ब्रह्मज्ञान से संयुत होवैंगे जिसलिये तुमने दानवके मारने से चंडकर्म किया है ॥ ६५ ॥ उसकारण तुम नामसे चंडिका ऐसी संसारमें प्रसिद्धिको प्राप्त होगी वैसेही यह आश्रम

तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ६६ ॥ हे शोभने ! कुँवार महीनेमें कृष्णपक्षकी चौदसितिथिमें सावधान होतेहुये जो मनुष्य नहाकर पिंडदान करैंगे ॥ ६७ ॥ हे देवि ! उनको गयाश्राद्ध के समान सब फल होगा वैसेही तुम्हारे दर्शन से पापकी मुक्ति होगी ॥ ६८ ॥ कृष्णजी बोले कि श्रद्धासंयुत उपास में तत्पर जो मनुष्य यहा एक रात बसैंगे उनका पाप नाशको प्राप्तहोगा ॥ ६९ ॥ और अपुत्र जो मनुष्य या सावधानहोतीहुई जो स्त्री उसमें मन लगाकर पिंडदान व स्नान करैगी ॥ ७० ॥ बिन-पुत्रवाला वह मनुष्य शीघ्रही पुत्रको पावैगा इसमें सन्देह नहीं है इन्द्र बोले कि छूटे राज्यवाला जो राजा यहां स्नान व दान करैगा ॥ ७१ ॥ उसके सब शत्रुवों का

पिण्डदानंकरिष्यन्ति स्नानंकृत्वासमाहिताः ॥ ६७ ॥ गयाश्राद्धफलंकृत्स्नं तेषांदेविभविष्यति ॥ त्वद्दर्शनात्तथामुक्तिः पातकस्यभविष्यति ॥ ६८ ॥ कृष्ण उवाच ॥ एकरात्रिंवसिष्यन्ति येत्रश्रद्धासमन्विताः ॥ उपवासपरास्तेषां पापंयास्यतिसंक्षयम् ॥ ६९ ॥ पुत्रहीनश्चयोमर्त्यो नारीवापिसमाहिता ॥ तन्मनाःपिण्डदानंवै तथास्नानंकरिष्यति ॥ ७० ॥ अपुत्रश्च लभेच्छीघ्रं सपुत्रंनात्रसंशयः ॥ इन्द्र उवाच ॥ भ्रष्टराज्योनृपोयोत्र स्नानंदानंकरिष्यति ॥७१॥ सर्वशत्रुक्षयस्तस्य राज्यावाप्तिर्भविष्यति ॥ अग्निरुवाच ॥ अत्रागत्यशुचिर्होमं यःकरिष्यतिमानवः ॥ ७२ ॥ आत्मवित्तानुसारेण सयज्ञस्यफलंलभेत् ॥ ७३ ॥ यम उवाच ॥ अत्रस्नात्वातिलान्यस्तु ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यति ॥ अल्पमृत्युभयंतस्य नकदाचिद्भविष्यति ॥ ७४ ॥ राक्षस उवाच ॥ पिण्डदानंनरोयोत्र करिष्यतितवाश्रमे ॥ प्रेतोत्थंनभयंतस्य देविकापिभविष्यति ॥ ७५ ॥ वरुण उवाच ॥ स्नानार्थंब्राह्मणेन्द्राणां योत्रतोयंप्रदास्यति ॥ विमलंससदाभावी इह

नाश व राज्यकी प्राप्ति होगी अग्निजी बोले कि यहां आकर जो पवित्र मनुष्य अपने धनके अनुसार होम करैगा वह यज्ञके फलको पावैगा ॥ ७२ । ७३ ॥ यमराज बोले कि यहां स्नानकर जो मनुष्य ब्राह्मणों के लिये तिलोंको देवैगा उसको कभी अल्पमृत्यु का भय न होगा ॥ ७४ ॥ निर्ऋति राक्षस बोले कि हे देवि ! जो मनुष्य तुम्हारे इस आश्रम में पिंडदानकरैगा उसको प्रेतसे उपजा हुआ डर कभी नहोगा ॥ ७५ ॥ वरुणजी बोले कि द्विजेन्द्रों के स्नानके लिये जो मनुष्य यहां जल देवैगा

वह इसलोक व परलोकमें सदैव निर्मल होगा ॥ ७६ ॥ पवन बोले कि जो मनुष्य यहां विशेषकर सुगंधित व उत्तम विलेपनोंको ब्राह्मणोंके लिये देवैगा वह अपराध-हीन होगा ॥ ७७ ॥ कुबेरजी बोले कि जो मनुष्य यहां यथाशक्तिसे ब्राह्मणों के लिये धन देवैगा वह हे लोकेशि ! किसीप्रकार धनहीन न होगा ॥ ७८ ॥ महादेवजी बोले कि जो मनुष्य व्रतमें परायण होकर यहां चारमहीने बसैगा उनको इसलोक व परलोकमें सदैव सुख होगा ॥ ७९ ॥ वसुबोले कि जो मनुष्य तीनरात भलीभांति उपास करनेवाला होगा उसका जन्मसे लगाकर मरणतक पापनाश होगा ॥ ८० ॥ आदित्य बोले कि इस पवित्र आश्रम स्थानमें भक्तिसंयुत जो मनुष्य छतुरी व

लोकेपरत्रच ॥ ७६ ॥ वायुरुवाच ॥ विलेपनानिशुभ्राणि सुगन्धानिविशेषतः॥ योत्रदास्यतिविप्रेभ्यो निरागास्सभवि ष्यति ॥ ७७ ॥ धनद उवाच ॥ योत्रवित्तंयथाशक्त्या ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यति ॥ नभविष्यतिलोकेशि वित्तहीनःकथञ्च न ॥ ७८ ॥ ईश्वर उवाच ॥ योत्रव्रतपरोभूत्वा चातुर्मास्यंवसिष्यति ॥ इहलोकेपरेचैव तस्यभाविसदासुखम् ॥ ७९ ॥ वसव ऊचुः ॥ त्रिरात्रंयोनरस्सम्यगुपवासीभविष्यति ॥ आजन्ममरणात्पापनाशस्तस्यभविष्यति ॥ ८० ॥ आदित्या ऊचुः ॥ अत्राश्रमपदेपुण्ये येनराभक्तिसंयुताः ॥ छत्रोपानत्प्रदातारस्तेषांलोकाःसनातनाः ॥ ८१ ॥ आश्विनावूचतुः ॥ मिष्टान्नंश्रद्धयोपेतो ब्राह्मणायप्रदास्यति ॥ योत्रतस्यपराप्रीतिर्भविष्यत्यविनाशनी ॥ ८२ ॥ अद्यप्रभृतिसर्वेषां तीर्थानामिहसंस्थितिः ॥ भविष्यतिविशेषेण आश्रमेलोकविश्रुते ॥ ८३ ॥ कृष्णपक्षेचतुर्दश्यामाश्विनेमासिभक्तितः ॥ उपवासपरोभूत्वा योत्रस्नानंकरिष्यति ॥ ८४ ॥ सर्वेषामेवतीर्थानां सफलंहिलभिष्यति ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥

पनहियों को देवैंगे उनको सनातन लोक होवैंगे ॥ ८१ ॥ अश्विनीकुमार बोले कि श्रद्धासंयुत जो मनुष्य यहां ब्राह्मण के लिये मिष्टान्नको देवैगा उसकी अविनाशिनी प्रीति बहुत होगी ॥ ८२ ॥ व आजसे लगाकर संसार में प्रसिद्ध इस आश्रम में विशेषकर सब तीर्थोंकी स्थिति होगी ॥ ८३ ॥ और कुँवार महीने में कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिमें भक्तिसंयुत जो मनुष्य उपासमें तत्पर होकर यहां स्नान करेगा ॥ ८४ ॥ वह सबही तीर्थोंके फलको पावैगा गंधर्व बोले कि जो मनुष्य यहा गीतों व

वाद्यादिकों को करैगा ॥ ८५ ॥ वह सातजन्मों के मध्यमें रूपवान् होगा ऋषिलोग बोले कि इसआश्रममें सावधान होताहुआ जो मनुष्य त्रिरात्रव्रत करैगा ॥ ८६ ॥ उसको हज़ार चान्द्रायण का फल होगा पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! इसप्रकार सब देवता उस देवी के लिये वरोंको देकर ॥ ८७ ॥ उनकी आज्ञा से स्वर्ग को गये और देवीजी वहीं स्थितहुई इसके अनन्तर मनुष्यलोग उसके आश्रम में देवीजीको देखकर स्वर्ग को गये ॥ ८८ ॥ तदनन्तर बिन परिश्रमही मनुष्योंसे स्वर्ग भरगया व पृथ्वी में अग्निष्टोमादिक सब कर्म नाश होगये ॥ ८९ ॥ व अन्य धर्मकार्यों को छोड़कर देवीजी का पूजन किया जाताथा तदनन्तर डरे हुये, इन्द्रने

गीतवाद्यानियश्चात्र प्रकरिष्यतिमानवः ॥ ८५ ॥ सप्तजन्मा न्तराण्येव रूपवान्सभविष्यति ॥ ऋषय ऊचुः ॥ आश्रमे स्मिंस्त्रिरात्रंयःकरिष्यतिसमाहितः ॥ ८६ ॥ चान्द्रायणसहस्रस्य फलंतस्यभविष्यति ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवंसर्वेवरा न्दत्त्वा देव्यैदेवान्नृपोत्तम ॥ ८७ ॥ तदाज्ञयादिवंजग्मुर्देवी तत्रैवसंस्थिता ॥ अथमर्त्यादिवंजग्मुर्दृष्ट्वा देवींतदाश्रमे॥ ८८ ॥ अनायासेनसम्पूर्णस्ततोमर्त्यैस्त्रिविष्टपः ॥ अग्निष्टोमादिकाःसर्वाः क्रियानष्टाधरातले ॥ ८९ ॥ धर्मक्रिया स्तथाचान्या मुक्त्वादेव्याःप्रपूजनम् ॥ ततोभीतःसहस्राक्षः समन्त्र्यगुरुणासह ॥ ९० ॥ आह्वयामासवेगेन कामं क्रोधंभयंमदम् ॥ व्यामोहंगृहपुत्रोत्थं तृष्णामायासमन्वितम् ॥ ९१ ॥ गत्वापूर्वंद्रुतंमर्त्ये स्नातुकामान्नरान्स्त्रियः ॥ चण्डिकायाश्रमेपुण्ये सेवध्वंहिममाज्ञया ॥ ९२ ॥ विशेषेणाश्विनेमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशीम् ॥ एवमुक्तास्ततस्सर्वे कामाद्यास्तेद्रुतंययुः ॥ ९३ ॥ मर्त्यलोकंमहाराज रक्षांचक्रुश्चसर्वशः ॥ एवंज्ञात्वाद्रुतंगच्छ तत्रपार्थिवसत्तम ॥ ९४ ॥

बृहस्पति के साथ सलाहकर ॥ ९० ॥ वेग से काम, क्रोध, भय व मदको बुलाया और घर व पुत्रोंसे उपजेहुये तथा तृष्णा व मायासे संयुत मोहको बुलाया ॥ ९१ ॥ व कहा कि शीघ्रही मृत्युलोक में जाकर पहले चंडिकाजी के पवित्र आश्रममें नहानेकी कामनावाले पुरुषों व स्त्रियों को मेरी आज्ञा से सेवन करो ॥ ९२ ॥ और कुँवार महीने में कृष्णपक्ष में चौदसि तिथिको विशेषकर सेवनकरो तदनन्तर ऐसा कहेहुये वे सब कामादिक मृत्युलोकको शीघ्रही गये व हे महाराज ! उन्होंने सब ओर से

रक्षा किया ऐसा जानकर हे नृपोत्तम ! वहां शीघ्रही जाइये ॥ ९३ । ९४ ॥ यदि इसलोक व परलोक में उत्तम कल्याण को चाहतेहो हे राजन् ! जो अर्बुदपर्वत पै चण्डिकाजी को देखने के लिये जाता है ॥ ९५ ॥ उसके पितर नाचते हैं व पितामह गर्जते हैं कि यह सुपुत्र चण्डिकाजीके इस आश्रममें सावधान होकर श्राद्ध देकर हम सबोंको तारैगा एकयात्रासे राज्य मिलताहै व दूसरी यात्रासे स्वर्ग मिलताहै ॥ ९६ । ९७ ॥ व हे राजन् ! वहां तीसरी यात्रासे मोक्ष होताहै उसकारण सम्पूर्ण तीर्थमय उस श्रेष्ठ अर्बुदपर्वतपै सब यत्न से यात्रा करै पुरातनसमय उस विषयमें नारद महर्षि ने श्लोक गाया है ॥ ९८ । ९९ ॥ कि बहुत ब्राह्मणोंसे उस समागम-

यदीच्छसिपरंश्रेय इहलोकेपरत्रच ॥ योयातिचण्डिकांद्रष्टुमर्बुदम्प्रतिपार्थिव ॥ ९५ ॥ नृत्यन्तिपितरस्तस्य गर्जन्ति चपितामहाः ॥ तारयिष्यतिनस्सर्वान्सुपुत्रोयमिहाश्रमे ॥ ९६ ॥ चण्डिकायाःप्रदत्त्वाथ कृत्वाश्राद्धंसमाहितः ॥ एकयालभ्यतेराज्यं स्वर्गञ्चैवद्वितीयया ॥ ९७ ॥ तृतीययाभवेन्मोक्षो यात्रयात्रपार्थिव ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यात्रांतत्र समाचरेत ॥ ९८ ॥ अर्बुदेपर्वतश्रेष्ठे सर्वतीर्थमयेशुभे॥ तत्रश्लोकःपुरागीतो नारदेनमहर्षिणा ॥ ९९ ॥ स्नात्वातत्राश्रमेपुण्ये बहुविप्रसमागमे ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यो बहुजन्मार्जितैरपि॥ पुनन्त्येवान्यतीर्थानि स्नानदानैरसंशयम् ॥२००॥ अर्बुदालोकनादेव विपाप्मातत्रजायते ॥ यःशृणोतिसदाख्यानमेतच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ १ ॥ सप्राप्नोतिनरश्रेष्ठः कामान्मनसिवाञ्छितान् ॥ यस्यैतत्तिष्ठतेगेहे लिखितंपुस्तकंनृप ॥ २ ॥तस्यापिवाञ्छिताःकामाःसम्पद्यन्तेदिनेदिने ॥

रूप पवित्र आश्रममें नहाकर बहुतजन्मों में इकट्टा कियेहुये सब पापोंसे भी मनुष्य छूटजाताहै अन्यतीर्थस्नान व दानों से निस्संदेह पवित्र करते हैं ॥ २०० ॥ और वहां अर्बुद के देखनेही से मनुष्य पापरहित होता है व श्रद्धासंयुत जो मनुष्य सदैव इस कथा को सुनता है ॥ १ ॥ वह श्रेष्ठ मनुष्य मनमें चाहेहुये मनोरथों को पाता है हे राजन् ! जिसके घर मे यह लिखीहुई पुस्तक स्थित होती है ॥ २ ॥ उसकोभी प्रतिदिन चाहेहुये मनोरथ प्राप्त होतेहैं अथवा हे भूपते ! जो श्रद्धासंयुत मनुष्य

इसको पढ़ता है ॥ ३ ॥ वह भी उत्तम पुरुष हे राजन् ! यात्राके फलको प्राप्त होता है ॥ २०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचण्डिकाश्रमोत्पत्तिर्नामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ● ॥ ● ● ॥ ● ॥ ● ॥ ●

दो० । अति उत्तम तीरथ भयो नागकुण्ड इमि नाम । सैंतिसवें अध्याय में सोइचरित सुखधाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर पापनाशक नागकुण्ड को जावै जहां कि सुन्दरपर्वत के किनारे पै नागों ने तप कियाहै ॥ १ ॥ पुरातनसमय कद्रूके शाप को सुनकर डर से विकल सब नागों ने कंधे को झुकाकर नागों के राजा

पठतिश्रद्धयोपेतो योवाभूमिपतेनरः ॥ ३ ॥ सोपियात्राफलंराजल्लँभतेपुरुषोत्तमः ॥ २०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेऽर्बुदमाहात्म्येचण्डिकाश्रमोत्पत्तिर्नामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ नागह्रदंततोगच्छेत्तीर्थंपापप्रणाशनम् ॥ यत्रनागैस्तपस्तप्तं रम्येपर्वतरोधसि ॥ १ ॥ कद्रूशापंपुराश्रुत्वा नागास्सर्वेभयातुराः ॥ पप्रच्छुर्नागराजानं शेषंप्रणतकन्धराः ॥ २ ॥ मातृशापेनसन्तप्ता वयंपन्नगसत्तम ॥ किङ्कुर्मःकुत्रगच्छामः शापमोक्षोभवेत्कथम् ॥ ३ ॥ शेष उवाच ॥ विज्ञापितामयामाता शापमुक्तिकृतेपुरा ॥ तथोक्तंयेतपोयुक्ता धर्मात्मानःसुसंयताः ॥ ४ ॥ नदहिष्यतितान्वह्निर्यज्ञेपारीक्षितस्यहि ॥ तस्माद्गत्वार्बुदन्नाम पर्वतंधरणीतले ॥ ५ ॥ तत्रगत्वातपोयुक्ता भवध्वंसुसमाहिताः ॥ यत्रास्तेसास्वयंदेवी चण्डिकाकामरूपिणी ॥ ६ ॥ यस्याःसंकीर्तनेनापि नश्यन्तिविपदोध्रुवम् ॥ आराधयध्वमनिशं तां देवींममवाक्यतः ॥ ७ ॥ तस्याःप्रसादतःसर्वे भविष्यथ

शेषजी से पूंछा ॥ २ ॥ कि हे पन्नगोत्तम ! हम सब माताके शापसे संतप्त हैं इससे क्या करैं व कहां जावैं और किसप्रकार शाप का मोक्ष होवै ॥ ३ ॥ शेषजी बोले कि पुरातनसमय मैंने शाप की मुक्तिके लिये मातासे विनय किया और उसने कहा कि जो तपस्यासे युक्त व धर्मात्मा और संयममें प्राप्त हैं ॥ ४ ॥ उन सबों को परीक्षित के पुत्र जनमेजय के यज्ञ में अग्नि नहीं जलावैगी इसलिये पृथ्वी में अर्बुदनामक पर्वत पै जाकर ॥ ५ ॥ तपस्यासे युक्त व सावधान होते हुये तुमलोग वहां जाकर तपस्या से युक्त होवो जहां कि वह कामरूपिणी आपही चण्डिका देवी है ॥ ६ ॥ जिसके संकीर्तन (नामलेने) से भी निश्चयकर विपत्तियां नाश होजाती हैं उस

देवीको मेरे वचनसे तुमलोग सदैव आराधनकरो ॥ ७ ॥ हे नागोत्तम ! उसकी प्रसन्नतासे सब ज्वररहित होवोगे इसविषयमें मैं इसी उपायको देखताहूं ॥ ८ ॥ देवता होवै या मनुष्य होवै अन्य मुक्तिकारक नहीं है पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! तदनन्तर नागराजसे ऐसा कहेहुये नाग ॥ ६ ॥ उन नागराजको प्रणामकर तदनन्तर अर्बुदपर्वतको गये कि वे नाग पृथ्वीको छोड़कर तदनन्तर पर्वत में ॥ १० ॥ बहुत चौड़े गढ़ेको बनाकर बिलके मार्ग से निकले तदनन्तर व्रतको धारण किये व देवीजीकी भक्तिमें परायण सब ॥ ११ ॥ भक्तिसे संयुत वे नाग चंडिकाजीके आराधनके लिये बसने लगे और उत्तम जप करतेहुये उन्होंने वहां सदैव हवन किया ॥ १२ ॥

गतज्वराः ॥ अमुमेवात्रपश्यामि उपायंनागसत्तमाः ॥ ८ ॥ देवोवामानुषोवापि नान्योवैमुक्तिकारकः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तास्ततोनागा नागराजेनपार्थिव ॥ ६ ॥ प्रणम्यतंततोजग्मुरर्बुदंपर्वतम्प्रति ॥ तेभित्त्वाधरणीपृष्ठं पर्वतेतदनन्तरम् ॥ १० ॥ निर्जग्मुर्बिलमार्गेण कृत्वाश्वभ्रंसुविस्तरम् ॥ ततोधृतव्रताःसर्वे देवीभक्तिपरायणाः ॥ ११ ॥ वसन्ति भक्तिसंयुक्ताश्चण्डिकाराधनायते ॥ चक्रुस्तत्रसदाहोमं कुर्वन्तोजाप्यमुत्तमम् ॥ १२ ॥ एकाहारानिराहारा वायुभक्षास्तथापरे ॥ दन्तोलूखलिनःकेचिदश्मकुट्टास्तथापरे ॥ १३ ॥ पञ्चाग्निसाधकाश्चान्ये सद्यःप्रक्षालकास्तथा ॥ गीतवाद्यंतथाचक्रुरन्येदेव्याःपुरस्तदा ॥ १४ ॥ अनन्यश्रद्धयोपेतांस्तान्दृष्ट्वापन्नगोत्तमान् ॥ ततोदेवीसुसन्तुष्टा वाक्यमेतदुवाचह ॥ १५ ॥ देव्युवाच ॥ परितुष्टास्मितेवत्स किमर्थंतप्यतेतपः ॥ वरयध्वंवरंमत्तो यःस्थितोभवतांहृदि ॥ १६ ॥ नागा ऊचुः ॥ मातृशापेनसन्तप्ता वयंदेविनिराश्रयाः ॥ नागराजसमादेशाच्छरणंतेसमागताः ॥ १७ ॥ सात्वं

कोई एकबार भोजन करनेवाले व अन्य पवनभक्षी तथा कोई दंतरूप ओखलीवाले व अन्य पत्थर से कूटकर भोजन करनेवाले हुये ॥ १३ ॥ व अन्य पंचाग्निको साधन करनेवाले तथा अन्य सद्य, प्रक्षालक याने केवल एक दिनके योग्य भोजन को संचय करनेवाले हुये व उससमय अन्य नागोंने देवीजी के आगे गीत वाद्य किया ॥ १४ ॥ उन नागोत्तमों को अनन्यश्रद्धासे संयुत देखकर तदनन्तर बहुतही प्रसन्न होतीहुई देवीजी इसवचनको बोलीं ॥ १५ ॥ देवीजी बोलीं कि हे वत्स ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्नहूं किसलिये तपस्याकी जाती है तुमलोग मुझसे वरदान मांगो जो आपलोगोंके हृदयमें स्थित होवै ॥ १६ ॥ नाग बोले कि हे देवि ! हम

लोग आश्रयरहित होकर माताके शापसे संतप्त हुये और शेषजीकी आज्ञा से तुम्हारे शरणमें आये हैं ॥ १७ ॥ सो तुम शापरूप अग्निसे उपजेहुये उस भयसे रक्षाकरो पुरातनसमय किसीकारण के मध्य में माताने हमलोगों को शाप दियाहै ॥१८॥ कि परीक्षित के पुत्र जनमेजय के यज्ञ में तुमलोगों को अग्नि जलावैगी देवीजी बोलीं कि जबतक उनका यज्ञ होवै तबतक तुमलोग मेरे समीप ॥ १९ ॥ भयके विना स्थित होवो और बहुतसे भोगोंको भोगकरो और यज्ञ समाप्त होनेपर फिर अपने स्थानको जावो ॥ २० ॥ जिसलिये तुमलोगों ने इस पर्वतकी कन्दरा को तोड़ा है इसलिये यह पृथ्वी में नागह्रदतीर्थ प्रसिद्ध होगा॥ २१ ॥ श्रावण महीने

रक्षभयात्तस्माच्छापवह्निसमुद्भवात् ॥ वयंमात्रापुराशप्ताः कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ १८ ॥ पारिक्षितस्ययज्ञेवः पावकोधक्षयिष्यति ॥ देव्युवाच ॥ यावत्तस्यभवेद्यज्ञस्तावद्यूयंममान्तिके॥ १९ ॥ सन्तिष्ठतविनात्रासं भोगान्भोक्ष्यथपुष्कलान् ॥ समाप्तेचक्रतौभूयो गन्तारःस्वनिकेतनम् ॥ २० ॥ युष्माभिर्भेदितं यस्मादेतत्पर्वतकन्दरम्॥ नागह्रदन्तुतत्तीर्थमेतद्भाविधरातले ॥ २१ ॥ अत्रयःश्रावणेमासि पञ्चम्यांभक्तितत्परः ॥ करिष्यतिनरःस्नानं तस्यनाहिकृतंभयम् ॥ २२॥ करिष्यतिचयःश्राद्धान् सपितॄंस्तारयिष्यति ॥ येभोगाभूतलेख्याता येदिव्यायेचमानुषाः ॥ २३ ॥ तान्सर्वान्सनरोनित्यं लभिष्यतिनसंशयः ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततोहृष्टाबभूवुस्ते मुक्त्वातुदारुणंभयम् ॥ २४ ॥ देव्याःशरणमापन्नास्तस्थुस्तत्रनगोत्तमे ॥ ततःकालेनमहता सत्रेपारिक्षितस्यच ॥ २५ ॥ निवृत्तेतेतदाजग्मुर्नागवृन्दारसातलम् ॥ देव्याचैवाभ्यनुज्ञाताः प्रणिपत्यमुहुर्मुहुः ॥ २६ ॥ कृच्छ्रात्पार्थिवशार्दूल तद्भक्त्यानिश्चलाःकृताः ॥ अद्यापिकृष्णपञ्च

में पंचमीतिथि में भक्ति से संयुत जो मनुष्य इस कुंड में स्नान करैगा उसको सर्प से कियाहुआ डर न होगा ॥ २२ ॥ और जो यहां श्राद्धों को करैगा वह पितरों को तारैगा और पृथ्वी में जो देवताओं व मनुष्योंवाले सुख प्रसिद्ध हैं॥ २३ ॥ उन सबों को वह मनुष्य निरसन्देह सदैव पावैगा पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर उस भयंकर भयको छोड़कर वे नाग प्रसन्नहुये ॥ २४ ॥ और देवीजीके शरण में प्राप्त वे उस उत्तमपर्वत पै टिके तदनन्तर बहुतसमय के बाद जनमेजय का यज्ञ ॥ २५ ॥ समाप्त होने पर उससमय वे नागगण रसातल को गये और देवीजीसे आज्ञा दिये हुये वे बार २ प्रणामकर ॥ २६ ॥ हे नृपोत्तम ! उनकी भक्तिके कारण वे क्लेश से

निश्चल कियेगये हे राजन् ! श्रावणमहीने में कृष्णपक्षकी पंचमीतिथि में आज भी ॥ २७ ॥ देवीके दर्शनकी इच्छावाले मनुष्य वहां समीपता करते हैं इसकारण
सब यत्नसे मनुष्य वहां श्राद्ध करै ॥ २८ ॥ व हे नृपोत्तम ! जो अपना कल्याण चाहै वह उस तीर्थ में स्नान करै ॥ २९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्र
विरचिताशंभाषाटीकायानागह्रदोत्पत्तिर्नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ● ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥
दो० । गुप्त गंग इमि तीर्थ जिमि भूतल भयो प्रसिद्ध । अर्तिसवें अध्याय में सोइ कथा शुभ सिद्ध ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे भूपते ! तदनन्दर शिवलिंग नामक

म्यां श्रावणेमासिपार्थिव ॥ २७ ॥ सान्निध्यंतत्रकुर्वन्ति देवीदर्शनलालसाः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धंतत्रसमाच
रेत ॥ २८ ॥ स्नानंचपार्थिवश्रेष्ठयइच्छेच्छ्रेयआत्मनः ॥ २९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेनागह्रदोत्पत्तिर्नामसप्तत्रिं
शोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ कुण्डन्तुशिवलिङ्गाख्यंततोगच्छेन्महीपते ॥ यत्रसाजाह्नवीगुप्ता दृश्यतेभूपसत्तम ॥ १ ॥ तस्यां
स्नातोनरस्सम्यक्सर्वतीर्थफलंलभेत ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यस्त्वाजन्ममरणान्तिकात् ॥ ययातिरुवाच ॥ २ ॥ किमर्थंत
त्रसागुप्ता जाह्नवीतिष्ठतेविभो ॥ कस्मिन्कालेसमायाता परंकौतूहलंहिमे ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ यदाप्रसादितोदेवैर्भग
वान्वृषभध्वजः ॥ अर्बुदेस्मिन्मदास्थेयमचलेतुत्वयाविभो ॥ ४ ॥ तत्रसंस्थापितेलिङ्गे स्वयंदेवेनशम्भुना ॥
तत्पातितंपुरालिङ्गं बालखिल्यैर्महर्षिभिः ॥ ५ ॥ अतिकोपसमायुक्तैः कस्मिंश्चित्कारणान्तरे॥ देवेनतुप्रतिज्ञातं सर्वेषां

कुण्ड के समीप जावै जहां कि हे नृपोत्तम ! वे गुप्तगंगाजी देखपड़ती हैं ॥ १ ॥ उन गंगाजी में भलीभांति नहायाहुआ पुरुष सब तीर्थों के फलको पाता है और
जन्मसे लगाकर मरणसमीप तकके सब पापोंसे छूटजाता है ॥ २ ॥ ययातिजी बोले कि हे विभो ! वहां किसलिये गुप्त गंगाजी गुप्त स्थित हैं और किससमय आई हैं
मुझको बड़ा आश्चर्य है ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि जब देवताओंने भगवान् वृषभध्वजको प्रसन्न कराया कि हे विभो ! इस अर्बुदपर्वत पै तुमको सदैव टिकना
चाहिये ॥ ४ ॥ वहां आपही शिवदेवजी से लिंगके स्थापित करने पर जब पुरातनसमय बड़े क्रोधसंयुत बालखिल्या महर्षियोंने किसीकारण के मध्य में उस लिंग को

पात किया है और शिवदेवजी ने सब देवताओं से प्रतिज्ञा किया ॥ ५ । ६ ॥ कि मुझको इसी पर्वत पै टिकना चाहिये इसमें सन्देह नहीं है तदनन्तर बहुतसमय तक वहां बसते हुये उन ॥ ७ ॥ अचलेश्वररूप शिवजीके चित्तमें गंगाजी हुईं कि किसप्रकार उस गंगाके साथ सदैव समागम होगा ॥ ८ ॥ जिसप्रकार कि मानिनी परमेश्वरी पार्वतीजी न जानैं हे नृपोत्तम ! इसप्रकार उन शिवजी ने बहुत चिन्तवन किया ॥ ९ ॥ और गंगाजी के संगसे उपजेहुये बड़ेभारी उपायको ध्यान कर उन शिवजी ने नंदि व भृंगि आदिक सब गणोंको आज्ञा दिया ॥ १० ॥ कि जलाश्रय के व्रतसे उपजा हुआ अभिप्राय मेरे चित्त में है इससे इस पर्वतके किनारे

त्रिदिवौकसाम् ॥ ६ ॥ अचलेतुमयात्रैव स्थातव्यंनात्रसंशयः ॥ ततःकालेनमहता वसतस्तस्यतत्रच ॥ ७ ॥ अचलेश्वररूपस्य गङ्गाचित्तेव्यजायत ॥ कथंनित्यंतयासार्धं भविष्यतिसमागमः ॥ ८ ॥ यथाजानातिनोगौरी मानिनीपरमेश्वरी ॥ सएवंचिन्तयामास बहुशोनृपसत्तम ॥ ९ ॥ उपायंसुमहद्ध्यात्वा जाह्नवीसङ्गसम्भवम् ॥ तेनोद्दिष्टागणास्सर्वे नन्दिभृङ्गिपुरस्सराः ॥१०॥ अभिप्रायोस्तिमेचित्ते जलाश्रयव्रतोद्भवः ॥ क्रियतामुत्तमंकुण्डमस्मिन्पर्वतरोधसि॥११॥ तत्राहंजलमध्यस्थः स्थास्यामिजपतत्परः ॥ तच्छ्रुत्वात्वरितंचक्रुर्गणाःकुण्डमनुत्तमम् ॥ १२ ॥ स्वच्छोदकसमाकीर्णं सुतीर्थंसुसुखावहम् ॥ ततोगौरीमनुज्ञाप्य जाह्नवीसङ्गलालसः ॥ १३ ॥ व्रतव्याजेनदेवेशो विवेशतदनन्तरम् ॥ चिन्तयामासतत्रस्थो गङ्गांत्रैलोक्यपावनीम् ॥ १४ ॥ साध्याताततत्क्षणात्तत्र शिवेनसहसङ्गता ॥ एवंसभगवांस्तत्र जाह्नवींभजतेसदा ॥१५॥ व्रतव्याजेनराजेन्द्रनतद्गौरीव्यजानत ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य नारदोभगवान्मुनिः ॥१६॥

पै उत्तम कुण्ड कियाजावै ॥ ११ ॥ उसमें जपमें परायण मैं जलके मध्य में स्थित हूंगा उस वचनको सुनकर गणोंने निर्मल जलसे भरेहुये व सुखदायक उत्तम तीर्थरूप अति उत्तम कुण्डको शीघ्रही किया तदनन्तर पार्वतीजीसे कहकर गंगाजीके संगकी लालसावाले देवेश शिवजीने व्रतके बहाने से उसमें प्रवेश किया तदनन्तर उसमें टिके हुये शिवजीने त्रिलोकको पवित्र करनेवाली गंगाजीको ध्यान किया ॥ १२ । १३ । १४ ॥ और ध्यान कीहुई वे गंगाजी उसीक्षण वहां शिवजी के साथ समागमको प्राप्त हुईं इसप्रकार वे भगवान् शिवजी वहां सदैव गंगाजीको व्रतके बहानेसे भजते थे उसको पार्वतीजीने नहीं जाना इसके अनन्तर किसीसमय मोक्षज्ञान

से संयुत भगवान् नारदमुनि घूमते हुये वहां आये और वे नारदमुनि जलमें स्थित व व्रतको धारनेवाले तथा कामसे उपजे हुये चेष्टितों से युक्त महादेवजीको देखकर वहा ये विस्मयसंयुक्त हुये कि इस व्रतधारी के क्या यह टेढ़े नेत्रका विकार है ॥ १५ । १६ । १७ । १८ ॥ यों ज्ञान से संयुत हैं उसीकारण यह मुनि ध्यान में स्थितहैं इसके अनन्तर नारदजी ने पार्वतीजी के भयसे बहानेसमेत ध्यान की दृष्टिसे गंगाजी में आसक्त महादेवजीको देखा तदनन्तर ये नारदजी विस्मयको प्राप्तहुये व उससमय उन नारदजीने महादेवजी की सब कर्तव्यता को कहा ॥ १९ । २० ॥ तदनन्तर क्रोधसे कुछ लाललोचनोंवाली व बार २ कांपतीहुई शीघ्रता

कैवल्यज्ञानसम्पन्नस्तत्रायातःपरिभ्रमन् ॥ सतुदृष्ट्वामहादेवं जलस्थंव्रतधारिणम् ॥ १७ ॥ कामजैरिङ्गितैर्युक्तं तत्रासौविस्मयान्वितः ॥ वक्रनेत्रविकारोयं किमस्यव्रतधारिणः ॥ १८ ॥ ईदृग्ज्ञानसमायुक्तस्ततोध्यानस्थितोमुनिः ॥ अथापश्यद्ध्यानदृष्ट्या गङ्गासक्तंमहेश्वरम् ॥ १९ ॥ गौर्याभयेनसव्याजं ततोविस्मयमागतः ॥ तदासकथयामास सर्वंहरविचेष्टितम् ॥ २० ॥ ततोदेवीत्वरायुक्ता ययौयत्रमहेश्वरः ॥ आताम्रनयनारोषात्कंपमानामुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥ तांदृष्ट्वाकोपसंयुक्तां समायातांमहेश्वरम् ॥ उवाचजाह्नवीभीताज्ञात्वादिव्येनचक्षुषा ॥ २२ ॥ आवयोःसङ्गमोदेव्यै नारदेन निवेदितः ॥ सेयंरुष्टासमायातिकुरुष्वयदनन्तरम् ॥ २३ ॥महादेव उवाच ॥ कर्त्तव्योजाह्नविश्रेयानुपायःसामसञ्ज्ञकः ॥ प्रसह्यमानिनीह्येषा साम्नाचवशवर्तिनी ॥ २४ ॥ तत्क्षणाज्जायतेसाध्वी तस्मात्सामपराभव ॥ नोचेच्छापंमयासार्द्धं तवदास्यत्यसंशयम् ॥ २५ ॥ एवमुक्ताचरुद्रेण जाह्नवीनृपसत्तम ॥ कुण्डान्निर्गत्यसागङ्गा सम्मुखंप्रययौतदा ॥ २६ ॥

संयुत देवीजी वहा गईं जहां कि महादेवजी थे ॥ २१ ॥ आईहुई उन पार्वतीजीको क्रोधसंयुत देखकर डरीहुई गंगाजी ने दिव्यदृष्टि से देखकर महादेवजी से कहा ॥ २२ ॥ कि नारदजीने हमारे व तुम्हारे दोनों समागमको पार्वती देवीजीसे कहा है सो ये क्रोधित पार्वतीजी आती हैं जो इसके बाद कार्य होवै उसको कीजिये ॥ २३ ॥ महादेवजी बोले कि हे जाह्नवि ! सामसंज्ञक श्रेष्ठ उपाय करना चाहिये क्योंकि हठसे ये मानिनी व पतिव्रता पार्वतीजी प्रिय वचन से उसीक्षणवशवर्तिनी होवेंगी उसकारण साममें तत्पर होवो नहीं तो मुझसमेत तुमको निस्सन्देह शाप देवेंगी ॥ २४ । २५ ॥ हे नृपोत्तम ! उससमय शिवजीसे ऐसा कही हुई वे जाह्नवी

गंगाजी कुंडसे निकलकर सामने चलीं ॥ २६ लज्जासमेत व हाथों को जोड़े हुई वे गंगाजी आगेगईं और मस्तकसे पार्वतीजीको प्रणामकर तदनन्तर सुलक्षणा गंगाजीने कहा ॥ २७ ॥ कि हे देवि ! पुरातनसमय भगीरथनामक राजाके लिये आकाशसे गिरतीहुई मुझको तुम्हारे पतिने धारण किया यह तुमको भी प्रकटहै उसी कारण स्नेह बढ़ता भया और तुम्हारे डरसे हमारा व तुम्हारा कभी समागम नहीं हुआ ॥ २८ । २६ ॥ हे सुरेश्वरि, शुभे ! मैं नहीं जानतीहूं कि इससमय शिवजीन तुम्हारे वचनसे मुझको बुलाया है या अपनी इच्छा से बुलाया है ॥ ३० ॥ इस कारण त्रिलोक को पूर्ण करतीहुई मैं किसीप्रकार निकलकर वहांसे यहीं प्राप्त हुई

प्रत्युद्ययौसलज्जाच कृताञ्जलिपुरस्सरा ॥ प्रणम्यशिरसाचोमां ततःप्राहसुलक्षणा ॥ २७ ॥ पुराहन्तवकान्तेन निपतन्तीनभस्तलात ॥ धृतादेवितवाप्येतद्विदितंनृपतेःकृते ॥२८॥ भगीरथाभिधानस्य ततःस्नेहोऽभ्यवर्द्धत ॥ आवयोस्तवभीत्याच नस्यात्कापिसमागमः ॥ २९ ॥ अधुनातववाक्येन जानेहन्नसुरेश्वरि ॥ समाहूतास्मिरुद्रेण किंवास्वच्छन्दतःशुभे ॥ ३० ॥ त्रैलोक्यंपूरयन्त्यस्मान्निष्क्रम्यचकथञ्चन ॥ तस्मादत्रैवसम्प्राप्ता सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३१ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वा ततोदेवीप्रहर्षिता ॥ प्रोवाचमधुरंवाक्यं सत्यमेतत्त्वयोदितम् ॥ ३२ ॥ तस्माद्वरयभद्रन्ते वरंमत्तोयथेप्सितम् ॥ कुरुत्वंपतिधर्मंत्वे ममकान्तंमहेश्वरम् ॥ ३३ ॥ गङ्गोवाच ॥ अपिदौर्भाग्ययुक्ताहं भार्याजातास्मिशूलिनः ॥ तस्मादेकंदिनंदेहि क्रीडांसार्धमनेनतु ॥ ३४ ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामहोरात्रंसुरेश्वरि ॥ शिवकुण्डंतथाप्येतन्मयायस्मात्समाहृतम् ॥ ३५ ॥ शिवगङ्गाभिधानन्तु तस्मात्कुण्डंधरातले ॥ ख्यातिंयातुप्रसादेन तव

इसको मैंने सत्य कहा ॥ ३१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उसके उन वचनको सुनकर तदनन्तर देवी पार्वतीजी प्रसन्न हुई व मीठे वचन बोलीं कि इसको तुमने सत्य कहा ॥ ३२ ॥ उसकारण तुम्हारा कल्याण होवै और मुझसे जैसा प्रियहो वैसे वरको मांगो और पतिधर्म में मेरे पति महेश्वरजीको करो ॥ ३३ ॥ गंगाजी बोलीं कि दुर्भाग्यसे युक्त भी मैं त्रिशूलधारी शिवजीकी स्त्री हुई हूं इसलिये हे सुरेश्वरि ! चैतके शुक्लपक्षकी तेरसिमें दिनरात इनके साथ एक दिन क्रीड़ाको दीजिये व जिसलिये

यह शिवकुण्ड मुझसे घिरा है ॥ ३४ । ३५ ॥ इसकारण हे पर्वतनंदिनि ! तुम्हारी प्रसन्नता से पृथ्वी में शिवगंगानामक कुण्ड प्रसिद्धिको प्राप्त होवै ॥ ३६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसाही होवै यह गंगा महानदी से कहकर तदनन्तर उन पार्वती देवीजीने बार २ लिपटाकर बिदाकिया ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर नीचे मुखकिये व लज्जित होकर जब गंगाजी चलीगईं तब शिवजीको घुड़कती हुई पार्वती देवी हाथको पकडकर घरको गईं ॥ ३८ ॥ हे नराधिप ! उस कुण्डमें पुरातनसमय यह ऐसा वृत्तान्त हुआ है इसलिये सावधान होता हुआ मनुष्य चैत महीने में शुक्लपक्ष की चौदसि में सब यत्न से उस कुण्ड में स्नान करै हे नृपोत्तम ! देव देव शिवजीकी

पर्वतनन्दिनि ॥ ३६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमस्त्वितिसादेवी प्रोक्त्वागङ्गांमहानदीम् ॥ ततोविसर्जयामास समालिङ्ग्य मुहुर्मुहुः ॥ ३७ ॥ गतायामथगङ्गायामधोवक्त्रांसुलज्जितम् ॥ पाणौगृह्ययर्यौरुद्रं भर्त्सयमानागृहम्प्रति ॥ ३८ ॥ एवमेत त्पुरावृत्तं तस्मिन्कुण्डेनराधिप ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चतुर्दश्यांसमाहितः ॥ ३९ ॥ शुक्लायांचैत्रमासेतु स्नानंतत्रसमा चरेत् ॥ सान्निध्याद्देवदेवस्य गङ्गायाश्चनृपोत्तम ॥ ४० ॥ यत्रसंक्षयमायाति सर्वजन्माशुभंकृतम् ॥ तत्रयोवृषभंद द्याद् ब्राह्मणायनृपोत्तम ॥ ४१ ॥ तद्रोमसङ्ख्ययास्वर्गे सपुमान्वसतिध्रुवम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेशि वगङ्गाकुण्डोत्पत्तिर्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

ययातिरुवाच ॥ यत्त्वयाकीर्तितंब्रह्मन्पूर्वंदेवैःप्रसादितः ॥ लिङ्गंसंस्थापयामास स्थिररूपोमहेश्वरः ॥ १ ॥ कस्मा

व गंगाजीकी समीपता से ॥ ३९ । ४० ॥ जहां सब जन्मों में कियाहुआ पाप नाशको प्राप्त होता है हे नृपोत्तम ! वहां जो ब्राह्मण के लिये बैलको देताहै ॥ ४१ ॥ वह मनुष्य उसके रोमोंकी संख्या से निश्चयकर स्वर्ग में बसता है ॥ ४२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांशिवगङ्गाकुण्डोत्पत्तिर्नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁

दो० । बालखिल्य जिमि शिवहुंकर लिंगपातही कीन । उन्तालिस अध्याय में सोइ चरित्र नवीन ॥ ययातिजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! पहले जो तुमने कहाहै कि

देवताओं से प्रसन्न कियेहुये स्थिर रूप शिवजीने लिंगको स्थापन किया है ॥ १ ॥ और महात्मा बालखिल्योंने किसकारण लिंगको पातित किया है व किस कारण वहां हठसे देव देव महेश्वरजी हुये हैं ॥ २ ॥ इस सब कौतुक को मुझसे यथायोग्यकहने के योग्यहो और उसके देखनेपर वहां मनुष्यों को क्या पुण्य होता है ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! शिवजीके माहात्म्य को सुनिये इस विषय में मैं तुमसे पहले हुये कथान्तर को कहता हूं ॥ ४ ॥ कि हे सत्यपराक्रम ! जो यज्ञमें नहीं निमंत्रित हुई उसी दक्षके अपमान से जब सतीजी मृत्युको प्राप्तहुईं ॥ ५ ॥ तब कामदेव पुष्पका धनुष लेकर शीघ्रही उन शिवजीके सामने आया और बाण

च पातितं लिङ्गं बालखिल्यैर्महात्मभिः ॥ कस्मात्तत्रबलाज्जातो देवदेवो महेश्वरः ॥ २ ॥ एतन्मे कौतुकं सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ तस्मिन्दृष्टे च किं पुण्यं नराणां तत्र जायते ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ महेश्वरस्य माहात्म्यं शृणु पार्थिवसत्तम ॥ अत्र ते कीर्तयिष्यामि पूर्ववृत्तकथान्तरम् ॥ ४ ॥ यदा पञ्चत्वमापन्ना सती सत्यपराक्रम ॥ अपमानेन दक्षस्य यज्ञेन निमन्त्रिता ॥ ५ ॥ तदा कामो द्रुतं गृह्य पुष्पचापं तमभ्यगात् ॥ कन्दर्पं सहसा दृष्ट्वा सन्धितेषुं सुदुर्जयम् ॥ ६ ॥ आयातस्य भयात्तस्य प्रणष्टस्त्रिपुरान्तकः ॥ स तदा भ्रममाणश्च इतश्चेतश्च पार्थिव ॥ ७ ॥ बालखिल्याश्रमं प्राप्तः पुण्यं सद्वृक्षशोभितम् ॥ स तत्र भगवांस्तेषां दारैर्दृष्टस्स्वरूपवान् ॥ ८ ॥ दिग्वासाः सुप्रियालापस्ततस्ताः काममोहिताः ॥ त्यक्त्वा पुत्रगृहाण्येव सर्वास्तत्पृष्ठसंस्थिताः ॥ ९ ॥ बभूवुश्चानिशं राजन् मां भजस्वेति चाब्रुवन् ॥ चक्रुरालिङ्गनं काश्चिच्चुम्बनञ्च तथापराः ॥ १० ॥ अन्यास्तस्य हि लिङ्गं तत्स्पृशन्ति च मुहुर्मुहुः ॥ स चापि भगवाञ्छम्भुस्तासां रतिपरा

को लगाये व बहुतही दुर्जय कामदेवको अचानकही देखकर ॥ ६ ॥ उस आयेहुये उस कामदेव के भयसे त्रिपुरान्तक शिवजी अदृश्य होगये तब हे राजन् ! इधर उधर घूमते हुये वे शिवजी ॥ ७ ॥ उत्तम वृक्षों से शोभित पवित्र बालखिल्यों के आश्रम को प्राप्तहुये और वहां उन स्वरूपवान् तथा नग्न उत्तम प्रिय वचनवाले भगवान् शिवजीको उनकी स्त्रियों ने देखा तदनन्तर वे स्त्रियां कामसे मोहितहुईं और पुत्र व घरोंको छोड़कर सब उनके पीछे खड़ीहुईं ॥ ८ । ९ ॥ व हे राजन् ! उन्होंने कहा कि सदैव मुझको भजिये व किसीने आलिंगन किया और अन्य स्त्रियोंने चुंबन किया ॥ १० ॥ और अन्य स्त्रियां बार२ उनके लिंगको स्पर्श करनेलगीं और वे भगवान्

शिवजी उन स्त्रियोंकी रतिसे विमुखहुये ॥ ११ ॥ और उसआश्रममें घूमतेहुये व उनकी स्त्रियोंको कामदेवसे पीड़ित करतेहुये वे प्राप्तभये इसकेअनन्तर स्त्रियोंसे उपजे हुये विकार को देखकर महादेवको न जानतेहुये वे महात्मा मुनिलोग उनके ऊपर क्रोधित हुये व हे परंतप ! स्त्रियोंके लिये संतप्त उन्होंने शाप दिया ॥ १२ । १३ ॥ कि हे अधिकपापकारी ! यह तुम्हारा लिंग गिरपड़े गिरपड़े क्योंकि इसके दर्शन से हमारी स्त्रियों की तुम सदैव विडंबना करतेहो ॥ १४ ॥ तदनन्तर उसीक्षण ब्राह्मणों के वचन से त्रिपुरशत्रु शिवजी का वह लिंग गिरपड़ा तदनन्तर पृथ्वी कांप उठी ॥ १५ ॥ उसके उपरान्त पर्वतों के शिखर टूटगये व समुद्र क्षोभित हुये

मुखः ॥ ११ ॥ भ्रमंस्तत्राश्रमेतेषां दारान्कामेनपीडयन् ॥ अथतेमुनयोदृष्ट्वा विकृतिंदारसम्भवाम् ॥ १२ ॥ अजानन्तोमहादेवं रुष्टास्तस्यमहात्मनः॥ददुःशापंसमातप्ताःकलत्रार्थेपरन्तप ॥ १३ ॥ पततात्पतताल्लिङ्गमेतत्तेपापकृत्तम ॥ विडम्बयसिनोदारानजस्रंचास्यदर्शनात ॥ १४ ॥ ततःपपाततल्लिङ्गं तत्क्षणात्त्रिपुरद्विषः ॥ ब्रह्मवाक्येनराजर्षे चकम्पेवसुधाततः ॥ १५ ॥ शीर्णानिगिरिशृङ्गाणि चुक्षुभुर्मकरालयाः ॥ ततोदेवगणास्सर्वे भयत्रस्तानराधिप ॥ १६ ॥ अकालेप्रलयंज्ञात्वा त्रैलोक्येपर्यवस्थितम् ॥ ततःपितामहंजग्मुस्तस्मै सर्वंन्यवेदयन् ॥ १७ ॥ प्रलयस्येवचिह्नानि दृश्यन्ते परमेश्वर ॥ किंनिमित्तंसुरश्रेष्ठ नजानीमोवयंप्रभो ॥ १८ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा चिरंध्यात्वापितामह ॥ अब्रवीत्पतितंलिङ्गं बालखिल्यैःपिनाकिनः ॥ १९ ॥ तेनैतेदारुणोत्पाताः सञ्जाताभयसूचकाः ॥ तस्मान्मयासमायुक्ताः सर्वेतत्रदिवौकसः ॥ २० ॥ व्रजन्तुयेनतल्लिङ्गं स्थानेसंस्थापयेच्छिवः ॥ यावन्नोजायतेलोके प्रलयोकालसम्भवः ॥ २१ ॥ एवंसंम

तदनन्तर हे नराधिप ! सब देवताओं के गण भयसे डरगये ॥ १६ ॥ और बिन समय त्रिलोकमें प्रलयको प्राप्त देखकर तदनन्तर ब्रह्माके समीप गये व उन्होंने उनसे सब कहा ॥ १७ ॥ कि हे परमेश्वर, सुरश्रेष्ठ, प्रभो ! किसकारण प्रलय के ऐसे चिह्न देख पड़ते हैं इसको हमलोग नहीं जानते हैं ॥ १८ ॥ उनके उस वचनको सुनकर बहुत देरतक ध्यानकर ब्रह्माजीने कहा कि बालखिल्योंने शिवजीकेलिंगको गिराया है ॥ १९ ॥ उसकारण भयके सूचक ये भयंकर उत्पात हुये हैं इसलिये मुझसे संयुत स देवता वहां ॥ २० ॥ चलैं कि जिससे शिवजी उस लिंगको तबतक स्थानमें स्थापितकरैं जबतक कि अकालमें उपजाहुआ प्रलय संसारमें न होवै ॥ २१ ॥

इसप्रकार सलाह करके तदनन्तर वे सब अर्बुद पर्वत पै प्राप्तहुये जहांकि बालखिल्यों के आश्रम में वह लिंग गिरा था ॥ २२ ॥ और विनय से संयुत देवताओं ने अनेकभांति के वेदोक्तसूक्तों से स्तुति किया देवता बोले कि हे देव देवेश ! तुम भक्तोंको अभय करनेवाले हो तुम्हारेलिये प्रणाम है ॥ २३ ॥ व सर्ववासी और सर्वयज्ञमय तुम्हारेलिये नमस्कार है व सर्वेश्वरदेव तथा परमज्योति के लिये प्रणाम है ॥ २४ ॥ और स्थूल व सूक्ष्म के लिये तथा ज्ञानमें जाने योग्य विधाता के लिये व त्रिलोचन तथा भीम व उत्तम पिनाकहाथवाले के लिये प्रणाम है ॥ २५ ॥ हे देवतोत्तम ! चराचर संसार में जो जो है वह सब सूत्रमें मणिगणों की

न्त्यतेसर्वे ततःप्राप्तार्बुदम्प्रति ॥ बालखिल्याश्रमेयत्र तल्लिङ्गंनिपपातह ॥ २२ ॥ तुष्टुवुर्विविधैःसूक्तैर्वेदोक्तैर्विनयान्विताः ॥ देवा ऊचुः ॥ नमस्तेदेवदेवेश भक्तानामभयङ्करः ॥ २३ ॥ नमस्तेसर्ववासाय सर्वयज्ञमयायच ॥ सर्वेश्वरायदेवाय परमज्योतिषेनमः ॥ २४ ॥ नमस्थूलायसूक्ष्माय ज्ञानगम्यायवेधसे ॥ त्र्यम्बकायचभीमाय पिनाकवरपाणये ॥ २५ ॥ त्वयिसर्वमितिप्रोक्तं सूत्रेमणिगणा इव ॥संसारे विबुधश्रेष्ठ यद्यत्स्थावरजङ्गमे ॥ २६ ॥ नतदस्तित्रिलोकेस्मिन्ससूक्ष्ममपिशङ्कर ॥ यत्त्वयानप्रभोव्याप्तं सृष्टिसंहारकारिणा ॥ २७ ॥ पृथिव्यादीनिभूतानि त्वयासृष्टानिकामतः ॥ यास्यन्तितवभूयोपि तवकायेजगत्पते ॥ २८ ॥ प्रसीदभगवंस्तस्माल्लिङ्गमेतत्सुरेश्वर ॥ स्थानेस्थापयभद्रन्ते यावन्नस्यात्प्रजाक्षयः ॥ २९ ॥ भगवानुवाच ॥ निर्विकारस्यमेलिङ्गं बालखिल्यैःप्रपातितम् ॥ कथंभूयःप्रगृह्णामि यावच्छुद्धिर्नजायते ॥ ३० ॥ शक्तोहंवालखिल्यानां निग्रहंकर्तुमञ्जसा ॥ किन्तुमेब्राह्मणामान्याः पूज्याश्चसुरस

नाईं तुम में कहागया है ॥ २६ ॥ हे शङ्करजी ! इस बहुतही सूक्ष्म त्रिलोकमें बहुत सूक्ष्म भी वह वस्तु नहीं है जो कि हे प्रभो ! सृष्टि के संहार करनेवाले आप से न व्याप्त होवै ॥ २७ ॥ हे जगत्पते ! पृथ्वी आदिक महाभूतों को तुमने इच्छा से रचा है और फिरभी तुम्हारे शरीरमें प्राप्त होवैंगे ॥ २८ ॥ इसलिये हे सुरेश्वर, भगवन् ! प्रसन्न होवो तुम्हारा कल्याण होवै और जबतक प्रजाओं का नाश न होवै तब तक इस लिंगको स्थान में स्थापित करो ॥ २९ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि विकाररहित मेरे लिंगको बालखिल्यों ने गिराया है उसको फिर कैसे ग्रहण करूं जबतक कि शुद्धि न होवै ॥ ३० हे सुरोत्तमो ! मैं बालखिल्योंका निग्रह (दंड) करने के लिये

समर्थ हूं परन्तु ब्राह्मण मेरे मानने व पूजने योग्य हैं ॥ ३१ ॥ हे विभो! यह अचल लिंग नहीं उठाया जा सक्ता है इसविषय में एकही उपाय कहागया है अन्य उपाय नहीं है ॥ ३२ ॥ हे पितामह ! यदि तुम पहले मेरे लिंगको पूजोगे तदनन्तर सब देवताओं के गण व उसके उपरान्त अन्य ब्राह्मण पूजेंगे ॥ ३३ ॥ उसके उपरान्त चराचर संसार शांतिको प्राप्त होगा ॥ ३४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर भगवान् शंकरजीसे ऐसा कहे हुये ब्रह्माजीने पहले उत्तम भक्ति से उस लिंग का पूजन किया ॥ ३५ ॥ और ब्रह्मा के बाद विष्णु तदनन्तर इन्द्र व उसके उपरान्त अन्य बालखिल्यादिक ब्राह्मणों ने शतरुद्रियमंत्रों से पूजन किया ॥ ३६ ॥

त्तमाः ॥ ३१ ॥ अचलंलिङ्गमेतद्धि नोद्धर्तुंशक्यतेविभो ॥ एकएवात्रनिर्दिष्ट उपायोनापरस्स्मृतः ॥ ३२ ॥ यदिमेत्वंपुरा लिङ्गं पूजयेथाःपितामह ॥ ततोदेवगणास्सर्वे ततोविप्रास्तथापरे ॥ ३३ ॥ ततोवैशान्तिमागच्छेज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ ३४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्तोभगवता शङ्करेणनृपोत्तम ॥ ततस्तत्पूजयामास ब्रह्मापूर्वंसुभक्तितः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणोनन्तरंविष्णुस्ततःशक्रस्ततोपरे ॥ बालखिल्यादयोविप्रा मन्त्रैश्चशतरुद्रियैः ॥ ३६ ॥ ततस्तेदारुणोत्पाता उपशान्ताश्चतत्क्षणात् ॥ अभवच्चसुखीलोको ववौमन्धवहोनिलः ॥ ३७ ॥ अथोवाचमहादेवः सर्वांस्तांस्त्रिदिवालयान् ॥ वरयध्ववंवरंसर्वे मत्तोयद्वोमनसिस्थितम् ॥ ३८ ॥ देवा ऊचुः ॥ तवलिङ्गस्यसंस्पर्शादपिपापकृतोनरः ॥ स्वर्गंयास्यन्तिदेवेश नाशंयास्यतिकिल्बिषम् ॥ ३९ ॥ व्रतदानानिसर्वाणि तीर्थयात्रायुतानिच ॥ तस्माद्वज्रेणदेवेन्द्रस्त्वैतल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ ४० ॥ छादयिष्यतिसर्वत्र यदित्वंमन्यसेप्रभो ॥ ४१ ॥ भगवानुवाच ॥ अभिप्रायोममाप्येव वर्त्तते

तदनन्तर उसीक्षण भयंकर उत्पात शान्त होगये और संसार सुखी हुआ व सुगंधि को प्राप्त करनेवाला पवन चलने लगा ॥ ३७ ॥ इसके अनन्तर महादेवजीने उन सब देवताओं से कहा कि जो मनमें स्थितहो उस वरको मुझसे सब मांगो ॥ ३८ ॥ देवता बोले कि हे देवेश ! तुम्हारे लिंगके स्पर्श से पाप को करनेवाले भी मनुष्य स्वर्गको जावैंगे व पातक नाशको प्राप्तहोगा ॥ ३९ ॥ और तीर्थ यात्रासे सयुत सब व्रत व दान होवैंगे इस कारण हे प्रभो ! यदि तुम मानो तो इन्द्रजी तुम्हारे इस

लिंगको सब कहीं वज्रसे आच्छादित करैं ॥ ४० । ४१ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! मेरेभी हृदय में यह अभिप्राय वर्तमान है इससे सब धर्मोंकी वृद्धि के लिये इन्द्रजी ऐसाही करैं ॥ ४२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर देवताओं के स्वामी इन्द्रने वज्रसे उस लिंगको आच्छादित किया जिसप्रकार कि वह लिंग अब सब मनुष्यों के अदृश्य हुआ ॥ ४३ ॥ आजभी स्पर्श के अभाव से उसकी समीपता के गुणसे मनुष्य निश्चयकर जन्मसे लगाकर मरणतक के पातक से छूटजाता है ॥ ४४ ॥ जिसलिये शंकरजीने उस लिंगको महान् कहा है तदनन्तर वज्रसे खींच कर जब वह पृथ्वी में आया ॥ ४५ ॥ तबसे लगाकर मृत्युलोक में लिंगका पूजन

हृदिपद्मज ॥ एवंकरोतुदेवेन्द्रः सर्वधर्मविवृद्धये ॥ ४२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततःसंछादयामास वज्रेणत्रिदशाधिपः ॥ तल्लिङ्गंसर्वमर्त्यानां मयादृश्यंऽयजायत ॥ ४३ ॥ अद्यापिस्पर्शनाभावात्तत्सान्निध्यगुणेनच ॥ आजन्ममरणात्पापा न्मुच्यतेमानवोध्रुवम् ॥ ४४ ॥ महत्तुकीर्तितंयस्मात्तल्लिङ्गं शङ्करेणतु ॥ सुवज्रेणचसंकृष्य ततोगाद्यत्धरातले ॥ ४५ ॥ ततःप्रभृतिलिङ्गस्य मर्त्येपूजाऽयजायत ॥ पुरासीच्छङ्करःपूज्यो यथान्येत्रिदिवालयाः ॥ ४६ ॥ एवमेतत्पुरावृत्तम र्बुदेपर्वतोत्तमे ॥ लिङ्गस्यपतनात्पूजां यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ ४७ ॥ फाल्गुनस्यचतुर्दश्यां नैवेद्यंनूतनैर्यवैः ॥ योद दात्यचलेशाय सभूयोनेहजायते ॥ ४८ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्यस्तु शक्त्यातस्मिन्नवैर्यवैः ॥ यवसंख्याप्रमाणानि युगा निदिविमोदते ॥ ४९ ॥ तत्रदानंप्रशंसन्ति सक्तूनांमुनिसत्तमाः ॥ यवदानंमहाराज यत्रप्रोक्तंपुरारिणा ॥ ५० ॥ किंदा नैर्विविधैर्दत्तैः किंवायज्ञैःसुविस्तरैः ॥ किंतीर्थैर्विविधैर्होमैस्तपोभिःकिंचकष्टदैः ॥ ५१ ॥ फाल्गुनेकृष्णभूतायां सुमहे

हुआ पुरातनसमय जैसे और सब देवता पूजेजाते थे वैसेही शंकरजी पूजनीय थे ॥ ४६ ॥ जो तुमने लिंगके गिरने से पूजनको पूंछा यह ऐसा वृत्तान्त पुरातनसमय उत्तम अर्बुदपर्वत पै हुआ है ॥ ४७ ॥ फागुनकी चौदसि में जो मनुष्य नये यवों से अचलेश्वर के लिये नैवेद्य देता है वह फिर इस संसार में नहीं होता है ॥ ४८ ॥ और जो शक्तिसे उस स्थान में नवीन यवों से ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह यवोंकी संख्याके प्रमाणभर युगोंतक स्वर्ग में आनन्द करता है ॥ ४९ ॥ वहां मुनि-श्रेष्ठ सत्तुवोंके दानकी प्रशंसा करते हैं जहां कि हे महाराज ! पुरारि शिवजी ने यवदानको कहा है ॥ ५० ॥ अनेकप्रकार के दिये हुये दानों से वह बहुत विस्तारित

यज्ञों से क्या है और अनेकप्रकारके होमों व तीर्थों से क्या है और कष्टदेनेवाले तपोंसे क्या है ॥ ५१ ॥ फागुन में कृष्णपक्षकी चौदसि में महादेवजीके समीप येसब धर्म सोलहवींकला के योग्य नहीं होते हैं ॥ ५२ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय जो यहां उत्तम आश्चर्य हुआहै उसको सुनिये कि कोई पाप आचरण व दुबले शरीरवाला कुष्ठी मनुष्य ॥ ५३ ॥ अन्य मनुष्यों से संयुत वहां भिक्षा के लिये आया और हे राजन् ! उसने वहां कुडवप्रमाण भर याने पक्के पावभरके लगभग सत्तुवों को भिक्षा से इकट्ठा किया ॥ ५४ ॥ तदनन्तर रोगके क्लेशसे उसने भोजन नहीं किया और घाससे विकल व भक्तिरहित उसने उसजलमें स्नान किया ॥५५॥ और सत्तुवों

ईश्वरसन्निधौ ॥ धर्माण्येतानिसर्वाणि कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ५२ ॥ शृणुराजन्पुरावृत्तमत्राश्चर्यंयदुत्तमम् ॥ कश्चित्पापसमाचारःकुष्ठक्षामतनुर्नरः ॥ ५३ ॥भिक्षार्थमागतस्तत्रलोकैरन्यैस्समन्वितः ॥ तेनभिक्षार्जितंतत्र सक्तूनांकुडवंनृप ॥ ५४ ॥ ततोरोगपरिक्लेशाद्भोजनंनचकारसः ॥ दाघार्दितोजलेतस्मिन्स्नातोभक्तिविवर्जितः ॥ ५५ ॥ सक्तून्कृत्वोपधानेतान्सचसुप्तोनिशागमे ॥ अथस्नानंयदाकृत्वा सचसुप्तोनिशागमे ॥ ५६ ॥ ततोनिद्राभिभूतस्य सारमेयोजहारच ॥ भक्षयामासयुक्तोन्यैः सारमेयैर्बुभुक्षितः ॥५७॥मन्मथाकारसदृशो दिव्यगन्धाम्बरस्रजम् ॥ अथासौविस्मयाद्राजन् पञ्चत्वंसमुपस्थितः ॥ ५८ ॥ ततोजातिस्मरोजातो विदर्भाधिपतेर्गृहे ॥ भीमोनामनृपश्रेष्ठ दमयन्तीपिताहिसः ॥ ५९ ॥ तत्प्रभावंहिविज्ञा यसक्तूनांतत्रपर्वते ॥ फाल्गुनस्यचतुर्दश्यां वर्षेवर्षेजगामसः ॥ ६० ॥ कृत्वाचैवोपवास

को मस्तक के नीचे धरकर वह रात्रिके आगमनमें सोगया इसके अनन्तर स्नान करके जब वह रात्रिके आगमन में सोगया ॥ ५६ ॥ तदनन्तर निद्रा से तिरस्कृत उस कुष्ठी के सत्तुवों को कुत्तेने हरलिया और अन्य कुत्तों से संयुत उस भूंखे कुत्तेने उसको खालिया ॥ ५७ ॥ और कामदेव के आकार समान व दिव्य सुगंधव वस्त्र तथा मालाको धारण करता भया इसके अनन्तरहे राजन् ! यह विस्मय से मृत्युको प्राप्तहुआ ॥ ५८ ॥ तदनन्तर हे नृपश्रेष्ठ विदर्भदेशकेराजा के घरमें वह दमयंती का पिता भीमनामक जातिको स्मरण करनेवाला हुआ ॥ ५९ ॥ सत्तुवोंके उस प्रभावको जानकर वह फागुनकी चौदसि मे प्रतिवर्ष उस पर्वतपै गया ॥ ६० ॥ तदनन्तर

उसने अचलेश्वर के समीप उपवास व रात्रिमें जागरणकर सुवर्णसमेत बहुत सत्तुवों को द्विजेन्द्रोंको और पशु, पक्षी व मृगोंके लिये दिया इसके अनन्तर हे राजन्! गालव इत्यादिक उन सब मुनियोंने ॥ ६१ । ६२ ॥ हे राजन्! कौतुकसंयुत होकर सत्तुवोंके दानकेलिये पूंछा ऋषिलोग बोले कि हाथी, घोड़े व रथोंके दानोंकी तुम को अद्भुत शक्ति है ॥ ६३ ॥ और सत्तुवोंको छोड़कर तुम किसलिये अन्यवस्तुको देनेकी इच्छा नहीं करतेहो ॥ ६४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि इसके अनन्तर इस राजा ने पूर्वजन्म में उपजेहुये सत्तुवोंके दानके माहात्म्यको शुद्धचित्तवाले मुनियों से कहा ॥ ६५ ॥ कि हे द्विजोत्तमो! पुरातनसमय भक्तिसे रहित कुत्तेने सत्तुवों को

न्तु रात्रौजागरणंतथा ॥ अचलेश्वरसान्निध्ये ददौसक्तूंस्ततोबहून् ॥ ६१ ॥ सहिरण्यान्द्विजेन्द्राणां पशुपक्षिमृगे षु च ॥ अथतेमुनयस्सर्वे गालवप्रमुखान्नृप ॥ ६२ ॥ पप्रच्छुःकौतुकाविष्टाः सक्तुदानकृतेनृप ॥ ऋषय ऊचुः ॥ हस्त्य श्वरथदानानां शक्तिरस्तितवाद्भुता ॥ ६३ ॥ कस्मात्सक्तून्प्रमुक्त्वात्वं नान्यन्दातुंत्वमिच्छसि ॥ ६४ ॥ पुलस्त्य उवा च ॥ अथासौकथयामास पूर्वजन्मसमुद्भवम् ॥ सक्तुदानस्यमाहात्म्यं मुनीनांभावितात्मनाम् ॥ ६५ ॥ पूर्वंभक्त्या विहीनेन शुनावैसक्तवोहृताः ॥ तत्प्रभावादियंप्राप्तिर्ममजाताद्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥ साम्प्रतंभक्तिदत्तानां किंस्याज्जा नामिनोफलम् ॥ एतस्मात्कारणाद्दानं सक्तूनांप्रकरोम्यहम् ॥ ६७ ॥ तीर्थेस्मिन्मुक्तिसंयुक्ते सत्येनात्मानमालभे ॥ ६८ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततस्तेमुनयोहृष्टाः साधुसाध्वितिचाब्रुवन् ॥ चक्रुश्चैवात्मनःशक्त्या सक्तूनांदानमुत्तमम् ॥ ६९ ॥ एवंप्रभावोराजर्षे सक्तुदानस्यकीर्तितः ॥ महेश्वरस्यमाहात्म्यं सत्यंचापिप्रकीर्तितम् ॥ ७० ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भ

हरलिया उसके प्रभाव से मुझको यह प्राप्तिहुई ॥ ६६ ॥ व इससमय भक्तिसे दिये हुये सत्तुवोंका क्या फल होगा इसको मैं नहीं जानताहूं इसकारण मैं मुक्तिसे संयुत इस तीर्थ में सत्तुवों का दान करताहूं यह सत्यसे अपनी सौगन्द करताहूं ॥ ६७ । ६८ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर प्रसन्न होतेहुये उन मुनियोंने बहुत अच्छा बहुत अच्छा ऐसा कहा व अपनी शक्तिसे सत्तुवों का उत्तम दान किया ॥ ६९ ॥ हे राजर्षे! सत्तुवोंके दानका ऐसा प्रभाव कहागया और महेश्वरजीका सत्य माहात्म्य

भी कहागया ॥ ७० ॥ हे द्विजोत्तमो ! जो मनुष्य कहेजाते हुये इस माहात्म्यको भक्तिसे सुनता है वह दिनरात्रिमें कियेहुये पातक से छूटजाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांशिवलिङ्गमाहात्म्यंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ ● ॥ ●

दो० । कामदेव को भस्मकिय यथा उमापति नाथ । चालिसवें अध्यायमें सोई वर्णित गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर कामेश्वरजीके समीप जावै जो लिंग कि कामदेवजीसे थापित है और जिसके देखनेपर मनुष्य सदैव स्वरूपवान् व सुन्दर ऐश्वर्यवान् होता है ॥ १ ॥ ययातिजी बोले कि तुमने पहले कहा है कि शिवजी

त्या कथ्यमानंद्विजोत्तमाः ॥ अहोरात्रकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेऽर्बुद माहात्म्येशिवलिङ्गमाहात्म्यन्नामनवत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच॥ ततःकामेश्वरंगच्छेद्यच्चकामप्रतिष्ठितम् ॥ यस्मिन्दृष्टेसदामर्त्यः सुरूपस्सुभगोभवेत् ॥ १ ॥ यया तिरुवाच ॥ त्वयाप्रोक्तंपुराशम्भुः कामबाणभयात्किल ॥ बालखिल्याश्रमंप्राप्तो यत्रलिङ्गंपपातह ॥ २ ॥ सकथंपूजित स्तेन शम्भुर्मेकौतुकंमहत् ॥ वदसर्वंद्विजश्रेष्ठ कामेश्वरसमुद्भवम् ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ मुक्तलिङ्गेपिदेवेशेनस्मर स्तंमुमोचह ॥ दर्शयन्नात्मनोबाणं तस्यासौपृष्ठतस्थितः ॥ ४ ॥ ततोवाराणसींप्राप्तस्तद्भीत्यात्रिपुरान्तकः ॥ तत्रापिच तथादृष्ट्वा धृतचापंमनोभवम् ॥ ५ ॥ ततःप्रयागमापन्नः केदारंचततःपरम् ॥ नैमिषंभद्रकर्णञ्च जम्बूमार्गंत्रिपुष्क रम् ॥ ६ ॥ गोकर्णंचप्रभासंच पुण्यंमारस्वतंतथा ॥ गङ्गाद्वारंगयाशीर्षं महाकालंवटेश्वरम् ॥ ७ ॥ किंवातेबहुनोक्तेन

कामदेवके बाणके भयसे बालखिल्यों के आश्रम में प्राप्तहुये जहां कि लिंग गिराहै ॥ २ ॥ उन शिवजीको उस कामदेव ने कैसे पूजाहै यह मुझको बड़ा कौतुक है हे द्विजोत्तम ! कामेश्वरसे उपजेहुये सब चरित्रको कहिये ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि लिंगको छोड़हुये भी देवेश शिवजीके ऊपर अपने उस बाणको दिखातेहुये कामदेव ने नहीं छोड़ा और यह कामदेव उन शिवजीके पीछे स्थितहुआ ॥ ४ ॥ तदनन्तर त्रिपुरविनाशक शिवजी उस कामदेव के डरसे काशीको प्राप्तहुये और वहाभी वैसे ही धनुषको धारणकिये कामदेवको देखकर ॥ ५ ॥ तदनन्तर प्रयागको प्राप्तहुये उसके उपरान्त केदार, नैमिष, भद्रकर्ण, जम्बूमार्ग, व त्रिपुष्करको गये ॥ ६ ॥ और

गोकर्ण, प्रभास व पवित्र सारस्वत क्षेत्र व हरद्वार, गयाशीर्ष, महाकाल व वटेश्वर को प्राप्तहुये ॥ ७ ॥ अथवा तुमसे बहुत कहने से क्या है शिवदेवजी असंख्य तीर्थों व देव मन्दिरोंकोगये और उन्होंने वेमही कामदेवजीको देखा ॥ ८ ॥ हे राजन् ! उसकामदेवके डरसे महादेवजी जहां जहां जातेथे वहां वहां अस्त्रको धारेहुये कामदेवको फिर देखते थे ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर किसीसमय शिवजी फिर अर्बुद पै प्राप्त हुये वहां उन्होंने कानतक खींचेहुये अस्त्रवाले कामदेवको वैसेही देखा ॥ १० ॥ कि हे नृपोत्तम ! एक पावको कुञ्चटेढ़ किये व दृष्टिको स्थिर किये है इसके अनन्तर वे भगवान् शिवजी थकगये व प्यारी पार्वतीजीके दुःख से संयुत हुये ॥ ११ ॥ व

तीर्थान्यायतनानिच ॥ असङ्ख्यानिगतोदेवः कामंचददृशेतथा ॥ ८ ॥ यत्रयत्रमहादेवस्तद्भयान्नृपगच्छति ॥ तत्रतत्र पुनःकामं प्रपश्यतिधृतायुधम् ॥ ९ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पुनःप्राप्तोर्बुदम्प्रति ॥ तत्रापश्यत्तथाकाममाकर्णाकर्षितायुधम् ॥ १० ॥ आकुञ्चितैकपादंच स्थिरदृष्टिंनृपोत्तम ॥ अथासौभगवाञ्छ्रान्तः प्रियादुःखसमन्वितः ॥ ११ ॥ क्रोधंचक्रेविशेषेण दृष्ट्वातंपुरतस्स्थितम् ॥ तस्यकोपाभिभूतस्य तृतीयान्नयनान्नृप ॥ १२ ॥ निश्चक्राममहाज्वाला ययासौभस्मसात्कृतः ॥ सचापःसशरोराजं स्तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥ १३ ॥ शङ्करोरोषपर्यन्तंगत्वासौख्यमनाप्तवान् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठं जगामसुरपूजितः ॥ १४ ॥ दग्धेमनोभवेभार्या रतिरस्यपतिव्रता ॥ व्यलपत्करुणंदीना पतिशोकपरिप्लुता ॥ १५ ॥ ततोदारूण्युपाहृत्य चितिंकृत्वानराधिप ॥ आरुरोहाग्निसंदीप्तां विनयात्सासुदुःखिता ॥ १६ ॥ ततश्चा

हे राजन् ! उस कामदेवको आगे खड़ेहुये देखकर शिवजीने विशेषतासे क्रोधकिया और क्रोधसे तिरस्कृत उन शिवजीके तीसरे नेत्रसे ॥ १२ ॥ बड़ीभारीज्वाला निकली कि जिससे हे राजन् ! धनुषसमेत व बाणसहित यह कामदेव उस पर्वतके किनारे पै भस्म करदिया गया ॥ १३ ॥ और क्रोध के अन्तको प्राप्तहोकर शंकरजी सुखको प्राप्तहुये व देवताओंसे पूजित वे श्रेष्ठ कैलास पर्वत पै गये ॥ १४ ॥ और कामदेव के जलनेपर पतिके शोकसे संयुत इसकी पतिव्रता रति स्त्रीने उदास होकर करुणा से विलाप किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर हे राजन् ! लकड़ियोंको लाकर चिता बनाकर वह बहुतही दुःखित रति नम्रतासे जलतीहुई अग्निवाली चिता पै चढ़ी ॥ १६ ॥

तदनन्तर यशस्विनी रतिने आकाशवाणीको सुना कि हे पुत्रि! मत साहस करो क्योंकि हे सुंदरि ! तुम तपस्यासे ॥ १७ ॥ प्रसन्न शिवजीसे फिर कामदेव पतिको पावोगी उस वाणीको सुनकर उससमय वह सुन्दर कटिवाली रति उठपड़ी ॥ १८ ॥ व रातदिन आलस्यरहित रतिने शिवदेवजीको व्रत, दान, जप, होम व अन्य उपासों से आराधन किया ॥ १९ ॥ तदनन्तर हज़ारवर्षके अन्तमें उसके ऊपर शिवजी प्रसन्नहुये व बोले कि हे कल्याणि ! जो मनमें स्थितहो उस वरदानको कहो ॥ २० ॥ रति बोली कि हे लोकभावन, भगवन्, देव ! यदि तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मेरा सुन्दर पति फिर अक्षत अंगोंवाला होवै ॥ २१ ॥ हे महाराज ! उस रतिसे ऐसा वचन

काशगांवाणीं सुश्रावचयशस्विनी ॥ मापुत्रिसाहसंकार्षीस्तपसात्वन्तुसुन्दरि ॥ १७ ॥ भूयःप्राप्स्यसिभर्तारं कामं तुष्टेनशम्भुना ॥ साश्रुत्वातांतदावाणींसमुत्तस्थौसुमध्यमा ॥१८॥ देवमाराधयामासदिवानक्तमतन्द्रिता ॥ व्रतैर्दानैर्जपै र्होमैरुपवासैस्तथापरैः ॥ १९ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते तुष्टस्तस्यांमहेश्वरः ॥ अब्रवीद्वदकल्याणि वरंयन्मसिस्थितम् ॥ २० ॥ रतिरुवाच ॥ यदितुष्टोसिमेदेव भगवल्लँोकभावन ॥ अक्षताङ्गःपुनःकामःकान्तोमेजायतांपतिः ॥ २१ ॥ एवमु क्तेतयावाक्ये तत्क्षणात्समुपस्थितः ॥ यथासुप्तोमहाराजतादृग्रूपश्चतत्पतिः ॥ २२ ॥ इक्षुयष्टिमयंचापं पुष्पबाणसम न्वितम् ॥ भृङ्गश्रेणिमयीमौर्व्या शोभितंसुमनोहरम् ॥ २३ ॥ ततोरतिसमायुक्तः प्रणिपत्यमहेश्वरम् ॥ अनुज्ञातस्तुते नैव स्वव्यापारेभ्यवर्तत ॥ २४ ॥ सदृष्ट्वाशिवमाहात्म्यं श्रद्धांकृत्वा नृपोत्तम ॥ शिवंसंस्थापयामास पर्वतेर्बुदसञ्ज्ञि ते ॥ २५ ॥ यस्मिन्दृष्टेमहाराज नारीवायदिवानरः ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव नदौर्भाग्यमवाप्नुयात् ॥ २६ ॥ एवमेत

कहनेपर वह वैसे रूपवाला उसका पति कामदेव उसीक्षण स्थित हुआ जैसा कि सोताहुआ मनुष्य होवै ॥ २२ ॥ फूलोंके बाणमे संयुत ऊंखदण्डका धनुष भौरों की पंक्तिमयी प्रत्यंचासे शोभित व मनोहर था ॥ २३ ॥ तदनन्तर महादेवजीको प्रणामकर उन्हीं शिवजीसे आज्ञाको पाये हुये रतिसे संयुत कामदेव अपने व्यापारमें वर्त- मान हुआ ॥ २४ ॥ हे नृपोत्तम ! उस कामदेवने शिवजीके माहात्म्य को देखकर श्रद्धाकरके अर्बुदनामक पर्वत पै शिवजीको स्थापन किया ॥ २५ ॥ हे महाराज !

जिसके देखने पर स्त्री या पुरुष सात जन्मों के मध्यमें दुर्भाग्यता को नहीं प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ जो तुमने मुझसे पूँछा इस कामदेव के माहात्म्य व कामदेवके दाहको मैंने विस्तारसमेत तुमसे कहा ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकामेश्वरमाहात्म्यंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

दो० । मार्कंडेय मुनीश जिमि आश्रम करि तप कीन । इकतालिसवें में सोई कह्यो चरित रसभीन ॥ पुलस्त्य जी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर मार्कंडेयजीके आश्रम को जावै जहा कि पुरातनसमय महात्मा मार्कंड ने तपस्या किया है ॥ १ ॥ पुरातनसमय प्रशंसित नियमवाले मार्कंडनामक ब्राह्मण हुये हैं उसके अन्तावस्था में बड़ा

न्मयाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ कामेश्वरस्यमाहात्म्यं कामदाहंसविस्तरम् ॥ २७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेऽर्बुदमाहात्म्येकामेश्वरमाहात्म्यन्नामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ मार्कण्डेयस्यचाश्रमम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं मार्कण्डेनमहात्मना ॥ १ ॥ मार्कण्डोब्राह्मणोनामपुरासीच्छंसितव्रतः ॥ अन्तेवयसिसञ्जातस्तस्यपुत्रोतिसुन्दरः ॥ २ ॥ सर्वलक्षणसम्पूर्णःशान्तःसूर्यसमप्रभः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्याश्रमपदेनृप ॥ ३ ॥ आगतोब्राह्मणोज्ञानी कश्चित्सामुद्रवित्शुभः ॥ ततोसौ क्रीडमानस्तुबालकःपञ्चवार्षिकः ॥ ४ ॥ आनखाग्रशिखाग्राभ्यां चिरंचैवावलोकितः ॥ ततोभूद्विस्मितोराजंस्तंमृकण्डः प्रलक्षयन् ॥ ५ ॥ अथाब्रवीच्चिरंदृष्टस्त्वयापुत्रोममद्विज ॥ ततोहसितवान्भूयःकिमिदंकारणंवद ॥ ६ ॥ असकृत्समृकण्डेन यावत्पृष्टोद्विजोत्तमः ॥ उपरोधवशात्तस्मै यथार्थंसन्यवेदयत ॥ ७ ॥ अस्यबालस्यचिह्नानि यानिकानिद्वि

सुन्दर पुत्र पैदाहुआ ॥ २ ॥ जो कि सब लक्षणोंसे पूर्ण व शान्त तथा सूर्य के समान प्रभावान् था इसके अनन्तर किसीसमय उसके आश्रम (स्थान) में ॥ ३ ॥ कोई सामुद्रिकशास्त्रका जाननेवाला उत्तम ज्ञानी ब्राह्मण आया तदनन्तर खेलते हुयेइस पाच वर्षके बालकको ॥ ४ ॥ नखोंके अग्रभागसे लगाकर शिखाके अग्रभाग तक उस ब्राह्मणने बहुतदेरतक देखा तदनन्तर हे राजन् ! उस ब्राह्मणको देखतेहुये मृकंडजी विस्मित हुये ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर बोले कि हे द्विज ! तुमने बहुत देरतक मेरे पुत्रको देखा तदनन्तर फिर तुम हँसे यह क्या कारण है इसको कहिये ॥ ६ ॥ जब मृकण्डजीने बार २ उस द्विजोत्तमसे पूँछा तब उसने हठके वशसे उनसे यथार्थ

बतलाया ॥ ७ ॥ कि हे द्विजोत्तम ! इस बालकके जो कोई चिह्न देख पड़ते हैं उनसे मनुष्य अजर व अमर होता है ॥ ८ ॥ और छः महीने में निश्चयकर इस बालककी मृत्यु होगी हे द्विजोत्तम ! इसकारण मैंने हास्य किया ॥ ९ ॥ और स्वच्छंदतासे भी मैंने कभी पहले झूंठ नहीं कहा है ॥ १० ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर वह ज्ञानी वहां रात्रिभर वसकर मृकंडजीसे आज्ञा को लेकर प्रिय देशको चलागया ॥ ११ ॥ तदनन्तर दुःखित मृकंडजी ने भी पुत्रको क्षीणआयुर्बल जान-कर पांचवर्षकी अवस्थावाले भी उसको यज्ञोपवीत से संयुत किया ॥ १२ ॥ व कहा कि हे पुत्र ! शास्त्रपाठ से संयुत जिस जिसको आगे देखना उसका सदैव तुमको

जोत्तम ॥ अजरश्चामरश्चैव तैर्भवेत्पुरुषः किल ॥ ८ ॥ षण्मासेनास्यबालस्य नूनंमृत्युर्भविष्यति ॥ एतस्मात्कारणाद्धास्यं मयाकारिद्विजोत्तम ॥ ९ ॥ अनृतंनोक्तपूर्वमस्वैरेष्वपिकदाचन ॥ १० ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एवमुक्त्वातुसज्ञानी उषित्वातत्रशर्वरीम् ॥ मृकण्डेनाभ्यनुज्ञात इष्टदेशंजगामह ॥ ११ ॥ मृकण्डोपिसुतंज्ञात्वा ततःक्षीणायुषन्नृप ॥ पञ्चवार्षिकमप्यास्तंश्चकारोपनयान्वितम् ॥ १२ ॥ श्रुताध्ययनसम्पन्नं यंयंपश्यसिचाग्रतः ॥ तस्याभिवादनंकार्यं त्वया पुत्रकनित्यशः ॥ १३ ॥ तच्चक्रेसब्रह्मचारी पितुर्वाक्यंविशेषतः ॥ बालंवृद्धंयुवानञ्च यंयंपश्यतिचक्षुषा ॥ १४ ॥ नमस्करोतितंसर्वं ब्राह्मणंविनयान्वितः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तस्याश्रमसमीपतः ॥ १५ ॥ सप्तर्षयःसमायातास्तीर्थयात्रापरायणाः ॥ अथतान्सत्वरङ्गत्वा वन्दयामासपार्थिव ॥ १६ ॥ बालःसविनयोपेतः सर्वांश्चैवयथाक्रमम् ॥ दीर्घायुर्भवतेत्युक्तः सबालस्तुष्टितत्परैः ॥ १७ ॥ प्रस्थिताश्चयथाभीष्टं देशंबालंविसर्ज्यतम् ॥ तेषांमध्येगिरानाम दिव्यज्ञान

प्रणाम करना चाहिये ॥ १३ ॥ उस ब्रह्मचारी बालक ने उस पिताके वचन को विशेषकर किया कि बाल, वृद्ध व ज्वान जिस जिसको यह दृष्टि से देखता था ॥ १४ ॥ उस सब ब्राह्मणको विनय से संयुत वह प्रणाम करता था इसके अनन्तर किसीसमय उसके आश्रम के समीप ॥ १५ ॥ तीर्थयात्रा में परायण सप्तर्षिलोग आये इसके अनन्तर हे राजन् ! उस विनयसंयुत बालकने शीघ्रही जाकर उन सबोंको क्रमसे प्रणाम किया और प्रसन्नता में तत्पर उन सप्तर्षियों ने उस बालक से कहा कि दीर्घायु होवो ॥ १६ । १७ ॥ और उस बालक को बिदाकर सप्तर्षिलोग प्रियके अनुकूल देशको चले उन सप्तर्षियों के मध्य में दिव्यज्ञान से संयुत अंगिरानामक जो मुनि

थे ॥ १८ ॥ हे परंतप ! उन्होंने बालक को सूक्ष्म दृष्टिसे देखा इसके अनन्तर विस्मयसंयुत उन्होंने उन सब मुनियों से कुछ कहा ॥ १९ ॥ कि यह बालक दीर्घायु नहीं है और तुमलोगों से वह कहागया है बरन यह बालक पाचवें दिन मृत्युको प्राप्त होगा ॥ २० ॥ हे द्विजोत्तमो ! उसविषय में हमलोगों का वचन असत्य योग्य नहीं है इससे जिसप्रकार यह दीर्घजीवी होवै वैसी नीति कीजावै ॥ २१ ॥ इसके अनन्तर हे राजन् ! वे मुनि मिथ्या वचन को डरे और उससमय उसबालक को लेकर ब्रह्मलोक को गये ॥ २२ ॥ वहा चतुरानन जी (ब्रह्मा) को देखकर मुनीश्वरोंने प्रणाम किया उनके बाद उसबालक ने प्रणाम किया ॥ २३ ॥ और उन

समन्वितः ॥ १८ ॥ तेनावलोकितोबालः सूक्ष्मदृष्ट्यापरन्तप ॥ अथतानब्रवीत्सर्वान् मुनीन्किञ्चित्सविस्मयः ॥ १९ ॥ दीर्घायुर्न्नहिबालोयं युष्माभिःसंप्रकीर्तितः ॥ गमिष्यतिकुमारोयं निधनंपञ्चमेदिने ॥ २० ॥ तत्रयुक्तंहिनोवाक्यमसत्यंद्विजसत्तमाः ॥ यथायंचिरंजीवीस्यात्तथानीतिर्विधीयताम् ॥ २१ ॥ अथतेमुनयोभीता मिथ्यावाक्यस्यपार्थिव ॥ बालकंतंसमादाय ब्रह्मलोकंगतास्तदा ॥ २२ ॥ तत्रदृष्ट्वाचतुर्वक्त्रं नमश्चक्रुर्मुनीश्वराः ॥ तेषामनन्तरंतेन बालकेनाभिवादितः ॥ २३ ॥ दीर्घायुर्भवतेनापि ब्रह्मणोक्तःसबालकः ॥ ततःसप्तर्षयोहृष्टाः स्वचित्तेनृपसत्तम ॥ २४ ॥ सुखासीनान्सुविश्रान्तानप्येतान्मुनिपुङ्गवान् ॥ ब्रह्मापप्रच्छकिंकार्यं कुतोयूयमिहागताः ॥ २५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेन भ्रममाणामहीतले ॥ अर्बुदंपर्वतंनाम तस्यतीर्थेषुवैगताः ॥ २६ ॥ अथागत्यद्रुतंदूराद् बालेनानेनवन्दिताः ॥ दीर्घायुर्भवसंदिष्टस्ततश्चायमनेकधा ॥ २७ ॥ पञ्चमेदिवसेस्यापि मृत्युर्देवभविष्यति ॥ यथावयंत्वयासार्द्धमसत्या

ब्रह्माने भी उसबालक से कहा कि दीर्घायु होवो तदनन्तर हे नृपोत्तम ! सप्तर्षिलोग अपने चित्तमें प्रसन्न हुये ॥ २४ ॥ और सुख से बैठे व सहँताये हुये इन मुनिश्रेष्ठों से ब्रह्माने पूंछा कि क्या कार्य है व तुमलोग किसकारण यहां आयेहो ॥ २५ ॥ ऋषिलोग बोले कि तीर्थयात्राके प्रसङ्ग से घूमतेहुये हमलोग पृथ्वी में जो अर्बुदनामक पर्वत है उसके तीर्थों में गये ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर दूरसे शीघ्रही आकर इस बालक ने हमलोगों को प्रणाम किया तदनन्तर हमलोगों ने इससे अनेक प्रकार से कहा कि दीर्घायु होवो ॥ २७ ॥ व हे देव ! इसकी पाचवें दिन मृत्यु होगी हे चतुर्मुख ! जिसप्रकार तुमसमेत हम असत्य न होवैं हे देव ! इसके लिये वैसाही

कुछ कियाजावै इसके अनन्तर प्रसन्नचित्त ब्रह्माने उस मुनिबालकको देखकर ॥ २८ । २९ ॥ कहा कि मेरी प्रसन्नता से यह बालक कल्पपर्यंत आयुर्बलवान् होगा तदनन्तर वे प्रसन्न मुनिलोग उसको लेकर ब्रह्माजी को प्रणामकर ब्रह्मलोक से घरको चले इसके अनन्तर वहा उसके पिता मुनिश्रेष्ठ मृकण्डजीने ॥ ३० । ३१ ॥ स्त्रीसमेत बहुत दुःखित होकर विलाप किया कि हे धर्मवत्सल, स्वभावही से करुण, हा पुत्र, पुत्र ! ॥ ३२ ॥ मुझसे न पूंछकर किसकारण दीर्घमार्ग में स्थित हुये और करनेयोग्य कार्यों को न करके किसकारण मृत्यु के वश में प्राप्तहुये हो ॥ ३३ ॥ हे पुत्र ! सो मैं तुम्हारे विना किसीप्रकार नहीं जिऊँगा हे नृपोत्तम ! इसभांति

नचतुर्मुख ॥ २८ ॥ भवामोस्यकृतेदेव तथाकिञ्चिद्विधीयताम् ॥ अथब्रह्माप्रहृष्टात्मा दृष्ट्वातंमुनिदारकम् ॥ २९ ॥ म त्प्रसाददयंबालो भावीकल्पायुरब्रवीत् ॥ ततस्तेमुनयोहृष्टास्तमादायगृहम्प्रति ॥ ३० ॥ प्रस्थिताब्रह्मलोकात्तु नमस्कृ त्वाचतुर्मुखम् ॥ अथतस्यपितातत्र मृकण्डोमुनिसत्तमः ॥ ३१ ॥ ततोभार्यासमायुक्तो विललापसुदुःखितः ॥ हापुत्रपु त्रकरुणप्रकृत्याधर्मवत्सल ॥ ३२ ॥ अनामन्त्र्यचमांकस्माद्दीर्घंपन्थानमाश्रितः ॥ अकृत्वापिक्रियाःकार्याः कथंमृत्यु वशंगतः ॥ ३३ ॥ सोहंत्वयाविनापुत्र नजीवामिकथञ्चन ॥ एवंविलपतस्तस्य बहुधानृपसत्तम ॥ ३४ ॥ बालश्चाभ्याग तस्तत्र प्रदेशेपुरतःस्थितः ॥ यदासआययौबालः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३५ ॥ तन्दृष्ट्वासपितातस्य संप्रहृष्टोबभूवह ॥ पप्रच्छाङ्कंसमारोप्य चिरागमनकारणम् ॥ ३६ ॥ ततःसकथयामास सर्वंमुनिविचेष्टितम् ॥ दर्शनंब्रह्मलोकस्य पद्मयो नेर्वरंतथा ॥ ३७ ॥ बालक उवाच ॥ अजरश्चामरश्चाहं कृतोदेवेनशम्भुना ॥ तस्मादेवमदर्थेते व्येत्वसौमानसो

बहुतप्रकार से उसको विलाप करतेहुये ॥ ३४ ॥ उसस्थान में बालक आया व आगे स्थित हुआ जब वह बालक प्रसन्नचित्त से आया ॥ ३५ ॥ तब उसको देखकर उसका वह पिता बहुतप्रसन्न हुआ और गोदी में बिठाकर उसने बहुत देरमें आनेका कारण पूंछा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर उस बालक ने सब मुनियों की कर्तव्यता को कहा व ब्रह्मलोक तथा पद्मयोनि के उत्तमदर्शन को कहा ॥ ३७ ॥ बालक बोला कि शिवदेवजी से मैं अजर व अमर कियागया उसीकारण मेरेलिये तुम्हारा यह

मानसीज्वर जाता रहे ॥ ३८ ॥ सो मैं उत्तम अर्बुदपर्वत पै सुन्दर आश्रमस्थान करके वैसेही चतुराननं ब्रह्माजी को आराधन करूंगा ॥ ३९ ॥ अमृत को टपकानेवाले पुत्रके उसवचन को सुनकर उन हर्षसंयुत मृकण्डजी ने बहुत अच्छा ऐसा उसबालक से कहा ॥ ४० ॥ और मार्कण्डजी ने भी शीघ्रही सुन्दर अर्बुदपर्वत पै जाकर ब्रह्मादेव को ध्यान करतेहुये उन्होंने बहुत विस्तारवाला तप किया ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! उनके पवित्र आश्रम में जो सावन महीने में विशेषकर पौर्णमासी तिथि में पितरों का तर्पण करता है ॥ ४२ ॥ उसको निस्सन्देह सब पितृमेध का फल होताहै और ऋषियों के योगसे जो वहां द्विजोत्तमों को तर्पण करता है ॥ ४३ ॥

ज्वरः ॥ ३८ ॥ सोहमाराधयिष्यामि तथैवचतुराननम् ॥ कृत्वाश्रमपदंरम्यमर्बुदेपर्वतोत्तमे ॥ ३९ ॥ अमृतस्राविततद्वाक्यं श्रुत्वापुत्रस्यसद्विजः ॥ मृकण्डोहर्षसंयुक्तो बाढमित्यब्रवीत्तम् ॥ ४० ॥ मार्कण्डोपिद्रुतंगत्वा रम्यमर्बुदपर्वतम् ॥ तपस्तेपेसुविस्तीर्णं ध्यायन्देवंपितामहम् ॥ ४१ ॥ तस्याश्रमपदेपुण्ये श्रावणेमासिपार्थिव ॥ पौर्णमास्यांविशेषेण करोति पितृतर्पणम् ॥ ४२ ॥ पितृमेधफलंतस्य सकलंस्यादसंशयम् ॥ ऋषियोगेनयस्तत्र तर्पयेद्ब्राह्मणोत्तमान् ॥ ४३ ॥ ब्रह्मलोकेचिरंवासस्तस्यसंजायतेनृप ॥ यःस्नानंकुरुतेतत्र सम्यक्श्रद्धासमन्वितः ॥ ४४ ॥ नाल्पमृत्युभयंतस्य कुलेकापिप्रजायते ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेर्बुदमाहात्म्येमार्कण्डेयोत्पत्तिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ लिङ्गंपापहरंपरम् ॥ उद्दालकेनमुनिना स्थापितंलोकविश्रुतम् ॥ १ ॥ नगपृष्ठेतत्रदृष्टे पूजितेचविशेषतः ॥ सर्वरोगविनिर्मुक्तो गार्हस्थ्यंप्राप्नुयान्नरः ॥ २ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकेमही

हे राजन् ! उसका बहुत दिनतक ब्रह्मलोक में वास होताहै और भलीभांति श्रद्धासंयुत जो मनुष्य उसतीर्थ में स्नान करताहै ॥ ४४ ॥ उसके वंशमेंभी कभी अल्पमृत्यु का डर नहीं होताहै ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांमार्कण्डेयोत्पत्तिर्नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ❀ ॥

दो० । उद्दालक मुनिनाथ जिमि थाप्यो है शिवदेव । बैयालिस अध्याय में सोई वर्णितभेव ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर उद्दालकमुनिसे थापे हुये संसारमें प्रसिद्ध अन्य पापहारक लिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ पर्वत के पृष्ठ पै उसके देखनेपर व विशेषकर पूजनेपर सब रोगों से छूटा हुआ मनुष्य गृहस्थाश्रम

को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ और सब पापोंसे छूटा हुआ वह शिवलोक में पूजाजाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कान्देऽर्बुदखण्डेद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥

दो॰ । जिमि सिद्धेश्वरलिंगको थाप्यो है सब सिद्ध । तैंतालिस अध्याय में सोई चरित प्रसिद्ध ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर पहले सिद्धों से थापे हुये सब पातकों को नाशनेवाले व सिद्धदायक लिंग के समीप जावै ॥ १ ॥ वहां निर्मल जल से संयुत उत्तम कुंड है उसमें भलीभांति नहाया हुआ मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाताहै ॥ २ ॥ हे राजन् ! जिस जिस कामनाको ध्यानकर मनुष्य उसमें नहाताहै उसको अवश्यकर पाताहै व प्राणान्त में उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेप्रभासखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांसिद्धेश्वरमहिमवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥

दो॰ । दिशागजन जहँ तप कियो सो तीरथ गज नाम । चौवालिसवें में सोई कह्यो चरित अभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर हाथियों के उत्तमकुण्ड के समीप जावै जहां कि पुरातनसमय पृथ्वीका भार धरनेवाले शुद्ध चित्तवाले दिग्गजों व अन्य ऐरावत आदिक हाथियोंने तप कियाहै हे राजन् ! उसमें से भलीभांति नहायाहुआ मनुष्य गजदान के फलको पाताहै ॥ १ । २ ॥ इति श्रीस्कान्देऽर्बुदखण्डेचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ॥

यते ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदमाहात्म्यउद्दालकेश्वरमहिमवर्णनन्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ सिद्धलिङ्गंसुसिद्धिदम् ॥ सिद्धैस्तुस्थापितंपूर्वं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्रास्तिशोभनंकुण्डं सुनिर्मलजलान्वितम् ॥ तत्रस्नातोनरःसम्यङ्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ २ ॥ यंयंकाममभिध्याय तत्रस्नातिनरोनृप ॥ अवश्यंसमवाप्नोति निष्क्रमेचपराङ्गतिम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदमाहात्म्येसिद्धेश्वरमहिमवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ हस्तिनांह्रदमुत्तमम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं दिग्गजैर्भावितात्मभिः ॥ १ ॥ भूभारधरणैश्चान्यैरैरावणमुखैर्नृप ॥ तत्रस्नातोनरःसम्यग् गजदानफलंलभेत् ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदतीर्थमाहात्म्येगजतीर्थप्रभाववर्णनन्नामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । देवखात इमि तीर्थ जिमि तीरथ भयो उदार । पैंतालिसवें में सोई बरन्यो चरित सुखार ॥ पुलस्त्यजी बोले हे भूपते ! तदनन्तर अतिपवित्र व उत्तम देवखात तीर्थको जावै जो कि हे राजन् ! आपही सब देवताओं से खोदागया है ॥ १ ॥ हे राजन् ! कन्याराशिमें सूर्य प्राप्त होनेपर विशेषकर जो अमावस तिथिमें श्राद्ध करता है वह परमपद को पाताहै ॥ २ ॥ और वह दुर्गति को प्राप्त भी पितरोंको तारताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायादेवखातोत्पत्तिर्नामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ देवखातंततोगच्छेत सुपुण्यंतीर्थमुत्तमम् ॥ यत्खातंविबुधैःसर्वैः स्वयमेवमहीपते ॥ १ ॥ तत्रयः कुरुतेश्राद्धममावस्यांविशेषतः ॥ कन्यागतेरवौराजन् सलभेत्परमंपदम् ॥ २ ॥ पितॄन्सतारयत्येव प्राप्तानपिसुदुर्गतिम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेश्रीदेवखातोत्पत्तिर्नामपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोव्यासेश्वरंगच्छेद् व्यासेनस्थापितंहियत् ॥ तद्दृष्ट्वाजायतेमर्त्यो मेधावान्मतिमाञ्छुचिः ॥ १ ॥ सप्तजन्मान्तराण्येव व्यासस्यवचनंयथा ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेव्यासतीर्थमाहात्म्यंनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ सुपुण्यंगौतमाश्रमम् ॥ यत्रपूर्वंतपस्तप्तं गौतमेनमहात्मना ॥ १ ॥ पुरासीद्

दो० । जिमि व्यासेश्वर लिंगको थप्यो व्यास मुनिनाथ । छियालिसें अध्याय में सोई वर्णित गाथ ॥ व्यासजी बोले कि तदनन्तर व्यासेश्वरजी के समीप जावै जो लिंग कि व्यासजी से थापागया है उसको देखकर मनुष्य सातजन्मों के मध्य में बुद्धिमान् व मतिमान् और पवित्र होताहै जैसा कि व्यासजी का वचन है ॥ १ । २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायाव्यासलिङ्गमाहात्म्यनामषट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ ❁ ॥

दो० । गौतममुनि को भयो जिमि आश्रम अतिसुखदाय । सैंतालिसवें में सोईकह्यो चरित्र सुहाय ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अतिपवित्र गौतम

जीके आश्रम को जावै जहा कि पुरातनसमय महात्मा गौतमजी ने तप किया है ॥ १ ॥ पुरातनसमय बड़े धर्मिष्ठ गौतमनामक मुनि हुये हैं उन्हों ने भक्तिसे देवदेव महेश्वरजी को आराधन किया है ॥ २ ॥ और आराधन करतेहुये गौतमजीकी भक्ति से बड़ाभारी उत्तम शैव लिंग पृथ्वीको फोड़कर उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ इसीसमय आकाशवाणी बोली कि भक्तिसे प्राप्त इस बड़ेभारी लिंगको तुम पूजो ॥ ४ ॥ व तुम्हारा कल्याण होवै और जो तुम्हारे मनमें वर्तमान होवै उस वरको मांगो गौतमजी बोले कि हे शम्भो,जगत्पते, देव ! इस आश्रम (स्थान) में ॥ ५ ॥ मेरे वचन से निरसन्देह सदैव समीपता करना चाहिये शिवजी बोले कि तुम्हारे वचन से यहीं

गौतमोनाम मुनिःपरमधार्मिकः ॥ सभक्त्याराधयामास देवदेवंमहेश्वरम् ॥ २ ॥ भक्त्याराधयमानस्य निर्भिद्यधरणीतलम् ॥ समुत्तस्थौमहल्लिङ्गंपरंमाहेश्वरन्नृप ॥ ३ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतु वागुवाचाशरीरिणी॥ पूजयैनंमहल्लिङ्गंत्वंभक्त्यासमुपस्थितम् ॥ ४ ॥ वरंवरयभद्रन्ते यत्तेमनसिवर्त्तते ॥ गौतम उवाच ॥ अत्राश्रमपदेदेव त्वयाशम्भोजगत्पते ॥ ५ ॥ सदाकार्यंहिसान्निध्यं ममवाक्यादसंशयम् ॥ शिव उवाच ॥ अत्रैवममसान्निध्यं तववाक्याद्भविष्यति ॥ माघमासेचतुर्द्दश्यां योत्रमांवीक्षयिष्यति ॥ ६ ॥ कृष्णायांब्राह्मणश्रेष्ठ सयास्यतिपराङ्गतिम् ॥ एवमुक्त्वाततोवाणी विराममहीपते ॥ ७ ॥ यस्तंपश्यतिसद्भक्त्या ब्रह्मलोकंसगच्छति ॥ तत्रास्तिकुण्डमपरं पवित्रंजलपूरितम् ॥ ८ ॥ तत्रस्नातोनरस्सद्यः कुलन्तारयतेखिलम् ॥ यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं विशेषादिन्दुसंक्षये ॥ ९ ॥ गयाश्राद्धफलन्तेन सकलंलभतेनरः ॥ तत्रदानंप्रशंसन्ति तिलानांमुनिपुङ्गवाः ॥ १० ॥तिलसङ्ख्यानिवर्षाणि दानात्स्वर्गेवसेन्नृप ॥ अर्बुदेगौतमी

पर मेरी समीपता होगी और माघमहीने में कृष्णपक्षवाली चौदसि तिथिमें जो मनुष्य यहां मुझको देखैगा हे द्विजश्रेष्ठ ! वह उत्तम गतिको प्राप्तहोगा ऐसा कहकर तदनन्तर हे भूपते ! आकाशवाणी चुप होरही ॥ ६ । ७ ॥ जो मनुष्य उन शिवजी को उत्तमभक्ति से देखताहै वह ब्रह्मलोक को जाताहै और वहां जलसे पूरित अन्य पवित्र कुण्ड है ॥ ८ ॥ उसमें नहाया हुआ मनुष्य उसीक्षण सब वंशको तारता है और विशेषकर अमावस में जो वहां श्राद्ध करता है ॥ ९ ॥ उससे मनुष्य गयाश्राद्ध के सब फलको प्राप्त होताहै और वहां मुनिश्रेष्ठलोग तिलों के दानकी प्रशंसा करते हैं ॥ १० ॥ व हे राजन् ! तिलोंके दानसे मनुष्य तिलोंकी संख्याभर वर्षोंतक

स्वर्ग में बसता है और बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होनेपर अर्बुदपर्वत पै गौतमीयात्रा होती है ॥ ११ ॥ व सोमवार अमावस में जो गोदावरीनदी में फल होताहै व साठ हज़ार वर्षतक गङ्गाजी के स्नानमें जो फल होताहै ॥ १२ ॥ वह फल बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होनेपर एकबार गोदावरी के स्नानमें होताहै ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायागौतमाश्रममाहात्म्यंनामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ॥ ॥

दो॰ । जिमि उत्तम तीरथ भयो कुलसंतारण नाम । अर्तालिसवें में सोई चरित कह्यो अभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि वहां अतिउत्तम कुलसंतारणतीर्थ को जावै

यात्रा सिंहस्थेचबृहस्पतौ ॥ ११ ॥ अमायांसोमवारेण यच्चगोदावरीफलम् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि भागीरथ्यवगाहने ॥ १२ ॥ सकृद्गोदावरीस्नाने सिंहस्थेचबृहस्पतौ ॥ १३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेगौतमाश्रमोत्पत्तिर्नामसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ कुलसन्तारणंगच्छेत्तत्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरःसम्यक् कुलंतारयतेखिलम् ॥ १ ॥ दशपूर्वान्भविष्यांश्च तथात्मानंनृपोत्तम ॥ उद्धरेच्छ्रद्धयायुक्तस्तत्रदानेनमानवः ॥ २ ॥ आसीदप्रस्तुतोनाम राजापूर्वंतुपापकृत ॥ नास्यदानंनचज्ञानं स्वाध्यायोनचसत्क्रिया ॥ ३ ॥ तस्मिञ्च्छासतिलोकानां नासीत्सौख्यंकदाचन ॥ परदाररुचिर्नित्यं महादण्डपरश्चसः ॥ ४ ॥ न्यायतोन्यायतोवापि करोतिधनसंग्रहम् ॥ नचार्जयतिलोकान्स निर्दोषान्पापकृत्तमः ॥ ५ ॥ ततोवार्धक्यमापन्नो दुष्टकर्मसमन्वितः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य पितृभिःप्रतिबोधितः ॥ ६ ॥

जिसमें भलीभांति नहायाहुआ मनुष्य समस्त कुलको तारता है ॥ १ ॥ हे नृपोत्तम ! श्रद्धासे संयुत मनुष्य वहां दानसे दश पहलेवाले दश भविष्य और अपना का तारता है ॥ २ ॥ पुरातनसमय अप्रस्तुतनामक पापकारी राजा हुआहै इसके न दान न ज्ञान व वेदपाठ और न उत्तमकर्म था ॥ ३ ॥ उसके राज्य करनेपर कभी मनुष्योंको सुख नहीं हुआ वह सदैव पराई स्त्रीमें रुचिवाला मनुष्य बड़ेदण्डमें तत्पर था ॥ ४ ॥ और न्याय व अन्याय से भी धनको इकट्ठा करता था व बड़ा पापकारी वह मनुष्य दोषरहित लोकोंको नहीं संग्रह करता था ॥ ५ ॥ तदनन्तर दुष्टकर्म से संयुत वह वृद्धताको प्राप्तहुआ इसके अनन्तर किसीसमय नरकवाले दुःखित पितरों ने सोतेहुये

राजाके समीप प्राप्त होकर उसको समझाया पितर बोले कि शुद्ध आचरणवाले हमलोग सदैव धर्ममें परायण थे ॥ ६।७ ॥ और दान,यज्ञ,व तपस्या करनेवाले और अपनी स्त्रियों में तत्पर थे हे कुलांगार ! अपने कर्मोंसे हमलोग यथायोग्य स्वर्गको प्राप्तहुये ॥ ८ ॥ और तुझ कुपुत्र को प्राप्त होकर हमलोग नरक को प्राप्तहुये इस कारण कुछ पुण्यको इकट्ठा करके हम सबोंको उधारिये ॥९॥ हे पापात्मन् ! तुम्हारे कर्मोंसे हमलोग नरकमें आश्रित हुयेहैं और दश भविष्य पितर नरक को जावेंगे और वैसेही आप नरकको प्राप्त होवैंगे ॥ १० ॥ ऐसा कहकर दुःखित होतेहुये उसके वे सब पितर फिर नरकको प्राप्त हुये और वह राजाभी जगपड़ा ॥ ११ ॥ तदन-

नृपंसुप्तंसमासाद्य नारकेयैःसुदुःखितैः ॥ पितर ऊचुः ॥ वयंशुद्धसमाचारा नित्यंधर्मपरायणाः ॥ ७ ॥ दानयज्ञतपःशीलाः स्वदारनिरतास्तथा ॥ स्वकर्मभिःकुलाङ्गार दिवंप्राप्तायथार्हतः ॥ ८ ॥ कुपुत्रंत्वांसमासाद्य नरकंसमुपस्थितः ॥ तस्मा दुद्धरनःसर्वान् कृत्वाकिञ्चिच्छुभार्जनम् ॥ ९ ॥ कर्मभिस्तवपापात्मन् वयंनरकमाश्रिताः ॥ नरकंदशयास्यन्ति भविष्याश्चतथाभवान् ॥ १० ॥ एवमुक्त्वातुतेसर्वे पितरस्तस्यदुःखिताः ॥ प्राप्ताश्चनरकंभूयः प्रबुद्धःसोपिपार्थिव ॥ ११ ॥ ततोदुःखमनुप्राप्तः पितृवाक्यानिसंस्मरन् ॥ रुरोदप्रातरुत्थाय तंभार्याप्रत्यभाषत ॥ १२ ॥ इन्दुमत्युवाच ॥ किमर्थं राजशार्दूल त्वंरोदिषिमहास्वनम् ॥ कथंतेकुशलंराज्ये शरीरेवापुरेथवा ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ मयादृष्टोद्यस्वप्नान्ते पिताह्यथपितामहः ॥ तथापिदुःखितान्देवि ताभ्यामप्यग्रजान्पितॄन् ॥ १४ ॥ अवदंश्चैवतेसर्वैस्तवकर्मभिरीदृशैः ॥ दारुणंनरकंप्राप्ता अधर्मादिविचेष्टितैः ॥ १५ ॥ अथान्येदशयास्यन्ति भविष्याश्चभवानपि ॥ तस्मात्कृत्वाशुभंकर्म

न्तर पितरों के वचनों को स्मरण करता हुआ वह राजा दुःखको प्राप्तहुआ और प्रातःकाल उठकर रोनेलगा उससे स्त्री बोली ॥ १२ ॥ इन्दुमती बोली कि हे राजशार्दूल ! तुम क्यों बड़े शब्द से रोतेहो और तुम्हारे राज्य, शरीर व नगरमें कुशल है ॥ १३ ॥ राजा बोले कि आज मैंने स्वप्नके अन्त में पिता व पितामह को देखा है वैसेही हे देवि ! उन दोनोंसे भी पहले उपजेहुये दुःखित पितरों को देखाहै ॥ १४ ॥ और उन्होंने कहा कि तुम्हारे ऐसे अधर्मादि चेष्टित समस्त कर्मों से हमलोग नरक

में प्राप्तहुये हैं ॥ १५ ॥ व दश अन्य भविष्य पितर जावैंगे व आपभी नरक को प्राप्तहोवैंगे इसलिये उत्तमकर्म करके हमलोगों को दुर्गति से उद्धार कीजिये ॥ १६ ॥ हे वरवर्णिनि ! पितरोंने ऐसा कहाहुआ मैं जगउठा उसीकारण उसका वचन हृदय में स्मरण करताहुआ मैं दुःखको प्राप्तहुआ ॥ १७ ॥ इन्दुमती बोली कि हे महाराज! पितामहों ने तुमसे जो कहा है यह सत्य है पुरातनसमय तुमसे कियेहुये पुण्यको मैं नहीं स्मरण करती हूं ॥ १८ ॥ हे राजन् ! जैसे उत्तमपुत्र को प्राप्त होकर पितर तरते हैं वैसेही कुपुत्र से मनुष्य नरक को प्राप्त होतेहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥१९॥ सो तुम धर्मशास्त्र में चतुर द्विजेन्द्रों को बुलाकर उनसे पूंछकर अपना समेत पितरों

दुर्गतेश्चोद्धरस्वनः ॥ १६ ॥ एवमुक्तःप्रबुद्धोहं पितृभिर्वरवर्णिनि ॥ तेनाहंदुःखमापन्नस्तद्वाक्यंहृदिसंस्मरन् ॥ १७ ॥ इन्दुमत्युवाच ॥ सत्यमेतन्महाराज यदुक्तोसिपितामहैः ॥ नत्वयासुकृतंकर्म संस्मरेहंकृतम्पुरा ॥ १८ ॥ यथासुपुत्रमासाद्य तरन्तिपितरोनृप ॥ कुपुत्रेणतथायान्ति नरकंनात्रसंशयः ॥ १९ ॥ सत्वमाहूयविप्रेन्द्रान् धर्मशास्त्रविचक्षणान् ॥ पृष्ट्वातानुकुरुयच्छ्रेयः पितृणामात्मनासह ॥ २० ॥ आनयामासराजासौ ततोविप्राननेकशः ॥ वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञान् धर्मशास्त्रविचक्षणान् ॥ २१ ॥ उवाचविनयोपेतस्ततस्तान्भार्ययासह ॥२२॥ राजोवाच ॥ कर्मणाकेनपितरो निरयस्थाद्विजोत्तमाः ॥ स्वर्गंयान्तिसुपुत्रेण तारिताःप्रोच्यतांस्फुटम् ॥ २३ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पितृमेधेनराजेन्द्र कृतेनविधिपूर्वकम् ॥ निरयस्थादिवंयान्ति यद्यपिस्युःसुपापिनः ॥ २४ ॥ राजोवाच ॥ दीक्षयन्तुद्विजाःसर्वे तदर्थंमान्धृतव्रतम् ॥ यत्किञ्चिदत्रकर्त्तव्यं प्रोच्यतामखिलंहितत ॥ २५ ॥ तथोक्तास्तेनृपेन्द्रेण ब्राह्मणाःसत्यवादिनः ॥ समग्राःपार्थिवंप्रोचुर्यदुक्तं

का जो कल्याण होवै उसको कीजिये ॥ २० ॥ तदनन्तर इस राजाने वेद वेदांगोंके तत्त्वको जाननेवाले व धर्मशास्त्र में चतुर अनेक ब्राह्मणों को लिवा मँगाया ॥ २१ ॥ तदनन्तर स्त्रीसमेत विनयसंयुत उस राजाने कहा ॥ २२ ॥ राजा बोले कि हे द्विजोत्तमो ! नरक में टिकेहुये पितर किमकर्म से सुपुत्रसे तारित होकर स्वर्गको जाते हैं इसको प्रकट कहिये ॥ २३॥ ब्राह्मण बोले कि हे नृपेन्द्र ! विधिपूर्वक पितृमेध करने से यद्यपि बड़ेपापी होवैं तथापि नरक में स्थित पितर स्वर्गको जातेहैं ॥ २४ ॥ राजा बोले कि हे ब्राह्मणो ! आप सबलोग व्रतको धारण कियेहुये मुझको दीक्षा दीजिये और इसविषय में जो कुछ करनेयोग्य हो उस सबको कहिये ॥ २५ ॥ नृपेन्द्र

से वैसा कहेहुये सब सत्यवादी ब्राह्मणों ने जो यज्ञकर्म में कहागया है उसको राजासे कहा ॥ २६ ॥ कि हे नृपश्रेष्ठ ! तुमको दीक्षा ग्रहण करना चाहिये और शरीर की शुद्धिके लिये पहले पुरश्चरण करके तदनन्तर दीक्षा कल्याणकारिणी होती है ॥ २७ ॥ हे राजन्! सो तुम शिशुता से लगाकर पाप आचरण करते हो जिसलिये पातक असंख्य है उसकारण तीर्थयात्रा कीजिये ॥२८॥ हे नृपोत्तम ! जब तुम प्रायश्चित्तसे सब तीर्थोंसे अभिषिक्त होगे तदनन्तर यज्ञके योग्य होगे अन्यथा न होगे ॥२६॥ पृथ्वीमें जो प्रभासादिक तीर्थ हैं उन सबोंमें जाना चाहिये और सावधान होते हुये उन सबोंमें स्नान करो ॥ ३० ॥ अतिउत्तम दानको देतेहुये तुम मनसे कठिन तीर्थों

यज्ञकर्मणि ॥ २६ ॥ दीक्षाग्राह्यान्नृपश्रेष्ठ पुरश्चरणमादितः ॥ कृत्वाकायविशुद्ध्यर्थं ततःश्रेयस्करीभवेत् ॥ २७ ॥ सत्वंपापसमाचारो बाल्यात्प्रभृतिपार्थिव ॥ असंख्यंपातकंतस्मात्तीर्थयात्रांसमाचर ॥ २८ ॥ सर्वतीर्थाभिषिक्तस्त्वं यदामिनृपसत्तम ॥ प्रायश्चित्तेनयोग्योमि ततोयज्ञस्यनान्यथा ॥ २६ ॥ प्रभासादीनितीर्थानि यानिसन्तिधरातले ॥ गन्तव्यंतेषुसर्वेषु स्नानंकुरुसमाहितः ॥ ३० ॥ मनसागच्छदुर्गाणि ददद्दानमनुत्तमम् ॥ नतदस्त्यशुभंकिञ्चिदपिब्रह्मवधोद्भवम् ॥ ३१ ॥ यन्नयातिमहाराजतीर्थस्नानान्नृणांभुवि ॥ ३२ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ विप्राणांवचनंश्रुत्वा सराजाश्रद्धयान्वितः ॥ तीर्थयात्रापरोभूत्वा परिबभ्राममेदिनीम् ॥ ३३ ॥ नियतोनियताहारो ददद्दानानिभूरिशः ॥ राज्येपुत्रंप्रतिष्ठाप्य वसुंसत्यपराक्रमम् ॥ ३४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्य तीर्थयात्रानुषङ्गतः ॥ कुलसन्तारणंप्राप्त अर्बुदेनिर्मलोदकम् ॥३५॥ सस्नानमकरोत्तत्र श्रद्धापूतेनचेतसा ॥ स्नातमात्रस्यतस्याथ तस्मिन्नेवजलाशये ॥ ३६ ॥ विमुक्ताःपितरो

को जावो क्योंकि ब्रह्मघात से उपजाहुआ वह कोई भी पाप नहीं है ॥ ३१ ॥ हे महाराज ! पृथ्वीमें मनुष्यों का जो पापतीर्थों के स्नान से न जावै ॥ ३२ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि ब्राह्मणोंकेवचन को सुनकर श्रद्धासंयुत वह राजा तीर्थयात्रामें परायण होकर पृथ्वीमें घूमताभया ॥ ३३ ॥ सत्य पराक्रमवाले वसुपुत्र को राज्य पै बिठाकर बहुत से दानोंको देताहुआ नियत व नियतभोजी वह राजा पृथ्वी में घूमताभया ॥ ३४ ॥ इसके अनन्तर वह किसीसमय तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे अर्बुदपर्वत पै निर्मलजलवाले कुल सन्तारणतीर्थ को प्राप्तहुआ ॥ ३५ ॥ और श्रद्धासे पवित्र चित्तकरके उसने उस तीर्थमें स्नान किया और उसी जलाशय में नहायेहुये उस राजाके ॥ ३६ ॥

पितर प्रसन्न होकर भयङ्कर नरकसे छूटगये तदनन्तर दिव्य विमान व दिव्यमालाओं तथा वसनों से संयुत पितर ॥ ३७॥ उससे बोले कि हे पुत्र ! इससमय तुम से हम सब तारेगये व इसतीर्थ के प्रभाव से दश भविष्य पितर तरिगये ॥ ३८ ॥ व हे नृपश्रेष्ठ ! इसतीर्थ में नहाकर जलके तर्पण से आत्मा भी तारागया हे पुत्र ! जिसलिये तुमने इसतीर्थमें कुलको तारा उसकारण ॥ ३९ ॥ यह तीर्थ कुलसंतारणनामक होगा इसलिये हे नृपेन्द्र ! इसशरीर से तुम भी हमसबोंसमेत इसतीर्थ के प्रभाव से स्वर्गको आइये ॥ ४० । ४१ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि उससमय ऐसा कहाहुआ वह दिव्य कांतिसे संयुत शरीरवाला राजा विमान पै चढ़कर उन पितरों

रौद्रान् नरकात्सुप्रहर्षिताः ॥ ततोदिव्यविमानाश्च दिव्यमाल्याम्बरान्विताः ॥ ३७ ॥ तमूचुस्तारिताःसर्वे वयंपुत्रत्व याधुना ॥ तीर्थस्यास्यप्रभावेण भविष्याश्चतथादश ॥३८॥ आत्माचपार्थिवश्रेष्ठ स्नात्वात्रजलतर्पणात् ॥ यस्मात्कुलं त्वयापुत्र तीर्थेस्मिंस्तारितंततः ॥ ३९ ॥ कुलसन्तारणंनाम तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ तस्मात्त्वमपिराजेन्द्र सहास्माभि र्दिवम्प्रति ॥ ४० ॥ आगच्छानेनदेहेन तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ४१ ॥ पुलस्त्य उवाच॥ एवमुक्तस्सराजेन्द्रो दिव्यका न्तिवपुस्तदा ॥ तंविमानमथारुह्य गतःस्वर्गंचतैःसह ॥ ४२ ॥ एषप्रभावोराजर्षेकुलसन्तारणस्यच ॥ मयातेवर्णितःसम्य ग् भूयःकिंपरिपृच्छसि ॥ ४३ ॥ ययातिरुवाच ॥ सकःप्रभावोराजर्षिस्तथापापसमन्वितः ॥ स्वदेहेनगतःस्वर्गमेतन्मे कौतुकंमहत् ॥ ४४ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ एकार्गलेव्यतीपाते समकालेनृपोत्तमः ॥ सस्नातोयेनभूपाल तन्महच्छ्रे यसेभवत् ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेकुलसन्तारणमाहात्म्यंनामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ * ॥

समेत स्वर्गको चलागया ॥ ४२ ॥ हे राजर्षे ! कुलसंतारण का यह प्रभाव मैंने भलीभांति तुमसे वर्णन किया और फिर क्या पूंछते हो ॥ ४३ ॥ ययातिजी बोले कि वह कौन प्रभाव है कि जिससे वैसा पापसंयुत राजर्षि अपने शरीर से स्वर्गको चलागया यह मुझको बड़ाभारी कौतुक है ॥ ४४ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे भूपाल ! एकार्गलयोग व व्यतीपातयोगमें और समानसमय याने विषुवायन में जिससे उसराजाने उसमें स्नान किया उसीकारण बड़े कल्याण के लिये हुआहै ॥ ४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकुलसंतारणमाहात्म्यं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ * ॥

दो॰। अतिउत्तम तीरथ कियो जामदग्न्य जिमि राम। उंचसवें अध्याय में सोइ चरित सुखधाम॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर ऋषियों से सेवित व पवित्र रामतीर्थ को जावै उसमें नहायेहुये मनुष्य का पाप नाश होताहै॥ १॥ और प्रलयपर्यन्त पितरों की बड़ी प्रसन्नता है पुरातनसमय सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ भृगुवंशी परशुरामजी हुयेहैं॥ २॥ शत्रुवोंका नाश चाहनेवाले उन्होंने पुरातनसमय तप किया है तदनन्तर शिवजीने पाशुपतनामक अस्त्र उन परशुरामको दियाहै॥ ३॥ जिसके स्मरणसे भी शत्रुवों का नाश होताहै और वृषभध्वज शिवजी ने हँसकर बचन कहा॥ ४॥ कि हे महाबाहो, जामदग्न्य! मेरे उत्तम वचन को सुनिये कि इस अस्त्र

पुलस्त्य उवाच॥ रामतीर्थंततोगच्छेत् पुण्यंऋषिनिषेवितम्॥ तत्रस्नातस्यमर्त्यस्य जायतेपापसंक्षयः॥ १॥ पितॄणांचपरातुष्टिर्यावदाभूतसंप्लवम्॥ पुरासीद्भार्गवोरामः सर्वशस्त्रभृतांवरः॥ २॥ तेनपूर्वंतपस्तप्तं शत्रूणामिच्छता क्षयम्॥ ततःपाशुपतंनाम तस्यास्त्रंपरमंददौ॥ ३॥ स्मरणेनापि शत्रूणां यस्यसंजायतेक्षयः॥ अब्रवीद्वचनंचापि प्रहस्यवृषभध्वजः॥ ४॥ जामदग्न्यमहाबाहो शृणुमेपरमंवचः॥ अस्त्रेणानेनयुक्तस्त्वमजेयःसर्वदेहिनाम्॥ ५॥ भविष्यसिनसन्देहो मत्प्रसादाद्भृगूद्वह॥ एतज्जलाशयंपुण्यं त्रैलोक्येसचराचरे॥ ६॥ रामतीर्थमितिख्यातं मत्प्रसादाद्भविष्यति॥ येत्रश्राद्धंकरिष्यन्ति पौर्णमास्यांसमाहिताः॥ ७॥ संप्राप्तेकार्त्तिकेमासि कृत्तिकायोगसंयुते॥ पितृमेधफलंतेषामशेषंचभविष्यति॥ ८॥ तथाशत्रुक्षयोराजन् वासःस्वर्गेपिचाक्षयः॥ पुलस्त्य उवाच॥ एवमुक्त्वामहादेवस्तत्रश्चादर्शनंगतः॥ ९॥ रामोपिसूदयञ्छत्रून् पितृदुःखेनदुःखितः॥ त्रिःसप्ततर्पयामास पितॄंस्तत्रप्रहर्षितः॥१०॥

से संयुत तुम सब प्राणियोंके न जीतनेयोग्य॥ ५॥ होवोगे इसमें सन्देह नहीं है व हे भृगूद्वह! मेरी प्रसन्नता से यह जलाशय चराचरसमेत त्रिलोकमें पवित्र होगा॥ ६॥ और मेरे प्रसादसे यह रामतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध होगा और कातिक महीना प्राप्त होनेपर कृत्तिकानक्षत्रसे संयुत दिनमें पौर्णमासी तिथिमें सावधान होतेहुये जो मनुष्य यहां श्राद्ध करेंगे उनको सब पितृमेधका फल होगा॥ ७। ८॥ व हे राजन्! शत्रुवोंका क्षय व स्वर्गमें अक्षय निवास होगा। पुलस्त्यजी बोले कि ऐसा कहकर तदनन्तर महादेवजी अन्तर्द्धान होगये॥ ९॥ और पिताके दुःखसे दुःखित परशुरामजी ने शत्रुवोंको नाश करतेहुये वहां प्रसन्न होकर इक्कीस पुश्तिवाले पितरोंका तर्पण किया॥१०॥

हे मनुजाधिप ! जमदग्निजी के मरनेपर माताके अङ्गमें शस्त्रों से उपजेहुये इक्कीस घावोंको देखकर उन महात्मा परशुरामजी ने ब्राह्मणों का समाज प्राप्त होनेपर प्रतिज्ञा किया कि जिसलिये युद्ध न करतेहुये मेरे तपस्वी व ब्राह्मण पिताको क्षत्रियोंने मारडाला उसकारण इक्कीसबार पृथ्वीको क्षत्रियों से हीन करके पिताको जल दूंगा ॥ ११।१२।१३ ॥ हे नृप ! उन परशुरामजी का वह सब तीर्थके माहात्म्य से होगया इसलिये सब यत्नसे वहां श्राद्ध करै ॥ १४ ॥ और जो शत्रुका नाश चाहै वह क्षत्रिय विशेषकर वहां श्राद्धकरै ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायां भाषाटीकायारामतीर्थमाहात्म्यनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

जमदग्नौमृतेतेन प्रतिज्ञातंमहात्मना ॥ दृष्ट्वामातुःक्षतान्यङ्गे त्रिःसप्तमनुजाधिप ॥ ११ ॥ शस्त्रजातानिविप्राणां समाजेसमुपस्थिते ॥ पितामेतिहतोयस्मात् क्षत्रियैस्तापसोद्विजः ॥ १२ ॥ अयुध्यमानएवाथ तस्मात्कृत्वात्रिसप्तवै ॥ क्षत्रहीनामहंपृथ्वीं प्रदास्येसलिलंपितुः ॥ १३ ॥ तत्सर्वंतस्यसंजातं तीर्थमाहात्म्यतोनृप ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं तत्रसमाचरेत् ॥ १४ ॥ क्षत्रियश्चविशेषेण यइच्छेच्छत्रुमंक्षयम् ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्येरामतीर्थ माहात्म्यंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ कोटितीर्थंततोगच्छेत्सर्वपातकनाशनम् ॥ तीर्थानांयत्रसंजातः कोटिःपार्थिवहेलया ॥ १ ॥ यदा सीत्कलिकालस्तु रौद्रोराजन्महीतले ॥ म्लेच्छीभूतेजनेसर्वे तत्स्पर्शात्तीर्थविप्लवे ॥ २ ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटीच तीर्था नांभूमिवासिनाम् ॥ तेषांकोटेःकृतोवासः पर्वतेर्बुदसंज्ञिते ॥ ३ ॥ पुष्करेचतथाकोटेः कुरुक्षेत्रेचपार्थिव ॥ वाराणस्या

दो० । गे अर्बुद पर्वतहिपर तीर्थश्राद्ध त्रैकोटि। पञ्चासवें अध्यायमें सोइ चरित सुखमोटि ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! तदनन्तर समस्तपातकों के नाशनेवाले कोटितीर्थ को जावै जहां कि हेलासे करोड़ तीर्थ हुये हैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! जब पृथ्वीमें भयङ्कर कलिकाल हुआ तब सब मनुष्यों के म्लेच्छ होजानेपर और उन म्लेच्छों के स्पर्शमे तीर्थका विप्लव (गड़बड़) होनेपर ॥ २ ॥ जो पृथ्वीमें बसनेवाले साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ थे उनमें से एककोटिने अर्बुदनामक पहाड़ पै निवास किया ॥ ३ ॥ व एक करोड़ने पुष्करमें निवास किया और हे राजन् ! एक करोड़ने कुरुक्षेत्रमें निवास किया और अर्द्धकरोड़ तीर्थोंने काशीमें निवास किया तदनन्तर इन्द्रसमेत

देवताओं ने निवास किया ॥४॥ व हे राजन्! इन्द्रसमेत सब देवता इनतीर्थोंकी रक्षा करते हैं और जब जब सबओर से तीर्थ म्लेच्छों के स्पर्शभे भयसे विकल होते थे तब तब ॥ ५ ॥ तीर्थ शीघ्रही इन उक्त स्थानों में स्थित होते थे इसप्रकार वहां सब पापों को हरनेवाले साढ़ेतीन करोड़ तीर्थ पृथ्वीमें हुये इसलिये सब यत्नसे वहां स्नान करै ॥ ६।७ ॥ व विशेषकर भादौं महीने में कृष्णपक्ष की तेरसि में वहां सब स्नानादिक और जो जप होमादिक होताहै ॥८॥ हे राजन्! वह सब उसके प्रसाद से कोटिगुना होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांकोटितीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

मर्धकोटेस्ततोदेवैःसवासवैः ॥ ४ ॥ राजन्नेतानिरक्षन्ति सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ यदायदाभयार्तानि म्लेच्छस्पर्शात्समन्ततः ॥ ५ ॥ स्थानेष्वेतेषुतिष्ठन्ति तीर्थान्युक्तेपुसत्वरम् ॥ कोटितीर्थानित्रीण्येवं तत्रजातानिभूतले ॥ ६ ॥ अर्धकोटिसमेतानि सर्वपापहराणिच ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नानंतत्रसमाचरेत ॥ ७ ॥ कृष्णपक्षेत्रयोदश्यां नभस्येचविशेषतः ॥ तत्रस्नानादिकंसर्वं जपहोमादिकंचयत् ॥ ८ ॥ सर्वंकोटिगुणंराजंस्तत्प्रसादादसंशयम् ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्येकोटितीर्थमाहात्म्यंनामपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५० ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ चन्द्रभेदमनुत्तमम् ॥ तीर्थंपापहरंनृणां निशानाथेननिर्मितम् ॥ १ ॥ प्रतिज्ञा तंयदाराजन् ग्रहणंचन्द्रसूर्ययोः ॥ राहुणाकृतवैरेण छिन्नेशिरसिविष्णुना ॥ २ ॥ तदाभयान्वितश्चन्द्रो मत्वादैत्यंदुरासदम् ॥ पीयूषभक्षणाज्जातं ततश्चार्बुदमभ्यगात् ॥ ३ ॥ तत्रभित्त्वागिरेःशृङ्गं कृत्वाविवरमुत्तमम् ॥ प्रविष्टस्तस्यमध्येतु

दो० । चन्द्रभेदतीरथ कियो यथा निशाके नाथ । इक्यावन अध्याय में सोइ सुहावन गाथ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर चन्द्रमा से निर्मित मनुष्यों के पापोंको नाशनेवाले अतिउत्तम चन्द्रभेदनामक तीर्थको जावै ॥ १ ॥ हे राजन्! जब विष्णुजी से मस्तक कटनेपर वैर कियेहुये राहुने चन्द्रमा व सूर्य के ग्रहणकी प्रतिज्ञा किया ॥२॥ तब अमृतके पीनेसे राहुदैत्य को दुरासद (उग्र) हुये मानकर तदनन्तर भयसे संयुत चन्द्रमा अर्बुदपर्वत को आया ॥ ३ ॥ और वहां

पर्वतके शिखर को तोड़कर उत्तम बिल करके उसके मध्यमें पैठेहुये चन्द्रमा ने बहुतकठिन तप किया ॥ ४ ॥ तदनन्तर बहुतसमय के बाद महादेवजी उसके ऊपर प्रसन्न हुये व बोले कि तुम्हारा कल्याण होवै और जो तुम्हारे मनमें स्थितहो उसवरदानको मांगो ॥ ५ ॥ चन्द्रमा बोले कि हे सुरश्रेष्ठ ! राहुने मेरे ग्रहणकी प्रतिज्ञाकी है व हे ईशान ! वह स्वभावही से सिंहिकापुत्र राहु बलवान् था ॥ ६ ॥ और इससमय हे सुरश्रेष्ठ ! उसने अमृतभक्षण किया है उसीकारण ग्रहोंके मध्यमें धारण कियाहुआ भी यह कठिन है ॥ ७ ॥ हे देव ! पहिले हारेहुये देवताओं से अमृत पीनेपर देवताओं का रूप करके यह दानव आगया ॥ ८ ॥ और अमृत पियागया उस

तपस्तेपेसुदुश्चरम् ॥ ४ ॥ ततःकालेनमहता तुष्टस्तस्यमहेश्वरः ॥ अब्रवीद्वृणुभद्रन्ते वरंयत्तेमनःस्थितम् ॥ ५ ॥ चन्द्र उवाच ॥ प्रतिज्ञातंसुरश्रेष्ठ राहुणाग्रहणंमम ॥ बलवान्राहुरीशान प्रकृत्यासिंहिकासुतः ॥ ६ ॥ साम्प्रतंभक्षितंतेन पीयूषंसुरसत्तम ॥ ग्रहमध्येधृतश्चापि तेनैवासौदुरासदः ॥ ७ ॥ पीयमानेमृतेदेव देवैःपूर्वंपराजितैः ॥ दैवतंरूपमास्थाय दानवोसौसमागतः ॥ ८ ॥ अपिपीतंशरीरार्धन्तेनास्यमृत्युवर्जितम् ॥ सामृतंचाक्षयंजातं शिरोदेवभयप्रदम् ॥ ९ ॥ ततोदेवैःकृतंसाम ग्रहमध्येचतिष्ठति ॥ प्रतिज्ञातेग्रहेस्माकं ततोमेभयमाविशत् ॥ १० ॥ भयात्तस्यसुरश्रेष्ठ भित्त्वाशृङ्गं गिरेरिदम् ॥ कृतंश्वभ्रमगाधंच तपोर्थंसुरसत्तम ॥ ११ ॥ तस्मादत्रप्रसादंमे कुरुकामनिषूदन ॥ १२ ॥ भगवानुवाच ॥ अवध्यःसर्वदेवानामजेयःसमहाबलः ॥ करिष्यतिग्रहंनूनं राहुःकोपपरायणः ॥ १३ ॥ परंतवनिशानाथ करिष्येहंप्रति

कारण इसका आधा शरीर मृत्युसे रहित होगया व हे देव ! अमृतसमेत अक्षयमस्तक भयदायक हुआ ॥ ९ ॥ तदनन्तर देवताओं ने समझाया व ग्रहोंके मध्य में वह स्थित हुआ तदनन्तर मेरा ग्रहण प्रतिज्ञा करनेपर मेरे भय प्रवेश हुआ ॥ १० ॥ व हे सुरश्रेष्ठ ! उसके भयसे पर्वत के इसशिखर को फोड़कर हे सुरोत्तम ! तपस्या के लिये गहरा गढ़ा किया ॥ ११ ॥ इसकारण हे कामनिपूदन ! इसविषयमें मेरे ऊपर प्रसन्नता करो ॥ १२ ॥ भगवान् शिवजी बोले कि वह बड़ा बलवान् राहु सब देवताओं के अवध्य व अजेय है और क्रोध में तत्पर राहु निश्चयकर ग्रहण करैगा ॥ १३ ॥ परन्तु हे निशानाथ ! मैं तुम्हारी प्रतिक्रिया (यत्न) करूंगा कि

तुम्हारे ग्रहणके प्राप्त होनेपर स्नान दानादिक कर्मों को ॥ १४ ॥ भलीभांति श्रद्धासंयुत जो मनुष्य करैंगे उनसे इसप्रकार तुमको थोड़ाभी संताप न होगा ॥ १५ ॥ और तुम्हारे ग्रहण होने पर मेरे वचन से उनका कियाहुआ कर्मभी अक्षय होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ व तपस्या के लिये जिसकारण पर्वत का यह शिखर तुमसे तोड़ागया उसकारण संसार में चन्द्रोद्भेद ऐसा तीर्थ प्रसिद्ध होगा ॥ १७ ॥ और तुम्हारा ग्रहण प्राप्त होनेपर जो मनुष्य इसतीर्थ में स्नान करैगा उसका इससंसार में फिर जन्म न होगा ॥ १८ ॥ तदनन्तर बहुत समय के बाद प्रसन्न होते हुये शिवजी बोले कि तुम्हारा कल्याण होवै वरदान मांगिये और किसलिये

क्रियाम् ॥ ग्रहणेतवसंप्राप्ते स्नानदानादिकाःक्रियाः ॥१४॥ करिष्यन्तिचयेलोके सम्यक्छ्रद्धासमन्विताः ॥ ताभिस्त वनसन्तापः स्वल्पोप्येवंभविष्यति ॥ १५ ॥ अक्षयंचकृतंतेषामपिकर्मभविष्यति ॥ ग्रहणेतवसंजाते ममवाक्यादसंश यम् ॥ १६ ॥ एतद्भिन्नंत्वयायस्मात् तपोर्थंशिखरंगिरेः ॥ चन्द्रोद्भेदमितिख्यातं तीर्थंलोकेभविष्यति ॥ १७ ॥ ग्रहणेत वसंप्राप्ते योत्रस्नानंकरिष्यति ॥ नतस्यपुनरेवात्र जन्मलोकेभविष्यति ॥ १८ ॥ ततःकालेनमहता परितुष्टःशिवोब्रवी त् ॥ वरंवरयभद्रन्ते किमर्थंक्रियतेतपः ॥ १९ ॥ योवासोमदिनेस्नानं दर्शनंतत्रसादरात् ॥ तवलोकेध्रुवंवासस्तस्यच न्द्रभविष्यति ॥ २० ॥ एवमुक्त्वासभगवांस्ततश्चान्तर्दधेहरः ॥ चन्द्रोपिप्रययौहृष्टः स्वस्थानंनृपसत्तम ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्येचन्द्रोद्भेदतीर्थंनामैकपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५१ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ ईशानीशिखरंमहत् ॥ यत्रगौर्यातपस्तप्तं सुपुण्यंलोकविश्रुतम् ॥ १ ॥ यस्य

तपस्या कीजाती है ॥ १९ ॥ हे चन्द्र ! जो मनुष्य सोमवार दिनमें वहां आदरसमेत स्नान व दर्शन करताहै उसका निश्चयकर तुम्हारे लोकमें निवास होगा ॥ २० ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर वे भगवान् शिवजी अन्तर्द्धान होगये व हे नृपोत्तम ! प्रसन्न होकर चन्द्रमा भी अपने स्थानको चलागया ॥ २१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदख एडेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांचन्द्रोद्भेदतीर्थमाहात्म्यंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ® ॥ ® ॥

दो० । यथा भवानीशिखर पै पार्वती तप कीन । बावनवें अध्याय में सोई चरित नवीन ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर संसारमें प्रसिद्ध व बहुत

पवित्र बड़े भारी गौरीशिखर को जावै जहां कि पार्वतीजीने तप किया है ॥ १ ॥ जिसके भलीभांति दर्शन से भी मनुष्य पाप से छूट जाताहै और सात जन्मों के मध्य में भी सौभाग्य को पाता है ॥ २ ॥ ययातिजी बोले कि हे मुनीश्वर ! वहां पार्वतीजीने किससमय व किसलिये तपस्या किया है यह बडा कौतुक है तुम इसको कहने के योग्य हो ॥ ३ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! संसार में प्रसिद्ध अद्भुत दिव्य कथा को सुनिये कि जिसके सुननेहीसे मनुष्य सब पातकों से छूट जाता है ॥ ४ ॥ पुरातनसमय पार्वतीजी में आसक्त (रति में युक्त) महादेवजीको जानकर डरसंयुत इन्द्रसमेत सब देवताओंने एकान्त में बैठकर सलाह किया ॥ ५ ॥

सन्दर्शनेनापि नरःपापात्प्रमुच्यते ॥ लभतेचाथसौभाग्यं सप्तजन्मान्तराणिच ॥ २ ॥ ययातिरुवाच ॥ कस्मिन्काले तपस्तप्तं देव्यातत्रमुनीश्वर ॥ किमर्थंचमहत्त्वेतत् कौतुकंवक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ शृणुराजन्कथांदिव्या मद्भुतांलोकविश्रुताम् ॥ यस्याःसंश्रवणादेव मुच्यतेसर्वपातकैः ॥ ४ ॥ पुरागौर्यांसमासक्तं ज्ञात्वादेवास्सवासवाः ॥ मन्त्रं चक्रुर्भयाविष्टाएकान्तेसमुपाश्रिताः ॥ ५ ॥ वीर्यंयदित्रिनेत्रस्य क्षेत्रेगौर्याःपतिष्यति ॥ अस्माकंपतनंनूनं जगतश्चभविष्यति ॥ ६ ॥ सन्ततेस्तुविनाशाय ततोगच्छामहेद्रुतम् ॥ एवंसंमन्त्र्यदेवास्ते कैलासंपर्वतंगताः ॥ ७ ॥ ततस्तुनन्दिना सर्वे निषिद्धाःसमयंविना ॥ ८ ॥ नन्द्युवाच ॥ एकान्तेभगवान्रुद्रः सहगौर्यावसंस्थितः ॥ तस्माद्देवगणाःसर्वे गच्छन्तुनिलयंस्वकम् ॥ ९ ॥ अथदेवगणाःसर्वे वञ्चयित्वाचतंगणम् ॥ प्रैषयंस्तत्रवायुञ्च गुप्तमूचुर्वचस्त्विदम् ॥ १० ॥ गत्वात्रायोभवंब्रूहि नकार्यासन्ततिस्त्वया ॥ एवंदेवगणादेव प्रार्थयन्तिभयातुराः ॥ ११ ॥ ततोवायुर्द्रुतंगत्वा स्थितोयत्र

कि यदि त्रिलोचन शिवजी का वीर्य पार्वतीजी के क्षेत्र में गिरेगा तो हमलोगों व संसार का निश्चय कर पतन होगा ॥ ६ ॥ उसकारण सतान के नाश के लिये हमलोग शीघ्रही चलैं ऐसी सम्मति करके वे देवता कैलासपर्वत को गये ॥ ७ ॥ तदनन्तर समय के विना नन्दीश्वर ने सबको मना किया ॥ ८ ॥ नन्दी बोले कि भगवान् शिवजी पार्वतीसमेत एकान्त में स्थित हैं इसलिये सब देवगण अपने स्थान को जावैं ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर सब देवगणों ने उस नन्दीगण को छल कर-वहां पवन को पठाया और यह गुप्त वचन कहा ॥ १० ॥ कि हे पवन ! जाकर शिवजीसे कहिये कि तुमको संतान न करना चाहिये हे देव ! भय से विकल

देवता यह प्रार्थना करते हैं ॥ ११ ॥ तदनन्तर पवन शीघ्रही जाकर वहा स्थित हुये जहा कि महादेवजी थे और जो देवताओंने कहा था उसवचनको उन्होंने उच्च स्वरभे कहा ॥ १२ ॥ तदनन्तर भगवान् शिवजी बड़ी लज्जा से संयुत हुये और पार्वतीजी को छोडकर उठपड़े व बहुत अच्छा ऐमा बोले ॥ १३ ॥ तदनन्तर बहुत दुःख से विकल पार्वतीजीने देवताओंको शाप दिया पार्वतीजी बोलीं कि जिसलिये आयेहुये देवताओंसे मैं पुत्रहीन की गई ॥ १४ ॥ उसकारण वे देवता भी संतान से हीन होवैंगे व हे वायो ! जिसलिये मनुष्यों से रहित इसस्थान में तुम आयेहो ॥ १५ ॥ उसकारण तुम सदैव शरीर से रहित होवोगे ऐसा कहकर तदनन्तर पति

महेश्वरः ॥ उच्चैर्जगादवाक्यञ्च यदुक्तंत्रिदिवालये ॥ १२ ॥ ततस्तुभगवाञ्छम्भुर्व्रीडियापरयायुतः ॥ गौरींत्यक्त्वास मुत्तस्थौ बाढमित्येवचाब्रवीत् ॥ १३ ॥ ततोगौरीसुदुःखार्त्ता शशापत्रिदिवालयान् ॥ गौर्युवाच ॥ यस्मादहंकृतादेवैः पुत्रहीनासमागतैः ॥ १४ ॥ तस्मात्तेपिभविष्यन्ति सन्तानेनविवर्जिताः ॥ यस्माद्वायोसमायातः स्थानेस्मिञ्जनवर्जिते ॥ १५ ॥ तस्मात्कायविनिर्मुक्तस्त्वंभविष्यसिसर्वदा ॥ एवमुक्त्वाततोदीर्घं भर्तुःकोपपरायणा ॥ १६ ॥ त्यक्त्वापार्श्वंगताराजन्नर्बुदंनगसत्तमम् ॥ सुतार्थंसातपस्तेपे यतवाक्कायमानसा ॥ १७ ॥ ततोवर्षसहस्रान्ते देवदेवोमहेश्वरः ॥ इन्द्राद्यैर्विबुधैःसार्द्धं तदन्तिकमुपागमत् ॥ १८ ॥ अथशक्रोविनीतात्मा देवींताम्प्रत्यभाषत ॥ एषदेविशिवःप्राप्तस्तवपार्श्वंसुलज्जया ॥ १९ ॥ नाथस्तेतत्प्रसादोस्य क्रियतांसुमुखीभव ॥ देव्युवाच ॥ त्यक्ताहंतववाक्येन पतिना समयंविना ॥ २० ॥ पुत्रंलब्ध्वाप्रयास्यामि तस्यपार्श्वेंसुरेश्वर ॥ तस्यास्तंनिश्चयंज्ञात्वा स्वयंदेवःसमाययौ ॥ २१ ॥

के ऊपर बहुतही क्रोधसंयुत पार्वतीजी ॥ १६ ॥ हे राजन् ! उनकी समीपता को छोड़कर अर्बुदनामक उत्तम पर्वत पर चलीगई और वचन, शरीर व मनको रोक कर उन पार्वतीजीने पुत्र के लिये तप किया ॥ १७ ॥ तदनन्तर हज़ार वर्ष के अन्त में इन्द्रादिक देवताओंमसेत देवदेव शिवजी उन पार्वतीजी के समीप आये ॥ १८ ॥ इसके अनन्तर नम्रचित्तवाले इन्द्रजीने उन पार्वती देवी से कहा कि हे देवि ! ये शिवजी बडी लज्जा से तुम्हारे समीप प्राप्त हुये हैं ॥ १९ ॥ तुम्हारे स्वामी हैं इस लिये इनके ऊपर प्रसन्नता कीजावै व सुमुखी होवो देवीजी बोलीं कि समयके विना तुम्हारे वचन से पति ने मुझको छोड़दिया ॥ २० ॥ हे सुरेश्वर ! मैं पुत्र को पाकर

उनके समीप जाऊंगी उसके उस निश्चय को जानकर आपही शिवदेवजी आये ॥ २१ ॥ व हँसतेहुये शिवजी यह बचन बोले कि हे देवेशि, वरानने ! दृष्टिके दान मे संभाषण से प्रसन्नता कीजिये ॥ २२ ॥ हे पार्वति ! मुझको सब दशाओं में देवताओं का हित करना चाहिये उसकारण जिससमय में तुम छोड़ी गई व रतिकी रोंक की गई ॥ २३ ॥ हे सुरेश्वरि ! जिसलिये पुत्र के लिय तुम्हारा आरम्भ हुआ उसकारण हे प्रिये ! मेरी प्रसन्नता से चौथेदिन अपने शरीर से उपजाहुआ तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र होगा इसमें संदेह नहीं है हे सुरेश्वरि ! अपने अंगके मलको लेकर जैसे रूपको ॥ २४ । २५ ॥ करोगी निस्संदेह वैसाही होगा और बहुत रूपोंका धरनेवाला

अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं प्रसादः क्रियतामिति ॥ दृष्टिदानेनदेवेशि भाषणेनवरानने ॥ २२ ॥ मयादेवहितंकार्यं सर्वावस्थासुपार्वति ॥ अकालेतेनमुक्तासि निर्वृतिःसुरतेःकृता ॥ २३ ॥ पुत्रार्थंतेसमारम्भो यतश्चासीत्सुरेश्वरि ॥ तस्मात्तेभवितापुत्रो निजदेहभवोवरः ॥ २४ ॥ मत्प्रसादादसंदिग्धं चतुर्थेदिवसेप्रिये ॥ निजाङ्गमलमादाय यादृग्रूपंसुरेश्वरि ॥ २५ ॥ करिष्यसिनसन्देहस्तादृगेवभविष्यति ॥ सचदेवगणानाञ्च दैत्यानांचविशेषतः ॥ २६ ॥ तथावैसर्वमर्त्यानां सिद्धिदोबहुरूपधृक् ॥ एवमुक्तात्रिनेत्रेण परितुष्टासुरेश्वरी ॥ २७ ॥ आलापंपतिनाचक्रे सार्द्धहर्षसमन्विता ॥ चतुर्थेदिवसेप्राप्ते ततःस्नाताशिवानृप ॥ २८ ॥ ततोद्वर्तनजंलेपं गृहीत्वाकौतुकात्किल ॥ चतुर्भुजंचकाराथ हरवाक्याद्विनायकम् ॥ २९ ॥ ततःसजीवतांप्राप्य हरवाक्येनतंतदा ॥ विशेषेणमहाराज नायकोसौकृतःक्षितौ ॥ ३० ॥ सर्वेषांचैवमर्त्यानां ततःख्यातोवभूवह ॥ विनायकइतिश्रीमान् पूज्यस्त्रैलोक्यवासिनाम् ॥ ३१ ॥ सर्वेषांदेवमुख्यानां बभूवहिविना

वह सब देवगणों व विशेषकर दैत्यों को वैसेही सब मनुष्योंको सिद्धिदायक होगा त्रिनेत्र शिवजी से ऐसा कहीहुई सुरेश्वरी पार्वतीजी प्रसन्न हुईं ॥ २६ । २७ ॥ व हर्षसंयुत पार्वतीजी ने पति के साथ संभाषण किया तदनन्तर हे नृप ! चौथादिन प्राप्त होनेपर पार्वतीजी ने स्नान किया ॥ २८ ॥ उसके उपरान्त उबटनसे उपजे हुये लेपको कौतुक से लेकर शिवजी के वचनसे चार भुजाओंवाले गणेशको किया ॥ २९ ॥ तदनन्तर हे महाराज ! उससमय शिवजी के वचन से उन गणेश को सजीवता को प्राप्तकर पृथ्वी में ये सबही मनुष्यों के नायक कियेगये तदनन्तर त्रिलोकवासियों के पूजने योग्य विनायक श्रीमान् हुये ॥ ३० । ३१ ॥ व सब मुख्य

देवताओं के विनायक हुये तदनन्तर देवी के प्रिय हित में परायण सब देवगणोंने ॥ ३२ ॥ उसके लिये दिव्य वरदानों को दिया व हे राजन् ! देवताओं ने कहा ॥ ३३ ॥ देवता बोले कि हे देवि ! तुम्हारा यह पुत्र हम सबोंका अग्रगामी होगा और पहले इसके पूजित होनेपर तदनन्तर देवताओं से पूजा ग्रहण करने योग्यहै ॥ ३४ ॥ हे शुभे ! तुम्हारे भलीभाति सेवन से यह पर्वत का मनोहर शिखर दर्शन से मनुष्यों के सब पापों को हरनेवाला होगा ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य अतिपवित्र इस जलाश्रय में स्नान करेंगे वे वृद्धता व मृत्यु से रहित उत्तम स्थान को जावैंगे ॥ ३६ ॥ हे सुरेश्वरि ! माघ महीनें में शुक्लपक्षवाली तीज में सावधान होते हुये जो मनुष्य स्नान

यकः ॥ ततोदेवगणाःसर्वे देवीप्रियहितेरताः ॥३२॥ तस्मैददुर्वरान्दिव्यान् प्रोचुर्देवाश्चपार्थिव ॥३३॥ देवा ऊचुः ॥ तवायंतनयोदेवि सर्वेषांनःपुरःसरः ॥ प्रथमंपूजितेचास्मिन्पूजाग्राह्याततःसुरैः ॥ ३४ ॥ एतच्छृङ्गंगिरेरम्यं तवसंसेवनाच्छुभे ॥ सर्वपापहरंनॄणां दर्शनाच्चभविष्यति ॥ ३५ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति सुपुण्येसलिलाश्रये ॥ तेयास्यन्तिपरंस्थानं जरामरणवर्जितम् ॥ ३६ ॥ माघमासेतृतीयायां शुक्लायांयेसमाहिताः ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यन्तेतेसुरेश्वरि ॥ ३७ ॥ एवमुक्त्वासुराःसर्वे स्वस्थानंचततोगताः ॥ देवोपिसहितोदेव्या कैलासंपर्वतंगतः ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे ईशानीशिखरमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेद्ब्रह्मपदं तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ यत्रपूर्वंपदंन्यस्तं ब्रह्मणालोककारिणा ॥ १ ॥ पुरा ब्रह्मादयोदेवास्तत्रसर्वेसमाहिताः ॥ अर्बुदेपर्वतेरम्ये ऋषयश्चसुनिर्मलाः ॥ २ ॥ अचलेश्वरयात्रायां सुभक्त्याभाविता

करैंगे वे सात जन्मोंमें कियेहुये पातकसे छूट जावैंगे ॥ ३७ ॥ ऐसा कहकर तदनन्तर सब देवता अपने स्थान को गये और पार्वतीदेवीसमेत शिवदेव भी कैलास पर्वत को गये ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामीशानीशिखरमाहात्म्यंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ॥

दो० । भयो अर्बुदहि अचल पर तीर्थ ब्रह्मपदनाम । तिरपनवें अध्यायमें सोइ चरितअभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर त्रिलोकमें प्रसिद्ध ब्रह्मपदतीर्थको जावै जहां कि पुरातनसमय लोकों को रचनेवाले ब्रह्मा ने चरण को धरा है ॥ १ ॥ पुरातनसमय उसमनोहर अर्बुदपर्वत पै सावधान होतेहुये ब्रह्मादिक सब देवता व अति

निर्मल ऋषिलोग गये ॥ २ ॥ हे राजन्! अचलेश्वर की यात्रा में उत्तम भक्तिसे संयुत सब मुनियोंने पितामहदेवजीसे कहा ॥ ३ ॥ ऋषिलोग बोले कि हे पितामह! बहुत नियमों से और नित्यहवन, व्रत व स्नान और उपवासों से हम सब निर्वेदको प्राप्त हैं ॥ ४ ॥ इसलिये तुम यहां कुछ उत्तम उपदेश देने के योग्यहो जिससे हे देवेश! हमलोग कठिन संसाररूपी समुद्र को उतरजावें ॥ ५ ॥ और अयाचितव्रत व उपवास तथा कठिन जप, होम, मंत्र, व्रत, व दानों से स्वर्गकी प्राप्तिको हम लोगों से कहिये ॥ ६ ॥ उनमुनियों के उसवचनको सुनकर दयासंयुत ब्रह्माजी ने इसअर्बुद पै कुछ हँसकर बहुत देरतक चिन्तवन किया ॥ ७ ॥ ब्रह्मा बोले कि

नृप ॥ अथतेमुनयःसर्वे प्रोचुर्देवंपितामहम् ॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ प्रभूतनियमैर्होमैर्व्रतैःस्नानैश्चनित्यशः ॥ उपवासैश्चनिर्विण्णा वयंसर्वेपितामह ॥ ४ ॥ तस्मात्सदुपदेशन्त्वं किञ्चिद्दातुमिहार्हसि ॥ तरामोयेनदेवेश दुर्गसंसारसागरम् ॥ ५ ॥ अयाचितोपवासैश्च जपहोमैःसुदुश्चरैः ॥ मन्त्रैर्व्रतैस्तथादानैः स्वर्गप्राप्तिंवदस्वनः ॥ ६ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वा मुनीनांचकृपान्वितः ॥ चिन्तयामाससुचिरमिहकिञ्चित्प्रहस्यच ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ द्विजाःस्वर्गंविनादानैर्होमैःस्नानैरुपोषणैः ॥ नातःस्वकंपदंत्यक्त्वा रम्येपर्वतरोधसि ॥ ८ ॥ अथोवाचमुनीन्सर्वान् प्रहसञ्श्लक्ष्णयागिरा ॥ एतन्ममपदंरम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ ९ ॥ स्पृशन्तुऋषयःसर्वे ततोयास्यथसद्गतिम् ॥ विनास्नानेनदानेन व्रतहोमजपादिभिः ॥ १० ॥ हितार्थंसर्वलोकानां मयान्यस्तंपदंशुभम् ॥ अस्मिन्पदेमयान्यस्ते यान्तिलोकाःपदंमम ॥ ११ ॥ स्पृशन्तुऋषयःसर्वे देवाश्चापिपदंमम ॥ एतदुक्त्वापदंन्यस्य ऋषीनाहपुनस्तथा ॥ १२ ॥ हितार्थंसर्वलोकानां मयान्यस्तं

हे द्विजो! दान, होम, स्नान व उपासों के विना स्वर्गको मनुष्य नहीं जाताहै इसकारण अपने स्थानको छोड़कर मैं सुन्दर पर्वत के किनारे आया ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त हँसतेहुये ब्रह्माजी ने सब मुनियों से नम्रवाणी करके कहा कि यह सुन्दर मेरा स्थान सब पातकों का नाश करनेवाला है ॥ ९ ॥ हे ऋषियो! आप सब इसको स्पर्श करो तदनन्तर उत्तम गतिको प्राप्त होगे स्नान, दान, व्रत, होम व जपादिकोंके विना ॥ १० ॥ सब लोकों के हितके लिये मने उत्तम पदको धारण कियाहै मेरे इस पद के धरने पर मनुष्य मेरे स्थानको प्राप्त होवैंगे ॥ ११ ॥ सब ऋषि व देवताभी मेरे पदको स्पर्शकर यह कहकर पगको धरकर फिर ब्रह्माजीने ऋषियों से कहा ॥ १२ ॥

कि सब मनुष्यों के हित के लिये मैंने पर्वत पै पगको धराहै यहा एक अव्यभिचारिणी (पवित्र) श्रद्धाही करने योग्य है ॥ १३ ॥ व हे मुनीश्वरो ! कातिक में पौर्णमासी का दिन प्राप्त होनेपर अपनी शक्ति से ब्राह्मणों को मिष्टान्न से भोजनकराकर जो भलीभांति श्रद्धासंयुत मनुष्य जल व अनेकभांति के फलों से तथा चन्दन, माला व अनुलेपनों से इसपदको पूजैगा ॥ १४ । १५ ॥ वह अतिदुर्लभ मेरे लोकको जावैगा इसमें सन्देह नहींहै ॥ १६ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर भलीभांति श्रद्धा से संयुत सब मुनिगण वहा साथही उसको पूजकर ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये ॥ १७ ॥ इसलिये हे नरोत्तम ! वहा स्वर्ग को देनेवाला पितामह का पद श्रद्धा से

पदंगिरौ ॥ एकैवात्रचकर्त्तव्या श्रद्धाचाव्यभिचारिणी ॥ १३ ॥ यश्चश्रद्धान्वितःसम्यक् पदमेतन्मुनीश्वराः ॥ पूजयिष्यतिसंप्राप्ते कार्त्तिकेपूर्णिमादिने ॥ १४ ॥ तोयैःफलैश्चविविधैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वातु मिष्टान्नेनस्वशक्तितः ॥ १५ ॥ सयास्यतिनसन्देहो ममलोकंसुदुर्लभम् ॥ १६ ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ ततोमुनिगणाःसर्वे सम्यक्श्रद्धासमन्विताः ॥ पूजयित्वासमन्तत्र ब्रह्मलोकंसमागताः ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्रपूज्यंनरोत्तम ॥ पितामहपदंसम्यक् श्रद्धयास्वर्गदायकम् ॥ १८ ॥ अन्यत्कौतूहलंराजन् मयादृष्टंमहाद्भुतम् ॥ पदस्यतस्ययच्छ्रुत्वा जायतेविस्मयोमहान् ॥ १९ ॥ आयामविस्तरेणापि कृतेप्राप्तेयुगेनृप ॥ नसंख्याजायतेराजञ्छुक्लवर्णंचमानवैः ॥ २० ॥ ततस्त्रेतायुगेप्राप्ते रक्तवर्णंप्रदृश्यते ॥ सुव्यक्तंसंख्ययायुक्तं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ २१ ॥ द्वापरेकपिलंतच्च लघुमात्रंप्रदृश्यते ॥ कलौकृष्णंसुसूक्ष्मंच रम्येपर्वतरोधसि ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कान्देर्बुदखण्डेब्रह्मपदोत्पत्तिर्नामत्रिपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५३ ॥

सब यत्नकरके पूजने योग्य है ॥ १८ ॥ व हे राजन् ! मैंने उसपद के बडे अद्भुत अन्य कौतुक को देखा है जिसको सुनकर बडा विस्मय होता है ॥ १९ ॥ हे नृप ! सतयुग प्राप्त होनेपर लम्बाई व चौड़ाई से उसकी संख्या नहीं होतीहै व हे राजन्! मनुष्यों से वह शुक्लवर्ण देखा जाता है ॥ २० ॥ तदनन्तर त्रेतायुग प्राप्त होनेपर सब मनुष्यों से प्रणाम कियाहुआ वह पद अतिप्रगट व संख्या से युक्त तथा अरुणरंग देखपड़ता है ॥ २१ ॥ व द्वापरमें वह कपिलवर्ण और छोटा देख पडता है व कलियुगमें मनोहर पर्वतके किनारे वह कृष्णवर्ण व बहुतही सूक्ष्म देख पड़ताहै॥२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेब्रह्मपदोत्पत्तिर्नामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

भयो अर्बुदहि शिखरपर तीर्थ त्रिपुष्करसंज्ञ । चौवनवें अध्याय में कह्यो सोइ सर्वज्ञ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर ब्रह्माके प्यारे उसत्रिपुष्करतीर्थ को जावैं ब्रह्माजी अर्बुदसंज्ञक पर्वत पै उसको लाये हैं ॥ १ ॥ हे नराधिप ! पुरातनसमय वसिष्ठजी का यज्ञ वर्तमान होनेपर उसपर्वत पै ब्रह्मादिक सुरश्रेष्ठ आये ॥ २ ॥ व हे महाराज ! अप्रकटजन्मवाले ब्रह्मा ने प्रतिज्ञा किया कि जबतक मैं इसलोक में टिकूंगा तबतक संध्याकाल प्राप्त होनेपर सावधान होताहुआ मैं त्रिपुष्करमें संध्या-वन्दन करूंगा इसीसमय जबतक ब्रह्माजी संध्या के लिये त्रिपुष्कर को चले तबतक वसिष्ठजी बोले वसिष्ठजी बोले कि हे सुरोत्तम ! इसयज्ञ में कर्मकाल प्राप्तहुआ

पुलस्त्य उवाच ॥ ततस्त्रिपुष्करंगच्छेदभीष्टंपद्मजस्यतत् ॥ ब्रह्मणातत्समानीतं पर्वतेर्बुदसंज्ञके ॥ १ ॥ वसिष्ठस्य पुरामत्रे वर्तमानेनराधिप ॥ तस्मिन्नगेसमायाता ब्रह्माद्याःसुरसत्तमाः ॥ २ ॥ प्रतिज्ञातंमहाराज ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना ॥ यावत्स्थास्यामिलोकेस्मिंस्तावत्सन्ध्यांत्रिपुष्करे ॥ ३ ॥ वन्दयिष्यामिसंप्राप्ते सन्ध्याकालेसमाहितः ॥ एतस्मिन्नेवका लेतु प्रस्थितःपुष्करम्प्रति ॥ ४ ॥ सन्ध्यार्थंपद्मजोयावद्वसिष्ठस्तावदब्रवीत् ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ कर्मकालश्चसंप्राप्तो यज्ञेस्मिन्सुरसत्तम ॥ ५ ॥ सविनानत्वयासिद्धिं ब्रह्मन्यास्यतिकर्हिचित् ॥ तस्मादानयचात्रैव पद्मयोनेत्रिपुष्करम् ॥ ६ ॥ सन्ध्योपास्तिंततःकृत्वा तत्रभूयःसुरेश्वर ॥ ब्रह्मत्वंकुरुत्वंदेव देवयोनेदयान्वितः ॥ ७ ॥ एवमुक्तोवसिष्ठेन ब्रह्मालोक पितामहः ॥ ध्यात्वातत्रानयामास ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकान् ॥ ८ ॥ पुष्करान्सिसमाजग्मुः सुपुण्येसलिलाशये ॥ ततःप्रभृ तिसंजातमर्बुदेस्मिंस्त्रिपुष्करम् ॥ ९ ॥ तत्रयःकार्त्तिकेमासि पौर्णमास्यांसमाहितः ॥ स्नानंकरोतिदानंच तस्यलोकाः

है ॥ ३ । ४ । ५ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे विना यह किसीप्रकार सिद्धि को न प्राप्त होगा इसलिये हे पद्मयोने ! त्रिपुष्कर को यहीं लाओ ॥ ६ ॥ तदनन्तर हे देवयोने, सुरेश्वर, देव ! यहां संध्योपासन कर दया से संयुत तुम फिर ब्रह्मत्व करो ॥ ७ ॥ वसिष्ठजी से ऐसा कहेहुये लोकों के पितामह ब्रह्माजी ध्यानकर यहां ज्येष्ठ, मध्य व छोटे पुष्कर को लाये ॥ ८ ॥ और अतिपवित्र जलाशय में पुष्कर को आये तब से लगाकर इसअर्बुद पै त्रिपुष्कर हुआ है ॥ ९ ॥ सावधान होताहुआ जो मनुष्य कातिक

महीने में पौर्णमासी तिथि में उसत्रिपुष्कर में स्नान व दान करता है उसको सनातनलोक होते हैं ॥ १० ॥ और उसके उत्तर दिशा के भाग में उत्तम सावित्रीकुंड है जिसमें स्नान दानादिक करताहुआ मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांत्रिपुष्करमाहात्म्यंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ● ॥ ● ॥ ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । कियो यथा शिवदेवजी तीर्थ रुद्रहद नाम । पचपन के अध्याय में सोइ चरित अभिराम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर पवित्र व उत्तम

सनातनाः ॥ १० ॥ तस्यचोत्तरदिग्भागे सावित्रीकुण्डमुत्तमम् ॥ स्नानदानादिकंकुर्वन् यत्रयातिशुभांगतिम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेत्रिपुष्करमाहात्म्यंनामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ पुण्यंरुद्रहृदंशुभम् ॥ यत्रस्नातोनरोभक्त्या गणाधीशत्वमाप्नुयात् ॥ १ ॥ पुराहत्वान्धकंदैत्यं सगणोवृषभध्वजः ॥ ततःस्नातोहृदंकृत्वा ततोरुद्रहृदोभवत् ॥ २ ॥ चतुर्दश्यांमहाराज यस्तत्रकुरुतेनरः ॥ स्नानंसलभतेपुण्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् ॥३॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेरुद्रहृदमाहात्म्यंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ गुहेश्वरमनुत्तमम् ॥ गुहामध्येगतंलिङ्गं सिद्धैःसम्पूजितम्पुरा ॥ १ ॥ यंयंका

रुद्रकुंड को जावै जिसमें भक्ति से नहाया हुआ मनुष्य गणेशताको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ पुरातनसमय गणोंसमेत वृषभध्वज शिवजी ने अंधक दैत्यको मारकर तदनन्तर कुंड करके स्नान किया उसीकारण रुद्रहद हुआ ॥ २ ॥ हे महाराज ! चौदसि तिथि में जो मनुष्य उसकुंड में स्नान करता है वह सब तीर्थोंसे उपजेहुये पुण्यको पाता है ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायारुद्रहृदमाहात्म्यंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ● ॥ ● ॥

दो० । अहै गुहेश्वरदेवकर यथा चरित्र उदार । छप्पनवें अध्याय में सोई चरितसुखार ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर अति उत्तम गुहेश्वरजी के

समीप जावै पुरातनसमय गुहाके मध्य में प्राप्त लिंगको सिद्धोंने पूजा है ॥ १ ॥ हे राजन् ! जिस जिस कामनाको चिन्तवनकर मनुष्य उसलिंगको पूजता है उस उसको प्राप्त होताहै और अकाम मनुष्य मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ २ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेभाषाटीकायांगुहेश्वरमाहात्म्यंनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥

दो० । अहै अर्बुदाचलहिंपर वननामक अविमुक्त । सत्तावन अध्याय में सोइ कथा है उक्त ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपोत्तम ! तदनन्तर अविमुक्त वनको जावै जिसके देखनेपर मनुष्य कभी प्रियसे वियोगको नहीं प्राप्त होताहै ॥ १ ॥ हे राजन् ! पुरातनसमय जब नहुष ने महात्मा इन्द्र का राज्य हरलिया तब दुःखसंयुत

ममभिध्याय तत्पूजयतिमानवः ॥ तंतंचलभतेराजन् निष्कामोमोक्षमाप्नुयात् ॥२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्यं नामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ अविमुक्तवनंगच्छेत्ततःपार्थिवसत्तम ॥ यस्मिन्दृष्टेह्यभीष्टेन वियुज्येत्तेनकर्हिचित् ॥ १ ॥ तत्र पूर्वंशचीराजन् प्रविष्टादुःखसंयुता ॥ नहुषेणहृतेराज्ये देवेन्द्रस्यमहात्मनः ॥ २ ॥ तत्प्रभावात्पुनःप्राप्तो वियुक्तोपिशतक्रतुः ॥ ततस्तस्यवरोदत्तो वनस्यहितयासह ॥ ३ ॥ नरोवायदिवानारी वियुक्तात्रवनेशुभे ॥ प्रियैर्झटितिचागत्य रात्रिमेकांवसिष्यति ॥ ४ ॥ सतेनप्राप्यतेसङ्गं भूयएवयथामया ॥ प्रियैःसलभतेवासमेकरात्रंवसन्नृप ॥ ५ ॥ फलदानंप्रशंसन्तितत्रब्राह्मणसत्तमाः ॥ वन्ध्याचैवविशेषेण ततःपुत्रफलंलभेत ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेविमुक्तमाहात्म्यं नामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

इन्द्राणी ने उसमें प्रवेश किया है ॥ २ ॥ और उसके प्रभाव से बिछुड़ेहुये भी इन्द्रजी फिर प्राप्त हुये तदनन्तर उन इन्द्राणीसमेत इन्द्र ने उसवन को वर दिया है ॥ ३ ॥ कि प्रियोंसे वियोगी स्त्री या पुरुष जो इस उत्तम वनमें शीघ्रही आकर एक रात्रि बसैगा ॥ ४ ॥ वह फिर भी मेरे नाईं उससे संगको पावैगा हे राजन् ! एकरात्रि बसता हुआ वह प्रियों के साथ निवासको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ वहां द्विजोत्तमलोग फलदान की प्रशंसा करते हैं और बाझ स्त्री विशेषकर उससे पुत्ररूपी फलको पाती है ॥ ६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायामाषाटीकायामविमुक्तमाहात्म्यंनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ॥

दो॰। तीर्थ भयो विख्यात जिमि उमामहेश्वर नाम। अट्ठावन अध्याय में सोई चरित ललाम॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! तदनन्तर अति पुण्यदायक उमा-माहेश्वरजी के समीप जावै जोकि पुरातनसमय भक्तिसंयुत धुंधुमारसे थापे गये हैं॥ १॥ हे मनुजाधिप! जो वहां भक्तिसे स्त्री पुरुषों को पूजता है वह सात जन्मोंके मध्यमें भी दुर्भाग्यताको नहीं प्राप्त होताहै॥ २॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेभाषाटीकायामुमामाहेश्वरचरितवर्णनंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥ ● ॥

दो॰। महौजसहिमें न्हाय जिमि इन्द्र भये विन पाप। उनसठिके अध्यायमें सोई चरित अलाप॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन्! तदनन्तर समस्तपातकोंको नाश-

पुलस्त्य उवाच॥ उमामाहेश्वरंगच्छेत्ततोराजन्सुपुण्यदम्॥ स्थापितंभक्तियुक्तेन धुन्धुमारेणयत्पुरा॥१॥ दम्पतीपूजयेद्भक्त्या यस्तत्रमनुजाधिप॥ सप्तजन्मान्तराण्येव नसदौर्भाग्यमाप्नुयात्॥ २॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डउमामाहेश्वरचरित्रवर्णनन्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५८॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच॥ ततोमहौजसंगच्छेत्तीर्थंपातकनाशनम्॥ यस्मिन्स्नातोनरोराजंस्तेजसायुज्यतेध्रुवम्॥ १॥ वृत्रंहत्वासुरंशक्रः पुरादैन्यंपरंगतः॥ निश्रीकस्तेजसाहीनो दुर्गन्धेनसमन्वितः॥ २॥ परित्यक्तःसुरैःसर्वैर्विषादंपरमङ्गतः॥ ततःपप्रच्छदेवेन्द्रो द्विजश्रेष्ठंबृहस्पतिम्॥ ३॥ भगवंस्तेजसोवृद्धिः कथंस्यान्मेयथापुरा॥ बृहस्पतिरुवाच॥ तीर्थयात्रांसुरश्रेष्ठ कुरुष्वधरणीतले॥ ४॥ तीर्थंविनाध्रुवंवृद्धिस्तेजसोनभविष्यति॥ ततस्तीर्थान्यनेकानि भ्रान्तःशक्रोनराधिप॥५॥ क्रमेणैवार्बुदंप्राप्तस्तत्रदृष्ट्वाजलाशयम्॥ स्नानंचक्रेततःश्रान्तो महौजाःप्रत्यपद्यत॥ ६॥

नेवाले महौजसतीर्थ को जावै जिसमें नहायाहुआ मनुष्य निश्चयकर तेजसे युक्त होता है॥ १॥ पुरातनसमय वृत्रासुर को मारकर इन्द्र बड़ी उदासीनताको प्राप्त हुये और शोभारहित व तेजसे हीन और दुर्गंधसे संयुत हुये॥ २॥ और सब देवताओंसे त्यागे हुये वे बड़े विषादको प्राप्त हुये तदनन्तर देवेन्द्रजीने द्विजोत्तम बृहस्पतिजी से पूछा॥ ३॥ कि हे भगवन्! पहलेकी नाईं मेरे किसप्रकार तेजकी वृद्धि होगी बृहस्पतिजी बोले कि हे सुरश्रेष्ठ! पृथ्वीमें तीर्थयात्रा करो॥ ४॥ क्योंकि विना तीर्थ के निश्चयकर तेजकी वृद्धि न होगी हे राजन्! तदनन्तर इन्द्रजी अनेकों तीर्थों में घूमते भये॥ ५॥ व क्रमही से अर्बुदको प्राप्त हुये और वहां जलाशयको देख

कर तदनन्तर उन्हों ने स्नान किया व वे इन्द्रजी सहँताकर बड़े बलवान् हुये ॥ ६ ॥ और दुर्गंध से छूटगये तदनन्तर देवताओंने घेरलिया व हँसतेहुये उन्होंने वचन कहा कि हे देवताओ ! आयेहुये सब ॥ ७ ॥ जो मनुष्य इन्द्रोत्सव प्राप्त होने पर उससमय कुँआर में शुक्लपक्षके अन्तमें इसतीर्थ में स्नान करैंगे वे उत्तम गति को प्राप्त होवैंगे ॥ ८ ॥ और सदैव जन्म जन्म में लक्ष्मीसमेत होवैंगे ॥ ९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांमहौजसप्रभाववर्णनंनामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥ ● ॥

दुर्गन्धेनविनिर्मुक्तस्ततोदेवैःसमावृतः ॥ उवाचप्रहसन्वाक्यं सर्वेदेवाःसमागताः ॥ ७ ॥ येत्रस्नानंकरिष्यन्ति प्राप्ते शक्रोत्सवेतदा ॥ आश्विनेशुक्लपक्षान्ते तेयास्यन्तिपराङ्गतिम् ॥८॥ सश्रीकाश्चभविष्यन्ति सदाजन्मनिजन्मनि ॥९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमहौजसप्रभाववर्णनन्नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततोगच्छेन्नृपश्रेष्ठ जम्बूतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रस्नातोनरःसम्यगिष्टंफलमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपसमस्तानां तीर्थानांनृपसत्तम ॥ आसीत्पुरानिमिर्नाम क्षत्रियःसूर्यवंशजः ॥ २ ॥ वयसःपरिणामेस पर्वतंचार्बुदंगतः ॥ प्रायोपवेशनंकृत्वा स्थितस्तत्रसमाहितः ॥ ३ ॥ अथाजग्मुर्मुनिगणास्तस्यपार्श्वेसहस्रशः ॥ चक्रुर्धर्मकथाःपुण्या राजर्षीणांमहात्मनाम् ॥ ४ ॥ देवर्षीणांपुराणानां तथान्येषांमहात्मनाम् ॥ ततःकश्चित्कथान्तेच लोमशो

दो० । भयो अर्बुदहि अचलपर जम्बूतीरथ नाम । कह्यो साठि अध्याय में सोइ चरित सुखधाम ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे नृपश्रेष्ठ ! तदनन्तर अति उत्तम जम्बूतीर्थ को जावै हे नृपोत्तम ! उसमें भलीभांति नहायाहुआ मनुष्य जम्बूद्वीपके सब तीर्थों के प्रिय फलको पाताहै पुरातनसमय सूर्यवंश में उत्पन्न निमिनामक क्षत्रिय हुआ है ॥ १ । २ ॥ वह अवस्था के अन्त में अर्बुदपर्वत पै गया और अन्न जलको छोड़ मरनेपर उतारू होकर सावधान होताहुआ वह वहां स्थित हुआ ॥ ३ ॥ इसके अनन्तर सैकड़ों मुनिगण उसके समीप आये और उन्हों ने महात्मा राजर्षियोंकी पवित्र धर्मकथाओं को कहा ॥ ४ ॥ और अन्य पुराने देवर्षिमहात्माओं की कथाओं को

कहा तदनन्तर कथा के अन्तमें लोमशनामक उत्तम मुनि ॥ ५ ॥ सब तीर्थों से उपजेहुये तीर्थ के माहात्म्य को कहते हुये वहां आये व हे राजन् ! उसवचन को सुनकर निमिराजा बड़ा उदासीन हुआ ॥ ६ ॥ क्योंकि उसने पहले तीर्थस्नान नहीं किया था तदनन्तर उसने ब्राह्मणसे कहा कि हे द्विजोत्तम ! कोई उपाय है किजिससे सब तीर्थों का फल मिलताहै लोमश बोले कि हे नृप ! तुमको बहुत दुःखित देखकर मेरे दया उत्पन्न हुई है ॥ ७ । ८ ॥ इसलिये तीर्थयात्राके लिये तुम्हारा प्रिय करूंगा और हे नृपेन्द्र ! मंत्र की शक्ति से जम्बूद्वीप में उपजेहुये सब तीर्थोंको यहां लाऊंगा इसमें संदेह नहीं है व हे महाराज ! उनके एकीभूत याने एक स्थान

नामसन्मुनिः ॥ ५ ॥ कीर्तयंस्तीर्थमाहात्म्यं सर्वतीर्थसमुद्भवम् ॥ तच्छ्रुत्वापार्थिवोराजन् निमिःपरमदुर्मनाः ॥ ६ ॥ तेनवैनकृतंपूर्वं यतस्तीर्थावगाहनम् ॥ ततःप्रोवाचविप्रंसह्यस्त्युपायोद्विजोत्तम ॥ ७ ॥ कश्चिद्येनचसर्वेषां तीर्थानांलभ्यतेफलम् ॥ लोमश उवाच ॥ दयामेनृपमंजाता त्वांदृष्ट्वादुःखितम्भृशम् ॥ ८ ॥ तीर्थयात्राकृतेतस्मात् करिष्येहंतवप्रियम् ॥ अत्रचैवानयिष्यामि जम्बूद्वीपोद्भवानिच ॥ ९ ॥ सर्वतीर्थानिराजेन्द्र मन्त्रशक्त्यानसंशयः ॥ स्नानंकुरुमहाराज एकीभूतेषुतेषुच ॥ १० ॥ अस्मिञ्जलाशयेपुण्ये सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ एवमुक्त्वासविप्रर्षिर्ध्यानंचक्रेसमाहितः ॥ ११ ॥ ततस्तीर्थानिसर्वाणि तत्रायातानितत्क्षणात् ॥ प्रत्ययार्थंचराजर्षे जम्बूवृक्षोऽप्यजायत ॥ १२ ॥ तत्रस्नानंनृपश्चक्रे सर्वतीर्थमयेध्रुवे ॥ सदेहश्चगतःस्वर्गं तीर्थस्नानादनन्तरम् ॥ १३ ॥ ततःप्रभृतितत्तीर्थं जम्बूतीर्थं

में होनेपर इस पवित्र जलाशय में स्नान करो यह मैं सत्य कहताहूं ऐसा कहकर सावधान होतेहुये उसब्रह्मर्षिने ध्यान किया ॥ ९ । १० । ११ ॥ तदनन्तर सब तीर्थ वहां उसीक्षण आगये व हे राजर्षे ! विश्वासके लिये जम्बू (जामुन) का वृक्ष उत्पन्न होगया ॥ १२ ॥ और राजाने समस्ततीर्थमय व अचल उसतीर्थमें स्नान किया व तीर्थस्नान के बाद वह शरीरसमेत स्वर्गको चलागया ॥ १३ ॥ तब से लगाकर वह तीर्थ जम्बूतीर्थ ऐसा कहागया है सूर्यनारायण के कन्याराशि में प्राप्त होनेपर

जो मनुष्य वहां श्राद्ध करता है ॥ १४ ॥ उसको महर्षियों ने गयाशीर्ष के समान फल कहा है ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायाभाषाटीकायांजम्बूतीर्थप्रभाववर्णनंनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । गंगाधरतीरथ भयो जिमि अर्बुदहिं समीप । इकसठि में सोई चरित वर्णित सुखद महीप ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे राजन् ! तदनन्तर निर्मल जलवाले अति पवित्र गंगाधरतीर्थको जावै कि जिसने आकाश से गिरतीहुई गंगाजीको धारण किया है ॥ १ ॥ और हे राजन् ! अचलेश्वररूपी देवदेव महादेवजीने हठसे उन

मितिस्मृतम् ॥ कन्यागतेरवौतत्र यःश्राद्धंकुरुतेनरः ॥१४॥ गयाशीर्षसमंतस्य पुण्यमाहुर्महर्षयः ॥ १५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेजम्बूतीर्थप्रभावोनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ गङ्गाधरंततोगच्छेत्सुपुण्यंविमलोदकम् ॥ येनगङ्गाधृताराजन् निपतन्तीनभस्तलात् ॥ १ ॥ आहृतादेवदेवेन अचलेश्वररूपिणा ॥ हरेणरभसाराजन् यत्पुराकथितंतव ॥ २ ॥ तत्रयःकुरुतेस्नानमष्टम्यांसुसमाहितः ॥ सगच्छेत्परमंस्थानं देवैरपिसुदुर्लभम् ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेगङ्गाधरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पुलस्त्य उवाच ॥ ततःकटेश्वरंगच्छेल्लिङ्गंगौरीविनिर्मितम् ॥ तथागङ्गेश्वरंचान्यद्गङ्गयानिर्मितंस्वयम् ॥ १ ॥ पुरासमभवद्युद्धमुमयासहगङ्गया ॥ सौभाग्यंप्रतिराजेन्द्र ततोगौरीत्यभाषत ॥ २ ॥ ययासम्पूजितःशम्भुः शीघ्रंया

को बुलाया है जो कि पुरातनसमय तुम से कहा गयाहै ॥ २ ॥ सावधान होकर जो मनुष्य अष्टमी तिथि में स्नान करता है वह देवताओं से भी दुर्लभ उत्तम स्थान को जाताहै ॥ ३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायांगङ्गाधरतीर्थमाहात्म्यंनामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ❀ ॥

दो० । गंगा अरु गिरिजा यथा थाप्यो लिंगन दोइ । बासठिके अध्यायमें कह्यो चरित सब सोइ ॥ पुलस्त्यजी बोले कि तदनन्तर पार्वतीजी से निर्माण कियेहुये कटेश्वर लिंगके समीप जावै वैसेही आपही गंगाजी से निर्मित अन्य गंगेश्वरलिंगके समीप जावै ॥ १ ॥ हे नृपेन्द्र ! पुरातनसमय पार्वती व गंगाजीसे सौभाग्यके लिये युद्ध

हुआ है तदनन्तर पार्वतीजीने यह कहा ॥ २ ॥ कि जिससे भलीभांति पूजेहुये शिवजी शीघ्रही दर्शनको प्राप्त होवैं वह निश्चयकर हम तुम दोनोंके मध्य में सौभाग्यवती है ॥ ३ ॥ इसप्रकार कहीहुई गंगाजी शीघ्रतासमेत उसअर्बुदपर्वत पै गई और उन्होंने लिंगको ढूंढ़ा व बहुतसमय से पाया ॥ ४ ॥ इसके अनन्तर हे महाराज! लिंगके आकारवाले पर्वत के सुन्दर कटक (नितम्ब) को पार्वतीजी ने देखा व उससमय भलीभांति श्रद्धासंयुत उन्होंने उसको पूजन किया तदनन्तर महादेवजी प्रसन्न हुये व उन्होंने दर्शन दिया व यह कहा कि मैं वरदायक हूं ॥ ५ । ६ ॥ पार्वतीजी बोलीं कि जिसलिये सपत्नीभावके कारण क्रोध से लिंग कल्पित कियागया

स्यतिदर्शनम् ॥ सासौभाग्यवतीनूनमावयोःसंभविष्यति ॥ ३ ॥ एवमुक्तागतागङ्गा सत्वरातत्रपर्वते ॥ लिङ्गमन्वेषयामास चिरकालादवापसा ॥ ४॥ दृष्टंगौर्याथकटकं पर्वतस्यमनोहरम् ॥ लिङ्गाकारंमहाराज पूजयामाससातदा ॥ ५ ॥ सम्यक्श्रद्धासमोपेता ततस्तुष्टोमहेश्वरः ॥ प्रददौदर्शनंतस्यावरदोस्मीतिचाब्रवीत् ॥ ६ ॥ गौर्युवाच ॥ सापत्न्यभावकोपेन यतोलिङ्गंप्रकल्पितम् ॥ तस्मात्कटेश्वराख्याच लोकेचास्यभविष्यति ॥ ७॥ यानारीपतिनामुक्ता सपत्नीदुःखदुःखिता ॥ अस्यसन्दर्शनादेव साभविष्यतिविज्वरा ॥ ८ ॥ सुतसौभाग्यसम्पन्ना भर्त्तुःप्राणसमातथा ॥ पुलस्त्य उवाच ॥ गङ्गयाराधितोदेव एवमेववरंददौ ॥ ९ ॥ तस्माल्लिङ्गद्वयंतच्च द्रष्टव्यंमनुजाधिप ॥ विशेषतश्चनारीभिः सपत्नीदोषशान्तये ॥ १० ॥ सुखसौभाग्यदंनित्यं तथाभीष्टप्रदंनृणाम् ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेमिश्रतीर्थकथानकंनामद्विषष्टिमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

उसलिये संसार में इसका कटेश्वरनाम होवै ॥ ७ ॥ और जो स्त्री पतिसे छोड़ी या सौतिके दुःखसे दुःखित होवै वह इसके भलीभांति दर्शनहीसे शोकरहित होवै ॥ ८ ॥ और पुत्र व सौभाग्यसे संयुत तथा पतिको प्राणों के समान प्यारी होवै पुलस्त्यजी बोले कि गंगाजी से आराधन कियेहुये शिवदेवजीने ऐसाही वर दिया ॥ ९ ॥ इसलिये हे मनुजाधिप! उनदोनों लिंगोंको देखना चाहिये और सौतियों के दोष की शान्तिके लिये स्त्रियों को विशेषकर देखना चाहिये ॥ १० ॥ वह लिंग सदैव सुख व सौभाग्यको देनेवाला और मनुष्यों के मनोरथों का देनेवाला है ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदखण्डेभाषाटीकायांमिश्रतीर्थकथनंनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

दो०। अर्बुद के माहात्म्यको सुने होत फल जौन। तिरसठि के अध्याय में कह्यो चरित सब तौन ॥ पुलस्त्यजी बोले कि हे महाराज ! तुमने जो मुझ से पूंछा इस सब अर्बुद के माहात्म्य को मैंने तुमसे संक्षेप से कहा ॥ १ ॥ क्योंकि विस्तार से सैकड़ों वर्षों से भी नहीं कहा जासक्ता है इस अर्बुदपर्वत पै असंख्य तीर्थ व पवित्र देवमन्दिर ॥ २ ॥ पग २ पै महर्षियों मे निर्माण कियेगयेहैं हे महाराज, महीपते ! वहतीर्थ नहीं है और वह वल्ली नहीं है तथा वह वृक्ष नहीं है ॥ ३ ॥ और वहा वहनदी नहीं है कि जिसमें देवेश शिवजी न स्थित होवैं हे महाराज ! जो मनुष्य वहां मनोहर अर्बुदपर्वत पै बसते हैं ॥ ४ ॥ वे पुण्यकर्मा मनुष्य निश्चयकर स्वर्गमें बसते हैं

पुलस्त्य उवाच ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातं यन्मान्त्वंपरिपृच्छसि ॥ अर्बुदस्यमहाराज माहात्म्यंहिसमासतः ॥ १ ॥ विस्तरेणनशक्यःस्यादपिवर्षशतैरपि ॥ असंख्यानीहतीर्थानि पुण्यान्यायतनानिच ॥ २ ॥ पदेपदेमहाराज निर्मितानिमहर्षिभिः ॥ नतत्तीर्थंनसावल्ली नसवृक्षोमहीपते ॥ ३ ॥ नसानदीनदेवेशो यत्रतत्रास्तिसंस्थितः ॥ येवसन्तिमहाराज सुरम्येर्बुदपर्वते ॥४॥ नूनंतेपुण्यकर्माणो निवसन्तित्रिविष्टपे ॥ किंतस्यजीवितेनार्थः किंधनैःकिंजपैर्नृप ॥ ५ ॥ योनपश्यतिशुद्धात्मा समन्तादर्बुदाचलम् ॥ अपिकीटपतङ्गाये पशवःपक्षिणोमृगाः ॥ ६ ॥ स्वेदजाश्चाण्डजाश्चापि उद्भिज्जाश्चजरायुजाः ॥ तस्मिन्मृतामहाराज निष्कामाःकामतोपिवा ॥ ७ ॥ तेयान्तिशिवसायुज्यं जरामरणवर्जितम् ॥ यश्चेदंशृणुयान्नित्यं पुराणंश्रद्धयान्वितः ॥ ८ ॥ अर्बुदस्यमहाराज सयात्राफलमश्नुते ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन या

हे राजन् ! उसके जीवन से क्या प्रयोजन है व उसके धनों से और जपों से क्या प्रयोजन है ॥ ५ ॥ जो कि शुद्धचित्त पुरुष सब ओर से अर्बुदपर्वतको नहीं देखता है और जो कीट व पतंग तथा पशु, पक्षी व मृगा ॥ ६ ॥ व हे महाराज ! स्वेदज (मच्छड़ आदिक) अंडज (पक्षी आदि) उद्भिज्ज (वृक्षादि) और जरायुज (मनुष्यादिक) उसपर्वत पै अकाम या कामना से भी मरते हैं ॥ ७ ॥ वे वृद्धता व मरण से रहित शिवजी के सायुज्य मोक्षको प्राप्त होतेहैं और श्रद्धासंयुत जो मनुष्य

नित्य अर्बुद के इस पुराने चरित्र को सुनता है वह हे महाराज ! यात्राके फलको पाता है इसलिये जो इसलोक व परलोक में अपनी सिद्धिको चाहे वह सब यत्नसे वहां यात्राकरै ॥ ८ । १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽर्बुदखण्डेदेवीदयालुमिश्रविरचितायांभाषाटीकायामर्बुदमाहात्म्यवर्णननामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ॥

त्रांतत्रममाचरेत् ॥ ९ ॥ यइच्छेदात्मनःसिद्धिमिहलोकेपरत्रच ॥ १० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेर्बुदमाहात्म्येफलस्तुतिर्नामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ * ॥ * * ॥ * ॥ * ॥

दो० । है प्रभासके खण्ड महँ, यह अर्बुद माहात्म्य । ताकर मैं भाषा रचेहुँ टीका शुभ याथात्म्य ॥ १ ॥ भूल चूक जो होय कहुँ, ताको सुजन सुधारि । लेहिं कृपाकरि विनय यह एकहि अहै हमारि ॥ २ ॥ ॥ ॥ ॥

इति अर्बुदखण्डः समाप्तः

प्रथमबार

लखनऊ

सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव के प्रबन्धसे
मुन्शी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा॥
सन् १९१० ई०

इति स्कन्दपुराणप्रभासखण्डान्तर्गतार्बुदखण्डसमाप्तः ॥

इति स्कन्दपुराणप्रभासखण्डः समाप्तः ॥